Government of India
PLANNING COMMISSION
LIBRARY

CLASS NO 354.54
BOOK NO. I39R

127329
PLANNING COMMISSION
LIBRARY

केन्द्र-राज्य संबंध आयोग

रिपोर्ट

योजना आयोग
Planning Commission
प्राप्ति संख्या............
Acc No. 127329
दिनांक
Date 26/7/89
पुस्तकालय
LIBRARY

भाग II

महाप्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक-422 006 द्वारा मुद्रित
तथा प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, दिल्ली-110 064 द्वारा प्रकाशित
1988

354.54
I39R

अनुवाद :
केन्द्रीय अनुवाद ब्युरो
(राजभाषा विभाग : गृह मंत्रालय)
पर्यावरण भवन, आठवां तल
बी-ब्लाक, सी०जी०ओ० कम्प्लैक्स
लोधी रोड, नई दिल्ली-110 003

प्रश्नावली, अनुपूरक प्रश्नावली, प्रश्नावली के उत्तर और राज्य सरकारों तथा राजनीतिक दलों से प्राप्त ज्ञापन

विषय सूची तालिका

क्रम सं०	विवरण	पृष्ठ संख्या
I.	मुख्य प्रश्नावली	3–12
II.	अनुपूरक प्रश्नावली	13–42
	(1) उद्योग (केन्द्र सरकार के लिए)	15
	(2) उद्योग (राज्य सरकारों के लिए)	15
	(3) अन्तरराज्यिक नदी-जल विवाद	15
	(4) अनुच्छेद 163 और 200 के अधीन राज्यपाल के विवेकाधिकार	16
	(5) राज्यपाल का पद और राष्ट्रपति शासन आदि	35
	(6) संविधान का अनुच्छेद 249	37
	(7) संविधान का अनुच्छेद 252	38
	(8) संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों से संबंधित विविध प्रश्न	39
	(9) संविधान का अनुच्छेद 356	40
	(10). कृषि आय पर कराधान	41
III.	राज्य सरकारों से प्राप्त प्रश्नावली ज्ञापन आदि के उत्तर	45–551 और
	(1) आन्ध्र प्रदेश	761–873
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	47–
	(ख) ज्ञापन	59
	(2) असम	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	67
	(ख) आशोधित/अतिरिक्त उत्तर	81
	(3) बिहार	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	87
	(ख) आयोग के समक्ष मुख्यमंत्री का वक्तव्य	138
	(4) गुजरात	
	प्रश्नावली के उत्तर	143
	(5) हरियाणा	
	प्रश्नावली के उत्तर	163
	(6) हिमाचल प्रदेश	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	173
	(ख) ज्ञापन	180
	(7) जम्मू और कश्मीर	
	प्रश्नावली के उत्तर	185
	(8) कर्नाटक	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	199
	(ख) ज्ञापन	216
	(ग) राज्यपाल के पद पर श्वेतपत्र	230

(1)	(2)	(3)
	(9) केरल	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	243
	(ख) ज्ञापन	262
	(ग) केरल राज्य आयोजना बोर्ड द्वारा प्रस्तुत टिप्पणी	266
	(10) मध्य प्रदेश	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	271
	(ख) ज्ञापन	286
	(11) महाराष्ट्र	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	291
	(ख) ज्ञापन	313
	(12) मणिपुर	
	प्रश्नावली के उत्तर	323
	(13) मेघालय	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	337
	(ख) मुख्यमंत्री का स्वागत भाषण	343
	(14) नागालैण्ड	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर और अतिरिक्त मुद्दे	347
	(ख) ज्ञापन	351
	(15) उड़ीसा	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	361
	(ख) आयोग के समक्ष मुख्यमंत्री द्वारा मामले का प्रस्तुतीकरण	377
	(16) राजस्थान	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	383
	(ख) आयोग के समक्ष मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण	398
	(17) सिक्किम	
	प्रश्नावली के उत्तर	405
	(18) तमिलनाडु	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	415
	(ख) आयोग द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दों के उत्तर	486
	(19) त्रिपुरा	
	ज्ञापन	495
	(20) उत्तर प्रदेश	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	503
	(ख) ज्ञापन	526
	(21) पश्चिम बंगाल	
	(क) प्रश्नावली के उत्तर	533
	(ख) मुख्यमंत्री का वक्तव्य	550
	(22) पंजाब	
	ज्ञापन	761
IV.	राजनीतिक दलों से प्राप्त प्रश्नावली के उत्तर, ज्ञापन आदि	
	1. राष्ट्रीय दल (नेशनल पार्टियां)	
	(i) भारतीय जनता पार्टी	553–757 और 874
	(क) केन्द्रीय कार्यालय	553
	(ख) पश्चिम बंगाल राज्य यूनिट	555

(1)	(2)	(3)
	(ii) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	
	(क) केन्द्रीय कार्यालय	555
	(ख) कर्नाटक राज्य यूनिट	557
	(ग) केरल राज्य यूनिट	564
	(घ) पश्चिम बंगाल राज्य यूनिट	566
	(iii) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	
	(क) केन्द्रीय समिति	569
	(ख) कर्नाटक राज्य यूनिट	572
	(ग) केरल राज्य यूनिट	576
	(घ) मध्य प्रदेश राज्य यूनिट	579
	(ङ) आन्ध्र प्रदेश राज्य यूनिट	582
	(iv) इण्डियन नेशनल कांग्रेस	
	(क) अखिल भारतीय कांग्रेस समिति (आई)	584
	(ख) केरल राज्य यूनिट	602
	(ग) मध्य प्रदेश राज्य यूनिट	607
	(घ) आन्ध्र प्रदेश राज्य यूनिट	608
	(v) इण्डियन नेशनल कांग्रेस (समाजवादी)	
	(क) केन्द्रीय कार्यालय	612
	(ख) केरल राज्य यूनिट	616
	(vi) जनता पार्टी	
	(क) केन्द्रीय कार्यालय	617
	(ख) केरल राज्य यूनिट	619
	(vii) लोक दल	
	केन्द्रीय कार्यालय	620
	2. राज्य पार्टियाँ	
	(i) अखिल भारतीय फारवार्ड ब्लाक	625
	(ii) द्रविड़ मुनेत्र कषगम	628
	(iii) केरल कांग्रेस (जे०)	651
	(iv) महाराष्ट्र वादी गोमान्तक	652
	(v) मुस्लिम लीग-केरल राज्य समिति	652
	(vi) पीजेंट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी आफ इण्डिया (भारतीय कृषक और कामगार पार्टी)	653
	(vii) रेवल्यूशनरि सोशलिस्ट पार्टी	
	(क) केन्द्रीय कार्यालय	653
	(ख) केरल राज्य यूनिट	661
	(viii) सिक्किम संग्राम परिषद	664
	(ix) शिरोमणि अकाली दल	755
	3. पंजीकृत पार्टियाँ	
	(i) झारखण्ड मुक्ति मोर्चा	671
	(ii) नागालैण्ड पीपुल्स पार्टी	674
	(iii) रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डियां	675
	(iv) सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर आफ इण्डिया	677
	(v) गांधी कामराज नेशनल कांग्रेस	683
	4. अन्य पार्टियाँ/ग्रुप	
	(i) एक्शन कमेटी आफ नार्थ-ईस्ट रीजनल पार्टीज कनफरेन्स	689
	(ii) असम जातिवादी दल	689

(1)	(2)	(3)
(iii)	भारतीय जनता युवा मोर्चा (गोवा यूनिट)	691
(iv)	डेमोक्रेटिक सोशलिस्ट पार्टी—	
	(क) केन्द्रीय कार्यालय	691
	(ख) हिमाचल प्रदेश यूनिट	704
(v)	गोमांत लोक पक्ष	705
(vi)	इंडियन नेशनल कांग्रेस (केरल-असंतुष्ट ग्रुप)	706
(vii)	केरल कांग्रेस -मणि ग्रुप	707
(viii)	खासी हिल्स स्वायत्त जिला परिषद	708
(ix)	मलयाली देशीय मुन्नानी	711
(x)	नामाडु कषगम	714
(xi)	प्रजा सोशलिस्ट पार्टी	722
(xii)	भारतीय रिपब्लिकन पार्टी	730
(xiii)	रेवल्यूशनरी काम्बले ग्रुप कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया	736
(xiv)	तमिल अरासु कषगम	742
(xv)	तमिलनाडु कामराज कांग्रेस	744
(xvi)	तेलगु जाति विमुक्ति संगम	747
(xvii)	यूनाइटेड गोवन्स	749
(xviii)	युवा जनता (गोवा यूनिट)	753
(xix)	अखिल भारतीय आदिवासी और अल्पसंख्यक संघ (आल इण्डिया ट्राइब्स एण्ड माइनारिटीज फेडरेशन)	874

केन्द्र-राज्य संबंध आयोग

प्रश्नावली

जनवरी, 1984

3—376 M. of HA/ND/87

भारत सरकार
केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग

चौथा तल, 'बी' विंग,
लोक नायक भवन, खान मार्किट,
नई दिल्ली-110 003.
तारीख : 16 जनवरी, 1984.

महोदय,

भारत सरकार ने इस आयोग का गठन गृह मंत्रालय की तारीख 9 जून, 1983 की अधिसूचना सं० IV/11017/I/83-सी०एस०आर० के अधीन निम्नलिखित विचारार्थ विषयों के लिए किया :—

"2. आयोग, संघ और राज्यों के बीच सभी क्षेत्रों में कार्य और दायित्वों के संबंध में मौजूदा कार्यव्यवस्था की जांच और समीक्षा करेगा और यथाउपयुक्त परिवर्तनों और अन्य उपायों की सिफारिश करेगा ।

3. संघ और राज्यों के बीच मौजूदा कार्यव्यवस्था की जांच और समीक्षा करते समय और आवश्यक परिवर्तनों तथा उपायों की सिफारिश करते समय आयोग उन सामाजिक और आर्थिक विकासों को ध्यान में रखेगा जो विगत कई वर्षों में हुए हैं और संविधान की योजना और रूपरेखा को ध्यान में रखेगा जिसे संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता की रक्षा के लिए और देश की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने के लिए बहुत सूझ-बूझ से तैयार किया है और जो जनकल्याण के विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।"

2. आयोग द्वारा की जाने वाली जांच का कार्यक्षेत्र और इसके पैरामीटर इन्हीं विचारार्थ विषयों के अनुसार होंगे ।

3. प्राथमिक सूचना (जिसका विश्लेषणात्मक अध्ययन करके आयोग उन कठिनाइयों, समस्याओं और मुद्दों का अधिक स्पष्ट और सही पता लगा सकता था जो संघ और राज्य के बीच मौजूदा कार्य-व्यवस्था के चलने के दौरान उत्पन्न हुए) एकत्र करने के उद्देश्य से आयोग ने भारत सरकार के सभी मंत्रालयों, राज्य सरकारों के वर्तमान और भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों और उप-राज्यपालों/संघ क्षेत्रों के प्रशासकों को इस विषय पर अपने ज्ञापन भेजने का अनुरोध किया था। प्रेषितियों में से 4 भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों और कुछ लोगों के संक्षिप्त तथा सुझावात्मक उत्तरों को छोड़ कर शेष प्रेषितियों से अभी तक कोई ज्ञापन प्राप्त नहीं हुआ है, जिनके प्राप्त होने पर आयोग अधिक विशिष्ट और व्यापक प्रश्नमाला तैयार कर सकता था । इसलिए यह दावा नहीं किया जा सकता कि अब जारी की जा रही प्रश्नमाला बिल्कुल पूर्ण है । यदि आवश्यक हुआ तो आयोग बाद में एक अनुपूरक प्रश्नमाला जारी कर सकता है ।

4. प्रश्नमाला केवल सभी संभव स्रोतों से प्रकाशित साहित्य से आयोग द्वारा एकत्र किये गये विषयों पर विचार और सुझाव प्राप्त करने के लिए तैयार की गई है । आयोग द्वारा उन मामलों का अभी गहराई से अध्ययन किया जाना है और जिनके बारे में आयोग की पहले से बनाई गई कोई राय या पूर्वाभिरुचि नहीं है । इसलिए किसी भी प्रकार की कल्पना मात्र से इस प्रश्नमाला में किसी मुद्दे के संबंध में आयोग के अपने दृष्टिकोण का संकेत या प्रतिपादन ढूंढना ठीक नहीं होगा क्योंकि इस अवस्था पर अपनी कोई राय बनाई ही नहीं है ।

5. यदि कुछ मामलों को आप महत्वपूर्ण समझते हों और वे प्रश्नमाला में न हों तो उन्हें बताने की आपको स्वतंत्रता है और आप उनके संबंध में अपने विचार देते हुए एक अनुपूरक टिप्पणी लगा सकते हैं ।

6. प्रश्नमाला में दिए गए विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों को मिलाने और तैयार करने के बहुत बड़े काम को सरल बनाने के लिए प्रत्येक प्रश्न का उत्तर पृथक् कागज पर दिया जाए (बेहतर है कि दो प्रतियों में टाइप किया हुआ हो) ।

7. इस आयोग को सौंपा गया कार्य अत्यधिक राष्ट्रीय महत्व रखता है, आयोग पूरी आशा करता है कि आप इस राष्ट्रीय प्रयास में अपना अत्यधिक सहयोग देंगे ।

प्रश्नावली संबंधी अपने उत्तर मार्च, 1984 के अंत तक निम्नलिखित पते पर भेजें :—

श्री के० ए० रामासुब्रामनियम,
सचिव,
केन्द्र-राज्य संबंध आयोग,
चौथा तल, 'बी' विंग, लोकनायक भवन,
खान मार्किट,
नई दिल्ली-110 003

धन्यवाद,

भवदीय,
(आर० एस० सरकारिया)
अध्यक्ष

संलग्नक : प्रश्नमाला

प्रश्नमाला

भाग I

प्रस्तावना

प्रश्न 1.1 प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल के अनुसार संविधान निर्माताओं ने अपनी इस घोषणा का अनुपालन किया कि "हमारे संविधान की सबसे ठोस रूपरेखा एक परिसंघ है जिसमें मजबूत केन्द्रीय सरकार हो और संविधान निर्माण में सुसंगतता का ध्यान रखा जाए।" क्या हमारे संविधान को उन सब अद्वितीय विशेषताओं के बावजूद पूरी तरह से संघीय कहा जा सकता है जो अन्य संघों में नहीं पाई जाती ?

प्रश्न 1.2 संघवाद की "पारम्परिक" धारणा को स्वीकार करते हुए तत्कालीन तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त राजमन्नार समिति ने 7वीं अनुसूची की तीन सूचियों में विधायी शक्तियों का पुनर्विभाजन करके राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने, कुछ उपबंधों का विलोपन, संशोधन या उनमें काफी आशोधन करने (अर्थात् अनुसूची 251, 256, 257, 348, 349, 355, 356, 357, 365, आदि) जो संघ को राज्यों पर पर्यवेक्षी भूमिका प्रदान करते हैं, सूची II में राज्यों को अधिक कर स्रोत आबंटित करने, संवैधानिक मामलों को छोड़कर उच्चतम न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था समाप्त करने का आग्रह किया था।

क्या आप इस विचार का समर्थन करते हैं ?

प्रश्न 1.3 यह सुझाव दिया गया है कि भारत जैसे विशाल और विषमजातीय देश में कार्यकुशलता और साम्यता के हित में सामान्य स्थिति में प्रादेशिक और कार्यात्मक क्षेत्र में अधिकारों और कार्यों में बहुत अधिक विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता है हालांकि आपातकाल के समय विशेष केन्द्रीकरण की व्यवस्था होना जरूरी है।

क्या आप सहमत हैं ?

आपके विचार से इस दृष्टिकोण से अनुकूलतम संवैधानिक व्यवस्था क्या होगी ?

प्रश्न 1.4 क्या कोई "पारंपरिक" प्रकार का संघ, जिसमें अपने संविधान द्वारा निर्धारित अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में राष्ट्रीय और प्रांतीय सरकारें "संवर्गी और पूर्णतया" स्वतंत्र हों, आजकल के युग में सामान्य सिद्धान्त से अलग एक कार्यात्मक सत्ता के रूप में कहीं भी मौजूद है ?

प्रश्न 1.5 कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने जिन्हें भारतीय राज्य व्यवस्था और उसकी कार्यप्रणाली के बारे में विशेष ज्ञान, अनुभव और समझ है, निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

(क) संविधान बदलते हुए समय की चुनौती का सामना करने के लिए बुनियादी रूप से युक्तियुक्त और काफी लचीला है ;

(ख) केन्द्र राज्य संबंधों में उत्पन्न हुई कठिनाइयां, विषय, तनाव और समस्याएं योजना और संविधान की मूलभूत संरचना में कोई बहुत बड़ा दोष होने के कारण नहीं हैं बल्कि विगत कई वर्षों से इन संबंधों को संविधान सही भावना और आशय के अनुरूप इन संबंधों को कार्य रूप नहीं दिया गया है ;

(ग) इन कठिनाइयों, समस्याओं और मसलों का समाधान और विकृतियों में सुधार कोई बड़े संवैधानिक संशोधन किए बगैर निम्नलिखित; द्वारा

(i) संघ-राज्य संबंधों के कुछ क्षेत्रों में अतिक्रमण वाली कार्यकारी क्रिया विधियों, पद्धतियों और कुछ नियामक विधियों में परिवर्तन करके ;

(ii) संघ और राज्यों के प्रतिनिधियों से गठित प्रभावकारी परामर्शदात्री निकाय (जैसा कि अनुच्छेद 263 में बताया गया है) की सलाह और सहायता से स्वस्थ परम्पराएं और कार्यविधियों का विकास करके ।

क्या आप सहमत हैं ? यदि हां, तो इस संबंध में आपके क्या सुझाव हैं ?

प्रश्न 1.6 क्या आप इस बात से सहमत हैं कि स्वतंत्रता की सुरक्षा और देश की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करना सर्वोपरि महत्वपूर्ण विषय है ? यदि हां, तो आपकी राय में इसे प्राप्त करने के लिए संविधान में क्या उपबंध रखे गए हैं ?

प्रश्न 1.7 क्या सम्पूर्ण राष्ट्र और एक दूसरे के प्रति केन्द्र और राज्य के दायित्वों से संबंधित संवैधानिक उपबंध पर्याप्त हैं ? इस संबंध में आप संविधान के अन्य अनुच्छेदों के साथ-साथ अनुच्छेद 256, 257, 354 से 357 और 365 देख सकते हैं?

प्रश्न 1.8 संविधान के अनुच्छेद 3 में व्यवस्था है कि संसद विधि द्वारा निम्नलिखित व्यवस्था कर सकती है :

(क) किसी राज्य के राज्य क्षेत्र को पृथक करके या दो या दो से अधिक राज्यों या राज्य के भागों को मिलाकर या किसी राज्य के भाग में किसी राज्य क्षेत्र को मिलाकर एक नया राज्य बना सकती है ;

(ख) किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाना ;

(ग) किसी राज्य के क्षेत्र को कम करना ;

(घ) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन करना ;

(ङ) किसी राज्य का नाम बदलना।

यह विचार व्यक्त किया गया है कि इस अनुच्छेद पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है ।

क्या आप इस विचार से सहमत हैं ? यदि हां, तो आप इस उपबंध में किस प्रकार के संशोधन सुझाएंगे ?

भाग II

विधायी संबंध

प्रश्न 2.1 यह विचार व्यक्त किया गया है कि संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के विभाजन संबंधी योजना में बुनियादी रूप से कोई दोष नहीं है, जो साधारण समय पर राज्यों को निश्चित रूप से काफी हद तक विधायी स्वायत्तता प्रदान करती है, परन्तु पिछले कई वर्षों से संघ ने लोकहित या 'राष्ट्रीय हित' की घोषणा की आड़ में राज्यों के विधायी क्षेत्रों का अतिक्रमण किया है। क्या आप ऐसे अतिक्रमणों के ठोस उदाहरण, यदि कोई हों, दे सकते हैं ?

प्रश्न 2.2 सातवीं अनुसूची की विधायी सूची और/या संविधान के अन्य उपबंधों और उसकी विषय सूची के अंतर्गत अधिकारों के वितरण में केन्द्र के शक्ति और देश की एकता और अखण्डता के अनुरूप आप कौन-से परिवर्तनों का सुझाव देंगे ?

प्रश्न 2.3 भारत सरकार के अधिनियम, 1935 के अंतर्गत अनुदेशों के प्रलेख में एक उपबंध दिया गया है कि केन्द्र जब कभी समवर्ती विषय पर कोई कानून बनाये तो राज्य सरकार से उसे पहले परामर्श करना होता है क्या आप सोचते हैं कि ऐसी प्रक्रिया अपनाना केन्द्र और राज्यों के बीच बेहतर संबंध सुनिश्चित करने के लिए वांछनीय होगा ?

प्रश्न 2.4 क्या आपके विचार से 'राष्ट्रीय हित' या 'लोकहित' में राज्य के पूर्ण सामर्थ्य के अंतर्गत आने वाले कुछ विषयों पर संसद को विधान बनाने का अधिकार देने वाली घोषणाएं अविरत स्वरूप की होनी चाहिए या अधिक समीक्षा किये जाने की शर्त पर निश्चित अवधियों के लिए।

प्रश्न 2.5 क्या विधायी क्षेत्र में केन्द्र राज्य संबंधों में परिवर्तन या सुधार के संबंध में आपके कोई अन्य सुझाव हैं?

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

प्रश्न 3.1 केन्द्र राज्य संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल की भूमिका के संबंध में आपके विचार/टिप्पणियां क्या हैं?

(क) जैसा कि संविधान में कल्पना की गई है, और

(ख) जैसा कि संविधान लागू होने से पिछले 34 वर्षों के दौरान वास्तव में उन्होंने एक दूसरे के प्रति रखे हैं?

प्रश्न 3.2 आपकी राय में केन्द्र और राज्यों के बीच स्वस्थ संबंध स्थापित करने में राज्यपाल की क्या भूमिका होनी चाहिए?

प्रश्न 3.3 निम्नलिखित विषयों पर राज्यपाल के कार्य/कर्तव्य निष्पादन के संबंध में आपके क्या विचार/टिप्पणियां हैं?

(क) अनुच्छेद 356(1) के अधीन कारंवाई का सुझाव देते हुए राष्ट्रपति को रिपोर्ट देना,

(ख) अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्यमंत्री की नियुक्ति और

(ग) अनुच्छेद 174(2) के अधीन सदन का सत्रावसान/या विधान सभा भंग करना?

प्रश्न 3.4 आपकी राय में संविधान निर्माताओं का अनुच्छेद 200 में राज्यपाल द्वारा और अनुच्छेद 201 में राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों के आरक्षण की व्यवस्था करने का क्या आशय और प्रयोजन था? क्या राज्यपाल द्वारा आरक्षण संबंध अधिकार का प्रयोग और राष्ट्रपति द्वारा राज्य विधेयकों पर विचार सामान्यतया इस उपबन्ध के उसी आशय भावना और प्रयोजन के अनुरूप किया गया है। कृपया अपना निष्कर्ष ठोस उदाहरणों के आधार पर दें। क्या आप ऐसा उदाहरण दे सकते हैं, यदि कोई हो, जिसमें राज्यपाल ने राज्य विधेयक पर अपनी सहमति रोकी हो या उसे मंत्रि परिषद की सलाह के बगैर राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा हो?

प्रश्न 3.5 इण्डियन लॉ इंस्टीट्यूट के तत्वावधान में 1956-65 की अवधि के दौरान 170 विधेयकों के अध्ययन करने से पता चलता है कि "केन्द्र राज्यों" की राष्ट्रपति की सहमति देने में अपनी नीतियां उन पर थोपने की कोशिश अवश्य करता है जबकि इस तथ्य से सहमति वास्तव में कुछ मामलों में ही रोकी गई है, इस बात का संकेत मिलता है कि राष्ट्रपति की सहमति लेने की प्रक्रिया ने राज्यों की स्वायत्तता के लिए एक बड़ी धमकी के रूप में कार्य नहीं किया है।

क्या आप उपर्युक्त निष्कर्ष से सहमत हैं, यदि सहमति अंततः दे दी गई हो तो क्या आपके विचार से इसमें अनुचित विलंब हुआ था?

प्रश्न 3.6 यह विचार है कि राज्यपाल न तो केन्द्र का एजेंट है और न ही राज्य का मात्र शोभाकारक अध्यक्ष बल्कि यह केन्द्र और राज्यों के बीच एक 'निकट संपर्क' है। क्या यह सही स्थिति प्रकट करता है? क्या राज्यपालों ने व्यावहारिक तौर पर अपने दोहरे दायित्वों के निर्वहन में आमतौर पर संविधान और स्वस्थ परंपराओं के अनुसार निष्पक्ष और सही ढंग से कार्य किया है? कृपया अपने उत्तर के समर्थन में ठोस उदाहरण दें, यदि कोई हों।

प्रश्न 3.7 यह सुझाव दिया गया है कि राज्यपाल को संविधान के अधीन अपने कार्य अधिक कुशलतापूर्वक और निष्पक्ष ढंग से करने में समर्थ बनाने के लिए उसे उसके पूरे पांच वर्ष के कार्यकाल की गारंटी दी जानी चाहिए और उसे हटाने के संबंध में वही कार्यविधि होनी चाहिए जो उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय न्यायाधीश के मामले में निर्धारित की गई है।

क्या आप सहमत हैं?

प्रश्न 3.8 यह सुझाव दिया गया है कि राज्यपाल को विधान सभा बुलाने और इस सीमित प्रश्न का निर्णय करने के लिए सदन में स्वयं जांच और सत्यापन करने का अधिकार दिया जाना चाहिए कि क्या राज्य में सत्तारूढ़ दल ने विधान मंडल में अपना बहुमत खो दिया है।

क्या आप सहमत हैं?

प्रश्न 3.9 इस बात की प्रायः आलोचना की जाती है कि राज्य विधान सभा में अपने विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के कारण राज्य में मंत्रिमंडल द्वारा त्यागपत्र दे दिए जाने के बाद दलों की अस्थिर स्थिति में मुख्यमंत्री का चुनाव करने में राज्यपाल न्यायापूर्ण तरीके से कार्य नहीं करता बल्कि ऐसे सुविचारित तरीके से कार्य करता है जिससे किसी राजनीतिक दल या समूह विशेष के हितों को बढ़ावा मिले। मंत्रिमंडलों की अस्थिरता से बचाव के लिए संघीय जर्मन गणतंत्र के संविधान में एक युक्ति शामिल की गई है। बुनियादी नियम के अनुच्छेद 67 में यह व्यवस्था है कि बन्डस्टैग (परिसंघीय विधान मंडल) साथ-साथ उत्तराधिकारी का चयन कर के और तत्पश्चात् संघीय प्रधान से चांसलर को बर्खास्त करने का अनुरोध करके ही संघीय चांसलर में अपना अविश्वास व्यक्त कर सकता है क्या आप सोचते हैं कि यदि हमारे संविधान में इसी प्रकार का उपबंध शामिल कर लिया जाए तो इससे राज्यपाल और निर्वाचक प्रतिनिधियों के बीच अनावश्यक विरोध दूर होगा और दूसरी ओर राज्यपाल के विरुद्ध उपरोक्त आलोचना के अवसर कम हो जाएंगे क्या आपका कोई अन्य सुझाव है?

3.10 प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की थी :

"जिस तरीके से विवेकाधिकार संबंधी शक्तियां राज्यपालों द्वारा प्रयोग की जानी चाहिए, उस पर मार्गनिर्देश अंतर्राज्य परिषद द्वारा तैयार किए जाने चाहिए और संघ द्वारा स्वीकार कर लिए जाने के बाद इन्हें राष्ट्रपति के नाम से जारी किया जाना चाहिए। इन्हें संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाना चाहिए।"

आपके विचार/टिप्पणी में ऐसे मार्ग निर्देश जारी करने की संवैधानिक विधिमान्यता राजनीतिक औचित्य तथा राजकार्य संबंधी उपयोगिता क्या है?

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

प्रश्न 4.1 हमारे संविधान की योजनाओं और ढांचे में अनुच्छेद 256, 257 और 365 के प्रयोजन, कार्य और लाभ के संबंध में आपके क्या विचार हैं? क्या कोई ऐसा मामला घटित हुआ है जिसमें अनुच्छेद 256 या 257 तथा/अथवा दोनों के अधीन ऐसे निर्देश जारी किए गए थे जिसमें अनुच्छेद 365 लागू करने की धमकी दे कर किसी राज्य को ऐसे निर्देशों का पालन करने के लिए विवश किया गया था।

प्रश्न 4.2 एक राय यह है कि अनुच्छेद 365 हटा दिया जाना चाहिए। एक अन्य राय यह है कि यह एक परिणामी अधिकार प्रदान करने वाला खण्ड है (जिससे वास्तव में कभी काम नहीं लिया गया) इसलिए इसे आरक्षित उपबंध के रूप में रहने दिया जाए।

आप किस राय का समर्थन करते हैं और उसके कारण क्या हैं।

प्रश्न 4.3 प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट (1969) में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए :

"(अनुच्छेद 256 या 257 के अधीन) केन्द्र द्वारा राज्य ---------- को निर्देश जारी करना एक बड़ी कारंवाई है और इसे केवल नितांत आवश्यकता वाले उन्हीं मामलोंमें किया जाना चाहिए जहां काम निकालने का कोई अन्य साधन उपलब्ध न हो। (अनुच्छेद 356 के अधीन) राष्ट्रपति द्वारा शासन

अपने हाथ में लेना एक अंतिम उपाय के रूप में संविधान में निर्धारित एक तीक्ष्ण रेचक औषधि है जिसे वस्तुत: दैनिक भोजन के रूप में नहीं दिया जा सकता ।[1]

उपरोक्त तर्क पर आयोग ने निम्नलिखित सिफारिश की।

"अनुच्छेद 256 के अधीन राज्य को निर्देश जारी करने से पहले, केन्द्र को संघर्ष के मुद्दों का उपलब्ध अन्य सभी साधनों द्वारा समाधान करने की संभावनाओं का पता लगाना चाहिए ।"

प्रशासनिक सुधार आयोग की उपरोक्त सिफारिश के संबंध में आपकी क्या प्रतिक्रिया और विचार हैं।

प्रश्न 4.4 संविधान निर्माताओं ने अत्यंत दूरदर्शिता से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने का पूर्वानुमान लगाया था "जिनमें किसी राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती" और ऐसी परिस्थिति से निपटने के लिए संघ द्वारा अंतिम हथियार के रूप में इस्तेमाल किए जाने के लिए अनुच्छेद 356 में आवश्यक व्यवस्था की थी ।

क्या आप ऐसे सभी या बहुत से मामलों, जिनमे इस अनुच्छेद का अवलम्ब किया गया था, का सर्वेक्षण करने के बाद इस संबंध में अपनी सुविचारित राय दे सकते है कि क्या इस असाधारण निवारक अधिकार का आमतौर पर उचित प्रयोग किया गया? यदि आपका उत्तर काफी हदतक या अंशत: नकारात्मक है तो ऐसे मामलों के संदर्भ में कारण बताएं जिनमें आपकी राय से इस अधिकार का इस अनुच्छेद के आशय और प्रयोजन के विपरित दुरुपयोग किया गया हो।

प्रश्न 4.5 42वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा अनुच्छेद 356 के खण्ड (4) में छ: मास के स्थान पर 'एक वर्ष' शब्द जोड़े गये जिसके परिणामस्वरूप पूर्वोक्त खंड (3) के अधीन संसद द्वारा अनुमोदित उद्घोषणा यदि रद्द न कर दी जाए, तो जारी होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के बाद लागू नहीं रहती है जब तक कि इसे रद्द न किया जाए । इस खण्ड में 44वें संशोधन अधिनियम 1978 में '6 महीने' की मूल अवधि को पुन: स्थापित किया गया है और खण्ड (5) में उल्लिखित राष्ट्रपति शासन की अधिकतम कुल अवधि को उपखण्ड (ए) और (बी) में बताई गई दो अत्यधिक विषय परिस्थितियों की एक साथ मौजूदगी को छोड़कर '3 वर्ष से घटा कर' 'एक वर्ष' कर दिया गया । ये परिवर्तन केन्द्रीय शासन की अवधि जो राज्य में सामान्य कामकाज चलाने के लिए उत्तरदायी सरकार पुन: स्थापित करने के लिए नितांत आवश्यक थी, से अधिक अनावश्यक अवधि तक शासन बढ़ाने पर रोक लगाने के लिए सुरक्षोपाय के रूप में किए गए थ ।

हाल ही में एक राज्य में उत्पन्न हुई और अन्य राज्यों में उत्पन्न होने वाली संभावित परिस्थितियों को देखते हुए एक राय यह दी गई है कि जिन राज्यों में लगातार अशांत स्थिति बनी रहने के कारण या संवैधानिक तंत्र के बिगड़ने या विफल होने के कारण स्थिति को अनुच्छेद 356 के खण्ड (4) और (5) में उल्लिखित समय सीमा के भीतर सुधारा न जा सकता हो और सामान्य न बनाया जा सकता हो तब चाहे उक्त संशोधन बचाव के आशय से ही किए गये हों किन्तु ये संशोधन संघ के इस अधिकार के कारगर प्रयोग के लिए असुविधापूर्ण सिद्ध हो सकते हैं ।

क्या आप इस राय से सहमत हैं ? यदि हां तो आप इसके अतिरिक्त या खण्ड (4) और (5) के पूर्ण संशोधनों के अतिरिक्त कोई अन्य सुझाव देंगे जिनसे अनुच्छेद 356 के अधीन अधिकार के दुरुपयोग की संभावना कम से कम होने के साथ साथ अंतिम प्रभावी कार्रवाई करने के इसके अंतिम प्रयोग पर रोक न लगाई जाए ।

प्रश्न 4.6 वर्तमान व्यवस्था के अधीन संघ सरकार के कई कार्य जैसे जनगणना, चुनाव आदि राज्य प्रशासन द्वारा कार्यान्वित किए जाते हैं ।

क्या वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक रूप से चल रही है ?

क्या इसके बारे में आपको कोई टिप्पणी करनी है ?

प्रश्न 4.7 इस समय कई केन्द्रीय एजेंसियां जैसे कृषि मूल्य आयोग, केन्द्रीय जल आयोग, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, तकनीकी विकास महानिदेशालय, एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, राष्ट्रीय बचत संगठन, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, ब्यूरो ऑफ इन्डस्ट्रियल कास्टस एण्ड प्राइसिस, भारतीय खाद्य निगम आदि, विधान की सातवी अनुसूची की राज्य के विषयों से संबंधित सूची और समवर्ती सूची से संबंधित कार्यकलापों का काम देखते हैं । बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि संघ ने इन ऐजेंसियों के जरिए राज्य की स्वायत्तता में अनुचित अतिक्रमण किया है ।[1]

क्या यह आलोचना तर्कसंगत है ?

यदि हां तो ऐसे मामलों में इन केन्द्रीय एजंसियों की क्या उचित भूमिका होनी चाहिए ?[1]

प्रश्न 4.8 संविधान के अनुच्छेद 312 में तत्कालिन प्रांतीय सरकारों की सर्वसम्मति से एक विशिष्ट व्यवस्था न केवल भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा नामक दो अखिल भारतीय सेवाओं को विनियमित करने के लिए की गई थी, जिन्हें पहले के कार्यकारी आदेश द्वारा स्थापित किया गया था, बल्कि संसद को कानून द्वारा यह अधिकार भी दिया गया था कि वह कानून द्वारा राष्ट्रीय हित में आवश्यक समझे जाने पर संघ और राज्यों के लिए एक या एक से अधिक सांझी अखिल भारतीय सेवाएं सृजित कर सकती है । इन सेवाओं के लिए भर्ती अनुशासन और नियंत्रण संबंधी प्रश्नों का समाधान एकरूपता और केन्द्र सरकार के निर्देशों के अनुसार किया जाना था ताकि स्थायित्व बना रहे और व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया जा सके जो सेवाओं की कार्यकुशलता और प्रभाविकता के लिए अनिवार्य है और राष्ट्रीय एकता के अनुरूप है ।

क्या आप सोचते हैं कि अखिल भारतीय सेवाओं ने संविधान निर्माताओं की आशाएं पूरी की हैं ?

कुछ राज्यों ने आग्रह किया है कि उन्हें अखिल भारतीय सेवाओं पर अधिक नियंत्रण दिया जाए —आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 4.9 प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार संघ को अनुच्छेद 355 के आधार पर किसी भी राज्य में स्वप्रेरणा से सिविल सत्ता की सहायता में किसी भी राज्य में अपनी केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र बलों को तैनात और इस्तेमाल करने का अधिकार है । इसके विपरित कुछ राज्यों ने इस विचार का खण्डन किया है और ऐसे केन्द्रीय हस्तक्षेप का विरोध किया है ।

आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 4.10 संविधान में "समाचारपत्र, पुस्तकें और प्रिंटिंग प्रेस" समवर्ती सूची (प्रविष्टि 39 सूची III) में शामिल किए हैं जबकि "———————————— प्रसारण और इसी प्रकार के अन्य संचार" संघ सूची में शामिल किए गए हैं (प्रविष्टि 31 सूची I) संविधान सभा के विचार-विमर्श के दौरान यह सुझाव दिया गया था कि 'प्रसारण' को समवर्ती सूची में शामिल किया जाए । कुछ राज्य भी इस बात के लिए जोर देते आ रहे हैं कि प्रसारण और दूरदर्शन सुविधाएं उचित और सही आधार पर संघ और राज्यों के बीच बांटी जानी चाहिए क्योंकि अपने-अपने विचार लोगों तक पहुंचाने के लिए दोनों को इन जन संपर्क साधनों की आवश्यकता है ।

आपके विचार क्या हैं ?

प्रश्न 4.11 राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के अधीन आंचलिक परिषदों ने दलों की नीतियों का विरोध कर के कहां तक सामूहिक रूप से राज्यों के हितों को बढ़ाने का कार्य किया है ?

प्रश्न 4.12 संविधान का अनुच्छेद 263 जो "राज्यों" के बीच समन्वय शीर्षक से दिया गया है, राष्ट्रपति को या उस स्थिति में अंतर्राज्य परिषद स्थापित करने का अधिकार देता है यदि उसके विचार से उसकी स्थापना से लोकहित सिद्ध

होता हो, प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी ऐसी परिषद स्थापित करने की सिफारिश की है ....क्या आपके विचार से अंतर्राज्य और संघ राज्य के बीच के मतभेद और मसलों का समाधान करने के लिए और उससे राज्यों के बीच बेहतर सहयोग सुनिश्चित करने के लिए इस प्रकार की संस्था स्थापित करना वांछनीय होगा ?

यदि हां तो ऐसे परिषद के कार्य और संरचना किस प्रकार होनी चाहिए ?

क्या इसे स्थायी आधार पर या कुछ वर्षों की निर्दिष्ट अवधि के लिए एक प्रायोगिक उपाय के रूप में स्थापित किया जाए ?

क्या परिषद का स्वतंत्र सचिवालय होना चाहिए ?

भाग V

वित्तीय संबंध

प्रश्न 5.1 संविधान निर्माताओं ने आशा की थी कि बढ़ते हुए उत्तरदायित्व निभाने के लिए ये राज्यों के संसाधनों और वित्तीय आवश्यकताओं के बीच का राजस्व अंतर, एक ऐसी योजना के अधीन पूरा हो जाएगा जिसमें कुछ केन्द्रीय करों की आय और शुल्कों को आंशिक रूप से राज्यों को अंतरित किया जाएगा और अंततः संघ से सहायता अनुदानों से पूरा किया जाएगा और यह सब "स्वाभाविक और यथासंभव एक दूसरे के हस्तक्षेप के बगैर जबकि वित्त आयोग की सिफारिशों पर राष्ट्रपति द्वारा आवधिक परिवर्तन किए जाएंगे और हम आशा करते हैं कि इस आयोग पर सभी को विश्वास होगा।"

संघ द्वारा गत 34 वर्षों के दौरान राज्यों को अंतरित किए गए संसाधनों की विस्तारपूर्वक जांच करने और अंतरण के लिए इस व्यवस्था के कार्य-चालन की समीक्षा करने के बाद क्या यह कहा जा सकता है कि क्या संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पित अंतरण योजना ने ठीक से काम किया है और वह उनकी आशाओं पर पूरी उतरी है ?

प्रश्न 5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन दल ने केन्द्र-राज्य संबंधों पर इस प्रकार विचार व्यक्त किए हैं .... केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों की मुख्य विशेषता यह है कि केन्द्र सदैव दाता होता है और राज्य प्राप्तकर्ता. ......राज्य के संसाधन अपने बूते पर अपना योजनेतर व्यय भी पूरा नहीं करते आ रहे और इस प्रकार केन्द्र पर उनकी वित्तीय निर्भरता बहुत अधिक है और बढ़ती ही जा रही है।"

इसके बाद अनेक वित्तीय आयोगों द्वारा प्रस्तावित संसाधन-अंतरणों का सर्वेक्षण करने के बाद क्या प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन दल द्वारा बताई गई उपरोक्त समूची स्थिति अभी भी बरकरार है ? यदि हां तो आपके विचार से निम्नलिखित में से कौन से विकल्प या उनको मिलाकर स्वीकार किए जाएं और किन कारणों से ?

(क) संघ और राज्यों के वित्तीय संबंधों को पूरी तरह अलग करना, संसाधनों को अंतरित करने की योजना समाप्त करना और उस की बजाए कर संबंधी अधिक आवश्यकताओं को 7वीं अनुसूची की सूची II में स्थानांतरित करना।

(ख) कुछ और लचीले कराधान-शीर्ष सूची II में स्थानांतरित करना।

(ग) सभी कराधान शीर्ष / कराधान शक्तियां विभाजन योग्य पूल बनाने के लिए संघ सूची में स्थानांतरित की जाएं जबकि संघ और राज्यों के संबंधित हिस्सों का निर्धारण स्वयं संविधान में ही किया जाएगा इन हिस्सों की राशियां और वे सिद्धान्त जिनके आधार पर राज्यों का हिस्सा विभिन्न राज्यों में बांटा जाएगा, वित्त आयोग द्वारा निर्धारित किये जाएंगे।

(घ) निगम कर, सीमा शुल्क, आयकर पर अधिभार आदि जैसे कुछ और केन्द्रीय कर विभाजन योग्य पूल में लाए जाएं।

(ङ) संघ के कर राजस्वों के अतिरिक्त अन्य वित्तीय संसाधन भी केन्द्र और राज्य के बीच बांटे जाएं।

प्रश्न 5.3 राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त यह बताते हैं कि राज्य अन्य बातों के साथ साथ विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समूहों में सामाजिक और आर्थिक न्याय प्रदान करने और उनमें असमानता को दूर करने की कोशिश भी करेगा।

ऐतिहासिक कारणों से अपने निजी संसाधनों से क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने और सामाजिक व आर्थिक न्याय प्राप्त करने के संबंध में राज्यों की क्षमता काफी भिन्न भिन्न है।

एक राय व्यक्त की गई है कि क्षेत्रीय असमानताएं केवल मजबूत केन्द्र द्वारा ही कम की जा सकती है जिसके पास लचीले राजस्व संसाधन होते हैं और अपेक्षाकृत असमृद्ध राज्यों के विकास के लिए अपने पास उपलब्ध निधियों का इस्तेमाल करने के अधिक विवेकाधिकार होते हैं। राज्यों को अधिक वित्तीय अधिकार देने से समृद्ध राज्यों के लिए परिस्थिति और भी अनुकूल हो जाएगी।

क्या आप सहमत हैं ? उपर्युक्त कथन पर आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 5.4 पिछले प्रश्न में बताए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केन्द्र के पास उपलब्ध विकल्प इस प्रकार हैं :

1 निम्नलिखित के माध्यम से अधिक राजस्व संसाधन जुटाना :

(i) कराधान

(ii) कुछ सिद्धान्तों के अधीन समृद्ध राज्यों से केन्द्रीय समूह को आर्थिक सहायता के जरिए,

2 व्यय पर बेहतर नियंत्रण से और

3 घाटे की अर्थ व्यवस्था से

वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार राज्य सरकारों को आवश्यक राशि अंतरित करने के बाद केन्द्रीय राजस्व लेखे में लगातार कई वर्षों से बहुत घाटा नजर आ रहा है।

आपके विचार में इस अंतर को पूरा करने के लिए क्या घाटे की अर्थ व्यवस्था राष्ट्रीय हित में है ? यदि नहीं है तो आप इस राजस्व-अंतर को पूरा करने के लिए क्या सुझाव देंगे ?

प्रश्न 5.5 यह बताया जाता है कि वित्त आयोग और योजना आयोग के जरिए दिये गये वर्तमान अंतरण असमृद्ध और समृद्ध राज्यों के बीच संसाधनों के अंतर को पूरा नहीं करते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए कृपया निम्नलिखित के निर्धारण के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले निष्पक्ष मानदण्ड के बारे में अपने सुझाव दें :

(क) करों का शेयर

(ख) योजना सहायता और

(ग) योजनेतर सहायता।

उपर्युक्त का निर्धारण प्रत्येक राज्य के लिए कर प्रयासों एवं प्रबंध व्यवस्था में कार्यकुशलता और किफायत को ध्यान में रख कर किया जाएगा। कृपया यह भी बताएं कि प्रत्येक मानदण्ड को कितना अनुपातिक महत्व दिया जाना चाहिए।

प्रश्न 5.6 एक मत यह व्यक्त किया गया है कि देश के अन्य विकसित क्षेत्रों की तुलना में आर्थिक रूप से अविकसित क्षेत्रों में तेजी से विकास सुनिश्चित करने के लिए युगोस्लाविया संविधान में की गई व्यवस्था के अनुसार भारत में भी एक "विशेष संघीय निधि" स्थापित की जानी चाहिए।

क्या आप सोचते हैं कि इस प्रयोजन के लिए हमारे वित्त और योजना आयोग पर्याप्त नहीं हैं ?

प्रश्न 5.7 संघ और राज्यों को कराधान कार्यों के आवंटन के संबंध में कुछ आत्मानुभव आदेश हो सकते हैं, एक आधारभूत सिद्धान्त है कि कर उस प्राधिकरण द्वारा अधिरोपित किया जाना चाहिए जो इसकी बेहतर वसूली और संचालन कर सकता हो । दूसरा सिद्धान्त यह है कि संविधान के भाग XIII के आदेश देश के भीतर "व्यापार, वाणिज्य और परस्पर संपर्क करने की स्वतंत्रता" को सुरक्षित करना । तीसरा सिद्धान्त यह है कि अन्य बातों के साथ-साथ कराधान पद्धति को साधन बनाते हुए, उसके जरिए आर्थिक नीति में असमानताओं को कम करना, इन तीन सिद्धान्तों के देखते हुए राज्यों को कितनी केन्द्रीय कराधान शक्तियां उचित रूप में अंतरित को जा सकती हैं ?

कृपया स्पष्ट करें और कारण दें ।

प्रश्न 5.8 कुछ विशेषज्ञों की यह धारणा है कि निगम कर, आयकर, सम्पत्ति कर, संपदा शुल्क, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क, बिक्री कर आदि जैसे बड़े करों का सम्पूर्ण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है और कराधान के प्रति खण्डात्मक दृष्टिकोण अपनाने से बहुत क्षति हो सकती है । वे ऐसे करों के अधिरोपण और करों से वसूल राशि के वितरण को पृथक करने की सलाह देते हैं । अधिरोपण के लिए वे ये कर केन्द्र द्वारा लगाए जाने की सिफारिश करते हैं बशर्ते कि ये परिषद और केन्द्र राज्य वित्त मंत्रियों के नियंत्रण में हों ।

इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 5.9 कुछ विशेषज्ञों ने यह बताया है कि 5 वर्ष में एक बार वित्त आयोग द्वारा राजस्व संसाधनों की योजनेतर व्यय में अंतरित करने और हर वर्ष परिवर्धित योजना पर वित्तीय आवश्यकताओं मूल्यांकन संबंधी कार्य योजना आयोग पर छोड़ देने से गंभीर कठिनाइयां उत्पन्न हो रही हैं, उनके विचार में पूंजी और राजस्व संसाधनों का मूल्यांकन करने पर सभी वित्तीय अंतरणों (योजना और योजनेतर) का काम एक ही संगठन द्वारा देखा जाना चाहिए और यह काम सर्वोत्तम तरीके से एक स्थायी वित्त आयोग कर सकता है । योजना आयोग की भूमिका कुल निवेश .... की योजना बनाने और कम पूंजीगत संसाधनों के उचित उपयोग के हित में निर्णय करने तक सीमित रहेगी ।

क्या आप इस दृष्टिकोण से सहमत हैं ? यदि हां तो स्पष्ट कीजिए ।

प्रश्न 5.10 आपके विचार से एक और क्रमिक वित्त आयोगों के परामर्श पर या अन्यथा संघ से राज्यों को दिए गए सांविधिक और विवेकानुसार किए गए अंतरणों से व्यय में किफायत और कुशलता कहां तक बढ़ी है और दूसरी और राज्यों के बीच सार्वजनिक व्यय में अंतर किस सीमा तक कम हुआ है ।

प्रश्न 5.11 एक विचार यह व्यक्त किया गया है कि संसाधनों के अंतरण के वर्तमान तंत्र में वित्तीय अनुशासनहीनता और राजस्व की कमी को बढ़ा कर बताए पूर्वानुमानों की अदूरदर्शिता राजस्व की हानि के रूप में परिणत होने वाले जनवादी उपाय अपनाने उपलब्ध संसाधनों की तुलना में अधिक खर्च करने जैसी अंतर्निहित प्रवृत्तियां हैं ।

क्या आप इस विचार से सहमत हैं ? यदि हां तो आप क्या निवारक उपाय सुझाएंगे ?

प्रश्न 5.12 सातवें वित्त आयोग ने सुझाव दिया था कि अधिकांश संसाधन अंतरण, करों को बांटकर किए जाने चाहिए और अनुच्छेद 275 के अधीन अंतर्गत कुल राजस्व अंतरण योजना में सहायता अनुदानों की भूमिका यथासंभव सहायक भूमिका होनी चाहिए ।

इस बड़े प्रस्ताव के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 5.13 सातवें वित्त आयोग ने अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदानों के लिए अपना क्रम में निम्नलिखित सिद्धान्त निर्धारित किए हैं :

(i) सर्वप्रथम राज्यों को सहायता अनुदान दिए जाएं ताकि वे करों और शुल्कों के अंतरणों के बाद रहे वित्तीय अंतरों, यदि कोई हों, को पूरा कर सकें और आयोग द्वारा उचित समझे गए तरीके के मौजूदा सेवाओं को बनाए रख सकें और अपने राजस्व संबंधी पूर्वानुमानों के लिए साधन जुटा सकें ।

(ii) सहायता अनुदान एक निवारक कार्रवाई के रूप में दिए जाएं जिनका उद्देश्य विकसित और अल्प विकसित राज्यों के बीच विभिन्न प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता में असमानताओं को, यथासंभव कम करना हो और इसका लक्ष्य एक ऐसा प्रयास करना होगा जिससे देश में ऐसी सेवाओं के कुछ बुनियादी राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर सुनिश्चित किए जा सकें, राज्य की सीमाएं चाहे कुछ भी हों ।

(iii) सहायता अनुदान अलग-अलग राज्यों को उनकी विशेष परिस्थितियों या राष्ट्रीय महत्व के विषय के कारण उन पर पड़े विशेष बोझ सहने के लिए भी दिए जाएं ।

उपरोक्त सिद्धान्तों और उन्हें लागू करने के तरीके के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 5.14 यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्र के कुछ और राजस्व संसाधन वितरण-योग्य पूल में लाए जाने चाहिए जैसे कि विशेष वाहक बंध पत्र योजना से प्राप्त आय और पेट्रोलियम, कोयला आदि जैसी मदों के परिवर्धित, नियंत्रित मूल्यों से प्राप्त राजस्व क्या वितरणयोग्य पूल में लाने के लिए केन्द्रीय करेतर राजस्व पर किए गए किन्हीं अन्य दावों के बारे में आपको जानकारी है ? कृपया ब्योरा दें । क्या आप यह दावा करने के लिए दिए गए तर्क से सहमत हैं कि ये राजस्व कराधान के वितरण योग्य पूल के अंतर्गत आने चाहिए । कृपया विस्तृत उत्तर दें ।

प्रश्न 5.15 समुदाय में उपलब्ध कुल बचतों को सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच बांटना होगा । सार्वजनिक क्षेत्र में इसके द्वारा जुटाया गया हिस्सा केंद्र और राज्यों तथा उनके संबंधित सार्वजनिक उपक्रमों में बांटना होगा ।

क्या आपके विचार से जिन तरीकों से इसमें इस समय यह वितरण किया जाता है, वे संतोषजनक हैं ?

प्रश्न 5.16 यह बताया गया है कि यद्यपि केन्द्र के बढ़ते हुए घाटे के कारण राज्यों के बजट घाटों में केन्द्र के बजट घाटों की तुलना से अधिक तेजी से वृद्धि होती रही है, तथापि पक्के तौर पर इन अंतरणों में भारी वृद्धि होने के बावजूद केन्द्र की राज्यों को अंतरित की जाने वाली प्राप्तियों में धीरे धीरे कमी होने की प्रवृत्ति देखी गई । यह भी बताया गया है कि राज्यों का वित्तीय असंतुलन बढ़ रहा है जो कि उनकी बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता का द्योतक है ।

इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 5.17 छठे वित्त आयोग से राज्यों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता की समस्या की जांच करने और उपाय सुझाने के लिए विशेष रूप से कहा गया था । क्या आप इस बात से सहमत हैं कि इस प्रकार की आवधिक समीक्षा में भविष्य में राज्य की ऋणग्रस्तता में किसी प्रकार की विसंगतियों का समाधान शामिल होना चाहिए । केन्द्र राज्य संबंधों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने राज्यों की लगातार बढ़ती हुई भारी ऋणग्रस्तता पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि राज्य अपने ऋणों को चुकाने या कुछ मामलों में ब्याज का भुगतान करने में भी लगातार अधिक कठिनाई अनुभव कर रहे हैं और केन्द्रीय ऋणों की चुकौती राज्यों की केन्द्र से लिए गए कुल ऋणों का लगातार एक बड़ा भाग होती है ।

आपकी राय में किन कारणों से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है ? इसे सुधारने के लिए आप क्या उपाय सुझाएंगे ।

प्रश्न 5.18 यह कहा गया है कि ऋण लेने की क्षमता और स्वतंत्रता को अनुचित रूप से सीमित किया गया

क्या आप सहमत हैं ? यदि हां तो ठोस वित्तीय साधनों के मूल सिद्धान्तों पर कोई प्रभाव डाले बगैर इन प्रतिबंधों में किस सीमा तक ढील दी जा सकती है ?

प्रश्न 5.19 यह अर्थ लगाया गया है कि विदेशी ऋणों पर केन्द्र-राज्यों से अपने द्वारा विदेशी ऋणदाता को अदा की गई ब्याज दर से उच्च दर पर ब्याज वसूल करता है। यदि हां तो क्या यह न्यायोचित है? केन्द्र के माध्यम से राज्यों को राज्य की परियोजनाओं के लिए धन देने के लिए प्राप्त किए गए विदेशी ऋण हस्तांतरित करने की वर्तमान पद्धति के बारे में क्या आपको कोई टिप्पणी करनी है?

प्रश्न 5.20 एक सुझाव यह दिया गया है कि आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद की पद्धति पर एक ऋण परिषद बनाई जानी चाहिए जो राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अनुमोदित किए गए सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न राज्यों और केन्द्र की ऋण लेने की सीमाएं निर्धारित कर सके। इस समय भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्र और राज्यों के ही नहीं अपितु निजी क्षेत्र के बाजार ऋणों को समन्वित करता है।

आपके विचार से क्या इस प्रयोजन के लिए ऋण परिषद भारतीय रिजर्व बैंक की अपेक्षा एक बेहतर संगठन होगा या इसके विकल्प में इस संदर्भ में भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यचालन में सुधार करने के बारे में आपका कोई सुझाव है?

प्रश्न 5.21 राज्य सरकारों को भारतीय रिजर्व बैंक में उपलब्ध अर्थोपाय सीमाएं जुलाई 1982 से दुगनी कर दी गई थीं। भारतीय रिजर्व बैंक की 1982-83 की वार्षिक रिपोर्ट में यह बताया गया है कि अर्थोपाय सीमाओं की हकदारी को दुगुना करने के बाद भी लगातार भारी ओवरड्राफ्टों की मौजूदगी राज्यों के वित्त की 'दुखद स्थिति' का संकेत देती है।

आपके विचार से इस परिस्थिति के क्या कारण हैं और आप कौन से सुधारों का सुझाव देंगे?

प्रश्न 5.22 एक विचार यह व्यक्त किया गया है कि राज्य अपने राजस्व स्रोतों का पर्याप्त रूप से उपयोग नहीं कर रहे हैं?

क्या आप सहमत हैं? यदि हां तो आपके इस संबंध में क्या सुझाव हैं?

प्रश्न 5.23 एक विचार यह भी व्यक्त किया गया है कि केन्द्र ऐसे सभी राजस्व निर्धारित और एकत्र नहीं कर रहा है जो वह कर सकता है और उसे करने चाहिए। इस संबंध में यह भी बताया जाता है कि (क) आशयित उल्लेखनीय ऊँचाइयों पर पहुंचने के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र ने पूंजीनिवेश पर प्रत्याशित प्रतिलाभ नहीं दिए हैं और (ख) केन्द्रीय करों में काफी चोरी होती है। क्या आप सहमत हैं? यदि हां, तो इस स्थिति को सुधारने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

प्रश्न 5.24 क्या आपके विचार से राज्य के वित्त साधनों में स्थायित्व प्रदान करने में यह स्वस्थ परंपरा होगी कि दर संरचना में परिवर्तन या लागू करने और अनुच्छेद 268 और 269 में बताए गए किसी शुल्क और करों को समाप्त करने के लिए किसी विधेयक को प्रस्तुत करने से पहले संघ को राज्य सरकारों के विचार पता लगाने चाहिए और उन पर उचित विचार करना चाहिए?

प्रश्न 5.25 कुछ राज्यों ने यह सुझाव दिया है कि राज्यों के संसाधनों में वृद्धि करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 269 का बेहतर उपयोग किया जाना चाहिए।

इस संबंध में आपके क्या विचार हैं?

प्रश्न 5.26 केन्द्र सरकार ने 1957 में पहली बार अनुच्छेद 269(च) के अधीन राज्यों को लाभ पहुँचाने के लिए रेल यात्री किरायों पर कर लगाया था। 1961 में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और इसके बदले में राज्यों को अब 23.12 करोड़ रुपए का अनुदान दिया जा रहा है। यह बताया गया है कि यदि कर को जारी रहने दिया होता तो रेलवे के वर्तमान बढ़े हुए यात्रा भाड़े की आय से कहीं अधिक राजस्व प्राप्त हुआ होता। इस तर्क के आधार पर इस बात पर जोर दिया जाता है कि यात्री किराया कर के बदले इस अनुदान में संशोधन किया जाए और इसमें रेल किराए की वसूली में बढ़ोतरी के अनुपात से वृद्धि की जाए।

राज्यों द्वारा उठाए गए इस मुद्दे के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

प्रश्न 5.27 ऐसे 4 संघ राज्य क्षेत्र हैं जिनके विधान मंडल हैं। यह शिकायत की गई है कि यद्यपि आयकर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अधीन संघ राज्य क्षेत्रों के हिस्से कुल मिलाकर आबंटित किए जाते हैं, तथापि भारत सरकार उन्हें केवल अलग-अलग सहायता अनुदान देती है और इस प्रकार उन्हें केन्द्रीय करों में लाभ के हिस्से से वंचित करती है। क्या यह शिकायत न्यायोचित है?

यदि हाँ, तो ऐसे संघ राज्य क्षेत्रों को भी करों के उचित हिस्से सुनिश्चित करने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

प्रश्न 5.28 प्राकृतिक विपत्तियों से निबटने के लिए केन्द्रीय सहायता के संबंध में वर्तमान व्यवस्था के कार्यचालन के बारे में आपके क्या विचार हैं? इस बात के लिए आप क्या सुझाव देंगे ताकि राहत सहायता का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित हो सके।

प्रश्न 5.29 तीन नए अखिल भारतीय संस्थान स्थापित करने का सुझाव दिया गया है जिसमें संघ तथा राज्य दोनों ही शामिल हों किन्तु अंतिम निर्णायक भूमिका केन्द्र सरकार की ही रहे :—

(1) एक राष्ट्रीय ऋण निगम होना चाहिए जिसे राष्ट्रीय बैंकों के संघ की सहायता प्राप्त हो जो कि उपयोगी और आर्थिक दृष्टि से ठोस परियोजनाओं के लिए ऋण जुटाने और ऋण का उपयोग करने के संबंध में पूर्णतया और विशेष रूप से प्रभारी का कार्य करेगा।

(2) एक राष्ट्रीय ऋण परिषद होनी चाहिए जिसमें राज्यों को कुछ प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, इसे प्रतिकूल मुद्रास्फिति के प्रभावों को लाए बगैर ऋण संसाधनों और विकास की संभावनाओं का मूल्यांकन करने का काम सौंपा जाना चाहिए। परिषद को वह हिस्सा भी निर्धारित करना चाहिए जो राज्य समग्र रूप से प्राप्त कर सकते हैं किन्तु यह 40 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। परिषद को वह प्रयोजन भी वर्गीकृत करने चाहिए जिनके लिए राज्य और योजनागत ढांचे में अपने हिस्से का उपयोग कर सकें।

(3) एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद होनी चाहिए जिसमें राज्यों को कुछ प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। परिषद का कार्य केवल यह देखना नहीं होगा कि वाणिज्य और औद्योगिक नीति तथा आर्थिक प्रबंध कुल मिलाकर राष्ट्रीय हित में कार्य कर रहे हैं अपितु इसे औद्योगिक लाइसेंस, निर्यात और आयात लाइसेंस, आर्थिक इमदाद, प्रोत्साहनों, रोजगार आदि के संबंध में राज्यों के अलग-अलग हितों को भी ध्यान में रखना होगा। इस परिषद में राष्ट्रीय ऋण निगम और राष्ट्रीय ऋण परिषद को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए।

इन तीनों निकायों की वार्षिक रिपोर्टें, चर्चा और सुझावों के लिए संसद के समक्ष और सभी राज्य विधान मंडलों के समक्ष रखी जानी चाहिए।

इन सुझावों के बारे में आपके क्या विचार हैं?

प्रश्न 5.30 एक विचार यह व्यक्त किया गया है कि इस बात का कोई महत्व नहीं है कि निधियां कौन एकत्र करता है और निधियां कैसे वितरित की जाए क्योंकि सारी निधियां जनता से आती हैं इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि निधियों का समझदारी से उपयोग किया जाए और उनके लाभ आमतौर पर लोगों को ही वापस प्राप्त हों।

क्या आप सहमत हैं?

प्रश्न 5.31 (क) यह आलोचना की जाती है कि संघ का व्यय राष्ट्रीय विकास के सर्वोत्तम हित में आयोजित नहीं किया जा रहा और इसकी बजाय फिजूल खर्ची अन्य अनावश्यक और अधिक खर्च करने की प्रवृत्तियां हैं। विभिन्न क्षेत्रों में यह मांग की गई है कि संघ के खर्च की संवीक्षा की जानी चाहिए ताकि ऐसी प्रवृत्तियों को रोका जा सके और राज्यों विशेषकर गरीब राज्यों की सहायता प्रदान करने के लिए अतिरिक्त संसाधन ढूंढे जा सकें।

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि इस प्रकार के आवधिक मूल्यांकन करना जरूरी है ?

(ख) इस बात पर जोर दिया गया है कि जो राज्य कम विकास संसाधनों के बारे में शिकायत करते हैं वे मुख्यतः जनवादी स्वरूप का और पूर्णतया आर्थिक कारणों से हटकर अधिक से अधिक अनावश्यक खर्च कर रहे हैं और इस प्रकार विकास प्रयोजनों के लिए पहले से उपलब्ध अपर्याप्त संसाधनों को समाप्त कर रहे हैं। क्या आप सहमत हैं ?

(ग) उपरोक्त दोनों कारणों की वजह से यह सुझाव दिया गया है कि व्यय के स्वरूप और गुणता का मूल्यांकन करने और केन्द्र तथा राज्यों दोनों के लिए राजस्व संसाधनों का मूल्यांकन करने के लिए एक स्थायी राष्ट्रीय व्यय आयोग होना चाहिए ताकि केन्द्र और राज्य अपने अपने दायित्व उचित और अधिक संतोषजनक ढंग से पूरे कर सकें।

क्या आप सहमत हैं ? क्या आपका कोई अन्य सुझाव है। कृपया स्पष्ट करें।

प्रश्न 5.32 संविधान के भाग में अनुच्छेद 150 के अधीन संघ और राज्यों के लेखे "ऐसे रूप में रखे जाएंगे जो राष्ट्रपति भारतीय नियंत्रक महालेखा परीक्षक के परामर्श पर निर्धारित करे" इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 151 के अधीन संघ के लेखाओं के संबंध में भारतीय नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाएगी और राज्य के लेखाओं से संबंधित रिपोर्ट राज्य के राज्यपाल को प्रस्तुत की जाएंगी और वे दोनों उन्हें क्रमशः संसद और राज्य के विधान मंडल के समक्ष रखवाएंगे।

लेखाओं को ठीक ढंग से और समय पर तैयार करने, उनकी जांच और संवीक्षा करने में आपके विचार से ऐसी कौनसी कार्यात्मक समस्याएं या जटिलताएँ हैं जिनका केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रभाव पड़ता है ?

प्रश्न 5.33 लेखा परीक्षा की वर्तमान प्रणाली मुख्यतया 'वाउचर लेखा परीक्षा' पर निर्भर करती है जबकि 'मूल्यांकन लेखापरीक्षा' की वांछनीयता सर्वमान्य है। आपके विचार से लेखा परीक्षा में कार्य कुशलता और शीघ्रता का उद्देश्य 'मूल्यांकन लेखा परीक्षा' में सार्थक प्रगति के सिद्धान्त के साथ-साथ किस सीमा तक पूरा किया जा सकता है।

कृपया इस संबंध में विशेष सुझाव दें, यदि कोई हो।

प्रश्न 5.34 नियंत्रक महालेखा परीक्षक ऐसे कार्य करने और उन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए संवैधानिक कार्यकर्ता होता है जो उसे संघ और राज्यों के लेखाओं से संबंध में कानूनन संसद द्वारा दिए जाएं। तीसरे वित्त आयोग के अध्यक्ष अशोक चन्द ने बताया था कि नियंत्रक महालेखा परीक्षक वह सब कुछ नहीं कर रहा है जो संघ और राज्यों के लेखाओं पर निगाह रखने के लिए संभव है। संविधान के अनुच्छेद 149 के अधीन संसद ने 1971 में एक कानून बनाया था (1976 में संशोधित किया गया) जिसमें नियंत्रक महालेखा परीक्षक के कार्य, शक्तियां आदि परिभाषित की गई थीं।

आपके विचार में क्या यह श्री अशोक चन्द द्वारा की गई आलोचना का उत्तर है? क्या संसद में इस अधिनियम के अधीन नियंत्रक महालेखा परीक्षक को पर्याप्त शक्तियाँ और कार्य सौंपे गये हैं जिनसे वह संघ और राज्यों के खर्च पर कारगर तरीके से निगरानी रख सके?

प्रश्न 5.35. भारतीय नियंत्रक महालेखा परीक्षक, प्रधान मंत्री और राज्य के राज्यपाल को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए जिम्मेदार है जो क्रमशः संसद और राज्य विधान मंडलों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। इसलिए इस प्रकार की जांच पड़ताल करना संसद और राज्य विधान मंडलों का काम है जो वे वित्तीय औचित्य सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक समझें।

क्या आपको विश्वास है कि नियंत्रक महालेखा परीक्षक की संसद विधानमंडलों को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट काफी हद तक व्यापक और पूर्ण होती है जिनसे वे किसी विषय पर पक्के विचार बना सकते हैं। यदि नहीं तो रिपोर्ट देने के बारे में आप कौन से सुधारों का यदि कोई हों, सुझाव देंगे ?

प्रश्न 5.36. संसद की लोक लेखा समिति और सार्वजनिक उपक्रमों की समिति सहित राज्य विधान मंडलों की लोक लेखा समिति नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों की जांच करती हैं और जिन विषयों को वह महत्वपूर्ण समझे उन पर वे और आगे जांच पड़ताल करती हैं। इस काम में नियंत्रक महालेखा परीक्षक उनकी सहायता करता है।

क्या आपके विचार से केन्द्र और राज्यों ने व्यय पर अपर्याप्त नियंत्रण के संबंध में की गई शिकायत का उत्तर देने के लिए पर्याप्त रोकथाम है?

प्रश्न 5.37 संसद की और राज्य विधान मंडलों की प्राक्कलन समितियों, संसद और राज्य विधान मंडलों को दी गई नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों के अंतर्गत आए कार्यक्रमों और नीतियों की तुलना में और आगे व्यापक जांच करती है और सरकार को आवश्यक सुधारों के बारे में सुझाव देती है।

क्या आप इस बात से सहमत है कि संघ और राज्यों के व्यय की समीक्षा करने की आवश्यकता को देखते हुए यह समिति प्रशासन को उपयोगी, विधायी और प्रशासनिक परामर्श देने के लिए एक प्रहरी का काम कर सकती है ?

प्रश्न 5.38 यदि आपके विचार से संघ और राज्यों के व्यय के औचित्य का मूल्यांकन करने के लिए व्यय आयोग की जरूरत है तो क्या भारतीय नियंत्रक और महालेखा परीक्षक में पहले से ही एक संवैधानिक प्राधिकारी की व्यवस्था नहीं की गई है ?

प्रश्न 5.39 कुछ राज्य सरकारों का विचार है कि खर्च किए जाने के बाद व्यय के उपयोग संबंधी लेखाओं का अनुश्रवण किए जाने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु राज्यों द्वारा तैयार की गई कार्य योजनाओं पर केन्द्र सरकार के संबंधित प्रशासी मंत्रालय द्वारा अनुमति दिया जाना, एक बोझ उत्पन्न करने वाली बात है और इससे काफी विलंब होता है। जो राज्य सरकारें योजना के अधीन लाभग्राही हों उन्हें किसी बाहरी एजेंसी के हस्तक्षेप के बिना अनुमोदित योजना पर व्यय की वैधता निर्धारित करने का प्राधिकार दिया जाना चाहिए।

इस विचार के संबंध में आपकी क्या राय है ? ऐसे और कौन से साधन हैं जिनसे केन्द्र यह सुनिश्चित कर सके कि किसी निर्दिष्ट प्रयोजन के लिए दी गई निधियों का उपयोग वास्तव में उसी प्रयोजन के लिए किया गया ?

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

प्रश्न 6.1 संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में एक प्रविष्टि 'आर्थिक और सामाजिक योजना' उस महत्वपूर्ण भूमिका का स्वीकार करती है जो केन्द्र को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप और विभिन्न क्षेत्रीय और प्रांतीय योजनाओं को समन्वित करने में, राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में योजना बनाने के विषय में, राज्यों के साथ परामर्श करके निभानी पड़ सकती है। प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दलों और विशेषज्ञों द्वारा किए गए अन्य अध्ययनों ने, योजना बनाने के संबंधों में, अन्य बातों के साथ साथ तीन कमियां देखी हैं।

(1) एक राष्ट्रीय प्रयास के रूप में योजनाओं में, राज्यों की सभी बुनियादी विषयों पर पूर्ण और स्पष्ट विचार करने के बाद लक्ष्य और परिप्रेक्ष्य निर्धारित करने के प्रारम्भिक कार्य में ईमानदारी से शामिल करके, राज्यों की वचनबद्धता प्राप्त नहीं की जाती। राष्ट्रीय विकास परिषद के माध्यम से राज्य के साथ किया गया परामर्श अपर्याप्त होता है और मुख्य मंत्रियों तथा केन्द्रीय मंत्रियों की बैठकों में अपनाई गई परामर्श संबंधी कार्यविधियां बनावटी और जल्दबाजी की होती हैं।

(2) केन्द्रीय मंत्रियों में अपने द्वारा बनाई गई योजनाओं को शामिल करने पर उस पर बल देने की प्रवृत्ति होती है और विभागीय समूह, केन्द्रीय कार्यकारी समूह के साथ "ग्राहकों के संबंध" स्थापित करते हैं और तथा उचित संवीक्षा किए बगैर केन्द्रीय समूह द्वारा तैयार की गई योजनाएं स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त रहते हैं।

(3) केन्द्र उन कार्यक्रमों में बहुत ज्यादा दखल देता है जो पूरी तरह से राज्य के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते हैं।

ऊपर दी गई कमियों को दूर करने या न्यूनतम करने के लिए आप कौन से निवारक उपाय और कार्यविधि संबंधी परिवर्तन सुझाते है और किन कारणों से ?

प्रश्न 6.2 एक राय यह व्यक्त की गई है कि एक राष्ट्रीय विकास परिषद, सांविधिक आधार पर स्थापित की जाए जिसमें राज्यों के सभी मुख्यमंत्री और विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञ, सदस्यों के रूप में शामिल हों और जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करे इसे, आर्थिक विकास के संबंध में योजना आयोग की सिफारिश पर चर्चा करने और उन्हें अनुमोदित करने की शक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। जब एक बार विकास योजनाएं परिषद् द्वारा अनुमोदित कर दी जाएं, तो राज्यों को, अनुमोदित पद्धति के अनुसार, उन्हें कार्यान्वित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और राज्यों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध किए जाने चाहिएं। परिषद् को राष्ट्रीय महत्व के विषय पर अपनी राय व्यक्त करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

उपरोक्त प्रस्ताव के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न 6.3 योजना आयोग स्थापित करने के संकल्प में बताया गया है कि आयोग "केन्द्र सरकार के मंत्रियों और राज्य सरकारों के साथ पूरी सूझ-बूझ और परामर्श" से कार्य करेगा। क्या आयोग के वर्तमान गठन और कार्यविधियों में राज्य सरकारों के साथ ऐसी पूर्ण सूझ-बूझ और परामर्श के लिए प्रावधान है। यदि नहीं तो आप किस प्रकार के सुझाव देंगे ?

प्रश्न 6.4 योजना आयोग के गठन के बारे में तीन राय व्यक्त की गई हैं—

(i) आयोग में पर्याप्त संख्या में मंत्री होने चाहिए जो इसके लिए अधिकारिक तौर पर विशेषज्ञों तथा सरकार की प्राथमिकताओं और उद्देश्यों को परिभाषित कर सकें और फिर योजना को स्वीकार और लागू करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को राजी कर सकें।

(ii) इसमें अर्थशास्त्रियों, तकनीकी विदों और प्रबंध-विशेषज्ञों के उच्च कोटि के परामर्शदाता होने चाहिए।

(iii) इसे बढ़ाकर, इसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधि शामिल किए जाने चाहिए और इसे एक स्वतंत्र निकाय बनाया जाना चाहिए जो केन्द्रीय मंत्रि मंडल के सभी दबावों से मुक्त हो जो कि आमतौर पर केन्द्र में सत्तारूढ़ दल की राय/नीति प्रतिपादित करता है।

इन तीनों विचारों में से आप किस विचार का समर्थन करते है और किन कारणों से ?

प्रश्न 6.5 यह भी सुझाव दिया गया है कि योजना आयोग भारत सरकार का विभाग नहीं होना चाहिए बल्कि इसे राष्ट्रीय स्तर पर योजना, निवेश और निर्णय लिए जाने की निरंतर निगरानी रखने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन एक स्वायत्त निकाय बनाया जाना चाहिए।

उपरोक्त सुझाव के बारे में आपके क्या विचार हैं?

प्रश्न 6.6 क्या आप इस बात से सहमत है कि राज्य की योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर विचार करने और उन्हें इनमें शामिल करने की आवश्यकता है। यदि आप सहमत हैं, तो कृपया इस आलोचना पर विचार करें कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए योजना आयोग राज्यों के वित्त साधनों और योजनाओं पर बहुत ज्यादा विस्तारपूर्वक जांच करता आया है जिससे राज्यों की स्वायत्तता को अनुचित रूप से कम करने का आरोप लगा हुआ है। इस संदर्भ में राज्यों की योजनाओं की समीक्षा करने के लिए योजना आयोग की कार्यविधियों में क्या संशोधन किए जाए ताकि राष्ट्रीय प्राथमिकताएं सुनिश्चित की जा सकें।

प्रश्न 6.7 राज्यों को योजना आयोग के माध्यम से ऋण और अनुदानों के रूप में केन्द्रीय सहायता दिए जाने की वर्तमान प्रणाली में कौन से गुण और दोष हैं ?

प्रश्न 6.8 क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि राज्यों के स्वतंत्र रूप से निर्धारित संसाधनों में आशोधित गाडगिल फार्मूला, आई ए टी पी आदि (जिसमें राज्यों की सभी योजनागत आवश्यकताओं के लिए प्रावधान न हो) के आधार पर केन्द्रीय योजना सहायता की पूर्व निर्धारित मात्रा जोड़कर राज्यों की योजना का आकार तय करने की वर्तमान प्रणाली आर्थिक दृष्टि से कमजोर राज्यों के विरोध में जाती है ? यदि हां, तो इस संबंध में आप किन परिवर्तनों का सुझाव देंगे, यदि कोई हों।

प्रश्न 6.9 राज्यों को केन्द्रीय योजना सहायता आबंटित करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा तैयार किया गया मानदण्ड कहां तक न्याय संगत हैं। संतुलित क्षेत्रीय विकास और गरीबी दूर करने के उद्देश्यों की योजना बनाने में केन्द्रीय सहायता आबंटित किए जाने की वर्तमान प्रणाली कहां तक सहायक सिद्ध हुई है ?

कृपया आदिवासी और पहाड़ी क्षेत्रों की उप योजनाओं आदि के लिए और कुल राज्य योजना परिव्यय तथा कुछ अग्रता वाले क्षेत्रों के लिए राज्य योजना परिव्यय आबंटित करने के तंत्र और विशेष केन्द्रीय सहायता निर्धारित करने की वर्तमान प्रणाली पर भी टिप्पणी करें।

प्रश्न 6.10 एक यह विचार व्यक्त किया गया है कि बहुत सी केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं (जिनमें से कुछ के माध्यम से केन्द्रीय सहायता की समतुल्य आधार पर बहुत बड़ी रकमें राज्यों को दी जाती हैं) राज्य की योजनागत प्राथमिकताओं में अड़चन उत्पन्न करती है क्योंकि वे राज्य सरकारों को उनके लिए विकल्प देने के लिए प्रेरित करती हैं।

क्या आप इस सुझाव से सहमत हैं और क्या आप इस संबंध में कोई परिवर्तन करने का सुझाव देना चाहेंगे। यदि हां, तो कृपया स्पष्ट करें।

प्रश्न 6.11 क्या आपकी राय में योजनाओं के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने के लिए योजना आयोग में और प्रत्येक राज्य के भीतर स्थापित किया गया अनुश्रवण और मूल्यांकन तंत्र पर्याप्त है। यदि नहीं, तो यह सुनिश्चित करने के लिए आप किन सुधारों का प्रस्ताव करेंगे कि विकास योजनाओं में लगाई गई केन्द्रीय और राज्य की निधियां वांछित परिणाम दें।

प्रश्न 6.12 क्या आपके विचार से हमारी वर्तमान योजना प्रणाली में "सहकारी संघवाद" की भावना उत्पन्न करने में विकेन्द्रीत आयोजना सहायक सिद्ध होगी, और यदि हां, तो क्या आप संक्षेप में ऐसे उपाय बताएंगे जो योजना तैयार करने तथा योजना कार्यान्वित करने की अवस्थाओं पर राज्यों औ केन्द्र के बीच उचित सहयोग सुनिश्चित करने के लिए उस प्रणाली में किए जाने चाहिए।

प्रश्न 6.13 प्रत्येक राज्य में योजना बोर्ड गठित करने के संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश के बाद, कई राज्य सरकारों ने अपने-अपने योजनातंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए उपाय किए हैं।

आपकी राय में, राज्यों की परिवर्धित योजना क्षमताएं, योजना तैयार करने, कार्यान्वित करने और उसकी समीक्षा करने में, किस सीमा तक प्रभावी भूमिका निभा रही है। आपके विचार से इस दिशा में और क्या सुधार किए जाने चाहिए ? जैसे राज्य योजना बोर्डों का अनुभव बढ़ता जाए, वैसे ही क्या राष्ट्रीय योजना प्रगामी तौर पर अधिक संकेतात्मक और कम आवश्यक हो जाएगी।

भाग VII

विविध

उद्योग

प्रश्न 7.1 सूची I में प्रविष्टि सं० 52 के अधीन अपनी शक्तियों के आधार पर संसद ने, इस प्रविष्टि के अनुसार आवश्यक घोषणा करके उद्योग (विकास और विनियम) अधिनियम, 1951 बनाया। अधिनियम में केन्द्रीय सरकार को ऐसी शक्तियां प्रदान की गई हैं जिनसे वह मौजूदा औद्योगिक उपक्रमों को पंजीकृत कराने के लिए और अधिनियम की प्रथम अनुसूची में उल्लिखित कोई नया औद्योगिक उपक्रम स्थापित न करने के लिए विवश कर सकती

है किन्तु ऐसा केन्द्र सरकार द्वारा इस संबंध में जारी किए गए लाइसेंस के अनुसार और उसके अधीन किया जा सकता है।

मूलत: अधिनियमित रूप में अधिनियम की प्रथम अनुसूची में केवल थोड़े से ऐसे उद्योग शामिल थे जो काफी लोकहित तथा राष्ट्रीय महत्व के थे, परन्तु अधिनियम में बार-बार संशोधन किया गया है और समय बीतने के साथ साथ अनुसूची में और अधिक उद्योग जोड़े गए हैं और केन्द्र ने रेजर ब्लेडों, गोंद, माचिसों, साबुन, रंग-रोगन, वार्निश, उत्तोलक मशीनों, सिलाई मशीनों, लालटेनों, स्टील के फर्नीचर, छुरी-कांटों, प्रेशर-कुकरों, कृषि उपकरणों, साइकलों, जूतों, घरेलू साधित्रों, हाथ के औजारों, टाइप मशीनों, चीनी के बरतनों तथा मिट्टी के बरतनों, तेल के स्टोवों आदि जैसी मदों को भी अपने नियंत्रण में ले लिया है। इस बात की आलोचना की गई है कि इन मदों के उत्पादन के मूल्य के आधार पर उद्योगों के बहुत बड़े हिस्से को शामिल करने के लिए प्रथम अनुसूची का अंधाधुंध विस्तार करने के कारण "बुनियादी संवैधानिक योजना का काफी विध्वंस हुआ है और 'उद्योगों' ने वस्तुत: एक संघीय विषय का रूप धारण कर लिया है"।

क्या आप इस विचार से सहमत है ? यदि हां, तो क्या आप कोई ऐसा विशिष्ट उदाहरण दे सकते हैं जहां इस अधिकार का राज्यों के हितों के विरुद्ध इस्तेमाल किया गया हो।

प्रश्न 7.2 (i) जब केवल संसद ही कोई विधान बना सकती हो, तो आपके विचार से, किसी उद्योग पर राष्ट्रीय नियंत्रण के संदर्भ में, यह परिभाषित या निर्धारित करने के लिए कोई मानदण्ड निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए कि "राष्ट्रीय/लोक हित" क्या है ?

यदि आपका उत्तर सकारात्मक है, आपकी राय में ऐसा मानदंड क्या होना चाहिए।

(ii) उद्योग (विकास और विनियम) अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची में, मदों की वर्तमान सूची से, आपकी राय में, इस आधार पर कौन सी मदें हटाई जा सकती है कि वह वास्तव में इतनी राष्ट्रीय/लोकहित की नहीं है कि उन पर संघ का नियंत्रण न्यायोचित ठहराया जा सकता हो।

प्रश्न 7.3 क्या औद्योगिक लाइसेंस देने तथा पूंजी निर्गमों, पूंजीगत वस्तुओं और कच्चे माल के आयात और विदेशी सहयोग के लिए केन्द्र सरकार की अनुमति देने की वर्तमान कार्यविधियों में सुधार करने तथा/अथवा उन्हें विकेन्द्रीकृत करने के बारे में आपका कोई सुझाव है।

प्रश्न 7.4 पिछड़े क्षेत्रों के विकास संबंधी राष्ट्रीय समिति औद्योगिक विचाराथ "ग्राम और कुटीर उद्योगों" तथा औद्योगिक संगठन पर अपनी रिपोर्टों में लघु क्षेत्र को उचित दरों पर सामग्री की पूर्ति, लघु क्षेत्र के उत्पादों के लिए गैर शोषणकारी मूल्य सुनिश्चित करने के लिए बाजार संरचना तथा इस क्षेत्र को वित्तीय सहायता में बहुत बड़े अंतर की ओर संकेत किया है।

आपकी राय में (क) क्या राज्य ने इस क्षेत्र की सहायता देने के लिए अपने आपको पर्याप्त रूप से संगठित किया है ? यदि नहीं, तो आपके विचार से इसमें कितना समय लगेगा। (ख) इस समस्या की ओर अभी तक राज्यों के दृष्टिकोणों में स्पष्ट कमियां क्या है ?

प्रश्न 7.5 राज्य की योजनाओं को, ऋण देने के संदर्भ में आपको भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम, जीवन बीमा निगम तथा यूनिट ट्रस्ट आफ इण्डिया जैसे केन्द्र द्वारा नियंत्रित राष्ट्रीय औद्योगिक वित्त पोषक संस्थानों के कार्य-चालन पर क्या टिप्पणी करनी है ?

प्रश्न 7.6 सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश पर स्थान संबंधी निर्णयों का राज्यों के लिए बहुत महत्व होता है। यह आरोप लगाया गया है कि ऐसे स्थानों पर निर्णय लेने से पहले राज्यों को हमेशा विश्वास में नहीं लिया जाता। क्या यह आलोचना उचित है ?

प्रश्न 7.7 यह आलोचना की गई है कि कोई मामलों में भारी उद्योगों में अपने सीधे निवेश के मामले में केन्द्र ने अलग-अलग राज्यों की या तो उपेक्षा की है या उनका पक्षपात किया है। क्या इस आलोचना का कोई औचित्य है ? यदि हां, तो इस संबंध में आपके क्या सुझाव हैं जिनसे केन्द्रीय निवेश संबंधी निर्णय अधिक उद्देश्यपूर्ण बन सकें।

प्रश्न 7.8 वर्तमान सीमित सूचनाओं के संदर्भ में क्या आप उद्योगों के विकास के लिए केन्द्र द्वारा विभिन्न वित्तीय तथा आर्थिक प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े जिलों/क्षेत्रों का पता लगाने के लिए अपनाए गए तरीके से संतुष्ट हैं ?

आपकी राय में पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के लिए विभिन्न केन्द्रीय प्रोत्साहन किस सीमा तक सफल हुए हैं ?

क्या इन विषयों पर आपके कोई वैकल्पिक सुझाव है ?

व्यापार और वाणिज्य

प्रश्न 8.1 संविधान के अनुच्छेद 307 में संसद द्वारा कानून बनाकर अनुच्छेद 301, 302, 303 और 304 के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक प्राधिकरण स्थापित करने की व्यवस्था है। इन अनुच्छेदों में व्यापार, वाणिज्य और राज्यों में परस्पर कार्यकलापों पर कुछ प्रतिबंध लगाने का जिक्र है। (अनुच्छेद 307 के अधीन) अभी तक ऐसा प्राधिकरण गठित नहीं किया गया है। व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता और प्रतिबंध लगाने वाली नियामक विधियां (कर और करेतर) राज्यों और केन्द्र के बीच तथा स्वयं राज्यों के बीच लगातार विवाद का विषय रही हैं, क्या आपके विचार से व्यापार और वाणिज्य में बेहतर केन्द्र-राज्य संबंध स्थापित करने के लिए निम्नलिखित कार्य करने के लिए कोई प्राधिकरण स्थापित करना जरूरी है:—

(क) सर्वेक्षण करना और विभिन्न सरकारों द्वारा राज्य के भीतर के तथा अंतर्राज्य व्यापार और वाणिज्य पर लगाए गए प्रतिबंधों पर आवधिक रूप से एक रिपोर्ट प्रकाशित करना,

(ख) व्यापार और वाणिज्य सहज बनाने के लिए अधिरोपित प्रतिबंध की तर्कसंगत बनाने या आशोधित करने के लिए उपाय बताना, और

(ग) इस संबंध में जनता और व्यापार से प्राप्त शिकायतों की जांच करना।

क्या आपको कोई टिप्पणी करनी है कृपया उनके बारे में उल्लेख करें ?

कृषि

प्रश्न 9.1 पशुपालन, वन उद्योग और मत्स्य पालन सहित कृषि, राज्य सूची में (सातवीं अनुसूची की सूची II) में शामिल है किंतु संघ सूची की कई प्रविष्टियों और 7 वी अनुसूची की समवर्ती सूची की प्रविष्टियों के माध्यम से संविधान, कृषि संबंधी विषयों पर केन्द्रीय पहल के लिए काफी गुंजाइश प्रदान करता है। केन्द्र राज्य संबंधों (1967) पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने प्रविष्टि 33 के विस्तार क्षेत्र की जांच करते समय यह राय व्यक्त की—"हमें ऐसा लगता है कि कृषि को राज्य का विषय समझा जाना चाहिए और किसी महत्वपूर्ण क्रियाकलाप के लिए जिम्मेदारी उठाने के नाम पर केन्द्रीय हस्तक्षेप की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

1967 से यह स्थिति कहां तक बदली है। उपर्युक्त विचार से आप कहां तक सहमत है ?

प्रश्न 9.2 कृषि विकास में केन्द्र-राज्य संबंधों की जांच करते समय कृषि संबंधी राष्ट्रीय आयोग (1976) ने सिफारिश की थी कि एक दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य तैयार किया जाना चाहिए जिसमें "राज्य-एजेंसी के माध्यम से लागू की जा रही केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं अंततोगत्वा राज्य क्षेत्र का अंग बन जाएं" और उनकी संख्या कम से कम रखी जाए।

क्या आप इस विचार से सहमत हैं और यदि हां, तो किन कारणों से ? क्या इस संबंध में आपके कोई विशेष सुझाव है ?

प्रश्न 9.3 कृषि संबंधी राष्ट्रीय आयोग (1976) ने यह भी सुझाव दिया था कि (1) राज्यों से, संयुक्त कार्यकारी समूहों के जरिए, कृषि योजना के केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित क्षेत्र निर्धारित करने के लिए विकट "सूचीब"

प्राप्त किया जाना चाहिए और (ii) केन्द्रीय और राज्यों के कार्यकारी समूहों के बीच लगातार वार्तालाप होना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि संसाधनों की कमी के कारण योजना में किए गए समायोजनों पर" राज्यों की आम स्वीकृति है और......वे कार्यक्रमों की प्राथमिकताओं तथा कार्यान्वयन क्षमता को समझते हैं।" उपरोक्त पहलुओं पर आपके विचार मे केन्द्र और राज्यों के बीच किस सीमा तक प्रभावी सहयोग विद्यमान है ?

आप क्या क्या सुधार करवाने के लिए सुझाव देना चाहेंगे।

प्रश्न 9.4 क. कृषि मदों की न्यूनतम या उचित कीमतें निर्धारित करने, (ख) सिंचाई (अंतर्राज्य पहलुओं सहित), (ग) ऋण सहित महत्वपूर्ण निविष्टियों की व्यवस्था और (घ) वाणिकी नीति और प्रशासन के संदर्भ में केंद्र सरकार की पहल राज्यों को कहां तक और किन पेचीदगियों के साथ बाधित करती है।

यदि आप इन पहलुओं पर केन्द्र राज्य संबंधों में कोई गंभीर समस्याए देखते हैं तो आप इसके लिए क्या समाधान बताना चाहेंगे ?

प्रश्न 9.5 क्या आप कृषि अनुसंधान (जैसा कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद) और वित्तीय संस्थानों (जैसा कि राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक) (नाबार्ड) की भूमिका के संबंध में केन्द्र राज्य संबंधों के क्षेत्र में कोई समस्या देखते हैं ? इस संबंध में आप क्या सुझाव देना चाहेंगे ?

खाद्य और सिविल पूर्ति

प्रश्न 10.1 क्या आपके विचार से केन्द्र राज्य परामर्श के लिए वर्तमान व्यवस्थाएं राज्य सरकारों के वास्तविक उत्तरदायित्वों के अनुरूप हैं या वसूली, मूल्य-निर्धारण, भण्डारण, खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुओं के आवागमन और वितरण के क्षेत्रों में, केन्द्र-राज्य संपर्क में सुधार करने की गुंजाइश है ? कृपया स्पष्ट सुझाव दें।

प्रश्न 10.2 क्या आपके विचार से राज्यों के उत्तरदायित्व के क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले आवश्यक वस्तु अधिनियम तथा अन्य नियामक केन्द्रीय अधिनियम लागू करने की व्यवस्थाओं की आवधिक रूप से समीक्षा की जानी चाहिए ? यदि हां, तो इस संबंध में आप किस प्रबंध व्यवस्था का सुझाव देंगे।

शिक्षा

प्रश्न 11.1 कुछ राज्यों ने यह विचार व्यक्त किया है कि क्या। शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीकरण और मानकीकरण हैं और राज्यों के प्राधिकार तथा पहलशक्ति में बहुत ज्यादा केन्द्रीय हस्तक्षेप होता है ? यह आलोचना तक न्यायोचित है।

प्रश्न 11.2(क) विश्वविद्यालय शिक्षा को प्रभावित करने और (ख) वित्तीय सहायता प्रदान करने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिकापर क्या आप कोई टिप्पणी करना चाहते हैं ?

प्रश्न 11.3 विचार-विमर्श, परामर्श और समझाने-बुझाने की प्रक्रिया द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में, राज्यों के बीच और केन्द्र और राज्यों के बीच मतैक्य तैयार करने के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे।

प्रश्न 11.4 क्या आपको अनुच्छेद 29 और 30 के अधीन सांविधिक उपबंधों के प्रचालन में कोई कठिनाई दिखाई देती है जो कि साम्प्रदायिक शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और इस प्रबंध के संबंध में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की गारण्टी देते हैं। यदि हां तो आप क्या सुधार बताना चाहेंगे।

प्रश्न 11.5 क्या आप शैक्षिक विकास के संबंध में केन्द्र और राज्यों के बीच संघर्षों या विवादों तक के कोई अन्य विशिष्ट उदाहरण और इनके समाधान के लिए कोई सुझाव दे सकते हैं।

अंतर्सरकारी समन्वय

प्रश्न 12.1 अमेरिका में अंतर्सरकारी संबंधों पर सलाहकार आयोग कांग्रेस द्वारा 1959 में स्थापित किया गया था। इसकी स्थापना अमरीकी संघीय प्रणाली के कार्यचालन का अनुश्रवण करने और सुधारों का प्रस्ताव देने के लिए की गई थी। एक स्थायी निकास के रूप में यह आयोग ऐसे विशिष्ट मुद्दे और समस्याएं ले कर अपना कार्य करता है, जिनका समाधान करने से सरकारी स्तरों पर बेहतर सहयोग होगा और संघीय प्रणाली अधिक प्रभावी ढंग से कार्य करेगी।

क्या आपके विचार से हमारे देश में ऐसा संस्थान स्थापित करना उपयोगी होगा जोकि भारत में केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में उत्पन्न होने वाली समस्याओं और अप्रिय परिस्थितियों का तुरंत समाधान करेगा ? यदि हां, तो स्पष्ट करें कि ऐसे निकाय का गठन और भूमिका क्या होनी चाहिए।

विषयों से संबंधित व्यक्तियों को विभिन्न विषयों पर जारी की गई अनुपूरक प्रश्नमाला संख्या 1 से 10

केन्द्र-राज्य संबंधों पर आयोग

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 1

(केन्द्रीय सरकार के लिए)

1. आई० आई० पी० ए० द्वारा "लघु उद्योग क्षेत्र और बड़े व्यापार" पर फरवरी, 1984 में किए गए अध्ययन से पता चला है कि उद्योगों के कुछ वर्गों के आरक्षणों का बड़े औद्योगिक घरानों ने परिगमन किया है। क्या आप इस निष्कर्ष से सहमत हैं ? आरक्षित क्षेत्रों में बड़े व्यापारी घरानों के प्रवश को रोकने के लिए क्या आप विधायी और प्रशासनिक प्रबंधों का सुझाव देंगे ?

2. कृपया, पिछले पांच वर्षों के दौरान स्थपित किए गए लघु क्षेत्र के यूनिटों की संख्या और आरक्षित क्षेत्र तथा अनारक्षित क्षेत्र में किए गए निवेश की सूचना देते हुए एक संक्षिप्त टिप्पणी दें

3. आई० डी० आर० ए० अधिनियम के अधीन अनुसूचियां परिवर्तित करने के लिए राज्य सरकारों से परामर्श के लिए वर्तमान व्यवस्था क्या है ? क्या आपको राज्य सरकार से कोई सूचना मिली है जिसमें इस व्यवस्था को सुधारने की आवश्यकता और आवधिक समीक्षा की आवश्यकता की ओर संकेत किया गया हो।

4. उद्योगों के क्षेत्र में बार-बार की जाने वाली एक शिकायत अत्यधिक केन्द्रीकरण और मामलों पर अनुमति देने में असाधारण विलंब के बारे में है। कृपया टिप्पणी दें। क्या आप संक्षेप में बता सकते हैं कि किस अनुपात में, मामलों पर मंजूरी देने में, कार्यविधि सहित विभिन्न कारणों से विलंब होता है ? कृपया कुछ मामलों का विस्तृत ब्यौरा दें।

5. प्रेस में यह बताया गया है कि कुछ राज्य सरकारें कुछ क्षेत्र में बड़े व्यापारिक घरानों के साथ संयुक्त उद्यमों में शामिल हो कर एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग की नीति का परिगमन कर रहे हैं। यह बात कहां तक सत्य है और ऐसी प्रथाओं की उलझनें क्या हैं।

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 2

(राज्य सरकारों के लिए)

उद्योग :

1. औद्योगिक विकास और विनियम अधिनियम की प्रथम अनुसूची, संघ सरकार को उसमें निर्दिष्ट उद्योगों और विशेषकर बड़े यूनिटों को अपने नियंत्रणाधीन लेने का अधिकार देती है। एक विचार यह है कि ऐसे उद्योग स्थापित करने का या उनका विस्तार करने पर अपेक्षित नियंत्रण रखने के लिए यह व्यवस्था अनिवार्य है। दूसरी ओर ये विचार व्यक्त किए गए है कि विभिन्न पहलुओं से उद्योगों का विनियमन अलग प्रबंध व्यवस्था स्थापित करके किया जाना चाहिए।

इस विचार पर आपकी क्या राय है ? यदि वर्तमान प्रणाली से भिन्न हो, तो उद्योगों के विनियमन के लिए किस ठोस व्यवस्था का सुझाव देंगे ?

2. औद्योगिक विनियम का एक उद्देश्य लघु क्षेत्र के लिए कुछ वर्गों के उद्योग आरक्षित करना है। कई लोगों का मत हैं कि इसके लिए समूचे देश पर लागू होने वाले एक समान विधान की आवश्यकता है जिसके लिए केन्द्रीकृत विधान अपेक्षित है। इसका विकल्प यह हो सकता है कि प्रत्येक राज्य सरकार, इस विषय पर अलग-अलग विधान बनाए किंतु इससे उद्योगों की सूची और राज्य दर राज्य अतंक राशि में अंतर पड़ जाएगा।

उपरोक्त दो दृष्टिकोण में से आप किसके पक्ष में हैं और उसके क्या कारण हैं ? यदि आपके पास कोई अन्य विकल्प है तो स्पष्ट करें।

3. लघु और मध्यम उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए राज्य सरकारों की क्या भूमिका है ? क्या आपके विचार से राज्यों के लिए परिवर्धित भूमिका के लिए कोई गुंजाइश है ? यदि हां तो कृपया बताएं कि यह कैसे किया जा सकता है ?

4. क्या आप सहमत हैं कि अनुसूची I में लघु उद्योग क्षेत्र के लिए दी गई कुछ मदों का आरक्षण आपकी राज्य सरकार की लघु क्षेत्र के उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने संबंधी नीतियों के अनुरूप है ? क्या आप महसूस करते हैं कि लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित कोई मद उस सूची से निकाल दी जानी चाहिए ? यदि हां तो क्यों ?

5. कुछ विशेषज्ञों ने टिप्पणी की है कि सूची I की प्रविष्टि 52 के कारण केन्द्र ने 'उद्योग' को वस्तुत: केन्द्रीय विषय में बदल दिया है जो कि "अनिवार्यत: राज्य का विषय है।" क्या आप इस विचार से सहमत हैं ? यदि हां, तो क्या आप अतिलंघनों के ऐसे क्षेत्र बताएंगे और उसके साथ उस विधान की संगत धाराओं का उल्लेख करेंगे जिनसे ऐसा अतिलंघन हुआ।

6. क्या आप समय-समय पर घोषित औद्योगिक नीति संबंधी संकल्पों से सहमत हैं। आपके अनुसार संविधान के हित के अनुरूप एक समान राष्ट्रीय नीति और राज्य के पर्याप्त अधिकारों के बीच संतुलन बनाने का सबसे अच्छा मार्ग है।

7. कुछ एक विचार यह व्यक्त किया गया है कि यद्यपि उद्योग राज्य का विषय है किंतु औद्योगिक नीति तैयार करने में केन्द्र और राज्यों के बीच पर्याप्त विचार विमर्श नहीं किया जाता। आप इस विचार से कहां तक सहमत हैं ? वर्तमान प्रणाली में सुधार करने के लिए क्या आपको कोई सुझाव है ?

8. क्या एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार अधिनियम के उपबंधों और कार्यान्वयन ने किसी तरीके से राज्यों के औद्योगिक विकास को प्रभावित किया है ? यदि हां, तो किस तरीके से ? क्या आप इस संबंध में सुधार का कोई सुझाव देना चाहेंगें

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 3

(अन्तर्राज्य नदी जल विवाद)

1. क्या दामोदर घाटी निगम, भाखड़ा बयास प्रबंध बोर्ड जैसे विशिष्ट अधिनियमों के अधीन स्थापित किए गए निकाय अंतर्राज्य नदी जल और नदी घाटियों के प्रबंध के लिए प्रभावी निकाय हैं ? यदि हां, तो क्या केन्द्र सरकार (सिंचाई और विद्युत मंत्रालय) की, नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के उपबंधों का प्रयोग करने की कोई योजना है ?

2. अंतर्राज्य नदी जल विवाद, अंतर्राज्य नदी जल विवाद अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिकरण को भेजने में असाधारण विलंब के संबंध में प्रतिकूल आलोचना की गई है। इसलिए केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने सुझाव दिया है कि एक अनिवार्य समय सीमा होनी चाहिए जिसके भीतर राज्य सरकार से धारा 3 के अधीन आवेदन प्राप्त होने के बाद, विवाद केन्द्र सरकार द्वारा अनिवार्यत: अधिवा कारियो को भेज दिया जाना चाहिए। यह सुझाव दिया गया है कि इसे अंतर्राज्य नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 का संशोधन करके उसमें शामिल कर लेना चाहिए। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं।

3. यह सुझाव दिया गया है कि उन न्यायाधिकरण के पंचाट, कानून द्वारा 3 वर्ष की अवधि के भीतर अवश्य दे दिए जाने चाहिए। इसके लिए भी नदी जल विवाद अधिनियम में संशोधन करना होगा। इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

4. यह सुझाव दिया गया है कि यदि प्रश्न 2 में प्रस्तावित अनिवार्य समय सीमा के भीतर अधिकरण गठित नहीं किया जाता तो, धारा 11 में संशोधन

4-376 M. of HA/ND/87

किया जाए ताकि व्यथित राज्य, केन्द्र सरकार द्वारा अधिकरण गठित करने की संवैधानिक जिम्मेदारी पूरी करवाने के लिए उच्चतम न्यायालय में जा सकें। इस सुझाव में आपके क्या विचार हैं ?

5. अधिकरण द्वारा अंतर्राज्य नदी जल विवादों का शीघ्र निपटारा करने में एक कठिनाई यह हो सकती है कि आंकड़े उपलब्ध न हों या राज्य सरकारों द्वारा आंकड़े देने में विलंब किया गया हो। अतः कुछ विशेषज्ञों ने सुझाव दिया है कि यदि राज्य सरकारें समय पर आवश्यक आंकड़े प्रदान नहीं करतीं तो अधिकरण अपने समक्ष मौजूद आंकड़ों के आधार पर सर्वोत्तम निर्णय के आधार पर अपना पंचाट दे देगा। इसके लिए वर्तमान अंतर्राज्य नदियों और नदी घाटियों के संबंध में आवश्यक आंकड़ा-आधार तैयार करना होगा। इस समय केन्द्रीय जल आयोग में ऐसी अंतर्राज्य नदियों और नदी घाटियों के जल आंकड़े एकत्र करने की कुछ व्यवस्था है। प्रमुख नदियों के संबंध में ऐसे आंकड़े एकत्र करने और इनकी नियमित रूप से समीक्षा करने और उन्हें अद्यतन बनाने का काम सुनिश्चित करने के लिए संस्थागत व्यवस्थाओं को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए :—

(क) इस संबंध में आंकड़े एकत्र करने के लिए क्या वर्तमान व्यवस्थाएं हैं ?

(ख) क्या केन्द्रीय जल आयोग के पास ऐसे आंकड़े एकत्र करने के लिए अपनी व्यवस्था है या वे राज्य सरकार द्वारा दिए गए आंकड़ों पर निर्भर करते हैं ?

(ग) क्या इस प्रयोजन के लिए कोई अलग संस्थागत व्यवस्था जरूरी है ?

6. क्या संघ और राज्यों के बीच वर्तमान व्यवस्थाओं में कोई सुधार के संबंध में आपके कोई प्रस्ताव हैं जिनसे संबंधित राज्यों के बीच केवल नदी जल का निष्पक्ष वितरण ही सुनिश्चित न किया जाए बल्कि उसका व्यापक राष्ट्रीय हित में अनुकूलतम प्रयोग भी किया जा सके।

पूरक प्रश्नमाला सं० 4

अनुच्छेद 163 और 200 के अधीन राज्यपाल के विवेकाधिकारों पर प्रश्नावली

I—मुख्य विषयों का विवरण

1. इस प्रश्नमाला का उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद, 163 के अधीन तथा विशेष रूप से अनुच्छेद 200 के अधीन विधेयकों के राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के उनके विवेकाधिकार पर विचार प्राप्त करना है।

2. विधान मण्डल द्वारा पारित विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के बारे में राज्यपाल के विवेकाधिकारों और उस विवेकाधिकार का प्रयोग करने की सीमा और तरीके की आलोचना की गई है, कभी-कभी राष्ट्रपति की असम्मति सूचित करने या इस प्रकार आरक्षित विधेयकों पर सहमति रोकने में ने भारत सरकार के स्तर पर विलंब होता है। इसलिए मुख्य मसले इस प्रकार हैं :—

(i) अनुच्छेद 163 के अधीन राज्यपाल के विवेकाधिकार का कार्यक्षेत्र,

(ii) अनुच्छेद 200 के अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के लिए राज्यपाल के विवेकाधिकार का कार्यक्षेत्र,

(iii) सिद्धांत/मानदण्ड/दृष्टिकोण जो विवेकाधिकार का प्रयोग करने और विशेषकर राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक आरक्षित करने के विवेकाधिकार पर लागू किए जाने चाहिए,

(iv) ऐसी समय सीमा निर्धारित करने की वांछनीयता जिसके भीतर राज्यपाल और राष्ट्रपति को क्रमशः अनुच्छेद 200 व 201 में निर्दिष्ट कोई न कोई कार्रवाई करनी चाहिए,

3. निम्नलिखित पैराग्राफों में इस संबंध में संक्षिप्त विवरण दिया गया है कि अनुच्छेद 163 और 200 ; संविधान सभा द्वारा कैसे स्वीकार किए गए और इसके अतिरिक्त इन अनुच्छेदों और संविधान के अन्य अनुच्छेदों पर पृष्ठभूमि की जानकारी भी दी गई है जिसे प्रश्न तैयार करते समय ध्यान में रखा गया।

II —पृष्ठभूमि

4. **संविधान निर्माताओं के विचार अनुच्छेद 163**—जब संविधान के प्रारूप के खण्ड 143(उस समय अनुच्छेद 163 के रूप में) संविधान सभा में चर्चा की जा रही थी तो श्री एच० वी० कामत ने इस अनुच्छेद से "सिवाए इसके कि जहां तक उसे संविधान द्वारा या उसके अधीन अपना कोई कार्य या उनमें से कोई कार्य अपने विवेकाधिकार से करना होता है" शब्द इस अनुच्छेद से निकालने का संशोधन पेश किया था और उसके परिणामस्वरूप उप खण्ड (ii) निकाल दिया गया था। जो वर्तमान अनुच्छेद के खंड (2) के अनुरूप है जिसमें राज्यपाल को, ऐसे प्रश्न उठाए जाने पर, यह निर्णय करने के लिए निश्चित अधिकार दिया गया है कि क्या कोई विषय ऐसा है अथवा नहीं जिसके संबंध में उसे संविधान के अधीन या उसके द्वारा अपने विवेकाधिकार के अनुसार कार्य करना है।

5. प्रस्तावित संशोधन का डा० एच० एन० कुंजरू, प्रो० शिब्बन लाल सक्सेना, श्री एच० वी० पाटसकर और श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने जोरदार समर्थन किया। उनकी आलोचना में मुख्य बात यह थी कि खण्ड 143 को जो शब्दावली दी गई थी उससे राज्यपाल को अपने विवेकानुसार चयन करने की यह सामान्य शक्ति प्राप्त होती थी कि क्या अपना कोई कार्य करने में उसके लिए अपने मंत्रिपरिषद की सलाह मांगना और उस पर चलना या उसको न मानना जरूरी है [परिशिष्ट ए(i) में उद्धरणों द्वारा]

6. श्री टी० टी० कृष्णमाचारी और श्री अल्लादी कृष्णस्वामी (जिन्होंने संशोधन का विरोध किया), सहमत होते हुए डा० अम्बेडकर ने खण्ड 143 के कार्यक्षेत्र और प्रयोग के बारे में यह व्याख्या देकर डा० कुंजरु और अन्य लोगों की आशंकाएं दूर करने का प्रयास किया :—

> "यह खण्ड एक बहुत सीमित खण्ड है, इसमें कहा गया है कि सिवाए इसके जहां तक उसे इस संविधान द्वारा या उसके अधीन कार्य करना है। इसलिए अनुच्छेद 143 को उन ऐसे अन्य अनुच्छेदों के साथ पढ़ना होगा जो अधिकार विशेष रूप से राज्यपाल के लिए आरक्षित करते हैं। यह कोई सामान्य खण्ड नहीं है जिसमें राज्यपाल को किसी ऐसे विषय में अपने मंत्री परिषद की सलाह न मानने का अधिकार दिया गया हो ; जिससे वह समझे कि उसे यह सलाह नहीं माननी चाहिए(समर्थक विवरण जोड़ दिया गया है) [पूरे उद्धारण के लिए परिशिष्ट क का (ii) देखें]

7. **राज्यपालों के विवेकाधिकार वर्तमान स्थिति**—संविधान-निर्माताओं के विचार चाहे कुछ भी रहे हों, किंतु अनुच्छेद 163 को साधारण रूप से पढ़ने पर पता चलता है कि अनुच्छेद के खण्ड (I) (2) राज्यपाल को संविधान द्वारा सौंपे गए किसी भी कार्य के संबंध में विवेकाधिकार इस्तेमाल करने का सामान्य अधिकार प्रदान करते हैं। खण्ड (1) में "संविधान द्वारा या उसके अधीन" अभिव्यक्ति से यह अर्थ लगाया जा सकता है कि इसमें ऐसी सभी परिस्थितियां आ जाती हैं जिनमें विवेकाधिकार प्रयोग करने की शक्ति संगत अनुच्छेदों में या तो स्पष्ट रूप से उल्लिखित है या अनिवार्यतः उसका यही निहितार्थ है। इसके अतिरिक्त किसी परिस्थिति विशेष में, अपने विवेकानुसार कार्य करने के राज्यपाल के निर्णय को खण्ड (2) द्वारा किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकरण द्वारा चुनौती दिए जाने से सुरक्षा प्रदान की गई है।

8. व्यावहारिक तौर पर ऐसी परिस्थितियां आई हैं और आएंगी जिनमें राज्यपाल को अनिवार्यतः अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना पड़ा हो चाहे संबंधित अनुच्छेदों में उस आशय के अभिव्यक्त उपबंध न हों। इसलिए उसे सलाह देने के लिए विधान मण्डल के प्रति विधिवत् रूप से उत्तरदायी कोई मंत्रिपरिषद नहीं होनी चाहिए, अथवा, मंत्रिपरिषद द्वारा दिए गए परामर्श का तालमेल उस कार्रवाई से नहीं बिठाया जा सकता है जो राज्यपाल की राय से, उसकी संविधान के अधीन केन्द्र के प्रति जिम्मेदारी या स्वयं संविधान के प्रति जिम्मेदारी को ध्यान में रखते हुए स्वीकार की जानी चाहिए ; और संविधान को उसे अपने पद की शपथ के अनुसार परिरक्षित, सुरक्षित और रक्षित करना होता है।

नीचे कुछ उदाहरण दिये गये हैं :—

(क) मुख्यमंत्री की नियुक्ति (अनुच्छेद 164(1) जब किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो,

(ख) विधान सभा का विघटन 174(2) (ख) जब कोई स्थायी मंत्रालय न बनाया जा सकता हो,

(ग) राष्ट्रपति के विचार के लिये राज्य विधेयक को आरक्षित रखना (अनुच्छेद 200), और

(घ) राष्ट्रपति को यह सूचित करना कि राज्य सरकार को संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता (अनुच्छेद 356(1)) ।

9. अनुच्छेद 200—संविधान सभा में जब अनुच्छेद 200 के मूल भाग पर विचार किया तो उसमें उसी शब्दावली का प्रयोग किया गया था जो शब्दावली इस समय है । अनुच्छेद के प्रारूप का केवल एक परन्तुक ही, वर्तमान अनुच्छेद 200 के पहले परन्तुक के अनुरूप था । इसमें राज्यपाल को, उनकी सहमति के लिये प्रस्तुत किये गये विधेयक के संबंध में अपने विवेकानुसार सभी द्वारा पुनर्विचार करने के लिये वापस करने की शक्ति प्रदान की गई थी । डा० बी० आर० अम्बेडकर ने एक नया परन्तुक (अर्थात् अनुच्छेद 200 का वर्तमान प्रथम परन्तुक) प्रति स्थापित करने के लिये संशोधन पेश किया, जिसमें अन्य बातों के साथ साथ "अपने विवेकानुसार" शब्द नहीं थे । संविधान सभा की विशेष समिति ने संविधान के प्रारूप में राज्यपाल के विवेकाधिकारों का उल्लेख न करने का निर्णय लिया था जिसका अनुसरण करते हुए ऐसा किया गया था । डा० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट किया कि एक जिम्मेदार सरकार में राज्यपाल द्वारा विवेकानुसार कारंवाई करने की कोई गुंजाइश नहीं होती । इस संशोधन को स्वीकार कर लिया गया । स्पष्ट है कि अनुच्छेद 163 के उपबंधों को नजर अंदाज कर दिया गया ।

10. अनुच्छेद 200 का दूसरा परन्तुक मूलत: संविधान के प्रारूप की चौथी अनुसूची के कारण आया जिसमें राज्यपाल के लिये अनुदेशों की लिखतें शामिल थी । संविधान सभा ने इस अनुसूची को इसमें से निकाल दिया किंतु उस उपबंध को रहने दिया गया जिसमें राज्यपाल को उस स्थिति में विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना था । जब उसकी राय में विधेयक से उच्च न्यायालय की हैसियत को खतरा होता हो । इसका मूलाधार यह था कि उच्च न्यायालय जैसी महत्वपूर्ण संस्था को बनाये रखने के लिये राष्ट्रपति को यह अधिकार (इस विधान को रोकने) देना आवश्यक था ।

11. **विधेयक पर अनुमति**—जब राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कोई विधेयक राज्यपाल को प्रस्तुत किया जाता है तो अनुच्छेद 200 के अनुसार उसके पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं :—

(i) विधेयक के प्रति अनुमति दे दे,

(ii) विधेयक पर अनुमति रोक ले,

(iii) यदि यह धन विधेयक नहीं है तो विधेयक को किसी संदेश के साथ पुनर्विचार के लिये विधानमंडल को वापस कर दे, ।

(iv) विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखे ।

12. **विधायी शक्तियों का विवरण**—अनुच्छेद 200 में राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को आरक्षित रखने के विकल्प पर अनुच्छेद 245 द्वारा प्रदान की गई विधायी शक्तियों और अनुच्छेद 246 और सातवीं अनुसूची के अधीन संघ और राज्यों के बीच उनके वितरण के संदर्भ में विचार करना होगा बशर्ते कि उक्त विधेयक राज्य सूची के विषयों में आता हो । अनुच्छेद 246 (3) राज्यों सूची के विषयों के संबंध में विधियां बनाने का राज्य विधान मंडल को पूर्णाधिकार प्रदान करता है । यह इस शर्त पर कि—

(i) (क) संघ और राज्य की शक्तियों में अनमेल संघर्ष और अतिव्याप्ति के मामले में, सूची I में दी गई संघ शक्तियां, संघर्ष की सीमा तक सूची II और III में गिनाई गई राज्य शक्तियों पर अभिभावी होंगी । (ख) समवर्ती क्षेत्र में राज्य विधि और संसद द्वारा बनाई गई विधि के बीच विरोध की स्थिति में, संसद द्वारा बनाई गई विधि, विरोध की सीमा तक अभिभावी रहेगी,

(ii.) संविधान के अन्य उपबंधों की सीमाएं अर्थात् अनुच्छेद 249, 250, 252, 253, 355, 357 आदि ।

13. **राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखे जाने वाले विधेयक**—राज्य सूची विषयों से संबंधित विधेयक तीन श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं अर्थात्—

(i) वे विधेयक जिन्हें अनिवार्यत: राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा जाना चाहिए अर्थात् :—

(क) ऐसे विधेयक जिनमें ऐसे उपबंध शामिल हों जिनसे उच्च न्यायालय के अधिकारों का इस प्रकार अल्पीकरण होता हो कि इससे वह स्थिति खतरे में पड़ती हो जिसे पूरा करने के लिए संविधान में न्यायालय की परिकल्पना की गई थी (अनुच्छेद 200 का दूसरा परन्तुक)

(ख) संसद द्वारा विधित: स्थापित अन्तर्राज्यिक नदी या नदी घाटी प्राधिकरण द्वारा संचित, उत्पन्न, उपभुक्त, वितरित या बेची गई बिजली या पानी से संबंधित कराधान संबंधी बिल (अनुच्छेद 288(2)), और

(ग) धन विधेयक और वित्त विधेयक जिनके संबंध में अनुच्छेद 360 (4)(क) (ii) के अनुसार वित्तीय संकट के दौरान निदेश जारी किये हों ।

(ii) वे विधेयक जिन्हें अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 के अनुसार आधार पर चुनौतियों से प्रतिरक्षा और उनकी अन्यथा संवैधानिक विधि-मान्यता सुनिश्चित करने के लिये राष्ट्रपति के विचारार्थ व सहमति के लिये आरक्षित रखा गया हो अर्थात् :—

(क) जिसमें संपदा आदि से अधिग्रहण की व्यवस्था हो (अनुच्छेद 31 ए का प्रथम परंतुक),

(ख) राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों को लागू करने वाले विधेयक (अनुच्छेद 31 ग का परन्तुक), और

(ग) व्यापार व वाणिज्य पर प्रतिबंध लगाने वाला विधान और राज्य में परस्पर क्रियाकलाप जबकि राष्ट्रपति की आवश्यक पूर्वानुमति न ली गई हो ।
(अनुच्छेद 255 के साथ पठित अनुच्छेद 304 (बी) का परन्तुक) ।

(iii) ऊपर (i) और (ii) के अन्तर्गत आने वाले विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयक अर्थात् अनुच्छेद 254(2) के अन्तर्गत आने वाले बिल ।

14. **राज्यपाल के दायित्व**—राज्यपाल, राज्य का वैधानिक अध्यक्ष होता है । किंतु सरकार की संसदीय प्रणाली में केवल अपने मंत्री-परिषद् की सलाह पर कार्य करने की संसदीय प्रथा का सदैव पालन करना उसके लिये संभव नहीं होता जैसी कि अनुच्छेद 74 के अधीन राष्ट्रपति को करना होता है । जैसा कि ऊपर पैरा 7 और 8 में स्पष्ट किया गया है उसे अपने विवेकानुसार भी कुछ कार्य करने पड़ सकते हैं ।

15. अपने मंत्री-परिषद् की सलाह के विरुद्ध निर्णय देने की आवश्यकता, मुख्य रूप से, राज्याध्यक्ष की हैसियत से राज्यपाल के दायित्व और उसकी राष्ट्रपति और संविधान के प्रति जिम्मेदारी के कारण उत्पन्न होती है । अत: यदि इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है जिसमें राज्यों की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार न चलाई जा सकती हो तो अनुच्छेद 356 के अधीन उसे इसकी सूचना राष्ट्रपति को देनी होती है । कुछेक राज्यपालों को अनुच्छेद 371, 371 क, 371 ग और 371 च के अधीन विशेष दायित्व दिये गये हैं । अनुच्छेद 159 के अधीन राज्यपाल की शपथ या प्रतिज्ञा न उसे किसी परिस्थिति विशेष में अपने विवेकानुसार काम करने या न करने का निर्णय लेने का पूर्ण मार्गनिर्देश देता है जिसके अन्तर्गत उससे संविधान के परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण की अपेक्षा की जाती है ।

III—प्रश्नमाला

1. (i) उपरोक्त पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए अर्थात् अनुच्छेद 163 में विवेकाधिकारों के विलोपन या प्रतिधारण के संबंध में संविधान सभा में जो कुछ भी कहा गया था, आपकी राय में क्या अनुच्छेद की इस भाषा से उचित रूप

से यह अर्थ लगाया जा सकता है कि राज्यपाल को सामान्य शक्ति सौंपी गई है जिसका प्रयोग संविधान के अधीन उसे सौंपे गये किसी एक या अधिक कार्यों के संबंध में किया जाएगा ? क्या अनुच्छेद के खंड (2) के साथ पठित खंड (1) में दी गई "संविधान के द्वारा या अधीन" अभिव्यक्ति इस व्याख्या का समर्थन करती है ?

(ii) क्या संविधान निर्माताओं (सर्वश्री बी० आर० अम्बेडकर, टी० टी० कृष्णमाचारी और ए० के० आयर (द्वारा अनुच्छेद 163 के खंड(1)) के उपरोक्त कार्यक्षेत्र के संबंध में किया गया स्पष्टीकरण एवं व्याख्या पर्याप्त है ? दूसरे शब्दों में, क्या इस अनुच्छेद में शब्दों "संविधान द्वारा या के अधीन" वाक्यांश का कार्यक्षेत्र राज्यपाल के उन कार्यों तक सीमित है जिसका निष्पादन उसे संविधान के किसी उपबंध के अंतर्गत विशेष रूप से अपने विवेकानुसार करना पड़ता है ?

(iii) यदि आप संविधान निर्माताओं द्वारा समझायी गयी उपरोक्त व्याख्या से सहमत हैं तो क्या आप उन उपबंधों को बता सकते हैं जो राज्यपाल को विशेष रूप से विवेकाधिकार आरक्षित करते है और जिन्हें अनुच्छेद 163 के साथ पढ़ने से इसके कार्यक्षेत्र को सीमित करते हैं ।

(iv) क्या अनुच्छेद 163 में दो बार आने वाले "संविधान के द्वारा या अधीन" वाक्यांश के संदर्भ में संविधान के उन उपबंधों को भी लिया जायेगा। जिनके अनुसार स्पष्ट रूप से नहीं बल्कि निहितार्थ से राज्यपाल का अपने कार्य या कोई कार्य स्वविवेकानुसार करने होते हैं । यदि ऐसा है तो क्या आप उन उपबंधों को बता सकते हैं ?

(v) यदि आप पूर्व प्रश्न में प्रस्तुत किये गये सुझाव से सहमत हैं तो क्या आप अन्य उपबंधों के साथ-साथ निम्नलिखित उन संवैधानिक उपबंधों को भी शामिल करेंगे जिनके अनुसार राज्यपाल को आवश्यक निहितार्थ के कारण साधारण या असाधारण या असाधारण परिस्थितियों में अपने कार्य या अपना कोई कार्य अपने विवेकानुसार करना पड़े ।

(क) अनुच्छेद 164 जिसके अन्तर्गत राज्यपाल को मुख्यमंत्री को नियुक्त करने और मंत्रियों को पदच्युत करने का अधिकार सौंपा गया है, क्योंकि वे "राज्यपाल की मर्जी से अपने पद पर बने रहते हैं ।"

(ख) अनुच्छेद 167 के राज्यपाल को प्रशासन और विधान के सभी प्रस्तावों के संबंध में मंत्री-परिषद् के सभी निर्णयों की सूचना दिये जाने, प्रशासन और विकास संबंधी सूचना मंगाने और यह अपेक्षा करने का अधिकार देता है कि जिस मामले पर केवल मंत्री द्वारा निर्णय लिया गया है उसे मंत्री परिषद् के विचारार्थ प्रस्तुत किया जाना चाहिये ।

(ग) अनुच्छेद 174 राज्यपाल को राज्य विधान मंडल के सदन या सदनों का आह्वान या सत्रावसान करने और उसकी विधान सभा का विघटन करने की शक्ति प्रदान करता है ।

(घ) अनुच्छेद 175 राज्यपाल का सदन में अभिभाषण और संदेश देने का अधिकार ।

(ङ) अनुच्छेद 200 जो राज्यपाल को विधेयक पर सहमति देने, उस पर सहमति रोकने या पुनर्विचार के लिये वापस करने या इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है ।

(च) एक साथ पठित अनुच्छेद 355 और 356(1) राज्यपाल को यह सूचना राष्ट्रपति अर्थात् संघ सरकार को देने का अधिकार प्रदान करते हैं कि क्या राज्य सरकार संविधान के अनुसार चलाई जा रही है या नहीं ।

(vi) यदि कोई मंत्रालय त्यागपत्र दे देता है और दूसरा मंत्रालय बनाये जाने तक या राष्ट्रपति के शासन की घोषणा किये जाने तक और उस पद पर बने रहने से इनकार करता है तो क्या अनुच्छेद 163(2) के अन्तर्गत राज्यपाल को यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि वह मंत्रालय की सलाह के बिना विशिष्ट कार्यपालक कार्य अपने विवेकानुसार करे ।

2. (i) इस परिकल्पना पर कि आप प्रश्न 1(iv) में प्रस्तुत किये गये सुझाव से सहमत हैं क्या आपकी राय में उस विवेकाधिकार को सीमित करना अभीष्ट नहीं है जिसका कि वह संविधान के अन्य संगत अनुच्छेदों के साथ पठित अनुच्छेद 163 के अधीन अपने निर्णय के अनुसार दावा करता है ? यदि ऐसा है तो किस ढंग से ? क्या ऐसा अनुच्छेद 163 या/संविधान के अन्य संगत उपबंधों में आवश्यक परिवर्तन करके किया जाना चाहिये ताकि राज्यपाल के पास यह अर्थ लगाने, परिकल्पना करने और निर्णय करने के लिये कि वह कुछ ही शेष रहे कि वह संविधान के अधीन अपना कोई भी कार्य अपने विवेकानुसार करेगा ।

या

(ii) क्या आप व्यापक सिद्धान्त निर्धारित करते हुए राज्यपाल के इन विवेकधिकारों को विनियमित करना चाहेंगे ? यदि ऐसा है तो किस ढंग से ? ऐसा क्या संविधान में या संविधान के प्राधिकार में जारी किसी लिखत में इन सिद्धान्तों को शामिल करके किया जाना चाहिए ।

(iii) अनुच्छेद 159 के अधीन राज्यपाल को दिलाई गई पद की शपथ उसे "संविधान और विधि के परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण" के लिये बाध्य करती है । क्या अनुच्छेद 163 के साथ पठित अनुच्छेद राज्यपाल को ऐसे किसी भी मामले में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने की अनुमति देता है जहां उसके मंत्रालय द्वारा दी गई सलाह उसे संविधान या विधि के विरुद्ध प्रतीत होती हो ।

3. (i) अनुच्छेद 200 के साथ पठित अनुच्छेद 163 के अन्तर्गत जब कोई विधेयक राज्यपाल को उसकी सहमति के लिये प्रस्तुत किया जाता है तो उसमें उपलब्ध विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चयन करते हुए क्या उसके पास (मंत्री-परिषद् की सलाह के बिना या उसके विरुद्ध) उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का कोई विवेकाधिकार है ।

(ii) क्या अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के संबंध में राज्यपाल का विवेकाधिकार यदि कोई है, उस पर प्रत्यक्ष रूप में या अनुच्छेद 159, 355 और 356 के द्वारा या अधीन आवश्यक निहितार्थ पड़े दायित्व के कारण से होता है, उसकी राय में उसकी संवैधानिकता—

(क) मात्र संदेहास्पद या विवादास्पद है, या

(ख) प्रत्यक्ष रूप से एकस्व है, या

(ग) जो स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय हित के विरुद्ध है या संपूर्ण राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिये हानिकर है ?

इस विषय पर कुछ विशेषज्ञ द्वारा अभिव्यक्त किये गये विचार संक्षिप्त रूप से परिशिष्ट "ख" में दिये गये हैं ।

(iii) यदि पूर्वोक्त प्रश्न (i) का उत्तर स्वीकारात्मक है, क्या यह विवेकाधिकार अबाध है । यदि नहीं तो इस विवेकाधिकार विशेषरूप से राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित विधेयकों को राष्ट्रपति विचारार्थ आरक्षित रखने के विवेकाधिकार पर कौन से सिद्धान्त/मानदंड/तर्क लागू होने चाहिए ।

(iv) क्या इसमें या संविधान के प्राधिकार से जारी किसी लिखत में इन सिद्धान्तों/मानदंडों/तर्कों का उल्लेख करना समीचीन होगा ?

(v) क्या अनुच्छेद 200 और 201 में ऐसी कोई समय सीमा विनिर्दिष्ट की जाए जिसके भीतर राज्यपाल और राष्ट्रपति अपने अपने अधिकारों का प्रयोग करेंगे और ऐसा न किये जाने पर यह समझा जायेगा कि विधेयक पर सहमति दे दी गई है ? यदि ऐसा है, तो ये सीमाएं क्या होनी चाहिए ?

(vi) जब कोई राज्य विधेयक, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के माध्यम से अनुच्छेद 201 के परन्तुक में यथाउपबंधित पुनर्विचार के लिये वापस किया जाता है, और वह विधेयक विधान मंडल द्वारा, संशोधन करके या संशोधन के बिना, पारित किये जाने के बाद राष्ट्रपति को विचारार्थ पुनः प्रस्तुत किया जाता है तो क्या यह व्यवस्था निर्धारित न की जाये (अनुच्छेद 200 के प्रथम परन्तुक के अनुरूप) कि राष्ट्रपति अनुमति नहीं रोकेंगे ?

4. (i) जब अनुच्छेद 31क या 31ग में निर्दिष्ट राज्य विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित किया गया हो और उन पर उसकी सहमति मिल गई हो तो उन्हें इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उनसे अनुच्छेद

14 या 19 का उल्लंघन होता है । संभव है कि राज्य मंत्रिपरिषद राय बनाए कि अनुच्छेद 14 या 19 के आधार पर विधेयक के लिये चुनौती से उन्मुक्ति की मांग करना जरूरी नहीं है, और तद्नुसार राज्यपाल को इस संबंध में अपनी सहमति देने और इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित न रखने कि सलाह दें । क्या राज्यपाल को, ऐसी स्थिति में मंत्रि-परिषद् की सलाह अस्वीकार करने के बाद विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिये ?

(ii) यदि व्यापार, वाणिज्य और राज्यों के बीच अंतःकार्यकलापों के संबंध में राज्य विधान मंडल द्वारा पारित कोई विधेयक मंत्रिपरिषद् की सलाह पर राज्यपाल की सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो क्या राज्यपाल के लिये उसे इस आधार पर अपनी सहमति रोके रखना और इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना न्यायोचित होगा कि अनुच्छेद 304(I) के परन्तुक के अधीन उस विधेयक को राज्य विधान मंडल में पेश करने के लिये राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था ?

(iii) अनुच्छेद 304(ख) के परन्तुक के अनुसार राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त बिल अब राज्य विधान मंडल द्वारा ऐसे संशोधनों के साथ पारित कर दिया जाता है, जो राज्यपाल के विचार से व्यापार, वाणिज्य और पारस्परिक कार्यकलापों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाते हों और जिन्हें लोकहित में उचित न समझा जा सकता हो तो क्या राज्यपाल अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है ?

(iv) यदि राज्य सूची (सूची II) में दिये गये किसी विषय के संबंध में राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी राज्य विधेयक की अन्तर्निहित नीति, संघीय विधि में निर्धारित नीति से भिन्न हो तो क्या राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसे विधेयक को इस आधार पर राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना चाहिये कि इसकी राय में इससे संसद द्वारा बनाई गई केन्द्रीय विधि में निहित नीति का अतिलंघन होता है ?

(v) यदि उपरोक्त स्थिति में संघ की नीति को किसी संघीय विधि में शामिल नहीं किया गया हो बल्कि उसका केन्द्र सरकार के कार्यकारी आदेश के कार्यान्वयन में पालन किया जा रहा हो तो क्या राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसे राज्य विधेयक (सूची II के मामले के संबंध में) को इस आधार पर राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना उचित होगा कि, उसकी राय में, यह संघीय नीति से भिन्न है ।

(vi) अनुच्छेद 254 को ध्यान में रखते हुए क्या राज्यपाल को राज्य विधान मंडल द्वारा पारित विधेयक को केवल उस कारण से राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना उचित होगा कि उसकी राय में यह मौजूदा केन्द्रीय विधि या संसद के समक्ष विधान बनाने के लिये अनिर्णित पड़े विधेयक के प्रतिकूल या विरोधी है ।

(vii) यह मानते हुए कि राज्यपाल के पास विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का विवेकाधिकार है, क्या वह संविधान के अधीन मात्र इस आधार पर राष्ट्रपति के विचारार्थ सभी राज्य विधेयकों को अविवेकपूर्ण ढंग से आरक्षित रखने में सक्षम है कि वे समवर्ती सूची (सूची III) में उल्लिखित विषयों से सम्बद्ध हैं ?

(viii) यदि राज्यपाल किसी राज्य सूची के विषय से संबंधित कोई विधेयक इस आधार पर राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखता है कि यह संविधान के कुछ उपबंधों या किसी केन्द्रीय संविधि या संघीय संविधि में निर्धारित किसी नीति का अतिलंघन करता है तो क्या राष्ट्रपति द्वारा राज्य सरकार से उस विधेयक में ऐसे संशोधन करने की मांग करना उपयुक्त होगा जिसमें कि राज्य विधेयक में निर्धारित नीति में काफी परिवर्तन किया जाना अपेक्षित हो ? ऐसे मामले में क्या ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने और राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले नीति संबंधी परिवर्तनों पर राष्ट्रपति की विधेयक पर अनुमति सशर्त बनाये जाने की संपूर्ण कार्यविधि का राज्य के लिये संविधान द्वारा निर्धारित विधान क्षेत्र का संघ द्वारा अतिक्रमण होगा ?

5. (i) जब राज्यपाल किसी राज्य विधेयक को इस आधार पर राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखता है कि यह संविधान के कुछ उपबंधों का अतिलंघन करता है या राज्यपाल की राय में इससे उच्च न्यायालय के अधिकारों का इस प्रकार अल्पीकरण होता कि इससे उसकी स्थिति खतरे में पड़ती हो, क्या विधेयक की असंवैधानिकता या प्रतिकूलता का स्वरूप और सीमा निश्चित करने के लिये संघ कार्यपालक उपयुक्त प्राधिकारी है ?

(ii) उपरोक्त प्रयोजन के लिये क्या संघीय मंत्रिपरिषद् को अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को विधेयक प्रस्तुत करने और न्यायालय द्वारा दी गई राय के अनुसार कार्रवाई करने के लिये राष्ट्रपति को सलाह देनी चाहिये ?

(iii) क्या संघ कार्यपालक या उच्चतम न्यायालय को यथास्थिति पूरे विधेयक की जांच करनी चाहिये या विधेयक के केवल प्रश्नगत उपबंधों की जांच करनी चाहिये ?

परिशिष्ट-क-(I)

संविधान सभा में अनुच्छेद 143 के प्रारूप में श्री एच० वी० कामथ के संशोधन.........श्री कामथ व उन अन्य सदस्यों के भाषणों के उद्धरण जिन्होंने इस संशोधन का समर्थन किया

श्री एच० वी० कामथ (सी० पी० एवं बरार : सामान्य) : माननीय राष्ट्रपति जी, मैं प्रस्ताव करता हूं "कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में जहां तक कि उसे इस संविधान के द्वारा या अधीन अपने कार्यों या इनमें से किसी कार्य को अपने विवेकानुसार करना अपेक्षित होता है कि सिवाय शब्दों को काट दिया जाए।"

यदि यह संशोधन सदन में स्वीकार कर लिया जाए तो अनुच्छेद 143 का यह खंड इस प्रकार पढ़ा जाएगा :—

"अपने कार्यों को करने में राष्ट्रपति की सहायता और सलाह के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होगा।"

श्रीमान्, इस खंड को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि 1935 के भारत सरकार के अधिनियम पर पूर्ण रूप से विचार किए बिना उसकी प्राय: अन्धाधुन्ध नकल कर ली गई है। राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों के संबंध में दिए गए प्राधिकार की अपेक्षा, राज्यपाल को अपने मंत्रियों की तुलना में अपने विवेकानुसार या अन्यथा अधिक प्राधिकार देने का कोई ठोस या विधिमान्य कारण नहीं है। यदि हम अनुच्छेद 61(1) देखें तो यह इस प्रकार है :--

"अपने कार्यों को करने में राज्यपाल की सहायता और सलाह के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होगा।"

श्रीमान्, जब आपने एक महत्वपूर्ण मुद्दा उठाया तो दूसरे दिन डा० अम्बेडकर ने यह कहते हुए इस खंड को स्पष्ट किया कि राष्ट्रपति अपने सभी कार्यों को करने में अपने मंत्रियों की सलाह मानने के लिए बाध्य होता है। किंतु यहां अनुच्छेद 143 राज्यपाल को कुछ विवेकाधिकार सौंपता है और मुझे ऐसा लगता है कि यह बिल्कुल अनुपयुक्त है, किन्तु अब राज्यपाल के निर्वाचन और मनोनीत राज्यपाल को स्वीकार करने के संबध में अनुच्छेद 3 को संशोधित करने के बाद, यह सिद्धान्त रूप से गलत होगा और संवैधानिक सरकार के उन मतों और सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा, जिनका आप इस राष्ट्र के लिए निर्माण करने जा रहे हैं। मैं कहूंगा कि इन अतिरिक्त अधिकारों अर्थात् विवेकाधिकारों को राज्यपाल को सौंपना गलत है। मैं महसूस करता हूं कि आपातकाल के अतिरिक्त संवैधानिक सरकार के सिद्धान्तों में कोई छूट नहीं दी जानी चाहिए और इन विवेकाधिकारों को समाप्त कर देना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि मेरे इस संशोधन की सदन में सिफारिश की जाएगी। यही मेरा प्रस्ताव है, श्रीमान्।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू : (संयुक्त प्रान्त : सामान्य) माननीय राष्ट्रपति जी, मैं डा० अम्बेडकर से यह पूछना चाहूंगा कि क्या "राज्यपाल को उनके मंत्री सहायता करेंगे और सलाह देंगे" शब्दों के बाद "ऐसे कुछ विषयों के सिवाय जिनके संबध में उसे अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता है" शब्द रखना आवश्यक है। मान लें इन शब्दों को हटा दिया जाता है, जो पुराने भारत सरकार अधिनियम और पुराने आदेश की ही निशानी है, तो इससे क्या नुकसान होगा? विधिक रूप से मंत्रियों का कार्य केवल राज्यपाल को सहायता करना और सलाह देना होगा। जिस अनुच्छेद में ये शब्द आए हैं उसमें यह नहीं बताया गया है कि राज्यपाल अपने मंत्रियों की सलाह पर काम करेगा किंतु यह आशा की जाती है कि उन सभी देशों में जहां जिम्मेदार सरकार मौजूद है, मौजूदा संवैधानिक प्रथा के अनुसार राज्यपाल सभी मामलों में अपने मंत्रियों की सलाह मानेगा। किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि जहां संविधि में यह स्पष्ट रूप से बताया गया हो कि विशिष्ट मामलों के संबंध में वह निजी प्राधिकार से कार्रवाई करेगा वहां अनुच्छेद 143 उसके लिए कोई बाधा प्रस्तुत करेगा।

मेरे दोस्त श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने बताया—चूंकि संविधान का अनुच्छेद 188 राज्यपाल को अपने मंत्रियों की सलाह की परवाह न करने और प्रान्त का प्रशासन अपने हाथों में लेने का प्राधिकार देता है अत: यह जरूरी है कि इन शब्दों को रहने दिया जाना चाहिए अर्थात् राज्यपाल के विवेकाधिकार रहने चाहिए। परन्तु यदि वे हमें आश्वासन दें कि बाद में अनुच्छेद 188 को काट दिया जायेगा तो अनुच्छेद 143 की कार्यविधि पर पुन: विचार किया जा सकता है। मैं इस स्थिति की पूर्णतया समझता हूं और इसकी प्रशंसा करता हूं किन्तु मैं चाहूंगा कि जिन शब्दों पर, मेरे दोस्त श्री कामथ ने आपत्ति की है उन्हें काट दिया जाए। मैं स्वयं भी यह नहीं मानता कि इन शब्दों को न रखने से कोई नुकसान होगा और तब हम न केवल अनुच्छेद 188 बल्कि अनुच्छेद 175 पर भी उनके गुणावगुण के आधार पर विचार कर सकते हैं, किन्तु श्री कृष्णमाचारी के आश्वासन के बावजूद, जिन शब्दों पर आपत्ति की गई है उन्हें रखने से मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह धारणा बनती है कि प्रारूप समिति सदन से एक प्रकार से ऐसे सिद्धान्त के प्रति वचनबद्ध होने के लिए कह रही है जिसे स्वीकार करना बाद में अवांछनीय समझा जा सकता हो। मैं अनुच्छेद 188 के गुणों के बारे में कुछ नहीं कहूंगा। मैंने पहले भी इसके संबंध में अपने विचार संक्षेप में अभिव्यक्त किए है और जब बाद में सदन द्वारा उस अनुच्छेद पर विचार किया जाएगा तो इस पर पूर्ण चर्चा करने का अवसर फिर प्राप्त होगा। किंतु हम प्रारंभ में ही ऐसी शब्दावली का प्रयोग क्यों करें जो पुरानी अप्रिय व्यवस्था की याद दिलाती हो और हमें यह महसूस हो कि संभवत या सदन में इस समय लिये गए निर्णय को बाद में बदल दिया जाएगा, इसे सभी व्यावहारिक प्रयोजनों से पूर्णतया समझा जाना चाहिए। श्रीमान् इन कारणों की वजह से मैं, सोचता हूं कि पहले मेरे माननीय दोस्त श्री कामथ के संशोधन को स्वीकार करना और तत्पश्चात् अनुच्छेद 175 और 188 पर उनके गुणावगुणों के आधार पर चर्चा करना बेहतर होगा।

अपनी बात खत्म करने से पहले मैं एक बात और कहना चाहूंगा यदि अनुच्छेद 143 अपने वर्तमान रूप में पारित हो जाता है तो इससे इस प्रकार की गलतफहमियां बढ़ सकती हैं जिन्हें मेरे माननीय दोस्त डा० देशमुख ने उस समय आशंका की जब उन्होंने यह बताया कि एक इस आशय का उपबंध शामिल किया जाना चाहिए जिसमें राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् की बैठकों का सभापतित्व करने का अधिकार दिया जाए। संविधान के प्रारूप में इसके लिए प्रावधान नहीं है और मैं सोचता हूं कि इसके लिए प्रावधान न करना ही समझदारी है। यह ग्रेटब्रिटेन और ब्रिटिश डोमिनियन में संस्थापित जिम्मेवार सरकार की प्रथाओं के प्रतिकूल होगा कि गवर्नर या गवर्नर जनरल अधिकार के रूप में अपने मंत्रिमंडल की बैठकों का सभापतित्व करें। संविधान के प्रारूप में केवल मुख्यमंत्री को सरकार के प्रशासनिक मामलों और विधायी कार्यक्रम के संबंध में मंत्रिपरिषद् द्वारा लिए गए निर्णयों की सूचना राज्यपाल को देने का काम सौंपा गया है। इसके बावजूद हम देखते हैं कि अनुच्छेद 143 की शब्दावली ने डा० देशमुख जैसे सदस्य के मन में भी गलतफहमी उत्पन्न कर दी है, जिन्होंने संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद का अनुपालन करने में पूरी सावधानी बरती है। यह एक और ऐसा कारण है कि राज्यपाल के विवेकाधिकारों के अनुच्छेद 143 में क्यों न निर्दिष्ट किया जाए। मेरे दोस्त श्री कृष्णमाचारी के भाषण से यह उम्मीद नहीं बंधती कि मैंने जो सुझाव दिए हैं उन्हें स्वीकार किए जाने की कोई संभावना है। फिर भी मैं यह कहना अपना कर्तव्य समझता हूं कि श्री कामथ ने जिस मार्ग का सुझाव दिया है वह उससे बेहतर है जिसका प्रारूप उप समिति अनुमोदन करने जा रही है।

प्रो० शिब्बनलाल सक्सेना :(संयुक्त प्रांत सामान्य) माननीय राष्ट्रपति जी, मैंने अपने माननीय दोस्त श्री कृष्ण माचारी के भाषण और उन शब्दों को रहने देने के उनके तर्कों को बहुत ध्यान से सुना है जिन्हें श्री कामथ हटा देना चाहते हैं। यदि राज्यपाल निर्वाचित राज्यपाल हो तो मैं समझ सकता हूं कि उसके पास

विवेकाधिकार होने चाहिए । किंतु हमारे राज्यपाल मनोनीत राज्यपाल होते हैं जो राष्ट्रपति द्वारा इच्छित अवधि के लिए कार्य करते हैं और मैं यह नहीं सोचता कि इन व्यक्तियों को अनुच्छेद 188 में अनुबंधित अधिकार दिए जाने चाहिए ।

यदि अनुच्छेद 188 पर अभी विचार विमर्श किया जाना हो और संभवतया इसे अस्वीकार भी कर दिया जाए तो इस अनुच्छेद में पहले से ही इन अधिकारों को दे देना उपयुक्त नहीं होता । यदि अनुच्छेद 188 पारित हो जाता है तो हम इस अनुच्छेद पर पुन: विचार करेंगे और यदि आवश्यक हुआ तो इस खंड को जोड़ देंगे । हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि हम अनुच्छेद 188 को पारित कर देंगे और यही बात राज्यपाल के अधिकारों के बारे में सदन में बताई गई है ।

ये शब्द अपमानजनक अतीत की याद दिलाते हैं । मुझे डर है कि यदि इन शब्दों को रख लिया जाता है तो कुछ राज्यपाल, पिछले राज्यपालों की नकल करने की कोशिश करेंगे और उन्हें पूर्वोदाहरण के रूप में उद्धृत करेंगे कि अमुक राज्यपाल ने अमुक अमुक समय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया । मेरे विचार में हमारे संविधान में, जैसे कि हम अब बना रहे हैं, राज्यपाल के इन अधिकारों के लिए कोई स्थान नहीं है, और माननीय पंडित गोविन्दबल्लभ पंत जैसे योग्य व्यक्ति ने उस संशोधन की सूचना दी थी जो संशोधन श्री कामथ ने इस समय पेश किया है । मेरे विचार में पंडित पंत की बुद्धिमानी को ध्यान में रखते हुए इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाए । यह भी संभव है कि अनुच्छेद 188 को इस सदन में पारित न किया जाए । यदि कोई आपातकाल हो तो राज्यमंत्री राज्यपाल से स्वयं यह अनुरोध करेगा कि आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी जाए और आपातकालीन स्थिति से निपटाने के लिए केन्द्र की सहायता ली जानी चाहिए । प्रश्न है कि राज्यपाल राज्य के राज्यमंत्री की अपेक्षा आपातकालीन स्थिति की घोषणा क्यों करे ? हमें यह ध्यान रहना चाहिए कि ऐसे मौकों पर राज्य के राज्यमंत्री और राज्यपाल को आपस में झगड़ना नहीं चाहिए । इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न ही नहीं होनी चाहिए, जब राज्यमंत्री सरकार को जारी रखने की बात कहे और राज्यपाल उसके विरोधों के बावजूद आपातकाल की घोषणा कर दे । इससे राज्यमंत्री काफी महत्वपूर्ण हो जाएगा । मेरा विचार है कि एक शरारती राज्यपाल भी ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की कोशिश कर सकता है यदि वह ऐसा करने का निर्णय कर ले या यदि किसी राज्य में, राष्ट्रपति केन्द्र में उसका विरोधी दल सत्ता में होने के कारण ऐसा कराना चाहे । मेरे विचार से यदि अनुच्छेद 188 को रखना ही हो तो उसे इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि राज्यपाल आपातकाल की घोषणा राज्य के मुख्यमंत्री की सलाह पर ही करे । डा० अम्बेडकर को मेरा सुझाव है कि इन शब्दों को इस अनुच्छेद में रखा ही नहीं जाना चाहिए और परिणामी संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद की उप धारा (ii) को भी इसमें से निकाल दिया जाना चाहिए ।

श्री एच० वी० कामथ :—श्रीमान्, स्पष्टीकरण के इस मुद्दे पर क्या मैं यह जान सकता हूं कि ऐसा क्यों है कि संविधान द्वारा राष्ट्रपति को प्रदान की गई आपातकालीन शक्तियां राज्यपाल को प्रदत्त शक्तियों से किसी प्रकार भी कम नहीं हैं पर संभवत: विवेकाधिकार इसी रूप में केवल राज्यपाल को ही सौंपे गये हैं राष्ट्रपति को नहीं ?

श्री एच० वी० पाटसकर (बम्बई सामान्य) :—श्रीमान्, अनुच्छेद 143 बिल्कुल स्पष्ट है, मेरे माननीय दोस्त श्री कामथ के संशोधन के संबंध में कई प्रश्न उठाए गए हैं कि क्या राज्यपाल नाममात्र का प्रधान हो, क्या वह केवल संवैधानिक प्रधान होना चाहिए या क्या उसके पास विवेकाधिकार होने चाहिए । मेरे विचार से इस प्रश्न पर बिल्कुल अलग ही दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 143 केवल मंत्रियों के कार्यों से संबंधित है । यह मुख्य रूप से राज्यपाल के अधिकारों और कार्यों से संबंधित नहीं । इसमें केवल यह कहा गया है कि :—

> "अपने कार्यों को करने में राज्यपाल की सहायता और सलाह के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होगा ।"

मानो हम बात यही समाप्त कर देते है, तो क्या यह संभव है इससे कोई समस्या उत्पन्न होगी या यह उन विवेकाधिकारों में बाधा डालेगी जिन्हें राज्यपाल को देने का प्रस्ताव है ? मेरे विचार में अनुच्छेद 188 संभवतया आवश्यक है और मेरा यह आशय नहीं है कि मैं यह सुझाव दूं कि आपातकाल में कार्रवाई करने संबंधी राज्यपाल के वे अधिकार, जिन्हें अनुच्छेद 188 के अधीन दिया गया है, होने ही नहीं चाहिए । मेरा प्रश्न यह है कि यदि ये उपबंध अर्थात् "इसके सिवाय कि उसे इस संविधान के द्वारा या उसके अधीन अपने कार्य या कोई कार्य अपने विवेकानुसार होते हैं" न हो तो क्या उससे उन अधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा जो उसे अनुच्छेद 188 के अधीन अपने विवेकाधिकार कार्य करने के लिए दिए जा रहे हैं ? मैंने अपने माननीय दोस्त और आदरणीय सांवैधानिक वकील श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर की बातों को ध्यानपूर्वक सुना है किन्तु मेरे समझ में यह बात नहीं आई कि इस प्रकार का उपबंध क्यों जरूरी है । उन्होंने बताया कि इसकी बजाय बाद में अनुच्छेद 188 पर विचार करते समय हमें "अनुच्छेद 143 में दी गई किसी बात के बावजूद" शब्द जोड़ने पड़ सकते हैं । सर्वप्रथम तो मुझे यह जरूरी नहीं लगता यह भी मानते हुए कि बाद में किसी अवस्था पर अनुच्छेद 188 में "अनुच्छेद 143 में दी गई किसी बात के बावजूद" शब्दों को जोड़ना जरूरी हो जाता है, परन्तु फिर भी यहां इन शब्दों को रखना बहुत आपत्तिजनक लगता है और इसमें कुछ लोग किन्हीं अन्य लोगों के प्रति अनावश्यक और अप्रत्याशित विरोध उत्पन्न कर सकते हैं । अनुच्छेद 143 प्रमुख रूप से मंत्रियों के कार्यों से संबंध रखता है । इस समय मंत्रियों को राज्यपाल के अधिकारों और कार्यों के बारे में याद दिलाने और यह बताने की क्या जरूरत है कि जहां तक राज्यपाल द्वारा अपने विवेकानुसार कार्य करने का संबंध है वे उसे इस संबंध में कोई सहायता या सलाह नहीं देंगे । यह एक ऐसा अनुच्छेद है जिसका आशय मुख्यमंत्रियों के अधिकारों और कार्यों की परिभाषा करना है । इस अवस्था पर इस प्रकार का सुझाव देना शिष्टाचार और भद्रता का अभाव दर्शाता है । इसलिये मेरा विचार है कि इस प्रश्न पर इसी रूप में विचार किया जाना चाहिए । प्रश्न यह नहीं है कि हम राज्यपाल को विवेकाधिकार दे रहे हैं या नहीं । प्रश्न यह नहीं है कि वह केवल नाममात्र का प्रधान होगा या किसी अन्य प्रकार का । इन प्रश्नों पर सही समय और स्थान पर विचारविमर्श किया जाना चाहिए । जब हम अनुच्छेद 143 पर विचार कर रहे हैं, जो मुख्यमंत्री के कार्यों की परिभाषा करता है, तो उसी अनुच्छेद में "सिवाय इसके कि उसे संविधान के द्वारा या उसके अधीन अपने कार्य या कोई कार्य अपने विवेकानुसार करने पड़ते हों" कहना बड़ा अनुपयुक्त और अनावश्यक लगता है । हालांकि मैं इससे पूर्णत: सहमत हूं कि अनुच्छेद 188 परमावश्यक है किन्तु फिर भी मेरा सुझाव है कि इस अनुच्छेद 143 में ये शब्द पूर्णत: अनावश्यक हैं और ये इसमें नहीं होने चाहिए । व्यावहारिक दृष्टि से भी यह उपबंध गलत स्थान पर रखा गया है और यह न तो शिष्टतापूर्ण है न ही भद्र, न औचित्यपूर्ण और न ही संगत । अत: मेरा सुझाव है कि इन शब्दों को निकाल देने से कुछ भी हानि नहीं होगी । मैं यह नहीं जानता कि मेरा सुझाव स्वीकार होगा या नहीं पर मेरा विचार है कि इस पर बहुत गौर से विचार किया जाए ।

श्री रोहिणी कुमार चौधरी (असम सामान्य) :—मैं इस वाद विवाद में कोई बहुमूल्य योगदान देने के उद्देश्य से नहीं बल्कि स्पष्टीकरण और जानकारी के उद्देश्य से खड़ा हुआ हूं ।

श्रीमान, मनोनीत राज्यपालों की व्यवस्था करने वाले जिस अनुच्छेद को स्वीकार करने के संबंध में जिस मुद्दे ने इस सदन को सर्वाधिक प्रभावित किया है वह यह है कि माननीय डा० अम्बेडकर ने हमें यह विश्वास दिलाया था कि राज्यपाल प्रतीक मात्र होगा । मैं माननीय डा० अम्बेडकर से अब यह पूछता हूं कि क्या ऐसे व्यक्ति को प्रतीक मात्र कहा जा सकता है जिसे अपने विवेकानुसार कार्य करने का अधिकार हो । मुझे यह बताया गया है कि मनोनीत राज्यपाल होने का उपबंध ब्रिटिश संविधान के आदर्श पर रखा गया था । मैं डा० अम्बेडकर से यह पूछना चाहूंगा कि क्या इंग्लैंड का सम्राट किसी भी मामले में अपने विवेकानुसार कार्य करता है । मुझे यह बताया गया है—हो सकता है मैं गलत होऊं—कि महामहिम को अपनी वधू का चयन करने के मामले भी कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है । यह काम भी उसके लिए इंगलैंड का प्रधानमंत्री ही करता है ।

श्रीमान, मैं और मेरे प्रांत के लोग यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि "राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकारों के प्रयोग करने का" क्या अर्थ होता है । सन् 1942 में अपने विवेकानुसार कार्य करने वाले राज्यपाल ने अल्पसंख्यक दल में से अपने मंत्रालय का चयन किया और वह अल्पसंख्यक दल अन्तत: बहुसंख्यक दल में परिवर्तित हो गया । मैं यह भी जानता हूं, और सदन को भी यह याद होगा कि सिंध राज्य के राज्यपाल द्वारा अपने विवेकानुसार कार्य करने के परिणामस्वरूप

ही लोकप्रिय मंत्री की अस्थायी सरकार को पदच्युत कर दिया गया। श्रीमान्, यदि इस अनुभव के बावजूद, यदि हमें राज्यपालों को उनके विवेकाधिकारों का प्रयोग करने की शक्तियां प्रदान करने के लिये कहा जाए तो इसमें कोई आशंका नहीं कि हम अभी भी उस अतीत में जी रहे हैं जिसे हम सभी भुला देना चाहते हैं।

हमारा सदैव यही विचार रहा है कि किसी ऐसे एक ही व्यक्ति की इच्छा की बजाय जनता की इच्छा द्वारा शासित होना बेहतर होता है जिसने ऐसे राज्यपाल को नामित किया हो जो अपने विवेकाधिकार से कार्य कर सके। यदि इस राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार से कार्य करने की शक्ति प्रदान कर दी जाये तो पृथ्वी पर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे ऐसा करने से रोक सके। वह सही मायने में फिग स्टाफ बन सकता है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि अनुच्छेद में कहा गया है कि जब भी राज्यपाल यह सोचता है कि वह अपने विवेकाधिकार से कार्य कर रहा है तो कहीं भी उसमें कोई प्रश्न नहीं कर सकता। मंत्री द्वारा राज्यपाल को सलाह देने में मंत्री की सक्षमता के संबंध में राज्यपाल और मंत्रियों के बीच विवाद हो सकता है, ऐसी स्थिति में राज्यपाल के विचार अभिभावी होंगे और मंत्रियों के विचारों को कोई महत्ता नहीं होगी। क्या हमें आजकल के युग में इन परिस्थितियों को बर्दाश्त करना चाहिए? क्या विवेकाधिकारों का प्रयोग करने वाले राज्यपाल को रखने का विचार छोड़ने में हमें तनिक भी देर करनी चाहिए? यह कहा जा सकता है कि इस मामले पर इसके बाद में विचार किया जाए। किंतु मैं यह महसूस करता हूं कि जब एक बार हम इस उपबंध को स्वीकार कर लेते हैं तो हमें यह समझने में ज्यादा देर नहीं लगेगी कि हमने गलती की है। तो ऐसा क्यों हो? क्या इस संबंध में संदेह की कोई गुंजाइश है? क्या यह सोचने की कोई गुंजाइश है कि क्या इस देश में कोई ऐसा व्यक्ति है, जो विधानमंडल के सदस्यों को छोड़कर अकेले व्यक्ति द्वारा मनोनीत राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार से कार्य करने देने का समर्थन करे। मेरा प्रस्ताव है यदि मेरी धारणा सही है तो हमें इस उपबंध को निकाल देने में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं करना चाहिए जिसके अनुसार राज्यपाल को अपने विवेकानुसार काम करने की शक्ति प्रदान की गई है।

इस अनुच्छेद के अन्तिम खंड से मुझे यह पता चला है कि मंत्री ने क्या सलाह दी, इस प्रश्न के बारे में न्यायालय में पूछताछ नहीं की जानी चाहिए। मैं इस मुद्दे पर केवल अपना स्पष्टीकरण देना चाहता हूं। राज्यपाल को दो कार्य करने होते हैं। एक तो उसे अपने मंत्रियों की सलाह पर कार्य करना होता है तथा दूसरे उसे अपने विवेकाधिकार से कार्य करना होता है। क्या मंत्रालय उन मामलों पर राज्यपाल को सलाह देने में सक्षम होगा जहां वह अपने विवेकानुसार कार्य कर सकता है। यदि मुझे ठीक से याद है, 1937 में जब इस मामले पर विवाद हुआ कि क्या मंत्री उन मामलों में राज्यपाल को सलाह देने में सक्षम होंगे जिनमें राज्यपाल अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है, तब यह स्वीकार किया गया कि मंत्री राज्यपाल को उसके विवेकाधिकारों के प्रयोग के मामले में भी सलाह देने में सक्षम होंगे और यदि राज्यपाल उनकी सलाह स्वीकार नहीं करता तो मंत्रियों को यह कहने की स्वतंत्रता होगी कि उन्होंने क्या सलाह दी। मैं यह नहीं जानता कि इस वक्त इसका क्या आशय है। ऐसे भी मामले होंगे जहां मंत्री राज्यपाल को सलाह देने के लिए सक्षम हों और राज्यपाल ने उनकी सलाह स्वीकार न की हो और ऐसा कोई काम किया हो जो अप्रिय हो। केन्द्र द्वारा मनोनीत राज्यपाल उस प्रान्त में अप्रिय होना गवारा कर सकता है जहां वह राज्यपाल के रूप में कार्य कर रहा हो। यदि वह अपने ही प्रान्त में कार्य कर रहा हो तो उस लोकराय के बारे में कोई चिन्ता हो सकती है किन्तु वह उस प्रान्त में जनमत के बारे में परवाह नहीं करेगा जहां वह केवल कार्य कर रहा हो। मान लो कोई राज्यपाल अपने मंत्रियों की सलाह पर काम करने की बजाय अलग ढंग से काम करता है। यदि राज्यपाल द्वारा अपने ढंग से काम करने के कारण मंत्रियों की आलोचना होती है और इस आलोचना के लिए मंत्री किसी पत्रकार पर मुकदमा चलाना चाहते हैं तो क्या मंत्रियों को यह कहने का अधिकार नहीं होगा कि उन्होंने राज्यपाल को अमुक तरीके से काम करने की सलाह दी थी किंतु राज्यपाल ने अलग ही ढंग से काम किया? हम मंत्रियों को किसी ऐसे समाचारपत्र, अश्लील समाचारपत्र, गलत सूचना देने वाले समाचारपत्र के विरुद्ध मुकदमा चलाने की अनुमति क्यों नहीं देते जो मंत्रियों की इस आलोचना में शामिल हो? मंत्रियों को न्यायालय के समक्ष यह कहने की अनुमति क्यों नहीं दी जानी चाहिए कि उन्होंने राज्यपाल को क्या सलाह दी? मैं यह कहूंगा और मुझे यह कहने के लिए क्षमा किया जाये—कि इस अनुच्छेद के पक्ष में जो कुछ भी कहा जा सकता है वह यह कि यह भारत सरकार अधिनियम 1935 के इसी प्रकार के उपबंध की पूरी नकल है, जिसके संबंध में इस सदन के बहुत से सदस्यों ने उसके प्रकाशित होने पर कहा कि वे उस पर कदाचित कोई टिप्पणी नहीं करना चाहेंगे।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू:—डा० अम्बेडकर ने आलोचना के मुद्दे को बिल्कुल ही छोड़ दिया है। आलोचना यह नहीं है कि अनुच्छेद 175 में दिए कुछ अधिकार राज्यपाल को नहीं दिए जाने चाहिए, बल्कि आलोचना विचाराधीन अनुच्छेद में सामान्य स्वरूप के कुछ विवेकाधिकार राज्यपाल को सौंपने के विरुद्ध है।

परिशिष्ट क (ii)

संविधान सभा में अनुच्छेद 143 के प्रारूप में श्री एच० वी० कामथ के संशोधन—उन सदस्यों के भाषणों के उद्धरण जिन्होंने इस संशोधन का विरोध किया

श्री टी० टी० कृष्णामाचारी:—माननीय राष्ट्रपति जी, मुझे अपने माननीय दोस्त श्री कामथ द्वारा प्रस्तावित संशोधन का केवल इस कारण से विरोध करना होगा कि उन्होंने इस अनुच्छेद के कार्यक्षेत्र को नहीं समझा है और उनका संशोधन किसी गलतफहमी के कारण उत्पन्न हुआ है।

श्रीमान्, निस्संदेह ही यह सही है कि इस अनुच्छेद में से कुछ शब्दों को निकाल दिया जाए, अर्थात् उन शब्दों को जो राज्यपाल द्वारा अपने उन कार्यों को करने का संकेत देते हैं जहां उसे अपने मंत्रियों द्वारा दी गई सलाह पर ध्यान दिए बिना अपने विवेकाधिकार का इस्तेमाल करना पड़ता हो। वास्तव में यह मेरे विचार से यह एक तरह से सुरक्षात्मक उपाय होगा क्योंकि संविधान के इस प्रारूप में कुछ ऐसे विशिष्ट उपबंध हैं जो बाद में दिए गए हैं जिनके अनुसार राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करने का अधिकार दिया गया है भले ही मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह कुछ भी हो। इसमें अन्तर्निहित विचार को निष्पादित करने के दो तरीके हैं। एक तो यह कि इस अनुच्छेद 143 में इस अपवाद का उल्लेख कर दिया जाए और राज्यपाल के उन विशेषाधिकारों को बताया जाए जहां वह अपने उन विवेकाधिकारों का प्रयोग कर सकता हो जिन्हें अनुच्छेद में बाद में बताया गया है या इन अधिकारों का बिल्कुल ही उल्लेख न किया जाए और उसका उल्लेख केवल उपर्युक्त अनुच्छेद में किया जाए। यहां पहली पद्धति का अनुपालन किया गया है। सामान्य प्रस्ताव यह है कि राज्यपाल को सामान्यतया अपने मंत्रियों की सलाह पर कार्य करना होता है सिवाय इसके कि संविधान के उन अनुच्छेदों के अन्तर्गत अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग करने के संबंध में जिसमें उसे अपने विवेकानुसार कार्य करने का विशेष रूप से अधिकार दिया गया है। जब तक संविधान में बाद में ऐसे अनुच्छेद आएं जहां उसे अपने विवेकानुसार काम करना हो जिनमें सामान्य पद्धति से हट कर चलने के सभी मामले पूर्ण रूप से आ जाते हैं। जिसके संबंध में मेरे विचार से मेरे माननीय दोस्त श्री कामथ को कोई आपत्ति नहीं है। मैं अनुच्छेद 188 का हवाला दूंगा, मुझे इस अनुच्छेद में दिए उपबंध को यूं ही रहने देने पर कोई नुकसान नजर नहीं आता। यदि यह सदन ऐसा निर्णय करता है कि बाद में सभी अनुच्छेदों में विवेकाधिकार नहीं होने चाहिए चूंकि यह कल्पनात्मक है, अतः इस उपबंध विशेष का कोई लाभ नहीं होगा और यह अप्रचलित हो जाएगा। जिस तर्क को मेरे माननीय दोस्त सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं वह तर्कसंगत नहीं लगता जैसा कि वे मानते हैं कि राज्यपाल को अनुच्छेद 188 के अधीन विवेकाधिकार दिए जा सकते हैं। यदि ये अनुच्छेद 188 में ही दिए जाते हैं तो इनका उल्लेख इसमें ही करने में क्या नुकसान है। इस अपवाद का विशेष उल्लेख अनुच्छेद 143 में करने में कोई नुकसान नहीं हो सकता। अतः जिस अपवाद का उल्लेख करने में श्री कामथ की गहरी आपत्ति है वह तर्कसंगत नहीं है। अतः मेरा विचार है कि इस अनुच्छेद को कोई संशोधन किये बगैर पास कर दिया जाए। यदि राज्यपाल के विवेकाधिकारों को सीमित करना या पूर्णतः समाप्त करना सदन के लिए आवश्यक हो तो ऐसा बाद के अनुच्छेदों में किया जा सकता है जहां इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि जिसके बगैर इन अधिकारों का प्रयोग नहीं किया जा सकता, जिसका यहां उल्लेख किया गया है। यही वह मुद्दा है जिसकी ओर मैं सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा और मेरे विचार से यही बेहतर है कि इसे ज्यों का त्यों पास कर दिया जाए।

श्री अलादी कृष्णास्वामी अय्यर (मद्रास : सामान्य) :—श्रीमान्, इस संशोधन का विरोध करने वालों और इसका समर्थन करने वालों में वस्तुत: कोई अंतर नहीं है । सर्वप्रथम तो अनुच्छेद 143 में सामान्य सिद्धांत निर्धारित किया गया है अर्थात् सचिवीय दायित्व का सिद्धान्त, कि राज्यपाल को कार्यपालक गति-विधियों के विभिन्न क्षेत्रों में अपने मंत्रियों की सलाह पर कार्य करना चाहिए। उसके बाद इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था भी है कि सिवाय इसके कि जहां तक उसे इस विधान के द्वारा या उसके अधीन अपने कार्यों या इनमें से किसी कार्य को अपने विवेकाधिनुसार करना होता है । जब तक कि संविधान में ऐसे अनुच्छेद हैं जो राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करने और कुछ परिस्थितियों में मंत्रिमंडल पर अभिभावी होने या राष्ट्रपति को प्रस्तुत करने का अधिकार प्रदान करते हैं, तब तक संभवत: यथानिर्मित अनुच्छेद पूर्णत: सही है । यदि बाद में सदन यह निर्णय करता है कि उन अनुच्छेदों को इनमें से निकाल दिया जाना चाहिए जो विशेष मामलों में राज्यपाल को अपने विवेकानुसार काम करने का अधिकार देते हों तो उस अनुच्छेद को संशोधित किया जा सकेगा । किंतु जब तक इसमें बाद वाले अनुच्छेद हैं तो राज्यपाल को सचिवीय दायित्व की बजाय अपने विवेकानुसार कार्य करने की अनुमति प्रदान करते हैं तब तक अनुच्छेद का जैसा प्रारूप तैयार किया गया है वही पूर्णत: सही है ।

केवल एक और प्रश्न यह है कि क्या सर्वप्रथम अनुच्छेद 143 में यह प्रावधान किया जाए कि राज्यपाल सचिवीय दायित्व पर कार्य करेगा और तत्पश्चात ही यह व्यवस्था की जाएगी कि अनुच्छेद 143 में दी गई किसी बात के बावजूद ..... "वह ऐसा कर सकता है" या अनुच्छेद 143 में दी गई किसी बात के बावजूद वह अपने विवेकानुसार कार्य कर सकता है! "मेरे विचार से अनुच्छेद 143 में ही यह व्यवस्था कर देना बेहतर होगा कि राज्यपाल सदैव सचिवीय दायित्व पर कार्य करेगा सिवाय ऐसे विशेष मामलों के जहां उसे अपने विवेकानुसार काम करने का अधिकार दिया गया हो । यदि सदन वास्तव में इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी भी स्थिति में राज्यपाल अपने विवेकानुसार काम नहीं करेगा और वह हर स्थिति में केवल सचिवीय दायित्व के आधार पर ही काम करेगा तो इस अनुच्छेद में परिणामी परिवर्तन हो जाएगा । अर्थात् इन अनुच्छेदों को स्वीकार करने और पारित करने के बाद, पिछले अनुच्छेदों के संबंध में सदन द्वारा लिए गए निर्णय के परिणामस्वरूप, सदन को अनुच्छेद 143 के बाद वाले भाग को निकालने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी । किंतु, चूंकि वर्तमान स्थिति में यह पूर्णत: सही है इसलिए मेरे विचार से अनुच्छेद 143 की भाषा में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है । अत: प्रत्येक अनुच्छेद के आरंभ में अनुच्छेद 143 में दी गई किसी बात के बावजूद राज्यपाल अपने दायित्व से कार्य करेगा" कहना बहुत ही बोझिल लगेगा ।

माननीय डा० बी०आर० अम्बेडकर:—माननीय राष्ट्रपति जी, मैं श्री कामथ के इस संशोधन पर अपने दोस्त श्री टी० टी० कृष्णमाचारी द्वारा विचार व्यक्त किए जाने के बाद इस वादविवाद में कुछ कहना और भाग लेना उचित नहीं समझता था किंतु जैसा कि मेरे दोस्त पंडित कुंजरू ने मुझसे स्पष्ट रूप से यह प्रश्न किया है और उत्तर की मांग की है, इसलिए मेरा विचार है कि मैं शिष्टाचारवश कुछ शब्द कहूं । श्रीमान्, मुख्य और विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या राज्यपाल के पास विवेकाधिकार होने चाहिए ? यही प्रश्न मुख्य और प्रधान प्रश्न है । इससे पहले कि इस प्रश्न पर कुछ निर्णय लिया जाए, एक प्रश्न यह भी है कि क्या अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अन्तिम भाग में प्रयुक्त शब्दों को उक्त अनुच्छेद में रखा जाए या इन्हें किसी और स्थान पर रख दिया जाए । अत: सबसे पहले मैं इस विवादास्पद प्रश्न के संबंध में कुछ कहना चाहता हूं । वाद-विवाद के दौरान यह कहा गया है कि राज्यपाल के पास विवेकाधिकारों का रहना प्रान्तों में जिम्मेदार सरकारों के विरुद्ध है । यह भी बताया गया है कि राज्यपाल के पास विवेकाधिकार रहने देना भारत सरकार अधिनियम 1935 की याद दिलाता है जो कि मुख्य रूप से अलोकतंत्रीय था । अब मैं अपने बारे में कहता हूं कि मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि राज्यपाल के पास विवेकाधिकार रहना या सौंपना किसी भी अर्थ से जिम्मेदार सरकार के विरोध या प्रतिवाद करना नहीं है । मैं इस मुद्दे को नहीं उठाना चाहता क्योंकि इस मुद्दे पर मैं सदन को कनाडा और आस्ट्रेलिया के संविधान के उपबंधों का हवाला दे कर संतुष्ट कर सकता हूं । मेरा विचार है कि इस सदन में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो इस पर विवाद करे कि कनाडा की सरकार प्रणाली पूर्णत: जिम्मेदार सरकार प्रणाली नहीं है और न ही सदन में कोई व्यक्ति इस बात को चुनौती दे सकता है कि आस्ट्रेलियाई सरकार जिम्मेदार सरकार नहीं है । मैं कनाडा संविधान की धारा 55 पढ़कर सुनाना चाहता ।

"धारा-55—यदि संसद के सदनों द्वारा पारित कोई विधेयक महारानी की सहमति के लिए गवर्नर जनरल को पेश किया जाता है तो वह अपने विवेकानुसार और इस अधिनियम के उपबंधों के अध्यधीन या तो महारानी के नाम पर उसपर सहमति देगा या महारानी की सहमति के लिए रोके रखेगा या विधेयक को महारानी की इच्छा व्यक्त करने के लिये आरक्षित रखेगा ।"

पंडित हृदयनाथ कुंजरू: क्या मैं डा० अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम कब पारित हुआ ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर:—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता । अधिनियम की तारीख का कोई महत्व नहीं है ।

एच० वी० कामथ :—लगभग एक शताब्दी पूर्व ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर :— मेरा उत्तर यह है कि कनाडा और आस्ट्रेलियावासी इस अवस्था पर भी इस उपबंध को निकाल देना आवश्यक नहीं समझते । वे इससे पूर्णतया सन्तुष्ट हैं कि कनाडा के अधिनियम के अनुच्छेद 55 में इस उपबंध को रखना जिम्मेदार सरकार के पूर्णत: अनुरूप है । यदि वे यह सोचते कि यह उपबंध जिम्मेदार सरकार के अनुरूप नहीं है तो उन्हें आज भी डोमिनियन के रूप में, इस उपबंध को रद्द करने का पूर्ण अधिकार है । उन्होंने ऐसा नहीं किया । अत: पंडित कुंजरू के जवाब में मैं निश्चित रूप से यह कह सकता हूं कि कनाडा और आस्ट्रेलियावासी यह नहीं मानते कि उपबंध जिम्मेदार सरकार का अतिलंघन है ।

श्री लोकनाथ मिश्र (उड़ीसा : सामान्य) :—श्रीमान् यह एक व्यवस्था का प्रश्न है कि क्या हम कनाडा या आस्ट्रेलिया का दर्जा प्राप्त करने जा रहे हैं ? या हम गणतंत्रात्मक संविधान अपनाने जा रहे हैं ?

माननीय डा०बी०आर० अम्बेडकर :—मैं उनकी बात को नहीं समझ सका । जैसे कि मैं आशा करता हूं कि यदि सदन को यह तसल्ली हो कि राज्यपाल को कुछ विवेकाधिकार सौंपने वाले उपबंध का बना रहना जिम्मेदार सरकार के परस्पर विरोधी या असंगत नहीं है तो इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि इस खंड को रखना वांछनीय और मेरे निर्णयानुसार आवश्यक भी है । जो प्रश्न उठता है वह यही है ।

पंडित हृदय नाथ कुंजरू :—डा० अम्बेडकर ने आलोचना के मुद्दे को बिल्कुल ही छोड़ दिया है । आलोचना यह नहीं है कि अनुच्छेद 175 में कुछ अधिकार राज्यपाल को न दिये जाएं बल्कि आलोचना विचाराधीन अनुच्छेद में सामान्य किस्म के कुछ विवेकाधिकार राज्यपाल को सौंपने के विरुद्ध है ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर:—मेरा विचार है कि उन्होंने अनुच्छेद को गलत पढ़ा है । खेद है कि मेरे पास संविधान का प्रारूप नहीं है । "सिवाय इसके कि इस संविधान के द्वारा या इसके अधीन" शब्दों के स्थान पर यदि "सिवाय इसके कि जब वह यह सोचता है कि उसे इस विवेकाधिकार का प्रयोग मंत्रियों सलाह या इच्छा के विरुद्ध करना चाहिए" शब्द होते तो मेरे विचार से मेरे माननीय दोस्त पंडित कुंजरू द्वारा की गई आलोचना विधिमान्य हो सकती थी । यह खंड बहुत सीमित खंड है : इसमें बताया गया है कि "सिवाय इसके कि जहां तक इस संविधान के अधीन या इसके द्वारा" । अत: अनुच्छेद 143 को ऐसे अनुच्छेदों के साथ पढ़ना होगा जिसमें विशेष रूप से राज्यपाल के अधिकार आरक्षित किए गए हैं । यह राज्यपाल का ऐसे किसी भी मामले में अपने मंत्रियों की सलाह की अवहेलना करने का अधिकार प्रदान करने वाला सामान्य खंड नहीं है जिसमें उसका विचार हो कि इसकी अवहेलना की जानी चाहिए । मेरे विचार से यही मेरे माननीय दोस्त पंडित कुंजरू का तर्क भ्रामक है ।

अत: जैसा कि मैंने बताया है, निर्दिष्ट मामलों में राज्यपाल के पास विवेकाधिकारों का रहना जिम्मेदार सरकार की प्रणाली के विरुद्ध नहीं है, केवल प्रश्न यह है कि हम इस विवेकाधिकार का उल्लेख करने की व्यवस्था कैसे करें ? मुझे ऐसा लगता है कि तीन तरीकों से ऐसा किया जा सकता है । "एक तरीका तो यह कि जैसा कि मेरे माननीय दोस्त पंडित कुंजरू और अन्य व्यक्तियों ने इच्छा व्यक्त की है कि अनुच्छेद 143 में से इन शब्दों को निकाल दिया जाए और अनुच्छेद

175 या 188 या राज्यपाल को विवेकाधिकार सौंपने वाले अन्य ऐसे ही उपबंधों में जिन्हें सदन इसके बाद शामिल करेगा, यह शब्द जोड़ दिये जाएं कि 143 के बावजूद राज्यपाल को यह या वह अधिकार होगा"। दूसरा तरीका यह होगा कि अनुच्छेद 143 में "अमुक अमुक अनुच्छेदों, विशेष रूप से अनुच्छेद 175, 188, 200 या अन्य अनुच्छेदों में यथा उपबंधित के सिवाय" कहा जाए। किंतु जो बात मैं सदन को बताने का प्रयास कर रहा हूं वह यह कि सदन राज्यपाल के पास विवेकाधिकारों के होने का उल्लेख करने से बच नहीं सकता।

अब जिस बात का मेरे माननीय दोस्त, पंडित कुंजरू और उन्हीं की तर्ज पर बोलने वाले अन्य लोग समर्थन करना चाहते हैं वह यह है कि इन शब्दों को यहां से निकाल दिया जाए और इन्हें किसी और स्थान पर रख दिया जाए या किन्हीं विशेष अनुच्छेदों का उल्लेख अनुच्छेद 143 में किया जाए। मुझे लगता है कि यह केवल प्रारूप तैयार करने की पद्धति ही है। इसमें विषय और सिद्धांत का कोई प्रश्न नहीं है। मैं खुद भी अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अन्तिम भाग को संशोधित करना चाहूंगा यदि मुझे इस अवस्था पर यह पता चले कि वे कौन से ऐसे उपबंध हैं जिन्हें यह संविधान-सभा राज्यपाल को विवेकाधिकार सौंपने के संबंध में रखना चाहती है। मेरी परेशानी यह है कि हम अभी तक न तो अनुच्छेद 175 और अनुच्छेद 188 पर पहुंचे हैं और न ही हमने राज्यपाल को विवेकाधिकार सौंपने संबंधी अन्य सभी संभावनाओं या बनाए जा रहे अन्य उपबंधों का सहारा लिया है। यदि मैं जानता तो मैं अनुच्छेद 143 को संशोधित करने और अनुच्छेद विशेष का उल्लेख करने के लिये पूर्णतः तैयार था किंतु अभी ऐसा नहीं किया जा सकता। अतः मेरा निवेदन है कि यदि अनुच्छेद 143 के शब्दों को ज्यों का त्यों रहने दिया जाए तो इसमें कोई नुकसान नहीं है। वे निश्चित रूप से असंगत नहीं हैं।

श्री एच० वी० कामथ : क्या अपने मंत्रियों की तुलना में राष्ट्रपति से संबंधित अनुच्छेद 61(1) और इस अनुच्छेद के बीच कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर :— निस्संदेह इसमें अन्तर है क्योंकि हम राष्ट्रपति को कोई विवेकाधिकार नहीं सौंपना चाहते। क्योंकि प्रान्तीय सरकारों को केन्द्र सरकार के अधीन काम करना होता है। अतः यह देखने के आशय से कि वे केन्द्र सरकार के अधीन काम करें। राज्यपाल राष्ट्रपति को यह देखने का अवसर देने के लिए कुछ अधिकार अपने पास आरक्षित रखेगा कि संविधान के अनुसार जिन नियमों के अधीन या केन्द्र सरकार के अधीन प्रान्तीय सरकारों को काम करना होता है, उनका अनुपालन किया जाता है।

परिशिष्ट-ख

अनुच्छेद 200 के अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के राज्यपाल के विवेकाधिकार पर कुछ विशेषज्ञों के विचार

एम० सी० सीतलवाड

"भारतीय संविधान की एक असाधारण विशेषता यह है कि संविधान केन्द्रीय कार्यपालिका को राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधान पर नियंत्रण प्रदान करता है। संविधान के अनुच्छेद 200 के अधीन जब कोई विधेयक यथास्थिति एक या दो सदनों वाले राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कर दिया जाता है तब उसे राज्यपाल को उसकी सहमति के लिए प्रस्तुत करना होता है, और इसमें यह व्यवस्था है कि "राज्यपाल यह घोषित करेगा कि वह विधेयक पर सहमति देता है या सहमति रोक लेता है या वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखता है।"

"अनुच्छेद 200 के अधीन किसी राज्य विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के राज्यपाल के विवेकाधिकार के अतिरिक्त संविधान में कुछ अन्य उपबंध हैं जिनके अनुसार किन्हीं राज्य विषयों पर विधेयक, राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना विधानसभा में पेश नहीं किए जाएंगे या कुछ विधान विधिमान्यता हासिल करने के लिए राष्ट्रपति की सहमति के लिये अनिवार्यतः आरक्षित रखे जाने चाहिए भले ही राज्य उन्हें पारित करने के लिए सक्षम हो।"

राज्य विधान को राष्ट्रीय कार्यपालिका के विचारार्थ आरक्षित रखने का उपबंध न तो संयुक्त राज्य में है और न ही आस्ट्रेलिया में। निस्संदेह ही राष्ट्रमंडल में कुछ संविधानों में इस प्रकार के उपबंध मिलते हैं जो गवर्नर जनरल को किसी विधेयक को महारानी की सहमति के लिए आरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करते हैं या जो महारानी को उस विधेयक पर अपनी असहमति प्रकट करने का अधिकार प्रदान करते हैं जिसे राष्ट्रमंडल के सदस्य देश की संसद ने विधिवत् पारित कर दिया हो और उस पर गवर्नर जनरल की सहमति ले ली गई हो। इस प्रकार के अधिकार कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के संविधानों में पाए जाते हैं। किंतु इस प्रकार की परिपाटी स्थापित हो गई है कि महारानी संबंधित राष्ट्रमंडल के सदस्य देश की सरकार की इच्छा के विरुद्ध किसी आरक्षित विधेयक के संबंध में कोई कार्रवाई नहीं करेगी और उसके द्वारा असहमति के अधिकार का प्रयोग करना अब संभव नहीं है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने संविधान में राज्य विधान मंडलीय अधिकारों पर इस प्रकार का नियंत्रण रखने के लिए कनाडा के संविधान का सहारा लिया है।

कनाडा का संविधान गवर्नर जनरल को प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा पारित अधिनियमों पर असहमति का अधिकार देने के अतिरिक्त प्रान्तीय विधेयकों पर गवर्नर जनरल की सहमति प्रकट करने के लिए उन्हें आरक्षित रखने का अधिकार भी प्रदान करता है। इस प्रकार आरक्षित कोई भी विधेयक तब तक विधि नहीं बनता जब तक कि गवर्नर जनरल एक वर्ष के भीतर अपनी सहमति सूचित न कर दे। बहुत संभव है कि कनाडा संविधान के निर्माताओं के समक्ष संयुक्त राज्य का संविधान रहा हो और उन्होंने ये अधिकार गवर्नर जनरल को देना ही ठीक समझा हो ताकि डोमिनियन कार्यपालिका प्रान्तीय विधान मंडलों द्वारा विधायी अधिकारों के प्रयोग पर नियंत्रण रख सकें और उसका दुरूपयोग रोक सकें। यह पता चला है कि कनाडा में 1955 तक कुल मिलाकर लगभग 69 प्रान्तीय विधेयक गवर्नर जनरल की सहमति के लिए आरक्षित रखे गए जिनमें से 13 पर उन्होंने अपनी सहमति दे दी।

"1873 के शुरू में संघीय प्राधिकारियों ने ओन्टेरियो के उपराज्यपाल को केवल प्रान्तीय विषयों से संबंधित मामलों के विधेयकों को आरक्षित न रखने के अनुदेश दिये थे और ये अनुदेश कई बार अन्य उपराज्यपालों को भी दोहराए गए। संघीय सरकार विशुद्ध रूप से प्रान्तीय विषयों से संबंधित मामलों के संबंध में जिम्मेदारी ग्रहण करना उचित नहीं समझती थी।"

"(भारतीय विधि संस्थान द्वारा किये गये) अध्ययन से पता चलता है कि जब राष्ट्रपति की सहमति के लिए संघीय कार्यपालिका के पास विधेयक भेजे जाते हैं तो उनकी विभिन्न विषयों के संदर्भ में संघ सरकार द्वारा जांच की जाती है अर्थात् (क) केन्द्रीय सांविधिक अपेक्षाओं का अनुपालन, (ख) केन्द्र सरकार की नीतियों का समर्थन, (ग) अधिकारातीत मौजूदा केन्द्रीय विधान, (घ) संवैधानिकता, और (ङ) व्यथित दलों को प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय उपलब्ध कराना। अध्ययन से यह पता चला है कि इसमें संदेह है कि जो सशर्त सहमति देने की प्रथा है, वह संविधान के पूर्णतः अनुरूप है। इसमें यह भी बताया गया है कि "केन्द्र उस जिद्दी राज्य के प्रति असहाय होगा जो पूर्णतया अनुच्छेद 201..... का अनुपालन करते हुए बल्कि औपचारिक रूप से अधिरोपित शर्तों की अवहेलना करता है।"

"हालांकि यह मामला विवाद से अछूता नहीं है फिर भी यही बेहतर लगता है कि अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल को सौंपे गए अधिकार विवेकाधिकार ही हैं। प्रस्तावित विधान की जांच करने के बाद उसे विधानमंडल के भाग के रूप में यह निर्णय लेना होगा कि क्या वह इस पर सहमति दे। यदि उसे विधेयक में बताई कार्रवाई की विधिमान्यता या औचित्य के संबंध में कुछ संदेह हो तो वह विधान मंडल से इस पर या इसके किसी भाग विशेष पर पुनः विचार करने के लिए कह सकता है। ऐसा हो सकता है कि वह इस मामले को इतना महत्वपूर्ण समझे कि उस विधेयक पर स्वयं सहमति देने का दायित्व न लेना चाहे बल्कि इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना चाहे। ये सभी इस बात के संकेत हैं कि राज्यपाल को सौंपे गए अधिकारों में यह अपेक्षा की जाती है कि वह इन मामलों पर अपना निर्णय दे। ये निर्णय विधान की संवैधानिकता या राज्य या देश के हित में इसके औचित्य को ध्यान में रखते हुए किए जाएं। ये पहलू राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका की महत्ता पर जोर देते हैं।"

".........यह बहुत ही विवादास्पद प्रश्न है। अनुच्छेद 200 की सही व्याख्या करने पर यह पता चलेगा कि वे तीनों विकल्प जो राज्यपाल को अनुच्छेद 200 के अधीन प्राप्त हैं, उनका प्रयोग वह अपने विवेकानुसार करेगा।

साधारणतया, राज्यपाल केवल विशेष परिस्थिति में ही किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखेगा। उसे विधेयक की संवैधानिकता के बारे में संदेह हो सकता है या वह यह सोच सकता है कि विधेयक किसी संसदीय विधान का विरोधी है या यह संपूर्ण देश में इस संबंध में अपनाई जाने वाली नीति के अनुरूप नहीं है।"

ऐसा लगता है कि यह सूचित करने में "कि विधेयकों में कुछ परिवर्तन करने या कोई शर्त पूरी होने पर राष्ट्रपति अनुमति प्रदान कर देंगे, संघीय सरकार संविधान के अधीन प्राप्त अपने अधिकारों से आगे बढ़ गई है"।

[श्री एम० सी० सीतलवाड : पृष्ठ 73 से 77 और 161 से 166, संघ और राज्य संबंध (1974)]

डा० हरिशचन्द

संविधान के दो अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 200 और 356, ऐसे हैं जो राज्यपाल को यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो निहितार्थ से अवश्य विवेकाधिकार प्रदान करते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि अनुच्छेद 200 के किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखते समय राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए चाहे उसकी मंत्रिपरिषद द्वारा दी गई सलाह कुछ भी हो। अन्यथा अनुच्छेद 200 का प्रयोजन पूर्णत: विफल हो जाएगा और यह निरर्थक हो जाएगा।

(डा० हरीचन्द :पृष्ठ 88 कांस्टीट्यूशनल डेवलेमेन्ट्स सिन्स इन्डिपैंडेंस—भारतीय विधि संस्थान)

श्री चंद्रपाल

"संविधान के अनुच्छेद 200 और 356 राज्यपाल को प्रत्यक्ष रुप नहीं बल्कि आवश्यक निहितार्थ से विवेकाधिकार भी प्रदान करते हैं। राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 200 के अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग अवश्य करना चाहिए चाहे उसके मंत्रि परिषद की सलाह कुछ भी हो।

(श्री चन्द्रपाल : पृष्ठ 128, मुख्यमंत्री नियुक्त करने के राज्यपाल के अधिकार : कुछ हाल की प्रवृत्तियां और समस्याएं—इंस्टीट्यूट आफ कांस्टीट्यूशनल एण्ड पालियामेण्टरी स्टडीज, खण्ड XVII]

एच० एम० सीरवाई

के० ए० मंथीयलगन बनाम राज्यपाल (ए० आई०आर० 1973 मद 198 एफ०बी०) मद्रास उच्च न्यायालय के पूरे न्याय पीठ की यह धारणा थी कि अनुच्छेद 163 (1) के अपवाद में केवल उन कार्यों का संदर्भ है जिसमें राज्यपाल को स्पष्ट रुप से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता हो। स्थान के मामले में जब राज्यपाल को सरकार काम काम के विभाजन नियमों के अधीन प्रधिकार दिया गया हो तब उस पर ये नियम लागू होते हैं और वह मुख्यमंत्री की सलाह को मानने के लिए बाध्य होता है।

समशेर सिंह के बाद (ए०आई०आर० 1974 एस०सी० 2192) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद, यह प्रस्ताव कि राज्यपाल को केवल सुस्पष्ट उपबंध द्वारा अपने विवेकानुसार काम करना पड़ता है अब सही कानून नहीं है क्योंकि दोनों ही निर्णयों (ए०एन०रे, मुख्य न्यायाधीश और कृष्णा अय्यर,न्यायाधीश के) में यह कहा गया था कि कुछेक मामलों में राज्यपाल के पास आवश्यक निहितार्थ से अपने विवेकानुसार कार्य करने का अधिकार है। पुन: भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन "अपने विवेकानुसार" शब्दों का तकनीकी अर्थ है यह भी सही नहीं क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने इन शब्दों का सीधा सादा अर्थ दिया है अर्थात जहां राज्यपाल "अपने विवेकानुसार" कार्य करता है वहां वह अपने मंत्रिपरिषद द्वारा दी गई सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं होता। पूरी न्यायपीठ ने अनुच्छेद 163 (2) की भाषा को महत्व नहीं दिया, जिसमें यह माना गया है कि यह प्रश्न हो सकता है कि क्या संविधान के द्वारा या उसके अधीन राज्यपाल को अपने विवेकानुसार काम करना होता है, और अनुच्छेद 163 (2) राज्यपाल को उक्त प्रश्न का एक मात्र व अन्तिम निर्णायक बनाकर और यह व्यवस्था करते हुए इसका उत्तर देता है कि राज्यपाल के किसी भी कार्यकलाप पर इस आधार पर आपत्ति नहीं की आएगी कि उसे अपने विवेकाधिकार से कार्य करना चाहिए या नहीं। निवेदन है कि अनुच्छेद 163 (2) को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को यह निर्णय देने का अधिकार नहीं है कि क्या राज्यपाल को अपने विवेकानुसार काम करना चाहिए या नहीं जैसा कि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने एस० बी० शर्मा के बाद में निर्णय दिया है।

(एच० एम० सीरवाई, पैरा 18, 48, पृष्ठ 1730, कांस्टीट्यूशन लॉ ऑफ इण्डिया, तृतीय संस्करण खंड II)

एन० ए० पालकीवाला

"इन उपबंधों को अधिनियमित करने में संविधान निर्माताओं का उद्देश्य सीधा और स्पष्ट था। जबकि किसी राज्य विधान की संवैधानिकता को किसी न्यायालय में ललकारा जा सकता है इसके विवेक को नहीं, और यह भी कि सुस्पष्ट असंवैधानिक उपायों को संविधि में शामिल न करना ही बेहतर होता है बजाय इसके कि बाद में इसे न्यायालय द्वारा रद्द किया जाये। संविधान के अनुसार राज्यपाल को केवल उन्हीं विधेयकों को राष्ट्रपति की सहमति के लिये आरक्षित रखना होता है जो पूर्णतया असंवैधानिक हों या सुस्पष्ट रूप से राष्ट्रीय हित के विरुद्ध हों।"

"राजमनार समिति ने अनुच्छेद 201 के उक्त उपबंध को रद्द करने की सिफारिश की थी जो राज्यपाल को कोई भी विधयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने की अनुमति देता है। किंतु इस अधिकार को उपयोगी रूप से रखा जा सकता है यदि इसके अविवेकपूर्ण प्रयोग पर किसी तंत्र द्वारा रोकथाम लगाई जा सके जैसाकि राज्यपाल को अनुदेशों की लिखत में आवश्यक मार्गनिर्देश देकर।"

(एन० ए० पालकीवाला, पृष्ठ 12 व 13— केन्द्र राज्य संबंध, एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य।)

प्रोफेसर एम० पी० जैन

"एक सामान्य उपबंध राज्य के राज्यपाल को राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कोई भी विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ और सहमति के लिए आरक्षित रखने का प्राधिकार देता है। संविधान में उस संबंध में कोई मानदंड भी निर्धारित नहीं किये गये है कि राजस्थान कब और कैसे इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है या राष्ट्रपति कब किसी राज्य-विधेयक पर अपनी सहमति देने से इंकार कर सकता है और प्रत्यक्ष रूप से यह एक सामान्य रूप से लागू होने वाला प्रतीत होता है। राज्यपाल केन्द्र का नामिती होता है। यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि क्या राज्यपाल को इस मामले में राज्य मंत्रियों की सलाह पर या अपने निजी दायित्व पर काम करना होता है। प्रत्यक्ष रूप से यह सोचना कठिन है कि राज्य मंत्री उसे कैसे सलाह देंगे और इसलिये वह या तो निजी पहल पर काम करेगा या केन्द्र के 'आदेश' पर"।

(प्रोफेसर एम० पी० जैन, पृष्ठ 219—कांस्टीट्यूशनल डेवलेपमैण्ट्स सिंस इंडिपेण्डेंस—भारतीय विधि संस्थान।)

डा० आर० बी० तिवारी

"जब कोई विधेयक राज्य विधानमंडल द्वारा पारित हो जाता है तो उसे संविधान के अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल को उनकी सहमति के लिये प्रस्तुत किया जाता है। राज्यपाल को किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का अधिकार है। यह कार्य वह अपने विवेकाधिकार का इस्तेमाल करते हुए करेगा। जिस विधायी उपाय के संबंध में राज्यपाल की यह राय हो कि इस पर केन्द्रीय सरकार का अनुमोदन ले लेना चाहिए तो उसे, राज्यपाल – राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखेगा। अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल को संघीय संबंधों में रचनात्मक भूमिका अदा करनी होती है।

यह व्यवस्था है कि राज्यपाल अनुच्छेद –200 के दूसरे परन्तुक के आधार पर किसी भी ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के लिये बाध्य होता है" जिस विधेयक से, उसके विधि बन जाने पर, राज्यपाल की राय में उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण होगा कि वह स्थान, जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकटापन्न हो जाये"

इस प्रकार ऐसे मामलों में राज्यपाल की राय न्यायपालिका की स्वतंत्रता और अखंडता को बनाये रखने के प्रयोजन से बहुत महत्वपूर्ण होती है जो कि प्रजातांत्रिक सरकार का आधार है।

(डा० बी० आर० तिवारी, पृष्ठ 343, दी यूनियन एण्ड दी स्टेट्स, संपादक एस० एन० जैन, सुभाष सी० कश्यप और एन० श्रीनिवासन।)

डी० डी० बसु

जहां तक अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल के अधिकारों का संबंध है इन्हें स्पष्टतया उसके उन कार्यों की सूची में शामिल नहीं किया गया है जिन्हें उसे विवेकानुसार करना होता है ।

किंतु इस तथ्य से कुछ जटिलता उत्पन्न होती है कि संविधान अनुच्छेद 200 के दूसरे परन्तुक के साथ कुछ अन्य उपबंधों भी है अर्थात् अनुच्छेद 31-क का पहला परन्तुक (खंड ब, पृष्ठ 350, 368) जिनके अनुसार राज्यपाल के लिये यह अनिवार्य होता है कि वह किसी विधेयक पर अपनी सहमति न दें किंतु विशिष्ट मामलों में विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखे चाहे उसके मंत्रियों ने उसे विधेयक पारित करने की सलाह दी हो । ऐसे मामलों में यदि राज्यपाल संविधान के अभिव्यक्त उपबंधों के प्रतिकूल मंत्रीपक्षीय सलाह के अनुसार कार्य करता है तो उसकी सहमति शून्य होगी । (बिहारका राज्य मंत्री बनाम कामेश्वर ए० 1952 एस० सी० 252 '(265) ।)

प्रश्न है कि क्या इन मामलों के अतिरिक्त भी राज्यपाल को अपनी सहमति रोके रखने और विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का विवक्षित प्राधिकार है । मुख्य न्यायाधीश रे का मत है (पैरा 56) कि इन मामलों में भी राज्यपाल द्वारा "अपनी सूझ-बूझ" के अनुसार कार्य करना और "ऐसी कारंवाई करना ही उचित होगा जो राज्य के लिये हानिकर न हो"। यह संभव है कि जब संघ और राज्य स्तर पर विभिन्न राजनीतिक दल सत्ता में हों, तो राज्य मंत्री परिषद् संघीय मंत्री-परिषद के मतानुसार कार्य कराने के लिये संवेदनशील विधायी उपायों को राष्ट्रपति तक पहुंचाना ही न चाहे । क्या ऐसी परिस्थिति में राज्यपाल इस आधार पर अपने मंत्रि-परिषद् की सलाह के विरूद्ध अपनी सहमति रोक सकता कि राज्य विधानमंडल के प्रति जिम्मेदार मंत्रियों की यह सलाह राष्ट्रीय हित के विरूद्ध होगी । राज्य सत्ता के समर्थक यह कहेंगे कि अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत दिये गये अधिकार उन अभिव्यक्त उपबंधों के साथ-साथ संविधान के अन्तर्गत आने वाले विवेकाधिकारों या कार्यों की सूची के अंतर्गत नहीं आती जिसके अनुसार राज्यपाल के लिये यह अनिवार्य होता है कि वह किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखे । उच्चतम न्यायालय को किन्हीं भावी मामलों में उस विवाद पर पूर्ण विचार करना चाहिये क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि शमशेर वाद (पैरा 56) में इसके पक्ष–विपक्ष की पूर्ण जांच नहीं की गई है ।

विधिक दृष्टिकोण से एक बात तो स्पष्ट है अर्थात् जब एक बार यह सुस्पष्ट हो गया कि संविधान में राज्यपाल के विवेकाधिकारों में अनुच्छेद 200 के अंतर्गत आने वाले कार्यों को शामिल नहीं किया गया है तो अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत भी वही विचारधारा रखी जानी चाहिये जैसे कि अनुच्छेद iii में है— ताकि राज्यपाल, राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक पर अपनी सहमति देने के बारे में अपने मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार काम कर सके सिवाय ऐसे मामलों के जिसमें संविधान में ही, किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने की व्यवस्था हो ।

(डी० डी० बसु : पृष्ठ 309–310, कमेण्टरी ऑन दी कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, खंड –ई, छठा संस्करण ।)

यह आशा की जा सकती है कि राष्ट्रपति केवल संघीय सिद्धान्त के आधार पर किसी आरक्षित राज्य विधेयक पर सहमति देने से इनकार करने के संबंध में अपने अधिकार का प्रयोग करेगा अर्थात् जहां प्रस्तावित विधि के किसी संघीय विधान या संघीय नीति से विरोधी होने की आशंका हो । इसके अलावा इनकार करने के अधिकार का सहारा केवल उन आत्यन्तिक मामलों में ही लिया जाना चाहिये जहां विधेयक वापस करने का अधिकार विफल हो जाये या विफल हो जाने की आशा हो या जहां राज्य विधि की संवैधानिकता को न्यायालय द्वारा निर्धारित कराना सुरक्षित न हो अर्थात् जहां किसी मूल अधिकार का स्पष्ट उल्लंघन हो या किसी अन्य आधार पर किसी असंवैधानिकता का पता चलता है जिस पर प्रमाणित न्यायिक राय पहले ही उपलब्ध हो, या राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लंघन हो जिसे बातिल करने का न्यायालय को अधिकार न हो । एक और हितकर बात विधान की एकरूपता की रक्षा करना भी हो सकती है अर्थात् एक ही विषय के संबंध में विभिन्न राज्यों की विधियों में सिद्धान्त:(विवरणों से अलग) अनावश्यक भिन्नता को दूर कराना । संभवतया राष्ट्रपति उन मामलों में भी अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है जहां एक राज्य का विधान दूसरे राज्य या उसके नागरिकों के वैध हितों को अनावश्यक रूप से प्रभावित करता हो ।

ऐसे अपवादात्मक मामलों के अतिरिक्त राष्ट्रपति को राज्यों के उन प्रतिनिधि विधानमंडलों द्वारा पारित विधियों को वीटो नहीं करना चाहिये जिन्हें अपनी नीति को निर्धारित करने और संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत उन्हें कार्यान्वित करने का प्रथम अधिकार है और इसका सीधा-सा कारण यह है कि ऐसा हो सकता है कि संघीय कार्यपालिका दल के स्वरूप में मतभेद होने के कारण उन नीतियों का अनुमोदन न करती हो । यदि ऐसा हो जाता है तो वीटो अधिकार संघात्मक पद्धति को एकात्मक पद्धति में रूपान्तरित करने का एक हथियार होगा । चूंकि हमारे संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को प्रत्यक्ष रूप से अस्वीकार करने का कोई अधिकार नहीं हैं और उनका वीटो अधिकार केवल आरक्षित बिलों के संबंध में है, जिसके संबंध में उसे किसी विधेयक को इस संदेश के साथ पुन: विचारार्थ वापस करने का भी अधिकार प्राप्त है, इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रथमत: तो राष्ट्रपति विधेयक वापस करने के उदार विकल्प का आश्रय लेगा और वीटो अधिकार का प्रयोग केवल तभी करेगा यदि राज्य विधान मंडल अपने दृष्टिकोण पर अटल रहे और विधेयक अनुच्छेद 201 के परन्तुक के बाद के भाग के अंतर्गत उसे उसी रूप में राष्ट्रपति को पुन: प्रस्तुत कर दें ।

(डी० डी० बसु : पृष्ठ 198, कमेण्टरी ऑन दी कांस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, खंड-एच, छठा संस्करण ।)

"संविधान में कई उपबंध है जिनके माध्यम से केन्द्रीय कार्यपालिका को राज्य विधान मंडल पर नियंत्रक शक्ति मिलती है ।"

"व्यावहारिक रूप से राज्य विधेयकों पर राष्ट्रपति की सहमति की प्रक्रिया की दो प्रमुख अवस्थाएं हैं : (1) किसी भी विधेयक को राज्य विधान मंडल में पेश करने से पहले, राज्य उस विधेयक को संघ सरकार का अनुमोदन प्राप्त करने के लिये भेजता है । संक्षेप में, यह संघ सरकार का पूर्वानुमोदन होता है । संक्षेपत: यह पूर्वानुमोदन अवस्था है जिसका कि सामान्यतया अनुपालन किया जाता है हालांकि ऐसा संविधान द्वारा अपेक्षित नहीं है । (2) विधेय-राज्य विधान मंडल द्वारा पारित हो जाने के बाद संघ सरकार को उनकी सहमति के लिये भेजा जाता है । इन विधेयकों को साधारणतया, इन दोनों अवस्थाओं में संवीक्षा के लिये गृह मंत्रालय, भारत सरकार को भेजा जाता है । मंत्रालय इस विधेयक को, विधेयक को विषय वस्तु के साथ विधि मंत्रालय और संबंधित अन्य मंत्रालयों को भेजता है । इस विधेयक की विभिन्न दृष्टिकोणों से जांच की जाती है जैसे संवैधानिकता नीति परिप्रेक्ष्य, कार्यविधि संबंधी सुरक्षोपाय आदि ।

अनुच्छेद 304 (ख) के अन्तर्गत प्राप्त विधेयकों के अलावा अन्य विधेयकों की केन्द्रीय संवीक्षा के आधार —

(क) केन्द्रीय सांविधिक अपेक्षाओं का अनुपालन ।
(ख) केन्द्र सरकार की नीतियों से सामंजस्य ।
(ग) मौजूदा, केन्द्रीय विधान का अधिकारातीत होना ।
(घ) सांवैधानिकता की दृष्टि से जांच ।
(ङ) व्यथित पक्षों के लिए कार्यविधि संबंधी रक्षोपायों की उपलब्धता ।

(डा० एस० एन० जैन व डा० एलिस जैकब, पृष्ठ–347 से 351, दी यूनियन एण्ड दी स्टेट्स, संपादक—एस एन जैन, सुभाष सी० कश्यप और एन श्रीवास्तवन् ।)

डॉ० एलिस जैकब

"इस प्रकार यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति के लिये आरक्षित रख सकता है जबकि ऐसे आरक्षण के लिए राज्य सरकार सहमत न हो । क्या वह राज्य का मात्र संवैधानिक अध्यक्ष है या क्या वह अपने विवेकानुसार काम कर सकता है ?"

"जब राज्य विधान मंडल का कोई विधेयक राज्यपाल को उसकी सहमति के लिये प्रस्तुत किया जाता है तो अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत उसके पास तीन रास्ते होते हैं । पहला, वह विधेयक पर अपनी सहमति दे सकता है, दूसरा, वह अपनी सहमति रोक सकता है और धन संबंधी विधेयकों के अतिरिक्त अन्य विधेयकों

के मामले में अपनी सिफारिशों के साथ विधेयक वापस कर सकता है । तीसरा, वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है । दूसरे परन्तुक में आगे एक विशेष स्थिति का भी उल्लेख किया गया है जिसमें कि संविधान राज्यपाल को किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने की जिम्मेदारी सौंपता है जबकि उसकी राय में विधेयक उच्च न्यायालय के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो ।

इस प्रश्न के संबंध में कि क्या राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है जबकि राज्य मंत्रिमंडल ने इसके विपरित सलाह दी हो संविधान में बताई गई राज्यपाल की दोहरी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। राज्यपाल को, राष्ट्रपति के नामिती की हैसियत से कुछ दायित्व पूरे करने होते हैं। परिमाणस्वरूप यह मानना उचित है कि राज्यपाल राष्ट्रपति को कोई विधेयक भेजने में अपने राज्य मंत्रिमंडल की सलाह के बावजूद अपने निजी विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है । किंतु सौहार्दपूर्ण केन्द्र–राज्य संबंधों के हित में राज्यपाल को केवल अपवादात्मक और न्यायसंगत मामलों में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिये ।

(डा० एलिम जैकब : पृष्ठ 30–31, दी यूनियन एण्ड दी स्टेट्स, संपादक एस० एन० जैन, सुभाष सी० कश्यप और एन० श्रीनिवासन् ।

मुख्यन्यायाधीश रे के निर्णय से निम्नलिखित प्रतिपादनों का अविर्भाव होता है : (शमशेर सिंह के मामले में)—

रे—मुख्यन्यायाधीश

इसके निर्णयों से प्रकट हुए प्रतिपादन जो यह दर्शाते हैं कि राष्ट्रपति और राज्यपाल संघ और राज्य सरकारों के सांविधानिक अध्यक्ष हैं ।

(क) राष्ट्रपति के अधिकारों और कार्यों के संबंध में प्रयुक्त अभियुक्तियों है:—"संतुष्ट हो"," राय हो", "जैसा वह उचित समझे" और "यदि ऐसा प्रतीत हो" राज्यपाल के संबंध में पहली तीन अभिव्यक्तियां प्रयुक्त की गई हैं ।

(ख) किंतु राज्यपाल की स्थिति कुछ भिन्न है क्योंकि अनुच्छेद 163 में यह व्यवस्था है कि :— "(1) जिन बातों में इस संविधान द्वारा या उसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती हो कि वह अपने कार्यों/या उनमें से किसी कार्य को अपने विवेकानुसार करे, इन बातों को छोड़कर राज्यपाल को उसके कार्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिये एक मंत्रि-परिषद् होगी जिसका अध्यक्ष मुख्य मंत्री होगा । (2) यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं जिसके संबंध में इस संविधान द्वारा या उसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित हो कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेकानुसार किया गया विनिश्चय अन्तिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर विवादास्पद नहीं हो जायेगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिये या नहीं (3) इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जायेगी कि क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को सलाह दी और यदि दी तो क्या सलाह दी ।"

(ग) हमारे संविधान के वे उपबंध जिनमें राज्यपाल के संदर्भ में "अपने विवेकानुसार" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है, वे हैं :— अनुच्छेद 371क (1) (बी) और (डी) और (2) (बी) और (एफ) और अनुसूची VI पैरा 9(2) और 18 (3) ऊपर उल्लिखित स्पष्ट उपबंधों के अतिरिक्त आवश्यक विवक्षा से दो उपबंध ऐसे हैं जहां राज्यपाल अपने विवेकानुसार कार्य कर सकता है । इस प्रकार अनुच्छेद 356 में यह दर्शाया गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति को यह सूचना दे सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता । "यहां राज्यपाल का अपने मंत्रि-परिषद् की सलाह के विरुद्ध अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना न्यायोचित होगा । (क्योंकि) हो सकता है कि सांविधानिक तंत्र की विफलता मंत्रि-परिषद के आचरण के कारण हुई हो ।" और यह भी कि "अनुच्छेद 200 में राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे किसी भी विधेयक को (राष्ट्रपति के विचारार्थ) आरक्षित रखे जो उसकी राय में, यदि विधि बन जाये तो उससे उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण होगा कि वह न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकटापन्न हो जायेगा अनुच्छेद 200 में एक और स्थिति भी है जहां राज्यपाल मंत्रि–परिषद् की सलाह को महत्व न देकर कार्य कर सकता है ।

(एच० एम० सीरवई, पैरा 18, 23, पृष्ठ–1711–1712, कांस्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इन्डिया, तीसरा संस्करण, खंड II)

एम० वी० पाइली

अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल को विधान मंडल द्वारा पारित और उसकी सहमति के लिये प्रस्तुत किया गया कोई विधेयक इस अनुरोध के साथ विधान मंडल को वापस करने का अधिकार सौंपा गया है कि उस पूरे विधेयक या उसके किसी भाग पर पुन: विचार किया जाये । इस अनुरोध में संशोधनों के लिए प्रस्ताव भी सुझाये जायेंगे । हालांकि राज्यपाल के इस अधिकार का प्रयोग मंत्रालय जल्दबाजी में किये गये विधान के विरुद्ध सुरक्षोपाय के रूप में किया जा सकता है, तथापि तब इसका बहुत कम महत्व दिखाई देता है जब इसका प्रयोग केवल इस प्रयोजन के लिये ही सीमित कर दिया जाये । वस्तुत: संसदीय प्रणाली में अधिकांशत: सभी विधान सरकार की पहल शक्ति का फल होते हैं । यदि गैर सरकारी सदस्य का कोई विधेयक सरकार के भारी कारोबार में आ भी जाए तो उसे भी उस सरकार के समर्थन के बिना पारित नहीं किया जा सकता जिसका कि पूर्ण बहुमत हो । दूसरे शब्दों में, राज्यपाल को उसकी सहमति के लिये प्रस्तुत किया गया प्रत्येक विधेयक मंत्रिमंडल स्तर पर लिये गये नीति विषयक निर्णयों और विधान मंडल में व्यापक विचार विमर्श का परिणाम होता है ।

इस विधायी अधिनियम को संभवत: मंत्रिमंडल के अनुरोध पर पूर्णत: या अंशत: पुन: विचार के लिये वापस नहीं भेजा जाएगा । इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राज्यपाल अपने विवेकानुसार किसी विधेयक को पुन: विचार के लिये वापस भेज सकता है और उपयुक्त संशोधनों का सुझाव दे सकता है हालांकि उसे अधिकार का प्रयोग करने के अवसर बहुत कम होते हैं ।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत एक उपबंध और भी है जो राज्यपाल को किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है यदि राज्यपाल की राय में विधेयक के उपबंध "उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण करेंगे कि जिस स्थान की पूर्ति के लिये वह न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकटापन्न हो जाये ।" हालांकि संविधान में उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता की रक्षा करने का विशेष उपबंध है और उसमें उसके अधिकारों और अधिकारिता की परिभाषा दी गई है तथापि यह राज्य की सीमाओं में और राज्य सरकार के संपूर्ण तंत्र के अभिन्न अंग के रूप में कार्य करता है । (जिसमें कार्यपालिका विधान मण्डल और न्यायपालिका शामिल है) उक्त राज्य विधानमंडल कई मामलों में कानून बनाने में सक्षम है जिससे कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उच्च न्यायालय का कार्य चालन प्रभावित होता हो । अत: यह उपबंध उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले किसी भी उपाय के विरुद्ध उसकी स्थिति की रक्षा करता है ।

अध्यादेश प्रख्यापित करने का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसका प्रयोग राज्यपाल मंत्रालय की सलाह और सहायता से करता है । किंतु तीन परिस्थितियां ऐसी है जिनमें राज्यपाल राष्ट्रपति से पूर्व अनुदेश लिये बिना अध्यादेश प्रख्यापित नहीं कर सकता । इनमें से दूसरी परिस्थितियां इस प्रकार है —

राज्यपाल राष्ट्रपति से अनुदेश लिये बिना ऐसा कोई भी अध्यादेश प्रख्यापित नहीं करेगा यदि उसने इन्हीं उपबंधों वाले किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना आवश्यक समझा होता ।

अध्यादेश जारी करने के लिये राज्य मंत्रिमंडल के प्रस्ताव को राष्ट्रपति से अनुदेश प्राप्त करने के लिए आरक्षित रखने के संबंध में राज्यपाल का अधिकार स्वाभाविक रूप से वही अधिकार होना चाहिये जिसका कि वह अपने विवेकानुसार प्रयोग करता है ।

(एम० वी० पाइली, पृष्ठ–405–406, कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट ऑफ इन्डिया ।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल के विवेकाधिकारों के संबंध में अतिरिक्त प्रश्न

(कृपया इस प्रश्नमाला का परिशिष्ट "क" और "ख" भी देखें।)

विषय 1

1. किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के संबंध में राज्यपाल के विवेकाधिकारों के बारे में काफी भिन्न-भिन्न विचार है। एक विचार तो यह है कि राज्यपाल को अवश्य ही अपने मंत्रि परिषद् की सलाह पर कार्य करना चाहिये सिवाय जब कि अनुच्छेद 200 का दूसरा परन्तुक लागू होता (ए० जी० नूरानी के) इस विचार को उस बात से समर्थन मिलता जो संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 175 और 176 के मसौदे के प्रयोजन, कार्यक्षेत्र और इस्तेमाल के संबंध में कही थी (अनुच्छेद 200 और 201 के तदनुरूप)।

[परिशिष्ट ए (I) और (II) देखें]

इस विचार में कुछ अन्तर इसलिये भी है कि अनुच्छेद 200 के दूसरे परन्तुक के अतिरिक्त राज्यपाल को किसी भी विधेयक को अनिवार्यत: राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना चाहिये जहां संविधान के अधीन ऐसा करना अत्यन्तावश्यक हो। (उदाहरणार्थ अनुच्छेद 31 क का पहला परन्तुक और अनुच्छेद 288) । अन्य विधेयकों के संबंध में राज्यपाल अपने मंत्रि-परिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य होता है (आर० सी० एस० सरकार के) । इस विचार के अनुसार किसी विधेयक पर अपनी सहमति देने या किसी विधेयक से अपनी सहमति रोकने या विधेयक को किसी संदेश के साथ वापस करने में राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

2. सीरवाई के "कांस्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया, खंड II के पैरा 18.23 शमशेर सिंह के वाद में मुख्य न्यायाधीश के निर्णय का सारांश दिया गया है और पैरा 18.32 में विद्वान लेखक के इस प्रश्न पर विचार दिये गये हैं कि क्या राज्यपाल अपने विवेकानुसार किन्हीं अधिकारों का प्रयोग कर सकता है और यदि ऐसा है तो वे अधिकार क्या है। सीरवाई ने केवल इसी बात पर जोर दिया है कि अनुच्छेद 200 के दूसरे परन्तुक में राज्यपाल से विवक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी भी ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करें जो राज्यपाल की राय में इसके विधि बन जाने पर यह उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण करेगा कि वह स्थान जिसकी पूर्ति के लिये वह न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकटापन्न हो जायेगा।

3. इसके विरोध में यह विचार है कि अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत दिया प्रत्येक विकल्प राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए किया जाने वाला कार्य है। यदि उसे विधेयक की संवैधानिकता के बारे में संदेह हो या वह यह महसूस करता हो कि विधेयक किसी संसदीय अधिनियम या राष्ट्रीय नीति का विरोधी है तो उसे इस विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना चाहिये। (एम० सी० सीतलवाड के) कुछ इसी तरह मिलता-जुलता विचार यह भी है कि अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक पर सहमति रोक सकता है या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है हालांकि उसे विधान को वीटो करने का आम अधिकार नहीं हैं। राज्यपाल को किसी भी विधेयक को तभी राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना चाहिये यदि विधेयक स्पष्ट रूप से असंवैधानिक हो [या सुस्पष्ट रूप से राष्ट्रीय हित के विरुद्ध हो या राज्य के किसी नीति निदेशक सिद्धान्त के विरुद्ध या अत्यधिक राष्ट्रीय महत्ता का हो (सोली जे० सोराबजी के) यह भी विचार है कि यदि राज्यपाल किसी ऐसे विधेयक पर अपनी सहमति देता है जो संघ सूची में आने वाले किसी विषय से संबंधित है तो वह अपने पद की शपथ का उल्लंघन करता है। (एल० पी० सिंह के) बसु की "कमेण्टरी ऑन दी कांस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया" छठा संस्करण खण्ड-II (पृष्ठ-195 और 198) में यह बताया गया है कि राज्य विधान मंडल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का विवेकाधिकार राज्यपाल को है। विद्वान लेखक ने यह सुझाव दिया है कि राज्यपाल को किसी विधेयक को आरक्षित रखने का विवेकाधिकार है और राष्ट्रपति अर्थात् संघीय मंत्रि-परिषद् को केवल आत्यन्तिक मामलों में ही किसी विधेयक पर अपनी सहमति देने से इनकार करने का विवेकाधिकार है जहां यह स्पष्ट रूप से किसी मूल अधिकार का अतिलंघन करता हो या किसी अन्य आधार पर असंवैधानिक हो जिस पर पहले से कोई प्रामाणिक न्यायिक राय उपलब्ध हो या इससे किसी राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का अतिलंघन होता हो जिसे बातिल करने की न्यायालय को स्वतंत्रता न हो या यह संसद के किसी अधिनियम के प्रतिकूल हो या जहां यह दूसरे राज्य या उसके नागरिकों के विधिसम्मत हितों को अनावश्यक रूप से प्रभावित करता हो।

प्रश्न 1.4 यदि ऊपर पैरा 2 में उल्लिखित विचार सही हैं, क्या आप संक्षेप में ऊपर प्रस्तुत अन्य विचारों पर टिप्पणी दे सकते हैं और उन गलत परिकल्पनाओं पर प्रकाश डाल सकते हैं जिन पर ये आधारित हैं?

विषय 2

5. अनुच्छेद 200 के प्रथम परन्तुक के अन्तर्गत धन विधेयक के अलावा कोई अन्य विधेयक राज्यपाल को उनकी सहमति के लिये प्रस्तुत किया जाता है तो राज्यपाल अन्य बातों के साथ-साथ इस संदेश के साथ विधेयक विधानमंडल को वापस कर सकता हैं कि उस पर पुन: विचार किया जाए। यदि विधानमंडल, विधेयक को पुन: पारित कर देता है और वह राज्यपाल को सहमति के लिये प्रस्तुत किया जाता है तो राज्यपाल अपनी सहमति नहीं रोक सकता।

6. यदि राज्यपाल इस आधार पर विधान मंडल को इस संदेश के साथ विधेयक वापस कर देता है कि विधेयक असंवैधानिक है या वह राष्ट्रीय हित के विरुद्ध है और यदि विधान मंडल उन दोषों को सुधारे बिना पुन: विधेयक पारित कर देता है तो ऐसी स्थिति में यह तर्क दिया गया है कि ऐसी स्थिति में राज्यपाल को विधेयक पर अपनी सहमति रोकने और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने से कोई नहीं रोक सकता।

(सोली जे० सोराबजी के)

प्रश्न 2.7. क्या उपरोक्त विचार सही है?

विषय 3

8. नागालैंड सरकार से अनुच्छेद 371क (1) (ख) के निहितार्थ पर निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये है —

9. उक्त सरकार के अनुसार, अनुच्छेद 371क(1) (ए) राज्य विधान मंडल को उक्त उपखंड में गिनाये निम्नलिखित विषयों के संबंध में विधियां बनाने का अधिकार प्रदान करता है :—

(i) नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथाएं,

(ii) नागा रुढ़िजन्य विधि और प्रक्रिया,

(iii) सिविल और दाण्डिक—न्याय प्रशासन, जिनमें निर्णय नागा रुढ़िजन्य विधि के अनुसार लेना शामिल है,

(iv) भूमि और उसके संसाधनों का स्वामित्व और अंतरण।

नागालैंड सरकार का यह तर्क है कि उपरोक्त विषयों के संबंध में संसद का कोई भी अधिनियम नागालैंड राज्य पर तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि उनकी विधान सभा किसी संकल्प द्वारा ऐसा करने का निर्णय न करे।

10. (i), (ii) और (iii) में दिये गये विषय सूची III की प्रविष्टि 1, 2 और 13 पर अतिव्याप्त हैं। (iv) का प्रथम खंड अर्थात् "भूमि का स्वामित्व और अन्तरण" सूची II की प्रविष्टि 18 के अंतर्गत आ जाता है। (iv) के अन्तिम खंड अर्थात् "और उसके संसाधन" से सूची I की प्रविष्टि 53 और 54 का अतिक्रमण होता है। नागालैंड सरकार के अनुसार अनुच्छेद–371 क(1) ए का संविधान में दी गई किसी बात के बावजूद यह प्रभाव होगा कि, ऊपर (i) से (iv) में दिये गये विषयों के संबंध में विधायी शक्तियां पूर्णत: नागालैंड की विधान सभा के पास रहेंगी और अनुच्छेद 200 और 254(2) भी इन विषयों पर राज्य विधान पर लागू नहीं होंगे।

11. नागालैंड सरकार का दावा है कि अनुच्छेद 371क(1) (ए) का भूतलक्षी प्रभाव है। अर्थात् प्रश्न गत चारों विषयों पर संसद की विधी, जिसे 1.2.1963 (अर्थात् नागालैंड बनने की तारीख) से पहले पारित किया गया था, राज्य पर तब तक लागू नहीं होगी तब तक कि राज्य की विधान सभा एक संकल्प द्वारा इसे लागू करने का निर्णय न करे। यह व्याख्या भारत सरकार और नागा पीपल कन्वेंशन के बीच हुए करार के अनुसार है जिसके आधार पर अनुच्छेद 371क शामिल किया गया था।

प्रश्न 3. 12. (i) क्या उपरोक्त तर्क सही है?

(ii) सातवीं अनुसूची में सूची I, II और III के संबंध में अनुच्छेद, 371 क(1) (ए) की क्या विवक्षाएं हैं?

(iii) क्या अनुच्छेद 371 क (1) (ए) का भूतलक्षी प्रभाव है?

परिशिष्ट क(i)

संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 175, 176 व 231 (2) पर प्राप्त टिप्पणियां और सुझाव, उन पर प्रारूप और विशेष समितियों के विचार और प्रारूप समिति की अन्तिम सिफारिशें

प्रारूप समिति द्वारा बनाया गया संविधान का प्रारूप संविधान सभा के अध्यक्ष को 21-2-1948 को प्रस्तुत किया गया। यह 26-2-1948 को प्रस्तुत किया गया। यह 26-2-1948 को प्रकाशित हुआ और इस पर सभी से टिप्पणियां और सुझाव मांगे गये। प्रारूप समिति ने 23, 24 और 27 मार्च 1948 को उस समय तक प्राप्त हुई टिप्पणियों और सुझाओं पर विचार किया और संविधान के प्रारूप में कुछ संशोधन करने की सिफारिश की।

2. अप्रैल, 1948 में विशेष समिति, जिसमें अधिकांशत: संघीय संविधान समिति, प्रान्तीय संविधान समिति और संघीय अधिकार समिति के सदस्य थे, ने संविधान के प्रारूप, प्राप्त हुए सुझावों और टिप्पणियां तथा उस पर प्रारूप समिति की सिफारिशों की जांच की। अक्तूबर 1948 में प्रारूप समिति ने विशेष समिति की सिफारिशों पर विचार किया और संविधान के प्रारूप पर उन टिप्पणियों और सुझावों पर विचार किया जो प्रारूप समिति की अन्तिम बैठक (अर्थात् 27-3-1948) के बाद प्राप्त हुए थे। संविधान सभा द्वारा संविधान के प्रारूप पर विचार करने से पहले सदस्यों को प्रारूप पुनर्मुद्रित रूप में भी उपलब्धकराया गया जिसमें संगत अनुच्छेदों के सामने वे संशोधन दिखाये गये थे जिन्हें प्रारूप समिति ने स्वीकार करने की सिफारिश की थी।

3. अनुच्छेद 175, 176 व 231(2) के प्रारूप [जो क्रमश: मौजूदा अनुच्छेद 200, 201 व 254(2) के अनुरूप हैं] पर प्राप्त टिप्पणियों और सुझावों, सांविधानिक सलाहकार की टिप्पणियां, जिनमें प्रारूप/विशेष समिति के विचारों को दोहराया गया है, और संशोधन के लिये प्रारूप समिति की सिफारिशों (बी० शिवा राव की "दी फ्रेमिंग ऑफ इण्डियाज कांस्टीट्यूशन सेलेक्ट डॉक्यूमेन्ट्स" के खंड IV भाग I के पृष्ठ 125 से 127 और 264 देखें) संक्षेप में नीचे दी गई हैं :—

अनुच्छेद 4. यह सुझाव दिया गया कि —

175 का प्रारूप (मौजूदा अनुच्छेद 200)

(i) अनुच्छेद 175 में यह उपबंध होना चाहिये कि जब राज्य विधान मंडल द्वारा पारित कोई विधेयक राज्यपाल को प्रस्तुत कर दिया जाए तो "राज्यपाल विधेयक पर अपनी सहमति देगा" उस उपबंध के स्थान पर कि "राज्यपाल या तो यह घोषणा करेगा कि वह विधेयक पर सहमति देता है या वह उसपर अपनी सहमति रोकता है या वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखता है" यह उपबंध रखा जाना चाहिये।

(के० सन्थानम, एम० अनन्तशयनम अयंगर, टी० टी० कृष्णमाचारी और श्रीमती जी० दुर्गाबाई)

(ii) इस अनुच्छेद में अन्य बातों के साथ-साथ यह व्यवस्था भी होनी चाहिये कि यदि राज्यपाल विधेयक पर अपनी सहमति नहीं देता तो राज्य की विधान सभा स्वयं ही विघटित हो जानी चाहिए और तत्काल नये चुनाव होने चाहिये।

(तजम्मुल हुसैन)

(iii) यह उपबंध कि राज्यपाल विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है, निकाल दिया जाना चाहिये

(जय प्रकाश नारायण)

5. संवैधानिक सलाहकार की टिप्पणियों में यह बताया है कि अनुच्छेद 175 के प्रारूप के अन्तर्गत यह घोषणा करने के संबंध में कि वह विधेयक पर अपनी सहमति देता है या वह उस पर अपनी सहमति रोकता है या वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखता है, राज्यपाल अपने विवेकाधिकार का प्रयोग अपने मंत्रियों की सलाह पर करेगा। और यह भी, चूंकि राज्यपाल प्रान्तों द्वारा चुने जाने की बजाय राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे अत: राज्यपाल द्वारा अपने विवेकानुसार कार्य करने के सभी संदर्भ संविधान के प्रारूप में से निकाल दिये जाने चाहियें। तदनुसार अनुच्छेद 175 के प्रारूप के परन्तुक में "अपने विवेकानुसार" शब्द निकाल दिये जायेंगे और इस परन्तुक के अन्तर्गत विधानमंडल को विधेयक वापस करने संबंधी राज्यपाल के अधिकार का प्रयोग वह अपने मंत्रियों की सलाह पर करेगा।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 231(2) के प्रारूप के अनुसार किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने संबंधी उपबंध रखना आवश्यक होगा [(मौजूदा अनुच्छेद 254(2)]इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय के अधिकारों पर प्रभाव डालने वाले किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के राज्यपाल के अधिकार के लिए भी उपबन्ध रखा जा रहा था। अत: यह जरुरी था कि किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने संबंधी उपबंध रहने दिया जाये।

6. प्रारूप समिति ने (i) मसौदा अनुच्छेद 175 के प्रथम परन्तुक में "अपने विवेकानुसार" शब्दों को काटने और (ii) उक्त अनुच्छेद परन्तुक अन्त:स्थापित करने संबंधी संशोधनों की सिफारिश की (ये मौजूदा अनुच्छेद 200 के प्रथम और द्वितीय परन्तुक के अनुरूप हैं)

मसौदा अनुच्छेद 176 (वर्तमान अनुच्छेद 201)

7. के० सन्थानम, एम० अनन्तशयनम अयंगर, टी० टी० कृष्णमाचारी, श्रीमती जी० दुर्गाबाई और जयप्रकाश नारायण ने यह सुझाव दिया कि इस अनुच्छेद को निकाल दिया जाना चाहिये। संवैधानिक सलाहकार की टिप्पणी में यह उल्लेख है कि चूंकि किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने संबंधी उपबंध को अनुच्छेद 175 में से निकाला नहीं जा सकता, अत: मसौदा अनुच्छेद 176 को निकालना संभव नहीं था।

मसौदा अनुच्छेद 231 (2) [वर्तमान अनुच्छेद 254(2)]

8. के सन्थानम, एम० अनन्तशयनम, आयंगर, टी० टी० कृष्णमाचारी और श्रीमती दुर्गाबाई ने यह सुझाव दिया कि इस खंड को काट दिया जाना चाहिये। संवैधानिक सलाहकारों की टिप्पणी में यह स्पष्ट किया गया कि इस अनुच्छेद के खंड (i) में प्रयुक्त "प्रतिकूल" अभिव्यक्ति का काफी भिन्न-भिन्न अर्थ लिया जाता है। यदि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये तो राज्य विधान मंडल के पास समवर्ती सूची को उन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार नहीं रहेगा जिन पर संसद द्वारा पहले से बनाया गया कोई कानून हो या कोई कानून उस समय मौजूद हो। इससे समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने के राज्य विधान मंडल के अधिकार अनुचित रूप से सीमित होंगे। अत: इस संशोधन को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

परिशिष्ट क(ii)

अनुच्छेद 175 के प्रारूप पर संविधान सभा में भाषणों के उद्धरण

डा० बी० आर० अम्बेडकर।—पुराने परन्तुक में तीन महत्वपूर्ण उपबंध थे। पहला यह कि यह राज्यपाल को किसी भी विधेयक पर सहमति देने से पहले उसे विधानमंडल को वापस करने का अधिकार प्रदान करता था। परन्तुक जिस रूप में था उस में विधेयक को वापस

करने की बात उनके विवेक पर छोड़ दी गई थी। दूसरी, सिफारिश सहित विधेयक को वापस करने का अधिकार धन विधेयक सहित सभी विधेयकों पर लागू होता था। तीसरा, विधेयक वापस करने का अधिकार केवल उन मामलों में राज्यपाल को दिया गया था जहां प्रान्त का विधानमंडल एक सदनीय था। तब यह महसूस किया गया कि जिम्मेवार सरकार में राज्यपाल द्वारा अपने विवेकानुसार काम करने की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। अतः नये परन्तुक में से "अपने विवेकानुसार" शब्दों का निकाल दिया गया है। इसी प्रकार यह महसूस किया गया कि विधेयक वापस करने का यह अधिकार धन विधेयक तक नहीं बढ़ाया जाना चाहिए और परिणामस्वरूप "यदि यह धन विधेयक नहीं है" शब्द इसमें शामिल कर लिये गये। यह भी महसूस किया गया कि राज्यपाल का विधेयक की वापस करने का अधिकार आवश्यक रूप से उन मामलों तक सीमित नहीं रखना चाहिए जहां प्रान्त का विधानमंडल एक सदनीय हो। यह लाभकारी उपबंध है और इसका इस्तेमाल सभी मामलों में किया जाना चाहिए यहां तक कि उन मामलों में भी जहां विधानमंडल द्विसदनीय हो।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद। अनुच्छेद 175 के अन्तर्गत राज्यपाल को अपने विवेकानुसार या मर्जी से किसी विधेयक को वीटो करने का कोई अधिकार नहीं है लेकिन वह ऐसा अपने मंत्रालय की सलाह पर कर सकता है। मैं इस उपबंध के पक्ष में नहीं हूँ। वह उस विधेयक को भी वीटो नहीं कर सकता जिसे विधानसभा ने दो बार पारित किया हो, हालांकि यह भी मुझे स्वीकार्य नहीं है। इसके पास किसी विधेयक को वीटो करने या राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का कोई अधिकार नहीं है। दो प्रकार के मामले ऐसे हैं जिसमें किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा जा सकता है। इसे इस संविधान के कुछ अनुच्छेदों के अन्तर्गत आरक्षित रखा जा सकता है। और यदि राज्यपाल को उसके मंत्रालय ने ऐसा करने की सलाह दी हो तब भी इसे आरक्षित रखा जा सकता है। मैं यह चाहता हूँ कि राज्यपाल के पास विधानमंडल द्वारा पारित विधेयक को वीटो करने का विवेकाधिकार होना चाहिए चाहे वह एक बार पारित हुआ हो या दो बार।

प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना : मैं अपने दोस्त श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के विचार से पूर्णतः असहमत हूँ जो राज्यपाल और परिषद, को अधिकार देने वाली हर बात के पक्ष में प्रतीत होता है। वह चाहते हैं कि राज्यपाल के पास किसी भी विधान को रोकने का अधिकार होना चाहिये।

मैं जानता हूँ कि वह राष्ट्रपति का नामिती होता है किंतु संभव है कि प्रान्त में जो दल सत्ता में हो वह केन्द्र में सत्ता में न हो और राष्ट्रपति उस दल का ग्राह्य व्यक्ति न हो। अतः मेरा विचार है कि इससे सभा और यहां तक कि परिषद्, की अभिव्यक्त इच्छा के विरुद्ध यह अधिकार राज्यपाल को देने का गलत सिद्धान्त शुरू हो जायेगा। मेरा विचार है कि मूल परन्तुक रहने दिया जाए और राज्यपाल को केवल उन मामलों में विधेयक वापस करने का अधिकार होना चाहिए जहां कोई दूसरा सदन न हो।

श्री टी० टी० कृष्णमाचारी : किसी विधेयक को किसी संदेश के साथ सदन को वापस करने में राज्यपाल अपने विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं करता। इस उपबंध का कोई महत्व नहीं रहा। राज्यपाल को अब कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है। यदि ऐसा होता है कि राज्यपाल संशोधन संख्या 17 के अनुसार किसी विधेयक को और आगे विचार करने के लिये वापस भेजता है तो वह ऐसा सुस्पष्टतया अपने मंत्रि-परिषद की सलाह पर करता है। यह उपबंध उसी स्थिति में इस्तेमाल के लिये बनाया गया है जब कोई ऐसा अवसर उत्पन्न हो कि अनुच्छेद 172 में बताई उन औपचारिकताओं को पूरा करना संभव न हो, जिन्हें पहले पारित कर दिया गया हो, किंतु विधेयक का कोई विषय ऐसा हो जिसे उच्च सदन ने स्वीकार कर लिया हो और उसके बाद मंत्रालय जिसे आशोधित करना चाहता हो तभी वे इस कार्यविधि का प्रयोग करेंगे। वे विधेयक पर आगे की कार्यवाहीयां रोकने के लिये राज्यपाल का लाभ उठायेंगे और उसे उसके संदेश के साथ निचले सदन को वापस कर देंगे।

यह एक व्यावृत्ति खंड है जो उन्हें उनके द्वारा पहले से की गई जल्दबाजी की ऐसी कार्यवाहियों को ठीक करने का अधिकार मंत्रालय को प्रदान करता है या उन्हें ऐसी कार्रवाई करने का अधिकार देता है जो उनके विचार से लोकप्रिय राय को मानने के लिये की जानी चाहिये जो सदन से बाहर किसी न किसी रूप में प्रतिबिंबित हुई हो और केवल इस प्रयोजन से इस नये परन्तुक को शामिल किया गया है।

यह किसी भी तरह से जिम्मेवार मंत्रालय के अधिकार को कम नहीं करता और इसीलिये यह निचले सदन के उन अधिकारों को कम नहीं करता जिसके लिये निःसंदेह मंत्रालय जिम्मेवार होता है, यह राज्यपाल को और अधिकार प्रदान नही करता। दूसरी ओर यह उस मूल परन्तुक में बताये राज्यपाल के अधिकारों को कम करता जिसके स्थान पर यह आना चाहता है।

परिशिष्ट ख (ii)

अनुच्छेद 200 के अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के राज्यपाल के विवेकाधिकार पर कुछ विशेषज्ञों के विचार

सोली जे० सोरबजी :

अनुच्छेद 213 के अधीन राज्यपाल विधायी स्वरूप के कार्य करता है अर्थात अध्यादेश प्रख्यापित करना। यह कार्य मंत्रियों की सलाह पर करना होता है न कि राज्यपाल के विवेकानुसार। किंतु यह निर्धारित करने में कि क्या अध्यादेश अनुच्छेद 213 के परन्तुक में निर्धारित किसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है, राज्यपाल को आवश्यक रूप से अपने विवेकानुसार और निर्णय से कार्य करना होता है और अपना निष्कर्ष निकालना होता है और किसी स्थिति में वह मंत्रियों की किसी सलाह के प्रति बाध्य नहीं होता।

इस परन्तुक के पीछे यह तर्क है कि राज्य कार्यपालिका को ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित करने से रोका जाये जो इस स्वरूप का हो कि राज्य विधानमंडल अपने सत्र में इसे किन्हीं संवैधानिक अपेक्षाओं के कारण अधिनियमित न कर पाए या अध्यादेश का स्वरूप ऐसा हो कि यदि यह विधानमंडल द्वारा पारित किया गया विधेयक हो तो राज्यपाल अपनी सहमति रोक ले और इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखे।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी विधेयक पर अपनी सहमति रोक सकता है या विधेयक को राष्ट्रपित के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। स्पष्ट रूप से जब विधेयक राज्य विधानमंडल द्वारा पारित हो गया हो तो ऐसे मामलों में उससे मंत्रि-परिषद की सलाह पर कार्य करने की आशा नहीं की जा सकती।

राज्यपाल के पास राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधान को वीटो करने का कोई आम अधिकार नहीं है। फिर भी वह अनिश्चित समय के लिये नहीं किंतु कुछ समय के लिए, अपनी सहमति रोक कर विधायी उपायों को टाल सकता है और विधानमंडल से विधेयक पर पुनः विचार करने और उसमें उन संशोधनों को शामिल करने का अनुरोध कर सकता है जिनकी उसने अपने संदेश में सिफारिश की हो। किंतु यदि विधेयक दोबारा संशोधन सहित या उसके बगैर विधानमंडल द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राज्यपाल अनुच्छेद 200 के प्रथम परन्तुक के अधीन उस पर अपनी सहमति नहीं रोकेगा।

राज्यपाल के लिये एक रास्ता यह भी है कि वह सीधे ही विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख ले और विधान को टाल दे।

वे मानक या मानदण्ड क्या हैं जिनका अनुपालन राज्यपाल को किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के लिये करना चाहिये ?

सुझाव है कि राज्यपाल को किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के अधिकार का प्रयोग तब करना चाहिये जब (क) विधेयक स्पष्ट रूप से असांविधानिक हो जैसा कि वह स्पष्टतया किन्हीं व्यक्तियों या समुदायों के प्रति विद्वेषपूर्ण ढंग से भेदभाव करता हो या संघ के विधायी अधिकारों का स्पष्ट रूप से बलात ग्रहण करता हो, (ख) यदि यह प्रत्यक्षतः राष्ट्रीय एकता और अखंडता तथा संघीय सिद्धान्त बनाये रखने की आवश्यकता की दृष्टि से राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध हो और संघ की सामान्य नीति का विरोधी हो, या (ग) यदि वह राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का प्रत्यक्ष विरोधी हो, या (घ) यदि राज्य द्वारा पारित विधेयक अत्यन्त राष्ट्रीय महत्व का हो और विशेष रूप से वहां, जहां कि उसे वह

स्पष्ट हो कि सदन या सदनों द्वारा संस्तुत संशोधनों को ध्यान में रखते हुए विधेयक पर पुनः विचार करना कोरी औपचारिकता सिद्ध होगी ।

ये उदाहरण केवल दृष्टांत मात्र हैं । जिस बात पर जोर दिये जाने की जरूरत है वह यह है कि इस अधिकार का प्रयोग यदा-कदा और अपवादात्मक मामलों में किया जाना चाहिये ।

इस प्रश्न पर भिन्न-भिन्न विचार अभिव्यक्त किये गये हैं कि क्या राज्यपाल विधेयक को दोबारा पढ़ने और उसे विधानमंडल द्वारा पारित किये जाने के बाद भी उस विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है । एक विचारधारा के अनुसार, राज्यपाल दोबारा पढ़ने के बाद विधेयक पर अपनी सहमति नहीं रोक सकता । दूसरी ओर सही विचारधारा यह है कि विधेयक के दूसरी बार विधानमंडल में पारित होने से राज्यपाल के अधिकार समाप्त नहीं हो जाते । यदि राज्यपाल को यह राय हो कि विधेयक अभी भी वही उपबंध हैं जो स्पष्ट रूप से संविधान के प्रतिकूल हैं तो विधेयक पर अपनी सहमति रोकने और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ-आरक्षित रखने से कोई नहीं रोक सकता ।

इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 200 के दूसरे परन्तुक में यह व्यवस्था है कि राज्यपाल किसी ऐसे विधेयक पर अपनी सहमति नहीं देगा जिसके विधि बन जाने पर उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण होगा कि उससे उसकी स्थिति संकटापन्न हो जायेगी । यह उपबंध राज्यपाल को विवेकाधिकार प्रदान नहीं करता बल्कि उस पर दायित्व डालता है । किंतु प्रश्न यह है कि क्या विधेयक उच्च न्यायालय की शक्तियों का अल्पीकरण करता है या नहीं—इस विषय को राज्यपाल के विचार के लिये उसी पर छोड़ दिया गया है और इस तरह की परिस्थिति में उसे मंत्रि परिषद् से अलग होकर और उनकी सलाह के बिना काम करना होता है ।

(दि गवर्नर, सेज आफ सेबोटियर : रोली बुक्स इन्टरनेशनल ।)

आर० सी० एस० सरकार ।

राज्यपाल के पास किसी विधेयक को विधानमंडल के पुनःविचारार्थ वापस करने और उपयुक्त संशोधन सुझाने का विवेकाधिकार है । वह ऐसे विधेयक की सांविधानिकता संदेहास्पद होने या विधेयक के प्रकट रूप से राज्यहित या राष्ट्रीय हित के विरुद्ध होने के आधार पर कर सकता है । यह विवेकाधिकार अनुच्छेद 74(1) के परन्तुक के अन्तर्गत राष्ट्रपति के अधिकारों के अनुरूप है ।

राज्यपाल के इस अधिकार का प्रयोग, मंत्रालय विधेयकों में दोषों को दूर करने के लिये कर सकता है । किन्तु ऐसे मामले बहुत ही कम होंगे । यदि इस उपबंध का प्रयोग केवल इस प्रयोजन के लिये ही सीमित कर दिया जाये तो इसकी महत्ता समाप्त हो जायेगी ।

2. किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने का राज्यपाल का अधिकार सामान्य अर्थों में है । यदि इसकी शाब्दिक व्याख्या की जाये तो प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा जा सकता है और इसी से विवाद उत्पन्न हुआ है ।

3. राज्यों के विधायी प्राधिकार की कमी और अधिक स्वायत्तता की मांग को ध्यान में रखते हुए, अनुच्छेद 200 की ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिए कि संघ की पर्याप्त शक्तियां मिल जायें । दूसरे, संसदीय प्रणाली में संविधान के उपबंधों की ऐसी व्याख्या नहीं की जानी चाहिये कि वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमंडल के अधिकारों को कम करके राज्यपाल के अधिकार बढ़ जायें ।

4. किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के आज्ञापक उपबंध हैं—(i) अनुच्छेद 200 का दूसरा परन्तुक, (ii) अनुच्छेद 288(2), (iii) अनुच्छेद 31क, (iv) अनुच्छेद 31ग और (v) वित्तीय संकट में अनुच्छेद 360(4)(ए)(ii) । अनुच्छेद 304(बी) में निर्दिष्ट विधेयक पेश करने या उसके संबंध में किसी संशोधन का प्रस्ताव करने के लिये राष्ट्रपति की पूर्वानुमति जरूरी होती है । यदि आवश्यक पूर्वानुमति न ली गई हो तो विधेयक के पारित हो जाने के बाद इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना जरूरी होता है ।

उपरोक्त सभी मामलों में, राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए अपने मंत्रिपरिषद् की सलाह के बिना या उसके विरुद्ध किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना होता है । बाकी सभी मामलों में उसे केवल अपने मंत्रियों की सलाह पर काम करना चाहिये । अनुच्छेद 200 को यह स्पष्ट करने और समय-सीमा लगभग 3 मास को प्रदान करने के लिये संशोधित करना चाहिये जिसके भीतर राज्यपाल अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग करेगा । राज्यपाल के इस अधिकार को संविधान के अन्तर्गत किसी लिखत द्वारा विनियमित नहीं किया जा सकता ।

5. राज्यपाल को समवर्ती क्षेत्र या राज्य क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले किसी भी विधेयक को तब तक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित नहीं रखना चाहिये जब तक कि उसे उसके मंत्रालय ने इस प्रकार की सलाह न दी हो ।

6. यदि राज्य सूची से संबंधित किसी विधेयक में कोई ऐसी नीति निरुपित हो जो, राज्यपाल के अनुसार, संघीय विधि में निर्धारित नीति से भिन्न हो तो राज्यपाल को अपने मंत्रि-परिषद् की सलाह के सिवाय विधेयक को आरक्षित नहीं रखना चाहिये । इसी प्रकार उस स्थिति में भी आरक्षण का प्रश्न नहीं उठता यदि संघीय नीति मात्र कार्यपालिका आदेश से निर्धारित हुई हो ।

7. जब कोई विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा जाता है तो संघ इसकी जांच न केवल इसकी सांवैधानिकता की दृष्टि से करता है बल्कि यह पता लगाने के लिए हर दृष्टि से जांच की जाती है कि क्या यह संघ की नीतियों के अनुरूप है और क्या इसमें व्यथित दलों के लिये प्रक्रियात्मक सुरक्षोपाय हैं । संघ अक्सर राज्य पर अपनी नीतियाँ थोपने का प्रयास करता है । यदि राज्य सूची के विषय से संबंधित विधेयक को संविधान के अन्तर्गत आरक्षित रखा जाता है तो राष्ट्रपति को उस विधेयक को वीटो करने का अधिकार बशर्ते कि यह संघ द्वारा निर्धारित नीति के अनुरुप हो । संविधान संघीय कार्यपालिका को राज्य विधान पर नियंत्रण रखने का अधिकार प्रदान करता है । क्या इस अधिकार को सीमित किया जाना चाहिये—यह चर्चा का विषय है ।

8. जब कोई विधेयक इसलिए रोक लिया जाता हो क्योंकि वह उच्च न्यायालय की शक्तियों को प्रभावित करता है या उसकी सांवैधानिक विधिमान्यता पर संदेह होता है, तब संघ कार्यपालिका का यह कर्त्तव्य है कि वह सभी संभव दृष्टिकोणों से सम्पूर्ण विधेयक का परीक्षण करे । सर्वोच्च न्यायालय की सलाहकारी राय केवल अपवादात्मक मामलों में ही मांगी जानी चाहिए, जहां गम्भीर मसले निहित हों ।

9. जब राष्ट्रपति कोई विधेयक राज्य के विधानमण्डल को वापस कर दे और उसे संशोधन करके या बिना संशोधन किये फिर से पारित कर दिया जाए तो राष्ट्रपति को बिना कारण बताये, विधेयक को वीटो करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए । हमारे देश में विद्यमान विशेष परिस्थितियों में, संघ कार्यपालिका का राज्य विधान पर आवश्यक नियंत्रण होना चाहिए ।

10. अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को शक्तियों के प्रयोग के लिए उसे 6 माह तक की समय सीमा प्रदान की जानी चाहिए । यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक से असहमत हो तो उन्हें चाहिए कि सर्वप्रथम उस विधेयक को पुनर्विचार के लिए राज्य विधान मण्डल को लौटा दे । राष्ट्रपति को जब वह विधेयक दोबारा प्राप्त हो तो वे उस पर अपनी सहमति दे सकते हैं या वीटो कर सकते हैं । किन्तु विधेयक को वीटो करने के कोई कारण बताना आवश्यक नहीं है, क्योंकि तब राष्ट्रपति की कार्रवाई न्यायिक पुनर्विचार का विषय बन जाएगी ।

उपर्युक्त सुझावों को लागू करने के लिए अनुच्छेद 201 में संशोधन किया जाए ।

(इस आयोग को भेजे गये विचारों का सारांश)

ए० जी० नूरानी :

यह ध्यान रहे कि भारत का संविधान केन्द्र को राज्य का विधान अस्वीकार करने की वैसी शक्ति नहीं देता जैसा कि केन्द्र को कनाडा में प्राप्त है । इसके विपरीत, संविधान राज्यों को यह सुविधा प्रदान करता है कि वे अपनी विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विधान के विषयों की समवर्ती सूची में शामिल किसी विषय पर केन्द्रीय विधान पर अभिभावी हो सकते हैं या राष्ट्रपति की सहमति अर्थात, भारत सरकार का अनुमोदन संविधान के निर्माताओं के विचार इस दृष्टि से इस सुविधा का आवश्यक विनियमन करना था कि कहीं यह केन्द्रीय विधान को हास्यास्पद

न बना दे जो कि एकरूपता की आशा करता है। इसमें यह अभीष्ट नहीं था कि केन्द्र की निरंकुश निषेधाधिकार या विलम्बकारिता के लिए लाइसेंस दे दिया जाए। संघ की जो शक्तियां राज्यों की स्वायत्तता बढ़ाने में सहायता करने के लिए दी गई है उनका संघ द्वारा स्वायत्तता को कम करने के लिए योजनाबद्ध दुरुपयोग संविधान को विकृत करना ही है। समवर्ती सूची में ऐसे विषय हैं जिन पर संघ और राज्य दोनो ही एकरूपता और अनेकरूपता के अपने-अपने दृष्टिकोणों से विधान बनाना चाहेंगे। दोनों को संतुलन बनाए रखना ही राजनीतिज्ञता है।

2. संवैधानिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। सर्वप्रथम राज्य किसी भी हालत में इस बात के लिए आबद्ध नहीं कि वे राज्य-सूची में शामिल किसी विषय पर बिल राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजें। दूसरे, राज्यपाल को यह छूट नहीं है कि वह मंत्री परिषद् की सलाह के बिना कोई विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के लिए रोक ले। दोनों ही पूर्वापेक्षाएं केवल एक ही परंतुक के अधीन आती हैं, अर्थात राज्यपाल की राय में यदि किसी विधेयक के अधिनियम बन जाने पर "उच्च न्यायालय की शक्तियों का इस प्रकार अल्पीकरण करता है कि वह स्थान् जिसकी पूर्ति के लिए वह उच्च न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकट की स्थिति में पड़ जाएगा"। फिर भी यदि राज्य अपनी स्थानीय स्थितियों के कारण सूची में शामिल किसी विषय पर केन्द्रीय विधान का प्रत्यादेश करने के उद्देश्य से विधान बनाना चाहे तो मंत्री-परिषद् के परामर्ष पर समवर्ती सूची के विषयों से संबंधित विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की भेजे जा सकते हैं।

3. जब कोई विधेयक राज्य की विधान सभा द्वारा पारित कर दिया जाता हैं तो राज्यपाल उस पर अपनी सहमति दे सकता है, सहमति रोक सकता है या उसे राष्ट्रपति के पास भेज सकता है (अनुच्छेद 200)। फिर भी, वह ऐसे विधेयक पर अपनी सहमति रोकने और उसे राष्ट्रपति के पास भेजने के लिए बाध्य है जिसमें उसके विचार से उच्च न्यायालय की शक्ति "अल्प" होती है। अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति चाहे तो विधेयक पर सहमति दे सकता है या सहमति देने से इन्कार कर सकता हैं या उसे "पुनर्विचार" के लिए लौटा सकता है।

("सेंटरस्, वीटो ऑन स्टेट लॉज"—ए० जी० नूरानी—तारीख 20-9-1985 के इंडियन एक्सप्रेस में)

एल० पी० सिंह

अनुच्छेद 200 से यह धारणा बन सकती है कि किसी विधेयक पर सहमति देने या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के संबंध में राज्यपाल को व्यापक विशेषाधिकार प्राप्त है। यदि राज्यपाल के विचार से कोई विधेयक उच्च न्यायालय की शक्तियों को गम्भीर रूप से "अल्प" कर सकता हो तो राज्यपाल को ऐसा विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखना होता है यह विवेकाधिकार के प्रयोग का प्रश्न नहीं बल्कि संवैधानिक बाध्यता है। परन्तु और भी जटिल समस्या तब उत्पन्न होती है, जब राज्यपाल को ऐसे विषय पर विधेयक प्रस्तुत किया जाता है जो सातवीं अनुसूची की संघ-सूची में शामिल हो। मेरे पास एक ऐसी मामला था जिसमें राज्य विधान मंडल ने अन्तर्राज्यीय आप्रवास से संबंधित विधेयक पारित किया था जबकि यह विषय संघ सूची में आता हैं। मैंने सोचा कि इस विधेयक पर यदि मैं अपनी सहमति देता हूँ तो संभव है कि "मैं संविधान का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण"—करने के लिए ली गई अपने पद की शपथ का उल्लंघन करूं और यदि मंत्रि-परिषद द्वारा बिल को राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित न रखने के मंत्रि परिषद के परामर्श के बावजूद बिल को राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखता हूँ तो ऐसी स्वस्थ परिपाटी को छोड़ दूंगा जिस पर में दिल से चलना चाहता था। समझदार मुख्यमंत्री ने इसे राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखने को स्वतंत्रता देकर मेरी सहायता की।

2. एक दूसरे राज्य में भी एक ऐसा मामला था जिसमें मुझसे विनियमों के ऐसे प्रारूप का अनुमोदन करने के लिए कहा गया था, जो कि अनुच्छेद 320(3) के परन्तुक के अधीन बनाए गये तात्पर्यित थे और इस परन्तुक के विषय क्षेत्र से बाहर पड़ते थे और ये न केवल सांविधिक नियमों बल्कि कुछ मूल अधिकारों का भी उल्लंघन करते थे। मैंने इस टिप्पणी के साथ कागज लौटा दिये कि राज्यपाल से ऐसे प्रस्तावों पर हस्ताक्षर करने के लिए यहां तक कि सहमति देने के लिए भी नहीं कहा जाना चाहिए जो संविधान और विधि का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करते हों, और यह मामला वहीं रुक गया।

3. मैंने ये दो उदाहरण इसलिए दिये हैं क्योंकि इनमें एक आधारभूत प्रश्न निहित था, अपने पद के लिए ली गई शपथ से प्रेरित होकर एक राज्यपाल किस सीमा तक मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित मार्ग से सहमत या असहमत हो सकता हैं? मैंने जो दृष्टिकोण अपनाया वह यह था कि सीमांत या संदेहास्पद मामलों में राज्यपाल को मंत्रालय की सलाह से कार्य करना चाहिए, और केवल तभी अपनी अनुमति रोकनी चाहिए जब संविधान का स्पष्ट उल्लंघन होता हो, और वह मंत्रालय को अपना प्रस्ताव छोड़ने के लिए राजी करने में असफल रहा हो।

(दि गवंनर, सेज और सेबट्योर : रोली बुक्स इंटरनेशनल)

गोविन्द नारायण

अनुच्छेद 200 के संदर्भ में इस बात पर ध्यान दिया जाए कि विधेयकों की कुछ श्रेणियों में, जो कि विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिए जाते हैं राज्य सरकार के लिए यह अनिवार्य होता हैं कि वह विधेयक राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने के लिए उसे आरक्षित रखने के लिए राज्यपाल से सिफारिश करे। सामान्य स्थिति में इस प्रकार के विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजे जाते हैं, और संबंधित केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा परीक्षण के पश्चात राष्ट्रपति के आदेशार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार के विधयकों के संदर्भ में राष्ट्रपति की शक्तियों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 201 में किया गया है। राज्य के उच्च न्यायालय की स्थिति और प्रतिष्ठा को किसी भी रूप में कम करने वाले विधेयकों के संदर्भ में राज्यपाल की अत्यन्त महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। संविधान के अनुच्छेद 200 का द्वितीय परंतुक राज्यपाल को कोई भी ऐसा विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के लिए बाध्य करता है। उसके विचार में, यदि कानून बन गया तो उच्च न्यायालय की शक्तियों का ऐसा अल्पीकरण करेगा कि वह स्थान ही जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकटापन्न हो जाएगा।

(दि गवंनर, सेज और सेबट्योर : रोली बुक्स इन्टरनेशनल)

परिशिष्ट ख (ii)

अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल द्वारा विवेक के प्रयोग के संबंध में शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य/ए आई आर 1974 एस सी 2192/के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उद्धरण

रे—मुख्य न्यायाधीश

54. संविधान के वे उपबंध जिनमें राज्यपाल से यह स्पष्टतया अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग करे, उन अनुच्छेदों में निहित है, जिनका उल्लेख किया गया है उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 239(2) में बताया गया है कि यदि राज्यपाल की निकटवर्ती संघ राज्य क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया जाता है तो वह ऐसे प्रशासक के रूप मे अपने कार्य अपनी मंत्रि परिषद से स्वतंत्र रूप से करेगा। जिन अन्य अनुच्छेदों में राज्यपाल के विवेकाधिकार का उल्लेख किया गया है, वे छठी अनुसूची के पैरा 9(2) और 18(3) तथा अनुछेद 371-क(1)(बी), 371-क(1)(डी) तथा 371-क (2)(बी) तथा 371-क(2)(च) हैं। राज्यपाल के विवेकाधिकार से तात्पर्य है राज्य के संवैधानिक या औपचारिक प्रधान के रूप में यह शक्ति उसमें निहित है। इस दर्भ में अनुच्छेद 356 देखा जा सकता है जिसके अनुसार राज्यपाल राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट भेज सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें इस राज्य का शासन संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता। अनुच्छेद 200 में पुन: यह अपेक्षा की गई है कि राज्यपाल ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखे जो उसकी राय में विधि बन जाने पर उच्च न्यायालय की शक्तियों का इस प्रकार अल्पीकरण करता हो कि वह स्थान, जिसकी पूर्ति के लिए वह न्यायालय इस संविधान द्वारा परिकल्पित है, संकट की स्थिति में पड़ जाएगा।

55. अनुच्छेद 356 के अधीन रिपोर्ट भेजते समय, राज्यपाल द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसंगत होगा, भले ही यह उसकी मंत्रि परिषद की सहायता और सलाह के विरुद्ध हो। इसका कारण यह है कि संवैधानिक तंत्र की असफलता

मंत्रि-परिषद के आचरण के कारण भी हो सकती है । राज्यपाल को यह विवेकाधिकार इसलिए दिया गया है ताकि वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सके, जिसे अनिवार्यतः सभी मामलों में अपनी मंत्रि परिषद की सलाह पर कार्य करना चाहिए । इस संदर्भ में अनुच्छेद 163(2) लागू होता है कि राज्यपाल द्वारा अपने विवेकानुसार किया गया निर्णय अंतिम होगा और उसकी विधिमान्यता पर संदेह नहीं किया जाएगा । इस प्रकार के विषय पर राष्ट्रपति द्वारा की गई कारंवाई एक अलग बात है । राष्ट्रपति अपनी मंत्रि परिषद की सलाह पर कार्य करता है । अन्य सभी मामलों में, यदि राज्यपाल अपने विवेकानुसार काय करता है तो वह अपनी मंत्रि परिषद के अनुरूप कार्य करेगा । संविधान का यह उद्देश्य नहीं है कि राज्यपाल को मंत्री परिषद की सलाह के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार देकर राज्य में समानांतर प्रशासन स्थापित करे ।

56. इसी प्रकार अनुच्छेद 200 में एक अन्य स्थिति यह बताई गई है कि राज्यपाल अपनी मंत्री-परिषद की किसी भी सलाह पर विचार किये बिना कार्य कर सकता है । इस प्रकार के मामलों में यदि राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना हो तो उसे अपने कर्तव्यों का निष्पादन अपने सर्वोत्तम निर्णय के अनुसार करना चाहिए । राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसे रास्ते अपनाये जो राज्य के लिए हानिकर न हो ।

न्यायाधीश कृष्णमूर्ति अय्यर

153. हमारे संविधान के इस अंग की विधि इस प्रकार की है कि राष्ट्रपति और राज्यपाल इस उपबंधों के कारण विभिन्न अनुच्छेदों के अधीन सभी कार्यपालक और अन्य शक्तियों के अभिरक्षक है और वे जानी मानी अपवादात्मक स्थितियां छोड़कर अपनी औपचारिक संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग अपने मंत्रियों की सलाह के पश्चात् और उनकी सलाह के अनुसार ही करेंगे । ये परिस्थितियां निम्नलिखित से संबंधित हो सकती है :--

(क) प्रधानमंत्री (मुख्य मंत्री) का चयन--चाहे यह चयन सीमित ही है, जिसमें सर्वोपरि आधार यह होगा कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त होना चाहिए ;

(ख) ऐसी सरकार को बर्खास्त करना जो सदन में बहुमत खो चुकी हो किन्तु वह सत्ता छोड़ने से इन्कार करे;

(ग) ऐसी स्थिति में सदन का विघटन करना जहां देशवासियों को अपील करना आवश्यक हो, हालांकि इस क्षेत्र में राज्याध्यक्ष को राजनीनीति में शामिल होने से बचना चाहिए और जिसे अनिवार्यतः प्रधानमंत्री (मुख्य मंत्री) द्वारा परामर्श दिया जाना चाहिए जो अततः इस कारंवाई की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेगा । ऐसी कठिन परिस्थितियों में हम संवैधानिक औचित्य पर हम विस्तारपूर्वक विचार नहीं करेंगे केवल इस बात की चेतावनी दे सकते है कि एसी कारंवाई अनिवार्यतः लोकतंत्र को खतरा देखते हुए और सदन या देशवासियों के अपील करने की विवशता होने पर ही की जानी चाहिए ।

हमें इस बात में संदेह नहीं है कि राजकीय सहमति के संबंध मे दि स्मिथ का कथन* भारत में राष्ट्रपति और राज्यपाल के लिए ठीक बैठता है ।

"परन्तु राजकीय सहमति देने से यदि इस आधार पर इन्कार किया गया हो कि राजा विधेयक का जबरदस्त विरोधी था या यह अत्यन्त विवादास्पद था तो भी ऐसा करना असंवैधानिक ही होगा । केवल एक ही परिस्थिति में राजकीय सहमति को रोकना तब न्यायसंगत हो सकता है यदि सरकार ने स्वयं ही ऐसी कार्यविधि की सलाह दी हो जो कि अत्यधिक असंभावित घटना होगी--जब संभवतया बदनामी लेते हुए विधेयक अनिवार्य कार्य विधि की अवहेलना करके पारित कर दिया गया है : लेकिन, चूंकि बाद वाली स्थिति में सरकार का यह विचार होगा कि एक बार सहमति दे दिए जाने पर इस प्रकार के विचलन से अधिनियम की विधिमान्यता प्रभावित नहीं होगी इसलिए यह आसानी से समझा जा सकता है कि यह सहमति देने के बराबर ही है ।"

---

* कांस्टीट्यूशनल एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ दि स्मिथ---पिनग्विन बुक्स आन फाउंडेशन आफ लॉ

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 5

राज्यपाल के कर्तव्य और राष्ट्रपति शासन इत्यादि से संबंधित प्रश्न

राज्यपालों की नियुक्ति

1.1 यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्यपालों की नियुक्ति में संविधान निर्माताओं द्वारा निर्धारित नियमों का पूरा सम्मान दिया जाए, यह सुझाव दिया गया है कि राज्यपाल का चयन सलाहकारी समूह, जिसमें लोकसभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के अध्यक्ष शामिल हों, द्वारा अनुमोदित नामों की सूची में से किया जाना चाहिए और अंतिम निर्णय प्रधानमंत्री पर छोड़ा जाना चाहिए। क्या आप सहमत हैं ? क्या लोकसभा और राज्यसभा में विपक्ष के नेताओं को भी सलाहकारी समूह में शामिल किया जाना चाहिए ?

1.2 बताया गया है कि मुख्यमंत्री से परामर्श लेने की परिपाटी का दुरुपयोग किया गया है। यह देखते हुए कि यह परिपाटी असफल हुई है, यह सुझाव दिया गया है कि संशोधन द्वारा इस प्रकार के परामर्श को संविधान में शामिल करके अनिवार्य बना दिया जाए। क्या आप सहमत हैं ?

1.3(क) राजनीतिज्ञों और (ख) सेवानिवृत्त सिविल/रक्षाकार्मिकों में से राज्यपालों के चयन के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

राज्यपालों का हटाया जाना

2.1 एक दृष्टिकोण के अनुसार, राज्यपाल का कार्यकाल पराश्रित रूप से राष्ट्रपति की निरंकुश इच्छा पर निर्भर करता है, अर्थात केन्द्रीय मंत्री परिषद ने ऐसे विषयों में, जिनके संबंध में उसे संविधान के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता है, अपनी बुद्धिमता के अनुसार उसकी (राज्यपाल की) क्षमता को कम किया है। इन पूर्वधारणाओं के आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि राज्यपाल को भी राष्ट्रपति को हटाने में प्रयुक्त होने वाली महाभियोग संबंधी कार्यविधि का अनुपालन करके ही हटाया जाना चाहिए।

2.2 वैकल्पिक रूप से, यह सुझाव दिया गया कि राज्यपाल को उसी सलाहकारी समूह से परामर्श करके हटाया जाना चाहिए, जिसका प्रस्ताव राज्यपालों की नियुक्ति पर सलाह देने के लिए, इससे पहले किया गया है इस विषय पर आपके क्या विचार हैं ?

द्वितीय कार्यकाल के लिए स्थानांतरण और नियुक्ति

3.1 अक्सर कार्यकाल पूरा होने से पहले ही किसी राज्यपाल को दूसरे राज्य के राज्यपाल के रूप में स्थानांतरित कर दिया जाता है। क्या आप यह मानते हैं कि इस बात से पद की गरिमा या पदधारी की स्वतंत्रता प्रभावित होती है ?

3.2 कार्यकाल पूरा होने पर क्या राज्यपाल को नए कार्यकाल के लिए उसी राज्य या दूसरे राज्य में राज्यपाल के रूप में नियुक्ति का पात्र होना चाहिए?

पेंशन और सेवा निवृत्ति उपरान्त प्रतिबंध

4.1 क्या राज्यपाल को उसका पूरा कार्यकाल समाप्त होने पर उदारीकृत पेंशन का पात्र होना चाहिए ? क्या यह सेवा के दौरान उसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने में अधिक वस्तुनिष्ठ बनाएगा ?

4.2 क्या राज्यपाल को उसका कार्यकाल समाप्त होने पर भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन लाभ का कोई पद धारण करने के अयोग्य ठहराया जाना चाहिए ?

4.3 क्या राज्यपाल को उसका कार्यकाल पूरा हो जाने पर केन्द्र या राज्य में मंत्री, भारत का राष्ट्रपति, भारत का उपराष्ट्रपति या संसद या राज्य विधान मण्डल का सदस्य जैसा निर्वाचन पद धारित करने के लिए अपात्र ठहराया जाना चाहिए ?

राज्यपाल की भूमिका -पाक्षिक रिपोर्ट

5.1 वर्तमान पद्धति के अनुसार, राज्यपाल केन्द्र को पाक्षिक रिपोर्ट भेजता है और केन्द्र राज्यपाल से पाक्षिक रिपोर्टों की अपेक्षा करता है ताकि यह ज्ञात हो सके कि राज्य सरकार के कार्यकलाप किस प्रकार चलाये रहे हैं। क्या, अनुच्छेद 355 के अधीन अन्य बातों के साथ-साथ संघ को सौंपे गये कर्तव्यों में से इस पद्धति के प्राधिकार का अर्थ लगाया जा सकता है ? जो भी हो, क्या आप संविधान में स्पष्ट प्रावधान चाहते हैं जिससे राज्यपाल से ऐसी रिपोर्ट प्राप्त करने का प्राधिकार मिल जाए।

5.2 क्या राष्ट्रपति को भेजी जाने वाली राज्यपाल की पाक्षिक रिपोर्ट के अंतर्विषय और प्रयोजन की बढ़ाये जाने की गुंजाइश है ? क्या उसे इस रिपोर्ट की एक प्रति मुख्यमंत्री को भी भेजनी चाहिए ?

5.3 क्या राज्य में महत्वपूर्ण घटनाओं की सूचना देने के अतिरिक्त राज्यपाल को उन मुख्य समस्याओं का उल्लेख करना चाहिए जिसमें केन्द्र राज्य की मदद कर सकता हो ? ऐसी समस्याओं के संदर्भ में मुख्य मंत्री की तुलना में राज्यपाल की क्या भूमिका होनी चाहिए ?

विवेकाधिकार

6.1 वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनमें राज्यपाल से अनुच्छेद 163(1) में परिकल्पित विवेकाधिकार का प्रयोग करने की अपेक्षा की जा सकती है ? क्या ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें राज्यपाल को अनुच्छेद 159 के अंतर्गत पद के लिए ली गई शपथ को पूरा करने के लिए अपने मंत्रालय की सलाह नामंजूर करने और अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने को बाधित किया जा सके ?

6.2 राज्य अधिनियम के अधीन विश्वविद्यालय का पदेन कुलाधिपति नियुक्त होने पर क्या कुलाधिपति की हैसियत से मंत्रि परिषद की सलाह पर कार्य करना राज्यपाल के लिए अनिवार्य है ? इसके विपरीत, क्या राज्यपाल को मंत्रि परिषद से परामर्श करने के पश्चात अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना चाहिए ? दोनों ही मामलों में संवैधानिक न्यायसंगतता क्या होगी ?

6.3(i) यदि राज्यपाल को यह तसल्ली हो जाए कि अब विधान सभा में मुख्यमंत्री को बहुमत प्राप्त नहीं है, तो क्या उसे (क) मंत्रिमण्डल को बर्खास्त कर देना चाहिए; या (ख) मुख्य मंत्री से न्यूनतम सम्भव अवधि में सदन का सामना करने को कहना चाहिए ?

(ii) यदि उपयुक्त समयावधि के भीतर मुख्यमंत्री सदन का सामना करने को तैयार नहीं होता तो क्या राज्यपाल को (क) मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर देना चाहिए ; या (ख) मंत्रिमंडल को बहुमत का समर्थन सिद्ध करने के लिए विधान सभा की बैठक बुलानी चाहिए ; या (ग) केन्द्र को राष्ट्रपति शासन लागू करने का सुझाव देना चाहिए।

(iii) क्या अनुच्छेद 174(i) में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाए कि उपर्युक्त (ii) जैसी स्थिति में, राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार से सभा की बैठक बुलानी चाहिए ?

6.4 यदि मुख्यमंत्री या मंत्रिमंडल को राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को बढ़ावा देने में या भ्रष्ट कार्यों में लिप्त पाया जाता है तो क्या राज्यपाल के लिए

यह संवैधानिक रूप से न्यायोचित होगा कि वह मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर दे और स्थायी मंत्रिमंडल गठित करने के लिए दूसरे नेता का पता लगाने का प्रयास करे ? वैकल्पिक रूप से, क्या राज्यपाल को राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश करनी चाहिए ?

6.5 कुछ राज्यपालों के कार्यों से उत्पन्न विवादों को देखते हुए, क्या राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों के लिए मार्गनिर्देश जारी किये जाने चाहिएं ? यदि हां तो क्या इसके लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता होगी ?

कानून और व्यवस्था

7.1 यदि किसी राज्य में लोक अव्यवस्था (जैसे आंतरिक अशांति न कहा जा सकता हो) हो जिसको ठीक करने में राज्य की पुलिस असफल हो, तो क्या राज्य की पुलिस की सहायता के लिए केन्द्र पूर्णतया अपनी इच्छा से सशस्त्र बलों को भेजने के लिए या अनुच्छेद 355 के अंतर्गत कानून लागू करने वाली एजेंसियों या सूची I की प्रविष्टि 2 क के साथ पठित अनुच्छेद 73 के अधीन अपनी कार्यकाम शक्तियों का प्रयोग करने में सक्षम होगा ?

7.2 क्या आप इस विचार से सहमत है कि राज्य में आंतरिक अशांति दूर करने के लिए संघ को अनुच्छेद 355 के अधीन अपने सशस्त्र बल तैनात करने के कार्यकारी प्राधिकार हैं? दूसरे शब्दों में, क्या सूची I कि प्रविष्टि 2-क मे आने वाले कथन "किसी भी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता के लिए केन्द्र द्वारा किसी सशस्त्र बल को भेजना ...." का तात्पर्य यह है कि केन्द्र अपने सशस्त्र बल केवल तब ही भेज सकता है जब इस बात के लिए राज्य सरकार ने अनुरोध किया हो ?

7.3 यह मानते हुए कि अनुच्छेद 355 द्वारा संघ को सौंपे गये कर्तव्य, संघ की कार्यकारी शक्ति का भाग है, क्या संघ राज्य से इस बात की अपेक्षा कर सकता है कि उसे संघ को राज्य की भीतरी लोक व्यवस्था और सुरक्षा के संबंध में सूचना भेजनी चाहिए ? यदि राज्य ऐसा करने में असफल रहता है तो क्या इस प्रकार की असफलता, संघ की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में बाधक होगी और अनुच्छेद 257(1) के अंतर्गत केन्द्र द्वारा उचित निर्देश दिये जाने को न्यायोचित ठहराएगी ।

7.4 संविधान सभा में डा०भीमराव अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था कि एक ओर तो "बाह्य आक्रमण" और "आंतरिक अशांति" के बीच में तथा दूसरी ओर "आंतरिक अशांति" तथा "प्रत्येक राज्य की सरकार का इस संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करने के लिए" के बीच में जो "और" शब्द लगा हुआ है वह परिस्थिति की अपेक्षानुसार संयुक्त और असंयुक्त दोनों ही रूपों में पढ़ा जा सकता है ।

इससे यह अर्थ निकलता है कि ऐसे प्रसंग विचारणीय है कि जहां "बाह्य आक्रमण" या "आंतरिक अशांति" एक तथ्य के रूप में तो विद्यमान हो लेकिन ऐसी स्थिति को समाविष्ट या उत्पन्न न करते हो जिसमें राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार न चलाई जा सकती हो । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि "आंतरिक अशांति" वाले ऐसे प्रसंगों में पूर्ण रूप से अनुच्छेद 356(1) का न्यायोचित रूप से अवलम्बन नहीं लिया जा सकता हैं यदि स्थिति नहीं हो तो संविधान के अधीन दूसरे क्या कदम या विकल्प अनुमेय है जो संघ को, अनुच्छेद 355 के अंतर्गत सौंपे गये कर्तव्यों का पालन करने में सक्षम बनाते हैं ?

7.5 इसके विपरीत अनुच्छेद 352 के अंतर्गत कारंवाई को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए "बाह्य आक्रमण" की स्थिति अपनी व्याप्ति और प्रकृति में इतनी गम्भीर नहीं भी हो सकती है कि ऐसे गंभीर संकट की स्थिति उत्पन्न या समाविष्ट हो जिससे भारत या इसके किसी भाग की सुरक्षा को खतरा हो । "बाह्य आक्रमण" की ऐसी स्थिति में संघ को अनुच्छेद 355 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का निष्पादित करने के लिए संविधान के अंतर्गत क्या विकल्प उपलब्ध होंगे ?

राष्ट्रपति शासन

8.1 अनुच्छेद 356(1) में आने वाले "ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य सरकार का कार्य संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है" वाक्यांश की विस्तृत और सीमित दोनों ही प्रकार की व्याख्या की जा सकती है । विस्तृत व्याख्या के रूप में संविधान के किसी उपबंध का हर प्रकार अतिलंघन समझा जा सकता है चाहे इस अतिलंघन का विस्तार व स्वरूप या संवैधानिक गठन में अतिलंघित उपबंध की सापेक्ष महत्ता कुछ भी हो । संकीर्ण अर्थ में इस वाक्यांश का अर्थ, संविधान में यथा उपबंधित राज्य में संवैधानिक सरकार प्रणाली या संवैधानिक तंत्र में वस्तुतः असफल हो जाने या टूट जाने से अधिक कुछ भी नहीं होगा ।

विख्यात लेखक बसु ने अपने "भारत का संक्षिप्त संविधान" में संविधान सभी के विचार विमर्श में कही गई बातों और अनुच्छेद के उपांतिक शीर्षक सहित विभिन्न तात्विक घटकों का समन्वय किया है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ऊपर बताये वाक्यांश को सीमित व्याख्या की जानी चाहिए । क्या आप सोचते है कि "नही चलाया जा सकता" अभिव्यक्ति में यह माना जाता है कि सभी सम्भव उपचारात्मक विकल्प खोजे गये या काम में लाये गये लेकिन असफल रहे । "नहीं हो सकता" शब्द यह बताते है कि इस असफल शक्ति से अंतिम उपाय के रूप में काम किया जाएगा, क्योंकि स्थिति इस प्रकार की है कि किसी अन्य विकल्प का प्रयोग करके संवैधानिक मार्ग से पथभ्रष्टता को ठीक करना संभव नहीं है "संविधान के उपबंधों के अनुसार" इस अभिव्यक्ति के प्रसंग में "उपबंध" शब्द के बहुवचन प्रयोग को यदि हाशिये में दी गई टिप्पनी के साथ पढ़ा जाये तो यह निष्कर्ष और मजबूत बन जाता है कि इसमें राज्य में उत्तरदायी सरकार की संवैधानिक व्यवस्था की असफलता का अभिप्राय संप्रेषित करना अपेक्षित था न कि संविधान के कुछ या किसी उपबंध का आकस्मिक उल्लंघन, जो कि किसी अन्य उपचारात्मक कारंवाई का आश्रय लेकर सुधारा जा सकता था । क्या आप इस व्याख्या से सहमत हैं ? (ख) इसके अतिरिक्त, क्या अनुच्छेद 356(1) का पूर्वोक्त वाक्यांश ऐसी स्थिति की कल्पना करता है जिसमें संविधान की विफलता या असफलता निश्चित हो ?

8.2 यदि हो तो, अनुच्छेद 356(1) का विस्तार, अनुच्छेद 355 द्वारा किस सीमा तक नियंत्रित है ?

राज्यों के बीच समन्वय

9.1 क्या आप यह मानते है कि अनुच्छेद 263 के अधीन अंतर्राज्यीय परिषद का गठन और अधिक स्थगित नहीं रखा जाना चाहिए ? इसका गठन और कार्य क्या होने चाहिए ?

9.2 यह सुझाव दिया गया है कि अन्य बातों के साथ-साथ, राज्यपालों की नियुक्ति/निष्कासन, अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा, अनुच्छेद 249 के अधीन विधान बनाना, सूची I में उन प्रविष्टियों के अधीन विधान बनाना जो सूची II या सूची III की प्रविष्टियों का अतिक्रमण करती है, राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित राज्य विधेयक, सीमा विवाद इत्यादि जैसे मामलों में अंतर्राज्यीय परिषद से पहले परामर्श लेना चाहिए । क्या आप सहमत है ?

9.3 क्या कारण है कि आंचलिक परिषदें सामूहिक रूप से राज्यों के हितों के अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में प्रभावी नहीं हुई हैं ?

9.4 अन्तर्राज्यीय परिषद को (क) राष्ट्रीय विकास परिषद और (ख) आंचलिक परिषदों के संबंध में किस प्रकार कार्य करने चाहिए ?

केन्द्र के निदेशों का अनुपालन करने में विफलता

10. एक राय यह व्यक्त की गई है कि अनुच्छेद 365 के अधीन राष्ट्रपति तभी विधितः यह राय बना सकता है कि राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती जब राज्य द्वारा केन्द्रीय कार्यपालिका का न अपनाया गया निर्देश, संविधान के किसी ऐसे अनुच्छेद के अंतर्गत आता हो जिसमें संघ की कार्यपालिका को ऐसे निर्देश देने का स्पष्ट अधिकार दिया गया हो अर्थात् अनुच्छेद 353, 360(3) -- उस अवधि के दौरान जब आपात स्थिति की उपयुक्त घोषणा लागू हो या अनुच्छेद 256, 257 और 339(2) —जब ऐसी कोई उद्घोषणा लागू न हो । इसके विपरीत अनुच्छेद 365 में

मंजूरी का तब अवलंबन नहीं लिया जा सकता यदि न माना गया या उपेक्षित निर्देश, संविधान के किसी अन्य ऐसे उपबंध के अधीन, अर्थात् अनुच्छेद 347, 344(6), 356 के जारी किया गया हो जो इन उपबंधों में उल्लिखित निर्देश देने के लिए संघ की कार्यपालिका को अधिकार न देते हों और इसका कारण यह है कि ऐसे निर्देशात्मक उपबंधों के अधीन जारी निर्देशों का पालन न किये जाने से राज्य में सांवैधानिक तंत्र के मूलत: या परिलक्षित असफलता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती ।

क्या आप इस विचार से सहमत हैं ।

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 6

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 से संबंधित प्रश्न

पृष्ठभूमि

भारत सरकार के अधिनियम 1935 में ऐसा कोई उपबंध नहीं था जो वर्तमान अनुच्छेद 249 के अनुरूप हो । आस्ट्रेलिया, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधानों में भी ऐसा कोई उपबंध विद्यमान नहीं है ।

फिर भी, इस प्रारूप के लेखक, श्री बी० एन० राव, संवैधानिक सलाहकार, ने प्रारूप के अनुच्छेद 226 (इस समय अनुच्छेद 249) के समर्थन में एटार्नी जनरल फार अंटेरियों बनाम कनाडा टेम्पोरेंस फेडरेशन (1946 ए० सी० 193) के प्रिवी काउंसिल के निर्णय से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत किया है :—

"वास्तविक परख विधान की विषय वस्तु से की जाएगी, यदि यह कोई ऐसा विधान हो जो स्थानीय या प्रांतीय हितों या विषयों से बाहर हो और अपने सहज स्वरूप के कारण ही डोमीनियन का कार्य हो तो वह कनाडा की शांति, व्यवस्था और अच्छी सरकार को प्रभावित करने वाले विषय के रूप में डोमीनियन पार्लियामेंट की कार्य सीमा में आएगा, भले ही अन्य पहलुओं से यह मामला उन विषयों से संबंधित हो जो कि विशेष रूप से प्रांतीय विधान मण्डलों के लिए आरक्षित है ।"

परन्तु संपूर्ण निर्णय का अवलोकन करने से पूर्व यह ज्ञात हो जाता है कि यह निर्णय कोई ऐसा व्यापक नियम निर्धारित नहीं करता जिससे ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट 1877 की धारा 91 और 92 के आधार पर डोमीनियन पार्लियामेंट प्रांतीय या स्थानीय विषय के संबंध में ऐसी स्थिति में विधान बनाने के लिए सक्षम हो जब उसने राष्ट्रीय महत्व ग्रहण कर लिया है उस मामले में प्रिवी कांउसिल, "कनाडा की शांति, व्यवस्था और अच्छी सरकार" के लिए विधि निर्माण के लिए डोमीनियन पार्लियामेंट की अवशिष्ट शक्तियों की व्याख्या कर रही थी । इससे पहले रसेल बनाम दी क्वीन (1882) 7 ए० सी० 829 के बाद में कनाडा टेम्परेंस एक्ट, 1878 "ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट 1867 की धारा 91 के अधीन, इस आधार पर डोमीनियन पार्लियामेंट की विधि निर्माण की सक्षमता की सीमा में ठहराया गया कि यह कनाडा में शांति, व्यवस्था और अच्छी सरकार से संबंधित था, तथा यह 1867 के अधिनियम की धारा 92 द्वारा पुर्णतया प्रांतों के लिए आरक्षित मामलों से संबंधित नही था।" निर्णायत, पंक्तियों को रेखांकित कर दिया गया है । 21 जनवरी 1946 को निर्णित अंटेरियों के अटॉर्नी जनरल के वाद (पूर्वोक्त) में, रसेल के मामले में पहले दिए गए निर्णय का समर्थन किया गया और तदनुसार यह निर्णय लिया गया कि 1878 के अधिनियम को प्रतिस्थापित करने वाले, कनाडा टेम्परेंस एक्ट, 1927 के भाग 1, 2 और 3 डोमीनियन विधानों के समान ही वैध थे ।

वही हुआ जो होना चाहिए, जब अनुच्छेद 226 का प्रारूप (वर्तमान अनुच्छेद 249 के अनुरूप) विचाराधीन था, तो सभा के भीतर और बाहर, दोनों ही जगह इसकी तीखी आलोचना की गई । अपने एक संपादकीय लेख में हिंदुस्तान टाइम्स ने यह दावा किया कि इसके प्रांतीय स्वायत्तता पर घातक प्रहार किया है । विभिन्न विधि आचार्यों ने यह धारणा व्यक्त की कि इससे संशोधन प्रक्रिया बिगड़ गई है और इसलिए इसे प्रारूप से निकाल दिया जाए, बाद में सभा के सदस्यों द्वारा इस धारणा की पुष्टि की गई । जयप्रकाश नारायण ने भी यह आग्रह किया कि इस उपबंध को निकाल दिया जाए । 1948 की शरद में, प्रारूप के गुण पर विचार विमर्श करते हुए बंबई और पूर्वी पंजाब के विधान मण्डलों ने इसे प्रांतीय अधिकारों के गंभीर उल्लंघन के रूप में लेते हुए, इसके हटाए जाने का समर्थन किया । सभा के कई सदस्यों ने इस विचार का समर्थन किया और 20 सदस्यों ने अनुच्छेद हटाने के लिए संशोधन प्रस्तुत किया, के० संथानम एम० ए० अयंगर, श्रीमती दुर्गाबाई, टी० टी० कृष्णमाचारी तथा पांच मुस्लिम इस संशोधन के समर्थकों में से थे ।

यह अनुच्छेद एक विशेष समिति के पास भेजा गया और उसने 11-4-1948 को अपनी बैठक में फिर से इस विषय पर विचार किया और सिफारिश की :—

(i) राष्ट्रीय हित में, राज्य विषय के संदर्भ में विधि निर्माण के लिए संसद को प्राधिकृत करने वाला संकलन संबंधित राज्यों की सरकारों से पूर्व परामर्श किए बिना" राज्यों की परिषद में पेश नही किया जाना चाहिए ।

(ii) उस अवधि का विशेष रूप से उल्लेख करना होगा जिसके दौरान संसद को ऐसी शक्ति प्राप्त रहेगी और यह अवधि तीन वर्ष से अधिक नही होनी चाहिए ।

(iii) समय सीमा में और वृद्धि नए संकल्पों द्वारा की जा सकती है परन्तु एक बार में यह वृद्धि 3 वर्ष से अधिक नहीं होगी ।

विशेष समिति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और तदनुसार अनुच्छेद प्रारूप में शामिल कर लिया गया । संवैधानिक सलाहकार ने एक बार फिर अनुच्छेद के मूल प्रारूप का समर्थन किया ।

18-10-1948 को, प्रारूपण समिति ने अनुच्छेद के प्रारूप पर पुन: विचार किया और मत व्यक्त किया कि इस उपबंध को विशेष समिति द्वारा दिए गए सुझावों की सीमा तक कम करना आवश्यक नहीं है कि राज्यों के साथ पूर्व परामर्श किया जाए, अत: इसने इस शर्त को हटाने का निर्णय लिया और अनुच्छेद के प्रारूप में तदनुसार परिवर्तन किया गया ।

संविधान सभा द्वारा 13–6–1949 को इस अनुच्छेद पर विचार किया गया था । डॉ० अम्बेडकर ने एक संशोधन का प्रस्ताव रखा जिसमें विधि निर्माण की सीमा एक बार में एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए नहीं रखी गई थी ।

इसके पश्चात भी, पाटसकर, अलगेसन, बी० एस० सरवटे सहित अधिकांश सदस्यों ने यह आलोचना की कि यह अनुच्छेद प्रांतीय स्वायत्तता का उपहास करने के समान होगा और इसके बाद इसे हटाए जाने के तर्क दिए । श्री बी० राम गुप्त (जो कि बाद में भारत के महान्यायवादी भी बने) ने निम्नलिखित आधारों पर इस अनुच्छेद को शामिल किए जाने का विरोध किया :—

"(i) संसद का एक सदन ऐसा नही कर सकता ।

(ii) संकल्प के लिए राज्य विधान मण्डल को भी मत देना चाहिए ।

(iii) इस बात को न्यायसंगत ठहराने के लिए कुछ भी नही है कि ऐसी शक्तियां आवश्यक या अपेक्षित हैं, और

(iv) आपात स्थिति न होने की अवधि के दौरान, केंद्र लिए राज्य क्षेत्रों पर अतिक्रमण करना संभव नहीं होना चाहिए"।

फिर भी, सभा ने इस खण्ड को स्वीकार कर लिया और वर्तमान रूप में यह अनुच्छेद 249 के रूप में समाविष्ट है ।

अनुच्छेद 249 का प्रयोग बहुत ही कम अवसरों पर हुआ है । 12 अगस्त 1950 को राज्यों की परिषद द्वारा अपेक्षित प्रस्ताव पास कर दिए जाने पर, सूची II की 26 और 27 प्रविष्टियों के सभी मामलों के संदर्भ में काला बाजारों के प्रभावकारी नियंत्रण के लिए संसद ने इस अनुच्छेद के अधीन शक्तियां प्राप्त की । इसके पश्चात इसकी अवधि एक वर्ष और बढ़ा दी गई । इस संकल्प में संसद को निम्नलिखित के अधिनियमन के अधिकार दिए गए—

1. 1950 का वस्तुओं के मूल्य का अधिनियम,
2. 1950 का आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) संशोधन अधिनियम, इसके पश्चात, अनुच्छेद 249 के अधीन एक अन्य संकल्प पारित करके संसद को निम्नलिखित के अधिनियमन का अधिकार दिया गया

3. 1951 का निष्क्रांत हित (पृथक्करण) अधिनियम। इसके पश्चात, 1954 संविधान (तीसरा) संशोधन अधिनियम द्वारा "(ख) खाद्य तिलहन और तेल सहित, खाद्य सामग्री (ग) खली और अन्य सारकृत चारे सहित पशुओं के चारे, (घ) ओटा हुआ तथा बिना ओटा हुआ कच्चा कपास तथा बिनोला, और (ङ) कच्ची जूट," इन वस्तुओं को सूची 3 प्रविष्टि 33 में शामिल किया गया जो कि पहले सूची II की प्रविष्टियों 26 और 27 में की शर्तों के अधीन थी।

1951 के पश्चात् संसद द्वारा अनुच्छेद 249 के अधीन शक्ति के प्रयोग का कोई अवसर उत्पन्न नहीं हुआ है। इस प्रकार पिछले 34 वर्षों से यह अनुच्छेद निष्क्रिय रहा है।

कुछ राज्य सरकारों और राजनीतिक दलों ने इस अनुच्छेद को हटाने का आग्रह किया है। इस बात के लिए राजमन्नार समिति (1971) ने भी सिफारिश की थी। कुछ अन्य लोगों ने इसके दुरुपयोग के प्रतिरोध में सुरक्षा उपाय समाविष्ट करने के लिए इसमें संशोधन का सुझाव दिया है जब कि शेष इसके यथावत रखे जाने के विरुद्ध नही है।

निम्नलिखित आधारों पर अनुच्छेद 249 की आलोचना की जा सकती है :—

आलोचना के आधार

(1) यदि उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से राज्यों की परिषद में संकल्प पारित कर दिया जाता है तो इसका यह अर्थ निकलना आवश्यक नहीं है कि 22 राज्यों में से दो-तिहाई राज्य इस प्रकार की अनुज्ञप्ति का समर्थन करते हैं, क्योंकि शेष 15 राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा विरोध होते हुए भी सदन में अधिक प्रतिनिधित्व, अर्थात् उत्तर प्रदेश (34), बिहार (22), महाराष्ट्र (19), आंध्रप्रदेश (18), तमिलनाडु (18), मध्य प्रदेश (16) और पश्चिम बंगाल (16) तथा मनोनीत खण्ड (12) वाले में सात राज्य ही अपेक्षित दो-तिहाई बहुमत पूरा कर सकते हैं। इस प्रकार यह न केवल अनुसूची VII के साथ पठित अनुच्छेद 246 द्वारा दी गई शक्तियों के विभाजन का उपहास है, बल्कि अनुच्छेद 368 द्वारा लागू सामान्य संशोधन प्रक्रिया को दूषित और कमजोर भी करता है।

(2) 1950—53 में पूर्वोक्त तीन अधिनियमनों को अधिनियमित करने में इस अनुच्छेद के प्रयोग से यह अनुभव होता है कि यह शक्ति, अस्थायी रूप से राष्ट्रव्यापी समस्या से निपटने के लिए नहीं दी गई बल्कि एक कामचलाऊ व्यवस्था के रूप में दी गई है, जिसका अंतिम उद्देश्य, उस विषय के संदर्भ में संवैधानिक संशोधन के माध्यम से राज्यों की विशिष्ट सक्षमता का स्थायी रूप से हनन करना है।

(3) पूर्वोक्त मामलों में राज्यों की परिषद द्वारा इस अनुच्छेद के अधीन पारित किसी भी संकल्प से संविधान निर्माताओं की इस प्रत्याशा की पुष्टि नहीं हुई कि संकल्प "राज्य सूची के किसी विषय के किसी पक्ष विशेष तक सीमित होना चाहिए न कि समूचे विषय को शामिल कर लिया जाए।"

(देखिए—बी० शिवराव का फ्रेमिंग आफ इण्डियाज कंस्टीटयूशनल खंड II पृष्ठ 261)।

(4) जो भी हो, अनुच्छेद 249 पिछले 31 वर्षों से निष्क्रिय ही रहा है। यह अनावश्यक है, विशेष रूप से तब, जबकि यही उद्देश्य अनुच्छेद 252 के अधीन बेहतर विकल्प का आश्रय लेकर प्राप्त किया जा सकता है।

सुझाव

जो व्यक्ति अनुच्छेद 249 हटाए जाने के पक्ष में नहीं है, उनमें से कुछ सुझाव देते हैं :—

1. इस अनुच्छेद में इस प्रकार संशोधन कर दिया जाए कि इसमें उल्लिखित "विषय" राज्य सूची की किसी प्रविष्टि के विशेष पहलू या वस्तु विशेष तक ही सीमित हो जिससे कि इस अनुच्छेद के अधीन संकल्प पारित करके संसद को, अस्थायी अवधि के लिए भी उस प्रविष्टि में परिवेष्टित समस्त क्षेत्र को अधिकार में लेने की आवश्यकता न पड़े।
2. अंतर्राज्यीय परिषद, जिसमें अन्य लोगों के साथ-साथ सभी 22 राज्यों के मुख्य मंत्री भी हों, से पूर्व परामर्श किए बिना, अनुच्छेद 249 के अधीन कोई संकल्प राज्यों की परिषद् में नहीं लाया जाना चाहिए।
3. अन्य सुझाव यह है कि उपर्युक्त (2) के अतिरिक्त, कम से कम आधी राज्य सरकारों और राज्य विधान मण्डलों की पूर्व सहमति अवश्य प्राप्त की जाए।
4. सर्वाधिक उदार सुझाव, जो कि वर्तमान उपबंध में सबसे कम व्यवधान डालेगा यह कि अनुच्छेद 249, में "उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों" और "यह आवश्यक और समीचीन है" शब्दों के बीच निम्नलिखित शब्द जोड़े जाने चाहिए :—

"राज्यों की कुल संख्या में से कम से कम आधे राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हों।"

प्रश्न : इस टिप्पणी में ऊपर दिए गए विचारों और सुझावों के संबंध में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

अनुबंध

अनुच्छेद 249

1. इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्यसभा ने उपस्थित और मत देने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद राज्य सूची में प्रगणित ऐसे विषय के संबंध में जो उस संकल्प में विनिर्दिष्ट है, विधि बनाए तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है, संसद के लिए उस विषय के संबंध में भारत के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाना विधिपूर्ण होगा।

2. खण्ड (1) के अधीन पारित संकल्प एक वर्ष से अधिक ऐसी अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए :

परन्तु यदि और जितनी बार ऐसे संकल्प को प्रवृत्त बनाए रखने का अनुमोदन करने वालों संकल्प खण्ड (1) में उपबंधित रीति से पारित हो जाता है तो और उतनी बार ऐसा संकल्प, उस तारीख से जिसको वह इस खण्ड के अधीन अन्यथा प्रवृत्त नहीं रहता, एक वर्ष की और अवधि तक प्रवृत्त रहेगा।

3. संसद द्वारा बनाई गई कोई विधि, जिसे संसद खण्ड (1) के अधीन संकल्प के पारित होने के अभाव में बनाने के लिए सक्षम नहीं होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने के पश्चात् छः मास की अवधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के सिवाय प्रभावी नहीं रहेगी जिन्हें उक्त अवधि की समाप्ति से पहले किया गया है या करने का लोप किया गया है।

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 7

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 252 से संबंधित प्रश्न

पृष्ठभूमि

यह अनुच्छेद आम तौर पर भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 103 के अनुरूप है। धारा 103 प्रांतिय विधान मण्डलों को परिसंघीय विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि को परिशोधित या निरस्त करने की शक्ति प्रदान करता है, जबकि अनुच्छेद 252 का खण्ड (2) राज्य विधान मण्डलों की इस शक्ति को वापस ले लेता है और यह व्यवस्था करता है कि अनुच्छेद 252 के खण्ड (1) के अधीन पारित किए गए अधिनियम को वही कार्यविधि अपना कर संशोधित या निरस्त किया जा सकता है। इस प्रकार खण्ड (2) अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन संसद द्वारा पारित की गई किसी विधि को संशोधित या निरस्त करने पर रोक लगाता है।

संविधान सभा में खण्ड (2) की जोरदार आलोचना की गई थी और इसके अधिनियमित हो जाने के बाद भी इसकी बुद्धिमान व्यक्तियों, राजनीतिक दलों और अन्य व्यक्तियों द्वारा लगातार आलोचना की जाती रही है। संविधान सभा के विचार विमर्श के दौरान के संथानम ने यह आशंका व्यक्त की थी कि खण्ड (2) "निष्प्रभावी बन सकता है क्योंकि कोई भी राज्य ऐसी कठिन स्थिति में नहीं पड़ना चाहेगा जिससे वह बिल्कुल बाहर न निकल सकता हो। मौजूदा स्थिति में वे, यह शक्ति संसद को सौंप सकते हैं, परन्तु एक बार अधिनियम पारित हो जाने पर, राज्य वस्तुतः शक्तिहीन हो जाएगा। भले ही वह विषय ऐसा हो जिसके संबंध में उसे शक्ति प्राप्त हो। यह वास्तव में असंतोष-जनक बात है"। सीरवाई अन्य आलोचकों की तरह टिप्पणी करते हैं– "(भारत सरकार अधिनियम 1935 की मूल धारा 103 से) इस प्रकार हट जाने की बात समझ में नहीं आती, क्योंकि यदि राज्य विधान मण्डल की शक्ति स्थायी रूप से छीन ली जाती है, तो अनुच्छेद की उपयोगिता समाप्त हो जाएगी)" (निक्षिप्त वाक्यांश से जोड़ा गया है)"

दूसरी ओर, के० संथानम ने जिन आशंकाओं की भविष्यवाणी की थी वे सत्य निकली हैं, क्योंकि अनुच्छेद 252 के खण्ड (1) में निर्धारित कार्यविधि का अनुपालन करके एक बार कोई विधि पारित कर दिए जाने पर केन्द्रीय विधान मण्डल भी ऐसी विधि को संशोधित या परि-शोधित करने में कठिनाई अनुभव करता है। यह कठिनाई इस बात से उत्पन्न होती है कि प्रस्तावित संशोधन के लिए संबंधित राज्य विधान मण्डलों से मांगा गया अनुसमर्थन विचार या तो प्राप्त नहीं होते या उन पर ऐसी प्रतिबंधित और प्रतिकूल शर्तें लगाई गई होती हैं कि उसे खण्ड (1) के अधीन "आवश्यक सहमति" नहीं समझा जा सकता। सम्पदा शुल्क अधिनियम 1953 को "कृषि भूमि" पर लागू करने के संबंध में और शहरी कर अधिकतम सीमा 1976 को संशोधित करने के अनुभव की गई कठिनाई की ओर संकेत किया गया है। इसलिए अनुच्छेद 252 के उपबंधों को लागू करने में सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित समाधान सुझाए गए हैं :—

सुझाव

1. अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन विधेयक तैयार करने और राज्य विधान मण्डलों के संकल्प/विचार प्राप्त करने से पहले अंतर्राज्यीय परिषद से परामर्श किया जाना चाहिए।

2. खण्ड (2) हटा देना चाहिए और खण्ड (1) के अधीन पारित अधिनियम को संशोधित या निरस्त करने की राज्यों की शक्ति, भारत सरकार अधिनियम 1935 की व्यवस्था के अनुरूप बहाल कर दी जानी चाहिए किंतु नीचे दिए अनुसार एक परन्तुक जोड़ देना चाहिए:—

"परन्तु जब राज्य विधान मण्डल द्वारा इस प्रकार की संशोधन-कारी या निरस्तकारी विधि बना दी जाए, तो जब तक इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने के बाद उनकी सहमति प्राप्त न हो जाए तब ऐसी विधि लागू नहीं होगी।"

3. सूची II के किसी विषय के संबंध में सहमति द्वारा और अनुच्छेद 252(1) के अधीन स्वीकृति प्राप्त करके संसद द्वारा पारित कोई विधि स्थायी अवधि के लिए नहीं बल्कि एक निर्दिष्ट अवधि, जैसा कि 3 वर्ष के लिए होनी चाहिए और इस पर आवधिक समीक्षा और पुर्नअधिनियमन, यदि आवश्यक हो, की शर्तें लगाई जानी चाहिए और ये पुर्नअधिनियमन अनुच्छेद 252 के खण्ड (1) में निर्धारित उसी कार्यविधि का अनुपालन करके मूल अवधि से अधिक के लिए नहीं होगा।

प्रश्न। इस टिप्पणी में ऊपर दिए गए विचारों और सुझावों के संबंध में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

अनुबंध

अनुच्छेद 252

1. यदि किन्हीं दो या अधिक राज्यों के विधान मण्डलों को यह वांछनीय प्रतीत होता है कि उन विषयों में से जिनके संबंध में संसद को, अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 250 में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, राज्यों के लिए विधि बनाने की शक्ति नहीं है, किसी विषय का विनियमन ऐसे राज्यों में संसद विधि द्वारा करे और यदि उन राज्यों के विधान-मण्डलों के सभी सदन उस आशय के संकल्प पारित करते हैं तो उस विषय का तदनुसार विनियमन करने के लिए कोई अधिनियम पारित करना, संसद के लिए विधिपूर्ण होगा। पारित अधिनियम ऐसे राज्यों को लागू होगा और ऐसे अन्य राज्य को लागू होगा, जो तत्पश्चात् अपने विधान-मण्डल के सदन द्वारा या जहां दो सदन हैं वहां दोनों सदनों में से प्रत्येक सदन द्वारा, इस निमित्त पारित संकल्प द्वारा, उसको अंगीकार कर लेता है।

2. संसद द्वारा इस प्रकार पारित किसी अधिनियमन का संशोधन या निरसन इस रीति से पारित या अंगीकृत संसद के अधिनियम द्वारा किया जा सकेगा, किंतु उसका उस राज्य के संबंध में संशोधन या निरसन, जिसको वह लागू होता है, उस राज्य के विधान मंडल के अधिनियम द्वारा नहीं किया जाएगा।

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 8

भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के संबंध में विविध प्रश्न

प्रश्न—1. अन्य संघों में ना पाए जाने वाली अनेक विशिष्ट विशेषताओं के बावजूद क्या हमारे संविधान को "संघीय" कहा जा सकता है ?

प्रश्न—2. आपकी राय में संविधान के कौन से उपबंध/विशेषताएं देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए और एकता और अखण्डता सुनि-श्चित करने के लिए मूलभूत हैं ?

प्रश्न—3. (i) क्या संविधान के अनुच्छेद 256, 257, 339 (2), 354, 355, 356, 357 तथा 365 से स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से उत्पन्न संघ और राज्यों के दायित्व देश की स्वतंत्रता, एकता और अखण्डता की रक्षा करने के लिए आवश्यक और उचित है ?

(ii) क्या इनमें से किसी उपबंध का आसानी से दुरूपयोग किया जा सकता है ? यदि हां, तो क्या आप इनका संभावित दुरूपयोग कम से कम करने के लिए कोई संवैधानिक या गैर संवैधानिक सुरक्षा उपाय सुझाएंगे ?

प्रश्न—4. यह आलोचना की गई है कि सूची I की कुछ प्रविष्टियों में तथाकथित "राष्ट्रीय हित" या "लोकहित" की घोषणा के नाम पर पिछले कई वर्षों से संघीय संसद ने अनुसूची 7 की सूची 2 की संबद्ध प्रविष्टियों को अर्थहीन कर दिया है और इस प्रकार अनुचित रूप से राज्य के विधायी क्षेत्र का अतिलंघन किया है।

क्या आप सहमत हैं ? यदि हां, तो क्या आप ऐसे अति-लंघनों का कोई उदाहरण दे सकते है ? क्या आपके विचार से ऐसी घोषणाएं निरंतर स्वरूप की होनी चाहिएं या निश्चित अव-धियों के लिए जिनकी आवधिक समीक्षा की जा सके ?

प्रश्न—5. (i) "राज्यों के बीच समन्वय" शीर्षक वाला अनुच्छेद 263 राष्ट्रपति को एक अंतर्राज्यीय परिषद स्थापित करने का अधिकार देता हैं, जिसके निम्नलिखित कार्य होंगे :—

(क) ऐसे विवादों का पता लगाना और उन पर सलाह देना जो राज्यों के बीच उत्पन्न हुए हों, अथवा

(ख) ऐसे विषयों का अन्वेषण करना और उन पर चर्चा करना जिनमें कुछ राज्यों का साझा हित हो, अथवा

(ग) ऐसे किसी विषय पर और विशेष रूप से उस विषय के संबंध में नीति और कार्रवाई में समन्वय के लिए सिफारिशें करना।"

7—376 M. of HA/ND/87

127329

यह इसके कर्तव्य, संगठन और कार्यविधि निर्धारित करने का अधिकार भी राष्ट्रपति को सौंपता है। ऐसी अंतर्राज्य परिषद स्थापित करने की आवश्यकता इसके संगठन, विशिष्ठ भूमिका और प्राधिकार के संबंध में, आपके क्या विचार/सुझाव हैं ?

(ii) क्या अनुच्छेद 263 के उपबंध राज्यों के बीच या किसी राज्य अथवा राज्यों तथा/अथवा संघ के बीच उत्पन्न हुए किसी विवाद की जांच करने और उस पर सलाह देने के लिए पर्याप्त है ? "दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 263 के अनुसरण में स्थापित की गई अंतर्राज्यीय परिषद्, किसी ऐसे विभाग की जांच करने और उस पर सलाह देने के लिए सक्षम होनी चाहिए जो अन्यथा अनुच्छेद 131 के कारण उच्चतम न्यायालय की सक्षमता के अंतर्गत आता हो ? क्या ऐसी परिस्थिति में, अंतर्राज्य परिषद और उच्चतम न्यायालय, यदि उसके सामने अनुच्छेद 131 के अधीन कोई मुकद्मा हो, के कार्य एक दूसरे पर अतिव्यापन और एक दूसरे के विरोधी नहीं होंगे ?

प्रश्न—6. केशव नन्द भारती के बाद में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद, अनुच्छेद 368 के अधीन अपने संशोधनकारी अधिकारी का प्रयोग करके संविधान की बुनियादी विशेषताओं/ढांचे में परिवर्तन करने या बदलने के लिए सक्षम नहीं है ?

आपकी राय में ऐसी विशेषताओं का पता लगाने के लिए क्या मानदण्ड होना चाहिए ? क्या आप ऐसी विशेषताओं के रूप में निम्नलिखित वर्गीकरण करेंगे :—

1. राष्ट्र की एकता और अखण्डता ।
2. प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणतंत्रीय संरचना ।
3. संविधान के संघीय या परिसंघीय घटक ।
4. न्यायिक समीक्षा ।
5. विधि का नियम ।
6. संविधान की सर्वोच्चता ।
7. संविधान के आमुख में निर्दिष्ट उद्देश्य ।
8. धर्म निरपेक्षता ।
9. व्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा ।
10. लोकहितकारी राज्य बनाने के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा ।
11. स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों का सिद्धांत ।
12. शक्तियों के विभाजन का सिद्धान्त ।
13. सरकार की संसदीय प्रणाली ।

प्रश्न—7 सातवीं अनुसूची और संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन आप विधायी शक्तियों के वितरण में कौन से परिवर्तन करने के सुझाव देंगे ?

प्रश्न—8. क्या आप सामान्य रूप से संविधान के परिचालन में किसी ऐसे विशेष उपबंध या दोष बता सकते हैं जिसने संघ और राज्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न किया हो ? ऐसे संघर्ष को कम से कम करने या समाप्त करने के लिए आपके क्या सुझाव या समाधान हैं, यदि कोई हों ?

प्रश्न—9. संविधान के अनुच्छेद 370 पर आपके क्या विचार हैं ?

प्रश्न—10. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि बिक्री कर समाप्त कर दिया जाए और उसकी बजाय राज्यों के परामर्श से संघ द्वारा अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाया जाए तथा स्वयं राज्यों द्वारा एकत्र किया जाए ?

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 9

1. डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में यह स्पष्ट किया था कि अनुच्छेद 356 के अधीन दी गई शक्ति, अंतिम उपाय के रूप में थी, जिसका प्रयोग अन्य सभी निवारक उपायों के असफल होने पर बहुत ही सावधानी के साथ किया जाना चाहिए । उन्होंने कुछ विकल्पों की ओर भी संकेत किया, जिनका प्रयोग इस विशिष्ट शक्ति का अवलंबन लेने से पूर्व किया जाना चाहिए । उन्होंने कहा :

> "......... मैं उन विचारों से सहमत हूं कि ऐसे अनुच्छेदों को कभी भी प्रयोग में नहीं लाया जाएगा और ये निष्क्रिय ही रहेंगे । यदि किसी तरह इनका प्रयोग किया जाता है तो आशा करता हूं कि राष्ट्रपति, जिन्हें ये शक्तियां प्रदान की जाती हैं, प्रांतों के प्रशासन को वास्तव में निलम्बित करने से पूर्व उचित सावधानी बरतेंगे । मैं आशा करता हूं कि वे सर्वप्रथम गलती करने वाले उस प्रांत को केवल चेतावनी ही देंगे, जहां कार्य उस तरह नहीं हो रहे हों, जैसा कि संविधान में अभीष्ट था । यदि ये चेतावनी असफल हो जाती है, तो वे दूसरा काम यह करेंगे कि चुनाओं का आदेश देंगे और प्रांत की जनता को स्वयं ही मामला निपटाने की अनुमति देंगे । इन दोनों उपायों के असफल होने पर ही उन्हें अनुच्छेद के उपाय का सहारा लेना चाहिए ।"

डॉ० भीमराव अम्बेडकर द्वारा ऊपर सुझाई गई प्रक्रिया के अनुरूप जनता सरकार ने 1977 में किस सीमा तक अनुच्छेद 365 का प्रयोग किया था ? इस संदर्भ में यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि राज्य विधान सभा को भंग करने की शक्ति अनुच्छेद 174 के अधीन राज्यपाल को दी जाती है, और राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति शासन लागू होने के पश्चात ही कर सकते हैं, पहले नहीं ।

2. राजस्थान के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय (न्यायधीश पी० एन० भगवती) का विचार है ....यदि किसी राज्य में सत्तारूढ़ दल की लोकसभा के चुनाव में हार होती है तो केवल, इसी कारण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती । हमारे संविधान के अधीन संघीय ढांचे में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जाता है कि यदि राज्य में एक दल सत्ता में हो, तो केन्द्र में कोई दूसरा दल सत्ता में हो सकता है ।" क्या आप इस विचार से सहमत हैं ?

लोकसभा चुनावों में किसी राज्य में सत्तारूढ़ दल की भारी हार होने के एकमात्र आधार पर मंत्रिमण्डल को बर्खास्त करने और किसी राज्य की विधानसभा को भंग करने के प्रयोजन से अनुच्छेद 356 का प्रयोग, क्या इस कथन को ध्यान में रखते हुए कोरी वैधता से भिन्न संवैधानिक औचित्य के अनुसार होगा ?

3. आयोग को दो भिन्न सुझाव दिए गए हैं । एक सुझाव जिसे डा० भीमराव अम्बेडकर के वक्तव्य से लिए गए सारांश से समर्थन प्राप्त होता है, यह है कि यदि सभा में कोई मंत्रिमण्डल पराजित हो जाता है और त्यागपत्र दे देता है और सभा का समर्थन प्राप्त, वैकल्पिक मंत्रिमण्डल गठित करने के लिए राज्यपाल के सभी प्रयास असफल हो जाते हैं तो राज्यपाल को सीधे ही राष्ट्रपति शासन लागू करने की रिपोर्ट और सिफारिश नहीं करनी चाहिए बल्कि उसे दूसरा विकल्प भी अपनाना चाहिए, अर्थात पराजित मुख्यमंत्री की सलाह के बिना स्वनिर्णय का प्रयोग करके, अभिरक्षक मंत्रिमण्डल नियुक्त करते हुए सभा को भंग कर देना चाहिए और राजनैतिक गतिरोध के निराकरण का कार्य निर्वाचन मण्डल पर छोड़ देना चाहिए ।

आयोग को जो प्रतिकूल सुझाव दिया गया, वह यह है कि पूर्वोक्त स्थिति में राज्यपाल को पराजित मुख्यमंत्री या अपने विवेकाधिकार से सभा को भंग नहीं करना चाहिए बल्कि तत्काल ही राष्ट्रपति शासन

लागू करने की सिफारिश करनी चाहिए और यह राष्ट्रपति (अर्थात केन्द्र सरकार) के लिए छोड़ देना चाहिए कि वह सभा को अधिकतम दो महीने की अवधि के लिए निलम्बित अवस्था में रखे या इससे पूर्व ही भंग कर दे ।

इन भिन्न सुझावों के संदर्भ में आपके क्या विचार/टिप्पणियां हैं ?

4. एक यह सुझाव भी दिया गया है कि अनुच्छेद 356 के अधीन शक्तियों के दुरूपयोग से बचने और इसके प्रयोग पर संसद के वास्तविक और प्रभावी नियंत्रण के लिए अनुच्छेद 352 के (7) और (8) खण्डों में निहित प्रावधानों की भांति, अनुच्छेद 356 के प्रावधान भी प्रारूप किए जाएं । इस सुझाव के संदर्भ में आपकी क्या प्रतिक्रिया और टिप्पणी है ?

5. ऐसा सुझाव दिया गया है कि अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति के दुरूपयोग के प्रतिरोध में सुरक्षा उपाय के रूप में और न्यायिक समीक्षा के प्रतिविधान को अर्थवान बनाने के लिए जिन आधारों पर राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई करते हैं, उन महत्वपूर्ण तथ्यों और आधारों का राज्यपाल की रिपोर्ट में अवश्य उल्लेख किया जाए और इसे अनुच्छेद 356 (1) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा का अभिन्न अंग भी माना जाना चाहिए । आगे यह भी सुझाव दिया जाता है कि राज्यपाल की इस प्रकार की स्वतः पूर्ण रिपोर्ट और उद्घोषणा जारी होने के दो माह के भीतर, प्रस्तुत की जानी चाहिए और तब इसकी सलाह/टिप्पणियों के साथ केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा संसद में रखी जानी चाहिए । इस सुझाव के संदर्भ में आपकी क्या टिप्पणी है ?

अतिरिक्त प्रश्न

1. क्या दल के आंतरिक विवाद या विसम्मतियों के कारण राज्य में मंत्रिमण्डल के लिए उत्पन्न संगठन का निराकरण करने या कुप्रशासन को सुधारने में अनुच्छेद 356 के प्रावधानों का विधिसम्मत रूप से प्रयोग किया जा सकता है ?

2. क्या अनुच्छेद 355 का अंतिम खण्ड केन्द्र को अनुच्छेद 356 के अधीन नियत कार्रवाई के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्रवाईयों की अनुमति देता है ? अर्थात क्या केन्द्र सरकार भ्रष्टाचार भाई-भतीजावाद या शक्ति के दुरूपयोग का आरोप लगाकर राज्य के मुख्यमंत्री या मंत्री के विरूद्ध जांच आयोग का गठन कर सकती है ?

3. कुछ शैक्षिक, विधि और राजनैतिक क्षेत्रों में अनुच्छेद 356 के खण्ड (3) को इस प्रकार पढ़ा गया है जैसे कि इसमें विशिष्ट रूप से यह अपेक्षित हो कि किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के असफल होने पर राष्ट्रपति की उद्घोषणा को दो माह के भीतर ही संसद के दोनों सदनों के सम्मुख अनुमोदन या अनुसमर्थन के लिए अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए । क्या आप इस व्याख्या से सहमत है ?

4. कई मामलों में अनुच्छेद 356 (i) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा, निर्धारित दो माह की अवधि में, संसद के सम्मुख प्रस्तुत ही नहीं की गई । विभिन्न तरीकों से इसे छोड़ दिया गया :

   (i) राष्ट्रपति शासन लागू होने के दो माह के भीतर ही संबंधित राज्य की विधान सभा को भंग करके पश्चिम बंगाल (1970) मैसूर (1971) और गुजरात (1974) के मामले में यही हुआ था । इसी प्रकार 1977 में 9 राज्यों की विधान सभाओं को भंग करने की उद्घोषणा संसद में कभी भी प्रस्तुत नहीं की गई ।

   (ii) खण्ड (3) में नियत दो माह की अवधि पूरी होने से पूर्व पहली उद्घोषणा को निरस्त करते हुए उसे पुनः जारी करके उड़ीसा (1971) और बिहार (1972) के मामलों में यही पद्धति अपनाई गई थी ।

   यदि पूर्ववर्ती प्रश्न के लिए आपका उत्तर सकारात्मक है, तो क्या उक्त स्थितियों में दो माह की नियत अवधि में उद्घोषणा को संसद के दोनों सदनों के सम्मुख प्रस्तुत न कर पाने की असफलता खण्ड (3) के उल्लंघन या परिवंचना के बराबर नहीं ?

5. यदि अनुच्छेद 356 के खण्ड (3) में प्रदत्त संसद के नियंत्रण के शक्ति के निरंकुश या अनुचित प्रयोग के विरूद्ध सुरक्षा उपाय का संचालन अभिप्रेत था, तो इस सुरक्षा उपाय की उन रिक्तियों को भरने या अपूर्णताओं जिनको राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ (ए आई आर 1977 एस सी 1361) के वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रकट किया गया है को दूर करने के लिए आप किस हल का सुझाव देंगे ? (कृपया अनुबंध 'क' देखें)

6. ऐसा सुझाव भी दिया गया है कि संविधान के वर्तमान ढांचे के भीतर भी राष्ट्रपति न्यायोचित रूप से इस बात पर जोर दे सकते है कि वे कोई अप्रत्यावर्ती कार्रवाई (सभा को भंग करने सहित) तब तक नहीं करेंगे जब तक कि उन्हें यह विश्वास न हो जाये कि न केवल लोकसभा में बल्कि राज्यसभा में भी इस कार्रवाई को बहुमत का समर्थन प्राप्त है और इस प्रकार कार्य करने में वे लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के किसी प्रतिमान के विरूद्ध कार्य नहीं कर रहे है ऐसी स्थिति में वे यह विश्वास दिलाने के दृष्टिकोण से कार्य कर रहे होंगे कि उनके पद को इसकी अनुमति नहीं दी जाती है कि उसका प्रयोग संसद के प्रत्येक सदन का अनुमोदन प्राप्त करने की संवैधानिक अपेक्षा की परिवंचना करके या उसे छोड़ कर किया जाए इस सुझाव के संदर्भ में आपकी क्या राय है ?

7. यदि आप पिछले प्रश्न में बताये गये सुझाव से सहमत नहीं है तो कुछ क्षेत्रों में विचारार्थ सामने रखे गये इस वैकल्पिक सुझाव के संदर्भ में आपकी क्या राय है कि अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति के दुरूपयोग को रोकने या उस से बचने के लिए संवैधानिक संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को विवेकाधिकार प्रदान किया जाये ?

अनुबंध-'क'

राजस्थान से वाद के सारांश

दो माह पूरे होने से पहले संसद के किसी भी एक सदन के अनुमोदन की उद्घोषणा की अवधि के साथ कोई संवैधानिक संगतता नहीं है और ऐसा अनुमोदन न करने के बावजूद उद्घोषणा दो माह की अवधि के लिए पूर्णतया बलशील (और प्रभावी) रहेगी । (कोष्ठकों में शब्दों के निक्षेप चिन्ह और बलाघात जोड़े गए हैं)

अनुपूरक प्रश्नमाला सं० 10

कृषि आय पर कराधान के संबंधित अनुपूरक प्रश्नमाला

1. संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II राज्य सूची की 46वीं प्रविष्टि में "कृषि आय पर कर" विषय दर्शाया गया है। ऐसी धारणा व्यक्त की गई है कि अपना राजस्व बढ़ाने के लिए राज्यों ने कर के इस स्रोत का पर्याप्त रूप से उपयोग नहीं किया है ।

क्या आपके राज्य में कृषि आय पर कोई प्रत्यक्ष कर लगाया जाता है ? यदि ऐसा है तो कृपया निम्नलिखित के बारे में सूचना दें :

(क) यह कब से लगाया जा रहा है ?

(ख) कर-आधार और कर की सामान्य दर ।

(ग) पिछले पांच वर्षों के दौरान (1980-85) प्रतिफल और राज्य के कुल कर राजस्व में से इसकी प्रतिशतता ।

(घ) समय-समय पर दी जाने वाली छूटे रियायतें, अनुतोष इत्यादि

(ङ) कर के प्रशासन में अनुभव की जा रही गम्भीर कठिनाइयां यदि हो ।

(च) कर अपवंचन के प्राक्कलन जो कि उपलब्ध है ।

(छ) आपके राज्य में कृषि आय के कराधान से संबंधित कोई अन्य सूचना ।

2. यदि अभी आपके राज्य में कृषि आय पर कोई प्रत्यक्ष कर नहीं लगाया जाता है तो कृपया निम्नलिखित के बारे में सूचना दें :

(i) क्या यह कभी किसी रूप में लगाया गया था और फिर छोड़ दिया गया ? यदि ऐसा हो तो,

(क) इसके लगाये जाने की अवधि

(ख) प्रतिफल का स्तर (कुल राशि और राज्य के कुल कर राजस्व में इसकी प्रतिशतता) और

(ग) यह कर हटाये जाने के कारण ?

(ii) यदि आपके राज्य में यह कर किसी भी समय नहीं लगाया गया तो (क) क्या यह कर लगाने का कभी विचार किया गया था यदि हां, तो कब और कर न लगाने के मुख्य कारण ?

(ख) यदि यह कर लगाने का अभी तक विचार नहीं किया गया हो तो इस संबंध में राज्य सरकार के क्या विचार हैं ?

3. क्या कृषि क्षेत्र पर आपके राज्य में कोई दूसरा प्रत्यक्ष कर लगाया जा रहा है या लगाया गया था ? यदि ऐसा हो, तो इन करों के स्वरूप, आधार, उन से प्राप्त आय का संक्षिप्त विवरण (राज्य की कुल कर राजस्व प्राप्ति में इसकी प्रतिशतता के रूप में भी) और छूट/अनुतोष इत्यादि जो कि इनके संदर्भ में समय-समय पर दिये गये या इनको समाप्त करने के कारण यदि इसे बंद कर दिया हो ।

4. ऐसा विशेष सुझाव दिया गया है कि कृषि आय पर कर विषय को राज्य से संघ सूची में स्थानांतरित करने के लिए संविधान में संशोधन कर दिया जाये और ऐसे कर से प्राप्त होने वाली निवल आय राज्यों को प्राप्त होनी चाहिए । ऐसे संशोधन से राज्यों की कृषि आय पर कर लगाने से उत्पन्न विरोध कर सफलता प्राप्त करने में सहायता मिलेगी राज्यों को अधिक राजस्व की प्राप्ति होगी और इस क्षेत्र में कराधान का एक दृष्टिकोण अपनाने में भी सहायक होंगे ।
उक्त प्रस्ताव पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

यदि आप सहमत नहीं है तो कृपया कारण बतायें ?

5. यदि आप उक्त प्रश्न 4 में निहित प्रस्ताव के पक्ष में हैं, तो कृपया निम्नलिखित पर विचार व्यक्त करें :

(i) कर का वास्तविक आधार क्या होना चाहिए ?

(ii) क्या कर से होने वाली आय संविधान के अनुच्छेद 268 या 269 के अधीन की गई व्यवस्था के अनुसार राज्यों को दी जानी चाहिये या नहीं ?
(कृपया कारण भी बतायें)

(iii) क्या कर लगाने में राज्यों से (क) प्रारम्भ में और (ख) कर की दरों मे परिवर्तन करने की बाद की अवस्थाओं आदि में राज्यों से परामर्श किया जाना चाहिए या नहीं ? यदि ऐसा हो तो ऐसे परामर्श के लिए उचित फोरम क्या होगा ?

6. कृपया संक्षिप्त टिप्पणी दे जिसमें ऐसे विषय का उल्लेख किया जाए जिसे आपके विचार से केन्द्र राज्य संबंध आयोग को ध्यान में रखना चाहिए लेकिन उक्त प्रश्नों में उसका उल्लेख न किया गया हो। इस टिप्पणी में अन्य बातों के साथ-साथ आपके राज्य में कृषि आय/अर्थव्यवस्था की संरचना और इसमें 1960 से अब तक किये गये परिवर्तनों का भी उल्लेख किया जाए ।

टिप्पणी : राज्य सरकारों तथा राजनैतिक दलों से प्राप्त प्रश्नमाला के उत्तरों को जिन्हें आगामी पृष्ठों में पुनः प्रस्तुत किया गया है पैराग्राफों की संख्या आयोग द्वारा जारी प्रश्नमाला में दी गई प्रश्न संख्या के अनुरूप है ।

आंध्र प्रदेश सरकार

(क) प्रश्नमाला के उत्तर
(ख) ज्ञापन

आंध्र प्रदेश

प्रश्नमाला के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 हमारे देश को राज्यों का संघ बताया गया है यह एक संघीय संविधान है । संविधान के उपबंधों और संविधान के कार्यचालन से यह पता चला है कि संघ सत्ता के केन्द्रीयकरण के प्रति पूर्वाग्रह रखता है ।

1.2 प्रश्न में उल्लिखित अनुच्छेद संविधान में इसलिए रखे गये हैं ताकि संघ और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण प्रशासनिक संबंध सुनिश्चित किये जा सके । फिर भी, अनुच्छेद 356 की बहुत आलोचना हुई है। हम राज्यपाल का पद समाप्त करने की सिफारिश करते हु, क्योंकि हमने देखा है कि व्यावहारिक तौर पर वस्तुतः राज्यपाल, राज्य में लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बाधा पहुंचाने के लिए केन्द्रीय कार्यपालिका के हाथ का सुविधाजनक और आसानी से इस्तेमाल किया जा सकने वाला हथियार है । राज्यों की आवश्यकताओं की समीक्षा की जानी चाहिए जिन्हें कल्याण संबंधी भारी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है और इन बचन-बद्धताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त कार्यसंसाधन उपलब्ध किये जाने चाहिये । राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता का राष्ट्रीय हित में स्वागत किया जाना चाहिए । स्वायत्तता संबंधी खण्ड का शक्तियों के निर्बंधन के रूप में गलत अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए । इसे कल्याण संबंधी दायित्वों को निभाने के लिए तर्कपूर्ण सहगामी उपाय समझा जाना चाहिए ।

1.3 भारत जैसे विशाल और विविध जातीय देश में प्रादेशिक और कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण नितान्त आवश्यक है । इन विषयों पर अनुकूलतम हल ढूंढने के लिए कोई मात्रापरक विश्लेषण नहीं किया जा सकता ।

1.4 नहीं । आधुनिक देशों के किसी भी संघीय संविधान में राष्ट्रीय और प्रान्तीय सरकारों को समन्वित नहीं किया गया ।

1.5 हमारा संविधान समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए मूलतः काफी ठोस और लचीला है यदि संविधान ठीक भावना और इरादे से काम करे तो राज्यों और संघ के बीच संघर्ष के अवसर उत्पन्न नहीं होंगे । अनुच्छेद 263 के अधीन कार्रवाई करके संघ-राज्य संबंधों की नाजुक समस्याओं का बहुत अच्छा समाधान निकाला जा सकता है । आवश्यकता आपस में परामर्श करने और अविश्वास दूर करने की है। विशेष रूप से दूरगामी महत्व के संवैधानिक संशोधन राज्य के नेताओं के साथ विचार-विमर्श की प्रक्रिया के माध्यम से किये जाने चाहिए । ऐसा करना हमारे मूल संविधान की परम्परा के अनुरूप होगा, जिसमें संविधान सभा के सदस्य राज्यों के नेताओं से भी प्राप्त किये गये थे ।

1.6 समूचे देश में एकता और अखण्डता सुनिश्चित करना नितान्त आवश्यक है । अनुच्छेद 352, 353, 355 और 356 में आपात स्थिति संबंधी उपबंधों में इस समस्या की ओर ध्यान दिया गया है, फिर भी, हम यह बात दोहराना चाहेंगे कि क्या अनुच्छेद 356 के अधीन आपात स्थिति की घोषणा करने के लिए हम राज्यपाल को रिपोर्ट पर निर्भर करना आवश्यक नहीं समझते । वस्तुतः, हम सुझाव देते हैं कि राज्यपाल का पद समाप्त किया जाए ।

1.7 अनुच्छेद 256 और 257 संसद् द्वारा बनाई गई विधियों के अनुपालन के लिए केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा राज्य सरकारों को निर्देश देने से संबंधित हैं । इन अनुच्छेदों को बहुत कम लागू किया गया है और इन उपबंधों के कारण उत्पन्न हुई किसी विसंगति की सूचना नहीं मिली है। अनुच्छेद 365 निर्देशों को लागू कराने में राष्ट्रपति को संवैधानिक समर्थन प्रदान करता है । यह एक दाण्डिक उपबंध है और पहले के उपबंधों का अनिवार्य भाग है । इन सभी विषयों में महत्वपूर्ण बात यह है कि इन उपबंधों का दुरूपयोग या प्रतिकूल तरीके से इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए । स्वयं उपबंधों में कोई अन्तर्निहित बुराई नहीं है । जहां तक संविधान के अनुच्छेद 356 का प्रश्न है, यह हमारी सुविचारित राय है कि किसी विधान मंडल को 6 मास से अधिक अवधि के लिए सजीव रख कर निलम्बित करना वांछनीय नहीं है ।

1.8 लोक और राष्ट्रीय हित में सीमाओं का पुर्नगठन जरूरी हो सकता है । राज्यों की सीमाओं में कोई भी परिवर्तन, प्रभावित क्षेत्रों के लोगों के विचार जानने के बाद, ऐसे राज्यों से परामर्श करके ही किया जाना चाहिए ।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की योजना शुरू से ही संघ के पक्ष में रही है । संविधान की सातवीं अनुसूची में 3 सूचियां निर्धारित की गई हैं, अर्थात् संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची । अनुच्छेद 248 और 249 के बल पर केन्द्रीय संसद् इन सूचियों में निहित सामान्य कार्यक्षेत्र से बाहर अपनी विधायी शक्तियों को बढ़ा सकती है । शक्तियों के वितरण की न्यायपूर्ण योजना में राज्य विधान मण्डलों को अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के बारे में स्पष्ट शक्तियां सौंपेगी । हमारे संविधान में ऐसी योजना नहीं है। राज्य सूची में 66 मदें हैं, परन्तु उनमें से कुछ पर प्रतिबंध लागू है जो संघ सूची और समवर्ती सूची में उनके संबंध में किये गये प्रावधान से उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, संसद् को सूची I (संघ सूची) की प्रविष्टि सं० 7 और 52, 53 और 54 तथा 56 के अधीन उद्योगों, खानों तथा खनिजों और पानी के संबंध में विधान बनाने का अधिकार दिया गया है जो कि राज्य सूची में क्रमशः प्रविष्टि संख्या 24, 23 और 17 के अन्तर्गत आते है । इसी प्रकार समवर्ती सूची में प्रविष्टि सं० 20, 22, 23 तथा 34 जैसी प्रविष्टियां हैं जो अनुच्छेद 251 के साथ पढ़े जाने पर आर्थिक और सामाजिक आयोजन, व्यापार संघों, औद्योगिक श्रमविवादों, व्यापार और वाणिज्य तथा आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, पूर्ति और वितरण तथा मूल्य नियंत्रण के संबंध में राज्यों के अधिकार को सीमित करते हैं। प्रविष्टि संख्या 52, 53 और 54 में आई लोकहित अभिव्यक्ति ने राज्य सूची में व्यावहारिक रूप से तद्नुरूप प्रविष्टियों को वस्तुतः निष्प्रभावी बना दिया है। सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची की कुछ महत्वपूर्ण प्रविष्टियां इस प्रकार हैं :

(क) प्रविष्टि 20, आर्थिक और सामाजिक योजना;

(ख) प्रविष्टि 17(क), वन; और

(ग) प्रविष्टि 34, कीमत नियंत्रण;

(घ) प्रविष्टि 33(ख), व्यापार और वाणिज्य तथा खाद्य पदार्थ जिनके अन्तर्गत खाद्य तिलहन और तेल है, का उत्पादन, प्रदाय और वितरण;

(ङ) प्रविष्टि 38, विद्युत;

(च) प्रविष्टि 25, सूची 1 की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के उपबंधों के अधीन रहते हुए शिक्षा जिसके अन्तर्गत तकनीकी शिक्षा, आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय है, श्रमिकों को व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण;

8—376 M. of HA/ND/87

(छ) सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण ।

सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण इनमें से अधिकांश प्रविष्टियों में राज्यों के बल पर संघ की शक्तियों को बल दिया है। आंध्र प्रदेश राज्य दो अप्रिय बातों को प्रकाश में लाना चाहेगा। आंध्र प्रदेश सरकार ने सड़कें बनाने और बिजली की लाइन बिछाने के लिए अपेक्षित सीमा तक वन काटने के लिए भारत सरकार से अनुरोध किया था। इनमें से एक बात तेलगू गंगा परियोजना से संबंधित थी। संघ सरकार ने राज्य सरकार को ऐसे समझा है जैसे कि वह वनों को खाली करने का काम करने वाली कोई प्राइवेट पार्टी हो। ऐसा अनुच्छेद 317(ए) के अधीन वनों से संबंधित केन्द्रीय विधान के कारण सम्भव हुआ है।

समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 का राज्य सरकार की कमजोर वर्गों को दो रुपये प्रति किलो की दर से चावल देने की योजना को असफल बनाने के लिए संघ सरकार ने मनमाने ढंग से प्रयोग किया है।

2.2 सबसे पहले यह अवश्य सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि राज्य सूचियों पर कानून बनाने के लिए संसद् को एक मानदण्ड तैयार करना चाहिए। जब कभी संघ राज्य सूची के किसी विषय पर कोई विधान बनाए तो जहां तक व्यावहारिक हो, संघ को राज्यों से परामर्श अवश्य करना चाहिए। इन सुरक्षा उपायों से यह सुनिश्चित हो जाएगा कि संघ और राज्यों की अनुपूरक विधायी शक्तियों का एक दूसरे के अनुरूप प्रयोग किया जाता है। समवर्ती विधान के संबंध में यह अवश्य सुनिश्चित किया जाए कि "लोकहित" और "राष्ट्रीय हित" जैसे शब्दों का राज्यों के क्षेत्र का अतिलंघन करने के लिए कवच के रूप में प्रयोग न किया जाए। संभवतया प्रसारण, दूरदर्शन आदि जैसी प्रविष्टियां समवर्ती सूची में शामिल की जानी चाहिए।

2.3 राज्य सरकारों के साथ पूर्व परामर्श करने से राज्यों में विश्वास और आत्मनिर्भरता को उस स्थिति में बढ़ावा मिलेगा जहां केन्द्रीय संसद राष्ट्रीय और लोकहित में विधान बना रही हो परन्तु परामर्श को केवल औपचारिकता नहीं बनाया जाना चाहिए। संविधान की भावना अवश्य बनाये रखनी चाहिए और समवर्ती सूची पर केन्द्रीय विधान ऐसे राष्ट्रीय और लोकहित तक सीमित रखना चाहिए जिसे वस्तुतः राज्य सरकार पूरी न कर सकता हो।

2.4 ऐसे देश में, जहां केन्द्र और राज्यों में विभिन्न मतों वाले राजनीतिक दल हैं, लोकहित और राष्ट्रीय हित की संकल्पनाओं का विभिन्न राज्यों और केन्द्र में अलग-अलग अर्थ लगाया जा सकता है। अतः लोकहित या राष्ट्रीय हित के किसी भी विधान को संवैधानिक राज्य और संघ अलग-अलग ढंग से देखेंगे। अन्य विधानों की तरह इन विषयों पर विधान की अवधि राष्ट्रीय हितों की आवश्यकताओं पर निर्भर करेगी। महत्व इस बात का है कि पूर्व परामर्श के लिए एकतंत्र और समीक्षा के लिए संस्थागत व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। जो राज्य या संघ दुखी अनुभव करे उसकी इच्छाएं पूरी करने के लिए यह व्यवस्था सहायक होगी।

2.5 सातवीं अनुसूची जिसमें विधान बनाने संबंधी विषयों में संघ और राज्यों का क्षेत्राधिकार निर्धारित किया गया है, की अवश्य समीक्षा की जानी चाहिए, जिसमें समूची राष्ट्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। राष्ट्रीय अखण्डता और एकता के अनुरूप राष्ट्र के विकास को बराबर महत्व दिया जाना चाहिए। अधिकार और उत्तरदायित्व एक दूसरे को बराबर मानकर बांटे जाने चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 जिन राज्यों में अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है उनके राजनीतिक अनुभव को देखते हुए यह जरूरी हो गया है कि स्वयं इस संस्था पर ही विचार किया जाए। हमारे विचार से राज्यपाल के पद की उपयोगिता समाप्त हो गई है और हम सिफारिश करते हैं कि राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाए।

3.2 हमें विश्वास है कि राज्यपाल सदैव संघ के एजेंट और औजार के रूप में काम करता है, हम यह नहीं मानते कि राज्यपाल कोई स्वस्थ परम्परा कायम कर सकता है। हम इस पद को समाप्त करने की सिफारिश करते हैं।

3.3 जैसा पहले बताया गया है अनुच्छेद 356 (1) के अधीन राज्यपाल की राष्ट्रपति को रिपोर्ट में भारी अन्तर होने का पता चलता है, सदैव ऐसा नहीं होता कि राज्यपाल की सिफारिश संविधान की भावना के अनुरूप हो।

ऐसे मौके देखे गये हैं जहां राज्यपालों ने सरकार बनाने के लिए अल्पसंख्यक दल के नेताओं को बेहतर समझा, जब कभी किसी राज्य में राजनैतिक स्थिति स्पष्ट नहीं होती और विधान सभा में दलगत स्थिति भी स्पष्ट नहीं होती तो राज्यपाल की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। राज्यों में लोकतंत्र का संचालन राज्यपाल के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता जो कि प्रधानमंत्री का मनोनित व्यक्ति होता है। हम राज्यपाल का पद समाप्त करने की सिफारिश करते हैं। विधानसभा का सत्रावसान या विघटन करने के लिए आम तौर पर राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सलाह मान लेते हैं। किन्तु हमारे विचार से राज्यपाल के पद की कोई जरूरत नहीं है।

3.4 हमें विश्वास है कि राज्यपाल के पद का पूर्णतया दुरूपयोग किया गया है। हम राज्यपाल का पद बनाए रखने की कोई जरूरत नहीं समझते। राज्यपाल का पद समाप्त करने की हमारी सिफारिश को देखते हुए विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के लिए सुरक्षित रखने में राज्यपाल के विवेकाधिकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

3.5 हम भारतीय विधि संस्थान के निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं। ऐसे विषयों में इस बात का कोई महत्व नहीं होता कि कितने विधेयक निलम्बित किये गए हैं बल्कि यह महत्वपूर्ण होता है कौन से विधेयक निलम्बित किये गये हैं और राष्ट्रपति ने केन्द्रीय मंत्रियों के परामर्श पर कार्य करते हुए किस तरीके से राज्य विधान मंडलों के आशय को बदला है।

3.6 क्या राज्यपाल राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष है या केन्द्रीय सरकार का कोई एजेंट? अनुच्छेद 153 और 154 में वास्तविक स्थिति स्पष्ट नहीं की गई है और आम-तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि वह राष्ट्रपति और केन्द्रीय सरकार के लिए कार्य करता है। राज्यपालों की विभिन्न समयों पर विभिन्न राज्यों में की गई कार्रवाइयों से यह धारणा पक्की हो गई है। उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक शाखा ने स्पष्ट शब्दों में निर्णय किया कि राज्यपाल चाहे उसे राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है जिसका वास्तविक आशय और सारे भारत सरकार से है, भारत सरकार के निर्देशों के अधीन नहीं है और न ही वह उस तरीके के लिए उनके प्रति जवाबदेह है जिससे वह अपने कार्य और कर्तव्य पूरे करता है। उसका एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है जिस पर भारत सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। सभी महत्वपूर्ण पहलूओं पर उच्चतम न्यायालय की न्यायिक उद्घोषणा के बावजूद व्यावहारिक स्थिति और संवैधानिक स्थिति में कोई तालमेल नहीं है।

कर्नाटक सरकार द्वारा राज्यपाल के पद पर जारी किये गये श्वेत पत्र में राज्यपालों की गम्भीर और संदेहास्पद कार्रवाइयां और निर्णय दिये गये हैं। राज्यपाल के दुष्कार्य उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुंच गये जब आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल ने तेलगू देशम बहुसंख्यक दल के नेता और आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री एन० टी० रामाराव को इस तथाकथित संदेह के आधार पर बर्खास्त कर दिया कि श्री राव ने बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन खो दिया था। राज्यपाल के पद में जो थोड़ी बहुत गरिमा बची थी, इस घटना के बाद राज्यपाल ने उसे भी खो दिया। आंध्र प्रदेश राज्य को विश्वास है कि राज्यपाल के पद का कोई लाभ नहीं हो रहा और यह पद केवल अतीत के साम्राज्य की यादगार है अतः इस पद को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

3.7 हम राज्यपाल के पद समाप्त किये जाने की सिफारिश करते हैं इस लिए चयन की पद्धति, कार्यकाल की सुरक्षा और अन्य सम्बद्ध विषयों पर विचार करना आवश्यक नहीं।

3.8 राज्यपाल को सदन में बहुसंख्या का निर्धारण करने का काम भी नहीं करना चाहिए। हम राज्यपाल के पद को समाप्त करने की सिफारिश करते हैं।

क्या किसी मुख्यमंत्री को बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन प्राप्त है अथवा नहीं यह प्रश्न मतदान और निर्णय के लिए आने वाले किसी भी मामले की तरह सदन में ही हल किया जा सकता है।

3.9 पिछली सरकार के विरुद्ध अविश्वास-मत पारित करने से पहले विधानमंडल के विरुद्ध मुख्यमंत्री का चयन करना सदैव सम्भव नहीं होता। यदि किसी भी राजनीतिक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो और जहां एक दूसरे के साथ मिलकर सरकार बनाना संभव न हो तो एकमात्र समाधान यही है कि सदन को भंग कर दिया जाए। जो भी हो हम राज्यपाल के लिए किसी भी भूमिका का प्रस्ताव नहीं करते। हमारा सुझाव है कि राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाए।

3.10 हम राज्यपाल का पद समाप्त करने की सिफारिश करते है इसलिए राज्यपाल के लिए मार्ग निर्देशों पर विचार करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 अनुच्छेद 256, 257 तथा 365 का उद्देश्य अड़ियल राज्यों द्वारा संघीय विधियों का अनुपालन सुनिश्चित करना है। अनुच्छेद 365 संघीय निर्देश लागू करने के लिए संवैधानिक शक्ति देकर संघ के हाथ मजबूत करता है राज्य की कमी का भी कोई निर्देश प्राप्त नहीं हुआ।

4.2 अनुच्छेद 365 एक दाण्डिक उपबंध है जिसका उद्देश्य राज्यों द्वारा अनुपालन सुनिश्चित कराना है यदि देश के कानून को बनाये रखना है तो कोई दूसरा विकल्प नहीं है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस उपबंध के अधीन अधिकार का प्रयोग सद्विश्वास और सही तरीके से किया जाए।

4.3 संघ के लिए सदैव यही बेहतर होता हैं कि संविधान के अनिवार्य दाण्डिक उपबंधों का सहारा लेने से पहले संघीय निर्देशों का समझाबुझाकर अनुपालन कराने की संभावनाओं का पता लगाया जाए।

4.4 हमने पहले ही प्रश्न 3.6 के उत्तर में यह स्पष्ट कर दिया है कि हम राज्यपाल के पद को समाप्त करने की सिफारिश करते है और हमने राज्यपाल के पद का पूरी तरह दुरुपयोग किये जाने का सबसे बुरा उदाहरण दिया है।

4.5 बहुत समय तक राष्ट्रपति का शासन लोकतांत्रिक भावना को समाप्त कर देगा और इससे स्थायी हल और भी कठिन हो जायेगा। खण्ड 4 और 5 के अधीन किये गये उपबंधों में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं।

4.6 जनगणना और राज्य प्रशासन द्वारा चुनावों जैसे कार्य कराने के लिये वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक ढंग से कार्य कर रही है। वास्तव में यही दो क्षेत्र है जहां राज्य प्रशासन ने निर्धारित समय में कार्य करके अति सराहनीय कार्य किया।

4.7 यह एक तथ्य है कि बहुत सारी केन्द्रीय एजेंसियां स्थापित किये जाने के कारण राज्य और समवर्ती सूचियों में केन्द्रीय हस्तक्षेप बढ़ा है जैसा कि प्रश्न 4.7 में बताया गया है हो सकता है कि ये एजेंसियां स्थायी व्यवस्था और देश में एक समान आर्थिक और सामाजिक संतुलन सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय नीति का पालन करते हुए स्थापित की गई हो। कृषि मूल्य आयोग और भारतीय खाद्य निगम के बारे में आलोचना की जाती रही है जिन केन्द्रीय एजेंसियों में राज्य सरकार के प्रतिनिधि शामिल नहीं होते वहां सदैव यह भावना रहती है कि केन्द्र निर्णय लेने से पहले राज्यों के विचारों का कोई ध्यान नहीं करता।

4.8 हमारे समान सहकारी संघीय ढांचे में एक और राज्य सरकार तथा दूसरी ओर केन्द्र सरकार के बीच अन्तनिर्भरता की आवश्यकता है जिस वर्तमान प्रबंध व्यवस्था से देश में उपलब्ध सर्वोतम ज्ञान का दोनों सरकारों के लिए उपयोग किया जाता है वह आवश्यक है। अखिल भारतीय सेवाएं संगठित करना और किसी भी समय राष्ट्रीय संदर्भ के लिए सुविधा प्रदान करना संघ राज्य संबंधों में दृढ़ता लाने के लिए एक सराहनीय कार्य होगा। यह बात अवश्य समझ लेनी चाहिए कि एक बार अखिल भारतीय सेवा का अधिकारी राज्य संवर्ग को आवंटित कर दिये जाने के बाद उसे राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन कार्य करना होता है जो उसकी सेवा का उपयोग करती है। विशेष रूप से प्रशासनिक मामलों में राज्य सरकार को अवश्य पर्याप्त नियंत्रण प्राप्त होना चाहिए। शिकायत संबंधी वर्तमान कार्यविधि के अधीन अखिल भारतीय सेवा के जिस सदस्य को राज्य सरकार द्वारा निलंबित कर दिया जाए उसे राष्ट्रपति की अपील करने का अधिकार होता है अपील पर राष्ट्रपति द्वारा निर्णय केन्द्रीय गृह मंत्रालय की सहायता और परामर्श से दिया जाता है। दूसरे शब्दों में ऐसे विषयों पर निर्णय देने में राज्य सरकारों पर केन्द्रीय सरकार ही अधिभावी होती है। हमारा सुझाव है कि ऐसे अनुशासनिक मामलों में राष्ट्रपति को संघ लोक सेवा आयोग जैसे किसी स्वतंत्र और स्वायत्त निकाय द्वारा परामर्श दिया जाना चाहिए।

यह याद रखना जरूरी है कि केन्द्रीय मंत्रालयों में अधिकांश वरिष्ठ पदों पर अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी विशेष रूप से भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी प्रतिनियुक्ति के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं और प्रतिनियुक्ति की अवधि नियत होती है। दुर्भाग्यवश विगत समय में इस पहलू को नजरअंदाज किया गया है। यदि दिल्ली में कार्य कर रहे राज्य संवर्गों के अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति अवधि समाप्त होते पर उन्हें राज्य सरकार को प्रत्यावर्तित करने की परिपाटी पर पूरी तरह अमल किया जाए तो इससे इस तरह की भावना दूर हो जाएगी। इससे एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि केन्द्रीय मंत्रालयों और राज्यों में काम करने वाले और अधिक लोगों को दोनों तरफ का अनुभव हो जायेगा और ये इन दोनों स्तरों पर सरकारों के कार्य के बारे में बेहतर जानकारी रख सकेंगे। इस प्रकार की जानकारी केन्द्र और राज्य के बीच किसी वास्तविक या काल्पनिक क्षोभ को दूर करने में सहायक सिद्ध होगी।

4.9 राज्य सरकार का यह अनुभव है कि राज्य सरकार द्वारा मांग किये जाने पर केन्द्र सरकार ने सिविल सरकार की सहायता के लिए केवल केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र बलों को तैनात किया है। चूंकि राज्य सरकारें स्थायी तौर पर इतने बड़े बल रखने की हैसियत में नहीं है जो कि अत्यन्त खर्चीली प्रक्रिया है इसलिए राज्य सरकार के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस जैसे बलों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

4.10 लोकतंत्र में माध्यम की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है इस समय रेडियो और दूरदर्शन जैसे सरकारी माध्यम संघ के पास है। कुछ पश्चिमी देशों के विपरीत जहां इन माध्यमों पर निजी निकायों को भी नियंत्रण प्राप्त है। भारत में राज्य सरकारों के नियंत्रण में ही यह साधन नहीं है। कई कारणों से यह महसूस किया जाता है कि राज्य सरकारों को भी अपने माध्यम रखने की अवश्य अनुमति दी जानी चाहिए या संघ सरकार के दूरदर्शन और रेडियो के प्रसारण में उन्हें कम से कम उचित हिस्सा अवश्य दिया जाना चाहिए। इन माध्यमों को नियंत्रित करने वाले स्वायत्त निगमों की अनुपस्थिति में यही समाधान है जो सभी संबंधितों को स्वीकार्य होना चाहिए। हम यह जानते है कि इन माध्यमों का दुरूपयोग करने से विश्वव्यापी प्रभाव हो सकते है और देश विचित्र परिस्थितियों में पड़ सकता है जिससे विदेशी संबंधों पर प्रभाव पड़ता है। हमारा सुझाव है कि एक कानून बनाया जाये या वर्तमान कानून में संशोधन किया जाए ताकि राज्य सरकारें जहां कहीं संभव हो यथावश्यक शर्तों और प्रतिबंधों की शर्त पर अपने केन्द्र स्थापित कर सकें। इस अधिनियम को लागू करने के लिए सांविधिक निकाय स्थापित किया जाये ताकि राज्य सरकार को यह विश्वास हो जाए कि लगाया गया कोई भी प्रतिबंध समूचे राष्ट्र के हित में है।

4.11 आंचलिक परिषदों के विचार विमर्श से कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा।

4.12 योजना निकायों के अन्तर्गत न आने वाले क्षेत्रों में संघ और राज्यो के बीच अधिकतर विरोध तब तक किया जा सकेगा जब तक अन्तर्राज्य परिषद स्थापित करने के लिए अनुच्छेद 283 के उपबंधों का उपयोग किया जाए। सिवाय बाह्य तौर पर इस अनुच्छेद का अभी तक कोई खास प्रयोग नहीं किया गया है। कई ऐसे उदाहरण है जो योजना प्रक्रिया के कार्यक्षेत्र से बाहर पड़ते है किन्तु उन पर उच्चतम स्तर पर विचार करना आवश्यक होगा। इससे केवल संघ और राज्यों के बीच ही नहीं अपितु राज्यों के बीच भी परस्पर अधिकांश गलत फहमियां दूर होंगी। बशर्ते कि अनुच्छेद 263 में यथाकल्पित वह परिषद स्थायी आधार पर स्थापित कर दिया जाए और इसकी नियमित रूप से बैठके हो अर्थात वर्ष में कम से कम एक या दो बार हो।

संघ सूची के अन्तर्गत आने वाली मदों पर भी चर्चा करने के लिए राज्य मंच से लाभ उठाया जा सकता है ताकि केन्द्रीय नीतियां भी राज्यों को अपनी राय व्यक्त करने और उसके साथ ही किसी प्रस्तावित नीति के लिए संघ सरकार के कारण सुनने और समझने का अवसर देने के बाद तैयार की जा सके। अन्तर्राज्य परिषद वस्तुत: एक उच्चाधिकार प्राप्त निकाय है और इसमें चर्चित विभिन्न विषयों पर भी जो मतैक्य प्राप्त होता है उस पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और ऐसी बैठकें आयोजित करने की औपचारिकताएं पूरी करने के बाद उसे नजरअंदाज नहीं कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार के परामर्श और मतैक्य का रास्ता अपनाने से ऐसे परिणाम प्राप्त होने की संभावना है जो अलग मंत्रियों के बीच या अलग-अलग अधिकारियों के बीच हुई चर्चाओं की अपेक्षा अधिक स्थायी होंगे।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 केन्द्र से राज्यों को संसाधनों का अंतरण वित्त आयोग, योजना आयोग तथा अन्य माध्यमों से किया जाता है। इनमें से कुछ अंतरण सांविधिक हैं और अन्य विवेकाधीन अंतरण हैं। पर्याप्त रूप से बड़ी मात्रा में अंतरणों के बावजूद राज्य वित्तीय दृष्टि से मजबूत नहीं हुए हैं और वस्तुस्थिति तो यह है कि हालत और भी बिगड़ गई है। अभी तक समता और प्रादेशिक असंतुलन कम करने के उद्देश्य ही प्राप्त नहीं किए जा सके हैं।

2. हम महसूस करते हैं कि 34 वर्ष की पर्याप्त लंबी अवधि के बाद भी यह स्थिति मुख्यत: उस भावना के कारण है जिसमें अनेक संवैधानिक उपाय किए गए हैं और इसमें अंतर्निहित संघवाद को विकृत होकर स्वेच्छाचारी एकात्मक पद्धति में बदलने की अनुमति दी गई है। यह इसलिए नहीं हुआ कि संविधान में कोई कमियां अंतर्निहित थीं। इस स्थिति के उदाहरण सभी को ज्ञात है और राज्य इनके बारे में विभिन्न वित्त आयोगों और राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों में इसका उल्लेख करते रहे हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे संक्षेप में किया गया है।

3(i) आयकर पर 1962–63 में अस्थायी तौर पर लगाया गया अधिभार अभी तक जारी है और इस प्रकार राज्यों को उनके न्यायसंगत संसाधनों से वंचित किया गया है।

(ii) वर्ष 1959 में आयकर अधिनियम में संशोधन करके कम्पनियों द्वारा अदा किए जाने वाले आयकर को निगमकर के अधीन लाया गया जो कि राज्यों के साथ नहीं बांटा जाता। इस प्रकार राजस्व के एक बहुत लचीले साधन से राज्यों को वंचित रखा गया है।

(iii) अनिवार्य जमा योजना, वाहक (बियरर) बंधपत्र आदि के माध्यम से एकत्रित किए जाने वाले संसाधन, जो आयकर के समान है और इसमें से ही निकलते हैं, उनसे भी राज्यों को वंचित रखा गया है।

(iv) कर-जमाबंदी करार के अधीन राज्य बिक्रीकर से अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क को अंतरित तीन पण्यों का राज्यों के बार-बार अनुरोध करने पर भी उचित प्रकार से उपयोग नहीं किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, राज्यों पर पांच और पण्यों का बिक्रीकर अंतरित करने के लिए जोरदार दबाव डाला जा रहा है।

(v) रेल यात्री किराए पर कर हटाकर उसके स्थान पर अनुदान की राशि लापरवाही से निर्धारित की जा रही है और इस प्रकार राज्यों को उनके संसाधनों के काफी बड़े हिस्से से वंचित किया जा रहा है।

राज्यों की उपर्युक्त अनेक शिकायतों पर राज्यों के दावों की तर्कसंगतता के बारे में वित्त आयोग कायल हो गया था। परन्तु उनके विचारार्थ विषयों और संविधान के शब्दों की वजह से कोई संशोधन करने में प्रतिबंध महसूस कर रहे थे। जब तक संविधान को उसी भावना के साथ लागू नहीं किया जाता, जिस भावना से इसे तैयार किया गया था और संघ राज्य व्यवस्था को इसके सही मायनों में पुन:स्थापित नहीं किया जाता तब तक राज्य संसाधनों के लिए प्रार्थी बने रहेंगे और केन्द्र के सच्चे और संपूर्ण साथी नहीं बन पाएंगे।

5.2. प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा संपूर्ण केंद्र-राज्य संबंधों की बाबत बताई गई स्थिति वर्तमान संदर्भ में पहले की अपेक्षा अधिक सही बैठती है। इसका उपाय निगम कर, आयकर पर अधिभार आदि को विभाजन योग्य सामूहिक निधि के अंतर्गत लाना और संघ के कर-इतर राजस्व [अर्थात् उल्लिखित विकल्पों का (घ) और (ङ)] का न्यायसंगत विभाजन करना है।

5.3. संसाधनों का पर्याप्त अंतरण न होने और राज्यों में संसाधनों का न्यायसंगत वितरण न होने के कारण राज्य अपने-अपने इलाकों में क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रहे हैं और राज्यों में परस्पर असमानताएं भी बढ़ गई है। केंद्र के अपने गलत कार्यों के कारण जो स्थिति पैदा हुई है उसे केंद्र के हाथों में और अधिक शक्तियां देने का कारण नहीं बताया जा सकता। रोग के लक्षणों को रोग मानने की गलती नहीं की जा सकती। इसका उपाय यही है कि राज्यों को संविधान में यथापरिकल्पित उनकी उचित हैसियत पुन: लौटाई जाए। इसके अतिरिक्त, संसाधनों का सांविधिक अंतरण राज्य के कुल अंतरणों का लगभग 40% बनता है। कुछ वर्षों से वित्त आयोगों द्वारा अधिक न्यायसंगत ढंग से अंतरण किए जा रहे हैं। केंद्र द्वारा विवेकाधीन अंतरणों के बावजूद, पिछड़े हुए राज्य सापेक्ष रूप से उन्नति नहीं कर रहे हैं। यही वजह है जिसके कारण हम इस विचार का खंडन करना चाहते हैं कि केवल सुदृढ़ केंद्र, जिसके संसाधन लचीले हों, क्षेत्रीय असंतुलन कम कर सकता है।

5.4. हम ऊपर प्रश्न 5.3 में अभिव्यक्त विचार से सहमत नहीं हैं। परन्तु राज्यों की उनके संतुलित विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक संसाधन अंतरित करने की स्थिति में होने के लिए केंद्र को कर और कर से इतर उपायों द्वारा संसाधन जुटाने चाहिएं, व्यय में किफ़ायत करनी चाहिए और केवल अंतिम उपाय के तौर पर ही घाटे की उचित और सुरक्षित अर्थ-व्यवस्था का आश्रय लेना चाहिए।

2. हमारा विचार है कि राजस्व और पूंजी में बजेटों का वर्गीकरण इतना महत्व नहीं रखता जितना कि समग्र वस्तुस्थिति का महत्व है। हो सकता है कि केंद्र को राजस्व लेखागत घाटा होता हो परन्तु उसका पूंजीगत लेखा हमेशा बेशी रहा है। इसके अतिरिक्त, राजस्व लेखे में घाटा राज्यों को संसाधनों के अंतरण के कारण ही नहीं बल्कि बहुत हद तक भारी योजनेतर व्यय (रक्षा आदि) और विकासाधीन क्षेत्रों में अतिक्रमण के कारण हैं और यह जरूरी है कि इन्हें योजनाबद्ध विकास के लिए राज्यों पर ही छोड़ दिया जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए केंद्र, राज्यों और केंद्र के बीच प्राथमिकताओं का पुन:निर्धारण करके और व्यय में किफ़ायत करके घाटे की अर्थ-व्यवस्था को बहुत कुछ कम कर सकता है।

5.5. (क) इस संबंध में हमने अपने विचार आठवें वित्त आयोग को दिए गए अपने ज्ञापन में पहले ही बता दिए हैं।

(ख) वर्तमान सूत्र (फ़ार्मूला) स्वीकार्य है।

(ग) योजनेतर सहायता प्राकृतिक आपदाओं से राहत देने और कुछ अन्य बातों के लिए ही सीमित कर दी जाए। ये विवेकगत अंतरण कड़ाई से सीमित रखे जाएं।

5.6. हम "विशेष संघ निधि" बनाने के पक्ष में नहीं है। वित्त आयोग तथा योजना आयोग जैसी वर्तमान संस्थाएं पर्याप्त है बशर्ते कि इन संस्थाओं का उपयोग उचित भावना से किया जाए।

5.7. राज्य, केंद्र से राज्यों को कराधान संबंधी शक्तियों के अंतरण की मांग नहीं कर रहे हैं। प्रश्नावली में उल्लिखित कराधार के तीन सिद्धांतों के बारे में कोई असंतुष्टि नहीं है। हमारा कहना यह है कि केंद्र के एकतरफा कार्यों के कारण मौजूदा संवैधानिक उपबंध निष्प्रभावी न हो जाएं और राज्यों को संविधान के अधीन सौंपे गए कार्य पूरे करने के लिए राज्यों को अधिक वित्तीय शक्ति दी जाए।

5.8. बिक्री-कर शामिल करने की बात के सिवाय अन्यथा हम इस विचार से सहमत हैं। संविधान में कराधान के सुदृढ़ सिद्धांतों के आधार पर केंद्र तथा राज्यों को विभिन्न कर पहले ही से आबंटित किए गए हैं। बिक्री-कर राज्यों की कर से प्राप्त होने वाले राजस्व का मूल आधार है। यह राज्य की आर्थिक नीतियों का एक माध्यम भी है, अत: यह राज्यों के पास ही रहना चाहिए। चार केंद्रीय

करों पर नियंत्रण रखने वाली केंद्र और राज्य वित्त मंत्रियों की परिषद् केंद्र की आयकर, वाहक बंधपत्र आदि पर अधिभार से होने वाले संसाधनों को अपना मान लेने की प्रवृत्ति को रोकने में काफी सफल हो सकती है ।

5.9. हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि संसाधनों के अंतरण संबंधी सभी मामलों पर एक स्थायी वित्त आयोग को कार्रवाई करनी चाहिए । वित्त आयोग और योजना आयोग अलग-अलग प्रयोजनों के लिए है । इसलिए वे अपने-अपने कार्य करते रहें । उनके कार्यों का बेहतर समन्वय वांछनीय हो सकता है ।

5.10. हमारा विचार है कि संघ से राज्यों को संसाधनों के अंतरण की कार्यकुशलता बढ़ाने, व्यय में किफायत लाने और सरकारी खर्च में असमानताओं को कम करने पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा है ।

2. हम हमेशा प्रशासनिक दक्षता बढ़ाने और व्यय में किफायत करने के प्रयत्न करते रहे हैं और केंद्र से संसाधनों के अपर्याप्त अंतरण के कारण संसाधनों की कमी को देखते हुए तो उपर्युक्त प्रयत्न और भी अधिक किए गए हैं ।

3. सरकारी व्यय में सरकार द्वारा किए गए सभी व्यय शामिल हैं, चाहे वे योजना के अंतर्गत हैं या योजनेतर व्यय हैं । इसमें पूंजीगत और राजस्व लेखे भी शामिल हैं । अंतरित संसाधनों की समग्र रूप से अपर्याप्तता और राज्यों में उसके न्यायसंगत वितरण न होने के कारण सरकारी व्यय में असमानताएं कम नहीं हुई हैं ।

5.11. इस विचार से केवल एक पहलू स्पष्ट होता है । वित्त आयोगों द्वारा संसाधनों का अंतरण, राज्यों द्वारा राजस्व के तथाकथित बढ़ा-चढ़ाकर बताए गए घाटे संबंधी पूर्वानुमानों पर आधारित नहीं होता बल्कि पिछले वर्षों के वास्तविक आंकड़ों और सरकारों आदि द्वारा लिए गए पक्के निर्णयों और कार्यान्वित किए गए निर्णयों आदि के आधार पर आयोगों द्वारा पूरी-पूरी जांच-पड़ताल और संवीक्षा पर आधारित होता है । वित्त आयोग, प्राप्तियों और व्यय दोनों के लिए प्रतिमान तैयार करते हैं । यह कहना सच नहीं होगा कि राज्य केवल इस कारण से अपनी निधियां व्यर्थ खर्च कर देते हैं क्योंकि उन्हें केंद्र से संसाधनों का अंतरण होगा । जब तक एक "दाता" और दूसरा "प्राप्तकर्ता" बना रहेगा तब तक इस प्रकार की मांगों को बढ़ा-चढ़ाकर बताने से बचा नहीं जा सकता लेकिन मांगों की पूरी-पूरी संवीक्षा के बाद ही अंतरण किए जाते हैं ।.

2. हमारा देश संसदीय लोकतंत्र है, इसलिए विभिन्न राजनैतिक दल अपने घोषणा-पत्रों के आधार पर सत्ता में आते रहते हैं । प्राथमिकताओं के संबंध में प्रत्येक दल और प्रत्येक सरकार की धारणाएं अलग-अलग होती हैं । एक संदर्भ में जो बात जनवादी प्रतीत हो सकती है वह किसी दूसरे संदर्भ में उसी ढंग से नहीं देखी जाती । अत: यह कल्पना करना अस्वाभाविक होगा कि राज्य संसाधनों का दुरुपयोग केवल इसलिए करते हैं ताकि वित्त आयोगों से वे अधिक संसाधन प्राप्त कर सकें । साथ ही सुपुर्दगी की प्रत्येक स्कीम में वित्तीय अनुशासन को प्रोत्साहन देने की भी व्यवस्था होनी चाहिए ।

5.12. हमने छठे और सातवें वित्त आयोग के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था । हमने आठवें आयोग से भी यह कहा है कि इस संबंध में सातवें आयोग के विचार को ही जारी रखा जाए ।

5.13. हम सातवें वित्त आयोग द्वारा अभिव्यक्त विचारों से पूरी तरह सहमत हैं ।

5.14. यद्यपि प्रश्नावली में दिए गए दो उदाहरण केंद्रीय बजट में कर—इतर राजस्व के रूप में दिखाए गए हैं परन्तु वास्तव में ये इस प्रकार नहीं हैं ।

2. विशेष वाहक बंधपत्र स्कीम में इस बात की परिकल्पना की गई थी कि अर्थ-व्यवस्था में परिचालित काले धन के कुछ हिस्से का सफाया हो जाएगा । वाहक बंधपत्रों से आय मुख्यत: अप्रकट आमदनी से थी । यदि भारत सरकार का आयकर वसूली तंत्र अधिक कार्यकुशल होता तो इन आमदनियों पर आयकर लगता और निवल प्राप्तियां राज्यों के साथ मिलकर बांटी जाती । अत: हम महसूस करते हैं कि इस स्कीम से हुई आय में राज्यों को हिस्सा मिलना चाहिए ।

3. पेट्रोलियम उत्पादों, कोयला, लोहा आदि पर उत्पाद-शुल्क बढ़ाने की बजाय इनकी निर्देशित कीमत बढ़ाने का जहां तक संबंध है, हर व्यक्ति यह जानता है कि केंद्र द्वारा राज्यों को संसाधनों के देय हिस्से से वंचित रखने की यह एक युक्ति मात्र है ।

4. आयकर पर अधिभार, अनिवार्य जमा योजना आदि भी संसाधनों की इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं जिनसे राज्यों को वंचित रखा गया है ।

5.15. नहीं । यह संतोषजनक नहीं है और विशेष रूप से बाजार ऋण के अधीन सुधार करने की गुंजाइश है ।

2. प्रथम योजना अवधि के दौरान, कुल बाजार-ऋण में से राज्यों का हिस्सा 76% था परन्तु तीसरी योजना अवधि में यह घटकर 63% हो गया । इसके बाद इसमें और कमी आई और छठी योजना अवधि में यह हिस्सा केवल 23% रह गया है । केंद्र तथा राज्यों के योजना परिव्यय क्योंकि लगभग एक समान हैं इसलिए राज्यों का हिस्सा कुल बाजार-ऋण के कम-से-कम 50% तक बढ़ा देने का पूरा-पूरा औचित्य है ।

5.16. एक ओर संसाधनों के अपर्याप्त अंतरण और दूसरी ओर प्रतिबद्ध व्यय और सरकारी कर्मचारियों और शिक्षकों को महंगाई भत्ते और वेतनवृद्धि के कारण हमेशा बढ़ते हुए बोझ, लोगों की बढ़ती हुई आकांक्षाओं, अपेक्षाकृत बड़े योजनागत परिव्यय करने की मजबूरी आदि के कारण राज्यों के बजटों में अपेक्षाकृत अधिक घाटे हुए हैं । इस असंतुलन को संसाधनों के और अधिक अंतरणद्वारा स्थायी आधार पर दूर करने की जरूरत है । ऐसा करने की बजाय, केंद्र के राजस्व की प्रतिशतता के तौर पर संसाधनों का अंतरण उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है । इस स्थिति को तत्काल सुधारने की जरूरत है ।

5.17. राज्यों की ऋणग्रस्तता (मुख्यत: केंद्र के लिए) की समय-समय पर की गई संवीक्षा और छठे एवं सातवें आयोग द्वारा सुझाए गए उपाय केवल सतही हैं और ऋणग्रस्तता के मूल कारण को दूर नहीं किया गया है ।

2. आठवें वित्त आयोग को हमारा यह सुझाव है कि :—

(क) सातवें वित्त आयोग द्वारा समेकित और समेकित न किए गए और तारीख 31-3-1984 तक बकाया केंद्रीय सरकार के ऋणों और अग्रिमों को बट्टे खाते डाला जा सकता है । इससे पूंजीगत लेखे और साथ ही राजस्व लेखे को यथेष्ट सहायता मिलेगी ।

(ख) केंद्र सरकार द्वारा वर्ष 1979—84 के दौरान दिए गए ऋणों और अग्रिमों को और 31-3-84 तक जिनके बकाया रहने की संभावना है, उन्हें समेकित न किया जाए और समग्र राशि चुकता करने के लिए 30 वर्ष की अवधि दी जाए, लेकिन इसमें ओवर ड्राफ्ट के समाशोधन के लिए दिए गए विशेष ऋण शामिल नहीं हैं ।

(ग) 31-3-84 के बाद केंद्र सरकार द्वारा दी जाने के लिए आशयित योजनागत और योजनेतर सहायता 50% अनुदान के रूप में और 50% ऋणों के रूप में इस बात को ध्यान में रखते हुए दी जाए कि सिंचाई और बिजली परियोजनाओं पर परिव्यय तथा अन्य ऐसी पूंजीगत परिसंपत्तियां भी राज्य सरकार के वित्त के अनुसार उत्पादनकारी सिद्ध नहीं हो रही हैं ।

(घ) निवल लघु बचत वसूलियों में राज्यों का हिस्सा चिरकाल के ऋणों के तौर पर दिया जा सकता है ।

5.18. प्रमुख वित्तीय संस्थाओं और वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीकरण के बाद राज्यों की क्षमता का प्रश्न ही नहीं उठता और राज्यों को कभी कोई स्वतंत्रता नहीं रही क्योंकि इन प्रश्नों का हमेशा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्णय लिया जाता रहा है । हम यह चाहते है कि निजी बचतों पर इन आहरणों का केन्द्र द्वारा अधिकयुक्तिसंगत विभाजन और राज्यों के बीच उनका अधिक न्यायसंगत वितरण हो । '

5.19. हम नहीं समझते कि केंद्र द्वारा राज्यों से ब्याज की उस दर से अधिक दर पर ब्याज लेने का कोई औचित्य है जिस दर पर वे विदेशी लेनदारों को ब्याज दे रहे थे ।

2. कुछ राज्य विभिन्न कारणों से "विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए सहायता" का प्रमुख हिस्सा समेट कर बैठे हैं । गाडगिल सूत्र (फार्मूला)से बाहर एक ऐसा फार्मूला तैयार करना संभव होना चाहिए ताकि उन

राज्यों को मुआवजा दिया जा सके जो "विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं" के लिए सहायता का लाभ नहीं उठा सके हैं।

5.20. नहीं। भारतीय रिजर्व बैंक अर्थ-व्यवस्था, बाजार-स्थिति आदि के मूल्यांकन के आधार पर किसी भी वर्ष के संबंध में पूरे देश के लिए कुल उधार-सीमा का निर्धारण करता है। केंद्र सरकार ही अलग-अलग राज्यों और केंद्र के लिए सीमाएं निर्धारित करती है। हम योजना आयोग से अनुरोध करते रहे हैं कि वह इस प्रयोजन के लिए कोई वस्तुपरक कसौटी तैयार करे और इसका अनुमोदन राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा भी किया जाए। परन्तु यह कार्य अभी तक नहीं किया गया है। ऋण परिषद् की स्थापना करना मौजूदा तंत्र का मात्र दूसरा रूप होगा और इससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

5.21. उपाय एवं साधन सीमाओं को दुगुना या तिगुना कर देने से ही राज्यों की संसाधन स्थिति के आधारभूत असंतुलन में सुधार नहीं हो सकता जिसकी वजह से वर्ष दर वर्ष ओवरड्राफ्ट लिए जाते हैं। जरूरत इस बात की है कि राज्यों के संसाधनों की संरचना को बहुत अधिक मजबूत बनाया जाए। ऐसा हो जाने पर ही राज्य अपने वित्त का अधिक समझबूझ से प्रबंध कर सकेंगे और ओवर ड्राफ्ट नहीं लेंगे। जब तक राज्यों के संसाधनों का आधार व्यापक और मजबूत नहीं कर दिया जाता तब तक साधन "सीमाओं" में जोड़ करने मात्र से ही प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

5.22. नहीं। सातवें वित्त आयोग में यह बताया था कि :—

"अतिरिक्त संसाधन जुटाने के मामले में राज्य समग्र रूप से केंद्र सरकार से पीछे नहीं हैं और इसलिए राज्यों का कार्य-निष्पादन कुल मिला कर सराहनीय रहा है।"

(अध्याय 9, पैरा 11)

परन्तु, अर्थव्यवस्था में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने और उसका अधिक दोहन करने की हमेशा गुंजाइश बनी रहेगी।

5.23. हम केंद्र के संबंध में अभिव्यक्त विचार से पूर्णतः सहमत हैं। क्योंकि केंद्र सरकार इन कमियों को अच्छी तरह से जानती है और इस संबंध में उपचारार्थ उपाय कर रही है।

5.24. हां। हम ऐसा ही समझते हैं।

5.25. हम महसूस करते हैं कि संविधान को बने हुए यद्यपि 34 वर्ष हो गए हैं, तथापि भारत सरकार ने केवल दो उपायों को छोड़कर अनुच्छेद 269 के अधीन परिकल्पित करों से लाभ उठाने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है। इन दो उपायों में से भी रेल यात्री किराए पर लगाया गया कर काफी पहले समाप्त कर दिया गया था और अब केवल संपदा-शुल्क ही लागू है। राज्य के संसाधनों को बढ़ाने के लिए केंद्र सरकार को अनुच्छेद 269 के अधीन तत्काल और उपयुक्त उपाय करने चाहिएं।

5.26. सभी राज्य यह मुद्दा विभिन्न वित्त आयोगों के समक्ष उठाते रहे हैं। इस संबंध में सरकार के विचार आठवें वित्त आयोग को प्रस्तुत किए गए हमारे ज्ञापन में देखे जा सकते हैं। हमारा विचार है कि केंद्र सरकार वार्षिक अनुदान को 23 करोड़ रुपए तक सीमित करके अत्यधिक उदासीन ही गई है जब कि यदि कम-से-कम अनुमान भी लगाया जाए तो यह वार्षिक अनुदान 125 करोड़ रुपए जितना हो सकता है। इस संबंध में, सातवें वित्त आयोग की रिपोर्ट के सातवें अध्याय का संदर्भ भी देखा जा सकता है।

5.27. इस शिकायत का कोई सार दिखाई नहीं देता। संघ राज्य क्षेत्रों के बजट (योजना एवं योजनेतर) वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमोदित किए जाते हैं और इनमें वित्तीय सहायता पूर्णतया केंद्र सरकार द्वारा दी जाती है। इसलिए प्रचार भावना में केंद्रीय करों में से राज्यों को उनके हिस्से से वंचित करने का कोई प्रश्न नहीं है।

5.28. इस प्रश्न पर हमारे विचार आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन में स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए थे। राज्य सरकार का यह देखने में पूरा-पूरा हित है कि उस धनराशि का उसी प्रयोजन के लिए ही पर्याप्त सदुपयोग किया जाए, जिसके लिए वह राशि निर्धारित की गई थी। अन्य सभी खर्चों पर लागू वित्तीय कार्यविधियां और मूल्यांकन संबंधी विधियां इस खर्च पर भी लागू होंगी।

5.29. हम समझते हैं कि इसके लिए एन० एल० सी०, राष्ट्रीय ऋण आयोग (एन० सी० सी०) और (एन० ई० सी०) राष्ट्रीय व्यय आयोग का गठन जरूरी नहीं है और वे किसी उपयोगी प्रयोजन को पूरा नहीं कर सकेंगी।

5.30. हम इस बात से सहमत नहीं हैं क्योंकि जो निधि एकत्रित करता है (या जिसे ऐसा करने का अधिकार है) और जिन व्यक्तियों पर उसे खर्च किया जाता है, वे हमारे लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। हम नहीं चाहते कि हमारी राज्य सरकारें अस्तित्वहीन हो कर रह जाएं। हम अपने देश की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति में केंद्र के साथ बराबर के हिस्सेदार हैं। हम किसी दूसरे द्वारा निर्देशित और नियंत्रित मात्र व्यय करने वाली एजेंसी बनाने के लिए तैयार नहीं हैं। हमारी सरकार हम लोगों का प्रतिनिधित्व करती है और हम उनके प्रति अपनी सभी जिम्मेदारियां निभाने के लिए पूर्णतया सक्षम हैं। इस संबंध में सातवें वित्त आयोग को प्रस्तुत हमारे ज्ञापन से लिया गया निम्नलिखित सारांश प्रासंगिक है :

"हमारा कहना है कि इन में से कुछ मामलों में मूल समस्या राजस्व की नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य अकेले रोटी पर ही जीवित नहीं रहता उसी प्रकार राज्यों का केवल राजस्व साधनों द्वारा गुजारा नहीं होता। खर्च करने की शक्ति मात्र ही राज्य की अनिवार्य जरूरत नहीं है। इस शक्ति का उपयोग प्रत्यायोजन या सुपुर्दगी की प्रक्रिया के माध्यम से कई निकायों द्वारा किया जाता है। संघीय ढांचे में राज्य को यदि महत्वपूर्ण स्थान न भी दिया जाए तो राज्य की सत्ता की निर्णायक परीक्षा इसी में है कि उसे कर लगाने की शक्ति कहां तक दी गई है। यदि इस शक्ति को या वह क्षेत्र, जहां इसका प्रयोग किया जा सकता है, इतना संक्षिप्त कर दिया जाए कि उसका महत्व बहुत कम रह जाए तो राज्य का वास्तविक स्वरूप ही बदल जाएगा और इसके परिणामस्वरूप हमारे संघीय ढांचे में केन्द्र राज्य संतुलन में आधारभूत परिवर्तन हो जाएगा। संघीय ढांचे में कराधान की शक्तियों का केंद्रीकरण करने और साथ ही साथ कार्यों का विकेंद्रीकरण करने तथा सुपुर्दगी की प्रक्रिया के माध्यम से दोनों में बराबरी बिठाने के लिए जो तर्क दिए गए हैं उन्हें हम जानते हैं लेकिन इस मामले में भी अन्य कई मामलों की तरह एक ऐसी स्थिति आ गई है जहां मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में बदल जाता है और हमारा यह कहना है कि राज्य के कराधान का क्षेत्र कृषि से केवल आयकर तक सीमित कर देना कुछ ऐसी ही स्थिति होगी।"

5.31. (क) हां। हम इस बात से सहमत हैं।

(ख) हमारे विचार से यह आलोचना न्यायसंगत नहीं है। इस संबंध में प्रश्नावली 5.11 के उत्तर की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है।

(ग) हम नहीं समझते कि स्थायी राष्ट्रीय व्यय आयोग कुछ और नौकरियों का सृजन करने और विद्यमान निष्कर्ष खर्च को बढ़ाने के अलावा किसी उपयोगी उद्देश्य को पूरा करेगा।

5.32. इस संबंध में कोई समस्याएं नहीं हैं।

5.33. लेखा-परीक्षा रिपोर्टों में लेखा-परीक्षा संबंधी मूल्यांकन इसलिए भी शामिल किया जाता है क्योंकि स्कीमों की समीक्षा द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों को शामिल किया जाता है।

5.34. हां। हम ऐसा समझते हैं।

5.35. हां। यदि इसमें कुछ कमियां होती हैं, तो उन्हें लेखा-परीक्षा रिपोर्टों पर लोक लेखा समिति की आद्योपान्त चर्चा में शामिल कर लिया जाता है।

5.36. राजकोष नियंत्रण के माध्यम से खर्च पर नियंत्रण केवल संबंधित राज्य सरकार या केंद्र सरकार द्वारा किया जाता है और यह कार्यविधि सही है। नियंत्रक-एवं-महालेखापरीक्षक लेखाकरण और लेखा-परीक्षा कार्य करेंगे तथा भ्रम से यह न समझ लिया जाए कि वह व्यय नियंत्रण करेंगे।

5.37. हां। निश्चित रूप से ऐसा ही है।

5.38. हम नहीं समझते कि ऐसे किसी व्यय आयोग की जरूरत है। इस प्रयोजन के लिए विद्यमान सांविधिक और विधायी निकाय पर्याप्त हैं।

5.39 इस प्रश्न के विषयक्षेत्र में भारत सरकार के स्तर पर ऐसी योजनाओं के लिए, जिनके लिए उसके द्वारा पूर्णतः या अंशतः धन लगाया गया है, ब्यौरेवार अनुमोदन की जरूरत भी शामिल है। यद्यपि यह पूर्ण रूप से सही है कि धन संबंधी पर्याप्त प्रबंध करने जरूरी हैं तथापि केंद्र को परियोजनाओं के छोटे-से-छोटे ब्यौरे का अनुमोदन करना जरूरी नहीं है। चूंकि योजनाओं को प्रतिपादित करने और उन्हें अनुमोदित करने के लिए राज्य सरकारों के पास पर्याप्त साधन हैं इसलिए केंद्र सरकार उपयोगी ढंग से व्यापक दिशा-निर्देश जारी करने तक ही अपने कार्य को सीमित रखें। हर छोटी बात के लिए केंद्र का अनुमोदन लेने से विलंब ही होगा।

जहां तक केंद्रीय रूप से प्रायोजित योजनाओं का संबंध है, योजना के व्यापक विवरण को संबंधित मंत्रालय द्वारा एक बार अंतिम रूप दे दिए जाने के बाद स्कीम को विस्तृत रूप में तैयार करने का काम संबंधित राज्य सरकार पर छोड़ दिया जाए, जहां की स्थानीय स्थितियां अलग-अलग हो सकती हैं। इन स्कीमों के लिए संबंधित मंत्रालयों से मंजूरी लेने में इस समय काफी देर लग जाती है। जहां तक राज्य की योजनागत स्कीमों का संबंध है, वहां भी केंद्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के खर्च के लेखा-परीक्षित आंकड़े प्रस्तुत करने में समान कठिनाई पेश आती है। अतः केंद्र सरकार को व्यय के लेखा परीक्षित आंकड़े प्रस्तुत करने पर बल नहीं देना चाहिए।

भाग VI

आर्थिक एवं सामाजिक आयोजना

6.1. हालांकि "आर्थिक और सामाजिक आयोजना" संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में दर्ज है परन्तु इसमें बड़े पैमाने पर ऐसे कार्यकलापों को शामिल किया गया है, जोकि न्यायसंगत रूप से राज्यों के क्षेत्र में आते हैं क्योंकि यह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए महत्वपूर्ण है परन्तु इस प्रविष्टि के कारण अन्य किसी भी प्रविष्टि की बजाय संघीय स्वरूप को हानि हुई है और केन्द्र तथा राज्यों के बीच संतुलन बिगड़ गया है। कुछ वर्षों से लोग राजनीतिक प्रक्रिया में बहुत अधिक भाग लेने लग गए हैं और राज्य सरकारें चूंकि लोगों के बहुत अधिक निकट होती हैं, इसलिए उन्हें लोगों की आकांक्षाओं को बहुत बारीकी से समझना पड़ता है। लेकिन पूरी आयोजना में राज्यों की सहभागिता अपर्याप्त होती है। संघ सरकार ऐसे कार्यक्रमों में अधिक-से-अधिक भाग लेने लग गई है जो राज्य सरकारों के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। यही कारण है कि आयोजना और निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरुद्ध लगातार शिकायतें आ रही हैं। योजना आयोग संविधान के माध्यम से नहीं अपितु कार्यकारी निर्णय के जरिए अस्तित्व में आई और यह सर्वथा महत्वपूर्ण निकाय है, जो राष्ट्रीय योजना के समग्र उद्देश्यों के अनुरूप राष्ट्र तथा राज्य स्तर पर योजनाएं तैयार करता है। केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमें संबंधित केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा परिकल्पित और तैयार की जाती हैं और राज्यों पर केवल उनके निष्पादन का कार्य छोड़ दिया जाता है। मृदा और जल संरक्षण, मछली पकड़ने के लघु पत्तन, डी० पी० ए० पी०, आदि जैसी स्कीमें राज्यों की संवैधानिक जिम्मेदारियों के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं परन्तु केन्द्रीय मंत्रालय उनका अतिक्रमण करते हैं। केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों पर व्यय कम करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् के माध्यम से अनेक प्रयत्न करने के बाद राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 1968 में यह निर्णय किया कि केन्द्रीय रूप से प्रायोजित इन स्कीमों पर व्यय राज्यों को कुल केन्द्रीय सहायता के 1/6 हिस्से तक सीमित कर दिया जाए। परन्तु व्यवहार में इस निदेश की भी अवहेलना कर दी गई है। इसलिए हम महसूस करते हैं कि प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन-दल ने जो प्रेक्षण किए थे, वे सही थे।

इसका उपाय यही है कि राज्यों में पहल शक्ति को बढ़ावा दिया जाए और आयोजना प्रक्रिया में राज्यों को शामिल किया जाए। राष्ट्रीय आयोजना प्रक्रिया को संघ तथा राज्यों के संयुक्त और सहकारी प्रयास के रूप में बल प्रदान किया जाए। इस लक्ष्य को संवैधानिक उपबंध द्वारा राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् की स्थापना करके प्राप्त किया जा सकता है जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री तथा सदस्य मुख्यमंत्री होंगे। योजना आयोग तकनीकी सहायक संस्था होगी जो राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् द्वारा नियंत्रित होगी और उसके निर्देशों के अधीन कार्य करेगी।

मोटे तौर पर प्रस्तावित राष्ट्रीय आयोजना तथा विकास परिषद् के कार्य इस प्रकार होंगे :—

(क) संघ तथा राज्यों द्वारा उनके अपने-अपने क्षेत्रों में किए जाने वाले आर्थिक तथा सामाजिक आयोजना के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त तैयार करना।

(ख) समय-समय पर पंचवर्षीय योजनाओं की बाबत विचार करना और उनका अनुमोदन करना।

(ग) पंचवर्षीय योजनाओं के समर्थन में राष्ट्र के प्रयत्न और संसाधन जुटाना।

(घ) सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र, संघ और राज्यों तथा राज्यों के ही बीच योजना संसाधनों के आबंटन पर लागू होने वाले सिद्धांत तैयार करना और उनका अनुमोदन करना।

(ङ) पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन की समय-समय पर समीक्षा करना।

(च) सभी राज्यों के संतुलित विकास की प्रगति की समीक्षा करना और यह उद्देश्य यथासंभव शीघ्र प्राप्त करने के लिए उचित उपायों का सुझाव देना।

(छ) आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नीतियों पर विचार करना और परामर्श देना।

(ज) सिंचाई जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र में, जिसमें बहुत अधिक परिव्यय होता है, बड़ी-बड़ी परियोजनाओं का पता लगाना ताकि राज्य के संसाधनों को बढ़ाने के लिए केन्द्र द्वारा उदारतापूर्वक धन-व्यवस्था सुनिश्चित हो सके। (अपेक्षाकृत बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिए उदारतापूर्ण दृष्टिकोण इसलिए अपेक्षित है ताकि नदी-जल का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित हो सके और साथ ही राज्य के संसाधनों पर अनुचित बोझ भी न पड़े)। और

(झ) विशेष रूप से बाजार-ऋणों तथा विदेशी वित्त के संघ तथा राज्यों के बीच आबंटन के बारे में निर्णय करना, विवेकाधीन अंतरण करना और केन्द्र तथा राज्यों को प्रभावित करने वाले कराधान के सभी उपायों पर सलाह देना।

6.2. जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, हम एक ऐसे निकाय की परिकल्पना करते हैं, जिसकी स्थापना संवैधानिक उपबंध के अधीन हो और जो मौजदा राष्ट्रीय विकास परिषद् की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से शामिल होकर कार्य करे और जिसके पास अपेक्षाकृत अधिक शक्तियां हों। हमने इसे राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् नाम दिया है और यह संघ तथा राज्यों का प्रतिनिधित्व करेगी। योजना आयोग अब तक संघ सरकार के निर्देश और नियंत्रण के अधीन कार्य करती रही है परन्तु इसके स्थान पर अब वह राष्ट्रीय आयोजना, विकास परिषद् को आयोजना, प्रक्रम और कार्यचालन में पूरी तौर पर परामर्श देगी और मदद करेगी। यह कार्य वह राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् के नियंत्रण और निर्देश के अधीन करेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि योजना आयोग का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। यह केवल राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् की सहायक संस्था और सचिवालय मात्र ही रह जाएगा। राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् विशिष्ट मामले तदर्थ या स्थायी उप-समितियों को सौंप सकती है और उनके सदस्य भी राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् में से ही होंगे। यह बात ध्यान में रखी जाए कि राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् का ढांचा जानबूझकर इस प्रकार से बनाया गया है ताकि वह अनुच्छेद 263 में परिकल्पित अंतरराज्यीय परिषद् से भिन्न हो।

6.3. योजना आयोग ने कुछ वर्षों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थिति हासिल कर ली है और राज्यों पर आर्थिक तथा वित्तीय मामले में काफी शक्तियां अर्जित कर ली हैं। साठवें दशक के उत्तरार्द्ध से योजना आयोग के कार्यचालन, आयोजना की प्रक्रिया और आम तौर पर राज्यों के हित के महत्वपूर्ण आर्थिक मामलों पर निर्णय लेने के ढंग को बाबत शिकायतें प्राप्त होती रही हैं। योजना आयोग के बारे में मूल रूप से यह परिकल्पना की गई थी कि यह विशेषज्ञों का एक निकाय होगा, जिस पर पूरे राष्ट्र को अर्थात् संघ तथा राज्यों को एकसमान विश्वास होगा और वह उनका सम्मान प्राप्त करेगा। पहले-पहल सभी क्षेत्रों के प्रख्यात

विशेषज्ञ इसके कर्णधार थे परन्तु पिछले कुछ वर्षों से जिस ढंग से इसके सदस्यों को बदला गया है उससे सही मायनों में राष्ट्र की एक क्षमतापूर्ण संस्था के रूप में इसकी विश्वसनीयता बहुत कम हो गई है। यद्यपि योजना की सफलता के लिए राष्ट्रीय सर्वसम्मति अनिवार्य मांग है फिर भी योजना आयोग हमेशा स्वयं को संघ और राज्यों के समक्ष समान रूप से जिम्मेदार निकाय के रूप में नहीं मानता। योजना आयोग का तौर-तरीका, अपने आपको अन्यों की अपेक्षा बेहतर समझने की भावना, अपरिवर्तनीय कार्यविधियां, तानाशाही प्रवृत्ति की वजह से राज्य सरकारों में क्षेभ की भावना पैदा हुई है क्योंकि राज्यों ने अनेक वर्षों में अपनी क्षमता और निपुणता को विकसित कर लिया है तथा वे अपनी संवैधानिक स्थिति के बारे में उत्तरोत्तर अधिक बलपूर्वक कहने लगे हैं। कुछ तो यह भी सोचते हैं कि राज्य के कार्यक्रमों और नीतियों में बाधा डालना संघ स्तर पर एक साधन बन गया है। योजना आयोग ने वित्तीय सुपुर्दगी (अंतरण) संबंधी कुछ ऐसे कार्यों को अनधिकृत रूप से हथिया लिया है जो संविधान के अनुसार वास्तविक रूप से वित्त आयोग के थे। योजना आयोग और राज्य सरकारों के बीच परस्पर समझबूझ और परामर्श की कमी रही है और कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि योजना बनाने की वर्तमान पद्धति के अधीन राज्य अपनी पहल शक्ति खो देते हैं, और संविधान के निर्माताओं द्वारा उनके लिए निर्धारित भूमिका को वे नहीं निभा पाते। कुछ ने तो यहां तक सुझाव दिया है कि वर्तमान संस्थाओं का पुनः विन्यास करते हुए आर्थिक आयोजना के संबंध में संघ तथा राज्यों की भूमिकाएं पुनः परिभाषित की जाएं।

योजना आयोग के वर्तमान गठन और कार्यविधि में गणितीय अभ्यास की व्यवस्था है और कुछ हद तक एम० एन० पी०, उद्दिष्ट परिव्यय और केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के माध्यम से प्राथमिकताएं/स्कीमें लादने का प्रावधान है। राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् के सचिवालय को अपनी नामावली में राज्य सरकारों के ऐसे कर्मचारी रख लेने चाहिएं, जिन्हें राज्यों में विकास के कार्यकलापों संबंधी मामलों में व्यावहारिक अनुभव तथा तकनीकी जानकारी हासिल है ताकि राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् राज्यों को बेहतर सलाह दे सके।

6.4 इस पर पहले ही विचार कर लिया गया है।

6.5 इस पर पहले ही विचार कर लिया गया है।

6.6 इस पर पहले ही विचार कर लिया गया है।

6.7 इस समय केन्द्रीय सहायता, 30% अनुदान और 70% ऋण के रूप में दी जा रही है। यह ऋण 15 वर्षों में चुकाया जाएगा। राज्यों को बढ़ती हुई केन्द्रीय सहायता और उसके उपर्युक्त पैटर्न के कारण राज्यों का ऋण का बोझ बढ़ता जा रहा है और इसका परिणाम यह हुआ कि विकास के प्रयोजनों के लिए राज्यों को वास्तव में उपलब्ध संसाधनों की मात्रा कम हो गई है। इस तथ्य को समझकर योजनेतर पूंजीगत अंतर के मूल्यांकन का काम भी छठें, सातवें और आठवें वित्त आयोगों के विचारार्थ विषयों में शामिल कर लिया गया है। केन्द्रीय सहायता के अनुदान वाले अंश को बढ़ाकर समस्या पैदा होने से रोकना अधिक अच्छा होगा। बजाय इसके कि अयथार्थवादी शर्तें लगाकर समस्याएं पैदा की जाएं और फिर वित्त आयोग जैसे निकाय के समक्ष इसे समीक्षा के लिए भेज दिया जाए। योजना में शामिल स्कीम की दृष्टि से भी यह स्पष्ट है कि योजना निवेश का 70% भाग ऐसा है, जिससे ऋण चुकता करने के लिए संसाधन जुटाए जा सकते हैं और इस प्रकार 70% ऋण का औचित्य सिद्ध होता है। इसलिए अनुदान का अंश 50% तक बढ़ा दिया जाए।

इसके साथ ही ऋण चुकता करने की शर्तों में वर्तमान शर्तों की अपेक्षा ढील दे दी जाए। ऋण घटक में वर्तमान स्थिति के अनुसार आधे साधारण ऋण और आधे, सुलभ-ऋण हों अर्थात् उन्हें चुकता करने की अवधि 50 वर्ष तक हो और इसकी ब्याज की दर केन्द्र को अन्तरराष्ट्रीय विकास प्राधिकरण द्वारा दिए जाने वाले ऋण पर लगने वाले ब्याज की दर के अनुरूप उचित रूप से कम हो। मोटे तौर पर यह प्रतीत हो सकता है कि इससे केन्द्रीय सरकार की संसाधनों की स्थिति प्रभावित होगी लेकिन इस बात पर आसानी से गौर किया जा सकता है कि अंतिम विश्लेषण करने पर यह सही नहीं होगा। जिस सीमा तक चुकौती की शर्तें अधिक कठिन हैं और राज्यों की यह जिम्मेदारी है कि वे ब्याज का भुगतान करें और मूल राशि चुकाएं, उस सीमा तक राज्यों के संसाधन उनकी योजनाओं के लिए कम होंगे और इसका अर्थ यह होगा कि एक निश्चित योजना परिव्यय के लिए केन्द्रीय सहायता और अधिक होगी। इसलिए इन शर्तों को अधिक उदार बनाने से योजना में धन लगाने के लिए राज्यों के संसाधन जारी कर दिए जाएंगे और केन्द्रीय सहायता की मात्रा उतनी ही कम हो जाएगी। लेकिन केन्द्रीय सहायता की शर्तों को अधिक उदार बनाकर इस अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने से राज्यों की अपनी संसाधनों की स्थिति सुधर जाएगी और उस हद तक उनकी वित्तीय स्वायत्तता की स्थिति मजबूत हो जाएगी।

वित्त मंत्रालय द्वारा केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान पद्धति बिल्कुल सही है और वर्तमान पद्धति में कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है।

गाडगिल सूत्र (फार्मूला), जो कि अत्यधिक विचार-विमर्श के बाद और राज्यों की सर्वसम्मति के परिणामस्वरूप तैयार किया गया था, के आधार पर राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता का वर्तमान संवितरण अत्यधिक जटिल और असमान क्षेत्र में भी सही ढंग से काम कर रहा है। लेकिन यह सूत्र और सहायता की राशि जारी करने की पद्धति केवल उस समय तक जारी रहेगी जब तक विदेशी आर्थिक सहायता, ऋण, अन्य विवेकाधीन अंतरण आदि को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् व्यापक आधार पर नया मानदंड तैयार नहीं कर लेती।

6.8. देखने में आया है कि सांविधिक अंतरण कुल अंतरणों का 40% हैं जबकि विवेकाधीन अंतरण 60% है। विवेकाधीन अंतरणों की इस बहुलता के कारण (जो कि अधिकतर ऋणों के रूप में होते हैं) राज्य यूनिट की व्यवहार्यता के सिद्धान्त की उपेक्षा की गई है और संघ सरकार के साथ अपने संबंधों को लेकर राज्य असुरक्षित महसूस कर रहे हैं।

एक बार योजना अनुमोदित हो जाने के बाद राज्यों के लिए अलग रखी गयी कुल सहायता में से प्रत्येक राज्य को दी जाने वाली सहायता की मात्रा संशोधित गाडगिल फार्मूला के अनुसार आमतौर पर जनसंख्या के आधार पर निर्धारित की जाती है। लेकिन संविधान के अधीन संघ की अपेक्षा, राज्यों के विकास का क्षेत्र अपेक्षाकृत बहुत अधिक बड़ा है और लोगों के साथ सीधे संपर्क में रहने के कारण राज्य स्थल पर होने वाली घटनाओं से अधिक वाकिफ होते है। फिर भी, आयोजना प्रक्रिया में वे कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा पाते। आम तौर पर आर्थिक मामलों में और विशेष रूप से आयोजना के मामले में निर्णय लेने की शक्तियों का संघ स्तर पर केन्द्रीयकरण होने के कारण राज्यों की प्रतिक्रिया जानने के लिए अपेक्षित मुअवसर नहीं मिल पाता।

दूसरी बात यह है कि राज्य की योजनाओं को सहायता देने के लिए राष्ट्रीय योजना में अलग रखी गई संसाधनों की मात्रा, जिससे राज्य की योजना के आकार पर प्रभाव पड़ता है, का निर्धारण केन्द्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है और योजना आयोग को आबंटन किया जाता है। वित्त मंत्रालय के निर्णय के पीछे कोई ज्ञात वस्तुपरक आधार नहीं होता।

जहां तक केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों का संबंध है, राज्यों की योजनाओं में राज्यों का हिस्सा दिखाया जाता है। हालांकि केन्द्रीय मंत्रालय ही केन्द्रीय स्कीमों तथा केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों को तैयार करते हैं और विस्तृत आयोजना करते हैं। राज्य पर केवल उनके कार्यान्वयन का काम छोड़ दिया जाता है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, इनमें से अधिकांश स्कीमें राज्यों के सांविधानिक उत्तरदायित्वों के क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं।

विदेशी सहायता के माध्यम से जो अतिरिक्त सहायता उपलब्ध होती है, वह केवल अपेक्षाकृत सुदृढ़ राज्यों को ही मिल पाती है, इसके अतिरिक्त बाजार ऋण के आबंटन और संस्थागत वित्त प्रबंध के माध्यम से निवेशों में भी सुदृढ़ राज्यों को ही अधिक हिस्सा मिल पाता है।

इसलिए हमारा सुझाव है कि वित्त आयोग के सीमा-क्षेत्र से बाहर संसाधनों का अंतरण केवल राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् का ही एकमात्र उत्तरदायित्व हो, जिसके गठन का हमने प्रस्ताव किया है।

6.9 इस पर पहले ही विचार कर लिया गया है।

6.10 यह बिल्कुल सही है कि राज्य योजनाएं बहुत बड़ी संख्या में केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों द्वारा विकृत हुई हैं। इन स्कीमों पर राज्य सरकार के

बजाय संघ के मंत्रालयों द्वारा विस्तार से विचार किया जाता है और इसके लिए योजना बनाई जाती है। जरूरत केवल इस बात की है कि राज्य के हिस्से की व्यवस्था राज्य योजना में की जाए और उन स्कीमों को कार्यान्वित करने का काम भी राज्यों द्वारा किया जाए, जिनमें से अधिकतर राज्य की संवैधानिक जिम्मेदारी के क्षेत्र में आती हैं। सी० एस० एस०, एम० एन० पी० और उद्दिष्ट परिव्यय की जटिल प्रणाली होने के कारण राज्य अपनी निजी प्राथमिकताएं निर्धारित करने के लिए बहुत कम युक्तिपूर्वक काम कर पाते हैं। इसके अलावा, कई वर्षों से इन स्कीमों में कई परिवर्तन किए गए हैं—कुछ स्कीमें राज्यों को अंतरित की गई हैं और कुछ अन्य जोड़ी गई हैं। इसलिए ऐसी अनेकानेक स्कीमों पर खर्च कम करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् के माध्यम से कई प्रयास किए गए, जिस पर वर्ष 1968 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने यह स्वीकृति दी कि इन स्कीमों पर खर्च राज्य योजनाओं की कुल सहायता के 1/6 या 1/7 भाग तक सीमित कर दिया जाए लेकिन इस पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। इस संबंध में और प्रयास भी किए गए हैं जिनका कोई परिणाम नहीं निकला।

6.11 योजना आयोग का मौजूदा प्रबोधन और मूल्यांकन तंत्र राज्य सरकारों की कुछ अधिक मदद नहीं कर पाया है। अतः राज्य सरकार के कार्यकलापों के स्वरूप से सुसंगत प्रबोधन और मूल्यांकन तकनीकों का विकास करने की जरूरत है। प्रबोधन और मूल्यांकन के क्षेत्र में योजना आयोग द्वारा ऐसी तकनीकी विशेषज्ञता और मार्गदर्शन राज्य सरकारों के लिए भी उपयोगी होगा। स्वाभाविक है कि राज्य सरकारें ऐसे मार्गदर्शन और विशेषज्ञता का तभी लाभ उठाएंगी, यदि वह लाभप्रद होगा। संभवतः प्रबोधन और मूल्यांकन संबंधी तकनीकें इस ढंग से बनानी पड़ेंगी ताकि वे अलग-अलग क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हो सकें और वास्तव में राज्य के अंदर अलग-अलग विभागों को उनकी अपनी प्रबोधन और मूल्यांकन पद्धतियां बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। प्रबोधन और मूल्यांकन को केन्द्रीकृत करने के प्रयास से अभी तक कोई मदद नहीं मिली है।

6.12 इस पर पहले ही विचार कर लिया गया है।

6.13 राज्य सरकार में योजना बोर्डों के संबंध में मूल समस्या यह है कि उनकी प्रभाविता अत्यधिक सीमित है क्योंकि राज्य सरकार के अंदर योजनागत प्राथमिकताओं का निर्धारण करने के लिए मौजूदा ढांचे में बहुत अधिक गुंजाइश नहीं है। इसका कारण यही है कि इस समय राज्य योजनाओं के लिए केन्द्र सरकार का अनुमोदन लेने की पद्धति विद्यमान है। इसके अलावा राज्य योजना बोर्ड और भारत के योजना आयोग के बीच संबंध पूरी तरह से परिभाषित नहीं किए गए हैं। अतः यह बेहतर होगा कि योजना बोर्डों के प्रकार के बारे में निर्णय लेने के लिए प्रत्येक राज्य सरकार पर यह बात छोड़ दी जाए कि वे अपनी प्राथमिकताओं के अनुरूप जैसा चाहें वैसा योजना बोर्ड बना लें। इस प्रकार एकरूप पद्धति के आधार पर बोर्डों के गठन और कार्य निर्धारित करना वांछनीय नहीं होगा।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 संविधान के निर्माता चाहते थे कि भारत संघ अपना नियंत्रण विशिष्ट उद्योगों तक ही सीमित रखे और शेष उद्योग राज्य सरकारों पर छोड़ दे। लेकिन औद्योगिक विकास विनियमन अधिनियम, 1951 में ऐसे विभिन्न उद्योगों को सूचीबद्ध किया गया है जिन्हें इस अधिनियम के सीमाक्षेत्र के अन्तर्गत लाया गया है। इससे केन्द्र सरकार तथा उसके अभिकरणों (एजेंसियों) को उन उद्योगों के विकास का नियंत्रण और विनियमन करने की पूरी शक्तियां मिल गई हैं। लेकिन व्यवहार में जब तक किसी उद्योग को उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम के अधीन अनुमति नहीं मिल जाती या उद्योग के आधार की निर्दिष्ट सीमा के आधार पर अधिनियम के सीमा-क्षेत्र में छूट नहीं मिल जाती तब तक उद्योगों के लिए तरक्की करना सम्भव नहीं होगा। उससे राज्य में उद्योगों की उन्नति और विकास पर प्रभाव पड़ा है।

7.2 (i) रक्षा या राष्ट्रीय सुरक्षा या सामरिक प्रयोग से जुड़े हुए उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योगों को राज्य सरकारों द्वारा विनियमित किए जाने की अनुमति दी जाए।

(ii) अनेकानेक उद्योग, विशेष रूप से उपभोक्ता क्षेत्र में उद्योग और हल्के उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम नियंत्रण सीमा से स्वतः बाहर हो जाएंगे।

7.3 योजना आयोग प्रत्येक योजना अवधि में राष्ट्रीय विकास परिषद् को इस संबंध में व्यापक सुझावों की सिफारिश कर सकता है कि अलग-अलग उद्योगों में उत्पादन को किस स्तर तक बढ़ाया जा सकता है और मांग, परिवहन क्षमता आदि के संदर्भ में विस्तृत वितरण की पद्धति क्या हो सकती है। जब वे मार्गदर्शक सिद्धांत राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अपना लिए जाएंगे तब प्रत्येक राज्य सरकार यह निर्णय ले सकेगी कि कितने उद्योगों को राज्य में और किस प्रकार से प्रोत्साहन दिया जा सकता है। राज्य सरकारें प्रदूषण आदि से संबंधित सामान्य नियमों का अनुपालन करेंगी क्योंकि राज्य सरकारों का भी इसमें उतना ही हित है जितना कि केन्द्रीय एजेंसियों का है। पूंजीगत माल और कच्चे माल के आयात के लिए इन उद्योगों से प्राप्त आवेदनों पर समय विशेष पर लागू सामान्य नियमों के अनुसार कार्रवाई की जाएगी।

7.4 लघु-उद्योगों के लिए मशीनों या कच्चे माल के आयात से संबंधित सूची समय-समय पर भारत सरकार द्वारा घोषित की जाएगी। एक बार ऐसा हो जाने पर लघु-उद्योगों के विकास के सारे प्रयास राज्य सरकार पर छोड़ दिए जाएंगे। लघु-उद्योगों को संस्थाओं से वित्त-प्रबंध किए जाने संबंधी उदार उपबंधों से बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलेगा और छोटे स्थानीय बैंक स्थापित करने के लिए भी प्रोत्साहन मिलेगा। इसके परिणामस्वरूप बचत जुटाने और इसे उद्योगों में निवेश करने के लिए भी दिशा मिलेगी।

7.5 जिन राज्यों में उद्योग और उद्यम पहले ही से विकसित हैं, वे केन्द्रीय वित्त प्रबंध संस्थाओं के माध्यम से वित्त का अधिक बेहतर हिस्सा लेने में कामयाब हुए हैं। जरूरत इस बात की है कि केन्द्रीय वित्त-प्रबंध संस्थाएं औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों को बढ़ावा देने के पहल पर अधिक जोर दें और विशेष रूप से उनके प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में अवश्य रखें।

7.6 और 7.7 यह आवश्यक है कि केन्द्रीय क्षेत्र के सरकारी उद्यम अर्थात् रक्षा स्थापनाओं के इस्पात संयंत्रों के स्थान के बारे में प्रौद्योगिक-आर्थिक विचार के संदर्भ में निश्चय किया जाए। स्थान के निश्चय का मामला एक ऐसा महत्वपूर्ण मामला है जिस पर राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निश्चय किया जाना चाहिए। हो सकता है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् इस कार्य को स्वयं न कर सके लेकिन यह संभव है कि वह कोई ऐसा प्रबंध करे जिससे इस मामले पर कोई उपयुक्त और युक्तिसंगत निर्णय लिया जा सके।

7.8 कुल मिलाकर प्रोत्साहन संबंधी नीति सही ढंग से कार्य कर रही है। परन्तु जब तक पिछड़े क्षेत्र की संकल्पना ब्लाक या तालुक स्तर तक सीमित रखी जाएगी तब तक प्रोत्साहन संबंधी नीति का प्रभाव बहुत कम रहेगा जैसाकि वर्तमान समय में है।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 केन्द्र और राज्यों या एक से अधिक राज्यों को प्रभावित करने वाले प्रत्येक मामले के लिए एक उपयुक्त परामर्शदायी तंत्र और मंच होना चाहिए। हम महसूस करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन परिकल्पित अंतर-राज्यिक परिषद् विवादों को निपटाने के लिए बहुत हद तक एक प्रभावी तंत्र होगा। विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्था में राज्यों के बीच समायोजन की उसी प्रकार से आवश्यकता है जैसे कि केन्द्र और राज्य के बीच आवश्यकता है। केवल प्राधिकरण नियुक्त कर देने मात्र से ही समस्या हल नहीं होगी जरूरत इस बात की है कि राज्यों तथा व्यापारियों में वास्तविक समस्याओं का पता लगाया जाए। समस्याओं के व्यावहारिक हल उसी समय ढूंढने होंगे, जब समस्याएं पैदा होंगी।

कृषि

9.1 केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल के विचारों से हम पूर्णतया सहमत हैं (1967)।

9.2 हम इस विचार से सहमत है कि राज्य अभिकरण के माध्यम से कार्यान्वित की जा रही केन्द्रीय स्कीमें तथा केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमें अंतत. राज्य क्षेत्र के एक भाग के रूप में होनी चाहिए और उनकी संख्या कम-से-कम रखी जाए। परन्तु व्यवहार में ऐसा नही हो रहा। राज्य को वार्षिक योजना तथा पंचवर्षीय योजना के अनुमोदन के समय योजना आयोग भारत सरकार की इस इच्छा को ध्यान में रखते हुए, कि केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमें अधिक से-अधिक संख्या मे होनी चाहिएं, अपेक्षाकृत कम वित्त-व्यवस्था के लिए अनुमोदन दे रहा है। यह कोई वांछनीय परिपाटी नही है।

9.3 कृषि संबंधी योजना के केन्द्रीय तथा केन्द्रीय रूप से प्रायोजित क्षेत्रों के निर्माण में राज्य सरकारों की भूमिका केवल नाममात्र है और केन्द्रीय तथा केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के कार्यचालन में समायोजन करने के बारे मे राज्य सरकार के सुझावों को भी उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना दिया जाना चाहिए। केन्द्रीय या केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीम तैयार करने से पहले केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकार से विचार-विमर्श करना चाहिए और इसकी वार्षिक समीक्षा बैठकें भी होनी चाहिएं, जिनमें आवश्यक समायोजन करने के लिए राज्य सरकारों के विचार भी ध्यान में रखे जाने चाहिए।

9.4 यदि हम केवल न्यूनतम कीमतों के निर्धारण और निवेश व्यवस्था को ही लें तो कहा जा सकता है कि कृषि मदों के लिए न्यूनतम या उचित कीमत निर्धारित करने में भारत सरकार केवल राज्य सरकार से परामर्श करने की औपचारिकता मात्र निभा रही है। एक प्रश्नावली भेज कर कृषि कीमत आयोग द्वारा राज्य सरकारों के विचार मांगे जाते हैं और कृषि कीमत आयोग की सिफारिशें स्वीकार करने से पहले भारत सरकार राज्य सरकारों की टिप्पणियां मांगती है। पत्राचार करने के बजाय कृषि कीमत आयोग के लिए यह वांछनीय होगा कि वह अपनी सिफारिशों को अंतिम रूप देने से पहले राज्य सरकारों के सभी सचिवों की एक बैठक बुलाएं। कीमतें निर्धारित करने के बारे में अपने निर्णय को अंतिम रूप देने से पहले भारत सरकार को सभी मुख्य मंत्रियों की बैठक भी बुलानी चाहिए।

जहां तक महत्वपूर्ण निवेशों की व्यवस्था करने का संबंध है भारत सरकार राज्य सरकारों को उर्वरक आबंटित करती है। प्राइवेट व्यापारियों और सहकारी समितियों के माध्यम से निर्माताओं द्वारा उर्वरकों के वितरण पर राज्य सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होता। एक बार जब भारत सरकार किसी राज्य को एक विनिर्माता विशेष से एक निश्चित मात्रा का आबंटन कर देती है तो निर्माता प्राइवेट व्यापारियों और सहकारी समितियों के बीच उर्वरकों का आबंटन करने के लिए स्वतंत्र होता है। राज्य सरकारें क्योंकि सहकारी क्षेत्र के माध्यम से उर्वरकों के वितरण को प्रोत्साहन देने में हितबद्ध हैं इसलिए राज्य सरकारों के पास इस संबंध में शक्ति होनी चाहिए कि विनिर्माताओं को वितरण का अधिकार देने के बजाय वह सहकारी समितियों, कृषि-उद्योगों और प्राइवेट व्यापारियों के बीच उर्वरकों का वितरण कर सके।

9.5 कृषि अनुसंधान के संबंध में कोई विशेष समस्या नहीं हैं। जहां तक राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक का संबंध है, यह कृषि और ग्रामीण विकास को मदद करने वाले राष्ट्रीय स्वायत निकाय की तरह कार्य करने की बजाय भारत सरकार के स्कंध की तरह अधिक काम कर रहा है। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि वह वे इस राज्य के "मार्कफेड" की सरकारी प्रतिभूतियों के प्रति भी कपास और मूंगफली में स्थिरीकरण के लिए राज्य सहकारी बैंक से नकद ऋण सीमाएं प्राप्त करने मे मदद करने के लिए आशान्वित नहीं हो पाया है।

खाद्य और नागरिक आपूर्ति

10.1 केन्द्र-राज्य परामर्शों के लिए वर्तमान प्रबंध पर्याप्त नही है और इससे राज्य सरकार को सतोषजनक ढंग से अपनी जिम्मेदारियां निभाने में मदद नहीं मिलती।

10.2 हां। समय-समय पर इसकी समीक्षा अत्यंत आवश्यक है।

(उपर्युक्त दोनों प्रश्नों पर समेकित टिप्पणी नीचे दी गई है।) अनिवार्य वस्तु अधिनियम भारत सरकार द्वारा जारी किया जाता है और इसलिए इस अधिनियम की धारा 3 के अधीन राज्य सरकार द्वारा कोई भी आदेश भारत सरकार के साथ पूर्व परामर्श करके ही जारी किया जा सकता है, हालांकि मात्र राज्य सरकार ही इस केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों का कार्यान्वयन करने की स्थिति में होती है।

चावल मिल उद्ग्रहण आदेश [आंध्र प्रदेश चावल प्राप्ति (उद्ग्रहण) आदेश, 1984] अनिवार्य वस्तु अधिनियम के अधीन जारी किया गया है। इस आदेश के अनुसार प्रत्येक मिल को जो चावल का विनिर्माण करती है, अधिप्राप्ति कीमतों का 50 प्रतिशत उद्ग्रहण के रूप में सरकारी एजेंसी अर्थात् भारतीय खाद्य निगम को देना पड़ता है। वर्ष 1974 में आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड अस्तित्व में आया और मिल उद्ग्रहण के अधीन चावल प्राप्त करने के लिए इसे एक राज्य एजेंसी भी बनाया गया। यद्यपि आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड मिल उद्ग्रहण आदेश में प्राप्तकर्ता एजेंसी के रूप में रहा है लेकिन केन्द्रीय सामूहिक भंडार के लिए भारतीय खाद्य निगम के माध्यम से ही अधिप्राप्ति की जाती रही, जो एक केन्द्रीय एजेंसी है।

दुर्बल वर्गों को राज्य सरकार की ओर से 2 रुपए प्रति किलोग्राम की दर से चावल सप्लाई करने की राज्य की बहुत बड़ी प्रतिबद्धता के कारण राज्य सरकार आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड के माध्यम से भी अधिप्राप्ति करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली की जरूरतें पूरी करना चाहती थी क्योंकि जितनी मात्रा हम भारतीय खाद्य निगम से प्राप्त करते रहे हैं, वह सार्वजनिक वितरण प्रणाली की संपूर्ण मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है परन्तु यद्यपि भारत सरकार ने उद्ग्रहण आदेश में एक अन्य अधिप्राप्ति एजेंसी के रूप में आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड को रखने के हमारे प्रस्ताव की सहमति दे दी है परन्तु सरकार ने हमसे आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड के माध्यम से कोई अधिप्राप्ति न करने के लिए कहा है उसका कहना है कि चावल की अधिप्राप्ति के लिए भारतीय खाद्य निगम ही एकमात्र एजेंसी होगी।

अधिक चावल अधिप्राप्त करने की जरूरत को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने वर्ष 1983-84 में उद्ग्रहण की प्रतिशतता 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 62.2/3 प्रतिशत तक करने का प्रस्ताव रखा परन्तु भारत सरकार इस बात से सहमत नहीं है और चाहती है कि 50 प्रतिशत की विद्यमान प्रतिशतता को ही जारी रखा जाए। राज्य सरकार ने भी चावल की कीमत उचित स्तर पर बनाए रखने के उद्देश्य से, मिल उद्ग्रहण आदेश में एक खंड जोड़ने का प्रस्ताव किया है, ताकि सरकार राज्य एजेंसियों द्वारा मिलमालिकों के पास उपलब्ध उद्ग्रहण (लेवी) मुक्त स्टॉक की खरीद के लिए उचित कीमतें निर्धारित कर सके। परन्तु भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को भी नामंजूर कर दिया और राज्य सरकार को सूचित किया कि मिल मालिकों के पास रखे उद्ग्रहण मुक्त स्टॉक की कीमतों पर कोई नियंत्रण न रखा जाए। राज्य सरकार ने फसल वर्ष 1984-85 में धान के लिए निम्नलिखित कीमतों का सुझाव दिया था :

साधारण	160 रुपए प्रति क्विंटल
बढ़िया	167 रुपए प्रति क्विंटल
बहुत बढ़िया . . .	177 रुपए प्रति क्विंटल

भारत सरकार ने केवल निम्नलिखित कीमतें निर्धारित की थी :

साधारण . . .	137 रुपए प्रति क्विंटल
बढ़िया	141 रुपए प्रति क्विंटल
बहुत बढ़िया . . .	145 रुपए प्रति क्विंटल

हालांकि कृषि कीमत आयोग से भारत सरकार को यह सिफारिश की थी कि वह दक्षिणी राज्यों के लिए धान की कीमतें अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर निर्धारित करे, फिर भी भारत सरकार ने कृषि कीमत आयोग की सिफारिश को ध्यान में न रखते हुए देश भर में एक समान समर्थित कीमतें निर्धारित की है।

जब आंध्र प्रदेश सरकार ने चावल मिल उद्योग और सहकारी समितियों द्वारा (और स्वयं राज्य सरकार द्वारा भी नहीं) धान के लिए समर्थित कीमत के ऊपर 10 रुपए प्रति क्विंटल अधिक का भुगतान करने का प्रस्ताव किया तो भारत सरकार ने इस संबंध में अनुदेश दिया कि समर्थित कीमतों के ऊपर अधिक किसी कीमत का राज्य सरकार द्वारा भुगतान न किया जाए या यहां तक कि

मिल मालिकों और सहकारी समितियों द्वारा भी इसके भुगतान का प्रबंध न किया जाए। भारत सरकार चाहती थी कि जिन आदेशों में मिल मालिकों से यह अनुरोध किया गया था कि समर्थित कीमत के ऊपर 10 रु० प्रति क्विंटल अधिक का भुगतान करें उन्हें वापस ले लिया जाए। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य सरकार के पास भारत सरकार के अनुदेशों का अनुपालन करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं रह गया था, हालांकि राज्य सरकार भारत सरकार द्वारा घोषित समर्थित कीमतों से थोड़ी अधिक कीमतों पर धान की खरीद की व्यवस्था करके चावल मिल उद्योग और सहकारी समितियों के माध्यम से कृषकों की मदद करना चाहती थी।

ऐसे प्रतिबंध आंध्र प्रदेश के किसानों के हितों के विरुद्ध हैं क्योंकि वे कृषि जलवायु की अत्यधिक विपरीत स्थितियों में धान उगाते हैं और उनकी खरीफ धान की कीमतें, जो उनका मुख्य उत्पाद है, भारत सरकार द्वारा घोषित समर्थक कीमतों के औसत के बराबर भी नहीं होतीं।

भारत सरकार ने मोटे अनाज के लिए समर्थक कीमतें निश्चित की है लेकिन भारतीय खाद्य निगम के माध्यम से समर्थक कीमतों से संबंधित कार्रवाई नहीं कर रही है।

आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड के माध्यम से खुले बाजार में कीमतें लागू होने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक नकदी ऋण सहायता नहीं देता जब तक कि भारत सरकार इसके लिए अनुमति न दे दे। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए खुली बाजार खरीदारी हेतु भी नकदी ऋण सहायता देने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक भारत सरकार से स्वीकृति लेने पर जोर देता है।

वितरण के युक्तीकरण को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार की चावल की जरूरत प्रति माह लगभग 1.75 लाख मीटरी टन है। अधिक चावल प्राप्त करने, केन्द्र के अपने प्रतिधारण के लिए केन्द्रीय सामूहिक भंडार में अधिक चावल देने और हमारे अपने इस्तेमाल के लिए भी केन्द्र से अधिक लेने के लिए हमारे द्वारा इस संबंध में बार-बार प्रस्ताव भेजे जाने के बावजूद भारत सरकार प्रति माह केवल 80,000 मीटरी टन चावल अधिप्राप्त कर पाती है और शेष 95,000 मीटरी टन चावल मिलों से उनके वसूली (लेवी) मुक्त स्टॉक से बातचीत द्वारा तय की गई कीमतों पर लेने पड़ते हैं, न कि अधिप्राप्ति कीमतों पर ऐसा करते समय भारत सरकार के इस निर्देश को ध्यान में रखना पड़ता है कि भारतीय खाद्य निगम से भिन्न कोई एजेंसी चावल की अधिप्राप्ति न करे। हाल ही में, भारत सरकार का यह विचार रहा है कि अधिप्राप्ति के अपेक्षाकृत उच्च-स्तर रखना लाभकर नहीं है, हालांकि देश में चावल के सुरक्षित भंडार (बफ़र स्टॉक) बनाने की बहुत अधिक जरूरत है और चावल अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं है, (जबकि गेहूं उपलब्ध है) फिर भी भारत सरकार विदेशी चावल के लिए ऊंची-से-ऊंची कीमत देने को तैयार है।

भारत सरकार हमारी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी पामोलीन तेल आबंटित करने में असमर्थ रही है। खुले बाजार में मूंगफली के तेल की उपलब्धता सुनिश्चित करने और उचित कीमत पर उपभोक्ताओं को मूंगफली का तेल उपलब्ध कराने के लिए हमने भारत सरकार को मूंगफली के तेल पर वसूली-आदेश के लिए सहमति देने के संबंध में लिखा ताकि राज्य मूंगफली का तेल अधिप्राप्त करके उचित कीमतों पर कमजोर वर्गों को उपलब्ध करा सकें और वसूली-मुक्त मूंगफली के तेल का संचलन चावल की भांति ही विनियमित कर सकें। लेकिन भारत सरकार ने मूंगफली के तेल पर उद्ग्रहण की इस आधार पर अनुमति नहीं दी कि आंध्र प्रदेश में मूंगफली का उत्पादन बहुत कम होता है।

समाधान

1. भारत सरकार की अनुमति देने के लिए लिखे बिना आंध्र प्रदेश में अनिवार्य वस्तुओं का उचित और न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार अनिवार्य वस्तु अधिनियम के अधीन जारी नियंत्रण आदेशों में संशोधन करने के लिए राज्य सरकार को अनुमति दे सकती है परन्तु आंध्र प्रदेश सरकार अनिवार्य वस्तु अधिनियम के अधीन नियंत्रण आदेशों में किए गए संशोधनों के बारे में भारत सरकार को सूचित करती रहे।

2. चावल की अधिप्राप्ति के लिए राज्य सरकार को इस बारे में शक्तियां प्रत्यायोजित की जाएं कि केन्द्रीय सरकार की एजेंसी के साथ-साथ वह अपनी एजेंसी भी रख सकती है।

3. खुले बाजार में कीमतों पर नियंत्रण रखने और आंध्र प्रदेश राज्य नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड को बिक्री के लिए उद्ग्रहण (लेवी) मुक्त चावल की कीमतें निश्चित करने के लिए भी राज्य सरकार को शक्तियां प्रत्यायोजित की जाएं। ऐसा करते समय मिल मालिकों की उत्पादन लागत और उद्ग्रहण सुपुर्दगी के समय उसके द्वारा उठाई गई हानि आदि को ध्यान में रखा जाए। खुले बाजार में कीमतें नियंत्रित रखने और राज्य के भीतर चावल की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए यह उपाय करना जरूरी है।

4. भारत सरकार, राज्य सरकार को इस बात की अनुमति दे सकती है कि भारत सरकार द्वारा निश्चित की गई कीमतों से जितनी राशि अधिक होगी उसे राज्य सरकारें चावल प्रेषण (दलाई) उद्योग और सहकारी समितियों (राज्य सरकार द्वारा नहीं) से व्यवस्था करके अदा कर सकती हैं।

5. स्थानीय आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकारों को वसूली प्रतिशतता निश्चित करने की शक्तियां भी प्रत्यायोजित की जा सकती हैं।

6. भारतीय खाद्य निगम को सुपुर्द की गई मात्रा में से राज्य सरकार को अपने सार्वजनिक वितरण के लिए चावल की अपेक्षित मात्रा मिल मालिकों द्वारा उद्ग्रहण के रूप में लेने की अनुमति दी जाए। ऐसी मात्राओं के संबंध में कोई अधिकतम सीमा लागू करने की जरूरत नहीं है। राज्य सरकार को यह शक्ति दी जाए कि वह भारतीय खाद्य निगम को जितनी भी मात्रा सुपुर्द कर सकती हैं करे और केन्द्रीय भंडार के लिए आशयित चावल देने के बाद अपेक्षित मात्रा आहरित करे।

7. भारतीय खाद्य निगम से एक माह विशेष में उठाने के लिए शेष रह गए स्टॉक को अगले महीने में उठाने की अनुमति दी जाए। ऐसा कोई प्रतिबंध न लगाया जाए कि स्टॉक अगले महीने की 10 तारीख से पहले जरूर उठा लिया जाए।

8. भारतीय रिजर्व बैंक को सूचित कर दिया जाए कि यदि राज्य सरकार, भारत सरकार द्वारा निर्धारित नीति का पालन कर रही है तो भारत सरकार से स्वीकृति लिए बिना राज्य एजेंसी को नकदी ऋण सहायता लेने की अनुमति दी जाए।

शिक्षा

11.1 आलोचना का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। वास्तव में हमारा विचार है कि केंद्र सरकार अपेक्षाकृत अधिक पहल-शक्ति और नेतृत्व से काम करे और निम्नलिखित क्षेत्रों में राज्य सरकार को विशेष रूप से वित्तीय सहायता दे :—

(1) अध्यापकों की हैसियत और शिक्षा।
(2) एक समान प्राथमिक शिक्षा।
(3) माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण।
(4) शिक्षा के अवसरों में समानता और विभिन्न राज्यों में शैक्षिक वृद्धि के स्तर में सुधार।
(5) शिक्षा स्तर में सुधार।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा के क्षेत्र में समन्वय लाने और शिक्षा के स्तर सुधारने के अपने मुख्य उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, देश के विभिन्न भागों में विभिन्न विश्वविद्यालयों के बीच अनुदान का उचित और न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करे। यह महसूस किया जा रहा है कि इस संगठन से जरूरतमंद विश्वविद्यालयों को अपेक्षित मात्रा में निधियां नहीं पहुंच रही हैं। इस बारे में विचार करना युक्तियुक्त होगा कि देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए प्रादेशिक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग स्थापित किए जाएं ताकि विभिन्न क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों को निधियों का अधिक न्यायसंगत आवंटन करने में मदद मिले या

द्वारा विकल्प स्वरूप आयोग में राज्य सरकार को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाए ताकि राज्य के विचार प्रकट किए जा सकें। उच्च शिक्षा की आवश्यकताओं के विकास का तटस्थ रूप से मूल्यांकन करने और अपेक्षित वित्तीय सहायता की व्यवस्था करने की दृष्टि से तीन वर्षों में एक बार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालयों का विस्तृत और गहन निरीक्षण करे।

11.3 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग राज्यों के बीच तथा साथ ही केंद्र तथा राज्यों के बीच उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मतैक्य लाने में मदद करता है। जहां तक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का संबंध है, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ऐसा कोई निकाय नहीं है। राज्यों के बीच तथा साथ ही केंद्र और राज्यों के बीच प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में मतैक्य बनाने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के समान ही एक आयोग स्थापित करने के बारे में विचार किया जाए।

11.4 भारत के संविधान में अल्पसंख्यकों को कुछ सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार देने का उपबंध किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 30 से यह बताया गया है कि सभी अल्पसंख्यक समुदाय, चाहे वे धर्म पर आधारित हों या भाषा पर, अपनी इच्छा के शैक्षिक संस्थान स्थापित कर सकते हैं और चला सकते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य शैक्षिक संस्थाओं को सहायता देते समय इस बात का भेदभाव नहीं बरतेंगे कि वह संस्था धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक समुदाय के प्रबंध के अधीन है। विभिन्न धार्मिक संस्थानों और अन्य साम्प्रदायिक संस्थाओं ने अपनी-अपनी शैक्षिक संस्थाएं स्थापित की हैं। यद्यपि ये संस्थाएं किसी विशेष धार्मिक सम्प्रदाय आदि द्वारा स्थापित हैं, परन्तु इनमें किसी भी धर्म या भाषा के उम्मीदवार को दाखिला मिल जाता है। संविधान में दी गई गारंटी के अधीन आश्रय लेकर ऐसी संस्थाओं का प्रबंधक वर्ग दाखिले, नियुक्तियों और शिक्षक तथा गैर-शिक्षक कर्मचारियों को सेवा संबंधी सुरक्षा प्रदान करने आदि से संबंधित विभिन्न नियमों और विनियमों का पालन नहीं कर रहा है। फिलहाल, ऐसा कोई मार्गदर्शक सिद्धांत नहीं दिखाई देता, जिसके आधार पर यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई संस्था अल्पसंख्यक संस्था है या नहीं। भारत सरकार यह महसूस करती है कि वर्गीकृत अल्पसंख्यक संस्थाओं को और उनके विशेषाधिकारों को परिभाषित करना आवश्यक है परस्पर विरोध के कोई विशेष उदाहरण देखने में नहीं आए हैं।

11.5 अब तक मामलों को केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड द्वारा चर्चा और परामर्श करके अंतिम रूप दिया जाता है।

अंतः सरकारी समन्वय

12.1 भारत में केंद्र-राज्य संबंधों को लेकर उठने वाली समस्याओं को निपटाने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद्, योजना आयोग और अंतर्राज्यीय परिषदें आदि हैं। हम सिफारिश करते हैं कि संविधान में उपयुक्त उपबंध द्वारा एक राष्ट्रीय आयोजन विकास परिषद् स्थापित की जाए। प्रधान मंत्री इसके अध्यक्ष और मुख्य मंत्री इसके सदस्य हों। योजना आयोग उक्त आयोग की तकनीकी शक्ति तथा सचिवालय का काम करे। पंचवर्षीय योजनाओं से संबंधित मामलों पर परामर्श देने के साथ-साथ राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् एक ऐसे निकाय का कार्य भी करे, जिसमें वित्त और आयोजना पर केंद्र-राज्य संबंधों से संबंधित सभी मामलों में निरंतर परामर्श होते रहें। यह परिषद् योजना के लिए संसाधनों, उधार, विदेशी वित्त, विवेकाधीन अंतरणों का आबंटन और केंद्र तथा राज्यों को प्रभावित करने वाले कराधान संबंधी उपायों पर भी परामर्श दे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् सिंचाई जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रमुख परियोजनाओं की भी पहचान करे, जिनमें बहुत बड़ा परिव्यय करना पड़ता है ताकि राज्यों के संसाधनों के पूरक के रूप में केंद्र द्वारा उदारता से निधियां दी जा सकें। अपेक्षाकृत बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिए इस नम्य दृष्टिकोण की बहुत जरूरत है ताकि नदी-जल का पूरा-पूरा उपयोग सुनिश्चित किया जा सके और साथ ही राज्यों के संसाधनों पर अनुचित बोझ न पड़े। विशिष्ट मामले तदर्थ या स्थायी उपसमितियों को भेजना राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् के लिए संभव होना चाहिए। इन दोनों समितियों के सदस्य राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् में से ही लिए जाते हैं। यह बात ध्यान में रखी जाए कि राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् का ढांचा जानबूझकर इस प्रकार का रखा गया है ताकि वह अनुच्छेद 263 में यथापरिकल्पित अंतरराज्यिक परिषद् से भिन्न हो। यह परिषद्, जिसका गठन राष्ट्रपति के आदेश से किया जाएगा, हो सकता है कि उसमें संघीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुच्छेद 74 का अवलंब लेकर अचानक परिवर्तन की मांग किए जाने के कारण अपेक्षित मात्रा में स्थिरता, सततता और उन्मुक्ति न हो।

इसके अतिरिक्त, अंतः सरकारी समस्याओं का समाधान करने के लिए अनुच्छेद 263 में यथा परिकल्पित अन्तरराज्यिक परिषदें बहुत अधिक उपयोगी होंगी। यह पुनर्गठन वर्तमान प्रबंध के स्थान पर है।

ज्ञापन

भारत में संघवाद शानदार अतीत के स्मृतिचिह्न की तरह है। शुरू-शुरू में, ब्रिटिश भारत प्रशासन केवल कंपनी प्रबंध के रूप में था। सन् 1863 में महारानी की उद्घोषणा के परिणामस्वरूप ब्रिटिश भारत का प्रधान ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि बन गया। उसके बाद देश के भीतर समूचा राजनैतिक और प्रशासनिक ढांचा स्थानीय मातहतों के श्रम से विदेशी उपनिवेशवादी मालिक की सेवा करने के लिए जुट गया। न तो सांस्कृतिक विरासत और न ही भारतीय जनता की एकता के अन्य बंधन विभिन्न संघीय यूनिटों में ब्रिटिश साम्राज्य को सीमित करने के कारक बन सके। सैनिक कार्य-नीति और प्रशासनिक सुविधाओं के अनुरूप प्रांतीय सीमाएं बनाई गईं। प्रांत का अपना कुछ अर्थ नहीं था क्योंकि इससे एक सामान्य प्रदेश या संस्कृति प्रतिध्वनित नहीं होती थी। वास्तव में कोई परिसंघ था ही नहीं।

15 अगस्त, 1947 को जब भारत ने आजादी के मधुर स्वर सुने तो समूचे देश पर आह्लाद छा गया। इस विजय से बड़े से बड़े बुद्धिजीवी पर उन्माद छा गया। लिखित संविधान घोषित करने की जल्दी में संविधान के प्रवर्तक संविधान की संघीय विशेषताएं लिखने के लिए भारत सरकार अधिनियम, 1935 पर बहुत हद तक निर्भर हुए। निश्चय ही गुलामों को शासित करने के लिए देश के मूलभूत कानून को आजाद लोगों पर शासन करने का आधार नहीं बनाया जा सकता था। भारत सरकार अधिनियम, 1935 में आह्लादित स्वतंत्र लोगों की उमड़ती हुई इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्वकल्पना नहीं की जा सकती थी और न ही भाषा और संस्कृति जैसे परिष्कृत और सूक्ष्म प्रभावों के महत्व को समझा जा सकता था।

स्वतंत्र गणतंत्र भारत की तुलना ब्रिटिश-पूर्व योग में साम्राज्य या भारत में शासन से करना उचित नहीं होगा। इस बात पर बल देना भी उचित नहीं है कि जब कभी साम्राज्य या बादशाहत समाप्त हुई है और केन्द्रीय शक्ति कमजोर पड़ी है तब तब भारत ने दुःख उठाया है। यह सहृदयता त्रुटिपूर्ण है। पहले के समय में साम्राज्य और राज्य बलपूर्वक जीते जाते थे और बलपूर्वक ही रखे जाते थे। भारत गणतंत्र की स्थापना भारत की जनता द्वारा अपनी मर्जी से की गई थी। प्राधिकार का अतिकेन्द्रीकरण और संघ सरकार द्वारा असंवैधानिक रूप से शक्ति का एकत्रीकरण उस बल की भांति है, जिसे तानाशाही साम्राज्य और शासनों से जोड़ा जाता है। देश की एकता और अखंडता को हमारे राज्यों के अधिकारपूर्ण दावों की वजह से नहीं। बल्कि केंद्र की तानाशाही के कारण खतरा हो सकता है। देश के हितों को ऐसे ही खतरों का पता लगाने, जांच करने और उनसे बचाने की जरूरत है। सरकारिया आयोग को ऐसी ही जांच का कार्य सौंपा गया है। विचारणीय विषयों में यह स्पष्ट किया गया था कि तीन दशकों तक संविधान के कार्यचालन की केवल सैद्धांतिक रूप से ही समीक्षा नहीं की जानी है। राष्ट्र के राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन में अप्रजातांत्रिक शक्तियों द्वारा जो विरूपताएं और विकृतियां लाई गई हैं और जो प्रजातांत्रिक स्वरूप की नहीं हैं और जिसमें दलों और व्यक्तियों के स्वार्थ का भी पुट है, उन शक्तियों के, चाहे वे संवैधानिक हैं, या गैर-संवैधानिक, विश्लेषण की जरूरत है, जिनकी वजह से प्रजातंत्र को बल मिलने की अपेक्षा उसके मार्ग में रुकावट आई है और जो लोगों के विकास के मार्ग में बाधा हैं। ऐसा भी नहीं है कि संघ और राज्य अलग-अलग राजनैतिक और आर्थिक शक्ति के सुदृढ़ ब्लाक हैं या राज्य शक्ति के ऐसे सुदृढ़ ब्लाक हैं, जिन्होंने संघ से एक अन्य शक्ति के सुदृढ़ ब्लाक के रूप में दुःख उठाया है। सच तो यह है कि राज्यों के प्रशासनिक क्षेत्र में संघ सरकार के हाथों में असंवैधानिक रूप से शक्ति के एकत्रीकरण के कारण (जो सत्य नहीं है) और राज्य सरकारों के हाथों में से असंवैधानिक रूप से शक्तियां समाप्त होने (जो सत्य प्रतीत होता है) के कारण भारत की जनता के एक भाग के रूप में प्रत्येक राज्य के लोगों को राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से धक्का लगा है।

भारतीय संविधान की मुख्य विशेषता सहयोग पर आधारित संघवाद है। सभी संघवाद सहयोग पर आधारित हैं, विशेषरूप से हमारा संघवाद अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया में उदाहरण के लिए आयकर जैसे मामलों में, जो कि संघ और राज्य दोनों ही किसी नागरिक पर लगा सकते हैं, एक ऐसा प्रतियोगितात्मक संघवाद का रूप विद्यमान है, जिससे बचा जा सकता है। राज्य और परिसंघ में दोहरी नागरिकता उसी प्रतियोगिता का एक अन्य उदाहरण है। भारत का संविधान संघ और राज्य के बीच या राज्य और राज्य के बीच प्रतियोगिता को समर्थन नहीं देता। हमारे संविधान के अनुच्छेद में उच्चतम न्यायालयों के ऐसे अनेक न्यायिक निर्णय के अर्थ प्रतिध्वनित होने के कारण प्रत्याशित व्यापकता आ गई है, जिनमें अन्य तीन परिसंघों के राजनैतिक और राजस्व संबंधी अधिकारों पर न्याय-निर्णयन किया गया है। फिर भी हमारे संविधान में भारत के संघ और राज्यों के बीच सहयोग के सिद्धान्त पर बल देने की बाबत अतिरिक्त सावधानी बरती गई है। इसमें संघ और राज्यों या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच परस्पर विरोध समाप्त करने का प्रयत्न किया गया है। जिन-जिन बातों के संबंध में मतभेद हो सकता है और जिनका उपबंध संविधान में नहीं किया गया है, उनके संबंध में कोई संभावित स्थिति को अछूता नहीं रहने दिया गया है। इसमें संवैधानिक या सांविधिक निकायों की भी गुंजाइश रखी गई है, जो संघ तथा राज्यों के बीच अधिकारों तथा कर्तव्यों की बाबत होने वाले परस्पर मतभेद को दूर कर सके। फिर भी इस बारे में एक राय होगी कि भारत में संघीय इकाइयों को जो भावनात्मक चोट पहुंची है या जिन परेशानियों का उन्होंने अनुभव किया है, वे वास्तविक हैं और दूसरी बात यह कि ऐसी स्थिति केवल भारत में ही नहीं है।

यदि भारत के संविधान का स्वरूप सहयोग पर आधारित संघवाद है तो भारत के संविधान का उद्देश्य राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक संतुलन बनाना है। इसके भाग III और IV मूल अधिकारों और निदेशक सिद्धान्तों में ऐसे सामाजिक संतुलन पर बल दिया गया है, जो इंसान और इंसान के बीच या समूह और समूह के बीच होना चाहिए। भाग XII और XIII वित्त-व्यवस्था, व्यापार और वाणिज्य में उस आर्थिक संतुलन संबंधी विनिश्चय किया गया है, जो संघ तथा राज्यों के बीच वांछनीय है। सबसे पहले संविधान के आमुख में, फिर भाग XI (संघ और राज्यों के बीच संबंध), इसके बाद सातवीं अनुसूची में, फिर भाग V के, अध्याय-4, फिर भाग VII के अध्याय-5 (न्यायपालिका) और वस्तुतः संविधान के सभी उपबंधों में उस राजनैतिक तथा कार्यात्मक संतुलन का उल्लेख किया गया है, जो संघ और राज्यों, विधानमंडल और कार्यपालिका, और इन दोनों तथा न्यायपालिका के बीच वांछनीय है। संविधान को चाहे कहीं से भी उठाकर पढ़ा जाए तो पता चलेगा कि संविधान ने न तो किसी एक में प्राधिकार केन्द्रित किया गया है और न ही किसी अन्य को अधीनस्थ रखा है। फिर भी कानून के कुछ प्रमुख व्यक्तियों की रिपोर्टों और सुविख्यात विद्वानों तथा प्रशासकों की विचार-गोष्ठियों में उस एक लक्ष्य-अर्थात् "हमारे संविधान के अधीन संघ और राज्यों का सद्भावपूर्ण संबंध हो" के बावजूद एक विपरीत धारणा को मान्यता दी गई है। वस्तुतः हम यह कहते हैं कि हमारे संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से संतुलन की बाबत विचार किया गया है, परन्तु वह उस समय बिगड़ जाता है जब भारत के संविधान के तथाकथित संघीयवत् स्वरूप के नाम में असंवैधानिक रूप से प्राधिकार धारण किया जाता है या असंवैधानिक रूप से अधीनस्थता लादी जाती है। परन्तु इस प्रकार का असंतुलन आज के युग की वास्तविकता है। हम इस बात को फिर से दोहराएंगे कि यह गलती संविधान में इतनी नहीं है, जितनी विभिन्न समयों में अलग-अलग राजनैतिक दलों को अपने स्वार्थ-सिद्ध करने के लिए संविधान को कार्य रूप देने में है। सन् 1947 से 1977 के बीच तीन दशकों तक एक ही राजनैतिक दल का संघ तथा संघ के अधिकांश यूनिटों के मामलों में प्रभुत्व बना रहने के कारण, परिसंघ के व्यावहारिक राजनैतिक स्तर में गिरावट आई है। राजनैतिक दलों और राजनैतिक व्यक्तियों के कारण भारत के संघीय संविधान पर जितनी आंच आई है,

उतनी भारत की संघीय जनता या भारत के संघीय राज्य पर भारत के संविधान की वजह से नहीं आई है ।

संघ के मामलों में राज्य के विचारों का अप्रभावी या अपर्याप्त प्रस्तुतीकरण, चाहे वह किसी भी वजह से क्यों न हो, राज्य के लोगों के मन में उनकी उपेक्षा किए जाने की भावना पैदा करता है । संघ द्वारा शासित होने की अपेक्षा राज्य का शासन नागरिकों को अधिक सीधे निश्चित रूप से और बार-बार प्रभावित करता है । विधायी और कार्यपालक शक्तियों के संघीय वितरण का जाना पहचाना संवैधानिक सिद्धांत यह है कि शासन के जो विषय या मदें नागरिक के जीवन के सभी कार्य कलापों को प्रभावित करती हैं, वे उसके समीपस्थ हों और उसके नजदीक ही शासित हों ताकि वह राजनैतिक और प्रशासनिक मामलों का सम्यक् रूप से मूल्यांकन कर सके या प्रभावी रूप से विरोध प्रकट कर सके । यही कारण है कि भारत का नागरिक सामान्य समयों में और सामान्य रूप से संघ की अपेक्षा उस राज्य के साथ अधिक निकट तादात्म्य स्थापित कर सकता है जिस राज्य का वह है या जिस राज्य में वह अधिवास कर रहा है, हालांकि वह संघ का भी है और उसका नागरिक है । संघ के प्रति उसकी निष्ठा सुस्पष्ट और पूर्ण है । राष्ट्रीय संकट के समय संघ शासन के साथ उसका तादात्म्य संपूर्ण होता है । ऐसे समय वह अपने सभी धार्मिक बंधनों को भूल जाता है और सभी कठिनाइयों के प्रति लापरवाह हो जाता है । चीन और पाकिस्तान के साथ हुए युद्धों ने दिखा दिया है कि भारत का नागरिक संपूर्ण रूप से भारतीय है । लेकिन सामान्य समयों में अपने राज्य के साथ नागरिक का तादात्म्य अधिक सहज होता है और वह अपने बाद अपने राज्य के प्रति निष्ठावान होता है । फिर भी भारत के संघ का नागरिक, जो अपने राज्य में अर्थात् आंध्र प्रदेश राज्य में अधिवास कर रहा है, जैसा कि इस मामले में है, उसकी निष्ठा अखंड और अविभाजित है । आंध्र प्रदेश के लोग उन देशभक्तों की श्रेणी में अग्रणी हैं, जिन्होंने भारत की स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी, चाहे यह लड़ाई भारत की अंग्रेजों से लड़ाई रही हो या अंग्रेजी की कठपुतलियों से आंध्र और तेलंगाना में जो अब आंध्र प्रदेश है उस समय का इतिहास पुरुष और महिलाओं के अपने राष्ट्र और अपने देश के लिए (न कि किसी अन्य बात के लिए) किए गए सम्पूर्ण त्याग के उदाहरणों से भरा हुआ है ।

"संघवाद" का विचार संविधान के भाग–XII में भी अंतर्निहित है, जिसमें संघ तथा राज्यों के बीच कराधान आदि के मामलों में वित्तीय अधिकारों, कर्त्तव्यों, और दायित्वों का उल्लेख है । सातवीं अनुसूची में संघीय स्वरूप की घोषणा की गई है । कुछ राज्यों द्वारा जोरदार शब्दों में अभिव्यक्त की गई और कुछ अन्य राज्यों द्वारा उतने ही जोरदार शब्दों में अभिव्यक्त न की गई यह इच्छा कि संघ और राज्यों के बीच राजनैतिक, विधायी, प्रशासनिक, राजकोषीय और आर्थिक क्षेत्रों में संबंधों का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए और वर्तमान पद्धति के पुनर्मूल्यांकन के परिणामस्वरूप जन्मी नई विचारधारा को कार्यरूप देने के लिए स्वस्थकर परंपराएं और परिपाटियां (यहां तक कि आवश्यक होने पर संविधान में संशोधन भी) अपनाई जानी चाहिए, राष्ट्र की स्वस्थ प्रजातांत्रिक इच्छाओं का सबूत है ।

भारत के सभी राज्यों में अभी भी अधिकांश लोग अनपढ़ हैं । हमारे अधिकांश गांवों में पीने का पानी तक नहीं है । हमारी आधी से ज्यादा आबादी हर रोज वास्तव में दोनों समय पेटभर भोजन को तरसती है । बहुत से लोग तो एक बार का भोजन भी ढंग से नहीं ले पाते । इस प्रकार राष्ट्र के लोगों के स्वास्थ्य का स्तर गिरता जा रहा है । शहरों, नगरों और गांवों में अस्पतालों, चिकित्सकों, परिचारिकाओं और दवाइयों की या तो बहुत अधिक कमी है अथवा वे अपर्याप्त हैं । हमारा देश एक गरीब देश है । उद्योग और कृषि से केवल धनवान लोग और अधिक धनवान होते जा रहे हैं और गरीब लोगों की हालत में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है । कल्याणकारी शासन की अधिकतर मदें संविधान ने राज्यों के जिम्मे सौंपी हैं लेकिन राज्यों को बड़े सुव्यवस्थित ढंग से वित्तीय संसाधनों और अपेक्षित राजनैतिक शक्ति तथा आर्थिक उद्यम से वंचित किया जा रहा है । संघ सरकार राज्य के अपने क्षेत्र में राज्य के लिए नीतियां और कार्यक्रम निर्धारित करती है कभी यह बीस सूत्री कार्यक्रम होता है तो कभी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित क. सूत्री कार्यक्रम । लेकिन प्रत्येक कार्यक्रम राज्यों की अधिकारिता का अतिक्रमण करता है । संघ को शासित करने वाले दल द्वारा राजनैतिक प्रचार और राज्यों पर अपना शासन करने के प्रयत्न उसकी अपनी आर्थिक उन्नति के लिए उसकी अगुआई के अनुसार राज्य के कार्यक्रम से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं । संघ सरकार अपने मंत्रालयों और विभागों का उत्तरोत्तर विस्तार करती जाती है ताकि उसमें अधिक-से-अधिक राज्यों के विषय शामिल हो जाएं । राज्यों के कार्यकलाप के महत्वपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में राज्य, संघ के लिए शिकार–स्थल की भांति बन जाते हैं । इसके उपरांत राज्य धीरे–धीरे सक्षम राजनैतिक या आर्थिक यूनिट नहीं रह जाते ।

अनुच्छेद 270, 275, 282 आदि की शक्तियों की गलत व्याख्या करके उत्तरवर्ती संघ सरकारों द्वारा इनका दुरुपयोग किया जाता है । राजनैतिक दल, जिनके हाई कमान अखिल भारतीय स्तर पर होते हैं और जिन क्षेत्रों में आज्ञापालक अनुगामी होते हैं, दल–नेतृत्व और दर–अनुगामियों की एक क्रम–परंपरा बना लेते हैं, क्षेत्रों के लोगों की हाई कमान के लोगों पर निर्भरता को बढ़ावा देते हैं और राजनिकाय को चापलूसी से भर देते हैं और पहलशक्ति का अभाव हो जाता है । जब राजनैतिक दल संघ और राज्यों में भी सत्ता संभालते हैं तब यह स्वाभाविक है कि उन्हें अपनी उत्तरदायित्वपूर्ण संवैधानिक स्थिति और संघ और राज्यों में उनके "छोटे अल्पकालीन सत्ता" तथा पार्टी क्रम–परंपरा में उनके अपने उच्च ग्रेड के बीच, उनकी केंद्रीय हाई कमान और मूक क्षेत्रीय अनुगामियों के बीच भ्रम पैदा हो जाए । उनके लिए तो यह एक दल की सरकार है जो मिले–जुले रूप में संघ और राज्यों पर शासन कर रही है, परन्तु संविधान में तो इस बात की कल्पना भी नहीं की गयी थी । उनका तो यह विचार होता है कि हाई कमान संघ तथा राज्यों की एक अखंडित राजनैतिक संरचना पर शासन करती है । उत्तरवर्ती संघ सरकारें राज्यों को केवल मिल्कियत वाले सहायक राज्य ही समझती हैं, संघ के बराबर नहीं समझतीं । सच्चाई तो यह है कि उनकी संबंधित शक्तियां असमान हो सकती हैं लेकिन उनकी शक्ति बराबर है । इसी भावना को लेकर भारत के राज्य अब राज्यों और संघ के बीच संवैधानिक समानता की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते हैं । भारत के लोगों द्वारा तैयार किया गया संघीय संविधान जब संघ राज्य में कुछ शक्तियां निहित करता है और कुछ अन्य शक्तियां संघ ईकाई में निहित करता है तो इस प्रकार से तैयार किया गया संविधान संघ राज्य तथा संघ इकाइयों को संविधान की दृष्टि में एक समान मानता है । संविधान दोनों में एक समान फ़ासला बना कर रखता है और दोनों को समान रूप से देखता है । इस ज्ञापन में इसी संवैधानिक समानता पर बल देने और भारत के संघ और उस संघ की इकाइयों, दोनों से ही संविधान का एक समान फासला होने की मांग करने का प्रयत्न किया गया है ।

राज्यपाल

संविधान के अनुच्छेद 153 में यह निर्दिष्ट किया गया है कि प्रत्येक राज्य का एक राज्यपाल होगा । अनुच्छेद 154 के अनुसार उसमें राज्य की कार्यकारी शक्तियां निहित की गई है । राज्यपाल के व्यक्तित्व के माध्यम से प्रशासन की निरन्तरता अभिव्यक्त की जाती है । फिर भी अधिकांश राज्यों को राज्यपाल के पद के बारे में गंभीर आशंका है क्योंकि उसका दुरुपयोग करके इसे इतना अधिक विकृत किया जा सकता है कि वह पहचाना ही न जा सके । कर्नाटक सरकार ने राज्यपालों द्वारा की गई गलतियों और हरकतों का एक सूचीपत्र जारी किया जो "राज्यपाल के पद पर श्वेत पत्र" में उपलब्ध है । श्वेत–पत्र के प्रकाशन के बाद से राज्यपालों द्वारा की गई अनेक साजिशों का पता लगा है । आंध्र प्रदेश के राज्यपाल ने प्रजातंत्र पर निंदनीय और क्रूर हमला उस समय किया जब तेलुगुदेशम् बहुसंख्यक दल के नेता श्री एन०टी० रामाराव और उनके मंत्रिमंडल को इस कथित संदेह पर बर्खास्त कर दिया गया कि मुख्य मंत्री को विधान मंडल में बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है । आंध्र प्रदेश के राज्यपाल के इस एक कार्य के कारण राज्यपाल के पद की विश्वसनीयता हमेशा के लिए समाप्त हो गई है । सदाशय रखने वाले राजनेताओं और राजनीतिज्ञों के अथक प्रयत्नों के बावजूद आंध्र प्रदेश राज्य इस बारे में आश्वस्त नहीं हो पाएगा कि राज्यपाल का पद उच्च सार्वजनिक महत्व का है और वह प्रतिष्ठा तथा मर्यादापूर्ण है । राज्य सरकार निस्संदेह आश्वस्त हो गई है कि संविधान के कार्यान्वयन या राज्यों के प्रशासन में राज्यपाल की कोई उपयोगी भूमिका नहीं है ।

राज्यपाल चाहे कितना भी सज्जन या नैतिक व्यक्ति वाला क्यों न हो, कितना भी सफल या राजनेता के समान क्यों न हो, कितना भी विचारवान और कुशाग्र क्यों न हो, वह एक ऐसी कठपुतली के समान है, जिसकी डोर भारत के प्रधान मंत्री के हाथ में है ।

राज्यपाल के पद का निष्पक्ष रूप से विश्लेषण करने से पता चलेगा कि वह साम्राज्यवाद का अन्तिम अवशेष है, जो कि वाइसराय के एजेंट का ही एक संशोधित रूप है। ब्रिटिश शासन के समय उसका कितना ही महत्व क्यों न रहा हो, किन्तु, आधुनिक लोकतंत्र में उसका कोई स्थान नहीं है। जो व्यक्ति प्रधान मंत्री की रुचि के अनुसार पद पर रहते हुए राष्ट्रपति की सन्तुष्टि रहने तक कार्य करता है वह और कुछ नहीं बल्कि एक केन्द्रीय कर्मचारी ही है।

प्रत्यक्ष चुनावों के परिणामस्वरूप जो जन-नेता प्राप्त होते हैं, उन पर इस बात का दायित्व होता है कि वे लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करें। मुख्यमंत्री राज्य की जनता की इच्छा का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करता है इसलिए राज्य में मुख्यमंत्री से उच्च कोई प्राधिकारी नहीं हो सकता। अतः जनता द्वारा चुने गए मुख्यमंत्री का यह दायित्व है कि वह प्रशासन इस ढंग से चलाए, जिससे जनता को संतोष हो। मुख्यमंत्री के कार्यों पर नजर रखने का कार्य प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत व्यक्ति को सौंपना कालोचित नहीं है। इस संबंध में कम से कम इतना तो किया ही जा सकता है कि ऐसे पद को बिना किसी आडंबर के अतीत के गर्भ में सदा के लिए दफना दिया जाए। अतः राज्यपाल का पद समाप्त किए जाने की जोरदार सिफारिश की जाती है।

अखिल भारतीय सेवाओं की भूमिका

इस समय राज्य में उच्च सिविल सेवाओं के पदों पर भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और भारतीय वन सेवा के अखिल भारतीय सेवा के सदस्य कार्य कर रहे हैं। वर्ष 1947 से पहले देश के सर्वोच्च सिविल पद, विशेष रूप से सरकारी स्तर के पदों पर भारतीय सिविल सेवा के सदस्य कार्य करते थे। अंग्रेजों के समय की वही परंपराएं आज भी जारी हैं और अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी राज्य संवर्ग में नियुक्त किए जाते हैं और केंद्र सरकार में सेवा पर प्रतिनियुक्ति का प्रावधान भी किया गया है।

अखिल भारतीय सेवा संवर्ग और भर्ती नियम तथा अनुशासन, नियंत्रण और अपील से संबंधित अन्य मूल सेवा नियम केन्द्रीय गृह मंत्रालय में निहित हैं। इस संबंध में हालांकि एक उपबंध है कि जब कभी सांविधिक नियमों में संशोधन करने का प्रस्ताव हो, तो अधिकांश राज्यों की सहमति प्राप्त की जाए। केंद्रीय गृह मंत्रालय अखिल भारतीय सेवाओं के गठन और नियंत्रण में जो भी परिवर्तन करना चाहता था वह परिवर्तन करना उसके लिए संभव हुआ है। यह बात अवश्य समझ ली जाए कि अखिल भारतीय सेवा का कोई भी अधिकारी जब राज्य संवर्ग में तैनात कर दिया जाता है तो उसे उस राज्य सरकार के प्राधिकार के अधीन कार्य करना पड़ता है जो उसकी सेवाओं का उपयोग करती है।

हाल ही में, आंध्र प्रदेश सरकार राज्य को अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों से संबंधित अनुशासनिक मामलों में केन्द्र के हस्तक्षेप के कारण गंभीर उलझनों का सामना करना पड़ा है। राज्य सरकार ने अखिल भारतीय सेवा के कुछ अधिकारियों को भ्रष्टाचार और सत्यनिष्ठा के अभाव के कारण निलंबित करने की कार्रवाई की थी। लेकिन केन्द्र सरकार ने जांच लंबित रहने के दौरान उनकी बहाली के आदेश दे दिए हैं। यह अधिकारी, जिनके विरुद्ध राज्य सरकार ने निलंबन की प्रारंभिक कार्रवाई आरंभ की थी, लेकिन जो केन्द्र द्वारा बहाल कर दिए गए हैं, प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर सकते और जब तक उनके बारे में जांच पूरी नहीं हो जाती तब तक उन्हें कोई जिम्मेदार हैसियत नहीं सौंपी जा सकती। इस संदर्भ में यह जरूरी हो जाता है कि इन अधिकारियों को निलंबित रखा जाए और उन्हें कोई उपयुक्त पद न दिया जाए। इस असंगत स्थिति से बचा जा सकता था यदि केंद्र सरकार जांच संबंधी कार्रवाई पूरी होने तक राज्य सरकार की कार्रवाई में हस्तक्षेप न करती। दूसरा विकल्प यह है कि यदि जांच होने तक केंद्र सरकार किसी अधिकारी को बहाल करने के बारे में इतना अधिक महसूस करती है तो केंद्र सरकार जांच पूरी होने तक ऐसे अधिकारी को केंद्र सरकार के स्पष्ट पदों पर लगा सकती है।

शिकायतों संबंधी वर्तमान कार्यविधि के अधीन राज्य सरकार द्वारा यदि अखिल भारतीय सेवा का कोई सदस्य निलंबित कर दिया जाता है तो उसे राष्ट्रपति को अपील करने का अधिकार है क्योंकि वही ऐसे अधिकारियों के नियुक्ति प्राधिकारी हैं। परन्तु राष्ट्रपति केंद्रीय गृह मंत्रालय की सहायता से और उसके परामर्श से कार्य करते हैं क्योंकि वह केंद्र सरकार का एक भाग हैं। वस्तुतः अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी की अपील पर राष्ट्रपति नहीं बल्कि केंद्र सरकार निर्णय करती है। संभवतः राज्यों की राष्ट्रपति के निष्कर्षों और निर्णयों और अंतिम आदेशों पर भी पूरा भरोसा हो सकता है यदि वह संघ लोक सेवा आयोग जैसे स्वतंत्र और स्वायत्त निकाय की सहायता से और उसकी सलाह से राष्ट्रपति के रूप में कार्य करें। ऐसी कोई व्यवस्था न होने के कारण यह स्वाभाविक है कि राज्य सरकारों की राय पर संघ सरकार प्रश्नचिह्न लगा देती है। इसके कारण संघ और राज्यों के बीच अनावश्यक संघर्ष हो सकता है। समय आ गया है कि संघ सरकार अखिल भारतीय अनुशासनिक अपील मामलों में राष्ट्रपति की स्वतंत्र सलाहकार एजेंसी स्थापित करने की बाबत विचार करे। राज्य सरकार का विचार है कि यदि राष्ट्रपति केन्द्रीय गृह मंत्रालय के परामर्श पर आदेश पारित करता है तो इस पर निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता का दावा नहीं किया जा सकता।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि संघ सरकार में अधिकांश प्रशासन पर अधिकारी तंत्र के स्तर पर ही कार्रवाई की जाती है और मामले निपटाए जाते हैं, यह अत्यंत आवश्यक है कि केंद्र सरकार के पदों पर दफ्तरशाही के विभिन्न स्तरों पर राज्यों के अधिकारियों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करके राज्यों के हितों की रक्षा की जाए। संघ के अधिकारी-तंत्र में राज्यों को अपना प्रतिनिधित्व करने का अधिकार अवश्य होना चाहिए।

अंतरराज्यिक परिषद

अंतरराज्यिक परिषद् की स्थापना के लिए अनुच्छेद 263 के अधीन संवैधानिक उपबंधों का प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए। अंतरराज्यिक परिषद् नाम के संवैधानिक निकाय के स्वरूप और उसकी भूमिका के बारे में कुछ वाद-विवाद ने जन्म लिया है। अनुच्छेद का पाठ नीचे दिए अनुसार है :—

"यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि निम्नलिखित कार्य करने के लिए परिषद् की स्थापना करने से सार्वजनिक हित सुनिश्चित होगा तो राष्ट्रपति के लिए आदेश जारी करके ऐसी परिषद् की स्थापना करना और उसके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों के स्वरूप, उसके गठन और कार्यविधि को परिभाषित करना विधिसम्मत होगा :—

(क) राज्यों के बीच उठने वाले विवादों के संबंध में जांच करना और परामर्श देना ;

(ख) ऐसे विषयों की जांच पड़ताल करना और उन पर चर्चा करना, जिसमें कुछ राज्यों या सभी राज्यों या संघ और एक या एक से अधिक राज्यों का सामान्य हित निहित हो; या

(ग) ऐसे किसी भी विषय के बारे में सिफारिश करना और विशेष रूप से उस विषय के संबंध में नीति और कार्यवाही के बेहतर समन्वय के लिए सिफारिशें करना।

राष्ट्रपति के लिए यह उचित होगा कि वह आदेश जारी करके ऐसी परिषद का गठन करे जो उसके एवं उसके संगठन द्वारा किए जाने वाले कार्यों के स्वरूप एवं कार्य की प्रक्रिया को परिभाषित करे।

भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने 8 अगस्त, 1952 की अपनी अधिसूचना द्वारा निम्नलिखित कार्य निष्पादित करने के लिए केंद्रीय स्वास्थ्य परिषद् की स्थापना की :—

(क) स्वास्थ्य से संबंधित सभी पहलुओं की बाबत मोटे तौर पर नीति के बारे में विचार करना और सुझाव देना, उपचारात्मक और निवारक देखभाल, पर्यावरण की सफाई, पोषक आहार, स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा, अनुसंधान और प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं बनाने से संबंधित उपबंधों का सुझाव देना ;

(ख) चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित मामलों से कार्यकलापों के क्षेत्र में कानून बनाने के लिए प्रस्ताव करना और समग्र रूप से देश के विकास के लिए एक पद्धति निर्धारित करना;

(ग) त्योहारों, महामारी फैलने, भूकंप और अकाल जैसी गंभीर दैवी आपदाओं के समय अंतरराज्यिक संगरोध के संबंध में व्यापक आधार पर संभावित सहयोग के समग्र क्षेत्र की जांच करना और की जानेवाली कार्रवाई की बाबत एक सामान्य कार्यक्रम बनाना;

(घ) राज्यों को स्वास्थ्य प्रयोजनों के लिए उपलब्ध सहायता अनुदान के वितरण की बाबत केंद्र सरकार को सुझाव देना और सहायता अनुदान की राशि का उपयोग करके विभिन्न क्षेत्रों में पूरे किए गए कार्य की आवधिक समीक्षा करना; और

(ङ) केंद्र और राज्यों के स्वास्थ्य प्रशासनों के बीच सहयोग बनाए रखने को बढ़ावा देने के लिए एक या एक से अधिक संगठन स्थापित करना, जिन्हें उपयुक्त कार्य सौंपे गए हों।"

अभी तक जारी की गई अन्य अधिसूचनाएं पंचायत राज बिक्री-कर के संबंध में हैं और उनकी विशेषताएं समान हैं। लेकिन अंतरराज्यिक या संघ-राज्य समस्याओं को निपटाने के लिए इन परिषदों का वास्तविक उपयोग नहीं किया गया है। इस मंच का उपयोग ऐसे मामलों के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए किया जाए, जो आयोजना और विकास से संबंधित नहीं है और जो अधिकतर प्रशासनिक स्वरूप के हैं। ऐसी परिषदों का गठन, उनकी कार्य-अवधि और कार्यों के बारे में स्थानीय और प्रशासनिक अपेक्षाओं के आधार पर निर्णय लिया जाए। समवर्ती सूची में सभी प्रस्तावित कानून ऐसी प्रतिनिधि अंतराज्यिक परिषदों के समक्ष उनकी राय जानने के लिए भेजना स्वस्थ परिपाटी होगी। ऐसा मंच, जहां अंतरराज्यिक और संघ और राज्यों के संबंधों को प्रभावित करने वाले मामलों पर उन्मुक्त और निष्पक्ष चर्चा की जा सके, न केवल उपयोगी होगा बल्कि आवश्यक भी है। इससे पहले कि राष्ट्र की समस्याएं असाध्य हो जाएं, उनकी बाबत चर्चा करने के लिए ये परिषदें एक उचित संवैधानिक-तंत्र का काम तो करेंगी ही परन्तु इसके साथ ही संघ और राज्यों या राज्य और राज्य के बीच निपक्ष और न्यायोचित सामंजस्यपर्ण संवैधानिक संबंध बनाए रखने में भी इनसे सहायता मिलेगी।

समवर्ती विधान

सातवीं अनुसूची की तीसरी सूची में उल्लिखित प्रविष्टियों की बाबत संघ और राज्यों द्वारा राज्यों पर समवर्ती विधान के कारण संघ और राज्यों के बीच विवाद उठ खड़ा होता है। समवर्ती सूची में संसदीय विधान के लिए राज्यों की सहमति अपेक्षित नहीं होती। समवर्ती सूची में किसी प्रविष्टि पर संसद द्वारा विधान के ढंग पर संघ और राज्यों के बीच परामर्श के लिए न तो कोई तंत्र या प्रक्रिया है और न ही संसद द्वारा कोई परंपरा या परिपाटी ही डाली गई है। यह एक दयनीय स्थिति है।

सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में कुछ महत्वपूर्ण प्रविष्टियां इस प्रकार हैं:—

(क) प्रविष्टि 20, आर्थिक और सामाजिक आयोजना ;

(ख) प्रविष्टि 17(क), वन;

(ग) प्रविष्टि 34, कीमत नियंत्रण;

(घ) प्रविष्टि 33(ख), खाद्य पदार्थों, जिसमें तिलहन और तेल भी शामिल हैं, में व्यापार और वाणिज्य, उत्पादन, सप्लाई और वितरण;

(ङ) प्रविष्टि 38, विद्युत ;

(च) प्रविष्टि 25, सूची I की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के उपबंधों के अध्यधीन शिक्षा, जिसमें तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा शामिल है; श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण;

(छ) संपत्ति का अर्जन और अधिग्रहण।

संघ द्वारा विधायी उग्रता का एक स्पष्ट उदाहरण वन की प्रविष्टि से संबंधित है। इसका उल्लेख राज्य सूची में था लेकिन 1976 में इसे समवर्ती सूची में शामिल कर दिया गया और 42 वें संशोधन द्वारा इसे 3 जनवरी, 1977 से प्रभावी कर दिया गया। वर्ष 1967 में ही आंध्र प्रदेश अधिनियम, 1967 (धारा 28) में यह उपबंध था कि "जिला समाहर्ता की पूर्व सहमति लिए बिना किसी भी वन का कोई भी मालिक पेड़ नहीं काटेगा या ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा, जिससे वन समाप्त होते हों या उनकी उपयोगिता कम होती हो।" लगभग यही प्रकरण संसद द्वारा वर्ष 1980 में उसके 1980 के अधिनियम (1980 के अधिनियम 69 की धारा 2) में दोहराया गया। आंध्र प्रदेश की राज्य सरकार ने सड़क बनाने और बिजली की लाइनें बिछाने के लिए वनों में से कुछ पेड़ काटने की अनुमति देने के लिए संघ सरकार को लिखा। इनमें से एक तेलुगु-गंगा परियोजना से संबंधित था। संघ सरकार ने कोई दूसरा मार्ग अपनाने की संभावनाओं के बारे में अनेक प्रश्न किए। राज्य सरकार के साथ हुए संघ सरकार के पत्राचार को पढ़ने से एक जिम्मेदार राज्य सरकार के साथ पत्र-व्यवहार होने की बजाय—पार्टी के साथ कार्रवाई करने की आंच गंध आती है।

समवर्ती विधान की युक्ति का सहारा लेकर संघ द्वारा राज्य की शक्तियों पर अतिक्रमण के कारण ही राज्य-सूची के संबंध में राज्यों की शक्तियों को बहुत गंभीर नुकसान हुआ है। इस संदर्भ में प्रविष्टियों के तीन सेट महत्वपूर्ण हैं:—

(क) सूची– I की प्रविष्टियां 7 से 52 और सूची– II की प्रविष्टि 24, जो उद्योग से संबंधित है,

(ख) सूची– I की प्रविष्टि 54 और सूची–II की प्रविष्टियां 23 और 50, जो खान एवं खनिज विकास और खनिज अधिकारों पर कर से संबंधित हैं, और

(ग) सूची– I की प्रविष्ट 56 और सूची–II की प्रविष्टि 17, जो जल और सिंचाई से संबंधित है।

उद्योग मुख्यत: राज्य का विषय हैं और उन पर सार्वजनिक हित में संसद में कुछ प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं परन्तु औद्योगिक विकास विनियमन अधिनियम, 1951 के परिणामस्वरूप राज्यों का अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले उद्योगों पर संपूर्ण रूप से और पूरा-पूरा नियंत्रण हट गया। सार्वजनिक हित के बहाने से संसद ने राज्य विधान मंडलों का उद्योगों का विनियमन करने का वैध अधिकार क्षीण कर दिया है। उसी प्रकार से खान और खनिज विनियम और विकास अधिनियम के कारण राज्य की खान और खनिजों के संबंध में विधायी अधिकारिता को खुले रूप से समाप्त कर दिया है। राज्य की शक्तियों को समाप्त करने की श्रृंखला में केवल एक ही बात शेष बच गई हैं और वह है अधिनियम की धारा 15 के अधीन एक अशक्त सा उपबंध, जिसके अनुसार राज्य सरकारों को छोटे–मोटे खनिजों के संबंध में नियम बनाने की शक्तियां प्रदान की गई हैं।

यह बात ध्यान में रखना उचित होगा कि यद्यपि सिंचाई राज्य का विषय है (सूची–III की प्रविष्टि 17 के अनुसार) परन्तु राज्य की क्षमता संघ-सूची की प्रविष्टि 56 के इस उपबंध द्वारा सीमित कर दी गई है कि "अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटी का विकास और विनियमन संसद द्वारा कानून के जरिए उस सीमा तक संघ के नियंत्रण के अधीन कर दिया जाएगा जिस सीमा तक ऐसा विनियमन और विकास संघ के नियंत्रणाधीन करना सार्वजनिक हित में समीचीन होगा।"

समवर्ती सूची में प्रविष्टियां शामिल करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि संघ ऐसे मामले में विधान कर सके, जो प्रथम दृष्टया राज्य के अधिकार के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु जिनके लिए राष्ट्र के अपेक्षाकृत बड़े हित को देखते हुए संघ द्वारा विधान करना अपेक्षित है। परंतु संघ द्वारा समवर्ती सूची का बगैर सोचे-समझे उपयोग करने और राज्य-सूची से समवर्ती सूची में प्रविष्टियां अंतरित करने से समर्थ बनाने वाले इस उपबंध की भावना नष्ट हो गई है। राज्य के कार्यकलापों के वैध क्षेत्रों में अतिक्रमण करने के लिए मध्यवर्ती सूची संघ के हाथों में एक सुविधा-जनक हथियार बन गई है। ऐसा नहीं होने देना चाहिए। हम महसूस करते हैं कि राज्य-सूची से समवर्ती-सूची में प्रविष्टियां अन्तरित करने के लिए संघ को समवर्ती-सूची का तब तक सहारा नहीं लेना चाहिए जब तक कि कोई विषय इतना ही राष्ट्रीय महत्व और सार्वजनिक हित का न हो जिसके कारण बाध्य होकर राज्यों से संघ को शक्ति का अंतरण करना पड़े। लेकिन ऐसे मामलों में भी संघ का विधान संसद के समक्ष रखने से पहले राज्यों के साथ परामर्श कर लिया जाए। समवर्ती सूची से संबंधित मामलों पर कार्रवाई करने से पहले संघ राज्यों को अपने पूरे विश्वास में अवश्य ले।

आयोजना तथा वित्तीय संबंध

संसाधनों का अंतरण

1. भारत के संविधान में संघ तथा राज्यों के मध्य जिम्मेदारियों के विभाजन तथा इन जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए वित्तीय शक्तियों का उपबंध किया

गया है । बदलती हुई परिस्थितियों में जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संविधान के निर्माताओं द्वारा वित्त आयोग के तंत्र की अभिकल्पना की गई थी । हालांकि पिछले 35 वर्षों में अनेक विकास हुए हैं जिनकी वजह से राज्य सरकारों के संसाधनों तथा जिम्मेदारियों के बीच विषमताओं का कायम न रहने वाला स्तर उभर कर सामने आया है । परन्तु ऐसी स्थिति पैदा होने के निम्नलिखित कारण अवश्य माने जा सकते हैं :—

(क) संघ सरकार ने कराधान के क्षेत्र में संविधान को भी मात देते हुए कुछ ऐसी युक्तियां अपनायी जिनका राज्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा ।

(ख) बाजार उधार की व्यवस्था एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरी—जिस तक पहुंच वास्तव में संघ सरकार द्वारा नियंत्रित है एवं संघ सरकार ही आबंटन करती है ।

(ग) विदेशी उधार तथा विदेशी सहायता सार्वजनिक निवेशों में धन लगाने के अत्यधिक महत्वपूर्ण साधन बन गए हैं तथा इन पर संघ सरकार का एकाधिकार है ।

(घ) विवेकाधीन अंतरणों (वित्त आयोग के अधिनिर्णय के अधीन सांविधिक सुपुर्दगियों से भिन्न) की प्रमात्रा में अभिवृद्धि हुई है तथा इसके साथ-साथ वे अधिक जटिल और पेचीदा हो गए हैं और ऐसे अंतरणों की शर्तें राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता को और अधिक बढ़ाती हैं ।

(ङ) कल्याणकारी राज्य की संकल्पना को बड़े पैमाने पर स्वीकृति मिलने के कारण राज्य सरकार की जिम्मेदारियां इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि संविधान निर्माताओं ने इसकी परिकल्पना भी नहीं की थी ।

2. संघ द्वारा अपनाए गए कुछ ऐसे तरीके जो संविधान को भी मात देते हैं और राज्यों को उनके न्यायसंगत हिस्सों से वंचित करते हैं इस प्रकार है :—

(i) वर्ष 1962 63 में आयकर पर अस्थायी तौर पर अधिभार लगाया गया परन्तु उसे अनिश्चित समय तक जारी रखा गया [अभी हाल में ही समाप्त किया गया है ।]

(ii) वर्ष 1959 में आयकर अधिनियम में संशोधन करके कंपनियों द्वारा दिए जाने वाले आयकर को निगम–कर के अधीन कर दिया गया जिसमें राज्य हिस्सेदार नहीं हैं ।

(iii) बिक्री–कर के बदले में संघ द्वारा 3 पण्यों पर लगाए गए अतिरिक्त उत्पाद–शुल्क का समुचित रूप से दोहन नहीं किया जा रहा है । संघ बिक्री–कर की दृष्टि से पांच और पण्यों पर नियंत्रण करने का प्रयास कर रही है ।

(iv) अनिवार्य जमा–योजना तथा विशेष वाहक बंध–पत्र से एकत्रित राजस्व, यद्यपि उसी स्रोत से होता है जिससे आयकर होता है परन्तु राज्यों को इसमें हिस्सा नहीं दिया जाता ।

(v) रेल यात्री किराए पर कर के बदले में अनुदान की राशि तदर्थ ढंग से निर्धारित करके राज्यों को उनके न्यायसंगत हिस्से से वंचित रखा जाता है ।

(vi) उत्पाद–शुल्क के बजाय संघ ने निर्देशित कीमत बढ़ा दी है और इस प्रकार राज्यों को उनके न्यायसंगत हिस्से से वंचित रखा गया है ।

(vii) संघ सरकार संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन उगाही के दोहन में ढील बरतती रही है ।

3. सार्वजनिक निवेशों में धन लगाने के लिए बड़े पैमाने पर बाजार–उधार लेना योजना के युग की अनिवार्य घटना है । संविधान निर्माता ऐसी स्थिति की परिकल्पना भी नहीं कर सकते थे जहां सभी राज्य, संघ के कर्जदार होंगे और सभी राज्य संघ सरकार के निर्देशानुसार ही खुले बाजार–उधार से ऋण ले सकेंगे । इस प्रकार खुले बाजार–उधार में राज्यों का हिस्सा तीसरी योजना के लगभग 50 प्रतिशत से घट कर छटी योजना में लगभग 22 प्रतिशत तक रह गया है वास्तव में राज्यों को इस उधार की राशि का एक बड़ा हिस्सा मिलना चाहिए । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय लघु बचतों जैसे मामले में संघ सरकार ने निवल बचत का सिर्फ 2/3 हिस्सा ही राज्य सरकारों को दिया । इसके अलावा आर्थिक तथा राजस्व संबंधी नीतियों का अवलंब लेकर राज्य सरकारों की विशिष्ट विकास परियोजनाओं में धन लगाने की पहलशक्ति को लगभग समाप्त कर दिया गया है और मजबूर होकर ऋण लेने के अलावा उनके सामने कोई अन्य चारा नहीं रह जाता । संविधान निर्माताओं ने राज्य सरकारों द्वारा विकास परियोजनाओं के लिए वित्त प्रबंध करने की उनकी इतनी सीमित भूमिका की कल्पना भी नहीं की होगी ।

4. इसी प्रकार विश्व की परस्पर निर्भरता बढ़ने तथा विकसित देशों द्वारा अपेक्षाकृत देशों के विकास में रूचि लेने के कारण दोनों प्रकार से अर्थात् द्विपक्षीय और बहुपक्षीय [विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक आदि] माध्यम से सहायता देने का महत्व बढ़ गया है । इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य, बैंकिंग संसाधनों के अंतरण का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया है । संघ सरकार इसकी एकमात्र लाभग्राही के रूप में उभर कर सामने आई है । यदि दाता देश राज्य क्षेत्र में परियोजना शुरु करने पर बल देते है, तभी संघ सरकार ऐसी परियोजनाओं के लिए वहां वित्त-प्रबंध की अनुमति देती है । यहां भी राज्य सरकार पूर्ण सहायता नहीं ले सकती और शर्तों का मानकीकरण कर दिया जाता है ताकि वे योजना के अंतर्गत दी जाने वाली सहायता के अनुरूप हों ।

5. राज्यों तथा संघ सरकारों के मध्य विवेकाधीन अंतरण की राशि सांविधिक अंतरण की राशि से अधिक होती है । इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि योजना के लेखे में राज्यों को अंतरण किए जाते हैं । यद्यपि, योजना के अंतर्गत दी जाने वाली सहायता सहमति प्राप्त फार्मूले के अनुसार विभिन्न राज्यों में बांटी जाती हैं । परन्तु संघ सरकार अनधिकृत रूप से [अर्थात् राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णयों का उल्लंघन करके] केन्द्रीय क्षेत्र के अंतर्गत या केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के अंतर्गत परियोजनाएं/ कार्यक्रम बढ़ा रही है । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि वे शर्तें जिनमें से अधिकांश पर विवेकाधीन अंतरण किए जाते हैं, उनमें अनुदान की अपेक्षा ऋणों का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक होता है । जिस सीमा तक योजनागत निवेशों का तात्पर्य शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे कल्याणकारी कार्यकलापों में अधिक धन लगाना है उस सीमा तक ऋण के बहुत बड़े हिस्से में से ऐसे निवेश के लिए वित्त प्रबंध करने की पद्धति के कारण राज्यों की स्थिति निरंतर ऋण–ग्रस्तता की हो गयी है ।

6. समाजवादी राज्य, जिसमें कल्याण पर बल दिया जाता है, अपनाने से कमजोर वर्गों के लोगों के लिए छात्रवृत्तियों और छात्रावास, विद्यालयों आदि पर बहुत अधिक आवर्ती व्यय करना पड़ा है । इस तथ्य के साथ–साथ कि यह मूल्य निरपेक्ष, आवर्ती व्यय वाले और श्रम प्रधान हैं, अभी तक ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है, जिसके द्वारा राज्य इस संबंध में सदाशयता रखते हुए भी अपने दायित्वों को कम कर सकें । यदि कोई राज्य कल्याणकारी कार्यों का उपयुक्त स्तर बनाकर रखते हुए लोगों के प्रति अपने दायित्व पूरा करना चाहे, तो वह उस लगाए गए कड़े वित्तीय प्रतिबंधों के कारण ऐसा नहीं कर पाता । राज्य इस तथ्य द्वारा विशेष रूप से निराश हो चुके हैं कि दिल्ली और चंडीगढ़ आदि जैसे संघ राजक्षेत्र बहुत उच्च स्तर की सेवाओं की व्यवस्था कर पाते हैं और परिवहन, जल जैसी अनिवार्य मदों के लिए बहुत उदार पैमाने पर इमदाद दे सकते हैं । इसी प्रकार से केन्द्रीय सरकार के अपने क्षेत्राधिकार में संसाधन, जो कि राज्यों के बिक्री कर [अर्थात केन्द्रीय बिक्री कर और बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क] के सदृश्य हैं, जुटाने के प्रयत्न राज्यों द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों की तुलना में बहुत कम हैं । इस क्षेत्र में संघ राज्य क्षेत्रों का रिकार्ड कोई बेहतर नहीं है ।

7. इन सभी बातों को देखते हुए ऐसे साधनों की कल्पना करना और उन्हें विकसित करना जरुरी है ताकि मूलभूत सुधार किया जा सके और संघ तथा राज्यों के वित्तीय तथा आयोजनागत संबंधों का पुर्ननिर्धारण किया जा सके । पुर्ननिर्धारण से संसाधनों और उत्तरदायित्वों के बीच विषमता को मौजूदा वास्तविकता दूर करने में मदद मिलेगी और साथ ही सामाजिक-आर्थिक विकास की बदलती हुई और गतिशील स्थितियों को समझने के लिए तथा सरकार की भूमिका निर्धारित करने के लिए क्रियाविधि (युक्ति) मिल जाएगी । प्रस्तावित सुधार की प्रमुख बातें संक्षेप में नीचे दी गई है :—

(क) केन्द्र सरकार द्वारा कर संबंधी ऐसे उपायों का उपाश्रय लेना जिनसे राज्य के कर राजस्व संभवतः प्रभावित होते हों, परामर्शाधीन होना

10—376 M. of HA/ND/87

चाहिए और उनमें राज्य सरकार को शामिल किया जाना चाहिए । केन्द्र सरकार द्वारा अधिभार, निगम-कर आदि के संबंध में किए गए कुछ उपाय सुधारे जाने चाहिए ।

(ख) बाजार-उधार का उपाश्रय लेने पर संघ तथा राज्यों के संबद्ध हिस्सों का निर्धारण या तो किसी स्वतन्त्र निकाय द्वारा या बेहतर है कि ऐसे निकाय द्वारा किया जाए जो केन्द्र तथा राज्य दोनों का प्रतिनिधित्व करता है । ऐसा निकाय सुनियोजित विकास में धन लगाने की प्रक्रिया में शामिल हो ।

(ग) राज्यों को विशिष्ट परियोजनाओं में धन लगाने के लिए सक्षम बनाया जाए और उधार के माध्यम से स्थानीय संसाधन एकत्रित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए । आर्थिक तथा राजस्व नीति जैसे व्यापक मुद्दे स्थानीय रूप से संसाधन जुटाने के लिए किए जाने वाले प्रयासों से निश्चित रूप से असंगत नहीं है । उदाहरण के तौर पर विशिष्ट परियोजनाओं के लिए वित्त-प्रबंध परियोजना से संबंधित बंधपत्र उन्हीं शर्तों पर जारी करके किया जा सकता है जिन शर्तों पर राष्ट्रीय बचतपत्र जारी किए जाते हैं । दूसरे शब्दों में परियोजना से संबद्ध ये बंध-पत्र लघु बचतों के समतुल्य होंगे सिवाय इस बात के कि ये बंध-पत्र विशिष्ट स्थानीय परियोजनाओं से संबद्ध हैं और राज्य की परियोजना के लिए 100 प्रतिशत राशि उपलब्ध होगी बजाय निवल राशि के 2/3 भाग के, जैसा कि फिलहाल लघु-बचतों के मामले में होता हैं ।

(घ) इसी प्रकार विदेशी सहायता तथा विदेशी उधार के संबंध में देश के भीतर विभिन्न राज्यों और परियोजनाओं के बीच स्रोतों के वास्तविक वितरण में संघ का एकाधिकार तर्कसंगत नहीं है । एक ओर जहां विदेशी धन पर संघ सरकार का वैध अधिकार है वहां देश में उपलब्ध ऐसे वित्तीय संसाधनों का समग्र रूप से बंटवारा, संघ तथा राज्यों के बीच संयुक्त परामर्श से होना चाहिए ।

(ङ) वर्तमान समय में विविध माध्यमों द्वारा किए जा रहे विवेकाधीन अंतरणों के स्थान पर संस्थागत तंत्र के माध्यम से परामर्श के लिए न्यायसंगत तथा स्थायी व्यवस्था की जाए । इन तरीकों में, कल्याण के लिए जरूरतों तथा जिम्मेदारियों, ऋण तथा अनुदान के सापेक्ष हिस्सों, तथा राज्यों आदि के मध्य परस्पर आबंटन का मूल्यांकन शामिल होना चाहिए। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय क्षेत्र में निवेशों के लाभ का बंटवारा भी संघ सरकार मनमानी पूर्वक करती है (जैसे कलपक्कम से बिजली) ये भी विवेकाधीन अंतरणों के समान ही हैं ।

(च) विकास की प्रक्रिया में निर्यात तथा आयात की बढ़ती हुई भूमिका को देखते हुए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, वाणिज्य तथा विकास के बीच परस्पर संबंध को भी समझना आवश्यक होगा । राज्य सरकारें यदि निर्यात या आयात का कार्य नहीं कर रही हैं, तो उनके लिए विकास प्रक्रिया को समझना तथा उसमें भाग लेना आसान नहीं होगा । उदाहरण के लिए राज्य स्तर की संस्थाओं को निर्यात व्यापार में अपेक्षाकृत बड़ी भूमिका अदा करनी चाहिए ।

(छ) मुख्य सिंचाई परियोजनाएं, जिन पर बहुत बड़ा परिव्यय होता है और जिनसे अन्ततः समग्र रूप से राष्ट्र का फायदा होता है, उनके लिए राष्ट्रीय संसाधनों में से उदारतापूर्वक 'वित्त-प्रबंध' किया जाए । ऐसी राज्य परियोजनाओं के लिए वित्त-प्रबंध न करना पूरे राष्ट्र के लिए हानिकर है ।

8 उपर्युक्त अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि समुचित संवैधानिक उपबंधों द्वारा एक राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद (रा० आ० वि० प०) का गठन किया जाए । राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद में प्रधान-मंत्री अध्यक्ष के रूप में तथा मुख्य मंत्री सदस्यों के रूप में होंगे । योजना आयोग, राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद की तकनीकी सहायक संस्था एवं सचिवालय के रूप में होगा । पंचवर्षीय योजनाओं से संबंधित मामलों पर परामर्श देने के साथ साथ राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् एक ऐसे निकाय के रूप में कार्य करेगी जिसमें वित्त तथा आयोजना की बाबत संघ-राज्य संबंधों से संबंधित सभी मामलों पर निरन्तर परामर्श किए जाएंगे । इसके अंतर्गत विशेषतः योजनाओं के लिए संसाधनों का आबंटन, उधार विदेशों से प्राप्त धन, विवेकाधीन अंतरणों तथा केन्द्र तथा राज्य दोनों पर प्रभाव डालने वाले कराधान के उपायों का सीमा-निर्धारण शामिल होगा । इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद् महत्वपूर्ण क्षेत्रों में कृषि जैसी प्रमुख परियोजनाओं की पहचान करेगी, जिसमें बहुत बड़ा परिव्यय होता है, ताकि राज्यों के संसाधनों के पूरक के रूप में केन्द्र द्वारा उदारता पूर्वक धन देना सुनिश्चित हो सके । अपेक्षाकृत बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के लिए नम्य दृष्टिकोण, यह सुनिश्चित करने के लिए अपेक्षित है कि राज्य के संसाधनों पर अनुचित दबाव डाले बिना नदी जल का पूरा-पूरा उपयोग किया जाए । राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् के लिए यह संभव होना चाहिए कि वह विशेष मामले, रा० आ० वि० परि० के स्वयं के सदस्यों से गठित तदर्थ या स्थायी उप-समिति को भेजें । यह ध्यान रखा जाए कि राष्ट्रीय आयोजना विकास परिषद् का गठन जानबूझकर अनुच्छेद 263 में यथा परिकल्पित अंतर्राज्यिक परिषद् से भिन्न रखा गया है । यह परिषद् जिसका गठन राष्ट्रपति के आदेश से किया जाना है, हो सकता है कि संघीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुच्छेद 74 का अवलंब लेकर अचानक परिवर्तन की मांग के कारण उसमें अपेक्षित मात्रा में स्थायित्व, सत्ता या उन्मुक्ति न हो ।

प्रचार-प्रसार माध्यम

प्रजातंत्र में प्रचार-प्रसार माध्यमों की एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है । वर्तमान समय में रेडियो और टेलिविजन (टी० वी०) जैसे सरकारी प्रचार-प्रसार माध्यम संघ सरकार के अधीन हैं । इसके विपरीत कुछ पाश्चात्य देशों में प्रचार-प्रसार माध्यम निजी (प्राइवेट) निकायों के नियंत्रण में हैं जबकि भारत में ये माध्यम राज्य सरकार के नियंत्रण तक में नहीं हैं । विविध कारणों से हम यह महसूस करते हैं कि राज्य सरकारों को भी उनके अपने प्रचार-प्रसार माध्यमों की अनुमति दी जाए तथा संघ सरकार के रेडियो तथा टेलिविजन (टी० वी०) के समय में से भी उन्हें उचित समय दिया जाए । हम सिफारिश करते हैं कि इस संबंध में कानून बनाया जाए या वर्तमान कानून में संशोधन किया जाए, ताकि जहां तक व्यवहार्य हो राष्ट्रहित में यथावश्यक ऐसी शर्तों या प्रतिबंधों के अधीन राज्यों के अपने स्टेशन स्थापित किए जा सकें । इस कानून को लागू करने के लिए एक सांविधिक निकाय स्थापित किए जाए, ताकि राज्य सरकारों में यह विश्वास पैदा हो सके कि उन पर जो भी प्रतिबंध लगाए गए वे समग्र रूप से राष्ट्र के हित में हैं । यह भी सिफारिश की जाती है कि आकाशवाणी तथा दूरदर्शन विभागीय इकाइयों के रूप में नहीं बल्कि एक स्वायत्त निगम के रूप में कार्य करें ।

———

असम सरकार

(क) प्रश्नों के उत्तर

(ख) आशोधित/अतिरिक्त उत्तर

प्रश्नों के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 भारत का संविधान एक संघीयवत् संविधान है, जो कि इसकी भौगोलिक राजनीतिक अपेक्षाओं के लिए अनुकूल है। प्रतिष्ठित अर्थों में यह उतना संघीय नहीं है जितना कि अमरीका का संविधान माना जाता है। इसे एकात्मक भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें दोहरी राज्य व्यवस्था का उपबंध है। केन्द्र में संघ सरकार है और बाह्य स्तरों पर राज्य सरकारें हैं साथ ही अतिरिक्त विशेषताएं यह हैं कि इसमें संघ राज्य क्षेत्र भी है। संविधान की संघीयवत् प्रवृत्ति की विशिष्टता का पता इस तथ्य से भी चलता है कि एक ओर जहां संविधान के अनुच्छेद 1 (1) में अनुबद्ध है कि भारत राज्यों का संघ है वहां दूसरी ओर अनुच्छेद 3 में निर्दिष्ट किए अनुसार संसद स्वयं कानून बना कर राज्य के क्षेत्रों तथा सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है। इसके साथ-साथ संविधान के भाग XI के अध्याय I में विधायी शक्तियों के वितरण के लिए संघ-सूची, समवर्ती-सूची तथा राज्य सूची का उपबंध है और साथ में यह भी निर्दिष्ट है कि संसद को समवर्ती-सूची या राज्य-सूची में शामिल न किए गए किसी भी मामले के संबंध में कोई भी कानून बनाने की अनन्य शक्ति प्राप्त है। इस प्रकार जबकि भारतसंघ बनाने वाले राज्यों की अपनी-अपनी सरकारें है और संविधान को संघीय ढांचा देने के लिए उन्हें आबंटित क्षेत्रों में उनकी शक्तियां सुपरिभाषित और स्वतंत्र है परन्तु संघ-सूची में उल्लिखित शक्तियों के अलावा समवर्ती-सूची तथा अवशिष्ट शक्तियों के कारण संघ की भूमिका ऐसी हो जाती है को एकात्मक पद्धति के अधिक अनुरूप है। संविधान की इस विशेषता को चाहे मांग है और भारतीय परिस्थितियों में वह न्यायोचित भी है परन्तु इससे एकात्मकता की प्रवृत्ति आ जाती है जो परम्परागत संघीय सरकार के सिद्धान्तों से हटकर है। एकात्मकता की प्रवृत्ति हालांकि आपात परिस्थितियों में या किसी स्थिति विशेष में ही अधिक प्रकट होती है और इससे राज्य सरकार के स्थानीय, क्षेत्रीय और बाह्य स्तरों पर उन्हें आबंटित क्षेत्रों में जैसा कि संघीय सरकार में होता है उनके कार्यों को दुर्बल नहीं समझा जाता है परन्तु हमारा संविधान समग्र रूप से सामान्य समयों में संघीय है और संघीयवत् कहलाने का औचित्य बताने के लिए आपातस्थिति में इसे एकात्मक रूप में बदलने का उपबंध भी है।

1.2 केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की भारतीय राज्य-व्यवस्था को अमरीका की राज्य-व्यवस्था के समान बनाने के लिए राजमन्नार समिति ने संघवाद के प्रतिष्ठित रूप की सिफारिश की थी। इस प्रकार की सिफारिश भारत के लिए उपयुक्त नहीं है। सैकड़ों वर्षों से अधिक की भारतीय राज्य-व्यवस्था के इतिहास के आधार पर हमारे संविधान निर्माताओं की बुद्धिमत्ता के साथ-साथ हमने अपने संविधान के कार्यचालन पर पिछले 35 वर्षों के दौरान जो अनुभव प्राप्त किया है, इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि राजमन्नार समिति के दृष्टिकोण को अखण्डता के मूल तर्क के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमारे संविधान के बुनियादी ढांचे में कोई आशोधन करने की जरुरत नहीं है। परन्तु संविधान के कुछ उपबंधों की विशेष रूप से समग्र राष्ट्रीय संसाधनों की सुपुर्दगी से संबंधित उपबंधों की सतत समीक्षा करने की जरुरत है। ऐसा न केवल संघ और राज्य स्तर पर विधान सभाओं में किया जा रहा है बल्कि वित्त आयोग के कार्य के माध्यम से भी हो रहा है। इसे ध्यान में रखते हुए हम राजमन्नार समिति के विचार से सहमत नहीं हो सकते।

1.3 इस बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता कि हमारे देश के लिए पर्याप्त विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ आपात स्थिति में पर्याप्त रक्षोपायों सहित केन्द्रीयकरण की जरुरत है। लेकिन इसके कारण हमारे वर्तमान संविधान में कोई बड़ा संशोधन करने की जरुरत नहीं है। संविधान के मौजूदा उपबंध-संघ तथा राज्य स्तर की सरकारों के बीच लगातार बातचीत की व्यवस्था करने के लिए पर्याप्त है और इनसे विकास प्रशासन और संतुलित क्षेत्रीय विकास के हित में केन्द्र तथा राज्य दोनों से सम्बद्ध प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की सही पद्धति और मात्रा निर्धारित करना सहज है।

1.4 यथावर्णित "परम्परागत" प्रकार का संघवाद आधुनिक विश्व में कहीं भी मौजूदा प्रतीत नहीं होता।

1.5 भारत का संविधान जैसा कि इस समय संशोधित है, बुनियादी रूप से इतना समर्थ और लचीला है कि पिछले 35 वर्षों के दौरान भारतीय एकात्मकता का जो रूप उभर कर आया है, उसकी अपेक्षाओं को यह पूरा कर सकता है। एकात्मक स्वरूप का जो विकास हुआ है और संविधान में अब तक जो संशोधन किए गए हैं, उनसे स्वस्थ प्रजातांत्रिक दिशा-निर्देश का बोध होता है। संविधान के ढांचे से, संविधान में यथावर्णित निदेशक सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार्य सामाजिक आर्थिक पद्धति का उपबंध है। कुल मिला कर हमारे देश जैसी संघीय रूप-रेखा वाली प्रजातांत्रिक सरकार की विकासशील अर्थव्यवस्था के कार्यचालन में जो समस्याएं और मुद्दे उठने स्वाभाविक है, उनमें अंतर्राज्यिक परिषद् जैसी स्थायी परिषद्, जिसकी परिकल्पना अनुच्छेद 263 में की गई है, राज्यों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। यह परिषद राज्यों के बीच या संघ और राज्य के बीच उठने वाले राष्ट्रीय महत्व के सभी मुद्दों को निपटा सकती है। विधि द्वारा या स्वस्थ प्रजातांत्रिक परिपाटी विकसित करके इस परिषद् के गठन और कार्य को औपचारिक रूप दिया जा सकता है।

1.6 हम इस विचार से पूरी तरह सहमत है कि देश की स्वाधीनता की रक्षा करना और एकता तथा अखण्डता बनाए रखना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। संविधान के भाग XI के अध्याय I में विधायी शक्तियों के वितरण का पुनर्निर्धारण सातवीं अनुसूची की तीन अनुसूचियों में और विशेष रूप से अनुच्छेद 3, 11, 256, 257, 258 और 260 में वर्णित है। संविधान के भाग XVIII में अर्थात् अनुच्छेद 352 से 360 और अनुच्छेद 365 में आपातकालीन संबंधी उपबंध इस बुनियादी राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय करने के लिए बनाए गए है। इन उपबंधों के कारण संघ सरकार को पर्याप्त शक्तियां मिल गई है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने की जिम्मेदारी संघ सरकार पर आ गई है।

1.7 हमारा विचार है कि इस संबंध में संविधान में किए गए मौजूदा उपबंध उचित हैं। ऊपर प्रश्न 1.6 में उल्लिखित उद्देश्य की प्राप्ति इससे सुनिश्चित हो सकती है। प्रश्न में उल्लिखित अनुच्छेदों की व्यवस्था परस्पर विश्वास की भावना के आधार पर की जानी चाहिए, जो कि एक प्रजातंत्र के कार्यचालन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन उपबंधों को देश की एकता और अखण्डता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इस दृष्टि से यह अनुच्छेद उचित है।

1.8 यह विचार कि अनुच्छेद 3 के उपबंधों पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए, ध्यान देने योग्य है। नए राज्य बनाने, राज्य के क्षेत्रों, सीमाओं तथा वर्तमान राज्यों के नामों में परिवर्तन के लिए जिन शक्तियों का संसद द्वारा वास्तव में और बिना रोक टोक के प्रयोग किया जा रहा है और उनमें संबंधित राज्य (राज्यों) के विधानमण्डल (विधानमण्डलों) के विचार जानने की आवश्यकता की जरुरत है, उसमें आशोधन किया जाए और यह उपबंध किए जाएं कि संबंधित राज्य (राज्यों) के विधानमण्डल (विधानमण्डलों) की सहमति अवश्य प्राप्त की जाए या इसके विकल्प स्वरूप अधिकांश राज्य विधानमण्डल (विधानमण्डलों) की स्वीकृति प्राप्त करना अपेक्षित हो।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम में बुनियादी तौर पर कुछ भी गलत नहीं है परन्तु पिछले 35 वर्ष से अधिक समय के अनुभवों के संदर्भ में संविधान की सातवीं अनुसूची की सूचियों की समीक्षा करना जरूरी है। शिक्षा तथा वनों जैसे मुद्दों पर राष्ट्रीय विचार-विमर्श के कारण निश्चय ही ऐसी समीक्षाएं की गई है और इसके परिणामस्वरूप राज्य-सूची की मदें समवर्ती-सूची के अंतर्गत लाई गई है। इसी प्रकार संसद के नियंत्रण के अधीन माल की बिक्री या खरीद पर कर को संघ-सूची के अंतर्गत लाते हुए 92-क प्रविष्टि जोड़ी गई और अब तक राज्य सूची के अंतर्गत आने वाली प्रविष्टि सं० 54 को संघ-सूची के अन्तर्गत प्रविष्टि सं० 92-ए के उपबंधों के अधीन कर दिया गया। आर्थिक और वित्तीय समाधनों पर विधायी शक्तियों के वितरण संबंधी प्रविष्टियां जो राज्य सरकारों के विकास संबंधी प्रयत्नों को सीमित करती है, उनकी पुनर्जांच भारत सरकार अधिनियम 1935 में मौजूद तदनुरूपी उपबंधों को ध्यान में रखते हुए की जाए तथा उत्तरवर्ती वित्त आयोग के सामने राज्य-सरकार जांच के परिणाम प्रस्तुत करे।

2.2 विधायी शक्तियों के वितरण की मूल स्कीम और सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों के अधीन दर्ज किए गए विषयों का विस्तार से उल्लेख करने के बारे में हमारा कोई प्रस्ताव नहीं है लेकिन राज्य सरकार यह सुझाव दे कि राज्य-सूची में शामिल विषयों को छोड़कर अन्य विषयों के बारे में जहां कहीं केन्द्रीय अधिनियमन आवश्यक हो, वहां ऐसे अधिनियमन स्थायी अन्तर्राज्यिक परिषद के साथ परामर्श करके किए जाएं, जैसा कि प्रश्न 1.5 के उत्तर में हमने पहले भी उल्लेख किया है।

2.3 भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन यथापरिकल्पित परामर्श की पद्धति अपनाना केन्द्र तथा-राज्य सरकारों के बीच अधिक बेहतर कार्यकारी संबंध सुनिश्चित करने के लिए वांछनीय होगा जैसा कि हमने ऊपर प्रश्न 2.1 के उत्तर में पहले भी बताया है।

2.4 ऊपर प्रश्न 2.1 के उत्तर को ध्यान में रखते हुए ऐसी घोषणाएं स्थायी परामर्शदात्री निकाय द्वारा आवधिक समीक्षा के अध्यधीन रखी जाएं।

2.5 कुछ नहीं।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 संविधान में यथापरिकल्पित तथा परिपाटी द्वारा स्थापित राज्यपाल की भूमिका भारतीय परिस्थितियों के लिए आदर्श तथा उपयुक्त है।

3.2 विवेकानुसार किए जाने वाले कार्यों के निर्वहण में भी राज्यपाल की भूमिका एक मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक की होनी चाहिए। राज्यपाल को संबंधित राज्य मंत्रालय से परामर्श करना चाहिए हालांकि ऐसे राज्य मंत्रालय द्वारा दी गई राय को मानने के लिए न तो राज्यपाल और न ही संघ सरकार बाध्य है।

3.3 अनुच्छेद 356 (1) के अधीन कार्रवाई का सुझाव देने के लिए राष्ट्रपति को भेजी जाने वाली रिपोर्ट, राज्यपाल अपने विवेक से तैयार करता है। इस उपबंध का उपयोग चूंकि केवल आपातस्थिति में किए जाने का आशय है इसलिए उसकी वांछनीयता असंदिग्ध है परन्तु उसके साथ कुछ अतिरिक्त सुरक्षोपाय होने चाहिए। संवैधानिक प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए इन शक्तियों के प्रयोग पर रोक होनी चाहिए।

मुख्य मंत्री की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल की भूमिका भारत के राष्ट्रपति की भूमिका के समान होनी चाहिए।

विधान सभा को स्थगित करने या भंग करने के संबंध में राज्यपाल को मंत्री परिषद द्वारा दी गई सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए।

3.4 अनुच्छेद 200 तथा 201 के अनुसार राज्यपाल को राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों के आरक्षण की सामान्य शक्ति प्राप्त हैं। इस संबंध में राज्यपाल को कोई मार्गदर्शी निर्देश नहीं दिए गए हैं। यह उचित होगा कि राज्यपालों के लिए अनुदेशों की एक लिखत हो जिसमें इस मामले के संबंध में उन्हें कुछ मार्ग-दर्शी निर्देश दिए जाएं। शक्तियों का प्रयोग चाहे विवेकानुसार किया जाना हो, किन्तु उनका प्रयोग मनमाने तरीके से नहीं किया जा सकता। जहां तक इस राज्य का संबंध है, ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है।

3.5 कोई टिप्पणी नहीं है।

3.6 राज्यपाल न तो केन्द्र का एजेन्ट है और न ही यह कहा जा सकता है कि वह राज्य का नाममात्र का प्रमुख है निस्संदेह वह केन्द्र तथा राज्यों के बीच "निकट की कड़ी" की तरह है। परन्तु राज्यपाल की स्थिति स्वतंत्र नहीं है। सिवाय उस क्षेत्र के जहां उसके द्वारा अपने विवेक से कार्य करना अपेक्षित है, उसे भारत के राष्ट्रपति के समान राज्य के मंत्री परिषद की सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए। राज्यपाल से जिन कार्यों को स्वविवेक से तथा जिन कार्यों को मंत्रिपरिषद की सहायता व सलाह के अनुसार किए जाने की अपेक्षा की जाती है, उन कार्यों के बीच स्पष्ट रूप से सीमांकन होना चाहिए। यह सीमांकन जितना अधिक सही-सही होगा उतने ही भ्रम तथा अस्पष्टता के अवसर कम हो जाएंगे। अधिकांशत: भ्रम उन्हीं मामलों में उत्पन्न हुआ है जहां राज्यपालों को उन निगमों, सरकारी संस्थानों या अन्य निकायों के पदेन अध्यक्ष के रूप में अभिहित (नामित) किया गया है जो प्रत्यक्षत: राज्य सरकार के नियंत्रण में नहीं है ऐसे मामलों में भी राज्यपाल द्वारा मंत्रिपरिषद की सहायता एवं परामर्श से ही कार्य किए जाने चाहिए। विवेक से कार्य करने की शक्तियों का क्षेत्र अनुच्छेद 356 तथा 365 के अंतर्गत आने वाले मामलों तथा अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्य मंत्रियों के चुनाव के मामलों तक सीमित रखा जाए। अन्य कार्यों के संबंध में राज्यपाल मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हों।

3.7 राज्यपाल के कार्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कार्य से भिन्न है इसलिए राज्यपाल का सेवाकाल तथा उसकी नियुक्ति या बरखास्तगी का तरीका उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में यथा निर्धारित तरीके के समान नहीं हो सकता।

3.8 राज्यपाल की स्थिति राज्य के संवैधानिक प्रमुख की है। भारत के संविधान की रूपरेखा ऐसी है कि उन्हें इस रीति से शक्तियां प्रदान करने की सिफारिश नहीं की जा सकती। इस संबंध में राज्यपाल की स्थिति भारत के राष्ट्रपति की स्थिति से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है, सिवाय इसके कि उसे अपने कार्य स्वविवेक से करने होते हैं। हालांकि अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्य मंत्रियों की नियुक्ति के मामले में कुछ हद तक विवेक का प्रयोग अनिवार्य है, परन्तु विधान-मंडल में बहुमत की कमी की जांच तथा सत्यापन करने के प्रयोजन से राज्यपाल को वही शक्तियां नहीं दी जा सकती जो संघ-सरकार के एजेंट के रूप में कार्य कर सकता है। यदि ऐसी शक्तियां दी जाएं तो वह संघीय सिद्धांतों के विपरीत होंगी।

3.9 जर्मन गणराज्य में बुनियादी कानूनों के अनुच्छेद 67 द्वारा आरंभ की गई प्रणाली, भारतीय संविधान के अंतर्गत उपयुक्त नहीं है क्योंकि यहां राजनीतिक नेताओं और विधानसभा तथा संसद सदस्यों की स्वामिभक्ति बदलती रहती है। हालांकि जर्मन गणराज्य द्वारा प्रस्तावित समाधान आदर्शवादी प्रतीत होता है परन्तु इसे भारतीय संदर्भ में व्यावहारिक नहीं माना जा सकता।

3.10 जिस तरीके से राज्यपाल विवेक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है, उस संबंध में मार्गदर्शक सिद्धान्त राज्य सरकार से परामर्श करके संघ सरकार द्वारा तैयार किए जाएं और इन मार्गदर्शक सिद्धान्तों को अनुदेशों की लिखत में उसी प्रकार समाविष्ट किया जा सकता है जिस प्रकार उन्हें भारत अधिनियम, 1935 में अपनाया गया था।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 यद्यपि इन अनुच्छेदों के अंतर्गत जारी किए गए किसी भी निर्देश का कोई उदाहरण इस राज्य सरकार के देखने में नहीं आया है, फिर भी ये उपबंध

राष्ट्रीय सुरक्षा और एकता के हित में हैं और इनका प्रयोग केवल तभी किया जाए जब आपात स्थिति को देखते हुए राष्ट्रपति के लिए ऐसे आदेश सार्वजनिक हित में जारी करना अपरिहार्य हो ।

4.2 उपर्युक्त प्रश्न 4.1 के हमारे उत्तर के अनुरूप, हम प्रश्न में उल्लिखित दो विचारों में से बाद वाले विचार से सहमत हैं । हमारा विचार है कि परिसंघीय स्वरूप की सरकार वाला कोई भी देश अपनी प्रभुसत्ता और अखण्डता को तब तक नहीं बनाए रख सकता यदि संसद द्वारा विधि द्वारा यथा निर्धारित निर्देश जो कि संघ सरकार द्वारा राष्ट्रहित में दिए गए हों, उनकी राज्य सरकार अवहेलना करे । ऐसे निर्देश लागू करने के लिए समर्थ बनाने वाले किसी विशेष उपबंध के अभाव में संघ सरकार असहाय की तरह बैठी नहीं रह सकती । अनुच्छेद 366 चूंकि ऐसा ही समर्थ बनाने वाला विशेष उपबंध है इसलिए इसे इसके वर्तमान रूप में ही बना रहने दिया जाए ।

4.3 प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों से जैसी कि यहां दी गई हैं, केन्द्र-राज्य संबंध मजबूत बनाने में मदद मिलेगी । राज्य सरकार को इन अनुच्छेदों के अधीन केन्द्र द्वारा राज्य को जारी किए गए निर्देशों के किसी उदाहरण का पता नहीं है ।

4.4 इस राज्य को अनुच्छेद 356 के उपबंधों का मनमाने ढंग से अवलम्ब लेने का कोई अनुभव नहीं है । लेकिन मजबूत केन्द्र-राज्य संबंध के हित में यह वांछनीय होगा कि स्वयं अनुच्छेद में ही सुरक्षा उपायों के रूप में प्रतीक स्वरूप कुछ विशिष्ट शर्तों की व्यवस्था की जाए, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा संवैधानिक तन्त्र के असफल होने के आधार पर किसी राज्य के प्रशासन की बागडोर अपने हाथ में लेने के लिए पूरा करना जरूरी होना चाहिए । उदाहरण के लिए ऐसी शर्तें यह हो सकती हैं कि सत्तारूढ़ दल का राज्य विधान मण्डलों में बहुमत न रहना या इसी प्रकार के अन्य उदाहरण ।

4.5 अनुच्छेद 356 के अधीन निर्धारित की जाने वाली समय-सीमा के पीछे यह तर्क हो सकता है कि राज्य में संवैधानिक तन्त्र असफल होने के कारण आपात स्थिति उत्पन्न हो गई है । चूंकि ऐसी आपात स्थितियां प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न हो सकती हैं या एक ही राज्य विशेष में समय-समय पर भिन्न हो सकती हैं । इसलिए अनुभव निरपेक्ष होकर यह कहना कठिन है कि किसी भी एक मामले में सामान्य स्थिति बहाल करने के लिए कितनी समय-सीमा जरूरी होगी । साथ ही अनुच्छेद के खण्ड (4) और (5) में दी गई किसी समय-सीमा को समाप्त करना, संविधान की उस भावना के विपरित होगा, जिसमें प्रत्येक राज्य में चुनी हुई सरकार रखने की व्यवस्था है । राष्ट्रपति शासन लागू करना स्वयं में समस्या का समाधान नहीं है, यह तो समस्या के हल होने तक केवल एक अस्थायी व्यवस्था के रूप में माना जा सकता है इसलिए अनुच्छेद के खण्ड (4) और (5) में मौजूदा उपबंधों में कोई संशोधन करना आवश्यक नहीं है ।

4.6 वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक ढंग से कार्य कर रही है परन्तु इस संबंध में व्यवस्था को और अधिक सुधारा जा सकता है ताकि यह भावना न रहे कि एक ओर जहां राज्य प्रशासन इस मामले में पूरा सहयोग दे रहा है, वहां यह संबंध एकतरफा है । राज्य यूनिटों को निर्देश जारी करने से पहले केन्द्रीय एजेंसियों को चाहिए कि वे राज्य सरकार और प्रशासन से नियमित रूप से और पूर्ण परामर्श करें ताकि चुनाव कार्य और अन्य कार्यों में राज्य सरकार के कर्मचारियों और पुलिस बल की तैनाती जैसे कार्य सुचारू रूप से चल सकें ।

4.7 इसमें कोई संदेह नहीं कि ये एजेंसियां समग्र रूप से राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में, नोडीय संगठन के रूप में कार्य कर रही हैं और संविधान द्वारा उन्हें सौंपे गए दायित्वों को पूरा करने में राज्यों की सहायता कर रही हैं । इन एजेंसियों को, विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने और उन राज्य सरकारों के प्रयत्नों की कमी को पूरा करने का काम करना है, जिनके साधन अपर्याप्त हैं और वे अपने लिए साधन जुटाने में असमर्थ हैं, चाहे इन केन्द्रीय एजेंसियों को ऐसे विषयों पर भी काम क्यों न करना पड़े जो राज्य-सूची में वर्णित हैं इसलिए इन केन्द्रीय एजेंसियों की भूमिका की आलोचना करना या पहले से की गई व्यवस्था को केवल इस आधार पर समाप्त करना उचित नहीं होगा कि इन एजेंसियों के माध्यम से संघ ने शक्तियों के वितरण की स्कीम के विपरीत राज्यों की स्वायत्तता में या संविधान की सातवीं अनुसूची में वर्णित विषयों में हस्तक्षेप किया है । आवश्यकता इस बात की है कि जिन नीतियों के अनुपालन में एजेंसियां कार्य करती आ रही हैं, उन पॉलिसियों की संघ सरकार, राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके और बेहतर यह होगा कि इस प्रश्नावली के भाग-I के उत्तर में सुझाई गई स्थायी अन्तर-राज्यिक परिषद के माध्यम से नियमित रूप से समीक्षा करे । ये एजेंसियां इस आशय से बनाई गई थीं कि ये अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य करें और वास्तव में यदि ये ऐसा करती हैं तो स्वयं सातवीं अनुसूची में ही परिवर्तन लाकर उन्हें संवैधानिक रूप दिया जा सकता है बजाय इसके कि उन्हें राज्यों की स्वायत्तता के विरुद्ध संघ के एजेंटों के रूप में माना जाए तथापि ये एजेंसियां तभी प्रभावी होंगी यदि संघ सरकार यह सुनिश्चित करे कि वे राज्यों की समस्याओं और अपेक्षाओं को समझती हैं । इस बात की भी सलाह दी जाती है कि राष्ट्रीय नीति के तौर पर राष्ट्रीय विकास परिषद जैसी एजेंसियों में इस बात पर विचार-विमर्श किया जाए कि ये केन्द्रीय एजेंसियां किस स्तर पर कार्य करें जबकि उनकी भूमिका के अंतर्गत वे विषय भी आ जाएंगे जो राज्य सूची में शामिल हैं । ये एजेंसियां तदनुरूप राज्य एजेंसियों की भूमिका निभाने के लिए अनुपूरक के रूप में अधिक प्रभावी होंगी उनका स्थान नहीं लेंगी, उदाहरण के तौर पर खाद्यपदार्थों की अधिप्राप्ति और वितरण के मामले में वे सहायक होंगी । अन्य विषयों के संबंध में भी यह सुझाव देना वांछनीय होगा, कि केन्द्रीय एजेंसी केवल उन्हीं परियोजनाओं या कार्यक्रमों में अनुपूरक का कार्य करे जिनमें कुछ न्यूनतम संसाधनों से अधिक संसाधनों की या परिव्यय के स्तर की जरूरत हो या जिनके अन्तर-राज्यिक प्रभाव हों ।

4.8 राज्य सरकार का विचार है कि अखिल भारतीय सेवाएं उस प्रयोजन को पूरा कर रही हैं, जिसके लिए इनका सृजन किया गया था । राज्य सरकार को उस नियंत्रण से और अधिक नियंत्रण रखने की कोई जरूरत नहीं है, जिसका उपबंध, अखिल भारतीय सेवा अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में पहले ही से किया गया था । अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों पर, राज्य सरकार का सभी मामलों में पूरा नियंत्रण है । परन्तु संघ लोक सेवा आयोग और भारत सरकार की सहमति और अनुमोदन लिए बिना, उन्हें कोई बड़ी शास्ति नहीं दी जा सकती । सेवाओं का अखिल भारतीय स्वरूप बनाए रखने के लिए राज्य सरकार की शक्ति पर यह प्रतिबंध लगाना जरूरी है ।

4.9 कानून और व्यवस्था बनाए रखना राज्य का विषय है इसलिए उनके अपने-अपने राज्यों में उत्पन्न होने वाली किसी भी स्थिति पर नियंत्रण रखने की उन्हें पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए । अनुच्छेद 355 में यथानिर्धारित संघ के कर्तव्य का यह अर्थ लिया जाना चाहिए कि किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र बलों को तैनात किया जा सकता है । कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा सीधा नियंत्रण करना न तो वांछनीय है और न ही मौजूदा उपबंधों के अधीन नियंत्रण धारण किया जा सकता है क्योंकि अनुच्छेद 355 को सातवीं अनुसूची की सूची II (प्रविष्ट I) के साथ पढ़ा जाएगा ।

4.10 राष्ट्रीय अखण्डता के हित को देखते हुए टेलिविजन तथा रेडियो को पहले की तरह केन्द्रीय सूची में ही रखा जाए परन्तु राज्य सरकारों को जन संचार संबंधी अपनी समस्याओं के हल के लिए प्रशासन और विकास के हित में उचित और उपयुक्त आधार पर कार्यक्रम प्रसारित करने की अनुमति दी जानी चाहिए । इसकी वजह से सातवीं अनुसूची में कोई संशोधन करने की जरूरत नहीं है बल्कि केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा अंतरराज्यिक परिषदों के माध्यम से या मंत्रालय में परामर्शदात्री निकाय, जिसमें सूचना और जनसंपर्क के सभी प्रभारी राज्य मंत्री हों, के माध्यम से राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके एक स्वस्थ परिपाटी या राष्ट्रीय नीति तैयार करने की जरूरत है ।

4.11 आंचलिक परिषदें अब लगभग नाम के बराबर रह गई हैं । नीचे प्रश्न 4.12 के उत्तर को देखते हुए अब ये एजेंसियां अनावश्यक होंगी, विशेष रूप से उत्तरपूर्वी क्षेत्र में राज्यों के लिए बेकार होंगी क्योंकि उनके पास उत्तरपूर्वी परिषद की एक अतिरिक्त एजेंसी पहले से ही मौजूद है ।

4.12 राज्य सरकारों का विचार है कि संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन अंतरराज्यिक परिषद स्थापित की जाए । इसकी भूमिका और कार्यों का निर्धारण, ऐसी परिषद की भूमिका के बारे में प्रश्नावली के भाग II में हमारे

उत्तरों को ध्यान में रखते हुए, निश्चित किए जाएं। यह परिषद संस्थागत आयोजना और विकास संबंधी नीतियों के मामलों पर विचार करे और यहां तक कि यह राष्ट्रीय विकास परिषद की भूमिका भी निभा सकती है यदि इसका गठन प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सुझाए गए तरीके से किया जाए। अर्थात प्रधान-मंत्री इसके अध्यक्ष और केन्द्रीय वित्त मंत्री तथा गृह मंत्री, राज्यों के मुख्य मंत्री और संसद में विपक्ष के नेता इसके नियमित सदस्य हों और किन्हीं ऐसे अन्य दो केन्द्रीय या राज्य मंत्रियों को सहयोजित करने का भी प्रावधान हो, जिनके विषय, किसी अवसर विशेष पर विचार विमर्श के लिए सामने आए। ऐसी परिषद के कार्य राज्य विधान-मंडलों से परामर्श करने के बाद संसद द्वारा बनाई जाने वाली विधि में उल्लिखित हों। इसके कार्य एक स्थायी सचिवालय के माध्यम से निष्पादित किए जाएं और यह सचिवालय योजना आयोग का हो सकता है। इस तरीके से योजना बनाने का कार्य संघ तथा राज्य सरकारों के बीच अधिक सहयोग से और समन्वित रूप से किया जा सकता है।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 संविधान में राज्यों को कृषि, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कानून और व्यवस्था आदि जैसे कुछ ऐसे विषय आबंटित किए गए हैं, जो लोगों के जीवन को बहुत निकट से प्रभावित करते हैं। ऐसे विषयों का प्रबन्ध केवल राज्यों द्वारा ही दक्षतापूर्वक किया जा सकता है क्योंकि वे लोगों के अपेक्षाकृत अधिक निकट होते हैं और उनकी समस्याओं और आवश्यकताओं को अधिक बेहतर ढंग से समझ सकते हैं आयोजना शुरू होने के कारण कार्य नीति तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं में परिवर्तन आ गया है। विकास संबंधी नई कार्य नीतियों तथा योजनागत प्राथमिकताओं को पुनर्व्यवस्थित करने के कारण राज्यों पर अब जितना राजस्व संबंधी बोझ आ गया है, उतना पहले कभी नहीं था। सामाजिक न्याय पर अधिक बल देने के कारण राज्यों को संसाधनों के अधिक आबंटन की जरूरत है क्योंकि जिन सेवाओं और कार्यक्रमों से अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था कायम की जा सकती है, वे राज्यों के सीमा-क्षेत्र में आते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्यों की बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को देखते हुए राज्यों को, करों तथा राजस्व का बहुत अनुचित वितरण किया गया है। इसकी वजह से राज्यों के अपने संसाधनों और उनके खर्चों के बीच बहुत बड़ा और गंभीर अंतर आ गया है और उनके बढ़ते हुए दायित्वों को पूरा करने हेतु वित्तीय सहायता के लिए केन्द्र पर उनकी निर्भरता लाजमी तौर पर बढ़ गई है। कुछ समय से, इस कारण राज्यों द्वारा केन्द्र से निधियों के अपेक्षाकृत अधिक अंतरण की मांग की जाने लगी है।

केन्द्र से, राज्यों को राजस्व अंतरण की मौजूदा स्कीम में एक विशेषता यह है कि वित्त आयोग और योजना आयोग, राज्यों की आवश्यकताओं का समानान्तर मूल्यांकन करने लगे हैं। संविधान के निर्माताओं ने राजस्व अंतरण के इस नए तत्व की कल्पना भी नहीं की थी। हो सकता है कि यदि दो स्वतंत्र एजेंसियां साथ-साथ राज्यों को सहायता देने की सिफारिश करने के लिए जिम्मेदार हों, तो कुछ हद तक यही प्रयत्न दोहरे हो जाएं। इस दोहरे प्रयत्न को राजस्व लेखे में योजना तथा गैर-योजना व्यय के बीच भेद करके सुधारने की जरूरत है। वित्त आयोग राज्य के योजनेतर राजस्व लेखे का प्रबन्ध करते हुए करों में हिस्सा करने और सहायता अनुदान तक ही अपने कार्य सीमित रखता है। योजना सहायता, ऋणों और अनुदानों के रूप में योजना आयोग के माध्यम से दी जाती है। करों से हिस्सा बांटना अधिकार समझा जाता है और इससे राज्यों के पास अतिरिक्त राशि बच जाती है, जिसे खर्च करने के लिए वे स्वतंत्र हैं। अनुच्छेद 275 के अधीन अनुदान प्रायः शर्त रहित होते हैं, बराबरी के आधार पर नहीं होते हैं। वे कभी भी राज्यों के योजनेतर घाटों से ज्यादा भी नहीं हुए हालांकि विचारार्थ विषय योजना आयोग को अपेक्षाकृत गरीब राज्यों को, उनके योजनेतर घाटों से अधिक अनुदान की सिफारिश करने से नहीं रोकते। दूसरी ओर करों से हिस्सा बांटने की स्कीम के कारण कुछ राज्यों के पास बहुत बड़ी योजनेतर राशि अतिरिक्त बच जाती है। योजना के लिए राज्यों द्वारा अंशदान योजनेतर अतिरिक्त राशि तथा राज्यों द्वारा जुटाए गए अतिरिक्त संसाधनों में से दिया जाता है इसलिए अपेक्षाकृत गरीब राज्य, योजना को अंतिम रूप देने के मामले में स्वयं को सौदा करने की कमजोर स्थिति में पाते हैं। इस संदर्भ में योजना आयोग उन्नत राज्यों और दूसरे राज्यों के बीच राज्य सेवा के उपबंध में मौजूदा विसंगतियों पर विचार करके अपने द्वारा सुझाए गए निधि-प्रवाह के लिए एक विकासात्मक दिशा निर्धारित कर सकता है। केन्द्र से पूरी वित्तीय सहायता की सिफारिश करने के लिए वर्तमान पद्धति में परिवर्तन करने या एक निकाय की स्थापना करने की कोई जरूरत नहीं है। योजना आयोग, योजनागत परियोजनाओं के लिए सहायता की सिफारिश कर सकता है। इससे आयोग की संसाधनों का पता लगाने की जिम्मेदारी समाप्त हो जाएगी और वह आयोजना संबंधी कार्य अधिक बेहतर ढंग से कर सकेगा।

5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन दल की टिप्पणियां न केवल इस समय भी मान्य हैं परन्तु केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता, वर्षों के दौरान बढ़ गई है। कर लगाने की शक्तियों का राज्यों के पक्ष में केवल पुर्निर्धारण कर देने मात्र से ही यह प्रक्रिया न तो रोकी जा सकती है और न ही उलटी जा सकती है। कर संसाधनों के अनुसार राष्ट्रीय निधि का आकार बढ़ाने की आवश्यकता के बारे में कोई मतभेद नहीं होगा। इसके अतिरिक्त पूंजी और कार्यकुशलता के निर्मुक्त संचलन वाले और वृहत अखिल भारतीय बाजार की उपयोगिता भी नजरंदाज नहीं की जा सकती है। इन सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद संविधान में उल्लिखित कर संसाधनों का वर्तमान वितरण कुल मिलाकर सुविचारित प्रतीत होता है इसलिए नीचे दी गई सीमा तक परिवर्तन करने के सिवाय कोई बड़ा परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है।

भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 46 अनुसार कृषि आय पर कर लगाना राज्य का विषय है। दूसरी ओर संविधान के अनुच्छेद 366 में कृषि-आय को वह आय परिभाषित किया गया है, जिसे भारतीय आयकर से संबंधित अधिनियम के लिए परिभाषित किया गया है। आयकर अधिनियम, 1961 में वह आय शामिल हैं, जो उत्पाद को विपणनयोग्य बनाने के लिए ऐसी किसी प्रक्रिया को करने से प्राप्त हो जिससे वह कृषि आय के सीमाक्षेत्र के भीतर आ जाती है। बिक्री कर आयुक्त, लखनऊ बनाम डी० एस० बिष्ट (44 एस० टी० सी० 392) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में यह अभिनिर्धारित किया कि चाय की हरी पत्ती को विनिर्मित चाय में बदलने की प्रक्रिया, चाय की हरी पत्ती को विपणनयोग्य बनाने के लिए आवश्यक है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए, चाय निर्माण से प्राप्त हुई आय कृषि-आय मानी जानी चाहिए। दूसरी ओर आयकर नियमावली के नियम 8 में यह निर्धारित है कि चाय की खेती और निर्माण से प्राप्त 40 प्रतिशत आय कृषीतर आय मानी जाए। इसके परिणामस्वरूप राज्य, चाय के निर्माण से प्राप्त आय पर, कर उद्गृहीत नहीं कर सकती, जो उपर्युक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त विचारों के विपरीत है। इसलिए केन्द्रीय आयकर नियमों में संशोधन किया जाए ताकि राज्य, चाय की खेती और निर्माण से प्राप्त आय को पूर्णतया कृषि आय मान सकें और उस पर तदनुसार कर लगा सकें। यह देखा जा सकता है कि हालांकि यह संविधान के अधीन संघ तथा राज्यों के बीच केवल शक्तियों के विभाजन का मामला नहीं है फिर भी केन्द्र सरकार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 366 के बल पर आयकर अधिनियम के अधीन बनाया गया उपर्युक्त नियम राज्य की कर वसूली की शक्तियों का अतिक्रमण है।

संविधान के अनुच्छेद 276 के उपबंध के संबंध में विचार करना भी जरूरी है, जिसके अधीन किसी राज्य या किसी एक नगर पालिका, जिला बोर्ड या राज्य के अन्य स्थानीय प्राधिकरण को किसी एक व्यक्ति के संबंध में उसके व्यवसाय, व्यापार, रोजगार और नौकरी के संबंध में देय कर की राशि 250 रु० वार्षिक से अधिक नहीं होगी। संविधान के निर्माण के समय यह उपबन्ध उचित हो सकता था लेकिन इस उपबन्ध द्वारा लगाई गई अधिकतम सीमा के कारण राज्य का, इस साधन से कर लगाने और उसे वसूल करने का

शक्तियों पर अनुचित रूप से रोक लग गई है। छठे दशक से प्रारंभिक वर्षों में देश में सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि होने और मुद्रास्फीति के कारण इस सीमा में परिवर्तन करना भी आवश्यक हो गया है ताकि राज्य अपने संसाधन बढ़ा सकें। यह महसूस किया जा रहा है कि अधिकतम सीमा 250/-रु० से उचित रूप से बढ़ा दी जाए।

केन्द्रीय रूप से वसूल किए गए करों के वितरण में परिवर्तन करना, निगम-कर, आयकर पर अधिभार, सीमा-शुल्क आदि जैसी नई मदों से होने वाली आय को, विभाजन-योग्य सामूहिक-निधि में शामिल करना, राज्यों को वितरण के लिए संघ की दी गई कर संबंधी शक्तियों का पूरा पूरा कार्यान्वयन करने की जरुरत है। करों की सुपुर्दगी के अतिरिक्त समानता के सिद्धान्त के आधार पर सहायता अनुदान से भी, राज्यों के वित्तीय असंतुलन को विशेष रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों के वित्तीय असंतुलन को ठीक करने में मदद मिलेगी। इसके साथ-साथ केन्द्र पर बढ़ती हुई निर्भरता को कम करने की दृष्टि से यह जरुरी है कि राष्ट्रीयकृत बैंकों, वित्तीय संस्थानों, देशी ऋण, विदेशी सहायता पर केन्द्र के नियंत्रण के जरिए जो संसाधन केन्द्र के हाथ में हैं उनमें और घाटे की अर्थव्यवस्था में राज्यों के साथ हिस्सा बंटाया जाए।

5.3 एक मजबूत केन्द्र की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु मजबूत केन्द्र के साथ राज्यों का मजबूत होना कोई असंगत बात नहीं होगी। इसके विपरीत यदि केन्द्र मजबूत होगा, तो अपने आप ही मजबूत राज्यों का एक संघ बनेगा। भारतीय संविधान में केन्द्र को विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्रों में राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तियां दी गई हैं। संविधान में आयकर' निगम कर केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और सीमा-शुल्क जैसे अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक आधार वाले करों के उद्ग्रहण और प्रशासन का कार्य, संघ को सौंपा गया है जबकि राज्य को आबंटित संसाधन अपेक्षाकृत कम हैं और उनकी वृद्धि की संभावना बहुत सीमित है। कर राजस्व के लचीले संसाधनों के साथ-साथ केन्द्र के पास राष्ट्रीयकृत बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, देशीय और विदेशी ऋण और घाटे की अर्थव्यवस्था के माध्यम से जुटाए जाने वाले सभी संसाधन हैं। संविधान में उपबंधित संसाधनों के वर्तमान विभाजन को अस्त-व्यस्त करने की अपेक्षा नहीं की जा रही है परन्तु अंतरण का तरीका ऐसा होना चाहिए कि संसाधनों का प्रयोग ऐसे कार्यों के लिए किया जाए जहां उनकी बहुत जरुरत है ताकि क्षेत्रीय असमानताएं कम हों और सामाजिक और आर्थिक न्याय मिल सके।

5.4 इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिए केन्द्र मौजूदा करों का अपेक्षाकृत बेहतर प्रबन्ध करे और साथ ही संघ को दी गई कर संबंधी शक्तियों को कार्यान्वित करे ताकि केवल राज्यों में ही उनका वितरण किया जा सके। इस पहलू पर अब तक विचार नहीं किया गया है। दूसरे संघ के खर्चों की प्रचुरता, औचित्य और कार्यकुशलता पर उचित सतर्कता बरती जाए। सरकारी उपक्रमों का अपेक्षाकृत बेहतर प्रबन्ध, उन अनेक उपायों में से एक हो सकता है, जो व्यय पर नियंत्रण करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। घाटे की अर्थव्यवस्था अंतिम उपाय के तौर पर कुछ सीमित रुप में अपनाई जा सकती है। यदि घाटे की अर्थव्यवस्था से प्रभावी मांग को बढ़ावा मिले तो इसका अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। भारतीय अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी और मुद्रास्फीति की दर खासतौर पर अधिक है। ऐसी स्थिति में यदि घाटे की अर्थव्यवस्था बहुत बड़ी मात्रा में बनी रहे, तो मुद्रास्फीति और भी अधिक बढ़ जाती है।

5.5 करों का हिस्सा निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित वस्तुपरक मानदण्ड प्रयोग में लाया जाएं :—

(क) करों में हिस्सा

.आयकर—आयकर की विभाजन-योग्य सामूहिक–निधि मौजूदा 5% से बढ़ाकर 90% कर दी जाए। आयकर से प्राप्त निवल आय का वितरण 90% जनसंख्या के आधार पर और 10% पिछड़ेपन के आधार पर किया जाए।

आयकर पर अधिभार.—अनेक वर्षों से आयकर पर अधिभार लगाया जा रहा है और इसे 10% से बढ़ाकर 15% कर दिया गया है परन्तु इससे प्राप्त आय केन्द्र केवल अपने पास ही रखता है। वर्ष 1984-85 के बजट में अधिभार से 219 करोड़ रु० प्राप्त हुए। अधिभार कुछ अप्रत्याशित घटनाओं की जरुरतें पूरी करने के लिए लगाया जाता है इसलिए यह केवल उन विशेष जरुरतों को पूरा करने की सीमित अवधि तक के लिए ही लगाया जाना चाहिए। परन्तु यदि अधिभार को अनिश्चित काल के लिए जारी रखा जाता है, तो इसे अतिरिक्त आयकर मानकर उसी प्रकार बांटना चाहिए जैसे आयकर से हुई आय को बांटा जाता है। इसे मूल दरों के साथ मिला कर राज्यों के साथ हिस्सा करने योग्य बना दिया जाए।

निगम-कर.—कुछ वर्षों से निगम-कर में असाधारण वृद्धि हुई है। वर्ष 1952-53 में आयकर से 143 करोड़ रुपए प्राप्त हुए और निगम-कर से लगभग 44 करोड़ रुपए। तब से स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। वर्ष 1984-85 के बजट में आयकर से 1801 करोड़ रु० राजस्व प्राप्त होने का अनुमान था और निगम कर से 2588 करोड़ रुपए प्राप्त होने का अनुमान था। इस प्रकार पिछले 32 वर्षों में आयकर में जहां 1159% वृद्धि हुई है, वहां निगम कर में 5782% वृद्धि हुई है। विभाजन-योग्य सामूहिक-निधि में से निगम कर निकाल देने से राज्यों को राजस्व के ऐसे स्रोत से वंचित रखा गया है, जो आयकर से भी अधिक बड़ा है। सुझाव दिया जाता है कि संविधान में उचित संशोधन करके निगम कर के 50% भाग को, जो कि आयकर का ही रुप है, विभाजन योग्य सामूहिक–निधि में लाया जाए और उसे आयकर की ही भांति राज्यों में बांट दिया जाए।

केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क.—केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से होने वाली निवल आय में राज्यों का हिस्सा मौजूदा 40% से बढ़ाकर 50% कर दिया जाए। राज्यों के बीच परस्पर वितरण मौजूदा आधार पर ही किया जाए।

अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क.—निकासी के मूल्य की प्रतिशतता के रूप में अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क बढ़ाकर 10.8% कर दिया जाए और इसे भविष्य में इस स्तर से नीचे न गिरने दिया जाए और मूल उत्पाद शुल्क तथा अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क से आमदनी को 2:1 के हिसाब से रखा जाए। राज्यों के बीच निवल आय का वितरण आबादी के लिए 70% महत्व के हिसाब से और 20% राज्यों के घरेलू उत्पाद की दृष्टि से और 10% उत्पादन के हिसाब से किया जाए।

कृषि-योग्य भूमि से भिन्न अन्य संपत्ति के संबंध में उत्पाद-शुल्क.—अचल संपत्ति के संबंध में निवल आय का वितरण संपत्ति के स्थान के आधार पर और अचल संपत्ति से भिन्न अन्य संपत्ति के संबंध में जनसंख्या के आधार पर किया जाए।

रेल यात्री किराए पर कर के बदले अनुदान.—अनुदान की मात्रा 16.25 करोड़ रु० के वर्तमान स्थिर स्तर से बढ़ा दी जाए ताकि यह यात्री किराए में वृद्धि के अनुरुप हो सके। अनुदान की मात्रा का पुन-निर्धारण राज्य सरकारों द्वारा पिछले अनेक वर्षों से उठाई जा रही हानि का मुआवजा देने की दृष्टि से किया जाए। राज्यों के बीच परस्पर वितरण मौजूदा आधार पर जारी रखा जाए।

(ख) योजनागत सहायता

चौथी पंचवर्षीय योजना से पहले योजनागत सहायता केवल स्कीमों तक ही सीमित थी क्योंकि ये किसी परियोजना या स्कीम विशेष से ही संबंधित होती थी और इस प्रकार इसका स्वरूप सशर्त अनुदान जैसा था। गाडगिल सूत्र (फार्मूला) के अनुसार इसे ब्लाक ऋणों और अनुदानों के रूप में अधिक सामान्य बनाने की सिफारिश की गई। ऐसी सहायता बहुत हद तक उन सीमाओं से मुक्त हो गई, जो पहले इससे जुड़ी हुई थी। तथापि पूरी योजनागत सहायता समग्र रूप से योजना की बाबत योजना आयोग के अनुमोदन पर ही निर्भर करती है। अब भी कुछ मदों के संबंध में यह सहायता केवल कुछ निर्दिष्ट क्षेत्रों से ही आबद्ध है और ऐसे क्षेत्रों में खर्च करने योग्य राशि की कमी के कारण सहायता में अनुपातिक कटौती करनी पड़ सकती है। वर्तमान पद्धति के अनुसार सहायता 70% ऋण और 30% अनुदान के रूप में दी जाती है। केन्द्रीय सहायता के वितरण के प्रयोजन से 8 राज्यों को गाडगिल सूत्र की सीमाक्षेत्र से बाहर रखा गया है और उन्हें

विशेष श्रेणी के राज्यों का दर्जा दिया गया है। वे राज्य हैं :—असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा। विशेष दर्जे के राज्यों को केन्द्रीय सहायता, उनकी वास्तविक आवश्यकता और पिछले कार्य निष्पादन को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है। सामान्य क्षेत्रों के लिए ये सहायता 70% ऋण और 30% अनुदान के रूप में और पहाड़ी क्षेत्रों के लिए 10% ऋण तथा 90% अनुदान के रूप में होती है। योजना आयोग के माध्यम से केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान पद्धति और कार्यविधि जारी रखी जाए। असम को गाडगिल सूत्र के बाहर अपना विशेष दर्जा बनाए रखने की अनुमति दी जाए परन्तु असम को दिए गए विशेष दर्जे को मानते हुए, केन्द्रीय सहायता का स्वरूप 90% अनुदान और 10% ऋण की एक समान पद्धति में बदल दिया जाए और सामान्य तथा पहाड़ी क्षेत्रों के बीच मौजूदा विभेद समाप्त कर दिया जाए।

(ग) गैर-योजना सहायता

उत्तरवर्ती वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्य, अनुच्छेद 275 (1) के अधीन सांविधिक सहायता प्राप्त कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त असम राज्य जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के लिए अनुच्छेद 275 (1) के दूसरे परन्तुक के खण्ड (क) के अधीन थोड़ी सी अतिरिक्त राशि भी प्राप्त कर रहा है। सांविधिक सहायता के साथ-साथ राज्य अपने-अपने मंत्रालयों के माध्यम से केन्द्रीय गैर योजना सहायता भी प्राप्त कर रहे हैं। जिन कार्यों के लिए सहायता मिल रही है उनमें से कुछ, प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं :—(i) विस्थापित व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास (ii) युद्धस्थिति के कारण अपेक्षित राहत (iii) सीमा सड़कों, सामरिक महत्व की सड़कों और राष्ट्रीय राजमार्गों का निर्माण और रखरखाव (iv) पुलिस बल का आधुनिकीकरण (v) श्रम और रोजगार (vi) शिक्षा (vii) समाज कल्याण (viii) केन्द्रीय रिजर्व बल।

जहां तक अनुच्छेद 275 (I) के उपबन्धों के अधीन सहायता का संबंध है, गैर-योजना राजस्व अन्तर का विनिश्चय, पिछड़ेपन, विशेष समस्याओं और राष्ट्रीय महत्व के विषयों को ध्यान में रखकर किया जाए। इस प्रकार विनिश्चित अन्तर को न केवल गैर-योजना अनुदान से समाप्त किया जाए बल्कि पिछड़े राज्यों के पास राजस्व लेखों में इतनी पर्याप्त अतिरिक्त राशि बच जाए कि वे उसे नए सिरे से विकास में पुन: निवेश कर सकें।

संयुक्त असम राज्य, अनुच्छेद 275 (I) के दूसरे परन्तुक के खण्ड (क) के अधीन 40 लाख रुपए अनुदान के रूप में प्राप्त कर रहा था परन्तु राज्य के पुनर्गठन के बाद यह राशि घटा कर 13 लाख रुपए कर दी गई है। यह राशि संविधान लागू होने के तुरंत पूर्व के 2 वर्षों के दौरान जनजातीय क्षेत्रों में राजस्व से व्यय के औसत रूप से अधिक होने के आधार पर निर्धारित की गई थी। हाल ही के कुछ वर्षों में पहाड़ी जिलों में व्यय, संविधान-पूर्व स्तर से काफी अधिक हो गया है, यद्यपि उसी अनुपात में आय नहीं बढ़ी है। इस स्थिति की समीक्षा करना जरूरी है।

अधिकांश दूसरी गैर-सांविधिक सहायता कुछ विशिष्ट सीमित मदों के संबंध में व्यय की प्रतिपूर्ति का रूप ले लेती है और साथ ही अग्रिम सहायता भी दी जाती है जिसके लिए राज्य बजट में प्रावधान होता है। हालांकि इस प्रयोजन के लिए अपनाई गई कार्यविधि के संबंध में कोई शिकायत नहीं है फिर भी यह ज्यादा से ज्यादा महसूस किया जा रहा है कि व्यय की कुछ और मदों के संबंध में व्यय की प्रतिपूर्ति की जाए। उदाहरण के लिए—कुछ समय से राज्य सरकार को युद्ध स्थिति के कारण राहत के लिए पर्याप्त राशि प्राप्त हुई है। लेकिन केन्द्र ने 70% ऋण और 30% अनुदान सहायता के रूप में दिया है। ऐसी सहायता के स्वरूप में परिवर्तन और संशोधन करने की जरूरत है। यह बेहतर होगा कि पूरी राशि को अनुदान के रूप में माना जाए। जहां तक बाहरी बटालियनों पर खर्च का संबंध है, राज्यों को कोई गैर-योजना सहायता प्राप्त नहीं होती। गृह मंत्रालय प्रतिवर्ष केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल/सीमा सुरक्षा बल की प्रत्येक बटालियन के संबंध में 24 लाख रुपए तथा परिवहन, संचलन, निवास स्थान, जलपूर्ति आदि की वास्तविक लागत वसूल करता है।

कानून और व्यवस्था बनाए रखना हालांकि राज्य का विषय हैं। परन्तु असामान्य स्थितियों में पूरे राज्य बलों की तैनाती के साथ-साथ केन्द्रीय बटालियनें बड़े पैमाने पर तैनात करना भी आवश्यक हो जाता है। यदि केन्द्र ऐसी सेवाओं के लिए अदायगी पर बल देगा तो इससे राज्यों की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर पड़ेगा, विशेष रूप से उस असामान्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए; जिसमें ऐसी तैनाती करना आवश्यक होता है इस संबंध में छठे वेतन आयोग की टिप्पणियां विशेष रूप से सुसंगत हैं। उस आयोग ने भारत सरकार से, राज्यों को कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उपलब्ध कराई गई केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की सेवाओं के लिए अदायगी पूरी तरह से छोड़ देने की सिफारिश की थी। उसने यह भी टिप्पणी की थी कि इस संबंध में भारत सरकार का निर्णय मान्य होगा कि किसी राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थिति को देखते हुए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के रूप में और अधिक सहायता की जरूरत है या नहीं। इस बात की आशंका करने का कोई कारण नहीं है कि यदि अदायगी से छूट दे दी गई तो राज्य सरकार बड़े पैमाने पर केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की सहायता का अवलम्ब लेगी। आखिरकार भारत सरकार की देश भर में कानून और व्यवस्था बनाए रखने की उतनी ही जिम्मेदारी हैं, जितनी कि राज्य सरकारों की। इस पहलू पर विचार करने की जरूरत है।

5.6 वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा तीन दशकों से अधिक समय तक लगातार प्रयत्न करने के बावजूद आर्थिक वृद्धि की दर में अन्तरक्षेत्रीय तथा अन्तरराज्यिक असमानताओं की मौजूदगी से पता चलता है कि इस संबंध में जो उपाय किए गए हैं, वे कितने अपर्याप्त हैं। अन्तरराज्यिक असमानताएं कम करने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए करों का एक हिस्सा अलग रखा जाए और केवल पिछड़े इलाकों में वितरण के लिए एक विशेष निधि में जमा कर दिया जाए। इस प्रकार से बनाई गई निधि में राज्यों के, करों के हिस्से में वृद्धि में से वित्त पोषण किया जाए साथ ही निगम-कर और अधिभार को विभाजन योग्य सामूहिक निधि में शामिल करने का जो प्रस्ताव दिया गया है उसमें से उपयुक्त निधि में, वित्त पोषण किया जाए। इससे अन्तरराज्यिक असमानताएं कम हो जाएंगी और पिछड़े राज्यों के पास विकास कार्य-कलापों में निवेश करने के लिए पर्याप्त अतिरिक्त राशि उपलब्ध हो जाएगी।

5.7 और 5.8 भारतीय संविधान के निर्माताओं ने पृथकता सिद्धांत को अपनाया और संघ तथा राज्यों दोनों के कराधान के अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित किए और इस प्रयोजन के लिए कराधान की दो अलग-अलग सूचियां तैयार की। संघ तथा राज्यों को कराधान के कार्य आबंटित करते समय एक मजबूत कराधान प्रणाली के लिए वर्णित सिद्धान्तों की ओर सम्यक् रूप से ध्यान दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप संघ को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के व्यापक आधार-वाले कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई हैं, जैसे कि आयकर, निगम-कर, सीमा-शुल्क और उत्पाद-शुल्क जो अर्थव्यवस्था, कार्यकुशलता, सुविधा आदि के सिद्धान्तों के अनुरूप हैं। राज्यों को उपभोज्य तथा आय और संपदा की स्थानीय मदों पर कर उद्गृहीत करने की शक्तियां दी गई हैं। अर्थव्यवस्था, व्यापार तथा वाणिज्य की स्वतन्त्रता और न्यायसंगतता की दृष्टि से विचार करने पर इस अवस्था में संघ-सूची से कराधान की मदों का अन्तरण करना संभव नहीं होगा और इससे आंतरिक व्यापार और अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आयकर, निगमकर सीमाशुल्क, उत्पाद-शुल्क आदि जैसे बड़े करों का देश की अर्थव्यवस्था पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है इसलिए संविधान में दिए गए कर संसाधनों के वर्तमान विभाजन में परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है। फिर भी केन्द्र इस समय जो रियायतें, छूट और प्रोत्साहन राज्यों को दे रहा है या जिनके दिए जाने का प्रस्ताव है और जिनका विभाजन योग्य सामूहिक-निधि को कम करने का असर पड़ता है और ऐसे ही अन्य संगत मामले जिनका राजस्व संबंधी प्रभाव राज्यों पर पड़ता है, उनकी एक ऐसी समिति द्वारा समीक्षा की जाए जिसमें केन्द्र और राज्य वित्त मंत्रियों का प्रतिनिधित्व हो। इस राज्य ने पांच पण्यों पर बिक्री-कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाने के प्रस्ताव को अपना समर्थन पहले ही दे दिया है, बशर्ते कि इन पण्यों पर बिक्री-कर से होने वाला वर्तमान राजस्व बना रहे बल्कि राज्य का विशेष ध्यान भी रखा जाए। बिक्री-कर राज्यों के लिए राजस्व का सर्वाधिक लचीला और प्रचुर स्रोत है इसलिए इस क्षेत्र में और अधिक हस्तक्षेप से राज्यों का अपने राजस्व बढ़ाने के मामले में वर्तमान सीमित लचीलापन भी समाप्त हो जाएगा।

5.9 गैर-योजना अन्तर को पूरा करने के लिए राज्यों को संसाधनों के अन्तरण के प्रयोजन के लिए केन्द्र हर पांच वर्ष बाद एक वित्त आयोग की नियुक्ति करता हैं परन्तु पांच वर्ष की अवधि के दौरान ऐसे अनेक अदृश्य दायित्व उत्पन्न हो सकते हैं, जिनके लिए हो सकता है वित्त आयोग व्यवस्था करने की स्थिति में न हो। इसलिए राज्य, वित्त मंत्रालय और योजना आयोग की दया पर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वित्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विचारार्थ विषयों में निर्धारित, एक विशेष तारीख तक होने वाले राज्य के खर्चों के स्तर की बाबत विचार करे। एक तारीख निश्चित होने के कारण आयोग उस तारीख के बाद राज्य द्वारा लिए गए दायित्व का संज्ञान नहीं करता। ऐसे दृष्टिकोण के कारण राज्यों की उस प्रवृत्ति पर रोक लगाने का विचार किया गया है जिसके कारण वे वित्त आयोग की घोषणा होने के साथ ही शीघ्रता से नए व्यय का प्रस्ताव कर देती है। इसके परिणामस्वरूप बहुत सी अनावश्यक गैर-योजना जरुरतें या तो उपेक्षित कर दी जाती हैं या उन्हें शुरु करने से राज्यों की वित्तीय स्थिति पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है। यह महसूस करने का कोई वास्तविक कारण नहीं है कि वित्त आयोग को नियुक्ति मात्र से ही, राज्यों को अधिनिर्णय का लाभ उठाने के लिए नए खर्च करने का संकेत मिल जाता है। पंचवर्षीय वित्त आयोग की ऐसी कमियों को स्थायी वित्त आयोग जैसे निकाय की स्थापना द्वारा दूर किया जा सकता है, जिसके पास राज्यों की वार्षिक आबंटन करने की व्यापक शक्तियां मौजूद हों। योजना का वित्त-पोषण, गैर-योजना राजस्व लेखे में अतिरिक्त राशि से किया जाता है, राज्यों द्वारा अतिरिक्त संसाधन जुटाए जाते हैं और योजना आयोग के माध्यम से योजनागत सहायता दी जाती हैं। अन्तर को दूर करने वाले दृष्टिकोण से रहित एक बार यदि वित्त आयोग को एक स्थायी निकाय बना दिया जाए तो योजना आयोग, गैर-योजना अन्तर पाटने के लिए संसाधन ढूंढने के बोझ से मुक्त हो जाएगा और निवेश, आयोजना और निर्णय लेने का कार्य अधिक प्रभावी रूप से कर सकेगा।

5.10 सुदृढ़ राजस्व संबंधी प्रबन्ध, अन्य बातों के साथ-साथ व्यय में किफायत और कार्यकुशलता पर निर्भर करता है। जिस ढंग से राज्य उन्हें आबंटित साधनों का इस्तेमाल करते है ताकि उन्हें किए गए खर्च से सर्वोत्तम परिणाम हासिल हों, उसी से राज्यों की कार्यकुशलता के स्तर और किफायत के लिए किए गए उपायों का पता चलता हैं। प्रत्येक वित्त आयोग परिसंपत्तियों के अनुरक्षण और देखभाल के लिए अखिल भारतीय आधार पर कुछ मानदण्ड अपनाता है। राज्यों के लिए उन मानदण्डों का कड़ाई से पालन करना स्थानीय कारणों और असामान्य रूप से कीमतों में वृद्धि के कारण सम्भव नही होता। राज्य सरकारें योजना के लिए अपने संसाधनों का संरक्षण करने की उत्सुकता में आमतौर पर किफायत लाने की भावना से प्रेरित होकर प्रायः अनिवार्य सेवाओं पर खर्च न करके व्यय कम करने का प्रयास करती है। अभी तक संघ द्वारा अंतरणों से भी राज्यों के बीच सार्वजनिक व्यय के स्तर में असमानताएं बहुत हद तक दूर करने में मदद नहीं मिली है। राज्यों में विशेष रूप से पिछड़े राज्यों में जरूरी प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के मामले में अभी भी असमानताएं मौजूद हैं। एक राज्य के भीतर भी विभिन्न क्षेत्रों में असंतुलन मौजूद है। पिछड़े राज्यों में अनिवार्य प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं को बहुत अधिक प्राथमिकता देने की जरुरत है। इसके लिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा, चिकित्सा देखभाल, सार्वजनिक स्वास्थ्य और कल्याण के लिए अधिक निधि आबंटित करने की जरुरत है। इस दिशा में छठे वित्त आयोग ने शुरुआत कर दी है। इसके पहले के वित्त आयोगों ने आधार वर्ष में प्रचलित स्तर पर प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के अनुरक्षण के आधार पर अधिकतम राज्यों की जरुरतों का मूल्यांकन किया था। छठे वित्त आयोग ने पहली बार इस मानदण्ड से भिन्न आधार पर कार्य किया। उसने पिछड़े राज्यों में कुछ प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के लिए वित्तीय उपबन्ध को बढ़ाने का प्रयत्न किया ताकि पिछड़े राज्यों को राष्ट्रीय औसत स्तर तक लाया जा सके और इस प्रयोजन के लिए उसने अनुदानों की सिफारिश की। सातवें वित्त आयोग ने भी समान दृष्टिकोण अपनाया और कुछ चुनी हुई अन्य सेवाओं में भी यह लाभ देने की सिफारिश की। इस दृष्टिकोण से धीरे-धीरे राज्यों के बीच सेवा के स्तर और सार्वजनिक व्यय के स्तर में मौजूदा असमानताएं कम करने में मदद मिलेगी। पहले छठे वित्त-आयोग और बाद में सातवें वित्त आयोग द्वारा अपनाए गये दृष्टिकोण का यदि जोश से अनुपालन किया जाए तो संभव है कि प्रशासन में धीरे धीरे कार्य कुशलता बढ़े और असमानताएं दूर हो जाएं।

5.11 भारत में संघ से राज्यों को राजस्व अन्तरण, मुख्यतः दो अलग-अलग एजेंसियों अर्थात् वित्त आयोग तथा योजना आयोग द्वारा किया जाता है। योजना आयोग को योजनागत सहायता की सिफारिश का काम सौंपा गया है। वित्त आयोग का काम हालांकि राज्यों की गैर-योजना राजस्व लेखे से उत्पन्न होने वाली राजस्व संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए सिफारिशें करने तक ही सीमित है फिर भी राज्यों को करों की सुपुर्दगी के बारे में विचार करने के बाद अनुच्छेद 275 के अधीन वित्त आयोग द्वारा जिस सहायता अनुदान की सिफारिश की गई है, उसे अवशिष्ट अन्तर पाटने के लिए प्रयोग में लाया गया है। कभी-कभी यह विचार अभिव्यक्त किया जाता है कि इससे राज्यों को अपनी राजस्व संबंधी जरूरतें बढ़ा-चढ़ा कर बताने के लिए इस कारण से प्रोत्साहन मिला है कि वे अनुदान के पात्र हो जाए। वित्त आयोग के व्यापक विचारार्थ विषयों से राज्यों की ऐसी प्रवृत्तियों को रोकने में मदद मिलेगी। यदि आवश्यक हो, तो इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विचारार्थ विषयों में उपयुक्त संशोधन किए जा सकते हैं।

यहां कमजोर राज्यों और अन्य राज्यों के बीच अन्तर करना जरूरी है। यह कहना सही नहीं होगा कि अपेक्षाकृत कमजोर राज्य वित्तीय अनुशासन के सभी मानदण्डों की अवहेलना करते हुए राजस्व संबंधी अपनी जरूरतों को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं। वास्तविकता तो यह है कि उन्नत राज्यों में उपलब्ध प्रशासनिक और अन्य सेवाओं के स्तर को अपने लोगों के लिए देने के प्रयत्न में अपेक्षाकृत कमजोर राज्य, राजस्व संबंधी अपनी जरूरतें इस प्रकार दिखाते हैं, जिनसे हो सकता है वे कुछ मानदण्डों को पूरा न कर पाते हों। ऐसा वे इसलिए नहीं करते क्योंकि उनकी प्रवृत्ति वित्तीय अनुशासनहीनता और लापरवाही की है, बल्कि वे चाहते हैं कि अपने राज्य के लिए सेवा का न्यूनतम स्तर प्राप्त कर सकें।

5.12 राज्य सरकार यह भी महसूस करती है कि सातवें वित्त आयोग ने राज्यों का संसाधनों के अंतरण के लिए सहायता अनुदान की अपेक्षा करों और शुल्कों, की सुपुर्दगी का तरीका अधिक उपयुक्त रूप से बेहतर समझा हैं। इससे राज्य, केन्द्र को कर से हुई आय और लगाए गए अतिरिक्त करों के लाभ या प्रचुरता में हिस्सा प्राप्त कर सकेंगे। लेकिन ऐसे दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत कमजोर राज्यों के हितों को नुकसान पहुँच सकता है जिनकी कम शहरीकरण और औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण कर का आधार कमजोर है और हो सकता हैं कि इससे राज्यों के बीच मौजूदा असमनताएं और भी अधिक बढ़ जाएं। इस रुकावट को तभी दूर किया जा सकता है यदि यह दृष्टिकोण न अपनाया जाए कि राज्यों के बजट संबंधी संतुलन को बनाए रखने के लिए सहायता अनुदान केवल अन्तर पाटने के लिए है। इसकी बजाय सहायता अनुदान का उपयोग राज्यों के बीच असमानताओं का स्तर कम करने और वितरण संबंधी न्याय सुनिश्चित करने के लिए किया जाए।

5.13 राज्य सरकार, संघ से राजस्व अंतरणों की योजना में सहायता अनुदान की भूमिका के बारे में सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से पूरी तरह सहमत है। सबसे पहले मौजूदा स्तर पर प्रशासनिक और सामाजिक सेवाएं बनाए रखने के आधार पर राज्यों की जरूरतों का मूल्यांकन किया जाए और इसके बाद पिछड़े राज्यों में प्रशासनिक और सामाजिक सेवाएं सुधारने के लिए उपबन्ध किया जाए जहां ऐसी सेवाओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के आधार पर बहुत अधिक कमियां देखने में आई हैं ताकि उन्हें राष्ट्रीय औसत स्तर के अनुरूप लाया जा सके। सबसे बाद में राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर बल दिया जाए। जहां तक असम का संबंध है, चीन, बंगला-देश और भूटान के साथ देश के अंतर्राष्ट्रीय सीमा क्षेत्र पर या उसके नजदीक स्थित होने के कारण सीमा सुरक्षा के मामले में असम राज्य की एक विशेष जिम्मेदारी है।

इसके अतिरिक्त असम राज्य की मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा और मिजोरम जैसे पड़ौसी राज्यों के साथ एक लंबी सामान्य परिसीमा है। सीमा पर अलग-अलग जातीय ग्रुपों की मौजूदगी के कारण अक्सर तनाव उत्पन्न होते हैं, जिसकी वजह से सीमा पुलिस चौकियों की स्थापना और अनुरक्षण के लिए काफी बड़ी राशि की जरुरत पड़ती है। राज्य सरकार का विचार है कि सहायता अनुदान से न केवल राज्य के राजस्व अन्तर को ही पूरा किया जाना चाहिए. जिस ढंग से पहले के आयोग ने निर्धारित किया था, बल्कि राज्यों को और विशेष रूप से कम विकसित राज्यों के पास राजस्व लेखे में इतनी पर्याप्त अतिरिक्त राशि शेष रहने दी जाए जिसे नए सिरे से विकास के लिए निवेश किया जा सके। राज्यों की

सहायता अनुदान की आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय इन सभी पहलुओं पर विशेष विचार करने की जरूरत है।

5.14 विशेष वाहक बन्धपत्र जारी करने के संबंध में भारत सरकार के निर्णय का अर्थ होगा आयकर पर करों से होने वाले सकल राजस्व में कमी करना। इसी प्रकार से केन्द्र के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के विचार से पेट्रोलियम, कोयला आदि जैसी मदों की निर्देशित कीमत बढ़ाने से भी राज्य इस प्रकार एकत्रित राशि के हिस्से से वंचित रह जाएंगे। निर्देशित कीमतें बढ़ाने की बजाय यदि ऐसी मदों पर उत्पाद-शुल्क की दरों में संशोधन किया जाए, तो राज्यों को उनका सम्यक् हिस्सा मिल सकता है। इसलिए यह उपयुक्त होगा कि ऐसे उद्ग्रहणों से हुई आय राज्यों में वितरण के लिए विभाजन योग्य सामूहिक-निधि में डाली जाए।

5.15 इस समय भारतीय पूंजी बाजार में हुई बचत की राशि, बाजार-ऋणों, लघु बचत वसूली के हिस्से के प्रति ऋण तथा वित्तीय संस्थाओं और भारतीय जीवन बीमा निगम के साथ बातचीत से तय किए गए उधार की शक्ल में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वितरित की जाती हैं। इस वर्तमान पद्धति के अधीन राज्य केवल देश के भीतर और संविधान के अनुच्छेद 293 के अधीन लगाई गई सीमाओं के भीतर रहते हुए ही निधियां उधार ले सकते हैं।

हाल ही के कुछ वर्षों से राज्यों के बीच बाजार-ऋण की कुल राशि उन्हीं सिद्धान्तों पर आबंटित की गई है, जो योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के वितरण के लिए अपनाए गए हैं। परन्तु इस प्रकार निर्धारित हिस्से की राशि सभी राज्यों को एक वर्ष में 10% तक अधिक लेने की अनुमति दी जाती है। दूसरे शब्दों में विभिन्न राज्यों को बाजार-ऋणों का आबंटन, योजना आयोग और केन्द्रीय वित्त मंत्रालय के परामर्श पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। यदि इस सिद्धान्त के स्थान पर राज्यों को प्रतियोगिता के आधार पर बाजार-ऋण जारी करने की अनुमति दी जाए तो इससे अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध राज्य ब्याज की प्रतियोगी दरों का प्रस्ताव करके अपेक्षाकृत गरीब राज्यों की तुलना में अधिक निधियां प्राप्त कर सकेंगे और यह बात एकदम अनुचित होगी। राज्य सरकार का विचार है कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों की ऋणों की अपेक्षा अधिक अनुदान देकर सहायता की जाए। इस प्रकार अपेक्षाकृत समृद्ध राज्यों को अधिक केन्द्रीय ऋण और बाजार उधार दिए जाएं और अपेक्षाकृत कमजोर राज्यों को सीधे अधिक अनुदान ही दिए जाएं।

फिलहाल लघु बचत की निवल वसूली का दो-तिहाई भाग राज्यों को ऋण के रूप में दिया जाता है। राज्य सरकारों का विचार है कि ऐसे ऋण, चिरकाल के ऋणों के रूप में माने जाएं। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, जीवन बीमा, निगम आदि जैसी संस्थाओं से राज्य सरकारों द्वारा संस्थागत ऋण लेना, असम जैसे राज्यों की सार्वजनिक ऋण की स्कीम में महत्वपूर्ण भूमिका है। यह महसूस किया गया है कि ऐसे उधार की राशि विशिष्ट स्वतः समाप्त होने वाली परियोजनाओं के लिए निवेश संबंधी प्राथमिकताओं के आधार पर वितरित की जाए और ऋण शोधन तथा चुकौती संबंधी दायित्व इसी राशि में से पूरे किए जाएं।

5.16 राज्यों के बजट घाटे निस्संदेह केन्द्र के बजट घाटों की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ रहे हैं। वर्ष 1983–84 में राज्यों का सम्मिलित बजट घाटा 750 करोड़ रुपए था और वर्ष 1984–85 में इसके 1312 करोड़ रुपए होने का अनुमान था। उसी अवधि में केन्द्र का घाटा 1695 करोड़ रुपए से बढ़कर 1762 करोड़ रुपए होने का अनुमान था। यह भी सच है कि केन्द्र से संसाधनों के पर्याप्त रूप से अंतरण के बावजूद केन्द्र से राज्यों को अंतरित की जा रही राजस्व प्राप्तियों की प्रतिशतता धीरे-धीरे कम हो रही है। वित्त आयोग के माध्यम से दी जा रही केन्द्रीय सहायता के अंतरण की मात्रा से इस प्रवृत्ति का आंशिक रूप से पता चलता है। छठे वित्त आयोग के अधिनिर्णय के आधार पर वर्ष 1974–79 के दौरान राज्यों को संघ के कुल 43,976 करोड़ रुपए की राजस्व में से 11,168 करोड़ रुपए अंतरित किए गए जो 25.4 प्रतिशत है।

सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार 1979–84 के दौरान 80,126 करोड़ रुपए में से 20,843 करोड़ रुपए की समग्र सुपुर्दगी (अंतरण) की गई जो 26% है। इस प्रकार इसे कोई वृद्धि नहीं माना जा सकता। एक ओर जहां राज्यों की जरूरतें मात्रा में तेजी से बढ़ रही हैं वहां उन्हें आबंटित संसाधन उतने ही आवश्यक रूप से लचीले नहीं हैं, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व संबंधी असंतुलन हो रहा है और राज्यों की ऋणग्रस्तता बढ़ रही है। राज्य सरकारों का कुल बकाया ऋण 1970–71 में 8,718 करोड़ रुपए था परन्तु 1981–82 में यह बढ़कर 27,449 करोड़ रुपए हो गया। इस स्थिति को तुरन्त सुधारने की जरूरत है ताकि हमारे परिसंघीय ढांचे में केन्द्र तथा राज्यों के संसाधनों और जिम्मेदारियों के बीच बेहतर सामंजस्य लाया जा सके।

5.17 आर्थिक आयोजना के परिणाम स्वरूप कुछ वर्षों से राज्यों की ऋण-ग्रस्तता की समस्या बहुत अधिक बढ़ गई है। राज्यों का बकाया सार्वजनिक ऋण 1970–71 के 8718 करोड़ रुपए से बढ़कर 27,449 करोड़ रुपए हो गया है। इस समस्या की विकटता को देखते हुए ऋण ग्रस्तता की आवधिक समीक्षा करने की बजाय वार्षिक समीक्षा करना जरूर होगा। एक स्थायी वित्त आयोग जैसा निकाय समस्या पर प्रभावशाली ढंग से विचार कर सकता है। जैसा कि प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा टिप्पणी की गई है, राज्यों के सार्वजनिक ऋण के विभिन्न घटकों में से, केन्द्रीय सरकार से लिए गए ऋणों का स्थान प्रमुख है। 31 मार्च, 1982 को राज्यों को ऋण संबंधी स्थिति का विश्लेषण करने से पता चला है कि 27,449 करोड़ रुपए के बकाया ऋण में से केन्द्र से प्राप्त ऋण 19,967 करोड़ रुपए है और कुल ऋण ग्रस्तता का यह 72.7% बनता है। सार्वजनिक ऋण में वृद्धि के साथ-साथ पूंजीगत लेखे में चुकौती करने के दायित्व के अतिरिक्त राज्यों के राजस्व लेखों में ब्याज संबंधी प्रभारों का बोझ भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है और राज्यों के लिए यह चिन्ता का विषय बन गया है। बकाया ऋण पर ब्याज की औसत दर, वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ रही है। यह बात असम राज्य के ऋण-शोधन और चुकौती संबंधि दायित्व से स्पष्ट हो जाती है। वर्ष 1984–85 में राज्य की ब्याज की अनुमानित अदायगी लगभग 94 करोड़ रुपए है और केन्द्र को मूलधन की चुकौती 78 करोड़ रुपए जबकि राज्यकरों से प्राप्त होने वाला अनुमानित राजस्व लगभग 134 करोड़ रुपए है। इससे पता चलता है कि राज्य के अपने कर-राजस्व से ऋण शोधन और चुकौती संबंधी दायित्व भी पूरा नहीं किया जा सकता। आर्थिक आयोजना शुरु होने के साथ-साथ सार्वजनिक ऋण की समस्या बहुत गंभीर हो गई है क्योंकि योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के स्वरुप में अनुदान की अपेक्षा ऋणों का अनुपात बहुत अधिक है। यदि उधार ली गई निधियां का प्रयोग स्वतः परिसमाप्त होने वाली परियोजनाओं के लिए किया जाता है तो सार्वजनिक ऋण में वृद्धि होने की वजह से चिन्ता की कोई बात नहीं है। लेकिन उधार ली गई निधियों का बहुत बड़ा हिस्सा आर्थिक आयोजना और विनिर्दिष्ट प्राथमिकताओं की अनिवार्यताओं के कारण आर्थिक और सामाजिक बंधे खर्च (अतिरिक्त खर्च) को बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। अधिकांश राज्यों की वित्तीय अस्थिरता को सुधारने के लिए सुपुर्दगी की वर्तमान स्कीम में कमियां दूर करने के साथ-साथ योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की पद्धति में अनुदान की मात्रा बढ़ाने की जरुरत है।

5.18 भारत में राज्यों को केवल देश के भीतर ही उधार लेने की शक्तियां दी गई हैं और विदेशों से उधार लेने की शक्तियां केवल संघ के लिए सुरक्षित हैं। राज्य की उधार लेने की शक्तियां भी ऐसी सीमाओं के अध्यधीन है, जो राज्य विधान-मण्डल लगाए। इसके अतिरिक्त यदि भारत सरकार द्वारा किसी राज्य को पहले दिए गए ऋण का कोई हिस्सा बकाया रह जाता है, तो वह राज्य, भारत सरकार की सहमति के बिना और ऋण नहीं ले सकता। चूंकि सभी राज्य अलग-अलग मात्रा में केन्द्र के ऋणी हैं इसलिए राज्यों को आन्तरिक ऋण लेने के मामले में भी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। राज्यों की आन्तरिक ऋण लेने की शक्तियों पर ये संवैधानिक प्रतिबन्ध इस विचार को ध्यान में रखकर लगाए गए हैं ताकि राज्यों की प्रतियोगिता पूर्ण और बिना रोक टोक के उधार लेने की शक्तियों के कारण प्रतिकूल आर्थिक और राजस्व संबंधी प्रभाव न पड़े। वर्तमान प्रबन्ध के अधीन केन्द्र द्वारा एकत्रित किए जाने वाले सार्वजनिक ऋणों की कुल मात्रा और केन्द्र तथा राज्यों के बीच इसके आबंटन का विनिश्चय भारत सरकार करती है। मजबूत अर्थव्यवस्था के बुनियादी सिद्धान्तों को प्रभावित किए बिना ऐसा निर्णय राज्यों के विकास के संदर्भ में वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर राज्यों के साथ परामर्श करने के बाद लिया जा सकता है।

5.19 यह सच है कि विदेशी उधार पर केन्द्र राज्यों से उस दर की अपेक्षा ब्याज की अधिक दर प्रभारित करता है, जो वह विदेशी उधारदाता को अदा करता है। यदि यह अतिरिक्त राशि इस वजह से प्रभारित की जाती है कि ऐसी सहायता

लेने पर होने वाले खर्च को पूरा किया जा सके तो इसे अनौचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। परन्तु पुनः उधार देने के लिए ब्याज की दर, केन्द्र द्वारा ऐसी विधियों के लिए संविदा और पुनः उधार देने पर किए गए खर्च से अधिक नहीं होनी चाहिए। क्योंकि अपेक्षाकृत कमजोर राज्य परियोजनाएं इस प्रकार तैयार करने की स्थिति में नहीं होते जो विदेशी एजेंसियों की विशिष्टियों के अनुरूप हों इसलिए हर वर्ष संविदागत निवल विदेशी उधार की कुछ प्रतिशत मात्रा रुपयों में ऐसे राज्यों को विशेष ऋण के रूप में संवितरित की जाए।

5.20 राज्यों की अपनी मनमर्जी के मुताबिक पूंजीगत बाजार से उधार लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि ऐसा करने के कारण अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध और अधिक विकसित राज्य ब्याज की प्रतियोगी दरों के आधार पर उपलब्ध निधियों के बहुत बड़े हिस्से का लाभ उठा लेंगे और अपेक्षाकृत कमजोर राज्य ऐसा नहीं कर पाएंगे। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र को कमजोर राज्यों की ओर से बाजार-ऋण लेने पड़ेंगे। कुछ भी ही गरीब राज्यों के लिए अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में ऋणों का कोई औचित्य नहीं है। इसकी बजाय उन्हें अधिक अनुदान देने की जरूरत है। फिर भी ऋण परिषद् का विचार एक उचित कदम प्रतीत होता है क्योंकि इससे उन्नत राज्यों के मन में इस संबंध में जो गलत विचार हैं कि केन्द्र और राज्यों के बीच गलत तरीके से ऋणों का वितरण हो रहा है, उन्हें दूर करने में मदद मिलेगी। यह परिषद् राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित सिद्धांतों के आधार पर केन्द्र और अलग-अलग राज्यों द्वारा ली जाने वाली उधार की अधिकतम राशि की सिफारिश करेगी।

5.21 राज्यों की अपने अनिवार्य दायित्व पूरा करने के लिए वित्त-प्रबन्ध की अपर्याप्तता का पता इस बात से चल जाता है कि भारतीय रिजर्व बैंक से उन्होंने कितने ओवर-ड्राफ्ट लिए हैं। आय और व्यय के बीच अन्तर ही बीमारी की जड़ है और ओवरड्राफ्ट लेना केवल बीमारी का लक्षण है। आय और व्यय के बीच का हमेशा बढ़ता हुआ अन्तर अनेक कारणों की वजह से है। एक तरफ तो राज्य को कानून और व्यवस्था तथा सामाजिक सेवाओं और ऋण शोधन पर भारी खर्च करना पड़ता है तथा दूसरी ओर वह स्वतः परिसमाप्त होने वाली परियोजनाओं में पर्याप्त निवेश नहीं कर पाती जिसकी वजह से एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि प्राप्त राजस्व पहले से सृजित परिसंपत्तियों के रखरखाव के लिए भी पूरा नहीं पड़ता। केवल अर्थोपाय अग्रिम की हकदारी दुगनी कर देने मात्र से ही स्थिति आसान नहीं हो जाएगी। जब तक रोग का ही इलाज नहीं कर दिया जाता, तब तक रोग के लक्षण बने रहेंगे। असम जैसे पिछड़े हुए राज्य की ऋण शोधन और चुकौती का दायित्व लगभग 187 करोड़ रुपए है, जो कि उसके अपने कर-राजस्व से बहुत अधिक है। वर्तमान पद्धति के अनुसार राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता में अनुदान की अपेक्षा ऋणों की बहुलता है। ऋणों के स्थान पर अनुदान की मात्रा बढ़ाने, ब्याज की दर में कमी करने, बकाया ऋण की अवधि का 5 वर्ष के बाद पुनर्निर्धारण करने के स्थान पर जैसा कि इस समय किया जाता है हर वर्ष पुन-निर्धारण करने और साधनों की सुपुर्दगी की अधिक उदार स्कीम बना कर वर्तमान पद्धति में परिवर्तन करके उपचारात्मक उपाय करने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त सामान्य और विशेष अर्थोपाय अग्रिमों के बीच अन्तर समाप्त कर दिया जाए और अर्थोपाय अग्रिमों की समग्र सीमा दोनों प्रकार के अग्रिमों की मौजूदा सीमा के सफल जोड़ से कम न हो। विशेष अर्थोपाय अग्रिमों के संबंध में प्रतिपूर्ति की मांग करने की वर्तमान परिपाटी के कारण अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसलिए यह परिपाटी समाप्त कर दी जाए। इसके अतिरिक्त अर्थोपाय अग्रिमों और ओवर ड्राफ्टों पर लागू ब्याज की वर्तमान दर कम करके, योजनागत सहायता और भारत सरकार द्वारा दी जा रही अन्य प्रकार की सहायता के लिए, लागू दरों जितनी कम कर दी जाए। ब्याज की वजह से जो अतिरिक्त दायित्व आ पड़ेगा उसके कारण राज्यों की अदूरदर्शिता की प्रवृत्ति पर रोक लगेगी।

5.22 राज्यों की संसाधन जुटाने की क्षमता का मूल्यांकन संविधान द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्तियों के परिप्रेक्ष्य में और संसाधन जुटाने के लिए उपलब्ध आधार के परिप्रेक्ष्य में किया जाए। बिक्री-कर के सिवाय राज्यों के पास छोड़े गए बहुत से कर लचीले नहीं हैं। बिक्री-कर के मामले में भी अधिकांश राज्य एक ऐसे चरम बिन्दु तक पहुंच गए हैं जहां बिक्री-कर की दरों में आशोधन करके और अधिक संसाधन जुटाने की या तो कोई गुंजाइश नहीं है या बहुत कम गुंजाइश है।

यह देखा जा सकता है कि संवैधानिक सीमाओं के बावजूद कुछ राज्यों अन्य की अपेक्षा प्रति व्यक्ति करों से अपेक्षाकृत उच्च उपलब्धि दिखाते हैं। यह राज्य में मौजूद औद्योगिकरण और शहरीकरण के असमान स्तर के कारण है। कम मात्रा में शहरीकरण होने और औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण कमजोर राज्य प्रतिव्यक्ति कर उपलब्धि की दृष्टि से उन्नत राज्यों के समकक्ष नहीं पहुंच पाते। हमारे देश में राष्ट्रीय आय का बहुत बड़ा हिस्सा कृषि क्षेत्र से आता है इसलिए इसी क्षेत्र को अधिकांश बोझ उठाना चाहिए। यह बात उन राज्यों के संबंध में भी सही है जहां राज्य के घरेलू उत्पाद का अधिकांश भाग कृषि आय के रूप में ही है। इस राज्य में कृषि क्षेत्र से वसूल किया गया राजस्व, मुख्यतः चाय के बागानों से होता है। यहां भी आयकर प्राधिकारी ही निर्धारण करते हैं और 60% आय कृषि आय के रूप में मानी जाती है, जिस पर राज्य कर लगा सकते हैं और शेष 40% आय कृषितर आय मानी जाती है, जिस पर केन्द्र कर लगा सकता है। राज्य सरकार ने यह प्रयत्न किए थे कि चाय से होने वाली पूरी आय को कृषि आय माना जाए परन्तु केन्द्र ने इसे अस्वीकार कर दिया। इसके कारण राज्य की, कृषि आय पर कर की वसूली करने की पहलशक्ति समाप्त हो गई है। इस पहलू पर इस भाग के प्रश्न 2 के उत्तर में विस्तार से चर्चा की गई है।

चाय के सिवाय राज्य में कृषि (फार्म) क्षेत्र असंगठित और बहुत अधिक बिखरा हुआ है, इसलिए संसाधनों को काम में लाने की बहुत कम गुंजाइश है। गरीबी हटाने पर जो बल दिया जा रहा है, उसके तहत कुछ सीमा तक, भूराजस्व से छूट दी गई है। सीमित गुंजाइश होने के बावजूद भी राज्य सरकार अपने राजस्व साधनों का दोहन करने की आवश्यकता के प्रति पर्याप्त रूप से सजग है।

वास्तव में राज्य इस जिम्मेदारी से नहीं बच सकते क्योंकि योजना आयोग और वित्त आयोग राज्यों के संसाधन जुटाने की कार्यकुशलता की लगातार और नियमित रूप से समीक्षा कर रहे हैं।

5.23 केन्द्र सरकार निकासी के मूल्य की प्रतिशतता के रूप में अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क का प्रभाव 10.8% तक नहीं बढ़ा पाई जैसी कि वर्ष 1970 में उन मदों के संबंध में राज्यों के साथ तय हुआ था जिन पर बिक्री-कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क लगाया गया है। इसके अतिरिक्त केन्द्र ने केवल राज्यों के विशिष्ट प्रयोजन के लिए संसाधन इकट्ठे करने के लिए अनुच्छेद 269 में सूचीबद्ध कर और शुल्क का भी पूरी तरह दोहन नहीं किया है। इस प्रकार राज्य सरकारों को उस राजस्व से वंचित रखा जा रहा है जो न्यायोचित रूप से उनका है। इसके अतिरिक्त करों की बहुत अधिक बकाया राशियों के कारण और अपनी हानियां पूरी करने के लिए सरकारी उद्यमों में निवेश में भारी वृद्धि के कारण एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसे केन्द्रीय अविभेद्य राशि का आकार बढ़ाने के लिए बदलने की जरूरत है।

5.24 इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि राज्यों के राजस्व को प्रभावित करने वाले मामलों में निर्णय लेने से पहले राज्यों को केन्द्र के साथ पूरा-पूरा और स्वतंत्र विचार-विमर्श करने का अवसर दिया जाता तो संघ-राज्य संबंधों में मौजूदा विकृति उस प्रकार से न बढ़ती जैसी कि कुछ वर्षों से बढ़ी है। केन्द्र और राज्यों के बीच परामर्श की प्रक्रिया के माध्यम से बहुत सारे असंतोष से बचा जा सकता था या वह पूर्णतया समाप्त हो जाता। दरों के ढांचे में परिवर्तन करने या उद्ग्रहण के संबंध में बिल पेश करने से पहले या अनुच्छेद 268 और 269 में वर्णित शुल्कों और करों में से किसी शुल्क या कर को हटाने से पहले राज्य सरकारों के विचार मालूम कर लिए जाएं।

5.25 संविधान के अनुच्छेद 269 में संघ द्वारा उद्गृहीत और वसूल किए जाने वाले कर वर्णित हैं और उसमें निर्दिष्ट है कि इनसे होने वाली निवल आय राज्यों को समनुदेशित की जाए। इस अनुच्छेद के अधीन कृषि भूमि को छोड़कर अन्य संपत्ति के संबंध में सम्पदा/उत्तराधिकार शुल्क को छोड़कर, कोई अन्य कर संघ द्वारा नहीं लगाया जाता। वर्ष 1957 में एक बार रेल किराए और भाड़े पर कर उद्गृहीत किया गया था लेकिन बाद में 1961 में इसे रद्द कर दिया गया। केन्द्र ने केवल राज्यों के विशिष्ट प्रयोजनों के लिए संसाधन जुटाने की दृष्टि से अभी तक अनुच्छेद 269 का पूरा-पूरा उपयोग नहीं किया है।

5.26 राज्य सरकार यह महसूस करती है कि पिछले कई वर्षों से राज्यों को आवंटन योग्य कुल राशि 16.25 करोड़ रु० के स्तर पर स्थिर करके, रेल यात्री किराए पर रद्द किए गए कर के बदले में अनुदान देने के मामले में राज्यों के साथ अनुचित व्यवहार किया गया है। राज्यों द्वारा अनेक वर्षों से जो हानि उठाई जा रही है, उसकी प्रतिपूर्ति करने के लिए अनुदान की मात्रा तुरन्त पुनर्निर्धारित की जानी चाहिए।

5.27 कोई टिप्पणी नहीं।

5.28 राहत व्यय के लिए वित्त प्रबंध के संबंध में वर्तमान व्यवस्था वही है जिसकी सिफारिश उत्तरवर्ती वित्त आयोगों ने की थी और जो मार्जिन राशि के नाम से जानी जाती है। जब भी कोई दैवी आपदा आ जाती है, जिसके कारण राहत उपायों पर व्यय करना आवश्यक हो जाता है, तो राज्यों के पास मार्जिन राशि होती है, जिसमें से वे तुरन्त आहरण कर सकते हैं। यह मार्जिन राशि निर्धारित करते समय उत्तरवर्ती वित्त आयोगों ने कुछ वर्षों के लिए राज्यों के राहत व्यय के वास्तविक आंकड़ों पर विचार किया और ऐसे व्यय के औसत को प्रत्येक राज्य के लिए मार्जिन के रूप में मान लिया। सातवें वित्त आयोग से पहले मार्जिन राशि में सार्वजनिक संपत्ति की मरम्मत और जीर्णोद्धार के लिए कोई उपबंध नहीं था। उसमें केवल प्रत्यक्ष राहत की मदें अर्थात् अनुग्रहपूर्वक राहत अर्थात् पीने के पानी, चारे की व्यवस्था और राहत कार्यों के लिए खर्च की मदें ही शामिल थीं। सातवें वित्त आयोग ने पहली बार कीमतों में वृद्धि के लिए उपयुक्त गुंजाइश रखते हुए नौ वर्षों के औसत व्यय के आधार पर, मार्जिन राशि की संगणना में, प्रत्यक्ष राहत के अतिरिक्त सार्वजनिक संपत्तियों की मरम्मत और जीर्णोद्धार के लिए वित्त व्यवस्था की। हमारा विचार है कि वास्तविक व्यय के नौ वर्षों के औसत को अपनाने से, राज्यों की आवश्यकताओं का पूरा-पूरा आभास नहीं होगा इसलिए इसके स्थान पर 3 वर्षों की वास्तविक व्यय के औसत को लेना अधिक यथार्थवादी सूचक होगा।

किसी ऐसी भयंकर और गंभीर किस्म की प्राकृतिक आपदा आ पड़ने पर जिसके लिए मार्जिन राशि से अधिक राहत खर्च करना आवश्यक हो, एक केन्द्रीय दल, क्षति की सीमा का स्थल पर जाकर जायजा लेता है और मार्जिन राशि के ऊपर अतिरिक्त व्यय की सीमा की सिफारिश करता है। प्राकृतिक आपदा के बाद सार्वजनिक निर्माण कार्यों की मरम्मत जीर्णोद्धार और राहत पर राज्य के खर्च के लिए केन्द्रीय सहायता, गैर-योजना अनुदान के रूप में उपलब्ध कराई जाती है, जिसका मार्जिन राशि से कुल अधिक व्यय का 75% भाग योजना के प्रति था, राज्य की योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के प्रति, समायोजित नहीं किया जाता। खर्च का शेष 25% भाग राज्यों को अपने संसाधनों से पूरा करने के लिए छोड़ दिया जाता है। परन्तु असम के मामले में जिसके संसाधनों का आधार बहुत कमजोर है और जहां लगभग हर वर्ष बाढ़ का प्रकोप होता है, मार्जिन राशि से अधिक 25% खर्च वहन करना असंभव हो जाता है। असम के मामले में विशेष आधार पर विचार किया जाए और मार्जिन राशि से अधिक, समस्त व्यय केन्द्र द्वारा वहन किया जाए। राहत सहायता का इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए राज्य, राहत और मरम्मत की किसी भी मद के संबंध में समग्र अधिकतम सीमा के अधीन खर्च करने के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए।

5.29 यह महसूस किया गया है कि बहुत अधिक एजेंसियां बनाने से अधिक रिक्ता और कार्यों में दोहरापन आ सकता है। प्रस्तावित ऋण परिषद ऋण के वितरण और उत्पादनकारी प्रयोजनों के लिए इसका इस्तेमाल सुनिश्चित करने और साथ ही राज्यों की ऋण संबंधी जरूरतों का पता लगाने में सक्षम होनी चाहिए। तथापि आर्थिक, वाणिज्यिक राजस्व संबंधी और आर्थिक नीतियों के मामलों में संघ और राज्यों के बीच परामर्श के लिए राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् मंच का कार्य करने के लिए स्थापित की जा सकती है।

5.30 निधियों की वसूली और वितरण कुछ मानदण्डों के अनुरूप होना चाहिए अन्यथा यह बुनियादी प्रयोजन, कि लोगों के हित के लिए उनकी वसूली किस प्रकार से बेहतरीन ढंग से और सर्वोत्तम उपयोग किस प्रकार से किया जा सकता है, समाप्त हो जाएगा। इसलिए निधियों की वसूली, अर्थव्यवस्था, कार्य-कुशलता, सुविधा आदि के सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए। इसी प्रकार निधियों को राष्ट्रीय नीतियों तथा प्राथमिकताओं के अनुसार खर्च किया जाए ताकि सामाजिक न्याय की प्राप्ति और क्षेत्रीय असमानताएं दूर करने के लिए निधियों का उपयोग उसी काम के लिए किया जाए जहां उनकी जरूरत है।

5.31 वर्तमान समय में संसद् और इसकी सांविधिक समितियों के सिवाय ऐसा कोई संगठन नहीं है जो संघ के खर्च की अधिकता, उपयुक्तता और कार्यक्षमता पर निगरानी रख सके। संघ के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर हाल के वर्षों में केन्द्रीय खर्च अत्यधिक बढ़ जाने के साथ-साथ सरकारी उद्यमों के वित्तपोषण पर होने वाले खर्च और समवर्ती-सूची में शामिल विषयों पर भी खर्च बहुत अधिक बढ़ गया है। अन्ततः इसका परिणाम यह हुआ है कि राज्यों को अन्तरित की जाने वाली अधिशेष राशि में कमी करके राज्यों को इससे वंचित रखा गया है। प्रयोग के तौर पर वर्ष 1979 के दौरान एक राष्ट्रीय व्यय आयोग की स्थापना की गई थी परन्तु इसे समाप्त कर दिया गया। वित्त आयोग को केन्द्र की आय और व्यय की जांच का कार्य सौंपा जा सकता है और राष्ट्रीय व्यय आयोग के स्थान पर एक स्थायी वित्त आयोग जैसा निकाय स्थापित किया जा सकता है।

दूसरी ओर राज्य सरकार के पास संसाधन सीमित हैं इस कारण वे बहुत अधिक वित्तीय अनुशासनहीनता नहीं कर सकते। फिर भी राज्यों के व्यय संबंधी प्रस्तावों की वित्त आयोग द्वारा आवधिक समीक्षा के साथ-साथ योजना आयोग द्वारा वार्षिक समीक्षा की जाती है। इन परिस्थितियों में राज्यों के लिए राष्ट्रीय व्यय आयोग आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

5.32 लेखे संकलित और प्रस्तुत करने की वर्तमान पद्धति के कारण अनेक अवस्थाओं में बहुत विलम्ब होता है। इसके परिणामस्वरूप किसी वित्त वर्ष विशेष के संबंध में राज्य की वित्तीय स्थिति काफ़ी समय बीत जाने के बाद ही स्पष्ट हो पाती है। जबतक किसी वर्ष का वार्षिक लेखा प्राप्त होता है तब तक इतना अधिक समय बीत चुका है कि कमियों को दूर करने या कोई उपचारी उपाय करना बेमानी हो जाता है। लेखाकरण में विलम्ब के कारण केन्द्र से निधियों की नियमित रूप से प्राप्ति नहीं होती क्योंकि केन्द्रीय सहायता व्यय के लेखा-परीक्षित आंकड़ों के आधार पर दी जाती है।

5.33 मूल्यांकन करने की दृष्टि से लेखा-परीक्षा की वांछनीयता से इन्कार नहीं किया जा सकता परन्तु लेखा-परीक्षा करते समय केवल दोष और कमियां बताने की बजाय उपलब्धियों पर भी समुचित बल दिया जाना चाहिए। जब तक उपायों संबंधी सुझावों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तब तक मूल्यांकन करने के लिए की गई लेखा-परीक्षा से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। यदि यह कार्य केवल नियंत्रक महालेखापरीक्षक के लिए ही छोड़ दिया गया तो मूल्यांकन के लिए लेखा-परीक्षा करने के कारण कार्यपालिका के कार्यों में सीधा हस्तक्षेप होगा। मूल्यांकन के लिए लेखा-परीक्षा की वांछनीयता को ध्यान में रखते हुए यह कार्य स्वयं राज्य सरकार द्वारा गठित की जाने वाली एजेंसी पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

5.34 कोई टिप्पणी नहीं।

5.35 फिलहाल नियंत्रक-महालेखापरीक्षक केवल नमूना लेखा-परीक्षा करते हैं। यह लेखा-परीक्षा दो या तीन वर्षों आदि के बाद की जाती है। रिपोर्टें, यद्यपि, प्रायः देर से प्राप्त होती हैं परन्तु इनसे एक उपयोगी प्रयोजन सिद्ध हो जाता है कि राज्य सरकार लेखा-परीक्षा रिपोर्टों के आधार पर गलती करने वाले कर्मचारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने और कार्यविधि संबंधी तथा अन्य कमियां दूर करने के लिए जो उपचारी उपाय करना चाहती है, वह कर सकती है।

वस्तुस्थिति को देखते हुए चूंकि इस बात की पूरी संभावना है कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की रिपोर्ट आने में विलम्ब होगा इसलिए एक उपयोगी सुधार यह किया जा सकता है कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की लेखा-परीक्षा के साथ पूरक के रूप में आन्तरिक लेखा-परीक्षा की एक व्यापक पद्धति भी अपनायी जाए।

5.36 अनुचित खर्च की जांच करने के लिए आन्तरिक रूप से प्रत्येक मंत्रालय में वित्त मंत्रालय के वित्त सलाहकार होते हैं और बाहरी तौर पर नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की सहायता से संसद् और इसकी समिति जांच करती है और ये मिलकर संघ और राज्यों के खर्च पर निगरानी रखते हैं हालांकि लोकलेखा समिति और सरकारी उपक्रमों पर समिति बहुत उपयोगी कार्य करती है।

5.37 हां। प्राक्कलन समिति को नीतियों और कार्यक्रमों के व्यापक पहलुओं की बाबत विचार करना चाहिए और आवश्यक सुधारों के बारे में सरकार को परामर्श देना चाहिए।

5.38 संविधान में मौजूदा उपबंधों को ध्यान में रखते हुए कोई अलग व्यय आयोग बनाना जरूरी नहीं समझा गया है क्योंकि उक्त उपबंधों में नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को इसकी भूमिका निभाने के लिए प्राधिकृत किया गया है तथा राज्यों के व्यय की आवधिक समीक्षा योजना आयोग तथा वित्त आयोग करते हैं।

5.39 इस संबंध में कुछ राज्य सरकारों द्वारा अभिव्यक्त विचारों से हम सहमत हैं। क्षोभ पैदा करने वाली बातों और उनके परिणामस्वरूप विलम्ब से बचने के लिए जिसकी वजह से निधियां व्यपगत हो जाती हैं, स्कीमों के समुचित कार्यान्वयन और मूल्यांकन का काम संबंधित राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाए। यह आशंका करने का कोई कारण नहीं है कि राज्य सरकारें अनुचित रूप से खर्च करने लगेंगी। राज्य सरकारें भी कम से कम लागत पर आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समान रूप से इच्छुक हैं।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक आयोजना

6.1 जब भी कोई योजना बनाई जाती है तो वह कम से कम चार अवस्थाओं में से गुजरती है। योजना आयोग मूल दस्तावेज तैयार करता है जिस पर प्रत्येक अवस्था में राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन०डी०सी०) द्वारा चर्चा की जाती है। चालू आर्थिक स्थिति और चालू योजना के कार्यनिष्पादन की समीक्षा योजना कार्य निष्पादन के मध्यावधि मूल्यांकन द्वारा की जाती है। इस मूल्यांकन के आधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन०डी०सी०) अगली योजना के लिए लक्ष्य/रूपरेखा तैयार करती है। प्रस्ताव-पत्र योजना आयोग द्वारा तयार किया जाता है तत्पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन०डी०सी०) इसका पुनः अनुमोदन करती है। इसके बाद योजना आयोग राज्यों को योजना के मसौदे की तैयारी के लिए मार्गदर्शक सिध्दांत जारी करता है। पूरी प्रक्रिया में राज्यों को केवल राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन०डी०सी०) की बैठकों में ही शामिल किया जाता है जो अपर्याप्त माना गया है। योजना आयोग अथवा उसका कार्यकारी दल राज्यों के प्रतिनिधियों को योजना बनाने की अवस्था में और मूल दस्तावेज तैयार करते समय शामिल करे ताकि उनमें संबंधित अवधि के लिए राज्यों की विकास सम्बन्धी आकांक्षाएं परिलक्षित हों। योजना तैयार करने के बाद की अवस्था में राज्यों की सहभागिता से भी केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा तैयार स्कीमें राज्यों पर जबरदस्ती लादने की प्रवृत्ति बहुत कुछ समाप्त हो सकती है।

राज्यों को मार्गदर्शक सिद्धांत भेजने और उन्हें उनकी योजना जल्दी बनाने के लिए कहने की वर्तमान पद्धति में उन्हें सोचविचार और संवीक्षा करने का समय नहीं मिल पाता। इसका उपाय यही है कि मार्गदर्शक सिद्धांत काफी समय पहले ही भेज दिए जाएं। कार्यकारी दल राज्यों के साथ चर्चाएं करने के लिए पर्याप्त समय दें। जल्दी में सभी राज्यों को एक साथ बुलाने और एक ही दिन में प्रत्येक राज्य के कार्यक्रम का जल्दी -जल्दी अध्ययन करने की वर्तमान प्रणाली समाप्त कर दी जाए क्योंकि इससे कोई उपयोगी चर्चा होने की बजाए सौदाबाजी अधिक होती है और जल्दी-जल्दी निर्णय लेने पड़ते हैं। लेकिन अधिकांशतः इस मोलतोल में कार्यकारी दलों का पलड़ा भारी रहता है।

6.2 राज्यों की कमजोर अर्थव्यवस्था और अपर्याप्त योजना-तंत्र के कारण राज्य ऐसी स्थिति में मजबूरन आ जाते हैं जहां वह अपने ही राज्यों के विकास के बारे में बहुत कम अंतिम निर्णय ले पाते हैं। सिंचाई, बिजली, शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी स्कीमें राज्य सरकारों द्वारा आयोजित, वित्त पोषित और कार्यान्वित की जाती हैं। इस अपेक्षा के कारण कि स्कीमें प्राथमिकता संबंधी राष्ट्रीय स्कीमों के अनुरूप होनी चाहिए, राज्यों की निर्णय लेने की सीमांत शक्ति भी समाप्त हो जाती है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है जब कभी भी किसी राज्य की अर्थव्यवस्था खराब हालत में होती है तो केन्द्र की दखलंदाजी पूरी-पूरी होती है। ऊपर जिन क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है वे हालांकि राज्यों के विषय हैं परन्तु वे इस किस्म के हैं कि उनके लिए बहुत बड़े पूंजीगत परिव्यय की जरूरत पड़ती है जिसकी वजह से राज्यों को मजबूर होकर केन्द्र से वित्त और सामग्री के लिए मांग करनी पड़ती है। इसी वजह से राज्यों के विषय में केन्द्र का हस्तक्षेप बढ़ जाता है। इसका उपाय यही है कि राज्यों के योजना तंत्र को मजबूत किया जाए और प्रमुख परियोजनाओं के लिए केन्द्रीय ऋण या अनुदान देकर वास्तविक रूप में वित्तपोषण किया जाए।

यह आवश्यक नहीं समझा गया है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् सर्वोच्च निकाय होना चाहिए जब तक कि अन्तरराज्यिक परिषद् के लिए भाग 1 व भाग 2 में हमारे द्वारा दिए गए उत्तरों में सुझाए गए परिवर्तन कार्यान्वित न किए जाएं। जैसा कि वर्तमान समय में होता है, मूलभूत दस्तावेज योजना आयोग द्वारा प्रत्येक अवस्था में राज्यों के साथ परामर्श करके तैयार किए जाएं क्योंकि सांविधिक अन्तरराज्यिक परिषद् नहीं है। राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना आयोग के लिए उद्देश्य निर्दिष्ट करती रहे और मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित करे और अंत में मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए योजना आयोग द्वारा तैयार योजना का अंतिम रूप से अनुमोदन करे। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा एक बार विकास योजनाएं अनुमोदित हो जाने के बाद राज्य उन्हें कार्यान्वित करने के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए। इसके लिए उन्हें योजना आयोग के साथ और आगे चर्चा करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए परन्तु योजना आयोग स्कीमों को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था करना जारी रखे।

मौजूदा कार्य प्रणाली में राज्यों की राष्ट्रीय नीतियां तैयार करने में राज्यों का कोई हाथ नहीं होता। राज्य की योजना से संबंधित कागजात भी राज्य की राजधानी में अंतिम निर्णय से पहले नहीं पहुंच पाते। इस भूल को सुधारा जाए और राष्ट्रीय नीतियां तैयार करने में राज्यों की सहभागिता सुनिश्चित की जाए।

6.3 योजना आयोग का गठन करने वाले संकल्प में आयोग को कुछ जिम्मेदारियां सौंपी गईं। यह माना गया है कि आयोग एक स्वतंत्र निकाय के रूप में काम करेगा। वह केन्द्र और राज्य सरकारों से परामर्श लेकर दोनों के साथ निकट मेल मिलाप से कार्य कर सकता है। उस संकल्प के बावजूद जिसमें इसकी जिम्मेदारियां परिभाषित की गई है, जिस ढंग से योजना आयोग वर्तमान रूप में कार्य कर रहा है उससे यही प्रतीत होता है कि यह केन्द्रीय मंत्रालयों का ही कोई अभिकरण (एजेंसी) है। राष्ट्रीय महत्व की स्कीमें तैयार करते समय राज्यों को विश्वास में नहीं लिया जाता। योजना आयोग के माध्यम से केन्द्रीय मंत्रालय स्कीमें तैयार करने में प्रभावशाली स्थिति में हैं विशेष रूप से केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें या ऐसी स्कीमें तैयार करने में जिनमें केन्द्रीय सरकार का व्यय में हिस्सा है चाहे वह स्कीम राज्य का विषय ही क्यों न हो।

इसका उपाय यही है कि योजना आयोग की अपने निर्णय लेने में केन्द्रीय मंत्रालयों पर निर्भर होने की प्रवृत्ति समाप्त की जाए। योजना आयोग को मंत्रालय तथा राज्य के साथ केवल परामर्श तक ही अपनी बातचीत सीमित रखनी चाहिए।

6.4 केन्द्र सरकार में असीमित आर्थिक शक्तियां निहित हैं। संघीय सूची में निर्दिष्ट शक्तियों और सातवीं अनुसूची में निर्दिष्ट न की गई शक्तियों का तो कहना ही क्या है। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची के मामले में भी केन्द्र सरकार को अभिभावी शक्तियां प्राप्त हैं। आर्थिक आयोजना बनाते समय क्योंकि बड़े-बड़े निर्णय लेने होते हैं और उनके देश के सामाजिक, आर्थिक ढांचे पर गंभीर परिणाम हो सकते हैं इसलिए यह उचित ही है कि राष्ट्र के योजना तैयार करने के उच्चतम स्तर पर अर्थशास्त्र, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और प्रबंध के क्षेत्र में सुविख्यात विशेषज्ञ हों। यह निकाय उच्चतम हैसियत का हो और केवल राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रति जिम्मेदार हो।

यह अन्य प्रभावों से भी मुक्त हो और केवल राष्ट्र की उच्चतम विकास परिषद के मार्गदर्शन और निर्देश के अधीन ही कार्य करे। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार कार्य करते हुए राष्ट्र की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए समर्थता का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित हो सके।

6.6 राज्य स्तर पर आयोजना तंत्र राज्य सरकार को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं की बाबत मार्गदर्शन करने के लिए बिल्कुल भी साधनसम्पन्न नहीं है। जब तक राज्य आयोजना तंत्र को मजबूत नहीं किया जाता तब तक योजना आयोग प्रभावशाली स्थिति में बना रहेगा। राज्य अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण केन्द्र के

निर्णयों पर निर्भर करते हैं और उन्हें अपनी प्राथमिकताओं का निर्धारण और स्कीमों का चयन केन्द्र द्वारा योजना आयोग के माध्यम से निर्धारित सीमाओं के भीतर करना पड़ता है। इस अपेक्षा के कारण कि उनकी स्कीमें राष्ट्र की प्राथमिकता वाली स्कीमों के अनुरूप होनी चाहिए, राज्यों की निर्णय लेने की सीमान्त शक्तियां भी समाप्त हो जाती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार सिंचाई आदि की केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें राज्य योजना का एक भाग हैं। परन्तु ये स्कीमें केन्द्र सरकार द्वारा परिकल्पित, प्रतिपादित और प्रायोजित की जाती हैं। इन स्कीमों की रूपरेखा भी केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं में शामिल की जाती हैं। राज्यों के लिए केवल इन्हें कार्यान्वित करने का काम बच जाता है। राज्यों को इन्हें मजबूरन स्वीकार करना पड़ता है हालांकि ये स्कीमें उनकी प्राथमिकता वाली स्कीमों में फिट नहीं बैठती। ऐसा उन्हें बाध्य होकर इसलिए करना पड़ता है क्योंकि राज्यों के संसाधन सीमित होते हैं। छोटी से छोटी प्रत्येक बात में केन्द्र की अंतरग्रस्तता के कारण राज्यों की स्वायत्तता कम हुई है। उच्चतम निकाय अर्थात् राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा एक बार रूपरेखा अनुमोदित होने के बाद राज्य केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना बनाई गई स्कीमों को कार्यान्वित करने के लिए स्वतंत्र होने चाहिए।

6.7 ऋणों और अनुदानों के माध्यम से केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान प्रणाली संतोषजनक ढंग से कार्य करती प्रतीत होती है। संसाधन जुटाने की जिम्मेदारी से मुक्त होकर आयोग अपना पूरा समय स्कीमों का मूल्यांकन करने और उनके बारे में मार्गदर्शन करने में लगा सकते है और देश के आर्थिक कायापलट में सहायक हो सकते हैं। ऋणों और अनुदानों के माध्यम से यह केन्द्रीय सहायता राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा निर्धारित कुछ मानदंडों को ध्यान में रखते हुए अर्थात् राज्यों का पिछड़ापन और उनके सीमित संसाधनों को ध्यान में रखते हुए दी जाए। मूल उद्देश्य सभी राज्यों का संतुलित विकास होना चाहिए और इसके लिए प्रत्येक राज्य विशेष के सामने पेश आने वाली विशेष समस्याओं को ध्यान में रखा जाए। किसी राज्य विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं पर आधारित राज्य की स्कीमों में केवल इसी आधार पर बहुत अधिक हस्तक्षेप करने पर रोक होनी चाहिए कि ये स्कीमें राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप हों। राज्य आयोजना तंत्र को अपनी विशेष क्षेत्रीय समस्याओं पर कार्य करने के लिए छूट देनी चाहिए। योजना आयोग इस बात की निगरानी रख सकता हैं कि स्कीम इतनी अधिक महत्वाकांक्षी न हो कि वह व्यावहारिक रूप से कार्यान्वित ही न की जा सके।

6.8 जैसा कि प्रश्न 5.5 (ख) के उत्तर में कहा गया है, असम राज्य को गाडगिल फार्मूला के बाहर अपनी विशेष दर्जे के राज्य की हैसियत बनाए रखने की अनुमति दी जाए। सामान्य क्षेत्र और पहाड़ी क्षेत्र के वर्तमान अंतर को समाप्त करके केन्द्रीय सहायता को 90 प्रतिशत अनुदान और 10 प्रतिशत ऋण की एक समान पद्धति में बदल दिया जाए।

6.9 राज्यों को केन्द्रीय योजना सहायता आबंटित करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा विकसित मानदंड के कारण पिछड़े हुए राज्य बहुत नुकसान में रहते हैं। अधिक संसाधनों वाले उन्नत राज्य अधिक बड़ी राज्य योजनाएं बना सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्नत राज्यों में ही अधिकतर निजी (प्राइवेट) निवेश होते हैं। अपेक्षाकृत कम विकसित राज्यों में निजी निवेश कम होते हैं। यही वजह है कि राज्यों का संतुलित विकास नहीं हो पाता।

असम राज्य एक विशेष दर्जे का राज्य है और उस पर गाडगिल फार्मूला लागू नहीं होता। असम राज्य को दिए गए विशेष दर्जे को ध्यान में रखते हुए सामान्य, पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों के लिए अलग-अलग पद्धति न अपनाई जाए। मौजूदा भेद के स्थान पर पूरे राज्य में 90 प्रतिशत अनुदान और 10 प्रतिशत ऋण की एक समान पद्धति अपनाई जाए। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के निर्धारण का कार्य राज्य पर ही छोड़ दिया जाए। निधियों का आबंटन 50 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और 50 प्रतिशत क्षेत्र के आधार पर करने की वर्तमान प्रणाली से कमजोर राज्यों की पहाड़ी क्षेत्रों में गरीबी दूर करने के लक्ष्य में कोई दृश्यमान प्रगति नहीं हुई हैं सिवाय इसके कि क्षेत्रों के संतुलित विकास का लक्ष्य कुछ हद तक पूरा हुआ है। विशेष केन्द्रीय सहायता की मात्रा कुछ कार्यक्षेत्रों में तेजी से विकास लाने की विशेष आवश्यकता के अनुरूप होनी चाहिए। ये विशेष क्षेत्र हैं—उत्तर राज्य क्षेत्र में बहुत अधिक गरीब और जनजातीय तथा अन्य पिछड़ी हुई श्रेणियां। राज्य सरकारों को प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के लिए स्कीमें तैयार करने और उन्हें कार्यान्वित करने की स्वतंत्रता दी जाए और उन पर कोई प्रतिबंध न लगाया जाए।

6.10 केन्द्र द्वारा प्रायोजित बहुत सी स्कीमें केन्द्र द्वारा परिकल्पित, तैयार और प्रायोजित की जाती हैं। इस श्रेणी की स्कीमें जो कि प्राथमिक शिक्षा, लोक स्वास्थ्य और समाज कल्याण के अन्तर्गत आती हैं, राज्य योजना का ही हिस्सा होती हैं। राज्यों को उन्हें बाध्य होकर कार्यान्वित करना पड़ता है चाहे ये स्कीमें राज्य के शेष योजना के साथ एकीकृत नहीं हो पाती और अनुलग्नक की भांति जुड़ी रहती हैं। हो सकता है कि केन्द्र इन स्कीमों को राष्ट्रीय दृष्टि से आवश्यक समझता हो और राज्य भी आरंभिक अवस्थाओं में केन्द्रीय सहायता के प्रलोभन में आ जाते हैं।

परंतु संघीय नीति और मौजूदा वित्तीय शक्तियों के विभाजन के अधीन इस संबंध में किसी भी परिवर्तन की कल्पना नहीं की जा सकती। जब तक राज्य आर्थिक दृष्टि से कमजोर रहेंगे और उनके संसाधन सीमित रहेंगे तब तक केन्द्र अपनी शक्ति का प्रयोग अधिक प्रभावशाली ढंग से करता रहेगा और संविधान द्वारा राज्यों को प्रत्यायोजित निर्णय लेने की सीमित शक्तियां और भी कम होती रहेंगी।

6.11 योजनाओं के कार्यान्वयन पर निगरानी करने के लिए असम में 1965 में स्थापित राज्य मूल्यांकन एवं प्रबोधन तंत्र "(मानिटरिंग मशीनरी)" बढ़ते हुए कार्य से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं है। फिलहाल मूल्यांकन करने वाला यह तंत्र केवल प्रयोगात्मक किस्म की स्कीमों का ही मूल्यांकन कर पाया है। ऐसी बहुत ही कम स्कीमों का मूल्यांकन हुआ है जो राज्य के विचार में महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त योजनागत स्कीमों के प्रबोधन का जहां तक प्रश्न है, यह तंत्र अपर्याप्त कर्मचारियों के कारण बहुत अधिक कार्य नहीं कर पाया है।

यह जांच करने के लिए कि विकास योजना में लगाई गई केन्द्र और राज्य की निधियों से वांछित परिणाम प्राप्त हों, राज्य के मूल्यांकन तथा प्रबोधन संगठन में बिना किसी विलंब के और अधिक उपयुक्त संख्या में कर्मचारी रखने की जरूरत है। इस तंत्र में अधिक कर्मचारी रखने से संबंधित प्रस्ताव कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन, भारत सरकार को वर्ष 1982 में पहले ही भेजा जा चुका है। जून 1984 में इसे फिर से दोहराया गया है।

योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन के राज्य यूनिटों को राज्य मूल्यांकन संगठन के साथ और अधिक प्रभावी और निकट सम्पर्क बनाकर रखना चाहिए। प्रत्येक संगठन द्वारा अलग-अलग तैयार रिपोर्टों के यदाकदा विनिमय के स्थान पर निकट सहयोग और निरंतर संपर्क होना चाहिए और उपयुक्त मामलों में संयुक्त रूप से अध्ययन भी किए जा सकते हैं।

6.12 कोई टिप्पणी नहीं।

6.13 असम राज्य में राज्य योजना बोर्ड योजना निर्माण और कार्यान्वयन का काम देखता है। परंतु राज्य बोर्ड द्वारा प्रभावी देख रेख का क्षेत्र सीमित हो जाता है क्योंकि राज्य योजना केन्द्र द्वारा तैयार मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार ही तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त राज्य आयोजना तंत्र में कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने की प्रक्रिया केन्द्र के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण रुक गई है या दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पंगु हो गई है। राज्य आयोजना तंत्र में अधिक कर्मचारी रखने का काम योजना आयोग द्वारा जारी आदेश के माध्यम से कार्यान्वित करना होगा। इसमें भर्ती किए जाने वाले कनिष्ठ अधिकारियों, सहायकों और चपरासियों की एक सूची बनायी गई है और खरीदी जाने वाली कुछ छोटी मोटी मदों का उल्लेख किया गया है। इस सूची में अच्छे वेतन वाले पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति का कोई प्रावधान नहीं है। तंत्र के प्रभावशाली ढंग से कार्यचालन के लिए गतिशीलता प्रदान करने हेतु वाहनों की खरीद या किसी प्रकार के भवन निर्माण का भी कोई प्रावधान नहीं है।

इसका उपाय यही है कि राज्य आयोजना तंत्र में कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने और अपनी जरूरतें बिना किसी रुकावट के और योजना आयोग द्वारा सुझाई गई वित्तीय सीमाओं के भीतर पूरा करने की अनुमति दी जाए। वस्तुतः यदि जरूरत हो तो राज्यों को राज्य स्तर पर योजना-तंत्र को मजबूत करने के लिए योजना आयोग द्वारा सुझाई गई सीमाओं के बाहर जाने की भी अनुमति होनी चाहिए ताकि वे अपनी योजना और योजनागत स्कीमों के कार्यान्वयन का काम कर सकें।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 उद्योग (विकास और विनियम) अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची में कुछ ऐसे उद्योगों के केन्द्रीय विनियम की परिकल्पना की गई थी जो सार्वजनिक हित और राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से प्रमुख थे। इसके बाद सभी प्रकार के अधिक से अधिक उद्यमों पर केन्द्रीय नियंत्रण बढ़ता गया है और राज्यों के लिए केवल लघु उद्योग छोड़ दिए गए हैं। ये लघु उद्योग भी बहुत हद तक केन्द्र द्वारा ही नियंत्रित हैं। हमारे पास बताने के लिए कोई भी उदाहरण नहीं है जिसमें केन्द्र ने राज्य के हितों को नुकसान पहुंचाते हुए जानबूझकर कोई नीति अपनाई हो। लेकिन केन्द्रीय विनियम के कारण हमारे जैसे राज्यों में एक ऐसी स्थिति पैदा हुई है जिसमें बहुत अधिक प्राकृतिक संसाधन, विशेष रूप से गैस और खनिज संसाधनों का प्रयोग/दोहन नहीं हुआ है। सीमेंट उद्योग, तेल अन्वेषण/प्राकृतिक गैस इसके उदाहरण हैं। 70वें दशक के प्रारंभिक वर्षों में केन्द्र द्वारा बचत वाले राज्यों में अतिरिक्त क्षमता को प्रोत्साहन न देने की नीति के कारण राज्य में ऐसे उद्योगों के विस्तार में रुकावट आई है और इससे बहुत अधिक संसाधनों का अन्वेषण/दोहन और उपयोग नहीं हो पाया है।

7.2 हमारा विचार है कि केन्द्र सरकार केवल उन्हीं उद्योगों का विनियमन करे जिनका देश की रक्षा और सुरक्षा से संबंध है। शेष उद्योगों के लिए लाइसेंस देने का प्राधिकार केन्द्र सरकार के मार्गदर्शन के अधीन राज्य सरकारों में निहित हो।

7.3 देखने में आया है कि बड़े व्यापारी घरानों द्वारा अनेक मदों के लिए लाइसेंस प्राप्त कर लिए जाते हैं परन्तु वे उन्हें कार्यान्वित नहीं करते। यह भी देखने में आया है कि ऐसे लाइसेंस केवल अन्य पार्टियों द्वारा समान परियोजनाएं स्थापित किए जाने को रोकने के लिए ही लिये जाते हैं। यहां यह भी कहा जा सकता है कि पिछड़े हुए राज्य आमतौर पर इसका शिकार होते हैं क्योंकि इन मदों के लिए नए लाइसेंस देने पर इस कारण से विचार नहीं किया जाता कि इन मदों के लिए क्षमता से अधिक लाइसेंस पहले ही जारी किए जा चुके हैं। परियोजना के कार्यान्वयन के लिए निश्चित समय-सूची निर्धारित की जाए और नियत समय समाप्त होने के बाद ऐसे लाइसेंस रद्द कर दिए जाएं। सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र से प्राप्त आवेदन, यदि अन्यथा व्यवहार्य हों, तो उन्हें केवल इस आधार पर अस्वीकार न कर दिया जाए कि क्षमता से अधिक के लाइसेंस पहले ही जारी किए जा चुके हैं। श्रेणी-क पिछड़े जिलों और उद्योग विहिन जिलों में परियोजना स्थापित करने के लिए औद्योगिक लाइसेंस हेतु आवेदनों को सर्वोपरि तरजीह दी जाए। उद्योग विहीन जिलों के लिए भारत सरकार ने सिद्धान्त निर्धारित किए हैं परन्तु व्यवहार में इनका अनुपालन नहीं किया जाता।

7.4 बहुत-से राज्य और विशेषरूप से पिछड़े हुए राज्य लघु उद्योगों को कच्चे माल और विपणन के संबंध में सहायता देने के लिए पूर्ण रूप से संगठित नहीं हैं। हालांकि राज्य लघु उद्योग विकास निगम सभी किस्म का इस्पात का सामान प्राप्त करने और वितरित करने के लिए प्राधिकृत है परन्तु उसका कार्यनिष्पादन बहुत संतोषजनक नहीं है। इसका कारण यही है कि सामग्री की लागत लघु उद्योग इकाइयों के लिए किफायती नहीं रहती। अन्य मदों के संबंध में यह सुझाव दिया गया कि राज्य व्यापार निगम, धातु व खनिज व्यापार निगम, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम आदि जैसे संगठन सभी राज्यों में अपनी कार्यकारी स्थापनाएं खोलें ताकि राज्य के छोटे-छोटे उद्यमी अपनी जरूरतों के लिए इन संगठनों के प्रधान कार्यालयों या क्षेत्रीय कार्यालयों में न दौड़ें। देखने से आया है कि अनेक राज्यों में इस संगठनों के कार्यालय खोले गए थे परन्तु उन्हें पर्याप्त शक्तियां प्राप्त नहीं थी। स्थानीय लघु उद्योग यूनिटों की वास्तव में सहायता करने के लिए इन कार्यालयों को आवश्यक शक्तियां दी जाएं। केन्द्र सरकार अकेली ही देश में सबसे बड़ी खरीददार है। यह सच है कि केन्द्र सरकार ने लघु उद्योगों को विपणन सहायता देने के लिए अनेक कदम उठाए हैं लेकिन अभी भी अनेक उपाय करना जरूरी है। सुझाव है कि भारत सरकार की स्थापनाओं और उपक्रमों के विभिन्न संगठनों की विभिन्न मदों की जरूरतें स्थानीय यूनिटों से खरीदकर पूरी की जाएं जहां इनके उपयुक्त होने की जरूरत है। यदि ऐसे मामलों में प्रस्तावित कीमतें अपेक्षाकृत अधिक हों तो लागत विश्लेषण के आधार पर कीमतें सक्षम प्राधिकारी द्वारा निश्चित की जाएं जो कि पूर्ति तथा निपटान महानिदेशालय की सुव्यवस्थित परिपाटी भी है।

7.5 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक और भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, असम में केन्द्रीय रूप से नियंत्रित राष्ट्रीय औद्योगिक वित्त संस्थाएं हैं। लेकिन भारतीय जीवन बीमा निगम और भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम जैसे संगठनों का कार्यचालन संतोषजनक नहीं है। सरकार प्रत्येक राज्य के लिए केन्द्रीय रूप से नियंत्रित राष्ट्रीय औद्योगिक वित्त संस्था स्थापित करने के संबंध में विचार कर सकती है जहां सभी सुविधाएं उपलब्ध होंगी।

7.6 और 7.7 सरकारी क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश पर स्थानिक निर्णय अत्यधिक महत्वपूर्ण मामला है, विशेष रूप से उस राज्य के संदर्भ में जहां निजी निवेश बहुत कम है। सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग उस राज्य में स्थापित किए जाएं जहां संभाव्यता है और कच्चा माल उपलब्ध है। ऐसे मामलों में संबंधित राज्य सरकार का औद्योगिक परियोजना के स्थान के बारे में प्रमुख हाथ होना चाहिए। अन्य मदों के संबंध में पिछड़े राज्यों को तरजीह दी जाए। केन्द्रीय क्षेत्र की परियोजनाएं स्थापित करने की राज्यों की मांग, यदि अन्यथा व्यवहार्य हों, तो इस आधार पर मांग नामंजूर न की जाए कि आधारभूत संरचना उपलब्ध नहीं है।

7.8 पिछड़े इलाकों के विकास के लिए सहायता देने के संबंध में भारत सरकार की नीति के बारे में हम पूरी तरह से संतुष्ट हैं।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 हम संविधान के अनुच्छेद 307 के उपबन्धों से सहमत हैं जिसमें अनुच्छेद 301 से 304 तक में व्यादिष्ट प्रयोजनों के लिए प्राधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था है।

कृषि

9.1 जहां तक केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों का संबंध है, यह स्पष्ट है कि राज्य योजना का अनुमोदन करते समय केन्द्रीय सरकार की प्राथमिकताएं राज्य सरकारों की प्राथमिकताओं के अनुरूप नहीं होती। पूरे देश के लिए शर्तों में समानता बनाए रखने की प्रवृत्ति रहती है। अतः यह उचित प्रतीत होता है कि भारत सरकार राज्यों के हितों को प्राथमिकता दे।

9.2 यह सुझाव दिया जाता है कि भारत सरकार उस समय तक स्कीम का पूरा व्यय उठाती रहे जब तक वह स्कीम चालू रखना आवश्यक समझे।

9.3 राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशों के अतिरिक्त भारत सरकार विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्थानीय दृष्टि से उपयुक्त स्कीमें भी बनाए।

9.4 (क) कृषि संबंधी मदों के लिए पूरे देश में एक समान न्यूनतम या उचित कीमतें निर्धारित करना समीचीन प्रतीत नहीं होता। सुझाव है कि उत्पादकता, बाजार कीमत, मांग आदि के संबंध में स्थानीय स्थितियों को ध्यान में रखते हुए ये कीमतें निर्धारित की जाएं क्योंकि हर राज्य की स्थानीय स्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं।

9.5 विभिन्न राज्यों द्वारा जिन स्थानीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है उन्हें सुलझाने के लिए राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थाओं को मदद के लिए आगे आना चाहिए क्योंकि सभी राज्यों के पास अपनी स्थानीय समस्याओं के बारे में अनुसंधान करने के लिए आधारभूत संरचना मौजूद नहीं है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक भी सभी राज्यों पर लागू होने वाले एक समान विनियमों के स्थान पर प्रत्येक राज्य में विकास की विभिन्न अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए ऋण संबंधी स्कीम तैयार करे।

खाद्य और नागरिक आपूर्ति

10.1 प्रश्न में उल्लिखित प्रयोजन के लिए वर्तमान व्यवस्था पर्याप्त है।

10.2 समय-समय पर समीक्षा करने से कार्यप्रणाली सुधारने में अवश्य मदद मिलेगी। राज्यों के पास प्रवर्तन और नियामक आदेशों को लागू करने के लिए बिना किसी रोकटोक के शक्ति होनी चाहिए।

शिक्षा

11.1 यह सच नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीकरण और मानकीकरण तथा अत्यधिक हस्तक्षेप है। हाल ही का हमारा अनुभव यह रहा है कि केन्द्र इस क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप नहीं करता और उसने राज्य की समस्याओं की तरफ हमेशा सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया है। यह एक स्थापित तथ्य है कि शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में केन्द्रीकरण अनिवार्य है और शायद ऐसे क्षेत्रों में केवल केन्द्र ही ने राज्यों का मार्गदर्शन किया है। शिक्षा की दृष्टि से असम नौ पिछड़े हुए राज्यों में से एक है और इसे केन्द्र से विशेष ध्यान और वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है।

11.2 यह राज्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से संतोषजनक वित्तीय सहायता प्राप्त कर रहा है। विश्वविद्यालयों के प्रभावशाली ढंग से कार्य करने की दृष्टि से प्रशासन को सुधारने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को बहुत कुछ करना बाकी है। इस संबंध में विश्वविद्यालय के कार्यों के बेहतरीन प्रबंध के लिए प्रशिक्षण देने के लिए वे वित्तीय सहायता भी दे सकते हैं। समय पर परीक्षाएं संचालित न करने के कारण विश्वविद्यालयों के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करने की व्यवस्था करना बेहतर होगा।

11.3 फिलहाल केंद्रीय शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड कार्य कर रहा है और सभी राज्य शिक्षा मंत्री इसके सदस्य हैं। नियमित अंतरालों पर विचारों के आदान-प्रदान की सुविधाएं देने के लिए इस बोर्ड की समय पर बैठकें करना पर्याप्त होगा। इसके लिए अलग से कोई व्यवस्था करने की जरूरत नहीं है।

11.4 भाषाई अल्पसंख्यकों अर्थात्, जनजातीय और गैर-जनजातीय अल्पसंख्यकों के लिए अलग संस्थान बनाए रखने में वित्तीय सीमाओं के सिवाय अन्य कोई कठिनाई नहीं है। नियमों और कार्यविधियों में ऐसे संस्थानों पर घाटे की अर्थव्यवस्था दिखाने पर प्रतिबंध है। यदि नियमों में ढील दे भी दी जाए तब भी हो सकता है कि सभी भाषाई अल्पसंख्यकों (संस्थाओं) को वित्तीय सहायता देना सुविधाजनक न हो। केन्द्रीय सरकार ऐसी संस्थाओं को केन्द्रीय क्षेत्र के अधीन सहायता देने की एक स्कीम बनाने पर विचार कर सकती है।

11.5 शिक्षा के क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य के बीच ऐसा कोई संघर्ष नहीं है।

अंतर-सरकारी समन्वय

12.1 इस राज्य में केन्द्र-राज्य संबंधों को लेकर कोई गंभीर समस्या देखने में नहीं आई है इसलिए अमेरिका के समान सलाहकार आयोग स्थापित करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

प्रश्नावली के कुछ चुने हुए प्रश्नों के संबंध में असम सरकार के संशोधित/अतिरिक्त उत्तर (जुलाई, 1987 में प्राप्त)

भाग I

प्रस्तावना

1.2 प्रशासन की संघीय पद्धति में संघवाद और लोकतांत्रिक प्रतिमान बनाए रखने के लिए केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन बहुत महत्वपूर्ण है। संघवाद को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ शक्तियां, जो संविधान की तीसरी सूची में सम्मिलित की गई हैं, उन्हें दूसरी सूची में सम्मिलित किया जाना है। तीसरी सूची की प्रविष्टियां जैसे 17 क वन, 17 ख जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा सूची II में लाई जाएं। जब तक राज्यों को प्राकृतिक सम्पदा और संसाधन जैसे तेल, वन और कुछ खनिज के संबंध में अन्य शक्तियां नहीं दी जाएंगी तब तक राज्य साधनसम्पन्न नहीं हो सकेंगे। जिन राज्यों में इन संसाधनों की प्रचुरता है उनकी अर्थव्यवस्था पर इससे प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन की समय-समय पर समीक्षा करना और अत्यावश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए राज्यों के विकास के लिए राज्यों को अधिक शक्तियां देना बहुत जरूरी है। केन्द्र में शक्तियों के अधिक केंद्रीकरण से राज्यों का समग्र रूप से विकास नहीं होगा।

1.8 संविधान के अनुच्छेद 3 में उपयुक्त संशोधन करना जरूरी है ताकि किसी राज्य के क्षेत्र में परिवर्तन के लिए संसद में प्रस्ताव रखने से पहले राज्य विधान मण्डल का पूर्व अनुमोदन किया जाना आज्ञापक बनाया जाए।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 समय-समय पर संविधान में किए गए संशोधनों से यह प्रतीत होता है कि केन्द्र द्वारा 7 वीं अनुसूची की तीसरी सूची में अतिरिक्त प्रविष्टियां करके राज्य की शक्तियां कम करने की प्रवृत्ति रही है। प्रश्न 2.1 के मूल उत्तर में यह बात पहले ही कही जा चुकी है। वर्ष 1956 में प्रथम सूची में की गई प्रविष्टि 92-क के कारण प्रविष्टि 54 के अधीन राज्य की शक्ति, जैसी कि यह 1956 के संशोधन से पहले थी, लगभग समाप्त हो गई है। इसी प्रकार वर्ष 1976 में संविधान में संशोधन करके तीसरी सूची में प्रविष्टि 17-क और 17-ख के कारण राज्य की वनों तथा जंगली जानवरों और पक्षियों के संरक्षण के संबंध में शक्तियां भी कम कर दी गई हैं। इस संशोधन से पूर्व राज्य उपर्युक्त दोनों प्रविष्टियों में उल्लिखित शक्तियों का प्रयोग करते थे। इसलिए यह विचार रखना मूल रूप से गलत होगा कि संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के विभाजन की स्कीम में कुछ आधारभूत खराबी नहीं है। संविधान के संशोधनों से केन्द्र की राज्यों को दी गई विधायी स्वायत्तता कम करने की प्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से पता चलता है और केन्द्र तथा राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के लिए यह प्रवृत्ति स्वस्थकर नहीं है। केन्द्र को तथाकथित "राष्ट्रीय हित" या "सार्वजनिक हित" के आधार पर राज्यों की विधायी शक्तियों में अनधिकार हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

2.5 (i) सातवीं अनुसूची की संघ-सूची की प्रविष्टि संख्या–97 से संसद को दूसरी या तीसरी सूची में न दिए गए किसी अन्य मामले में कानून बनाने की अपार शक्ति प्राप्त हो गई है। इस प्रविष्टि से संसद को अनियंत्रित शक्ति मिल गई प्रतीत होती है। इस पर कुछ प्रतिबंध लगाए जाने चाहिए क्योंकि जहां तक राज्य का ताल्लुक है, उसके संबंध में कोई कानून बनाने के लिए बिल पेश करने से पहले संसद राज्य विधान मंडल का पूर्व अनुमोदन अवश्य प्राप्त करे।

(ii) राज्य के राज्यपाल द्वारा अध्यादेश प्रख्यापित करने के लिए यह आवश्यक है कि संविधान के अनुच्छेद 213 में संशोधन किया जाए। अनुच्छेद 213 के विद्यमान उपबंधों से यह प्रतीत होता है कि परमावश्यकता की स्थिति में भी राज्यपाल उपर्युक्त अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) के परन्तुक के अधीन उल्लिखित मदों के संबंध में राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना अध्यादेश प्रख्यापित करने का हकदार नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 255 के उपबंधों के समान कुछ उपबंध अनुच्छेद 213 में सम्मिलित किए जाने चाहिए ताकि राज्यपाल परमावश्यकता की स्थिति में राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति का प्रयोग कर सके।

(iii) संविधान के अनुच्छेद 16(3) के अधीन संसद् राज्य के अन्दर रोजगार की किसी श्रेणी या श्रेणियों के संबंध में अथवा किसी पद पर नियुक्ति के संबंध में ऐसे रोजगार या नियुक्ति से पहले आवास की अपेक्षा निर्धारित करते हुए कानून बनाने के लिए प्राधिकृत है। इस मामले को ध्यान में रखकर केन्द्र किसी नागरिक के रोजगार अथवा नियुक्ति से पहले राज्य में स्थाई रूप से आवास की शर्त निर्धारित करते हुए कुछ कानून बनाए। यह पुरोभाव्य शर्त हो कि एक राज्य से दूसरे राज्य में आने वाला और रोजगार ढूंढने वाला नागरिक दूसरे राज्य का स्थायी निवासी हो।

(iv) लगभग 100 साल पहले कच्चे तेल की खोज सबसे पहले डिगबोई में की गई थी और शताब्दी पूरी होने पर देश में सबसे पहली रिफाइनरी डिगबोई में स्थापित की गई थी। पिछले कुछ दशकों मे कच्चा तेल और प्राकृतिक गैस दोनों विश्व में प्राथमिक ऊर्जा के एकमात्र बहुत महत्वपूर्ण रूप में सामने उभर कर आए हैं। वर्ष 1984 में 7201.6 मिलियन मीटरी टन कच्चे तेल के बराबर उपभुक्त ऊर्जा में से तेल और प्राकृतिक गैस की खपत क्रमश: 2844 और 1409 मिलियन मीटरी टन तेल के बराबर थी। पूरे विश्व में अनुमानित प्रति व्यक्ति प्राथमिक ऊर्जा की खपत 1529 किलोग्राम तेल के बराबर थी परन्तु इसकी तुलना में भारत में केवल 196 किलोग्राम तेल के बराबर ऊर्जा की खपत हुई। इसके अतिरिक्त विश्व भर में प्रति व्यक्ति 604 किलोग्राम तेल के बराबर खपत और 299 किलोग्राम कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस के बराबर खपत की तुलना में भारत में केवल क्रमश: 55 किलोग्राम और 5 किलोग्राम के बराबर खपत हुई। इस प्रकार, आर्थिक विकास के साथ-साथ तेल और प्राकृतिक गैस का महत्व ऊर्जा के प्राथमिक स्रोत के रूप में बढ़ना जरूरी है।

वर्ष 1983–84 में देश के अन्दर 26.20 मिलियन मीटरी-टन कच्चे तेल के कुल उत्पादन में से समुद्र की ओर तेल उत्पादन 17.39 मिलियन मीटरी टन और समुद्र तट पर तेल का उत्पादन 8.62 मीटरी टन हुआ जिसमें से असम में 5.00 मिलियन मीटरी टन उत्पादन हुआ। वर्ष 1985–86 में भी असम का हिस्सा लगभग समान ही था जबकि कुल कच्चे तेल का उत्पादन 30.16 मिलियन मीटरी टन हुआ था जिसमें से समुद्र की ओर कच्चे तेल का उत्पादन 20.82 मिलियन मीटरी टन था।

इस प्रकार देश में होने वाले कच्चे तेल के कुल उत्पादन (समुद्र की ओर और समुद्र तट पर) दोनों में से असम में कुल 1/5 से 1/6 भाग उत्पादन होता है।

तथापि केन्द्र द्वारा कच्चे तेल की खोज और उत्पादन से प्राप्त आय को देखने से पता लगता है कि केन्द्र सरकार ने 1983–84 में रायल्टी, बिक्री-कर, लाभ, लाभांश, निगम–कर और तेल विकास उपकर से कुल 2751 करोड़ रुपये अर्जित किए। दूसरी ओर असम राज्य ने रायल्टी और बिक्री-कर से केवल 58.07 करोड़ रुपये अर्जित किए। वर्ष 1983–84 में असम में 5.009 मिलियन मीटरी टन उत्पादन हुआ और इस प्रकार राज्य ने कच्चे तेल के उत्पादन से 115.93 रुपये प्रति मीटरी टन के हिसाब से अर्जित किए जबकि केन्द्र ने उसी वर्ष 26 मिलियन मीटरी टन उत्पादन पर 1057 रुपये प्रति टन के हिसाब

से अर्जित किए। इस प्रकार एक वर्ष अर्थात् 1983-84 में ही केन्द्रीय सरकार ने असम राज्य की तुलना में कच्चे तेल के उत्पादन पर प्रति मीटरी टन 10 गुणा राशि अर्जित की।

राज्य सरकार का विचार है कि संघीय सूची में तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल संसाधनों के विनियमन और विकास के विषय को बनाए रखने के कारण राज्यों के संसाधन बहुत बड़ी मात्रा में केन्द्र को अंतरित हो रहे हैं और इस प्रकार असम राज्य को, जो देश का सबसे कम विकसित राज्य है और जहां पहुंचना सापेक्ष रूप से इतना आसान नहीं है और जिसके बाजार का आकार बहुत छोटा है और बाकी देश की तुलना में जो बहुत पिछड़ा हुआ है, अपने ऐसे प्रमुख प्राकृतिक संसाधन का प्रयोग करने से वंचित रखा गया है जिससे वह अपने राज्य का विकास कर सकता था। ऊपर दिए गए उदाहरण में केन्द्र सरकार द्वारा अर्जित उस अतिरिक्त विपुल लाभ को हिसाब में नहीं लिया गया है जो उसे पट्रोलियम उत्पाद के संसाधन और बिक्री से प्राप्त होता है तथा इस बुनियादी कच्चे माल पर आधारित पट्रोरसायन के उत्पादन से प्राप्त होता है।

इसी प्रकार प्राकृतिक गैस की बिक्री के कारण केन्द्रीय सरकार द्वारा अर्जित किए गए लाभ और राजस्व जैसे समान लाभों को भी हिसाब में नहीं लिया गया है जिसे तेल की भांति महत्वपूर्ण स्रोत माना गया है।

इसलिए क्षेत्रीय विकास के संतुलन के लिए और कच्चे तेल और प्राकृतिक-गैस के उत्पादन से केन्द्रीय सरकार को हुए लाभ में से असम राज्य को न्यायोचित हिस्सा देने के लिए यह आवश्यक है कि समुद्र-तट पर तेल-क्षेत्रों और खनिज तेल संसाधनों के विकास के विषय को संघ सूची से हटाकर राज्य-सूची में कर दिया जाए। समुद्र की ओर तेल-क्षेत्रों के विकास और खनिज तेल-संसाधनों के विकास को संघ सूची में रहने दिया जा सकता है।

भाग III
राज्यपाल की भूमिका

3.5 यह बात सभी जानते हैं कि राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किए गए विधेयक केन्द्रीय सरकार के पास कई-कई महीनों तक और कभी-कभी वर्षों तक लम्बित पड़े रहते हैं। कुछ मामलों में यह भी पाया गया है कि विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के लिए भी नहीं भेजे जाते। राज्य विधानमण्डल में विधेयक पारित हो जाने और राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजने के बाद भी राज्य सरकार को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने में ऐसी अनावश्यक देरी के कारण स्कीम के कार्यान्वयन के लिए बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस महत्वपूर्ण मामले को देखने के लिए एक तंत्र होना चाहिए और केन्द्रीय सरकार को सतर्क रहना चाहिए कि राष्ट्रपति की सहमति के लिए कोई भी विधेयक अनावश्यक रूप से पड़ा न रहे। राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजे गए विधेयकों पर अविलम्ब विचार किया जाए। असम विधान-मंडल द्वारा पारित विधेयकों का उदाहरण देखा जा सकता है जिनके संबंध में राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने में अत्यधिक विलम्ब हुआ। वे हैं (1) असम पंचायती राज विधेयक-1986 और (2) असम वन रक्षा बल विधेयक-1986।

3.7 राज्यपाल के पद के संबंध में भी अलग-अलग विचार व्यक्त किए गए। यहां यह बताने की जरूरत नहीं कि जब तक किसी राज्य के मंत्रालय और राज्य के राज्यपाल के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध और समन्वय नहीं होगा तब तक किसी भी राज्य का प्रशासन सुचारू रूप से कार्य नहीं कर सकता। ऐसे उदाहरण देखने में आए हैं कि ऐसे अच्छे संबंधों और समन्वय के बिना राज्य के प्रशासन को बहुत क्षति पहुंची है। ऐसी असंतोषजनक स्थिति से बचने के लिए केन्द्र सरकार को किसी राज्य का राज्यपाल नियुक्त करने से पहले राज्य सरकार से परामर्श कर लेना चाहिए। इस प्रकार नियुक्त किया गया राज्यपाल राज्य सरकार को स्वीकार्य होना चाहिए। राज्य के प्रशासन को अधिक सुचारू रूप से चलाने के हित में ऐसा करना आवश्यक है।

भाग VI
आर्थिक और सामाजिक आयोजना

6.6 आयोग को पहले प्रस्तुत किए गए उत्तर के साथ-साथ राज्य सरकार अपने निम्नलिखित विचार भी प्रकट करती है।

"आयोजना" हालांकि समवर्ती-सूची के अन्तर्गत शामिल किया गया विषय है परन्तु वास्तव में यह केन्द्र का विषय बन गया है। राज्य योजना बना सकते हैं लेकिन जब तक योजना-आयोग इन्हें अनुमोदित न कर दे तब तक उनका योजना बनाने का प्रयत्न निरर्थक हो जाता है। योजना आयोग के अनुमोदन पर ही योजना-आबंटन निर्भर करेगा। इस प्रकार यह पूर्णतः स्पष्ट है कि आयोजना केवल नाम के लिए समवर्ती सूची का विषय है परन्तु वस्तुतः यह केन्द्र-सूची का विषय बन गया है।

इस संदर्भ में विचार करने के बाद कि पंचवर्षीय योजनाओं में स्थानीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की बजाए राष्ट्रीय प्राथमिकताओं की बाबत अधिक से अधिक विचार किया जाता है, राज्य के संसाधनों की स्थिति को देखते हुए जहां तक संभव हो, यह उपयुक्त है कि पंच-वर्षीय योजनाओं के लिए वित्त-प्रबंध करना कुल मिलाकर केन्द्र सरकार की ही जिम्मेदारी है। वर्तमान पद्धति के विपरीत अब यह धारणा अभिव्यक्त की गई है कि राज्य की विकास योजना इसकी संसाधन जुटाने की क्षमता पर आधारित न होकर परस्पर सहमत आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए। विकास संबंधी योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर अन्य सभी बातों की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है। इसलिए इसके लिए वित्त-प्रबंध भी राष्ट्रीय निधि में से होना चाहिए। वस्तुस्थिति यह है कि राज्यों को उपलब्ध कराए जा रहे आयकर और अन्य करों में राज्यों का हिस्सा बढ़ नहीं रहा है क्योंकि केन्द्रीय सरकार ने संसाधन एकत्रित करने के अन्य उपाय किए हैं जैसे कि निर्वेशित कीमतें निर्धारित करना, विभिन्न करों पर अधिभार लगाना आदि, जो विभाजन योग्य सामूहिक निधि के अन्तर्गत नहीं आते। असम जैसे गरीब राज्य के लिए राष्ट्रीय आयोजना, जिसमें राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को शामिल किया जाता है, राष्ट्रीय संसाधनों पर आधारित होनी चाहिए न कि राज्य के संसाधनों पर।

भाग VII
विविध

शिक्षा

11.1 अनावश्यक केन्द्रीकरण से बचने के लिए शिक्षा का विषय संघीय ढांचे की भावना के अनुरूप राज्य-सूची के अन्तर्गत होना चाहिए। इसमें केन्द्रीय सरकार की भूमिका केवल सलाहकार के रूप में होनी चाहिए। एक सुदृढ़ शिक्षा निती में क्षेत्रीय, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक असमानताओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक समान केन्द्रीय शिक्षा नीति कुछ राज्यों के लिए लाभदायक हो सकती है परन्तु कुछ अन्य राज्यों के लिए बहुत अलाभकर हो सकती है। सांस्कृतिक आधार वाली भावी पीढ़ी के निर्माण की जिम्मेदारी राज्यों को सौंपी जाए। जहां तक शिक्षा सम्बन्धी योजना बनाने और शिक्षा के विकास का संबंध है, राज्यों का प्राधिकार पर्याप्त रूप से कम कर दिया गया है क्योंकि वित्तीय सहायता केन्द्रीय नीति से जुड़ी हुई है।

11.2(क) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक स्वायत्त निकाय है और इससे अपेक्षा की जाती है कि वह विश्वविद्यालयों को उनके सभी कार्यों में मार्गदर्शन करे। अब तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने आशाओं के अनुरूप शैक्षिक मार्गदर्शन नहीं किया है। यह आयोग अनुदान वितरण के कार्य में अधिक व्यस्त है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विश्वविद्यालयों का शैक्षिक मूल्यांकन अधिक जोरदार ढंग से करना चाहिए। अभी तक अध्यापकों, छात्रों और राज्य सरकारों ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का शैक्षिक प्रभाव महसूस नहीं किया।

(ख) गुवाहाटी विश्वविद्यालय और डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय सहबद्ध विश्वविद्यालय हैं। उपर्युक्त दोनों विश्वविद्यालयों से सहबद्ध अधिकांश महाविद्यालय ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं। ऐसे अधिकांश महाविद्यालय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित मानदंड को पूरा नहीं करते हैं जबकि अपेक्षाकृत उन्नत क्षेत्रों में स्थित महाविद्यालय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजनाओं का पूरा लाभ उठा सकते हैं। पिछड़े क्षेत्रों में स्थित महाविद्यालयों को बहुत कम अनुदान मिल पाता है। इसके परिणामस्वरूप असमानताएं और भी अधिक बढ़ जाती हैं।

हम उच्च शिक्षा पर प्रतिबंध नहीं लगाना चाहते। हमारे क्षेत्रों के आर्थिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखे बिना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जो मानदंड

निर्धारित किए हैं उनकी वजह से हमारे राज्य में उच्च शिक्षा के समेकन में रुकावट आई है ।

11.3 केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की भूमिका और भी अधिक उपयोगी हो सकती है यदि नीति संबंधी निर्णय केवल बहुमत की गिनती के आधार पर लिए जाने की अनुमति न हों । राज्यों की वास्तविक कठिनाइयां समझकर उनका हल ढूंढा जाए । इसके अतिरिक्त, राजनैतिक विचारों के कारण निर्णय प्रभावित नहीं होने चाहिए । विशेष रूप से शिक्षा की योजना बनाने संबंधी नीति इस प्रकार प्रभावित नहीं होनी चाहिए ।

11.4 अल्पसंख्यकों को अपनी शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने और उनका प्रबंध चलाने का अधिकार है । उनका यह अधिकार बना रहना चाहिए और वह यह कार्य बहुसंख्यकों को प्राप्त अधिकारों और विशेषाधिकारों को मान्यता देते हुए करें । ये संस्थाएं क्षेत्र की भाषा तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संतुलन के लिए भी खतरा नहीं बननी चाहिए । इन संस्थाओं द्वारा बहुसंख्यक ग्रुपों की भाषा को उनका न्यायसंगत स्थान और मान्यता दी जानी चाहिए । ऐसी संस्थाओं के क्षेत्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए भाषाओं तथा समाज की संस्कृति को और भी अधिक सुदृढ करने के लिए जिम्मेदारी उठानी चाहिए ।

अल्प संख्यकों द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं में अध्यापकों की सेवा संबंधी स्थिति अन्य सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं में काम कर रहे अध्यापकों की कार्यस्थिति के समान होनी चाहिए । अल्प संख्यकों द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं में शैक्षिक तथा वित्तीय दोनों दृष्टियों से सार्वजनिक संवीक्षा का उपबंध होना चाहिए ।

यहां इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि असम में अवैध रूप से रह रहे विदेशी राष्ट्रिक भी अल्पसंख्यकों की तरह शैक्षिक (तथा राजनैतिक अधिकारों आदि) का दावा कर सकते हैं । उन्हें ऐसे किसी भी अधिकार का दावा करने से विवर्जित किया जाए ।

11.5(क) शैक्षिक विकास के कार्यक्रमों का जहां तक संबंध है, केन्द्र तथा राज्यों के बीच टकराव के कुछ विशिष्ट उदाहरण दिए जा सकते हैं । नवोदय विद्यालय का उदाहरण यहां दिया जा सकता है । इन विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिंदी तथा अंग्रेजी है । इस नीति के कारण त्रिभाषा सूत्र का विरोध होता है । इसके कारण क्षेत्रीय भाषाओं के विकास संबंधी वचनबद्धता भी पूरी नहीं होती ।

(ख) इसका दूसरा उदाहरण राष्ट्रीय जांच सेवा संबंधी प्रस्ताव है । यदि शैक्षिक तथा सामाजिक विकास में असंतुलन को ध्यान में रखे बिना यह प्रस्ताव कार्यान्वित कर दिया गया तो इससे शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों के लिए स्थिति और भी विकट हो जाएगी । आर्थिक दृष्टि से उन्नत समाज इस प्रस्ताव से निश्चित ही लाभान्वित होगा लेकिन अपेक्षाकृत पिछड़े हुए क्षेत्रों के छात्र राष्ट्र की सेवा में अपना कोई योगदान नहीं दे पाएंगे ।

बिहार सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) आयोग के समक्ष मुख्य मंत्री का वक्तव्य ।

बिहार

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

कोई उत्तर नहीं दिया गया।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 संविधान में यथापरिकल्पित संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की स्कीम में बुनियादी रूप से कोई भी त्रुटि नहीं है। इस राज्य में ऐसा कोई मामला नहीं है जहां संसद ने अनुच्छेद 249 का प्रयोग किया हो और उसके परिणामस्वरूप राज्य का कोई कानून रद्द हुआ हो और राज्य के हित को नुकसान पहुंचा हो। संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून से इस राज्य की विरोध नहीं है। इसके अतिरिक्त संसद द्वारा ऐसा कोई भी विधान नहीं किया गया है जिससे राज्य की शक्तियों में किसी प्रकार की कोई कमी आई हो या उसे किसी खास मुश्किल का सामना करना पड़ा हो। संघ ने राज्य के विधायी क्षेत्र में न तो राष्ट्र के हित में और न ही सार्वजनिक हित के नाम में कोई अतिलंघन किया है जिससे इस राज्य के हितों को नुकसान पहुंचा हो।

2.2 हमारा संविधान औचित्यपूर्ण है और इसमें किसी बड़े परिवर्तन की जरूरत नहीं। संविधान की सातवीं अनुसूची की विधायी सूची के अधीन शक्तियों का वितरण संतुलित है इसलिए इसमें कोई हस्तक्षेप करने की जरूरत नहीं है, जिसके लिए संविधान में संशोधन करना पड़े। राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए एक मजबूत केन्द्र की जरूरत है इसलिए इस राज्य में विधायी सूची में किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया है।

2.3 भारत सरकार, 1935 के अधीन अनुदेशों की लिखत में दिए गए इस उपबंध को न अपनाया जाए कि जब कभी केन्द्र समवर्ती-सूची के किसी विषय पर कानून बनाना चाहे तो वह पहले प्रांतीय सरकारों से परामर्श करे। विभिन्न राज्यों के स्थानीय हित अलग-अलग होते हैं और हो सकता है कि जो मसला राष्ट्रीय हित का हो उसके एक विशेष मुद्दे पर सभी राज्य सहमत न हों। इसलिए केवल केन्द्र ही एक अंचल (जोन) विशेष के संबंध में राष्ट्र के सर्वोच्च हित को समझ सकता है। यह वांछनीय नहीं है कि संघ समवर्ती सूची के विषय पर कोई कानून बनाने से पहले प्रान्तीय सरकार के साथ परामर्श करे जैसा कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 में उल्लिखित है।

2.4 जिस घोषणा के अनुसार संसद को राज्य की अनन्य क्षमता के अधीन आने वाले कुछ विषयों के सम्बन्ध में "राष्ट्रीय हित" या "सार्वजनिक हित" में कानून बनाने के लिए सक्षम बनाया गया था वह केवल एक अवधि विशेष के लिए होना चाहिए और उसकी आवधिक समीक्षा की जानी चाहिए। संसद की राज्यसूची की कुछ मदों के संबंध में राष्ट्रहित या सार्वजनिक हित में कानून बनाने के लिए सक्षम बनाने वाला उपबंध केवल एक अवधि-विशेष के लिए ही होना चाहिए और उसकी अवधिक समीक्षा की जानी चाहिए। राष्ट्रीय हित को क्षेत्रीय हित से अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

2.5 विधायी क्षेत्र में संघ राज्य संबंधों में कोई परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं है। मौजूदा उपबंध पर्याप्त हैं और इनसे संघ तथा राज्य के बीच अच्छा संबंध बनाए रखा जा सकता है।

परन्तु विधायी क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के बीच संबंधों पर विधान सभाओं और परिषद् की राय भी मालूम की जा सकती है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

कोई उत्तर नहीं दिया गया।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

कोई उत्तर नहीं दिया गया।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले संविधान में किए गए वित्तीय प्रबंध की मुख्य बातों पर विचार करना आवश्यक होगा। संविधान में अन्य बातों के साथ-साथ संघ तथा राज्यों के बीच राजस्व के संवितरण का तरीका तथा केन्द्र से राज्यों की संसाधनों के अंतरण का स्वरूप, सीमा क्षेत्र और ढंग निर्दिष्ट किया गया है।

संविधान में संघ तथा राज्यों की कर लगाने की शक्तियों के बीच स्पष्ट सीमा निर्धारित की गई और समवर्ती अधिकारिता के लिए कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है। इसमें संघ द्वारा उद्गृहीत और वसूल किए जाने वाले कुछ करों और शुल्कों से होने वाली आय का भी उपबंध है जिसे कुछ मामलों में राज्यों को समनुदेशित किया जा सकता है और कुछ अन्य मदों के संबंध में उनमें हिस्सा बंटाया जा सकता है। राज्य अपने करों और उद्ग्रहणों से हुई पूरी आय केवल अपने पास रखते हैं। इसके अतिरिक्त राज्यों को कुछ राशि संवैधानिक अधिकार के तौर पर अपने हिस्से के रूप में और संघ से समनुदेशन के रूप में प्राप्त होती है।

संघ द्वारा उद्गृहीत और वसूल किए जाने वाले कर तथा शुल्क चार स्पष्ट श्रेणियों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं:—(i) वे कर जिनसे हुई पूरी आय केन्द्र अपने पास रख लेता है जैसे सीमाशुल्क, निगम-कर और धन-कर; (ii) वे कर जिनसे होने वाली निवल आय पूरी-पूरी राज्यों को सौंप दी जाती है जैसे रेल किराए और भाड़े पर कर, सीमान्त कर, सम्पदा शुल्क, स्टाम्प शुल्क और औषधीय तथा प्रसाधन निर्मितियों पर उत्पाद-शुल्क; (iii) वे कर जिनसे होने वाली निवल आय में अनिवार्य रूप से राज्यों के साथ हिस्सा बांटा जाता है जैसे आयकर; और (iv) वे कर जिनसे होने वाली आय में राज्यों के साथ हिस्सा बांटा जा सकता है यदि संसद कानून बनाकर हिस्सा बांटने के बारे में निर्णय करे जैसे औषधीय और प्रसाधन निर्मितियों पर उत्पाद-शुल्क के सिवाय अन्य उत्पाद-शुल्क।

इसके अतिरिक्त संघ द्वारा बिक्री-कर के स्थान पर उद्गृहीत अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क केवल राज्यों को ही मिलता है।

ऊपर वर्णित कर में हिस्से संबंधी व्यवस्था के साथ-साथ संविधान के अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत राज्यों को सांविधिक सहायता अनुदान दिए जाने की भी परिकल्पना की गई है। यह सहायता अनुदान उन राज्यों को दिया जाता है जिन्हें सहायता की जरूरत होती है। इस उपबन्ध में विवेक के अनुसार सामान्य रूप से सहायता-अनुदान दिए

13—376 M. of HA/ND/87

जाने का तत्व विहित है परन्तु उपर्युक्त अनुच्छेद के परन्तुक द्वारा एक ऐसी दायित्व डाल दिया जाता है कि राज्य भारत सरकार के अनुमोदन से ही विकास की स्कीमों की लागत पूरी कर सकता है ताकि अनुसूचित जातियों के कल्याण को बढ़ावा मिले या उस राज्य के बाकी के क्षेत्र के प्रशासन का स्तर उन्नत हो ।

अनुच्छेद 282 में एक अन्य उपबंध भी है जिसके अनुसार संघ या राज्य को इस तथ्य के बावजूद किसी भी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अनुदान देने की शक्ति प्राप्त है कि वह उनकी विधायी अधिकारिता] के सीमाक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता । यह स्पष्ट है कि यह उपबंध ऐसी भी स्थिति का सामना करने के लिए रखा गया है जिसके लिए अन्यथा उपबंध नहीं किया गया । इस उपबंध के अधीन क्योंकि योजना-गत अनुदान दिए जाते हैं इसलिए इस अनुच्छेद के प्रयोग के संबंध में काफी विवाद उठ खड़ा हुआ है परन्तु हम यहां इसके बारे में विचार नहीं करेंगे बल्कि किसी अन्य उपयुक्त स्थान पर बाद में विचार किया जाएगा ।

हमारे संविधान के निर्माता इस बात के संबंध में पूरी तरह सचेत थे कि संघ सरकार तथा राज्यों के बीच कार्यों और संसाधनों के विभाजन की चाहे कितनी ही सतर्कतापूर्वक सावधानी बरती जाए, सरकार के दोनों स्तरों में कार्यों और संसाधनों के बीच चिरस्थायी अनुरूपता हासिल करने की समस्या फिर भी बनी रहेगी जैसा कि अन्य परिसंघों में हुआ है । इसलिए राजस्व का असंतुलन चाहे वह केन्द्र से संबद्ध हो या राज्यों से, हमारे संविधान की वित्तीय व्यवस्था के लिए कोई असामान्य घटना नहीं है ।

संघ और राज्यों को सौंपे गए राजस्व के संसाधनों और व्यय सम्बन्धी कार्यों के स्वरूप का निर्णय क्योंकि अलग-अलग सिद्धांतों को ध्यान में रखकर किया जाता है इसलिए ऐसी स्थिति पैदा होना लाजमी है जिसके कारण संघ राजस्व के अधिक बड़े लचीले और उच्च आय वाले राजस्व के संसाधनों के कारण राज्यों की अपेक्षा अधिक बेहतर स्थिति में होगा । दूसरी ओर राज्यों के पास राजस्व के अलचीले और कम संसाधन रह जाते हैं लेकिन उनकी जिम्मेदारियां और अधिक बढ़ने वाली प्रकृति की है जैसे कानून और व्यवस्था बनाए रखना, शिक्षा, कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सिंचाई आदि । जब हम संघ की तुलना में राज्यों की राजस्व संबंधी आवश्यकताओं को उनके संसाधनों की स्थिति के संदर्भ में देखते है तो हमें केन्द्र से सम्बद्ध असंतुलन का पता चलता है?

केन्द्र से सम्बद्ध राजस्व संबंधी असंतुलन के अतिरिक्त, जो कि सभी राज्यों को समान रूप से प्रभावित करता है, क्योंकि संविधान लागू होने के समय सभी राज्य आर्थिक दृष्टि से एक समान स्थिति में नहीं थे, और किसी भी निश्चित समय में उनके द्वारा प्राप्त विकास का स्तर भी भिन्न-भिन्न था तथा उनकी राजस्व संबंधी संभावनाएं और व्यय की बढ़ती हुई आवश्यकताएं और प्रतिबद्धताएं भी अलग-अलग थीं इसलिए यह लाजमी था कि राज्य केन्द्र से सम्बद्ध राजस्व संबंधी असंतुलन का आघात महसूस करते और जब इसके साथ केन्द्र से संबद्ध राजस्व असंतुलन और मिल गया है तो इससे राज्यों की राजस्व संबंधी आव-श्यकताएं और भी अधिक बढ़ गई हैं ।

भारतीय संविधान के निर्माताओं को इस बात का पूरा-पूरा पता था कि कर लगाने संबंधी शक्तियों के पूरे-पूरे पृथक्करण से ही, जिसमें इस संबंध में केन्द्र तथा राज्यों की अधिकारिता अतिव्याप्त होने की कोई गुंजाइश न हो, राज्यों के कार्यों और संसाधनों के बीच अनिवार्य असंतुलन समाप्त नहीं होगा और संविधान के अधीन वे अपने दायित्व अपने ही संसाधनों से पूरे करने में असमर्थ होंगे । लगभग सभी परिसंघों में राजस्व संबंधी असंतुलन की अनिवार्यता जैसा कि ऊपर बताया गया है, मान ली गई है और असंतुलन को दूर करने के लिए संघीय राजस्व में से अंतरण करने के लिए संवैधानिक उपबंध किए गए हैं । इसलिए हमारे संविधान में भी संघ से राज्यों को अनेक प्रकार के संसाधनों के अंतरण संबंधी संवैधानिक उप ' किए गए हैं ।

संघ और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण के कारण संघ को ऊंचा दर्जा दिया गया है लेकिन संविधान के निर्माताओं ने केन्द्र द्वारा राज्यों को वित्तीय अंतरण करने के मामले में अप्रतिबंधित शक्ति देना वांछनीय नहीं समझा । इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनुच्छेद 280 में यह उपबंध किया गया कि हर पांच वर्षों के बाद एक वित्त आयोग नियुक्त किया जाए जो संघ तथा राज्यों के वित्त और आवश्यकताओं की पंचवर्षीय समीक्षा करे और राज्यों को वित्तीय अंतरण की सिफारिश करें ।

संवैधानिक उपबंधों के अनुसार वित्त-आयोग से यह आशा की जाती है कि वह संघ से राज्यों को राजस्व अंतरण के लिए मुख्य तंत्र के रूप में कार्य करे । वित्त-आयोग को संविधान से प्राधिकार प्राप्त है । इसका गठन भी संसद के अधिनियम के अनुसार किया जाता है । यह आयोग करों के हिस्से और हिस्सा किए जाने योग्य निवल आय को संघ तथा राज्य के बीच वितरित करने तथा राज्यों के बीच ऐसी आय का अलग-अलग हिस्सा आबंटित करने के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करता है । आयोग से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह उन सिद्धान्तों के बारे में अपने सुझाव दे जो राज्यों को सहायता अनुदान की शक्ल में राजस्व के संबंध में लागू होंगे । इसके अतिरिक्त मजबूत वित्त-व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति कोई अन्य मामला भी आयोग को भेज सकते हैं ।

इसलिए वित्तीय प्रबंध करने, सुपुर्दगी की स्कीम की व्यवस्था करने तथा राज्यों की संसाधन अंतरण का तरीका निर्धारित करने वाले संवैधानिक उपबंध अपने आप में सुस्पष्ट रूप से पर्याप्त हैं और उनमें परिवर्तन करने की कोई जरूरत नहीं है । वित्त आयोग का गठन अपने-अपने क्षेत्र के सुविख्यात व्यक्तियों को शामिल करके किया जाता है और यह संस्था संवैधानिक हैसियत रखती है इसलिए यह अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करती है । इसके विचार-विमर्श में बाहरी हस्त-क्षेप होने की कोई संभावना नहीं होती । इसके परिणामस्वरूप वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार संसाधन अंतरण का कार्य केवल उन्हीं सीमाओं के अधीन होता है जो आयोग की सिफारिशों के अनुसार लगाई जाती हैं ।

मामले के इस पहलू पर विचार करने के बाद हम यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि संविधान में यथापरिकल्पित संसाधन अंतरण की प्रक्रिया में कोई अन्तर्निहित कमजोरियां या कमियां हैं और यह संविधान निर्माताओं की आशाओं के अनुरूप नहीं है। हमें इस बात का भी पता है कि संघ और राज्यों के वित्तीय संबंधों के क्षेत्र में काफी हलचल है । अनेक मसले उठाए गए हैं और उनमें अन्य बातों के साथ-साथ यह सुझाव दिया गया है कि जिस ढंग से यह व्यवस्था कार्य कर रही हैं उसकी वजह से एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें संसाधनों के अंतरण से न तो राज्यों की आवश्यकताएं पूरी हुई हैं और न ही स्तरों में उपयुक्त समानता लाई जा सकी है । ये दो उद्देश्य मोटे तौर पर ऐसे उद्देश्य है जिनकी प्राप्ति के लिए राजस्व अंतरण की कोई भी स्कीम होनी चाहिए । हम यह बात नहीं मानते कि राज्यों को अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने या सामाजिक व आर्थिक सेवाओं के प्रशासन के स्तर पर समान प्रभाव पैदा करने के लिए संसाधन अंतरण सही ढंग से न हो पाना संवैधानिक उपबंधों में किसी स्पष्ट कमी के कारण है । यदि इस दिशा में कोई असफलताएं हाथ लगी हैं तो इसका कारण कुछ और है ।

संविधान के निर्माताओं को आशा थी कि राजस्व अंतरण की इस प्रक्रिया का उन्होंने संविधान में जैसा उपबंध किया था उससे राज्यों की अपनी बढ़ती हुई जिम्मेवारियों को पूरा करने के लिए संसाधनों तथा राजस्व संबंधी जरूरतों के बीच राजस्व अंतर समाप्त हो जाएगा। यह बात कोई भी व्यक्ति नहीं कह सकता कि यह आशा पूरी तरह सफल हो गई है । इसके लिए वित्त आयोग ने जो कार्यविधि अपनाई है वही जवाबदेह है । वित्त-आयोग अंतर-पाटने का दृष्टिकोण अपनाकर

जाते हैं। राज्यों से गैर-योजना लेखे पर राजस्व तथा व्यय का पूर्वानुमान एक मानक फार्म में प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार प्राप्त किए गए पूर्वानुमानों का कुछ व्यापक विचारों के संदर्भ में और कुछ धारणाओं के आधार पर पुनर्मूल्यांकन किया जाता है ताकि पूर्वानुमानों को समायोजित करके तुलनीय बनाया जा सके। इसके पश्चात, आयोग राज्यों के बजटों के गैर-योजना राजस्व लेखों पर सकल घाटे और अधिशेष का हिसाब लगाता है। करों की विभाजन-योग्य सामूहिक-निधि में से करों के हिस्सों की सुपुर्दगी की गुंजाइश रखकर अंतर को राज्य सरकारों की बजटगत आवश्यकताएं समझ लिया जाता है। इसके बाद भी यदि कुछ राज्य अपने गैर-योजना राजस्व लेखे में घाटा उठाते हुए देखे जाते हैं तो उन्हें सहायता अनुदान के लिए पात्र समझा जाता है अन्यथा नहीं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार निर्धारित बजटगत अंतरों को राज्यों की वित्तीय आवश्यकताएं मान लिया जाता है।

ऊपर बताए गए तरीके से गैर-योजना राजस्व लेखे पर अंतर (गैप) का अनुमान वित्त-आयोग द्वारा परिकल्पित राजस्व और व्यय की प्रतिमान संबंधी वृद्धि दर के आधार पर लगाया जाता है जबकि वित्त आयोग उन राज्यों के करों में हिस्से को कम करने की स्थिति में नहीं है जिन्हें करों में हिस्सा मिलने के बाद गैर-योजना राजस्व अधिशेष भी मिल जाता है क्योंकि करों में हिस्सा उन अलग मानदंडों पर पूरी तरह आधारित है जो निर्धारित अंतर के स्वरूप को ध्यान में न रखते हुए सभी राज्यों पर एक समान रूप से लागू होते हैं। यह कार्यविधि अपनाने का एक परिणाम यह हुआ कि अपेक्षाकृत गरीब राज्यों की अपेक्षा अमीर राज्यों को साधनों की सुपुर्दगी में अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा मिला है। गरीब राज्यों को अंतर पाटने के लिए सहायता अनुदान की निश्चित राशि से ही संतोष करना पड़ा है।

पिछले वित्त आयोगों ने राज्यों की आवश्यकताओं का विभिन्न शब्दों में हवाला दिया है लेकिन उन्होंने सापेक्ष अर्थों में राज्यों की वास्तविक वित्तीय अवस्थाओं का अनुमान लगाने का तथा तदनुसार राजस्व अंतरण के लिए सिफारिश करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने यह मान लिया था कि अनुमानित राजस्व और व्यय के बीच अंतर राज्य की वित्तीय आवश्यकताओं का सूचक है। इस धारणा के बारे में प्रश्न उठाया जा सकता है। किसी भी राज्य की वास्तविक वित्तीय आवश्यकताओं का पता यहां बताए गए तरीके से बजटगत अंतर के अनुमान के आधार पर नहीं लगाया जा सकता क्यों कि वित्तीय आवश्यकता का निर्धारण व्यापक आर्थिक सोच-विचार को ध्यान में रखकर लगाया जाना चाहिए जैसे विकास के स्तर, राजस्व संभावनाओं में असमानताएं और विभिन्न राज्यों की अनिवार्य सार्वजनिक सेवाओं का स्तर। वित्त आयोगों द्वारा यथा निर्धारित अनुमानित बजटगत अंतर, जिसका उपयोग केवल सहायता अनुदान निर्धारित करने के प्रयोजन से किया जाता है, राज्य की वित्तीय आवश्यकताओं का सूचक नहीं माना जा सकता। वित्तीय आवश्यकता का निर्धारण राज्यों के संसाधनों और उत्तरदायित्वों को समस्त रूप से ध्यान में रखकर व्यापक तरीके से किया जाना चाहिए ताकि उनकी सापेक्ष आवश्यकताओं को वस्तुपरक ढंग से आंका जा सके।

राजस्व अंतर का अनुमान लगाते समय वित्त आयोग अनेक धारणाओं पर निर्भर करता है जिसकी वजह से राजस्व अंतर संबंधी अनुमान अंततः अयथार्थवादी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, राज्य की राजस्व संबंधी संभावनाओं को यह मानकर अनावश्यक रूप से बढ़ा-चढ़ा दिया जाता है कि राज्य बिजली बोर्डों और सड़क परिवहन निगमों जैसे सार्वजनिक उपयोगिता के उपक्रमों से प्रतिलाभ की निश्चयात्मक दरें अर्जित करेंगे। ऐसी धारणाएं बनाना स्थिति की वास्तविकता की पूरी तरह अवहेलना करना है। हमें अपने अनुभव से ज्ञात है कि राज्य सरकार को ऋण की चुकौती या उस पर ब्याज के रूप में बिजली बोर्ड से सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों की पूरी अवधि के दौरान कोई राशि प्राप्त नहीं हुई है। हालांकि आयोग ने प्रतिलाभ की निश्चित दर के लिए क्रेडिट लिया था और इस प्रकार राज्य के संसाधनों में वृद्धि मान ली थी परन्तु वास्तव में यह प्रतिलाभ प्राप्त नहीं हुआ। यही बात सड़क परिवहन निगम के बारे में भी सच है। इस निगम के मामले में भी सातवें वित्त-आयोग ने संसाधनों की सुपुर्दगी की अवधि के दौरान प्रतिलाभ की एक निश्चित दर की परिकल्पना की थी और यह आशा की थी कि इस प्रकार अर्जित प्रतिलाभ से राज्य की योजना के लिए संसाधनों में वृद्धि हो जाएगी। परन्तु यह आशा केवल आशा ही बनकर रह गयी।

इसके अतिरिक्त वित्त-आयोग ने यह भी आशा की थी कि सिंचाई कार्य से प्रतिलाभ की कुछ दरें हासिल होंगी। यहां यह बता दिया जाए कि ऐसी आशाएं इस धारणा पर आधारित है कि बिजली पैदा होने और उसकी आपूर्ति से, सड़क परिवहन उपक्रमों से या सिंचाई परियोजनाओं जैसे लोकोपयोगी सेवाओं से उसी प्रकार लाभ होंगे जैसे वाणिज्यिक उद्यमों से होते हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि इनसे आधारिक संरचना का निर्माण होता है और इनके साथ ही सामाजिक दायित्व भी जुड़ा होता है। इसलिए इसे वाणिज्य उपक्रमों के समान नहीं माना जा सकता जिन्हें लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से चलाया जाता है। इन पहलुओं को नजरअन्दाज करना ऐसी लोकोपयोगी सेवाओं के स्वरूप और प्रयोजन पर अयथार्थवादी रूप से विचार करना तो माना ही जाएगा साथ में उसका यह भी अर्थ होगा कि उनके सामाजिक दायित्वों और सामाजिक-राजनैतिक वातावरण को भी ध्यान में नहीं रखा गया है जिसमें उन्हें काम करना पड़ता है। इस प्रकार के उपक्रमों से निश्चित प्रति लाभ की उम्मीद करना केवल परिकल्पना करना ही होगा क्योंकि इससे राज्यों के राजस्व में कोई वृद्धि नहीं होगी और न ही उनकी योजनाओं के लिए संसाधन उपलब्ध होंगे। इसलिए किसी राज्य के राजस्व का सही निर्धारण यही होता कि ऐसे उपक्रमों से प्रतिलाभ को हिसाब में न लिया जाए। यदि ऐसे उपक्रमों से होने वाले प्रतिलाभ को हिसाब में लिया ही जाना है तो उचित प्रतिलाभ की दरों की कल्पना राज्य के केवल ऐसे उद्यमों के संबंध में की जाए जो वाणिज्यिक स्वरूप के हैं ताकि उनसे लाभ होने की न्यायसंगत आशा की जा सके। अन्य लोकोपयोगी संस्थाएं और उपक्रम जिनसे आधारिक संरचना सृजित करने और कुछ सामाजिक दायित्व पूरा करने की आशा की जाती है, उनसे निवेश पर प्रतिलाभ की आशा नहीं की जानी चाहिए।

एक अन्य उदाहरण से भी पता चलता है कि राज्यों द्वारा अपने कर्मचारियों के वेतन और महंगाई भत्तों पर किए गए अनिवार्य खर्च के काफी बड़े हिस्से को हिसाब में न लेते। राजस्व अंतर का अनुमान इस आधार पर लगाया जाता है कि ऐसा व्यय संदर्भ-तारीख के बाद किया गया है। यदि ऐसे तकनीकी कारणों से पर्याप्त खर्च को हिसाब में नहीं लिया जाएगा तो राजस्व अंतर के अनुमान से राज्य के राजस्व और व्यय के बीच अंतर का सही-सही पता नहीं चलेगा।

वित्त आयोग के अपने अनुमान क्योंकि ऐसी अयथार्थवादी धारणाओं पर आधारित हैं, इसलिए उनके द्वारा राजस्व अंतर का लगाया गया हिसाब राजस्व अंतर का न्यून अनुमान होता है। मुद्दे को उदाहरण के साथ समझाने के लिए हम अपने मामले का संदर्भ दे सकते हैं जैसे सातवें वित्त आयोग ने निर्धारित किया कि बिहार के मामले में सुपुर्दगी-अवधि के दौरान गैर-योजना राजस्व अंतर (−) 1057.53 करोड़ रुपये होगा परन्तु यह पाया गया है कि यह निर्धारण एकदम न्यून अनुमान है क्योंकि सुपुर्दगी अवधि के दौरान वास्तविक अंतर (−) 2659.32 करोड़ रुपये अनुमानित किया गया था।

इसलिए यह पता चलेगा कि वित्त आयोग द्वारा लगाए गए राजस्व अंतर के अनुमान ऐसी बहुत सी अयथार्थवादी धारणाओं पर आधारित

है कि जो अंतर निर्धारित किए गए हैं वे भी राजस्व और राज्यों के व्यय के बीच का वास्तविक अंतर सही रूप से नहीं दर्शाते यहां तक कि अंतर-पाटने के दृष्टिकोण में मुख्य त्रुटि इस तथ्य में है कि बजटगत अंतर, जिसका निश्चय वित्त-आयोग करता है, को राज्य की वास्तविक वित्तीय आवश्यकताएं मान लिया जाता है। इसका अपरिहार्य परिणाम यह होती है कि राज्यों के संसाधनों और राज्य की बढ़ती हुई जिम्मेदारियों के पालन के लिए राजस्व संबंधी उनकी आवश्यकताओं के बीच अंतर काफी हद तक बना ही रहता है।

इसका उपाय यही है कि वित्त-आयोग द्वारा अपनाई गई कार्यविधि परिष्कृत की जाए ताकि राज्यों की वास्तविक वित्तीय आवश्यकताओं का व्यापक बोध हो सके और अपेक्षित वित्तीय अंतरणों द्वारा उन्हें पूरा किया जा सके।

एक अन्य मुद्दा भी है जिसे आमतौर पर यह दिखाने के लिए उठाया जाता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय प्रबंध का बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो वित्त आयोगों के सीमा-क्षेत्र से बाहर है। राज्यों को संसाधनों के अंतरण के लिए प्रमुख मध्यस्थ के रूप में योजना आयोग के अस्तित्व का उल्लेख करते हुए यह कहा जाता है कि इस कार्य की वजह से वित्त-आयोग तथा योजना आयोग के कार्यों की गुणता में फर्क आया है और अतिव्याप्ति हुई है और इस प्रक्रिया में वित्त-आयोग की भूमिका केवल गैर-योजना राजस्व अंतरणों तक ही सीमित रह गई हैं क्योंकि योजना आयोग को राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता पर पूरा अधिकार दे दिया गया गया है। इस प्रकार दो आयोगों द्वारा कार्य किए जाने की इस बराबर की स्थिति में यह आशा करना स्वाभाविक ही है कि वित्त-आयोग को राज्यों की अर्थव्यवस्था का पूरा जायजा लेने की स्थिति में नहीं रखा गया और इसलिए वित्त-आयोगों के माध्यम से अंतरण संविधान निर्माताओं की आशा के अनुरूप नहीं हुए है।

इससे दोनों आयोगों की समन्वित भूमिकाओं का प्रश्न उठता है। इस मामले पर प्रश्न संख्या 5.9 का उत्तर देते समय अधिक विस्तारपूर्वक चर्चा करना अधिक उपयुक्त होगा। यहां इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह देखा जाए कि क्या दोनों आयोगों के कार्यों के बीच कोई विरोध अंतर्निहित है और क्या दोनों के बीच बातचीत से राज्यों को राजस्व के अंतरण पर कोई स्पष्ट प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि आर्थिक और सामाजिक आयोजन एक स्वीकृत राष्ट्रीय नीति है। इसलिए केन्द्रीय और राज्यों की योजनाएं एक दूसरे को बल प्रदान करती हैं और साथ-साथ मिलकर निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति का उद्देश्य रखती हैं। यही कारण है कि उनका अस्तित्व और गठन अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे के अनुरूप नहीं है फिर भी यह जरूरी नहीं कि उनके कार्य और दृष्टिकोण मूलतः विरोधी है। वित्त-आयोग तथा योजना-आयोग एक दूसरे के विपरीत दृष्टिकोण नहीं अपना सकते और अपने-अपने ढंग से देश तथा राज्यों के संतुलित विकास के लिए काम करने के सामान्य पथ से विचलित नहीं हो सकते। इस बात को ध्यान में रखते हुए दोनों आयोगों के दृष्टिकोण में समानता की कमी से इंकार नहीं किया जा सकता। परन्तु दोनों के उद्देश्य समान है इसलिए उनके प्रयत्नों के परिणाम एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक ही हो सकते है। सातवें वित्त-आयोग की इस आशय की टिप्पणी से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि "राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता का निर्णय वित्त आयोग के अधिनिर्णय के परिणामस्वरूप होने वाली राज्य की स्थिति से भिन्न नहीं हो सकता, क्योंकि जिस सीमा तक राज्य के संसाधन उनकी योजनाओं के लिए उनकी जरूरतों की तुलना में बेहतर किए जाएंगे उस सीमा तक कुल अंतरण में योजना के लिए केन्द्रीय सहायता का अनुपात अपेक्षाकृत कम होगा"। दोनों आयोगों के प्रयत्नों के बीच आपसी निर्भरता को देखते हुए राज्यों की कुल राजस्व संबंधी अंतरणों पर किसी प्रतिकूल प्रभाव की संभावना बहुत हद तक कम हो जाती है।

यह सच है कि संविधान में वित्त-आयोग के माध्यम के सिवाय परिसंघीय राजस्व अंतरणों की अन्यथा परिकल्पना नहीं की गई है फिर भी जैसे ही संविधान लागू हुआ वैसे ही योजना-आयोग लगभग साथ-साथ अस्तित्व में आ गया। इसलिए शुरू से ही इन दोनों आयोगों के माध्यम से अंतरंग राज्यों को राजस्व अंतरण करने की पद्धति में घुलमिल गए हैं और यह पद्धति अब स्थायी समान हो गई है।

अब तक हमने इस बात पर बल दिया है कि राजस्व अंतरण की प्रक्रिया संविधान के निर्माताओं की आशा को पूरा करने में समर्थ रही है। इसमें यदि कोई कमियां देखने में आई हैं तो वे संघ और राज्यों के बीच संसाधनों के विभाजन के लिए संवैधानिक व्यवस्था या राजस्व की सुपुर्दगी में अन्तर्निहित कमी के कारण नहीं है तथापि हमने यह देखा है कि वित्त आयोग द्वारा अपनाई गई कार्यविधि में सुधार की गुंजाइश है ताकि उनके प्रयत्नों से किए जाने वाले संसाधनों के अंतरण का प्रभाव एक समान हो।

आठ वित्त आयोगों के परिश्रम के परिणामस्वरूप राजस्व की सुपुर्दगी के कुछ सिद्धांत विकसित हो गए हैं और वे कुछ हद तक स्थिर भी हो गए है परन्तु केन्द्रीय करों और शुल्कों में हिस्से के संबंध में समय-समय पर परिवर्तन करने और राज्यों को सहायता अनुदान देने की अभी भी गुंजाइश बाकी है। जब कभी भी वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर ऐसे-परिवर्तन किए जाते हैं तो शायद ही कोई विरोध प्रकट किया जाता है परन्तु जब वित्त आयोगों की सिफारिशों से भिन्न आधार पर परिवर्तन लागू किए जाते हैं तो यह स्थिति नहीं होती। इस संबंध में एक उदाहरण दिया जा सकता है कि भारत सरकार ने आठवें वित्त-आयोग जिसकी कार्य-अवधि 1985-86 से 1988-89 तक थी, की सिफारिशों को कार्यान्वित करने का निर्णय लिया इस वित्त आयोग का कार्यकाल 5 वर्ष की सामान्य अवधि की बजाए केवल 4 वर्ष है हालांकि इसकी सामान्य कार्य अवधि 1984-85 से 1988-89 तक होती। हम किसी को दोष देना नहीं चाहते। हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि परिसंघीय ढांचे में वित्त-आयोग जैसी संस्थाओं की सिफारिशों का अपना महत्व है इसलिए उनकी तरफ सम्यक, ध्यान दिया जाना चाहिए।

अब हम वित्त आयोग के माध्यम से राज्यों को अंतरित संसाधनों की बाबत विचार करेंगे। पहली पंचवर्षीय योजना-अवधि अर्थात, 1951-52 से 1955-56 तक 447 करोड़ रुपये के कुल अंतरण किए गए। इसकी तुलना में 1974-75 से 1978-79 की अवधि के दौरान जो कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि है, कुल 11048 करोड़ रुपये मूल्य के संसाधन अंतरित किए गए। छठी पंचवर्षीय योजना अवधि (1979-80 से 1983-84) कुल 22888 करोड़ रुपये तक वित्तीय सुपुर्दगी की गई दूसरे शब्दों में वित्त आयोग के माध्यम से पहले बत्तीस वर्षों के दौरान राजस्व अंतरण अपने आप में एक रिकार्ड है।

यदि हम राजस्व संबंधी अंतरणों पर एक अन्य दृष्टि से विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता कि वर्ष 1972-73 में करों में हिस्सों के रूप में संसाधनों का अंतरण केन्द्र से राज्यों को संसाधनों की निवल सुपुर्दगी का 36.8 प्रतिशत था (केन्द्र से राज्यों को निवल ऋणों और अग्रिमों सहित) वर्ष 1982-83 (बी० एच०) में यह प्रतिशतता बढ़कर 52.6 हो गई। जहां तक सहायता अनुदान का संबंध है (विवेकाधीन और विवेकाधीन से इतर), वर्ष 1972-73 में यह केन्द्र से राज्यों को संसाधनों की निवल सुपुर्दगी का 32.4% थी परन्तु वर्ष 1982-83 (बी०एच०) में यह बढ़कर 33.9% हो गई है।

इस प्रकार पता चलता है कि इन वर्षों के दौरान न केवल कुल वित्तीय अंतरण बढ़े हैं अपितु केन्द्र से राज्यों को संसाधनों की निवल सुपुर्दगी की प्रतिशतता के रूप में और प्रमात्रा के रूप में इन राज्यों द्वारा प्राप्त सहायता अनुदान और करों के हिस्से में भी वृद्धि हुई है।

परन्तु यदि हम केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अंतरण की केन्द्रीय सरकार की सकल प्राप्तियों और सकल संवितरण की प्रतिशतता के रूप में देखें तो एक अन्य पहलू स्पष्ट दिखाई देगा । वर्ष 1972-73 के दौरान केन्द्र से राज्यों को संसाधनों की निवल सुपुर्दगी केन्द्र सरकार की सकल प्राप्तियों का 33.6% थी । वर्ष 1982-83 में यह प्रतिशतता घटकर केवल 27.1% रह गई । इसी प्रकार इसी अवधि के दौरान केन्द्र सरकार की सकल संवितरण की प्रतिशतता के रूप में केन्द्र से राज्यों को संसाधनों की निवल सुपुर्दगी 1972-73 के 30.5 प्रतिशत से घटकर 82-83 में 26.1 प्रतिशत रह गई ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि एक ओर जहां वित्तीय सुपुर्दगी की कुल मात्रा पिछले कुछ वर्षों से बढ़ रही है वहां केन्द्रीय सरकार की सकल प्राप्तियों और सकल संवितरण दोनों की प्रतिशतता के रूप में संसाधनों के अंतरण में पर्याप्त कमी होने की प्रवृत्ति दिखाई देती है । यहां यह भी बता दिया जाए कि इसी अवधि के दौरान भारत सरकार की सकल प्राप्तियां और सकल संवितरण काफी बढ़े हैं । वर्ष 1972-73 में सकल प्राप्तियां 8619 करोड़ रुपए थी । वर्ष 1982-83 (बजट अनुमान) में यह बढ़कर 33,437 करोड़ रुपये हो गई। इसी प्रकार वर्ष 1972-73 में सकल संवितरण 9488 करोड़ रुपये था। 1982-83 में यह बढ़कर 34,808 करोड़ रुपये हो गया । परन्तु राज्यों को संसाधनों के अंतरण से इस वृद्धि का पर्याप्त रूप से पता नहीं चलता क्योंकि राज्यों को अंतरित सकल प्राप्तियों की प्रतिशतता कम हो गई है ।

इस बात पर बल देना बहुत महत्व रखता है कि राजस्व अंतरण का माध्यम चाहे कुछ भी हो, मूल प्रश्न यह है कि राजस्व अंतरण की प्रमात्रा कितनी है और देश के आर्थिक विकास और राज्यों के संतुलित विकास संबंधी स्वीकृत उद्देश्य की प्राप्ति पर उनका अंततः क्या प्रभाव पड़ा है । हमारा विचार है कि इन वर्षों के दौरान राजस्व की सुपुर्दगी क्षेत्रीय असमानताएं दूर करने संबंधी आशाएं पूरी करने में असमर्थ रही है । 30 वर्षों से अधिक अवधि तक योजनाएं बनाने की प्रक्रिया के बावजूद क्षेत्रीय असमानताएं दूर नहीं की जा सकी हैं । दूसरी ओर यह और अधिक बढ़ गई हैं । वर्ष 1980-81 के बिहार में मौजूदा कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय 870 रुपये थी जबकि देश की औसत प्रति व्यक्ति आय 1571 रुपये थी । योजनाओं की पूरी अवधियों के दौरान बिहार की प्रति व्यक्ति आय देखने से पता चलेगा कि इस राज्य की प्रति व्यक्ति आय और समग्र रूप से देश की प्रति व्यक्ति आय के बीच अंतर बढ़ता गया है । प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० (औसत 1976-79) के संबंध में बिहार का स्थान सबसे नीचे है । इसमें प्रति व्यक्ति आय 753 रुपये है जबकि पंजाब में 2250 रुपये (जो कि सबसे अधिक है), उत्तर प्रदेश में 870 रुपये उड़ीसा में 918 रुपये है । मणिपुर, मेघालय जैसे विशेष दर्जा के प्राप्त राज्य भी बिहार राज्य से आगे निकल गए है । इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि क्षेत्रीय असमानताएं कितनी बढ़ रही हैं ।

देश में सर्वमुखी एक समान प्रगति हासिल करने के लिए अन्तर्राज्यिक असमानताएं दूर करना बहुत जरूरी है । संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त करने का उद्देश्य ध्यान में रखते हुए वित्तीय सुपुर्दगी का दृष्टिकोण पुनःनिर्धारित करने की जरूरत है । यह बात समझनी चाहिए कि क्षेत्रीय असमानताएं दूर करने के मूर्त परिणाम तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब पिछड़े हुए और अपेक्षाकृत समृद्ध राज्यों को एक समान मानकर उनकी वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण करने और फिर साधन आबंटन के लिए समान मानदंड विकसित करने की वर्तमान पद्धति समाप्त कर दी जाए । इसके स्थान पर जरूरत इस बात की है कि पिछड़े राज्यों की समस्याएं ध्यान में रखते हुए उनकी आवश्यकताओं को आंकने के लिए अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर संसाधन अंतरण के प्रयोजन से उनके लिए एक विशेष रवैया अपनाया जाए ।

किसी भी वित्त आयोग ने राजकोषीय समानता को एक स्पष्ट उद्देश्य के रूप में नहीं माना है । उन्होंने अन्तर्राज्यिक असमानताओं को दूर करने का उल्लेख किया है और इस प्रयोजन के लिए जहां कहीं उन्होंने कुछ पिछड़े हुए राज्यों के प्रशासनिक स्तर में अन्य राज्यों में मौजूद प्रशासनिक स्तर की अपेक्षा कमी देखी है उसे ऊंचा उठाने के लिए उन्होंने अनुदान के लिए सिफारिशें की हैं । कुछ राज्यों की विशेष समस्याओं को भी समझा गया है । परन्तु ऐसी सिफारिशों का स्वरूप ही कुछ ऐसा था कि उनका विषय-वस्तु क्षेत्र सीमित था और उनसे अंतर्राज्यिक असमानताओं की समस्या दूर करने की बहुत अधिक आशा नहीं की जा सकती थी । इसके लिए जरूरत इस बात की है कि संसाधनों की कुल सुपुर्दगी उन सिद्धांतों के अनुसार की जाए जो पिछड़ेपन का पूरा पूरा ध्यान रखें ।

छठे वित्त आयोग ने पिछड़े राज्यों की विशेष समस्याओं को समझ कर पहले के वित्त आयोगों की अपेक्षा अधिक निर्भीक कदम उठाए और पहली बार उन्हें उदारतापूर्वक संसाधन देकर महत्वपूर्ण प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं में राष्ट्रीय औसत तक ऊंचा उठने का अवसर दिया । सातवें वित्त आयोग ने इस दिशा में और भी अधिक काम किया । आठवें वित्त आयोग ने भी पिछड़े राज्यों के पक्ष में सिफारिशें की हैं और संसाधन सुपुर्दगी की स्कीम अधिक प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न किया है । आयोग का विचार है कि राष्ट्रीय हित में इसी बात की सबसे अधिक जरूरत है । आठवें वित्त आयोग ने उन बातों को अधिक महत्व दिया है जिनसे पिछड़े राज्यों की मदद होती है । हम महसूस करते हैं कि यह कदम सही दिशा में लिया गया है और इसे इसी भावना से आगे बढ़ाने की जरूरत है ।

अंत में हम यह कह सकते हैं कि संविधान के निर्माताओं की आशाएं इस कारण से हर तरह से पूरी नहीं हुई है क्योंकि वित्त-आयोग की संस्था में कुछ खामियां हैं परन्तु इसलिए पूरी नहीं हुई क्योंकि इसके पीछे दो कारण है । पहला यह कि राज्यों की आवश्यकताओं और उनके संसाधनों के बीच अंतर का निर्धारण एक ऐसी कार्यविधि पर आधारित किया जाता है जिसमें सुधार की बहुत गुंजाइश है और दूसरे प्रत्येक वित्त आयोग ने राज्यों के सापेक्ष पिछड़ेपन को आंकने के लिए अपना ही तरीका विकसित किया है । यही कारण है कि राज्यों के पिछड़ेपन की सही-सही सीमा और स्वरूप को बताने वाले कारकों को अलग-अलग तरीके से महत्व दिया जाता रहा है । हम विश्वास करते हैं कि पिछले कुछ समय से इस बात को अधिक से अधिक समझा जा रहा है कि संतुलित विकास केवल अन्तरर्राज्यिक असमानताएं दूर करने पर अधिक से अधिक बल देने से ही हासिल किया जा सकता है और इस दिशा में सुनिश्चित कदम उठाने से संसाधनों की पर्याप्त वित्तीय सुपुर्दगी सुनिश्चित हो सकेगी और पिछड़े हुए राज्य अधिक विकसित राज्यों के बराबर आने में समर्थ हो सकेंगे । इस प्रकार संविधान के निर्माताओं ने वित्तीय प्रबंध का जो वास्तविक उद्देश्य सामने रखा था वह पूरा हो सकेगा ।

5.2 हम इस बात से सहमत है कि केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने जो टिप्पणियां की थीं वे आज भी सही हैं । केन्द्र पहले की तरह वित्तीय दृष्टि से प्रभुत्व रखता है और राज्य अपने अनेक दायित्वों को पूरा करने हेतु वित्तीय आहरण करने के लिए केन्द्र पर निर्भर हैं । इसके साथ ही हम यह भी विश्वास करते है कि संविधान द्वारा केन्द्र और राज्यों को कर लगाने संबंधी शक्तियों के आबंटन को देखते हुए और संघ सरकार की करों से इतर वित्तीय संसाधनों के अन्य विभिन्न स्रोतों तक पहुंच होने के कारण यह स्थिति पैदा होना बहुत स्वाभाविक है । केन्द्र से सम्बद्ध राजस्व असंतुलन की यह घटना अन्य परिसंघों के लिए नयी नहीं है और न ही यह हमारे संघीय ढांचे के लिए अप्रत्याशित है । वास्तव में हमारे संविधान के निर्माता इस संभाव्यता के बारे में सचेत थे । इसलिए उन्होंने वित्तीय व्यवस्था में राज्यों को विभिन्न प्रकार के राजस्व अंतरणों

की प्रक्रिया का जानबूझ कर उपबंध किया है । हमने प्रश्न संख्या 5.1 के उत्तर में राज्यों को संसाधनों के अंतरण के प्रभाव और राजस्व असंतुलन के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार किया था । हमें वही बातें दोहराने की जरूरत नहीं हैं । हम केवल इतना दोबारा कहना चाहेंगे कि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों पर लागू होने वाले संवैधानिक उपबंध अपने आप में पर्याप्त हैं । इसलिए उनमें कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है । इस प्रश्न में सुझाए गए विभिन्न विकल्पों के बारे में हम अपने विचार दे रहे हैं जो इस प्रकार हैं :—

विकल्प "क" में संघ तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों में बुनियादी परिवर्तन करने की परिकल्पना की गई है । जैसा कि हमने ऊपर भी बताया है हम केन्द्र और राज्यों के बीच संवैधानिक उपबंधों में किसी परिवर्तन के पक्ष में नहीं हैं । परन्तु यदि यह विकल्प स्वीकार भी कर लिया जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि कर लगाने से संबंधित कुछ अन्य शीर्ष / राज्य-सूची में अंतरित कर दिए जाएं और ऐसा करने से केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अंतरण का प्रश्न ही नही उठेगा । दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है कि इस विकल्प से यह सुझाव मिलता प्रतीत होता है कि कर की केवल कुछ ऐसी मदों को राज्यों के नियंत्रणाधीन कर देने मात्र से ही राज्यों को वित्तीय स्वतंत्रता हासिल हो सकेगी जो मदें अब तक उनके पास नहीं है । यहां यह भी बता दिया जाए कि संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संबंध केवल कर लगाने की शक्तियों तक ही सीमित नहीं है और न ही यह कहा जा सकता है कि राज्यों को कर लगाने की और अधिक शक्तियां देने मात्र से ही उनकी केन्द्र पर निर्भरता समाप्त हो जाएगी और राज्यों की हैसियत संसाधन प्राप्त करने वाले की और केन्द्र की हैसियत संसाधन देने वाले की नही रह जाएगी । इस संबंध में यह बात याद रखी जाए कि राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता केवल केन्द्र से राज्यो को संसाधनों के अंतरण संबंधी उपबंधों के कारण ही नही है ।

बड़ी मात्रा में योजनागत सहायता इन संवैधानिक उपबंधों के सीमा-क्षेत्र से बाहर है फिर भी राज्य बहुत हद तक केन्द्रीय सहायता के लिए केन्द्र की तरफ देखते है और वे केन्द्र पर पर्याप्त रूप से निर्भर करते हैं । राज्यसूची में कुछ अधिक लचीले कर जोड़ देने मात्र से ही इस स्थिति में शायद ही कोई परिवर्तन आ सके । इसके अतिरिक्त जो मार्ग सुझाया गया है उसमें संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के कुछ अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों की उपेक्षा की गई है । उदाहरण के लिए बाजार-उधार और राज्यों को केन्द्रीय ऋण, जिनसे राज्य अपनी अर्थोपायों संबंधी कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं, राज्यों के लाभ के लिए विदेशी निधियों का उपयोग आदि कुछ ऐसे मामले हैं जिनके संबंध में राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता तब भी जारी रहेगी यदि राज्यों को कर लगाने की कुछ अधिक शक्तियां अंतरित भी कर दी जाएंगी ।

एक अन्य कारण भी है जिसकी वजह से यह सुझाव हमें उचित प्रतीत नहीं होता । कराधान के स्वरूप और आधार को ध्यान में रखकर तथा साथ ही कर लागू करने में किफायत को ध्यान में रखकर संबंधित प्राधिकरणों में कर लगाने की शक्तियां निहित की जा सकती हैं।

इसलिए जहां कर का आधार देशव्यापी है वहां केन्द्र सरकार ही कर लगाने और इसे वसूल करने के लिए उपयुक्त प्राधिकरण है । इसके अतिरिक्त किफायत तथा ऐसे कर लागू करने में कार्य-कुशलता को ध्यान में रखते हुए ऐसे कर उद्गृहीत करने और वसूल करने की शक्ति केन्द्र सरकार में ही निहित होनी चाहिए । राज्य अपने नागरिकों पर वह कर लगा सकते हैं जो उनकी अपनी-अपनी प्रादेशिक अधिकारिता के भीतर हुई आय पर लगाया जा सकता है । कहने का तात्पर्य यह है कि कर लगाने की शक्तियों का वितरण करते समय परिसंघीय ढांचे की मान्य अपेक्षाओं को भी ध्यान में रखना जरूरी है । जिन करों का राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर सामान्य रूप से प्रभाव पड़ता है या अन्तर-राज्यिक व्यापार या वाणिज्य पर जिनका प्रभाव हो सकता है उन्हें केन्द्र के पास ही रहने दिया जाए । यह तर्क देना बेकार है कि आयकर, सीमाशुल्क, या केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क जैसे कर राज्यों को अंतरित कर दिए जाएं । ऐसा करना आर्थिक दृष्टि से अस्थिर होगा और प्रशासनिक दृष्टि से अनुचित होगा । कर लगाने की शक्तियों का अनुचित आबंटन करने से कर प्रणाली में विकृतियां आ जाएंगी और कर राजस्व के संसाधनों का इष्टतम दोहन नहीं हो सकेगा ।

उपर्युक्त कारणों को देखते हुए हम ऊपर (क) पर उल्लिखित विकल्प का समर्थन नहीं करते । उपर्युक्त पैराग्राफ के कारणों से हम (ख) में दिए गए सुझावों से भी सहमत होने के लिए बाध्य नहीं हैं। (ग) में दिए गए विकल्प में तीन बातें परिकल्पित हैं । पहली बात यह है कि सभी कर संबंधी शीर्ष/कर लगाने की शक्तियां संघ-सूची में अंतरित कर दी जाएं जिसका अर्थ यह होगा कि राज्यों को कर लगाने की कोई शक्ति नहीं होगी । दूसरे शब्दों में उनका अपना कर-राजस्व का कोई स्रोत नहीं रहेगा क्योंकि कर से होने वाली सभी प्राप्तियां भारत की समेकित निधि में चली जाएंगी जो विभाजन योज्य सामूहिक-निधि के रूप में होगी । इसी सामूहिक -निधि से राज्यों को अपना-अपना हिस्सा मिलेगा ।

दूसरे, यह प्रस्ताव किया गया है कि संघ तथा राज्यों के लिए समग्र रूप से अपना-अपना हिस्सा स्वयं संविधान में ही विनिर्दिष्ट होना चाहिए । स्पष्ट है कि इसके लिए संविधान में संशोधन करना अपेक्षित होगा । इसके अतिरिक्त संविधान में राज्यों का हिस्सा विनिर्दिष्ट करने से वित्त आयोगों से हिस्से योग्य आय या करों में हिस्से में समग्र रूप से राज्यों का हिस्सा निर्धारित करने की मौजूदा शक्ति छिन जाएगी। इस संबंध में हम एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दे की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे । विभाजन योग्य सामूहिक निधि में राज्यों का हिस्सा विनिर्दिष्ट करने वाला संवैधानिक उपबंध स्थायी प्रकार का होगा और उसे आवधिक रूप से दोहराया नहीं जा सकेगा, जैसा कि वर्तमान समय में किया जाता है । फिलहाल वित्त आयोग हर पांच वर्षों के बाद केन्द्र तथा राज्यों के वित्त की समीक्षा करते हैं और समग्र रूप से केन्द्र तथा राज्यों के अपने-अपने हिस्से निर्धारित करने के लिए सिद्धान्तों की सिफारिश करते हैं । हमेशा के लिए राज्यों के हिस्से एक ही बार निर्धारित कर देने से यह आशंका बनी रहेगी कि ऐसा केवल केन्द्र-राज्य संबंधों में टकराव से बचने के लिए एक उपाय के तौर पर किया गया है क्योंकि आर्थिक और वित्तीय स्थितियों में स्पष्ट परिवर्तन के बावजूद, जिसकी वजह से राज्यों को राजस्व की सुपुर्दगी पर नए सिरे से विचार करना जरूरी हो सकता है, एक बार निश्चित किया गया राज्यों का हिस्सा उस समय तक अनिश्चित काल के लिए बना रहेगा जब तक संविधान में संशोधन नहीं कर दिया जाता । जब तक आवधिक समीक्षा के लिए इसमें कोई उपबंध नहीं जोड़ा जाता तब तक केन्द्र-राज्य संबंधों की दृष्टि से यह मार्ग अपनाना गैर-उत्पादक साबित हो सकता है ।

जहां तक विकल्प (घ) का प्रश्न है हम इस विचार के पक्ष में नही है कि सीमाशुल्क से होने वाली आय में राज्यों के साथ हिस्सा बांटा जाए । परन्तु निगम-कर तथा आय कर पर अधिभार से होने वाली आय का मामला दूसरा है ।

निगम-कर के मामले में हमने वित्त आयोग के सामने यह बात रखी थी कि निगम-कर से होने वाली आय में राज्यों के साथ हिस्सा बंटाया जाए । वस्तुतः संविधान लागू होने से पहले भी केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच निगम - कर में हिस्सा बांटा जाता था । संविधान में

भी, जैसा कि यह मूल रूप से तैयार किया गया था, निगम-कर से होने वाली आय को विभाजन योग्य आय में ही रखा गया था। वर्ष 1959-60 में संशोधन करके कंपनियों द्वारा प्रदत्त आयकर को विभाजन-योग्य सामूहिक-निधि में से बाहर निकाल दिया गया था।

पिछले कुछ वर्षों से निगम-कर से होने वाली आय आयकर से होने वाली आय की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई है। यदि 1959-60 के संशोधन द्वारा कंपनी आय पर कर को विभाजन योग्य सामूहिक-निधि से बाहर न किया जाता तो राज्यों को निगम-कर की आय में से उनका हिस्सा मिलता रहता क्योंकि आय-कर की अपेक्षा निगम-कर अधिक प्रचुर मात्रा में इकट्ठा होता है। इस प्रकार राज्यों को राजस्व के इस बढ़ते हुए संशोधन में हिस्से से वंचित रखा गया है।

जहां तक निगम-कर का प्रश्न है, आठवें वित्त आयोग ने राज्यों की जो शिकायतें दर्ज की हैं वे और भी अधिक गंभीर हैं। छठे वित्त आयोग की इस सिफारिश का कि निगम-कर को विभाजन योग्य सामूहिक निधि में शामिल करने का मामला राष्ट्रीय विकास परिषद् में उठाया जाए, कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकला। 19 तथा 20 मई, 1979 को हुई मुख्य मंत्रियों की बैठक के परिणामों से भी राज्य संतुष्ट नहीं हुए क्योंकि उनका मामला इस तर्क के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि निगम-कर क्योंकि आयकर के सदृश्य है इसलिए आयकर के वितरण पर लागू होने वाले सिद्धांतों के अनुसार राज्यों में इसका वितरण करने से समृद्ध राज्यों की लागत पर अल्प-विकसित राज्यों को फायदा होगा। ऐसा लगता है कि यह विचार उस परम आवश्यकता को नहीं समझ सकता जिसके अनुसार अन्तरराज्यिक असमानताओं को दूर करने के लिए पिछड़े राज्यों के पक्ष में वित्तीय सुपुर्दगी करना बहुत जरूरी है।

आठवां वित्त आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि इस मामले पर बहुत समय से विचार-विमर्श करना बाकी रहता है क्योंकि केन्द्र राज्य संबंधों में इस प्रमुख टकराव को दूर करना बहुत महत्व रखता है। निगम-कर बहुत अधिक लचीला है इसलिए यह उचित है कि राज्यों की इस राजस्व के स्रोत तक पहुंच हो।

अतः, हम विचार का समर्थन करते हैं कि निगम-कर को विभाजन योग्य सामूहिक-निधि के अंतर्गत लाया जाए।

जहां तक आयकर पर केन्द्र द्वारा लगाए जाने वाले अधिभार का प्रश्न है हम लगातार वित्त आयोगों से यह अनुरोध करते रहे हैं कि इस आय में राज्यों के साथ हिस्सा बंटाया जाए। हम संघ के अपने प्रयोजनों के लिए अधिभार उद्गृहीत करने के अधिकार से सहमत हैं फिर भी हमारा पक्का विचार है और जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने भी महसूस किया था कि अनुच्छेद 271 में स्पष्ट शब्दों में यह निर्दिष्ट नहीं किया गया है कि संघ के अधिभार का उपयोग आपात-कालीन आवश्यकताओं से होने वाले केन्द्र के बोझ को हल्का करने के लिए किया जाना चाहिए। यह धारणा अन्तर्निहित है कि अधिभार अप्रत्याशित घटनाओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए ही उद्गृहीत किया जाए और यह केवल तब तक के लिए किया जाए जब तक आपातस्थिति बनी रहे। इस बात को ध्यान में रखते हुए यदि अधिभार अनिश्चित काल के लिए जारी रखा जाता है तो इसे अतिरिक्त आयकर कहा जाना चाहिए और आयकर से होने वाली शेष आय के साथ इसमें भी हिस्सा होना चाहिए।

आठवें वित्त आयोग ने संवैधानिक स्थितिपर बल दिया है कि अधिभार को आयकर के साथ मिलाने की अनुमति नहीं है। परन्तु फिर भी आयोग ने इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि अधिभार से होने वाली आय के कारण केन्द्र के संसाधनों में वृद्धि हुई है और आयकर की विभाजन योग्य सामूहिक-निधि में राज्यों का कितना हिस्सा होना चाहिए। यह राज्यों के मामलों की विधि सम्मता को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करने के बराबर है कि आयकर पर अधिभार से होने वाली आय में उनका हिस्सा मांगना न्यायोचित है।

हम आयकर पर अधिभार को एक स्थायी लेकिन अलग महसूल के रूप में बनाए रखने की तर्कसंगतता के बारे में आश्वस्त नहीं हैं। अधिभार को आयकर की मूल दरों के साथ सम्मिलित कर देना अधिक उपयुक्त और तर्कसंगत होगा। यह सुझाव देते समय हम उस पूर्व उदाहरण को ध्यान में रख रहे हैं जब कुछ वर्षों तक आयकर पर उद्गृहीत अधिभार को द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आयकर की मूल दरों में मिला दिया गया था। फिर से ऐसा करने में कोई रुकावट नहीं है और विशेष रूप से तब जब अधिभार वैयक्तिक आय पर कराधान की एक नियमित और स्थायी विशेषता बनकर रह गई है। परन्तु यदि कुछ कारणों से ऐसा करना संभव प्रतीत न हो तो अधिभार से होने वाली आय को राज्यों के साथ विभाजन योग्य बना दिया जाए।

अब हम विकल्प (क) के बारे में विचार करेंगे। प्रश्न संख्या 5.14 के उत्तर में हमने सुझाव दिया है कि विशेष वाहक बंध पत्रों से होने वाली आय में राज्यों को हिस्सा दिया जाए। हमने निर्देशित कीमतों से संबंधित नीति में उपयुक्त संशोधन करने की आवश्यकता के बारे में भी इस आशय से अपने विचार प्रकट किए थे कि राज्यों को केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क राजस्व में उनके उस न्याय संगत हिस्से से वंचित न रखा जाए जिसके वे निर्देशित कीमतों में वृद्धि होने के कारण कुछ हिस्से के हकदार हैं। हमने यह भी सुझाव दिया है कि अनिवार्य निक्षेप जमा स्कीम (आयकर-दाता) के अन्तर्गत निक्षेप जमा को निवल लघु बचत वसूली के समान माना जाए और उसका कुछ हिस्सा राज्यों को दे दिया जाए।

हम यह आवश्यक नहीं समझते कि केन्द्र के अन्य कर-इतर राजस्व में राज्यों को हिस्सा दिया जाए।

निष्कर्ष यह है कि हम ऐसा नहीं समझते कि किसी भी विकल्प को अपनाने से राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता की वर्तमान स्थिति में कोई बहुत बड़ा अन्तर आएगा। दूसरी ओर, हम यह महसूस करते हैं कि वित्त आयोग की कार्यप्रणाली में वांछित परिवर्तन आ जाने से, जिसका हमने पहले भी उल्लेख किया है और कुछ प्रश्नों के संबंध में उत्तर भी दिया है, वित्तीय सुपुर्दगी की मौजूदा व्यवस्था से राज्यों को संतोष होगा बशर्ते कि केन्द्र के कुछ कर तथा कर-इतर राजस्व में राज्यों को भी हिस्सा दिया जाए, जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है।

5.3 सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने का प्रशंसनीय उद्देश्य तथा विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समूहों में असमानताएं दूर करने के उद्देश्य के संबंध में कोई दो राय नहीं हैं। वस्तुतः भारत में आयोजना का एक स्वीकृत उद्देश्य संतुलित क्षेत्रीय विकास के साथ-साथ आर्थिक विकास करना है। समाज के विभिन्न वर्गों में आय और सम्पदा की असमानताएं कम करना योजनाबद्ध प्रगति का एक स्पष्ट लक्ष्य रहा है।

यह भी सच है कि अलग-अलग कारणों से सभी राज्य आर्थिक दृष्टि से समान नहीं हैं। इसीलिए उनके अपने साधनों से क्षेत्रीय असमानताएं कम करने या सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त करने की क्षमता भी बहुत अलग-अलग हैं। महत्वपूर्ण मुद्दा तो यह है कि क्या केन्द्र को राजस्व के अधिक लचीले संसाधन सौंपकर और अपने विवेक से निधियों का प्रयोग करने की शक्तियां देकर अधिक मजबूत बनाया जाए ताकि वह अपेक्षाकृत गरीब राज्यों का विकास कर सके।

हम एक मजबूत केन्द्र के पक्ष में हैं परन्तु साथ ही हमारा मत है कि मजबूत केन्द्र की कल्पना मजबूत राज्यों के विरुद्ध नहीं जाती क्योंकि हमारा पक्का विश्वास है कि भारत क्योंकि राज्यों का संघ है (भारतीय संविधान में "फेडरेशन" शब्दों का उल्लेख नहीं है), इसलिए वह केवल तभी मजबूत हो सकता है जब इसके राज्य मजबूत हों। वित्तीय संबंधों का पुन-निर्धारण करते समय इन बुनियादी तथ्यों को अवश्य ध्यान में रखा जाए।

संविधान में यथापरिकल्पित केन्द्र तथा राज्य के बीच वित्तीय शक्तियों का वितरण इस प्रकार से किया गया है कि केन्द्र में शक्तियों के अत्यधिक केन्द्रीकरण और राज्यों में शक्तियों के व्यापक विकेन्द्रीकरण के बीच संतुलन लाकर उनके परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले हितों में सामंजस्य स्थापित किया जाए। केन्द्र तथा राज्यों के बीच राजस्व का विभाजन इसी के अनुसार किया गया और राजस्व अंतरण की प्रक्रिया इस प्रयोजन से तैयार की गई कि संविधान द्वारा किए गए वित्तीय प्रबंध से यदि कोई राजस्व संबंधी असंतुलन हो जाए तो उसे ठीक किया जा सके।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर इस प्रश्न का हल खोजना चाहिए। केन्द्र के लिए उपयुक्त करों के विभिन्न स्रोत केन्द्र सरकार को आबंटित किए गए हैं। जो कर राज्यों द्वारा उपयुक्त रूप से उद्‌गृहीत और वसूल किए जा सकते हैं वे राज्यों को सौंपे गए हैं। इसके अतिरिक्त वित्तीय समायोजन का भी उपबंध किया गया है। केन्द्र तथा राज्यों के बीच कर लगाने संबंधी शक्तियों के विभाजन के पीछे बुनियादी सिद्धांत यह है कि जिन करों से पूरे देश के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है वे केन्द्र द्वारा लगाए जाएं। इसके अनुसार सीमाशुल्क, कम्पनी आय पर कर, उत्पाद-शुल्क आदि केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं। दूसरी ओर राज्यों को ऐसे कर लगाने की शक्तियां दी गई हैं जो देश की पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित नहीं करते। उनका प्रभाव स्थानीय किस्म का होता है और प्रशासनिक कार्यकुशलता तथा वसूली की सापेक्ष लागत को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त रूप से राज्यों को सौंपे गए हैं।

इसलिए राज्यों को आबंटित कुछ कर यदि केन्द्र को अंतरित कर दिए जाते हैं तो एक ओर तो राज्यों के पास उनके अपने सामान्य खर्चों को पूरा करने के लिए और सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक सेवाएं देने के लिए बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं रहेंगे तथा दूसरी ओर संविधान में प्रतिपादित वित्तीय योजना की व्यवस्था बिगड़ जाएगी। हमने प्रश्न संख्या 5.1 के उत्तर में पहले ही बता दिया है कि संसाधनों के विभाजन तथा वित्तीय पुनर्समायोजन की स्कीम निर्दिष्ट करने वाले संवैधानिक उपबंध अपने आप में पर्याप्त हैं इसलिए उनमें कोई परिवर्तन करना जरूरी नहीं है।

इस समय जो कर राज्य के पास हैं उनमें से कुछ कर केन्द्र को सौंपने का सुझाव यदि स्वीकार कर लिया जाए तो इससे केन्द्र स्तर पर राजस्व के संसाधनों का अनावश्यक केन्द्रीकरण हो जाएगा तथा वित्तीय समायोजन की समस्याएं और भी अधिक जटिल हो जाएंगी। केन्द्र तथा राज्य सम्बन्ध सुधारने की बजाए और भी अधिक टकराहट भरे हो जाएंगे। वित्तीय प्रबंध के मामले में राज्यों की सोच-विचार कर काम करने की प्रवृत्ति कमजोर हो सकती है क्योंकि सरकारी खर्च के लिए आवेश करने की उनकी जिम्मेदारी की भावना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

इसके अतिरिक्त राज्य करों के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए यह कहना मुश्किल है कि वे लचीलेपन में या प्रचुरता के मामले में केन्द्रीय करों के समान हैं।

केन्द्रीय करों से आय की तुलना में यदि राज्य करों से आय को देखा जाए तो पता चलेगा कि केन्द्र द्वारा उद्‌गृहीत कर केन्द्र तथा राज्य दोनों द्वारा उद्‌गृहीत करों के कुल करों का 67% होते हैं। इसलिए केन्द्र को कुछ राज्य कर अंतरित कर देने से कोई बहुत बड़ा लाभ प्राप्त होने की उचित संभावना प्रतीत नहीं होती। इसके अतिरिक्त इस समय राज्यों को आबंटित कुछ या अन्य कर केन्द्र को सौंप देना आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी और प्रशासनिक दृष्टि से असमीचीन होगा।

दूसरी ओर इससे उस स्थिति में अनेक नुकसान होंगे यदि कर लगाने संबंधी शक्तियों की पुनःव्यवस्था करते हुए केन्द्र को कुछ और कर अंतरित कर दिए जाएंगे। सबसे पहले तो ऐसा करने से केन्द्र से सम्बद्ध वित्तीय असंतुलन भारतीय संघ की राजस्व संबंधी मौजूदा पद्धति में केन्द्रीकरण को और भी अधिक बढ़ा देगा। दूसरे, राज्यों के पास अपने संसाधन लगभग नाम मात्र रह जाएंगे और वे अपनी जरूरतों के लिए केन्द्र पर पूरी तरह से निर्भर हो जाएंगे। इसके परिणामस्वरुप उचित वित्तीय अनुशासन न होने के कारण वे लगातार कमजोर पड़ते जाएंगे। तीसरे, केन्द्र तथा राज्यों के बीच करों के पुनर्आबंटन से संसाधन आबंटन का आधार ही एकदम विकृत हो जाएगा और इस प्रकार राज्यों के कार्यों तथा संसाधनों के बीच अनुरूपता न होने का दुष्प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाएगा। सबसे बड़ा प्रभाव तो यह होगा कि राजकोषीय परिसंघ (फेडरेशन) को सबसे बड़ा नुकसान पहुंचेगा। वास्तव में बहुत अधिक केन्द्रीकरण होने के कारण विपरीत दिशा की ओर झुकाव हो जाएगा।

हमें यह बात भी अधिक स्पष्ट नहीं है कि केन्द्र को राजस्व के अधिक लचीले संसाधन देने और केन्द्र के पास उपलब्ध निधियों का अपेक्षाकृत गरीब राज्यों के विकास के लिए उपयोग करने की अधिक विवेकाधीन शक्तियों के अंतरण से क्षेत्रीय असंतुलन बहुत बड़े पैमाने पर किस प्रकार कम होंगे। इसका प्रभाव यह होगा कि केन्द्र के पास निधियों का अत्यधिक केंद्रीकरण हो जाएगा तथा राज्यों के पास अपने संसाधन बहुत कम हो जाएंगे और अपने दायित्व पूरा करने के लिए उनकी वित्तीय क्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। हमारा देश क्योंकि एक विकासशील देश है इसलिए विकासोन्मुख राजस्व नीति की जरूरत स्वतः स्पष्ट है। इस नीति का उद्देश्य राजस्व का अंतर्क्षेत्रीय अंतरण होना चाहिए जिसके साथ क्षेत्रीय विकास और साथ ही न्यायसंगत विभाजन भी हो। इसलिए संसाधनों के केन्द्रीकरण से ही क्षेत्रीय असंतुलन दूर नहीं होगा। दूसरी ओर अलग-अलग क्षेत्रों के संसाधन सम्पन्नता में विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए अल्पविकसित क्षेत्रों में संसाधन लगाना और भी अधिक जरूरी होगा। राजस्व अंतरण द्वारा वित्तीय समायोजन के प्रश्न को सुलझाने से ही अन्तर्राज्यिक असमानताएं कम हो सकती हैं। केन्द्र के हाथ में अधिक विवेकाधीन शक्तियां दे देने या केन्द्र को अधिक राजस्व दे देने से ही यह उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए यह अधिक संगत है कि संसाधन अंतरण के ऐसे सिद्धांत तैयार किए जाएं जिनसे अंतर्राज्यिक असमानताएं दूर हो सकें।

हम यह आवश्यक नहीं समझते कि राज्यों को भी कर लगाने की अधिक शक्तियां दी जाएं। हमारा तर्क केवल इतना है कि केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों की मौजूदा पद्धति में तथा राजस्व अंतरण के संबंध में लागू होने वाले सिद्धान्तों में उपयुक्त संशोधन किया जाए ताकि और अधिक क्षेत्रीय समानता हासिल करने के सिद्धान्तों को अधिक कारगर बनाया जा सके।

5.4 पूर्ववर्ती प्रश्न में यह उद्देश्य निर्धारित किया गया है कि सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था की जाए और अलग-अलग क्षेत्रों में रह रहे लोगों के समूहों में असमानताएं दूर की जाएं। सामाजिक न्याय के साथ-साथ विकास हासिल करना इस देश में योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों का एक स्वीकृत लक्ष्य है। इस निर्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनाई गई विकास संबंधी कार्यनीति सामाजिक तथा आर्थिक न्याय को अपेक्षित प्राथमिकता देती है। इसके अतिरिक्त लोगों में आय और संपत्ति में असमानताएं दूर करने तथा साथ ही अन्तर्क्षेत्रीय विसंगतियां दूर करने पर भी बल देती हैं।

संवैधानिक उपबंधों द्वारा संघ को आबंटित वित्तीय संसाधनों के कारण केन्द्र राज्यों की अपेक्षा क्योंकि अधिक लाभ की स्थिति में हैं और विकास के लिए आयोजन केन्द्र सरकार द्वारा योजना आयोग के तंत्र द्वारा निर्देशित और विनियमित होती है इसलिए संतुलित विकास के लिए केन्द्र को अधिकांश जिम्मेदारी उठानी चाहिए जिसका अर्थ है अन्तर्क्षेत्रीय विसंगतियां दूर की जाएं तथा विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समूहों में असमानताएं दूर की जाएं।

किसी भी विकासशील देश को अपने बढ़ते हुए खर्च को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक राजस्व चाहिए। पिछले प्रश्न में निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राजस्व की जरूरत और भी अधिक बढ़ गई है। अधिक राजस्व संसाधन जुटाने के लिए अनेक उपाय हैं परन्तु राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की जरूरत को ध्यान में रखते हुए चयन करना पड़ेगा।

कराधान एक ऐसा मार्ग है जिसका उपयोग सरकारें राजस्व एकत्रित करने के लिए करती है परन्तु यह बात समझ लेनी चाहिए कि राजस्व एकत्रित करने के साथ साथ कराधान का उद्देश्य विनियमन करना और आर्थिक नियंत्रण करना भी है। योजना आयोग ने कर संबंधी नीति को विकास के लिए संसाधन जुटाने और उन संसाधनों को योजनागत प्राथमिकताओं के अनुसार आबंटित करने का एक साधन माना है। इस प्रकार कराधान विकास के लिए वित्त का एक महत्वपूर्ण साधन है। परन्तु यह बात स्पष्ट समझ ली जाए कि कराधान के माध्यम से एकत्रित राजस्व स्वत: ही सामाजिक न्याय प्राप्त करने या असमानताएं दूर करने के लिए उपलब्ध नहीं होगा। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिए कितनी प्राथमिकता दी गई है। इस मामले में सामाजिक न्याय या अन्तक्षेत्रीय असमानताएं दूर करने को उच्च प्राथमिकता नहीं दी गई है। यदि इन्हें उच्च प्राथमिकता दी जाती तो इन क्षेत्रों के लिए संसाधनों का पर्याप्त आबंटन सुनिश्चित हो सकता था।

इसके बावजूद अधिक संसाधन एकत्रित करने की जरुरत के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता। प्रश्न यह है कि यह काम कराधान के माध्यम से किया जाए या नहीं और यदि किया जाए तो किस सीमा तक? कुछ लोगों का कहना है कि विकासशील देश अलग-अलग तरीके से कर एकत्रित करते हैं। ऐसे देशों के मामले में सकल राष्ट्रीय उत्पाद से कर राजस्व का अनुपात लगभग 15% है जबकि विकसित देशों के मामले में यह अनुपात लगभग 30% है। दूसरे शब्दों में यह सुझाव दिया गया है कि या तो अधिक कर लगाए जाएं या अधिक राजस्व एकत्रित करने के लिए मौजूदा कराधान का स्तर और अधिक बढ़ा दिया जाए। परन्तु यह कहना मुश्किल है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद से कर राजस्व के अनुपात को देखकर यह आवश्यक रुप से पता चल जाता है कि कराधान का मौजूदा स्तर विकासशील देशों में लोगों की कर योग्य क्षमता से बहुत नीचे है। वास्तव में यह बात सभी मानते हैं कि कर योग्य क्षमता को गणितीय दृष्टि से नहीं मापा जा सकता परन्तु संसाधन जुटाने के लिए कराधान का प्रयोग एक सीमा तक ही किया जा सकता है क्योंकि राजस्व में वृद्धि करना कर संबंधी नीति का केवल एक उद्देश्य है। कराधान के माध्यम से संसाधन इकट्ठे करने की राजनैतिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक सीमाएं हैं। हमारा विचार है कि इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए पिछले प्रश्न में निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारत सरकार केवल कराधान के माध्यम से ही और अधिक संसाधन नहीं जुटा सकती।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के हित में तथा अपेक्षाकृत अधिक संसाधनों की जरुरत को ध्यान में रखते हुए कर संबंधी ढांचे में समायोजन करने की हमेशा गुंजाइश रहती है। ऐसे प्रयत्नों में करों को कुशलतापूर्वक और कड़ाई से लागू करना शामिल है ताकि करवंचन की संभावना कम से कम हो। कर संबंधी प्रशासन में अनेकानेक कमियों को दूर करना अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाए ताकि कर वंचन के मामलों में कड़े कदम उठाकर मौजूदा कर ढांचे से भी आमदनी बढ़ाई जा सके। इसका एक उदाहरण है छिपी हुई आय का पता लगाकर वाहक बंध-पत्रों की विशेष स्कीम में ऐसा धन निवेश करवाया जाए। साधारण कार्य के दौरान ऐसी आय का निर्धारण किया जाता है और उस पर कर लगाया जाता है। यह भी हो सकता है कि छिपी हुई आय के अन्य अनेक मामले हों जिनका अभी तक कुछ नहीं पता।

हम कुछ सिद्धांतों का आश्रय लेकर अपेक्षाकृत समृद्ध राज्यों के परिदान से केन्द्रीय सामूहिक निधि में अधिक राजस्व एकत्रित करने के पक्ष में नहीं है। ऐसा करना स्पष्ट रूप से स्तर को और ऊंचा उठाने की अपेक्षा स्तर को और नीचा गिरा कर असमानताएं दूर करने के बराबर होगा। इसके अतिरिक्त ऐसी व्यवस्था करने के लिए संविधान में संशोधन करना पड़ेगा और पहले के प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट किए गए कारणों से ऐसा करना हम आवश्यक नहीं समझते। यदि इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया गया तो उससे परिहार्य अन्तर्राज्यिक टकराव होगा और इसे हम राष्ट्रीय एकता के हित में बाधक समझते हैं।

व्यय पर बेहतर नियंत्रण संसाधन सुरक्षित रखने का एक श्रेष्ठ तरीका है। सरकारी व्यय को सुव्यवस्थित करने में ही वित्तीय दृष्टि से समझदारी निहित है। ऐसा करने से ही उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित हो सकेगा। हमारा विश्वास है कि करों का दक्षतापूर्वक और कड़ा प्रशासन तथा सरकारी व्यय पर कड़ा नियंत्रण और इसके साथ ही कर ढांचे में समायोजन करने से केन्द्र तथा राज्यों के संसाधनों की स्थिति में पर्याप्त सुधार होगा।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव-पत्र में संसाधनों में वृद्धि के संबंध में जो कहा गया है उससे हम पूर्णतया सहमत हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है, कि करों की दर में वृद्धि किए बिना ही कर-प्रशासन को व्यापक बनाकर और प्रशासन सुधारकर करों से होने वाली वसूली में वृद्धि की जा सकती है"।

हम प्रस्ताव-पत्र की इस बात से भी सहमत हैं कि उपलब्ध संसाधन ऐसे ढंग से जुटाए जाएं जिससे घाटे की अर्थव्यवस्था पर कम से कम निर्भर होना पड़े क्योंकि उससे मुद्रास्फीति की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। आर्थिक विकास के लिए घाटे की अर्थव्यवस्था का हालांकि बहुत से विकासशील देशों द्वारा समर्थन किया जाता है और आमतौर पर इसका पालन भी किया जाता है परन्तु इसमें अनेक कमियां हैं और जब तक इसका उपयोग संयमित रूप से और सोच-समझकर नहीं किया जाता तब तक इससे लाभ होने की बजाए हानि अधिक हो सकती है। इसलिए घाटे की सीमित अर्थव्यवस्था को हमेशा तरजीह दी जाती है।

हमारा विचार है कि और अधिक संसाधन एकत्रित करने का काम प्रस्ताव-पत्र में उल्लिखित तरीके से किया जाए। इस संबंध में हम यह बात जोर देकर कहना चाहेंगे कि एक ओर जहां संसाधन एकत्रित करने के उपायों का अपना महत्व है वहां यह बात भी अधिक नहीं तो कम से कम उतनी ही महत्वपूर्ण है कि राज्यों की आवश्यकताओं का उचित मूल्यांकन वास्तविक आधार पर किया जाए और उपलब्ध संसाधनों के अंतरण पर लागू होने वाले कुछ सिद्धांत तैयार किए जाएं जैसे अंतर्राज्यिक असमानताओं को दूर करने को पूरी मान्यता दी जाय क्योंकि हमारा विचार है कि यह राष्ट्रीय हित में होगा।

5.5 हम इस प्रश्न के उत्तर में यह कहना चाहेंगे कि जैसा स्वयं प्रश्न में ही बताया गया है कि वित्त आयोग तथा योजना आयोग के माध्यम से संसाधनों की वर्तमान सुपुर्दगी से गरीब तथा अमीर राज्यों के बीच संसाधनों में अंतर को कम करने में सफलता नहीं मिली है। हम यहां भी कहना चाहेंगे कि न केवल क्षेत्रीय विसंगतियां बहुत अधिक हैं बल्कि विभिन्न राज्यों के बीच विकास के स्तर में भी बहुत बड़ा अन्तर आ गया है। यदि प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० को लिया जाए तो पता चलेगा कि बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश जैसे कम विकसित राज्यों की स्थिति या तो पहले से भी बिगड़ गई है या वर्षों के दौरान एक समान रही है। उदाहरण के लिए वर्ष 1950-51 और 1975-76 के बीच बिहार का राज्यों में चौदहवां स्थान था (उन राज्यों को छोड़कर जिन्हें विशेष दर्जा दिया गया है) तथा उत्तर प्रदेश जो एक अन्य पिछड़ा हुआ राज्य है उसकी स्थिति आठवीं से 15वीं हो गई है। इसी अवधि के दौरान पंजाब सबसे सर्वोच्च स्थिति में है और महाराष्ट्र चौथे से दूसरे स्थान पर आ गया है। इस प्रकार गरीब तथा अमीर राज्यों के बीच अंतर बढ़ गया है। इसका कारण यही है कि अपेक्षाकृत गरीब राज्यों को संसाधनों की सुपुर्दगी उनके विकास के सापेक्ष स्तर को सुधारने के लिए विकास की अपेक्षाकृत उच्च दर वाली उनकी जरूरतों की तुलना में बहुत अपर्याप्त है। इसलिए वित्तीय सुपुर्दगी निर्धारित करने के लिए पिछड़े हुए राज्यों के पक्ष में सिद्धान्तों को महत्व देना चाहिए। हमारा विचार है कि यही बात सर्वोपरि ध्यान में रखी जानी चाहिए।

मोटे तौर पर इन टिप्पणियों के बाद हम विभिन्न दृष्टियों से सुपुर्दगी निर्धारित करने के लिए मानदंडों का उल्लेख करेंगे।

जहां तक करों में हिस्से का प्रश्न है, पहले हम आयकर पर विचार करेंगे। इस समय आयकर से होने वाली आय राज्यों में 90% जनसंख्या

के आधार पर और 10% उस अंशदान के आधार पर वितरित की जाती है जिसके लिए निर्धारण को ही अंशदान का सूचक मान लिया जाता है। वितरण के लिए ये सिद्धांत सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर निर्धारित हैं।

हमने आठवें वित्त आयोग से अनुरोध किया है कि वितरण के लिए निर्धारण या वसूली को आधार मानने की बात पूर्णत: समाप्त कर दी जाए। हम यहां भी इसी बात को दोहराना चाहते हैं। आयकर के वितरण के लिए निर्धारण या वसूली को आधार मानने को समाप्त करने का हमारा विचार इस बुनियाद पर आधारित है कि आय के उद्गम और इसकी वसूली तथा औद्योगिक रूप से उन्नत राज्यों और उनके महानगरों में आय की वसूली और केन्द्रीकरण में बहुत बड़ा अन्तर है। इसके अतिरिक्त, एक राज्य में अर्जित आय बहुत हद तक राष्ट्रीय हित में अनुसरण की गई संघीय आर्थिक नीतियों के सापेक्ष होती है और इस बात की पूरी संभावना है कि अलग-अलग राज्यों में इसके लाभ समान रूप से प्राप्त नहीं होंगे और उन पर असमान बोझ डाला जाएगा।

बहुत वर्ष पहले दूसरे वित्त आयोग ने यह विचार व्यक्त किया था कि यथासंभव वसूली का घटक पूर्णत: समाप्त कर दिया जाए। देश के आर्थिक समेकन तथा अन्तर्राज्यिक व्यापार रोक उन्मूलन से यह पूरी तरह स्पष्ट हो गयी थी कि कारोबार से आय देश में समग्र रूप से प्राप्त होती है इसलिए आयोग ने यह ठीक ही सोचा कि विकासशील स्थिति में वसूली को बनाए रखना न्यायसंगत आधार नहीं होगा। वास्तव में पश्चिमी बंगाल तथा बम्बई जैसे औद्योगिक राज्यों को छोड़कर अन्य सभी राज्यों ने आयोग के सामने इस बारे में अपनी सहमति प्रकट की कि संसाधन वितरण का आधार केवल जनसंख्या ही होना चाहिए। इस बात से यदि आयोग सहमत था तब भी उसने यह सिफारिश नहीं की कि वसूली का आधार मुख्यतया इस विचार से समाप्त कर दिया जाए ताकि वर्तमान स्थिति अस्त-व्यस्त न हो। परन्तु उसने वसूली को दिया जाने वाला महत्व घटाकर 20 प्रतिशत से 10 प्रतिशत कर दिया। पांचवें, छठे तथा सातवें आयोगों ने वसूली को दिया गया यह महत्व बनाए रखा है।

सातवें वित्त आयोग का इस बारे में स्पष्ट मत था कि अंशदान के आधार पर अपेक्षाकृत अधिक अनुपात के कारण गलत बात को बढ़ावा मिल सकता है। वितरण के आधार के रूप में अंशदान को अधिक महत्व देने के विरुद्ध छठे तथा सातवें वित्त आयोग ने जिस कारक को अधिक महत्व दिया वह न केवल आज भी लागू है बल्कि वर्षों में उसकी प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। इसलिए हमारा विचार है कि अंशदान को वितरण का कारक मानते हुए जारी रखने की वांछनीयता या औचित्य के बारे में प्रश्न उठाए गए हैं। वास्तव में हमारा विचार है कि समय आ गया है कि अब अंशदान को वितरण का पूरी तरह आधार मान लिया जाए।

उपर्युक्त कारणों को देखते हुए अब यह आवश्यक है कि अंशदान के स्थान पर पिछड़ेपन के सुधारकारी कारक को रखा जाए। इस प्रकार जनसंख्या तथा पिछड़ापन इन दो मानदंडों को ही आयकर की विभाजन योग्य सामूहिक निधि के वितरण का आधार माना जाए।

उत्तरवर्ती वित्त-आयोगों ने जनसंख्या को किसी भी राज्य की सामान्य आवश्यकताओं के द्योतक के रूप में माना है क्योंकि सभी राज्य आर्थिक दृष्टि से समान नहीं हैं। इसलिए जनसंख्या को वितरण के कारक के रूप में मानने का प्रभाव यह होगा कि भेदभाव बरता जाएगा क्योंकि यदि इसे ही एकमात्र कारक के रूप में अपना लिया गया तो इसका अर्थ यह होगा कि जरूरत की ओर ध्यान दिए बिना प्रति व्यक्ति समान रूप से संसाधनों का वितरण कर दिया जाएगा। हमारे जैसे कम विकसित राज्यों की समस्याएं केवल सामाजिक व प्रशासनिक सेवाओं के विस्तार की ही नहीं है बल्कि विकास के लिए एक मजबूत आधार बनाने के लिए अपेक्षित प्रयत्न करने की हैं। अत: हम यह बहुत जरूरी समझते हैं कि जनसंख्या को वितरण का आधार मानने के साथ-साथ राज्य के पिछड़ेपन को भी साथ ही मानदंड माना जाए ताकि आवश्यकता का सापेक्ष अनुमान हो सके।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमारा सुझाव है कि आय कर की विभाजन योग्य सामूहिक-निधि का 70% भाग जनसंख्या के आधार पर वितरित किया जाय और शेष 30% भाग केवल उन्हीं राज्यों में वितरित किया जाय जिनकी प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की प्रति व्यक्ति आय के औसत से कम हो। इस वितरण का अनुपात सभी राज्यों के औसत से उस राज्य की प्रति व्यक्ति आय में जितनी कमी हो, उस कमी को राज्य की जनसंख्या से गुणा करके निकाला जाए।

राज्यों के लिए नियत केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क का वितरण करते समय यह बात ध्यान में रखी जाय कि पहले और दूसरे वित्त आयोग ने जनसंख्या को संवितरण का एकमात्र आधार माना था। तीसरे और चौथे आयोग ने संवितरण में एक अन्य तत्व को शामिल किया जिसके अनुसार राज्यों के सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन को भी कुछ महत्व दिया गया। बाद के सभी आयोगों ने संवितरण के इसी आधार अर्थात, जनसंख्या और पिछड़ेपन को अपनाया है यद्यपि उनके द्वारा अपनाये गए पिछड़ेपन के सूचकों में भिन्नता रही है।

किसी भी वित्त आयोग ने उपभोग, नगरीकरण, या औद्योगीकरण इत्यादि घटकों को कोई स्थान नहीं दिया। दूसरे आयोग ने सोचा कि संवितरण के आधार के रूप में इन घटकों को स्वीकार करने से राज्यों को असमान लाभ पहुंचेगा। क्योंकि शुल्क योग्य वस्तुओं की खपत नगरीकृत राज्यों में अपेक्षाकृत अधिक है, अत: मुख्यत: गैर-नगरीकृत राज्यों को घाटा पहुँचेगा। तीसरे वित्त आयोग द्वारा उपभोग को असंगत पाया जाना सही ही था क्योंकि संवितरण में कच्चे माल, मध्यवर्ती माल और औद्योगिक विनिर्माण पर लगने वाले शुल्क भी शामिल थे। अत: सातवें आयोग ने उपभोग के घटक को स्वीकार करना अनावश्यक समझा।

इस प्रकार अब केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क संबंधी निवल आय के संवितरण के लिए जनसंख्या और पिछड़ेपन के मानदंड को अपनाना सुस्थापित सिद्धान्त हो गया है। हमारे विचार से राज्यों में उत्पाद-शुल्क के हिस्से के संवितरण को नियंत्रित करने के लिए दोनों मानदंड जारी रहने चाहिए।

जहां तक जनसंख्या और पिछड़ेपन संबंधी दो मानदंडों को सापेक्ष महत्व देने का सवाल है, छठे वित्त आयोग ने विभाजनयोग्य सामूहिक निधि का 75% जनसंख्या के आधार पर और शेष 25% राज्य की प्रति व्यक्ति आय द्वारा परिलक्षित पिछड़ेपन के आधार पर वितरित करने की अनुमति दी। इसका परिकलन सबसे अधिक प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य अर्थात, पंजाब की प्रति व्यक्ति आय से राज्य की प्रति व्यक्ति आय में जितनी कमी हो, उस कमी को राज्य की जनसंख्या से गुणा करके किया जा सकता है। इससे हमारे जैसे पिछड़े राज्यों को बहुत नुकसान हुआ क्योंकि पिछड़ेपन पर ध्यान दिए बिना ही प्रत्येक राज्य विभाजन योग्य सामूहिक निधि के शेष 25% में अपना हिस्सा पाने को लालायित हो गया। पांचवें वित्त आयोग के कार्यकाल के दौरान विभाजन योग्य सामूहिक निधि में हमारे राज्य का हिस्सा 13.81 प्रतिशत से घटकर 11.47 प्रतिशत हो गया। दूसरी ओर अधिकांश समृद्ध राज्यों के हिस्से में बढ़ोतरी हुई। छठे वित्त आयोग द्वारा अपनाये गये फार्मूले का यह असामान्य परिणाम हुआ।

अत: हमने सातवें वित्त आयोग को सुझाव दिया कि उत्पाद-शुल्क की विभाजन योग्य सामूहिक-निधि का 70% राज्यों में जनसंख्या के आधार पर वितरित किया जाय और शेष 30% सभी राज्यों के औसत से राज्य के प्रति व्यक्ति आय में जितनी कमी हो, उस कमी और राज्य की जनसंख्या के गुणित अनुपात में, विशेष रूप से उन राज्यों में वितरित किया जाए जिनकी प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों के प्रति व्यक्ति आय के औसत से कम हो। हमारे विचार से ऐसा फार्मूला पिछड़े राज्यों की आवश्यकताओं को उचित मान्यता देगा। फिर भी सातवें वित्त आयोग को यह सुझाव स्वीकार करना न्यायसंगत न लगा। इसने सोचा कि कोई बहुविध फार्मूला अपनाना अपेक्षाकृत अधिक न्यायसंगत साबित होगा जो न तो कुछ विशेष राज्यों के लिए विशेष रूप से अनुकूल हो और न ही कुछ अन्य राज्यों के लिए प्रतिकूल। अत: आयोग ने चार घटकों को एक समान महत्व देने का निश्चय किया अर्थात, जनसंख्या, पहली मार्च 1976 को दिखाई गयी राज्य की जनसंख्या द्वारा गुणित प्रति व्यक्ति राज्य के घरेलू उत्पाद, आयोग द्वारा तैयार की गई प्रक्रिया के अनुसार प्रत्येक राज्य में आंकी गई निर्धनों की प्रतिशतता और आयोग द्वारा तैयार किए गए राजस्व समता संबंधी फार्मूला।

सातवें वित्त आयोग को उम्मीद थी कि इसके द्वारा सुझाए गये उपायों से राज्यों में उनके सापेक्ष पिछड़ेपन के निर्धारण के आधार पर वितरित उत्पाद-शुल्क

की प्राप्ति में बढ़ोतरी होगी। कुछ हद तक आयोग की यह उम्मीद पूरी हुई। विभाजन योग्य सामूहिक निधि में से हमारे राज्य को मिलने वाले अंश में सुधार हुआ। छठे वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर हमारे राज्य का हिस्सा 11.47% से बढ़कर 13.025% हो गया। लेकिन फिर भी यह आयोग राज्य के हिस्से को उस प्रतिशत तक लाने में विफल रहा जिसके लिए वह पांचवें वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए सिद्धान्तों के अन्तर्गत हकदार था। पांचवें वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए सिद्धान्तों के अंतर्गत राज्य का हिस्सा 13.81% था। इस तरह सातवें वित्त आयोग की इस दिशा में पूर्ववर्ती आयोगों की अपेक्षा कुछ अधिक करने का आशय केवल कुछ हद तक पूरा हुआ।

ऊपर जो कहा गया है, उसे देखते हुए राज्य सरकार ने आठवें वित्त आयोग को वही फार्मूला अपनाने का सुझाव दिया है जो हमने सातवें वित्त आयोग के समक्ष पेश किया था, अर्थात् 70 प्रतिशत संवितरण जनसंख्या के आधार पर और शेष 30 प्रतिशत संवितरण विशेष रूप से उन राज्यों में किया जाय जिनकी प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की प्रति व्यक्ति आय के औसत से कम हो। साथ ही संवितरण, सभी राज्यों के औसत से राज्य के प्रति व्यक्ति आय में जितनी कमी हुई हो, उस कमी और राज्य की जनसंख्या के गुणित अनुपात में हो। हमारे विचार से यह फार्मूला राज्य के बीच असमानताए कम करने में सहायक साबित होगा। राज्य के वित्त को संतुलित करने में आयकर के अधिक कारगर न होने पर, केवल उत्पाद-शुल्क राजस्व की उसके आकार को देखते हुए, जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने भी माना है, राज्यों को वित्तीय साधनों के अन्तरण में महत्वपूर्ण भूमिका होगी। तब और भी अधिक जबकि राजकोषीय अन्तरण अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान के बजाय कर में हिस्से के माध्यम से हों। इस दृष्टिकोण से ऊपर हमारे द्वारा सुझाया गया फार्मूला विशेष रूप से पिछड़े राज्यों के वित्त को मजबूत बनाने के उद्देश्य के अनुरूप है।

ऐसा प्रतीत होगा कि हमने आयकर और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क दोनों की विभाजन योग्य सामूहिक निधि के संवितण के इन्हीं सिद्धान्तों को सुझाया है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों करों की विभाजन योग्य सामूहिक निधि के संवितरण को नियंत्रित करने के लिए समान सिद्धान्त अपनाने के सवाल पर अब तक जो ध्यान दिया जाता रहा है, उससे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रोफेसर राज कृष्ण ने सातवें वित्त आयोग की रिपोर्ट से संलग्न अपने असहमति नोट में कई आधार पर दोनों करों से संबंधित हिस्से योग्य राजस्व की प्राप्ति और संवितरण के लिए इसी एक फार्मूले की वकालत की थी और इस फार्मूले से हम पूरी तरह सहमत हैं।

प्रोफेसर राज कृष्ण ने कहा कि विभिन्न मानदंडों के अनुसार आयकर और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क की विभाजन योग्य सामूहिक निधि का संवितरण किसी भी विधिक आधार पर आवश्यक नहीं है। संविधान के संगत अनुच्छेदों अर्थात् अनुच्छेद 270 और 272 को पढ़ने पर किसी स्पष्ट प्रावधान का पता नहीं चलता और न अन्तर्निहित अभिप्राय व्यक्त होता है जिससे यह संकेत मिले कि आयकर से प्राप्त राजस्व और उत्पाद-शुल्क से प्राप्त राजस्व के संवितरण को निर्धारित करने के लिए एक समान सिद्धांतों को न अपनाना विधिक रूप से आवश्यक है। अतः संवैधानिक उपबंधों से इस संबंध में वित्त आयोग के विवेक पर कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

हमने कुछ अन्य प्रश्नों के उत्तर में बार-बार यह कहा है कि केन्द्र और राज्यों से सम्बद्ध दोनों प्रकार का वित्तीय असंतुलन हमारे परिसंघीय वित्तीय ढांचे की स्पष्ट विशेषता है। अतः राज्यों के कार्यकलाप और उत्तरदायित्व के बीच बेहतर सामंजस्य स्थापित करने के लिए केन्द्र से राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय अन्तरण की आवश्यकता है। राज्यों के बीच आबंटन को अधिक न्यायसंगत बनाने के लिए राज्यों से सम्बद्ध वित्तीय असंतुलन को सुधारने की आवश्यकता है ताकि अधिक समकारी परिणाम हों। अतः इन दोनों दृष्टिकोणों से राज्यों का हित संपूर्ण वित्तीय अन्तरण में निहित है। अतः अन्तरणों की पर्याप्तता और प्रगतिशीलता वास्तव में महत्वपूर्ण हैं। यह इतना महत्वपूर्ण नहीं कि ऐसे अन्तरण आयकर में हिस्से के माध्यम से होते हैं या उत्पाद-शुल्क से प्राप्त राजस्व में भागेदारी के माध्यम से। हम प्रोफेसर राज कृष्ण के इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि यदि प्रगतिशीलता उत्पाद-शुल्क संबंधी निवल आय के संवितरण के लिए अच्छा सिद्धान्त हो सकता है तो यह निर्विवाद है कि यह सिद्धान्त आयकर की विभाजन पूल योग्य सामूहिक निधि में हिस्सा बांटने के लिए ठीक सिद्धान्त नहीं है।

इस तरह एक ओर आयकर और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क दोनों से प्राप्त राजस्वों के संवितरण के लिए समान फार्मूला अपनाने पर संवैधानिक रोक नहीं है और दूसरी ओर दोनों करों से हुई आय का हिस्सा राज्यों में परस्पर आबंटित करने के लिए समान मानदंड को न्यायसंगत ठहराने वाले पर्याप्त आर्थिक कारण है। वस्तुतः सातवें वित्त आयोग के एक अन्य सदस्य प्रोफेसर हनुमंत राव का भी यही विचार था लेकिन उन्होंने इस मुद्दे विशेषकर राज्यों के पिछड़ेपन पर जोर नहीं डाला। आयोग ने मुख्यतः यह सोचकर कि यह विकसित राज्यों के लिए स्वीकार्य नहीं हो सकता, इसे नहीं अपनाया। हम केवल इतना कह सकते हैं कि वित्त आयोग द्वारा तैयार किये जाने वाले सिद्धान्त किसी विचार की सहमति या असहमति पर आधारित न होकर औचित्य और वस्तुनिष्ठता पर आधारित हों।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए हमने आयकर और केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, दोनों की विभाजन योग्य सामूहिक निधि के संवितरण को नियंत्रित करने के लिए समान सिद्धान्तों का सुझाव दिया है। हमें खुशी है कि आठवें वित्त आयोग ने इस सुझाव के प्रभाव को समझा है और आयकर तथा केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, दोनों की विभाजन योग्य सामूहिक निधि के राज्यों में संवितरण को नियंत्रित करने के लिए समान फार्मूले की सिफारिश की है।

अब हम अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क संबंधी आय के राज्यों में संवितरण के मुद्दे पर आते हैं। जिन सिद्धान्तों के अनुसार इन शुल्कों की निवल आय राज्यों में वितरित की जाती है, वे सिद्धान्त सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर आधारित है।

राज्यों द्वारा तीन वस्तुओं अर्थात, सूती वस्त्रों (जिनमें ऊनी और रेयान के या कृत्रिम रेशम के वस्त्र भी शामिल है) चीनी और तम्बाकू (निर्मित तम्बाकू सहित) पर लगाये गये बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क लगाये गये। अतः वित्त आयोगों ने इन वस्तुओं की खपत को संवितरण का आधार माना है लेकिन उन्होंने उपभोग के भिन्न-भिन्न सूचकों को अपनाया है मुख्यतः इसलिए कि इन वस्तुओं के उपभोग से संबंधित विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं है। उदाहरणार्थ, सातवें वित्त आयोग ने चीनी के प्रेषणों को चीनी की खपत का उचित सूचक माना। लेकिन दो अन्य वस्तुओं के संबंध में भी इसे खपत का स्तर मालूम करने के लिए विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त न हो सके। अतः इसने इन वस्तुओं की खपत की सापेक्षता की माप के लिए भिन्न प्रक्रिया अपनाई। इसने सोचा कि राज्य की जनसंख्या और राज्य के प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद से दोनों वस्तुओं की सापेक्ष खपत मालूम होगी, अतः तदनुसार प्रत्येक राज्य के प्रतिशत हिस्से का हिसाब लगाया गया।

सातवें वित्त आयोग द्वारा अपनाये गये फार्मूले का परिणाम यह हुआ कि इस राज्य के प्रतिशत हिस्से में कमी हो गई और यह प्रतिशत हिस्सा छठे वित्त आयोग की सिफारिशों के अधीन प्राप्य प्रतिशत हिस्से से भी कम था। अब हम छठे और सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों से उत्पन्न तुलनात्मक स्थिति पर सरसरी नजर डालेंगे। छठे वित्त आयोग ने सिफारिश की थी कि इन शुल्कों की कुल निवल आय का 1.41% हिस्सा संघ राज्य क्षेत्रों को देय समझा जाय। दूसरी ओर सातवें वित्त आयोग ने इस प्रतिशतता को प्रत्येक वस्तु के लिए अलग-अलग निर्धारित किया था और प्रत्येक वस्तु के लिए यह प्रतिशतता 1.41 से अधिक थी। चीनी के मामले में यह 3.271% थी, वस्त्रों के मामले में 2.192 और तंबाकू के लिए 2.192 और इस प्रकार सभी तरह से रकम की अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशतता संघ राज्य क्षेत्रों को देय समझी गयी जिससे राज्यों को वितरित की जाने वाली कुल निवल आय में प्रतिशतता के अनुसार स्पष्टतः कमी हो गयी। बिहार को छठे वित्त आयोग द्वारा शेष निवल आय में अपने हिस्से के रूप में 9.36% की मंजूरी मिली। सातवें वित्त आयोग के अनुसार यह हिस्सा प्रत्येक संबंधित वस्तु के लिए बहुत कम था। चीनी के मामले में प्रतिशत 5.933 था, वस्त्रों के मामले में 7.221 और तंबाकू के मामले में 7.219 था। अतः हो सकता है इस हिसाब से सुपुर्दगी (अन्तरण) द्वारा राज्य को कुछ अधिक हिस्सा मिलता लेकिन प्रतिशतता में कमी स्वीकार्य स्थिति के अनुरूप न थी जिसके अनुसार अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क संबंधी आय में राज्यों का हिस्सा उस हिस्से के समतुल्य होना चाहिए था जो राज्यो को उस स्थिति में मिलता यदि वे इन वस्तुओं पर बिक्री-कर लगाना जारी रखते। यह आधार कि वस्तुओं की खपत घट कर हिस्से से हुई कमी के बराबर हो गई, हमारे राज्य के मामले में वस्तुओं पर लगाये गये प्रतिपूरक कर संबंधी सिद्धान्त के प्रतिकूल है। यही नहीं इन वस्तुओं की प्रतिशतता में कमी करने से इस

शुल्कों से हुई आय में पिछले कई वर्षों में हुई लगातार बढ़ोत्तरी से हमारे राज्य को लाभ नहीं मिल सका है।

अतः हमारे विचार से किसी भी फार्मूले को, जो इन शुल्कों से प्राप्त आय की बढ़ती हुई संभावनाओं में राज्य को अपना वैध हिस्सा प्राप्त करने से वंचित रखता है, न्यायसंगत नहीं समझा जाना चाहिए क्योंकि वह व्यवस्था, जिसके द्वारा राज्यों द्वारा लगाए गए और वसूल किए गए बिक्री-करों के स्थान पर ये शुल्क लगाये गए, चौथे वित्त आयोग के शब्दों में "मुख्यतः कर लगान करार के समान है"।

अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क की निवल आय के राज्यों में संवितरण संबंधी फार्मूले के सवाल पर, हम पाते हैं कि हमारे पास इस विचार का पर्याप्त आधार है कि अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क लगाने से हुई निवल आय के संवितरण संबंधी सिद्धान्त को मूल उत्पाद-शुल्क के लिए सुझाए गए सिद्धान्त से भिन्न नहीं होना चाहिए। इस दृष्टिकोण के कारण एक से अधिक हैं।

कर-लगान करार के अन्तर्गत महसूल माल की खरीद या बिक्री पर नहीं लगाया जाता बल्कि खरीद या बिक्री से पहले की स्थिति में लगाया जाता है। इस आधार पर मूल उत्पाद-शुल्क और अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क की प्रकृति में एक दूसरे से भिन्नता नहीं है। फिर भी केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क और अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क की सुपुर्दगी (अन्तरण) का ढंग इसलिए भिन्न है क्योंकि अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क कर लगान करार पर आधारित है। इसके अतिरिक्त केवल इस कर-लगान करार के कारण ही सातवें वित्त आयोग के लिए इस राज्य के हिस्से की प्रतिशतता को कम करना संभव हुआ। प्रतिशत हिस्से में इतनी कमी नहीं आई होती यदि इन वस्तुओं पर बिक्री-कर का लगना जारी रहता। कर लगान करार 25 वर्षों से भी अधिक समय से चला आ रहा है और अब यह करार व्यवहार में स्थायी व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुका है। इसके अतिरिक्त, यदि कोई राज्य योजना से बाहर भी निकलना चाहे तो, केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 की धारा 14/15 के अधीन राज्य की प्राप्ति को सीमित करने के उद्देश्य से संबंधित मदों की दर पर अधिकतम सीमा निर्धारित होने के कारण उसके लिए ऐसा करना संभव नहीं होगा।

यह व्यवस्था स्थायी हो जाने के कारण कर-लगान करार की मूल प्रकृति में व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। खास तौर से ऐसा राज्यों की स्कीम के लिए अपना विकल्प देने की स्वतंत्रता अत्यधिक सीमित कर देने के कारण हुआ है। इस परिवर्तन ने अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क को मूल उत्पाद-शुल्क से कुछ विशेष भिन्न नहीं बल्कि उसके समान कर दिया है।

उपर्युक्त कारणों से मूल उत्पाद-शुल्क और अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क संबंधी आय के संवितरण को नियमित करने वाले सिद्धान्तों में कोई अंतर नहीं होना चाहिए।

अब हम योजनागत सहायता के मुद्दे पर विचार करेंगे। यह निःसंदेह सही है कि केन्द्रीय सहायता संशोधित गाडगिल फार्मूला के अनुसार दी जाती है। फिर भी राज्यों को केन्द्रीय सहायता के रूप में दिए गए सामूहिक अनुदानों और कर्जों की राशियां न तो निश्चित रही हैं और न ही ये राशियां योजनागत परिव्यय के अनुपात में हैं।

यही नहीं, संशोधित गाडगिल फार्मूला भी विकास की प्रकृति में वांछित परिवर्तन लाने में सफल नहीं हुआ है। योजना प्रक्रिया के 30 वर्ष हो गये हैं, फिर भी क्षेत्रीय असमानताएं न केवल बरकरार हैं बल्कि उनमें और अधिक बढ़ोत्तरी हुई है। उदाहरणार्थ, योजना की संपूर्ण अवधि के दौरान बिहार की प्रति व्यक्ति आय पर नजर डालने से पता चलेगा कि राज्य की प्रति व्यक्ति आय और पूरे देश की प्रति व्यक्ति आय के बीच अन्तर बढ़ रहा है। इसका एक कारण यह रहा है कि राज्य में विकास पर लगाये गये संसाधन देश भर में सबसे कम रहे हैं। छठी योजना में भी बिहार में प्रति व्यक्ति योजना परिव्यय 572 रु० रहा है जबकि अन्य सभी राज्यों के लिए योजना परिव्यय 872 रु० रहा है।

आर्थिक पिछड़ेपन को विशेष रूप से अल्प विकसित राज्यों में चले आ रहे पिछड़ेपन को, ऐसे राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक विकासपरक परिव्यय उपलब्ध कराकर दूर किया जा सकता है। हमारा विचार है कि राज्यों के बीच आर्थिक असमानताओं और पिछड़ेपन को दूर करने के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केन्द्रीय योजना सहायता के संवितरण संबंधी वर्तमान फार्मूले में यथोचित संशोधन की आवश्यकता है।

इस समय राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता इसलिए दोषपूर्ण है क्योंकि इस सहायता से राज्यों पर कर्ज का अत्यधिक बोझ पड़ता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इसमें (इस सहायता में) 70% कर्ज शामिल है और 30% अनुदान। राज्यों को केन्द्र से मिलने वाले कर्ज का बहुत बड़ा हिस्सा योजना संबंधी कर्ज के रूप में होता है। इस व्यवस्था में उधारकर्ता की कर्ज अदायगी क्षमता को नजरअंदाज किया गया है। जहां तक सहायता संबंधी कर्जों और अनुदान का सवाल है, केन्द्रीय सहायता योजना से असमान राज्यों के साथ भी समान व्यवहार होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्यों पर स्पष्टतः असमान बोझ पड़ता है। इस तरह पिछड़े राज्यों को अधिक मुसीबत झेलनी पड़ती है। चूंकि उनकी कर्ज अदायगी क्षमता अत्यधिक सीमित होती है, अतः ये कर्ज उनकी बजटीय स्थिति पर अत्यधिक दबाव डालते हैं। परिणाम यह होता है कि विकसित राज्यों की अपेक्षा अल्प विकसित राज्यों के पास आगे के आर्थिक विकास के लिए उपयोग में आने वाले संसाधनों की कमी हो जाती है। इस तरह अधिक समृद्ध राज्यों और पिछड़े राज्यों के विकास स्तर के बीच की खाई चौड़ी होती रही है। यह निःसंदेह संतुलित क्षेत्रीय विकास के साथ-साथ तीव्र आर्थिक विकास के घोषित लक्ष्य के प्रतिकूल है।

यह सही है कि संशोधित गाडगिल फार्मूला मूल फार्मूले की अपेक्षा कुछ अधिक प्रगतिशील है। चौथी और पांचवीं योजना अवधि के दौरान केन्द्रीय सहायता के वास्तविक संवितरण से यह पता चलता है कि कुछ राज्यों को निर्धारित स्तर से अधिक सहायता राशि दी गई जबकि कुछ अन्य राज्य बुरी तरह प्रभावित हुए। बिहार उन राज्यों में से था जिन्हें अनुमानित स्तर से कम सहायता प्राप्त हुई। इस अवधि में बिहार जैसे अल्प विकसित राज्य को प्रति व्यक्ति योजना खर्च की दृष्टि से भी मुसीबत का सामना करना पड़ता है। अतः हमारा आग्रह है कि केन्द्रीय योजना सहायता संबंधी आवंटन इस प्रयोजन से तैयार किए गए फार्मूले के अनुसार ही किया जाए क्योंकि इससे क्षेत्रीय असमानतायें क्रमशः कम होती जायेंगी। राज्य की योजनाओं के लिए कर्ज के रूप में दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में पर्याप्त कमी की जानी चाहिए। हमारा सुझाव है कि जिन राज्यों की प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों के प्रति व्यक्ति आय के औसत कम है, उन्हें दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में 70% अनुदान और 30% कर्ज हो और जिन राज्यों की प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की प्रति व्यक्ति आय के औसत से अधिक हो, उन्हें दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में 30% अनुदान की राशि और 70% कर्ज की राशि हो। राष्ट्रीय संसाधनों में पिछड़े राज्यों का समुचित हिस्सा सुनिश्चित करने का यही बेहतर तरीका होगा। इसका एक विकल्प यह हो सकता है कि पिछड़े राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता संबंधी संपूर्ण राशि का कुछ भाग अलग कर दिया जाए और उनमें जनसंख्या और पिछड़ेपन के आधार पर 60 और 40 के अनुपात में वितरित कर दिया जाए।

गैर-विकासपरक कार्यक्रमों में भी पर्याप्त रूप से विकास के तत्व होते हैं। ऐसे गैर-विकासपरक मदों पर खर्च करने से नई परिसम्पत्तियां तैयार होती हैं या वर्तमान आधारिक संरचनाओं (इन्फास्ट्रक्चरों) में बढ़ोतरी होती है जो समग्र रूप से विकास संबंधी लक्ष्य की पूर्ति में सहायक साबित होती हैं। पिछड़े राज्यों में रहने वाले लोगों के लिए विकास सार्थक साबित हो, इसके लिए योजना कार्यक्रमों से बाहर की योजनाओं में ऐसे पिछड़े राज्यों के साथ भिन्न सलूक करके क्षेत्र का वास्तव में संतुलित विकास किया जा सकता है। जहां कहीं भी ऐसी परियोजनायें पिछड़े राज्य के साधनों से हों, केन्द्र को चाहिए कि ऐसी परियोजनाओं को पूरा कराने के लिए उदार रुख अपनाये और सहायता अनुदानों में वृद्धि कर राज्य की मदद करे क्योंकि इससे अंततः राज्यों के बीच असमानतायें दूर करने में मदद मिलेगी।

5.6 हमारे पास यूगोस्लाविया के विशेष परिसंघीय कोष प्रचालन और परिणाम से संबंधित पर्याप्त सूचना न होने के कारण हमारे लिए इस प्रणाली पर टिप्पणी करना उचित नहीं होगा। फिर भी यह स्पष्ट है कि भारत और यूगोस्लाविया के संविधान परिसंघीय होते हुए भी अपनी मूल प्रकृति में व्यापक रूप से भिन्न हैं। उनका आर्थिक और सामाजिक ढांचा भिन्न है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों के विकास की स्थिति की तुलना यूगोस्लाविया के विकास की स्थिति से नहीं की जा सकती। भारत में परिसंघ और संघटन इकाइयों के बीच जो संबंध है, वैसा संबंध यूगो-यूगोस्लाविया में नहीं।

यूगोस्लाविया में सरकार, राज्य और सहकारी आर्थिक क्षेत्रों का सहारा लेते हुए देश के आर्थिक जीवन और प्रगति को सामान्य आर्थिक योजना के अनुसार नियंत्रित करती है। सभी लोगों की संपत्ति या सरकार के पास जो संपत्ति है, वही उत्पादन का साधन है। भारत की स्थिति मूलत: भिन्न है। मौलिक स्वतंत्रतायें संपत्ति के अधिकार की गारंटी देती है और उत्पादन के साधन पूरी तरह राष्ट्रीयकृत नहीं हैं। यूगोस्लाविया से भिन्न भारत में योजना संघ का विषय नहीं है। भारतीय संविधान की समवर्ती-सूची में आर्थिक और सामाजिक योजना को स्थान दिया गया है।

परिसंघीय गणतंत्र के सामाजिक और राजनीतिक गठन के आधार से संबंधित यूगोस्लाविया के मूल कानून के अनुसार परिसंघीय आर्थिक योजना के तहत परिसंघीय सरकार के लिए केवल उन्हीं वित्तीय साधनों को अलग किया जा सकता है जो कानून द्वारा विनिर्दिष्ट हों और जो देश के अल्प विकसित क्षेत्रों को मदद और उनकी अर्थव्यवस्था के सामान्य विकास को सुनिश्चित करने के लिए परिसंघीय सरकार की सामर्थ्य सीमा के भीतर कार्य संपादन में सहायक साबित होते हों।

भारत में वही स्थिति नहीं है। भारतीय संविधान में राष्ट्रीय आर्थिक योजना के अनुसार देश के आर्थिक जीवन को नियंत्रित करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसमें ऐसी भी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके तहत केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों का संवितरण ठीक उसी तरह हो जैसा कि यूगोस्लाविया के संविधान के तहत होता है।

दोनों देशों के बीच असमानतायें उनके संविधानों की बुनियादी विशिष्टियों से संबद्ध हैं। उनकी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था और संस्थायें, परिसंघीय सरकार तथा इकाइयों के बीच कार्यों और संसाधनों के विभाजन को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि एक देश के संविधान संबंधी उपबंधों को दूसरे देश के संविधान संबंधी उपबंधों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अत: हम नहीं समझते कि केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों को देखते हुए विशेष संघीय निधि का सृजन हमारे संवैधानिक ढांचे के अनुरूप होगा। जैसा कि हमने प्रश्न सं० 5.1 के उत्तर में पहले ही कहा है, हम केन्द्र राज्य संबंधों के पुनर्निर्धारण के लिए संविधान को संशोधित करने के पक्ष में नहीं हैं।

यदि ऐसी विशेष संघीय निधि की स्थापना की भी जाती है तो भी यह केन्द्रीय संसाधनों से ही बनाया जाएगा। अत: इस निधि में जितनी राशि अन्तरित की जायेगी, विभाजन योग्य संसाधनों की सकल निधि में उतनी ही कमी हो जायेगी। इससे यह सवाल उत्पन्न होगा कि निधि में अन्तरित की जाने वाली धनराशि का निर्धारण कौन करेगा और पिछड़े क्षेत्रों के लिए राशि किन सिद्धांतों पर तय की जायेगी तथा उनके बीच राशि का संवितरण किन सिद्धांतों पर आधारित होगा। यदि ये मुद्दे केन्द्र के विचारार्थ छोड़ दिए जाएं तो हम इतना ही कहेंगे कि केन्द्र और राज्य के संबंध और अधिक बिगड़ जायेंगे। दूसरी ओर यदि ये मुद्दे संयुक्त रूप से केन्द्र और राज्य द्वारा निर्धारित किए जाएं तो ऐसी निधि के निर्बाध और प्रभावी प्रचालन में गंभीर व्यावहारिक गतिरोध उत्पन्न हो जायेगा। अत: निधि में अंतरित की जाने वाली धनराशि और इस निधि से राज्यों में राशि के संवितरण संबंधी सिद्धांतों के निर्धारण के लिए कोई स्वतंत्र विशेषज्ञ निकाय होना चाहिए।

वित्त आयोग और योजना आयोग ऐसी दो संस्थायें हैं जो राज्य को संसाधन अंतरित करने का कार्य कर रही हैं। वस्तुत: कोई ऐसा विशेष कोष नहीं है जिससे ऐसे अंतरण किए जाएं लेकिन निश्चय ही राज्यों को संसाधनों का अंतरण प्राय: केन्द्र के पास उपलब्ध निधियों में से किया जाता है। यदि राज्यों को इस तरह उपलब्ध कराई गई निधि पिछड़े क्षेत्रों की खास आवश्यकता को मद्देनजर रखकर उपलब्ध कराई जाए और उनकी हकदारी निर्धारित करने के लिए वस्तुपरक मानदंडों पर उनकी आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जाय तो ऐसी कोई वजह नहीं कि आर्थिक रूप से अल्प-विकसित क्षेत्र इस समय जिस दलदल में फंसे हुए हैं, उससे उन्हें न निकाला जा सके।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उसे ध्यान में रखते हुए हम समझते हैं कि विशेष संघीय निधि की स्थापना करना आवश्यक नहीं। ऐसी निधि का निर्माण कर जिस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता, उस लक्ष्य को वित्त आयोग के मार्फत संसाधनों की सुपुर्दगी और योजना आयोग के मार्फत योजना सहायता आबंटन संबंधी सिद्धांतों को आवश्यकता प्रधान बनाकर प्राप्त किया जा सकता है।

5.7 केन्द्र और राज्यों को कराधान प्रणालियों के आबंटन में कुछ महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जिनकी चर्चा हमने प्रश्न सं० 5.1 और 5.3 का उत्तर देते समय की थी। परिसंघीय वित्त संबंधी सुस्थापित सिद्धांतों के अलावा कराधान प्रणालियों में कुछ असमन्वय घटक भी शामिल थे जिन्होंने केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान प्रणालियों के संवितरण को प्रभावित किया। केन्द्र और राज्य के वित्तीय संबंधों के पैटर्न के निर्धारण में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका थी और कराधान संबंधी शक्तियां इसका महत्वपूर्ण भाग थी।

जब संविधान बनाया जा रहा था तो संविधान-सभा के पास दो स्पष्ट विकल्प थे। एक विकल्प अतीत से अलग होकर भारत सरकार और राज्यों के बीच वित्तीय शक्तियों के विभाजन संबंधी पूर्णरूपेण नई योजना को कार्यरूप देना था (क्योंकि उस समय विद्यमान प्रांतों का पुन: नामकरण किया जा रहा था)। दूसरा विकल्प था यथासंभव भारत सरकार अधिनियम, 1935 की वित्तीय योजना को जारी रखना या उसका अनुसरण करना। संभवत: पहला विकल्प संविधान के निर्माताओं को इसलिए प्रभावित नहीं कर पाया क्योंकि भारत की परिसंघीय नीति का प्रादुर्भाव संघ की स्थापना के संबंध में सहमत प्रभुतासंपन्न या स्वायत्त इकाइयों के समूहन से नहीं बल्कि एकात्मक राज्य अर्थात् भारत सरकार की शक्तियों और कार्यों के अंतरण के परिणामस्वरूप हुआ। इसी मूल ऐतिहासिक तथ्य से स्पष्टत: हमारे संविधान की परिसंघीय प्रकृति सराबोर है।

संविधान सभा ने सोच विचार कर संसाधनों का विभाजन भारत सरकार अधिनियम, 1935 में दी गई व्यवस्था के अनुसार करने का विकल्प रखा क्योंकि केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों के संवितरण संबंधी पूर्णरूपेण नई प्रणाली तैयार करने का अभिप्राय उस समय प्रचलित वित्तीय व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त या रद्द करना होता।

अत: यह संयोगवश नहीं बल्कि सोच समझ कर लिए गए निर्णय का परिणाम है कि हमारे संविधान द्वारा ऐसे परिसंघ की स्थापना की गई है जिसमें केन्द्र को मजबूत बनाया गया है। इसी मूल तथ्य का प्रभाव केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान प्रणालियों के आबंटन पर भी पड़ा है। फिर भी, प्रत्यक्ष कारणों से केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच कर संबंधी शक्तियों का संवितरण केन्द्र और राज्य के संबंधों की परिसंघीय प्रकृति को ध्यान में रखते हुए करना पड़ा।

परिसंघ में कर प्रणालियों के आबंटन को नियंत्रित करने वाले मान्य सिद्धांत बहुत से हैं। एक सिद्धांत प्रशासन की कार्यकुशलता है। इस सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि कर उस अधिकारी द्वारा लगाये और वसूल किए जाए जो इसे सबसे अच्छी तरह लगा और वसूल कर सके। दूसरा सिद्धांत कराधान के आधार से संबंधित है। वे कर जो पूरे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं, उनका आबंटन केन्द्र सरकार को एकरूपता और दरों और व्याप्ति में टकराव से बचाव के आधार पर किया जाए। इसके बाद पर्याप्तता का सिद्धांत आता है जो यह इंगित करता है कि राजस्व विभाजन व्यवस्था संबंधी स्वरूप तैयार करते समय केन्द्र और राज्य सरकारों के कार्यों और उत्तरदायित्वों को भी ध्यान में रखा जाए। आबंटन से संबंधित एक और सिद्धांत लोच का सिद्धांत है—जिसके अनुसार यह आवश्यक है कि संसाधनों का आबंटन प्रकृति और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से भावी आवश्यकताओं की वृद्धि के अनुरूप हों। समता के सिद्धांत का तात्पर्य है कि केन्द्र और राज्य अपने निजी क्षेत्रों में न केवल स्वतंत्र हों बल्कि दोनों ही समानता के आधार पर समान दायित्वों में सहभागी हों।

परिसंघीय ढांचे में करों के संवितरण को एक दूसरे नजरिए से भी देखा जा सकता है। पहले यह विश्वास था कि सभी अप्रत्यक्ष कर परिसंघीय सरकार को आबंटित किए जाएं और प्रत्यक्ष कर संघटकों के लिए सुरक्षित रखे जाएं। अब स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया है और प्रत्यक्ष करों के परिसंघीकरण के लिए अधिकाधिक समर्थन मिल रहा है। अत: कराधान और राजकोषीय उत्पादकता में समानता के आधार पर अब परिसंघीय सरकार को उत्पादन और व्यवसाय संबंधी कर आबंटित किए जाते हैं। इससे केन्द्र को कंपनी कर और उत्पाद-शुल्क के संवितरण का पता चलता है। वस्तुत: हमारे संविधान द्वारा तैयार की गई कर प्रणाली में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के संवितरण का त्रुटिरहित विभाजन हो सके।

संभवत: केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान प्रणालियों के संवितरण को नियंत्रित करने वाले सिद्धान्तों पर परंपरागत ढंग से बहस जारी रखना अनावश्यक होगा । ऊपर इंगित सिद्धांत संगत है लेकिन यह पता लगाना कठिन नही कि कई परिसंघीय संघटकों के कराधान संबंधी अधिकारों का सीमा-निर्धारण अनुभव और कार्यसाधकता को मद्देनजर रखकर किया गया है क्योंकि विभिन्न संघों में संसाधनों के आबंटन के स्वरूप में पाये जाने वाले भारी अंतर को कोई भी तर्क संभवत: स्पष्ट नहीं कर सकता । हमारा संविधान इस विस्तृत नियम का अपवाद नही है । इस बात की पुष्टि करने वाला एक उदाहरण यह है कि राज्यों के लिए विनियोजित समाधन पर्याप्तता और लोच संबंधी मानदंड को पूर्णत: पूरा नहीं कर पाते ।

यह सवाल संविधान के अध्याय 13 के दूसरे महत्वपूर्ण तथ्य से संबद्ध है जो देश के भीतर व्यापार, वाणिज्य और विनिमय की स्वतंत्रता सुनिश्चित करता हैं । संविधान के अनुच्छेद 301 में निर्धारित किया गया है कि भाग 13 के अन्य उपबंधों के तहत भारत की सम्पूर्ण सीमा में व्यापार, वाणिज्य और विनिमय निर्बाध होगा। उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि देश की आर्थिक एकता आन्तरिक गतिरोधों के कारण टूटने या अव्यवस्थित न होने पाए । अनुच्छेदों में नियामक उपायों का निषेध नही है । जहां तक करों का सवाल है, केवल उन्ही करों पर, जो व्यापार पर प्रत्यक्ष रूप से और तुरंत रोक लगाते है इस अनुच्छेद का प्रावधान लागू होता है और राज्य द्वारा लगाये गये कर से इस अनुच्छेद का उल्लंघन नही होता यदि इससे व्यक्तियों या वस्तुओं की एक राज्य से दूसरे राज्य में आवाजाही प्रभावित नहीं होती । खरीद बिक्री पर लगाये गये कर से इस संवैधानिक उपबंध का तब तक उल्लंघन नहीं होता जब तक इससे एक राज्य की वस्तुओं और दूसरे राज्य की वस्तुओं में भेद न किया जाए या अन्तर-राज्यिक व्यापार में यदि किसी वस्तु पर कर लगाया जाए तो वह इतना अधिक है या निषेधक है कि इससे बिक्री-व्यापार और वाणिज्य के निर्बाध प्रवाह में बाधा पहुंचती है ।

कराधान के मामले में समवर्ती अधिकारिता के लिए कोई गुंजाइश रखे बिना केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान की शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण से ऐसी स्थिति की सम्भावना नहीं रहती जहां देश के भीतर निर्बाध व्यापार और वाणिज्य का लक्ष्य प्रभावित होता हो । चूंकि व्यवसाय और उत्पादन पर कर लगाना केन्द्र का विषय है, अत: राज्यों द्वारा प्रतिबंध लगाने की बहुत कम गुंजाइश है ।

संविधान का अनुच्छेद 286 किसी भी राज्य को खरीद या बिक्री पर कर लगाने के लिए प्राधिकृत करने से रोकता है यदि यह खरीद या बिक्री (i) राज्य के बाहर (ii) देश में आयात करते समय या देश से निर्यात करते समय, हो । खरीद या बिक्री के स्वरूप का निर्धारण करने वाले ऐसे सिद्धांत बनाने के लिए संसद् सक्षम है जिन पर इस अनुच्छेद के उपबंध लागू हों । इससे भी व्यापार और वाणिज्य के निर्बाध प्रवाह में किसी रोक या आकस्मिक स्थिति के प्रति पर्याप्त गारंटी है ।

संविधान के (46 वें संशोधन) अधिनियम, 1982 द्वारा अनुच्छेद 286 और 366 में संशोधन किया गया है जिसके अनुसार संसद् द्वारा कानूनन घोषित विशेष महत्व की वस्तुओं की खरीद बिक्री पर या (i) निर्माण-कार्य संविदा के निष्पादन में माल-संपत्ति के अंतरण पर, (ii) किराया खरीद पर माल की सुपुर्दगी या किश्तों द्वारा अदायगी की किसी प्रणाली पर, और (iii) नकद राशि, लंबित भुगतान या किसी अन्य मूल्यवान प्रतिफल से संबद्ध किसी भी खरीद के लिए कोई माल इस्तेमाल करने के अधिकार के अन्तरण पर कर लगाने या कर लगाने की शक्ति प्रदान करने वाले राज्य के किसी भी कानून पर उगाही पोरकार और अन्य कर-भार से संबंधित ऐसे प्रतिबंध और शर्तें लागू होंगी जो कि संसद् द्वारा कानूनन विनिर्दिष्ट हों । अत: उक्त स्वरूप की खरीद बिक्री संसद द्वारा विनिर्दिष्ट एक समान प्रतिबंधों और शर्तों के अधीन होगी ताकि अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य विभिन्न राज्यों की प्रतिबंधात्मक विधिक कार्रवाई के डर से मुक्त हो सके ।

ये संवैधानिक उपबंध उन शर्तों का समर्थन करते प्रतीत होते हैं जिनके तहत अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य में उचित विनिमय के सिवाय किसी तरह का हस्तक्षेप नही होना चाहिए ।। हम भी इसमें कुछ गलत दिखायी नहीं देता ।

प्रश्न द्वारा उठाया गया तीसरा मुद्दा असमानताओं में कमी के लिए कर-प्रणाली के इस्तेमाल करने से संबंधित है । इस संबंध में राज्यों को कुछ करों के अन्तरण का भी उल्लेख है । प्रश्न सं० 5.3 के उत्तर में हमने केन्द्र और राज्यों को कुछ कर अंतरित करने के सवाल पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है, इसलिए यहां उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं ।

जहां तक असमानताओं को कम करने में कर-प्रणाली की भूमिका का संबंध हैं यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पुनर्वितरण संबंधी प्रभाव लाने के लिए कर-प्रणाली का इस्तेमाल करना संभव है, फिर भी स्वयं कर-प्रणाली से ही असमानताओं में कमी नहीं लायी जा सकती । यदि कर प्रणाली प्रगामी है तो इसमें आय और सम्पत्ति संबंधी असमानताओं को कम करने की प्रवृत्ति होगी । कर की विकासशीलता इसके ढांचे, कराधान की दरों और व्याप्ति पर निर्भर करती है और इस तथ्य से इसका बहुत अधिक निर्धारण नहीं हो सकता कि कर किस अधिकारी द्वारा लगाया जाता है, अत: इसी वजह से केन्द्र से राज्यों को और राज्यों से केन्द्र को कर अंतरण की वकालत करना उचित नहीं है ।

जहां तक राज्यो के बीच असमानताएं दूर करने का सम्बन्ध है, यह वस्तुत: लोगों की प्रशासनिक, सामाजिक और आर्थिक सेवायें करने में आये खर्च की पूर्ति के लिए राज्यों की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए उन्हें अंतरित किए गए संसाधनों पर निर्भर करेगा । राज्यों को अपनी राजस्व स्थिति सुधारने के लिए कुछ कर अन्तरित करना एक ऐसा कदम है जिसकी हम, अन्य प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट किए गए कई कारणों से, वकालत नहीं करते । दूसरी ओर हम यह महसूस करते है कि यदि राज्यों को अन्तरित किए जाने वाले संसाधन उनके स्तरों में अपेक्षाकृत अधिक समानता लाने के लिए उनकी आवश्यकताओं को मद्देनजर रखकर अन्तरित किए जायें तो इससे राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक मदद मिलेगी ।

5.8 कुछ अन्य प्रश्नों के उत्तर में, हमने संविधान द्वारा परिकल्पित वित्तीय योजना की मूल विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिसके अनुसार राजस्व-स्रोत का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच किया गया है । परिसंघीय ढांचे के अनुरूप केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान की शक्तियों का विभाजन किया गया हैं । अन्तरराज्यिक व्यापार और वाणिज्य केन्द्र को आबंटित किए गए है जबकि स्थानीय महत्व के कर, राज्यों को आबंटित किए गए हैं । इसका ध्यान रखा गया है कि कराधान को परस्परव्यापी अधिकारिता न हो । शेष कराधान शक्तियां केन्द्र के लिए आरक्षित रखी गई है ।

यहां उठाये गए प्रश्न का उत्तर केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंध की योजना से जुड़े राजकोषीय परिसंघवाद के ढांचे को ध्यान में रखकर तलाशना है । उस संबंध में एक घटक पृथक्करण का सिद्धांत है जिसके आधार पर दोनों सरकारों के बीच कराधान संबंधी शक्तियों का विभाजन किया गया है । केन्द्रीय सरकार को आयकर क्यों वसूलना चाहिए, इसके पर्याप्त कारण हैं । यदि यह कर राज्यों द्वारा लगाया जाता तो उपयुक्त अर्थव्यवस्था के माप के अभाव में कर-वसूली की लागत में बढ़ोतरी होने के साथ-साथ राज्यों के बीच कराधान के आधार को लेकर हमेशा टकराव होता । कुछ राज्य निवास को आय पर कर लगाने का आधार मानते जबकि कुछ अन्य राज्य आय के स्रोत को । कर अपवंचन और दोहरे कराधान संबंधी समस्याओं के साथ-साथ इससे राज्यों को कर लगाने में काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता । इसी तरह निगम कर भी वही समस्यायें खड़ी करता यदि इस कर को लगाने की शक्ति भी राज्यों को दी जाती । चूंकि अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र द्वारा संचालित होते है, अत: केन्द्र द्वारा सीमा-शुल्क लगाया जाना न्यायसंगत होगा । कई आर्थिक कारणों से उत्पाद पर लगाया जाने वाला कर जैसे उत्पाद-शुल्क, ऐसा कर है जिसे केन्द्र द्वारा लगाया जाना ही ठीक है ।

इसी तरह खपत और स्थानीकृत आय तथा संपत्ति पर लगाये जाने वाले कर ठीक ही राज्यों को दिए गये हैं । बिक्री और खरीद पर कर, मनोरंजन कर, भू-राजस्व, मादक पेय-पदार्थों और एल्कोहोल पर कर और इसी तरह के अन्य कर जो राज्यों के नागरिकों पर लगाये जाते है या अंतर्राज्यीय व्यापार य वाणिज्य को प्रभावित किए बिना राज्य की सीमाओं के भीतर किए जाने वाले आर्थिक कार्यकलापों पर लगाये जाते हैं । अत: राज्यों को आबंटित किए गये करों को ठीक ही राजस्व के ऐसे स्रोत माना गया है जो केवल राज्यों के लिए है ।

पूरे देश को साझा बाजार मान कर और लागत तथा कार्यकुशलता के आधार पर, बिक्री-कर को छोड़कर प्रश्न में उल्लिखित सभी कर केन्द्र के हैं और इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर उनकी वसूली जारी रहनी चाहिए । यदि संविधान द्वारा कुछ

कर केवल राज्यों को आबंटित किये गए हैं जैसे कि व्यापकता पर आधारित और उत्पादन से संबद्ध कुछ अन्य कर केन्द्र को दिये गये है तो इसका मतलब है कि संविधान के निर्माताओं ने परिसंघीय राजकोषीय ढांचा, जिसमें केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व स्रोत का विभाजन भी शामिल है ताकि वे संविधान द्वारा सौंपे गये निजी कार्य को कर सकें, तैयार करने में शांत, संयत और सचेतन निर्णय लिया । इस व्यवस्था को कराधान संबंधी खंडित दृष्टिकोण का परिचायक मानना उचित नहीं होगा । यदि सभी महत्वपूर्ण कर केन्द्र के लिए सुरक्षित कर दिये जाय तो परिणाम यह होगा कि राज्यों के पास उनके अपने संसाधन नाममात्र की होंगे । ऐसी व्यवस्था भी सुदृढ़ लोक वित्त के विभिन्न आधारों पर, जिनमें कर लगाने संबंधी कुशलता और मितव्ययिता तथा केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान अधिकार का उचित रूप से किया गया आबंटन शामिल है, वकालत नहीं की जा सकती । सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि ऐसी व्यवस्था से केन्द्र-राज्य संबंध मधुर होने के बजाय तनावपूर्ण होंगे जिससे हमारी परिसंघीय व्यवस्था को अत्यधिक क्षति पहुँचेगी ।

प्रश्न कुछ पक्षों द्वारा व्यक्त किये गये दृष्टिकोण से संबंधित है, जिसके अनुसार इन करों को लगाने और कर से हुई आय के संवितरण को अलग किया जाना चाहिए । प्रश्न के पूर्ववर्ती भाग के अनुसार उल्लिखित प्रमुख कर लगाने की जिम्मेदारी केन्द्र की होनी चाहिए । इसका तात्पर्य यह होगा कि सभी महत्वपूर्ण कर केन्द्र सरकार द्वारा वसूले जायेंगे और इन करों से संबंधित आय का केन्द्र और राज्य के वित्त मंत्रियों की परिषद् द्वारा राज्यों के निजी शेयर (अंश) का निर्धारण कर उनके बीच वितरण किया जायेगा ।

इससे पूर्व हमने इंगित किया है कि बिक्री कर को छोड़कर प्रश्न में उल्लिखित सभी प्रमुख कर केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी हैं और यदि केन्द्र को कराधान की और अधिक शक्तियां सौंपने का विचार है तो यह विचार हमें नहीं जंचता जिसके कारण हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं ।

जो रूख हमने अख्तियार किया है, उसके परिणामस्वरूप प्रश्न में विचारित प्रकार की परिषद की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । प्रश्न में उल्लिखित सभी प्रमुख कर [बिक्री-कर को छोड़कर] विभाज्य नहीं हैं यद्यपि ये कर केन्द्र द्वारा लगाये और वसूले जाते हैं । जबकि सीमा-शुल्क और कंपनी-कर से होने वाली आय विशेष रूप से केन्द्र की है, आयकर और उत्पाद-शुल्क में राज्यों को भी हिस्सा दिया जाता है । आयकर में हिस्सा अनिवार्य आधार पर दिया जाता है जबकि कंपनी कर में हिस्सा अनुज्ञात्मक आधार पर दिया जाता है । संपदा-शुल्क यद्यपि केन्द्र द्वारा लगाया और वसूला जाता है, फिर भी संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन यह समनुदेशित कर है और इससे हुई आय से राज्यों की संचित निधि बनती है यद्यपि कृषि संपत्ति पर सम्पत्ति-कर संवैधानिक रूप से ऐसा कर नहीं है जिसमें राज्यों के साथ हिस्सा बंटाया जाता है या बांटा जाने योग्य है फिर भी इस कर से हुई निवल आय राज्यों को अनुदान के रूप में अन्तरित करने की परिपाटी लंबे समय से चली आ रही है । हम इन करों में हिस्सेदारी के सवाल को फिर से उठाने का समर्थन नहीं करते और न ही राज्यों को अनुदान के रूप में कृषि-संपत्ति पर संपत्ति-कर से हुई निवल आय को अन्तरित करने की परिपाटी का ही समर्थन करते हैं । हम इस विचार से भी सहमत नहीं हैं कि इन सभी करों को केन्द्र को समनुदेशित करने के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संविधान में संशोधन किया जाय ।

इन करों की संपूर्ण विभाजन योग्य सामूहिक निधि में राज्यों के निजी हिस्सों का निर्धारण वित्त आयोगों द्वारा तैयार किए गए सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता है जिन्हें ऐसा करने का विशेष संवैधानिक अधिकार प्राप्त है । हम नहीं चाहते कि वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र में कटौती की जाय या किसी भी तरह से इसके महत्व को कम किया जाय । यह एक स्वतंत्र निकाय है जिसे संवैधानिक प्रतिष्ठा हासिल है और इसे सांवैधानिक समिति से इतर किसी अन्य समिति, जिसे करों की सुपुर्दगी में राज्यों का अंश निर्धारित करने वाले सिद्धांतों को तय करने का कार्य सौंपा जाए, की अपेक्षा अधिक सम्मान मिला है और लोगों ने इस पर अपेक्षाकृत अधिक भरोसा किया है क्योंकि इसकी सिफारिशें वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष होती हैं ।

इसके अतिरिक्त, प्रश्नों में सुझाए गए स्वरूप के परिषद द्वारा कर-संवितरण में कई कठिनाइयां हैं । अन्ततः यह परिषद केन्द्र और राज्यों के लिए आपसी शिकायतें प्रकट करने, खत्म न होने वाले असीमित वाद विवाद करने और सकारात्मक कार्रवाई के लिए ठोस परिणामों के बिना एक दूसरे पर दोषारोपण करने का मंच साबित होगा । राज्यों में बदलती सरकारों के कारण बदलती राजनैतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उक्त प्रकार की संभावनाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती । अधिक से अधिक यह केन्द्र और राज्यों के बीच मध्यवर्ती समिति के रूप में कार्य कर सकती है जैसा कि स्पष्ट है कि किसी भी समझौते में आदान-प्रदान की भावना अभिभावी होती है और कोई भी व्यक्ति निश्चितता के साथ यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि कौन किस अनुपात में प्राप्त करता है और कौन किस अनुपात में देता है । स्पष्टतः अपेक्षाकृत अधिक कमजोर राज्यों को क्षति पहुंचने की पूर्ण संभावना होगी । वर्ष 1920 में और 1930 के प्रारंभिक वर्षों के दौरान आस्ट्रेलिया के अनुभव से पता चलता है कि राज्यों को दी जाने वाली अनुदान-राशि सौदेबाजी के कारण समाप्त करनी पड़ी । अन्ततः यह महसूस किया गया कि परिसंघ की रचना करने वाले संघटनों के बीच पारस्परिक विश्वास और आत्मविश्वास ऐसी सौदेबाजी के कारण कायम नहीं रह सकता इसी पृष्ठभूमि के आधार पर अनुदान आयोग की स्थापना की गयी । ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान के निर्माता इस अनुभव से सबक ले चुके हैं और यही कारण है कि उन्होंने आस्ट्रेलियाई अनुदान आयोग के सदृश एक वित्त आयोग बनाने का विचार किया ।

मान लें यदि परिषद् को संवैधानिक अधिकार दे दिए जायें तो परिषद् और वित्त-आयोग के कार्यकलापों में अतिव्याप्ति की समस्या उत्पन्न हो जायेगी । क्या परिषद् वित्त आयोग से अधिक महत्वपूर्ण हो जाएगी या इसके प्रयासों को पूरा करेगी ? उनके अपने-अपने क्षेत्र किस तरह सीमाबद्ध किये जायेंगे ? यदि परिषद् को वरीय प्राधिकरण समझा जाय, जो वित्त आयोग के कार्य को बनाए रखने या नकारने के लिए सक्षम हो, तो वित्त आयोग द्वारा राज्यों को अन्तरित राजकोष से संबंधित मद्दों के ब्यौरेवार समायोजन पर फैसला (निर्णय) देने के लिए ऐसी एजेंसी की स्थापना करना अनावश्यक होगा । इसके अतिरिक्त केन्द्र और राज्य के वित्तीय संबंधों में तनाव का एक और कारण बन जाएगा ।

दूसरी ओर यदि परिषद् को वित्त आयोग के प्रयासों का केवल अनुपूरक समझा जाय तो कई एजेंसियों के बनने से जिन्हें राज्यों को संसाधन अंतरित करने का कार्य सौंपा जाएगा तो अधिकारिता और अतिव्याप्ति की एक अन्य समस्या उत्पन्न होगी । इस दृष्टि से ऐसी एजेंसी से वास्तव में किसी लाभप्रद उद्देश्य की पूर्ति की उम्मीद नहीं की जा सकती । इन सबके अतिरिक्त, चाहे परिषद् वित्त आयोग की अनुपूरक हो या इससे ऊपर हो, इसे सौदेबाजी का फोरम (मंच) बनने से रोकने का कोई भी उपाय नहीं है । पूर्व स्पष्ट कारणों को मद्देनजर रखते हुए ऐसा मंच (फोरम) केन्द्र राज्य संबंधों के अनुकूल नहीं है ।

अब बिक्री-कर का सवाल आता है । जैसा कि हमने पहले ही बता दिया है हम केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान की शक्तियों के विभाजन को अव्यवस्थित करने के पक्ष में नहीं हैं । अतः हम इस दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते कि बिक्री-कर केन्द्र द्वारा लगाये जाएं । भारत सरकार को केन्द्रीय विक्रय-कर अधिनियम 1956 के उपबंधों के अधीन अंतरराज्यिक खरीद या बिक्री पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त है । राज्यों ने केन्द्र को चीनी, वस्त्र (सिल्क को छोड़कर) और तंबाकू पर बिक्री-कर लगाने का अपना अधिकार पहले ही सौंपा हुआ है और इन वस्तुओं पर लगाये जाने वाले बिक्री-कर का स्थान अतिरिक्त उत्पाद-शुल्कों ने ले लिया है । अतिरिक्त उत्पाद-शुल्कों से हुई आय में राज्यों का हिस्सा वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार तय किया जाता है ।

इन्हीं सीमाओं के भीतर राज्यों को अपनी-अपनी बिक्री-कर प्रणाली विकसित करनी पड़ती है । यदि राज्यों के करों से प्राप्त राजस्व के वितरण पर नजर डालें तो पता चलेगा कि वर्ष 1970-71 में राज्यों के संपूर्ण कर राजस्व में बिक्री-कर संबंधी आय का प्रतिशत लगभग 50 था । राज्यों के संपूर्ण कर-राजस्व में जो महत्वपूर्ण स्थान बिक्री-कर को मिला है, वह इस तथ्य से स्पष्ट हो जायेगा कि 1982-83 (बजट अनुमान) में राज्यों के सकल कर-राजस्व में बिक्री-कर का प्रतिशत लगभग 59 था । अतः राज्यों के लिए बिक्री-कर राजस्व का सबसे महत्वपूर्ण एकमात्र लचीला स्रोत साबित हुआ है । यह वित्तीय क्षमता का मुख्य सहारा है जिसे यदि राज्य खो देंगे तो उनके वित्तीय साधन लगभग समाप्त हो जाएंगे और राज्य उन्हें किसी भी स्थिति में खोना नहीं चाहेंगे । राज्यों को अपने वित्त को

मर्यादित रखने के लिए और अधिक वित्तीय संसाधनों की जरूरत को मद्देनजर रखते हुए बिक्री-कर लगाने की उनकी शक्ति किसी भी स्थिति में छीनी नहीं जा सकती क्योंकि यह शक्ति उन्हें संविधान की सातवीं अनसूची के तहत प्राप्त हैं

5.9 इस प्रश्न से कई मुद्दे उठे हैं जिनका सुलझाया जाना जरूरी है ताकि उठाए गये प्रश्न पर व्यापक दृष्टिकोण स्पष्ट हो सके। ये मुद्दे इस प्रकार हैं :--

(i) क्या किसी एक संगठन को पूंजीगत और राजस्व संसाधनों का मूल्यांकन करके योजना और गैर-योजना संबंधी सभी वित्तीय अंतरण करने चाहिए ।

(ii) यदि मुद्दा (i) का उत्तर हाँ में है तो क्या ऐसा संगठन वित्त आयोग होना चाहिए ?

(iii) क्या वित्त आयोग स्थायी निकाय होना चाहिए।

(iv) यदि (i) से लेकर (iii) मुद्दे तक का उत्तर हाँ में है तो सवाल उठता है कि योजना आयोग की भूमिका कैसी होनी चाहिए ?

उपर्युक्त मुद्दे (i) पर विचार करने से यह बात देखने में आती है कि संविधान के अनुच्छेद 280 में दी गयी व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक पाँच वर्ष में एक बार वित्त आयोग की नियुक्ति होनी चाहिए। ताकि केन्द्र और राज्यों की जरूरतों और वित्त की पंचवर्षीय समीक्षा हो सके और अनुच्छेद 275 के तहत सहायता-अनुदान और करों में हिस्से के माध्यम से राज्यों को संसाधनों के अंतरण की सिफारिशें की जा सकें। अतः वित्त आयोग वह संवैधानिक प्राधिकरण है जिसे संसाधनों के अन्तरण की सिफारिश करने के अलावा सुदृढ़ वित्त के लिए राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए किसी अन्य मामले में सिफारिश करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान के संगत उपबंधों पर नजर डालें तो पता चलेगा कि कहीं भी ऐसी व्यवस्था नहीं दी हुई है जिसके तहत वित्त आयोग अपना कार्य राज्यों की गैर-योजना संबंधी राजस्व आवश्यकताओं के मूल्यांकन तक सीमित रखे। चौथे वित्त आयोग के अध्यक्ष ने जैसे कि प्रेक्षण किया था यह पूर्णतः स्पष्ट है(मेरे विचार में) कि अनुच्छेद 275 के खंड(i)के मुख्य भाग में राज्यों के राजस्व संबंधी सहायता अनुदान का उल्लेख केवल राजस्व व्यय तक ही सीमित नहीं है। उन्होंने आगे बताया कि "वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र से सभी पूंजीगत अनुदानों को अलग करने का कोई कानूनी वारंट नहीं है और राज्य की पूंजीगत आवश्यकताएं भी वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर अनुच्छेद 275 (i) के अधीन सहायता-अनुदानों द्वारा पूरी की जा सकती हैं। वस्तुतः यह व्यापक व्याख्या भारत सरकार द्वारा दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंत तक ही अपनायी गयी।

अतः यह प्रतीत होता है कि संविधान ने वित्त आयोग को राज्यों को केन्द्र से संसाधन अंतरित करने के एकमात्र माध्यम के रूप में कार्य करने वाला स्वतंत्र निकाय माना। काफी हद तक, यह स्थिति दूसरे वित्त आयोग के कार्यकाल तक बरकरार रही क्योंकि प्रथम दो वित्त आयोगों ने राज्यों की मौजूदा और पूंजीगत दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए केन्द्र से वित्तीय सहायता की सिफारिश की थी। योजना आयोग का आविर्भाव होने और अर्थव्यवस्था के विभिन्न खंडों (सेक्टरों) में विकास हेतु राष्ट्रीय संसाधनों के आबंटन की जिम्मेदारी लेने पर स्थिति में महान परिवर्तन आया। परिणाम यह हुआ कि वित्त आयोग की सिफारिशों का कार्यक्षेत्र राज्यों को गैर-योजना तक ही सीमित हो गया। ऐसा कहा जाता है कि इस विकास के परिणामस्वरूप योजना आयोग राज्यों की संसाधनों के अन्तरण का मुख्य निर्णयकर्ता बन गया है।

वित्त आयोग और योजना आयोग की अपनी-अपनी भूमिकाएं हमेशा तीव्र विवाद का विषय रही हैं। दोनों आयोगों का एक दूसरे के प्रति दृष्टिकोण मैत्रीपूर्ण नहीं रहा है। जहाँ तक वित्त आयोग का संबंध है, उसे योजना-आयोग की उपस्थिति से ईर्ष्या हुई है। तीसरे वित्त आयोग ने यह कहकर अपरिहार्य स्थिति का खुलासा किया, कि राष्ट्रीय आयोजना के लिए साधन के रूप में योजना आयोग का आविर्भाव होने से संविधान में दी हुई व्यवस्था के अनुसार वित्त आयोग की भूमिका और कार्यकलापों को अब पूरी तरह साकार नहीं किया जा सकता और प्रारंभिक चरणों दोनों के बीच जो थोड़ा सा विरोध था, उसकी जगह अब वित्त आयोग में निराशा ने ली है। इसने सोचा कि ऐसी परिस्थितियों में वित्त आयोग, राज्यों द्वारा प्रस्तुत किये गये राजस्व और व्यय संबंधी पूर्वानुमानों की समीक्षा करने और योजनागत खर्च संबंधी विभिन्न शीर्षों के अंतर्गत योजना आयोग द्वारा तय की गयी राशियों पर विचार किये बिना अन्तरण की राशि का निर्धारण करने के लिए हिसाब-किताब करने वाली एजेंसी के रूप में कार्य करने के सिवाय और कुछ नहीं कर सकती।

फिर भी चौथे वित्त आयोग ने सोचा कि वित्त आयोग का कार्य केवल ऐसे अन्तरण और सहायता अनुदानों की सिफारिश ही करना नहीं है जिनसे राज्यों द्वारा सूचित गैर-योजना संबंधी राजस्व घाटे की केवल भरपाई हो पाये क्योंकि ऐसा दृष्टिकोण अविवेकपूर्ण होगा। ऐसा सोचने पर भी आयोग ने राज्यों के योजनागत खर्च से निपटने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना उचित नहीं समझा। बाद के वित्त आयोगों ने अपने को योजना आयोग के अधिकार क्षेत्र से अलग रखा। सातवें वित्त आयोग ने सोचा कि विकास अवधि के लिए अंतरण की अपनी योजना तैयार करने की वित्त आयोग की स्वतंत्रता पर संवैधानिक उपबन्धों को छोड़कर किसी अन्य तरह से अंकुश नहीं लगाया जा सकता। आयोग ने सोचा कि राज्य की योजनाओं से संबंधित केंद्रीय सहायता और पूंजीगत निवेश का क्षेत्र योजना आयोग को देना वस्तुतः प्रतिबंध लगाना नहीं है।

वर्तमान व्यवस्था, जिसके द्वारा वित्त आयोग का कार्य गैर-योजना क्षेत्र तक सीमित कर दिया गया है और योजना आयोग को योजनागत आवश्यकताओं की देख-रेख का कार्य सौंपा गया है, के आलोचक इस व्यवस्था की गई कमियों को इंगित करते हैं। उनके अनुसार पहली कमी यह है कि दोनों आयोगों के कार्य-कलाप एक दूसरे की अतिव्याप्त करते हैं और उनके द्वारा किए गए निर्धारण में भिन्नता होती है। यह कहा जाता है कि संसाधनों के अंतरण के दो स्रोत होने और राज्यों की आवश्यकताओं का निर्धारण करने के विभिन्न तरीके अपनाने का परिणाम यह होता है कि राज्य राजस्व संबंधी अपने ब्यौरे और पूर्वानुमान दोनों आयोगों को दो स्तर से प्रस्तुत करते हैं। इस स्थिति पर काबू कैसे पाया जाय ? इस संबंध में यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि राज्यों के हित की दृष्टि से विषय का मुख्य पहलू यह नहीं है कि संसाधनों के अंतरण का स्रोत एक हो या दो, और छठे वित्त आयोग द्वारा किए गए प्रेक्षण के अनुसार समस्या को केन्द्र और राज्यों के बीच उपलब्ध संसाधनों के संवितरण की समस्या के रूप में देखना भी उचित नहीं होगा। महत्वपूर्ण पहलू यह है कि समस्या को केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में आने वाले क्षेत्रों और राज्यों के कार्यक्षेत्रों में आने वाले क्षेत्रों के बीच उपलब्ध संसाधनों के संवितरण की समस्या के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय। इसका तात्पर्य मुख्यतः विकास के विभिन्न क्षेत्रों (सेक्टरों) के बीच राष्ट्रीय संसाधनों का वितरण करना है।

वित्त आयोग और योजना आयोग संरचना में भिन्न प्रतीत हो सकते हैं और उनकी कार्यप्रणाली और दृष्टिकोण में अंतर हो सकता है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे राज्यों के संतुलित विकास के साथ-साथ देश के आर्थिक विकास के लिए कार्य करने के समान लक्ष्य से मुख मोड़ सकते हैं। यदि योजना आयोग और वित्त आयोग एक जैसा परीक्षण कर समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आपसी तालमेल रखते हैं तो इससे संसाधन अंतरण के संबंध में वर्तमान दोहरेपन की कमियों को काफी हद तक ध्यान में रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त दोनों आयोगों द्वारा अपनायी गयी प्रक्रियाओं में थोड़ा सा सामंजस्य होने पर राज्यों को योजना आयोग और वित्त आयोग को भिन्न ब्यौरे प्रस्तुत करने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

इस संबंध में वित्त आयोग और योजना आयोग में से प्रत्येक द्वारा किए गए कार्यों के परिणामों में जो गहरा संबंध है, उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सातवें वित्त आयोग द्वारा किये गये प्रेक्षण के अनुसार योजना आयोग द्वारा निर्देशित और समर्थित विकास परक प्रक्रिया ऐसी हो कि राज्यों की आर्थिक असमानताओं में कमी आये और अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों की संसाधन क्षमता में बढ़ोतरी हो, जिस पर योजना अवधि के अंत में वित्त आयोग ध्यान देगा। दूसरी ओर वित्त आयोग द्वारा किए गए अन्तरणों से राज्यों को समुचित प्रशासनिक आधारित संरचनाओं (इन्फ्रास्ट्रक्चरों) को कायम रखने और उनका विकास करने के लिए वित्तीय साधन मुहैया हो सकें। यह प्रशासनिक आधारिक संरचना विकासशील अर्थव्यवस्था के कारण बढ़ती हुयी मांगों के अनुरूप हो।

दोनों आयोगों के घनिष्ठ संबंध और उनकी एक दूसरे पर निर्भरता को उचित समय-क्रम निर्धारित करके और अधिक सार्थक किया जा सकता है। इससे प्रत्येक को एक दूसरे के द्वारा किये गये प्रयासों के परिणाम की जानकारी होगी। 1980—85 योजना में प्रथम चार वर्षों की सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखा जा सकता था। आठवां वित्त आयोग, योजना आयोग के कार्य से 1984-85 में लाभान्वित हो सकता था। उचित समय-क्रम निर्धारित करना और इसका पालन करना खास महत्व रखता है क्योंकि इससे दोनों आयोगों के संबंधों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।

आलोचना का दूसरा मुद्दा प्रायः यह रहा है कि वित्त आयोग द्वारा किये गए अन्तरणों की तुलना में योजना आयोग द्वारा किए गए अधिक अंतरणों के कारण राज्य संसाधन अंतरण के संबंध में योजना आयोग को बेहतर समझने लगे है। इस संबंध में एक मुद्दा यह उठाया गया है कि चूंकि वित्त आयोग एक संवैधानिक और स्वतंत्र निकाय है, अतः यह वित्तीय अंतरणों से संबंधित विषयों के अर्ध-न्यायिक पंचाट पर राज्यों की हकदारी का निर्धारण करता है जबकि योजना आयोग द्वारा किये गये अंतरण का कोई संवैधानिक आधार नहीं है और इसीलिए वे योजना आयोग के विवेक पर आधारित हैं।

जहाँ तक वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा अंतरित किए जाने वाले संसाधनों की सापेक्ष स्थिति का संबंध है, पिछले कुछ वर्षों के दौरान इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। यथासंभव कई राज्यों के लिए गैर-योजना अधिशेष मुहैया कराने की दृष्टि से सहायता अनुदान की तुलना में करों में हिस्सा देने पर वित्त आयोग की अपेक्षाकृत अधिक निर्भरता से योजना आयोग द्वारा किये गये अंतरणों की तुलना में वित्त आयोग द्वारा किये गये अंतरणों में बढ़ोतरी हुई है जैसा कि नीचे दी गयी सारणी से स्पष्ट हो जायेगा :

(रुपए करोड़ों में)

	प्रथम योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	चौथी योजना	पांचवीं योजना	छठवीं योजना	सातवीं योजना
क. वित्त आयोग द्वारा अन्तरण . .	429	918	1590	1782	5420	13079	20845
ख. योजना आयोग द्वारा अन्तरण . .	880	1344	2738	1917	4900	10595	13245
ग. अन्य अंतरण . . .	104	606	1272	1648	4992	4054	उपलब्ध नहीं
घ. जोड़ (क+ख+ग)	1413	2868	3600	5347	15312	27728	34090
घ से क का प्रतिशत . . .	30.3	32.0	28.4	33.3	35.4	47.2	61.1
घ से ख का प्रतिशत . . .	62.3	46.9	48.9	55.9	32.0	38.2	38.9

सारणी से यह बात स्पष्ट होती है कि जबकि प्रथम योजना अवधि में कुल अन्तरणों में वित्त आयोग द्वारा किए गए अंतरणों का प्रतिशत 30.3 और योजना आयोग द्वारा किए गए अन्तरणों का प्रतिशत 62.3 था, पांचवीं योजना अवधि में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा किये गये अन्तरणों के प्रतिशत क्रमशः 47.2 और 38.2 थे। वर्तमान योजना अवधि में वित्त आयोग द्वारा किए गए अन्तरणों की सकल मात्रा और प्रतिशतता में और अधिक बढ़ोतरी हुई है। यह एक सुखद परिवर्तन है। ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है कि आगामी वर्षों में सही दिशा में हुए परिवर्तन की इस प्रक्रिया का कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

यह सही हो सकता है कि योजना आयोग द्वारा किये गये अंतरण विवेक पर आधारित होते हैं क्योंकि योजना आयोग की स्थापना सांविधिक उपबन्धों के कारण नहीं हुई है, लेकिन इसी तरह यह कहना सही नहीं होगा कि अंतरण बिना किसी निश्चित मानदंड के मनमाने ढंग से किये जाते हैं। राज्यों के लिए योजनागत सहायता के अधिकांश अंश का निर्धारण करने के लिए योजना आयोग ने 1979 से प्रसिद्ध आई०ए०टी०पी० फार्मूला अपनाया और इसके द्वारा जो विवेक से सहायता दी गयी, व्यवहार में उससे पूर्ण रूप से अपेक्षाकृत अधिक निर्धन राज्यों को लाभ पहुंचा। राज्यों को दी जाने वाली सहायता के निर्धारण के लिए 1980 से संशोधित गाडगिल फार्मूले का इस्तेमाल किया गया है जिसके अनुसार उन राज्यों को, जिनकी प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम है, दी जाने वाली सहायता 10% से 20% कर दी गयी है। इस तरह राज्यों को दी जाते वाली योजना सहायता को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों में लाभप्रद परिवर्तन हुआ है और इस परिवर्तन से अपेक्षाकृत कमजोर राज्यों को राहत पहुँची है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह कहना सही नहीं होगा कि योजना आयोग द्वारा किये जाने वाले अन्तरण वैसे ही मनमाने ढंग से या स्वविवेक से किये जाते हैं जैसा कि प्रायः उनके संबंध में कहा जाता है।

उक्त विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यप्रणाली के दोहरेपन के कारण गत वर्षों में जो भी मुसीबतें उठानी पड़ी हों, राजकोषीय अन्तरण इतने दुस्तर नहीं हैं कि वित्त आयोग और योजना आयोग के द्वारा, किये जाने वाले अन्तरणों संबंधी वर्तमान कार्यप्रणाली के व्यापक ढांचे के भीतर उनका कार्यकारी हल तलाशा न जा सके। वस्तुतः वित्त आयोग द्वारा अंतरित की गयी कुल मात्रा में और वह भी करों में हिस्सों में उल्लेखनीय वृद्धि से राज्यों को पर्याप्त राहत मिलनी चाहिए कि उन्हें अधिकांश राजकोषीय अन्तरण अब सुनिश्चित स्रोत से तथा वित्त आयोग द्वारा तैयार किये गये सुविचारित सिद्धांतों के आधार पर किये जाते हैं।

यह ध्यान में रखना अत्यधिक जरूरी है कि अन्तरण के स्रोत पर ध्यान दिये बिना अन्ततः केन्द्र के पास उपलब्ध अधिशेष राशि से ही राज्यों को सुपुर्द किया जाता है। अतः यह राज्यों के हित में होगा कि सभी संभाव्य अधिशेष राशि, जिससे राज्यों को संसाधनों का अन्तरण किया जा सके, का पता लगाने के लिए केन्द्र सरकार के वित्त की ठीक तरह से जांच की जाय। सातवें वित्त आयोग ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसने केन्द्र सरकार द्वारा प्रस्तुत किये गये संसाधन संबंधी पूर्वानुमान की जांच कर इसका पुनर्निर्धारण किया और विशेष अधिशेष का पता लगाया जिससे अन्ततः राज्यों को अंतरित किये जाने वाले सकल संसाधनों में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है। इससे राज्यों को लाभ पहुँचा है। यह उम्मीद की जाती है कि भविष्य में भी वित्त आयोग केन्द्र द्वारा प्रस्तुत किये गये संसाधन संबंधी पूर्वानुमान की इसी तरह जांच करते रहेंगे ताकि राज्य अपने हिस्से में अधिकतम संभाव्य सीमा तक बढ़ोतरी की आशा कर सकें।

दूसरी बात, जिससे राज्यों को वित्त आयोग के कार्य से लाभान्वित होने में मदद पहुंची है, वह है दोनों आयोगों के कार्यक्षेत्र और कार्यों में अनौपचारिक विभाजन कायम रखते हुए भारत सरकार द्वारा छठे और सातवें वित्त आयोगों से राज्य सरकारों के क्रमशः पांचवीं और छठी पंचवर्षीय योजनाओं से संबंधित गैर-योजना संबंधी पूंजीगत अन्तर का अनुमान लगाने और ऐसे गैर-योजना संबंधी पूंजीगत अंतर को दूर करने के लिए उपाय सुझाने को कहना। इसका अर्थ यह हुआ कि केन्द्र सरकार ने सैद्धान्तिक रूप से यह स्वीकार कर लिया है कि वित्त आयोगों की सिफारिशों में राज्यों की गैर-योजना संबंधी पूंजीगत लेखे की राजकोषीय आवश्यकतायें भी शामिल हो सकती हैं। इस धारणा को इस तथ्य से और अधिक बल मिलता है कि केन्द्र सरकार ने कुछ राज्यों को कुछ खास क्षेत्रों (सेक्टरों) में

प्रशासनिक स्तर के उन्नयन के लिए राजस्व और पूंजीगत अनुदान मुहैया कराने संबंधी सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों को मंजूर कर लिया ।

पूर्ववर्ती पैरो में राज्यों को राजकोषीय अंतरण की कार्यप्रणाली और हाल के वर्षों में हुई प्रगति संबंधी विवरण से कुछ निष्कर्ष स्पष्ट हो जाते हैं । पहला निष्कर्ष यह निकलता है कि अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करते हुए वित्त आयोग और योजना आयोग दोनों ही ने हाल में अपने आपको आपसी विवाद से दूर रखा है और उन्होंने एक दूसरे के प्रति विरोध जताने के बजाय राज्यों के संतुलित विकास के साथ-साथ देश के आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने के समान लक्ष्य की प्राप्ति संबंधी अपने संयुक्त प्रयास में एक दूसरे के कार्य से लाभान्वित होने के लिए साधन और तरीके तलाशने की कोशिश की है । दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि जहां तक वित्त आयोगो का संबंध है, उन्होंने सुपुर्दगी संबंधी उचित सिद्धांतों को तैयार करने के लिए यथासंभव गंभीर प्रयास किये हैं, जो प्रगतिशीलता से अनुप्रणित हैं और जिनका उद्देश्य सामान्यत: राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करना तथा विशेष रूप से उनके स्तर में समानता लाना है । तीसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि योजना आयोग ने अपेक्षाकृत अधिक कमजोर राज्यों के लाभ का विशेष रूप से ध्यान रखते हुए राज्यों के लिए योजना सहायता के निर्धारण के लिए निश्चित मानदंड और सुपरिभाषित फार्मूला अपनाया है ।

अत: स्थिति इतनी निराशजनक नही की मूलभूत उपाय करने की जरूरत पड़े और वित्त आयोग और योजना आयोग दोनों ही के कार्यों और उत्तरदायित्वों को दोनों में से किसी एक को संभालना पड़े । तीसरे वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए दो विकल्पों का यही निचोड़ था । एक विकल्प यह था कि वित्त आयोग के कार्यों को इतना बढ़ा दिया जाय कि राज्यों को कर्ज, सुपुर्दगी (अन्तरण) या राजस्व के रूप में दी जाने वाली सभी वित्तीय सहायता, जो उनके सामान्य बजटों को संतुलित रखने में और योजना संबंधी विहित लक्ष्यों की पूर्ति में उन्हें सक्षम बना सके, इनमें शामिल हो जाय ।

तीसरे वित्त आयोग द्वारा दिये गये सुझाव को संभवत: पर्याप्त कारणो से मंजूरी न मिल सकी । योजनाबद्ध आर्थिक विकास का महत्व इतना अधिक है और इसका कार्यान्वयन इतना आवश्यक है कि योजना परिव्यय संबंधी किसी घटक के संबंध में उत्तरदायित्व में किसी प्रकार की शिथिलता पर्याप्त रूप से घातक साबित हो सकती है । योजना आयोग का गठन विशेष रूप से भारत सरकार और राज्य सरकारो को आर्थिक और सामाजिक योजना के संबंध में परामर्श लेने के लिए किया गया है । चौथे वित्त आयोग ने इन बातों को ध्यान में रखा और वित्त आयोग द्वारा राज्यों के नए योजना परिव्यय संबंधी कार्य की जिम्मेदारी उठाने को उचित नही समझा ।

प्रशासनिक सुधार आयोग (1967) के अध्ययन दल ने केन्द्र राज्य संबंधों का निर्धारण करते समय सोचा कि वित्त आयोग के कार्य कलापों में वृद्धि करने का यह सुझाव कि परिधि में वे कार्य भी आ जायें जो योजना सहायता के संबंध में योजना आयोग द्वारा किये जा रहे हैं, न मानना उचित ही था क्योंकि ऐसे कार्य ऐसी समिति को नही सौंपे जा सकते जो योजना निर्माण और कार्यान्वयन संबंधी जिम्मेदारियों (उत्तरदायित्वों) से मुक्त हो । तर्क में दम है अत: इसे नकारा नही जा सकता ।

वास्तव में वित्त आयोग और योजना आयोग के कार्य इतनी अच्छी तरह परिभाषित और विनिर्दिष्ट हैं कि दोनों में से कोई भी एक दूसरे के कार्यों को लाभप्रद तरीके से संभाल नहीं सकता । उनकी भूमिकाएं भिन्न हैं लेकिन जिस लक्ष्य के लिए वे साथ-साथ प्रयास कर रहे हैं, अन्तत: वह लक्ष्य अर्थात् संतुलित क्षेत्रीय विकास के साथ-साथ आर्थिक विकास का लक्ष्य, एक होगा । केन्द्र राज्य संबंधों में तालमेल स्थापित करने के लिए उनके द्वारा अपनायी गयी प्रक्रियाओं की लगातार समीक्षा की जाय और उन्हें बदलती हुई मांग के अनुसार अपनाया जाय ताकि एक ओर दोनों समितियां एक दूसरे के अनुपूरक हो कर सहयोग से कार्य कर सकें और दूसरी ओर उनके द्वारा किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप काफी हद तक पूर्ण संतुष्टि हो सके ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके परिप्रेक्ष्य में हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं कि पूंजीगत और राजस्व संसाधनों का निर्धारण कर योजना और गैर-योजना संबंधी सभी वित्तीय अन्तरण के लिए केवल एक संगठन हो । अत: ऊपर उल्लिखित मुद्दा (ii) का उत्तर नकारात्मक है ।

अब हम ऊपर उल्लिखित मुद्दा (iii) लेते है जिसमें यह सवाल उठाया गया है कि क्या वित्त आयोग को स्थायी निकाय होना चाहिए । प्राय: यह दलील दी जाती रही है कि वित्त आयोग को उन कार्यों को जो उसे वर्तमान समय में सौंपे गये हैं, जारी रखने के लिए एक स्थायी निकाय के रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए । यह सुझाव कई कारणों से न्यायसंगत ठहराया जाता है । ऐसा कहा जाता है कि वित्त आयोग के तदर्थ होने के कारण, इसमें हर बार नये कार्मिकों की नियुक्ति करनी पड़ती है और संभवत: इसका सहायक सचिवालय भी पूर्ण रूप से नया होता है । इसका परिणाम यह होता है कि वित्त आयोग केन्द्र राज्य संबंधी राजकोषीय संबंधों की इस तरह से समीक्षा करने में सक्षम नहीं हो पाता जिससे राज्यों को किए जाने वाले राजकोषीय अन्तरण संबंधी प्रणाली को स्थायित्व प्रदान किया जा सके ।

दूसरी बात यह है कि अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद आयोग रह ही नहीं जाता, अत: इसके चिंतन और कार्य में तारतम्य का अभाव होता है । तीसरा कारण यह बताया जाता है कि वित्त आयोग का कार्यकाल इतना कम होता है कि यह स्वतंत्र कार्यप्रणाली के विकास में सक्षम नहीं हो सकता । अत: इसके पास आसानी से उपलब्ध कार्यप्रणाली पर निर्भर रहने के अलावा कोई विकल्प ही नहीं होता । इसके अतिरिक्त यह कहा जाता है कि पांच वर्षों के बाद वित्त आयोग की स्थापना करने का परिणाम यह हुआ है कि केन्द्र सरकार के पास विवेकपूर्ण अंतरण संबंधी पर्याप्त कार्यक्षेत्र हैं ।

यहां यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यदि तारतम्य के लिए वित्त आयोग को स्थायी निकाय में परिवर्तित कर दिया जाता है तो परिणाम यह होगा कि आने वाले वर्षों में इसका दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण और पूर्वाग्रहयुक्त हो जायेगा जिसका प्रभाव इसकी स्वतंत्रता और निर्णयशक्ति पर पड़ेगा और मुख्य रूप से यही दो प्रमुख विशेषतायें है जो गौरवशाली निकाय में विश्वास जागृत करती हैं ।

विषय का दूसरा उल्लेखनीय पहलू भी है । यदि वित्त आयोग को स्थायी कर दिया जाता है जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने सही ही कहा है, तो आयोग के सदस्यों को केन्द्र सरकार के पूर्णकालिक कर्मचारी के रूप में माने जाने की प्रवृत्ति जन्म ले सकती है और यह आयोग और राज्य सरकारों के क्रिया कलापों के परिप्रेक्ष्य में खतरनाक साबित होगा ।

चूंकि राज्यों को सापेक्ष आवश्यकताओं, संसाधनों, आर्थिक और राजकोषीय स्थिति का आकलन करने के लिए दो वित्त आयोगों की नियुक्ति के बीच की अवधि में महान परिवर्तन हो सकते हैं, अत: यह प्रत्येक आयोग का कर्त्तव्य है कि वह बदलते परिवेश में विभिन्न समस्याओं पर नये सिरे से विचार करे । पूर्वविचारित धारणाओं से रहित ऐसा नूतन दृष्टिकोण केवल वर्तमान प्रणाली से संभव है क्योंकि जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने भी प्रेक्षण किया । इस प्रणाली द्वारा नये आयोग के गठन से आयोग में नए दृष्टिकोण और पक्षपात रहित विचारधारा के लोग शामिल होते हैं ।

जहां तक इस तर्क का संबंध है कि वित्त आयोग को स्थायी कर देने से केन्द्र द्वारा किये जाने वाले विवेकपूर्ण अंतरणों में वृद्धि की संभावना रहेगी, सातवें वित्त आयोग ने ठीक ही इंगित किया था कि ऐसी प्रणाली बनाना कठिन है, जिसके द्वारा अत्यधिक परिवर्तनशील परिस्थितियों में, जिनमें राज्य सरकारें अपने को समय-समय पर पाती हैं, ऐसे अन्तरणों को पूरी तरह से समाप्त किया जा सके । यह कहा जा सकता है कि वित्त आयोग को स्थायी बना देने मात्र से ही केन्द्र द्वारा राज्यों को किये जाने वाले विवेकपूर्ण अन्तरणों को समाप्त करने में सफलता नहीं मिलेगी । दूसरी ओर यह काफी हद तक राज्यों के वित्तीय साधन उपलब्ध कराने पर निर्भर करेगा जिनमें वित्त आयोग द्वारा किये गये अंतरणों का भारी योगदान होता है ।

वित्त आयोग को स्थायी बनाने के संबंध में एक अन्य तर्क प्रस्तुत किया गया है । ऐसा कहा जाता है कि वर्तमान व्यवस्था की एक कमी यह है कि केन्द्र और राज्य के वित्तीय संबंधों की लगातार समीक्षा के लिए कोई प्रावधान नहीं है । इस संबंध में मुख्य बल वित्त आयोग की संरचना और कार्यकाल में आवश्यक परिवर्तन कर अर्थात, वित्त आयोग को स्थायी निकाय बनाकर कुछ स्थायित्व और तारतम्य बनाये रखने पर दिया गया है । इसके अतिरिक्त यह जोर दिया गया है कि केन्द्र

और राज्य के वित्तीय संबंधों की लगातार समीक्षा के लिए केन्द्र और राज्यों के वित्त के विभिन्न पहलुओं से संबंधित आंकड़ों और सूचना विशिष्ट क्षेत्रों और राज्यों की खास विशेषताओं और वित्त को प्रभावित करने वाले घटकों का लगातार संग्रह, संकलन और विश्लेषण किया जाय और यह बात दृढ़तापूर्वक कही गयी है कि केवल एक स्थायी वित्त आयोग ही इस कार्य को अंजाम दे सकता है।

विषय का मुख्य मुद्‌दा यह है कि जिस तरह के केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंध की अपेक्षा की गयी है, क्या उसकी निरंतर समीक्षा केवल एक स्थायी वित्त आयोग द्वारा संभव है या ऐसी समीक्षा के लिए इसी तरह की कोई प्रभावशाली व्यवस्था, वित्त आयोग के कार्यालय को अव्यवस्थित किये बिना की जा सकती है। इससे पूर्व विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देने पर हमने पाया है कि आयोग के वर्तमान ढांचे को बनाए रखने में ही लाभ है। वास्तव में केन्द्र और राज्य के वित्तीय संबंधों की उचित समीक्षा संबंधी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो बात विशेष रूप से महत्वपूर्ण है वह यह है कि केन्द्र और राज्य के वित्त संबंधी विभिन्न पहलुओं का नियमित रूप से अध्ययन किया जाय और उनसे संबंधित सभी संगत आंकड़े एकत्रित करके उनका विश्लेषण किया जाय। यदि वित्त आयोग को केवल ऐसे अध्ययन करने और संगत आंकड़े एकत्रित करने के लिए ही स्थायी निकाय बना दिया जाता है तो यह केवल एक गौरवशाली निकाय का समय बर्बाद करना होगा क्योंकि यह कार्य इस उद्‌देश्य के लिए गठित योग्य और पूर्णतः सज्जित अध्ययन कक्ष को सौंपा जा सकता है और उसके द्वारा पूरा किया जा सकता है। अध्ययन कक्ष नियमित अध्ययन पर आधारित तैयार सामग्री वित्त आयोग को उपलब्ध करा कर उसकी मदद कर सकता है। वस्तुतः सभी वित्त आयोगों ने ऐसे कक्ष द्वारा किए गए अध्ययन की उपयोगिता पर बल दिया है।

प्रथम वित्त आयोग की सिफारिशों पर ही राष्ट्रपति के सचिवालय में ऐसे कक्ष की स्थापना की गयी लेकिन कराधान जांच आयोग की सिफारिशों पर इसे बाद में वित्त मंत्रालय में अन्तरित कर दिया गया। चौथे वित्त आयोग (1956) ने पाया कि इस कक्ष में मंत्रालय के केवल कुछ कर्मचारी शामिल थे। तब से स्थिति में कोई व्यापक सुधार नहीं हुआ है, जैसा कि सातवें वित्त आयोग के प्रेक्षण से पता चलेगा कि व्यवस्था अपूर्ण थी। हम महसूस करते हैं कि आयोग ने इस संबंध में जो सिफारिशें कीं, उन्हें पूर्ण रूप से लागू किया जाना चाहिए। इसका कहना था कि यदि केन्द्र सरकार द्वारा विशेषज्ञ राजनीतिक एजेंसी की नियुक्ति हो और वह ऐसे कार्य करे जिसकी उम्मीद आयोग संबंधी सचिवालय से की जाती है तो ऐसी व्यवस्था भावी वित्त आयोगों के लिये अत्यधिक उपयोगी साबित होगी और इससे उनका कार्य भी बहुत अधिक आसान हो जायेगा। आयोग चाहता था कि यह एजेंसी केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों के संबंध में सामान्यतया निगरानी करने और सलाह देने की भूमिका अदा करे। एजेंसी के पास केन्द्र और राज्य सरकार से सभी संगत सूचना प्राप्त करने का प्राधिकार होना चाहिए। आयोग ने यह भी सोचा कि इस एजेंसी को वित्त आयोग की मंजूर की गयी सिफारिशों को ठीक तरह से लागू करने से भी संबद्ध होना चाहिए। वित्त आयोग की नियुक्ति पर इस एजेंसी को सचिवालय में मिला दिया जाना चाहिए।

सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों को मद्‌देनजर रखते हुए हम ऐसी एजेंसी के गठन के बहुत अधिक पक्षधर हैं क्योंकि हम महसूस करते हैं कि यदि आयोग के बताये अनुसार एजेंसी का गठन किया जाता है तो इससे केन्द्र राज्य वित्तीय. संबंधों की लगातार समीक्षा हो जायेगी और वित्त आयोग को स्थायी बनाने के लिए जो मुद्‌दा आधार के रूप में उठाया गया है, इससे उसका भी काफी हद तक समाधान हो जायेगा।

सातवें वित्त आयोग ने यह इंगित नहीं किया कि प्रस्तावित एजेंसी की स्थापना वित्त मंत्रालय में हो या योजना आयोग में। हम यह सोचते हैं कि चूंकि योजना आयोग, योजना कार्यक्रमों के मूल्यांकन से संबद्ध विभिन्न क्षेत्रों के अनुसंधान में पहले से ही कार्यरत है और विषय के विशेषज्ञ द्वारा अनुसंधान किया जाता है, अतः प्रस्तावित एजेंसी की स्थापना के लिए यही उचित स्थल होगा। वित्त मंत्रालय के अधीन जो वर्तमान कक्ष है, उसे सातवें वित्त आयोग द्वारा इंगित सभी कार्य संभालने के लिए वहीं ले लाया जा सकता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि वित्त आयोग को स्थायी बनाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।

पूर्ववर्ती पैरों में हमने वित्त आयोग और योजना आयोग की भूमिकाओं पर व्यापाक प्रकाश डाला है। चूंकि हम दोनों के सापेक्ष क्रिया कलापों में किसी प्रकार के परिवर्तन की वकालत नहीं करते, इसीलिए योजना आयोग की भूमिका में कोई संशोधन नहीं चाहते, सिवाय इसके कि हम दोनों आयोगों की कार्यप्रणाली और कार्य में अधिक सामंजस्य लाने के लिए उपयुक्त उपायों पर बल देते है।

5.10 इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि केन्द्र और राज्यों के द्वारा किए गए सरकारी खर्च में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है। यह भी सही है कि वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा राज्यों को अन्तरित किये गये संसाधनों की कुल मात्रा में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। फिर भी, ऊपर उल्लिखित स्थिति से यह बात स्वतः स्पष्ट नहीं होती कि राज्यों को अन्तरित किये जाने वाली निधि में बढ़ोतरी के फलस्वरूप अकुशलता हुई है या खर्च में मितव्ययिता का अभाव हुआ।

यह सही है कि वित्त आयोगों ने कोई विशेष मानदंड निर्धारित या लागू नहीं किया है जिससे यह पता चल सके कि राज्य खर्च में उचित रूप से मितव्ययिता बरत रहे है या नहीं। इसका यह तात्पर्य नहीं हुआ कि वित्त आयोग सुपुर्दगी (अन्तरण) अवधि के लिए राज्यों द्वारा दिखाए गये राजस्व और व्यय संबंधी पूर्वानुमानों को स्वीकार करते आये हैं या मंजूरी देते आये हैं। कुछ पहलुओं को ध्यान में रखकर आयोग राज्यों के पूर्वानुमानों का पुनः मूल्यांकन करते रहे है। इन पहलुओं में उल्लेखनीय पहलू विकास की उपयुक्त दर है जिसके द्वारा राजस्व और व्यय संबंधी निजी मदों में वार्षिक वृद्धि की उम्मीद की जा सकती है। दूसरे शब्दों में ऐसी कार्यप्रणाली से बेकार के खर्च से बचा जा सकता है।

वित्त आयोगों की यह आलोचना की गयी है कि उनके द्वारा अपनाये गये "'अन्तर दूर करने" के दृष्टिकोण से उन राज्यों को संसाधन बर्बाद करने का प्रोत्साहन मिला है जो अच्छी तरह व्यवस्थित न हों, आठवें वित्त आयोग ने इस आलोचना पर गौर किया है। इसने आलोचना के जवाब में कहा कि ऐसी बात नहीं है कि वित्त आयोग राज्यों द्वारा भेजे गये पूर्वानुमानों को उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। सभी पूर्ववर्ती वित्त आयोगों की तरह हमने भी पूर्वानुमानों का व्यावहारिक रूप .. पुनः मूल्यांकन किया है और खास मापदंड रखे है। हमारा दृष्टिकोण राजस्व और परिव्यय, दोनों पर ही, उद्‌देश्यपरक रहा है।

राज्यों की गैर-योजना संबंधी व्यय का वित्त आयोगों द्वारा निश्चित मापदंड अपना कर समय-समय पर निर्धारण करने से यह उम्मीद रहती हैं कि राज्य अपने व्यय को व्यवस्थित करने में अपेक्षित सावधानी बरतेंगे। फिर भी ऐसे सार्वजनिक व्यय के उदाहरण देना कठिन नहीं होगा जिनके दुरुपयोग से बचा जा सकता था। साथ ही यह बात दृढ़तापूर्वक नहीं कही जा सकती कि व्यय का दुरुपयोग वित्त आयोग के माध्यम से संसाधन अन्तरित करने के परिणामस्वरूप हुआ है। राज्यों द्वारा किये गये व्यय की खास मदों, जैसे समाज सेवा की मद को अपवाद कहा जा सकता है। यहां भी मूल्य निर्णय का सवाल है। राज्यो मे समाज सेवायें बढ़ी हुई मात्रा में उपलब्ध कराने की प्रवृत्ति उनके द्वारा मंजूर की गयी सरकारी नीति के अनुरूप है। इसी तरह कर्मचारी वर्ग की परिलब्धियों से संबंधित परिव्यय दूसरा क्षेत्र है जहां मितव्ययिता का अभाव पाया जाता है। फिर भी यह महसूस किया जाना चाहिए कि कर्मचारी वर्ग की परिलब्धियों पर राज्यों द्वारा किये गये परिव्यय का मुख्य अंश केन्द्रीय दरों पर कर्मचारियों को दिये जाने वाले महंगाई भत्ते के रूप में होता है। यहां यह इंगित किया जा सकता है कि राज्यों को महंगाई भत्ते का भुगतान कीमतों में हुई वृद्धि के कारण करना पड़ता है। यह ऐसा मसला है जो राज्यों के नियंत्रण से परे है। इसके अतिरिक्त केन्द्र ने अपने कर्मचारियों को महंगाई भत्ता देने का रास्ता दिखा दिया है, अतः राज्यों के पास इस संबंध में निजी कदम उठाने का कोई विकल्प ही नहीं है। फिर भी, राज्य यह व्यय वित्त आयोग के माध्यम से अन्तरित संसाधनों से नहीं कर सकते।

व्यय में निःसंदेह बढ़ोतरी हो रही है। इस तथ्य को मानना ठीक होगा कि पिछले तीस वर्षों के दौरान कीमतों में भारी वृद्धि हुई है। अतः वास्तव में सार्वजनिक व्यय खर्च की गई मौद्रिक राशि की अपेक्षा बहुत कम होगा।

अतः हम देखते हैं कि योजना परिव्यय महत्वपूर्ण घटक है जिसमे प्रत्येक योजना के दौरान बढ़ोतरी हुई है। योजना के परिणामस्वरूप न केवल विकासपरक परिव्यय में बल्कि गैर-विकासपरक .रिव्यय में भी बढ़ोतरी हुई है क्योंकि इस घटक से प्रशासनिक और अन्य सेवाओं में वृद्धि हुई है। अतः योजना संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए योजना आयोग द्वारा किये जाने वाले अन्तरणों में वृद्धि हुई है। योजना संबंधी परियोजनाओं की प्राथमिकतायें तय करने और विभिन्न क्षेत्रों में वित्तीय तथा वास्तविक लक्ष्यों की प्राप्ति में हुई प्रगति के निर्धारण के लिए योजना आयोग द्वारा की गयी सामाजिक समीक्षा के बाद यह नहीं कहा जा

सकता कि योजना संबंधी अन्तरण करने मात्र से व्यय में अकुशलता और अमित-व्ययिता होगी ।

किसी भी वित्त आयोग का स्पष्ट लक्ष्य राजकोष में समानता लाना नहीं रहा है। पहली बार आठवें वित्त आयोग ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह कहने के लिए अब बहुत देर हो चुकी है कि राज्यों को पिछड़ेपन के आधार पर संसाधन आबंटित नहीं किया जाना चाहिए । यद्यपि आयोग संसाधनों के समान आबटन की ओर अग्रसर हुआ, फिर भी यह एक ही प्रयास में, व्याप्त असंतुलन को दुरुस्त नहीं कर पाया । योजना का घोषित लक्ष्य संतुलित क्षेत्रीय विकास के साथ-साथ तीव्र आर्थिक विकास रहा है । योजना को शुरू हुए तीस वर्ष से अधिक समय हो गया है, फिर भी क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओं को दूर करने में सफलता नहीं मिली है । राज्यों के सार्वजनिक खर्च में पायी जाने वाली विषमता को यह तथ्य अच्छी तरह प्रतिबिम्बित करता है ।

सातवें वित्त आयोग ने 1961–64 और 1974–77 के बीच की अवधि में राज्यों के कुल (योजना और गैर-योजना) खर्च संबंधी विविधता का हिसाब किया । यदि कुछ राज्यों की उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत करें तो पता चलेगा कि पंजाब का प्रति व्यक्ति खर्च 104.58 रु० से बढ़ कर 275.91 रु० हो गया और उत्तर प्रदेश का प्रति व्यक्ति खर्च 28.62 रु० से बढ़ कर 123.30 रु० हो गया तथा बिहार का प्रति व्यक्ति खर्च 27.51 रु० से बढ़ कर 92.75 रु० हो गया । इस अवधि में प्रति व्यक्ति खर्च में हुई इस बढ़ोतरी के बावजूद दोनों संगत वर्षों में बिहार का प्रति व्यक्ति खर्च न्यूनतम रहा । वर्ष 1961—64 में दूसरा न्यूनतम प्रति व्यक्ति खर्च वाला राज्य उत्तर प्रदेश था जबकि 1974—77 में इसने अपनी स्थिति सुधार ली और तीसरा न्यूनतम प्रति व्यक्ति खर्च वाला राज्य हो गया । न्यूनतम प्रति व्यक्ति खर्च वाले दूसरे राज्य मध्य प्रदेश और बिहार रहे (इसी क्रम में) दूसरी ओर पंजाब का प्रति व्यक्ति खर्च अधिकतम रहा । 1961–64 में महाराष्ट्र का अधिकतम प्रति व्यक्ति खर्च 104.58 रु० की तुलना में 50.56 रु० रहा । इस तरह महाराष्ट्र 1961—64 में अधिकतम प्रति व्यक्ति खर्च में पांचवें नंबर पर था । 1974—77 में महाराष्ट्र ने प्रति व्यक्ति खर्च के आधार पर न केवल दूसरा स्थान ही प्राप्त किया बल्कि अधिकतम प्रति व्यक्ति खर्च (पंजाब का 275.91 रु०) से इसका जो फासला था, उसमें भी 1961—64 की तुलना में अत्यधिक कमी आयी । यदि हम इस अवधि में प्रति व्यक्ति खर्च के आधार पर राज्यों के क्रम विन्यास पर नजर डालें तो हम पायेंगे कि कुछ राज्यों की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ है जबकि कुछ अन्य राज्यों की स्थिति या तो बिल्कुल नहीं सुधरी है या उसमें नाममात्र का सुधार हुआ है । जहाँ तक हमारे राज्य का संबंध है, इसकी स्थिति में संपूर्ण अवधि में न्यूनतम प्रति व्यक्ति खर्च के कारण गतिरोध आ गया है ।

यदि हम पिछले 30 वर्षों से भी अधिक समय तक शिक्षा, चिकित्सा और लोक स्वास्थ्य जैसी महत्वपूर्ण मदों पर राज्यों के प्रति व्यक्ति खर्च पर ध्यान दें तो हमें खर्च संबंधी असमानताओं के पर्याप्त सबूत मिल जायेंगे । इस अवधि में उक्त दो मदों पर कुछ राज्यों द्वारा किये गए प्रति व्यक्ति खर्च को नीचे प्रदर्शित किया गया है :

(रु० में)

	शिक्षा		चिकित्सा और लोक स्वास्थ्य	
राज्य	1951-52	1980-81 (बी०ई०)	1951-52	1980-81 (बी०ई०)
बिहार .	0.9	33.82	0.5	10.40
उड़ीसा .	0.9	41.72	0.5	22.67
उत्तर प्रदेश .	1.2	29.62	0.5	14.21
पंजाब .	1.5	71.90	0.7	29.81
बम्बई (अब महाराष्ट्र)	2.8	60.71	1.0	25.68
गुजरात .	..	53.10	..	21.68
पश्चिम बंगाल .	1.3	49.02	1.6	22.70

उक्त सारणी सार्वजनिक खर्च संबंधी दो विशिष्ट मदों पर हुए प्रति व्यक्ति खर्च की व्यापक असमानताओं को स्पष्टतः प्रकट करती है । 1951–52 और 1980–81 की अवधि में विभिन्न राज्यों की प्रति व्यक्ति खर्च में एक जैसी बढ़ोतरी नहीं हुई है, जो यह प्रकट करता है कि असमानताओं ने बिहार जैसे पिछड़े राज्यों पर प्रतिकूल असर डाला है ।

यहाँ यह बात याद रखी जाए कि पिछले तीस वर्षों के दौरान कीमतों में भारी बढ़ोतरी हुई है अतः प्रति व्यक्ति खर्च को वास्तविक रूप से देखें तो वह खर्च की गयी मौद्रिक राशि की तुलना में काफी कम होगा । दूसरे शब्दों में, राज्यों के प्रति व्यक्ति खर्च में जो सुधार दिखाई देता है, वह वास्तव में नहीं हुआ । अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि योजना प्रक्रिया के तीस वर्षों से अधिक समय तक चलते रहने के बावजूद आर्थिक असमानताओं में कमी नहीं हुई है और बिहार जैसे पिछड़े राज्यों का जनता को प्रशासनिक, सामाजिक और आर्थिक सेवा उपलब्ध कराने में समृद्ध राज्यों से पिछड़े जाना जारी रहा है ।

5.11. संसाधन-अंतरण संबंधी वर्तमान कार्यप्रणाली के मुख्यतः दो स्रोत, वित्त आयोग और योजना आयोग हैं । ऐसा कहा जाता है कि स्रोत के दोहरेपन के कारण राज्यों को राजस्व संबंधी अपने ब्योरे और पूर्वानुमान दोनों आयोगों को दो तरह से प्रस्तुत करने पड़ते हैं । यह प्रेक्षण पूर्णरूपेण आधार रहित नहीं है । दोनों आयोगों को विभिन्न ब्योरे प्रस्तुत करने का कारण यह है कि वे विभिन्न मापदण्डों द्वारा विभिन्न परिणाम प्राप्त करते हैं ।

राज्यों के बजटीय अंतर से सहायता अनुदान राशि को संबद्ध करना वित्त आयोगों की परिपाटी रही है क्योंकि बजटीय अंतर राज्यों की आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करते हैं । दूसरी ओर योजना आयोग ऐसे अधिशेष, जिसे गैर-योजना संबंधी कार्य से योजना संबंधी कार्य में लगाने के लिए उपलब्ध किया जा सकता है, का पता लगाने के लिए राज्यों की जरूरतों का निर्धारण करता है । अतः दोनों आयोगों के दृष्टिकोणों में भारी अन्तर है । उनके दृष्टिकोण में इस बुनियादी अन्तर के कारण ही राज्यों द्वारा दोनों आयोगों को राजस्व और खर्च संबंधी दो भिन्न ब्योरे प्रस्तुत करने की संभावना रहती है ।

संपूर्ण केन्द्रीय योजनागत सहायता के योग्य होने के लिए राज्य को अपने संसाधनों को उस सीमा तक जुटाना पड़ेगा, जिस सीमा पर योजनागत विचार-विमर्श के दौरान सहमति प्रकट की गयी हो । ऐसी स्थिति में राज्य को अपने गैर योजनागत खर्च को अधिक से अधिक सीमित करने के लिए बाध्य होना पड़ता है ताकि योजना आयोग द्वारा अनुमानित प्रकार का राजस्व अधिशेष तैयार किया जा सके । इस संबंध में वित्त आयोग द्वारा अनुमानित राजस्व अधिशेष पर ध्यान नहीं दिया जाता । लेकिन जब कोई राज्य किसी गैर-योजनागत आवश्यकता के लिए केन्द्र से मदद चाहता है तो केन्द्र द्वारा इसकी मांग का निरीक्षण वित्त आयोग की सिफारिशों को मद्देनजर रखकर किया जाता है और वित्त आयोग द्वारा निर्धारित राजस्व अधिशेष या राजस्व घाटे को ध्यान में रखा जाता है ।

यह व्यवस्था राज्यों के लिए न सिर्फ नुकसानदायक है बल्कि इससे वे राजस्व और खर्च संबंधी दो विभिन्न ब्योरे तैयार करके वित्त आयोग और योजना आयोग को प्रस्तुत करते हैं । चूंकि वित्त आयोग राजकोषीय अन्तर को मद्दे-नजर रखते हुए राज्यों की जरूरतों का निर्धारण करते हैं, अतः राज्यों में पूर्वानुमानों को अपने हित में इस तरह से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है कि उनके पूर्वानुमान गैर-योजना संबंधी राजस्व घाटा प्रकट करें । यह समस्या तभी हल हो सकती है जबकि वित्त आयोग के दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन आये कि केवल बजटीय अन्तर को राज्यों को जरूरतों को प्रतिबिंबित करने का आधार न माना जाय । इसके बजाय, राज्यों की निजी जरूरतों के वास्तविक रूप से निर्धारण के लिए वस्तुनिष्ठ मानदंड स्थापित करने पर बढ़ा चढ़ा कर पेश किये गये राजस्व घाटों की संभावना नहीं रहेगी ।

हम यह नहीं सोचते कि संसाधनों का अंतरण और जिस तरह से यह किया जाता है, उससे वित्तीय असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होगी । संसाधनों का अन्तरण वित्त आयोग की सिफारिशों के तहत या योजना आयोग के माध्यम से निश्चित सिद्धांतों के अनुसार किया जाता है । दोनों आयोग राज्यों के राजस्व

और खर्च संबंधी लेखा के निर्धारण के लिए सख्त परीक्षण करते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि फिजूलखर्च करने वाले या वित्तीय शिथिलता बरतने वाले राज्य काफी हद तक मुसीबत का सामना करते हैं क्योंकि उनके द्वारा किये गये खर्च की भरपाई के लिए उन्हें अतिरिक्त राशि नहीं मिल पाती। योजना आयोग, राज्य के योजना विस्तार का निर्धारण, अतिरिक्त संसाधनों को जुटाने में राज्य द्वारा किये गये प्रयासों और निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति में उनकी विफलता को मद्देनजर रखकर, करता है क्योंकि संसाधन जुटाव से योजना विस्तार प्रभावित होता है। इस तरह राज्यों को फिजूल खर्च पर वांछित प्रतिबंध लगाने के लिए नियंत्रित किया जाता है।

संसाधन अंतरण मात्र से वित्तीय अनियमितताएं उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि एक तो अधिकांश खर्च विशेष प्रयोजन से किया जाता है और दूसरे सभी सार्वजनिक खर्च की भारत के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक द्वारा लेखा परीक्षा और लोक लेखा समिति द्वारा जांच की जाती है। योजनागत खर्च, राज्य की योजना के अंग के रूप में अनुमोदित परियोजनाओं संबंधी योजनागत आबंटनों के अनुसार किया जाय। वित्तीय और वास्तविक दोनों ही कार्यों पर योजना आयोग की हमेशा नजर रहती है। ये रक्षोपाय वित्तीय संयम बनाये रखने में रक्षा-कवच का कार्य करते है।

कहने का तात्पर्य यह नहीं कि वित्तीय फिजूलखर्ची का कोई उदाहरण देखने में नहीं आया है। यह कहने का प्रयास किया गया है कि जहां कहीं भी वित्तीय अनौचित्य या फिजूलखर्ची देखने में आई है, वह वित्तीय औचित्य संबंधी नियमों का पालन करने के संबंध में सरकारी धन खर्च करने वाले प्राधिकरण की विफलता और संसाधन अन्तरण संबंधी कार्यप्रणाली का परिणाम है।

नियोजित विकास कार्यक्रम के परिणामस्वरूप सार्वजनिक खर्च में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है। सार्वजनिक निधि से किये जाने वाले खर्च में बढ़ोतरी होने से अधिक बरबादी की संभावना है, यदि खर्च पर पर्याप्त नियंत्रण नहीं रखा जाता। सार्वजनिक खर्च पर अपर्याप्त नियंत्रण और वित्त को सावधानी से खर्च करने में हुई चूकों की अवहेलना के कुछ उदाहरण हो सकते हैं, लेकिन ये उन प्राधिकरणों की विफलता का परिणाम है जिन्हें सार्वजनिक निधि संबंधी खर्च पर ध्यान देने और उसे नियंत्रित करने का अधिकार सौंपा गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसी चूकें संसाधन अंतरण संबंधी कार्यप्रणाली की वजह से हुई हैं।

जनवादी आय सरकार द्वारा शुरू किये गये विभिन्न कार्यक्रमों या क्रिया-कलापों संबंधी सापेक्ष महत्व पर आधारित हैं ; कुछ सरकारें समाज कल्याण कार्यक्रम को न्यूनतम प्राथमिकता देती हैं और इस संबंध में शुरू किये गये किसी भी कार्यक्रम को जनवादी प्रकार का या अनुत्पादक मानती हैं। प्रत्येक क्रिया कलाप में कुछ न कुछ अच्छाई अवश्य होती है। यदि कार्यक्रम को गंभीर से कार्यान्वित किया जाय तो समाज कल्याण कार्यक्रम से अधिकांश लोगों के जीवन में खुशहाली आ सकती है और इससे लोगों को काफी हद तक संतोष मिलता है। अत: ऐसे क्रिया-कलापों को खर्चीला या अनुत्पादक नहीं माना जाना चाहिए इन क्रिया-कलापों से समाज को जो लाभ पहुंचता है, वह वास्तव में बहुमूल्य है।

जनवादी उपाय और संसाधन अंतरण संबंधी कार्यप्रणाली में निश्चित संबंध स्थापित करना कठिन है। न तो संसाधन की मात्रा और न ही संसाधन अंतरण के तरीके का जनवादी उपाय के अपनाए जाने से कोई संबंध प्रतीत होता है। यदि कोई सरकार जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को इस कदर भूल जाय कि उसे प्राथमिकताओं का भी ख्याल न रहे तो वह अन्य अपरिहार्य आवश्यकताओं के साथ-साथ उपाय चुन सकती है। ऐसा उदाहरण हमारी नजर में अभी तक नहीं आया हैं।

5.12. हम इस व्यापक दृष्टिकोण से सहमत हैं कि अधिकांश संसाधन-अन्तरण, कर-सहभाजन संबंधी सुपुर्दगी (अन्तरण) द्वारा होना चाहिए और सहायता अनुदान की भूमिका यथासंभव अनुपूरक होनी चाहिए।

इस संबंध में यह स्मरण करना संगत होगा कि पांचवें वित्त आयोग ने स्पष्ट किया था कि संसाधन अन्तरण संबंधी उचित नीति का लक्ष्य अनुदान पाने वाले राज्यों की संख्या कम करना चाहिए ताकि राज्यों की अतिरिक्त संसाधनों की जरूरत यथासंभव अनुदानों के बजाय सुपुर्दगी (अन्तरण) द्वारा पूरी की जा सके। यही दृष्टिकोण पूर्ववर्ती वित्त आयोगों द्वारा भी व्यक्त किया गया है। सातवें वित्त आयोग ने भी इसी व्यापक दृष्टिकोण की वकालत की।

इस दृष्टि से अपनी सहमति प्रकट करते हुए हमारे मन में दो मुख्य विचार रहे हैं कि करों में हिस्से के माध्यम से सुपुर्दगी सदा वित्त-आयोग द्वारा प्रतिपादित न्याय-संगत सिद्धान्तों और अलग-अलग राज्यों के हिस्सों में उन्हें समान रूप से लागू किए जाने पर आधारित है। इस लिए इसका अर्थ यह होगा कि राज्यों को इस कारण सुपुर्दगी सुनिश्चित हो जाएगी और करों में हिस्सा बजट की आवश्यकताओं पर निर्भर नहीं होगा, जैसा कि वित्त आयोग द्वारा निर्धारित किया गया है। इसलिए पूर्वानुमान के अनुसार समाधान चाहे अधिशेष हो या कम, राज्यों का वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार करों की विभाजनयोग्य सामूहिक निधि में वैध हिस्सा होगा।

दूसरे यदि करों में हिस्से के जरिए अधिकांश साधनों का अंतरण होगा तो राज्यों को यह अवसर मिल जाएगा कि केन्द्र द्वारा एकत्रित किए गए प्रचुर मात्रा में कर राज्यों के बीच परस्पर बंट जाएंगे और इसका स्पष्ट लाभ हमारे जैसे पिछड़े राज्यों को होगा जिन्हें हमेशा अपने लोगों को प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने संबंधी बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए अपनी वित्तीय स्थिति को मजबूत करने के लिए सदा अतिरिक्त साधनों की आवश्यकता बनी रहती है।

5.13. ऊपर उल्लिखित सिद्धान्तों में सहायता अनुदान के जरिए राज्यों के राजस्व संबंधी अंतरों को कम करने के लिए प्राथमिकता दी गई है। यह उस स्थिति में आपत्तिजनक नहीं होता, यदि ऐसे अंतरों का केवल बजटीय अंतरों तक सीमांकन करके निर्धारित करने के इस आदर्शवादी दृष्टिकोण के बजाय सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक सेवाओं के वास्तविक स्तर का सुव्यवस्थित ढंग से मूल्यांकन करके राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं को आँकने का प्रयास किया जाता। इससे उन राज्यों की आर्थिक और पिछड़ी सामाजिक पृष्ठ भूमि तेजी से उभर कर सामने आती, जिन्हें वास्तव में सहायता की आवश्यकता है।

वास्तव में हमारा यही विचार रहा है कि अनुच्छेद 275 में ऐसा कुछ नहीं है जो किसी अंतर को पूरा करने की प्रक्रिया सीमित करे। इस अनुच्छेद के उपबन्धों में उन राज्यों का जिक्र है जिन्हें सहायता की जरूरत है और इस अनुच्छेद से स्पष्ट या अस्पष्ट ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि साहयता केवल राजस्व के अन्तर को भरने के लिए ही की जाए। अत: वित्त आयोग राज्यों को सहायता की सिफ़ारिश करने में अनुच्छेद 275 के उपबंधों को प्रतिबन्धित अर्थ में लेता रहा और ऐसा करते समय उसे मुख्यत: राज्यों के करों और उत्तरदायित्वों के हिस्सों के अंतरण के पश्चात् बचे राजस्व सम्बन्धी अंतर का ही ध्यान रहा।

अत: हम कहेंगे कि बजटीय अन्तर का यह अर्थ न ले लिया जाए कि उससे राज्य की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में पता चल रहा है और वह अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता दिए जाने के योग्य है। इसके बजाय उन राज्यों का निर्धारण करना अनुच्छेद 275 के उपबन्धों की भावना के अनुकूल होगा जिन्हें सहायता की जरूरत है। ऐसा निर्धारण विभिन्न राज्यों में उपलब्ध सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक सेवाओं के सापेक्ष स्तर के मूल्यांकन के आधार पर उनकी राजस्व संबंधी आवश्यकताओं, जो बजटीय अंतर से भिन्न हैं, को देखकर किया जाए। इसका परिणाम यह होगा कि सहायता अनुदान के योग्य होने के लिए राज्यों की आवश्यकताओं के निर्धारण पर राजस्व सम्बन्धी अन्तर का अतिव्यापी प्रभाव नहीं होगा।

सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रतिपादित दूसरे सिद्धान्त से किसी हद तक प्रशासनिक और अन्य सेवाओं के स्तर में अन्तर राज्यिक भिन्नताएँ कम होंगी, किन्तु उसके लिए बढ़ा हुआ अनुदान निर्धारित करने के लिए ऐसा दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक होगा जिससे बुनियादी न्यूनतम स्तर सुनिश्चित किया जा सके, चाहे राज्य कोई भी हो। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि केवल अनुदानों को समान बनाने से ही वह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकेगा, जो इस सिद्धान्त के द्वारा हासिल करने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही यह बात समझना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि अंतरण का वास्तविक प्रयोजन तब के

साथ सम्मिलित होने के कारण केवल मुआवजे के सिद्धान्त पर राज्यों को उनका हिस्सा देनी या उनके राजस्व के अन्तर को भरना नहीं बल्कि पराश्रित वित्त को सन्तुलित करना है, ताकि उनके साधनों का आधार सशक्त हो सके और वे वित्तीय रूप से इतने सक्षम हो सकें कि वे निवेश के लिए पर्याप्त अधिशेष पैदा कर सकें और स्तरों को समान बनाने का लक्ष्य हासिल किया जा सके।

हम इस सिद्धांत के भी पक्ष में हैं कि सहायता अनुदान अलग-अलग राज्यों को दिए जाएं, ताकि वे अपनी विशिष्ट परिस्थितियों या राष्ट्रीय महत्व के मामलों के कारण आने वाले वित्तीय भार को वहन कर सकें। इस सम्बन्ध में हम आपका ध्यान कुछ ऐसे विषयों की ओर भी आकर्षित करेंगे जो इस समस्या से सुसंगत हैं। विशेष प्रकार की समस्याओं के लिए राज्यों को सहायता अनुदान दिया जा सकेगा और इसके लिए किसी राज्य (जैसे कि हमारे) द्वारा बाढ़ और सूखे, जो अब वास्तव में एक नियमित बात हो गयी है, पर किए गए खर्च के लिए सहायता अनुदान दिया जाएगा राहत कार्य पर होने वाले व्यय के लिए वित्त प्रदान करने के लिए जो मौजूदा पॉलिसी है, उससे इस सिद्धांत की बात पूरी नहीं होती और केन्द्रीय स्तर पर कुछ सहायता अनुदान के रूप में दी जाती है और कुछ कर्ज के रूप में। सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित तीसरे सिद्धांत के अनुपालन में हम कहेंगे कि बाढ़ और सूखे पर किए जाने वाले व्यय का हमारी वित्तीय स्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ता है और ऐसा इसलिए है, क्योंकि हमारे राज्य की परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं। इसलिए इस राज्य को इस वजह से सहायता अनुदान के योग्य समझा जाना चाहिए।

एक अन्य मामला है जिसकी तरफ हम इस सम्बन्ध में आपका ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। भारत सरकार द्वारा अपनायी गई पॉलिसियों के परिणामस्वरूप जो भार राज्यों पर आ पड़ता है उससे निपटने के लिए उन्हें सहायता अनुदान के योग्य माना जाना चाहिए। हमें अपने कर्मचारियों को केन्द्र की दरों पर महँगाई भत्ते के भुगतान पर भी भारी रकम खर्च करनी पड़ती है। यह खर्चा अपरिहार्य है, जो मुख्यत: संघीय पॉलिसी के कारण होता है और राज्य इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से कोई कदम नहीं उठा सकता। अत: इस वजह से होने वाले खर्चे का सहायता अनुदान के उपबन्धों में ध्यान रखना चाहिए। सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित तीसरे सिद्धान्त की भावना को ध्यान में रखते हुए इसे पिछड़े राज्यों की एक वैध मांग समझा जाना चाहिए।

जैसा कि हमने पहले भी कहा है, वित्त आयोगों को अनुच्छेद 275 के उपबंधों की प्रतिबन्धित रूप से व्याख्या नहीं करनी चाहिए जिससे कि राज्यों की राजस्व सम्बन्धी आवश्यकताओं को लेकर इसका क्षेत्र संकीर्ण हो जाए। हमने सातवें वित्त आयोग के इस दृष्टिकोण कि यह अनुच्छेद 275 के अधीन राजस्व व्यय के लिए अनुदानों के अलावा पूंजीगत व्यय के लिए, यदि चाहें तो, अनुदान की सिफारिश करेगा, का स्वागत किया है। यह दृष्टिकोण अनुच्छेद 275 में अभिव्यक्त भावना के अनुरूप था और साथ ही उपर्युक्त अनुच्छेद का अर्थ निकालते हुए उक्त दृष्टिकोण के अनुसार पूंजीगत व्यय के लिए दिए गए अनुदान से अन्तर्राज्यीय भिन्नताएं दूर करने का लक्ष्य पूरा करने में भी सहायता मिलेगी।

अपने अनेक प्रश्नों के उत्तरों में बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि कम विकसित राज्यों को न केवल सामाजिक और प्रशासनिक सेवाओं और आर्थिक विकास के क्षेत्र में अधिक विकसित राज्यों की बराबरी करने का वैध अधिकार है, बल्कि उन्हें इस स्थिति में होना चाहिए कि वे आर्थिक प्रगति की सीढ़ी पर निरन्तर बढ़ते जाएं। संघ सरकार को परिसंघ की असली भावना का पालन करते हुए पिछड़े राज्यों को प्रगति की दिशा में तेजी से कदम बढ़ाने में सहायता करनी चाहिए, ताकि क्षेत्रीय असमानताएं न रहें। इस दृष्टि से हम समझते हैं कि अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों को अलग-अलग मात्रा में सहायता करने की नीति एक दुरुस्त सिद्धांत है और यदि भारत सरकार इसी के अनुसरण में कार्य करे तो वह पूर्णतया न्यायोचित होगा, क्योंकि उससे कम विकसित राज्यों को प्रगति और विकास के राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचने में सहायता द्वारा एक प्रकार से सन्तुलित वृद्धि सुनिश्चित की जा सकेगी।

जैसा कि हमने पहले भी कहा है कि सहायता अनुदान के लिए कौन से राज्य हकदार हैं, यह निर्धारित करने के लिए प्रयुक्त कार्य पद्धति में निस्सन्देह अन्तर करने वाले दृष्टिकोण अभिभावी होने के स्पष्ट साक्ष्य मिले हैं। राज्यों द्वारा प्रस्तुत योजनेतर लेखे के सम्बन्ध में राजस्व और व्यय के पूर्वानुमानों का कुछ व्यापक विचारों और कुछ परिकल्पनाओं को देखते हुए वित्त आयोग द्वारा पुन: मूल्यांकन किया जाता है। वित्त आयोगों का राज्य विद्युत बोर्डों या राज्य परिवहन निगमों से कुछ दरें लेने पर बल देना वास्तविकता को देखते हुए व्यवहार्य नहीं है और इस सम्बन्ध में अपनाया गया आदर्शवादी दृष्टिकोण राज्यों के पूर्वानुमानों के पुन: निर्धारण को अयथार्थवादी बना देता है। ऐसे सार्वजनिक उद्यमों से विवरणियों की आशा करने के औचित्य पर गम्भीरता से कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता, किन्तु यह भी सही है कि उन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों को भी पूरी तरह नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता, जिनमें ये उद्यम काम करते हैं और वे सामाजिक उत्तरदायित्व जिनकी इन परिस्थितियों में पूरे किए जाने की आशा की जाती है। इसी प्रकार सिंचाई परियोजनाओं को वाणिज्यिक उद्यम के समान नहीं माना जा सकता, फिर भी यह तो उम्मीद की जाती है कि उनमें जो निवेश किया गया है उसके बदले उनसे कुछ प्रतिलाभ मिले। इस प्रकार की परिकल्पनाओं से अंतरण की अवधि में राज्यों की प्राप्तियाँ अनावश्यक रूप से बढ़ जाती हैं और उनके राजस्व में तदनुरूपी कटौती बहुत कृत्रिम रूप से की जाती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि केन्द्र सरकार के संसाधनों और उनके सम्बन्ध में की जाने वाली मांगों का राज्यों को निधियों के अंतरण पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु साथ ही यह भी भुलाया नहीं जा सकता कि राज्यों की तुलना में केन्द्र के पास राजस्व के अधिक आय वाले, व्यापक और लचीले स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त बाजार-ऋण के मामले में केन्द्र के सामने ऐसी सीमाएँ नहीं है जैसी कि राज्यों के सामने। इस सबसे ऊपर केन्द्र को घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा लेने का एक मात्र विशेषाधिकार है (इसका यह अर्थ नहीं कि केन्द्र की घाटे की अर्थ-व्यवस्था का सहारा लेने की शक्ति की कोई सीमा नहीं)। इस प्रकार केन्द्र के पास काफ़ी सक्षम साधन हैं। किन्तु राज्यों के साथ ऐसी बात नहीं है, उनके अपने साधन भी काफ़ी कम होते हैं, किन्तु उनकी अपेक्षा उनके उत्तरदायित्व कहीं अधिक होते हैं।

अत: वित्त-आयोग को केन्द्र के वित्तीय साधनों को समग्र रूप से देखना चाहिए और राजस्व तथा केन्द्र सरकार की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करते हुए यही मानदण्ड अपनाना चाहिए जो कि राज्यों के साधनों का निर्धारण करते हुए अपनाया जाता है। ऐसा प्रयास लगभग पहली बार सातवें वित्त आयोग द्वारा किया गया और आठवें वित्त आयोग ने इस परिपाटी को जारी रखा।

सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का आठवें वित्त आयोग ने समर्थन किया है और उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि ये सिद्धांत न तो व्यापक हैं और न अपरिवर्तनीय। नई समस्याओं के लिए नये दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी और संभवत: संविधान का भी यही उद्देश्य है, प्रत्येक पांच वर्ष में एक नए वित्त आयोग को मामले पर विचार करना होगा। ऐसा कहने पर भी आठवें वित्त आयोग ने सहायता अनुदान सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करते हुए अपनाए गए सिद्धांतों के सम्बन्ध में कोई नया दृष्टिकोण नहीं अपनाया। इसकी कार्य पद्धति परम्परागत परिपाटी के अनुसार ही रही है। इस आयोग ने केवल अनुदान की राशि बढ़ाने का ही नया कार्य किया है। अब तक केवल गैर-विकासशील क्षेत्रों में ही प्रशासनिक स्तर बढ़ाने के लिए ही अनुदान दिए जाते रहे हैं। आठवें वित्त आयोग ने विकास के क्षेत्रों जैसे-शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्रों को भी अनुदान के लिए चुना और इसके अलावा प्रशासनिक कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए भी अनुदान की अनुमति दी है।

हम यह समझते हैं कि राज्यों को साधनों का अंतरण, मुख्यतया करों में हिस्सा देकर किया जाए और उसके बाद यदि कोई सहायता देनी जरूरी हो तो वह सहायता अनुदानों के रूप में दी जाए। किन्तु यहाँ यह भी बता देना जरूरी है कि यह न भूला जाए कि अनुदानों के संबंध में संवैधानिक स्वीकृति प्राप्त है। जिन राज्यों के बारे में संसद विधि द्वारा निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है, उन्हें सहायता अनुदान देने संबंधी अनुच्छेद 275 में किए गए संवैधानिक उपबन्ध सही परिप्रेक्ष्य में देखे जाएं।

राजकोषीय परिसंघ का सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से यह एक स्वीकृत तथ्य है कि राज्य सरकारों को इस विचार से अनुदान दिया जाए ताकि वे आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं के वस्तुनिष्ठ ढंग से निर्धारित स्तर अपने नागरिकों के लिए सुनिश्चित कर सकें। इसके लिए आयोग को पहले इन आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं का पता लगाना चाहिए और तब वह मानक स्तर निर्धारित करना चाहिए जहां तक इन सेवाओं को ऊंचा उठाकर प्रदान किया जाएगा। इस सम्बन्ध में हम कहेंगे कि पिछड़े राज्यों से मौजूदा सेवाओं का स्तर बढ़ाकर इतना कर दिया जाए जो कम से कम सभी राज्यों में इन सेवाओं के औसत स्तर के बराबर हो। प्रत्येक राज्य में इन सेवाओं के मौजूदा स्तर और हासिल किए जाने वाले वांछित स्तर के बीच के अन्तर को पाटने की लागत को उस सहायता का सूचक मानना चाहिए, जो राज्यों को दी जानी चाहिए और सहायता-अनुदान की राशि इस प्रकार आंकी गई अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए ही दी जानी चाहिए। राज्यों को उनके राजस्व अन्तर पूरा करने के लिए अनुदान देने की मौजूदा प्रणाली अपनाने की बजाए राज्यों को सहायता-अनुदान देने का असली प्रयोजन उक्त प्रकार से बेहतरीन ढंग से पूरा हो सकता है।

5.14. हमने आठवें वित्त आयोग के समक्ष यह सुझाव रखा कि "**विशेष वाहक बंध-पत्र योजना**" से प्राप्त राशि को राज्यों के साथ बांटा जाए। इस संबंध में हमने यह भी कहा कि यह योजना आयकर से सम्बद्ध है। वास्तव में वाहक बंध-पत्र से प्राप्त राशि मुख्यत: छुपी हुई आय से प्राप्त होती है। इसलिए यदि आयकर प्राधिकारी छुपी हुई आय के सम्बन्ध में ठीक समय पर मालूम करने की दिशा में कारगर कदम उठाते और उसे आयकर के अधीन लाते तो वसूल की गई कर की राशि सामान्यत: आयकर की विभाजन योग्य सामूहिक निधि में आ जाती जिसमें से राज्यों को उनका उचित हिस्सा मिलता। अत: यदि आय छुपी हुई थी और उसे सम्बद्ध वर्ष में निर्धारण के लिए सामने नहीं लाया जा सका, तो यह राज्यों की वजह से नहीं हुआ। इसलिए अब जब कि यह छुपी हुई आय योजनाओं के अन्तर्गत आ गई है तो इस प्रकार प्राप्त राशियों को आय कर से होने वाली आय से भिन्न नहीं माना जाना चाहिए।

ऐतिहासिक तौर पर यदि हम देखें तो पाएंगे कि आयकर की परिकल्पना सन्तुलन करने वाले कारक के रूप में की गई थी और ऐसा विश्वास था कि आयकर से होने वाली आय में राज्यों को हिस्सा देने से राज्यों के बजट पर्याप्त सन्तुलित हो जाएंगे। किन्तु इन वर्षों में सन्तुलन करने वाले कारक के रूप में आयकर का महत्व काफ़ी कम हो गया है, जैसा कि आयकर की कुल प्राप्तियों की कम मात्रा से मालूम होता है। इसके कई कारण हैं जैसे 1959 में कम्पनियों द्वारा अदा किए गए आयकर का पुनर्वर्गीकरण, आयकर पर बहुत अधिक "अधिभार" (Surcharge) आयकर में अनेक प्रकार की रियायतें, जिसमें छूट की सीमा बढ़ाना भी शामिल है, इन सब का परिणाम यह हुआ कि केन्द्र सरकार के कर-राजस्व के स्रोतों को पर्याप्त रूप से उभारने के प्रयासों में मन्दी आ गई। उपर्युक्त कारणों के परिणाम स्वरूप सन्तुलन करने वाले कारक के रूप में आयकर के महत्व में जो कमी आई है, वह मात्रा की दृष्टि से भी आंकी जा सकती है। वर्ष 1952-53 में आयकर की वसूली (अधिभार सहित) 143.2 करोड़ रु० थी जबकि निगम-कर की वसूली 43.8 करोड़ रु० थी। वर्ष 1981-82 में आयकर से प्राप्त राशि 1475.5 करोड़ रु० थी, जबकि निगम-कर की वसूली 1970.0 करोड़ रु० थी। वर्ष 1983-84 के बजट अनुमानों के अनुसार तदनुरूपी आंकड़े क्रमश: 1563 करोड़ रु० तथा 2338.0 करोड़ रु० थे। आयकर से प्राप्त राशि में वृद्धि के कारण जो प्रचुरता देखने में आई है वह निगम-कर से प्राप्त राशि की तुलना में काफी कम है। दूसरी ओर कर में हिस्सा देने के आधार को व्यापक करने की आवश्यकता स्वयं ही स्पष्ट है और इसका एक ऐसा स्पष्ट तरीका है, जिसके द्वारा ऐसा करना सम्भव है, वह है आयकर की अधिकतम सम्भव वसूली सुनिश्चित करना। चूंकि स्कीम से प्राप्त राशि में, वास्तव में, आयकर के सभी तत्व हैं, इसलिए उसे विभाजनयोग्य बनाया जाना चाहिए। ऐसा कदम उठाने से विभाजनयोग्य सामूहिक निधि किस सीमा तक बढ़ेगी, इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1981 में इन वाहक बंध-पत्रों की बिक्री की पहली अवधि में ही 395.60 करोड़ रु० की राशि प्राप्त हुई।

इन्हीं कारणों से हमने यह कहना आवश्यक समझा कि वाहक बंधपत्र योजना से प्राप्त राशि को राज्यों के साथ बांटा जाए।

हमने आठवें वित्त आयोग के समक्ष यह सुझाव भी रखा कि अनिवार्य जमा योजना (आयकर दाता) के अधीन होने वाली जमा राशि को भी विभाजन-योग्य सामूहिक निधि में शामिल किया जाना चाहिए। इस योजना के अन्तर्गत चालू आय की विहित प्रतिशत मात्रा 5 वर्ष तक जमा रखी जाए। इस प्रकार निवल जमा केन्द्र सरकार के पास उक्त अवधि के लिए मौजूद रहेगी। इससे केन्द्र के साधन इसी प्रकार बढ़ेंगे जैसे कि आयकर से बढ़ते हैं।

यदि यह कहा जाए कि यह कर नहीं है बल्कि बचत है जैसे कि बचत की किसी भी अन्य योजना की भांति एक प्रकार की बचत है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ अन्य बचत योजनाएँ स्वैच्छिक होती हैं वहाँ इस योजना के अन्तर्गत बचत अनिवार्य रूप से लागू की जाती है तो यहाँ भी इस योजना के अधीन कुल निवल वसूलियों को छोटी बचत वसूलियों के समान माना जा सकता है और उसका कम से कम एक भाग राज्यों को दिया जा सकता है। राज्यों को इस प्रकार अन्तरित राशि एक चिरकाल के कर्ज के रूप में मानी जा सकती है, जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने छोटी बचतों की निवल वसूलियों में से राज्यों को कर्ज के सम्बन्ध में सिफ़ारिश की थी।

भारत सरकार द्वारा निर्देशित कीमतें बढ़ाने का प्रभाव राज्यों के वित्त पर पड़ता है। अनेक वित्त आयोगों ने कुछ क्षेत्रों में प्रशासनिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए अनुदान की सिफारिश की और आठवें वित्त आयोग ने भी कुछ भवन-निर्माण परियोजनाओं के लिए पूंजीगत अनुदान की अनुमति दी। किन्तु भवन-निर्माण की लागत का अनुमान लगाते समय सुपुर्दगी अवधि में स्थिर लागतों की कल्पना की गई। दूसरी ओर लोहे और इस्पात और कोयले की निर्देशित कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप निर्माण-सामग्री की कीमतों में वृद्धि होना निश्चित था। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे उद्देश्य और प्रयास अच्छे होने के बावजूद अनुदानों की राशि से हम अपने वास्तविक लक्ष्य पूरे करने में सफल न हो सके। केन्द्र सरकार ने इसमें होने वाली अतिरिक्त लागत को पूरा करने से इंकार कर दिया। अब हमारे पास केवल यही विकल्प रह गया कि इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कहीं से अतिरिक्त निधियाँ जुटाएं। इसके परिणाम स्वरूप हमारे वित्त पर अप्रत्याशित दबाव पड़ा है। भवन-निर्माण परियोजनाओं को छोड़ देने का विकल्प सीमित है क्योंकि निर्माणाधीन भवनों को अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता, इन्हें पूरा करना आवश्यक है। इस स्थिति से बचा नहीं जा सकता।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हम समझते हैं कि निर्देशित कीमतों से संबंधित पॉलिसी में सुधार की आवश्यकता है। सूचना के अभाव में हम इस स्थिति में नहीं हैं कि कह सकें कि इन कीमतों में कितनी वृद्धि उत्पाद-शुल्क की वजह से हुई है और कितनी केन्द्र सरकार के उपक्रमों या उद्यमों को हुई हानि को पूरा करने की वजह से है। इसका अध्ययन किया जाना चाहिए और इस परिपाटी की समीक्षा की जानी चाहिए। हम यह समझते हैं कि या तो इस परिपाटी को बन्द कर दिया जाए और वांछनीय लक्ष्य यह हो सकता है कि इन परियोजनाओं पर सामान्य उत्पाद-शुल्क के उदग्रहण (लेवी) में उपयुक्त समायोजन किया जाए अथवा निर्देशित कीमतों में वृद्धि से होने वाली आय का कुछ भाग किसी ठोस सिद्धांत के आधार पर राज्यों में बांटा जाए।

हमें केन्द्र के गैर-कर-राजस्व के हिस्से के लिए किए गए दावों के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं है।

5.15. सामान्यत: समाज की बचत बैंक खातों से मालूम होती है। जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट योजना, डिबेंचरों, गैर-सरकारी और सार्वजनिक उपक्रमों के शेयरों में भी बचत की राशि लगाई जाती है। फ़िलहाल कोई ऐसा मानदण्ड नहीं है जिसके आधार पर इन संस्थाओं द्वारा प्राप्त साधनों का राज्य और केन्द्र के बीच हिस्सा किया जा सके, और न ही इसके सार्वजनिक उपक्रमों और केन्द्र के बीच वितरण के लिए कोई निश्चित मानदण्ड है, किन्तु फिर भी आजकल वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जुटाए गए साधनों के जमा का वितरण क्रेडिट/जमा के अनुपात द्वारा राज्यों और

बैंकों के बीच किया जाता है। इसी प्रकार अन्य सार्वजनिक उपक्रमों जैसे जीवन बीमा निगम/सामान्य बीमा निगम आदि द्वारा जुटाए गए साधनों को जमाकर्ता राज्यों और इन संस्थाओं के बीच एक ऐसी युक्ति द्वारा बांटा जाता है जिसे वित्त आयोग/वित्त मंत्रालय ने वार्षिक योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए राज्यों के साधनों का मूल्यांकन करने के दौरान प्रतिपादित किया था। यह साधनों के हिस्सा करने का एक अप्रत्यक्ष, बल्कि अस्पष्ट ढंग है जो न तो आवश्यकता पर आधारित है, न ही अलग-अलग राज्यों की जमा की मात्रा पर आधारित है। इस प्रकार बैंकों और अन्य संस्थाओं जैसे सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा बचतों से जुटाए गए साधनों को किसी निश्चित सिद्धांत के आधार पर किसी राज्य को नहीं दिया जाता है। अत: मौजूदा प्रणाली में संशोधन की आवश्यकता है, और ऐसा करना उस राज्य के हित में होगा जो साधन एकत्रित करने में अपना योगदान करता है।

5.16. यह प्रश्न केन्द्र-राज्य के वित्तीय सम्बन्धों की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डालता है जो अन्तत: राज्यों में राजकोषीय असन्तुलन पैदा करती हैं, और यह उनकी बढ़ती हुई ऋण ग्रस्तता से स्पष्ट हो जाता है। ये हैं :--

(i) केन्द्र की अपेक्षा राज्यों के घाटे के बजट में कहीं अधिक तेजी से वृद्धि, और

(ii) केन्द्र के बढ़ते हुए घाटे के कारण इसकी राजस्व प्राप्तियों की प्रतिशतता में गिरावट की प्रवृत्ति राज्यों में भी अन्तरित हो जाती है, हालांकि सम्पूर्ण रूप से इन अन्तरणों में काफ़ी वृद्धि होती है।

राज्यों के बढ़ते हुए घाटे वाले बजटों से उन राज्यों के राजकोषीय असन्तुलन का संकेत मिलता है। अन्य कारणों के अलावा ऐसी स्थिति का मुख्य कारण राज्यों के साधनों और उत्तरदायित्वों के बीच अनुरूपता की कमी है। "भारतीय राजकोषीय प्रणाली" में राजकोषीय असन्तुलन से राज्यों की अस्थिर वित्तीय स्थितियों का सबूत मिलता है। केन्द्र और राज्यों के कुल राजस्व में राज्यों का हिस्सा लगभग 30 प्रतिशत रहा है, किन्तु केन्द्र और राज्यों के कुल राजस्व व्यय में उनका हिस्सा 50 प्रतिशत से ऊपर रहा है। इस विभिन्नता से पता चलता है कि केन्द्र में राजस्व की उगाही का केन्द्रीकरण हो गया और राज्यों में राजस्व व्यय का विकेन्द्रीकरण हुआ। दूसरे शब्दों में, इससे केन्द्र से सम्बद्ध उस राजकोषीय असन्तुलन की सीमा का पता चलता है जो हमारे संघ की राजकोषीय प्रणाली के सामने उग्र रूप धारण किए हुए हैं। इसलिए राज्यों में घाटे के बजट की बढ़ती हुई प्रवृत्ति इसी वजह से है, क्योंकि जिन स्थितियों में राज्य हों, उनमें उनके पास अपने खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं।

राज्य सरकारों की वित्तीय सहायता देने में करों की सुपुर्दगी बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है, और वित्त आयोगों के माध्यम से अनुदानों की भूमिका राज्यों को सहायता के स्रोत के रूप में अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हो गई है। राज्यों को पूर्ण रूप से किए जाने वाले राजकोषीय अन्तरणों की कुल मात्रा में काफी वृद्धि हुई है, फिर भी यदि तुलना करें तो केन्द्र सरकार की कुल प्राप्तियों में, केन्द्र से राज्यों को निवल सुपुर्दगी (अन्तरण) की प्रतिशतता में कमी हुई है। वर्ष 1972-73 में केन्द्र से राज्यों को साधनों की निवल सुपुर्दगी भारत सरकार की कुल प्राप्तियों का 33.6 प्रतिशत थी। वर्ष 1982-83 में (बजट अनुमान) में यह प्रतिशतता घट कर 27.1 हो गयी। यदि इसे दूसरे कोण से देखें, केन्द्र से राज्यों को साधनों की निवल सुपुर्दगी राज्य सरकारों की कुल प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप में भी वर्ष 1972-73 में 37.2 से घट कर वर्ष 1982-83 में (बजट अनुमान) 34.3 रह गयी। इसका यह अर्थ हुआ कि केन्द्र द्वारा राज्यों को संसाधनों की सुपुर्दगी के माध्यम से दी गई सहायता इन वर्षों में घटी है।

राज्य के वित्त में निरन्तर चले आ रहे असन्तुलन से यह पता चलता है कि उनके साधनों और उत्तरदायित्वों के बीच अनुरूपता की कमी को राज्यों को निधि के भारी अन्तरण के बावजूद, दूर नहीं किया गया। यह सही है कि राज्यों में राजस्व के काफी साधन उपलब्ध हैं। यह भी कहा जा सकता है कि उन्हें राजस्व सम्बन्धी साधनों को और बढ़ाने की भी पर्याप्त स्वतन्त्रता है। किन्तु यही बात राज्यों के पूंजीगत लेखे के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। उनकी ऋण लेने की स्वतन्त्रता किसी हद तक इस दृष्टि से प्रतिबंधित कर दी गई है कि चुकाए जाने वाले बकाया केन्द्रीय ऋणों के मामले में, राज्यों द्वारा उधार लेने के लिए केन्द्र की सहमति लेना एक अनिवार्य पूर्व शर्त है। राज्यों के पूंजीगत वित्तीय लेखे में बाजार ऋण की भूमिका अपेक्षाकृत कम है। इसलिए राज्यों को अपने पूंजीगत कार्यक्रमों के वित्त-प्रबंध के लिए संघ के कर्जों पर निर्भर रहना पड़ता है।

चूंकि राज्य अपने राजस्व से अपनी सामान्य राजस्व सम्बन्धी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते, इसलिए राज्यों के पूंजीगत व्यय के लिए वित्त प्रदान करने में केन्द्रीय ऋणों की महत्वपूर्ण भूमिका हो गई है, जिससे राज्यों पर केन्द्र के कर्जों का भार काफ़ी बढ़ गया है। योजना के लिए कर्जों की वजह से ही राज्यों की केन्द्र के प्रति ऋण ग्रस्तता काफ़ी बढ़ गई है।

हम अपने प्रश्न सं० 5.17 के उत्तर में राज्यों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध में विस्तार से अपनी टिप्पणी देंगे। यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा राज्यों की अत्यधिक ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध में "केन्द्र राज्य सम्बन्धों" पर किए गए प्रेक्षण आज भी सही हैं।

5.17. हम आरम्भ में यह देखने का प्रयास करेंगे कि राज्यों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध में अनुवर्ती वित्त आयोगों द्वारा की गई आवधिक समीक्षा से इस समस्या को सुलझाने में कहाँ तक सफलता मिली है। संघ राज्य के वित्तीय सम्बन्धों के सभी पहलुओं की किसी वित्त आयोग द्वारा की जाने वाली पंचवर्षीय समीक्षा से, राज्यों को ऋणग्रस्तता की जटिलताओं सहित, संघ और राज्यों के वित्त से संबंधित सभी समस्याओं को बदलती हुई परिस्थितियों—जो शायद दो वित्त आयोगों के गठन के बीच की अवधि में बदल सकती हैं, को नजदीक से देखने का अवसर मिलेगा। इस दृष्टि से इस दिशा में हुए विकासों के परिणामों को सही रूप से समझने के लिए आवधिक समीक्षा उपयोगी होगी ताकि राज्यों की ऋणग्रस्तता की विसंगतियों को दूर करने के लिए सुधारात्मक उपाय ढूंढे जा सकें।

वित्त आयोग द्वारा आवधिक-समीक्षा की स्पष्ट उपयोगिता यह है कि राज्यों की केन्द्र के प्रति ऋणग्रस्तता से उत्पन्न समस्याओं का स्वरूप और सीमा को प्रकाश में लाया जा सकता है और राज्यों की ऋण संबंधी सापेक्ष स्थितियों का बदलते परिवेश में अध्ययन किया जा सकता है और इस सम्बन्ध में सुधारात्मक उपाय सुझाए जा सकते हैं किन्तु ऐसी समीक्षा उस स्थिति में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होगी (सीमित रूप से ही उपयोगी होगी) यदि वित्त-आयोग ने इस अवसर का लाभ केवल तदर्थ प्रकार के अल्पकालिक सुझाव देने के लिए उठाया और बुनियादी समस्या वैसी की वैसी बनी रहेगी।

इस समस्या से निपटने के लिए पिछले वित्त आयोगों द्वारा किए गए विचार-विमर्शों और सुझाए गए उपायों के बावजूद राज्यों की अत्यधिक ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा किए गए प्रेक्षण आज भी सही जान पड़ते हैं। जैसा कि आठवें वित्त आयोग ने अनुमान लगाया है, राज्यों की ऋणग्रस्तता पिछले 5 वर्षों में दो गुनी हो गई है, अर्थात् सातवें वित्त आयोग ने अनुमान लगाया था कि वर्ष 1978-79 के अन्त में यह 18,785 करोड़ रु० थी परन्तु यह बढ़कर वर्ष 1983-84 के अन्त में 37,406 करोड़ रु० हो गई। इससे यही पता चलता है कि इस मुद्दे को स्थायी रूप से सुलझाने के लिए तदर्थ प्रकार के अल्पकालिक उपाय पर्याप्त नहीं हैं।

यह भी अप्रत्याशित नहीं है कि केन्द्रीय ऋण भी पिछले 5 वर्षों में 13,463 करोड़ रु० से बढ़कर 27,059 करोड़ रु० यानि दो गुने हो गए हैं। राज्यों की कुल ऋणग्रस्तता 37,406.03 करोड़ रु० में से केन्द्रीय सरकार से ऋण, राज्यों के कुल ऋण भार का 72 प्रतिशत से अधिक है। बिहार राज्य के मामले में केन्द्रीय ऋण राज्य की कुल ऋणग्रस्तता के 80 प्रतिशत से अधिक है। यदि इसे दूसरी दृष्टि से देखें तो आठवें वित्त आयोग ने अनुमान लगाया कि वर्ष 1983-84 के अन्त में राज्यों की तरफ केन्द्र के बकाया ऋण राज्य के घरेलू उत्पाद का 38.11 प्रतिशत है (वर्ष 1976-79 का औसत)। इसके विपरीत बिहार के मामले में केन्द्र का बकाया ऋण राज्य के घरेलू उत्पाद का 53.72 प्रतिशत है (वर्ष 1976-79 का औसत)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्यों की कुल ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण, राज्यों की केन्द्र के प्रति ऋणग्रस्तता है। राज्यों को केन्द्र के ऋण विकास और

गैर विकास प्रयोजनों से योजना और योजनेतर सहायता की शक्ल में दिए जाते हैं। योजनेतर राजस्व व्यय के लिए दिए गए कर्ज का एक उदाहरण वह कर्ज है जो राज्यों को भारतीय रिज़र्व बैंक से ओवर ड्राफ्ट के निपटान के लिए दिया गया था। योजना सम्बन्धी ऋण, विकास प्रयोजनों से दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त गैर-विकास कार्यक्रमों जैसे राहत व्यय के लिए वित्त प्रबंध करने के लिए भी ऋण दिए जाते हैं।

केन्द्र के प्रति राज्यों की ऋण-ग्रस्तता मुख्यत: विकास परियोजनाओं के लिए वित्त प्रदान करने के सम्बन्ध में दिए गए केन्द्रीय कर्जों के कारण है और ऐसे ऋण वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ते जाते हैं। जैसा कि आठवें वित्त आयोग ने कहा, "राज्यों की ऋणग्रस्तता में असाधारण वृद्धि, योजना के परिव्यय का अधिकांश भाग अनिवार्य रूप से उधार के माध्यम से पूरा करने की बाध्यताओं का प्रमाण है"। चूंकि राज्य के राजस्व साधन उनकी खर्च सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है, इसलिए उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए केन्द्र के अन्तरणों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राज्यों के पास अपने विकास परिव्ययों को उधार द्वारा पूरा करने के अलावा कोई चारा नहीं है। उनका बाज़ार से ऋण लेना केन्द्र के नियंत्रण के अधीन है, इसलिए वे बाज़ार-उधार का आश्रय ले कर सीधे कुछ सीमा तक ही सरकारी ऋण ले पाते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें अपने योजना व्यय के वित्त प्रबंध का अधिकांश भाग पूरा करने के लिए केन्द्रीय ऋणों पर आश्रित रहना पड़ता है।

हम आठवें वित्त आयोग के प्रेक्षणों से सहमत हैं कि बढ़ते हुए सार्वजनिक कार्यों के लिए सरकारी ऋण की वृद्धि में कोई बुराई नहीं है। कोई भी सरकार, विशेषकर विकासशील अर्थव्यवस्था में, सरकारी ऋण का सहारा लिए बिना बड़े विकास कार्यक्रमों में आगे नहीं बढ़ सकती। हम इस बात से भी सहमत हैं कि केन्द्र संघ और राज्यों के बीच सम्बन्ध साझेदारी का है, जिसमें साधनों के अन्तरण के लिए ऋण एक महत्वपूर्ण अंग हैं। फिर भी हम जिसके लिए विशेष रूप से चिन्तित हैं, वह है (i) राज्यों की केन्द्र के प्रति बढ़ती हुई ऋण-ग्रस्तता का बृहत-आकार (ii) उस पर बढ़ती हुई ब्याज की राशि और परिणाम (iii) विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत कम निधि रह जाना।

संघ के ऋणों के बढ़ते हुए आकार के अलावा एक प्रमुख निरन्तर चिन्ता जो हमारे सामने बनी रहती है, वह है, ऋण-शोधन का बढ़ता दायित्व। केन्द्र से प्राप्त कुल सहायता का काफी बड़ा भाग ऋण-चुकौती के दायित्वों (जिसमें ब्याज भी शामिल है) में चला जाता है, और राज्य के पास थोड़े ही साधन बचते हैं। वास्तविक स्थिति नीचे सारणी से स्पष्ट होती है :—

	1979–80	1980–81	1981–82	1982–83
1. केन्द्रीय सहायता .	215.86	—257.01	—247.86	—247.25
2. केन्द्र को कर्जों की चुकौती	51.09	—63.54	—78.56	—94.96
3. केन्द्र की ब्याज की अदायगी	26.99	—105.23	—83.66	—96.05
1—(2+3)	137.78	—88.24	—85.64	—56.24

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट होगा कि राज्य-बजट से संघ-बजट से वार्षिक वित्तीय अंतरण के अनसार संघ के ऋणों का वित्तीय भार एक असन्तोषजनक प्रवत्ति इंगित करता है, जिसमें राज्य से केन्द्र को साधनों का प्रवाह केन्द्र से राज्य को साधनों के प्रवाह की अपेक्षा कहीं अधिक गति से नजर आता है, परिणामस्वरूप हमारे जैसे पिछड़े राज्य का वित्तीय सन्तुलन, भारी चुकौती सम्बन्धी दायित्व के कारण निरन्तर असन्तोषजनक रहा।

संघ के अधिकांश ऋण मुख्यत: परिसम्पत्तियाँ बनाने के लिए रहे। इसलिए अक्सर यह कहा जाता है कि राज्यों को अपना ऋण-शोधन उन परियोजनाओं से होने वाले प्रतिलाभ से करना चाहिए जिनके लिए वित्त-प्रबंध इन ऋणों में से किया गया। यह कहना आसान है, करना मुश्किल। राज्य सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आधारभूत ढाँचा उपलब्ध कराने के दायित्व में लगी हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इन परियोजनाओं में निवेश से आय नहीं होती। जिन परियोजनाओं के सम्बन्ध में आशा की जाती है कि आय होगी उनसे भी सही समय से आय नहीं होती। ये कुछ कारण हैं जिनकी वजह से राज्यों के ऋण बढ़ रहे हैं।

संघ के राज्यों के ऋण के प्रभाव को एक अन्य दृष्टिकोण से देखा जा सकता है, विशेषकर हमारे जैसे पिछड़े राज्यों के संदर्भ में। राज्यों की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता में 70 प्रतिशत कर्ज और 30 प्रतिशत अनुदान होते हैं, जिसका यह अर्थ हुआ कि राज्यों को दिए जाने वाले ऋण का अधिकांश भाग केन्द्र से योजना कर्ज के रूप में होता है। यह व्यवस्था, हालांकि काफ़ी विचार-विमर्श के बाद की गई, किन्तु इसमें काफ़ी कमियाँ हैं जो सामान्यत: राज्यों की वित्तीय क्षमता को काफ़ी प्रभावित करती हैं और विशेषतौर पर पिछड़े राज्यों के वित्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। यदि हम इस पद्धति की कुछ कमियों पर गौर करें तो पाएंगे कि सबसे पहले इसमें उधारकर्ता की चुकौती क्षमता को बिल्कुल नज़रअन्दाज कर दिया गया है। दूसरे, इसमें योजनाओं की व्यवहारता, जिसके लिए ऋणों का उपयोग किया जाता है, पर विचार नहीं किया गया है। तीसरे, इससे राज्यों पर असाधारण भार बढ़ जाता है, जो कि उसकी चुकौती क्षमता के अनुरूप नहीं है, क्योंकि केन्द्र की सहायता सम्बन्धी योजना का उद्देश्य असमान राज्यों को सहायता के लिए कर्ज और अनुदान समान रूप से उपलब्ध कराना है। चौथे इसमें इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया कि योजना परिव्यय का अधिकांश भाग सड़कों, स्वास्थ्य और शिक्षा, जलपूर्ति, विद्युत-उत्पादन और संचार साधनों पर खर्च होता है जो अर्थव्यवस्था को आधार प्रदान तो जरूर करते हैं लेकिन उनसे उसी अनुपात में आय नहीं होती जिससे कि राज्य सरकार अपने चुकौती सम्बन्धी उत्तरदायित्व निभा सके।

इस सबका परिणाम यह रहा कि विकसित राज्यों से भिन्न हमारे जैसे पिछड़े राज्य सहायता के कर्ज वाले भाग का पूरा फ़ायदा नहीं उठा पाए। चूंकि ऋण और उस पर लगने वाले ब्याज की चुकौती के कारण राज्य के बजट से केन्द्र के बजट को काफ़ी धन राशि अंतरित होती रही है, इसलिए केन्द्रीय सहायता का निवल प्रवाह कम होता है। अत: यह स्वाभाविक है कि और आगे आर्थिक विकास के लिए हम अपेक्षित निवेश नहीं कर सके, बल्कि विकास के प्रारंभिक चरण के लिए आवश्यक न्यूनतम साधन उपलब्ध कराने के लिए अपने पास मौजूद साधनों को ही उपयोग में लाने के लिए मजबूर हो गए। इसके अलावा सभी राज्यों के लिए, चाहे उनका विकास और वित्तीय स्थिति कैसी भी हो, केन्द्रीय सहायता के कर्ज की निर्धारित मात्रा से कमज़ोर राज्यों पर असाधारण भार पड़ता है और उनका सम्पूर्ण घाटा और भी अधिक हो जाता है। इस प्रकार केन्द्रीय सहायता की पद्धति अन्तरराज्यिक असमानताओं को कम करने के लक्ष्य को पूरा करने में असफल रही।

हमारी राय में राज्यों की केन्द्र के प्रति ऋणग्रस्तता से निपटने का एक कारगर तरीका होगा, राज्य की योजनाओं के लिए वित्त प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सहायता के कर्ज वाले भाग को कम करना। सभी राज्यों के लिए कम मात्रा में भी कर्ज वाले भाग की समान प्रतिशतता निर्धारित करने से कमज़ोर राज्य अधिक विकसित राज्यों के बराबर नहीं आ पाएंगे। इसलिए हमारा सुझाव है कि जिस राज्य की प्रति-व्यक्ति आय सभी राज्यों की औसत प्रति-व्यक्ति आय से कम हो उन्हें 70 प्रतिशत अनुदान और 30 प्रतिशत कर्ज के अनुपात में केन्द्रीय सहायता दी जाए और जिन राज्यों की प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की औसत प्रति व्यक्ति आय से अधिक हो उन्हें 70 प्रतिशत कर्ज और 30 प्रतिशत अनुदान दिया जाए। इस पद्धति से दो लक्ष्य पूरे होंगे—एक तो राज्यों की ऋणग्रस्तता का बोझ कम होगा तथा दूसरे कमज़ोर राज्यों के साधनों को बढ़ाकर, जिन्हें विकास प्रयोजनों पर खर्च किया जा सकता है, पर्याप्त रूप से समानता लाई जा सकेगी।

संघ के कर्जों का एक अन्य महत्वपूर्ण भाग वह कर्ज है जो राज्यों को भारतीय रिज़र्व बैंक के साथ ओवर-ड्राफ्ट की समस्या से निपटने के लिए दिया जाता है। इन ऋणों में एक भाग ओवर-ड्राफ्टों का भी होता है। हमारे पास प्रश्न 5.21 के अपने जवाब में ओवर-ड्राफ्ट के कारणों और इस समस्या को सुलझाने के सुझावों के संबंध में अपने विचार प्रकट करने का पर्याप्त अवसर होगा। यहाँ यही कहना पर्याप्त होगा कि यह मान लेना उचित नहीं कि अनधिकृत ओवर-ड्राफ्ट राज्य

सरकार की वित्तीय अनुशासनहीनता का प्रतीक है। हमेशा ऐसा नहीं होता है। केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल का विचार है कि राज्यों के पास साधनों की कमी के कारण ओवर-ड्राफ्ट का सहारा लेना जरूरी हो जाता है और इसलिए केन्द्र सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विहित सुधारात्मक उपाय नहीं अपनाए जा सकते। अत: अध्ययन दल का विचार था कि वास्तविक सुधार उसके द्वारा सुझाए गए ढंग से केन्द्र राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों या पुनर्निर्धारण करके ही लाना सम्भव था जिससे कि राज्य न केवल अपने साधनों के अनुरूप खर्च करें, बल्कि करने को बाध्य हों।

हम प्रश्न 5.21 के उत्तर में निरन्तर चली आ रही ओवर-ड्राफ्ट की समस्या से जूझने के सम्बन्ध में अपने सुझाव देंगे। सुझाए गए उपाय स्थिति को सुधारने में काफ़ी मदद करेंगे जिससे कि ओवर-ड्राफ्ट द्वारा पैदा समस्याओं से निपटने के लिए केन्द्रीय कर्जे लेने की अनिवार्यता कम होगी।

वित्त-विशेषज्ञों ने राज्यों को केन्द्र सम्बन्धी ऋणग्रस्तता से निपटने के लिए अनेक उपाय सुझाए हैं। वित्त आयोग ने भी राज्यों की बढ़ती हुई ऋण-ग्रस्तता की स्थिति में सुधार लाने के लिए कई सुझाव रखे हैं। किन्तु समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। जान पड़ता है कि आठवें वित्त आयोग ने सही ही कहा है, "जब तक तीसरे पक्ष को चुकौती के दायित्व के लिए पूरी-पूरी व्यवस्था मौजूद है, तब तक राज्यों की संघ के प्रति ऋणग्रस्तता का राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ेगा"। फिर भी, हमारा विचार है कि जहाँ तक सम्भव हो, राज्यों पर से संघ के कर्जों का बोझ कम करने के लिए कारगर कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

एक अल्पकालिक उपाय के तौर पर हमारा सुझाव है कि कुछ कर्जों, जो सामाजिक और वित्तीय दृष्टि से गैर-उत्पादन प्रयोजनों से दिए गए हों, जैसे कि सूखा-राहत और पुनर्वास के लिए, को बट्टे खाते डाल कर ऋण समायोजन कर दिया जाए। इसी प्रकार से केन्द्र सरकार द्वारा पहले पुलिस के नवीकरण और पुलिस आवास, ओवर-ड्राफ्ट के समाशोधन और ऐसे ही कार्यों से सम्बन्धित योजनाओं के लिए दिए गए कर्जों को भी बट्टे खाते डाल दिया जाए क्योंकि उनसे कोई प्रतिलाभ नहीं होता।

आठवें वित्त आयोग ने अपना विचार प्रकट किया कि सामान्यत: वह कर्जों को बट्टे खाते डालने के पक्ष में नहीं था, क्योंकि बट्टे खाते डालने से संघ के पास पुन:निवेश के लिए मौजूद साधनों की सामूहिक निधि में कमी आ जाएगी। फिर भी उसने किन्हीं विशिष्ट लेखों के कर्जों को बट्टे खाते डालने की सिफारिश कि, जैसे कि विस्थापित व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास के लिए दिए गए कर्जे और केन्द्र को किन्हीं विशेष राज्यों द्वारा की जाने वाली चुकौतियों के किसी भाग को बट्टे खाते डालना।

वास्तव में ऋण-समायोजन बहुत से परिसंघों में संघटक राज्यों को राहत देने के लिए अपनाया जाने वाला एक मान्यताप्राप्त उपाय है। भारत में भी इसी प्रकार ऋण-समायोजन जैसा एक तरीका सर ऑटोनीमेयर द्वारा वर्ष 1935 में सुझाया गया था ताकि तत्कालीन प्रान्तों की संघीय राजकोषीय सहायता दी जा सके। उन्होंने सुझाव देते समय निम्नलिखित बात कही थी :—

> "जहाँ किसी लेनदार द्वारा किसी मौजूदा देनदार को वित्तीय सहायता दी जाए, वहाँ सामान्य समझदारी यही होगी कि समायोजन के सबसे छोटे और साधारण तरीके से लेनदार के देनदार पर दावे को कम करके समायोजन किया जाए"।

अत: राज्यों को ऋण-राहत देने के लिए गैर-उत्पादक कर्जों को बट्टे खाते डाले जाने को एक उपयोगी अल्पकालिक उपाय समझा जाए।

एक अन्य स्वीकृत अल्पकालिक उपाय है—चुकौती की अवधि बढ़ाकर मौजूदा कर्जों को पुन: अनुसूचीबद्ध करना। इस प्रकार पुन: अनुसूचीबद्ध करने की सिफ़ारिश सातवें और आठवें वित्त आयोग ने की।

राज्यों को तत्काल राहत पहुँचाने और उनके वित्त पर भार को कम करने की समस्या से निपटने के लिए ये अल्पकालिक उपाय आवश्यक हैं। किन्तु दीर्घकालिक लक्ष्य यही होना चाहिए कि राज्यों के सापेक्ष ऋण के बोझ, और जिस प्रयोजन के लिए ऋण की निधि खर्च की जानी हो, उस को ध्यान में रखते हुए विभिन्न श्रेणियों के कर्जों की चुकौती की अवधि पर ब्याज की दर नए सिरे से निर्धारित की जाए। समान प्रयोजन के लिए ऋण अलग-अलग शर्तों पर नहीं दिया जाना चाहिए। हम दूसरे वित्त आयोग द्वारा व्यक्त विचार से भी सहमत है कि संघ और राज्य दोनों राष्ट्रीय विकास के बृहत् प्रयास में साझीदार हैं, इसलिए राज्यों से उधार की लागत से अधिक राशि लेना न्यायसंगत नहीं है। इसलिए ब्याज की दर निर्धारित करते समय भारत सरकार को वाणिज्यिक बैंकरों की तरह लेन-देन नहीं करना चाहिए।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमारा सुझाव है कि भविष्य में संघ के सभी ऋण मोटे तौर पर दो श्रेणियों में वर्गीकृत किए जाएं:— (i) सामाजिक दृष्टि से उत्पादक किन्तु वित्तीय दृष्टि से गैर-उत्पादक योजनाओं के लिए संघ के ऋण, और (ii) वित्तीय दृष्टि से उत्पादक योजनाओं के लिए संघ के ऋण। इनमें से पहले प्रकार के ऋण स्वास्थ्य, शिक्षा, पिछड़े वर्गों के कल्याण, ग्रामों में सड़कों और एसे अन्य कार्य, जिनके सम्बध में आशा की जाती है कि उनका व्यय सामान्यत: राज्य सरकारें अपने बजट में से करेंगी, जैसी गैर-योजना स्कीमों के लिए होंगे चूंकि इन परियोजनाओं से राज्य को कोई आय प्राप्त नहीं होती। लेकिन सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए इन्हें विकसित करना आवश्यक है इसलिए राज्यों द्वारा इस पर भारी खर्च करना पड़ सकता है और संघ के ऋणों की आवश्यकता होगी विशेषकर तब, जबकि ऐसी योजनाएँ भारत सरकार के कहने पर कार्यान्वित की जाएं या इस सम्बन्ध में कोई राष्ट्रीय नीति स्वीकार किए जाने के फलस्वरूप इनका कार्यान्वयन आवश्यक हो। ऐसे प्रयोजनों के लिए संघ के ऋण दीर्घकालीन आधार पर होने चाहिए और जिन राज्यों की प्रति व्यक्ति आय सब राज्यों की औसत प्रति व्यक्ति आय से कम हो उनसे इन कर्जों पर कोई ब्याज देने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए।

संघ के दूसरी श्रेणी के ऋण, अर्थात् जो वित्तीय दृष्टि से उत्पादक योजनाओं के लिए हों जैसे—विद्युत उत्पादन और विद्युतपूर्ति, औद्योगिक उपक्रम जैसे सड़क परिवहन निगम आदि पर ब्याज उसी दर से लिया जा सकता है जो सांविधिक रूप से निर्धारित किया जाए या वह दर जो ऐसी प्रत्येक परियोजना के लिए निर्धारित की जाए। किन्तु ऋणों को चिरकाल के ऋण समझना चाहिए। चिरकाल के ऋणों की संकल्पना सातवें वित्त आयोग द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले छोटी बचतों के ऋणों के मामले में स्वीकार की गई थी। आठवें वित्त आयोग ने टिप्पणी की कि, "इसमें कोई शक नहीं कि सरकारी ऋण को सार्वजनिक बचतों के द्वारा चुकाना बेहतर होगा, किन्तु यदि ऐसी बचतें पर्याप्त न हों या उनकी बेहतर सामाजिक या आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यकता हो तो नए ऋण लेकर पुराने ऋण चुकाने में कोई नुकसान नहीं है" और यही बात चिरकाल के ऋणों के बारे में कही गई है। व्यावहारिक तौर पर भी, भारत सरकार राज्यों को उनके पिछले ऋण चुकाने के लिए ऋण देती रही है। इसलिए चिरकाल के ऋणों को अभूतपूर्व या कालदोष नहीं माना जाना चाहिए। वास्तव में यहाँ उल्लिखित प्रकार की योजनाओं के लिए वित्त प्रबंध करने के लिए संघ द्वारा दिए गए ऋणों की भारत सरकार द्वारा एक निवेश के रूप में माना जाना चाहिए जिसका लाभांश आर्थिक और सामाजिक विकास के रूप में होगा।

जहाँ तक छोटी बचतों के ऋणों का सम्बन्ध है उन्हें चिरकाल के ऋणों के रूप में माना जाना चाहिए, क्योंकि केवल आहरणों की वसूली ही केन्द्र और राज्यों के बीच में वितरित की जाती है, इसलिए भारत सरकार को अपने साधनों में से राज्यों को हिस्सा नहीं देना पड़ता। भारत सरकार ने सातवें वित्त आयोग के समय यह माना था कि छोटी बचतों के ऋण संघ के अन्य ऋणों से भिन्न हैं। इसलिए छोटी बचतों के ऋणों को चिरकाल के ऋण के रूप न मानने का कोई कारण समझ में नहीं आता।

हमें आशा है कि ऊपर सुझाए गए उपाय काफ़ी हद तक संघ के राज्यों पर ऋणों के भार को कम कर पाएंगे। इनसे संघ के ऋणों का आबंटन आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अधिक सुचारू ढंग से हो सकेगा। किन्तु हम इस बात से भी बेख़बर नहीं है कि इन सुझावों से राज्यों की केन्द्र के प्रति ऋणग्रस्तता की सभी समस्याओं का अन्तिम रूप से हल नहीं निकल सकेगा। किन्तु स्थायी समाधान राज्यों को अधिक वित्तीय साधन उपलब्ध कराकर, उनके साधनों का आधार मज़बूत करने में होगा जिसके

लिए राज्यों की जरूरतों के मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त पद्धति में सुधार लाना होगा। हमने पिछले कुछ प्रश्नों के उत्तर में अपने विचार प्रकट किए थे। इसलिए उन्हें यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं।

5.18 राज्य सरकारें तीन स्रोतों से कर्ज लेती हैं :—भारतीय रिजर्व बैंक, सार्वजनिक स्रोत और केन्द्र सरकार। यहाँ हम सार्वजनिक स्रोत से कर्ज की बात करेंगे, अर्थात, राज्य सरकारों का बाजार से कर्ज लेना। अन्य प्रश्नों के जवाब में अन्य दो स्रोतों से लिए जाने वाले ऋणों पर विचार किया गया है।

राज्य सरकारों की सार्वजनिक स्रोतों से ऋण लेने की स्वतन्त्रता दो कारणों से सीमित है—पहले संविधान के उपबन्धों के अनुसार प्राधिकार की सीमा और दूसरे सम्बन्धित राज्य सरकार की कर्जों का बोझ वहन करने की क्षमता। संविधान के अनुच्छेद 293 के खण्ड 1 के अनुसार राज्य सरकार भारत की सीमा में उस राज्य की समेकित निधि की प्रतिभूति पर, और ऐसी सीमाओं के अधीन जो सम्बन्धित राज्य का विधान मण्डल लगाये कर्ज ले सकती हैं। राज्य सरकारें अपने अधीनस्थ प्राधिकरणों या राज्यों विधान मंडल द्वारा बनाए गए प्राधिकरणों द्वारा एकत्र किए गए कर्जों की गारंटी देने की भी शक्ति है और इस गारंटी पर विधान मंडल का नियंत्रण होता है। इस प्रकार संविधान में राज्य सरकारों की देश के अन्दर आम जनता से, भारतीय रिजर्व बैंक से और केन्द्र सरकार से कर्ज लेने और केन्द्र सरकार से कर्ज लेने की शक्ति सीमित कर दी गई है। राज्यों को देश के बाहर से कर्ज लेने पर प्रतिबन्ध हैं।

अनुच्छेद 293 के खण्ड (3) के अनुसार राज्य सरकारों की कर्ज लेने की शक्तियों पर एक अन्य प्रतिबंध है, इसके अनुसार यदि राज्यों के केन्द्र के प्रति कर्जों की अदायगी बकाया हो तो राज्य सरकारों द्वारा लिए जाने वाले सभी ऋणों के लिए केन्द्र सरकार की सहमति लेना आवश्यक है। यह सहमति किन्हीं ऐसी विशिष्ट शर्तों पर दी जा सकती है जो केन्द्र सरकार उचित समझे।

इस प्रकार यह मालूम होगा कि कर्ज लेने के मामले में राज्य सरकारों की शक्तियों पर लगाई गई सांविधिक सीमाएं इस प्रकार हैं :—(i) राज्य विधान मंडल द्वारा लगाए गए प्रतिबंध (ii) यदि राज्य सरकार की केन्द्र के प्रति अदायगी बकाया हो या कोई अन्य ऐसा ऋण बकाया हो जिसके लिए केन्द्र सरकार ने गारंटी दी तो तो राज्य सरकारों द्वारा लिए जाने वाले कर्जों के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार की ऐसी शर्तों पर सहमति जो वह उचित समझे और (iii) ऋण भारत की सीमा में ही लिया जा सकता है।

राज्य सरकारों द्वारा लिए जाने वाले ऋणों सम्बन्धी स्वतन्त्रता पर ये सांविधिक प्रतिबन्ध सही ही हैं, और ऐसा कोई आधार नजर नहीं आता जिनकी वजह से इनके संबंध में कोई आपत्ति की जाए। राज्य सरकारों के कार्यकारी प्राधिकारी पर राज्य विधान-मंडल का नियंत्रण होता है और यदि राज्य की कर्ज लेने की शक्तियों पर राज्य विधान मंडल द्वारा कुछ सीमाएँ लगायी जाती हैं तो यह सही ही है।

किसी सीमा तक राज्यों की कर्ज लेने की स्वतन्त्रता इस दृष्टि से भी कम हुई है कि केन्द्र के चुकौती के लिए ऋण बकाया होने पर या अन्य ऐसे ऋण बकाया होने पर जो केन्द्र सरकार की गारंटी के आधार पर दिए गए हों, केन्द्र की सहमति कर्ज लेने के लिए एक अनिवार्य पूर्व शर्त निर्धारित कर दी गई है। चूंकि भारत सरकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को देखती है और इसकी राजकोषीय और मुद्रा संबंधी नीतियों का देश के सभी आर्थिक क्रियाकलापों पर समग्र रूप से प्रभाव पड़ता है, यह सही ही है कि यह राज्य सरकारों द्वारा लिए जा रहे कर्जों इत्यादि पर नजर रखे, जिससे कि राज्यों की कर्ज लेने की अनियमंत्रित शक्तियों के कारण कोई प्रतिकूल आर्थिक और राजकोषिय प्रभाव न पड़े।

चूंकि "विदेशी मामले" केन्द्र का उत्तरदायित्व है, यह उचित ही है कि राज्य-सरकारों की उधार लेने की शक्ति देश के आन्तरिक कर्जों तक ही सीमित कर दी जाए। कोई भी राज्य अपनी स्थानीय सीमाओं को लाँघकर किसी विदेशी सत्ता या प्राधिकारी से कोई सम्बन्ध नहीं बना सकता। इसलिए उनपर विदेशी बाजार में प्रवेश करने और विदेशी ऋणों की संविदा करने से रोक लगाना उचित ही है। पहले कुछ राज्यों द्वारा विदेशी ऋणों का लेन-देन करने के पश्चात, भारत सरकार की सहमति लेने के प्रयास उनके राज्य क्षेत्रातीत क्रियाकलापों का संकेत देते हैं। केन्द्र का इन संविधान से इतर तरीकों का सहारा लेना नापसंद किया जाना सही ही था और योजना आयोग द्वारा की गई आलोचना भी सही थी जिसके परिणामस्वरूप राज्यों को इस प्रकार विदेशों से ऋण लेने के सम्बन्ध में चेतावनी दी गई।

विदेशों से कर्जों के सम्बन्ध में राज्य सरकारों की शक्तियों पर प्रतिबन्धों के सम्बन्ध में आपत्तियों को उचित नहीं ठहराया जा सकता। आस्ट्रेलिया में वर्ष 1929 से पहले जो अनुभव हुआ उससे यह पता चलता है कि कैसे राज्यों द्वारा विदेशी बाजारों में असमन्वित ऋणों से किस प्रकार आस्ट्रेलिया सरकार के सामने राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई और इस समस्या से निपटने के लिए 1929 का वित्तीय समझौता करना पड़ा। हमारे संविधान निर्माताओं ने ठीक ही राज्यों को विदेशों से कर्ज लेने की स्वतन्त्रता देने के दुष्परिणामों का पहले से ही अनुमान लगा लिया था और इसलिए राज्यों पर विदेशों से कर्ज लेने के अधिकार पर प्रतिबंध लगाना सही ही था।

इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि राज्य सरकारों की कर्ज लेने की स्वतन्त्रता पर सांविधिक प्रतिबन्धों के असाधारण आधार हैं और ये बुनियादी तौर पर सही हैं।

चूंकि अधिकांश राज्य केन्द्र सरकार के प्रति ऋणग्रस्त हैं इसलिए वे केन्द्र के पूर्व अनुमोदन के बिना उधार लेने की स्थिति में नहीं हैं। यह स्थिति लगभग संविधान के प्रारंम्भ से ही रही है। भारतीय रिजर्व बैंक चूंकि केन्द्र और राज्य सरकार, दोनों की निधियों को रखने वाला हैं और भारत सरकार की ओर से मुद्रा सम्बन्धी नीति और सार्वजनिक ऋण नीति के लिए उत्तरदायी है। इसलिए यह राज्य सरकारों की बाजार से ऋण लेने की नीतियों के सम्बन्ध में एक समन्वय एजेंसी के रूप में कार्य कर्ता रहा है। तदनुसार यह देश की सामान्य आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए राज्यों को बाजार-ऋण देता है।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विभिन्न राज्यों के बीच बाजार कर्जों का आबंटन, योजना आयोग और वित्त मंत्रालय के परामर्श से किया जाता है। इस प्रकार एक सुचारू रूप से समन्वित कर्ज सम्बन्धी नीति प्रतिपादित हुई है : बाजार से उधार लेने सम्बन्धी नीति और कार्यक्रम के तंत्र में संविधान के उपबन्धों पर भी ध्यान दिया जाता है और यह समय के साथ-साथ सामने आने वाली कठिनाइयों में भी अडिग रहा है।

अब हम राज्यों की कर्ज लेने की क्षमता और उस पर प्रतिबन्धों, (यदि कोई हों), पर विचार करेंगे। राज्यों की बाजार से उधार लेने की क्षमता, लिये गये कर्जों की सीमा पर निर्भर होगी। अपनी योजनाओं के लिए वित्त–व्यवस्था करने की उत्सुकता में, राज्य सरकारें अधिकाधिक बाजार से उधार लेने की चेष्टा करती है, चाहे उनमें अदायगी के बढ़े हुए दायित्व का बोझ संभालने की क्षमता हो या नहीं। याद रखा जाए कि बाजार से लिए गये कर्जों को ब्याज सहित चुकाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अपनायी गयी उधार की एकीकृत नीति के कारण इन बाजार ऋण पर देय ब्याज की दरों को बाजार में चल रही ब्याज की दर के एक-तिहाई के बराबर रखा जाता है। यदि राज्यों को स्वयं कर्ज जारी करने का अवसर मिलता, तो शायद बाजार में चल रही दरों के अनुसार देय बाजार की दर, उनमें से अनेक राज्यों द्वारा बड़े स्तर पर बाजार से उधार लेने के कार्यक्रम पर अंकुश के रूप में कार्य करती है।

एक अन्य बात है जो राज्यों की सार्वजनिक कर्ज लेने की क्षमता को प्रभावित करती है। सामान्यत: राज्य की प्रतिभूतियां अपेक्षाकृत कम आकर्षक होती हैं और वे निवेश करने वाली जनता को वैसी आकर्षक नहीं लगती जैसी कि केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियां। यह सभी जानते हैं कि राज्य सरकार के बाजार-ऋण में अलग-अलग व्यक्तियों या वित्तीय संस्थाओं द्वारा उतना अंशदान नहीं दिया जाता जितना कि राष्ट्रीयकृत बैंकों, जीवन-बीमा निगम और अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा और ऐसा उनकी निवेश पॉलिसी के लिए सांविधिक अपेक्षाओं द्वारा सम्भव हुआ है।

एक अन्य कारण है जो किसी हद तक, कम से कम कुछ राज्यों की सरकारी कर्ज लेने की क्षमता पर प्रतिबन्ध का काम करेगा। पूंजी बाजारों तक सभी राज्यों की समान रूप से पहुंच नहीं होती है। वास्तव में प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र या राष्ट्रीकृत बैंकों के मुख्यालय अथवा वित्तीय संस्थाएं भी समान रूप से स्थित नहीं होती हैं। इस कारण अनेक राज्यों को व्यवहारिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है और

यदि वे स्वयं बड़ी मात्रा में बाजार-ऋण जारी करें तो उनके हाथ निराशा ही आती है।

हमारे देश में अपनायी जाने वाली बाजार-ऋणों की एकीकृत पॉलिसी का एक अच्छा पहलू यह है कि इसमें राज्यों की सरकारी-ऋण एकत्र करने की क्षमता में विद्यमान कमजोरियों को ध्यान रखा गया है। जो व्यवस्था की गयी है, उसमें राज्य-सरकारों के लिए उधार की लागत सस्ती है। विभिन्न राज्य सरकारों के असमन्वित उधार कार्यक्रमों का परिणाम पूंजी बाजार में अनावश्यक प्रतिस्पर्धा होता है। सबसे प्रमुख बात तो यह है कि विभिन्न राज्यों के उधार कार्यक्रमों में प्रभावी समन्वय के अभाव में, इस संभावना के प्रति कम ही गारंटी थी कि राज्य द्वारा लिये गये असमन्वित उधारों से, राष्ट्रीय-अर्थव्यवस्था में चल रहे हालात की जरूरतों को देखते हुए अपनायी जाने वाली मुद्रा सम्बन्धी नीतियों के कार्यान्वयन में कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी।

उपर्युक्त विश्लेषण को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि राज्यों की स्वतन्त्रता और क्षमता पर किसी ऐसे प्रकार का प्रतिबन्ध है जो इस सम्बन्ध में संविधान के उपबन्धों या व्यापक मुद्रा सम्बन्धी और राजकोषीय नीतियों की अपेक्षाओं के प्रतिकूल है। यहां, यह भी कहा जा सकता है कि यदि राज्यों को पूंजी बाजार में खुले-बाजार उधारों के लिए प्रतिस्पर्धा में भाग लेने के लिए अप्रतिबन्धित प्राधिकार दे दिया जाए तो निश्चित रूप से समृद्ध राज्य, जो ब्याज की अधिक दर दे सकते हैं, पिछड़े राज्यों के खर्च पर फायदा उठायेंगे, क्योंकि वे ही अधिक निधि प्राप्त कर सकते हैं, कमजोर राज्य नहीं। वे तो उस ब्याज से अधिक ब्याज दे ही नहीं सकते जो वे अब उधार की एकीकृत पॉलिसी के अन्तर्गत दे रहे हैं। इसका नतीजा यह होगा कि पिछड़े राज्यों जैसे—बिहार को अधिक लागत पर उधार लेना पड़ेगा जिससे उसकी पहले से ही कमजोर वित्तीय स्थिति और कमजोर हो जायेगी।

इसलिए हम राज्यों की उधार लेने की अनियन्त्रित शक्तियों के पक्ष में नहीं हैं। हमें चिन्ता है विभिन्न राज्यों में बाजार-कर्ज के आबंटन की। वर्ष 1969-70 से 1978-79 की अवधि में हमें कुल बाजार-कर्ज के 7.05 प्रतिशत से अधिक कभी नहीं मिला। बाजार कर्जों के आबंटन के सामान्य पैटर्न पर यदि नजर डालें, तो पायेंगे कि ऐसे आबंटनों के लिए कोई पूर्व-निर्धारित लक्ष्य या मानदण्ड नहीं है। कम से कम हमें ऐसे किसी ठोस मानदण्ड की जानकारी नहीं है जिसके आधार पर आबंटन किये जाते हैं।

हम इस मामले को दूसरी नजर से भी देखेंगे। जिन राज्यों को विशेष राज्यों का दर्जा दिया गया है जैसे—कश्मीर, मणीपुर, सिक्किम और हिमाचल प्रदेश में प्रति-व्यक्ति के हिसाब से अधिक बाजार-ऋण दिये जाते हैं, बजाए बिहार जैसे राज्य के। इन राज्यों को सहायता सीधे अनुदान के रूप में मिलती है जबकि बिहार को यही सहायता आंशिक रूप में कर्ज के रूप में और आंशिक रूप से अनुदान के तौर पर दी जाती है। यह एक आधार-भूत सिद्धान्त है कि जो राज्य कर्ज को वापिस करने और ब्याज की अदायगी का बोझ सहन करने की स्थिति में होता है वह अधिक बाजार-कर्ज लेने के योग्य होता है। यदि विशेष दर्जा प्राप्त राज्यों को अपवाद माना गया है और उन्हें अधिक बाजार-कर्ज दिये गये हैं चाहे यह निश्चित रूप से न कहा जा सके कि वे ऋण का बोझ सहन करने के लिए बेहतर स्थिति में हैं। उसी आधार पर बिहार को भी अधिक बाजार कर्ज दिया जा सकता है।

अतः हमारा सुझाव है कि बाजार-कर्जों के आबंटन को अधिक तर्क संगत बनाया जाए और इसके लिए खूब सोच समझकर मानदण्ड निर्धारित किया जाए।

5.19 केन्द्र विदेशी उधार-दाताओं से जिस दर पर उधार लेता है उससे अधिक ब्याज की दर यहां भारत में लेता है। उदाहरण के लिए "विकास और क्रेडिट करार" (बिहार ग्राम सड़क परियोजना) भारत और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ (क्रेडिट नं॰ 10721 एन॰) के बीच हुआ था। क्रेडिट के अनुसार उधारकर्ता को आहरित क्रेडिट की मूल राशि और समय-समय पर बकाया राशि पर एक प्रतिशत वार्षिक का तीन बटा चार (1% का 3/4) की दर से सर्विस चार्ज देना था। यह सर्विस चार्ज प्रत्येक वर्ष 15 फरवरी और 15 अगस्त को अर्द्धवार्षिक रूप से देय है। भारत सरकार उधार ली गयी राशि पर ब्याज के रूप में एक प्रतिशत से भी कम राशि अदा करती है और वह भी अर्द्धवार्षिक रूप से परन्तु दूसरी ओर भारत सरकार बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता 7:3 क्रमशः कर्ज और अनुदान के रूप में देती है।

कार्यक्रम के कार्यान्वयन में राज्य द्वारा किया गया व्यय प्रतिपूर्ति की मांग का आधार है। केन्द्र सरकार ऐसे दावे प्रस्तुत करके अग्रणी संस्थाओं से कर्ज प्राप्त करती है और इस प्रकार प्राप्त राशि राज्यों को बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के रूप में अंतरित कर देती है। यह सहायता 70 प्रतिशत कर्ज और 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में होती है।

भारत सरकार राज्यों को दिये गये कर्ज पर 10 प्रतिशत ब्याज वसूल करती है। इससे स्पष्ट रूप से जाहिर होता है कि भारत सरकार राज्यों से इन परियोजनाओं के वित्त-प्रबंध के लिए दी गयी बाहरी सहायता की राशि पर जो ब्याज वसूल करती है वह उस ब्याज से कई गुना अधिक है जो वह उधार दाता देश को देती है। राज्य के साधनों की दृष्टि से यह बात सही नहीं लगती।

5.20 इस प्रश्न पर विचार करते हुए एक सुझाव यह है कि आस्ट्रेलिया की कर्ज परिषद् के पैटर्न पर गठित "कर्ज परिषद" भारतीय रिजर्व बैंक से केन्द्र और राज्यों के बाजार कर्जों के समन्वयन से सम्बन्धित कार्यों को अपने हाथ में ले ले और उनकी कर्ज की सीमाएं निश्चित कर दें। परिषद यह कार्य इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित सिद्धान्तों के अनुसार और उनके आधार पर करे। इस दृष्टि से इसके भारतीय रिजर्व बैंक से एक बेहतर विकल्प होने की आशा की जाती है।

यहां ऐसी कर्ज परिषद् स्थापित करने के लिए दिये गये तर्क के समर्थन में जो कारण दिये जाते हैं उनकी जांच करना उचित होगा। मोटे तौर पर कर्ज परिषद बनाने की दलील तीन कारणों से दी जाती है। पहला, यह कहा जाता है कि मौजूदा परिस्थितियों में राज्यों को एकत्र किये गये कर्जों की कुल मात्रा के निर्धारण और उसमें से केन्द्र और राज्यों के बीच आबंटित किये जाने वाले हिस्सों के सम्बन्ध में कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं है। दूसरे, केन्द्र और राज्यों के कर्जों के आबंटन के पैटर्न पर यदि नजर डाले तो मालूम होगा कि कर्जों से होने वाली आय के विभाजन के सम्बन्ध में कोई निर्धारित मानदण्ड या परस्पर सहमत सिद्धान्त नहीं हैं, बल्कि इससे राज्यों का केन्द्र पर आश्रित होना दृष्टिगोचर होता है। तीसरे, चूंकि राज्यों को आबंटन के सम्बन्ध में मुख्यतः केन्द्र की बही बात ही मानी जाती है, इसलिए इस बात की पूरी सम्भावना है कि राज्यों को कर्जों के आबंटन में राजनैतिक दृष्टि से विचार करके विशेषकर अनेक राज्यों में बदलती हुई राजनैतिक सत्ता को देखते हुए आबंटन किया जाता है।

कर्ज-परिषद् का इस आशा के साथ भी समर्थन किया जा रहा है कि यह इस स्थिति से निपटाने के लिए कारगर तरीका होगा, क्योंकि यह ही कर्ज एकत्र करने और कर्ज बांटने, दोनों मामलों में स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकती है। यहां हम, उन कारकों पर विचार कर सकते है जो वास्तव में कर्ज परिषद् की स्वतन्त्रता निर्धारित करेंगे।

परिषद का गठन निस्संदेह केन्द्र और राज्यों और, शायद योजना आयोग के सदस्यों से मिलकर होगा, चाहे उसकी स्थापना किसी विधि द्वारा या उसके अधीन हो या किसी कार्यपालक आदेश के द्वारा, जैसा कि योजना आयोग के सम्बन्ध में हुआ, परिषद् की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा ही की जायेगी। यदि राज्यों को केन्द्र के निष्पक्ष होने के सम्बन्ध में पर्याप्त विश्वास न हो, तो सदस्यों के चयन का प्रश्न ही केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में मतभेद उत्पन्न कर देगा।

इस मामले को दूसरे कोण से देखा जाए। चूंकि राज्यों की संख्या अधिक है, और उसमें यदि सभी राज्यों के सदस्य होंगे तो परिषद् का आकार बड़ा होगा। इसलिए यह अनुमान लगाना तर्कसंगत होगा कि परिषद् में राज्यों का प्रतिनिधित्व सीमित होगा। इसलिए यह स्वाभाविक है कि राज्य के प्रतिनिधियों का राज्यों द्वारा यथास्थिति चयन या चुनाव

किया जाए। किसी भी स्थिति में परिषद् में राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या (जिसमें योजना आयोग के सदस्य भी शामिल हों) केन्द्र के सदस्यों की संख्या से कहीं अधिक होगी। इसका निश्चित रूप से यही परिणाम होगा कि महत्वपूर्ण मुद्दों पर यदि राज्य केन्द्र से भिन्न मत प्रकट करे तो हमेशा गतिरोध बना रहेगा। इसलिए व्यवहारिक रूप से यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि परिषद् सुचारू रुप से कार्य कर सकेगी या नहीं।

यद्यपि परिषद् की स्वतन्त्रता वांछनीय है, किन्तु यह आश्वासन होना भी कम महत्व का नहीं कि यह केन्द्र और राज्यों और परस्पर राज्यों के बीच कर्ज के आबंटन का निर्धारण करने का काम सुचारू ढंग से हो। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सभी राज्यों की लेकिन अन्य राज्यों की अपेक्षा पिछड़े राज्यों को अधिक-विकास की आवश्यकता है, इसकी सम्भावना नहीं कि परिषद् सर्वसम्मत निर्णय ले सकेगी और यदि राज्यों के प्रतिनिधियों पर अपनी राज्य सरकारों के राजनैतिक विचारों की छाप हो, जिसकी बहुत अधिक संभावना है, तो स्थिति और भी अधिक भ्रामक हो जायेगी। अन्ततः वस्तुनिष्ठ ढंग से सोच-विचार करके राज्यों को आबंटन होने की बजाए सौदेबाजी अधिक होगी।

एक स्पष्ट मुद्दे पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि जब तक परिषद कर्ज के आबंटन के निर्धारण से संबंधित मुद्दों पर निष्पक्ष होकर विचार नहीं करेगी तब तक परिषद् की स्वतन्त्रता का कोई अर्थ ही नहीं होगा। परिषद् के गठन को देखते हुए और उसके गठन के अनुसार सर्वसम्मत निर्णय लेना कठिन, (यदि असम्भव नहीं) होने की प्रवृत्ति को देखते हुए इसमें सन्देह है कि परिषद् वास्तव में उतनी स्वतन्त्र होगी जितना कि उसके संबन्ध में कहा जाता है।

जहां तक राज्यों द्वारा कर्ज लेने का सम्बन्ध है अब हम मोजदा स्थिति में राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता से सम्बन्धित मुद्दे पर विचार करेंगे। राज्य-सरकारों की उधार लेने की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में सांविधिक प्रतिबन्ध है और उनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। यदि राज्यों की तरफ केन्द्र को चुकौती के लिए कोई कर्ज बकाया हो, अथवा कोई अन्य ऐसे बकाया हों जिनके लिए केन्द्र-सरकार ने गारंटी दी हो तो उस स्थिति में राज्य सरकारें यदि कर्ज लेना चाहें तो उनके लिए केन्द्र सरकार की, ऐसी शर्तों पर जो वह विहित करे, सहमति लेना अनिवार्य है। इस प्रकार, चूंकि राज्यों के हाथ काफी बंधे हुए हैं। इसलिए मुख्यतः इसी कारण से उनकी कर्ज लेने की स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी है परन्तु उनकी केन्द्र के प्रति ऋणग्रस्तता बहुत अधिक बढ़ गई है। यह सोच पाना कठिन है कि कर्ज-परिषद् किस प्रकार राज्यों को इस स्थिति से उबारने में सफल हो सकेगी। इस सम्बन्धों में यह बता देना उचित होगा कि कर्ज-परिषद् स्थापित करने के सुझाव के समर्थन में आस्ट्रेलिया का उदाहरण दिया जाता है। किन्तु इस तथ्य को ध्यान में रखा जाए कि आस्ट्रेलिया में भी, जहां कॉमन वैल्थ और राज्यों के सभी सार्वजनिक उधारों को परिषद् (काउंसिल) में केन्द्रीकृत किया जाता है, वहां कॉमन वेल्थ सरकार राज्यों को कर्ज देती है और ये कर्ज "कर्ज-परिषद्" के सीमाक्षेत्र से बाहर हैं। ऐसा होने का एक कारण यह है कि परिषद् सदा राज्यों को कर्ज की पर्याप्त निधि नहीं दे सकती। भारत में भी स्थिति कुछ भिन्न नहीं है। जरूरी नहीं कि प्रस्तावित कर्ज-परिषद् सदा राज्यों को कर्ज-निधि देने की आवश्यकता को पूरा कर पाये और जहां राज्यों के खर्चों को देखते हुए आवश्यक हो, वहां राज्य मदद के लिए केन्द्र के पास ही आएंगे और केन्द्र को राज्यों की सहायता करनी ही पड़गी। इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। इस प्रकार केवल कर्ज-परिषद् राज्यों पर कर्जों का बोझ अथवा उनकी केन्द्र पर उनकी निर्भरता कम करने का काम पूरी तरह नहीं कर सकती।

अब हम उस आम शिकायत को लेते हैं कि केन्द्र और राज्यों और परस्पर राज्यों के बीच कर्ज का आबंटन किसी निर्धारित मानदण्ड या परस्पर सहमत सिद्धान्त के अनुसार नहीं किया जाता। अतः यह सुझाव रखा जाता है कि कर्ज-परिषद राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित सिद्धांतो के आधार पर केन्द्र और राज्यों के उधारों की सीमाएं निर्धारित करे। फिलहाल भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्र और राज्य सरकारों, दोनों की निधियों के रखवाले और भारत सरकार की ओर से मुद्रा सम्बन्धी और सरकारी ऋण सम्बन्धी नीतियों के लिए उत्तरदायी और कर्ज नीति के मामले में समन्वय-एजेंसी के बतौर कार्य करता है। इस प्रकार रिजर्व बैंक द्वारा राज्यों के बीच बाजार ऋण का आबंटन योजना आयोग और भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के परामर्श से किया जाता है। योजना आयोग के तत्वावधान में योजनाओं, जिसमें राज्य की योजनाएं भी शामिल हैं, के लिए वित्त प्रबंध के पैटर्न, रिजर्व बैंक द्वारा अपनायी गयी मुद्रा सम्बन्धी और सरकारी ऋण-सम्बन्धी नीतियों और केन्द्र सरकार की राजकोषीय नीति को आवश्यक रूप से एक साथ मिलकर, राष्ट्र के हित में अर्थव्यवस्था नियमित करने का समान लक्ष्य पूरा करना चाहिए। अतः कर्ज-परिषद और योजना आयोग तथा वित्त-मंत्रालय के बीच समन्वय स्थापित करना आवश्यक होगा। यदि किसी कारणवश परिषद् ऐसा नहीं कर पाती तो परिषद् के लिए और राज्यों के लिए भी अजीबोगरीब स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, इसके परिणामस्वरूप राज्यों की परिषद् से आशाएं टूट जायेंगी।

अतः हमें ऐसा जान पड़ता है कि वास्तव में जो चीज महत्वपूर्ण है वह यह नहीं कि कर्जों का आबंटन निर्धारित करने के लिए कर्ज परिषद् एक प्राधिकारिक सत्ता के रुप में कार्य कर रही है या भारतीय रिजर्व बैंक, जैसे कि फिलहाल चल रहा है, यह उत्तर दायित्व निभ रहा है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि कर्जों का आबंटन निर्धारित करने के सम्बन्ध में कौन से निश्चित सिद्धान्त और मानदण्ड अपनाये जा रहे हैं। इस मुद्दे के सम्बन्ध में यह परिकल्पना की गयी है कि कर्ज परिषद् राष्ट्रीय-विकास परिषद के द्वारा अनुमोदित सिद्धान्त के आधार पर कर्जों का आबंटन निर्धारित करेगी। राष्ट्रीय विकास परिषद् जिस में राज्यों का अच्छा खासा प्रतिनिधित्व है मौजूदा स्थिति में भी कर्जों के आबंटन के सम्बन्ध में लागू करने के लिए निर्धारित मानदण्ड के अभाव में भी समस्या से निपट सकती है, और रिजर्व बैंक को इस प्रकार विहित सिद्धान्तों के अनुसार उधार लेने सम्बन्धी कार्यक्रम को समन्वित करने का कार्य भार भी सौंपा जा सकता है।

पूर्ववर्ती पैरों में उल्लिखित कारणों से हम नहीं समझते कि कर्ज-परिषद् की स्थापना करना उचित होगा। इसके बजाए हम कहेंगे कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कर्जों का आबंटन निर्धारित करने के लिए तर्क संगत सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाएं और ये सिद्धान्त राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निर्धारित किए जाएं तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् के अनुमोदन के बिना इनसे भिन्न सिद्धान्तों के अनुसार कार्रवाई करने की अनुमति नही होगी।

5.21 इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि निरन्तर हो रहे ओवर-ड्राफ्ट, जो कि अक्सर बड़े पैमाने पर भी होते हैं, चिन्ता का विषय है। साथ ही यह भी सही है कि यह समस्या न तो नई है और न ही ऐसी जिस पर पहले किसी का ध्यान न गया हो। किन्तु यदि यह समस्या बनी रही, बल्कि आकार में बढ़ती रही, तो ऐसा इसलिए है कि अब तक जो सुधारात्मक उपाय अपनाये गये वे उन कारणों, जिनकी वजह से समस्या बनी हुई है, को जड़ से मिटाने के लिए अपर्याप्त थे।

वर्ष 1950 से पहले जब वास्तव में बड़े पैमाने पर ओवर-ड्राफ्ट का उदाहरण सामने आया, राज्य अपने वित्तीय लेन-देन अर्थोपाय अग्रिमों की विहित सीमाओं में ही कर लेते थे। ओवर ड्राफ्ट के बढ़ते हुए आकार की समस्या, गम्भीरता से तीसरी योजना की अवधि की समाप्ति के भी बाद महसूस की गयी। अतः पांचवें वित्त आयोग को एक ऐसी प्रक्रिया सुझाने के लिए कहा गया जो राज्यों को भारतीय रिजर्व बैंक के पास अनधिकृत ओवर ड्राफ्ट से बचाने के लिए अपनाई जाए। आयोग ने मामले पर व्यापक रूप से विचार किया और कुछ सिफारिशें की।

यहां संक्षेप में उन कारणों पर नजर डालना संदर्भ से हटकर नहीं होगा जो राज्यों ने पांचवें वित्त-आयोग के समक्ष बार-बार अनधिकृत ओवर-ड्राफ्ट लिए जाने के संबंध में बताए और यह भी देखा जा सकता है कि उनमें से कौन से ऐसे कारण हैं जो निरन्तर चली आ रही ओवर-ड्राफ्ट की स्थिति को अब भी बढ़ावा देते हैं। मोटे तौर पर राज्यों कहा कि बढ़े

पैमाने पर ओवर-ड्राफ्ट की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का कारण, उनके साधनों और कार्यों के बीच लम्बे समय से चले आ रहे असन्तुलन, अपर्याप्त सुपुर्दगी (सौंपना) और अप्रत्याशित कठिनाइयों से निपटने के लिए उपयुक्त तन्त्र की कमी इत्यादि हैं।

राज्यों की, उनके साधनों और कार्यों के बीच असन्तुलन सम्बन्धी शिकायत की जांच करते हुए आयोग ने बताया कि राज्यों को साधनों का अन्तरण किस प्रकार किया जाता है और कहा कि यदि एक बार वित्त-आयोग द्वारा सिफारिश किये अनुसार सुपुर्दगी (अन्तरण) और योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के सम्बन्ध में जब निर्णय ले लिया जाता है, तो राज्यों का यह फर्ज होता है कि वे अपने पास मौजूद साधनों से अपने मामले निपटायें। साथ ही आयोग ने यह भी माना कि कुछ परिस्थितियों के कारण जिन पर किसी का बस नहीं है जैसे-देवी-प्रकोप या अन्य ऐसी बातें जिनके लिए काफी मात्रा में अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता होती है, राज्यों के सामने उपलब्ध साधनों में से अपने खर्च पूरे करने में कठिनाई आ सकती है। ऐसी स्थितियों में आयोग ने सुझाव दिया कि राज्य ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं से उत्पन्न खर्च को पूरा करने के लिए अनधिकृत ओवर-ड्राफ्ट लेने की बजाए अपने साधनों को और बढ़ाएं या अपने खर्च कम करें किन्तु यदि ऐसे प्रयासों के बावजूद राज्य इस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ रहें, तो उन्हें अस्थायी सहायता के लिए केन्द्र से मदद मांगनी चाहिए और केन्द्र को ऐसे अनुरोध पर विचार करके उपयुक्त शर्तों पर अल्पकालिक-ऋण देने चाहिए। किन्तु तब राज्यों को आगामी वर्ष के लिए अपने बजट को संतुलित रखने सम्बन्धी कदम उठाने चाहिए, ताकि ओवर-ड्राफ्ट की नौबत न आए।

आयोग ने यह भी माना है कि राज्यों के सामने आयी पर्याप्त गैर-योजना पूंजीगत घाटे की स्थिति काफी हद तक कई मामलों में अनधिकृत ओवर ड्राफ्ट के लिए उत्तरदायी रही है। किंतु आयोग ने राज्यों से यह आशा की कि वे इस सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक विचार करें कि ऐसे घाटे की स्थिति की पुनरावृत्ति से किस प्रकार बचा जाए और तब भी यदि घाटा जारी रहे, तो आयोग ने आशा व्यक्त की कि केन्द्र ऐसे मामलों में राज्यों की जरूरतों का मूल्यांकन करे और राज्य को वर्ष में देय केन्द्रीय कर्जों की पुनः अदायगी वांछित सीमा तक अस्थगित करने पर विचार करे। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि केन्द्र सरकार राज्यों को दिये जाने वाले कर्जों के समकेन सम्बन्धी प्रक्रिया में उपयुक्त संशोधन करे ताकि चुकौती केन्द्र द्वारा निधि जारी किये जाने के साथ-साथ किस्तों में की जा सके।

आयोग ने कहा कि राज्यों के अनुसार, राज्यों पर संघ के बढ़ते हुए कर्जों के बोझ के अलावा, योजना का खर्च पूरा करने के लिए बढ़ती हुई वित्तीय अपेक्षाएं, केन्द्र द्वारा वित्तीय सहायता देने में देरी, अर्थोपाय-अग्रिमों की अपर्याप्तता, निरन्तर चले जा रहे अनधिकृत ओवर-ड्राफ्ट के कुछ अन्य कारण हैं।

पांचवें वित्त आयोग से इस समस्या पर विचार करने और इसके सम्बन्ध में उपाय सुझाने का विशेष रूप से आग्रह, शायद इसलिए किया गया क्योंकि यह समस्या पहली बार तीसरी योजना की अवधि के अंत में स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई और उन दुष्प्रभावों की तरफ ध्यान गया जिनके अनधिकृत ओवर-ड्राफ्टों की वजह से उत्पन्न होने की सम्भावना थी। बाद के किसी भी वित्त-आयोग से विशेष रूप से, निरन्तर चले आ रहे अनधिकृत ओवर-ड्राफ्टों के कारणों की जांच करने और इस समस्या को सुलझाने के लिए उपाय सुझाने का अनुरोध नहीं किया गया। यह इस बात का सूचक प्रतीत होता है कि अनधिकृत ओवर-ड्राफ्टों को राज्य के वित्त का एक स्थायी लक्षण मान लिया गया है। कुल मिलाकर इन वित्त आयोगों को, जिसमें आठवां वित्त-आयोग भी शामिल है, जो करना था वह था, राज्यों के गैर-योजना पूंजी-अन्तरों का मूल्यांकन करना और इस सम्बन्ध में, उन राज्यों को दिये गये केन्द्रीय कर्जों की तुलना में राज्यों की ऋण सम्बन्धी स्थिति की समीक्षा करना और उससे निपटने के लिए उपयुक्त उपाय सुझाना। छठे और सातवें वित्त आयोगों से अनधिकृत ओवर-ड्राफ्टों के कारणों का विस्तार से विश्लेषण करने के लिए नहीं कहा गया।

प्रशासनिक सुधार आयोग (1967) के वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन दल ने अनधिकृत ओवर-ड्राफ्टों के कारणों का विस्तार से अध्ययन किया और अध्ययन-दल का विचार था कि लम्बे समय से चले आ रहे ओवर-ड्राफ्टों का कारण मुख्यतः राज्यों के साधनों और परिव्ययों के बीच असंतुलन था।

प्रशासनिक सुधार आयोग के केन्द्र-राज्य संबंधों पर अध्ययन दल ने कहा कि निरन्तर चले आ रहे ओवर-ड्राफ्टों (जबकि कोई ऐसी असाधारण परिस्थितियां न हों जैसे निरन्तर चला जा रहा सूखा, जिससे ओवर-ड्राफ्टों का औचित्य सिद्ध हो) से राज्य की प्राप्तियों के प्रति व्यय को सन्तुलित करने की अक्षमता या अनिच्छा मालूम होती है। यदि ओवर-ड्राफ्ट राज्यों की अपनी प्राप्तियों के प्रति खर्च पूरे करने की इच्छा में ढील के परिणाम स्वरुप है तो अध्ययन दल का विश्वास था कि विधिक उपायों, जैसे चूककर्ता राज्य की ओर से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अदायगी बन्द करना, और आखिरी उपाय के तौर पर राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय-आपात स्थिति की घोषणा, की बहुत अधिक सीमाएं थीं क्योंकि अदायगी बन्द कर देने से गम्भीर प्रशासनिक समस्याएं पैदा हो सकती हैं और वित्तीय आपात स्थिति घोषित करने के गम्भीर राजनैतिक परिणाम हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त अध्ययन दल का यह भी विचार था किसी सीमा तक राज्यों में से साधनों की कमी के कारण भी ओवर-ड्राफ्ट का सहारा लेना अनिवार्य हो गया है और इन सुधारात्मक उपायों को सामान्य रूप से नहीं अपनाया जा सका अतः, अध्ययन दल का विचार था कि वास्तविक समाधान केन्द्र-राज्य के वित्तीय सम्बन्धों को इसके द्वारा सुझाए गये ढंग से पुनर्गठित करके राज्यों को कुछ अधिक संसाधन देकर संभव था ताकि राज्यों के लिए अपने साधनों के अनुसार व्यय करना न केवल संभव ही सके बल्कि वे ऐसा करने के लिए बाध्य हों।

अतः यह लगातार महसूस किया जाता रहा है कि राज्यों के पास उपलब्ध साधनों और उनके बढ़ते हुए कार्यों और उत्तरदायित्वों के कारण उनके खर्चों के बीच असन्तुलन बार-बार अनधिकृत ओवर-ड्राफ्ट लेने की समस्या का मूल कारण है। इस लिए यदि समस्या से कारगर ढंग से निपटना हो तो यह जरूरी है कि केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों का इस प्रकार पुनर्निर्धारण किया जाए ताकि राज्य के साधनों और उसके कार्यों तथा उत्तरदायित्वों के बीच सन्तुलन बना रहे। यह लक्ष्य कई प्रकार से पूरा किया जा सकता है :—एक महत्वपूर्ण तरीका है सांविधिक संसाधनों के अन्तरणों के आधार को व्यापक बनाना (i) जिसमें सुपुर्दगी (अन्तरण) की योजना के अन्तर्गत करों की अधिक मदों को शामिल करना, (ii) विभाजन योग्य करों में राज्य का हिस्सा पर्याप्त ऊंचे स्तर पर नियत करना और (iii) संविधान के अनुच्छेद 269 में उल्लिखित समनुदेशित करों का अपेक्षाकृत अधिक बेहतर दोहन है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि जब तक राज्यों के संसाधनों की स्थिति को मजबूत नहीं किया जायेगा, तब तक निरन्तर अनधिकृत ओवर-ड्राफ्ट लेने की समस्या से जूझना कठिन होगा।

हम सामान्य आलोचना के कुछ मुद्दों का, जिसमें राज्यों द्वारा संसाधन जुटाने के प्रयास में लापरवाही बरतना और उनके द्वारा किये जाने वाले खर्चीले, निष्फल, फिजूल-खर्च आदि शामिल हैं, का जवाब दें। हमारे पास यह दिखाने के लिए सातवें वित्त-आयोग का प्रमाण है कि अतिरिक्त संसाधन जुटाने में राज्य, सम्पूर्ण रूप से केन्द्र-सरकार से पीछे नहीं रहे और कुल मिलाकर राज्यों का कार्य निष्पादन प्रशंसनीय रहा है। राज्यों के कर-राजस्व का केन्द्र और राज्यों के कुल कर-राजस्व से प्रतिशत 1968-69 से 1978-79 की अवधि में, एक वर्ष यानि 1972-73 को छोड़कर, लगभग 31 से 33 प्रतिशत रहा। अपने ही मामले में, हम चालू योजना-अवधि में अतिरिक्त संसाधन जुटाने के अपने लक्ष्यों से कहीं आगे निकल गये हैं।

यदि संसाधन जुटाने के जरियों के पूर्ण दोहन की तरफ ध्यान दें, तो यह देखने में आएगा कि केन्द्र और राज्यों के कुल राजस्व (कर और कर इतर) में केन्द्र द्वारा एकत्रित किए गये कर और कर इतर राजस्व लगभग 70 प्रतिशत है और केन्द्र और राज्यों के कुल राजस्व व्यय में राज्यों का

हिस्सा सामान्यत: 51 से 55 प्रतिशत के बीच रहा है। दूसरे शब्दों में राजस्व व्यय में राज्यों का हिस्सा उनके राजस्व संग्रह के हिस्से से कहीं अधिक है। इन दो हिस्सों में जो अन्तर है वह भी राज्यों के राजस्व और उनके व्यय के अन्तर का द्योतक है। यह अन्तर निस्संदेह कर के हिस्से और अनुदानों की शक्ल में केन्द्रीय सुपुर्दगी (अन्तरण) द्वारा पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है। किन्तु इससे भी राज्य कोई विशेष अच्छी स्थिति में नहीं हैं, क्योंकि वे अभी अपने वित्तीय साधन उतने नहीं जुटा पाये हैं जिसमें से कि उनके अपने राजस्व से उनका गैर-योजना व्यय तक निकल सके। ऐसी स्थिति में उनके साधनों और व्यय के बीच लम्बे समय से चला आ रहा असन्तुलन बना रहता है, और अपना वित्त जुटाने के अथक प्रयासों के बावजूद वे विहित सीमा से अधिक ओवर-ड्राफ्ट लेने पर मजबूर हो जाते है। अत: राज्यों की साधनों सम्बन्धी स्थिति मजबूत करके इस समस्या का स्थायी हल निकालना पड़ेगा।

अब हम राज्यों के व्यय के सम्बन्ध में विचार करेंगे। आम तौर से जो वर्गीकरण किया जाता है उसके अनुसार राज्यों द्वारा किया गया व्यय दो भागों में आता है, व्यय की कुछ मदों को "विकासात्मक" के अन्तर्गत रखा जाता है और कुछ को "गैर-विकासात्मक" के अन्तर्गत। व्यय को वर्गीकृत करने का एक अन्य तरीका है—"योजना-व्यय" और "गैर-योजना-व्यय"। योजना-व्यय पूरी तरह विकास कार्यों के लिए माना जा सकता है, किन्तु सभी गैर-योजना-व्यय जरूरी नहीं कि गैर-विकास कार्यों के लिए हों, क्योंकि गैर-योजना-व्यय का कुछ भाग उन विकास योजनाओं पर लगाया जा सकता है जो राज्य-योजना का भाग न हों किन्तु फिर भी विकास के लिए आवश्यक हों। यद्यपि योजना स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए राज्यों को भारी खर्च करना पड़ रहा है, फिर भी क्योंकि योजना स्कीमों और राज्य-योजना-परिव्यय को योजना आयोग से स्वीकृति मिलने के पश्चात ही अन्तिम रूप दिया जाता है, और निर्धारित वित्तीय और वास्तविक लक्ष्यों की उपलब्धि की योजना आयोग द्वारा नियमित रूप से समीक्षा की जाती है इस लिए यह कहना कठिन है कि राज्यों द्वारा इस सम्बन्ध में बेकार या गैर-उत्पादक या फिजुलखर्च किया जाता है। फिर भी योजना व्यय से राज्यों का व्यय काफी बढ़ गया है।

किन्तु गैर-योजना-व्यय की भी यह कह कर आलोचना की जाती है कि राज्य कुछ ऐसा व्यय करते हैं जिसके महत्व के बारे में संदेह है और जिससे फ़िज़ूल खर्ची होती है। समाज-कल्याण पर किये जाने वाले व्यय को अनावश्यक प्रकार के व्यय का उदाहरण बताया गया है क्योंकि यह मुख्यत: लोकवादी प्रकार का व्यय है आर्थिक कारणों से किया जाने वाला व्यय नहीं है, इससे राज्य के साधन घटते हैं। यहाँ यह ध्यान रखा जाए कि सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास ही देश के सम्पूर्ण विकास का स्वीकृत लक्ष्य है। समाज कल्याण कार्यक्रमों पर इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए व्यय किया जाता है। ऐसे व्यय को यदि फिज़ूलखर्ची कहा जाए, तो यह तो मूल्य समझने की बात होगी। एक राय के अनुसार जीवन-स्तर बहतर बनाने से, विशेषकर समाज के पिछड़े वर्ग का, निश्चित रूप से विकास क्षमता बढ़ेगी, इसलिए इसे नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। हमारा विचार है कि लोगों को सामाजिक और आर्थिक सेवाए प्रदान करना बहुत महत्व रखता है क्योंकि इससे लोगों के जीवन-स्तर में निश्चित रूप से सुधार होगा। इसलिए समाज कल्याण पर किये गये व्यय को पूरी तरह फिज़ूलखर्ची या अवांछनीय खर्च नहीं माना जा सकता।

इसके अतिरिक्त व्यय की दो अन्य मदें हैं जिन पर राज्य के अधिकाधिक साधन खर्च हो रहे हैं। एक है राज्यों द्वारा अपने कर्मचारियों की परिलब्धियों पर किया गया व्यय। वेतन-मानों की आवधिक समीक्षा की जानी चाहिए। जब भी वेतन-मानों में संशोधन किया जाता हैं तो उसके परिणामस्वरूप खर्च काफी बढ़ जाता है। इसके अलावा केन्द्रीय दरों पर महंगाई भत्तों के भुगतान से राज्यों का खर्च और भी बढ़ता है। चूंकि केन्द्र ऐसा करता इसलिए राज्यों के लिए भी इसको मानना जरूरी हो जाता है क्योंकि वे अपने कर्मचारियों की केन्द्रीय दरों पर महंगाई भत्ते की मांग को मानने से इंकार नहीं कर सकते। इसकी वजह से राज्यों को वर्ष-प्रतिवर्ष काफी अतिरिक्त खर्च सहन करना पड़ता है। हम अपने अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि इस सम्बन्ध में होने वाला खर्च अनुमान से अधिक होता है क्योंकि जैसे-जैसे वर्ष के दौरान समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उस अवधि में बढ़ती कीमतों के कारण महंगाई भत्ते की अधिकाधिक किस्तों का भुगतान देय हो जाता है। इससे राज्य का व्यय काफी बढ़ जाता है और उनके वित्त पर काफी दबाव हो जाता है।

यहाँ हम व्यय की एक अन्य मद का उल्लेख करेंगे, और वह है—बाढ़ और सूखे जैसे दैवी-प्रकोपों की स्थिति में राहत कार्यों पर होने वाला खर्च। जहाँ तक इस राज्य का सम्बन्ध है, यहाँ बाढ़ और सूखा निरन्तर चला आ रहा है और मुश्किल से ही कोई वर्ष ऐसी बीतता है जब बाढ़ से राज्य का अधिकांश भाग प्रभावित न होता हो। कई बार तो दोनों एक साथ मिल कर राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में दयनीय स्थिति पैदा कर देते हैं। ऐसी स्थिति में राज्य-सरकार को सहायता कार्यों पर भारी रकम खर्च करनी पड़ती हैं। यह एक असाधारण स्थिति है और प्रशासनिक सुधार आयोग के केन्द्र राज्य सम्बन्धों विषयक अध्ययन दल ने भी इसी वजह से इसे निरन्तर चले आ रहे ओवर-ड्राफ्ट का संभावित कारण बताया था। इसके अतिरिक्त बाढ़ और सूखे के दौरान राज्य-सरकार की आय काफी कम हो जाती है और व्यय काफी बढ़ जाता है। चूंकि वर्ष-प्रतिवर्ष यह एक आम बात हो गयी, इसलिए इससे राज्य के वित्त पर निरन्तर दबाव रहता है।

पूर्ववर्ती पैरों में निरन्तर चले आ रहे ओवर-ड्राफ्टों के दो महत्वपूर्ण कारण बताए गये है और हमारी राय में इस समस्या के मूल में यही कारण हैं। पहला है राज्य के साधनों और उसके उत्तरदायित्वों के बीच लम्बे समय से चला आ रहा असंतुलन जो कि इस समस्या का आधार-भूत कारण है, राज्यों की साधनों के अंतरण की बड़ी मात्रा के बावजूद, असंतुलन बना रहा। असीमित रूप से, और बढ़ते हुए खर्चों तथा उनकी पूर्ति के लिए अपर्याप्त साधनों की वजह से ही राज्य के वित्त का मूलभूत असंतुलन ठीक नहीं हो पाया। इससे निरन्तर चले आ रहे ओवर-ड्राफ्ट के लिए उत्तरदायी दूसरा कारण, अर्थात् राज्य का बढ़ता हुआ खर्च, स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि राज्यों के विरुद्ध फिज़ूल खर्चों के लगाये गये आरोप से चूक कर्ता राज्य यह ध्यान रखे कि वे बरबादी न करें, किन्तु यह ध्यान रहे कि उनका अधिकांश व्यय अनिवार्य हैं और वे कितना भी प्रयत्न करे, अपने खर्च में कोई विशेष कमी करने में सफल नही होंगे। उदाहरण के लिए, जैसा पहले भी कहा गया है, वेतन-मानों के संशोधन और राज्य सरकार के कर्मचारियों को केन्द्र की दरों पर महंगाई-भत्ते के भुगतान पर होने वाले खर्च अथवा राहत कार्यों जहां कि दैवी-प्रकोपों के कारण नियमित रूप से भारी नुकसान होते हैं, या समाज-कल्याण-कार्यक्रमों पर कोई खास बचत की संभावना नहीं है।

यहां यह बताना आवश्यक नहीं कि योजना कार्यक्रम आरम्भ करना राज्यों के व्यय में वृद्धि का सबसे प्रमुख कारण रहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि योजनाओं से जनता को कोई फायदा नहीं हुआ या ये अन्यथा उपयोगी सिद्ध नहीं हुई किन्तु यह न भूला जाए कि हर एक योजना में खर्च बढ़ा ही है।

योजनाओं के कारण राज्य के व्यय में हुई असाधारण वृद्धि से उनके समक्ष अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी है। आयोजना पर बल देने से पूंजीगत बजट पर और अधिक दबाव पड़ता है और परिणामस्वरूप राज्यों की जनता और केन्द्र सरकार (केन्द्र सरकार के प्रति अधिक) दोनों के प्रति बढ़ती ऋण ग्रस्तता का परिणाम राज्यों पर कर्ज की अदायगी और सर्विस-प्रभार के कारण भारी बोझ। चूंकि योजनाओं के लिए केन्द्रीय-सहायता का अधिकांश भाग कर्ज के रूप में होता है इसलिए यह बोझ वर्ष-प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है और ब्याज की अदायगी के कारण राज्यों का गैर-विकास खर्च बढ़ता चला जाता है।

इससे हमारे समक्ष राज्यों के गैर-योजना खर्च का एक महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है। जब एक बार योजना की अवधि समाप्त हो जाती है तो योजना की अवधि में चालू की गई योजना को जारी रखना राज्यों का एक प्रकार से "प्रतिबद्ध दायित्व" हो जाता है और वह उनके गैर-योजना लेखों पर रहता है। "वचन बद्ध दायित्व" पर किये जाने वाले खर्च में मुख्यत: स्थापना-प्रभार होते है और इस प्रकार प्रत्येक योजना की समाप्ति पर राज्य के बजट पर भारी बोझ पड़ जाता है। यह एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से योजना की अवधि पूरी होने पर राज्यों को भारी मात्रा में अतिरिक्त खर्च करना पड़ा जिससे उनके वित्त पर काफी दबाव पड़ा।

इस प्रकार योजना के लिए वित्त-प्रबंध के तरीके से योजना पर होने वाला भारी खर्च और उसके परिणामस्वरूप राज्यों पर आने वाले "प्रतिबद्ध दायित्व",

एक साथ मिल कर राज्यों के अर्थोपाय सम्बन्धी कठिनाइयों का तीसरा कारण बन जाते हैं, जिसकी वजह से बारम्बार ओवर-ड्राफ्ट लेने पड़ते हैं।

चौथे, हमारा विचार है कि अर्थोपाय-अग्रिम अपर्याप्त होने के कारण राज-कोषीय असन्तुलन को सही करना भी असंभव हो जाता है और तब राज्य विहित सीमाओं से अधिक अनधिकृत ओवर-ड्राफ्टों का सहारा लेने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यह सही है कि अर्थोपाय अग्रिम राज्यों की रोजमर्रा की जरूरतों के लिए होते हैं। फिर भी राज्यों की आय और व्यय में लम्बे समय से निरन्तर चले आ रहे असंतुलन के तथ्य को भी भुलाया नहीं जा सकता। यह मुद्दा राज्यों द्वारा पिछले कई वर्षों में निरन्तर लिये जा रहे ओवर-ड्राफ्ट से काफी स्पष्ट हो गया है। पांचवें वित्त आयोग ने ठीक ही सिफारिश की थी कि राजकोषीय स्थिति में तेजी होने वाले परिवर्तन को देखते हुए अर्थोपाय अग्रिम की सीमाओं की आवधिक समीक्षा की जानी चाहिए किन्तु हाल ही में, अर्थात् वर्ष 1981–82 में काफी समय पश्चात अर्थोपाय अग्रिम की सीमाएं दो गुनी की गईं। हमारी राय में जब भी वित्त आयोग का गठन किया जाए तो राज्यों द्वारा लिये जा रहे ओवर-ड्राफ्टों के प्रश्न पर विचार करने और इस समस्या को सुलझाने के लिए उपयुक्त उपाय सुझाने के लिए कहा जाए क्योंकि विहित सीमाओं से अधिक ओवर-ड्राफ्टों निश्चित रूप से राज्यों के वित्त के असंतुलन का सूचक है, और योजना आयोग को राज्यों के वित्तीय लेन-देनों के इस पहलू की समीक्षा करने का हक है।

अत: हमारा विचार है कि राज्यों की आय और व्यय के बीच निरन्तर चली आ रही असमानताओं को देखते हुए इस प्रकार पुन: निर्धारित सीमाओं से वास्तव में राज्यों को उस स्थिति में लाने की आवश्यकता के सम्बन्ध में संकेत नहीं मिलता जिसमें वे विहित सीमाओं में कार्य कर सकें। इस प्रकार अर्थोपाय-अग्रिमों की सीमाओं की और आगे समीक्षा करने की आवश्यकता है।

उन मुख्य कारणों, जिनकी वजह से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई जिसमें राज्यों को अनुमत सीमाओं से अधिक ओवर-ड्राफ्ट का सहारा लेना पड़ा, के सम्बन्ध में चर्चा करने के पश्चात् हम कुछ उपाय सुझायेंगे और हमारा विश्वास है कि वे इस स्थिति में सुधार लाने में कारगर सिद्ध होंगे।

सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है केन्द्र-राज्य के वित्तीय-सम्बन्धों को पुनर्गठित करने की, ताकि राज्यों को अधिक सुपुर्दगी सुनिश्चित की जा सके और उनकी वित्तीय स्थिति समान स्तर तक आ जाए। केवल इसी से राज्यों की बड़े पैमाने पर ओवर-ड्राफ्टों का सहारा लेने की समस्या का स्थायी रूप से निदान हो सकता है।

दूसरे, राज्यों की योजनाओं के वित्त प्रबंध की योजना में से, राज्यों को उनकी योजनाओं के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता के बड़े भाग के सम्बन्ध में, केन्द्र और राज्यों के बीच लेनदार देनदार का सम्बन्ध स्थापित करने की स्थिति जैसी मौजूदा विसंगति दूर की जानी चाहिए। वर्तमान योजना से राज्यों पर बकाया कर्जों और तदनुरूपी ब्याज का अनावश्यक भारी बोझ पड़ता हैं जिसका उनकी वित्तीय स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत: राज्यों की योजनाओं के वित्त-प्रबंध सम्बन्धी स्कीमों की समीक्षा की आवश्यकता है ताकि राज्यों की वित्तीय स्थिति में मौजूदा व्यवस्था की कठिनाई को दूर किया जा सके।

तीसरे, राज्यों की संघीय कर्जों के बढ़ते आकार से उत्पन्न बढ़ते हुए ऋण-शोधन के दायित्वों की समस्या सुलझाने के लिए अल्पकालिक और दीर्घ कालिक उपायों की आवश्यकता है। चुकौती के कुल दायित्व (ब्याज सहित) के कारण केन्द्र से प्राप्त कुल सहायता का काफी बड़ा भाग खर्च हो जाता है, जिससे राज्य से केन्द्र को कहीं अधिक मात्रा में साधन पहुंच जाते हैं और केन्द्र से राज्यों को उतने साधन नहीं पहुंच पाते। इस सम्बन्ध में वित्त-आयोगों की सिफारिशों से अस्थायी समाधान ही निकल पाया है इस समस्या को सुलझाने के लिए सुझाए गये उपाय अब तक स्थायी समाधान ढूंढने की दिशा में भ्रामक सिद्ध हुए हैं। अत: इस समस्या के प्रभावों का सूक्ष्म विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्यों में वित्तीय सन्तुलन लाना समस्या को सुलझाने के लिए ठोस कदम के रूप में आवश्यक है।

चौथे, हमारा सुझाव है कि अर्थोपाय-अग्रिम की सीमा को बढ़ा कर उसमें संशोधन लाया जाए। प्रशासनिक सुधार आयोग के वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी अध्ययन-दल ने सुझाव दिया कि राज्यों द्वारा लिये जा रहे ओवर-ड्राफ्टों के प्रति एक महत्व-पूर्ण विधिक रक्षोपाय होगा, किसी समय विशेष में राज्य के चालू राजस्व साधनों का एक विशिष्ट भाग विहित करते हुए सांविधिक सीमा निर्धारित करना और किसी राज्य को इस सीमा का अतिक्रमण करने की अनुमति न देना। इस व्यवस्था का एक लाभ यह भी है कि इसमें किसी सीमा पर ढील भी होगी क्योंकि राज्यों के साधनों में वृद्धि के साथ-साथ अनुमत सीमा भी अपने आप बढ़ जायेगी।

हम इस सुझाव से सहमत हैं क्योंकि इसके अंतर्गत अर्थोपाय अग्रिम की सीमा का राज्य के उन साधनों से सीधा सम्बन्ध है जिनसे राज्य के वित्तीय लेन-देन किये जायेंगे। वर्तमान निर्धारित सीमा इस हद तक बंधी हुई हैं कि इसका उन वित्तीय लेन-देनों से कोई सम्बन्ध नहीं है जो इन वर्षों में काफी बढ़ गये हैं, इस प्रकार निर्धारित सीमा काफी हद तक एक कृत्रिम सा प्रतिबन्ध बन कर रह गयी है। साथ ही इस बात को अच्छी तरह समझ लिया जाए कि सुझाव के अनुसार निर्धारित सीमा में किसी भी स्थिति में किसी भी प्रकार की ढील नहीं होगी और कोई भी यह सोच कर काम न करे कि दण्डभाव में इस सीमा का उल्लंघन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसी सीमा से भारतीय रिजर्व बैंक और केन्द्र सरकार का मनोबल बढ़ेगा जिससे वे गलती करने वाले उन राज्यों के विरुद्ध विधिक कार्यवाही कर सकेंगे जो तीन महीने की अनुमत अवधि से अधिक सीमा का निरन्तर उल्लंघन करेंगे।

हमें इस बात की पूरी जानकारी है कि ऊपर सुझाए गये उपाय तभी प्रभावी हो सकते हैं जब सार्वजनिक व्यय में, केन्द्र या राज्य द्वारा, सख्ती से बचत की जाए। विशेषकर राज्यों को, अपने ही हित में निरन्तर कड़ी नजर रखनी चाहिए कि कोई भी संदिग्ध प्रकार का खर्च न किया जाए जहां कहीं भी बचत हो सकती हो, अवश्य की जाए।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम एक बार ओवर-ड्राफ्ट की समस्या से निपटने का निश्चय कर लें, तो उपर्युक्त उपायों के कार्यान्वियन से, अनुमत सीमा से अधिक ओवर-ड्राफ्ट का सहारा लेने की संभावना काफी कम हो जायेगी।

5.22 यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि राज्य अपने राजस्व साधनों का पूरी तरह उपयोग नहीं कर रहे हैं। ऐसी बात कहने के लिए यह देखना होगा कि राज्य करों के सम्बन्ध में क्या प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए हमें, इस सम्बन्ध में सातवें वित्त-आयोग के प्रेक्षणों पर नजर दौड़ानी होगी। 1968–69 से 1978–79 की अवधि में केन्द्र और राज्यों के कुल-कर-राजस्व की जांच करने के बाद आयोग इस निर्णय पर पहुंचा है कि राज्यों के कर राजस्व का केन्द्र और राज्यों के कुल-कर-राजस्व से 31 से 33 प्रतिशत के बीच रही है, वर्ष 1972–73 में यह प्रतिशत 29.95 थी।

अत: आयोग का विचार था कि अतिरिक्त साधन जुटाने के मामले में राज्य, सम्पूर्ण रूप से केन्द्र-सरकार से पीछे नहीं रहे और कुल मिलाकर राज्यों का निष्पादन प्रशंसनीय रहा। किन्तु इस सम्बन्ध में अलग-अलग राज्यों का निष्पादन एक जैसा नहीं रहा। आयोग के अनुसार इसका कारण जरूरी नहीं कि उन राज्यों द्वारा करों के सम्बन्ध में पर्याप्त रूप से प्रयत्न न करना अथवा प्रयत्नों में कमी हो। उनके कर-राजस्व की वृद्धि में अन्तर का कारण आंशिक रूप से विभिन्न राज्यों में आय और कीमतों की वृद्धि की अलग-अलग दरें थे और आंशिक रूप से अतिरिक्त साधन के जुटाने सम्बन्धी प्रयासों, कर-रियायतों और आहरणों में भिन्नता इत्यादि था।

निम्नलिखित सारणी में वर्ष 1979–80 और 1980–81 में केन्द्र और राज्यों के कुल कर-राजस्व को दिखाया गया है—

(रुपए करोड़ों में)

वर्ष	कुल कर-राजस्व (केन्द्र और राज्य)	केन्द्र का कर-राजस्व		राज्य का कर-राजस्व	
		राशि	कुल राशि का प्रतिशत	राशि	कुल राशि का प्रतिशत
1979–80	17683.08	11973.65	67.71	5709.43	32.28
1980–81	19694.07	13132.59	66.68	6561.48	33.32

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होगा कि राज्यों के, अपने करों में राजस्व की उगाही करने के प्रयासों में कोई कमी नहीं थी। दूसरी ओर केन्द्र और राज्यों के मिले-जुले कुल कर-राजस्व में, उनका हिस्सा पिछले वर्ष की अपेक्षा अधिक है। वास्तव में यदि हम वर्ष 1961–62 से वर्ष 1981–82 तक की अवधि के आंकड़ों का विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि जहां केन्द्र द्वारा लगाये गये करों में 12.5 गुना वृद्धि हुई वहां राज्यों द्वारा लगाये गए करों में 13.4 गुना वृद्धि हुई।

हमारा अपना कर-राजस्व वर्ष 1978–79 में 203.92 करोड़ रु० से बढ़कर वर्ष 1982–83 (संशोधित अनुमान) में 370.14 करोड़ रु० हो गया और अनुमान है कि वर्ष 1983–84 तक यह 439.70 करोड़ रु० जितना हो जायेगा। इसका अर्थ हुआ कि इस अवधि में 100 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई।

जहां तक हमारे अतिरिक्त संसाधन जुटाने के प्रयत्नों का सम्बन्ध है, छठी योजना के प्रारम्भ में अतिरिक्त संसाधनों द्वारा 600 करोड़ रु० तक की उगाही का लक्ष्य था। इसके विपरीत निम्नलिखित विवरण में वर्ष 1980–81 से एकत्रित किए गये अतिरिक्त संसाधन दिखाये गये हैं :—

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	एकत्रित किए गये अतिरिक्त संसाधन
1980–81	32.38
1981–82	143.75
1982–83	217.57
1983–84 (एल० ई०) . . .	357.66
1984–85 (अनुमानित) . . .	418.99
कुल .	1170.35

इस प्रकार यह स्पष्ट होगा कि अतिरिक्त संसाधन जुटाने के मामले में भी हमारा कार्य-निष्पादन प्रशंसनीय रहा है।

यदि गैर-कर-राजस्व की बात करें, तो निम्नलिखित सारणी में केन्द्र और राज्यों के गैर-कर-राजस्व तथा कुल राशि में उनके हिस्सों को दर्शाया गया है।

वर्ष	केन्द्र का गैर-कर-राजस्व	राज्यों के गैर-कर-राजस्व	कुल गैर-कर-राजस्व (केन्द्र और राज्य के)	केन्द्र के गैर-कर-राजस्व का कुल गैर-कर-राजस्व-से प्रतिशतता	राज्यों के गैर-कर-राजस्व का कुल गैर-कर-राजस्व-से प्रतिशतता
1	2	3	4	5	6
1971–72	1099.9	1407.2	2507.1	43.87	56.13
1972–73	1135.3	1922.6	3057.9	37.12	67.88
1973–74	1177.8	2084.2	3262.0	36.10	63.90
1974–75	1460.2	2322.4	3782.6	38.60	61.40
1975–76	2065.6	2792.9	4857.5	42.50	57.50
1976–77	3171.7	3323.8	5494.5	39.52	60.48
1977–78	2731.8	3775.5	6507.3	41.98	58.02
1978–79	2671.6	4723.6	7395.2	36.12	63.88
1979–80	2771.9	4552.4	7324.3	37.84	62.16
1980–81	3440.8	5888.2	9329.0	36.88	63.12

उपर्युक्त सारणी से मालूम होगा कि राज्यों का गैर-कर-राजस्व वर्ष 1971–72 से वर्ष 1980–81 के बीच 56.12 से 63.90 प्रतिशत रहा और तदनुसार उसी अवधि में केन्द्र का गैर-कर-राजस्व का हिस्सा 36.10 प्रतिशत से 43.87 प्रतिशत के बीच रहा। इसके अतिरिक्त केन्द्र और राजस्व के मिले-जुले कुल गैर-कर-राजस्व में राज्यों के हिस्से में वर्ष 1978–79 से बढ़ने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

हमारा अपना गैर-कर-राजस्व वर्ष 1978–79 में 83.88 करोड़ रु० से बढ़कर वर्ष 1982–83 में 164.89 करोड़ रु० (संशोधित अनुमान) हो गया। इस प्रकार इस अवधि में लगभग 100 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

उपर्युक्त हिसाब को देखने से पता चलता है कि राज्य कर और गैर-कर-राजस्वों के अपने साधनों के पूर्ण दोहन के मामले में पीछे नहीं रहे। इस दिशा में किये गये प्रयास पर्याप्त हैं अथवा नहीं, यह बात तो मूल्य सापेक्ष है और इस बात पर निर्भर करता है कि आप इसको किस नजर से देखते हैं। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि राज्यों के पास जो साधन हैं उनसे अधिक राजस्व की उगाही की जा सकती थी किन्तु जहां तक हमारा सम्बन्ध है यह दृष्टिकोण अनेक कारणों से गलत होगा।

कर योग्य क्षमता अस्पष्ट और भ्रामक होने के कारण इसकी सही मात्रा का अनुमान लगाना कठिन है। राष्ट्रीय आय और उसका वितरण दो ऐसे बुनियादी निर्धारक हैं जिन पर कर-योग्य क्षमता निर्भर करती है। इन दोनों ही दृष्टियों से हमारे राज्य में जो स्थिति है उसमें आन्तरिक स्रोतों से और अधिक राजस्व एकत्र करना संभव नहीं होगा।

इस राज्य के लोगों की अदायगी क्षमता उनकी निम्न आय के कारण काफी सीमित है। वर्ष 1972–73 में (चालू कीमतों पर) प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 713.6 करोड़ रु० थी और राज्यों की प्रति व्यक्ति आय केवल 480.01 करोड़ रु० (चालू कीमतों पर) थी, दोनों के बीच 32.7 प्रतिशत का अन्तर था। वर्ष के दौरान यह अन्तर और बढ़ा जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि वर्ष 1980–81 में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 1537.00 करोड़ रु० (चालू कीमतों पर) थी, और बिहार की प्रति व्यक्ति आय केवल 870.00 करोड़ रु० (चालू कीमतों पर) थी, जिससे दोनों के बीच का अन्तर वर्ष 1972–73 में 32.7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1980–81 में 43.4 प्रतिशत हो गया।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा संकलित आंकड़ों के आधार पर, वर्ष 1973–74 में ग्रामीण क्षेत्रों में 75.26 प्रतिशत लोग और शहरी क्षेत्रों में 50.54 प्रतिशत लोग और सम्पूर्ण जनसंख्या के 60.76 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे थे। राज्य के सर्वेक्षण से पता चलता है कि गरीबी की रेखा से नीचे लोगों की प्रतिशतता वर्ष 1977–78 में बढ़कर 75.06 प्रतिशत हो गयी है।

इस राज्य के लोग अपने निम्न आय स्तर के कारण गरीबी और पिछड़ेपन के दुश्चक्र में फंसे हुए हैं, जिसका परिणाम कम बचत और कम पूंजी निर्माण तथा विकास पर अपर्याप्त परिव्यय है, इसलिए आर्थिक और सामाजिक विकास धीमी गति से हो रहा है। इस पृष्ठभूमि में यदि देखें तो राज्य के अपने स्रोतों से राजस्व एकत्र करने के प्रयासों को अपर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

5.23 हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि केन्द्र सरकार समस्त राजस्व का निर्धारण और वसूली नहीं कर रही है जिसे वह कर सकती है। हम यह मानते हैं कि केन्द्र सरकार की कराधान की नीति विकासोन्मुख है। सार्वजनिक क्षेत्र में किए गये पूंजीगत निवेश पर उचित अनुपात में प्रतिलाभ नहीं होता। इसका प्रमुख कारण है प्रबंध की कमियां और बढ़े हुए ऊपरी व्यय। केन्द्रीय कराधान नीति पहले ही प्रकट हो जाती है, यह बात राज्यों के कराधान के संबंध में भी लागू होती है। तथापि सार्वजनिक क्षेत्र के उत्पादों के मूल्य बढ़ाने के बजाय, केन्द्र सरकार अपने उत्पाद घटकों में बढ़ोतरी कर सकती है, जिससे आय में हुई परिणामी वृद्धि में राज्य और केन्द्र सरकार दोनों की बराबर की साझेदारी हो सके। इसी प्रकार. आयकर में निरंतर अधिभार संबंधी उपबंध क्षोभकारक है; अधिभार के माध्यम से हुई आय से राज्य सरकार को कुछ नहीं मिलता। ऐसी मदें, जो अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क के अंतर्गत आती हैं उन्हें अधिक राजस्व प्राप्त करने योग्य बनाया जा सकता है। राज्य महसूस करते हैं कि चूंकि अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क में शामिल

मदें राज्य कराधान में शामिल थीं, इसलिए अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क से होने वाले प्रतिलाभ में उनको मिलने वाला हिस्सा, उन मदों से हुई वास्तविक मूल्य-वृद्धि के अनुपात में कम है, जो राज्य कराधान विधि के अंतर्गत अब भी आती हैं। तदनुसार, इस स्थिति की नियमित समीक्षा करने और केन्द्रीय सरकार को परामर्श देने के लिए एक प्रबोधन (मानीटरन) समिति राज्य सरकारों की शिकायतें दूर कर सकेगी।

5.24. हमारा उत्तर "हाँ" है। हम निश्चय ही किसी ऐसी सुनिश्चित प्रक्रिया की व्यवस्था का स्वागत करेंगे, जिससे संघ और राज्य सरकारों के बीच उन सभी मामलों पर निरंतर परस्पर सार्थक परामर्श हो सके, जिनका राज्य सरकारों के वित्त संबंधी हितों पर असर होता हो। वास्तव में हम ऐसे परामर्श का भी समर्थन करेंगे, जो अनुच्छेद 268 और 269 में उल्लिखित मात्र करों और शुल्कों तक ही सीमित न हो, बल्कि उसका आधार अधिक व्यापक हो। संघ-राज्य वित्तीय संबंधों के कार्य-चालन में कमी जैसी कि राज्य सरकारों द्वारा स्पष्ट रूप से की गई लगातार शिकायतों से पता चलती है और उनके द्वारा विभिन्न मंचों के समक्ष इसकी चिन्ता अभिव्यक्त करने से स्पष्ट होता है, को केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच वित्तीय संबंध से संबंधित सभी मामलों पर नियमित रूप से सार्थक परामर्श करके दूर किया जा सकता है।

जहाँ तक इस सवाल पर उठाए गये सीमित मुद्दे का संबंध है, अनुच्छेद 268 में उल्लिखित कर संघ-विधि के अंतर्गत लगाए जाते हैं, परन्तु राज्य सरकारों द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों में उनकी वास्तविक वसूली की जाती है और इस प्रकार उगाही गई राशि का राज्य सरकारों द्वारा विनियोजन किया जाता है। अनुच्छेद 269 में उल्लिखित कर और शुल्क दोनों को संघ सरकार द्वारा लगाया जाता है और उनकी उगाही की जाती है, लेकिन राज्य सरकारों में निवल आय जिन सिद्धान्तों के अनुसार समनुदेशित की जा सकती है और बांटी जा सकती है, वे संसद द्वारा कानून बना कर तैयार किए जाते हैं।

इस प्रकार अनुच्छेद 268 और 269 में उल्लिखित करों और शुल्कों से आय वास्तव में राज्य-सरकारों के राजस्व के स्रोत हैं और विभिन्न राज्य सरकारों की समेकित निधि का हिस्सा होने चाहिए: अतः यह उचित और सही है कि इस संरचना में कोई अंतर करना हो अथवा उनमें से किसी को समाप्त करने के लिए कोई निर्णय करना हो तो वह राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके किया जाए और इस संबन्ध में राज्य सरकारों के दृष्टिकोण पर पूर्ण रूप से विचार किया जाए।

यहाँ अनुच्छेद 274 में दिए गये उपबंध का स्मरण कराना अनुचित नहीं होगा जिसके अनुसार ऐसा कोई भी बिल या संशोधन, जिसके द्वारा विभिन्न या कोई ऐसे कर या शुल्क लगाए जाएं, जिनमें राज्य सरकारों के हित निहित हों राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद के किसी भी सदन में पेश नहीं किए जा सकते। इस उपबंध के पीछे एक और स्पष्ट उद्देश्य यह दिखाई देता है कि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा कराधान संबंधी उपाय करने पर प्रतिबंध लगाया जाए ताकि कोई गैर सरकारी विधान पास करने से उत्पन्न गड़बड़ी से वित्तीय योजना पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। इससे भी अधिक इस उपबंध का निहित आशय यह प्रतीत होता है। कि कोई भी विधान चाहे वह परिवर्तन या उत्सादन द्वारा प्रभावित करे, यदि उससे राज्यों के हित का अतिलंघन होता हो तो राज्यों से अच्छी तरह परामर्श किए बिना न अपनाया जाय। भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 141 (अनुच्छेद 274 का उपबंध जिसके अनुरूप है जिसके अधीन गवर्नर जनरल पर उन शक्तियों का प्रयोग करने के संबंध में, जो इस अनुच्छेद द्वारा राष्ट्रपति को दी गई शक्ति के सदृश है, कुछ सीमाएं थीं, किन्तु इससे भिन्न इस अनुच्छेद के अंतर्गत राष्ट्रपति के लिए इस संबंध में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के संबंध में कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है। किन्तु यदि वास्तव में देखा जाए तो संविधान में 1976 के 42 वें संशोधन अधिनियम और 1978 के 44 वें संशोधन अधिनियम द्वारा किए गये संशोधनों को देखते हुए राष्ट्रपति अंतिम रूप से अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं है और वे मंत्रीपरिषद द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करने के लिए बाध्य हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह कोई ऐसा कदम उठाने से पहले जिसके कारण विभिन्न या कोई ऐसा कर या शुल्क लगाया जाय जिसमें राज्य हित-बद्ध हों, राज्यों से परामर्श करें।

किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे अनेक उदाहरण देखने में आए हैं जहाँ अपेक्षित उपायों के राज्यों के वित्तीय हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी, किन्तु राज्यों से परामर्श नहीं किया गया और भारत सरकार ने उन मामलों में एक-पक्षीय निर्णय लिया इनमें से चन्द एक हैं, वर्ष 1961 में रेल यात्री किरायों पर से कर का राज्यों से पूर्व परामर्श किए बिना समाप्त कर दिया जाना उनकी सहमति की तो बात ही क्या है। जिसका परिणाम था राज्यों को राजस्व के एक ऐसे महत्वपूर्ण स्रोत से वंचित करना जो कि वास्तव में उनका था। इस कारण दूसरा उदाहरण है वर्ष 1959-60 संविधान में किया गया संशोधन जिसके अंतर्गत कंपनियों द्वारा आय पर अदा किए जाने वाले कर को कंपनी कर के रूप में वर्गीकृत किया गया जिससे यह काम कर की विभाजन योग्य सामूहिक निधि से अलग हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्यों में वितरित होने वाली उपलब्ध मूल्य निधि में कमी आई, किन्तु ऐसे कदम उठाने से पहले राज्यों से परामर्श नहीं किया गया। इसके अन्य उदाहरण हैं, सहायक उत्पाद-शुल्क और विशेष उत्पाद-शुल्क लगाया जाना जिससे कि उसकी आय में राज्यों को हिस्से न दिया जाए।

चूंकि राज्यों की मुख्य शिकायतें वित्त से संबंधित हैं इसलिए उपर्युक्त उदाहरण ऐसे सभी मामलों में संघ-राज्य परामर्श के महत्व को दर्शाने के लिए दिए गये हैं, जो संघ और राज्यों के वित्तीय संबंधों को प्रभावित करते हैं। औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के मौजूदा मंचों के जरिए पॉलिसी के महत्वपूर्ण मुद्दों पर परस्पर विचार-विमर्श करने के अवसर दिए जाते हैं। राज्यपालों, मुख्यमंत्रियों और इन सबसे बढ़कर राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मेलनों का अपना महत्व है किन्तु वे इस प्रकार के होते हैं कि उनमें सरकार के किन्हीं विशिष्ट मुद्दों के विषय में ही विचार-विमर्श किया जाता है और कोई विशेष निर्णय लेते समय विचारों का आदान प्रदान अधिक किया जाता है। विचार-विमर्श के स्वरूप और उन मुद्दों को देखते हुए जो विचार-विमर्श के लिए उठाए जाते हैं, उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि उनमें संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के संदर्भ में उत्पन्न विवादप्रद मुद्दों पर गहराई से विचार करने के लिए अपेक्षित समय निकाला जा सकेगा।

संघ और राज्यों के बीच अनौपचारिक परामर्श का एक तरीका है राज्यों से सामान्य पत्र-व्यवहार जो कि प्रभावी विचार-विमर्श का पर्याप्त विकल्प नहीं हो सकता। चौथे वित्त आयोग ने इस मामले पर विचार किया और अनुच्छेद 274 का हवाला देते हुए कहा "राष्ट्रपति द्वारा सिफारिश के स्पष्ट उपबंध से कोई ऐसा तरीका निकलना चाहिए जो केन्द्र में संबंधित मंत्रालय द्वारा सामान्य रूप से संक्षिप्त खुलासा देने और सलाह देने से भिन्न हो।" इस दृष्टि से हमारा विचार है कि संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों को प्रभावित करने वाले सभी पहलुओं पर नियमित रूप से संघ और राज्यों के बीच परस्पर परामर्श के लिए एक औपचारिक परामर्शदात्री तंत्र स्थापित किया जाये।

5.25 हमारा विचार है कि संविधान के अनुच्छेद 269 में उल्लिखित करों की राज्यों की वित्तीय स्थिति मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में वे राज्यों के राजस्व के स्रोत हैं जो एक या दो मामलों को छोड़कर काम में नहीं लाए गये हैं। इस अनुच्छेद में सूचीबद्ध 7 मदों में से कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा-शुल्क लगाया गया है और उसकी राशि राज्यों में वितरित की गई है। इसका एक दूसरा उदाहरण वह केन्द्रीय बिक्रीकर है जो राज्यों से एकत्र करने और राजस्व विनियोजित करने के लिए कहा गया है जिसका अर्थ हुआ कि उस अनुच्छेद की सूची में मद 7 के संबंध में अर्थात समाचार पत्रों को छोड़कर ऐसे माल के क्रय या विक्रय पर कर लगाया गया है जहाँ यह क्रय या विक्रय अंतर-राज्यिक व्यापार और वाणिज्य के अंतर्गत किया जाय। उस अनुच्छेद में उल्लिखित कोई अन्य कर फिलहाल नहीं लगाया गया है।

वास्तव में रेल यात्री किरायों पर जो कर पहले लगाया गया था, वह भी काफी पहले यह सोचकर समाप्त कर दिया गया कि उसका रेलवे के वित्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस कर से होने वाली आय के बदले राज्यों को जो राशि दी गई, वह थी एक निश्चित अनुदान राशि, जो कि वर्ष 1966-67 से (16.25 करोड़ रुपए) वर्ष 1980-81 तक (जबकि यह बढ़ाकर 23.12 करोड़ रुपए की गई) स्थिर रही जबकि रेलवे की यात्री किरायों में होने वाली आय वर्ष प्रतिवर्ष बढ़

रही है। यह मात्र एक उदाहरण है कि संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन इन निर्दिष्ट करों से होने वाली, बल्कि बढ़ती हुई आय से राज्य किस प्रकार से वंचित रखे जा रहे हैं।

जब पांचवें वित्त आयोग से इन करों से राजस्व बढ़ाने की दिशा में विचार करने के लिए कहा गया तो उसका विचार था कि कुछ मामलों में इन स्रोतों से राजस्व बढ़ाना व्यावहारिक दृष्टि से उचित नहीं था और अन्य मामलों में उसने मामला भारत सरकार के विचारार्थ छोड़ दिया और सरकार ने इस दिशा में आज तक कोई कारगर कदम नहीं उठाया है। पांचवें वित्त आयोग ने जब इस विषय पर अपनी सिफारिशें की थी तब से अब तक हालात काफी बदल गये हैं। अतः हमने आठवें वित्त आयोग से जोर देकर अनुरोध किया था कि वह इन करों के माध्यम से राजस्व बढ़ाने की दिशा में गंभीरता से विचार करे क्योंकि जहांतक हमें जानकारी है इस विषय पर अब तक उतना ध्यान नहीं दिया गया है, जितना कि दिया जाना चाहिए, यह राज्यों की वित्तीय स्थिति मजबूत करने के लिए आवश्यक है।

यहां हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि इस संबंध में संघीय सरकार पर डाले गये सांविधिक दायित्व पर कोई ध्यान नहीं दिया गया हालांकि पांचवें वित्त आयोग ने कुछ निर्दिष्ट करों को उपयोग में लाने की दृष्टि से कुछ कदम उठाए जाने की सिफारिश की थी। संविधान में इन निर्दिष्ट करों को लगाने की व्यवस्था बिना किसी सोच-विचार या उद्देश्य से कर दी गई थी और इस संबंध में सांविधिक दायित्व को पूरा न किया जाने को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। वास्तव में यह प्रश्न छठे और सातवें वित्त आयोग के समक्ष रखा तक नहीं गया और न ही भारत सरकार ने इस संबंध में कोई कदम उठाया। अब आठवें वित्त आयोग से राज्यों के राजस्व के इन स्रोतों का दोहन करने के प्रश्न पर अपने सुझाव देने के लिए विशेष रूप से आग्रह किया गया है।

यह देखना है कि आठवां वित्त आयोग इस संबंध में क्या सिफारिशें करना उचित समझता है किन्तु हम इन करों के लगाए जाने के प्रभाव के विभिन्न पहलुओं की व्यापक जांच, जो अब तक नहीं की गई, की आवश्यकता के संबंध में आश्वस्त है और हमें इस संबंध में व्यक्त विभिन्न विचारों और अर्थ व्यवस्था पर इसके सामान्य प्रभाव और संबंधित राज्यों के हितों के संबंध में जानकारी है। इस विषय पर गम्भीर चिंतन किए बिना इसे अलग कर देने का अर्थ होगा एक ऐसे मामले को गंभीरता से न लेना जिसके संबंध में राज्यों द्वारा वैध दावे किए जाते हैं कि उन्हें इन करों से प्राप्त आय दी जाय जो वास्तव में उनकी है।

5.26 हमारी राय है कि यात्री-किराया कर के बदले इस अनुदान को रेल किराए वसूली में हुई वृद्धि के अनुपात में बढ़ा दिया जाय।

पिछले प्रश्न संख्या 5.25 के उत्तर में हमने अनुरोध किया है कि राज्यों के साधनों को मजबूत करने के लिए अनुच्छेद 269 के अधीन कर और शुल्क को बेहतरीन ढंग से उपयोग में लाया जाए। उपर्युक्त अनुच्छेद में यात्री किराया कर का वर्णन किया गया है। यहां हमारा आशय रेल यात्री किरायों पर पुनः कर लगाने से है। राज्य सरकार का विचार है कि इस कर को हटा देना तर्कसंगत नहीं है।

भारत सरकार ने 1 अप्रैल, 1961 से जब इस कर को हटाने और उसे यात्री किरायों में शामिल कर देने का निर्णय किया तो उसने यह निर्णय स्पष्ट रूप से रेल कन्वेन्शन समिति की सिफारिश पर लिया जो रेल विभाग की कठिन वित्तीय स्थिति और रेल यात्री किरायों से होने वाली आय पर इस कर से पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव के संबंध में आश्वस्त थी। रेल विभाग का यह अनुरोध तर्कसंगत नहीं था क्योंकि इस कर को जारी रखने से रेल विभाग की बिगड़ी वित्तीय स्थिति और अधिक नहीं बिगड़ती और न ही कोई ऐसा साक्ष्य था जिससे यह जान पड़ता कि इस कर के लगाए जाने से यात्री किराए से रेल विभाग को होने वाली आय में कोई कमी हुई है, क्योंकि रेल यात्री किरायों से होने वाली आय यात्रियों की संख्या पर निर्भर करेगी और ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में रेल यात्रियों की संख्या में कमी आयेगी, जिससे कि रेल यात्री किरायों से होने वाली आय कम होगी। दूसरी ओर यह मान लेने के पर्याप्त कारण थे कि अधिकाधिक उद्योग खोलने, रेल संचार के नये क्षेत्र शुरू करने, लोगों के अधिकाधिक संख्या में एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने, पर्यटकों की संख्या में वृद्धि और समग्र रूप से आर्थिक प्रगति होने के साथ-साथ वर्ष-प्रतिवर्ष यात्रियों की संख्या में वृद्धि होने की संभावना थी इसलिए और भी अधिक है क्योंकि यात्रा करने वाली जनता के लिए रेल अब भी परिवहन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सुगम साधन है। वास्तव में रेल द्वारा यात्रा करने वाले व्यक्तियों की संख्या वर्ष 1970-71 में 2431 मिलियन से बढ़कर वर्ष 1982-83 में 3949 मिलियन हो गई (बजट अनुमान) जो कि इस अवधि में 62 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दिखाता है। इस प्रकार यह मान लेना कि रेल यात्रियों की संख्या में कमी आई है, गलत और अर्थहीन है। क्योंकि केवल इसी से रेल यातायात से होने वाली आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

यह कहना कि कर का यात्री किरायों की वृद्धि पर सीमित प्रभाव होगा, कोई ठोस आधार नहीं है क्योंकि मात्र कर से यात्री किरायों की वृद्धि में ठीक उसी प्रकार रुकावट पैदा नहीं हो सकती जैसे कि आयकर पर अधिभार लगाने से आय की दर में वृद्धि में कोई रुकावट नहीं आई। और न ही यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक उद्यमों की असंतोषजनक वित्तीय स्थिति से भारत सरकार द्वारा ऐसे उद्यमों के उत्पादों पर अप्रत्यक्ष कर की वृद्धि पर कोई रोक लगी है।

कर उन्मूलन में भारत सरकार ने जिन बातों पर विचार किया वे वास्तव में इस मुद्दे से संगत नहीं थी, बल्कि इससे पूर्णतः असंबद्ध थी। वास्तव में जैसा कि छठे आयोग ने कहा कि कर का उन्मूलन और उसके स्थान पर निश्चित अनुदान देना संविधान के अनुच्छेद 269 के उपबन्धों में निहित भावना के अनुरूप नहीं था।

इसके अतिरिक्त इस कर के समाप्ति के संबंध में राज्यों को परामर्श का अवसर' नहीं दिया गया, हालांकि इससे राज्यों के वित्त पर बहुत भारी प्रभाव पड़ रहा था, क्योंकि इससे एक ही झटके में वे व्यापक संभावनाओं वाले कर की आय से वंचित हो गये जो सभी प्रयोजनों से राज्यों के राजस्व का स्रोत था।

इन कारणों से हमने इस कर को पुनः लगाने का सुझाव दिया है। यदि किसी कारण से यह सुझाव स्वीकार नहीं किया जाता, और स्वीकार किए जाने की स्थिति में कर पुनः लगाए जाने तक हमारा अनुरोध है कि यात्री किराया करके बदले तदर्थ अनुदान की निश्चित राशि बढ़ाई जाय।

इस कर की समाप्ति की सिफारिश करते हुए रेल कन्वेंशन समिति ने सुझाव दिया कि राज्य सरकारों को 1961-66 तक पांच वर्ष की अवधि के दौरान प्रतिवर्ष 12.50 करोड़ रुपए का निश्चित अनुदान दिया जाए, जोकि वर्ष 1958-59 और 1959-60 की वास्तविक वसूलियों का औसत था। इसका उद्देश्य स्पष्टतः इस कर की समाप्ति के परिणामस्वरूप राज्यों को हुई हानि की पूर्ति करना था। अंततः रेल कन्वेंशन समिति 1965 ने रेल बोर्ड द्वारा दिए गये सुझाव का अनुमोदन किया कि अनुदान की राशि बढ़ाकर 16.25 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष कर दी जाय और वर्ष 1966-67 से ऐसा ही किया गया। यह वार्षिक अनुदान सातवें वित्त आयोग के समय तक उतना ही बना रहा हालांकि इस अवधि में रेल यात्रियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई और वर्ष 1960-61 से 1964-65 की पांच वर्ष की अवधि के दौरान यात्रियों की वृद्धि रेल बोर्ड द्वारा दिए गये इस सुझाव का आधार थी कि वार्षिक अनुदान 12.50 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 16.25 करोड़ रुपये किया गया। इसी आधार पर तदर्थ अनुदान हर वर्ष या कम से कम 1980-81 से काफी पहले बढ़ाया जाना चाहिए था। फिर रेल कन्वेन्शन समिति की सिफारिश पर अनुदान की राशि बढ़ाकर 23.12 करोड़ रुपए की गई। बीच की इस अवधि में राज्यों को काफी नुकसान हुआ क्योंकि कर की समाप्ति के कारण हुई हानि की पूर्ति (जो कि कर के बदले वार्षिक अनुदान का आधार था) सिद्धान्त नहीं अपनाया गया।

राज्य सरकार का यह दृढ़ मत है कि वार्षिक अनुदान की राशि मौजूदा स्तर पर रखना पूर्णतः अनुचित है तदर्थ अनुदान की राशि, जो कि कर के बदले में मानी जाती है का संबंध केवल रेल यात्रियों की संख्या में वृद्धि से ही नहीं होना चाहिए बल्कि रेल विभाग को यात्री किरायों से होने वाली कुल आय में वृद्धि के अनुपात में होना चाहिए और चूंकि वर्तमान राशि से यह शर्त पूरी नहीं होती इसलिए वार्षिक तदर्थ अनुदान की राशि बढ़ाने की बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

पांचवें वित्त आयोग को सूचित किया गया था कि वर्ष 1958-59 से वर्ष 1960-61 के बीच तीन वर्षों में रेल यात्री किराए कर से हुई आय रेल विभाग को गैर-उपनगरीय यात्री किरायों से हुई कुल आय की 10.03 से 11.69 प्रतिशत थी। इन तीन वर्षों का औसत लगभग 10.7 प्रतिशत निकलता है। पांचवें वित्त

आयोग ने गणना की कि इस आधार पर राज्यों को कर के बदले दी जाने वाली वह राशि लगभग 25 करोड़ रुपए होगी जो उस समय देय अनुदान की राशि से कहीं अधिक होगी और 1980–81 से प्रभावी 23.12 करोड़ रुपए के अनुदान की बढ़ी हुई राशि से भी अधिक है ।

छठे और सातवें वित्त आयोग दोनों ने कहा कि अनुदान की राशि का पुन: निर्धारण किया जाना चाहिए । सातवें वित्त आयोग ने कर की उतनी ही प्रतिशतता (10.7) की परिकल्पना की और अनुमान लगाया कि कर से वसूली वर्ष 1976–77 में 56.21 करोड़ रुपये, वर्ष 1977-78 में 61.17 करोड़ रुपए और 1978-79 में 63.22 करोड़ रुपए (बजट अनुमान) होनी चाहिए । इसके विपरित राज्यों को केवल 16.25 करोड़ रुपए का ही अनुदान मिलता रहा जो कि लगभग उस राशि का एक चौथाई है, जो राज्यों को उस स्थिति में मिलती यदि कर उसी रूप में जारी रहते जिनमें वे लगाए गए थे ।

सातवें वित्त आयोग ने सभी राज्यों द्वारा प्रस्तुत इस तर्क के औचित्य को समझा कि एक निश्चित राशि रेल किरायों पर कर का विकल्प नहीं थी क्योंकि इसमें रेल विभाग को रेल यात्रियों की संख्या में तेजी से होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप बढ़ती हुई आय को हिसाब में नहीं लिया गया था । यह देखते हुए कि रेल यात्रियों की संख्या में वर्ष 1961-62 से हुई इस वृद्धि की नजर अंदाज नहीं किया जा सकता, आयोग ने गैर उपनगरीय रेल यात्रियों की संख्या में वृद्धि, जैसी कि गैर उपनगरीय किलोमीटर के आंकड़ों से मालूम हुई, की गणना की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यातायात मे वर्ष 1961-62 से 1.85 के गुणक में वृद्धि हुई है । इस गुणक का प्रयोग करते हुए आयोग ने अनुदान की राशि के रूप में 23 करोड़ रुपए की राशि का हिसाब लगाया ।

ऐसा प्रतीत होता है कि सातवें वित्त आयोग द्वारा की गई गणना से संकेत लेकर रेल कन्वेन्शन समिति ने अपनी सिफारिशे की जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकार किया और तदनुसार तदर्थ अनुदान की राशि वर्ष 1980-81 से पुन: निर्धारित की गई । इस संबध में दो बातों का उल्लेख आवश्यक है पहला कि सातवें वित्त आयोग ने केवल यात्री किलोमीटरों में वृद्धि को आधार मानते हुए 1.85 का बढ़ा हुआ गुणक निकाला । हमारी दृष्टि में बढ़ा हुआ गुणक निकालने के लिए कोई उपयुक्त मानदण्ड अपनाया जाना चाहिए । जब कर प्रभावी था, तो उसमें यात्री किराए का एक विशिष्ट प्रतिशत शामिल था (सीजन टिकट पर यात्रा करने वाले और 15 मील तक यात्रा करने वाले यात्रियों को शामिल नहीं किया गया है) और उसका किसी भी प्रकार से रेल विभाग की आय और प्रचालन लागत से कोई संबंध न था । यात्रा की दूरी के हिसाब से कर की दर 5 प्रतिशत सें 15 प्रतिशत के बीच हो सकती थी । अत: सही तरीका यही होगा कि अनुदान की राशि कुल गैर-उपनगरीय यात्री आय में कर के प्रतिशत के आधार पर निकाली जाये ।

दूसरे जब कर समाप्त किया गया और उसके स्थान पर अनुदान दिया गया तो प्रतिपूर्ति (मुआवजे) का सही सिद्धान्त यह सुनिश्चित करना होता कि राज्यों को प्रतिवर्ष उतनी ही राशि मिले जो उन्हें करों के प्रभावी होने की स्थिति में मिलती ।

इससे वर्ष प्रतिवर्ष कुल-गैर उपनगरीय यात्रा आय में होने वाली वृद्धि से वार्षिक अनुदान में भी वृद्धि करनी पड़ती ताकि वही प्रतिशत अर्थात् 10.7 प्रतिशत बना रहे जो कर की समाप्ति सें पहले कुछ कुल उपनगरीय यात्री आय मे कर का भाग था । गैर-उपनगरीय यात्री किराए में कर का भाग 10.7 प्रतिशत मानते हुए वर्ष 1978-79 में 63.22 करोड़ रुपए वसूली होती, जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने निर्धारण किया था, जिससे कि उसी वर्ष अनुदान की तदनुरूपी मात्रा 63.22 करोड़ रुपये से कम नहीं होनी चाहिए थी । इस प्रकार यात्री किराए कर के बदले अनुदान के रूप में 23.12 करोड़ रुपये की पुन: निर्धारित राशि भी बहुत अपर्याप्त थी ।

यदि वार्षिक तदर्थ अनुदान में वृद्धि के सुझाव को यह कहकर न माना जाय कि रेल विभाग की वित्तीय स्थिति खराब है, तो उसके जवाब में राज्य भी यह कह सकते हैं कि कठिन वित्तीय स्थिति रेल विभाग की ही नहीं है राज्यों की भी स्थिति इस संबंध में कुछ बेहतर नहीं है । यदि यह कहा जाए कि रेल विभाग को सामाजिक दायित्व निभाना है तो इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि राज्यों पर भी सामाजिक दायित्व का बोझ है, जो कि रेल विभाग से कुछ कम नहीं है । वास्तव में रेल बजट को देखने से मालूम होता है कि रेल विभाग की वित्तीय स्थिति धीरे-धीरे बेहतर हो रही है और वर्ष 1976-77 से अधिशेष आय देखने में आ रही है । आम राजस्व में लाभांश वर्ष 1978-79 में 224.2 करोड़ रुपए से बढ़कर वर्ष 1982-83 में 405.1 करोड़ रुपए हो गया है । इसी अवधि में सामान्य राजस्व का लाभांश घटाने के बाद निवल राजस्व के रूप में दिखाएं गए निवल अधिशेष में भी वृद्धि हुई है । इस प्रकार यह मालूम होगा कि समय–समय पर अनुदान की राशि बढ़ाने के विरुद्ध दिया गया खराब वित्तीय स्थिति का तर्क तथ्यों पर आधारित नहीं है । वास्तव में तदर्थ अनुदान की राशि निर्धारित करते समय रेल विभाग की वित्तीय स्थिति पर विचार करना संगत नहीं है । कुल गैर-उपनगरीय यात्री आय में अनुदान कम से कम उतने ही अनुपात में होने चाहिए जो अनुपात कर का कर की समाप्ति से पहले गैर-उपनगरीय यात्री किरायों से होने वाली आय का था ।

उपर्युक्त कारणों से हमारा दृढ़-विश्वास है कि ऊपर पैरों में उल्लिखित सिद्धान्तों के अनुसार तदर्थ अनुदान की राशि और अधिक बढ़ाई जाय, क्योंकि कर की समाप्ति का आशय राज्यों को हानि पहुंचाना नहीं था, जैसा कि इतने वर्षों से अनुदान की अल्प और निश्चित राशि होने के परिणामस्वरूप हुआ है ।

5.27 इस प्रश्न का संबंध संघ से है, राज्य सरकार से नहीं ।

5.28 राहत व्ययके लिए वित्त प्रदान करने की मौजूदा व्यवस्था और नीति सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर आधारित है जिसमें दो बातों को आधार माना है, अर्थात् —

(i) दैवी प्रकोपों से प्रभावित लोगों की राहत पहुँचाने का मुख्य दायित्व संबंधित राज्य सरकारों पर है, और

(ii) ऐसे भी अवसर हो सकते हैं कि दैवी प्रकोप इतने गंभीर हो कि उनमें राहत पहुँचने में जो भारी खर्च हो, वह राज्य सरकार वहन करने में असमर्थ हों और केन्द्रीय वित्तीय सहायता की आवश्यकता हो ।

तदनुसार राहत पर होने वाला खर्च मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, एक तो वह खर्च, जो संबंधित राज्य सरकार पूर्ण रूप से वहन करेगी और दूसरा वह जिसमें अनुदान या कर्ज की शक्ल में केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता होगी । दूसरे वित्त आयोग तथा उसके आगे के सभी वित्त आयोगों ने प्रत्येक राज्य के व्यय अनुमानों में सीमान्त राशि देने की आवश्यकता को स्वीकार किया है । आशा थी कि जब भी कोई विपदा होगी तो राज्य तत्काल इस सीमान्त राशि का उपयोग राहत देने के लिए कर सकेंगे । तदनुसार बाद के वित्त आयोगों द्वारा पिछले कुछ वर्षों मे संबद्ध लेखा-शीर्ष के अधीन दर्ज राहत पर हुए व्यय के औसत के आधार पर, प्रत्येक राज्य के लिए सीमान्त राशि निर्धारित कर दी गई है । सातवें वित्त आयोग ने पिछले नौ वर्षों का औसत देखा और उसमें 15 प्रतिशत राशि जोड़कर प्रत्येक राज्य को देय सीमान्त राशि निकाली । उसका विश्वास था कि इस प्रकार निकाली गई सीमान्त राशि से राज्य साधारण विपदाएं न होकर प्रचंड होने पर भी राहत पर होने वाला व्यय पहले की अपेक्षा अब बेहतर ढंग से खर्च कर सकेंगे । सातवें वित्त आयोग ने भी यह सिफारिश की कि यदि किसी वर्ष यह सीमान्त राशि खर्च नहीं होती तो इस शेष राशि का आसानी से भुनाई जा सकने योग्य प्रतिभूतियों मे निवेश कर दिया जाए और इसे राज्य के अन्य साधनों के साथ मिलाया न जाए, ताकि जरुरत पड़ने पर इस धनराशि का सहारा लिया जा सके ।

सातवें वित्त आयोग द्वारा सिफ़ारिश किए गए और भारत सरकार द्वारा स्वीकार किए गए केन्द्रीय सरकार के फार्मूले सें सूखे और अन्य प्राकृतिक विपदाओं (दैवी प्रकोपों) में अन्तर किया गया है । राज्य से आशा की जाती है कि वह राहत पर होने वाला खर्च सीमांत राशि में से ही पूरा करे । सूखा राहत के मामले में राज्य से आशा की जाती है कि वह अधिक से अधिक अपने वार्षिक योजना परिव्यय की 5 प्रतिशत राशि का अंशदान करे जो कि राज्य के योजना परिव्यय को अतिरिक्त राशि माना जाएगा । इस संबंध में केन्द्रीय दल मूल्यांकन करेगा और यह भी सूखे की समाप्ति से 5 वर्ष की अवधि में राज्य की योजना के लिए अग्रिम योजना सहायता में शामिल होगा । यह स्पष्ट है कि इस स्कीम से केन्द्र सरकार पर कोई अतिरिक्त खर्च नहीं होगा बल्कि राज्य की योजना से उसके अंशदान के प्रति केवल एक

प्रकार का अस्थायी अग्रिम दिया जाता है जो कि संबंधित राज्य के वार्षिक योजना परिव्यय का 5 प्रतिशत होता है ।

अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता उसी स्थिति में दी जा सकती है यदि केन्द्रीय दल द्वारा निकाले गए कुल व्यय की आवश्यकता उतनी हो जो राज्य के अंशदान से पूरी न की जा सकती हो, अर्थात् जब व्यय के 5 प्रतिशत की सीमा से अधिक होने की संभावना हो । ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सहायता आधे अनुदान के अनुरूप और आधे कर्ज के रूप में होती है ।

बाढ़, चक्रवात (साइक्लोन) और ऐसी ही अन्य विपदाओं के पश्चात् राहत और मरम्मत तथा लोकनिर्माण कार्यों के जीर्णोद्धार पर होने वाले व्यय के संबंध में केन्द्रीय सहायता सीमान्त राशि के अतिरिक्त कुल खर्च की 75 प्रतिशत राशि गैर-योजना अनुदान के रूप में दी जाती है जो राज्य योजना या केन्द्रीय योजना सहायता के प्रति समायोजित नहीं की जा सकती ।

सातवें वित्त आयोग ने यह भी सिफारिश की कि अत्यधिक प्रचण्ड दैवी प्रकोप की स्थिति में केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह संबंधित राज्य की केन्द्रीय सहायता संबंधी स्कीम द्वारा निर्धारित राशि से अधिक की सहायता दे ।

हमारा विचार है कि बहुत ऊंचे स्तर पर सीमान्त राशि का पुनः निर्धारण इतना आवश्यक नहीं है । वास्तव में जो बात महत्व रखती है वह यह है कि राज्य की राहत पर होने वाली खर्च संबंधी आवश्यकताओं के मूल्यांकन की मौजुदा प्रक्रिया को अधिक वास्तविक और कम से कम जटिल तथा कम समय लेने वाली बनाया जाना चाहिए । इस संबंध में यह बताया जा सकता है कि किसी राज्य द्वारा दैवी प्रकोपों के संबंध में किए गए गैर-योजना खर्च को भी सीमान्त राशि के प्रति समायोजित करने के लिए भारत सरकार का अनुमोदन लेना पड़ता है । इसके लिए प्रत्येक वर्ष व्यय की मदों का नए सिरे से मूल्यांकन करना पड़ता है जिससे न केवल काम दुबारा पड़ता है, बल्कि इससे वह स्थिति भी आ जाती है जब सीमान्त राशि में से व्यय की मदों के संबंध में राज्य सरकार के हाथ बंधे होते हैं क्योंकि अनेक आवश्यक मदों पर खर्च को भी सीमान्त राशि में शामिल नहीं किया जा सकता । अतः हमारी राय में बेहतर होगा यदि व्यय की स्वीकार्य मदों को सूचीबद्ध कर दिया जाए ताकि राज्य सरकारों को उनके संबंध में निश्चित रूप से पता हो और केन्द्रीय दल को हर बार स्वीकार्य मदों को पहचानने का काम न करना पड़े । हम यहाँ एक अन्य बात की ओर ध्यान दिलाएँगे । केन्द्रीय दल सदा राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदण्डों के आधार पर किए गए खर्च को स्वीकार नहीं कर लेते । यह कहना बेकार है कि हर राज्य में प्रथाओं और रीति-रिवाजों, स्थानीय आवश्यकताओं और यहाँ तक कि कीमतों में भी काफी अंतर होता है । इस संबंध में कोई समान मानक दृष्टिकोण अपनाना कठिन है । अतः किसी राज्य द्वारा स्वीकार किए गए विशिष्ट मानदण्डों को नजरअंदाज करना या उनमें परिवर्तन करना ठीक नहीं क्योंकि वह राज्यों की मौजूदा स्थितियों के वास्तविक निर्धारण के आधार पर बनाए जाते हैं ।

सातवें वित्त आयोग ने सूखे और दूसरी ओर बाढ़ तथा चक्रवात, भूकम्प और ऐसे ही अन्य दैवी प्रकोपों पर होने वाले राहत खर्च में भेद किया है । इस भेद का आधार था कि बाढ़, भूकम्प और चक्रवात अचानक और बिना किसी पूर्व चेतावनी के आते हैं, उनके लिए तत्काल राहत देनी पड़ती है और इस प्रकार के राहत के लिए तुरंत कदम उठाए जाते हैं जो कि सामान्यतः अस्थायी प्रकृति के होते हैं । किंतु सूखा लम्बे समय तक रहता है और ऐसी स्थिति में राज्य सरकार को अपनी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करने, की आने वाली कार्रवाई की रूपरेखा बनाने और सहायता कार्यक्रमों के कार्यान्वियन के लिए काफ़ी समय मिल जाता है । दूसरे शब्दों में कुछ प्रकार के राहत कार्यक्रमों को राज्य के योजना कार्यक्रम में भी शामिल किया जा सकता है ।

इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि सूखे की स्थिति में कुछ राहत कार्यक्रमों और योजना कार्यक्रमों के बीच संबंध की परिकल्पना व्यावहारिक दृष्टि से संदेहपूर्ण है । कुल योजना परिव्यय का चाहे कैसा भी आकार हो, राज्य की योजना में सूखा-राहत-व्यय के समायोजन के लिए गंभीर समस्याएं होंगीं । चूंकि रोजगार देने वाली [illegible] म पर योजना के कुल परिव्यय का बहुत छोटा भाग खर्च होता है और यदि ऐसी राहत देने पर होने वाले व्यय को वार्षिक योजना परिव्यय से अतिरिक्त माना जाए तब भी साधनों की गंभीर रूप से कमी के परिणामस्वरूप ऐसी राहत देने पर निश्चित रूप से रोक लगेगी, क्योंकि राज्य की योजना का एक बड़ा भाग सिंचाई और विद्युत क्षेत्रों में लगता है, क्योंकि ऊपर खर्च करना अनिवार्य है और काफ़ी बड़ा भाग विभिन्न आधारिक संरचनाओं पर खर्च होता है, जो आवश्यक नहीं कि उस प्रकार की सेवाओं का सृजन करें जो सूखे की स्थिति से जूझने के लिए आवश्यक रोजगार कार्यों के प्रकार की हों । इसके अतिरिक्त यहाँ इस बात का उल्लेख करना संदर्भ से हटकर नहीं होगा कि जब सूखा पड़ता है, तब न केवल तत्काल निःशुल्क राहत प्रदान करनी पड़ती है बल्कि इससे भी बढ़कर यह जरुरी हो जाता है कि इस विपदा के कारण अस्थायी रूप से बेरोजगार हुए लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जाए । यह न भूला जाए कि भले चंगे व्यक्तियों के अलावा बड़ी संख्या में कमजोर और अशक्त तथा वृद्ध व्यक्ति भी होते हैं जो जरुरी नहीं कि हाथ से मेहनत करने की स्थिति में हो । फिर भी उन्हें इस कठिन परिस्थिति में रोजगार के दौरान सहायता की आवश्यकता होती है । अतः ऐसी रोजगार स्कीमों की आवश्यकता होती है जिन में सामान्य से कम मजदूरी दी जाए और वह विपदा की स्थिति की मजदूरी कहला-एगी । इससे संबंधित एक और बात जो ध्यान में रखी जानी चाहिए वह यह है कि राहत व्यय से रोजगारोन्मुख कार्यों का बढ़े हुए निवेश का प्रभाव पड़ता है जो शायद राज्य सरकार अन्यथा नहीं करती और यदि सूखा राहत की वजह से कोई जल्दी नहीं होती तो उसे भविष्य के लिए स्थगित कर देती । इन कारणों से योजना कार्य-क्रम में राहत व्यय जोड़ देने से व्यावहारिक दृष्टि से गंभीर सीमाएँ सामने होंगी ।

सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों में निर्धारित किया गया कि, बाढ़ चक्रवात और ऐसे ही अन्य दैवी प्रकोप के पश्चात् सहायता, मरम्मत और सार्वजनिक निर्माण कार्यों के जीर्णोद्धार पर खर्च हुई सीमान्त राशि से अधिक हुए कुल व्यय की 75 प्रतिशत तक की राशि गैर-योजना अनुदान के रूप में केन्द्रीय सहायता के रूप में उपलब्ध कराई जानी चाहिए । किंतु भारत सरकार ने सहायता खर्च संबंधी ऐसे गैर-योजना अनुदानों को केवल बाढ़ और चक्रवात के लिए प्रतिबंधित कर दिया है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि सूखा-राहत-कार्यों और बाढ़ और चक्रवात आदि से क्षतिग्रस्त हुए निर्माण-कार्यों के जीर्णोद्धार और मरम्मत के बीच भेद करना उचित नहीं है क्योंकि यदि ऐसा भेद यह मानकर किया जाए कि राहत देने पर होने वाले खर्च से टिकाऊ परिसंपत्तियों का सृजन होगा तो ऐसा सोचना ठीक नहीं है क्योंकि सूखे के मामले में भी राज्य सरकार को सहायता कार्य करने होंगे, जिनकी मजदूरी लागत भी अपेक्षाकृत कम होगी क्योंकि इस कार्य के लिए किसी प्रकार के कुशल श्रम की आवश्यकता नहीं होगी । इसलिए ऐसा सोचना ठीक नहीं कि ऐसे कार्यों से टिकाऊ परिसंपत्तियों का सृजन होगा । एक अन्य बात ध्यान में रखी जाए वह यह कि सार्वजनिक सम्पत्तियाँ चूंकि ऐसी परिसम्पत्तियां होती है जो काफी लागत पर बनती है इसलिए उन्हें दैवी विपदाओं द्वारा क्षतिग्रस्त होने पर मरम्मत और जीर्णोद्धार की कमी की वजह से खोना नहीं चाहिए । इसलिए अस्थायी प्रकार के रोजगार संबंधी कार्यक्रम जो राज्य सरकारों को ऐसी विपदाओं की स्थिति में प्रारंभ करने ही पड़ते हैं, योजना से अलग रखे जाएं।

राहत व्यय के लिए वित्त-प्रबंध संबंधी पॉलिसियों और प्रक्रियाओं का पुनः मूल्यांकन करने के लिए हम इसलिए इतने चिंतित हैं क्योंकि राज्य में नियमित बाढ़ और सूखों जिन्होंने पिछले इन वर्षों में राज्य की अर्थव्यवस्था और वित्तीय स्थिति पर गंभीर रूप से प्रभाव डाला है, से उत्पन्न समस्या काफ़ी जटिल है । उत्तरी और दक्षिणी बिहार के क्षेत्रों में बड़ी और काफी वेग वाली नदियाँ आड़ी तिरछी बहती हैं और वे हिमालय से निकलती हैं । राज्य के ऊपरी क्षेत्रों में वे बहुत ऊंचाई से बहती हैं और गंगा में मिलने से पहले धीरे-धीरे सपाट हो जाती हैं, किंतु गंगा की इन्हें अपने में समाने की क्षमता सीमित है । भारी वर्षा के दौरान और उसके बाद आवाह क्षेत्र सही न होने के कारण ये बड़ी-बड़ी नदियां बहकर अपने तटों से बाहर आ जाती हैं । पिछले वर्षों से अन्य बातों के साथ-साथ समतल क्षेत्र बढ़ने-भारी गाद और आवाह क्षेत्रों में वन कटाई के कारण यह स्थिति और भी बिगड़ी है ।

अतः कोई आश्चर्य की बात नहीं, जैसा कि भारतीय बाढ़ आयोग (1980) ने कहा कि समस्त देश के कुल बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में 17 प्रतिशत बाढ़-क्षेत्र केवल बिहार में ही पाया जाता है और हाल के वर्षों मे कुल क्षतियों की 23 प्रतिशत क्षति अकेले बिहार में ही देखने को मिलती है । वर्ष 1965 से बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र बढ़ने की

प्रवृत्ति दिखाई देती है और 70वें दशक में यह वृद्धि और तेजी से हुई। वर्ष 1971–78 की अवधि में औसत क्षतियों (चालू कीमतों पर) को यदि लें तो आयोग का अनुमान है कि बिहार में 23.2 प्रतिशत क्षति हुई जो उत्तर प्रदेश को छोड़कर सभी राज्यों से अधिक है।

इसी प्रकार सूखा भी नियमित रूप से पड़ रहा है, विशेषकर राज्य के कुछ भागों में, जैसे कि छोटा नागपुर और संथाल परगनों के समस्त पठार में सूखा पड़ता है। यह लगभग 0.80 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र है और इसकी जनसंख्या 142.27 लाख है।

बाढ़ नियंत्रण उपायों से बारबार आने वाली बाढ़ से होने वाली क्षति को रोकने में कोई सफलता नहीं मिली है। छठीं पंचवर्षीय योजना (1980–85) से भी इस बात की पुष्टि होती है जिसमें कहा गया कि जहाँ अनुवर्ती पंचवर्षीय वार्षिक परिव्ययों में वृद्धि हो रही है और अधिकाधिक क्षेत्रों को बचाने का प्रयास किया जा रहा है वहाँ बाढ़ के कारण क्षति का अनुमानित मूल्य बढ़ा रहा है।

मौसम के अत्यधिक बदलाव मानवीय नियंत्रण से परे हैं इस कारण सूखे की संभावनाओं को कम करना संभव नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के समेकित कार्यक्रमों के कार्यान्वयन द्वारा किसी हद तक उन क्षेत्रों जिनमें सूखा पड़ने की संभावना अधिक रहती है, को विकसित किया जा सकता है ताकि वे सूखे के प्रतिकूल प्रभावों की बहतर ढंग से सामना कर सकें। फिर भी न ही सूखे की संभावनाएं और न ही उनके द्वारा होने वाली क्षति को किसी संतोषजनक सीमा तक कम करना संभव हुआ है।

अत: राहत व्यय के लिए वित्त-प्रबंध करने हेतु व्यवस्था और पॉलिसी प्रतिपादित करते हुए बाढ़ और सूखा जैसी दैवी प्रकोपों के बारम्बार होने से संबंधित वे पहलू सदा ध्यान में रखे जाएं।

पिछले पैरा में जो कुछ कहा गया है उसे देखते हुए हमारा विचार है कि सीमान्त राशि को किसी विशेष सीमा तक बढ़ाने का कोई लाभ नहीं है। किन्तु हमारे विचार से राज्यों के वार्षिक बजट में सीमान्त राशि ही रखी जानी चाहिए ताकि योजना और गैर-योजना की राशियों में से प्राकृतिक विपदाओं से भी निपटा जा सके क्योंकि, जैसा कि हमने पहले कहा, योजना व्यय में राहत व्यय का कोई भी भाग जोड़ने से व्यावहारिक तौर पर काफी प्रतिबंध आड़े आते हैं और जहाँ तक लक्ष्यों की पूर्ति का सवाल है, इसका उल्टा ही असर पड़ता है।

अत: साधारण रूप से प्रचण्ड दैवी प्रकोप होने पर केन्द्रीय दल को संबंधित राज्य सरकार से परामर्श करके तत्काल मूल्यांकन करना चाहिए कि क्षति किस प्रकार की और किस सीमा तक हुई है और ऐसे व्यय से संबंधित वास्तविक मानदण्डों के आधार पर इस प्रकार की अनुग्रहपूर्वक राहत, राहत रोजगार कार्यक्रमों और क्षतिग्रस्त सार्वजनिक संपत्ति के जीर्णोद्धार पर होने वाले खर्च का अनुमान लगाना चाहिए और कुल अपेक्षित राशि राज्य को गैर-योजना अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए। हमारे संविधान में निर्दिष्ट वित्तीय प्रणाली की एक विशिष्ट बात है–अतिव्यापी कराधान की शक्तियों का अभाव।

इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि कराधान की शक्तियों के सुव्यवस्थित वितरण की प्रणाली किसी संघीय गठन की मान्य अनिवार्यताओं पर आधारित है। साधन बढ़ाने संबंधी अन्य स्रोतों को भी इन्हीं विचारों से उनके संबंधित प्राधिकारियों को आबंटित किया गया है। उदाहरण के लिए, राज्य सरकार के लिए स्थानीय कराधान संबंधी कार्य अपने हाथ में लेना प्रशासनिक दृष्टि से बोझिल होगा और इसलिए इसे स्थानीय निकायों पर छोड़ दिया गया है।

अत: यह कहना बेकार है कि कर लगाने का कार्य किसी भी प्रधिकरण की अधिकारिता में पूर्ण रूप से दे दिया जाए। कराधान के प्रकार और आधार को ध्यान में रखते हुए और यह देखते हुए कि वह सांविधिक गठन के अनुरूप हो, कराधान की शक्तियां संबंधित प्राधिकरणों को आबंटित की जाती हैं और ऐसा करते समय कराधान की शक्तियों या / अथवा अन्य स्रोतों से साधन बढ़ाने की शक्तियों की सीमाएं निश्चित की जाती हैं। जो प्राधिकरण कुशलता और बचत से कर लगा सकता है और उनकी उगाही कर सकता है, वह उपयुक्त प्राधिकरण है जिसे वे विशेष कर लगाने आदि की शक्तियां दी जाएं। कराधान की शक्तियों के गलत आबंटन से कर प्रणाली में गड़बड़ी होगी जिसका परिणाम होगा कर राजस्व के स्रोतों का अधिकतम उपयोग करने में असफलता। यही बात सरकारी राजस्व एकत्र करने के अन्य स्रोतों के बारे में भी कही जा सकती है।

उपर्युक्त कारणों से यह नहीं कहा जा सकता कि यह बात विशेष महत्व नहीं रखती कि निधि कौन एकत्र कर रहा है।

इसी प्रकार से यह नहीं कहा जा सकता कि इस बात का महत्व नहीं कि एकत्र की गई निधि का किस प्रकार से वितरण किया जा रहा है। जैसे कि पहले कहा जा चुका है सरकारी राजस्व के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त निधियां सार्वजनिक व्यय संबंधी जरुरतें पूरी करने के लिए होती हैं। राजकोषीय नीति, जिसका प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था में स्थिरता और विकास हासिल करना है, के दो मुख्य तत्व, सरकारी राजस्व की उगाही और सार्वजनिक व्यय की देख रेख है।

यहां हम एक अन्य बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। फिलहाल आग द्वारा हुई क्षति को प्राकृतिक विपदाओं (दैवी प्रकोपों) की श्रेणी में नहीं गिना जाता, शायद यह मानकर कि आग लगना कोई प्राकृतिक विपदा नहीं है, बल्कि मनुष्य की गलती से लगती है। हम इस संबंध में अपना अनुभव बताएंगे। हमारे राज्य के कुछ भागों में विशेषकर गार्मियों के मौसम में, जब राज्य के अधिकांश भाग में पछुवा हवाएं चलती हैं, व्यापक रूप से निरंतर आग फैलने के कारण भारी नुकसान होता है और यह आग मनुष्य की गलती के कारण नहीं लगती। अक्सर इस आग की लपेट में गांव के गांव आ जाते हैं, जिनमें अधिकतर निम्नवर्ग के लोगों, विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की घास फूस की झोंपड़ियां होती हैं। इससे नुकसान काफी होता है। अत: इन क्षतियों को प्राकृतिक विपदाओंसे हुई क्षति माना जाना तर्कसंगत होगा ताकि इनके लिए सूखा और ओलावृष्टि (ओलों का तूफान) की तरह सहायता दी जायें।

जहां तक राहत खर्च के लिए गैर-योजना अनुदानों के रूप में सहायता देने संबंधी प्रक्रिया का संबंध है, हम केन्द्रीय दल द्वारा दैवी प्रकोप के प्रकार और प्रभाव और अपेक्षित खर्च के स्थान पर मूल्यांकन की मौजूदा प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहते। परन्तु चूंकि हमने बृहत योजना अनुदान द्वारा केन्द्रीय सहायता का सुझाव रखा है, हमें इस संबंध में योजना आयोग की कोई भूमिका समझ में नहीं आती और केन्द्रीय दल की रिपोर्ट की समीक्षा करने के लिए उच्च स्तरीय समिति के अध्यक्ष वित्त मंत्रालय के सचिव हो सकते है तब उच्च स्तरीय समिति की सिफारिशों को वित्त मंत्री के समक्ष, उनके अनुमोदन के लिए, रखा जा सकता है, ताकि सहायता के संबंध में अंतिम निर्णय लिया जा सके। इस संबंध में हम सातवें वित्त आयोग से सहमत हैं कि केन्द्रीय दल या उच्च स्तरीय समिति को अपना मूल्यांकन बहुत ध्यान से, शीघ्र और तत्परता से करना चाहिए, जो कि प्राकृतिक विपदा की स्थिति में अत्यधिक आवश्यक है। हमारा यही विचार है कि राज्यों द्वारा सहायता के लिए सीमान्त राशि में से किए गये व्यय की संवीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त हम नहीं समझते कि व्यय की विभिन्न मदों के लिए सीमा निर्धारित करना उचित होगा, क्योंकि ऐसी सीमाओं में इतना लचीलापन नहीं हो सकता, कि सभी संभव स्थितियों में जरुरतों के हिसाब से उनमें कुछ फेरबदल किया जा सकता है। इससे भी अधिक आवश्यक होना चाहिए, जैसा कि हमने पहले भी कहा, व्यय की आवश्यकताओं के मूल्यांकन के लिए स्वीकार्य व्यय की मदों को सूचीबद्ध किया जाना, ताकि केन्द्रीय दल को व्यय की विभिन्न मदों के संबंध में हर बार यह देखने की आवश्यकता न पड़े कि वे स्वीकार्य है या नहीं।

एक अन्य बात यहां उल्लेखनीय है कि सहायता कार्यों पर होने वाले व्यय तथा क्षतिग्रस्त सम्पत्ति के जीर्णोद्धार पर होने वाले व्यय के किसी-किसी मामलों पर कई बार व्यय को किसी वर्ष विशेष के लिए नियत कर देना मंजूरी आदि लेने की प्रक्रियाओं को पूरा करने में लगने वाले समय के कारण, संभव नहीं होता और प्रारंभ किए गये कार्यक्रम अगले वर्ष तक चलते रहते हैं। फिलहाल इस प्रकार अगले वर्ष तक चलने वाले व्यय को, केन्द्रीय सहायता (की पात्रता) के प्रयोजन से, हिसाब में नहीं लिया गया है। इसके परिणामस्वरूप ऐसा बोझ जिससे बचा जा सकता है, राज्य के वित्त पर पड़ा है, क्योंकि ऐसा व्यय सहायता के योग्य नहीं है। अत: हमारा सोचना है कि राहत कार्यों पर किए जा रहे इस प्रकार के अगले वर्ष तक चलने वाले खर्चों को केन्द्रीय सहायता की पात्रता के संबंध में निर्णय करते समय हिसाब में शामिल किया जाये।

हमारा विश्वास है कि हमारे द्वारा सुझाए गये राहत व्यय के लिए वित्त प्रबंध संबंधी पालिसी और दैवी प्रकोप होने पर सहायता के लिए आवश्यक व्यय के मूल्यांकन संबंधी प्रक्रियाओं के संशोधनों में फिजूल-खर्ची या संदिग्ध प्रकार के व्यय का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। केन्द्रीय दल द्वारा मूल्यांकन निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार ही किया जाये।

5.30 इस आशय का अनुचित कथन जोखिमपूर्ण हो सकता है कि निधि का संग्रह कौन करता है और निधि का वितरण किस प्रकार किया जाता है, बहुत संगत नहीं हैं, और यह अधिक महत्वपूर्ण है कि निधि को समझदारी से खर्च किया जाये और इसका फायदा लोगों को हो।

निधि का संग्रह कौन करता है और संग्रह की गई निधि का वितरण खर्च करने वाले विविध प्राधिकरणों के बीच किस प्रकार किया जाता है, यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। यह तो सभी को ज्ञात है कि साधनों की उगाही के अनेक तरीके हैं, यही साधन सार्वजनिक राजस्व का रूप लेते हैं और इन्हीं में से सार्वजनिक व्यय किया जाता है। यदि राजस्व के स्रोत पर अत्यधिक निर्भरता रही, और उसकी तुलना में प्राप्तियों के अन्य स्रोतों पर ध्यान नहीं दिया गया तो उसका परिणाम सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था तथा जनता के लिए निश्चित रूप से घातक होगा। अतः साधनों की उगाही के लिए राजस्व के स्रोतों को सही अनुपात में उपयोग में लाना बुद्धिमानी होगी।

यहां यह प्रश्न उठता है कि कौन राजस्व की उगाही कर सकता है, और किन स्रोतों से, कुशलता से, आसानी से तथा पर्याप्त रूप से कर सकता है। जो प्राधिकरण इन दृष्टियों से अधिक उपयुक्त जान पड़ें, उन पर राजस्व के स्रोतों को उपयोग में लाने का दायित्व सौंपा जाये, और उन्हें ही इन साधनों का आबंटन किया जा सकता है। ऊपर लिखी बातों का अर्थ होगा, व्यय संबंधी आवश्यकताओं का ध्यान से और सख्ती से निर्धारण करना और व्यय के लिए अनुचित दावे स्वीकार करने की संभावना न रहना।

पिछले पैराओं में जो कुछ कहा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि सीमान्त राशि में कोई विशेष वृद्धि करने का कोई लाभ नहीं। किन्तु हमारी राय में राज्यों के वार्षिक बजट में सीमान्त राशि की व्यवस्था की जाए, ताकि स्थानिक प्रकार की प्राकृतिक विपदाओं से निपटा जा सके।

इस प्रकार की चर्चा सिद्धान्त रूप में करते रहना व्यर्थ है। सार्वजनिक व्यय की समस्याएं विभिन्न हैं, क्योंकि इसमें सरकारी राजस्व के संग्रहण से संबंधित प्रश्न और सार्वजनिक व्यय के पैटर्न के संबंध में निर्णय लेना, जो अधिकतम आर्थिक और सामाजिक कल्याण के घोषित लक्ष्यों के अनुरूप हो, शामिल हैं। कम से कम हानि कारक प्रभावों के साथ साधनों की उगाही और अधिक से अधिक लाभप्रद तरीके से सार्वजनिक प्रयोजनों से धन खर्च करने की प्रणाली निकालने में पेश आने वाली जटिलताओं के अतिरिक्त एक अन्य कारक है, जो जटिलता को बढ़ाता है, वह है सांविधानिक ढांचा, जिसके अधीन राजकोषीय प्रणाली को करना है। अतः सरकारी राजस्व की उगाही और सार्वजनिक व्यय का आदेश देने की शक्ति संविधान द्वारा निर्धारित प्रशासनिक, विधायी और वित्तीय ढांचे का अभिन्न अंग होनी चाहिए।

हमारा संविधान परिसंघीय (फेडरल) प्रकार का है। इसलिए सरकार के दो स्तर हैं, अर्थात् संघ सरकार और राज्य सरकारें। इस प्रकार हमारी राजकोषीय प्रणाली के अंतर्गत राजस्व का विभाजन संघ, राज्यों के बीच किया जाता है। कर-प्रणाली और कर और शुल्क लगाने की शक्तियों का वितरण संविधान में निर्धारित वित्तीय व्यवस्थाओं के अनुसार किया गया है। जहां कर सम्पूर्ण देश के आधार पर लगे हैं, वहां संघ सरकार को ऐसे कर लगाने वाले प्राधिकरण के रूप में शक्ति सौंपी गई है। इसके कुछ उदाहरण हैं, आयकर, कंपनिकराधान, धनकर सीमा-शुल्क इत्यादि। इसके विपरित राज्य सरकारें अपने नागरिकों या उनके क्षेत्र में होने वाली आय पर कर लगा सकती हैं, इस प्रकार भू-राजस्व, कृषि आय पर कर, या स्थानीय बिक्री पर कर इत्यादि की उगाही की शक्ति राज्य सरकार की हैं। यहां पर उल्लेखनीय है कि किसी उपर्युक्त राजकोषीय नीति और उसके साथ जुड़ी उपयुक्त मुद्रा संबंधी नीति की सहायता से जो लक्ष्य हम हासिल करना चाहते हैं, उसमें बचत और निवेश का वांछित स्तर हासिल करना शामिल है ताकि भविष्य में दीर्घ कालीन विकास को बढ़ावा मिले और साथ ही साधनों का स्वीकार्य आबंटन और आय और धन का सही वितरण किया जा सके, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले और सामाजिक न्याय लाया जा सके।

अतः राजकोषीय नीति का उद्देश्य वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति होना चाहिए। राजकोषीय नीति के प्रभाव, एक ओर तो, लगाए गये करों के प्रकार, उगाही के ढंग और उन तरीकों, जिनमें साधनों की उगाही के अन्य उपायों का प्रयोग किया जाये, पर निर्भर करेंगे और दूसरी ओर सरकार द्वारा किए गये विभिन्न प्रकार के व्ययों और ऐसे सार्वजनिक व्ययों से उत्पन्न परिणामों पर। चूंकि सरकारी राजस्व और सार्वजनिक व्यय राजकोषीय नीति के अभिन्न अंग है, इसलिए इन दोनों को साथ मिलकर राजकोषीय नीति के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करना है। दोनों परस्पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि कर का ढांचा ऐसा है कि सामाजिक न्याय की दृष्टि से आय और धन का वितरण न्याय संगत ढंग से किया जाये, तो सार्वजनिक व्यय का भी कोई भिन्न उद्देश्य नहीं हो सकता। इसके अलावा यदि राजकोषीय और मुद्रा संबंधी नीतियां इस प्रकार बनाई जायें, कि उनसे बचत और निवेश बढ़े, तो सार्वजनिक व्यय का भी यही उद्देश्य होना चाहिए।

कुल सरकारी राजस्व, सार्वजनिक व्यय की सीमाएं निर्धारित करते है, किन्तु सरकार विभिन्न सार्वजनिक प्राधिकरणों के माध्यम से और सार्वजनिक व्यय के विभिन्न शीर्षों के अंतर्गत धन खर्च करती है। इस प्रकार एक प्राधिकरण किसी दूसरे प्राधिकरण का खर्च वहन नहीं कर सकता और न ही खर्च करने वाले विभिन्न प्राधिकरणों के क्षेत्र में आने वाली व्यय की विभिन्न मदों दर पर सार्वजनिक व्यय की मात्रा में परिवर्तन करने की निर्बाध रूप से स्वतंत्रता है।

भारतीय संविधान की वित्तीय योजना के अनुसार कराधान की शक्तियों को संघ और राज्य सरकारों के बीच स्पष्ट रूप से सीमांकित किया गया है उनके अपने-अपने दायित्व और कार्य, एक ही या समान क्षेत्रों में, उनके द्वारा समवर्ती रूप से किया जाने वाला व्यय भी निर्धारित किया गया है। आर्थिक और सामाजिक योजनाएं समवर्ती विषय हैं। अतः योजना गत परियोजनाओं पर होने वाले सार्वजनिक व्यय में केन्द्र और राज्य दोनों के द्वारा सार्वजनिक खर्च की संभावना है। तब भी वे क्षेत्र जिनमें वे व्यय करते हैं, काफी सीमा तक भिन्न हैं। जहां राज्य सरकारें कानून और व्यवस्था बनाए रखने पर खर्च करती हैं, वहां देश की रक्षा करने का दायित्व केन्द्र पर है। ये उदाहरण केवल यह दिखाने के लिए दिए गये हैं कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा किए जाने वाले सार्वजनिक व्यय के उत्तरदायित्व सांविधिक उपबंधों के अनुरूप हैं।

सभी प्रकार के सार्वजनिक व्यय से, किसी न किसी रूप में जनता को फायदा होता है। फिर भी सभी सार्वजनिक व्यय किसी एक सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा नहीं किए जा सकते, क्योंकि यह प्रशासनिक दृष्टि से गलत होगा और आर्थिक दृष्टि से अनुत्पादक अतः संघ सरकार राज्य सरकारों और स्थानीय प्राधिकरणों के बीच व्यय के विभाजन से सुचारु वित्तीय प्रबंधों की अपेक्षा पूरी हो जाती है और प्रशासनिक क्षमता भी बढ़ती है।

यह आवश्यक है कि जो प्राधिकरण कोई विशेष प्रकार का व्यय करने के लिए उत्तरदायी हो, उसके पास अपेक्षित साधन भी उपलब्ध हों, इसी बात को देखते हुए सार्वजनिक राजस्व की उगाही के स्रोतों का वितरण महत्वपूर्ण हो जाता है। सांविधिक उपबन्धों के अनुसार राजस्व के बड़े और लचीले (नम्य) स्रोत केन्द्र को दिए गए हैं जबकि राज्यों को राजस्व के वे स्रोत आबंटित किए गये, जो अपेक्षाकृत लचीले नहीं हैं। अतः केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान की शक्ति और कार्यों तथा उत्तर दायित्व के बीच सीमांकन के बावजूद, राज्यों के पास उपलब्ध साधनों और उनके कार्यों और दायित्वों के बीच असंतुलन होना निश्चित था। संविधान के निर्माता राज्यों के साधनों और उनके उत्तरदायित्वों के बीच बेहतर साम्य स्थापित करने के लिए उपयुक्त सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता के प्रति पूरी तरह सचेत थे, और इसकी पूर्ति के लिए संविधान में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अंतरण का उपबंध रखा गया।

अतः केन्द्र से राज्यों को साधनों के अंतरण से एक निश्चित उद्देश्य पूरा होता है और इसके महत्व को कम नहीं आंका जा सकता। साथ ही राज्यों के बीच विभाजन योग्य साधनों के वितरण का ढंग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, यह वितरण न्यायोचित

सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए, ताकि राज्यों की वित्तीय स्थिति मजबूत हो और वे अपने दायित्वों को संतोषजनक ढंग से पूरे कर सकें। मोटे तौर पर वितरण के सिद्धान्तों का उद्देश्य, देश का आर्थिक विकास और राज्यों का संतुलित विकास होना चाहिए।

संबद्ध मुद्दों के विभिन्न पहलुओं पर उपर्युक्त विश्लेषण से मालूम होगा कि निधि कौन एकत्र करता है और निधि का वितरण किस प्रकार किया जाता है, दोनों राजकोषीय नीति के अभिन्न अंग हैं और सांविधिक ढांचे के अनुरूप होने पर इनका एक साथ मिलकर उद्देश्य सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास करना होना चाहिए। समझदारी से सार्वजनिक व्यय करना, सार्वजनिक प्राधिकरणों द्वारा खर्च करने की एक कला है। इसी प्रकार "सार्वजनिक व्यय" लोगों को फायदा पहुंचाने का एक साधन है इस संबंध में भी कोई चर्चा करने की गुंजाइश नहीं है। असली बात जो ध्यान में रखने योग्य है वह है साधनों की उगाही, खर्च करने वाले विभिन्न प्राधिकरणों और व्यय की विभिन्न मदों के बीच उनका वितरण। सार्वजनिक व्यय में जो समस्याएं आड़े आती हैं वे परस्पर जुड़ी हुई हैं और उनके समाधान के लिए कोई समेकित तरीका निकालना होगा।

5.31 इस प्रश्न में उल्लिखित सुझाव के अनुसार एक स्थायी "राष्ट्रीय व्यय आयोग" होना चाहिए, जिसका काम केन्द्र और राज्य दोनों के लिए व्यय के प्रकार और सीमा और राजस्व साधनों की आवश्यकता का मूल्यांकन करना हो। असली बात यह देखना है कि क्या केन्द्र और राज्यों द्वारा किए जाने वाले सार्वजनिक व्यय की उपयोगिता का मूल्यांकन करने के लिए उपयुक्त तंत्र अथवा संस्थागत प्रबंध है अथवा नहीं, और क्या उनकी राजस्व संबंधी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करने के लिए तंत्र मौजूद है।

सरकारी खर्च के लिए प्राधिकार बजट से ही मिल जाता है। केन्द्र के मामले में संसद और राज्यों के मामले में उनके विधानमंडल बजट अनुदान के संबंध में वोट देते हैं और ऐसा करते समय वे सभी प्रकार के व्ययों पर बुनियादी तौर पर नियंत्रण रखते हैं। सार्वजनिक व्यय पर संसदीय नियंत्रण यहीं समाप्त नहीं हो जाता, यह बजट अनुदानों के संबंध में मत प्राप्त होने के पश्चात् भी जारी रहता है, और इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि संसद या राज्यों के मामले में विधान-मंडल द्वारा विनियोजित निधियों का प्रयोग निर्दिष्ट प्रयोजन से और सर्वोत्तम ढंग से किया जाए।

इस अवस्था में संसदीय नियंत्रण समितियों, जैसे लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति द्वारा किया जाता है। लोक लेखा समिति का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप हो, जो उस पर लागू होता है और संवितरण उसी प्रयोजन से किया जाये जिसके पक्ष में वोट दिए गये हैं। प्राक्कलन समिति बजट अनुमानों की इस दृष्टि से जांच करती है कि प्रशासन किफायतपूर्ण ढंग से और कुशलता से हो और यदि उससे कोई नीति दोषपूर्ण या ऐसी जान पड़ती हो कि जिससे फिजूल खर्च हो रहा हो, तो उसमें उपयुक्त संशोधन का सुझाव दे सकती है।

चूंकि संसद या राज्य विधान-मंडल का समय बहुमूल्य होता है, इसलिए यही समितियां सभी व्ययों की ब्यौरेवार जांच करती है, ताकि संसद या विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत धन सही प्रकार से खर्च किया जाए और उनके द्वारा अनुमोदित नीतियों और कार्यक्रमों का प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित हो सके। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहां इन समितियों की रिपोर्टों में सार्वजनिक व्यय के मानदण्डों से भिन्न मानदंड अपनाने के मामलों और ऐसी दोषपूर्ण नीतियों और कार्यक्रमों, जिनमें संशोधन की आवश्यकता हो, को प्रकाश में लाया गया है।

एक अन्य संसदीय समिति है, अर्थात् सार्वजनिक उपक्रम समिति जिसका कार्य यह जांच करना है कि क्या सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबंध कारोबार संबंधी ठोस सिद्धान्तों और विवेकपूर्ण वाणिज्यिक पद्धतियों के अनुसार किया जा रहा है। वास्तव में सार्वजनिक उपक्रमों के संदर्भ में इनके कार्यों में लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति के अन्य ऐसे कार्य शामिल होंगे, जिन्हें अध्यक्ष (स्पीकर) समय समय पर निर्दिष्ट करें। इस प्रकार इस समिति के कार्यक्षेत्र में न केवल व्यय संबंधी कुशलता बल्कि सम्पूर्ण रूप से सार्वजनिक उद्यमों का प्रबंध शामिल है।

इसके अतिरिक्त एक सांविधिक प्राधिकारी भी है और वह है भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक। उनका कार्य केन्द्र और राज्य सरकारों के राजस्वों से सभी व्ययों की लेखापरीक्षा करना है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि क्या लेखों में संवितरित दिखाई गई राशि, उन सेवाओं या प्रयोजनों के लिए विधिक रूप से उपलब्ध है, जिनके लिए उसका वितरण किया गया अथवा क्या व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप है, जो उस पर लागू होता है। नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा तैयार किए गये विनियोजन लेखे और लेखापरीक्षा रिपोर्टें, यथास्थिति संसद या राज्य विधान-मंडल के समक्ष पेश की जाती हैं, जिनके आधार पर लोक लेखा समिति केन्द्र और राज्य सरकार के संबंधित विभागों से विस्तार से चर्चा करती है और किए गये सभी व्ययों के औचित्य का मूल्यांकन किया जाता है। सार्वजनिक उपक्रम समिति को सार्वजनिक उद्यमों के संबंध में नियंत्रक महालेखापरीक्षक की लेखा-परीक्षा रिपोर्टें दी जाती हैं। इस प्रकार इन उद्यमों के आय-व्यय इत्यादि की संसदीय समिति द्वारा सूक्ष्म जांच की जाती है।

इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकारों के व्यय पर संसदीय नियंत्रण और उसके साथ नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा की गई विनियोजन और विनियमक लेखा-परीक्षा से एक प्रकार का संस्थागत प्रबंध हो जाता है, जिससे सार्वजनिक व्यय विषयक पालिसी की समग्र रूप से निरंतर समीक्षा होती रहती है और किए गये व्यय की उपयुक्तता के संबंध में इन संस्थागत प्रबंधों से जांच हो जाती है।

अब देखेंगे कि संघ और राज्यों की राजस्व संबंधी आवश्यकताओं का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है। इस मुद्दे को संघ-राज्य वित्तीय संबंधों के कोण से देखा जाना आवश्यक है। संविधान में वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है, जो संघ और राज्यों की वित्तीय स्थिति की हर पांच वर्ष बाद समीक्षा करता है। हम भी ऐसी आर्थिक समीक्षा के पक्ष में हैं, जिससे वित्त-आयोग को यह निर्धारित करने का अवसर मिले कि केन्द्र और राज्यों को अपने-अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए कितने साधनों की आवश्यकता है। यह सही है कि वित्त आयोग राज्य की योजनेतर आवश्यकताओं पर ही विचार करता है, योजना संबंधी आवश्यकताओं पर विचार करना योजना आयोग के कार्य क्षेत्र में आता है। राज्यों की योजनेतर आवश्यकताओं का निर्धारण करने की प्रक्रिया में वित्त आयोग सुपुर्दगी की अवधि के लिए राज्यों के राजस्व और व्यय के अनुमानों का गहराई से विश्लेषण करता है और राज्य की राजस्व संबंधी आवश्यकताओं का निर्धारण करता है। केन्द्र से राज्यों में साधनों के अंतरण के प्रयोजन से वित्त आयोग केन्द्र सरकार की साधनों संबंधी आवश्यकताओं का भी मूल्यांकन करता है ताकि अधिशेष राशियां मालूम की जा सकें और उनमें से निधियों की सुपुर्दगी की जा सके।

वित्त आयोग द्वारा केन्द्र और राज्यों की आवश्यकताएं निर्धारित करने के प्रयोजन से अपनाई गई पद्धति में सुधार की गुंजाइश हो सकती है, बल्कि वास्तव में आवश्यकता है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इस पद्धति में ऐसी कमियां हैं, जिनके कारण वित्त आयोग नामक संस्था को पूर्ण रूप से असमाप्त कर दिया जाये और यह कार्य करने के लिए किसी अन्य वैकल्पिक निकाय के संबंध में सोचना अनिवार्य हो गया है।

योजना संबंधी अपेक्षाओं के संबंध में यह याद रखा जाये कि देश का सुनियोजित आर्थिक विकास और उसके साथ ही संतुलित क्षेत्रीय समृद्धि हमारी स्वीकृत राष्ट्रीय नीति है और इस संबंध में किसी प्रकार के पुनर्विचार की कोई गुंजाइश नहीं है। केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों की दृष्टि से, यह बताने की आवश्यकता नहीं कि "आयोजना" राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत उद्देश्यों और लक्ष्यों की, केन्द्र और राज्यों के बीच निकटतम सहयोग और समन्वय से प्राप्ति का प्रयास है। अत: योजना तैयार करने संबंधी प्रक्रिया, स्कीमों और परियोजनाओं को सूचीबद्ध करना, समृद्धि की वांछित दरों की प्राथमिकताओं और सीमाओं का निर्धारण, सब कुछ कार्यकारी ग्रुपों के सामूहिक प्रयास से ही निश्चित किया जाता है और स्कीमों के वित्तीय परिव्यय का निर्धारण तदनुसार पिछले योजना वर्ष के निष्पादन की समीक्षा करके और भौतिक और वित्तीय साधनों की उपलब्धता को देखते हुए किया जाता है। इस प्रक्रिया में केन्द्र और राज्यों की आवश्यकताओं पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया।

इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि योजना का आकार वास्तविक लक्ष्यों और वित्तीय परिव्यय, दोनों दृष्टियों से, योजना आयोग द्वारा निर्दिष्ट अनुसार केन्द्र

और राज्यों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम है और योजना के आकार की सीमाएं वित्तीय साधनों की उपलब्धता पर प्रतिबंधों द्वारा निर्धारित होती है। अतः स्पष्ट है कि राज्य की योजना के परिव्यय का आकार अंततः राज्य की अपनी योजना के वित्त-प्रबंध के लिए अतिरिक्त साधनों की उगाही की क्षमता और केन्द्र से प्राप्त निधियों की उपलब्धता, जिसमें से राज्यों को योजना सहायता दी जा सकती हो, पर निर्भर करता है। यह कहना व्यर्थ है कि राज्यों की आवश्यकताएं, इन दो कारणों से पृथक, सम्पूर्ण रूप से निर्धारित की जानी चाहिए, क्योंकि न तो राज्य ही असाधारण रूप से बढ़े हुए अतिरिक्त साधनों की उगाही का बोझ सहन कर सकते हैं और न ही केन्द्र की राज्यों को योजना संबंधी आवश्यकताओं के लिए असीमित रूप से सहायता देने के लिए निधि प्राप्त करने की अतिरिक्त क्षमता होती है।

इस पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय व्यय आयोग की उपयोगिता या अनिवार्यता पर विचार करना होगा। यह कहा जा सकता है कि ऐसे आयोग की आवश्यकता केन्द्र के व्यय और उसके विकास और गैर-विकास विषयक प्रयोजनों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करने के लिए होगी, ताकि केन्द्र के पास उपलब्ध अधिशेष राशि मालूम की जा सके और उसमें से राज्यों को अधिक साधनों का अंतरण किया जा सके। जैसा कि हमने पहले कहा, उपयुक्त प्रकार के कार्य वित्त आयोग द्वारा आंशिक रूप से किए जाते हैं। इसके अंतर्गत वे केन्द्र और राज्य सरकार के व्यय की समीक्षा करते हैं और उनकी गैर-योजना प्रयोजनों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करते हैं। सातवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के राजस्व और व्यय के अनुमानों की गहन समीक्षा करने का कदम उठाया और सभी ने इसकी सराहना की। यह पाया गया कि अनुमानों की अपेक्षा वास्तव में अधिशेष अधिक था। यह सोचने की कोई वजह नहीं कि अनुवर्ती वित्त आयोग ये पद्धति नहीं आपनाएंगे।

योजना आयोग केन्द्र और राज्य सरकारों के परामर्श से योजना की आवश्यकताओं के संबंध में यही पद्धति अपनाता है। हो सकता है कि दोनों आयोगों द्वारा अपनाए गये तरीकों में कुछ कमियां बताई जाए, किन्तु उनके द्वारा अपनाई गई इन प्रक्रियाओं में उपयुक्त आशोधन करके, और उन्हें निकट सहयोग और परस्पर ताल-मेल से कार्य करने के लिए कह कर उन कमियों को दूर किया जा सकता है, ताकि इस प्रक्रिया में प्रत्येक को दूसरे की मेहनत से लाभ हो। इसका लाभ यह होगा कि जो कमियां दोनों आयोगों के कार्य करने के ढंग में थीं, वे अब नहीं रहेंगी।

यदि राष्ट्रीय व्यय आयोग की स्थापना की गई तो वह भी केन्द्र और राज्यों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करने के लिए यही कार्यप्रणाली अपनाएगा, और उस सीमा तक वह वही कार्य करेगा, जो वित्त आयोग और योजना आयोग कर रहे हैं। इस प्रकार फिलहाल जो कार्य दोनों आयोग कर रहे वही कार्य राष्ट्रीय व्यय आयोग करेगा जिससे बचा जा सकता है। यदि इस प्रस्तावित आयोग को केन्द्र और राज्यों की अलग-अलग आवश्यकताओं का वार्षिक मूल्यांकन करना है तो इसके द्वारा की गई सिफारिशों पर की जाने वाली अनुवर्ती कार्रवाई के ढंग के बारे में सोच पाना कठिन होगा। इसकी रिपोर्टों का केन्द्र और राज्यों के वार्षिक बजट तैयार करने पर अथवा योजना आयोग द्वारा वार्षिक योजनाओं को अंतिम रूप देने पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा, इसका पूर्वानुमान लगाना कठिन है। इस विचार के प्रस्तावकों ने यह नहीं बताया कि प्रस्तावित आयोग की वित्त आयोग या योजना आयोग की तुलना में क्या निश्चित भूमिका होगी और न ही यह स्पष्ट किया है कि प्रस्तावित आयोग द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं को योजना आयोग को आदेशात्मक रूप से मानना होगा, और योजना के आकार को वास्तविक और वित्तीय दोनों अर्थों में उसी के अनुसार समायोजित करना होगा। इसी प्रकार यदि प्रस्तावित आयोग द्वारा निर्धारित आवश्यकताओं का वित्त आयोग पर बाध्यकारी प्रभाव होगा, तो इसका अर्थ होगा, कि वित्त आयोग के कार्य का काफी बड़ा भाग इस प्रस्तावित आयोग द्वारा ले लिया जाएगा। इस प्रकार प्रस्तावित आयोग के कार्यों तथा वित्त आयोग और योजना आयोग के कार्यों के पारस्परिक प्रभाव से इस बात की पूरी-पूरी संभावनाएं हैं कि राज्यों को संसाधनों के अंतरण के ढंग के संबंध में अधिक जटिलताएं उत्पन्न होंगी और केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंध और अधिक बिगड़ेंगे।

राष्ट्रीय व्यय आयोग बनाने का सुझाव रखने समय कुछ व्यक्तियों ने यह कहा कि योजना आयोग को राज्य योजना परिव्यय के लिए आवंटित कुल राशि न केवल अपर्याप्त है बल्कि इस संबंध में वित्त मंत्रालय का निर्णय वस्तुनिष्ठ नहीं है। इस मामले पर गौर करते हुए यह पूछा जा सकता है कि क्या राज्यों द्वारा सुझाई गई वास्तव में अच्छी और फायदेमंद स्कीमों के उदाहरण हैं, जिन्हें इस कारण राज्य-योजना में शामिल करने से इनकार कर दिया गया कि ऐसी स्कीमों को स्वीकार करने का अर्थ होगा, राज्य योजनाओं के लिए उपलब्ध कुल राशि से अधिक राशि की जरूरत होगी। हम नहीं समझते कि ऐसे मामलों की बाबत बताना सरल होगा। यदि तर्क के लिए हम यह मान भी लें कि राज्ययोजना परिव्यय के लिए उपलब्ध राशि अपर्याप्त है अथवा राशि के संबंध में निर्णय लेते समय किन्हीं तर्कसंगत सिद्धान्तों को नहीं अपनाया गया तो यहां हम एक सुझाव प्रस्तुत करते हैं जिससे राज्य फायदा उठा सकते हैं। वे राष्ट्रीय विकास परिषद में मामला उठा सकते हैं, जहां यदि वे एक साथ मिलकर अपने दृष्टिकोण के गुण-दोष जोर देकर पेश करें, तो इस समस्या पर तटस्थ रूप से विचार किया जा सकता है और संतोषजनक हल निकाला जा सकता है। यह जरूरी नहीं कि राष्ट्रीय व्यय आयोग ही एक बेहतर मंच हो। इसकी सिफारिशों को केंद्र सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। यह कहना उचित नहीं कि राष्ट्रीय विकास परिषद राज्यों के हितों पर पूरी तरह ध्यान नहीं दे सकती और यदि एक बार राष्ट्रीय विकास परिषद् राज्यों के न्यायोचित दावों के संबंध में आश्वस्त हो, तो यह सोचना उचित नहीं कि भारत सरकार कोई अलग दृष्टिकोण अपनाएगी।

अब हम देखते हैं कि प्रस्तावित आयोग केन्द्र या राज्यों के व्यय की उपयोगिता का मूल्यांकन करने के मामले में क्या भूमिका निभा सकता है। संसद या राज्य विधान-मंडल निधि स्वीकृत करने वाले प्राधिकरण हैं, इसलिए उनका सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण समाप्त नहीं किया जा सकता। अपनी समितियों के माध्यम से वे भारत सरकार या राज्य सरकारों द्वारा किए गए व्यय की कभी भी संवीक्षा कर सकते हैं और फिजूलखर्ची का पता लगा सकते हैं और बेहतर ढंग से व्यय करने के उपाय सुझा सकते हैं, नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा नियमित रूप से की जाने वाली लेखापरीक्षा से यह सुनिश्चित हो सकता है कि सभी व्यय सही प्राधिकार से किया जा रहा है या नहीं और उन्हीं प्रयोजनों से किया जा रहा है, जिन प्रयोजनों से निधि प्रसारित की गई थी या स्वीकार की गयी थी। वित्त आयोग केन्द्र और राज्यों के राजस्व और व्यय अनुमानों की सदा अधिक समीक्षा करेगा ताकि संभावित अधिशेष और उनकी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करके राज्यों को निधियों की सुपुर्दगी (अन्तरण) की स्कीम प्रतिपादित की जा सके। हम नहीं समझते कि राष्ट्रीय व्यय आयोग केन्द्र और राज्यों द्वारा किए जाने वाले व्यय के औचित्य और कुशलता की जांच और मूल्यांकन से संबंधित मौजूदा प्राधिकरणों को समनुदेशित कार्य कोई बेहतर ढंग से कर सकेगा। इसकी और इसका अर्थ होगा कि वही या समान कार्य करने वाले दो-दो प्राधिकरण से बचा जा सकेगा जिनका कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं है।

ऊपर पैराओं में उल्लिखित कारणों से हम राष्ट्रीय व्यय आयोग बनाने के पक्ष में नहीं हैं।

5.33 "मूल्यांकन लेखापरीक्षा" उसी स्थिति में सफल हो सकती है, यदि सरकार की "कार्य निष्पादन के आधार पर बजट बनाने" की प्रणाली हो। बाउचर लेखापरीक्षा और मूल्यांकन लेखापरीक्षा, दोनों आवश्यक हैं। लेखापरीक्षा के दोहरे उद्देश्य, अर्थात् कुशलता और तत्परता तभी पूरे हो सकते हैं, यदि बाउचर लेखापरीक्षा के साथ-साथ मूल्यांकन लेखापरीक्षा भी हो। विकास कार्यक्रमों से संबंधित प्रत्येक विभाग में छोटे-छोटे मूल्यांकन कक्ष (सैल) होने चाहिए। यह कक्ष किसी भी अन्य विभाग द्वारा किए जा रहे कार्यक्रमों की मूल्यांकन लेखापरीक्षा कर सकता है। इस प्रकार विभागीय मूल्यांकन यूनिट को विभागीय परियोजना का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। हाल ही में योजना आयोग द्वारा "समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम" का मूल्यांकन किया गया, हालांकि यह स्कीम कृषि मंत्रालय द्वारा चलाई जा रही है। इस प्रकार व्यय और वास्तविक लक्ष्यों की प्राप्ति, दोनों के प्रबोधन (मानीटरन) से कार्यक्रम का सही आर्थिक मूल्यांकन किया जा सकेगा।

5.34 इस प्रश्न में उन मुद्दों का उल्लेख नहीं है जिनके संबंध में कहा जाता है कि वे तीसरे वित्त आयोग के अध्यक्ष श्री अशोक चन्द्र द्वारा यह दिखाने के लिए उठाए गये थे कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक वह सब नहीं कर रहे जो संघ और राज्यों के लेखों पर नियंत्रण रखने के लिए उन्हें करना चाहिए। तीसरे वित्त आयोग की रिपोर्ट में श्री अशोकचन्द्र के प्रेक्षणों के संबंध में कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। किन्तु एक बात स्पष्ट है कि श्री चन्द्र ने वर्ष 1971 से पहले नियंत्रक महालेखापरीक्षक

के अपर्याप्त कार्यों और उत्तरदायित्वों पर टिप्पणी की होगी, क्योंकि तब तक संसद ने नियंत्रक व महालेखापरीक्षक की शक्तियों और कार्यों को परिभाषित करते हुए संविधान के अनुच्छेद 149 के अधीन विधि नहीं बनाई होगी जिसका नतीजा यह हुआ कि भारत सरकार (लेखा-परीक्षा और लेखा) का आदेश, 1936 जैसा कि अनुकूलित किया गया, नियंत्रक महालेखापरीक्षक की शक्तियों, कार्यों और उत्तरदायित्वों के संबंध में लागू रहा। 1936 का आदेश कुछ इस प्रकार का था कि उसमें नियंत्रक महालेखापरीक्षक को संविधान के उपबंधों द्वारा दिए गए उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए उसके अनुरूप पर्याप्त शक्तियां नहीं दी गई थीं। शायद श्री चन्द्र का आशय नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कार्य और शक्तियों में व्यापकता की कमियों को प्रकाश में लाना था।

अत: 1936 के आदेश द्वारा नियंत्रक महालेखापरीक्षक को सौंपे गये कार्यों और उत्तरदायित्वों में जो बातें शामिल नहीं की गईं, उनकी ओर ध्यान दिलाना उपयुक्त होगा। मोटे तौर पर उक्त आदेश इतना व्यापक नहीं था कि जिसके लेखा-परीक्षा के सांविधिक क्षेत्राधिकार में सरकार के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण क्रियाकलाप शामिल हों, जिनमें काफी व्यय होता हो, और जो आर्थिक विकास संबंधी योजनाओं के अनुसार काफी तेजी से बढ़ रहा हो, उस स्थिति में स्थानीय निकाय और कई अन्य ऐसे प्राधिकरण और निकाय, जिन्हें पर्याप्त अनुदान या कर्ज मिलता था, नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा की जाने वाली लेखापरीक्षा के क्षेत्र से बाहर हो गए और उन्हें एक प्रक्रिया जिसे "सहमति द्वारा लेखापरीक्षा" के नाम से जाना जाता है, द्वारा इस क्षेत्राधिकार में लाना पड़ा। ऐसी लेखापरीक्षा सांविधिक तौर पर अनिवार्य नहीं थी।

दूसरे शब्दों में 1936 के आदेश में निर्धारित नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कार्य और उत्तरदायित्व का विस्तार कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों तक नहीं था, जिनका नीचे उल्लेख किया है। इन क्षेत्रों विशेष के संबंध में व्याख्या करते हुए यह भी दिखाया जाएगा कि ये कमियां कहां तक उचित हैं और "नियंत्रक महालेखापरीक्षक (कर्तव्य शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971" (1976 में संशोधित) (इसके बाद इसे अधिनियम कहा जाएगा) के द्वारा इन्हें (कमियों) कहां तक पूरा किया गया।

सबसे पहले 1936 के आदेश के अधीन नियंत्रक महालेखापरीक्षक को सरकार की रसीदों की लेखापरीक्षा करने से पहले अथवा सरकार के भंडार और माल के लेखा की लेखापरीक्षा करने से पहले यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल का पूर्ण अनुमोदन लेना आवश्यक था। अब ऐसा पूर्व अनुमोदन आवश्यक नहीं है। उक्त अधिनियम की धारा 16 के अधीन संघ और प्रत्येक राज्य की समेकित निधि में हुए सभी प्राप्तियों की लेखापरीक्षा करना नियंत्रक महालेखापरीक्षक का कर्तव्य है और उसे इस संबंध में आश्वस्त होना चाहिए कि इस संबंध में नियम और प्रक्रियाएं ऐसी बनाई जाएं कि राजस्व के मूल्यांकन, उगाही और सही आवंटन पर प्रभावी नियंत्रण रहे तथा उनका पूरी तरह पालन किया जाये। इसी प्रकार अधिनियम की धारा 17 के अधीन नियंत्रक महालेखापरीक्षक को संघ या किसी राज्य के किसी कार्यालय या विभाग में रखे भंडार और माल के लेखों की लेखापरीक्षा करने और उस संबंध में रिपोर्ट देने का प्राधिकार दिया गया है। अत: अब नियंत्रक महालेखापरीक्षक के लिए ऐसी कोई लेखापरीक्षा करने से पहले सरकार का पूर्व अनुमोदन लेना जरूरी नहीं रह गया है।

दूसरे, लेखापरीक्षा से पूर्व स्थानीय निकायों या अन्य ऐसे प्राधिकरणों या गैर-सरकारी निकायों जिन्हें अनुदान या कर्ज के रूप में काफी बड़ी रकम प्राप्त होती हो सहमति लेना अनिवार्य होने के कारण नियंत्रक महालेखापरीक्षक की शक्तियों पर प्रतिबंध लग गया। अधिनियम में ऐसी व्यवस्था है जिसमें इन प्रतिबंधों को काफी हद तक हटा दिया गया है। अधिनियम की धारा 14 के अधीन नियंत्रक महालेखापरीक्षक को संघ या राज्य के राजस्व द्वारा वित्त पोषित उन निकायों या प्राधिकरणों की प्राप्तियों और व्यय की लेखापरीक्षा करने की शक्ति दी गई है जिन्हें दिए गये अनुदान या कर्ज की राशि एक वर्ष में 5 लाख रुपए से कम न हो और ऐसे निकाय या प्राधिकरण के कुल व्यय के 75 प्रतिशत से कम न हो।

यदि किसी प्राधिकरण या निकाय को अंतर्राष्ट्रीय संगठन को छोड़कर संघ या किसी राज्य की समेकित निधि में से किसी विशिष्ट प्रयोजन से अनुदान या कर्ज दिया जाये तो अधिनियम (धारा 15) के अधीन नियंत्रक महालेखापरीक्षक को शक्ति प्रदान की गई है कि वह इस प्रक्रिया की संवीक्षा करे जिसके द्वारा मंजूरीदाता प्राधिकारी ऐसे अनुदान या कर्ज की शर्तें पूरा होने के बारे में आश्वस्त हों और इस प्रयोजन से नियंत्रक महालेखापरीक्षक को संबंधित प्राधिकरण या निकाय के खाते या लेखों को देखने का प्राधिकार हो। किन्तु नियंत्रक महालेखापरीक्षक को किसी ऐसे निगम के खातों और लेखों को देखने का अधिकार नहीं होगा यदि उस विधि में जिसके अधीन उस निगम की स्थापना न की गई हो नियंत्रक महालेखापरीक्षक से भिन्न किसी एजेन्सी द्वारा लेखा-परीक्षा करवाई जाने की व्यवस्था हो, किन्तु उस स्थिति को छोड़कर जहां नियंत्रक महालेखापरीक्षक को इस संबंध में यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा प्राधिकृत किया गया हो। ऐसा प्राधिकार नियंत्रक महालेखापरीक्षक से परामर्श करने के बाद और संबंधित निगम को नियंत्रक महालेखापरीक्षक को उसके लेखे देखने का अधिकार दिए जाने के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अवसर देने के बाद दिया जायेगा।

इसके अतिरिक्त कुछ औद्योगिक और वाणिज्यिक संस्थाएं होती हैं जो या तो सरकारी कंपनियां होती हैं या सांविधिक निगम होते हैं, जिनमें काफी मात्रा में सरकारी धन लगा होता है। ऐसी सरकारी कंपनियां या सांविधिक निगमों की नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा लेखा-परीक्षा किए जाने का मामला स्वयं स्पष्ट है ताकि उन्हें उनके व्यय के संबंध में पूरी तरह संसद के नियंत्रण में लाया जा सके। 1969 के अधिनियम से पहले यह स्थिति थी कि 1956 के कंपनी अधिनियम के अनुसार नियंत्रक महालेखापरीक्षक को व्यावसायिक लेखापरीक्षकों द्वारा लेखापरीक्षा किए जाने के बावजूद सरकारी कंपनियों के लेखों की नमूना जांच करने का अधिकार था और इस प्रकार कोई कदाचार होने पर इन कंपनियों के कार्य करने की जांच लोक लेखा समिति द्वारा की जाती थी। यह स्थिति 1971 के अधिनियम के बाद से बदल गई है और यह विशेष रूप से व्यवस्था की गई है कि नियंत्रक महालेखा-परीक्षक कंपनी अधिनियम, 1956 के उपबन्धों के अनुसार सरकारी कंपनियों के लेखों की लेखापरीक्षा करने की शक्ति का प्रयोग करेगा।

जहां तक सांविधिक निगमों की लेखापरीक्षा का प्रश्न है, श्री चन्द्र ने जीवन बीमा निगम के राष्ट्रीयकरण के समय उसके लेखों की नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा लेखापरीक्षा किए जाने के अधिकार को समाप्त किए जाने के विरुद्ध शिकायत की और यह विचार व्यक्त किया कि :—"यह इस स्वीकृत सिद्धान्त को न मानने के समान हुआ कि समेकित निधि में से धन आहरित करने पर स्वत: ही नियंत्रक महा-लेखापरीक्षक द्वारा लेखापरीक्षा की जाती है।" लोक लेखा समितियों ने अपनी अनेक रिपोर्टों में भी इसी बात का समर्थन किया कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक को ऐसी संस्थाओं चाहे उनका कोई भी नाम हो, के व्यय की लेखापरीक्षा करने का निर्विवाद अधिकार होना चाहिए क्योंकि उन्हें समेकित निधि में से वित्त दिया जाता है।

अधिनियम में यह उपबंध है कि संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उस के अधीन स्थापित निगमों (कंपनियां नहीं) के संबंध में नियंत्रक महालेखापरीक्षक संबंधित विधान के उपबन्धों के अनुसार अपनी लेखापरीक्षा संबंधी शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं।

इस संबंध में किसी अन्य व्यक्ति का यह विचार है कि श्री चन्द्र द्वारा उठाई गई आपत्तियों का इन उपबन्धों से समाधान हो गया है जिनमें नियंत्रक महालेखापरीक्षक को कंपनी अधिनियम, 1956 और संबंधित विधानों के उपबंधों के अनुसार सरकारी कंपनियों और सांविधिक निगमों के लेखों की लेखापरीक्षा करने की शक्ति दी गई है। इसी संबंध में एक अन्य दृष्टिकोण भी हो सकता है और यह कहा जा सकता है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक की सरकारी कंपनियों या सांविधिक निगमों की लेखापरीक्षा करने की शक्तियां, कंपनी अधिनियम 1956 और "उन विधानों, जिनके अधीन सांविधिक निगम स्थापित किए गये हों" के इस आशय के उपबंधों पर आधारित कर दी गई हैं।

दूसरे शब्दों में अधिनियम की धारा 19 में उल्लिखित उपबंधों के बावजूद हो सकता है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक की ऐसे सांविधिक निगमों को स्थापित करने वाली विधि में इस आशय के विशिष्ट उपबंध न होने के कारण सांविधिक निगमों के लेखों की लेखापरीक्षा न कर सकें । इसका अर्थ यह हुआ कि सांविधिक निगमों के लेखों की लेखापरीक्षा करने की शक्ति का सशर्त प्रयोग हो सकता है क्योंकि नियंत्रक महालेखापरीक्षक को 1971 के अधिनियम के उपबंधों के प्राधिकार पर उन सांविधिक निगमों के लेखों की लेखापरीक्षा करने की शक्ति नहीं होगी जो भविष्य में स्थापित किए जायेंगे जब तक कि संबंधित विधान में इस आशय का स्पष्ट उपबंध न हो ।

किसी राज्य के विधान-मंडल की विधि द्वारा स्थापित निगम के लेखों की लेखापरीक्षा करने की नियंत्रक महालेखापरीक्षक की शक्तियों पर एक अन्य प्रकार से प्रतिबंध (रोक) है, अर्थात इस शक्ति का प्रयोग तभी किया जा सकता है, यदि राज्यपाल नियंत्रक महालेखापरीक्षक से ऐसी लेखापरीक्षा करवाना चाहे, और नियंत्रक महालेखापरीक्षक से ऐसा अनुरोध उससे परामर्श करने के बाद और संबंधित निगमों को ऐसी लेखापरीक्षा के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने का उचित अवसर देने के बाद ही किया जाए । इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा 20 द्वारा नियंत्रक महालेखापरीक्षक को समर्थ बनाने का उपबंध है । इसके अनुसार नियंत्रक महालेखापरीक्षक यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल के अनुरोध पर ऐसे प्राधिकरण या निकाय के लेखों की लेखापरीक्षा कर सकते हैं, जो उसे संसद द्वारा बनायी गई किसी विधि द्वारा सौंपे न गये हो । नियंत्रक महालेखापरीक्षक को ऐसी लेखापरीक्षा सार्वजनिक हित मे सौंपी जा सकती है किन्तु इससे पूर्व संबंधित प्राधिकरण या निकाय को ऐसी लेखापरीक्षा के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए । अधिनियम मे एक अन्य उपबंध है जिसके अनुसार यदि नियंत्रक महालेखापरीक्षक स्वयं यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल के समक्ष प्रस्ताव रखते हैं कि उसे किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण की लेखापरीक्षा करने के लिए प्राधिकृत किया जाये, जो उसे विधि द्वारा नहीं सौंपे गये हैं तो ऐसा वह उसी स्थिति में कर सकते हैं यदि वह समझे कि ऐसे किसी प्राधिकरण या निकाय में काफी धन लगाया गया है और उसकी लेखापरीक्षा करनी जरूरी है । सार्वजनिक हित में नियंत्रक महालेखापरीक्षक का अनुरोध स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु इससे पहले संबंधित निकाय को लेखापरीक्षा के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए ।

संघ और राज्यों के लेखों पर अपेक्षित नियंत्रण रखने के लिए अधिनियम में नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कुछ कर्त्तव्यों का उल्लेख है:

(i) भारत की समेकित निधि से किए गए प्रत्येक व्यय की तथा प्रत्येक राज्य के व्यय की लेखापरीक्षा करना, ताकि सुनिश्चित किया जा सके कि 'संवितरित' की गई दिखाई गई राशियां विधिक रूप से सेवा या उन प्रयोजनों के लिए उपलब्ध थीं, जिनके लिए वे प्रयोग में लाई गई थीं या स्वीकृत की गई थी और क्या किया गया व्यय उस प्राधिकार के अनुरूप है जो उस पर लागू होता है, (ii) आकस्मिक निधि और लोक लेखाओं से संबंधित संघ और राज्यों के सभी लेन-देनों की लेखापरीक्षा करना, और (iii) सभी व्यापार, विनिर्माण, लाभ हानि लेखों और तुलन-पत्रों तथा संघ या राज्य के किसी विभाग में रखे सहायक लेखों की लेखापरीक्षा करना और इस लेखापरीक्षा के संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करना ।

ऊपर नियंत्रक महालेखापरीक्षक की शक्तियों, कार्यों, कर्तव्यों की सीमाओं को देखने से पता चलेगा कि 1971 के अधिनियम में काफी हद तक नियंत्रक महालेखापरीक्षक के प्राधिकार और अधिकारिता की कमियों को पूरा किया गया है और सांविधिक निगमों में समेकित निधि में से किए गये निवेश के मामले में कुछ सीमा तक प्रतिबंध को छोड़कर (जो कि हो सकता है, वास्तव में कोई रुकावट पैदा न करें), अन्यथा उसे संघ और राज्यों के व्यय पर निगरानी रखने के लिए लेखापरीक्षा करने की अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का पर्याप्त अधिकार है ।

5.38 हमने प्रश्न 5.31 के अपने उत्तर में बताया कि हम क्यों राष्ट्रीय व्यय आयोग की स्थापना की आवश्यकता नहीं समझते ।

इसके अतिरिक्त प्रश्न 5.34 के अपने उत्तर में हमने विस्तार से बताया है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक को संघ और राज्यों के व्यय पर निगरानी रखने और उनके लेखों पर नियंत्रण रखने के लिए लेखापरीक्षा करने की अपनी शक्तियों का प्रयोग करने का पर्याप्त प्राधिकार है, इसके अतिरिक्त नियंत्रक महालेखापरिक्षक की सहायता से लोक लेखा समितियां और प्राक्कलन समितियां के माध्यम से संसद के राज्य विधान-मंडल का सरकारी व्यय पर नियंत्रण संघ और राज्यों के व्यय के औचित्य के मूल्यांकन की आवश्यकता को पर्याप्त ढंग से पूरा कर देता है ।

5.39 राज्य सरकारों का विचार है कि राज्यों द्वारा प्रतिपादित कार्य-योजनाओं की केन्द्र में संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय द्वारा स्वीकृति के उपबंध के कारण उस स्थिति में क्षोभ पैदा होने लगता है, जब संबंधित मंत्रालय समन्वयकर्ता का काम करने की बजाए "बड़े भाई" की भूमिका निभाने लगता है ।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजनाएं

6.1 प्रश्न में क्या उल्लिखित मौजूदा आयोजना प्रक्रिया की कमियां सामान्यतः वैध हैं। योजना आयोग और भारत सरकार के मंत्रालयों के कार्य सीमित करके इन्हें काफी हद तक दूर किया जा सकता है । इसके लिए (i) व्यापक राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और विकास की रूप रेखाओं का उल्लेख करना होगा, (ii) विभिन्न सामाजिक आर्थिक क्रियाकलापों में न्यूनतम सीमा निर्धारित करनी होगी, (iii) उन्हें हासिल करने के लिए राज्यों को उपयुक्त मार्गदर्शक सिद्धान्त बताने होंगे, (iv) राज्यों में योजना कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा और प्रबोधन के लिए उपयुक्त प्रणाली व्यवस्थित करनी होगी । राज्यों को स्वतंत्रता दी जानी चाहिए कि वे राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी आवश्यकताओं, सामर्थ्य और प्राथमिकताओं के आधार पर अपने विकास की योजना बना सकें । उन्हें राष्ट्रीय योजना आयोग द्वारा निर्दिष्ट मार्गदर्शक सिद्धान्तों के अन्दर ही, उनके द्वारा सोची गई प्राथमिकताओं के अनुसार अनुमोदित परिव्यय का क्षेत्रवार आबंटन करने में अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ।

6.2 राष्ट्रीय विकास परिषद अधिक प्रभावी हो सके, इसके लिए इसे सांविधानिक और सांविधिक प्राधिकार होने चाहिए । अनुच्छेद 263 के अधीन संघ और राज्यों के बीच प्रभावी समन्वय हासिल करने के लिए अन्तरराज्यिक परिषद का गठन इस दिशा में एक कदम हो सकता है और इस प्रकार गठित परिषद, "राष्ट्रीय विकास परिषद" का भी काम कर सकती है । परिषद में जरूरी नहीं कि विशेषज्ञ ही सदस्य हों, क्योंकि योजना आयोग में पहले से हो विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ मौजूद हैं और परिषद को आयोग का सहयोग मिल सकता है । वास्तव में इससे योजना आयोग विधिक ढांचे में आ जाएगा और यह राष्ट्रीय विकास परिषद का लगभग एक सचिवालय ही बन जाएगा । परिषद मोटे तौर पर पंचवर्षीय योजनाओं की कार्यनीति और पंचवर्षीय योजनाओं की सामान्य रूपरेखा की बाबत तथा केन्द्र और राज्यों के बीच से साधनों के आबंटन और विभिन्न संघटक राज्यों के संबंध में चर्चा और और अनुमोदन कर सकती है । इसका अर्थ हुआ कि राज्य में विभिन्न महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी प्रगति का जायजा लेने और राज्य सरकारों की योजनाओं के विकास और कार्यान्वयन के दौरान सामने आई समस्याओं का समाधान ढूंढने तथा उपयुक्त उपाय सुझाने के लिए, उसे और अधिक जल्दी-जल्दी बैठकें करनी चाहिए, उतने दिनों बाद नहीं, जैसे कि राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकें होती हैं ।

6.3 इस संबंध में स्थिति संतोषजनक नहीं है । योजना आयोग का राज्य सरकारों से फिलहाल नियमित रूप से पर्याप्त सम्पर्क नहीं होता । वर्ष में एक बार सीमित रूप से ही संपर्क होता है, जहां योजना-आयोग राज्य सरकार के अधिकारियों के साथ राज्य की वार्षिक योजनाओं के संबंध में चर्चा करता है । इसमें भी अधिकतर निधि का आबंटन ही किया जाता है । योजना आयोग को राज्य सरकारों और भारत सरकार के मंत्रालयों से परामर्श करके प्रत्येक राज्य की विशिष्ट समस्याओं का पता लगाने और उनका समुचित समाधान ढूंढने तथा साधनों के आबंटन के मामले में पालिसी में आवश्यक अनुकूलन करने, राज्यों में केन्द्रीय परियोजनाओं की संस्वीकृति और विभिन्न मामलों, जिनमें केन्द्रीय उपक्रमों का कार्य करना भी शामिल है, में पिछड़े राज्यों को बेहतर साधन उपलब्ध कराने में अधिक रूचि दिखानी चाहिए । उन्हें विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्तर पर अनुमोदित लक्ष्यों की प्राप्ति के तरीके ढूंढने चाहिए ।

6.4 आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद के सचिवालय के रूप में कार्य करना चाहिए । इसमें सदस्यों के रूप में अधिक मंत्रियों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे इसकी तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकते और न ही आयोग को देश के विकास के लिए उपयुक्त नीतियां सुझा कर एक विशेषज्ञ के बतौर राय दे सकते हैं । आयोग का गठन उसी प्रकार जारी रह सकता है जैसा कि अब है, अर्थात प्रधान मंत्री (अध्यक्ष) वित्त मंत्री (उपाध्यक्ष) और एक या दो विशिष्ट व्यक्ति जिन्हें विकास के क्षेत्र में अनुभव हो, तथा राष्ट्रीय स्तर के कुछ विशेषज्ञ सदस्यों के रूप में हो । यह एक प्रमुख स्वतंत्र सलाहकार निकाय के रूप में होना चाहिए जो राजनैतिक या अन्य दबावों से मुक्त हो । योजना आयोग में राज्य के किसी प्रतिनिधि की नियुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

6.5 ऊपर 6.2 में दिए गये सुझाव से योजना आयोग को अधिक स्वायत्तता मिलेगी । एक केन्द्रीय विभाग होने के बजाय, जैसा कि फिलहाल है, यह राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन एक स्वतंत्र विशेषज्ञ निकाय होगा, जैसा कि पैरा 6.2 में कहा गया है । यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आयोग अपनी आवश्यकताओं के अनुसार कार्य कर सके और उसके पास अपेक्षित विशेषज्ञ हों । यह लम्बा समय लेने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरे बिना, जैसा कि एक सरकारी विभाग में आमतौर पर देखने को मिलता है, उपयुक्त कार्मिकों की तत्काल नियुक्ति करने की स्थिति में हो।

6.6 राज्य योजनाओं में राष्ट्र की प्राथमिकताओं को शामिल किया जाना नितान्त आवश्यक, है, अन्यथा सम्पूर्ण देश के विकास के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्राथमिकताओं या साधनों के आबंटन के संबंध में मतैक्य नहीं हो सकता । जब एक बार योजना आयोग राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को पहचान ले तो राज्य सरकारों को केन्द्रीय स्तर पर विहित कोई प्रणाली अपनाए बिना, उन प्राथमिकताओं के अन्दर ही अपनी स्थानीय स्थितियों और आवश्यकताओं के आधार पर परियोजनाएं और कार्यक्रम तैयार करने में स्वतंत्रता होनी चाहिए ।

यह आलोचना कि योजना आयोग राज्य के वित्त की जांच बहुत अधिक विस्तार से करता है, सही नहीं है । यह राज्य सरकार को वैध कार्य है । राज्यों की निधि के लिए अनिवार्य रूप से केन्द्र पर आश्रित रहना पड़ता है और जब तक योजना आयोग को प्रत्येक राज्य की वित्तीय स्थिति के संबंध में पूर्ण और विस्तृत जानकारी नहीं होगी, तब तक वह राज्य की आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझ नहीं सकता । वास्तव में समस्या यह है कि योजना आयोग को योजनाबद्ध विकास के लिए उपलब्ध केन्द्रीय साधनों, विभिन्न क्षेत्रों में उसके उपयोग और विभिन्न क्षेत्रों और राज्यों के बीच संसाधनों के आबंटन के ढंग के संबंध में कोई जानकारी नहीं होती, जोकि एक परिसंघीय व्यवस्था में नितांत आवश्यक है ।

6.7 फिलहाल केन्द्रीय सहायता वित्त मंत्रालय द्वारा, योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर दी जाती है । केन्द्रीय सहायता में इस आधार पर कटौती करने का कोई औचित्य नहीं कि किसी विशिष्ट क्षेत्र में कार्य-निष्पादन पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार नहीं हुआ । इसका अर्थ है वित्तीय रूप से कमजोर राज्यों को दंड देना । केन्द्रीय सहायता के फार्मूले (70 प्रतिशत कर्ज और 30 प्रतिशत अनुदान) से राज्यों का ऋण बोझ बढ़ गया है । वर्ष 1982-83 में बिहार की ऋणग्रस्तता बढ़कर 2195.48 करोड़ रुपए हो गई और ऋण की अदायगी और केन्द्र के प्रति ऋण-शोधन दायित्व के पश्चात केन्द्रीय सहायता में से बहुत कम राशि अधिशेष रह गई । वर्ष 1982-83 में 273.15 करोड़ रुपए की केन्द्रीय सहायता के मुकाबले में केन्द्र को कर्ज की चुनौती और उस पर ब्याज की राशि 188.97 करोड़ रुपए थी । राज्यों में वित्तीय असंतुलन का यह एक प्रमुख कारण है । इस फार्मूले को उदार बनाया जाना चाहिए, विशेषकर पिछले राज्यों के पक्ष में इसे उदार बनाने की जरूरत है ।

6.8 केन्द्रीय सहायता के आबंटन संबंधी गाडगिल फार्मूले और यहां तक कि संशोधित गाडगिल फार्मूले से बिहार को नुकसान हुआ है। संशोधित गाडगिल फार्मूले के अनुसार निम्नलिखित आधार पर सहायता का आबंटन अनुबद्ध किया गया है :—

जनसंख्या के आधार पर . . .	60 प्रतिशत
राष्ट्रीय औसत से कम प्रतिव्यक्ति आय . .	20 प्रतिशत
कर संबंधी प्रयास	10 प्रतिशत
विशेष समस्या	10 प्रतिशत

फार्मूले के अनुसार राज्यों द्वारा किए गये कर संबंधी प्रयासों के आधार पर निधि की 10 प्रतिशत राशि आबंटित की जायेगी । इस प्रकार, जिन राज्यों का वित्तीय ढांचा कमजोर है, उन्हें इस कारण वित्तीय रूप से नुकसान होगा । विशेष समस्याओं के आधार पर कुल मौजूदा राशि की 10 प्रतिशत राशि वितरित करने के मानदंड के कारण इस शीर्ष के अधीन निर्धारित राशि कुछ हद तक मनमाने ढंग से वितरित की जा सकती है । वर्ष 1979-83 में केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के राज्य क्षेत्र में अंतरण के कारण राज्यों को देय राशि के वितरण के सीमित प्रयोजन से प्रयुक्त आई ए टी पी फार्मूला बिहार के लिए फायदेमंद था । यह फार्मूला जिसके अंतर्गत सहायता का वितरण जनसंख्या और प्रति व्यक्ति आय के आधार पर किया जाता है, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों के लिए अधिक उपयुक्त होगा । राज्य का अनुरोध है कि संशोधित गाडगिल फार्मूले के स्थान पर आई ए टी पी फार्मूला अपनाया जाये । इसके विकल्प में राज्य सरकार का सुझाव है कि केन्द्रीय सहायता का वितरण निम्नलिखित सरल और सीधे फार्मूले से किया जाये :—

जनसंख्या . .	60 प्रतिशत
पिछड़ापन	40 प्रतिशत

(गरीबी की रेखा से नीचे व्यक्तियों की संख्या अथवा राज्य घरेलू उत्पाद का राष्ट्रीय औसत से कम होना, दोनों में से जो भी स्वीकार्य हो ।)

6.9 जैसा कि ऊपर कहा गया है, केन्द्रीय सहायता के आबंटन के मौजूदा मानदंड से पिछड़े राज्यों को नुकसान है । ये राज्य जिनका वित्तीय ढांचा कमजोर है, अपनी विकास योजनाओं के वित्त-प्रबंध के लिए पर्याप्त साधन जुटाने में असमर्थ हैं । अतः उनके लिए केन्द्रीय सरकार से संसाधनों के अंतरण पर निर्भर करना जरूरी हो जाता है। किन्तु केन्द्र सरकार सापेक्ष पिछड़ेपन के आधार पर केन्द्रीय सहायता आबंटन करने के बजाय निर्धारित फार्मूले के आधार पर सहायता का वितरण करती रही है, जिससे मौजूदा असमानताएं और बढ़ गई हैं । इस प्रकार निधियों के आबंटन की इस प्रणाली से क्षेत्रीय असंतुलन दूर नहीं हो पाया है बल्कि क्षेत्रीय असमानताएं बढ़ी ही हैं जो कि इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि बिहार और सम्पूर्ण देश की प्रतिव्यक्ति आय में अंतर वर्ष 1972-73 में केवल 32.7 प्रतिशत था जो बढ़कर वर्ष 1981-82 में 43 प्रतिशत हो गया । अन्य राज्यों की तुलना में बिहार

की स्थिति, विभिन्न सामाजिक-आर्थिक विकासकारकों की दृष्टि से काफी असंतोषजनक है, जैसाकि संलग्न सारणी से स्पष्ट होगा । राज्य की इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि बाद की पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान राज्य का प्रति व्यक्ति योजना परिव्यय देश भर में सबसे कम रहा है ।

(ग) जनजातीय उपयोजना, जिसका राज्य में कार्यान्वयन हो रहा है, के लिए निधि राज्य योजना में से उपलब्ध कराई जाती है । इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार उपयोजना के लिए विशेष सहायता की मंजूरी देती है । राज्य योजना में से उप-योजना के लिए निधि उदिष्ट करने की प्रणाली से, जनजातीय विकास के लिए निधियों का पर्याप्त आबंटन सुनिश्चित हो गया है । इसलिए यह प्रणाली जारी रहनी चाहिए ।

6.10 यह सही है कि राज्य सरकार बिना किसी छानबीन के केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों को हाथ में सिर्फ इसलिए ले लेती है ताकि उन्हें केन्द्र द्वारा दी गई निधि उसी प्रयोजन के इस्तेमाल में आ सके जिसके लिए वह दी गई है । कई बार भारत सरकार के मंत्रालयों की ओर से इन स्कीमों को हाथ में लेने के लिए दबाव भी डाला जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि राज्य-क्षेत्र में प्राथमिकताएं सही क्रम में नहीं रह पातीं और इन स्कीमों को हाथ में लेना पड़ता है हालांकि सरकार स्थानीय स्थिति को देखते हुए इन्हें उच्च प्राथमिकता की स्कीमें नहीं समझती । एक बात और भी अधिक आपत्तिजनक है वह यह है कि अक्सर मंत्री अचानक कुछ स्कीमों को बन्द करने का निर्णय ले लेते हैं जिससे संसाधनों की दृष्टि से राज्यों के लिए समस्या पैदा हो जाती है । इन स्कीमों के अधीन नियुक्त स्थापनाएं एक प्रकार से स्थायी दायित्व हो जाती है । अतः यह वांछनीय है कि ऐसी स्कीमों को तभी हाथ में लिया जाये जब ऐसा करना नितांत आवश्यक हो और वह भी राज्य सरकारों से पहले और पूरे-पूरे परामर्श के बाद । इन स्कीमों के अधीन नये-पदों के सृजन का उपबंध संबंधित राज्यों की आवश्यकताओं को देखते हुए और उनके द्वारा नए पदों के सृजन के संबंध में निर्धारित मानदंडों और मानकों का अनुपालन करते हुए ही किया जाये ।

6.11 बिहार में अब तक स्थापित प्रबोधन और मूल्यांकन करने वाला तंत्र काफी अपर्याप्त है । अधिकांश विभागों में मानीटरन की सही व्यवस्था नहीं है, हालांकि कुछ विभागों जैसे कि सिंचाई विभाग आदि में बनाए गये प्रबोधन कक्षों (सैल) ने काफी अच्छा कार्य किया है । पदों के सृजन/पुनर्समायोजन द्वारा ऐसे कक्ष सभी विभागों में बनाए जाने अभी बाकी है । इन कक्षों में व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त होने चाहिए । परियोजना और जिला स्तरों पर भी प्रबोधन (मानीटरन) सैल बनाए जाने चाहिए, ताकि परियोजनाओं और कार्यक्रमों का प्रबोधन (मानीटरन) क्षेत्रीय स्तर से ही आरंभ किया जा सके । योजना और विकास विभाग में सबसे ऊपर एक पूर्णतः सज्जित प्रबोधन (मानीटरन) कक्ष स्थापित करने की आवश्यकता है जो विभिन्न विभागों में स्थापित प्रबोधन कक्षों का मार्गदर्शन करने के के अलावा उनके द्वारा किए गये कार्यों में समन्वय कर सके और उसकी समीक्षा कर सके और स्वयं महत्वपूर्ण परियोजनाओं/कार्यक्रमों का प्रबोधन कर सके । जहां तक मूल्यांकन का संबंध है, यह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसकी ओर राज्य स्तर पर बहुत कम ध्यान दिया गया है । इस स्थिति में सुधार के लिये उपाय किये जा रहे हैं ।

6.12 हमारे देश में आयोजना का कार्य कुल मिला कर अत्यन्त केन्द्रीकृत किया हुआ कार्य है जिसमें पहल करने और निदेश देने का अधिकांश कार्य केन्द्रीय सरकार करती है । यद्यपि वर्तमान केन्द्रीकृत आयोजना की व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश ने काफी प्रगति की है फिर भी इससे गंभीर क्षेत्रीय असमानताएं उत्पन्न हुई है । इसलिये यह उपयुक्त अवसर है कि आयोजना के कार्य का राज्य स्तर और जिला स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया जाए । विकेन्द्रीकृत आयोजना पद्धति के दो मुख्य लाभ हैं । पहला यह कि जिस क्षेत्र का विकास किया जाना है, उस क्षेत्र से निकट होने के कारण आयोजना के दौरान स्थानीय समस्याओं, संसाधनों की उपलब्धता और लोगों को मालूम की गई आवश्यकताओं को और अधिक गहराई से समझा जा सकेगा, जिससे व्यावहारिक तथा सार्थक योजनाओं के निर्माण में सहायता मिल सकेगी । दूसरा लाभ यह होगा कि इससे आयोजना – प्रक्रिया में और अधिक मात्रा में जन-सहयोग प्राप्त किया जा सकेगा, जिससे जनता की और अधिक प्रतिक्रिया सुनिश्चित हो सकेगी । इस प्रयोजन के लिये, केन्द्रीय योजना को केवल निर्देशात्मक होना चाहिए । योजना आयोग को राष्ट्रीय नीति और प्राथमिकताओं का निर्धारण करना चाहिए और राज्यों को इस बात के लिये स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये कि वे राष्ट्रीय नीति और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए स्थानीय आवश्यकताओं और सम्भावनाओं के आधार पर अपने क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाएं बनाएं ।

राज्य योजना विभाग को योजनागत परियोजनाओं/कार्यक्रमों के अनुमोदन के अतिरिक्त प्राथमिकताओं के निर्धारण और संसाधनों के आबंटन की जिम्मेदारी सौंपी गई है । योजना विभाग इस जिम्मेदारी को कुछ हद तक पूरा कर पाया है । तथापि योजना विभाग को परियोजना/कार्यक्रम के मूल्यांकन, योजना के प्रबोधन (मॉनीटर) और उसके कार्यान्वियन जैसे क्षेत्रों में इसकी क्षमता में वृद्धि करने के लिए अभी पूरी-पूरी संख्या में कर्मचारी रखने की आवश्यकता है । एक मजबूत और सक्षम योजना विभाग कितनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है, इस विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करनी होगी । योजना विभाग के कार्मिक को भी प्रशिक्षित करना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त राज्य योजना बोर्ड और राज्य योजना विभाग के बीच परस्पर क्रियाएं बहुत कम हैं और इसमें कुछ संगठनात्मक सुधार, करने की आवश्यकता है । राज्य योजना बोर्ड को तकनीकी विशेषज्ञता प्राप्त कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने की भी आवश्यकता है ।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 और 7.2 यह सच है कि अधिकांश उद्योग आई॰डी॰आर॰अधिनियम की प्रथम अनुसूची में इन मदों के शामिल होने के कारण आई॰डी॰आर॰ अधिनियम के अधीन जारी किए गए लाइसेंस के अन्तर्गत आते हैं । यह प्रक्रिया प्रथम अनुसूची में सम्मिलित केवल कुछ ही उद्योगों से प्रारंभ की गई थी, किन्तु बाद में समय-समय पर इस सूची में और भी बहुत-से उद्योग शामिल कर लिए गए, जिसका परिणाम यह हुआ कि इसके अन्तर्गत ऐसे उद्योग भी आ गए जो वास्तव में अत्यधिक लोकहित अथवा राष्ट्रीय महत्व के नहीं हैं ।

बहुत-से उद्योग इस सूची में शायद यह सुनिश्चित करने के लिए जोड़ दिए गए है कि उनके क्षेत्रों में अधिक्षमता (ओवर कैपेसिटी) न हो । तथापि अधिक्षमता का प्रबोधन (मानीटरन) हमेशा कारगर सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि कुछ क्षेत्रों में आशय-पत्र प्रदान किए जाने के बाद भी अधिक्षमता देखी गई है । वास्तव में इस समय किसी विशेष क्षेत्र में मांग और पूर्ति की स्थिति की तीन स्तरों पर जांच की जा रही है : अर्थात् (i) उद्यमकर्ता द्वारा परियोजनाओं के निर्माण के समय, (ii) आशय-पत्र जारी करने के समय, (iii) वित्तीय संस्थाओं द्वारा मियादी कर्ज की मंजूरी के समय । किसी क्षेत्र विशेष में मांग और पूर्ति की स्थिति की जांच के संबंध में उद्यमकर्ता और वित्तीय संस्थाओं पर विश्वास करना उपयोगी हो सकता है । इसलिए इस पहलू के प्रबोधन के लिए साधन के रूप में, लाइसेंस देने से बचा जा सकता है ।

प्रथम अनुसूची की मदें उन्हीं मदों तक सीमित रहनी चाहिए जो लोक-हित और राष्ट्र की दृष्टि से महत्व की हैं । इनमें रक्षा क्षेत्र और अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे–इस्पात, उर्वरक, पेट्रोलियम, परमाणवीय ऊर्जा, वायुयान, बिजली की भारी मशीनों आदि के उद्योग शामिल हो सकते है । इस अनुसूची में दियासलाई, साबुन, रेजर ब्लेड, पेंट, वार्निश, स्टील फर्नीचर, मिट्टी के बर्तन आदि जैसी मदों को सम्मिलित करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

यह बता पाना मुश्किल हो सकता है कि लोक-हित और राष्ट्रीय महत्व क्या है। इसके लिए कुछ मानदंड व्यवहार के माध्यम से विकसित किए जा सकते हैं। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के बीच तथा केन्द्रीय सरकार और उद्योग संगठनों के बीच प्रथम अनुसूची में प्रविष्ट मदों की उपयुक्तता के बारे में समय-समय पर विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकता है।

7.3 औद्योगिक लाइसेंस प्रदान करने और पूंजीनिर्गमो, पूंजीगत माल और कच्चे माल के आयात के लिए विभिन्न अनुमति देने तथा विदेशी सहयोग की वर्तमान प्रक्रिया के बारे में निर्णय सामान्यतः केन्द्रीय सरकार के स्तर पर अन्तरमंत्रालय समितियों द्वारा लिया जाता है। स्वयं मंत्रालयों को भी कुछ सीमा तक शक्तियां प्रत्यायोजित करने के बारे में विचार किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को इस प्रकार और भी आसान बनाया जा सकता है कि प्रशासनिक मंत्रालयों के वरिष्ठ अधिकारी की राजधानियों का दौरा करें और राज्य सरकार के अधिकारियों की सहायता एवं सहयोग से एक निश्चित प्रत्यायोजित सीमा में मामलों के बारे में निर्णय करें।

7.4 राज्य सरकार छोटे पैमाने के उद्योगों को कच्चे माल की सहायता और विपणन सहायता प्रदान करने का प्रयास कर रही है। तथापि यह व्यवस्था बहुत कारगर नहीं हो पाई है क्योंकि कच्चे माल और विपणन से संबंधित मुद्दे वास्तव में विभिन्न स्वरूप के हैं। सरकार द्वारा कच्चे माल की पूर्ति और विपणन की सुविधा प्रदान करने—दोनों हो मामलों में समुचित मात्रा में व्यय करके और पर्याप्त वित्तीय जोखिम उठाकर सरकार द्वारा सीधा हस्तक्षेप किया जा सकता है तथापि आधारिक-संरचना संबंधी सहायता कच्चे माल की उपलब्धता, उनकी कीमतों और विनिर्देशों से संबंधित सूचना एकत्र करके और उसका प्रचार-प्रसार करके तथा विपणन से संबंधित सूचना एकत्र करके और उसका प्रचार-प्रसार करके प्रदान की जा सकती हैं। प्रत्येक छोटे यूनिट खास तौर से ग्रामीण कारीगरों से संबंधित यूनिट के लिए, सरकारी एजेंसियों द्वारा कच्चे माल की पूर्ति और उत्पादों की खरीद और बिक्री से संबंधित प्रत्यक्ष भूमिका बहुत-से मामलों में आवश्यक और उपयोगी हो सकती है।

7.5. राष्ट्रीय औद्योगिक वित्तीय संस्थाएं उद्योगपतियों को मियादी ऋण प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती आ रही हैं। फिर भी यह देखा गया है कि कुछ पिछड़े राज्यों, विशेष रूप से बिहार का हिस्सा, इन संस्थाओं के सम्पूर्ण वित्त-पोषण में बहुत थोड़ा अर्थात् साधारणतः दो से तीन प्रतिशत तक रहा है। इन संस्थाओं की विचार की दिशा में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिससे उनकी भूमिका प्रोत्साहन देने वाली हो सके। इसकी आवश्यकता विशेष रूप से पिछड़े क्षेत्रों में है। निस्संदेह इसमें कुछ वित्तीय जोखिम भी हैं। इसलिए इन संस्थाओं के कार्य-निष्पादन, विशेष रूप से पिछड़े क्षेत्रों में निवेश से संबंधित निष्पादन के बारे में निर्णय लेते समय कुछ लचीलापन और ढील होनी चाहिए जिससे इन संस्थाओं को पुराने रूढ़िवादी साहूकारों के पारम्परिक रास्ते पर न चलना पड़े।

7.6 और 7.7 सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजनाओं का स्थान और भारी उद्योगों में किया जाने वाला निवेश मूल रूप से तकनीकी और आर्थिक व्यवहार्यता के मानदण्डों के अनुसार होने चाहिए। फिर भी पिछड़े क्षेत्रों के विकास में गति लाने की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए। परिवहन से संबंधित प्रतिबंध और हमारी परिवहन व्यवस्था पर भार को ध्यान में रखते हुए, यह अपेक्षाकृत अधिक विवेकपूर्ण होगा कि बड़े उद्योगों को मूल कच्चे माल के स्थल के समीप स्थापित किया जाए।

राज्यों के मन से संदेह दूर करने के लिए, केन्द्र स्थानीय विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए उन्हें इन परियोजनाओं के बारे में व्यवहार्यता संबंधी अध्ययन का सार उपलब्ध करा सकता है। केन्द्र को भी इन विषयों पर राज्यों के साथ विचार-विमर्श किए जाने का स्वागत करना चाहिए। किन्तु अंतिम निर्णय तकनीकी और आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्यता तथा पिछड़े क्षेत्रों में विकास के अवसर प्रदान करने की आवश्यकता के आधार पर लिया जाना चाहिए।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, अपने परिवहन पर पड़ने वाले भार और अवसरंचना को ध्यान में रखते हुए भारी यूनिटों को मूल कच्चे माल के स्थल के यथासंभव निकट स्थापित करना चाहिये।

7.8 पिछड़े जिलों को प्रोत्साहन प्रदान करना उपयोगी सिद्ध हुआ है। पिछड़े जिलों के चयन से संबंधित मामलों के बारे में कभी-कभी यह देखा गया है कि किसी क्षेत्र में कुछ बहुत पुराने औद्योगिक यूनिटों के होने मात्र से वह क्षेत्र "उद्योग रहित जिला" में शामिल नहीं होता भले ही वहां इन बहुत पुराने यूनिटों के अतिरिक्त कोई विशेष औद्योगिक गतिविधि न रही हो। यदि ये क्षेत्र अन्यथा औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हो तो इन्हें अधिकतम सुविधाएं देने से इनकार नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में बिहार राज्य में केवल कुछ औद्योगिक केन्द्रों जैसे जमशेदपुर, बोकारो, रांची, बरौनी आदि को छोड़कर लगभग संपूर्ण क्षेत्र पिछड़े क्षेत्रों के लिए निर्धारित अधिकतम सुविधाएं पाने योग्य है।

पिछड़े क्षेत्रों में निवेश के लिए प्रोत्साहन देने के साथ-साथ सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात इन क्षेत्रों में आधारिक संरचना का विकास करना है। इसलिए उद्योगों के लिए निर्धारित निधि का एक ऐसा भाग राज्य योजना के अधीन राज्य को आबंटित किया जाना चाहिए जो विनिर्दिष्ट रूप से औद्योगिक आधारिक संरचना के विकास के लिए ही अभिप्रेत हो। उद्योग रहित जिलों में प्रगति केन्द्रों के लिए विशेष आधारिक संरचना वाली परियोजनाएं बनाने की वर्तमान प्रक्रिया बहुत कारगर नहीं हो सकती। आवश्यकता इस बात की है कि राज्य योजना में इस प्रयोजन के लिए विशेष आबंटन किया जाए और औद्योगिक आधारिक संरचना का विकास राज्य की वार्षिक योजना और पंचवर्षीय योजना का एक अभिन्न अंग हो।

उद्योगों से संबंधित प्रश्नों के उत्तर:

7.9 सप्तम अनुसूची की प्रथम सूची की प्रविष्टि संख्या 52 के अनुसार, यदि लोक-हित में ऐसा करना उचित समझा जाए, तो संसद् कुछ उद्योगों के बारे में कानून बना सकती है। देश की विविधता और विभिन्न राज्यों के विकास स्तर को ध्यान में रखते हुए यह मानना पड़ेगा कि यह एक स्वस्थ व्यवस्था है। शुरू में आई०डी०आर० अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची में केवल ऐसे कुछ उद्योग शामिल किये गये थे, जो अत्यधिक लोक महत्व के थे, किन्तु बाद के वर्षों में संशोधनों के माध्यम से बहुत-से ऐसे उद्योग अनुसूची में शामिल कर लिये गये हैं जो प्रथम दृष्टया इतने महत्वपूर्ण नही दिखाई देते कि उन्हें अनुसूची में शामिल किया जाए और इसकी एक दृष्टांत सहित सूची प्रश्न में ही दी गई है तथापि, यह कहना बिल्कुल सही नही होगा कि मात्र इस कारण से कि कुछ ऐसे उद्योग भी शामिल कर लिए गए हैं जो बहुत महत्वपूर्ण नहीं है, "उद्योग" संघ के विषयों के अंतर्गत अंतरित कर दिए गए हैं। आई०डी०आर० अधिनियम का उपबंध मूल रूप से कुछ परिस्थितियों में लाइसेंस और नियंत्रण से संबंधित है और यह नहीं कहा जा सकता कि इनका प्रयोग राज्य के हित के लिए हानिकर रहा है। छोटे उद्यमकर्ताओं और कारीगरों आदि की क्षमता, रचना, सुरक्षा, हित आदि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। यह पहलू भी ध्यान में रखना होगा।

हमें ऐसा प्रतीत होता है कि एक विशेषज्ञ समिति सभी संगत बातों का ध्यान में रखते हुए, अनुसूची में उल्लिखित उद्योगों की इस दृष्टि से जांच कर सकती है कि क्या उसमें कुछ ऐसे उद्योग हैं जिन्हें उसमें रखे जाने की आवश्यकता नहीं है।

7.10 "राष्ट्रीय लोक-हित" क्या है, इसकी सुस्पष्ट परिभाषा करना अथवा वर्णन करना कठिन होगा। किसी विकासशील समाज में परिस्थिति की मांगे बदलती रहती हैं और इसलिए लोक-हित भी विकसित होता रहता है। तथापि, राष्ट्रीय अथवा लोकहित की कुछ बातें आसानी से देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, रक्षा; सिविल विमानन, औषधि और भेषज, तेल की खोज और पेट्रोलियम उत्पादों तथा परमाणवीय शक्ति से संबंधित उद्योग स्पष्टतः अत्यधिक राष्ट्रीय महत्व के हैं। इसी प्रकार, जो उद्योग समाज के एक बड़े भाग पर प्रभाव डालते हैं अथवा जो सुविधाओं से वंचित वर्गों अथवा पिछड़े क्षेत्रों के लाभ के लिए हैं अथवा जो पर्यावरण नियंत्रण के लिए हैं वे लोक-हित में हैं। इस प्रकार से, आगे भी ऐसे उद्योगों की गिनती की जा सकती है, किन्तु इस विषय पर कोई निश्चित अथवा स्थिर सूची बनाना कठिन होगा। इसमें परिस्थिति के आधार पर समय-समय पर परिवर्तन होना आवश्यक है।

जहां तक कुछ मदों को अधिनियम की अनुसूची से हटाने का संबंध है हमने ऊपर यह सुझाव दिया है कि एक विशेषज्ञ समिति इस विषय पर विचार कर सकती है।

7.11 औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों को जिस बात से हानि पहुंचती है वह लाइसेंसों की मंजूरी में निर्धारित उत्पादकों के कारण नहीं है। वास्तव में, उन्हें वैसा लाइसेंस प्राप्त नहीं होता जैसा वे चाहते हैं। औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्य कई प्रकार से असमर्थ हैं। उनमें से अधिकांश को सूचना की कमी का सामना करना पड़ रहा है। जिस समय ये राज्य किसी विशेष मद के लाइसेंस के लिए आवेदन करते हैं उस समय तक विकसित राज्यों को बड़ी संख्या में पहले ही लाइसेंस प्रदान किए जा चुके होते हैं और चूंकि निर्धारित क्षमता तक लाइसेंस पहले ही दिए जा चुके होते हैं इसलिए कुछ राज्यों से प्राप्त लाइसेंस के आवेदन अस्वीकृत कर दिए जाते हैं। अतः लाइसेंस प्रदान करने में, औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों के हितों की सम्यक् सुरक्षा की जानी चाहिए तथा इन राज्यों में उपयुक्त अनुपात में वांछित क्षमता का सृजन किया जाना चाहिए। क्षमता का निर्धारण किसी ऐसे समूह द्वारा किया जाता है जिसमें ऐसे राज्यों का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं होता। क्षमता के संबंध में सूचना की कमी का यह भी एक कारण है। किसी क्षेत्र विशेष में क्षमता निर्धारित होते ही, निर्धारित क्षमता को सरकार तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा तत्काल प्रकाशित किया जाना चाहिए। उसके संबंध में सूचना राज्य सरकार तथा राज्य स्तर की वित्तीय संस्थाओं को तत्काल दी जानी चाहिए। स्थानीय रूप से लाइसेंस की मांग किए जाने पर इस आधार पर लाइसेंस देने से अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए कि किसी दूसरे राज्य में पहले से ही क्षमता का सृजन कर लिया गया है। वास्तव में इसके लिए निरंतर समीक्षा की आवश्यकता होगी तथा इस प्रकार की समीक्षा में राज्यों का भाग लेना अनिवार्य होगा।

जहां तक कच्चे माल अथवा पूंजीगत माल के आयात का संबंध है, आयात नीति की उदारता के कारण, कुछ मदें अब खुले सामान्य लाइसेंस के अंतर्गत शामिल हो गई हैं। बिहार जैसे राज्य इसका भी समुचित लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि स्थानीय कार्यालय की शक्तियां बहुत सीमित होती हैं और अधिकांश बातें राज्य के बाहर क्षेत्रीय कार्यालय को निर्णय के लिए भेज दी जाती हैं। इन पहलुओं पर समुचित ध्यान देना होगा। एक ऐसा फोरम होना चाहिए जिसमें राज्य का प्रतिनिधित्व हो और उसमें केन्द्रीय स्तर पर मामले की नियमित रूप से समीक्षा की जाए ताकि समस्याओं के बारे में जानकारी मिल सके और उनका हल ढूंढा जा सके और यदि इसमें कोई विकृति हो तो उसे सुधारा जा सके।

औद्योगिक लाइसेंस प्रदान करने और पूंजी निर्गम, पूंजीगत माल और कच्चे माल के आयात के लिए विभिन्न अनुमति प्रदान करने तथा विदेशी सहयोग के संबंध में अपनाई जाने वाली वर्तमान प्रक्रिया का निर्णय सामान्यतः केन्द्रीय सरकार के स्तर पर अन्तर मंत्रालय समिति द्वारा किया जाता है। स्वयं मंत्रालयों को कुछ सीमा तक शक्तियों का प्रत्यायोजन करने पर विचार किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को इस रूप में आगे और भी आसान बनाया जा सकता है कि प्रशासनिक मंत्रालयों के वरिष्ठ अधिकारी राज्यों की राजधानियों का दौरा करें और एक निश्चित प्रत्यायोजित शक्ति-सीमा में, राज्य सरकार के अधिकारियों की सहायता और सहयोग से मामलों का निर्णय करें। लाइसेंस प्रदान करने के लिए एक समुचित समय-सीमा निर्धारित की जा सकती है।

जहां तक मध्यम श्रेणी के उद्योगों का संबंध है, वित्तीय संस्थाओं को ऋण ईक्विटी अनुपात, प्रवर्तकों के अंशदान आदि के मामले में उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक में हाल ही में ऋण ईक्विटी अनुपात को 2 : 1 से घटाकर 1.5 : 1 कर दिया है और प्रवर्तक के अंशदान में 2.5% की वृद्धि कर दी है। यह आवश्यक है कि छोटे तथा मध्यम श्रेणी के उद्योगों को खासतौर से पिछड़े क्षेत्रों के उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाए, जहां वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया गया निवेश पहले से ही कम है।

7.12 हमारे छोटे उद्योग कच्चे माल और विपणन की सुविधाओं की कमी से पीड़ित होते रहते हैं। हम अभी तक अपने आप को इस रूप में सुसंगठित नहीं कर सके हैं कि उन्हें सहायता प्रदान कर सकें। इसका मुख्य कारण वित्त संबंधी कठिनाई है।

राज्य सरकार छोटे पैमाने के उद्योगों की कच्चे माल की सहायता और विपणन सहायता उपलब्ध कराने का प्रयास कर रही है। तथापि, यह कोशिश बहुत सफल नहीं हुई है क्योंकि कच्चा माल और विपणन के मुद्दे वास्तव में विविध स्वरूप के हैं। सरकार द्वारा कच्चे माल की पूर्ति और विपणन की सुविधा प्रदान करने, दोनों ही मामलों में समुचित मात्रा में व्यय करके और यथोचित वित्तीय जोखिम उठाकर सीधा हस्तक्षेप किया जा सकता है। तथापि कच्चे माल की उपलब्धता उनकी कीमतों और विनिर्देशों से संबंधित सूचना एकत्र करके और उसका प्रचार-प्रसार करके तथा विपणन से संबंधित सूचना भी एकत्र करके तथा उसका प्रचार प्रसार करके, आधारित-संरचना संबंधी सहायता प्रदान की जा सकती है। प्रत्येक छोटे यूनिट खासतौर से ग्रामीण कारीगरों से संबंधित यूनिटों के लिए, सरकारी एजेंसियों द्वारा कच्चे माल की पूर्ति और उत्पादों की खरीद और बिक्री से संबंधित प्रत्यक्ष भूमिका बहुत से मामलों में आवश्यक और उपयोगी हो सकती है।

इसके लिए यह आवश्यक है कि कच्चे माल से संबंधित निगम के वित्तीय आधार को मजबूत किया जाए। इसमें संदेह नहीं कि केन्द्रीय सरकार इस्पात के मामले में प्रति मीटरी टन 300/- रुपए की छूट देती है, परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। राज्य में छोटे पैमाने के उद्योगों से संबंधित एक निगम है। केन्द्रीय सरकार के उपक्रम विपणन के मामले में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तथापि, इस संदर्भ में उनकी प्रतिक्रिया बहुत ही निराशाजनक है। यद्यपि, कीमत वरीयता प्रदान करने के संदर्भ में लोक उद्यम ब्यूरो द्वारा मार्ग निर्देश जारी किए गए हैं किन्तु उनका कार्यान्वयन नहीं हो रहा है। कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में विपणन से संबंधित केन्द्रीय सरकार के संगठन को भी और बड़ी भूमिका निभानी होगी।

7.13 अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं का दृष्टिकोण सामान्यतः सहानुभूति पूर्ण है। तथापि, उनका निवेश बहुत कम है उसका मुख्य कारण राज्य में अवशोषण क्षमता की कमी का होना है। फिर भी, बैंकों की प्रतिक्रिया बहुत निराशाजनक है और छोटे पैमाने के उद्योगों को बैंकों से कार्यचालन पूंजी प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुल मिलाकर, यह बात अन्य उद्योगों के मामले में भी सही है।

7.14 सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रमों की स्थापना समग्र राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए मुख्य रूप से तकनीकी एवं आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर करनी होती है। यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि ऐसे सभी मामलों पर राज्य के साथ हर समय विचार-विमर्श किया जाए। तथापि, यह आवश्यक है कि औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्रों को केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रमों की स्थापना में वरीयता प्रदान की जाए। बरौनी स्थित तेल शोधक कारखाना सबसे पुराने कारखानों में से एक है। इसलिए बरौनी में पैट्रो-रसायन काम्प्लैक्स की स्थापना की जानी चाहिए। किन्तु, राज्य सरकार की संपूर्ण कोशिशों के बावजूद पैट्रो-रसायन काम्प्लैक्स बिहार के बाहर स्थापित किया जा रहा है। इसी प्रकार, बिहार में बहुत बड़ा कोयला क्षेत्र है। इसलिए छोटा नागपुर क्षेत्र में कोयले पर आधारित बड़े पैमाने का उर्वरक और रसायन उद्योग स्थापित किया जा सकता है। किन्तु बिहार राज्य के हित की उपेक्षा करते हुए, उर्वरक संयंत्र उड़ीसा और आंध्र प्रदेश जैसे दूसरे राज्यों में स्थापित किए गए हैं। इस राज्य में रोहतास जिले के अमझोर नामक एक स्थान पर पाइराइट-अयस्क (ओर) का विशाल आरक्षित भंडार भी है। इसलिए पाइराइट पर आधारित एक उर्वरक संयंत्र और एक सल्फ्यूरिक एसिड संयंत्र बिहार में स्थापित किया जा सकता है। इस संबंध में प्रस्ताव भारत सरकार को प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उसका कोई अनुकूल उत्तर नहीं प्राप्त हुआ है।

इस संबंध में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि बिहार, असम, उड़ीसा जैसे पिछड़े राज्यों में केन्द्र का निवेश और बड़े पैमाने पर होना चाहिए जिससे ये विकसित राज्यों की बराबरी में आ सकें और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में समग्र रूप से वृद्धि हो सके। इस तथ्य की ओर विशेष ध्यान देना होगा कि बिहार में कोयला, अभ्रक, कच्चा लोहा, चूना-पत्थर, और वन उत्पादों जैसा आधारभूत कच्चा माल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है और इस राज्य को ऐसे उद्योगों की स्थापना के लिए शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बाद एक भी सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रम की बिहार में स्थापना नहीं हुई है।

7.15 जैसा कि पैरा 7.6 में स्पष्ट किया गया है, केन्द्रीय सरकार द्वारा किए जाने वाले निवेश के लिए तकनीकी और आर्थिक घटकों को ध्यान में रखना चाहिए। अन्य बातें जो ध्यान में रखने के योग्य हैं वे हैं—राज्य का पिछड़ापन और क्षेत्रीय असंतुलन आदि। इस दृष्टिकोण से बिहार राज्य काफी नुकसान में रहा है।

7.16 केन्द्रीय सरकार से सहायता और वित्तीय संस्थाओं से रियायती वित्त प्राप्त करने के प्रयोजन से, जिलों को "क", "ख" और "ग" में श्रेणीबद्ध किया गया है और इन तीनों श्रेणियों के लिए केन्द्रीय सहायता की विभिन्न दरें निर्धारित की गई हैं। यह श्रेणीकरण वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए, बिहार में चीनी उद्योग की स्थापना 1920 में हुई और विशेष जिलों में बहुत सी मिलें शुरू की गई। उनमें से बहुत-सी बीमार हैं और कुछ बंद भी हो गई हैं। इसी प्रकार, चावल-मिलें कुछ जिलों में बहुत पहले आरंभ हुई थीं. आज उनमें से अधिकांश बंद हो गई हैं। इस समय यदि इन उद्योगों में किए गए निवेशों के आधार पर इन जिलों को उच्चतर दर पर केंद्रिय सहायता प्राप्त करने के लिए अयोग्य करार दे दिया जाता है तो यह इन क्षेत्रों में उद्योगों के विकास के लिए हानिकर होगा। इसके लिए निवेश ही एकमात्र कसौटी नहीं होनी चाहिए। इस संबंध में इन बातों पर भी विचार करना होगा कि क्या उद्योग सुचारू रूप से चल रहे हैं, क्या उनसे लोगों को रोजगार मिल रहा है और क्या उनसे आय हो रही है। इन बातों के अभाव में, निवेश की कसौटी युक्ति-युक्त नहीं होगी।

बिहार राज्य की कुछ विशेष प्रकार की समस्याएं हैं और उन्हें समझना होगा। पिछड़े क्षेत्रों के विकास से संबंधित राष्ट्रीय समिति द्वारा चिरकाल से बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों के विकास के बारे में दी गई रिपोर्ट में उल्लिखित मापदण्ड के अनुसार लगभग सम्पूर्ण उत्तरी बिहार चिरकाल से बाढ़-पीड़ित है। इन क्षेत्रों में हर साल बाढ़ आती है, और इससे औद्योगिक विकास को आधारिक संरचना का ढांचा बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाता है। सड़कें, पुल, टेलीफोन और तार के खम्भे हर साल गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इसलिये इन क्षेत्रों के साथ भिन्न स्तर का बर्ताव किया जाना चाहिये जैसा कि पर्वतीय क्षेत्रों के बारे में किया जाता है और इन क्षेत्रों में आधारिक संरचना के विकास के लिये अधिक मात्रा में केन्द्रीय सहायता उपलब्ध होनी चाहिये।

यह सर्वाधिक उपयुक्त अवसर है जब किसी विकसित राज्य के पिछड़े क्षेत्र और औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्य के पिछड़े क्षेत्र में अन्तर सुस्पष्ट किया जाना चाहियें। ऐतिहासिक कारणों और शताब्दियों से व्याप्त सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के कारण, पिछड़े राज्यों के लोकाचार विकसित राज्य के लोकाचार से भिन्न होते हैं। एक ही मात्रा में दी गई सहायता से विकसित राज्य के किसी पिछड़े जिले को पिछड़े राज्य के किसी पिछड़े जिले की अपेक्षा विकास के लिये अधिक प्रोत्साहन प्राप्त होता है। इसलिये पिछड़े राज्य के किसी पिछड़े क्षेत्र को प्रदान की जाने वाली सहायता की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिये और किसी विकसित राज्य के किसी पिछड़े जिले को प्रदान की जाने वाली सहायता से उचित रूप से अधिक होनी चाहिये।

जैसा कि पिछड़े क्षेत्रों के विकास से संबंधित राष्ट्रीय समिति ने सुझाव दिया है, विकास केन्द्र विकसित किया जाना चाहिए। किन्तु उन्हें "क" श्रेणी के जिलों तक सीमित नहीं रहना चाहिए। राज्य सरकार को इस बात की छूट होनी चाहिये कि वह बिना इस बात पर विचार किए कि वह जिला किस श्रेणी में आता है, किसी भी पिछड़े जिले में ऐसे विकास केन्द्रों का चुनाव कर सके। इसका कारण यह है कि यदि किसी ऐसे क्षेत्र को जहां आधारिक संरचना संबंधी कुछ सुविधाएं पहले से ही प्रदान की गई हैं अथवा जहां कुछ अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं, उन को सहायता प्रदान की जाती हैं तो यह और भी द्रुत गति से विकास करेगा और इसका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होगा। इससे राज्य के और भी तेजी से उद्योगीकरण में सहायता मिलेगी और इससे उद्योगों का फैलाव भी सुनिश्चित होगा। राज्य को उस स्थिति में समुचित लाभ नहीं मिल सकेगा यदि यह विकास केन्द्र केवल "क" श्रेणी के जिले तक ही सीमित रहते हैं जहां आधारिक संरचना संबंधी सुविधाएं बहुत ही कम है।

"क" श्रेणी के जिलों में स्थित विकास केन्द्रों के विकास के लिए एक विशेष प्रकार की वित्त-पोषण प्रणाली अपनाई जा रही है। जहां सामान्यत: छ: करोड़ रुपए के कुल व्यय में से 1/3 भाग वित्तीय संस्थाओं से ऋण के रूप में प्राप्त होता है वहां शेष धन-राशि केन्द्रीय सरकार की सहायता और उसी के बराबर हिस्से में राज्य सरकार के निवेश से प्राप्त होती है। चूंकि राज्य सरकार के संसाधन सीमिति हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि पिछड़े राज्य के पिछड़े क्षेत्रों के लिए इस प्रणाली में परिवर्तन किया जाए। वित्त पोषण प्रणाली इस रूप में हो सकती है—10% अंशदान राज्यों से, 50% सहायता केन्द्र से और 40% ऋण वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त हो। कीमतों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए 6 करोड़ रुपए को सीमा बहुत ही कम है। इसे शीघ्र ही बढ़ाकर 10 करोड़ रुपए किया जाना चाहिए।

यह सुझाव इस लिए दिए जा रहे हैं कि केन्द्रीय सरकार की सहायता और रियायती वित्त-पोषण की स्कीम का परिणाम उतना उत्साहवर्धक नहीं रहा है जितनी कि आशा की जाती थी।

बिहार में जिला एक बहुत बड़ा क्षेत्र होता है। विकसित जिले में भी औद्योगिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़े क्षेत्र हैं। इसलिए किसी क्षेत्र को पिछड़ा क्षेत्र घोषित करने के लिए उपमंडल को यूनिट माना जाना चाहिए।

उद्योगों से संबंधित पूरक प्रश्नावली संख्या 2 के संबंध में उत्तर

1. वर्तमान व्यवस्था मजबूत है। इस संबंध में यह आवश्यक है कि उद्योगों का विनियमन पूरे देश में एक रूप आधार पर किया जाए।

2. देश में औद्योगिक विकास एक समान नहीं रहा है। इस बात को ध्यान में रखते हुए, यह अपेक्षाकृत अधिक व्यवहारिक होगा कि यह निर्दिष्ट करने का कार्य राज्यों पर छोड़ दिया जाए कि उद्योगों को लघु उद्योगों के क्षेत्र में रखा जाएं या नहीं।

3. औद्योगिक विकास के लिए जो बातें आवश्यक हैं, उनमें से आधारिक संरचना का विकास और समुचित वित्त-पोषण की व्यवस्था--ये दो बातें महत्वपूर्ण हैं। राज्य सरकारों को आधारिक संरचना के विकास में गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए योजना आयोग को राज्य की योजना में कुछ ऐसी अप्रतिबद्ध राशि रखनी चाहिए जिसे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार खर्च किया जा सके। बैंकिंग संस्थाओं की प्रबंध-व्यवस्था में राज्य सरकारों को राय का कोई महत्व नहीं होता और निवेश के बारे में बैंक अपना निर्णय स्वयं करते है। औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों में बैंक ऋण देने में संकोच करते हैं और इससे राज्य का औद्योगिक विकास अवरुद्ध होता है। राज्य में किसी बैंक की निवेश-प्रणाली के बारे में निर्णय लेने में राज्य-सरकारों की राय प्रभावी होनी चाहिए। इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि राज्य सरकारें राज्य में बैंक के कार्यों पर किस रूप में कुछ नियंत्रण रख सकती हैं।

4. किसी विशेष उद्योग को लघु उद्योगों के क्षेत्र में प्रोत्साहित किया जाए या मझोले उद्योगों के क्षेत्र में, इस विषय पर निर्णय लेने में औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों की राय अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है।

5 और 6 इन मुद्दों पर ऊपर चर्चा की जा चुकी है।

7. विद्यमान उद्योग-नीति में कोई परिवर्तन करने से पहले, यह वांछनीय होगा कि राज्य सरकार से गंभीरता से परामर्श किया जाए। इसे एक औपचारिक आकार दिया जा सकता है और सभी राज्यों से प्रतिनिधि लेकर औद्योगिक विकास परिषद् का गठन किया जा सकता है और उद्योग-नीति में कोई बड़ा परिवर्तन करने से पूर्व राज्यों के विचारों को भी सुना जाना चाहिए।

8. विशेष रूप से कुछ नहीं कहना है। उद्योगों को फैलाने के व्यापक सामाजिक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम के अधीन लगाये गये प्रतिबंध आवश्यक हैं।

छोटे पैमाने के उद्योगों का विकास हमारे देश के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिये इसे कई प्रकार के प्रोत्साहन प्रदान किये जाते हैं। इस दृष्टि से यह उचित प्रतीत होता है कि उद्योगों को छोटे पैमाने के उद्योगों के क्षेत्र में रखने के बारे में एकरूप दृष्टिकोण हो।

उद्योगों को श्रेणीबद्ध करने का उद्देश्य यह है कि मझोले और बड़े उद्योगों के क्षेत्र में होने वाले उनके उत्पादन को अलग किया जा सके। इस दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि पूरे देश में इस मामले में एकरूपता हो और जो उद्योग छोटे पैमाने के उद्योग के क्षेत्र के लिए आरक्षित हैं वे पूरे देश में इसी रूप में आरक्षित किए जाएं।

राज्य-सरकार छोटे और मझोले उद्योगों के विकास में कई प्रकार से और बड़ी भूमिका निभा सकती है :

(i) यदि मझोले उद्योगों की क्षमता के मूल्यांकन में उसकी राय प्रभावी हो,

(ii) यदि उन्हें विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना की संभावना के बारे में पर्याप्त जानकारी हो।

यदि औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम की अनुसूची I में लघु उद्योगों के क्षेत्र के कुछ उद्योग भी शामिल कर लिए जाते हैं तो इससे कोई हानि नहीं है और उन्हें उसमें से निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ सूचीबद्ध मदों को छोटे पैमाने के उद्योगों के क्षेत्र में आरक्षित करने से लघु उद्योगों के विकास में सहायता ही मिलती है, यदि यह राज्य के औद्योगिक विकास के हित में हो।

हमारे विचार में, प्रविष्टि संख्या 52 से उद्योगों पर राज्य के प्राधिकार में किसी भी रूप में कोई ऐसी महत्वपूर्ण कमी नहीं आती जिससे कि इसे, उद्योगों को राज्यों की सूची (प्रविष्टि संख्या 24) में रखना पड़े।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 व्यापार और वाणिज्य के विषय में यह प्रस्ताव है कि राज्य सरकार एक व्यापार सलाहकार परिषद् अथवा व्यापार बोर्ड बनाने की सिफारिश करे। जहां शीर्ष स्तर पर इसकी बैठक राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष में एक बार हो सकती है वहीं क्षेत्रीय स्तर पर इसकी बैठक प्रत्येक तिमाही में अथवा प्रत्येक छमाही में हो सकती है। इस परिषद् अथवा बोर्ड के गठन में सभी राज्य-सरकारों के सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रतिनिधियों को शामिल किया जा सकता है, चाहे वे नाम से विनिर्दिष्ट हों अथवा पदनाम से, इसके अतिरिक्त उत्पादकों, व्यापारियों और उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा के लिए उनके प्रतिनिधियों को भी शामिल किया जाना चाहिए। बोर्ड अथवा परिषद् की शीर्ष स्तर पर सचिवालय से सहायता प्राप्त कुछ ऐसी स्थायी उप-समितियां हो सकती हैं जिनकी बैठकें, उनके ध्यान में प्रत्यक्ष रूप से लाई गई अथवा क्षेत्रीय उप-समितियों के माध्यम से लाई गई बातों पर निर्णय करने के लिए और उस पर अमल करने के लिए, थोड़े-थोड़े अन्तराल पर हो सकती हैं।

राष्ट्रीय स्तर के बोर्ड को चार अथवा उससे अधिक क्षेत्रीय बोर्डों में उप-विभाजित किया जा सकता है जिनमें से प्रत्येक का अपना निजी सचिवालय होगा। इन क्षेत्रीय बोर्डों की भी स्थायी उप-समितियां हो सकती हैं, जो और अधिक स्थानिक स्तर पर विभिन्न समस्याओं और मामलों का अध्ययन कर सकेंगी और अपने विवेकानुसार कार्य करती हुई संबंधित राज्य-सरकारों तथा शीर्ष-स्तरीय राष्ट्रीय बोर्ड को उपयुक्त सुझाव देंगी।

जहां राष्ट्रीय और क्षेत्रीय बोर्ड दोनों ही विशुद्ध से सिफारिशकर्ता अथवा सलाहकार के रूप में कार्य करेंगे, वहीं संबंधित राज्य-सरकारों तथा भारत सरकार के लिए यह आवश्यक होगा कि वे सभी सिफारिशों की जांच करें और सुविचारित और न्यायोचित कार्रवाई करें। इस संबंध में सुझाव है कि इन बोर्डों का अपना सचिवालय हो जिसमें प्रशासन और पुलिस दोनों के ऐसे सरकारी अधिकारी होने चाहिए जिन्हें वाणिज्य, व्यापार और यूनिट पूर्ति के कार्य में केन्द्रीय/राज्य-सरकारों के नियंत्रण और विनियमन संबंधी विभिन्न उपायों को कार्यान्वित करने और लागू करने का प्रत्यक्ष अनुभव हो।

प्रस्तावित व्यापार बोर्ड एक ऐसा स्थायी निकाय होगा जो निश्चय ही राज्य और केन्द्रीय सरकार से भिन्न होगा और जो वाणिज्य और व्यापार से संबंधित सभी मुद्दों तथा आवश्यक वस्तु अधिनियम और अन्य संबंधित अधिनियमों को लागू करने संबंधी मुद्दों की जांच करेगा (आयोग की प्रश्नावली की मद संख्या 10.2)। स्थायी सचिवालय और स्थायी उपसमितियों में कुछ वित्त/कराधान विशेषज्ञों को सम्मिलित करके, कराधान, उपकर, शुल्क, चुंगी, पौरकर आदि से संबंधित प्रश्नों को भी व्यापार बोर्ड की सीमा के अंतर्गत लाया जा सकता है।

कृषि

9.1 वर्ष 1967 से राज्य-योजनाओं का निर्माण और कृषि उत्पादन के लक्ष्यों का निर्धारण, जो कि सामान्यतः योजना आयोग और कृषि मंत्रालय की राष्ट्रीय स्तर की बैठकों में निर्धारित किया जाता है, बड़ी तेजी से हुआ है। इन सिफारिशों के आधार पर, सामान्यतः राज्य विभिन्न जिलों के लिए लक्ष्य निर्धारित करते हैं। इसलिए योजना बनाने की प्रक्रिया राज्य और केन्द्र से परस्पर जुड़ी हुई है।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन उर्वरकों, कीटनाशी दवाओं और कुछ अंश तक बीजों का राज्यों के लिए आबंटन करने में हुआ है। स्वाभाविक रूप से, राज्य का निवेशों की पूर्ति अथवा आबंटन पर कोई नियंत्रण नहीं है और वह पूर्ण रूप से केन्द्र पर आश्रित है।

प्रतिकूल मौसम की दशाओं में, राहत कोष की स्वीकृति भी भारत सरकार की टीम द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकन-रिपोर्ट पर निर्भर करती है।

कृषि उत्पादों के न्यूनतम सांविधिक मूल्य का निर्धारण और मूल्य कृषि साधनों के विक्रय मूल्य का निर्धारण और कृषि संबंधी ऋण के आबंटन का कार्य केन्द्र द्वारा किया जाता है। संपूर्ण देश के लिए एक रूप न्यूनतम सांविधिक मूल्य के निर्धारण से कभी-कभी स्थानीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इस पहलू पर भी विचार-विमर्श करना आवश्यक है।

ऐसा अनुभव किया जाता है कि केन्द्र की भूमिका महत्वपूर्ण है और राज्य इस जिम्मेदारी को वहन नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें बहुत सी अन्तरराज्यिक समन्वय से संबंधित समस्याएं हैं।

9.2. प्रशासनिक सुधार आयोग आदि के सुझाव के अनुसार कृषि विकास राज्य का विषय है। तथापि राज्य की सिफारिश पर केन्द्र द्वारा बड़े विकास कार्यक्रम केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों अथवा ऐसी सेक्टर स्कीमों के रूप में प्रारंभ किए जाते हैं जो अंततः राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिश के अनुसार राज्य योजना में शामिल कर दी जाती हैं।

इस संबंध में निम्नलिखित मुद्दों पर विचार करने की आवश्यकता है :—

(1) विकासशील राज्य अथवा पिछड़े राज्यों को योजना-निधियों के आबंटन में प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए जिससे कि प्रायोजित योजनाओं के रूप में और अधिक संख्या में विकास कार्यक्रम शुरू किए जा सकें।

(2) सेक्टर-स्कीमों प्रायोजित-स्कीमों को राज्य-योजना में अंतरित करने से पहले, यह उचित होगा कि योजना के प्रभाव और इसकी भावी आवश्यकता का मूल्यांकन कर लिया जाए और उसके बाद ही आवश्यकतानुसार सहायता धीरे-धीरे कम की जाए आकस्मिक रूप से कम न की जाए, जिससे कि राज्य के कोष पर इससे तत्काल ही कोई बड़ा बोझ न पड़ने पाए।

9.3 केन्द्र और राज्य के बीच प्रभावी समन्वय है। कार्यकारी ग्रुपों को कार्य-वर्ष प्रारंभ होने से बहुत पहले ही बात-चीत शुरू कर देनी चाहिए ताकि वार्षिक योजनाओं को समय से अंतिम रूप दिया जा सके।

निचले स्तर पर कार्य कर रहे योजना निकायों, विशेष रूप से विकास खंडों और जिलों को उस स्थान से संबंधित विनिर्दिष्ट समस्याओं को शामिल करके और अधिक अर्थपूर्ण और उत्पादनकारी बनाया जाए।

ऐसा अनुभव किया जाता है कि विभिन्न योजना कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के दौरान केन्द्र और राज्य के बीच और जल्दी-जल्दी अर्थपूर्ण बात-चीत होनी चाहिए।

9.4.(क) ऐसा अनुभव किया जाता है कि कृषि उत्पादों के न्यूनतम अथवा उचित-मूल्य का निर्धारण सेक्टर स्तर पर किया जाना चाहिए क्योंकि सम्पूर्ण देश में परिस्थितियों और प्रति व्यक्ति उत्पादन एक समान नहीं हो सकता। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि कीमतें निर्धारित करते समय संबंधित राज्यों से भी परामर्श किया जाए।

(ख) कोई टिप्पणी नहीं।

(ग) सामान्यतः दुर्लभ कृषि साधनों का आबंटन पिछले वर्ष की खपत के आधार पर किया जाता है। और यदि किसी कारण से किसी विशेष साधन की एक बार कमी हो जाए तो आने वाले वर्षों में सम्पूर्ण शृंखला अस्त-व्यस्त हो जाती है। उर्वरकों अथवा ऋण जैसे साधनों के आबंटन में प्रतिकूल मौसम की स्थितियों अथवा फसल के उत्पादन की आवश्यकताओं के आधार पर विशेष रूप से विचार किया जाना चाहिए।

9.5. (i) पिछड़े और विकासशील राज्यों में विभिन्न कृषि-जलवायु संबंधी क्षेत्रों में अनुभव की जाने वाली आवश्यकताओं के आधार पर, और अधिक संख्या में अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान प्रगति-परियोजनाएं शुरू की जानी चाहिए।

(ii) (क) जहां तक राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा वित्त-पोषण का संबंध है वित्त-पोषण की प्रक्रिया उदार बनाई जानी चाहिए।

(ख) फसलें न होने की दशा में, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक को राज्य-सरकार की नीतियों के अनुसार वसूली स्थगित कर देनी चाहिए।

(ग) वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ऋण देने के मामले में, राज्य की घनी आबादी आकार और अन्य परिस्थितियों पर कुछ सकारात्मक रूप से विचार किया जाना चाहिए।

खाद्य और सिविल-पूर्ति

10.1. और 10.2 जिस बात पर मूल रूप से बल देना आवश्यक है वह यह है कि जब कभी भी केन्द्रीय सरकार की किसी एजेंसी, निकाय अथवा निगम को खाद्य अथवा किसी अन्य आवश्यक वस्तु की पूर्ति की जिम्मेदारी सौंपी जाए, तब यह बात सुस्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट कर दी जानी चाहिए और स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए कि जिस क्षेत्र में केन्द्रीय-सरकारी एजेंसी कार्य कर रही है, उस क्षेत्र के बारे में उस राज्य विशेष की समस्याओं के बारे में स्पष्ट रूप से और प्रत्यक्ष रूप से वास्तविक चिन्ता होनी चाहिए। इसे रेखांकित करने के लिये, उस एजेंसी को वितरण शृंखला के अन्तिम बिन्दु तक चाहे वह उपभोक्ता जनता हो, चाहे राज्य सरकार की उत्तरदायी एजेंसी हो, सुपुर्दगी सुनिश्चित करने के लिये स्पष्ट रूप से उत्तरदायी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकार के पास किसी न किसी प्रकार से एजेंसियों पर प्रशासनिक और प्रचालनात्मक नियंत्रण रखने का उपाय होना चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि एजेंसी संबंधित राज्य सरकार और इसके नागरिकों को अधिकतम लाभ पहुंचाने के लिये अपनी सर्वोत्तम क्षमता के अनुसार कार्य कर रही है।

जहां तक अधिप्राप्ति का संबंध है, जिन मामलों में, इस प्रयोजन के लिये किसी केन्द्रीय एजेंसी का उपयोग किया गया हो, उन मामलों में, राज्य सरकारों से परामर्श करके कीमत समर्थन और खरीद का एक व्यापक कार्यक्रम बहुत पहले ही बनाया जाना चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रारम्भिक उत्पादक को अपनी फसलों का लाभकारी प्रतिफल मिलता है। यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि मौके पर ही खरीद और मौके पर ही भुगतान की व्यवस्था की जाये ताकि किसान को या तो परिवहन द्वारा, या नमूना चयन, या अन्य किसी भण्डारण या परिहार्य प्रशासनिक विलम्ब के कारण कोई अनावश्यक परेशानी न हो। इस प्रयोजन के लिए जहां कहीं भी बड़े ग्रामीण अनाज केन्द्रों की व्यवस्था विद्यमान नहीं हैं वहां यह सुनिश्चित करने के लिए कारगर उपाय करने होंगे कि ये केन्द्र अस्थायी फसलों की विशेष अवधि के लिए भी खोले जाएं।

जहां तक कीमत निर्धारण का संबंध है इसकी दो संदर्भों में परीक्षा की जानी चाहिए—पहला किसान और उसके उत्पाद की खरीद/अधिप्राप्ति संबंधित कीमत निर्धारण, दूसरा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से उपभोक्ता समूह के लिए खाद्यान्नों और अन्य आवश्यक वस्तुओं के निर्गम-मूल्य से संबंधित कीमत निर्धारण। अधिप्राप्ति/खरीद से संबंधित कीमत निर्धारण के संदर्भ में भारत सरकार के कृषि मूल्य आयोग के माध्यम से कीमत निर्धारण की वर्तमान प्रणाली बिलकुल पर्याप्त है फिर भी विशेष रूप से दूर-दराज और दुर्गम क्षेत्रों के कृषकों तक वास्तविक लाभ पहुंचाने के लिए, स्थान विशेष पर आधारित कीमत-समर्थन और अधिप्राप्ति की एक व्यापक योजना (जैसा कि ऊपर पैरा छः में उल्लेख किया गया है) का विशेष महत्व है। परिवर्तनीय समर्थन कीमत पर विचार करना भी अनिवार्य होगा और इससे उन राज्यों अथवा क्षेत्रों को विशेष लाभ पहुंचेगा जहां उत्पादन की इकाई-लागत राष्ट्रीय औसत से अधिक है।

उपभोक्ता समूह को जारी की जाने वाली वस्तुओं के कीमत निर्धारण का प्रश्न वह दूसरा क्षेत्र है जिसमें राज्य-सरकारों के दृष्टिकोण पर गंभीरता से विचार करना होगा। यदि उपभोक्ता-समूह की किसी क्षेत्र विशेष में प्रचलित बाजार-मूल्यों से पर्याप्त रूप से कम मूल्य पर खाद्यान्न जारी करने के लिए सावधानीपूर्वक निर्णय लिया जाए तो खाद्यान्नों की विस्तृत सूची और निराशाजनक कुल खरीद की वर्तमान राष्ट्रीय समस्या को संभवतः कुछ अंश तक कम किया जा सकता है। इससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से कुल खरीद में वृद्धि होने के अतिरिक्त सट्टा बाजार और खाद्यान्नों की जमाखोरी को रोकने में भी सहायता मिलेगी। बाजार-दर से कम कीमतों पर निरंतर बिक्री के लिए निर्गम मूल्य में बार-बार समायोजन करने की आवश्यकता होगी और यह भी संबंधित राज्य-सरकारों से परामर्श करने के बाद ही किया जाना चाहिए।

खाद्यान्नों का वैज्ञानिक तरीके से भंडारण करना मूल्य समर्थन प्रणाली के सम्पूर्ण दर्शन के लिए अनिवार्य है। इस क्षेत्र में भी राज्य-सरकारों की भूमिका में महत्वपूर्ण रूप से वृद्धि की जा सकती है और यह न केवल वैज्ञानिक मालगोदामी सुविधाओं में प्रत्यक्ष निवेश के माध्यम से बल्कि, प्राइवेट तथा केन्द्रीय सरकार की एजेंसियों के माल गोदामों के आवधिक निरीक्षण के मामले में राज्य-सरकार के उपयुक्त स्तर की जिम्मेदारी वाले विनिर्दिष्ट कर्मचारियों को इस काम में लगाकर भी किया जा सकता है। इससे उत्तरदायी एजेंसियों द्वारा, मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त खाद्यान्न जारी किए जाने की आम शिकायत समाप्त करने की बात को सुनिश्चित करने का आधारभूत लाभ होगा।

परिवहन और वितरण के प्रश्न के बारे में इस टिप्पणी के पैरा 5 में विचार व्यक्त किया गया है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य में सभी आवश्यक वस्तुओं के संबंध में कम से कम एक महीने का आवर्ती सुरक्षित भंडार अस्थायी रूप से रखा जाए और यह न केवल स्वार्थी पक्षकारों द्वारा कीमतों में की जाने वाली गड़बड़ी को रोकने के लिए उपाय के रूप में बल्कि ऐसे परिवहन में अस्थायी तौर पर आने वाली ऐसी बाधाओं से सुरक्षा के उपाय के रूप में भी काम आएगा जिनके परिणामस्वरूप परिवहन में विलम्ब होता है।

शिक्षा

11.1. यह कहना सही नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीकरण और मानकीकरण है और राज्यों की पहल शक्ति और प्राधिकार में बहुत अधिक केन्द्रीय हस्तक्षेप है।

राज्य सरकारों को शिक्षा के सभी स्तरों, प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक, अध्ययन के संबंध में अपने निजी पाठ्यक्रम बनाने की पूरी स्वतन्त्रता है। वे स्कूल और कॉलिजों में शिक्षक नियुक्त करने के लिए और अपने ही द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार उन्हें अनुदान मंजूर करने के लिए भी स्वतंत्र है। फिर भी संघटक कॉलिजों के मामले में जहां कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमान स्वीकृत हैं, राज्य सरकारों को स्पष्ट कारणों से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। इसे अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता।

11.2. (क) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका विश्वविद्यालय शिक्षा पर प्रभाव डालने में सामान्यतः स्वस्थ रही है। वह न केवल सुस्पष्ट उद्देश्यों और सुविधाओं के लिए शिक्षा संस्थाओं के लिए निश्चित मानक निर्धारित करता है बल्कि वह यह भी सुनिश्चित करता है कि स्वीकृत पदों पर नियुक्त किए गए शिक्षकों का योग्यता स्तर भी सही है।

(ख) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग वित्तीय सहायता प्रदान करते समय कुछ विश्वविद्यालयों के मामले में अनावश्यक रूप से कुछ सख्त रहा है। उसने वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए एक निश्चित प्रतिमान बनाया है। किन्तु उन्होंने विश्वविद्यालयों को इस सहायता के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए शर्तें भी निर्धारित की हैं। फिर भी कुछ ऐसे उदाहरण पाए गए हैं जिनमें सामान्य-अनुदान प्राप्त करते समय राज्य-सरकारों ने अपने को असमर्थ अनुभव किया है क्योंकि आयोग ने निम्नलिखित बातों पर बल दिया था :

(i) राज्य-सरकार द्वारा पहले निधियाँ देना।

(ii) अन्य अपेक्षाओं की पूर्ति।

आयोग द्वारा इस बात के लिए अनावश्यक दबाव डाले जाने से कि राज्य सरकार पहले निधि दे, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निधियां देने प्रायः विलम्ब हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप निधि का निर्धारित समय के अन्दर उपयोग नहीं हो पाया है।

चूंकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उद्देश्य और राज्य-सरकार के उद्देश्य एक समान हैं अर्थात् विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता का समुचित उपयोग करना इसलिए यह बेहतर और अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक होगा, यदि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग निधियां दे और उसके साथ ही वित्तीय सहायता के उपयोग के लिए मार्ग-निर्देश भी जारी करे, जिससे कि यह बात सुनिश्चित की जा सके कि दी गई निधियों का राज्य-सरकार उचित ढंग से उपयोग करेगी।

11.3. राज्य-सरकार यह अनुभव करती है कि इस प्रयोजन के लिए कोई अन्य संस्था बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। शिक्षा संबंधी नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में निर्णय लेने के लिए राज्य शिक्षा मंत्रियों और सचिवों का सम्मेलन आयोजित करने की वर्तमान व्यवस्था इस समय के लिए पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त राज्यों को शिक्षा से संबंधित उनकी योजनागत स्कीमों के बारे में उनसे परामर्श करने के लिए योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् में अच्छा अवसर प्राप्त होता है।

11.4. हम यह अनुभव करते हैं कि अनुच्छेद 29 और 30 में निहित संविधानिक उपबंध बने रहने चाहिए। किन्तु राज्य-सरकार इस बात का उल्लेख करना चाहेगी कि ऐसे कुछ उदाहरण उसकी जानकारी में लाए गए हैं जिनमें संविधान के इन अनुच्छेदों के अधीन संस्थापित अल्प-संख्यक संस्थाएं अपने दायित्वों को पूरा करने और सरकार द्वारा बनाए गए विनियमों, विशेष रूप से निधियों के समुचित उपयोग, शिक्षक-स्टॉफ की योग्यता और उसके स्तर और उन्हें उचित भुगतान करने के बारे में बनाए गए विनियमों का पालन करने में असफल रही हैं। इसलिए जहां अल्प-संख्यक संस्थाओं को अपनी निजी संस्थाएं संस्थापित करने का सांविधानिक अधिकार होना चाहिए वहीं उनकी स्वतंत्रता को इस रूप में विनियमित करना भी आवश्यक है कि इस स्वतंत्रता में वैध-सीमाओं का अतिक्रमण करने की कोई गुंजाइश न हो।

11.5. उल्लेख करने योग्य कोई विशेष बात नहीं है।

अन्तः सरकारी समन्वय

इसके बारे में कोई उत्तर नहीं दिया गया है।

आयोग के समक्ष बिहार के मुख्य मंत्री का वक्तव्य

महोदय, मुझे आपका तथा आयोग के माननीय सदस्यों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए असीम प्रसन्नता हो रही है। आयोग के समक्ष अपने विचार व्यक्त करने के लिये हमें जो अवसर प्रदान किया गया है, उसके लिये मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। केन्द्र राज्य संबंध के बारे में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या हमारे यहां एक मजबूत एकात्मक पद्धति होनी चाहिये या ऐसी संघात्मक पद्धति होनी चाहिये जिसमें भरपूर स्वतंत्रता प्राप्त संघटक इकाइयां हों। हमारे देश में जो व्यवस्था है, वह सर्वोत्तम मध्यम मार्ग है और यह एक ओर तो सर्वशक्ति सम्पन्न और एकतन्त्रीय केन्द्र और दूसरी ओर ऐसी संघात्मक पद्धति जहां इकाइयों को बहुत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है--इन दो पराकाष्ठाओं का संभवत: एक आदर्श समन्वित रूप है। जो पद्धति अथवा ढांचा हमने अपनाया है, वह हर दृष्टि से सर्वोत्तम और सर्वाधिक संतुलित पद्धति है, यह बात इस तथ्य से अच्छी तरह प्रमाणित हुई हो चुकी है कि यह पद्धति समय की कसौटी पर खरी उतरी है और इससे ऐसे राष्ट्र की एकता और अखंडता को सफलतापूर्वक रखा हुई है, जो आकार में इतना विशाल, अपनी भौगोलिक और जलवायु संबंधी दशाओं में इतनी विविधता वाला है, और जो एक ऐसा राष्ट्र है, जो विभिन्न धर्मों, विभिन्न भाषाओं और विभिन्न समाजों से युक्त स्वरूपवाला है। विघटनकारी ताकतों द्वारा देश की एकता और भाई चारे को तोड़ने के लिये बार-बार नापाक कोशिशें की गई हैं उदाहरण के तौर पर असम और पंजाब की वर्तमान अशान्ति का उल्लेख किया जा सकता है। इस बात का श्रेय हमारे संविधान को जाता है कि वह इस अशान्ति का सामना करने में समर्थ रहा है। हमारे संविधान में अन्तर्निहित लचीलापन है और केन्द्र और राज्यों के बीच समझदारीपूर्ण संबंध की व्यवस्था है। कठोरता का अभाव इसकी सबसे बड़ी विशेषता रही है। केन्द्र और राज्य के बीच प्रबंध ऐसी रहा है कि इससे राष्ट्र की एकता और अखंडता की गारंटी मिलती है और साथ ही इसमें राज्य की आशाओं और आकांक्षाओं की उपेक्षा भी नहीं की गई है। हमारे संविधान में इन अपेक्षाओं पर समुचित ध्यान दिया गया है। वास्तव में, बढ़ती हुई पृथकतावादी विचार धारा और प्रवृत्तियों का सामना करने के लिये जिस बात की आवश्यकता है, वह यह है कि केन्द्र के हाथ मजबूत किए जाएं।

भाग II
विधायी संबंध

जहां तक विधायी संबंधों की बात है, हमारा यह निश्चित मत है कि संविधान के मूल उद्देश्यों को पूरा करना सुनिश्चित करने के लिये वर्तमान व्यवस्था और संस्थाएं पर्याप्त हैं। संविधान में प्रतिपादित योजना का निर्माण काफी बहस और विचार-विमर्श के बाद किया गया था और वास्तव में, उसमें भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखा गया था। वास्तव में हमें संविधान निर्माताओं के प्रति, उनकी इस दूरदर्शिता के लिये कृतज्ञ होना चाहिये। फिर भी, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि संविधान चाहे कितना भी विस्तृत क्यों न हो, इसमें समस्त संभावनाओं के लिये उपबंध नहीं किया जा सकता। समय बीतने के साथ-साथ रूढ़ियों की एक लम्बी शृंखला बन जाती है। भारतीय राज्य-व्यवस्था में भी ऐसा ही हुआ है।

एक मुद्दा यह उठाया गया है कि केन्द्र द्वारा समवर्ती-सूची के विषय में कोई विधायी परिवर्तन करने से पूर्व, जैसा कि 1935 के अधिनियम में उपबंध किया गया है, राज्य से परामर्श किया जाना चाहिए अथवा नहीं। यह बात समझी जानी चाहिए कि गतिशील और परिवर्तनशील राज्य में थोड़ा सा विलम्ब भी अनर्थकारी हो सकता है। विधायी परिवर्तन से पूर्व, परामर्श की प्रक्रिया को अपनाना न तो संभव होगा और न यह वांछनीय ही है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 249 के उप-अनुच्छेद-II में दिया सांविधानिक रक्षोपाय भी है, जिसमें वह सीमित अवधि निर्धारित की गई है, जिसके लिये ऐसा विधायी परिवर्तन अधिनियमित किया जा सकता है। संविधान में जिस विधायी संबंध का उपबंध किया गया है, वह वर्तमान समय की और संभवत: भविष्य की भी अपेक्षा की पूर्ति करता हुआ प्रतीत होता है।

भाग III
राज्यपाल की भूमिका

राज्यपाल की भूमिका के बारे में ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान व्यवस्था भलीभांति विचार करके बनाई गई है। राज्यपाल मूलत: केन्द्र और राज्य के बीच प्रभावी कड़ी के रूप में कार्य करता है। इसमें संदेह नहीं कि हाल ही में कुछ दिन पहले उक्त पद के बारे में बहुत सी विवादास्पद बातें कहीं गई हैं। किन्तु ऐसे मामले अपवाद के रूप में ही रहे हैं। राज्यपाल संकट के समय एक निष्पक्ष प्रेक्षक और विषम परिस्थितियों में अपने स्तर पर समाधान कर्ता के रूप में कार्य करता है। राज्यपाल के पद की जो आलोचना की गई है, वह अधिकांशत: व्यक्तिगत भ्रान्तियों और समस्याओं के आधार पर की गई है। संविधान में राज्यपाल की एक सकारात्मक भूमिका की परिकल्पना की गई हैं। वह राज्य के विचारों को केन्द्र के समक्ष और केन्द्र के विचारों को राज्य के समक्ष रखता है। हमारा अनुभव यह रहा है कि संविधान में जो भूमिका राज्यपाल को सौंपी गई है और कालानुक्रम में जिसकी उससे आशा की गई है, उसका कुल मिलाकर संतोषप्रद रूप में निर्वाह किया गया है।

भाग IV
प्रशासनिक संबंध

प्रशासनिक संबंध के बारे में विचार करते समय यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि राज्य के प्रशासनिक कार्यक्षेत्र में केन्द्र के हस्तक्षेप की परिकल्पना, संविधान में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के आपातकाल की उग्र परिस्थितियों में ही की गई है।

समय के साथ-साथ कुछ सिद्धांत विकसित हुए हैं, जिन्हें राज्य की शक्ति में अतिक्रमण कहा गया है। किन्तु यदि हम सही परिप्रेक्ष्य में देखें तो ये सिद्धांत वाणिज्य और व्यापार, जल संसाधनों के विकास और कृषि विकास के लिये बहुत ही आवश्यक हैं। इससे युक्तियुक्त रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संविधान में निहित विधायी उपबंध सुविचारित रहे हैं और ये समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं।

ऊपर जो बात कही गई है, वह प्रशासनिक मानदण्डों, कानून और व्यवस्था की अपेक्षा और प्रशासनिक संबंधों के क्षेत्र में भी उतनी ही सच है, जहां एक प्रकार का सामान्य दृष्टिकोण पूर्णत: अनिवार्य हो सकता है और ऐसी परिस्थितियों में केन्द्र कभी पूरक की, कभी अनुपूरक की और जहां आवश्यक हो, प्रतिस्थानी की भी भूमिका अदा करता है।

उचित होगा कि अब मैं अन्तर्राज्य परिषद् की वांछनीयता के प्रश्न पर विचार करूं। ऐसे निकाय का मुख्य कार्य ऐसे विवादों का समाधान करना है जो एक ओर राज्यों के बीच उत्पन्न होते हैं और दूसरी ओर संघ और राज्य के बीच उत्पन्न होते हैं। ऐसी किसी परिषद् की स्थापना इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संभवत: आवश्यक नहीं है कि इसके लिये मुख्य मंत्रियों के आंचलिक सम्मेलन, राज्यपालों और राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक आदि अन्य बहुत से उपाय हैं जो इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात, जो ऐसी किसी परिषद् की स्थापना के विरुद्ध जाती है, यह है कि ऐसे निकाय में प्रजातान्त्रिक आधार का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई विशेषता नहीं होती और इससे संसद की प्रभुता के साथ टकराव भी हो सकता है। कुल मिला कर ऐसा निकाय सामान्य जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता।

भाग V

वित्तीय संबंध

हमारा विचार यह है कि वित्त आयोग और योजना आयोग दोनों ही बने रहने चाहिए। चूंकि वित्त आयोग की सिफारिशों के माध्यम से किए गए निधि-अन्तरण और योजना आयोग की सिफारिश पर दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता की मात्रा इतनी पर्याप्त नहीं रही है कि उससे विकसित राज्यों और बिहार जैसे अपेक्षाकृत अधिक गरीब राज्यों के बीच आर्थिक विकास के अन्तर को कम किया जा सके, इसलिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वित्त आयोग द्वारा संसाधनों के अन्तरण के प्राक्कलन के लिए जो भी विधि अब तक अपनाई जाती रही है उसमें संशोधन किया जाए जिससे कि संबंधित राज्यों के वास्तविक और प्रत्यक्ष अपेक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा तब तक आर्थिक विकास की दिशा में बढ़ते हुए क्षेत्रीय असंतुलन को कम नहीं किया जा सकता। वित्त आयोग को योजना आयोग की तरह एक स्थायी निकाय का रूप दिया जाना चाहिए। किन्तु इसके अध्यक्ष/सदस्य समय-समय पर परिवर्तित होते रहने चाहिए। करों के अन्तरण में, आय-कर के लिए लागू किए जाने वाले सिद्धान्त का संघ उत्पाद-शुल्क के लिए भी पालन किया जाना चाहिए। आय-कर, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अगर अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क जैसे करों से होने वाली आय के अन्तरण के लिए एकरूप मानदंड और फार्मूला होना चाहिए। यद्यपि हम रक्षा प्रयोजनों के लिए निधि की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं और इसलिए हम यह नहीं चाहते कि सीमा-शुल्क से प्राप्त होने वाली आय का विभाजन किया जाए, किन्तु हम यह अनुभव करते हैं कि निगमित निकायों के करों को विभाजन योग्य सामूहिक निधि अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। वित्त आयोग राज्यों के राजस्व के अन्तर का प्राक्कलन करता है और ऐसे प्राक्कलनों में यह राज्य बिजली बोर्ड, सड़क परिवहन निगम, अन्य निगमों, सहकारी निकायों से होने वाली निश्चित आय और सिंचाई परियोजनाओं में किए जाने वाले निवेश के बारे में पूर्वानुमान प्रस्तुत करता है। सामान्यत: ऐसी परियोजनाएं लोगों की सामाजिक आवश्यकताओं की पूरा करने और उनकी अर्थ व्यवस्था में सुधार करने के उद्देश्य से निष्पादित की जाती है इसलिए इन परियोजनाओं से कोई उल्लेखनीय आय नहीं होती। ऐसी संस्थाओं से होने वाले लाभ की जो गणना वित्त आयोग द्वारा की जाती है उससे राज्यों के पक्ष में कृत्रिम राजस्व अधिशेष उत्पन्न होता है। यह काल्पनिक अधिशेष होता है और वास्तव में बिहार जैसे राज्यों को इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण गणना से नुकसान हुआ है। इस संदर्भ में मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि यद्यपि बिहार की प्रति व्यक्ति आय देश भर में सबसे कम रही है फिर भी आठवें वित्त आयोग ने इसे कमी वाला राज्य घोषित नहीं किया है जबकि पश्चिम बंगाल और उड़ीसा जैसे राज्यों को, जिनकी प्रति व्यक्ति आय बिहार की तुलना में बहुत अधिक है, कमी वाले राज्य घोषित किया गया है। इसलिए यह वांछनीय है कि राज्यों को देश के आर्थिक विकास के स्तर की बराबरी में लाने के लिए, वित्त आयोग द्वारा राजस्व अधिशेष/अन्तर के बारे में अनुमान लगाने का तरीका अपेक्षाकृत अधिक यथार्थपूर्ण होना चाहिए और राज्य की अलग-अलग आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए।

योजना आयोग द्वारा दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में 70% ऋण और 30% अनुदान होता है। इस संयुक्त राशि में ऋण भार अधिक होता है जिसमें विकास कार्यों पर निवेश के लिए थोड़ी ही राशि बचती है। जिन राज्यों की प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम है उनके हित में केन्द्रीय सहायता में 70% अनुदान और 30% ऋण होना चाहिए जिससे कि उनके ऋणभार की मात्रा कम की जा सके। ऋण की राशि भी दो भागों में विभक्त होनी चाहिए पहला वह जो सामाजिक हितों के लिए उपयोग में लाया जाता है किन्तु जो अनुत्पादक है जैसे--लोक-स्वास्थ्य, शिक्षा आदि पर होने वाला खर्च और दूसरा वह जो उत्पादक परियोजनाओं जैसे—सिंचाई स्कीमों, ऊर्जा कार्यक्रमों आदि पर खर्च किया जाता है। जिन ऋणों का उपयोग सामाजिक लाभ की स्कीमों (अनुत्पादक योजनाएं) के निष्पादन के लिए किया जाना है उन पर किसी भी प्रकार का ब्याज नहीं लगना चाहिए और ऋणों की वसूली काफी वर्षों में की जानी चाहिए। जिन ऋणों का उपयोग उत्पादक प्रयोजनों के लिए किया जाता है उनके लिए भी ऋण की वापसी और ब्याज की व्यवस्था या तो उनसे होने वाली आर्थिक आय के अनुरूप होनी चाहिए या इसकी वसूली स्थायी वार्षिकी के रूप में की जानी चाहिए। मैं यह भी कहना चाहूंगा कि जैसा कि हाल ही में राष्ट्रीय विकास परिषद् में मैं कह चुका हूं कि बिहार जैसे पिछड़े राज्यों को केन्द्रीय सहायता आई० ए० टी० पी० (आय का कुल जनसंख्या के साथ समायोजन) फार्मूला के आधार पर दी जानी चाहिए। इसलिए गाडगिल फार्मूला को तदनसार संशोधित करने की आवश्यकता है। केन्द्रीय सहायता अनुदान की राशि में से 60% भाग जनसंख्या के आधार पर और 40% भाग पिछड़ेपन के आधार पर दिया जाना चाहिए।

मेरा यह भी मत है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं का लाभ वास्तव में बिहार जैसे गरीब राज्यों को नहीं मिल सका है जिसका कारण यह है कि इन योजनाओं की लागत का भार बहुत अधिक है। मेरा यह सुझाव है कि केन्द्रीय रूप से प्रायोजित योजनाएं केन्द्रीय योजना स्कीमों के अधीन होनी चाहिए और उनके निष्पादन के लिए शत-प्रतिशत अनुदान प्राप्त होना चाहिए।

हम यह अनुभव करते हैं कि योजना आयोग और वित्तआयोग दोनों को रहना चाहिए क्योंकि सबसे लोगों को बहुत अधिक लाभ पहुंचा है और इस लिए हम यह नहीं चाहते कि उनके स्थान पर कोई दूसरी एजेंसी गठित की जाए। हम यह भी नहीं चाहते कि आय का राज्यों के बीच बटवारा करने के लिए अलग से किसी स्वतंत्र एजेंसी का गठन किया जाए क्योंकि यह उत्पादकता विरोधी होगा और संविधान के उपबंधों के अनुकूल नहीं होगा।

भारत सरकार ने ओवर-ड्राफ्ट पर आहरण करने की सुविधा 1-10-1985 से समाप्त कर दी है। इसके बदले में इसने विशेष अर्थोपाय अग्रिम की मात्रा बढ़ा दी है फिर भी राज्यों द्वारा छठीं पंचवर्षीय योजना के दौरान प्रयुक्त ओवर-ड्राफ्ट की मात्रा की तुलना में यह मात्रा अब भी कम है। मैं इस बात का समर्थन करता हूं कि विशेष अर्थोपाय अग्रिम की मात्रा कमोवेश उस औसत ओवर-ड्राफ्ट की मात्रा के बराबर होनी चाहिए जो राज्य विशेष द्वारा प्रति वर्ष आहरित की जाती है। यह सुविधा संभावित वित्तीय असंतुलन और अनुशासनहीनता पर नियंत्रण रखने में अधिक सहायक सिद्ध होगी।

राज्य ऋण-अग्रिमों के माध्यम से राष्ट्रीयकृत बैंकों में जमा राशि का उपयोग करते रहते है किन्तु बिहार जैसे राज्यों में क्रेडिट-जमा का अनुपात सम्पूर्ण भारत के औसत की तुलना में बहुत कम रहा है। यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए कि सी० डी० आर० में कम से कम 60% तक वृद्धि की जाए जिसके लिए एक सुस्पष्ट फार्मूला तैयार किया जाना चाहिए। राज्यों को बाजार ऋण से होने वाली आय में से लगभग 33% भाग प्रदान किया गया है। यह उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप नही है इसलिए उपयुक्त फार्मूला तयार किया जाना चाहिए जिससे कि बाजार ऋण में राज्य के हिस्से में उल्लेखनीय मात्रा में वृद्धि हो सके।

योजना आयोग से प्राप्त व विवेकाधीन अनुदानों का अन्तरण किसी ऐसे फार्मूले के आधार पर होना चाहिए जिस के बारे में राज्यों को जानकारी हो। जहां हम यह चाहते हैं कि केन्द्रीय आय की विभाजन योग्य सामूहिक निधि में वृद्धि की जाए और वित्त आयोग की सिफारिशों के अधीन यह कानूनी ढंग से विनियमित की जाए, वहीं हम यह भी चाहते हैं कि वित्त आयोग द्वारा दिए जाने वाले सहायता अनुदान की व्यवस्था को कम से कम किया जाए। फिर भी सहायता अनुदान में राज्य की विशेष आवश्यकताओं जैसे बांधों की मरम्मत और बाढ़ से बचाव पर होने वाले खर्च को पूरा करने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें ऐसे खर्च के लिए भी व्यवस्था होती चाहिए जो केन्द्रीय व्यय-प्रतिमानों का अनुपालन करने के लिए राज्यों द्वारा किए जाते हैं, जैसे अतिरिक्त मंहगाई-भत्ता, बोनस, सेवान्त-सुविधाओं आदि का भुगतान।

हमारा हाल का अनुभव यह रहा है कि आय में प्रशासनिक तंत्र को मजबूत बनाने के कारण वृद्धि हुई है करों में वृद्धि करने से नहीं। इसलिए हमें इस प्रकार का संतुलन कायम करने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर विद्यमान करों से अधिक से अधिक आय हो सके। कराधान की मात्रा में वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं है। न तो हम यह ही अनुभव करते है कि राज्य की कराधान शक्तियों में कमी की जानी चाहिए। इस समय जिस बात की आवश्यकता है वह यह है कि राज्यों की आर्थिक विकास संबंधी आवश्यकताओं की पूर्णतया पूर्ति वित्त आयोग के माध्यम से अथवा योजना आयोग के निर्णय के माध्यम से निधि का अन्तरण करके की जानी चाहिए।

आर्थिक और सामाजिक आयोजना

अब मैं आयोजना की प्रक्रिया और इसके बारे में उठाए गये प्रश्नों पर आता हूं।

राज्य सरकार का मत यह है कि योजना आयोग के साथ विचारों के आदान-प्रदान के लिये पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। सरकारी स्तर पर और राजनीतिक स्तर पर विचार-विमर्श के अवसर उपलब्ध हैं और इस बारे में मध्यावधि मूल्यांकन भी किया जाता है। तथापि और अधिक जल्दी-जल्दी विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकता है। हम यह चाहेंगे कि योजना आयोग विभिन्न समस्या-क्षेत्रों के बारे में विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन करवा कर, उनके समाधान का सुझाव प्रस्तुत कर के और उन्हें लागू करने के तरीकों की जानकारी देकर राज्य को सहयोग प्रदान करें। हम यह भी चाहेंगे कि योजना आयोग की योजना निर्माण के कार्य के अतिरिक्त यह भी विवेकाधिकार प्रदान किया जाए कि वह किसी फार्मूले के आधार पर सहायता अनुदान का वितरण करे जिससे राज्यों को, अनिवार्यतः पिछड़े राज्यों को सहायता प्राप्त हो सके और क्षेत्रीय असंतुलन तथा असमानताओं को दूर करने का आधारभूत लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।

तथापि, राष्ट्रीय विकास परिषद को सांविधिक दर्जा प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। अन्यथा भी इसकी भूमिका भी पर्याप्त रूप से कारगर रही है।

हम यह चाहेंगे कि राज्यों को समग्र राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और किये गये आबंटनों की सीमा में स्कीमों का चुनाव करने के मामले में और अधिक स्वतंत्रता प्रदान की जाए।

योजना आयोग की सदस्यता और उसके गठन में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

यह उचित ही है कि आयोग राज्यों की वित्तीय योजनाओं की यह सुनिश्चित करने के लिये विस्तृत रूप से परीक्षा करे कि वे उन योजनाओं की जिम्मेदारी संभालने और उनमें निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्यों को पूरा करने की स्थिति में हैं।

जैसा कि हमने पहले बताया है, विशेष समस्याओं से निपटने के लिये विशेष रूप से बिहार जैसे पिछड़े राज्यों के लिये केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिये। यह सहायता किसी विवेकाधीन निधि से उपलब्ध कराई जानी चाहिए और यह निधि योजना आयोग को उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

आयोजना

हमारे यहां राज्य आयोजना बोर्ड हैं जो राज्य स्तर पर उसी दिशा में कार्य कर रहा है जिस दिशा में केन्द्र में योजना आयोग कार्य कर रहा है। राज्य आयोजन बोर्ड भावी योजनाएं तैयार करता है, और राज्य में अन्तरक्षेत्रीय प्राथमिकताओं का निर्धारण करता है। राज्य योजना बोर्ड को मूल्यांकन और प्रबोधन (मानीटर) करने की भी जिम्मेदारी सौंपी गई है। इस प्रकार राज्य आयोजना बोर्ड, योजना आयोग के राज्य स्तर के सहयोगी के रूप में कार्य करता है और इस प्रकार यह राष्ट्रीय उद्देश्यों और प्राथमिकताओं के अनुरूप राज्य योजना तैयार करने में एक कारगर तंत्र अथवा साधन के रूप में कार्य करता है।

उद्योग

उद्योग-रहित जिलों के लिए वित्त व्यवस्था के संबंध में राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार और वित्तीय संस्थाओं में से प्रत्येक द्वारा 1/3 भाग प्रदान किए जाने की जो वर्तमान व्यवस्था है, उनके स्थान पर राज्य-सरकार द्वारा 10% केन्द्रीय सरकार द्वारा 50% और वित्तीय संस्थाओं द्वारा 40% सहायता की व्यवस्था होनी चाहिए। आई० डी० आर० अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली मदों की निरंतर समीक्षा की जानी चाहिए और विशेषज्ञ समिति द्वारा इसका समय-समय पर पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। राज्य सरकार के विवेकानुसार प्रगति केन्द्रों की स्थापना की अनुमति दी जानी चाहिए।

विविध

कृषि

कृषि के क्षेत्र में, मुख्य समस्या कीमत निर्धारण की है। एकरूपता के लिये जहां यह वांछनीय है कि इस बारे में निर्णय केन्द्रीय स्तर पर लिये जाएं, वहीं यह भी आवश्यक है कि उत्पादकता और उत्पादन लागत आदि के रूप में स्थानीय परिवर्तनों के लिए गुंजाइश रखी जाए। बिहार जैसे पिछड़े राज्य आधारिक रचना संबंधी सुविधाओं की कमी और प्राकृतिक आपदाओं की अधिकता के कारण भी प्रभावित होते हैं और यह बात विभिन्न वस्तुओं के कीमत-निर्धारण के समय ध्यान में रखनी चाहिए।

शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में, यह उल्लेखनीय है कि राज्यों को पहले से ही स्वायत्ता प्राप्त है और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका मानदंडों के निर्धारण और शिक्षा गुणवत्ता में सुधार लाने के कार्य में सहायक रही है। शिक्षा ऊपरी तौर पर भले ही विकासात्मक न दिखाई दे किंतु वित्तीय दृष्टि से यह एक दूरगामी महत्व वाला निवेश है। राज्यों और केन्द्र के बीच पारस्परिक क्रिया की वर्तमान व्यवस्था सामयिक स्थिति के अपेक्षाओं को पूरा करने में समर्थ है। तथापि, यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा जैसे कार्यक्रमों के बारे में बिहार जैसे राज्यों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जो निश्चय ही पिछड़े हुए है और राष्ट्रीय औसत से नीचे है। यद्यपि हम अल्पसंख्यकों की शिक्षा से संबंधित राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करते हैं, फिर भी हम इस आवश्यकता की ओर और ऐसा उपाय ढूंढने की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे जिससे कि उन्हें प्राप्त विशेषाधिकारों और स्वतंत्रता पर वित्तीय अनुशासन और शिक्षा की गुणवत्ता से संबंधित कुछ आधारभूत मानदंडों द्वारा नियंत्रण रखा जा सके और जिसके अनुसार वे अल्पसंख्यक संस्थाओं के रूप में सुविधाएं प्राप्त करने के लिये अपनी योग्यता सिद्ध कर सकें।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में कॉफी बोर्ड, भारतीय जूट निगम आदि जैसी बहुत सी एजेंसियां पहले से ही विद्यमान हैं, अलग से कोई बोर्ड बनाने की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

तथापि, हम यह कहना चाहेंगे कि जब वित्तीय संस्थाएं पिछड़े राज्यों में निवेश के लिये आगे आती हैं, तब उनके लिए इस बात की गुंजाइश होनी चाहिए कि वे मूलभूत अपेक्षाओं में ढील दे सकें। इन क्षेत्रों में आधारिक संरचना के विकास के लिये विशेष उपाय किए जाने चाहिएं क्योंकि उद्योग रोजगार के अवसर उत्पन्न करने की कुंजी है, जिससे राज्य की अर्थव्यवस्था सम्पोषित होगी।

अन्त में मैं आयोग के प्रति इस बात के लिये धन्यवाद ज्ञापित करता हूं कि उन्होंने राज्य सरकार के विचारों को सुना है। केन्द्र-राज्य संबंध इस समय बहुत ही नाजुक दौर से गुजर रहे है और काफी दिनों से ये बहुत ही तनावपूर्ण बना दिये गए हैं। जो समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं, उनका समाधान उन सुस्थापित संस्थाओं को उखाड़ फेंकने में नहीं हैं, जो अब तक चली आ रही हैं और जिन्होंने कुल मिलाकर देश के लिये कार्य किया है और देश की जरूरतों को पूरा किया है, बल्कि उन्हें और अधिक कारगर और अधिक अर्थपूर्ण और व्यावहारिक बनाने में हैं।

सांविधिक उपबंध और विधायी-तंत्र पहले से ही मौजूद हैं और समय की कसौटी पर उनकी परख हो चुकी है। आवश्यकता इस बात की हैं कि उन्हें उसी भावना से काम करने दिया जाए जिस भावना से इनका निर्माण और स्थापना की गई है।

गुजरात सरकार

प्रश्नावली के उत्तर

5.35 राज्य सरकार का मत है कि नियन्त्रक महालेखापरीक्षक द्वारा राज्य विधान मण्डल को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट समुचित रूप से विस्तृत एवं परिशुद्ध है, जिन पर विधान मण्डल इस मामले में गम्भीरता से विचार कर सकता है।

5.36 यह सुनिश्चित करने के लिए कि खर्च नियमों एवं प्रक्रिया के अनुसार किया जा रहा है, ये परीक्षण महत्वपूर्ण साधन है लेकिन केन्द्र में और राज्यों में खर्च पर नियन्त्रण के लिए इन्हें पर्याप्त नहीं समझा जा सकता है।

5.37 राज्य सरकार इस विचार से सहमत है कि प्राक्कलन समिति प्रशासन को उपयोगी विधायी एवं प्रशासनिक परामर्श दे सकती है।

5.38 संघ एवं राज्यों के खर्चों के औचित्य का मूल्यांकन संसद और राज्यों के विधान मण्डलों पर छोड़ना सर्वोत्तम है और इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए कोई व्यय आयोग बनाने की आवश्यकता नहीं है। भारत के नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक इस कार्य को पूरा नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनकी शक्तियां और कार्य नियन्त्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य शक्तियां तथा सेवा की शर्तें) अधिनियम के अन्तर्गत सीमित हैं।

5.39 हम ऐसा मानते हैं कि यह प्रश्न केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के सन्दर्भ में उत्पन्न हुआ है। इन स्कीमों के लिए योजनाओं की स्वीकृति एवं कार्रवाई में परेशानी एवं विलम्ब का कारण, इन स्कीमों की अस्पष्टता है और ऐसी स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए अस्पष्ट मार्ग-दर्शक सिद्धान्तों का होना है। यदि भारत सरकार इन स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए स्पष्ट मार्गदर्शक सिद्धांत परिचालित कर देती और राज्य सरकारें उन मार्गदर्शक सिद्धान्तों के आधार पर स्कीम को कार्यान्वित करतीं, तो इस विलम्ब को समुचित रूप से कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उन्हें अपनी योजनाओं एवं कार्रवाई की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि केन्द्र द्वारा विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए दी जा रही निधियों का प्रयोग वास्तव में, राज्यों द्वारा, उन्हीं प्रयोजनों के लिए किया जा रहा है, राज्यों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे भारत सरकार को उपयोग प्रमाणपत्र प्रस्तुत करें।

भाग VI

आर्थिक एवं सामाजिक योजना

6.1 राष्ट्रीय योजनाओं को तैयार करने में राज्य सरकार की भागीदारी के स्वरूप एवं स्तर को बढ़ाने के लिए काफी गुंजाईश है। राष्ट्रीय विकास परिषद, की बैठकें और भी अधिक अर्थपूर्ण होंगी, यदि राज्यों की बैठकों की कार्य-सूची को अन्तिम रूप दिए जाने की प्रक्रिया से और अधिक प्रभावी रूप से सम्बद्ध किया जाए। वर्तमान पद्धति के अनुसार राज्य सरकारों को राष्ट्रीय विकास परिषद, के विचार के लिए विषयों के बारे में सुझाव देने का अवसर नहीं दिया जाता है। चूंकि सभी राज्यों के मुख्य मंत्री राष्ट्रीय विकास परिषद् के सदस्य हैं इसलिए यह उपयुक्त होगा कि बैठक की कार्यसूची उनके परामर्श से तैयार की जाए। राष्ट्रीय विकास परिषद, की वार्षिक बैठक के अलावा नियमित फोरम बनाए जाने की आवश्यकता है, जैसे :—

(i) राज्य के योजना सचिवों का सम्मेलन, और

(ii) राष्ट्रीय विकास परिषद्, को प्रस्तुत करने से पहले विभिन्न मामले पर विचार करने के लिए समय-समय पर राज्य के योजना मन्त्रियों का सम्मेलन। ये बैठकें नियमित अन्तराल पर जैसे की वर्ष में दो या तीन बार, राष्ट्रीय विकास परिषद् की सिफारिशों पर अनुवर्ती कार्रवाई करने के लिए और योजना एवं निरुपण के प्रक्रियात्मक पहलुओं पर विस्तार से विचार विमर्श करने के लिए तथा केन्द्र द्वारा प्रयोजित स्कीमों की समीक्षा करने के लिए आयोजित की जाए। इन सम्बन्धों में यह सुझाव दिया जाता है कि योजना सचिवों का सम्मेलन वर्ष में कम से कम दो बार आयोजित किया जाए और राज्य के योजना मन्त्रियों का सम्मेलन वर्ष में कम से कम एक बार बुलाया जाए, ताकि आर्थिक कार्यक्रमों के कार्यान्वियन और विभिन्न स्तरों पर नई आर्थिक नीतियां बनाने के बारे में राज्यों को अपने विचार प्रकट करने के पर्याप्त अवसर मिल सकें। राज्य के योजना सचिवों के नियमित सम्मेलनों से अच्छी पद्धतियों तथा पुरानी पड़ गई कार्य प्रणाली की पहचान करने में सहायता मिलेगी और योजना आयोग एवं राज्यों के बीच कार्य सम्बन्धों में अब तक पाई गई कमियों को दूर कर उन्हें कम से कम किया जा सकेगा। वर्तमान प्रक्रिया एवं पद्धति के कारण, कुछ राज्यों के साथ अन्य राज्यों की तुलना में केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रक स्कीमों के मूल तत्वों की परिभाषा के अनुसार अधिक अनुकूल व्यवहार किया जा रहा है।

उदाहरण के लिए पिछली तिमाही में कुछ राज्यों में उपयोग में न लाई गई राशि ऐसे किन्हीं राज्यों को दे दी गई जो आबंटन से भी अधिक राशि का उपयोग करने में कुशल हैं। केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों और केन्द्रीय क्षेत्र की स्कीमों की संकल्पनाओं, परिभाषाओं और परिकल्पनाओं को उनके प्रतिपादन के समय, राज्य सरकारों के विचारों को शामिल करते हुए, काफी पहले से प्रकाशित करके ही इस स्थिति से प्रभावशाली ढंग से निपटा जा सकता है और राज्यों के योजना सचिवों के वर्ष में दो या तीन बार और सुधारात्मक कार्रवाई के लिए पर्याप्त समय बचाने के लिए बेहतर हो यदि वर्ष को पहली, दूसरी या तीसरी तिमाही में होने वाले सम्मेलनों में व्यापक समीक्षा करके निधियों के अन्तर्राज्यीय स्तर पर उपयोग में मौजूदा असन्तुलन को कम किया जा सकता है।

6.2 राष्ट्रीय विकास परिषद् का सम्बन्ध भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित निदेशक सिद्धान्तों पर आधारित आर्थिक विकास की विस्तृत नीति सम्बन्धी पैरामीटर से है। शासन की संघीय प्रणाली में लोगों की भलाई और राष्ट्र का विकास सभी सहयोगियों के सहयोगपूर्ण व्यवहार पर निर्भर करता है। इस शक्तिशाली निकाय को सांविधिक शक्तियां प्रदान करने से इस दृष्टिकोण में कठोरता आएगी और विभिन्न चरणों में विधिक चुनौतियों की भी स्थिति आ सकती है। कोई विधिक ढांचा बहुत सी कार्यान्वयन एजेन्सियों के माध्यम से, तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों से निपटाने के लिए सामान्यतः उपयुक्त नहीं होता। इसके लिए जो बात आवश्यक है, वह यह है कि पर्यावरण की गुणता को बनाए रखने के लिए नई-नई प्रतिक्रियाओं के साथ बदलती हुई प्रौद्योगिकी मांग के स्वरूप में परिवर्तन को देखते हुए सामाजिक आर्थिक समस्याओं पर काबू पाने के लिए अपने प्रयासों में लचीलापन और गतिशीलता लाएं। राष्ट्रीय विकास परिषद्, की बैठकें सामान्यतः वितरण पत्र (एप्रोचपेपर) और ड्राफ्ट प्लान दस्तावेजों का अनुमोदन करने के लिए आयोजित की गई है और कार्यसूची राज्य सरकारों से परामर्श किए बिना योजना आयोग द्वारा तैयार की जाती है। इतना ही नहीं, यह भी देखा गया है कि मुख्य मन्त्रियों द्वारा भाषणों में दिए गए सुझावों पर कोई अनुवर्ती कार्रवाई नहीं हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय विकास परिषद्, की बैठकों का झुकाव एक ही ओर होता है जैसा कि इस समय केवल योजना आयोग द्वारा तैयार किए जाने वाले दस्तावेजों का अनुमोदन करने की ओर ही रह गया है।

अतः यह सुझाव दिया जाता है कि राष्ट्रीय विकास परिषद्, की बैठकें नियमित रूप से आयोजित की जाएं ताकि राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर राज्य सरकारों से परामर्श करके कार्यसूची तैयार करते हुए विचार विमर्श किया जा सके और राज्य सरकारों द्वारा दी गई सामग्री एवं सुझावों पर अनुवर्ती कार्रवाई की व्यवस्था की जा सके और परिषद् को उसके ब्यौरे प्रस्तुत करने की व्यवस्था की जा सके। राष्ट्रीय विकास परिषद् की एक स्थायी समिति या कोई अन्य उपयुक्त तन्त्र गठित किया जाए जिसकी बैठक नियमित अन्तराल पर की जा सके और राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक के लिए आधार प्रस्तुत कर सके। हम 6.2 में किए गए इस अनुबन्ध से सहमत है कि एक बार राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा विकास की योजना अनुमोदित हो जाने के बाद राज्य अनुमोदित तरीके से उन्हें कार्यान्वित करने के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए और राज्यों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

6.3 इस समय परामर्श की प्रक्रिया अव्यवहारिक (टॉप डाउन) प्रतीत होती है, अर्थात् राज्य अपनी योजनाओं के मसौदों को विस्तृत संविक्षा के लिए योजना आयोग के पास ले जाते हैं। कोयला, इस्पात, सीमेन्ट, पेट्रो, रसायन, रेलों, प्रमुख

पत्तन, वायुमार्ग, दूरसंचार इत्यादि जैसे क्षेत्रों के सम्बन्धित योजनाओं के बनाने में राज्यों के मत का कोई महत्व नहीं होता है। ये सभी केन्द्र से सम्बन्धित विषय हैं। लेकिन ये क्षेत्र राज्यों की प्रगति के लिए अत्यावश्यक हैं और आधारिक संरचना में मुख्य तत्वों रेल, डाक एवं तार के रूप में या औद्योगिक विकास के लि महत्वपूर्ण कच्चे माल (कोयला, इस्पात) के रूप में महत्वपूर्ण रूप से अपनी भूमिका निभा रहे हैं। राज्य की अर्थ व्यवस्था के विकास में इन क्षेत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए राज्य से विस्तृत परामर्श करना आवश्यक प्रतीत होता है। इस समय कुछ केन्द्रीय एजेन्सियों जैसे रेल, टेलीफोन में राज्य स्तर पर सलाहकार समितियां हैं लेकिन वे विकास की भावी दिशा तथा उसकी गहनता की अपेक्षा इन संगठनों के दैनिक कार्यों तथा प्रचालन सम्बन्धि पहलुओं से ही सम्बन्ध रखती है। अतः यह सलाह दी जाती है कि राज्य और केन्द्रीय एजेन्सियों के बीच गहनता से परामर्श होना चाहिए। केन्द्रीय सरकार की केन्द्रीय परियोजनाओं के स्थान के बारे में राज्य सरकारों को विस्तृत सूचना पहले ही दे देनी चाहिए। वस्तुतः केन्द्रीय सरकार को केंद्रीय सरकार की परियोजना के स्थान से सम्बन्धित सम्भावनाओं और तकनीकी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए राज्य सरकारों से सक्रिय रूप से सुझाव मांगने चाहिए। इससे यह सुनिश्चित करने में सहायता मिल सकती है कि निवेश का चुनाव आर्थिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी मानदण्ड के आधार पर किया जाता है तथा अनुपयुक्त स्थान के कारण परियोजनाओं के बुरी तरह असफल हो जाने अथवा क्षमताओं के उपयोग में गम्भीर रूप से कमी होने की संभावना के विरुद्ध एक रक्षोपाय के रूप में सहायक हो सकता है। राज्य से सम्बन्धित क्षेत्रों के बारे में प्रचुर सूचनाएं केन्द्र को योजना आयोग तथा केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा निर्धारित किए गए विभिन्न प्रारूपों में दी जाती है जबकि विभिन्न केन्द्रीय क्षेत्रों के बारे में सूचनाएं राज्य को कभी कभार ही दी जाती हैं। कुछ औपचारिक प्रकाशनों में उपलब्ध सूचनाएं दो या तीन साल के समय अन्तराल के कारण सामान्यतः बहुत ही कम महत्व की होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि राज्य को प्रभावित करने वाली केन्द्रीय योजनाओं के मुख्य आर्थिक आंकड़ों तथा विशेषताओं का योजना आयोग द्वारा समुचित विश्लेषण किया जाना चाहिए तथा राज्य के योजना मंत्री या सचिवों के प्रस्तावित सम्मेलन से पूर्व इनका आदर्श रूप से प्रचार किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया से प्राप्त नवीनतम आंकड़ों के आधार पर राज्यड़ों सरकार को आर्थिक सूचकों की दर्शाने में सहायता मिलेगी। जहां तक योजना आयोग के वर्तमान गठन तथा प्रक्रियाओं का सम्बन्ध है यह नहीं कहा जा सकता है कि उसमें राज्य सरकारों के बारे में गहराई से समझने-रखने तथा उनके साथ परामर्श करने की छूट है, जिसकी परिकल्पना 1950 में योजना आयोग की स्थापना के समय की गई थी। योजना आयोग का गठन केन्द्रीय सरकार द्वारा किए जाने के कारण केन्द्र के साथ उसका गहरा सम्बन्ध है। परन्तु योजना आयोग को भी जैसा कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने योजना तन्त्र के बारे में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट (1967) में विचार व्यक्त किया है, केन्द्र से स्वतन्त्र होना चाहिए, जिससे कि राज्य सरकारों को इसकी कार्यप्रणाली के बारे में असंतोष न हो। यद्यपि काफी समय से योजना आयोग को केन्द्र के संगठनात्मक ढांचे में भली प्रकार ढाला गया है, परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि योजना आयोग ने राज्य सरकार के बारे में गहराई से समझा है (उनके साथ परामर्श किया है) राज्य सरकारों के दृष्टिकोण से योजना आयोग केन्द्रीय सरकार का एक हिस्सा बन गया है यद्यपि इसका मुख्य कार्य सलाह देने का था किन्तु व्यवहार रूप में, योजना आयोग का कार्य कार्यपालक के कुछ कार्यों को करना ही रह गया है तथा इसने आयोजना के कई क्षेत्रों में अन्तिम निर्णायक या निर्णायक प्राधिकारी की भूमिका ग्रहण कर ली है।

हमारा विचार है कि योजना आयोग को सिर्फ एक सलाहकार निकाय होना चाहिए तथा इसकी सिर्फ केन्द्र के बारे में ही नहीं, बल्कि राज्य सरकार के बारे में गहरी समझ होनी चाहिए। योजना आयोग को केन्द्र तथा राज्य सरकारों को तकनीकी तथा व्यावसायिक तरीके से सलाह देने की आवश्यकता स्वतंत्रता होनी चाहिए। राज्य सरकारों के प्रतिनिधित्व के लिए, योजना आयोग के संघटन को और विस्तृत किया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिए, इसमें राज्य को बारी-बारी से प्रतिनिधित्व का अवसर प्रदान किया जा सकता है।

6.4 हमें उपरिलिखित (ii) और (iii) का संयुक्त रूप से समर्थन करना चाहिए। योजना आयोग को अर्थ-शास्त्रियों, सांख्यिकीविदों, प्रोद्योगिकीविदों, अनुभवी व्यवसायियों तथा प्रबन्ध विशेषज्ञों का उच्च स्तरीय सलाहकार निकाय होना चाहिए तथा आम सरकारी विभाग द्वारा महसूस किए जाने वाले दबावों और सिफारिशों से इसे मुक्त होना चाहिए। राज्य सरकारों से नियमित रूप से परामर्श किया जाना चाहिए। योजना आयोग में उचित संख्या में विशेषज्ञ राज्यों से लिए जाने चाहिए, जिससे कि राज्य तथा क्षेत्रीय स्तर पर प्राप्त उनका अनुभव राष्ट्रीय योजना तंत्र में लाभदायक सिद्ध हो सके। सिर्फ शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्धित तथा विदेशी विश्वविद्यालयों से लाए गए विशेषज्ञों से यह खतरा है कि स्थानीय वातावरण के बारे में उनकी इतनी ठोस जानकारी नहीं होगी जिससे कार्य साधक समाधान उपलब्ध करा सकें। इस कारण से, अनुभवी व्यवसायियों को इस व्यवस्था का आवश्यक अंग माना जाना चाहिए।

सुचारु रूप से तैयार किए कितने ही कार्यक्रम कार्यान्वयन के समय बिल्कुल लड़खड़ा गए हैं, जिनके लिए ऐसे अनुभवी व्यक्तियों को सम्मिलित करने की आवश्यकता महसूस की गई है जो यथार्थ दृष्टिकोण तथा उस क्षेत्र की कार्यदशा के बारे में पूरी जानकारी रखते हैं।

अतः यह सुझाव दिया जाता है कि योजना आयोग के कम से कम आधे कार्मिकों का चयन इस क्षेत्र में उनके कार्य निष्पादन के आधार पर किया जाना चाहिए।

यह भी सुझाव दिया जाता है कि योजना आयोग द्वारा राज्यों के प्रतिनिधियों को बारी-बारी से सदस्यों के रूप में शामिल किया जाना चाहिए, जिससे राज्यों को आयोजना-प्रक्रिया से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध किया जा सके। ऐसे सदस्यों की संख्या 3 से 4 तक रखी जा सकती है, जिसका न्यूनतम कार्यकाल दो वर्ष हो सकता है। राज्यों के प्रतिनिधियों के रूप में अकादमी सदस्य, लोक जीवन में उच्च स्तर के लोग प्रशासक आदि राज्य सरकारों की सिफारिशों पर चुने जा सकते है।

6.5 हमारा विचार है कि योजना आयोग के दृष्टिकोण में सरकारी विभाग जैसी सख्ती नहीं होनी चाहिए। इसका कार्य केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों, दोनों को सामाजिक-आर्थिक कार्यकलापों, निवेश सम्बन्धी निर्णयों और योजना सम्बन्धी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के निरीक्षण को सुव्यवस्थित करने के लिए परामर्श देना, होना चाहिए।

योजना आयोग का कार्य वर्ष में एक बार केवल योजनाओं का अनुमोदन करना और उसके बाद औपचारिक रिपोर्टों पर निर्भर रहना ही नहीं होना चाहिए बल्कि यह भी होना चाहिए कि वह नए विचारों को प्रेरित करे, मुख्य कार्यक्रमों के सफल प्रचालन के लिए आवश्यक तत्वों को और अधिक मजबूत बनाने के लिए संप्रेषण बेल्ट के रूप में कार्य करे और उसके कार्यान्वयन में ऐसे नए घटकों को ढूंढने जिन्हें आगे और कार्यक्रम बनाते समय शामिल किया जा सके।

योजना आयोग केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों, दोनों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक स्वतन्त्र निकाय होना चाहिए। राष्ट्र की योजना के लिए योजना आयोग के प्रस्ताव राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति और अनुमोदन के अधीन होंगे।

6.6 संघीय प्रणाली में, राज्य की योजना में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को शामिल किया जाना आवश्यक है। संविधान की सातवीं अनुसूची में आर्थिक एवं सामाजिक योजना के समवर्ती विषय होने के कारण राष्ट्र की प्राथमिकताओं को पहचानना अत्यावश्यक कार्य है। योजना आयोग को मुख्य राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को निर्धारित करना चाहिए। राष्ट्रीय मानदण्ड औसत पर आधारित होते हैं, कुछ राज्य पीछे हो सकते हैं और थोड़े-से राज्य अपनी सामर्थ्य में आगे हो सकते हैं। पिछड़े हुए राज्यों को निःसन्देह ऊपर उठाना है, लेकिन अधिक क्षमता वाले राज्यों की प्रगति कुछ ऐसे बड़े राज्यों के कार्य-निष्पादन पर आधारित राष्ट्रीय मानदण्डों के कारण नहीं रोकी जानी चाहिए। जो देश के शेष भाग की तुलना में गंभीर रूप से पिछड़े हुए हैं बल्कि उन्हें भी आगे बढ़ने देना चाहिए। न्यूनतम आवश्यकताओं से सम्बन्धित कार्यक्रमों के सम्बन्ध में ऐसा विशेष रूप से है। योजना आयोग ने विकेन्द्रीकृत योजना के उद्देश्य को अपना लिया है, जिससे योजना की प्रगति में स्थानीय पहल और सहयोग में तेजी आई है। अतः योजना आयोग का कार्य राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण करना होना चाहिए, लेकिन इसके साथ ही यह सुनिश्चित करना भी होना चाहिए कि राज्य स्थानीय आकांक्षाओं और राष्ट्रीय उद्देश्यों को पूरा करते हुए अपने कार्यक्रमों और लक्ष्यों को तैयार करने के लिए स्वतन्त्र हैं।

6.7 योजना आयोग के माध्यम से ऋण एवं अनदानों के रूप में केन्द्रीय सहायता के लिए जाने की वर्तमान पद्धति की मुख्य खूबी यह है कि इसमें पर्वतीय प्रदेशों, जनजातीय क्षेत्रों, पूर्वोत्तर परिषद् और विशेष श्रेणी के राज्यों जैसे :—असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम तथा त्रिपुरा की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। केन्द्रीय सहायता के बंटवारे के सम्बन्ध में साधारण श्रेणी के राज्यों के लिए आशोधित गाडगिल फार्मूला लाने से वस्तुपरकता आई है और बंटवारे के सिद्धान्त में विवेक सम्मत सन्तुलन कायम हुआ है।

इस पद्धति से हानि यह हुई है कि अधिकांश राज्यों के लिए योजना सम्बन्धी सहायता का 70 प्रतिशत भाग ऋण के रूप में और 30 प्रतिशत भाग अनुदान के रूप में प्राप्त होता है। योजना सम्बन्धी खर्च का अधिकांश भाग ऐसी स्कीमों पर खर्च किया जा रहा है जिनसे इतना लाभ नहीं हो रहा है जो ब्याज और ऋण की वापसी के लिए पूरा पड़ सके। ऐसे ब्याज और ऋण की वापसी की बाद में राज्यों के गैर-योजना राजस्व और पूंजी के अन्तर का निर्धारण करते समय वित्त आयोग द्वारा ध्यान में रखा जाता है और इसकी पूर्ति गैर-योजनागत अनुदानों के द्वारा या केन्द्रीय ऋणों की वापसी के लिए फिर से अनुसूची बनाकर की जाती है। इस प्रकार की पद्धति के द्वारा अनावश्यक रूप से केन्द्र और राज्यों के राजस्व और पूंजी बजट में मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि राज्य योजना की स्कीमों के लिए राज्यों को समस्त सहायता, अधिकांश राज्यों को सहायता का 70 प्रतिशत भाग ऋण के रूप में और 30 प्रतिशत भाग अनुदान के रूप में दिए जाने की वर्तमान पद्धति के स्थान पर, सहायता-अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए।

विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए अतिरिक्त सहायता देने का जहां तक सम्बन्ध है, इस समय आई० डी० ए० (अन्तर्राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण), विश्व बैंक से प्राप्त राशि का 70 प्रतिशत भाग राज्यों को योजना सम्बन्धी अतिरिक्त सहायता के लिए दिया जाता है। यह अतिरिक्त सहायता भी ऋण एवं अनुदान के 70 : 30 के अनुपात के रूप में है। राज्य सरकारों का मत है कि राज्य योजना में शामिल की गई विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए राज्यों को दी जाने वाली अतिरिक्त सहायता राज्यों को उन्हीं शर्तों के आधार पर दी जानी चाहिए जिनके आधार पर वह भारत सरकार को दी गई है।

6.8 तथा 6.9 राज्य सरकार का मत है कि योजना सम्बन्धी सहायता निर्धारित करने की वर्तमान पद्धति में इससे पहले कि उस पद्धति की तुलना में अत्यधिक सुधार हुआ है जिसमें केन्द्रीय सहायता लगभग राज्य के संसाधनों और उसकी योजना के आकार के बीच सन्तुलनकारी तत्व के रूप में समझी जाती थी। वर्तमान पद्धति के अन्तर्गत पर्वतीय क्षेत्रों, जनजातीय क्षेत्रों, पूर्वोत्तर परिषद् को विशेष सहायता दिए जाने के अलावा विशेष श्रेणी के राज्यों जैसे—असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम तथा त्रिपुरा के मामलों में केन्द्रीय सहायता दिए जाने की आवश्यकता के बारे में तत्परता बरती गई है, जिससे वे ठोस योजनाएं बनाने के योग्य हो सकें। शेष राज्यों को केन्द्रीय सहायता आशोधित गाडगिल फार्मूला के आधार पर दी जाती है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ राष्ट्रीय औसत से कम प्रतिव्यक्ति आय वाले पिछड़े राज्यों को आबंटन में 20 प्रतिशत अधिक राशि दी जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि वर्तमान पद्धति आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों पर कठोरता से लागू नहीं की जाती है। छठीं पंचवर्षीय योजना की जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों की उप-योजना के सम्बन्ध में 5,415 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया था। छठीं पंचवर्षीय योजना के दौरान विशेष केन्द्रीय सहायता 40.81 करोड़ रु० थी, जो कि जनजातीय श्रेणी की उप-योजना पर होने वाले खर्च का केवल 9.83 प्रतिशत ही है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में जनजातीय क्षेत्र की उप-योजना के लिए 540.01 करोड़ रु० का प्रावधान किया गया है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में विशेष केन्द्रीय सहायता के रूप में 62.89 करोड़ रु० की व्यवस्था की जाने की आशा है। यह जनजातीय क्षेत्र की उप-योजना के लिए राज्य द्वारा किए गए प्रावधानों का 4.5 प्रतिशत है। विशेष केन्द्रीय सहायता से कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण लेकिन लगभग अछूते क्षेत्रों, जैसे विस्थापित जनजातियों के पुनर्वास और वन सम्बन्धी गांवों के विकास के कार्य को विभिन्न स्कीमें बना कर इसके अन्तर्गत शामिल किया जा सकता है। गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों में से और अधिक परिवारों को इसमें शामिल किया जा सकता है। उपर्युक्त पहलुओं पर ध्यान रखते हुए, सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि के लिए अधिक निधि अपेक्षित होगी। विशेष केन्द्रीय सहायता का उपयोग आधारिक संरचना की ऐसी स्कीमों के लिए भी किया जाता है, जो परिवार की उन्नति से सम्बन्धित स्कीमों और गरीबी हटाने की स्कीमों की अनुषंगी स्कीमें है। इसमें वृद्धि की जानी चाहिए ताकि इससे और अधिक लोगों को फायदा पहुंचाया जा सके।

उपलब्ध केन्द्रीय सहायता का वर्तमान स्तर गरीबी की रेखा से नीचे के सभी परिवारों के लिए आर्थिक विकास कार्यक्रम आरम्भ करने और इस अर्थोन्मुख कार्यक्रम को सहायता प्रदान करने के लिए आधारिक संरचना सम्बन्धी अनुषंगी स्कीमें शुरू करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस दलित वर्ग के विकास के लिए राज्य के संसाधन अपर्याप्त होने के कारण यह आवश्यक है कि और अधिक केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाए। यह सुझाव दिया जाता है कि सहायता की राशि राज्य की जनजातीय क्षेत्र की उप-योजना की कुल राशि के 25 प्रतिशत अंश तक बढ़ाई जानी चाहिए।

इस समय विशेष केन्द्रीय सहायता में से राशि का आबंटन केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए निदेशों के अनुसार किया जाता है। राज्य सरकार को विशेष केन्द्रीय सहायता का उपयोग करने के तरीके के बारे में निर्णय करने के लिए कुछ और अधिक स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए, और उन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा सुझाए गए योजना सम्बन्धी पैटर्न की सीमा में बांधना नहीं चाहिए।

जहां तक राज्य योजना के परिव्यय को निर्दिष्ट करने की प्रक्रिया का सम्बन्ध है, राज्य सरकार की टिप्पणी इस प्रकार है :—समस्त सैक्टर/उप-सैक्टर के लिए राज्य योजना परिव्यय को निर्दिष्ट करने की वर्तमान प्रणाली से बचना चाहिए जिससे वर्ष के दौरान कार्यक्रमों का समायोजन करने में राज्य सरकार को गुंजाइश प्रदान की जा सके। निर्दिष्ट परिव्यय कुल योजना परिव्यय के 30 प्रतिशत से 35 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। परियोजनाओं/कार्यक्रमों का चयन और परिव्यय को आरंभिक रूप से निर्दिष्ट करने का कार्य, राज्य सरकार के परामर्श से किया जाना चाहिए और यह अन्तिम रूप से सम्मत, सैक्टर सम्बन्धी परिव्यय की सीमा में किया जाना चाहिए। परिव्यय को प्रारंभिक रूप से निर्दिष्ट करने का कार्य राज्य सरकार की सहमति से किया जाना चाहिए।

केन्द्रीय सहायता को, निर्दिष्ट परिव्ययों के पूर्ण उपयोग से जोड़ने की वर्तमान पद्धति समाप्त कर दी जानी चाहिए। गाडगिल फार्मूला के अनुसार केन्द्रीय सहायता की राशि निर्धारित करने के बाद केन्द्रीय सहायता देने के लिए कोई शर्त लगाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। निर्दिष्ट परिव्ययों का पूर्णतया उपयोग करने पर राज्य सरकार को प्रोत्साहन के रूप में कोई सहायता नहीं दी जाती, जबकि इसमें कमी रह जाने पर केन्द्रीय सहायता में समानुपातिक कटौती करके दण्डित किया जाता है।

केन्द्रीय सहायता में कटौती न हो इसके लिए राज्य सरकार को योजना आयोग के अधिकारियों से संशोधित परिव्ययों के अनुमोदन के लिए अनुरोध करना पड़ता है, जिसमें अनेक पत्राचार एवं विचार-विमर्श किए जाते है जो कि उत्तेजक भी हो जाते हैं, विशेष रूप से तब जब कि योजनागत् परिव्यय का अधिकांश भाग राज्यों के अपने संसाधनों द्वारा वित्तपोषित किया गया हो। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि केन्द्रीय सहायता के भुगतान को निर्दिष्ट परिव्ययों के उपयोग के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए।

6.10 राज्य सरकार का मत है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा 1979 में निर्धारित मानदण्ड केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के चयन के लिए कुल मिलाकर संगत हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निर्धारित मानदण्ड इस प्रकार है :—

(क) केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों को निदर्शन, मार्गदर्शी परियोजनाओं, सर्वेक्षण तथा अनुसंधान से सम्बन्धित होना चाहिए, या

(ख) उन्हें क्षेत्रीय या अन्तर्राज्य स्वरूप का होना चाहिए, या

(ग) वे इस प्रकार की होनी चाहिए कि उनके लिए प्रादेशिक रूप से एकमुश्त प्रावधान प्राप्त करना अपेक्षित हो, या

(घ) उन्हें सम्पूर्ण भारत की दृष्टि से समग्र महत्व वाली स्कीमें होना चाहिए।

वर्ष 1979 में, केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों की संख्या और उनकी व्याप्ति में पर्याप्त रूप से कमी आई थी। फिर भी, समय बीतने के साथ-साथ स्कीमों की संख्या में पर्याप्त रूप से वृद्धि हुई है, विशेष रूप से साझेदारी के आधार पर। योजना अवधि के बीच में ऐसी स्कीमों को प्रारंभ करने से राज्य की योजना सम्बन्धी प्राथमिकताओं में व्यवधान उत्पन्न होता है। सूचना के अभाव में, राज्य सरकार को

इस बात का सत्यापन करने में कठिनाई हो रही है कि क्या राष्ट्रीय विकास परिषद् के 1979 के प्रस्तावों का सख्ती से पालन किया जा रहा है। राज्य सरकार का मत है कि पंचवर्षीय योजना की अवधि के प्रारंभ में ही स्कीमों के स्वरूप एवं विस्तार के बारे में एक व्यापक करार किया जाना चाहिए। इन स्कीमों के ब्यौरे पहले से ही प्रकाशित किए जाने चाहिए और उन पर योजना सचिवों के फोरम में विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। ये स्कीमें राष्ट्रीय स्तर के लिए संगत होनी चाहिए और इन्हें केवल चुने गए क्षेत्रों राज्यों के लिए बनाए जाने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रयोजन से पंचवर्षीय योजनाओं का अनुशासन सभी एजेंसियों पर लागू होना चाहिए चाहे वे केन्द्रीय एजेंसियां हो चाहे राज्य की एजेंसियां हों। योजना आयोग प्रत्येक वार्षिक योजना को पंचवर्षीय योजना के एक अंग के रूप में देखता है। यदि मध्यवर्ती अवधि में बड़े आकार वाली सहभागिता वाली, केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों को प्रारंभ किया जाता है, तो ऐसी वार्षिक योजनाओं को पूरा करने में राज्य सरकारों को विशेष रूप से कठिनाई होती है।

6.11 विशेषज्ञों की प्रेरणा से तथा परामर्शी सेवाओं का लाभ उठाते हुए प्रबोधन तथा मूल्यांकन मशीनरी को कारगर एवं सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। खर्च तथा वास्तविक लक्ष्य की तिमाही विवरणियों के माध्यम से प्रबोधन की पद्धति पूर्णतः पर्याप्त नहीं रही है, हालांकि प्रबोधन का यह प्रारंभिक पहलू महत्वपूर्ण और उपयोगी है और इसे जारी रहना चाहिए। प्रबोधन पद्धति, वास्तविक निष्पादन से इसका सम्बन्ध स्थापित किए बिना, बजट संबंधी प्रावधान के उपयोग पर केन्द्रित है, प्रबोधन में सेवाओं की यूनिट लागत जैसे पहलुओं को भी शामिल किया जाना चाहिए। कार्यक्रम की दक्षता का निर्णय न केवल परिव्यय के उपयोग की दृष्टि से बल्कि सेवाओं की दक्षता तथा स्तर के आधार पर किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में उत्तरोत्तर कम्प्यूटर का प्रयोग करना होगा तथा जिला स्तर पर प्रशिक्षण की व्यवस्था करके आंकड़ों का आधार मजबूत करना होगा ताकि प्रयोजनपरक सूचना प्राप्त हो सके। प्रबोधन को सार्थक बनाना है, तो सूचना तन्त्र को और अधिक कारगर बनाना होगा तथा सूचना समय से प्रस्तुत करनी होगी।

पूंजी प्रधान कार्यक्रमों के अतिरिक्त जिनके लिए कि यूनिट लागत अध्ययन आवश्यक होगा, यह भी वांछनीय है कि गरीबी हटाने के कार्यक्रमों के औचित्य और लक्ष्य के अधीन आने वाले ग्रुपों की आय के स्तर को बढ़ाने के प्रयास पर उनके पड़ने वाले प्रभाव के बारे में अध्ययन किया जाए। योजनागत स्कीमों का मूल्यांकन बड़े पैमाने पर शुरू किया जाना चाहिए। मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन समय से पूरा किया जाना चाहिए जिससे कि इसके परिणाम योजनाकारों को उपलब्ध हों सकें और वे स्कीमों का पुनरीक्षण कर सकें और यदि आवश्यक हो तो उन्हें अपेक्षाकृत अधिक उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए उसकी विषय वस्तु में सुधार कर सकें। शीघ्र मूल्यांकन के लिए सीमित विभागीय प्रयासों पर निर्भर रहने की अपेक्षा प्रतिष्ठित स्वतन्त्र एजेंसियों की सेवाएं ली जा सकती हैं।

6.12 हम विकेन्द्रीकृत आयोजना के पक्ष में हैं। विकेन्द्रीकरण आयोजना की प्रक्रिया में गुजरात पहले से ही आगे है। विवेकाधीन और प्रोत्साहन परिव्यय को जिला योजना बोर्डों की मर्जी पर रखने की व्यवस्था कारगर और लोकप्रिय रही है। इस व्यवस्था से कार्यक्रमों के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रिया और उन्हें स्थानीय स्तर पर लागू करने में जनता की भागीदारी और लोगों का उससे लगाव बढ़ा है। राष्ट्रीय उद्देश्यों और लक्ष्यों के निर्धारण की प्रक्रिया में तथा योजना के बारे में दृष्टिकोण निश्चित करने और नीति बनाने के कार्य में राज्यों को प्रत्यक्ष रूप से और सक्रिय रूप से साथ लिया जाना चाहिए। एक बार परस्पर विचार-विमर्श से दृष्टिकोण और मार्ग निर्देश निर्धारित हो जाने के बाद, राज्य लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं के अनुरूप योजना कार्यक्रम बनाने की दिशा में मुक्त रूप से कार्य कर सकते हैं।

6.13 राज्यों ने योजना की प्रगति के कार्य में अनुभव अर्जित किया है तथा योजना बनाने व कार्यान्वित करने की पद्धति का विकास किया है। सदस्यों के रूप में विशेषज्ञों से युक्त राज्य योजना बोर्ड दिशा निर्देश और मार्गदर्शन प्रदान करता है तथा राज्य की योजना प्रक्रिया में समन्वय स्थापित करता है। राज्य के भीतर की तथा राष्ट्रीय स्तर की अनुसंधान तथा शैक्षणिक संस्थाओं से परामर्श करके, राज्य सरकारें आयोजना क्षमता को बढ़ाने में समर्थ हुई हैं। राज्य सरकार का विचार है कि राष्ट्रीय योजना को उत्तरोत्तर निर्देशात्मक होना चाहिए, जिससे राज्यों को राष्ट्रीय लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सके। यह सुझाव दिया जाता है कि योजना आयोग के सदस्य तथा वरिष्ठ अधिकारी प्रेक्षक की हैसियत से, राज्य योजना बोर्ड के साथ अपने को सम्बद्ध करें अथवा बेहतर होगा कि इसके सदस्य बनें तथा राज्य योजना बोर्ड में किए जाने वाले विचार-विमर्श में सक्रिय रूप से हिस्सा लें। राज्य की राजधानियों में नियमित रूप से,इस प्रकार के विचार-विमर्श तथा विशेषज्ञता के माध्यम से देश की नियोजन प्रक्रिया में राज्य की अधिकाधिक भागीदारी से कुछ कमियों पर काफी हद तक काबू पाया जा सकेगा।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम इस विचार से सहमत नहीं है कि उद्योग (विकास तथा विनियम) अधिनियम, 1951 की अनुसूची के विस्तार से लोकहित को कोई नुकसान पहुंचा है। तथापि यह देखा गया है कि इस अधिनियम के लागू करने में कुछ परिहार्य कठिनाई उत्पन्न हुई हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां यूनिटों के ऐसे प्रस्तावों को केन्द्रीय मन्त्रालयों ने अस्वीकार कर दिया है जिनके लिए, किसी विशेष मद के विनिर्माण हेतु देश में अधिक अनुज्ञप्त क्षमता के आधार पर राज्य सरकारों ने सिफारिश की थी। इस दृष्टिकोण के कारण प्रायः इस बात पर विचार नहीं किया जाता कि वर्तमान लाइसेंस-धारक वास्तविक उत्पादन प्रारंभ करने में कितना समय लेंगे तथा इस कारण से, देर में आने वालों को उस उद्योग में प्रवेश का अवसर देने से इन्कार करने का निर्णय लेना बहुत उपयुक्त नहीं लगता।

किसी विशेष उत्पाद की लाइसेंस प्रदान करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के इस प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर बहुत से गलत निर्णय ले लिए गए हैं कि किसी विशेष उत्पाद में मांग के आधार पर उत्पादन की अधिक या विशेष क्षमता है। इस प्रत्यक्ष ज्ञान के बारे में राज्य सरकार के साथ विचार-विमर्श नहीं किया जाता है और इस लिए उस पर आधारित निष्कर्ष मनमाने तौर पर निकाले गए निष्कर्ष लगने लगते हैं। कुछ मामलों में, वास्तविक क्षमता के स्थान पर अनुज्ञप्त क्षमता की गणना का आधार बना लिया जाता है। अन्य मामलों में, उस उत्पाद का आयात होते रहने पर भी ऐसा मान लिया जाता है कि पर्याप्त क्षमता विद्यमान है। औद्योगिक घरानों की यह प्रवृत्ति तो सर्वविदित ही है कि वे आशय पत्र और औद्योगिक लाइसेंस इस दृष्टिकोण से हथिया लेते हैं कि दूसरे लोग उस उद्योग में प्रवेश न कर सकें।

केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रक यूनिटों के दो उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनके लिए स्थान का निर्धारण गुजरात में उपयुक्त समझा गया था, लेकिन फिर भी उन्हें, अन्तिम रूप से किसी अन्य राज्य के लिए अनुमोदित किया गया। वे हैं—100 करोड़ रुपए की लागत से बनने वाली इलैक्ट्रॉनिक स्विचिंग फैक्टरी। इस फैक्टरी को बड़ौदा या गुजरात के गांधी नगर में स्थापित किया जाना अच्छा होता, लेकिन इसे उत्तर प्रदेश में गोंडा में स्थापित करने के लिए अन्तिम रूप से अनुमोदित किया गया। 50 करोड़ रुपए की लागत वाली रेलवे कोच फैक्टरी गुजरात में दाहोद / गांधी नगर/कालीपुर में समुचित रूप से स्थापित की जा सकती थी लेकिन इसे पंजाब में स्थापित करने के लिए अंतिम रूप से अनुमोदित किया गया। ऐसे भी कई मौके आए हैं जब गुजरात में स्थापित उद्योगों को अपनी विस्तार या विविधता सम्बन्धी परियोजनाओं के लिए अन्य राज्यों में जाना पड़ा है, हालांकि उद्यमों ने बार-बार इस बात पर जोर दिया था कि ऐसा करने से प्रबन्धकीय तकनीकी खर्च यूनिट को अधिक खर्चीला बना देंगे। ऐसे निर्णयों के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित मामले लिए जा सकते हैं :—

1. मैसर्स एशियन पेंट्स, मद : थैलिक एनहाइराइड—9000 टी० पी० ए०—यह इस समय गुजरात में भड़ौच जिले में अंकलेश्वर में स्थापित है और इस यूनिट को उपर्युक्त परियोजना के लिए आशय-पत्र जारी करने के लिए मध्यप्रदेश के किसी पिछड़े क्षेत्र में जाने का निदेश दिया गया था, हालांकि अंकलेश्वर में इस परियोजना को शामिल करने के लिए इन सुविधाओं का अपेक्षाकृत कम खर्च पर आसानी से विस्तार किया जा सकता है।

2. मैसर्स हाई टैम्प०ग्लास कन्डक्टर्स :—यूनिट ने 1200 टी० पी० ए० उष्मतापी ग्लास के ढके चालकों के विनिर्माण के लिए हिम्मतनगर जिले में स्थान के

लिए आवेदन किया था, लेकिन, उन्हें इस परियोजना को उत्तरी भारत के उद्योग-रहित जिलों में स्थानान्तरित करने के लिए कहा गया था हालांकि आर्थिक, तकनीकी तथा अन्य मानदण्डों की पूर्ति गुजरात का वह स्थान ही करता था।

3. मैसर्स ट्यूब इन्वेस्टमेंट आफ इण्डिया लिमिटेड:—इस यूनिट ने (i) टाई रॉडबोल्स (ii) पिस्टन, पिस्टन पिन, पिस्टन रिंगों, तथा (iii) इंजन वाल्वों के विनिर्माण के लिए गुजरात राज्य के पिछड़े क्षेत्र में एक स्थान के लिए आवेदन किया था परन्तु गुजरात में स्थान के लिए उसके मूल आवेदन के बदले में उन्हें उत्तरी भारत के किसी उद्योग रहित जिले में जाने को कहा गया।

इसके अतिरिक्त, किसी प्रतिष्ठित निजी क्षेत्रक उद्यम के जरिए अपतट वेधन उपस्कर के उत्पादन को प्रोत्साहन देने संम्बन्धी राज्य सरकार के प्रयत्नों को, अधिक्षमता के आधार पर अस्वीकार किया जा चुका है, हालांकि यह मालूम है कि बहुत से सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रमों में, जिन पर अधिक्षमता का आरोप है, इस उत्पाद की मांग की निकट भविष्य में मुश्किल से पूरा करने की क्षमता है।

संक्षेप में, रक्षा सम्बन्धी उद्योगों अथवा सामरिक महत्व के उत्पादों को छोड़कर अन्य मामलों में निर्णय लेने के लिए, लाइसेंस प्रदान करने के तन्त्र पर निर्भर रहने के बजाए, केवल आर्थिक तथा प्रौद्योगिकी मानदण्डों को प्रधानता प्रदान करनी चाहिए।

7.2 (i) "राष्ट्रीय लोक हित" को नियन्त्रित करने वाले कुछ मानक या मानदण्ड इस प्रकार हो सकते हैं।

दुर्लभ तथा तेजी से नष्ट होने वाले कच्चे माल पर आधारित उद्योग, सामरिक महत्व के कच्चे माल जैसे यूरेनियम आदि पर आधारित उद्योग, युद्ध सामग्री या राष्ट्रीय रक्षा से सम्बन्धित उद्योग, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव डालने वाले उद्योग जैसे—विद्युत संयन्त्र का विनिर्माण, परमाणु अनुसंधान के घटक, अन्तरिक्ष अनुसंधान आदि।

7.2 (ii) ऐसी मदों की सूची नीचे दी गई है जिन्हें उद्योग (विकास तथा विनियम) अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची से इस आधार पर हटाया जा सकता है कि वे राष्ट्रीय हित या लोकहित के लिए वास्तव में अत्यावश्यक नहीं है:—

I. धातुकर्मीय उद्योग :

फेरस

1. लोहा तथा इस्पात की ढलाई तथा गढ़ाई।
2. लोहा तथा इस्पात की संरचनाएं।
3. लोहा तथा इस्पात के अन्य उत्पाद।

II. विद्युत उपस्कर :

1. उपस्कर, ट्रांस्फॉरमर सहित विद्युत का संचारण तथा वितरण।
2. विद्युत मोटर।
3. विद्युत पंखे।
4. विद्युत लैम्प।
5. एक्सरे उपस्कर।
6. इलैक्ट्रॉनिक उपस्कर।
7. घरेलू उपकरण जैसे—बिजली की प्रेस, हीटर आदि।
8. स्टोरेज बैटरी।
9. शुष्क सेल।

III. दूर संचार।

1. रेडियो संग्राहक, जिनमें प्रवर्धन और लोक सम्बोधन उपस्कर शामिल हैं।
2. टेलिविजन सेट।

IV. परिवहन :

1. मोटर साइकिल, स्कूटर और ऐसे अन्य वाहन।
2. साइकिल।
3. अन्य जैसे—फोर्क लिफ्ट ट्रक आदि।

V. औद्योगिक मशीनरी :

विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त मशीनरी की सामान्य मदें, जैसे—विभिन्न "यूनिट प्रक्रियाओं" के लिए अपेक्षित उपस्कर :

1. साइज सेपरेशन यूनिटस्—स्क्रीन्स क्लासीफायर्स आदि।
2. अपकेन्द्री यन्त्र।
3. वाष्पक।
4. आसवन उपस्कर।
5. मणिभीकारक (क्रिस्टलाइजर्स)।
6. शोषक।
7. विद्युत संचालित पश्चाग्र पंप तथा अपकेन्द्री पम्प आदि।
8. दमकल सहित अग्निशामक उपस्कर तथा उपकरण।

VI. कृषि यन्त्र :

कृषि उपकरण।

VII. मिट्टी हटाने की मशीन :

बुलडोजर, डम्पर, खुरचनी, लोडर्स, बेलचा, ड्रैग लाइन्स, घंटी-चक्र उत्खनक, सड़क रोलर आदि।

VIII. विभिन्न यांत्रिक एवं इंजीनियरी उद्योग :

1. प्लास्टिक से ढला सामान।
2. हाथ के औजार, छोटे औजार आदि।
3. रेजर ब्लेड।
4. प्रेशर कुकर।
5. कटलरी।
6. इस्पात का फर्नीचर।

IX. वाणिज्यिक, कार्यालयी तथा घरेलू उपस्कर :

1. परिकलित्र यन्त्र।
2. वातानुकूलन यन्त्र तथा रेफ्रिजरेटर।
3. सिलाई तथा बुनाई की मशीन।
4. हरीकेन लालटेन।

X. चिकित्सा व शल्य सम्बन्धी उपकरण :

शल्य उपकरण—विसंक्रामक यन्त्र, अभ्यापित्र आदि।

XI. औद्योगिक उपकरण :

1. जल मीटर, भापमीटर, तथा विद्युत मीटर आदि।
2. दाब, ताप, बहाव की गति, वजन, स्तर आदि दर्शाने, रिकार्ड करने तथा विनियमित करने वाले यन्त्र।
3. भार मापने की मशीन।

XII. वैज्ञानिक उपकरण : वैज्ञानिक उपकरण।

XIII. गणितीय, सर्वेक्षणीय एवं आरेखन उपकरण।

XIV. रसायन (उर्वरकों को छोड़कर)।

1. परिष्कृत रसायन जिसमें फोटोग्राफिक रसायन शामिल है।
2. पेन्ट्स, वार्निश तथा एनेमल।
3. हाथ से बने रेशम जिसमें पुनरुत्पादित सेलुलोज, रेयॉन, नॉयलान आदि शामिल हैं।
4. कीटनाशक, कवकनाशक, खरपतवारनाशी आदि।

XV. किण्वन (फर्मेन्टेशन) उद्योग :

1. अल्कोहोल।
2. किण्वन उद्योगों के अन्य उत्पाद।

XVI. खाद्य संसाधन उद्योग

XVII. वनस्पति तेल तथा वनस्पति ।

XVIII. साबुन, अंगराग तथा प्रसाधन सामग्री ।

XIX. चमड़ा, चमड़े का सामान तथा पिकर्स ।

XX. ग्लू तथा ग्लेटिन Ghlatin

XXI. ग्लास ।

XXII. मृत्तिका शिल्प ।

XXIII. इमारती लकड़ी के उत्पाद ।

7.3 हालांकि पूंजीगत माल आदि के आयात के लिए औद्योगिक लाइसेंस तथा केन्द्रीय निकासी की प्रक्रियाएं सरल और कारगर बनाने के लिए बहुत से कदम उठाए जा चुके हैं, फिर भी उनमें निम्नलिखित रूप में सुधार के लिए काफी गुंजाइश हैं :

(i) सम्बन्धित केन्द्रीय एजेंसियों के क्षेत्रीय कार्यालयों जैसे आयात व निर्यात के संयुक्तमुख्य नियन्त्रक राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के शाखा कार्यालयों, एम एम टी सी, कोल इण्डिया लिमिटेड, इण्डियन ऑयल कॉर्पोरेशन के शाखा कार्यालयों, रेलवे के क्षेत्र अधीक्षकों आदि की वित्तीय तथा प्रशासनिक शक्तियों में उल्लेखनीय रूप से वृद्धि कर के, तथा

(ii) निर्णय-लेने के लिए ऐसी समयबद्ध प्रक्रिया अपनाकर जिसके अधीन कोई आवेदन उस दशा में मंजूर किया गया माना जाता है जब निर्धारित समय सीमा के भीतर सम्बन्धित सरकारी एजेंसी से कोई जवाब न आए । बम्बई भूमि राजस्व कोड के अधीन, कृषि-भूमि से गैर-कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करने की अनुमति प्रदान करने के सम्बन्ध में यह प्रक्रिया प्रचलित है ।

उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम किराया खरीद करता है तथा छोटे पैमाने के उद्योगों को विपणन आदि में सहायता प्रदान करता है । इसका गुजरात में राजकोट में (राज्य की राजधानी से बहुत दूर) केवल ऐसा कनिष्ठ अधिकारी नियुक्त है जिसके पास 1 लाख रुपए तक संयंत्र एवं मशीनरी की मंजूरी देने की शक्तियां हैं । इस सीमा से अधिक की मदों के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए उन्हें बम्बई के कार्यालय में भेजना होता है । बम्बई का कार्यालय भी केवल 4 लाख रुपए तक की मद के लिए मंजूरी प्रदान कर सकता है । 20 लाख रुपए तक की मदों के अन्य सभी मामलों को निर्णय के लिए दिल्ली भेजना होता हैं ।

इसी प्रकार, यद्यपि देश का 60 प्रतिशत नमक का उत्पादन गुजरात में होता है तथा देश की कुल तट रेखा का एक तिहाई से अधिक भाग गुजरात में है किन्तु नमक आयुक्त की तैनाती राजस्थान में जयपुर में की जाती है । उप नमक आयुक्त का पद हाल ही में मंजूर किया गया है और इसे अहमदाबाद में तैनात किया गया है । इसके पास नमक कामगारों के सुधार के लिए बनाई गई कल्याण स्कीमों के अनुमोदन के लिए बहुत सीमित वित्तीय शक्तियां हैं । इसी प्रकार, अल्कोहल, सोरा, कोयला, इस्पात आदि जैसे कठिनाई से मिलने वाले कच्चे माल के सम्बन्ध में भी निर्णय दिल्ली में लिया जाता है, बहुत-सी केन्द्रीय एजेंसियों के कार्यालय बहुत-सी राज्य की राजधानियों में नहीं हैं और जहां वे हैं भी वहां अधिकारियों की शक्तियां बहुत सीमित हैं और उस राज्य में उसके अधिकांश लाभ भोगियों की आवश्यकताताओं के अनुपात में नहीं हैं ।

अतः उपयुक्त केन्द्रीय एजेन्सियों की अधिक शाखाओं की और केन्द्रीय निगमों के उप-यूनिटों को राज्यों की राजधानियों में स्थापित किया जाना चाहिए ताकि छोटे और मध्यम आकार के उद्यमों के अधिकांश मामलों के सम्बन्ध में कार्यविधिक औपचारिकताओं, प्रलेखन आदि के बारे में राज्य की राजधानी में ही निर्णय ले लिया जाए ।

7.4 गुजरात में ग्राम और कुटीर उद्योगों के विकास के लिए और उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए संगठनों का काफी बड़ा जाल है । कुटीर उद्योग निदेशालय और जिला उद्योग केन्द्रों ने परम्परागत कुटीर उद्योगों के लिए बैंक से वित्तीय सहायता प्राप्त कराने के लिए हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । हथकरघा विकास निगम और हस्तशिल्प विकास निगम ने अपने-अपने क्षेत्रों में शिल्पकारों की उत्पादन पद्धतियों में सुधार के लिए कई उपाए लिए हैं । गुजरात राज्य वन विकास निगम ने भी आदिवासियों की आय बढ़ाने और विभिन्न उत्पादों को एकत्र करने, उनके भण्डारण और प्रकरण में उनके कौशल में सुधार लाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है ।

गुजरात में कुछ वर्ष पहले स्थापित ग्रामीण प्रौद्योगिकी संस्थान ने भी चुने हुए क्षेत्रों में उत्पादन प्रक्रियाओं की पद्धतियों के आधुनिकीकरण का भी प्रयास किया है ।

गुजरात लघु उद्योग निगम ने राज्य में लघु उद्योग के क्षेत्र के उत्पादों के विपणन के लिए कई तरीकों से सहायता पहुंचाई है । सरकार के लिए की जाने वाली खरीद के सम्बन्ध में राज्य की नीति में लघु उद्योगों और कुटीर उद्योगों के उत्पादों की खरीद पर बल दिया गया है । कुटीर उद्योगों के उत्पादों जैसे सिले-सिलाए वस्त्र, जूते-चप्पल आदि का विपणन भी गुजरात ग्रामीण उद्योग विपणन निगम के प्रयासों से हाल के वर्षों में सरल हो गया है । इस संगठन ने छोटे पैमाने की सरकारी एजेंसियों और अलग-अलग नमक कामगारों द्वारा बहुत छोटे पैमाने पर उत्पादित नमक के विपणन में भी सहायता पहुंचाने का प्रयास किया है ।

लगभग इन सभी क्रियाकलापों के लिए शीर्ष केन्द्रीय संगठन हैं जिनकी वर्ष में एक या दो बार बैठक होती है । ऐसा कोई कारण नहीं है कि इनमें से कुछ मदों के आधुनिकीकरण के लिए इन फोरमों में विस्तार से चर्चा न की जा सके और इस आधुनिकीकरण के महत्वपूर्ण तत्वों का उत्तरदायित्व राज्यों द्वारा लिए जाने के लिए उन्हें प्रेरित करने के लिए उपयुक्त केन्द्रीय सहायता न प्रदान की जा सके ।

यद्यपि राज्य सरकार ने लघु और ग्रामीण उद्योगों को संभव सेवा प्रदान करने का प्रयास किया है फिर भी यह ध्यान रखा जाए कि कच्चे माल के महत्वपूर्ण पहलू पर केन्द्र सरकार का नियन्त्रण रहता है और उस पर राज्य सरकारों का किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रहता । यह बात कच्चा लोहा, इस्पात, सीमेंट और कोयले की पूर्ति के सम्बन्ध में भी लागू होती है । ऐसे दुर्लभ कच्चे माल के सम्बन्ध में किस्म, मात्रा, मूल्य और पूर्ति की अनिश्चितता और ढुलाई की कठिनाइयां आती हैं । इन, कच्चे माल की बहुत अधिक कमी उत्पन्न होने और उनको आयात करने का निर्णय लेने के बीच बहुत अधिक समय अन्तराल होता है । आयात किए जाने के मामले में भी जो मदें अनन्य रूप से लघु उद्योगों के लिए हों उनके सीमा-शुल्क आदि की छूट देने या उसे कम करने के बारे में निर्णय लेने में और लघु उद्योग निगम के माध्यम से आयात करने में भी अकसर समय लग जाता है । यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि मौजूदा लघु उद्योगों को दुर्लभ कच्चे माल की पर्याप्त मात्रा में और उचित कीमत पर पूर्ति करके उनका ध्यान रखे जाना बजाए इसके कि और लघु उद्योगों की स्थापना का बहुत अधिक प्रयास किया जाए । चूंकि लघु उद्योगों के उद्यमकर्ता बहुत छोटे होते हैं और उस प्रकार का प्रत्यावेदन नहीं कर सकते हैं जैसा कि मध्यम और बड़े उद्योगों के उच्च श्रेणी के प्रबन्धक कर सकते हैं । अतः उपर्युक्त सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए लघु उद्योगों को औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति के लिए केन्द्रीय सरकार के निगम का आश्वासन प्राप्त होना बहुत महत्वपूर्ण है । प्रायः लघु उद्योगों को इन कच्चे माल की पूर्ति के सम्बन्ध में तकनीकी विकास महानिदेशालय के यूनिटों की तुलना में बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । विभिन्न दुर्लभ कच्चे माल के सम्बन्ध में तकनीकी विकास महानिदेशालय के यूनिट लघु उद्योगों की तुलना में अधिक सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं ।

7.5 केन्द्र द्वारा नियन्त्रित वित्तीय संस्थाओं ने मध्यम और बड़े उद्यमों को वित्त प्रदान करने और राज्य वित्तीय एजेंसियों के उपयुक्त कार्यकलापों के लिए पुनः वित्तीयन में सामान्यतः महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम जैसी कुछ एजेन्सियों

के क्षेत्रीय कार्यालय अहमदाबाद राज्य में हैं। उनके होने से कई प्रकार से बहुत सहायता मिली है। विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां यूनिटों के लिए संयुक्त रूप से वित्त आवश्यक हो। उनके प्रतिनिधी भी ऐसे स्थान पर होते हैं कि वे राज्य वित्त संस्थाओं द्वारा आयोजित विभिन्न बैठकों में सुविधा पूर्वक भाग ले सकें और अपनी विशेष सलाह व परामर्श दे सकें। अन्य केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं के क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित करने की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि उनसे भी समान लाभ उठाए जा सकें।

इस बात पर भी बल दिया जाता है कि केन्द्रीय वित्तीय संस्थाएं वित्तीय और तकनीकी मानदंडों के आधार पर निर्णय लेने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र हों और किसी विशेष क्षेत्र को वरीयता देने के संबंध में किसी निर्देश से आबद्ध न हो। विभिन्न अन्य फोरमों में लिए गए निर्णयों में इस प्रकार की वरीयताएं पहले ही निर्धारित की जा चुकी हैं और इस प्रकार की संस्थाओं में इन्हें दोहराया नहीं जाना चाहिए। ये संस्थाएं पूर्णतया तकनीकी और वित्तीय बातों के आधार पर अपना निर्णय करेंगी।

मध्यम और बड़े आकार के उद्यमों को वित्तीय सहायता देने में वे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :—

(i) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की पुनर्वित्तीयन की वर्तमान सीमा बढ़ाकर परियोजना की 5 करोड़ तक की लागत को पूरा करने के लिए कर दी जानी चाहिए। ताकि वह तकनीकी विकास महानिदेशालय की पंजीकरण की सीमा के अनुरूप हो जाए।

(ii) स्वत: पुर्नवित की सीमा 30 लाख रु० तक बढ़ा देनी चाहिए।

(iii) परियोजना प्रस्ताव के प्रलेखन और अनुमोदन कार्य एक ही स्थल पर पूरा किए जाने की आवश्यकता है इस समय की सभी दावों के बावजूद अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं में मंजूरियों, प्रलेखों आदि के संबंध में प्रभावी समन्वय की गुंजाइश है।

7.6 ऐसा महसूस किया जाता है कि सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेशों के संबंध में स्थान के बारे में निर्णय उस रूप में नहीं लिए जाते हैं जो सभी राज्यों को उचित प्रतीत हों। नि:संदेह, एक ही समय में सभी राज्यों को संतुष्ट कर पाना संभव नहीं है। किन्तु उनको अपनी बात कहने का उचित अवसर प्रदान करके और जहां व्यावहारिक हो, चयन का मानदंड प्रकाशित करके ऐसी आलोचनाओं को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

प्राय: केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रम परियोजनाओं के स्थान का चयन पूर्णतया तकनीकी आर्थिक बातों पर आधारित नहीं प्रतीत होता है। कुछ राज्यों में कच्चे माल की उपलब्धता या बाजार नजदीक होने जैसी बातों पर ध्यान दिए बिना बहुत सी सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाएं बनाना संभव हो सका है, जबकि अन्य राज्यों के मामले में उन्हें ऐसी परियोजनाओं से वंचित रखा गया है जो कच्चे माल की उपलब्धता के आधार पर बनाई जा सकती थी। उदाहरणार्थ, गुजरात में ऐसी सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजनाओं को छोडकर जिन्हें स्थानीय कच्चे माल जैसे—रिफाइनरी और पैट्रो-रसायन कॉम्प्लैक्स की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए गुजरात में स्थापित किया जाना अनिवार्य था, भारी उद्योग श्रेणी की परियोजनाओं जैसी स्वतंत्र श्रेणी की केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजनाओं में शायद ही कोई लाभप्रद निवेश किया गया। अन्ततोगत्वा, ऐसे कम अनुकूल स्थानों में परियोजनाएं बनाने का खर्च राष्ट्र को अपेक्षाकृत अधिक पड़ेगा।

7.7 प्रश्न संख्या 7.6 के उत्तर में जो कुछ कहा गया है उसके अतिरिक्त इसमें से अधिकांश आलोचना इस कारण से हुई है क्योंकि ऐसे मामलों में बहुत कम सूचना उपलब्ध है। यदि निर्णय लेने की प्रक्रिया अधिक खुली हो, और निर्णय लेने का मानदंड पहले से ज्ञात हो तो सम्भवत: ऐसी आलोचना को कम किया जा सकता है।

7.8 औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए जिलों का पता लगाने के लिए अपनाई जाने वाली पद्धति-समुचित नहीं है। प्रथमत: पिछड़ेपन का पता लगाने के लिए जिले उपयुक्त यूनिट नहीं हैं क्यों के ऐसे बड़े-बड़े तालुका हैं जो जिले के बहुत बड़े क्षेत्र में होते हैं, उन्नत जिलों में भी बहुत से तालुकों में कोई भी उद्योग नहीं है और उनकी दशा देश के औद्योगिक रूप से बहुत अधिक पिछड़े हुए जिलों के समान हैं। गुजरात में कुछ पिछड़े हुए जिलों में दुग्ध प्रक्रमण के लिए आधुनिक डेरी का मौजूद होना यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त है कि उन्हें "उद्योग रहित जिले" की सूची में शामिल न किया जाए।

गुजरात में "उद्योग रहित जिला" के रूप में केवल डैंग्स जिला ही माना गया है। इस जिले के अधिकांश भाग में वन है। वन-संरक्षण की नई नीति के अंतर्गत विकास परियोजनाओं जैसे-विद्युत परियोजनाओं और औद्योगिक परियोजनाओं के लिए वन-भूमि का बहुत छोटा क्षेत्र लेने के लिए भी राज्य सरकार को केन्द्र सरकार की अनुमति लेनी होती है। इस प्रकार, केन्द्रीय सरकार की एक एजेंसी (औद्योगिक विकास मंत्रालय) "उद्योग रहित जिला" के रूप में जिस बात को प्रोत्साहित करना चाहती है उस को दूसरी ऐजेंसी अर्थात् कृषि मंत्रालय/वन मंत्रालय उसे समाप्त करना चाहती है।

इसी प्रकार कुछ पिछड़े हुए क्षेत्रों में खनन और खनिज आधारित उद्योगों का विकास संलग्न वन-भूमि के लिए केन्द्रीय सरकार का अनुमोदन आवश्यक होने के कारण कम हो गया है। खनन प्रयोजनों के लिए विभिन्न भूमि के लिए सरकार की अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया में भी काफी समय लगता है जो प्राय: पिछड़े क्षेत्रों में इन उद्योगों के तेजी से विकास में रूकावट पैदा करता है।

वनों के काटे जाने वाले वृक्षों की संख्या के बराबर या उनसे दुगुनी संख्या में, निकटस्थ क्षेत्रों में वृक्ष लगाकर प्रतिपूरक वनरोपण प्रक्रिया एक बहुत अच्छा रचनात्मक हल हो सकती है। इस बात के बावजूद कि गुजरात राज्य में सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी के क्षेत्र में असाधारण प्रगति की है, उसे वास्तविक औद्योगिक और आर्थिक विकास परियोजनाओं के लिए इनके बदले वनों का बहुत छोटा क्षेत्र प्राप्त करने में भी गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

इसी कारण से गुजरात सरकार, पिछड़ेपन के लिए तालुका को एक "यूनिट" के रूप में स्वीकार करने पर बल देती है। भारतीय रिजर्व बैंक के भूतपूर्व राज्यपाल डा० आई० जी० पटेल की अध्यक्षता में विशेषज्ञ समिति ने भी सिफारिश की है कि औद्योगिक विकास की प्रगति के लिए तालुका को "यूनिट" के रूप में स्वीकार किया जाए। तालुका को औद्योगिक रूप से विकसित मानने के लिए तालुका में विशेष स्थान पर 30 करोड़ रुपए या इससे अधिक के निवेश को मानदंड माना जा सकता है। और एक ही तालुका में इस आकार के दो से अधिक यूनिट नही होने चाहिए।

अधिकतर विभिन्न वित्तीय प्रोत्साहन भूमि, भवन, संयंत्र और मशीनरी जैसी स्थायी परिसम्पत्तियों के लिए दिए गए हैं। इसके परिणाम स्वरूप आवश्यकता से बहुत अधिक भूमि का अर्जन, बहुत बडे भवन का निर्माण और अधिक परिष्कृत संयंत्र और मशीनरी का चयन किया जाता है, जिससे प्राय: श्रमिकों को विस्थापित होना पड़ता है। ऐसे प्रोत्साहनों से स्थानीय लोगों के रोजगार को अथवा औद्योगिक शिल्प में प्रशिक्षण को बढ़ावा देने में सहायता नहीं मिलती। आर्थिक सहायता का कम से कम कुछ अंश मजदूरी के बिलों अथवा उद्योगों द्वारा दिए जाने वाले प्रशिक्षण के खर्च के लिए होना चाहिए।

प्रोत्साहन का कम से कम कुछ अंश औद्योगिक यूनिटों में विभिन्न सामाजिक आधारिक संरचना के तत्वों जैसे स्कूल, तकनीकी संस्थाएं, सड़के, पीने के पानी की पूर्ति, सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं और औद्योगिक कामगारों के लिए आवास के लिए होता है। बहुत से मामलों में यह देखा गया है कि पिछड़े क्षेत्रों के यूनिटों में बहुत अधिक आर्थिक सहायता दिए जाने के बावजूद इन तत्वों का शायद ही विकास हुआ है। जहां सामाजिक आधारिक संरचनाओं के उनमें से कुछ तत्वों का विकास हुआ भी है वहां से हमेशा अनन्य रूप से फैक्टरी-परिसर के कामगारों के लाभ के लिए है, आस-पड़ोस की आम जनता को इन सुविधाओं का लाभ बिल्कुल नहीं दिया जाता। अत: समीपवर्ती क्षेत्रों पर औद्योगिक विकास का प्रभाव इस आशा के बावजूद कम से कम रहा है कि औद्योगिक विकास

समीपवर्ती क्षेत्रों के सामान्य आर्थिक विकास में तेजी लाने में सहायक होगा। अतः केन्द्रीय आर्थिक सहायता का कुछ अंश अर्थात् लगभग 25% अथवा 33% समीपवर्ती क्षेत्रों में सामाजिक आधारिक संरचना के लिए निर्दिष्ट करना उचित होगा। इस धन राशि को पिछड़े क्षेत्र की औद्योगिक यूनिट की निर्दीष्ट दूरी के क्षेत्र के अंदर विकास के लिए जिला योजना बोर्डों के सहयोग से विनिर्दिष्ट रूप से अलग किया जाना चाहिए।

वाणिज्य और व्यापार

8.1 जैसा कि अनुच्छेद 307 में उल्लिखित है कि विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए प्राधिकारी इस प्रकार का होना चाहिए जो राज्यों के वाणिज्य और व्यापार की स्वतन्त्रता और ऐसे प्रतिबंधों को लागू करने में सहायता प्रदान कर सके जो ऐसे अन्तर-राज्यों वाणिज्य और व्यापार पर लगाए जाएं। यह सुझाव दिया गया है कि प्राधिकारी की रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों के सामने प्रस्तुत की जानी चाहिए ताकि राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले संसद सदस्यों को उन राज्यों के दृष्टिकोण पर चर्चा करने और उनका प्रतिनिधित्व करने का अवसर प्राप्त हो सके।

कृषि

9.1 राज्य सरकार केन्द्र-राज्य संबंधों (1967) पर प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से पूरी तरह सहमत है। कृषि, पशुपालन, वानिकी तथा मत्स्य पालन से संबंधित स्थिति में 1967 से कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है और यदि कुछ हुआ है तो वह यह है कि केन्द्रीय क्षेत्र और केन्द्र द्वारा प्रायोजित कृषि योजनाओं में कुछ वृद्धि प्रतीत होती है क्योंकि कृषि और उससे सहबद्ध व्यवसायों से संबंधित विकास देश के विभिन्न भागों में व्याप्त कृषि जलवायु संबंधी विभिन्न दशाओं पर निर्भर है इसलिए राज्य सरकारें स्थानीय बातों को ध्यान में रखते हुए इन क्षेत्रों में योजनाओं को लागू करने में अपेक्षाकृत अधिक साधन सम्पन्न हैं। दूसरी ओर केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाएं और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं स्थिर स्वरूप की होती हैं जिनमें लचीलापन बहुत ही कम होता है। इसलिए राज्य सरकार का यह विचार है कि कृषि के क्षेत्र में चलने वाली योजनाओं के कार्यान्वयन की वास्तविक जिम्मेदारी राज्य सरकार की होनी चाहिए और इसमें केन्द्र सरकार की भूमिका सहयोग प्रदान करने की होनी चाहिए।

9.2 राज्य सरकार राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के संबंध में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत है। कुछ राज्य सरकारों में केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं को न्यूनतम संख्या में रखा जाए और उन्हें केवल प्रेरक योजनाओं तक ही सीमित रहना चाहिए। इन योजनाओं का भी निर्माण राज्य सरकार से परामर्श करके किया जाना चाहिए जिससे कि उनमें अधिक से अधिक लचीलापन आ सके।

चूंकि कृषि और उससे सहबद्ध व्यवसायों से संबंधित योजनाओं को तैयार करने और उन्हें लागू करने की मुख्य जिम्मेदारी राज्य सरकार की होगी अतः इसके लिए राज्य की योजना में समुचित प्रावधान किया जाना चाहिए।

9.3 जैसा कि पहले भी बताया गया है कि राज्य सरकार का यह विचार है कि केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं की संख्या कम से कम होनी चाहिए और इन योजनाओं के लिए रखी गई निधियों को राज्य योजना के लिए दे दिया जाना चाहिए। फिर भी, जहां केन्द्रीय क्षेत्र योजनाएं प्रारंभ की जानी हों वहां राज्य-सरकार से परामर्श के बाद और उनकी सहमति से ऐसा किया जाना चाहिए ताकि कार्यक्षेत्र पर वास्तव में पड़ने वाली आवश्यकता पर विचार किया जा सके। यद्यपि योजना के कार्यान्वयन पर केन्द्रीय और राज्य सरकारों में बात-चीत होती है किन्तु उसमें केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं के बारे में कोई निर्णय लेने में राज्य-सरकार के मत को अधिक महत्व नहीं दिया जाता।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय क्षेत्र की इन योजनाओं को केवल उद्देश्य, लक्ष्य, विकास और परिव्यय के बारे में विस्तृत मार्गदर्शन निर्धारित करना चाहिए और अन्तर क्षेत्रीय तथा आबंटन जैसी अन्य बातों को राज्य-सरकार पर छोड़ देना चाहिए।

9.4 संपूर्ण देश के लिए कृषि उत्पादों के एक रूप समर्थन और खरीद मूल्य के निर्धारण की वर्तमान पद्धति उचित नहीं है क्योंकि इसमें उन क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर विचार नहीं किया गया है जो उत्पादन लागत को प्रभावित करती हैं। परिणामस्वरूप राज्य-सरकार को प्रायः भारत सरकार द्वारा निर्धारित समर्थन मूल्य से अधिक समर्थन मूल्य की घोषणा करनी पड़ती है जिससे कि राज्य के किसानों को समुचित पारिश्रमिक मिल सके। इसलिए कृषि की विभिन्न मदों की उत्पादन लागत के संबंध में राज्य-सरकार के विचारों और समर्थन मूल्य के बारे में उनके द्वारा की गई सिफारिशों को और अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

ऋण सहित कृषि के महत्वपूर्ण साधनों जैसे बीज, उर्वरक और कीटकनाशक दवाइयों के लिए की गई वर्तमान व्यवस्था बहुत ही संतोषजनक ढंग से काम करती हुई प्रतीत हो रही है। फिर भी केन्द्र द्वारा राष्ट्रीय बैंकों और कृषि वित्त संस्थाओं को दिए गए निर्देशों के कारण ऋण की उपलब्धता के संबंध में राज्यों की सहकारी संस्थाओं को प्रायः कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। चूंकि राज्य में कृषि संबंधी ऋण की आवश्यकताओं की पूर्ति मुख्य रूप से सहकारी संस्थाओं द्वारा की जा रही है इसलिए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति पूरी तरह से वित्तदायी संस्थाओं द्वारा की जानी चाहिए। जहां तक वानिकी नीति और प्रशासन का संबंध है राज्य की निर्णय करने संबंधी प्रक्रिया में केन्द्र की भूमिका केवल वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 के संबंध में ही होती है। इस अधिनियम के अनुसार आरक्षित वनों के रूप में घोषित भूमि भारत सरकार की पूर्व सहमति के बिना, राज्य सरकार द्वारा किसी भी प्रयोजना के लिए अन्तरित नहीं की जा सकती। इस प्रतिबंध से भूमि को पारंपरिक रूप से मांग करने वाले विभागों जैसे सिंचाई और उद्योग (पुनर्वास, आप्लावन, खनन आदि के लिए) विभाग को भूमि के हस्तांतरण में, उल्लेखनीय रूप से कमी आई है। गुजरात जैसे वनों की कमी वाले राज्य में संरक्षण अधिनियम में निश्चय ही एक सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जिससे वहां वनों के लिए आरक्षित भूमि वन से भिन्न उपयोग के लिए अब आसानी से अंतरित नहीं की जा सकती।

दैनिक प्रशासन के मामले में केन्द्रीय सरकार की कोई विशेष भूमिका नहीं जान पड़ती।

9.5 कृषि अनुसंधान की भूमिका के संबंध में केन्द्र और राज्य संबंधों में किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। फिर भी राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के संबंध में इसकी विकासात्मक भूमिका को, जो कि इसकी अधिक ऋण वितरण संबंधी भूमिका से अधिक कठिन है, अभी नई पहल करके अपनी क्षमता प्रदर्शित करनी है। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक जैसी विकास एजेंसी को राज्य सरकार और राष्ट्रीयकृत बैंकों के बीच और अधिक निकट सम्पर्क स्थापित करना है, कृषि और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को और अच्छी तरह लागू करने के संबंध में मार्ग निर्देश जारी करने हैं, स्थानीय समस्याओं का अध्ययन और विश्लेषण करना है तथा विशेष स्थानीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनका हल ढूंढना है और उसे ग्रामीण विकास के लिए सामान्यतः एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करना होगा। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक वाणिज्य और सहकारी बैंकों के लिए और अधिक पुनर्वित्तीयन करने वाला बैंक नहीं हो सकता और उससे यह अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास से ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में और अधिक गुणात्मक भूमिका की अपेक्षा की जाती है।

खाद्य और सिविल पूर्ति

10.1 हमें ऐसा लगता है कि उपर्युक्त क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य के सम्पर्क में सुधार के लिए कुछ गुंजाइश है। हमारा मत सुझाव निम्नलिखित है :—

खाद्यान्नों आदि का वितरण : इस समय खाद्यान्नों और खाद्य तेलों के राज्य के कोटे का आबंटन सामान्यतः समय-समय पर, केन्द्र द्वारा तदर्थ आधार पर किया जाता है। क्योंकि विभिन्न बातों जैसे केन्द्रीय पूल में उपलब्धता, विभिन्न राज्यों में उत्पादन, सूखा और अन्य प्राकृतिक विपत्तियों से उत्पन्न विशेष आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रख कर ऐसा किया जाता है इस कोटे के आबंटन के लिए किसी निश्चित सूत्र को अपनाना संभव न हो सकेगा। फिर

भी हम महसूस करते है कि इससे राज्य ठोस आधार पर अपनी वितरण नीति की योजना नहीं बना पाते हमारा सुझाव है कि स्वीकृत सूत्र, जिसमें राज्य की जनसंख्या, व्यापार के कारण पूर्ति की कमी आदि का ध्यान रखा जाता है, के आधार पर कोटा निर्धारित किया जाना चाहिए । राज्यों के बीच असमान व्यवहार के विषय में, संदेह को दूर करने के लिए, इस सूत्र को जन सामान्य की जानकारी में लाया जाना चाहिए । कुछ परिवर्तनशील पैरामीटरों के आधार पर, संबंधित उपभोग्य वस्तु के विपणन सत्र के प्रारंभ होने के बाद राज्यों के साथ बात-चीत की जा सकती है और आबंटन निश्चित किया जा सकता है । किए जाने वाले आबंटन अन्य राज्य सरकारों को ज्ञात कराए जा सकते हैं । विशेष परिस्थितियों जैसे प्राकृतिक विपत्तियों आदि के लिए विशेष कोश आबंटित किया जा सकता है, जो प्राय: स्वत: मिल जाना चाहिए और इसे संबंधित केन्द्रीय मंत्रालय के विवेक पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए ।

खाद्य तेलों के मामले में ऐसे सूत्र को अपनाना आसान होगा क्योंकि केन्द्रीय पूल में आयात किए गए माल की मात्रा भी शामिल होती है । आयात कार्यक्रम पहले से तैयार किए जा सकते हैं और चूंकि उपलब्धता पहले से ही मालूम होती है अत: राज्यों की आवश्यकताओं के आधार पर उनके लिए निश्चित मात्रा आबंटित की जानी चाहिए ।

- **खरीद मूल्य नीतियां** :—विभिन्न राज्यों में अनाज और तिलहन आदि जैसी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में पाई जाने वाली व्यापक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए, उगाही, प्रापण, लाने-ले जाने की व्यवस्था और कीमतों को राष्ट्रीय स्तर पर नियोजित और विनियमित करना होगा और इसे सम्पूर्ण देश के व्यापक हित में देखा जा सकता है । फिर भी कुछ ऐसी गौण बातें हैं, जिन्हें राष्ट्रीय स्तर पर बनाई गई समग्र नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावित किए बिना, राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ा जा सकता है । ऐसी बातों के लिए निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं :—

  (i) नागरिक आपूर्ति और सहकारिता मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी दाल, खाद्य, तिलहन और खाद्य तेल (भंडारण नियंत्रण) आदेश, 1977 (1978 में यथा संशोधित) में एक खंड 7 (क) है जिसमें कुछ विशेष मामलों में या तो सामान्य रूप से या किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए छूट प्रदान करने की व्यवस्था है । कठिनाई के मामलों में अथवा किसी न्यायोचित और पर्याप्त कारण के लिए विशेष छूट देने संबंधी इन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए भी भारत सरकार का पूर्वानुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है ।

  (ii) इसी प्रकार चावल, गेहूं आदि पर उगाही आदेश जारी करते समय विशेष परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक छूट देने अथवा छोटे-मोटे संशोधन करने की शक्तियां राज्य-सरकार को सामान्यत: इसी प्रकार के उपबंधों में प्रदान की गई हैं । इस मामले में भी भारत सरकार की पूर्व सहमति आवश्यक है ।

एक और क्षेत्र है—मोटे अनाजों की खरीद के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ऐसे ऋणों का प्रदान किया जाना । जब राज्य सरकार पी० डी० एस० के माध्यम से वितरण के लिए मोटे अनाजों की खरीद करना चाहती है तब इस प्रयोजन के लिए नकद ऋण की सुविधाओं के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के पास जाना पड़ता है । इसके पास जाने पर वह इस बात के लिए दबाव डालता है कि मोटे अनाज की खरीद का कार्यक्रम खाद्य अथवा कृषि मंत्रालय द्वारा अनुमोदित कराया जाए चूंकि मोटे अनाजों की खरीद के लिए केन्द्रीय पूल द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जाती और चूंकि मोटे अनाजों के मामले में समर्थन मूल्य की कठिनाई के सिवाय और कोई राष्ट्रीय नीति अथवा कार्यक्रम नहीं है इसलिए राज्य-सरकारों की एजेंसियों द्वारा की जाने वाली खरीद से राष्ट्रीय खाद्यान्न नीति संबंधी प्रचालनों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप होने की संभावना नहीं है । इस प्रकार इस नियंत्रण को समग्र राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आवश्यक नहीं माना जा सकता । इसलिए राज्य सरकार को अपने पी० डी० एस० के लिए मोटे अनाजों की खरीद करने हेतु भारतीय रिजर्व बैंक से नकद ऋण प्राप्त करने की छूट दी जानी चाहिए । भारत-सरकार परिस्थितियों के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक अथवा राज्य-सरकार को अपने कार्यक्रमों को इस प्रकार अनुकूल बनाने का निर्देश देकर हर समय हस्तक्षेप कर सकती है कि उससे किसी अन्य राज्य पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े ।

10.2 हम निश्चय ही यह अनुभव करते हैं कि उक्त व्यवस्था की समय-समय पर समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है । आवश्यक वस्तु अधिनियम का उद्देश्य सामान्य जनता के हित में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन, पूर्ति और वितरण पर नियंत्रण रखना है । राज्य सरकार ने उक्त अधिनियम के अधीन विभिन्न विनियम पारित किए हैं । औपचारिक रूप से ये विनियम आवश्यक वस्तु अधिनियम से मेल खाते हैं किन्तु कभी-कभी वे एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न भिन्न होते हैं । यह भी हो सकता है कि किसी विशेष राज्य के किसी विशेष अधिनियम से पड़ोसी राज्य के हितों को नुकसान पहुंच सकता है अथवा उस राज्य सरकार के हितों के साथ उसका टकराव हो सकता है । कभी-कभी यह भी आवश्यक होता है कि केन्द्र उन व्यवस्थाओं की समीक्षा करें जो विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा आवश्यक वस्तु अधिनियम और ऐसे अन्य नियामक अधि-नियमों को लागू करने के लिए की गई है । यह कार्य नियमित बैठकों के अतिरिक्त विचार-गोष्ठियों और कार्यशालाओं के माध्यम से किया जा सकता है ।

शिक्षा

11.1 गुजरात इस विचार से सहमत नहीं है कि अनावश्यक केन्द्रीकरण और मानकीकरण है अथवा यह कि केन्द्रीय हस्तक्षेप बहुत अधिक है । निश्चय ही शिक्षा की पुर्ननिर्माण की राष्ट्रीय नीति के अनुपालन पर जोर दिया गया है । इस प्रकार ज्ञान के क्षेत्र को कार्य के क्षेत्र से जोड़ने की मूल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आयोग की सिफारिश के आधार पर 10+2+3 पैटर्न की सामान्य ढांचे की शिक्षा प्रणाली का सुझाव दिया गया था । राज्य सरकार ने इस पर समुचित विचार विमर्श करने के बाद इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था । केन्द्रीय नीति में दिए गए निदेशों से राज्य को किसी पहल शक्ति अथवा प्राधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा है । दूसरी ओर इससे राज्य-सरकार को इस क्षेत्र में बहुत ही उपयोगी परामर्श और परिप्रेक्ष्य प्राप्त हुआ है । यह सच है कि देश की विशालता, विभिन्न संस्कृतियों और विकास के विभिन्न स्तरों को देखते हुए, शिक्षा प्रणाली को किसी निश्चित आकार के अनुकूल बना पाना संभव नहीं है और ऐसी किसी भी कोशिश से और भी असफलता प्राप्त होगी, किन्तु भारत सरकार ने ऐसी कोई नीति नहीं थोपी है ।

11.2 (क) इस समय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, किसी नये विश्व-विद्यालय को खोलने के लिए, राज्य-सरकार के निर्णय पर केवल अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता हैं । व्यावहारिक रूप से वर्तमान विश्वविद्यालयों के कार्यों के विनियमन में इसे कोई महत्वपूर्ण प्राधिकार प्राप्त नहीं है । सामान्यत: विश्व-विद्यालययों को अपने शैक्षिक व्यवसाय में स्वायत्त संगठन माना जाना चाहिए किन्तु उच्च शिक्षा की जो रूपरेखा निर्धारित की गई है उसके लिए इस संबंध में एक राष्ट्रीय नीति का होना वांछनीय होगा ।

(ख) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्व-विद्यालयों को उदारतापूर्वक सहायता अनुदान देकर नये विषय/पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करता है । इस प्रकार यह पाठ्यक्रमों में विविधता लाने में सहायता प्रदान करता है । तथापि सभी नये पाठ्यक्रम अनिवार्यत: आवश्यकता पर आधारित नहीं है और न ही उन्हें उपभोक्ताओं जैसे उद्योगों, वाणिज्य और अन्य स्थापनाओं अथवा राज्य सरकारों से विचार विमर्श करके, अंतिम रूप प्रदान किया गया है । प्राय: पाठ्यक्रम पर्याप्त आधारिक संरचना के बिना ही प्रारंभ कर दिए जाते है । अंतत: ऐसे पाठ्यक्रम गैर-प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में राज्य सरकार के सीमित संसाधनों पर एक भारी और अपरिहार्य बोझ छोड़ जाते हैं ।[1]

11.3 वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि राज्यों और केन्द्र के बीच शिक्षा के क्षेत्र में विचार विमर्श, परामर्श और परस्पर सहमति के माध्यम से सर्व सम्मति स्थापित की जाए । ऐसी सर्व सम्मति सामान्यत: राज्य शिक्षा सलाहकार बोर्ड की बैठकों में और शिक्षा मंत्रियों और शिक्षा सचिवों की वार्षिक बैठकों में प्राप्त होती है । योजना आयोग एक दूसरा मंच प्रदान करता है । जहां वार्षिक योजनाओं के निर्माण और पंचवर्षीय योजनाओं को अंतिम रूप

प्रदान किए जाने दोनों ही स्तरों पर समीक्षा और समन्वित दृष्टिकोण के लिए अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार का विचार-विमर्श बार-बार किया जा सकता है और यह कार्य संस्था के माध्यम से भी किया जा सकता है।

यह देखना भी आवश्यक है कि केन्द्रीय शिक्षा बजट में राज्य में लागू किए जाने वाले विनिर्दिष्ट कार्यक्रमों के लिए प्रावधान हो। रियायति दर पर कागज के आबंटन जैसे साधारण मामलों में भी जो कि राज्य सरकारों की एक सही मांग है उनकी मांग की कभी समय से पूर्ति नहीं की गई। भारत सरकार को शिक्षा क्षेत्र के त्वरित विकास में आने वाली बाधाओं के संबंध में राज्य सरकारों को विश्वास में लेना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग की नियुक्ति के कारण राज्य सरकारों पर अनुचित मांगों का बोझ नहीं पड़ना चाहिए और उसकी सिफारिश को लागू करने के लिए केन्द्र से पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त होनी चाहिए।

11.4 अनुच्छेद 29 और 30, जिसमें अल्पसंख्यकों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनके प्रबंध के माध्यम से अपनी पहचान और संस्कृति को सुरक्षित रखने संबंधी अधिकारों की गारंटी दी गई है, अल्प संख्यक समुदायों की वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। तथापि किसी अल्पसंख्यक समूह द्वारा संचालित किसी संस्था पर भी वे ही नियम और शर्तें लागू होनी चाहिए जो सामान्य संस्थाओं पर लागू होती है, विशेष रूप से उस दशा में जबकि उन सभी संस्थायों पर सहायता अनुदान संबंधी समान नियम लागू होते हों। शिक्षा संस्थाओं की रूपरेखा तैयार करने और उनका अनुरक्षण करने संबंधी अल्पसंख्यक के अधिकारों का प्रयोग ऐसे किसी रूप में नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि कुल मिलाकर नागरिकों को उचित और समान बर्ताव से वंचित होना पड़े। अल्पसंख्यक वर्ग की संस्थाओं में कार्य कर रहे कर्मचारियों के अधिकारों की भी सुरक्षा होनी चाहिए। अल्पसंख्यक वर्ग की संस्थाओं को शिक्षकों की योग्यताओं की आधारभूत न्यूनतम अपेक्षाओं, पाठ्यक्रम और उचित प्रवेश-नीति आदि को पूरा करना चाहिए और इन्हें अनावश्यक प्रतिबंध नहीं माना जाना चाहिए। फिर भी इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों का प्रयोग विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में, बिना किसी विशेष शैक्षिक लाभ के एक भिन्न व्यवस्था को निरंतर बनाए रखने के माध्यम के रूप में न किया जाए।

11.5 शिक्षा के विकास की समस्या के बारे में केन्द्र और इस राज्य के बीच विरोध और विवाद का कोई निश्चित विषय नहीं रहा है। जैसा कि पहले बताया गया है शिक्षा नीति कोई ऐसी नीति नहीं है जिसे किसी निश्चित प्रकार के नियमों की परिधि में प्रचालित किया जा सकें, और जब प्रतिपादन नीति में विभिन्न क्षेत्रों की विशेष प्रकार की आवश्यकताओं को समुचित रूप से ध्यान में न रखा जाए तब विरोध या विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। इस व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन करने के लिए जब तक गुंजाइश है, इस बारे में कोई डर नहीं होना चाहिए।

अन्तः सरकारी समन्वय

12.1 संविधान में राज्य और केन्द्र की शक्तियों के व्यापक विनिर्दिष्ट उपबन्ध और संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार और अनुच्छेद 263 के अधीन अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना से संबंधित उपबंधों, अनुच्छेद 280 के अधीन वित्त आयोग की स्थापना से संबंधित उपबंधों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 307 के अधीन दिए गए प्राधिकार को ध्यान में रखते हुए, हम संयुक्त राज्य अमरीका की ए० सी० आई० आर० जैसी किसी संस्था को रखना आवश्यक नहीं समझते हैं।

हरियाणा सरकार

प्रश्नावली के उत्तर

हरियाणा

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 हां, हमारा संविधान इसके बावजूद की इसमें कुछ ऐसी विशेष बातें हैं जो दूसरे संघों में नहीं पाई जाती हैं, संघीय संविधान माना जा सकता है।

1.2 सूची II में राज्य को और अधिक कर संसाधनों का आबंटन करने, और संविधान से संबंधित मामलों के सिवाय उच्चतम न्यायालय को अपील करने की व्यवस्था समाप्त करने की बात का ही समर्थन किया जाता है।

1.3 हम ऐसे विद्यमान सांविधानिक उपबंधों से सहमत हैं जिनसे राज्य के हितों की विधिवत रक्षा होती हो।

1.4 नहीं, जहां तक हमारी जानकारी है।

1.5 भारत के संविधान के अनुच्छेद 263 में बताए गए परामर्शदाता निकाय अथवा निकायों के गठन से यह कमी दूर हो जाएगी। परामर्शदाता निकाय की सिफारिशों पर निर्णय लेने के लिए समुचित समय दिया जाना चाहिए। यदि इस अवधि के अन्दर कोई निर्णय न लिया जाए तो वह विवाद स्वतः उच्चतम न्यायालय को निर्णय के लिए भेज दिया जाना चाहिए।

1.6 हां, संविधान में ऐसे अनेक उपबंध हैं जो देश की एकता को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करते हैं।

1.7 हां।

1.8 नहीं, संविधान के अनुच्छेद 3 पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 औद्योगिक लाइसेंस प्रदान करने और बिक्री-कर के बदले अतिरिक्त उत्पाद शुल्क की उगाही के क्षेत्र में कुछ ऐसी शक्तियां हैं जिन्हें उचित रूप से राज्यों में निहित किया जाना चाहिए।

2.2 नदी जल का बंटवारा एक समवर्ती सूची का विषय होना चाहिए।

2.3 हां।

2.4 संविधान के अनुच्छेद 249 के अधीन ऐसी विधियां अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि तक लागू रह सकती हैं। यह उपबंध संतोजनक है।

2.5 संविधान में इस आशय का एक उपबंध होना चाहिए कि केन्द्र यदि कोई विशेष विधान प्रस्तुत करने के लिए राज्य के साथ एक बार सहमत हो जाता है तो वह विधान 6 माह के अन्दर संसद के समक्ष लाया जाना चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 राज्यपाल ने कुल मिला कर संविधान के अनुसार कार्य किया है।

3.2 राज्यपाल को राज्य के कल्याण को ध्यान में रखते हुए सम्यक रूप से अपने संवैधानिक प्राधिकार के अनुसार कार्य करना चाहिए। उसे अपने को दलगत राजनीति से ऊपर रखना चाहिए।

3.3 वर्तमान पद्धति जारी रहनी चाहिए।

3.4 ऐसा कोई उदाहरण नहीं पाया गया है जहां राज्यपाल द्वारा किसी विधेयक को अनुमति देने से रोका गया हो।

3.5 हां, हरियाणा राज्य विधान सभा द्वारा प्रख्यापित किए गए विधेयकों को राष्ट्रपति की मंजूरी प्रदान करने में केन्द्र द्वारा कभी भी कोई आनावश्यक विलंब नहीं किया गया है।

3.6 हां।

3.7 विद्यमान उपबंध पर्याप्त है तथापि यह परम्परा स्थापित की जा सकती है कि केन्द्रीय सरकार में परिवर्तन होने पर, राज्यपाल अपना त्याग-पत्र प्रस्तुत करें।

3.8 हम सहमत नहीं हैं।

3.9 विद्यमान व्यवस्था पहले से ही ठीक प्रकार से काम कर रही है इसलिए इसमें किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं है।

3.10 मार्ग निर्देश मांगे गए हैं इसलिए ये जारी किए जाने चाहिए।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 ऐसा कोई मामला नहीं रहा है जिसमें अनुच्छेद 365 का अवलम्ब लेने की धमकी देते हुए निदेश जारी किए गए हैं। अनुच्छेद 256 संघ को इस बात के लिए शक्ति प्रदान नहीं करता कि वह किसी ऐसे विषय में हस्तक्षेप करे जो पूर्ण रूप से राज्य से संबंधित हो। यदि केन्द्रीय सरकार ने किसी राज्य को, राज्य से पूर्ण रूप से संबंधित किसी विषय में कोई निदेश जारी किया हो तो वह निदेश उस राज्य पर आबद्धकर नहीं होगा। पूर्वोक्त निदेशों को जारी करने की कार्रवाई से, राज्य के पक्ष में किसी घोषणा अथवा व्यादेश के लिए, कोई वाद हेतुक उत्पन्न नहीं होता। न ही किसी प्राइवेट पक्षकार को, भारत के संविधान के अनुच्छेद 256 के अधीन जारी किए गए संघ के किसी निदेश का अनुपालन करने में, राज्य से हुई चूक से उत्पन्न, कोई वाद हेतुक प्राप्त होगा।

4.2 हरियाणा राज्य संविधान में अनुच्छेद 365 को बनाए रखने का समर्थन करती है क्योंकि यह अधिकार प्रदान करने वाला एक पारिणामिक उपबंध है उपयुक्त मामलों में इस उपबंध के अनुसार कार्रवाई की जा सकती है जैसे पंजाब सरकार द्वारा सतलज-यमुना लिंक नहर परियोजना के निर्माण कार्य का पूरा न किया जाना।

4.3 प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश उचित है और इसलिए यह स्वीकार की जाए। वस्तुतः सामान्य व्यवहार में यही चल रहा है।

4.4 संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन प्रदत्त शक्ति का सामान्यतः ठीक ढंग से प्रयोग किया गया है।

4.5 खंड संख्या 4 और 5 में निर्धारित छः माह और एक वर्ष की वर्तमान अवधि पर्याप्त है।

4.6 व्यवस्था संतोषजनक ढंग से चल रही है इसलिए इस बारे में कोई टिप्पणी नहीं है।

4.7 कृषि मूल्य आयोग में राज्य सरकार का एक प्रतिनिधि होना चाहिए। अन्य एजेंसियों के कार्य से राज्य की स्वायत्तता में कोई गंभीर बाधा नहीं पहुंची है। विवादों के मामले में, भारतीय खाद्य निगम और राज्यों के बीच माध्यमस्थम की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे प्रत्येक राज्य से एक निदेशक होना चाहिए जिसका भारतीय खाद्य निगम द्वारा खरीदे जाने वाले खाद्यान्नों में महत्वपूर्ण योगदान हो।

4.8 संसद और केन्द्रीय सरकार को और अधिक अखिल भारतीय सेवाओं जैसे इंजीनियरी, शिक्षा, चिकित्सा और उच्चतर न्यायपालिका, गठित करने पर विचार करना चाहिए।

अखिल भारतीय सेवाओं ने संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं को बहुत अंश तक पूरा किया है। अखिल भारतीय सेवाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण समुचित प्रतीत होता है।

4.9 देश की एकता की सुरक्षा और संविधान की मर्यादा को बनाए रखने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा स्वप्रेरणा से राज्यों में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियुक्त किया जाना चाहिए।

4.10 रेडियो प्रसारण एवं दूरदर्शन प्रसारण समवर्ती सूची में शामिल होने चाहिए।

4.11 आंचलिक परिषदों ने, पारस्परिक आदान-प्रदान की भावना से राज्यों के बीच बेहतर समझ विकसित की है। इन परिषदों ने सामान्यत: पार्टी आधार पर काम नहीं किया है तथापि इन्हें और अधिक कारगर बनाया जा सकता है।

4.12 अन्तर्राज्यीय विवादों को सुलझाने के लिए ऐसा परिषद् स्थापित किया जाना चाहिए। इस परिषद् में संबंधित राज्यों तथा केन्द्र के प्रतिनिधि शामिल होने चाहिए। यह परिषद् विशेष विवादों के बारे में निर्णय करने के लिए विनिर्दिष्ट अवधि के लिए गठित की जानी चाहिए।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 नहीं। संघ सरकार द्वारा लागू की गई अन्तरण योजना राज्यों की कम से कम हरियाणा की आशाओं के अनुरूप नहीं सिद्ध हुई है।

इस बारे में एक ब्योरेवार टिप्पणी सलग्न की जा रही है।

5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में दी गई यह टिप्पणी कुल मिला कर आज भी मान्य है कि केन्द्र दाता है, राज्य प्राप्तकर्ता हैं। फिर भी कुछ राज्य अपने गैर-योजना खर्च की पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधन जुटाने में समर्थ हैं। विद्यमान संविधानिक उपबंधों और अन्तरण योजना में महत्वपूर्ण रूप से संशोधन करने की आवश्यकता है। या तो सातवीं अनुसूची के कुछ शीर्षों को संघ की सूची से राज्य की सूची में अन्तरित कर दिया जाए या संघ की सूची में संघ सरकार को कर संबंधी शीर्षों के माध्यम से होने वाली अधिक प्राप्तियों में से राज्य सरकारों को हिस्सा दिया जाना चाहिए और यह अपेक्षाकृत और अधिक मात्रा में दिया जाना चाहिए। इस संबंध में कंपनी कर, आय-कर पर अधिभार और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आदि का विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। राज्यों के हिस्से के अनुपात में भी वृद्धि करना आवश्यक है।

ऐसे बहुत से अवसर आए हैं जब केन्द्रीय-सरकार ने ऐसी कार्रवाई में अपनी दिलचस्पी दिखाई है जिससे राज्यों का कर-आधार और कमजोर हो सकता है। बिक्री-कर के बदले अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क लगाने का सुझाव मद्य-निर्माण शालाओं और पेय मदिरा की बोतलों में भरने के लाइसेंस, जो कि राज्य-सरकारों के राजस्व के मुख्य स्रोत हैं पर प्रतिबंध लगाने का सुझाव इसके कुछ उदाहरण हैं।

5.3 क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना और सामाजिक एवं आर्थिक न्याय दिलाना, केन्द्र-सरकार की निश्चय ही मुख्य जिम्मेदारी है। फिर भी संघ सरकार की कर लगाने की शक्तियां पहले से ही बहुत व्यापक हैं और चूंकि शेष शक्तियां संघ-सरकार में निहित हैं इसलिए अंतिम रूप से विश्लेषण करने पर ऐसा कहा जा सकता है कि केन्द्रीय सरकार की संसाधन जुटाने की क्षमता और विधिक शक्तियां असीमित हैं। इस सुझाव से कि संघ कार की विद्यमान वित्तीय शक्तियों में से कुछ शक्तियां राज्यों को प्रदान कर दी जाएं, केन्द्रीय-सरकार की इससे संबंधित क्षमता पर कोई गम्भीर दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा।

सम्पन्न और गरीब राज्यों की अवधारणा को और अधिक सुस्पष्ट करने की आवश्यकता है। देश के कुछ राज्यों के सामने संसाधन संबंधी बाधाएं इसलिए नहीं हैं कि वे मानव अथवा भौतिक संसाधनों की दृष्टि से निर्धन हैं बल्कि इसलिए हैं कि उन्होंने अपनी क्षमता का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया है। दूसरी ओर हरियाणा जैसे राज्य ने अपनी क्षमता का पूरी तरह से उपयोग किया है, अपने नागरिकों के ऊपर अपेक्षाकृत अधिक भार डाला है। इस प्रसंग में कमी वाले राज्यों के प्रति अनुचित उदारता दिखाने का मतलब यह होगा कि अक्षमता के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है जबकि क्षमता की उपेक्षा की जा रही है।

5.4 प्रश्न में कमीशन द्वारा सुझाए गए विकल्प परस्पर पूर्ण नहीं हैं। प्रश्न संख्या 5.3 में जो उद्देश्य निर्धारित किया गया है वह अतिरिक्त कराधान, खर्च पर अधिक अच्छे ढंग से नियंत्रण करके प्राप्य करों की अधिक अच्छे तरीके से वसूली करके और अंशत: घाटा वित्तीयन के विवेकपूर्ण प्रयास से पूरा किया जा सकता है। आयोग इस बात से अवगत होगा कि बकाया आय-कर की राशि बहुत अधिक है जो लगभग उतनी है जितनी की एक वर्ष का सम्पूर्ण आय-कर राजस्व है। यदि इस बकाया राशि का 50 प्रतिशत भाग भी केन्द्रीय सरकार द्वारा वसूल कर लिया जाए और राज्यों में वितरित कर दिया जाए इससे उन्हें काफी सहायता प्राप्त होगी।

सम्पन्न राज्यों द्वारा गरीब राज्यों को अनुदान दिए जाने संबंधी सुझाव स्वीकार करने योग्य नहीं है। जहां वित्तीय दृष्टि से सुव्यवस्थित हरियाणा जैसे राज्य अपने गैर-योजना खर्च को अपने संसाधनों से पूरा करने में समर्थ हो सकते हैं वहीं उन्हें अपने योजनागत खर्च के लिए अधिक मात्रा में निधि की जरूरत है। चूंकि हमारी विकास योजनाओं का आकार किसी निर्दिष्ट वर्ष में उपलब्ध होने वाले संभावित संसाधनों के आधार पर निरपवाद रूप से निर्धारित किया जाता है, इसलिए एक राज्य से दूसरे राज्य को संसाधनों के अन्तरण का अर्थ यह होगा कि उस राज्य की विकास योजनाओं के आकार में बिना किसी कारण के कटौती हो जाएगी। इस प्रकार की व्यवस्था बहुत ही अनुचित होगी और क्षमता के सिद्धांतों के विपरीत होगी।

5.5 यह सुझाव कि वित्त आयोग और योजना आयोग के माध्यम से किए जाने वाले अन्तरण के तरीके से गरीब और सम्पन्न राज्यों के बीच संसाधनों का अन्तर कम होता प्रतीत नहीं होता है, सही नहीं है। इसके विपरीत, वित्त आयोग की सिफारिशों के माध्यम से गैर-योजना खर्च को पूरा करने में किसी राज्य के संसाधनों में पड़ने वाली कमी की पूर्ति होती है। इसी प्रकार योजना अनुदानों के मामले में भी ज्यादा हिस्सा गरीब राज्यों को दिया जाता है। वास्तव में जो राज्य अपने गैर-योजना खर्च को पूरा करने में भी असमर्थ है उनका सम्पूर्ण योजनागत खर्च केन्द्रीय सहायता के माध्यम से पूरा किया जाता है, इस प्रकार हरियाणा जैसे राज्य पहले से ही घाटे की स्थिति में हैं।

केन्द्र से राज्यों को किए जाने वाले निधि के अन्तरण और दी जाने वाली योजनागत सहायता में संबंधित राज्यों द्वारा किए गए कर संबंधी प्रयासों और उनके द्वारा प्रबंध के मामले में दिखाई गई कार्यकुशलता और मितव्ययता को ध्यान में रखा जाना चाहिए। राज्यों को दी जाने वाली सहायता का निर्धारण करते समय संसाधनों का प्रति व्यक्ति एक रूप अन्तरण के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

5.6 हमारा ऐसा मत है कि वित्त-आयोग और योजना-आयोग की एजेंसियां पर्याप्त हैं। यदि किसी निधि का सृजन किया जाना हो तो इसका वित्त प्रबंध केन्द्र के अविभाज्य संसाधनों से केन्द्रीय स्कीम के रूप में किया जाना चाहिए।

5.7 केन्द्र की कराधान शक्तियों में से कुछ शक्तियों को राज्यों को अन्तरित करने की आवश्यकता समय-समय पर अनुभव की गई है। वास्तव में यह आवश्यकता कुछ अंश तक पहले ही इस प्रकार स्वीकार की जा चुकी है कि प्रापण संबंधी लेन-देन निर्माण कार्य संविदाओं आदि को "बिक्री" के रूप में घोषित किया गया है जिससे कि राज्य इस तरह के लेन-देन पर कर लगा सकें। परेषणों के अन्तरण पर बिक्री-कर लगाने के उपाय किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त शीरा और चीनी जैसी कुछ और मदों पर उत्पाद शुल्क लगाने की शक्ति राज्यों को आसानी से अन्तरित की जा सकती।

है और यह इन वस्तुओं के उत्पादन अथवा परिवहन के बारे में कोई समस्या उत्पन्न किए बिना किया जा सकता है। आयोग राज्य सरकारों को ऐसी कम्पनियों पर अपने ही कम्पनी-कर लगाने के लिए प्राधिकृत करने की वांछनीयता पर विचार कर सकता है जिसकी फैक्टरियां राज्यों में स्थित हैं। इस बारे में कृपया प्रश्न संख्या 5.1 के उत्तर में दी गई विस्तृत टिप्पणी का भी अवलोकन करें।

5.8 हम इस बात से सहमत हैं कि ऐसी परिषद मुख्य करों के अधिरोपण और वितरण में उपयोगी होगी।

5.9 समग्र राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह बात अपेक्षाकृत अधिक उचित प्रतीत होती है ऐसा कोई एक ही संगठन होना चाहिए जो वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा निभाई जाने वाली जिम्मेदारी को स्थायी आधार पर संभाल सके। यह स्वाभाविक है कि यह एक स्थायी निकाय होगा और वित्त आयोग की तरह आवधिक स्वरूप का नहीं होगा। राज्यों के दृष्टिकोण से भी यह बेहतर होगा कि वे अपने सभी मुद्दे एक ही निकाय के समक्ष रखें अपेक्षाकृत इसके कि वे अपने मामले के लिए ऐसे अलग-अलग निकायों के समक्ष अपनी दलील रखें जिनके उद्देश्य अलग अलग हों और जो हमेशा एक जैसे नहीं होते हैं।

5.10 यह कहना कठिन है कि वित्त आयोग की सिफारिशों से क्षमता में वृद्धि हुई है और खर्च में मित-व्ययिता आई है क्योंकि इन सिफारिशों का लक्ष्य ये उद्देश्य नहीं रहे हैं। उनसे राज्यों के कर संबंधी प्रयासों को भी कोई प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हुआ है।

5.11 हाँ हम प्रश्न में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हैं। सुधारात्मक उपायों के लिए प्रश्न संख्या 5.1 के उत्तर में दी गई विस्तृत टिप्पणी का कृपया अवलोकन करें।

5.12 सातवें वित्त-आयोग द्वारा अभिव्यक्त विचार सही और उचित हैं। कर का बंटवारा करके संसाधनों के अन्तरण पर और अधिक बल दिया जाना चाहिए और अनुच्छेद संख्या 275 के अधीन उल्लिखित सहायता-अनुदान कम से कम दिया जाना चाहिए। दुर्भाग्यवश सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का आठवें वित्त आयोग द्वारा परित्याग कर दिया गया जिससे हरियाणा जैसे राज्य का अहित हुआ है।

5.13 उपर्युक्त सिद्धांतों के अतिरिक्त सातवें वित्त आयोग ने भी यह कहा है कि अलग-अलग राज्यों द्वारा किए गए कर संबंधी प्रयासों, क्षमता के अनुरूप व्यय में मितव्ययता और सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रमों की विवेकपूर्ण प्रबंध व्यवस्था को महत्त्व दिया जाना चाहिए। कमी की पूर्ति के दृष्टिकोण से बेशी वाले राज्य को हानि हुई है क्योंकि कुल विभाज्य पूल का बड़ा हिस्सा घाटे वाले राज्य की कमी की पूर्ति में खर्च हो जाता है जिसे कि अन्यथा राज्यों के बीच अधिक अन्तरण के रूप में विभाजित किया जा सकता है। राज्यों द्वारा किए गए कर प्रयासों और गैर-योजना खर्च पर नियंत्रण रखने में उन्हें, मिली सफलता के लिए उन्हें दण्ड दिए जाने के बजाय पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

5.14 राजस्व और विशेष वाहक बांड स्कीम और पैट्रोलियम और कोयला आदि की निर्देशित कीमत जैसे उपायों से हुए लाभ को विभाज्य पूल में शामिल किया जाना चाहिए। इसी प्रकार आय-कर दाताओं के लिए बनाई गई अनिवार्य-जमा योजना के अन्तर्गत की गई वसूलियां भी विभाज्य-पूल के अन्तर्गत शामिल की जानी चाहिए। इसका औचित्य स्पष्ट है। ये संसाधन विभिन्न राज्यों में रहने वाले पूरे देश के नागरिकों द्वारा किए गए अंशदान के माध्यम से केन्द्र द्वारा जुटाए जाते हैं। पेट्रोलियम और कोयला आदि की निर्देशित कीमत के मामले में ये उत्पाद-शुल्क के स्वरूप के होते हैं। यदि इन मदों पर उत्पाद शुल्क लगाया जाता तो राज्यों को उसका हिस्सा मिलता।

5.15 जन-समुदाय द्वारा की गई बचत का हिस्सा केन्द्र द्वारा राज्यों को भी दिया जाना चाहिए। इस समय छोटी बचतों के मामले में किसी विशेष वर्ष में बचत संबंधी निवल वसूलियों का 2/3 हिस्सा दीर्घावधि ऋण के रूप में राज्यों को दिया जाता है। यह महसूस किया गया है कि यह स्कीम राज्य सरकार को अन्तरित की जानी चाहिए ताकि वह अपने संसाधन जुटा सके।

बीमा की किस्त और कर्मचारी भविष्य निधि योजना के लिए किए गए अंशदान भी बचत के स्वरूप की जमा राशि होती है। इस समय इसका सबसे बड़ा हिस्सा केन्द्र सरकार रख लेती है। इन संसाधनों का अपेक्षाकृत बड़ा और अधिक महत्वपूर्ण हिस्सा राज्यों को दिया जाना चाहिए। वस्तुत: कर्मचारी भविष्य निधि योजना राज्यों को अन्तरित की जानी चाहिए।

5.16 और 5.17 वस्तुत: राज्यों को अन्तरित किए जाने वाले केन्द्र के संसाधनों की प्रतिशतता में कमी आई है। यह भी एक तथ्य है कि राज्यों का वित्तीय असंतुलन बढ़ रहा है और उनकी ऋणग्रस्तता भी बढ़ रही है। परिणामस्वरूप किसी विशेष वर्ष में केन्द्र से राज्यों को अन्तरित किए जाने वाले संसाधन अब अल्पतम हैं।

बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता के मुख्य कारण राज्यों के सीमित संसाधन और राज्यों के संसाधनों में से बहुत अधिक खर्च पूरा किए जाने की मांग का होना है। इस स्थिति को निम्नलिखित तरीके से सुधारा जा सकता है:—

(i) केन्द्र द्वारा राज्यों को अधिक निधि का अन्तरण;

(ii) पुराने ऋणों के बड़े हिस्से को अनुदानों के रूप में परिवर्तित करना;

(iii) शेष ऋणों को ठोस तरीके से पुन: अनुसूची तैयार करना।

केन्द्रीय सहायता के फार्मूले के कारण भी राज्यों में कठिनाई उत्पन्न हुई है। इस फार्मूले में 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान है। यदि इस अनुपात को उलट दिया जाए तो इससे राज्यों को बहुत अधिक सहायता मिलेगी। अनुदान और ऋण में यदि 50:50 का अनुपात भी रहता है तो भी आगे वाले वर्षों में राज्यों के संसाधनों पर कम दबाव पड़ेगा। एक तीसरा पहलू राज्यों के संसाधनों का राज्य विद्युत बोर्डों की परियोजनाओं में अवरुद्ध होना भी है। चूंकि राज्यों ने विद्युत बोर्डों को बहुत सहायता दी है और बोर्ड राज्यों को ऋण नहीं चुका सके हैं, यह सुझाव दिया जाता है कि राज्यों ने राज्य विद्युत बोर्डों को जितनी राशि का ऋण दिया है उतना ऋण राज्यों द्वारा केन्द्र को चुकाए जाने के लिए उचित अवधि अर्थात लगभग 10 वर्षों के लिए आस्थगित कर दिया जाए। विद्युत बोर्ड रेलवे की तरह लोकोपयोगी सेवा है और वे राज्य सरकार की अपेक्षा राज्य के लोगों के लिए कम कार्य नहीं करते।

5.18 यह आलोचना ठोस है। ऋण प्राप्त करने के संबंध में राज्य के विकल्प बहुत ही सीमित हैं। बाजार ऋण के संबंध में प्रवृत्ति केन्द्रीय सरकार के पक्ष में बहुत अधिक है। तीसरी योजना की अवधि में संघ और राज्यों का हिस्सा क्रमश: 37 प्रतिशत और 63 प्रतिशत था जो कि छठी योजना की अवधि में पूर्णत: उलट कर 77 प्रतिशत और 23 प्रतिशत कर दिया गया है। स्पष्टत: केन्द्रीय सरकार बाजार ऋण के अधिक हिस्से का अनुचित रूप से विनियोजन कर रही है जबकि राज्यों के पास निधियों की बहुत अधिक कमी है। सुझाव दिया जाता है कि यदि राज्यों के पक्ष में पहले वाला 2/3 और 1/3 का अनुपात फिर से नहीं रखा जाता तो राज्य और केन्द्र सरकारों के लिए बाजार ऋण का उचित अनुपात अर्थात् लगभग 50:50 नियत किया जाए।

5.19 कुछ ऋणों के संबंध में आरोप सही है। केन्द्र को राज्यों से उच्च दर पर ब्याज नहीं लेना चाहिए। तथापि वे इन ऋणों का कुछ हिस्सा अपनी बजटीय आवश्यकताओं के संबंध में रख सकते हैं।

5.20 आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद के पैटर्न पर ऋण-परिषद बनाने के सुझाव पर हमें कोई टिप्पणी नहीं देनी है। क्योंकि आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है। तथापि जैसा कि ऊपर प्रश्न संख्या 5.18 के उत्तर में कहा गया है यह बात दोहराई जाती है कि बाजार ऋण में राज्यों का हिस्सा काफी बढ़ाया जाना चाहिए। भारत सरकार और रिजर्व बैंक की इस संबंध में नीति अधिक उदार होनी चाहिए।

5.21 राज्यों का अपने अर्थोपाय अग्रिम की सीमाओं से आगे बढ़ने का मुख्य कारण बढ़ते हुए दायित्वों के मुकाबले अपर्याप्त संसाधनों का होना है। हरियाणा जैसे राज्यों की समस्याएं भी प्राकृतिक विपत्तियों, पेट्रोलियम उत्पादों और कोयले आदि की निर्देशित कीमत में वृद्धि और केन्द्रीय सरकार द्वारा अपने कर्मचारियों को

अतिरिक्त महंगाई भत्ते की किस्तें दिए जाने के परिणामस्वरूप राज्य सरकारों तथा समान महंगाई भत्ते का दिया जाना जैसे कारणों से कई गुना बढ़ गई है। इस पृष्ठभूमि में राज्यों के लिए अपने अर्थोपाय अग्रिम की सीमा से बढ़ना बहुत स्वाभाविक है। यद्यपि हम भारत सरकार के इस मत से सहमत हैं कि अर्थोपाय अग्रिम और विशेष अर्थोपाय अग्रिम संसाधन नहीं हैं किंतु वे एक संसाधन के रूप में काम में आते हैं। अत: उसकी उच्चतम सीमा बढ़ाई जानी चाहिए। हरियाणा के लिए इस समय अर्थोपाय की उच्चतम सीमा केवल 12 करोड़ रुपये है और अतिरिक्त विशेष अर्थोपाय अग्रिम की उच्चतम सीमा 6 करोड़ रुपये है जो कि कुल मिलाकर 18 करोड़ रुपये है। इसे बढ़ा कर यदि 50 करोड़ रुपये नहीं किया जाता तो कम से कम दुगना तो कर दिया जाना चाहिए।

5.22 यह कहना उचित नहीं होगा कि हरियाणा जैसे राज्य अपने राजस्व के साधनों का पर्याप्त रूप से उपयोग नहीं कर रहे हैं। इसके विपरीत हम सभी सम्भव तरीके से संसाधनों को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वस्तुत: हरियाणा देश के ऐसे राज्यों में से एक है जिस पर बहुत अधिक भार डाला गया है।

5.23 हम कही गई दोनों बातों से सहमत हैं। केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र को 1982-83 में बहुत अधिक लाभ हुआ। किंतु 1983-84 में उसके निष्पादन में बहुत गिरावट आ गई। यह भी बताया जाता है कि राज्य-सरकारों के सार्वजनिक क्षेत्रक यूनिटों का समग्र निष्पादन भी इससे बेहतर नहीं रहा है। राजस्व की काफी राशि भी मुख्यत: आय-कर और केन्द्रीय उत्पाद और सीमा-शुल्क के संबंध में भी शुल्क की काफी राशि वसूल नहीं की जा सकी है। इनकी बकाया राशि बढ़ती जा रही है। इन्हें प्रभावी रूप से और शीघ्रता से वसूल किया जाना चाहिए। यदि ऐसा कर लिया जाता है तो संघ और राज्यों दोनों को लाभ होगा।

5.24 संघ के लिए यह सुदृढ़ सिद्धान्त होगा कि वह नये शुल्क या कर लगाते समय अथवा अनुच्छेद 268 और 269 में वर्णित शुल्क और करों की दरों में परिवर्तन करते समय राज्यों से परामर्श कर ले। तथापि व्यावहारिक रूप में हमेशा ऐसा करना उनके लिए संभव नहीं होगा।

5.25 हां। हम इस विचार से सहमत हैं।

5.26 कुछ राज्यों की ओर से प्रकट किया गया मत बिल्कुल सही है। यदि कर समाप्त नहीं किया जाता तो राज्यों को दिए जाने वाले 23.12 करोड़ रुपये के अनुदान की तुलना में इस शीर्ष के अन्तर्गत काफी बड़ी राशि की प्राप्ति होती। 1978-79 में की गई गणना के अनुसार यह राशि 63.22 करोड़ रुपये होती। अब तक यह राशि बढ़ कर 100 करोड़ रुपये हो गई होती। या तो कर दोबारा से लगाया जाना चाहिए अथवा अनुदान को इसी अनुपात में बढ़ाया जाना चाहिए।

यह भी बताया जाता है कि न केवल इस संबंध में बल्कि बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाए जाने के मामले में भी राज्यों को भारी वित्तीय हानि हुई है। तम्बाकू, वस्त्र, चीनी पर बिक्री-कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क के अन्तर्गत हुई राजस्व प्राप्तियों का संवितरण उस राशि का केवल एक अंश है जो राज्यों को बिक्री-कर की उगाही करते रहने पर प्राप्त होता।

5.27 कोई टिप्पणी नहीं है।

5.28 हरियाणा में अक्सर ही ओले पड़ते हैं जिसके कारण इसकी मूल्यवान फसलों को बहुत क्षति पहुंचती है। किन्तु केन्द्रीय सरकार ओलों के लिए दी जाने वाली सहायता को बाढ़, चक्रवात, सूखा आदि जैसी अन्य विपत्तियों के लिए दी जाने वाली सहायता में शामिल नहीं मानती है। चूंकि ओलों से बहुत भारी और अक्सर ही क्षति पहुंचती है अत: इसे भी ऐसी सहायता के योग्य माना जाना चाहिए।

जब भी प्राकृतिक विपत्ति आती है तो राज्य-सरकार को लोगों के कल्याण के लिए ऐसे अप्रत्याशित खर्च करने होते हैं जो स्थानीय सन्दर्भ में राज्य को सर्वोत्तम प्रतीत हों। किन्तु राज्य की मार्जिन राशि में से कुछ अनिवार्य ऐसी मदों के लिए किए गए खर्च को केन्द्र अर्हक खर्च के रूप में नहीं स्वीकार करती जिन्हें उसके द्वारा तैयार की गई स्कीमों में शामिल न किया गया हो। राज्यों को, स्थानीय आवश्यकता के अनुसार मार्जिन-राशि को खर्च करने की छूट होनी चाहिए।

सूखे के मामले में दी गई अग्रिम योजना सहायता से राज्यों को वास्तव में लाभ नहीं मिलता क्योंकि यह बाद वाले वर्ष के आबंटन के प्रति समायोजित की जाती है। यह तर्क माना नहीं जा सकता कि सूखा राहत निर्माण कार्य पर होने वाला खर्च सामान्य योजनागत स्वरूप का है क्योंकि विपत्ति के स्थान पर कुछ परिसम्पत्तियों का सृजन करने के लिए किए जाने वाले खर्च के लिए निधियों को उन अन्य स्थानों पर नहीं खर्च किया जा सकता जिनके लिए वे थीं।

राज्यों द्वारा अपने ज्ञापन में राहत के लिए प्रस्तुत की गई स्कीमों के स्वरूप और सिद्धांत में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए सिवाय इसके कि कुछ स्कीमें संसाधनों की कमी के कारण आरंभ नहीं की जा सकती। तर्क यह है कि राज्य इस बारे में निर्णय लेने के लिए सबसे अच्छी स्थिति में होते हैं कि किसी विशेष स्थिति में उनके राज्य के लोगों के लाभ के लिए कौन सी स्कीम उपरोक्त है।

5.29 जैसा कि पहले प्रश्नों के उत्तर में चर्चा की गई है, निधियों के अन्तरण और केन्द्रीय सहायता से संबंधित मामले पर निर्णय ऐसी एक एजेंसी द्वारा लिया जाना चाहिए जो वित्त आयोग और योजना आयोग के कार्यों को संयुक्त करे। इसके अतिरिक्त यह एजेंसी स्थायी निकाय के रूप में होनी चाहिए और आवधिक स्वरूप की नहीं होनी चाहिए।

औद्योगिक परियोजनाओं आदि के लिए सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में राज्यों की उधार की आवश्यकताओं के संबंध में निश्चित रूप से अधिक समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यदि ऐसी केन्द्रीकृत राष्ट्रीय एजेंसी स्थापित की जाती है जो न केवल राज्यों का प्रतिनिधित्व करे बल्कि एफ०आई०सी०सी०आई० और ए०आई०ई०आई० जैसे प्रतिनिधि उद्योगों और शीर्ष सार्वजनिक क्षेत्रक वित्त संस्थाओं के हितों का प्रतिनिधित्व करे तो इसमें सहायता मिलेगी। यह एजेंसी भारत सरकार द्वारा जारी किए गए आशय पत्रों और लाइसेंसों के कार्यान्वयन को मॉनीटर कर सकती है और उसमें आने वाली कठिनाईयों को देख सकती है और विभिन्न राज्यों और प्रत्येक राज्य में स्थापित किए जाने वाले यूनिटों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रख सकती है।

5.30 प्रश्न के पहले भाग में व्यक्त किए गए विचार से हम सहमत नहीं हैं। निधि की उगाही कौन करता है और किस प्रकार उनका मिल कर इस्तेमाल किया जाता है यह बहुत महत्वपूर्ण विषय है। नि:संदेह प्रश्न के दूसरे वाक्य में जो कुछ कहा गया है उससे कोई असहमति नहीं हो सकती है। हालांकि यह देखा गया है कि कुछ स्कीमों में लाभभोगियों को मिलने वाला लाभ स्कीम के कार्यान्वयन के लिए किए गए निवेश के उचित अनुपात में नहीं है।

5.31 संघ सरकार के वित्त का प्रबंध किस तरीके से किया जा रहा है इसके लिए संघ-सरकार के राजस्व और खर्च दोनों की नियंत्रण और महालेखा-परीक्षक द्वारा लेखा-परीक्षा किए जाने की सुदृढ़ प्रक्रिया है। अत: अन्य एजेंसी द्वारा आवधिक मूल्यांकन आवश्यक नहीं प्रतीत होता। राज्य सरकारों की तरह केन्द्र सरकार भी लोगों के प्रति उत्तरदायी है।

कुल मिलाकर यह धारणा सही है। यद्यपि स्पष्ट कारणों से हम सुनिश्चित रूप से कुछ नहीं कहना चाहेंगे किन्तु यह देखा गया है कि कुछ राज्यों ने ऐसी स्कीमें और परियोजनाएं आरंभ की हैं जिनका खर्च बहुत अधिक है और सुदृढ़ अर्थ-व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए शायद उन्हें छोड़ा जा सकता था।

नहीं। राष्ट्रीय खर्च आयोग आवश्यक प्रतीत होता है। पिछले प्रश्न के उत्तर में उल्लिखित केन्द्रीयकृत राष्ट्रीय एजेंसी भी बहुत सहायक होगी जो संघ सरकार और राज्यों दोनों की स्कीमों की पर्याप्त विवीक्षा के साथ संवीक्षा करेगी। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि राज्य सरकार के मामले में 10 करोड़ रुपये से अधिक खर्च वाली केन्द्र सरकार के मामले में 100 करोड़ रुपये से अधिक खर्च वाली किसी भी स्कीम की इस एजेंसी द्वारा संवीक्षा की जाए।

5.32 बनाई गई प्रक्रियाएं और परिपाटियां ऐसे स्वरूप की हैं जिन्हें केन्द्र और राज्यों के बीच स्वस्थ सम्बन्धों के लिए हानिकारक नहीं माना जा सकता।

5.33 कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

5.34 कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

5.35 हमें इस विषय पर कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

5.36 हमारा विचार है कि वर्तमान प्रणाली समुचित है और इसमें राज्यों द्वारा किए जाने वाले खर्च पर पर्याप्त नियंत्रण रखने की व्यवस्था है। संघ-सरकार के खर्च पर नियंत्रण रखने की प्रणाली के संबंध में हमें कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

5.37 वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत भी प्राक्कलन-समिति को राज्य सरकार को अपनी सिफारिशें देने से मना नहीं किया गया है।

5.38 प्रश्न 5.31(ग) के संबंध में दिए गए हमारे उत्तर को ध्यान में रखते हुए कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

5.39 हमने कोई विशेष कठिनाई या अनुचित हस्तक्षेप नहीं देखा है। अत: किसी आशोधन का सुझाव नहीं दिया जाता है।

(प्रश्न संख्या 5.1, 5.7 और 5.11 के उत्तर में निर्दिष्ट टिप्पणी)

अनुक्रमिक वित्त आयोगों ने अनुच्छेद 275 के अधीन राज्यों के लिए गैर-योजना अनुदान की सिफारिश करते समय राजस्व की कमी की पूर्ति करने के दृष्टिकोण को अपनाया जो हरियाणा जैसे राजस्व बेशी राज्य के लिए अहितकर रहा है। हमें इस संबंध में कोई केन्द्रीय सहायता नहीं प्राप्त हुई। केन्द्रीय करों का अन्तरण राज्यों को किए जाने के मामले में वित्त आयोग का दृष्टिकोण प्रगतिशील नहीं रहा है। आय-कर और कम्पनी आय-कर के अधिभार को विभाज्य पूल में शामिल नहीं किया गया है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों के मामले में विभाज्य पूल की राशि को 40 प्रतिशत तक सीमित रखा गया है। इसे बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार राज्यों की संसाधन जुटाने की अल्प शक्तियों में अनाधिकार हस्तक्षेप करती रही है। वस्त्र, चीनी और तम्बाकू पर पहले राज्यों द्वारा उगाही किए जाने वाले बिक्री-कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद-शुल्कों की उगाही के कारण हरियाणा जैसे राज्यों को भारी वित्तीय हानि हुई। यद्यपि अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों की सम्पूर्ण निवल आय राज्यों को सौंप दी जाती है किन्तु इनमें हमारा हिस्सा उस राशि से बहुत कम है जो बिक्री-कर लागू रहने पर हमें बिक्री-कर से प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त रेल यात्री किराया पर कर के स्थान पर राज्यों को दिया जाने वाला अनुदान उस स्थिति में कर से होने वाली आय की तुलना में बहुत कम है यदि इस कर की उगाही राज्यों द्वारा की जाती। अत: राज्य द्वारा उगाही किए जाने वाले करों के स्थान पर केन्द्र द्वारा उगाई किए जाने वाले करों को लगाने से राज्य के संसाधन कम हो रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्रक बाजार ऋणों में राज्यों का हिस्सा तेजी से कम हो रहा है। समय बीतने के साथ-साथ केन्द्र इन बाजार ऋणों के अधिक से अधिक हिस्से का विनियोजन करता जा रहा है।

अनुक्रमिक वित्त आयोगों द्वारा अपनाए गए राजस्व की कमी की पूर्ति के दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप विभिन्न राज्य वित्तीय दृष्टि से अविवेकपूर्ण नीतियों का अनुसरण कर रहे हैं और वित्तीय ढिलाई आ रही है। जैसा कि सातवें वित्त आयोग ने कहा है संसाधनों के कुल अन्तरण में सहायता अनुदान की भूमिका यथासंभव अवशिष्ट की होनी चाहिए और संसाधन के अधिकांश अन्तरण का प्रयास करों के विभाजन द्वारा किया जाना चाहिए। कर-विभाजन के मामले में भी कर प्रयासों और खर्च में मितव्ययिता को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 राष्ट्रीय विकास परिषद योजनाबद्ध विकास के संबंध में नीति-प्रतिपादन के लिए उच्चतम फोरम है। इस फोरम में राष्ट्रीय स्तर की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार ने और राज्य स्तर की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए राज्य-सरकारों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उसके बाद नीति का एक व्यापक ढांचा तैयार किया गया है। परामर्श की वर्तमान प्रणाली उपयुक्त है।

केन्द्र की भूमिका मार्गदर्शन देने और कार्यक्रमों को व्यापक रूप से मानीटर करने तक सीमित रहनी चाहिए। कार्यकारी ग्रुपों को राज्यों के क्षेत्राधिकार के भीतर आने वाले कार्यक्रमों के क्षेत्र और विस्तार के बारे में निर्देश देना चाहिए। इससे राज्य के भीतर समवर्ती विकासात्मक कार्यक्रमों को तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। केन्द्र सरकार की भूमिका परामर्शी की होनी चाहिए और ऐसे कार्यक्रमों के अधीन निर्णायक की नहीं।

6.2 हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं। फिर भी विशेष मुद्दों पर चर्चा करने के लिए विद्यमान राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक और जल्दी जल्दी की जा सकती है।

6.3 हां।

6.4 हम पहले वाले विचार का समर्थन करते हैं।

6.5 हम सहमत नहीं हैं।

6.6 योजना आयोग के हस्तक्षेप के बिना, राज्यों की प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर हम अपनी योजना तैयार करते रहे हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ जबकि राष्ट्र की प्राथमिकताओं और राज्य की प्राथमिकताओं में विरोध उत्पन्न हुआ हो बल्कि ओवर-ड्राफ्ट से बचने के लिए राज्य के ये संसाधन आवश्यक हैं परन्तु वास्तविक कार्यक्रमों का आकार, विस्तार और प्रावस्था का निर्धारण राज्य पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

6.7 केन्द्रीय क्षेत्रों की योजनाओं और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के लिए अनुदान/ऋण कार्य निष्पादन से सम्बद्ध है। फिर भी राज्यों में अन्य स्कीमों के लिए संसाधनों के आबंटन में राज्यों को अधिक लचीलापन लाना चाहिए। केन्द्र को चाहिए कि प्राकृतिक विपत्तियों से राहत के लिए, अनुदान के रूप में, अधिक रकम भी आबंटित करे।

6.8 राज्यों की योजना के आकार को निश्चित करने का वर्तमान सूत्र गरीब राज्यों के लिए कठोर नहीं है। वास्तव में वित्तीय आयोग के चैनल के माध्यम से, अधिक समृद्ध राज्यों के खर्च पर गरीब राज्यों को लाभ प्राप्त हो रहा है। आशोधित गाडगिल सूत्र और आई० ए० टी० पी० सूत्र भी गरीबी और पिछड़ेपन को पर्याप्त महत्व देते हैं।

6.9 केन्द्रीय सहायता कुछ मानदण्डों के आधार पर दी जाती है जिसमें विकास की संभावना को ध्यान में नहीं रखा जाता। क्षेत्रीय असंतुलनों और गरीबी को दूर करने के लिए केन्द्रीय सहायता का आबंटन महत्वपूर्ण है परन्तु साथ ही वास्तविक संसाधनों का और राज्य के विकास की संभावना का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए। केन्द्रीय सहायता को निर्दिष्ट परिव्यय के साथ जोड़ने की प्रणाली समाप्त कर दी जानी चाहिए। यद्यपि निर्दिष्ट परिव्यय में आर्थिक विकास और न्यूनतम आवश्यकताओं के ऐसे क्षेत्र जिन्हें प्राथमिकता प्राप्त होनी चाहिए, भी शामिल है, फिर भी यदि किसी कारण से राज्य निर्दिष्ट परिव्ययों की राशि को खर्च करने में असमर्थ रहते हैं तो केन्द्रीय सहायता कम नहीं की जानी चाहिए। एक बार केन्द्रीय सहायता की जो राशि निर्धारित कर दी जाए उसे राज्य का संसाधन समझा जाना चाहिए। राज्यों द्वारा किए जाने वाले बेहतर प्रबंध को उपयुक्त पुरस्कार दिया जाना चाहिए।

6.10 हरियाणा की योजनाओं में कुछ भी मिथ्या वर्णन नहीं किया गया है।

6.11 मानीटर करने और मूल्यांकन की मशीनरी इस समय समुचित नहीं है। केन्द्र सरकार योजना-विभाग के स्टाफ पर 2/3 हिस्सा खर्च करके इस मशीनरी के विस्तार को प्रोत्साहित कर रही है। योजना-विभाग में गतिविधियों के विस्तार का अर्थ होगा कार्यान्वयन विभागों से अतिरिक्त पुनर्निवेशन। इसलिए केन्द्रीय सहायता की प्रणाली को, योजनाबद्ध विकास से संबंधित सभी विभागों में लागू किया जाना चाहिए।

6.12 केन्द्र और राज्यों के बीच विकेंद्रित योजना की प्रणाली पहले से ही विद्यमान है। योजना बनाना और कार्यान्वयन करना राज्यों की जिम्मेदारी है। फिर भी केन्द्र के द्वारा राज्य की योजनाओं की संवीक्षा करने की पद्धति आवश्यक है क्योंकि अन्यथा राज्यों को उपलब्ध संसाधनों में से क्षेत्र से संबंधित परिव्ययों को निर्धारित करने में बड़ी कठिनाई होगी। इस प्रयोजन के लिए

राज्य-सरकार के प्रभाव से बाहर की कोई एजेंसी आवश्यक है। फिर भी कार्यकारी ग्रुपों द्वारा "संक्षिप्त विचारण" की जो वर्तमान पद्धति है, उसे राज्य के दृष्टिकोण से न्यायसंगत बनाने की आवश्यकता है।

6.13 योजना-बोर्ड, वर्तमान परिस्थिति, वृद्धि की संभावनाओं, क्षेत्रीय आवश्यकताओं को परखने की स्थिति में होते हैं। वे विभिन्न क्षेत्रों में विकास प्रक्रियाओं की उचित दिशा दे सकते हैं। समन्वय निकाय के रूप में यह उपलब्ध संसाधनों के भीतर विभिन्न गतिविधियों के लिए परिव्यय का निर्धारण कर सकता है। वे कार्यान्वयन प्रक्रिया पर अच्छा नियंत्रण भी रख सकते हैं और राज्य सरकार की विकास नीति को प्रभावपूर्ण ढंग से मॉनीटर कर सकते हैं।

जहाँ तक राज्यों का संबंध है राष्ट्रीय योजना अब भी निर्देशात्मक है। बल्कि इसमें विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों की आवश्यकताएं और परिप्रेक्ष्य शामिल हैं। वास्तविक कठिनाइयां केवल तब उत्पन्न होती हैं जब परिव्ययों और वास्तविक लक्ष्यों के रूप में, पंचवर्षीय/वार्षिक योजना को, अंतिम रूप दिया जाता है।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 जैसा कि बताया गया है कि उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम की प्रथम अनसूची में केवल ऐसे कुछ उद्योग ही शामिल थे जो महत्वपूर्ण जनहित और राष्ट्रीय महत्व के थे। औद्योगिक नीति संकल्प, 1948 के कार्यान्वयन के बाद की अवधि के दौरान इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची में अनेक परिवर्तन किए गए हैं। शामिल की गई इन अतिरिक्त मदों को, पूर्ण रूप से महत्वपूर्ण जन हित या राष्ट्रीय महत्व का नहीं माना जा सकता। यह सर्वविदित है कि जनता द्वारा सामान्य रूप से प्रयोग की जाने वाली जो मदें, बहुत कठिनाई से प्राप्त नहीं होती हैं, उनको इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची के अधीन वर्गीकृत किए जाने की आवश्यकता नहीं है। इससे विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे उद्योगों के आने में सहायता मिलेगी। यह सर्वविदित है कि किसी उद्योग को स्थापित करने के लिए व्यक्ति द्वारा पर्याप्त प्रयत्न किए जाने के साथ-साथ औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करने में भी पर्याप्त समय लगता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए स्थानीय मांग अथवा स्थानीय कच्चे-माल पर आधारित उद्योगों के बिना किसी प्रतिबंध को स्थापित किया जाना बहुत उपयोगी और आवश्यक होगा।

7.2 (i) इसके मानदंड होने तो चाहिए परन्तु मानदंड विषय पर कोई विधान नहीं होना चाहिए। मार्गनिर्देशों में भी समय-समय पर परिवर्तन करना आवश्यक होगा।

(ii) निम्नलिखित मदों को प्रथम-अनसूची में से निकालने पर विचार किया जा सकता है :—

1 बिजली के पंखे।
2. बिजली के लैम्प।
3. घरेलू उपकरण जैसे बिजली से चलने वाली इस्तरी, हीटर।
4. बाइसाइकिलें।
5. अग्नि-शमन उपकरण और उपस्कर।
6. प्लास्टिक से बना माल।
7. हाथ के औजार।
8. रेजर ब्लेड।
9. प्रेशर कुकर।
10. छुरी-कांटे।
11. स्टील का फर्नीचर।
12. सिलाई और बुनाई की मशीन।
13. हरीकेन लालटेन।
14. सिन्थेटिक, अप्रमापित।
15. पेपर बोर्ड और स्ट्रा बोर्ड।
16. माल्ट वाले खाद्य-पदार्थ।
17. आटा।
18. वनस्पति तेल जिसमें विलायक निष्कर्षण तेल भी शामिल है।
19. साबुन।
20. सुगन्धशाला।
21. चमड़ा और चमड़े से बने सामान।
22. तेल से जलने वाले स्टोव।

7.3 विकेंद्रित करना उपयोगी और आवश्यक होगा विशेषकर उद्योगों के लिए पूंजीगत माल और कच्चे-माल के आयात की अनुमति देने के संबंध में जिसमें से आयात किए जाने वाले पूंजीगत माल की प्रतिशतता पूंजीगत माल के कुल मूल्य के लगभग 15 प्रतिशत से कम हो और आयात किए जाने वाले कच्चे-माल की प्रतिशतता तैयार उत्पादों के कुल मूल्य के 10 प्रतिशत से कम हो। विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया से नये उद्योगों की शीघ्रता से स्थापना की जा सकेगी।

7.4 राज्य सरकार ने लघु उद्योगों को सहायता प्रदान करने और उन्हें ऐसे कच्चे-माल की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए जो कि छोटे पैमाने के औद्योगिक यूनिटों को उचित दरों पर उपलब्ध होते हैं, पर्याप्त कदम उठाए हैं। हरियाणा राज्य लघु उद्योग और निर्यात निगम कच्चे-माल की पूर्ति पर निगरानी रखता है और छोटे और लघु यूनिटों को विपणन सहायता प्रदान करता है। फिर भी आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति केन्द्रीय सरणीयन एजेंसियों अथवा सार्वजनिक क्षेत्रक यूनिटों पर निर्भर करती है।

7.5 केन्द्रीय वित्तीय संस्थाएं राज्य-योजनाओं के लिए ऋण नहीं देतीं, परन्तु वे राज्य में स्थापित की जाने वाली औद्योगिक परियोजनाओं के लिए ऋण देती हैं। हमारे राज्य में एस० आई० डी० सी० एस० (SIDCS) और एस० एफ० सी० एस० (SFCS) एच० एस० आय० डी० सी० (HSIDC) और एच० एफ० सी० (HFC) द्वारा, दी जाने वाली सहायता द्वारा, राज्य-स्तर पर भी औद्योगिक परियोजनाओं को वित्तीय सहायता दी जाती है। औद्योगिक परियोजनाओं को सहायता देने के लिए, राज्य संस्थाओं के संसाधन भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा उपलब्ध कराया जाने वाला पुन: वित्तीयन है और राज्य द्वारा आबंटित निधियां हैं। केन्द्रीय संस्थाएं बांडों के रूप में बाजार से संसाधन जुटाती हैं जबकि राज्य संस्थाओं को ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं है। यह वांछनीय होगा कि बाजार-ऋण का कुछ अंश राज्य संस्थाओं को आबंटित कर दिया जाए जिससे वे राज्यों में औद्योगिक विकास के लिए अपने संसाधनों में वृद्धि कर सकें। वार्षिक योजनाओं के अधीन अनुमत कुल बाजार-ऋण को राज्य और केन्द्रीय संस्थाओं के बीच बांटकर ऐसा किया जा सकता है और अखिल भारतीय संस्थाएं, राज्य संस्थाओं को, अपने बांड के कोटे का कुछ हिस्सा देकर उनके विकास की गति को बढ़ाने में सहायता प्रदान कर सकती हैं।

7.6 यह आलोचना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होती है। राज्य को विश्वास में लिए बिना राज्य में केन्द्रीय क्षेत्रक यूनिट स्थापित करना संभव नहीं है।

7.7 क्योंकि यह विषय राज्य के लिए बहुत महत्व का है अत: भारत-सरकार को इन प्रस्तावों को सभी राज्यों में उनकी टिप्पणियों के लिए परिचालित करना चाहिए और यदि राज्य चाहें तो उनके दावों का समर्थन कर सकते हैं। तब भारत सरकार को, इच्छुक राज्य-सरकारों को बैठक में आमंत्रित करके, प्रस्तावों को निश्चित करना/अंतिम रूप देना चाहिए।

7.8 केन्द्रीय रूप से अधिसूचित पिछड़े क्षेत्रों से संबंधित नई सूची और नीति 1-4-83 को घोषित की गई थी। औद्योगिक रूप से पिछड़े जिले/क्षेत्रों, का पता लगाते समय राज्य सरकार से परामर्श नहीं किया गया। ऐसे कुछ क्षेत्रों को पिछड़े जिलों की केन्द्रीय सूची में शामिल नहीं किया गया जिन्हें राज्य सरकार काफी पिछड़ा हुआ मानती है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के लिए केन्द्र की ओर से दिए जाने वाले प्रोत्साहनों से, पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के फैलाव में सफलता प्राप्त हुई है परन्तु अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ किया जा सकता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि केन्द्र सरकार द्वारा केवल आर्थिक सहायता की राशि निर्दिष्ट की जा सकती है और राज्य-सरकार पिछड़े क्षेत्रों की उन्नति के लिए अपनी नीति निर्धारित कर सकती है। अलग-अलग राज्य सरकारें अपनी-अपनी समस्याओं को बेहतर समझ सकती हैं और अपनी आवश्यकताओं और राज्य में विद्यमान स्थिति के अनुसार अपनी नीतियां बना सकती हैं।

भाग VIII

व्यापार और वाणिज्य

8.1 वर्तमान स्थिति में ऐसे निकाय का होना, हम आवश्यक नहीं समझते हैं।

भाग IX

कृषि

9.1 जैसा कि भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित है कि सरकार की कार्य प्रणाली "सहकारी संघवाद" के सिद्धांत पर आधारित है जिसके अधीन विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, संघ और राज्य-सरकारों के बीच, परस्पर बातचीत के लिए गुंजाइश है। कृषि एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर अधिकतम पहल शक्ति की आवश्यकता है। अतः इसमें कुछ नुकसान नहीं है यदि संघ सरकार "संघ और समवर्ती-सूची" के अधीन उसे सौंपी गई कुछ शक्तियों का प्रयोग करके कृषि से संबंधित विषयों में पहल करे। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि संघटक राज्य के पास कृषि क्षेत्र से संबंधित ऐसी समस्याओं को हल करने के लिए, जो पूर्ण रूप से स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर हों, कोई पहलशक्ति नहीं है। कुल मिला कर संघ और राज्य सरकारें उपर्युक्त ढांचे के भीतर कार्य कर रही हैं और इस संबंध में कोई समस्या सामने नहीं आई है। वस्तुतः केन्द्र की पहलशक्ति ने हमेशा सहायक के रूप में ही कार्य किया है और यह कभी भी राज्य के हितों के प्रतिकूल नहीं रही। इसी तरह के विचार वानिकी, पशु-पालन और मत्स्य उद्योग के संबंध में भी हैं।

9.2 केन्द्रीय स्कीमों और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों का राज्य क्षेत्रों में अंतिम रूप से शामिल किया जाना मुख्य रूप से राज्य योजनाओं में संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इसके अलावा ऐसा महसूस किया गया है कि कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें, संसाधनों की कमी के कारण, राज्य क्षेत्र की सीमा के भीतर नहीं लाई जा सकती। केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के माध्यम से राज्यों को अंतरित की गई अतिरिक्त निधियां राज्य के योजनागत संसाधनों से संबद्ध नहीं हैं। अतः केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों को राज्य क्षेत्र में अन्तरित करने के संबंध में कोई दृढ़ नियम नहीं होना चाहिए।

9.3 यह एक सामान्य पद्धति बन गई है कि राज्य सरकारों के नामिती, केन्द्र और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के कार्यकारी ग्रुपों का प्रतिनिधित्व करते हैं और कुल मिला कर इन कार्यकारी ग्रुपों की सिफारिशों को अंतिम रूप देते समय, राज्यों के प्रतिनिधियों के विचारों पर उचित ध्यान दिया जाता है। ये कार्यकारी ग्रुप, या तो 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के माध्यम से अथवा हिस्सेदारी के आधार पर राज्यों में इन स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए राज्य के योजनागत संसाधनों की उपलब्धता का भी ध्यान रखते हैं। संक्षेप में इस पहलू पर केन्द्र और राज्यों के बीच, काफी प्रभावी सहयोग रहता है। फिर भी केन्द्र द्वारा प्रायोजित/केन्द्र द्वारा सहायता प्राप्त स्कीमों को तैयार करते/बनाते समय राज्य सरकारों से परामर्श नहीं किया जाता है जो कि राष्ट्रीय कृषि आयोग, 1976 की सिफारिशों के विरुद्ध है जिसमें यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके बनाई जानी चाहिए और संयुक्त कार्यकारी ग्रुप द्वारा कार्य किया जाना चाहिए।

9.4 (क) **कृषि संबंधी मदों की न्यूनतम उचित दरें निश्चित करना :—** इसमें कोई संदेह नहीं है कि कृषि से संबंधित विभिन्न उपयोगी वस्तुओं की आधार-कीमतें निश्चित करने से पहले, कृषि कीमत आयोग राज्य सरकारों के भी विचार मांगता है परन्तु यह आम धारणा है कि राज्यों द्वारा निकाली गई उत्पादन लागत कुल मिलाकर संघ सरकार द्वारा स्वीकार नहीं की जाती। इसके परिणामस्वरूप अलाभकारी कीमतें निर्धारित कर दी जाती हैं। कृषि के क्षेत्र में उन्नत हरियाणा जैसे राज्यों में किसान काफी प्रगतिशील, तरक्की पसंद हैं और वे सामान्यतः उपयुक्त बताई गई पद्धतियां अपनाते हैं और अपनी फसलों पर महंगा निवेश भी करते हैं। किसानों की पहलशक्ति के परिणामस्वरूप काफी अच्छी फसल पैदा हो रही है परन्तु आधार कीमतों के रूप में उन्हें प्राप्त होने वाला लाभ महंगे निवेशों के कारण कृषि की उच्च-लागत के अनुरूप नहीं है। राज्य-सरकार यह महसूस करती है कि किसानों द्वारा उगाए जाने वाली फसल के, प्रत्येक अतिरिक्त यूनिट के लिए, किसानों को बोनस देने की कोई प्रणाली होनी चाहिए। भारत सरकार के स्तर पर, कीमतों के निर्धारण की वर्तमान प्रणाली में शायद इन तथ्यों का ध्यान नहीं रखा गया।

किसानों को सस्ती दरों पर पानी और बिजली प्रदान करने के लिए भी राज्य-सरकार को कुछ क्षतिपूर्ति करनी चाहिए उदाहरणार्थ—कृषि के प्रयोग के लिए लगभग 0.20 पैसे प्रति यूनिट की दर से बिजली की पूर्ति की जाती है जबकि इसकी उत्पादन-लागत लगभग 0.60 पैसे प्रति यूनिट है। इसके अतिरिक्त बाढ़ नलकूपों को बिजली से चलाने के लिए भी आर्थिक सहायता प्रदान करता है। केन्द्र-सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार की सभी सहायताओं के संबंध में राज्य-सरकार को प्रतिपूर्ति करे। इस प्रयोजन के लिए स्थायी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ख) **सिंचाई (इसमें अन्तरराज्यीय पक्ष शामिल है):**—नदी के पानी के बंटवारे में गंभीर अन्तरराज्यीय कठिनाइयां हैं। ये इस तथ्य से उत्पन्न होती हैं क्योंकि नदी का जल केन्द्र का विषय नहीं है। नदी-जल के अन्तरराज्यीय बंटवारे पर अंतिम रूप से निर्णय करने के लिए एक राष्ट्रीय परिषद होनी चाहिए जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री होंगे।

(ग) **महत्वपूर्ण निवेशों, जिनमें क्रेडिट भी शामिल है, की व्यवस्था :**—उर्वरक एक ऐसा निवेश है जिसका आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन विभिन्न राज्यों में भारत सरकार द्वारा बंटवारा किया जाता है और प्रायः राज्यों को, देश में दूर-दराज स्थित किसी विनिर्माण संयंत्रों से, उर्वरक आबंटित करने की व्यवस्था की जाती है। दूसरी ओर राज्य में स्थित बड़े विनिर्माण संयंत्रों से अन्य राज्यों को उर्वरक के आबंटन की व्यवस्था की जाती है। कभी-कभी रेल्वे वैगनों आदि की कमी के कारण एक राज्य से दूसरे राज्य को उर्वरक पहुंचाने में बहुत बाधा उत्पन्न होती है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि चाहे यह आबंटन भारत-सरकार के स्तर पर किए जाते हैं परन्तु जहां तक संभव हो राज्य में स्थित संयंत्रों से केवल राज्य के भीतर तथा पड़ोसी राज्यों में उर्वरक के आबंटन के प्रयत्न किए जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त कोटि नियंत्रण विनियमन को विकेंद्रित करने की आवश्यकता है। इस समय उर्वरक का कोटि नियंत्रण उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1957 के माध्यम से विनियमित होता है जो कि केन्द्रीय विधान है। परन्तु कालांतर में यह आवश्यक हो गया कि उर्वरक (नियंत्रण) आदेश में पर्याप्त परिवर्तन किया जाए परन्तु केन्द्रीय स्तर पर किए जाने वाली संशोधन की प्रक्रिया जटिल होने के कारण ऐसा नहीं हो पाया है। ऐसा महसूस किया जाता है कि उर्वरक (नियंत्रण) आदेश, 1957 में वहां तक संशोधन करने की शक्तियां राज्य को दी जानी चाहिए जहां तक उसका संबंध उस विशेष राज्य में लागू किए जाने से हो।

(घ) **वानिकी नीति :** विकास निर्माण कार्यों के लिए वनों के वृक्षों को काटने की अनुमति के लिए, राज्य सरकारों को पर्याप्त शक्तियां प्रत्यायोजित की जानी चाहिए। इसके लिए कुछ रक्षा उपायों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

9.5 कृषि अनुसंधान और वित्तीय संस्थाओं की भूमिका के संबंध में, केन्द्र और राज्यों के संबंधों के क्षेत्र में, ऐसी कोई समस्या सामने नहीं आई है, जिसका उल्लेख किया जाए।

यह सुझाव दिया जाता है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद राज्यों की समस्याओं और अपेक्षाओं के आधार पर, आवश्यकता पर आधारित परियोजनाएं, तैयार करे। एन० ए० बी० ए० आर० डी० जैसी वित्तीय संस्थाओं को देशीय मत्स्य उद्योगों के विकास के लिए पर्याप्त आवंटन करना चाहिए।

भाग X

खाद्य और सिविल पूर्ति

10.1 खाद्यान्नों और अन्य अनिवार्य उपयोगी वस्तुओं की प्रापण, कीमत निर्धारण, भंडारण, लाने-ले जाने, वितरण के क्षेत्र में, केन्द्र और राज्य के सम्पर्क में सुधार की गुंजाइश है। संविधान में खाद्यान्न को राज्यों का विषय बताया गया है परन्तु उपयुक्त विषयों पर केन्द्र की नीतियों के कारण राज्यों के लिए बहुत कम पहलशक्ति/विकल्प रह जाता है। जिसके परिणामस्वरूप भारत-सरकार के पास बिना दायित्वों के शक्तियां है और राज्य-सरकारों के पास बिना पर्याप्त शक्तियों के दायित्व हैं। राष्ट्रीय हित में संतुलन लाने का एक तरीका यह है, कि खाद्यान्नों के प्रापण और वितरण से संबंधित मामलों पर संघटित और एकीकृत विचार प्राप्त करने के लिए, सरकारी-स्तर एक स्थायी समिति का गठन किया जाए और अन्य सिविल पूर्तियों के लिए एक अन्य स्थायी-समिति गठित की जाए। तदर्थ परामर्शों से पूर्ण रूप से उद्देश्य पूरा नहीं होता और सुधार की काफी गुंजाइश रह जाती है। विशेष रूप से खाद्यान्नों पर बिक्री-कर की उगाही, किस्म कटौती को लागू करना, प्रासंगिक प्रभारों की प्रतिपूर्ति आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें राज्य और केन्द्र में लगातार मतभेद रहा है। केन्द्र-सरकार/भारतीय खाद्य निगम को खाद्यान्नों की खरीद के लिए राज्य सरकार को अग्रिम-राशि प्रदान करनी चाहिए। केन्द्र को चाहिए कि वह केन्द्र को खाद्यान्न और उपज की पूर्ति करने वाले राज्यों की सस्ती बिजली और पानी के रूप में किसानों को, राज्यों द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता के लिए, प्रतिपूर्ति करे।

10.2 हां, ऐसी आवधिक समीक्षा की जानी चाहिए और लगातार जांच की जानी चाहिए। प्रारंभ में समिति द्वारा विद्यमान अधिनियमों/नियमों की पूर्ण समीक्षा की जानी चाहिए जिसमें भारत सरकार, संबंधित मंत्रालय, कुछ राज्य सरकारें और कुछ विशेषज्ञ भाग ले सकते हैं और लगभग 6 महीने में इस कार्य को पूरा हो जाना चाहिए। इसके बाद, आपाती आवश्यकता और स्थितियों में प्रत्येक 6 माह में, स्थायी समिति की बैठक बुलाई जा सकती है।

भाग XI

शिक्षा

11.1 हरियाणा-सरकार का यह विचार है कि शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीकरण और मानकीकरण की आलोचना का कोई औचित्य नहीं हैं। इस बात के बावजूद भी कि शिक्षा को समवर्ती-सूची में लाया गया है, केन्द्र का कोई हस्तक्षेप नहीं है और शिक्षा के प्रसार और उन्नति के लिए राज्य-सरकार कोई भी पहल करने के लिए स्वतंत्र है। राज्य-सरकारें, शिक्षा मानकों के सुधार के संबंध में कार्यक्रम और नीतियां बनाने के लिए भी स्वतंत्र हैं।

11.2 राज्य के विश्वविद्यालयों की यह राय है कि उच्च शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अपने प्रभाव का प्रयोग किए जाने से कभी कोई कठिनाई सामने नहीं आई।

विश्वविद्यालय प्रणाली में उच्च शिक्षा और अनुसंधान के मानकों के सुधार के लिए प्रक्रिया और निर्देशक सिद्धांत निर्धारित करना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का सांविधिक दायित्व है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बनाई गई नीति के ढांचे में नये विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए केन्द्र और नये कॉलिज खोल कर शिक्षा सुविधाओं में विस्तार के द्वारा नई विश्वविद्यालय-शिक्षा की कोटि में सुधार करना चाहा है। इसको सौंपे गए कार्यों का ढांचा विभिन्न शिक्षा आयोगों ने विशेषज्ञ पैनल की सलाह पर और उसकी गहनता से जांच किए जाने के बाद और उप-कुलपतियों के क्षेत्रीय सम्मेलन द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद बनाया है। इससे विश्वविद्यालयों द्वारा निपटाए जाने वाले विभिन्न शैक्षिक और प्रशासनिक मामलों जैसे—अपेक्षाकृत कमजोर वर्ग के लिए सीटों का आरक्षण, पूर्व स्नातक स्तर पर अध्ययन पाठ्यक्रमों को पुन: तैयार करना आदि के संबंध में एक रूप दृष्टिकोण अपनाया जाना सुनिश्चित होता है। अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा केन्द्रीय एजेंसी के रूप में उच्च शिक्षा संस्थाओं के संबंध में प्रयोग किया गया प्रभाव पूरे देश में आवश्यक परिवर्तन लाकर और क्षेत्रीय असमानता को दूर करके उच्च शिक्षा के विकास में सहायक हुआ है। इससे एकरूपता और सुनियोजित विकास सुनिश्चित होता है अत: हमारा विचार है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा के विकास के लिए अत्यावश्यक है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा के विकास के लिए वित्तीय सहायता के रूप में अपेक्षाकृत बड़ा सहयोग देता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अपनी "नीति के ढांचे" के अन्तर्गत दोनों विश्वविद्यालयों को अनुदान प्रदान करके जो सहयोग दिया है, उससे वे संतुष्ट हैं। फिर भी कुछ स्तरों पर यह अपेक्षित है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा संस्थाओं के विकास की वास्तविक आवश्यकताओं को बारीकी से समझे और उसके अधिकार में जो धन है उसमें से वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए उन्हें उचित अग्रता प्रदान करें। विकासशील विश्वविद्यालयों/संस्थाओं को विकसित विश्वविद्यालयों/संस्थाओं की तुलना में अधिक विकास अनुदान प्रदान किए जाने चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों की वास्तविक वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण विभिन्न सर्वेक्षण अध्ययनों और विशेषज्ञ पैनलों की रिपोर्टों के आधार पर किया जाना चाहिए। कॉलिजों को अनुरूपी अनुदान के रूप में वित्तीय-सहायता निम्नलिखित विकास प्रयोजनों के लिए दी जाती है :—

(1) पुस्तकें और जरनल

(2) पुस्तकालय सुविधाओं सहित विभिन्न उपस्कर

(3) कॉलिज भवनों का विस्तार/निर्माण

उपर्युक्त प्रयोजनों के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी जाने वाली सहायता का अंश क्रम संख्या (1) और (2) में दी गई मदों के लिए 75 प्रतिशत है और क्रम संख्या (3) पर दी गई मद के लिए 50 प्रतिशत। शेष अंश यथास्थिति राज्य सरकार या प्रबंध समिति द्वारा पूरा किया जाता है। किन्तु यह देखा गया है अनुरूपयोजी अनुदान का विश्वविद्यालय अनुदान आयोग वाला अंश प्राय: देर से मिलता है और वित्त वर्ष के अन्त से पहले मंजूर नहीं किया जाता परिणामस्वरूप अनुदान का उचित उपयोग करना कठिन हो जाता है। सुझाव दिया जाता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने चाहिए कि सरकार/प्राइवेट कॉलिजों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का उनका अंश प्रत्येक वर्ष जून तक मंजूर कर दिया जाता है।

11.3 केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर चर्चाएं आयोजित करके और परामर्श की व्यवस्था करके बहुत सहायता पहुंचा सकता है। शिक्षा मंत्रियों और शिक्षा सचिवों के राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित सम्मेलन में पारस्परिक हित के शिक्षा संबंधी विभिन्न मुद्दों पर विचार किया जा सकता है और समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार कार्रवाई प्रारंभ करने के संबंध में आम राय प्राप्त की जा सकती है।

11.4 यह महसूस किया जाता है कि धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाएं ऐसे मामलों को छोड़कर जिनका कि धर्म या भाषा पर प्रभाव है, सभी मामलों में शिक्षा विभाग के विनियमों के अधीन होनी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 30 को संशोधित किया जाना चाहिए।

11.5 शिक्षा के क्षेत्र में राज्य और केन्द्र का संबंध हमेशा सौहार्दपूर्ण रहे है और उनमें परस्पर समझौता और मैत्री रही है। उनका लक्ष्य समान है और राज्य-सरकार तथा केन्द्र सरकार में विरोध का कोई प्रश्न नहीं उठता।

भाग XII

अन्त: सरकारी समन्वय

12.1 इस प्रयोजन के लिए एक अलग निकाय की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी समस्याओं को हल करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् को आवश्यक शक्तियां सौंपी जा सकती हैं।

हिमाचल प्रदेश सरकार

(क) प्रश्नावली का उत्तर

(ख) ज्ञापन

हिमाचल प्रदेश

प्रश्नावली का उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 हमारा मत है कि संविधान को सही-सही अर्थ में संघीय परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें इस प्रकार से शक्तियों का विभाजन किया गया है कि केन्द्र और राज्य सरकारें अपने-अपने दायरों में एक-दूसरे से वास्तव में स्वतंत्र नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेख किया जाता है कि प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा निर्दिष्ट संघ के मुख्य 6 तत्वों में से केवल एक तत्व हमारे संविधान में मौजूद है। अतः हमारा यह मूल दृष्टिकोण है कि हमारा देश एक संघ है जिसमें राज्यों की भागीदारी अवियोज्य है और केन्द्र का संबंध पूरे भारत से होने के कारण और उसकी जिम्मेदारियों के आधार पर और राज्यों से अपने संबंध मजबूत करने और उनकी राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाने के उसके मुख्य कार्य के आधार पर उसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है।

1.2 राज मन्नार समिति ने सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों में विधायी शक्तियों के पुनर्विभाजन द्वारा राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता पर बल दिया है और उसने कुछ उपबंधों जैसे अनुच्छेद 251, 256, 257, 348, 349, 355, 356, 357, 365 आदि के विलोपन, संशोधन या तात्विक आशोधन का सुझाव दिया है। जहां तक हिमाचल प्रदेश सरकार का संबंध है राजमन्नार समिति की सिफारिशों के संबंध में हमारी टिप्पणी निम्नलिखित है :—

(क) संविधान के अनुच्छेद 251, 256, 257 में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

(ख) हमारी सिफारिश है कि अनुच्छेद 348, 349 को उसी रूप में रखा जाना चाहिए।

(ग) हमारा यह भी मत है कि अनुच्छेद 355, देश को बाहरी आक्रमण और आन्तरिक उपद्रवों से बचाने के लिए बनाए रखना नितान्त आवश्यक है।

(घ) संविधान के अनुच्छेद 356, 256, 257 और साथ ही अनुच्छेद 355 और सूची-I की प्रविष्टि 52 में भी किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

1.3 वर्तमान संविधानिक उपबंधों में इष्टतम संतुलन की व्यवस्था है अतः कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है।

1.4 हमारा विश्वास है कि आज कोई ऐसा परम्परागत प्रकार का संघ विद्यमान नहीं है जिसमें राष्ट्रीय और क्षेत्रीय सरकारें समकक्ष हों और अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्णतः स्वतंत्र हों। इससे सबसे अधिक मिलता-जुलता संयुक्त राज्य है किन्तु वहां भी कुछ वर्षों से संघीय भूमिका बहुत बढ़ गई है।

1.5 हमारा मत है कि संविधान मूलतः युक्तियुक्त है और बदलते हुए युग को चुनौती को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त लचीला है।

1.6 हम इस बात से सहमत हैं कि स्वतंत्रता की रक्षा करना और देश की एकता और अखंडता सुनिश्चित करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हमारा मत है कि आमुख अनुच्छेद 3 की मूल अधिकारों और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों से संबंधित है और संघ और राज्यों के प्रशासनिक संबंधों, व्यापार, वाणिज्य और भारत के राज्यक्षेत्र में परस्पर-व्यवहार, संघ और राज्यों के अधीन सेवाओं से संबंधित अनुच्छेद और संविधान में दिए गए आपाती उपबंध अनिवार्य रूप से इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तैयार किए गए हैं।

1.7 इस प्रश्न में उल्लिखित अनुच्छेदों के बारे में हमने पहले ही अपनी टिप्पणी दे दी है यह अनुच्छेद अत्यधिक तर्कसंगत है।

1.8 हमारे विचार में संविधान के अनुच्छेद 3 में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 हमारा विचार है कि संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के विभाजन की स्कीम में मूलतः कोई गलती नहीं है।

2.2 पूर्णतः हिमाचल प्रदेश के दृष्टिकोण से हम निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करते हैं :—

(क) अनुच्छेद 288 (2) में ऐसा संशोधन किया जाए कि यह सुनिश्चित हो सके कि राज्य का विधान-मंडल किसी प्राधिकरण द्वारा, चाहे वो केन्द्र के अधीनस्थ हो या राज्य सरकार के, स्टोर किए गए, उत्पादित, खर्च किए गए और बेचे गए जल और बिजली पर कर लगा सके।

(ख) सूची I, मद 56 को इस प्रकार पुनः तैयार किया जाए कि राज्य को अपनी जल ऊर्जा के कराधान पर नियंत्रण रखने की शक्ति प्राप्त हो।

2.3 हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि इस प्रकार का परिवर्तन उपयोगी होगा।

2.4 हमारा मत है कि संविधान का वर्तमान अनुच्छेद 249 जो इस विषय से संबंधित है अपरिवर्तित रूप से रखा जाना चाहिए।

2.5 हमें और कोई सुझाव नहीं देना है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 हमारा मत है कि राज्यपाल की एजेंसी ने केन्द्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में उसे संविधान द्वारा सौंपी गई भूमिका को निभाने में बहुत अधिक निष्ठा दिखाई है।

3.2 हमारा मत है कि स्वस्थ संघ-राज्य संबंधों को बढ़ाने में राज्यपाल केन्द्र और राज्यों के बीच एक मुख्य कड़ी बन सकता है। जिन लोगों में राज्यपाल की विवेक शक्तियों के बारे में विवाद था उन लोगों का भी अब यह विचार है कि राज्यपालों ने अपने राज्यों के स्वामित्व और प्रगति सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक भूमिका निभाई है।

3.3(क) हमारा मत है कि राज्यपाल संविधानिक मशीनरी के खराब या विफल होने के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में न्यायसंगत और निष्पक्ष रहा है ।

(ख) और (ग) राज्यपालों ने समय-समय पर इस संबंध में अपने विवेकाधिकार का उचित और निष्पक्ष ढंग से प्रयोग किया है।

3.4 राज्य विधान मंडल कभी-कभी इस प्रकार का विधान कर सकते हैं जिससे या तो राष्ट्रीय सुरक्षा, विवादग्रस्त राष्ट्रीय नीतियों पर प्रभाव पड़ सकता है अथवा राष्ट्रीय विवाद बहुत अधिक बढ़ सकता है । अतः हमारा विचार है कि अनुच्छेद 200 और 201 के अधीन प्रयोग की जाने वाली शक्तियां राज्यपाल और भारत के राष्ट्रपति से न छीनी जाए । तथापि संविधान के अनुच्छेद 201 के अधीन अनुमति या अस्वीकृति देने के लिए उचित समय सीमा निर्धारित की जाए ।

3.5 भारतीय विधि संस्थान द्वारा विषय विशेष के अध्ययन (केस स्टडी) से निकाले गए निष्कर्ष से हम सहमत हैं । हम इस बात से सहमत हैं कि केवल बहुत कम मामलों में अनुमति देना रोका गया और इस अनुच्छेद ने इस रूप में कार्य नहीं किया जिससे राज्यों की स्वायत्ता को खतरा पैदा होता हो ।

3.6 राज्यपाल को दोहरी भूमिका निभानी होती है और अपने पद के कारण वे केन्द्र और राज्यों के बीच में एक मुख्य कड़ी होते हैं । राज्यपालों ने सामान्यतः अपनी दोहरी जिम्मेदारियों को निभाने में संविधान और उसकी परिपाटियों के अनुसार निष्पक्ष और उचित रूप से कार्य किया है ।

3.7 नहीं ।

3.8 हम इस सुझाव से सहमत नहीं हैं ।

3.9 हमारा विचार है कि इस प्रकार का उपबंध भारत में व्यवहारिक नहीं होगा ।

3.10 हम राज्यपालों की विवेक शक्तियों के संबंध में निर्देशक सिद्धांत बनाने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग के मत से पूर्णतः असहमत हैं । परिवर्तनशील राजनैतिक स्थिति में आने वाले संकट इतनी विविध प्रकार के होते है कि राज्यपाल की शक्तियों को सीमित करना उपयुक्त नहीं होगा ।

भाग IV
प्रशासनिक संबंध

4.1 हमारा यह विचार है कि अनुच्छेद 256 एवं 257 का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि राज्य संघ की कार्यपालक शक्तियों के प्रयोग में किसी भी प्रकार की अड़चन या उस पर प्रतिकूल प्रभाव न डाले, जबकि अनुच्छेद 365 का संबंध संघ सरकार द्वारा दिए गए निदेशों का राज्य सरकारों द्वारा अनुपालन न किए जाने से हैं । हमारा यह विचार है कि इन अनुच्छेदों में से किसी भी अनुच्छेद का अब तक दुरूपयोग नहीं हुआ है इसलिए इनको हटाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । इन अनुच्छेदों का प्रभावी रूप से इस्तेमाल न केवल राष्ट्रीय नीतियों एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों में अधिक निष्ठा को सुनिश्चित करने के लिए अपितु संघ के पास अंतिम अधिकार बनाए रखने के लिए भी किया जा सकता है ताकि राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके ।

4.2 हम इस विचार का समर्थन करते हैं कि अनुच्छेद 365 को हटाया नहीं जाना चाहिए तथा इसे आरक्षित उपबंध के रूप में रखा जा सकता है ।

4.3 चूंकि अभी तक अनुच्छेद 256 के अधीन कोई निदेश जारी नहीं किए गए हैं अतः प्रश्न परिकल्पित है ।

4.4 हमारा यह विचार है कि अनुच्छेद 356 के अंतर्गत इस असाधारण उपचारी शक्ति का ठीक से प्रयोग किया गया है ।

4.5 चवालीसवां संशोधन, अधिनियम,—1978-जिसने अनुच्छेद 356(4) में छः मास की मूल अवधि पुनःस्थापित की है—ने, संघ के द्वारा अनुच्छेद 356 के अधीन शक्तियों के प्रभावोत्पादक इस्तेमाल पर कुछ सीमा तक रोक लगा दी है । इसलिए हमारा यह मत है कि चवालीसवें संशोधन को बयालीसवें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा निर्दिष्ट खण्ड द्वारा प्रतिस्थापित कर देना चाहिए ।

4.6 हमारा मत है कि जनगणना, चुनावों आदि के संबंध में मौजूदा प्रबंध-जिसमें संघ सरकार के कई कार्य राज्य प्रशासन द्वारा किए जाते हैं—सन्तोषजनक रूप से किए जा रहे हैं ।

4.7 केन्द्रीय एजेन्सियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इनमें से अधिकांश एजेंसियां कम विकसित एवं विभिन्न राज्यों को उचित लाभ देने में सहायक रही हैं ।

4.8 हमारा यह मत है कि अखिल भारतीय सेवाओं ने न केवल प्रशासनिक गुणता एवं कार्यविधियों में एकरूपता लाने तथा सेवाओं में स्थिरता एवं व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देने की संविधान निर्माताओं की आशाओं को पूरा किया है अपितु राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने में भी सहयोग दिया है । हमारा यह विचार है कि राज्य सरकारों का अखिल भारतीय सेवाओं पर इस समय पर्याप्त नियंत्रण हैं ।

4.9 हमारा यह मत है कि अनुच्छेद 355 के अधीन केन्द्रीय अर्द्ध सैन्य एवं पुलिस बलों को तैनात करने और उनका इस्तेमाल करने, भले ही वह स्वप्रेरणा से हो, संबंधी केन्द्र की क्षमता को किसी प्रकार से नुकसान नहीं पहुंचना चाहिए ।

4.10 हमारा यह मत हैं कि प्रसारण एवं सम्प्रेषण के अन्य माध्यम मौजूदा स्थिति में सूची I में ही रहने चाहिएं ।

4.11 हमारा यह मत है कि क्षेत्रीय परिषदें अभी तक पार्टी के हितों को भुलाकर राज्यों के हितों को सामूहिक रूप से बढ़ाने में काफी सीमा तक सफल रही हैं ।

4.12 राष्ट्रीय विकास परिषद, एक ऐसा फोरम है जहां सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व मिलता है तथा जहां पर नीति एवं कार्यक्रमों के समन्वयन पर उपयोगी चर्चा की जा सकती है । यह फोरम प्रभावी रूप से कार्य कर रहा है तथा इसमें कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है ।

भाग V
वित्तीय संबंध

5.1. अन्तरण की परियोजना ने अच्छी तरह कार्य किया है । गैर-योजना व्यय पर निरंतर विशेष निगरानी रखी जानी चाहिए जिससे मौजूदा परिसम्पत्तियों एवं परियोजनाओं पर बुरा प्रभाव न पड़े ।

5.2. संघ और राज्यों के राजकोषीय संबंधों में पूर्ण अलगाव न तो वांछनीय है और न ही व्यवहार्य । इसी भांति सभी प्रकार के कर शक्तियों का संघ के हाथ में होना भी वांछनीय नहीं है । नियोजित विकास के संदर्भ में यह आवश्यक है कि राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं पर समग्र रूप से विचार किया जाए । सभी आय करों (निगम कर एवं अधिभार सहित) तथा सभी उत्पाद शुल्कों इसका जैसा भी उल्लेख किया जाए—की राज्यों में सहभागिता की जानी चाहिए तथा राज्यों को उनके अधिकांश संसाधनों का अंतरण सुनिश्चित अंतरण के माध्यम से होना चाहिए परन्तु अन्तः राज्य वितरण के सिद्धान्त इस प्रकार के होने चाहिए कि विकसित राज्यों को अधिकांश राशि न मिले । कर राजस्वों के अतिरिक्त संसाधनों के अधिक

न्यायोचित वितरण के लिए संघ एवं राज्यों के बीच संस्थागत प्रबंध भी होने चाहिए । इसके साथ-साथ केन्द्र की अपनी जरुरतों को पूरा करने के लिए तथा क्षेत्रों एवं राज्यों की आपातकालीन आवश्यकताओं को भी पूरा करने के लिए केन्द्रीय संसाधन पर्याप्त होंगे, फिर भी केन्द्र के पास अतिरिक्त राशि बच जाएगी जिसे वह पिछड़े एवं पहाड़ी राज्यों को देश के शेष राज्यों के समान विकसित करने के लिए दे सकने में समर्थ हो सकेगा ।

5.3. हम इस बात से सहमत हैं कि क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने के लिए केन्द्र को आर्थिक रूप से मजबूत होती पड़ेगा । वितरण संबंधी योजना में ही ऐसी विशेषताएं होनी चाहिए जो क्षेत्रीय असमानताओं को बढ़ाने की बजाए इन्हें दूर करे ।

5.4. हमारा यह मत है कि व्यय पर उपयुक्त नियंत्रण रखना ही केन्द्र के लिए मूल विकल्प होगा । घाटे की वित्त व्यवस्था को भी कुछ सीमा तक रखा जा सकता है ।

5.5 (क) करों की सहभागिता के संबंध में हमारे सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(i) आय-कर राज्यों का भाग निवल प्राप्तियों के मौजूदा 85% से 90% तक बढ़ा देना चाहिए क्योंकि राज्यों के भाग में थोड़ी-सी वृद्धि से केन्द्र को अधिक फर्क नहीं पड़ेगा जबकि इससे राज्यों के पास कुछ और अधिक निधियां हो जाएंगी जिससे राज्य अपनी विविध जिम्मेदारियों को पूरा कर सकेंगे ।

वितरण का मौजूदा आधार जो कि 90% जनसंख्या तथा 10% अंशदान है, परिवर्तित किए जाने की आवश्यकता है । कारखानों के प्रधान कार्यालय अधिकांश रूप से महानगरों में स्थित है तथा आयकर की कटौती प्रधान कार्यालयों में ही वेतन एवं लाभांशों/ब्याज से की जाती है चाहे कर्मचारी एवं हिस्सेदार/जमाकर्ता अन्य राज्यों में रह रहे हों । इसके अतिरिक्त वितरण का यह आधार प्रगामी नहीं है क्योंकि अधिक औद्योगिकृत राज्य बिक्री कर आदि से अधिक राजस्व प्राप्त करते हैं और इसलिए उनके लिए अंतरण की आवश्यकता तद्नुसार कम होती हैं । जिन राज्यों की अर्थव्यवस्था अल्पविकसित है उनको अंतरण अधिक जरूरी है तथा इसलिए आयकर के विभाज्य पूल का वितरण निम्नलिखित आधार पर किया जाना चाहिए:—

(i) राजस्व घाटे वाले राज्यों को अधिशेष का समान प्रतिशत मुहैया कराने के लिए 25%;

(ii) जनसंख्या के आधार पर 65%;

(iii) संग्रहण के आधार पर 10% ।

(2) **मूल उत्पाद शुल्क** — इन शुल्कों की भागीदारी अनिवार्य की जानी चाहिए । राज्यों का हिस्सा कम से कम 60% तक बढ़ा देना चाहिए जिससे राज्यों को अधिक संसाधन उपलब्ध हो सकें ।

इस समय उत्पाद शुल्कों के विभाज्य पूल में राज्यों का हिस्सा—जनसंख्या, प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद के व्युत्क्रम, प्रत्येक राज्य में गरीबी की प्रतिशतता तथा राजस्व समकरण के लिए फार्मूले को एकसमान महत्व देने के द्वारा — निर्धारित किया जाता है ।

अधिक निर्वाह खर्च तथा विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण प्रति व्यक्ति आय से पहाड़ी राज्यों के आर्थिक पिछड़ेपन का ठीक पता नहीं चलता है क्योंकि अनिवार्य वस्तुओं को लाने ले जाने की अधिक लागत तथा जलवायु के कारण जीवन की आवश्यकताओं संबंधी सामान की अधिक आवश्यकताओं से आय के मुद्रा मूल्य में काफी स्फीति हो जाती है जिससे पहाड़ों में जीवन स्तर की विकृत तस्वीर सामने आती है ।

जलवायु की प्रचण्डता के कारण पहाड़ों की ऊष्मीय आवश्यकताएं मैदानों की अपेक्षा अधिक होती हैं तथा मैदानों की अपेक्षा पहाड़ों पर आवास, गर्म कपड़ों तथा भोजन पर खर्च पर्याप्त रूप से अधिक होता है ।

ऐसे पहाड़ी राज्यों तथा सीमावर्ती राज्यों के मामले में क्योंकि वहां पर हमेशा बड़ी संख्या में सेना होती है तथा उनकी सीमाओं के आस-पास सीमा सुरक्षा बल होते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप इन राज्यों की प्रति व्यक्ति आय इन बलों पर व्यय के कारण कृत्रिम रूप से बढ़ जाती है ।

पुन: उत्पाद शुल्कों के मामले में अलग-अलग राज्यों के हिस्से का निर्धारण करने में यदि उत्पाद योग्य वस्तुओं के उपभोग को प्रधान उपादान के रूप में ले तो इससे सही स्थिति का पता चलने की सम्भावना नहीं है, क्योंकि इन राज्यों में प्राय: क्षेत्र अधिक होता है और जनसंख्या कम होती है जो कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई भी होती है, इसलिए उत्पाद शुल्क योग्य वस्तुओं का उपभोग अधिक नहीं होता क्योंकि यह राज्य प्राय: ऐसी कच्ची सामग्री का स्रोत होता है जिसे उत्पाद योग्य वस्तुओं में परिवर्तित किया जाता है तथा इसका उपभोग अन्यत्र होता है, उदाहरणार्थ, पहाड़ी राज्यों का रेसिन ।

इसके अतिरिक्त अंतरण संबंधी योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे आर्थिक रूप से पिछड़े तथा राजस्व घाटा राज्यों के राजस्व अंतर पूरा करने के बाद अतिरिक्त राजस्व देने की व्यवस्था हो । यह अधिशेष विकास प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है ।

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए राज्यों के बीच परस्पर वितरण निम्नलिखित के अनुसार होना चाहिए :—

(i) 25% जनसंख्या के आधार पर;

(ii) 25% अधिशेष समकरण पूल के लिए;

(iii) 10% पहाड़ी राज्यों के लिए; तथा

(iv) 40% पिछड़े राज्यों के लिए ।

(3) बिक्रीकर के स्थान पर लगाए जाने वाले अतिरिक्त

(3) **उत्पाद शुल्क**—दरों की पुन:संरचना किए जाने की आवश्यकता है जिससे इनका भार राष्ट्रीय विकास परिषद् की सिफारिश के अनुसार सभी 3 मदों (वस्त्र, चीनी एवं तम्बाकू को इकट्ठा किया गया है) को छुड़ाने के मूल्य का 10.8% हो जाए । इससे एक ओर तो मूल एवं विशेष उत्पाद शुल्क की प्राप्ति और दूसरी ओर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क के बीच 2 : 1 का अनुपात भी हो जाएगा ।

चीनी, वस्त्र एवं तम्बाकू को व्यापक उपभोग वाली मदें माना जाता है और जलवायु परिस्थितियों, सामाजिक एवं अन्य रीति-रिवाजों तथा आदतों के कारण इनका उपभोग स्वाभाविक रूप से एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होता है । इस प्रकार चाय तथा इसके परिणाम-स्वरूप चीनी की प्रति व्यक्ति खपत मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा पहाड़ी क्षेत्रों में अधिक है अत: यह मानना उचित नहीं होगा कि किसी वस्तु की खपत जनसंख्या या बिक्री कर, राजस्वों पर आधारित होती है ।

इसी भांति राज्य के घरेलू उत्पादों को मापदण्ड के रूप में अपनाना सही नहीं होगा क्योंकि इससे उपभोग के स्तरों में व्यापक भिन्नताओं का पता नहीं चलेगा । इस तरह यह अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में अत्यन्त अस्पष्ट सूचक कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त उत्पादन से राज्य को मिलने वाले बिक्री कर राजस्वों का पता भी नही लगता है । यदि हम यह बात ध्यान में रखें कि कम्पनी के आम तौर पर विभिन्न स्थानों पर कई शाखाएं एवं डिपों होते हैं तथा वे निर्मित मदें उन्हें स्वत: प्रेषण के आधार पर अंतरित करते हैं ।

इसी भांति, चीनी के मामले में माल प्रेषण को मापदण्ड बनाने से भी इसके उपभोग का पता नहीं चलता है क्योंकि सरकारी प्रेषणों के अलावा यथेष्ट महत्व के आधार पर आम तौर पर प्राइवेट प्रेषण भी काफी मात्रा में किए जाते हैं । किसी राज्य में चीनी के उपभोग के सही प्राक्कलन के लिए इनकी भी परिकल्पना किए जाने की आवश्यकता होती है ।

तम्बाकू एवं वस्त्रों के मामले में, जनसंख्या एवं राज्य के प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद से इन वस्तुओं की खपत का सही रूप से पता नहीं चल सकता। उदाहरणार्थ, यह निष्कर्ष निकलना गलत होगा कि प्रति व्यक्ति आय अधिक होने पर तम्बाकू की खपत हिमाचल जैसे पहाड़ी राज्य की अपेक्षा पंजाब में अधिक होगी तथा इसलिए ऊंचे स्थान एवं जलवायु को परिस्थितियों के साथ-साथ स्थानीय लोगों को आदतों को भी ध्यान में रखने को आवश्यकता होगी। पहाड़ी राज्यों को उनकी शीत जलवायु के आधार पर प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद पर 20% अतिरिक्त राशि दी जानी चाहिए क्योंकि शीत जलवायु में तम्बाकू एवं वस्त्रों की अधिक खपत होती है।

(4) यात्री कर--प्रश्न संख्या 5.26 के प्रति कार्रवाई किए जाने पर।

(5) योजना सहायता--केन्द्र सरकार को, राष्ट्रीय हित में, राज्यों को सभी व्यवहार्य जलीय विद्युत परियोजनाओं के लिए सम्भावित जलीय विद्युत योजना के लिए अतिरिक्त वित्तीय सहायता देने को व्यवस्था करनी चाहिए।

इसी भांति केन्द्र सरकार को हिमालय क्षेत्र में वृक्षों को काटने पर पूरी पाबन्दी लगने के कारण राजस्व के घाटे को पूरा करना चाहिए। इसे इन क्षेत्रों में वृक्षारोपण के लिए योजना के बाहर, नगदी आधार पर वित्त पोषण भी करना चाहिए।

गैर-योजना सहायता

घाटा-राज्यों के राजस्व अन्तराल को पूरा करने के अतिरिक्त, अनुच्छेद 275 के अधीन अनुदान के रूप में गैर-योजना सहायता इस प्रकार दी जानी चाहिए कि इन घाटा-राज्यों के पास इनके गैर-योजना सहायता की 25% राशि अधिशेष के रूप में रहे। यह अनुदान इसलिए भी दिए जाने चाहिए कि कर्मचारियों को अतिरिक्त महंगाई भत्ता देने पर राज्यों के बढ़ने वाले व्यय को भी पूरा किया जा सके। सूखा एवं पुनर्वास प्रयोजनों के लिए केन्द्र की सहायता ऋण के बजाए स्पष्ट अनुदान के रूप में होनी चाहिए क्योंकि यह वित्तीय रूप से गैर-उत्पादन प्रयोजनों के लिए होती है।

5.6 "देश के अन्य विकसित क्षेत्रों की अपेक्षा आर्थिक रूप से अल्प विकसित क्षेत्रों में तेजी से विकास" को सुनिश्चित करने के लिए "विशेष संघीय निधि" की स्थापना करने का विचार अच्छा है क्योंकि वित्त आयोग एवं योजना आयोग को देश के सभी क्षेत्रों--चाहे वे विकसित हों या अल्प-विकसित हों—का ध्यान रखना होता है।

5.7 प्रश्न में उल्लिखित सिद्धान्तों की दृष्टि से कराधान शक्तियों को मौजदा व्यवस्था में कोई परिवर्तन करने की सलाह नहीं दी जाती। इस राज्य द्वारा निम्नलिखित सिफारिश की गई है:--

(i) विभाज्य केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से में वृद्धि;

(ii) राज्यों के बीच उनके परस्पर वितरण के सिद्धान्त में परिवर्तन;

(iii) मूल उत्पाद शुल्कों की भागीदारी की अनिवार्य बनाना;

(iv) निगम कर को विभाज्य पूल में लाना।

5.8 निस्संदेह यह सही है कि करों के लिए खण्डित दृष्टिकोण में बचना चाहिए तथा कराधान इस भांति नहीं किया जाना चाहिए जिससे अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचे या व्यापार एवं उद्योग में कठिनाई आए। कराधान सरल तथा संग्रहण दक्षतापूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से आयकर, निगम कर, धन कर, सम्पदा शुल्क, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्कों, आदि की कराधान शक्तियों को बढ़ने देने का कोई औचित्य नहीं है।

5.9 हम इस बात से सहमत हैं कि मौजूदा प्रणाली के अधीन गैर-योजन में कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। हम सुझाव देते हैं कि योजना आयोग में गैर-योजना-खण्ड होना चाहिए जो गैर-योजना आवश्यकताओं और योजना आवश्यकताओं में संतुलन सुनिश्चित कर सके।

5.10 जहां तक हिमाचल प्रदेश का संबंध है क्रमिक वित्त आयोगों की सलाह पर या अन्य प्रकार से संघ में राज्यों को सांविधिक एवं विवेकाधीन, दोनों प्रकार अंतरणों से एक ओर तो दक्षतापूर्ण कार्य करने एवं व्यय में किफायत करने को बढ़ावा मिला है तथा दूसरी ओर राज्यों के बीच व्यय की असमानताओं को कुछ सीमा तक कम कर दिया है। इसके बावजूद वे असमानता को पूर्ण रूप से मिटा देने में कामयाब नहीं हुए हैं।

5.11 यह सही है कि संसाधनों के अंतरण की मौजूद प्रक्रिया को वित्तीय अनुशासनहीनता एवं अपव्ययता की ओर कुछ झुकाव है। यह इसलिए है कि वित्तीय आयोग प्राय: राजस्व अन्तरालों को दूर करने की कार्यविधि का अनुसरण कर रहे थे। वित्त आयोग उत्तरोत्तर ऐसे मानक अपना रहा है जो लागू किए जाने चाहिएं—उदाहरणार्थ, सड़क परिवहन निगमों एवं बिजली बोर्डों आदि द्वारा 5 वर्षों की अवधि में अर्जित की जाने वाली न्यूनतम आय इसी भांति विभिन्न प्रकार के अन्य मामलों में भी निरन्तर अध्ययन के माध्यम से यही मानक अपनाए जाने चाहिए। जिन राज्यों में असावधानी से व्यय किया जा रहा हो उन्हें प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए, जिन राज्यों में राज्य नीति या राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत कार्यक्रमों के निदेशक सिद्धान्तों के अनुसार कार्यक्रम कार्यान्वित किए जाते हों उन्हें पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने का आश्वासन देना चाहिए।

5.12 यदि इस व्यापक प्रस्ताव से सहमत हो जाएंगे तो सातवें वित्त आयोग द्वारा स्वयं निर्धारित किए गए प्रशंसनीय सिद्धान्तों—जो प्रश्न संख्या 5.13 में बताए गए हैं-- को पूरा करना सम्भव नहीं होगा तथा पिछड़े हुए पहाड़ी राज्यों की क्षति पहुंचेगी।

5.13 जहां तक सिद्धान्तों का संबंध है इसमें कोई विवाद नहीं है। जहां तक वर्गीकरण का संबंध है पिछड़े हुए राज्यों की विशिष्ट स्वरूप की समस्याओं—यथा छितरी हुई जनसंख्या, अधिक दूरी, खर्चीला रहन-सहन, आधारिक संरचना की कमी, इस आधारित संरचना, अल्पराजस्व आदि को उपलब्ध कराने एवं रखरखाव के लिए मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक लागत—को ध्यान में रखते हुए इन राज्यों पर विमर्शपूर्वक अधिक व्यय करने को आवश्यकता है।

5.14 हम इन सुझावों से सहमत नहीं हैं।

5.15 प्रश्न संख्या 5.20 एवं 5.29 के प्रत्युत्तर में दिए गए सुझावों से असन्तुलनों को हटाने में पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए।

5.16 एवं 15.17 राज्यों के वित्तीय असन्तुलनों तथा उनके ऋणभार में वृद्धि के बारे में कोई संदेह नहीं है। इसका मुख्य कारण हिमाचल प्रदेश जैसे विशेष रुप से पिछड़े हुए पहाड़ी क्षेत्र में यह है कि उनका कर लगाने का आधार सीमित है तथा उनके अधिकांश कर संसाधन अपरिवर्तनीय हैं। यहां पर अप्रत्यक्ष कराधान लगाने की गुंजाइश बहुत कम है। पहाड़ी राज्यों को विशिष्ट स्वरूप की अपनी समस्याओं—यथा छितरी हुई जनसंख्या, एक स्थान से दूसरे स्थान में पर्याप्त दूरी, खर्चीले रहन-सहन, आधारिक संरचना की कमी तथा इस आधारिक संरचना को उपलब्ध कराने एवं रखरखाव के लिए मैदानी क्षेत्रों को अपेक्षा अधिक व्यय, उद्योगों कि कमी, सामान लाने ले जाने में अधिक लागत आना, विलक्षण जलवायु—स्थितियों आदि को ध्यान में रखते हुए मूल आधारिक संरचना में पर्याप्त राशि लगानी पड़ती है जिससे विकास अर्थपूर्ण ढंग से प्रारम्भ हो सके। राशि का अधिकांश भाग सड़कों के निर्माण में लग जाता है जो पहाड़ी राज्य में राज्य के संसाधन को उत्पन्न करने में प्रत्यक्ष रूप से कोई सहयोग नहीं देता है। एक स्थान से दूसरे स्थान में पर्याप्त दूरी तथा संचार के कम माध्यमों से समस्या और जटिल हो जाती है। बड़े क्षेत्र, लम्बी दूरियों और जनसंख्या के कम घनत्व के कारण मूल प्रशासन की व्यवस्था पर भी अपेक्षाकृत अधिक लागत आती है। ऐसे पिछड़े हुए पहाड़ी राज्यों तथा हिमाचल प्रदेश को सामाजिक रूप से उत्पादक परन्तु वित्तीय रूप से गैर-उत्पादक प्रयोजनों—यथा सूखा एवं पुनर्वास, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुविधाएं बढ़ाने, गांव

में सड़कों का निर्माण — पर यथेष्ट व्यय करना पड़ता है, और केन्द्र की सहायता कुछ सीमा तक ऋण के रुप में होती है।

इन पिछड़े हुए पहाड़ी राज्यों—जहां पर अधिकांश जनसंख्या अपने जीवन-निर्वाह के लिए कृषि एवं बागबानी पर निर्भर रहती है तथा जहां पर कुल क्षेत्र के मात्र 15% क्षेत्र पर खेती की जाती है — में जब तक आर्थिक विकास (जिसके लिए भारी वित्तीय सहायता की पूर्वापेक्षा होती है) आत्मनिर्भर न हो जाए तथा जब तक केन्द्र द्वारा विद्युत परियोजना, जिसकी आय राज्य को दी जाती है, के निर्माण के लिए प्रचुर संसाधन केन्द्र द्वारा नहीं दिए जाते तब तक वहां पर इस संबंध में कोई सुधार होने की आशा बहुत कम है तथा भविष्य में राज्य के बजट में हमेशा भारी घाटा हो रहेगा।

5.18. हम बाजार से उधार लेने से संबंधित नीतियों में कोई भारी परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं हैं। उदाहरणार्थ, यदि राज्यों को बाजार से ऋण लेने की छूट दे दी जाए तो सिर्फ समृद्ध राज्यों को लाभ पहुंचेगा।

5.19. अदायगी की पद्धति उपयुक्त है।

5.20. मौजूदा प्रबन्ध सन्तोषजनक है।

5.21. राज्यों के कर का आधार सीमित है तथा इनके अधिकांश कराधान संसाधन अपरिवर्तनीय हैं। राज्यों के लिए अप्रत्यक्ष कराधान की कम गुंजाइश है। पिछड़े हुए पहाड़ी राज्यों को अधिकांशतः केन्द्र से अंतरित संसाधनों पर निर्भर रहना पड़ता है चाहे यह अंतरण केन्द्रीय करों के विभाज्य पूल से किया जाए या अनुदानों के रुप में हो तथा कभी कभी इस अंतरण में विलंब होने से अर्थोपाय में कठिनाइयां आती है।

बड़े ओवरड्राफ्ट का प्रश्न आम तौर पर ऐसे राज्यों के मामले में योजना अवधि के तीसरे वर्ष से उठता है जिनके पास वित्त आयोग की सिफारिश के फलस्वरुप पर्याप्त राजस्व अधिशेष नहीं होता है। जब योजनाओं की प्रगति से निधियों की आवश्यकता बढ़ जाती है तथा योजना अवधि के दौरान लागतें बढ़ जाती है, तो राज्य यह महसूस करते है कि अतिरिक्त महंगाई भत्ते की किश्त देने एवं कीमत में वृद्धि होने से संबंधित व्यय की अन्य मदों के कारण उनके संसाधनों में पर्याप्त हुई है। चूंकि राज्य योजनाओं की केन्द्रीय सहायता देने में तदनुरुप कोई वृद्धि नहीं होती अतः राज्य के संसाधन गैर योजना एवं योजना दोनों की बढ़ती मांग के बीच दब जाते हैं जिससे ओवर ड्राफ्ट हो जाता है।

वर्ष की अवधि के दौरान ओवरड्राफ्ट इस तथ्य के कारण भी होते हैं कि केन्द्रीय रुप से प्रत्यायोजित योजनाओं, बाह्री सहायता वाली योजनाओं आदि के लिए अधिकांश रूप से केन्द्रीय सहायता वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर दी जाती है। यद्यपि हाल ही के वर्षों में किस्तों के माध्यम से अदायगी में पर्याप्त सुधार हुआ है लेकिन चूंकि ये योजनाएं राज्यमें समग्र योजना की रूपरेखा का बड़ा भाग होती हैं इसलिए व्यय के बाद प्रस्तुत किए गए दावों पर आधारित अदायगी का राज्य के अर्थोपाय पर उल्टा प्रभाव पड़ता है।

5.22. जहां तक हिमाचल प्रदेश का संबंध है यह कहना सही नहीं होगा कि यह अपने स्वयं के राजस्व स्रोतों से लाभ नहीं उठा रहा है। पिछड़े हुए पहाड़ी क्षेत्र तथा हिमाचल प्रदेश में ज्यादा संदोहन की गुंजायश नहीं है अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थितियों एवं संचार के साधनों की कमी के कारण हिमाचल प्रदेश में प्रति व्यक्ति कर का बोझ पहले से ही बहुत अधिक है।

5.23. कोई टिप्पणी नहीं।

5.24. हमारा यह मत है कि कोई ऐसा प्रस्ताव जो राज्य के मौजूदा या आगामी वित्तीय लाभ पर प्रभाव डाले, राज्यों से परामर्श करने के बाद संसद में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। कई मामलों में ऐसा पहले से ही किया जा रहा है।

5.25. जहां तक अनुच्छेद 269 संबंध है, इसमें बताए गए सात करों में से केन्द्र सरकार ने केवल दो पर कर लगाने के लिए चुना है अर्थात् कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के संबंध में सम्पदा शुल्क तथा रेल भाड़े पर कर। रेल भाड़े पर कर के संबंध में प्रश्न संख्या 5.26 के प्रत्युत्तर में विचार किया गया है। शेष पांच प्रकार के कर केन्द्र द्वारा अभी लगाए जाते हैं। स्वाभाविक रुप से यदि केन्द्र शेष पांच कर लगाता है तो इससे राज्यों के संसाधनों में कुछ सीमा तक सुधार होगा।

5.26. पहले वित्त आयोग ने, प्रत्येक राज्य में वास्तविक मार्ग की लम्बाई के अनुसार, प्रत्येक जोन के गैर-शहरी यातायात से यात्री-आय के आधार पर वितरण की सिफारिश की है। सातवें वित्त आयोग ने सुझाव दिया है कि यह प्रत्येक राज्य में चलने वाले यातायात से गैर उपनगरीय यात्री आय के अनुपात में होना चाहिये। यह मापदण्ड उन राज्यों से भेदभाव रखता है जिनकी रेल की पटरियों की लम्बाई बहुत कम हैं परन्तु फिर भी वे रेल यात्री यातायात के लिए काफी सीमा तक अंशदान करते हैं। पहाड़ी राज्यों की जनता पड़ोसी राज्यों में रेल से यात्रा करती है जिससे उन राज्यों की यात्री आय में यथेष्ट वृद्धि होता है। यह इसलिए होता है कि पहाड़ी राज्यों में रेल की पटरियां चौड़ी गेज की नहीं होतीं है, इन राज्यों के व्यक्ति ट्रेन लेने के लिए आम तौर पर पड़ोसी राज्यों के जंक्शनों पर जाते हैं। चूंकि ऐतिहासिक कारणों के कारण विभिन्न राज्यों में मार्ग की लम्बाई असमान रुप से वितरित की गई है, इसलिए यह उपयुक्त होता रेल-यात्री कर के बदले में अनुदान पूर्णतः प्रत्येक राज्य में जनसंख्या के आधार पर वितरित किया जाए।

5.27. कोई टिप्पणी नहीं।

5.28. हमारा यह मत है कि राज्यों को उपलब्ध कराई जाने वाली मार्जिन राशि इन आपदाओं के पुनरावर्ती स्वरुप को ध्यान में रखते हुए 7% की वृद्धि दर को अनुमेय करने के बाद बढ़ा देनी चाहिए। प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली विपत्ति से राहत देने के लिए राज्य राहत कोष भी स्थापित किया जाना चाहिए। इसके लिए राहत सांविधिक आधार पर दी जा सकती है। केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त की गई राहत सहायता को अगली तीन वार्षिक योजनाओं में समायोजित की जाने वाली अग्रिम योजना सहायता के रूप में नही मानी जानी चाहिए। अपितु इसे एकमुश्त अनुदान के रूप में माना जाना चाहिए घाटे वाले राज्यों के लिए 25% राज्य अंशदान को छोड़ देना चाहिए।

5.29. हम इन प्रस्तावों का समर्थन नहीं करते है।

5.30 व्यापक प्रस्ताव के रूप में इससे सहमत हुआ जा सकता है। फिर भी प्रशासनिक तथ्यों के कारण संग्रहण करना भी महत्वपूर्ण होता है।

5.31 (क) राज्य सरकार इस आलोचना से सहमत नहीं है कि संघ का व्यय राष्ट्र की समृद्धि में नहीं लगाया जा रहा है या इससे निष्फल एवं अनावश्यक व्यय की प्रवृत्तियां विद्यमान हैं।

(ख) जहां तक हिमाचल प्रदेश का संबंध है यह सत्य नहीं है कि लोकप्रिय स्वरूप के अनावश्यक व्यय का अतिभोग किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप विकासीय प्रयोजना के लिए उपलब्ध संसाधनों में कमी हुई है।

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए व्यय के स्वरूप एवं गुणता का निर्धारण करने के लिए किसी स्थायी या तदर्थ राष्ट्रीय व्यय आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है।

5.32 कुछ नहीं।

5.33. लेखा परीक्षा पर अधिक बल देने के लिए हाल ही में इसका पुनः संगठन किया गया तथा लेखापरीक्षा एवं लेखा शाखाओं को अलग-अलग किया गया है। यद्यपि मूल्यांकन लेखापरीक्षा में बड़ा अपव्यय अधिकतम सहकारी कार्यकलापों को शामिल किया जाना चाहिए तथापि ऐसी लेखापरीक्षा को छोड़ना चाहिए।

5.34 संसद का अधिनियम नियंत्रक महालेखापरीक्षक को यथेष्ट शक्तियां प्रदान करता है एवं उसे पर्याप्त कार्यों का आदेश देता है जिससे वह संघ एवं राज्यों के व्यय पर पर्याप्त निगरानी रख सके।

5.35 इस राज्य में नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा राज्य विधान-मण्डल को प्रस्तुत की गई रिपोर्टें व्यापक एवं यथातथ्य है।

5.36 लोक लेखा समिति एवं सार्वजनिक उपक्रम पर समिति द्वारा नियंत्रक महालेखापरीक्षक की सहायता से महत्वपूर्ण विषयों की तहकीकात के संबंध में जांच पर्याप्त है।

5.37 राज्य सरकार इस बात से सहमत है कि प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण समिति है।

5.38 राज्य सरकार का यह विचार है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक एवं लोक लेखा समिति के होने पर व्यय आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे सिर्फ दोहरी समिति बनेगी।

5.39 मौजूदा प्रणाली सन्तोषजनक रूप से कार्य कर रही है। यदि किसी एक प्रस्ताव से हो सकती है समग्र प्रणाली से नहीं।

भाग VI

आर्थिक एवं सामाजिक योजना

6.1 समग्र आर्थिक नीति संबंधी योजना के विषय में केन्द्र को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। यह कहना गलत है कि राज्य योजना प्रक्रिया में सहयोग नहीं देते हैं।

6.2 हम इस मत का समर्थन नहीं करते हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना सांविधिक आधार पर होनी चाहिए। केन्द्र में मौजूदा प्रणाली पहले से ही सहभागी है।

6.3 इस पद्धति में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है।

6.4 राज्य सरकार दिए गए तीन दृष्टिकोणों में से किसी का भी समर्थन नहीं करती।

6.5 राज्य सरकार इस मत का समर्थन नहीं करती। योजना आयोग को योजना का राष्ट्रीय स्तर पर निरीक्षण करते रहना चाहिए।

6.6 मौजूदा पद्धति जारी रहनी चाहिए।

6.7 योजना आयोग के माध्यम से ऋणों एवं अनुदानों के द्वारा केन्द्रीय सहायता पहुंचाने के संबंध में राज्य सरकार ने किसी कठिनाई का सामना नहीं किया है। बल्कि हम महसूस करते हैं कि विभिन्न राज्यों के बीच मौजूदा सिद्धान्तों के अनुसार न्यायिक आबन्टन हुआ है क्योंकि इस कार्यविधि से अच्छी तरह से कार्य किया है।

6.8 हम महसूस करते है कि घाटे वाले राज्यों के गैर-योजना संसाधनों का मूल्यांकन अधिक यथार्थवादी आधार पर होना चाहिए जिससे गैर योजना व्यय पर कोई अनुचित भार न पड़ सके। किसी अन्य परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

6.9 जहां तक हिमाचल प्रदेश का संबंध है, राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा विकसित केन्द्रीय योजना सहायता राज्यों को आबन्टित करने के लिए मौजूदा प्रक्रिया न्यायसंगत मानी गई है। इससे मूल योजना उद्देश्यों को प्राप्त करने में समग्र रूप से विशेष योगदान दिया है। हम जन जातीय एवं पहाड़ी क्षेत्र योजना तथा अनुसूचित जातियों के लिए विशेष संघटक योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के विशिष्ट निर्धारण का भी समर्थन करते हैं।

6.10 हम व्यक्त किए गए विचारों से सहमत नहीं हैं।

6.11 मानीटरिंग एवं मूल्यांकन कार्यप्रणाली केन्द्रीय राज्य एवं जिला स्तरों पर समर्थ बनाई जानी चाहिए।

6.12 राज्य सरकार विकेन्द्रीकृत योजना की संकल्पना से सहमत है। फिर भी इसे क्रमिक रूप से लागू करना चाहिए जिससे हमारे पास जिला एवं उप जिला स्तरों पर पर्याप्त आंकड़ों का आधार एवं आधारिक संरचना मशीनरी हो सके। योजना आयोग राज्य से नीचे के स्तर पर विकेन्द्रीकृत योजना को लागू करने के लिए पहले से ही सही दिशा में कार्य कर रहा है।

6.13 हिमाचल प्रदेश में राज्य योजना बोर्ड संगठित किया गया है। इसके अतिरिक्त राज्य योजना कार्यप्रणाली के रूप में तकनीकी स्टाफ नियुक्त किया गया है। इस स्टाफ ने राज्य योजना को तैयार करने में आवश्यक कुशलता को बढ़ाने में सहायता की है। इस कार्यप्रणाली को मजबूत बनाने के लिए प्रयास किए गए हैं।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम महसूस करते हैं कि यह मत सही है।

7.2 मौजूदा स्थिति में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

7.3 लाइसेन्स लेने के मौजूदा कार्यविधि हिमाचल प्रदेश जैसे राज्य के लिए 25% केन्द्रीय निवेश सहायता सहित लाभकारी है, जिसे औद्योगिक रूप से पिछड़ा राज्य घोषित किया गया है। उद्योगपतियों को पिछड़े एवं उद्योग रहित राज्यों में जाने के लिए प्रेरित करने की केन्द्रीय नीति प्रभावी कार्यपद्धति है।

7.4 कुटीर एवं ग्राम उद्योगों के लिए काफी कुछ किया गया है परन्तु अभी काफी कुछ किया जाना है। डी० आई० सी० को समन्वित कार्यप्रणाली के रूप में विकसित किए जाने की आवश्यकता है। बोर्डों/निगमों एवं सहकारिता को कच्चे माल की सप्लाई एवं उत्पादों के विपणन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी तथा नीजी क्षेत्र को भी इस दिशा में कार्य करने के लिए प्राधिकृत करना होगा।

7.5 केन्द्रीय संस्थाएं संतोषजनक रूप से कार्य कर रही हैं जबकि इनका कार्यालय हिमाचल प्रदेश में नहीं है इसे शीघ्रातिशीघ्र खोले जाने की आवश्यकता है। पहले की भांति केन्द्र सरकार को पिछड़े एवं पहाड़ी राज्यों को निधि देने पर लगातार जोर देना चाहिए भले ही इसके लिए मानक दण्डों में छूट देनी पड़े।

7.6 यह व्यवहार्य नहीं है कि इन विषयों पर सभी राज्यों को सामूहिक रूप से विश्वास में लिया जाए।

7.7 हम यह समझते हैं कि इस आलोचना का कोई औचित्य नहीं है।

7.8 मौजूदा वर्गीकरण संतोषजनक है।

उद्योग पर अनुपूरक प्रश्नावली के उत्तर

1. मौजूदा पद्धति देश में औद्योगिक विकास के संबंध में क्षेत्रीय असमानताओं को हटाने में सहायक है। उद्योगों में विशेष रूप से बड़ी यूनिटों में वृद्धि को नियमित करने वाले केन्द्रीय प्राधिकरण के न होने पर औद्योगिक पिछड़े क्षेत्र विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्र पिछड़े रहेंगे। मौजूदा प्रणाली जारी रहनी चाहिए।

2. हम एक रूप केन्द्रीय विधान के विचार का समर्थन करते हैं जिसमें लघु उद्योग के लिए उद्योगों की कतिपय श्रेणियों के आरक्षण के संदर्भ में समग्र देश को शामिल किया गया है। निवेश सीमाओं के संबंध में लघु उद्योगों की परिभाषा एवं उद्योगों का प्रकार केन्द्र सरकार के अनुसार होना चाहिए। इस प्रणाली के अन्तर्गत, राज्यों को स्थानीय परिस्थितियों के सर्वाधिक अनुरूप औद्योगिक मदों को बढ़ाने की स्वतंत्रता है।

3. राज्य सरकार लघु एवं मध्यम उद्योगों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस भूमिका के अन्तर्गत राज्य कराधान के संदर्भ में आर्थिक सहायता ऋणों एवं रियायत के रूप में आधारिक-संरचनात्मक सुविधाओं एवं वित्तीय सहायता

का प्रावधान करना शामिल है। जहां तक औद्योगिक रूप से पिछड़े राज्यों, विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों का संबंध है उन्हें जो संसाधन दिए जाते हैं वे अत्यधिक कम होने के कारण वे अपना कार्य करने में असमर्थ होते है यदि नियोजित विकास के मूल उद्देश्य, उदाहरणार्थ क्षेत्रीय असमानताओं को हटाना को भविष्य में कार्यान्वित करना हो तो राज्यों में औद्योगिक विकास के लिए परिव्यय को यथेष्ट रूप से बढ़ाना होगा। लेकिन राज्य सरकार के योजना संसाधन सीमित होते हैं। औद्योगिक विकास के लिए परिव्यय को बढ़ाने का एकमात्र तरीका इन राज्यों को राष्ट्रीय स्तर की वित्तीय संस्थाओं एवं केन्द्रीय सरकार के माध्यम से, औद्योगिक रूप से पिछड़े राज्यों में उद्योगों को स्थापित करने के लिए अनुमतं विभिन्न प्रकार की आर्थिक सहायता के लिए अधिक प्रावधान करके अधिक वित्तीय सहायता देना।

4. यह दृष्टिकोण उपर्युक्त प्रश्न संख्या 2 के उत्तर में बताए गए अनुसार सही है। लघु उद्योगों के लिए आरक्षित सूची में से किसी भी मद को हटाने की आवश्यकता नहीं है।

5. उपर्युक्त प्रश्न संख्या 1 उत्तर यहां पर संगत हैं।

6. समय समय पर पारित औद्योगिक नीति संकल्प भारतीय लोगों की आकांक्षाओं एवं देश के लिए समग्र रूप से तथा औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों के लिए विशेष रूपसे अनुरूप हैं क्योंकि औद्योगिकरण के क्षेत्र में संतुलित क्षेत्रीय विकास एकरूप राष्ट्रीय नीति की पूर्वापेक्षा है अन्यथा इन्हीं प्रत्यक्ष कारणों से क्षेत्रीय असन्तुलन का बढ़ना जारी रहेगा।

7. औद्योगिक नीति की पुनरीक्षा/सूत्रबद्ध करने से पूर्व केन्द्र एवं राज्यों के बिच पर्याप्त विचार विमर्श होना चाहिए। यह तब सुनिश्चित किया जा सकता है यदि इन विचार विमर्शों के लिए प्रबंध किए जाएं। सरकारी एवं प्रशासनिक दोनों स्तरों पर राष्ट्रीय स्तर का मंच संस्थापित किया जाना चाहिए जिसमें सभी राज्य सरकारों के प्रतिनिधि हों।

8. एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर की भांति पिछड़े एवं पहाड़ी क्षेत्र पर लागू नहीं होना चाहिए। इससे उन पहाड़ी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक बड़े व्यापार घराने आएंगे जहां पर वे पहले निवेश करने से संकुचाते थे। इन क्षेत्रों में बड़ी यूनिटों एवं नाभिक संयंत्रों को स्थापित करने से इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रगति काफी बढ़ेगी।

व्यापार एवं वाणिज्य

8.1 उपर्युक्त प्रयोजन के लिए केन्द्रीय प्राधिकरण स्थापित किया जा सकता है।

कृषि

9.1 हमारा यह विचार है कि इस संबंध में यथापूर्व स्थिति बनी रहनी चाहिए।

9.2 हम इसे सहमत नहीं हैं क्योंकि केन्द्रीय एवं केन्द्रीय रूप से प्रायोजित योजनाएं प्रमुखतः अन्यथा रूप से कमजोर राज्यों के विकास संबंधी प्रयासों को प्रारम्भ करने के लिए बनाई गई हैं।

9.3 हम राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 1976 में दिए गए दोनों सुझावों से सहमत हैं। यह पहले से ही कार्यान्वित किए जा रहे हैं।

9.4 (क) जहां तक हिमाचल प्रदेश राज्य का संबंध है कृषि मदों के न्यूनतम या उचित मूल्यों को नियत करना हमारे लिए लाभकारी होगा।

(ख) कोई टिप्पणी नहीं।

(ग) इस संबंध में संघ सरकार की पहल राज्य के लिए लाभकारी रही है।

(घ) वन नीति एवं प्रशासन के सम्बन्ध में हमारा विचार है कि यह पहल इस राज्य के लिए समग्र रूप से लाभकारी रही है। हिमालय पर्वत-पर्यावरण के संरक्षण के बारे में केन्द्रीय स्तर पर अधिक सावधान रहने तथा राष्ट्रीय निधियों को लगाने की आवश्यकता है जिससे इस समग्र क्षेत्र को हरा भरा बनाया जा सके। भले ही ऐसा सभी प्रकार के वृक्षों की कटाई पर पूर्ण प्रतिबंध लगा कर ऐसी किया जाए।

9.5 इसमें कोई समस्या नहीं है।

खाद्य एवं सिविल पूर्ति

10.1 हिमाचल प्रदेश चावल अधिक लेना चाहेगा।

10.2 आवधिक पुनरीक्षा निस्संदेह उपयोगी हो सकती है। परिस्थिति की पुनरीक्षा एवं उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए पांच वर्षों में एक बार केन्द्र राज्यों एवं संबद्ध हितों वाले क्षेत्रों से प्रतिनिधियों को लेकर राष्ट्रीय समिति नियुक्त की जा सकती है।

शिक्षा

11.1 यह मानदण्ड न्यायसंगत नहीं है। वस्तुतः विद्यार्थियों के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाने की आवश्यकता पर विचार करते हुए हमें डिग्री पूर्व एवं विश्वविद्यालय शिक्षा में अधिक मानकीकरण करने की आवश्यकता है, ऐसी मानक परीक्षा प्रणाली जो विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा जारी की गई डिग्री एवं डिप्लोमा के मामलों में एकरूपता लाए, विद्यार्थियों को दाखिल करने एवं निकालने के लिए व्यापक रूप से एकीकृत राष्ट्रीय कैलेण्डर तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम का स्तर बढ़ाने के लिए अधिक मानकीकरण की आवश्यकता है।

11.2 यह संतोषजनक रूप से कार्य कर रही है।

11.3 हम इस पर कोई सुझाव नहीं दे सकते।

11.4 हमें इस संबंध में कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती।

11.5 हिमाचल प्रदेश सरकार की जानकारी में ऐसा कोई उदाहरण नहीं आया है।

अन्तः शासनिक समन्वय

12.1 हमारा यह मत है कि ऐसी संस्था हमारे देश में उपयोगी नहीं होगी क्योंकि केन्द्र एवं राज्यों के बीच मतभेदों एवं समस्याओं का आपस में समाधान द्विपक्षीय परामर्श प्रक्रिया से किया जाता है।

ज्ञापन

अध्याय 1

नीति का स्वरुप

1.1 भारत में लोकतांत्रिक रूप से कार्य करने विशेष रूप से निम्न स्तर से ही कार्य करने की पावन परम्परा रही है। संविधान निर्माताओं, जिनका मार्ग-दर्शन महात्मा गांधी एवं नेहरू के दृष्टिकोण ने किया था, ने इन पुरानी परम्पराओं को मजबूत किया है। इसके फलस्वरूप लोकतंत्र ने इस देश में जड़े मजबूत कर ली हैं तथा कई देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली का पतन होने पर भी यहां पर अभी तक लोकतंत्र कायम है।

जनता में हमेशा ऐसे तत्व होते हैं जो राज्यों में अधिक स्वायत्त राज्य के इच्छुक होते हैं तथा क्षेत्रीयता आंचलिकता एवं भाषावाद के तत्वों को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं। राष्ट्र ने कई चुनौतियों का सामना किया हैं तथा समय समय पर कई प्रशासनिक समाधान किए हैं। हाल ही में कुछ राज्यों में विपक्षी राजनीतिक पार्टियां सत्ता में आई है जिससे केन्द्र-राज्य संबंधों पर विवाद स्वाभाविक रूप से बढ़ा है।

1.3 केन्द्र-राज्य संबंधों पर आयोग की नियुक्ति करना हमारी सक्रिय प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की दूरदर्शिता को श्रद्धांजलि देना है जो नेहरूवाद धारा में सच्ची लोकतंत्रवादी रही हैं तथा जो राष्ट्रीय विषयों पर मुक्त बहस करने में विश्वास रखती थी।

1.4 हिमाचल प्रदेश सरकार ने केन्द्र राज्य संबंधों के प्रमुख विषय को दो दृष्टिकोणों से देखा है। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से यह माना जाता है कि यदि देश को बनाए रखना तथा इसका विकास करना है तो केन्द्र मजबूत होना चाहिए। छोटे राज्य, जो मुख्य रूप से केंद्रीय सहायता पर निर्भर हों उनके दृष्टिकोण से केन्द्र का मजबूत होना अति वांछनीय है यदि संतुलित विकास किया जाना है।

1.5 प्रधान मंत्री ने सही कहा है कि मजबूत केन्द्र का अर्थ अनिवार्यतः कमजोर राज्य नहीं होता। हम दोनों स्तरों पर दृढ़ता के लिए प्रयत्न कर सकते हैं, दोनों के दृढ़ होने से एक दूसरे का विकास होगा।

1.6 भारत एक विशाल देश है, इसमें अनेक जातियों, भाषाओं एवं धर्मों के लोग रहते हैं तथा यह विस्तृत क्षेत्र पर फैला हुआ है एवं यहां पर कृषि संबंधी जलवायु की स्थितियां व्यापक रूप से भिन्न है। यहां पर दो ऐसे तथ्य हैं जो संविधानिक दृष्टि से संगत हो गए है। इस बड़े देश पर, केन्द्र से गहन अथवा व्यापक रूप से, प्रशासन नहीं किया जा सकता। इसके साथ साथ केवल सुदृढ़ केन्द्र से अपकेन्द्री प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रख सकता है। इसलिए हमने सरकार के ऐसे स्वरूप को चुना है जिसमें संघीय विशेषताएं तथा एकात्मक तत्व हैं।

1.7 ऐतिहासिक दृष्टि से, मौजूदा राज्यों की सीमाओं में प्राचीन, मध्यकाल एवं आधुनिक काल में कतिपय परिवर्तन हुए हैं। भारत का नक्शा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वास्तव में दो बार बनाया गया है एक बार प्रमुख राज्यों के एकीकरण के समय तथा दूसरी बार भाषा के आधार पर सीमाओं का पुनर्निर्धारण करने के समय। संविधान संसद को, नए राज्य बनाने, मौजूदा राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नाम में परिवर्तन करने के संबंध में, कानून बनाने का अधिकार देता है। ऐसा होना सही है। यदि ऐसा नहीं होता तो देश का तर्कसंगत, उपयुक्त एवं व्यावहारिक नक्शा बनाना असंभव हो जाता जैसा हमने अब बनाया है। परन्तु यह भी प्रदर्शित करता है कि भारत प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों का महासंघ का नहीं है तथा न ही कहा जा सकता है।

1.8 कार्यात्मक रूप से यह स्पष्ट है कि केन्द्र एवं राज्य के बीच शक्तियों के बंटवारे में अन्तर्निहित स्वायत्तता/प्रभुसत्तात्मक अधिकार उतने नहीं है जितने कि ये प्रशासनिक सुविधा के कारण हैं। भारत का शासन एक बिन्दु या पांच क्षेत्रीय केन्द्रों या बीस राज्यों की राजधानियों से चलाया जा सकता है। हमने ऐसी प्रणाली चुनी है जिसमें स्थानीय नेतृत्व के साथ साथ उस पर केन्द्र का नियंत्रण होगा।

1.9 बड़े देश में हमेशा यह खतरा बना रहता है कि विघटनकारी एवं विखण्डनकारी प्रवृत्तियां उभरकर सामने आती है। युद्ध, बाहरी आक्रमण एवं सैनिक विद्रोह किसी राजतन्त्र के सामान्य संकट होते हैं। कभी कभी राज्य में संवैधानिक मशीनरी ठप्प हो जाती है तथा राष्ट्रपति को अस्थायी रूप से प्रशासन का भार संभालना पड़ता है। वित्तीय संकट भी उत्पन्न हो सकता हैं। इसका एक विकल्प यह होगा कि इन आकस्मिकताओं के लिए कोई प्रावधान न किया जाए तथा देश को इसमें से निकालने के लिए भाग्य पर निर्भर रहा जाए। किन्तु संविधान निर्माताओं ने विवेकपूर्ण निर्णय लिया हैं कि आपात स्थिति की उद्घोषणा अनुच्छेद 352, राष्ट्रपति द्वारा शक्तियों का ग्रहण करना अनुच्छेद 356 तथा वित्तीय आपात्काल की उद्घोषणा अनुच्छेद 360 के अधीन करने के लिए संश्लिष्ट प्रणाली तैयार की जाए। राजनैतिक वातावरण के वस्तुपरक एवं निष्पक्ष प्रेक्षक के लिए यह निर्णय लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी कि केन्द्र द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग, काफी हद तक, देश की एकता एवं अखण्डता को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार रहा है।

1.10 इससे निम्नस्तर पर, यही तर्क ऐसी प्राकृतिक विपदाओं का मुकाबला करने पर लागू होता है जो थोड़े थोड़े अन्तरालों पर उत्पन्न होती है। यह भविष्य-वाणी करना कठिन होता है कि सूखा, बाढ़, हिमध्राव, भूकम्प, आग या प्रचण्ड तुफान किस राज्य में आएगा तथा कितना आएगा। अतः यह वांछनीय है कि केन्द्र के पास अत्यधिक संसाधन होने चाहिए जिससे किसी प्रभावित क्षेत्र को शीघ्र सहायता पहुंचाई जा सके।

1.11 सामाजिक-आर्थिक विकास के क्षेत्र मे भी, केन्द्र को समन्वयकारी जिम्मेवारी लेनी होगी। नियोजित एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था जहां सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्र कार्य करते हैं—को अपनाने के बाद यह महत्वपूर्ण है कि बृहत प्रयोजनों का केन्द्र द्वारा निर्धारण किया जाए।

1.12 पश्चिमी प्रजातंत्र की स्वतंत्रता अर्थव्यवस्था में भी परिवहन, संचार, स्वसंचलन आदि की आधुनिक प्रवृत्तियों ने संघीय सरकारों को अधिक सक्रिय एवं सकारात्मक भूमिका की ओर प्रवृत्त किया है।

1.13 हालांकि पूरे विश्व में संतुलित विकास करने की आवश्यकता पर ध्यान रखा जाना चाहिए किन्तु कम विकसित देशों में इस पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति बेहतर आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की होड़ में पिछड़ जाते हैं उन्होंने क्रांतिकारी एवं हिंसक संघर्षों को स्वेच्छा से अपना लिया है। चूंकि समृद्ध राज्य कम विकसित राज्यों को अपने साथ स्वेच्छा से मिलाने के लिए तैयार नहीं होते अतः केन्द्र को ही इन राज्यों के बीच पड़ी ऐठन को दूर करना होगा।

1.14 इस संदर्भ में हिमाचल प्रदेश केन्द्र सरकार, संवैधानिक निकायों यथा वित्त आयोग तथा समन्वयकारी मंचों यथा राष्ट्रीय विकास परिषद एवं योजना आयोग द्वारा, छोटे, पहाड़ी एवं कम विकसित राज्यों को उसका हिस्सा देने में निभाई गई सकारात्मक भूमिका का अनुमोदन किए बिना नहीं रह सकता। परन्तु इसने अनुमोदन किया है। यहां पर प्रति व्यक्ति कर का बोझ बहुत अधिक होने के बावजूद भी हिमाचल प्रदेश में संसाधन बहुत कम रहे हैं तथा केन्द्रीय अनुदानों, ऋणों तथा आर्थिक सहायता के कारण ही यह अपने राज्य के लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठा सका है।

1.15 जब हम राज्यों का केन्द्र के खर्चे पर प्रदत्त की गई अधिक शक्तियों पर नेताओं द्वारा दिए गए तर्कों का विश्लेषण करते हैं तो इनकी कमजोरी आसानी से पता चल जाती है। ऐसे विवादों की सक्रिय समाधान की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता जो विवाद समय-समय पर केन्द्र-राज्य संबंधों के बीच रहा है। परिस्थितियां बदलती रहती हैं तथा हमारी संस्थाओं को भी विकसित होना है जिससे समग्र संतुलन बनाए रखा जा सके। फिर भी, इससे यह विवक्षित नहीं होता कि ऐसे प्रत्येक परिवर्तन से संवैधानिक संशोधन करने की आवश्यकता होगी। इस बात को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है कि संवैधानिक रूढ़ियां लिखित उपबंधों की भांति ही महत्वपूर्ण हैं तथा हमें स्वस्थ रूढ़ियों का विकास करने का निरन्तर प्रयास करना चाहिए।

1.16 निष्कर्षत: हम यह बताना चाहेंगे कि संविधान निर्माताओं ने सोच समझ कर भारत का एकात्मक तत्व सहित एक संघ के रूप में निर्माण किया है। पिछले 37 वर्षों के अनुभव ने उस स्वरूप को क्षमता एवं दृढ़ता प्रदान की है जो उन्होंने हमें दिया है तथा हम केन्द्र-राज्य संबंधों में अच्छा सन्तुलन रखने में हस्तक्षेप केवल अपने जोखिम पर कर सकते हैं। भारत के लिए सुदृढ़ केन्द्र की आवश्यकता है जिससे विघटनकारी बलों को नियंत्रित, आपात स्थितियों का आत्मविश्वास से मुकाबला तथा समरूप विकास किया जा सके। जैसे-जैसे कमजोर राज्य सुदृढ़ तथा राष्ट्रीय औसत के निकट आएंगे वैसे-वैसे राज्य की दृढ़ता केन्द्र को कमजोर करने से नहीं बढ़ेगी अपितु इसके माध्यम से तथा इसके कारण बढ़ेगी। तब हमारा केन्द्र सुदृढ़ होगा तथा राज्य मजबूत होंगे और राज्य एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस ध्येय की प्राप्त करने के लिए हम सबको मिलकर प्रयास करना होगा।

अध्याय 2

संवैधानिक विषय

2.1 विभिन्न तथ्य विभिन्न रूपों में सामने आए हैं यथा अकालियों का आनन्दपुर साहिब संकल्प, दक्षिण के मुख्य मंत्रियों की बंगलोर में गुप्त सभा, पश्चिमी बंगाल सरकार का आठवें वित्त आयोग को ज्ञापन, विपक्षी दलों की श्रीनगर में गुप्त सभा आदि।

2.2 प्रारम्भ में ही पूरा जोर देकर हम कहना चाहेंगे कि भारत एकल राष्ट्र है तथा किसी दल के व्यक्तियों को पृथक् करने की धारणा को प्रस्तुत करने के किसी प्रयास को दृढ़ता, प्रबलता से तथा यदि आवश्यक हो तो सशस्त्र सेना की सहायता से रोकना चाहिए। किसी राजनीति मीमांसा के प्रचार के लिए धार्मिक स्थलों का दुरुपयोग करने पर पूर्णत: प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए।

2.3 संविधान के ऐसे सभी प्रावधानों को रखना चाहिए जो राज्य में सामान्य या वित्तीय आपातकाल के समय पर या संवैधानिक मशीनरी के ठप्प हो जाने पर केन्द्रीय हस्तक्षेप के लिए प्राधिकार देते हैं।

2.4 केन्द्र एवं राज्य के बीच संवैधानिक शक्तियों के विभाजन में जिसमें केन्द्रीय विधान को अधिक शक्ति प्राप्त हैं, हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

2.5 इसके केवल दो अपवाद हैं। हिमाचल प्रदेश जैसे राज्य में जल से बिजली पैदा करने की बहुत सम्भावना है। यह माना गया है कि यदि हिमाचल प्रदेश जैसे छोटे राज्य को वित्तीय सामर्थ्य प्राप्त करना है तो यह सामर्थ्य केवल इस विशाल संसाधन के संदोहन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए हम राज्य सरकारों को वे अधिकार दिए जाने पर बल देंगे जिससे वे अपनी सीमाओं के अन्तर्गत बिजली के उत्पादन पर कर लगा सकें।

2.6 दूसरे, हम यह अनुभव करते हैं कि सम्पत्ति का अधिग्रहण — जो 1956 के संशोधन द्वारा समवर्ती सूची में शामिल किया गया है — पुन: राज्य सूची में शामिल किया जाना चाहिए।

2.7 राष्ट्रपति की, कतिपय प्रकार के विधेयकों के लिए अनुमति देने या अनुमति देने को रोके रखने की शक्तियों को कम नहीं करना चाहिए। लेकिन उससे विधेयक को प्रस्तुत करने के एक वर्ष के भीतर किसी भी प्रकार का निर्णय लेने की अपेक्षा की जा सकती है।

2.8 राज्यपालों की राज्य के प्रधान के रूप में और केन्द्र के संपर्क सूत्र के रूप में दोहरी भूमिका होती है। यह उपयुक्त नहीं लगता कि कतिपय स्थितियों में उनके निर्णय लेने की पद्धति पर कोई पाबन्दी लगाई जाए। सक्रिय राजनीतिक स्थिति में संकट इतने भिन्न प्रकार के हैं कि राज्यपालों की शक्तियों पर पाबन्दी लगाना उपयुक्त नहीं होगा।

2.9 निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि संविधान देश के लिए समग्र रूप से सही रहा है और इसलिए हमें अपवादात्मक परिस्थितियों के सिवाय इसमें कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

अध्याय 3

वित्तीय अंतरण

3.1 केन्द्र एवं राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के विषय पर राज्य सरकार ने वित्त आयोग को पहले से ही अपने विचार विस्तार से बता दिए हैं। इन विचारों में कोई परिवर्तन करने के लिए अभी तक कोई अवसर नहीं आया है।

3.2 सामान्यत: हम यह मानते हैं कि केन्द्र एवं राज्य के पास यथेष्ठ निधियां होनी चाहिए जिससे वे अपनी संबंधित जिम्मेदारियों को प्रभावी रूप से निभा सकें। करों का आवंटन, संविधान में पहले से ही केन्द्र एवं राज्य अधिकरणों की अलग-अलग कर लेने की संबद्ध दक्षता के आधार पर किया गया है। यह मानने के कई कारण हैं कि केन्द्र को आवन्टित की गई कुछ मदों में बहुत लोचनीयता होती है परन्तु इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि राज्यों ने, उनको अनुमत सभी करों का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया है।

3.3 इस क्षेत्र में दीर्घावधि-ध्येय सभी राज्यों द्वारा वित्तीय सामर्थ्य प्राप्त करना होना चाहिए जिससे एक लम्बी अवधि से घाटा-राज्यों के लिए केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता को दूर किया जा सके। ऐसा संसाधन के आधार को बढ़ाकर एवं ऐसे प्रत्येक राज्य में उपलब्ध अन्त: शक्ति का उपयोग करके प्राप्त किया जा सकता है। मध्यवर्ती अवधि में केन्द्र को इस भांति कार्य करना चाहिए जो कम विकसित राज्यों के पूरी तरह पक्ष में हो।

3.4 योजना एवं गैर-योजना व्यय के बीच मौजूदा भिन्नता से कभी-कभी पुरानी परिसम्पत्तियों को पूर्ववर्ती प्राप्ति एवं उपयुक्त रखरखाव के समेकन के लिए उपयुक्त प्रावधान किए बगैर, नई परिसम्पत्तियों से योजनाएं तैयार हो जाती हैं। इस समग्र विषय पर राष्ट्रीय स्तर पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है जिससे राजस्व, पुलिस, न्यायिक, जेल, सचिवालय, संविधान आदि जैसे विभागों—जो कि प्रशासनिक प्रणाली का मुख्य आधार हैं — में निधियों की कमी न हो पाए। एक संभाव्यता योजना आयोग ने गैर-योजना व्यय का संविधान बनाना है, जो निधियों की योजना रहित अपेक्षाओं, ऋण की आवश्यकताओं आदि तथा योजना अपेक्षाओं का निरन्तर मानीटर करे तथा समेकित एवं नए विकास में उपयुक्त संतुलन रखे। गैर-योजना की आवश्यकताओं को पंचवर्षीय पुनरीक्षा का इन्तजार किए बगैर जब वे उठें तब तत्काल पूरा कर देना चाहिए।

अध्याय 4

योजना एवं विकास

4.1 भारत में, हमने पांचवें दशक के शुरू में नियोजित विकास की पद्धति को अपनाया है। योजना युग के अनुभव से योजना बनाने, कार्यान्वयन, मानीटर करने तथा मूल्यांकन के लिए प्रभावी प्रणाली का विकास हुआ है।

4.2 उच्चतम स्तर पर, राष्ट्रीय विकास परिषद् केन्द्र एवं राज्य सरकारों की सामूहिक मन्शा का प्रतिनिधित्व करती है। इस फोरम पर परामर्श राज्यों के साथ हुई चर्चाओं की पराकाष्ठा है तथा यह बहुत व्यापक या विस्तृत नहीं हो सकता। संवैधानिक आधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद् स्थापित करने की आवश्यकता भी नहीं है।

4.3 इस तथ्य को पर्याप्त उछाला गया है कि योजना आयोग की संवैधानिक हैसियत नहीं है। यह स्पष्ट नहीं है कि आयोग संविधि की संशोधन से कौन-से विशेष लाभ प्राप्त कर सकता है। आयोग को वास्तविक शक्ति, स्रोतों की विविधता से मिलती है जिससे यह अपने विशेषज्ञ—अर्थ शास्त्रियों, सांख्यिकीविदों, विषय-वस्तु विशेषज्ञों, प्रशासकों, राजनीतिज्ञों तथा तकनीकतंत्रियों को प्राप्त करता है।

4.4 इस व्यापक प्रस्ताव के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता कि राष्ट्रीय प्राथमिकताएं एवं विकासीय योजनाएं केन्द्र स्तर पर तैयार की जानी चाहिए जबकि क्षेत्रीय प्राथमिकताओं एवं कार्यान्वयन युक्तियों को अन्तिम रूप राज्य स्तर पर बेहतर रूप से दिया जा सकता है। इस बारे में विभिन्न मत हो सकते हैं कि इनकी विभाजक रेखा कहां है। कुछ लोग महसूस करते हैं कि केन्द्र की प्रत्यायोजित योजनाएं प्रायः सख्त सांचे में ढली होती हैं तथा देश के विभिन्न भागों से प्राप्त होने वाली व्यापक रूप से भिन्न स्थितियों पर हमेशा ध्यान नहीं देती हैं। यह कामना भी की जा सकती है कि और अधिक राज्य सरकार विशेषज्ञ कार्यकारी दलों की चर्चा में लगे लेकिन ये बैठकें इतनी शीघ्रता से नहीं होनी चाहिए। केन्द्र एवं राज्य प्रतिनिधियों के बीच पूरे वर्ष निरन्तर बातचीत होनी चाहिए जिससे विचारों एवं सूचना का निरन्तर विनिमय हो सके।

4.5 हिमाचल प्रदेश को अपनी आवश्यकताओं को पहाड़ी राज्य के रूप में स्पष्ट रूप से महसूस करवाने में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। उदाहरणार्थ, स्वीकृत राष्ट्रीय मापदण्ड के विपरित हिमाचल प्रदेश योजना ने सड़कों एवं पुलों—जो हमारे जैसे पहाड़ी क्षेत्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्रक माना गया है—को बहुत प्राथमिकता दी है।

4.6 राज्य सरकार ऐसे विशेष वितरण के प्रति जागरूक है जो केन्द्र सरकार के विशेष प्रकार के राज्यों यथा हिमाचल प्रदेश के योजना वित्त पोषण के सम्बन्ध में किया है। जनजातीय उपयोजना की प्रक्रिया भी हमारे पक्ष में रही है। लेकिन पहाड़ी क्षेत्रों के लिए निर्धारित केन्द्रीय निधियों में यह राज्य साझेदार नहीं है।

4.7 योजना पद्धति का विकेन्द्रीकरण प्रशंसनीय ध्येय है जिसकी ओर केन्द्र सरकार जोर-शोर से बढ़ रही है। सिद्धान्ततः राज्य सरकार ऐसे विकेन्द्रीकरण के पक्ष में है लेकिन हिमाचल प्रदेश छोटा राज्य है तथा इस पर यह विचार किए जाने की आवश्यकता है कि तीव्र गति से हुआ बहुत अधिक विकेन्द्रीकरण का कहीं विपरित प्रभाव न हो जब तक पर्याप्त आंकड़े न इकट्ठे किए गए हों तथा योजना प्रणाली तैयार न की गई हों।

अध्याय 5

प्रशासनिक संबंध

5.1 प्रशासनिक संबंधों पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं जिन पर इस ज्ञापन में ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

5.2 अखिल भारतीय सेवाओं ने नोकरशाही के उच्चतर सोपानकों की गुणता, वास्तविकता एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मौजूदा सेवाओं का सविस्तर वर्णन करना चाहिए तथा ऐसी और अधिक सेवाओं की राष्ट्रीय एकता के हित में स्थापित करने की आवश्यकता है।

5.3 रेडियो एवं टेलिविजन का माध्यम विकास संबंधी संदेश देने के लिए एक सशक्त साधन है। इन्हें केवल सरकारी नियंत्रण के अधीन रख कर ही वाणिज्यीकरण के अभ्याघात से सुरक्षित तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण के वाहक के रूप में बनाए रखा जा सकता है।

5.4 पिछले अनुभव से यह स्पष्ट है कि केन्द्र के पास, राज्यों में केन्द्रीय नीति एवं पैरा सैन्य बल नियोजित करने के लिए, अप्रतिबंधित अधिकार होना चाहिए जिससे देश की अखण्डता एवं इसमें कानून एवं व्यवस्था बनाई रखी जा सके।

5.5 कार्यपालक निर्देश देने के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 256, 257, 339(2) तथा 365 के अधीन केन्द्र सरकार की शक्तियां अपरिवर्तित रहनी चाहिए।

5.6 विद्युत क्षेत्रक में, भारतीय विद्युत अधिनियम के अधीन अधिकांश कार्यपालक शक्तियां राज्य सरकारों को पहले से ही प्रत्यायोजित की गई हैं। इसलिए विभिन्न राज्यों के लिए केन्द्र से परामर्श कर बनाए गए संविधान पर आधारित पृथक् विद्युत अधिनियम होना अधिक समीचीन होगा।

5.7 विद्युत उत्पन्न करने के लिए परियोजनाओं के कार्यान्वियन में यह बेहतर होगा कि अधिकांश परियोजनाओं को राज्य क्षेत्र में स्थापित करने की अनुमति दे दी जाए। केन्द्रीय निकायों को प्रमुख रूप से तकनीकी तथा सलाहकार की भूमिका अदा करनी चाहिए तथा जब राज्य विद्युत बोर्ड ऐसा करने में अक्षम पाए जाएं। ये अन्तः राज्य परियोजनाओं का कार्यभार भी संभाल सकते हैं।

जम्मू एवं कश्मीर सरकार

प्रश्नावली के उत्तर

25—376 M. of HA/ND/87

जम्मू एवं कश्मीर सरकार

प्रश्नावली के उत्तर

प्रस्तावना

जम्मू एवं कश्मीर राज्य के भारत संघ में अधिमिलन के बाद, राज्य एवं केन्द्र के बीच संबंध भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 के उपबंधों द्वारा अनुशासित किए गए हैं। "केन्द्र-राज्य संबंधों पर आयोग" के प्रश्नावली के उत्तर के सीमित उद्देश्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि राज्य एवं संघ के बीच संवैधानिक संबंध के कार्यक्षेत्र एवं स्वरूप को विस्तार से बताया जाए। फिर भी राज्य सरकार के उत्तरों का सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने के लिए भारत के सर्वोच्च न्यायालय में खजान चंद बनाम जम्मू व कश्मीर राज्य ए० आई० आर० 1984 —एस० सी० 767 पर 762 नामक हाल ही के मामले में जो विचार दिए हैं उनकी ओर ध्यान दिलाया जाता है। इसमें कहा गया था कि—"लेकिन भारत का संविधान जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर पूर्ण रूप से लागू नहीं होता क्योंकि इस राज्य को हमारे देश की संवैधानिक संगठन में विशेष स्थिति प्राप्त है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 370 जम्मू एवं कश्मीर राज्य के संबंध में विशेष उपबंध करता है। उस राज्य पर अनुच्छेद 370 की धारा (I) की उपधारा (ग) के अधीन अनुच्छेद 1 और 370 के उपबंध लागू होंगे जो ऐसे अपवादों और आशोधनों के अधीन रहेंगे जिन्हें राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार की सहमति से जारी किए गए आदेश द्वारा निर्दिष्ट करेगा। इस प्रकार जम्मू कश्मीर पर अनुच्छेद 1 लागू होने के कारण अनुच्छेद 370 की धारा (I) की उपधारा (ग) द्वारा जम्मू कश्मीर उन राज्यों में से एक है जिनसे भारत संघ बना है और इस अनुच्छेद के खंड (I) के उपखंड (घ) की हैसियत से जहां तक अनुच्छेद 1 और 370 के अलावा संविधान के दूसरे उपबंधों का संबंध है, भारत के राष्ट्रपति की जम्मू-कश्मीर राज्य की सरकार की सहमति से ऐसे आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है जिसमें यह निर्दिष्ट किया गया हो कि उस राज्य पर उनमें से कौन से उपबंध लागू होंगे और क्या ऐसे उपबंध पूरी तरह लागू होंगे या उस आदेश में विनिर्दिष्ट ऐसे अपवादों एवं आशोधनों के अधीन रहेंगे। अनुच्छेद 370 में उस राज्य के लिए एक संविधान सभा गठित करने और उसके लिए एक अलग संविधान का निर्माण करने के बारे में भी कहा गया है। अनुच्छेद 370 की धारा (I) द्वारा प्रदत्त शक्ति को इस्तेमाल करते हुए भारत के राष्ट्रपति ने जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार की सहमति से संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1954 (सी० ओ० 48) तैयार किया है। इस आदेश में उस राज्य की संविधान सभा द्वारा बनाए जाने वाले राज्य सरकार के आन्तरिक संविधान के एकमात्र अपवाद को छोड़ कर जम्मू-कश्मीर राज्य की भारत के संविधान के ढांचे में पूरी संवैधानिक स्थिति के बारे में बताया गया है। जम्मू-कश्मीर राज्य की संविधान सभा ने पहले के संविधान को निरस्त करते हुए उसके स्थान पर अपना संविधान बनाया है। इस नए संविधान, जिसे "जम्मू-कश्मीर का संविधान" कहा जाता है, को उस राज्य की संविधान सभा ने 17 नवम्बर, 1956 को अपनाया और अधिनियमित किया।

26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान अपनाने के बाद भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 370 के उपबंधों के अनुसार संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1950 प्रख्यापित किया और इस प्रकार संघ और राज्य के संवैधानिक संबंधों के लिए आधार को परिभाषित किया।

9 अगस्त, 1953 को शेरे-कश्मीर जनाब शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की यथा विधि चुनी गई सरकार को गैर-कानूनी ढंग से बरखास्त किया गया। इसके पश्चात् बहुत सी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं हुई जो कि अब इतिहास का एक अंग बन गई है। अन्य बातों के साथ-साथ उक्त संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1950 को संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1954 द्वारा अधिक्रांत किया गया, जिसे स्वयं समय समय पर संशोधित किया गया है। गंभीर राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति ने अत्यधिक प्रशासनिक अकुशलता, भ्रष्टाचार और आर्थिक गतिरोध, जिसमें विधिसम्मत शासन और लोकतांत्रिक मानदण्डों के लिए कोई सम्मान नहीं रहा था, सहित राज्य को अपने साथ ले लिया जिससे केन्द्रीय नेतृत्व विशेषकर तात्कालिक प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के मन में चिंता उत्पन्न हुई। इस राजनीतिक गतिरोध की स्थिति को दूर करने के लिए स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा शेरे कश्मीर जनाब शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को स्थिति का हल ढूंढने के लिए तथा राज्य में धर्म-निरपेक्ष लोक-तंत्र को मजबूत बनाने के लिए वार्तालाप का निमन्त्रण दिया। तदनुसार स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी और शेरे कश्मीर जनाब शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के प्रतिनिधियों की कई बार बैठकें हुई। जिनका समापन 1975 के समझौते में हुआ जिसमें अन्य बातों के साथ साथ यह व्यवस्था है कि—

जम्मू-कश्मीर राज्य को राज्य संविधान में उल्लिखित मसलों को रखने और राज्य की विशेष परिस्थितियों के लिए उपयुक्त ढंग से कल्याणकारी उपायों, सांस्कृतिक मसलों, सामाजिक सुरक्षा, स्वीय विधि और प्रक्रियात्मक विधि के संबंध में अपने विधान रखने की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने की दृष्टि से यह सहमति हो गई है कि राज्य सरकार संसद द्वारा बनाई विधियों या समवर्ती सूची से संबंधित मसलों पर 1953 के बाद, उस राज्य पर लागू की गई विधियों की समीक्षा कर सकती है और निर्णय ले सकती है कि उसके विचार में इनमें से किन को संशोधित अथवा निरस्त किया जाए। इसके पश्चात् भारत के संविधान के अनुच्छेद 254 के अधीन समुचित उपाय किए जा सकते हैं। इस विधान के लिए दी गई राष्ट्रपति की सहमति पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा। उसी अनुच्छेद की धारा 2 के परन्तुक के अधीन भविष्य में संसद द्वारा बनाई जाने वाली विधियों के संबंध में भी यही दृष्टिकोण अपनाया जाएगा। किसी भी ऐसी विधि को राज्य में लागू करने के संबंध में राज्य सरकार से परामर्श किया जाएगा और राज्य सरकार के विचारों पर पूरी तरह विचार किया जाएगा।

अनुच्छेद 368 के अधीन की गई व्यवस्था की व्यतिकारी व्यवस्था के रूप में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा राज्य पर लागू होने वाले उस अनुच्छेद को समुचित रूप से इस आशय के साथ आशोधित किया जाना चाहिए कि जम्मू-कश्मीर की विधान सभा द्वारा निम्नलिखित मसलों के संबंध में बनाई गई कोई विधि प्रवृत्त नहीं होती जब तक कि राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित उन मसलों को उसकी स्वीकृति न मिल जाए, ये मसले हैं :

(क) राज्यपाल की नियुक्ति, शक्तियां, कार्य, कर्तव्य, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां; तथा

(ख) चुनावों से संबंधित निम्नलिखित मसले यथा—भारत के चुनाव आयोग द्वारा चुनावों का अधीक्षण, निदेशन एवं नियंत्रण, बिना भेदभाव के मतदाता सूची में शामिल करने के लिए पात्रता, वयस्क मताधिकार और विधान परिषद् के संघटन संबंधी मामले जम्मू-कश्मीर राज्य के संविधान की धारा 138, 139, 140 और 50 में विहित हैं।

प्रश्नावली पर विचार करने से पूर्व हम संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आशोधन आदेश, 1986, तारीख 30-7-1986—जिसका संक्षिप्त नाम "1986 आदेश" है—का भी हवाला देना चाहेंगे जिसमें अन्य बातों के साथ यह व्यवस्था की गई है कि :—

"2. भाग XI से संबंधित संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1954 के पैरा 2 के उपपैरा (6) में;

(i) खण्ड (ख) के लिए निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित किया जाएगा, यथा :—

"(खख) अनुच्छेद 249 के खण्ड (i) में "संकल्प में निर्दिष्ट राज्य सूची में प्रमाणित कोई मसला" शब्दों के लिए "संकल्प में निर्दिष्ट ऐसा कोई मसला, जो संघ सूची या समवर्ती सूची में संगणित न किया गया हो" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ii) खंड (घ) हटा दिया जाएगा।"

पूर्वोक्त 1985 आदेश असंवैधानिक है क्योंकि यह अनुच्छेद 370(i) (ख) (ii) के उपबंधों के उल्लंघन में पास किया गया है जिसे इस प्रकार पढ़ा जाएगा :—

"370(i) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी;

(क) .. .. ..

(ख) उक्त राज्य के लिए कानून बनाने की संसद की शक्ति निम्नलिखित तक सीमित होगी :—

(i) संघ सूची एवं समवर्ती सूची में निर्दिष्ट मसले जो राज्य सरकार से परामर्श कर, राष्ट्रपति द्वारा घोषित किए गए अंगीकार-पत्र के अनुरूप है जो भारतीय डोमीनियन में राज्य के अधिमिलन को अधिशासित करता है और उन विषयों को शासित करता है जिनके संबंध में डोमीनियन विधान मंडल उस राज्य के लिए कानून बना सकता है; और

(ii) उक्त सूची में उल्लिखित ऐसे अन्य मसले जिसे राज्य सरकार की सहमति से राष्ट्रपति आदेश द्वारा निर्दिष्ट करे।

स्पष्टीकरण :—इस अनुच्छेद के प्रयोजनों के लिए राज्य सरकार का आशय राष्ट्रपति द्वारा जम्मू-कश्मीर के महाराजा के रूप में मान्यताप्राप्त व्यक्ति से है। यह इस समय कार्यालय में कार्यरत मंत्रियों की परिषद की सलाह से 5 मार्च, 1948 की महाराजा की उद्घोषणा के अधीन कार्य करेगा।"

अनुच्छेद 370 (i) (ख) के उप खण्ड (ii) के लिए पूर्वोक्त स्पष्टीकरण में निहित सरकार की परिभाषा में मंत्रियों की परिषद् होने की स्पष्ट रूप से मान्यता दी है केवल उन्हीं की सलाह पर राज्य का राज्यपाल पूर्वोक्त 1986 आदेश के अनुप्रयोग के लिए "राज्य सरकार की सहमति" भेज सकता है।

यह महत्वपूर्ण है कि 7 मार्च, 1986 को मंत्री परिषद् को बर्खास्त कर दिया गया था और राज्य विधान सभा को निलंबित कर दिया गया तथा राज्यपाल राज्य संविधान की धारा 92 के अधीन कार्य कर रहा था और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 (i) (ख) के स्पष्टीकरण (ii) में परिभाषित राज्य सरकार की आवश्यक अपेक्षाओं को पूरा नहीं किया गया और इस प्रकार राज्य सरकार की वही सहमति जिस पर उक्त आदेश, 1986 आधारित है गैर संवैधानिक होने के कारण उक्त आदेश 1986 पूर्ण रूप से संविधान के अधिकार से बाहर है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 के अधीन राज्य को दिए गए संवैधानिक आश्वासनों तथा पूर्वोक्त 1975 के समझौते से मिले अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बगैर हम प्रश्नावली पर निम्नलिखित रूप से विचार करते हैं :

उत्तर

1.1 भारत का संविधान जिस तरह से बनाया गया है उसे मोटे तौर पर संघीय संविधान कहा जा सकता है।

1.2 भारत के संविधान का अनुच्छेद 251 जम्मू-कश्मीर राज्य पर निम्नलिखित आशोधित रूप में लागू होता है :—

251. अनुच्छेद 250 में उल्लिखित कोई बात राज्य विधान सभा की उस विषय, जिस पर उन्हें विधि बनाने की शक्ति है, पर विधि बनाने की शक्ति पर प्रतिबंध नहीं लगाएगी, लेकिन यदि राज्य की विधान सभा द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबंध संसद द्वारा बनाई गई विधि, जिसे बनाने की शक्ति संसद को उक्त अनुच्छेदों के अधीन है, के किसी उपबंध के विरुद्ध हो तो संसद द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह राज्य विधान सभा द्वारा बनाई गई विधि से पहले या बाद में पारित हुई हो, अभिभावी होगी और राज्य विधान सभा द्वारा बनाई गई विधि विरुद्ध होने की सीमा तक और उस समय तक, जब तक संसद द्वारा बनाई गई विधि प्रभावी रहती है, अप्रवर्तनीय रहेगी। इस प्रकार यह देखा जाएगा क्योंकि अनुच्छेद 249 जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं होता इसलिए केन्द्रीय कानून राज्य के कानून पर केवल उस अवधि के दौरान जिसमें और यदि आपात् स्थिति की उद्घोषणा प्रवृत्त हो, अभिभावी हो सकता है।

अनुच्छेद 256 भी जम्मू-कश्मीर राज्य पर निम्नलिखित आशोधित रूप में लागू होता है :—

256. प्रत्येक राज्य की कार्यपालक शक्ति का इस्तेमाल इस प्रकार किया जाएगा कि संसद द्वारा बनाई गई विधियां और उस राज्य पर लागू होने वाली वर्तमान विधियों का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके, और संघ की कार्यपालक शक्ति का इस्तेमाल राज्य को ऐसे अनुदेश देने के लिए किया जाएगा जो भारत सरकार को यह अनुदेश देने के लिए आवश्यक प्रतीत हो।

"(2) जम्मू-कश्मीर राज्य अपनी कार्यपालक शक्ति का इस्तेमाल इस प्रकार करेगा जिससे संघ उस राज्य के संबंध में संविधान के अधीन अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को निभा सके; और विशेष रूप से यदि संघ ऐसा चाहे तो उक्त राज्य संघ की ओर से और उसके व्यय पर परिसम्पत्ति अर्जन या अधिग्रहण करेगा, अनुमत शर्तों पर या करार के अभाव में भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ द्वारा निर्धारित की गई शर्तों पर उसे संघ को अंतरित करेगा।"

इस भाग के उपबंधों में संविधान के भाग में निहित अनुच्छेद 348, 349 जम्मू-कश्मीर राज्य उस सीमा तक लागू होंगे जहां तक उनका संबंध निम्नलिखित से हो :—

(i) संघ की राजभाषा;

(ii) एक राज्य से दूसरे राज्य या राज्य और संघ के पत्र-व्यवहार के लिए राजभाषा; और

(iii) सर्वोच्च न्यायालय की कार्यवाही की भाषा।

अनुच्छेद 356 जम्मू-कश्मीर राज्य पर निम्नलिखित आशोधित रूप में लागू होते हैं :—

356. (1) यदि राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल से रिपोर्ट प्राप्त होने पर या अन्यथा प्रकार से सन्तुष्ट हो जाता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य की सरकार इस संविधान के उपबंध तथा जम्मू-कश्मीर संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई नहीं जा सकती राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा :

(क) स्वयं राज्य सरकार के सभी या कोई एक कार्य का दायित्व ले सकता है और राज्यपाल या राज्य की विधान सभा के अलावा राज्य के किसी निकाय या प्राधिकरण में निहित या उनके द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सभी या किसी एक शक्ति को ग्रहण कर सकता है;

(ख) घोषणा कर सकता है कि राज्य विधान सभा की शक्तियों को संसद द्वारा या उसके स्वाधिकार के अधीन प्रयुक्त किया जाएगा;

(ग) ऐसे आनुषंगिक एवं परिणामिक उपबंध बना सकता है जो राष्ट्रपति की उद्घोषणा के लक्ष्यों को कार्यरूप देने के लिए आवश्यक या वांछनीय प्रतीत हों, इसमें राज्य के किसी निकाय या प्राधिकरण के संबंध में इस संविधान के किसी उपबंध को पूर्ण या आंशिक रूप में निलंबित करना भी शामिल है :—

इसमें यह व्यवस्था है कि इस खंड में उल्लिखित किसी बात से राष्ट्रपति को यह प्राधिकार नहीं मिलेगा कि वह उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयुक्त किसी शक्ति को ग्रहण कर ले, या उच्च न्यायालय से संबंधित इस संविधान के किसी उपबंध के प्रवर्तन को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से निलंबित कर दे।

(2) ऐसी किसी उद्घोषणा को अनुवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहरित या परिवर्तित किया जा सकता है ।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन प्रत्येक उद्घोषणा संसद के प्रत्येक सदन में रखी जाएगी और केवल उस स्थिति को छोड़ कर जहां यह पिछली उद्घोषणा को प्रतिसंहरित करने वाली उद्घोषणा हो जो ऐसे समय जारी की गई हो जबकि लोक सभा भंग हो चुकी हो या इस खंड में उल्लिखित दो मास की अवधि के दौरान लोकसभा भंग हुई हो, और यदि राज्यसभा में उद्घोषणा का अनुमोदन करते हुए संकल्प पारित कर दिया हो लेकिन उस अवधि की समाप्ति से पहले लोक सभा ने ऐसी उद्घोषणा के लिए कोई संकल्प पारित न किया हो तो लोक सभा के पुनर्गठन के पश्चात् इसकी पहली बैठक की तारीख से 30 दिन की समाप्ति पर यह उद्घोषणा प्रवृत्त नहीं रहेगी बशर्ते कि 30 दिन की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले लोक सभा ने भी उद्घोषणा का अनुमोदन करते हुए संकल्प पारित न कर दिया हो ।

(4) "इस प्रकार अनुमोदित उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहरित न की गई हो, खंड (3) के अधीन उस उद्घोषणा को अनुमोदित करने वाले दूसरे संकल्प के पारित होने की तारीख से छः मास की अवधि समाप्त होने पर, प्रवृत्त नहीं रहेगी ।"

इसमें यह प्रावधान है कि यदि इस उद्घोषणा के प्रवृत्त रहने का अनुमोदन करने वाला संकल्प दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो उद्घोषणा, यदि प्रतिसंहरित न की गई हो, का जिस तारीख से इस खण्ड के अधीन अन्यथा प्रवृत्त रहना समाप्त हो गया होता, उस तारीख से अगली (छः मास) अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगी, परन्तु ऐसी कोई भी उद्घोषणा किसी भी मामले में 3 वर्षों से अधिक अवधि के लिए प्रवृत्त नहीं रहेगी :

इसमें आगे यह प्रावधान है कि यदि ऐसी किसी अवधि (छः मास) के दौरान लोक सभा भंग हो जाती है और ऐसी उद्घोषणा के प्रवृत्त रहने संबंधी अनुमोदन को राज्य सभा द्वारा पास कर दिया हो लेकिन ऐसी किसी उद्घोषणा के प्रवृत्त रहने के संबंध में लोक सभा ने उक्त अवधि के दौरान कोई संकल्प न पारित किया हो तो पुनर्गठन के बाद लोक सभा की पहली बैठक की तारीख से 30 दिन की समाप्ति पर यह उद्घोषणा प्रवृत्त नहीं रहेगी बशर्ते कि उक्त 30 दिनों की समाप्ति से पहले लोक सभा ने भी उद्घोषणा के प्रवृत्त रहने का अनुमोदन करने वाले संकल्प को पारित कर दिया हो ।

"(5) इस संविधान में किसी भी अन्य बात के होते हुए भी खंड (1) में उल्लिखित राष्ट्रपति की संतुष्टि अंतिम एवं निर्णायक होगी तथा उस पर किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर आपत्ति नहीं उठाई जाएगी ।"

अनुच्छेद 365 "जम्मू-कश्मीर राज्य" पर लागू नहीं होता ।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि विनियम द्वारा या अन्य किसी माध्यम से केन्द्र द्वारा उस सीमा तक राज्य के प्रशासन में यथासभव हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए जहां तक वह उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, जो कि राज्य सरकार और उसके मतदाताओं के बीच संबंध को शासित करता है, से असंगत न हो ।

राज्यों को अधिक कर संसाधन आबंटित करने के संबंध में हम यह कहना चाहते हैं कि निगम-कर को छोड़कर आयकर संबंधी कर ही ऐसी कर है जिसे केन्द्र और राज्य के बीच विभाजन योग्य बनाया गया है । विधि की वर्तमान अर्थव्यवस्था के अधीन कम्पनी द्वारा दिया जाने वाला आयकर भी अनुच्छेद 270 (i) के अधीन केन्द्र और राज्य के बीच विभाजन योग्य नहीं है क्योंकि ऐसा कर 270 (4) (क) के क्षेत्र में आएगा । संघ और राज्यों द्वारा करों की उगाहने तथा उपलब्ध वित्त के संघ और राज्यों में वितरण संबंधी सम्पूर्ण संवैधानिक प्रणाली सर्वथा अनुचित, एकपक्षीय है तथा राज्यों को अत्यंत कठिन स्थिति में ला खड़ा करती है जिसमें योजना एवं विकास की बढ़ती हुई जिम्मेवारियों की पूर्ति उनके लिए असम्भव हो जाती है । करों के माध्यम से एकत्र वित्त से अपने हिस्से के लिए राज्यों को केन्द्र पर निराशजनक रूप से निर्भर बनाने के अलावा संघ के पास वित्तीय सहायता के निर्म्नलिखित अन्य स्रोत भी हैं :

(क) राष्ट्रीयकृत बैंकिंग अनुभाग
(ख) जीवन एवं सामान्य बीमा निगम ।
(ग) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ।
(घ) भारतीय यूनिट ट्रस्ट ।
(ङ) भविष्य निधि अंशदान ।
(च) विदेशी सहायता ।
(छ) भारतीय रिजर्व बैंक ।

वित्तीय आबंटनों के लिए केन्द्र पर राज्यों की निराशाजनक निर्भरता राज्यों के विकास एवं आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया को निरर्थक बना देती है । इसलिए हम मांग करते हैं कि राज्यों को वित्तीय संसाधनों का अधिक भाग आबंटित किया जाए जिसे संविधान में समुचित संशोधन करके अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए ।

संवैधानिक ममलों को छोड़कर सर्वोच्च न्यायालय में अपीलों के उन्मूलन के संबंध में हम सहमत हैं कि न्याय प्रणाली के स्वरूप दुर्भर क्षेत्रों की समस्या को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय को केवल संवैधानिक मसलों पर न्यायनिर्णयन का काम देना वांछनीय होगा ।

1.3 इस प्रश्न के दृष्टिकोण से इष्टतम संवैधानिक उपबंधों से विधायी शक्तियों के वितरण की व्यवस्था होगी जैसी कि संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1950 में बताई गई है । संयुक्त राज्य अमरीका और स्विस परिसंघ संघीय सरकारों के उदाहरण हैं ।

जम्मू-कश्मीर के संविधान की धारा 5 को उद्धृत करना संगत होगा, जिसमें लिखा है :—

1.4. राज्य की कार्यपालक एवं विधायी शक्तियों की सीमा :—

राज्य को सभी मसलों, केवल उन ममलों को छोड़कर जिनके बारे में भारत के संविधान के उपबंधों के अधीन संसद को राज्य का कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है, के मामले में कार्यपालक एवं विधायी शक्ति प्राप्त है ।

1.5 उत्तराधीन प्रश्न में अभिव्यक्त विचार भी अधिकांश में सही है परन्तु पिछले 36 वर्ष के कार्य के अनुभव के परिप्रेक्ष्य में कुछेक परिवर्तन, विशेष रूप से निर्म्नलिखित के संबंध में, आवश्यक है :—

1. राज्यपाल की स्थिति व भूमिका ।
2. केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंध ।
3. योजना आयोग की भूमिका, इसकी शक्तियों की सीमा तथा उनके इस्तेमाल का तरीका ।
4. वित्त आयोग की भूमिका ।
5. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति ।
6. भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति ।

1.6 वस्तुतः इस प्रश्न पर असहमति हो ही नहीं सकती कि देश की स्वतन्त्रता की रक्षा तथा देश की अखडता एवं एकता को सुनिश्चित करने का सर्वोच्च महत्व है । संविधान के भाग II में बताए अनुसार संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का विभाजन और इसके साथ जम्मू-कश्मीर संविधान पर लागू संविधान की 7वीं अनुसूची की अनुसूचियों में विभाजित संसद एवं राज्य विधान मण्डल के विधायी क्षेत्र स्वतन्त्रता की रक्षा तथा देश की एकता एवं अखण्डता को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय हैं ।

1.7 उक्त प्रश्न 1.2 का उत्तर देखें ।

1.8 संविधान का अनुच्छेद 3 जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होता ।

2.1 से 2.5 यहां ऊपर निहित भाग I के प्रश्न 1.2 और 1.6 को देखें ।

3.1 से 3.3 जम्मू-कश्मीर के संविधान के अधीन धारा 26 पर विचार किया गया है कि राज्य के प्रमुख का पदनाम राज्यपाल होगा जिसमें निहित कार्यपालक शक्तियों का इस्तेमाल उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अथवा उसके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाएगा । धारा 27 में उसकी नियुक्ति

के ढंग का प्रावधान है और धारा 28 का संबंध उसके कार्यकाल से है । धारा 29 राज्यपाल के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता निर्धारित करती है तथा धारा 30 पद की शर्तों को निर्धारित करती है; धारा 31 पद की शपथ विहित करती है, धारा 33 में उन आकस्मिकताओं में राज्यपाल द्वारा कार्यों के निर्वहन का प्रावधान किया गया है जिसकी व्यवस्था राज्य संविधान के भाग 5 में नहीं है और धारा 34 राज्यपाल को माफी देने और सजा स्थगन की शक्ति प्रदान करती है । धारा 35 में यह प्रावधान है कि राज्यपाल के सभी कार्य, धारा 36, 38 एवं 92 के अधीन कार्यों को छोड़कर, मंत्री परिषद् की सलाह पर किए जाएंगे । धारा 36 का संबंध मंत्रियों को नियुक्ति से है । धारा 38 उप मंत्रियों की नियुक्ति से संबंधित है और धारा 92 में ऐसी प्रावधान है जिसका संबंध ऐसी स्थिति से है जिसमें संवैधानिक मशीनरी ठप्प हो गई हो ।

उपरोक्त संवैधानिक उपबंधो के संबंध मे हम समझते है कि राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच एक कड़ी हो सकता है परन्तु राज्य को दो बार दुखद अनुभवों से गुजरना पड़ा है एक बार अगस्त, 1953 में जब जनाब शेख मोहम्मद अबदुल्ला के नेतृत्व में विधिवत् चुनी हुई सरकार को बरखास्त किया गया था और दूसरी बार जुलाई, 1984 में जब डाक्टर फारुख अबदुल्ला के नेतृत्व में विधिवत् चुनी हुई सरकार को विधान सभा में विरोधी पक्ष के बहुमत संबंधी दावे की परीक्षा किए बगैर, बरखास्त किया गया था । यह दर्शाने के लिए कि प्रतिस्पर्धा की स्थिति में राज्यपालों ने किस प्रकार पक्षपाती भूमिका निभाई है, अन्य राज्यों के उदाहरण भी उपलब्ध हैं ।

हम केवल उम्मीद और विश्वास करते है कि राज्यपाल भारत के संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन शक्तियों को, जो कि राज्य संविधान की धारा 92 से मेल खाती हैं, उसी भावना से इस्तेमाल करेंगे जिसमें अनुच्छेद 356 को बनाया गया था और संविधान सभा में डा० अम्बेडकर के प्रसिद्ध शब्दों में उनका अप्रचलित बने रहना आशयित था । डा० अम्बेडकर ने कहा था, "मैं कह सकता हूं कि मैं इस बात से पूरी तरह इन्कार नहीं करता कि इस अनुच्छेद के दुरुपयोग अथवा राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किए जाने की सम्भावना है । परन्तु उनकी आपत्तियों, संविधान के उस प्रत्येक भाग के लिए लागू है जो केन्द्र को राज्यों पर अभिभावी होने के लिए शक्ति देता है । वास्तव में, मैं कल अभिव्यक्त भावनाओं से सहमत हूं कि वह उम्मीद करना ही उचित होगा कि ऐसे अनुच्छेदों को कभी प्रवृत्त नहीं किया जाएगा और वे अप्रचलित रहेंगे । और यदि प्रवृत्त किया भी जाता है तो मैं उम्मीद करता हूं कि राष्ट्रपति जिसे यह शक्ति दी गई है, राज्य के प्रशासन को वास्तव में निलंबित करने से पहले उचित सावधानी बरतेगा ।" अत: यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 356 अथवा राज्य संविधान की धारा 92, संविधान में आवश्यक बुराइयों की तरह हैं और इन उपबंधों के अधीन किसी कार्रवाई को राज्य के लोगों की लोकतान्त्रिक आकांक्षाओं का नकारने तथा उन्हें लोकप्रिय सरकार से वंचित रखने के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता ।

3.4 से 3.5 अनुच्छेद 200 और 201 राज्य पर लागू नहीं होते ।

3.6 प्रश्न 3.1 से 3.3 के उत्तर देखें ।

3.7 हम आग्रह करते हैं कि अनुच्छेद 124 (4) जैसा उपबंध राज्य संविधान की धारा 27 में शामिल किया जाए जिसमें यह आशोधन हो :—खण्ड (4) में—— "संसद के प्रत्येक सदन के द्वारा" के स्थान पर "विधान मण्डल के प्रत्येक सदन द्वारा" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे और खण्ड 5 में "संसद" के स्थान पर "राज्य विधान मण्डल" प्रतिस्थापित किया जाए । राज्यपालों के कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान करना भी वांछनीय होगी ।

3.8 राज्यपाल के लिए विरोधी पक्षों के बहुमत संबंधी दावों की जांच अथवा इस दावे की जांच अनिवार्य कर दी जाए कि सत्तारूढ़ दल ने केवल सदन में बहुमत खोया है ।

3.9 प्रशासनिक सुधार आयोग ने एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिफारिश की है और राज्यपालों द्वारा विवेक के इस्तेमाल को विनियमित करने के लिए मार्गनिर्देशों के प्रख्यापन की आवश्यकता उसी प्रकार तथा उन्हीं कारणों से आवश्यक, वांछनीय एवं तात्कालिक है जिन से संविधान (52 वां सशोधन) अधिनियम, 1985 पारित किया गया था ।

4.1 से 4.5 प्रश्न 1.2 तथा 3.1 से 3.3 के हमारे उत्तर देखें । हमराज्य संविधान की धारा 92 के उपबंधों की ओर भी ध्यान दिलाना चाहेंगे जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :—

संवैधानिक मशीनरी का ठप्प हो जाना

92. राज्य में संवैधानिक मशीनरी ठप्प होने की स्थिति में प्रावधान ।

(1) यदि किसी समय राज्यपाल सन्तुष्ट हो जाता है कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें राज्य सरकार को इस संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता तो राज्यपाल उद्घोषणा द्वारा :

(क) राज्य सरकार के सभी अथवा किसी कार्य को तथा राज्य में निहित या किसी व्यक्ति अथवा प्राधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली सभी अथवा किसी शक्ति को प्राप्त कर सकता है ;

(ख) ऐसे आनुषंगिक एवं परिणामिक उपबंध बना सकता है जो राष्ट्रपति को उद्घोषणा के लक्ष्यों को कार्यरूप देने के लिए आवश्यक या वांछनीय प्रतीत हो, इसमें राज्य के किसी निकाय या प्राधिकरण के संबंध में इस संविधान के किसी उपबंध को पूर्ण या आंशिक रूप में निलंबित करना भी शामिल है :—

इसमें यह व्यवस्था है कि इस खंड में उल्लिखित किसी बात से राज्यपाल को यह प्राधिकार नहीं मिलेगा कि वह उच्च न्यायालय में निहित या उसके द्वारा प्रयुक्त किसी शक्ति को ग्रहण कर ले, या उच्च न्यायालय से संबंधित इस संविधान के किसी उपबंध के प्रवर्तन को पूर्ण या आंशिक रूप से निलंबित कर दे ।

(2) ऐसी किसी उद्घोषणा को अनुवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहृरित या परिवर्तित किया जा सकता है ।

(3) ऐसी कोई उद्घोषणा चाहे उपधारा (2) के अधीन परिवर्तित की गई हो अथवा नहीं केवल उस स्थिति को छोड़कर जिसमें यह पिछली उद्घोषणा का प्रतिसंहरण करने वाली हो, उस तारीख से जब यह पहली बार जारी की गई थी, छ: मास की समाप्ति पर प्रवृत्त नहीं रहेगी ।

(4) यदि इस धारा के अधीन उद्घोषणा के द्वारा राज्यपाल कानून बनाने संबंधी विधान मण्डल की किसी शक्ति को ग्रहण कर लेता है तो ऐसी शक्ति के इस्तेमाल से उसके द्वारा बनाया गया कानून, उसकी शर्तों के अधीन उस तारीख, जब उद्घोषणा प्रवृत्त न रही हो, से दो वर्ष तक प्रवृत्त रहेगा बशर्ते कि इससे पहले विधान मण्डल के अधिनियम द्वारा इसे निरसित अथवा अधिनियमित न कर दिया गया हो और विधान मण्डल द्वारा बनाए गए कानूनों अथवा इस संविधान में किसी अधिनियम के उल्लेख को ऐसे कानून का उल्लेख माना जाएगा ।

(5) उपधारा (I) के अधीन भारत के राष्ट्रपति की सहमति के बगैर कोई उद्घोषणा जारी नहीं की जाएगी ।

(6) इस धारा के अधीन प्रत्येक उद्घोषणा को केवल उस उद्घोषणा को छोड़कर, जिसमें पिछली उद्घोषणा का प्रतिसंहरण किया गया हो, विधान मण्डल के प्रत्येक सदन में ज्यों ही उनका अधिवेशन बुलाया जाएगा, रखा जाएगा ।

हमारा सुझाव है कि अनुच्छेद 356 अथवा राज्य संविधान की धारा 92 को निम्नलिखित तक सीमित कर दिया जाए :

(i) ऐसी स्थिति जिसमें सरकार बनाने के सभी संभावित उपाय असफल हो गए हों और विधान सभा भंग कर दी गई हो :

यहां भी उद्घोषणा की अधिकतम अवधि 3 महीने होनी चाहिए जिसके अन्दर नए चुनाव कराना आवश्यक हो ।

(ii) राज्य में कानून और व्यवस्था के पूरी तरह ठप्प हो जाने की स्थिति :

केन्द्र के हस्तक्षेप से पहले अन्तंराज्यीय परिषद् से परामर्श अवश्य किया जाना चाहिए ।

विधान सभाओं को "निलंबित स्थिति" में रखने की प्रथा समाप्त की जाए।

संविधान में संशोधन किया जाना चाहिए जिसमें इस प्रकार भंग होने की स्थिति में संसद या राज्य विधान सभाओं के भंग होने के अधिक से अधिक 3 महीने के अन्दर चुनाव कराना अनिवार्य कर दिया जाए।

4.6 से 4.7 हमारा विचार है कि इस प्रश्न में उठाई गई अन्य बातों के साथ साथ शिकायतों को दूर करने के संबंध में सिफारिश करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन अंतर्राज्य परिषद् की स्थापना अत्यंत वांछनीय होगी। प्रश्न 4.7 में उल्लिखित एजेंसियों की भूमिका की आलोचना में काफी औचित्य है।

4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर राज्यों को अधिक नियंत्रण देने संबंधी मांग न्यायसंगत है।

4.9 अनुच्छेद 355 के सही एवं सटीक निर्माण से स्वत: ही केन्द्रीय हस्तक्षेप केवल बाहरी आक्रमण की स्थिति में उचित होगा। जहां तक आंतरिक अशांति का प्रश्न है केन्द्र सरकार को राज्य सरकार के परामर्श से ही कार्य करना चाहिए।

4.10 प्रसारण को एक मात्र संघ के अधिकार क्षेत्र में रखने का कोई औचित्य नहीं है। राज्यों के लोगों को अधिकार है कि वे राज्य सरकारों के दृष्टिकोणों का भी फायदा उठा सकें।

4.11 और 4.12 हमारा ऐसा मत है कि अन्तर्राज्य परिषद् के स्थापित होने से वह संघ और राज्यों तथा राज्यों के बीच में आपसी शिकायतों को दूर करने और मनमुटावों को कम करने में सहायता मिलेगी। हम प्रशासनिक सुधार आयोग की जून, 1969 की रिपोर्ट में की गई सिफारिशों और अंतर राज्य परिषद् पर बंगलूर संकल्प से सहमत हैं।

सिफारिश की जाती है कि :—

1. परिषद् में प्रधानमंत्री और सभी मुख्य मंत्री होने चाहिए;
2. इसमें राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर विचार विमर्श होना चाहिए ;
3. इसे ऐसे विभिन्न कार्यालयों और संस्थानों में महत्वपूर्ण कार्मिकों की नियुक्ति के लिए एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाए जोकि संघ राज्य के संबंधों में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। जैसे राज्यपाल, चुनाव आयोग, योजना आयोग अथवा वित्त आयोग। यह सिफारिश की गई थी कि यह विशिष्ट कार्य एक ऐसी समिति के द्वारा निष्पादित किया जाए जिसमें कुछ सदस्य अंतर राज्य परिषद के हों और कुछ स्वतंत्र व्यक्ति हों जिनका सहयोजन परिषद के द्वारा मतैक्य के आधार पर किया जाए;
4. अंतर राज्य परिषद का अपना ही एक स्वतंत्र सचिवालय होना चाहिए।

निरंकुश शासन के विरुद्ध राज्य की स्वतन्त्रता के आंदोलन का मार्गदर्शी सिद्धांत, जिसे सामूहिक रूप से नया—कश्मीर स्वतंत्रता कार्यक्रम कहा जा सकता है और जो राज्य संविधान की धारा-3 के भाग IV में प्रतिष्ठापित हुआ है, में यह विचार किया गया है कि राज्य में लोगों के अधिक कल्याण के लिए समाज की समाजवादी व्यवस्था कायम करनी चाहिए :—

धारा 15 में यह विचार किया गया है कि राज्य किसानों तक आधुनिक और वैज्ञानिक अनुसंधान तथा तकनीकों के लाभ पहुंचाकर कृषि और पशुपालन को संगठित और विकसित करने का प्रयास करेगा जिससे ग्रामीण लोगों के रहन सहन के स्तर में शीघ्र सुधार तथा संपन्नता सुनिश्चित की जा सके।

धारा 16 में इस बात पर ध्यान दिया गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए उपाय करेगा तथा उन्हें वे सभी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो स्वायत्त शासन के एक एकक के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हों।

धारा 17 में यह विचार किया गया है कि पुन: स्थापना के लिए राज्य अपने मशहूर हस्त-शिल्पों और कुटीर उद्योगों का मार्गदर्शन करेगा और उन्हें बढ़ावा देगा, सस्ती ऊर्जा के नियोजन सहित उत्पादन के तरीकों और तकनीकों को परिष्कृत और आधुनिक बनाने के लिए सुविचारित कार्यक्रम शुरू करेगा और उनका निष्पादन करेगा ताकि कार्य की अनावश्यक नीरसता और कठिन परिश्रम समाप्त हो सके और उत्पाद के कलात्मक मूल्य में वृद्धि हो और इसके साथ-साथ वैयक्तिक प्रतिभा और पहल को प्रोत्साहन और विकास का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाए।

धारा 18 में यह विचार किया गया है कि राज्य लोक सेवाओं में कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग रखने के लिए कदम उठाएगा, तथा एक ऐसी न्याय प्रणाली का प्रबंध करेगा जो मानवोचित, सस्ती, निश्चित रूप से वस्तुपरक तथा निष्पक्ष हो, जिससे न्याय हो और न्याय होता हुआ लगे तथा आगे न्याय के विभिन्न अंगों, प्रशासन तथा लोकोपयोगिता की कार्यकुशलता, निष्पक्षता और ईमानदारी को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा।

धारा 19 में यह विचार किया गया है कि राज्य, अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर निम्नलिखित बातों को सुनिश्चित करने के लिए कारगर व्यवस्था करेगा :—

(क) सभी स्थायी निवासियों, पुरुषों और महिलाओं को समान रूप से कार्य करने के समान अधिकार प्राप्त हों, अर्थात् श्रम की गुणवत्ता के अनुसार पारिश्रमिक वाले गारंटीकृत काम प्राप्त करने का अधिकार और गुणवत्ता विधि के द्वारा सुव्यवस्थित मूलभूत न्यूनतम और अधिकतम मजदूरी के अधीन होगी;

(ख) कि कामगारों, पुरुषों और महिलाओं तथा कम उम्र के बच्चों के स्वास्थ्य तथा शक्ति का दुरुपयोग न हो तथा स्थायी निवासियों को आर्थिक जरूरतों के कारण मजबूरी में पुरुष, महिला को आयु अथवा शक्ति के अनुपयुक्त पेशा न अपनाना पड़े;

(ग) कि सभी कामगारों, खेतिहर मजदूरों, औद्योगिक श्रमिकों अथवा अन्य प्रकार के कामगारों को समुचित, न्यायोचित तथा मानवोचित काम के हालात मिलें जिसमें उन्हें भरपूर मनोरंजन तथा सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अवसर भी हों;

(घ) राज्य के खर्च पर सामाजिक बीमा, चिकित्सा सहायता, अस्पताल, सैनिटोरियम तथा स्वास्थ्य लाभ स्थानों की व्यवस्था करके सभी स्थायी निवासियों के लिए वृद्धावस्था, बीमारी, विकलांगता, बेरोजगारी और अनर्जित जरूरत के अन्य मामलों में भरण पोषण की पर्याप्त व्यवस्था हो।

धारा 20 में यह विचार किया गया है कि राज्य निम्नलिखित के लिए प्रयास करेगा :—

क. प्रत्येक स्थायी निवासी के लिए विश्वविद्यालय स्तर तक मुफ्त शिक्षा के अधिकार की व्यवस्था करना;

ख. इस संविधान के लागू होने से 10 वर्ष की अवधि में 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था; और

ग. यह सुनिश्चित करना कि सभी कामगारों और कर्मचारियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा और अंशकालिक तकनीकी, पेशेवर और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की पूर्ण सुविधाएं हैं।

धारा 21 में यह विचार किया गया है कि राज्य निम्नलिखित का प्रबंध करने का प्रयास करेगा :—

क. पर्याप्त चिकित्सा और देखरेख के साथ प्रत्येक बच्चे को सुखी बचपन बिताने का अधिकार; और

ख. सभी बच्चों और युवकों को शिक्षा तथा रोजगार के समान अवसर, शोषण और नैतिक या शारीरिक समर्पण से सुरक्षा।

धारा 22 में यह विचार किया गया है कि राज्य सभी महिलाओं के लिए इन सभी बातों का प्रबंध करने का प्रयास करेगा :—

क. समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार;

ख. प्रसूति संबंधी लाभों का अधिकार तथा सभी रोजगारों में पर्याप्त चिकित्सा व्यवस्था;

ग. समुचित भरण-पोषण का अधिकार, यह अधिकार उन विवाहित महिलाओं को भी प्रदान किया जाएगा जिनको तलाक दे दिया गया है अथवा जिनका परित्याग कर दिया गया है;

घ. समस्त सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक तथा विधिक मामलों में पूर्ण समानता का अधिकार;

ङ. अशिष्ट व्यवहार, मानहानि, गुण्डागर्दी तथा अन्य प्रकार के दुराचरण से विशेष सुरक्षा ।

धारा 23 में यह विचार किया गया है कि राज्य, सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े वर्गों के लोगों को उनकी शिक्षा, भौतिक तथा सांस्कृतिक हितों के संवर्धन के लिए विशेष देखभाल और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उन्हें सुरक्षा प्रदान करेगा ।

धारा 24 में बताया गया है कि राज्य, उन्नत लोकस्वास्थ्य विज्ञान के द्वारा और स्वच्छता के माध्यम से बीमारियों की रोक थाम करके, महामारी और कीटाणुओं पर नियंत्रण करके, प्रचार तथा अन्य प्रकार के उपायों से लोगों के स्वास्थ्य के बचाव तथा स्वास्थ्य संवर्धन के लिए हर संभव प्रयास करेगा तथा यह सुनिश्चित करेगा कि सम्पूर्ण राज्य में विशेषकर दूरवर्ती और पिछड़े हुए क्षेत्रों में विस्तृत एवं प्रभावकारी एवं निःशुल्क चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध हैं ।

धारा 25 में यह विचार किया गया है कि राज्य, अज्ञानता, अंधविश्वास, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, सांस्कृतिक पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए संघर्ष करेगा और धर्म निरपेक्ष राज्य के तत्वावधान में समस्त समुदायों के बीच भाईचारे और समानता को प्रोत्साहित करने का प्रयास करेगा ।

आपको स्मरण होगा कि अंगीकार पत्र के अधीन डोमिनियन विधान मंडल को केवल रक्षा, विदेशी मामलों, संचार, डोमिनियन विधान मंडल के चुनाव से संबंधित आनुषंगिक मामलों से सम्बद्ध कानून बनाने के लिए शक्तियां प्रदान की गई थीं जैसा कि अंगीकार पत्र की अनुसूची में उल्लिखित है । तत्पश्चात् 1952 के दिल्ली करार में हालांकि संघ और राज्य के बीच किसी प्रकार की वित्त संबंधी व्यवस्था को जरूरत को महसूस किया गया था परंतु इस मुद्दे को विस्तृत और विषयपरक परीक्षण के लिए खुला छोड़ दिया गया था ।

हमारा विश्वास है कि प्रश्न 5.2 के भाग V में सुझाए विकल्पों में से निम्नलिखित के संयोजन को स्वीकार किया जाना चाहिए :—

क. संघ और राज्यों के राजकोषीय संबंधों का पूर्णरूप से विभाजन, साधनों के अंतरण की योजना की समाप्ति और इसकी बजाय सातवीं अनुसूची की सूची II में अधिक कराधान शीर्षों का अंतरण ।

ख. अधिक केन्द्रीय कर जैसे निगम कर, सीमा शुल्क, आय कर पर अधिभार आदि को बांटे जाने योग्य पूल में लाना ।

ग. संघ के कर राजस्व को छोड़कर अन्य वित्तीय साधनों को भी केन्द्र और राज्यों के बीच बांटा जाए ।

यहां पर योजना आयोग की भूमिका का उल्लेख करना भी संगत होगा जो कि एक संविधानेतर प्राधिकरण है और जो अपना कार्य करते समय किसी भी विधायी पैरामीटर अथवा मार्गनिर्देशों से नियंत्रित नहीं होता । क्योंकि इसे बहुत अधिक वित्तीय शक्तियां प्राप्त हैं, इसलिए सभी राज्यों के प्रशासन पर इसका प्रभाव व्यापक रूप से है । राज्य सरकार को व्यय की प्रत्येक छोटी से छोटी मद और सहायता के लिए इसका अनुमोदन और स्वीकृति प्राप्त करनी होती है और इस प्रकार यह न केवल राज्यों की योजनाओं के निर्माण अपितु उनके निष्पादन पर भी नियंत्रण रखता है । अतः यह घोर अनुचित तथा केन्द्र के पक्ष में वित्तीय साधनों के इकतरफे बंटवारे के अलावा, राज्यों के लिए वित्तीय विनिधान की कार्यविधि भी अत्यंत मनमाने ढंग की है तथा समय-समय पर विकास सम्बंधी आवश्यकताओं के प्रति इनकी स्पष्ट असंवेदनशील दिखाई देती है । संघ और राज्यों के मध्य इसी वित्तीय व्यवस्था के परिणामस्वरूप कि राज्य संविधान के भाग IV में उल्लिखित नया कश्मीर का स्वप्न अधूरा रहा है ।

आर्थिक सामाजिक योजना और उद्योगों के संबंध में हमारा यह विश्वास है कि समवर्ती अनुसूची की सूची I की 52 वीं प्रविष्टि को केन्द्र ने संविधान की सही भावना के अनुरूप ग्रहण नहीं किया है और उद्योग जो कि मूलरूप से यह राज्यों का विषय है, उसे संघ के विषय के रूप में परिवर्तित कर दिया है । लगभग सभी (अस्पष्ट) उद्योगों को लोकहित के नाम पर संघ के नियंत्रण में लाया गया है । राज्यों के और अधिक तथा तीव्र विकास के लिए एवं उनके प्रति अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्यों को इनका और अधिक नियंत्रण दिया जाए ।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए हम प्रश्नावली के प्रश्नों पर बारी बारी से विचार करते हैं :—

5.1 जहां तक केन्द्र से राज्य को निधियों के अंतरण का प्रश्न है केन्द्रीय करों का आंशिक हस्तांतरण तथा आंशिक रूप से सहायता अनुदान ठीक ही रहा है । आठवें वित्त आयोग ने हमारे जैसे घाटे वाले राज्यों के लिए 5% केन्द्रीय उत्पाद शुल्क रख कर विशेष रूप से सराहनीय कार्य किया है ।

5.2 संघीय प्रजातांत्रिक ढांचे में "दाता" और "प्राप्तकर्ता" की संकल्पनाओं को संभवतः गलत समझा गया है, हालांकि दाता और प्राप्तकर्ता के वित्तीय संबंध अब भी बने हुए हैं, फिर भी संविधान द्वारा राज्यों के लिए निर्धारित किए राजस्व के अवसरों के मुकाबले केन्द्र के लिए निर्धारित राजस्व अवसर कहीं अधिक और लचीले हैं । कई कारणों से उत्पन्न बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानताओं के कारण हुआ । केन्द्रीय कर जिनके अधिकतर भाग को अपेक्षाकृत कम राज्यों से प्राप्त किया जाता है तथा जिन्हें वित्त आयोग की रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के अनुसार सभी राज्यों में बांट दिया जाता है, वह देश के अधिक गरीब राज्यों के लिए परोपकारी निधि में नहीं है । यह स्मरण रहे कि अधिक गरीब राज्य भी एक उपभोक्ता राज्य है । देश के उत्पादन केन्द्र जो कुछेक राज्यों में अपनी लाभप्रद स्थिति के कारण केन्द्रित हैं, उपभोक्ता राज्यों की मण्डी के धन पर ही जीवित है और इस प्रकार वे भी राष्ट्रीय उत्पादन के केन्द्र हैं । उपभोक्ता राज्य इस प्रकार से उत्पादन केन्द्रों के सृजन में अप्रत्यक्ष रूप से मदद करते हैं । धनवान राज्यों की नकदी जमा अनुपात पर सरसरी नजर डालने से पता चलता कि यह राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है जबकि पिछड़े हुए राज्यों में यह अनुपात बहुत ही कम है । दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि एक प्रदेश में की गई बचत दूसरे प्रदेश के विकास के लिए संस्थानात्मक वित्त उपलब्ध कराती है और इसलिए इस वित्त से सृजित उत्पादन केन्द्रों को राष्ट्रीय उत्पादन केन्द्र मानना चाहिए । इसलिए न कोई देता है और न कोई लेता है । अधिक गरीब राज्यों को जो कुछ मिलता है, वह अप्रत्यक्ष रूप से उन्हीं से ही प्राप्त किया हुआ होता है ।

5.2 (क, ख) हम सब और राज्यों के राजकोषीय संबंधों के पूर्ण विभाजन के पक्ष में कम से कम उस समय तक नहीं हैं जब तक कि समस्त राज्यों के संतुलित और समान विकास के द्वारा उनमें विद्यमान घोर आर्थिक असमानताएं समाप्त न हो जाएं । हम "सूची II में कुछ और लोचदार कराधान शीर्षों" को अंतरित करने का समर्थन भी नहीं करते ।

(ग) हम इस विचार के पक्ष में भी नहीं हैं कि कर लगाने की समस्त शक्तियों को संघ सूची में हस्तांतरित कर दिया जाए और संघ और राज्य के हिस्से का उल्लेख संविधान में ही किया जाए । राज्यों के पास कर लगाने की सीमित शक्तियां है तथा सिर्फ बिक्री कर को छोड़कर राज्य सूची के अन्य कर लचीले नहीं हैं । कुछ कर जैसे बिक्री कर ऐसे कर है जो गंतव्य स्थान के

पर आधारित है और क्रमागत आदि के कारण सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कई विकृतियां पैदा हो जाएंगी । इसलिए दूसरी ओर इससे कोई विशेष लाभ भी नहीं होगा और यह देश की संघीय संरचना पर एक प्रहार होगा ।

(घ, ङ) हां, जिन राज्यों से करों को वसूल किया गया है, उन सभी करों को उनके विभाजन पूल में रखा जाए । उन्हें इससे बाहर रखने का कोई औचित्य नहीं है । इन्हें केन्द्रीय पूल से अलग स्वीकार करने से एक प्रवृत्ति विकसित हुई है कि बांटे न जाने योग्य अधिप्रभार और विशेष शुल्क को बढ़ा दिये जाते हैं तथा बांटे जाने योग्य मूल शुल्क को स्थिर रखे जाते हैं ।

5.3 यदि राज्यों को अधिक वित्तीय शक्तियां प्रदान करने का यह तात्पर्य है कि राजस्व के लोचदार स्रोतों के हिस्से की वसूली के साथ जोड़ा जाए तो हम निश्चित रूप से इस विचार से सहमत हैं । यहां यह स्मरण रहे कि राज्य में कर वसूली का बहुत बड़ा हिस्सा राज्य के बाहरी उपभोक्ताओं को दिया जाता है । इसलिए केन्द्र का यह दायित्व है कि वह असंतुलन और असमानताओं को समाप्त करने के लिए अधिक गरीब राज्यों की जरूरतों को देखे और पूरा करे ।

5.4 पिछले प्रश्न में निर्धारित लक्ष्यों को केन्द्र कराधान, धनवान राज्यों द्वारा केन्द्रीय पूल को सहायता और बेहतर व्यय नियंत्रण के माध्यम से प्राप्त करेगा । घाटे की वित्त व्यवस्था को अंतिम साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाए और उसे नियंत्रणीय सीमाओं में रखना होगा ।

5.5 यह हकीकत है कि अंतरणों की वर्तमान क्रियाविधि गरीब राज्यों और अमीर राज्यों के बीच में संसाधनों के बंटवारे की असमानता के अंतर को समाप्त करने में अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं हुई है । ऐसा मुख्य रूप से इसलिए है कि कर आदि के हिस्सों का बंटवारा करते समय लगभग समान मानदण्ड को अपनाया जाता है । एक मात्र प्रतिव्यक्ति आय के आधार पर एक प्रदेश के पिछड़ेपन को निर्धारित नहीं किया जा सकता । भौगोलिक परिस्थितियों, विकास की लागत, क्षेत्र, संचार की सुविधाओं, आधारिक संरचना की सुविधाओं आदि को बहुत कम महत्व दिया जाता है । आठवें वित्त आयोग ने भी स्वीकार किया है कि हमारे जैसे राज्य में पूंजीगत परिसम्पत्ति के सृजन अथवा उसके अनुरक्षण की लागत 30% अधिक है । इसलिए हम यह सुझाव देते हैं कि हमारे राज्य के लिए अंतरण का निर्धारण करते समय, निम्नलिखित तथ्यों पर भी विचार करना चाहिए :

	भारिता
क. प्रति व्यक्ति आय	10
ख. क्षेत्र	15
ग. भौगोलिक परिस्थितियां	30
घ. विकास की लागत	15
ङ. संचार सुविधाएं	10
च. आधारिक संरचना की सुविधाएं . . .	0
छ. जनसंख्या	10

निर्धारित नीति की रूपरेखा के अंतर्गत योजना आयोग समुचित रूप से ठीक कार्य कर रहा है । हमारे जैसे अधिक गरीब राज्यों के मामलों में वित्त प्रणाली में परिवर्तन करना होगा । विशेष श्रेणी के रूप में वर्गीकृत हमारे राज्य के साथ अलग किस्म का बर्ताव किया जाता है । विशेष श्रेणी वाले राज्यों के लिए वित्त प्रणाली के मामले में जैसा कि सर्वविदित है 90% अनुदान तथा 10% ऋण का अनुपात है परंतु हमारे मामले में यह 70% ऋण तथा 30% अनुदान है ।, मूलधन और उस पर ब्याज की दर की चुकौती में वृद्धि होती रहती है तथा मुख्य रूप से इन्हीं के कारण संसाधनों का अंतर बढ़ता जाता है । वित्त की इस प्रणाली ने हमारी योजना को गतिहीन बना दिया है क्योंकि योजना आयोग को हमारे गैर योजना संसाधनों के अंतराल के लिए भी व्यवस्था करनी पड़ती है और इस व्यवस्था के लिए हमारी योजना को कीमत चुकानी पड़ती है । यह वित्त प्रणाली ऊपरी तौर पर आकर्षक है परंतु वास्तव में हमारे लिए उतनी लाभकर नहीं है ।

हमने अपने राजस्व में वृद्धि करने के लिए अत्यंत कड़े प्रयास किए हैं । पांचवीं और छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान इन दोनों योजनाओं के कर आधार के आधार वर्ष पर हमारी औसतन विकास दर क्रमशः 15% तथा 11% रही है । यह प्रयास गतिशील प्रक्रिया है तथा योजना आयोग के द्वारा भी इस पर ध्यान दिया गया है । परन्तु हमारे जैसे राज्य के कर प्रयासों का मूल्यांकन एकमात्र विकास दर के प्रतिशत के आधार पर नहीं करना चाहिए । जिन तथ्यों के अंतर्गत हमारी तरह के कम उपभोक्ता राज्य की कर प्रणाली कार्य करती है उन पर विचार करना चाहिए । हमें व्यापार की दिशा परिवर्तन का भय हमेशा लगा रहता है क्योंकि जिस ढंग से केन्द्र के बिक्री कर और अन्य राज्यों द्वारा कर क्रय के उगाहने में विकास हुआ उसके कारण कर में कटौती भी उत्तरोत्तर कम हो रही है ।

कर प्रणाली के प्रबंध में कार्यकुशलता तथा बचत का निर्धारण एकमात्र वसूली की लागत के आधार पर करना चाहिए ।

5.6 यह बात नहीं है कि वित्त आयोग तथा योजना आयोग इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है लेकिन, यदि देश के सब राज्यों का एक समान विकास करने का उद्देश्य है तो हमारे जैसे गरीब राज्यों के प्रति रवैये में परिवर्तन करना होगा ।

5.7 हम इस विचार के पक्ष में नहीं हैं कि केन्द्रीय कराधान शक्तियों का हस्तांतरण राज्यों को कर दिया जाए । हमारे संविधान निर्माताओं ने वर्तमान प्रणाली को बड़े ही विवेकपूर्ण ढंग से तैयार किया है तथा इसे बनाए रखने की आवश्यकता है । अपेक्षाकृत सम्पन्न राज्यों के दबाव में आकर कराधान शक्तियों से संबंधित ढुलमुल नीति में वृद्धि नहीं करनी चाहिए, ऐसा करने से असमानताएं बढ़ेंगी । इस संबंध में केन्द्रीय विक्रय कर का विकास एक विशिष्ट उदाहरण है ।

दोहरे कराधान को समाप्त करने के प्रयोजन से ही केन्द्रीय विक्रय कर को शुरू किया गया था और कर की दर को जानबूझ कर 1% कम रखा गया था । यह कर राज्यों को दे दिया गया था जो इसकी वसूली करते थे और चूंकि इसकी दर भी बहुत कम थी, इसलिए किसी ने भी इसकी ओर ध्यान नहीं दिया । निर्माता राज्यों ने शीघ्र ही इस कर की ओर राजस्व आय साधन के रूप में ध्यान दिया तथा केन्द्र पर दबाव डाला कि इस कर की दरों में वृद्धि की जाए । दुर्भाग्यवश, केन्द्र ने उनकी बात मान ली थी तथा वर्तमान दरें 4% तथा 10% हैं जो कि इस बात पर निर्भर करती है कि विक्रय पंजीकृत अथवा गैर पंजीकृत व्यापारी को किया गया है । केन्द्रीय विक्रय कर की आय 1964-65 में 63.10 करोड़ रुपए से बढ़कर 1976-77 में 465.10 करोड़ रुपए हो गई है । इस कर की वसूली विशेषकर हमारे जैसे उपभोक्ता राज्यों में रहने वाले लोगों में से निर्माता राज्यों से की जाती है । इस कर का मूल रूप से जो उद्देश्य सोचा गया था, वह पूरी तरह से समाप्त हो गया है । वस्तुतः अब इसके विपरीत उद्देश्य हैं ।

यह कर निर्माता राज्यों के लिए राजस्व आय का साधन बन जाने के कारण इससे राज्यों में असमानताओं की ओर बढ़ाया है । इसके अलावा राजस्व जिसे निर्माता राज्य, राज्य के बाहर के राज्य के उपभोक्ताओं से प्राप्त करता है, इस कर ने हमारे क्षैतिज और ऊर्ध्वाकार दोनों कर आधारों में वृद्धि करने की संभावना को भी कम कर दिया है ।

अब हमें इस गलती को सुधारना चाहिए और असमानता के अंतर को पूर्ति के लिए हमारी तरह के गरीब राज्यों के बीच में संभावित संवितरण के लिए केन्द्रीय विक्रय कर से होने वाली आय का 50% भाग केन्द्रीय पूल में जाना चाहिए । इसका विकल्प यह है कि केन्द्रीय विक्रय कर की दर को घटा कर 2% कर दिया जाए जैसा कि संविधान में भी उल्लिखित है ।

आठवें वित्त आयोग ने घाटे वाले राज्यों में वितरण करने के लिए 5% उत्पादन राजस्व को अलग रखा है । इस व्यवस्था से हमारा राज्य लाभग्राही है । हालांकि यह प्रशंसनीय है फिर भी हमें इससे थोड़ा ही लाभ पहुंचा है, हमारे संविधान के अनुच्छेद 275 के अंतर्गत सहायता अनुदान के प्रयोजनों के लिए उस 5% केन्द्रीय उत्पादन राजस्व के अंतरण को ध्यान में रखने के बाद हमारे संसाधनों के अंतराल का आकलन किया गया है । वित्त आयोग ने यदि इस प्रकार के साधन को नहीं अपनाया होता तो अनुच्छेद 275 के अधीन हमें धन मिलता । न्यूनतम लाभ इस असलियत के कारण से है कि अनुच्छेद 276 के अधीन अनुदान

जबकि स्थिर रहता है, कर के बढ़ने से आमतौर पर उस कर के हिस्से में वृद्धि हो जाती है। इसलिए हम यह सुझाव देंगे कि यह 5% उत्पादन राजस्व हमारे पास अनुपूरक सहायता के रूप में आए जिसका संसाधनों के अंतराल से कोई संबंध न हो। इस राशि को हम विकासशील परियोजनाओं पर खर्च कर सकते है।

5.8 हमने पहले ही कहा है कि हम केंद्र और राज्यों के "कराधान संबंधी कार्यों" में किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं है जैसा कि हमारे संविधान में उल्लिखित है। हम एक मात्र अंतरण की क्रियाविधि में परिवर्तन चाहते है जिससे कि असमानताओं को कम किया जा सके।

5.9 इस संबंध में हम यथापूर्व स्थिति की अधिक पसंद करते हैं। जैसा कि संविधान में उल्लिखित है एक राज्य स्थायी वित्त आयोग की बजाय अस्थायी वित्त आयोग से अधिक लाभ महसूस करता है (यदि वह स्थापित हो जाए) सबसे महत्वपूर्ण यह है कि अपेक्षाकृत कम से कम हस्तक्षेप किया जाए। चूंकि संदर्भित प्रश्न के अंतर्गत उल्लिखित प्रस्ताव में वित्त के कार्यों को तथा योजना आयोग के कार्यों को परस्पर अपवर्जक रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। इस प्रकार की परिस्थिति में एक दूसरे डोमिनियनों में अतिव्याप्ति तथा हस्तक्षेप करना स्वाभाविक है।

5.10 व्यय की योजना तैयार करते समय वित्त आयोग अनुदान के अंतर्गत होने वाले अंतरण को हमेशा ध्यान में रखा जाता है। परंतु इस प्रकार के अंतरण से राज्य में लोक व्यय की विषमताएं संकुचित नहीं हुई हैं। इसलिए हमने ऊपर सुझाव दिया है कि हमारे राज्य की तरह गरीब राज्यों के लिए अधोलिखित मूल दर्शन प्रणाली को बदलना चाहिए।

5.11 यह कहना सही नहीं होगा कि अतिरंजित राजस्व घाटे के अर्थों में इस व्यवस्था में वित्तीय उच्छृंखलता तथा अविवेक की विशेषताएं जुड़ी हुई हैं। यह संघ और राज्यों के बीच बहुधा पारस्परिक अविश्वास का मामला है। इस स्थिति में पिछड़ी हुई सूचना व्यवस्था भी अपनी भूमिका निभाती है। विभिन्न स्तरों पर सूचनाओं के कम्प्यूटरीकरण से अच्छा परिवर्तन अब भी दिखाई देने लगा है।

5.12 हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि वस्तुतः आठवें वित्त आयोग ने पहले से ही इसे चालू कर दिया है। वास्तव में सहायता अनुदान वित्त आयोग द्वारा निर्धारित संसाधन अंतर के अलावा होना चाहिए और इसका उपयोग धनवान और गरीब राज्यों के बीच असमानताओं को दूर करने की युक्ति के रूप में किया जाना चाहिए।

5.13 प्रश्न (5.12) के उत्तर की पृष्ठभूमि में हम (ii) और (iii) प्रस्तावों से सहमत हैं।

5.14 कोई भी राजस्व, चाहे वह कर हो अथवा कर से इतर हो, को विभाजन पूल में नहीं जोड़ना चाहिए, इससे केवल धनवान और गरीब राज्यों के बीच का अंतर और बढ़ेगा। एक विशेष निधि के निर्माण की आवश्यकता है जिसमें विशेष "बीअरर" बांड और अन्य साधन (कर और कर से इतर शीर्ष) जिसमें अभी तक भागीदारी नहीं की जाती थी, से अर्जित न्यूनतम 50% राजस्व को पूल किया जाए और हमारे जैसे गरीब राज्यों में बांटा जाए।

5.15 हां।

5.16 हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि प्रतिशतता के अर्थ में केन्द्र से राजस्व प्राप्तियों के अंतरण में गिरावट की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। राष्ट्रीय लोक नीति एवं वित्त संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित केन्द्र सरकार के व्यय, के एक अध्ययन के अनुसार वस्तुतः इसमें बढ़ोतरी की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। लेकिन यह एक तथ्य है कि हमारे जैसे राज्यों का स्थिर असंतुलन बढ़ रहा है और इसका एक मुख्य कारण केन्द्र की वित्त प्रणाली है।

5.17 अपने ही मामले में यह सब केन्द्र की वित्त प्रणाली के कारण से आ है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि हमारा राज्य विशेष श्रेणी राज्य के रूप में वर्गीकृत किया जा चुका है, फिर भी हमारे ऊपर (90% अनुदान तथा 10% ऋण) की वित्त प्रणाली लागू नहीं है। सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान हमने केन्द्र को 380.50 करोड़ रुपए तथा इस पर ब्याज की चुकौती की है। सातवीं योजना के लिए योजना आयोग के द्वारा निर्धारित की गई (438 करोड़ रुपये) राशि की यह मात्रा संसाधनों के अंतराल को कम करने के लिए बहुत सीमित है। यदि हमारे ऊपर (90% अनुदान और 10% ऋण) की वित्त प्रणाली लागू कर दी जाती है तो संसाधनों के अंतराल का समूल नष्ट हो जाएगा।

5.18 हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। वास्तव में भारतीय रिजर्व बैंक इस संबंध में उचित कार्य कर रहा है।

5.19 यदि यही बात है तो विदेशी उधारदाता को भुगतान करने के लिए वास्तविक रूप से जिस दर की आवश्यकता पड़ती है उससे अधिक परिवर्तन करने का केन्द्र का कोई औचित्य नहीं है। राज्य को विदेशी क्रेडिट उसी दर पर उपलब्ध होगा जिस दर पर वित्त उधारदाता को उपलब्ध कराता है।

5.20 हमने पहले ही कहा है कि भारतीय रिजर्व बैंक इस दिशा में उचित कार्य कर रहा है। ऋण परिषद स्थापित करने पर अतिरिक्त व्यय करने की आवश्यकता नहीं है।

5.21 भारतीय रिजर्व बैंक के साथ हमारी इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार का अनुमोदन प्राप्त करने पर 10 करोड़ में वृद्धि करने के लिए हमारे राजस्व साधन की व्यवस्था जम्मू और कश्मीर बैंक लिमिटेड के साथ है तथा इस सुविधा का प्रबंध विवेकपूर्ण तथा कार्यकुशलता से किया जा रहा है।

5.22 जहां तक हमारे राज्य का प्रश्न है, यह विचार सही नहीं है। हमारा यह अनवरत प्रयास रहा है कि राजस्व के उपलब्ध सभी संसाधनों में संयोजन बना रहे। संविधान में सैंतालीसवें संशोधन के होने से बहुत पहले ही हमने सेवाओं और हमारे बिक्री कर कानून के अधीन आने वाली संविदाओं पर कर बढ़ा दिया था।

5.23 विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों और भारत सरकार के वरिष्ठ मंत्रियों के बयानों के आधार पर सहमत हुआ जा सकता है। फिर भी, जिस प्रकार भारत सरकार पिछले दो वर्षों से इस स्थिति का सामना कर रही है उससे हम संतुष्ट हैं। हम केवल यह उम्मीद करते हैं कि यह प्रयास निरंतर जारी रखे जाएंगे।

5.24 अनुच्छेद 268 और 269 में लिखित कर और शुल्कों की वसूली भारतीय समेकित निधि का हिस्सा नहीं है अपितु वे राज्य के लिए निर्धारित है इसलिये यह आवश्यक है कि संघ संविधान के उक्त अनुच्छेद में उल्लिखित करों और शुल्कों को लगाने या उनकी दर संरचना में परिवर्तन करने में या उन्हें समाप्त करने के लिए विधेयक लाने से पहले इस संबंध में राज्य सरकार के विचारों का पता लगाए।

5.25 हां, हम यह भी महसूस करते हैं कि संविधान के इस उपबंध का पूरा लाभ नहीं उठाया गया है। केन्द्र की उदासीनता के कारण के रूप में बहुधा यह तथ्य बताया जाता है कि इस अनुच्छेद के अंतर्गत शुल्कों की निवल प्राप्तियां राज्य के लिए निर्धारित की गई हैं। यदि इस अनुच्छेद का लाभ उठाने के लिए गंभीर प्रयास किए जाएं तो बहुत सी कड़वाहट स्वयं ही खतम हो जाएगी।

5.26 हम प्रश्न में उल्लिखित राज्यों के दृष्टिकोण का पूर्ण रूप से समर्थन करते हैं, इस तथ्य को देखते हुए कि यह अनुदान प्रायः स्थिर रहा है, हम निवल रूप में उस राशि से कम प्राप्त कर रहे हैं जो पांचवें दशक के अंत से हमें मिल रही थी। इसे बढ़ाया जाना चाहिए और रेल भाड़े में बढ़ोतरी के साथ इसे जोड़ जाए।

5.27 संभव है इन संघ राज्यों को केन्द्रीय करों में वृद्धि का लाभ न मिल रहा हो, किंतु हम इस तथ्य से मुंह नहीं मोड़ सकते कि केन्द्र सरकार इन संघ राज्यों पर एक बहुत बड़ी राशि खर्च करती है। वस्तुतः हम ऐसा महसूस करते है कि यह संघ राज्य केन्द्र सरकार के बिगड़े हुए बच्चे हैं, इसलिए हम इस संबंध में किसी भी परिवर्तन के पक्ष में नहीं हैं।

5.28 वर्तमान व्यवस्था समुचित रूप से ठीक काम करती रही है, बहुधा सुनने में आयी एक शिकायत यह है कि पीड़ित लोगों को राहत देने में देरी होती है, इससे बचा जाना चाहिए। अच्छा होगा कि केन्द्र प्राकृतिक विपदाओं द्वारा हुए नुकसान के संबंध में राज्यों के अनुमान को स्वीकार कर ले। केन्द्रीय दलों द्वारा निरीक्षण आवश्यक नहीं होना चाहिए।

5.29 समय की आवश्यकता है कि नई संस्थाएं बनाने की बजाए वर्तमान संस्थाओं को ही मजबूत किया जाए। प्रश्न के भाग-2 और 3 में उल्लिखित कार्यों की देखभाल इस समय भारतीय रिजर्व बैंक, योजना आयोग, एन टी पी एफ पी, जैसी विभिन्न संस्थाएं और भारत सरकार की अन्य एजेंसियां कर रही हैं। इनके कार्यों को आशाओं के अनुरूप बनाने के लिए इन संस्थाओं को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। हम दिल्ली में राष्ट्रीय विकास परिषद् का स्थायी सचिवालय रखने के बारे में भी विचार कर सकते हैं जिसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधि हों और जो केन्द्र के साथ राज्य की समस्याओं के लिए एक सम्पर्क ब्यूरो के रूप में काम करे।

5.30 हम इस सीमा तक इससे सहमत हैं कि निधियों का खर्च बहुत समझदारी से किया जाना चाहिए और इसके लाभ पुनः लोगों को ही वापिस मिलने चाहिए। लेकिन हम ऐसे मुद्दों जैसे "निधियों की वसूली कौन करता है और वसूल की गई निधियों को कैसे बांटा जाना चाहिए" से सहमत नहीं हैं, ये मुद्दे संगत नहीं हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने बुद्धिमत्तापूर्वक इस संबंध में संघ और राज्यों के कार्यों को बहुत सही ढंग से रेखांकित किया है और यदि उन्होंने संविधान में ही वितरण के तरीके को निर्धारित नहीं किया तो वह इसलिए कि वे जानते थे कि विभिन्न समयों पर राज्य की जरूरतें विशिष्ट प्रकार की होंगी और इसलिए उन्होंने पांच वर्षों में एक बार ऐसी जरूरतों का मूल्यांकन करने के लिए वित्त आयोग का निर्धारण किया।

5.31 (क) हम सहमत हैं कि न केवल संघ के मामले में अपितु राज्यों के मामले में भी आवधिक मूल्यांकन आवश्यक है। वास्तव में वित्त आयोग यह काम समुचित रूप से करता रहा है, वित्त आयोग खर्च के लिए भी दिशा-निर्देश निर्धारित करता रहा है।

(ख) यह सच नहीं है कि जनवादी प्रकार के खर्चों पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। जनवाद का अर्थ विभिन्न लोगों के लिए अलग अलग है। स्वतंत्र लोकतंत्र में राजनीति को आर्थिक आयोजना से अलग करना असंभव है। आखिरकार, हमारा योजना मंत्री कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो राजनीतिज्ञ न हो, वह भी लोगों द्वारा चुना जाता है और एक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। पिछले 20 वर्षों में महत्वपूर्ण केन्द्रीय नेताओं के चुनाव क्षेत्रों में किए गए निवेश से हमारे मत का समर्थन होगा कि राजनीति को योजना खर्च से अलग नहीं किया जा सकता और राज्यों को "जनवादी" उपायों पर बहुत अधिक खर्च करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

(ग) इस कार्य को पहले से ही वित्त आयोग तथा योजना आयोग दोनों के द्वारा किया जा रहा है। जैसा कि पहले से ही कहा जा चुका है इस संबंध में हमारा मत यह है कि कोई भी नई संस्था न खोली जाए परंतु वर्तमान संस्था को ही मजबूत बनाया जाए।

5.32 भारत का नियंत्रक महालेखापरीक्षक न केवल केन्द्र अपितु राज्यों के भी लेखापरीक्षा और लेखा का नियंत्रण करता है। संविधान का अनुच्छेद 150, संविधान से पूर्व विद्यमान केन्द्रीयकृत और संयुक्त प्रणाली को बनाए रखता है, संविधान में भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 167 जैसा कोई उपबंध नहीं है जिसके अंतर्गत राज्य विधान सभा को राज्य के लिए महालेखापरीक्षक के पद का सृजन करने की शक्ति प्राप्त हो। संविधान के अधीन राज्य महालेखापरीक्षक की नियुक्ति की कोई गुंजाइश नहीं है। केन्द्रीयकृत प्रणाली के लाभ एकरूपता तथा बचत बताए गए हैं।

केन्द्रीयकृत प्रणाली का सबसे बड़ा नुकसान यह है कि प्रत्येक काम में प्रक्रियात्मक विलंब होता है। लेखे चाहे वह विनियोजन लेखा हो अथवा किसी वर्ष का वित्त लेखा हो, राज्य को प्रायः उस वर्ष की समाप्ति के तीन या चार साल बाद उपलब्ध कराए जाते हैं तब उपचारी कार्रवाई करना मुश्किल हो जाता है और उठाए गए प्रश्नों पर एक लम्बे समय तक पत्रव्यवहार होता रहता है इसलिए आयोग को नियंत्रक महालेखापरीक्षक की शक्तियों के केन्द्रीयकरण के बारे में विचार करना चाहिए।

5.33 "मूल्यांकन लेखापरीक्षा" की वांछनीयता संबंधी तथ्य को पूरी तरह स्वीकार किया जाने लगा है इसलिए इसे लागू करने की जरूरत है। वाउचर लेखापरीक्षा बहुत बार उन नियमों या विनियमों को लागू करने में फस जाती है जो समय के साथ-साथ बदले नहीं हैं।

5.34 हां।

5.35 रिपोर्ट प्रायः विस्तृत और सही होती है परंतु इसमें बहुत अधिक विलंब हो जाता है।

5.36 हां।

5.37 यह समिति पहरेदार के रूप में काम नहीं करती।

5.38 हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि व्यय आयोग की आवश्यकता है। विद्यमान संस्थाओं को मजबूत करने, उनकी प्रक्रियाओं को आसान और सुप्रवाही बनाने की आवश्यकता है।

5.39 हम प्रश्न की पृष्ठभूमि के रूप में दिए गए विचार से पूरी तरह से सहमत हैं। निधियों के सही उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय दल सावधिक रूप से प्रत्यक्ष निरीक्षण कर सकते हैं।

6.1 राष्ट्रीय परिप्रेक्ष में राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने के लिए, राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार काम करने के लिए तथा क्षेत्रीय और प्रादेशिक योजनाओं में समन्वय करने के लिए राज्य सरकार प्रक्रियात्मक रूप से आयोजना के लिए केन्द्र की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करती है। योजना आयोग पंचवर्षीय योजना दस्तावेज तैयार करता है जिस पर राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में विचार किया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत किए जाने के बाद पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वयन के लिए स्वीकार कर लिया जाता है। हालांकि पंचवर्षीय योजनाओं को तैयार करने और उनके अनुमोदन संबंधी प्रक्रिया पिछले बहुत से वर्षों से सुस्थापित हो चुकी है फिर भी ए० आर० सी० अध्ययन दल तथा अन्य विशेषज्ञों द्वारा किए गए अध्ययन से जो कमियां सामने आई हैं वे सही हैं। मूलभूत कठिनाई यह दिखाई देती है कि :—

क. न केवल लक्ष्यों के निर्धारण अपितु राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, जिनको लागू करना राज्य के हिस्से आता है, के कार्यक्रमों के निर्धारण के कार्य में साथ जोड़ने की दृष्टि से राज्य सरकार के साथ परामर्श अपर्याप्त है;

ख. योजना आयोग द्वारा तैयार किए गए योजना दस्तावेज राज्य सरकारों को पर्याप्त समय रहते नहीं मिलते जिससे राष्ट्रीय विकास परिषद् में राज्य के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की दृष्टि से उनकी सही संवीक्षा नहीं कर पाते हैं; और

ग. ऐसी बहुत सी केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं हैं जिनके द्वारा केन्द्रीय मंत्रालय राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के कार्यक्रमों को सम्मिलित करने का प्रयास करते हैं।

उपर्युक्त कमियों को राज्यों को काफी समय रहते मसौदा योजना दस्तावेज उपलब्ध करवा कर योजना निर्माण के चरण में ही राज्यों से अधिक विस्तृत विचार-विमर्श के माध्यम से, और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं की बहुत बड़ी संख्या में कमी करके दूर किया जा सकता है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित कुछेक योजनाओं को सहायक निधियों सहित राज्यों को अंतरित की जा सकती है ताकि वे राज्य योजनाओं का हिस्सा बन सकें और तब ऐसी योजनाओं को लागू करने की जिम्मेवारी राज्यों की हो जाएगी।

6.2 हालांकि वर्तमान योजना प्रक्रिया का विकास और स्थापना पिछले कई वर्षों के अनुभव के आधार पर हुई है फिर भी योजना प्रक्रिया की कमियों का उल्लेख प्रश्न सं० 6.1 के उत्तर में किया गया है। राष्ट्रीय विकास परिषद को भले ही सांविधानिक प्रतिष्ठा दी जाती है अथवा नहीं, उपर्युक्त पैरा में उल्लिखित कमियां बनी रहेंगी जब तक कि इन कमियों को दूर करने के लिए कोई कारवाई नहीं की

जाती है। राष्ट्रीय विकास परिषद को राष्ट्रीय महत्व के मसलों पर विचार व्यक्त करने के लिए निश्चित रूप से अवसर मिलना चाहिए, और इस उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद राष्ट्रीय महत्व के नाजुक मसलों के लिए अधिक बारंबार बैठकें बुलानी चाहिए, जैसा कि अभी नही हो रहा है, लेकिन वर्तमान योजना प्रक्रिया की मुख्य कमियां चूंकि राज्यों से अपर्याप्त सलाह मशविरा और उन्हें सम्मिलित न करना है, इसलिए उपचारी कार्रवाई के माध्यम से इन कमियों को दूर करने का महत्व सर्वाधिक हो जाता है।

6.3 जैसा कि प्रश्न 6.1 के उत्तर में बताया गया है योजना आयोग की प्रक्रियाओं में कमियाँ है जिनके कारण राज्यों से गंभीर परामर्श और उनका आवेष्टन नहीं हो सकता। इन कमियों को दूर करने के लिए प्रश्न 6.1 के उत्तर में सुझाव भी दिए गए हैं।

6.4 राज्य सरकार उक्त प्रश्न 6.4(ii) में दिए गए इस सुझाव का समर्थन करेगी कि योजना आयोग अर्थशास्त्रियों, शिल्पविज्ञानिओं और प्रबंध विशेषज्ञों की उच्च स्तरीय सलाहकार संस्था होनी चाहिए। इस विचार का समर्थन इसलिए किया जाता है क्योंकि यह एकमात्र ऐसी संस्था है जो तकनीकी और प्रशासनिक दोनों प्रकार की ऐसी जटिलताओं जो ऐसी योजना तैयार करने में निहित रहती हैं का आयजा लेकर सारे देश के लिए पंचवर्षीय योजना तैयार कर सकती है। विशेषज्ञों की ऐसी ही संस्था की सहायता से बनाई गई योजना से राष्ट्रीय विकास परिषद प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रयास पर विचार कर सकती है और राष्ट्रीय आयोजना की दिशा और लक्ष्यों के बारे में बता सकती है।

6.5 जहां तक राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन राष्ट्रीय स्तर पर योजना निवेश और निर्णयों का पर्यवेक्षण करने के लिए योजना आयोग को स्वायत्त संस्था बनाने के प्रश्न का संबंध है, इस प्रस्ताव में गुण और दोष दोनों ही हैं, लाभ यह होगा कि राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करते हुए और उस सीमा तक राष्ट्रीय विकास परिषद के लिए सचिवालय के रूप में कार्य करते हुए योजना आयोग को अधिक स्वतंत्रता एवम् वस्तुपरकता प्राप्त होगी, दूसरी और हानि यह है कि देश के संघीय ढांचे और राज्य सरकारों के गठन में समय समय पर होने वाले परिवर्तनों को देखते हुए योजना आयोग की संबद्धता और दिशा को हानि पहुंचेगी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय मंत्रियों जिन्हें राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रम के लागू होने के साथ बदल दिया जाता है और जिन्हें इस उद्देश्य के लिए पंचवर्षीय योजना से महत्वपूर्ण निधि प्रदान की जाती है के साथ योजना आयोग के सम्पर्क को भी नुकसान पहुंचेगा। संतुलित दृष्टि से वर्तमान रूप से गठित योजना आयोग की संरचना को बनाए रखा जा सकता है हालांकि यह महत्वपूर्ण है कि प्रश्न 6.1 के उत्तर में उल्लिखित कमियों को यथाशीघ्र दूर किया जाए।

6.6 राष्ट्रीय प्राथमिकताओं की राज्य की योजनाओं में शामिल करने और उस पर विचार किए जाने की जरूरत है और राज्य स्वयं इस बारे में जागरूक है। प्रक्रियात्मक रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के बनाने से पहले परामर्श के द्वारा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को राज्य की योजनाओं में शामिल किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त योजना आयोग राज्य को केन्द्रीय सहायता के अंतरण द्वारा, केन्द्र द्वारा प्रायोजित परियोजनाओं को अनुमोदित करने की प्रक्रियाओं द्वारा और राज्य योजनाओं को बनाने तथा लागू करने की पर्यवेक्षण संबंधी अपनी भूमिका द्वारा राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताएं शामिल करना सुनिश्चित करता है लेकिन यह भी सच है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित परियोजनाओं की एक बड़ी संख्या में लागू करने से और राज्य के वित्त और योजना की अत्यधिक विस्तार में जांच से राज्यों की पहल का क्षय होता है और इससे यह प्रमुख मिलता है कि राज्यों की स्वायत्तता का भी क्षय हो रहा है जैसा कि प्रश्न सं० 6.1 के उत्तर में उल्लेख किया गया है। योजना प्रक्रिया की वर्तमान कमियों को दूर करने के लिए उपचारी कार्रवाई से राज्यों को अपना काम करने के लिए पहले जैसे पहल होने की छूट प्राप्त हो जाएगी और यह शिकायत भी दूर हो जाएगी कि राज्यों की स्वायत्तता क्षीण हो रही है।

6.7, 6.8 और 6.9 योजना आयोग के माध्यम से कर्जो और अनुदानों द्वारा केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान प्रणाली यह सुनिश्चित करने का प्रयास करती है कि कुछ निधियां विकास के लिए निर्धारित हैं और राज्यों द्वारा उन्हें गैर-विकास कार्यों के लिए उपयोग में न लाया जाए। विशेष रूप से पिछड़े हुए राज्यों की विशेष अक्षमताओं के लिए व्यवस्था करने के लिए उन्हें विशेष वर्ग के राज्य मानकर 90% अनुदान और 10% कर्ज प्रदान करने की प्रणाली है। फिर भी, यह बात सामने आई है कि वर्तमान प्रणाली आर्थिक दृष्टि से उन कमजोर राज्यों पर विपरीत प्रभाव डालती है जिनके संसाधन कम हैं और ऐसे जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों जैसे ऐसे विशेष क्षेत्रों के भी विपरीत है जिन्हें गरीबी और संसाधनों की कमी तथा कौशल की विशिष्ट समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह भी देखा गया है कि संतुलित प्रादेशिक विकास तथा गरीबी दूर करने का लक्ष्य उस सीमा तक प्राप्त नहीं किया जा सका है जिस सीमा तक यह वांछनीय था। इसको ध्यान में रखते हुए आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों के लिए विशेष व्यवस्था का प्रबंध किया जाए और विकास की विशेष समस्या वाले ऐसे क्षेत्रों को समर्थ बनाए जाने की आवश्यकता है। विशेष क्षेत्रों के विकास के लिए कार्यक्रम इस प्रकार से बनाए जाएं जिससे कि वे केन्द्रीय राष्ट्रीय योजना के साथ साथ राज्यों की योजना के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके।

विशेष रूप से, जम्मू-कश्मीर राज्य के, यद्यपि विशेष श्रेणी का राज्य होने पर भी केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराए जाने के वर्तमान स्वरूप के अंतर्गत 70% ऋण के रूप में और 30% अनुदान के रूप में दी जाती है जिसके अंतर्गत ऋण वापसी का दायित्व भी शामिल है। जम्मू-कश्मीर राज्य को अन्य विशिष्ट श्रेणी के राज्यों के समान केन्द्रीय सहायता का 90% अनुदान के रूप में और 10% ऋण के रूप में दी जानी आवश्यक है।

6.10 जैसा कि प्रश्न संख्या 6.1 और 6.6 के उत्तर में पहले ही बताया गया है इस समय केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें बहुत अधिक संख्या में हैं जिन्हें कम किए जाने को आवश्यकता है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के माध्यम से इस समय केन्द्र अनेक कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाता है जिन्हें राज्यों को उनकी निधियों के साथ साथ अंतरित किए जाने की आवश्यकता है जिससे वे राज्य योजना के एक अंग के रूप में समाविष्ट हो सकें और उसी रूप में कार्यान्वित हो सकें। यदि ऐसा किया जा सकता हो तो राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को समाविष्ट किया जा सकेगा। बशर्ते कि योजना के प्रतिपादन से पहले और अधिक संतोषजनक परामर्श किया जाए तो उसमें राज्यों का जुड़ना तथा उसमें उनकी पहल सुनिश्चित हो जाएगी तथा बहुत अधिक संख्या में केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों की और अधिक विस्तृत संवीक्षा करने की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी। इससे केन्द्रीय मंत्रियों से आश्रित संबंध प्राप्त करते हुए अपनी स्कीमों या अनुमोदित करवाने सम्बन्धी राज्यों की वर्तमान समस्या का समाधान भी हो जाएगा।

6.11 यद्यपि राज्यों के साथ-साथ योजना आयोग में कई वर्षों से परिवीक्षण एवं मूल्यांकन की कार्य प्रणाली है लेकिन यह केन्द्र और राज्यों दोनों की योजना संबंधी प्रक्रिया में एक दुर्बलतम तत्व है। इसका कारण यह है कि पहले योजना के प्रतिपादन एवं कार्यान्वयन की प्रक्रिया में परिवीक्षण एवं मूल्यांकन के विवेचनात्मक भागों को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया था। अतः यह आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों में परिवीक्षण एवं मूल्यांकन कार्यप्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए और अधिक प्राथमिकता दी जाए। साथ ही, यह ध्यान में रखते हुए कि बहुत अधिक संख्या में आंकड़ों को इकट्ठा किया जाना और मिलान किया जाना है, इस क्षेत्र में बेहतर प्रबंध सूचना प्रणाली तथा कम्प्यूटरों के प्रयोग को प्रारंभ किया जाना आवश्यक है।

जहां कुछ परियोजनाओं में निधियों का अत्यधिक निवेश किया जाता है और लागत तथा समयावधि बीतने की विशेष समस्या पैदा हो गई हो, तो वहां ऐसी अभिन्न समझी जाने वाली परियोजनाओं का विशेष रूप से सूक्ष्म परिवीक्षण किए जाने की आवश्यकता है। योजना के विवेचनात्मक भागों और विशेष रूप से योजना आयोग द्वारा व्यापक परियोजनाओं पर तिमाही या अर्धवार्षिक प्रगति की समीक्षा से परिवीक्षण एवं मूल्यांकन की वर्तमान प्रणाली को सुदृढ़ बनाने में सहायता मिलेगी।

6.12 विकेन्द्रीकृत योजना के द्वारा निश्चय ही लोगों की अंतर्भाविता को बढ़ावा मिलेगा और इससे योजना प्रणाली में सहकारी संघवाद की भावना प्रारंभ होगी। जिला योजनाओं के साथ-साथ ब्लॉकस्तर की योजनाओं को इन स्तरों पर विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार किए जाने की और कार्यान्वित किए जाने की आवश्यकता है। जबकि राज्य को जिला योजनाओं

को विकसित करना होगा जैसा कि जम्मू-कश्मीर राज्य ने सफलतापूर्वक प्रयास किया है, के आवश्यक आधारित संरचना, स्टाफ के प्रशिक्षण और राज्यों को वित्तीय प्रोत्साहन दिए जाने की व्यवस्था द्वारा केन्द्र सहायता दे सकता है जिसमें विकेन्द्रीकृत योजना की पद्धति को प्रारंभ किया जा सके। यह आलोचना की जाती है कि विकेन्द्रीकृत योजना चूंकि निम्नतम स्तर पर होती है इसलिए स्थानीय दबाव के प्रभाव में रहती है और इस प्रकार योजनागत प्राथमिकताएं विकृत हो जाती है। यह आलोचना तर्क संगत है, फिर भी राज्यों में विकेन्द्रीकृत योजना को लोगों का सहयोग सुनिश्चित किए जाने के रूप में प्रारंभ करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। स्थानीय दबाव की समस्या को प्रशिक्षण की प्रक्रिया के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर नेतृत्व के उत्तरदायित्व की भावना को बढ़ाकर दूर किया जा सकता है जो कि केवल तभी किया जा सकता है यदि ऐसे स्थानीय स्तर पर नेतृत्व को इसे भाग लेने का और विकेन्द्रीकृत योजना का अनुभव प्राप्त करने का अवसर दिया जाए।

6.13 योजना बोर्ड स्थापित किए जाने का आशय यही था कि राज्य योजना विभागों को विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की सलाह का लाभ प्राप्त हो सके। इस राज्य का अनुभव यह है कि योजना बोर्ड अभीष्ट उद्देश्य को पूरा नहीं कर सके है और प्रायः योजना-बोर्ड के विचार-विमर्श सैद्धान्तिक प्रकार का ही रहा है। पिछले अनुभव को ध्यान में रखते हुए यह सिफारिश करना संभव नहीं है कि योजना-बोर्ड की स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय-योजना को अनिवार्य रूप से और अधिक निर्देशात्मक हो जाना चाहिए। इस तथ्य के होते हुए भी कि परिवीक्षण एवं मूल्यांकन की पद्धति इस समय कमजोर है, यह भी सही है कि राज्य की योजना संबंधी कार्यप्रणाली व्यावसायिकता और विशेषज्ञता में पिछड़ रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि राज्यों के योजना विभाग में अधिक पेशेवराना दृष्टिकोण और विशेषज्ञता लागू करने के काम को प्राथमिकता दी जाए। राज्यों की मूल्यांकन एवं योजना को मॉनीटर करने की मशीनरी को मजबूत बनाने के पश्चात् ही तथा जब योजना बोर्डों को अधिक अनुभव हो जाए और उस उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो जाए जिसके लिए उनकी परिकल्पना और स्थापना की गई है थी, राष्ट्रीय योजना को अधिक निर्देशात्मक और कम अनिवार्य बनाने के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है।

7.1 यह एक तथ्य है कि उद्योग, विकास एवं विनियम अधिनियम की प्रथम अनुसूची का इतना अधिक विस्तार किया गया है कि वस्तुतः ऐसी कोई औद्योगिक गतिविधि नहीं है जो उसके कार्यक्षेत्र में नहीं आए। इस अनुसूची के अधिकांश मदों को इसमें शामिल करने के लिए "महत्वपूर्ण लोकहित" तथा "राष्ट्रीय महत्व" के आधार को ढूंढ पाना कठिन है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों के लाइसेंस जारी करने के आधार बहुधा अलग-अलग रहने तथा स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के आधार भी अलग रहे हैं। परिणामस्वरूप औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करना भाग्य की बात बन गया है। यहां तक कि उन वस्तुओं का विनिर्माण, जो कि इस अधिनियम को प्रथम अनुसूची में सम्मिलित नहीं है, के लिए दुर्लभ कच्चे माल का आबंटन, आयात लाइसेंस आदि प्रदान करने संबंधी केन्द्रीय विनियम इस प्रकार के है कि "उद्योग" वास्तव में संघ का विषय बन गया है। ऐसे विशिष्ट उदाहरण बड़ी संख्या में इस तर्क के समर्थन में दिए जा सकते है कि जम्मू-कश्मीर को औद्योगिक लाइसेंस जारी करने के लिए इस आधार पर इन्कार कर दिया गया था कि देश में उस वस्तु की पर्याप्त क्षमता थी जबकि बाद में देश के अन्य भागों में उसी वस्तु के विनिर्माण के लिए अतिरिक्त लाइसेंस प्रदान किए गए। लेकिन जम्मू-कश्मीर की लाइसेंस न दिए जाने का विवरण इसलिए नहीं दिया जा रहा है कि वह एक सोची-समझी नीति का अंग है अपितु संपूर्ण लाइसेंस प्रदान करने की भूल-भूलैया की बढ़ती हुई जटिलता का परिणाम है।

7.2 (1) जिस राष्ट्रीय लोकहित की बात की जाती है उसे परिभाषित किया जाना चाहिए जबकि बदली हुई परिस्थितियों में राष्ट्रीय हित को परिभाषित करने वाले मामलों में बदल सकते हैं, विनियमित उद्योगों की सूची में परिवर्तन किया जाना चाहिए न कि प्रथम अनुसूची में और अधिक उद्योगों को शामिल किया जाना चाहिए। किसी एक विशेष उद्योग को विनियमित करने के कारण, किसी अन्य उद्योग को विनियमित करने के कारणों से अलग हो सकते हैं। इस बात के स्पष्टीकरण की जरूरत है कि क्या एक ही साधन अर्थात् लाइसेंसिंग, सभी औद्योगिक विकास संबंधी गतिविधियों को विनियमित करने के लिए समुचित साधन है। उद्योग, विकास एवं विनियम अधिनियम केवल कोर औद्योगिक क्षेत्र को विनियमित करने तक ही सीमित रहना चाहिए। इसमें ऐसे उद्योग शामिल है जो या तो राष्ट्रीय सुरक्षा में योगदान देते हैं या वे अन्य औद्योगिक गतिविधियों के लिए आवश्यक कच्चा माल या संयंत्र और उपस्कर मुहैया करते हैं।

(2) उपर्युक्त परिभाषा के अंतर्गत प्रथम अनुसूची की निम्नलिखित प्रविष्टियां विलुप्त हो जाएंगी :—

1क. (3), (4), (5), (7)

1ख. (2)

5. (2), (3), (4), (6), (7), (9), (11)

6. पूरी प्रविष्टियां

7. (5), (6), (7)

8. ख और ग के अंतर्गत पूरी प्रविष्टियां

10. 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, पूरी प्रविष्टियां

19. (1), (2) और (10) के अलावा पूरी प्रविष्टियां

20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36 और 38.

कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि ऊपर उल्लिखित प्रविष्टियों के शीर्षकों के अंतर्गत उद्योगों के लिए किसी विनियम या उन्हें नियंत्रित करने वाली विधि की आवश्यकता नहीं है। लेकिन विभिन्न उद्योगों के लिए विभिन्न कारणों से विनियम की आवश्यकता है और उनसे भिन्न प्रकार से ही निबटा जा सकता है।

7.3 यदि 7.2(ii) प्रश्नों के उत्तर में सूचित उद्योगों को प्रथम अनुसूची से निकाल दिया जाता है तो औद्योगिक लाइसेंस प्रदान करने में जो अब बहुत देरी लगती है, वह समाप्त हो जाएगी। उद्योग, विकास एवं विनियम अधिनियम जब से लागू हुआ है तब से अब तक देश को वस्तुपरक स्थिति में बहुत परिवर्तन हो चुका है और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आई एफ सी आई, इत्यादि जैसी वित्तीय संस्थाएं वांछनीय क्षेत्रों में औद्योगिक निवेश को मोड़ कर उद्योग, विकास एवं विनियम अधिनियम की अपेक्षा अधिक कारगर साधन के रूप में कार्य कर सकती है।

संशोधित की जाने वाली प्रथम अनुसूची के अंतर्गत जो उद्योग नहीं आते, उनके लिए इस बारे में मार्गनिर्देश जारी किए जा सकते है कि कहां पर विदेशी सहयोग/पूंजीगत वस्तुओं तथा कच्चे माल का आयात अनुज्ञेय है। विदेशी सहयोग एवं आयात की अनुमति देने संबंधी शक्तियों को, निर्धारित मार्ग-निर्देशन के अंदर प्रत्येक राज्य एवं संघ राज्य में संबद्ध प्राधिकारियों के कार्यालयों का गठन करके विकेन्द्रीकृत की जानी चाहिए। केवल ऐसे मामलों में, जो इन मार्गनिर्देशों की सीमा में नहीं आते, पर दिल्ली में संघ सरकार द्वारा विचार किए जाने के विरुद्ध है।

7.4 (क) यह प्रश्न संगठन से उतना संबंधित नहीं है, जितना कि कच्चे माल की अपर्याप्त उपलब्धता, कार्यशील पूंजी की उपलब्धता तथा जनसंख्या के बहुत बड़े भाग की अपर्याप्त क्रय शक्ति से संबंधित है जो लघु उद्योग क्षेत्र के विकास में बाधक है।

(ख) "कुशलता" (टेक्नालॉजी) और "ईक्विटी" (रोजगार के अवसर पैदा करना) के बीच में अंतर्निहित विरोधाभास विद्यमान है इसलिए किसी एक समय पर किसी उद्योग के लिए "समुचित टेक्नालॉजी" का निर्धारण करने के मूल्यांकन में इन दोनों चीजों को संतुलित करने के लिए मानदंडों के अर्थ में कार्यप्रणाली बनाए जाने की जरूरत है। उद्योगों की स्थापना के लिए दिए जा रहे प्रोत्साहनों के संबंध में इस कसौटी का ध्यान रखा जाना चाहिए।

7.5 जहां तक जम्मू-कश्मीर का संबंध है, राष्ट्रीय औद्योगिक वित्तीय संस्थाओं का कार्य सही एवं संतोषजनक रहा है।

7.6 राज्यों को सार्वजनिक क्षेत्र के निवेशों की अवस्थिति का निर्धारण करने के लिए विश्वास में लेना जरूरी नहीं होगा यदि ऐसे निर्णयों के लिए मानदंडों का स्पष्ट निर्धारण कर दिया गया हो और उनका पालन किया जा रहा हो। विभिन्न केन्द्रीय निवेशों के संबंध में उनकी अवस्थिति के निर्णयों के लिए विभिन्न कारण दिए गए है। इसी से आलोचना को बल मिलता है। केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के निवेशों के संबंध में जम्मू-कश्मीर विशेष रूप से भाग्यहीन रहा है। अपेक्षाकृत छोटे केवल दो सार्वजनिक क्षेत्र के यूनिट राज्य में स्थित है, इनमें से एक है, प्रतिवर्ष पांच लाख घड़ियों का उत्पादन करने वाले एच० एम० टी० का यूनिट और दूसरा है, प्रतिवर्ष एक लाख टेलीफोन उपकरणों का निर्माण करने वाला आई० टी० आई० का यूनिट।

7.7 क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र को भी संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए एक साधन माना जाता है इसलिए जिन राज्यों की सीमाओं में भारी

उद्योग नहीं लगाए जा सकते, उसके लिए उनकी क्षतिपूर्ति अन्य क्षेत्रों में, जिनकी स्थापना वहां समुचित रूप से हो सकती हो, निवेश करके किया जाना चाहिए। जम्मू-कश्मीर के मामले में केन्द्रीय निवेश के लिए संभावित क्षेत्र हैं इलैक्ट्रॉनिकी एवं हल्के इंजीनियरी उद्योग।

7.8 औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए जिलों/क्षेत्रों में उद्योगों के विकास के लिए केन्द्रीय राजकोषीय एवं वित्तीय प्रोत्साहनों ने निःसंदेह इन क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना में योगदान दिया है, फिर भी ऐसे प्रोत्साहन देने के लिए अधिक विवेक से काम लिए जाने की जरूरत है। उदाहरणार्थ, उद्योग महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि जैसे औद्योगिक दृष्टि से विकसित राज्य के औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए जिले में काम करना, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश या उत्तर-पूर्वी राज्यों जैसे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्य के ऐसे ही जिले में काम करने की बजाय अधिक पसंद करेंगे। ऐसा इस कारण से है कि प्रोत्साहन तो सभी राज्यों में एक जैसे रहते हैं लेकिन औद्योगिक दृष्टि से विकसित राज्य बेहतर आधार-संरचनात्मक सुविधाएं उपलब्ध कर सकता है। इन सुविधाओं में औद्योगिक कार्य-संस्कृति, प्रशिक्षित श्रम-शक्ति एवं प्रबंध कार्मिकों की उपलब्धता, दूर-संचार का जाल, सड़कें, ऊर्जा और बाजार आदि शामिल हैं। औद्योगिक लाइसेंसिंग की वर्तमान परिस्थितियों में कुछेक औद्योगिक दृष्टि से विकसित राज्यों की अधिक सफलता में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात, सूचना है।

9.2 हालांकि राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिशें प्रशंसनीय हैं और एक लम्बी अवधि का परिप्रेक्ष विकसित किए जाने की जरूरत है, जिसमें केन्द्रीय एवं केन्द्रीय सहायता से चलने वाली परियोजनाएं अन्ततोगत्वा राज्य क्षेत्र का हिस्सा बन जाएं, फिर भी वित्तीय प्रतिबंधों के कारण जम्मू-कश्मीर राज्य राष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय एवं तकनीकी सहायता प्रदान करने की दृष्टि से चाहेगा कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय सहायता से चलने वाली परियोजना केन्द्रीय क्षेत्र में ही रहे। जम्मू-कश्मीर जैसे राज्य राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं को केन्द्रीय सहायता से उस समय तक व्यापक रूप से हाथ में लेना चाहेंगे, जब तक कि ऐसी परियोजनाओं के परिणाम वांछित स्तर तक न पहुंचे।

9.3 केन्द्रीय एवं केन्द्र द्वारा प्रायोजित परियोजना को बनाने की प्रक्रिया से राज्य-सरकार को जोड़ने के बारे में राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिश सराहनीय है। ऐसा पाया गया है कि बहुधा ये परियोजनाएं स्थानीय समस्याओं को ध्यान में नहीं रखती और विशेष रूप से कृषि-क्षेत्र में परियोजनाओं को स्थान-विशेष के अनुसार होना आवश्यक है इसलिए यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि लागू करने से पहले ऐसी परियोजनाओं को समुचित फोरम की अनुमति मिल गई है। इन्हें राज्यों की विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा भी देखा गया है कि कुछ परियोजनाएं प्रायः सभी राज्यों पर लागू नहीं होती और इसलिए जो राज्य इन परियोजनाओं का लाभ नहीं उठा सकते हैं, वे ऐसी परियोजनाओं को लागू कर सकते हैं जो उनकी परिस्थितियों के अनुरूप हों।

9.4. हालांकि, कृषि-उत्पादनों के न्यूनतम उचित मूल्य निर्धारित करने के संबंध में केन्द्र सरकार की नीतियां उच्चाधिकार समितियों की सिफारिशों पर लागू की जा रही हैं फिर भी, राज्य-सरकारों की सलाह ली जाती है लेकिन राज्य की सिफारिशें मानी नहीं जाती हैं। राज्य-सरकारों ने दृष्टिकोण पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए।

9.5 हालांकि देश के कृषि विकास में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नाबार्ड आदि जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका सराहनीय है, फिर भी उनकी नीतियों और विस्तृत संरचना के बारे में राज्य-सरकारों से परामर्श नहीं किया जाता। ऐसा वांछनीय होगा कि विभिन्न जोनों के राज्यों को एक नियत अवधि के लिए आवर्तन के आधार पर इन संस्थाओं में नीति-निर्माण में उनके दृष्टिकोण को जानने तथा जहां तक आवश्यक हो उपचारी उपाय करने के लिए उनसे फीड बैक पाना सुनिश्चित करने की दृष्टि से उन्हें प्रतिनिधित्व दिया जाए।

10.1 वर्तमान व्यवस्था प्रायः संतोषजनक है। लेकिन अधिप्राप्ति, मूल्य-निर्धारण आदि के संबंध में उचित समन्वय के विषय में सुधार के लिए सुझाव दिए जा सकते हैं।

10.2 आवश्यक वस्तु अधिनियम तथा अन्य केन्द्रीय अधिनियमों, जो राज्यों के उत्तरदायित्वों को प्रभावित करते हैं, के प्रशासन संबंधी व्यवस्थाओं की साधारण तथा सावधिक समीक्षा की जानी चाहिए क्योंकि ऐसी परिस्थितियां बनती रहती हैं जिनके लिए उपचारी उपायों की जरूरत हो और इनके बारे में आवधिक बैठकों में निर्णय लिया जा सकता है।

11.1 शिक्षा के क्षेत्र में भारत-सरकार का अधिक हस्तक्षेप नहीं है। लेकिन ऐसा महसूस किया जाता है कि जो भी थोड़ी बहुत सुधार की जरूरत है उसे एन० सी० ई० आर० टी०/एन० आई० ई० पी० ए० आदि जैसी शीर्षस्थ संस्थाओं में राज्य-सरकार के एक विशेषज्ञ को शामिल करके काफी सीमा तक पूरा किया जा सकता है।

देश में 12वीं कक्षा तक सभी विषयों में अखिल भारतीय पाठ्यक्रम के पैटर्न को कमोवेश अपनाया गया है। पूर्व स्नातक कोर्स में विज्ञान के विषयों के लिए अखिल भारतीय पैटर्न का समर्थन किया जाता है लेकिन मानविकी के क्षेत्र में स्थानीय इतिहास, भौगोलिक स्थितियों, पर्यावरण और ऐसी ही अन्य चीजों को ध्यान में रखते हुए राज्यों को इनमें अधिक से अधिक तीस प्रतिशत तक जोड़ने की छूट दी जानी चाहिए।

11.2 जैसा कि प्रश्न संख्या 11.1 के उत्तर में कहा गया है। यू०जी०सी०, एन०सी०ई०आर०टी., एन०आई०ई०पी०ए० जैसी शीर्षस्थ संस्थाओं में राज्यों के प्रतिनिधि को शामिल किए जाने की जरूरत है। ऐसी एक संस्था पहले से ही विद्यमान है जिसमें सभी राज्य-सरकारों के शिक्षा-मंत्री प्रतिनिधि हैं। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी संस्थाओं में मंत्री को शामिल किए जाने से ऐसी संस्थाएं प्रभावी बनेंगी लेकिन समन्वय और परिचर्चा के लिए विभिन्न राज्य-सरकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले विशेषज्ञों को शामिल करना अधिक उपयोगी हो सकता है।

इस समय पूर्व-स्नाक स्तर पर बी०ए० जनरल आर्टस् में प्रवेश के लिए न्यूनतम 40% अंकों का निर्धारण, बी०ए० साइंस जनरल में प्रवेश के लिए न्यूनतम प्रतिशत 50% है और बी०ए० आनर्स में प्रवेश के लिए 10% बढ़ाकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने छात्रों के लिए कॉलेज शिक्षा को सीमित किया है। दूसरी ओर, जबकि 12वीं कक्षा में 33% और 34% के बीच पास प्रतिशत होता है। यहां एक प्रश्न उठता है कि उन छात्रों के लिए क्या विकल्प है जिन्होंने 12वीं कक्षा 40% से कम अंकों से पास की है। संभवतः इसके लिए यह उत्तर दिया जा सकता है कि ऐसे छात्र को दूरस्थ-शिक्षा/मुक्त विश्वविद्यालय प्रणाली के माध्यम से अपनी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। यहां इसमें एक दोष भी है, विशेष कर एल० एल० बी० के ऐसे छात्रों के लिए जो दूरस्थ शिक्षा का विकल्प चुनते हैं, ऐसे छात्रों के पास हालांकि एल० एल० बी० की डिग्रियां होती हैं, फिर भी वकालत करने की आज्ञा नहीं मिलती।

यदि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आदि जैसी शीर्षस्थ संस्थाओं में राज्यों के विशेषज्ञों को प्रतिनिधित्व दिया गया हो तो इस तरह की समस्या पर उसमें विचार किया जा सकता है।

11.3 यह सुझाव पहले ही दिया जा चुका है कि शिक्षा के विकास से संबंधित विभिन्न संगठनों की नीति-निर्धारण संस्थाओं में विशेषज्ञों को शामिल करने पर विचार किया जाना चाहिए ताकि नीति-निर्धारण के समय किसी राज्य के संबंध में कठिनाइयों और कमियों का पता चल सके जिससे निर्धारित नीति को तेजी से लागू करना सुनिश्चित किया जा सके।

मानव-संसाधन विकास मंत्रालय के स्तर पर एक राष्ट्रीय शीर्षस्थ संस्था पहले ही है। एक और संस्था बनाई जा सकती है, जिसमें प्रत्येक राज्य का कम-से-कम एक विशेषज्ञ हो, जो नीति, कार्यक्रम और कार्यान्वियन का कार्य करे। इस संस्था का मुख्य काम निर्णय, परामर्श और प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया होना चाहिए।

11.4 इस बारे में दो राय नहीं है कि अनुच्छेद 29 और 30 में उल्लिखित संवैधानिक आश्वास्तियां जारी रहनी चाहिए। लेकिन यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसी सभी संस्थाओं का अनिवार्य रूप से भारत सरकार/राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों को अपनाना चाहिए। नैतिक/धार्मिक शिक्षा देने के मामले में वह संविधान की सीमाओं के अंदर ही रहनी चाहिए। ऐसी नैतिक/धार्मिक शिक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यपुस्तकों, यदि कोई हों, इससे पहले कि उन्हें वास्तविक व्यवहार में लाया जा सके, की जांच शिक्षा-विभाग के विशेषज्ञों द्वारा की जानी चाहिए।

11.5 कोई विशिष्ट मतभेद नहीं है, लेकिन शैक्षणिक विकास कार्यक्रम के निर्माण के संबंध में केन्द्र और राज्य सरकार के बीच और अधिक समन्वय एवं परामर्श की आवश्यकता है।

कर्नाटक सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) ज्ञापन

(ग) राज्यपाल के पद के संबंध में श्वेत-पत्र

कर्नाटक

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

हमारे संविधान को संघीय कहा जाता है क्योंकि संविधान निर्माताओं का यही आशय था। निःसंदेह पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारत संघ ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1241 में बहुमत ने यह कहा था कि "भारत का संविधान सही अर्थों में संघीय नहीं है।" इस मामले में सुब्बाराव ने बहुमत से असहमति जाहिर करते हुए कहा था, "भारतीय संविधान संघीय अवधारणा को स्वीकार करता है और प्रभुत्व शक्तियों को सह-सांविधिक इकाइयों अर्थात् संघ और राज्यों में बांटता है।"

अतियाबारी टी० कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य ए० आइ० आर० 1961 एस० सी० 232 में यह कहा गया था, "यह एक संघीय संविधान है, जिसकी हम व्याख्या कर रहे हैं और इसलिए अनुच्छेद 301 के प्रभाव को तदनुसार ही आंकना चाहिए।" पुनः आटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) बनाम राजस्थान राज्य ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 1406 में यह कहा गया था, "तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में संघीय संरचना अथवा अर्ध-संघीय संरचना का विकास में शक्तियों का वितरण आवश्यक रूप से अंतर्ग्रस्त था और हमारे संविधान का एक बुनियादी हिस्सा सातवीं अनुसूची की तीनों विधायी सूचियों में इसी वितरण से संबंधित है।"

उपरोक्त मामलों में दिए गए विचारों को ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1241 में नहीं देखा गया।

ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1241 में जिस ऐतिहासिक आधार का उल्लेख किया गया है उसका संबंध केवल ब्रिटिश इण्डिया के समय की स्थिति में है, न कि प्रभुसत्ता संपन्न भारतीय राज्यों से, भले ही वे ब्रिटिश ताज के अधिराजत्व के अधीन थे। आंतरिक मामलों में भारतीय राज्यों की ब्रिटिश इण्डिया की तुलना में विदेशी राज्य माना जाता था इसलिए 1963 के निर्णय में दिया गया तर्क सही प्रतीत नहीं होता।

इस प्रश्न पर मुख्य न्यायधीश (सी० जे०) बेग ने राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1361 में विचार किया है जिसमें उन्होंने कहा था," इसलिए एक अर्थ में भारत संघ संघीय है। लेकिन संघवाद की सीमा एक ऐसे देश के विकास एवं प्रगति की जरूरतों के कारण काफी कम हो जाती है, जिसे राष्ट्र के रूप में एक होना है, राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से समन्वित होना है, सामाजिक, बौद्धिक एवं अध्यात्मिक दृष्टि से ऊंचा उठना है।" लेकिन न्यायमूर्ति (तत्कालीन) चन्द्रचूड़ ने पृष्ठ 1396 (पैरा 198) में कहा है "मुझे यह स्वीकार करने में कठिनाई आ रही है कि राज्य को शासन व्यवस्था के रूप में इस प्रकार के विवाद को उठाने का अधिकार नहीं है, चाहे वह शास्त्रीय हो या अर्ध शास्त्रीय, संघ में राज्यों की रूचि वस्तुतः एक ओर संघीय सरकार की शक्तियों और दूसरी ओर उनकी अपनी शक्तियों को परिभाषित करने में रूचि होती है। इन शक्तियों के प्रत्यायोजन के संबंध में विवाद ही ऐसा विवाद है जिसमें संघ के राज्यों और संघीय सरकार को भी उतनी ही रूचि है। इसलिए राज्य सरकार के पास संघ सरकार द्वारा प्रस्तुत दावे का प्रतिवाद करने और उस पर अधिनिर्णय पाने के लिए अधिकारिता और हित है। भारत सरकार और इन राज्यों के बीच सांविधिक बाध्यताओं का जोड़ इस अधिकारिता को बनाए रखता है।"

न्यायमूर्ति भगवती ने अपनी ओर से तथा न्यायमूर्ति ए० सी० गुप्ता की ओर से पृष्ठ 1405 (पैरा 136 के) में कहा; "अनुच्छेद 356 खण्ड (सी० एल०) (1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा शक्तियों के असंवैधानिक इस्तेमाल से विभिन्न व्यक्तियों के अधिकारों को हानिकारक रूप से प्रभावित कर सकता है। यह न केवल विधान सभा के सदस्यों के वैयक्तिक अधिकारों को, अपितु राज्य के इस बात पर छोड़ देने के संवैधानिक अधिकार का अतिलंघन भी कर सकता है कि संविधान द्वारा स्थापित राजनैतिक संरचना के संघीय आधार का अनुच्छेद 356 खण्ड (1) के अधीन असंवैधानिकता द्वारा उल्लंघन नहीं किया जाएगा।"

कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 68 पृष्ठ 151 (पैरा 217) में न्यायमूर्ति उंतवालिआ ने न्यायमूर्ति सिंघल और न्यायमूर्ति जसवंत सिंह की ओर से कहा है :

"यह सच तो यह है कि हमारा संविधान ऐसा संघीय नहीं है जहां अलग-अलग स्वतंत्र एवं प्रभुसत्ता संपन्न राज्यों ने मिलकर एक राष्ट्र बनाया हो, जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका में हुआ है अथवा जैसी स्थिति विश्व के कुछ अन्य देशों की हो सकती है। यही कारण है कि इसे कई बार अर्ध-संघीय प्रकार का कहा जाता है।"

इसी मामले में, न्यायमूर्ति कैलाशम ने ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 232 तथा ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 1406 के निर्णयों का उल्लेख करते हुए पृष्ठ 162 में कहा है "यह निर्णय इस प्रतिपादना के लिए स्पष्ट प्राधिकार है कि भारत सरकार की मूल संरचना संघीय अथवा अर्ध संघीय प्रकार की है जिसमें संघ को स्वयं तथा इकाइयों को भी निश्चित शक्तियां प्राप्त हैं।" विद्वान न्यायमूर्ति ने ए० आई० आर० 1963 एस० 1241 के बहुमत निर्णय में दिए गए विचार का उल्लेख करते हुए यह भी कहा है "लेकिन अत्यधिक सम्मान के साथ (मुझे यह कहना है कि) यह विचार कि "भारतीय संविधान दर असल संघीय प्रकार का नहीं है... कि केवल वही शक्तियां जिनका संबंध स्थानीय समस्याओं के नियमन से है, राज्यों में निहित है" अतियाबारी टी कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य (ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 232) तथा ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य (ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 1406) में न्यायालय के निर्णयों के अनुसार नहीं है, जो कि इस न्यायालय के सात न्यायधीशों की एक पीठ का निर्णय है।"

पृष्ठ 163 तथा 164 (पैरा 254) में 1964 (ए० आई० आर० 1965 एस० सी० 745) के विशेष उल्लेख संख्या 1 में दिए गए विचारों का उल्लेख करते हुए विद्वान न्यायमूर्ति ने हा कहा है,

"हमारे संविधान में भले ही सीमित सीमा तक क्षेत्रीय हितों, संसाधनों, भाषा तथा इस विशाल उप-महाद्वीप में विद्यमान अन्य अनेकताओं के संबंध में संघीय व्यवस्था को स्वीकार किया है। इन तथ्यों पर संविधान निर्माताओं ने विचार किया था और अनुच्छेद 1 द्वारा यह प्रावधान करके कि भारत राज्यों का संघ होगा, सीमित संघवाद को संविधान का एक अंग बना दिया गया।" इस आशय को सूचियों के द्वारा तथा संविधान के अलग-अलग अध्यायों में संघ एवं राज्यों की विधायी तथा कार्यपालक शक्ति का प्रावधान करके कार्यरूप से परिणत किया गया है। इस सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऊपर उद्धृत अतियाबारी टी० कंपनी लिमिटेड बनाम असम राज्य (ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 232) तथा ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लि० बनाम राजस्थान राज्य (ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 1406) के निर्णयों में स्वीकार किया गया है। पश्चिम बंगाल के केस (ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1241) (सुप्रा०) जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, में दिए गए विचार सर्वोच्च न्यायालय के अन्यथा रूप से संगत विचार के अनुरूप नहीं है कि संविधान सर्वोच्च है और संघ तथा राज्यों को संविधान के प्रावधानों में अपनी शक्तियों को ढूंढना होगा और यह कि संघ सर्वोच्च नहीं है तथा राज्य संघ की परिधि के रूप में कार्य नहीं करते।"

27—376 M. of HA/ND/87

पृष्ठ 164 (पैरा 255) पर विद्वान न्यायमूर्ति ने केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1461) का उल्लेख किया है और कहा है : "केशवानंद के केस में बहुमत का यह विचार था कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान के मूल ढांचे में परिवर्तन करने में समर्थ नहीं बना था। मुख्य न्यायधीश सीकरी ने यह विचार करते हुए कि संविधान का मूल ढांचा क्या है, कहा था कि यह इनके संघटन से बना है।

1. संविधान की सर्वोच्चता,
2. सरकार का गणतांत्रिक एवं लोकतांत्रिक स्वरूप,
3. संविधान का धर्म निरपेक्ष रूप,
4. विधान मण्डल, कार्य पालिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों का अलगाव, एवं
5. संविधान का संघीय स्वरूप।"

डॉक्टर अम्बेडकर ने भी कहा है कि संविधान एक संघीय संविधान है, देखें सी० ए० डी० खंड VII, पृष्ठ-33.

इसलिए भारत के संविधान का स्वरूप संघीय है जिसे अर्द्ध-शास्त्रीय कहा जा सकता है।

1.2 राज्यों के लिए स्वायत्ता सुनिश्चित करने के लिए विधायी शक्तियों को फिर से वितरित करना होगा। जैसा कि राजमनार समिति ने सिफारिश की थी सूची II का और विस्तार करके राज्यों को अधिक कर-संसाधन आबंटित करने होंगे। अवशिष्ट विधायी शक्ति को सूची II में शामिल किया जा सकता है और सूची I की प्रविष्टि 97 को निकाला जा सकता है। अवशिष्ट शक्ति राज्य विधान-मण्डल को प्रदान करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 248 का आशोधन किया जा सकता है। अन्य अनुच्छेदों में भी पारिणामिक संशोधन करने होंगे। भारत सरकार की राज्यों पर पर्यवेक्षण शक्तियों से संबंधित कई अनुच्छेदों का विलोप करना होगा। लेकिन विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर राज्य उच्च न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय में अपीलों को बरकरार रखना आवश्यक है ताकि ऐसे प्रश्नों पर संपूर्ण भारत में विधि की एकरूपता सुनिश्चित हो सके।

1.3 हम इस बयान से सहमत हैं। संविधान के वे उपबंध जो राज्य की कार्यपालिका एवं विधान मण्डल को भी व्यवहार में केन्द्रीय कार्यपालिका का अधीनस्थ बनाते हैं, उन्हें हटाना होगा, और राज्य के इन अंगों को राष्ट्रपति की पिछली स्वीकृति या राष्ट्रपति की अनुवर्ती अनुमति के रूप में केन्द्रीय कार्यपालिका से राज्य द्वारा बनाए गए विधान के अनुमोदन प्राप्त करने या केन्द्रीय कार्यपालिका से अनुदेश लिए बिना अपने क्षेत्रों में कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। विधेयकों को अनुमति देने के मामले में राष्ट्रपति को संसदीय समिति की सलाह पर कार्य करना चाहिए, न कि केन्द्रीय कार्यपालिका की सलाह पर।

1.4 संयुक्त अरब अमीरात एक प्रकार का संघ हो सकता है।

1.5 हम इस प्रश्न में अभिव्यक्त विचारों से सहमत नहीं हैं। संविधान में ऐसे विशिष्ट उपबंधों के बिना, जिनमें कार्यपालिका की स्वतंत्र शक्तियों एवं कार्यों तथा राज्य विधान मण्डल की शक्तियों का भी निश्चित निर्धारण किया गया हो, वे उनमें निहित शक्तियों की स्वतंत्रता का इस्तेमाल नहीं कर सकती।

1.6 स्वतंत्रता की समस्या एवं देश की एकता एवं अखण्डता की सुनिश्चितता का निःसंदेह सर्वाधिक महत्व है। संविधान के विभिन्न उपबंधों द्वारा संघ की स्थापना से तथा संघ में रक्षा, विदेश कार्य, संचार के विषयों को निहित करने से तथा स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना से यह सुनिश्चित होता है।

1.7 राजमन्नार समिति की रिपोर्ट में अनुच्छेद 251, 256, 257, 348, 349, 355, 357, 365 आदि को आशोधित करने की आवश्यकता पर विचार किया गया। यह अनुच्छेद अभी जिस रूप में है तर्क संगत नहीं है और इसलिए उनका आशोधन करना होगा।

1.8 अनुच्छेद 3 पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। इस अनुच्छेद के परन्तुक को आशोधित किया जाए जिसमें जैसा कि जम्मू कश्मीर के मामले में है, संसद में किसी राज्य से संबंधित विधेयक लाने से पहले उस राज्य के विधान मण्डल की सहमति प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया है। राज्य को केवल उनके विचार जानने के लिए विधेयक का प्रारूप भेजना और कुछ समय बाद संसदीय संशोधन की कार्यवाही करना और यदि सुझाव दिए भी जाएं तो उनकी उपेक्षा करना, संविधान निर्माताओं के आशय तथा संविधान के संघीय स्वरूप से भी मेल नहीं खाता।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 यह विचार कि संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था में मूलतः कुछ भी गलत नहीं है, सही नहीं है। जैसा कि पहले भी कहा गया है राज्यों को कर लगाने की शक्ति पर अधिक स्रोत दिए जाने चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 249 के अधीन संसद द्वारा पारित अधिनियमों के संबंध में आवश्यक पूर्ति (अस्थायी शक्तियां) संशोधन अधिनियम, 1950, वस्तुओं की पूर्ति एवं मूल्य अधिनियम, 1950 तथा निष्क्रांत हित (पृथक्करण) अधिनियम, 1951, पारित किए गए हैं।

2.2 केन्द्र की मजबूती तथा देश की एकता एवं अखण्डता संघ सूची (सूची I) में पहले से ही सम्मिलित विषयों द्वारा सुनिश्चित हो जाती है। जैसा कि राजमन्नार समिति द्वारा सुझाव दिया गया है, राज्यों को सूची II का विस्तार कर अधिक कर-संसाधन दिए जा सकते हैं।

संविधान में निम्नलिखित अन्य परिवर्तन किए जाने चाहिए :—

(1) अनुच्छेद 31क में खण्ड (I) के प्रथम परन्तुक का लोप किया जाए। ऐसा कोई कारण नहीं है कि इस अनुच्छेद के अधीन राज्य-विधान मण्डल को वैसी विधायी शक्ति न मिले, जैसी कि संसद को है।

(2) अनुच्छेद 248 के खण्ड (I) में "संसद" शब्द के स्थान पर "राज्य विधान मण्डल" का प्रतिस्थापन किया जाए।

(3) अनुच्छेद 249 को लोप कर दिया जाए।

(4) अनुच्छेद 252 को समाप्त कर दिया जाए तथा इस अनुच्छेद के अधीन अब तक पारित हुए संकल्पों को वापस लिया गया माना जाए तथा यथापूर्व स्थिति को पुनर्स्थापित किया जाए।

(5) अनुच्छेद 254 को प्रश्न 2.5 की टिप्पणी के अनुसार आशोधित किया जाए।

2.3 संविधान में एक विशिष्ट उपबंध का प्रावधान आवश्यक है जिसमें समवर्ती सूची के मामले में जब भी कोई कानून बनाना हो, संविधान के अनुच्छेद 3 के वर्तमान परन्तुक की तरह राज्यों से परामर्श अनिवार्य बनाया गया हो।

2.4 अनुच्छेद 249 को निकाल दिया जाए।

2.5 राज्य के विधायी अंग की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए विधायी शक्तियों के इस्तेमाल के संबंध में इसे न तो राज्य की कार्यपालिका और न ही केन्द्र की कार्यपालिका के नियंत्रण में रखा जाना चाहिए। सरकारी कार्य संचालन नियमावली के अधीन सरकार के अवर-सचिव तथा उप-सचिव भी राष्ट्रपति की ओर से कार्य कर सकते हैं और राष्ट्रपति की ओर से इन अधिकारियों द्वारा राज्य विधान मण्डल की इच्छा विफल अथवा नियंत्रित की जा सकती है। संविधान के उपबंधों द्वारा कार्यपालिका में निहित नियंत्रण यदि नहीं होते जिनमें विधायी उपायों के लिए कार्यपालिका, भले ही उसे राज्यपाल कहा जाए अथवा राष्ट्रपति, पिछली मंजूरी या/और अनुवर्ती अनुमति की जरूरत होती है, तो विधान मण्डल स्वतंत्र होता जैसे कि न्यायपालिका श्रीमती इंदिरा, नेहरू, गांधी के केस ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 2299 के अनुसार कार्यपालिका तथा विधान-मंडल से स्वतंत्र है, उसी प्रकार विधान मण्डल को भी पर्याप्त स्वतंत्रता देना सुनिश्चित किया जाना चाहिए और उसे राज्य तथा केन्द्र की कार्यपालिका का अधीनस्थ नहीं बनाना चाहिए। ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 2299 में न्यायमूर्ति (तत्कालीन) बेग ने कहा है कि :

"संवैधानिक रूप से अलग राज्य के तीनों अंगों में से कोई भी आज हमारे संविधान की मूल व्यवस्था के अनुसार एक दूसरे के संविधान द्वारा निर्धारित क्षेत्र एवं प्राधिकार क्षेत्र की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकता।"

2. चूंकि हमारे पास सरकार की संसदीय प्रणाली है और क्योंकि बिना आवश्यक बहुमत के किसी विधेयक को पारित नहीं किया जा सकता इसलिए जब एक बार राज्य विधान मण्डल में एक कानून पारित हो जाता है तो इसके पारित हो जाने से राज्य का कानून बन जाना चाहिए।

3. जहां तक समवर्ती विधान क्षेत्र के कानूनों का संबंध है, जो कि समवर्ती क्षेत्र के केन्द्रीय कानून अथवा वर्तमान कानून के विरुद्ध हों, उनके लिए केवल संसद को ही उन विरोधी उपबंधों का अनुमोदन या अनुमोदन करने का प्राधिकार होना चाहिए क्योंकि केवल संसद को ही, न कि केन्द्र की कार्यपालिका को, समवर्ती क्षेत्र में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। चूंकि संसद अनुमोदन के लिए भेजे गए प्रत्येक राज्य कानून की संवीक्षा नहीं कर सकती, इसलिए संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति को यह शक्ति प्रत्यायोजित करने का प्रावधान किया जाए, जो समय-समय पर बैठक करती रहे और इस संबंध में निर्णय लेती रहे। यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य-विधान-मण्डल संसदीय समिति के भी अधीनस्थ हो जाए, अनुमोदन के लिए समय-सीमा निर्धारित की जाए जिसमें संसदीय समिति को निर्णय लेना चाहिए तथा यदि निर्धारित समय-सीमा के अंदर राज्य विधान-मण्डल को निर्णय नहीं बताया जाता तो कानून को संसद द्वारा अनुमोदित माना जाना चाहिए।

4. संविधान के उपबंधों में निम्नलिखित संशोधन करने होंगे :

(i) अनुच्छेद 201 में मौजूदा उपबंध को खण्ड (1) लिखा जाए तथा उसके अंत में निम्नलिखित वाक्यांश जोड़ा जाए अर्थात् : "(2) इस अनुच्छेद तथा अनुच्छेद 213 के अधीन अपनी शक्ति के इस्तेमाल के लिए राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संकल्प के माध्यम से प्राधिकृत संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति की सलाह पर कार्य करेगा"।

(ii) अनुच्छेद 213 में खण्ड (1) के पश्चात् निम्नलिखित वाक्यांश जोड़ा जा सकता है, अर्थात् :—

"(1क) खण्ड 1 के परन्तुक के कार्यक्षेत्र में आने वाले अध्यादेश को राष्ट्रपति के पास भेजा जाएगा जिसे चार सप्ताह के अंदर राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित किया जा सकता है, और यदि इसे अनुमोदित नहीं किया जाता तो यह राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित माना जाएगा।"

(iii) अनुच्छेद 254 के खण्ड (2) में :—

(i) परन्तुक में "बशर्ते शब्द के बाद" "और आगे" शब्द जोड़ा जाए।

(ii) संशोधित उप खण्ड (क) के परन्तुक से पहले खण्ड के बाद निम्नलिखित परन्तुक जोड़ा जाए अर्थात् :—

"इसमें यह प्रावधान है कि यदि प्राप्ति की तारीख से एक वर्ष की अवधि में राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त नहीं होता तो उस कानून को राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित माना जाएगा"।

(iv) अनुच्छेद 254 के पश्चात् निम्नलिखित अनुच्छेद जोड़ा जाए, अर्थात् :—

254क. राज्य विधान मण्डल एवं संसद से परामर्श :—(1) समवर्ती सूची में परिगणित किसी मसले के संबंध में कोई विधेयक संसद के किसी भी सदन में नहीं लाया जाएगा जब तक कि वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा राज्यों के विधान मण्डल को उस पत्र में निर्धारित विधि के अंदर उनके विचार जानने के लिए न भेजा गया हो, और इस प्रकार निर्धारित अवधि समाप्त न हो गई हो।

(2) समवर्ती सूची में परिगणित किसी मसले के संबंध में राज्य विधान मण्डल के सदन अथवा किसी एक सदन में कोई विधेयक नहीं लाया जाएगा जब तक कि वह विधेयक ऐसे राज्य की विधान सभा के अध्यक्ष द्वारा संसद को उस पत्र में निर्धारित अवधि के अंदर उनके विचार जानने के लिए न भेजा गया हो, और इस प्रकार निर्धारित अवधि समाप्त न हो गई हो।

(v) अनुच्छेद 31क(1) के परन्तुक तथा अनुच्छेद 304 के परन्तुक समाप्त किया जा सकता है। कोई कारण नहीं है कि राज्य विधान मण्डल को संसद के समान विधायी शक्तियां नहीं मिलनी चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 (क) राज्यपाल की भूमिका, जैसा संविधान ने विचार किया, जैसा संविधान के निर्माताओं ने कहा है और जैसी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में निर्धारित की गई है, के बारे में कर्नाटक राज्य विधायी सभा में मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत किए गए राज्यपाल पद पर श्वेत-पत्र के भाग I में बताया गया है।

(ख) संविधान लागू होने के समय से राज्यपाल की भूमिका के संबंध में हमारी टिप्पणियां/विचार उपर्युक्त श्वेत-पत्र के भाग I के अंत में, भाग II में और उसके निष्कर्षण में दिया गया है।

वस्तुतः केन्द्र राज्य संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल की कोई भूमिका नहीं है। संविधान-सभा की बहसों में, संविधान के निर्माताओं ने और सर्वोच्च न्यायालयों के निर्णयों ने राज्यपाल के लिए ऐसी किसी भूमिका पर विचार नहीं किया। राज्य विधान मण्डल द्वारा राज्यपाल के चुनाव जिसमें बहुत खर्च होता है, की बजाय संविधान निर्माताओं ने विचार किया कि राज्य के मुख्यमंत्री की सहमति से केन्द्र द्वारा किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का नामन बेहतर क्रिया-विधि होगी और उन्होंने मुख्यमंत्री की सहमति के लिए विशिष्ट प्रावधान किए बिना लेकिन संविधान सभा ने इस स्पष्ट बयान के साथ अपना लिया कि यह ऐसी सहमति के साथ ही किया जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने भी डॉ० रघुकुल तिलक के केस ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 709 में कहा था कि राज्यपाल का कार्यालय एक स्वतंत्र संवैधानिक कार्यालय है, जो भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन नहीं है।

3.2 संघ और राज्य के स्वस्थ्य संबंध, राज्य और केन्द्र की कार्यपालिकाओं, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य का मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री करते हैं, के घनिष्ठ मिलाप से बनेंगे जैसा कि संविधान सभा बहस खण्ड III पृष्ठ 468 में डॉ० अम्बेडकर द्वारा कहा गया है कि राज्यपाल को पूर्णतया अलंकृत कृत्यकारी होना चाहिए जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने मारूराम के केस ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 2147 पृष्ठ 2169 में कहा है कि राज्यपाल राज्य सरकार के लिए "आशुलिपिक अभिव्यक्ति" है। जहां तक संवैधानिक कार्यों का संबंध है, उन कुछेक मामलों को छोड़कर जिनमें उसे अपने विवेकानुसार काम करने की आवश्यकता होती है, उसको मंत्री परिषद की सलाह के अनुसार काम करना होता है और चूंकि वह भारत सरकार का अधीनस्थ प्राधिकारी नहीं है इसलिए केन्द्र-राज्य संबंधों में उसकी कोई भूमिका नहीं है और न होगी।

3.3 (क) अनुच्छेद 356 (1) के अधीन कार्यवाही का सुझाव देते हुए राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजने से पहले राज्यपाल को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना चाहिए। पहले उसे मंत्री परिषद को उन कामों के बारे में बताते हुए नोटिस भेजना चाहिए जो उसके मतानुसार, जब एक यथाविधि स्थापित मंत्री परिषद, कार्य कर रही हो और सरकार चला रही हो संविधान के अनुसार राज्य-सरकार न चलाए जाने के उदाहरण हों। राष्ट्रपति के रूप में कार्य करते हुए भारत सरकार को ऐसी ही परिस्थितियों में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए। लेकिन जब मंत्रि परिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाने के कारण सत्तारूढ़ पार्टी ने विधान सभा में विश्वास खो दिया हो, या विश्वास प्रस्ताव में उसकी हार हो गई हो और ऐसा कोई भी व्यक्ति न हो, जिसे विधानसभा के सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण किए बिना रिपोर्ट तैयार की जा सकती है क्योंकि वह संविधान के अनुसार राज्य सरकार न चलाए जाने का स्पष्ट उदाहरण होगा और क्योंकि राज्य विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से जवाबदेह मंत्रिपरिषद नहीं होगी जिसे नोटिस दिया जा सके।

इस समय अनुच्छेद 356 (1) के अधीन शक्तियों के इस्तेमाल में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण नहीं किया जा रहा, संभवतः इसलिए कि इस प्रक्रिया का अनुसरण करने के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है लेकिन हाल ही के विभिन्न निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 356 (1) में कहा गया है, राज्य सरकार और

राज्य-विधानमण्डल का अतिक्रमण करने के लिए इस सिद्धांत को अपनाना पड़ेगा। इस शक्ति के इस्तेमाल के लिए पुरोभाव्य शर्त यह है कि राष्ट्रपति (जिसका अर्थ केन्द्र में मंत्री परिषद है) संतुष्ट हो गया है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य सरकार को संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता। ए० के० राय के केस ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 710 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में संविधान के 44 वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 356 के खण्ड (5) को हटाए जाने के संदर्भ में अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) के अधीन राष्ट्रपति की संतुष्टि न्यायोचित है। मोहिन्दर सिंह गिल के केस ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 851 में संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन शक्तियों के इस्तेमाल के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने की बाध्यता को स्वीकार किया गया था। इसी निर्णय के अनुसार एस० एल० कपूर के केस ए०आई०आर० 1981 एस० सी० 136 में दिल्ली संघ शासित प्रदेश के उप राज्यपाल द्वारा पंजाब नगरपालिका अधिनियम, 1911 जो नई दिल्ली पर लागू होता है, नई दिल्ली नगरपालिका समिति को प्रस्तावित अधिक्रमण के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस दिए बिना समिति के अधिक्रमण को अवधिमान्य ठहराया गया था (केन्द्र, राज्य संबंध आयोग के माननीय विद्वान न्यायमूर्ति अध्यक्ष भी उस समय सर्वोच्च न्यायालय की इस पीठ के विद्वान न्यायधीश थे) इसलिए अनुच्छेद 356(1) में यह स्पष्ट प्रावधान करना आवश्यक है कि राष्ट्रपति को रिपोर्ट करने से पहले राज्यपाल द्वारा मंत्रिपरिषद् को कारण बताने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए कि उक्त अनुच्छेद को अधीन कार्यवाही क्यों न की जाए। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति जब स्व-प्रेरणा से और अनुच्छेद 356 (i) के अधीन कार्यवाही करता है या राज्यपाल द्वारा दिए गए नोटिस के उत्तर में मंत्रि परिषद द्वारा बताए कारणों से सहमत नहीं होता, तो मंत्रिपरिषद को कारण बताओ नोटिस दिया जाना चाहिए। अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासित होने पर राज्य के लोगों का अधिकार उनसे नहीं छीना जाना चाहिए, केवल उस स्थिति को छोड़कर जब ऐसा कोई व्यक्ति न हो जिसे विधानसभा के सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त न हो। यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि राज्य की लोकतांत्रिक सरकार का केवल उस स्थिति को छोड़कर अधिक्रमण नहीं किया जाएगा जिसमें संविधान के अनुसार सरकार को चलाना असंभव हो गया हो। मंत्रि परिषद की साधारण चूक अथवा गलत कार्यवाही के परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक सरकार को बरखास्त नहीं कर दिया जाना चाहिए और विधानसभा को अप्रभावी अथवा भंग नहीं कर देना चाहिए।

(ख) मुख्य मंत्री की नियुक्ति संबंधी राज्यपाल के कार्य, जिसमें अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्य मंत्री की बरखास्तगी भी शामिल है, मुख्यत: या तो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के इशारे पर अथवा यथासंभव यह सुनिश्चित करने के लिए, होते रहे हैं कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल जिसकी शाखा राज्य में होती है, के हित सुरक्षित रहें। अनुच्छेद 164 के अधीन राज्यपाल में निहित शक्ति के दुरुपयोग के उदाहरण श्वेत-पत्र के भाग II में दिए गए हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि लोकतांत्रिक पद्धति से चुने गए लोक प्रतिनिधियों को उनके संवैधानिक अधिकार से वंचित न रखा जाए, अनुच्छेद 164 का आशोधन करना जिसमें यह अनिवार्य बना दिया जाए कि राज्यपाल उसी व्यक्ति की नियुक्ति करेगा जिसे विधानसभा के चुने गए सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो और यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि जब तक उसके पास बहुमत है, राज्यपाल उसे बरखास्त नहीं कर सकता। अनुच्छेद 163 (1) का आशोधन भी आवश्यक है जिसमें यह स्पष्ट कर दिया हो कि राज्यपाल को केवल उस स्थिति को छोड़कर जिसमें संविधान द्वारा या उसके अधीन अपने कार्यों या उनमें से किसी एक कार्य को करने के लिए विवेक इस्तेमाल करने की अपेक्षा की गई हो, राज्यपाल को मंत्रि परिषद् की सलाह से कार्य करना चाहिए, उन मामलों में भी जहां वह अपने विवेक का इस्तेमाल करता हो यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि विवेक का इस्तेमाल उस उद्देश्य की सुनिश्चित करने के लिए और लोकहित में किया जाना चाहिए जिसके लिए उसे वैवेकित शक्तियां दी गई थी न कि उनका इस्तेमाल मनमाने रूप से किया जाए। मारू राम के केस ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 2147 पृष्ठ 2170, 2171 और 2173 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है :

"संविधानिक शक्ति से ही सभी संवैधानिक शक्तियों को मनमाने ढंग से अथवा असदभावपूर्वक कभी इस्तेमाल नहीं किया जाएगा।

*   *   *   *   *   *   *   *

हमारी सांविधानिक व्यवस्था के अधीन विधि का शासन सभी सार्वजनिक शक्तियों को एक जिम्मेदारी अनुक्रियाशील विनियमित बनाता है जो उच्च उद्देश्यों से प्रेरित तथा जन-कल्याण के लिए इस्तेमाल की जाती है।

शमशेर सिंह के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था :

"सभी मामलों में जहां राज्यपाल अपने विवेकानुसार काम करता है वह मंत्रि परिषद से मिलजुलकर काम करेगा। राज्यपाल की मंत्रि परिषद की सलाह के विरुद्ध कार्य करने की अनुमति देकर संविधान राज्य में समानान्तर प्रशासन प्रदान करने की कोशिश नहीं करता।"

(ग) भाग VI के अध्याय II में एक अनुच्छेद शामिल किया जाए जिसमें मुख्यमंत्री को राज्य-विधान-मण्डल के सदन/सदनों का सत्र बुलाने और सत्रावसान की शक्ति दी गई हो।

3.4(क) सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार अनुच्छेद 168 के अधीन राज्यपाल को राज्य-विधान मण्डल का एक घटक बनाया गया है क्योंकि मैसर्स होस्ट फार्मेटिक लिमिटेड के केस ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1019 पृष्ठ 1048 (पैरा 88) के अनुसार अनुच्छेद 200 के अधीन राज्य-विधान-मण्डल द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक राज्यपाल की अनुमति के लिए आरक्षित रखना होता है क्योंकि भारत के संविधान में भारत सरकार अधिनियम 1935 के उपबंधों का अनुसरण किया गया था संविधान में अनुच्छेद 200 और 201 शामिल किए गए हैं। ये उपबंध लोक प्रतिनिधियों, जिनमें राज्य की प्रभुसत्ता निहित है, से बने विधान मण्डल की सर्वोच्चता के साथ मूलतः असंगत है।

हालांकि जैसा कि राम जवाया कपूर के केस ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 549 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा और यू० एन० राव के केस ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 1002 में जिसे सहमतिपूर्वक उद्धृत किया गया, भारतीय संविधान में हमारी संसदीय कार्यपालिका की पद्धति इंग्लैंड की पद्धति की तरह ही है और ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की तरह विधान मण्डल के सदस्यों से बने मंत्रि परिषद "एक हाइफन है जो मिलाती है, एक कड़ी है जो राज्य के विधायी हिस्से को कार्यपालक हिस्से से जोड़ती है," जिसमें विधान मण्डल द्वारा पारित कानूनों के लिए कार्य-पालिका की अनुमति आवश्यक होती है और जो विधानमण्डल को कार्यपालिका के अधीनस्थ बनाती है। जैसा कि पहले भी प्रश्नावली के भाग II के प्रश्नों के उत्तर में बताया जा चुका है, राष्ट्रपति को विधेयक भेजने से राज्य विधान मण्डल केन्द्रीय कार्य पालिका के अधीनस्थ हो जाता है।

(ख) जहां तक इस प्रश्न का संबंध है कि राज्यपाल द्वारा आरक्षित करना और राज्य विधेयकों पर राष्ट्रपति द्वारा विचार करने की शक्ति का इस्तेमाल प्राय: अनुच्छेद 200 और 201 के आशय, भावना और उद्देश्य के अनुरूप हुआ है, यह कहा जा सकता है कि संविधान लागू होने के पहले कुछेक वर्षों को छोड़कर जबकि संसद और राज्य विधान मण्डल, दोनों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों का पूर्ण बहुमत था और जब राज्य विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की अनुमति आसानी से प्राप्त की जा सकती थी, इस शक्ति को उपबंध के उद्देश्य के अनुरूप इस्तेमाल नहीं किया जा रहा है। राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित विधेयकों के संबंध में समवर्ती क्षेत्र में किसी केन्द्रीय विधि से विरुद्धता दूर करने के लिए विधान के अनन्य राज्य क्षेत्र के विधेयक के उपबंधों में संशोधन करने के लिए सुझाव दिए जाते हैं।

(ग) ऐसा कोई मामला देखने में नहीं आया है जिसमें राज्यपाल ने बिल को अपनी स्वीकृति प्रदान को हो।

(घ) ऐसे भी मामले हैं जिनमें राज्यपाल ने मंत्रिपरिषद् को सलाह के विपरीत राष्ट्रपति द्वारा विचार किए जाने के लिए बिलों को रोका है जबकि इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए बहुत से निर्णयों से ऐसी विधि का निर्धारण हो गया कि उसे वह केवल मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुरूप ही कार्य करने के लिए बाध्य है।

3.5 हम भारतीय विधि संस्थान द्वारा दिए गए निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं बार बार स्मरण-पत्र भेजे जाने के बावजूद अनेक मामलों में अनुचित विलम्ब हुआ है ।

3.6 राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच "निकटतम सम्पर्क सूत्र" नहीं है चूंकि वह केवल केन्द्रीय कार्यपालक के प्रसाद पर्यंत ही इस पद पर रहता है, इसलिए वह या तो केन्द्र के अधीनस्थ अधिकारी के रूप में कार्य करता रहा है या वह संवैधानिक पद पर होने के कारण किसी भी व्यक्ति के प्रति जवाब-देह नहीं रहा है जैसा कि डा० रघुकुल के मामले में ए० आइ० आर० 1979 एस० सी० 709 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताया गया हो । श्वेत-पत्र के भाग II में ऐसे ठोस दृष्टांत देकर यह बताया गया है कि राज्यपाल संविधान के अनुसार निष्पक्ष और उचित रूप से कार्य नहीं करते ।

3.7 हम सहमत नहीं हैं एस० सी० 709 में रघुकुल तिलक कैसे ए० आइ० ए० आर० 1979 एस०सी० 709 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह विशिष्ट व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है कि राज्यपाल की नियुक्ति केवल मुख्यमंत्री की सलाह से ही की जा सकती है ।

भारतीय विधि संस्थान (1981) की पत्रिका के खण्ड 23 के पृष्ठ संख्या 128 से 136 पर दिए गए लेख में रघुकुल तिलक के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के संबंध में बताया गया कि यह युक्ति-युक्त और संतोषप्रद नहीं है । इस लेख के लेखक ने पृष्ठ संख्या 135-136 में बताया है कि :

> राज्यपाल की नियुक्ति बरखास्तगी उसी राज्य अथवा अन्य राज्य में सेवा अवधि बढ़ाने और एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरण को देखने से पता चलता है कि राज्यपाल का अस्तित्व ही भारत सरकार पर निर्भर है । क्या राज्यपाल को भारत सरकार का अधीनस्थ अधिकारी बनाना पर्याप्त है, यदि नहीं तो और क्या किया जाए ? यह माना जा सकता है कि राज्यपाल अपने दैनिक कार्य भारत सरकार के नियंत्रणाधीन रह कर करता है लेकिन------
>
> चूंकि वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त ही इस पद पर बना रह सकता है इसलिए अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए वह केन्द्र के विचारों की लम्बे समय तक अवहेलना नहीं कर सकता । सिविल कर्मचारी की तरह ही राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राज्य की प्रशासन संबंधी पाक्षिक रिपोर्ट भारत सरकार को भेजे जो कि इस बात का परिचायक है कि वह एक केन्द्रीय कर्मचारी है राष्ट्रपति द्वारा बरखास्त किए जाने की शक्ति इस बात की द्योतक है कि राज्यपाल भारत सरकार का सहयोगी कर्मचारी है । इस रूप में केन्द्र की सत्ताधारी पार्टी के हितों की रक्षा करने के लिए राष्ट्रपति शासन संबंधी उपबंधों का दुरूपयोग किया जाता रहा है जिससे यह पता चलता है कि राज्यपाल केन्द्र एजेन्ट होता है और वह उसके आदेशानुसार कार्य करता हैं ।
>
> (इस संबंध में भारत में राष्ट्रपति शासन संबंधी सिवॉश नीति (1979) देखें) । केन्द्र विधितः औपचारिक रूप से राज्यपाल पर नियंत्रण नहीं रख सकता किन्तु तथ्य यह है कि वह विभिन्न औपचारिक और अति-सूक्ष्म तरीकों से राज्यपाल नियंत्रण रखता है । राज्यपाल अनेक "मौखिक सिफारिशों" अथवा "मौखिक निर्देशों" की अवहेलना नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा करने से राज्यपाल को अपना पद खोने का खतरा हो सकता है । वह केवल एक ऐसा सम्मानित सिविल अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति केन्द्र द्वारा राज्य सरकार पर सतत निगरानी रखने और यह सुनिश्चित करने के लिए एजेन्ट के रूप में की जाती है कि "राज्य की शासन व्यवस्था संविधान के उपबंधों के अनुसार की जा रही है ।"

सर्वप्रथम और प्रमुख व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे राज्यपाल के पद पर किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति की जा सके जो उच्च हैसियत का और सत्य निष्ठ हो । यदि ऐसा किया जाता है तो वे अवश्य ही राज्यपाल सीमित संवैधानिक कार्यों को दक्षता और निष्पक्षता से करेंगे । इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि विधानमण्डल द्वारा इस आशय का संकल्प पारित किया जाए ।

3.8 हम इस बात से सहमत नहीं है । जैसा कि पहले भी बताया गया है कि विधान मण्डल की बैठक बुलाने का अधिकार मुख्य मंत्री को ही होना चाहिए राज्यपाल इस बात का पता लगाए कि विधान सभा में शासन करने वाला व्यक्ति बहुमत प्राप्त दल का नेता है और वह इस समय उस दल का सदस्य है ।

3.9 जर्मन संघीय गणतंत्र के संविधान की मूल विधि के अनुच्छेद 67 जैसा उपबंध भारत में ऐसे समय कार्य नहीं कर सकता जब दल-बदल के कारण पार्टी टूट जाए । संवैधानिक संशोधन द्वारा दल-बदल व्यक्ति को दल से निकाल कर ही सरकारों में स्थिरता लाई जा सकेगी यदि सरकारों में स्थिरता ही तो मतभेद होने का सवाल ही नहीं होता। अतः ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल बनाया जाए जो उच्च हैसियत का और निष्ठावान व्यक्ति हो क्योंकि वह निष्पक्षता से कार्य करेगा जिससे मतभेद नहीं होगा ।

3.10 राज्यपाल ही यदि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की अवहेलना करें और वे केन्द्र सरकार के एजेन्टों के रूप में कार्य करते हों तो कोई भी उपयोगी प्रयोजन किसी मार्गनिर्देश से पूरा नहीं हो सकता । राज्यपाल के अधिकारों और कार्यों का निर्धारण करने के लिए विशिष्ट संवैधानिक उपबंध बनाए जाने चाहिए । यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्यपाल द्वारा उन संवैधानिक उपबंधों का उल्लंघन न करके अनुपालन कर रहा है जिन्हें वह करने के लिए आबद्धकर है संविधान के अनुच्छेद 361 (1) द्वारा प्रदत्त उन्मुक्ति हटायी जानी चाहिए ।

उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखते हुए भाग II में सुझाए गए संशोधनों को छोड़कर संविधान में निम्नलिखित संशोधन किए जाएं :

(i) अनुच्छेद 54 के अन्त में निम्नलिखित स्पष्टीकरण शामिल किया जाए अर्थात :

"स्पष्टीकरण :— जहां राज्यपाल को पदेन रूप में या अन्य किसी रूप में विधि द्वारा कोई शक्ति या कार्य प्रदत्त या विहित किया जाता है तो उक्त शक्ति या कार्य का निष्पादन राज्यपाल द्वारा राज्य की कार्यपालक शक्ति के रूप में संविधान के अनुसार किया जाएगा ।"

(ii) अनुच्छेद 155 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए :

"155. राज्यपाल की नियुक्ति :--राष्ट्रपति, राज्य के मुख्यमंत्री की सहमति से स्वहस्ताक्षरित और मोहर लगे वारण्ट द्वारा उस राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति करेगा ।"

(iii) अनुच्छेद 156 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद प्रति-स्थापित किया जाए अर्थात् :

"156. राज्यपाल की पदावधि : —(i) राज्यपाल उस तारीख से पांच वर्ष की अवधि के लिए पद पर बना रहेगा जिस तारीख से उसने पद ग्रहण किया है,

किन्तु इसमें यह प्रावधान है कि :—

(क) राज्यपाल अपने हाथ से राष्ट्रपति को सम्बोधित करके अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है ;

(ख) राज्यपाल अपनी पदावधि समाप्त होने के बावजूद भी तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक उसका उत्तरवर्ती अधिकारी अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता।"

(iv) अनुच्छेद 157 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए अर्थात् :—

"157. राज्य पाल के पद पर नियुक्ति के लिए योग्यताएं ; राज्यपाल के पद पर नियुक्ति के लिए योग्य किसी भी व्यक्ति के लिए यह जरूरी है कि :—

(क) वह भारत का नागरिक हो;

(ख) उसकी आयु 50 वर्ष की हो; और

(ग) वह एक राजनीतिज्ञ न होकर एक प्रतिष्ठित विधि वेत्ता शिक्षाविद, वैज्ञानिक अथवा जीवन के अन्य क्षेत्रों में एक अग्रगण्य व्यक्ति अथवा कार्यापालक सरकार का सेवानिवृत्त कर्मचारी हो

(v) अनुच्छेद 163 में :

(क) खण्ड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित किया जाए :

(1) राज्यपाल को सहायता करने और उसे सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा जो कथित सलाह के अनुसार अपने ऐसे कार्यों का निष्पादन करेगा जो उसे अपने कार्यों का निष्पादन करते हुए अथवा स्वविवेकानुसार उनमें से कोई कार्य करते हुए संविधान द्वारा या संविधान के अधीन करने अपेक्षित होंगे।

किन्तु शर्त यह होगी कि राज्यपाल स्वविवेकानुसार निष्पादन योग्य कोई भी कार्य सुबोधगम्य और बुद्धिमता से करेगा और ऐसा कार्य प्रयोजन की अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए और मंत्रिपरिषद् के सामंजस्य से किया जाएगा।"

(ख) खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रस्थापित किया जाए :—

(2) यदि इस संबंध में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है कि संविधान के अन्तर्गत या उसके द्वारा राज्यपाल को उसके विवेकानुसार यह कार्य करने है या नहीं तो यह मामला उच्च न्यायालय को भेजा जाएगा और राज्यपाल उच्च न्यायालय द्वारा दी गई राय के अनुसार कार्य करेगा।

(vi) परन्तुक से पहले अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रस्थापित किया जाए :—

"राज्यपाल राज्य की विधान सभा के सदस्यों में बहुमत प्राप्त दल के नेता के रूप में चुने गए व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति मुख्यमंत्री से परामर्श करके करेगा और मुख्यमंत्री को छोड़कर शेष सभी मंत्री तब तक अपने पद पर बने रहेंगे जब तक उन पर मुख्यमंत्री का विश्वास होगा और मुख्यमंत्री तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक वह राज्य की विधान सभा के बहुमत प्राप्त दल का नेता रहेगा।"

(vii) अनुच्छेद 165 में खण्ड (1) में शब्द "राज्यपाल" के स्थान पर मंत्रि परिषद् शब्द प्रतिस्थापित किए जाएं :—

(viii) अनुच्छेद 166 में,

(क) खण्ड (2) में "राज्यपाल द्वारा बनाए जाने वाले नियम" शब्दों के स्थान पर "मंत्रिपरिषद् द्वारा बनाए जाने वाले नियम प्रति स्थापित किए जाए,

(ख) खण्ड (3) में "राज्यपाल नियम बनाएगा" शब्दों के स्थान पर "मंत्रिपरिषद, नियम बनाएगी" शब्द, प्रतिस्थापित किए जाएं।

(ix) अनुच्छेद 168 में खण्ड (1) में से "राज्यपाल, और" शब्द हटाए जाएं।

(x) अनुच्छेद 171 में दो स्थानों पर आए "राज्यपाल" शब्द के स्थान पर "मंत्रिपरिषद" शब्द प्रतिस्थापित किया जाए।

(xi) अनुच्छेद 174 के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्थापित किया जाए अर्थात् :

"174. राज्यविधान मण्डल का सत्रावसान और विघटन :—

(1) (क) मुख्यमंत्री समय-समय पर राज्य के विधान मण्डल के सदन अथवा दोनों सदनों की बैठक उस तारीख को और उस स्थान पर बुलाएगा जिसे वह उपयुक्त समझता है लेकिन सत्र की पिछली बैठक और अगले सत्र की पहले बैठक के लिए निर्धारित तारीख के बीच छ: महीने का अन्तराल नहीं होना चाहिए।

(ख) मुख्य मंत्री समय-समय पर किसी भी सदन का सत्रावसान कर सकता है।

(2) राज्यपाल मुख्यमंत्री की सहमति से विधान सभा को भंग कर सकता है बशर्ते कि भंग करने के ऐसे आदेश देने से पूर्व राज्यपाल द्वारा विधान सभा को कारण बताने के लिए समुचित अवसर प्रदान किया जाएगा कि ऐसा आदेश क्यों न दिया जाए, और बताए गए कारण पर समुचित रूप से विचार कर लिया जाए।"

(xii) अनुच्छेद 202 के खण्ड (1) में "राज्यपाल" शब्द के स्थान पर मुख्य मंत्री या "वित्त मंत्री" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएं।

(xiii) अनुच्छेद 207 में "राज्यपाल" शब्द के स्थान पर "मुख्य मंत्री" या वित्त मंत्री शब्द प्रतिस्थापित किया जाए।

(xiv) अनुच्छेद 309 के परन्तुक में, "राज्य के राज्यपाल" "अथवा" शब्दों के स्थान पर राज्य की मंत्रिपरिषद, शब्द प्रतिस्थापित किए जाएं।

(xv) अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) के मौजूदा परन्तुक में बशर्ते शब्द के बाद "भी" शब्द भी शामिल किया जाए और यथा संशोधित परन्तुक से पहले निम्नलिखित परन्तुक शामिल किया जाए, अर्थात् :—

"इसमें यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति को राज्यपाल द्वारा रिपोर्ट भेजे जाने से पहले राज्यपाल द्वारा मंत्रिपरिषद, को कारण बताने के लिए समुचित अवसर प्रदान किया जाएगा कि ऐसी रिपोर्ट क्यों नहीं भेजी जानी चाहिए।

इसमें आगे यह व्यवस्था है कि उद्घोषणा करने से पहले राष्ट्रपति द्वारा कारण बताने के लिए मंत्रिपरिषद् को समुचित अवसर प्रदान किया जाएगा कि ऐसी उद्घोषणा क्यों नहीं करनी चाहिए और बताए गए कारण पर समुचित रूप से विचार किया जाएगा, और

जहां प्रस्तावित उद्घोषणा में यह कहा गया हो कि राज्य विधान सभा की शक्तियों का इस्तेमाल संसद द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन किया जाएगा या यह उद्घोषणा राज्य की विधान सभा को भंग करने वाली हो वहां राष्ट्रपति द्वारा कारण बताने के लिए कि क्यों ऐसी उद्घोषणा न की जाए, राज्य की विधान सभा को समुचित अवसर प्रदान किया जाएगा और बताए गए कारण पर समुचित विचार किया जाएगा।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 हम यह विश्वास करते हैं कि अनुच्छेद 256 और 257 में अत्यन्त वांछनीय उपबंध है और इन्हें विशेष रूप से इसलिए रखा जाना चाहिए कि अनुच्छेद 73 में संघ की कार्यपालक शक्तियों की सीमा परिभाषित की गई है लेकिन अगले प्रश्न के अपने उत्तर में हम यह तर्क देते हैं कि अनुच्छेद 365 निकाल दिया जाना चाहिए । अनुच्छेद 256 और 257 के अन्तर्गत कर्नाटक सरकार को अनुदेश जारी करने का कोई उदाहरण नहीं है ।

4.2 अनुच्छेद 365 निश्चय है एक पारिणामिक रूप से समर्थ बनाने वाली धारा हैं लेकिन यह पूरी तरह ऐसी ही नहीं है यदि इसका अवलंब लिया जाता है तो अनुच्छेद 356 भी लागू किया जाएगा लेकिन यदि संघ सरकार द्वारा अनुच्छेद 256 या 257 के अन्तर्गत दिए गए अनुदेश को राज्य सरकार ने कार्य रूप में परिणत नहीं किया है तो निश्चय ही अनुच्छेद 356 को प्रत्यक्ष रूप में जाग्रत किया जाता है (हालांकि इस अनुच्छेद का अवलंब लेते समय बहुत अधिक सावधानी बरती जानी चाहिए) इस अर्थ में 356 बेकार है ।

असली मुद्दा यह है कि क्या भविष्य में संघ सरकार थोथे आधारों पर अनुच्छेद 365 को जाग्रत नहीं करेगी और इसका इस्तेमाल अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आगे की कार्रवाई करने के लिए नहीं करेगी । इस प्रकार यदि संघ और राज्य सरकार का इस विषय पर वास्तविक मतभेद है कि क्या अनुच्छेद 256 या 257 के अन्तर्गत दिया गया अनुदेश संघ को विधिसम्मत रूप से कार्यपालक शक्तियों में है, अथवा यदि इस बारे में मतभेद है कि क्या संघ सरकार के किसी अनुदेश विशेष का राज्य सरकार द्वारा प्रभावकारी ढंग से कार्यान्वयन किया गया अथवा नहीं, तो ऐसे मतभेदों को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्रवाई करने के लिए थोथे आधार बनाए जाने चाहिए ऐसी कार्रवाई किए जाने की अधिक संभावना है यदि अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत समर्थ बनाने वाले उपबंध को संक्रमण अवस्था में जागृत किया जाता है तो यह सुनिश्चित करने के लिए कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्रवाई करने के लिये ऐसे बहानों को संवैधानिक समर्थन न मिले हम अनुच्छेद 365 को निकालने की सिफारिश करते हैं । लेकिन हम यह मानते हैं कि अनुच्छेद 365 का ऐसा गलत इस्तेमाल अभी तक नहीं हुआ है दुर्भाग्य से केन्द्र राज्य के राजनैतिक संबंध परिवर्तित होते रहने के कारण यह अपर्याप्त आश्वासन है कि भविष्य में ऐसा गलत इस्तेमाल नहीं होगा ।

4.3 हम प्रशासनिक सुधार आयोग के विचारों का पूरी तरह से समर्थन करते हैं ।

4.4 न्यायविदो, राजनैतिक शास्त्र-विदो और संवैधानिक विशेषज्ञों की इस बारे में आमतौर पर सर्वसम्मति है कि अनुच्छेद 356 में उल्लिखित असाधारण उपकारी शक्तियों का समुचित रूप से इस्तेमाल नहीं किया गया है अपितु वास्तव में इनका स्पष्ट दुरुपयोग किया गया है केवल महाराष्ट्र को छोड़कर देश के प्रत्येक राज्य के लिए 70 बार इस अनुच्छेद को जाग्रत किया गया गया है इस अनुच्छेद को जाग्रत करने के लिए पूर्व शर्त उस स्थिति का होना है "जिसमें इस संविधान के उपबंध के अनुसार राज्य सरकार को चलाया नहीं जा सकता" इस अभिव्यक्ति की स्पष्टता के कारण इस अनुच्छेद का दुरुपयोग हो सका है इसलिए ऐसी किसी स्थिति की पूर्वापेक्षा को परिभाषित करना अपेक्षित है । हमारा विश्वास है कि ऐसी पूर्वापेक्षा प्रायः इन स्थितियों से आगे नहीं जानी चाहिए : (क) ऐसी सरकार की स्थापना में पूर्ण असफलता जिसकी विधान सभा में बहुमत हो, और (ख) कानून और व्यवस्था का पूर्णतया छिन्न भिन्न होना हो । यह सुनिश्चित करने के महत्व कि अनुच्छेद 356 को केवल आत्यन्तिक स्थितियों में ही जाग्रत किया जाए पर संविधान संविधान सभा की बहस में भी बल दिया गया था ।

हमारे विचारों की और अधिक व्याख्या राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 15 से 21 तक में मिलती है । अनुच्छेद 356(1) के उपबंधों पर कार्रवाई करने से पहले मंत्रिपरिषद् को कारण बताने का एक अवसर दिया जाना चाहिए कि उक्त अनुच्छेदों के अन्तर्गत कार्रवाई क्यों न की जाए ।

अनुच्छेद 356 की विवक्षाओं को देखते हुए राज्य सरकार यह भी महसूस करती है कि अनुच्छेद 163(1) और अनुच्छेद 164 आशोधित किए जाएं ताकि केवल उस स्थिति को छोड़कर जैसा कि संविधान में बताया गया सरकार चलाना असंभव हो जाए । राज्य में लोक तांत्रिक सरकार को अधिक्रांत न किया जा सके । आशोधन किस प्रकार का किया जाए यह राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 18 और 19 में बताया गया है ।

4.5 अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत एक लम्बी अवधि तक राष्ट्रपति शासन अवांछनीय है इसके बावजूद हम यह जानते हैं कि कुछेक असाधारण परिस्थितियों में ऐसी स्थिति की निरन्तरता जरूरी हो सकती है इसलिए हम सुझाव देते हैं कि निम्नलिखित व्यवहारिक दृष्टिकोण को कार्यान्वित किया जाए,

(क) एक उद्घोषणा अधिकतम छः महीने के लिए प्रभावी रहेगी (वर्तमान स्थिति) ।

उदाहरणार्थ डा० बी आर अम्बेडकर ने कहा था कि "सही चीज जिसकी हमें उम्मीद करनी चाहिए वह यह है कि ऐसे अनुच्छेदों को कभी भी लागू न किया जाए और कि वे अप्रचलित बने रहें यदि उन्हें लागू किया ही जाए तो मैं उम्मीद करता हूं कि राष्ट्रपति जिसे यह शक्तियां प्रदान की गई हैं राज्य के प्रशासन को वास्तविक रूप में अतिक्रमित करने से पहले उचित सावधानियां बरतेगा ।" इसके पश्चात डा० अम्बेडकर ने निम्नलिखित शब्दों में अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग के विरुद्ध विशिष्ट सुरक्षा उपायों के बारे में बताया है "मैं उम्मीद करता हूं कि वह (राष्ट्रपति) सबसे पहले गलती करने वाले राज्य को केवल यह चेतावनी देगा कि घटनाएं उस ढंग से घटित नहीं हो रही हैं जैसा कि संविधान में उनका घटना आशायित था । यदि उस चेतावनी का असर नहीं होता तो दूसरा काम उसे चुनाव का आदेश देने का होगा ताकि राज्य के लोग स्वयं ही अपनी समस्याओं को सुलझा लें । इन दोनों उपायों के असफल रहने पर ही वह इस अनुच्छेद का सहारा लेगा । व्यवहार में इस अनुच्छेद को अधिक लापरवाही और उन कारणों के लिए जाग्रत किया जाता रहा है जिनके बारे में संविधान सभा ने सोचा भी नहीं था । इस अनुच्छेद को पार्टी के आधार पर किया जाता रहा है या अन्तः पार्टी समस्याओं के समाधान के लिए केन्द्र के कहने पर जाग्रत किया जाता रहा है इस प्रक्रिया से केन्द्र को राज्य की राजनैतिक स्वायत्तता में घुसपैठ करने का आसान रास्ता मिला है इसलिए हम जोर देकर कहते है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि अनुच्छेद 365 को सम्मिलित करने के लिए सभा के अभिव्यक्त आशयों की हित साधना हो सके । अनुच्छेद 356 को समुचित रूप से आशोधित किया जाए और पर्याप्त सुरक्षा उपाय रखे जाएं ।

(ख) इसे साधारणतः अधिकतम छः मास की अवधि तक बढ़ाया जा सकता है ।

4.6 वर्तमान व्यवस्थाएं कर्नाटक में संतोषजनक रूप से कार्य कर रही हैं ।

4.7 इस प्रश्न में सूचीकृत एजेंसियों की स्थापना विशिष्ट नीति आशयों से की गई है इनमें से बहुत सी एजेंसियों की स्थापना विधी

क्षेत्र पर संस्थागत नियंत्रण करने के विचार से इस वैचारिक आधार पर की गई है कि अनियमित बाजार शक्तियां आर्थिक गतिविधियों को विकृत करती हैं इसलिए यह महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसमें सरकार द्वारा ऐसे हस्तक्षेप का औचित्य है तथा केन्द्र-राज्य संबंध के मुद्दे स्पष्टतया गौण महत्व के है। लेकिन जहां केन्द्र-राज्य संबंधों की समस्याएं उभरती भी हैं उन्हें अन्तर्राज्यीय परिषद, जैसे सलाहकार संस्था के माध्यम से बेहतरीन ढंग से सुलझाया जा सकता है इस आलोचना में पर्याप्त सच्चाई है कि ऐसी परामर्शक युक्तियों को पर्याप्त रूप से इस्तेमाल नहीं किया जाता।

4.8 हम यह मानते है कि अखिल भारतीय सेवाओं ने उन उम्मीदों को पूरा किया है जिनके लिए उनकी स्थापना की गई थी। ऐसी सेवाओं का एक लक्ष्य राष्ट्रीय एकता को बल प्रदान करना था और इस उद्देश्य को प्रतिवर्ष 50 प्रतिशत अधिकारियों को अपने राज्यों से बाहर के राज्यों में आबंटित करने की कार्यविधि का अनुसरण करके प्राप्त किया गया है।

इस बात की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए कि अखिल भारतीय सेवाओं की एक मुख्य विशेषता इन सेवाओं पर केन्द्र और राज्य सरकारों का संयुक्त नियंत्रण करने का था। विशेष रूप से अखिल भारतीय सेवाओं की भर्ती नीतियों और सेवा की शर्तों को नियमित करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकार के संयुक्त नियंत्रण को ध्यान में रखा जाए लेकिन व्यवहार में संयुक्त नियंत्रण का समुचित इस्तेमाल नहीं किया जाता इसकी सावधानीपूर्वक जांच करने की आवश्यकता है। इस विषय पर हमारे विचार राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 24 से 28 में विस्तार से दिए गए हैं।

4.9 पुलिस राज्य का विषय है यहां तक कि यह समवर्ती सूची में भी नहीं है फिर भी केन्द्र सरकार ने एक बहुत बड़े और निरन्तर बढ़ते हुए केन्द्रीय पुलिस बल की स्थापना की है। पिछले दो दशकों में केन्द्रीय पुलिस बल पर खर्च 76 गुणा बढ़ा है। 1965-66 में 32 करोड़ से बढ़कर 1984-85 में 510.30 करोड़ हो गया है। संविधान के उपबंधों से इतर होने के साथ-साथ केन्द्रीय पुलिस के विकास ने राज्यों में कानून और व्यवस्था के प्रभावी बनाए रखने की समस्या को और बढ़ाया है तत्काल तैनाती के लिए अपने प्रभावी पुलिस बल का विकास करने की बजाए राज्य सरकारें केन्द्र सरकार पर समय समय पर अर्द्धसैनिक बलों और केन्द्रीय आसूचना सेवाओं की पूर्ति तथा पुलिस के लिए अनुदानों के लिए निर्भर हो गई है।

यदि वित्त एवं औद्योगिक लाइसेंसों के क्षेत्रों में राज्य अधिक शक्तियां प्राप्त भी कर लेते हैं तो राज्य की कानून और व्यवस्था मशीनरी पर केन्द्र का शिकंजा इतना अधिक जमा हुआ है कि वह राज्यों की सीमित स्वायत्तता को भी समाप्त कर सकता है। जैसा कि हाल ही घटनाओं से स्पष्ट हुआ है (उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश में) केन्द्रीय बलों की नियुक्ति पूर्ण रूप से राजनैतिक कारणों से की गई जैसा कि आर एफ रूस्तमजी ने कहा है केन्द्रीय बलों पर अत्यधिक काम का दबाव रहा है और वे कम प्रभावी हो गए है।

यह अत्यावश्यक है कि पुलिस के संबंध में वर्तमान संवैधानिक स्थिति को बनाए रखा जाए। राज्य अपनी कानून और व्यवस्था की समस्याओं से प्रभावी रूप से निपटने के लिए अपने ही पुलिस बल का निर्माण करें। केन्द्रीय पुलिस बल का और विस्तार नहीं होना चाहिए। इन्हें राज्यों में सम्मिलित किया जाए या धीरे-धीरे इन्हें समाप्त कर दिया जाए।

4.10 हम पूर्णतया सहमत है कि संघ और राज्यों के बीच रेडियो और दूरदर्शन से प्रसारण की सुविधाएं उचित और युक्ति युक्त आधारों पर बांटी जानी चाहिए क्योंकि लोगों तक अपने विचार पहुंचाने के लिए इन जन संचार के साधनों की दोनों को समान ही आवश्यकता पड़ती है। लेकिन हमारा यह भी विश्वास है कि इस माध्यम का इस्तेमाल राजनैतिक पार्टी के संकीर्ण हितों के लिए नहीं किया जाना चाहिए और यदि "प्रसारण" को समवर्ती सूची में शामिल किया जाए और सरकार द्वारा प्रत्येक राज्य को अपनी प्रसारण प्रणाली स्थापित करने की अनुमति दे दी जाए तो यह खतरा बना रहेगा। इससे कार्यों में पर्याप्त दोहरापन आएगा और जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों की फिजूल खर्ची भी होगी :

वास्तव में हम यह सुझाव देते है कि प्रसारण संघ सूची में रखा जा सकता है बशर्ते कि उसका नियंत्रण संगठनात्मक रूप में ब्रिटिश प्रसारण निगम की तरह एक स्वतन्त्र सांविधिक संस्था द्वारा किया जाए।

जैसा कि वर्गीस समिति ने सिफारिश की थी कि राज्य सरकार राष्ट्रीय प्रसारण ट्रस्ट की स्थापना का सुझाव देती है और ऐसे ट्रस्ट को दूरदर्शन सुविधाओं के प्रसारण का संचालन करना चाहिए। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय को केवल सूचना की जिम्मेदारी लेनी चाहिए और प्रसारण को इसके दायरे से निकाल देना चाहिए।

इस सुझाव की और अधिक व्याख्या राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 20 से 23 से मिलती है।

4.11 क्षेत्रीय परिषदें प्रायः उपयोगी रही हैं और विशेषकर राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के लागू होने के तत्काल बाद के वर्षों में। लेकिन अभी हाल ही के वर्षों में उनकी भूमिका अपेक्षाकृत बहुत कम रही है।

4.12 हम राज्य सरकारों और संघ सरकार के बीच तथा राज्य सरकारों के पारस्परिक बेहतर कार्यकारी संबंधों के लिए एक सक्रिय मंच के रूप में अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना का जोरदार समर्थन करते हैं। इसकी संघटना प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सुझाए गए ढंग पर की जा सकती है और इसके कार्यक्षेत्र में संघ-राज्य और अन्तर्राज्य संबंधों के सभी मुद्दे आ सकते हैं। यह विचार विमर्श के लिए स्थायी मंच होना चाहिए जिसका अपना एक सचिवालय हो इसके अलावा इस विषय पर राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 19, 20 की ओर ध्यान दिलाया जाता है।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 संविधान में बनायी गई अंतरण की स्कीम सफल नहीं रही है और न ही राज्यों की आशाओं के अनुरूप रही। राज्यों की बढ़ती हुई जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए राज्यों की वित्तीय जरूरतों और उनके संसाधनों के बीच राजस्व के अन्तर का अनुमान तथा "राजस्व का अन्तर", "संसाधन", "वित्तीय जरूरतें" और आंशिक रूप से केन्द्रीय करों तथा शुल्कों की भागीदारी द्वारा और आंशिक रूप से संघ की सहायता अनुदान द्वारा "बढ़ती हुई जिम्मेदारियों" के लिए संसाधनों के अंतरण की परिभाषाओं से राज्यों को वांछित लाभ नहीं मिले हैं राजस्व में अंतर को राज्य के कुल राजस्व अंतर के रूप में दिया जाना चाहिए न कि उसे केवल योजनेतर राजस्व लेखा का अंतर माना जाए। इसी प्रकार, योजना में सम्मिलित राज्यों द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों पर आधारित राजकोषीय जरूरतों और पिछली योजनाओं के दौरान सृजित परिसम्पत्तियों के रख रखाव के लिए आवश्यक धन का पता लगाया जाना चाहिए।

वित्त आयोग कड़े प्रतिबन्धों के अधीन रहा है। राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई अधिसूचना में निर्धारित विचारार्थ विषयों के निर्धारण से आयोग के हाथ और बंध गए हैं। वास्तव में अनुच्छेद 280 (4) के अधीन वित्त आयोग "स्वयं अपनी प्रक्रिया निर्धारित करेगा" इसलिए हम यह चाहते हैं कि वित्त आयोग को इन बंधनों से अवश्यमेव मुक्त किया जाए।

जैसे कि वे अतीत में कार्य करते रहे हैं वित्त आयोग राज्यों पर राजकोषीय कुशलता की कसौटी लागू करने में असफल रहे हैं। वर्तमान प्रणाली के अधीन किसी भी राज्य के लिए राजकोषीय कुशलता स्वयं को हानि पहुंचाने वाली प्रक्रिया बन गई है। इसलिए वित्त आयोगों को कुछेक सम्बद्ध पैरामीटरों के आधार पर प्रत्येक राज्य की राजकोषीय सम्भाव संभाव्यता के मूल्यांकन का

अनुमान लगाना होगा और इस प्रकार निर्धारित संभाव्यता की दृष्टि से राज्यों के निष्पादन का मूल्यांकन करना होगा । वित्त आयोग द्वारा राजकोषीय कुशलता का मापदण्ड बनाया जाना चाहिए ।

वित्त आयोग को संघ सरकार के खर्चों की जांच-पड़ताल के लिए अधिक शक्तियां मिलनी चाहिए । ऐसा महसूस किया जाता है कि योजना आयोग राज्य सरकारों के मुख्याओं को केन्द्र के साथ संसाधनों, कार्यक्रमों और नीतियों के बारे में प्रत्यक्ष एवं विस्तृत वार्तालाप के लिए एक लोचदार साधन प्रदान करता है जिसे न केवल बनाए रखना अपितु और बड़ा बनाना महत्वपूर्ण है इसलिए पंचवर्षीय वित्त आयोग की वर्तमान प्रणाली और योजना आयोग को उनके चरित्र और कार्यों में कुछेक परिवर्तनों सहित जारी रखने की सिफारिश की जाती है ।

इस संबंध में हमारे सुझावों पर राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ट 34 से 42 और पृष्ठ 36 से 51 में पर विचार किया गया है ।

5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में बतायी गई स्थिति कुल मिलाकर अभी भी वैसी ही है । हम इस प्रश्न में बताए गए (ख), (घ) और (ङ) विकल्पों को कार्यान्वित करने को जोरदार मांग करते हैं । इन विकल्पों से राज्यों के संसाधनों को बढ़ाने में सहायता मिलेगी । इस समय राज्यों की जो तीन कर उपलब्ध हैं जो अब तक राजस्व प्राप्ति के लिए लोचदार रहे हैं वे हैं बिक्री कर, राज्य आबकारी शुल्क और मोटर वाहन कर । बहुत-सी वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क साथ ही लगाने के कारण उन वस्तुओं के बिक्री कर की दरों में वृद्धि की सीमाएं हैं इसके अतिरिक्त आवश्यक वस्तुओं पर भी अधिक कर नहीं लगाए जा सकते । राज्य आबकारी से अधिक राजस्व प्राप्त करने में भी गंभीर खतरे हैं क्योंकि इससे गैर-कानूनी शराब के उपभोग को बढ़ावा मिलेगा और ऐसी प्राणघातक शराब के कारण समय-समय पर मौतें भी हो सकती हैं । मोटर वाहनों (विशेष रूप से कारों आदि की) की आकाश को छूती हुई कीमतों के कारण ऐसे वाहनों की मांग बढ़ रही है जिससे मोटर वाहन कर की वसूली स्थिर रही है । इन उदाहरणों से पता चलता है कि ऐसे कर जिन्हें अब तक लोचदार माना जाता था अब उस प्रकार के साबित नहीं हो रहे हैं इसलिए निम्नलिखित प्रकार से राज्य के संसाधनों में वृद्धि करने की आवश्यकता है :—

(क) अतिरिक्त करों को (जिनकी राजस्व प्राप्ति लोचदार है) सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत राज्य सूची में अंतरित करना ;

(ख) निगम कर, सीमा-शुल्क, आयकर पर अधिभार जैसे केन्द्रीय करों को विभाजन पूल में अंतरित करना ;

(ग) संघ सरकार के कर राजस्व के अलावा अन्य वित्तीय संसाधनों को भी केन्द्र और राज्यों के बीच वितरति करना ।

इस प्रश्न के दूसरे दो विकल्प (क) और (ग) वांछनीय नहीं प्रतीत होते यदि संविधान में संघ और राज्यों के राजकोषीय संबंधों के पूर्ण अलगाव को शामिल किया जाता है तो इससे सावधिक परिवर्तनों में अपरिवर्तनीयता आ जाएगी और विभिन्न करों से राजस्व 'प्राप्तियों में विभिन्न समयों पर परिवर्तन आता ही रहता है । इसी प्रकार सभी करों की संघ सूची में अंतरित करने से वर्तमान असंतोषजनक स्थिति गम्भीर बनेगी इसलिए हम इन दोनों विकल्पों का समर्थन नहीं करेगें । संक्षेप में, केवल सीमा शुल्क के राजस्व को छोड़कर जो संघ सरकार के पास रहेगा, सभी करों को इकट्ठा करके विभाज्य पूल को देना चाहिए और इसे बढ़ाया जाना चाहिए । इस बढ़ाए गए विभाज्य पूल की कुल प्राप्तियों में से 75 प्रतिशत राज्यों में वितरित किया जाना चाहिए । परिणामस्वरूप संघ और राज्यों का अनुपात 50 प्रतिशत रहेगा ।' इस प्रकार के वितरण को संघ तथा राज्य, दोनों के दृष्टिकोण से अधिक न्याय संगत माना जाना चाहिए ।

5.3 हम इस प्रस्ताव से पूर्णतया असहमत हैं, क्षेत्रीय असंतुलन को समाप्त करने की दृष्टि से वास्तव में राज्यों में वित्तीय संसाधनों के वितरण में बराबरी की वित्त आयोग जैसी स्वतंत्र सांविधिक एजेन्सी द्वारा सर्वोत्तम रूप से सुनिश्चित किया जा सकता है यदि उसकी बजाए संसाधनों को विवेकानुसार अंतरित करने का अधिकार यदि संघ को दे दिया जाए तो इस बात की स्पष्ट संभावना है कि ऐसे संसाधनों का अंतरण पूरी तरह वस्तुनिष्ठ आधार पर नहीं होगा जो समानता के मानदण्ड के लिए उपयोगी नहीं होगा । अतीत में केन्द्रीय मंत्रालय द्वारा अंतरित संसाधनों का अनुभव इस बात को पुष्टि करता है ।

5.4 यह बात बल पूर्वक कही जा सकती है कि अंतर को कम करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था राष्ट्रीय हित में नहीं है । यह स्फीतिकारी है और इससे न तो संघ या राज्य सरकारों को और न ही व्यक्ति को कोई लाभ होता है, इससे देश में गरीबों के कल्याण कार्यों और नियत आय वाले वर्गों पर हानि कर प्रभाव भी होता है । यह देखते हुए राज्य सरकार के पास राजस्व लेखे में (वास्तव में यदि कोई ऐसा अंतर विद्यमान हो) अपने अंतर को पूरा करने के लिए संघ सरकार के पास एक ही व्यवहार्य विकल्प रह जाता है वह है व्यय पर बेहतर नियंत्रण और करों में चोरी की रोकथाम करके किया जा सकता है ।

5.5 हम इस सुझाव के आधार की ही चुनौती देना चाहेंगे कि वित्त आयोग और योजना आयोग का मूल कार्य गरीब और अमीर राज्यों के संसाधनों के अंतर को पूरना है निश्चय ही यह एक कार्य है परन्तु यह उन लक्ष्यों में से एक है जिसके बारे में इन आयोगों को चिन्ता करनी चाहिए परन्तु इसे प्राथमिक लक्ष्य का दर्जा देना अपने संसाधन जुटाने के लिए राज्यों के अपर्याप्त प्रयास के लिए उन्हें पुरस्कार देना; यह कुछेक राज्यों द्वारा उच्च गैर-उत्पादक खर्चों को भी प्रोत्साहित करता है जो कि अन्यथा रूप से न किये जाते ।

इसलिए हम यह सुझाव देते हैं कि अंतर की पूर्ति के लिए संसाधनों के केन्द्रीय अंतरण पर अत्यधिक निर्भरता अवांछनीय है । इसकी बजाए 60 प्रतिशत संसाधनों को सम्मिश्र सूचक के आधार पर बनाए गए पिछड़ेपन की कसौटी के माध्यम से अंतरित किया जाना चाहिए । जांच कि आठवें वित्त आयोग को प्रस्तुत अपने ज्ञापन में कर्नाटक सरकार ने सुझाव दिया है कि संसाधनों के बाकी 40 प्रतिशत को राज्य सरकारों के संसाधन जुटाने की कसौटी के आधार पर अंतरित किया जाना चाहिए । वित्त आयोग को सभी केन्द्रीय संसाधन अंतरणों का कुल जायजा लेना चाहिए ।

5.6 जैसा कि हमने प्रश्न 5.1 के उत्तर में सुझाव दिया है यदि वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र को और बढ़ाया जाए तो विशेष संघीय निधि जिसकी व्यवस्था युगोस्लाविया के संविधान में है, को सृजित करने की विशेष जरूरत नहीं समझते ।

5.7 विभिन्न वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क और अतिरिक्त उत्पाद शुल्क जिनसे काफी राजस्व प्राप्त होता है, उगाहने संबंधी कराधान शक्तियों को आसानी से राज्यों को अंतरित किया जा सकता है ।

5.8 कराधान संबंधी खण्डित दृष्टिकोण से अर्थ व्यवस्था पर स्पष्टतया अप्रत्याशित प्रभाव हो सकते हैं और एक भलिभांति संतुलित राजकोषीय व्यवस्था को वास्तव में प्रत्येक कर की आपतन संरचना और आर्थिक गतिविधि पर इसके संभावित हानिकारक प्रभाव के प्रति जागरूक होने का आवश्य प्रयास करना चाहिए । लेकिन इसमें संदेह है कि ऐसा खंडित दृष्टिकोण मूल रूप से केन्द्र और राज्यों के बीच कराधान शक्तियों के विभाजन का परिणाम है (ऐसा विभाजन संघीय अर्थव्यवस्था में अनिवार्य होता है) वास्तव में प्रश्न में सूचीकृत करों में से अंतिम (बिक्री कर) को छोड़कर सभी कर भारत सरकार द्वारा उगाहे जाते हैं और फिर भी यह किसी प्रकार स्पष्ट नहीं है कि संघ सरकार द्वारा कराधान के प्रति एक समन्वित दृष्टिकोण का विकास किया गया हैं । जहां विभिन्न प्रकार के कर परस्पर सहायक होते हैं (जैसे कि विक्रय कर और उत्पाद शुल्क के मामले में) वहां उनके संभावित मिले जुले हानिकर प्रभाव को समाप्त करने तथा उनका मूल्यांकन करने के लिए परामर्शी साधन वांछनीय हैं ।

5.9 नहीं । हमारे विचारों की व्याख्या प्रश्न 5.1 के हमारे उत्तर में है ।

5.10 वित्त आयोग की सलाह पर सांविधिक एवं विवेकानुसार अंतरणों में राज्यों के सार्वजनिक खर्चों में असमानताओं को कम करने में योगदान नहीं किया हैं और न ही कुशलता एवं खर्च में बचत को बढ़ावा दिया है ।

कृपया प्रश्न 5.1 के हमारे उत्तर को भी देखें ।

5.11 संसाधनों के अंतरण की वर्तमान प्रणाली में वित्तीय अनुशासनहीनता और अदूरदर्शिता की प्रवृत्ति है और यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक राज्य की योजना और गैर-योजना जरूरतों का व्यापक रूप से अनुमान लगाकर और अनुच्छेद 275 के अधीन अनुदान देने के लिए राजस्व और पूंजीगत लेखा दोनों पर विचार करके केन्द्रीय संसाधनों का अंतरण इस प्रवृत्ति को हतोत्साहित करे। वास्तव में अनुच्छेद 275 के अधीन अनुदानों की स्थिति गौण होनी चाहिए ताकि संपूर्ण अंतरण प्रणाली में कर-राजस्व मे भागीदारी के अन्तर्गत अन्तरणों को प्रमुख स्थान प्राप्त हो सके। यदि इस पद्धति को स्वीकार किया जाना है तो उन राज्यों को जिन्होंने राज्य के संसाधनों का समझदारी से प्रबंध किया है ऐसा करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

5.12 हम सहमत हैं कि संसाधनों के अंतरण का बहुत बड़ा हिस्सा करों में भागीदारी के माध्यम से किया जाना चाहिए और कुल राजस्व अंतरण की परियोजना में अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान की भूमिका अनुपूरक होनी चाहिए। इससे खर्च में बचत को प्रोत्साहन मिलेगा और राज्य सरकारों द्वारा साधन जुटाने के लिए अधिक प्रयास करने की प्रेरणा मिलेगी।

5.13 अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान के लिए सातवें वित्त आयोग द्वारा बनाए सिद्धान्त मोटे तौर पर स्वीकार करने योग्य हैं केवल इस अपवाद के साथ कि पहले सिद्धान्त (करों और शुल्कों के अंतरण के पश्चात् यदि कोई राजकोषीय अंतर बचे हैं तो उन्हें पूरा करने मे राज्यों को समर्थ बनने के लिए सहायता अनुदान दिया जा सकता है) को दी गई भारिता को बहुत कम किया जाना चाहिए क्योंकि यह कर प्रयास और खर्च में बचत को हतोत्साहित करता है।

5.14 इस दावे के तर्क को कि संघ सरकार के कार्येतर राजस्व में राज्यों के साथ भागीदारी की जाए, विभिन्न राजस्वों पर एक ही प्रकार से लागू नहीं किया जा सकता निश्चय ही विशेष वाहक बंधपत्रों से राजस्व का स्वरूप प्राइवेट व्यक्तियों की बचत जैसा होता है इसलिए राष्ट्रीय लघु बचत की तरह राज्यों से इसकी भागीदारी हो सकती है लेकिन इसमें और भी संदेह है कि निर्देशित कीमतों के बढ़ने पर अतिरिक्त राजस्व को भागीदारी योग्य बनाया जा सकता है विशेषकर जब बहुत-से केन्द्रीय उद्यम हानियां उठा रहे हों (जैसा कि इस समय इस्पात और कोयले का मामला है) लेकिन जहां केन्द्रीय उद्यम लाभ कमाते हैं और जहां इन लाभों को भारत सरकार का (लाभांश भुगतान के अलावा) राजस्व माना जाता है इस सिद्धान्त में सार है कि ऐसे राजस्व विभाजन योग्य होने चाहिए। हम सब आठवें वित्त आयोग के इस विचार का भी जोरदार समर्थन करेंगे कि उत्पाद शुल्क की दरों में वृद्धि के लिए स्थानापन्न के रूप में कुछ वस्तुओं की निर्देशित कीमतों में वृद्धि का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि पहले राजस्व भागीदारी योग्य है दूसरे नहीं।

5.15 वर्तमान तरीके अंशत: इसलिए संतोषजनक नहीं कि ऐसी बचतों के विनियोजन के लिए वर्तमान संस्थागत व्यवस्था से राज्य सरकारों को अपर्याप्त अनुमोदन मिलता है और अंशत: इसलिए संघ सरकार ने इस बात पर गौण रूप से विचार करते हुए कि इससे राज्यों के लिए बचतों की उपलब्धता पर क्या प्रभाव होगा, बचतों को अपनी परियोजनाओं के लिए नियोजित करने के लिए प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करना अपनी आदत बना ली है इसलिए नियंत्रण एवं संतुलन बनाना जरूरी है। यह तभी बन सकते है यदि राष्ट्रीयकृत बैंकों के बोर्डों तथा अन्य सभी केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओ में राज्यों को प्रतिनिधित्व मिले और जैसा कि हमने राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 48 से 51 में प्रस्तावित किया है संघ और राज्य सरकारों की योजनाओं के लिए बचतों से निधियों के विनिधान बात-चीत से तय किये गए ऋण तथा अन्य बाजार उधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद् तथा राष्ट्रीय ऋण परिषद् में विचार किया जाए और उनके द्वारा उनका अनुमोदन किया जाए।

5.16 तथ्यात्मक रूप से यह सही प्रतीत होता है और केन्द्रीय संसाधनों की विधि में कमी के कारण किए हैं विभाज्य करों के संबंध में संघ सरकार द्वारा दी गई राजकोषीय छूटों में विधि तथा संघ सरकार द्वारा घाटे की व्यवस्था में वृद्धि। परिणामस्वरूप राज्य सरकारों का राजकोषीय असंतुलन बढ़ गया है।

5.17 राज्यों के ऋणग्रस्तता में वृद्धि उत्तरोत्तर गम्भीर होती जा रही है और इस समस्या के आयामों तथा राज्यों की कठिनाइयां कैसे कम की जा सकती हैं इस संबंध में हमारे विचार प्रश्न 6.7 के हमारे उत्तर में बताए गए हैं। इस समय संघ सरकार के प्रति कर्नाटक सरकार की ऋण शोधन प्रतिबद्धताएं संघ सरकार से कुल ऋणों के लगभग 90 प्रतिशत तक हो गई है जिससे यह पता चलता है कि राज्य सरकार की ऋण संबंधी वित्तीय जरूरतों के लिए संघ सरकार का समुचित योगदान, उत्तरोत्तर असंगत हो रहा है। हम महसूस करते हैं कि राज्य ऋणग्रस्तता तथा संघ के भी ऋण संबंधी पूरे प्रश्न पर उच्चाधिकार निकाय द्वारा जांच की जानी चाहिए। इसलिए हम यह सुझाव देते हैं कि राष्ट्रीय ऋण आयोग का गठन किया जाए और ऐसे आयोग को राज्यों की ऋणग्रस्तता को नए सिरे से निर्धारित करना चाहिए तथा इस बात की भी जांच करनी चाहिए कि संघ के ऋण का समुचित प्रबंध किया जा रहा है कि नहीं। राष्ट्रीय ऋण आयोग स्थायी संस्था नहीं होगी, इसका कार्य एक बार में ही समाप्त हो जाएगा। इस सुझाव को राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 45 से 46 और विस्तार से दिया गया है।

5.18 हम सहमत हैं कि राज्यों की उधार लेने की क्षमता सीमित रही है क्योंकि बाजार उधार संघ के वित्त मंत्रालय द्वारा प्रत्येक वर्ष भारतीय रिजर्व बैंक की सिफारिश पर निर्धारित किए जाते हैं। प्रश्न 5.15 के उत्तर में उल्लिखित कारणों से राज्य सरकार की राष्ट्रीय संस्थाओं से उधार लेने की क्षमता भी सीमित है। सही वित्त व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों का ध्यान रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र के उधार की कुल सीमा के अन्दर राज्यों के लिए अनुमत उधार के समुचित एवं संतोषजनक सीमा की व्यवस्था होनी चाहिए। इन उधारों के लिए निर्धारित सीमाओं को राज्य सरकारों कुल व्यय कार्यक्रमों तथा उन विकास संबंधी गतिविधियों के साथ जोड़ा जाना चाहिए जिनके लिए ऐसे विभाग वित्त व्यवस्था करेंगे।

5.19 संघ सरकार को राज्य सरकारों से किसी भी प्रशासनिक लागत सहित ऐसी ब्याज दर लेनी चाहिए जो वह विदेशी ऋणदाता को अदा करती है। ऐसा संघ सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था (विश्व बैंक से संबद्ध) द्वारा दिए जाने वाले सुलभ ऋणों के मामले में विशेष रूप से महत्वपूर्ण जिनमें ब्याज नहीं लिया जाता ($\frac{3}{4}$% सेवा प्रभार लिया जाता है) भारत सरकार कोई साहूकार नहीं है पर उसे राज्य सरकारों की मजबूरी से लाभ नहीं उठाना चाहिए।

5.20 हम राष्ट्रीय विकास परिषद् के तत्वाधीन में राष्ट्रीय ऋण परिषद् के गठन का सुझाव देते हैं। पारस्परिक रूप तय किए प्रबंध के अनुसार योजना आयोग के तकनीकी स्टाफ की सहायता से भारतीय रिजर्व बैंक राष्ट्रीय ऋण परिषद् को सचिवालय सेवा प्रदान करेगा। राष्ट्रीय ऋण परिषद् की संघटना और कार्यों पर राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 49 से 51 में चर्चा की गई है।

5.21 हालांकि भारतीय रिजर्व बैंक ने जुलाई 1982 से राज्यों की राजस्व साधनों की सीमा को दुगुना कर दिया है फिर भी राज्य सरकारों द्वारा किए जाने वाले कुल लेन-देन की सीमा से इन सीमाओं के संबंध में नहीं है। हमारी राज्य का लेन-देन तीन हजार करोड़ रु० वार्षिक से अधिक है जबकि राजस्व साधन सीमा केवल 40 करोड़ रुपए है इसलिए राजस्वों की साधन सीमाओं का निर्धारण करने के लिए अपनाए जाने वाले मानदण्डों की पूरी तरह समीक्षा किए जाने की जरूरत है और इनका भारतीय रिजर्व बैंक से हुए राज्य सरकार के कुल लेन-देन से प्रत्यक्ष संबंध होना चाहिए। यदि इस बात का समुचित ध्यान रखा जाए तो राज्यों की ओवर ड्राफ्ट की समस्या अंशत: सुलझ सकती है लेकिन इस बात के मूलभूत और संरचनात्मक कारण और हैं जिनसे ऐसे ओवर ड्राफ्टों की समस्या उत्पन्न होती है और वे राज्य के बजट में राजकोषीय असंतुलन को प्रतिबिम्बित करते हैं। सूखे और बाढ़ जैसी आकस्मिकताओं के कारण महत्वपूर्ण गैर योजना व्यय आवश्यक हो जाता है, सरकारी परिसम्पत्तियों के रख-रखाव प्रशासन के स्तर में सुधार के लिए उत्तरोत्तर बढ़ते हुए परिव्ययों की आवश्यकता है। यदि सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में ह्रास नहीं होने दे, कर्मचारियों को आवधिक महंगाई देय की किस्तों की अदायगी आवश्यक है फिर भी यह सुनिश्चित करते

के लिए कि राज्य सरकारों में निवेश संबंधी प्रयासों की बलि न चढ़ा दी जाए, वार्षिक योजना परिव्यय निर्धारित किए जाते हैं । इनसे संरचनात्मक असंतुलन पैदा होते है जिसके परिणाम स्वरूप राज्यों को भारतीय रिजर्व बैंक से ओवर ड्राफ्ट लेने पड़ते हैं । राज्यों को राहत देने के लिए राजस्व साधन सीमाओं को उदार बनाना लम्बी अवधि का समाधान नहीं है । इसकी बजाए राज्यों को व्यय पैटर्न के अधिक स्पष्ट मूल्यांकन की जरूरत है और केन्द्रीय संसाधन अंतरणों (और वे शर्तें जिन पर ये अंतरण किए जाते है) को राज्यों के व्यय पैटर्न के प्रति अधिक संवेदी बनाने की जरूरत है ।

5.22 निश्चय ही कर्नाटक के कराधान प्रयास के बारे में यह नहीं कहा जा सकता जो कि इस संबंध में देश के सर्वोत्तम राज्यों में से एक है । वस्तुत: जैसा कि हमने प्रश्न 5 के उत्तर मे कहा था और अधिक कर वृद्धि के माध्यम से प्रचुर राजस्व जुटाने के लिए राज्य सरकार के लिए उपलब्ध संभावनाएं आशावादी हैं इसके अतिरिक्त कर इतर राजस्व विशेषकर ऊर्जा एवं सिंचाई से कर इतर राजस्वों को बढ़ाने में सर्वविदित संस्थागत प्रतिबंध है । वस्तुत: खेती बाड़ी क्षेत्र पर अतिरिक्त कर लगाने का प्रश्न पूरे देश में स्वीकार्यता की समस्याओं से भरा हुआ है और यदि कृषि आय पर आम-कर लगाया जाना है तो उसके लिए राष्ट्रीय सर्वसम्मति अनिवार्य होगी ।

5.23 हम सहमत हैं । यह एक दस्तावेजी तथ्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश से प्राप्तियां निराशाजनक ढंग से कम रही हैं केन्द्रीय करों में प्रचुर चोरी निस्संदेह समानांतर "अर्थ व्यवस्था" का विद्यमानता का प्रमाण है ।

5.24 हम सहमत है कि इससे एक स्वस्थ परम्परा बनेगी क्योंकि इससे राज्य-वित्त की जरूरतों का पता लगाने के बाद राज्य में विश्वास का संचार होगा । यह अन्तर्राज्यीय परिषद् के उपयोगी कार्यों में से एक हो सकता है ।

5.25 हम इस विचार से सहमत हैं ।

5.26 हम पूरी तरह इस विचार का समर्थन करते हैं । रेल द्वारा यात्रा करने वालों की संख्या में भारी वद्धि को देखते हुए यात्री भाड़ा-कर के बदले में दिया जाने वाला अनुदान, जो कि इस समय दिया जाता है, यात्री-भाड़ा कर के उस अनुपात के मुकाबले अत्यन्त गौण है जो कि प्राप्त होता, यदि उस अधिनियम को 1961 में रद्द न किया जाता जिसके अधीन वह कर दिया जा रहा था ।

5.27 वर्तमान व्यवस्था असंतोषजनक प्रतीत नहीं होती ।

5.28 प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के लिए राज्यों को केन्द्रीय सहायता की व्यवस्था के संबंध में कार्यकारी प्रबंधों के बारे में हमारे विचार निम्नलिखित हैं :

(क) राज्य बचत में मार्जिन राशि को वर्तमान सीमा तक ही रखा जाना चाहिए ।

(ख) राहत व्यय के लिए केन्द्रीय सहायता योजना के बाहर से दी जानी चाहिए;

(ग) सूखा राहत के लिए सहायता के रूप में ऋण और अनुदान का अनुपात 25.15 का होना चाहिए ; और

(घ) बाढ़, तूफान और भूकम्प के लिए केन्द्रीय सहायता शत प्रतिशत अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए ।

राज्य को दी गई सहायता का बेहतरीन ढंग से कारगर इस्तेमाल हो सके इसके लिए यह पर्याप्त समय रहते ली जानी चाहिए ताकि विपदा के प्रभाव को कम किया जा सके । इसके अलावा जहां वस्तुपरक परिसंपत्तियों का सृजन किया जाना हो वहां न्यूनतम गुणवत्ता के विनिर्देश सुनिश्चित किए जाने चाहिए और उनके अनुवर्ती रख रखाव के लिए प्रावधान किया जाना चाहिए ।

5.29 हालांकि ऐसी एजेंसियों के गठन से उपयोगी उद्देश्यों की पूर्ति होगी फिर भी हम यह महसूस करते हैं कि ऐसी संस्थाओं की बढ़ोतरी कुशल निर्णय के दृष्टिकोण से अनियंत्रणीय साबित हो सकती है ।

लेकिन हम यह महसूस करते हैं राष्ट्रीय विकास परिषद् के तत्वाधान में राष्ट्रीय ऋण परिषद् के गठन की आवश्यकता हैं । इसके संघठन और कार्यों के बारे में राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 49 से 51 में विचार किया गया है । इसके बावजूद भी हम यह कहना चाहेंगे कि समग्र विकास प्रक्रिया तथा भविष्य में लोकतंत्र के काम संबंधी नई चुनौतियों का सामना करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग दोनों को ही स्वयं को पुन: गठित करना पड़ेगा । राष्ट्रीय विकास परिषद तथा राष्ट्रीय योजना आयोग के पुनर्गठन के संबंध में हमारे सुझाव राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 46 से 48 में दिए गए है ।

5.30 खर्च के मामले में समझदारी स्पष्ट रूप ऐसे महत्वपूर्ण है विशेषकर उस हालत में जबकि संसाधन बहुत कम हो जैसा कि हमारे देश में है । लेकिन संघीय व्यवस्था में कराधान शक्तियों के विनिधान तथा संघ के प्रत्येक स्तर पर कार्यक्रमों के लिए धन जुटाने के लिए संसाधनों की उपलब्धता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है । इसके अलावा ऐसा हम इस संभाविता के कारण नहीं बता रहे है कि संघ सरकार अपने खर्च में समझदार रही है राज्य सरकारें नहीं; कर्नाटक के मामले में स्थिति इसके विपरीत लगती है ।

5.31 हम सहमत है कि संघ तथा राज्य सरकारों द्वारा किए गए व्यय की उत्पादकता तथा पैटर्न की सावधिक जांच और मूल्यांकन किया जाना चाहिए ।

राष्ट्रीय व्यय आयोग इस उद्देश्य को भलिभांति पूरा कर सकता है इसलिए हम जोरदार शब्दों में राष्ट्रीय व्यय आयोग के गठन की मांग करते हैं लेकिन ऐसा आयोग तदर्थ होना चाहिए न कि स्थायी आयोग। इस बात की राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 41 से 43 में और अधिक व्याख्या की गई है ।

जहां तक संघ के व्यय की समीक्षा का प्रश्न है वित्त आयोग ऐसी समीक्षा करने में समर्थ होना चाहिए । संघ सरकार को आयोग के लिए विचारणीय विषयों का निर्धारण करने के बजाए उसे एक ज्ञापन प्रस्तुत करना चाहिए जैसा कि राज्यों को करने के लिए कहा जाता है । वित्त आयोग को राज्यों के लिए निर्धारित मानदण्डों के अनुसार ही संघ व्ययों की पूरी तरह जांच करनी चाहिए ।

5.32 कर्नाटक में हमें कोई क्रियात्मक समस्या नहीं दिखाई देती लेकिन जिस रूप में लेखाओं को रखा जाता है उनकी सावधिक जांच प्राय: वांछनीय है ।

5.33 सरकार के सभी प्रमुख व्यय विभागों (सार्वजनिक कार्य, सिचाई, उद्योग, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सहित) में मूल्यांकन लेखा परीक्षा चालू करने की अत्यधिक आवश्यकता है और हम सुझाव देते है कि वाउचर लेखा परीक्षा की वर्तमान प्रणाली को केवल वही जारी रखा जाना चाहिए जहां प्राय: रख रखाव संबंधी कार्य किए जाते है । लेकिन लेखा परीक्षा की आम गुणवत्ता को मजबूत बनाए जाने की भी जरूरत है और इसके लिए महा लेखा परीक्षक के कार्यालय में लेखा परीक्षा विंग को मजबूत करने की जरूरत होगी ।

5.34 हमारा यह विश्वास है कि राज्य सरकारों के व्यय पर कारगर नजर रखने के लिए नियंत्रक महा लेखा परीक्षक को अवसर प्रदान करने के लिए विधि पर्याप्त रूप से लोचदार हो ।

5.35 राज्य विधान मण्डल में प्रस्तुत की जाने वाली नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्टें विस्तृत, तर्कसंगत और सही होती हैं जिससे विधानमण्डल किसी विषय के बारे में निश्चित दृष्टिकोण बना सके ।

5.36 नियंत्रक महालेखा परीक्षक की सहायता से सार्वजनिक लेखा समिति और सार्वजनिक उपक्रम समिति की वर्तमान व्यवस्था के माध्यम से उपलब्ध व्यय नियंत्रण संतोषजनक एवं पर्याप्त है । सार्वजनिक उपक्रम समिति की प्रभावोत्पादकता प्रचुर रूप से बढ़ जाएगी यदि नियंत्रक महा लेखा-परीक्षक की रिपोर्ट हमे विचार के लिए समय पर उपलब्ध करा दी जाए । यदि इन संस्थाओं को उनकी गतिविधियों में समुचित सहायता और सलाह दी जाए तो केन्द्र और राज्यों की सरकार के व्यय संबंधी कार्यों पर समुचित नियंत्रण के रूप कार्य करने के लिए समर्थ हों ।

5.37 राज्य विधान की प्राक्कलन समितियों की भूमिका को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से परिमाणित करने की आवश्यकता है । यह अधिक लाभकारी होगा कि लोक लेखा समिति द्वारा सरकारी व्यय की संवीक्षा पर पुन: विचार करने की बजाए नीतियों और कार्यक्रमों पर व्यापक रूप से विचार करें और सरकार को इन मामलों में परामर्श दें ।

5.38 भारत का नियंत्रक एवं महा लेखा परीक्षक सांविधिक प्राधिकरण के रूप में संघ एवं राज्य सरकारों के व्यय के औचित्य की जांच करता है । व्यय

आयोग स्थापित करने का उद्देश्य व्यापक है ऐसे व्यय की आवश्यकता और प्राथमिकताओं की जांच करने और मोटे तौर पर बताना कि क्या कुछ प्रकार के व्यय अन्ततोगत्वा वांछनीय हैं।

5.39 जहां राज्य सरकारें किसी स्कीम को कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी हो वहां उन्हें केन्द्र के प्रशासनिक मंत्रालय के हस्तक्षेप के बिना उस स्कीम के लिए व्यय की उपयुक्तता संबंधी निर्णय लेने का प्राधिकार होना चाहिए। केन्द्रीय प्रशासनिक मंत्रालयों प्रशासनिक वस्तुपरक एवं वित्त संबंधी मार्गनिर्देश बना सकता है और ऐसी स्कीमों के क्रियान्वयन तथा कार्य को मानीटर कर सकता है।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ, राज्य और समवर्ती सूची के इन्दराज, संघ सरकार और राज्य सरकारों के मध्य कार्यों और जिम्मेदारियों के संतुलन को प्रस्तुत करते हैं। योजना प्रक्रिया में यह आवश्यक रूप से प्रकट होना चाहिए और इसके फलस्वरूप सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में आर्थिक और सामाजिक योजना का इन्दराज है। लेकिन राज्य और केन्द्र के बीच योजना बनाने के लिए संयुक्त प्रयत्न पर किस सीमा तक परामर्श किए जाए यह कार्यरूप में अभी तक सामने नहीं आया है। राष्ट्रीय विकास परिषद् ने राष्ट्रीय योजना की जटिलता पर किसी वाद-विवाद और विचार विमर्श में सक्रिय फॉरम के रूप से भाग नहीं लिया है और इसके विचार विमर्श के बिना अन्य सदस्यों के भाषणों की औपचारिक सूची कमजोर पड़ी है।

केन्द्र और राज्य के संयुक्त प्रयत्न से राष्ट्रीय योजना को सक्रिय करने के लिए हम सुझाव देते हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद् को, योजना पर राष्ट्रीय वाद-विवाद में मुख्य केन्द्र होना चाहिए।

हम इसलिए सुझाव देते हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद् को समग्र रूप से पुनः संरचना की जाए ताकि यह अधिक प्रभावकारी हो सके। इसी प्रकार, हम सुझाव देते हैं कि योजना आयोग की भी पुनः संरचना की जाए। पुनः संरचित योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद् की सचिवालय के रूप में काम करना चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग की पुनः संरचना और उसके कार्य के संबंध में हमारे सुझाव राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ संख्या 46 से 48 में दिए गए हैं।

6.2 हम सुझाए गए प्रस्ताव से सहमत है।

6.3 हम मानते हैं कि योजना प्रक्रिया पर योजना आयोग और राज्य सरकार के बीच परामर्श बहुत कम होता है।

योजना आयोग की पुनः संरचना के साथ इसके कार्य संचालन के लिए नई क्रिया-प्रणाली को निर्धारित करने की भी आवश्यकता है। इस संबंध में विस्तृत रूप से हमारे व्यापक सुझाव, राज्य सरकार के ज्ञापन—पृष्ठ 47 से 49 दिए गए हैं।

6.4 हम मानते हैं कि ऊपर सूचीबद्ध तीसरे मत का अनुसरण करके योजना आयोग को संघ और राज्य सरकार दोनों से स्वतन्त्र बनाना व्यावहारिक नहीं है क्योंकि ऐसे आयोग की बाद में स्वयं की प्रभुसत्ता हो जाने का खतरा है और यह संघ या राज्य किसी भी सरकार की जवाबदेही नहीं होगा। हम मानते हैं कि योजना आयोग को हमेशा संघ सरकार का आवश्यक अंग रहना चाहिए लेकिन उसे संघीय भावना से कार्य करना चाहिए और राष्ट्रीय योजना बनाते समय इस जिम्मेवारी के प्रति सजग रहना चाहिए। इसके लिए जैसा कि पहले ही उल्लिखित है किया योजना आयोग की व्यावसायिक विशेषज्ञों और क्षेत्रीय आधार पार मुख्य मंत्री के प्रतिनिधि सहित पुनः संरचना करने की आवश्यकता है। प्रधान मंत्री और केन्द्र में योजना मंत्री तथा केन्द्र का वित्त मंत्री भी इसका सदस्य होना चाहिए। योजना आयोग की केन्द्र या राज्य योजना के संबंध में कोई कार्यपालक जिम्मेवारियां नहीं होनी चाहिए। केन्द्र सरकार और इस प्रयोजन के लिए, इसके प्रशासनिक बजट को समग्र रूप से केन्द्र और राज्यों में समान रूप से बंटा होना चाहिए।

आयोग के स्टाफ आदि के बारे में सुझाव और हमारे उपरान्त विचारों का व्यापक उल्लेख राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 47 से 49 में किया गया है।

6.5 प्रश्न 6.4 के लिए हमारे उत्तर देखें।

6.6 हम इस मत का पूर्णरूप से समर्थन करते हैं कि राज्य योजना में राष्ट्रीय प्राथमिकता को आवश्यक रूप से समाविष्ट किया जाए। हालांकि इस प्रकार की राष्ट्रीय प्राथमिकता के संघ और राज्य सरकारों के बीच सामंजस्य होगा लेकिन राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित सभी योजनाओं के विनिर्देशों के ब्यौरे तैयार करने के लिए मौजूदा स्तर पर छानबीन करने को सुनिश्चित करने के लिए योजना आयोग द्वारा राज्य योजनाओं के ब्यौरों की छानबीन करना निश्चय ही आवश्यक होगा। हम यह उदार दृष्टिकोण अपनाएंगे कि योजना आयोग को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए जाने वाले अन्य क्षेत्रों को छोड़कर कुछ मुख्य क्षेत्रों तथा बड़े और मध्यम स्तर पर सिंचाई बड़े और मध्य उद्योग, ऊर्जा और परिवहन के लिए विशिष्ट आबंटनों की जांच करनी होगी। ऐसी प्रणाली वार्षिक योजना के विचार विमर्श के लिए मार्गदर्शक होनी चाहिए।

6.7 हम यह मानते हैं कि राज्य योजनाओं के निर्धारण के लिए केन्द्रीय साधनों के हस्तान्तरण के संबंध में अंतयत्त महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि मुख्यतः राज्य सरकारों की बहुत बड़ी ऋण शोधन प्रतिबद्धताओं के कारण राज्य सरकारों के योजना वित्त के लिए पर्याप्त रूप से साधन जुटाने में भारत सरकार की भूमिका निरन्तर असंगत होती जा रही है। केन्द्रीय वित्त की सामान्य पद्धति ने ऋण शोधन की समस्या को बहुत अधिक बढ़ाया है जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है:

केन्द्रीय ऋण पर ऋण शोधन

श्रेणी	यूनिट	कर्नाटक		अन्य राज्य	
		पांचवीं योजना (1974–1978)	छठी योजना के 4 वर्ष (1980–84)	पांचवीं योजना (1974–1978)	छठी योजना के 4 वर्ष (1980–84)
प्राप्त	रुपए करोड़	284.0	556.3	5,173.4	12,571.9
केन्द्रीय ऋण मूल की पुनः अदायगी .	—वही—	148.3	309.5	3,468.6	9,715.9
ब्याज की अदायगी . . .	—वही—	91.1	189.9	1,791.2	3,870.1
अदा की गई कुल राशि . . .	—वही—	239.4	449.4	5,259.8	13,589.0
प्राप्त केन्द्रीय प्रतिशत ऋण के अनुपात के रूप में मूल अदायगी	प्रतिशत	52.2	55.6	67.0	101.7
प्राप्त केन्द्रीय ऋण के अनुपात के रूप में अदा की गई कुल राशि	प्रतिशत	84.7	89.8	101.7	108.1

यह प्रतीत होता है कि छठीं योजना के पहले चार वर्षों के दौरान प्राप्त केन्द्रीय ऋण की राशि की कुल मात्रा 556.3 करोड़ रुपए है। इस अवधि के दौरान राज्य सरकार ने भारत सरकार को 309.5 करोड़ रु० मूलधन और 189.9 करोड़ रु० ब्याज दिया है। इस अवधि के दौरान कुल ऋण शोधन प्रतिबद्धता 499.4 करोड़ रु० है। इस प्रकार ऋण शोधन प्रतिबद्धता संघ सरकार से प्राप्त सकल ऋण की तकरीबन 90 प्रतिशत राशि है। यहां यह भी स्पष्ट है कि ऋण शोधन समस्या समय के साथ तेजी से बीकट होती जा रही है और सभी राज्यों के लिए ऐसी प्रतिबद्धता वास्तव में जटिल है क्योंकि सभी राज्यों को भारत सरकार से प्राप्त राशि से 8 प्रतिशत अधिक राशि ऋण शोधन वसूली के रूप में लौटानी पड़ती है।

राज्य की ऋण शोधन बाध्यता की बिकटता को कम करने के लिए यह अनिवार्य है कि राज्य सरकार के व्यय को वित्तीय रूप से अलाभकारी रूप में बांटना चाहिए वह भले ही सामाजिक रूप से लाभकारी व्यय हो (पहली श्रेणी में राजस्व पर सभी प्रकार के व्यय के साथ-साथ शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं, कृषि और औद्योगिक मूलभूत संरचना, सड़क, पुल और सिचाई कार्य आदि पर पूंजी परिव्यय शामिल होंगे)। हम सिफारिश करते हैं कि ऋण घटकों को राज्य सरकार द्वारा उपगत वित्तीय रूप से लाभकारी व्यय के समानुपात में होना चाहिए। इन्हें व्यापक रूप में तभी प्राप्त किया जाएगा यदि केन्द्रीय सहायता के ऋण का अनुपात 30:70 में बदल दिया जाए।

प्रश्न 5.17 के लिए हमारे उत्तर भी देखें।

6.8 हम यह मानते हैं कि केन्द्रीय योजना सहायता का निर्धारण करने के लिए आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों की आवश्यकताओं की ओर विशेष श्रेणी राज्यों के श्रेणीकरण में विशेष सावधानी रखी जाती है और सभी राज्यों को पूरी केन्द्रीय योजना सहायता का बड़ा हिस्सा न मिलने पर बटवारे के मौजूदा सूत्र में कुछ आशोधन अन्य राज्यों के परामर्श से निर्धारित करने होंगे।

6.9 केन्द्रीय योजना सहायता की पद्धति द्वारा किस सीमा तक समानता के लिए विचार और क्षेत्रीय विकास को संतुलित करना और गरीबी दूर की जा सकती है इसका यह निर्धारण करना कठिन है। वास्तव में समान संतुलन के लिए प्रयुक्त मापदण्ड मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है जब तक कि समानता के लिए मानकों को पहले परिभाषित न किया जाए। निसदेह संशोधित गाडगील सूत्र कर्नाटक के हित में सफल न हो सका, क्योंकि कर्नाटक में जनसंख्या, सघनता राष्ट्रीय औसत से कम है और इसकी प्रतिव्यक्ति आय, राष्ट्रीय औसत से अधिक है (जैसा कि केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा निर्धारित है)। इसके बावजूद गाडगील का सिद्धान्त लागू करने पर कर्नाटक की दृष्टि से) कर्नाटक के पक्ष में कुल राज्य योजना के आकार की तुलना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अतिरिक्त केन्द्रीय संसाधन अन्तरित किए जाएंगे। इस प्रकार हम यह तर्क कर सकते हैं कि यह मुद्दा संघ सरकार पर राज्य सरकार की बढ़ती हुई ऋणा-ग्रस्तता के मुद्दे से बहुत कम महत्वपूर्ण है जिस पर प्रश्न 6.7 के उत्तर में विचार-विमर्श किया जा चुका है।

6.10 हम अभिव्यक्त विचारों से सहमत हैं। जैसे-जैसे छठी योजना ने तरक्की की है केन्द्रीय रूप से प्रत्यायोजित सकल संसाधन अन्तरित करने और केन्द्रीय क्षेत्रक योजनाओं में निरन्तर विकास हुआ है। अत: जैसा कि नीचे इंगित है कि वर्ष 1978–79 के दौरान संघ सरकार द्वारा कर्नाटक को इन योजनाओं पर 40 करोड़ रुपए के कुल संसाधनों का अंतरण किया जब कि वर्ष 1983-84 में अनन्तिम रूप से अनुमानित 120 करोड़ रुपए अन्तरित किए गए थे। वास्तव में छठी योजना के आरम्भ में योजना ने यह सहमति दी थी कि कर्नाटक को छठी योजना के दौरान ऐसी योजना के अन्तर्गत 61.43 करोड़ रुपए की राशि दी जाएगी लेकिन व्यवहार में छठी योजना के दौरान कुल संसाधनों के अन्तरण में अनुमानित 409.44 करोड़ रुपए लगेंगे।

कर्नाटक को हस्तांतरित केन्द्रीय योजना साधन

	राशि (करोड़ रुपये)			अनुपात (%)		
	1973-74	1978-79	1983-84	1973-74	1978-79	1983-84
गाडगील सूत्र के अन्तर्गत	35.5	87.5	99.6	40.2	27.5	13.1
बाह्य सहायता प्राप्त परियोजना के लिए	..	..	22.4	..	..	3.0
अतिरिक्त योजना सहायता	..	..	..	..	..	..
राज्य योजना के लिए	35.5	87.5	121.0	40.2	27.5	16.1
कुल केन्द्रीय संसाधन						
(कुल राज्य योजना)	(69.9)	(277.0)	(630.5)	(79.2)	(87.4)	(84.0)
केन्द्रीयकृत प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रक योजना के लिए	18.4	40.4	120.0	20.8	12.6	16.0
केन्द्र से अन्तरित कुल योजना संसाधन	53.9	127.5	241.0	61.0	40.1	32.1
कुल राज्य योजना और केन्द्रीयकृत प्रायोजित केन्द्रीय क्षेत्रक योजनाएं	88.3	317.9	750.5	100.0	100.0	100.0

चौथी योजना के आरम्भ में, राष्ट्रीय विकास परिषद, ने, राज्य के लिए केन्द्रीय सहायता का ऐसी योजना के अन्तर्गत कुल केन्द्रीय सहायता की 1/6 मात्रा तक की सीमा तक निश्चित किया और यह भी महसूस किया कि ऐसी योजना को अन्तर्राज्यीय योजना या राज्य के हित में सार्थक किए जाने के लिए विशेष वांछनीय मार्गदर्शन को भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में ऐसी योजना के अन्तर्गत अन्तरित केन्द्रीय संसाधन राज्य योजना निधिकरण में अन्तरित केन्द्रीय संसाधन के बराबर हैं। हम इस बात पर जोर देते हैं कि चौथी योजना के आरम्भ में राष्ट्रीय परिषद् द्वारा अभिव्यक्त विचारों को कार्यान्वित किया जाए।

6.11 इसमें संदेह है कि भारत सरकार अथवा राज्य सरकारों में मॉनीटर करने और मूल्यांकन के कामों को आवश्यक जोश से किया जाता है लेकिन कर्नाटक में नाई कि बहुस्तरीय समीक्षा नामक प्रणाली जो कि राज्य, जिला और तालुके के माध्यम के स्तर पर कार्य करती है। पिछले दो वर्षों के दौरान योजना कार्यक्रमों का कार्यान्वित करने के मॉनीटर करने के कामों को काफी कम किया है लेकिन यदि मॉनीटर करने और मूल्यांकन करने के काम को सरकारी विभागों के काम के साथ अंगीरूप में जोड़ना है तो सरकारी विभागों की इन कार्यों की उपयोगिता के बारे में और अधिक जागरूक करने की आवश्यकता है यह भी महसूस करने की आवश्यकता है कि हम इस उद्देश्य के लिए समुचित रूप से योग्य पेशेवर स्टाफ को लगाए।

6.12 हम यह भी पूरी तरह विश्वास करते हैं कि हमारी योजना प्रणाली में केन्द्रीयकृत आयोजन सहयोगी संघवाद का अभिन्न भाग है वास्तव में ऐसी केन्द्रीयकृत आयोजना का राज्य स्तर से काफी नीचे विस्तार करना होगा। इसी भावना से कर्नाटक स्थानीय सरकार जिला परिषद, संरचना जल्दी लागू कर रहा है और यह आवश्यक है कि जिला परिषदों को योजना में भाग लेने का अवसर दिया जाए और उन्हें उदाहरणार्थ यह न लगे कि 7वीं योजना एक ऐसे ढांचे में ढली है जिसमें योजना में लाव की गुंजाइश नहीं है योजना प्रक्रिया के तदनुसार विकेन्द्रीकरण के लिए यह आवश्यक है वार्षिक योजना चर्चाओं (योजना आयोग द्वारा वार्षिक योजनाओं की स्वीकृति सहित) के लिए आवश्यकता है कि वे ऐसी विकेन्द्रीयकृत योजना के प्रति संवेदी हो।

इस बात की ओर अधिक व्याख्या राज्य सरकार के ज्ञापन पृष्ठ 51 से 54 में की गई जो विकेन्द्रीकृत योजना से संबंधित है।

6.13 कर्नाटक में पिछले दशक के दौरान योजना मशीनरी को काफी मजबूत किया है और बहुत से पेशेवर योग्यता प्राप्त विशेषज्ञों को योजना विभाग ने योजना बनाने मूल्यांकन एवं मॉनीटर करने तथा विशेष अध्ययन जो कि योजना प्रक्रिया में सहायक होते हैं, में सहायता देने के लिए शामिल किया है। योजना विभाग के सचिव पेशेवर अर्थ शास्त्री हैं। योजना प्रक्रिया के राज्य स्तर पर परिणामी लाभ महत्वपूर्ण रहे हैं। इस प्रकार से नियुक्त किए गए विशेषज्ञों के राज्य सरकार के लिए अधिक लाभकारी होने के लिए अब यह आवश्यक है कि ऐसे विशेषज्ञ सरकार के अन्दर उच्च निर्णय लेने में प्रत्यक्ष रूप से भाग लें।

क्या राष्ट्रीय योजना को उत्तरोत्तर अधिक निर्देशात्मक आदेशात्मक बनना चाहिए यह ऐसा मुद्दा है जो राज्य योजना प्रक्रिया की कुशलता की अपेक्षा विचारधारा से अधिक संबंधित है जब तक हमारी मिश्रित अर्थव्यवस्था है राष्ट्रीय योजना में स्पष्ट रूप से अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों एवं संघ सरकार राज्य राज्य सरकारों तथा निजी क्षेत्र द्वारा प्रबन्धित विकासात्मक गतिविधि के अनुभव के संबंध में निर्देशात्मक तथा आदेशात्मक पहलुओं को मिलाना होगा। किसी भी हालत में अधिकतर राष्ट्रीय योजना गतिविधि आज निर्देशात्मक है जिसमें निजी क्षेत्र के निवेश का हिस्सा लगभग राष्ट्रीय योजना का आधा होता है।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम अभिव्यक्त किए गए मत से सहमत हैं क्योंकि सातवीं अनुसूची की संघ सूची में उद्योगों की एक बहुत बड़ी संख्या की वृद्धि ने राज्य में औद्योगिक विकास करने के लिए राज्य सरकार की नीति संबंधी पहली की प्रभावक उत्पादकता को बहुत क्षीण किया है। वस्तुतः संघ सरकार द्वारा लाइसेन्स प्रदान करने की शक्ति का इस तरह से इस्तेमाल किया जाता रहा है कि ऐसी महसूस होता है कि वे उत्तरोत्तर मन माने ढंग से दिए जाते रहे हैं और लाइसेन्स तकनीकी आर्थिक अभिव्यवहार्यता को ध्यान में कम रखते हुए और स्थिति संबंधी विशिष्ट राजनैतिक वारियताओं के आधार पर अधिक प्रदान किए जाते हैं। हालांकि हमारा यह विश्वास है कि पूरे देश में उद्योगों का विस्तार होना चाहिए फिर भी ऐसे उद्योगों की स्थापना से शुरू में ही वे हानि उठाना जारी कर देंगे यदि उनकी स्थिति संबंधी आधार की तकनीकी आर्थिक और वित्तीय व्यवहारिता से अलग कोई मापदण्ड अपनाया जाएगा। निम्नलिखित उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि लाइसेन्स प्रदान करने की शक्ति का इस्तेमाल निवेश के ठोस सिद्धान्तों से अलग प्रकार से किया जाता रहा है और यह कर्नाटक के हित के लिए घातक भी रहा है :—

(क) टाटा इंजीनियरिंग लोकोमोटिव कम्पनी ने चेसिस के निर्माण के लिए अपनी तृतीय यूनिट की स्थापना का प्रस्ताव किया था और कर्नाटक में धारवाड़ का इसके लिए सर्वोत्तम स्थिति के रूप में चयन किया था इसके लिए अनुमति मांगते समय भारत सरकार ने टेलको को यह सुझाव दिया कि वे इसके बजाय अपने यूनिट को उत्तर प्रदेश में लगाएं और तदनुसार टेलको को लाइसेन्स के लिए अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा गया।

(ख) ग्लेक्सो एवं कर्नाटक राज्य औद्योगिक निवेश तथा विकास निगम बिलारी जिले में (मक्के पर आधारित) टैक्सट्रोस मोनोहाइड्रेट एवं संबद्ध उत्पादों के एक यूनिट की स्थापना करना चाहते थे इसका आशय पत्र भी जारी हो चुका है लेकिन संघ सरकार इस यूनिट को देश में कहीं और लगाने के लिए ग्लेक्सो प्रेरित करने का प्रयास करती रही है।

(ग) टैक्टर इण्डिया लिमिटेड ने अर्थ मूविंग उपकरणों के निर्माण के लिए कर्नाटक में एक यूनिट लगाने के लिए एक आवेदन किया था। संघ सरकार कम्पनी को यह संयंत्र अन्यत्र लगाने के लिए जोर डाल रही है।

(घ) बहुत से ठेकेदारों ने कर्नाटक में मिनी सीमेंट प्लान्ट लगाने के लिए आवेदन किया है भारत सरकार ने इन सभी आवेदनों को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया है कि जहां तक सीमेन्ट का संबंध है कर्नाटक पहले ही बेशी उत्पादन वाला राज्य है। (इस बात की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए कि सीमेंट उद्योग स्वतंत्र उद्योग नहीं है और यह आवश्यक रूप से उन्हीं क्षेत्रों के आस पास स्थापित हो सकता है जहां चूने के पत्थरों की खानें हों।) इसके अलावा लेवी सीमेंट के वितरण की वर्तमान नीति इस प्रकार की है हालांकि कर्नाटक सीमेन्ट के निर्माण में बेशी उत्पादन वाला राज्य है फिर भी भारत सरकार से इसे अपनी जरूरतों के एक चौथाई से भी कम प्राप्त होता है।

7.2 (i) हम जोरदार शब्दों में मांग करते है कि "राष्ट्रीयलोकहित" शब्द को इसके कार्यक्षेत्र तक परिसीमन करने के लिए अधिक स्पष्ट शब्दों में परिभाषित किया जाए। मोटे तौर पर हम यह विश्वास करते है किसी उद्योग को राष्ट्रीय नियंत्रण में लाने के संदर्भ में राष्ट्रीय हित की दुहाई देना उस उद्योग के उत्पाद के लिए मांग (निर्यात की मांग सहित) को देखते हुए देश में उस विशेष उद्योग में लगाने के लिए उसकी कुल क्षमता के दृष्टिकोण से न्यायसंगत है। सातवीं अनुसूची I की मद 52 में "लोक हित" शब्द की ऐसी व्याख्या से संघ सरकार की रक्षा उद्योगों को स्थापित करने संबंधी (सूची I की मद 7 के अन्तर्गत) विस्तृत शक्तियां कम नहीं होंगी अथवा बड़े व्यापार घरानों के ओर अधिक विस्तार पर रोक लगाने से औद्योगिक संरचना में एकाधिकार प्रवृत्तियां विनियमित करने के लिए ये शक्तियां कम नहीं होती इसके अलावा सार्वजनिक एवं नीजी क्षेत्र में संतुलन औद्योगिक नीति संकल्प में विचारित ढंग से जारी रखा जा सकता है। अब जिस बात की मांग की जा रही है वह यह नहीं कि सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्षेत्र को कम किया जाए अपितु संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच इसका अधिक कुशल प्रभाजन किया जाए।

(ii) हमारा विश्वास है कि घरेलू उपभोग की सभी मदों को पहली अनुसूची से निकालकर उद्योग (विकास एवं विनियमन) अधिनियम 1951 के अधीन लाया जा सकता है इनमें सिया-सिलाई, साबुन, पेंट वार्निश, तुलन मशीने, सिलाई मशीने, लालटेन, फर्नीचर एवं कटलरी जैसी वस्तुएं शामिल हैं। यदि आवश्यक हो तो

इन वस्तुओं का उत्पादन लघु उद्योगों के लिए आरक्षित किया जा सकता है।

7.3 ज़ोरदार शब्दों में यह मांग हम करते हैं कि राज्य सरकारों को उन सभी उद्योगों के लिए औद्योगिक लाइसेन्स जारी करने की शक्ति दे दी जाए जिनका अधिकतम पूंजी निवेश 20 करोड़ रुपए से ज्यादा न हो। राज्य सरकारों की शक्तियों का ऐसा विकेन्द्रीकरण औद्योगिक नीति संकल्प (जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रों का निर्धारण करता है) तथा विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में नए निवेशों की वांछनीयता (जैसा कि उदाहरण के लिए भारत सरकार के वार्षिक औद्योगिक नीति के मार्गनिर्देश में उल्लेखित है) के संबंध में संघ सरकार के मूल्यांकनों के अधीन रहेगा। राज्य सरकारों को इस उद्देश्य के लिए विदेशी मुद्रा की निर्धारित मात्रा के आबन्टन के माध्यम से सहवर्ती रूप में इन उद्योगों की स्थापना के लिए अपेक्षित पूंजी, कच्चा माल और तकनीक (विदेशी सहयोगियों के माध्यम से) आयात करने की मंजूरी देने के लिए भी सहवर्ती रूप में प्राधिकृत किया जाना चाहिए फिर भी राष्ट्रीय आयात नीति के संबंध में मार्गनिर्देशों के बनाने तथा ऐसे आयातों के लिए क्रियाविधियों और नियमों का निर्माण करके संघ सरकार का नीति की नोंच पर पूर्ण अधिकार रहेगा।

7.4 हम मानते हैं कि कर्नाटक ने लघु उद्योग के क्षेत्र का विकास करने के लिए कच्चा माल उपलब्ध करा कर बाजार समर्थन प्रदान करके और राज्य वित्त निगम तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा वित्त उपलब्ध करवा कर स्वयं को पर्याप्त रूप से संगठित किया है और अधिक सहायता देने पर मुख्य रोक मुख्यतः भारत सरकार द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले नियंत्रण से पैदा होती है। उदाहरण के लिए, लघु उद्योगों के लिए प्रमुख कच्चे माल में ढलवा लोहा, इस्पात, कोक, कोयला, मोम और सीमेन्ट है और ये सभी भारत सरकार द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। इसके अलावा उद्योगों के लिए आवश्यक आधारभूत संरचनाएं और उन्हें संभालने वाली सुविधाएं भी संघ सरकार और इसकी एजेन्सियों द्वारा पूरी तरह नियंत्रित होती है।

7.5 कुछ एक उदाहरणों में भारत सरकार ने औपचारिक व अन्यथा रूप से अनुदेश भी जारी किए हैं जिनमें उन्हें कहा गया है कि वे विशिष्ट औद्योगिक यूनिटों की वित्तीय सहायता देने से इन्कार करें या देर करें। हम यह मानते हैं कि संघ सरकार के ऐसे अनुदेशों के विरुद्ध नियंत्रण और संतुलन बनाए जाने चाहिए और इस उद्देश्य के लिए इन वित्तीय संस्थाओं के बोर्डों में राज्य सरकार के प्रतिनिधियों की नियुक्ति की जानी चाहिए। हम राष्ट्रीय उधार परिषद् की स्थापना का सुझाव देते हैं जिसकी संरचना और कार्यों पर राज्य सरकार के ज्ञापन के पृष्ठ 46–48 तक विस्तार से विचार किया गया है।

7.6 हम सहमत हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निदेशों की स्थिति के मामलों में राज्य सरकारों से पर्याप्त रूप में परामर्श नहीं किया जाता वास्तव में हम इससे भी आगे बढ़ कर यह दलील देंगे कि जहां कर्नाटक में विशिष्ट केन्द्रीय निवेशों के लिए निर्णय तकनीकी-आर्थिक आधार पर न्यायसंगत थे वहां भी संघ सरकार ने ऐसे निवेशों को राज्य से बाहर करने के अनुदेश दिए हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय टेलीफोन उद्योग में बंगलोर के निकट इलैक्ट्रॉनिक टलीफोन एक्सचेंज विनिर्माण करने के यूनिट की स्थापना का प्रस्ताव वहां पर पहले से उपलब्ध इलैक्ट्रॉनिक के लिए बेहतरीन आधारभूत संरचना को देखते हुए और बंगलोर में स्थित वर्तमान श्रम शक्ति को विस्थापित न करने के लिए किया था। लेकिन संघ सरकार ने यह निर्णय किया कि यह उद्योग यहां की बजाय उत्तर प्रदेश के गोंडा में स्थापित किया जाए जहां पर कि कोई आधारभूत संरचना की सुविधा उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार अन्तिम स्थल चयन समिति ने मंगलोर में आयल रिफायनरी की स्थापना की सिफारिश की थी और एक लम्बे समय से यह भारत सरकार के विचाराधीन है। इसके बावजूद हमें यह बात विश्वसनीय रूप से बताई गई है कि संघ सरकार ने मंगलोर की बजाय अगली रिफायनरी हरियाणा के करनाल नामक स्थान पर लगाने का फैसला किया है। इसी प्रकार भारत सरकार द्वारा स्थापित किए जाने वाले एकीकृत स्टील प्लान्ट के लिए तकनीकी-आर्थिक आधार पर होसपेट का चयन किया गया था और इस उद्देश्य के लिए तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने शिलान्यास भी किया था। लेकिन बाद में संघ सरकार ने यह निर्णय किया कि अगले स्टील प्लान्ट की स्थापना के लिए उड़ीसा में पारादीप और आन्ध्र प्रदेश में विशाखापट्टनम को चुना जाए इसके लिए हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि आधार पूर्णरूप से तकनीकी आर्थिक न होकर कोई अन्य रहा होगा।

7.7 हम सहमत हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र, विशेषकर भारी उद्योगों में संघ की निवेश में कोई तर्कसंगतता दिखाई नहीं देती। हम यह भी मानते हैं कि मजबूत औद्योगिक आधारभूत संरचना तथा बेहतरहीन समाधन की बुनियाद होने के बावजूद कर्नाटक की प्रायः उपेक्षा की गई है। हम यह दलील देंगे कि केन्द्रीय निवेश के लिए स्थान का निर्धारण करने के लिए मुख्य आधार तकनीकी-आर्थिक आधार होती चाहिए।

7.8 पिछले तीन दशकों के अनुभवों से हमारा यह विश्वास बना है कि औद्योगिक विकास क्षेत्रों को पिछड़े हुए घोषित करने का आधार जिला नहीं होना चाहिए। इसकी बजाय हमारा मानना है कि भारत सरकार के प्रोत्साहन अधिक प्रभावी होंगे यदि वे छोटे क्षेत्रों (जैसे तालुका) पर आधारित हों और औद्योगिक कारण के लिए उनकी क्षमता का मूल्यांकन राज्य सरकार करे।

व्यापार एवं वाणिज्य

8.1 अनुच्छेद 307 के अन्तर्गत हम ऐसे किसी प्राधिकरण के गठन का स्वागत करते हैं, हम जानते हैं कि अन्तर्राज्यीय और अन्तर्राज्यीय व्यापार में बहुत ही बाधाएं और अवरोध विद्यमान हैं जिनका सही कार्यान्वयन कई बार कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, यह स्पष्ट है कि वस्तुओं पर उगाहे जाने वाले बिक्रीकर में एकरूपता न होने के कारण व्यापार में परिहार्य भटकाव आ जाता है और इससे कुछ एक प्रकार के व्यापारों पर प्रायः विपरित असर पड़ता है। इसी प्रकार चुंगी कर वस्तुओं के आसान आवागमन को रोकते हैं। इसलिए प्रस्तावित प्राधिकरण के कार्यक्षेत्र में केन्द्र-राज्य और अन्तर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य संबंध तथा एक ओर सरकारों के बीच सामूहिक रूप से सोचने वाले मुद्दों और दूसरी ओर व्यापार और वाणिज्य के निजी प्रतिनिधियों और उपभोक्ता के बीच उठने वाले मुद्दों को लाने की जरूरत है।

कृषि

9.1 हम केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल के कथन से सहमत हैं। वास्तव में 1967 से स्थिति और भी बिगड़ी है और राज्य स्तर पर कृषि संघ मंत्रालय का कृषि नीति निर्धारण पर नियंत्रण अत्यधिक बढ़ा है। ऐसा ही नियंत्रण केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के लिए राज्यों को हस्तांतरित होने वाले संसाधनों के माध्यम से भी काफी सीमा तक प्रयोग किया जाता है।

9.2 हम राष्ट्रीय कृषि आयोग के कथन से सहमत हैं कि कृषि विकास के लिए व्यवहार्य नीतियां स्थानीय परिस्थितियों के प्रति पूर्णतया संवेदी होती है इसलिए उचित रूप से राज्य स्तर पर बनाई जाती है। भारत सरकार का दायित्व कृषि के लिए अनुसंधान आधार का विकास करना और कृषि निविष्टि का पूर्ति और वितरण की व्यवस्था को समुचित रूप से मजबूत करना है।

9.3 जैसा कि राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा विचार किया गया है इस समय प्रभावी सहयोग विद्यमान नहीं है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के निर्माण के दौरान राज्य सरकार से पूर्व परामर्श नहीं लिया जाता प्रायः ऐसी योजनाएं बनाकर राज्य सरकार को वित्त वर्ष के दौरान दी जाती हैं और उस समय राज्य सरकार को ऐसी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक 50 प्रतिशत योगदान करना बहुत कठिन हो जाता है। यह वार्षिक योजना के उद्देश्य को भी नकार देता है। वास्तव में, भारत सरकार से ऐसी योजनाओं पर विचार करने का अवसर राज्य सरकार को वार्षिक योजना पर विचार-विमर्श के दौरान मिलता है और यह वांछनीय लगता है कि अगले साल के लिए बनाई जाने वाली केन्द्र द्वारा प्रायोजित नई योजनाओं को इस विचार-विमर्श से काफी समय पहले बना लिया जाए।

9.4 कृषि की चुनी हुई वस्तुओं के लिए समर्थित कीमतें और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन निर्गम कीमत तय करने में संघ सरकार की पहल से यह सुनिश्चित हो जाता है कि राज्य सरकार के पास नीति में हेर-फेर के लिए कोई अवसर नहीं रहता । ऐसा इसलिए है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत निर्गम कीमत समर्थित कीमत (जो कि अधिप्राप्ति कीमत भी है) से अनिवार्य रूप से अधिक होती है और यह अधिकतया परिवहन और भंडारण की लागत तथा प्रशासनिक लागत को लगाकर बनती है। परिणामस्वरूप सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत निर्गम मूल्य में उतनी ही बढ़ोत्तरी किए बिना अधिप्राप्ति कीमत बढ़ाने के लिए राज्य सरकार के पास एक ही रास्ता बचता है वह है आर्थिक सहायता पर खर्च । इस विकल्प की भी स्पष्ट सीमाएं हैं इसलिए यह अत्यन्त अनिवार्य है कि कृषि मूल्य आयोग द्वारा कृषि फसलों के उत्पादन की निविष्टियों की कीमत संवेदी ढंग से की जाए और समर्थित कीमतों की घोषणा करने से पहले राज्य सरकारों से सक्रिय परामर्श किया जाए ।

9.5 कृषि विकास संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों के तीव्र कार्यान्वयन में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और नाबार्ड दोनों में अत्यधिक केन्द्रीयकरण से निरन्तर बाधा आ रही है । भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा किया जाने वाला अनुसंधान चूंकि अनुकूली अनुसंधान है, कृषि उत्पादकता के लिए उसकी उपयोगिता तथा विवक्षा राज्य सरकार के अनुसंधान तथा विस्तार एजेंसियों के लोचपूर्ण सहयोग पर आवश्यक रूप से निर्भर है । इस समय ऐसे सहयोग का अभाव है और कर्नाटक में स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान की संस्थाएं प्राय: ऐसी सिफारिशें करती हैं जो राज्य सरकारों की एजेंसियों से मेल नहीं खाती इसलिए कई बार इससे फील्ड प्रसार स्टाफ को परेशानी होती है और कृषक दुविधा में पड़ जाते हैं । इसी प्रकार राज्य की कृषि वित्तीय संस्थाओं के लिए कम और लम्बी अवधि के सहयोग कार्यक्रम के लिए नाबार्ड (NABARD) चूंकि मूल रूप से पुन: वित्तीयन एजेंसी है (और कुछ सीमा तक वाणिज्यिक और क्षेत्रीय देहाती बैंकों के लिए भी) इसलिए निवेश की बैंक ग्राह्यतर एवं उधार पात्रता का प्राथमिक मूल्यांकन राज्य की इन वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। नाबार्ड द्वारा लगाई किसी अतिरिक्त तकनीकी अथवा वित्तीय पूर्व शर्त (जिनमें से कुछ के लिए एक के लिए राज्य सरकार की वचनबद्धता अपेक्षित होती हैं) का परिणाम यह होता है कि योजनाओं में वित्तीय व्यवस्था के लिए देर हो जाती है, कृषि के अन्तरण की गति मन्द हो जाती है।

खाद्य और सिविल पूर्ति

10.1 अनाज तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की अधिप्राप्ति, मूल्य निर्धारण, ढुलाई और वितरण में केन्द्र-राज्य संबंधों में सुधार की काफी गुंजाइश है । इस प्रकार हालांकि राज्य सरकार की पूरी अनाज अधिप्राप्ति केन्द्रीय पूल को सौंप दी जाती है । फिर भी ऐसा लगता है कि राज्य सरकार को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए आबंटित अनाज का अधिप्राप्ति की मात्रा से कोई संबंध है । यह वांछनीय है कि अनाज के आबंटन का अनाज की अधिप्राप्ति के प्रयास के साथ उतना ही जोड़ा जाना चाहिए जितना कि प्रत्येक राज्य की आवश्यकता को। इसी प्रकार संघ सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली भी निर्गम मूल्य तथा स्वीकार्य थोक, खुदरा तथा अन्य प्रशासनिक प्रभारों को राज्य सरकार के साथ परामर्श किए बिना ही एक पक्षीय रूप से निर्धारित करती है । केन्द्रीय भाण्डागार निगम जैसी केन्द्र सरकार की एजेन्सियों द्वारा भाण्डारण क्षमता का निर्माण राज्य सरकार के उसकी वास्तविक भाण्डारण क्षमता का पता लगाए बिना किया जाता है ।

इन सभी मामलों में राज्य सरकारों से और अधिक परामर्श की आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक वर्ष अनाज की स्थिति मानसून के साथ जुड़ी रहती है । ऐसे परामर्श में केन्द्र और राज्यों के बीच हुई सर्वसम्मति से वार्षिक खाद्यान्न नीति बनाने को शामिल किया जाना चाहिए, ऐसी सर्वसम्मति समुचित रूप से उच्च स्तरीय परामर्श फोरम में होनी चाहिए ।

10.2 ऐसी सावधिक समीक्षा बहुत आवश्यक लगती है ।

शिक्षा

11.1 इस आलोचना में अधिक औचित्य नहीं दिखाई देता कि राज्यों की पहल और प्राधिकार में बहुत अधिक हस्तक्षेप है और अधिक विकास प्राप्त करने में महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध शायद वित्तीय संसाधनों का है । वस्तुत: राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उच्च शिक्षा में एकरूपता और उच्च स्तर सुनिश्चित करने की आवश्यकता को सरकारी नजर से नहीं देखा जा सकता और इस संबंध में संघ सरकार की निश्चित भूमिका है ।

11.2 हालांकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उच्च शिक्षा और अनुसंधान के स्तर के निर्धारण एवं समन्वय के लिए एक मुख्य एजेन्सी माना जाता है, फिर भी विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर को प्रभावित करने में इसकी प्रभावी उत्पादकता निश्चय ही स्पष्टतया अब तक सीमित रही है यह अधिकतर अनुदान देने वाले के रूप में ही कार्य करती रही है (हालांकि इसमें भी इसके संसाधन अपर्याप्त हैं और योजना अवधि के दौरान इसकी स्वीकार्यता देरी से प्राप्त होती है) । लेकिन यह महत्वपूर्ण है कि उच्च शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीति के मापदण्ड बनें और वे सभी राज्यों में विश्वविद्यालययों को प्रभावी रूप से प्रभावी करें। यदि हम उच्च शिक्षा में विभिन्न स्तरों को और आगे नहीं बढ़ाना चाहते इस बात की जांच करने की आवश्यकता है कि ऐसे स्तर को बनाने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग सर्वाधिक उपयुक्त संगठन है या इसकी बजाय किसी और संस्था के गठन की आवश्यकता है जिसमें और अधिक विशेषज्ञता हो ।

विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता देने के लिए विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा लगाई गई शर्तें भी प्राय: इन शर्तों के मोटे तौर के आशय से असंबन्धित होती हैं उदाहरणार्थ, इस प्रकार 1980 में कर्नाटक में मंगलौर और गुलबर्गा में दो नए विश्वविद्यालयों का गठन हुआ था । इन विश्वविद्यालयों ने न्यूनतम परिसम्पत्तियों, स्टाफ अध्यापन की सुविधाओं, अनुसंधान और छात्रों की सुविधाओं के संबंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा लगाई गई सभी शर्तों को पूरा कर दिया है लेकिन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सुझावों के अनुसार विश्वविद्यालय अधिनियम का अभी तक संशोधन नहीं किया गया (ऐसे संशोधन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्य अवधि से लम्बी होती है) । परिणामस्वरूप इन दोनों नए विश्वविद्यालयों को अभी तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा वित्तीय सहायता के लिए उपयुक्त घोषित नहीं किया गया ।

11.3 परामर्श तथा विचार-विमर्श के लिए वर्तमान मंचों, विशेषकर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड तथा अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् को बहुत मजबूत किया जाना चाहिए । यदि आवश्यकता हो तो उन्हें संवैधानिक संस्थाएं बना देना चाहिए। तकनीकी शिक्षा में विशेष रूप से यह आवश्यक है जहां पर देश में ये संस्थाएं अपेक्षाकृत और स्वतंत्र रूप से बढ़ी है और जहां अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् मात्र सलाहकार संस्था होने के कारण उसके पास भारतीय चिकित्सा परिषद् जैसी शक्तियां नहीं हैं ।

11.4 हालांकि अनुच्छेद 29-30 के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के अधिकारों को लागू किए जाने की जरूरत है । अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था का निर्धारण करने के लिए सुस्पष्ट कसौटी के बारे में अपर्याप्त स्पष्टता दिखाई देती है । साधारणतया यह माना जाता है कि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान उस अल्पसंख्यक समुदाय की भलाई के लिए होना चाहिए (दूसरे समुदायों के लोगों को भी कुछ लाभ मिल सकता है) लेकिन, क्योंकि ऐसे अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों को दाखिलों को नियमित करने का अधिकार है । इसलिए बहुत-से संस्थान अब इस प्रकार चलाए जाते हैं कि अल्पसंख्यक समुदाय से इतर लोगों को उनका ज्यादा लाभ पहुंचता है । इसलिए ऐसे संस्थानों को स्थापित करने की प्रेरणा के नाम पर कई बार वाणिज्यिक शोषण भी हो सकते हैं। संविधान बनाते समय ऐसी आकस्मिकता के बारे में सम्भवत: सोचा नहीं गया था और अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान की अधिक स्पष्ट परिभाषा के माध्यम से ऐसी आकस्मिकता को समाप्त करने के लिए, समुचित संशोधन वांछनीय है ।

11.5 जहां तक कर्नाटक का संबंध है मतभेदों या मुद्दों के विशिष्ट उदाहरण नहीं हैं।

अन्तर्सरकारी समन्वय

12.1 हम यह महसूस करते हैं कि जैसा कि हमने पहले सुझाव दिया है अंतर्राज्यीय परिषद् को सक्रिय किया जाना चाहिए और इसे केन्द्र-राज्य मुद्दों की समस्याओं और राज्यों की आपसी समस्याओं पर विचार करने के लिए एक मंच बनना चाहिए। अंतर्राज्यीय परिषद् पुन: बनाई जाए। राष्ट्रीय विकास परिषद और इसकी स्थाई समितियों को इन समस्याओं के अध्ययन और उनके समाधान में समर्थ होना चाहिए। यह बात राज्य सरकार के ज्ञापन में पृष्ठ 19-20, जिसका संबंध अंतर्राज्यीय परिषद् से है, पृष्ठ 46 से 48, जिसका संबंध राष्ट्रीय विकास परिषद् की पूर्ण संरचना से है, पृष्ठ 47-48, जिसका संबंध योजना आयोग की पुन: संरचना से है, और पृष्ठ 49-51, जिसका राष्ट्रीय उधार परिषद् से संबंध है, विस्तार से बताई है।

प्रस्तावित अंतर्राज्य परिषद् पर कर्नाटक सरकार की टिप्पणी

1. **गठन**: अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत अंतर्राज्य परिषद् के लिए वर्तमान व्यवस्था संतोषप्रद नहीं है। इसमें यह भी कहा गया है कि ऐसी परिषद् का गठन, जब आवश्यकता हो तब किया जाए। इसके विपरीत, कर्नाटक सरकार का अंतर्राज्य परिषद् को स्थायी संस्था के रूप में गठन करने का प्रस्ताव है जो अपना कार्य करती रहे और तीन माह की विशेष अवधि में एक बार इसका अपना सत्र हो।

2. **संरचना**: अंतर्राज्य परिषद् में निम्नलिखित होने चाहिए :—

(क) अध्यक्ष के रूप में प्रधान मंत्री।

(ख) इसमें आठ मुख्य मंत्री होने चाहिए। उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी, इन चार जोनों से प्रत्येक में से दो-दो प्रतिनिधि होंगे। मुख्य मंत्रियों का प्रत्येक वर्ष आवर्तन द्वारा चयन होगा।

(ग) अंतर्राज्य परिषद् की बैठक में जिन मुद्दों पर विचार विमर्श होना है उनसे संबंधित राज्यों के मुख्यमंत्री इसमें आमंत्रित सदस्य होंगे यदि वे आवर्तन सिद्धान्त के आधार पर सदस्य न हो।

(घ) अन्तर्राज्य परिषद् में जिन विषयों पर विचार विमर्श होता है इनसे संबंधित केन्द्रीय सरकार के मंत्री आमंत्रित सदस्य होंगे।

मंत्रियों को सम्मिलित करने के प्रत्येक जोन के अन्दर वर्णानुक्रम का अनुसरण किया जाए।

3. **कार्य**: (1) अंतर्राज्य परिषद् का प्रयोग संघ और राज्य के बीच उन सभी नीति और शक्तियों पर विचार विमर्श के लिए एक मंच के रूप में किया जा सकता है, जिनके लिए संघ और राज्य परस्पर आश्रित हैं।

(2) राज्यों पर संघ नीतियों के प्रभाव पर विचार-विमर्श।

(3) संघ द्वारा उद्गृहणित उत्पादन शुल्क के मामलों पर परामर्श की व्यवस्था करना।

(4) संघ और राज्यों और राज्यो के बीच कराधान नीतियों के परामर्श की व्यवस्था।

(5) क्षेत्रीय असमानताओं से संबंधित मुद्दों पर विचार-विमर्श।

(6) राज्यों के आपसी आर्थिक सहयोग के मसलों को सुलझाना।

(7) विभिन्न राज्यों या क्षेत्रों में केन्द्रीय निवेश के मामलों पर विचार-विमर्श।

(8) देश के हित में समग्र रूप से प्राकृतिक साधनों को काम में लाने और उनके विकास की प्रक्रिया के द्वारा पैदा हुई समस्याओं को सुलझाने में सहायता देना।

(9) अप्रवास समस्या के लिए आम दृष्टिकोण तैयार करना और सम्बद्ध राज्यों पर अधिक बोझ होने पर ऐसे राज्यों को केन्द्रीय सहायता के समुचित उपायों को तैयार करना।

(10) ऐसी राष्ट्रीय समस्याएं जिनका शुरू में राज्यीय आधार दिखाई दे, को सुलझाने में सहायता देना।

(11) प्रधान मंत्री या मुख्य मंत्रियों द्वारा प्रस्तावित अन्य विषय।

4. **प्रक्रिया**: अन्तर्राज्य परिषद् की वर्णानुक्रम से आवर्तन के सिद्धान्त पर विभिन्न राज्यों की राजधानियों में बैठक होगी हालांकि अंतर्राज्य परिषद् की सिफारिशें मोटे तौर पर सलाह के रूप में होंगी लेकिन इनके पीछे भाव, इन सिफारिशों को स्वीकारने और लागू करने का होना चाहिए।

5. **सचिवालय**: अंतर्राज्य परिषद् के लिए एक अलग और स्थायी सचिवालय होना चाहिए। राज्य के मुख्य सचिव संघ राज्य के सचिव को पूर्ण कालीन अंतर्राज्य परिषद् का सचिव होना चाहिए उसे दोनों विषयों के विशेषज्ञों और निपुण प्रशासकों के रूप में सहायकों के रूप में सहायता मिलनी चाहिए। परिषद् परिचालित होने वाले विषय के अनुसार सचिवालय विशिष्ट काम एवं विशेष अवधि के लिए बाहर से अन्य विशेषज्ञों और सलाहकारों की सेवाएं ले सकता है। संक्षेप में अन्तर्राज्य परिषद् का सचिवालय सदस्यों की कार्यसूची के मुद्दों के संबंध में सुझाव प्राप्त होने के पश्चात् कार्यसूची तैयार करने में सक्षम होना चाहिए। इसे पिछली सिफारिशों और निर्णयों का भंडार के रूप में भी होन चाहिए। सचिवालय की लागतों को संघ और राज्यों के बीच 1 : 2 के अनुपात में बांटा जा सकता है।

ज्ञापन

सामान्य विचार

भारत में संघीय संबंधों से संबंधित प्रश्न पर भविष्य में लोकतन्त्र तथा संस्थाओं की स्थिति को ध्यान में रखते हुए व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना आवश्यक है। इस संबंध में यह सुनिश्चित करना है कि देश में इतनी चुनौतियों और खतरों के बावजूद लोकतन्त्र को कैसे प्रतिष्ठित रखा जा सकता है । इसी चिन्तन के कारण केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण (जिसका संघ राज्य संबंध केवल एक भाग है) का जो विवाद है वह एक नए रूप में सामने आया है। इस विषय पर (i) लाखों लोगों की गिरती हुई आर्थिक स्थिति और न्यूनतम स्तर; (ii) लोकतांत्रिक संस्थाओं के तेजी से होते हुए पतन के राजनीतिक सन्दर्भ; (iii) भारत में राज्यों के स्वरूप और उनकी भूमिका, तथा (iv) उन राजनीतिक सन्दर्भों में जिनमें उच्च वर्ग और समाज के निम्न वर्ग के बीच टकराव के कारण बढ़ती हुई निराशा और उग्र रूप के कारणों से संबंधित समस्याएं किस प्रकार उत्पन्न होती हैं इस पर एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा और इस बात पर भी विचार करना होगा कि शक्तियों और स्रोतों का केन्द्रीयकरण और निर्णय लेने की बात केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक ही सीमित नहीं है । अपितु उसके कारण देश बाहरी खतरों से घिरा हुआ है और दूसरे देशों के मानदंड और हालात से भी प्रभावित हो रहा है । अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय राज्य के बढ़ते हुए जनविरोधी एवं दमनकारी स्वरूप तथा बाहरी दुनिया से इसमें बढ़ते हुए खतरे और देश में बढ़ती हुई गरीबी और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत की धूमिल होती हुई छवि, इसकी आन्तरिक फूट और बाह्य समसंख्यता को कार्यशील संस्थाओं के ह्रास तथा उसके परिणामस्वरूप केन्द्रीयकरण, निरंकुशवाद और शक्तिशाली व्यक्तियों पर निर्भरता से जोड़ा जा सकता है ।

मुख्य बात यह समझने की है कि जिस लोकतांत्रिक आदर्शवाद पर चलकर हमारी संस्थाएं काम करना चाहती हैं उनमें और हमारी संस्थाओ के बीच काफी बड़ी खाई है । सत्ताधारियों तक जिन व्यक्तियों के कारण वे सत्ता में आए हैं उनके बीच और निर्णय लेने वाले केन्द्रों तथा उन निर्णय से प्रभावित होने वाले वर्गों, समुदायों और क्षेत्रों के बीच काफी बड़ा अंतराल है।

मुख्य दुविधा भारत में लोकतन्त्र के स्वरूप की है । सक्रिय लोकतन्त्रीय राजनीति की वजह से व्यक्तियों में अधिक ज्ञान होने के कारण उनकी आशाएं तेजी से बढ़ रही हैं जबकि कार्य क्षमता उतनी तेजी से नही बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक सक्रियता से राजनीतिक गतिविधियों के बढ़ने और युवा व्यक्तियों के सामाजिक रूप से सक्रिय होने के परिणास्वरूप पुरानी व्यवस्था के प्रति विरोध उत्पन्न हुआ है और व्यापक रूप से जागरूकता आयी है। इसके बावजूद भी अलगाव की स्थिति बनी हुई है और इच्छा शक्ति तथा उत्साह का अभाव है । अर्थात् राज्य व्यवस्था अपने मुख्य आधार से काफी पिछड़ी हुई है ।

सार्वजनिक समझ और विशिष्ट वर्ग की क्षमताओं में कमी के कारण शासकों और आम जनता के बीच अन्तर बढ़ रहा है और शासन पद्धति में विभिन्न अन्तर और भी प्रबन्ध हो गए हैं। हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या "ग्रामीण क्षेत्रों" में तथा छोटे और मध्यम श्रेणी के शहरों में हैं, अत: सरकार द्वारा लिए गए ऐसे सभी निर्णय जिनका उन पर प्रभाव पड़ता है उनके संबंध में केवल कुछ ही महानगरीय केन्द्रों में विचार किया जाता है । अत: यह कम आश्चर्यजनक नहीं है कि यद्यपि सरकार ने ऐसी कल्याणकारी नीतियां (जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा और आवास संबंधी) बनायी हैं जिन्हें ग्रामीण जनता के लिए ही बनाया गया है और वे उनका पालन करने में भी समर्थ हैं तथापि वास्तविकता यह है कि साधनों और सक्षमताओं का विभाजन इसके विपरीत दिशा में किया जाता रहा है ।

यह भी कम आश्चर्यजनक नही है कि कृषि कीमतों और ऐसी नीतियां जिनके परिणामस्वरूप उपभोज्य वस्तुओं की अधिक भरमार हो जाती है या उनका अभाव हो जाता है उनका प्रभाव भी अपेक्षाकृत शहर के मध्यम वर्ग पर ही अधिक पड़ता है । बहुत बड़े पैमाने पर बेरोजगारी या अल्परोजगार की अपेक्षा थोड़ी सी मुद्रास्फीति होने से ही लोग अधिक आशंकित हो उठते हैं। सरकारी कर्मचारियों की अधिक मंहगाई भत्ते की मांग मजदूरी नियत करने की मांग की अपेक्षा अधिक सफल होती है । ग्रामीण सार्वजनिक कार्यों में अधिक पूंजी निवेश किए जाने की अपेक्षा महानगरीय व्यवस्था बनाए रखना तथा रोजगार और आय बढ़ाने के लिए विकासशील परियोजनाओं को बढ़ावा देना अधिक प्रभावी होता है ।

वर्गों और क्षेत्रों के बीच बढ़ता हुआ अन्तराल और हमारी निरन्तर बढ़ती हुई अविकसित स्थिति नि:संदेह हमारे नेताओं और बुद्धिजीवियों के लिए गहरी चिन्ता का विषय रही है । इसके मुख्यत: दो परिणाम हुए हैं । पांचवें दशक में हमारे राज्य के लोगों की जीवन निर्वाह की स्थितियों में बढ़ती हुई विषमताओं का पता चलने के बाद काफी समय तक इन विषमताओं को दूर करने के लिए भूमि-सुधार, आय और सम्पत्ति के सीमा निर्धारण और आर्थिक विकास के सामान्य स्वरूप में कोई अवरोध उत्पन्न किए बिना अनेक आर्थिक उपाय करके उन्हें दूर करने का प्रयास किया गया ।

छठे दशक के अन्त में एक भिन्न विचारधारा ने जन्म लिया जिसके अन्तर्गत पुर्नवितरण संबंधी उपायों के महत्व को कम न करते हुए भी विकास नीति को ही दोषी पाया गया अथवा किसी भी स्थिति में उसमें परिवर्तन की जरूरत समझी गयी । इसमें आर्थिक नीति का एक ऐसा विकल्प खोजने की आवश्यकता पर बल दिया गया जिससे अन्य बातों के अलावा ग्रामीण निर्धन लोगों के लिए रोजगार और आय के अवसर उत्पन्न करने का आग्रह किया गया। 1971 के चुनाव में "गरीबी हटाओ" के नारे के बाद और मार्च 1977 के चुनाव के बाद आर्थिक विकास में एक वैकल्पिक आदेश रूप निर्धारित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया हालांकि इन दोनों उपायों के अन्तर्गत पुर्नवितरण के लक्ष्य को बनाए रखा गया ।

दुर्भाग्य से पुन: वितरण और वैकल्पिक विकास नीति का लक्ष्य चाहे राजनैतिक हैं किन्तु नीति-निर्धारण के संबंध में ऐसी व्यवस्था को महत्व देते हैं जिसमें औद्योगिक उत्पादन को महत्व दिया जाता है । इनमें नीति तैयार करने और इसके साथ-साथ समाज के हितों में परिवर्तन और अधिकारों का वितरण किए बिना ही वैधानिक तथा प्रशासनिक रूप से कार्यान्वित करने पर बल दिया जाता है । अत: एक ऐसी नयी तथा मौलिक विचारधारा की आवश्यकता है जिससे सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था लायी जा सके तथा जिससे अन्य दो लक्ष्य (पुन: वितरण नीति तथा वैकल्पिक आर्थिक नीति जिसका लक्ष्य गरीब व्यक्तियों की स्थिति में सुधार लाना है) पूरे करने में भी कोई बाधा न आए तथा जिस व्यवस्था से विकास प्रक्रिया के प्रति दृष्टिकोण अपनाया जा सके ।

ऐसा रवैया अपनाते समय यह समझना भी अत्यन्त आवश्यक है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया राजनीतिक शक्तियों के स्वरूप के आधार पर ही निर्धारित होती है और गलत विकास नीतियों और उनके सामंजस्यपूर्ण परिणामों का मुख्य कारण यह है कि सत्ता का केन्द्रीयकरण प्रणाली के शीर्ष पर थोड़े से अभिजात-वर्ग के पास सिमट कर रह गया है । ऐसा हमेशा से होता आया है । हमारे सांविधानिक स्वरूप में भी (प्रसंशनीय निदेशक सिद्धांतों के बावजूद) यह अन्तर्निहित है । इसका राजनीतिक दृष्टि से गैर-लोकतान्त्रिक तथा सामाजिक दृष्टि से शोषक स्वरूप समय राष्ट्र निर्माण के लम्बे दौर में पहली बार नियंत्रित किया गया जब केन्द्र में नेहरू जी का प्रबुद्ध पितृ-व्यवहार मिला और साथ-साथ निम्न-स्तर पर भी प्राधिकार को प्रयोग में लाया गया । इसका मुख्य श्रेय राज्य की महत्ता और उसके लोकप्रिय आधार एवं स्थानीय स्तर के नेताओं और कांग्रेस के उदार एवं बहुविध स्वरूप को जाता है ।

राजनीति की ऐसी महान हस्तियों के चले जाने से जिनकी सरकार में या उसके बाहर उच्च हैसियत थी तथा कांग्रेस के भीतर राजनैतिक प्रक्रिया क्रमश: समाप्त हो जाने तथा राज्यीय और स्थानीय स्तर तथा स्वायत्त संस्थाओं के अव-मूल्यन हो जाने से, हमारे उस संविधान में, जो वैस्टमिनिस्टर मॉडल पर आधारित है, केन्द्रीकरण की जो प्रवृत्तियां पहले से ही मौजूद थीं, वे शक्तिशाली हो गयीं। इसके परिणामस्वरूप निहित स्वार्थों वाले ऐसे लोगों का बोलबाला हो गया जो नौकरशाही, बड़े व्यवसाय, व्यावसायिक मध्यम वर्ग के लोगों, पुलिस और सतर्कता एजेन्सियों और प्रगतिशील नारे लगाने वाले नए-नए राजनीतिज्ञों का समर्थन करते थे और जो उनके नाम पर एक गैर-लोकतान्त्रिक केन्द्र एवं दमनकारी राज्य सत्ता का निर्माण कर रहे थे।

हमारा लोकतान्त्रिक ढांचा सम्पूर्ण नहीं है और यह एक ऐसी संघीय व्यवस्था है जिस पर केन्द्र की हमेशा निगरानी रहती है। यह एक ऐसी अखिल भारतीय अधिकारीवाद से युक्त प्रणाली है, जो सभी स्तरों पर प्रतिनिधि निकायों पर नियंत्रण कर लेती हैं और उनके बीच के संबंधों को केन्द्रीकृत कर देती हैं तथा यह एक अत्यधिक केन्द्रीकृत पार्टी की क्रम-परम्परा है। इस पर अधिकारों के केन्द्रीयकरण, से अनिवार्यत: सरकार के विरूद्ध प्रतिक्रियाएं होती हैं और सरकार के विरूद्ध लोकप्रिय आन्दोलन करने, विरोधी राजनीति अपनाने और केन्द्र में सरकार के समक्ष सामूहिक रूप से मांगें उठाने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति प्रत्यक्ष रूप से अधिकारों के एक बहुविध स्वरूप के महत्व को न समझने के परि-णामस्वरूप है।

सभी प्रकार की तनावपूर्ण स्थितियों को दूर करने के लिए जो स्थानीय व मध्यवर्ती स्तर के साधन उपलब्ध थे उनका महत्व अब केन्द्रीय स्तर पर राजनीति के उत्थान के कारण कम हो गया है इसका परिणाम यह हुआ है कि जिस प्रकार अब केन्द्र के प्रति निष्ठावान और उत्तरदायी होना अधिक आवश्यक है उसी प्रकार विरोध एवं टकराव भी केन्द्र के साथ ही होता है इसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय स्तर पर कार्यभार काफी अधिक बढ़ गया है जिससे दीर्घकालिक परिदृश्य एवं नीति संबंधी आयोजना को काफी क्षति हुई है और हर मुख्य चुनाव 1967, 1971, 1977 और 1980 के साथ-साथ नई अंतधाराओं के प्रभाव के बावजूद राज-नीतिक तंत्र में कोई बदलाव नहीं आया है।

मुख्य बात यह है कि वर्ष 1969 के बाद सुदृढ़ केन्द्रीय प्राधिकार के आधार पर राजनीतिक शक्ति का निर्धारण करने, संघीय और विकेन्द्रीकृत शासन-व्यवस्था के स्थान पर एकीकृत अधिकारी तंत्र स्थापित करने तथा प्रयोग को पहचान और वैधता प्रदान करने के लिए वैयक्तिक आकर्षण पर आधारित राजनीतिक पद्धति तैयार करने के सभी प्रयोग असफल हुए। पिछले पांच वर्षों में निसंदेह ऐसे कार्य हुए हैं जो सातवें दशक तक स्पष्ट रूप से सामने आए और जिनकी तरफ कुछ व्यक्तियों का ध्यान भी गया किन्तु ऐसे कार्यों को गंभीरता पूर्वक नहीं लिया गया। एक केन्द्रीकृत राज्य जो पश्चिम के संसदीय लोकतंत्र के आधार पर तैयार किया गया है, जिसमें प्रभावी शक्तियां कार्यपालिका के पास होती है तथा अधिशासी शक्तियां प्रधानमंत्री (या राष्ट्रपति) के पास वह हमारे जैसे अत्यंत भिन्न-भिन्न सामाजिक विविधता प्राप्त (जैसा कि पश्चिम में नहीं है) और सांस्कृतिक रूप से बहुकेन्द्री समाज के लिए उपयुक्त नहीं है जो कि अपने आकार और स्वरूप दोनों में यूरोप के समान है।

इससे एक और बात सामने आती है और वह यह कि भारत जैसे देश में विके-न्द्रीकृत और वास्तविक लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का यदि कोई विकल्प है तो वह धीरे-धीरे राज्य तथा राष्ट्र को खत्म कर देना व उसका विघटन कर देना। इसके पहले से ही कई लक्षण मौजूद है जैसे कि क्षेत्रीय तानाशाह की शक्ति बढ़ गयी है और क्षेत्रीय तथा जातीयता की संकुचित प्रवृत्तियां निम्न स्तर पर बढ़ रही हैं। ठेकेदारों तथा महाजनों एवं जिसकी लाठी उसकी भैंस का बोलबाला है। कहने का तात्पर्य यह है कि केन्द्र तथा प्रधानमंत्री के पद का प्राधिकार धीरे-धीरे कम हो रहा है।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का समग्र ढांचा ही समस्या पूर्ण है अर्थात राज्य-व्यवस्था में सामाजिक परिवर्तनों की ऐसी न्यायविरुद्ध प्रवृत्ति को लोक-तान्त्रिक व्यवस्था कहा गया है। यह इस व्यवस्था के विपरीत ही है कि समूचे राजनीतिक और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण को ध्यान में रखते हुए राज्य स्वायत्त शासन के मुद्दे पर विचार किया जा रहा है। राज्यव्यवस्था के निचले स्तर पर स्वायत्तता के विषय को इतने सहज रूप से प्रतिपादित किया गया मानो वह विभिन्न क्षेत्रीय यूनिटों के बीच केवल एक क्षेत्राधिकार विषयक विभाजन का ही मामला हो। इसमें सदाशयी व्यक्तियों के बीच अकारण ही चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि राज्य को अधिक अधिकार तथा साधन प्राप्त हो जाने से केन्द्र के अधिकारों का हनन होगा तथा उपकेन्द्रीय प्रवृत्तियां बढ़ेगी या यदि कुछ बड़े राज्य अलग हो जाएंगे तो देश का विघटन हो सकता है।

संभवत: विकेन्द्रीकरण के समर्थकों ने अपनी बात को इस तरह प्रस्तुत किया कि उसका अधिकांश भाग ऐसे नेताओं ने बनाया है जिनकी आस्था पूरी तरह से उन पश्चिमी मूल्यों में है जिसने यह नहीं समझा है कि सामाजिक बहुविध और क्षेत्रीय रूप से असन्तुलित समाज में लोकतान्त्रिक राजनीति चलाने की अनिवार्यताएं क्या हैं। इस लोकतान्त्रिक राजनीति में किसी भी हालत में एकता बनाए रखने के लिए चिन्ता का विषय जिस पर हमारी दृष्टि नहीं गयी है यह है कि लगातार असमानता और विषमता के आधार पर जो एकता स्थापित की जाती है वह केवल कल्पना मात्र है, वास्तविक नहीं है और वह बहुत ज्यादा समय तक टिकी नहीं रह सकती।

संभवत: विकेन्द्रीकरण के समर्थकों ने अपना मामला इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि वह एक चिन्ता का विषय है क्योंकि उसके अन्तर्गत ऐसे नेतृत्व को प्रधानता दी गयी है जिसकी जड़ें ऐसे पश्चिमी मूल्यों में निहित हैं, जिसमें बहुविध सामाजिक एवं क्षेत्रीय रूप से असन्तुलित समाज में एक लोकतान्त्रिक राजनीतिक तन्त्र चलाने की अनिवार्यता को समझा नहीं गया है। इसके अंतर्गत हर कीमत पर एकता बनाए रखने के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए भी जिस बात का ध्यान नहीं रखा गया है वह यह है कि स्थायी रूप से असमानता और विषमताओं की स्थिति बने रहने के आधार पर एकता की बात भ्रामक है और इसका चलना सम्भव ही नहीं है।

स्वायत्ता का वास्तविक मामला न्यायिक सत्ता या राजनीतिक दलों के दावों पर आधारित नहीं होता है बल्कि उस अनुभव पर आधारित इस धारणा पर आधारित है कि केन्द्रीयकृत राजनीतिक तन्त्र वाला भारत जैसा देश अनुचित सामाजिक व्यवस्था से निपट नहीं सकता और यह लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया के प्रतिकूल है और यह वस्तुत: अस्थिर है।

केन्द्रीयकृत राजनीतिक तन्त्र के वास्तविक हिताधिकारी वे लोग हैं जिन्हें लोकतान्त्रिक मानदंडों की कोई परवाह नहीं (या जो इस बात पर विश्वास करते हैं कि लोकतन्त्र और व्यस्क मताधिकार एक निर्धन देश के लिए उपयुक्त नहीं)। इनमें प्रबन्धक वर्ग के लोक, प्रविधिज्ञ (टैक्नोक्रेट), अंग्रेजी की प्रेस के लोग, एवम् अनेक ऐसे बुद्धिजीवी आते हैं जो सत्ता एवं राष्ट्रीय शक्ति के भव्य प्रतीकों से शक्ति प्राप्त करते हैं। यदि इन्हें स्वतंत्र छोड़ दिया जाए तो केन्द्रीयकृत सरकार के समर्थक राजनीति को ही रहने नहीं देंगे।

केन्द्रीकरण के मामले के लिए अनेक तर्कों का आधार बनाया गया है जिनमें से अधिकांश काफी व्यापक हैं। इनमें से सबसे ज्यादा सूझबूझपूर्ण तर्क वह है जिसको अनेक लोगों (विशेष रूप से बुद्धिजीवियों) का समर्थन प्राप्त है और वह तर्क यह है कि केन्द्रीय सरकार को इस विषय में राज्य सरकारों से अधिक जानकारी होती है और राज्य सरकारों को स्थानीय निर्वाचित निकायों से, जिस पर प्राय: स्थानीय निहित स्वार्थों और उच्च जातियों का प्रभुत्व होता है। यह एक चतुराईपूर्ण तर्क है क्योंकि इससे निहित स्वार्थों और उच्च स्तरों पर अभिजात वर्गों के जाति भेद का मुखौटा उतर जाता है और इसके परिणामस्वरूप इस तर्क को भी बल मिलता है कि यथास्थिति बनाया रखो जाए और इसमें बृहद ग्रामीण क्षेत्रों की निन्दा भी की गयी है जिसमें हमारे आठ प्रतिशत लोग हॉबसन चॉयस पर आश्रित रहते हैं, उच्च वर्ग के अभिजात लोगों के सामने अपने राजनीतिक अधिकार समर्पित कर देते हैं या अपने आर्थिक लाभ स्थानीय अभिजात वर्ग के लोगों के सामने समर्पित कर देते हैं, इसको देखकर हम औपनिवेशिक अतीत की याद आ जाती है—आप या तो स्व-शासी सरकार या अच्छी सरकार बना सकते हैं लेकिन दोनों नहीं। नयी व्यवस्था में यह धारणा बना ली गयी है कि केवल केन्द्र ही अच्छी सरकार बना सकता है।

इसका प्रमाण हरिजनों पर अत्याचारों और उस अतिवाद की कहानियां है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में जब अधिकारों की लड़ाई होती है तो उसमें जातिवाद का ही बोलबाला होता है। नगरों में अहिंसा की घटनाओं जिनके शिकार अधिकतर गरीब और बेसहारा लोग ही होते हैं, सुव्यवस्थित तरीके से हरिजन और निम्न जाति के लोगों की बस्तियों को अलग-थलग कर देने, स्त्रियों के प्रति अमानुषिक व्यवहार और शहर के गरीब बच्चों के प्रति अशोभनीय व्यवहार, अल्पसंख्यक वर्गों के लोगों की हत्याएं और पेशेवर गुंडों की बढ़ती हुई संख्या जिन्हें शक्तिशाली और समृद्ध लोगों द्वारा आतंक फैलाने के लिए और जहां आवश्यक हो वहां अपने प्रतिद्वन्द्वियों और शत्रुओं का खात्मा करने के लिए किराए पर इस्तेमाल किया जाता है, इन सब बातों को निर्धन ग्रामीण लोगों के प्रति उदारता और निष्पक्षता का नाटक करते हुए भुला दिया जाता है।

ग्रामीण दमन के किसी समाचार को विशेष महत्व देकर उछालने से केवल समाचारपत्रों के सम्पादकों और उनके संरक्षकों की मानसिक सुख की आवश्यकताओं की ही पूर्ति होती है और इससे ग्रामीणों की दुर्दशा में कोई सुधार नहीं होता यदि ग्रामीण दमन का एक सुव्यवस्थित ढंग से विश्लेषण किया जाएगा तो इससे विशेषाधिकार की एक व्यवस्था में इनकी साझेदारी का ही भंडाफोड़ होगा और पूरे समाज में व्याप्त शोषण भी बेनकाब होगा। यहां प्रस्तुत किए गए विश्लेषण के लिए अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन और कमजोर वर्ग के लोगों की हालत में तब तक कोई सुधार नहीं आएगा जब तक अधिकार और निर्णय लेने की शक्ति उनकी पहुंच से बाहर रहेगी। राज्य की शक्तियों का केन्द्र जब तक नीचे की ओर नहीं झुकेगा तब तक निर्धन वर्ग के लोग अधिकारों के लिए न तो दावा कर सकते हैं और न ही अपने परम्परागत शोषकों के विरुद्ध उनका प्रयोग कर सकते हैं। उच्च स्तर पर अधिकारों और साधनों के केन्द्रीभूत हो जाने से निम्न स्तर पर उनकी उपलब्धता लाजमी तौर पर सीमित हो जाती है और इसलिए वे वहीं सिमट कर रह जाते हैं।

इस स्तर पर भी यह विश्लेषण लागू होता है कि राज्यों में अधिकारों में वृद्धि होने के पिछड़े क्षेत्रों की हालत में कोई सुधार नहीं होगा जिसकी जिम्मेदारी केन्द्र सरकार की है। फिर भी पिछले अनुभव से हमें क्या पता चलता है। पच्चीस वर्षों से भी अधिक समय से केन्द्रीय स्तर पर योजनायें बनाने और निर्णय करने के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि ही हुई है। यह सोचना कि पिछड़े क्षेत्रों का पिछड़ापन उन्हें प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण निर्णय लेने की, जिसका अर्थ है उन्हें निर्णय लेने का अधिकार देना, अनुमति दिये बिना दूर किया जा सकता है, सभी वास्तविकताओं से आंख बन्द कर लेना है। यह आशा करना वस्तुत: गलत है कि विकास संबंधी विषमताओं को, भले ही वे क्षेत्रीय स्तर की हों या वर्गों के बीच हों, संबंधित लोगों की प्रतिबद्धता और सहभागिता के बिना दूर किया जा सकता है।

हम अब अपने मूल विश्लेषण के संबंध में निम्नलिखित प्रस्ताव रख सकते हैं—(1) भारतीय राजनीतिक प्रणाली में अनेक वर्षों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और अब उसमें एक गतिरोध आ गया है। न तो सत्तावादी और न ही वेस्टमिनिस्टर शैली का संसदीय लोकतान्त्रिक रवैया सफल होता प्रतीत होता है। दोनों में यह कमी है कि इनके अन्तर्गत राजनीतिक प्रक्रिया का केन्द्रीयकरण किया गया है जो एक में जानबूझ कर किया गया प्रतीत होता है और दूसरी में अंतर्निहित है। विकास को एक वैकल्पिक व्यवस्था के आधार पर लोकतान्त्रिक स्वरूप के बिना और उसे मूल आधार के समीप लाए बिना इस व्यवस्था का पुनर्गठन करना भी संभव नहीं है।

(2) इन सब वर्षों में अत्यधिक गरीबी बने रहने को संभवत: इसलिए केन्द्र में सत्ता और साधनों को सुदृढ़ बनाने का एक बहाना बनाया गया क्योंकि इसी के जरिये वे शायद ज्यादा बेहतर तरीके से कार्य कर सकते थे। कुछ समय तक स्थानीय निहित स्वार्थों के कारण इसमें सफलता नहीं मिल पायी इसके बाद यह महसूस किया गया कि अपनायी जा रही नीतियां सही नहीं थी और कोई वैकल्पिक नीति बनाना जरूरी था। अब यह स्पष्ट है कि सबसे बड़े निहित स्वार्थों का अविर्भाव तो भारतीय राज्य के स्वरूप के कारण राज्य से ही होता है और नीति में किसी प्रकार का भी सुधार करने से हालात में सुधार नहीं आएगा। इस समय जो बदला जाना चाहिए वह है राज्य का स्वरूप और राज्य नियन्त्रणवादियों की इस धारणा को भी बदला जाना चाहिए कि लोगों की समस्याओं का समाधान राज्य सरकार द्वारा किया जा सकता है।

राज्यनियंत्रणवादियों की यह धारणा मानवीय समस्याओं के मूलभूत प्रौद्योगिकीय दृष्टिकोण पर आधारित है। यह एक ऐसा विचार है जिसके अनुसार अभावों पर आधारित व्याप्त निर्धनता जैसी गंभीर सामाजिक बुराइयां केवल प्रौद्योगिकीय साधनों से ही दूर की जा सकती है। हम यह जानते है कि यह सच नहीं है कि ऐसी गंभीर सामाजिक बुराइयां दूर करना अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक कार्य है। यह एक ऐसा कार्य है जिसमें इससे अत्यधिक प्रभावित लोग ही ऐसे निर्णय लेते है जो उन्हें प्रभावित करते हैं। सामाजिक और आर्थिक बुराइयों को दूर करने के लिए एक ऐसी व्यवस्था बनाना ज्यादा महत्वपूर्ण है जिसमें जनता की हिस्सेदारी हो। इन्हें ही विकास कार्यक्रमों की संज्ञा दी जा सकती है भले ही यह कार्यक्रम कितने सोच समझ कर तैयार किए गए हों किन्तु इनमें जनता की सहभागिता जरूरी है।

जनता की सहभागिता लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में ही अन्तर्निहित है जिस पर भारतीय राजनीतिक तन्त्र आधारित है। किन्तु इससे पूर्व विद्यमान राज्य शासन में इस प्रकार के राजनीतिक तन्त्र को पनपने की अनुमति नहीं दी गयी थी। यह एक ऐसा औपनिवेशिक राज्य शासन था जिसका अधिकार शासकों में निहित था, जनता में नहीं। ऐसे शासन का अस्तित्व अभी भी है यद्यपि वह एक सशक्त रूप में नहीं है। सत्तारूढ़ शासकों का स्वरूप बदल गया है किन्तु औपनिवेशक शासन के अनेक तत्व अभी भी मौजूद है और केन्द्र सरकार और उसके अधीनस्थ अन्य राज्यों में कुछ ऐसे संबंध है जो अभी भी औपनिवेशिक प्रकार के हैं।

(4) जिस प्रकार के शासन की यहां चर्चा की गयी है यदि उससे राज्य की संरचना में बदलाव आता है तो लोकतान्त्रिक प्रणाली अपनाना उचित होगा। इसके अन्तर्गत केन्द्र राज्य और नीचे की शासन व्यवस्था के बीच अधिकारों में परिवर्तन करना जरूरी है ऐसे परिवर्तन के बिना भारतीय लोकतन्त्र में अवश्य गतिरोध आएगा और कभी न कभी अवश्य बिखर जाएगा। जिस अनुपात में राजनीतिक प्रक्रिया का कोई स्वरूप और संस्थागत रूप नहीं है उस अनुपात में ही सत्ता का प्रभाव और चमत्कार होगा। केवल एक विकेन्द्रीकृत राज्य में ही व्यक्ति की उपासना और चमत्कार से बचने के लिए ऐसे संस्थागत पूर्वोपाय किए जा सकते हैं। हर बात केन्द्रीयकरण की आवश्यकता की ओर इंगित करती प्रतीत होती है वस्तुत: यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता है।

(5) क्या राज्यों को अधिक स्वायत्तता और अनुकूल साधन प्रदान किए बिना विकेन्द्रीकरण संभव है। हमारे विचार में ऐसा नहीं है। पंचायतों और नगरपालिकाओं से चुनाव कर देने मात्र का आशय विकेन्द्रीकरण नहीं है इसके पास काम करने के लिए विशेष अधिकार और साधन होने चाहिए और इन्हें विभिन्न स्तरों से राज्य स्तर तक कार्य संबंधी परस्पर संबंधों के समन्वय से संगठित करने की आवश्यकता है। किन्तु सर्वप्रथम राज्यों को ही महत्वपूर्ण अधिकार और साधन प्रदान किए बिना ऐसा करना संभव नहीं है।

(6) दो ऐसे विरोधी प्रलोभन है जिससे केन्द्र और राज्यों को अपने-अपने स्तर पर अवश्य बचाना चाहिए। पहला बिस्मार्क की धारणा है जिसके अनुसार मध्यवर्गीय तन्त्र को पनपने का मौका दियें बिना निम्न स्तर पर सीधे अपील की जा सकती है, यह जनवाद का आधुनिक रूप है। दूसरा खतरा इससे एकदम प्रतिकूल दिशा से संबंधित है अर्थात, राज्यों के अधिकार बढ़ाकर क्षेत्रीय सामन्तों के पनपने से है, इन दोनों खतरों से बचने के लिए इस बात से सहमत होना जरूरी है कि राज्यों को अधिक स्वायत्ता दी जानी चाहिए जो विकेन्द्रीकरण की एक अधिक व्यापक प्रक्रिया है और इसके लिए एक अनिवार्य शर्त है।

(7) भारतीय शासनतन्त्र के मामले में दो अन्य सिद्धान्त लागू करना भी जरूरी है पहला विद्यमान राज्यों के स्तर पर स्वायत्तता प्रदान करना कठिन नहीं है इनमें से अनेक राज्यों में राज्य के अन्दर महत्वपूर्ण क्षेत्रों को स्वायत्ता प्रदान करने की आवश्यकता है। दूसरा वास्तव में इस बात का भी डर है कि अधिक समृद्ध और शक्तिशाली राज्यों को इस अन्तरण की प्रक्रिया से अधिक लाभ होगा। इससे हर हालत में बचना चाहिए। वस्तुत: राज्य स्तर पर अधिक स्वायत्तता प्रदान करने का एक औचित्य यह है कि इससे वर्तमान स्थिति नहीं रहेगी जिसमें अधिक उन्नत राज्यों को केन्द्र में अपने प्रभाव के परिणामस्वरूप दूसरों की अपेक्षा अधिक सहायता प्राप्त होती है। नयी नीति ऐसी होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत दोनों प्रकार के राज्य, राज्य स्तर पर अधिक आत्मनिर्भर बन सकें ताकि उपयुक्त

साधनों का वे प्रयोग कर सकें—इससे उनके बीच जो विषमताएं है वे कम हो जाएंगी और साथ ही उनको सन्तुलित आबंटनों और अन्तरणों के परिणामस्वरूप प्रगति करने के अधिक अवसर प्राप्त होंगे।

(8) इन सिद्धान्तों में केवल उसी लोकतान्त्रिक प्रणाली के पुनर्निर्माण के लक्ष्य का निरूपण किया गया है जिसके अन्तर्गत लोग सामूहिक रूप से अपने भविष्य का निर्माण कर सकें। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण इसका केवल एक जरिया है और संघवाद इसको प्राप्त करने का एक साधन है। संस्थागत स्वरूप में परिवर्तन करने से कोई परिवर्तन नहीं आता यह तो लोगों की रुचि, उनकी सतर्कता और संगठन पर निर्भर करता है किन्तु एक ऐसी संस्थागत प्रणाली के अभाव में जो जनता की इच्छाओं के अनुरूप हो, इसमें सफलता पाना संभव नहीं है। वस्तुतः समय-समय पर ऐतिहासिक आवश्यकताओं के अनुरूप संस्थागत परिवर्तनों से एक प्रभावशाली तन्त्र की स्थापना की जा सकती है। कार्यशील लोकतन्त्र के साथ कठिनाई यह है कि इससे लोग इतने अधिक निहत्थे हो जाते हैं कि किसी क्रान्तिकारी विद्रोह का सामना करना इनके लिए मुश्किल हो जाता है और इसके अन्तर्गत ऐसे विद्रोह के बिना भी काम चलाया जा सकता है किन्तु यदि वह लम्बे समय तक ऐसा नहीं कर सकते तो उसका भविष्य खतरे में है। भारतीय लोकतन्त्र के सामने इस समय यही एक चुनौती है।

संघ-राज्य संबंधों की व्यापक परिप्रेक्ष्य में चर्चा और उसके परिणामस्वरूप निकलने वाले निष्कर्षों का उल्लेख करने के बाद हम ऐसे संस्थागत कार्यों सुधारात्मक उपायों की भी चर्चा कर सकते हैं जो एक सुव्यवस्थित संघीय प्रक्रिया के लिए अपेक्षित है।

विधायी संबंध

संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार भारत एक संघ राज्य है। अनुच्छेद 2 में संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह उपयुक्त शर्तों पर नए राज्यों की स्थापना करे। अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद, विधि के अधीन किसी प्रदेश को किसी राज्य से अलग करके एक नया राज्य बना सकती है या दो राज्यों या राज्य के कुछ भागों को जोड़कर या किसी प्रदेश के किसी राज्य में जोड़कर नया राज्य बना सकती हैं। संसद, विधि के अधीन किसी राज्य के क्षेत्र में विस्तार या उसे कम भी कर सकती है या उसकी सीमा या नाम में परिवर्तन कर सकती है।

अनुच्छेद 3 में संसद को नए राज्य बनाने का अधिकार देते हुए इस बात की भी व्यवस्था की गयी कि केवल राष्ट्रपति द्वारा संबंधित राज्य की विधानमंडल के विचार जान लेने के बाद कोई सिफारिश किए जाने की स्थिति को छोड़कर इस प्रयोजन के लिए कोई बिल संसद में नहीं लाया जाएगा। संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य विधानमंडल से परामर्श किया जा सकता है किन्तु संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि संसद के लिए संबंधित राज्य की विधानमंडल के विचार स्वीकार करना अनिवार्य हो। वास्तविकता यह है कि चूंकि संसद को किसी राज्य को बदलने या उसे हटा देने और उसके स्थान पर कई अन्य राज्य बनाने या कुछ प्रदेशों को मिलाकर कोई अन्य राज्य स्थापित करने का अधिकार है। इससे पता चलता है कि मौजूदा राज्यों के बने रहने और उनकी सीमाओं के विस्तार आदि सब संसद की कृपा पर निर्भर करता है क्योंकि संसद केवल साधारण से बहुमत से ही बिल पास करके उसमें फेरबदल कर सकती हैं। कोरम पूरा होना तो दूर इसके लिए तो संसद के दोनों सदनों के कुछ विशेष सदस्यों की भी आवश्यकता नहीं है। यह कानून बनाकर संविधान में कोई संशोधन नहीं किया गया है। यह सच है कि सामान्यतः कोई भी संसद, राजनीतिक बाध्यताओं की उपेक्षा करके किसी राज्य तथा उसकी सीमा में लोगों की इच्छा के विरुद्ध फेर बदल करने का जोखिम नहीं उठायेगी किन्तु इस तथ्य से संविधान की उस स्थिति से आंखें बंद नहीं की जा सकतीं कि संविधान के उपबन्धों के अधीन किसी राज्य तथा उसकी सीमाओं का यथास्थिति बने रहना संसद की रजामंदी पर निर्भर करता है।

उपर्युक्त सांविधानिक स्थिति के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि पारस्परिक संघीय राज्य व्यवस्था में किसी राज्य को संघ के समकक्ष होने की परिकल्पना भारत पर लागू नहीं होती है। अनुच्छेद 2, 3, 4 में संघ की तुलना में राज्य की अधीनस्थ स्थिति स्पष्ट की गई है।

अनुच्छेद 3 पर फिर से विचार किया जाना आवश्यक है। इस अनुच्छेद के परन्तुक का आशोधन करना आवश्यक है तथा उसमें यह अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि राज्य से संबंधित कोई भी बिल संसद में पास करने से पहले संबंधित राज्य के विधानमंडल की सहमति ली जानी आवश्यक है जैसा कि जम्मू, कश्मीर के मामले में हुआ। केवल राज्य के विचार जान लेने के लिए ही बिल के मसौदे को भेजकर कुछ समय बाद संसद में कार्यवाही करने और इस संबंध में यदि कोई सुझाव दिए भी गए हों तो उनकी उपेक्षा करने की जो प्रणाली अपनाई जा रही है वैसा करना न तो संविधान निर्माताओं का ही उद्देश्य था और न ही संविधान के संघीय स्वरूप के अनुकूल है।

यह समझना कि संघ और राज्य के बीच विधायी शक्तियों के वितरण में मूल रूप से कोई गलती नहीं है, ठीक नहीं है। राज्यों को कर लगाने के अधिक स्रोत प्रदान किए जाने चाहिए।

अनुच्छेद 249 और 252 को हटा दिया जाए तथा अब तक अनुच्छेद 252 के अधीन जो संकल्प पारित किए गए हैं, उन्हें वापिस ले लिया गया माना जाए तथा यथापूर्व स्थिति को माना जाए।

राज्य के विधान मण्डल की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने लिए विधायी शक्तियों का प्रयोग करते समय इस पर राज्य की कार्यपालिका या केन्द्र की कार्यपालिका का नियंत्रण नहीं होगा। सरकारी नियमों के अधीन अवर सचिव और उप सचिव भी राष्ट्रपति की ओर से कार्य कर सकते है और राज्य विधान मण्डल की इच्छाओं की उपेक्षा की जा सकती है या उन पर नियंत्रण रखा जा सकता है। यदि संविधान के उपबन्धों द्वारा कार्यपालिका के नियंत्रण में ऐसे अधिकार न दिए गए होते जिनके अनुसार कार्यकारी अधिकारी से चाहे राज्यपाल हो या राष्ट्रपति, कानूनी उपायों के लिए पूर्व स्वीकृति या/और अनुवर्ती सहमति अपेक्षित हो तो यह विधायी तन्त्र स्वतन्त्र होता जैसे कि न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायीतन्त्र से स्वतन्त्र है। (श्रीमती गांधी का केस ए०आई०आर० 1975 एस० के० 2299 देखें) । विधान मंडल को पूर्ण रूप से स्वतंत्र रखना चाहिए तथा इसे राज्य और केन्द्र की कार्यपालिका के अधीन नहीं रखा जाना चाहिए। राज्य बिलों की स्वीकृति के मामलों में राष्ट्रपति केन्द्रीय कार्यकारिणी के नहीं बल्कि संसदीय समिति की परामर्श के अनुसार कार्य कर सकता है।

चूंकि हमारी सरकार संसदीय प्रणाली की है और कोई भी विधान अपेक्षित बहुमत के बगैर पास नहीं किया जा सकता है, अतः एक बार केवल राज्य विधानमंडल में कोई कानून पास हो जाने से ही वह उस राज्य का कानून बन जाएगा। जब भी कभी समवर्ती सूची में उल्लिखित किसी मामले के संबंध में, केन्द्र और राज्य द्वारा कोई विधान बनाया जाता है तो इस संबंध में केन्द्र और राज्य से परामर्श ले लेना चाहिए।

अनुच्छेद 31-क(1) के पहले परंतुक और अनुच्छेद 304 के परन्तुक को हटा दिया जाए। कोई कारण नहीं है कि राज्य विधान मंडल को संसद के समान विधायी शक्तियां न दी जाएं।

राज्यपाल की भूमिका

केन्द्र राज्य संबंधों में राज्यपाल की कोई भूमिका नहीं है। जैसा कि भारत की संविधान सभा में विचार-विमर्श करके निश्चित किया गया है तथा जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय है केन्द्र तथा राज्य दोनों में ही राज्यपाल की कोई भूमिका नहीं है। राज्यविधान मंडल द्वारा राज्यपाल का चुनाव कराने की बजाय, जिसमें काफी व्यय आता था, संविधान बनाने वालों ने यह सोचा कि राज्य के मुख्य मंत्री की सहमति से केन्द्र द्वारा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का नामांकन करना अपेक्षाकृत अधिक अच्छी कार्यप्रणाली होगी और उन्होंने इसे अपना लिया। मुख्यमंत्री की सहमति लिए जाने के संबंध में कोई विशेष उपबंध नहीं रखा गया किन्तु संविधान सभा में यह अभिकथित किया गया कि ऐसा मुख्यमंत्री की सहमति से किया जाएगा। डा० रघुकुल तिलक ए०आई०आर० 1979 एस०सी० 709 के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि राज्यपाल का पद एक स्वतंत्र सांविधानिक पद है तथा यह भारत सरकार के नियन्त्रणाधीन है।

जैसा कि संविधान सभा में विचार विमर्श (खंड III पृष्ठ 468) के अनुसार डा० अम्बेडकर ने कहा कि राज्यपाल केवल दिखावे का ही अधिकारी होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने भी मारू राम ए०आई०आर० 1980 एस०सी० 2147 पृष्ठ 2169 के मामले में कहा कि राज्यपाल राज्य सरकार की एक "संक्षिप्त अभिव्यक्ति" के अलावा और कुछ नहीं है। जहां तक संविधान के कार्यों का संबंध

है ऐसे कुछ मामलों को छोड़कर जिनमें उसे अपना निर्णय देना होता है अन्य सभी जगह उसे मंत्रि परिषद् की सलाह के मुताबिक कार्य करना होता है और चूंकि वह भारत सरकार का अधीनस्थ प्राधिकारी नहीं है अत: उसका कोई महत्व नहीं है और न ही केन्द्र राज्य संबंधों में उसकी कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति को रिपोर्ट देते समय तथा अनुच्छेद 356(1) के अधीन सुझाव देते समय राज्यपाल को नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए। उसे सबसे पहले मन्त्रिपरिषद को एक नोटिस भेजना चाहिए जिसमें ऐसे मामलों का उल्लेख किया जाना चाहिए जिनके संबंध में उसके विचार से राज्य सरकार द्वारा विचार किया जाना चाहिए किन्तु जिन पर संविधान के अनुरूप विचार नहीं किया गया है जबकि विधिवत् रूप से स्थापित मंत्रि परिषद कार्य कर रही है और सरकार चला रही है। राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रही भारत सरकार को ऐसी ही परिस्थितियों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को अपनाना चाहिए। किन्तु जब कोई पार्टी, जो अधिकार में हो, उसे मन्त्रालय में अविश्वास प्रस्ताव पास हो जाने के कारण यदि विधान-मंडल में भी विश्वास प्रस्ताव न मिले और वहां किसी भी व्यक्ति को विधान मण्डल के सदस्यों का बहुमत न मिले, तो नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को अपनाये बगैर रिपोर्ट दी जा सकती है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से राज्य सरकार को संविधान के अनुसार न चलाए जानेवाला मामला होगा तथा उस राज्य के विधान-मंडल के समक्ष सामूहिक रूप से उत्तरदायी कोई मंत्रिपरिषद् नहीं होगी जिसे कोई नोटिस दिया जा सके।

फिलहाल अनुच्छेद 356(1) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को नहीं अपनाया जा रहा है क्योंकि इसके लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं हैं। किन्तु हाल हो में कुछ निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गयी विधि में यह स्पष्ट है कि जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 306(1) में बताया गया है राज्य सरकार और राज्य विधान-मंडल का अधिक्रमण करने के लिए इस सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए। शक्तियों का प्रयोग करने से पहले शर्त यह है कि राष्ट्रपति (जिससे तात्पर्य केन्द्र के मंत्रिपरिषद् से है) इससे सन्तुष्ट हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें राज्य सरकार को संविधान के उपबन्धों के अनुसार बनाए नहीं रखा जा सकता है। ए०के०राय, ए०आई० आर० 1982 एस०सी० 710 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जो निर्णय दिया है उसे देखते हुए संविधान के 44वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 356 के खंड (5) के हट जाने से अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन राष्ट्रपति की सन्तुष्टि आवश्यक है। मोहिन्दर सिंह गिल ए० आई० आर० 1978 एस०सी० 851 के मामले में संविधान के अनुच्छेद 324 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों को बनाए रखना चाहिए। एस०एल० कपूर, ए०आई० आर० 1981 एस० सी० 136 की मामले में दिये गए निर्णय का पालन करते हुए नयी दिल्ली नगर-पालिका समिति के पंजाब नगरपालिका अधिनियम 1911 की धारा 233 (1) के अधीन दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र के उप राज्यपाल द्वारा अधिक्रमण को, समिति को कारण बताने का अवसर दिए बगैर ही अविधिमान्य घोषित कर दिया गया (केन्द्र-राज्य संबंधों के आयोग के अध्यक्ष माननीय न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय के भी न्यायाधीश थे)।

अत: अनुच्छेद 356(1) में इस आशय को स्पष्ट उपबन्ध रखे जाने आवश्यक हैं कि राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को कोई भी रिपोर्ट किए जाने से पहले उसे मंत्रि-परिषद् को एक अवसर देना चाहिए ताकि वह इसका कारण बता सके कि उक्त अनुच्छेद के अधीन कोई कार्यवाही क्यों नहीं की गयी। इसके अतिरिक्त जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 (1) के अधीन कार्य करता हैं और राज्यपाल द्वारा दिए गए नोटिस के संबंध में मंत्रिपरिषद् द्वारा दिए गए कारणों से सहमत नहीं होता है तो मंत्रिपरिषद को कारण बताने के लिए एक नोटिस दिया जाना चाहिए। राज्य के प्रतिनिधियों के अधिकारों को केवल उस स्थिति को छोड़कर जब तक कि विधान मंडल का कोई ऐसा व्यक्ति न हो जिसे सदस्यों का बहुमत प्राप्त है अन्य किसी स्थिति में नहीं छीनना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना भी आवश्यक है कि राज्य में किसी लोकतान्त्रिक सरकार को तब तक नहीं हटाया जाता जब तक कि संविधान में बताए गए अनुसार उस सरकार को चलाना असंभव न हो जाए। किसी एक छोटी सी कमी या भ्रांति के कारण लोकतान्त्रिक सरकार को समाप्त नहीं करना चाहिए तथा विधानमंडल को भंग नहीं करना चाहिए। अनुच्छेद 164 के अधीन नियुक्ति पत्र में राज्यपाल के जो कार्य और ड्यूटी बतायी गयी है जिसमें मुख्यमंत्री को बरखास्त किया जाना भी शामिल है उनका प्रयोग या तो केन्द्र के आदेश पर किया गया है या यथासंभव यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि केन्द्र में इस समय जो शासन दल है और जिसकी शाखाएं राज्यों में है, उसके हितों को सुरक्षित रखा जाता है। अनुच्छेद 164 के अधीन राज्यपाल को जो शक्तियां दी गयी हैं उनका दुरूपयोग किए जाने के उदाहरणों का श्वेत पत्र के भाग II में उल्लेख किया गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि लोक-तान्त्रिक रूप में चुने हुए जनता के प्रतिनिधि अपने सांविधानिक अधिकारों से वंचित न हो, अनुच्छेद 164 को परिशोधित करना अत्यन्त आवश्यक है जिसमें यह अनिवार्य कर दिया जाए कि राज्यपाल ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करे जिसे विधान मंडल के चुने हुए सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो तथा यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि यदि उसे बहुमत प्राप्त है तो राज्यपाल उसे पदच्युत नहीं कर सकता। अनुच्छेद 163(1) में भी संशोधन करके यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। इसमें ऐसे मामले शामिल नहीं हैं जिनके संबंध में उसे स्वयं निर्णय लेना होता है। यह सुस्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किसी मामले को ऊपर उठाने के लिए और लोक हित में ही करना चाहिए मनमाने ढंग से नहीं क्योंकि यह अधिकार उसे इस बात को ध्यान में रखते हुए ही दिया गया है। मारु राम ए०आई०आर० 1980 एस०सी० 2147 के मामले में पृष्ठ 2170, 2171 और 2173 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "सभी लोक अधिकारों तथा सांविधानिक अधिकारों का प्रयोग कभी भी मनमाने तरीके से या बुरे इरादे से नहीं किया जाएगा।" हमारी सांविधानिक व्यवस्था में विधि के नियम के अनुसार सभी लोक अधिकार तर्कसंगत रूप से सहानुभूतिपूर्ण तथा विनियमित अधिकारों के रूप में बदल दिये गए हैं जिसका इस्तेमाल अच्छे प्रयोजनों के लिए और लोगों की कल्याण की भावना को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

समशेर सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसे सभी मामलों में जहां राज्यपाल अपने विवेकानुसार कार्य करता है, उसे मंत्रिपरिषद् से सामंजस्य स्थापित करके कार्य करना चाहिए। संविधान एक ही राज्य में उसके समानांतर और कोई प्रशासन व्यवस्था नहीं रखना चाहता ताकि राज्यपाल को यह शक्ति मिल जाए कि वह मंत्रिपरिषद् की परामर्श के विरूद्ध जा सके।

सर्वोच्च न्यायालय के डा० रघुकुल तिलक ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 709 के मामले के संबंध में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि एक विशेष उपबंध रखा जाए कि राज्यपाल की नियुक्ति केवल मुख्य मंत्री की सहमति से ही हो सकती है। एक ऐसा उपबंध रखना चाहिए जिससे कि यह सुनिश्चित हो सके कि ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त किया जा सके जो न्यायप्रिय क्षमतावान और एक निष्ठ हो। यदि ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है तो वह निश्चित रूप से राज्यपाल को दिए गए सीमित विवेकाधिकार का प्रयोग दक्षता-पूर्ण तथा न्यायपूर्ण तरीके से कर सकेगा।

कर्नाटक सरकार ने राज्यपाल के पद के संबंध में श्वेतपत्र जारी किया है जिसमें विषय वस्तु तथा कार्य चालन संबंधी सिद्धान्तों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस दस्तावेज को इस ज्ञापन के एक भाग के रूप में संलग्न किया जा रहा है।

अंतरराज्य परिषद

संघ और राज्य तथा राज्यों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखने के लिए परस्पर परामर्श करना और मतैक्य बनाए रखना महत्वपूर्ण है क्योंकि इनसे ही संघीय भावना प्रतिलक्षित होती है और उसे बल मिलता है। सांविधान में अन्तर्राज्य परिषद की व्यवस्था की गयी है, यह एक ऐसा उपबन्ध है जिसका अब तक उपयोग नहीं किया गया। पिछले दशक में जब राष्ट्रीय समेकन और लोकतान्त्रिक तथा धर्मनिरपेक्ष संस्था का निर्माण हुआ केन्द्र तथा राज्य में शासन करने वाली मुख्य पार्टी द्वारा ही जागरूकता फैलाने का कार्य किया गया। ऐसे व्यक्तियों के नेतृत्व में जो विभिन्न स्तरों पर उच्च पद पर है तथा जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्तियों से प्रभावित है तथा जिनकी लोकतान्त्रिक प्रवृत्ति है तथा राज्य तथा उससे निचले स्तर पर प्रतिभाशाली नेताओं के अधिकारों को बांटने की क्षमता है संभवत: संघीय संबंधों की संस्था का रूप देने पर बल नहीं दिया गया है। अत: अब एक जटिल और बहुपार्टी सरकार होने के कारण अन्तरराज्य परिषद् जैसे निकायों का महत्व बढ़ जाता है।

अन्तरराज्य परिषद्, संघ और राज्य के बीच ऐसे मामलों पर विचार विमर्श करने के लिए मंच के रूप में स्थापित की जा सकती है जिसमें राज्य पर संघीय नीतियों के प्रभाव पर विचार किया जाता है। अन्तरराज्य परिषद् के माध्यम से कराधान-नीतियों में समन्वय को भी सरल बनाया जा सकता है क्षेत्रीय असन्तुलन राज्य में केन्द्रों को विनियोग राज्यों के बीच परस्पर आर्थिक सहयोग जैसे विषयों पर तथा कार्य चालन संबंधी समस्याओं का पता चलाने जो देश के हित के लिए प्राकृतिक संसाधनों को काम में लाने तथा उनके विकास की प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न होती है उन्हें अन्तराज्य परिषद् के माध्यम से सुलझाया जा सकता है।

अन्य अखिल भारतीय संस्थाओं जैसे कि राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना आयोग आदि अखिल भारतीय संस्थाओं के संबंध में इस विषय पर विचार किया जाना भी आवश्यक है कि उनको केन्द्र के एक कार्यकारी अंग के रूप में ही न रहने देकर कैसे संघीय संस्था का एक रूप दिया जाए। मूल कार्यों और चुनौतियों के संबंध में व्यापक रूप से राजनीतिक जागरूकता पैदा करने के लिए तथा ऐसी समस्याओं का पता लगाने के लिए जिन्हें अच्छी तरह से समझना तथा न्यायोचित समाधान ढूंढना आवश्यक है इन संस्थाओं को संघीय रूप देना आवश्यक है इन अखिल भारतीय संस्थाओं के सन्दर्भ में सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया पर राजस्व तथा वित्त संबंधों के खंड में विस्तार से विचार किया गया है।

प्रचार-प्रसार माध्यम

रेडियो तथा दूरदर्शन–जैसी की भारत की परिस्थितियां है हमारी संचार नीति ऐसी होनी चाहिए जिसका लक्ष्य जनता को जागरूक करने, उन्हें जानकारी देने, उन्हें एक लोकतान्त्रिक नागरिक बनाने की शिक्षा देने और सक्रिय बनाना होना चाहिए। क्योंकि स्वतन्त्र रहने के लिए निरन्तर जागरूक रहना, समता बनाये रखना तथा सबको समान अवसर प्रदान करना, राष्ट्रीय मूल्यों को सुरक्षित रखना, एकता तथा विभिन्नता दोनों ही बनाए रखना और विकास प्रक्रिया तथा राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करना आवश्यक है। संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची प्रविष्टि 31 के अधीन प्रसारण एक मुख्य विषय है। दूर संचार सेवाएं एवम् अन्तरिक्ष सुविधाएं जिन पर प्रसारण निर्भर होता है इसी के अन्तर्गत आती है। रेडियो तथा उपग्रह सहित दूरदर्शन ही ऐसे माध्यम हैं जो प्रत्यक्षत: सार्वजनिक एवम् अन्तर्राष्ट्रीय प्रसारण का काम करते हैं और जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है यह टेलीफोन या डाक सेवा जैसी एक स्थान से दूसरे स्थान तक की संचार प्रणालियां नहीं है प्रसारण का क्षेत्र राष्ट्रीय सीमाओं के उस पार भी फैला हुआ है इसलिए यह अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का भी अतिक्रमण करती है इसी प्रकार प्रसारण की आवृत्ति सीमित होने के कारण उसका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आबंटन अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार संघ द्वारा किया जाता है अत: आबंटित आवृत्ति एक राष्ट्रीय परिसम्पत्ति है या एक ऐसा दुर्लभ प्राकृतिक साधन है जिसको राष्ट्रीय स्तर पर अवश्य विनियमित किया जाना चाहिए। इन कारणों से प्रसारण एक केन्द्रीय विषय हैं।

तथापि भारत एक बहुविध समाज और संघ राज्य है। ऐसे सशक्त एवम् विस्तृत होते हुए प्रचार प्रसार माध्यम पर केन्द्रीय नियन्त्रण से एक राजनीतिक विवाद का खतरा पहले भी हुआ था और भविष्य में भी हो सकता है इसमें जहां तक भाषा, संगीतात्मक अभिव्यक्ति और विशेष रूप से लोक संगीत से संबंधित नाटकीय रूपों, नृत्य और नाट्य कौशल संबंधी पक्ष पर इसके प्रभाव का संबंध है एवम् ऐतिहासिक परम्पराओं का अनुरक्षण करने और उन्हें पुनर्जीवित करने का संबंध है इस माध्यम के कारण सांस्कृतिक स्तर पर भी अनेक परिवर्तन हुए है और इसमें संस्कृति को एक नया रूप दिया है।

अत: यह महत्वपूर्ण है कि वर्गीस समिति की सिफारिश के अनुसार रेडियो तथा दूरदर्शन दोनों को ही स्वायत्त निकाय बना दिया जाए और राष्ट्रीय प्रसारण ट्रस्ट के रूप में पंजीकृत किया जाए। इसके लिए अन्तर्राज्य परिषद् से परामर्श करके एक न्यासी बोर्ड गठित किया जाएगा।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों की प्रसारण माध्यम तक आसानी से पहुंच होनी चाहिए ताकि सरकारी नीतियों से संबंधित जानकारी दी जा सके। जैसा कि प्रधान मंत्री के मामले में होता है लोक सभा में विपक्ष के नेता को भी राष्ट्रीय प्रसारण की सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। ऐसी ही सुविधाएं राज्य के मुख्य मंत्रियों और राज्य विधानमंडल में विपक्षी नेताओं को भी दी जानी चाहिए। ऐसे प्रसारणों को किसी पार्टी के राजनीतिक प्रसारण से अलग रखना चाहिए जिसके लिए अलग से एक कोड बनाया जाना चाहिए। हम वर्गीस समिति की उन सिफारिशों पर भी अपनी टिप्पणी देंगे जो प्रसारण के लिए लाइसेंस दिए जाने के अधिकार से संबंधित है।

आई टी यू द्वारा संसार के राष्ट्रों को आवृत्तियों के आबंटन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बातचीत करना अपेक्षित है जो केन्द्र की जिम्मेदारी है चूंकि आवृत्तियां सीमित हैं अत: उन्हें ऐसा दुर्लभ प्राकृतिक साधन माना जाना चाहिए जिसका विभिन्न बेतार उपयोगकर्ताओं के बीच आबंटन किसी प्राधिकरण के पास ही होना चाहिए। इन बेतार उपयोगकर्ताओं में राष्ट्रीय प्रसारण न्यास एक है और रक्षा सेवाएं पुलिस एवम् विमानन एवम् नौवहन प्राधिकारी अन्य उपयोगकर्ता है। सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 31 के अधीन लाइसेंस प्रदान करने के प्रयोजन के लिए केन्द्र सरकार संबंधित सरकार है और उसका संचार मन्त्रालय बेतार सलाहकार के रूप में कार्य करता है जो लाइसेंस प्रदान करता है और भारतीय तार अधिनियम के अधीन आवृत्तियों को विनियमित करता है।

तथापि प्रसारण के लिए लाइसेंस देने का अधिकार प्रसारणों को विनियमित करने के अधिकार के साथ सरकार में निहित नहीं होना चाहिए। प्रसारण (ट्रांसमीटरों के लिए लाइसेंस प्रदान करना) के तथ्य और प्रसारण (प्रोग्रामिंग) के कार्य में अन्तर है। इस संबंध में यदि कोई भ्रम हो तो वह एक ऐसे राष्ट्रीय न्यास की परिकल्पना से दूर हो जाता है, ऐसा राष्ट्र (हम जनता) जिसका प्रतिनिधित्व संसद् द्वारा किया जाता है और जिसमें से सरकार कार्यकारी शाखा का गठन करती है। यदि जनता ही एक संसदीय लोकतंत्र में अन्तिम सत्ता है तो वे देश की गतिविधियों की पूरी जानकारी और विभिन्न दृष्टिकोणों और विचारों की जानकारी प्राप्त करने के हकदार हैं ताकि वे स्वयं कोई निर्णय ले सकें और तदनुसार अपना मत दे सके। इस प्रकार एक स्वतंत्र एवम् स्वायत्त प्रसारण प्रणाली लोकतान्त्रिक धर्म का एक भाग है जो संसद् के माध्यम से जनता के प्रति उत्तरदायी है किन्तु जो सरकार द्वारा नियंत्रित नहीं है। राष्ट्रीय प्रसारण न्यास का गठन हो जाने पर सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय को प्रसारण की अपनी सीधी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाना चाहिए और उसे उसके बाद उपयुक्त रूप से "सूचना मन्त्रालय" का नाम दिया जा सकता है।

समाचार पत्र और पत्रिकाएं

समाचार पत्रों और पत्रिकाओं पर नियन्त्रण रखने के लिए अखबारी कागज के वितरण को सीमित किया गया। रेडियो तथा दूरदर्शन पर सरकार का पूरा नियन्त्रण होने के कारण समाचार पत्र और पत्रिकाएं ही सम्प्रेषण का स्वतंत्र माध्यम है। अखबारी कागज के लिए कोटा निश्चित् बिलकुल नहीं किया जाना चाहिए और अखबारी कागज की आयात संबंधी व्यवस्था ओ० जी० एल० को सौंप दी जानी चाहिए। विभिन्न राजनैतिक, सांस्कृतिक और भाषा के समाचार पत्रों और नियतकालिक पत्रिकाओं के लिए ऐसा किया जाना आवश्यक है तथा यह आवश्यक है कि केन्द्रीय या राज्य स्तर पर इसमें सरकार का किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप न हो।

यदि कुछ छोटे समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का अखबारी कागज प्राप्त करने के लिए सरकार की सहायता की आवश्यकता हो तब उनके इस विशेष अनुरोध को एस० टी० सी० जैसे अन्य संगठनों के द्वारा पूरा किया जा सकता है। ऐसा विशुद्ध रूप से समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं द्वारा इस दिशा में पहल करने पर ही किया जाएगा।

न्याय पालिका

मुख्य आवश्यकता इस बात की है कि न्यायापालिका की स्वतन्त्रता और महत्व को बढ़ाया जाए। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को बनाए रखने का एक तरीका यह है कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि सरकार के बजट नियन्त्रण के माध्यम से इसका उल्लंघन न किया जाए।

एक और बात जिसके न्यायापालिका की स्वतन्त्रता पर प्रभाव पड़ता है वह है उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थानांतरण किया जाना। यह समाप्त किया जाना चाहिए तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यपालिका की इच्छा से स्थानांतरण नहीं होना चाहिए। इस मामले के

संबंध में न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय ही विचार किया जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय में किन न्यायाधीशों को रखा जाए।

यह सुझाव इसलिए दिए गए हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि न्यायपालिका की सभी क्षेत्रों में, विशेष रूप से केन्द्र-राज्य से संबंधित ऐसे विषयों के मामले में स्वतन्त्र भूमिका रहे और विशेष रूप से ऐसे मामले जिनके फैसलों के लिए अदालत जाना जरूरी हो सकता है।

प्रशासनिक सेवाएं

अक्तूबर 1946 में शासनाध्यक्षों के सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की व्यवस्था करना उचित होगा जो मुख्य रूप से तो उन प्रदेशों की ही अपेक्षाओं को पूरा करेगी किन्तु उनके माध्यम से केन्द्रीय सरकार भी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ अधिकारियों की सेवाएं ले सकेगी। भारत सरकार के अधिनियम, 1935 की धारा 263 के अधीन भारतीय प्रशासनिक सेवाओं और भारतीय पुलिस सेवाओं का गठन किया गया था। बाद में इसे संविधान में शामिल कर लिया गया जिसमें अखिल भारतीय सेवाओं का संघ और राज्य की सेवाओं के रूप में उल्लेख किया गया।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 312 में संसद को यह अधिकार दिया गया कि भारतीय प्रशासनिक सेवाओं तथा भारतीय पुलिस सेवा के अतिरिक्त जो कि संविधान बनने से ही थी एक या एक से अधिक अन्य सेवाओं की भी व्यवस्था की जाए। इन अधिकारों का प्रयोग करते हुए संसद ने 1951 में अखिल भारतीय सेवा अधिनियम बनाया जिसकी निम्नलिखित तीन मुख्य विशेषताएं हैं :—

(i) विभिन्न अखिल भारतीय सेवाओं का गठन जिसमें से भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय वन सेवा पहले से ही मौजूद हैं ;

(ii) अखिल भारतीय सेवाओं की भर्ती संबंधी नीतियों तथा शर्तों के विनियम के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों का संयुक्त नियन्त्रण ;

(iii) अधिनियम के अधीन बनाए गए सभी नियमों के संबंध में संसद् ही अन्तिम प्राधिकारी होगी।

केन्द्र राज्य संबंधों पर विचार करते समय अखिल भारतीय सेवाओं की परिकल्पना और कार्य रूपों की दुबारा जांच की जानी आवश्यक है।

अखिल भारतीय सेवा अधिनियम की एक मुख्य विशेषता केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा संयुक्त नियन्त्रण रखना थी। इस संबंध में अधिनियम तथा नियमों के दो संगत उपबंधों पर विचार किया जाना आवश्यक है। अधिनियम में खंड 3 निम्नलिखित प्रकार से पढ़ा जाएगा :—

"3. सेवाओं की भर्ती संबंधी शर्तों का विनियमन—

(1) केन्द्र सरकार संबंधित राज्य की सरकार से परामर्श करने के बाद इसमें जम्मू-कश्मीर राज्य भी शामिल है (तथा सरकारी गजट में अधिसूचित) करने के बाद यह नियम बनाती है कि अखिल भारतीय सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती तथा सेवा संबंधी शर्तों के विनियमन के लिये नियम बनाएगी।"

राज्य तथा संघ सरकारों द्वारा इन अधिकारियों पर संयुक्त रूप से नियन्त्रण रख कर तथा उनके ऊपर एक अन्तिम प्राधिकारी का नियन्त्रण रख के दूरस्थ नियन्त्रण रखा जा सकता है जो कि स्वतः ही अधिक वस्तुपरक है। इससे अधिकारी, स्थानीय अधिकारियों के तनाव से मुक्त रहकर अपनी जिम्मेदारी को पूरा कर सकता है। केन्द्रीय सरकार को अन्तिम प्राधिकार दिये जाने से अखिल भारतीय सेवाओं से संबंधित और राज्यों में नियुक्त अधिकारी केन्द्र के प्रति अधिक निष्ठावान होते हैं जो उनकी सेवा शर्तों और पेशे के अन्तिम मध्यस्थ होते हैं। इससे न केवल मूल संघीय स्वरूप का सैद्धान्तिक रूप से उल्लंघन होता है बल्कि व्यावहारिक स्तर पर भी इससे केन्द्र की सत्तारूढ़ सरकार के विरोधी दलों की सरकारों द्वारा शासित राज्यों में, विशेष रूप से काफी कठिन स्थितियां उत्पन्न हुई हैं। हाल ही में आन्ध्र प्रदेश और जम्मू-कश्मीर में कुछ वरिष्ठ प्रशासन और पुलिस अधिकारियों के व्यवहार की गम्भीर आलोचना हुई है क्योंकि उन्होंने लोकतान्त्रिक रूप से निर्वाचित राज्य सरकारों के हितों के विरुद्ध कार्य किया और कानून का उल्लंघन किया तथा वे केन्द्रीय निर्देशों के अधीन कार्य कर रहे थे। क्षेत्रीय शक्तियों के बढ़ जाने से जो राजनीतिक स्थिति उत्पन्न हो रही है, उसमें अखिल भारतीय सेवाओं के कारण अधिक जटिलता उत्पन्न हो सकती है तथा विचारों में फैले मतभेद को दूर कर पाने की बजाय मामले और अधिक उलझ सकते हैं तथा तनाव बढ़ सकते हैं।

इससे तात्पर्य है कि ऐसी सेवाओं को महत्व दिया जाए जो विशेष नीतियों के प्रति उदासीन रहे तथा पक्षपात न करते हुए स्वतंत्र पूर्व दिनों की प्रभावशाली सिविल सेवाओं के विस्तार के रूप में अपनी भूमिका अदा करें। ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान केन्द्रीय सरकार ने इस संबंध में विचार किया है और ऐसे कदम उठाए हैं जिनके परिणामस्वरूप सेवाओं का तथाकथित संयुक्त नियन्त्रण कम हो गया है और केन्द्र सरकार के अधिकार अधिक मजबूत हो गए हैं। आसाम में राष्ट्रपति शासन के दौरान उस राज्य में क्षेत्रीय आन्दोलन के परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार ने गैर-स्थानीय (गैर-असामी) भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को नियुक्त किया है क्योंकि उसके विचार से उस राज्य के अखिल भारतीय सेवा अधिकारी क्षेत्रीय समस्याओं के उत्पन्न होने पर कार्यवाही करने के लिए विश्वसनीय नहीं माने गए। पंजाब में सेना द्वारा हस्तक्षेप करने के बाद ऐसा कहा जाता रहा है (प्रधान मंत्री द्वारा भी) कि प्रत्येक राज्य संवर्ग में बाहर से कम से कम पचास प्रतिशत व्यक्तियों को नियुक्त किए जाने की नीति को कड़ाई से कार्यान्वित किया जाएगा। इससे एक बात स्पष्ट है कि केन्द्र सरकार, राज्य प्रशासन व्यवस्था पर अपना और अधिक कड़ा नियन्त्रण रखना चाहती है दूसरे यह स्पष्ट होना अधिक हानिकर है कि बाहर से नियुक्त किए गए व्यक्ति ऐसे नियन्त्रण के लिए अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय हैं जबकि उसी राज्य के व्यक्तियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता वह भी सहज इसलिए कि उन पर स्थानीय प्रभाव अधिक हो सकता है। ऐसा रवैया अपनाना स्पष्ट रूप से संघीय सिद्धान्तों के विरुद्ध है और इससे केवल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं और राज्य सेवाओं तथा राज्य स्तर पर भारतीय प्रशासनिक सेवा और राजनीतिक नेताओं के बीच शत्रुता बढ़ेगी कि राज्य सरकार केवल अपने राज्य संवर्ग पर ही नियन्त्रण रखेगी। इस संबंध में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग नियमावली के नियम 6 में हाल ही में एक संशोधन किया गया है जिससे राज्य सरकार की शक्तियों को और अधिक छीन लिया गया है। इस संशोधन को निम्नलिखित प्रकार से पढ़ा जाएगा : —

संवर्ग अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति पर भेजना—

"(क) संवर्ग अधिकारी राज्य सरकार की सहमति से या संबंधित राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार की सहमति से केन्द्रीय सरकार या अन्य राज्य सरकार या कंपनी संस्था या निकाय चाहे शामिल किया गया हो या नहीं, जो कि पूर्णतः केन्द्रीय सरकार या अन्य राज्य सरकार के नियन्त्रणाधीन हो, के अधीन सेवाओं के लिए प्रतिनियुक्त किए जा सकते हैं।"

अतः किसी विशेष राज्य संवर्ग के अधिकारी को केन्द्रीय सरकार या अन्य राज्य सरकार में प्रतिनियुक्ति पर केवल उसकी मूल सरकार द्वारा अनुमति मिलने पर ही भेजा जा सकता है। यद्यपि इस संशोधन में एक परन्तुक यह भी है कि .... किसी भी प्रकार की असहमति होने की स्थिति में केन्द्रीय सरकार द्वारा ही उस मामले में निर्णय लिया जाएगा तथा राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार द्वारा लिए गए निर्णय से सहमत होगी। इसके परिणामस्वरूप चाहे राज्य सरकार अपने किसी अधिकारी को भेजने के प्रति सहमत न हो तब भी केन्द्रीय सरकार का निर्णय ही अन्तिम माना जाएगा। इस संशोधन से इस कल्पना को भी छोड़ दिया गया है कि अखिल भारतीय सेवाओं पर संयुक्त नियन्त्रण होता है। विधि तथा प्रथा के अनुसार इन सब परिवर्तनों के कारण अखिल भारतीय सेवाओं की मूल संकल्पना और संरचना ही बदल गयी है। यह अब एक ऐसे प्रशासन अधिकारियों का संवर्ग बनकर रह गया है जो राज्य सरकार में तो सर्वोच्च पद पर है किन्तु मूल रूप से केन्द्र के प्रति निष्ठावान हैं। स्पष्टतः राज्य सरकारों पर इसका गम्भीर रूप से प्रभाव पड़ सकता है, विशेषकर उन पर, जहां विपक्षी

दलों का शासन है अत: यह आश्चर्यजनक नहीं है कि कुछ राज्य सर ने यह सुझाव दिया है कि अखिल भारतीय सेवाओं को विघटित कर दिया जाए ।

यदि इन सेवाओं से वास्तव में वह लाभ प्राप्त नहीं होते है जिनका प्रारम्भ में अनुमान लगाया गया था तथा यदि इनमें सन्देह और शत्रुता की स्थिति उत्पन्न होती है तो वास्तव में भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा को विघटित करने का मामला अधिक दृढ़ होगा । वास्तव में जब 1951 में अखिल भारतीय सेवा अधिनियम पास किया था तब यह इरादा था कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अतिरिक्त भारतीय चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवा, इंजीनियर सेवा तथा भारतीय वन सेवाओं का भी सृजन किया जाएगा । किन्तु केवल भारतीय वन सेवा ही आरम्भ की गयी अन्य सेवाओं का विचार राज्य सरकारों की ओर से विरोध होने के कारण त्याग दिया गया, मुख्य रूप से राज्य सरकारों के विरोध के कारण जिन पर तद्नुरूपी राज्य सेवाओं का अधिक प्रभाव था अत: वर्तमान सन्दर्भ में केन्द्र द्वारा शासित और अधिक सेवाएं स्थापित करने के लक्ष्य को कार्य रूप देना संगत् नहीं होगा । किन्तु भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा को हटा दिए जाने से संबंधित प्रश्न पर लम्बे परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक विचार किए जाने की आवश्यकता है । यदि प्रारम्भ में रखे गए लक्ष्यों को पूरा करने के संबंध में दुबारा से विचार किया जाए तो इन सेवाओं को केवल संघीय सेवाओं के रूप में बनाए रखना लाभकारी हो सकता है बशर्ते कि पुन: संरचना के दौरान निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाए :—

(i) नीति या नियमों से संबंधित ऐसे सभी मामलों को जिनका अखिल भारतीय सेवाओं पर प्रभाव पड़ता है सबसे पहले अन्तर्राज्य परिषद् के समक्ष रखा जाए और एक औपचारिक संकल्प पारित करके केवल परिषद् का अनुमोदन लेने के बाद ही कोई कार्यवाही की जाए ;

(ii) अखिल भारतीय सेवा अधिनियम के खंड 3 को संशोधित किया जाना चाहिए तथा उसके स्थान पर यह रखा जाना चाहिए कि इसके लिए राज्य सरकारों की दो-तिहाई सहमति प्राप्त होने के बाद राज्यों से परामर्श करके कोई कार्यवाही की जाएगी;

(iii) भारतीय प्रशासनिक सेवा (संवर्ग) नियमावली के नियम 6 में अधिकारियों की शिकायतों को दूर करने का उपबंध रखा गया है जिससे कि आम तौर पर न्यायालय में होने वाले विलम्ब को रोका जा सके । ट्रिब्यूनल के लिए सदस्यों का चुनाव संघ लोक सेवा आयोग द्वारा पुष्टि करने पर किया जाएगा जिसके कि यह सुनिश्चित किया जाए कि ट्रिब्यूनल में क्षमतावान और एकनिष्ठ व्यक्ति रहे ।

पुलिस

पुलिस राज्य से संबंधित विषय है इसका उल्लेख समवर्ती सूची में भी नहीं किया गया है फिर भी, केन्द्रीय सरकार ने एक काफी बड़ा पुलिस बल तैयार किया है जो लगातार बढ़ता ही जा रहा है । पिछले दो दशकों में केन्द्रीय पुलिस बल पर खर्च 16 गुना अधिक हुआ है यह खर्च वर्ष 1965–66 में और 1984–85 में 32 करोड़ से 510–30 करोड़ रु० तक बढ़ा है । संविधान के उपबन्ध में न होने के अलावा केन्द्रीय पुलिस का विस्तार हो जाने से राज्यों में प्रभावी रूप से कानून और व्यवस्था बनाए रखने की समस्या भी बढ़ गयी है । अपने राज्य में पुलिस बल का स्वयं विकास करने के बजाय अब राज्यों को केन्द्रीय सरकार के आश्रित बना दिया गया है कि वहां से यथासमय अर्द्धसैनिक बल और केन्द्रीय आसूचना सेवाएं तथा पुलिस बल आदि मंगाए ।

यहां तक कि वित्त और औद्योगिक क्षेत्रों में भी राज्यों को अधिकार प्रदान किए जा सकते है यहां भी राज्य की कानून और व्यवस्था तन्त्र पर केन्द्र सरकार का इतना कड़ा नियन्त्रण है कि यह राज्य को जो कुछ स्वतंत्रता प्राप्त है उसमें बाधक सिद्ध हो सकता है । जैसा कि हाल ही की घटनाओं से पता चलता है (उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश) । केन्द्रीय सेवाएँ सिर्फ राजनीतिक कारणों से ही की गयी । जैसा कि आए० एफ० रुस्तम जी ने कहा है.......कुल मिलाकर केन्द्रीय सेवाओं पर अधिक भार पड़ा है जिससे

वह उतनी अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो सकी है । यह अत्यावश्यक है कि पुलिस के संबंध में मौजूदा सांविधानिक स्थिति को बनाए रखा जाए । राज्यों को अपने पुलिस बल का निर्माण स्वयं करना चाहिए जो कि कानून तथा व्यवस्था संबंधी व्यवस्थाओं को प्रभावशाली रूप से सुलझा सके । केन्द्रीय पुलिस का और अधिक विस्तार नहीं होना चाहिए इसे या तो राज्यों में मिला दिया जाना चाहिए या भिन्न अवस्था में रखना चाहिए ।

राजकोषीय तथा वित्त संबंध

जैसा कि अन्य क्षेत्रों में है राजकोषीय संबंधों में भी केन्द्र राज्य संबंधों पर नीति और प्रशासन के संबंध में अत्यधिक केन्द्रीय कारण हुआ है । सांविधानिक उपबन्धों में केन्द्र और राज्य के जो क्षेत्र उल्लिखित किए गए है उनका उल्लंघन किया गया है और जिन योजनाओं तथा वित्तीय संस्थाओं के उद्देश्यपूर्ण दृष्टि से स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहिए था उस पर राजनीतिक दबाव पड़ा है तथा उनका पतन हुआ है जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र और राज्य के बीच के राजकोषीय तथा वित्त संबंधों में और संघीय राजतंत्र की सम्पूर्ण योजना प्रक्रिया में असामंजस्य उत्पन्न हो गया है ।

1951 के बाद से अब राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार किए जाने को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया, राज्यों के विकास संबंधी दायित्व अधिक बढ़ गए किन्तु उसके अनुरूप राज्यों के उन वित्तीय साधनों में वृद्धि नहीं हो पायी । हाल ही में जिस वित्तीय आयोग की स्थापना हुयी थी उसके द्वारा राज्य के साधनों और विकास तथा विकासेतर उत्तरदायित्वों के बीच के अन्तर को कम करने के लिए कुछ अच्छे कदम उठाए जाने के बावजूद राज्यों को कर तथा अन्य सरकारी राजस्व से निधियां अन्तरित करने के प्रति एक यान्त्रिक रवैया अपनाया गया और केन्द्र से अधिक से अधिक साधनों का अन्तरण विवेकाधिकार के अनुसार किया जाने लगा फलस्वरूप राजनीतिक कारणों से विवेकाधिकारों का प्रयोग किया जाने लगा ।

पिछले कुछ वर्षों से ऐसे विषयों पर जो संविधान के अनुसार राज्य के क्षेत्राधिकार में आते है केन्द्रीय सरकार के खर्च बहुत तेजी से बढ़ रहे है । इससे न केवल विकासात्मक तथा विकासेतर व्यय बढ़ा है तथा उसमें विकार उत्पन्न हुआ है बल्कि इससे कुछ क्षेत्रों ने राज्य प्रशासन के प्रभावशाली रूप से शासन चलाने में भी बाधा आयी है । इसी प्रकार संविधान के अनुसार उन अराज्यों में कर तथा राजस्व में केन्द्र के हस्तक्षेप के कारण जिनकी व्यवस्था उन राज्यों को ही करनी चाहिए थी संबंधों में कटुता उत्पन्न हो गयी है । इन्हीं सब प्रवृत्तियों के कारण राज्य स्तर पर साधनों और जिम्मेदारी में गम्भीर असन्तुलन पैदा हो गया है विभाज्य पूल जहां से वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार अन्तरण किए जाते है, बदलते हुए संघीय संबंधों और जिम्मेदारियों के अनुरूप स्वयं को नहीं ढाल पाया है । इसी प्रकार से राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता प्रदान करने का जो गाडगील फार्मूला है उसकी वजह से कम विकासशील राज्यों को लाभ पहुंचाने के कार्यों में नए किस्म के तनाव पैदा हो गए है । राज्यों के ऋण मोचन भार के लगातार बढ़ने तथा उनके पूंजी बाजार पर कड़े प्रतिबन्ध लगाए जाने की वजह से क्षोभ उत्पन्न हो गया है तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के, नीति निर्माण-निकाय के रूप में प्रभावशाली रूप से कार्य न करने, वित्त तथा योजना आयोग की अतिव्यापी भूमिका, और योजना आयोग भारतीय रिजर्व बैंक तथा अन्य केन्द्रीय सरकार के विभाग तथा राष्ट्रीय संस्थाओं के अधीनीकरण के कारण इन समस्याओं का कोई भी समाधान ढूंढना कठिन हो गया है । इन केन्द्राभिमुखी अधिकारों के परिणाम केन्द्र और राज्य के संबंधों में गम्भीर संकट की स्थिति आने वाली है ।

अत: केन्द्र और राज्य के राजकोषीय संबंधों में शीघ्र ही मूल रवैये, नीति और साधनों में समायोजन करके सुधार लाना आवश्यक हो गया है । इस समायोजन के अन्तर्गत सभी प्रकार के अन्तरणों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । साधनों के आबंटन के मामले में योजना और योजनेतर "विकासात्मक" या "विकासेतर राजस्व" या "पूंजी" में स्थायी रूप से कोई अन्तर नहीं किया जा सकता । इस प्रकार से निश्चित रूप से वर्गीकरण करना प्रशासनिक दृष्टि से मौलिक नहीं है तथा इससे साधनों के इष्टतम उपयोग में बाधा नहीं पहुंचनी चाहिए । वास्तव में संविधान की सातवीं अनुसूची में भी जहां

संघ और राज्य के अलग-अलग तथा समवर्ती क्षेत्राधिकारों का उल्लेख किया गया है वहां भी सामग्री तथा वित्तीय संसाधनों पर एक सूची के आधार पर दूसरी पर दावा नहीं किया जा सकता है। केन्द्र और राज्य के बीच साधनों के विभाजन के लिए समता और दक्षता मानदंडों को विभिन्न व्यय शीर्षों पर लागू नहीं किया जा सकता। साधनों को ध्यान में रखे बगैर यदि राजकोषीय संरचना में कोई सुधार किया जाता है तो उसके अन्तर्गत सरकार के सभी विकासात्मक और विकासेतर कार्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

सामान्य प्रशासन पुलिस विधि तथा न्याय से संबंध में केन्द्र तथा राज्य की जिम्मेदारियों में परिवर्तन करने के प्रस्ताव पहले भी किए गए हैं। यह आवश्यक है कि यहां केवल आर्थिक और विकासात्मक कार्यों की ही संवीक्षा की जाए जिनके मामले में संघ और राज्य के बीच गम्भीर रूप से विरोध है।

विकास संबंधो जिम्मेदारियों का विभाजन

राष्ट्र का सामाजिक तथा आर्थिक विकास करने के निश्चय को पूरा करने के लिए केन्द्र तथा राज्य दोनों की ही भलीभांति योजनागत रूप से कार्य करने की भारी जिम्मेदारी निभानी पड़ेगी। सरकारों के बीच जिम्मेदारियों का विभाजन पहले से ही किया गया है। किन्तु इसे सिद्धान्तों के अनुरूप सरल और कारगर रुप मे तथा बुद्धिसंगत रूप से व्यवस्थित करने की आवश्यकता है जिससे कि अप्रिय तथा विघटनकारी वाद-विवादों से बचा जा सके। इस प्रकार जिम्मेदारियों का विभाजन करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण यह सिद्धान्त हैं जो इन पर लागू होते हैं। सर्व प्रथम ऐसे सभी क्षेत्र कों या कार्यक्रमों जिनके संबंध में उन्हें सफलता पूर्वक कार्यरूप देने के लिए विस्तृत जानकारी मिलना मुश्किल हो उन्हें यथासभव अधिकतम सीमा तक विकेन्द्रीकृत कर दिया जाना चाहिए। अत: कृषि तथा इससे सम्बन्धित कार्यकलाप जो कि स्थान तथा साधनों पर निर्भर करते हैं या आधारिक संरचना और समाज कल्याण जैसे क्षेत्र जिनमें सिंचाई, खनन, ऊर्जा, परिवहन और उच्च शिक्षा आदि पर केवल राज्य या केन्द्र एक का ही अधिकार नही हो सकता। अन्तर्राज्यिक या राष्ट्रीय महत्व की बड़े पैमाने की परियोजनाओं को जिम्मेदारी केन्द्र की होनी चाहिए। वास्तव में इन कुछ क्षेत्रों में केन्द्रीयकरण की आवश्यकता है अत: बड़ी सिचाई योजनाओं (जिनका कृषि योग्य क्षेत्र 10,000 हैक्टर से अधिक है) बिजली उत्पादन की बड़ी योजनायें (250 मैगावॉट से अधिक क्षमता वाली) तथा विश्वविद्यालय और बड़ी अनुसंधान संस्थाओं को केन्द्रीकृत करके लाभ हो सकता है। फिर भी ऐसे मामलों में निर्णय केवल वस्तुपरक आयोजना निकाय द्वारा ही लिया जाना चाहिए और राष्ट्रीय विकास परिषद का अनुमोदन लेना चाहिए तथा केवल इसे केन्द्रीय सरकार के लिए ही नहीं छोड़ देना चाहिए।

तीसरे विनिर्माण क्षेत्र के संबंध में प्रत्येक स्तर पर योजना तैयार की जानी आवश्यक है क्योंकि इसके कार्यकलाप विभिन्न प्रकार के होते हैं। यद्यपि कच्चे माल या बाजार आदि की निकटता के कारण कुछ उद्योगों के स्थान-निर्धारण पर असर पड़ सकता है बहुत सी विनिर्माण शाखाएं स्वतंत्र होती है और वे स्थानीय अपेक्षाओं से नहीं बंधी होती और उनमें से बहुत सी विनिर्माण शाखाओं के लिए प्रौद्योगिकी और उनके कार्यचालन में विभिन्नता हो सकती है अत: विनिर्माण संबंधी संभावनाओं का पता लगाकर समय-समय पर प्रत्येक स्तर पर मूल्यांकन करते रहना चाहिए। प्रत्येक कार्यकलाप का स्थान निर्धारण विभिन्न स्थानों के सामाजिक दृष्टि से लाभ को ध्यान में रख कर किया जाए तथा योजना के कार्यों का उत्तरदायित्व इसी के अनुसार सरकार के विभिन्न स्तरों को सौंपा जाएगा।

अन्त में कुछ ऐसे कार्य है जिनकी योजना सारे देश को ध्यान में रखते हुए बनायी जानी चाहिए और इसकी योजना तैयार करने की जिम्मेदारी केन्द्र को दी जानी आवश्यक है। इसी श्रेणी के अन्तर्गत रेलवे, राष्ट्रीय राजमार्ग, दूर संचार, तेल की खोज तथा उसका उत्पादन आदि आ जाते है तथा बड़ी सिचाई परियोजनाएं और ऐसी ही अन्य योजनायें जिनका पहले ही उल्लेख किया गया है इसके अन्तर्गत आती हैं। अवश्य ही कुछ ऐसे सीमान्त मामले होंगे जिनके लिए उत्तरदायित्व संबंधी निर्णय विशेष रूप से एक संघीय निकाय को ही करना होगा। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विशाल क्षेत्रों में केन्द्रीय नियन्त्रण या योजना स्कीमें प्रायोजित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही ऐसा करना लाभदायक हैं। राष्ट्रीय विकास नीति के अन्तर्गत गरीबी हटाने और रोजगार के अवसर प्रदान करने से संबंधित कार्यक्रमों के बढ़ते हुए महत्व को देखते हुए विकास के संबंध में व्यय की कुल राशि में राज्यों के हिस्से में अवश्य वृद्धि की जानी चाहिए। और प्रत्येक राज्य में जिला और खंड स्तर पर आबंटित किए जाने वाले ग्रामीण विकास पूंजी निवेश के हिस्से में भी वृद्धि होनी चाहिए। गरीबी हटाने की योजनाओं को केन्द्रीय स्तर पर प्रायोजित करना सर्वथा असंगत है। ग्रामीण विकास में (औद्योगिक विकास सहित) केन्द्र सरकार की भूमिका केवल खंड ब्लाक निधि प्रदान करने और कुछ व्यापक मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करने तक ही सीमित रखी जानी चाहिए। इन सिद्धांन्तों के अनुसार और उपलब्ध धन राशि की सीमाओं को देखते हुए राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे उपलब्ध साधनों को विभिन्न कार्यकलापों के लिए आबंटित करने के संबंध में स्वयं निर्णय ले सके और परियोजनायें भी स्वयं बना सके और कार्यान्वित करा सकें।

ऐसा एक सक्रिय संघवाद स्थापित किया जाना चाहिए जिसमें राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय स्वायतता हो ताकि खर्च करने तथा कर वसूल करने या ऋण लेने के बीच अधिक अनुरूपता सुनिश्चित हो। यह सन्तुलन केन्द्र सरकार के कारण बुरी तरह से बिगड़ गया है तथा इसको दुबारा से बनाना आवश्यक हो गया है। इस प्रयोजन के लिए जो उपाय किये जाने आवश्यक है उनमें वित्त आयोग, योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद के अधिकारों और कार्यक्षेत्र को दुबारा से परिभाषित करना आवश्यक है। इसके साथ ही वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से बचत और ऋण आबंटन की अधिक तर्कसंगत व्यवस्था की जानी आवश्यक है।

वित्त आयोग

अनुच्छेद 268, 269, 270, 272, 273, 275, 285 और 293 में केन्द्र सरकार से राज्य सरकार को करों के हिस्से अनुदान और ऋण के वित्तिय अंतरण का उपबंध है तथा अनुच्छेद 280 में यह व्यवस्था की गयी है कि प्रत्येक पांच वर्ष बाद वित्त आयोग संवीक्षा करेगा तथा अपने सुझाव देगा। अब तक 8 आयोगों द्वारा उस संतुलन को कम करने के प्रयासों के बावजूद कर शक्तियों का वितरण तथा वास्तव में करों में हिस्सा तथा सरकार से अन्य प्राप्तियों के बावजूद पलड़ा केन्द्रीय सरकार के पक्ष में ही भारी है।

केन्द्रीय सरकार की तुलना में राज्यों का कर संबंधी क्षेत्राधिकार केवल भू-राजस्व, भूमि तथा भवन और मोटर वाहन आदि स्त्रोतों तक ही सीमित है यहां तक कि संसाधन जुटाने के लिए केन्द्र जिस प्रकार से उत्पाद शुल्क पर नियंत्रण रखती है उसकी वजह से बिक्री कर भी एक ऐसा ही साधन बनकर रह गया है। इसी प्रकार से केन्द्रीय सरकार की निर्यात नीति का बिक्री कर से प्राप्त आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके वितरित आय कर पर अधिभार, लोक उद्यमों आदि के उत्पादों के लिए उत्पादन शुल्क के स्थान पर उच्च कीमतें लगाने आदि के कारण विभाज्य राजस्व का अधिक भाग केन्द्रीय बजट में गया है। अब वह समय आ गया है जब इस प्रकार की असुन्तलन की स्थिति को सुधारना और बजट तथा कर साधनों के बीच अधिक अच्छा संबंध स्थापित करना जरूरी हो गया है।

वित्त आयोग को बाधाओं से मुक्त रखना

यद्यपि संविधान में विशेषरूप से इस बात का उल्लेख नहीं है कि किसी विशेष कर स्त्रोत में केन्द्र को प्राप्त होने वाले राजस्व का शत प्रतिशत राज्यों को वितरित कर दिया जाए। इस संबंध में कोई न्यूनतम प्रतिशतता निर्धारित नहीं की गयी है। इस प्रतिशतता का निर्धारण राष्ट्रपति / संसद द्वारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद किया जाता है। वित्त आयोग को यह अधिकार होता है कि वह केन्द्र तथा राज्य सरकार के बीच कर से प्राप्त होने वाली आय के विभाजन को संवीक्षा करके उसमें परिवर्तनों की सिफारिश करें तथा अन्तर्राजिक आबंटन में भी परिवर्तनों के सुझाव दे। किन्तु अनुच्छेद 280(4) में जो कुछ निर्धारित किया गया है उस पर रोक

नहीं लगायी जानी चाहिए जैसे कि वित्त आयोग अपनी कार्यविधि स्वयं निर्धारित करेगा। संविधान में वित्त आयोग या राष्ट्रपति/संसद के लिए कोई मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए गए है। संविधान में राष्ट्रपति/संसद को यह अधिकार नहीं दिया गया है कि वह किसी भी रूप में वित्त आयोग की स्वतंत्रता में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बाधक सिद्ध हो। संविधान के जिस उपबंध में लोक कार्यों के लिए केन्द्र को जो विवेकाधिकार किए गए है, उससे किसी भी तरह से राजस्व के सहायता अनुदान या राज्यों की सहायता के लिए अतिरिक्त निधियां देने से वित्त आयोग के अधिकार कम नही होते है।

इस सब के बावजूद इसके बाद जितने भी वित्त आयोग स्थापित किए गए वे सभी 'उन्हें, नियुक्त करने वाले राष्ट्रपति के आदेशों में उल्लिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों के कारण केवल उन तक ही सीमित होने के लिए बाध्य थे। इन वित्त आयोगों के लिए विचारार्थ विषय अनेक थे और एक आयोग के लिए जो अधिक विशेष थे वे दूसरे के लिए अपेक्षाकृत अधिक विशिष्ट बनते गए। आठवें वित्त आयोग के लिए राष्ट्रपति के आदेश में लगभग वही सब विषय शामिल किए गए जो सातवें वित्त आयोग के विचारार्थ रखे गए थे। इसके अतिरिक्त आयोग से यह कहा गया कि वह संविधान के अनुच्छेद 260 में उल्लिखित उन करों और शुल्कों आदि से प्राप्त राजस्व को बढ़ाने के लिए इस विषय की जांच करे, जो फिलहाल वसूल नहीं किए गए है तथा अनुच्छेद 268 में उल्लिखित शुल्कों में राजस्व बढ़ाने की संभावनाओं की भी जांच करें। राष्ट्रपति आदेश में कुछ विशिष्ट मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करके पिछले कुछ वर्षों से लगातार यह प्रयास 'किया जा रहा है कि आने वाले वित्त आयोगों के विचारों को तथा कार्य क्षेत्र की एक निश्चित दिशा दी जा सके। किन्तु संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी करने का कोई प्रावधान नहीं है।

यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार होगा कि वह वित्त आयोग से यह अनुरोध करें कि वह किसी भी ऐसी वित्तीय समस्या पर विचार करे जो उनकी दृष्टि में महत्वपूर्ण है। लेकिन क्योंकि वह स्वयं उसमें रूचि रखते है तो क्या केन्द्रीय सरकार की विचारार्थ विषय के एक भाग के रूप में ऐसे मार्गदर्शी सिद्धान्तों का सुझाव देना चाहिए कि आयोग उनके इस कार्य के प्रति कैसा रवैया अपनाये तथा साधन अन्तरण निर्धारित करते समय किन मुख्य बातों को ध्यान में रखे। केन्द्रीय सरकार के लिए यह पूर्णत: उचित होगा कि वह वित्त आयोग को अलग से एक ज्ञापन प्रस्तुत करके उसमें अपने सुझाव दे, जैसा कि अब राज्यों द्वारा किया जाता है। यदि ऐसा किया जाता है तो वित्त आयोग अपने कार्य के लक्ष्य बिना किसी पूर्व निर्धारित रूपरेखा के पूरा करने में समर्थ होगा।

सार्विधिक अंतरण

सातवें तथा आठवें वित्त आयोगों की सिफारिशों के बावजूद अधिक संसाधनों के अंतरण के मामले में केन्द्रीकरण और अधिक बढ़ गया है हालांकि सिफारिशों में राज्यों को संसाधनों का अंतरण अधिक सुविधाजनक बना दिया गया है। स्वविवेकानुसार ऐसे बहुत से योजनागत तथा गैर-योजनागत अंतरण हुए है जिनसे शेष को स्थिति उत्पन्न हुई है क्योंकि कुछ ऐसे अंतरण किए गए हैं जो वित्तीय प्रबंध, विकास कार्यक्रमों और करों का ध्यान रखे बगैर किए गए हैं।

सांविधानिक अंतरणों के अंतर्गत विभाजन योग्य सामूहिक निधि तथा अनुच्छेद 275 के अधीन राजस्व में अंतर को समाप्त करने के लिए दिए जाने वाले अनुदान दोनों ही आ जाते हैं। इन अंतरणों के संबंध में निर्णय लेते समय वित्त आयोगों ने सामान्यत: इन अंतरणों को समाप्त करने का रवैया अपनाया है हालांकि आठवें वित्त आयोग ने हममें कुछ सीमा तक परिवर्तन किए हैं। इस प्रक्रिया में वित्त आयोगों के इस विधान के फलस्वरूप कभी कभी उन राज्यों को जिन्होंने अतिरिक्त कराधान द्वारा या अन्यथा अधिक साधन बना लिए हैं नुकसान उठाना पड़ा है। इसके विपरित अप्रत्याशित लाभ उन राज्यों को प्रदान किए जाते हैं जिन्होंने अपने वित्त को अव्यवस्थित स्थिति में रख छोड़ा है तथा जो कर वसूल करने में असफल रहे हैं। यह सर्वथा अनुचित हैं तथा सार्विधिक अंतरण की दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण है कि विभाजन योग्य सामूहिक निधि के माध्यम से स्वत: जो राशि अंतरित हो जाती हैं वह राज्यों के कार्यों और जिम्मेदारियों के अनुरूप ही बढ़ाई जानी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित समायोजन का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

विभाजन योग्य सामूहित निधि को बढ़ाने की आवश्यकता हैं।

फिलहाल वित्त विभाजन योग्य सामूहिक निधि राज्यों को कर संसाधन अंतरित किए जाते हैं उनमें निम्नलिखित कर आते हैं :—

(1) निगम कर के सिवाय अन्य आय पर कर
(2) सम्पदा शुल्क
(3) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क
(4) अतिरिक्त उत्पाद शुल्क
(5) माल तथा यात्रियों पर कर
(6) कृषि सम्पत्ति कर

निगम कर को पहले विभाजन योग्य सामूहिक निधि में शामिल किया गया था, बाद में 1959 में वित्त अधिनियम में संशोधन करे उसे वहां हटा दिया गया जिसके कारण कंपनियों द्वारा अदा किए गए आय कर में राज्यों की हिस्सा नहीं दिया गया। केन्द्रीय सरकार ने आयकर पर अधिभार भी लगाए हैं जिसकी आय को विभाजन योग्य सामूहिक निधि में शामिल नही किया गया है। राज्यों ने विभिन्न आयोगों से नियमित रूप से यह प्रतिवेदन किया है कि इन उपायों से वे राजस्व के उन विस्तृत स्रोतों से वंचित हो गए हैं जिनके संवैधानिक रूप से वे हकदार थे। निगम कर की आय जिसे केवल केन्द्रीय सरकार ही अपने पास रखती है वह 1983-84 में आय कर से प्राप्त 1,670 करोड़ रुपए की तुलना में 2,364 करोड़ रुपए थी। इन प्रतिबंधों के कारण वर्ष 1983-84 में सीमा शुल्क की 5,879 करोड़ रुपए राशि तथा कुल 8,243 करोड़ रुपए विभाजन योग्य सामूहिक निधि से अलग रखे गए। इसके अलावा 1983-84 में विभाजन योग्य सामूहिक निधि के कुल 10,196 करोड़ रुपयों में से 4,793 करोड़ रुपए राज्यों को अंतरित कर दिए गए। इस प्रकार विभाजन योग्य सामूहिक निधि में राज्यों का हिस्सा केन्द्र के 53 प्रतिशत की तुलना में विभाजन योग्य सामूहिक निधि की कुल राशि का केवल 47 प्रतिशत ही बनता है। सभी राज्यों के कुल राजस्व की तुलना में उन्हें विभाजन योग्य सामूहिक निधियों से प्राप्त जो होता है वह केवल 17 प्रतिशत ही बनता है अत: विभाजन योग्य सामूहिक निधि में कम से कम निगम कर शामिल करके उसे बढ़ाने का पूर्ण औचित्य है। इस प्रकार बढ़ाई गई विभाजन योग्य सामूहिक निधि में प्राप्त राशि की 75 प्रतिशत राशि राज्यों में बांट दी जानी चाहिए। चूंकि सीमा शुल्क से प्राप्त होने वाली पूरी राशि केन्द्र को ही जाती है अत: ऐसी स्कीम बनाने से केन्द्र कर-राजस्व का अंतरण करके अपने कुल राजस्व का 50 प्रतिशत राज्यों के साथ बांट सकेगा। कर्नाटक सरकार का यह विचार है कि विभिन्न राज्यो में अधिक संतुलित आबंटन की आवश्यकता के वर्तमान संदर्भ मे इस प्रकार के साधनों का अंतरण अधिक न्यायसंगत होगा।

राजस्व के अंतर को समाप्त करने के लिए उत्पाद-शुल्क में से अनुदान देना असंवैधानिक है

संविधान के अनुसार निधि के अंतरण के बाद राज्यो का घाटा अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान देकर पूरा किया जाना चाहिए। आठवें वित्त आयोग ने इस घाटे को पूरा करने के लिए एक नए तरीके का सुझाव दिया है अर्थात् ऐसे घाटे को पूरा करने के लिए अनुदान देने के लिए 5 प्रतिशत उत्पाद-शुल्क का उपयोग किया जाना चाहिए। यह मान लिया गया है कि राज्यो को अन्तरित किए जाने वाले उत्पाद-शुल्क का हिस्सा 40 प्रतिशत से बढ़कर 45 प्रतिशत हो गया है। यह केवल एक दिखावा मात्र है ताकि राज्यों को यह महसूस हो कि उनके हिस्से की प्रतिशतता में वृद्धि कर दी गयी है किन्तु वास्तव में उनका हिस्सा पहले की भांति 45 प्रतिशत ही रहा है क्योंकि जो काल्पनिक 5 प्रतिशत हिस्सा है वह तो केवल घाटे वाले राज्यों में वितरण के लिए है। यदि घाटे वाले राज्यों को केन्द्र के राजस्व के हिस्से मे से अनुदान दिया गया होता तो राज्यों के

उत्पाद शुल्क के हिस्से में होने वाली वृद्धि से सभी राज्यों को राशि प्राप्त हुयी होती। इस नए सिद्धान्त का आशय राज्यों के घाटे को पूरा करने के लिए उत्पाद-शुल्क से प्राप्त राशि निर्धारित करना है, यह अनुचित और असंवैधानिक है और इससे उन राज्य सरकारों को दुख हुआ है, जिन्होंने किसी प्रकार व्यवस्था करके अधिशेष राशि बचा ली है। संघ सरकार को अनुच्छेद 275 को अन्तर्गत ऐसे साधनों से अनुदान देने की कोशिश नहीं करनी चाहिए जिनकी राशि अन्यथा सभी राज्यों को प्राप्त होनी थी।

राजकोषीय दक्षता

वर्तमान प्रणाली के अधीन किसी भी राज्य के लिए राजकोषीय क्षमता बनाए रखना एक कठिन प्रक्रिया बन गई है। व्यय में किफायत, अपेक्षाकृत अधिक अच्छे कार्यान्वियन के परिणामस्वरूप कम पूंजी निवेश द्वारा भी अच्छे साधन प्राप्त करने तथा विकास के प्रयोजनों के लिए बढ़ती आय से यह स्पष्ट है कि जिन राज्यों ने इस आधार पर कार्य किया है उन्हें भी राजस्व के अंतर को पाटने के लिए अनुदानों का लाभ प्राप्त होता है। अतः कहा जा सकता है कि राज-कोषीय दक्षता न होने पर केन्द्रीय सहायता के लाभ प्राप्त होते हैं जबकि राज-कोषीय दक्षता होने पर ऐसे लाभ न ले पाने का दण्ड मिलता है।

वित्त आयोगों ने अभी तक कुछ प्रासंगिक पैरामीटरों के आधार पर प्रत्येक राज्य की वित्तीय संभावनाओं का मोटे तौर पर निर्धारण भी नहीं किया है और इस प्रकार निर्धारित की गई वित्तीय संभावनाओं के संदर्भ में राज्यों का निष्पादन कैसा रहा, इसका भी मूल्यांकन नहीं किया है। ऐसा प्रयास न किए जाने की स्थिति में, राजकोषीय क्षमता को राज्यों को अंतरित किए जाने वाले संसाधनों के महत्वपूर्ण मानदंड के रूप में लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

यह सच है कि योजनागत और योजनेतर खर्चों में वितरण कुछ-कुछ बनावटी हो गया है, लेकिन इससे विकास के उन कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए एक राजकोषीय आधार मिल जाता है जिनके लिए संसाधनों को काम में लगाया जाना होगा। प्रायः यह सुझाव दिया जाता है कि केंद्र से राज्यों को कुल अंतरण, चाहे वे योजनागत खर्च हो अथवा योजनेतर खर्च हों, निश्चित करने के लिए वित्त आयोग स्वयं एकमात्र एजेंसी के रूप में कार्य कर सकता है। परन्तु इस प्रकार का निकाय प्रशासनिक रूप से बहुत ही दुर्बल सिद्ध होगी और वह निवेश संबंधी निर्णयों के लिए आवश्यक बहुक्षेत्रीय परिप्रेक्ष्यों का राज्यों के कर अंतरण निर्धारण और सांविधिक अनुदान संबंधी जिम्मेदारियों के साथ नहीं जोड़ सकता है। इसके अलावा, इसकी अन्य सभी कमियों के बावजूद, योजना आयोग राज्य सरकारों के अध्यक्षों के लिए एक लचीले तंत्र की व्यवस्था करता है जिसमें राज्य सरकारों के अध्यक्षों को संसाधनों, कार्यक्रमों और नीति संबंधी विषयों पर केंद्र के साथ सीधे और विस्तार से चर्चा करने के लिए अवसर मिल जाता है। इनका परिरक्षण न केवल महत्वपूर्ण है अपितु इनका विस्तार करना भी महत्वपूर्ण है। अतः यह उपयोगी होगा कि पंचवर्षीय वित्त आयोग बुलाने और योजना आयोग की वर्तमान प्रणाली को ही जारी रखा जाए —लेकिन उसके स्वरूप और कार्यों में कुछ परिवर्तन कर दिए जाएं, जिनका सुझाव हमने अनुवर्ती पैराग्राफ में दिया है।

वित्त आयोगों और योजना आयोग की जिम्मेदारियां परिभाषित करते हुए युक्तियुक्त सीमा रेखा यह है कि योजनागत पक्ष में पूंजीगत प्रकार की सभी मदों को ले लिया जाए और वित्त के आवर्ती व्यय के कार्य को वित्त आयोग के लिए छोड़ दिया जाए। इसके परिणामस्वरूप सरकारें योजना को इतर पूंजी नहीं ले पाएंगी और इससे केंद्र तथा राज्य के बीच सरकारी व्यय का वर्गीकरण अधिक तर्कसंगत आधार पर किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय व्यय आयोग

निष्कर्ष यह है कि इस रवैये को अपनाने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों के आवर्ती व्यय के मूल्यांकन के एक समान मानदंड अपनाये जाने चाहिए जिससे कि विकासशील परिव्यय के वित्त पोषण के लिए राजस्व में से बचत निकाली जा सके। यहां तक कि वित्त आयोग अपने मौजूदा रूप में केन्द्रीय व्यय को संवीक्षा करने के लिए पर्याप्त रूप से समर्थ नहीं है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है केन्द्रीय सरकार को राज्य से संबंधित विषयों पर जैसे कि कानून और व्यवस्था बनाए रखना, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर जो व्यय कर रही है वह प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है। ऐसा देखने में आया है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा लिए गए इस निर्णय का उल्लंघन ही हुआ है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं पर किया जाने वाला व्यय केन्द्र द्वारा राज्य को दी जाने वाली सहायता के 1/5 भाग से अधिक नहीं होना चाहिए। इस तथ्य के बावजूद कि छठी योजना तैयार करते समय लगभग 2000 करोड़ की लागत तक की केन्द्रीय योजनाओं को छोड़ दिया गया था और उन्हें राज्यों को दे दिया गया था। अगले चार वर्षों के अन्दर केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं पर केन्द्र द्वारा दो से तीन गुणा अधिक व्यय किया गया। अब ऐसी योजनाओं पर खर्च की जाने वाली राशि राज्य की योजनाओं के लिए केन्द्र द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता से अपेक्षाकृत अधिक है। उदाहरण के लिए वर्ष 1978-79 के दौरान कर्नाटक में केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रक योजनाओं पर 40 करोड़ रु० की लागत आयी जबकि केन्द्रीय सहायता के रूप में 88 करोड़ रुपये की राशि दी गयी। वर्ष 1983-84 में केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रक योजनाओं पर 120 करोड़ रु० तक की लागत आयी जबकि इस योजना के लिए गाडगील फार्मूला के अनुसार 99 करोड़ रु० राज्य को केन्द्रीय सहायता के रूप में दिए गए।

यह कुल केन्द्रीय व्यय का केवल एक भाग है। अन्य क्षेत्रों में जैसे कि रक्षा आदि, यह सुनिश्चित करने के लिए कि व्यय लागत के अनुरूप है शायद ही कोई गैर-विभागीय संवीक्षा की जाती हो। अब वह समय आ गया है कि केन्द्रीय व्यय का वस्तुपरक मूल्यांकन किया जाए जिससे कि इष्टमत परिणाम प्राप्त किए जा सकें। अतः कर्नाटक सरकार ने यह सुझाव दिया है कि एक राष्ट्रीय व्यय आयोग स्थापित किया जाए जो केन्द्रीय और राज्य सरकारों के व्यय का भली-भांति पता चलाए और भावी वित्त आयोगों के मार्ग निर्देशन के लिए राजस्व अधिशेष के लिए मूल्यांकन के आधार को युक्तियुक्त बनाए। राष्ट्रीय व्यय आयोग ने यह सुझाव दिया कि कोई स्थायी आयोग न बनाकर तदर्थ आयोग की स्थापना की जाए।

बाजार ऋण

राज्यों के बाजार ऋण का विकास कार्यक्रमों के वित्त-पोषण में बहुत महत्व होता है। हाल ही के वर्षों में राज्य के अपने साधनों के पर्याप्त न होने तथा केन्द्र से गाडगील फार्मूला के आधार पर राज्य योजनाओं के लिए आर्थिक सहायता सीमित रूप में प्राप्त होने के कारण उनकी ऋण लेने की जरूरतों में लगातार वृद्धि हुई है।

राज्यों के बाजार ऋण के संबंध में लिया गया वर्तमान निर्णय किसी यथोचित सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों का आवंटन भी अत्यन्त मनमाने ढंग से किया गया है और इसका अनुपात असंगत रूप में केन्द्र (4:1) के पक्ष में है। इसके अतिरिक्त जिन राज्यों के पास अत्यधिक राजस्व अधिशेष है अथवा जिन्होंने अधिक संस्थागत वित्त प्राप्त किया है वे बाजार ऋण भी अपेक्षाकृत अधिक भाग में लेते हैं, परन्तु जिन राज्यों को घाटा होता है या जिनके पास न्यूनतम अधिशेष होता है और अन्य स्रोतों से ऋण की सहायता भी बहुत कम मिलती है उन्हें अपेक्षाकृत कम संसाधन आबंटित किए जाते हैं। इस प्रकार बाजार ऋण के बंटवारे में कोई समानता नहीं है जो कि सामान्यतः राज्य के वित्त संबंधी संतुलन के लिए आवश्यक है।

इसलिए यह आवश्यक है कि बाजार ऋण का बंटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच तथा राज्यों में आपस में समानता पर आधारित हो। कर्नाटक सरकार ने केन्द्र और राज्यों के बीच बॉण्ड बाजार की साझेदारी 50:50 करने और अन्तरराज्यीय बंटवारा निम्नलिखित मानदंड पर करने की सलाह दी है:

	मानदंड	वरीयता (प्रतिशतता)
1.	ऋण व्यवस्था	20
2.	कर प्रयास	20
3.	सूखा ग्रस्त जनसंख्या	20
4.	प्रति व्यक्ति केन्द्रीय योजना सहायता	15
5.	संस्थागत वित्त की उपलब्धता	15
6.	राज्यों के बजट की स्थिति	10
		100

राष्ट्रीय ऋण योजना

केन्द्र के प्रति राज्यों की ऋणग्रस्तता के मामले को विभिन्न वित्त निगमों ने बड़ी लापरवाही से लिया है। राज्य सरकारों को केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत उन्हें केन्द्रीय सहायता 70 प्रतिशत ऋण के रूप में और 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में दी जाती है जिसमें असम, जम्मू और कश्मीर, नागालैण्ड आदि जैसे पर्वतीय क्षेत्र शामिल नहीं हैं, इनके संबंध में 90 प्रतिशत अनुदान और 10 प्रतिशत ऋण देने की एक अन्य अपेक्षाकृत अधिक उदार पद्धति अपनाई जाती है। उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए 50 प्रतिशत अनुदान और 50 प्रतिशत ऋण के रूप में सहायता दी जाती है।

70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान का जो अनुपात है उसे राज्यों को केन्द्र के प्रति स्थायी रूप से ऋणग्रस्त होना पड़ा है। जैसे कर्नाटक के मामले में, पांचवीं योजना की अवधि में इस राज्य ने 5,173 करोड़ रुपये का केन्द्रीय ऋण प्राप्त किया जबकि मूल और ब्याज के रूप में इसने 5,260 करोड़ रु० केन्द्र को लौटाया। फिर छठी योजना (1980-84) के 4 वर्षों के दौरान इस राज्य ने मूल और ब्याज के रूप में 13.589 करोड़ रु० लौटाया जबकि उसने 12,572 करोड़ रु० का केन्द्रीय ऋण प्राप्त किया। इस तरह उक्त राज्य ने अकेले छठी योजना के चार वर्षों के दौरान जितना प्राप्त किया उससे लगभग 1,000 करोड़ रुपया ज्यादा लौटाया। यही बात कई अन्य राज्यों के संबंध में भी सच है और कोई आश्चर्य नहीं कि हर योजना में राज्यों की ऋणग्रस्तता बढ़ते जाने का कारण अनुदान और ऋण संघटकों का दोषपूर्ण संघटन है।

ऋण को पुनः निर्धारित करके अथवा कुछ ऋण राहत देकर बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता की इस समस्या से निपटने का प्रयास पहले किया जा चुका है। परन्तु इससे समस्या को कम तो किया जा सकता है पर उसका समाधान नहीं हो सकता।

पुराने ऋण उतारने का अधिक तर्क संगत रवैया अपनाने और अन्तर्राज्यीय ऋण देने संबंधी निदेशक सिद्धांतों का निर्धारण बहुत दिनों से नहीं हुआ है। यदि इस तथ्य को मान भी लिया जाए कि केन्द्र के संसाधन राज्यों की तरह ही एक ही राष्ट्रीय स्रोत से लिए जाते है तो इस बात का कोई बाध्यकारी कारण नहीं है कि सरकारी सहायता में ऋण का घटक 70 प्रतिशत तक हो। केवल उतनी ही राशि को केन्द्र की उधार ली गई निधि से या केन्द्र द्वारा वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए पारिश्रमिक के रूप में दी गयी निधि में से ली जाए उसे ही ऋण माना जाए। यदि केन्द्र से ली गयी सहायता का इस्तेमाल समाज सेवाओं की विकास योजनाओं के लिए किया जाता है तो यह आशा करना ठीक नहीं होगा कि ऐसी योजनाओं के लिए वाणिज्यिक शर्तों पर ऋण लेना उचित है। अतः कर्नाटक सरकार का यह विचार है कि वर्तमान ऋण/अनुदान प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन किया जाना चाहिए। पूरी वित्तीय सहायता में से राज्यों को दी जाने वाली केवल उतनी ही राशि को ऋण माना जाना चाहिए जो केन्द्र द्वारा देशी या विदेशी बाजार से ऋण के रूप में ली गई हो। केवल इस प्रकार के परिवर्तन से ही राज्य ऋण के जाल से मुक्त हो सकते हैं और आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर हो सकते हैं।

भारत सरकार की ऋण स्थिति भी चिन्ताजनक है। ऋण का कुल भाग राष्ट्रीय आय का 41 प्रतिशत है। अब तक इसके मुद्रास्फीति, ब्याज, आय-वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव का वस्तुपरक विश्लेषण नहीं किया गया है। अतः यह अनिवार्य है कि किसी विशिष्टता प्राप्त संस्था द्वारा इसकी राष्ट्रीय ऋण पर पड़ने वाले प्रभाव की तथा राज्यों की केन्द्र के प्रति ऋणग्रस्तता की पूरी जांच की जाए।

कर्नाटक सरकार ने यह सुझाव दिया है कि एक राष्ट्रीय ऋण आयोग की स्थापना की जाए जो कि केन्द्र तथा राज्य सरकारों के ऋण संबंधी प्रश्नों पर भली भांति विचार करे। इस आयोग को सर्वप्रथम राज्यों के मौजूदा ऋण-भार को कम करने की सिफारिश करनी चाहिए। इसके बाद सरकार के बाजार-ऋण और अन्तर-सरकारी ऋण देने की भावी नीतियों के संबंध में मानदंड बनाने चाहिए।

ऋण नीति के संबंध में कुछ सुझाव

इस पेचीदा विषय पर विस्तार से या पूर्ण रूप से विचार करने की माग किए बिना कर्नाटक सरकार निम्नलिखित सुझाव देती है :

(क) प्रत्येक सरकार द्वारा बाजार-ऋण की वास्तविक राशि उस वर्ष की बजट तथा मुद्रा की स्थिति के आधार पर निकाली जाए। [योजना आयोग तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा] बाजार ऋण, विभेदक ब्याज, बाजार में प्रवेश के क्रम आदि के संबंध में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के हिस्से के बारे में ध्यान में रखे जाने वाले सामान्य सिद्धांत निर्धारित किए जाएं।

(ख) राष्ट्रीय ऋण आयोग को, योजना आयोग से तथा भारतीय रिजर्व बैंक से परामर्श करके उन परिपाटियों का उल्लेख करना चाहिए जिनका केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा बैंक से निश्चित तारीख वाली प्रतिभूति जमा पर तथा अन्य वित्तीय अन्तरवर्ती संस्थाओं से ऋण लेते समय पालन किया जाना चाहिए।

(ग) राष्ट्रीय ऋण आयोग को योजना आयोग के परामर्श से उधार के प्रकार निर्दिष्ट करने चाहिए जो केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को विकास संबंधी प्रयोजनों के लिए दिए जा सकते हैं। विशेष रूप से इसे उन प्रयोजनों का विशेष उल्लेख करना चाहिए जिनके लिए केन्द्र सरकार राज्य सरकार को बाजार से संबंधित शर्तों पर ऋण देती है तथा ऐसे प्रयोजन जिनके लिए "आसान शर्तों" पर ऋण लेने का औचित्य होगा। राज्य सरकारों द्वारा, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण, समाज कल्याण और सुरक्षा आदि के लिए नियत परिसम्पत्तियों पर किए जाने वाले व्यय कुछ ऐसे ही प्रयोजन हैं जिनके लिए आसान किश्तों पर ऋण हो सकते हैं। ऋण की शर्तों को कितना और किस मात्रा तक आसान बनाया जा सकता है, ये ऐसे विषय हैं जिन पर प्रत्येक वर्ष विस्तार से विचार किया जाना अपेक्षित है। यह विचार मौजूदा साधनों की स्थिति, आवश्यकता ब्याज की दरों आदि के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

(घ) सरकारी क्षेत्र द्वारा विदेशों से ऋण लेना पहले की भांति केन्द्र सरकार द्वारा ही लिया जाता रहे। तथापि यथासंभव ऐसे प्रयास किए जाएं कि आसान किश्तों पर ऋण के लाभ पूरी तरह से राज्य सरकारों को ही मिलें तथा अन्य ऋणों के संबंध में मध्यस्थों पर होने वाली लागत को कम से कम किया जा सके।

राष्ट्रीय व्यय आयोग की ही तरह से राष्ट्रीय ऋण आयोग की परिकल्पना एक स्थायी निकाय होने के बजाय एक ऐसी संस्था के रूप में की गई है जिसकी कार्यकाल की अवधि निर्धारित होती है। ये दोनों ही आयोग केवल तभी तक रहेंगे जब तक कि ये अन्य निकायों जैसे वित्त आयोग और योजना आयोग के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत तैयार करते रहेंगे।

राष्ट्रीय विकास परिषद

यद्यपि राज्य द्वारा केन्द्र से लिए गए ऋण को पुनःनिर्धारित करने या उसकी कटौती करने संबंधी प्रश्न राष्ट्रीय ऋण आयोग के यथोचित कार्यक्षेत्र मे आते है तथापि वार्षिक "पूंजीगत संसाधनों" के आबंटन संबंधी मामले अर्थात् "पूंजी और लोक जमा लेखा" के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों के ऋण और अन्य सभी प्राप्तियां जो अंतः सरकारी अन्तरणों की निवल राशि है, राष्ट्रीय ऋण आयोग अथवा वित्त आयोग को समनुदेशित नही किया जा सकता। यह एक महत्वपूर्ण कार्य है और यह योजना आयोग द्वारा सहायता प्राप्त राष्ट्रीय विकास परिषद् से और उन अन्य निकायों से यथोचित रूप में संबद्ध हैं जिन्हें उपयुक्त समझा जाए। इस नोट के शेष भाग में वित्तीय व्यवस्था के इस पहलू पर विचार किया गया है।

वास्तव में विकास के लिए साधन जुटाने के बारे मे नीति संबंधी सभी बातों और इन साधनों का उपयोग किस रूप में किया जाए इसके बारे में निर्णय लेने के लिए सर्वोच्च प्राधिकरण राष्ट्रीय विकास परिषद् है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है।

यद्यपि स्वरूप की दृष्टि से राष्ट्रीय विकास परिषद् एक विस्तृत निकाय होगा तथापि अभी इसका विस्तार अधिक नहीं है और यह आवश्यक है कि इसकी काट-छांट की जाए और इसकी कार्यप्रणाली को सरल और कारगर बनाया जाए ।

राष्ट्रीय विकास परिषद् के सदस्य केवल प्रधानमंत्री, वित्त मंत्री और केन्द्र के योजना मंत्री और प्रत्येक राज्य के मुख्यमंत्री और योजना मंत्री ही होने चाहिए । सरकारी स्तर पर इसमें, उपस्थित व्यक्तियों को योजना-आयोग के व्यावसायिक सदस्यों, रिजर्व बैंक के गवर्नर, नाबार्ड और आई० डी० बी० आई० के अध्यक्ष के अतिरिक्त मंत्रिमंडल सचिव, योजना सचिव और केन्द्र के आर्थिक सचिव तथा राज्यों के मुख्य सचिवों को शामिल करना चाहिए । ऐसी लघुकृत राष्ट्रीय विकास परिषद् के लिए यह संभव होगा कि वर्ष में कम से कम दो बार इसकी बैठक हो—पहली बैठक तो केन्द्र और राज्य द्वारा वार्षिक योजना तैयार किए जाने के पहले और दूसरी सितम्बर में अथवा उस समय जब कृषि, विद्युत शक्ति और उस वर्ष की विदेशी सहायता की संभावना स्पष्ट हो । आवश्यकता पड़ने पर उसकी बैठक कभी भी हो सकती है ।

जैसा कि स्पष्ट है राष्ट्रीय विकास परिषद् विस्तृत रूप में नीति अथवा साधन के आबंटन के बारे में न तो विचार करेगी और न ही निर्णय देगी । यह कार्य राष्ट्रीय विकास परिषद् की कुछ सीमित संख्या में स्थायी समितियों के सुपुर्द करना चाहिए । प्रगति का पुनरीक्षण करने के लिए इन समितियों की बैठक प्रत्येक तिमाही में होनी चाहिए और प्रत्येक सत्र में यह रा० वि० प० के मुख्य निकाय को सिफारिश करे । कौन-कौन सी स्थायी समितियों का गठन किया जाए और कितने दिनों के लिए किया जाए, इस संबंध में निर्णय लिया जाए ।

स्थायी समितियों और मुख्य राष्ट्रीय विकास परिषद् की सहायता योजना आयोग को करनी चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि योजना आयोग का पुनर्गठन इस प्रकार किया जाए कि यह केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र रूप में अपना कार्य कर सके । इसके कार्यों को सुस्पष्ट रूप में परिभाषित करना चाहिए । यद्यपि प्रधानमंत्री और केन्द्र में योजना मंत्री क्रमशः इसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष रहेंगे तथापि "पूर्ण" आयोग में आंचलिक आधार पर निर्वाचित चार मुख्यमंत्री, केन्द्रीय वित्त मंत्री और रा० वि० प० द्वारा नियुक्त अधिक से अधिक पांच पूर्ण कालिक "व्यावसायिक" सदस्य होंगे ।

योजना आयोग का यह दायित्व होगा कि वह मध्यम और दीर्घकालिक योजना के लिए लक्ष्य और कार्य नीति निर्धारित करते हुए राष्ट्रीय विकास योजना तैयार करे, संसाधन जुटाने के लिए राष्ट्रीय नीति निर्धारित करे, निवेश आबंटन की व्यापक योजना बनाए, उपर्युक्त प्रयोजन के लिए अपेक्षित संस्थागत परिवर्तन के प्रकार और उसकी सीमा निर्दिष्ट करे, दूसरे शब्दों में एक ऐसी व्यापक योजना तैयार करे जिसके अन्तर्गत केन्द्रीय और राज्य सरकार दोनों के लिए कम अवधि की संक्रियात्मक योजनाएं तैयार हों और कार्यान्वित की जा सकें ।

योजना आयोग को (रा० वि० प० द्वारा यथा अनुमोदित) योजना के लक्ष्यों को पूरा करने संबंधी दायित्वों का प्रबोधन (मानिटर) करना चाहिए । परन्तु केन्द्रीय अथवा राज्य योजनाओं में से किसी के संबंध में उस पर कार्यकारी दायित्व नहीं होना चाहिए ।

योजना आयोग के पुनर्गठन का मतलब यह है कि प्रत्येक वर्ष के लिए और राष्ट्रीय योजना अवधि (पांच वर्ष) के लिए संघटक योजना बनाने हेतु केन्द्र और राज्य दोनों में अलग-अलग बोर्डों और प्राधिकरणों का गठन किया जाए । इन एजेंसियों की यह जिम्मेदारी होगी कि सरकार के भीतर कार्यात्मक विभागों के कार्यकलापों के बीच तालमेल कायम रखें और (राष्ट्रीय) योजना आयोग से संपर्क रखें ।

योजना आयोग को केन्द्रीय सरकार से औपचारिक और वास्तविक रूप से स्वतंत्र होने के लिए यह जरूरी है कि इसके प्रशासनिक बजट में केन्द्र और राज्य, दोनों को समग्र रूप से हिस्सा मिले । प्रत्येक राज्य का हिस्सा सहमत सूत्र पर आधारित हो परन्तु प्रत्येक योजना अवधि के आरंभ में रा० वि० प० द्वारा इसकी समीक्षा की जाए । आयोग के तकनीकी कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं आयोग द्वारा ऐसी शर्तों और नियमों के अधीन की जाए जिनका वह निर्णय करे ।

राष्ट्रीय ऋण परिषद

चूंकि राष्ट्रीय विकास परिषद् का उद्देश्य राष्ट्रीय विकास से संबंधित है अतः उसे "सरकारी" और "निजी" दोनों प्रकार के निवेश की योजनाबद्ध आबंटन संबंधी नीति और लिखत पर विचार करना होगी । इसके लिए बचत और निवेश आबंटन संबंधी वर्तमान व्यवस्था से बेहतर व्यवस्था की जरूरत है क्योंकि ये आबंटन न केवल सरकारी बजटों के जरिए किए जाते हैं बल्कि वित्तीय संस्थानों के जरिए भी किए जाते हैं ।

इस प्रयोजन के लिए राष्ट्र-उन्मुख ऐसी नीतियों का निर्धारण और कार्यान्वयन करना होगा जो केन्द्र और राज्य दोनों के लिए संतोषजनक हों । वर्तमान समय में राज्यों के बीच वित्तीय बिचौलियों के जरिए निजी बचत की राशि प्राप्त करने के संबंध में काफी असंतोष है । राज्यों और राज्य एजेंसियों को केन्द्रीय सरकार से ऋण लेने के अलावा बॉण्ड-बाजार से भी ऋण लेना पड़ता है और साथ ही उनको अपने राज्य के कृषि, उद्योग तथा अन्य कार्यकलापों के लिए संस्थागत ऋण की पर्याप्त पूर्ति भी करनी पड़ती है ।

इस संबंध में सामान्य मार्ग निर्देश निर्धारित करने का दायित्व औपचारिक रूप से भारतीय रिजर्व बैंक और कृषि और उद्योग संबंधी सर्वोच्च बैंकों जैसे नाबार्ड और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक पर है । ये सांविधिक प्राधिकरण हैं और उनसे आशा की जाती है कि वे पूरी तरह वस्तुनिष्ठ होकर स्वायत्त रूप से काम करें परन्तु यह जरूरी है कि वे राष्ट्रीय नीतियों के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर कार्य करें । परन्तु वास्तव में ये संगठन पूर्ण रूप से केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में हैं और बाजार-ऋण लोक क्षेत्रक संस्थानों को दिए जाने वाले ऋणों और पेशगियों तथा कुल ऋण में सापेक्ष हिस्सा आदि जैसे मामलों में राज्यों के हितों की यथोचित रूप से रक्षा नहीं की जा रही है ।

मुद्रा और बैंकिंग को संघ सूची में रखना उचित है और इस संबंध में नीति का निर्धारण राष्ट्रीय स्तर तक ही किया जा सकता है । परन्तु नीति निर्धारित करते समय यह परम् आवश्यक है कि क्षेत्रीय और राज्य सरकार की आवश्यकताओं का यथोचित ध्यान रखा जाए । इन क्षेत्रों में निर्णय लेते समय राज्य सरकार की सहभागिता के बिना इन साधनों का क्षेत्रीय वितरण विषम रूप से किया जाना जारी रहेगा जैसा कि फिलहाल किया जाता है । राज्यों द्वारा बाजार से सीधे लिए जाने वाले ऋण का, कुल सरकारी ऋण से अनुपात कम ही रहेगा और केन्द्र सरकार द्वारा "घाटे की अर्थ व्यवस्था" का ज्यादा से ज्यादा अवलंब लेने के कारण यह न्याय विरुद्ध स्थिति बनी रहेगी ।

संस्थागत वित्त की समस्याओं को संतोषजनक रूप से निपटाने के लिए (और साथ ही चूंकि इष्टतम बचत और वैकल्पिक संसाधन, आबंटन का राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करना सुनिश्चित है) यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् के तत्वावधान में एक राष्ट्रीय ऋण परिषद की स्थापना की जाए, जिसमें केन्द्रीय और राज्य सरकार के मंत्री स्तर के प्रतिनिधि, भारतीय रिजर्व बैंक का गवर्नर, नाबार्ड, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक और जीवन बीमा निगम के अध्यक्ष हों । केन्द्रीय वित्त मंत्री और भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर क्रमशः राष्ट्रीय ऋण परिषद् के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष होंगे और साथ ही क्षेत्रीय आधार पर रा० वि० प० द्वारा मनोनीत राज्यों के वित्त अथवा योजना मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य के रूप में होंगे । भारतीय रिजर्व बैंक इस निकाय को सचिवालय की सेवा प्रदान करेगा और इसके साथ ही पारस्परिक सहमति के आधार पर इसे योजना आयोग के तकनीकी कर्मचारियों की सहायता भी प्रदान की जाएगी ।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की यह जिम्मेदारी होगी कि वह अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों ही प्रकार के संस्थागत वित्त संबंधी प्रश्नों पर विचार करे । इसे मुद्रा स्फीति, विकास, वित्त, बैंकिंग--अन्य ऋण संबंधी प्रवृत्तियों, पूंजी बाजार की समीक्षा के लिए हर तिमाही में बैठक बुलानी चाहिए और निम्नलिखित निर्णय लेना चाहिए (क) रा० वि० प० द्वारा यथा अनुमोदित राष्ट्रीय नीति में कुछ समय के लिए समायोजन करना । (ख) रा० वि० प० की प्रस्तुत की जाने वाली केन्द्र तथा राज्य दोनों ही नीतियों में उचित परिवर्तन करना । योजना आयोग की तरह रा० ऋण प० को भी रा० वि० प० को अपनी रिपोर्ट नियमित रूप से देनी चाहिए । बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं के सभी कार्य चालन संबंधी प्रश्नों को सामान्यतया भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य शिखर संस्थाओं के ऊपर छोड़ देना चाहिए और रा० ऋण परिषद् और सरकार दोनों

को वाणिज्यिक और विकासीय बैंकिंग संस्थाओं की दिन प्रतिदिन की प्रबंध व्यवस्था को सीधे नहीं निपटाना चाहिए। राज्य सरकारों का अलग-अलग बैंकों के निदेशक मंडल की ओर से प्रतिनिधित्व करना आवश्यक नहीं है। (राष्ट्रीयकृत बैंक बोर्ड के केन्द्रीय सरकार के नामीतियों को भी बैंक की प्रबंध व्यवस्था में अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।)

किंतु यह आवश्यक है कि भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय औद्योगिक बैंक और नाबार्ड (और स्टेट बैंक ऑफ इंडिया) के "स्थानीय बोर्ड" जो अब केवल औपचारिक रूप से ही विद्यमान हैं, को उनके क्षेत्र में आने वाले प्रत्येक राज्य की समस्याओं और आवश्यकताओं की सही सूचना केन्द्रीय बोर्ड और इन संस्थाओं के उच्च प्रबंधक वर्ग को देने का कार्य सौंपा जाना चाहिए। इसके लिए राज्य सरकारों के वरिष्ठ अधिकारियों जैसे संस्थागत वित्त कमीश्नरों को इन स्थानीय बोर्डों का सदस्य बनाया जाना चाहिए, जिनकी बैठकों की अध्यक्षता भारतीय रिजर्व बैंक के उप-राज्यपाल, या अन्य शिखर संस्थाओं में इनके पद के बराबर के किसी व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए। इस प्रकार के संगठनात्मक कार्यों की भी अत्यंत आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि बैंक के कर्मचारियों और राज्य सरकार के कर्मचारियों के बीच कार्य के संबंध, परस्पर सभी स्तरों पर अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल और लाभदायक हों।

विकेंद्रित आयोजना

"आर्थिक और सामाजिक आयोजना" को हालांकि सातवीं अनुसूची की समवर्ती-सूची में शामिल किया गया है, लेकिन व्यवहार में आयोजना को संयुक्त प्रयास बनाने के लिए केन्द्र और राज्य सरकार के बीच जितना विचार-विमर्श होना चाहिए उतना विचार-विमर्श नहीं किया जाता। इसलिए हमने पिछले पैरा में, राष्ट्रीय विकास परिषद को, राष्ट्रीय आयोजना और विकेन्द्रित आयोजनाओं की जटिलताओं पर चर्चा और विचार विमर्श करने का मंच (फोरम) बनाने का प्रस्ताव रखा है। हमने योजना आयोग के पुनर्गठन के संबंध में अपने विचार भी दिये है ताकि राज्य सरकार और योजना आयोग दोनों के बीच प्रभावी परामर्श हो सके और निचले स्तर से ही आयोजना प्रक्रिया में विकेन्द्रीकरण हो सके।

यदि विकेन्द्रित आयोजना की जानी हो तो योजना आयोग के लिए, राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित सभी स्कीमों के छोटे-छोटे ब्यौरों की संवीक्षा करना निःसन्देह अनावश्यक है, हालांकि राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को राज्य सरकार की योजनाओं में आवश्यक रूप से शामिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार की राष्ट्रीय अग्रता, राष्ट्रीय विकास परिषद् में संघ और राज्य सरकारों के बीच की सहमति के रूप में प्रकट होनी चाहिए। योजना आयोग द्वारा राज्य योजनाओं की संवीक्षा, केवल कुछ ही सैक्टरों तक सीमित होनी चाहिए जैसे सिंचाई, बड़े और मध्यम उद्योग, बिजली और परिवहन। इसी प्रकार हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय सैक्टर स्कीमों और हाल के वर्षों के विकास के अन्तर्गत कितने संसाधन अंतरित किए जाते हैं। हाल ही में कर्नाटक में ऐसी स्कीमों के अंतर्गत अंतरित केन्द्रीय साधन, राज्य योजना की वित्त व्यवस्था के लिए किए गए केन्द्रीय साधनों के अंतरण के बराबर है। हम इस बात का जोरदार समर्थन करते हैं कि केन्द्रीय रूप से प्रायोजित और केन्द्रीय सैक्टर स्कीमों के अन्तर्गत केन्द्रीय सहायता, राज्य योजनाओं के लिए कुल केन्द्रीय सहायता की 1/6 भाग के बराबर होनी चाहिए। ऐसी स्कीमें कुछ वांछनीय मार्ग दर्शक सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए जैसे :—अन्तरराज्य स्कीमें बनाना और राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होना।

राज्य योजना के परिव्यय को इस प्रकार अंतिम रूप दिया जाना चाहिए कि राज्य सरकारें जिले को एकमुश्त आबंटन कर सके ताकि जिला और ब्लाक विकास आयोजना में सुविधा हो। यह केवल तभी संभव होगा जब योजना आयोग द्वारा परिव्यय का अनुमोदन विकास के कुछ मुख्य सैक्टरों तक ही सीमित होगा जैसा कि पहले बताया गया है, और बाकी जिलों के आबंटन के निर्धारण का काम गाडगील फार्मूला के सिद्धांतों के आधारों पर ऐसे आशोधनों सहित जो राज्यों के भीतर क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करने के लिए आवश्यक हो, राज्यों पर छोड़ दिया जाए।

हमें पूरा विश्वास है कि विकेन्द्रित आयोजना, हमारी योजना पद्धति की सफलता और सक्षमता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वास्तव में विकेन्द्रित आयोजना का कार्य राज्य स्तर से बहुत निचले स्तर पर आरम्भ होना चाहिए। संघ और राज्य सरकारों को जिस प्रकार पार्टी के विचारों में मतभेदों को भुला कर कुल मिलाकर व्यक्तियों की इच्छा और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए परस्पर सामंजस्य से कार्य करना होता है ठीक उसी प्रकार राज्य से निचले स्तरों पर भी विचार विमर्श करने और शक्तियों में सहभागिता की आवश्यकता है। कर्नाटक सरकार ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मंडलीय स्तर तक कार्यान्वित करने के लिए जिला परिषद् बिल को जारी करके इस दिशा में स्वयं एक निर्णायक कदम उठाया है। इसके कार्यान्वयन के लिए पिछले 6 मास से राष्ट्रपति की सहमति की प्रतीक्षा हो रही है।

इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि जब तक कि निचले स्तर पर विकेन्द्रीकरण को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त न हो तब तक कुछ राज्यों द्वारा इस योजना को अपनाने से विकेन्द्रीकरण करने के लिए प्रेरणा नहीं मिलेगी। इसके अतिरिक्त इसको संभव करने के लिए वर्तमान स्थिति में से कुछ गंभीर विसंगतियां दूर करने की आवश्यकता है। सबसे पहले जिला परिषद और निचले स्तरों के चुनाव, संघ और राज्य स्तरों पर अनिवार्य रूप से किए जाने चाहिए और इनका संचालन निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाना चाहिए। दूसरे राज्य विधान मंडल में स्थानीय निकायों का प्रतिनिधित्व आज्ञापक बना दिया जाए। तीसरे जिला और निचले स्तर की सरकार को, उच्च स्तर पर शासकीय व्यवस्था के सहायक के रूप में नहीं माना जाना चाहिए बल्कि शासकीय सेवा के निर्वाचित निकायों के रूप में माना जाना चाहिए, जो निर्वाचित निकायों के समक्ष पूरी तरह जिम्मेदारी होगी।

विभिन्नता में एकता

संक्षेप में, हमारी गंभीर चिन्ता का विषय यह है कि संघ और राज्य संबंधों को इस प्रकार विकसित किया जाए कि लोकतांत्रिक संघवाद को एक नया स्थायित्व और सक्रियता प्रदान की जा सके और लोगों की सेवा की जा सके, विषमताओं को दूर किया जाए, टकराव वाले विषयों को कम किया जाए और ऐसी एकता स्थापित की जा सके, जो हमारे समाज में विभिन्नता होने पर भी कहीं गहरे बनी हुई है। हमारे संस्थागत ढांचे और लोकतंत्रीय आदर्शवाद के बीच उत्पन्न होने वाले अंतराल को दूर करने के लिए एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना आवश्यक होगा। इसके लिए लोकतंत्रीय ढांचे को मान्यता देना और कुछ स्वायत्तता देनी होगी, साथ ही जिम्मेदारियों, अधिकारों और अर्थव्यवस्था का संतुलित वितरण किया जाना होगा।

सभी स्तरों जैसे विधायी कार्यविधियों, आयोजना, प्रक्रियाओं, राजनीतिक और वित्तीय विकेन्द्रीकरण, माध्यम, न्यायपालिका, प्रशासकीय सेवाओं, पुलिस, वित्त आयोग, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद् और अन्य अखिल भारतीय निकायों को यथावश्यकता पुनर्गठित करके, इनके काम में तेजी लानी होगी, ताकि नए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा जो विभिन्न राज्यों और उनमें रहने वाले लोगों में समता, सामंजस्य और क्षेत्रीय संतुलन और गौरव की भावना उत्पन्न की जा सके। संघ और राज्यों की समान अनुशासन, समग्र एकता और त्याग की भावना से कार्य करना होगा और अत्यधिक उत्साह से परिवर्तन लाने और वचनबद्धता की भावना उत्पन्न करनी होगी ताकि लोकतांत्रिक माध्यमों और संस्थाओं से, जो कि इसके लिए विशेष रूप से स्थापित और मजबूत की गई है, समस्याओं का समाधान हो।

राज्यपाल के पद के संबंधित श्वेत-पत्र

प्रस्तावना

इस सदन को याद होगा कि 17 अगस्त को मैंने वचन दिया था कि मैं उन टिप्पणियों को, जो मैंने केन्द्र और राज्य सरकारों के संबंधों के विषय में बंगलौर में पांच अगस्त को राज्यों के राज्यपालों पर अपने उद्घाटन भाषण में दी थी, पूर्णतया सिद्ध करूंगा। आज मैं अपना वह वचन पूरा कर रहा हूँ।

सबसे पहले मैं अपनी पिछली कही हुई टिप्पणियों की पूरी तरह दोहरा रहा हूँ ताकि सदन उनके अर्थ और महत्व को पूरी तरह समझे। मैंने यह कहा था कि "क्योंकि अंतिम उद्देश्य एक जैसा है अतः संघ और राज्य सरकारों को परस्पर पूरक और सहयोगी के रूप में कार्य करना चाहिए। उनको यह भी महसूस करना चाहिए कि वे राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण और विकास के कार्य में समान रूप से भागीदार हैं। इसके लिए इन दोनों के कार्यों को समान महत्व, आपसी सम्मान और आदर देना आवश्यक है। संघ सरकार द्वारा अत्यधिक बड़ी शक्ति होने का रवैया अपनाना और अपनी प्रभुता दिखाना, शक्तियों और संसाधनों के एक ही के पास आ जाने के परिणामस्वरूप है तथा इससे राज्यों में उत्साहहीनता की भावना और उनके प्रति अन्याय होने, भेदभाव करते जाने और असहायता की भावना उत्पन्न हुई है, जिसके फलस्वरूप क्षेत्रीयता की शक्तियां गंभीर रूप से सिर उठाने लगती हैं। शक्तियों के केन्द्रीकरण के कारण, संविधान की स्कीमों में विकृति आ गई है और महत्वपूर्ण संस्थाओं—जैसे योजना आयोग, और रिजर्व बैंक जोकि कार्यपालिका के ही विभाग बन गए हैं, अवमूल्यन हो गया है। राज्यपाल भी संघ सरकार का एक महिमामंडित सेवक बन गया है। वर्तमान केन्द्र सरकार, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी बनती जा रही है और राज्य तिरस्कृत हो रहे हैं जो लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के विरुद्ध है।

अतः राज्यपालों पर उचित संदर्भ में टिप्पणी देते हुए मेरा आशय अपनी टिप्पणी के तीक्ष्णता को कम करना नहीं है परन्तु वास्तव में अपनी आलोचना की गंभीरता पर बल देना है क्योंकि लोकतंत्र के मानदण्डों और संघीय सिद्धांतों की हानि हुई है। मैंने अपनी टिप्पणियां बहुत सोच विचार के बाद ही दी हैं।

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि सात अगस्त की प्रेस विज्ञप्ति में घोषित संगोष्ठी के निर्णय इसी दिशा में थे। उसमें जो कहा गया था, उसे मैं यहां उद्धृत करता हूँ कि राज्य के राज्यपाल का पद अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिसकी निष्पक्षता, सत्यनिष्ठा पर राज्यों की स्वायत्तता और राज्यों और केन्द्र के संबंधों की मजबूती निर्भर करती है। यह खेद की बात है कि एक से अधिक अवसरों पर राज्यपाल को प्रायः केन्द्रीय सरकार का एक प्रतिनिधि बनकर कार्य करना पड़ा है। इससे संविधान में बताई गई बातों का पूर्णतः उल्लंघन होता है। रघुकुल तिलक के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि एक राज्यपाल भारत सरकार के आदेशों के अध्यधीन नहीं है और न ही वह उस तरीके के बारे में जवाबदेह ही है, जिस तरीके में वह अपना कार्य करता है। वह एक स्वतंत्र सांविधानिक पद है, जो भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन नहीं है।"

"परन्तु कई अवसरों पर, व्यवहार में अनेक बातें सांविधानिक स्थिति के प्रतिकूल हुई हैं। मुख्यमंत्री को नियुक्त करने या राज्य विधान मण्डल को भंग करने की राज्यपाल की शक्ति को, जनता की अभिव्यक्त इच्छा को दबाने के लिए प्रयोग में लाया गया है। इसलिए यह महसूस किया गया है कि संविधान में कुछ ऐसा संशोधन किया जाए, जिससे राज्यपाल के पद की स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया जा सके। इस निष्कर्ष पर पूरे देश के प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिनमें सुप्रसिद्ध शिक्षाविद्, विधिवेत्ता, पत्रकार, अनुभवी प्रशासक और ऐसे व्यक्ति भी शामिल हैं, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्टता हासिल की है, पहुँचे हैं, और जिन क्षेत्रों में सक्रिय राजनीति से संबंधित व्यक्तियों को शामिल नहीं किया गया है। मुझे अपनी टिप्पणियों पर दृढ़ विश्वास है।

इस संगोष्ठी में मैंने जो प्रश्न उठाए हैं, वे वास्तव में देशवासियों को संबंधित थे। जैसा कि मैंने अपने भाषण में कहा कि एक राष्ट्रीय परिचर्चा करना आवश्यक है, जिसमें संघ और राज्य सरकारों के संबंधों के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाए। जिसमें सर्वप्रथम एक राज्यपाल की संविधान के अंतर्गत उल्लिखित स्थिति और उसकी वास्तविक विपरीत स्थिति पर चर्चा की जाए।

मैं सदन को यह श्वेत पत्र प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसमें दोनों परिस्थितियों का पूरे दस्तावेजों समेत उल्लेख किया गया है। मैं यह दस्तावेज देश की जनता के सामने राष्ट्रीय विचार-विमर्श के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ न कि विरोधी प्रवृत्ति के रूप में। मैं विरोधी विचारों का और इस श्वेत पत्र पर दी गयी टिप्पणियों और आलोचना का स्वागत करूंगा।

किंतु, जैसा कि श्वेत पत्र में बताया गया है लोकतांत्रिक संविधान के सफल होने के लिए हमारी आशाएं निश्चित रूप से हमारे देश की अधिक जानकार जनता पर ही निर्भर है।

बंगलूर | **रामकृष्ण हेगडे**
सितम्बर 22, 1983 | **मुख्यमंत्री, कर्नाटक**

संविधानिक स्थिति और राजनैतिक भ्रष्टता

संविधान सभा में शायद ही भारत के संविधान के किसी अन्य उपबंध पर इतना ध्यान दिया गया था या उसकी विस्तृत संवीक्षा की गयी जितनी कि भारत के संघ के प्रत्येक राज्यों के राज्यपाल के पद की, तथा उस उपबंध की जिसमें राज्यपाल की नियुक्ति तथा उसके कार्यों का उल्लेख किया गया है। इन उपबंधों पर स्वतंत्रता आंदोलन के बड़े-बड़े नेताओं श्री जवाहर लाल नेहरू, और सरदार वल्लभभाई पटेल द्वारा विशेष विचार किया गया, और प्रारूपण समिति के अध्यक्ष डा० बी० आर० अम्बेडकर और उनके सहयोगियों सर अलादी कृष्णास्वामी अय्यर, श्री टी० टी० कृष्णामाचारी और श्री के० एम० मुन्शी द्वारा सभा में विस्तृत व्याख्या की गयी। इस संबंध में प्रत्येक स्तर पर विचार-विमर्श किए गए और आमूल परिवर्तन किए। इसके अतिरिक्त यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि केन्द्रीय सरकार की परिकल्पना कभी गंभीर रूप से स्वीकार नहीं की गयी। संघशासन में राज्यपाल राज्य का सांविधानिक प्रधान होगा जिसमें संघ और राज्यों दोनों की संसदीय सरकार होगी। राज्यपाल के पद का महत्व न केवल संघ शासन की सरकार को सही ढंग से बचाने के लिए ही है बल्कि देश की लोकतांत्रिक सरकार की सफलता के लिए भी है।

इसलिए यह अत्यधिक चिन्ता का विषय बना हुआ है कि संविधान के इन उपबंधों का लगातार और व्यवस्थित रूप से दुरुपयोग किया गया है और इसे विकृत कर दिया गया है और राज्यपाल के पद की गरिमा की उपेक्षा करके उसे संघ के एक गौरवान्वित सेवक के रूप में कर दिया गया है, ताकि केन्द्रीय सरकार के सत्तारूढ़ दल के हितों में अभिवृद्धि हो। इसके परिणामस्वरूप न केवल संघीय सिद्धांतों में पूर्णतया विकृती आ जाती है बल्कि लोकतंत्र को भी नकारा जाता है। यह मुद्दा केवल किसी एक राज्य बनाम संघ का नहीं है बल्कि राजनीतिक कदाचार बनाम सांविधानिक विधि का है।

इस श्वेत पत्र के भाग I में संविधान के निर्माताओं द्वारा किए गए परिश्रम के परिणामस्वरूप उभरकर सामने आई राज्यपाल की सांविधानिक स्थिति और भाग II में पिछले वर्षों के दौरान उच्च पदों में देखने में आई राजनीतिक विकृतियों दोनों का उल्लेख है।

यह इस दृढ़ विश्वास से प्रकाशित किया जा रहा है कि शिकायतों के निवारण के लिए जनमत राय ही सही होगी जिसकी नींव पर हमारा लोकतांत्रिक संविधान टिका हुआ है।

भाग I

संविधान सभा की बैठक, पहली बार 9 दिसम्बर, 1946 को बहुत उथल-पुथल की स्थिति में हुई । 30 अप्रैल 1947 को सभा ने एक संकल्प पारित किया जिसके अनुसार साथ-साथ दो समितियां बनायी गयी । एक समिति से "संघ संविधान के मुख्य सिद्धान्तों" पर विचार-विमर्श करने और रिपोर्ट देने के लिए कहा गया । श्री जवाहर लाल नेहरू इसके अध्यक्ष थे । दूसरी समिति से "आदर्श प्रान्तीय संविधान के मुख्य सिद्धान्तों" पर विचार-विमर्श करने और रिपोर्ट देने के लिए कहा गया । उसके अध्यक्ष सरदार पटेल थे ।

प्रान्तीय संविधान समिति की पहली बैठक 5 मई, 1947 को हुई और स्थगित की गई । इस समिति की बैठक पुन: 6 जून, 1947 को विभाजन की योजना की सूचना मिलने के तीन दिनों के बाद हुई । समिति ने सबसे पहले "किसी प्रान्त के राज्यपाल के कार्यों और उसकी नियुक्ति के तरीके के प्रश्न" पर विचार-विमर्श किया (बैठक के कार्यवृत्त के लिए बी० शिवा० राव, भारतीय संविधान की विरचना, भारतीय लोक प्रशासन संस्था, नई दिल्ली, 1967, विशिष्ट दस्तावेज, खण्ड II, पृष्ठ 646 देखें) ।

इस संबंध में दो प्रकार की विचारधारायें सामने आयीं, एक तो वह जिन्होंने यह सुझाव दिया कि राज्यपाल को, संयुक्त राज्य अमरीका की तरह कार्यपालक प्राधिकारी के रूप में कार्य करना चाहिए और उसका चुनाव सीधे जनता द्वारा किया जाना चाहिए, दूसरी समिति ने यह विचार प्रस्तुत किया कि "राज्यपाल एक सांविधानिक प्रधान के रूप में होना चाहिए जिसे प्रधान मंत्री की सलाह पर कार्य करना चाहिए" और जो विधान-मंडल के प्रति जिम्मेदार हो, और उसका "चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से" होना चाहिए ।

इसी प्रकार, कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया कि "केन्द्रीय सरकार का प्रान्तों के ऊपर अनेक प्रकार से प्राधिकार होना चाहिए और राज्यपाल को केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय कार्यपालिका के बीच कड़ी के रूप में कार्य करना चाहिए और उसको केन्द्रीय सरकार द्वारा नामित किया जाना चाहिए । इन विभिन्न सुझावों पर विचार-विमर्श करके यह महसूस किया गया कि सबसे पहले इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया जाए कि क्या भारत को एक एकात्मक राज्य होना चाहिए जिसमें प्रान्तों को केन्द्रीय प्राधिकारी के एजेंटों या प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना चाहिए या भारत को स्वायत्त यूनिटों के एक संघ के रूप में होना चाहिए जिसमें कि केन्द्रीय सरकार को कुछ विशेष अधिकार दिए जाएं । इस बात पर भी विचार-विमर्श किया गया कि चूंकि यह संघ संविधान और प्रान्तीय संविधान समिति दोनों के समान हितों का प्रश्न है इसलिए विचार-विमर्श के लिए दोनों की एक संयुक्त बैठक होना अपेक्षित होगा ।"

तदनुसार, 7 जून, 1947 को दोनों समितियों की एक संयुक्त बैठक हुई, जिसकी अध्यक्षता संविधान सभा के अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद ने की । इस बैठक में दोनों मुद्दे तय किए गए । यह मंजूर किया गया कि "संविधान का ढांचा संघीय होना चाहिए और इस में केन्द्र मजबूत होना चाहिए" और प्रान्तीय कार्यपालिका की संरचना संसदीय मंत्रिमंडल की संरचना के समान होनी चाहिए, जिसमें भारतीय स्थितियों को ध्यान में रखते हुए यथावश्यक आशोधन किए जाने चाहिए ।

बैठक में यह मंजूर किया गया कि प्रत्येक प्रान्त के प्रधान के रूप में एक राज्यपाल होना चाहिए और राज्यपाल प्रान्त द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए न कि केन्द्रीय सरकार द्वारा यह भी मंजूर किया गया कि राज्यपाल का वयस्क मताधिकार के आधार पर एक विशेष निर्वाचक मंडल के द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचित किया जाना चाहिए ।

8 जून, 1947 को सरदार पटेल ने इस निर्णय की सूचना प्रान्तीय संविधान समिति को दी, जिन्होंने सभा के सांविधानिक सलाहकार सर बी० एन० राव द्वारा तैयार किए गए आदर्श प्रान्तीय संविधान के सिद्धांतों के आधार पर 3 मई, 1947 को ज्ञापन पर विचार-विमर्श करने के लिए कारवाई की । (इसमें प्रान्तीय विधान-मंडल द्वारा निर्वाचित राज्यपाल, के संसदीय स्वरूप, उसे महाभियोग के द्वारा हटाये जाने और दी गयी विशेष जिम्मेदारियों पर विचार किया गया) ।

जून, 27 को सरदार पटेल ने संविधान सभा के अध्यक्ष को, प्रान्तीय संविधान समिति की रिपोर्ट भेजी जिसके साथ एक आदर्श प्रान्तीय संविधान के सिद्धान्तों से संबंधित ज्ञापन भी भेजा गया (इसके लिए शिवा राव का खंड II, पृष्ठ 656 देखें) राज्यपाल का चुनाव सीधे जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाएगा तथा महाभियोग के द्वारा उसे हटाया जा सकेगा । राज्यपाल को केवल निम्नलिखित चार बातों को छोड़कर मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने थे—"उसे प्रान्त तथा उसके किसी भी भाग की शान्ति भंग होने के गंभीर खतरों को रोकना", प्रान्तीय विधान सभा बुलाना तथा भंग करना, चुनाव कराना, और प्रान्तीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा प्रान्तीय लेखा परीक्षक की नियुक्ति करना ।

जुलाई 15, 1947 में संविधान सभा में रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए सरदार पटेल ने कहा कि दोनों ही समितियां इस निर्णय पर पहुंची है कि "यदि संविधान की संसदीय प्रणाली अपनायी जाए जैसे कि ब्रिटिश संविधान में है जिससे हम परिचित है तो बेहतर होगा "।

उपर्युक्त चारों विवेकाधिकारों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि चुनाव का कार्य राष्ट्रपति द्वारा गठित आयोग (चुनाव आयोग) का होगा जबकि लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति सामान्यत: मंत्रिमंडल की सिफारिशों पर ही की जाती है । अत: "व्यावहारिक रूप से प्रान्तीय राज्यपाल के पास केवल यही अधिकार शेष रह जाते हैं कि ऐसे गम्भीर आपातकालीन स्थिति उत्पन्न होने पर जब उस प्रान्त की शान्ति भंग होने का खतरा हो, और प्रान्तीय विधान मंडल बुलाने या भंग करने के लिए संघ के राष्ट्रपति को सूचित करें" (संविधान सभा वाद-विवाद खंड IV पृष्ठ 579) ।

सभा ने इस रिपोर्ट को अपनाया । अक्तूबर, 1947 में श्री बी० एन० राओ ने एक ड्राफ्ट तैयार किया जिसमें सभा के निर्णयों का उल्लेख किया गया । इसके बाद इस ड्राफ्ट पर ड्राफ्ट समिति द्वारा विचार किया गया तथा उसका भली-भांति पुनरीक्षण किया गया । उस समिति ने सभा के अध्यक्ष के रूप में 1948 को संविधान का मसौदा प्रस्तुत किया । यह ड्राफ्ट जनता की प्रक्रिया जानने के लिए प्रकाशित किया गया । (दोनों ड्राफ्ट के विषय के लिए, देखें शिवा राओ, चुनिंदा दस्तावेज, खंड III पृष्ठ 1 और 509 क्रमश:).

इस ड्राफ्ट में एक बड़ा परिवर्तन राज्यपाल के चुनाव के संबंध में किया गया था । ड्राफ्ट के अनुच्छेद 131 में दो विकल्पों का सुझाव दिया गया, एक तो राष्ट्रपति द्वारा, विधान मंडल द्वारा चुने गए चार सदस्यों के पैनल में से नियुक्ति, दूसरे उस प्रान्त की जनता द्वारा सीधे चुनाव । इसका कारण यह था कि ड्राफ्ट तैयार करने वाली समिति के कुछ सदस्यों का यह विचार था कि—"जनता द्वारा चुने गए राज्यपाल तथा प्रधानमंत्री के एक साथ विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी रहने से प्रशासन में मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और उसके परिणामस्वरूप प्रशासन कमजोर पड़ सकता है ।" लेकिन इस बात को ध्यान में रखा जाए कि ड्राफ्ट के अनुसार राज्यपाल को केवल महाभियोग द्वारा ही कार्यालय से हटाया जा सकता था (अनुच्छेद 137) इस संबंध में एक अनुसूची में अनुदेश पत्र भी दिया गया था जिसमें राज्यपाल को अपने कार्य पूरे करने के लिए मार्ग निर्देश दिये गए थे ।

प्राप्त टिप्पणियों और सुझावों को ध्यान में रखते हुए ड्राफ्ट की जांच करने के लिए सभा के अध्यक्ष ने एक विशेष समिति गठित की । अप्रैल 10, 1948 को समिति ने यह सिफारिश की कि राज्यपालों की नियुक्ति सीधे ही राष्ट्रपति द्वारा की जानी चाहिए तथा "ऐसी नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों का एक पैनल तैयार करना आवश्यक नहीं है "। (शिवा राओ : चुनिंदा दस्तावेज, खंड IV, पृष्ठ 409) श्री जय प्रकाश नारायण उन व्यक्तियों में से थे जिन्होंने ड्राफ्ट में सुझाव दिये तथा राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में उन्होंने जो टिप्पणी दी :

"जनता द्वारा चुने गए राज्यपाल तथा मुख्यमंत्री के विधान मंडल के प्रति एक साथ उत्तरदायी होने से मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं । यदि राज्यपाल की नियुक्ति, संघ सरकार के परामर्श से, प्रान्तीय विधान मंडल द्वारा एकल हस्तांतरणीय मत से चुने गए चार व्यक्तियों के पैनल में से, राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तो इस बात की संभावना है कि मुख्य मंत्री उस पैनल में से अपनी पार्टी के ही किसी व्यक्ति का चुनाव करें चाहे उसे सबसे अधिक वोट न मिले हों । ऐसी

स्थिति से प्रान्तीय सरकार के बीच सामंजस्य न होने की संभावना है जिसका संघ और राज्य प्राधिकारियों के बीच होना अत्यन्त आवश्यक है ।"

श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा की गयी आलोचना पर ड्राफ्ट तैयार करने वाली समिति की टिप्पणी नीचे दी जा रही है :—

टिप्पणी :— इस संबंध में जो आलोचना की गयी थी कि जनता द्वारा चुने गए राज्यपाल और मुख्यमंत्री के एक साथ विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होने से मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं जिसके फलस्वरूप प्रशासन कमजोर हो सकता है, ऐसा उस स्थिति में भी हो सकता है यदि राज्यपाल का चुनाव राज्य के विधान मंडल के सदस्यों तथा संसद में संबंधित राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है । राज्यपाल की नियुक्ति के लिए उम्मीदवार के पैनल से चुनाव किए जाने के संबंध में जो आपत्ति उठायी गयी उसके संबंध में विशेष समिति ने यह सिफारिश की कि राज्यपालों की नियुक्ति सीधे राष्ट्रपति द्वारा की जानी चाहिए । यह भी प्रस्ताव रखा गया है कि राज्यपाल को सभी विषयों पर अपने मंत्रियों की सलाह से कार्य करना चाहिए, इससे राज्यपाल और उसके मन्त्रियों के बीच मतभेद होने की संभावना नहीं रहेगी ।

"**ड्राफ्ट तैयार करने वाली समिति** : अनुच्छेद 131 के लिए निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया जाए—राज्यपाल की नियुक्ति : राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उनके हस्ताक्षर से और मोहर लगाकर जारी किए गए वारंट से की जाएगी ।"

संविधान सभा में अन्तिम रूप से इस मूल उपबन्ध का अनुपालन किया जाता है राज्यपाल भारत के राष्ट्रपति की ही तरह राज्य का सांविधानिक अध्यक्ष होगा तथा उस पर संसदीय प्रणाली की तदनुरूप शर्तें लागू होंगी । इस संबंध में डा० बी० आर० अम्बेडकर ने संविधान सभा में दिसम्बर 30, 1948 को पूर्णरूप से स्पष्ट कर दिया था :

"संसदीय प्रणाली की सरकार के अन्तर्गत केवल दो ही ऐसे विशेषाधिकार हैं जिनका प्रयोग राजा या राज्य के प्रधान द्वारा किया जाता है ।

एक तो प्रधानमंत्री की नियुक्ति और दूसरे संसद का विघटन । जहां तक प्रधानमंत्री का संबंध है, राष्ट्रपति के स्वनिर्णय के अधिकार को हटाना संभव नहीं है । राष्ट्रपति को स्वनिर्णय का प्राधिकार न देकर प्रधानमंत्री की नियुक्ति का अन्य तरीका केवल यही है कि सदन प्रथमतः अपना नेता चुनेगा और उसके पश्चात् प्रस्ताव तथा संकल्प के द्वारा राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति संबंधी कार्यवाही करेगा ।

श्री मोहम्मद ताहिर : व्यवस्था का प्रश्न उठाए जाने पर कि उस राज्य में राज्यपालों और राज्य के मंत्रियों की स्थिति क्या होगी जहां विवेकाधिकार के प्रयोग की अनुमति राज्यपालों को है ।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : राज्यपाल की स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसे कि राष्ट्रपति की । और मेरा विचार है कि इस संबंध में इस समय अधिक विस्तार से उल्लेख किए जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि राज्य विधान मंडल और राज्यपालों की स्थिति पर विचार करते समय इस पूरी स्थिति पर हम दुबारा से विचार करेंगे । (सांविधानिक सभा, वाद विवाद खंड VII पृष्ठ 1158) ।

इन उपबंधों का जिनका डा० अम्बेडकर ने उल्लेख किया है उन पर 30 मई, 1949 को विधान सभा में अंतिम रूप से चर्चा की गई । ड्राफ्ट तैयार करने वाली समिति के एक सदस्य, श्री अलादी कृष्णस्वामी अय्यर ने नियुक्ति की प्रणाली के परिवर्तन का जिक्र किया है और उस समय उन्होंने कनाडा की अनुपयुक्त सादृश्य का उदाहरण दिया, उनके एक साथी श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने बीच में सही स्थिति बतायी ।

श्री अलादी ने प्रान्त के राज्यपाल तथा प्रधान मंत्री के बीच मतभेद के निवारण की आवश्यकता तथा चुनाव पर व्यर्थ व्यय को रोकने के बारे में जिक्र किया । उन्होंने कहा "कनाडा के संविधान में एक ऐसा समन्वित उदाहरण खोजना आवश्यक है जहां पर एक उत्तरदायी राज्यपाल रहा हो । कनाडा में प्रत्येक प्रान्त में उपराज्यपालों की नियुक्ति गवर्नर जनरल के द्वारा की जाती है आदि गवर्नर जनरल द्वारा मंडल की सलाह पर नियुक्ति की जाती है । कनाडा के संविधान के और हमारे संविधान के बीच में अनेक बातों पर बहुत अधिक समानता एवं एकरूपता है कुछ समालोचकों ने इसे अर्ध संघीय माना है । मुख्य रूप से जिस सिद्धांत को हमने स्वीकार किया है वह एक ऐसी जिम्मेवार सरकार का है जो स्वतन्त्र उपनिवेशों या कामन वेल्थ के विभिन्न भागों में है । जिस संविधान में भी जिम्मेदार सरकार होना एक मुख्य विशेषता है वहां राज्यपाल का चुनाव नहीं किया जाता है ।"

अन्य पहलुओं के संबंध में श्री अलादी द्वारा कही गई बातें अत्यंत उपयुक्त हैं : "संविधान के अनुरूप सामान्य रूप से कार्य करते रहने के लिए मुझे विश्वास है कि राज्यपाल के चुनाव में भारत सरकार की प्रान्तीय मंत्रिमण्डल से परामर्श करने की परिपाटी अवश्य आरंभ होगी यदि ऐसा करना राष्ट्रपति और उसके मंत्रिमंडल की इच्छा पर छोड दिया जाए तो राष्ट्रपति विशेष परिस्थितियों में प्रान्त की स्थिति को ध्यान में रखते हुए एक ऐसे व्यक्ति को चुन सकता है जिसकी क्षमता में कोई संदेह न हो और जनता के बीच में उसकी अच्छी हैसियत हो तथा साथ ही जो प्रांतीय पार्टी के झगड़ों या मतभेदों के बीच में उलझा हुआ न हो । ऐसा व्यक्ति ही मंत्रिमंडल में एक मित्र और मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकता है और प्रारंभिक स्थिति में मंत्रिमंडल सरकार के सुचारू रूप से चलने में मदद कर सकता है । ध्यान में रखी जाने वाली मुख्य बात यह है कि राज्यपाल एक सांविधानिक प्रधान होता है और मंत्रालय का एक दूरदर्शी सलाहकार होता है जो कठिन परिस्थिति का समाधान कर सकता है यदि राज्यपाल अपनी ऐसी स्थिति बनाए रख सके तो भारत सरकार द्वारा प्रान्तीय सरकार की सलाह से चुना गया राज्यपाल उस राज्यपाल की अपेक्षा अपने कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकेगा जिसे मताधिकार से प्रांत द्वारा पार्टी टिकट दिलवाकर या निर्वाचन सिद्धांतों के अनुसार विधान मंडल द्वारा चुना जाता है ।

"एक बात का मैं उल्लेख करना चाहूंगा कि वाद-विवादों के बीच यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या प्रधानमंत्री को या संघ के राष्ट्रपति को जो प्रधानमंत्री की सलाह से कार्य करता है, इतनी शक्ति देना उचित है ? यदि आप सेना के सभी कमांडर इन चीफ, देश के विभिन्न भागों के राजदूत, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीश की नियुक्ति और विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल के अन्य उच्चाधिकारियों की नियुक्ति के लिए सिद्धान्तः राष्ट्रपति पर भरोसा कर सकते हैं तो राज्यपाल की नियुक्ति यदि राष्ट्रपति पर छोड़ दी जाए तो गलत नहीं होगा । राज्यपाल, प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमंडल की सलाह से कार्य करेगा । यह हो सकता है कि प्रांतीय मंत्रिमंडल से परामर्श करने की परंपरा प्रारंभ हो जाए, जहां तक सदन को मालूम है ऐसी परम्परा कनाडा में राज्यपालों की नियुक्ति के संबंध में प्रचलित है । ऑस्ट्रेलिया में भी हालांकि वहां का संविधान अलग है, ऐसी ही परंपरा विकसित हो गई है और राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति प्रांतीय मंत्रिमंडल की सलाह से की जाती है । ......

> "हमें अपने संविधान में ऐसी हर एक पद्धति को अपनाने का प्रयास करना चाहिए जिससे केन्द्र और प्रांतों के बीच सामंजस्य स्थापित रखा जा सके । यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसका चुनाव प्रांत या राज्य द्वारा नहीं किया गया है और एक ऐसा व्यक्ति भी है जिसका चुनाव संघ के राष्ट्रपति द्वारा प्रांतीय मंत्रिमंडल से परामर्श लेकर किया गया है तो इससे प्रांत और केन्द्र प्रांत के बीच गहरा संबंध स्थापित होगा और प्रान्तों और केन्द्र के बीच होने वाले विरोध को रोका जा सकेगा । जबकि ऐसा न होने पर दूसरी स्थिति उत्पन्न हो सकती है ।"

मई 31, 1949 को, अगले दिन श्री जवाहरलाल नेहरू ने वाद विवाद के बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा "मेरे विचार से यह निश्चित रूप से बेहतर होता यदि राज्यपाल को प्रान्त की स्थानीय राजनीति से न जोड़ा गया होता और जैसा कि श्री मुंशी ने कहा है क्या ऐसा अधिक अच्छा नहीं होता यदि ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त किया जाए जो उस प्रांत द्वारा स्वीकार्य हो अन्यथा वह कार्य नहीं कर सकता । वह व्यक्ति प्रान्त को तथा उस प्रान्त की सरकार को स्वीकार्य होना चाहिए तथा वह व्यक्ति उस प्रांत की किसी पार्टी से संबंधित नहीं होना चाहिए । ऐसा हो सकता है कि वह उसी प्रांत का हो । हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है लेकिन कुल मिलाकर यह अधिक अच्छा होगा कि वह बाहर

का रहने वाला हो और उसने किसी राजनीति में भाग न लिया हो। राजनीतिज्ञों के कार्यकलाप अधिक सक्रिय होते हैं लेकिन एक ऐसा प्रतिष्ठित शिक्षाविद् या किसी अन्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित व्यक्ति भी हो सकता है जो स्वभावतः सरकार के साथ सहयोग करके सरकार की नीति को हर हालत में कार्यान्वित करके सहायता करेगा। वह जनता के सामने कभी भी एक पार्टी के नेता के रूप में नहीं आएगा, वास्तव में वह सरकार की अधिक मदद कर सकेगा। मैं यह मानता हूं कि वास्तव में यह एक अधिक लोकतांत्रिक कार्यविधि है क्योंकि ऐसा व्यक्ति लोकतांत्रिक तंत्र को अधिक सुचारू रूप से नहीं चला सकेगा। (सी-ए० डी० खण्ड-8, पृष्ठ 455)।

श्री टी० टी० कृष्णमचारी ने भी अपने विचार व्यक्त किए और यह स्पष्ट किया कि "मैं माननीय श्री अलादी कृष्ण स्वामी अय्यर द्वारा कल दिए गए भावपूर्ण भाषण में की गई बहस की चर्चा करना चाहूंगा जिसमें उन्होंने कनाडा का उदाहरण दिया तथा कनाडा के गवर्नर जनरल के द्वारा उपराज्यपाल की नियुक्ति का उल्लेख किया। मैं सदन से यह अनुरोध करुंगा कि वे स्वयं इस पर विचार करें तो उन्हें महसूस होगा कि मेरे माननीय मित्र श्री अलादी कृष्ण स्वामी अय्यर का आशय तुलना करने के सिवाय कुछ नहीं था और वे कदापि नहीं चाहते थे कि यह सदन उपराज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में कनाडा में अपनाई जाने वाली संपूर्ण पद्धति को ही स्वीकार करें।"

"जहां तक कनाडा का संबंध है वहां की सांविधानिक स्थिति कुछ समय पहले हमारे देश की सांविधानिक स्थिति से मिलती-जुलती थी। वहां पर जो एक विशेष सिद्धांत अपनाया जाता है उसके संबंध में मैं जोर देकर कहना चाहूंगा कि वह हमारे देश पर बिल्कुल लागू नहीं हो सकता। कनाडा के संविधान निर्माताओं में से प्रत्येक ने यह स्वीकार किया है कि उपराज्यपालों की नियुक्ति की पूरी पद्धति और स्वतंत्र उपनिवेशों द्वारा प्रांतों के ऊपर नियंत्रण पद्धति ऐसी है कि अंतिम नियंत्रण स्वतंत्र उपनिवेशों के हाथ में ही है। वास्तव में कनाडा के संविधान में डोमिनियन का मंत्रिमंडल उपराज्यपाल को अनुदेश जारी करता है। वास्तव में वे राज्यपाल को हटाने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हैं। ऐसे दो उदाहरण सामने है जिनमें राज्यपालों को हटाया गया है। कनाडा के संविधान में उपराज्यपाल डोमिनियन सरकार के एजेंट के रूप में कार्य करता है। जहां तक मेरा संबंध है मैं ऐसी सभी बातों को स्वीकार करता हूं कि हम इस सदन में ऐसे राज्यपाल को चाहते हैं जो राष्ट्रपति द्वारा नामित हो और केन्द्रीय सरकार का एजेंट हो। मैं यह चाहूंगा कि यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाए क्योंकि जिस भावी सरकार की हम कल्पना करते हैं उसमें इस विचार की कोई गुंजाइश नही है। उन्होंने लगातार इस बात पर जोर दिया कि "हमारा विचार है कि राज्यपाल की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह से की जाएगी जो संबंधित मुख्यमंत्री से सलाह करेंगे कि कौन-से विशेष व्यक्ति को वीटो किया जा सकता है और मेरे विचार से यह परंपरा चली आ रही है और इस प्रकार से चुना गया व्यक्ति वह व्यक्ति होगा जो इस राज्य की राजनीति के विभिन्न तथ्यों पर निष्पक्ष रूप से विचार करेगा। ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करने के लाभों के संबंध में जो किसी पार्टी से संबंधित न हो तथा उस प्रांत का रहने वाला न हो, माननीय प्रधानमंत्री द्वारा उल्लेख किया गया है (सी० ए०डी० खण्ड-8, पृष्ठ 459-460)"।

राज्यपाल की निष्पक्षता और स्वतंत्रता की परिकल्पना पर, राष्ट्रपति द्वारा नामित होने के बावजूद संविधान निर्माताओं द्वारा बहुत अधिक बल नही दिया गया है।

यह ध्यान में रखा जाए कि उन सभी तीनों नेताओं जिन्होंने वाद-विवाद में भाग लिया, इस बात को स्वीकार किया कि राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में राज्य के मुख्यमंत्री की सहमति पूर्वापेक्षित रूप से अनिवार्य है। पंडित नेहरू "वह उस प्रांत की सरकार को स्वीकार्य होना चाहिए"।

श्री अलादी कृष्ण स्वामी अय्यर "संघ के राष्ट्रपति द्वारा प्रांत के सरकार के परामर्श से नियुक्त"।

श्री टी० टी० कृष्णमचारी (हमारा विचार है कि राज्यपाल की नियुक्ति प्रथमतः प्रधानमंत्री की सलाह से की जाएगी जो संबंधित मुख्यमंत्री से सलाह करेंगे कि किस विशेष व्यक्ति को वीटो किया जा सकता है। यह इस आधार पर किया गया था कि सांविधानिक सभा में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति से संबंधित प्रावधान रखा गया)।

वाद-विवाद में उत्तर देते हुए डा० अम्बेडकर ने कहा, "यदि हमें राज्यपाल का पद रखना है जो केवल दिखावे के लिए ही होना है तो क्या ऐसे व्यक्ति का चुनाव किया जाना आवश्यक है जबकि उस पर इतना अधिक खर्च आता हो और इतनी अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता हो"।

उन्होंने निष्पक्ष रूप से कहा, "एक दृष्टि से मैं यह आवश्यक कहूंगा कि ड्राफ्ट तैयार करने वाली समिति ने जो यह प्रस्ताव रखा था कि विशेष योग्य व्यक्ति का नामांकन होना चाहिए, सामान्य नामांकन की अपेक्षा बेहतर है"।

इसके साथ ही मैं सदन को चेतावनी देता हूं कि "सदन के समक्ष वास्तविक मुद्दा नामांकन या चुनाव नहीं है, क्योंकि जैसा कि मैंने कहा यह पद केवल दिखावे के लिए है। चाहे उसका नामांकन हो या और किसी प्रकार से उसका चुनाव किया जाए यह केवल एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है कि व्यक्तियों को कौन-सी पद्धति अधिक उपयुक्त लगेगी, नामित व्यक्ति या ऐसा व्यक्ति जिसके नामांकन में विधान मंडल ने किसी न किसी रूप में हस्तक्षेप किया हो इसके अतिरिक्त मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका कोई महत्व नहीं है" (सी०ए०डी० खण्ड VIII, पृष्ठ 468)।

डा० अम्बेडकर ने राज्यपाल के राष्ट्रपति द्वारा मनमाने ढंग से हटाए जाने की संभावना पर विचार नहीं किया है। "प्रोफेसर शाह का कहना है कि राज्यपाल को हटाए जाने के संबंध में संविधान में ही कुछ ऐसे आधार निर्धारित किए जाने चाहिए। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जब सामान्य शक्ति प्रदान कर दी गई हो तो राष्ट्रपति को, राज्यपाल को भ्रष्टाचार, रिश्वत, संविधान के नियमों का उल्लंघन करने या ऐसे किसी भी अन्य कारण से जिसे राष्ट्रपति उपयुक्त समझे, हटाए जाने की शक्ति भी प्रदान की जानी चाहिए। अतः यह आवश्यक नहीं है कि संविधान में इन बातों का उल्लेख किया जाए जबकि राष्ट्रपति इस सूत्र के आधार पर कार्यवाही कर सकता है कि राज्यपाल का पद उसी समय तक कायम रहेगा जब तक वह चाहेंगे"। (सी०ए०डी० खण्ड-8, पृष्ठ 474)।

ड्राफ्ट में एक निर्देश पत्र दिया गया। 11 अक्तूबर, 1949 को सभा में श्री टी० टी० कृष्णमचारी द्वारा दिए गए कारणों से इस निर्देश पत्र को हटा दिया गया। "ऐसा महसूस किया गया है कि संविधान में ऐसे निर्देश बनाना पूर्णतः अनावश्यक है, जो कि यथा समय परपरागत रूप से कार्य करते रहने के बीच स्वयं स्पष्ट हो जाते है, और राष्ट्रपति और राज्यपाल उन परंपराओं का पालन करते है।" डा० अम्बेडकर की ही तरह श्री कृष्णमचारी ने भी, जहां तक परम्पराओं के पालन का प्रश्न है राष्ट्रपति को राज्यपालों से ऊपर ही माना है। डा० अम्बेडकर ने इस संबंध में आगे और स्पष्टीकरण दिया "जहां तक हमारे संविधान का संबंध है इसमें किसी भी ऐसे अधिकारी का उल्लेख नहीं किया गया है जो इस बात पर नजर रखे कि राज्यपाल इन निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन कर रहा है, इससे इस संविधान के अधीन राज्यपाल को जो विवेकाधिकार प्राप्त है वह अपर्याप्त है"। (सी०ए०डी० खण्ड-10, पृष्ठ 114 से 115)।

इस संबंध में पूरा विवरण दिए जाने के लिए यह आवश्यक है कि संविधान निर्माताओं की अनुच्छेद 356 में दी गई व्याख्याओं का उल्लेख किया जाए जिनके अनुसार राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई है कि वह एक घोषणा-पत्र जारी करे जिसमें राज्य सरकार के कार्यों का उल्लेख किया जाए तथा वह इस संबंध में कुछ अन्य उपबंध बनाए, इसे "राष्ट्रपति शासन कहा जाता है" (मसौदे में इसका उल्लेख अनुच्छेद 278 में किया गया था बाद में डाक्टर अम्बेडकर ने इसी विषय को परिशोधित करके प्रस्तुत किया)।

पंडित हृदय नाथ कुंजरू ने 4 अगस्त, 1949 को वाद-विवाद के दौरान डा० अम्बेडकर के सामने एक विशेष प्रश्न रखा।

"मैं अपने माननीय मित्र से एक विषय में स्पष्टीकरण देने का अनुरोध करूंगा क्या अनुच्छेद 278 (क) का यह प्रयोजन है कि केन्द्रीय सरकार प्रांत में एक अच्छी सरकार बनाने की वजह से प्रांतीय मामलों में हस्तक्षेप करे"।

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : नहीं, केन्द्र को ऐसा कोई प्राधिकार बिल्कुल नहीं दिया गया है।

पंडित हृदयनाथ कुंजरू : या, ऐसा केवल तब है जब प्रांत में ऐसा शासन हो जिससे शांति भंग होने का खतरा हो ?

माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर : ऐसा केवल तभी होगा यदि सरकार प्रांतों की सांविधानिक सरकार के लिए निर्धारित उपबंधों के अनुसार कार्य नहीं करती है। उस प्रांत में अच्छी सरकार है या नहीं यह देखना केन्द्र का काम नहीं है। मेरे विचार से मैंने इस संबंध में स्पष्ट कर दिया है।

पंडित हृदय नाथ कुंजरू : संविधान के उपबंधों से सही अर्थों में क्या तात्पर्य है ? सदन को यह अधिकार है कि वह माननीय सदस्य से यह पूछे कि उनका "संविधान के उपबंधों" के अनुसार" से क्या तात्पर्य है।

डा० अम्बेडकर ने इस संबंध में भारत सरकार अधिनियम, 1935 का हवाला दिया जिसमें कुख्यात-एस-93 का प्रयोग किया गया है, उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि इसमें निहित सीमाओं पर बल दिया जाए :—

"सामान्य वाद-विवाद के संबंध में जिसमें यह सुझाव दिया गया कि इन अनुच्छेदों का दुरुपयोग किया जा सकता है मैं यह कहूंगा कि मैं इस बात से इंकार नहीं करता कि इन अनुच्छेदों के दुरुपयोग किए जाने या किसी राजनीतिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किए जाने की संभावना है। किन्तु ऐसा तो संविधान के किसी भी ऐसे भाग के संबंध में हो सकता है जिसमें केन्द्र को प्रांतों के ऊपर नियंत्रण रखने की शक्ति दी जाती है। वास्तव में, मैं अपने माननीय मित्र श्री गुप्ता के विचारों से सहमत हूं कि उचित यही होगा कि इन अनुच्छेदों को कभी कार्य रूप न दिया जाए और इन्हें अप्रचलित नियमों के रूप में ही रहने दिया जाए। यदि इन्हें कार्यरूप दिया जाता है तो मैं यह आशा करता हूं कि राष्ट्रपति जिन्हें ये शक्तियां दी गई, किसी भी प्रांत के प्रशासन को वास्तव में निलंबित करने से पहले उपयुक्त उपाय करेंगे। मुझे उम्मीद है कि वह सबसे पहले प्रांत को इस संबंध में केवल चेतावनी देंगे कि जैसा कि संविधान में बताया गया था उस प्रकार से वहां पर कार्य नहीं किया जा रहा है। यदि इस चेतावनी का भी कोई असर नहीं पड़ता है तो वह चुनाव का आदेश देंगे और उस प्रांत के व्यक्तियों से मामले को स्वयं सुलझाने के लिए कहेंगे। यदि यह दोनों ही उपाय असफल हो जाते हैं तो तभी राष्ट्रपति इस अनुच्छेद में बताए गए नियमों के अनुसार कार्य करेंगे। केवल उपर्युक्त परिस्थितियों में ही इस अनुच्छेद का उपयोग करेंगे" । (सी०ए०डी० खण्ड-9, पृष्ठ 176–177) ।

इस संबंध में ध्यान दिया जाए कि संविधान के एक मुख्य सदस्य पंडित ठाकुर दास भार्गव के विचार से "सांविधानिक तंत्र को सामान्यत: असफल नहीं माना जा सकता जब तक कि राज्यपाल द्वारा विघटन की शक्तियों का प्रयोग न किया जाय" (विधान मंडल के संबंध में) । (सी०ए०डी० खण्ड-9, पृष्ठ 161) ।

ये सभी उपबंध सम्पूर्ण संघीय योजना का अंग होंगे, जिसके मूलभूत सिद्धांतों का वर्णन डा० अम्बेडकर ने समय-समय पर किया है। संविधान से संबंधित मसौदे पर 4 नवम्बर, 1948 को विचार किया गया, उन्होंने कहा, "संविधान का मसौदा एक संघीय संविधान के रूप में तैयार किया गया है जिसे राज्य व्यवस्था माना जा सकता है। प्रस्तावित संविधान के अंतर्गत इस दोहरी राज्य व्यवस्था में केन्द्र में संघ और बाहर राज्य आ जाते हैं। दोनों को समनुदेशित क्षेत्र में संविधान द्वारा प्रभुत्व सम्पन्न शक्तियां प्रदान की गई है"। (सी०ए०डी० खण्ड-7, पृष्ठ 33) ।

3 अगस्त, 1949 को जब राज्यों में राष्ट्रपति शासन से संबंधित उपबंधों पर चर्चा की गई तो डा० अम्बेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि "मेरे विचार से यह सम्मत है कि हमारा संविधान इसमें निहित बहुत-से उपबंधों के बावजूद, जिसमें केन्द्र को प्रांतों के ऊपर नियंत्रण रखने की शक्तियां प्राप्त है, और हम जब यह कहते हैं कि एक संघीय संविधान है तो इससे यह अर्थ निकलता है कि संविधान द्वारा निर्धारित अपने क्षेत्र में प्रांत पूर्णत: उसी प्रकार प्रभुसत्ता संपन्न है जैसा कि केन्द्र अपने क्षेत्र में है" अत: संघ द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के संबंध में स्पष्ट उपबंधों का होना आवश्यक है। (सी० ए०डी० खण्ड-9, पृष्ठ 133) ।

अंतत:, सभा के विचार-विमर्श पूरा हो जाने के बाद डा० अम्बेडकर ने 25 नवंबर, 1949 के वाद-विवाद के दौरान उत्तर देते हुए कहा, "जहां तक केन्द्र और राज्यों के संबंधों का प्रश्न है इससे संबंधित मौलिक सिद्धांतों को, जिन पर यह निर्भर करता है, ध्यान में रखना अपेक्षित है, संघ का मूल सिद्धांत यह है कि विधान मंडल तथा कार्यपालिका को केन्द्र तथा राज्य के बीच विभाजित कर दिया जाए, ऐसा केन्द्र द्वारा बनाए गए किसी नियम से नहीं बल्कि संविधान में ही किया जाना चाहिए। संविधान में ऐसा ही किया जाता है। हमारे संविधान में राज्य केन्द्र पर विधायी या कार्यपालिका की दृष्टि से निर्भर नहीं करते। इस संबंध में केन्द्र और राज्य को बराबर के अधिकार प्राप्त हैं। अत: ऐसे संविधान को किस प्रकार से केन्द्रवाद की संज्ञा दी जा सकती है। यह हो सकता है कि संविधान में केन्द्र को अन्य किसी संघीय संविधान की अपेक्षा विधायी तथा कार्यपालिका संबंधी प्राधिकार अधिक सौंपे गए हों। यह हो सकता है कि अवशिष्ट शक्तियां केवल केंद्र को दी गई हैं और राज्य को नहीं। किंतु इस विशेषता का संघ में कोई खास महत्व नहीं है। संघवाद का महत्व, जैसा कि मैंने कहा केन्द्र और यूनिटों के बीच संविधान द्वारा विधायी और कार्यपालिका संबंधी प्राधिकारों के विभाजन में निहित है। हमारे संविधान में इस संविधान का प्रतिपादन किया गया है"। (सी०ए०डी० खण्ड-11, पृष्ठ 976) ।

भारत के उच्चतम न्यायालय को राज्यपाल की सांविधानिक स्थिति पर मत प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ है। राम ज्वाया कपूर बनाम पंजाब राज्य 1955 एस सी आर 225, ए० आई० आर० 1955 एस सी 549 के मामले में न्यायालय ने कहा "हालांकि हमारा संविधान संघीय है तथा ब्रिटिश संसदीय प्रणाली पर आधारित है जहां कार्यपालिका को सरकारी नीतियां तैयार करने और उन्हें कानूनी रूप देने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से कार्यपालिका की होती है। इससे पहले उसे राज्य की विधायी शाखा का समर्थन प्राप्त करना होता है जैसा कि भारत में भी है। इंग्लैण्ड में कार्यपालिका को विधान मंडल के नियंत्रण में कार्य करना होता है लेकिन विधान मंडल किस रूप में नियंत्रण करता है ? अनुच्छेद 53(1) के अन्तर्गत संघ की कार्यकारी शक्तियां राष्ट्रपति को प्राप्त है किन्तु अनुच्छेद 75 के अंतर्गत एक मंत्री परिषद् गठित की जानी चाहिए जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हो जो राष्ट्रपति को उनके कार्य में सहयोग और परामर्श दे सके। इस प्रकार से राष्ट्रपति को कार्यपालिका का केवल मात्र औपचारिक या सांविधानिक प्रधान बनाया गया है और वास्तविक कार्यकारी शक्तियां मंत्रि मंडल के मंत्रों को दी गई हैं। राज्य सरकारों के संबंध में भी ये उपबंध लागू होते हैं। राज्यपाल राज्य में कार्यपालिका का प्रधान होता है। लेकिन वास्तव में प्रत्येक राज्य में मंत्री परिषद् ही सरकार चलाती है"।

यू०एन० राव बनाम इंदिरा गांधी 1971, एस०सी० आर० 46, ए०आई० आर० 1971, एस०सी० 1002 और के० एन० राजगोपाल बनाम के० एम० करुणानिधि ए०आई०आर० 1971, एस० सी० 1551 के मामले में भी इन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है।

समशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य ए०आई०आर 1974, एस० सी० 2192 के मामले में सात न्यायाधीशों ने इन घोषणाओं का समर्थन किया। यह विवरण देने के बाद कि संविधान सभा में किस प्रकार से राज्यपाल के विवेकाधिकारों की काट-छांट की गई है, मुख्य न्यायाधीश ए०एन०रे० ने कहा, "उन अनुच्छेदों में जहां 'विवेकाधिकार के अनुसार किए जाने वाले कार्य' का प्रयोग राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों के संबंध में किया गया है वहां राज्यपाल के विशेष उत्तरदायित्वों का उल्लेख भी किया गया है। ये अनुच्छेद 371 क (1) (ख), 371 क (1) (घ), 371 क (2) (ख) और 371 (2) (च) है। छठी अनुसूची में दो पैराग्राफ हैं, 9(2) तथा 18(3) हैं। इनमें राज्यपाल के शक्तियों के लिए 'उसके विवेकाधिकार का प्रयोग किया गया है' पैराग्राफ 9 (2), में लाइसेंस धारियों या पट्टाधारियों द्वारा देय रायल्टी की राशि के निर्धारण, या जिला परिषद् की खनिज उपलब्ध कराने के संबंध में उल्लेख किया गया है। 21 जनवरी, 1972 से पैराग्राफ 18(3) को हटा दिया गया है।" (नागालैण्ड के गवर्नर से संबंधित प्रावधान) ।

उन्होंने फिर कहा संविधान के उपबंधों में स्पष्ट रूप से राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग करने को कहा गया है वे उन अनुच्छेदों में बनाए गए हैं जिनका यहां उल्लेख किया गया है जैसा कि अनुच्छेद 239(2) में कहा गया है कि जहां राज्यपाल की नियुक्ति किसी निकटवर्ती संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासक के रूप में की जाती है वहां वह सभी कार्य स्वतंत्र रूप से एक प्रशासक की हैसियत से बिना मंत्री परिषद् के करेगा। अन्य अनुच्छेद जिनमें राज्यपाल के विवेकाधिकार का उल्लेख किया गया है वह छठीं अनुसूची के पैरा 9(2) और 18(3) तथा अनुच्छेद 371 क (1), (ख) और 371-क (2), (घ) और 371 क 2(ख) और 371 क-(2), (4) हैं। राज्यपाल को जो विवेकाधिकार प्रदान किया गया है उससे तात्पर्य है कि राज्य की एक सांविधानिक या औपचारिक प्रधान की हैसियत से उसे यह शक्ति दी गई है। इस संबंध में अनुच्छेद 356 का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें यह कहा गया है कि राज्यपाल इस आशय की एक रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेज सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई हो जिसमें संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य सरकार नहीं चलाई जा सकती है। अनुच्छेद 200 में कहा गया है कि राज्यपाल को ऐसा कोई भी विधेयक विचार के लिए अपने पास रखना चाहिए जो उसके विचार से कानून बन जाने पर उच्च न्यायालय की शक्तियों को कम करेगा जिससे संविधान के अंतर्गत उच्च न्यायालय की हैसियत कम हो जाने का खतरा है।

"अनुच्छेद 356 के अधीन रिपोर्ट देते हुए राज्यपाल अपने मंत्री परिषद् की सहायता और सलाह के बिना भी विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है। इसका कारण यह है कि ऐसा हो सकता है कि सांविधानिक तंत्र मंत्री परिषद् के कार्य संचालन के कारण असफल हो जाए, यह विवेकाधिकार राज्यपाल को इसलिए दिया गया है ताकि वह राष्ट्रपति को इस संबंध में सूचित कर सके क्योंकि उसे हमेशा सभी मामलों में अपनी मंत्रि परिषद् की सलाह से कार्य करना होता है। इस संदर्भ में अनुच्छेद 163 में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि राज्यपाल के विवेकाधिकार के अधीन लिया गया निर्णय अंतिम होगा और उसकी मान्यता के संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठाया जाएगा। इस रिपोर्ट पर राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली कार्रवाई एक अलग विषय है। राष्ट्रपति मंत्रि परिषद् के परामर्श से कार्य करता है। अन्य सभी मामलों में जहां राज्यपाल अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करता है उसे मंत्रि परिषद् से सामंजस्य स्थापित करके कार्य करना होगा। संविधान में राज्यपाल को मंत्रि परिषद् की सलाह के बिना कार्य करने की अनुमति देकर एक समानान्तर प्रशासन बनाए रखने की व्यवस्था नहीं है।"

अपने निष्कर्ष में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, हमारे संविधान में सामान्यतया संघ तथा राज्य दोनों के लिए ही संसदीय या मंत्रि मंडलीय प्रणाली की सरकार का उपबंध है जो ब्रिटिश मॉडल पर आधारित होगा।

हर गोविंद पंत बनाम डा० गोबिंद पंत ए आई आर 1979 एस सी 709 के मामले में 4 मई, 1979 को अभी हाल ही में पांच न्यायाधीशों के गठन में न्यायालय को राज्यपाल के सांविधानिक स्थिति के संबंध में विशेष रूप से विचार करना पड़ा।

> "निसन्देह यह सत्य है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है जिसका अर्थ है भारत सरकार द्वारा, किंतु यह केवल एक नियुक्ति की विधि है और इससे राज्यपाल भारत सरकार का कर्मचारी अथवा सेवक नहीं हो जाता। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति भारत सरकार का कर्मचारी हो। इसी प्रकार से यह भी आवश्यक नहीं है कि राज्यपाल के पद को बनाए रहना राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर है। राज्यपाल के पद को निर्धारित करने के लिए यह एक सांविधानिक उपबंध है और इससे भारत सरकार राज्यपाल की नियोक्ता नहीं कहलाएगी।"

> "राज्यपाल का पद भारत सरकार के अधीन या मातहत नहीं है, वह भारत सरकार के निर्देशों को मानने के प्रति बाध्य नहीं है, और न ही अपने कार्यों को पूरा करने में इन निर्देशों का पालन करने के प्रति उत्तरदायी है। उसका एक स्वतंत्र सांविधानिक पद होता है जो भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन नहीं होता। वह सांविधानिक रूप से राज्य का प्रधान होता है जिसे राज्य के कार्यपालिका संबंधी शक्ति प्राप्त होती है और जिसकी सहमति के बिना उस राज्य की विधायी शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता।"

"श्री जी० एस० पाठक जो एक जाने माने विधिवेत्ता है, उन्होंने 3 अप्रैल, 1970 को दिए गए अपने भाषण में कहा, (उस वक्त वह भारत के उपराष्ट्रपति थे) "जिन क्षेत्रों में राज्यपाल को मंत्रि परिषद् की अनुमति से कार्य करना अनिवार्य होता वहां उसे केन्द्र के नियंत्रण से स्वतंत्र रखना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि किसी मामले में केन्द्र का परामर्श राज्य के मंत्री परिषदों द्वारा दी गई सलाह से भिन्न हो (केन्द्र-राज्य संबंधों की जांच समिति द्वारा 1971 में दी गई रिपोर्ट से उद्धृत तमिलनाडु सरकार, पृष्ठ 125) ऐसे मामलों में राज्यपाल के केन्द्र सरकार द्वारा दिए गए "परामर्श" की उपेक्षा करनी चाहिए और अपने मंत्रि परिषद् की सलाह से कार्य करना चाहिए। यह एक विवादरहित सांविधानिक स्थिति है।"

यदि यह अत्याधिक चिंतन का विषय है तो उसका कारण यह है कि सभी महत्वपूर्ण मामलों में वास्तव में राज्यपाल की सांविधानिक स्थिति का अधिक ध्यान नहीं रखा जाता। यह बात केन्द्र के शासक दल के अलावा अन्य शैक्षिक, पत्रकार, जानी-मानी हस्तियां, विधिवेत्ता, प्रशासक और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार की गई है।"

भाग II

संविधान के 26 जनवरी, 1950 से लागू होने के बाद से यह स्थिति बिगड़ने लगी है और आधे दशक के बाद इसमें और अधिक ह्रास हुआ है। श्री प्रकाश तीन राज्यों में, असम, मद्रास और बम्बई में 16 साल तक राज्यपाल के पद पर रहे, उनकी पुस्तक भारत में राज्यों के राज्यपाल जो 1966 में प्रकाशित हुई उसमें उन्होंने उन भ्रांतियों का वर्णन किया जो उस वक्त मौजूद थीं कि मैं एक ऐसे राज्यपाल से परिचित हूं जिसका यह विचार था कि वह राज्यपाल बन जाने के बाद भी अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का सदस्य भी बना रह सकेगा। मैं ऐसे अन्य राज्यपालों को भी जानता हूं जो अपने राज्यों में राजनीतिक दौरों पर भी जाया करते थे।

संयोग से उस वक्त डा० राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति थे। उन्होंने हस्तक्षेप करते हुए कहा, "राज्यपाल ऐसे प्रतिबंधों में नहीं रह सके और उन्होंने त्यागपत्र दे दिया, (मीनाक्षी प्रकाशन, पृष्ठ 168-69) किंतु इस संबंध में कोई भी जानकारी नहीं है कि अपने कार्यकाल के दौरान उन्हें किस बात से कष्ट पहुंचा।

एक ऐसा उदाहरण जिसका उन्होंने उल्लेख किया, श्री ए० पी० जैन का है जो केरल के राज्यपाल थे, जिस वक्त जनवरी, 1966 में श्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु हुई। "राज्यपाल की हैसियत से तथा दलबंदी से ऊपर उठकर उन्होंने श्री मोरारजी भाई देसाई जो प्रधान मंत्री के पद के लिए दूसरे उम्मीदवार थे, की विपक्षी श्रीमती इंदिरा गांधी के पक्ष में प्रचार करने में सक्रिय रूप से भाग लिया। श्री जैन ने इसे अपने पद के नियम विरुद्ध समझा और अपना त्याग पत्र दे दिया, उनके इस व्यवहार की प्रेस में गंभीर रूप से निन्दा की गई। यह जानना उचित होगा कि क्या ऐसा राजनीतिक राज्यपाल के पद पर रहते हुए निष्पक्ष रूप से कार्य कर सकता था। श्री जैन के मामले में इस प्रश्न का उत्तर मार्च 1965 में स्वयं ही प्राप्त हो गया जब उन्होंने नई चुनी हुई राज्य संविधान सभा को भंग कर दिया। हालांकि इसका गठन विधिवत् रूप से किया गया था और उन्होंने सबसे अधिक बहुमत प्राप्त पार्टी के नेता को सरकार बनाने का अवसर दिए बिना ही इसे भंग कर दिया। यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं है कि निश्चित ही वह एक विरोधी पार्टी थी, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्कसवादी)।

किन्तु यह एक दुख की बात है कि श्री प्रकाश की धारणा संविधान निर्माताओं की धारणा से बिल्कुल भिन्न थी। उन्होंने लिखा कि "राज्यपाल का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह अपने आपको केन्द्र का प्रतिनिधि समझे। राज्यपाल का दूसरा कर्तव्य यह है कि वह सौंपे गए राज्य के हितों का ध्यान रखे" (एस० आई० सी० पृष्ठ 5-6)।

यह सांविधानिक स्थिति के सर्वथा विपरीत है । "सौंपे गए शब्द का इस्तेमाल करने से यह पता चलता है कि राज्य की ड्यूटी से तात्पर्य उन कार्यों से है जो केन्द्र ने सौंपे हैं" ।

श्री प्रकाश का यह विचार था कि किसी भी राजनीतिक के लिए राज्यपाल का पद अंतिम पद होना चाहिए । "यदि राज्यपाल बाद में मंत्री बन सके या अन्य सरकारी पद प्राप्त कर सकते हों तो इस पद की गरिमा समाप्त हो जाती है" (पृष्ठ 62--68) ।

अत: अध्ययन करने वाले प्रशासनिक सुधार दल ने जिसके अध्यक्ष श्री एम० सी० सेतालवद थे, सितम्बर 1967 में प्रस्तुत की गई अपनी रिपोर्ट में भी कहा :

"ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जिनमें राज्यपाल के पद पर नियुक्त व्यक्ति राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं और कुछ मामलों में राज्यपाल के पद से हटने के बाद वे सक्रिय रूप से राजनीति में वापस आ गए हैं। हमें यह सिफारिश करते हुए कोई हिचक नहीं है कि एक ऐसा स्थायी नियम होना चाहिए कि राज्यपाल के पद पर नियुक्त व्यक्ति अपनी नियुक्ति के बाद से राजनीति में भाग नहीं ले सकेगा ।" (पृष्ठ 286) ।

अध्ययन दल ने उन गुणों का उल्लेख किया जो राज्यपाल में होने चाहिए और यह टिप्पणी दी कि "पिछले सोलह वर्षों के दौरान जो व्यक्ति राज्यपाल के पद पर आसीन रहे हैं वे उन मानदण्डों को पूरा नहीं कर सके हैं । हमारा यह विचार है कि इस स्थिति का वास्तविक कारण उपयुक्त व्यक्ति की कमी है बल्कि नियुक्त करने वाले व्यक्तियों के दिमाग में इस विचार का होना है कि राज्यपाल का पद निम्न होता है" ।

"परिस्थितियों के कारण इस पद की गरिमा कम हो गई है, इसके परिणामस्वरूप राज्यपालों के चुनाव के स्तर में तर्कसंगत रूप से गिरावट आई है। इस पद को सामान्यत: दायित्वहीन पद या सांत्वना पुरस्कार की तरह माना जाने लगा । इसका कभी-कभी (राजनीति से बाहर निकाले गए व्यक्तियों) के रूप में भी उल्लेख किया जाता है । जिन व्यक्तियों का चुनाव किया गया उनमें से अधिकांश शासक दल के पुराने व्यक्ति थे । इससे तात्पर्य यह नहीं लगाना चाहिए कि किसी भी उपयुक्त व्यक्ति को नियुक्त नहीं किया गया परन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम थी ।"

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी केन्द्र-राज्य संबंधों पर भी जून 1969 में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें इन्हीं बातों का उल्लेख किया (रिपोर्ट का पृष्ठ 23 देखें) ।

उसके बाद से यह स्थिति काफी बिगड़ गई है । कम से कम शासक दल के दो सदस्य जिन्हें न्यायिक आलोचना के कारण मंत्री परिषद् से इस्तीफा देना पड़ा, बाद में राज्यपाल के पद पर नियुक्त किए गए जैसे श्री एम० चेन्ना रेड्डी और श्री राम लाल ।

गिने चुने व्यक्ति वापस राजनीति में लौटे हैं । खासतौर से श्री डी० के० बरूआ, जो बिहार के राज्यपाल थे, जो संघ मंत्रि परिषद् के मंत्री बन गए और बाद में कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष । ऐसे ही श्री विश्वनाथ दास जो पहले उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे, और बाद में उड़ीसा के मुख्यमंत्री बने ।

दूसरी ओर बहुत-से राज्यपालों की कार्य अवधि राजनीतिक कारणों से कम कर दी गई या बढ़ा दी गई । राज्यपालों का इस प्रकार से स्थानान्तरण कर दिया गया मानो वह मामूली सेवक हों और एक बार तो किसी राज्यपाल को हटा भी दिया गया ।

डा० राजीव धवन ने भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली के तत्वावधान में "राज्यों में राष्ट्रपति शासन" पर अध्ययन किया और लिखा सामान्यत: राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए, लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता है । ऐसे बहुत-से उदाहरण सामने हैं जिनमें केन्द्र ने राजनीतिक कारणों से किसी विशेष राज्यपाल के कार्यकाल को कम कर दिया है । पंजाब में 1966 में राज्यपाल उज्जल सिंह की जगह श्री धर्मवीर को रखा जिन्होंने दो दिन पहले ही पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने के संबंध में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । इसी प्रकार से पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल श्री धवन "छुट्टी पर चले गए" और बाद में 1971 में अपनी अवधि समाप्त होने से पहले ही उन्होंने पश्चिमी बंगाल के पद से इस्तीफा दे दिया । ऐसा इस कारण से हुआ क्योंकि उन्होंने कम्युनिस्टों को यह सिद्ध करने के लिए आमंत्रित किया कि सरकार बनाने की दृष्टि से विधान मंडल में उनको बहुमत प्राप्त था, क्योंकि यही एक बहुमत प्राप्त अल्पसंख्यक पार्टी थी । (एन० एम० त्रिपाठी प्राईवेट लिमिटेड, 1979, पृष्ठ 118) ।

श्री एच० एम० सीरवेई जो एक प्रख्यात विधिवेत्ता थे, ने अप्रैल 1983 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "कांस्टीट्यूशनल ला आफ इण्डिया" के तीसरे संस्करण के खण्ड I में उल्लेख किया कि "श्री अंतुले ने जिस परिस्थितियों के कारण त्याग-पत्र दिया तथा बाद में जो परिस्थितियां उत्पन्न हुई जिनमें राज्यपाल द्वारा श्री अंतुले पर अभियोजन चलाने के लिए अपनी मंजूरी दिया जाना भी शामिल था, उसमें राज्यपाल की स्थिति के संबंध में बहुत-से महत्वपूर्ण प्रश्न पैदा हो गए हैं । राज्यपाल की वर्तमान स्थिति असंतोषजनक है । फिर भी इस विषय पर इस पुस्तक के खण्ड-II में संघ और राज्यपालिका संबंधी अध्याय में पूर्ण रूप से चर्चा की गई है । यह कहना पर्याप्त होगा कि राज्यपाल के पद की अवधि जो राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करती है, अर्थात् संघ सरकार पर वह अत्यंत असंतोषजनक है और उसके गंभीर दुरुपयोग किए जाने की संभावना है । संविधान के अधीन राज्यपाल को कुछ शक्तियां प्राप्त हैं । वह राष्ट्रपति के सेवक या एजेंट नहीं है । जैसा कि राज्यपाल की शपथ में स्पष्ट रूप से पता चला है किसी राज्यपाल को हटाने या उसका स्थानांतरण करने की शक्ति से लोगों के मन में बहुत अशांति पैदा हो गई है, उदाहरण के लिए, श्री अंतुले के विरुद्ध दायर की गई यचिका पर सुनवाई के दौरान न्यायमूर्ति लेंटिग ने निर्णय दिया, उस समय महाराष्ट्र के राज्यपाल एयर चीफ मार्शल मेहरा थे । संविधान में राज्य सरकार के कार्य करने के संबंध में राज्यपाल द्वारा रिपोर्ट दिए जाने के लिए कहा गया है (अनुच्छेद 356)। श्री अंतुले द्वारा त्यागपत्र दिए जाने के कुछ समय बाद श्री मेहरा को महाराष्ट्र के राजयपाल के पद से हटाकर राजस्थान के राज्यपाल के पद पर नियुक्त कर दिया गया और इसका कोई कारण भी नहीं बताया गया । उनके उत्तराधिकारी एयर चीफ मार्शल लतीफ थे, जिन्होंने निर्णय के संबंध में अपील किए जाने के बाद श्री अंतुले पर अभियोजन चलाए जाने की अनुमति दे दी, जैसा कि पहले बताया जा चुका है । इस प्रकार की घटनाओं से राज्यपाल के प्राधिकार पर जनता के विश्वास को गहरी ठेस पहुंचती है । यह सुझाव दिया जाता है कि राज्यपाल की स्थिति पर पूर्णरूप से विचार किए जाने के बाद उसकी कार्यविधि पांच वर्ष निश्चित कर दी जानी चाहिए । यद्यपि हमारे संविधान में राज्यपाल को हटाने के लिए महाभियोग की प्रक्रिया नहीं अपनायी जाती है, जैसा कि राष्ट्रपति को हटाने के लिए है । संविधान में ऐसा ही एक उपबंध शामिल किया जाना चाहिए ।

श्री सीरवेई (एन० एम० त्रिपाठी प्रा० लि०, खण्ड I, पृष्ठ 1070) ने अपनी कृति के इससे पहले के संस्करण में अनुच्छेद-III पर टिप्पणी देते हुए कहा कि "राज्यपाल राष्ट्रपति की इच्छा पर ही अपने पद पर बना रहेगा" ।

श्री सीरवेई ने लिखा कि एक जिम्मेदार संघ सरकार कभी भी यह परामर्श नहीं देगी, और न ही ऐसा परामर्श देना उचित समझेगी कि किसी राज्यपाल को केवल इस कारण से हटा दिया जाए कि उन्होंने अपने कर्तव्यों को ईमानदारी से पूरा करते हुए ऐसी कोई कार्रवाई की हो जो संघ सरकार की नीति के अनुरूप न हो । अन्यथा इसका अर्थ यह होगा कि संघ कार्यपालिका राज्य कार्यपालिका पर प्रभावी रूप से नियंत्रण रखेगी जो कि हमारे संघीय संविधान की मूल योजना के विपरित है । अनुच्छेद 156(1) यह सुनिश्चित करने के लिए तैयार किया गया है कि यदि राज्यपाल ऐसा रास्ता अपना रहा है जो राज्य के लिए या भारत के लिए हानिकर है तो राष्ट्रपति राज्यपाल को उसके पद से हटा सकता है और दूसरा राज्यपाल नियुक्त कर सकता है । यह शक्ति महाभियोग की तरह ही है जिसका प्रयोग कुछ विशेष परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए । (दूसरा संस्करण, खण्ड 2, पृष्ठ 1074) ।

26 अक्तूबर, 1980 को तमिलनाडु के राज्यपाल श्री प्रभुदयाल पटवारी को बहुत ही अपमानजनक रूप से बिना कोई कारण बताए उनके पद से हटा दिया गया था ।

1983 में यह निश्चय पूर्वक कहना कि "राज्यपाल भी संघ का एक गौरवान्वित सेवक बन गया है" इस पद पर धीरे-धीरे राजनीति का रंग चढ़ता गया। मानदण्डों का उल्लंघन किया गया। राष्ट्रपति द्वारा 20 नवम्बर, 1970 को गठित की गई राज्यपालों की समिति की "द रूल आफ गवर्नर्स" नामक रिपोर्ट में इस बात को बिल्कुल ध्यान में नही रखा गया कि इस पद का महत्व कम हो रहा है। या उसकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए पूर्वोपाय किए जाने चाहिए। इस प्रक्रिया को समाप्त करना तो दूर रहा इस पर कोई नियंत्रण भी नहीं रखा गया। मुख्यमंत्री की नियुक्ति और राज्य विधान सभा को भंग करने जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों जिनसे राज्य की लोकतांत्रिक सरकार पर प्रभाव पड़ता है, राज्यपालों ने स्पष्ट रूप से केन्द्र में केवल सत्तारूढ़ दल के हितों को बढ़ावा देने के लिए पूर्ण रूप से उनके पक्ष में अपना निर्णय दिया। अनुच्छेद 356 का लगातार दुरुपयोग किया जाता रहा है और राज्य की स्वायत्तता तथा लोकतंत्र के सिद्धांतों का मजाक उड़ाया जाता रहा है।

इस प्रकार की कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, लेकिन एक मामले में उच्च न्यायालय ने याचिका जारी करने को नामंजूर करते हुए, राज्यपाल की आलोचना की कि उसने संसदीय परंपराओं का उल्लंघन किया है और विरोधी पक्ष को कांग्रेस मंत्रीमंडल के समाप्त हो जाने के बाद सरकार बनाने का अवसर देने से इंकार कर दिया।

1973 में उड़ीसा में 30 कांग्रेस विधान सभा के सदस्य अपनी मूल पार्टियों, कांग्रेस (पुरानी) और स्वतंत्रपार्टी में वापस आ गए। मुख्यमंत्री श्रीमती नन्दनी सतपथी ने एक मार्च, 1973 में त्यागपत्र दे दिया जबकि सभा का सत्र चल रहा था, क्योंकि उनकी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं था। श्री बीजू पटनायक के नेतृत्व में प्रगति पार्टी ने 140 में से 72 सदस्यों का बहुमत प्राप्त किया जिसे बाद में अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित किया गया और सभा के सचिव द्वारा राज्यपाल बी० डी० जत्थी को अधिसूचित किया गया। यह बहुमत इस तथ्य से भी सिद्ध हो गया कि प्रगति पार्टी के उम्मीदवार श्री देवा नन्द अमत राज्य सभा में एक सीट के लिए 1 मार्च को चुने गए थे। उन्होंने कांग्रेस के उम्मीदवार, जिसे 60 वोट प्राप्त हुए थे, के विरूद्ध 77 वोट लेकर चुनाव जीता था।

इन निर्विवाद तथ्यों को ध्यान में रखते हुए राज्यपाल बी० डी० जत्थी ने प्रगति पार्टी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित नहीं किया बल्कि इसके बजाए श्रीमती सतपथी की सिफारिश को स्वीकार किया कि अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति को रिपोर्ट दी जाए। 5 मार्च 1973 को इस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।

श्री पटनायक और उनके साथियों ने उड़ीसा के उच्च न्यायालय में मुकदमा दायर किया। इस संबंध में याचिका जारी करने को नामंजूर करते हुए न्यायालय ने राज्यपाल द्वारा की गई इस कार्रवाई की आलोचना की।

विजय नन्द पटनायक और अन्य बनाम भारत के राष्ट्रपति तथा अन्य (ए० आई० आर० 1974 उड़ीसा 52) का मामला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह मामला सदन के अधिकांश सदस्यों (74) द्वारा फाइल किया गया और यह न्यायालय में आने वाले बहुत असाधारण मामलों में से एक था। अत: इसमें की गई आलोचना अधिक संगत है। इसमें कहा गया कि राज्यपाल ने प्रगति पार्टी के किए गए इस दावे की जांच की कि 25 सदस्यों के सत्तारूढ़ पार्टी से निकलने के बाद उनकी पार्टी में 72 सदस्य थे। उन्होंने देखा कि कुछ ही घंटों में 72 में से 2 सदस्य कम हो गए हैं। विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि इस समय श्री बीजू पटनायक और उनके समर्थकों ने जिस बहुमत के आधार पर दावा किया है वह स्थायी होगा। और यदि श्री पटनायक के नेतृत्व में सरकार बनाने की अनुमति दे दी जाती है तो शायद वह सरकार अधिक समय तक न चल सके। राज्यपाल ने विरोधी पक्ष के नेता को सरकार बनाने के लिए नहीं बुलाया, इस लिए नहीं क्योंकि उन्हें बहुमत प्राप्त नहीं था बल्कि इसलिए उसे यह आशंका थी कि यह बहुमत किसी भी समय कम हो सकता है और इस प्रकार से कोई स्थायी सरकार नहीं बन पाएगी। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद राज्यपाल ने उस परंपरा का पालन नहीं किया जो ब्रिटेन में सरकार बनाने के मामले में प्रचलित है। उल्लंघन निम्नलिखित प्रकार से किया गया; श्रीमती नन्दनी सतपथी को सभा में बहुमत प्राप्त न होने के कारण इनके द्वारा त्यागपत्र दिए जाने पर, राज्यपाल को सरकार बनाने के लिए विरोधी पक्ष के नेता को बुलाना चाहिए था और यह उस विरोधी पक्ष के नेता द्वारा सोचने योग्य बात थी कि वह सरकार बना सकेगा या नहीं। विरोधी पक्ष के नेता ने इस बात पर जोर दिया कि उसे बहुमत प्राप्त था और इस बात की पुष्टि इससे भी हो जाती थी राज्यपाल ने स्वयं इस बात का पता लगाया कि उसे 70 सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। यदि यह भी मान लिया जाए कि राज्यपाल सही बहुमत का पता लगाना चाहते थे तो भी उन्हें विरोधी पक्ष के नेता को बुलाना चाहिए था और सदन के सत्र में स्वयं उससे इस संख्या की जांच करने के लिए कहना चाहिए था। बिल्कुल ऐसा ही पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल ने किया था जब उन्होंने नवम्बर 1967 में अजय मुखर्जी की सरकार को समाप्त किया था। राज्यपाल को इससे मतलब नही होना चाहिए कि सरकार स्थायी रहेगी या नही। यदि विरोधी पक्ष के नेता द्वारा बनाई गई सरकार बाद में गिर जाती है तब उस वक्त राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने की सिफारिश करने की बात उचित मानी जाती। बशर्ते कि उस समय ऐसा अन्य कोई व्यक्ति इस स्थिति में न होता जो बहुमत का समर्थन प्राप्त करके एक वैकल्पिक सरकार बना सकता।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के एक विद्वान डाक्टर जे० आर० सिवाच, जिन्होंने इस प्रकार के हालातों का विस्तृत रूप से अध्ययन किया है, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला द्वारा 1979 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "भारत में राष्ट्रपति शासन की राजनीति" में अनेक उद्धरणों के साथ निम्न लिखित टिप्पणी की है :

> "दूसरी ओर जब कभी भी कांग्रेस दल की सरकार अथवा बाहर से इसके द्वारा समर्थन प्राप्त सरकार अथवा ऐसी सरकार जिसमें यह मुख्य सहयोगी दल के रूप में हो, गिर गई हो अथवा गिरने की स्थिति में हो तो विधान सभाओं को निलंबित करने की बजाए या तो अनुच्छेद 174(ख) के अधीन उन्हें तुरन्त भंग कर दिया गया था जैसा कि 1954 में ट्रावनकोर, कोचीन में, 1970 में केरल मे, 1971 में पश्चिमी बंगाल और बिहार में किया गया था अथवा उन्हें अनुच्छेद 356 के अधीन भंग कर दिया गया था जैसा नवम्बर, 1954 में आंध्र प्रदेश में अगस्त, 1968 में पांडिचेरी में, 1968 और पुन: 1971 में पश्चिमी बंगाल में, 1969 में मणीपुर में और 1973 में उड़ीसा में इसी तरह चुनाव के तुरंत बाद 1967 में हरियाणा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश तथा 1969 में बिहार में हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस दल के प्रमुख सहयोगी दल के रूप में सक्रिय होने के बनिस्पत भी 1971 में पश्चिमी बंगाल में अजय मुखर्जी की सरकार गिर जाने पर यह एक संकट की स्थिति आ गई थी, चुनावों के चार महीनों के भीतर ही विधान सभा को भंग कर दिया गया था। इस प्रकार के सभी मामलो मे विपक्षी दल अपनी सरकार बनाने के लिए तैयार थें। वास्तव में, 1954 में ट्रावनकोर कोचीन मे, 1968 में पांडिचेरी में और 1969 में मणीपुर मे जब सरकार सदन में हार गई थी तो, विपक्ष का यह विधि सम्मत अधिकार था कि उसे अपनी सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया जाए। दूसरे अन्य मामलों मे भी जहां पर कांग्रेस की सरकार अथवा उसका समर्थन प्राप्त सरकार ने अपनी हार की प्रत्याशा में त्यागपत्र दे दिया था विशेषकर पश्चिमी बंगाल मे जहां पर हाल ही में चुनाव हुए थे तथा वहां पर सबसे अधिक बहुमत वाले दल को भी सरकार बनाने का अवसर प्रदान नही किया गया था, विपक्ष के सरकार बनाने के दावे की उपेक्षा नही करनी चाहिए थी।"
>
> "इस संबंध में यह भी ध्यान देना चाहिए कि अनुच्छेद 174(2) (ख) या अनुच्छेद 356 के अधीन गैर कांग्रेसी मुख्य मंत्री या ऐसे गैर कांग्रेसी मुख्य मंत्री द्वारा जिसके बहुमत के बारे में संदेह हो, विधान सभा को भंग करने की सिफारिश जब भी की गई तो उन सभी मामलों में जहां कांग्रेस पार्टी सरकार बनाने की इच्छुक थी उसे अस्वीकृत कर दिया गया। "उदाहरण के लिए, (1967) में, हरियाणा में राव वीरेन्द्र सिंह, पंजाब में गुरुनाम सिंह, (1968) में उत्तर प्रदेश में चरण सिंह, (1968) में बिहार में भोला पासवान शास्त्री, (1969) में मध्य प्रदेश में राजा नरेश चन्द्र और (1971) में गुजरात में हितेन्द्र देसाई और बिहार में कर्पूरी ठाकुर की विधान सभाओं को अनुच्छेद 174 (2) (ख) अथवा अनुच्छेद 356 के अधीन भंग करने की सिफारिश की गई तो इसे अस्वीकृत कर दिया गया था। हरियाणा और गुजरात के मुख्य मंत्रियों से अनुच्छेद 174 (2)(ख)

के अधीन तथा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पंजाब के मुख्य मंत्रियों से अनुच्छेद 356 के अधीन विधान सभाओं को भंग करने की मांग की गई थी ।"

विधान मंडल को भंग करने, मुख्य मंत्रियों की नियुक्ति करने के संबंध में भी राज्यपालों के अधिकतर केन्द्र में सत्ताधारी दल के हितों की तरफदारी के लिए कार्य किया है । इस सिलसिले में पिछले वर्ष का सबसे नवीनतम और सुपरिचित उदाहरण हरियाणा का है जबकि सबसे पहले का सुपरिचित उदाहरण राजस्थान का है क्योंकि विपक्ष के दावे के प्रत्यक्ष सत्यापन की पद्धती को अपनाया गया था । 4 मार्च 1967 को राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द ने कांग्रेस पार्टी के नेता श्री मोहन लाल सुखाड़िया को सरकार बनाने के लिए इसआधार पर आमंत्रित किया कि सदन में वह 183 सदस्यों में से 88 सदस्यों के साथ सबसे अधिक बहुमत वाला अकेली पार्टी का नेता था । 12 मार्च को श्री सुखाड़िया ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता जाहिर की । 14 मार्च को विधान सभा की बैठक बुलाई गई । परंतु विपक्ष को सरकार बनाने का एक अवसर प्रदान करने की बजाए, राज्यपाल की सिफारिश पर केन्द्र ने 13 मार्च को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया । आश्चर्य है कि विधान सभा को भंग करने की बजाय उसे निलंबित कर दिया गया । विपक्ष ने राष्ट्रपति के सामने केन्द्रीय गृह मंत्री श्री वाई० बी० चव्हाण की उपस्थिति में अपने 93 सदस्यों को पेश किया ।

28 अप्रैल को श्री सुखाड़िया को मुख्यमंत्री की शपथ दिलाई गई और राष्ट्रपति शासन हटा लिया गया । उसने 94 विधायकों के समर्थन का दावा किया । इस पर कोई टिप्पणी करना व्यर्थ है इस घटना का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा । विपक्ष को सरकार बनाने के लिए समुचित अवसर प्रदान करने से इंकार करने की जो मिसाल है उसकी एक परिपाटी बन गई ।

बहुमत वाली एक मात्र पार्टी, स्थायी सरकार आदि के दावे के कानूनों और संकल्पों का सहारा लिया गया, परंतु इन्हें स्वार्थ सिद्धि के अनुसार कहीं लागू किया गया अथवा कहीं उनकी अपेक्षा की गई । उनके लागू किए जाने में जो सामंजस्य है वह यह है कि लगभग सभी मामलों में केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के हितों का पूरी तरह से ध्यान रखा गया । इस प्रक्रिया में राज्यपालों के बारे में ऐसी भी जानकारी मिली है कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से व्यक्त किए गए अपने ही विचारों को बाद में बदल दिया ।

उस समय बिहार के राज्यपाल नित्यानन्द कानूगो ने 11 फरवरी, 1970 को अपनी रिपोर्ट में राष्ट्रपति को यह लिखा है कि : "मेरी राय में अब कोई भी स्थायी सरकार बनने के समुचित आधार नहीं है । इसलिए राष्ट्रपति शासन की अवधि में और आगे छह महीने बढ़ाने की घोषणा कर दी जाए ।"

परन्तु 14 फरवरी को केवल तीन दिन के बाद ही उसने अपनी राय को बदल दिया तथा राष्ट्रपति से यह सिफारिश की कि इस अवधि को आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं थी तथा कांग्रेस (आर) विधान मंडल पार्टी के नेता दोगरा प्रसाद राय को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया । जो अस्थिर साबित हुई । 14 फरवरी 1970 को राज्यपाल ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि 17 विधायकों पर विश्वास नहीं किया जा सकता था । परंतु इनमें से ग्यारह विधायक दोगरा प्रसाद राय के द्वारा प्रस्तुत 172 विधायकों की सूची में शामिल थे ।

2 अक्तूबर, 1970 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री बी० गोपाल रेड्डी ने राष्ट्रपति को लिखा कि राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया जाए क्योंकि राज्य में किसी भी स्थायी सरकार के बनने की उम्मीद नहीं थी । उन्होंने कहा : "मुझे राजनीतिक पार्टियों अथवा गठबंधन में शामिल पार्टियों के सदस्यों की संख्या की स्पष्ट स्थिति के बारे में निकट भविष्य में पता चलने की आशा नजर नहीं आती है । इस अनिश्चित स्थिति को आगे लम्बे समय तक बनाए रखना तो लोक हित में अच्छा नहीं है और राज्य के लोकहित में सबसे अच्छा यह होगा कि विधान मण्डल निलंबित कर दिया जाए", परन्तु 17 अक्तूबर 1970 को केवल 15 दिनों के बाद ही उसने श्री टी० एन० सिंह को लिखा : "मैं इस बात से संतुष्ट हूं कि आप सरकार बनाने की स्थिति में हैं । इसलिए, मैं आपको यथा संभव शीघ्र सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता हूं ।"

मुख्य मंत्री, राव बीरेन्द्र को बहुमत का अधिकार प्राप्त होते हुए भी हरियाणा के राज्यपाल बी० एन० चक्रवर्ती ने नवंबर 1967 में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की । उसने यह कारण प्रस्तुत किया कि दल बदल होने से अस्थिरता आ गई थी ।

दिसंबर 1968 में जब कांग्रेस के 16 विधायकों के दल बदलने पर सदन में 81 विधायकों में कांग्रेस पार्टी के सदस्यों की संख्या घटकर 32 रह गई तो राज्यपाल, चक्रवर्ती ने दल बदल की इस दुष्प्रवृत्ति पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया । राव बीरेन्द्र सिंह 40 विधायकों का नेतृत्व कर रहे थे और सरकार बनाने के अपने दावे पर दबाव डाला । कांग्रेस में दल बदल की प्रवृत्ति तेजी से जारी थी । इनमें से 8 दल बदलुओं को मंत्री नियुक्त किया गया ।

इस प्रकार दल बदल होने के बाद 28 जनवरी, 1969 को विधान सभा की बैठक बुलाई गई अर्थात् सांविधानिक रूप से अनुमत 6 महीने के अंतराल से एक दिन पहले 12 फरवरी, 1969 की इस अवधि को आगे बढ़ा दिया गया । अगला अधिवेशन 25 अगस्त से 29 अगस्त, 1969 को था । इसके बाद विधान सभा की बैठक 13 फरवरी, 1970 को हुई तथा विधान सभा को 27 फरवरी 1970 को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया ।

मार्च 1965 में केरल राज्य विधान सभा चुनावों में 133 सीटों में से 40 सीटें मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने जीती । इसके नेता श्री ई० एस० एस० नम्बूदरीपाद, राज्यपाल से मिले तथा 23 अन्य विधायकों का समर्थन प्राप्त होने का दावा किया । परंतु श्रीमान नम्बूदरीपाद के दावे के परीक्षण के बिना ही 24 मार्च को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया और विधान सभा को भंग कर दिया गया । सर्वसम्मत सिद्धांतों के अनुसार, श्री नम्बूदरीपाद इस बात के लिए पूरी तरह से हकदार थे कि उनके दावे का परीक्षण किया जाता परन्तु उन्हें इस बात का अवसर नहीं दिया गया ।

यह बात सर्वविदित है कि अनुच्छेद 256 का दुरूपयोग किया गया है । इस बात को स्वीकार करते समय दुखद सच्चाई को भी निर्विवाद रूप से मानना होगा कि राज्यपाल के पद का भी दुरूपयोग किया गया है क्योंकि इस पूरी प्रक्रिया में राज्यपाल सहभागी होता है ।

राज्यपाल ने विपक्षी दलों को न केवल उनके पद से वंचित करने का ही कार्य किया है बल्कि कांग्रेस पार्टी के आंतरिक मतभेदों को सुलझाने का भी कार्य किया । ऐसा देखा गया कि विशिष्ट प्रकार के मामलों में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है अर्थात् राज्य में कांग्रेस पार्टी का बहुमत बना रहने पर भी, उसके नेतृत्व के संकट को दूर करने के लिए राष्ट्रपति शासन लागू किया गया । केवल पार्टी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संविधान के आपात स्थिति संबंधी उपबंध का भी स्पष्ट रूप से दुरूपयोग किया गया था ।

ये मामले सर्व विदित हैं तथा विद्वानों को मानक कृतियों में उन्हें विशिष्ट श्रेणी का बनाया गया है :—

पंजाब . . .	1951 और 1966 में
उत्तर प्रदेश	1973 और 1975 में
आंध्र प्रदेश	1973 में
गुजरात	1974 में
उड़ीसा	1976 में

इनमें से दो मामलों को यदि विस्तार से बताया जाए तो उनमें श्री एच० एन० बहुगुणा ने उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री के पद से 29 नवम्बर, 1975 को त्यागपत्र दे दिया । राज्यपाल की सिफारिश पर 30 नवंबर को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया तथा 12 जनवरी 1976 को हटा दिया गया, जब श्री एन०डी० तिवारी मुख्य मंत्री बने । केन्द्रीय गृह मंत्री ने कांग्रेस पार्टी द्वारा की गई कार्रवाई को मात्र कुछ छोटी-छोटी समस्याओं का समाधान करने के लिए जिसमें नेताओं के चुनाव भी शामिल थे, उचित माना । (इण्डियन एक्सप्रेस 1 दिसंबर 1975)।

श्रीमती नंदिनी सतपथी ने 16 दिसंबर 1976 को उड़ीसा के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया । राष्ट्रपति शासन लगाए जाने के 13 दिनों के तुरंत बाद उसे हटा दिया गया और उनके स्थान पर श्री बिनायक आचार्य को नियुक्त किया गया ।

इसमें किसी को संदेह नहीं है कि तमिलनाडु की द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम सरकार को जनवरी, 1976 में केवल इतनी सी बात पर समाप्त कर दिया गया कि वह आपात स्थिति लागू करने का विरोध कर रहा था। 234 सदस्यों की विधान सभा में इसके 184 सदस्य थे, जिसकी अवधि मार्च 1976 में समाप्त होने वाली थी।

29 जनवरी, 1976 को राज्यपाल श्री के० के० शाह ने राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने राज्य सरकार पर यह आरोप लगाया कि पार्टी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुप्रशासन, भ्रष्टाचार तथा शक्तियों के दुरुपयोग के अनेक मामले हैं तथा राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की। दो दिन के बाद राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 356 के अधीन एक उद्घोषणा जारी की। सरकार को बर्खास्त कर दिया गया तथा विधान सभा को भंग कर दिया गया।

3 फरवरी, 1976 को भारत सरकार ने एक जांच आयोग का गठन किया जिसमें, मुख्य मंत्री श्री एम० करुणानिधि तथा उनके अन्य साथियों के ऊपर लगाए गए आरोपों की जांच करने के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति आर० एस० सरकारिया को नियुक्त किया गया।

इन लोगों के विरुद्ध आरोप लगाते हुए दो ज्ञापन 4 नवम्बर 1972 को प्रस्तुत किए गए। 15 नवंबर 1972 को प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ये ज्ञापन श्री करुणानिधि को उनकी टिप्पणी के लिए भेजे।

30 सितंबर, 1979 को श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मद्रास में कांग्रेस(आई) के द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के साथ चुनावी गठबंधन के बारे में "अपने कुछ कार्यकर्ताओं के मन से भ्रांति हटाने के लिए" कहा कि उनके द्वारा जनवरी, 1976 में डी० एम० को सरकार को इसलिए हटाया गया था कि उसकी पांच वर्ष की अवधि पूरी हो चुकी थी। उन्होंने कहा "हमारे विचार से हमें उसकी अवधि बढ़ाने का प्राधिकार नहीं था।" (इंडियन एक्सप्रेस 1 अक्तूबर, 1979) उन्होंने यह भी कहा कि सी० पी० आई० और ए० आई० ए० डी० एम० के ने हमें इस बात के लिए मजबूर किया कि "सरकारिया आयोग का गठन किया जाए। (टाइम्स ऑफ इंडिया 1 अक्तूबर, 1979)।

चाहे जो भी हों इन टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि राज्यपाल की रिपोर्ट राजनीतिक दबाव के कारण दी गई थी।

मई, 1982 में हरियाणा राज्य सभा के चुनावों के समय राज्यपाल श्री जी० डी० तपासे ने 22 मई को श्री देवी लाल से औपचारिक रूप से यह कहा कि वह सोमवार 24 मई, प्रातः 10 बजे राज भवन में अपने समर्थकों को लाएं। सदन में 90 व्यक्तियों में से कांग्रेस आई को 36, लोकदल को 31, भारतीय जनता पार्टी को 6, कांग्रेस जे० को 3, जनता पार्टी को 1, निर्दलीय को 12 सीटें प्राप्त हुई। भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस जे० ने लोकदल का समर्थन किया और इस प्रकार उनकी पार्टी में चार निर्दलीय भी थे। श्री भजन लाल इन निर्दलियों के समर्थन के बाद भी कुल 42 सदस्य होने का दावा कर सकते थे।

रविवार 23 मई, को अगले दिन श्री देवीलाल तथा उनके समर्थकों की प्रतीक्षा किए बिना, जैसा कि पहले कहा गया था, राज्यपाल तपासे ने मुख्यमंत्री श्री भजनलाल को कांग्रेस आई के नेता के रूप में शपथ ग्रहण कराई। (24 मई, 1982 का हिन्दू, 24 मई का स्टेट्स मैन देखें)।

24 मई, को 45 विधायक इस संबंध में विरोध प्रकट करने के लिए राजभवन गए। राज्यपाल तपासे के इस कार्य की व्यापक रूप से आलोचना की गई।

असम में लगभग पिछले तीन वर्षों से विपक्ष को बार-बार और जानबूझ कर सरकार बनाने के अधिकार से वंचित रखा जा रहा है, हालांकि उसे विधान सभा में बहुमत प्राप्त था और यह सिद्ध हो चुका था कि कांग्रेस—आई का बहुमत प्राप्त करने का दावा हर बार झूठा था। सभी राज्यपालों ने इस संबंध में कार्यवाही करने में पक्षपात किया।

असम में राष्ट्रपति शासन के समाप्त होने की अवधि 12 दिसम्बर, 1980 थी। लगभग एक माह पूर्व 17 दिसम्बर, 1980 को केंद्रीय गृहमंत्री श्री जैल सिंह ने लोक सभा में यह दावा किया कि कांग्रेस—आई को सभा में बहुमत प्राप्त था और वह सरकार बनाएगी। कांग्रेस—आई ने जून, 1978 में हुए राज्यसभा के चुनाव में केवल 8 सीटें जीती थी। जनवरी, 1980 से दल बदल के कारण इस पार्टी के सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई। किन्तु बहुमत होने की बात तो दूर रही, कांग्रेस आई विधान मण्डल पार्टी अपना नेता चुनने की स्थिति में भी नहीं थी। यह स्थिति बहुत अधिक मतभेद होने के कारण थी। 3 दिसंबर, 1980 को पार्टी ने कांग्रेस—आई की अध्यक्ष श्रीमती इन्दिरा गांधी को अपना नेता चुनने का प्राधिकार दिया और उनके द्वारा चुने गए नेता के प्रति अपना पूरा समर्थन व्यक्त किया। टाइम्स ऑफ इंडिया 4 दिसंबर, 1980।

6 दिसंबर, के 3 दिन बाद राज्यपाल श्री एम० पी० सिंह ने श्रीमती अनवरा तैमूर को मुख्य मंत्री की शपथ दिलाई। कांग्रेस आई० ने सदन में 118 में से 52 सदस्य होने का दावा किया (कुल 126 सदस्य थे लेकिन 8 सीटें खाली थी) कांग्रेस (आई) के 45 सदस्य थे। बाद में कुछ निर्दलीय सदस्यों का समर्थन प्राप्त होने का दावा भी किया गया। विरोधी पक्ष ने भी इस पर आपत्ति उठाई परंतु उसको नामंजूर कर दिया गया।

श्रीमती तैमूर की सरकार बहुत दिनों तक नहीं चली। उन्होंने 28 जून, 1981 को इस्तीफा दे दिया, जब 29 जून, को विधानसभा की बैठक से केवल एक दिन पहले ही पी० टी० सी० ए० ने अपना समर्थन वापस ले लिया था किन्तु विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया गया था। इसके बजाय 30 जून, 1981 को राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया और इसे 30 दिसंबर, 1981 तक बढ़ा दिया गया। राष्ट्रपति शासन को 13 जनवरी, को हटाया गया जब श्री केशव चन्द्र गोगई जो कि कांग्रेस—आई पार्टी के एक सदस्य थे उन्हें राज्यपाल श्री प्रकाश महरोत्रा द्वारा मुख्यमंत्री की हैसियत से शपथ दिलाई गई। उन्हें श्रीमती तैमूर के पार्टी की नेता की हैसियत से त्याग-पत्र दिए जाने के दो दिन बाद 11 जनवरी को पार्टी का नेता चुना गया था। एक बार फिर विपक्ष के विधान मंडल में बहुमत के दावे को अस्वीकार कर दिया गया। विपक्ष के नेता श्री शरत चन्द्र सिन्हा ने यह दावा किया कि उन्हें 65 सदस्यों का समर्थन प्राप्त है। लेकिन राज्यपाल ने यह वचन दिया कि श्री गोगई के बहुमत प्राप्त होने की जांच शीघ्र ही विधान सभा में करवाई जाएगी। उनसे यह कहा गया वह 2 महीने के अंदर अपनी स्थिति को स्पष्ट करें परंतु वह ऐसा करने में असफल रहे।

17 मार्च, 1982 को सभा का बजट अधिवेशन आरंभ हुआ। वामपंथी दल और लोकतांत्रिक दल के गठबंधन ने तुरंत एक अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो उस दिन स्वीकार कर लिया गया और उसे अधिवेशन में चर्चा किए जाने वाले अन्य मामलों की अपेक्षा अग्रता प्रदान की गई। इस गठबंधन पार्टी ने 65 सदस्य होने का दावा किया जो सदन के 118 सदस्यों में से तथा दस पार्टियों से लिए गए थे। मार्च 18 को, जिस दिन विधान मंडल की बैठक होनी थी उससे कुछ समय पहले ही श्री गोगई ने मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया और सभा में उपस्थित नहीं हुए। एक बार फिर श्री प्रकाश महरोत्रा ने वामपंथी तथा लोकतांत्रिक गठबंधन के नेता श्री शरतचन्द्र सिन्हा को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित नहीं किया, जैसा कि उन्हें करना चाहिए था, खासतौर से इससे पहले तीन बार ऐसा न किए जाने के कारण। इसके बजाय उन्होंने राष्ट्रपति शासन लागू करने और विधान सभा भंग किए जाने की सिफारिश की। 19 मार्च, 1982 को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया और विधान सभा भंग कर दी गई। श्री गोगई की सरकार केवल 65 दिन तक रही।

राज्यपाल बदले। विधान मंडल की कांग्रेस (आई) पार्टी के नेता एक के बाद एक विधान सभा में बहुमत प्राप्त करने में असफल रहे। हिन्दू के नई दिल्ली संवाददाता ने टिप्पणी "कांग्रेस अब तक बहुमत सिद्ध करने में सफल नहीं हुई है" (जनवरी 1982) (हिन्दू जनवरी, 11, 1982)।

किंतु इन चारों अवसरों पर जब दावों की जांच की गई थी, विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया गया था। और न ही उसे विधान मंडल के सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त होने की जांच करने का अवसर दिया गया। अंतत जब यह बात बहुत अधिक दिनों तक नहीं छुपाई जा सकी थी, कांग्रेस- (आई) अपनी सरकार चलाने में असफल रही है तो राज्य का शासन वामपंथी और लोकतांत्रिक गठबंधन द्वारा शासित किए जाने की अनुमति न देकर, उसे सीधे केन्द्रीय प्रशासन के अधीन कर दिया गया।

अभी हाल ही में एक मुख्य मंत्री ने अपने राज्य के राज्यपाल को खुल आम इस बात के प्रति दोषी ठहराया कि उन्होंने उसकी सरकार का तख्ता उलटने के लिए तनाव पैदा करने का प्रयास किया। 29 अगस्त, 1983 को सिक्किम के मुख्य मंत्री श्री नर बहादुर भण्डारी ने राज्यपाल श्री होमी जे० एच० तलयारखान से कहा कि "ऐसा प्रतीत होता है कि वह राज्य पर राष्ट्रपति शासन के अधीन शासन करना चाहते हैं।" उन्होंने यह आरोप भी लगाया कि राज्यपाल कांग्रेस-(आई) के महासचिव से तथा अन्य पार्टी नेताओं से उनके विरुद्ध अभियान चलाने के लिए मिलते रहे हैं। (31 अगस्त 1983 के टाइम्स आफ इंडिया में पी० टी० आई० की रिपोर्ट देखें)।

इससे पहले 27 अगस्त, 1983 को संसद में विपक्ष के 6 सदस्यों ने एक संयुक्त पत्र में राष्ट्रपति जैल सिंह से यह आलोचना की कि श्री तलयार खान सिक्किम प्रदेश 'कांग्रेस' आई समिति द्वारा संचालित सार्वजनिक सभा में उस दौरान उपस्थित हुए जब प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी उस राज्य के दौरे पर गई थी। उन्होंने कहा कि हालांकि पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से श्रीमती गांधी का उस सभा को संबोधित करना असामान्य नही थी। "किंतु राज्यपाल की ओर से ऐसा किया जाना अत्यधिक अनुचित था। उसने एक ऐसे गरिमापूर्ण पद का तिरस्कार किया है जिसका वह प्रभारी था"। सदस्यों ने राष्ट्रपति से यह अपील की उसे चेतावनी दी जाए। उन्होंने एक फोटो भी संलग्न की जिसमें राज्यपाल बैठक में मंच पर बैठे हुए थे।

सदस्य थे सर्व श्री ए.रा सिजयान, हर किशन सिह सुरजीत, सुरेन्द्र भट्टाचार्जी, अब्दुल रहमान, जे० पी० माथुर तथा एस० डब्ल्यू धावे।

निष्कर्ष

पिछले रिकार्डों के देखने से निसन्देह यह पता चलता है कि अधिकांश मामलों में राज्यपालों ने अपने पद का इस्तेमाल केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के हितों की रक्षा के लिए किया है। यह संभव नहीं है कि उन्होंने ऐसा सत्तारूढ़ दल के नेताओं के आग्रह के बिना किया हो। सभी महत्वपूर्ण मामलों में संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट आशय तथा संविधान में निहित भावों का उल्लंघन किया गया है। जैसे कि राज्यपाल की नियुक्ति राज्य के मुख्यमंत्री के परामर्श और सहमति से करना, राज्यपालों की क्षमता और उनका महत्व राज्यपाल के पद की, उस अवधि को सुरक्षित रखना जिसका वह हकदार है, राष्ट्रपति शासन लागू करना और राज्यपाल को अपने कार्य राज्य के प्रधान की हैसियत से केन्द्र के अनुदेश या निर्देश के बिना पूरे करने की शक्ति देना विशेष रूप से मुख्यमंत्री की नियुक्ति और विधान मण्डल भंग करने के मामले में। डॉ० बी० आर० अम्बेडकर ने 30 नवंबर 1949 को संविधान सभा में स्पष्ट रूप से कहा है कि जहां तक इन दो मामलों का प्रश्न है राज्य के सांविधानिक प्रधान की हैसियत से "राज्यपाल की स्थिति वैसी ही है जैसी राष्ट्रपति की"। संविधान में उल्लिखित इस स्पष्ट स्थिति को, राज्यपाल की स्वतंत्रता समाप्त करके और उसकी निष्पक्षता की शपथ को मिथ्या करके, उलट दिया गया है। राज्यपालों को इस बात की अनुमति नहीं है कि मुख्य मंत्री की नियुक्ति तथा विधान मंडल भंग करने के लिए वह संसदीय प्रणाली की पूर्व स्थापित परिपाटी का पालन करें, और न ही वे ऐसा करते हैं किंतु वे भारत सरकार के नेताओं के निर्देशों से बाध्य होते है। यह अपने आप में पूर्णरूप से असांविधानिक है। और यह सत्य है कि ऐसे निर्देश सत्तारूढ़ दल के हितों को बढ़ावा देने के लिए ही दिए जाते है।

इस प्रक्रिया में संघ के सिद्धांतों तथा लोक तंत्र के मानदण्डों का गंभीर रूप से हनन हुआ है। राज्य की स्वायत्तता भंग हुई है। यहां की जनता को संसदीय प्रणाली की पुरानी परिपाटी के अनुसार निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन किए जाने के अधिकार से वंचित रखा गया है, जैसा कि संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से कहा था।

केरल सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) ज्ञापन

(ग) केरल राज्य योजना मंडल द्वारा दी गई टिप्पणी

केरल

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 भारतीय संविधान एक संघीय संविधान है । जिसे "दोहरी राज्य व्यवस्था" भी कहा जा सकता है, इस दोहरी राज्य व्यवस्था से तात्पर्य केन्द्र में संघ से और राज्यों से है जिन्हें अपनी-अपनी परिधि में संविधान द्वारा सौंपे गए क्षेत्रों के लिए जिन्हें प्रभुता के अधिकार प्रदान किए गए हैं । भारतीय संघीय प्रणाली अन्य प्रणालियों से जिस एक बात में बिल्कुल अलग है वह है यह कि भारतीय संविधान समय और परिस्थितियों के अनुरूप एकात्मक तथा संघीय है । सामान्य परिस्थितियों में यह एक संघीय प्रणाली के रूप में कार्य करता है परंतु आपातकालीन परिस्थितियों में इसे एकात्मक प्रणाली में बदला जा सकता है ।

1.2 संविधान की मूल रूपरेखा को बदलना आवश्यक नहीं है फिर भी 34 वर्षों के लम्बे समय के बाद सांविधानिक ढांचे की व्यापक संवीक्षा की जानी आवश्यक हैं । इस संवीक्षा में विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने और समाज कल्याण उपाय करने के दायित्व के कारण राज्यों की बहुत अधिक बढ़ी हुई आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए तथा संविधान में ऐसे उपयुक्त संशोधनों की सिफारिश की जानी चाहिए जिसमें राज्यों की विकास की गति बढ़ाने के लिए आवश्यक शक्तियां दी जाएं ।

प्रश्न में उल्लिखित ऐसे कुछ उपबन्धों की समीक्षा करना आवश्यक समझा जाता है जिनमें जिनके बारे में प्रश्न भी उठाये गए थे, और जिनमें संघ को राज्यों के पर्यवेक्षक के रूप में कार्य करने का अधिकार दिया गया हैं ।

यह भी आवश्यक समझा जाता है कि राज्यों को, सम्पूर्ण राष्ट्रीय संसाधनों का अधिक भाग दिया जाना चाहिए ।

प्रश्नावली में विशेष प्रश्नों के उत्तर में विस्तार से विचार प्रस्तुत किए गए हैं ।

1.3 संविधान में बड़े परिवर्तन किया जाना आवश्यक प्रतीत नहीं होता । फिर भी यह महसूस किया गया कि संघ और राज्यों के बीच लगातार परामर्श की सुविधा के लिए कोई संस्था बना कर पर्याप्त रूप से व्यवस्था की जानी चाहिए और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए जिससे कि संघ राज्यों संबंधों और प्रशासन की प्रगति के बीच पैदा होने वाले तनावों और बाधाओं को दूर किया जा सके ।

1.4 नहीं, जिस प्रणाली का ऊपर उल्लेख किया गया है उसका कोई अस्तित्व नहीं है ।

1.5 हां, काफी मात्रा तक इस संबंध में नीचे कुछ आवश्यक उपायों का उल्लेख किया जा रहा है ।

(i) एक ऐसी अंतर्राज्यीय परिषद का संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत गठन किया जाए जो राष्ट्रीय विकास परिषद के रूप में भी कार्य करे, उस अनुच्छेद में भी संशोधन किया गया है जिससे कि एक अंतर्राज्यीय परिषद भी स्थापित की जा सके जो राष्ट्रीय विकास परिषद भी हो । अंतर्राज्यीय विकास परिषद एक ऐसा स्थायी निकाय होगा जिसे राष्ट्रीय महत्व के सभी मामले भेजे जा सकेंगे और जो समस्याओं के सभी पक्षों पर ध्यान देने के बाद प्राधिकृत रूप से परामर्श कर सकेगी ।

(ii) केन्द्रीय सरकार में निचले स्तर पर शक्तियां प्रत्यायोजित करके, विभिन्न केन्द्रीय अभिकरणों के स्थान पर क्षेत्रीय निकाय बना कर तथा संबंधित राज्यों के प्रतिनिधियों से युक्त स्थानीय समितियां गठित करके और जो कि क्षेत्रीय महत्व के मामलों पर विचार विमर्श करने और उन्हें अंतिम रूप देने के लिए संघ सरकार का एक ऐसा केन्द्रीय अभिकरण स्थापित कर के प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए ।

(iii) जब कभी संसद में अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान में संशोधन करने के प्रस्ताव पर चर्चा करनी हो तो इस संबंध में राज्यों से पूर्व परामर्श करना भी आवश्यक है ।

(iv) राज्यपाल को अनुच्छेद 200 के अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति के द्वारा विचार किए जाने के लिए सुरक्षित रखने की शक्ति का प्रयोग मंत्री परिषद की सलाह पर निरापवाद रूप से करनी चाहिए और इस स्थिति को सुस्पष्ट करने के लिए अनुच्छेद 200 में संशोधन की आवश्यकता है ।

(v) यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त पूर्वोपाय किए जाने चाहिए कि, अनुच्छेद 256 और 257 के अंतर्गत संघ को जो शक्ति दी गई हैं उनका इस प्रकार से इस्तेमाल नहीं किया जा रहा है कि राज्य के संविधान के अधीन निर्धारित विधि सम्मत शक्तियां कम हो जाएं या ऐसे किसी विषय में राज्य पहल न कर सके ।

(vi) अन्तरराज्य व्यापार और वाणिज्य को विनियमित करने के लिए एक प्राधिकरण का गठन किया जाना चाहिए जैसा कि अनुच्छेद 307 में बताया गया है ।

अन्य सुझाव विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देते हुए दिए गए हैं ।

1.6 देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है । अनुच्छेद 256, 257, और अनुच्छेद 352, 353 और 355 के अंतर्गत आपात स्थिति के उपबंध भी विशेष रूप से इसी प्रयोजन के लिए बनाए गए हैं ।

1.7 अनुच्छेद 256 और 257 में संघ की कार्य पालिका को यह शक्ति दी गई हैं कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य सरकारें संसद द्वारा बनाए गए नियमों का पालन कर रही है उन्हें निदेश जारी करें । और यह भी सुनिश्चित करें कि इनके कारण संघ द्वारा कार्य पालक शक्ति का प्रयोग करने में कोई रुकावट नहीं आ रही है या उनपर कोई प्रतीकूल प्रभाव नहीं पड़ रहा है । यह महसूस किया गया कि इस संबंध में पर्याप्त सुरक्षा बरती जानी चाहिए कि अनुच्छेद के अधीन संघ की शक्तियों का इस प्रकार से प्रयोग न किया जाए कि संविधान के अधीन राज्यों के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अधिकारों में बाधा पहुंच रही है या उनका हनन हो रहा है या ऐसे मामलों में राज्य कोई पहल नहीं कर पा रहे है । इन अनुच्छेदों में उल्लिखित अधिकारों को आरक्षित अधिकारों के रूप में रखा जाना चाहिए किंतु यह महसूस किया गया कि अनुच्छेद 365 से अनावश्यक रूप से तनाव उत्पन्न होता है और इसे हटा दिया जाना चाहिए । अनुच्छेद 356 में ऐसे अधिकारों का उल्लेख किया गया है जो नियमों का पालन न किए जाने के कारण उत्पन्न स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए पर्याप्त है ।

अनुच्छेद 356 का बना रहना आवश्यक है । जैसा कि संविधान सभा में हुए विचार विमर्श से पता चलता है इस प्रावधान का लक्ष्य यही है कि सांविधानिक तंत्र के व्यवधान उत्पन्न होने पर निर्वाचक मंडल को दूसरी सरकार चुनने का शीघ्र अवसर दिया जाए । जैसा कि पिछले अनुभवों से पता चलता है विधान मंडल को निलंबित रखने से राजनीतिक दलबदल तथा राजनीतिक खरीद-फरोख्त जैसी बातों को बढ़ावा मिलता है ।

1.8 भारत कुछ राज्यों का संघ है, ऐतिहासिक कारणों से संविधानिक राज्य संघ का एक भाग बन गए हैं। किसी विशेष मांग पर या लोक या राष्ट्रीय हित से इन राज्यों का पुनर्गठन आवश्यक हो सकता है। अतः संसद के लिए यह आवश्यक है उसके पास यह अधिकार हो जिसका उल्लेख अनुच्छेद 3 में किया गया है। इसी प्रकार से वर्तमान प्रावधान को भी रहने दिया जाए। संबंधित राज्यों के विधान मंडल को बिल भेजकर उनके विचार आमंत्रित करने से संबंधित जो प्रावधान परंतुक में रखा गया है उससे इस संबंध में संबंधित राज्यों के विचारों का पता चल जाएगा।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 सूचियों में प्रविष्टियां करने के संबंध में किए गए कई उपायों से संघ-सरकार का विधायी क्षेत्र विस्तृत हो गया था, इनमें से कुछ प्रविष्टियां भारत सरकार अधिनियम, 1935 में नहीं हैं। प्रथमतः राज्य सूची की बहुत सी प्रविष्टियां संघीय सूची (सूची II- प्रविष्टियां 13, 17, 22, 23, 24, 32 और 54) या समवर्ती सूची (उदाहरणतः सूची प्रविष्टियां 13, 26, 27 और 57) में की गई प्रविष्टियों, या संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून (उदाहरणतः सूची II-प्रविष्टियां 12, 37 और 50) के अधीन रखी गई हैं। दूसरी ओर, या तो संघीय सूची (उदाहरणतः सूची III- प्रविष्टियां 19 और 32) या संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून (उदाहरणतः सूची -III-प्रविष्टियां 31,33 (क) और 40) के अधीन समवर्ती सूची की कुछ प्रविष्टियां रखी गई हैं। तीसरे, संघीय सूची में ही की गई कई प्रविष्टियों द्वारा राज्य सूची का संघ सरकार द्वारा या तो जनहित में या राष्ट्रीय महत्व के कारणों से (उदाहरणतः सूची I प्रविष्टियां 52, 53, 54 और 56) जनहित (और प्रविष्टियां 62, 63, 64 और 67) राष्ट्रीय महत्व अतिक्रमण किया जा सकता है।

प्र० 72 के उत्तर में इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि सूची II में की गई प्रविष्टि 5.2 के अंतर्गत संघ सरकार द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग किए जाने के फलस्वरूप 1951 के उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम की अनुसूची का उत्तरोत्तर विकास करके उद्योगों से संबंधित राज्य सरकार की शक्तियां किस प्रकार लगभग पूर्णतः छीन ली गई हैं। इसी तरह से सूची I की प्रविष्टि 54 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करके खनिजों और खानों का विकास पूर्णतः इस सीमा तक नियंत्रित कर दिया गया है कि राज्य सरकारों की छोटे निक्षेप वाली विकेन्द्रित खानों से संबंधित कार्य करना असंभव प्रतीत होने लगा है।

इस संबंध में राज्य सरकार सुझाव देगी कि इन मामलों में सूची I में की गई प्रविष्टियां इस प्रकार से शब्दों में अभिव्यक्त की जानी चाहिए कि जिससे स्पष्ट हो सके कि शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण स्थितियों में ही किया जाएगा। ऐसे मामलों में अंतर्राज्यीय परिषद् से परामर्श करके केंद्रीय कानून बनाया जाना चाहिए और प्रत्येक ऐसे केन्द्रीय अधिनियमन की समीक्षा पांच वर्ष में एक बार की जानी चाहिए की "राष्ट्रीय महत्व" या जनहित की घोषणा के बाद बनाया गया है और जो अन्यथा रूप से राज्य के क्षेत्र के अंदर आया होता। यह समीक्षा एक राष्ट्रीय आयोग की नियुक्त करके की जाएगी जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल होंगे। इस प्रयोजन से केंद्रीय कानून में आवश्यक प्रावधान किए जाने चाहिए।

2.2 राज्य सरकार अवशिष्ट शक्तियों को छोड़ कर सातवीं अनुसूची में दी गई तीन सूचियों के अंतर्गत दिए गए विषयों के ब्यौरों में कोई परिवर्तन करने का सुझाव नहीं देती। सहयोगी संघवाद की भावना के अनुरूप और भारत सरकार अधिनियम, 1835 के सादृश्य पर अवशिष्ट शक्तियां समवर्ती सूची में रखी जा सकती हैं। इसके परिणामस्वरूप संविधान का अनुच्छेद 348 हटाया जा सकता है।

जहां तक संविधान के अन्य उपबंधों का संबंध है, अलग-अलग प्रश्नों के उत्तर देते समय ब्यौरेवार सुझाव दिए गए हैं।

2.3 हां, यह आवश्यक है कि राज्यों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले किसी भी कानून पर अनुच्छेद 263 के अंतर्गत गठित अंतर्राज्य परिषद् जैसे किसी मंच में विचार किया जाए।

राज्य सरकार का यह भी विचार है कि यदि कभी अनुच्छेद 368 के अंतर्गत सातवीं अनुसूची में संशोधन पर विचार किया जाना अपेक्षित हो तो संशोधन विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जाने से पूर्व इस संबंध में राज्य विधान मंडलों से पहले ही परामर्श कर लिया जाना चाहिए।

2.4 "राष्ट्रीय हित" या "जनहित" में की गई किसी घोषणा के कारण राज्यों की अनन्य क्षमता के अंदर आने वाले कुछ निश्चित विषयों पर संसद द्वारा बनाया गया विधान केवल किसी विशिष्ट अवधि के लिए ही होना चाहिए जिसकी समीक्षा समय-समय पर की जाएगी। कृपया प्र० 2.1 का उत्तर भी देखें।

2.5 अनुच्छेद 200 के अंतर्गत किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने की शक्ति का प्रयोग राज्यपाल द्वारा अनिवार्यतः मंत्रि-परिषद् की सलाह पर ही किया जाना चाहिए। उसकी स्थिति को संदेह से परे रखने के लिए अनुच्छेद 200 में आवश्यक संशोधन किया जा सकता है।

इसके लिए कुछ निश्चित समय सीमा निर्धारित की जा सकती है जैसे तीन महीने, जिसके अंदर राष्ट्रपति को इस संबंध में अपने इस निर्णय की सूचना राज्य सरकार को दे देनी चाहिए कि उसने विधेयक के लिए अपनी अनुमति दे दी है या उसने विधेयक के लिए अपनी अनुमति रोक दी है या विधेयक पर विधान मंडल द्वारा पुनः विचार किया जा सकता है जैसी कि अनुच्छेद, 200 और 201 में बताए गए संदेश में सिफारिश की गई है। यदि राष्ट्रपति अपनी अनुमति रोक देते हैं, तो इसके कारण का अवश्य उल्लेख किया जाना चाहिए।

भाग III

राज्यपाल का कार्य

3.1(क) संविधान में राज्यपाल को राज्याध्यक्ष के रूप में चित्रित किया गया है, जिसके नाम से सरकार कार्य करती हैं। सरकार चलाने में राज्यपाल को मंत्रि-परिषद् की सलाह पर कार्य करना पड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण अवसर वे होते हैं जब राज्यपाल को मंत्रि परिषद् से परामर्श किए बिना मुख्यमंत्री की नियुक्ति से संबंधित कार्य करने पड़ते हैं और जब उसे अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य में संविधान की कार्यप्रणाली में व्यवधान आ जाने पर राष्ट्रपति को सूचित करना होता है।

(ख) राज्यपाल सामान्यतः संवैधानिक राज्याध्यक्षों के रूप में कार्य करते हैं और संविधान में उनके लिए नियत की गई भूमिका को निभाते हैं। जब कभी भी राज्यपाल को विवेकाधिकार का प्रयोग करना पड़ा है, उदाहरणतः किसी नेता को सरकार बनाने के लिए बुलाने या न बुलाने में जिसे कि बहुमत का समर्थन स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं था या जब अनुच्छेद 356 के अंतर्गत कार्रवाई की सिफारिश करनी थी या नहीं करनी थी, तब राज्यपालों ने अलग-अलग तरीके अपनाए हैं।

3.2 राज्यपाल का मुख्य कार्य संवैधानिक राज्याध्यक्ष के रूप में कार्य करना है, पर वह राज्य और केन्द्र के बीच संवैधानिक सम्पर्क स्थापित करने का भी कार्य करता है। मतभेद होने की स्थिति में उसे राज्य और देश के व्यापक हितों में राज्य और केंद्र सरकारों दोनों को वस्तुनिष्ठ ढंग से परामर्श देना चाहिए।

3.3 जैसे प्र० 3.1 के उत्तर में उल्लेख किया गया है कि उन मामलों में जिनमें यह स्पष्ट नहीं था कि कारवाई किस प्रकार की जाए और निर्णय और विवेकाधिकार का प्रयोग करना था उसमें राज्य पालों ने अलग-अलग तरीके अपनाए थे। कृपया प्र० 4.4 के उत्तर भी देखें।

3.4 अनुच्छेद 200 और 201 : संविधान के अनुच्छेद 168 के अनुसार राज्य के विधान मंडल में राज्यपाल और विधान सभा के सदस्य शामिल होते हैं। इसलिए, राज्यपाल विधान मंडल का हिस्सा होता है और उसका विधान सभा के महत्व के अनुसार ही महत्व होता है। विधान-मंडल को अनुच्छेद 246 द्वारा कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। इसलिए, कोई भी कानून विधान सभा और राज्यपाल द्वारा संयुक्त रूप से बनाया जाएगा। यही कारण है कि अनुच्छेद 200 में यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी विधेयक केवल राज्यपाल द्वारा अनुमति दिए जाने के बाद या यदि राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की सिफारिश की गई हो तो राष्ट्रपति द्वारा अनुमति दिए जाने के बाद ही कानून बन सकता है।

संविधान के अंतर्गत विधायी शक्ति राज्य विधान मंडल और संसद के बीच बांट दी गई है। ऐसा भी किसी समय हो सकता है कि किसी विधान सभा द्वारा पारित कानून में ऐसे उपबंध हो जो राज्य विधान मंडल की विधायी क्षमता में न आते हों। अन्य मामलों में राज्य विधान सभा द्वारा पारित किसी कानून में ऐसे उपबंध हो सकते हैं जो संघ सरकार की नीति के विरुद्ध हों या राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक हों। ऐसी परिस्थितियों में ऐसे उपबंधों में काफी संशोधन करने की आवश्यकता होती है। अनुच्छेद 200 के अंतर्गत, यदि राज्यपाल द्वारा सदन को लौटाया गया कोई विधेयक राज्यपाल की अनुमति पाने के लिए राज्यपाल के पास पुनः प्रस्तुत किया जाता है तो राज्यपाल अनुमति रोक नहीं सकता। अनुच्छेद 201 के अंतर्गत, राष्ट्रपति संशोधन सहित या संशोधन के बिना विधेयक के पुनः प्रस्तुत किए जाने पर भी अनुमति देने के लिए बाध्य नहीं है। यदि किसी विधेयक में विधान सभा द्वारा अनिवार्यतः इस प्रकार से संशोधन किया जाना है तो ऐसा केवल अनुच्छेद 201 में किए गए प्रावधान के अनुसार ऐसे परिवर्तन करने के लिए सदन को विधेयक लौटा कर ही किया जा सकता है। इसलिए केंद्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के आबंटन को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 200 और 201 को बनाए रखना आवश्यक है।

इस राज्य में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला है, जिसमें राज्यपाल ने मंत्रि–परिषद् से कोई सलाह लिएं बिना ही किसी विधेयक पर अपनी अनुमति रोक दी हो या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा हो ।

3.5 हां, बहुत से मामलों में पर्याप्त विलम्ब हुआ है। इस राज्य में हाल के वर्षों में कुछ उदाहरण मिले हैं जो नीचे दिए गए हैं:—

(i) केरल नैमित्तिक, अस्थायी और बदली कर्मकार (मजदूरी) विधेयक, 1977;

(ii) लोक सम्पत्ति (विनाश और हानि निवारण) विधेयक, 1978;

(iii) केरल काजू कर्मकार राहत और कल्याण कोष विधेयक, 1979;

(iv) केरल भूमि सुधार (संशोधन) विधेयक, 1980।

3.6 प्र० 3.1 के उत्तर में इस विषय को शामिल किया गया है।

3.7 नहीं ।

3.8 नहीं/इसकी जिम्मेदारी मुख्य मंत्री पर छोड़ दी जानी चाहिए जिसे राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया गया है।

3.9 जर्मन संघीय गणराज्य के मूल कानून के अनुच्छेद 67 के समकक्ष ऐसे किसी भी उपबंध में गंभीर त्रुटि है। इसके अंतर्गत प्रत्येक अल्पमत सरकार आसानी से निरंतर लम्बे समय तक बनी रह सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी संभावना है कि इसके बाद सत्ता संभालने की इच्छा रखने वाली कोई भी सरकार जिससे अन्य लोगों का समर्थन प्राप्त करने के लिए अवांछनीय तरीकों को अपनाएगी। प्रलोभन देकर अपने गुट में शामिल करने और दलबदल को बढ़ावा मिलेगा। इसका बेहतर विकल्प यह है कि वर्तमान सरकारों को कामचलाऊ सरकार के रूप में सत्ता में बनाए रखकर विधान सभा भंग कर दी जाए और नए चुनाव कराने का आदेश दे दिया जाए।

3.10 क्या कोई अनुदेश पत्र राज्यपालों को जारी किया जाना चाहिए, इस विषय पर संविधान सभा में विचार किया गया था पर बाद में इस विचार को छोड़ दिया गया था। 1978 में, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपालों की समिति ने भी यह विचार किया था कि ऐसे कोई मार्गदर्शी सिद्धांत तैयार करने व्यावहारिक नहीं थे जिनमें सभी संभाव्यताओं को शामिल किया जा सकता। परन्तु ऐसा, प्रतीत होता है, कि पिछले 34 वर्षों के दौरान ऐसी ही स्थितियों से निपटने के लिए रायपालों द्वारा अपनाए गए अलग अलग तरीकों के अनुभव के आधार पर राज्यपालों द्वारा अपनी विवेक संबंधी शक्तियों का प्रयोग किए जाने के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित किए जा सकते हैं।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 अनुच्छेद 256 और 257 के अंतर्गत कोई निदेश दिए जाने के किसी उदाहरण की सूचना इस राज्य को नहीं मिली है।

4.2 अनुच्छेद 365 में संघ सरकार द्वारा किसी राज्य सरकार को दिए गए किसी निदेश का अनुपालन किए जाने का परिणाम बताया गया है। संघ सरकार द्वारा निदेश देने की शक्ति को केंद्र और राज्यों द्वारा कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में तालमेल बनाए रखने के लिए एक आरक्षित शक्ति के रूप में होना चाहिए। परन्तु अनुच्छेद 365 के उपबंधों को सांविधिक प्राधिकार प्रदान करने वाले अधिनियमों के उपबंधों के आधार पर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है।

यह सही है कि अनुच्छेद 256 और 257 के अंतर्गत दी गई शक्तियां और इनके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 365 के अंतर्गत दी गई शक्तियां अब तक प्रयोग नहीं की गई हैं। संविधान से अनुच्छेद 365 का हटाया जाना सहभागी संघीय भावना के अनुरूप होगा। अनुच्छेद 356 के अंतर्गत किए गए प्रावधान ऐसी किसी स्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त होने चाहिए जिसमें राष्ट्रपति यह समझते हैं कि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य नहीं कर सकती।

4.3 चूंकि अनुच्छेद 256 के अंतर्गत कोई निदेश जारी नहीं किया गया है इसलिए यह प्रश्न केवल कल्पना मात्र है। हम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों से सहमत हैं और यदि द्विपक्षीय विचार-विमर्श सफल नहीं होते तो जिसमें फोरमों ऐसे विचार विमर्श किए जा सकते हैं, उनमें से एक फोरम अंतर्राज्य परिषद (राष्ट्रीय विकास परिषद्) के रूप में होगा।

4.4 1951 और 1976 के बीच राज्यों में 30 बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था। इन सभी मामलों के सर्वेक्षण से यह पता चलेगा कि इस अनुच्छेद के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग ऐसी स्थिति में करने के अतिरिक्त जब कोई निर्वाचित सरकार विधान मंडल में बहुमत न रहने के कारण निरंतर सत्ता में नहीं बनी रह सकी तब निम्नलिखित में से एक परिस्थिति में या अन्य परिस्थितियों में इन शक्तियों का प्रयोग किया गया था :

(i) किसी ऐसी सरकार जिसे बहुमत तो प्राप्त हो पर राज्य में बड़े पैमाने पर आंतरिक अशान्ति होने के कारण बरखास्त किया जाना।

(ii) विधान सभा भंग किए बिना विधान सभा को निलंबित करके राष्ट्रपति शासन लागू करना।

1977 में जब पहली बार केंद्र में एक नई पार्टी सत्ता में आई तब कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाले राज्य विधान-मंडलों और राज्य सरकारों को सामूहिक रूप से भंग कर दिया गया था। ऐसा पहले कभी नहीं किया गया था। केंद्र में किसी विशिष्ट पार्टी को भारी जीत अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति की संतुष्टि का कारण नहीं होनी चाहिए और न ही है।

संविधान में ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि संसदीय चुनाव इस बात की अभिव्यक्ति करता है कि राज्य विधान मंडल के संबंध में लोगों की निजी राय क्या है। नौ लोकप्रिय राज्य सरकारों के बर्खास्त किये जाने से कोई अच्छा उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। 1980 में भी इसी प्रकार कुछ राज्य विधान-मंडलों का विघटन किया गया था।

केन्द्र और संसद से संबंधित चुनाव परिणामों के आधार पर राज्य सरकारों की बड़ी संख्या में बर्खास्तगी और राज्य विधान मंडलों का विघटन करना अनुच्छेद 356 के आशय और प्रयोजन से विपरीत है। ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति होने से रोकने के लिए अनुच्छेद 356 में आवश्यक सुरक्षा उपाय किए जाने चाहिए।

4.5 दीर्घकालिक राष्ट्रपति शासन ऐसी कठिनाइयों को दूर करने का कोई संतोषजनक उपाय नहीं है। इसलिए यह माना जाता है कि खंड (4) और (5) में के अंतर्गत आनेवाले उपबंधों में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है।

4.6 यह अनुभव किया गया है कि जनगणना और चुनाव जैसे कार्यों के कार्यान्वयन की वर्तमान व्यवस्थाएं संतोषजनक ढंग से कार्य कर रही हैं।

4.7 1. कुछ निश्चित नीतियों का अनुसरण करने के लिए ये सभी एजेंसियां बनाई गई हैं। इसलिए इस प्रश्न पर दो स्तरों पर विचार विमर्श किया जा सकता है—क्या ये नीतियां आवश्यक हैं और समग्र नीति के अंदर क्या ये एजेंसियां जो कार्य कर रही हैं उन्हें करते रहना चाहिए।

2. कृषि कीमत आयोग और भारतीय खाद्य निगम अधिशेष खाद्यान्न वाले क्षेत्रों से प्राप्ति करके या आयात करके सरकार के नियंत्रणाधीन खाद्यान्न का स्टाक रखने और घाटे वाले क्षेत्रों की सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा खाद्यान्न उपलब्ध करवाने संबंधी बुनियादी आवश्यकता के कारण बनाए गए हैं। उत्पादक, संसाधक, व्यापारी और उपभोक्ता के बीच मध्यस्थता एक अति संवेदनशील विषय है। इसका एक रास्ता है कि इस विषय को पूर्णत: बाजार पर छोड़ दिया जाए। यदि भारत जैसे देश में खाद्यान्नों के मामले में ऐसा किया जाता है जहां खाद्यान्नों का उत्पादन मानसून की कृपा पर ही निर्भर हो और जिस देश के बड़े भागों में समय समय पर सूखा पड़ता हो और उसके कारण खाद्यान्नों की कमी आ जाती हो वहां उत्पादक और उपभोक्ता दोनों को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। कृषि कीमत आयोग द्वारा किए गए अध्ययनों के माध्यम से अधिशेष खाद्यान्न वाले क्षेत्रों से प्राप्ति करने के लिए न्यूनतम कीमतों का निर्धारण करने, भारतीय खाद्य निगम द्वारा भारत सरकार के पास खाद्यान्नों का स्टाक करने और उन्हें घाटे वाले क्षेत्रों में उपलब्ध करवाने संबंधी व्यवस्थाओं से उन कीमतों में होने वाला अत्यधिक उतार चढ़ाव कम होगा जो उत्पादक अन्य किसी प्रकार से प्राप्त करेंगे और उन कीमतों के उतार चढ़ाव में भी कमी होगी जो उपभोक्ताओं को दूसरी ओर अदा करनी पड़ेगी। जब तक भारत में खाद्यान्नों की प्राप्ति अधिकांशत: स्वैच्छिक रूप से और अधिशेष खाद्यान्न वाले क्षेत्रों से की जाती है तब तक लागू व्यवस्थाओं पर वास्तविक रूप से कोई आपत्ति नहीं हो सकती। अधिशेष वाले क्षेत्र समय समय पर यह महसूस कर सकते हैं कि यदि वे अपने उत्पादों की बाजार में बिक्री करने में स्वतंत्र हों तो वे अधिक प्राप्ति करेंगे। ऐसा हो सकता है। पर अच्छी वर्षा के वर्षों में कीमतें भी बहुत कम होंगी। ऐसी किसी भी व्यवस्था से केवल बीच के व्यापारी को लाभ होगा।

3. एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार आयोग और तकनीकी विकास महानिदेशालय जैसी एजेंसियां एकाधिकार रखने वाली एजेंसियों के विकास को रोकने, प्रतिबंधात्मक व्यापार पद्धतियों के साथ कार्रवाई करने और स्वदेशी प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके भारतीय उद्योग को संरक्षण देने संबंधी नीतियों का अनुसरण करने के लिए बनाई गई हैं। समग्र रूप से नीतियां अपने आप में बेजोड़ हैं। यद्यपि, उस ढंग के कारण, जिस ढंग से औद्योगिक लाइसेन्स देने और नियंत्रण के कार्य का कार्यान्वयन किया गया है, तकनीकी विकास महानिदेशालय जैसे संगठन अति व्यापक रूप से इस कार्य में संलग्न हैं। एकाधिकार रखने वाली एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय एजेंसियों के नियंत्रण और लघु उद्योग तथा स्वदेशी प्रौद्योगिकी के संरक्षण से संबंधित तरीके से भिन्न तरीके से इसका समाधान किया जा सकता है। (कृपया नीचे भाग VII में दिए गए प्रश्नों के उत्तर देखें)।

4. इन विषयों से संबंधित केन्द्रीय अधिनियमों के अनुसरण में केंद्रीय जल और विद्युत आयोग (बाद में केंद्रीय जल आयोग और केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण हो गया) बनाया गया था। आधारिक संरचनात्मक सुविधाएं होने के कारण उन की गुणता सुनिश्चित करने और अंतर्राज्य मामलों से निपटने के प्रयोजनों से केन्द्रीय विधान बनाना आवश्यक है। परन्तु, वर्षों से ये निकाय आवधिक छोटे महत्व के मामलों का निपटान कर रहे हैं। यहां तक कि बहुत छोटी परियोजनाओं को भी मंजूरी के लिए उनके पास प्रस्तुत किया जाना था। इन प्राधिकरणों के तकनीकी अधिकारी इन पर अति विस्तृत रूप से विचार करते हैं जबकि राज्यों के कुछ इंजीनियर और व्यावसायिक जिन्होंने ये प्रस्ताव, परियोजना रिपोर्ट और डिजाइन भेजे हैं, केन्द्रीय निकायों के कई कनिष्ठ कार्यकर्ताओं से विशेष रूप से वास्तविक फील्ड कार्य में तुलना किए जाने पर कहीं अधिक सक्षम पाए गए हैं, इसका यही समाधान है कि वे केन्द्रीय निकाय अपना संबंध केवल विशेष आकार से बड़ी परियोजनाओं से और उन परियोजनाओं से रखें जो अन्तर्राज्यीय अपेक्षाओं से संबंधित हैं।

5. कर्मचारी राज्य बीमा निगम और कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के मामले में कानून बनाने की व्यवस्था करना और इनके कार्यान्वयन का कार्य राज्य सरकारों पर छोड़ना और समय समय पर निरीक्षण करने और उसकी रिपोर्ट संसद के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए केवल छोटी तकनीकी एजेंसी रखना ही केंद्रीय सरकार के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इन संस्थाओं को बनाना और विशाल केंद्रीय अधिकारी तंत्र रखना पूर्णत: अनावश्यक था। इसी तरह से राष्ट्रीय बचत संगठन के मामले में भी केंद्रीय सरकार विभिन्न योजनाएं और सुविधाएं निर्धारित कर सकती है और उन्नति किए जाने के कार्य और अन्य कार्य राज्य सरकारों पर छोड़ सकती है। डाकघर जितनी बचत करेंगे केंद्रीय सरकार उतनी ही प्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में शामिल होगी।

6. औद्योगिक लागत और कीमत ब्यूरो की स्थापना उन औद्योगिक उत्पादों के लिए उचित कीमतें निर्धारित करने के संबंध में सरकार को सलाह देने के लिए की गई थी जो आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण समझे जाते हैं। टैरिफ आयोग के कार्यों में कमी होने से और उसकी भूमिका छोटी हो जाने से ब्यूरो ने उस निकाय के बचे हुए कार्य भी अपने अधिकार में ले लिए हैं। भारत जैसे विशाल देश जिसमें औद्योगिक उत्पादों का उत्पादन केवल कुछ भागों में होता है और जिनका ऐसी यूनिटों द्वारा भी उत्पादन किया जाता है जो पुरानी भी है और नई यूनिटों भी और जिन्हें बार बार कमी का सामना करना पड़ता है, इसलिए समय समय पर आवश्यक औद्योगिक उत्पादों की उचित कीमतें निर्धारित करना आवश्यक है। एक बार इस तर्क के स्वीकार कर लिए जाने पर औद्योगिक लागतों के अध्ययन और कीमतों के संबंध में सुझाव देने के लिए एक व्यावसायिक ब्यूरो की आवश्यकता पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता।

7. सामान्यत: इन मामलों में प्रश्न मूलत: केंद्र और राज्य के बीच उसी तरह का नहीं है जैसा कि सरकार और मार्केट के बीच है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है कि बाजार में सरकार का हस्तक्षेप व्यापक हितों में आवश्यक है जैसे कि मूल खाद्यानों और आवश्यक मध्यवर्ती वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण के मामले में होता है तब कृषि कीमत आयोग (ए० पी० सी०) भारतीय खाद्य निगम और औद्योगिक लागत और कीमत ब्यूरो जैसे निकायों की स्थापना करना और उनका कार्य करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

8. यद्यपि, लगभग ये सभी केंद्रीय संगठन उन विषयों पर विचार करते हैं जो राज्यों से संबंधित है और जिनसे राज्य सरकारों की शक्तियों का अतिक्रमण होता है अत: यह सुनिश्चित करने के लिए संस्थागत व्यवस्थाएं करना आवश्यक हैं कि राज्यों से परामर्श कर लिया गया है और यह भी सुनिश्चित आवश्यक है कि उनके विचार और प्रतिक्रियाएं समय समय भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं। इन संगठनों में से प्रत्येक के लिए मंत्रियों के स्तर पर एक ऐसी अखिल राज्य सलाहकार परिषद् (या किसी केंद्रीय मंत्रालय से संलग्न एजेंसियों के लिए कम से कम एक परिषद्) का होना उचित होगा, जिसकी वर्ष में एक बार बैठक होनी चाहिए और उसमें संगठन/संगठनों की नीतियों, उनकी भूमिका और कार्य पर विचार किया जाना चाहिए।

4.8 अखिल भारतीय सेवाएं, जैसे कि आज गठित हैं, नीति बनाने के स्तर पर और जिला स्तर पर कार्य के समन्वय में राज्य सरकार की सहायता करने और उसे सलाह देने के लिए समुचित रूप से दक्ष और सबसे ऊपर के श्रेष्ठ सिविल कर्मचारियों की व्यवस्था की है। देश के अलग अलग भागों में अधिकारियों के पर्याप्त संख्या में बिखराव ने नि:संदेह सेवा को वास्तविक अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया है। 331/3% (एक तिहाई) पदोन्नति के कोटे की वर्तमान व्यवस्था से सिविल सेवा के पदानुक्रम में उच्चतर स्तर पर पहुंचने के लिए राज्य सिविल सेवा के हित को रक्षा हुई हैं।

वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार में सर्वोच्च सिविल सेवा का गठन विभिन्न राज्य संवर्गों से लिए गए अधिकारियों से मिलकर हुआ है। इस व्यवस्था से केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को राज्य और जिला स्तर की क्षेत्र स्थितियों से अवगत बने रहने में सहायता मिलती है। इस कारण से भी वर्तमान व्यवस्थाएं सही और वांछनीय प्रतीत होती हैं।

अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के अनुशासनिक नियंत्रण और सेवा शर्तों के प्रश्न पर वर्तमान व्यवस्थाएं जो अधिकांशत: सरकार बनाम संघ सरकार के राजनीतिक स्वरूप को आधार बनाकर की गई है, राज्य स्तर पर राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा समय समय पर मिली जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की गई हैं। पर कुल मिलाकर वर्तमान व्यवस्था की उपयोगिता को सामान्यत: स्वीकारा गया है, जिससे संवर्ग में पूर्ण रूप से उच्च स्तर की ईमानदारी और समुचित दक्षता बनाए रखने में सहायता मिली हैं।

4.9 वस्तुत: व्यवहार में केन्द्रीय सरकार सामान्यत: केवल संबंधित राज्य सरकार द्वारा मांग किए जाने पर ही सिविल सत्ता की सहायता के लिए केंद्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र सेनाओं को तैनात करती है। वास्तव में केंद्रीय सरकार विभिन्न राज्यों द्वारा मांग किए गए अनुसार उपर्युक्त सशस्त्र सेनाओं की पर्याप्त टुकड़ियों की व्यवस्था करने की स्थिति में नहीं रही है।

हम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा व्यक्त विचारों से सहमत हैं और हमारी यह राय है कि अनुच्छेद 355 के अंतर्गत अपेक्षित व्यवस्थाएं राष्ट्रीय अखंडता के व्यापक हितों में आवश्यक हैं।

4.10 राज्यों को भी आल इंडिया रेडियो दूरदर्शन जैसे संगठनों और अन्य समाचार माध्यम के प्रशासन में विचार व्यक्त करने चाहिए क्योंकि इनकी राज्य सरकारों के कार्य से संबंधित सही जानकारी का प्रसार करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रयोजन से राज्य स्तर पर संयुक्त सलाहकार परिषदों का गठन किया जा सकता है।

4.11 चूंकि राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के लागू होने के बाद पहले वर्षों में इन आंचलिक परिषदों की नियमित अंतरालों पर बैठक होती थी, पर अब इनकी बैठकें कम और विरले ही होती हैं। क्या ये उन उद्देश्यों को पूरा करती हैं कि जिनके लिए इनका गठन किया गया था और किस सीमा तक उन उद्देश्यों को पूरा करती हैं, कहना कठिन है।

4.12 यह आवश्यक समझा गया है कि अनुच्छेद 263 के अंतर्गत एक अंतर्राज्य परिषद् की स्थापना करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए ताकि राज्य सरकारों में परस्पर तथा केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच नीति और कार्यक्रमों में बेहतर समन्वय स्थापित हो सके। अनुच्छेद 263 में ही यह व्यवस्था करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि ऐसी किसी भी अंतर्राज्य परिषद् का गठन किया जाएगा जो राष्ट्रीय विकास परिषद् भी होगी। ऐसे सभी मामले जो राज्यों से भी समान रूप से संबंधित है, अध्ययन और विचार विमर्श के लिए इस परिषद् के क्षेत्र में लाए जाने चाहिए। सांविधानिक संशोधन करने संबंधी ऐसा कोई भी प्रस्ताव, जो संघ-राज्य सरकारों के संबंधों को प्रभावित करता हो, उसे भी अंतर्राज्य परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि उस संबंध में राज्य सरकार के विचार क्या हैं इनकी जानकारी प्रस्ताव के संसद के समक्ष प्रस्तुत किए जाने से पहले ही मिल सके।

परिषद् का गठन प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा बताए गए तरीकों से किया जा सकता है अर्थात् परिषद् का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होगा, केंद्रीय गृह, वित्त और खाद्य मंत्री और उन अन्य विषयों के प्रभारी मंत्री, जो केंद्र और राज्यों से समान रूप से संबंधित हों, और सभी राज्यों के मुख्य मंत्री भी उसके सदस्य होंगे। राज्यों के अन्य मंत्री आवश्यकतानुसार सहयोजित किए जा सकते हैं। परिषद् के गठन और कार्यों से संबंधित कानून सादा होना चाहिए ताकि समय के साथ साथ इसकी कार्य प्रणाली में सुधार की गुंजाइश रह सके।

पुनर्गठित की गई राष्ट्रीय विकास परिषद् का सचिवालय योजना आयोग को बनाया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि परिषद् की कम से कम छह महीने में एक बार बैठक हो। परिषद् की वार्षिक रिपोर्ट संसद और राज्य विधान-मंडलों के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 संविधान निर्माताओं द्वारा बनाई गई संसाधन सुपुर्द करने संबंधी योजना एक ऐसी योजना थी जिसके अंतर्गत संघ से राज्यों को किया जाने वाला संसाधनों का अधिकांश अंतरण वित्त आयोगों की सिफारिशों द्वारा किया जाना था। केंद्रीकृत योजना के अंतर्गत संसाधनों के अंतरण की आवश्यकता पर उस समय ध्यान नहीं दिया गया था। योजनाबद्ध विकास के लिए संसाधनों के अंतरण का अर्थ पूंजीगत संसाधनों का अंतरण भी था। देश में बचतों के केंद्रीकरण से राज्य योजनाओं के लिए अंतरित किए जाने वाले पूंजीगत संसाधनों की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ानी थी। वित्त आयोगों द्वारा राज्यों को अंतरित किए गए संसाधनों की प्रतिशतता केवल 40.4 है। लगभग 60 प्रतिशत अंतरण वित्त आयोग के बाहर किया गया था (देखिए प्र० 5.5 का उत्तर) इसलिए संविधान निर्माताओं द्वारा बनाई गई सुपुर्द करने की मूल योजना का व्यवहार में अनुसरण नहीं किया गया। इसलिए प्रश्न यह उठता है कि क्या योजनाबद्ध विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए हमारे अनुभव के आधार पर संविधान में कोई परिवर्तन किए जाने आवश्यक हैं।

राज्यों के संसाधनों के समस्त अंतरण से संबंधित राज्य सरकार के ब्यौरेवार विचार प्र० 5.5 के उत्तर में दिए गए हैं। परन्तु हम नहीं समझते कि राज्यों के केंद्रीय संसाधनों के आबंटन के लिए कोई एक ही निकाय बनाने या बहुत सी एजेंसियां बनाने के लिए दिए गए विभिन्न सुझाव व्यावहारिक हैं। हमारा यह अनुभव है कि वर्तमान संस्थागत व्यवस्था अर्थात् वित्त आयोग और योजना आयोग—केंद्रीय सहायता पाने के लिए शायद अत्यधिक व्यावहारिक तंत्र हैं। परन्तु वर्तमान तंत्र के कार्य में सुधार लाया जाना चाहिए और दो आयोगों के बीच प्रभावशाली समन्वय लाने के लिए और राज्यों तथा उनके द्वारा किए जाने वाले अंतर्राज्यीय वितरण के लिए केंद्रीय सहायता की सीमा निर्धारित करने के लिए वस्तुनिष्ठ मानदण्ड होना चाहिए।

5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा बताई गई समग्र स्थिति अभी तक मान्य है जैसा कि नीचे दी गई तालिका से देखा जा सकता है :--

संवितरण की % के रूप में केंद्रीय अंतरण*	
1951-56	37.8
1956-61	39.8
1961-66	45.7
1966-69	47.2
1969-74	47.4
1974-79	42.1
1979-84	41.6

*साथ-साथ लिया गया राजस्व और पूंजी लेखा।

संघ और राज्यों के राजकोषीय संबंधों को पूरी तरह से अलग करना न तो वांछनीय है और न ही व्यावसायिक है। इसी तरह से संघ सरकार की सभी कर शक्तियों पर विचार करना भी वांछनीय नहीं है। योजनाबद्ध विकास के संदर्भ में राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं की दृष्टि से समग्रत: विचार करना आवश्यक है। सभी आय कर (जिनमें निगम कर और अधिभार शामिल हैं) और सभी उत्पाद शुल्क, चाहे उन्हें जो कोई भी नाम दिया गया हो, राज्यों में बांटे जाने चाहिए और राज्यों को अधिकांश संसाधन सुनिश्चित रूप से सुपुर्द करके अंतरित किए जाने चाहिए। पर अंतर्राज्य वितरण के सिद्धांत ऐसे होने चाहिए कि उन्नत राज्यों को बड़ी मात्रा में अतिरिक्त संसाधन मिलें। संघ और राज्यों के बीच कर से होने वाली आय को छोड़कर संसाधनों के अधिक साम्यपूर्ण वितरण के लिए संस्थागत व्यवस्था की जानी चाहिए।

5.3 राज्यों को और अधिक वित्तीय शक्तियां प्रदान करने से सम्पन्न राज्यों को लाभ होगा और इससे अंतर्राज्यीय असमानताएं बढ़ सकती हैं। इसलिए हम एक ऐसे शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता से सहमत हैं जिसके पास संतुलित क्षेत्रीय विकास के हित में, राज्यों को आबंटित करने के लिए पर्याप्त संसाधन हों।

राज्यों के अनुभव के आधार पर यह विचार है कि संघ सरकार केवल (i) उन स्रोतों से आय बढ़ाए जो केवल उसीके लिए हैं, (ii) उन स्रोतों या मदों से आय न बढ़ाए जिनका राज्यों से बंटवारा किया जाता है और (iii) उन स्रोतों और मदों जिनका राज्यों से बंटवारा किया जाता है, पर रियायतें देने के

लिए, इच्छुक हैं ताकि बँटवारा किए जाने वाले संसाधनों की मात्रा कम हो जाए। इसके परिणामस्वरूप, जैसे कि प्र० 5.5 के ब्यौरेवार उत्तर में बताया गया है, विवेकानुसार किए जाने वाले अंतरणों की मात्रा अधिक हो जाती है और ये अंतरण इस प्रकार के नहीं किए जाते हैं जिससे अंतर्राज्यीय असमानताएँ कम हो सकें।

हमारी यह राय है कि ऐसी संस्थागत व्यवस्थाएं करने और मानदंड बनाना आवश्यक है जिससे राज्यों में विश्वास की भावना जागृत हो। राज्य को किए जाने वाले संसाधनों का अधिकांश अंतरण सुनिश्चित रूप से सुपुर्द करके किया जा सकेगा पर सुपुर्द करने के सिद्धांत पुन: ऐसे होने चाहिए जिससे असमानता कम ही सके न कि इनसे असमानता बढ़े। ऐसे मानदंड अपनाए जाने चाहिए और राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को प्रधानता दी जानी चाहिए जैसे सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा देने के कार्य में प्रगति करना, ताकि ऐसे राज्य, जिन्होंने इन मापदंडों की प्राप्ति के लिए संसाधनों का व्यय किया है। अपने वायदों को पूरा करने में समर्थ हो सकें।

5.4 यह कहना ठीक नहीं है कि केन्द्रीय राजस्व लेखे में घाटे राज्य सरकारों को संसाधन सुपुर्द किए जाने के किसी कारण से हुए हैं। जैसे कहीं और भी बताया गया है कि वित्त आयोग और योजना आयोग की सिफारिशों द्वारा राज्य सरकारों को किए जाने वाले अंतरणों को उदारतापूर्ण या पर्याप्त भी नहीं कहा जा सकता।

पिछले 34 वर्षों में सरकारों को अंतरित किए गए कुल केंद्रीय संसाधनों का अनुपात नीचे दी गई तालिका में दिया गया है। इससे पता चलता है कि इन वर्षों में अनुपात में कोई वृद्धि नहीं हुई है :

अवधि		राज्यों को अंतरित केन्द्रीय *संसाधनों का अनुपात
प्रथम योजना	(1951-56) . .	36.4
द्वितीय योजना	(1956-61) . .	31.3
तृतीय योजना	(1961-66) . .	31.3
वार्षिक योजनाएं	(1966-69) . .	31.4
चतुर्थ योजना	(1969-74) . .	36.4
पंचम योजना	(1974-79) . .	30.7
छठी योजना	(1979-84) . .	32.6

*राजस्व और पूंजी तथा घाटे का वित्तीयन भी शामिल हैं।

केंद्रीय राजस्व के घाटों की समस्या जो पिछले 4 से 5 वर्षों तक की एक नई घटना है का उत्तर यही है कि बेहतर आयकर, उत्पाद और सीमा शुल्क प्रशासन द्वारा और अधिक संसाधन जुटाए जाएं और तथा व्यय पर और अधिक नियंत्रण रखा जाए।

राजस्व घाटों से बचना चाहिए पर समस्त घाटे के वित्तीयन से पूरी तरह से नहीं बचा जा सकता, इसे उचित सीमाओं में रखना चाहिए ताकि मुद्रा स्फीति की वार्षिक दर किसी भी स्थिति में एक अंक की संख्या से अधिक न हो।

इसलिए, केंद्रीय घाटों की समस्या का उत्तर ऐसे विषयों अर्थात् और अधिक संसाधन जुटाने, व्यय पर और अधिक नियंत्रण रखने और किसी निश्चित सीमा तक घाटे के वित्त के संयोजन से मिलता है। सम्पन्न राज्यों द्वारा केन्द्रीय पूल को आर्थिक सहायता देना हमारे संदर्भ में व्यावहारिक नहीं है।

5.5 केंद्र से राज्यों को संसाधनों के अंतरण के तीन माध्यम हैं अर्थात् वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर कानूनी अंतरण करना, राज्य की योजनाओं के लिए योजना आयोग द्वारा राज्यों को केंद्रीय सहायता देना और अलग अलग प्रयोजनों से केंद्रीय सहायता देना और अलग अलग प्रयोजनों से केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा विवेकानुसार अंतरण करना। पिछले 32 वर्षों के दौरान किए गए इन तीनों श्रेणियों के अंतरणों के बारे में ब्यौरेवार नीचे बताया गया है।

(रु० करोड़ों में)

अवधि	वित्त आयोग	योजना आयोग	केंद्रीय मंत्रालय	जोड़
I योजना	447	880	104	1431
(1951-56)	(31.2)	(61.5)	(7.3)	(100.00)
II योजना	918	1058	892	2868
(1956-61)	(32.0)	(36.9)	(31.1)	(100.0)
III योजना	1590	2738	1272	5600
(1961-66)	(28.4)	(48.9)	(22.7)	(100.0)
वार्षिक योजनाएं	1782	1917	1648	5347
(1966-69)	(33.3)	(35.9)	(30.8)	(100.0)
IV योजना	5421	4731	4949	1501
(1969-74)	(35.9)	(31.3)	(32.8)	(100.0)
V योजना	11168	10353	3761	25282
(1974-79)	(44.2)	(41.0)	(14.8)	(100.0)
(1979-1983)	17372	15773	6928	40073
	(43.4)	(39.3)	(17.3)	(100.0)
	38698	37450	19554	95702
	(40.4)	(39.1)	(20.5)	(100.0)

2. वित्त आयोगों की सिफारिशों पर किए जाने वाले कानूनी अंतरण सामान्यत: उत्तरोत्तर बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। यद्यपि राज्यों की योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह सहायता अलग अलग योजना अवधियों में कम अधिक होती रहती है। केंद्रीय-मंत्रालयों द्वारा विवेकानुसार किए जाने वाले अंतरण प्रथम योजना अवधि में 7.3 प्रतिशत से योजना अवधि में 32.8 प्रतिशत तक तेजी से बढ़े हैं पर इसमें इसके बाद कमी आई है। 32 वर्षों की अवधि के लिए समग्रत: 40 प्रतिशत अंतरण वित्त आयोग की सिफारिशों द्वारा किए गए थे, इतने ही प्रतिशत अंतरण राज्य की योजनाओं के लिए दी गई केंद्रीय सहायता द्वारा किए गए थे और लगभग 20 प्रतिशत अंतरण विवेकानुसार किए गए अंतरणों के रूप में किए गए थे।

3. कर अनुदानों और ऋणों के संबंध में बजटीय अंतरण नीचे दिए गए अनुसार किए गए थे :

(आंकड़े प्रतिशतता में)

योजना	कर	अनुदान	कर और अनुदान	ऋण
I योजना .	24.0	20.1	44.1	55.9
II योजना .	23.3	27.5	50.8	49.2
III योजना .	21.4	23.3	44.7	55.3
वार्षिक योजनाएं	24.0	26.0	50.0	50.0
IV योजना .	30.2	25.4	55.6	44.4
V योजना .	33.0	22.2	65.2	34.8
VI योजना .	40.3	27.0	67.3	32.7
सभी योजनाएं	32.0	28.0	60.0	40.0

4. कुल अंतरणों के कर और अनुदान की राशियों में तीन दशकों से उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और तदनुरूप ऋण की मात्रा कम हुई है। ऐसा उत्तरोत्तर होता रहा है।

5. अंतरण के उपर्युक्त प्रकारों और मात्राओं की पृष्ठभूमि में अलग अलग राज्यों पर अंतरणों के प्रभाव का अध्ययन करना होगा अन्ततोगत्वा, सभी संघीय अंतरणों का उद्देश्य क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाकर देश में समान विकास होना चाहिए। हमारी व्यवस्था में राजस्वों के केन्द्रीयकरण के कारण अंतर्राज्यीय समानता के लिए संसाधन के अंतरणों के अवसर कई अन्य देशों की तुलना में अधिक हैं। नीचे दी गई तालिकाओं में अलग अलग श्रेणियों के अंतर्गत अलग अलग राज्यों को किए गए प्रति व्यक्ति अंतरणों का एक संक्षिप्त सार दिया गया है।

रु० में प्रति व्यक्ति अंतरण (1956-81)

राज्य समूह	वित्त आयोग द्वारा किए गए अंतरण	सूचकांक	योजना अंतरण	सूचकांक	विवेकानुसार किए गए अंतरण	सूचकांक	कुल अंतरण	सूचकांक
(क) उच्च आय वाले राज्य (पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र पश्चिम बंगाल) . .	471	91	338	77	549	118	1258	94
(ख) मध्य आय वाले राज्य (तमिल नाडु, केरल, उड़ीसा, असम, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश) . . .	542	105	436	99	386	102	1364	102
(ग) निम्न आय वाले राज्य (उत्तर प्रदेश, राजस्थान मध्य प्रदेश बिहार) .	459	89	398	90	332	87	1189	89
सभी राज्य . . .	516	100	440	100	380	100	1336	100

*विशेष श्रेणी वाले राज्य भी शामिल हैं ।

6. यद्यपि ऐसे विशेष श्रेणी वाले राज्यों की आवश्यकता, जो पहाड़ी क्षेत्र में है और जिनकी जनसंख्या थोड़ी है, पूर्णत: संतोषजनक ढंग से पूरी की गई है, केंद्र सरकार से राज्य सरकारों को किए जाने वाले संसाधनों के अंतरण सामान्यत: कम हुए हैं, गरीब राज्यों को उनका उचित अंश प्राप्त नहीं हुआ । इसलिए, यह कहना बिल्कुल ठीक होगा कि वर्तमान सुपुर्दगियों ने जो अलग अलग माध्यमों द्वारा की गई हैं संसाधनों को या गरीब और अमीर राज्यों के बीच के विकास के अंतर को पूरा नहीं किया है । इस संबंध में किसी भी प्रकार का सुधार के लिए (i) केंद्र से राज्यों को किए जाने वाले संसाधन के अंतरण की समस्त मात्रा (ii) अंतर्राज्यीय वितरण, दोनों में परिवर्तन की आवश्यकता होगी ।

7. केंद्र के संसाधनों (करों, गैर-कर और पूंजी) के जोड़ पर ध्यान देने पर पता चलता है कि पहली और पांचवी योजना की अवधियों के बीच राज्यों का संसाधनों का अंश 36 प्रतिशत से भी अधिक से घटकर 31 प्रतिशत रह गया है, इससे राज्यों के अंश में कमी की ओर झुकाव स्पष्ट दिखाई देता है ।

8. ऊपर यह बताया गया है कि कानूनी अंतरणों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है । इसलिए, राज्य की योजनाओं के लिए दी जाने वाली समस्त केंद्रीय सहायता के क्षेत्र में ही इसका कोई हल ढूंढना होगा । राज्य की योजना के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता की मात्रा समग्रत: अब वित्त मंत्रालय के कहने पर तदर्थ आधार पर निर्धारित की जाती है । यद्यपि मुद्रा स्फीती और निवेश की लागतों में वृद्धि होने के कारण की गई मांगों की प्रतिक्रिया में किसी योजना अवधि के दौरान केन्द्र की योजनाओं के लिए संशोधन की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है लेकिन तदनुरूप राज्य की योजनाओं के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई है । मुद्रा स्फीति और खर्चों में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप राज्य के संसाधनों में भी भारी कमी आई है । नीचे दी गई तालिका में योजना (1980-71) के दौरान केंद्र, राज्य और संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा किया गया परिव्यय दिखाया गया है, जैसा कि इस समय अनुमान लगाया गया है ।

	प्रारंभिक मात्रा	इस समय प्रत्याशित (रु० करोड़ों में)
केंद्रीय योजना . . .	47,250	60,000
सभी राज्य . . .	48,600	48,000
संघ राज्य क्षेत्र . .	1,650	2,000
जोड़ .	97,500	1,10,000

स्रोत : छठी पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, 1981 और 1984-85 की वार्षिक योजना के दस्तावेज ।

9. आप देखेंगे कि जब कि केन्द्रीय योजना में 25 प्रतिशत वृद्धि हुई है, राज्य की योजनाओं के मामले में नाममात्र के धन में भी कमी हुई है । केंद्र और राज्यों के बीच तथा अंततोगत्वा राज्यों में परस्पर संसाधनों का बेहतर बंटवारा करने के संबंध में एक महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि राज्यों की विकास योजनाओं के लिए उनको दी जाने वाली केंद्रीय सहायता की समस्त मात्रा बढ़ा दी जाए ।

10. अंतर्राज्यीय बंटवारे के संबंध में छटें और सातवें वित्त आयोगों का यह दृष्टिकोण कि राज्य को किए जाने वाले अधिकांश अंतरण करों का बंटवारा करके किए जाने चाहिए, यह एक सही दिशा में उठाया गया कदम हैं । परन्तु, अंतर्राज्यीय बंटवारे के सिद्धान्तों में बुनियादी परिवर्तन नहीं किए गए थे । नीचे दी गई तालिका में वित्त आयोग के अधिनिर्णय के अंतर्गत राज्यों के प्रतिव्यक्ति अतिरिक्त राजस्व के बारे में बताया गया हैं :—

राज्य	प्रति व्यक्ति अतिरिक्त राजस्व
गरीब राज्य समूह	
1. उड़ीसा	15
2. बिहार	205
3. पश्चिम बंगाल	157
4. केरल	112
5. तमिल नाडु	159
6. मध्य प्रदेश	282
7. उत्तर प्रदेश	233
कम गरीब राज्य समूह	
8. कर्नाटक	343
9. आंध्र प्रदेश	217
10. गुजरात	423
11. महाराष्ट्र	596
12. राजस्थान	85
13. असम	74
14. हरियाणा	676
15. पंजाब	597
पहाड़ी राज्य समूह	
16. हिमाचल प्रदेश	22
17. जम्मू और कश्मीर . . .	40
18. मणिपुर . .	93
19. मेघालय . . .	48
20. नागालैंड	84
21. सिक्किम . . .	31
22. त्रिपुरा	23
औसत .	258

11. देखने पर यह पता चलेगा कि उड़ीसा की प्रति व्यक्ति न्यूनतम अधिशेष 15 रु० थी और हरियाणा की प्रति व्यक्ति अधिकतम अधिशेष 676 रु० थी। न्यूनतम और अधिकतम प्रति व्यक्ति अधिशेष के बीच का अनुपात 1:45 है। पिछले वित्त आयोगों की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप भी अधिशेष की राशि में परिवर्तन होते रहे हैं, ये सभी परिवर्तन उन्नत राज्यों के पक्ष में हुए हैं। स्पष्ट बात तो यह है कि ऐसे राज्य जिन्हें वित्त आयोग के अधिनिर्णय के अंतर्गत बड़ी मात्रा में योजनेतर राजस्व अधिशेष प्राप्त हैं, उन्हें अपनी विकास योजनाओं के लिए संसाधनों का एक मजबूत आधार होने का लाभ मिलता है। यदि राजस्व अंतरण अधिकांशत: कर की सुपुर्दगी द्वारा किए जाते हैं तो ऐसे राज्यों को भी बड़ी मात्रा में राजस्व प्राप्ति का अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है। वित्त आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली कार्यविधियों के अंतर्गत उपलब्ध केन्द्रीय सहायता एक फार्मूले के अनुसार वितरित की जाती है और राज्यों की योजनाओं का आकार राज्य के अपने संसाधनों को जोड़कर तथा वित्त आयोग के अधिनिर्णय के कारण मिलने वाले अतिरिक्त राजस्व और केंद्रीय सहायता को शामिल करके निर्धारित किया जाता है। इसलिए ऐसे राज्य जिन्हें वित्त आयोग के अधिनिर्णय के कारण मिलने वाला अतिरिक्त राजस्व और केंद्रीय सहायता शामिल है। इसलिए ऐसे राज्य जिन्हें वित्त आयोग के अधिनिर्णय के अंतर्गत बड़ी मात्रा में अधिशेष राजस्व प्राप्त होने का लाभ प्राप्त हुआ है, उनकी भी अपनी बड़ी राज्य योजनाएं होतीहैं। नीचे दी गई तालिका में स्थिति निर्दिष्ट की गई हैं :—

क्रम सं०	राज्य	प्रतिव्यक्ति औसत आय (1973–76)	प्रतिव्यक्ति संचयी योजना परिव्यय (1951–78)	प्रतिव्यक्ति योजनेतर राजस्व
1.	हरियाणा	1989	922	676
2.	पंजाब	1586	1353	597
3.	महाराष्ट्र	1349	802	596
4.	गुजरात	1134	840	423
5.	कर्नाटक	1045	618	343
6.	मध्य प्रदेश	776	525	282
7.	उत्तर प्रदेश	715	529	233
8.	आंध्र प्रदेश	928	531	217
9.	बिहार	645	387	205
10.	तमिलनाडु	946	546	159
11.	पश्चिम बंगाल	1033	455	157
12.	केरल	948	585	112
13.	मणिपुर	870	1147	93
14.	राजस्थान	853	557	85
15.	नागालैंड	820	2650	84
16.	असम	791	541	74
17.	मेघालय	850	1073	48
18.	जम्मू और कश्मीर	811	1291	40
19.	सिक्किम	820	1190	31
20.	त्रिपुरा	830	783	223
21.	हिमाचल प्रदेश	1068	1075	22
22.	उड़ीसा	793	558	15
	सभी राज्यों की औसत	930	603	258

12. संसाधनों के अंतर्राज्यीय वितरण को और अधिक संतुलित केवल उस स्थिति में ही किया जा सकता है यदि अंतर्राज्यीय वितरण के सिद्धांतों में परिवर्तन किया जाए और यदि योजनाओं के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता के आबंटन को संतुलित करना है तो वित्त आयोग के अधिनिर्णय से उत्पन्न स्थिति पर पहले विचार कर लिया जाए। दूसरे शब्दों में, पहले यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सभी राज्यों की प्रतिव्यक्ति अधिशेष की राशि समान हो और यह विचार केंद्रीय सहायता का पहला उत्तरदायित्व होना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच बेहतर समन्वय होना चाहिए।

13. जहां तक केन्द्रीय सहायता के वितरण का संबंध है वह समय आ गया है जब मूलत: गाडगिल सूत्र पर आधारित वर्तमान प्रणाली की समीक्षा की जानी चाहिए। प्रारम्भिक वर्षों में जब चौथे पंचवर्षीय योजना के शुरू होने पर 1969 में सूत्र बताया गया था तब इस सूत्र द्वारा राज्यों को दी जाने वाली केंद्रीय सहायता के वितरण पर पर्याप्त नियंत्रण रखा गया। पिछले 15 वर्षों के दौरान इस सूत्र का प्रभाव काफी कम हो गया है और यह पत्र नई आवश्यकताओं के अनुरूप भी नहीं बैठता है।

14. यह एक रोचक बात है कि राज्य की ओवरड्राफ्ट की समस्याएं छठी योजना के लागू होने के साथ आठवें दशक के प्रारंभ में उस समय बढ़ गई जब केन्द्रीय सहायता के नए सूत्र का प्रयोग आरंभ हुआ। यद्यपि कई राज्यों के बजटीय घाटों के कई कारण रहे होंगे जैसे खर्च में वृद्धि, अतिरिक्त संसाधनों के जुटाने में शिथिलता और अतिरिक्त व्यय, फिर भी यह सही है कि योजना आयोग की वार्षिक समीक्षा और योजना परिव्ययों का समायोजन और प्रत्येक वर्ष केंद्रीय सहायता देने का कार्य हाल के वर्षों में यांत्रिक एवं गणित का अभ्यास मात्र बन कर रह गया है।

15. यद्यपि ऐसा माना गया है केंद्रीय सहायता गाडगिल सूत्र के आधार पर वितरित की जाएगी फिर भी गाडगिल सूत्र की सीमा में केवल 50 प्रतिशत सहायता की राशि आती है शेष सहायता की राशि विभिन्न प्रयोजनों के लिए निर्धारित है। छठी पंचवर्षीय योजना में केंद्रीय सहायता के विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

	रु० करोड़	प्रतिशतता
1	2	3
1. पहाड़ी क्षेत्रों, जनजाति क्षेत्र और पूर्वोत्तर परिषद के लिए आबंटन	1355	8.8
2. बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए आबंटन	1450	9.5
3. विशेष श्रेणी के 8 राज्यों (असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मणीपर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा) के लिए आबंटन	3245	21.1
4. आई० ए० टी० पी० सूत्र के अंतर्गत वितरित राशि	1600	10.4
5. 1 से 4 तक का जोड़	7650	49.8
6. गाडगिल सूत्र के अंतर्गत वितरित राशि	7700	50.2
7. कुल केंद्रीय सहायता (5+6)	15350	100.0

16. आप यह देखेंगे कि केंद्रीय सहायता का आधा आबंटन गाडगिल सूत्र से इतर किया गया है और इन विशिष्ट आबंटनों में से कई आबंटनों का आधार योजना आयोग ने स्पष्ट नहीं किया है। जहां तक गाडगिल सूत्र का संबंध है इस सूत्र के अंतर्गत 60 प्रतिशत जनसंख्या पर 20 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय पर 10 प्रतिशत कर पर और 10 प्रतिशत विशेष समस्याओं को ध्यान में रखकर आबंटन किए जाते हैं। इस सूत्र की पुन: जांच करना आवश्यक है। जनसंख्या के आधार पर वितरण एक तिहाई से अधिक नहीं किया जाना चाहिए। शेष दो तिहाई भाग का वितरण प्रतिव्यक्ति आय, बेरोजगारी का प्रतिशत और गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या का प्रतिशत के आधार पर होना चाहिए। इन सभी तीनों बातों के लिए मापदंड और परिकलन के तरीके का निर्धारण किया जाए और यह तरीका सभी राज्यों में समान रूप से लागू हो। इस तरीके से निकाली गई सहायता में से 50 प्रतिशत ब्लॉक अनुदानों और ऋणों के रूप में हो सकती है और शेष 50 प्रतिशत राष्ट्रीय प्राथमिकता की योजनाओं और उन योजनाओं के लिए नियत की जा सकती है जो किसी विशिष्ट राज्य के संबंध में आवश्यक समझी जाएंगी।

ऐसा महसूस किया जाता है कि इस प्रकार का कोई भी सूत्र अंतर्राज्यीय असमानताओं और कुछ राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के समर्थन की दोहरी समस्याओं का समाधान करने के समर्थ होगा ।

17. जहां तक योजनेतर सहायता का सम्बन्ध है इनमें से कुछ सहायता वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार कानूनी अंतरणों द्वारा की जाती है । यह जारी रहनी चाहिए ।

5.6 विशेष श्रेणी में आने वाले राज्यों के लिए वित्त आयोग द्वारा संसाधनों की सुपुर्द करने और योजना आयोग द्वारा केन्द्रीय सहायता की मंजूरी देने के मामले में पहले से ही विशेष रूप से विचार किया गया है । ऐसा प्रतीत नहीं होता कि किसी अलग विशेष संघीय निधि की स्थापना कर देने से क्षेत्रीय असंतुलनों की समस्या का कोई उचित समाधान निकल ही आएगा । पिछड़ेपन या क्षेत्रीय असंतुलन की समस्या पर पर्याप्त प्रभाव डाले बिना ही यह निधि कुछ राज्यों को कुछ राशियां उपलब्ध करवाने के लिए एक और सीमित स्रोत बन जाएगी । ऐसी कोई निधि का किसी ऐसी संघीय व्यवस्था में औचित्य हो सकता है जिसमें राज्य के संसाधन और कार्य कुल मिलाकर एक दूसरे के अनुरूप होते हैं और केंद्रीय एजेंसी या संघीय सरकार का कार्य केवल आर्थिक दृष्टि से अल्प विकसित क्षेत्रों की आवश्यकता पर विशेष रूप से ध्यान देना भर होता है । भारत में ऐसा नहीं है क्योंकि यहां प्राप्तियों के मामले में केंद्र और सभी राज्यों के बीच का अनुपात 75 : 25 है और व्यय के मामले में अनुपात लगभग 50 : 50 है । केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों की बड़ी मात्रा में अंतरण किया जाना हमारे देश के संदर्भ में अपरिहार्य है ।

5.7 "देश के अंदर व्यापार, वाणिज्य और संसर्ग की स्वतंत्रता" को सुनिश्चित करने वाला संविधान के भाग 13 का आदेश वर्तमान स्थिति के एक महत्वपूर्ण आशाजनक पहलुओं में से है । ऐसे समय जब विश्व के अलग अलग भागों में किसी क्षेत्र के छोटे देश साथ साथ बढ़ने का प्रत्येक प्रयास कर रहे हैं और उनके अलग अलग प्रकार के साझे बाजार हैं और इन बाजारों को चलाने में अनेक समस्याएं उठा रहे हैं, यह वास्तव में एक बड़ा आशाजनक पहलू है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और हमारे संविधान के अपनाए जाने से भारत में 70 करोड़ लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साझा बाजार मौजूद है । हमारी अर्थ व्यवस्था के इस पहलू पर पूरी तरह से गौर किया जाना चाहिए ।

2. संघ और राज्य सरकारों के बीच कराधान संबंधी कार्यों के संबंध में यह सिद्धान्त कि कर उस प्राधिकरण द्वारा लगाया और वसूल किया जाना चाहिए कि जो इसे अच्छी तरह से वसूल कर सके और इसे प्रशासित कर सके, एक सही सिद्धान्त है । भारत में इस समय केंद्र और राज्यों को समनुदेशित किए गए विभिन्न करों के संबंध में कई परिवर्तन करने की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं है, सिवाय सभी प्रकार के आय करों (जिसमें निगम कर भी शामिल हैं) और विशेष सहायक उत्पाद शुल्कों सहित सभी उत्पाद शुल्कों को, चाहे उन्हें किसी भी नाम से क्यों न बुलाया जाता हो, विभाज्य पूल में लाने से । इस एकमात्र व्यवस्था के किए जाने से राज्य सरकारों में ऐसी विश्वास की भावना जागृत होगी कि केंद्रीय सरकार राज्य सरकार के संसाधनों को कम करने और केन्द्र के संसाधनों को बढ़ाने संबंधी उपाय नहीं करती है ।

5.8 यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि करों के प्रति एकांगी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए कि जिससे अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचे या व्यापार और उद्योग को मुसीबत का सामना करना पड़े । कराधान बिल्कुल आसान होना चाहिए और कर वसूली का कार्य दक्षता से किया जाना चाहिए । इस दृष्टि से आयकर, निगम कर, धन कर, संपदा-शुल्क, सीमा शुल्क, उत्पादन शुल्कों आदि के कराधान संबंधी शक्तियों के सौंपे जाने का कोई औचित्य नहीं है । परन्तु, उत्पाद शुल्कों से संबंधित बिक्री कर के संबंध में व्यवहार्य तरीका अपनाना आवश्यक है । बिक्री कर राज्य सरकारों की राजस्व प्राप्ति का अति महत्वपूर्णस्रोत है । वस्तुतः यह राज्य-सरकारों की राजस्व प्राप्ति का एक मात्र स्रोत है जिसकी राज्य के राजस्वों के संबंध में कोई सार्थकता है । इस स्थिति में आवश्यकता यह है कि अधिकाधिक मदों की बिक्री कर से उत्पाद शुल्क या अतिरिक्त उत्पाद शुल्क में अंतरित न किया जाए बल्कि संघर्षी कराधान की एक सुस्पष्ट और परस्पर स्वीकृत व्यवस्था होनी चाहिए । इस संबंध में निम्न-लिखित सिद्धान्तों का अनुसरण किया जा सकता है—

2. राज्य के कराधान के सीमित क्षेत्र का और अधिक अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए । राज्यों को इन संसाधनों से लाभ उठाने में समर्थ होना चाहिए । हमारे विचार में कुछ वस्तुओं पर बिक्री कर के स्थान पर उत्पाद शुल्क लगाने के लिए भारत सरकार द्वारा किए गए प्रस्तावों की अपेक्षा केंद्रीय सरकार को कुछ वस्तुओं पर लगाए गए उत्पाद शुल्कों को स्वेच्छा से हटा देना चाहिए और बिक्री कर के बदले इस समय कुछ वस्तुओं पर लगाए गए अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों को छोड़ देना चाहिए । (इस संबंध में ब्यौरेवार सुझाव राष्ट्रीय लोक वित्त और नीति संस्थान—डा० राजा जे० चेलाइया द्वारा दिए गए हैं ।)

3. केंद्रीय और राज्य वित्त मंत्री परिषद स्वयं उगाही को नियंत्रित नहीं कर सकती पर केंद्रीय और राज्य सरकार के बीच कराधान के मामलों पर बराबर जानकारी का आदान प्रदान करने और समय समय पर विचार विमर्श करने, आवश्यक हो तो राष्ट्रीय विकास परिषद की एक समिति की स्थापना करके, से एक दूसरे की कठिनाइयों को समझने में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी और ये कराधान से संबंधित उपाय करने की दिशा में ऐसे व्यवहार्य कदम होंगे जिनसे एक दूसरे के बीच संघर्ष नहीं होने पाएगा और जिनसे अर्थव्यवस्था और उत्पादन को क्षति नहीं पहुंचेगी । बिक्री कर के मामलों में किसी क्षेत्र के राज्यों के बीच किए गए विचार विमर्श से एक ही क्षेत्र के राज्यों में बिक्री कर लगाने के कार्य को काफी सीमा तक व्यवस्थित करने में सहायता मिली है ।

5.9 हमारा यह विचार है कि यह सुझाव, कि केन्द्रीय-संसाधनों के आबंटन के लिए एक ही निकाय होना चाहिए, व्यावहारिक नहीं है । राजस्वों से विकास के लिए उपलब्ध इन स्रोतों को केवल अन्य प्रयोजनों से वित्त आयोग द्वारा आबंटित संसाधनों को जानने के बाद ही सुनिश्चित किया जा सकता है । राज्य योजनाओं के लिए योजना वित्त और केन्द्रीय अंतरण का एक पर्याप्त भाग पूंजीगत संसाधन होते हैं, जो आंतरिक और बाह्य ऋणों (सहायता) पर निर्भर होते हैं । इसका प्रति वर्ष निरंतर निर्धारण किया जाना चाहिए ।

परन्तु, वर्तमान व्यवस्था से संबंधित कार्य में योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच प्रभावशाली ढंग से समन्वय स्थापित करके सुधार लाया जा सकता है । इस प्रयोजन से हमारा यह सुझाव है कि वित्त आयोग का एक स्थायी सचिवालय होना चाहिए जो योजना आयोग का अभिन्न अंग होगा । इसके लिए योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद् का पूर्ण सचिवालय बना दिया जाना चाहिए ।

5.10 उत्तरवर्ती वित्त आयोगों की सलाह पर या अन्य प्रकार से राज्यों को, सांविधिक एवं वैकल्पिक दोनों प्रकार के संसाधनों के अंतरण ने न तो दक्षता और व्यय में मितव्ययिता बढ़ाई है और न ही इससे राज्यों के बीच सार्वजनिक व्यय में आने वाली असमानताओं में कमी हुई है । इसका कारण यह है कि वित्त आयोग की सिफारिशों पर किया जाने वाला संसाधनों का अंतरण अधिकांशतः अंतराल समाप्त करने संबंधी दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है और योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के माध्यम से राज्यों को किया जाने वाला संसाधनों का अंतरण अधिकांशतः योजना आयोग को केन्द्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा उपलब्ध करवाई गई किसी निश्चित धन राशि के एक सामान्य सूत्र पर आधारित वितरण के आधार पर किया गया है । दोनों में से किसी भी स्थिति में सुपुर्द किए जाने का कार्य प्रतिबद्ध व्यय या विकास की विशिष्ट आवश्यकताओं के किसी अध्ययन के आधार पर नहीं किया गया है ।

5.11 यह सही है कि संसाधनों के अंतरण की वर्तमान क्रियाविधि से कुछ आंतरिक वित्तीय अनुशासनहीनता और असावधानी बढ़ जाती है । इसका कारण यह है कि वित्त आयोग अधिकांशतः राजस्व अंतरालोंको पूरा करने की प्रक्रिया का अनुसरण करते रहे थे । वित्त आयोग उत्तरोत्तर प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्यों का अनुसरण करते रहे हैं—

उदाहरणतः सड़क परिवहन निगमों और विद्युत बोर्डों आदि द्वारा 5 वर्षों की अवधि में अर्जित की जाने वाली न्यूनतम आय । निरंतर अध्ययन करके अन्य मामलों में भी इसी प्रकार के लक्ष्य निर्धारित करने होंगे । यद्यपि असावधानी से व्यय करने वाले राज्यों को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा, राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत कार्यक्रमों को राज्य नीति से संबंधित निदेशक सिद्धांतों के अनुसरण में कार्यक्रम कार्यान्वित करने वाले राज्यों के लिए पर्याप्त संसाधन सुनिश्चित कराए

जाने चाहिए। इसका यही समाधान है कि वित्त आयोग उन क्षेत्रों को उत्तरोत्तर बढ़ाएं जिनके लिए लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं और ऐसे लक्ष्यों के आधार पर संसाधनों की सुपुर्द किए जाने का कार्य किया जाए।

5.12 और 5.13 हम उपर्युक्त प्रस्ताव से सहमत हैं पर सुपुर्दगी संबंधी सिद्धांतों में प्र० 5.3 और 5.11 के उत्तर में उल्लेख किए गए के अनुसार मूलतः परिवर्तन किया जाना चाहिए। वित्त आयोग के सांविधानिक क्षेत्र में आने वाले राज्यों की आवश्यकताएं यथासंभव सीमा तक करों की सुपुर्दगी करके पूरी कर ली जानी चाहिए। अलग अलग राज्यों की विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए सहायता अनुदान तरीके का प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य की विशिष्ट समस्याओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए और राज्यों को उनके कार्यक्रम उनकी अग्रदाताओं के अनुसार निश्चित करने के लिए यथा संभव पूर्ण विवेकाधिकार दिया जाना चाहिए। सहायता अनुदान योजना के पूरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक प्रकार के समकारी दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए।

5.14 इस प्रश्न में अलग अलग बातों को इकट्ठा किया गया है। विशेष वाहक बंध पत्र योजना आदि से प्राप्त "राजस्वों" के संबंध में यह कहा जा सकता है कि ये राजस्व करों के बदले में प्राप्त किए जाते हैं जो वसूल करके राज्यों में बांट दिए जाने चाहिए। इसलिए जैसे पहले उल्लेख किया गया है तमाम प्राप्तियों को राज्यों में बांटना होगा। वस्तुतः सभी योजनाओं जिनके अन्तर्गत किए जाने वाले अंशदानों पर आय कर में छूट दी जा सकती है, जैसे हाल ही में घोषित राष्ट्रीय जमा योजना से होने वाली आय, को राष्ट्रीय लघु बचत योजना के अनुसार बांट दिया जाना चाहिए। पेट्रोलियम, कोयले आदि जैसी वस्तुओं की निर्देशित कीमतों को बढ़ाने से हुई प्राप्तियां केन्द्रीय सरकार का "राजस्व" नहीं है। कुछ राज्यों द्वारा इस ओर संकेत किया गया है कि केन्द्र सरकार ने पिछले तीन वर्षों के दौरान केन्द्रीय लोक उपक्रमों के माध्यम से 6500 करोड़ रु० इकट्ठे किए हैं। यदि यह राशि उत्पाद शुल्कों के रूप में बढ़ाई जाती तो राज्यों को 7वें वित्त आयोग के सुपुर्दगी सूत्र के अंतर्गत 2600 करोड़ रु० की प्राप्ति हुई होती।

कीमतों में वृद्धि के बावजूद तेल से संबंधित केंद्रीय उपक्रमों को छोड़कर अन्य सभी घाटे में जा रहे हैं। पेट्रोलियम के मामल में यह बात सही है।

5.15 प्रशासनिक और वित्तीय केंद्रीकरण को मिलाने का एक मुख्य कारण राष्ट्रीयकृत बैंकों और केन्द्रीय वित्त संस्थाओं जैसे जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, यू० टी० आई० भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक आदि द्वारा की जाने वाली बचतों का केन्द्रीकरण है। इस समय ऐसी कोई संस्थागत व्यवस्थाएं नहीं है जिनके द्वारा राज्य सरकारें उन संस्थाओं की नीतियों और कार्य के संबंध में अपने विचार प्रकट कर सकें जिन पर कृषि, उद्योग, आवास, जल पूर्ति और शहरी आधारित संरचना में किया जाने वाला निवेश निर्भर करता है, ये सभी प्रत्येक राज्य के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। स्थानीय-बचतों और स्थानीय निवेश के बीच का संबंध इसके परिणामस्वरूप दोनों पर पड़ने वाले हानिकर प्रभाव से टूट गया हैं।

2. जैसे प्र० 5.4 के उत्तर में उल्लिखित है समस्त सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों में राज्य के अंश में कमी हुई है। नीचे दी गई तालिका में देखा जा सकता है कि यह कमी केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को अंतरित किए जाने वाले पूंजीगत संसाधनों में तेजी से कमी होने के कारण हुई हैं।

	केन्द्रीय सरकार के संसाधनों में राज्य सरकारों का अंश			
	कर राजस्व	कुल राजस्वों में से	पूंजीगत संसाधनों में से	कुल केन्द्रीय संसाधनों में से
1. योजना .	17.0	23.0	61.5	36.4
2. योजना .	19.6	27.4	35.2	31.3
3. योजना .	15.2	24.3	40.2	31.3
4. वार्षिक योजना	17.6	28.4	44.9	31.4
योजना .	23.3	33.9	40.2	36.4
योजना .	19.8	31.0	30.1	30.7
योजना .	26.9	35.8	27.1	32.6

राज्य के वित्तों के हित में और विकास की आवश्यकताओं के लिए इस प्रवृत्ति को ठीक करना आवश्यक है। इस प्रयोजन से वितरण प्रणालियों में प्र० 5.2 के उत्तर में उल्लेख किए गए अनुसार परिवर्तन किया जाना चाहिए।

5.16 और 5.17 इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अधिकांश राज्यों के पास वित्त के कई लचीला स्रोत नहीं हैं, इन राज्यों को बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता तथा ओवरड्राफ्ट की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऋणों को चुकाना भी राज्यों पर एक मुख्य समस्या हो जाती है।

राज्य सरकार का यह विचार है कि केन्द्र और राज्यों के बीच राष्ट्र के पूंजीगत संसाधनों का बंटवारा करते समय साझेदारी की भावना होनी चाहिए। बिल्कुल उसी तरह से जैसे केंद्रीय सरकार ये आशा नहीं करती कि उसके सभी निवेशों से प्राप्त लाभ से निवेशित पूंजी की प्रतिपूर्ति हो जाएगी, उसे इस बात पर भी बल नहीं देना चाहिए कि राज्यों को अंतरित किए गए कभी पूंजीगत संसाधन उनके द्वारा अवश्य वापस किए जाएं। हम यह भी बताना चाहेंगे कि केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को ऋण की व्यवस्था कई अन्य महासंघों में कदाचित नहीं है। अधिकांश महासंघों में केंद्रीय अंतरण अनुदानों के रूप में किए जाते हैं। भारत में ऋण प्रणाली का विकास मुख्यतः बचतों और केंद्र द्वारा राज्य योजनाओं के संबंध में निवेश करने के लिए प्रदान की जाने वाली सहायता की योजना और केंद्रीकरण के परिणामस्वरूप हुआ है। यद्यपि हम लौटाए जाने योग्य ऋणों के रूप में संसाधनों के अंतरण के किसी भागों की केन्द्र सरकार द्वारा माने जाने के लिए केंद्र सरकार की अपरिहार्यता को स्वीकार करते हैं, हम ऐसे केंद्रीय ऋणों की शर्तों का इस ढंग से निर्धारण करना चाहेंगे कि ऋणों को चुकाने के दायित्व केवल उन ऋणों के चुकाने के मामलें में ही होने चाहिए जो ऐसी उत्पादक योजनाओं के लिए प्रयोग में लाए हों जिनके अंतर्गत प्रत्यक्ष वित्तीय आय प्राप्त होती हैं। हाल के वर्षों में ऋण चुकाने के दायित्वों के बढ़ जाने के परिणामस्वरूप राज्यों को किए जाने वाले केंद्रीय संसाधनों के शुद्ध अंतरणों में कमी हुई है।

इसलिए हम यह सुझाव देते हैं कि केंद्रीय सहायता के रूप में दिये जाने वाले ऋण और अनुदान की पुनः जांच को जानी चाहिए ताकि राज्यों द्वारा केन्द्रीय ऋणों के व्यापक उपयोग के आधार पर उनके (केंद्रीय ऋणों) युक्ति संगत वर्गीकरण के आधार पर ऋण में कमी लाई जा सके। यह अधिक बेहतर होगा कि ऐसी युक्ति संगत वर्गीकरण किया जाए और ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न न होने के जिसके द्वारा राज्यों के योजनेतर हिसाब में बड़े घाटे हो जाएं और जिसके बाद वित्त आयोग को ऐसे ऋणों के किसी भाग को पुनः नियत करने या बट्टे खाते में डालने के लिए कहना पड़े।

5.18 और 5.20 इस समय, अनुमोदित योजनाओं के लिए राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नबार्ड) तथा जीवन बीमा निगम जैसी केंद्रीय वित्तीय संस्थाओं से कोई ऋण प्राप्त करने के लिए भी केंद्र सरकार की अनुमति लेनी पड़ती है। इससे कार्य अनावश्यक रूप से बढ़ जाता है और कार्यों में भी विलम्ब होता है। राज्यों द्वारा लिए जाने वाले ऋण के संबंध में लगाए गए प्रतिबंध बाजार ऋणों पर ही लागू होने चाहिए।

हम बाजार से ऋण लेने से संबंधित नीति में कोई बड़ा परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं है। इसलिए यदि राज्यों को बाजार से ऋण लेने की छूट दे दी जाएं तो केवल सम्पन्न राज्यों को ही लाभ होगा।

आवश्यकता इस बात की है कि केंद्र और राज्यों के बीच बाजार से लिए गए समस्त ऋणों के वितरण के लिए और अलग अलग राज्यों के बीच ऋणों के अंतर्राज्य आबंटन के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत बनाए जाएं।

बाजार से लिए जाने वाले ऋण की समस्त मात्रा अधिक आर्थिक आधार पर निर्धारित की जाए और इस कार्य को देश के केंद्रीय बैंक पर छोड़ देना अच्छा होगा। केन्द्र और राज्यों के बीच वितरण और अंतर्गत वितरण अब भारत सरकार द्वारा किया जाता है न कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा। चालू योजना अवधि के दौरान अन्य संस्थाओं से लिए गए कुल ऋणों में से राज्यों को केवल 20 प्रतिशत आबंटित किया गया था। वर्तमान योजना अवधि के लिए विचार किए गए अन्य बाजार से लिया वाला समस्त ऋण 19,500 करोड़ रु० से बढ़ाकर 22,700 करोड़ रु० पर दिया गया है। पर राज्यों के अंश में वृद्धि नहीं की गई।

केन्द्र और राज्यों के बीच तथा राज्यों के बीच बाजार से लिए गए ऋण का समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए बेहतर संस्थानिक व्यवस्थाएं करना आवश्यक है। एक ऋण परिषद् बनाने का सुझाव दिया गया है क्योंकि भारतीय रिजर्व बैंक अब यह कार्य नहीं कर रहा है। किसी भी स्थिति में यदि कोई ऋण परिषद् गठित की जाती है तो इनका संबंध समुचित रूप से भारतीय रिजर्व बैंक से जोड़ना होगा।

5.19 केंद्र द्वारा लिए जाने वाले विदेशी ऋणों के ब्याज की अलग अलग दरें होती हैं इनमें कुछ 100 प्रतिशत अनुदान होते है और कुछ पर ब्याज की दर $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत तक की होती है। समस्त विदेशी ऋण और सहायता को एक पूल में माना जाता है और इसमें से केंद्र और राज्य परियोजनाओं के लिए धन उपलब्ध करवाया जाता है। ऐसे ऋण के लिए निर्धारित ब्याज की दर वही होती हैं जो केंद्र से राज्य परियोजनाओं के लिए जाने वाले अन्य सभी ऋणों के लिए होती है। इस संबंध में केंद्र सरकार का यह तर्क है यद्यपि केंद्र सरकार को रियायती विदेशी धन की आवश्यकता ही सकती है (जिससे उस पर विदेशी मुद्रा में यह धन चुकाने का भारी दायित्व नहीं पड़ता), परियोजनाओं के लिए उपलब्ध करवाए गए धन की शर्तें वही होनी चाहिए जो स्वदेशी संसाधनों द्वारा वित्त प्रबंध की गई ऐसी ही समान परियोजनाओं के लिए होती हैं। केन्द्र द्वारा दिए गए ऋणों के लिए ली जाने वाली ब्याज की दर बाजार द्वारा ली जाने वाली दरों की तुलना में रियायती होती हैं और इसलिए इन व्यवस्थाओं की कोई आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

2. विदेशी निकायों द्वारा सहायता प्राप्त परियोजना के संबंध में संबंधित राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक वर्ष के योजना बजट में परियोजना के लिए पर्याप्त धन जुटाने के बारे में एक बड़ा प्रश्न यह उठा था कि यदि सभी संसाधन एक पूल के रूप में समझे जाते हैं तो अलग अलग परियोजनाओं से संबंधित आवश्यकताओं की उपेक्षा हो जाने की प्रवृत्ति को बल मिल सकता है। इस कारण पिछले कुछ वर्षों के दौरान, 1971 में 25% से आरम्भ करके किसी परियोजना के लिए दी गई सहायता का 70 प्रतिशत राज्य सरकार को दी गई अतिरिक्त केंद्रीय सहायता के रूप में उपलब्ध करवाई गई है और संबद्ध परियोजना पर एक निश्चित धनराशि के व्यय के साथ जोड़ी गई है ऐसा होने के कुछ सीमा तक समस्या कम हुई है।

3. दूसरी प्रकार की समस्याएं ऐसी परियोजनाओं से संबंधित हैं जिसके लिए धन राज्य में वास्तविक रूप से उपयोग में लाया जाता है। सभी परियोजनाएं पर्याप्त वित्तीय लाभ प्राप्त नहीं कर सकती। परियोजनाओं की उन श्रेणियों में विभाजित करना, जो प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय लाभ प्राप्त नहीं करती और जिन्हें प्राप्त करना चाहिए, और अनुदान तथा ऋण को और ब्याज की दर को अलग अलग इन दो प्रकार की परियोजनाओं के संबंध में समायोजित करना आवश्यक है। ऐसा केवल बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के मामले में हीं नहीं किया जाना चाहिए बल्कि सभी योजनाओं के संबंध में किया जाना चाहिए।

5.21. अधिक ओवर ड्राफ्टों का प्रश्न सामान्यत: उन राज्यों के मामले में किसी योजना अवधि के तीसरे वर्ष से उत्पन्न होता है जिनके पास वित्त आयोग की सिफारिश के परिणामस्वरूप पर्याप्त अतिरिक्त राजस्व नहीं होता (कृपया देखें प्र० 5.5 का उत्तर) यद्यपि धन की आवश्यकता किसी योजना अवधि के दौरान योजना के आगे बढ़ने और लागतों के बढ़ने से बढ़ती हैं इसलिए राज्य महसूस करते हैं कि अतिरिक्त महंगाई भत्ते की किस्तों के अनुदान और लागतों में वृद्धि से संबंधित अन्य प्रकार के व्यय के कारण उनके संसाधनों में काफी कमी हो जाती है। चूंकी राज्य की योजनाओं के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता में कोई तदनुरुप वृद्धि नहीं होती इसलिए राज्य के संसाधन ओवर ड्राफ्टों को बढ़ावा देने वाली गैर-योजना और योजना दोनों ओर से बढ़ती हुई मांगों के दबाव में समाप्त हो जाते हैं। राज्यों की ओर से ऐसा सड़क परिवहन, विद्युत या अन्य लोक उपक्रमों से होने वाली आयों में सुधार न कर पाने और किसी चालू योजना अवधि के दौरान नई, मूलत: योजनेतर योजनाओं के कार्यान्वयन के कारण होता है। चालू वर्ष के दौरान होने वाली ओवर ड्राफ्ट भी इस कारण से होते हैं कि केंद्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं, बाह्य रूप से सहायता प्राप्त योजनाओं आदि के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता का काफी भाग वित्तीय वर्ष के बाद के भाग में दिया जाता है। यद्यपि किस्तों द्वारा की जाने वाली अदायगी में हाल के वर्षों में काफी सुधार हुआ है, लेकिन चूंकि ये योजनाएं किसी राज्य के समस्त योजना परिव्यय का एक बड़ा भाग होती हैं इसलिए व्यय किए जाने के बाद किए गए दावों के आधार पर की जाने वाली अदायगी का राज्य के राजस्व साधनों की स्थिति पर बिल्कुल उलटा प्रभाव पड़ता है।

2. उपायों के संबंध में पहले से ही यह सुझाव दिया गया है (प्र० 5.5) कि योजनाओं के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता के निर्धारण और वितरण में पूर्णत: संशोधन किया जाना चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया है (प्र० 6.10) कि केंद्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं की संख्या में पर्याप्त कमी की जानी चाहिए।

3. राज्यों की ओर से भी स्वीकृत योजना के प्रति अधिक निष्ठा होनी चाहिए जैसी कि सहमति हुई हैं राज्यों को योजना के प्रति और अधिक समर्पित होना चाहिए।

4. राज्य के संसाधनों को अव्यवस्थित करने वाला एक मुख्य कारण है— जीवन निर्वाह के लिए किए जाने वाले खर्च से हुई वृद्धि की आंशिक रूप से पूर्ति करने के लिए अतिरिक्त महंगाई भत्ता देना। इसका समाधान कीमत के रूप में स्थिरता सुनिश्चित करके किया जा सकता है; किसी भी स्थिति में चूंकि कीमत की स्थिति पर नियंत्रण रखने की जिम्मेदारी केंद्रीय सरकार की है इसलिए इस जिम्मेदारी पर ध्यान दिया जाना चाहिए और राज्य की योजना के लिए दी जाने वाली केंद्रीय सहायता तदनुरूप बढ़ाई जानी चाहिए। यह तर्क कि मुद्रा स्फीति के कारण हुई वृद्धि से खर्च पूरा किया जा सकता है, पूरी तरह सही नहीं है। सबसे अधिक उपेक्षा तो वास्तव में सेवाओं और परिसम्पत्तियों को बनाए रखने के कार्य में होती हैं क्योंकि इस कार्य के लिए महंगाई भत्ते की अपरिहार्य वृद्धि को पूरा करने के बाद पर्याप्त संसाधन ही नहीं बच पाते।

5.22 सभी राज्यों पर एक जैसी बात लागू हो ऐसा नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह कहना ठीक होगा कि अलग अलग राज्यों के कर लिए जाने संबंधी कार्य में परस्पर काफी भिन्नता है। इसी कारण से इस कार्य को गाडगिल सूत्र का एक कार्य समझा गया। जैसा कि अन्यत्र (प्र० 5.27 और 5.31) सुझाव लिया गया है, संघ और राज्यों दोनों का कर लिए जाने संबंधी कार्य अलग अलग होता है और इस का योजना आयोग की किसी स्थायी यूनिट में निरंतर अध्ययन किया जाना चाहिए और इसका परिणाम राज्यों और राष्ट्रीय विकास परिषद् को उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। यदि अलग अलग राज्यों द्वारा जुटाए गए संसाधनों से संबंधित अधिकृत जानकारी सभी को उपलब्ध हो तो राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग में की जाने वाली परिचर्चाएं और वित्त आयोगों के विचार विमर्श तथा निष्कर्ष और अधिक सार्थक सिद्ध होंगे।

5.23 इस तथ्य से कि समानांतर अर्थव्यवस्था की विद्यमानता स्वीकार कर ली गई है और स्वेच्छा से आय की घोषणा और वाहक बन्ध पत्रों के लिए समय-समय पर योजनाएं बनाई जाती रही है, यह पता चलता है कि आयकर की वसूली के कार्य में सुधार करने की काफी गुंजाइश है। संघ के राजस्व प्राप्ति के मुख्य दो स्रोतों अर्थात् आयकर और केंद्रीय उत्पाद शुल्कों में किए जाने वाले आवश्यक सुधारों पर अलग अलग समितियों द्वारा समय समय पर अध्ययन किए गए हैं और कई सिफारिशें की गई हैं। श्री एल० के० झा की अध्यक्षता में बनाए गए आर्थिक प्रशासन आयोग द्वारा अभी हाल ही में कई सिफारिशें की गई हैं। परन्तु आयकर प्रणाली में कोई मूलभूत सुधार नहीं किए गए हैं और समय समय पर थोड़े-थोड़े परिवर्तन किए गए है, ये परिवर्तन प्राय: एक बजट के बाद दूसरे बजट में किए गए हैं। विभिन्न आयोगों की सिफारिशों के अनुसार आयकर कानून और प्रशासन में मूलभूत परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है।

इस बात का निरंतर अध्ययन करने लिए एक अन्यत्र (प्र० 5.3) यह भी सुझाव दिया गया है कि केंद्र द्वारा की जाने वाली राजस्व वसूली और व्यय की पद्धति पर भी योजना आयोग की किसी स्थायी यूनिट द्वारा निरंतर अध्ययन किए जाने चाहिए।

5.24 हमारी राय यह है कि राज्यों के वित्तीय हित उनकी विद्यमान संभाव्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले किसी प्रस्ताव को अनुच्छेद 274 के अंतर्गत बनाए गए अनुसार राज्यों से आवश्यक परामर्श करने के बाद ही संसद

में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। हमारा विचार है कि यदि राष्ट्रपति अनुच्छेद 274 के उपबंधों के अंतर्गत कार्रवाई करें तो उनके लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् से परामर्श करना अनिवार्य कर देना चाहिए।

5.25 राज्य सरकार का विचार है कि अनुच्छेद 269 में उल्लिखित प्रकार के करों पर विचार करते समय जैसे उनके उत्पादन, आर्थिक विवक्षाएं और संबंधित वस्तुओं या सेवाओं पर पड़ने वाले उनके प्रभाव जैसी महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रशासनिक सुविधा भी एक ऐसा महत्वपूर्ण मुद्दा है जिस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। राज्य सरकार ऐसी किसी विशेषज्ञ समिति के गठन के संबंध में सुझाव देगी जिसमें केंद्रीय और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि और एक या दो कर विशेषज्ञ शामिल हों जो समग्र प्रश्न पर गहराई से विचार करे और अनुच्छेद 268 और 269 के अंतर्गत लगाए जाने वाले करों के संबंध में उचित सिफारिशें करें।

5.26 आठवें वित्त आयोग को राज्य सरकार द्वारा दिए गए ज्ञापन में राज्य सरकार ने इस ओर संकेत किया है कि यदि रेल यात्री किरायों पर कर जारी रहता तो रेलवे की यात्री किरायों से होने वाली वर्तमान आयों के आधार पर राजस्व 100 करोड़ रु० हो जाता जबकि इसमें से राज्यों को एक तुच्छ राशि दी जा रही है। विभिन्न वित्त आयोगों ने यह महसूस किया था कि यदि यह कर निरंतर लिए जाते रहते तो उस स्थिति में निरसित (रिपील्ड टैक्स) कर से जो प्राप्ति होती, उसे ध्यान में रखते हुए यह अनुदान राशि बहुत कम है। हमारा सुझाव है कि अनुदान राशि इस प्रकार से निर्धारित की जानी चाहिए कि राज्यों को लगभग वही राशि प्राप्त हो जिसे वे कर के निरंतर लिए जाने पर प्राप्त करते और राज्यों के बीच वितरण का आधार सभी राज्यों की यात्री किराये से होने वाली कुल आय की तुलना में प्रत्येक राज्य की गैर-उपनगरीय यात्री किराये से होने वाली आय के अनुपात में किया जाना चाहिए।

5.27 हमने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है और इसलिए हम कोई सुझाव देने में असमर्थ है। मोटे तौर पर देखने से यह प्रतीत होता है कि संघ राज्य क्षेत्रों के मामले में भी वित्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह क्षेत्रवार संसाधनों की सुपुर्दगी करे।

5.28 पिछले अनुभव से पता चलता है कि कई बार चक्रवातों, बाढ़ और सूखे के कारण हुई फसलों और जनजीवन की हानि के कारण इतनी अधिक बरबादी हुई है कि इनके परिणामस्वरूप संबद्ध राज्यों पर अत्यधिक वित्तीय भार पड़ गया। ऐसा महसूस किया गया है कि अब तक की इस सम्बन्ध में की गई व्यवस्थाएं पूर्णत: अपर्याप्त सिद्ध हुई है। राज्य सरकार इस संबंध में दो सुझाव देना चाहेगी। सर्वप्रथम हम सुझाव देते हैं कि केंद्रीय सरकार को देश के किसी भाग के प्राकृतिक आपदाओं से घिर जाने की स्थिति में राहत उपायों से संबंधित खर्च पूरा करने के लिए अलग निकाय बनाना चाहिए। हम यह सिफारिश इसलिए कर रहे है चूंकि हम समझते हैं कि देश के किसी भाग में प्राकृतिक आपदा को एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में माना जाना चाहिए और इसलिए ऐसी समस्याओं से निपटने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता करना केंद्र सरकार का मुख्य दायित्व है। दूसरा, राज्य सरकार यह सुझाव देगी कि प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुए नुकसान की मात्रा का निर्धारण करने वाले दल में संबंधित राज्य सरकार के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया जाना चाहिए। आवश्यक सहायता की मात्रा एक व्यवस्थित आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए और न कि तदर्थ विचार करके।

5.29 खुले बाजार से लिए गए ऋणों द्वारा वित्त प्रबंध को मिली महत्ता और राज्यों के इस संबंध में अपेक्षाकृत वंचित रहने की स्थिति को देखते हुए राज्य सरकार ने यह सुझाव दिया था कि बाजार ऋण नीति बनाने और केंद्र और राज्यों के बीच इनकी वितरण प्रणाली का निर्धारण करने के प्रयोजन से आस्ट्रेलिया जैसी ऋण परिषद् की व्यवस्था करने का प्रयास भारत में भी किया जा सकता है।

राज्य सरकार इस विचार से सहमत है कि राज्यों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले विषयों के संबंध में पर्याप्त समन्वय का होना आवश्यक है। हम समझते हैं कि इस प्रयोजन से बहुत से स्वतंत्र निकाय बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसकी बजाय हमारी यह राय है कि केंद्र और राज्यों के बीच समन्वय स्थापित करने से संबंधित मामलों का निर्धारण करने की व्यापक शक्तियां प्रदान करके संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत राष्ट्रीय विकास परिषद् को एक कानूनी निकाय बना दिया जाना चाहिए। इस संबंध में बनाया जाने वाला कानून ऐसा होना चाहिए जिसमें परिषद् और इसके सचिवालय योजना आयोग के गठन और कार्यों का निर्धारण किया गया हो और सदस्यों और अधिकारियों की समितियों के लिए प्रावधान किया गया हो। राष्ट्रीय विकास परिषद् में अलग अलग समितियां हो सकती हैं और केंद्रीय कार्यकारी समूह से अलग अधिकारी समितियां अपने पूर्ण सचिवालय की सहायता से, जिसमें योजना आयोग और वित्त आयोग का स्थायी सचिवालय होगा, बाजार से लिए गए राज्यों के ऋणों के वितरण और सांस्थानिक वित्त, केन्द्र और राज्य सरकारों की संवीक्षा और राज्यों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले आर्थिक विषयों जैसे अलग अलग विषयों पर विचार कर सकती हैं।

5.30 इस समस्या का इस प्रश्न में उल्लेख किया गया है, सामान्यत: इसका कोई महत्व है। यह निस्संदेह सही है कि इस बात की आवश्यकता है कि धन बुद्धिमानी से व्यय किया जाए और इससे लोगों को लाभ मिले। धन कौन वसूल करता है इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि जिस स्तर पर धन वसूल किया जाता है वह उन प्रयोजनों से धन का उपयोग किए जाने में समर्थ हो जो आवश्यक और अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आदर्शत: प्रत्येक स्तर पर सरकार अपने कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक संसाधन जुटाने में समर्थ होनी चाहिए जिससे उन विशिष्ट सेवाओं से लाभ उठाने वाले व्यक्ति वही हों जो उनके लिए अदायगी करते हैं। लेकिन आधुनिक अर्थव्यवस्था और किसी बड़े देश में, दक्षता और सांझा बाजार बनाए रखने दोनों प्रयोजनों और क्षेत्रीय समता लाने के प्रयोजनों से बड़े संसाधन उगाहने की शक्ति आवश्यक रूप से राष्ट्रीय सरकार के पास रखनी होती है। देश के समक्ष वास्तविक चुनौती है शक्ति और संसाधनों के विकेन्द्रीकरण और राष्ट्रीय अखंडता के अनुरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखना, सांझा बाजार बनाए रखना और देश के सभी भागों का तर्क संगत संतुलित विकास करना, इसमें कुछ राष्ट्रीय अग्रताओं को ध्यान में रखा जाए।

5.31, 5.38 और 5.39 हम इस विचार से सहमत हैं कि न केवल राज्यों का बल्कि संघ का व्यय भी कड़ी और निष्पक्ष संवीक्षा के अनुसार होनी चाहिए। हम राष्ट्रीय व्यय आयोग जैसे किसी निकाय की स्थापना करना किसी प्रकार से आवश्यक नहीं समझते। इसकी अपेक्षा हम यह सुझाव देते हैं कि वित्त-आयोग को एक स्थायी सचिवालय प्रदान किया जाना चाहिए, जिसका एक कार्य संघ राज्य वित्त से संबंधित समस्याओं का निरंतर अध्ययन करना होगा। इसमें राज्यों और संघ सरकार के राजस्व और व्यय की समीक्षा करना भी शामिल हैं। जैसे प्रश्न सं० 5 29 के उत्तर में उल्लिखित है, राष्ट्रीय विकास परिषद् की अलग अलग कार्य समितियां होनी चाहिए जिनमें से एक संघ सरकार के व्यय की संवीक्षा करेगी जिस प्रकार वित्त आयोग राज्यों के व्यय पर विचार करता है।

5.32. राष्ट्रीय लेखाओं के वर्तमान रूप के कारण ही सभी राज्यों के लिए तुलनात्मक लेखे रखना संभव हो सका और इसलिए यह रूप निरंतर प्रयोग में लाया जाता रहना चाहिए। आठवें दशक में लेखाओं में कुछ सुधार किए गए थे। विकास और सरकार की आवश्यकताओं में तेजी से परिवर्तन होने के कारण कम से कम 10 वर्ष में एक बार लेखाओं के रूप की ध्यानपूर्वक जांच करना आवश्यक है।

2. लेखाओं को तैयार करने के तरीकों का भी अध्ययन और आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए। इसके लिए सरकारी खजानों, बैंकों, महालेखापाल के कार्यालय (जैसे इस समय हैं) और भारतीय रिजर्व बैंक के स्तर पर सुधार करना आवश्यक है। भारतीय रिजर्व बैंक और नियंत्रक महालेखापरीक्षक को इस प्रश्न का अध्ययन करना चाहिए और लेखाओं संबंधी कार्य को शीघ्रता से किए जाने के लिए उनके संबंध में मूलभूत सुधार और आधुनिकीकरण करना चाहिए। इस समय राज्य सरकारों के लिए वित्तीय नियंत्रण की कोई प्रभावी व्यवस्था करना संभव नहीं है क्योंकि आंकड़े तीन या चार महीने बाद उपलब्ध होते हैं। यद्यपि निर्धारित समय 1,1/2 महीने का होता है जो स्वयमेव लम्बा समय होता है, फिर भी ऐसा बहुत कम हुआ है कि व्यवहार में इसका अनुसरण किया गया हो। यहां तक की किसी विशिष्ट दिन के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सूचित नकद शेष के आंकड़ों से वास्तविक स्थिति पता नहीं चलती। इनसे पिछले 20 से 25 दिनों की अवधि की प्राप्तियां और व्यय की आंशिक स्थिति पता चलती है।

3. नियंत्रक महालेखापरीक्षक को राज्यों के लेखे रखने की जिम्मेदारी से मुक्त किया जा सकता है जैसा कि केंद्रीय मंत्रालयों के मामले में पहले किया गया है। यह अलगाव उपर्युक्त अध्ययन का भाग हो सकता है सातवीं योजना में भी संशोधित व्यवस्थाएं की जा सकें। इसके एक भाग के रूप में या तो समस्त भारतीय लेखापरीक्षा और लेखा सेवा को अखिल भारतीय सेवा में परिवर्तित किया जा सकता है या कम से कम सिविल लेखाओं के प्रयोजनों से तो परिवर्तित किया ही जा सकता है ताकि सामान्य मानदंड बनाए रखे जा सकें।

4. राज्य सरकारों की लेखे रखने और व्यवस्था का आधुनिकीकरण करने की जिम्मेदारी के अंतरण से राज्य सरकारें समय पर जानकारी प्राप्त करने और वित्त नियंत्रण में सुधार करने में समर्थ हो जानी चाहिए।

5.33. सरकारी लेखाओं की लेखा परीक्षा का मुख्य प्रयोजन विधान मंडल को निम्नलिखित के बारे में सूचित करना होता है :

(i) क्या इसके द्वारा स्वीकृत राशियां उन प्रयोजनों से प्रयोग में लाई जाती हैं जिनके लिए वे स्वीकार की गई थी, और क्या ऐसी कोई विशेष बातें हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो या तो मुख्य अंतर के रूप में—बड़ी मात्रा में हुई वृद्धि या कमी के रूप में हुई हों।

(ii) क्या व्यय किए जाने में, धन मितव्ययता को ध्यान में रखकर खर्च किया गया।

(iii) क्या उल्लिखित प्रयोजन व्यय के परिणामस्वरूप पूरे कर लिए गए हैं।

2. भारत में "लेखापरीक्षा" की मुख्य आलोचना यह हुई है कि लेखापरीक्षा केवल उपर्युक्त (ii) पर विचार करके और कुछ एक मामलों में इसलिए भी की जाती है कि न्यूनतम निविदा पर ऑर्डर नहीं दिए गए इससे अनियमितताएं होती हैं और विस्तार में आवश्यक रूप से दोष निकालने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

3. हाल ही के वर्षों में इसमें कुछ परिवर्तन हुए हैं। नियंत्रक महालेखा परीक्षक ने एक पूर्ण योजना या कार्यक्रम के आधार पर दक्षता एवं निष्पादन की लेखा-परीक्षा आरंभ की है। अपने स्वरूप के कारण ऐसा केवल योजना/कार्यक्रम के पूरा होने के बाद ही किया जा सकता है और इसमें काफी समय लग जाता है। दक्षता का मूल्यांकन लेखापरीक्षा केवल समय समय पर कुछ चुने हुए कार्यक्रमों के मामले में ही की जा सकती है।

4. "वाउचर लेखापरीक्षा" छोड़ी नहीं जा सकती। इन दिनों सरकार द्वारा बड़ी मात्रा में लेनदेन किए जाने के कारण रिकार्डों के संबंध में चालाकी बरत कर धोखा देने के कई अवसर हैं। जब तक हम अपनी व्यवस्था का आधुनिकीकरण और कंप्यूटर का प्रयोग आरंभ नहीं करते, जिससे परस्पर विरोधों का अपने आप पता चलेगा, तब तक व्यक्ति द्वारा वाउचर की निरंतर जांच की जाती रहेगी।

5. जहां तक लेखा परीक्षा रिपोर्टों की व्याप्ति का संबंध है, (i) और (ii) के अंतर्गत बड़े मामलों का बुद्धिमता पूर्ण मिश्रण और उपर्युक्त (iii) के अंतर्गत चुनी हुई योजनाओं/कार्यक्रमों का विस्तृत अध्ययन व्यवहार्य और आवश्यक प्रतीत होगा। यहां तक कि इस प्रयोजन से नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कार्यालयों का भी आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए और सभी स्तरों पर लेखा परीक्षकों को भी समुचित ढंग से प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है।

6. इस बात का सही होना दुर्भाग्यपूर्ण है कि कार्यविधियों में परिवर्तन करने और नियमों को सरल बनाने के लिए जो कुछ भी किया गया है सरकार के कहने पर ही किया गया है और ऐसा हमेशा नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कार्यालयों के नेमी विरोध के बावजूद किया गया है।

5.34. यह कानून एक सामान्य शक्ति देने वाला है और इसी कारण इसके लचीले होने की काफी गुंजाइश रहती है। नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा जो भी किया गया है उन क्षेत्रों और बातों के आधार पर किया गया है जिन पर वह विचार करना चाहता है और इसके साथ साथ ऐसी उसके संगठन की व्यावसायिक क्षमता के आधार पर भी किया गया है। जैसा कि पिछले प्रश्न के उत्तर में उल्लिखित है लेखापरीक्षा रिपोर्टों से, यदि कभी वे प्रस्तुत की जाती है तो व्यय की प्रवृत्तियों की बहुत कम कड़ाई से जांच होती है और असाधारण या ध्यान देने योग्य बातों पर बहुत कम टीका टिप्पणी होती है जैसे कुछ वर्षों में बड़ी मात्रा में वृद्धि होना, अलग अलग एजेंसियों द्वारा एक ही प्रकार के कार्यों पर परस्पर विरोधी या अत्यधिक व्यय होना और ऐसे अन्य मामले। यह कानून नियंत्रक लेखापरीक्षक को ऐसा करने से नहीं रोकता।

5.35. विनियोजन लेखाओं के संबंध में उक्त लेखाओं के माध्यम से, कार्यों और मदों के अंतर्गत व्यय को दर्ज करने के लिए लेखाओं और कार्यविधियों के समाधान के कार्य में सुधार करने का काफी अवसर है। इस समय, इन मामलों में लेखे पर्याप्त रूप से सही नहीं हैं चूंकि इनसे किसी दिए गए समय में सही स्थिति का पता नहीं चलता। इन दिशाओं में सुधार के कार्य में कंप्यूटरीकरण द्वारा आधुनिकीकरण का कार्य शामिल होगा।

2. लेखापरीक्षा रिपोर्टों के संबंध में, जबकि उनमें सही जानकारी उपलब्ध नहीं होती, अतिसावधानी से तथ्य इकट्ठे करना और यथातथ्यता इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

3. सरकार के कार्यों के क्षेत्र और संख्या के अधिकाधिक बढ़ने के कारण इनमें व्यापकता लाना संभव नहीं है। विकेंद्रीकरण के लिए यह एक बड़ा तर्क है। यदि उच्चतर स्तर राज्य और केंद्रीय सरकारें दोनों बड़े विषयों तक ही सीमित रहते है तो कार्यों के कम किए गए क्षेत्र की और अतिविस्तृत लेखापरीक्षा की जा सकती है।

5.36. किसी भी लोकतंत्रात्मक देश में, विधानमंडल और इनकी समितियां मंजूरी देने और व्यय को नियंत्रित करने वाले अंतिम प्राधिकरण होती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से पता चलता है कि समितियां केवल नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा उठाए गए मुद्दों की ही जांच करती है। नियंत्रक महालेखापरीक्षक अपनी रिपोर्टों में विशिष्ट मदों आदि पर अनावश्यक रूप से व्यय में वृद्धि के संबंध में मूलभूत प्रश्न नहीं उठाता। पर समितियों को कोई भी नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा उन्हें प्रस्तुत किए गए लेखाओं पर उठाए गए इन प्रश्नों पर विचार करने से नहीं रोकता। ऐसा केंद्र और राज्यों में लोक लेखा समिति द्वारा कुछ मामलों में किया गया है।

हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि समितियों द्वारा संवीक्षा का प्रकार इस बात पर निर्भर है कि किस बात की जांच की जानी चाहिए। बहुत वर्षों तक केवल कथित अनियमितताओं के कुछेक मामलों की जांच की गई जैसा कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक ने बताया। इसमें धीरे धीरे परिवर्तन हुए हैं और इसकी गति को और तेज किया सकता है।

5.37. प्राक्कलन समिति नीतियों और कार्यक्रमों के संबंध में लाभप्रद सुझाव देने के लिए पहरेदार के रूप में कार्य कर सकती है इनमें अन्य बातों के साथ साथ विधायी और प्रशासनिक मामलों पर सुझाव भी शामिल है। प्राक्कलन समितियों की कई रिपोर्टों मे वास्तव में ऐसा किया गया है। इस बात को व्यय की संवीक्षा के प्रश्न से जोड़ने के लिए ऐसा करना लाभप्रद होगा यदि प्राक्कलन समितयां उन क्षेत्रों की व्यापक जांच करे जिनके बारे में नियंत्रक महालेखापरीक्षक ने योजनाओं और कार्यक्रमों से संबंधित लेखापरीक्षा के अंतर्गत बताया गया है (प्र० 5.33 के उत्तर में ऊपर (ii))।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1, 6.2, 6.3, 6.5, 6.7 और 6.12 योजना आयोग के अस्तित्व में आये और इसके बाद योजना के क्षेत्र में किए गए उसके परीक्षणों ने देश में संघ-राज्य संबंधों को उल्लेखनीय ढंग से प्रभावित किया है। स्वीकृत राष्ट्रीय योजना प्रणाली का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि योजना आयोग की सलाह पर केंद्रीय सरकार ने कृषि, जन स्वास्थ्य, समाज कल्याण, शिक्षा आदि जैसे क्षेत्रों में भी राज्यों के विकास के संबंधित योजना बनाने की जिम्मेदारी ले ली है, जो या तो राज्यों को संविधानिक रूप से आवंटित किए गए है या जो समवर्ती सूची में रखे गए है। योजना आयोग न केवल व्यापक राष्ट्रीय अग्रताओं के बारे में बताता है, और कृषि और समाज सेवा जैसे मामलों में विकास कार्यक्रमों के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत बनाता है बल्कि केंद्रीय

मंत्रालयों के साथ इन क्षेत्रों के लिए योजनाएं भी बनाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि योजना स्थानीय स्थितियों के अनुरूप होने की बजाए समस्त देश के लिए योजनाओं की वस्तुत: अत्यधिक विभिन्नताओं वाली एक रुढ़िबद्ध प्रणाली बन गई है। योजना आयोग ने अभी तक विभिन्न राज्यों में विकास की संभावनाओं और उन बातों का अध्ययन नहीं किया है जिन्हें महत्व दिया जाना चाहिए : केंद्रीय सहायता का एक बड़ा भाग केंद्र द्वारा प्रयोजित योजनाओं के लिए अनुदान या ऋण के रुप में दिया जाता है।

चूंकि योजनाबद्ध विकास भारत जैसे एक बड़े और जनसंख्या बहुल देश का अति मूलभूत कार्य है, इसलिए यह महसूस किया जाता है कि राज्यों को विकास के लिए राष्ट्रीय योजना तैयार करने में एक प्रभावी भागेदारी दी जानी चाहिए। ऐसा राष्ट्रीय विकास परिषद् को व्यापक शक्तियां प्रदान करके किया जा सकता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् को संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत एक कानूनी निकाय बना दिया जाना चाहिए जिसमें राज्यों और संघ के बीच प्रभावशाली समन्वय स्थापित करने के लिए एक अंतराज्य परिषद् बनाने के बारे में बताया गया है जो इस प्रविष्टि के साथ पठित है "आर्थिक और सामाजिक योजना"। इस संबंध में कानून सादा होना चाहिए जिसमें परिषद् और उसके सचिवालय के गठन (प्र० सं० 4.12 के उत्तर में सुझाव दिया गया गठन) और कार्य का निर्धारण किया गया हो, जिसमें समिति के सदस्यों और अधिकारियों को शक्ति प्रदान करने वाले उपलब्ध हों।

हम यह भी सुझाव दिया है कि वित्त आयोग के लिए एक स्थायी सचिवालय की व्यवस्था की जानी चाहिए जो योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच प्रभावशाली समन्वय स्थापित करने के लिए योजना आयोग का एक अभिन्न भाग बनाया जाए।

यदि उपर्युक्त सुझाव लागू किए जाते हैं तो राष्ट्रीय विकास परिषद् न केवल योजना आयोग द्वारा तैयार योजना प्रस्तावों पर विचार करेगी बल्कि वित्त आयोग के सचिवालय द्वारा तैयार किए गए संघ-राज्य के वित्त की समीक्षा और वित्तीय संस्थाओं की नीतियों और सामान्य कार्य पद्धतियों, अर्थ-व्यवस्था से संबंधित समस्त विषयों पर भी विचार करेगी। राष्ट्रीय विकास परिषद की वार्षिक रिपोर्टें संसद और राज्य विधान मंडलों को प्रस्तुत की जानी चाहिए। इस प्रकार योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् को न केवल केंद्रीय सरकार बल्कि राज्य सरकारों के लिए भी समान रूप से परिवर्तनकारी और विकास की कारगर संस्थाओं के रुप में परिवर्तित किया जा सकता है, जिससे राष्ट्रीय अखंडता के लिए मार्ग प्रशस्त होगा। इससे योजना प्रणाली का लोकतंत्रीकरण होगा, जिससे योजना प्रक्रिया के संबंध में राज्यों में अधिक विश्वास जागृत होगा इसके साथ-साथ केंद्रीय सरकार को आवश्यक समन्वयकारी अधिकार प्राप्त होगा। संसाधन आबंटन की प्रक्रिया उन नई आर्थिक अग्रताओं के लिए बनाई जाएगी जो अग्रताएं एक गतिशील और विकासशील अर्थ व्यवस्था में अन्तर्निहित होती है।

राष्ट्रीय स्तर पर वार्षिक योजना तैयार करने का प्रयोजन राष्ट्रीय अग्रताओं को ध्यान में रखते हुए केवल विकास के व्यापक उद्देश्य और उसकी रूपरेखा के बारे में जानकारी होना चाहिए। व्यापक क्षेत्रीय योजनाएं बनाने का कार्य राज्यों को दिया जा सकता है। राष्ट्रीय अग्रताओं को लागू करने के लिए मूल-भूत राष्ट्रीय महत्व की योजनाओं के संबंध में 'सशर्त' सहायता के रुप में केन्द्रीय सहायता का सहारा लिया जा सकता है।

जहां तक राज्य सूची में दिए गए विषयों से संबधित संघ सरकार की भूमिका का संबंध है हम प्रशासनिक सुधार आयोग के सहमत है जिसने राज्य सूची में दिए गए विषयों के संबंध में केंद्रीय सरकार की निम्नलिखित भूमिका की कल्पना की है :

(1) राज्यों को पहल और नेतृत्व प्रदान करना और विशेष रुप से ऐसी जानकारी देने वाली संस्था के रुप में कार्य करना जिसमे देश के एक भाग में अपनाए गए अच्छे कार्यक्रमों और तरीकों के बारे में ब्यौरे और आंकड़े दिए गए हों।

(2) राज्यों से घनिष्ठ सहयोग करके विचारणीय विकास क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय योजना तैयार करने कि जिम्मेदारी उठाना और इस प्रयोजन से सुव्यवस्थित योजना और सांख्यिकी यूनिटों का विकास करना।

(3) राष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान शुरु करना, ऐसे मामलों पर ध्यान देना जो राज्यों के अनुसंधान संसाधनों के बाहर हों।

(4) बुनियादी प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरु करना, और योजनाकारों और प्रशासकों को आदर्श प्रशिक्षण देना और प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करना।

(5) प्रगति की जांच करने, अवरोधों का पता लगाने, उपचारी उपाय करने, समायोजन करने के उद्देश्यों से कार्यक्रम का मूल्यांकन शुरु करना।

(6) राज्य प्रतिनिधियों के लिए अलग-अलग विषयों पर विचार-विनिमय करने और मार्गदर्शी सिद्धांत बनाने के लिए फोरम और बैठक स्थल को व्यवस्था करना।

(7) ऐसे समन्वय संबंधी कार्यों पर ध्यान देना जिन्हें केवल केंद्र द्वारा ही कर सकता है।

(8) विदेशी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से संबंध बनाए रखना।

6.4 अन्यत्र यह पहले से ही सुझाव दिया गया है कि योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद् के सचिवालय के रुप में कार्य करना चाहिए। इस प्रकार आयोग तब राष्ट्रीय विकास परिषद् की एक समिति होगी पर उस स्थिति में इसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधियों को शामिल करना व्यवहार्य नहीं है और न ही इसे पूरी तरह अर्थशास्त्रियों और विशेषज्ञों का एक सलाहकार निकाय बनाना ठीक होगा। आयोग का संघटन वही रह सकता जो इस समय है जिसमें प्रधानमंत्री, केन्द्रीय वित्त मंत्री और उपाध्यक्ष तथा जनसाधारण से ऐसे एक या दो प्रतिष्ठित व्यक्ति, जिन्हें विकास कार्य का अनुभव हो और राष्ट्रीय स्तर के कुछ विशेषज्ञ शामिल हो। मंत्रियों की संख्या को बढ़ाना भी उचित नहीं है क्योंकि इससे निकाय बहुत बड़ा बन जाने से प्रबंध करने में कठिनाई होगी।

6.6 राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय अग्रताओं पर विचार करना और उन्हें इन योजनाओं में शामिल करना आवश्यक है। जैसे अन्यत्र (प्रश्न 5.5 में) उल्लेख किया गया है, राज्य की योजनाओं और लगाए गए धन की संवीक्षा करने की वर्तमान पद्धतियों में इन पर ध्यान नहीं दिया जाता। यद्यपि कार्यवृत्तों की ब्योरेवार संवीक्षा की जाती है फिर भी योजना को अंतिम रुप राज्य के संसाधनों और केंद्रीय सहायता के अंत की उपलब्धता पर नेमी रुप से विचार करने के बाद दिया जाता है और इस प्रकार से अंतीम रुप दी गई राज्य योजना में राष्ट्रीय अग्रताएं भी नहीं होती।

2. राज्य योजनाओं की अलग-अलग दृष्टिकोण अर्थात् निम्नलिखित दृष्टियों से संवीक्षा करना आवश्यक है :--

(i) क्या वे उन अग्रताओं और कार्यक्रमों का अनुसरण करते हैं जिन्हें पंचवर्षीय योजना को अंतिम रुप देते समय स्वीकार किया गया था।

(ii) क्या राष्ट्रीय अग्रता की स्वीकृत योजनाओं, पर्याप्त रुप से प्रावधान किया गया है और क्या वे संतोषजनक ढंग से कार्यान्वित की जा रही है; और

(iii) क्या ऐसे विशेष कार्यक्रम जिन्हें राज्य विशेष को दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा गया है, उन पर सम्यक् रुप से ध्यान दिया जा रहा है।

योजना आयोग के लिए सभी क्षेत्रों में सभी योजनाओं के लिए उन योजनावार आबंटनों पर विस्तार से विचार करना और सुझाव देना आवश्यक नहीं है, जिन्हें किसी भी स्थिति में अंतिम रुप से अपनाया नहीं जा सकता क्योंकि योजना का आकार इस आधार पर निश्चित नहीं किया जाता।

6.8 जैसे प्र० 5.5 के दिए गए ब्यौरेवार उत्तर में बताया गया है, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष श्रेणी के राज्यों के अंतर्गत आने वाले पिछड़े राज्यों की आवश्यकताओं पर समुचित रुप से ध्यान दिया जाता है, तथापि वर्तमान सूत्रों के अंतर्गत दी जाने वाली केंद्रीय सहायता का वितरण

शेष राज्यों में कमजोर वर्गों के हित में नहीं होती। केंद्रीय योजना सहायता की मात्रा के निर्धारण और अंतर्राज्य वितरण में किए जाने वाले आवश्यक परिवर्तनों का उल्लेख प्र० 5.5 के उत्तर में विस्तार से किया गया है।

6.9 कृपया प्र० 5.5 का ब्यौरेवार उत्तर देखें।

6.10 केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना बनाने का प्रयोजन मूलत: यह सुनिश्चित करना था कि राष्ट्रीय महत्व की कुछ योजनाएं राज्यों द्वारा शुरू की जाएं और उन के संबंध में निदेश देने और समन्वय स्थापित करने के कुछ उपाय केंद्र द्वारा किए जाएं। पर धीरे-धीरे ऐसी योजनाओं की संख्या बहुत अधिक हो गई। इन योजनाओं में शामिल किए गए अधिकांश कार्यक्रम राज्यों द्वारा उनकी अपनी योजना के माध्यम से अधिक उपयुक्त रूप से चलाए जा सकते हैं। हम इस विचार से सहमत है कि राज्यों के अधिकार क्षेत्र के भीतर आने वाले विषयों से संबंधित केंद्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों को प्रर्याप्त रूप से कम कर देना चाहिए। हम सिफारिश करते हैं कि पुनर्गठित राष्ट्रीय परिषद् को केंद्र द्वारा प्रायोजित वर्तमान योजनाओं की संवीक्षा करनी चाहिए ताकि वांछनीय सीमा तक सूची में से आवश्यक बातें निकाली जा सकें। राष्ट्रीय विकास परिषद् की पूर्व सहमति के बिना कोई भी नई योजना केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में शुरु नहीं की जानी चाहिए। यदि ऐसी नई योजनाएं शुरु भी की जाती हैं तो ये केवल 100% केंद्रीय सहायता के आधार पर शुरु की जानी चाहिए। न कि मिलने वाले अनरूपी अंशदान के आधार पर। इससे यह सुनिश्चित हो सकेगा कि राज्य योजना अग्रताओं में कोई व्यवधान नहीं आया है।

6.11 योजना आयोग में मानिटर और मूल्यांकन कार्य करने वाला तंत्र एक सुसंगठित तंत्र है और इस तंत्र ने अच्छा कार्य किया है। अधिकांश राज्यों में मानिटर और मूल्यांकन का कार्य करने वाले तंत्र अभी शैशावावस्था में ही है और अभी इन्हें पूर्ण व्यावसायिक संगठनों का आकार प्राप्त करना है। केन्द्र और राज्यों दोनों के मानिटर और मूल्यांकन का कार्य करने वाले तंत्र को और अधिक मजबूत बनाया जाना चाहिए। मानिटर करने वाले तंत्र को एजेंसियों और मंत्रालयों दोनों में तथा केंद्रीय योजना संगठन में मजबूत बनाया जाना चाहिए।

2. चूंकि कार्यान्वयन के दौरान कार्यान्वयन में सुधार करने और स्वय कार्यक्रम ही में परिवर्तन करने के लिए फीड बैक अनिवार्य है अत: सामान्यत: यह पाया गया है कि कार्यक्रम के प्रतिकूल फीड बैक उन व्यक्तियों द्वारा पसंद नहीं की जाती, जिन्होंने कार्यक्रम शुरु किया था। इस कारण परीवीक्षण की रिपोर्ट कम उत्साहजनक होती है। पिछले 10 वर्षों के दौरान देश में ही बहुत से अध्ययन केंद्रों ने कार्य करना शुरु कर दिया है। इनमें से कई अध्ययन केन्द्रों के स्टाफ में सक्षम व्यावसायिक व्यक्ति प्रतिष्ठित है। यह उपयुक्त होगा कि राज्यों और केन्द्र दोनों में चुने हुए योजना कार्यक्रमों के परीवीक्षण और मूल्यांकन में उनकी सेवाओं का उपयोग किया जाए। स्वतंत्र बाहरी एजेन्सियों के बढ़ते हुए उपयोग से कार्य निष्पादन के संबंध में और अधिक निष्पक्ष रिपोर्ट सामने आएंगी।

6.13 राज्यों के योजना बोर्डों/आयोगों का गठन में सभी राज्यों में काफी सीमा तक विभिन्नता है। ऐसे बहुत थोड़े राज्य हैं जहां केंद्र के योजना आयोग जैसे संगठन है, केरल ऐसे राज्यों में से एक है। योजना निकाय का चाहे जो कोई भी रूप हो और जैसा भी गठन हो, यह काफी कुछ उस हैसियत पर निर्भर है जो राज्य सरकार द्वारा उसे प्रदान करती है। योजना निकाय अध्ययन करने, आंकड़े इकट्ठे करने और योजना बनाने के लिए सहायता करने में काफी अच्छी भूमिका निभा रहे है जहां तक राज्यों में योजना बनाने का संबंध है, पहले चरण में योजना प्रस्ताव तैयार किए जाते है। इस चरण तक योजना बोर्ड अच्छी भूमिका निभाते हैं। लेकिन राज्य सरकार में और योजना आयोग, भारत सरकार के मंत्रालयों से विचार विमर्श करके योजना को अंतिम रूप देने के बाद के चरणों में और उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप प्रस्तावों को समायोजित करने में योजना बोर्ड सामान्यत: बहुत छोटी भूमिका अदा करते हैं।

2. इसी तरह से कार्यान्वयन में भी योजना बोर्डों की बहुत कम भूमिका है। वस्तुत:, यदि किसी पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में मूलत: अनुमोदित और वार्षिक योजनाओं द्वारा अंतिम रूप से कार्यन्वित पंचवर्षीय योजना के अनुसार राज्य योजनाओं का कोई अध्ययन किया जाए तो पर्याप्त परिवर्तन देखने को मिलेंगे। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बड़ी संख्या में नई योजनाओं और कार्यक्रमों को अलग-अलग अवसरों पर मंजूर कर लिया जाता है। पांच वर्ष की अवधि के दौरान योजना के साथ साथ होने वाले इन परिवर्तनों में के कारण समत: से संसाधनों में काफी कमी हो जाती है और योजना बोर्ड इस संबंध में कोई सार्थक भूमिका अदा नही कर पाते है।

3. अत: योजनाओं के निष्पादन की समीक्षा करते समय योजना बोर्ड उस कार्य की समीक्षा करते हैं जो सरकार द्वारा वास्तव में किए गए है न कि जिनके किए जाने की योजना बनाई गई थी।

4. यदि वास्तव में एक बार योजना का महत्व स्वीकार कर लिया जाए तो राज्ययोजना बोर्ड मजबूत हो जाएंगे और एक बार ऐसा हो जाने पर योजना आयोग के लिए राज्य योजनाओं पर उस सीमा तक गहराई से विचार करना आवश्यक नहीं रहेगा जिस सीमा तक अब है।

5. क्या राष्ट्रीय योजना उत्तरोत्तर अधिक निर्देशात्मक और कम आदेशात्मक हो जानी चाहिए यह एक व्यापक प्रश्न है जो राज्य योजना बोर्डों के कार्य में किए जाने वाले सुधार पर आधारित नही है। हमारे देश जैसी किसी भी मिश्रित अर्थव्यवस्था में वास्तविक स्थिति यह है कि राष्ट्रीय योजना निदेशात्मक भी है और आदेशात्मक भी और जो इस बात पर निर्भर करता है कि अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र और किस मुख्य उत्पादनों पर हम विचार कर रहे है।

भाग VII

विविध उद्योग

7.1 हां, उद्योगों के (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के पारित होने के साथ ही उद्योगों से संबंधित राज्यों की शक्तियों में काफी कमी कर दी गई है। उद्योगों के विस्तृत वर्ग की लाइसेंस जारी करने के संबंध में केन्द्र का नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। केन्द्रीय सरकार द्वारा इस समय नियंत्रित उद्योगों की समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है।

7.2 सूची 1 में प्रविष्टि 52 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करने की हैसियत से उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम 1951 की अनुसूची में शामिल किए गए बड़ी सख्या में उद्योगों को लाइसेंस देने और उन पर नियंत्रण करने की शक्तियां अब भारत सरकार के पास है। पूंजी निर्गमों के समाशोधनों, पूंजीगत पदार्थ और कच्ची सामग्री के आयात और विदेशी सहयोग पर भी केन्द्र का नियंत्रण है। केन्द्रीय वित्त संस्थाएं और सलाहकार और संवर्धन संस्थाएं केन्द्र पर नियंत्रण और उद्योगों के विनियमन में सहायक भूमिका निभाती है।

1. केन्द्र द्वारा नियंत्रण और विनियमन की सारी व्यवस्था को निम्नलिखित आवश्यकताओं के आधार पर पूरा किया गया है :—

(i) एक विकासशील देश में छोटे उद्योग की सुरक्षा के लिए;
(ii) अनुपलब्ध सामान के स्थान पर आयात करके सामान मंगवाने के लिए;
(iii) विदेशी निवेश पर नियंत्रण;
(iv) दुर्लभ विदेशी मुद्रा पर नियंत्रण;
(v) एकाधिकारों और बड़े बड़े औद्योगिक घराने की वृद्धि पर नियंत्रण;
(vi) देशी प्रौद्योगिकी की सुरक्षा।

चूंकि भारत में कार्य कर रहे विदेशी बहु-राष्ट्रीय उद्योग साबुन जैसी छोटी छोटी वस्तुएं भी बनाते हैं इसलिए "साबुनों" को भी उद्योग विनियमन अधिनियम के अधीन कर दिया गया। इसलिए उद्योगों की सूची पिछले वर्षों से उत्तरोत्तर बड़ी हो गई है।

2. पिछले पैरा में उल्लिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पूर्णतः अलग तरीका भी मालूम था। जिस प्रकार कुछ निश्चित उद्योग औद्योगिक नीति प्रस्ताव के अधीन सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे उसी प्रकार उन उद्योगों के निर्धारण के लिए भी विधान बनाया जा सकता है जो विदेशी कंपनियों और बहु-राष्ट्रीय और/या एकाधिकार रखने वाली भारतीय कंपनियों और बड़े उद्योग घरानों के लिए स्वतंत्र नहीं होगी। इसी प्रकार छोटे पैमाने के उद्योगों के उत्पादों के आरक्षण के लिए भी विधान बनाया जा सकता है किन्तु छोटे पैमाने के उद्योगों के लिए कुछ उत्पादों के आरक्षण को कम करने के न्यायिक निर्णयों के परिणामस्वरूप ऐसा विधान अभी विचाराधीन है।

कृपया प्रश्न 2.1 का उत्तर भी देखें।

3. केवल कुछ मूल उद्योगों और सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों के संबंध में उद्योगों के (विकास और विनियमन) अधिनियम को और अधिक सरल किया जा सकता है।

7.3 पिछले 10 वर्षों के दौरान उद्योगों को लाइसेंस देने और पूंजीगत निर्गमों की मंजूरी, पूंजीगत पदार्थ और कच्ची सामग्री के आयात और विदेशी सहयोग कार्यविधि में कुछ सुधार किए गए हैं। किन्तु उन बहुत से मामलों में, जिनमें ये मंजूरियां ली जानी हैं, सुधार सफल नहीं हो सके हैं।

2. प्रथम कार्रवाई के रूप में ऐसी मंजूरी देने के मामले में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए यदि पिछले प्रश्न का उत्तर में उल्लिखित अधिनियमनों को लागू किया जा रहा हो तो औद्योगिक लाइसेंसिग की आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से कम किया जा सकता हैं। जिन मामलों में विदेशी सहयोग के लिए कोई आयात शामिल नहीं हैं उन मामलों की अधिक सीमा को 10 करोड़ रु० तक बढ़ाया जा सकता है और 5 वर्ष में एक बार मुद्रास्फीति को सामयिक रूप से समायोजित किया जा सकता है।

3. मुख्य नियंत्रक आयात-निर्यात संगठन, महानिदेशक तकनीकी विकास, और आई० डी० बी० आई० और आई० एफ० सी० आई० जैसी वित्तीय संस्थाओं ने पिछले कुछ वर्षों के दौरान अपने क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किए हैं। शक्तियों में पर्याप्त रूप से वृद्धि की जानी चाहिए ताकि क्षेत्रीय स्तरों पर सुविचारित मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अंतर्गत मंजूरी दी जा सके।

7.4 वित्तीय सहायता, कच्ची सामग्री की पूर्ति और कुछ मामलों में विपणन के लिए भी कई वर्षों से राज्यों में काफी संख्या में संस्थाएं स्थापित की गई है। किन्तु समिति द्वारा बताया गया अन्तर अभी भी बना हुआ है। इसके मुख्य कारण विभिन्न उद्योगों की आवश्यकताओं की जटिलता, ऐसी जटिलता के संबंध में किए गए प्रयासों की अपर्याप्तता, कार्यक्रमों और नीतियों में तवर्ष परिवर्तन, सामग्रियों की उपलब्धता के विषय में अनिश्चितताएं (एक वर्ष में सामग्री का फालतू हो जाना और दूसरे वर्ष में सामग्री की कमी हो जाना) और विभिन्न एजेंसियों के कार्यकलापों में समन्वय स्थापित करने में कठिनाइयां आदि हैं। अंतिम समस्या सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या है। डी० आय० सी० से कुछ सीमा तक इस कार्य में सहायता मिली है। किन्तु इस दिशा में अभी बहुत कार्य किया जाना बाकी है।

ऐसा लगता है कि सातवीं योजना में वास्तविक मूल्यांकन पर आधारित उस सीमा तक समयबद्ध कार्यक्रम अपनाया जा सकता है और अपनाया जाना चाहिए जिस सीमा तक कि राज्य सरकार और इसकी एजेंसियां जिम्मेवारी ले सकें और इन कार्यों को संतोषजनक रूप से पूरा कर सकें।

आधुनिक छोटे उद्योगों के मामले में परियोजना प्रस्ताव के समय से, मूल्य निर्धारण और कार्यान्वयन के माध्यम से मंजूरी प्राप्त करने और बाद में उत्पादन और विपणन के समय विभिन्न मंजूरियों, बैंकों द्वारा प्रदान की गई अपर्याप्त कार्यशील पूंजी कच्ची सामग्री प्राप्त करने में आई कठिनाइयों और विपणन संबंधी कठिनाइयों आदि से संबंधित समस्याओं के समाधान के लिए लगी बहुत सी एजेंसियों की भी अपनी अपनी समस्याएं हैं। राज्य सरकारों को एक ही स्थान पर सभी प्रकार की मंजूरी प्रदान करने के लिए संस्थागत प्रबंध करने होंगे। यह सातवीं योजना के समयबद्ध कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण मुद्दा होना चाहिए। इस कार्य में वित्तीय संस्थाओं को भी भाग लेना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए भारत सरकार (जी० ओ० आई०) और रिजर्व बैंक द्वारा इन संस्थाओं को स्पष्ट अनुदेश दिए जाने चाहिए। कच्ची सामग्री की उपलब्धता बहुत हद तक भारत सरकार और इसकी एजेंसियों की नीतियों पर निर्भर करती है। आर्थिक प्रशासन आयोग द्वारा सुझायें गए अनुसार इस क्षेत्र से संबंधित कर नीतियों की भी तत्काल समीक्षा की जानी चाहिए। ऐसा नहीं है कि सभी उत्पादों का विपणन कार्य राज्य एजेंसियों द्वारा किया जा सकता है। राज्य एजेंसियों विशेष रूप से चयन की गई कुछ मदों का ही लेन देन कर सकती हैं और बची हुई मदों के मामलों में विपणन संबंधी सहायता सूचना प्रदान करके और परामर्श देकर की जानी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए एजेंसियों में सुप्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त किए जाएंगे।

परम्परागत उद्योगों के मामले में राज्य से संबंधित मुख्य उद्योगों की समस्याओं का अध्ययन किया जाएगा और संस्थागत ढांचों, कच्ची सामग्री का प्रापण और पूर्ति, कर संबंधी उपाय और आर्थिक सहायता और विपणन प्रबंधों से संबंधित नीतियों पर जिन पर सहमति हो चुकी है, को काफी लम्बी अवधि तक अपनाया जाएगा। राज्य इन नीतियों का स्वयं निर्धारण नहीं कर सकते क्योंकि प्रापण, उधार आदि से संबंधित मामलों के लिए भारत सरकार से मंजूरी प्राप्त करना आवश्यक है। इसलिए राज्य सरकारों और केन्द्र द्वारा संयुक्त अध्ययन और शीघ्र निर्णय के लिए प्रबंध करना आवश्यक हो जाता है।

7.5 1980-81 तक जो अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं (एल० आई० सी० आई० डी० बी० आई०, आई० एफ० सी० आई० आई० सी० आई० सी० आई० ए० आर० डी० सी० आर० ई० सी० हुडको, आई० आर० सी० आई० और एन० सी० डी० सी०) द्वारा मंजूर किए गए संसाधनों के अंतरण की राशि 19,869 करोड़ रु० थी। इन संसाधनों के अंतरण का बहुत बड़ा भाग अपेक्षाकृत विकसित राज्यों में चला गया। सात राज्यों जैसे गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान और तमिलनाडु जिनमें भारत की 36 प्रतिशत जनसंख्या है, 62 प्रतिशत से अधिक संसाधनों का उपभोग करने में समर्थ हो गए हैं। दो राज्यों महाराष्ट्र और गुजरात जिनमें भारत की 14 प्रतिशत से कुछ अधिक जनसंख्या हैं, मंजूर की गई कुल राशि का 27 प्रतिशत तक सहायता के रूप में प्राप्त करते है। राज्यों की प्रति व्यक्ति आय और अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा दी गई प्रति व्यक्ति वित्तीय सहायता के बीच सहसंबंध गुणांक कोटि में यह सुझाव देते हुए कि जिन राज्यों में उच्च प्रति व्यक्ति आय है वे राज्य साधनों का उनको मिलने वाले अनुपात से अधिक शेयर प्राप्त करते हैं और उपर्युक्त कोटि में यह गुणांक 0+72 सहसंबंध गुणांक हैं। संस्थागत सहायता के इस सीमा तक उपलब्ध हो जाने के बाद संबंधित राज्य सरकारें अपने विकास कार्यों के बहुत बड़े भाग की वित्तीय व्यवस्था बाह्य बजटीय साधनों से भी कर सकती हैं। ऐसे राज्य वित्त आयोग के निर्णय से केन्द्रीय सरकार से अंतरित निधियों के भी मुख्य लाभ-भागीदार हुए हैं और खुले बाजार से ऋण भी प्राप्त किए हैं।

2. उपर्युक्त स्थिति का एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि राज्यों में पहले से ही सुस्थापित औद्योगिक और संस्थागत आधारिक संरचना के परिणाम स्वरूप उन्नत राज्यों/क्षेत्रों का आत्मसात करने की क्षमता उच्च हो गई है। शहरी प्रवृत्ति की ओर झुके हुए ये बहुत से राज्य जो सामान्यतः तकनीकी विशेषज्ञों और प्रतिभा के केन्द्रीकरण का भी लाभ उठाते है, एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। किन्तु ये बातें केवल इस बात की ओर संकेत करती हैं कि देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया उसके बाद समानता की अपेक्षा संचयी विकास की ओर प्रवृत्त है। क्षेत्रीय असंतुलन को कम करने के स्वीकृत उद्देश्यों को केवल इन प्रवृत्तियों के झुकाव को कम करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

3. केन्द्रीय वित्तीय संस्था द्वारा उधार वितरण की कुछ निश्चित विशेषताओं ने भी कुछ निश्चित क्षेत्रों को ही सहायता देने में विशेष योगदान दिया है। ये इस प्रकार हैं :—

(i) आई डी बी आई और आई एफ सी आई दोनों संस्थाएं चीनी, सीमेंट, वस्त्र उद्योग और कागज जैसे कुछ चुने हुए उद्योगों और

कुछ सीमा तक आधारभूत रसायन उद्योगों को ही अपनी सहायता प्रदान करती है। चूंकि ये उद्योग पहले से ही औद्योगिक रूप से उन्नत राज्यों में केन्द्रीकृत हैं इसलिए ऐसे राज्य ही मुख्य लाभ पाने वाले भागीदार हैं।

(ii) वित्तीय संस्थाएं अपने संसाधनों का उच्च अनुपात (लगभग 3/4) निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाईयों को प्रदान कर रही हैं। इससे औद्योगिक रूप से पिछड़े उन क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जहां निजी उद्यमियों या निवेश का अभाव है और जहां जो थोड़े बहुत उद्योग हैं वे सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन कार्य कर रहे हैं। जीवन बीमा के मामले में हालत इसलिए कुछ अच्छी है क्योंकि इसमें भिन्न भिन्न निवेश विभाग हैं।

(iii) ए० आर० डी० सी० द्वारा कृषि परियोजनाओं को निधि देने के मामलों में निराशाजनक बात यह है कि वित्तीय व्यवस्था प्रदान करने के लिए चुने गए कार्यक्रम और परियोजनाएं ऐसी हैं जिससे बहुत से राज्यों को सहायता का उपयुक्त शेयर नहीं मिल पाता। वर्ष 1980-81 के अंत तक 63 प्रतिशत सहायता छोटी छोटी सिचाई योजनाओं को ही प्रदान की गई इन निधियों की उपयोगिता के संबंध में लगभग 1500 करोड़ रु० का मूल्यांकन किया गया है जो कि अत्यधिक लाभप्रद राशि होती। ए० आर० डी० सी० की उत्तराधिकारी नाबार्ड का सहायता कार्यक्रम अधिक व्यापक है। यह आशा की जाती है कि अपनी गतिशील नीतियों से नाबार्ड सभी राज्यों को सहायता प्रदान करने में समर्थ होगा।

7.6 ऐसे मामलों में राज्यों को सामूहिक रूप से विश्वास में लेना व्यावहारिक नहीं है। हालांकि इस बात की आलोचना इस सीमा तक तो की जा सकती है कि सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्र के निवेशों का स्थान निर्धारण करते समय कोई वस्तुपरक कसौटी नहीं अपनायी जाती और विशेषकर उन मामलों में जहां स्थान प्राकृतिक साधनों के विन्यास से पूर्व निर्धारित नहीं होती। स्थान का चयन उन उद्योगों के मामलों में संभव है जो स्वतंत्र उद्योग हैं अर्थात् जिनका निर्धारण विशेष प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता द्वारा नहीं किया जाता। जिस समय III पंचवर्षीय योजना बनायी जा रही थी उस समय उस योजना के अधीन सार्वजनिक क्षेत्र में प्रस्तावित विभिन्न मुख्य उद्योगों के लिए स्थानों का सुझाव देने के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी। रामानन्द राव समिति ने इस प्रश्न का अध्ययन किया और बी० एच० ई० एल०, एच० एम०टी० एच० ए० आई० एल०, आदि इकाईयों को देश के विभिन्न भागों में स्थापित करने का सुझाव दिया। इस प्रकार III पंचवर्षीय योजना के आरंभ होने से पूर्व बहुत से मुख्य उद्योगों के स्थानों का सुझाव और निर्णय पहले से ही लिया जा चुका था। यदि ऐसा न होता तो इस एकल (isolated) मामले के स्थान संबंधी वस्तुपरक अध्ययन के लिए केन्द्रीय दृष्टिकोण न अपनाया जाता। ऐसे निर्णय उत्तरोत्तर तदर्थ और मनमाने हो गए हैं। केन्द्रीय मंत्रालय और एजेंसियां राज्य सरकारों से निःशुल्क भूमि, रियायती बिजली और पानी के रूप में और यहां तक कि आवासीय सुविधाओं के रूप में विभिन्न रियायतों की मांग करती है। केन्द्रीय सार्वजनिक निवेश के मामलों में एक दृढ़ निर्णय लिया जाना चाहिए कि राज्यों से किसी प्रकार की रियायत की अपेक्षा नहीं की जाएगी क्योंकि ऐसी रियायतों की मांग से पिछड़े राज्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। VII वीं पंचवर्षीय योजना के संबंध में योजना में प्रस्तावित किए जाने वाले उद्योगों के स्थान का अध्ययन योजना की रूपरेखा उपलब्ध होने के साथ ही किया जाना चाहिए और पहले ही वर्ष में स्थान का निर्धारण कर दिया जाना चाहिए और राष्ट्रीय विकास परिषद को उचित अवसर पर इसकी सूचना दे दी जानी चाहिए।

7.7 कृपया प्रश्न संख्या 7.6 का उत्तर देखें।

7.8 पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के संवर्धन के लिए दिए गए प्रोत्साहनों की सीमा तक ऐसे क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना की गई है। शिवारामन समिति ने पिछड़ेपन को आधार मानकर और पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के संवर्धन के लिए दिए जाने वाले प्रोत्साहनों के लिए बहुत सी सिफारिशें की थीं। हालांकि इस कसौटी को नकार दिया गया। ऐसा सूचना की कमी के कारण हुआ है। पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के संवर्धन के संबंध में लिया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण निर्णय यह निश्चित किया जाना है कि एक समयावधि तक उन क्षेत्रों में नए उद्योगों को शुरू करने (एक निश्चित आकार से ऊपर) की अनुमति नहीं दी जाएगी। जब तक ऐसा निर्णय नहीं लिया जाता तब तक निश्चित क्षेत्रों में उद्योगों के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बनी रहेगी।

2. औद्योगिक पिछड़ेपन का मूल्यांकन करने वाले सूचक सामान्य पिछड़ेपन का मूल्यांकन करने वाले सूचकों से भिन्न होने चाहिए। पूंजीगत साधनों के अभाव और उनके कुशल प्रयोग की आवश्यकता की स्थिति में हमें "मरुद्यान" लगाते समय सतर्क रहना चाहिए। पिछड़े क्षेत्रों में बिना सम्पर्क सूत्र स्थापित किए पृथक् औद्योगिक इकाइयां लगाने से किसी भी तरह से पिछड़ेपन की समस्या हल नहीं होगी। औद्योगिक पिछड़ेपन का मूल्यांकन करने के लिए आधारिक संरचना के उपयुक्त स्तर की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण कसौटी मानी जानी चाहिए। आधारिक संरचना स्थापित करने में सबसे पहले राज्यों को अपनी भूमिका निभानी होगी।

3. इस तथ्य को केरल के उदाहरण से अधिक समझा जा सकता है। राज्य में सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आधारिक संरचना को विकसित करने में पिछले वर्षों में बहुत बड़ी धन राशि खर्च की गई है। इसके परिणाम स्वरूप राज्य ने देश में सबसे अधिक साक्षरता दर, निम्नतम मृत्यु दर, बहुत कम जन्म दर और उपयुक्त रूप से सुविकसित वास्तविक आधारिक संरचना प्राप्त की है। दूसरी ओर औद्योगिक विकास धीमा रहा और राज्य में बेरोजगारी देश में सबसे अधिक है। आधारिक संरचना को बनाने में लगी भारी लागत का पूर्णतः उपयोग नहीं किया गया है। नीति निर्धारण और योजना बनाने का विशिष्ट उद्देश्य यह होना चाहिए कि ऐसे राज्यों में भारी औद्योगिक निवेश को बढ़ावा देने का निर्देश दिया जाए। इस संबंध में केन्द्रीय निवेश की भूमिका महत्वपूर्ण है।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 अनुच्छेद 307 में संसद को अनुच्छेद 302 से 304 तक के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्राधिकरण बनाने की शक्ति दी गई है। अर्थात् अंतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य के संबंध में यदि कोई विवाद हो तो यह प्राधिकरण ऐसे विवादों पर विचार करेगा और उनका निपटारा करेगा। अंतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य से संबंधित विनियमों को लागू करने संबंधी पिछले अनुभवों से यह मालूम होता है कि अब ऐसा एक प्राधिकरण स्थापित करने का समय आ गया है।

कृषि

9.1, 9.2 और 9.3 योजना आयोग न केवल विस्तृत राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और कृषि और सामाजिक सेवाओं जैसे मामलों में विकास कार्यक्रमों के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्तों की जानकारी देता है बल्कि इन क्षेत्रों में केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा निर्धारित की गई योजनाओं से भी अवगत कराता है। इसका परिणाम यह हुआ कि योजना बनाना स्थानीय स्थितियों के अनुकूल होने की अपेक्षा वस्तुतः पूरे देश के लिए योजनाओं की एक रूढ़िबद्ध प्रणाली बन गया। योजना आयोग ने अभी तक विभिन्न राज्यों की विकास संभावना और उन पर बल दिए जाने के अन्तर का अध्ययन नहीं किया है।

जैसा कि किसी अन्य स्थान पर भी ऐसा उल्लेख किया गया है कि हम यह महसूस करते हैं कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित की गई बहुत सी योजनाओं को न्यूनतम रखा जाना चाहिए और आधारभूत राष्ट्रीय महत्व की योजनाओं के संबंध में केन्द्रीय अनुदान सहायता केवल अन्तबद्ध सहायता के रूप में दी जानी चाहिए।

राज्य सूची में कृषि जैसे विषयों पर सब सरकार की भूमिका भाग VI में दिए गए प्रश्नों के उत्तर में बताए गए अनुसार प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सुझाए गए मार्गदर्शी सिद्धान्तों पर आधारित हो सकती है।

9.4 कृषि मदों के लिए उचित या न्यूनतम मूल्यों के निर्धारण के संबंध में उठने वाले प्रश्न और सार्वजनिक वितरण प्रणाली से संबंधित प्रश्नों को प्रश्न 4.7 के उत्तर में स्पष्ट कर दिया गया है। इसलिए उन्हें यहां दोहराया नहीं गया है।

2. जैसा कि अन्य स्थानों पर भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि सिंचाई के मामले उठने पर परियोजनाओं के संबंध में, जिनका कोई अन्तर्राज्यीय निहितार्थ नहीं है या जिन्हें विदेश से कोई वित्तीय सहायता नहीं मिलती है, योजनाओं की मंजूरी पूर्णतः राज्य सरकार की होनी चाहिए। लागत के एक निश्चित स्तर से अधिक की योजनाओं का मॉनीटरिंग और मूल्यांकन योजनाओं को अंतिम रूप देते समय किया जाना चाहिए और इनका मॉनीटरिंग और मूल्यांकन केन्द्रीय तकनीकी एजेंसियों द्वारा सामयिक रूप से भी किया जाना चाहिए। सभी परियोजनाओं की विस्तृत छानबीन की वर्तमान प्रणाली में 5 करोड़ रुपये से अधिक लागत आई है जो किए गए प्रयास और समय की फिजूल खर्ची है और इससे सामाजिक और आर्थिक लाभों के उचित मूल्यांकन के अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति भी नहीं होती है।

3. अंतर्राज्यीय जल की परियोजनाओं के संबंध में अंतर्राज्यीय जल के आबटन के मामले में केन्द्रीय एजेंसियों द्वारा अनुमोदन प्राप्त करना लाभप्रद है और इस संबंध में मध्यस्थता और अधिकरण की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया भली भांति निर्धारित की गई है। ऐसा माना जाता है कि अधिकरण इस कार्य में अधिक समय लगाते हैं किन्तु भारत सरकार द्वारा भी पारम्परिक स्वीकार्य हल के लिए कार्य करते समय इतना ही समय लगाया गया है। बहुत से अंतर्राज्यीय जल संबंधी विवादों को अधिकरण के पास न भेजने या अधिकरण के समक्ष मामले को निरन्तर लटकाए रखने में कई वर्ष बेकार हो गए हैं। क्रमशः कावेरी जल विवाद और नर्मदा जल विवाद इसके कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं। चूंकि जल एक संवेदनशील विषय है इसलिए बहुमत से निर्वाचित सरकारें भी जल संबंधी निर्णयों को लेने में असमर्थ हो जाती हैं। इसलिए इन विवादों को हल करने का एकमात्र तरीका यह है कि इन विवादों को उचित कानून के अधीन बनाए गए अधिकरणों द्वारा सुलझाया जाए। केन्द्रीय सरकार द्वारा भी इन विवादों को अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत करने में विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए।

4. ऋण सहित निवेशों के संबंध में उर्वरकों की पूर्ति और उन्नत बीजों के ऋण की पूर्ति से संबंधित मामलों के लगभग सभी पहलुओं का निश्चय अन्ततोगत्वा भारत सरकार द्वारा किया जाता है। निवेशों के वितरण और उधार की पूर्ति संबंधी प्रावधानों में उत्तरोत्तर सुधार हुआ है।

9.5 कुछ वर्ष पहले तक वानिकी नीति और प्रशासन संबंधी विषय पूर्णतः राज्य सरकार के अधीन थे। औपनिवेशिक काल से विरासत के रूप में प्राप्त वनों के प्रति हमारा दृष्टिकोण यह था कि वनों का प्राकृतिक साधन के रूप में उपयोग करने के लिए अक्षत वनों को गिराया जाए और नए पौधे लगाए जाएं। देश के विभिन्न भागों में जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ साथ वनों में भी पर्याप्त अनधिकार प्रवेश होने लगा और राज्य सरकार को भी समय समय पर अनधिकार प्रवेश को नियमित करना पड़ा। राज्यों में वनों के अधीन क्षेत्र इतने कम हो गए कि उनमें खतरा पैदा होने लगा। यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्या इसका कारण यह रहा है कि यह विषय पूर्णतः राज्य सरकारों के अधीन था या वनों की उपयोगिता और उनसे राजस्व वसूल करने से संबंधित प्रचलित धारणा थी और बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव एक विवादास्पद विषय है। इस विषय को समवर्ती सूची में अंतरित किए जाने और वन संरक्षण कानून अधिनियमन के बाद 180 डिग्री भारी परिवर्तन हुआ है। यहां तक कि छोटे से छोटे मामलों के लिए भी दिल्ली में स्थित समिति से बेदखली प्राप्त करनी पड़ती है। इस प्रकार अपने वनों के मामले पर विचार करते समय हम यह पाते हैं कि हमने इसमें भारी परिवर्तन किया है। इस संबंध में एक स्पष्ट नीति की घोषणा किए जाने और इस नीति को संसद और राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत किए जाने की आवश्यकता है और प्रत्येक राज्य में वन विभाग के लिए एक स्वतंत्र प्राधिकरण स्थापित किए जाने की आवश्यकता है जो नीति के विभिन्न पक्षों को कार्यान्वित करने और समय समय पर विधान मण्डल को रिपोर्ट करने का समग्र रूप से प्रभारी हो।

9.6 आई० सी० ए० आर० के माध्यम से कृषि अनुसंधान की भूमिका के संबंध में केन्द्र राज्य संबंधों के क्षेत्र में कोई समस्याएं नहीं हैं। केन्द्र सरकार द्वारा बड़ी बड़ी अनुसंधान संस्थाओं का स्थापित किया जाना एक महत्वपूर्ण कार्य है और ऐसी अनुसंधान संस्थाओं को भविष्य में शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए। इन संस्थाओं द्वारा राज्यों में समन्वित परियोजनाओं का भी पर्याप्त विस्तार किया जाना चाहिए जिसमें राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं को भी पूरी तरह शामिल किया जा सके।

नाबार्ड के संबंध में भाग VII के प्रश्नों के उत्तर में टिप्पणियां की गई हैं।

खाद्य और सिविल पूर्ति

10.1 परामर्श में सुधार लाने की गुंजाइश और जरूरत है। खाद्य आपूर्ति के मामले में केरल जैसे घाटे वाले राज्य के सामने आने वाली कठिनाइयां इस प्रकार हैं :—

(i) सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए भारत सरकार द्वारा खाद्य अनाजों, विशेष रूप से चावल की अपर्याप्त पूर्ति ;

(ii) बेशी वाले राज्यों द्वारा खाद्य अनाजों के लाने ले जाने पर लगाए गए प्रतिबंध (अधिकतर अनौपचारिक) के कारण निजी व्यापार माध्यमों का ठप्प हो जाना ; और

(iii) भारत सरकार की यह शर्त कि राज्य सरकारों या राज्य सरकार एजेंसियां (जैसे नागरिक आपूर्ति निगम) भारत सरकार की पूर्व सम्मति प्राप्त किए बिना अंतर्राज्यीय खरीद नहीं करेंगी। ऐसी सम्मति प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगता है और यह बहुत कम मात्रा के लिए दी जाती है और इसमें आगे उधार आदि के लिए अधिकार प्राप्त करने में भी कठिनाइयां आती हैं।

परिणामस्वरूप, विशेष रूप से देश में सूखे की स्थिति में, केरल जैसे घाटे वाले राज्य में खाद्य पूर्ति स्थिति और खाद्य पदार्थों के मूल्यों संबंधी स्थिति दयनीय हो जाती है।

राष्ट्रीय साझा बाजार होने का लाभ यह है कि मितव्ययिता और कुशलता बरतने से देश के विभिन्न भागों में भिन्न जिंसों का उत्पादन किया जा सकता है। यह उत्पादन उन भागों की अपनी प्राकृतिक सम्पन्नता और कृषि जलवायु संबंधी स्थितियों पर निर्भर करता है। जो राज्य नकदी फसलों का उत्पादन करते हैं और देश के लिए विदेशी मुद्रा कमाते हैं उन राज्यों को खाद्य आपूर्ति के मामले में कष्ट नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसे राज्यों के लिए खाद्य अनाजों की निर्धारित मात्रा की पूर्ति करने के कार्य को राष्ट्रीय जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

अंतर्राज्यीय आपसी समझ का निर्माण करने और सहमति प्राप्त नीति को तैयार करने के लिए भारत सरकार और राज्य सरकारों के बीच अधिक सुव्यवस्थित परामर्श करना लाभप्रद होगा। मानसून की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हम चाहते हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा प्रत्येक वर्ष के अगस्त/सितम्बर माह में राष्ट्रीय खाद्य स्थिति पर विचार किया जाना चाहिए और अगले 12 महीनों में केन्द्र और विभिन्न राज्यों द्वारा अपनायी जाने वाली नीतियों पर निर्णय लिया जाना चाहिए।

10.2 इस संबंध में आवधिक समीक्षा करना वास्तव में लाभप्रद होगा। लगभग 5 वर्षों में एक बार केन्द्र, राज्यों और संबंधित हितों की संस्थाओं आदि के प्रतिनिधियों की एक समिति नियुक्त की जा सकती है जो स्थिति की समीक्षा करें और केन्द्र और राज्यों के लिए उचित सिफारिशें करें।

शिक्षा

11.1 ऐसा महसूस किया गया है कि ऐसी कोई भी आलोचना की शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीयकरण और मानकीकरण है तथा राज्य के प्राधिकरण और नेतृत्व में केन्द्र का अत्यधिक हस्तक्षेप है, पूर्णतया न्यायोचित नहीं

है। और फिलहाल इतना अधिक केन्द्रीयकरण है भी नहीं। वस्तुतः डिग्री से पूर्व और विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के मामले में कुछ निश्चित स्तर तक मानकीकरण किए जाने की आवश्यकता है। मानकीकरण की यह आवश्यकता विद्यार्थियों की एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में गतिशीलता बनाए रखने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए और विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा जारी किए गए डिप्लोमाओं और डिग्रियों के मामले में संगतता और समानता की आवश्यकता के लिए एकीकृत या मानक परीक्षा प्रणाली तैयार करने, विद्यार्थियों के प्रवेश लेने और प्रवेश वापस लेने सम्बन्धी मामलों के लिए एक विस्तृत एकीकृत राष्ट्रीय समय कलैण्डर तैयार करने, प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक शिक्षा के क्षेत्र में अन्य देशों के साथ पाठ्यक्रम और पाठ्य विवरण में समानता की सामान्य आवश्यकता आदि को ध्यान में रखकर अनुभव की गई है।

11.2 ऐसा अनुभव किया गया है कि विश्वविद्यालयों और संबद्ध कॉलिजों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के मामले में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अपना ध्यान समान्यतः कम दे। जिस सीमा तक आवश्यक हो, भौतिक सुविधाओं, वित्तीय सुविधाओं और अन्य संबद्ध मामलों के विशिष्ट संदर्भ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालय और कालेज शिक्षा का स्वरूप निर्धारण करने में समन्वयकारी निकाय के रूप में कार्य कर सकता है। फिर भी एक विस्तृत निकाय का गठन करने के लिए यह उपयोगी होगा कि उच्चतर शिक्षा के लिए सामान्य नीति मानकों का निर्धारण करने के लिए सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधियों जैसे शैक्षिक क्षेत्रों से, शिक्षा योजनाकारों, निर्वाचित प्रतिनिधियों और प्रशासकों को शामिल किया जाए। यह भी अनिवार्य किया जाना चाहिए कि किसी ऐसे निकाय द्वारा नीति के मामलों पर निर्णय लिए जाने से पूर्व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से परामर्श किया जाए।

11.3 शिक्षा के संबंध में एक राष्ट्रीय नीति होनी चाहिए ताकि पूरे राष्ट्र में शैक्षिक पैटर्न में एकरूपता आ सके और जिसमे विद्यार्थी एक राज्य से दूसरे राज्य में शिक्षा पा सके। इस नीति की मुख्य बातें भारत सरकार द्वारा तैयार की जा सकती है और इसके कार्यान्वयन और ब्यौरों की जिम्मेवारी संबंधित राज्यों पर छोड़ दी जानी चाहिए। केन्द्र और राज्यों के बीच बार-बार विचार विमर्श और परामर्श किए जाने चाहिए।

11.4 हमारे राज्य में अनुच्छेद 29 और 30 के अधीन जिनमे अल्प-संख्यकों को साम्प्रदायिक शैक्षिक संस्थाओं की व्यवस्था करने और उनकी स्थापना करने के अधिकार दिए गए हैं, सांविधानिक उपबन्ध को लागू करने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं किया गया है। वस्तुतः केरल में हमारी शिक्षा प्रणाली के अभिन्न अंग के रूप में शैक्षिक संस्थाओं का संचालन अल्पसंख्यकों द्वारा सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

11.5 जहां तक केरल का संबंध है केन्द्र और राज्य के बीच शैक्षिक विकास के किसी कार्यक्रम में किसी प्रकार का कोई विरोध होने का कोई विशिष्ट उदाहरण दिखाई नहीं दिया है।

अन्तः सरकार समन्वय

12.1 हमारे द्वारा सुझाई गई अन्तर्राज्यीय परिषद ऐसे मामलों से निपटने में समर्थ होनी चाहिए। इसके लिए एक पृथक आयोग या परिषद बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ज्ञापन

संघ और राज्यों के बीच संबंधों के विशेष संदर्भ में भारतीय संविधान की कार्यप्रणाली एक ऐसा विषय रहा है जिसका कुछ विद्वान, समितियों और प्रशासनिक सुधार आयोग विश्लेषण और विचार विमर्श करते रहे हैं। किन्तु वर्तमान आयोग भारत सरकार द्वारा गठित एक ऐसा प्रथम आयोग होगा जिसका विशेष रूप से यह कार्य होगा कि संघ और राज्यों के बीच सभी क्षेत्रों में शक्तियों, कार्यों और जिम्मेवारियों के सम्बन्ध में वर्तमान व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा और जांच करे और समुचित परिवर्तनों और अन्य उपायों की शिफारिश करे। आयोग को सौंपा गया कार्य अत्यधिक राष्ट्रीय महत्व का कार्य है। केरल सरकार इस आयोग का स्वागत करती है जिसमें सार्वजनिक मामलों का व्यापक अनुभव रखने वाले प्रसिद्ध व्यक्ति शामिल हैं।

2. किसी एक देश में सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच जिम्मेवारियों के आबन्टन के सामान्य सिद्धान्तों का आदर्श रूप इस प्रकार होना चाहिए :—

(i) कार्यों की स्पष्ट सीमा स्पष्ट रूप से परिभाषित की जानी चाहिए और कार्य स्पष्ट रूप से बताए जाने चाहिए तथा प्रत्येक विशेष कार्य को केवल उसी स्तर पर किए जाने के लिए सरकार के विशेष स्तर को सौंपा जाना चाहिए ;

(ii) कार्यकुशलता—प्रत्येक कार्य सरकारी स्तर पर किया जाना चाहिए जहां इसे दक्षतापूर्वक किया जा सकता है।

(iii) निचले स्तरों को प्राथमिकता देना—जो सरकारी स्तर लोगों से अत्यधिक संबद्ध है उन्हें केवल वे ही कार्य करने चाहिए जिन्हें वे कारगर ढंग से कर सके और जिन कार्यों को उक्त ढंग से नहीं किया जा सकता वे कार्य उच्चस्तरों पर किए जाने चाहिए।

व्यवहार में ऐसा अनुभव किया गया है कि जिम्मेवारियों को शायद ही कभी इस तर्कसंगत दृष्टिकोण से विभाजित किया जा सके। प्रथमत: यह विभाजन स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है क्योंकि विशेष समय में विभिन्न संस्थाएं पहले से ही स्थापित की जा चुकी हैं जिनके पास विभिन्न शक्तियां हैं जबकि जिम्मेवारियों के विभाजन पर विचार सरकार के स्तरों पर किया जाता है अत: ऐतिहासिक संदर्भ की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार हमारे संविधान को अन्तिम रूप देते समय इतिहास में पहली बार और अधीन होने के लम्बे अर्से के बाद अत्यधिक महत्वपूर्ण विचार यह था कि भारत एक सामान्य राजनीतिक प्रणाली सहित एक एकीकृत देश के रूप में उदित होगा।

दूसरे, जिम्मेवारियों का विभाजन एक राजनीतिक कार्य है और निर्धारित समय में अत्यधिक वांछनीय और संभव समझे जाने वाले विचार पर आधारित समझौते के अधीन है। तीसरे, आधुनिक सरकार और समाज की जटिलताओं और आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास के साथ साथ विषय-गत (संबंधित) क्षेत्र में स्पष्ट विभाजन करना अत्यधिक कठिन हो गया है परिणामस्वरूप प्रत्येक विषयगत क्षेत्र से संबंधित विभिन्न कार्यों को सरकार के उचित (असमान) स्तरों पर पूरा किया जाना है। इसे कुछ सीमा तक केन्द्रीय रूप से बनाए गए समाजवादी देशों ने पूरा भी कर लिया है क्योंकि ऐसे देशों में सरकार का निचला स्तर केन्द्रीय सरकार को निचली पंक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। उन व्यवस्थाओं में जहां अधिकारों और कार्यों को कानून द्वारा अभिहित किया जाता है वहां हमेशा यह संभव नहीं है कि कार्यों को विस्तृत रूप से और विशिष्ट रूप से सूचीबद्ध किया जा सके। इसलिए कार्यों की सामान्य शब्दों में सूचीबद्ध किया गया है और इसकी वास्तविक भूमिका समय समय पर सरकारी प्रणाली द्वारा निश्चित की जाएगी।

3. हमारे संविधान के सिद्धान्तों के संबंध में विधानसभा और इसकी समितियों पर विचार विमर्श करते समय विभिन्न विकल्पों जैसे—एकात्मक राज्य, सशक्त केन्द्र वाला एक संघ जिसके अवशिष्ट अधिकार केन्द्र के पास हो या ऐसा संघ जिसकी अधिकतर शक्तियां (अधिकार) राज्यों के लिए हों आदि पर विचार किया गया। विधान सभा द्वारा पहले बनाई गई समितियों में से एक समिति संघीय अधिकारों की समिति थी जिसके अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरू थे यह समिति इस निर्णय पर पहुंची कि एक एकात्मक राज्य को स्थापना राजनीतिक और प्रशासनिक रूप से प्रतिगामी (अवनति की ओर) कदम होगा और यह शिफारिश की गई कि "हमारे संविधान का सही ढांचा एक संघ के रूप में है जिसमें एक सशस्त्र केन्द्र है" और जिसके अवशिष्ट अधिकार केन्द्र के पास हैं। जब विधान सभा में इस समिति को रिपोर्ट पर विचार किया गया तो इसके विरोध में सशक्त विचार अभिव्यक्त किए गए और राज्यों को अधिक शक्तियां देने को मांग की गई। इस समिति द्वारा सुझाई गई सामान्य योजना को अन्तिम रूप से अपना लिया गया था।

4. विधान सभा में ड्राफ्ट किए गए संविधान को प्रस्तुत करते हुए डा० बी० आर० आंबेडकर (ड्राफ्टिंग समिति के अध्यक्ष) ने संविधान के रूप और इसकी विशेषताओं को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि, जहां तक इस का संबंध है, भारतीय संविधान एक संघीय संविधान है जिसे "दोहरी राज्य व्यवस्था" कहा जा सकता है। इस दोहरी नीति के केन्द्र में संघ है और उसकी परिधि में राज्य है और प्रत्येक को संविधान द्वारा सौंपे गए क्षेत्र में प्रयोग करने के लिए प्रभुता की शक्तियां प्रदान की गई हैं। किन्तु अन्य देशों में प्रचलित प्रणालियों से भारतीय प्रणाली को विशिष्टता प्रदान करने वाला लक्षण यह है कि भारतीय संविधा समय पर और परिस्थितियों की आवश्यकताओं (मांग) के अनुसार एकात्मक और संघीय दोनों प्रकार से कार्य कर सकता है अर्थात, सामान्य परिस्थितियों में संघीय प्रणाली के रूप में कार्य करता है और गंभीर आपात स्थिति या संकट जैसे विदेशी आक्रमण या युद्ध के समय यह स्वत: ही एकात्मक प्रणाली के रूप में कार्य करने लगता है। संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को वित्तीय आपात स्थिति की घोषणा करने या किसी राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में लेने की शक्तियां भी दी गई हैं। राज्य के सम्बन्ध में राष्ट्रपति ऐसा उस समय कर सकता है जब उसे लगे कि राज्य में सांविधानिक मशिनरी असफल हो गई है या राज्य संघ द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुपालन या उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने में असमर्थ हों।

5. विधान सभा में हुई इस आलोचना "कि अत्यधिक केन्द्रीकरण है और राज्यों को नगर पालिकाएं बना दिया गया है" का उत्तर देते हुए डा० बी० आर० आंबेडकर ने कहा कि "केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों के संदर्भ में इसके मौलिक सिद्धान्त को ध्यान में रखना आवश्यक है। संघीय सरकार का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि विधायी और कार्यपालक प्राधिकार को केन्द्र द्वारा बनाए गए किसी कानून द्वारा नहीं वरन, संविधान द्वारा स्वत: ही केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजित किया गया है, संविधान का यही कार्य है। हमारे संविधान के अधीन राज्य किसी भी तरह से अपने विधानिक या कार्यपालक प्राधिकार के लिए केन्द्र पर आश्रित नहीं हैं। इस मामले में केन्द्र और राज्य समान है। अत: ऐसे संविधान को केन्द्रीकरण वाला संविधान कैसे कहा जा सकता है।

ऐसा हो सकता है कि संविधान में अन्य किसी संघीय संविधान के अपेक्षा केन्द्र को इसकी विधायी और कार्यपालक प्राधिकार को लागू करने के लिए अधिक क्षेत्र (अधिकार) सौंपा गया है। यह भी हो सकता है कि अवशिष्ट अधिकार केवल केन्द्र को दिए गए हैं न कि राज्यों को। किन्तु इन विशेषताओं

से संघीय सरकार का सार सिद्ध नहीं होता। जैसा कि मैंने कहा संघीय सरकार की मुख्य विशेषता संविधान द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी और कार्यपालक प्राधिकार के विभाजन में निहित है। इसी सिद्धान्त को हमारे संविधान में भी शामिल किया गया है। इसका कोई अन्य या गलत अर्थ नहीं लगाया जा सकता। इसलिए यह कहना गलत है कि राज्यों को केन्द्र के अधीन रखा गया है। केन्द्र भी अपनी इच्छानुसार विभाजन की इस सीमा में परिवर्तन नहीं कर सकता और न ही न्यायपालिका ऐसी कर सकती है।

6. संविधान अपना लिए जाने के बाद देश ने विकास के लिए राष्ट्रीय योजना को अपने हाथ में लिया है। योजना के आगमन के साथ विकास के अन्तर्गत आने वाले सभी विषयों के लिए संघ सरकार के प्रभाव और कार्य का क्षेत्र बढ़ गया है। संघ और राज्यों के बीच शक्तियों और विषयों का विभाजन उत्तरोत्तर अस्पष्ट हो गया है। सभी विकास विषयों की व्यवस्था करने वाली राष्ट्रीय योजना को तैयार करने, भारत सरकार और योजना आयोग से राज्य की योजनाओं के लिए अपेक्षित समाशोधन, वर्ष प्रति वर्ष प्रत्येक क्षेत्र में विकास योजनाओं और राज्य के संसाधनों का केन्द्रीय मंत्रालयों के कार्यकारी समूहों द्वारा विस्तृत (ब्यौरेवार) परीक्षण करने, वर्ष प्रति वर्ष राज्य के आकार और केन्द्रीय सहायता की मात्रा का निर्धारण करने, केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं (न केवल पंच वर्षीय योजना के प्रारम्भ में वरन, अधिकतम योजना के पूर्ण अवधि के दौरान) और बाह्य रूप से सहायता प्रदान की गई योजनाओं की कार्यविधि आदि सभी कार्यों के लिए उच्च श्रेणी के प्रशासनिक और वित्तीय केन्द्रीयकरण की आवश्यकता होती है। ये सब कार्य आगे चलकर राष्ट्रीयकृत बैंकों और जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट आफ इंडिया, आई० डी० बी० आई०, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, नबार्ड आदि केन्द्रीय वित्त संस्थाओं के माध्यम से बचतों के केन्द्रीयकरण को संयोजित किए जाने की समस्या उत्पन्न करते हैं। ऐसी कोई संस्थागत व्यवस्था नहीं है जिसके माध्यम से राज्य अपनी नीतियों के संबंध में और कृषि (विस्तृत रूप में), उद्योग, आवास, जल पूर्ति और आधारिक संरचना संबंधी योजनाओं आदि के मूल निवेशों के सम्बन्ध में अपने विचार अभिव्यक्त कर सके जबकि इन सभी तत्वों का प्रत्येक राज्य के विकास के लिए बहुत अधिक महत्व है।

7. इसलिए केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों के संदर्भ में वित्त और विकास से संबंधित अत्यधिक महत्वपूर्ण विषयों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

8 देश की राज्यव्यवस्था के सामने यह समस्या (चुनौती) है कि राष्ट्रीय विकास और स्थानीय पहल, स्थानीय बचतों और निवेश के लिए योजना बनाने की आवश्यकताओं में संतुलन कैसे स्थापित किया जाए। संविधान सभा के प्रमुख सदस्यों में से एक सदस्य श्री जी० एल० मेहता ने सभा में इस बात पर बल दिया कि, सांविधानिक ढांचा कैसा भी हो, केन्द्र और राज्यों के बीच के संबंध आर्थिक शक्तियों और प्रवृत्तियों द्वारा निर्धारित किए जाएंगे, उन्होंने कहा कि —

> "आज वाणिज्य, व्यापार और उद्योग और इनमें निहित आर्थिक संबंध सभी विषय कार्य क्षेत्र के हिसाब से राष्ट्रीय हैं और "—नियमन के उद्देश्यों के लिए इन्हें प्रान्तीय और संघीय पहलुओं में आसानी से विभाजित नहीं किया जा सकता। दुर्भाग्य से देश विखण्डनकारी और विघटनकारी प्रवृत्ति का शिकार बन गया इसलिए देश को इससे बचाना अनिवार्य हो गया था। यद्यपि इस बात में विरोधाभास हो सकता है तथापि एक शक्तिशाली केन्द्र ही पर्याप्त प्रांतीय स्वायत्तता का निर्माण कर सकता है और विकेन्द्रीकरण की स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

9. संघ-राज्य संबंधों के क्षेत्र में संविधान के कार्यों की विस्तृत समीक्षा करने के लिए चौंतीस वर्ष का समय काफी होता है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं और संविधान निर्माताओं और हमारे लोगों की राष्ट्रीय भावना की दूरदर्शिता का यह मानना है कि विधान सभा द्वारा अपनाई गई मूल योजना आज भी संगत है। राज्य सरकार का भी यह मत या दृष्टिकोण है कि देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने और राष्ट्रीय साझा बाजार को प्रोत्साहन देने और विकास कार्यों के लिए राष्ट्रीय योजना बनाने आदि के लिए सशक्त केन्द्र की आवश्यकता है। राज्य सरकार का यह भी मत है कि राज्य भी सशक्त होने चाहिए क्योंकि राज्यों की शक्ति में ही केन्द्र की शक्ति निहित है। इसलिए योजना बनाने या अन्य कार्यों के नाम पर ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जाना चाहिए जिससे वित्तीय व्यवस्था करने, योजना बनाने और प्रशासनिक कार्यों में अधिक केन्द्रीयकरण की स्थिति उत्पन्न हो। ऐसा लगता है कि वर्तमान में योजना बनाने और वित्तीय भागीदारी की प्रक्रिया प्रति-उत्पादक हो गई है जिसमें प्रत्येक राज्य या क्षेत्र की विशिष्टताओं और विशेष आवश्यकताओं का गहराई से अध्ययन नहीं किया जाता और परिणामस्वरूप इनके लिए सही उपाय और विकास के मार्ग नहीं खोजे जाते। तत्वतः उदासीन अधिकारी तंत्र द्वारा बनाई गई योजनाओं के माध्यम से संघ के पास संसाधनों के बहुत बड़े भाग जमाव के प्रति काफी सशक्त विरोध प्रकट किया गया है और इस संबंध में संपूर्ण देश में विकास के लिए एक समान पैटर्न निर्धारित करने की भी मांग की गई है। विकास और संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए राष्ट्रीय योजना की आवश्यकताओं में वर्तमान की तरह विकास और प्रशासन जैसी गौण बातों के लिए केन्द्रीय एजेन्सियों को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रीय योजना बनाने, केन्द्र राज्य मामलों पर विचार करने, राज्यों को उनकी अत्यधिक बढ़ी हुई जिम्मेवारियों के अनुपातिक रूप में अधिक संसाधनों की सुपुर्दगी करने के लिए और अन्तर्राज्यीय वितरण के संबंध में संस्थागत प्रबंधों में सुधार लाने की काफी गुंजाईश है। केन्द्र राज्य परामर्शों और स्वस्थ परिपाटियों के लिए नई क्रियाविधि तैयार किए जाने की बहुत आवश्यकता है।

10. हमने आयोग से प्राप्त प्रश्नमाला के विस्तृत उत्तरों के रूप में विधायी, प्रशासनिक, वित्तीय और विकास आदि क्षेत्रों से संबंधित विभिन्न मामलों के संबंध में राज्य सरकार के विचार प्रस्तुत किए हैं। हम यहां संक्षेप में प्रश्नों के विस्तृत उत्तरों में दी गई प्रमुख बातों की ओर संकेत करना चाहते हैं।

विधायी संबंध

11. "अवशिष्ट अधिकारों" के अतिरिक्त राज्य सरकार भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों के अधीन सूचीबद्ध विषयों में किसी प्रकार के परिवर्तन का सुझाव नहीं देती। सहयोगी संघीय भावना से और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की अनुरूपता के लिए अवशिष्ट अधिकारों को समवर्ती सूची में सूचीबद्ध किया जाना चाहिए। राज्य सरकार का भी यह मत है कि सूची I की उन प्रविष्टियों के मामले में जिनके अधीन, राज्य सूची में शामिल किए गए विषयों के लिए संसद "लोकहित" या "राष्ट्रीय महत्व" की घोषणा करके कानून बना सकता है। प्रविष्टियों को इस प्रकार लिखा जाना चाहिए जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस शक्ति का प्रयोग केवल (विशेष) असाधारण परिस्थितियों में ही किया जाएगा। प्रविष्टियों के अधीन विधान (कानून) अन्तर्राज्यीय परिषद, के परामर्श से बनाए जाने चाहिए, और राष्ट्रीय आयोगों, जिनमें राज्य के प्रतिनिधि भी शामिल हों की नियुक्ति करके पांच वर्ष में एक बार इनकी सामयिक समीक्षा की जानी चाहिए, और इस उद्देश्य के लिए संबंधित केन्द्रीय-कानूनों में आवश्यक प्रावधान किए जाने चाहिए।

यदि अनुच्छेद 368 के अधीन सातवीं अनुसूची में कभी कोई संशोधन अपेक्षित हों तो संशोधन विधेयक के संसद के समक्ष प्रस्तुत होने से पूर्व राज्य विधान मण्डलों के साथ निरपवाद रूप से पूर्व परामर्श किया जाना चाहिए। राज्य सरकार इस बात पर भी बल देती है कि यदि कोई विधान राज्यों के हितों पर प्रभाव डालता है तो इसे केवल अन्तरराज्यीय परिषद (नीचे पैरा—13) के साथ विचार विमर्श करने के बाद और इस परिषद की सिफारिशों के आधार पर ही लागू किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 200 के अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने की/के शक्ति का प्रयोग निरपवाद रूप से मंत्री परिषद की सलाह पर राज्यपाल द्वारा किया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 200 को समुचित रूप से संशोधित किया जा सकता है। एक निश्चित समय सीमा अर्थात् तीन मास, निर्धारित की जा सकती है जिसके भीतर

राज्य सरकार को विधेयक की अनुमति या विधेयक पर पुनर्विचार करने के लिए संदेश या अनुमति देने से इन्कार करने संबंधी राष्ट्रपति के निर्णय के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। जब राष्ट्रपति अनुमति देने से इन्कार करें तो यह निश्चित किया जाए कि इसके कारणों का लिखित उल्लेख किया जाना चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका

12. राज्यपाल की मुख्य भूमिका राज्य के सांविधानिक मुखिया के रूप में होती है किन्तु राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच सांविधानिक संपर्क की भूमिका भी निभाता है और इसलिए राज्यपाल द्वारा देश और राज्य के व्यापक हितों के लिए राज्य और केन्द्र सरकार दोनों को वस्तुनिष्ठ होकर परामर्श दिया जाना चाहिए।

सामान्यत: राज्यपालों ने राज्य के सांविधानिक मुखिया के रूप में कार्य किया है और संविधान में बताए गए अनुसार अपनी अपनी भूमिका निभाई है। विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में, उदाहरण के लिए जब किसी नेता को बहुमत का समर्थन प्राप्त हो तो उसे सरकार बनाने के लिए बुलाया जाए या नहीं, यह बात स्पष्ट नहीं थी या अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई की सिफारिश की जाए या नहीं, इन पर निर्णय लेते समय राज्यपालों ने भिन्न भिन्न मानदण्डों को अपनाया है। ऐसा महसूस किया गया है कि पिछले 34 वर्षों के अनुभव के आधार पर राज्य पालों के विवेकाधिकार के प्रयोग करने के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्तों को निर्धारित किया जाना संभव होना चाहिए।

सामान्यत: जब कोई मुख्य मंत्री अपना विश्वास खो दे और स्पष्ट बहुमत से कोई अन्य नेता भी न चुना गया हो तो विधान सभा को भंग करना और नए सिरे से चुनाव कराने का आदेश देना ही उचित होता है।

विधान सभा में विश्वास और बहुमत मिलने से संबंधित मामलों में जिम्मेवारी मुख्यमंत्री की होनी चाहिए न कि राज्यपाल की।

प्रशासनिक संबंध

13. राज्य सरकार यह मानती है कि नीति और कार्रवाई के समन्वय के हितों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र और राज्यों के बीच और राज्यों में निरन्तर परस्पर सलाह मशवीरे की आवश्यकता है। इस प्रयोजन और अनुच्छेद 263 में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए एक अंतर्राज्यीय परिषद का गठन किया जाना आवश्यक है। अन्तर राज्यीय परिषद, राष्ट्रीय योजना और विकास तथा आर्थिक नीतियों से संबद्ध मामलों के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद के रूप में भी कार्य कर सकती है। हमारा सुझाव है कि अन्तरराज्यीय परिषद जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद भी माना जाएगा और जिसमें विधि में निर्धारित किए गए अनुसार ऐसे संघठन, कार्यों और शक्तियों का भी उल्लेख होगा उसे बनाने के लिए अनुच्छेद 263 में संशोधन किया जाना चाहिए। मंत्रियों और अधिकारियों की समितियों के लिए और संसद तथा राज्य विधान मण्डल को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए परिषद की छ: मास में कम से कम एक बार बैठक के लिए कानून बनाया जाना चाहिए। हम वर्तमान आयोग से इस संबंध में ब्यौरेवार सिफारिश करने का अनुरोध करते हैं।

राज्य और केन्द्र के बीच हुए मतभेदों के समाधान के लिए द्विपक्षीय विचार विमर्श किया जाना चाहिए और यदि द्विपक्षीय वार्ता सफल नहीं होती है तो अन्तरराज्यीय परिषद ऐसी वार्ता के लिए एकमात्र मंच के रूप में कार्य करेगी।

संविधान का अनुच्छेद 356 बहुत आवश्यक है। हालांकि, राज्य सरकारों की अत्यधिक बरखास्तगी और संसदीय चुनावों के परिणाम स्वरूप बनी राज्य विधान सभाओं के भंग होने की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए अनुच्छेद में आवश्यक सुरक्षात्मक उपाय भी निर्धारित किए जाने चाहिए।

संघ द्वारा निदेश देने की शक्ति आरक्षित अधिकार के रूप में होनी चाहिए। किन्तु ऐसा अनुभव किया गया है कि वैधानिक प्राधिकारों की रचना करने वाले अधिनियमनों के प्रावधानों के अनुरूप अनुच्छेद 365 अनावश्यक क्षोभ पैदा करता है इसलिए इस अनुच्छेद को संविधान से निकाल दिया जाना चाहिए।

खाद्यानों और आवश्यक वस्तुओं के प्रापण और वितरण, महत्वपूर्ण सामाग्रियों के मूल्य निर्धारण, एकाधिकारों पर प्रतिबंध लगाने और अन्य मामलों से संबंधित राष्ट्रीय नीतियों के परिणाम स्वरूप राज्य और समवर्ती सूची के विषयों से संबंधित कार्यकलापों के संचालन के लिए बहुत सी केन्द्रीय एजेंसियां बनाई गई हैं। केन्द्रीय अधिनियमों के अनुसरण में केन्द्रीय जल और शक्ति आयोग (बाद में केन्द्रीय जल आयोग और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण) जैसे निकायों की स्थापना की गई थी। मूलभूत आधारिक संरचनात्मक सुविधाओं के लिए गुणता निश्चित करने के प्रयोजन के लिए और अन्तरराज्यीय मामलों से निपटने के लिए केन्द्रीय विधान का ढांचा तैयार किया जाना आवश्यक है। परन्तु समय के अनुसार इन कानूनों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया हैं और इसलिए बहुत से वर्षों से ये निकाय बहुत से छोटे मोटे मामलों के लिए भी कार्य कर रहे है। उदाहरण के लिए शक्ति परियोजनाओं के लिए 1948 में निर्धारित की गई एक करोड़ रुपये की मुद्रा सीमा अभी तक बिना किसी परिवर्तन के बनी हुई है जिसके परिणामस्वरूप जिन योजनाओं को राज्य सरकार 35 वर्ष पहले कर सकती थी वे अभी तक केन्द्र की मंजूरी प्राप्त करने की बाट जोह रही हैं। छोटी से छोटी योजनाओं के लिए भी केन्द्रीय एजेंसियों द्वारा की जाने वाली जांच इतनी विस्तृत होती है कि एक छोटी सी योजना की मंजूरी देने से पूर्व दो से तीन वर्ष का समय लग जाता है। इन केन्द्रीय निकायों को केवल एक निश्चित सीमा से बड़ी परियोजनाओं और अन्तर राज्यीय उलझनोंवाली परियोजनाओं तक ही सीमित रखा जा सकता है। कर्मचारी राज्य बीमा और कर्मचारी भविष्य निधि के मामलों में केन्द्रीय सरकार द्वारा केन्द्रीय विधान ही बनाया जाना पर्याप्त है। यही स्थिति राष्ट्रीय बचत संगठनों की भी है जिनके संबंध में केन्द्र सरकार योजनाएं और सुविधाएं निर्धारित कर सकती है और यह बात राज्यों पर छोड़ देनी चाहिए कि वे प्रगति विषयक और अन्य कार्यकलापों का आयोजन करें।

ऐसे प्रत्येक केन्द्रीय संगठनों के लिए जो राज्य और समवर्ती सूची के विषयों पर कार्रवाई करते हैं मंत्री स्तर पर सभी राज्यों की सलाहकार समिति होनी चाहिए या केन्द्र मंत्रालय से संबद्ध एजेंसियों के लिए कम से कम एक परिषद, होनी चाहिए जिसकी कम से कम वर्ष में एक बार बैठक हो और जिसमें संगठनों की कार्य प्रणाली और भूमिका, नीतियों पर चर्चा की जाए।

आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे संगठनों के प्रशासन में भी राज्यों की भागीदारी होनी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए राज्य स्तर पर संयुक्त सलाहकार परिषदों का गठन किया जा सकता है।

राज्य सरकार का यह मत है कि अपने राज्य के नागरिकों और विशेषकर अल्पसंख्यकों के जीवन संपत्ति और अधिकारों की रक्षा करना राज्य सरकारों की पहली जिम्मेवारी हैं। इसी संदर्भ में यदि परिस्थितियां ऐसी हों, असमताओं के दौरान केन्द्र सरकार द्वारा प्रभावित व्यक्तियों, यदि हों तो, के जीवन, संपत्ति और अधिकारों की रक्षा करने के लिए सुरक्षात्मक उपाय किए जाने चाहिए और पीड़ितों का पुनर्वास करने में सहायता करनी चाहिए।

किसी राज्य में सिविल शक्ति के सहायतार्थ केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र सेनाओं के प्रयोग और स्थान निर्धारण के लिए अनुच्छेद 355 के अधीन किए गए प्रबंध भी राष्ट्रीय अखण्डता के हित में अत्यन्त आवश्यक हैं।

वित्तीय संबंध और आर्थिक तथा सामाजिक योजना बनाना

14. कुल राजस्व (आय) और व्यय की दृष्टि से केन्द्र द्वारा राज्यों को अंतरित किए जाने वाले संसाधनों का कोई समायोजन किए बिना, कुछ बजट संसाधनों (कर, गैर-कर और ऋण) का तीन चौथाई भाग केन्द्र के अधीन है जब कि व्ययों की दृष्टी से केन्द्र और राज्यों का हिस्सा लगभग समान है। राज्यों में संसाधनों और व्ययों के बीच इस असंतुलन को पर्याप्त रूप से कम किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त राज्यों के कराधान संबंधी सीमित क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। दूसरी ओर राज्यों को इस योग्य बनाया जाना चाहिए ताकि वे ऐसे संसाधनों का पूर्णत: उपयोग कर सकें। हमारे विचार से भारत सरकार द्वारा कुछ वस्तुओं पर बिक्री कर के स्थान पर उत्पाद शुल्क लगाए जाने के प्रस्तावों की अपेक्षा केन्द्रीय सरकार द्वारा कुछ निश्चित वस्तुओं से स्वैच्छिक रूप से उत्पाद शुल्क और अतिरिक्त उत्पाद शुल्क हटाए जाने चाहिए।

वैयक्तिक आयकर, अधिभारों और निगम कर की दरों तथा आधारभूत, निर्धारित किए गए, विशेष, पूरक और अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों की दरों में परिवर्तनों के अनुभव के आधार पर यह निर्धारित करना आवश्यक हो गया है कि किसी भी नाम से पुकारे जाने वाले निगम कर और अधिभारों सहित सभी आय

करों और सभी उत्पाद शुल्कों को आवश्यक सांविधानिक संशोधनों द्वारा राज्यों में बांटने योग्य बनाया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 268 और 269 के अधीन दर के निर्धारित स्वरूप में परिवर्तन करने या लागू करने या किसी कर या शुल्क को समाप्त करने संबंधी कानून बनाने से पूर्व अनुच्छेद 274 के अधीन राज्यों से परामर्श लेना भी अनिवार्य होना चाहिए । ऐसे परामर्शों के लिए सांविधिक राष्ट्रीय विकास परिषद एक सही निकाय के रूप में कार्य कर सकती है ।

राज्यों को संसाधनों का अंतरण किए जाने वर्तमान संस्थागत प्रबंध जैसे वित्त आयोग और योजना आयोग, अत्यधिक व्यवहार्य प्रबंध हैं । परन्तु वर्तमान पद्धति में सुधार किया जाना चाहिए और राज्यों को केन्द्र द्वारा दी जानेवाली सहायता और अन्तरराज्यीय वितरण के लिए मात्रा का निर्धारण करते समय दोनों आयोगों और इनके वस्तुपरक मापदण्ड के बीच प्रभावी समन्वय होना चाहिए । योजना आयोग सांविधिक राष्ट्रीय विकास परिषद का सचिवालय होना चाहिए । वित्त आयोग का एक स्थायी सचिवालय होना चाहिए और इसे योजना आयोग का एक अभिन्न भाग भी होना चाहिए ।

चूंकि वित्त आयोग की सिफारिशों पर संसाधनों का अंतरण अधिकांशतः अन्तर कम करने की दृष्टि को आधार मान कर किया गया है और योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के माध्यम से संसाधनों का अंतरण अधिकांशतः योजना आयोग को संघ वित्त मंत्रालय द्वारा उपलब्ध कराई गई निश्चित धन राशि के सामान्य फार्मूले के आधार पर किया गया है इसलिए संसाधनों के इस अंतरण से न तो व्यय की मितव्ययता या कुशलता में वृद्धि हुई है और न ही इससे राज्यों के बीच असमानताओं में कमी आई है । इसलिए वित्त आयोग और योजना आयोग के माध्यम से संसाधनों के अंतरण पर लागू होने वाले सिद्धान्तों में आधारभूत परिवर्तन किए जाने आवश्यक है ।

राज्यों को अधिकतर संसाधन निश्चित सपुर्दगी के आधार पर मिलने चाहिए किन्तु अंतर राज्यीय वितरण संबंधी सिद्धान्त ऐसे होने चाहिए ताकि उन्नत राज्यों के पास अत्यधिक मात्रा में संसाधन पड़े न रहें । सब के लिए प्राथमिक शिक्षा देने संबंध कार्य में प्रगति जैसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मामलों को महत्व दिया जाना चाहिए और इसके लिए मानक निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि इन मानकों को प्राप्त करने के लिए जिन राज्यों ने कड़ा संघर्ष किया है और अपने संसाधनों को लगाया है वे राज्य अपने दायित्व पूरे कर सकें ।

केन्द्र और राज्यों के बीच अंततोगत्वा सभी राज्यों के बीच संसानों का बेहतर वितरण करने के लिए महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि राज्यों की विकास योजनाओं के लिए केन्द्र द्वारा दी जाने वाली सहायता की कुल मात्रा में वृद्धि की जाए ।

राज्यों की योजनाओं को केन्द्रीय सहायता उतलब्ध कराए जाने के लिए अपनाए गए आधार और फार्मूले की पुनः जांच की जानी आवश्यक है । राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के आबंटन में सबसे पहले वित्त आयोग के निर्णय के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थिति को ध्यान में रखा जाना चाहिए । यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक राज्य की प्रति व्यक्ति राजस्व अधिशेष की राशि समान रहे । यह योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच समन्वय लाने का एक महत्वपूर्ण तत्व है ।

हाल के वर्षों में राज्यों की बढती हुई धन वापसी की देयताओं के परिणामस्वरूप राज्यों को संसाधनों के निवल अंतरण में कमी आई है । केन्द्रीय सहायता के ऋण और अनुदान घटकों की भी पुनः जांच की जानी चाहिए ताकि राज्यों में उपयोग किए जाने वाले पूंजीगत संसाधनों के प्रयोजन के लिए विवेकपूर्ण वर्गीकरण के आधारों पर ऋण में कमी की जा सके । अतः गैर-योजना विषयों में राज्यो के अत्यधिक घाटे की स्थिति से बचने लिए ऐसे युक्तियुक्त उपाय किए जाने अधिक अच्छे रहेंगे ।

कुल सार्वजनिक क्षेत्रक के संसाधनों में राज्यों के हिस्से में कमी हुई है और इसका मुख्य कारण राज्यों को केन्द्र द्वारा किए जाने वाले पूंजीगत संसाधनों के अंतरण में तेजी से कमी होना है । राज्यों के वित्त की राशि और विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए इस प्रवृत्ति में सुधार लाए जाने की आवश्यकता है ।

बाजार उधार से संबंधित प्रक्रिया में कोई मुख्य परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता रहीं है किन्तु केन्द्र और राज्यों के बीच और अंतर राज्यीय आबंटन के लिए, कुल बाजार उधार के वितरण के लिए संस्थागत प्रबंध किए जाने और मार्गदर्शी सिद्धान्त तैयार करने अनिवार्य हैं । वर्तमान तदर्थ आबंटन अधिकांशतः केन्द्रीय सरकार के पक्ष में हैं । इस उद्देश्य के लिए राज्य सरकार ऋण परिषद के गठन को सुझाव देती है । निर्यात और प्रवासी भारतीयों द्वारा भेजी गई रकम से विदेशी मुद्रा की भारी राशि अर्जित करने वाले राज्यों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि इन राज्यों की अपनी बचतों के किसी भाग पर पूरे अधिकार के लिए संस्थाएं स्थापित करने की अनुमति नहीं होती ।

निर्वाह व्यय में वृद्धि की प्रतिपूर्ति के लिए अतिरिक्त महंगाई भत्ते की मंजूरी भी राज्यों के संसाधनों में कमी करने वाला मुख्य तत्व है । चूंकि मूल्य स्थिति का नियंत्रण करना केन्द्रीय सरकार का कार्य है । अतः केन्द्र से राज्यों को अंतरित किए जाने वाले संसाधनों के लिए इस आधार पर की गई प्रतिबद्धता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

चूंकि राज्यों को संसाधनों के अंतरण से संबद्ध सभी मामलो में समन्वय करना अनिवार्य है इसलिए राष्ट्रीय ऋण (क्रेडिट) परिषद, राष्ट्रीय आर्थिक परिषद और राष्ट्रीय व्यय आयोग जैसे स्वतंत्र निकायों की स्थापना करना लाभकारी नहीं है । राज्य सरकार का मत है कि एक पुनर्गठित राष्ट्रीय विकास परिषद और इसकी समितियां अधिकतर मामलों पर विचार करने में समर्थ होनी चाहिए। भारतीय रिजर्व बैंक के समन्वय की आवश्यकता और महत्व को देखते हुए एक पृथक ऋण परिषद का गठन किए जाने का सुझाव दिया जाता है ।

योजना अवधि के दौरान केन्द्र द्वारा प्रायोजित की गई बहुत सी योजनाएं राज्य की योजनाओं में गड़बड़ी उत्पन्न करती हैं और वित्तीय रूप से कमजोर राज्य भी अनुकूल संसाधनों की कमी के कारण केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं का पूर्णतः उपयोग करने में असमर्थ होते हैं । केन्द्र द्वारा प्रायोजित की जाने वाली योजनाओं की संख्या में कमी की जानी चाहिए और इन योजनाओं के लिए केन्द्र द्वारा पूर्णतः वित्त प्रबंध किए जाने चाहिए तथा इन्हें केवल राष्ट्रीय विकास परिषद की सहमति से ही शुरू किया जाना चाहिए ।

राष्ट्रीय योजना और केन्द्र द्वारा मध्यस्थता किए जाने का एक उद्देश्य क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करना है । राज्य योजनाओं को तैयार करने और उनके आकार तथा विषय का निर्धारण करने का आधार केवल संबंधित राज्य के संभाव्य संसाधनों का अध्ययन न होकर विकास के अंतरालों को देखते हुए और विशेष आवश्यकताओं के आधार पर होना चाहिए न कि नेमी ढंग से ।

औद्योगिक रूप से पिछड़ने के निर्धारण का मानदण्ड सामान्य पिछड़ेपन के मानदण्ड से भिन्न होना चाहिए । केरल राज्य के उदाहरण से इस तथ्य को समझा जा सकता है । राज्य ने सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आधारिक-संरचना को विकसित करने के लिए पर्याप्त धन राशि खर्च की है । जिसके परिणामस्वरूप राज्य ने देश में उच्चतम साक्षरता दर, निम्नतम मृत्युदर, निम्न जन्म-दर और उचित भलीभांति विकसित आधारिक संरचना आदि की प्राप्ति की है । दूसरी ओर राज्य में औद्योगिक विकास बहुत धीमा है और राज्य में बेरोजगारी की स्थिति देश में सबसे अधिक है । भारी लागत से तैयार की गई आधारिक संरचना का पूर्णतः उपयोग नहीं किया गया । नीति और योजना बनाने का विशिष्ट उद्देश्य ऐसा होना चाहिए ताकि ऐसे राज्यो मे अधिक मात्रा में औद्योगिक निवेश किया जा सके । इस संबंध में केन्द्रीय निवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । इस बात का पक्का निर्णय लिया जाना चाहिए कि केन्द्रीय सार्वजनिक निवेश के मामले में राज्यो से निःशुल्क भूमि आदि की छूट की अपेक्षा नहीं की जाएगी क्योंकि ऐसी छूट की मांग वित्तीय रूप से कमजोर राज्यो के विकास में प्रतिकूल प्रभाव डालती है ।

15. राज्य सरकार को यह पूर्ण विश्वास है कि आयोग राज्य के विचारो या मतों पर विचार करेगा और इनकी सिफारिश भी करेगा जिससे हमारे देश मे केन्द्र—राज्य संबंधों को सुधारने में सहायता मिलेगी और देश को प्रगति के पथ पर ले जाने, देश की एकता, अखण्डता और राष्ट्रीय साझा बाजार को बनाए रखने और देश के सभी भागों में तेजी से तथा संतुलित रूप से विकास करने में सहायता मिलेगी ।

———

केन्द्र-राज्य संबंधों पर केरल राज्य योजना बोर्ड द्वारा सरकारिया आयोग को प्रस्तुत किया गया नोट

योजना बोर्ड सामान्यत: केन्द्र और राज्य सरकारों की भूमिका के संबंध में आने वाली कठिनाइयों और सुधारक उपायों के संबंध में उनकी सिफारिशों के संबंध में राज्य सरकार के ज्ञापन में अभिव्यक्त विचारों से सहमत है। इसलिए यह नोट सीमित रूप से तैयार किया गया है और इसमें मुख्यत: आर्थिक और सामाजिक योजना से संबंधित केन्द्र-राज्य संबंधों को ही शामिल किया गया है। यह बोर्ड तीन विस्तृत क्षेत्रों :—

(क) आर्थिक और सामाजिक योजना में केन्द्र-राज्य संबंध,

(ख) राज्य स्तर पर योजना प्रक्रिया को मजबूत बनाने के लिए उपाय करना, और

(ग) योजना का विकेन्द्रीकरण करना, आदि पर विचार करता है।

I

आर्थिक और सामाजिक नियोजन में केन्द्र-राज्य संबंध

2. योजना के तंत्र के रूप में राष्ट्रीय योजना बनाने को आवश्यकता और योजना आयोग की भूमिका को आमतौर पर सभी स्वीकार करते हैं। किन्तु योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के लिए वर्तमान प्रक्रिया और संस्थागत प्रबंधों में अभी और अधिक सुधार किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय योजना को तैयार करने की जिम्मेवारी संयुक्त रूप से केन्द्र और राज्यों की होनी चाहिए। किन्तु फिलहाल पंचवर्षीय योजनाओं के आधारभूत पैरामीटरों को निर्धारित करने के लिए योजना आयोग और राज्य सरकारों के बीच मूल या उद्देश्यपूर्ण विचार विमर्शों की वास्तव में कमी है। यह सच है कि योजना कार्य का अंतिम परिणाम राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने प्रस्तुत किया जाता है किन्तु यह तो एक औपचारिकता मात्र है। राष्ट्रीय विकास परिषद को सांविधानिक हैसियत देने और योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद का सचिवालय बनाए जाने के सुझाव की प्रशंसा की जानी चाहिए।

3. योजना कार्यक्रमों को अंतिम रूप दिए जाने का ढंग भी इस क्षोभ का एक मुख्य कारण है। केन्द्रीय कार्यकारी समूह द्वारा छोटी और बड़ी व्यक्तिगत योजनाओं की ब्योरेवार संवीक्षा करने की वर्तमान कार्यविधि भी कुंठा पैदा करती है।

4. केन्द्र द्वारा प्रायोजित बहुत सी योजनाओं पर कार्य शुरू कर दिए जाने के कारण भी राज्य-योजनाएँ अब तक अनिर्णीत पड़ी हैं चूंकि आधार भूत राष्ट्रीय महत्व के कुछ क्षेत्रों के मामले में केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं आवश्यक है किन्तु छोटी योजनाओं से लेकर बड़ी योजनाओं तक बहुत अधिक संख्या में योजनाओं को आरंभ करने और उन योजनाओं के लिए उपयुक्त कोषों की आवश्यकता ने चालू और अन्य प्राथमिक राज्य योजनाओं से संसाधनों को परिवर्तित कर दिया है। इन दो दिशाओं में सुधार कार्य किए जाने की आवश्यकता है। प्रथमत: केन्द्र द्वारा प्रायोजित की जाने वाली योजनाओं को केवल राष्ट्रीय प्राथमिकता के लिए स्वीकृत कार्यक्रमों तक सीमित करके, न्यूनतम किया जाना चाहिए। जहां तक संभव हो सके इन्हें स्वयं में पंचवर्षीय योजनाओं के एक भाग के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। दूसरे, केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं को स्थानीय आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त बनाने के लिए लचीले उपाय अपनाए जाने चाहिएं।

II

राज्य योजना बोर्ड

5. हालांकि योजना प्रक्रिया में राज्य सरकार के अधिकारों के दावों को भली भांति स्वीकार किया गया है किन्तु यह भी अनिवार्य है कि राज्य सरकारों द्वारा विस्तृत योजना बनाने, मानीटरिंग और मूल्यांकन करने के लिए स्वयं को इन जिम्मेवारियों को पूरा करने के योग्य बना लेना चाहिए। इस सीमा तक इन दिशाओं में क्षमताएं प्राप्त कर ली गई है और उन्हें मजबूत बना लिया गया है तथा केन्द्र से राज्यों में विकेन्द्रीकरण बहुत अधिक हो इस निर्णय को महत्व दिया जाएगा।

6. तीसरी योजना के प्रारंभ में ही योजना आयोग ने राज्य सरकारों को राज्य स्तर पर विकास योजनाओं को तैयार करने और उनकी मॉनीटरिंग के लिए तकनीकी और व्यावसायिक समर्थन प्रदान करने के लिए राज्य योजना बोर्ड स्थापित करने की सलाह दी थी। योजना आयोग के मार्गदर्शी सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए राज्य सरकारों ने योजना बोर्डों का गठन किया यद्यपि अलग-अलग राज्यों में उनके प्रकार्यों और स्थितियों में भिन्नताएं हैं। किन्तु इनमें से अधिकतर योजना विभाग के मात्र संलग्नक हैं जो बड़ी सावधानी से योजना बनाने पर अपना अधिकार जताते हैं। यह एक विवादास्पद प्रश्न है जब तक राज्य योजना के विषय को स्वीकार न करे और आवश्यक आधारिक संरचना तैयार न करे तब तक क्या राज्य स्तर पर योजना निर्णयों का अधिक अंतरण किया जाना चाहिए? वास्तविक प्रगति के लिए राज्यों को संसाधनों और शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना एक आवश्यक किन्तु पर्याप्त शर्त नहीं है।

राज्य योजनाओं को सफलतापूर्वक बनाने और कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक रूप से अपेक्षित तकनीकी क्षमता और पर्याप्त शक्तियों वाला एक योजना बोर्ड होना चाहिए। किन्तु योजनाओं के अनुशासन में रहकर कार्य में प्राय: रूचि नहीं है।

7. योजना बोर्ड को मजबूत बनाने में निम्नलिखित की आवश्यकता होती है :—

(क) परिप्रेक्ष्य (संदर्भ), पंचवर्षीय (योजना) और वार्षिक योजनाओं को बनाने की जिम्मेवारी योजना बोर्ड की होनी चाहिए।

(ख) योजना में सम्मिलित की गई परियोजनाएं और कार्यक्रम अनिवार्य रूप से योजना बोर्ड को सलाह पर निर्धारित किए जाने चाहिए।

(ग) मंत्रिमंडल के अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करने से पूर्व आर्थिक नीतियों और क्रियाविधियों से संबंधित सभी महत्वपूर्ण मामलों पर योजना बोर्ड द्वारा विचार किया जाना चाहिए।

(घ) कार्यान्वयन के दौरान योजना कार्यक्रमों में किए जाने वाले किसी प्रकार के महत्वपूर्ण परिवर्तन योजना बोर्ड की सहमति से किए जाने चाहिए।

(ङ) मुख्य परियोजनाओं, कार्यक्रमों और नीतियों से संबंधित अन्तर-विभागीय और केन्द्र/राज्य के विचार विमर्शों में योजना बोर्ड घनिष्ठ रूप से सह-संबद्ध होना चाहिए।

(च) योजना कार्यान्वयन के कार्यक्रमों की सूचना नियमित आधार पर योजना बोर्ड को भेजी जानी चाहिए ताकि बोर्ड की उपयुक्त मॉनिटरिंग और मूल्यांकन के योग्य बनाया जा सके और योजना के कार्यान्वयन तथा उसमें आवश्यक संशोधन करने के संबंध में समय-समय पर मंत्रिमण्डल का मूल्यांकन किया जा सके।

(छ) केन्द्र की भांति ही सचिवालय और योजना बोर्ड में पृथक विभाग के स्थान पर राज्य स्तर पर राज्य योजना बोर्ड को ही योजना एजेंसी के रूप में कार्य करना चाहिए।

(ज) योजना बोर्ड की कानूनी हैसियत का प्रावधान होना चाहिए क्योंकि राष्ट्रीय विकास परिषद को वैधानिक बनाने और योजना आयोग को

इसका सचिवालय बनाने में यह प्रस्तावित अधिनियम का भाग हो सकता है।

उपर्युक्त सभी तथ्य न केवल योजना बोर्ड की जिम्मेवारियों और कार्यों में वृद्धि के लिए आवश्यक हैं बल्कि विभागों और योजना बोर्ड के बीच निकटतम समन्वय करने और परामर्श के लिए भी आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त बृहद् अर्थशास्त्र के अध्ययन, क्षेत्रीय योजना बनाने और परियोजनाओं के समवर्ती मूल्यांकन के लिए योजना बोर्ड को पर्याप्त रूप से व्यवसायिक और तकनीकी कर्मचारी प्रदान किए जाने चाहिए। इन सबसे अधिक सरकार द्वारा योजना बोर्ड के परामर्श पर उचित विचार किया जाना चाहिए।

8. यदि इन सिद्धान्तों के अनुसार एक बार सुधार कर दिया जाए तो इससे राज्य सरकारों द्वारा योजना कार्यों को पहले से अधिक प्रभावी ढंग से करने की क्षमता और योग्यता आएगी और केन्द्र में अधिक आत्मविश्वास का संचार होगा। इससे राज्यों की आर्थिक और सामाजिक योजना में निर्णय लेने की शक्तियों के अन्तरण की प्रक्रिया में सहजता आएगी। इससे राज्य के योजना बोर्डों और केन्द्र में योजना आयोग के बीच सीधे संपर्क स्थापित करने में भी सहायता मिलेगी। इस प्रकार राष्ट्रीय योजना, योजना बोर्डों के साथ सम्पूर्ण रूप से एकीकृत प्रक्रिया हो जाएगी जिसमें योजना आयोग को राज्य से प्रभावी समर्थन प्राप्त होगा। योजना बोर्डों और योजना आयोग के बीच यह निकट संपर्क और कार्मिकों के आदान प्रदान के लिए कार्यक्रमों को आरम्भ करने से दोनों को पारस्परिक लाभ होगा।

9. अंततः वर्तमान केरल मंत्रालय के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि योजना बोर्ड के कार्यों का विस्तार करने में उन्होंने सराहनीय कदम उठाया हैं। हाल ही में योजना को पुनर्गठित करते समय यह आदेश दिया गया है कि आर्थिक नीति के सभी महत्वपूर्ण मामले और नई परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों को आरंभ करने के मामलों की योजना बोर्ड के परामर्श के लिए भेजा जाना चाहिए। वार्षिक योजना बनाने का कार्य अब बोर्ड का है और चालू वर्ष के दौरान इसे बोर्ड द्वारा ही पूरा किया जा रहा है। ये पहले से चली आ रही स्थिति से आगे बढ़े हैं किन्तु राज्य स्तर पर योजना बनाने में योजना बोर्ड को और अधिक सहभागिता प्राप्त करने के लिए अभी और सुधार किए जाने की आवश्यकता है।

III

योजना का विकेन्द्रीकरण

10. हमारे देश जैसे विशाल देश में योजना का स्वरूप बहु स्तरीय होना चाहिए। विकास योजना और कार्यान्वयन के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को राज्य स्तर के नीचे लाया जाना चाहिए ताकि इन्हें प्रभावी ढंग से पूरा किया जा सके। जिस प्रकार केन्द्र के अधीन योजना कार्यों का अत्याधिक केन्द्रीकरण होने से राज्य स्तर पर गंभीर समस्याएं उत्पन्न कर सकता है उसी प्रकार राज्यों की राजधानियों के अधीन योजना और कार्यान्वयन आदि के लिए निर्णय लेने की शक्तियां भी उन योजनाओं और परियोजनाओं के लिए उचित योजना बनाने और कार्यान्वयन करने में प्रतिकूल हो सकती हैं जिन्हें जिला, ब्लाक और पंचायत स्तर पर समुचित रूप से हल किया जा सकता था। केन्द्र सरकार से राज्य सरकारों की योजना और आर्थिक विकास कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण राज्य स्तर के अंतर्गत विभिन्न निचले स्तरों को शक्तियों का प्रत्यायोजन करके किया जाना चाहिए।

11. केरल में योजना के विकेन्द्रीकरण का इतिहास बड़ा ही उतार-चढ़ाव वाला रहा है। जिला स्तरों पर कार्यों का अन्तरण के बहुत से प्रयास असफल रहे।

योजना बोर्ड ने अब विकेन्द्रीकरण के फेस कार्यक्रम की सिफारिश की है जो सरकार के विचाराधीन है। केन्द्र और राज्यों में समस्या का मूल शक्तियों के परस्पर विलग होने की इच्छा है।

12. केन्द्र से राज्यों की योजना प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण से निश्चित रूप से हमारी योजना पद्धति में "सहकारी संघीय वाद" की भावना को स्थापित करने में सहायता मिलेगी। योजना आयोग, आयोग के पास योजना बनाने की जिम्मेवारियों को पूरा करने के लिए आवश्यक तकनीकी विशेषज्ञ उपलब्ध हैं और यह आयोग बड़े स्तर के योजना कार्यों को कर रहा है। किन्तु राज्य इन कार्यों में सक्रिय रूप में संबद्ध नहीं है और न ही आयोग का राज्य योजना बोर्डों के साथ कोई घनिष्ट संबंध हैं। इस संबंध से ऐसी व्यवस्था करके जिसमें सभी संगत तकनीकी कागजात योजना आयोग के अधीन तैयार किए जाएं और योजना बनाने तथा कार्यान्वयन के संबंध में समय-समय पर जारी किए गए परिपत्रों को सीधे राज्य योजना बोर्डों के पास भेजकर एक अच्छी शुरुआत की जा सकती है।

13. राज्यों द्वारा बनाई जा रही मुद्रा समर्थित की योजनाओं और बड़ी योजनाओं के लिए योजना आयोग के साथ सौदे-बाजी की वर्तमान पद्धति को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए। एक बार योजना के आकार और क्षेत्रीय प्रारूप का निर्धारण हो जाने के बाद राज्यों को योजना बनाने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। यदि अधिक स्वायत्तता और पहल शक्ति को प्रोत्साहन दिया जाए तो राज्य योजनाएं अधिक उद्देश्यपूर्ण होंगी और उनका कार्यान्वयन भी अधिक प्रभावशाली ढंग से किया जा सकेगा।

14. योजना आयोग और राज्यों में योजना कार्यक्रमों की मॉनीटरिंग और मूल्यांकन करने के लिए वर्तमान प्रबंध अपर्याप्त हैं। इस राज्य में योजना संबंधी योजनाओं की मॉनीटरिंग सचिवालय में केन्द्रीय योजना और मॉनीटरिंग (सी० पी०एम०) एकक द्वारा पूरी की जा रही है जो योजना विभाग के अधीन कार्य कर रहा है। साथ ही मूल्यांकन का कार्य राज्य योजना बोर्ड को सौंपा गया है। प्लान योजनाओं का कार्यान्वयन करने सभी विभागों द्वारा निर्धारित फोमेंट में योजनाओं के निष्पादन की प्रगति संबंधी सूचना सी०पी०एम० एकक को देनी होगी। सामान्यतः सूचना भेजने में एक माह से भी अधिक समय लगता है। अधिकतर विभाग वित्तीय व्ययों को विभिन्न शीर्षों के अधीन दर्शाते है और इन विभागों द्वारा वास्तविक उपलब्धियों को एकत्र करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता है। योजना आयोग के पास योजनाओं की मात्र रूपरेखा भेजी जाती हैं ताकि योजना आयोग द्वारा प्लान योजनाओं के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा धीमी गति से हो सके।

15. मॉनीटरिंग के लिए वर्तमान प्रबंधों को कारगर बनाए जाने की आवश्यकता है। प्रत्येक मुख्य विभाग में एक मॉनीटरिंग कक्ष होना चाहिए जो संगत कार्यान्वन ब्यौरों को निरन्तर अद्यतन रख सके और विभागों से सी० पी० एम० एकक तक सूचना के नियमित प्रवाह को बनाए रखने में सहायता करे। बजट में विभिन्न विभागों द्वारा कार्यान्वित की जाने वाली लगभग 1500 योजनाएं हैं। प्रत्येक योजना से एकत्रित किए गए ब्यौरे कम्प्यूटरकृत होने चाहिए। बड़ी-बड़ी सिचाई परियोजनाओं, पॉवर परियोजनाओं आदि के संबंध में योजना बनाने, अनुसूची तैयार करने आदि के लिए नेटवर्क तकनीकी (पी०ई०आर०टी० सी०पी०एम०) को शुरू करना आवश्यक है। जिससे दक्ष मॉनीटरिंग पद्धति स्थापित करने में सहायता मिलेगी। इस समय प्रत्येक योजना की भौतिक उपलब्धियों और प्रगति को मानीटर करने के लिए इन विभागों में पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं जिसके परिणामस्वरूप योजना के मध्य में किए जाने वाले सुधार प्रभावी नहीं हो सकते। कालडा जैसी परियोजनाओं का मुख्य कारण यही रहा है क्योंकि यह योजना द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू की गई थी और धीरे धीरे यह योजना एक योजना से दूसरी योजना में अंतरित होते-होते सातवीं योजना में भी जारी है। चूंकि कम्प्यूटरकृत मॉनीटरिंग यूनिट स्थापित करने के लिए राज्यों के पास उपलब्ध योजना के लिए राशि बहुत ही कम है इसलिए अलग-अलग विभागों में मॉनीटरिंग यूनिटों के कर्मचारियों पर व्यय और कम्प्यूटरीकरण की लागत केन्द्रीय सरकार द्वारा पूरी की जाएगी। इससे योजना आयोग में मॉनीटरिंग कक्ष के कार्यों में भी सुधार होगा।

मध्य प्रदेश सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) ज्ञापन

मध्य प्रदेश

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

परिचय

1.1 सही अर्थ में हमारे संविधान को संघात्मक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः संघीय शब्द का प्रयोग संविधान में कहीं नहीं हुआ है। अनुच्छेद 1(1) (उसी अधिनियम) में कहा गया है कि भारत राज्यों का संघ होगा। डा० भीमराव अम्बेडकर के अनुसार यद्यपि अपने स्वरूप में संविधान "संघात्मक" हो सकता है, संघ शब्द का प्रयोग कुछ लाभों के लिए किया गया है। उन्होंने विधान सभा में स्पष्ट किया : ये लाभ दो चीजों का संकेत करते हैं जैसे (क) यह कि "भारतीय संघ" इकाइयों द्वारा किए गए अनुबंध का परिणाम नहीं है, और (ख) यह कि इसकी अंगभूत इकाइयों को संघ से पृथक् होने की स्वतंत्रता नहीं है। अतः (संघ) शब्द का प्रयोग यहां उस अर्थ में नहीं किया गया जिस अर्थ में "संघ" शब्द का प्रयोग संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना में आदर्श संघ के रूप में किया गया है। संघात्मक राज्य की विशेषताएं—केन्द्र और राज्यों के बीच प्राधिकार बंटवारे के अभिज्ञ मानदण्ड के रूप में विधान सभा ने स्वेच्छा से सुपुर्द की।

लेकिन संसद् के अधिकार निरंतर बढ़ रहे हैं यहां तक कि नए राज्यों के गठन, विद्यमान राज्यों की सीमा रेखा बदलना अथवा किसी एक या अधिक राज्यों का अस्तित्व समाप्त कर देने तक संसद् के अधिकार बढ़ चुके हैं। एम० सी० सीतलवाड़ के शब्दों में इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट किया जा सकेगा :—

"जैसे जन प्रतिनिधियों द्वारा उनके देश के शासन के लिए, देश के संघ शासित क्षेत्रों को विभिन्न क्षेत्रों के समूह के रूप में, इन क्षेत्रों की सरकार तथा केन्द्र सरकार के बीच विधायी और कार्यपालिका की शक्तियों का बंटवारा करके, देश के कुशल प्रशासन के लिए आवश्यक संस्थाएं और एजेंसियों का गठन करके, कोई व्यवस्था लाई गई हो।"

1.2 भारतीय संविधान न तो परम्परागत संघ ही कहा जा सकता है और न ही एकात्मकता के अर्थ में यह यू० के० के संविधान जैसा है। भारत आदर्श रूप में सामासिक राष्ट्र है। यह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि संघवाद की अपेक्षा राष्ट्रीय हित को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार के प्राधिकार को कम करने की कोई भी चाल संविधान की आत्मा के अंतर्गत नहीं मानी जाएगी। तमिलनाडु सरकार द्वारा गठित राजमन्नार समिति ने इस सिद्धान्त पर कार्य किया कि भारत एक परम्परागत संघ था और परिणामस्वरूप संघीय इकाइयों को अधिकाधिक प्राधिकार मिलने चाहिए और बाकी अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र सरकार के अधीन रहनी चाहिए इस सीमा तक समिति का दृष्टिकोण आधारभूत रूप से त्रुटिपूर्ण था। केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे की निरंतर समीक्षा की जानी चाहिए और संसद् में उस पर बहस होनी चाहिए। वस्तुतः अब तक के वर्षों में यही व्यावहारिक रूप में किया गया।

1.3 हमारा दृष्टिकोण यह है कि सामान्यकाल अथवा आपात काल में प्रश्नों के मामले के संदर्भ में भारतीय संविधान में निहित विद्यमान प्रावधान पर्याप्त हैं। वस्तुतः यह सुस्थापित हो चुका है कि समय-समय पर उत्पन्न स्थितियों निपटने के लिए ये प्रावधान काफी लचीले हैं।

1.4 प्रश्न में जिस प्रकार के संघ का जिक्र किया गया है विश्व के किसी भी भाग में उसका अस्तित्व दिखाई नहीं देता। अमेरिकी संविधान का उल्लेख अविभाज्य राज्यों से बने एक अविभाज्य संघ के रूप में किया गया है। संघ सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि वह नए राज्यों का गठन करके अथवा राज्यों की सम्मति के बिना उनकी सीमाओं में हेरफेर करके संयुक्त राज्यों के मानचित्रों को पुनः बनाए। आस्ट्रेलिया के संविधान की भी यही विशेषताएं हैं। लेकिन संयुक्त राष्ट्र के राज्यों में भी संघ सरकार पर्याप्त रूप से अस्तित्व में है। यहां तक कि प्रतिनिधियों सहित वहां राज्यों में संघीय नागरिक सेवा भी है। संयुक्त राष्ट्र में देशभर में मार्शल लॉ लगाने का प्रावधान भी है।

1.5 हमारा मत यह है कि संविधान में संकल्पना अथवा संरचना की दृष्टि से वास्तविक कमी नहीं है। इस संविधान में हमारे लोकतंत्र की तरह तुलनात्मक रूप से नए लोकतंत्र में समय-समय पर उठने वाली और बढ़ने वाली सभी प्रकार की समस्याओं से निपटने के लिए काफी क्षमता है। वास्तव में नए विकास और चुनौतियों के प्रत्युत्तर में संविधान में कई बार संशोधन किया गया है। संविधान की आत्मा को अक्षुण्ण और जीवित बनाए रखने का उत्तरदायित्व बहुत हद तक केन्द्र और राज्य द्वारा विकसित अभ्यास और परम्पराओं पर निर्भर करता है। भारत में लोकतांत्रिक संस्थान विकास की स्थिति में हैं। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि विकास अधिकतर लाभप्रद रहा है।

1.6 हमारा मत यह है कि स्वतंत्रता की रक्षा और देश की अखण्डता की महत्ता सर्वोपरि है। इस संबंध में संविधान की प्रस्तावना, अनुच्छेद 5, 9, 256, 257, 258, 260, 352 से 360 तक, और 365 तथा सातवीं सूची में कुछ उपबंध दिए गए हैं।

1.7 हमारा विचार है कि अनुच्छेद 256, 257, 354 से 357 तक, द्वारा केन्द्र और राज्यों के आपसी अथवा समूचे देश कि संबंध में दायित्वों के संदर्भ में भारतीय संविधान को ठोस और विस्तृत ढांचा प्रदान किया गया है। ये प्रावधान उचित है और परस्पर विश्वास की भावना पर दृढ़तापूर्वक आधारित है।

1.8 हमारा विचार है कि अनुच्छेद 3 में उल्लिखित प्रावधान आवश्यक है और प्रकार्यात्मक हैं। इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं है।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 हम इस बात पर सहमत हैं कि संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के बंटवारे की योजना में आधारभूत रूप से कोई त्रुटि नहीं है। राज्य विधायी स्वायत्तता के व्यापक और वास्तविक अनुपात में लाभ उठाते हैं। ऐसे उदाहरण हैं जब केन्द्र ने उन विषयों पर विधायी शक्ति का उपयोग किया हो जिन विषयों का वस्तुतः राज्यों से संबंध है। बारीकी से निरीक्षण करके इसे अतिक्रमण कहा जा सकता है। तथापि विस्तृत रूप से विचार करने पर और राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए हम अनुभव करते हैं कि यह अपरिहार्य है और वास्तव में बहुत से मामलों में यह वांछनीय है। उदाहरण के लिए वनों के बारे में, केन्द्रीय विधान के मामले में यह सोचा जा सकता है कि यह भयंकर भूक्षरण को रोकने का एक उपाय है चाहे यह कठिन प्राकृतिक संसाधनों का अंतिम पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए वनों को अतिरिक्त उद्देश्य के रूप में निश्चित किया गया है।

2.2 अस्थायी प्रयासों और विवादों के अतिरिक्त इस बारे में दीर्घकालिक दृष्टिकोण को लेते हुए हमारा विचार है कि सातवीं सूची की विधायी तालिका के अंतर्गत शक्तियों का बंटवारे में वास्तविक या आधारभूत परिवर्तन के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। न यह आधार विषय वस्तु में है और न ही संविधान के अन्य प्रासंगिक प्रावधानों में ही यह पर्याप्त आधार है।

36—376 M. of HA/ND/87

2.3 केन्द्र और राज्यों के बीच परस्पर परामर्श सदैव अपेक्षित है, तथापि संविधान में विशिष्ट प्रावधान द्वारा इसे नियमबद्ध किए जाने की आवश्यकता नहीं है। समवर्ती सूची में प्रमुख विधायी मानदण्डों पर अनौपचारिक परामर्श अब भी किए जा सकते हैं और भविष्य में लाभदायक परम्परा के रूप में इसका विकास किया जा सकता है। इस संबंध में औपचारिक प्रावधान, विलंब के कारण स्वरूप है, और तुरन्त विधायी कार्रवाई किए जाने वाले मसलों के लिए संभावित बाधा के समान बन सकते हैं।

2.4 इस संबंध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 में विद्यमान प्रावधान उचित है और उनमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

2.5 राज्यों ने ऐसा अनुभव किया है कि केन्द्र को भेजे गए कई अधिनियमन चाहे वे सम्मति के लिए भेजे गए अथवा किसी के लिए उन पर बहुत लम्बा समय लगा। अतः इस संबंध में कार्यविधि केन्द्र में इतनी सरल और कारगर होनी चाहिए कि केन्द्र में अधिनियमनों के उन्हीं पक्षों की संवीक्षा की जानी चाहिए जिन पक्षों की उनकी सांविधानिकता के दृष्टिकोण से जांच की जाती है। सम्पूर्ण अधिनियमनों की संवीक्षा स्वतः नहीं की जानी चाहिए जैसा कि आजकल व्यवहार में किया जा रहा है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 (क) राज्य में कार्यकारी अधिकार राज्यपाल को प्रदान किए गए हैं। तथापि, वह भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है तथा वह तब तक अपने पद पर बना रह सकता है जब तक राष्ट्रपति ऐसा चाहे। अतः राष्ट्रपति उसे अपने विवेकानुसार हटा सकते हैं। इसलिए राज्यपाल के पद के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार के बीच विशेष सम्बन्ध स्पष्ट है।

जहां तक राज्य की तुलना में उसकी भूमिका का सम्बन्ध है, सर्वोच्च न्यायालय ने राय साहिब राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य (1955) के प्रकरण में यह निर्णय दिया था कि राज्यपाल कार्यकारणी का केवल सांविधानिक अध्यक्ष होता है तथा वास्तविक कार्यकारी अधिकार मंत्रिपरिषद् में निहित हैं। सामान्यतः राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद् के परामर्श से कार्य करता है, लेकिन उसे कुछ विवेकाधिकार भी प्राप्त हैं। संविधान में राज्यपाल के अधिकारों तथा कर्तव्यों के सम्बन्ध में जहां भी "उसके विवेकाधिकार" का प्रयोग किया गया है, वहां उसके विशेष उत्तरदायित्वों का उल्लेख छठी अनुसूची में अनुच्छेद 371-क तथा 9(2) तथा 18(3) पैराग्राफों में किया गया है। इसी प्रकार अनुच्छेद 200 तथा 356 के अन्तर्गत दिए गए अधिकार भी उसके विवेकाधिकार के क्षेत्र में ही आते हैं। अनुच्छेद 167 के अनुसार मुख्यमंत्री का कर्तव्य है कि वह विधि निर्माण के लिए, मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों के बारे में राज्यपाल को सूचित करे।

इसलिए केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के संदर्भ में राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में सांविधानिक उपबन्ध पर्याप्त है जिनके अन्तर्गत राज्य के महत्वपूर्ण विषयों की उसे पूरी जानकारी हो तथा वह केन्द्रीय सरकार के साथ सांविधानिक सम्पर्क बनाए रखे ताकि वह सार्वजनिक महत्व के किसी भी विषय को केन्द्रीय सरकार के साथ उठा सके। विधेयकों पर अनुमति रोकने तथा उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित करने से सम्बन्धित उसके अधिकार उसे राष्ट्रीय नीतियों के प्रतिकूल किसी कानून को बनाने से रोकने का प्राधिकार प्रदान करते हैं। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 356 में दिए उपबन्धों के अनुसार उसे एक निर्णायक भूमिका प्रदान की गई है।

3.1(ख) हमारे मतानुसार राज्यपालों ने कुल मिलाकर संविधान की अपेक्षाओं के अनुसार आचरण किया है तथा उनके कार्य-निष्पादन से, आमतौर पर राष्ट्रीय अखंडता तथा एकता की भावना को प्रोत्साहन मिला है।

3.2 किसी भी ऐसे संघीय ढांचे में जैसी कि हमारी राज्य व्यवस्था है, विषयों का व्यापक क्षेत्र होने के कारण, बिना इस तथ्य का ध्यान रखे कि ये विषय, संविधान की अनुसूची VII की सूची I, सूची II तथा सूची III में दिए हैं या नहीं, केन्द्र तथा राज्य में मतभेद होने की सम्भावना सदैव बनी रहती है। राज्यपाल की भूमिका यह हो कि वह मतभेद के मुद्दों का पूर्वानुमान करे तथा उनकी पहचान करे और केन्द्र और राज्य के बीच कुशल दुतरफा सम्पर्क माध्यम के रूप में कार्य करे और उनका निराकरण करे या उन्हें कम करने का प्रयास करे। इस प्रकार राज्यपाल की व्यवस्था से विभिन्न मुद्दों पर विचारों की सहज भिन्नता होते हुए भी, केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में साहचर्य और सहयोग की भावना उत्पन्न होगी।

3.3(क) राज्यपाल की भूमिका ऐसी विषम परिस्थितियों में विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है जबकि किसी राज्य का सांविधानिक तंत्र, चुनी गई सरकार की अस्थिरता या अन्य किसी प्रबल कारण से संकटपूर्ण स्थिति में पड़ जाए। ऐसी परिस्थितियों में राज्यपाल को निष्पक्ष ढंग से कार्य करना होता है। ऐसा करते समय उसे अपने पद की शपथ की सत्यनिष्ठा को ध्यान में रखना चाहिए।

3.3 (ख) मुख्यमंत्री की नियुक्ति का निर्णय संविधान के उपबन्धों के अनुसार हो तथा राज्य में एक स्थिर सरकार प्रदान करने की आवश्यकता के अनुसार निर्देशित हो।

3.3 (ग) कोई टिप्पणी नहीं।

3.4 संविधान के इस अनुच्छेद के उपबन्ध इस प्रकार के हैं जिनसे राज्यपाल को विधिनिर्माण, प्रशासनिक परिपक्वता तथा अनुभव सम्बन्धी समस्याओं को हल करने की शक्ति मिलती है। इसमें यह व्यवस्था है कि ऐसे अविचारित विधि-निर्माण या विधायी उपायों से जो लम्बी अवधि के बाद राज्य के हित में नहीं रहते सुरक्षण मिलता है। सौभाग्यवश, हमारे राज्य में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें राज्यपाल ने किसी राज्य बिल को मंत्रिपरिषद् की मंत्रणा के बिना राष्ट्रपति के विचारार्थ रखा हो।

3.5 यह विषय प्रश्न सं० 2.5 के उत्तर में पहले ही आ चुका है।

3.6 यह विचार कि राज्यपाल न तो केन्द्र का एजेंट है और न ही वह एक आलंकारिक प्रधान ही है बल्कि वह केन्द्र तथा राज्य के बीच में एक मजबूत कड़ी है जो सही स्थिति को प्रस्तुत करता है।

हमारा तर्कसंगत विचार यह है कि राज्यपालों ने निष्पक्ष रूप से तथा समुचित रूप से संविधान के अनुसार कार्य किया है तथा अपने दोहरे दायित्व को निभाने में स्वस्थ परम्पराओं का पालन किया है।

3.7 हमारे विचार में राज्यपाल के कार्यकाल के सम्बन्ध में अनुच्छेद 156(1) में दिए सांविधानिक उपबन्ध उचित हैं। अनुच्छेद 156(1) को निकाल देने से केन्द्र के एजेंट के रूप में राज्यपाल की वर्तमान सूक्ष्म भूमिका समाप्त हो जाएगी। इसलिए, हमारा विचार है कि इस संबंध में कोई परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

3.8 हमारे विचार में वर्तमान व्यवस्था में सन्तोषजनक कार्य हुआ है।

3.9 हमारे विचार में इस सम्बन्ध में की गई आलोचना का कोई उचित आधार नहीं है। हमारे संविधान में संघीय जर्मन गणराज्य के बुनियादी कानून के अनुच्छेद 67 जैसा कोई उपबन्ध शामिल करने का कोई उचित तथा पर्याप्त कारण प्रतीत नहीं होता।

3.10 राज्यपाल जैसे उच्च सांविधानिक अधिकारी के मामले में यह मान लिया जाना चाहिए कि वह जनता की भलाई को बढ़ावा देने के लिए ली हुई अपनी शपथ के अनुसार संविधान के अन्तर्गत अपने विवेक का प्रयोग करेगा। विवेकाधिकार प्रदान करने के बाद निर्देश जारी करके उसे सीमित करने का आशय उसमें विश्वास रखते हुए उक्त विश्वास को बनाए रखने की उसकी योग्यता पर सन्देह करना होगा।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 संविधान के अनुच्छेद 256 में यह व्यवस्था है कि राज्य के कार्यकारी अधिकार का प्रयोग संघीय कानूनों के अनुसार हो। चूंकि संघ को

भारत के समस्त क्षेत्र पर विधि, निर्माण संबंधी प्राधिकार प्राप्त है इसलिए संसद द्वारा निर्मित किसी भी कानून को प्रत्येक राज्य में विधिवत लागू किया जाए। इस अनुच्छेद में यह भी व्यवस्था है कि प्रत्येक राज्य का यह सांविधानिक कर्तव्य होगा कि वह अपने यहां संघीय कानूनों को उसी प्रकार लागू करे जिस प्रकार वे किसी अन्य राज्य में लागू होते हों। संघ की कार्यपालिका को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह संघीय कानूनों को निश्चित रूप से लागू करने के लिए राज्य को निदेश दे।

अनुच्छेद 257 में यह निर्धारित है कि राज्य के कार्यकारी अधिकार का उसके अपने अधिकारक्षेत्र में भी इस प्रकार प्रयोग किया जाए जिससे वह संघ के कार्यकारी अधिकार के प्रयोग में बाधक न हो या उस पर प्रतिकूल प्रभाव न डाले तथा वह संघ की कार्यपालिका द्वारा इस सम्बन्ध में जारी निदेशों के अनुसार हो। इसका उद्देश्य है कि राज्य की कार्यकारी नीति तथा संघ की कार्यकारी नीति में विरोध को रोका जाए। इसलिए अनुच्छेद 162 के साथ पठनीय सूची II में शामिल विषयों पर भी संघ की कार्यपालिका को यह अधिकारी प्राप्त है कि वह राज्य कार्यपालिका को निदेश दे ताकि विशिष्ट मामलों पर राज्यों को निदेश देने से राज्य-अधिकार का प्रयोग संघ के कार्यकारी अधिकार के प्रयोग पर प्रतिकूल प्रभाव न डाले।

अनुच्छेद 365 में यह व्यवस्था है कि यदि किसी मामले में संविधान के किसी उपबन्ध के अनुसार संघ के अधिकार का प्रयोग करते हुए किसी राज्य के अनुपालन के लिए निदेश जारी किया जाए लेकिन राज्य उसका अनुपालन करने में विफल रहे या उसको लागू न करे तो राष्ट्रपति यह निर्णय ले सकते हैं कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य की सरकार को संविधान के उपबन्धों के अनुसार आगे नहीं चलाया जा सकता।

इस अनुच्छेद में ऐसे निर्देशों के पीछे अनुशास्ति की व्यवस्था है। यदि कोई राज्य इस प्रकार के किसी निदेश का अनुपालन नहीं करता तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 365 के अनुसार अपने प्राधिकार का प्रयोग करने के हकदार होंगे।

राष्ट्रपति द्वारा लिए गए ऐसे किसी निर्णय का परिणाम यह होगा कि वे अनुच्छेद 365 के अनुसार राज्य की सरकार को अपने अधिकार में लेने की उद्घोषणा जारी कर सकते हैं। राष्ट्रपति द्वारा ऐसा निर्णय ले लिए जाने पर, अनुच्छेद 356 के उपबन्ध लागू होंगे।

इन अनुच्छेदों के उपबंध राष्ट्र के व्यापक हित में हैं। तथापि ये अनुच्छेद केवल तभी प्रयुक्त किए जाएं जबकि ऐसा अनुभव किया जाए कि उनका प्रयोग अपरिहार्य है।

अब तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें इस राज्य सरकार को अनुच्छेद 365 को लागू करने की धमकी देकर अनुच्छेद 256 तथा 257 के अनुसार दिए निदेशों का पालन करने के लिए विवश किया गया हो।

4.2 हम अंतिम विचार से सहमत हैं। चूंकि अनुच्छेद 365 पूर्णतः एक सहायक शक्तिदायक खंड है, इसे एक रिजर्व उपबन्ध के रूप में रखा जाए।

यदि अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत संघ सरकार द्वारा निदेश दिए जाएं तथा राज्य सरकार इन निदेशों का पालन न करे तो संघ सरकार उपयुक्त सांविधानिक उपबन्ध के अभाव में राज्य सरकार के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं कर सकता।

4.3 राज्य सरकार आयोग से सहमत है।

4.4 राज्य सरकार की जानकारी में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है।

4.5 संविधान (44वां संशोधन) अधिनियम 1978 के अनुसार निर्धारित अवधि, अनुच्छेद 356 के खंड (4) तथा (5) में निर्धारित समय में सामान्य स्थिति पुनः स्थापित करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होती है।

4.6 वर्तमान व्यवस्था सन्तोषजनक ढंग से कार्य कर रही है।

4.7 इस प्रश्न में जिन केन्द्रीय एजेंसियों के नाम गिनाए गए हैं, वे राज्य के विषयों तथा संविधान की अनुसूची VII की समवर्ती सूचियों के विषयों से सम्बन्धित कार्यकलापों में तत्पर हैं लेकिन राष्ट्रीय जीवन पर उनके प्रभाव और स्वरूप को ध्यान में रखते हुए यह उचित ही है कि राज्य स्वायत्तता के नाम पर इस व्यवस्था का भंग न किया जाए। बल्कि एजेंसियां और भी कारगर ढंग से कार्य कर सकती हैं यदि वे इस सम्बन्ध में राज्यों की जरूरतों तथा समस्याओं के प्रति सक्रिय रहें। इन एजेंसियों की भूमिका की समीक्षा राज्य सरकारों के साथ मिलकर समय-समय पर की जाए।

4.8 अखिल भारतीय सेवाओं ने क्षेत्रीय भावनाओं से निपटने और राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसलिए उनके समस्त कार्य-निष्पादन का सही मूल्यांकन यही है कि उन्होंने संविधान निर्माताओं की आशाओं को पूरा किया है। वर्तमान व्यवस्था में, इन सेवाओं के कार्मिकों पर राज्यों द्वारा रखा जाने वाला नियंत्रण कुशल प्रशासन के प्रयोजन के लिए पर्याप्त प्रतीत होता है।

4.9 नियम के अनुसार तो राज्यों में केन्द्रीय बलों को राज्य सरकारों की सहमति से तैनात किया जाना चाहिए लेकिन यदि ऐसी असाधारण परिस्थितियां उत्पन्न हो जाएं जिनमें राष्ट्रीय सुरक्षा या एकता को खतरा उत्पन्न हो जाए या राज्य दुराग्रही रुख अपना ले तो केन्द्रीय सरकार स्वप्रेरणा से असैनिक शक्ति की सहायता के लिए देश के व्यापक हित में केन्द्रीय बलों को वहां तैनात करने के लिए स्वतंत्र है।

4.10 दूरदर्शन तथा रेडियो, राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करने के अत्यधिक सशक्त माध्यम तथा साधन हैं। इसलिए उन्हें केन्द्रीय सूची में ही बने रहने दिया जाए किंतु इन सुविधाओं का तर्क संगत आधारपर विस्तार किया जाए। मध्यप्रदेश का आकार बड़ा होने के कारण वहां संचार की विशेष समस्याएं हैं। इसलिए यह और भी अधिक आवश्यक है कि इस राज्य में रेडियो प्रसारण (ट्रांसमिशन) तथा दूरदर्शन रिले केन्द्रों का बड़ा जाल बिछा दिया जाए। यह आयोग एक फार्मूला तैयार कर सकता है जिसके अनुसार इन सुविधाओं का विस्तार करने वाले योजना संसाधनों को विभिन्न राज्यों में बराबर बांट दिया जाए।

4.11 आंचलिक परिषदों के कार्यों को राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 की धारा 21 में गिनाया गया है। राज्यों के समान हित के विषयों पर परिषद् की बैठकों में चर्चा की जाती है। राज्य सरकार का विचार है कि राज्यों के हितों को सामूहिक रूप से आगे बढ़ाने का कार्य परिषद् द्वारा समुचित रूप से किया जाता है तथा यह एक उपयोगी संगठन है।

4.12 संविधान के अनुच्छेद 263 के अनुसार एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की व्यवस्था की गई है। इस परिषद द्वारा किए जाने वाले कार्य उपयुक्त अनुच्छेद में दिए हैं। भारतीय उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार क्षेत्र प्राप्त है कि वह राज्यों के बीच उत्पन्न उन विवादों को सुने जो उनके अस्तित्व या कानूनी अधिकार की सीमा से सम्बन्धित हैं। लेकिन राज्यों के बीच कुछ गैर-कानूनी किस्म के विषयों पर भी विवाद उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के विवाद पूर्णतः मौजूदा आंचलिक परिषदों के अन्तर्गत नहीं आते।

इसलिए राज्य सरकार महसूस करती है कि अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की जाए जिससे अन्तर्राज्यीय तथा संघ-राज्य मतभेदों तथा विवादों का समाधान किया जा सके और उसके द्वारा राज्यों के बीच बेहतर सहयोग उत्पन्न हो सके।

सुझाव है कि इसका गठन केन्द्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तावित पैटर्न पर इस प्रकार किया जाए :--

(1)	प्रधानमंत्री . . .	अध्यक्ष
(2)	वित्त मंत्री . . .	सदस्य
(3)	गृह मंत्री . . .	सदस्य
(4)	संसद में विरोधी दल का नेता	सदस्य
(5)	पांच आंचलिक परिषदों में प्रत्येक से एक-एक अर्थात् पांच प्रतिनिधि	
(6)	किसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित कोई संगठन, मंत्रिमंडल का मंत्री या मुख्यमंत्री संगत विषय पर चर्चा करते समय बुलाए जाएं।	

इस परिषद् का गठन स्थाई आधार पर किया जाए। अन्तर्राज्यीय परिषद का सचिवालय भी आंचलिक परिषद के सचिवालय की तरह स्थाई होना चाहिए।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 कर-राजस्वों के बंटवारे और करों की उगाही के सम्बन्ध में संविधान में दिए वित्तीय उपबन्ध ऐसे समय में शामिल किए गए थे जबकि प्रौद्योगिकी का स्तर सामान्य था तथा देश में विकास के अवसर के सम्बन्ध में आशाएं कम थी और कुछ क्षेत्रों में उपलब्धियां सीमित थी। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में असाधारण उन्नति तथा प्रगति होने के साथ-साथ संसार के अनेक भागों में मानव जाति के लिए बहुत ऊंचे जीवन-स्तर तक पहुंचना सम्भव हो गया है। देश के अंदर ऐतिहासिक तथा अवस्थिति सुलभ लाभों के कारण कुछ राज्यों में दूसरों की तुलना में अधिक तेजी से प्रगति हुई है। वित्तीय अंतरण की योजना तथा शक्तियां संविधान में दी गई हैं। कुछ राज्यों में तेजी से प्रगति करने की सहज क्षमता होने के कारण उनके संसाधनों में और भी अधिक तेजी से वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप इन सुविधाप्राप्त राज्यों और अन्य सुविधारहित राज्यों के बीच का अंतराल और बढ़ता जा रहा है। अब समय आ गया है, जबकि देश की सरकार इस स्थिति का जायजा ले तथा यह पता लगाए कि क्या संविधान में विद्यमान वित्तीय शक्तियों की योजना पर्याप्त है ताकि राज्य अपने संसाधनों को जुटा कर अपनी बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को पूरा कर सकें।

अब समय आ गया है, जबकि राज्य सरकारें न केवल तत्कालीन उपभोग की आवश्यकताओं को ही पूरा करना चाहती है, बल्कि वह सभी विविध विकासशील कार्यकलापों, जिनका उन्होंने जिम्मा लिया है, को भी पूरा करना चाहती हैं। यदि हम इस दृष्टि से संविधान में दिए उपबंधों को देखें तो हमें यह तो मानना पड़ेगा कि वे अब अपेक्षाकृत अपर्याप्त हैं। हमारे पास अवसर है और हमने वित्त आयोग से पुन: यह अभ्यावेदन किया है कि भारत सरकार निगम कर की आय को राज्यों में बांटने पर विचार करे। अब समय आ गया है कि जब शायद अंतरण की सम्पूर्ण स्कीम तथा कर राजस्वों के बंटवारे की सम्पूर्ण स्कीम और राज्यों को सौंपे गए अधिकारों की जांच इस विचार से की जाए ताकि उनमें अपेक्षित परिवर्तन किए जा सकें और महत्वपूर्ण संसाधनों को राज्य सरकार के हाथों में सौंपा जा सके।

5.2 सरकार के दो स्तरों—केन्द्र तथा राज्य के बीच—प्रभुसत्ता का सांविधानिक विभाजन—राज्यों को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए केन्द्र पर आश्रित करता है। यह अपने आप में सामान्यत: चिंता का कोई बड़ा कारण नहीं होना चाहिए क्योंकि प्राय: सभी संघीय सरकारों में घटक-राज्य केन्द्रीय सरकार पर आश्रित होते हैं। भारतीय व्यवस्था में एक सन्निहित तंत्र है, जिसके जरिए संविधान के अंतर्गत संघ द्वारा राज्यों को कर के बंटवारे तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा जरूरतमंद राज्यों को सहायता-अनुदान देने की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था को लागू करने में सबसे बड़ा दोष यह है कि केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों को बेहतर बनाने के लिए तीन मूल नियम दिए गए हैं अर्थात्

(क) प्रत्येक राज्य को उसकी अपनी क्षमता के उपयोग द्वारा अपनी पूरी ऊंचाई तक कम से कम समय में उठने का उचित अवसर दिया जाए।

(ख) जो राज्य, अपनी प्राकृतिक सम्पदा तथा संसाधनों से सम्पन्न होते हुए भी पिछड़े हुए हैं, उन्हें उनके इन संसाधनों का उपयोग करने के लिए पर्याप्त सहायता दी जाए।

(ग) पारस्परिक तथा अन्तर-क्षेत्रीय असंतुलनों को समाप्त किया जाए किन्तु इन्हें अपेक्षित प्राथमिकता नहीं दी गई है।

प्रश्नमाला में प्रस्तावित पांच विकल्पों में से हम (क), (ख) तथा (ग) का समर्थन इस तथ्य के कारण नहीं करते। चूंकि हम आयोग को प्रस्तुत अपने ज्ञापन में आग्रह कर चुके हैं कि हम ऐसा महसूस करते हैं कि हम संविधान के उपबन्धों में किसी मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझते जैसा कि इन विकल्पों के कारण आवश्यक होगा। मद सं० (घ) जो कि अधिक केन्द्रीय करों जैसे निगम कर सीमा कर आयकर पर अधिकार आदि प्राप्त करने के संबंध में हैं हमने अपने ज्ञापन में पहले ही उल्लेख कर दिया है कि निगम कर बांटा जाना चाहिए। क्योंकि यह बात विवादास्पद नहीं है कि राज्य सरकारें देश के औद्योगीकरण में भूमि, पूंजी, जल, बिजली तथा अन्य निवेश रियायती दरों पर देकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। राज्य सरकारों द्वारा दी गई इन रियायतों से कम्पनियों को अधिक लाभ कमाने तथा निगम कर अदा करने की संभावना बढ़ती है। इसके अतिरिक्त आयकर पर लगाया अधिप्रभार स्वयं आयकर से भिन्न नहीं है। इसे अलग रखने की आवश्यकता नहीं है और इसे केवल संघ सरकार के प्रयोजन के लिए ही उगाहना उचित नहीं है।

मद सं० (ङ) अर्थात् संघ के कर राजस्वों के अतिरिक्त वित्तीय संसाधनों के संबंध में चूंकि पिछले कई वर्षों से राज्यों के बीच असमानता बढ़ती ही जा रही है जिससे गरीब क्षेत्र और भी गरीब होते जा रहे हैं इसलिए हमारा सुझाव है कि इन राज्यों तथा क्षेत्रों के लिए संघ सरकार के अन्य वित्तीय संसाधनों से विशेष व्यवस्था की जाए। जिससे मूल रूप में संसाधनों की कमी वाले राज्यों के संसाधन या अधिकार अन्तत: अन्य राज्यों के बराबर हों। प्रशासन का स्तर बढ़ाने के लिए अनुदान देने की संकल्पना छठे वित्त आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई तथा सातवें वित्त आयोग द्वारा उनमें सुधार किया गया था। उनका यह प्रयास सही दिशा में एक कदम था। फिर भी जैसा कि सभी अग्रणी प्रयासों में होता है यह प्रयास भी पूर्णत: विकसित या उन्नत नहीं हो सका। इसे समुचित स्थान दिया जाए। इसका अर्थ है कि सभी सेवाओं तथा क्षेत्रों में कोटि उन्नयन की आवश्यकता का चालू बजटीय व्यय से स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन किया जाए जो विविध कारणवश विकृत हो गया है तथा किसी विशेष राज्य की आवश्यकता का सही मूल्यांकन नहीं करता। बजटीय कारण केवल बाह्य अभिव्यक्ति हैं इसलिए आवश्यकताओं का पता लगाया जाए तथा वास्तविक कारणों की जांच की जाए और फिर इन वित्तीय आवश्यकताओं के लिए व्यवस्था की जाए।

5.3 एक सशक्त केन्द्र शक्तिशाली राज्यों की पूर्वकल्पना करता है। आखिरकार भारत राज्यों का एक संघ ही तो है और जब तक इसके राज्य शक्तिशाली नहीं होंगे तो संघ भी सशक्त नहीं हो सकता। इतनी विविधताओं वाले देश में राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता अपेक्षित परिणाम दे भी सकती है और नहीं भी और इसका मुख्य कारण यह है कि भारत जैसे विशाल देश में विविध कारक जैसे ऐतिहासिक, जन-सांख्यिकीय आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक-अपना-अपना प्रभाव डालते रहे हैं। यहां ऐसे राज्य हैं जिनके पास विशाल तथा विविध खनिज संसाधन है लेकिन सामान्यत: केन्द्रीय एजेंसियां उनका लाभ उठाती हैं और राज्यों को केवल नाममात्र की रायल्टी ही मिलती है। इन राज्यों के पास जल जैसे नवीकरणीय संसाधनों का लाभ उठाने के साधन भी नहीं हैं। दूसरी ओर इनके मुकाबले में अन्य प्रगतिशील राज्य भी हैं जिनके पास अपेक्षाकृत आधुनिक कृषि या औद्योगिक आधार हैं। किसी ऐसे नवोदित प्रजातन्त्र में जो सब को सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने के प्रति समर्पित हो। इस अवस्था में राज्यों को पूर्ण वित्तीय स्वायत्तता देना शायद उचित नहीं होगा। लेकिन संविधान के ढांचे में यह केन्द्र के लिए आवश्यक नहीं है कि वह सभी वित्तीय अधिकारों को अपने हाथों में केन्द्रित करे। इसलिए ऐसा विशिष्ट दृष्टिकोण अपेक्षित है जिसमें केन्द्र को राष्ट्रीय महत्व के मामलों में निर्णायक अधिकार प्राप्त हो और राज्यों को भी वहां की जनता की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं के अनुरूप आवश्यक धन राशि दी जाए और वे इस धन का प्रयोग जनता की अधिक से अधिक भलाई के लिए ही करें। केन्द्रीय सरकार द्वारा समग्र राष्ट्रीय नीति तैयार की जाए लेकिन संक्षिप्त ब्यौरे, लागू करने की पद्धति तथा सभी प्राथमिकताओं के अन्तर्गत उचित कार्रवाई के अधिकार राज्यों को सौंप दिए जाएं।

5.4 हमारा इस मुद्दे पर मतभेद है कि वित्त आयोगों तथा योजना आयोग की सिफारिश के अनुसार राज्य सरकारों को आवश्यक अंतरण के बाद पिछले कुछ वर्षों के दौरान केन्द्रीय राजस्व लेखे में काफी बड़ा घाटा दिखाया गया है। केन्द्र के राजस्व घाटे, इसके गैरयोजना व्यय में हुई असाधारण वृद्धि के कारण है। इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं :—

(क) **राजस्व के अधिक संसाधन जुटाना :—**

(i) **कराधान के माध्यम से:**—कराधान के अधिकांश लचीले स्रोत केन्द्रीय सरकार के पास हैं। इन करों की दरों में वृद्धि किए बिना या इन अधिकांश करों के बेस को व्यापक बनाए बिना इनमें काफी लचीलापन है। पिछले 10 वर्षों में निगम कर में 15 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर से वृद्धि हुई है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में भी इतनी ही वृद्धि हुई है; जबकि हाल के सीमा शुल्कों में अधिक उछाल आई है। भविष्य में इन अधिकांश करों में और भी अधिक वृद्धि होने की सम्भावना है। इसलिए राज्यों की तुलना में केन्द्रीय सरकार के लिए कराधान के

माध्यम से राजस्व में वृद्धि करना अधिक सरल है तथा इसलिए इसी का सहारा लिया जाए ।

(ii) **कुछ सिद्धान्तों के अन्तर्गत समृद्ध राज्यों से केंद्रीय पूल को परिदान**—हालांकि तुलनात्मक दृष्टि से कुछ राज्य अन्य राज्यों से अधिक समृद्ध है लेकिन निर्णायक विश्लेषण के अनुसार ये सभी निर्धन हैं । यहां तक कि उनमें से कुछ राज्यों के पास राजस्व अधिशेष रहता है लेकिन यह अधिशेष इस विचार से बिल्कुल कृत्रिम है कि यह अधिशेष सेवाओं और परिसम्पत्तियों के अनुरक्षण पर व्यय में कड़ाई से कमी करके प्राप्त किया जाता है— इस विषय में मध्यप्रदेश एक विशिष्ट उदाहरण है । सभी राज्यों को अपनी विकास योजनाओं की आंशिक धनपूर्ति के लिए केन्द्र पर आश्रित रहना पड़ता है । ऐसी परिस्थितियां में, इस समय कोई भी राज्य केन्द्रीय पूल को परिदान देने की स्थिति में नहीं है । उन राज्यों द्वारा अप्रत्यक्ष परिदान अवश्य दिए जाते हैं जिनके समृद्ध होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती । उदाहरणत: मध्यप्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा जैसे गरीब राज्यों को केन्द्रीय सरकार तथा इसके उपक्रमों से कोयले, लोहे धातु आदि जैसे नवीकरण न करने योग्य संसाधनों पर केवल नाममात्र की रायल्टी ही मिल रही है जबकि ये राज्य केन्द्रीय सरकार को अप्रत्यक्ष लाभ पहुंचा रहे हैं ।

(ख) **व्यय पर बेहतर नियंत्रण** : चाहे वित्त आयोग हो या योजना आयोग वह राज्य सरकारों को सदैव अपने व्यय पर बेहतर नियंत्रण रखने के लिए प्रेरित करता रहा है । सभी राज्य इसी के लिए प्रयत्न करते है। यह बात केन्द्रीय सरकार पर भी समान रूप से लागू हो सकती थी । यह सत्य है कि सातवें वित्त आयोग ने केन्द्र के वित्तों की ओर भी ध्यान दिया था । तथापि कोई वित्त आयोग केन्द्र के पूरे व्यय ब्यौरों को उतनी गहराई से छानबीन नहीं करता जितनी गहराई से वह राज्यों के व्यय सम्बन्धी ब्यौरों को करता है । यद्यपि यह सत्य है कि रक्षा विभाग पर हुए व्यय की अधिक छानबीन नहीं की जाती । लेकिन वित्त आयोग जैसे सांविधानिक निकाय को यह पूर्ण प्राधिकार होना चाहिए कि वह केन्द्रीय सरकार के व्यय की लागत प्रभावकारिता का अध्ययन करे क्योंकि आमतौर पर यह महसूस किया जाता है कि कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनमें भारत सरकार के खर्चों में काफी काट-छांट की जा सकती है तथा लागत को कम किया जा सकता है ।

(ग) **घाटे की वित्त-व्यवस्था** : किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था में कुछ न कुछ घाटे की वित्त व्यवस्था अवश्य होगी । किंतु इस घाटे की वित्त व्यवस्था के सुरक्षित स्तर का परिमाण निर्धारित करना अत्यधिक कठिन है । घाटे की वित्त व्यवस्था का परिमाण परिस्थितियों, आवश्यकता, लागत तथा लाभ और अन्य अनेक कारणों पर निर्भर करता है । यद्यपि विकास के प्रयोजन के लिए कुछ सीमा तक घाटे की वित्त व्यवस्था का होना आवश्यक है किन्तु उसे स्थायी संसाधन स्रोत नहीं माना जा सकता है ।

5.5 (क) **करों का बटवारा** । इस समय दो महत्वपूर्ण केन्द्रीय करों का बंटवारा राज्यों के साथ किया जाता है (i) आय कर तथा (ii) संघीय उत्पाद शुल्क । इसमें दो विषय शामिल किए गए हैं : (क) वर्तमान वितरण योग्य करों में राज्यों के अंश की वृद्धि करने के उद्देश्य से विभाज्य पूल का विस्तार करना । उन प्रतिबन्धों को हटाना जिनके द्वारा करों के कुछ अंशों का वितरण नहीं किया जाता है और केन्द्रीय सरकार की ऐसी कार्रवाई करने से रोकना जो राज्यों के हितों के लिए अलाभकारी हो जैसे आयकर में रियायतें देना, संघीय उत्पाद शुल्कों को बढ़ाने की बजाय उपयोगी पदार्थों के निर्देशित मूल्यों को बढ़ाना तथा (ख) विभाज्य पूल में निगम कर जैसे और अधिक केन्द्रीय करों को बंटवारा करने योग्य घोषित किया जाए ।

सातवें वित्त आयोग के अधिनिर्णय के अनुसार आयकर की निवल आय का 85 प्रतिशत तथा संघीय उत्पाद शुल्क का 40 प्रतिशत राज्यों को वितरित किया जाता है । संविधान के अनुच्छेद 270 के अधीन संघ तथा राज्यों के बीच आयकर वितरण के लिए सुनिश्चित उपबन्ध है । प्रारम्भिक वर्षों में आयकर राजस्व का एक मुख्य स्रोत था । अब स्थिति में परिवर्तन आ गया है । संघीय उत्पाद शुल्कों, सीमा शुल्कों तथा निगम कर से केन्द्र को अधिक राजस्व प्राप्त हो रहे हैं । यदि निगम कर तथा सीमा शुल्क से प्राप्त आय को वितरणीय निकाय (पूल) में शामिल कर लिया जाए तो वितरण की वर्तमान योजना से भिन्न योजना तैयार करनी होगी । वित्त आयोग के लिए सबसे बड़ा समाधान निकालने का कार्य यह होगा कि राज्यों को इन करों से राजस्वों के कुल संचय (पूल) का कितना अंश दिया जाए । वितरणीय संचय (पूल) के राज्यों में आपस में वितरण के सम्बन्ध में एक फार्मूला होना चाहिए जिसके अधीन वितरण किया जाए ।

राज्य सरकार का विचार है कि राज्यों में आपस में वितरण के लिए सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित फार्मूले में थोड़ा सा संशोधन करके, उसे ही इस प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाए ।

जनसंख्या	10 प्रतिशत
क्षेत्र	15 प्रतिशत
प्रतिव्यक्ति आय का विपरित	25 प्रतिशत
राजस्व समीकरण	25 प्रतिशत
निर्धनता मानक	25 प्रतिशत

(ख) **योजना-सहायता** : ऐसा कोई कारण नहीं है कि राज्यों को योजना सहायता उसी मानदंड के आधार पर क्यों न दी जाए जिससे कर राजस्व के विभाज्य पूल का आबंटन किया जाता है ।

योजना सहायता में एक विषय को छोड़ दिया गया है और वह है राज्यों का गैर योजना पूंजी अंतराल का बढ़ना जो राज्यों पर अत्यधिक ऋण भार के कारण है । इसमें केन्द्रीय ऋणों का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है । केन्द्र से प्राप्त होने वाले ऋणों विशेषत: निर्धारित योजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिए ब्लाक ऋणों के कारण प्रत्येक वर्ष राज्यों की चुकौती देनदारी बढ़ गई है । यह उल्लेख किया जाए कि राज्यों के पूंजी परिव्यय का वास्तविक अंश, जिसके आधार पर केन्द्र से ऋण लिए गए हैं, विद्युत, सिंचाई, सड़कें, भवन तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में शेयर पूंजी लगाने का ही है । समस्त केन्द्रीय सहायता का 70 प्रतिशत ब्लाक ऋण के रूप में दिया जाता है । राज्यों पर भावी ऋण के बोझ तथा बढ़ते हुए सेवा प्रभारों को कम करने के लिए, जो राज्यों के वर्तमान राजस्व को काफी कम करते है, यह सुझाव दिया जाता है कि केन्द्रीय सहायता में अनुदान के अंश को बढ़ाया जाए ।

(ग) **गैर-योजना सहायता** : गैर योजना सहायता सामान्यत: सहायता अनुदान के रूप में दी जाती है । प्रथम प्रयास के रूप में यह सुझाव दिया जाता है कि जहां तक नागरिकों की सेवाओं तथा सुविधाओं के न्यूनतम मानकों का सम्बन्ध है, इसके लिए सभी राज्यों को समान स्तर पर लाने के लिए ठोस प्रयास किए जाए । संसाधनों का अंतरण इस प्रकार किया जाए कि विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़े हुए राज्यों के स्तर को यदि उच्चतम स्तर तक करना सम्भव न हो तो कम से कम अखिल भारतीय स्तर तक अवश्य उठाया जाए । इसके लिए वित्तीय मानदंड के अतिरिक्त अन्य मानदंड भी अपेक्षित है ।

जब तक आवश्यकता के वित्तीय पक्ष को सेवा स्तरों के अपेक्षित मानकों से व्यवस्थित ढंग से प्राप्त नहीं किया जाता तब तक, आर्थिक आवश्यकताओं को परियोजित नहीं किया जा सकता और राज्यों के सापेक्ष आर्थिक पिछड़ेपन को वह महत्व नहीं दिया जा सकता जो दिया जाना चाहिए । केन्द्र ऐसे पर्याप्त सुरक्षा-उपायों का प्रयोग कर सकता है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि इन राशियों का प्रयोग उन्हीं विशिष्ट प्रयोजनों के लिए ही किया जा रहा है जिनके लिए वे राशियां दी गई हैं ।

5.6 आर्थिक रूप से अविकसित क्षेत्रों के विकास के लिए अतिरिक्त संसाधनों को जुटाने की, देश में इस समय चल रही संस्थागत प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए इन वर्तमान प्रक्रियाओं के संचालन के लिए उचित आधारभूत नियमों और निर्देशक सिद्धान्तों को तैयार करने की आवश्यकता है न कि इनके स्थान पर नई निधियों का सृजन किया जाए जो फिर से राज्यों में परस्पर बंटवारे के सम्बन्ध में जटिलताओं से भरी हुई हों ।

5.7 हम भारतीय संविधान को सुव्यवस्थित मानते हैं तथा चूंकि हम इसके मूल ढांचे में परिवर्तन का समर्थन नहीं कर रहे हैं इसलिए हम वर्तमान केन्द्रीय

करों सम्बन्धी अधिकारों में से किसी अधिकार को राज्यों को अन्तरित करने का सुझाव नहीं दे रहे हैं।

5.8 हम उपर्युक्त विचार से सहमत हैं। केन्द्रीय तथा राज्य वित्त मंत्रियों की एक ऐसी परिषद् का गठन एक आदर्श स्थिति का द्योतक है, जो देश के लिए समग्र वित्तीय नीति का निर्धारण करेगा और इसमें केन्द्र तथा राज्यों दोनों के लिए करों की दरों को निर्धारित करना, उनकी उगाही करना और उनमें परिवर्तन करना भी शामिल होगा। इससे पूर्व, बजट को संसद या विधान सभा में पेश करने से पहले सब कुछ गुप्त रखने की हमारी वर्तमान बजट सम्बन्धी प्रक्रिया में सुधार किया जाए।

5.9 राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि योजना तथा गैर-योजना दोनों कारणों से केन्द्र से राज्यों को अन्तरित किए जाने वाले संसाधनों की बढ़ती हुई मात्रा को ध्यान में रखते हुए यही उचित होगा कि एक वित्त आयोग का स्थायी रूप से गठन किया जाए और उसे केन्द्र से राज्यों को दिए जाने वाले सभी संसाधनों के अंतरण का दायित्व सौंपा जाए। यह संविधान के अधीन गठित एक वैधानिक निकाय होगा और इसलिए यह अधिक सम्माननीय होगा। इसके अतिरिक्त बजाय इसके कि एक संगठन गैर योजना निष्पादन तथा आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करे और दूसरे संगठन के द्वारा विकास योजनाओं का सर्वेक्षण किया जाए, एक ही संगठन दोनों कार्य देख सकता है और इस प्रकार से वह स्थिति का सम्पूर्ण जायजा ले सकता है। राज्य सरकारों को बारी बारी से वित्त आयोग में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। इससे वित्त मंत्रालय और योजना आयोग का कार्यभार भी कम हो जाएगा तथा वे विकास कार्यक्रमों का और अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रतिपादन और संचालन कर सकेंगे।

5.10 पिछली प्रवृत्ति के आधार पर आय तथा व्यय दोनों के वास्तविक पूर्वानुमान पर बल देकर तथा निर्धारित मानकों के अनुसार उसका दोबारा पुनर्निर्धारण करके, वित्त आयोग द्वारा अंतरण राज्य सरकारों द्वारा व्यय में कुशलता तथा किफायत को बढ़ाने के लिए किये जाते हैं। इसी प्रकार, विवेकाधीन अन्तरणों के लिए भी भारत सरकार प्रभावशाली मानक तैयार करती है। विकास योजनाओं के मामले में निष्पादन का निर्णय योजना आयोग द्वारा किया जाता है जबकि अन्य अन्तरणों के मामले में विभिन्न संघीय मंत्री राज्य सरकारों की प्रत्येक मद पर हुए व्यय का अवलोकन और निर्धारण करते हैं।

राज्यों के बीच सार्वजनिक व्यय में असमानताएं निश्चित रूप से कम हुई हैं, लेकिन फिर भी इच्छित सीमा तक नहीं हैं। सातवें वित्त आयोग को छोड़कर सभी आयोगों ने स्वयं को केवल राज्य सरकारों द्वारा प्रस्तुत पूर्वानुमानों तथा आयोग द्वारा किए गए पुन: निर्धारण के आधार पर निकाली गई वित्तीय असमानता को दूर करने में लगाया है। यदि किसी राज्य ने अपनी क्षमता के अनुरूप संसाधनों को यथा सम्भव अधिकतम विकसित किया है, तथा जहां तक व्यय का सम्बन्ध है अत्यधिक विवेकपूर्ण और सावधानी से व्यय किया है तो उसे इस नीति से नुकसान होता है। आयोग द्वारा अभीष्ट तथा राज्यों द्वारा पूर्वानुमानित तरीके से वर्तमान सेवाओं के स्तर के निर्धारण के प्रश्न की ओर अधिक जांच की जानी चाहिए। वित्तीय अंतर जिसे वित्तीय आवश्यकताओं की प्रक्रिया के माध्यम से कम किया जाना है, उन्हें केवल तभी परिकलित किया जा सकता है जबकि बजटीय आंकड़ों का बंधन न हो चाहे वे वास्तविक हों या पुन:निर्धारित पूर्वानुमानों के रूप में हों। जब तक आवश्यकता के वित्तीय पक्ष को इच्छित सेवा स्तरों के वास्तविक मानकों और परिसम्पत्तियों के अनुरक्षण की आवश्यकताओं से सही तरीके से नहीं निकाल लिया जाता वित्तीय आवश्यकताएं सामने नहीं आ पातीं और राज्यों के सापेक्ष आर्थिक पिछड़ेपन को उतना महत्व नहीं दिया जा सकता जितना उसे दिया जाना चाहिए।

इसी प्रकार योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के मामले में, योजना आयोग ने गाडगिल फार्मूले का आश्रय लिया है और इसमें भी 60 प्रतिशत अंतरण जनसंख्या पर आधारित है। यही कारण है जिससे पिछड़े हुए राज्य, विशेषत: कम जनसंख्या वाले लेकिन क्षेत्र में बड़े राज्य अपनी योजनाओं के लिए पर्याप्त राशियां प्राप्त नहीं कर पाते।

5.11 यह नहीं कहा जा सकता है कि अन्तरण की वर्तमान प्रणाली अपव्यय के लिए स्वत: निमित्त प्रवृत्त है। खर्चे में अपव्यय तथा राजस्व हानियों की ओर अग्रसर करने वाले जनवादी कारण निश्चित रूप से हैं। कुछ राज्य इसके द्वारा सफलतापूर्वक कार्य कर भी रहे हैं। संसाधनों का अंतरण जहां तक तथाकथित "वित्तीय अंतर" पर आधारित है, जिसके अभिकलन में इन अपव्ययों और जनवादी कारणों पर विचार किया जाता है, अंतरण प्रक्रिया को ही अलग कर दिया जाए। वास्तव में ऐसे अपव्यय को रोकने के लिए इसमें विशिष्ट खंड होना चाहिए।

5.12 राज्य सरकार का विचार इस पक्ष में है कि वित्तीय अंतरण यदि पूर्णतया नहीं तो मुख्यतया करों के अंतरण के माध्यम से किये जाएं। यह अनुदान सहायता द्वारा भी सम्भव है। अब तक अपनाए गए दृष्टिकोण में जो यह संकल्पना अन्तर्निहित है कि वे राज्य जिनका गैरयोजना राजस्व लेखे के अंतर्गत कोई घाटा नहीं है, उन्होंने अपनी सभी गैर योजना आवश्यकताओं को स्पष्टत: और पर्याप्त रूप से सावधानीपूर्वक पूरा किया है, सही नहीं है। इसके साथ-साथ केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों के संवैधानिक स्वरूप के अन्दर आवश्यकताओं के अनुमान में एकरूपता से तात्पर्य राजस्व अंतर के पूर्वानुमान के लिए वर्तमान आधार पर समान वृद्धि दरों को लागू करना नहीं है। जब राज्यों के विकास के स्तर विभिन्न हैं तो उनमें से असमृद्ध राज्य विकसित राज्यों के साथ बराबरी नहीं कर सकते। सात वित्त आयोगों द्वारा समानीकरण के लिए अब तक किए गए उपाय असमानीकरण की अनेक प्रवृत्तियों के प्रभाव में दब कर रह गए हैं तथा समानीकरण के रूप में वित्त आयोगों के निवल अंशदान नगण्य या बिल्कुल ही अल्प रहे हैं। इसलिए वित्त आयोग को अपने कार्यों में इस अन्तिम परिणाम की ओर ध्यान देना चाहिए। पिछड़े राज्यों को कम से कम अखिल भारतीय औसत-स्तर तक लाने के लिए उन्हें सर्वप्रथम उनके राजस्व अंतर को बिना ध्यान में रखे अतिरिक्त सहायता अनुदान दिए जाएं।

5.13 मोटे तौर पर, अनुच्छेद 275 के अधीन राज्यों को अनुदान सहायता देने के लिए सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रतिपादित तीन सिद्धान्त सन्तोषजनक हैं लेकिन उन्हें लागू करने में कुछ सीमाएं और संदेह अवश्य हैं जिन्हें दूर किया जाए।

(i) प्रश्न सं० 5.12 के उत्तर में बताए कारणों के लिए वित्त आयोग को, अनुच्छेद 275 के अधीन अनुदान सहायता के निर्धारण के लिए मापदण्ड के रूप में गैर-योजना राजस्व अंतर का पता लगाने के लिए अपनाई जाने वाली वर्तमान कार्य प्रणाली को छोड़ दें। यह ध्यान रखा जाए कि इस सम्बन्ध में राज्यों को सहायता अनुदान की आवश्यकता नहीं है, इसका अनुमान राज्यों द्वारा दिए पूर्वानुमानों पर न लगाया जाए और न ही वित्त आयोग द्वारा वर्तमान कार्य प्रणाली द्वारा पुन: निर्धारित किया जाए। जब तक आवश्यकता का वित्तीय पक्ष सेवा स्तरों के वांछित मानकों के अनुसार न निकाला जाए, इसे यह नहीं माना जा सकता कि बजटीय आवश्यकताओं को वास्तविक आवश्यकताओं में बदल दिया जाए।

(ii) छठे वित्त आयोग ने प्रशासन के मामलों के सुधार का विचार प्रस्तुत किया, हालांकि इसके द्वारा, इस प्रयोजन के लिए कोई अलग से सहायता-अनुदान नहीं दिया गया। इसने दस वर्षों की समयावधि की संकल्पना की जिसके दौरान सुधार के प्रयोजन को पूरा करना था। दुर्भाग्यवश आयोग ने इस प्रयोजन के लिए कोई विशिष्ट अनुदानों की व्यवस्था नहीं की थी। सातवें वित्त आयोग ने इस प्रयोजन को पूरा करने में इस दोष को आंशिक रूप से दूर किया। यह जानकर सन्तोष होगा कि भारत सरकार ने इसके महत्व को पहचान लिया और इसे आठवें वित्त आयोग के लिए भी विचारणीय विषय के रूप में रखा। सातवें वित्त आयोग के विचारार्थ विषय छ: विकासेत्तर क्षेत्रों और सेवाओं सम्बन्धी सिफारिशों तक सीमित थे। कुछ अन्य क्षेत्रों जैसे शिक्षा आदि के प्रशासन में कोटि उन्नयन के उपबंधों की व्यवस्था के लिए राज्यों के तर्क को सातवें वित्त आयोग ने इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि ये सब कार्य विकासेत्तर क्षेत्रों के वर्ग में नहीं थे। आठवें वित्त आयोग पर भी इसी प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए गए। वित्त आयोग के विचारणीय विषयों पर इस प्रकार के प्रतिबन्ध न लगाए जाएं।

(iii) हालांकि सातवें वित्त आयोग ने इस तृतीय सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया था, किन्तु इसे आयोग के अधिनिर्णय में लागू करना वांछनीय

नहीं समझा गया। अब समय है कि इस सिद्धान्त को अपेक्षाकृत पूरी तरह लागू किया जाए जिससे राज्य अपने राष्ट्र से सम्बन्धित विशिष्ट प्रकार की परिस्थितियों या विषयों के कारण अपनी वित्त व्यवस्था पर पड़े विशेष बोझ को उठा सकें। उदाहरणार्थ मध्यप्रदेश जैसे राज्य, जिनका क्षेत्र बहुत बड़ा है और उनकी प्रत्येक सेवा के लिए प्रति यूनिट लागत अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है और जो इस राज्य की पूरी लम्बाई-चौड़ाई में छोटे-छोटे गांवों के रूप में बिखरी हुई अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की आबादी की बड़ी प्रतिशतता से और भी बढ़ जाती है, ऐसे राज्य को इस वर्ग में शामिल किया जाए और ऐसे मामलों को विशेष अनुदान-सहायता के योग्य माना जाए।

अनुदान-सहायता का स्वरूप नियत राशि का होने के कारण मुद्रा स्फीति से उसका मूल्य कम हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि जब भी अनुदान को स्वीकृति दी जाए, उसमें एक अन्तर्निहित मूल्य निष्प्रभावन फार्मूला तैयार किया जाए और लागू किया जाए। उसमें उस विशेष अवधि के दौरान अनुदान-सहायता की वास्तविक राशि में अतिरिक्त राशि को शामिल किया जाए और एकमुश्त दी जाने वाली मात्रा का हिसाब लगाया जाए।

5.14 हम प्रश्न में विशेष रूप से दी गई दो मदों का ही उत्तर देंगे। जैसा कि प्रश्न में प्रयुक्त शब्दों से स्पष्ट है, विशेष वाहक बांड से प्राप्ति तथा निर्देशित वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि करने से प्राप्त राजस्व दोनों ही केन्द्रीय करेतर राजस्व नहीं हैं। वे उन केन्द्रीय कर राजस्व के अंश हैं जो राज्यों को दिया जाना चाहिए था।

(i) **विशेष वाहक बांड**:--विशेष वाहक बांड की बिक्री से प्राप्त धन आयकर की वह राशियां हैं जो पिछले वर्षों के दौरान विभिन्न कारणों से वसूल नहीं की जा सकीं। यदि ये राशियां सामान्य आयकर की भांति वसूल की जातीं, तो राज्य सरकारों को स्वयं ही राजस्व में उनका अंश मिल जाता।

(ii) **पेट्रोलियम कोयला आदि जैसी मदों के निर्देशित मूल्यों में वृद्धि करने से प्राप्त राजस्व**:--इसमें राज्य दो कारणों से हानि में रहते हैं। प्रथमत: राष्ट्रीय संसाधनों के रूप में निर्धारित कर दिए जाने के कारण, इन खनिजों के खनिकर्म पर राज्यों को बहुत ही कम रायल्टी मिलती है और दूसरे इन मदों पर संघीय उत्पाद शुल्क बढ़ाने के स्थान पर केन्द्र उनके मूल्यों में वृद्धि कर देता है और इस प्रकार राज्यों को संघीय उत्पाद शुल्क में से उनको देय अंश से वंचित रखा जाता है। न तो वित्त आयोग और न ही राज्यों के पास, इन पदार्थों के उत्पादन में केन्द्रीय एजेंसियों की सामर्थ्य निर्धारित करने का कोई साधन है और न ही उत्पादन की लागत में कमी कर सकते हैं। यदि मूल्य वृद्धि बहुत जल्दी-जल्दी काफी और लागत अध्ययन के बिना की जाए तो राज्यों का यह समझना सही है कि कहीं न कहीं कुछ अनुचित है। इसी प्रकार संदेह की स्थिति का तत्काल निराकरण किया जाए।

5.15 हम नहीं जानते कि इस समय धन वितरण किस प्रकार किया जाता है। अत: इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं कर सकते। तथापि, एक राष्ट्रीय ऋण परिषद् तथा एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् का गठन करने से केन्द्र तथा राज्यों के बीच अपेक्षाकृत समुचित रूप से वितरित किए जाने वाले अंशों के निर्धारण में सहायता अवश्य मिलेगी।

5.16 संविधान का अनुच्छेद 246 सातवीं अनुसूची में दिए केन्द्र तथा राज्यों के विधायी अधिकारक्षेत्रों के आधार पर उनके उत्तरदायित्वों के क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करता है। केन्द्र को कुछ मुख्य क्षेत्रों का उत्तरदायित्व सौंपा गया है जैसे रक्षा, विदेशी मामले आदि लेकिन राज्यों को भी सिंचाई, विद्युत, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण आदि जैसे विकास और कल्याण के महत्वपूर्ण कार्यों का उत्तरदायित्व निभाने का कार्य सौंपा गया है।

दूसरी योजना की अवधि से राजस्वों के केन्द्रीयकरण में वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर, प्रयोग के लिए उपलब्ध संसाधनों की तुलना में, केन्द्र ने देश के कुल सार्वजनिक व्यय में अपेक्षाकृत कम उत्तरदायित्व निभाया है। परिणामस्वरूप, पिछले कुछ वर्षों के दौरान संघीय वित्तीय असंतुलनों में वृद्धि हुई है। इसलिए राज्यों को अपने राजस्व (पूंजी और राजस्व दोनों) अब उनके कुल व्यय का 60 प्रतिशत से भी कम की वित्तव्यवस्था कर सकते हैं। इस ओर ध्यान दिया जाए कि चौथी योजना के अंत तक राज्यों के कुल व्यय के लिए राज्यों के अपने राजस्व से वित्त व्यवस्था में लगातार कमी गई है। तथापि पांचवीं योजना की अवधि के दौरान इस स्थिति में सुधार हुआ है। हाल ही के वर्षों में राज्यों द्वारा अतिरिक्त संसाधन जुटाने के संदर्भ में इस वृद्धि का आशय यह है कि हालांकि राजस्व बढ़ाने की उनकी अपनी क्षमता उच्चतम सीमा तक पहुंच गई है, किंतु जनता द्वारा विकास और कल्याण कार्यों पर व्यय की बढ़ती हुई मांग के कारण उनकी व्यय सम्बन्धी आवश्यकताएं अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ रही हैं।

केन्द्र से राज्यों को वित्तीय अन्तरण तीन माध्यमों से किए जाते हैं, अर्थात् वित्त आयोग की सिफारिशों पर, योजना आयोग तथा विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों के माध्यम से। वित्त आयोग की सिफारिशों पर किए गए वित्तीय अन्तरण सांविधिक होते हैं तथा केन्द्रीय करों और सहायता-अनुदान के अंश के रूप में होते हैं और इन दोनों की वापसी नहीं की जाती। चौथी योजना के अंत तक ये अन्तरण कुल संघीय वित्तीय अन्तरणों का एक-तिहाई मात्र थे। लेकिन पांचवीं योजना की अवधि के दौरान वित्त आयोग अंतरणों का अंश 44 प्रतिशत तक बढ़ गया। दूसरी ओर, योजना आयोग की सिफारिशों पर किए गए अंतरण विवेकाधीन होते हैं और सामान्यत: अनुदानों तथा ऋणों के बीच 30:70 का अनुपात है। जब 30 से 40 प्रतिशत तक केन्द्रीय अन्तरण इस माध्यम द्वारा किये जाते हों तो राज्यों के बढ़ते हुए ऋणभार की स्पष्ट कल्पना की जा सकती है।

5.17 यह आवश्यक है कि प्रत्येक वित्त आयोग राज्यों की बढ़ती हुई ऋण-ग्रस्तता की समस्या पर विचार करे और उसके उपाय सुझाए। छठे आयोग से यह कहा गया था कि वह केन्द्रीय ऋणों की चुकौती के सम्बन्ध में समुचित परिवर्तन सुझाए जबकि सातवें वित्त आयोग से कहा गया था कि वह राज्यों के गैर-योजना पूंजी अंतर को समाप्त करने के लिए उचित उपाय सुझाए। आठवें वित्त आयोग के लिए भी ऐसा ही विचारणीय विषय निर्धारित किया गया था।

मूल ऋण तथा ब्याज की चुकौती के समायोजन के पश्चात् केन्द्रीय ऋणों में से राज्यों के संसाधनों की निवल वृद्धि दिखाने वाली एक सारणी निम्नलिखित है:--

(रुपये करोड़ों में)

वर्ष	केन्द्र से राज्यों को कुल ऋण	राज्यों द्वारा केन्द्र को ऋणों की चुकौती	केन्द्र से प्राप्त ऋणों पर राज्यों द्वारा अदा किया गया ब्याज	राज्यों को केन्द्र से ऋण लेने पर निवल अन्तरण (कॉलम 2+3—4)
1	2	3	4	5
1971-72	1192.5	801.4	324.3	66.8
1972-73	1950.2*	689.6	331.1	929.5*
1973-74	1552.9	933.9	401.0	218.0
1974-75	1075.2	505.4	349.8	220.0
1975-76	1294.3	761.7	445.7	86.9
1976-77	1446.2	719.3	485.5	241.4
1977-78	1910.9	790.1	510.1	610.7
1978-79	3229.7	868.3	590.1	1771.3
1979-80	2668.5	802.7	578.8	1287.0
1980-81	3021.9	1458.2	786.9	776.8

*केन्द्र से राज्यों द्वारा प्राप्त की गई निवल अर्थोपाय सहायता के रूप में 421.1 करोड़ रु० की राशि को शामिल करके, अप्रैल 1972 के अन्त में भारतीय रिजर्व बैंक के लिए उनके शेष ओवर ड्राफ्टों की अदायगी के लिए।

राज्यों पर ऋणग्रस्तता की वृद्धि के सन्दर्भ में, यह देखा जा सकता है कि राज्य सरकारों को केन्द्रीय ऋणों की समस्या केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर वाद-विवाद का महत्वपूर्ण विषय बन गयी है। इसलिए राज्यों की समग्र ऋणग्रस्तता को कम किए जाने के किसी परामर्श में राज्यों पर केन्द्रीय ऋणों के बढ़ते हुए बोझ को ध्यान में रखा जाए। दूसरे वित्त आयोग ने जिसे यह विषय सौंपा गया था, यह सिफारिश की थी कि विभिन्न केन्द्रीय ऋणों को, कम ब्याज ऋणों सहित, कुछ वर्गों में एकत्र किया जाए। केन्द्रीय सरकार द्वारा सिफारिश को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया गया था, तथापि चुकौती तथा ब्याज दरों के विषय में कुछ संशोधन किए गए थे। चौथे वित्त आयोग ने यह माना है कि केन्द्रीय सरकार को राज्यों के ऋण की चुकौती के प्रयोजन के लिए सम्पदा कर का राज्यों का अंश पर्याप्त नहीं है और इसलिए उसने यह सिफारिश की कि सरकारों की आपसी ऋणों की समस्त समस्याओं की जांच करने और उनके लिए उचित उपाय सुझाने के लिए एक विशेषज्ञ निकाय का गठन किया जाए। केन्द्रीय सरकार द्वारा अभी भी इस सिफारिश पर कार्रवाई की जानी है। इसी दौरान राज्यों का ऋण काफी मात्रा में बढ़ता जा रहा है। पांचवें वित्त आयोग को केवल राज्यों के अप्राधिकृत ओवर ड्राफ्टों की जांच करने और उन्हें कम करने के उपाय सुझाने के लिए कहा गया था। आयोग ने इसके साथ कुछ न्याय किया।

योजना सहायता स्कीम के अन्तर्गत राज्यों को केन्द्रीय ऋण दिए गए हैं। इस स्कीम के अन्तर्गत अधिकांश राज्य केन्द्रीय सहायता का 70 प्रतिशत ऋण के रूप में तथा शेष 30 प्रतिशत पूर्णतया अनुदान के रूप में लेते हैं। इस प्रकार राज्यों को केन्द्रीय ऋणों के दुर्लंघ्य जाल में फंसाया जाता है जो उस पर ब्याज तथा इन ऋणों पर चुकौती की देनदारी और फिर इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए केन्द्र से और ऋणों की आवश्यकता के दायरे में फंस जाते हैं।

छठे वित्त आयोग को पहली बार राज्यों के बजटों में गैर-योजना पूंजी अंतर का अनुमान लगाने और इन अंतरों को कम करने के उपाय सुझाने के लिए कहा गया था। आयोग ने ये सिफारिशें की : (क) कुछ ऋणों को एक वर्ग में समेकित किया जाए, (ख) कुछ ऋणों की चुकौती की अवधि को बढ़ा दिया जाए, (ग) कुछ ऋणों की चुकौती को स्थगित कर दिया जाए, तथा (घ) कुछ ऋणों को बट्टे खाते डाल दिया जाए। तथापि, आयोग ने यह सिफारिश नहीं की थी कि सारी ऋण को इस आधार पर रद्द कर दिया जाए कि यह राज्यों को और सहायता उपलब्ध कराने के लिए केन्द्रीय सरकार के पास उपलब्ध संसाधनों को कम कर देगा।

सातवें वित्त आयोग ने भी छठे वित्त आयोग के प्रस्ताव का अनुमोदन किया था लेकिन फिर भी शेष ऋणों को बट्टे खाते डालने के राज्यों के अनुरोध के सम्बन्ध में सावधानी के तौर पर एक और टिप्पणी जोड़ दी। आयोग ने ऋणों को तीन वर्गों में बांट दिया, अर्थात् (क) अनुत्पादक प्रयोजनों के लिए आवेदित ऋण, जिन्हें रद्द कर दिया जाना था ; (ख) अर्ध-उत्पादक प्रयोजनों के लिए ऋण जिसकी चुकौती 30 वर्षों में की जानी है; तथा (ग) उत्पादक प्रयोजनों के लिए ऋण जिनकी चुकौती 15 वर्षों में की जानी है। छोटे बचत ऋणों को समेकित करके स्थायी ऋणों के रूप में परिवर्तित करने की सिफारिश की गई। केन्द्रीय सरकार ने लघु बचत ऋणों को स्थायी ऋणों में परिवर्तन करने की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया, जबकि आयोग की अन्य सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया था।

सुझाव : राज्यों पर केन्द्रीय ऋणों के भार की समस्या के हल का प्रत्येक सुझाव लघु अवधि तथा दीर्घकालीन दोनों ऋणों को सामने रख कर दिया जाए। यह अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि केवल वास्तविक आधार पर प्रस्तावित उपाय ही राज्यों पर केन्द्रीय ऋणों के वित्तीय बोझ को कम कर सकेगा।

लघु अवधि का एक महत्वपूर्ण उपाय ऋण समायोजन होना चाहिए जो कुछेक ऋणों और उन पर ब्याज को, जो सामाजिक तथा साथ ही साथ वित्तीय अनुत्पादक प्रयोजनों के लिए दिए गए हैं जैसे सूखा या बाढ़ सहायता तथा पुनर्वास आदि, बट्टे खाते डालने के रूप में होगा। अन्य लघु अवधि उपाय, उपर्युक्त ऋणों के अतिरिक्त अन्य वर्तमान ऋणों की चुकौती की अवधि बढ़ाकर पुन: निर्धारित करना है। इसके लिए सभी शेष ऋणों को 50 वर्ष की चुकौती अवधि मानते हुए समेकित किया जाए जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी से राजकोष पत्रों की दर पर प्राप्त सुलभ कर्जों के सम्बन्ध में किया जाता है। अन्तत: अर्थोपाय पेशगियों के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ली जाने वाली ब्याज की दर, राजकोष पत्रों की दर से अधिक न हो।

दीर्घावधि उपायों के रूप में प्रथम तथा मुख्य उपाय यह है कि भविष्य में केन्द्रीय सहायता में अनुदान की राशि योजना स्कीमों के लिए 30 प्रतिशत से बढ़ा कर 50 प्रतिशत कर दी जाए। केन्द्र द्वारा ऐसे फार्मूले की स्वीकृति दे दी जानी चाहिए जो राज्यों के पिछड़ेपन पर आधारित है।

केन्द्रीय ऋणों के द्वारा मध्य प्रदेश सरकार के संसाधनों में, इन ऋणों की चुकौती तथा उन पर ब्याज की अदायगी के पश्चात्, निवल वृद्धि निम्नलिखित सारणी में दिखाई गई है :—

(रुपये करोड़ों में)

वर्ष	राज्य सरकारों को कुल केन्द्रीय ऋण	केन्द्र को ऋणों की चुकौती	केन्द्रीय ऋणों पर दिया गया ब्याज	केन्द्रीय ऋणों के द्वारा राज्य संसाधनों में निवल वृद्धि (कॉलम 2+3—4)
1	2	3	4	5
1971-72	47.51	44.55	19.56	(—) 16.60
1972-73	62.12	48.11	19.69	(—) 5.68
1973-74	58.05	54.78	20.36	(—) 17.09
1974-75	57.83	22.79	16.26	18.09
1975-76	67.96	36.69	21.81	9.46
1976-77	73.85	32.47	23.79	17.59
1977-78	85.00	42.65	26.09	16.26
1978-79	213.40	38.49	28.60	146.31
1979-80	144.86	36.60	38.55	69.71
1980-81	211.15	55.41	41.27	114.47
1981-82	180.89	53.47	50.91	76.51
1982-83	385.33	74.72	59.45	251.16

5.18 राज्य सरकारों के बाजार ऋण समय-समय पर बदलते रहते हैं तथा उनके लिए सामान्यत: वित्तीय संस्थाओं द्वारा राशि अभिदत्त की जाती है। लेकिन इस वित्तीय प्रचालन के विभिन्न पक्षों की जानकारी बहुत ही कम है विशेषत: वह मापदंड जिसके आधार पर प्रत्येक राज्य की बाजार ऋण की निश्चित राशि आबंटित की जाती है। भारत में राज्य सरकारों के सरकारी ऋण में बाजार ऋण, राज्य सरकारों के स्वायत्त वाणिज्य उपक्रमों से उधार, वित्तीय संस्थानों से उधार, इसके कर्मचारियों से सामान्य भविष्य निधि, भारतीय रिजर्व बैंक से अर्थोपाय पेशगियां तथा केन्द्रीय सरकार से ऋण शामिल होंगे। यहां हमारा सम्बन्ध राज्य सरकार के केवल बाजार ऋणों से है।

अधिकतर संघों में उनके संविधानों द्वारा राज्य सरकारों के लिए देश में से ही और देश के बाहर से भी ऋण लेने की व्यवस्था की जाती है। भारत में राज्य सरकारों को केवल देश में से ही ऋण लेने का अधिकार दिया गया है और देश के बाहर से ऋण लेने का अधिकार केन्द्रीय सरकार के लिए विशेष रूप से आरक्षित किया गया है।

भारत में किसी भी स्रोत से ऋण लेने का पहला अधिकार ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों को 1921 में प्राप्त हुआ। चूंकि 1919 से पहले देश में प्रशासन एक यूनिट के रूप में कार्य करता था, तत्कालीन प्रशासनिक प्रांतों के उधार लेने के अधिकारों का प्रश्न ही नहीं उठता था। तथापि, भूतपूर्व राजसी प्रान्तों में अपने-अपने राज्य क्षेत्र में उधार लेने के अधिकार का प्रयोग किया जाता था।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 163 में भूतपूर्व प्रान्तों के, उनके राजस्वों की प्रतिभूति पर उधार लेने के अधिकारों को बनाए रखा। उन्हें आंतरिक ऋण लेने के साथ साथ देश से बाहर से भी ऋण लेने के अधिकार दिए गए। इस अधिनियम द्वारा इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया से लघु अवधि ऋण

लेने का अधिकार दिया गया (जो उस समय देश का केन्द्रीय बैंक था) तथापि, भारत सरकार अधिनियम, खंड 3 तथा भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 163 के अन्तर्गत केवल स्थानीय सरकार ऋण नियमावली के मामले में, भूतपूर्व प्रान्तों के ऋण लेने के अधिकारों पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिए गए।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद, भारत के संविधान द्वारा 293 (1) अनुच्छेद के अन्तर्गत राज्यों को उनकी अपनी अपनी समेकित निधि की प्रतिभूति पर भारत में ही ऋण लेने के अधिकार दिए गए हैं और उनके अधीनस्थ प्राधिकरणों द्वारा या राज्य विधान मंडल द्वारा बनाए/गठित प्राधिकरणों द्वारा लिए जाने वाले ऋणों के लिए गारंटी देने का अधिकार दिया। इन उपबन्धों के अनुसार राज्य सरकारें केवल देश के अन्दर से ही ऋण ले सकती हैं। देश से बाहर से ऋण लेने का अधिकार विशेष रूप से केन्द्रीय सरकार के लिए आरक्षित है। यहां तक कि यदि विकासशील प्रयोजनों के लिए भी राज्य सरकारों को विदेशी ऋणों की आवश्यकता हो तो उन्हें केन्द्रीय सरकार के माध्यम से ही प्राप्त करना होगा।

यहां यह लिखना भी आवश्यक है कि भारत में राज्य सरकारों के आन्तरिक ऋण लेने के अधिकार भी (क) राज्य विधान मंडलों द्वारा लागू की गई सीमाओं के अधीन है; तथा (ख) यदि राज्य के शेष ऋण के लिए केन्द्रीय सरकार ने गारंटी दी है या यदि राज्य केन्द्रीय सरकार की कर्जदार है तो राज्य बिना केन्द्रीय सरकार की सहमति के कोई नया ऋण नहीं ले सकता। चूंकि, वास्तव में अधिकतर राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की ऋणी हैं इसलिए उन्हें सार्वजनिक ऋण लेने के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी पड़ती है।

इसमें एक व्यावहारिक समस्या भी है जो राज्य सरकारों को खुले बाजार से ऋण लेने के लिए भी केन्द्रीय सरकार की सहायता लेने के लिए मजबूर करती है। भारतीय पूंजी बाजार विभिन्न कारणों से विकसित नहीं है और अधिकतम वित्तीय संस्था जो सार्वजनिक बचतों को निवेश के लिए संग्रह करते हैं, केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में हैं तथा/अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित हैं। इसलिए कोई राज्य सरकार यदि इन संस्थाओं से (चूंकि ये संस्थाएं देश में पूंजीबाजार तैयार करते हैं) ऋण लेना चाहती हैं, तो उसे केन्द्रीय सरकार की नीति का अनुपालन करना पड़ता है। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार अपनी प्रभावकारी वित्तीय स्थिति के कारण और भारतीय रिजर्व बैंक एवं विभिन्न अन्य वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रक होने के कारण राज्य सरकारों की सार्वजनिक ऋण लेने की नीति को नियंत्रित करती है। भारतीय रिजर्व बैंक भी, जो कि भारत सरकार की मुद्रा नीति और सार्वजनिक ऋण नीति के लिए उत्तरदायी है, देश में प्रबल आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार समय समय पर सभी राज्य सरकार के ऋणों को परिवर्तित करने के उत्तरदायित्व के द्वारा राज्य सरकारों की बाजार ऋण कर रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विभिन्न राज्यों में बाजार ऋणों का आबंटन योजना आयोग तथा संघ के वित्त मंत्रालय के परामर्श के आधार पर किया जा रहा है। वह मानदण्ड जिस के आधार पर प्रत्येक राज्य को कुल उपलब्ध बाजार निधि में से कितना अंश दिये जाने का निर्धारण किया जाता है, इसकी जानकारी किसी को नहीं है।

तथापि, यह विचार किया गया कि विभिन्न राज्यों के अंशों में अत्यधिक विभिन्नता थी। इसके साथ साथ केन्द्रीय सरकार कुल बाजार ऋणों में से बहुत बड़ा अंश लेती रही है जबकि राज्य सरकारें अपने वास्तविक उपयोग के अतिरिक्त पुराने ऋणों को चुकाने के लिए अधिक ऋण लेना चाहती रही है। यद्यपि राज्य सरकारों के कुल बाजार ऋण पिछले दस वर्षों के दौरान लगातार बढ़ते रहे हैं लेकिन यह निरंतरता प्रत्येक राज्य सरकार के मामले में लागू नहीं होती है। उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल जैसे राज्य सरकारों के मामले में लगातार बढ़ा है लेकिन अन्य राज्यों के मामले में इन अंशों की वृद्धि में उतार चढ़ाव आता रहा है लेकिन आन्ध्र प्रदेश, असम, हरियाणा, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा के सम्बन्ध में दिलचस्प बात यह है कि उनके ये अंश न्यूनाधिक स्थिर रहे हैं। इन अस्थिरताओं से यह संकेत मिलता है कि राज्य सरकारों के बाजार ऋणों का वितरण या आबंटन किसी निष्पक्ष सिद्धान्त के अनुसार नहीं किया गया है।

राज्यों में बाजार ऋणों के आबंटन को विवेकयुक्त बनाने के लिए अनेक सुझाव दिए गए हैं। इनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि निधि के आबंटन की वर्तमान कामचलाऊ पद्धति के स्थान पर, विभिन्न राज्यों में बाजार ऋणों के वितरण के लिए कुछ निष्पक्ष मानदण्ड तैयार किए जाएं।

5.19 हम नहीं मानते कि केन्द्र पर लगाया गया यह आरोप सही है। हम समझते हैं कि राज्यों को दिए अपने ऋणों पर ब्याज की दर को निर्धारित करते समय केन्द्र यू० एन० एजेंसियों से अधिक उदारता से ऋणों की दरों पर विचार करे। यदि नहीं करता तो हमारा निवेदन है कि ब्याज की दर भारित औसत के आधार पर निर्धारित की जाए ताकि लाभ को केन्द्र तथा राज्यों में बांटा जा सके।

5.20 ऋण परिषद जैसी किसी और एजेन्सी का गठन करने के स्थान पर राष्ट्रीय विकास परिषद्, (एन० डी० सी०) स्वयं केन्द्र और राज्यों के बीच में तथा राज्यों के परस्पर बाजार ऋणों के बंटवारे के लिए कोई मानदण्ड तैयार करे। इसकी समीक्षा समय समय पर अर्थात् वार्षिक रूप से सभी वित्त मंत्रियों की एक स्थाई कमेटी द्वारा की जा सकती है।

5.21 राज्यों द्वारा ओवरड्राफ्ट, राज्य सरकारों की वित्त व्यवस्था में अत्यधिक मन्दी के द्योतक है। अर्थोपाय पेशगी का द्विगुणन अल्पावधि उपाय था जो सांत्वना मात्र तो था लेकिन समस्या का कोई हल नहीं था। जब तक कि ओवरड्राफ्टों के मूल कारणों को समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक इस समस्या को हल नहीं किया जा सकता।

हम इस मन्दी के लिए किसी एक सरकार को दोषी नहीं ठहरा सकते। यह सत्य होते हुए भी कि राज्यों के पास उपलब्ध राजस्व के संसाधन सीमित हैं तथापि इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि राज्यों के वित्तीय प्रशासन में अत्यधिक लापरवाही भी है। कई जनोपयोगी सेवाएं न तो उपयुक्त तरीके से चलाई जा रही हैं और न ही इन सेवाओं के लिए कोई लागत और नियत लाभ के आधार पर कीमत ही तय की गई है जो बजटीय सहायता उपलब्ध कराने के स्थान पर भारी हानियों का कारण बनी हुई हैं। दूसरे इसमें अतिपूंजीकरण भी है। राज्यों पर अनेक परियोजनाओं को चलाने का कार्यभार भी है जिनमें निवेशों की अत्यधिक आवश्यकता होती है और जिनके परिणामस्वरूप संसाधनों का अपव्यय और इसके फलस्वरूप अधिक पूंजी निर्गम अनुपात और प्रतिफल की दर बहुत ही कम रहती है। इसमें सरकार शुल्क समय पर प्राप्त करने की स्वेच्छा की सामान्य कमी है। ये सभी मिलकर राज्यों के लिए एक कमजोर संसाधनों का आधार बनाते है और उनके लिए अर्थोपाय की समस्याएं उत्पन्न करते हैं और फिर ये राज्यों के अपेक्षाकृत असंपीड्य राजस्व स्रोतों के द्वारा और भी संघटित हो जाते हैं। फिर भी राज्यों की अर्थोपाय की समस्या कोई साधारण समस्या नहीं है इसके लिए एक ऐसी समग्र राष्ट्रीय वित्तीय नीति मात्र ही इस जटिल समस्या का समाधान कर सकती है जो दक्षता के लिए पूर्णत: प्रयत्नशील हो और जिसमें कोई अन्य शर्त न जुड़ी हो।

5.22 संविधान का अनुच्छेद 246, सातवीं अनुसूची में केंद्र तथा राज्यों के विधायी क्षेत्राधिकारों के आधार पर उनके उत्तरदायित्व का क्षेत्र निर्धारित करता है। जहां तक राजस्व के स्रोतों के विभाजन का सम्बन्ध है, केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय कर के रूप में संघीय उत्पाद शुल्क, सीमा कर निगम कर, आदि राजस्व के अनेक लचीले स्रोतों का सुविधापूर्वक प्रयोग करती है। इसके विपरीत राज्यों को अपर्याप्त तथा कम लचीले राजस्व के स्रोत दिए गए हैं। बिक्री कर अवश्य इसका अपवाद है लेकिन इसमें भी इसकी व्यापकता को धीरे धीरे केन्द्रीय सरकार द्वारा अनेक प्रकार से कम कर दिया गया है जैसे इसके विस्तृत क्षेत्र का विभिन्न आधारों पर अतिक्रमण कर के जैसे अन्तर्राज्य व्यापार पर बिक्री कर का केन्द्रीकरण घोषित सामान तथा सेवाओं पर बिक्री कर की दरों के निर्धारण का अधिकार अपने हाथ में लेना और अधिक पदार्थों पर बिक्री कर लगाने के आधार पर धीरे धीरे अतिरिक्त संघीय उत्पाद शुल्कों की वृद्धि करना आदि। इससे अधिक और क्या हो सकता है कि राजस्व के स्रोतों में से कुछ जैसे भूमि कर, राज्य उत्पाद शुल्क को विभिन्न प्रकार की बाधाओं से उलझाया गया है और इन स्रोतों से अधिक राजस्व प्राप्त करना, राज्य सरकारों के लिए कठिन कर दिया गया है। इन बाधाओं के बावजूद, मध्य प्रदेश जैसा एक पिछड़ा हुआ राज्य पिछले 12 वर्षों के दौरान सभी राज्य करों और शुल्कों की प्राप्ति में 16 प्रतिशत से अधिक की संयुक्त संवृद्धि दर को बनाए हुए हैं। उसी अवधि के दौरान बिक्री कर, वाहनों पर कर, विद्युत कर, मनोरंजन कर, माल पर कर, स्टाम्प कर तथा राज्य उत्पाद शुल्क आदि अलग अलग करों में क्रमश: 17.5, 21.5, 19.3, 15.7, 13.6, 15.3 तथा 14.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संयुक्त संवृद्धि दर थी। राज्य करों तथा शुल्कों से प्रति व्यक्ति राजस्व 1970–71 में 20.79 रु० से बढ़कर 1982–83 में 87.94 हो गया

तथा उस राज्य की जो आर्थिक विकास की सीढ़ी पर पहला कदम ही रख रहा था, कर प्रवृत्ति का औसत (कुल राज्य के घरेलू उत्पाद की प्रतिशतता के रूप में कर राजस्व) 1970–71 में 4.35 से बढ़ कर 1982–83 में 7.15 हो गया, जो कि ऐसे राज्य के लिए काफी अधिक है। इस अवधि के दौरान करेतर राजस्व में भी इसी अनुपात से वृद्धि हुई है। अन्य राज्यों का भी यही अनुपातिक रुख रहा है। इस प्रकार, जहां तक राज्य स्रोतों और अतिरिक्त संसाधन वृद्धि उपायों से राजस्व का सम्बन्ध है, राज्य सरकारों ने इसे पूरा किया है, और वे यह राजस्व संविधान में निर्धारित किए गए अनुसार और आर्थिक परिस्थितियों के प्रादुर्भाव में यथासम्भव जुटा भी रही है।

5.23 राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के निष्पादन पर कोई टिप्पणी करने के लिए सक्षम नहीं है। हमारे पास उनके प्रारम्भ से अब तक उनके द्वारा किए गए कार्यों पर कोई वैध निर्णय लेने के लिए पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं। केन्द्रीय कर-प्रणाली में कमियों के सम्बन्ध में यह कोई भी टिप्पणी सामान्य रूप से भी दे सकता है कि राज्यों द्वारा करों की व्यवस्था के आधार पर यह सम्भव है कि केन्द्रीय कर-प्रणाली में भी पर्याप्त कमी है।

बहुत पहले ही यह महसूस कर लिया गया था कि इस देश में विनिर्मित मदों पर करों का विस्मयकारी सोपानी प्रभाव होगा। अनेक विषयों में से यह एक ऐसा विषय है जिस पर तत्काल अध्ययन किया जाए। कुछ समय पहले देश में मूल्य सहित करों के सम्बन्ध में विचार गम्भीर थे लेकिन हाल ही की चर्चाओं में यह विषय उभर कर नहीं आया है। वास्तविकता यह है कि इधर कुछ समय से संघीय वित्त मंत्रालय अनेक मदों पर कर कम कर रहा है जिसमें यह स्पष्ट होता है कि इस महत्व को अधिक समझा जा रहा है कि विनिर्मित मदों पर विविध करों का प्रभाव वित्तीय उपलब्धियों या प्रगति की अधिक दर, जो इस देश के लिए अनिवार्य है, किसी पर नहीं पड़ा है। इस स्थिति में राज्य सरकार जो सर्वाधिक महत्व का सुझाव दे सकती है वह यह है कि इन समस्याओं का उपाय ढूंढने के लिए आवश्यक है कि इस विषय की पूरी जांच की जाए।

5.24 यदि संघीय सरकार कर लगाने या कर ढांचे में परिवर्तन करने या अनुच्छेद 268 तथा 269 में दिए गए शुल्कों तथा करों में से किसी को समाप्त करने के सम्बन्ध में बिल पेश करने से पहले राज्य सरकारों के विचार जान लें तो यह राज्य वित्त व्यवस्था के स्थायित्व के हित में एक स्वस्थ परम्परा होगी।

5.25 संविधान के अनुच्छेद 269 में यह व्यवस्था है कि भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित कर तथा शुल्क वसूल किए जाएंगे लेकिन अनुच्छेद 269 की धारा (2) में दिए तरीके के अनुसार राज्यों को सौंपे जाएंगे :—

(क) कृषि भूमि के अतिरिक्त सम्पत्ति पर उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्क।

(ख) कृषि भूमि के अतिरिक्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में सम्पदा कर।

(ग) रेल, समुद्री यान या वायुयान द्वारा लाए ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर सीमा कर।

(घ) रेल भाड़ों तथा माल भाड़ों पर कर।

(ङ) शेयर बाजारों तथा वायदा बाजारों में लेन देन पर स्टाम्प करों के अतिरिक्त कर।

(च) समाचार पत्रों की खरीद या बिक्री पर तथा उनमें छपे विज्ञापनों पर कर।

(छ) समाचार पत्रों के अतिरिक्त ऐसे सामान की बिक्री या खरीद पर कर जिसकी यह खरीद या बिक्री अन्तर राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान की जाती है।

अनुबन्ध 269 में संघ तथा राज्य के बीच विशेष प्रकार की कर लगान व्यवस्था की गई है और यह व्यवस्था संविधान में ही उपबन्धित है। इससे केन्द्र को इस व्यवस्था में कोई आर्थिक प्राप्ति नहीं होती है। तथापि पांचवें वित्त आयोग का यह मत था कि अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत सूचीबद्ध करों का महत्व राज्यों के राजस्वों के एक स्रोत के रूप में न होकर करों की दरों की एकरूपता बनाए रखने के मामले में अधिक है। किन्तु इस अनुच्छेद का प्रयोग इस प्रयोजन के लिए नहीं किया गया, जब कि राज्यों को राजस्व प्राप्ति के लिए, इस अनुच्छेद में दर्ज करों में से कुछ कर लगाना काफी लाभकर हो सकता था।

केन्द्रीय सरकार ने केवल अनुच्छेद 269 (1) (ख) तथा (छ) में निर्दिष्ट करों और शुल्क लगाए है। रेल-भाड़ों पर पहले लगाए गए कर को 1961 में रद्द कर दिया गया था। यह आवश्यक है कि इन करों और शुल्कों से बढ़ने वाले स्रोतों का अनुमान लगाया जाए और केन्द्रीय सरकार इनमें से कम से कम कुछ की उगाही सख्ती से करें।

5.26 संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन उगाहियों में से एक रेल यात्री भाड़े पर कर है जिसकी कुल आय को पूर्णत: राज्यों को सौंप दिया जाना था। यह कर पहली बार, रेल-यात्री भाड़ा कर अधिनियम, 1957 के अधीन लगाया गया था, जो कि 1961 में भारत सरकार द्वारा रद्द कर दिया गया था तथा इसे अप्रैल, 1961 से मूल भाड़ों में सम्मिलित कर दिया गया था इस संबंध में राज्यों की सलाह नहीं ली गई। हालांकि उगाही बन्द कर दी गई भारत सरकार ने इस कर के बदले में राज्यों में वितरित करने के लिए 12.50 करोड़ रुपये की राशि प्रतिवर्ष तदर्थ अनुदान के रूप में देने का निर्णय लिया और राज्यों द्वारा लगातार मांग करते रहने पर 1966–67 से यह अनुदान की राशि बढ़ा कर 16.25 करोड़ कर दी गई। तब से अब तक यह राशि उतनी ही है। रेल सुरक्षा कार्यों के लिए 6.87 करोड़ एक अतिरिक्त अनुदान दिया गया।

राज्य सरकार इस ओर ध्यान दिलाना चाहेगी कि संविधान के अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा उगाहे जाने वाले करों में से एक कर के रूप में रेल यात्री भाड़े पर कर लगाने की व्यवस्था तथा यही राशि राज्यों को सौंपने की व्यवस्था में संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य रेलवे के बढ़ रहे राजस्वों में साधारण से अधिक अंश राज्यों को देना था। इस उद्देश्य को रेल यात्री भाड़ा-कर के स्थान पर एक निर्धारित एक मुश्त अनुदान देकर विफल कर दिया गया। इसके अलावा, अनुदान की राशि के निर्धारण का कार्य रेलवे कन्वेंशन कमेटी को सौंपा गया है जो राज्यों की वितरित की जाने वाली राशि के निर्धारण में अनुदार है। मूल्य वृद्धि के कारण कीमत में ह्रास होने के कारण रेलवे कन्वेन्शन कमेटी, 1965 द्वारा निर्धारित अनुदान की राशि अपर्याप्त है और यह राशि कर प्राप्तियों का अन्तर्निहित लचीलापन नहीं दिखाती। छठे तथा सातवें दोनों वित्त आयोग इस बात से सहमत थे कि राज्य सरकारों के, कर पुन: लगाने या अनुदान की राशि में तदनुरूप वृद्धि के लिए प्रस्तुत तर्क वैध है तथा इस सम्बन्ध में उनकी शिकायत तत्काल दूर करने की आवश्यकता है।

इसमें कोई विवाद नहीं है कि यात्रियों के यातायात और यात्री-आय दोनों में वृद्धि हो रही है। यदि इस विचार को ध्यान में रखा जाता तो ऐसी अपेक्षा करना न्यायसंगत ही होगा कि इस अनुदान को समय-समय पर बढ़ाया जाता, लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। कर के रूप में गैर-उपनगरीय यात्री से होने वाली प्राप्तियों की 10.7 प्रतिशत की औसत दर की परिकल्पना से सातवें वित्त आयोग ने यह परिकल्पना की थी कि यदि कर लागू रहता तो 1976–77 में 56.21 करोड़ रु० वसूल होते और 1977–78 में 61.17 करोड़ रु० वसूल होते। यह राशि अब राज्यों को दी जा रही अनुदान की राशि से चार गुना अधिक है। तब से ही रेलवे आय में भारी वृद्धि हुई है। इस लिए यह राज्य सरकार का निवेदन है कि कर के बदले में राज्यों को अदा की जाने वाली अनुदान की राशि का निर्धारण केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों का एक पक्ष है जो वित्त आयोग के क्षेत्र में होना चाहिए और अनुदान की राशि का निर्णय उस आयोग पर छोड़ दिया जाए। इसके साथ-साथ एक यथार्थमूलक सिफारिश की जाए कि रेल यात्री भाड़े पर कर लगाने का अधिकार या तो आयोग को लौटा दिया जाए या अनुदान की राशि उस सीमा तक बढ़ा दी जाए जितनी राज्यों को कर लगाने से प्राप्त होती। पिछले मामले में रेलवे को हुई यात्री-भाड़ा प्राप्तियों में वृद्धि के अनुपात में अनुदान में भी वार्षिक वृद्धि की व्यवस्था की जाए।

5.27 हमें इसके बारे में कुछ नहीं कहना है।

5.28 इस समय राज्य सरकारों द्वारा किया जाने वाला सूखा राहत व्यय मार्जिन राशि से अधिक है और वे राहत रोजगार उपलब्ध कराने के लिए अपनी योजना-राशि से भी अंशदान करते हैं। इस प्रकार राज्य सरकारों द्वारा उनकी योजना राशि से किया जानेवाला अंशदान कितनी सीमा तक किया जाना है इसका निर्धारण केन्द्रीय दल द्वारा, राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके और केन्द्रीय

सरकार द्वारा अनुमोदन किए जाने के बाद किया जाएगा । यह अंशदान वार्षिक योजना परिव्यय के लगभग पांच प्रतिशत से अधिक न हो । राज्य सरकार का यह योजना अंशदान उस वर्ष में योजना परिव्यय के अतिरिक्त माना जाए और उसे योजना सहायता अग्रिम में शामिल किया जाए । राज्य की योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की सीमा के अन्तर्गत इस योजना-सहायता-अग्रिम का समायोजन सूखा समाप्त होने के बाद पांच वर्षों के अन्दर किया जाता है । राज्य योजना अंशदान को भी शामिल कर लेने के बाद, यदि केन्द्रीय दल तथा उच्च स्तरीय समिति द्वारा अनुमानित व्यय आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता तो उस विशेष मामले में अतिरिक्त व्यय का आधा अंश केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान के रूप में और आधा ऋण के रूप में दिया जाए ।

यह व्यवस्था राज्य सरकारों के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुई और इसे लागू करने में भी कठिनाई हुई । बहुत बड़े पैमाने पर राहत कार्यों में खर्च करने का प्रभाव राज्य की समस्त अर्थ-व्यवस्था पर पड़ता है । राज्य के योजना परिव्यय का बड़ा अंश विशेष रूप से सिंचाई, विद्युत तथा अन्य कार्यक्रमों में पूंजी निवेश के लिए होता है तथा उसे सामान्य राहत कार्यों के लिए और कमी वाली स्थिति के क्षेत्रों या पाकेटों में रोजगार उपलब्ध कराने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता । वास्तव में जिस क्षेत्र के चालू योजना परिव्ययों राहत कार्यों ने प्रभावित नहीं किया है, उसकी निधियों में से दूसरे राज्य को धन राशि देने का विरोध हुआ है । इस समय की जा रही कार्रवाई के अनुसार राहत कार्यों के लिए योजना की केन्द्रीय सहायता का समायोजन, योजना की केन्द्रीय सहायता की सीमा के आधार पर सूखा की समाप्ति के बाद पांच वर्षों में किया जाता है और सहायता के ऋण अंश की चुकौती ऋण की प्राप्ति से अगले वर्ष से शुरू होती है । यह प्रक्रिया राज्य सरकारों को दो रूपों में प्रभावित करती है । पहला, राज्य सरकारें योजना के लिए संसाधनों की कटौती किए बिना इसके समायोजन में समर्थ नहीं होती हैं । दूसरे, ऐसा करने से वे लक्षित वृद्धि नहीं कर पातीं । इसके साथ-साथ, प्राकृतिक विपदा के तुरंत बाद राज्य सरकारों को चुकौती के उत्तरदायित्व के बोझ से लादना भी अनुचित है ।

हम अपने अनुभव के आधार पर इस संबंध में निम्नलिखित सुझाव देते हैं :—

(i) मार्जिन राशि की संगणना के लिए, राज्य सरकारों द्वारा योजना और गैर-योजना दोनों के अन्तर्गत राहत के लिए किए गए वास्तविक अतिरिक्त व्यय को शामिल किया जाए ।

(ii) राज्य योजना-परिव्यय के अधीन सूखा-व्यय की पांच प्रतिशत की सीमा को समाप्त किया जाए । सूखा राहत उपायों के अन्तर्गत केन्द्रीय सहायता अतिरिक्त सहायता के रूप में दी जाए अर्थात् 75 प्रतिशत अनुदान और 25 प्रतिशत उधार के रूप में हो न कि वापसी योग्य अग्रिम के रूप में ।

(iii) इस समय, केन्द्रीय सहायता 31 मार्च तक की अवधि के लिए दी जाती है और इसमें दी जाने वाली छूट केवल इस अवधि तक किए गए व्यय के आधार पर दी जाती है । इस बारे में यह उल्लेख किया जाए कि 31 मार्च, वित्तीय वर्ष की समाप्ति की तारीख होते हुए भी जहां तक प्रकृति की व्यवस्था का सम्बन्ध है, यह तारीख अवास्तविक तारीख है । तदनुसार यदि सूखा तथा अन्य प्राकृतिक विपदाओं में रोजगार दिया जाए तो यह आवश्यक है कि यह राशि अगले वर्ष के 30 सितम्बर तक दी जाए । इससे व्यर्थ के व्यय तथा हड़बड़ी के व्यय के किए बिना इन योजनाओं को लागू किया जा सकेगा और इससे बेरोजगार तथा इस अल्प नियोजित श्रमिकों को तब तक लगातार रोजगार देकर, जब तक कृषि कार्य शुरू होने पर उन्हें रोजगार नहीं मिलता, स्थाई परिसम्पत्तियां प्राप्त की जा सकती हैं ।

(iv) श्रम-अभिमुख कार्यों के मामले में जिनमें कार्यों को स्थाई बनाना अनिवार्य है, केन्द्रीय सहायता के पात्र समझा जाए ।

(v) टैंकरों द्वारा आपातकालीन पानी की सप्लाई जैसी कुछ विशेष मदें केन्द्रीय सहायता की पात्र समझी जाए ।

(vi) राहत व्यय के ऋण अंश की वसूली केन्द्रीय सरकार द्वारा पांच-वर्षीय ऋण स्थगन काल में की जाए ।

5.29 राज्य सरकार एक राष्ट्रीय ऋण निगम की स्थापना का उद्देश्य समझने में असमर्थ है चूंकि आज भी राष्ट्रीयकृत बैंक आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद परियोजनाओं के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों से ऋण इकट्ठा करने में स्वयं ही सक्षम हैं । फिर भी इस राज्य की सरकार एक राष्ट्रीय ऋण परिषद का गठन करने के विचार से सहमत है । इसलिए हमारा सुझाव है कि सभी राज्य सरकारों को राष्ट्रीय ऋण परिषद में एक समान प्रतिनिधित्व मिले । इस परिषद को देश के अन्दर विद्यमान ऋण संसाधनों के निर्धारण, इसकी वृद्धि की सम्भावनाओं के निर्धारण और उसकी सीमा के निर्धारण का जिसे वह विकास सम्बन्धी व्यय को पूरा करने के प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जा सकता है, आदि का कार्य सौंपा जाए । यह परिषद राज्यों के तथा केन्द्र के और राज्यों के परस्पर वितरण के अंश भी निर्धारित करे । राज्य सरकार एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद के गठन के विचार से सहमत है । हमारा पुन: सुझाव है कि सभी राज्यों को परिषद में प्रतिनिधित्व दिया जाए । देश के अन्दर परिषद राष्ट्रीय तथा स्थानीय महत्व की विभिन्न आर्थिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए स्थाई समितियों या विशेषज्ञ निकायों का गठन कर सकती है । हम इस बात से भी सहमत हैं कि दोनों निकायों की वार्षिक रिपोर्टें चर्चा के लिए और सुझाव के लिए संसद में तथा साथ ही साथ राज्य विधानमंडल के समक्ष, उनके सूचनार्थ, पेश की जाएं ।

5.30 जबकि भारत जैसे संघीय ढांचे में निधियों के संचयन तथा उनके वितरण सार्थक रूप से सुसंगत है तथापि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कि उन निधियों का किस प्रकार दक्षता से सदुपयोग किया जाए । इसमें दो मत नहीं हो सकते हैं कि इस क्षेत्र में केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर सुधार के अनेक अवसर हैं ।

5.31 (क) पहले से ऐसा निर्णय करना कि संघ का व्यय राष्ट्र की उन्नति के लिए नहीं किया जा रहा है और यह निष्फल, अनावश्यक तथा घाटे वाला किया गया है, पूर्णत: सही नहीं है । फिर भी, केन्द्रीय सरकार के व्यय के आवधिक मूल्यांकन की कम नहीं किया जा सकता ।

(ख) उपर्युक्त उत्तर राज्यों के संबंध में भी इतना ही सत्य है ।

(ग) पहले प्रश्न के उत्तर में हमने एक स्थाई वित्त आयोग की स्थापना का समर्थन किया है जिसमें राज्य सरकारों को उनके क्रम से पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले । इस आयोग का दायित्व सभी संसाधनों को केन्द्र से राज्यों को दिलवाना मात्र ही नहीं है बल्कि इस प्रक्रिया के दौरान वह केन्द्रीय तथा राज्य दोनों सरकारों की वित्त-व्यवस्था की जांच भी करे । यह स्थाई वित्त आयोग एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में हो जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि हों और उन्हें व्यापक अधिकार दिए जाएं ।

5.32 इस विषय पर हमें कोई गम्भीर समस्या नहीं दिखाई दी ।

5.33 "मूल्यांकन लेखा परीक्षा" केवल निष्पादन बजट बनाने पर ही की जा सकती है । इस समय, सरकारी व्यय की मूल्यांकन लेखा परीक्षा अत्याधिक जटिल है, फिर भी इसे निर्माण कार्यों तथा ऐसे ही चुने हुए, विभागों में शुरू किया जा सकता है । जहां पर कार्य निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सकता है । इसके साथ-साथ वर्तमान लेखा परीक्षा तंत्र भी इस कार्य के अनुकूल नहीं है । मूल्यांकन-लेखा-परीक्षा को लागू करने के लिए न केवल बजट और लेखाकरण की पद्धति को ही बदलना पड़ेगा बल्कि एक विशेष प्रकार का तन्त्र, जो मूल्यांकन लेखा परीक्षा कर सके, भी तैयार करना होगा और आज के हालात में यह बहुत ही कठिन होगा ।

5.34 हमारे मतानुसार नियंत्रक महालेखा परीक्षक एक सांविधानिक अधिकारी के रूप में राज्य सरकारों के लेखाओं के अनुरक्षण और व्यय की लेखा परीक्षा करने के सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों का पालन सन्तोषजनक रूप से कर रहा है ।

5.35 हम, राज्य विधानमंडलों को नियंत्रक, महालेखा परीक्षक द्वारा पेश की गई रिपोर्टों से पूर्णत: सन्तुष्ट है । वे पर्याप्त व्यापक हैं और सही भी हैं जिसके आधार पर विधान मंडल सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा किए गए विनियोजनों पर विचार कर सकता है ।

5.36 हालांकि लोक लेखा समिति तथा सरकारी उपक्रम समिति जैसे संस्थाएं, महालेखापाल की सहायता से राज्य सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा

लिए व्यय के औचित्य की जांच करती रही है फिर भी वे आमतौर पर राज्य विधान-मंडल द्वारा दिए विनियोजन से अधिक व्यय को रोकने में असमर्थ रही हैं। अधिक व्यय को रोकने के लिए मध्यप्रदेश सरकार ने अनेक उपाय किए हैं। फिर भी संविधान में या किसी कानून में किसी दांडिक उपबंध न होने के कारण यह सुनिश्चित करना असंभव हो जाता है कि मुख्य बजट में या अनुपूरक प्राक्कलनों के आधार पर किया गया व्यय, विधानमंडल द्वारा दिए विनियोजनों से मेल खाता है या नहीं। आयोग यह जांच करे कि क्या विधानमंडल द्वारा दिए विनियोजन से अधिक किसी भी प्रकार के व्यय को रोकने के लिए संविधान में अन्य कोई उपबंध शामिल किया जा सकता है या नहीं।

5.37 प्राक्कलन समिति की नीति के व्यापक पहलुओं और प्रशासनिक महत्व के कुछ मुद्दों के संबंध में की गई सिफारिशें राज्य सरकार के लिए उपयोगी है या नहीं ?

5.38 हम भारत में एक अलग व्यय आयोग के गठन की राय नहीं देते। भारत के नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक को ही विधान मंडल द्वारा प्राधिकृत व्यय का औचित्य निर्धारित करने का पर्याप्त सांविधानिक प्राधिकार सौंपा गया है। व्यय के उद्देश्य तथा किस्म में सुधार के लिए हमने पहले ही एक स्थाई वित्त आयोग के गठन का सुझाव दिया है जो केन्द्र तथा राज्यों के बजटों की छानबीन करते हुए इस व्यवस्था की कमियों को दूर करने, दक्षता लाने, और प्रबंध में सुधार के तरीके और उनकी अनिवार्यता के सुझाव देगा। इतना ही नहीं, वह यह भी देखेगा कि जो उसने जो सुझाव दिए थे उनका अनुपालन भी किया गया है या नहीं। संभवत: विकास योजना में शामिल की गई स्कीमों के लिए योजना आयोग ही विकास कार्यक्रम तैयार करेगा और उनकी निगरानी करेगा।

5.39 राज्य सरकारों को सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्दिष्ट स्तरों पर स्कीमों को लागू करते समय अनेक कटु अनुभव हुए जिनमें भारत सरकार द्वारा शत-प्रतिशत सहायता-अनुदान प्रदान किया जाना था। ऐसा पहली बार हुआ जब किसी वित्त आयोग ने ऐसी एक स्कीम तैयार की हो जिसे सफल बनाने के लिए वे स्वाभाविक रूप से इच्छुक हों। निगरानी के सम्बन्ध में विस्तार से बताते हुए उन्होंने कहा कि "निगरानी करने का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि राशियों का प्रयोग वास्तव में इसी प्रयोजन के लिए किया गया है जिसके लिए वे राशियां दी गई थीं और उनका दुरुपयोग नहीं किया गया है। एक और उद्देश्य यह भी है कि व्यय करने से इच्छित परिणाम वास्तव में प्राप्त हुए हैं।" इन बयानों पर कोई भी विवाद नहीं कर सकता। तथापि, वित्त आयोग ने भारत के नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक ने साधारण लेखा परीक्षा के माध्यम से निगरानी रखने के राज्यों के अनुरोध अस्वीकृत कर दिया गया था और इस संबंध में यह सुझाव दिया गया कि स्तरों में वृद्धिकारी व्यवस्थाओं को अलग उप-शीर्ष में दिखाया जाए। इसके संबंध में उन्होंने यह सिफारिश की कि राज्य कार्यों की योजनाएं तैयार करें और केन्द्र में सम्बन्धित प्रशासनिक मंत्रालय के परामर्श से उनको अन्तिम रूप दें। अनुदान प्रशासनिक मंत्रालय की सिफारिश पर वित्त मंत्रालय द्वारा प्रदान किए जाने थे। केन्द्र में सम्बन्धित प्रशासनिक मंत्रालय द्वारा कार्यों की योजना की स्वीकृति देना ही, स्कीम को लागू करने में सबसे बड़ी बाधा थी। पहली बात तो यह कि कार्य की योजनाओं को अत्यधिक ब्यौरेवार तैयार किया जाना था जबकि यह जानकारी भी नहीं थी कि उनका अनुमोदन भी होगा या नहीं, इसमें काफी समय लगा। दूसरे सम्बन्धित प्रशासनिक मंत्रालय को इन कार्यों की योजनाओं की व्यवहार्यता स्पष्ट करने और वृद्धिकारी स्कीमों के साथ उनका तालमेल बैठाने में और भी अधिक समय लगा। तीसरे प्रशासनिक मंत्रालय की इच्छा है कि यदि मूल्य-वृद्धि के कारण लागत में वृद्धि होती है तो राज्य सरकार इस अतिरिक्त बोझ को उठाना स्वीकार करे, इसका अर्थ है फिर से राज्य वित्त विभाग से प्रारम्भिक स्वीकृति ले, इसमें और अधिक समय लगा। चौथे, इस स्कीम की अवधि पांच वर्ष होने के कारण, इसका बोझ राज्य सरकारों पर भी पड़ना था, अत: उन्होंने यही सोचा कि उन्हें अग्रताओं में परिवर्तन के संबंध में किए जाने वाले विचार में भी शामिल किया जाए जिसकी उन्हें अनुमति नहीं दी गई। इस प्रकार, अन्तिम रूप से राज्य सरकारों ने यह महसूस किया कि हालांकि स्तरों में वृद्धि की आवश्यकता का निर्णय वित्त आयोग करेगा लेकिन राज्य सरकारों को जो इन स्कीमों की लाभ-भोगी हैं उन्हें बिना किसी बाह्य एजेंसी के हस्तक्षेप के, इस अनुमोदित स्कीम के अधीन व्यय की वैधता का निर्णय लेने का प्राधिकार प्राप्त हो। साधारण लेखा परीक्षा द्वारा यह जांच की जाए कि जिन प्रयोजनों के लिए राशि प्रदान की गई है उसका प्रयोग भी उन्हीं प्रयोजनों के लिए किया गया है।

भाग VI

आर्थिक तथा सामाजिक योजना

6.1 सभी स्तरों पर यह स्वीकार किया गया है कि योजना का विकेन्द्रीकरण किया जाए और भारत सरकार ने तदनुसार विभिन्न राज्यों में जिला योजनाओं को तैयार करने के लिए विस्तृत मार्गनिर्देश तैयार किए हैं। यदि इसे युक्तियुक्त निर्णय कहा जाए तो इसके अनुसार राज्यों को उनकी योजनाओं को तैयार करने में अधिक स्वतंत्रता देनी होगी। योजना आयोग विकास योजनाओं के विभिन्न पहलुओं के लिए राष्ट्रीय अग्रताएं तथा लक्ष्य तो तैयार करता रहेगा परन्तु राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष उसके विचारार्थ तथा अनुमोदन के लिए "राष्ट्रीय योजनाओं का अभिगम" प्रस्तुत करने से पूर्व राज्यों से परामर्श किया जाए जिससे वे इन स्कीमों के सम्बन्ध से अपने विचार व्यक्त कर सकें और उन पर अपने विचार प्रकट कर सकें तथा अपनी स्कीमें प्रस्तावित कर सकें। इसके अतिरिक्त, योजना आयोग केवल राष्ट्रीय लक्ष्यों को तैयार करे जो विद्युत, प्रमुख सिंचाई, परिवार कल्याण आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित हों। राष्ट्रीय मार्ग निर्देशों के अधीन अन्य कार्यक्रमों को तैयार करने का कार्य राज्यों को सौंपा जाए। राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा राष्ट्रीय विषय तथा अग्रताओं के मामले अपने अधिकार में रखने की वर्तमान नीति जारी रहे।

6.2 हम इस विचार से सहमत हैं।

6.3 यह सत्य है कि योजना आयोग की वर्तमान संरचना तथा प्रक्रिया में राज्य सरकारों से घनिष्ठ मेल मिलाप तथा मंत्रणा के अवसर नहीं है अत: इस संबंध में यह परामर्श दिया जाता है कि राज्यों की आंचलिक तथा क्षेत्रीय योजनाओं को तैयार करते समय योजना आयोग तथा राज्य सरकार के बीच में निरन्तर सम्पर्क हों, प्रगति का आवधिक सर्वेक्षण हो तथा राज्यों की कठिनाइयों को अच्छी प्रकार से समझा जाए। योजना आयोग में राज्य सरकारों का स्पष्ट प्रतिनिधित्व अवश्य हो जिसमें बारी-बारी से परिवर्तन किया जाए। कम से कम वर्ष में एक बार सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों की योजना आयोग के साथ एक बैठक अवश्य हो जिसमें राष्ट्रीय आर्थिक समस्याओं की चर्चा की जाए या राष्ट्रीय विकास परिषद् की प्रत्येक वर्ष एक बैठक हो।

6.4 राज्यों को राष्ट्रीय विकास परिषद् में पहले ही प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसलिए पहली बात पर विचार करना आवश्यक नहीं है। तीसरे विकल्प के संबंध में विचार करना संभव नहीं है क्योंकि संघ सरकार के अलावा किसी अन्य को योजना बनाने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है। केवल आर० 6.3 में दिया गया विकल्प विचारणीय है।

6.5 जैसा कि ऊपर बताया गया है कि योजना आयोग एक स्वायत्तशासी नहीं हो सकता है क्योंकि इसे राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों के आधार पर और संघ सरकार के निर्देशों के अनुसार नीतियां तैयार करनी होती हैं। फिर भी योजना आयोग को ऐसे अधिकार दिए जाने चाहिए जिससे वह राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष अपने विचार स्वतन्त्रता पूर्वक रख सके और इस प्रकार अन्तिम रूप से निर्णय लेने वाली संस्था राष्ट्रीय विकास परिषद् ही होगी और इसके निर्णयों का अनुपालन योजना आयोग द्वारा किया जाएगा।

6.6 राष्ट्रीय अग्रताओं को राज्य योजनाओं में भी शामिल करना होगा। तथापि, योजना आयोग को राज्यों के वित्त और योजनाओं की जांच करते समय राज्यों की आवश्यकताओं, उनकी स्थानीय परिस्थितियों, तथा स्थानीय महत्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखना होगा। जो राज्य राष्ट्रीय कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करेंगे उन्हें प्रोत्साहन दिया जाएगा।

6.7 इस संबंध में कुछ नहीं कहना है। इस प्रश्न का उत्तर, केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों संबंधी प्रश्नों के हमारे उत्तरों में विस्तार से दे दिया गया है।

6.8 हां। हम स्वीकार करते हैं कि राज्य योजना के आकार के निर्धारण की वर्तमान पद्धति दोषपूर्ण है। इसका आधार आवश्यकताएं होनी चाहिए तथा स्थानीय समस्याओं जैसे जनजातीय जन-संख्या, जनसंख्या का बिखरापन, आधारभूत मदों की कमी आदि पर आधारित होना चाहिए तथा राज्यों की अतिरिक्त संसाधनों में वृद्धि के सामर्थ्य पर आधारित हो। संशोधित गाडगिल फार्मूले

जनसंख्या के आधार पर सहायता का 60 प्रतिशत वितरित किया गया है। यही कारण है जिससे आर्थिक रूप से कमजोर या पिछड़े हुए राज्य विशेषतः मध्यप्रदेश जैसे बिखरी हुई जनसंख्या वाले राज्य (जिसका देश में सबसे बड़ा क्षेत्रफल है)। अपनी योजनाओं के लिए पर्याप्त राशि नहीं जुटा सकते है। इसलिए विभिन्न राज्यों के बीच और राज्यों के अन्दर क्षेत्रीय पिछड़ेपन को समाप्त करने पर जोर दिया जाना चाहिए।

6.9 जैसा कि उपर पैरा आर 6.8 में बताया गया है, केन्द्रीय सहायता के बांटने की वर्तमान प्रक्रिया संतोष सुव्यवस्थित विकास तथा गरीबी दूर करने की योजना के उद्देश्यों की उपलब्धि में सहायक नहीं है क्योंकि पिछड़े हुए राज्यों को उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पर्याप्त राशियां प्राप्त नहीं हुई हैं।

जनजाति के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता के निर्धारण और पहाड़ी क्षेत्र की उप योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के निर्धारण की प्रक्रिया ठीक है लेकिन राज्य योजना परिव्ययों का समग्र रूप से निर्धारण तथा कुछ अग्रता प्राप्त क्षेत्रों के लिए परिव्ययों के निर्धारण की पद्धति एक प्रकार से प्रलोभन मात्र है तथा यह राज्यों की योजना-अग्रताओं को बिगाड़ती है। ऐसा विशेष रूप से इसलिए है क्योंकि योजना आयोग परिव्ययों के निर्धारण के समय राज्यों से परामर्श नहीं करता है और वह इस विषय पर उलझन में होता है।

6.10 यह सत्य है कि केन्द्रीय कार्यक्रम तथा केन्द्रीय प्रायोजित स्कीमें राज्यों की अग्रताओं को विकृत करने में सहायक हैं। एक सुझाव यह है कि केवल केन्द्र द्वारा पांच वर्षों की नई योजना के लिए वित्त व्यवस्था करने की वर्तमान अवधि कम से कम 10 वर्ष बढ़ा दिया जाए। इसके पश्चात् राज्य सरकार के गैर-योजना व्यय में इसके शामिल करने से पूर्व, कार्यक्रम के प्रभाव के निर्धारण के लिए पुनरीक्षण किया जाए। एक वर्ष के बीच में कोई नया केन्द्रीय प्रायोजित कार्यक्रम न शुरू किया जाए क्योंकि राज्य सरकारों के लिए उनके अनुकूल संसाधनों को जुटाने में कठिनाई होती है। इससे वित्तीय कठिनाइयाँ होती है, इसलिए भारत सरकार को योजना अवधि के शुरू में ही अपने केन्द्रीय प्रायोजित कार्यक्रमों को निर्धारित कर लेना चाहिए। यदि कोई नई योजना शुरू की जानी हो तो उसे हमेशा नए योजना वर्ष के प्रारम्भ में ही शुरू किया जाए और उसे केवल चर्चा के बाद ही आरंभ किया जाए।

6.11 कार्यक्रम की निगरानी तथा मूल्यांकन के बारे में यही कहना है कि यह कार्य केन्द्र तथा राज्य दोनों में ही अप्रभावी रहा है। यदि यह कार्य प्रभावी हो और लागत में अनुचित वृद्धि न हो तो परियोजनाओं को समय पर पूरा किया जा सकता है। प्रत्येक परियोजना स्कीम का मूल्यांकन प्रत्येक वर्ष राज्यों में करना होता है और प्रमुख परियोजना/स्कीम का मूल्यांकन योजना आयोग में भी किया जाता है। इस सम्बन्ध में कुछ सांविधिक बाध्यताएं होनी चाहिए कि प्रमुख परियोजनाओं को समय पर पूरा किए जाने के लिए पर्याप्त राशि प्रदान की जाए और नई परियोजनाएं तभी शुरू की जाएं जब संसाधनों की राशि बची हों। यदि कोई स्कीम अपनी निर्धारित अवधि में अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाती है तो इसे तत्काल समाप्त कर दिया जाए। इस प्रयोजन के लिए एक उचित सशक्त व्यवस्था तैयार करने की आवश्यकता है।

6.12 यह आशा की जाती है कि विकेन्द्रीकृत योजना आरंभ करने से विभिन्न स्तरों पर लोगों का सहयोग प्राप्त किया जा सकेगा और "प्रगति में सहभागिता" की भावना सभी स्तरों पर, जागेगी जिससे सरकार की योजना निश्चित रूप से लोगों की योजना का रूप ले लेगी। इसके लिए योजना तैयार करने से पूर्व लोगों के प्रतिनिधियों के विचारों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ऊपर के स्तर पर योजना तैयार करने की वर्तमान प्रक्रिया को बन्द करना होगा। कुछ मार्गनिर्देश देने के बाद योजना कार्यान्वित करने वाले निचले स्तरों को कुछ सीमा तक योजना के कार्यान्वयन में स्वतंत्रता प्रदान की जाए ताकि वे उसे अपनी योजना कह सकें। राज्य स्तर तथा राष्ट्रीय स्तर पर राज्य तथा राष्ट्रीय नीतियों के लक्ष्य निर्धारित किए जाएं और उन्हें स्थानीय व क्षेत्रीय प्राधिकारियों पर उनकी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए छोड़ दिया जाए।

6.13 कुछ राज्यों के राज्य योजना बोर्डों ने राज्य की योजनाओं को तैयार करने में शायद ही कुछ सहयोग दिया हो। यह बोर्ड तो विभिन्न विभागों द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रमों का सम्पादन मात्र करता है। यदि राज्य योजना बोर्ड को कारगर बनाया जाना है तो यह आवश्यक है कि इसे भी ऐसे महत्वपूर्ण कार्य दिए जाएं जैसे योजना आयोग द्वारा किए जाते हैं। राज्य योजना बोर्ड परिप्रेक्ष्य योजना तैयार करने का कार्य अपने हाथ में ले, पंचवर्षीय और वार्षिक योजनाओं को तैयार करने के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करे, कार्यक्रमों तथा नीतियों के संबंध में विकास विभागों के साथ नजदीकी सम्पर्क कायम करे और चर्चाएं करे, किसी भी महत्वपूर्ण विकास कार्यक्रम को लागू करने से पहले उसकी भलीभांति छानबीन करे और उसका अनुमोदन करे तथा एक रखवाले कुत्ते की भांति योजना कार्यक्रमों की निगरानी करे और उनका मूल्यांकन करे। योजना बोर्ड में पर्याप्त कर्मचारी हों तथा यदि जरूरत पड़े तो इनकी संख्या में वृद्धि भी की जाए जिससे कम समय में ब्यौरेवार छानबीन की जा सके। फिर भी यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि जब तक योजना बोर्ड सैद्धांतिक रूप में किसी योजना कार्यक्रम के किसी प्रस्ताव का अनुमोदन न कर दे तब तक वित्त विभाग उसे स्वीकार न करे।

उद्योग

7.1 यह सत्य है कि संविधान में केवल उन्हीं उद्योगों के लिए केन्द्रीय विनियमों की परिकल्पना की गयी है जो वास्तव में व्यापक लोकहित तथा राष्ट्रीय महत्व के हैं, लेकिन पिछले कुछ अरसे से केन्द्रीय नियंत्रण में वृद्धि हुई है और इसमें सभी प्रकार के उद्योगों को शामिल कर लिया गया है और राज्यों के लिए जो उद्योग छोड़े गए हैं वे केवल लघु उद्योग ही है जबकि इनकी भी काफी सीमा तक केन्द्र द्वारा ही देखभाल की जाती है।

ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें केन्द्रीय सरकार ने राज्यों के हित को हानि पहुंचाने के लिए किसी नीति का जानबूझ कर प्रयोग किया हो। लेकिन केन्द्रीय विनियम के कारण पूरी सदाशयता के बावजूद कई राज्यों में ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है, विशेषतः जैसे हमारा राज्य, जिसमें व्यापक प्राकृतिक संसाधन विशेष रूप से खनिज संसाधनों का लाभ नहीं उठाया गया है। उदाहरण के तौर पर सीमेन्ट उद्योग का उल्लेख किया जा सकता है। सन 70 के आरम्भ में केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनाई गई नीति से बेशी वाले राज्यों की अतिरिक्त क्षमता को हतोत्साहित किया गया और इससे राज्यों में सीमेन्ट उद्योगों की प्रगति की गति धीमी हो गई और इसी कारण राज्यों के चूना-पत्थर के व्यापक संसाधनों का लाभ नहीं उठाया जा सका। इसी प्रकार राज्यों में केन्द्र द्वारा दिए गए लाइसेंसों से उद्योग कुछ जगहों पर केन्द्रीत हो गए। यदि लाइसेंस देने के अधिकार राज्यों के पास होते तो राज्यों के अन्दर उद्योगों का विस्तार कार्य तथा क्षेत्रीय असन्तुलन को समाप्त करने के कार्य बेहतर ढंग से हो सकते थे।

7.2 हमारे विचार में, केन्द्रीय सरकार केवल उन्हीं उद्योगों को नियंत्रित करे जिनका सम्बन्ध देश की सुरक्षा से है। शेष उद्योगों के लिए लाइसेंस देने के अधिकार राज्य सरकार को दिए जा सकते है और इससे राष्ट्रीय हित को खतरा भी नहीं होगा क्योंकि जब तक केन्द्रीय सरकार विदेशी मुद्रा तथा केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं को नियन्त्रित करती रहेगी तब तक अपने मार्गनिर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्रगति पर नियंत्रण रख सकते है।

7.3 हालांकि केन्द्रीय सरकार ने पूंजीगत माल की निकासी और विदेशी सहयोग आदि की प्रक्रिया को सुप्रवाही बना दिया है और निकासी की गति में सुधार कर दिया है फिर भी देखने में आया है कि इन में अब भी पर्याप्त समय लगता है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि इस निकासी के लिए केन्द्रीय सरकार मार्ग-निर्देशक सिद्धान्त बनाती रहे लेकिन राज्यों में संस्थाओं को स्थापित किया जाए जहां राज्य सरकारों के प्रतिनिधि निकासी के कार्य में शामिल हों जिससे यह कार्य शीघ्रता से किया जा सके।

7.4 यह सत्य है कि लघु उद्योगों के विकास के लिए उन्हें उचित दरों पर कच्चे माल की पूर्ति करना और उनके उत्पादों को बाजार में बेचना महत्वपूर्ण कारक हैं। अधिकतर राज्यों में लघु उद्योग विकास निगमों ने काफी कारगर भूमिका अदा की है। ये निगम अब तक सब मिलाकर उसी तरह कच्चा माल उपलब्ध कराते रहे है जिस तरह अन्य संस्थाएं कच्चा माल उपलब्ध कराती है। एम० एम० टी० सी०, एस० टी० सी० जैसी अन्य संस्थाएं है जो लघु उद्योगों के लिए कच्चा माल आयात करती हैं। पर्याप्त मात्रा में सभी कच्चे माल को उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व लघु उद्योग विकास निगमों को कभी भी नहीं दिया गया। यदि इस प्रकार का कार्य हमारे राज्य लघु उद्योग विकास निगमों को सौंपने का निर्णय ले लिया जाता तो वे बिना किसी कठिनाई के इस कार्य को पूरा कर सकते थे।

7.5 आंकड़ों से पता चलता है कि केन्द्रीय वित्त संस्थाओं से ऋणों का अधिकांश भाग उद्योगों में विकसित राज्यों को दिया गया है और दिया जा रहा है। यह हमारा विश्वास है कि लाइसेंस देने से भी अधिक, हमारे जैसे पिछड़े राज्यों में उद्योगों का विकास केन्द्रीय वित्त संस्थाओं द्वारा किया जा सकता है। इसलिए हमारा सुझाव है कि क्षेत्रीय असंतुलनों को समाप्त करने के लिए, केन्द्रीय संस्थाओं से राशियों का राज्यवार वितरण किया जाए।

7.6 हम स्वीकार करते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश का निर्णय करने में राज्य को विश्वास में लिया जाए।

7.7 राज्य सरकार के पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि केन्द्र ने भारी उद्योगों में अपने सीधे निवेश के सम्बन्ध में राज्य के साथ पक्षपात किया है या इसकी उपेक्षा की है। फिर भी राज्य सरकार यह चाहती है कि सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश को निर्धारित करते समय, राज्य को अपना विश्वासपात्र बनाया जाए।

7.8 हम पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए सहायता के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा घोषित नीति से पूर्णतः संतुष्ट हैं।

उद्योगों पर अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर

1. औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम की अनुसूची-I में दर्ज उद्योगों की सूची में प्रधानता "मूल उद्योग" हैं। केन्द्रीय सरकार क्षेत्रीय असन्तुलनों को दूर करने की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए प्रभावकारी नियन्त्रण और व्यवस्था कर रही है। असन्तुलनों को दूर करने के आशय से उद्योगों की स्थापना का निर्णय पूर्णतः भारत सरकार के हाथ में है। यह वांछनीय होगा यदि अधिनियम में ऐसी व्यवस्था कर दी जाए जिससे असन्तुलनों को समाप्त करने के उद्देश्य से इन यूनिटों की स्थापना के लिए स्पष्ट रूप से मानदण्ड निर्धारित हों।

2. पूरे देश में लघु उद्योगों के समान विकास के लिए देश भर में एक समान विधान होनी चाहिए।

3. राज्य सरकार उद्योगों के विकास के लिए संरचना संबंधी सुविधाएं प्रदान करती है। वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक है। तथापि लाइसेंस की शर्तों में सहायक उद्योगों के अनिवार्य विकास की व्यवस्था की जाए। वित्तीय संसाधनों की कमी वाले मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में भारत सरकार की सहायता की आवश्यकता है जिससे पिछड़े हुए क्षेत्रों में आधारित संरचना का विकास किया जा सके।

4. हां, लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित मदों की सूची से किसी मद को हटाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

5. हम महसूस करते हैं कि वर्तमान व्यवस्था सन्तोषजनक है।

6. हां, हम सहमत हैं।

7. और अधिक परामर्श किए जाएं।

8. एकाधिकार और अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम के उपबन्धों को और अधिक उदार बनाया जाए और उनके अन्तर्गत प्रक्रिया को सरल और कारगर बनाया जाए।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 हम, प्रश्न में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए संविधान के अनुच्छेद 307 में निर्दिष्ट प्राधिकरण के गठन से सहमत हैं।

कृषि

9.1 हालांकि कृषि राज्य का विषय है, लेकिन इसका सम्बन्ध केवल राज्य से ही नहीं है क्योंकि वाणिज्य और व्यापार राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ भी इसका प्रसगोचित्य है। विशेष रूप से अनुसन्धान के क्षेत्र में भारत सरकार की सहायता का राज्य के लिए अत्यधिक महत्व है।

फिर भी, यह एक तथ्य है कि भारत सरकार कभी-कभी राज्यों के स्थानीय हितों की तुलना में केन्द्रीय सरकार के हितों को अधिक महत्व देती है। राज्य योजना अनुमोदन के समय यह सिद्ध हो जाता है जब केन्द्रीय सरकार की अग्रताएं राज्य सरकार की अग्रताओं से मेल नहीं खाती। इसी प्रकार केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के मामले में, समग्र देश के लिए समान शर्तें रखी जाती है हालांकि कृषि-जलवायु संबंधी परिस्थितियां हर राज्य में भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई० सी० ए० आर०) द्वारा अनुसंधान स्कीमों के आबंटन के मामले में राज्यों की अग्रताओं की अवहेलना की जाती है।

इसलिए, जबकि कृषि को मात्र राज्य का विषय मानना उचित नहीं होगा, भारत सरकार को चाहिए कि वह राज्यों के हितों को भी प्राथमिकता प्रदान करे।

9.2 भारत सरकार की यह एक सामान्य नीति है कि वह पहले राज्य सरकारों को कुछ कार्यक्रमों को केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के रूप में आरंभ करने के लिए कहती है तथा बाद में उनका सारा कार्यभार उन्हें ही सौंप दिया जाता है। केन्द्रीय सहायता के कारण पहले तो राज्य इन स्कीमों का भार उठा लेते हैं लेकिन बाद में वित्तीय परेशानियों के कारण उन्हें उस रूप में चालू रखना उनके लिए कठिन हो जाता है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि जब भी भारत सरकार किसी राज्य में कोई विशेष योजना लागू करने के लिए निदेश दे तो जब तक भारत सरकार देश के हित में उस स्कीम को चालू रखना चाहे तब तक स्कीम का पूरा व्यय भी भारत सरकार द्वारा वहन किया जाए।

9.3 राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशें पूर्णतः वैध है तथा भारत सरकार केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के प्रतिपादन में राज्य सरकारों से केवल परामर्श ही न करे बल्कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अवस्थिति-विशिष्ट स्कीमें तैयार की जाएं।

9.4(क) भारत सरकार विभिन्न उपयोगी वस्तुओं के लिए पूरे देश में एक समान न्यूनतम/सहायक मूल्यों के साथ-साथ उचित मूल्य निर्धारित करती है जो सही नहीं है। ये मूल्य स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार जैसे उत्पादकता, बाजार मूल्य आदि के अनुरूप निर्धारित किए जाएं जो प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न होती हैं।

(ख) इस मामले में राज्यों के प्रति केन्द्रीय सरकार की पहल अत्यधिक महत्वपूर्ण होगी क्योंकि उर्वरक, कीटनाशक आदि जैसे महत्वपूर्ण निवेश (इनपुट) अन्य राज्यों से भी प्राप्त करते होते हैं। इसी प्रकार ऋण के मामले में भी केवल भारत सरकार ही विभिन्न वित्तीय संस्थाओं को आवश्यक ऋण देने के निर्देश दे सकती है।

9.5 राज्यों के पास उनके सम्मुख विभिन्न अनुसंधान समस्याओं का समाधान करने के लिए न तो संसाधन है और न ही सुविज्ञता है। इसलिए, राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थाओं को, स्थानीय महत्व की समस्याओं का समाधान करने में राज्य अनुसंधान संगठनों के प्रयासों की कमी को पूरा करना चाहिए। कभी-कभी उन केन्द्रीय अनुसंधान संस्थाओं द्वारा इस पहलू की अवहेलना की जाती है जो राष्ट्रीय अनुसंधान समस्याओं में ही अधिकतर व्यस्त रहती है।

अन्य किसी राष्ट्रीय वित्तीय संस्था की भांति नबार्ड (एन०ए०बी०ए०आर०डी०) को सभी राज्यों के लिए एक समान विनियम नहीं रखने चाहिए। उन्हें प्रत्येक राज्य के विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तरों को ध्यान में रखते हुए ऋण स्कीमें तैयार करनी चाहिए। उन्हें राज्यों के विकास के प्रत्येक विशेष स्तर को ध्यान में रखते हुए उनकी समस्त वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए।

खाद्य तथा सिविल पूर्ति

10.1 केन्द्र-राज्य परामर्श के लिए वर्तमान व्यवस्थाएं पर्याप्त है तथा राज्य सरकार के वास्तविक उत्तरदायित्वों के अनुरूप हैं।

10.2 तिमाही समीक्षा निश्चित रूप से लाभदायक होगी। लेकिन केन्द्रीय सरकार की पूर्व सहमति की शर्त को उन अनेक प्रवर्तनों और नियामक आदेशों में से निकाल दिया जाए जिनको लागू करने का दायित्व राज्य सरकार का है

शिक्षा

11.1 हम इस विचार से महमत नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीयकरण और मानकीकरण किया गया है । मानकों के समन्वय तथा अनुरक्षण संबंधी केन्द्र के सांविधानिक उत्तरदायित्व के बावजूद प्रवृत्ति इसके बिल्कुल विपरीत है । यदि हम पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान केन्द्र द्वारा प्रयोजित कार्यक्रम की पूरी सूची को देखें तो तथ्य तुरन्त स्पष्ट हो जाएंगे । प्रत्येक योजना के बाद उन कार्यक्रमों में कमी आई है जिसका मुख्य कारण है राज्य क्षेत्र में अधिक राशि प्रदान करने का राज्यों का आग्रह । कम विकसित राज्यों को इस नीति के कारण हानि उठानी पड़ी है । राज्य के स्तर पर, संसाधनों के आबंटन में शिक्षा की अपेक्षा आर्थिक विकास के अन्य क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती हैं और इस कारण प्रारम्भिक शिक्षा की सर्वव्यापकता, 10+2 के राष्ट्रीय पैटर्न को लागू करने या स्कूलों में मूल न्यूनतम वस्तुपरक सुविधाएं उपलब्ध कराने जैसे व्यापक कार्यक्रम उपेक्षित रहे हैं । संसाधनों की अत्यधिक कमी के परिणामस्वरूप नव-प्रक्रिया संबंधी और महत्व के कार्यक्रमों को शिक्षा योजनाओं में कोई स्थान नहीं मिल पाता है । पूर्ववर्ती योजनाओं में ऐसे अधिकांश कार्यक्रमों को केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं में स्थान मिल जाता था । इसमें केन्द्र का कोई हस्तक्षेप नहीं है तथा राज्य स्वतंत्रता से अपनी योजनाएं तथा नीतियां तैयार करते हैं । उन्हें इस विषय-क्षेत्र में पूरा प्राधिकार और पहलशक्ति प्राप्त है ।

11.2(क) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू० जी० सी०) ने उच्च शिक्षा के मानकों में सुधार करने तथा इस क्षेत्र में एक समन्वित कार्रवाई पूरी करने के लिए पिछले अनेक वर्षों में व्यापक प्रयास किए हैं । पूरे देश में अनेक नई संकल्पनाओं तथा कार्य प्रणालियों की आजमाइस की गई तथा उन्हें इस प्रणाली में शामिल किया गया । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के इन प्रयासों और पहल कार्यों के लिए धन्यवाद । लेकिन शिक्षा के माध्यमिक स्तर के बाद नौकरी के अपर्याप्त अवसर तथा दूरस्थ क्षेत्र में उच्चतर शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए लोकप्रिय मांग जैसे कुछ कारणों में राज्य आवश्यक संसाधनों के बिना भी उच्चतर शिक्षा के विस्तार के अत्यधिक दबाव में रहे हैं जबकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने समेकन और मानकीकरण के लिहाज से महत्वपूर्ण कार्य किया है, फिर भी यह इसकी उन्नति और विस्तार में सहायता देने में काफी बाध्य रहा है ।

सुझाव दिया जाता है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग राज्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोगों के साथ, जहां वे विद्यमान हैं, जैसे मध्य प्रदेश आदि, अधिक प्रभावकारी और सक्रिय समन्वय स्थापित करे । दूसरे, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च तथा विशेष शिक्षा के केन्द्रों को दीर्घकालीन वित्तीय सहायता दे ।

शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए राज्य जैसे मध्य प्रदेश, राज्य के विश्वविद्यालयों तथा कालेजों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुदानों के लिए, उनके अपेक्षित अंश प्रदान करने के लिए पर्याप्त संसाधन सुपुर्द नहीं कर सकता । इसके लिए अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर एक प्रणाली तैयार की जाए ताकि इस प्रकार के राज्यों को अधिक उदारता के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता दी जा सके ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अतिशीघ्र तथा मजबूत कदम उठाए ताकि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में एक-पक्षीय कार्यक्रम के द्वारा स्थानीय असंतुलनों को दूर किया जा सके । इस नीति का पुनः निर्माण इस प्रकार किया जाए जिससे आगे इस प्रकार के असन्तुलन न हों ।

11.3 केन्द्र तथा राज्यों के महत्व के विषयों पर सर्वसम्मति प्राप्त करने में चर्चा, परामर्श तथा अनुरोध करने की प्रक्रिया को पहले ही अपनाया गया है । केन्द्र के शिक्षा मंत्रालय ने शिक्षा मंत्रियों, शिक्षा सचिवों, शिक्षा/सार्वजनिक शिक्षण के निदेशकों तथा अन्य अधिकारियों की जल्दी-जल्दी बैठकें बुलाने की एक कार्य विधि तैयार की है । शिक्षा का एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड भी है (सी० ए० बी० ई०) जिसमें, शिक्षा से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण विषयों/कार्यक्रमों की चर्चा की जाती है और उन पर सर्वसम्मति प्राप्त की जाती है । सभी राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों के शिक्षा मंत्री इस बोर्ड के सदस्य हैं और इस बोर्ड की बैठकों में शिक्षा सचिव तथा सार्वजनिक शिक्षण के निदेशक नियमित रूप में उपस्थित होते हैं । 6–14 वर्ष वाले आयु ग्रुप के बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के सर्व-व्यापीकरण जैसे राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों की निगरानी के लिए शिक्षा मंत्रालय राज्यों के साथ अनियमित बैठकों और परामर्शों से लगातार विचार-विमर्श करता रहता है । फिर भी, यहां तक कि राष्ट्र महत्व के कार्यक्रमों के लिए भी अधिक निर्धन राज्यों को अधिक संसाधन प्रदान कराने में यह मंत्रालय अपने प्रभाव का प्रयोग नहीं कर सका है, जिसके परिणामस्वरूप विकसित तथा कम विकसित राज्यों के बीच अन्तर और भी बढ़ता जा रहा है । अब शिक्षा एक समवर्ती विषय बन गया है फिर भी व्यवहारिक रूप में केन्द्र ने अब तक इस प्रकार की व्यवस्था के लिए कोई कार्रवाई शुरू नहीं की है । इसे अब भी मूलतः राज्य का ही एक विषय समझा जा रहा है ।

11.4 भारत के संविधान के अनुच्छेद 29 तथा 30 के अधीन धार्मिक तथा भाषाई अल्प संख्यकों को दिए अधिकार कभी-कभी इन संस्थाओं के अध्यापकों और कर्मचारियों पर अत्याचारों को रोकने में बाधक होते हैं । इन बाधाओं का सामना करने के लिए आयोग द्वारा उचित प्रशासनिक तथा विधायी उपाय सुझाए जाएं ।

11.5 राज्य में विश्वविद्यालय तथा कालेज अध्यापकों पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतमानों का लागू किया जाना इसका स्पष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं । राज्य सरकार इन वेतनमानों को लागू करने से पहले स्थानीय आवश्यकताओं, प्रशासनिक सुविधाओं, वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता तथा राज्य शिक्षा विभाग में प्रचलित संवर्ग संरचना को ध्यान में रखना चाहती थी जबकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उन वेतन मानों को, जो उसके द्वारा तैयार किए थे, बिना किसी संशोधन के लागू करने के लिए आग्रह कर रहा था । किन्तु तैयार किए गए वेतन मानों का स्वरूप उस परिस्थिति पर आधारित था जो दिल्ली तथा कुछ अन्य राज्यों में विद्यमान थी और मध्य प्रदेश जैसे राज्य की मौजूदा वस्तुस्थिति की ओर ध्यान नहीं दिया गया था इसके परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतन मानों को लागू करने में विलम्ब हुआ । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के वेतनमान 1-4-1976 से लागू किए गए थे न कि 1-1-73 से जैसा कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने चाहा था । ऐसी स्थिति भविष्य में न हो, इसके लिए सही उपाय यही होगा कि ऐसी स्कीमों की घोषणा करने से पहले जिनसे संसाधन और राज्य सरकारों की प्रशासनिक संरचना प्रभावित हो केन्द्रीय सरकार या इसकी एजेन्सियों और राज्य सरकारों के बीच मंत्रणा की जाए ।

सरकारों का आपसी समन्वय

12.1 इस राज्य में, केन्द्र राज्य सम्बन्धों में कोई उत्तेजनापूर्ण गम्भीर घटना सामने नहीं आई है । इसलिए संयुक्त राज्य अमरीका के समान एक स्थाई संस्था के गठन की अनिवार्यता नहीं समझी जाती है ।

ज्ञापन

राज्य सरकार को यह जानकर खुशी है कि भारत सरकार ने केन्द्र-राज्य सम्बन्ध पर एक आयोग का गठन किया है जिसके अध्यक्ष न्यायाधीश सरकारिया हैं । राज्य सरकार को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि इस आयोग को अधिकारों तथा कार्यों के सम्बन्ध में केन्द्र तथा राज्यों के बीच में वर्तमान व्यवस्थाओं के पुनरीक्षण का कार्य सौंपा गया है तथा उसके साथ-साथ इन व्यवस्थाओं में कोई परिवर्तन करने या ऐसे ही किसी अन्य विषय की, जो यह उचित समझे, सिफारिश करने का उत्तरदायित्व भी प्रदान किया गया है ।

2. सबसे पहले, राज्य सरकार इस बात की पुष्टि करना चाहती है कि भारतीय संविधान का निर्माण ऐसे संविधान निर्माताओं द्वारा किया गया था जो महान राजनेता (स्टेटसमैन) तथा विद्वान थे, इसीलिए वह संविधान अब तक प्रत्येक कठिन समय में अडिग रहा है । हमारे संविधान डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० अम्बेडकर, पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, श्री श्रीनिवास शास्त्री, श्री सी० राजगोपालाचार्य तथा श्री गोपालस्वामी अयंगर जैसे लोगों ने तैयार किया था जो अपने समय में महान राजनेता (स्टैटसमैन) तथा बुद्धिमान माने जाते थे । जब भी संविधान के व्यावहारिक प्रयोग में कुछ बाधा आयी है विशेषत: मौलिक अधिकारों तथा राज्यनीति के निर्देशक सिद्धान्तों से सम्बन्धित विषयों में, भारत सरकार ने तत्काल संविधान में संशोधन कर दिए हैं । मूल संविधान सहित इन संशोधनों ने भारतीय राजशासन को तकनीकी दृष्टि से उन्नत प्रभाव और विकसित समतावादी राष्ट्र के रूप में उभरने का आधार तैयार किया है ।

3. मध्य प्रदेश की सरकार महसूस करती है कि संविधान को लागू करने में, विशेषत: केन्द्र-राज्य सम्बन्धों सम्बन्धी उपबन्धों को लागू करने में ऐसा कोई विषय नहीं है जिसे अनुचित विषय कहा जाए इसीलिए इसकी संरचना में कोई मूलभूत परिवर्तन भी नहीं चाहा है । इसलिए हम सबसे यह कहना चाहेंगे कि केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सम्बन्ध में संविधान के उपबन्धों में कोई मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं ।

4. फिर भी, कई वर्षों से राज्यों के बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों के आधार पर उनकी संसाधनों की आवश्यकताएं भी कई गुणा बढ़ी हैं लेकिन दुर्भाग्यवश संसाधनों के बंटवारे से सम्बन्धित सांविधानिक उपबन्धों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है । स्वाधीनता प्राप्ति से अब तक के 36 वर्षों में राज्य के साथ साथ जनता के उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में देश में महान परिवर्तन हुए हैं । गरीबी हटाने, बीमारी तथा बेरोजगारी दूर करने वाली सार्वजनिक गतिविधियों में राज्य सरकार के हस्तक्षेप की अनिवार्यता हम समझते हैं । राज्य सरकारों के इन आर्थिक उत्तरदायित्वों के सार्वजनिक महत्व के कारण जनता की अपेक्षाओं में भी उतनी ही वृद्धि हुई है । इन कल्याणकारी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विकासशील कार्यक्रमों को लागू करना होता है जिसके लिए राज्य सरकार को अपने संसाधन काफी बड़े पैमाने पर लगाने पड़ते हैं । लेकिन राज्य सरकार के संसाधन सीमित होने के कारण वह इनमें वृद्धि नहीं कर सकती है, और हमेशा वे उतने ही रहे हैं जितने वे संविधान निर्माण करने व लागू करने के समय थे । राज्य सरकार के प्रयास के बावजूद कुछ ऐसी सीमाएं हैं जो संसाधनों में वृद्धि की एक सीमा तक ही अनुमति प्रदान करती है । उदाहरणत: बिक्री कर एक निर्धारित सीमा से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है ।

5. संसाधनों के अभाव के कारण जनता की बढ़ती हुई अपेक्षाओं के आधार पर अपने वायदे पूरे न कर पाने की स्थिति में राज्य सरकार स्वयं को अयोग्य समझती है ।

इस सन्दर्भ में राज्य सरकार सरकारिया आयोग के समक्ष, विचारार्थ, कुछ सुझाव रखना चाहती है जिनके आधार पर वर्तमान संविधान में, यदि उचित समझा जाए, तो संशोधन किया जाए ।

6. राज्य सरकार अनुभव करती है कि योजना तथा गैर-योजना दोनों के लेखों से राज्यों को केन्द्र से अन्तरित किए जाने वाले संसाधनों की मात्रा में वृद्धि के लिए, उचित यही होगा कि स्थायी आधार पर एक वित्त आयोग का गठन किया जाए तथा उसे केन्द्र से राज्यों को बनाए जा रहे सभी संसाधनों का उत्तरदायित्व सौंपा जाए । वित्त आयोग में राज्य सरकारों को बारी-बारी से पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाए । इससे वित्त मंत्रालय तथा योजना आयोग दोनों का कार्यभार कम हो जाएगा तथा वे दोनों विकास कार्यक्रमों की भलीभांति और प्रभावी देखभाल भी कर सकते हैं ।

7. राज्य सरकारों ने वित्त आयोग से बार-बार यह अनुरोध किया है कि निगम कर का भी बंटवारा किया जाए । इसमें दो राय नहीं हो सकती कि देश के औद्योगीकरण में राज्य सरकारें भूमि, पूंजी, जल, विद्युत तथा अन्य अनेक निवेश (इन पुट) रियायती दरों पर उपलब्ध करा के मुख्य भूमिका अदा करती हैं । सभी नए उद्योगों को अनेक वर्षों के लिए बिक्री कर से स्थाई रूप से छूट दी गई हैं । राज्य सरकारों द्वारा दी गई रियायतों के कारण हीं कम्पनियां लाभ प्राप्त कर पाती है और निगम कर देती हैं । पिछले दस वर्षों में निगम कर से राजस्व 15 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर से बढ़ा है । छटे तथा सातवें वित्त आयोगों ने यह सिफारिश की थी कि भारत सरकार, राज्यों द्वारा प्रस्तुत निगम कर बांटने की मांग की ओर ध्यान दें । उन्होंने आगे और कोई सिफारिश नहीं की क्योंकि संविधान निगम कर के केन्द्र तथा राज्यों के बीच में बंटवारे की अनुमति नहीं देता । हमारा अनुरोध केवल यही है कि आयोग द्वारा राज्य सरकारों के साथ निगम कर बांटने के सम्बन्ध में विचार करें ।

8. राज्य सरकार यह महसूस करती है कि आयकर पर अधिकर आय शुल्क से भिन्न नहीं है । ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे राजस्व का यह अंश राज्य सरकारों के साथ बांटा जाए । राज्य सरकार यह महसूस करती है कि केवल संघ के प्रयोजनों से इसे अलग रखने और अलग से वसूल करने की कोई आवश्यकता नहीं । इसका राज्य सरकारों के साथ बंटवारा किया जाए ।

9. वित्त आयोग आय कर के विभाज्य अंश में वृद्धि करती रही है जिससे राज्यों का अंश अब 85% हो गया है । केन्द्रीय सरकार आय कर की दरों में परिवर्तन करती रहती है जिससे इसका राज्य सरकारों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । इन परिवर्तनों के बारे में राज्यों से न तो कोई परामर्श किया जाता है और न ही उन्हें कोई पूर्व सूचना ही दी जाती है । चूंकि आय कर राज्यों के राजस्व का प्रमुख स्रोत है, इस सम्बन्ध में कोई भी परिवर्तन जिसका उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, राज्य सरकारों के साथ विचारविमर्श के बाद ही लागू किया जाना चाहिए ।

10. राज्य सरकार इस तथ्य से सहमत है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सुव्यवस्थित विकास के लिए वित्तीय अनुशासन आवश्यक है । वित्तीय अनुशासन लागू किए जाने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार के निदेशों के बावजूद इसमें विभिन्न राज्य सरकारों के बीच काफी भेद हैं । कभी-कभी तो वित्तीय अनुशासनहीनता से ही ओवरड्राफ्ट हो जाते हैं । काफी समय के बाद केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय ऋणों द्वारा इन ओवर-ड्राफ्टों को जबरदस्ती पूरा करती है । ओवर ड्राफ्टों के द्वारा राज्यों को प्राप्त होने वाले केन्द्रीय ऋणों को लाभ के अधिरिक्त, पूंजी-अन्तरों को समाप्त करने के लिए वित्त आयोग व्यवस्था का एक और लाभ भी है जिसमें इन ऋणों को या तो बट्टे खाते डाल दिया जाता है या उन्हें दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्तित कर दिया जाता है ।

11. पिछले समय में राज्य सरकारें रेल यात्री भाड़ों पर एक कर लगाने के अधिकार का प्रयोग करती रही थी । इस अधिकार को अप्रैल, 1961 में छीन लिया गया था । तभी से वित्त आयोग, रेलवे कन्वेंशन कमेटी द्वारा

निर्धारित रेल यात्री भाड़े पर उस कर के बदले में एक अनुदान देने की सिफारिश करती रही थी। यह अनुदान की राशि पिछले दो दशकों से 16.25 करोड़ पर स्थिर थी। राज्य सरकार ने अनेक बार वित्त आयोग से इस अनुदान में वृद्धि के लिए अनुरोध किया था। सातवें वित्त आयोग ने इस विषय की निम्नलिखित जांच-पड़ताल की थी :—

"पिछले आयोगों द्वारा व्यक्त इस विचार से हम सहमत हैं कि हालांकि रेल यात्री भाड़े पर कर को समाप्त कर दिया गया है और अब राज्यों को जो कुछ प्राप्त होता है वह अनुच्छेद 269 के अधीन प्राप्त किए जाने वाले कर की प्राप्तियों का अंश नहीं है बल्कि कर के बदले में अनुदान का अंश है। ये अंश भी उसी आधार पर निर्धारित किए जाएं जिस आधार पर यदि कर की उगाही तथा प्राप्ति लागू रहती तो उन्हें जितनी प्राप्ति होती। आयोगों द्वारा पहले प्रतिपादित किए गए अनुसार अनुच्छेद 269 के अधीन करों तथा शुल्कों से प्राप्तियों के वितरण के लिए सामान्य सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक राज्य इन करों में, यथासम्भव उतना अंश अवश्य प्राप्त करेगा जितनी राशियों की तब वृद्धि की गई है यदि उसे उगाहने और प्राप्ति के अधिकार दिए गए होते।" (सातवें वित्त आयोग की रिपोर्ट का पृष्ठ 68)।

"वित्त आयोग यह परामर्श देने के लिए सक्षम नहीं है जैसा कि कम से कम एक राज्य सरकार के द्वारा तो अवश्य अनुरोध किया गया है कि रेल यात्री भाड़ा-कर पुनः लगाया जाए। तथापि, अनुमानतः सभी राज्य सरकारों द्वारा इस तर्क पर बल दिए जाने की हम प्रशंसा करते हैं कि रेल भाड़े पर कर के प्रतिस्थापन के रूप में एक निर्धारित अनुदान पर्याप्त नहीं है क्योंकि इसमें यात्रियों की संख्या में तेज वृद्धि के कारण भारतीय रेलवे की आय में हुई वृद्धि को शामिल नहीं किया जा सकता।" (सातवें वित्त आयोग की रिपोर्ट का पृष्ठ 71)

12. आयोग राज्य सरकारों को यात्री भाड़ों तथा माल भाड़ों पर कर लगाने का अधिकार पुनः सौंपने की सिफारिश करे या इस प्रतिकर की उस सीमा तक वृद्धि करने की सिफारिश करे जिस सीमा तक राज्य सरकारें कर उगाहने का अधिकार अपने पास रखना चाहें।

13. राज्य सरकार ने यह भी अनुभव किया है कि विभागों के केन्द्रीय प्रधान, विभागों के उद्योगों या अन्य स्थानीय मुख्य कार्यालयों की अवस्थिति के लिए राज्य सरकारों से अत्यधिक रियायतों के लिए कहते हैं। इस स्थिति की वास्तविकता यह है कि ये संगठन ऐसे राज्यों के साथ अनुचित प्रतिस्पर्धा का कारण बन जाते हैं जो राज्य सामान्य से अधिक रियायत देने का विरोध करते हैं। हमारा विचार है कि केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों तथा केन्द्रीय सरकार के विभागों के कार्यालय की अवस्थिति राज्य सरकारों की स्थिति को विकृत करने वाली रियायतों के आधार पर करने के स्थान पर क्षेत्रीय संतुलन तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर की जानी चाहिए।

उद्योगों को लाइसेंस देना

14. उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, के अधीन उद्योगों की सूची की पुनः जांच करने की आवश्यकता है। इस समय प्रत्येक औद्योगिक इकाई को, जो सूची में है, भारत सरकार द्वारा लाइसेंस दिया जाना चाहिए। इसमें इकाई के पैमाने के सम्बन्ध में छूट भी दी गई हैं। अब अर्थव्यवस्था विविधतापूर्ण हो गई, है तथा अब इसकी गति में तीव्रता लाना आवश्यक है। औद्योगिक लाइसेंस प्राप्त करने की वर्तमान प्रक्रिया काफी जटिल है। अधिकतर आर्थिक तथा क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों के आधार पर लाइसेंस दिए जाते हैं इसलिए कुछ विशिष्ट उद्योगों के मामले में राज्य सरकारों को लाइसेंस देने का प्राधिकार दिया जाए जो केन्द्र द्वारा दिए गए समग्र मार्गनिर्देशों के अनुसार हो।

विद्युत क्षेत्र का विकास

15. राजाध्यक्षा समिति ने यह सिफारिश की थी कि नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन के पास; देश में 2,000 ए० डी० तक 45% ताप उत्पादन क्षमता होनी चाहिए। अधिकतर सभी राज्यों ने इस सिफारिश का विरोध किया है जबकि संसाधनों का नियंत्रण विद्युत-क्षेत्र (पॉवर सेक्टर) में पूंजी निवेश के लिए निश्चित रूप से नियंत्रककारक के रूप में होगा, फिर भी भारत सरकार द्वारा राज्यों को धन अधिक मात्रा में दिया जाना जरूरी है। अंत में राज्य स्तर पर विकेन्द्रीकृत विद्युत उत्पादन, केन्द्रीय प्राधिकरण द्वारा किए विद्युत उत्पादन की तुलना में भारत की अर्थ व्यवस्था की दक्षता बढ़ाने और संवृद्धि में अधिक सहायक होगा।

परियोजना का अनुमोदन

16. योजना में शामिल करने से पूर्व, केन्द्रीय सरकार के अभिकरणों द्वारा (विद्युत, सिंचाई या किसी परियोजना के ऐसे विषय के लिए) परियोजनाओं के अनुमोदन की वर्तमान प्रणाली की जांच करना आवश्यक है। इस समय, एक करोड़ रुपये से अधिक की लागत की विद्युत परियोजना और 10,000 हैक्टेयर से अधिक अधिकृत क्षेत्र में सिंचाई परियोजना को केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण या केन्द्रीय जल आयोग, भारत सरकार के संबंधित विभाग और अंततः योजना आयोग से तकनीकी और अन्य अनुमोदन प्राप्त करना जरूरी है। इस प्रक्रिया में 3-4 वर्ष तक का काफी समय लग जाता है। शायद इस आकार की परियोजना को केन्द्रीय स्तर पर अनुमोदन प्राप्त करने में किसी चुनी हुई सरकार की अवधि समाप्त हो जाती है। ऐसे अनुमोदन प्राप्त करना उन दिनों में जरूरी था जबकि राज्य स्तर पर अधिक निपुणता और अनुभव उपलब्ध नहीं थे। शायद हम यह भी कह सकते हैं कि कुछ राज्यों में जैसे पंजाब, उत्तर प्रदेश और दक्षिणी राज्यों में, सिंचाई विभाग का एक लम्बा इतिहास और परम्परा है। इसलिए, केन्द्र द्वारा अनुमोदन देने की आवश्यकता को काफी कम कर दिया जाए और इसे केवल बड़ी परियोजनाओं तक ही लागू किया जाए। जहां तक ताप विद्युत परियोजनाओं का संबंध है, आज हर वस्तु इतनी मानकीकृत है कि ब्यौरेवार परियोजना रिपोर्ट तैयार करने में अधिक समय नहीं लगता। इसी तरह, बड़ी सिंचाई-या विद्युत परियोजना के प्राचल (पैरामीटर) के केन्द्र की सहमति के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इस स्थिति से भी बचा जाए। जहां तक अन्तर राज्यीय परियोजनाओं का संबंध है, यहां भी, अन्तर राज्यीय नियंत्रण बोर्ड हैं जो परियोजना के ब्यौरों का अवलोकन करते हैं।

कानूनी विषय

17. भारतीय संविधान की पांचवीं अनुसूची के भाग "ख" के खंड 5(4) के अनुसार आदिवासी क्षेत्रों के लिए निर्मित सभी विनियमों पर राष्ट्रपति की सम्मति आवश्यक है। सुझाव दिया जाता है, चूंकि सातवीं अनुसूची की सूची II के अन्तर्गत आने वाले विषय विशेष रूप से राज्यों के अनन्य अधिकार क्षेत्र में पड़ते हैं इसलिए इन पर राष्ट्रपति की सम्मति लेना आवश्यक नहीं है। इसी तरह सूची III में गिनाए विषय के संबंध में भी यदि कोई क्षेत्र किसी के अधिकार में नहीं है, तो उस क्षेत्र से संबंधित विषय से संबंधित विनियमों को राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा जाना जरूरी नहीं है। यह नियम विषयों को अनुच्छेद 254(2) के उपबंधों के अनुसार बनाता है और इस तरह विधि-निर्माण की शक्तियों के वितरण के संबंध में एक समान नीति निर्धारित होगी।

18. इस समय जहां कहीं शहर में छावनी क्षेत्र है वहां छावनी क्षेत्र की सिविल आबादी का प्रशासन छावनी बोर्ड चलाता है जिसमें स्थानीय स्वायत्त शासन की संकल्पना का प्रयोग काफी संयम के साथ किया जाता है। सड़क के पार उसी, शहर में शेष क्षेत्र का प्रशासन या तो नगर निगम, अधिनियम या नगरपालिका अधिनियम के अनुसार चलाया जाता है, जहां स्थानीय स्वायत्त शासन की संकल्पना का प्रयोग अधिक लोकतंत्रीय ढंग से किया जाता है। जबकि यह भलीभांति समझा जा सकता है कि रक्षा स्थापना का वह क्षेत्र, जहां रक्षा कर्मचारी वस्तुतः निवास करते हैं, सैनिक प्राधिकारियों के प्रशासनिक नियंत्रण में रखा जा सकता है किन्तु यह सोचना कठिन है कि उस क्षेत्र कि सिविल आबादी को उस नियंत्रण के अधीन क्यों रखा जाए जो नगर के अन्य भाग में विद्यमान नहीं है। सुझाव दिया जाता है कि इस समय सिविल आबादी के जिस क्षेत्र का प्रशासन छावनी बोर्ड चलाता है उसे संबंधित नगरपालिकाओं या नगर निगम को स्थानान्तरित कर दिया जाए।

19. अनुच्छेद 252 के अनुसार राज्य सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी विशेष विषय के संबंध में कानून बनाने के लिए केन्द्र सरकार को प्राधिकार देने का प्रस्ताव पारित करे। इस प्रकार सौंपी गई शक्तियों के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा निर्मित कानून सूची I में दिए केन्द्रीय कानून का रूप

ले लेता है, और इस तरह शक्ति केन्द्र को सौंपने के कारण राज्य सरकार उक्त कानून को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करने के अधिकार से वंचित हो जाती है । नगर भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम के अनुसार महसूस की गई कठिनाइयां अनजानी नहीं है । चूंकि हमने विधि-निर्माण की शक्तियां केन्द्र को सौंप दी है और केन्द्र सरकार ने उस मुद्दे पर कानून बना दिया है, अतः अब इसमें संशोधन करना असंभव हो गया है । सुझाव दिया जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 252 में समुचित रूप से संशोधन किया जाए ताकि उक्त कानून को वर्ग III विधि-निर्माण में रखा जा सके । उस स्थिति में राज्य सरकार को कानून में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त होगी, जब कभी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ऐसा करने की आवश्यकता हो ।

20. राज्यों में चालू खानों की मौजूदगी से इसकी सड़कों पर यातायात की गति बढ़ गई है, जिसके परिणामस्वरूप इनमें अधिक टूट-फूट होती है और इनका रख-रखाव संबंधी खर्च बढ़ जाता है । यह क्षेत्र में अतिरिक्त विकास खर्च के लिए भी मांग करती है और निकटवर्ती क्षेत्रों के व्यक्तियों को आबादी और मूल्य वृद्धि की सभी कठिनाईयां उठानी पड़ती हैं । इसलिए राज्य के लिए उस क्षेत्र के विकास के लिए बड़ी राशि लगाना और सड़कों को अच्छी हालत में रखना आवश्यक हो गया है । यह आवश्यकता सीधी खान की मौजूदगी के कारण ही उत्पन्न हुई है जिसका प्रचालन केन्द्र का विषय है । केन्द्रीय सरकार ही खनिज--अधिकारों पर कर लगा सकती है । सूची I की प्रविष्टि 54 के अनुसार खनिजों के विनियमन की शक्ति आंशिक रूप से और सूची II की प्रविष्टि 23 के अनुसार खनिज विकास की शक्ति भी राज्य में निहित है । फिर भी, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि खान क्षेत्र के विकास और खान क्षेत्र से निकलने वाली सड़कों के विकास के प्रयोजन से उपकर उगाहने की विशेष शक्तियां राज्य सरकार के पास होनी चाहिए ।

खाद्यान्न

21. चूंकि देश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रायः स्थायी हो गई है, इस लिए उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए भारतीय खाद्य निगम और खाद्यान्न की प्राप्ति और वितरण से संबंधित राज्य-संगठनों के बीच प्रभावी समन्वय होना चाहिए ।

22. इस समय भारत सरकार रोलर आटा मिलों के लिए लाइसेंस जारी कर रही है । इससे असंगत स्थिति उत्पन्न होती है जिस के परिणामस्वरूप पूरी क्षमता का प्रयोग हुए बिना ही भारत सरकार द्वारा नए लाइसेंस जारी किए जा रहे हैं । इस उद्योग के बेहतर समन्वय और नियंत्रण के लिए शक्तियां राज्य को सौंपी जा सकती है ।

वन

23. वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के लागू होने से खनिज क्षेत्र के संदोहन सहित राज्य में विभिन्न विकास विभागों के लिए काफी कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं । जबकि यह वस्तुतः प्रशंसनीय है कि इस अधिनियम का उद्देश्य इस देश में वन संपदा को कम होने से बचाना है, इसके साथ ही भारत सरकार कुछ शक्तियां राज्य सरकारों को सौंप दे ताकि उनके सम्मुख कठिनाइयों को दूर किया जा सके ।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्र की स्कीमें

24. जबकि केन्द्र द्वारा प्रायोजित अधिकांश स्कीमें और केन्द्रीय क्षेत्र की स्कीमें राज्य सरकार को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से बनाई जाती है, किन्तु इसके साथ ही इनके व्यावहारिक अनुप्रयोग से केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक मंत्रालय द्वारा कर्मचारी वर्ग, वेतन, पद के संबंध में कुछ शर्तें लागू करने से राज्यों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है । जबकि केन्द्रीय सरकार परियोजना के कार्यान्वयन के संबंध में शर्तें लगा सकती है, तो भी कर्मचारी वर्ग आदि का विवरण राज्य सरकार पर छोड़ दिए जाएं । केन्द्रीय सरकार को काफी पहले उस आर्थिक दायित्व के बारे में राज्य सरकार को बता देना चाहिए जिसे ऐसी स्कीमों के शुरू होने पर योजना वर्ष के दौरान राज्य सरकार को उठाना पड़ेगा क्योंकि वर्ष के मध्य में कार्यक्रम लागू करने के लिए धन के पुनर्विनियोजन में राज्य सरकार को कठिनाई होती है । कुल मिलाकर केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों और केन्द्रीय क्षेत्र की स्कीमों का विचार सलाहनीय है ।

सरकारी कर्मचारीयों का वेतन ढांचा

25. केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों की उपलब्धियों, मंहगाई भत्ता और अन्य वित्तीय लाभों के पुनरीक्षण के संबंध में समय-समय पर निर्णय लेती है । केन्द्रीय सरकार की ये घोषणाएं राज्य सरकारों को अनिवार्य रूप से माननी पड़ती है और अधिकांश मामलों में इससे राज्य सरकार को वित्तीय कठिनाइयां उठानी पड़ती है । पिछले कुछ वर्षों में ऐसा पैटर्न उभरा है जिसमें राज्य सरकार को महंगाई भत्ते के संबंध में केन्द्र का अनुकरण करना पड़ता है हालांकि इनके वेतनमान भिन्न होते हैं । अब समय आ गया है जबकि इस संबंध में गंभीर विचार किया जाए कि क्या इस विषय में एक राष्ट्रीय नीति तैयार करने के लिए केन्द्र और सभी राज्यों के बीच समय-समय पर गहन मंत्रणा की जानी चाहिए ।

26. राज्य सरकार महसूस करती है कि उपर्युक्त मुद्दों पर सरकारिया आयोग को सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए । यद्यपि उन्हें केन्द्र राज्य संबंधों में उत्तेजक नहीं कहा जा सकता, तथापि उनमें सुधार की गुंजाइश हैं । जिससे प्रशासन सुगम और बेहतर होगा । ऊपर दी गई अधिकांश मदों में विद्यमान संविधान में कोई मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं । शायद मामूली परिशोधनों से आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी ।

27. राज्य सरकार सरकारिया आयोग के प्रति अपना धन्यवाद अभिव्यक्त करती है क्योंकि आयोग ने अपने विचार के लिए हमें अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का सुअवसर प्रदान किया है ।

महाराष्ट्र सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर
(ख) ज्ञापन

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1. संघीय सिद्धान्त का आशय केन्द्र तथा राज्यों के बीच प्रभुता तथा राजनैतिक शक्ति का पूर्ण विभाजन है। जिसमें से प्रत्येक संविधान दस्तावेज द्वारा उनके लिए निर्धारित क्षेत्र में एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से काम करते है। इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है। हमारा संविधान अधिकांशतः भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुसार तैयार किया गया है जिसका विकास समस्त उप महाद्वीप में फैले हुए प्रांतों तथा रियासतों से मिल कर बने खुले संघ का परीक्षण करने के लिए किया गया था। परन्तु देश के निर्माताओं ने बल के अनुसार देश का विभाजन स्वीकार करने का निर्णय कुछ ऐसी विशिष्टताएं शामिल करने के लिए किया जिनमें युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह, सांविधानिक तंत्र की विफलता तथा वित्तीय संकट के कारण उत्पन्न आपात स्थिति के दौरान संघ को संघीय राज्य में परिवर्तित करने के लिए शक्तिशाली केन्द्र तथा अन्तर्निमित तंत्र की व्यवस्था है। इसलिए यदि व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाए, यथा लिखित संविधान से प्रवाहित संघ की सभी मूल विशेषताएं जैसे केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्ति का विभाजन, विधायी तथा कार्यपालक कार्य आदि की न्यायिक समीक्षा मौजूद है तो हमारे संविधान द्वारा यह बात समुचित रूप से सिद्ध हो जाती है कि संघीय सिद्धान्त सर्वोत्तम है। इस राष्ट्र के लम्बे इतिहास से हमें यह सबक मिला है कि केन्द्र शक्तिशाली होना चाहिए और वर्तमान घटनाओं से इस बात को और बल मिलता है, सामान्य परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि संघीय सिद्धान्त को अपना कार्य करने के लिए पूरा अवसर देकर राज्य व्यवस्था एकात्मक बनाने संबंधी विशिष्टताएं (सामान्यतः) बेकार प्रतीत होती है, परन्तु जब राष्ट्रीय हित खतरे में हो तो उसे अन्त समय तक सर्वोपरि रखा जाता है। विधिवेत्ता इसे संघीय या अर्द्धसंघीय या सहकारी संघ कहना पसन्द करेंगे परन्तु बात यही है कि हमारे संविधान में संघीय सिद्धान्त सर्वोत्तम है।

1.2 सामान्यतः कुछ छोटी-मोटी बातों को छोड़कर यह सरकार राजमन्नार समिति के उपर्युक्त विचार से सहमत नहीं है। तीन विधायी सूचियों का सावधानी-पूर्वक अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि सब मिलाकर राष्ट्रीय महत्व के व्यापक विषय केन्द्रीय सूची (सूची-I) में शामिल किए गए है, स्थानीय या क्षेत्रीय महत्व के विषय राज्य सूची (सूची-II) में शामिल किए गए है और ऐसे विषय जो प्राथमिक रूप से राज्यों से सम्बद्ध है परन्तु जो सम्भवतः राष्ट्रीय हित के विषय हो सकते है या जिनके संबंध में पूरे देश में एकरूप नीति अपेक्षित है, समवर्ती सूची में शामिल किए गए है। इन सूचियों की मुख्य विशेषता यह है कि कराधान से सम्बद्ध विषयों का केन्द्रीय सूची तथा राज्य सूची, दोनों में विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है। इस बात को ध्यान में रखा गया है कि उनमें उस कारण से भेद उत्पन्न न हो। वस्तुतः जहां तक कराधान शक्ति का सम्बन्ध है परस्पर विरोध का एक भी उदाहरण सामने नहीं आया है। यह तर्क प्रस्तुत करना सम्भव है कि राज्यों के पास कुछ अधिक लचीले कर संसाधन होने चाहिए परन्तु इस पहलू पर भाग V में विस्तार से चर्चा की गई है।

राजमन्नार समिति द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार अनुच्छेद 251, 256, 257, 348, 349, 355, 356, 357, 365 आदि के हटाए जाने के संबंध में इस सरकार का दृढ़ विचार है कि राष्ट्रीय हित के लिए, राष्ट्र की अखण्डता को बनाए रखने तथा सांविधानिक तंत्र की विफलता से बचने के लिए ये उपबन्ध आवश्यक है। निदेश देने सम्बन्धी कोई भी शक्ति समुचित संस्वीकृति के बिना निरर्थक है। ये शक्तियां, विशेषतः ऐसी स्थिति में राज्य सरकार के कार्य ग्रहण करने की शक्ति जिसमें राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती या राज्य को बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक उपद्रव से बचाने के लिए राष्ट्र की अखण्डता बनाए रखने के प्रयोजन से आवश्यक है अन्यथा रिक्तता उत्पन्न हो जाएगी और इसके परिणामस्वरूप अव्यवस्था फैल जाएगी। वास्तव में यह एक विडम्बना है कि इन परिवर्तनों के लिए सुझाव देते समय राजमन्नार समिति की यह परिकल्पना, कि ऐसे उपबन्ध बनाने में संविधान निर्माताओं के मन में बैठा हुआ बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक उपद्रव का अत्यधिक भय समाप्त हो गया है मिथक साबित हो गया है और यदि वर्तमान घटनाओं को ध्यान में रखा जाए तो ऐसे उपबन्धों की आज भी उतनी ही आवश्यकता महसूस होती है। वस्तुतः वर्तमान घटनाएं राष्ट्र की अखण्डता को बनाए रखने के लिए केन्द्र को और अधिक मजबूत बनाने के प्रयोजन से साधन जुटाने की दिशा में गहराई से विचार करने की आवश्यकता पर बल देती है।

जहां तक उच्चतम न्यायालय में अपीलों का सम्बन्ध है, हमारे संविधान में उच्चतम न्यायालय बहुविध कार्य करता है और इसकी अधिकारिता किसी भी देश में किसी अन्य शिखर न्यायालय से व्यापक है। यह केवल संघीय न्यायालय है नहीं वरन् सभी प्रकार के विधिक मामलों पर निर्णय देने वाला देश का सर्वोच्च न्यायालय है। यह मूल अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में मूल अधिकारों का संरक्षी है और सिविल या दण्ड विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों से सम्बद्ध मामलों में अन्तिम न्यायालय है। ऐसा कोई भी मामला नहीं है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने अपने दायित्व का पालन समुचित रूप से न किया हो। शिकायत केवल मामलों के बकाया होने की है। ऐसा जरूरी नहीं है कि उच्चतम न्यायालय केवल सांविधानिक मामले ही स्वीकार करे। यह सरकार किसी भी ऐसे प्रस्ताव के पक्ष में नहीं है। तथापि इस सरकार की यह राय है कि उच्चतम न्यायालय के कामकाज में और अधिक सुधार वांछित है। पिछले 35 वर्ष के अनुभव से यह प्रतीत होता है कि वादों के निपटान किए जाने से उनके संस्थित किए जाने की संख्या अधिक है जिसके फलस्वरूप पर्याप्त वाद बकाया रह जाते है। उच्चतम न्यायालय में विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न ही लाए जाएं ऐसे प्रतिबन्ध लगाकर और लघुतर सुनवाई, लघुतर बहस तथा लघुतर निर्णय जैसे प्रक्रिया संबंधी नवप्रवर्तन लाकर, दोनों प्रकार से, सुधार की आवश्यकता है।

1.3 संघीय गठन में संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का वितरण किया जाता है जिसमें प्रत्येक सर्वोच्च तथा प्रभुता सम्पन्न होता है। यह वितरण संघ को राष्ट्रीय महत्व के विषयों या ऐसे विषयों, जिनमें पूरे संघ में विधि की एकरूपता वांछनीय हो, में संघ को शक्ति प्रदान करने और राज्य से सम्बद्ध विषयों या जो मूलतः स्थानीय हित के रूप में वर्णित किए जा सकते है उन विषयों में राज्यों को शक्तियां प्रदान करने के सिद्धान्त पर किया गया है। सामान्य वितरण किसी एक या दोनों प्रकार से किया जाता है। निर्दिष्ट शक्तियां संघ को दी जाती है और अवशिष्ट शक्तियां राज्यों के पास रहती है जैसा कि अमरीका तथा आस्ट्रेलिया में होता है, या निर्दिष्ट शक्तियां राज्यों को दी जाती है और अवशिष्ट संघ को दी जाती है जैसे कनाडा में होता है। भारत ने पश्चातवर्ती पद्धति अपनाई है।

संविधान में विधायी विषयों के शीर्षों का विशद उल्लेख किया गया है और उन्हें तीन विधायी सूचियों में वितरित किया गया है सूची-I संघीय सूची है, सूची-II राज्य सूची है तथा सूची-III समवर्ती विधायी सूची है। सूची-II के विषयों के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति राज्य सरकार को दी गई है। सूची-I में शामिल किए गए विषय राष्ट्रीय महत्व के रूप में वर्णित किए जा सकते है। सूची-III में ऐसे विषय वर्णित किए जा सकते है जो ऐसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पहलू के है जिनमें स्थानीय परिवर्तन तथा प्रयोग वांछनीय है और जो अनिवार्यतः राष्ट्रीय हित के लिए हानिकर न हो। सूची-II में ऐसे विषय वर्णित किए जा सकते है जो मुख्यतः स्थानीय तथा राज्य के हित के है।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी रिपोर्ट के अध्याय VIII में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण के संबंध में सामान्य योजना की चर्चा की है। सिफारिश का मर्म यह है कि राज्यों की ऐसी परियोजनाओं पर उनके कार्य के संबंध में अधिकतम सीमा तक शक्ति प्रत्यायोजित की जानी चाहिए जिनमें केन्द्र का प्रत्यक्ष रूप से हित है या जो राज्यों द्वारा केन्द्र के एजेंटों के रूप में कार्यान्वित किए जा रही है। सामान्यत: यह राज्य प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अभिव्यक्त विचारों तथा की गई सिफारिशों से सहमत है और यह प्रस्तुत करता है कि यदि ये सिफारिशें कार्यान्वित की जाएं तो इससे पर्याप्त विकेन्द्रीयकरण उत्पन्न हो जाएगा और साथ ही साथ केन्द्र तथा राज्यों के बीच संबंधों में उत्पन्न होने वाला वैमनस्य, यदि कोई हो, का कारण दूर हो जाएगा। यह बात ध्यान में आएगी कि प्र० सु० आ० द्वारा दिया गया सुझाव तथा राज्य द्वारा किया गया पृष्ठांकन संविधान में इस प्रकार के किसी संशोधन के लिए आवश्यक नहीं है परन्तु इससे राज्य सूची तथा समवर्ती सूची, दोनों में ऐसे विषयों से सम्बद्ध वित्तीय विवक्षा के कारण केन्द्र का नियंत्रण है, विभिन्न योजनाओं के कार्यचालन के संबंध में केन्द्र द्वारा की जाने वाली प्रशासनिक व्यवस्थाओं में कुछ परिवर्तन हो जाएगा।

वस्तुत: यह स्पष्ट है कि यदि राष्ट्रीय महत्व का प्रश्न उत्पन्न होता है या किसी आपातस्थिति के कारण किसी नीति का निष्पादन अपेक्षित है तो कार्यान्वयन के लिए केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकार के तंत्र का उपयोग करने की स्थिति में होनी चाहिए परन्तु ऐसे अपवादों को छोड़कर राज्य सरकार को प्र०सु०आ० की सिफारिश के अनुसार अपने आप काम करने देना चाहिए। यह सरकार प्र०सु० आ० के इस विचार से सहमत है कि राज्य के क्षेत्र में केन्द्र की भूमिका अग्रदूत, मार्गदर्शक, सूचना प्रसारक, समग्र नियोजक तथा मूल्यांकनकर्ता की होनी चाहिए और जहां तक ऐसी परियोजनाओं का संबंध है जिनमें केन्द्र प्रत्यक्ष रूप से हितबद्ध है, जिनका राज्यों द्वारा केन्द्र के एजेंटों के रूप में कार्यान्वयन किया जा रहा है, जिनमें कार्य शीघ्रता से पूरा करने के हित में यह आवश्यक है कि केन्द्र की भूमिका में अधिकतम कमी की जानी चाहिए और राज्य अधिकारियों को अधिकतम शक्ति प्रत्यायोजित की जानी चाहिए।

1.4 हमारी जानकारी में ऐसा कोई देश नहीं है जहां पारस्परिक प्रकार का संघ कार्यात्मक सत्ता के रूप में मौजूद हो।

तथापि अमरीका में केन्द्र, जिसे उसकी सीमित शक्तियों के कारण कमजोर बनाया गया है, देश में युद्ध मन्दी तथा आर्थिक संवृद्धि की गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए शक्तिशाली बन गया है। केन्द्र संविधान के औपचारिक संशोधनों के माध्यम से इतना शक्तिशाली नहीं बना है वरन् न्यायिक निर्वचन की प्रक्रिया के माध्यम से शक्तिशाली बना है। न्यायपालिका ने समय की मांग को देखते हुए केन्द्र को उसकी गिनी हुई शक्तियां, यथा, वाणिज्य शक्ति, रक्षा तथा युद्ध शक्ति, कराधान शक्ति, आदि का विस्तृत निर्वचन देकर सहायता की है।

आस्ट्रेलिया में भी युद्ध के दौरान संघीय सिद्धान्त समाप्त हो गया है।

असल में सांविधानिक सिद्धान्त के अनुसार संघीय सरकार में केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं परन्तु आज सांविधानिक वास्तविकता इस अमूर्त सिद्धान्त से दूर हो गई है। संघवाद का यह सिद्धान्त, यथा, दो सरकारों का अपने-अपने स्तर पर पृथक् तथा स्वतंत्र रूप से काम करना, का केवल तभी अनुपालन किया जा सकता है जब कि सरकार के कार्य अत्यधिक सीमित किए जाएं।

इसके अतिरिक्त पुरातन संघों की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि केन्द्र में मजबूत सरकार होनी चाहिए। यह कहा गया है कि "भावुकता की राष्ट्रीयता" तथा स्वतंत्रता से उत्पन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए मिलकर काम करने की इच्छा संघवाद के स्वरूप में परिवर्तन के लिए जिम्मेवार है। कभी कभी इकाइयों तथा केन्द्र के बीच शक्ति के वितरण को "सहकारी संघवाद" कहा जाता है। सहकारी संघवाद राष्ट्रीय सरकार बनाम राज्यों की परिचर्चा द्वारा प्रदर्शित अभिरुचि या केन्द्रीयकरण बनाम विकेन्द्रीकरण के लाभों के बीच मध्य मार्ग की खोज है। यह आशा की जाती है कि संघीय तथा राज्य सरकारों के संयुक्त कार्य से धीरे धीरे संघवाद के अनिवार्य मूल्यों को समाप्त किए बिना एकात्म राज्य का लाभ होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस भावना ने अमरीका को विधित: राष्ट्रीय सर्वोच्चता तथा वस्तुत: स्थानीय स्वायत्तता के प्रभावन सिद्धांतों पर निर्मित केन्द्र तथा राज्यों के बीच उसके सम्बन्धों को अत्याधिक असैद्धान्तिक ढंग से अपनाने के लिए अनुप्राणित किया है। इस प्रकार संघ के उपर्युक्त इतिवृत्त से यह प्रदर्शित होता है कि वास्तव में कोई संघ राज्य नहीं है।

1.5 सौभाग्यवश इस राज्य के लिए केन्द्र की विधायी कार्यपालिका या न्यायिक किसी भी क्षेत्र में कोई समस्या नहीं थी। इसलिए इस सरकार के लिए ऐसी समस्याओं जिनको इसे कभी भी सामना करने की आवश्यकता नहीं पड़ी के सम्बन्ध में ठोस सुझाव देना कठिन है।

इस सरकार की राय यह है कि केन्द्र राज्य संबंधों को नियंत्रित करने संबंधी संविधान के उपबन्ध इस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली किसी भी स्थिति का सामना करने या समस्या का समाधान करने के लिए पर्याप्त है और केन्द्र तथा राज्य के बीच उचित संबंध सुनिश्चित करने के लिए कोई सांविधानिक संशोधन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। तथापि, यह उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक रूप से अधिरोपित निश्चित समय सीमा के अन्दर तर्क पर शीघ्र कारंवाई करके राज्यों द्वारा समवर्ती सूची में विधायी प्रस्तावों पर राष्ट्रपति की अनुमति प्रदान करने की प्रक्रिया में सुधार की गुंजाइश है। संघ-राज्य संबंधों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों तथा समस्याओं का समाधान करने के लिए समुचित प्रशासन तंत्र बनाया जाना चाहिए।

1.6 इस प्रकार बनाया गया संविधान न तो पूर्णत: एकात्मक था और न ही पूर्णत: संघीय संविधान में "संघ" शब्द कहीं भी नहीं है। परिस्थितियों की अपेक्षाएं पूरी करने के लिए संविधान सभा ने भारत का एक संघ-राज्य के रूप में वर्णन किया है। यह विखण्डनीय प्रवृत्तियों तथा अपकेन्द्रीय शक्तियों को निरुत्साहित करने के लिए विचार विमर्श करके किया गया। अवशिष्ट शक्तियां राज्यों को न देकर संघ को प्रदान की गईं और संघ से पृथक् होने का अधिकार मान्य नहीं था।

इकहरी नागरिकता, राष्ट्रपति के विचार के लिए विधेयक आरक्षित करने संबंधी राज्यपाल की शक्ति (अनुच्छेद 200), राज्यों द्वारा कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग ताकि संसद द्वारा बनाए गए कानून तथा मौजूदा विधियों का अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके और ऐसा अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए संघ को निदेश देने की शक्ति दी गई है (अनुच्छेद 256), राज्य द्वारा कार्यपालक शक्ति का इस प्रकार से प्रयोग करना कि इससे संघ की कार्यपालक शक्ति तथा राज्यों को यथावश्यक निदेश देने के लिए संघ की शक्ति का प्रयोग करने में कोई अड़चन न आए या उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। (अनुच्छेद 257), संघ द्वारा राज्यों को और राज्यों द्वारा संघ को कार्यपालिका कार्य सौंपना (अनुच्छेद 258 तथा अनुच्छेद 258-क), अखिल भारतीय सेवाओं के लिए व्यवस्था, एकल न्यायपालिका जिसमें उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च है, मौलिक सिविल तथा दण्ड विधियों में एकरूपता, आपातकालीन शक्तियां (अनुच्छेद 352, 356, 360) संविधान में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण उपबंध हैं जो संविधान निर्माताओं ने देश की स्वतंत्रता बनाए रखने और देश की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तैयार किए थे।

हमारा यह दृढ़ विचार है कि हमारे आधारिक संविधान का ढांचा पर्याप्त मजबूत है और उसे अक्षत बना रहना चाहिए।

1.7 हमारा संविधान इस प्रकार से बनाया गया है कि केन्द्रीय सरकार को बहुत शक्तियां दी गई हैं और राज्यों को गिनी हुई शक्तियां दी गई है। तथापि सामान्य विषयों के संबंध में संघ का राज्यों से प्रभुता का संबंध न हो कर समन्वय का संबंध है। सामान्य समय में संघ तथा राज्य सरकारें, दोनों, समन्वयी के रूप में काम करते है परन्तु कुछ परिस्थितियों में यदि ऐसा करना राष्ट्रीय हित में आवश्यक है तो संघ के पास निदेश देने की शक्ति सुरक्षित है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 256 के अधीन राज्यों का यह कर्तव्य है कि वे ऐसे कानून बनाए जो संघ सरकार द्वारा बनाए गए कानून के अनुरूप हों। संविधान के अनुच्छेद 257 के अधीन कुछ परिस्थितियों में संघ सरकार को राज्य सरकारों को निदेश देने का अधिकार है। ऐसे निदेश देने की शक्ति अनुच्छेद 365 के अनुसार प्रदान की गई है जिसमें राष्ट्रपति को यह निर्णय लेने का अधिकार दिया गया है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती जबकि वह ऐसे निदेशों में किसी भी निदेश का अनुपालन करने या उसे कार्यान्वित करने में विफल रहती है। जहां तक कार्यपालिका कार्यों को सौंपने का संबंध है

अनुच्छेद 258 तथा 258 क में संघ तथा राज्य द्वारा एक दूसरे की सहमति से कार्य सौंपने की व्यवस्था है।

यदि किसी राज्य में बाह्य आक्रमण या आन्तरिक उपद्रव हो गया है तो ऐसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 355 में संघ को ड्यूटी देकर ऐसे राज्य की ऐसी आकस्मिकता से बचाने की व्यवस्था है। संविधान के अनुच्छेद 356 तथा 357 में राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता के संबंध में उल्लेख किया गया है। ये आपातिक अधिकार विशेष अधिकार हैं और संघ के पास सुरक्षित हैं। आपात स्थिति में संघ राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले सकता है, उसके लिए विधिनिर्माण कर सकता है और उसकी समेकित निधि से खर्च कर सकता है।

हमारे संविधान ने जरूरतमन्द राज्यों को विशेष तौर से अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के संवर्धन तथा उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन से अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन का स्तर ऊंचा करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने संबंधी संघ के दायित्व के सिद्धान्त की मान्यता दी है। इसके अधीन, कुल मिलाकर समस्त देश के संबंध में तथा एक दूसरे के प्रति केन्द्र एवं राज्यों की बाध्यताओं के संबंध में सांविधानिक उपबन्ध समुचित प्रतीत होते हैं और उनमें अधिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

1.8 अनुच्छेद 3 संविधान के एकात्मक स्वरूप की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस अनुच्छेद के अधीन अपनी विधायी शक्तियों का प्रयोग करते हुए संसद सम्बद्ध राज्य के लोगों की इच्छा के विरुद्ध भी उस राज्य को समाप्त कर सकती है। सैद्धान्तिक रूप से यह संघीय स्वरूप के संविधान में एक गंभीर दोष तथापि अनुभव से यह प्रतीत होता है कि संसद ने हमेशा किसी भी राज्य की इच्छाओं का आदर किया है और कभी भी अनादर नहीं किया है।

आस्ट्रेलियाई संविधान में राष्ट्रमण्डल की संसद को राज्य की संसद की सहमति और राज्य की सीमाएं घटाने, बढ़ाने या उसमें परिवर्तन करने के प्रश्न पर मतदान करने वाले राज्य के निर्वाचकों के बहुमत का अनुमोदन प्राप्त करना पड़ता है। अमरीका में सीमाओं में परिवर्तन से प्रभावित होने वाले राज्यों के विधान मण्डल की सहमति लेना अनिवार्य है। अनुच्छेद IV खण्ड 3(i) में यह निर्धारित है कांग्रेस संघ में नए राज्य शामिल कर सकती है, परन्तु सम्बद्ध राज्यों के विधान मण्डलों तथा कांग्रेस की सहमति के बिना किसी अन्य राज्य के अधिकार क्षेत्र में कोई नया राज्य नहीं बनाया जाएगा और न ही दो या अधिक राज्यों, या राज्यों के भागों को मिलाकर कोई नया राज्य बनाया जाएगा।" भारतीय संविधान के अधीन सम्बद्ध राज्य की सहमति आवश्यक नहीं है, हालांकि विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है। तथापि किसी भी व्यक्ति को भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि वाले किसी अन्य देश के संविधान में निगमित किसी सिद्धान्त को अपनाने से पहले देश के इतिहास तथा संस्कृति को देख लेना चाहिए। जहां तक भारत का संबंध है इसमें विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं तथा विविध भाषाएं बोलते हैं। हमारे देश की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रत्याशा से कि संसद इस कर्तव्य का पालन भय एवं पक्षपात के बिना और देश के परम कल्याण, जो पुनर्गठित राज्य के कल्याण में निहित है, को ध्यान में रख कर परिवर्तन करने या राज्य को समाप्त करने की यह शक्ति किसी राज्य या सम्प्रदाय में हितबद्ध न होने वाले, भारत के सभी लोगों के प्रतिनिधियों के रूप में गठित माध्यस्थम के रूप में संसद को दी गई है। कुल मिलाकर यह प्रत्याशा सत्य साबित हुई है।

इसलिए हालांकि अनुच्छेद 3 संघीय सिद्धान्त के विरुद्ध तथा अलोकतंत्रीय प्रतीत होता है, जिस भूमिका के आधार पर इसे निगमित किया गया और अब तक जिस पद्धति से इसे प्रवर्तन में लाया गया है, उसमें यह अपेक्षित है कि इसमें कोई परिवर्तन किए बिना इसे इसी रूप में रहने देना बेहतर होगा अन्यथा संभवतः इससे समस्या का समाधान होने की बजाय समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 ऐसा कोई ठोस उदाहरण नहीं है जिसमें यह निश्चय पूर्वक कहा जा सके कि संघ ने 'राष्ट्रीय हित' या 'लोक हित' में होने की घोषणा करके राज्य के विधायी क्षेत्र का अतिक्रमण किया हो। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 में संसद को राज्य सूची के राष्ट्रीय हित के विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। संसद की यह शक्ति भी सीमित है और इन शक्तियों का प्रयोग करते हुए पास किया गया कोई भी कानून अधिक से अधिक दो वर्ष तक लागू रह सकता है। अतः राष्ट्रीय हित में राज्य विधान मण्डल के क्षेत्र में आने वाला कोई भी कानून पास करने की संसद को शक्ति के संबंध में शिकायत का कोई आधार प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त, ऐसे कानून संसद द्वारा पास किए जाने पर भी अपने-अपने राज्यों में उनका प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है।

यदि राज्य सरकार की राय में संसद द्वारा पारित कानून राज्य की स्थानीय स्थितियों को देखते हुए उनकी अपेक्षाओं के लिए पर्याप्त न हो तो राज्य विधान मण्डल को अपनी अपेक्षाएं पूरी करने वाला कानून पास करने की निरन्तर छूट है। यद्यपि संसद ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (1980 का LXIII) पास किया है तथापि इस राज्य सरकार ने लोक व्यवस्था बनाए रखने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले समाज विरोधी तत्वों के खतरनाक क्रियाकलापों को रोकने के लिए उनका निवारक निरोध करने के प्रयोजन से महाराष्ट्र बस्ती मालिक मद्यतस्कर तथा औषधि अपराधी खतरनाक क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 1981 (महाराष्ट्र 1981 का LV) पास किया है। राज्य इस विचार का समर्थन करने में असमर्थ है कि केन्द्र ने राष्ट्रीय या लोकहित की आड़ में राज्य के विधायी क्षेत्र का अतिक्रमण किया है।

2.2. समग्रतः राष्ट्रीय हित और विशेषतः देश की एकता तथा अखण्डता के लिए सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों में विषयों के वितरण की मूल योजना में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है। परन्तु व्यवहार में श्रम, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र विकास कार्यक्रम, तकनीकी तथा डाक्टरी शिक्षा जैसे विषयों पर विधायी प्रस्तावों की जांच करते समय ऐसे राज्य प्रस्तावों की अनुमति देने में अधिक उदार होना अनिवार्य है जो अधिक प्रगतिशील हैं और अन्ततः राष्ट्रीय हित के लिए लाभदायक सिद्ध हों।

2.3 इस पैरा में दिए गए सुझाव का स्वागत किया जाना चाहिए और संघ तथा राज्यों के बीच बेहतर संबंध स्थापित करने के हित में यह वांछनीय होगा कि केन्द्र सरकार समवर्ती विषय पर कानून बनाते समय पहले ही राज्य से परामर्श करे। यद्यपि भारतीय संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है तथापि भारत सरकार बहुधा किसी ऐसे विषय पर, जिसके संबंध में उसका कानून बनाने का प्रस्ताव है, राज्य सरकारों के विचार जानने के लिए उनसे परामर्श करती है। इसके अतिरिक्त यदि संसद की संयुक्त समिति या प्रवर समिति को कोई विधेयक भेजा जाता है तो ऐसी समिति विधेयक के प्रस्तावित उपबन्धों पर राज्य सरकारों तथा लोगों की राय जानने के लिए कई राज्य सरकारों से मिलती है। इसका वर्तमान उदाहरण दहेज प्रतिषेध विधेयक है। इसलिए संघ तथा राज्य के बीच बेहतर संबंधों के हित में यह वांछनीय होगा कि भारतीय संविधान में ऐसे विशिष्ट उपबन्ध हों जिनके अनुसार समवर्ती विधायी विषय पर कानून बनाने का प्रस्ताव करते समय राज्य सरकारों से पहले से परामर्श करना अपेक्षित हो परन्तु इसमें ऐसे मामले शामिल नहीं हैं जिनमें अत्यावश्यकता के कारण पूर्व परामर्श न किया जाना समीचीन समझा जाए।

2.4 संसद को राज्यों की अनन्य सक्षमता के अन्तर्गत "राष्ट्रीय हित" या "लोक हित" के किसी विषय पर स्थायी आधार पर कानून बनाने की शक्ति देना वांछनीय नहीं होगा। अनुच्छेद 249 के अधीन भाग II के प्रश्न 2.1 में उल्लिखित के अनुसार संसद की सीमित अवधि के लिए कानून बनाने की वर्तमान शक्ति उचित प्रतीत होती है।

2.5 भाग II के प्रश्न 2.1 से 2.4 के उत्तरों में दी गई टीका-टिप्पणी के अधीन विधायी क्षेत्र में संघ-राज्य संबंधों के विषय में किसी परिवर्तन या सुधार के संबंध में कोई और सुझाव नहीं है।

भाग III

राज्यपाल के कार्य

3.1 राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार नियुक्त किए गए राज्यपाल को केन्द्र राज्य संबंधों के संदर्भ में अन्य कार्यों के साथ-साथ तीन महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं।

अनुच्छेद 167 के अधीन राज्यपाल मुख्य मंत्रियों से जानकारी प्राप्त करने और ऐसे निश्चित विषय पर, जिस पर मंत्रि परिषद् ने विचार नहीं किया है, मंत्रि परिषद् द्वारा विचार किए जाने का अनुरोध करने का भी हकदार है । राज्यपाल से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह राष्ट्रपति को आवधिक रिपोर्ट भेजें और उनकी प्रतिलिपि मुख्य मंत्री को भेजें । यह इस कारण से उपयोगी है कि इससे राष्ट्रपति को राज्य के कार्यकलाप की स्थिति के बारे में विधिवत जानकारी मिलती रहती है और इसके साथ-साथ मुख्य मंत्री तथा उसके सहयोगी ऐसे विषयों पर राज्यपाल के विचारों से परिचित हो सकते हैं । ऐसी रिपोर्टों से मुख्य मंत्री को बनाई गई गलत नीतियों के संबंध में निश्चित रूप से समय-समय पर सूचना मिलती रहेगी ताकि वह अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति की ओर से किसी कार्रवाई से बचने के लिए सुधारक कार्रवाई कर सके ।

ऐसा दूसरा कार्य अनुच्छेद 200 के अधीन राष्ट्रपति के विचार के लिए विधेयक आरक्षित करना है, ऐसे अवसर आ सकते हैं जबकि राज्यपाल यह अनुभव करता है कि कोई विधेयक इतना महत्वपूर्ण है कि उसे उस पर अपनी अनुमति देकर स्वयं अपने ऊपर दायित्व न लेकर राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करना चाहिए । वह ऐसा स्वप्रेरणा से या कभी-कभी मुख्य मंत्री की सलाह से कर सकता है यह राज्यपाल को समनुदेशित महत्वपूर्ण कार्य है जिससे वह देश के महान हित में केन्द्र तथा राज्यों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए उनके बीच उचित बोध बनाए रख सके ।

अनुच्छेद 356 के अधीन राज्यपाल को समनुदेशित अन्तिम तथा महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रपति को इस बात की रिपोर्ट देना है कि क्या किसी राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जा रही है । यह बात इस बात से भी संबंधित है कि क्या राज्य सरकार अपनी कार्यपालक शक्ति का प्रयोग केन्द्रीय विधियों कि अनुसार और अनुच्छेद 256 तथा 257 में अपेक्षित केन्द्र को कार्यपालक शक्ति के अनुसार करता है जिससे अनुच्छेद 365 के साथ पठित अनुच्छेद 356 पर प्रभाव पड़ता है ।

इस पहलू पर पर्याप्त चर्चा हो गई है, पर्याप्त साहित्य प्रस्तुत किया गया है परन्तु यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि पिछली 34 वर्ष के दौरान विभिन्न राज्यपालों द्वारा अपनाई गई पद्धति एकरूप नहीं है । यह राज्यपाल के व्यक्तित्व पर काफी निर्भर करता है । ये आरोप लगाए गए हैं कि राज्यपालों ने केन्द्रीय सरकार की बहुमत वाली पार्टी, जिससे उनकी नियुक्ति हुई है, के पक्ष में अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है । वास्तव में ऐसे मामले में जिन में राज्यपालों ने अत्यधिक निष्पक्षता से कार्य किया है । ऐसे अन्य मामले हैं जिनमें राज्यपालों के स्वयं अपने अधिकारों के अनुसार कार्य किया है । जहां तक इस राज्य का अनुभव है केन्द्र के साथ इसके संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल का कार्य कुल मिलाकर सौहार्दपूर्ण तथा उपयोगी रहा है ।

3.2 हमारी राय में राज्यपाल की केन्द्र राज्य संबंधों के संदर्भ में संविधान के अधीन सौंपी गई भूमिका निभानी चाहिए तथा उसे केन्द्र तथा राज्य के बीच मजबूत कड़ी के रूप में काम करना चाहिए और केन्द्र तथा राज्य के मुख्य मंत्री से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखते हुए दोनों के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखने में सहायता करनी चाहिए और उसे परामर्शदाता तथा वयोवृद्ध राजविद्, के रूप में काम करना चाहिए जो अपना परामर्श देने के बाद संविधान में अभिगृहीत के अनुसार मंत्रिपरिषद् की सहायता तथा सलाह से काम करे, आवश्यकतानुसार उसे स्वविवेकाधिकार का प्रयोग ईमानदारी से राज्य के सांविधानिक अध्यक्ष के रूप में अपने पद के अनुसार करना चाहिए । उसे यदि वह ऐसा चाहता है, केन्द्र का मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए परन्तु स्वविवेकाधीन विषय पर उसे संविधान के उपबन्धों के अनुसार स्वयं अन्तिम निर्णय लेना चाहिए ।

3.3 (क) अनुच्छेद 356(1) के अधीन रिपोर्ट तैयार करते समय हम यह प्रत्याशा करते हैं कि राज्यपाल ऐसी रिपोर्ट तैयार करने में निष्पक्ष रहेगा और स्वयं अपने स्वतंत्र निर्णय के अनुसार काम करेगा । यह राज्य के लिए एक महत्वपूर्ण बात है और इसलिए सामान्यतः राज्यपाल से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह मुख्य मंत्री को चेतावनी देगा और उसे अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले भूल सुधार करने का अवसर देगा ।

(ख) मुख्य मंत्री के वरण को नियंत्रित करने वाली मुख्य बात यह होनी चाहिए कि वह अधिकांशतः उस विधान सभा के बहुमत को नियंत्रित करने वाला व्यक्ति हो ।

यदि किसी निर्वाचन में किसी दल को स्पष्ट बहुमत मिलता है तो राज्यपाल सांविधानिक रूप से उस दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने के लिए बाध्य है । उस नेता, जिससे सरकार बनाने के लिए अनुरोध किया गया है, का काम राज्यपाल को अन्य मंत्रियों की नियुक्ति के बारे में सलाह देना है । दूसरे शब्दों में राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए गए मुख्य मंत्री को अन्य मंत्रियों के नाम सुझाने चाहिए और राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की नियुक्ति के मामले में मुख्य मंत्री की सलाह मानने के लिए बाध्य है । तथापि, यदि निर्वाचनों में किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता और और एकता रूप से कोई दल या दलों का समूह राज्यपाल को यह सूचना भेजता है कि वे विधान मण्डल में बहुमत को नियंत्रित करने तथा सरकार बनाने की स्थिति में हैं तो ऐसे मामले में यह निर्णय करना उसका कर्तव्य बन जाता है कि जिन विभिन्न दलों या दलों के समूहों ने सूचना भेजी है उनमें से कौन सा दल या दलों के समूह सरकार बनाने में समर्थ हैं, जो वास्तव में बहुमत पर नियंत्रण रखते है । उसका एकमात्र प्रयोजन राज्य में ऐसी स्थिर सरकार बनाना होना चाहिए जो वह परिस्थितियों के अधीन बना सकता है और उसे उस प्रयोजन के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए ।

(ग) **सदन का सत्रावसान** :—संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अनुसार मंत्रिपरिषद् राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त कार्यालय में रह सकती है, सामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल के प्रसाद का आशय यह है कि मंत्रि परिषद् तब तक पद पर बनी रहेगी जब तक कि उसे विधान सभा का विश्वास प्राप्त है परन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जबकि मुख्यमंत्री को इस बात की जानकारी मिलती है कि अब उसका बहुमत नहीं है और वह राज्यपाल को विधान सभा का सत्रावसान करने की सलाह देता है । ऐसी परिस्थितियों में राज्यपाल का मुख्य मंत्री को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए विधान मण्डल का सामना करने के लिए बाध्य करना न्यायसंगत है, तथापि, इस संबंध में कोई पक्का नियम नहीं हो सकता और राज्यपाल को अपनी अधिकतम योग्यता तथा अन्तर्विवेक से अपना सर्वोत्तम निर्णय देने की छूट दी जानी चाहिए । सरकार की स्थिरता परम लक्ष्य होना चाहिए ।

विधान सभा भंग करना : भारत में अनुच्छेद 174(2) (ख) के अनुसार विधान सभा भंग करने की शक्ति दी गई है । भारत का संविधान जिस रूप में आज है, यह शक्ति राज्यपाल को देता है । इस शक्ति से संबंधित दो अनुच्छेद है । अनुच्छेद 172 के अधीन पांच वर्ष पूरे होने पर विधान सभा भंग हो जाती है । फिर भी राज्यपाल विधान सभा भंग होने की औपचारिक घोषणा करता है । अनुच्छेद 174 के अनुसार विधान सभा पहले भंग की जा सकती है ।

सामान्यतः राज्यपाल को इस साधारण कारण से मुख्यमंत्री की सलाह माननी चाहिए कि यह विवेकाधिकार नहीं है । परन्तु कुछ मामलों में यह वांछनीय तथा सांविधानिक रूप से तर्क संगत नहीं है । उदाहरण के तौर पर यदि मुख्य मंत्री जो सदन में बहुमत के समर्थन के बिना पद पर है, राज्यपाल को विधान सभा भंग करने की सलाह देता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह संसदीय लोकतंत्र के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है ।

क्योंकि राज्यपाल को संविधान के अनुच्छेद 163 में प्रयुक्त पद को ध्यान में रखते हुए "मुख्य मंत्रियों" की सलाह के अनुसार न चल कर मंत्रिपरिषद्, की सलाह के अनुसार चलना चाहिए, अतः उसे सबसे पहले मांग स्वीकृत करने से पूर्व मुख्य मंत्री को मंत्रिपरिषद, में अपने सहयोगियों के समक्ष ऐसा महत्वपूर्ण कदम उठाने का प्रस्ताव रखने का निदेश देना चाहिए । यद्यपि यह विधिकरूप से महत्वपूर्ण नहीं है तथापि राजनीतिक रूप से सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्तों के अनुरूप है ।

3.4 संविधान के अनुच्छेद 200 को सावधानीपूर्वक पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यपाल के समक्ष चार विकल्प हैं । वह या तो विधेयक पर अपनी अनुमति देगा या अपनी अनुमति रोक लेगा या यदि वह धन विधेयक नहीं है तो उसे पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है या वह उस बिल को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर सकता है ।

अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल में निहित शक्तियां विवेकाधिकार शक्तियां हैं । यह निर्णय करने का अधिकार उसके पास है कि क्या वह विधान मण्डल के भाग के रूप में विधेयक पर अपनी अनुमति दे । यदि उसे विधेयक में निर्दिष्ट कार्रवाई की प्रक्रिया की विधिमान्यता या औचित्य के बारे में कुछ संदेह हो तो इस पर विधान मण्डल से पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है । यदि मामला इतना महत्वपूर्ण है कि वह यह अनुभव करे कि उसे विधेयक पर अनुमति देने का दायित्व नहीं लेना चाहिए तो वह उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर सकता है । यह सब इस बात का द्योतक है कि राज्यपाल में निहित शक्तियों के अनुसार उससे स्वयं अपना निर्णय लेना अपेक्षित है । यह व्यवस्था करने का स्पष्ट प्रयोजन लोक दाब के कारण राज्य विधान मण्डल के समक्ष प्रस्तुत की गई शक्ति के पीछे बल को कम करने के निर्गम द्वार प्रदान करना था परन्तु इसमें इसके परिणामों पर विचार नहीं किया गया, ऐसी युक्ति के प्रभाव का अनावेशपूर्ण ढंग से अध्ययन करने के लिए विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित करना सेफ्टी वाल्व का काम करता है ।

3.5 राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के संबंध में इस सरकार का अनुभव बहुत उत्साहवर्धक है । पिछले 8 वर्ष (1976-83) के दौरान 110 विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित किए गए थे परन्तु केवल 4 मामलों में अनुमति रोकी गई । कुल मिलाकर इस सरकार का यह अनुभव है कि वह जब कोई आपत्ति की जाती है तो वह बात भारत सरकार को स्पष्ट की जा सकती है और जल्दी हो अनुमति प्राप्त की जा सकती है । तथापि, इस सरकार का यह सुझाव है कि अत्यावश्यक या समयबद्ध विधेयकों, जिनका शीघ्र निपटान किया जाना अपेक्षित है, को छोड़कर कोई ऐसी समय सीमा, यथा तीन महीने, होनी चाहिए जिसके अन्दर विचार करने तथा अनुमति देने की प्रक्रिया पूरी की जाए ।

3.6 यह सरकार इस विचार से सहमत है इस राज्य का अनुभव रहा है कि व्यवहार में इस राज्य के लिए नियुक्त किए गए राज्यपालों ने सामान्यतः अपना दोहरा दायित्व निभाने में संविधान तथा स्वस्थ परिपाटियों के अनुसार निष्पक्ष तथा उचित रूप से कार्य किया है ।

3.7 यह सरकार इस सुझाव से सहमत नहीं है । वर्तमान स्थिति जारी रहनी चाहिए ।

3.8 इस सुझाव से सहमत होना कठिन है । अनुच्छेद 174(1) के उपबन्ध के अनुसार राज्य की विधान सभा बुलाने की शक्ति उसी रूप में स्वीकार की गई है जो मंत्रिपरिषद, की सलाह पर प्रयोग की जाती है किसी मामले में, यदि राज्यपाल को यह आभास हो कि शासक दल ने विधान मण्डल में अपना बहुमत खो दिया है तो उसके लिए यही उचित होगा कि वह इस संतुष्टि के लिए मुख्य मंत्री से अनौपचारिक रूप से अनुरोध करे कि विधान मण्डल में उसका अब भी बहुमत है । यदि मुख्यमंत्री राज्यपाल को इस पद्धति से संतुष्ट करने में असमर्थ है तो राज्यपाल के लिए छूट होगी कि वह मुख्य मंत्री को यथासंभव शीघ्र विधान मण्डल का अधिवेशन बुलाने को कहे और यदि मुख्यमंत्री अधिवेशन बुलाने में विफल रहता है तो मंत्रिपरिषद, से अपना प्रसाद हटाने तथा अनुच्छेद 164(1) के अनुसार मंत्रिपरिषद, को भंग करने की राज्यपाल की कार्रवाई न्यायोचित होगी । व्यावहारिक आधार पर इस कार्रवाई को राज्यपाल स्वप्रेरणा से विधान मण्डल अधिवेशन बुलाने की शक्ति देने तथा राजनीति में पड़ने से अधिमानता दी जाती है ।

3.9 संघीय गणराज्य जर्मनी के संविधान के अनुच्छेद 67 की आवश्यक विवक्षा यह है कि जब तक बुंदेस्टाग (संघीय विधान मण्डल) उत्तराधिकारी का चयन करने की स्थिति में न हो जब तक संघीय चान्सलर जिसका बुंदेस्टाग में बहुमत समाप्त हो गया है, चांसलर बना रहेगा यह लोकतांत्रिक सरकार के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध होगा कि चांसलर को विधान मण्डल का विश्वास प्राप्त होना चाहिए ऐसा व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी वांछनीय नहीं हो सकता । यह बात सही है कि राज्य के राज्यपाल को कभी-कभी इस समस्या का सामना करना पड़े और किसी आलोचना, पक्षपात के आरोप तथा किसी दल के हित को बढ़ावा देने की कार्रवाई करने के आरोप से बचने के लिए राज्यपाल को स्वयं अपने निर्णय के अनुसार स्वतंत्र रूप से काम करना चाहिए । यह केवल तभी संभव है जबकि राज्यपाल स्वाधीन सम्मानित योग्य तथा निष्पक्ष व्यक्ति हो । यदि राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल का चयन करते समय इस बात का ईमानदारी से पालन किया जाए तो राज्यपाल के विरुद्ध कोई लांछन लगाने के लिए कोई भी अवसर उत्पन्न नहीं हो सकता अन्ततः हमारे लोकतंत्र की सफलता अधिकांशतः इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे लोकप्रिय प्रतिनिधि कितने प्रबुद्ध हैं और वे अपने पूरे उत्तरदायित्व का किस तरह निर्वाह करते हैं । संविधान में राज्यपाल के लिए आचरण की परिपाटी या प्रतिमान निर्धारित करने संबंधी किसी भी परिवर्तन से तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा जब तक कि लोगों के प्रतिनिधि उत्तरदायी ढंग से आचरण करना तथा शीघ्र ही नए नेता को निर्वाचित करना पसन्द न करें इससे राज्यपाल तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच कोई संभावित मनमुटाव निश्चित रूप से दूर हो जाएगा बशर्ते कि राज्यपाल स्वयं अपने पद के लिए अपेक्षित स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता का स्तर बनाए रखे । संविधान में दल बदल के आधार पर अनर्हता के संबंध में उपबन्ध पुरः स्थापित करके संविधान (52 संशोधन) अधिनियम, 1985 के कारण व्यावहारिक रूप से ऐसे मनमुटाव उत्पन्न करने वाली स्थितियां आने के अवसर बहुत कम हो गए हैं ।

3.10 यह बात संदेहपूर्ण है कि क्या उस पद्धति, जिसके अनुसार राज्यपाल संविधान के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग करें, को निश्चित दिशा-निर्देश तैयार करने के प्रयोजन से अन्तर्राज्य परिषद् द्वारा जांच की जा सकेगी । ऐसे दिशानिर्देश राष्ट्रपति के नाम से संघ द्वारा स्वीकृति के बाद जारी किए जाएंगे, अनुच्छेद 163(2) के अधीन यह राज्यपाल का निर्णय है कि क्या ऐसा मामला जिसमें उससे स्वविवेकानुसार कार्य करना अपेक्षित है, अन्तिम बना दिया गया है और इसलिए राज्यपाल की शक्ति का अतिक्रमण करने वाला कोई भी दिशानिर्देश उक्त उपलब्ध का अतिक्रमण करेगा । इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न राज्यों में उत्पन्न होने वाली विभिन्न स्थितियों को देखते हुए ऐसे दिशानिर्देश कम व्यावहारिक उपयोगिता वाले हो सकते हैं जो प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त साबित न हों । राजनीतिक औचित्य के अनुसार भी यह अपेक्षित है कि राज्य के राज्यपाल को अपने विवेकाधीन कार्य का पालन करते समय स्वयं उसके विवेक पर छोड़ देना चाहिए । संविधान के अधीन राज्यपाल के विवेकाधीन कार्यों पर एक दृष्टि डाल लेना महत्वपूर्ण होगा, यथा :

(1) मुख्य मंत्रियों की नियुक्ति ;

(2) मंत्रिपरिषद्, भंग करना ;

(3) विधान सभा भंग करना ;

(4) मंत्रणा, चेतावनी तथा सुझाव देने का अधिकार,

(5) विधेयक पर अनुमति रोकना;

(6) सांविधिक कार्य; तथा

(7) असम के राज्यपाल के विवेकाधिकार ।

मद संख्या (6) को छोड़कर इन विवेकाधीन कार्यों में से प्रत्येक कार्य अत्यधिक राजनीतिक स्तर का है जिसमें विभिन्न पृष्ठभूमि में समय-समय पर विभिन्न स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनके लिए भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न समाधानों की आवश्यकता पड़ती है। राज्यपाल के लिए इन दिशानिर्देशों को ही आधार भूत मानकर अपने विवेकाधीन कार्य करना और उससे इन दिशानिर्देशों के आधारपर प्रत्येक समस्या का समाधान करने का अनुरोध करना उचित नहीं होगा । स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि राज्यपाल के विवेकाधीन कार्यों को सूत्र के अधीन रखने का यह विचार इस कारण मात्र से शाब्दिक विरोध है कि यदि विवेकाधिकार का प्रतिस्थापन सूत्र से किया जाता है तो वह विवेकाधिकार नहीं रहेगा ।

ध्यान में रखे जाने योग्य अन्तिम तथा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि हम राज्यपाल के विवेकाधीन कार्यों के लिए दिशानिर्देश देकर न्यायिक पुनर्विलोकन के व्यापक क्षेत्र का और अधिक विस्तार करेंगे । क्योंकि राज्यपाल का प्रत्येक कार्य इस परीक्षण के दायित्व के अधीन होगा कि ऐसा कार्य दिशानिर्देशों के अनुसार है या नहीं । इससे यह कार्य न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन रहेगा, जिसके लिए वर्तमान सांविधिक स्थिति के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की छूट नहीं है । यह सामान्य ज्ञान की बात है कि विभिन्न विश्वविद्यालय अधिनियमों के अधीन चांसलर के रूप में राज्यपाल के सांविधिक कार्यों को प्रायः न्यायालय में चुनौती दी जाती है ।

भाग IV
प्रशासनिक संबंध

4.1 संविधान में दृढ़ एकात्मक विशेषताओं वाले संघीय राज्य को ध्यान में रखा गया है । ऐसी व्यवस्था में संघ सरकार के कार्यों के लिए सांविधानिक अनुमोदन अनुच्छेद 256, 257 तथा 365 के अनुसार प्रदान किया गया है । इन अनुच्छेदों के उपबन्ध स्पष्टतः व्यापक रूप से राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता के हित में है । यह कहने के बाद इस बात पर बल देना आवश्यक है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन उपबन्धों को बहुत परिमितता से और परामर्श, परिचर्चा तथा सहमति जैसे अन्य उपायों का उपयोग करने के बाद कार्यान्वित किया जाना चाहिए । इस में संघ सरकार द्वारा इन शक्तियों के दुरुपयोग के प्रति कोई निर्मित रक्षोपाय होने की बहुत कम गुंजाइश प्रतीत होती है और किसी संभावित दुरुपयोग के प्रति सर्वोत्तम रक्षोपाय जनमत और कुछ सीमा तक कालावधि में निर्मित होने वाली परिपाटी होगी ।

हमें ऐसा कोई भी मामला याद नहीं है जिसमें इस राज्य को अनुच्छेद 256 या 257 के अधीन निदेश जारी किए गए हों या जिसमें राज्य को अनुच्छेद 365 के आव्हान की आशंका के अधीन ऐसे किसी निदेश का पालन करने के लिए बाध्य किया गया हो ।

4.2 अनुच्छेद 365 संघ सरकार को निदेश जारी करने की शक्तियों के लिए मंजूरी प्रदान करता है क्योंकि ऐसे निदेशों का पालन न करने से राष्ट्रपति शासन लागू करना अपरिहार्य हो जाएगा, ऐसी मंजूरी के बिना केन्द्रीय सरकार के आदेश की अदण्डित अवज्ञा हो जाएगी, इसलिए अनुच्छेद 365 का होना नितान्त आवश्यक है हालांकि इसे अब तक वस्तुतः कभी भी प्रवर्तन में नहीं लाया गया है ।

4.3 महाराष्ट्र सरकार प्रशासनिक सुधार आयोग से सहमत है, संघ सरकार को अनुच्छेद 256 के अधीन राज्य को निदेश जारी करने से पहले अन्य सभी उपलब्ध उपायों से विरोध की बात को निपटाने की संभावना की छानबीन करने के लिए पद्धति या परिपाटी तैयार करनी चाहिए ।

4.4 इस सरकार के पास उक्त प्रश्न की जांच करने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है । तथापि डा० चन्द्रपाल की पुस्तक "केन्द्र राज्य संबंध तथा सहकारी संघवाद" के पृष्ठ संख्या 107 से 110 पर विभिन्न राज्यों में राष्ट्रपति शासन के तात्कालिक कारणों का उल्लेख करने वाली तालिका दी गई है ।

उक्त तालिका से यह प्रतीत होता है कि 8 से 10 मामलों, जिनमें शक्ति के प्रयोग के कारण उपलब्ध नहीं हैं, छोड़कर यह स्पष्ट है कि राज्यपाल राष्ट्रपति को राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने में न्यायोचित था ।

इस सरकार की यह राय है कि सामान्यतः राज्यपालों को तब तक राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश नहीं करनी चाहिए जब तक कि विधान सभा में मुख्य मंत्री का बहुमत है और वह अति अल्प सूचना पर विधान सभा का सामना करके बहुमत सिद्ध करने के लिए तैयार न हो, जब तक कि राज्यपाल को अन्यथा विश्वास न हो जाए कि राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाई जा रही है ।

4.5 यह सत्य है कि अनुच्छेद 356 के खण्ड 5 के उपखण्ड (क) तथा (ख) में दो शर्तें निर्धारित की गई हैं यथा अनुच्छेद 352 के अधीन आपात की उदघोषणा और चुनाव कराने में कठिनाइयों के संबंध में चुनाव आयोग का प्रमाण-पत्र केवल यह शर्त पूरी होने पर उदघोषणा की अवधि एक वर्ष से अधिक समय के लिए तथा तीन वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है । ये शर्तें कठोर हैं । हाल में पंजाब राज्य के संबंध में जब यह देखा गया कि यद्यपि स्थिति के अनुसार अनुच्छेद 356 के अधीन उदघोषणा एक वर्ष से अधिक समय के लिए जारी रखना अपेक्षित है तथापि ऐसा उसके खण्ड (5) में उल्लिखित शर्तें पूरी न होने के कारण नहीं किया जा सका, संविधान (अड़तालीसवां संशोधन) के अनुसार अनुच्छेद 356 के खण्ड (5) में एक परन्तुक शामिल करना अपेक्षित था । भविष्य में ऐसी स्थिति से बचने के लिए यह वांछनीय है कि अनुच्छेद 356 का 44वें संशोधन की पूर्व स्थिति में पुनः स्थापन किया जाए ।

4.6 वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक ढंग से काम कर रही है । ये कार्य सीधे संघ प्रशासन द्वारा किए जाने इस दृष्टि से कठिन होंगे कि देश के सभी भागों में एक ही साथ बहुत अधिक संख्या में कार्मिक तैनात करने पड़ेंगे ।

4.7 देश में स्थिर अर्थव्यवस्था और आर्थिक एवं सामाजिक संतुलन सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय नीति के अनुसरण में विभिन्न केन्द्रीय एजेंसियां बनाई गई थी । इसमें कोई संदेह नहीं है कि कई बातों में अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य होना आवश्यक है और इसलिए इन केन्द्रीय एजेंसियों को जारी रखना आवश्यक है । यद्यपि हम ऐसा नहीं कहेंगे कि इन एजेंसियों के माध्यम से संघ सरकार ने राज्य सरकार की स्वायत्तता का अनुचित रूप से अतिक्रमण किया है तथापि हम यह अनुभव करते हैं कि कई बार ये एजेंसियां राज्य सरकार की राय पर समुचित रूप से विचार नहीं करती हैं। हम उदाहरण देकर कृषि लागत तथा मूल्य आयोग (जिसे पहले कृषि मूल्य आयोग कहा जाता था) से संबद्ध मामलों का उद्धरण दे सकते हैं । महाराष्ट्र में उसकी कृषि जलवायु स्थितियों, मृदा के स्वरूप, सिंचाई की अत्यधिक सीमित सुविधाओं तथा अधिकांशतः वर्षा पर पूर्ण निर्भरता आदि की दृष्टि से खाद्यान्न उत्पादन की प्रति यूनिट लागत कुछ अन्य अधिक भाग्यशाली राज्यों से उच्चतर है । इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि समर्थन मूल्य नियत करने का प्रयोजन कृषकों के हितों की समुचित रूप से रक्षा करना है और राज्य ने समर्थन मूल्य की सिफारिश करते समय निश्चित रूप से यह दृष्टिकोण अपनाया कि कृषि को एक उद्योग समझा जाए और उत्पादन की वास्तविक लागत परिवहन पर व्यय, प्रबन्धकीय खर्च तथा निवेश पर आश्वासित समुचित प्रतिलाभ को निश्चित रूप से ध्यान में रखा जाए । तथापि, हमारा यह अनुभव है कि आयोग

मुख्यतः पंजाब जैसे अधिक भाग्यशाली राज्यों में लागू तथ्यों के आधार पर समर्थन मूल्यों की सिफारिश करता है जहां सिंचाई की बहुत अच्छी सुविधाएं हैं, पैदावार बहुत अधिक है तथा उत्पादन लागत बहुत कम है। इस अभिगम से हमारे राज्य के कृषकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आयोग ने हमारे इस तर्क पर भी समुचित रूप से विचार नहीं किया कि पृथक-पृथक क्षेत्रों में पृथक-पृथक मूल्य नियत किए जाने चाहिए।

इसी अभिगम का राज्य के कपास उत्पादकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कृषि लागत तथा मूल्य आयोग मुख्यतः कच्चे कपास के समर्थन मूल्य की सिफारिश पंजाब किस्म 320-एफ के आधार पर करता है, जिसके फलस्वरूप महाराष्ट्र के कृषकों पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि महाराष्ट्र के कृषक अधिकांशतः सिंचाई रहित परिस्थितियों में विभिन्न किस्मों की खेती करते है। हाल में आयोग ने एच-4 किस्म के लिए भी समर्थन मूल्य की सिफारिश की है। परन्तु अब भी हमारे राज्य में पैदा की जा रही मुख्य किस्मों के संबंध में ऐसे मूल्य नियत नहीं किए जा रहे हैं। राज्य सरकार यह महसूस करती है कि कपास की भिन्न-भिन्न किस्मों के लिए कृषि लागत का पृथक-पृथक परिकलन किया जाए जिसका सामान्यतः लम्बा, मध्यम तथा छोटा रेशा किस्मों के रूप में संवर्गीकरण किया जा सकता है। इस संबंध में आयोग ने हमारे तर्क-वितर्क पर समुचित रूप से विचार नहीं किया है।

यद्यपि महाराष्ट्र में कपास तथा खाद्यान्न के उत्पादकों पर पूरे देश के लिए एकरूप समर्थन मूल्य नियत किए जाने की नीति के कारण ऊपर बताए गए अनुसार प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है तथापि गन्ने के संबंध में इस नीति से विचलन किया गया है जिसका महाराष्ट्र के गन्ना उत्पादकों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। महाराष्ट्र देश के मुख्य गन्ना उत्पादकों में से एक है और उसमें भिन्न-भिन्न गन्ना उत्पादों तथा उस से चीनी प्राप्ति वाले पृथक-पृथक कृषि जलवायु क्षेत्र हैं। मराठवाडा विदर्भ तथा खानदेश जैसे क्षेत्रों में गन्ना उत्पाद तथा उससे चीनी प्राप्ति की मात्रा दक्षिणी महाराष्ट्र से बहुत कम है। परन्तु ऐसा होने पर भी चीनी का उगाही मूल्य नियत करने के प्रयोजन से समस्त राज्य को एकल अंचल के रूप में समझा जा रहा है। इसलिए इन क्षेत्रों में चीनी कारखाने चला कर लाभ नहीं कमाया जा सकता जिससे राज्य के विकास में असंतुलन हो जाता है। उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे कुछ राज्यों को उगाही मूल्य नियत करने के लिए एक से अधिक अंचलों में विभाजित किया गया है। परन्तु इस कारण से महाराष्ट्र के साथ विभेदक बरताव किया जा रहा है, दक्षिणी महाराष्ट्र तथा मराठवाड़ा / विदर्भ/खानदेश में चीनी प्राप्ति का अन्तर उत्तर प्रदेश या बिहार के विभिन्न अंचलों में समरूप अन्तर से बहुत कम है। इन तथ्यों के बावजूद महाराष्ट्र को कृषि जलवायु के विचार के आधार पर तीन भिन्न-भिन्न अंचलों में विभाजित किए जाने के लिए हमारे अनुरोध पर सहानुभूति पूर्वक विचार नहीं किया गया है जिसके परिणामस्वरूप गन्ना उत्पादकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

हम यह भी महसूस करते हैं कि कुछ एजेंसियों के संबंध में शक्तियों का अतिकेन्द्रीकरण किया गया है जिससे राज्य के विकास की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है। वर्तमान व्यवस्था के अधीन राज्य सरकार से 5 करोड़ से अधिक लागत वाली सभी बिजली परियोजनाएं केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण को उसके अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करना अपेक्षित है। हम यह महसूस करते हैं कि 10 करोड़ से अधिक लागत वाली परियोजनाओं को के० वि० प्रा० के अनुमोदन से मुक्त रखा जाना चाहिए। हमारा यह भी अनुभव है कि सिंचाई तथा जलीय विद्युत परियोजनाओं के संबंध में केन्द्रीय जल आयोग के अनुमोदन की आवश्यकता से भी परियोजनाओं के निष्पादन में अनावश्यक रूप से विलम्ब होता है और यह उचित होगा कि के० ज० आ० अपनी संवीक्षा मुख्यतः समग्र योजना पहलुओं तक सीमित रखे तथा उसमें केवल परियोजना की मूल संकल्पना तथा उसके अन्तर्राज्य पहलुओं को महत्व दे।

संक्षेप में केन्द्रीय एजेंसियों की ओर से राज्यों में मौजूद स्थिति का अधिक वास्तविक मूल्यांकन करने की अधिक आवश्यकता है। इसी प्रकार, राज्य सरकार में अधिक प्राधिकार, जो इस समय कुछ एजेंसियों में निहित है, निहित किए जाने की [illegible] है।

4.8 सामान्यतः अखिल भारतीय सेवाओं [illegible] को प्रत्याशाएं पूरी हो गई है। अखिल भारतीय सेवा[illegible] करने के लिए वर्तमान व्यवस्थाओं से ऐसी स्थिति में राज्यों के [illegible] पर अधीनतम कम किए बिना ऐसी सेवाओं का अखिल भारतीय स्वरूप निश्चित रूप से परिरक्षित रहता है जब कि अधिकारी राज्य के विषयों से सम्बद्ध कार्य करते हैं और इस प्रकार इससे संघ तथा राज्यों के बीच उचित तथा व्यावहारिक संतुलन बन जाता है।

4.9 सामान्य नीति के रूप में राज्य में केन्द्रीय बल की तैनाती सम्बद्ध राज्य सरकार की सहमति से की जानी चाहिए। परन्तु इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अनुच्छेद 355 से संघ सरकार पर यह ड्यूटी अधिरोपित होती है कि वह प्रत्येक राज्य को बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक उपद्रव से बचाए और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जा रही है, प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण सही प्रतीत होता है। विशेषतः बाह्य आक्रमण के मामले में संघ सरकार [illegible]चित निर्धारण करने की सर्वोत्तम स्थिति में है।

4.10 राज्य सरकार संघ सूची से समवर्ती सूची में विषय के अन्तरण संबंधी सुझाव से सहमत नहीं है, यद्यपि विषय संघ सूची में ही जारी रहने चाहिए तथापि यह सुनिश्चित करने के लिए संघ और राज्यों के बीच प्रभावी परामर्श की स्पष्ट आवश्यकता है कि स्थानीय भाषा के कार्यक्रमों और स्थानीय संस्कृति तथा समस्याओं से सम्बद्ध कार्यक्रमों पर भी समुचित ध्यान दिया गया है।

4.11 अभी तक आंचलिक परिषदों की प्रायः या नियमित रूप से बैठकें नहीं हो रही है। राज्य सरकार की यह राय है कि आंचलिक परिषदों को नियमित रूप से तथा अधिक से अधिक बैठकें करनी चाहिए और जिन मदों पर आंचलिक परिषद् की बैठकों में व्यापक सहमति है, ऐसी मदों का शीघ्र कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए सभी सम्बद्ध पक्षों को और विशेष रूप से संघ सरकार द्वारा सक्रिय रूप से पालन किया जाना चाहिए।

4.12 यह सत्य है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद, तथा स्थानीय स्वायत्त शासी केन्द्रीय परिषद, संतोषजनक ढंग से काम कर रही है और संघ तथा राज्यों के बीच समन्वय तथा सहयोग स्थापित करने में सफल साबित हुए हैं। तथापि इसमें संदेह है कि सामान्य हित के प्रत्येक विषय पर ऐसी परिषदें स्थापित करना उपयोगी साबित होगी। इस सरकार की राय है कि केन्द्र तथा राज्य या राज्य तथा राज्य के बीच किसी भी समस्या का समाधान पारस्परिक विचार विमर्श से किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो दो राज्यों के बीच विवाद के संबंध में केन्द्र की मध्यस्थता से समाधान किया जाना चाहिए और केवल अन्तिम उपाय के रूप में तथा अत्यावश्यकता में ही किसी विशेष मामलों के संबंध में ऐसी परिषद् स्थापित की जानी चाहिए। इस प्रकार की किसी स्थायी परिषद् की आवश्यकता नहीं है।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 राज्य सरकार की राय है कि संविधान निर्माता होने वाले सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की कल्पना नहीं कर सके जैसे जनसंख्या संवृद्धि तथा राज्य सरकारों की वित्त व्यवस्था पर परिणामी बोझ, मुद्रा स्फीति, और राज्य सरकारों को निदेशक सिद्धान्तों के अधीन सौंपी गई जिम्मेदारियां पूरा करने के लिए वित्त की अपर्याप्तता। दूसरी ओर उन्होंने यह सोचा होगा कि राज्यों के वित्त स्रोत पर्याप्त होंगे इसलिए केवल आयकर ही अनिवार्यतः शेयर योग्य बनाया गया जबकि उत्पाद

शुल्क के मामले में मात्र आगमों का शेयर करना अनुमेय है। संविधान निर्माताओं ने स्पष्टतः केन्द्र के लिए राजस्व के पर्याप्त स्रोत प्रदान किए हैं ताकि केन्द्र शक्तिशाली हो और केन्द्र सहायता के जरूरतमन्द राज्यों को सहायता अनुदान दे सके। संविधान बनाते समय प्लान योजनाओं का कोई विचार नहीं था। इस प्रकार संविधान निर्माताओं का उद्देश्य राज्यों को मुख्यतः आयकर तथा संघ उत्पाद शुल्क के माध्यम से तथा दूसरे सहायता के जरूरतमन्द राज्यों को सहायता अनुदान देकर वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराना था। इससे यह विवक्षित है कि उन्नत राज्य भी किसी योजना या समस्याएं के लिए सहायता अनुदान के पात्र थे।

इसके अतिरिक्त क्रमिक वित्त आयोगों ने राज्यों से संसाधनों के समस्तरीय वितरण में पिछड़ेपन के विभिन्न कारकों को तथाकथित धनी या सम्पन्न राज्यों का प्रगामी अहित करके अधिक महत्व दिया है। यद्यपि यह सिद्धान्त के रूप में संतोषजनक है तथापि सापेक्षिक रूप से निर्धन राज्यों को तथाकथित सम्पन्न राज्यों को हानि पहुंचाकर और उनके शेयर में क्रमिक -ह्रास करके अधिक सहायता नहीं दी जानी चाहिए। इन राज्यों के लिए भी उनकी अपनी विशिष्ट समस्याएं हैं जिनके लिए भी पर्याप्त खर्च तथा परिव्यय अपेक्षित है उदाहरण के लिए बम्बई देश में प्रधान संकुल है और यहां सारे देश के लोग नियोजन के लिए आते है। इससे नागरिकों, परिवहन तथा नगर की अन्य सेवाओं जो कि पहले ही अपनी क्षमता से अधिक वहन कर रही है, पर अधिक बोझ पड़ता है। बम्बई शहर में अपेक्षित निवेश का कम राज्य सरकार के कार्यक्षेत्र से बाहर है और इसलिए बम्बई की समस्याएं राष्ट्रीय समस्या की दृष्टि से देखी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त माने हुए उन्नत राज्यों में राज्य का ऐसा भाग भी हैं जो वित्तीय रूप से कमजोर राज्यों से तुलनात्मक दृष्टि से पिछड़ा है।

दूसरी बात यह है कि वित्त आयोग ने साधारणतः ऐसे राज्यों को सहायता अनुदान देने से इनकार कर दिया है जिनके पास वित्त आयोग द्वारा संस्तुत निधियों के अवक्रमण से पहले राजस्व अधिशेष है। वित्त आयोग द्वारा संसाधनों के प्राक्कलन में आदर्श उपागम से महाराष्ट्र जैसे राज्य के लिए गलत रूप में बहुत अधिशेष प्रकट होता है जो वस्तुतः मौजूद नहीं है। इसलिए उसे सहायता अनुदान से वंचित करना दो प्रकार से अनुचित है।

इसलिए इसमें वित्त आयोग तथा केन्द्र की तथाकथित धनी राज्यों के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है। इन राज्यों में विकास की गति मन्दन राष्ट्रीय हित में नहीं है क्योंकि इन राज्यों में किंचित निवेश से राष्ट्र के लिए पर्याप्त अधिक संसाधन उत्पन्न होंगे जिससे अन्ततः कमजोर राज्यों के शेयर में वृद्धि होगी।

5.2 इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। उपाय यह नहीं है कि उससे अवक्रमण योजना के अधीन अधिक केन्द्रीय कर प्राप्त होते हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों, दोनों, के लिए वित्तीय अनुशासन है राज्य सरकारों को भी राष्ट्रीय नीतियां अपनानी चाहिए जैसे--जनसंख्या नियंत्रण और संसाधनों का अधिकतम उपयोग तथा निवेश पर प्रतिलाभ। सूखा मुद्रास्फिति सहित प्राकृतिक विपदाओं और केन्द्रीय ऋण सेवा के कारण बहुत बोझ से राज्य सरकारों के संसाधनों पर बड़ा दबाव पड़ता है। केन्द्र द्वारा निर्देशित कीमतों में वृद्धि और अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी प्रवृत्तियां होने से भी राज्यों के संसाधनों पर पर्याप्त दबाव पड़ता है। यद्यपि केन्द्र के संसाधन इन प्रभावों को वहन करने में पर्याप्त रूप से लचीले हैं तथापि इनका राज्यों के संसाधनों पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है इस प्रकार मुद्रास्फिति को रोकने के लिए सभी कदम उठाना आवश्यक है अन्यथा इससे दुष्चक्र बन जाता है। और राज्य सरकारों को उनके द्वारा अपेक्षित मदों पर खर्च में वृद्धि होने के अतिरिक्त राज्य सरकारों को अतिरिक्त महंगाई भत्ते की किस्तों का भार वहन करना पड़ेगा इसलिए राज्य सरकार कंपनी कर को विभाज्य पूल में लाना आवश्यक समझती है क्योंकि यह आयकर से भिन्न नहीं है परन्तु यह अधिक लचीला है। सीमा शुल्क जो केन्द्र के लिए राजस्व का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत है भी राज्यों के साथ शेयर किया जाना आवश्यक है। राज्यों के राजस्व के इन लोचदार स्रोतों के शेयर के साथ केन्द्र तथा राज्यों दोनों द्वारा बृहत्तर राजकोषीय अनुशासन की बहुत आवश्यकता है।

5.3 यद्यपि मजबूत केन्द्र की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता तथापि क्षेत्रीय असंतुलन को केवल केन्द्रीय हस्तक्षेप के माध्यम से कम नहीं किया जा सकता है। राज्य भी इस दिशा में बेहतर प्रशासनिक कार्यविधियों, अधिक वित्तीय अनुशासन तथा संसाधनों का अनुकूल उपयोग करके प्रभावी योगदान दे सकते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि निधियों का आशयित प्रयोजनों के लिए वस्तुतः उपयोग किया गया है, उचित परीवीक्षा तंत्र के बिना केन्द्र से सापेक्षतः अविकसित राज्यों को बड़ी मात्रा में संसाधनों के अन्तरण से असमानता कम करने के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी तथाकथित सम्पन्न राज्यों के विनिधान में कमी करके निर्बल राज्यों को अधिक मात्रा में विवेकाधीन अनुदान देने या अन्तरण करने के लिए केन्द्र के लिए अधिक संसाधन आरक्षित करने से केवल राष्ट्रीय आय में महत्वपूर्ण एवं पर्याप्त अंशदान करने में समर्थ सुविकसित आधारिक संरचनाओं वाले राज्यों की संवृद्धि अवमन्द हो जाएगी। असमानता में कमी स्तर घटा कर नहीं की जानी चाहिए। निर्बल राज्यों को सहायता देने का उद्देश्य तुलनात्मक दृष्टि से विकसित राज्यों को विधिसम्मत द्रव्य प्रवाह में कमी किए बिना जिससे उनकी संवृद्धि पर भी रोक लग जाएगी निर्बल राज्यों के संसाधनों का बेहतर समुपयोजन इष्टतम उपयोग करके प्राप्त करना है। राष्ट्रीय हित का आशय केवल निर्बल राज्यों को सहायता देना नहीं है। यह आवश्यक है कि सभी राज्य प्रगति करने का प्रयत्न करें और निधियों का उपयोग वस्तुतः विकास प्रयोजनों के लिए किया जाना चाहिए तथा कड़ा वित्तीय अनुशासन होना चाहिए। केन्द्र को ऐसे राज्यों को बोनस तथा प्रोत्साहन देने पर विचार करना चाहिए जिनकी वित्त व्यवस्था सुनियंत्रित है। राज्य सरकार केन्द्र को निर्बल राज्यों के विकास के लिए केन्द्र के पास उपलब्ध निधियों का उपयोग करने के लिए अधिक विवेकाधिकार देने के पास पक्ष में नहीं है। इससे सम्पन्न राज्यों के विकास कार्यकलापों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो केन्द्र के लिए अधिक राजस्व प्राप्त करने में सहायक नहीं होगा।

इस संबंध में यह स्मरण कराना भी उचित होगा कि क्षेत्रीय असमानताएं न केवल विभिन्न राज्यों के बीच विद्यमान हैं वरन् एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भी विद्यमान है। इसलिए इस संबंध में स्वयं राज्यों के सचेतन प्रयत्न के बिना केवल केन्द्रीय हस्ताक्षेप से क्षेत्रीय असमानताएं कम नहीं की जा सकती।

5.4 हम कुछ सिद्धान्तों के अधीन केन्द्रीय पूल को सम्पन्न राज्यों से राजकीय प्रदान के पक्ष में नहीं हैं। पहले ही वित्त आयोग द्वारा सिफारिश की गई निधियों के अवक्रमण में तथाकथित राज्यों के शेयर क्रमिक रूप से कम होते जा रहे हैं। इसलिए निर्बल राज्यों में वितरण के प्रयोजन से सम्पन्न राज्यों से केन्द्रीय पूल में राजकीय प्रदान करने से तथाकथित सम्पन्न राज्यों को दोहरा नुकसान होगा।

केन्द्र तथा राज्यों दोनों के द्वारा खर्च पर बृहत्तर नियंत्रण के लिए वांछनीयता के संबंध में दो राय नहीं हो सकती। तथापि हाल के वर्षों में केन्द्र के बहुत बड़े बजट घाटे के लिए वित्त आयोग के अवक्रमण या योजना आयोग द्वारा संसाधनों के अन्तरण को उत्तरदायी ठहराया सही नहीं होगा। वित्त तथा योजना आयोग, दोनों, केन्द्र के संसाधनों का निर्धारण करते हैं और वह यह देखने में सावधानी बरतते है कि उनके द्वारा सिफारिश किए गए अन्तरण से केन्द्र में घाटा वित्तीयन न हो।

असमानताएं दूर करने के लिए निर्बल राज्यों को बड़ी मात्रा में संसाधनों का अन्तरण करने के प्रयोजन से घाटा वित्तीयन वांछनीय नहीं होगा, स्पष्ट कारणों से घाटा वित्तीयन स्वीकार्य सीमाओं के अन्दर रखा जाना चाहिए अन्यथा इससे केवल अर्थव्यवस्था में पहले से मौजूद स्फीतिकारी प्रवृत्ति और भी बढ़ जाएगी।

5.5 प्रथमतः हमारे राज्य की यह राय है कि निर्बल तथा सम्पन्न राज्यों के बीच संसाधनों में असमानता दूर करना न तो वित्त आयोग या योजना आयोग का कार्य है और न ही उद्देश्य। इसमें संदेह नहीं है कि वित्त आयोग का कार्य योजनेत्तर पक्ष में संसाधनों तथा निधियों की अपेक्षाओं का निर्धारण करना और समुचित अवक्रमण के लिए सिफारिश करना है ताकि निधि की अपेक्षाएं अधूरी न रह जाएं। ऐसा करते समय राष्ट्रीय नीतियों तथा उद्देश्यों और क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करने की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए, योजना आयोग राज्य की विकास आवश्यकताओं का निर्धारण करने और उनके लिए संसाधनों की समग्र बाध्यताओं के अन्दर समुचित व्यवस्था करने तथा क्षेत्रीय असमानताएं कम करने की वांछनीयता सेसम्बद्ध है। परन्तु इनमें से किसी भी निकाय का काम निर्बल तथा सम्पन्न राज्यों के बीच संसाधनों की असमानता दूर करना नहीं है।

राज्यों द्वारा किए गए कर प्राप्तियां और प्रबन्ध में दक्षता तथा मितव्ययिता सभी राज्यों की प्राथमिक आवश्यकता है। केवल निर्बल राज्यों को अधिक सहायता अनुदान देने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यह आवश्यक है कि राज्यों को विकास तथा विकासेत्तर योजनाओं के उचित कार्यान्वयन से प्रतिलाभ इष्टतम बनाना चाहिए।

जहां तक करों के शेयर का संबंध है अधिक राजस्व प्राप्त करने वाले राज्यों को समुचित शेयर भी मिलना चाहिए। तथाकथित सम्पन्न राज्यों को भी अपनी बाध्यताएं तथा दायित्व पूरे करने पड़ते हैं। वे केन्द्रीय सरकार के लिए विशेष तौर पर आयकर, संघीय उत्पाद शुल्क तथा कंपनी कर के माध्यम से अधिक संसाधन जुटाते है।

कोई ऐसी वस्तुपरक कसौटी तैयार करना कठिन है जो प्रत्येक राज्य के लिए करों का शेयर, योजना सहायता तथा योजनेत्तर सहायता निर्धारित करने के लिए प्रयोग में लाई जा सके, कंपनी कर तथा सीमा शुल्क को विभाज्य पूल में रखा जाना चाहिए इसके अतिरिक्त आयकर, संघीय उत्पाद कर, कंपनी कर तथा सीमा शुल्क का 50 प्रतिशत राज्यों के शेयर के रूप में उद्दिष्ट किया जाना चाहिए।

जहां तक राज्यों के बीच आयकर के वितरण का संबंध है आयकर वसूली द्वारा यथामापित अंशदान के कारक के लिए 45 प्रतिशत निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और शेष 55 प्रतिशत राज्यों की जनसंख्या के अनुपात में वितरित किया जाना चाहिए। जहां तक संघीय उत्पाद शुल्कों का संबंध है राज्यों के शेयर का वितरण निम्नलिखित आधार पर किया जाना चाहिए :--

(i) 60 प्रतिशत जनसंख्या कारक के आधार पर दिया जाना चाहिए जिसमें 30 प्रतिशत शहरी जनसंख्या के लिए तथा 70 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए।

(ii) 20 प्रतिशत उच्चतम प्रति व्यक्ति आय और छठे वित्त आयोग के सूत्र के अनुसार जनसंख्या की तुलना में किसी राज्य की प्रति व्यक्ति आय के डिस्टेंस के गुणनफल के अनुसार मापित राज्यों के आर्थिक पिछड़ेपन के लिए निर्दिष्ट किया जाना चाहिए।

(iii) जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम तथा लघु बचत संग्रहण के संबंध में निष्पादन के कारकों के लिए प्रत्येक के लिए 10-10 प्रतिशत निर्दिष्ट किया जाना चाहिए।

जहां तक योजना सहायता के संबंध है इसका निर्धारण योजना आयोग को करना चाहिए। अवक्रमण के माध्यम से अधिक निधियां देने से बहुत बड़ी मात्रा में अधिशेष हो जाएगा। इसलिए कुछ राज्यों को कम योजना सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। तथापि अधिक अनुदान शामिल करने के लिए अनुदान तथा ऋण घटकों के मौजूदा अनुपात में परिवर्तन करके राज्यों के ऋण भार में कमी की जानी चाहिए। विशेष श्रेणी के राज्यों के मामले में इसमें अधिक उदारता बरती जानी चाहिए। लघु बचत ऋण बेमियादी ऋण समझे जाने चाहिए।

योजना सहायता के लिए संशोधित गाडगिल फार्मूला महाराष्ट्र जैसे राज्यों के लिए अहितकर है और हम यह महसूस करते हैं कि मूल गाडगिल फार्मूले पर प्रत्यावर्तित होना न्यायोचित है। इस संबंध में प्रश्न संख्या 6.8 तथा 6.9 के लिए हमारे उत्तर देखे जा सकते हैं।

हमारे राज्य की यह राय है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के लिए केन्द्र को पूर्णतः सहायता प्रदान करनी चाहिए और जब भी ऐसी योजना समाप्त की जाती है या राज्य की योजनेत्तर योजना को अन्तरित की जाती है तो योजना के लिए स्वीकृत राशि में से उक्त समय तक कार्यक्रम योजना के कार्यान्वयन पर किए गए खर्च को घटा कर शेष राशि योजना की शेष अवधि के लिए राज्यों को अन्तरित की जानी चाहिए।

हमारी यह भी राय है कि योजनेतर सहायता, विशेष तौर पर केन्द्र द्वारा विवेकाधीन अनुदान नितान्त न्यूनतम होना चाहिए। यदि केन्द्र के राजस्व के अधिक लोचदार स्रोत विभाज्य पूल के अन्दर लाए जाएं और उनका राज्यों के बीच समान रूप से वितरण किया जाए तो केन्द्र द्वारा सहायता अनुदान के माध्यम से योजनेतर सहायता तथा विवेकाधीन सहायता की कम आवश्यकता पड़ेगी।

5.6 हमें विशेष संघीय नीति के सर्जन में कोई विशेष गुण दिखाई नहीं देते हैं। यदि ऐसी निधियां सर्जित की भी गई है तो निधियों से विनियोग विनिश्चित करने के लिए कोई तंत्र होना चाहिए। निधियों से वितरण के सिद्धान्त तैयार करते समय निधि का प्रशासन करने वाली एजेंसी को भी उन्हीं समस्याओं तथा बाध्यताओं का सामना करना पड़ेगा जिनका आज वित्त आयोग तथा योजना आयोग को करना पड़ रहा है। हमारी राय में मौजूदा संस्थागत ढांचा समुचित होगा।

5.7 हमारा देश सुसम्बद्ध अखण्ड संघबद्ध राज्यों की संघीय संरचना है। संविधान बनाते समय केन्द्र तथा राज्यों के संगत कार्य तथा दायित्व ध्यान में रखते हुए उनकी कर लगाने की शक्तियों के बंटवारे पर समुचित विचार किया गया है। हम कर लगाने की शक्तियों में कोई संरचनात्मक परिवर्तन का पक्ष समर्थन नहीं करेंगे क्योंकि इससे केन्द्र तथा राज्यों का प्रभावी कार्यचालन दुर्बल बन जाएगा।

5.8 राज्य सरकार की राय है कि मौजूदा व्यवस्था में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। केन्द्र सरकार को अधिक करों के किसी अभ्यर्पण से संघीय प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यह भी आवश्यक है कि राज्यों के पास निश्चित करों के संबंध में शक्तियां हों अन्यथा ऐसी स्थिति आ जाएगी कि राज्यों के पास अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए मुख्य स्रोत नहीं रहेंगे। इसका आशय यह भी होगा कि राज्य राजस्व के मुख्य स्रोतों के संबंध में केन्द्र पर पूर्णतः निर्भर होंगे। चीनी, तम्बाकू तथा वस्त्रों पर बिक्री कर से संबंधित राज्यों की शक्ति अभ्यर्पित करने पर भारत सरकार द्वारा अधिरोपित अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों के संबंध में राज्य खुश नहीं है। यह विचार, कि उस पर केन्द्रीय तथा राज्य मंत्रिपरिषद् का नियंत्रण होना चाहिए, व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं लगता। इसमें मतभेद होगा और इससे अवरोध उत्पन्न होगा तथा अनिर्णय की स्थिति उत्पन्न होगी इसके अतिरिक्त गोपनीयता बनाए रखना कठिन होगा।

5.9 राज्य सरकार सुझाए गए प्रश्नगत दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। वित्त आयोग तथा योजना आयोग आवश्यक रूप से दो पृथक-पृथक निकाय होने चाहिए वित्त आयोग को अवक्रमण तथा सहायता अनुदान के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है वित्त आयोग के कार्य सांविधिक स्वरूप के हैं जबकि योजना आयोग के कार्य असांविधिक स्वरूप के है। मौजूदा प्रणाली में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। यह स्पष्ट नहीं है कि स्थायी वित्त आयोग का आशय क्या है और क्या अनिश्चित काल के लिए एक निकाय होना चाहिए यह बात भी स्पष्ट नहीं है कि स्थायी वित्त आयोग के सदस्यों का गठन किस प्रकार किया जाएगा। जैसा कि अनुभव रहा है विभिन्न वित्त आयोगों ने एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए हैं और इस दृष्टि से यह वांछनीय नहीं है कि एक स्थायी वित्त आयोग हो। किसी भी स्थिति में वित्त आयोग के कार्य वर्तमान की तरह सीमित किए जाने चाहिए। योजना आयोग के कार्य पूर्णतः भिन्न स्वरूप के हैं। जो भी व्यवहार्य कठिनाइयां अनुभव की जाएं उनका उपाय स्वीकार्य समाधान खोजने के लिए प्रयत्न करना है। वित्त आयोग तथा योजना आयोग को एक दूसरे की पूरक भूमिका निभानी पड़ती है और उन्हें बदलती हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। स्थायी वित्त आयोग होने से इस प्रणाली में अनावश्यक रूप से अनन्यता आ जाएगी।

5.10 इस संबंध में निश्चित रूप से कहना कठिन है कि आनुक्रमिक वित्त आयोगों या अन्यथा की सलाह पर संघ से राज्यों को सांविधिक तथा विवेकाधीन, दोनों, अन्तरणों से किस सीमा तक कार्यक्षमता में वृद्धि हुई है और खर्च में मितव्ययिता आई है। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि अब भी खर्च में मितव्ययिता के लिए बहुत गुंजाइश है। दक्षता के संबंध में उपलब्धि के विभिन्न स्तर हो सकते हैं। इसमें संदेह नहीं है कि इसमें अधिक दक्षता के लिए गुंजाइश है। तथापि राज्यों के बीच सार्वजनिक खर्च में असमानताएं कम करने के संबंध में यह कहा जा सकता है कि अन्तरणों से असमानताएं कम हो गई हैं। विशेष रूप से सहायता अनुदान तथा विवेकाधीन अनुदानों से राज्यों के बीच सरकारी खर्च में असमानताएं कम करने में काफी हद तक सहायता मिली है। इस संबंध में यह स्मरण कराया जा सकता है कि पिछले दो वित्त आयोगों ने राज्यों को प्रशासन का स्तर बढ़ाने के लिए सहायता अनुदान की सिफारिश की है।

5.11 राज्य सरकार उपर्युक्त प्रश्न में व्यक्त किए गए विचार से सहमत है। केन्द्र तथा राज्यों, दोनों, में बड़ा वित्तीय अनुशासन अपेक्षित है। भारत सरकार को वित्तीय अनुशासन और उपलब्ध संसाधनों के प्रतिकूल खर्च करने संबंधी बातों में तथा राजस्व घाटे का कारण होने वाले अनधाधी उपाय अपनाने के संबंध मे बहुत सख्ती बरतनी चाहिए। कुछ राज्यों द्वारा इस कल्पना के आधार पर

वित्तीय अनुशासन का अनुसरण न करने तथा प्रगतिशील नीतियों को कार्यान्वित करने में शिथिलता बरतने की संभावना है कि वे राजस्व अन्तर पूरा करने तथा स्तर बढाने के लिए वित्त आयोग से सहायता अनुदान प्राप्त करेंगे, भारत सरकार को राज्यों के वित्तीय अनुशासन पर निगरानी रखनी चाहिए, वस्तुत: हमारा राज्य उन राज्यों को कुछ प्रोत्साहन तथा बोनस प्रदान करने के प्रबल पक्ष में है जो अपनी वित्त व्यवस्था सावधानी पूर्वक करते हैं । राज्यों के लिए प्रगामी उपाय करने भी आवश्यक हैं जिसमें ऐसे उपाय शामिल हैं जिनसे अन्तत: अधिक राजस्व प्राप्त होता है । अन्यथा इसका आशय यह होगा कि जो राज्य प्रगामी उपाय करते हैं और राजस्व में वृद्धि करने के लिए भरसक प्रयत्न करते है इस कारण से दण्डित किए जाते हैं कि उन्हें कोई सहायता अनुदान नही मिलता और निर्बल राज्यों का सहायता अनुदान के माध्यम से धनराशि प्राप्त होती है चाहे वे वित्तीय अनुशासन तथा प्रगामी उपाय नही अपनाते परन्तु वे जनवादी योजना अपनाते है । वित्त आयोग तथा योजना आयोग को राज्यों के संसाधनों के अन्तरणों पर निर्णय लेते समय इस पहलू को ध्यान में रखना चाहिए ।

5.12 हम इस विचार से सहमत है । वस्तुत: हम एक कदम और आगे बढ़ेंगे और कहेंगे कि ससाधनों का अधिकतम संभावित अन्तरण कर शेयर करके किया जाना चाहिए, इस प्रकार सहायता अनुदान के लिए अनुपूरक नियम की भी कम आवश्यकता पड़ेगी ।

5.13 सरकार अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान के संबंध में सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों से सहमत है इससे यह लक्षित होता है कि किसी भी श्रेणी का राज्य सहायता अनुदान के लिए पात्र है और साधारण पठन से वर्तमान व्यवस्था इसी बात की द्योतक है । तथापि सातवें वित्त आयोग ने टीका–टिप्पणी की है कि राजकोषीय अन्तर पूरा करने के लिए सहायता अनुदान के संबंध में सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की दक्षता एवं विवेकपूर्ण प्रबन्ध के अनुरूप खर्च में मितव्ययिता लाने के लिए योजना के लक्ष्यों के संबंध में पृथक–पृथक राज्य द्वारा किए गए कर प्रयत्नों पर विचार किया जाना चाहिए । राज्य सरकार का विचार है कि सातवें वित्त आयोग की इन टीका–टिप्पणियों को स्वीकार किया जाना चाहिए ।

इस संबंध मे हम प्रश्नमाला मे अन्यत्र दिए गए उत्तरों में अपनी अपनी टीका-टिप्पणियां दोहराना चाहते हैं कि तथाकथित सम्पन्न राज्य भी सहायता अनुदान के पात्र होने चाहिए । क्योंकि जैसा कि अन्यत्र उल्लेख किया गया है कि महाराष्ट्र के शहरीकरण किए जाने तथा बम्बई नगर, जहां पहले ही सीमा से बढ़ कर नागरिक सेवाएं तथा सुख–सुविधाएं प्रदान की गई है , के जनसंख्या घनत्व के कारण उसकी अपनी विशिष्ट समस्याएं है । जब तक भारत सरकार इसे राष्ट्रीय समस्या नहीं समझती तथा उसके लिए विशेष निधि का अनुदान नहीं करती तब तक इस समस्या का समाधान करना राज्य सरकार के लिए संभव नही होगा ।

5.14 राज्य सरकार इस दावे संबंधी तर्क से सन्तुष्ट है कि विशेष धारक बांड योजना से प्राप्त धन राशि तथा पैट्रोलियम, कोयला आदि जैसी मदों की निर्देशित कीमतें बढ़ाने से प्राप्त हुआ राजस्व समुचित रूप से कराधान के विभाज्य पूल के अधीन आना चाहिए ।

जहां तक विशेष धारक बाण्ड योजना का संबंध है, अर्थव्यवस्था में प्रचलित काले धन के भाग को समाप्त करने के लिए भारत सरकार ने विशेष धारक बाण्ड जारी किए जो 2 फरवरी, 1981 से 30 अप्रैल, 1981 तक और पुन: 1 दिसम्बर, 1981 से 9 जनवरी, 1982 तक बिक्री के लिए उपलब्ध थे, कुल 964 करोड़ रुपए के बाण्डों की बिक्री हुई । सामान्यत: यह आय आयकर के अधीन होनी चाहिए और निवल प्राप्तियां राज्यों के बीच वित्त आयोग द्वारा निर्धारित अनुपात में शेयर की जानी चाहिए । इस बात को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार की यह राय है कि विशेष धारक बाण्ड योजनाओं से प्राप्त आय विभाज्य पूल के अधीन आनी चाहिए ।

केन्द्र पैट्रोलियम उत्पादों, कोयला, सीमेंट आदि जैसी वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क बढ़ाने के स्थान पर उत्पाद शुल्क लगाने योग्य माल की निर्देशित कीमतों में वृद्धि कर रहा है, ऐसा संघ के लिए अधिक साधन जुटाने के लिए किया गया है । पैट्रोलियम उत्पादों के मामले में उत्पाद शुल्कों में अन्तिम मुख्य वृद्धि 1979–80 के बजट में की गई थी । तत्पश्चात् संघ सरकार ने केवल जून, 1980 जनवरी, 1981 तथा जुलाई, 1981 में उनकी कीमतें बढ़ाई हैं । इन कीमत वृद्धियों से प्राक्कलित कुल वार्षिक आय 4,000 करोड़ रुपए से अधिक है जिसका लाभ राज्यों को उपचित नहीं हुआ । यदि यह राजस्व उत्पाद शुल्कों के रूप में जुटाया गया होता तो राज्यों को उत्पाद शुल्क में अपने शेयर के रूप में अधिक राशि प्राप्त होती । राज्यों को न केवल इस कारण से हानि पहुंची है वरन् उन पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ा है, क्योंकि उन पर कीमतों में वृद्धि होने के कारण भी बोझ पड़ा है । इसलिए केन्द्र द्वारा अपनाये गए किसी भी उपाय पर राज्यों की दृष्टि से भी सावधानीपूर्वक विचार किए जाने की आवश्यकता है और केन्द्र को राज्यों के हितों को हानि पहुंचा कर केवल अपने हितों पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए ।

5.15 सरकारी क्षेत्र द्वारा मुख्यत: लघु बचतों, भविष्य निधियों, बाजार ऋणों (बाण्ड तथा डिबेंचरों सहित) के माध्यम से राष्ट्रीयकृत बीमा कंपनियों सहित राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से समाज की बचत प्राप्त कर ली जाती हैं । परन्तु लघु बचतों तथा भविष्य निधियों के मामलों को छोड़कर, इस प्रकार की गई बचतों में राज्यों के हिस्से का राज्य से बचत जुटाने या वसूली करने से राज्य के निष्पादन से संबंध नहीं है । हम यह अनुभव करते हैं कि राज्यों के बीच बाजार ऋण के वितरण के लिए और संस्थागत एजेंसियों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों के माध्यम से की गई बचतों के वितरण के लिए और विभिन्न राज्यों में विकास कार्यकलापों में उनका निवेश विनिश्चित करने के लिए तर्कसंगत कसौटी होनी चाहिए ।

हमारी राय में लघु बचत संग्रहण में राज्यों के शेयर में वर्तमान समय में निवल संग्रहण के 2/3 से बढ़कर निवल राशि का 3/4 करने की गुंजाइश है, क्योंकि राज्यों को ऋण सहायता निवल संग्रहण पर दी जाती है, अत: केन्द्र द्वारा प्रतिसंदाय दायित्व पर पहले ही ध्यान रखा जाता है ।

राज्यों के बीच बाजार ऋणों का वितरण अन्य बातों के साथ–साथ राज्यों की प्रतिसंदाय क्षमता से सहबद्ध किया जा सकता है । यह राष्ट्रीयकृत बीमा कंपनियों द्वारा विकास कार्यकलापों में निवेश की गई निधियों की आवश्यकता सम्बद्ध समस्या भी है ।

5.16 वित्त आयोग केन्द्र से राज्यों को निधियों के अवक्रमण के संबंध में सिफारिश करने से पहले केन्द्र की अपेक्षाओं पर भी ध्यान देता है । यद्यपि केन्द्र के दायित्व कम है तथापि, वे महत्वपूर्ण स्वरूप के हैं । सिंचाई, बिजली, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज कल्याण आदि जैसे––विकास तथा कल्याण कार्यों के मुख्य दायित्व का बोझ राज्यों के कन्धों पर पड़ता है । राज्य के दायित्व हमेशा बढ़ रहे हैं । राज्यों के संसाधन लोचहीन हैं और केन्द्र द्वारा समय समय पर तैयार किए गए कराधान उपायों से ऐसी स्थितियां पैदा हो जाती हैं जिससे राज्यों को अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है । राज्यों को सभी विकास प्लान योजनाओं से अतिरिक्त राजस्व प्राप्त नहीं होता और प्लान अवधि के अन्त में राज्य सरकार को प्रतिबद्धता खर्च भी वहन करना पड़ता है । महाराष्ट्र राज्य को मुख्यत: वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है और कई जिले सूखा प्रवृत्त हैं । सूखा पड़ने के दौरान राज्य को बहुत खर्च करना पड़ता है और इसके अतिरिक्त सिंचाई तथा बिजली की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । राज्य के राजस्व पर भी असर पड़ता है । इन सभी कारणों से राज्य के राजस्व पर पर्याप्त दबाव पड़ता है । केन्द्रीय ऋण के प्रतिसंदाय से भी राज्यों पर बहुत अधिक बोझ पड़ता है । वित्त आयोग द्वारा इस राज्य को दी गई राहत बहुत कम है इसके विपरित केन्द्र अपने लोचदार राजस्व के कारण राज्यों से बेहतर स्थिति में है । राज्यों के लिए मुद्रास्फिति, प्राकृतिक विपदाओं आदि के कारण अनिश्चित परिस्थितियां में अपने संसाधनों से अपना खर्च पूरा करना बहुत कठिन है ।

5.17 राज्य सरकार इस बात से सहमत है कि राज्यों की बढ़ती हुई ऋण ग्रस्तता की समस्या की समय–समय पर समीक्षा करना आवश्यक है । इसमें कोई संदेह नहीं कि वित्त आयोग ऋण राहत की सिफारिश करतें हैं परन्तु ये सिफारिशें कई राज्यों पर समुचित रूप से लागू नहीं होती । अत: ऋण राहत के संबंध में केवल आवधिक सिफारिशें पर्याप्त नहीं हैं । अधिक मौलिक उपागम आवश्यक है । राज्यों को संसाधनों के अन्तरण में ऋण घटक न्यूनतम होने चाहिए । इसलिए राज्यों के लिए योजना सहायता में ऋण तथा अनुदान घटकों के समानुपात में परिवर्तन करने की आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त केन्द्र को अपने द्वारा प्राप्त बाह्य सहायता का बहुत बड़ा भाग राज्यों की बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के

लिए देना चाहिए। इस संबंध में राज्यों को दी जाने वाली अतिरिक्त योजना सहायता भी उन अत्यधिक रियायती शर्तों पर होनी चाहिए जिन पर केन्द्र बाह्य सहायता प्राप्त करता है। लघु बचत ऋण भी सातवें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अनुसार बेमियादी ऋण समझे जाने चाहिए। जब तक समस्या का पूर्णत: समाधान नहीं खोज लिया जाता तब तक अधिक आवधिक समीक्षाओं से राज्यों पर पड़ने वाला ऋण सेवा का बढ़ता हुआ बोझ कम नहीं होगा।

5.18 हां, हम इस विचार से सहमत हैं कि राज्यों की ऋण लेने की क्षमता तथा स्वतंत्रता पर अनुचित रूप से प्रतिबन्ध लगाया गया है क्योंकि खुले बाजार के ऋणों के विनिधान में राज्यों की क्षमता तथा आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है। निम्नलिखित पैराओं में इस विचार को अधिक विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है।

तृतीय योजना के समय से खुले बाजार के ऋणों तथा योजना परिव्यय के आंकड़े निम्नलिखित है :—

योजना अवधि	बाजार ऋण (कोष्ठकों में योजना परिव्यय) (करोड़ रु० में)		योजना परिव्यय में ओ० बी०एम० का प्रतिशत		ऋणों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों का प्रतिशत शेयर	
	केन्द्र	राज्य	केन्द्र	राज्य	केन्द्र	राज्य
तीसरी योजना	307 (4,412)	516 (4,165)	7	12	37	63
चौथी योजना	1,567 (8,783)	773 (7,367)	18	14	60	40
पांचवी योजना	3,746 (20,586)	2,133 (18,717)	18	11	64	36
छठी योजना	15,000 (48,900)	45,000 (48,600)	31	9	77	23

उपर्युक्त तालिका से यह देखा जा सकता है कि बाजार ऋणों में राज्यों का प्रतिशत शेयर जो तीसरी योजना में 63 प्रतिशत था छठी योजना में कम होकर 23 प्रतिशत हो गया था जबकि इन अवधियों के दौरान केन्द्र तथा राज्यों के योजना आकार में पर्याप्त अन्तर नहीं था। इसी प्रकार राज्यों के संबंध में योजना परिव्यय में ओ० एम० बी० का प्रतिशत शेयर तीसरी योजना में 12 प्रतिशत से घट कर छठी योजना में 9 प्रतिशत हो गया था, जबकि केन्द्र के संबंध में यह प्रतिशत शेयर तीसरी योजना में 7 प्रतिशत से बढ़ कर छठी योजना में 31 प्रतिशत हो गया था इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केन्द्र तथा राज्यों के बीच खुल बाजार के ऋणों के विनिधान में तदर्थ पद्धतियां अपनाई गई हैं। आठवां वित्त आयोग भी इस बात से संतुष्ट है कि राज्यों को कुल बाजार ऋणों में कम शेयर दिया जा रहा है और इसलिए उसने अपनी रिपोर्ट के अध्याय II, पैरा 2.11 में यह सुझाव दिया है कि कुल बाजार ऋणों के वितरण की मौजूदा पद्धति में संशोधन किया जाना चाहिए और राज्यों का शेयर बढ़ाया जाना चाहिए।

जहां तक राज्यों के बीच खुले बाजार के ऋणों के वितरण का संबंध है, प्रत्येक राज्य की क्षमता को ध्यान में नहीं रखा गया। चौथी योजना तक प्रत्येक राज्य के लिए बाजार ऋणों का विनिधान तदर्थ था। पांचवीं योजना के बाद से किया गया परिवर्तन केवल प्रत्येक राज्य के कोटा में पिछली योजना के ऋण के कोटा से प्रति-वर्ष 10 प्रतिशत वृद्धि करना था।

इस प्रकार उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि केन्द्र तथा राज्यों के बीच खुले बाजार के ऋणों के विनिधान तथा राज्यों के बीच परस्पर वितरण के लिए कोई ऐसी तर्कसंगत सिद्धान्त नहीं अपनाया गया है। इसलिए हम इस संबंध में निम्नलिखित तर्कसंगत सिद्धान्त सुझाते है।

(i) केन्द्र तथा राज्यों के बीच खुले बाजार के ऋणों का विनिधान केन्द्र तथा राज्यों की योजनाओं के आकारों के समानुपात में किया जाना चाहिए।

(ii) राज्यों के बीच खुले बाजार के ऋणों का परस्पर वितरण प्रत्येक राज्य में विभिन्न एजेंसियों द्वारा बचत जुटाने के समानुपात में किया जाना चाहिए।

5.19 हमारा यह विचार है कि बाहरी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के संबंध में राज्यों को केवल 70 प्रतिशत जैसा कि वर्तमान समय में किया जा रहा है परियोजनाबद्ध समस्त बाहरी सहायता प्रदान की जानी चाहिए। उक्त सहायता भी नाममात्र सेवा प्रभार सहित उसी ब्याज दर पर प्रदान की जानी चाहिए जो बाह्य एजेंसियों द्वारा प्रभारित की जा रही है। प्रतिसंदाय की अवधि भी बाह्य एजेंसी द्वारा नियत की गई अवधि को ध्यान में रखते हुए विनिश्चित की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए आई० डी० ए० सहायता के मामले में सहायता पर कोई ब्याज नहीं लगता परन्तु केवल 50 वर्ष में प्रतिसंदाय योग्य 1/2 प्रतिशत तथा 1¼ प्रतिशत के बीच पृथक-पृथक सेवा प्रभार लिया जाएगा। अन्य बाह्य सहायता भी उदार शर्तों पर (यद्यपि आई० डी० ए० सहायता के समान उदार शर्तों पर नहीं) प्राप्त की जाती हैं जबकि राज्यों से 15 वर्ष में योजना सहायता का प्रतिसंदाय करना अपेक्षित है। हम यह महसूस करते है कि केन्द्र के लिए राज्यों की सहायता की शर्तें उदार बनाने के लिए पर्याप्त औचित्य है।

5.20 आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद् का गठन या उसकी कार्य प्रणाली का ब्यौरा उपलब्ध नहीं है विष्णु भगवान तथा विद्या भूषण द्वारा लिखित पुस्तक "(विश्व के संविधान)" में आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद का साधारण संदर्भ है। आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद् के संदर्भ में इस पुस्तक में निम्नलिखित जानकारी दी गई है :--

> "आस्ट्रेलिया में सरकारी ऋण प्राप्तियां राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत बन गई है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1927 में राज्यों तथा संघ सरकार के बीच संघीय करार किया गया और आस्ट्रेलियाई ऋण परिषद सजित की गई यद्यपि राज्यों का परिषद् पर बहुमत मताधिकार है तथापि संघीय प्राधिकरण ऋण परिषद् के निर्णय पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता है और इससे राज्य के लोग वित्तीयन पर प्रभाव डाल सकता है"।

इसलिए यह स्पष्ट है कि यदि आस्ट्रेलियाई पद्धति पर ऋण परिषद् स्थापित की जाती है तो निषेधाधिकार के कारण उससे कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

तथापि जैसा प्रश्न में उल्लिखित है परिषद् का प्रयोजन सीमित यथा राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित मूलधन की ऋण सीमाएं नियत करना है। इसका आशय यह है कि परिषद् को वितरण के सिद्धान्त निर्धारित करने का अधिकार नहीं है, यह अनुभव किया गया है कि सीमित प्रयोजन वाली ऐसी परिषद् से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। केन्द्र तथा राज्यों के बीच और राज्यों के बीच परस्पर वितरण के संबंध में ओ० एम० बी० के वितरण के कुछ सिद्धान्त निर्धारित करना और इस प्रकार तदर्थ वितरण की वर्तमान पद्धति पर रोक लगाना आवश्यक होगा। सरकार का यह विचार है कि ओ० एम० बी० के वितरण के संबंध में सिद्धान्त बनाने के लिए ऋण परिषद् के स्थान पर केन्द्र के अधिकारियों और सभी या कुछ मुख्य राज्यों के वित्त सचिवों की मिली-जुली एक समिति स्थापित की जानी चाहिए। समिति की सिफारिश राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए।

जहां तक राज्यों तथा केन्द्र द्वारा ऋण लेने के संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक की कार्य प्रणाली का संबंध वर्तमान समय में भा० रि० बैं० विनिधान विनिश्चित करने के मामले में कोई भूमिका नहीं निभाता क्योंकि योजना के आकार के वित्त पोषण के लिए योजना आयोग के उपाध्यक्ष तथा राज्यों के मुख्य मंत्रियों की बैठक में प्रत्येक राज्य के निवल ऋण प्राप्तियों की सीमा नियत की जाती है। सामान्यत: पिछले वर्ष के निवल ऋणों से 10 प्रतिशत या 20 प्रतिशत अधिक ऋण अनुमत किया जाता है। राज्यों की निवल ऋण प्राप्तियां एक बार नियत की जाने पर राज्य भारत सरकार को राज्य सरकार तथा विभिन्न स्वायत्त निकायों के बीच अपने आन्तरिक वितरण की सूचना देता है। भारत सरकार प्रत्येक राज्य द्वारा किए गए निवल ऋणों के वितरण की सूचना भा० रि० बैं० को देती है जो निवल ऋणों में वर्ष में देय प्रतिसंदाय की राशि जोड़कर सकल ऋणों का परिकलन करता है और अधिसूचित किए जाने वाली राशि निर्दिष्ट करता है। अत: भा० रि० बैं०

समन्वय संबंधी सीमित कार्य करता है और इस संदर्भ में भा० रि० बैं० के कार्यचालन में सुधार करने के संबंध में इस सरकार का कोई सुझाव नहीं है।

5.21 भा० रि० बैं० के साथ राज्यों की अर्थोपाय सीमाएं राज्य तिजोरियों में प्राप्ति के प्रवाह तथा खर्च की गति के बीच अस्थायी असंतुलन के विरुद्ध कुशन प्रदान करने के लिए आशयित है। यदि आय तथा खर्च के बीच असंतुलन अस्थायी न होकर अधिक सुदृढ़ हो तो अर्थोपाय सीमाओं से सतत आहरण तथा ओवर ड्राफ्ट लेना पड़ेगा।

इसके कई कारण हो सकते हैं। जिसमें कुछ कारण इस प्रकार हैं, पहला, राज्य अनुमेय संसाधनों से अधिक परिव्यय हाथ में लेंगे और ऐसी प्रक्रिया में अर्थोपाय सीमाओं तथा भा० रि० बैं० से ओवर ड्राफ्ट को अस्थायी समायोजन न समझकर संसाधन समझेंगे। दूसरा, वर्ष के दौरान बहुत अधिक मात्रा में अवजटित खर्च अनुमत किया जा सकता है जिसमें महंगाई भत्ते की अतिरिक्त किस्तें शामिल हैं जिसके लिए पर्याप्त व्यवस्था न की गई हो परन्तु अर्थव्यवस्था में सतत स्फीतिकारी प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ऐसा करना आवश्यक हो गया है, तीसरा प्रचण्ड सूखा या भीषण बाढ़ या किसी अन्य आपात स्थिति के कारण आपातिक खर्च किया जाना अपेक्षित हो। भले ही इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सहायता प्राप्त कर ली जाए परन्तु यह राशि राज्यों द्वारा किए गए खर्च से पर्याप्त कम होती है। इसके अतिरिक्त पहले आपात आधार पर खर्च किया जाता है जबकि केन्द्रीय सहायता बाद में प्राप्त होती है। चौथा, कभी-कभी केन्द्रीय रूप से प्रायोजित योजनाओं में निधियों के प्रवाह तथा खर्च उपगत होने के बीच कुछ महीनों का अन्तराल होता है। पांचवां विभागों और राज्य उपक्रम तथा उद्यमों, जो प्रत्याशित प्रतिलाभ नहीं देते के बीच वित्तीय अनुशासन में कुछ शैथिल्य से इनकार नहीं किया जा सकता छठा, ब्याज की अदायगी तथा केन्द्रीय ऋण की वापसी पर राज्यों द्वारा केन्द्र को तिमाही अदायगी से कुछ महीनों के दौरान अर्थोपाय स्थिति पर भारी दबाव पड़ता है क्योंकि इन महीनों के दौरान प्राप्तियों में समरूपता नहीं होती ऐसी स्थिति अप्रैल के महीने में अधिक आती है जबकि प्राप्तियां बहुत कम होती हैं। इसलिए इन महीनों के दौरान अर्थोपाय कुशन पर्याप्त नहीं हो सकता।

इसमें संदेह नहीं कि जुलाई 1982 में सामान्य अर्थोपाय सीमाएं दुगुनी हो गई थीं। परन्तु इससे तब तक ओवरड्राफ्ट होने या अर्थोपाय सीमाओं से सतत तथा निरन्तर आहरणों का निराकरण नहीं हो सकता जब तक कि ऊपर निर्दिष्ट मौलिक कारण मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त अर्थोपाय सीमाएं किसी वर्ष में राज्यों के राजस्व खर्च के अनुसार निर्धारित की गई थी। परन्तु वर्षानुवर्ष राजस्व खर्च तथा कुल खर्च तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है जबकि अर्थोपाय सीमाएं नहीं हैं उदाहरण के लिए जब 1982 में अर्थोपाय सीमाएं दुगुनी हो गई थी तो महाराष्ट्र का कुल खर्च 8,799.40 करोड़ रुपए था जबकि 1985-86 के लिए प्राक्कलित खर्च 10,178.64 करोड़ रुपए है। अत: अर्थोपाय सीमाओं में समय समय पर संशोधन करना आवश्यक है।

5.22 इस संबंध में कोई सामान्य टिप्पणी करना कठिन है कि राज्य अपने स्रोतों का समुचित रूप से उपयोग नहीं कर रहे हैं। राज्य सरकारों के राजस्व स्रोत लोचदार नहीं हैं और हर वर्ष अतिरिक्त संसाधन जुटाना कठिन हो जाता है, वस्तुत: अब अतिरिक्त कराधान अधिरोपित करना बहुत कठिन है। यह बात कि क्या राज्य अपने राजस्व संसाधनों का पूर्णत: उपयोग करते हैं या नहीं वित्त मंत्रालय, केन्द्र सरकार में स्थापित वित्त आयोग प्रभार के माध्यम से वित्त आयोग के निर्णय पर छोड़ देना चाहिए।

राज्य सरकारों के राजस्व का मात्र मुख्य स्रोत बिक्री कर है। राज्य सरकारों ने वस्त्र, तम्बाकू तथा चीनी पर बिक्री कर के संबंध में अपने अधिकार केन्द्र सरकार को सौंप दिए हैं। तथापि केन्द्र सरकार ने इस संबंध में अपनी वचनबद्धता पूरी नहीं की है। अनुच्छेद 268 तथा 268 की व्यवस्था के अनुसार राज्यों के राजस्व स्रोत भारत सरकार के हाथ में है। केन्द्र सरकार ने अनुच्छेद 269 में निर्दिष्ट मदों में से कुछ मदों के संबंध में कराधान उद्गृहीत नहीं किया है। राज्य सरकारें अपने अनम्य संसाधनों के कारण कराधान द्वारा अधिक राज्य प्राप्त करने की कठिन स्थिति में हैं।

5.23 राज्य सरकार के लिए इस विचार पर टीका-टिप्पणी करना कठिन है कि केन्द्र सभी राजस्वों का निर्धारण तथा उनकी वसूली नहीं कर रहा है जो वह कर सकता है और उसे करना चाहिए। यह बात हम केन्द्र सरकार पर छोड़ देते हैं कि वह इस दिशा में भरसक प्रयत्न करे।

यह आवश्यक है कि सरकारी क्षेत्र के उपक्रम सही ढंग से चलाए जाएं और उनके कार्य निष्पादन के संबंध में आवधिक समीक्षा की जाए। जब तक ऐसा नहीं किया जाता प्रत्याशित प्रतिलाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

केन्द्रीय कराधान में क्षरण के संबंध में राज्य सरकार यह साबित करने के लिए कि केन्द्रीय कराधान में क्षरण है सामग्री के अभाव में कोई टीका-टिप्पणी नहीं कर सकती। केन्द्रीय सरकार को यह देखने के लिए कि केन्द्रीय कराधान में क्षरण न हो समुचित पूर्वोपाय करने चाहिए।

5.24 राज्य सरकार इस बात से सहमत है कि यदि संघ सरकार अनुच्छेद 268 तथा 269 में निर्दिष्ट शुल्क तथा कर लगाने या उनकी दर संरचना में परिवर्तन करने या उन्हें समाप्त करने के लिए विधेयक पेश करने से पहले राज्य सरकारों की राय जान ले और उस पर समुचित रूप से विचार करे तो यह एक अच्छी परिपाटी होगी, तथापि यह बताना संभव नहीं है कि इस प्रकार उक्त कार्यविधि राज्य वित्त व्यवस्था में स्थिरता लाने में सहायक होगी।

5.25 राज्य सरकार का यह विचार है कि संविधान के अनुच्छेद 269 का समुपयोजन राज्यों के संसाधनों की संवृद्धि के लिए किया जाना चाहिए। राज्य सरकार का विचार है कि निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए :--

(1) रेल भाड़े पर कर लगाए जाने चाहिए।

(2) हवाई यात्रा करने वाले यात्रियों पर आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय उड़ानों पर 1 प्रतिशत की दर से हवाई किराया और उसी दर पर हवाई माल पर सीमाकर लगाया जाना चाहिए।

(3) यदि राज्यों को राजस्व की क्षतिपूर्ति करने के लिए वर्तमान समय में रेल यात्री किराए पर कर के बदले में अनुदान में समय समय पर समुचित वृद्धि नहीं की जाती तो रेल यात्रा किराए पर समुचित दर पर कर पुन: अधिरोपित किया जाना चाहिए।

(4) रेल द्वारा वहन किए जाने वाले सामान तथा विभिन्न प्रकार के पार्सलों का वर्गीकरण सेवा की लागत तथा सेवा के मूल्य के सिद्धान्त के आधार पर रेल टैरिफ जांच समिति (1980) द्वारा सुझाई गई पद्धति पर विस्तार में समुचित रूप से किया जाना चाहिए और मालभाड़े पर समुचित दरों पर कर लगाया जाना चाहिए।

(5) समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों पर कर लगाना आरम्भ किया जाना चाहिए। आठवें वित्त आयोग ने कहा है कि ऐसे कर के माध्यम से राजस्व प्राप्त करने की गुंजाइश है।

(6) केन्द्रीय बिक्री कर की दर मौजूदा 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत की जानी चाहिए।

5.26 राज्य सरकार का यह विचार है कि कुल गैर-उपनगरीय यात्री आय जो कर निरसित न किए जाने पर कर घटक होता, के 10.7 प्रतिशत के आधार पर अनुदान दिया जाना चाहिए और इसका परिकलन भावी आय के आधार पर किया जाना चाहिए। इस आधार पर राज्य सरकार का प्राक्कलन यह है कि राज्य प्रतिवर्ष 125 करोड़ रुपए के अनुदान का पात्र होगा आठवें वित्त आयोग ने यह सिद्धान्त स्वीकार किया है कि गैर-उपनगरीय यात्री आय पर 10.7 प्रतिशत की दर से अनुदान दिया जाना चाहिए, यह सिफारिश भावी वित्त आयोगों को स्वीकार करनी चाहिए। आठवें वित्त आयोग ने वर्ष 1981-82 तक तथा उसके लिए उपलब्ध गैर-उपनगरीय यात्री आय के आंकड़ों पर आधारित 1984-85 से 1988-89 तक प्रत्येक वर्ष के लिए प्रतिवर्ष 95 करोड़ रुपए के अनुदान की सिफारिश की है। आयोग ने रेलवे की कठिन वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए अनुदान की मात्रा में वार्षिक वृद्धि करने का सुझाव नहीं दिया है। भारत सरकार ने आठवें वित्त आयोग की सिफारिश स्वीकार कर ली है और यह कहा है कि मामला रेलवे समागम समिति को भेजे जाने की आवश्यकता है। आठवें वित्त आयोग की सिफारिश रेलवे समागम समिति द्वारा स्वीकार किए जाने पर कार्यान्वित की जाएगी तथापि राज्य सरकार का यह विचार है कि आठवें वित्त आयोग द्वारा संस्तुत अनुदान की अदायगी रेलवे समागम समिति द्वारा सिफारिश स्वीकार किए जाने की शर्त के बिना की जानी चाहिए।

5.27 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है ।

5.28 सामान्यतः प्राकृतिक विपत्तियां दो श्रेणियों के अन्तर्गत आती हैं, (1) अधिक वर्षा होने से फसल को क्षति, बाढ़ ओला वृष्टि, भूकम्प तथा अग्नि से क्षति के कारण उत्पन्न स्थिति, और (2) सूखे के कारण उत्पन्न स्थिति ।

जहां तक ऊपर (1) में उल्लिखित प्राकृतिक विपत्तियों का संबंध है राज्य सरकार का विचार है कि वर्तमान पद्धति समुचित है ।

सूखे के संबंध में मामले पर वास्तविक दृष्टिकोण से विचार किए जाने की आवश्यकता है । महाराष्ट्र में कई जिले सूखा-प्रवृत्त हैं । इसी प्रकार मानसून के विफल होनेपर कई अन्य जिले प्रभावित होते हैं, महाराष्ट्र में सकल फसल क्षेत्र का 70 प्रतिशत भाग वर्षा पर निर्भर कृषि का है । इस राज्य के 98 तालुके जो सकल फसल क्षेत्र का 1/3 भाग हैं, लम्बे समय से सूखा प्रवृत्त क्षेत्र के रूप में अभिनिर्धारित हैं । इसलिए महाराष्ट्र अन्य प्राकृतिक विपत्तियों की तुलना में सूखे से अधिक प्रचण्ड रूप से प्रभावित है और महाराष्ट्र के लिए यह स्थिति विशेषतः जब आनुक्रमिक वर्षों के दौरान सूखा पड़ता है, विशेष समस्या बन गई है ।

सातवें वित्त आयोग ने राहत खर्च के कारण राज्य के वित्त के अव्यवस्थित होने के अवांछनीय प्रभाव को स्वीकार किया है । उसने यह भी उल्लेख किया है कि सूखे की अवधि के दौरान राज्य के बजटों में राज्यों की सामान्य राजस्व की हानि होती है और राज्य की अर्थव्यवस्था में गतिरोध उत्पन्न होता है । महाराष्ट्र राज्य योजना राशि का अधिकांश भाग मूल बाध्यताओं के कारण सिंचाई तथा बिजली क्षेत्रों पर खर्च हो जाता है और शेष योजना राशि का पर्याप्त भाग चालू स्वरूप की सामाजिक आधारिक संरचना पर खर्च होता है जिससे सूखे की स्थिति में कमी लाने के लिए अपेक्षित स्वरूप के नियोजन कार्यों से असम्बद्ध सेवाएं अर्जित होती हैं । सामान्य मौसम में भी सूखा-प्रवृत्त जिलों में अधिक श्रमिकों के आने से नियोजन गारंटी योजना खर्च अधिक है । अतः योजना राशि का अधिकांश भाग नियोजन गारंटी योजना पर खर्च हो जाता है । यदि ये जिले सूखे से प्रभावित हों तो यह समस्या और विकट बन जाती है । सूखा राहत के संबंध में मुख्य बाध्यता यह है कि जब सप्लाई से सम्बद्ध योजना कार्यक्रम कुछ वर्ष पहले अभिनिर्धारित समस्याग्रस्त गांवों में कार्यान्वित करने के लिए सीमित है और इसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा गया है कि सूखे के वर्ष में जब वर्षा बहुत कम हो तो तथाकथित सामान्य गांव भी सूखा-ग्रस्त बन जाते हैं । पेय जल की परम अग्रता होने के कारण राज्य सरकार इस संबंध में अपने दायित्व से विमुख नहीं हो सकती ।

वर्तमान फार्मूले के अधीन केवल वार्षिक योजना परिव्यय के 5 प्रतिशत की सीमा तक अग्रिम योजना सहायता उपलब्ध है और केन्द्र से कोई अतिरिक्त सहायता प्राप्त नहीं होगी । केवल तभी अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता उपलब्ध होती है जबकि किसी वर्ष के दौरान कुल राहत खर्च 5 प्रतिशत की सीमा से अधिक होने की संभावना है । यदि खर्च 5 प्रतिशत की सीमा से अधिक है तो केन्द्रीय सहायता 50 प्रतिशत अनुदान तथा 50 प्रतिशत ऋण के रूप में दी जाती है । यद्यपि यह फार्मूला रोजगार उत्पन्न करने वाले कार्यों तथा योजना स्वरूप के अन्य ऐसे कार्यों के लिए खर्च पूरा करता है जैसे पेय जल सप्लाई के लिए स्थायी उपाय कुछ चालू योजनाओं की क्षमता बढ़ाकर या नई योजनाएं आरम्भ करके कृषि उत्पादन की हानि पूरा करने या कृषि उत्पादन के संवर्धन के उपाय इसके अन्तर्गत गैर-प्लान योजनाएं नहीं आती । टैंकरों तथा बैलगाड़ियों द्वारा आपात जल सप्लाई, चारे जैसी गैर-योजना, चिकित्सा देखभाल, डोल आदि मदों की सप्लाई का खर्च स्वयं राज्य सरकार को वहन करना होता है ।

राज्य सरकार का विचार है कि खर्च तथा अग्रिम योजना सहायता के बीच संयोजन समाप्त किया जाना चाहिए और दुर्लभता राहत के कारण होने वाला अतिरिक्त खर्च जो मौजूदा योजना कार्यक्रमों तथा सीमान्त धन राशि से पूरा नहीं किया जा सकता, का वित्त पोषण केन्द्रीय सहायता के माध्यम से 75 प्रतिशत तक अनुदान से किया जाना चाहिए और शेष 25 प्रतिशत राज्य सरकार वहन करे । इसके अतिरिक्त सूखा राहत सहायता में आपात पेय-जल सप्लाई, चारा, डोल, चिकित्सा, देखभाल आदि गैर-योजना खर्च शामिल होना चाहिए । इसी प्रकार राहत के लिए सहायता प्रदान करते समय मशीनरी, कुशल श्रमिक सामग्री, परिवहन आदि पर अकुशल श्रमिकों की मजदूरी के खर्च सहित राहत कार्यों पर समस्त खर्च हिसाब में लिया जाना चाहिए । यदि सूखे के कारण उत्पन्न स्थिति के संबंध में केन्द्र द्वारा दी गई सहायता पर्याप्त न होगी तो राज्य की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और यदि सूखे की स्थिति क्रमिक वर्षों में भी बनी रहती है तो यह समस्या और विकट हो जाएगी ।

जहां तक प्रश्न के द्वितीय भाग का संबंध यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि राहत सहायता का इष्टतम उपयोग किया गया है । भारत सरकार राज्य सरकारों से विवरणी मांग सकती है और भारत सरकार के अधिकारी भी सत्यापन के लिए राज्यों में जा सकते हैं ।

5.29 उत्पादक तथा आर्थिक रूप से जीवनक्षम परियोजनाओं के लिए ऋण प्राप्त करने तथा ऋण का उपयोग करने के प्रयोजन से राष्ट्रीयकृत बैंकों के संघ द्वारा समर्थित राष्ट्रीय ऋण निगम (रा० ऋण नि०) स्थापित करने के संबंध में भारत सरकार द्वारा या भारत के रिजर्व बैंक के माध्यम से राष्ट्रीयकृत बैंकों पर सीधे सामान्य नियंत्रण के संदर्भ में स्वतंत्र स्थिति सर्जित करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता । भारतीय रिजर्व बैंक राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा ऋण प्राप्त करने तथा ऋण का उपयोग करने के संबंध में सीधा नियंत्रण करता है । बैंकों को सहायता के लिए सौंपी गई परियोजनाओं का मूल्यांकन करने की अपेक्षित स्वतंत्रता/स्वायत्तता होनी चाहिए और उन पर रा० ऋण नि० जैसे निगमों के नियंत्रण द्वारा रोक नहीं लगानी चाहिए ।

सिद्धान्त रूप में ऋण संसाधनों तथा संवृद्धि की संभावनाओं का मूल्यांकन करने के लिए राष्ट्रीय ऋण परिषद स्थापित करने पर कोई आपत्ति नहीं है, तथापि, परिषद् को समग्रतः राज्यों का शेयर हमेशा के लिए निर्धारित नहीं करना चाहिए । यह प्रत्येक राज्य की विकास आवश्यकताओं के अनुसार विशेषतः हितलाभों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए या अन्यथा ऐसा शेयर संघ से राजस्व अन्तर अनुदान के रूप में प्राप्त किया गया हो । अन्तर-राज्य विनिधान के लिए राज्यों की प्रतिसंदाय क्षमता पर भी एक कारक के रूप में विचार किया जाना चाहिए ।

सिद्धान्त रूप में राज्य सरकार को ऐसी राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं है । जिसमें प्रत्येक राज्य को उचित तथा पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया हो । स्पष्टतः ऐसी आर्थिक परिषद् राज्य के संसाधनों, आधारिक संरचना सुविधाओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय पत्तन, विमान पत्तन, आदि जैसी मौजूदा वास्तविक सुविधाओं पर विचार करेगी ।

5.30 यह पहलू कि निधियों की वसूली कौन करता है और वसूल की गई निधियों का वितरण किस प्रकार किया जाए, भी बहुत संगत है यद्यपि सभी निधियां जनता से प्राप्त होती हैं । राज्य सरकार इससे सहमत है कि यह बहुत महत्वपूर्ण है कि निधियों विवेकपूर्ण ढंग से खर्च की जाए और उसका लाभ अधिकांशतः जनता को ही प्राप्त हो ।

5.31 (क) राज्य इस बात से सहमत है कि संघ के खर्च के संबंध में समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए । इससे राज्यों तथा जनता दोनों को संतोष होगा ।

(ख) राज्य सरकार इस बात से सामान्यतः सहमत है कि जिन राज्यों को यह शिकायत है कि उनके पास विकास संसाधन कम हैं उन्हें आर्थिक आधार पर एकदम न्यायोचित न होने वाले खर्च नहीं करने चाहिए । इससे कुछ संसाधन विकास प्रयोजनों के लिए उपलब्ध हो जाएंगे । कड़े वित्तीय प्रशासन की आवश्यकता है ताकि वित्त आयोग द्वारा इन राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान के मामले में इन राज्यों की आलोचना न की जा सके ।

(ग) राज्य सरकार की राय है कि केन्द्र तथा राज्यों दोनों के लिए खर्च के स्वरूप तथा गुणता और राजस्व संसाधनों की आवश्यकता के मूल्यांकन करने के लिए स्थायी राष्ट्रीय खर्च आयोग होना आवश्यक नहीं है । ऐसा आयोग होने का प्रस्ताव व्यवहार्य नहीं होगा क्योंकि इससे सम्बद्ध खर्च पर निर्णय के संबंध में विवाद तथा तर्क उत्पन्न हो जाएगा । तथापि राष्ट्रीय नीतियों तथा उद्देश्यों के अनुसार संसाधनों का इष्टतम उपयोग करने और निवेशों पर अधिकतम प्रतिलाभ प्राप्त करने की आवश्यकता के संबंध में मतैक्य होना चाहिए ।

5.32 राज्य सरकार का विचार है कि वर्तमान प्रणाली जारी रहनी चाहिए ।

5.33 वाउचर लेखा–परीक्षा नितान्त आवश्यक है क्योंकि इससे दुरुपयोग पर रोक लग जाती है । मूल्यांकन लेखा–परीक्षा भी विशिष्ट रूप से तथा महत्वपूर्ण योजनाओं के संबंध में आरम्भ की जानी चाहिए क्योंकि इससे योजनाओं को उचित रूप से तथा दक्षतापूर्वक कार्यान्वित किए जाने में सहायता मिलेगी । तथापि इसमें स्पष्टतः उपयुक्त अतिरिक्त स्टाफ सृजित करने की आवश्यकता पड़ेगी । इस संबंध में शुरूआत की जानी चाहिए और परिणामों का मूल्यांकन अतिरिक्त स्टाफ पर खर्च के अनुसार किया जाना चाहिए ।

5.34 राज्य सरकार का विचार है कि संसद ने नियंत्रक महालेखापरीक्षक को लेखे रखने तथा खर्च की लेखापरीक्षा करने के संबंध में समुचित शक्तियां प्रदान की हैं और पर्याप्त कर्तव्य सौंपे हैं ।

5.35 राज्य इस बात से संतुष्ट है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक की रिपोर्ट बहुत व्यापक तथा समुचित रूप से नहीं होती हैं ।

5.36 हमारी यह राय है कि संसद या राज्य विधान मण्डलों की लोक लेखा समिति का काम खर्च पर नियंत्रण रखना नहीं है । उनका कार्य मुख्यतः यह देखना है कि यथास्थिति संसद या राज्य विधान मण्डलों द्वारा विभिन्न प्रयोजनों के लिए मंजूर की गई धनराशि का उचित उपयोग किया गया है । इसलिए उनका नियंत्रण सरकार के खर्च की अपेक्षा मंजूर की गई निधियों के उचित उपयोग के संबंध में अधिक है ।

5.37 यह उल्लेखनीय है कि इस सरकार की प्राक्कलन समिति प्रशासन को उपयोगी विधायी तथा प्रशासनिक सलाह देने के लिए हित प्रहरी का काम करती है ।

5.38 प्रश्न संख्या 5.31 के उत्तर में राज्य सरकार ने यह विचार व्यक्त किया है कि व्यय आयोग की आवश्यकता नहीं है ।

5.39 यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा विशिष्ट योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए दिए गए सहायता अनुदान के उपयोग का उचित परिवीक्षण होना चाहिए । कुछ राज्यों ने आठवें वित्त आयोग के समक्ष अभिवेदन प्रस्तुत किया है कि उन्नयन के लिए योजनाओं के संबंध में जिसके लिए आयोग कुछ राज्यों को सहायता अनुदान देता है, कार्य की योजना के लिए केन्द्र सरकार की अनुमति लेने की आवश्यकता परिहार्य विलम्ब का कारण है । आयोग ने इस मामले पर विचार किया और कहा कि परिवीक्षण में सरलता मार्गदर्शक सिद्धान्त होना चाहिए । आयोग ने सुझाव दिया कि अनुदानों के उपयोग के परिवीक्षण के लिए भारत सरकार के स्तर पर अन्त मंत्रालय अधिकार प्राप्त समिति होनी चाहिए । समिति को आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट राशि की सीमा के अन्दर उन्नयन अनुदान में अन्तर्विष्ट वास्तविक लक्ष्यों में परिवर्तन करने की शक्ति दी जानी चाहिए । समिति उक्त अनुदान को एक योजना से किसी अन्य योजना में अन्तरित करने के लिए सक्षम होगी । आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि समिति के सदस्यों को राज्यों का दौरा करना चाहिए और उन्नयन अनुदान से निर्माणाधीन कार्य तथा स्थापित किए गए कार्यालयों का यादृच्छिक निरीक्षण करना चाहिए । आयोग ने यह भी प्रस्ताव किया है कि राज्य स्तर पर मुख्य सचिव या बहुत वरिष्ठ अधिकारी की अध्यक्षता में समरूप राज्यस्तर शक्ति प्राप्त समिति गठित की जानी चाहिए आयोग ने सिफारिश की है कि सहायता अनुदान की राशि प्रावस्थाओं में दी जानी चाहिए ।

राज्य सरकार का विचार है कि आठवें वित्त आयोग द्वारा संस्तुत उपागम भारत सरकार द्वारा राज्यों को अन्य योजनाओं के संबंध में दी गई सहायता अनुदान की बड़ी राशियां या वित्तीय सहायता के संबंध में भी अपनाया जाना चाहिए ।

भाग VI

आर्थिक एवं सामाजिक योजना

6.1 आर्थिक तथा सामाजिक योजना में केन्द्र तथा राज्यों को एक दूसरे का पूरक होने की भूमिका निभानी चाहिए । केन्द्र को विकास के विभिन्न क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय अग्रताएं तथा उद्देश्य निर्धारित करते रहना चाहिए । तथापि यह अनुभव किया गया है कि राज्य सरकारों को राज्य की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार समग्र राष्ट्रीय नीति ढांचे में स्वयं अपनी योजनाएं बनाने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता दी जानी चाहिए ।

योजना सम्बन्धों में वर्तमान कमियां दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि —

(क) पंचवर्षीय योजना के लिए उपागम को अन्तिम रूप देते समय राज्य सरकारों को सक्रिय रूप में शामिल किया जाना चाहिए, केन्द्र सरकार को योजना कार्यक्रमों के संबंध में नीति संबंधी निर्णय लेने से पहले राज्य सरकारों से निश्चित रूप से परामर्श करना चाहिए ।

(ख) राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक कम से कम वर्ष में एक बार अवश्य होनी चाहिए ।

(ग) राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकों से पहले और बाद में अधिकारी स्तर की बैठकें होनी चाहिए । अधिकारी स्तर की बैठकें यथावश्यकता बार-बार की जानी चाहिए ।

(घ) रा० वि० प० के निर्णय पर अनुवर्ती कार्रवाई सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों का एक ग्रुप गठित किया जाना चाहिए ।

(ङ) योजना आयोग को केवल अत्यावश्यक क्षेत्रों जैसे–बिजली, बड़ी सिंचाई आदि संबंध में राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित करने चाहिएं ।

(च) राज्य योजना प्रस्तावों की संवीक्षा करते समय योजना आयोग के कार्यकारी ग्रुप को मुख्यतया राज्य के क्षेत्राधिकार में आने वाले विभिन्न कार्यक्रमों के ब्यौरों का अध्ययन नहीं करना चाहिए और उन्हें केवल विद्युत और मुख्य सिंचाई इत्यादि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों तक ही सीमित रहना चाहिए ।

6.2 सांविधिक आधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद् का विधान विकेन्द्रित योजना के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो सकता है । अकानूनी सलाहकार निकाय भी समान रूप से उचित ही करेगा यदि यह अपने विस्तृत परिप्रेक्ष्य में योजना–निर्माण में और अधिक सार्थक रूप से राज्यों को इसमें सम्मिलित करता है और तत्पश्चात् विस्तृत ढांचे के अंतर्गत राज्यों को अपनी योजनाएं बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है । कानूनी शीर्ष निकाय द्वारा "स्ट्रेट जैकेट" व्यवहार किए जाने की अपेक्षा राज्यों द्वारा ऐसा प्रस्ताव स्वीकार किए जाने की अधिक संभावना है । अंतिम विश्लेषण में, सार की स्वीकृति है जोकि अकानूनी निकाय की सहायता से भी सुनिश्चित की जा सकती है ।

6.3 आयेसा वर्तमान गठन लक्ष्य और उद्देश्य बनाने के विषय में राज्य सरकार का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित नहीं करता । राज्य की योजना को अन्तिम रूप देने के लिए योजना आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि भी असंतोषजनक है क्योंकि इसमें विकास के प्रत्येक क्षेत्र/उप-क्षेत्र के अन्तर्गत प्रत्येक योजना की अनावश्यक विस्तृत संवीक्षा सम्मिलित है । राज्य सरकार का यह मत है कि राज्यों से परामर्श करके योजना प्राथमिकताओं और लक्ष्यों को अन्तिम रूप देने के बाद राज्यों को विस्तृत ढांचे के अन्तर्गत अपनी योजनाएं बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए ।

6.4 ऊपर सुझाया गया दूसरा विकल्प उचित प्रतीत होता है । तथापि, केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रशासकों और प्रतिनिधियों को भी योजना आयोग में सम्मिलित किया जाना चाहिए । कम से कम बड़े राज्यों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए योजना आयोग द्वारा एक उपयुक्त कार्य प्रणाली तैयार की जानी चाहिए ताकि नीति, उद्देश्यों और लक्ष्यों इत्यादि के विषय में राज्य सरकारों का दृष्टिकोण सदैव उपलब्ध हो ।

6.5 यह आवश्यक नहीं है कि योजना आयोग एक स्वायत्त निकाय हो लेकिन यह और राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निर्दिष्ट ढांचे के अंतर्गत अन्तिम रूप दी गई राज्य योजनाओं के प्रतिपादन और जांच में केन्द्र और राज्य सरकार की सहायता करने के लिए सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करता रह सकता है ।

6.6 हां, राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर विचार करने तथा उन्हें सम्मिलित करने की आवश्यकता है। तथापि, ऐसा करने का आशय यह नहीं है कि राज्य की स्वायत्तता से समझौता किया गया है। राज्य व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, किन्तु अपनी विशिष्ट परिस्थितियों और आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त, अपनी योजनाएं तैयार कर सकते हैं। योजना आयोग द्वारा राज्य योजना प्रस्तावों की संवीक्षा विशिष्ट योजनाओं के उद्देश्यों और परिणामों की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट होनी चाहिए। राज्य व्यापक क्षेत्रीय लागत के अंदर योजनाएं बनाने और उन्हें राज्य योजनाओं में सम्मिलित करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए।

6.7 भारत सरकार ब्लाक केन्द्रीय सहायता प्रदान करती है और विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए भी केन्द्रीय सहायता प्रदान करती है। राज्य सरकार को समस्त सहायता 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में दी जाती है। अतः यह सुझाव है कि सहायता की शर्तें संशोधित की जाएं और समस्त सहायता अनुदान के रूप में प्रदान की जाए।

विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित सहायता के विषय में यह सुझाव है कि समस्त विदेशी सहायता जो कि परियोजना-बद्ध है तथा वर्तमान में राज्य सरकार को 70 प्रतिशत दी जा रही है के स्थान पर राज्य सरकार को पूरी सहायता दी जानी चाहिए। उक्त सहायता विदेशी एजेंसियों द्वारा प्रभारित ब्याज तथा नाममात्र के सेवा प्रभार पर भी दी जा सकती है। अदायगी की अवधि भी विदेशी एजेन्सी द्वारा निर्धारित अवधि को ध्यान में रखते हुए निश्चित की जानी चाहिए। उदाहरणार्थ, आई० डी० ए० सहायता के मामले में सहायता राशि पर कोई ब्याज नहीं होता लेकिन 50 वर्षों में भुगतान योग्य इस राशि पर ½ प्रतिशत और 1½ प्रतिशत के बीच सेवा प्रभार प्रतिदेय है। अन्य विदेशी सहायता भी उदार शर्तों पर प्राप्त की जाती है (यद्यपि यह उतनी उदार शर्तों पर नहीं होती जितनी उदार शर्तों पर आई० डी० ए० सहायता होती है) जबकि राज्यों को योजना सहायता की राशि की अदायगी 15 वर्षों में करनी होती है। अतः हमारा विचार है कि केन्द्र के पास राज्यों को दी जाने वाली सहायता शर्तों को उदार बनाने का पर्याप्त औचित्य है।

6.8 और 6.9 1. योजना आयोग द्वारा अपनाए गए वर्तमान फार्मूले के अधीन योजना के लिए राज्यों को राष्ट्रीय विकास बोर्ड द्वारा अनुमोदित सम्मत फार्मूले पर केन्द्रीय सहायता वितरित की जाती है। कुल योजना सहायता के लिए, केन्द्रीय सहायता चार घटकों में दी जाती है, पहले तीन घटक (1) विशेष श्रेणी के राज्यों, (2) पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों और एन० ई० सी० योजना, और (3) विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित है। चौथा घटक 14 बड़े राज्यों को वितरित केन्द्रीय सहायता से संबंधित है जिसके अधीन महाराष्ट्र केन्द्रीय योजना सहायता का अपना हिस्सा प्राप्त करता है।

2. 14 राज्यों को केन्द्रीय सहायता के आबंटन में से (1) 60 प्रतिशत सहायता 1971 की जनगणना की जनसंख्या के अनुसार दी जाती है, (2) 20 प्रतिशत सहायता प्रति व्यक्ति आय के अनुसार केवल उन राज्यों को दी जाती है जिनकी प्रति व्यक्ति आय 14 राज्यों की औसत आय से कम है, (3) 10 प्रतिशत कर प्राप्ति के अनुसार, और (4) 10 प्रतिशत विशेष समस्याओं के लिए संसाधनों में अंतराल पूरा करने के संबंध में अपरिहार्य परिव्ययों के लिए वित्त व्यवस्था करने के लिए दी जाती है।

3. अतः केन्द्रीय सहायता के आबंटन के तरीके में चार कारणों को ध्यान में रखा जाता है तथा (1) जनसंख्या, (2) प्रति व्यक्ति आय द्वारा निर्णीत राज्य का पिछड़ापन, (3) कर प्राप्ति, और (4) राज्य की विशेष समस्याएं। न तो हम इन चार कारणों में कोई परिवर्तन करने की सिफारिश करते हैं और न ही हम योजना आयोग द्वारा वर्तमान में किए जा रहे आबंटन की प्रतिशतता में कोई परिवर्तन करने की सिफारिश करते हैं। तथापि, योजना आयोग द्वारा राज्य के पिछड़ेपन और कर प्राप्ति के अनुसार वितरित घटक के संबंध में संशोधन अपेक्षित है।

4. वर्तमान फार्मूले, जोकि प्रति व्यक्ति आय के अनुसार केन्द्रीय सहायता के 20 प्रतिशत के वितरण को शासित करता है, के अधीन केवल वह राज्य सहायता के पात्र है जिनकी प्रति व्यक्ति आय 14 राज्यों के औसत से कम है। यह उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि जो राज्य औसत से सीमांततः अधिक है उसे भी इस घटक के अधीन विकसित राज्य मानकर सहायता से इनकार किया गया है। जबकि फार्मूला इस प्रकार का होना चाहिए कि इसके अधीन अधिक पिछड़े राज्यों को अधिक सहायता दी जानी चाहिए, इसके अधीन उन राज्यों को सहायता से इनकार नहीं किया जाना चाहिए जिन्हें केवल औसत के संबंध में विकसित राज्य माना गया है संभवतः मूल गाडगिल फार्मूला के अंतर्गत इसी दृष्टिकोण से राज्य के आकार का माप औसत से दुगुना माना जाता था न कि वर्तमान की तरह औसत से तथा सहायता की राशि इसी के समानुपात में और राज्य की जनसंख्या के अनुसार दी जाती थी। हमारे विचार से वर्तमान फार्मूले की समीक्षा अपेक्षित है और संलग्न टिप्पणी देखने से यह प्रतीत होगा कि औसत से दुगुना आकार का माप करने की कुछ तकनीकी खूबियां हैं जोकि वर्तमान फार्मूले में नहीं हैं। अतः हम इस संबंध में मूल गाडगिल फार्मूले की ओर प्रतिवर्तन की सिफारिश करते हैं।

5. 10 प्रतिशत का घटक जिसका वितरण कर प्राप्ति के अनुसार किया जाता है के संबंध में योजना आयोग द्वारा अपनाया गया वर्तमान फार्मूला गणितीय दृष्टि से सही नहीं है क्योंकि इसमें राज्य के आकार को ध्यान में नहीं रखा जाता। संलग्न पृथक टिप्पणी में इस बात की पूर्णतया जांच की गई है और यह दर्शाया गया है कि इस त्रुटि को परिशोधित करने के लिए राज्य को जनसंख्या द्वारा कर-प्राप्ति को महत्व दिया जाना आवश्यक है। क्योंकि योजना आयोग द्वारा अपनाए गए वर्तमान फार्मूले में यह तकनीकी दोष है इसलिए इसमें तत्काल परिशोधन अपेक्षित है।

6. इस संशोधन के बाद यह होगा कि चार में से तीन घटकों में आबंटन की मात्रा निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए राज्यों की जनसंख्या आधार होगी। क्योंकि जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना राष्ट्रीय नीति है इसलिए 60 प्रतिशत घटक और दूसरे तथा तीसरे घटक के अधीन महत्व के समनुदेशन के प्रयोजनों के लिए 1971 की जनसंख्या के आंकड़ों का प्रयोग करते रहना चाहिए। तथापि, यदि प्रति व्यक्ति राज्य आय या प्रति व्यक्ति कर प्राप्ति जैसे सूचकों की गणना अद्यतन आंकड़ों के आधार पर की जानी है तो ऐसा विचार किए जाने वाले विशिष्ट वर्षों की जनसंख्या के आंकड़ों का प्रयोग करके किया जाना चाहिए।

6.10 इस बात में कोई संदेह नहीं है कि परिवार कल्याण, संचारी रोग नियंत्रण, प्रौढ़ निरक्षरता इत्यादि दूर करने जैसे केन्द्रीय कार्यक्रमों और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं के लिए प्रभावशाली ढंग से वांछित लक्ष्य प्राप्त करने आवश्यक हैं। तथापि, केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाएं बनाने में राज्यों को सक्रिय रूप से शामिल किया जाना चाहिए ताकि अलग-अलग राज्यों की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखा जा सके जिससे कि उन्हें प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित किया जा सके। इसी प्रकार केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजना के कार्यान्वयन में अधिक लचीलापन होना चाहिए और राज्यों को राज्य की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए विभिन्न घटकों में परिवर्तन करने की छूट दी जानी चाहिए। नई योजनाएं अधिमानतः नई योजना के आरम्भ में लागू की जा सकती है। कोई भी केन्द्रीय कार्यक्रम या केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजना कम-से-कम 10 वर्ष की अवधि के लिए चालू रहनी चाहिए तथा पूर्णतया केन्द्र द्वारा सहायता प्राप्त होनी चाहिए। केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित प्रत्येक योजना को जारी रखने या अन्यथा के संबंध में कोई निर्णय करने से पहले योजना का प्रभाव निर्धारित करने के लिए इसकी समीक्षा की जानी चाहिए यदि केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कोई योजना समाप्त की जाती है या राज्य की गैर-योजना को सौंपी जाती है तो कार्यक्रम योजना के कार्यान्वयन पर उस खर्च की जाने वाली राशि के बराबर राशि तब तक राज्यों को दी जानी चाहिए जब तक योजना जारी रहती है।

6.11 यह सही है कि जांच और मूल्यांकन करने की पद्धति प्रभावी नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि योजना कार्यक्रम का समुचित और प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार और योजना आयोग द्वारा सहवर्ती मूल्यांकन सहित जांच और मूल्यांकन की यथोचित पद्धति तैयार की जाए ताकि निर्दिष्ट अवधि में वांछित लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें। इस प्रयोजन के लिए उचित तंत्र विकसित किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार को आवश्यक मार्गदर्शन और वित्तीय सहायता भी प्रदान कर सकती है।

6.12 हालांकि लोगों की सहभागिता के लिए और क्षेत्रीय असन्तुलन कम करने के लिए विकेंद्रित योजना की संकल्पना प्रशंसनीय है परन्तु उप-राज्य स्तर पर पहुंचने से पहले विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया राज्य स्तर से आरम्भ की जानी चाहिए।

यदि राज्यों को अपनी आप योजना बनाने के लिए यथोचित स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जाती तो राज्य स्तर से नीचे पर और अधिक प्रभावी विकेंद्रीकरण की अपेक्षा करना मुश्किल है। योजना के लिए राज्य संसाधनों को अन्तिम रूप देने की वर्तमान समय अनुसूची भी किसी प्रभावी विकेंद्रीकरण को निवारित करती है क्योंकि योजना आयोग को प्रस्तुत करने के लिए इन्हें राज्य योजना में सम्मिलित किए जाने से पहले जिलों के पास अपनी योजनाएं बनाने के लिए समय नहीं बचता।

6.13 राज्य सरकार का विचार है कि विशेषज्ञों, इत्यादि वाले राज्य योजना बोर्डों की नीति विषय जैसे महत्वपूर्ण विषयों, जिनका राज्य के योजना और विकास से संबंध है, में सलाहकारी भूमिका होनी चाहिए। राज्य की वार्षिक और पंचवार्षिक योजनाएं बनाने के विषयों पर राज्य सरकार को ऐसे विषयों के संबंध में इनकी सलाह सदा उपलब्ध होनी चाहिए।

टिप्पणी I

(देखिए उत्तर 6.8 और 6.9, पैरा 4)

व्याख्या

1. मान लीजिए कि X राज्य की प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० को और (X) इसके समस्त राज्य औसत को सूचित करता है और V(X) तथा S (X) (X) के प्रसरण (variance) और मानक विचलन (deviation) हैं।

2. मान लीजिए कि Y राज्य को प्रतिव्यक्ति आबंटन को तथा Y इसके समस्त राज्य औसत को सूचित करता है और V (Y) तथा S(Y) (Y) के प्रसरण और मानक विचलन हैं।

विचरण का माप

3. आबंटन को वर्धमान बनाने का प्रयत्न करने का कारण प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० में अवलोकित असमानताएं या विचरण है। तथापि, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विचरण को X के मूल्यों के अनुसार समझा जाता है, अर्थात् एस०डी०पी० को ही X के मूल्यों से संबंधित समझा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि समस्त X मूल्यों को स्थिर मूल्यों से बढ़ाया जाता है तो V (X) या S (X) या रेंज या किसी अन्य माप द्वारा मापा गया विचरण वही रहेगा, लेकिन इसका मूल्य पहले से कुछ कम होगा क्योंकि मूल्य बढ़ गए हैं। उदाहरण के लिए यदि पहले X का मूल्य 100, 125, 150, 175 और 200 है और यह 200, 225, 250, 275 और 300 हो जाता है तो विचरण का पूर्ण माप दोनों मामलों में वही है लेकिन स्वयं मूल्यों के संबंध में——-- पहले के क्रम की अपेक्षा दूसरे क्रम में विचरण कम है और यही तथ्य महत्वपूर्ण है। अतः विचरण का हमारा ठीक माप विचरण का गुणांक होगा अर्थात् CV(X) द्वारा मान लिया गया $CV(X)=S(X)\sqrt{\bar{x}}$

फार्मूला से अपेक्षाएं

4. फार्मूला प्रयोग करने का उद्देश्य आबंटन को वर्धमान बनाना है। शब्द वर्धमान का अर्थ यह है कि (Y) छोटे (X) के लिए बड़ा होना चाहिए और छोटे (Y) के लिए (X) बड़ा होना चाहिए। ऐसा कई प्रकार से किया जा सकता है और वृद्धि की मात्रा भी परिवर्तन हो सकती है।

5. इस उद्देश्य को अब गणित में रूपांतरित किया जा सकता है। क्योंकि उपरोक्त रीति से X को Y से संबंधित किया जाना है।

$Y=A-BX$ .... (1) जहां A और B, दोनों पाजिटिव, उपयुक्त रीति से निर्धारित किए जाने हैं और वृद्धि की सही मात्रा

$CV(Y)=CV(X)$ ....(2) द्वारा दी गई है।

इससे यह सुनिश्चित होता है कि बड़े (X) के लिए (Y) छोटा होगा और बड़े (Y) के लिए (X) छोटा होगा। इसके अतिरिक्त (Y) में सापेक्षा परिवर्तन (X) पर निर्भर रहने के लिए किया गया है ताकि (Y) सदैव (X) के साथ रहे और (X) में किया गया कोई परिवर्तन स्वतः (Y) में परावर्तित हो जाए।

6. अब A और B को निर्धारित करना सरल है। समीकरण (2) के दोनों ओर का वर्गीकरण करके और साधारण सांख्यिकीय परिणामों का प्रयोग करके हमें प्राप्त होता है :

$$\therefore [CV(Y)]^2 = [CV(X)]^2$$

$$\therefore \frac{V(A-BX)}{(A-B\bar{X})^2} = \frac{V(X)}{\bar{X}^2}$$

$$\therefore \frac{B^2 V(X)}{(A-B\bar{X})^2} = \frac{V(X)}{\bar{X}^2}$$

$$\therefore 2B\bar{X} = A \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

समीकार (3) A और B के बीच संबंध बताता है और इसे (1) में प्रतिस्थापित करने से हम प्राप्त करते हैं।

$$Y=2B\bar{X}-BX$$
$$=B(2\bar{X}-X) \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (4)$$

अतः B के किसी पाजिटिव मूल्य से यदि Y (4) को निर्धारित किया जाता है तो इससे हमारा उद्देश्य पूरा हो जाएगा। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि Y किसी राज्य के लिए पाजिटिव होगा; अतः समीकार (4) हमें तब तक प्रति व्यक्ति आबंटन का मूल्य बताता रहेगा जब तक एस०डी०पी० प्रति व्यक्ति का अधिकतम उनके औसत के दुगुने से कम या बराबर है।

7. अब हम Y_i और X_i से ith राज्य के लिए समरूपी मूल्य सूचित करते हैं और p_i को इसकी जनसंख्या मान लेते हैं।

मान लें कि Y आबंटित किए जाने वाले साधन की कुल राशि है और तब हम (4) से प्राप्त करते हैं।

$Y = [i = B[P_i (2\bar{X} - X_i)$, जहां

$Y_i =$ ith राज्य को आबंटन जो

$B = Y [P_i (2\bar{X} - X_i)$ और

$$Y_i = \frac{YP_i(2\bar{X} - X_i)}{(P_i(2\bar{X} - X_i)} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (5)$$

अभिव्यक्ति (5) से आबंटन के लिए हमें अपना अभीष्ट फार्मूला तब तक प्राप्त होता है जब तक X का अधिकतम 2 X से कम है। फार्मूले से यह प्रकट होता है कि, जहां इसका समस्त राज्यों का औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के दुगने से इसके प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० का अन्तर इसके डिस्टेंस के बराबर है वहां किसी विशिष्ट राज्य को आबंटन उसके डिस्टेंस से गुणा करके उसकी जनसंख्या के समानुपात में है।

8. यदि फार्मूला (5) में किसी राज्य के डिस्टेंस को 2 के अतिरिक्त औसत के गुणज से मापा गया है और यदि गुणज 2 से कम है तो प्रति व्यक्ति आबंटन में अत्यधिक वृद्धि होगी। इसके विपरित यदि गुणज 2 से बड़ा है तो प्रति व्यक्ति आबंटन में कम वृद्धि होगी।

9. यदि डिस्टेंस प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के अधिकतम से मापा जाता है, जैसा कि वित्त आयोग करता है तो प्रति व्यक्ति आबंटन में वृद्धि का राज्यों की प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० में अवलोकित असमानता है से कोई संबंध नहीं है। अतः 'डिस्टेंस' के ऐसे माप पर आधारित फार्मूला असंगत हो जाता है। इसके अतिरिक्त अधिकतम अपेक्षाकृत अस्थिर प्रतिदर्शज है और अधिकतम जैसे एक अकेले मूल्य पर निर्णय आधारित करना अभीष्ट नहीं है। यदि किन्हीं कारणों से अधिकतम मूल्यांकित राज्य का प्रति व्यक्ति एस०डी०पी परिवर्तित होता है तो इससे सभी राज्यों विशेष रूप से उन राज्यों जो अधिकतम के पास है, के आबंटनों में पर्याप्त विचरण हो जाता है। अतः अधिक स्थिर प्रतिदर्शज का प्रयोग करना जैसे कि औसत पर आधारित एक ठोस सांख्यिकीय निर्णय है जिसमें सभी राज्यों के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मूल्यों का प्रयोग किया जाता है ताकि प्रयोग में लाए गए आबंटन का परिणाम किसी विशेष राज्य की परिस्थितियों और इससे डिस्टेंस का माप प्रभावित न हो। जिस बिन्दु से डिस्टेंस का माप किया जाना है उससे औसत का दुगुना मानना क्या अधिकतम मूल्य से उपयुक्त है।

10. जिस फार्मूले में डिस्टेंस को औसत से दुगुना माना गया है, उस प्रति व्यक्ति आबंटन में सापेक्ष विचरण तथ्यतः प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के सापेक्ष विचरण के बराबर हो जाता है। कम प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मूल्य वाले राज्य अधिक प्राप्त करते है और अधिक प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मूल्य वाले राज्य कम प्राप्त करते हैं। अतः आबंटनों की वृद्धि उचित रीति से बनाए रखी जाती है। इसके अतिरिक्त यदि प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के बीच सापेक्ष विचरण में कोई परिवर्तन होता है तो प्रतिव्यक्ति आबंटन में सापेक्ष विचरण से उचित परिवर्तन किया जाता है और यह सापेक्ष विचरण सदैव प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० में अपनी समानता बनाए रखता है। यद्यपि, अधिकतम से नापे गए डिस्टेंस पर आधारित फार्मूले में इस संगति का अभाव है तथापि, औसत के दुगुने पर आधारित फार्मूले में वृद्धि और संगति दोनों पाई जाती हैं। इसलिए औसत के दुगने से नापे गए डिस्टेंस पर आधारित फार्मूले को श्रेष्ठ माना गया है।

टिप्पणी II

राज्यों को पंचवर्षीय योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के आबंटन के फार्मूले के संबंध में टिप्पणी

(देखिए उत्तर 6.8 और 6.9; पैरा 5)

पृष्ठ भूमि

1. योजना आयोग द्वारा अपनाए गए वर्तमान फार्मूले के अधीन योजना के लिए राज्यों को राष्ट्रीय विकास बोर्ड द्वारा अनुमोदित सम्मत फार्मूले पर केन्द्रीय सहायता वितरित की जाती है। कुल योजना सहायता के लिए, केन्द्रीय सहायता चार घटकों में दी जाती है, पहले तीन घटक (1) विशेष श्रेणी के राज्यों (2) पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों और एन० ई० सी० योजना और (3) विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित है। चौथा घटक 14 बड़े राज्यों को वितरित केन्द्रीय सहायता से संबंधित है जिसके अधीन एकमात्र महाराष्ट्र केन्द्रीय योजना सहायता का अपना हिस्सा प्राप्त करता है।

2. 14 राज्यों को केन्द्रीय सहायता के आबंटन में (1) 60 प्रतिशत सहायता 1971 की जनगणना की जनसंख्या के अनुसार दी जाती है (2) 20 प्रतिशत सहायता प्रति व्यक्ति आय के अनुसार केवल उन राज्यों को दी जाती है जिनकी प्रति व्यक्ति आय 14 राज्यों की औसत आय से कम है (3) 10 प्रतिशत सहायता कर-प्राप्ति के अनुसार और (4) 10 प्रतिशत विशेष समस्याओं के लिए ससाधनों में अंतराल पूरा करने के संबंध में अपरिहार्य परिव्ययों के लिए वित्त व्यवस्था करने के लिए दी जाती है। महाराष्ट्र प्रति व्यक्ति आय पर आधारित घटक में से हिस्सा प्राप्त नहीं करता। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान इसने जनसंख्या और कर प्राप्ति पर आधारित केवल दो घटकों के आधार पर सहायता प्राप्त की है। राज्य सरकार को सातवी पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या और कर-प्राप्ति के घटकों के अतिरिक्त 'विशेष समस्याओं' के घटक में से भी सहायता का विश्वास दिलाया गया। प्रस्तुत टिप्पणी में अध्ययन का विषय कर-प्राप्ति पर आधारित घटक है।

कर-प्राप्ति के अनुसार आबंटन

3. घटक के वितरण के लिए योजना आयोग द्वारा अपनाई गई कार्य प्रणाली सारणी संख्या I में दर्शाई गई है। 14 राज्यों के लिए, राज्य करों से प्राप्तियां कालम (2) में उनकी जनसंख्या कालम (3) में; कालम (2) के आंकड़ों को कालम 3 के आंकड़ों से विभाजित करने के बाद प्रति व्यक्ति कर-प्राप्तियों कालम (4) में, प्रति व्यक्ति राज्य आय कालम (5) में दर्शाई गई है। योजना आयोग द्वारा कर-प्राप्ति को प्रति व्यक्ति राज्य आय द्वारा विभाजित प्रति व्यक्ति कर-प्राप्तियों के अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है तथा कालम 6 में दर्शाया गया है। कालम 6 का जोड़ 89.19 करोड़ रुपए है। कर-प्राप्ति के आधार पर 14 राज्यों में वितरित की जाने वाली 430 करोड़ रुपए की राशि को उनमें कालम (6) के मूल्यों के अनुपात में वितरित किया गया है और राज्य-वार आबंटन कालम 7 में दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के लिए आबंटन $\frac{(9.01) \times (43)}{89.19}$ के बराबर है अर्थात 43.44 करोड़ रुपए है।

फार्मूले की त्रुटियां

4. इस में ध्यान देने की पहली बात यह है कि यद्यपि प्रति व्यक्ति कर-प्राप्ति के अनुसार प्रति व्यक्ति राज्य आय की गणना की गई है, क्योंकि गणक और हर दोनों का परिकलन प्रति व्यक्ति के आधार पर किया गया है, जनसंख्या कारण को छोड़ दिया गया है और कालम (6) में कर प्राप्ति के सूचक के रूप में जो प्राप्त हुआ है वह राज्य की कर प्राप्तियों के अनुसार कुल राज्य आय के अलावा और कुछ नहीं है। यह सामान्य गणित है कि बड़ी राशि की प्रतिशतता और छोटी राशि की प्रतिशतता को जोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि कालम (6) के आंकड़े भिन्न आधारों वाली प्रतिशतता है इसलिए उनका जोड़ (89.19) प्राप्त करने के लिए उन्हें जोड़ना और इस जोड़ का उपयोग करते हुए उपर्युक्त फार्मूले द्वारा प्रत्येक राज्य का अलग-अलग हिस्सा परिकलित करना गणित संबंधी गलती है। इसी कारण से योजना आयोग द्वारा अपनाई गई कार्य प्रणाली गलत साबित हुई है।

5. इससे यह स्पष्ट होता है कि योजना आयोग द्वारा अपनाई गई कार्य-विधि तर्कपूर्ण दृष्टि से विषय है। यदि किसी विशिष्ट मामलों में किसी एक व्यक्ति वाले राज्य की कल्पना की जाए तो ऐसे राज्य के लिए योजना आयोग के वर्तमान फार्मूले के अधीन आबंटन इस तथ्य से स्वतंत्र होगा कि यह एक व्यक्ति वाला राज्य है। यदि इसकी कर-प्राप्ति का अनुपात 9 प्रतिशत है तो इस एक व्यक्ति वाले राज्य को आबंटन लगभग 43 करोड़ अर्थात् महाराष्ट्र के समान होगा। दूसरे शब्दों में जनसंख्या की शर्तों के अनुसार आबंटन का राज्य के 'आकार' से कोई संबंध नहीं है।

6. यह जांच करने के लिए कि उदाहरण द्वारा स्पष्ट की गई विषमता योजना आयोग के फार्मूले के अनुसार आबंटन करने मे वस्तुतः प्रभावी है, दृष्टान्त के रूप में हरियाणा और पंजाब के आबंटनों को देखा जा सकता है। हरियाणा की जनसंख्या लगभग महाराष्ट्र की जनसंख्या के पांचवें हिस्से के बराबर है (19.92 प्रतिशत) और महाराष्ट्र की 9.01 प्रतिशत कर-प्राप्ति की तुलना में हरियाणा की कर-प्राप्ति 6.97 है, लेकिन महाराष्ट्र के 43.44 करोड़ रुपए की तुलना में हरियाणा को आबंटन 33.60 करोड़ अर्थात महाराष्ट्र का 77.35 प्रतिशत है। इसी प्रकार पंजाब जिसकी जनसंख्या महाराष्ट्र की जनसंख्या के लगभग एक चौथाई है (26.70 प्रतिशत) और कर प्राप्ति 7.87 प्रतिशत है को आबंटन 37.94 करोड़ रुपए है जोकि महाराष्ट्र के आबंटन का 87.34 प्रतिशत है।

7. योजना आयोग के फार्मूले का दूसरा तर्क विरुद्ध निष्कर्ष यह है कि यदि कोई राज्य दो राज्यों में विभाजित होता है और बाकी सब कुछ अर्थात् प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति राज्य कर वसूली वही बनी रहती है तो दोनों घटकों का कुल आबंटन मूल की तुलना में बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए, यदि उत्तर प्रदेश दो राज्यों में विभाजित हो जाता है तो योजना आयोग के फार्मूले के अधीन दोनों नए राज्यों को आबंटन प्रत्येक को 20.87 करोड़ रुपए तथा दोनों को मिलाकर 41.74 करोड़ रुपए होगा। दूसरे शब्दों में अन्य राज्यों की हानि करके मूल उत्तर प्रदेश को आबंटन लगभग दुगुना होगा।

सुधार के लिए सुझाव

8. अतः योजना आयोग द्वारा अपनाई गई वर्तमान कार्य प्रणाली स्पष्टतया गलत है। इसमें सुधार करने के लिए उन प्रतिशतताओं को महत्व देना आवश्यक है जो राज्य के आकार के अनुसार कर-प्राप्ति को दर्शाती है। योजना आयोग ने इस संबंध मे उस घटक, जो उसने उन राज्यों को वितरित किया है जिनकी औसत प्रति व्यक्ति आय कम है, को राज्य की जनसंख्या के औसत के दुगुने से राज्य के आकार को ध्यान में रखकर आबंटन किया है। योजना आयोग ने कर-प्राप्ति से सम्बद्ध घटक के आबंटन के संबंध मे ऐसा नहीं किया है। अतः आवश्यक है कि योजना आयोग इस गलती का परिशोधन करे जिससे पहले ही बड़े राज्यों को हानि हुई है।

9. अतः इसे ठीक करने के लिए दो राज्यों को कर-प्राप्ति के समानुपात में आबंटन केवल तभी किया जाना चाहिए जब उनका 'आकार' बराबर है। इसके विपरीत आबंटन राज्य के आकारों के अनुपात में केवल तभी किया जाना चाहिए जबकि उनकी कर-प्राप्ति बराबर है। प्रारम्भिक बीजगणित के अनुसार यदि xy का अनुपाती है, यदि z स्थिरांक है और z अनुपाती है

यदि y स्थिरांक है तो x,y और z के गुणनफल का अनुपाती होगा। यदि x को राज्य के आबंटन y को इसकी कर प्राप्ति का सूचक और z को इसके आकार के रूप में माना जाता है तो तर्क संगत सामंजस्य बनाने के लिए फार्मूला यह होना चाहिए कि x आबंटन कर प्राप्ति और राज्य के 'आकार' के सूचक के गुणनफल का अनुपाती होगा। जो प्रश्न अनिर्णीत रह जाएगा वह राज्य के 'आकार' को प्रस्तुत करने के लिए माप का विकल्प है।

10. यदि कुल राज्य आय को राज्य के 'आकार' के रूप में माना जाता है तो प्रतिशतताओं पर वस्तुतः कुल आय के अनुसार विचार किया जाता है और परिणामी गणना का अर्थ होगा कि कर प्राप्ति पर आधारित घटक का वितरण राज्य कर से हुई प्राप्तियों का अनुपाती होगा। इस आधार पर निकाला गया आबंटन सारणी संख्या 2 में प्रस्तुत किया गया है।

11. दूसरा विकल्प जनसंख्या को राज्यों के आकार के रूप में मानना है अर्थात् राज्यों की जनसंख्या के अनुसार कर प्राप्ति की प्रतिशतता निकालना। परिणामी गणना सारणी संख्या 3 में दर्शाई गई है।

12. दोनों सारणियों से यह प्रकट होता है कि योजना आयोग द्वारा अपनाई गई गलत कार्य प्रणाली के कारण महाराष्ट्र को पांचवी योजना में केन्द्रीय सहायता के इस घटक कम से कम 18.22 करोड़ रुपए की हानि हुई है। छठी योजना में भी इसी दोषपूर्ण कार्य प्रणाली को अपनाया गया है। इस दोषपूर्ण कार्य प्रणाली में सुधार किया जाना काफी लम्बे समय से अपेक्षित है। अतः इसमें तत्काल सुधार किया जाना चाहिए।

सारणी संख्या 1

पांचवीं पंचवर्षीय योजना—राज्य केन्द्रीय सहायता का आबंटन

कर-प्राप्ति-10 प्रतिशत

करोड़ रुपए

राज्य	राज्य करों से प्राप्तियां 1973–74 के आंकड़े	वर्ष के मध्य में जनसंख्या 1973 (लाखों में)	प्रति व्यक्ति कर प्राप्ति (रुपए)	प्रति व्यक्ति राज्य आय (रुपए)	प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कर प्राप्ति की प्रतिशतता	430 करोड़ रुपयों का वितरण
1	2	3	4	5	6	7
आंध्र प्रदेश	201.45	454.3	44	645	6.82	32.88
बिहार	115.19	587.0	20	439	4.56	21.98
गुजरात	155.36	282.3	55	808	6.81	32.83
हरियाणा	74.14	105.5	72	974	7.39	35.63
कर्नाटक	150.59	306.5	49	703	6.97	33.60
केरल	95.46	224.7	43	646	6.66	32.11
मध्य प्रदेश	128.36	440.1	29	532	5.45	26.27
महाराष्ट्र	382.38	529.5	72	799	9.01	43.44
उड़ीसा	34.84	229.9	15	566	2.65	12.78
पंजाब	123.16	141.4	87	1106	7.87	37.94
राजस्थान	90.67	271.5	33	589	5.60	27.00
तमिलनाडु	279.55	430.3	65	675	9.63	46.43
उत्तर प्रदेश	235.60	917.3	25	550	4.55	21.94
पश्चिम बंगाल	191.18	465.8	41	786	5.22	25.17
जोड़	2249.53	5386.1	42		89.19	430.00

*औसत प्रतिव्यक्ति राज्य। 1970–73 की अवधि के लिए चालू कीमतों पर प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय (एन० आर० पी०) जैसा कि केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (सी० एस० ओ०) ने प्रस्तुत की है।

सारणी संख्या 2

पांचवीं पंचवर्षीय योजना—राज्य केन्द्रीय सहायता का आबंटन कर-प्राप्ति

विकल्प I : राज्य आय की तुलना में कर-प्राप्ति

राज्य	प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कर प्राप्ति की प्रतिशतता	राज्य आय की तुलना में कर प्राप्ति की प्रतिशतता	430 करोड़ रुपए का वितरण
(1)	(2)	(3)	(4)
आंध्र प्रदेश	6.82	8.95	38.46
बिहार	4.56	5.12	22.02
गुजरात	6.81	6.91	29.70
हरियाणा	7.39	3.38	14.55
कर्नाटक	6.97	6.69	28.79
केरल	6.66	4.24	18.25
मध्य प्रदेश	5.45	5.71	24.54
महाराष्ट्र	9.01	17.00	73.08
उड़ीसा	2.65	1.55	6.66
पंजाब	7.87	5.47	23.54
राजस्थान	5.60	4.03	17.33
तमिलनाडु	9.63	12.43	53.43
पश्चिम बंगाल	5.22	8.50	36.54
जोड़		100.00	430.00

कालम (3) सारणी संख्या I के कालम (2) पर आधारित प्रतिशतता दर्शाता है।

सारणी संख्या 3

पांचवीं पंचवर्षीय योजना—राज्य

केन्द्रीय सहायता का आबंटन : कर प्राप्तियां

विकल्प II : जनसंख्या से तुलना किया गया कर प्रयत्न

राज्य	प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कर प्राप्ति की प्रतिशतता	जनसंख्या की तुलना में कर प्राप्ति	कालम–3 की प्रतिशतता	430 करोड़ रुपए का वितरण
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
आंध्र प्रदेश	6.82	3098.33	9.31	40.03
बिहार	4.56	2676.72	8.05	34.62
गुजरात	6.81	1922.46	5.79	24.90
हरियाणा	7.39	779.65	2.34	10.06
कर्नाटक	6.97	2136.30	6.42	27.61
केरल	6.66	1496.50	4.50	19.35
मध्य प्रदेश	5.45	2398.55	7.21	31.00
महाराष्ट्र	9.01	4770.80	14.34	61.66
उड़ीसा	2.65	609.24	1.83	7.87
पंजाब	7.87	1112.82	3.34	14.36
राजस्थान	5.60	1520.40	4.57	19.65
तमिलनाडु	9.63	4143.79	12.54	53.54
उत्तर प्रदेश	4.55	4173.72	12.54	53.92
पश्चिम बंगाल	5.22	2431.48	7.31	31.43
जोड़		33270.76	100.00	430.00

कालम (3)=सारणी संख्या 1 का कालम (6) × कालम (3)

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम इस बात से सहमत है कि उद्योगों के उत्पादन मूल्य के निबंधनों के अनुसार उद्योगों के अत्यधिक उच्च अनुपात को ध्यान में रखने के लिए पहली अनुसूची का विस्तार करने के फलस्वरूप उद्योग वस्तुत: संघ विषय में परिवर्तित हो गया है । आशा है कि उद्योगों का संतुलित विकास राज्य के सभी क्षेत्रों में उपलब्ध स्रोतों का लाभकर रूप में उपयोग सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार कार्यवाही करेगी । उदाहरण के लिए, सिलाई मशीनें, कटलरी, प्रेशर कुकर, जूता, घरेलू उपकरण और औजार, टाइपराइटर, चीनी मिट्टी के बर्तन, मिट्टी के बर्तन, आयल स्टोप इत्यादि जैसी मदें मूलत: उपभोक्ता वस्तुएं हैं और स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए इन वस्तुओं का उत्पादन राज्य के विवेकाधिकार पर छोड़ देना चाहिए । "नो इंडस्ट्री डिस्ट्रिक्ट" या विशेष रूप से देश के ए, बी और सी क्षेत्रों को अनुज्ञप्ति जारी करने पर प्रतिबंध लगाने के संबंध में भारत सरकार की नवीनतम नीति निर्णय के साथ पठित पहली सूची में इन मदों को सम्मिलित करने का अर्थ राज्य सरकार को संतुलित विकास सुनिश्चित करने के लिए कुछ क्षेत्रों में उद्योगों की अभिवृद्धि करने के विशेषाधिकार से वंचित करना है । पिछले तीन वर्षों के अनुभव से यह प्रकट होता है कि महाराष्ट्र सरकार अपने समग्र अनुज्ञप्ति आशय पत्रों के अपने हिस्से से निरन्तर वंचित हो रही है । उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र राज्य ने 1981 में कुल 916 आशय पत्रों के बदले में 144 आशय पत्र प्राप्त किए जबकि 1982 और 1983 में उसने 1043 में से 148 और 1055 में से 155 आशय पत्र प्राप्त किए । इसी प्रकार औद्योगिक अनुज्ञप्ति के संबंध में महाराष्ट्र ने 1981 में कुल 476 औद्योगिक अनुज्ञप्तियों में से 114 और 1982 तथा 1983 में 432 में से 95 तथा 1075 में से 171 औद्योगिक अनुज्ञप्तियां प्राप्त की थी ।

यद्यपि मूल उद्योगों के संबंध में क्षमताएं आबंटित करने के लिए भारत सरकार का प्राधिकार न्यायसंगत हो सकता है तथापि, गैर मूल उद्योगों (प्रश्नावली में विनिर्दिष्ट सभी उद्योग गैर मूल उद्योग हैं) के संबंध में प्राधिकार भारत सरकार के पास सुरक्षित रखने का कोई औचित्य नहीं है । उदाहरण के लिए राज्य को महाराष्ट्र के एक पिछड़े क्षेत्र में दियासिलाई की परियोजना स्थापित करने की अनुमति नहीं दी गई थी । हमारा यह भी सुझाव है कि ऐसे एककों को अधिकार में लेने के लिए उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के उपबंधों में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए ताकि यदि राज्य सरकारें यह महसूस करती हैं कि ऐसा करने के पर्याप्त कारण विद्यमान हैं तो वे रुग्ण एककों को अपने अधिकारों में ले सके ।

7.2 (i) हमारा यह भी विचार है कि जब केवल संसद ही कानून बना सकती है तो किसी उद्योग पर राष्ट्रीय नियंत्रण के संदर्भ में "राष्ट्रीय लोक हित" क्या है, इसे पारिभाषित या वर्णित करने के लिए कुछ मानक निर्धारित किए जाने चाहिएं । निम्नलिखित मानकों का सुझाव दिया जाता है :

(1) संसद मूल उद्योग और रक्षा उद्योग के संबंध में कानून बना सकती है ।

(2) मूल उद्योग और रक्षा उद्योग के उपांग उद्योग और आनुषंगिक उद्योग के संबंध में संसद को कानून बनाने की आवश्यकता नहीं ।

(3) मूल उद्योग के मामले को छोड़कर जहां राज्य में प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं ; वहां राज्य सरकार को कानून बनाने का अधिकार होना चाहिए । उदाहरण के लिए, चीनी मिट्टी के बर्तन, मिट्टी के बर्तन या सिलिका पर आधारित सभी उद्योगों के संबंध में राज्य सरकार द्वारा स्वयं निर्णय किया जा सकता है ।

(4) राष्ट्रीय क्षमताएं और आवश्यकताएं निर्धारित हो जाने के बाद कृषि औजारों जैसे उद्योगों के संबंध में राज्य सरकार को राज्य में ही क्षमताओं का सर्जन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए ।

क्योंकि परिवहन उद्योग में (चार पहियों वाले और वाणिज्यिक वाहनों को छोड़कर) परिवहन आवश्यकताएं अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होंगी इसलिए राज्य सरकार को क्षमताएं निर्धारित करने का विशेषाधिकार होना चाहिए । इन मदों में साइकिल तथा दो और तीन पहियों वाले वाहन सम्मिलित होंगे ।

(ii) उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की पहली अनुसूची की उन मदों की सूची जिन्हें इस आधार पर हटाया जा सकता है कि ये राष्ट्रीय लोक हित से संघ सरकार का नियंत्रण न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए वस्तुत: निर्णायक नहीं है, की सूची नीचे प्रस्तुत है :

1. धातुकर्म उद्योग

क. लौह वस्तुएं

(i) लोहा और इस्पात संरचना

(ii) लोहा और इस्पात पाइप

(iii) लोहा और इस्पात के अन्य उत्पाद

ख. अलौह वस्तुएं

(i) अर्ध विनिर्माण और विनिर्माण

2. बिजली का सामान

(i) बिजली की मोटरें

(ii) बिजली के पंखे

(iii) बिजली के लैम्प

(iv) एक्स-रे उपस्कर

(v) इलेक्ट्रॉनिक उपस्कर

(vi) बिजली की प्रेस, हीटर इत्यादि जैसे घरेलू उपयंत्र

(vii) संचालक बैटरी

(viii) शुष्क सेल

3. दूर-संचार :

(i) प्रवर्धक और ध्वनि प्रवर्धक यंत्रों सहित रेडियो अभिग्राहित्र

(ii) टेलीविजन सेट

4. परिवहन :

(i) मोटर साइकिल, स्कूटर इत्यादि

(ii) साइकिल

(iii) फार्क लिफ्ट ट्रक जैसी अन्य मदें

5. कृषि मशीनें :

(i) कृषि औजार

6. विविध यांत्रिक और इंजीनियरी उद्योग

(i) प्लास्टिक मोल्ड वस्तुएं

(ii) हस्त औजार, छोटे औजार इत्यादि

(iii) रेजर ब्लेड

(iv) प्रेशर कुकर

(v) कटलरी

(vi) स्टील फर्नीचर

7. वाणिज्यिक, कार्यालय तथा घरेलू उपस्कर

(i) टाइप राइटर

(ii) परिकलन यंत्र

(iii) निर्वात मार्जक

(iv) सिलाई और बुनाई मशीन

(v) हरिकेन लालटेन

8. चिकित्सीय और शल्य साधन

शल्य उपकरण--निष्कीटक, ऊष्म पित्र इत्यादि ।

9. गणितीय, सर्वेक्षण और ड्राइंग उपकरण

(i) गणितीय, सर्वेक्षण और ड्राइंग उपकरण

10. उर्वरक
मिश्रित उर्वरक

11. रसायन : (उर्वरकों के अलावा)
(i) पेन्ट, वार्निश और इनैमल

12. कागज उत्पाद सहित कागज और लुगदी :
(i) डिब्बाबंदी के लिए कागज (नालीदार कागज, क्राफ्ट कागज पेपर बैग, पेपर कंटेनर इत्यादि)
(ii) डिजाल्विंग पल्प सहित, पल्प-वुड पल्प, मेकेनिकल, कैमिकल ।

13. साबुन, प्रसाधन-सामग्री और शृंगार सामग्री
(i) साबुन
(ii) प्रसाधन सामग्री
(iii) सुगंध
(iv) शृंगार सामग्री

14. रबड़ का सामान
(i) जूते,
(ii) रबड़ का अन्य सामान

15. चमड़ा, चमड़े का सामान और पिकर
(i) चमड़ा, चमड़े का सामान और पिकर

16. कांच
(i) खोखले माण्ड
(ii) शीट और प्लेट ग्लास
(iii) आप्टिकल ग्लास
(iv) कांच तंतु
(v) प्रयोगशाला पात्र
(vi) विविध पात्र

17. टिम्बर उत्पाद
(i) प्लाईवुड
(ii) रेशा गत्ता सहित हार्डबोर्ड, चिपबोर्ड इत्यादि ।
(iii) माचिस
(iv) विविध (फर्नीचर कम्पोनेंट, बोबिन शटल इत्यादि)

7.3 (i) औद्योगिक अनुज्ञप्ति के लिए कार्य-विधि.—भारत सरकार द्वारा किसी विशिष्ट परियोजना के लिए क्षमता और उपलब्धता के संबंध में सिद्धान्त रूप में स्वीकृत दी जा सकती है । अतः यह आवश्यक नहीं है कि पूंजी निर्गम, पूंजीगत माल के आयात, कच्चे माल के आवंटन और विदेशी सहयोग से संबंधित विषय समस्त अनुज्ञापन कार्यविधि का भाग हो लेकिन यदि एक बार मल स्वीकृत दे दी जाती है तो ये सभी स्वतः उपलब्ध होने चाहिएं ।

2. पूंजी निर्गम :—अनुज्ञापन समिति द्वारा अनुमोदित परियोजनाओं के संबंध में पूंजी निर्गम के लिए क्लियरेंस स्वतः होनी चाहिए ।

7.4 लघु उद्योगों की सहायता के लिए राज्यों के पास संगठनात्मक संरचना है लेकिन कच्चे माल के आवंटन और कानूनी शक्तियों के अभाव जोकि केन्द्र में निहित है, जैसे निर्णायक विषयों पर अभी भी वृहद या राष्ट्रीय स्तर पर संबंध है । जब तक उचित रीति से कच्चे माल की पूर्ति की योजना नहीं बनाई जाती तब तक इसकी कमी बनी रहेगी और इस संबंध में केन्द्र अपनी शक्तियां राज्यों को देने के लिए बाध्य है । हमारी राय है कि (i) संस्थाओं के बीच अच्छे और अधिक समन्वित दृष्टिकोण, (ii) इस क्षेत्र में माल के लिए पर्याप्त विपणन सहायता तथा कच्चे माल की पूर्ति सुनिश्चित करने और (iii) आवधिक और कार्यशील कर्ज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराकर वित्तीय सहायता के माध्यम से राज्यों के क्षेत्र में सुधार हो सकता है ।

7.5, 7.6 और 7.7 "नो इंडस्ट्री" में और जिस राज्य में अभी तक सार्वजनिक क्षेत्रक की परियोजना आवंटित नहीं की गई है उस राज्य में परियोजना के आवंटन के आधार पर बड़े उद्योगों में केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष निवेश करने के निर्णय से हम प्रभावित है : तथापि, महाराष्ट्र सार्वजनिक क्षेत्रक की उन परियोजनाओं, जो यह पहले ही प्राप्त कर चुका है, की संख्या और महाराष्ट्र में ऐसे क्षेत्रों जिन्होंने ऐसी सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजनाओं की अवस्थिति से कोई लाभ नहीं उठाया है, के संबंध में विशिष्ट स्थिति का सामना कर रहा है । बम्बई और इसके आस-पास पहले से ही हो चुके विकास के कारण सार्वजनिक क्षेत्रक की कुछ परियोजनाएं महाराष्ट्र में पहले ही स्थित थी । केवल इसी कारण से महाराष्ट्र विदर्भ, मराठवाड़ा और कोकण जैसे क्षेत्रों के संतुलित विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजनाओं का समुचित कोटा प्राप्त करने से वंचित न रह जाए । हमारा यह भी मत है कि यदि भारत सरकार ने किसी परियोजना के लिए अनुज्ञप्ति की स्वीकृति प्रदान कर दी है तो वित्तीय संस्थाओं द्वारा इस परियोजना को स्थापित करने के संबंध में निर्णय देने के लिए पुनः विचार नहीं किया जाना चाहिए । हमारा यह भी विचार है कि राज्य के अन्दर सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजनाओं के स्थान के संबंध में राज्य सरकार की राय को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

7.8 हमारी राय में, उद्योगों के संवर्धन के लिए दिए गए प्रोत्साहनों से पिछड़े क्षेत्रों में उद्योकीकरण की प्रगति में तेजी आई है । पिछले 10 वर्षों से इन योजनाओं के कार्यान्वयन से औरंगाबाद, चन्द्रपुर इत्यादि जैसे औद्योगिक रूप से पिछड़े इन क्षेत्रों में उद्योगीकरण के नए विकास केन्द्र स्थापित हुए हैं ।

2. पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए वर्तमान कार्य-प्रणाली पहचान के लिए जिले को एक यूनिट के रूप में मानती है । पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए जिले का क्षेत्र बहुत बड़ा होता है । जिले के कुछ भागों में केंद्रित कुछ उद्योगों से जिले के शेष भाग, जहां उद्योग पर्याप्त मात्रा में विकसित नहीं हुए हैं, पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता । इसके अतिरिक्त, जिला स्तर के सांख्यिकीय आंकड़ों पर आधारित औद्योगिक पिछड़ेपन के सूचक भी विकास के संबंध में जिला असमानताओं का मिथ्या दिग्दर्शन करते है । पिछड़े क्षेत्रों में यूनिट स्थापित करना अलाभकर होने के कारण भावी उद्यमी ऐसे क्षेत्रों में अपनी परियोजनाएं स्थापित करने के लिए वित्तीय और अन्य प्रोत्साहनों पर निर्भर रहने लगे हैं । यदि किसी जिले को ऐसे मिथ्या दिग्दर्शन के कारण अधिकार से वंचित किया जाता है तो उसकी यह आशंका कि जिले के पिछड़े भाग स्थायी रूप से उद्योकीकरण के लाभों से वंचित रहेंगे, सत्य साबित हो सकती है । अतः पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए जिले को एक यूनिट के रूप में मानने की बजाय पहचान के लिए ताल्लुका को यूनिट मानना उचित होगा क्योंकि जिले की अपेक्षा ताल्लुका अधिक ठोस प्रशासनिक यूनिट है । इसके अतिरिक्त औद्योगिक रूप से पिछड़े ताल्लुकों की पहचान करने के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा :

(1) विकास के स्तर पर विचार करते समय किसी क्षेत्र की सार्वजनिक क्षेत्रक परियोजना के निवेश पर विचार, नहीं किया जाना चाहिए ।
(2) विकास की अवस्था निर्धारित करते समय साधन पर आधारित उद्योगों पर भी विचार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह अनिवार्य रूप से क्षेत्रों के विकास में योगदान नहीं करते ।
(3) प्रोत्साहनों के मापमान को रोजगार की संभावना से जोड़ा जा सकता है ।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 हमारी राय है कि ऐसा प्राधिकरण नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है और अन्तर्राज्य व्यापार या वाणिज्य पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए ।

कृषि

9.1 प्रश्न में विनिर्दिष्ट स्थिति में 1967 से तत्वतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । यह महसूस किया गया है कि सारवान क्रियाकलाप के लिए कृषि के क्षेत्र में केन्द्र सरकार का भी कुछ उत्तरदायित्व होना चाहिए । यद्यपि, कृषि राज्य का विषय है, तथापि यह केवल राज्यों से ही संबंधित नहीं हो सकता क्योंकि प्रायः बहुत से मामलों में अखिल भारतीय दृष्टिकोण को अपनाना होता है और इसके लिए कृषि विकास के क्षेत्र में केन्द्र सरकार का संबद्ध होना अनिवार्य है । केन्द्र सरकार पण्यों के अन्तर्राज्य व्यापार, उर्वरक, नाशक जीवमार इत्यादि

जैसे बड़े कृषि निविष्टि के उत्पादन और पूर्ति नियंत्रण से संबंधित अपनी नीतियों के द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान और विभिन्न केन्द्रीय अनुसंधान जैसे संस्थानों के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और राज्य के कृषि क्रियाकलापों से इनकी बड़ी संबद्धता है। हम चाहते हैं कि केन्द्र सरकार राष्ट्रीय स्तर पर अपनी भूमिका निभाती रहे और राज्यों को उनके क्रियाकलापों में सहायता करती रहे।

9.2 हम इस विचार से पूर्णतः सहमत नहीं हैं कि राज्य एजेंसियों द्वारा कार्यान्वित की जा रही केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाएं अन्ततोगत्वा राज्य क्षेत्र का भाग बन जाएं और उनकी संख्या कम-से-कम रखी जाए। तथापि, केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाएं बनाने में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को सक्रिय रूप से सम्मिलित करे और केन्द्र सरकार की भूमिका राज्य सरकार का व्यापक मार्गदर्शन करने और कृषि उत्पादन को बढ़ाने की विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन करने के लिए योजना साधनों की कमी को पूरा करने के रूप में सहायता करने के लिए योजना रहनी चाहिए। हाल के वर्षों में भारत सरकार ने अपना रुख इस ओर बदल लिया है कि केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाएं बनाने में सरकार को केवल मार्गदर्शन करना चाहिए और राज्यों से यह अपेक्षा करती है कि वे विस्तृत परियोजना फार्मूला बनाएं क्योंकि यदि एक बार लक्ष्य और व्यापक कार्य प्रणाली निर्धारित हो जाएगी तो प्रत्येक राज्य से केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाएं किस प्रकार से कार्यान्वित की जाएंगी इसके संबंध में लचीलापन होगा। हमारा यह भी विचार है कि केन्द्र सरकार कम-से-कम 10 वर्ष की अवधि के लिए ऐसी योजनाओं के कार्यान्वयन का खर्च दे।

9.3 अब तक केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच प्रभावी सहयोग है और हमें किसी गंभीर समस्या का सामना नहीं करना पड़ा है। यदि एक बार कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की योजनाओं को आरंभ करने में संबंधित लक्ष्य विनिर्दिष्ट कर दिया जाएगा तो राज्यों को योजनाएं आरम्भ की रिति के संबंध में अपने विचार व्यक्त करने का पर्याप्त अधिकार होगा।

9.4 भारत सरकार सारे देश के लिए विभिन्न पण्यों के समान न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करती रहती है। अतः यह महसूस किया गया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उत्पादन लागत भिन्न है, इसलिए स्थानीय कृषि-जलवायु स्थिति, उत्पादकता स्तर, उत्पादन लागत, बाजार-मूल्य इत्यादि को ध्यान में रखकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करने में पर्याप्त लचीलापन होना चाहिए। इसके लिए प्रश्न संख्या 4.7 के संबंध में दिया गया हमारा उत्तर देखें।

हमारा विचार है कि इस विषय में केन्द्रीय सरकार द्वारा की गई पहलू राज्यों के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उर्वरक, नाशकजीवमार इत्यादि जैसे महत्वपूर्ण निवेश से पर्याप्त मात्रा में अन्तर्राज्य संचलन होता है। जहां तक ऋण का संबंध है, भारत सरकार विभिन्न वित्तीय संस्थाओं को विभिन्न कृषि कार्यक्रमों के लिए ऋण देने का निदेश दे सकती है और नीतियां अत्यधिक नम्य बनानी होंगी ताकि राज्य अपने क्षेत्राधिकार के अन्दर ऋण प्राप्ति के लिए निश्चित नीतियां निर्धारित कर सकें।

सिंचाई के संबंध में हमारी राय है कि केन्द्र सरकार या उसकी एजेन्सियां परियोजना के मूल पहलू और इसकी अन्तर्राज्य विवक्षाओं, यदि कोई हों, को महत्व देते हुए अपनी संवीक्षा समग्र योजना पहलुओं तक सीमित रखे और 10 करोड़ रुपए तक की लागत वाली परियोजनाओं के लिए पूर्व स्वीकृति से तत्काल अभिमुक्ति प्रदान करे। इसके लिए प्रश्न संख्या 4.7 के संबंध में दिया गया हमारा उत्तर देखें।

वनोद्योग नीति और प्रशासन पहले राज्य का विषय था लेकिन बाद में केन्द्र सरकार ने इस विषय को समवर्ती सूची में शामिल करके और वन-संरक्षण विधि के अधिनियमन से बहुत अधिक परिवर्तित कर दिया। अतः राज्य सरकारों को वन से संबंधित छोटे विषयों के लिए भी केन्द्र सरकार को अनुमोदन के लिए लिखना पड़ता है जिससे परियोजनाओं के कार्यान्वयन में पर्याप्त विलंब होता है। इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए और हमारी राय है कि वन-संरक्षण से संबंधित राष्ट्रीय लक्ष्यों का, जिनके लिए स्पष्ट मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित किए जाने चाहिए, के अध्यधीन राज्य सरकारों को वनों के प्रशासन के लिए पर्याप्त छूट प्रदान की जानी चाहिए।

9.5 कृषि अनुसंधान या शिक्षा के संबंध में केन्द्र और राज्य के बीच कोई गंभीर समस्या नहीं है। तथापि राज्य में कृषि विश्वविद्यालयों के पास उपलब्ध निधि की अनुपूर्ति से प्राप्त लाभ की कुछ मात्रा का उपयोग करने में केन्द्र सरकार को राज्य में विद्यमान विशिष्ट परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए और राज्य के विचारों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए तथा इन समस्याओं को सामान्य समस्याएं नहीं मानना चाहिए। जहां तक नाबार्ड जैसी संस्थाओं का संबंध है व्यापक नीति मार्गदर्शक सिद्धान्तों को छोड़कर केन्द्र सरकार को वित्तीय संस्थाओं के कार्यचालन के लिए अधिक कठोर अनुदेश नहीं बनाने चाहिए। शिखर सहकारी बैंक इत्यादि जैसी वित्तीय संस्थाओं के कार्यचालन के संबंध में राज्य की नीतियों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इस संबंध में निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :—

(1) **ऋण प्राधिकार देना**—भारतीय रिज़र्व बैंक नाबार्ड ने महाराष्ट्र राज्य सहकारी बैंक पर यह प्रतिबंध लगाया है कि वह ऋण प्राधिकरण योजना यूनिटों की मध्यकालीन ऋण मंजूर करने से पहले उसका अनुमोदन प्राप्त करे। ये प्रतिबंध हटाए जाने चाहिए।

(2) **पूर्व-मौसमी ऋण**—सहकारी चीनी मिलों को ऋण प्राधिकरण योजना के अधीन प्रति वर्ष पूर्व-मौसमी ऋण मंजूर किए जाते हैं। पहले महाराष्ट्र राज्य सहकारी बैंक को पूर्व ऋण प्राधिकार के बिना अधिकतम 10 लाख रुपए के ऐसे बेजमानती ऋण मंजूर करने की अनुमति दी गई थी। यह सुविधा वापस ले ली गई है और इस सुविधा को पुनः प्रदान किया जाना चाहिए।

(3) **नई अनुज्ञप्त सहकारी चीनी मिलों को पूरक (वित्त) ऋण**—नाबार्ड को नई अनुज्ञप्त सहकार ने चीनी मिलों को पूरक ऋण के संबंध में लगाए गए प्रतिबंध हटा लेने चाहिए। महाराष्ट्र राज्य सहकारी बैंक की संपूर्ण अधिशेष साधन स्थिति का मूल्यांकन करने के बाद ऐसे ऋणों को ऋण प्राधिकरण योजना के अधीन नेमी कार्य के रूप में मंजूर किया जाना चाहिए।

(4) **गैर-कृषि उद्योगों का वित्त पोषण**—नाबार्ड द्वारा महाराष्ट्र राज्य सहकारी बैंक को अपनी अधिशेष निधि को कृषि उद्योग क्षेत्र से बाहर भी सहकारी यूनिटों को उधार देने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।

(5) **मौसमी नियंत्रण**—नाबार्ड द्वारा लगाए गए मौसमी नियंत्रण में छूट दी जानी चाहिए ताकि जिला ऋण सहकारी बैंक नाबार्ड से मौसमी कृषि प्रचालन के लिए पुनर्वित प्राप्त कर सकें।

(6) **रियायती ब्याज दर**—भारतीय रिजर्व बैंक नाबार्ड और भारत सरकार ने राज्य सरकार के छोटे किसानों को 6 प्रतिशत की दर पर अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण देने के प्रस्ताव को अनुमोदित नहीं किया है क्योंकि राज्य सरकार का इसके लिए पूरा वित्तीय दायित्व उठाने का विचार है इसलिए राज्य सरकार को यह योजना कार्यान्वित करने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।

(7) **महाराष्ट्र राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक**—वर्तमान में भूमि विकास बैंक उप-शाखा के लिए निर्धारित उधार सीमा से अधिक उधार नहीं दे सकता। अतः यह आवश्यक है कि नाबार्ड कम-से-कम भूमि विकास बैंकों, जोकि बैंककारी विनियमन अधिनियम के अधीन बैंक नहीं हैं, के मामले में अधिक लचीला रुख अपनाए और उधार देने के ऐसे मानक तैयार करें जिनका स्वरूप लचीला हो ताकि वे कृषि और सहबद्ध क्रियाकलाप के संतुलित क्रमबद्ध विकास में बाधक न हों।

नाबार्ड को अपने क्षेत्रीय कार्यालयों में तकनीकी खंडों को पर्याप्त समर्थ बनाना चाहिए ताकि क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा योजनाओं की शीघ्र स्वीकृति की गई योजनाओं के अन्तर्गत पुनर्वित जारी करने के लिए शक्तियां भी प्रत्यायोजित करनी चाहिए।

नाबार्ड के निदेशक बोर्ड में राज्य भूमि विकास बैंक राज्य सहकारी बैंक का एक-एक प्रतिनिधि होना चाहिए ।

खाद्य और नागरिक पूर्ति

10.1 हमारी राय है कि राज्य सरकार से परामर्श करने से पहले कीमत निर्धारण, भंडारण, खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के संचलन और संवितरण से संबंधित नीतियां बनाई जानी चाहिएं । जब तक राष्ट्रीय हित में पूर्णतया आवश्यक न हो तब तक एक पक्षीय निदेश जारी नहीं किए जाने चाहिएं ।

10.2 इसमें कोई संदेह नहीं कि आवधिक पुनरीक्षण उपयोगी होगा और यह आवश्यक भी है । वर्तमान में आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन विभिन्न प्रवर्तन और नियामक आदेशों के संबंध में केंद्रीय सरकार की पूर्व सहमति आवश्यक है । ऐसे पूर्व अनुमोदन लिए जाने को समाप्त किया जाना चाहिए । केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे विशिष्ट क्षेत्रों, जिनमें ऐसी किया जा सकता है, का निर्णय राज्य सरकारों से परामर्श करके किया जा सकता है ।

शिक्षा

11.1 यह कहना सही नही होगा कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीय-करण और मानकीकरण है । विषय "शिक्षा" समवर्ती सूची में सम्मिलित है और राज्य सरकार राज्य स्तर पर किए गए निर्णयों के आधार पर अपनी योजनाएं कार्यान्वित कर सकती है । जहां तक केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों का संबंध है, राज्य सरकार से केवल समय-समय पर भारत सरकार द्वारा जारी अनुदेशों का पालन करना अपेक्षित है । हमारे राज्य के अनुभव से यह पुष्टि नहीं होती कि केन्द्र सरकार राज्य सरकार की पहल शक्ति और प्राधिकार में हस्तक्षेप करती है ।

11.2 हमारे पास ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जहां विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने राज्य विश्वविद्यालय शिक्षा में हस्तक्षेप किया हो । आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के ढांचे के अन्तर्गत राज्य के विश्वविद्यालयों तथा गैर-सरकारी कालेजों को वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा है ।

11.3 हमारा विचार है कि शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों तथा केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच चर्चा और विचार-विमर्श द्वारा मतैक्य उत्पन्न करने की पर्याप्त गुंजाइश है । महत्वपूर्ण विषय के संबंध में चर्चा, विचार-विमर्श और सहमति की प्रक्रिया का अनुपालन किया जा रहा है । वस्तुत: भारत सरकार ने हाल ही में लोकसभा में एक दस्तावेज पर "चेलेंज ऑफ एज्युकेशन: ए पॉलिसी पर्सपेक्टिव" पेश किया है जिसमें केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार के विचार मांगे गए है । नई शिक्षा नीति को राज्य सरकारों से परामर्श करने के बाद अन्तिम रूप दिया जाएगा ।

11.4 महाराष्ट्र राज्य को अनुच्छेद 29 और 30 के अधीन सांविधानिक उपबंधों का प्रवर्तन करने में कोई कठिनाई नहीं हो रही है, जिसमें साम्प्रदायिक शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना और प्रबंध के संबंध में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की गारंटी दी गई है । राज्य में कई ऐसी अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाएं हैं जिन्हें राज्य सरकार ने अनुमति प्रदान की हैं और वे बिना किसी कठिनाई के चलाई जा रही है ।

11.5 जहां तक शिक्षा का संबंध है केन्द्र और राज्य के बीच संघर्ष का कोई विशिष्ट उदाहरण नहीं है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि भविष्य में ऐसे उदाहरण सामने आए तो चर्चा, विचार-विमर्श और सहमति से उनका समाधान किया जा सकता है ।

अन्त: सरकारी समन्वय

12.1 हमें अब तक केन्द्र-राज्य संबंधों में किसी गम्भीर विरोध का सामना नहीं करना पड़ा है, अत: हम समझते हैं कि अमेरिका में स्थापित की गई संस्था के समान कोई स्थायी संस्था स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है ।

ज्ञापन

प्रस्तावना

केन्द्र-राज्य संबंधों के आयोग का महाराष्ट्र आगमन पर हम हार्दिक स्वागत करते हैं और इसके सामने हमें राष्ट्रीय महत्व के इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने का जो अवसर दिया गया है हम उसके लिए इसके आभारी हैं। हमने आयोग द्वारा जारी प्रश्नावली के विस्तृत उत्तर पहले ही प्रस्तुत कर दिए हैं और इस ज्ञापन में हम केवल केन्द्र-राज्य संबंधों के अत्यधिक महत्वपूर्ण पहलुओं तक ही सीमित रहेंगे।

विचारार्थ विषय

2. केन्द्र-राज्य संबंध आयोग के विचारार्थ विषयों में विशेष रूप से यह व्यवस्था है कि संघ और राज्यों के बीच विद्यमान व्यवस्था के कार्यचालन की जांच और समीक्षा करते समय तथा आवश्यक परिवर्तनों और उपायों की सिफारिशें करते समय आयोग पिछले वर्षों में सामाजिक और आर्थिक विकासों को ध्यान में रखेगा तथा योजना और संविधान के ढांचे जिसे संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता, देश की एकता और अखण्डता जोकि लोगों का कल्याण संप्रवर्तित करने के लिए सर्वोपरि महत्व की है, सुनिश्चित करने के लिए इतने परिश्रम से तैयार किया है, का सम्यक ध्यान रखेगा। अतः इन्हीं प्राचलों (पैरामीटरों) के अन्दर जांच और समीक्षा तथा केन्द्र राज्य संबंधों में परिवर्तन की सिफारिशें यदि कोई हों, पर विचार किया जाना चाहिए।

संक्षिप्त ऐतिहासिक समीक्षा

3. योजना और संविधान के ढांचे का मूल्यांकन करने के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले अभिभावी राजनीतिक स्थिति की संक्षिप्त समीक्षा करना आवश्यक है। भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अधिनियमन तक भारतीय उप-महाद्वीप में शताब्दियों तक एकात्मक शासन रहा। 1919 के अधिनियम द्वारा ही प्रान्तों में द्वितन्त्र का आरम्भ किया गया था जोकि एक प्रकार से अर्ध संघीय ढांचे की शुरूआत थी। 1919 और 1947 के बीच स्वतंत्रता पूर्व इतिहास से यह प्रकट होता है कि पूर्ण स्वाधीनता के लिए स्वतंत्रता आन्दोलन कैसे विभिन्न अवस्थाओं से गुजरा। कैबिनेट मिशन प्लान के असफल होने पर अबद्ध परिसंघ के लिए संविधान की व्यवस्था का कोई प्रयोजन नहीं रह गया था। वस्तुतः विभाजन की स्वीकृति और भारतीय रियासतों के विलय के फलस्वरूप संविधान निर्माताओं के पास कुछ अधिकार राज्यों को देकर तथा अवशिष्ट विधायी अधिकार संघ को देकर मजबूत केन्द्र की व्यवस्था करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह गया था। अतः इतिहास ने यह सबक सिखाया था कि विभाजन के बाद बचे शेष उप-महाद्वीप की एकता और अखण्डता बनाए रखने के लिए एक मजबूत केन्द्र, जिसके पास संघीय सरकार को एकात्मक शासन में बदलने का अधिकार हो, समय की आवश्यकता है।

4. सिद्धांततः व्यापक परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि हमारे संविधान में विशिष्ट विशेषताएं एकात्मक राज्य की ओर अभिमुख होना सामान्यतः निष्क्रिय हैं जिनमें संघीय सिद्धान्तों को अपनी भूमिका निभाने का पूरा अवसर दिया गया है लेकिन जब देशहित खतरे में हो तो खतरे की अवस्था समाप्त होने तक देश हित को सर्वोपरि माना गया है।

राजमन्नार समिति

5. तत्कालीन तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त राजमन्नार समिति की सिफारिश का समर्थन करना संभव नहीं है जिसमें सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों को विधायी शक्तियों का पुनर्वितरण करके, संविधान के उन संगत उपबंधों, जो राज्यों की अपेक्षा संघ को पर्यवेक्षण की भूमिका प्रदान करते है, को हटाकर संशोधित करके, या पर्याप्त रूप से परिशोधित करके, राज्यों को अधिक स्वायत्तता देने और राज्यों को सूची 2 में अधिक कर साधनों का आबंटन करने का जोरदार समर्थन किया गया है। सातवीं अनुसूची की तीनों सूचियों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से यह प्रकट होता है कि सामान्यतः राष्ट्रीय महत्व के विषयों को संघ सूची में सम्मिलित किया गया है, स्थानीय या क्षेत्रीय महत्व के विषयों को राज्यों की सूची में सम्मिलित किया गया है, और जिन विषयों से मुख्यतया राज्य संबंधित हैं, लेकिन जिन्हें राष्ट्रीय महत्व का माने जाने की संभावना है या जिनके लिए पूरे देश में समान नीति अपेक्षित है, को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया गया है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 251, 256, 257, 348, 349, 355, 356, 357 और 365 के उपबन्ध जिनके द्वारा राज्यों की अपेक्षा संघ की पर्यवेक्षण की भूमिका प्रदान की गई है, राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा करने तथा राज्यों में सांविधानिक तंत्र की असफलता से बचने के लिए राष्ट्रहित में आवश्यक है। संभवतः यह अनुच्छेद 365 द्वारा प्रदान की गई अनुशास्ति ही है जिसने राज्यों को संविधान की भावना के विरुद्ध अनियमित होने से रोका है।

6. राजमन्नार समिति की सांविधानिक विषयों से संबंधित अपीलों को छोड़कर अन्य अपीलें उच्चतम न्यायालय में न किए जाने की सिफारिश से सहमत होना भी संभव नहीं है। उच्चतम न्यायालय देश में उच्चतम अपील न्यायालय की भूमिका सहित बहु-भूमिकाएं निभाता है। उच्चतम न्यायालय ने अपने उत्तरदायित्वों का सन्तोषप्रद निर्वहन किया है। केवल मामलों के बकाया रहने के संबंध में ही शिकायत है। गत 35 वर्षों के अनुभव से यह प्रकट होता है कि निपटान की अपेक्षा अधिक मामले दायर किए जाते है जिसके फलस्वरूप काफी मात्रा में बकाया मामले एकत्र हो गए है और इनसे विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों वाले मामलों को उच्चतम न्यायालय भेजना सीमित करके तथा लघुतर सुनवाइयों, लघुतर बहसों और लघुतर निर्णयों जैसे कार्यविधिक अभिनव परिवर्तन करना आवश्यक है।

7. जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण से संबंधित सामान्य योजना जैसा कि सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों में दी गई है, में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि क्या राज्य सूची तथा समवर्ती सूची दोनों के विषयों में केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित विभिन्न योजनाओं के कार्यचालन से संबंधित प्रशासनिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन करने की गुंजाइश है। जिन योजनाओं से केन्द्र प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है या जो योजनाएं केन्द्र के एजेंट के रूप में राज्यों द्वारा चलाई जाती है, इन योजनाओं के कार्य के संबंध में में राज्यों को अधिकतम शक्तियां प्रत्यायोजित करना उचित होगा। इससे कार्य शीघ्र पूरा होने में सहायता मिलेगी।

राष्ट्रपति की सहमति

8. किसी ऐसी स्थिति का सामना करने या किसी ऐसी समस्या जोकि राज्य में उत्पन्न हो सकती है का समाधान करने के प्रयोजन के लिए केन्द्र-राज्य संबंधों को शासित करने वाले संविधान के उपबंध पर्याप्त है और केन्द्र तथा राज्यों के बीच उचित संबंध सुनिश्चित करने के लिए कोई सांविधानिक संशोधन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। केवल समवर्ती सूची से संबंधित राज्यों के विधायी प्रस्तावों को राष्ट्रपति की सहमति प्रदान करने की प्रक्रिया के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित करके सुधार करने का सुझाव दिया जा सकता है।

संविधान का अनुच्छेद - 3

9. एक विलक्षण विशेषता जोकि हमारे संविधान में प्रतिष्ठापित है और जो इसके संघीय सिद्धांतों की सुनिश्चित भावना के विपरित है, वह अनुच्छेद 3 है जोकि किसी राज्य को बढ़ाकर, घटाकर सीमाओं में परिवर्तन करके तथा नाम बदल कर नए राज्य बनाने के संबंध में है। यह अनुच्छेद संविधान में हमारे देश की असाधारण ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में सम्मिलित किया गया है और गत 35 वर्षों के अनुभव से यह प्रकट होता है कि हमारे संविधान

निर्माताओं द्वारा संसद में प्रकट किया गया विश्वास पर्याप्त उचित है। संसद किसी विशिष्ट राज्य की इच्छाओं का पालन करने को छोड़कर कभी भी इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया है। अतः यह निर्भय होकर कहा जा सकता है कि यद्यपि अनुच्छेद 3 संघीय सिद्धांतों के विपरित प्रतीत होता है फिर भी इसमें कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में, यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि सामान्य समय में हमारे संविधान के संघीय सिद्धांत प्रबल रहते हैं और केवल संविधान में उल्लिखित किसी प्रकार के आपातकाल के दौरान ही राज्य तब तक एकात्मक बन जाता है जब तक आपातकाल की स्थिति बनी रहती है। आपातकाल समाप्त होते ही एकात्मक स्वरूप समाप्त हो जाता है और राज्य अपने सामान्य संघीय स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

विधायी संबंध

10. समग्र राष्ट्रीय हित और विशेष रूप से देश की एकता और अखण्डता के लिए यह आवश्यकता है कि सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों के विषयों के वितरण की मूल योजना में कोई परिवर्तन न किया जाए। यह शिकायत करने का कोई आधार नहीं है कि संघ ने राष्ट्रीय हित या लोक हित की घोषणा की आड़ में राज्य विधायी क्षेत्र का अधिक्रमण किया है। अनुच्छेद 249 का वर्तमान उपबंध किसी विशिष्ट विषय के संबंध में संसदीय कानून के होते हुए भी राज्य के लिए कोई ऐसी विधि पारित करने के लिए पर्याप्त लचकदार है जोकि राज्य में विद्यमान स्थानीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक हो। व्यावहारिक दृष्टि से यह सुझाव दिया जा सकता है कि श्रम, ग्रामीण और शहरी विकास कार्यक्रमों, तकनीकी तथा चिकित्सीय शिक्षा जैसे विषयों के विधायी प्रस्तावों की जांच करते समय केन्द्र को राज्य के प्रगतिशील स्वरूप के और राष्ट्रीय हित के लिए हितकर प्रस्तावों पर सहमति देते समय उदार प्रस्तावों पर सहमति देते समय उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। इस संदर्भ में, संघ और राज्य के बीच अच्छे संबंधों के हित में यह वांछनीय होगा कि भारत के संविधान में ऐसे विशिष्ट उपबंध हों जिनके अनुसार जब तक कि अत्यावश्यकता के कारण इसे छोड़ना समुचित न समझा जाए, विषय पर कोई विधान प्रस्तावित करने से पहले केन्द्र के लिए राज्य सरकारों से परामर्श करना आवश्यक हो।

राज्यपाल के कार्य

11. संघ-राज्य संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल के पद का महत्वपूर्ण स्थान है। राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच में शक्तिशाली संपर्क स्थापित करता है तथा दोनों के बीच सदभावपूर्ण संबंध बनाए रखने में सहायक होता है। उसे एक परामर्शदाता और ज्येष्ठ राजनेता के रूप में कार्य करना चाहिए जिसे अपना परामर्श देना चाहिए एवं मंत्रिपरिषद् जैसाकि संविधान द्वारा अभिगृहीत है, की सहायता करनी चाहिए और उसके परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए। उसे अपने विवेकाधीन कार्यों का निर्वहन करने में ईमानदारी बरतनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो वह केन्द्र से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है लेकिन विवेकाधीन मामलों में संविधान के उपबंधों के अनुसार अन्तिम निर्णय उसे स्वयं लेना चाहिए।

12. केन्द्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल को अन्य कार्यों के साथ-साथ तीन महत्वपूर्ण कार्य निष्पादित करने होते हैं। अनुच्छेद 167 के अधीन वह मुख्य मंत्री से सूचना मांग सकता है और ऐसे कुछ मामलों जिन पर मंत्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया है, पर मंत्रि-परिषद् द्वारा विचार किए जाने के लिए कह सकता है। उसे राष्ट्रपति को आवधिक रिपोर्ट भेजनी होती है। राष्ट्रपति को राज्य के कार्यकलाप की स्थिति से अवगत करवाने के लिए ऐसा करना उपयोगी है। अनुच्छेद 200 के अधीन यदि राज्यपाल का यह मत है कि कोई विशेष बिल पर्याप्त महत्व का है तो वह ऐसे बिल को राष्ट्रपति द्वारा विचार किए जाने के लिए आरक्षित कर सकता है। अनुच्छेद 356 के अधीन राज्यपाल द्वारा इस विषय में राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजना अपेक्षित है कि राज्य विशेष की सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार चल रही है। यह विषय इस प्रश्न से भी जुड़ा हुआ है कि क्या राज्य-सरकार अपनी कार्यपालक शक्ति का प्रयोग केन्द्रीय कानूनों और संविधान के अनुच्छेद 365 के साथ पठित अनुच्छेद 356 में अन्तर्विष्ट केन्द्र की कार्यपालक शक्ति के अनुसार है, जिस पर अनुच्छेद 256 और 257 भी लागू होते हैं।

13. राज्यपाल से यह आशा की जाती है कि अनुच्छेद 356(1) के अधीन रिपोर्ट करते समय वह निष्पक्ष रहेगा तथा अपने स्वतंत्र निर्णय के अनुसार कार्य करेगा। यदि किसी दल का राज्य की विधान सभा में स्पष्ट बहुमत है तो मुख्यमंत्री का चयन करने में कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन यदि किसी विशिष्ट दल का स्पष्ट बहुमत नहीं है तो राज्यपाल को यह निर्णय करना होता है कि कौन-सा ऐसा दल या ग्रुप या दलों का ग्रुप है जो सरकार बना सकता है और जिसका वस्तुतः बहुमत होगा। ऐसी स्थिति में राज्यपाल का पूर्णतः निष्पक्ष होना आवश्यक हो जाता है। उसका एकमात्र प्रयोजन यह होना चाहिए कि उन परिस्थितियों के अधीन वह राज्य को जितनी स्थायी सरकार प्रदान कर सकता है अपने पूर्ण प्रयत्न से स्थायी सरकार प्रदान करे।

14. जब तक राज्य में वर्तमान सरकार को विधान सभा का बहुमत प्राप्त है तब तक राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अधीन बहुमत वाले दल का मुख्यमंत्री बनाए रख सकता है। लेकिन समस्या तब उत्पन्न होती है जब सत्तारूढ़ दल का बहुमत नहीं है और वह सत्रावसान की सिफारिश करता है। ऐसी परिस्थिति में राज्यपाल मुख्यमंत्री को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए विधान मण्डल की बैठक बुलाने के लिए कह सकता है। अनुच्छेद 172(2)(ख) के अधीन राज्य विधान सभा भंग करने की राज्यपाल की शक्तियों के संबंध में भी यही स्थिति है। सामान्यतया राज्यपाल को मुख्य मंत्री की सिफारिश माननी होती है लेकिन कुछेक मामलों में वह संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार मुख्य मंत्री को मामला मंत्री-परिषद् के सामने रखने की सलाह दे सकता है जोकि सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्तों के अनुकूल होगा।

15. राज्यपाल द्वारा निष्पादित की जाने वाली भूमिका, विशेष रूप से केन्द्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में, को ध्यान में रखते हुए वर्तमान स्थिति, अर्थात् वह तब तक राज्यपाल के रूप में कार्य कर सकता है जब तक राष्ट्रपति चाहे, बनी रहनी चाहिए और इसमें परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

16. यह विचार व्यक्त किया गया है कि यदि राज्य विधान मंडल में अपने विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाने के फलस्वरूप कोई दल मंत्रिपरिषद् से त्यागपत्र दे देता है तो किसी दल का बहुमत न होने पर राज्यपाल निष्पक्षता से कार्य न करके इस प्रकार से कार्य कर सकता है जिससे किसी विशिष्ट राजनीतिक दल या ग्रुप के हितों को बढ़ावा मिले, इसलिए ऐसी परिस्थितियों में राज्य में सरकार की अस्थिरता से रक्षा के लिए कुछ उपबंध अन्तर्विष्ट किए जाने चाहिए। कुल मिलाकर, अनुभव से यह प्रकट होता है कि यदि राज्यपाल स्वतंत्र, सम्मानित और निष्पक्ष व्यक्ति है तो ऐसा कोई आरोप लगाने का अवसर नहीं आता। तथापि, लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वे पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ कैसे व्यवहार करते हैं। संविधान बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 जिसके द्वारा संविधान में दल-बदल के आधार पर अयोग्य ठहराने का उपबंध सम्मिलित किया गया है के कारण ऐसा मत-भेद उत्पन्न होने वाली स्थितियों की संभावना व्यावहारिक रूप से शून्य हो गई है।

17. यह सुझाव कि ऐसे मार्गदर्शी सिद्धांत बनाए जाएं जिनके अनुसार राज्यपाल द्वारा विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग किया जाए, पर विचार करना अपेक्षित नहीं है। विभिन्न राज्यों में भिन्न स्थितियां उत्पन्न हो सकती है, इसलिए प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए कोई भी मार्गदर्शी सिद्धान्त पर्याप्त साबित नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त वैध रूप से इस विचार में ही विरोधाभास है कि राज्यपाल के विवेकाधीन कार्य मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अध्यधीन हों। मार्गदर्शी सिद्धान्तों के निर्धारण के बाद राज्यपाल के कार्य न्यायिक समीक्षा के अध्यधीन हो जाएंगे जिन्हें वर्तमान में पूर्णतः इससे अपवर्जित रखा गया है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह उचित ही होगा कि राज्यपाल को अपने विवेकाधीन कार्यों के निर्वहन के लिए स्वतंत्रता प्रदान की जाए।

प्रशासनिक संबंध

18. जहां तक अनुच्छेद 356(1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा राज्य सरकार का कार्यभार ग्रहण करने का संबंध है, हमारी राय है कि जब तक राज्यपाल अन्यथा इस बात से आश्वस्त हो कि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य नहीं कर रही, राज्यपाल को राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक मुख्य मंत्री का विधान सभा में बहुमत है और

वह अल्पावधि की सूचना पर विधान सभा में इसे सिद्ध करने के लिए तैयार है। इस संबंध में यह सुझाव दिया जाता है कि राज्य सरकार का कार्यभार राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण करने की सख्त कार्रवाई की सिफारिश करने से पहले, राज्यपाल को संबंधित मुख्य मंत्री को पर्याप्त चेतावनी देनी चाहिए ताकि यदि वह चाहे तो सुधारक उपाय कर सके। हाल ही के अनुभव से यह पता चलता है कि अनुच्छेद 356 के खण्ड (5) की चवालीसवें संशोधन से पूर्व की स्थिति के अनुसार पुनः लागू किया जाना चाहिए, क्योंकि यद्यपि परिस्थितियों से अनुच्छेद 356(1) के अधीन एक वर्ष के बाद उद्घोषणा का जारी रहना न्यायसंगत सिद्ध हो तथापि, किसी स्थिति में कथित खण्ड में विनिर्दिष्ट कड़ी शर्तें पूरी करना संभव न हो।

केन्द्रीय एजेंसियां

19. विभिन्न केन्द्रीय एजेंसियों की स्थापना देश में स्थायी अर्थव्यवस्था तथा समान आर्थिक या और सामाजिक संतुलन सुनिश्चित करने के लिए की गई थी। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि विभिन्न मामलों के लिए अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य आवश्यक है और इसलिए इन एजेन्सियों का बना रहना आवश्यक है। यद्यापि हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि इन एजेन्सियों के द्वारा संघ सरकार ने राज्य की स्वायत्तता में अनुचित अतिक्रमण किया है, तथापि, हमारा विचार है कि केन्द्रीय एजेंसियों द्वारा राज्य में उत्पन्न होने वाली स्थिति का और अधिक यथार्थवादी मूल्यांकन किए जाने की आवश्यकता है। इस संबंध में हम कृषि लागत और मूल्य आयोग का उदाहरण उद्धृत कर सकते है। हमारा यह भी विचार है कि केन्द्रीय विद्युत् प्राधिकरण और केन्द्रीय जल आयोग जैसी कुछेक एजेन्सियो के संबंध में शक्तियों का अति-केन्द्रीयकरण किया गया है जिसके फलस्वरूप राज्य के विकास की प्रगति में बाधा पड़ती है। अतः इस समय जो प्राधिकार कुछ एजेन्सियों में निहित हैं उन्हें राज्य सरकार में निहित करने की आवश्यकता है।

आंचलिक परिषदें

20. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन स्थापित, आंचलिक परिषदों की बैठकें सामान्यतया लगातार या नियमित रूप से नहीं हो रही है। अतः यह आवश्यक है कि आंचलिक परिषद् की बैठक नियमित रूपसे और प्रायः होती रहें तथा आंचलिक परिषद,की बैठकों में जिन विषयों पर व्यापक सहमति होती है उनका सभी संबंधितों द्वारा विशेषकर संघ सरकार द्वारा सक्रिय रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए ताकि उनका शीघ्र कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जा सके।

अखिल भारतीय सेवाएं

21. अखिल भारतीय सेवाएं कुल मिलाकर संविधान निर्माताओं की अपेक्षाओं को पूरा करती है। अखिल भारतीय सेवाओं को नियंत्रित करने के लिए वर्तमान व्यवस्थाओं से ऐसी स्थिति में राज्यों के नियंत्रण पर अधीनता कम किए बिना ऐसी सेवाओं का अखिल भारतीय स्वरूप निश्चित रूप से परिरक्षित रहता है जबकि अधिकारी राज्य से संबंधित कार्य करते है और इस प्रकार इससे राज्यों तथा संघ के बीच उचित तथा व्यावहारिक संतुलन बन जाता है।

राज्य में केन्द्रीय बलों की तैनाती

22. संविधान अनुच्छेद 355 के अधीन केन्द्र को यह कार्य सौंपा गया है कि वह बाहरी आक्रमण और आंतरिक उपक्रमों से प्रत्येक राज्य की रक्षा करे और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य कर रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस संबंध में स्थिति का मूल्यांकन करने से संबंधित विषय संघ सरकार के पास हो। तथापि हमारी यह राय है कि सामान्य नीति यह होनी चाहिए कि राज्य में केन्द्रीय बलों की तैनाती संबंधित राज्य सरकार के परामर्श से की जानी चाहिए।

प्रसारण और दूरदर्शन

23. प्रसारण और दूरदर्शन विषय की समवर्ती सूची में अंतरित करने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान स्थिति को बनाए रखा जाना चाहिए। तथापि संघ और राज्यों के बीच प्रभावी परामर्श की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि स्थानीय भाषाओं के कार्यक्रमों तथा स्थानीय संस्कृति तथा समस्याओं से संबंधित कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त समय दिया जाता है।

अन्तर-राज्य परिषद्

24. प्रशासनिक सुधार आयोग की संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन अन्तर-राज्य परिषद,की स्थापना करने की सिफारिश से सहमत होना संभव नहीं है। हमारा विचार है कि केन्द्र और राज्य या राज्य और राज्य के बीच किसी समस्या का समाधान परस्पर विचारविमर्श द्वारा किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो दो राज्यों के बीच किसी विवाद का समाधान केन्द्र की मध्यस्थता से किया जाना चाहिए तथा केवल अन्तिम उपाय और अत्यधिक आवश्यकता के रूप में ही किसी विशिष्ट वाद-विषय के लिए ऐसी परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए।

वित्तीय संबंध

25. संविधान के उपबंधों में मुख्यतया आय कर तथा संघ उत्पाद शुल्क का वितरण करके तथा गौणतः जिन राज्यों को सहायता की आवश्यकता है उन्हें सहायता अनुदान देकर राज्यों में संसाधन उपलब्ध करवाने की व्यवस्था है। इसका अर्थ यह है कि किसी विशिष्ट योजना या समस्या के लिए विकसित राज्य भी सहायता अनुदान के पात्र हैं। तथापि, क्रमिक वित्त आयोग ने तथाकथित सम्पन्न या धनी राज्यों का प्रगामी अहित करके राज्यों के बीच अपने संसाधनों के वितरण में पिछड़ेपन के विभिन्न कारणों को अधिक महत्व दिया है। यद्यपि अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों को अधिक सहायता दी जानी चाहिए, फिर भी यह सहायता तथाकथित धनी राज्यों को नुकसान पहुंचा कर नहीं दी जानी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखना भी आवश्यक है कि ऐसे धनी राज्यों का बहुत बड़ा भाग वित्तीय दृष्टि से कमजोर राज्यों के पिछड़ेपन के समान ही पिछड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त धनी राज्यों की अपनी कुछ विशिष्ट समस्याएं हैं जिन पर पर्याप्त खर्च और परिव्यय करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए बम्बई की समस्याएं, जिन पर राष्ट्रीय समस्या के रूप मे विचार किया जाना चाहिए। हमने यह भी देखा है कि महाराष्ट्र जैसे राज्य के संसाधनों का मूल्यांकन करते समय अधिकांश ऐसे राजस्व अधिशेषों की भी संकल्पना की गई है जो वस्तुतः हैं ही नहीं। अतः तथाकथित धनी राज्यों के विषय में वित्त आयोग और केन्द्र के रवैये मे परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता हैं।

कंपनी कर और सीमा-शुल्क में शेयर आबंटन

26. यद्यपि मुद्रा स्फीती के प्रभाव को अवशोषित करने के लिए केन्द्र सरकार के संसाधन पर्याप्त लचीले हैं लेकिन राज्य सरकारें मुद्रा स्फीती के प्रतिकूल प्रभाव को सहन नहीं कर सकती। अतः यह आवश्यक है कि कंपनी कर, जोकि किसी भी प्रकार से आय कर से भिन्न नहीं है, को विभाज्य पूल में सम्मिलित किया जाए। इसी प्रकार सीमा शुल्क में भी राज्यों को हिस्सा मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी स्तरों पर अधिक वित्तीय अनुशासन भी अत्यावश्यक है। अतः राज्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे श्रेष्ठ प्रशासनिक कार्य/विधियां अपनाकर, कठोर वित्तीय अनुशासन का पालन करके तथा संसाधनों का अधिकतम उपयोग करके असंतुलन को कम करने में प्रभावी सहयोग करें। केन्द्र को भी उन राज्यों को प्रोत्साहन देने पर विचार करना चाहिए जिन्होंने अपनी वित्त व्यवस्था सुदृढ़ बनाए रखी है। असमानता कम करने के विचार से संसाधनों को अधिक निर्धन राज्यों में अंतरित करने के उद्देश्य से बड़े पैमाने पर घाटे की वित्त व्यवस्था वांछनीय नहीं है। अतः घाटे की अर्थ व्यवस्था को स्वीकार्य सीमा के अन्दर बनाए रखना आवश्यक है अन्यथा यह अर्थ व्यवस्था में पहले से ही हो रही निरन्तर मुद्रा स्फीती की प्रवृत्ति को बढ़ावा देगी।

राज्य का हिस्सा निर्धारित करने का मानदंड

27. वित्त आयोग का कार्य संसाधनों और गैर योजना खर्च के लिए निधियों की अपेक्षाओं का मूल्यांकन करना तथा पर्याप्त अवक्रमण की सिफारिश करना है ताकि निधियों की अपेक्षा पूरी हो जाए। तथापि, उनका उद्देश्य धनी और निर्धन राज्यों के बीच संसाधनों के अन्तर को पूरा करना नहीं है। राज्यों द्वारा कर प्राप्ति के प्रयत्न करना तथा प्रबंध में दक्षता तथा किफायत करना सभी राज्यों

के लिए बुनियादी आवश्यकता है। निर्धन राज्यों की अधिक सहायता अनुदान देने से ही समस्या का समाधान नहीं होगा। अतः यह आवश्यक है कि राज्य विकासात्मक और गैर विकासात्मक योजनाओं का उचित कार्यान्वियन करके इष्टतम प्रतिलाभ प्राप्त करे।

करों में हिस्सा बांटने के संबंध में हमारा विचार है कि जो राज्य अधिक राजस्व उपार्जित करते हैं उन्हें समुचित हिस्सा मिलना चाहिए। तथाकथित धनी राज्यों को भी अपनी बाध्यताएं और उत्तरदायित्व निभाने होते है और वे विशेष रूप से आयकर, संघ उत्पाद शुल्क और कंपनी कर के रूप मे केन्द्र सरकार के लिए अधिक संसाधन जुटाते हैं।

यद्यपि, ऐसी वस्तुनिष्ठ मानदंड बनाना कठिन है जिसका प्रत्येक राज्य के लिए करों में हिस्सा निर्धारित करने, योजना सहायता और गैर-योजना सहायता के लिए प्रयोग किया जा सके। तथापि, हमारा विचार है कि आयकर, संघ उत्पाद-शुल्क, कंपनी कर और सीमा-शुल्क का 50 प्रतिशत राज्यों के हिस्से के रूप में निर्धारित किया जाना चाहिए।

राज्यों में आय-कर का वितरण करने के संबंध में आयकर वसूली का 45 प्रतिशत राज्य द्वारा आयकर वसूल करने में किए सहयोग के लिए संबंधित राज्य दिया जाना चाहिए तथा शेष 55 प्रतिशत राज्यों की जनसंख्या के समानुपात में वितरित किया जाना चाहिए। जहां तक संघ उत्पाद शुल्क का संबंध है राज्यों के हिस्से का वितरण निम्नलिखित आधार पर किया जाना चाहिए :—

(1) 60 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर दिया जाना चाहिए। जिस में से 30 प्रतिशत शहरी जनसंख्या और 70 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के लिए दिया जाना चाहिए।

(2) 20 प्रतिशत महत्व राज्य की प्रतिव्यक्ति आय के डिस्टेंस के गुणनफल के आधार पर और छठे वित्त आयोग के फार्मूले के अनुसार राज्यों की अधिकतम प्रति व्यक्ति आय और राज्यों की जनसंख्या की तुलना में राज्य के आर्थिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए दिया जाना चाहिए।

(3) 10 प्रतिशत महत्व जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के निष्पादन और 10 प्रतिशत महत्व अल्प बचत के संग्रहण को दिया जाना चाहिए।

योजना सहायता

28. योजना सहायता के संबंध में मूल गाडगिल फार्मूले को पुनः अपनाना आवश्यक है क्योंकि वर्तमान फार्मूला महाराष्ट्र जैसे राज्यों के लिए अलाभकारी है। हमारा सुझाव है कि अनुदान के समानुपात को बढ़ाकर राज्यों के ऋण भार को कम किया जाना चाहिए। राज्यों की विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए केन्द्र को उसे प्राप्त विदेशी सहायता का अधिक हिस्सा राज्यों को अंतरित करना चाहिए।

अल्प बचत

29. अल्प बचत वसूली में राज्य का शेयर वर्तमान निवल वसूली के दो तिहाई से बढ़कर निवल वसूली के तीन चौथाई तक करने की गुंजाइश है। इसके अतिरिक्त अल्प बचत ऋणों को स्थायी ऋणों के रूप में समझा जाना चाहिए।

खुले बाजार के ऋण

30. खुले बाजार के ऋणों के संबंध में हमारी राय है कि कुल बाजार ऋणों के वितरण के पैटर्न में सुधार किया जाना चाहिए और राज्यों का हिस्सा बढ़ाया जाना चाहिए। इस संबंध में सुझाव यह है कि केन्द्र और राज्यों के बीच खुले बाजार के ऋणों का आबंटन केन्द्र और राज्यों के योजना आकार के समानुपात में किया जाना चाहिए तथा राज्यों में खुले बाजार ऋणों का परस्पर वितरण प्रत्येक राज्य में विभिन्न एजेन्सियों द्वारा बचत संग्रहण के समानुपात में किया जाना चाहिए। ऐसा करते समय राज्य की अदायगी क्षमता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं

31. हमारी यह राय है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं पूर्णतः केन्द्र द्वारा सहायता प्राप्त होनी चाहिए और यदि ऐसी योजना समाप्त की जाती है या राज्य की योजनेतर योजना को अंतरित की जाती है तो योजना के लिए स्वीकृत राशि में से उस समय तक किए गए खर्च को घटाकर शेष राशि योजना की शेष अवधि के लिए राज्यों को अन्तरित की जानी चाहिए। हमारा विचार है कि यदि केन्द्र के राजस्व के अधिक लचीले स्त्रोतों को विभाज्य पूल के अन्तर्गत लाया जाता है और उनका राज्यों में समानरूप से वितरण किया जाता है तो गैर योजना सहायता के लिए केन्द्र द्वारा सहायता अनुदान देने, स्वनिर्णयगत सहायता देने की आवश्यकता प्रायः नहीं रह जाएगी।

प्राकृतिक विपत्तियों से राहत के लिए केन्द्रीय सहायता

32. प्राकृतिक विपत्तियों का सामना कर रहे राज्यों को सहायता देने संबंध में हमारा सुझाव है कि यद्यपि अधिक वर्षा, बाढ़, आंधी आदि के कारण हुई क्षति के संबंध में दी जाने वाली सहायता के लिए समीक्षा की वर्तमान व्यवस्था संतोषप्रद है लेकिन सूखे को स्थिति में दी जाने वाली सहायता की जानी चाहिए। हमारी राय यह है कि खर्च और अग्रिम योजना सहायता के बीच के अनुबंधन को समाप्त किया जाना चाहिए और दुर्लभता राहत के कारण हुए अतिरिक्त खर्च, जिसे विद्यमान योजना कार्यक्रमों से पूरा नहीं किया जा सकता तथा मार्जिन राशि के लिए वित्त व्यवस्था अतिरिक्त खर्च की राशि के 75 प्रतिशत तक अनुदान के रूप में केन्द्रीय सहायता द्वारा की जानी चाहिए तथा शेष 25 प्रतिशत की व्यवस्था राज्य सरकार द्वारा की जानी चाहिए।

विशेष समस्याएं

33. हालांकि महाराष्ट्र जैसे तथाकथित धनी राज्य को बम्बई नगर में अधिक जनसंख्या की स्थिति जैसी अपनी कुछ निजी समस्याएं हैं फिर भी जब तक भारत सरकार इसे राष्ट्रीय समस्या नहीं समझती और इस कार्य के लिए विशेष अनुदान नहीं देती तब तक राज्य सरकार द्वारा अपने साधनों से इस समस्या का सामना करना संभव नहीं है।

अर्थोपाय सीमाएं

34. भारतीय रिजर्व बैंक के साथ राज्य सरकारों की अर्थोपाय सीमाओं के संबंध में हमारा विचार है कि परिवर्तन करने के लिए अनिवार्य विभिन्न कारणों को ध्यान में रखते हुए ऐसी सीमाओं का आवधिक पुनरीक्षण करना आवश्यक है।

राज्यों के संसाधनों में वृद्धि करना

35. हमारा विचार है कि विशेष धारक बांड योजना से प्राप्त संसाधनों और पेट्रोल तथा कोयले इत्यादि जैसी मदों की कीमतें बढ़ाने से प्राप्त होने वाले राजस्व को विभाज्य पूल में रखा जाना चाहिए। यह वह आय है जो अन्यथा आय कर के अध्यधीन होती। तथापि, इसका विशेष धारक बांडों में निवेश किया गया है जिसके फलस्वरूप यह कर में हिस्से योग्य नहीं रही। इसी प्रकार यदि पेट्रोलियम उत्पादों और कोयले का मूल्य बढ़ाने के बदले इन पर अधिक उत्पाद शुल्क लगाया जाता तो उस सीमा तक राज्यों का हिस्सा बढ़ जाता। अतः सुझाव है कि संघ सरकार को अनुच्छेद 268 और 269 में विनिर्दिष्ट कुछ ऐसी मदों से लाभ उठाना चाहिए जिनसे केन्द्र ने अभी तक लाभ नहीं उठाया है।

नियंत्रक महालेखा परिक्षक

36. संविधान के अन्तर्गत नियंत्रक महालेखापरीक्षक की वर्तमान व्यवस्था युक्तिसंगत और संतोषप्रद है और इसलिए इसमें कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। संसद ने भी लेखाओं के रख-रखाव और खर्च की लेखापरीक्षा के संबंध में नियंत्रक महालेखापरीक्षक को पर्याप्त शक्तियां प्रदान की हैं।

अनुदान के उपयोग का परिवीक्षण

37. भारत सरकार द्वारा विशिष्ट योजनाओं के कार्यान्वियन के लिए दिए गए सहायता अनुदान के उपयोग का यथोचित परिवीक्षण किया जाना आवश्यक है। आठवें वित्त आयोग के इस सुझाव पर विचार किया जाना चाहिए कि कार्यक्रमों के परिवीक्षा और अनुदान के उपयोग के लिए एक अन्तर मंत्रालय उच्च अधिकार समिति होनी चाहिए।

आर्थिक और सामाजिक योजना

38. आर्थिक और सामाजिक योजना के क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों को एक दूसरे की पूरक भूमिकाएं निभानी होंगी। केन्द्र को विकास के विभिन्न क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय प्राथमिकताएं और उद्देश्य निर्धारित करने से संबंधित कार्य करना होगा। तथापि, राज्य सरकार को समग्र राष्ट्रीय नीति ढांचे के अन्तर्गत राज्य में स्थानीय स्थिति के लिए उपयुक्त अपनी योजना बनाने में पूरी छूट दी जानी चाहिए। वर्तमान त्रुटियों को दूर करने के लिए यह सुझाव है कि (क) पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव को अन्तिम रूप देते समय राज्य सरकारों को सक्रिय रूप से इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार द्वारा योजना कार्यक्रम के बारे में कोई नीति निर्णय करने से पहले राज्य सरकारों से अनिवार्य रूप से परामर्श किया जाना चाहिए, (ख) राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक वर्ष में कम से कम एक बार आयोजित की जानी चाहिए; (ग) राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकों से पहले और बाद में सरकारी स्तर की बैठकें आयोजित की जानी चाहिएं। सरकारी स्तर की बैठकें आवश्यकतानुसार बार-बार आयोजित की जा सकती है ; (घ) राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकों में लिए गए निर्णयों पर अनुवर्ती कार्रवाई सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों के एक ग्रुप का गठन किया जाना चाहिए; (ङ) योजना आयोग को केवल विद्युत, बड़ी सिंचाई इत्यादि जैसे बड़े क्षेत्रों के लिए ही राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित करने चाहिएं, (च) राज्य योजना प्रस्तावों की संवीक्षा करते समय योजना आयोग के कार्यकारी ग्रुप को मुख्यतया राज्य के क्षेत्राधिकार में आने वाले विभिन्न कार्यक्रमों का विस्तृत विश्लेषण नहीं करना चाहिए और उन्हें केवल विद्युत तथा बड़ी सिंचाई इत्यादि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों तक ही सीमित रहना चाहिए।

राष्ट्रीय विकास परिषद्

39. सांविधिक आधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन विकेंद्रीकृत योजना के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो सकता है। कानूनी सलाहकार निकाय भी उचित ही रहेगा यदि यह विस्तृत परिप्रेक्ष्य में योजना निर्माण में और अधिक सार्थक रूप से राज्यों को इसमें सम्मिलित करता है और इसके बाद विस्तृत नीति ढांचे के अन्तर्गत इन्हें अपनी योजनाएं बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है।

योजना आयोग का गठन —राज्यों का प्रतिनिधित्व

40. जहां तक योजना आयोग के गठन का संबंध है इस पर पुनर्विचार करना अपेक्षित है। लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित करने के कार्य में राज्य सरकारों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना आवश्यक है। राज्यों के परामर्श से योजना प्राथमिकताओं और लक्ष्यों को अन्तिम रूप देने के बाद विस्तृत ढांचे के अंतर्गत अपनी योजना बनाने का काम राज्यों पर छोड़ देना चाहिए। जहां तक योजना आयोग के गठन का संबंध है, यह अर्थशास्त्रियों, प्रौद्योगिकीविदों और प्रबंध विशेषज्ञों तथा प्रशासकों के प्रतिनिधियों, केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों, कम से कम बड़े राज्यों के प्रतिनिधियों का उच्च ग्रेड सलाहकार निकाय होना चाहिए। इससे नीति, उद्देश्यों, लक्ष्यों इत्यादि विषयों पर योजना आयोग को राज्य सरकार का दृष्टिकोण उपलब्ध होगा। यह आवश्यक नहीं है कि योजना आयोग स्वायत्त निकाय हो। इसे वर्तमान की तरह सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करते रहने देना चाहिए।

यह सही है कि राज्य योजना के संबंध में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के आधार पर विचार किया जाना तथा उन्हें राज्य योजना में सम्मिलित किया जाना आवश्यक है लेकिन योजना आयोग द्वारा राज्य योजना प्रस्तावों की संवीक्षा विशिष्ट योजनाओं की अपेक्षा उनके उद्देश्यों और परिणामों की ओर अभिलक्षित होनी चाहिए। व्यापक क्षेत्रीय परिव्यय के अंदर योजनाएं बनाने तथा उन्हें राज्य योजनाओं में सम्मिलित करने के लिए राज्य स्वतंत्र होना चाहिए।

केन्द्रीय सहायता

41. वर्तमान में राज्य सरकार को समग्र सहायता 70 प्रतिशत ऋण तथा 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में दी जाती है। इससे राज्यों पर अनुचित रूप से बोझ पड़ता है। अतः यह सुझाव है कि सहायता की शर्तें संशोधित की जाएं तथा समस्त सहायता अनुदान के रूप में प्रदान की जाए। विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित सहायता के विषय में यह सुझाव है कि समस्त विदेशी सहायता जोकि परियोजनाबद्ध है ;तथा वर्तमान में राज्य सरकार को 70 प्रतिशत दी जा रही है कि बजाय राज्य सरकार को पूरी सहायता दी जानी चाहिए। उक्त सहायता विदेशी एजेन्सी द्वारा प्रभारित ब्याज तथा नाममात्र के सेवा प्रभार पर भी दी जानी चाहिए। वापसी की अवधि भी विदेशी एजेन्सी द्वारा निर्धारित अवधि को ध्यान में रखते हुए निश्चित की जानी चाहिए। हमारा विचार है कि केन्द्र के पास राज्यों को दी जाने वाली सहायता की शर्तें उदार बनाने का पर्याप्त औचित्य है।

केन्द्रीय सहायता का आबंटन

42. केन्द्रीय सहायता का आबंटन करने के वर्तमान तरीके में चार कारणों को ध्यान में रखा जाता है यथा (1) जनसंख्या; (2) प्रति व्यक्ति आय द्वारा निर्णीत राज्य का पिछड़ापन; (3) कर प्राप्ति; और (4) राज्य की विशेष समस्याएं। न तो हम इन चार कारणों में कोई परिवर्तन करने की सिफारिश करते हैं और न ही हम योजना आयोग द्वारा वर्तमान में किए जा रहे आबंटन की प्रतिशतता में कोई परिवर्तन करने की सिफारिश करते हैं। तथापि, योजना आयोग द्वारा राज्य के पिछड़ेपन और कर प्राप्ति के अनुसार वितरित घटक के संबंध में संशोधन अपेक्षित है। वर्तमान फार्मूला जोकि प्रति व्यक्ति आय के अनुसार केन्द्रीय सहायता के 20 प्रतिशत के वितरण को नियंत्रित करता है, के अधीन केवल वह राज्य सहायता के पात्र हैं, जिनकी प्रति व्यक्ति आय सहायता के लिए अर्हता प्राप्त 14 राज्यों के औसत से कम है। यह उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि जो राज्य औसत से सीमांततः ऊपर है उसे भी इस घटक के अधीन विकसित राज्य मानकर सहायता से वंचित किया गया है। जबकि फार्मूला इस प्रकार का होना चाहिए कि इसके अधीन अधिक पिछड़े राज्यों को अधिक सहायता दी जानी चाहिए। इसके अधीन उन राज्यों को सहायता से वंचित नहीं किया जाना चाहिए जिन्हें केवल औसत के आधार पर विकसित राज्य माना गया है। इस दृष्टि से मूल गाडगिल फार्मूला अधिक न्यायसंगत और उचित था और इसलिए हम इसके प्रत्यावर्तन की सिफारिश करते हैं। 10 प्रतिशत का घटक, जिसका वितरण कर प्राप्ति के अनुसार किया जाता है, के संबंध में योजना आयोग द्वारा अपनाया गया वर्तमान फार्मूला गणितीय दृष्टि से सही नहीं है क्योंकि इसमें राज्य के आकार को ध्यान में नहीं रखा जाता। इस त्रुटि को परिशोधित करने के लिए राज्य की जनसंख्या द्वारा राज्य की कर प्राप्ति को महत्व दिया जाना आवश्यक है। हम यहां यह भी उल्लेख करना चाहते हैं कि क्योंकि जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना राष्ट्रीय नीति है इसलिए 60 प्रतिशत घटक और दूसरे तथा तीसरे घटक के अधीन महत्व के समनुदेशन के प्रयोजनों के लिए 1971 की जनसंख्या के आंकड़ों का प्रयोग करते रहना चाहिए। तथापि, यदि राज्य की प्रति व्यक्ति आय या प्रति व्यक्ति कर प्राप्ति जैसे सूचकों की संगणना उन्नतन कर संगणना और राज्य की आय के आंकड़ों के आधार पर की जाती है तो ऐसा विचार किए जाने वाले विशिष्ट वर्षों की जनसंख्या के आंकड़ों का प्रयोग करके किया जाना चाहिए।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं

43. हमारा विचार है कि परिवार कल्याण, संचारी रोग नियंत्रण इत्यादि जैसी केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं बनाते समय राज्यों को सक्रिय रूप से सहबद्ध किया जाना चाहिए ताकि अलग-अलग राज्यों की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखा जा सके और योजनाएं तदनुसार बनाई जा सकें ताकि उन्हें प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित किया जा सके। इसी प्रकार राज्यों को राज्य की वर्तमान स्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न घटकों में परिवर्तन करने की पर्याप्त छूट दी जानी चाहिए। यह सुझाव है कि केन्द्रीय सहायता प्राप्त कोई भी कार्यक्रम या केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना कम से कम 10 वर्ष की अवधि के लिए चालू रहनी चाहिए तथा वह पूर्णतया केन्द्र द्वारा सहायता प्राप्त होनी चाहिए। यदि केन्द्र द्वारा प्रायोजित कोई योजना समाप्त की जाती है या राज्य की योजनेतर योजना को अंतरित की जाती है तो योजना के लिए स्वीकृत राशि में से उस समय तक कार्यक्रम योजना के कार्यान्वयन पर किए गए खर्च को घटाकर शेष राशि योजना की शेष अवधि के लिए राज्यों को अन्तरित की जानी चाहिए।

जांच और मूल्यांकन

44. योजना कार्यक्रम का समुचित और प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार और योजना आयोग द्वारा सहवर्ती मूल्यांकन सहित जांच और मूल्यांकन की यथोचित पद्धति तैयार करना आवश्यक है ताकि निर्दिष्ट

अवधि में वांछित लक्ष्य प्राप्त किया जा सकें। इस प्रयोजन के लिए उचित तंत्र विकसित किया जाना चाहिए।

प्रभावी विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

45. योजना के लिए राज्य संसाधनों को अन्तिम रूप देने की वर्तमान समय अनुसूची भी किसी प्रभावी विकेंद्रीकरण को निवारित करती है क्योंकि योजना आयोग को प्रस्तुत करने के लिए इन्हें राज्य योजना में सम्मिलित किए जाने से पहले जिलों के पास अपनी योजनाएं बनाने के लिए समय नहीं मिलता। अत: राज्य स्तर से नीचे स्तर पर प्रभावी विकेन्द्रीकरण के लिए राज्यों को पर्याप्त समय अनुसूची के अनुसार अपनी योजनाएं आप बनाने के लिए यथोचित स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए।

विविध

उद्योग

46. उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची के विस्तार के फलस्वरूप 'उद्योग' विषय वस्तुत: संघ विषय में परिवर्तित हो गया है। इस अनुसूची की अनेक मदों को इस अनुसूची में से निकाला जाना चाहिए। हमने आयोग की प्रश्नावली के प्रश्न संख्या 7.2 के उत्तर में इनकी सूची प्रस्तुत की है। इस संदर्भ में यह सुझाव है कि जब केवल संसद् ही कानून बना सकती है तो किसी उद्योग पर राष्ट्रीय नियंत्रण के संदर्भ में वाक्यांश "राष्ट्रीय लोकहित" को परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है। निम्नलिखित मानकों का सुझाव दिया जाता है :—

(1) संसद् मूल उद्योगों और रक्षा उद्योगों के संबंध में कानून बना सकती है।

(2) मूल उद्योगों और रक्षा उद्योगों के उपांग उद्योगों और आनुषंगिक उद्योगों के संबंध में संसद् को कानून बनाने की आवश्यकता नहीं है।

(3) मूल उद्योगों के मामले को छोड़कर जहां राज्य में प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं, वहां राज्य सरकार को कानून बनाने का अधिकार होना चाहिए।

(4) राष्ट्रीय क्षमताएं और आवश्यकता निर्धारित हो जाने के बाद कृषि औजारों जैसे उद्योगों के संबंध में राज्य सरकार को राज्य में ही क्षमताओं का सर्जन करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। परिवहन उद्योग (चार पहियों वालों और वाणिज्यिक वाहनों को छोड़कर) के संबंध में राज्य सरकार को क्षमताएं निर्धारित करने का विशेषाधिकार होना चाहिए। इन मदों में साइकिल तथा दो और तीन पहियों वाले वाहन सम्मिलित होंगे।

औद्योगिक अनुज्ञप्ति के लिए कार्य-विधि

47. भारत सरकार द्वारा किसी विशिष्ट परियोजना के लिए क्षमता और उपलब्धता के संबंध में सिद्धान्त रूप में स्वीकृति दी जा सकती है, तत्पश्चात् यह आवश्यक नहीं है कि पूंजीनिर्गम, पूंजीगत माल के आयात, कच्चे माल के आबंटन और विदेशी सहयोग से संबंधित विषय समस्त अनुज्ञापन कार्य-विधि का भाग हों, लेकिन यदि एक बार मूल स्वीकृति दे दी जाती हैं तो ये सभी स्वत: उपलब्ध होने चाहिए।

48. लघु उद्योगों की सहायता के लिए राज्यों के पास संगठनात्मक संरचना है लेकिन केन्द्र में निहित कानूनी शक्तियों के अभाव और कच्चे माल के आबंटन जैसे निर्णायक विषयों पर अभी भी बृहद् या राष्ट्रीय स्तर पर संयोजन है। जब तक उचित रीति से कच्चे माल की पूर्ति की योजना नहीं बनाई जाती तब तक इसकी कमी बनी रहेगी और इस संबंध में केन्द्र अपनी शक्तियां राज्यों को देने के लिए बाध्य है। हमारी राय है कि (i) संस्थाओं के बीच अच्छे और अधिक समन्वित दृष्टिकोण; (ii) इस क्षेत्र में माल के लिए पर्याप्त विपणन सहायता तथा कच्चे माल की पूर्ति सुनिश्चित करने; और (iii) आवधिक और कार्यशील कर्ज पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराकर वित्तीय सहायता के माध्यम से राज्यों के इस क्षेत्र में सुधार हो सकता है।

49. "नो इंडस्ट्री डिस्ट्रिक्ट" में और जिस राज्य में अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजना आबंटित नहीं की गई है उस राज्य में परियोजना के आबंटन के आधार पर बड़े उद्योगों में केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष निवेश करने के निर्णय से हम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। बम्बई और इसके आस-पास पहले से ही हो चुके विकास के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ परियोजनाएं महाराष्ट्र में पहले ही स्थित थी और हमारा विचार है कि केवल इसी कारण से महाराष्ट्र की विदर्भ, मराठवाडा और कोंकण जैसे क्षेत्रों के संतुलित विकास के लिए ऐसी परियोजनाओं का समुचित कोटा प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। हमारा यह भी विचार है कि राज्य के अन्दर सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं के स्थान के संबंध में राज्य सरकार की राय को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि उद्योगों के स्थान निर्धारण के लिए पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के संबंध में वर्तमान कार्य प्रणाली पहचान के लिए जिले को एक यूनिट के रूप में मानती है। हमारी राय है कि पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए जिला एक बड़ा क्षेत्र है और पिछड़े क्षेत्रों की पहचान करने के लिए उचित यूनिट तालुका है। हमारा यह भी विचार है कि औद्योगिक रूप से पिछड़े तालुकों की पहचान करने के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाना चाहिए :—

(i) विकास के स्तर पर विचार करते समय किसी क्षेत्र की सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजना के निवेश पर विचार नहीं किया जाना चाहिए ;

(ii) विकास की अवस्था निर्धारित करते समय साधन पर आधारित उद्योगों पर भी विचार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह अनिवार्य रूप से क्षेत्रों के विकास में योगदान नहीं करते; और

(iii) प्रोत्साहन के मापमान को रोजगार की संभावना से जोड़ा जाना चाहिए।

व्यापार और वाणिज्य

50. ऐसा प्राधिकर नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है जैसाकि अनुच्छेद 307 द्वारा अपेक्षित है तथा अन्तर्राज्य व्यापार और वाणिज्य पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।

कृषि

51. यद्यपि, कृषि राज्य का विषय है तथापि यह केवल राज्यों से ही संबंधित नहीं हो सकता क्योंकि प्राय: बहुत-से मामलों में अखिल भारतीय दृष्टिकोण अपनाना होता है और इसके लिए कृषि विकास के क्षेत्र में केन्द्र सरकार का संबद्ध होना अपरिहार्य है। तथापि, हमारा विचार है कि कृषि के क्षेत्र में केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं बनाने में राज्य सरकारों को और अधिक सक्रिय रूप से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। हमारा यह भी विचार है कि ऐसी योजनाएं बनाते समय केन्द्र सरकार को केवल व्यापक मार्गदर्शी सिद्धान्त ही बनाने चाहिएं तथा राज्यों से यह अपेक्षा करनी चाहिए कि वे विस्तृत परियोजना बनाएं। दूसरे शब्दों में, यदि एक बार लक्ष्य और व्यापक कार्य प्रणाली निर्धारित हो जाएगी तो प्रत्येक राज्य को इस संबंध में लचीलापन प्राप्त होगा कि केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं किस प्रकार से कार्यान्वित की जाएं।

52. भारत सरकार सारे देश के लिए विभिन्न पण्यों के समान न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करती रही है। अत: यह महसूस किया गया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उत्पादन लागत भिन्न है, इसलिए स्थानीय कृषि जलवायु स्थिति, उत्पादकता स्तर, उत्पादन लागत, बाजार मूल्य इत्यादि को ध्यान में रखकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करने में अधिक लचीलापन होना चाहिए।

53. वनोद्योग नीति और प्रशासन पहले राज्य का विषय था लेकिन बाद में केन्द्र सरकार ने इस विषय को समवर्ती सूची में शामिल करके और वन संरक्षा विधि के अधिनियमन से बहुत अधिक परिवर्तित कर दिया है। अत: राज्य सरकारों को वन से संबंधित छोटे विषय के अनुमोदन के लिए भी केन्द्र सरकार को लिखना पड़ता है जिससे परियोजनाओं के कार्यान्वयन में पर्याप्त विलंब होता है। इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए और हमारी राय है कि वन संरक्षण से संबंधित राष्ट्रीय लक्ष्यों का, जिनके लिए स्पष्ट मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित किए

जाने चाहिए, के अध्यधीन राज्य सरकारों को वनों के प्रशासन के लिए पर्याप्त छूट प्रदान की जानी चाहिए ।

54. नाबार्ड जैसी वित्तीय संस्थाओं के संबंध में हमारी राय है कि व्यापक नीति संबंधी मार्गदर्शी सिद्धान्तों को छोड़कर केन्द्र सरकार को ऐसी वित्तीय संस्थाओं के कार्यचालन के लिए अधिक कठोर अनुदेश नहीं बनाने चाहिए । शिखर सरकारी बैंक इत्यादि जैसी वित्तीय संस्थाओं के कार्यचालन के संबंध में राज्य की नीतियों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए ।

खाद्य और नागरिक पूर्ति

55. हमारी राय है कि कीमत निर्धारण, भण्डारण, खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के संचलन और वितरण से संबंधित नीतियां बनाये जाने से पहले राज्य सरकार से परामर्श किया जाना चाहिए । आवश्यक वस्तु अधिनियम तथा अन्य नियामक केन्द्रीय अधिनियमों की प्रशासन व्यवस्थाओं का आवधिक पुनरीक्षण उपयोगी होगा । वर्तमान में आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन विभिन्न प्रवर्तन और नियामक आदेशों के संबंध में आवश्यक केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति लेना समाप्त किया जाना चाहिए । केन्द्र सरकार द्वारा ऐसी विशिष्ट क्षेत्रों जिनमें ऐसा किया जा सकता है का निर्णय राज्य सरकारों से परामर्श करके किया जा सकता है ।

शिक्षा

56. शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों तथा केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच चर्चा और विचार विमर्श द्वारा मतैक्य उत्पन्न करने की पर्याप्त गुंजाइश है ।

अन्तः सरकारी समन्वय

57. क्योंकि अब तक केन्द्र राज्य संबंधों में हमें किसी गम्भीर, विरोध का सामना नहीं करना पड़ा है, अतः अन्तः सरकारी संबंधों के लिए अमेरीका में विद्यमान के समान कोई स्थायी सलाहकार आयोग स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है ।

मणिपुर सरकार

प्रश्नावली के उत्तर

मणिपुर सरकार

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 हमारा देश अमेरीका के संघवाद से भिन्न एक सीमित संघवाद है।

1.2 हम सीमित संघवाद से सहमत हैं और हम राजमन्नार समिति की सिफारिश की सीमा तक सहमत नहीं है। अन्य राज्यों की तुलना में सभी प्रकार से पिछड़े हुए मणिपुर जैसे राज्यों को इस संबंध में अस्थायी कानूनी उपबंध बनाकर समग्र राष्ट्रीय संसाधनों के आबंटन में कुछ रियायत दी जानी चाहिए।

1.3 पर्याप्त विकेन्द्रीकरण से विघटन हो सकता है। भिन्न और पृथक संस्कृतियां बनाए रखने को छोड़कर सभी प्रकार से एकरूप देश या राष्ट्र का निर्माण करना हमारा प्रयास होना चाहिए। जो कुछ आपातकाल में आवश्यक है वह प्रयास के स्तर में अन्तर के साथ सामान्य समय में भी आवश्यक है। अन्यथा, आपातकाल के समय की अधिकतम दक्षता सामान्य समय में व्यर्थ हो जाएगी।

1.4 संघवाद की अमेरीकी पद्धति आज के युग में यथार्थता है। तथापि, भारत के लोग संघवाद के उस स्तर को अपनाने के लिए अभी तैयार नहीं है।

1.5 हम इन विचारों से सहमत हैं। संविधान जैसा कि यह वर्तमान में है, हमारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है। हमें सदैव अपनी मुश्किलों, समस्याओं और वाद-विषयों का समाधान संविधान के ढांचे के अंदर ही करने का भरसक प्रयास करना चाहिए तथा संविधान में संशोधन करने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए। संविधान में जितना अधिक संशोधन किया जाएगा, वह उतना ही अधिक परिभाषित हो जाएगा तथा इसका लचीलापन कम हो जाएगा।

1.6 संविधान की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विधायी शक्तियों का विभाजन और न्यायपालिका का पृथक्करण स्वतंत्रता की रक्षा करने तथा एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने के मूल आधार है।

1.7 संदर्भाधीन सांविधानिक व्यवस्थाएं न केवल उचित हैं बल्कि आवश्यक भी हैं।

1.8 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 हमें अब तक ऐसी किसी घटना का सामना नहीं करना पड़ा है।

2.2 कोई सुझाव नहीं है।

2.3 जी हां।

2.4 जहां विधि की एकरूपता होना अनिवार्य हैं वहां अधिकार देने वाला उपबंध स्थायी होना चाहिए।

2.5 जी नहीं।

भाग III

राज्यपाल के कार्य

3.1 संविधान में की गई संकल्पना तथा सुस्थापित परिपाटी के अनुसार राज्यपाल की भूमिका भारतीय परिस्थितियों में आदर्श तथा उपयुक्त है।

3.2 अपने स्वविवेकी कार्यों का निर्वहन करने में भी राज्यपाल की भूमिका एक मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक की होनी चाहिए। राज्यपाल को संबंधित राज्य मंत्रि-परिषद् से परामर्श करना चाहिए भले ही ऐसी राज्य मंत्री-परिषद् द्वारा व्यक्त किए गए विचार राज्यपाल या संघ सरकार पर बाध्यकारी न हों।

3.3 अनुच्छेद 356(1) के अंतर्गत राष्ट्रपति को कारंवाई करने के सुझाव संबंधी रिपोर्ट भेजते समय राज्यपाल को रिपोर्ट अपने स्वविवेकानुसार भेजनी चाहिए। क्योंकि इस उपबंध का प्रयोग केवल आपातकाल में करना ही अभीष्ट है इसलिए इसकी वांछनीयता में कोई संदेह नहीं है, लेकिन फिर भी कुछ अतिरिक्त रक्षोपाय किए जाने चाहिए। ऐसी शक्ति का प्रयोग सांविधानिक प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए वर्जित होना चाहिए।

मुख्य मंत्री को नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल को भूमिका भारत के राष्ट्रपति की भूमिका के सदृष होना चाहिए। विधान सभा के सत्रावसान या विधान सभा भंग करने के संबंध में राज्यपाल को मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार कारंवाई करनी चाहिए।

3.4 अनुच्छेद 200 और 201 में राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा विचार किए जाने के लिए बिलों को आरक्षित रखने की सामान्य शक्ति प्रदान को गई है। अत: राज्यपाल को इस संबंध में कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्तों से अवगत करवाने के लिए अनुदेशों की एक लिखत होना वांछनीय है। शक्ति, चाहे यह स्वविवेकानुसार स्वरूप की ही क्यों न हो, का प्रयोग मनमाने तरीके से नहीं किया जा सकता।

3.5 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है।

3.6 राज्यपाल केन्द्र का एजेन्ट नहीं है और उसे नाम-मात्र का राज्याध्यक्ष भी नहीं कहा जा सकता। वह निसंदेह केन्द्र और राज्यों के बीच निकट सम्पर्क स्थापित करता है। लेकिन राज्यपाल स्वतंत्र रूप से कोई कार्य नहीं कर सकता। भारत के राष्ट्रपति के समान उसे भी उन क्षेत्रों को छोड़कर जहां उसे स्वविवेकानुसार कार्य करना होता है, राज्य मंत्रि-परिषद् द्वारा दी गई सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए। उन कार्यों, जो राज्यपाल को अपने स्वविवेकानुसार करने है तथा जो कार्य उसे मंत्रि-परिषद् की सहायता और सलाह से करने हैं, को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। इन का निर्धारण जितना सुस्पष्ट होगा उतनी ही संभ्रम तथा संदिग्धता की संभावना कम होगी। स्वविवेकी शक्तियों का क्षेत्र अनुच्छेद 356 और 365 में अन्तर्विष्ट मामलों तक तथा अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्य मंत्री के चयन तक ही सीमित होने चाहिएं। अन्य मामलों के संबंध में मुख्य मंत्री का चयन हो जाने के बाद, राज्यपाल मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध होना चाहिए।

3.7 क्योंकि राज्यपाल के कार्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कार्य से भिन्न हैं इसलिए उसके नियुक्त करने और हटाये जाने का तरीका वही नहीं हो सकता जैसाकि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को नियुक्त करने या हटाये जाने के लिए निर्धारित किया गया है।

3.8 राज्यपाल का पद सांविधानिक राजाध्यक्ष का पद है। भारत के संविधान का ढांचा इस प्रकार का है कि उसको इस प्रकार से अधिकार देने की सिफारिश नहीं की जा सकती। इस संबंध में राज्यपाल की स्थिति, उन मामलों को छोड़कर जहां उसे अपने कार्यों का निर्वहन स्वविवेकानुसार करना है, भारत के राष्ट्रपति से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है। यद्यपि अनुच्छेद 164 के अन्तर्गत मुख्य मंत्री की नियुक्ति के मामले में कुछ सीमा तक स्वविवेक का प्रयोग अपरिहार्य है फिर भी विधानमंडल में बहुमत के विकल्प की जांच तथा सत्यापन करने के प्रयोजनों के लिए राज्यपाल को वही शक्ति प्रदान नहीं की जा सकती क्योंकि यदि उसे यही

शक्ति प्रदान की जाती है तो वह संघ सरकार के एजेंट के रूप में कार्य कर सकता है। यदि ऐसी शक्ति प्रदान की जाती है तो यह संघवाद के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा।

3.9 आधारभूत विधि के अनुच्छेद 67 द्वारा जर्मन गणतंत्र में लागू प्रणाली, भारतीय संविधान के अन्तर्गत उपयुक्त नहीं हो सकती क्योंकि यहां राजनीतिक नेताओं तथा विधानसभाओं और संसद-सदस्यों के बीच निष्ठा परिवर्तित होती रहती है। यद्यपि जर्मन गणतंत्र द्वारा प्रस्तुत किया गया समाधीन आदर्शवादी स्वरूप का जान पड़ता है तथापि भारतीय संदर्भ में इसे व्यावहारिक नहीं माना जा सकता।

3.10 राज्यपाल विवेकाधिकार का प्रयोग किस तरीके से करे, इस सम्बन्ध मे मार्गदर्शी सिद्धान्त संघ को राज्यों के परामर्श से तैयार करने चाहिए और ये मार्गदर्शी सिद्धान्त उसी तरीके से अनुदेशों की लिखत में अन्तर्विष्ट किए जाने चाहिए जैसे कि वे भारत सरकार के अधिनियम 1935 के अधीन अपनाए गए थे।

भाग IV

प्रशासनिक सम्बन्ध

4.1 संविधान के अनुच्छेद 256, 257 और 365 का प्रयोजन केन्द्र और राज्य सम्बन्धों के विषय और क्षेत्र तथा राज्य पर केन्द्र के नियंत्रण की सीमा भी निश्चित करना है। जिन विषयों में राज्यों के संबंध में केन्द्र के प्राधिकार और शक्ति का प्रयोग किया जाना आवश्यक है, उनमें उक्त उपबंध लागू किए जाते हैं। संविधान का अनुच्छेद 365 केवल एक निर्णायक उपबंध है जिस पर उस समय निर्भर किया जा सकता है जब आपात उपबंध लागू करने के प्रयोजन के लिए परिभाषित स्थिति उत्पन्न हो जाए। ऐसी किसी शक्ति का प्रयोग करने का कोई कारण या निर्णय लेने की कोई आशंका कभी उत्पन्न नहीं हुई।

4.2 अपनी सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यों को केन्द्र के निर्देशों का अनुपालन करना पड़ेगा। इसकी अवज्ञा करने का अर्थ सांविधानिक निर्देशों का उल्लंघन करना होगा, जिसके परिणामस्वरूप सांविधानिक मशीनरी असफल हो जाएगी। विवाद से बचने के लिए, ऐसी स्थिति अनुच्छेद 365 में परि-भाषित की गई है। अत: यह एक आवश्यक उपबंध है।

4.3 हम इस सिफारिश से सहमत हैं क्योंकि केन्द्र हमेशा प्राधिकार को प्रदर्शित किए बिना स्वेच्छा से आज्ञापालन को तरजीह देगा।

4.4 इस संबंध मे पिछली कार्रवाइयों पर हमें कोई आपत्ति नहीं हुई।

4.5 हम इस अभिव्यक्त विचार से सहमत नहीं हैं। केन्द्र का हस्तक्षेप पूर्ण सामान्यता लाने के प्रयोजन के लिए नहीं है। यदि आपात उपबन्ध लागू करके तात्कालिक खतरे को दूर कर दिया जाता है तो सामान्यता पुन: स्थापित करने के लिए शेष समस्याएं राज्य सरकारों के समाधान के लिए छोड़ दी जानी चाहिए। उक्त प्रयोजन के लिए कम अवधि की समय सीमा अधिक न्यायोचित है।

4.6 सिवाय इसके यह सब संतोषप्रद है कि जहां सम्भव हो राज्य सरकारों को शामिल किया जाए और उनसे परामर्श किया जाए।

4.7 यदि विषय समवर्ती सूची के हैं और जिन क्षेत्रों में विशेषज्ञता और विशेष ज्ञान आवश्यक है उनमें केन्द्रीय एजेंसियों को अपने कार्यकलाप केवल सलाहकार स्वरूप तक सीमित रखने चाहिए।

4.8 अखिल भारतीय सेवाओं के जो सदस्य राज्य सेवाओं में हैं वे अधिकांशत: राज्य स्तर पर राजनीतिक दबाव का अधिक विरोध करते हैं क्योंकि उनकी जीविका सदैव राज्य के राजनीतिज्ञों की दया पर निर्भर नहीं है। यह नियंत्रण राज्य स्तर पर मनमाने और अविवेकपूर्ण कार्य करने से रोकने का एक मुख्य कारण है। अत: राज्य सरकारों को अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों पर नियंत्रण प्रदान करना वांछनीय नहीं है।

4.9 अनुच्छेद 355 केवल आपातकाल में और आपात काल के दौरान लागू किया जाना चाहिए। अत: आशंका का कोई कारण नहीं है।

4.10 हम सहमत हैं कि राज्य को जन-संचार के साधनों का उपयोग करने की सुविधा दी जानी चाहिए।

4.11 उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में उत्तर-पूर्वी परिषद् होने से आंचलिक परिषदें निरर्थक हो गई हैं।

4.12 हम सहमत हैं कि ऐसी एजेंसी का यथा-प्रस्तावित कार्य करने के लिए स्थायी गठन किया जाना चाहिए।

भाग V

वित्तीय सम्बन्ध

5.1 संविधान ने राज्यों को कृषि, चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य, कानून तथा व्यवस्था आदि ऐसे विषय आबंटित किए हैं जो जनता के जीवन को अत्यधिक प्रभावित करते है। ऐसे विषयों का प्रशासन राज्यों द्वारा कुशलता से किया जा सकता है क्योंकि वे जनता के निकट होते है और उनकी समस्याओं और आवश्यकताओं को अधिक बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। योजना के शुरू होने से कार्यनीति और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं में परिवर्तन हो गया है। नई विकास कार्यनीति की युक्तियों और योजना प्राथमिकताओं को पुन: व्यवस्थित करने से राज्यों पर पिछले किसी भी समय की तुलना में वित्तीय भार अपेक्षाकृत अधिक पड़ा है। सामाजिक न्याय पर बल दिए जाने के कारण राज्यों को संसाधनों की अधिक आबंटन करने की जरूरत है क्योंकि जिन सेवाओं और कार्यक्रमों से अधिक उचित सामाजिक व्यवस्था कायम की जा सकती है, वे राज्यों के कार्यक्षेत्र में आते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राज्यों के बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए राज्यों को करों और राजस्वों का उचित रूप से वितरण नहीं किया जाता। इसके परिणामस्वरूप राज्यों के अपने संसाधनों और उनके व्यय में बहुत बड़ा और गम्भीर अन्तर हो गया है, जिससे बढ़ते हुए दायित्वों की पूरा करने के लिए वित्तीय सहायता के लिए केन्द्र पर निर्भर होना पड़ रहा है। कुछ समय से, इस कारण राज्यों द्वारा केन्द्र से निधियों का बड़े पैमाने पर अंतरण करने की लगातार मांग की जा रही है।

केन्द्र से राज्यों की वित्तीय अंतरण की विद्यमान प्रणाली में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा राज्यों की आवश्यकताओं का समानान्तर मूल्यांकन किया जाता है। वित्तीय अंतरण के इस नए घटक की संकल्पना संविधान निर्माताओं ने नहीं की थी। यदि दो स्वतन्त्र एजेंसियां राज्यों को सहायता देने की सिफारिश करने के लिए एक साथ कार्य करती हैं तो कुछ हद तक अतिव्याप्ति हो जाएगी। अति-व्याप्ति से बचने के लिए राजस्व लेखे में योजना और गैर-योजना व्यय के बीच विभेद करके उसे ठीक किया जाना चाहिए। वित्त आयोग राज्यों के गैर-योजना राजस्व लेखे के अन्तर्गत करों में हिस्सा देने और सहायता अनुदान तक ही सीमित रहता है, योजना आयोग ऋण और अनुदान दोनों के रूप में योजना सहायता प्रदान करता है। कर हिस्सेदारी को अधिकार के रूप में माना गया है और इससे राज्यों के पास अधिशेष राशि रह सकती है जिसे खर्च करने के लिए वे स्वतन्त्र हैं। अनुच्छेद 275 के अधीन अनुदान सामान्यत: शर्त रहित होते है और बराबरी के आधार पर नहीं होते हैं। ये कभी भी राज्यों के गैर-योजना घाटे से अधिक नहीं होते, यद्यपि विचारार्थ विषय वित्त आयोग को निर्धन राज्यों के गैर-योजना घाटे से अधिक अनुदान की सिफारिश करने से उसे नहीं रोकते। इसके विपरित करों में हिस्सा बांटने की योजना में कुछ राज्यों के पास गैर-योजना राशि का पर्याप्त अधिशेष रह जाता है। क्योंकि योजना के लिए राज्यों द्वारा अंशदान गैर-योजना की अधिशेष राशि और राज्यों द्वारा जुटाए गए अतिरिक्त संसाधनों से दिया जाएगा, इसलिए, अधिक निर्धन राज्य योजना को अन्तिम रूप दिए जाने के विषय में कमजोर तालमेल की स्थिति में हो जाते हैं। इस संदर्भ में, वित्त आयोग उन्नत और अन्य राज्यों के बीच राज्य सेवाओं की व्यवस्था में वर्तमान असमानताओं पर विचार करके निधियों के प्रवाह को विकासात्मक अभिमुखता प्रदान कर सकता है। केन्द्र से समस्त वित्तीय सहायता देने की सिफारिश करने के लिए वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन करने या किसी एक निकाय की स्थापना करने की आव-श्यकता नहीं है। योजना आयोग योजनागत परियोजनाओं के लिए सहायता की सिफारिश कर सकता है। इससे आयोग संसाधन खोजने का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाएगा और वह योजना कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकेगा।

5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल की टीका-टिप्पणी केवल इस समय ही वैध नहीं है बल्कि समग्र रूप से पिछले कुछ वर्षों से केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता बढ़ रही है। राज्यों को कर लगाने की शक्तियों के अधिक पुन: वितरण

से ही इस प्रक्रिया को रोका या बदला नहीं जा सकता । इस बात में कोई विवाद नहीं है कि कर संसाधनों के संदर्भ में राष्ट्रीय निधियों को बढ़ाने की आवश्यकता है । पूंजी और कार्य कुशलता के निर्मुक्त गतिशीलता वाले वृहत् अखिल भारतीय बाजार के लाभों को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए संविधान में दिया गया कर संसाधनों का वर्तमान वितरण बहुत सोच-समझकर किया हुआ लगता है और उसमें कोई मूलभूत परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है ।

एक अन्य विषय जिस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है संविधान का अनुच्छेद 276 है जिसके अधीन व्यवसाय, व्यापार और रोजगार पर कर के रूप में किसी राज्य, किसी नगर पालिका, जिला बोर्ड या राज्य के किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण के संबंध में एक व्यक्ति के लिए देय कर की राशि प्रतिवर्ष 250 रु० से अधिक नहीं होगी । यद्यपि यह उपबंध संविधान के निर्माण के समय उपयुक्त था किन्तु इस उपबंध द्वारा लगाई गई सीमा से इस स्रोत से कर लगाने और वसूल करने की राज्यों की शक्तियों पर अनुचित नियंत्रण लग गया है । सातवें दशक के प्रारम्भ से देश में कीमत के सामान्य स्तर में वृद्धि और मुद्रास्फीति होने से इस सीमा में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है ताकि राज्य अपने संसाधनों में वृद्धि कर सकें । यह अनुभव किया गया है कि सीमा यथोचित रूप से 250 रु० से अधिक कर दी जानी चाहिए ।

कम्पनी कर, आयकर पर अधिभार सीमाशुल्क आदि जैसी नई मदों से होने वाली आय को विभाज्य पूल में शामिल करके राष्ट्रीय रूप से वसूल किए गए करों के वितरण में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है । राज्यों को वितरण करने के लिए संघ को दी गई कर शक्तियों के पूर्ण कार्यान्वयन में भी परिवर्तन करना आवश्यक है । करों के अवक्रमण के अतिरिक्त, समानता के सिद्धान्त के आधार पर सहायता अनुदान से राज्यों, विशेषकर पिछड़े क्षेत्रों में, वित्तीय असमानता उत्पन्न हो जाएगी । इसके अतिरिक्त, केन्द्र पर बढ़ती हुई निर्भरता को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीयकृत बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, देशीय ऋणों, विदेशी सहायता एवं घाटे की वित्त व्यवस्था केन्द्र के नियंत्रण के माध्यम से उसे उपलब्ध विशाल वित्तीय संसाधनों में राज्यों की हिस्सेदारी हो ।

5.3 यद्यपि एक मजबूत केन्द्र की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता किन्तु मजबूत केन्द्र के साथ-साथ राज्यों का भी मजबूत होना असंगत नहीं है । इसके विपरित, मजबूत संघ केवल मजबूत राज्यों का ही संघ हो सकता है । भारतीय संविधान ने विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्रों में केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक शक्तियां दी है । संविधान में आयकर, कम्पनी कर, संघ उत्पाद शुल्क तथा सीमाशुल्क जैसे व्यापक आर्थिक आधार वाले करों की वसूली और उसके प्रशासन का कार्य संघ को दिया है । जबकि राज्यों की आबंटित संसाधन अपेक्षाकृत कम है और उनके वृद्धि की सम्भावना भी सीमित है । कर राजस्वों के लचीले स्रोतों के अतिरिक्त राष्ट्रीयकृत बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, देशी और विदेशी ऋण तथा घाटे की वित्त व्यवस्था के माध्यम से जुटाए जाने वाले सभी संसाधनों पर केन्द्र का नियंत्रण है । यद्यपि संविधान में उपबंधित संसाधनों के वर्तमान विभाजन को अस्त-व्यस्त करने की आवश्यकता नहीं है । तथापि अंतरण का तरीका ऐसा होना चाहिए कि क्षेत्रीय असमानता कम करने और सामाजिक तथा आर्थिक औचित्य की दृष्टि से संसाधनों का प्रयोग ऐसे विषयों पर किया जाए, जहां उनकी बहुत आवश्यकता हो ।

5.4 उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केन्द्र विद्यमान करों तथा संघ को दी गई कर शक्तियों का कार्यान्वयन करने के लिए बेहतर प्रशासन करे ताकि ऐसा सभी क्षेत्रों का वितरण राज्यों को किया जा सके जिनसे अभी तक लाभ नहीं उठाया गया है । इसके अतिरिक्त संघ के व्यय की प्रचुरता, औचित्य और कार्यकुशलता पर उचित निगरानी रखना आवश्यक है । व्यय पर अच्छा नियंत्रण रखने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का अच्छा नियंत्रण रखना बहुत से उपायों में से एक उपाय है । घाटे की वित्त व्यवस्था को अन्तिम उपाय के रूप में एक सीमित मात्रा तक अपनाया जा सकता है । जब तक इससे प्रभावी मांग बढ़ेगी तब तक अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा । भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक बेरोजगारी और मुद्रास्फिति है । यदि घाटे की वित्त व्यवस्था अधिक अपनाई जाती है तो ऐसी स्थिति में मुद्रास्फीति बढ़ जाती है ।

5.5 करों का हिस्सा निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित मापदण्ड अपनाया जाना चाहिए :--

(क) करों का हिस्सा

आयकर : आयकर का विभाज्य पूल 85 प्रतिशत से बढ़ाकर 90 प्रतिशत किया जाना चाहिए । आयकर की निविल आय का वितरण 90 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और 10 प्रतिशत पिछड़ेपन के आधार पर किया जाना चाहिए ।

आयकर पर अधिभार : वर्षानुवर्ष आयकर पर अधिभार लगाया गया है और 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया है किन्तु इससे प्राप्त आय पूर्णतः केन्द्र अपने पास रखता है । 1984-85 के बजट में अधिभार से लगभग 219 करोड़ रु० प्राप्त होने का अनुमान है । अधिभार कुछ असम्भावित घटनाओं की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए लगाया जाता है और वह ऐसी अपेक्षाओं को पूरा करने की सीमित अवधि तक रखा जाना चाहिए । यदि अधिभार अनिश्चित काल तक जारी रखा जाता है तो इसे अतिरिक्त आयकर के रूप में मानकर आयकर से हुई शेष आय के साथ बांटा जाना चाहिए । इसे मूल दरों के साथ मिला कर राज्यों से हिस्सा करने योग्य बना देना चाहिए ।

कम्पनी कर : कुछ वर्षों से कम्पनी कर में असाधारण वृद्धि हुई है । 1952-53 में आयकर से 143 करोड़ रु० और कम्पनी कर से 44 करोड़ रु० की वसूली हुई । तब से स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया है ।

1984-85 के बजट में आयकर मे 1801 करोड़ रु० और कम्पनी कर से 2588 करोड़ रु० राजस्व प्राप्त होने का अनुमान है । इस प्रकार पिछले 32 वर्षों में आयकर में 1159 प्रतिशत वृद्धि हुई है जबकि कम्पनी कर में 5702 प्रतिशत वृद्धि हुई है । विभाज्य पूल में से कम्पनी कर निकाल देने से राज्यों को राजस्व के ऐसे स्रोतों से वंचित कर दिया गया है जो आयकर से अधिक लाभप्रद है । यह सुझाव दिया जाता है कि आयकर के रूप में होने वाले कम्पनी कर का 50% भाग संविधान में उपयुक्त संशोधन करके विभाज्य पूल में लाया जाना चाहिए तथा उसका वितरण आयकर की भांति ही राज्यों में किया जाना चाहिए ।

संघ उत्पाद शुल्क : संघ उत्पाद शुल्क की आय में राज्यों का हिस्सा 40 प्रतिशत के स्थान पर बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए । राज्यों में पारस्परिक वितरण विद्यमान आधार पर किया जाए ।

अतिरिक्त उत्पाद शुल्क : निकासी मूल्य की प्रतिशतता के रूप में अतिरिक्त उत्पाद शुल्क का भार बढ़ाकर 10.8% कर देना चाहिए तथा इसे भविष्य में इस स्तर से नीचे नहीं गिरने दिया जाना चाहिए और मूल तथा अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों की आय में 2:1 का अनुपात रखा जाना चाहिए । राज्यों में निविल आय का वितरण जनसंख्या के लिए 70 प्रतिशत, राज्य की घरेलु उपज के लिए 20 प्रतिशत और उत्पादन के लिए 10 प्रतिशत के आधार पर किया जाना चाहिए ।

कृषिय भूमि से भिन्न सम्पत्ति के संबंध से संपदा शुल्क : निविल आय का वितरण अचल सम्पत्ति के संबंध के स्थान के आधार पर और अचल सम्पत्ति से भिन्न सम्पति के संबंध में जनसंख्या के आधार पर किया जाना चाहिए ।

(ख) योजना सहायता

चतुर्थ योजना से पहले योजना सहायता मुख्य रूप से योजनाबद्ध थी और विशिष्ट परियोजनाओं या योजनाओं से बंधी हुई थी और इस प्रकार योजना का स्वरूप सशर्त अनुदान जैसा बन गया था । गाडगिल फार्मूले ने ऋण और अनुदान देने की अपनी सिफारिश के माध्यम से इसे और अधिक सामान्य बना दिया । बहुत हद तक ऐसी सहायता इससे सम्बद्ध शर्त से मुक्त थी । फिर भी पूरी योजना सहायता, योजना आयोग द्वारा समग्र योजना के अनुमोदन पर निर्भर है । इस समय सहायता की कुछ मदें विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सहबद्ध हैं और यदि इन क्षेत्रों में खर्च में कमी की गई तो सहायता में भी अनुपाततः कटौती की जा सकती है । वर्तमान प्रणाली में सहायता का तरीका 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान है । केन्द्रीय सहायता का वितरण करने के प्रयोजन के लिए आठ राज्यों को गाडगिल फार्मूले से बाहर रखा गया है और उन्हें विशेष श्रेणी के राज्यों में रखा गया है । ये राज्य असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर, मणीपुर, त्रिपुरा, मेघालय, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा है । विशेष श्रेणी के राज्यों को केन्द्रीय सहायता उनकी

वास्तविक आवश्यकता और पिछले कार्यनिष्पादन के आधार पर निर्धारित की जाती है। सहायता का तरीका सामान्य क्षेत्रों के लिए 70% ऋण और 30% अनुदान है तथा पर्वतीय क्षेत्रों के लिए 10% ऋण और 90% अनुदान है। योजना आयोग के माध्यम से केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान प्रणाली और कार्यविधि जारी रखी जानी चाहिए। मणिपुर का गाडगिल फार्मूले से बाहर विशेष दर्जा बनाए रखा जाना चाहिए।

(ग) गैर-योजना सहायता

क्रमिक वित्त आयोगों की सिफारिशों के अनुसार राज्य अनुच्छेद 275(1) के उपबन्धों के अधीन सांविधिक सहायता प्राप्त कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 275(1) के द्वितीय परन्तुक के खण्ड (क) के अधीन असम जनजाति क्षेत्रों के प्रशासन के लिए भी कुछ राशि प्राप्त कर रहा है। सांविधिक सहायता के अतिरिक्त राज्य अन्य प्रयोजनों के लिए संबंधित मंत्रालयों के माध्यम से केन्द्रीय गैर-योजना सहायता भी प्राप्त कर रहे हैं। अधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन है :—(i) विस्थापित व्यक्तियों की सहायता तथा पुनर्वास, (ii) युद्ध स्थिति के कारण अनिवार्य सहायता (iii) सीमा सड़कों, सामरिक महत्व और राष्ट्रीय राजमार्ग की सड़कों का निर्माण और रखरखाव, (iv) पुलिस बल का आधुनिकीकरण, (v) श्रम तथा रोजगार, (vi) शिक्षा, समाज कल्याण, और (vii) केन्द्रीय रिजर्व बल।

जहां तक अनुच्छेद 275 (1) के उपबन्धों के अधीन सहायता का संबंध है गैर-योजना राजस्व अन्तर का विनिश्चय पिछड़ेपन, विशेष समस्याओं और राष्ट्रीय महत्व के विषयों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। गैर-योजना अनुदान से इस प्रकार न केवल विनिश्चित अन्तर पूरा होगा बल्कि इससे पिछड़े राज्यों के पास राजस्व लेखे में पर्याप्त अधिशेष राशि रह जाएगी जिसका प्रयोग नए विकास के लिए किया जा सकेगा।

सीमित विनिर्दिष्ट मदों के सम्बन्ध में अन्य मुख्य और सांविधिक सहायता तथा अग्रिम सहायता व्यय की प्रतिपूर्ति के रूप में दी जाती है, जिसके लिए राज्य के बजट में प्रावधान किया जाता है। यद्यपि इस प्रयोजन के लिए अपनाई गई कार्यविधि के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है फिर भी अधिकतर यह अनुभव किया जा रहा है कि व्यय की कुछ और मदों के संबंध में पूरी प्रतिपूर्ति की जानी चाहिए। उदाहरण के तौर पर राज्य सरकार को प्रतिकूल परिस्थितियों से उत्पन्न राहत के लिए पर्याप्त राशि प्राप्त होती है किन्तु केन्द्र द्वारा 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान सहायता के रूप में दिया जाता है। ऐसी सहायता की राशि को पूरे अनुदान के रूप में मानकर उसके स्वरूप में संशोधन करना अपेक्षित है। जहां तक एस डब्ल्यू एस बाह्य व्यय का सम्बन्ध है, राज्यों को कोई गैर-योजना सहायता प्राप्त नहीं होती। गृह मंत्रालय केन्द्रीय रिजर्व बल/सीमा सुरक्षा बल की प्रत्येक बटालियन के संबंध में प्रतिवर्ष 24 लाख रुपए तथा परिवहन संचलन, जल आपूर्ति आदि का वास्तविक खर्च वसूल करता है। यद्यपि कानून तथा व्यवस्था बनाए रखना राज्य का विषय है किन्तु असामान्य स्थितियों में पूरे राज्य बल की तैनात करने के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर केन्द्रीय बटालियनों को तैनात करना आवश्यक हो जाता है। यदि केन्द्र उक्त सेवा के लिए अदायगी करने पर बल देता है तो इससे विशेषकर असामान्य स्थिति पर विचार करते हुए जिसमें ऐसी तैनाती करना आवश्यक हो जाता है, राज्य की वित्त व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस संदर्भ में छठे वित्त आयोग की टीका-टिप्पणी विशेष रूप से सुसंगत है। उक्त आयोग ने भारत सरकार से अनुरोध किया था कि कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य को उपलब्ध कराई गई केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल की सेवाओं के लिए अदायगी पूरी तरह छोड़ दी जानी चाहिए। उन्होंने यह भी टीका-टिप्पणी की थी कि भारत सरकार को यह विनिश्चय करने का अधिकार होगा कि किसी राज्य में कानून तथा व्यवस्था की स्थिति बनाए रखने के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के रूप में अनुपूरक सहायता की आवश्यकता है या नहीं और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि उक्त कार्य के लिए अदायगी में छूट दे दी गई तो राज्य सरकार बड़े पैमाने पर केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को सहायतार्थ बुलाएगी। अन्ततः भारत सरकार सम्पूर्ण देश में कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने में राज्य सरकारों के साथ बराबर की जिम्मेदार है। इस पहलू पर विचार करने की आवश्यकता है।

5.6 वित्त आयोग और योजना आयोग के तीन दशकों से भी अधिक समय के सतत प्रयत्नों के बाद की आर्थिक वृद्धि की वर्षों में अंतः क्षेत्रीय और अंतर्राज्यीय असमानताओं की मौजूदगी से इस विषय में किए गए उपायों की कमी का पता चलता है। अंतर्राज्यीय असमानता कम करने और सामाजिक औचित्य सुनिश्चित करने की दृष्टि से करों के एक हिस्से को अलग रखा जाना चाहिए और उसे केवल पिछड़े राज्यों में वितरित करने के लिए एक निधि में जमा किया जाना चाहिए। इस प्रकार सर्जित निधि को करों के राज्य के हिस्से में वृद्धि से और विभाज्य पूल में कम्पनी कर और अधिभार को शामिल करने का जो सुझाव दिया गया है उसमें से वित्तपोषित किया जा सकता है। इससे अंतर्राज्यीय असमानताएं कम हो जाएंगी और पिछड़े राज्यों के पास विकास कार्यकलापों में निवेश के लिए पर्याप्त अधिशेष राशि रह जाएगी।

5.7 तथा 5.8 भारतीय संविधान के निर्माताओं ने पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया था और संघ तथा राज्यों दोनों के लिए कराधान का क्षेत्र अलग-अलग निर्धारित किया था तथा इस प्रयोजन के लिए कराधान की दो अलग-अलग सूचियां तैयार की थीं। संघ तथा राज्यों को कराधान का कार्य आबंटित करते समय युक्तियुक्त कराधान प्रणाली के सिद्धान्तों का सम्यक् रूप से ध्यान रखा गया था। परिणामस्वरूप, आयकर, कम्पनी कर, सीमा तथा उत्पाद शुल्क जैसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष व्यापक आधार वाले कर लगाने की शक्तियां केन्द्र को दी गई थीं जो अर्थव्यवस्था, कार्यकुशलता, सुविधा आदि के सिद्धान्तों के अनुरूप है। उपभोज्य तथा आय और सम्पदा की स्थानीय मदों पर कर वसूल करने की शक्तियां राज्यों को दी गई थीं। अर्थव्यवस्था, व्यापार तथा वाणिज्य की स्वतन्त्रता और निष्पक्षता की दृष्टि से विचार करते हुए सम्भवतः यह सम्भव नहीं होगा कि आन्तरिक व्यापार और अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कराधान की कोई मद संघ सूची से अन्तरित कर दी जाए। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि आयकर, कम्पनी कर, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क आदि जैसे बड़े करों का समग्रतः देश की अर्थव्यवस्था पर गम्भीर प्रभाव है और इस प्रकार संविधान में दिए गए कर संसाधनों के वर्तमान विभाजन को बदलने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, केन्द्र इस समय जो रियायत, छूट और प्रोत्साहन दे रहा है या देने का प्रस्ताव कर रहा है, जिसके प्रभाव से विभाज्य पूल कम हो रहा है और जिन संगत विषयों का वित्तीय प्रभाव राज्यों पर पड़ता है, उनकी एक ऐसी समिति द्वारा गहराई से समीक्षा की जानी चाहिए, जिसमें केन्द्र और राज्य वित्त-मंत्रालयों के प्रतिनिधि हों। बिक्री कर राज्य के राजस्व का सबसे लचीला और लाभप्रद स्रोत है इसलिए इस क्षेत्र में अधिक हस्तक्षेप करने से राज्यों को उस संबंध में प्राप्त वह सीमित लचीलापन समाप्त हो जाएगा जिसका उपयोग वे अपने राजस्व को बढ़ाने के लिए कर रहे हैं।

5.9 गैर-योजना अन्तर को पूरा करने के लिए राज्यों की संसाधनों के अंतरण के प्रयोजन के लिए केन्द्र प्रत्येक पांच वर्ष में एक वित्त आयोग नियुक्त करता है। पांच वर्ष की अवधि में ऐसे बहुत से अनपेक्षित दायित्व उत्पन्न हो सकते हैं जिनके लिए वित्त आयोग व्यवस्था न कर पाए। उनके संबंध में राज्य वित्त मंत्रालय और योजना आयोग पर निर्भर रहते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक वित्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह जैसा कि उनके विचारार्थ विषयों में नियत है, किसी विनिर्दिष्ट तारीख तक होने वाले राज्य के व्यय का स्तर ध्यान में रखे। तारीख विनिर्दिष्ट होने से उस तारीख के बाद आयोग राज्य द्वारा स्वीकार किए गए किसी दायित्व पर विचार नहीं करता। ऐसे दृष्टिकोण से वित्त आयोग की घोषणा होते ही और नए खर्च के प्रस्तावों की राज्यों की प्रवृत्ति पर रोक लग जाती है। परिणामस्वरूप बहुत-सी अत्यावश्यक गैर-योजना आवश्यकताओं को या तो छोड़ दिया जाता है या राज्य वित्त-व्यवस्था पर अधिक भार डालकर कार्यान्वित किया जाता है फिर भी, इस बात को अनुभव करने का कोई वास्तविक कारण नहीं है कि वित्त आयोग की नियुक्ति राज्यों के लिए इस बात का संकेत हो कि वे मात्र अवार्ड का लाभ उठाने के लिए और नया खर्च करें। पंचवर्षीय वित्त आयोग की ऐसी कमियों का निवारण राज्यों को वार्षिक वितरण की व्यापक शक्तियों वाले निकाय स्वरूप के एक स्थायी वित्त आयोग की स्थापना से किया जा सकता है। गैर-योजना राजस्व लेखे की अधिशेष राशि, राज्यों के अतिरिक्त संसाधनों और योजना आयोग के माध्यम से दी गई योजना सहायता से योजना का वित्त-पोषण किया जाना चाहिए। यदि वित्त आयोग को मात्र अन्तर को पूरा करने के दृष्टिकोण से मुक्त एक स्थायी निकाय बना दिया जाता है तो योजना आयोग गैर-योजना अन्तर को पूरा करने के लिए संसाधनों का पता लगाने के भार से मुक्त हो जाएगा और निवेश, आयोजन और अधिक प्रभावशाली तरीके से निर्णय करने में अपनी भूमिका अदा कर सकता है।

5.10 मुक्त राजस्व प्रबन्ध अन्य बातों के अतिरिक्त कार्य कुशलता के सामंजस्य से खर्च में कमी पर आधारित किए गए व्यय से अधिकतम आवश्यक परिणाम प्राप्त करने के लिए राज्य उन्हें आबंटित संसाधनों को जिस तरीके से लगाते हैं उससे राज्यों की कार्य कुशलता और बचत करने के उपायों का पता चलता है। प्रत्येक वित्त आयोग परिसम्पत्तियों के अनुरक्षण और रखरखाव के लिए अखिल भारतीय आधार पर कतिपय मानदण्ड अपनाता है। राज्यों के लिए प्रायः यह सम्भव नहीं है कि वे स्थानीय कारणों और असामान्य मूल्यवृद्धि के कारण ऐसे मानदण्डों को दृढ़ता से अपनाएं। फिर भी राज्य सरकारें योजना के लिए संसाधन जुटाने की उत्सुकता में बचत करने की भावना से प्रेरित होकर आवश्यक सेवाओं की अपेक्षा करके खर्च कम करने का प्रयास करती है। संघ के वित्तीय अन्तरणों से राज्यों के बीच सार्वजनिक खर्च के स्तर में असमानताओं को बहुत हद तक कम करने में सहायता नहीं मिली है। राज्यों में, विशेषकर पिछड़े राज्यों में, आवश्यक प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में अभी तक असमानताएं मौजूद हैं। राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में असन्तुलन भी विद्यमान है। पिछड़े राज्यों में आवश्यक प्रशासनिक और सामाजिक सेवाएं मुहैया करने के लिए और अधिक प्राथमिकताएं विनिर्दिष्ट किए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए अनु० जा० / अनु० ज० जा० तथा अन्य पिछड़ी जातियों की शिक्षा, चिकित्सा, लोक स्वास्थ्य और कल्याण के लिए अधिक धन-राशि के विनिधान की आवश्यकता है। इस बारे में छठे वित्त आयोग ने शुरुआत भी कर दी है। यद्यपि पूर्ववर्ती आयोगों ने आधार वर्ष के स्तर पर अधिकतर प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के अनुरक्षण के आधार पर राज्य की अपेक्षाओं का निर्धारण किया था, किन्तु छठे वित्त आयोग ने पहली बार इस मानदण्ड से भिन्न आधार अपनाया। उन्होंने पिछड़े राज्यों को राष्ट्रीय औसत तक लाने की दृष्टि से उन राज्यों में कुछ प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के लिए और अधिक प्रावधान करने का प्रयत्न किया और इस प्रयोजन के लिए अनुदान की सिफारिश की। सातवें वित्त आयोग ने भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया और कुछ अन्य चुनी गई सेवाओं को भी यह लाभ दिए जाने की सिफारिश की। ऐसे दृष्टिकोण से धीरे-धीरे राज्यों में सेवाओं के मानक और सार्वजनिक व्यय के स्तर में विद्यमान असमानताएं कम हो जाएंगी। छठे वित्त आयोग द्वारा अपनाए गए और सातवें वित्त आयोग द्वारा उसका अनुकरण किए जाने पर यदि प्रयत्नपूर्वक उसका अनुसरण किया जाए तो कुछ समय बाद प्रशासन में कार्यकुशलता बढ़ने और असमानताएं दूर होने की सम्भावना है।

5.11 भारत में संघ से राज्यों को अंतरण मुख्य रूप से दो अलग-अलग एजेंसियों वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा किया जाता है। योजना आयोग को योजनागत सहायता की सिफारिश करने का काम सौंपा गया है। हालांकि वित्त आयोग का काम राज्यों के गैर-योजना राजस्व लेखे में उनकी वित्तीय अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सिफारिश करने तक सीमित है फिर भी अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत वित्त आयोग द्वारा कर अवक्रमण पर विचार करने के बाद सिफारिश किए गए सहायता अनुदान का प्रयोग राज्यों द्वारा अवशिष्ट अन्तर को कम करने के लिए किया जाता है। कभी-कभी यह विचार किया जाता है कि इससे अनुदान प्राप्त करने की अर्हता प्राप्त करने की उम्मीद में राज्यों को अपनी राजस्व अपेक्षाएं बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। वित्त आयोग के विस्तृत विचारार्थ विषयों से राज्यों की ऐसी प्रवृत्ति को रोकने में मदद मिलनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो इस उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए विचारार्थ विषयों में उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिएं।

किन्तु, इस संबंध में निर्धन और अन्य राज्यों में विभेद करना आवश्यक है। यह कहना ठीक नहीं होगा कि निर्धन राज्य वित्तीय अनुशासन के सभी मानकों की अवहेलना करके अपनी राजस्व अपेक्षाओं को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करेंगे। उन्नत राज्यों में प्राप्त किए जाने वाले प्रशासनिक और अन्य सेवाओं के स्तर को अपने लोगों तक पहुंचाने की चेष्टा में निर्धन राज्य अपनी राजस्व अपेक्षाओं को ऐसे प्रस्तुत कर सकते हैं। जो कुछ मानकों के अनुरूप न हो। किन्तु वे वित्तीय अनुशासन हीनता और अविवेक की प्रवृत्ति के कारण ऐसा नहीं करते बल्कि अपने राज्य के लिए सेवा का न्यूनतम स्तर प्राप्त करने की उत्सुकता में ऐसा करते हैं।

5.12 राज्य सरकारें यह भी महसूस करती हैं कि सातवें वित्त आयोग ने राज्यों को संसाधनों का अंतरण करने के लिए सहायता अनुदान में करों और शुल्कों के अवक्रमण की रीति को अधिक उपयुक्त रूप से समझा है। इससे राज्य केन्द्र की कर प्राप्तियों से हिस्सा और अपने द्वारा वसूल किए गए अतिरिक्त करों का लाभ प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु ऐसे प्रस्ताव से निम्नस्तर के शहरीकरण और औद्योगिक पिछड़े पन के कारण ऐसे निर्धन राज्यों का अहित होगा जिनका कर लगाने का आधार अपर्याप्त है और इससे राज्यों में विद्यमान असमानताएं और बढ़ जाएंगी। यदि राज्यों के बजटीय सन्तुलन को बनाए रखने के लिए सहायता अनुदान को केवल अन्तर दूर करने के लिए रखा जाए तो इस अवरोध को दूर किया जा सकता है। इसके स्थान पर सहायता अनुदान का उपयोग राज्यों में असमानताएं कम करने और वितरण संबंधी औचित्य सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए।

5.13 संघ से वित्तीय अन्तरणों की योजना में सहायता अनुदान की भूमिका के बारे में सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्तों से राज्य सरकार पूर्णतः सहमत है। सबसे पहले विद्यमान स्तर पर प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के अनुरक्षण के आधार पर राज्य की अपेक्षाओं का निर्धारण किया जाना चाहिए और उसके बाद पिछड़े राज्यों में जहां ऐसी सेवाओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के आधार पर बहुत कमियां देखने में आएं वहां उन्हें राष्ट्रीय औसत पर लाने के लिए प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के सुधार के लिए प्रावधान किया जाना चाहिए। अन्ततः राष्ट्रीय हित के विषयों को महत्व दिया जाना चाहिए। जहां तक मणिपुर का सम्बन्ध है, बर्मा के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर या उसके समीप स्थित होने के कारण सीमा सुरक्षा के मामले में इस की विशेष जिम्मेदारी है।

5.14 विशेष धारक बांड जारी करने के भारत सरकार के निर्णय से आय कर से प्राप्त होने वाले कुल राजस्वों में कमी होने की संभावना है। इसी प्रकार केन्द्र द्वारा अतिरिक्त संसाधन जुटाने के विचार से पैट्रोलियम कोयले आदि जैसी मदों की लागत कीमतों को बढ़ाकर राज्यों को इस प्रकार एकत्रित राशि के हिस्से से वंचित किया गया है यदि ऐसी मदों की लागत कीमतें बढ़ाने की बजाय इसके उत्पाद शुल्क की दरों में संशोधन किया जाता तो राज्यों को उसका उचित हिस्सा मिल जाता। अतः यह उपयुक्त ही होगा कि ऐसी वसूली से प्राप्त आय को राज्यों में वितरित करने के लिए विभाज्य पूल में लाया जाए।

5.15 भारतीय पूंजी बाजार में हुई बचत इस समय बाजार ऋणों लघु बचत वसूली के हिस्से पर उधार तथा वित्तीय संस्थाओं और भारतीय जीवन बीमा निगम के साथ बातचीत से तय किए गए ऋणों के रूप में केन्द्र और राज्यों में वितरित की जाती है। वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत राज्य केवल देश में से ही और संविधान के अनुच्छेद 293 के अधीन लगाई गई परिसीमाओं के अध्यधीन ही निधियां उधार ले सकते हैं।

हाल ही के वर्षों में, बाजार ऋण की कुल राशि मोटे तौर पर राज्यों के बीच उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आबंटित की जाती है जो सिद्धान्त योजना के लिए केन्द्रीय सहायता का वितरण करने के लिए अपनाए जाते हैं। किन्तु, इस प्रकार निर्धारित हिस्से की राशि सभी राज्यों को एक वर्ष में 10 प्रतिशत तक अधिक लेने की अनुमति दी जाती है। दूसरे शब्दों में, विभिन्न राज्यों में बाजार ऋणों का नियतन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा योजना आयोग और केन्द्रीय वित्त मंत्रालय की सलाह पर किया जाता है। यदि इस सिद्धान्त के स्थान पर राज्यों को प्रतियोगिता के आधार पर बाजार ऋण लेने की अनुमति दी जाएगी तो इससे अधिक समृद्ध राज्य प्रतियोगी ब्याज दर देकर निर्धन राज्यों का अहित करके अधिक निधियां प्राप्त कर सकेंगे, जो कि बहुत अनुचित होगा। राज्य सरकार इस विचार से सहमत है कि आर्थिक रूप से निर्धन राज्यों को ऋण से अधिक अनुदान की सहायता दी जानी चाहिए। इसलिए समृद्ध राज्यों को ज्यादा केन्द्रीय उधार और बाजार ऋण तथा निर्धन राज्यों को पूर्णतया अनुदान का नियतन किया जाए। इस समय लघु बचतों की निवल वसूली का दो-तिहाई भाग राज्यों को ऋण के रूप में पेशगी दिया जाता है। राज्य सरकार का विचार है कि ऐसे ऋण स्थिरावधि ऋण के रूप में माने जाने चाहिए। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम, भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, जीवन बीमा निगम आदि से राज्य सरकारों से ऋणों जैसे संस्थागत ऋणों में मणिपुर जैसे राज्यों की सार्वजनिक ऋण योजना के संबंध में इनकी भूमिका नगण्य है। यह अनुभव किया गया है कि ऐसे ऋणों का वितरण स्वतः शोधन परियोजनाओं के लिए विशेष परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए जो सेवाओं और ऋण-शोधन सम्बन्धी दायित्व वहन कर सकें।

43—376 M. of HA/ND/87

5.16 इसमें सन्देह नहीं कि राज्यों का बजट घाटा केन्द्र की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ रहा है। 1983-84 में राज्यों का सम्मिलित घाटा 750.00 करोड़ रुपए था और 1984-85 में घाटा 1312 करोड़ रुपए होने का अनुमान था। इसी अवधि में केन्द्र का घाटा 1695 करोड़ रुपये से बढ़कर 1762 करोड़ रुपए होने का अनुमान है। यह सच है कि केन्द्र से संसाधनों के अन्तरण में पर्याप्त वृद्धि होने के बावजूद राज्यों को अन्तरित की जाने वाली केन्द्र की राजस्व प्राप्तियों की प्रतिशतता में कमी हुई है। वित्त आयोग के माध्यम से दी जा रही केन्द्रीय सहायता के अंतरण की मात्रा से इस प्रवृत्ति का आंशिक रूप से पता चलता है। छठे वित्त आयोग के अवार्ड के आधार पर 1949-79 के दौरान राज्यों को अंतरण संघ की कुल राजस्व आय 43,976 करोड़ रुपए में से 11,168 करोड़ रुपए या उसका 25.4 प्रतिशत किया गया था।

सातवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार '1979-84 के दौरान संसाधनों का कुल अंतरण 80,126 करोड़ रुपए में से 20,843 करोड़ रुपए या उसका 26 प्रतिशत किया गया है, जो बहुत कम वृद्धि है। यद्यपि राज्यों की अपेक्षाएं तीव्रता से बढ़ रही हैं फिर भी उन्हें आवंटित संसाधनों में आवश्यक लचीलेपन का अभाव है, परिणामस्वरूप राज्यों में वित्तीय असमानता और ऋण-ग्रस्तता बढ़ रही है। राज्य सरकारों का पिछला बकाया ऋण 1970-71 में 8718 करोड़ रुपए था जो 1981-82 में बढ़कर 27,449 करोड़ रुपए हो गया। ऐसी स्थिति में, हमारी परिसंघीय व्यवस्था-केन्द्र और राज्यों के संसाधनों और उत्तरदायित्वों में बेहतर तालमेल लाने के लिए तुरंत सुधारक उपाय करने आवश्यक हो जाते हैं।

5.17 पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप राज्यों की ऋणग्रस्तता की समस्या अनुपात से अधिक बढ़ गई है। राज्यों का बकाया सार्वजनिक ऋण 1970-71 में 8718 करोड़ रुपए था जो बढ़कर 27,449 करोड़ रुपए हो गया है। समस्या की जटिलता पर विचार करते हुए ऋणग्रस्तता की वर्तमान की तरह आवधिक समीक्षा करने की बजाय वार्षिक समीक्षा की जानी चाहिए। निकाय स्वरूप का स्थायी वित्त आयोग समस्या की प्रभावशाली ढंग से जांच करने में समर्थ होगा। प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल की टीका-टिप्पणी के अनुसार राज्यों के सार्वजनिक ऋण के विभिन्न घटकों में केन्द्रीय सरकार से लिए गए ऋणों का प्रमुख स्थान है। 31 मार्च, 1982 की राज्यों की ऋण-स्थिति के विश्लेषण से यह पता चलता है कि 27,449 करोड़ रुपए के बकाया ऋणों में 19,967 करोड़ रुपए केन्द्र के हैं जो कुल ऋण का 12.7 प्रतिशत है। पूंजीगत लेखाओं के सम्बन्ध में भुगतान करने के दायित्वों के अतिरिक्त, सार्वजनिक ऋण की वृद्धि के साथ-साथ राज्य के राजस्व लेखाओं पर क्रमिक ब्याज प्रभार भी अधिक बढ़ गया है और यह राज्यों के लिए गम्भीर चिन्ता का कारण बन गया है। बकाया ऋण पर ब्याज की औसत दर वर्षानुवर्ष बढ़ रही है। यह बात मणिपुर के सेवाओं और ऋण-शोधन संबंधी दायित्वों से स्पष्ट है। आर्थिक योजना के नियोजन के शुरु होने से सार्वजनिक ऋण की समस्या बहुत गम्भीर हो गई है क्योंकि योजना के लिए केन्द्रीय सहायता पर ऋण पूर्वनिर्दिष्ट होते हैं। यदि उधार ली गई निधियों का प्रयोग स्वतः शोधन परियोजनाओं के लिए किया जाता है तो सार्वजनिक ऋणों की वृद्धि से चिन्ता की कोई बात नहीं है। किन्तु आर्थिक योजना नियोजन और विनिर्दिष्ट प्राथमिकताओं की अनिवार्यताओं के कारण ऋण की निधियों का बहुत बड़ा हिस्सा आर्थिक और सामाजिक निर्माण के लिए खर्च करना पड़ता है। अधिकांश राज्यों की वित्तीय अस्थिरता दूर करने के लिए अवक्रमण की वर्तमान योजना में त्रुटियां दूर करने के साथ-साथ योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की पद्धति में अनुदान की मात्रा बढ़ाना आवश्यक है।

5.18 भारत में राज्यों को देश में से ही ऋण लेने की शक्तियां दी गई हैं और विदेशों से ऋण लेने की शक्ति केवल संघ के लिए सुरक्षित है। राज्यों की ऋण लेने की शक्तियां भी राज्य विधानमंडलों द्वारा लगाई जाने वाली परिसीमाओं के अध्यधीन हैं तथा यदि कोई ऐसा पिछला ऋण अभी तक बकाया है जो भारत सरकार द्वारा राज्यों को दिया गया है तो राज्य भारत सरकार की सहमति के बिना और ऋण नहीं ले सकते। चूंकि सभी राज्य अलग-अलग स्तरों तक केन्द्र के ऋणी हैं इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य आन्तरिक ऋण प्राप्त करने के मामले में भी स्वतन्त्र हैं। राज्यों की आन्तरिक ऋण लेने की शक्तियों पर यह सांविधानिक प्रतिबन्ध इस बात को ध्यान में रखकर लगाया गया है कि राज्यों की प्रतियोगिता पूर्ण और बिना रोकटोक के उधार लेने की शक्तियों के कारण प्रतिकूल आर्थिक और राजस्व संबंधी प्रभाव न पड़े। वर्तमान व्यवस्था के अधीन सार्वजनिक ऋणों की कुल राशि केन्द्र द्वारा प्राप्त की जाती है और इसका आवंटन केन्द्र तथा राज्यों के बीच भारत सरकार द्वारा किया जाता है। सुदृढ़ वित्त-व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों पर प्रभाव डाले बिना उक्त निर्णय विकास के संदर्भ में उनकी वास्तविक अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर राज्य सरकार के परामर्श से लिया जा सकता है।

5.19 यह सच है कि केन्द्र विदेशी ऋणों के संबंध में राज्यों से विदेशी उधारकर्ताओं को अदा की जाने वाली दर से अधिक ब्याज की दर वसूल करता है। यह अतिरिक्त राशि उक्त सहायता राशि की व्यवस्था के खर्च को पूरा करने के लिए वसूल की जाती है, इसलिए इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। किसी भी स्थिति में पुनः ऋण की ब्याज की दर ऐसी निधियों की निबन्धन दर और पुनः ऋण देने के न्द्र द्वारा किए जाने वाले खर्च से अधिक नहीं होनी चाहिए। चूंकि निर्धन राज्य ऐसी परियोजनाओं के तैयार करने की स्थिति में नहीं हैं जो विदेशी एजेंसियों के विनिर्देशों को पूरा करें। इसलिए निबन्धित निवल विदेशी ऋण के समकक्ष रुपए में कुछ प्रतिशत विशेष उधार के रूप में राज्यों को संवितरित की जानी चाहिए।

5.20 राज्यों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे जितना चाहें पूंजीगत बाजार से ऋण ले लें, क्योंकि समृद्ध और अधिक विकसित राज्य ब्याज की प्रतियोगी दर देकर निर्धन राज्यों को हानि पहुंचाकर उपलब्ध निधियों का बड़ा हिस्सा प्राप्त कर लेंगे। तब निर्धन राज्यों की ओर से केन्द्र को बाजार से ऋण लेना पड़ेगा। जो कुछ भी हो, निर्धन राज्यों की अधिक ऋणग्रस्तता न्यायसंगत नहीं है। इसकी उपेक्षा उन्हें अधिक मात्रा में अनुदान दिया जाना चाहिए,। तथापि, ऋण परिषद् गठित किए जाने का विचार इस दृष्टि से स्वागत योग्य कदम है कि इससे इस समय केन्द्र और राज्यों के बीच ऋणों के वितरण की पद्धति के बारे में विकसित राज्यों की गलतफहमी दूर हो जाएगी। यह परिषद् राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित सिद्धान्तों के आधार पर केन्द्र और विभिन्न राज्यों द्वारा ली जाने वाली ऋण की अधिकतम राशि की सिफारिश करेगी।

5.21 अपने आवश्यक कर्तव्य पूरा करने के लिए राज्यों की वित्त संबंधी अन्तर्विष्ट अपर्याप्तता का पता उनके भारतीय रिजर्व बैंक से लिए जानेवाले ओवरड्राफ्ट से चल जाता है। आय और व्यय का अन्तर इस परेशानी का वास्तविक कारण है जिसका एक सूचक ओवरड्राफ्ट है। सदैव बढ़ते हुए इस अन्तर के अनेक कारण हैं। एक ओर राज्यों को कानून तथा व्यवस्था, सामाजिक सेवाओं और ऋण सेवाओं पर अत्यधिक खर्च करना होता है और दूसरी ओर स्वतः शोधन परियोजनाओं में पर्याप्त धन न लगाने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि उनकी राजस्व आय इतनी भी नहीं है कि वह पूर्व सर्जित परिसम्पत्तियों के रख रखाव के लिए भी पर्याप्त हो। केवल अर्थोपाय पेशगी की हदबंदी दुगुनी कर देने से ही स्थिति ठीक नहीं होगी। जब तक समस्या का पूरा समाधान नहीं किया जाएगा तब तक आधार रूप में यह स्थिति बनी रहेगी। मणिपुर जैसे पिछड़े राज्य की ऋण-सेवाओं और ऋण-शोधन का दायित्व लगभग...करोड़ रुपए है जो उसके कर राजस्वों से बहुत अधिक है। योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की मौजूदा पद्धति में परिवर्तन करके अनुदानों पर ऋणों की अधिभाविता कम करके, ब्याज की दर में कमी करके, वर्तमान की तरह 5 वर्ष के बाद की बजाय प्रतिवर्ष बकाया ऋण का पुनर्नियतन करके और अवक्रमण की अधिक उदारीकृत योजना द्वारा उपचारी उपाय अपनाए जाने आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त सामान्य और विशेष अर्थोपाय पेशगियों के विभेद को समाप्त किया जाना चाहिए तथा अर्थोपाय पेशगियों की कुल सीमा दोनों प्रकार की पेशगियों की सकल विद्यमान सीमा से कम नहीं होनी चाहिए। विशेष अर्थोपाय पेशगियों के संबंध में प्रतिभूति की मांग करने की परिपाटी से बहुत कठिनाई उत्पन्न होती है, अतः इसे समाप्त किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अर्थोपाय पेशगियों और ओवरड्राफ्ट पर ब्याज की विद्यमान दर उस स्तर तक कम कर दी जानी चाहिए जो योजना सहायता पर तथा भारत सरकार द्वारा दी जाने वाली अन्य प्रकार की सहायता पर लागू है। ब्याज के कारण अतिरिक्त दायित्व से राज्यों की अदूरदर्शिता की प्रवृत्ति पर रोक लगेगी।

5.22 संसाधन जुटाने के क्षेत्र में राज्यों के कार्यनिष्पादन का मूल्यांकन संविधान द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्तियों और संसाधन जुटाने के लिए उपलब्ध आधार के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। राज्यों के पास बिक्री-कर को छोड़कर अधिकांश

कर लचीले नहीं है । बिक्री कर में भी अधिकांश राज्य चरम-बिंदु पर पहुंच गए हैं और बिक्री-कर की दरों में आशोधन करके और अधिक संसाधन जुटाने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

सांविधानिक परिसीमाओं के बावजूद यह देखा गया है कि कुछ राज्यों ने अन्य राज्यों की अपेक्षा प्रति-व्यक्ति अधिक कर वसूल किए हैं । ऐसा राज्यों में औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के असमान स्तर के कारण हुआ है । निम्न स्तर पर शहरीकरण और औद्योगिक पिछड़ेपन के कारण प्रति व्यक्ति कर वसूल के क्षेत्र में निर्धन राज्य उन्नत राज्यों के स्तर तक नहीं पहुंच पाते । हमारे देश में राष्ट्रीय आय का बहुत बड़ा भाग कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता है और इस प्रकार इस क्षेत्र पर बहुत बड़ा भार पड़ता है । यह उन राज्यों के बारे में भी उतना ही सत्य है जहाँ राज्य विकास योजना का मुख्य भाग कृषि आय पर आधारित है ।

5.23 केन्द्रीय सरकार निकासी के मूल्य की प्रतिशतता के रूप में अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों के उस भार को 10.8% तक नहीं बढ़ा पाई जैसा कि 1970 में राज्यों के साथ तय हुआ था, और जिसके लिए बिक्रीकर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाया गया था । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 269 में सूचीबद्ध करों और शुल्कों का भी केन्द्र ने पूर्णतः राज्यों के लिए संसाधन प्राप्त करने के संबंध में पूरा लाभ नहीं उठाया है । परिणामस्वरूप, राज्य सरकारें उन्हें प्राप्य युक्तियुक्त राजस्वों से वंचित हो गई हैं । इसके अतिरिक्त, बहुत कर बकाया होने से और सार्वजनिक उद्यमों में घाटे को भी पूरा करने में बहुत अधिक धन लगाने से, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसे केन्द्रीय अधिशेष राशि को बढ़ाने के लिए प्रतिवर्तित करना आवश्यक हो गया है ।

5.24 इसमें कोई सन्देह नहीं कि संघ-राज्य संबंध तब इतने न बिगड़ते जितने पिछले कुछ वर्षों में बिगड़ गए हैं जबकि राज्य के राजस्व पर प्रभाव डालने वाले विषयों पर निर्णय करने से पहले राज्यों को केन्द्र के साथ विचार-विमर्श करने का पूरा तथा स्वतन्त्र अवसर दिया जाता । केन्द्र तथा राज्यों के बीच विचार-विमर्श करके असन्तुष्टता से काफी कुछ या तो बचा जा सकता था या उसे दूर किया जा सकता था । अनुच्छेद 268 और 269 में दिए गए किसी शुल्क या कर के उद्ग्रहण, उसकी दर में परिवर्तन करने या उसे समाप्त करने के संबंध में बिल प्रस्तुत करते समय राज्य सरकारों के विचार मालूम किए जाने चाहिए ।

5.25 संविधान के अनुच्छेद 269 में संघ द्वारा लगाए जाने वाले और वसूल किए जाने वाले करों की सूची दी गई है और उसमें विनिर्दिष्ट है कि उनसे प्राप्त निवल आय राज्यों को समनुदेशित की जानी चाहिए । इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के विषय में सम्पदा उत्तराधिकार शुल्क को छोड़कर संघ द्वारा कोई कर नहीं लगाया गया है । रेल किराये और भाड़े पर भी 1957 में कर लगाया गया था किन्तु बाद में 1961 में समाप्त कर दिया गया । पूर्णतः राज्यों के प्रयोजन के लिए संसाधन जुटाने के संबंध में केन्द्र ने अभी तक अनुच्छेद 269 का पूरा लाभ नहीं उठाया है ।

5.26 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है ।

5.27 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है ।

5.28 राहत व्यय के लिए वर्तमान वित्त व्यवस्था क्रमिक वित्त आयोगों द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार होती है, और मार्जिन राशि के रूप में प्रावधान किया जाता है और जब कोई विपत्ति आती है तो राहत कार्यों पर खर्च करना आवश्यक हो जाता है तब राज्यों को तत्काल मार्जिन राशि निकालनी होती है । मार्जिन निर्धारित करते समय क्रमिक वित्त आयोगों ने राज्यों के कुछ वर्षों के वास्तविक राहत खर्च पर विचार किया और प्रत्येक राज्य के लिए मार्जिन के रूप में उक्त खर्च की औसत को स्वीकार किया । सातवें वित्त आयोग से पहले, 9 वर्ष के औसत खर्च तथा उचित मूल्यवृद्धि के आधार पर मार्जिन की संगणना में तत्काल राहत के अतिरिक्त सार्वजनिक परिसम्पत्तियों की मरम्मत और जीर्णोद्धार के लिए मार्जिन की व्यवस्था नहीं थी । हमारे विचार में वास्तविक व्यय की 9 वर्ष की औसत मान लेने से वास्तविक रूप से राज्य की आवश्यकता पूरी नहीं होती और उसके स्थान पर 3 वर्ष की औसत निकालना अधिक वास्तविक दृष्टिकोण होगा ।

सामान्य की अपेक्षा गम्भीर प्राकृतिक विपत्ति के मामले में मार्जिन राशि से अधिक राहत खर्च की आवश्यकता पड़ने पर केन्द्रीय दल स्थान की सीमा का स्थल पर जाकर निर्धारण करता है और मार्जिन से अधिक खर्च की सीमा की सिफारिश करता है । प्राकृतिक विपत्ति के बाद राहत और लोक-भवनों की मरम्मत एवं जीर्णोद्धार के लिए राज्य के खर्च के संबंध में मार्जिन राशि से अधिक होने वाले कुल खर्च की 75 प्रतिशत सीमा तक केन्द्रीय सहायता गैर-योजना अनुदान के रूप में उपलब्ध कराई जाती है और इसको योजना या राज्य की योजना के लिए केन्द्रीय सहायता में समायोजित नहीं किया जाता । शेष 25 प्रतिशत राज्य अपने संसाधनों से पूरा करते है । किन्तु मणिपुर के मामले में जिसके संसाधनों का आधार अपर्याप्त है और जहां लगभग हर वर्ष बाढ़ का प्रकोप होता है मार्जिन राशि से अधिक 25 प्रतिशत खर्च वहन करना असम्भव हो जाता है । मणिपुर के मामले में विशेष आधार पर विचार किया जाना चाहिए और मार्जिन से अधिक होने वाला सारा खर्च केन्द्र को वहन करना चाहिए । राहत सहायता का इष्टतम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए राज्य राहत और मरम्मत की किसी भी मद के संबंध में कुल सीमा के अध्यधीन खर्च करने के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए ।

5.29 यह महसूस किया गया है कि अधिक एजेंसियों के सर्जन से क्षेत्राधिकार और कार्यों में अतिव्याप्ति हो जाएगी । प्रस्तावित ऋण परिषद् ऋण के वितरण और उत्पादक प्रयोजनों के लिए उसके उपयोग की जांच करने तथा राज्यों के उधार की अपेक्षाओं का पता लगाने में समर्थ होगी । तथापि, आर्थिक वाणिज्यिक वित्तीय और धन-संबंधी नीतियों के मामले में संघ और राज्यों के बीच विचार-विमर्श के लिए फोरम के रूप में एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए ।

5.30 निधियों की वसूली और वितरण कुछ मानकों के अनुरूप होना चाहिए अन्यथा यह मूल प्रयोजन ही समाप्त हो जाएगा कि किस प्रकार बेहतर ढंग से निधियों की वसूली की जाए और वितरणात्मक औचित्य सुनिश्चित करने के लिए उन्हें जनता के लाभ के लिए किस प्रकार सुचारू रूप से काम में लाया जाए । निधियों की वसूली से अर्थव्यवस्था कार्यकुशलता और सुविधा आदि के सिद्धान्तों की पूर्ति होनी चाहिए । इस प्रकार निधियों को राष्ट्रीय नीतियों और प्राथमिकताओं के अनुसार खर्च किया जाना चाहिए ताकि उनका प्रयोग ऐसी मदों पर किया जा सके जहां सामाजिक न्याय प्राप्त करने और क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने की दृष्टि से उनके खर्च की अधिक आवश्यकता हो ।

5.31 इस समय संसद और उसकी सांविधिक समितियों को छोड़कर कोई भी ऐसा संगठन नहीं है जो सबके खर्च के विस्तार, उपयुक्तता और सक्षमता पर निगरानी रख सके । संघ के क्षेत्र में आने वाले विषयों पर, हाल ही के वर्षों में केन्द्रीय खर्च में अधिक वृद्धि होने के अतिरिक्त सार्वजनिक उद्यमों को वित्तपोषित करने में और समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर खर्च में भारी वृद्धि हुई है, जिसका अन्ततोगत्वा प्रभाव यह पड़ा है कि राज्यों को अन्तरित की जाने वाली अधिशेष राशि में कमी करके राज्यों को इसके लाभ से वंचित रखा गया है । प्रयोग के तौर पर 1979 में एक राष्ट्रीय व्यय आयोग की स्थापना की गई थी किन्तु उसे बाद में समाप्त कर दिया गया । वित्त आयोग को केन्द्र की प्राप्तियों और खर्च की जांच करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए तथा निकाय स्वरूप के एक स्थायी वित्त आयोग स्थापित किए जाने से राष्ट्रीय व्यय परिषद् के गठन की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी ।

दूसरी ओर, राज्य सरकार के संसाधन सीमित हैं इसलिए वे वित्तीय अनुशासन से बाहर नहीं जा सकते । राज्य के व्यय के प्रस्तावों की वित्त आयोग द्वारा आवधिक समीक्षा के अतिरिक्त योजना आयोग द्वारा वार्षिक समीक्षा की जाती है । इन परिस्थितियों में, राज्यों के लिए राष्ट्रीय व्यय आयोग के गठन की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

5.32 लेखाओं के संकलन और प्रस्तुत करने की वर्तमान प्रणाली में विभिन्न स्तरों पर बहुत विलम्ब हो जाता है और परिणामस्वरूप किसी वर्ष के सम्बन्ध में राज्य की सम्पूर्ण वित्तीय स्थिति काफी समय बीत जाने के बाद ही स्पष्ट हो पाती है । जब तक किसी वर्ष का अन्तिम लेखा प्राप्त होता है, समय बीत जाने के कारण कमियों को दूर करने के लिए प्रभावी कार्रवाई करना या कोई उपचारी उपाय करना निरर्थक हो जाता है । इसके अतिरिक्त, लेखाकरण में विलम्ब होने से केन्द्र

से निधियों को नियमित रूप से प्राप्ति नहीं होती क्योंकि केन्द्रीय सहायता व्यय के लेखा-परीक्षित आंकड़ों पर निर्भर होती है।

5.33 लेखा-परीक्षा मूल्यांकन की वांछनीयता से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु ऐसी लेखा-परीक्षा करते समय केवल त्रुटियों पर नहीं प्रस्तुत उपलब्धियों पर पर्याप्त बल दिए जाने की आवश्यकता है। जब तक महत्वपूर्ण उपायों पर ध्यान नहीं दिया जाता तब तक लेखा-परीक्षा मूल्यांकन से कोई अर्थपूर्ण प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा अगर लेखा-परीक्षा मूल्यांकन नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक पर छोड़ दिया जाएगा तो इससे कार्यपालिका के काम में सीधा हस्तक्षेप होगा। लेखा-परीक्षा मूल्यांकन की वांछनीयता को ध्यान में रखते हुए यह कार्य राज्य सरकार द्वारा गठित एजेंसी को सौंपा जाना चाहिए।

5.34 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है।

5.35 इस समय नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक केवल नमूना लेखा-परीक्षा करता है। ऐसी लेखा-परीक्षा की अवधि द्विवार्षिक, त्रिवार्षिक आदि है। यद्यपि रिपोर्टें प्राप्त होने में अक्सर विलम्ब हो जाता है किन्तु इससे यह उपयोगी प्रयोजन सिद्ध होता है कि इनके आधार पर राज्य सरकार गलती करने वाले अधिकारियों को प्रताड़ित कर सकती है तथा कार्यविधिक और अन्य कमियों को दूर करने के लिए सुधारक कार्रवाई कर सकती है। क्योंकि, कार्यप्रणाली के कारण नियंत्रक तथा महा लेखा-परीक्षक की रिपोर्ट में भी विलम्ब होने की सम्भावना सदैव बनी रहती है इसलिए नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की लेखा-परीक्षा के साथ पूरक के रूप में आन्तरिक लेखा-परीक्षा की व्यापक प्रणाली अपनाकर उपयोगी सुधार किए जा सकते हैं।

5.36 अनुचित खर्च की जांच करने के लिए आन्तरिक रूप से प्रत्येक मंत्रालय में सलाहकार होते हैं और बाह्य रूप से नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की सहायता से संसद और उसकी समिति अनुचित खर्च की जांच करती है और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे संघ और राज्यों के खर्चों पर निगरानी रखें। हालांकि लोक लेखा समिति और सार्वजनिक उपक्रमों की समिति ने बहुत उपयोगी कार्य किया है।

5.37 जी हां, प्राक्कलन समिति को नीतियों तथा कार्यक्रमों के व्यापक पहलू की जांच करनी चाहिए तथा आवश्यक सुधारों के संबंध में सरकार को सलाह देनी चाहिए।

5.38 नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की यह भूमिका निभाने और वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा की जाने वाली समीक्षा के बाद राज्यों के व्यय की आवधिक समीक्षा करने की संविधान व्यवस्था के अनुसार उसे प्रदत्त शक्तियों को ध्यान में रखते हुए अलग व्यय आयोग के गठन की आवश्यकता नहीं है।

5.39 इस संबंध में कुछ राज्य सरकारों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से हम सहमत हैं। क्षोभ पैदा करने वाली ऐसी बातों और परिणामस्वरूप विलम्ब से बचने के लिए जिससे निधियां व्यपगत हो जाती हैं, योजनाओं के समुचित कार्यान्वयन तथा उसका मूल्यांकन राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। इस आशंका का कोई कारण नहीं है कि राज्य सरकारें अनुचित खर्च करने लगेंगी। कम से कम लागत पर आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए राज्य सरकारें भी समान रूप से हितबद्ध हैं।

भाग VI

आर्थिक तथा सामाजिक योजना

6.1 योजना तैयार करने का कार्य कम से कम चार अवस्थाओं से गुजरता है। योजना आयोग मूल दस्तावेज तैयार करता है और जिनकी प्रत्येक अवस्था पर आर्थिक अवस्था पर अभिभावी राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा विचार-विमर्श किया जाता है और चालू योजना के कार्य-निष्पादन की समीक्षा योजना कार्य का मध्यावधि मूल्यांकन करके की जाती है। इस मूल्यांकन को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद अगली योजना के उद्देश्य/रूपरेखा तैयार करता है। प्रस्तावित कागजात योजना आयोग द्वारा तैयार किए जाते है। उसके बाद इसे राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा दोबारा अनुमोदित किया जाता है। इसके बाद योजना आयोग द्वारा योजना का प्रारूप तैयार करने के लिए राज्यों को मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी किए जाते हैं। इस सारी प्रक्रिया में राज्य केवल राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों में ही सम्मिलित होते हैं, जिसे अपर्याप्त समझा गया है। योजना आयोग और इसके कार्यकारी दल को चाहिए कि वे राज्यों के प्रतिनिधियों को योजना तैयार करने की अवस्था में मूल दस्तावेजों को तैयार करने की अवस्था में, शामिल करें ताकि उस अवधि के लिए राज्यों की विकास की आकांक्षाएं अभिव्यक्त हो सकें। योजना तैयार करने की उत्तरवर्ती अवस्था पर राज्यों को शामिल होना बहुत हद तक केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा तैयार की गई योजनाओं को थोपे जाने की प्रवृत्ति का निराकरण कर सकता है।

राज्यों को मार्गदर्शी सिद्धान्त भेजने और उनसे यह अनुरोध करने की वर्तमान पद्धति से, कि वे अपनी योजनागत योजनाएं जल्दी तैयार करके भेजें, राज्यों को सोच-विचार और संवीक्षा करने का कोई समय नहीं मिलता, इस पद्धति में सुधार किया जाना चाहिए और मार्गदर्शी सिद्धान्त बहुत पहले से भेजे जाने चाहिए। कार्यकारी दलों द्वारा राज्य के साथ विचार-विमर्श बहुत लम्बे समय तक किया जाना चाहिए और सभी राज्यों को एक साथ बुलाने और प्रत्येक राज्य के कार्यक्रम पर एक ही दिन में जल्दबाजी में विचार करने की वर्तमान पद्धति को समाप्त किया जाना चाहिए क्योंकि वर्तमान पद्धति के परिणामस्वरूप लाभप्रद विचार-विमर्श की अपेक्षा समझौते के माध्यम से निर्णय किये जाते हैं। समझौते में निरपवाद रूप से कार्यकारी दलों की ही चलती है।

6.2 अपनी कमजोर वित्त-व्यवस्था और अपर्याप्त योजना तंत्र के कारण राज्य ऐसी स्थिति में आ जाते हैं कि वे अपने राज्यों के विकास के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय नहीं ले पाते। राज्य सरकारें बिजली, सिंचाई, शिक्षा और स्वास्थ्य योजनाओं पर विचार करती हैं, योजना बनाती हैं, वित्त-व्यवस्था करती हैं और उन्हें कार्यान्वित करती हैं। प्राथमिकता प्राप्त राष्ट्रीय योजनाओं के अनुरूप योजना बनाने की अपेक्षाओं से राज्यों की निर्णय लेने की थोड़ी-बहुत शक्ति भी समाप्त हो जाती है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है जिन राज्यों की वित्त-व्यवस्था बुरी हालत में है, वहां केन्द्र पूर्णतः अभिभावी रहता है। उपर्युक्त विषय यद्यपि अनिवार्यतः राज्य के विषय हैं किन्तु इनके स्वरूप के कारण इनमें इतनी अधिक पूंजी लगाने की आवश्यकता है कि वित्त और सामग्री के लिए राज्य बाध्य होकर केन्द्र की ओर देखने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप राज्य के विषयों में केन्द्र का अनाधिकार हस्तक्षेप बढ़ता जाता है। राज्यों के योजना-तंत्र को मजबूत करके और केन्द्रीय ऋणों या अनुदानों के माध्यम से बड़ी परियोजनाओं के वित्त-पोषण से इस विषय में सुधार किया जा सकता है।

जब तक कि भाग I तथा भाग IV के हमारे उत्तरों में सुझाए गए परिवर्तन अन्तर्राज्यीय परिषद के लिए प्रभावी न हों तब तक यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय विकास परिषद एक सांविधिक निकाय हो। सांविधिक अन्तर्राज्यीय परिषद के न होने पर योजना आयोग को प्रत्येक अवस्था पर आजकल की भांति राज्यों के परामर्श से मूल दस्तावेज तैयार करने चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद उद्देश्य निर्धारित करती रहेगी, योजना आयोग के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करेगी और अन्त में मार्गदर्शी सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए योजना आयोग द्वारा तैयार की गई योजना को अनुमोदित करेगी। विकास योजनाएं राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा एक बार अनुमोदित हो जाने के बाद राज्य उन्हें कार्यान्वित करने के लिए स्वतंत्र होने चाहिए तथा योजना आयोग के साथ और आगे विचार-विमर्श करने को समाप्त किया जाना चाहिए किन्तु योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए योजना आयोग पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था करता रहे।

मौजूदा प्रणाली में राज्यों को राष्ट्रीय नीतियों के स्वरूप निर्धारण में कोई अवसर प्राप्त नहीं होता। राज्यों की योजना से असम्बद्ध कार्यसूची अन्तिम निर्णय लिए जाने से पहले राज्य सरकारों को प्राप्त

नहीं होती । इस त्रुटि को सुधारा जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि राष्ट्रीय नीतियों का फार्मूला तैयार करने में राज्य का सहयोग लिया जाए ।

6.3 योजना आयोग का गठन करने वाले संकल्प में आयोग को कुछ उत्तरदायित्व सौंपे गए । आयोग से स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्य करने की अपेक्षा है । वह केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से परामर्श कर सकता है और दोनों के निकट सहयोग से कार्य कर सकता है । यद्यपि संकल्प में उत्तरदायित्वों को परिभाषित किया गया है, तथापि योजना आयोग अपने वर्तमान रूप में निश्चित रूप से केन्द्रीय मंत्रालयों की एजेंसी है । राष्ट्रीय महत्व की योजना तैयार करते समय राज्यों को किंचित ही विश्वास में लिया जाता है । योजना आयोग के माध्यम से केन्द्रीय मंत्रालय विशेषकर केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं या ऐसी योजनाएं तैयार करने में अभिभावी स्थिति में हैं, जिनके संबंध में केन्द्रीय सरकार खर्च में हिस्सेदार है परन्तु योजना राज्य के विषयों में आती है ।

इस समस्या का समाधान केवल तभी हो सकता है जबकि योजना आयोग अपने निर्णय करने के लिए केन्द्रीय मंत्रालयों पर कम से कम निर्भर रहे । उसे अधिक से अधिक मंत्रालय और राज्य के साथ केवल विचार-विमर्श ही करना चाहिए ।

6.4 वस्तुतः केन्द्र सरकार में असीमित आर्थिक शक्तियां निहित हैं। संघ सूची और सातवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट मदों के संबंध में ही नहीं बल्कि समवर्ती सूची की मदों के संबंध में भी केन्द्रीय सरकार की अभिभावी शक्तियां हैं । चूंकि आर्थिक योजना में विस्तृत आयाम तथा देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे के महत्वपूर्ण परिणामों वाले निर्णय शामिल होते हैं इसलिए यह उचित ही है कि देश के उच्चतम योजना स्तर पर अर्थशास्त्र, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और प्रबन्ध क्षेत्रों के प्रतिष्ठित विशेषज्ञ शामिल हों । यह निकाय सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त होना चाहिए तथा केवल राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए । इसे अन्य प्रभावों से मुक्त होना चाहिए तथा राष्ट्र की सर्वोच्च विकास परिषद के मार्गदर्शी सिद्धान्तों और निर्णयों के अधीन कार्य करना चाहिए । इस निकाय से कम से कम यह सुनिश्चित होगा कि राष्ट्र की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए क्षमता का अनुकूलतम उपयोग हो रहा है और राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा प्रस्तुत मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अनुसार कार्य हो रहा है ।

6.5 6.4 में दिए गए अनुसार ।

6.6 राज्य स्तर पर योजना-तंत्र राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के संबंध में राज्य सरकार का मार्गदर्शन करने में सक्षम नहीं है । जब तक राज्य योजना-तंत्र को मजबूत नहीं किया जाता तब तक योजना आयोग अभिभावी स्थिति में रहेगा । राज्य अपनी कमजोर वित्त-व्यवस्था के कारण केन्द्रीय निर्णयों पर निर्भर है और उन्हें योजना आयोग के माध्यम से केन्द्र द्वारा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत अपनी प्राथमिकताएं निर्धारित करनी पड़ती हैं और योजनाओं का चयन करना पड़ता है । यह अपेक्षा कि ये योजनाएं प्राथमिकताओं की राष्ट्रीय योजना के अनुरूप हों, राज्यों की निर्णय लेने की जो थोड़ी-सी शक्ति है, उसे भी समाप्त कर देती है । केन्द्र द्वारा प्रायोजित शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सिंचाई आदि की योजना राज्य योजना का भाग है । इन योजनाओं पर केन्द्रीय सरकार द्वारा विचार किया जाता है, उन्हें तैयार और प्रायोजित किया जाता है । इनका परिव्यय भी केन्द्रीय क्षेत्र की योजना में शामिल किया जाता है और राज्यों को केवल इन्हें कार्यान्वित करने का कार्य सौंपा जाता है । राज्य इन्हें स्वीकार करते के लिए बाध्य है यद्यपि ऐसी योजनाएं उनकी प्राथमिकताओं की योजना के अनुकूल नहीं होतीं । वे ऐसा करने के लिए केवल इसलिए बाध्य है क्योंकि राज्य के संसाधन सीमित हैं। हरेक बात में इस प्रकार हस्तक्षेप होने के फलस्वरूप राज्य की स्वायत्तता में कमी हो गई है । जब एक बार सर्वोच्च निकाय अर्थात् राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा रूपरेखा अनुमोदित हो जाती है तो राज्य को इस बात के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए कि केन्द्र द्वारा कोई हस्तक्षेप किए बिना ब्यौरेवार योजनाओं को वह किस प्रकार कार्यान्वित करे ।

6.7 ऋणों और अनुदानों के माध्यम से केन्द्रीय सहायता दिए जाने की वर्तमान प्रणाली सन्तोषजनक ढंग से कार्य कर रही है । संसाधन जुटाने के उत्तरदायित्व से वंचित होने पर आयोग को केवल योजनागत योजनाओं का मूल्यांकन और मार्गदर्शन करना चाहिए तथा उसे देश की आर्थिक कायापलट का माध्यम बनना चाहिए । यह सरणीकरण राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा निर्धारित कुछ मानदण्डों अर्थात् राज्य के पिछड़ेपन और उनके सीमित संसाधनों, के अनुरूप होना चाहिए, वस्तुतः उसका उद्देश्य प्रत्येक विशेष राज्य के सामने आने वाली विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सभी राज्यों का सन्तुलित विकास करना होना चाहिए । राज्य की योजनाओं को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप बनाने के प्रयास में, किसी राज्य विशेष की विशेष आवश्यकताओं पर आधारित राज्य की योजनाओं से अत्यधिक हस्तक्षेप पर नियंत्रण रखा जाना चाहिए । अपने राज्य की विशेष क्षेत्रीय समस्याओं का समाधान करने के लिए राज्य योजना तंत्र को छूट दी जानी चाहिए। फिर भी योजना आयोग यह निरीक्षण करे कि योजना इतनी अधिक महत्वकांक्षी न हो कि उसका व्यावहारिक कार्यान्वयन न किया जा सके।

6.8 जैसा कि प्रश्न 5.5 (1) के उत्तर में कहा गया है, मणिपुर को गाडगिल फार्मूले से बाहर विशेष वर्ग के राज्य के रूप में माना जाना चाहिए । केन्द्रीय सहायता के तरीके को बदल दिया जाए और सामान्य तथा पर्वतीय क्षेत्रों के विद्यमान विभेद को समाप्त करके केन्द्रीय सहायता को एक समान पद्धति पर 90 प्रतिशत अनुदान और 10 प्रतिशत ऋण के रूप में कर दिया जाना चाहिए ।

6.9 केन्द्रीय योजना सहायता आबंटित करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा निर्धारित मानदण्ड से पिछड़े राज्यों को बहुत हानि होती है । अधिक संसाधनों वाले विकसित राज्य बड़ी राज्य योजनाएं तैयार कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त विकसित राज्य प्राइवेट निवेश भी अधिकांशतः प्राप्त कर सकते हैं और कम विकसित राज्यों में निवेश प्राप्त नहीं होता, इससे राज्यों के संतुलित विकास पर कुठाराघात होता है ।

मणिपुर गाडगिल फार्मूले से बाहर विशेष श्रेणी का राज्य है तथा उसका विशेष दर्जा स्वीकार कर लिया गया है इसलिए सामान्य, पर्वतीय और आदिवासी क्षेत्रों के लिए अलग-अलग तरीका नहीं होना चाहिए। विद्यमान विभेद को समाप्त किया जाना चाहिए और सारे राज्य को एकसमान तरीका अपनाकर 90 प्रतिशत अनुदान और 10 प्रतिशत ऋण दिया जाना चाहिए । प्राथमिक क्षेत्र निर्धारित करने का कार्य राज्य पर छोड़ दिया जाना चाहिए । 50 प्रतिशत जनसंख्या और 50% क्षेत्र के आधार पर आबंटन करने की वर्तमान प्रणाली का संतुलित क्षेत्रीय विकास के कथित उद्देश्य को पूरा करने और साथ ही साथ गरीबी दूर करने के उनके उद्देश्य के विषय में निर्धन राज्यों के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए प्रत्यक्ष आगे कदम नहीं है । विशेष केन्द्रीय सहायता की प्रमात्रा कुछ क्षेत्रों में अर्थात् उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के आदिवासी तथा अन्य पिछड़े वर्गों में अत्यधिक गरीबी और अल्प विकास के क्षेत्र में तेजी से विकास करने के लिए विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए । राज्य सरकार को यह स्वतंत्रता दी जानी चाहिए कि वह प्राथमिक क्षेत्र की योजनाओं को किसी प्रतिबन्ध के बिना तैयार कर सके और कार्यान्वित कर सके ।

6.10 केन्द्र द्वारा प्रायोजित अधिकांश योजनाओं पर केन्द्र ही विचार करता है, तैयार करता है और प्रायोजित करता है । इस श्रेणी की योजनाओं में प्रारंभिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा समाज कल्याण योजनाएं राज्य योजना का हिस्सा होती हैं । इन योजनाओं

को कार्यान्वित करने का दायित्व राज्यों पर होता है भले ही ये योजनाएं शेष राज्य योजना के साथ संघटित न हों तथा अनुबन्ध के रूप में संलग्न रहे । केन्द्र इन योजनाओं को राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से आवश्यक समझता है जबकि राज्य आरम्भिक स्तर पर केन्द्रीय सहायता के प्रलोभन से आकर्षित होते हैं ।

किन्तु संघीय नीति और वित्तीय शक्तियों के चालू वितरण के अन्तर्गत इस संबंध में कोई परिवर्तन करने की संकल्पना नहीं की जा सकती । जब तक राज्य वित्तीय कमजोरी और साधन नियंत्रण की चिरकालिक बीमारी से ग्रस्त रहेंगे, तब तक केन्द्र, संविधान द्वारा राज्यों को निर्णय लेने की प्रदत्त थोड़ी-बहुत शक्ति को भी कम करने के लिए अपनी शक्ति का अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करता रहेगा ।

6.11 इस समय, मूल्यांकन संगठन ने केवल प्रयोगात्मक स्वरूप को और राज्य की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं के मूल्यांकन का काम शुरू किया है । इसके अतिरिक्त संगठन को योजनागत योजनाओं के नियंत्रण के संबंध में संगठन में अपर्याप्त कर्मचारी होने के कारण अधिक उपलब्धि नहीं हुई है ।

यह जांच करने के उद्देश्य से कि केन्द्र तथा राज्य ने विकास योजना में निधियां लगाकर अपेक्षित परिणाम प्राप्त किया है, राज्य मूल्यांकन और नियंत्रण संगठन को और अधिक विलम्ब किए बिना उपर्युक्त रूप से कर्मचारी उपलब्ध कराए जाने चाहिएं ।

योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन के राज्य यूनिटों को राज्य मूल्यांकन संगठनों से अधिक प्रभावी और नजदीकी संबंध रखने चाहिए । प्रत्येक संगठन द्वारा अलग-अलग तैयार की गई रिपोर्टों की कभी-कभी आदान-प्रदान की पद्धति के स्थान पर लगातार रिपोर्टें दी जानी चाहिए, अधिक सहयोग से काम करना चाहिए और उपयुक्त मामलों में मिलकर अध्ययन करना चाहिए ।

6.12 कोई टीका-टिप्पणी नहीं है ।

6.13 मणिपुर में राज्य योजना बोर्ड योजना निरूपण और कार्यान्वयन का निरीक्षण करता है । किन्तु राज्य बोर्ड के प्रभावी ढंग से काम करने की सीमा सीमित है क्योंकि राज्य योजनाएं केन्द्र द्वारा तैयार किए गए मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अनुसार तैयार की जाती है । दूसरे राज्य योजना तंत्र को मजबूत बनाने की प्रक्रिया में केन्द्र द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप से रुकावट आई है या उसे अशक्त बना दिया गया है । राज्य योजना तंत्र को योजना आयोग की हिदायतों के माध्यम से मजबूत किए जाने की आवश्यकता है और ऐसा कुछ कनिष्ट अधिकारियों, सहायकों और चपरासियों की भर्ती करके तथा कुछ छोटी मदें खरीद कर किया जा सकता है । इसमें काफी वेतन वाले विशेषज्ञों के पद सजित करने की आवश्यकता नहीं होगी और न ही इसके कोई निर्माण कार्य करने या तंत्र के प्रभावी कार्यकरण के लिए वाहन खरीदने की कोई आवश्यकता होगी ।

राज्य योजना तंत्र को मजबूत किए जाने और बिना किसी बाधा या व्यवधान के स्वयं अपनी आवश्यकताओं को योजना आयोग द्वारा सिफारिश की गई वित्तीय परिसीमाओं के भीतर पूरा करने की अनुमति दी जानी चाहिए ।

वस्तुतः, यदि आवश्यक हो तो राज्य अपने स्तर पर योजना तंत्र को मजबूत बनाने के लिए योजना आयोग की सिफारिशों से आगे बढ़ सकते हैं ताकि राज्य अपनी योजना के परिचालन और योजनागत योजनाओं के कार्यान्वयन में समर्थ हो सकें ।

भाग VII
विविध

उद्योग

7.1 उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची में अत्यधिक सार्वजनिक हित और राष्ट्रीय महत्व के कुछ उद्योगों के लिए केन्द्रीय विनियमन की व्यवस्था है । उसके बाद से सभी प्रकार के अधिक से अधिक उद्योगों पर केन्द्र का नियंत्रण बढ़ता गया है और राज्यों पर केवल लघु उद्योग छोड़े गए हैं और उन पर भी बहुत हद तक केन्द्र का नियंत्रण होता है । तथापि, हमारे पास कोई ऐसा उदाहरण नहीं है कि केन्द्र ने राज्य के हितों के विपरीत जानबूझ कर कोई नीति अपनाई है ।

7.2 हमारा विचार है कि केन्द्र सरकार को केवल देश की रक्षा और सुरक्षा से सम्बद्ध उद्योगों को ही विनियमित करना चाहिए । शेष उद्योगों का अनुज्ञापन प्राधिकार केन्द्र सरकार के मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अधीन राज्य सरकार को दिया जाना चाहिए ।

7.3 यह देखा गया है कि अनेक मदों के लिए अनुज्ञप्तियां बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा प्राप्त तो कर ली जाती हैं किन्तु उन्हें कार्यान्वित नहीं किया जाता । यह देखा गया है कि ऐसी अनुज्ञप्तियां इसलिए प्राप्त की जाती हैं कि अन्य प्रतिष्ठान समान परियोजनाओं की स्थापना न कर सकें । यह भी उल्लेखनीय हैं कि सामान्यतः पिछड़े राज्य ही इसका शिकार होते हैं क्योंकि इन मदों के लिए नई अनुज्ञप्तियों पर इस आधार पर विचार नहीं किया जाता कि इन मदों की अधिक क्षमता अनुज्ञप्तियां जारी कर दी गई हैं । परियोजना का कार्यान्वयन करने के लिए निश्चित समय सीमा नियत की जानी चाहिए और नियत अवधि समाप्त होने के बाद उक्त अनुज्ञप्तियां रद्द कर दी जानी चाहिएं । यदि परियोजना अन्यथा व्यवहार्य हो तो सार्वजनिक तथा सहकारी क्षेत्र के आवेदन-पत्रों को इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए कि अधिक क्षमता अनुज्ञप्तियां जारी कर दी गई हैं । श्रेणी 'क' के पिछड़े जिले और गैर-औद्योगिक जिले में परियोजना संस्थापित करने के लिए उद्योग अनुज्ञप्तियां प्राप्त करने के आवेदन-पत्रों को अभिभावी अधिमानता दी जानी चाहिए । यद्यपि गैर औद्योगिक जिले के लिए भारत सरकार ने सिद्धान्त निर्धारित किया है, किन्तु व्यावहारिक रूप से उसका पालन नहीं किया जाता ।

अनेक राज्य विशेषकर पिछड़े राज्य लघु उद्योगों को मुख्यतः कच्चे माल की आपूर्ति करने के विषय में और विपणन सहायता दे कर प्रोत्साहित करने में पूर्णतः सुसंगठित नहीं हैं । यद्यपि राज्य लघु उद्योग विकास निगम को सभी प्रकार की इस्पात सामग्री खरीदने और वितरित करने का प्राधिकार दिया गया है किन्तु उसका कार्यनिष्पादन बहुत सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि सामान की लागत लघु उद्योग यूनिट के लिए प्रायः अलाभकर हो जाती है । अन्य मदों के लिए यह सुझाव है कि राज्य व्यापार निगम, खनिज तथा धातु व्यापार निगम, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम जैसे संगठनों को सभी राज्यों में अपने कार्यालय खोलने चाहिए ताकि राज्यों के छोटे उद्यमियों को अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए इन संगठनों के मुख्य कार्यालय या क्षेत्रीय कार्यालयों में न जाना पड़े । यह देखा गया है कि ऐसे संगठनों के कार्यालय अनेक राज्यों में खोले गए हैं । किन्तु उन्हें पर्याप्त शक्तियां नहीं दी गईं । कार्यालयों को वास्तव में कार्य करने के लिए लघु उद्योग युनिट को सहायता प्रदान करने के लिए आवश्यक शक्तियां प्रदान की जानी चाहिएं । केन्द्र सरकार देश में सबसे बड़ी खरीददार है । यह सत्य है कि केन्द्र सरकार ने लघु उद्योगों को विपणन सहायता प्रदान करने के लिए अनेक कदम उठाए हैं किन्तु इस संबंध में बहुत कुछ किया जाना शेष है । सुझाव यह है कि भारत सरकार के प्रतिष्ठानों और उपक्रमों के विभिन्न संगठनों को अपने उपभोग की अपेक्षाओं की पूर्ति स्थानीय यूनिटों से विभिन्न मदें खरीद कर करनी चाहिए । यदि उक्त मामलों में प्रस्तावित कीमतें अधिक हों तो कीमत का नियतन लागत विश्लेषण आधार पर पूर्ति और निपटान महानिदेशालय की सुस्थापित पद्धति पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा किया जा सकता है ।

7.6 राज्यों में कार्य कर रहे केन्द्रीय नियंत्रित औद्योगिक संस्थाओं की पर्याप्त जानकारी जनता को नहीं है और इसलिए शैक्षणिक कार्यक्रम चलाकर उनके कार्यों और उनके द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली

सुविधाओं का व्यापक प्रचार करने की आवश्यकता है । इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए ऐसे संस्थानों का प्रतिनिधित्व करने वाली समन्वित एजेन्सी बनाए जाने की आवश्यकता है ।

7.7 सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश के लिए स्थान निर्धारित करने का निर्णय विशेषकर ऐसे राज्यों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिनमें प्राइवेट निवेश नहीं होता । सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग ऐसे राज्यों में लगाए जाने चाहिए जहां कच्चे माल की सम्भाव्यता तथा उपलब्धता हो तथा औद्योगिक परियोजना के स्थान-निर्धारण में सम्बन्धित राज्य सरकार की बात मानी जानी चाहिए । अन्य मदों के संबंध में पिछड़े राज्यों को अधिमानता दी जानी चाहिए । यदि परियोजना अन्यथा व्यवहार्य हो तो उपयुक्त आधारिक संरचना के अभाव के आधार पर किसी भी हालत में केन्द्रीय क्षेत्र की परियोजनाएं स्थापित करने की राज्य की मांग को अस्वीकार नहीं करना चाहिए ।

7.8 पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए दी गई सहायता के विषय में हम भारत सरकार की नीति से पूर्णतः सहमत हैं ।

व्यापार तथा वाणिज्य

8.1 अनुच्छेद 301 से 304 तक में निर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए, संविधान के अनुच्छेद 307 के उपबन्ध के अनुसार एक प्राधिकरण की नियुक्ति की व्यवस्था से हम सहमत हैं ।

कृषि

9.1 जहां तक केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं का सम्बन्ध है यह सुस्पष्ट है कि राज्य योजना अनुमोदित करते समय केन्द्र सरकार की प्राथमिकताएं राज्य सरकार की प्राथमिकताओं के अनुरूप नहीं रखी जातीं । यह प्रवृत्ति इस कारण से है कि सारे देश के लिए शर्तों और निबंधनों में समरूपता रखी जा सके । अतः यह उचित और उपयुक्त समझा गया है कि भारत सरकार राज्य के हितों को प्राथमिकता देगी।

9.2 यह सुझाव दिया जाता है कि उक्त मामलों में जब तक भारत सरकार योजना को चालू रखना आवश्यक समझती है तब तक सारा खर्च भारत सरकार को वहन करना चाहिए ।

9.3 राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशों के अतिरिक्त भारत सरकार को विभिन्न राज्यों की विविध स्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्थानीय रूप से उपयुक्त योजनाएं बनानी चाहिएं ।

9.4(क) सारे देश में कृषि मदों का न्यूनतम या उचित मूल्य एक समान नियत कर देना उचित प्रतीत नहीं होता । यह सुझाव दिया जाता है कि एक राज्य की दूसरे राज्य से भिन्न उत्पादकता बाजार मूल्य, मांग आदि की स्थानीय स्थितियों को ध्यान में रखकर मूल्य नियत किया जाना चाहिए ।

9.5 चूंकि स्थानीय समस्याओं का अनुसंधान करने के लिए राज्यों के पास आधारिक संरचना नहीं है, इसलिए राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थानों को विभिन्न राज्यों की स्थानीय समस्याओं का समाधान करने के लिए राज्य सरकारों की सहायता के लिए आगे आना चाहिए ।

इसी प्रकार राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक को सभी राज्यों में एकसमान विनियम लागू करने के लिए स्थान पर प्रत्येक राज्य के विकास के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए ऋण योजना बनानी चाहिए ।

खाद्य तथा नागरिक आपूर्ति

10.1 प्रश्न में उल्लिखित प्रयोजन के लिए वर्तमान व्यवस्था पर्याप्त है ।

10.2 आवधिक समीक्षा से उत्तम कार्यनिष्पादन में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी । राज्यों द्वारा प्रशासित उन प्रवर्तनीय और विनियमन आदेशों के संबंध में राज्यों के पास स्वच्छन्द शक्तियां होनी चाहिए।

शिक्षा

11.1 यह सत्य नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीयकरण और मानकीकरण तथा अत्यधिक हस्तक्षेप है । हमारा पिछला अनुभव है कि केन्द्र कदाचित ही इस क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है और केन्द्र ने हमेशा राज्य की समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया है । यह एक प्रमाणित तथ्य है कि शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में केन्द्रीयकरण अनिवार्य है और सम्भवतः ऐसे क्षेत्रों में केन्द्र ने ही राज्यों का मार्गदर्शन किया है । मणिपुर शैक्षणिक रूप से पिछड़े नौ राज्यों में से एक है और इसने केन्द्र का विशेष ध्यान और वित्तीय सहायता प्राप्त की है।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए इस बात की काफी गुंजाइश है कि वह विश्वविद्यालय के कार्यकरण को प्रभावी बनाने के लिए उसके प्रशासन को चुस्त बनाए । इस संबंध में विश्वविद्यालय के कार्यों का बेहतर प्रबन्ध के संबंध में प्रशिक्षण देने के लिए वित्तीय सहायता भी दें । यदि विश्वविद्यालय समय पर परीक्षाएं आयोजित न करें तो उनके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करना बेहतर होगा ।

11.3 इस समय केन्द्रीय शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड कार्य कर रहा है और सभी राज्य शिक्षा मंत्री इसके सदस्य हैं । समय-समय पर विचार-विनिमय करने के लिए इस बोर्ड की समय पर बैठक होना पर्याप्त होगा तथा कोई अलग व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है ।

वित्तीय असुविधा को छोड़कर, जनजाति और गैर-जनजाति दोनों भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए अलग संस्थान चलाने में कोई कठिनाई नहीं है । ऐसे संस्थानों के लिए कम वित्त-व्यवस्था करने पर नियमों और कार्यविधियों में प्रतिबन्ध लगाया गया है । यदि नियमों को शिथिल भी किया जाए तो भी सभी भाषायी अल्पसंख्यक संस्थानों को वित्तीय सहायता देना सुविधाजनक नहीं होगा । केन्द्र सरकार को उक्त संस्थानों को बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय क्षेत्र के अधीन एक योजना बनाने पर विचार करना चाहिए ।

11.5 शैक्षणिक क्षेत्र में केन्द्र और राज्य के बीच कोई ऐसा विरोध नहीं है ।

अन्तः सरकारी समन्वय

12.1 इस राज्य में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में कोई गम्भीर समस्या नहीं है । अतः अमरीकी प्रणाली पर किसी सलाहकार आयोग की स्थापना करना आवश्यक नहीं है ।

मेघालय सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) मुख्यमंत्री का स्वागत भाषण

44—376 M. of HA/ND/87

मेघालय

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

1.1 से 1.6 तक हमारे संविधान में सरकार के एकात्मक स्वरूप सहित संघीय लक्षणों की उपयुक्त व्यवस्था है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक, भाषायी और जातीय विविधता, राज्यों के आकार तथा देश के व्यापक क्षेत्र को देखते हुए संविधान-निर्माताओं ने यह महसूस किया कि अभिभावी केन्द्र के पक्ष में ठोस प्रवृत्ति वाली यह सांविधानिक व्यवस्था करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है । तथापि, आर्थिक विकास के क्षेत्र में, विशेषकर देश के विभिन्न भागों की सामाजिक और आर्थिक विकास के स्तर की असमानताओं को देखते हुए राज्य को अधिक शक्तियां और उत्तरदायित्व देना आवश्यक है और संविधान में इसकी व्यवस्था की गई है; संविधान के अधीन कार्य करते समय उसका उचित सम्मान किया जाना आवश्यक है । समग्रत:, 1.5 में दी गई टीका-टिप्पणी समुचित प्रतीत होती है । हम ग(i) और (ii) में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हैं और सुझाव देते हैं कि अन्तर-राज्य परिषद् (अनुच्छेद 263 में विनिर्दिष्ट के अनुसार) की स्थापना की जानी चाहिए ।

1.7 ये उपयुक्त और आवश्यक हैं ।

1.8 पुनर्विचार किया जाना आवश्यक नहीं है ।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 से 2.5 तक संविधान में विधायी शक्तियों के वितरण की योजना वस्तुत: संघीय नहीं है प्रत्युत यथातथ्यत: संघ के पक्ष में है । तथापि, "राष्ट्रीय हित" या "सार्वजनिक हित" की घोषणा की आड़ में राज्य के विधायी क्षेत्र में संघ का धीरे-धीरे अधिक्रमण करना एक अवनतिशील कदम है । संघ सूची की प्रविष्टि 7 और 52 के उपबन्धों के अध्यधीन "उद्योग" राज्य सूची की प्रविष्टि 24 में आते हैं परन्तु उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1952 की प्रथम अनुसूची का विस्तार करके इसे अधिनियम में प्रविष्टि 52 के अधीन अन्तरित कर दिया गया है । इससे औद्योगिक उद्यमों के संबंध में राज्यों के समुचित उद्यम विकास में बाधा आई है ।

राज्य सूची पर राज्य का ही नियंत्रण होना चाहिए । रक्षा के प्रयोजन से या युद्ध संबंधी निष्पादन के लिए या केवल विनियमन कार्यों की आवश्यकता होने पर ही उसका अंतरण संघ को किया जाना आवश्यक है ताकि एक से अधिक राज्यों के प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर खनिज पद्धतियों के एकरूप होने पर दोहन में समान स्तर प्राप्त किया जा सके । अन्य सभी विकासात्मक प्रयास करने के लिए राज्य राज्य-सूची के विषयों की सीमा तक स्वतंत्र होने चाहिए । यदि केन्द्र सरकार भी उक्त क्षेत्र में सम्मिलित होना चाहती है तो वह संयोजित रूप में (संघ शासित क्षेत्रों के मामले में) या राज्यों की उनके क्षेत्राधिकार के लिए अपने आप ही शक्तियां प्रत्यायोजित करके सम्मिलित हो सकती है । समवर्ती सूची के अधीन या ऐसे स्वरूप के कानून का कम से कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा अनुसमर्थन किया जाना चाहिए ।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 हमारे संविधान में राज्यपाल की महत्वपूर्ण भूमिका है । तथापि, ऐसे मामले भी हैं जिनमें राज्यपालों ने प्रतिष्ठापूर्वक कार्य नहीं किया है किन्तु ऐसे उदाहरण नगण्य और विरले ही हैं । फिर भी राज्यपालों की नियुक्ति और कार्य संबंधी कुछ आधारभूत मानक निर्धारित किए जाने आवश्यक हैं ।

(क) उनकी नियुक्ति राज्य के मुख्य-मंत्री के परामर्श से की जानी चाहिए;

(ख) उनकी पदावधि पूर्णत: नियत होनी चाहिए ;

(ग) ऐसे उच्च पदों के लिए चयन सावधानी से किया जाना चाहिए और उन्हें ऐसे पदों के योग्य होना चाहिए ;

(घ) राज्यपालों के रूप में कार्य करते हुए उन्हें अधिकांशत: निर्वाचित मंत्रि-परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए;

(ङ) सदन में अभिभावी बहुमत के बारे में सन्देह होने पर सदन में जांच की जानी चाहिए । यदि यथोचित अवधि में ऐसा करना सम्भव न हो तो राज्यपाल अपने विवेकानुसार कार्य कर सकता है ;

(च) किसी अन्य भूमिका में, विश्वविद्यालय के कुलाधिपति की भांति, राज्यपाल और राज्य सरकार दोनों को कुलाधिपति को प्रदत्त सांविधिक शक्तियों का आदर करना चाहिए परन्तु वह राज्य सरकार की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है।

(छ) यथासम्भव, किसी बिल को स्वीकार करने या अस्वीकार करने की शक्तियों का प्रयोग विषय के गुणावगुण आधार पर किया जाना चाहिए । कठिनाई या सन्देह के मामले में अटार्नी जनरल सहित प्रतिष्ठित न्यायविदों से परामर्श करना चाहिए और उनकी राय को समुचित महत्व देना चाहिए। निर्धारित अवधि अर्थात्, एक वर्ष के भीतर राज्यपाल या राष्ट्रपति को अन्तिम कार्रवाई के बारे में राज्य को सूचित कर देना चाहिए।

3.2 राज्य सरकार के कार्यों और राज्य के हितों के प्रति संघ की अभिवृत्ति दोनों को प्रभावित करने में राज्यपाल को महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी चाहिए ।

3.3 (क) अधिकांश मामलों में राज्यपालों ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन सही रूप में किया है;

(ख) समग्रत:, लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों का पालन किया गया है;

(ग) यह कार्य सुचारु रूप से किया गया है । वर्तमान पद्धति जारी रखी जा सकती है ।

3.4 अनुच्छेद 200 तथा 201 का प्रयोजन यह देखना है कि राज्य विधि और केन्द्रीय विधि में कोई अन्तर्निहित या प्रत्यक्ष विरोध नहीं है। इसके अतिरिक्त, यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि राज्य विधि संविधान के किसी उपबंध का किसी भी प्रकार से उल्लंघन नहीं करती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राज्यपाल और राज्य सरकार बिल पेश करते समय और राज्य विधानमण्डल में इस पर विचार-विमर्श करते समय इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखेंगे, किन्तु यदि राज्यपाल यह निर्णय करता है कि तीसरी अवस्था में केन्द्रीय स्तर पर निरीक्षण करना आवश्यक है तो यह एक वांछनीय कदम है । राज्य मंत्रिपरिषद् स्वयं राज्यपाल को यह परामर्श दे सकती है कि वह बिल राष्ट्रपति को भेज दे अथवा

राज्यपाल अपने विवेक पर ऐसा कर सकता है । ये दोनों अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में बनाए रखे जाने चाहिएं ।

3.5 इस शक्ति के माध्यम से केवल सांविधानिक औचित्य और विदेशी/देश के रक्षा हित सुरक्षित रखे जाने चाहिए । संघ को अपनी नीतियां राज्य सरकार पर तब तक थोपने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जब तक कि प्रस्तावित बिल राष्ट्रीय हितों या संविधान के उपबंधों के विरुद्ध न हो ।

3.6 जैसा कि प्रश्न 3.3 (क) में दिया गया है ।

3.7 हम इस विचार से सहमत नहीं हैं । राज्यपालों की नियत पदावधि और उन्हें हटाने की विस्तृत कार्यविधि से जटिलताएं उत्पन्न हो जाएंगी ।

3.8 पूर्ववर्ती उत्तरों में पहले ही अन्तर्विष्ट है ।

3.9 जर्मन संघीय गणतन्त्र के संविधान द्वारा प्रस्तुत किया गया समाधान भारतीय संदर्भ में व्यावहारिक नहीं है और हमारी राजनीतिक परम्परा के अनुकूल नहीं है । उपयुक्त विकल्प यह है कि सभा को भंग कर दिया जाए और विधानमण्डल में पार्टी की स्थिति सुदृढ़ न होने पर दुबारा चुनाव करवाने के आदेश दे दिए जाएं ।

3.10 हम समझते हैं कि मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करना व्यवहार्य या उचित नहीं होगा । लिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों के केवल मुकदमेबाजी को बढ़ावा मिलेगा और परिणामतः सांविधानिक गतिरोध उत्पन्न होगा । इस विषय पर संविधान सभा ने और बाद में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपालों की समिति ने विस्तार से विचार किया है । सर्वसम्मति निश्चित रूप से किसी ऐसे उपाय के विरुद्ध थी ।

भाग IV

प्रशासनिक सम्बन्ध

4.1 से 4.3 तक: हमारी सांविधानिक ढांचे की योजनाओं में ऐसे उपबंध अत्यधिक से आकस्मिकता के लिए आवश्यक है । किन्तु इन शक्तियों का प्रयोग सावधानी, बुद्धिमता और उपयुक्तता से किया जाना चाहिए । फिर भी, अनुच्छेद 365 के अधीन राष्ट्रपति को यह दृष्टिकोण बनाने से पहले कि राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार कार्य नहीं कर रही है, राज्य सरकारों को स्पष्टीकरण देने का एक अवसर देना चाहिए ।

4.4 हमें ऐसा कोई अनुभव नहीं है क्योंकि राज्य में अनुच्छेद 365 कभी लागू नहीं किया गया है ।

4.5 यह महसूस किया जाता है कि अनुच्छेद 365(5) में निर्धारित दोनों शर्तें राज्य में राष्ट्रपति-शासन लागू करने के लिए अलग-अलग पर्याप्त होंगी । अतः सुझाव यह है कि अनुच्छेद 356(5) (क) के अन्त में आने वाले शब्द "और" के स्थान पर "अथवा" रखा जाना चाहिए ।

4.6 वर्तमान व्यवस्था सन्तोषजनक है और इसे जारी रखा जाना चाहिए ।

4.7 ये एजेंसियां समग्रतः राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में नोडल संगठनों के रूप में कार्य कर रही हैं और निश्चित रूप से बनी रहनी चाहिए । राज्य के विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने और उन राज्यों के प्रयासों में अनुपूरक की भूमिका अदा करती हैं जिनके संसाधन इस प्रयोजन के लिए अपर्याप्त हैं । तथापि, आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी एजेंसियों के विषय में नीति की संघ सरकार राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके और अधिमानतः इस प्रश्नावली के उत्तरों के भाग I में सुझाई गई अन्तर्राज्यीय परिषद् के माध्यम से नियमित रूप से समीक्षा करे । संघ सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि एजेंसियां राज्यों की समस्याओं और अपेक्षाओं के प्रति जागरूक हों और उनकी भूमिका और कार्य पर राष्ट्रीय विकास परिषद् में विचारविमर्श किया जाए । ये एजेंसियां समान कार्यकलापों में लगी हुई राज्य एजेंसियों की भूमिका की अनुपूरक होनी चाहिए, उन पर अभिभावी नहीं ।

4.8 अनुच्छेद 312 में अन्य बातों के साथ-साथ संघ और राज्यों के लिए एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं का सर्जन करने की व्यवस्था है । वर्तमान रूप में कार्य कर रही अखिल भारतीय सेवाएँ संघ तथा राज्यों के लिए समान नहीं है बल्कि राज्य सेवाएँ, बन गई हैं, यद्यपि सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से की जाती है । सेवाओं के सदस्यों पर राज्यों का पूर्ण नियंत्रण है और वे अधिकार के रूप में केन्द्र में या किसी अन्य राज्य में स्थानान्तरण का दावा नहीं कर सकते । वस्तुतः यदि अधिकारी का नाम संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के पदों के लिए पैनल में न हो तो भारत सरकार उसकी सेवाएं स्वीकार नहीं करेगी । अखिल भारतीय सेवा से सम्बन्धित अधिकारी को केन्द्र में केवल प्रतिनियुक्ति पर भेजा जा सकता है और ऐसी प्रतिनियुक्ति अन्य राज्य सेवाओं जैसे न्यायिक सेवाओं आदि, में भी उपलब्ध हैं । संविधान में यथा उपबंधित अखिल भारतीय सेवाओं के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक अखिल भारतीय सेवा के केन्द्र सरकार के प्रतिष्ठान में भी संवर्ग पद होना चाहिए और सदस्यों को केन्द्र सरकार में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, अखिल भारतीय सेवा के एक ही बैच के व्यक्तियों के लिए विभिन्न राज्यों में पदोन्नति के विभिन्न अवसर हैं । अतः वर्तमान रूप से योजना से संविधान-निर्माताओं की अपेक्षाएं पूरी नहीं होतीं ।

अनुच्छेद 311 के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति द्वारा किसी सदस्य को सेवा से हटाने की शक्ति ही केवल आरक्षित है । दूसरी ओर, यद्यपि अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए राज्य सरकार के पूर्ण नियंत्रणाधीन हैं, फिर भी संघ सरकार के पास अखिल भारतीय सेवा के वरिष्ठ अधिसमय वेतनमान आदि में पदों का सर्जन करने और उनका प्रबन्ध करने का अधिकार आरक्षित है तथा इसके परिणामस्वरूप राज्य सरकारों को संवर्ग की उपयुक्त व्यवस्था बनाए रखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।

उपर्युक्त को दृष्टि में रखते हुए यह सुझाव है कि संविधान के उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय सेवा योजना में आशोधन किया जाना चाहिए । संवर्ग में ऐसे अधिकारियों के पदों का अस्थायी सर्जन करने की पूर्ण शक्तियां राज्य सरकारों को दे दी जानी चाहिए और साथ ही संघ सरकार को राज्यों में सेवाओं के कार्मिकों के परिनियोजन पर अधिक नियंत्रण रखना चाहिए । सेवाओं के कार्मिकों को उनकी तैनाती केन्द्र सरकार में करने का संघ से अनुरोध करने का वैध अधिकार होना चाहिए । अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बन्धित अधिकारियों का नियतन राज्य सरकार के परामर्श से किया जाना चाहिए । योजना में कोई परिवर्तन, जैसे आन्तरिक और बाहरी व्यक्तियों में रिक्तियों का विभाजन, राज्यों के परामर्श से किया जाना चाहिए ।

4.9 यह संविधान के निर्वचन का प्रश्न है । यदि अनुच्छेद 355 के अधीन संघ की शक्तियां निर्धारित करने का कोई अवसर आता है तो राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श कर सकता है

4.10 राज्य इस बात के लिए स्वतंत्र होने चाहिएं कि वे सूची I की 31वीं प्रविष्टि को समवर्ती सूची में लाकर टेलीविजन और रेडियो के अतिरिक्त चैनलों का प्रयोग अपने प्रयोजन के लिए अपने खर्च पर कर सकें ।

4.11 मेघालय की स्थापना से ही उसे पूर्वी आंचलिक परिषद् में शामिल नहीं किया गया है क्योंकि ऐसा समझा गया कि उत्तर पूर्वी क्षेत्र के क्षेत्रीय विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार उत्तर-पूर्वी परिषद् में किया जा सकता है । आंचलिक परिषद् किसी अंचल के राज्यों के बीच समन्वय के मामले पर विचार-विमर्श करने के लिए उपयोगी मंच हो सकती है । उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के राज्य/संघ शासित क्षेत्रों को भी पूर्वी आंचलिक परिषद् में शामिल किया जाना चाहिए ताकि इन्हें ऐसे राज्यों के साथ काम करने का अवसर प्राप्त हो सके जो पारस्परिक हित के मामले में उत्तर-पूर्वी परिषद् में नहीं हैं ।

4.12 भाग I में दिए गए अनुसार अनुच्छेद 263 के अधीन अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए ।

भाग V

वित्तीय सम्बन्ध

5.1 संविधान-निर्माताओं का अभिप्राय यह था कि सभी राज्यों के पास पर्याप्त राजस्व हो ताकि वे उन्हें समनुदेशित उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर सकें। विभिन्न कारणों से अनेक राज्य उन्हें उपलब्ध स्त्रोतों से पर्याप्त राजस्व प्राप्त नहीं कर पाते। इन राज्यों को मुख्य रूप से केन्द्रीय करों के हिस्से और वित्त आयोग की सिफारिश पर संविधान के अनुच्छेद 275(i) के अधीन सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।

संविधान-निर्माताओं द्वारा आशयित अवक्रमण की योजना से इस दृष्टि से अपेक्षा पूरी नहीं होती कि केन्द्रीय करों और अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान का अवक्रमण होने के बावजूद कुछ राज्यों के राजस्व में बहुत बड़ा अन्तर मौजूद है। इसका मुख्य कारण है कि वित्त आयोग ने राज्यों की आय और व्यय का जो मूल्यांकन किया है वह वस्तुपरक नहीं है।

5.2 आठवें वित्त आयोग के मूल्यांकन के अनुसार कुछ राज्यों के पास अपने गैर-योजना खर्च को पूरा करने के बाद अधिशेष राशि रह जाती है जबकि शेष राज्य अपने गैर-योजना खर्च के लिए केन्द्र पर निर्भर रहते हैं। देश का संघीय ढांचा बनाए रखने की दृष्टि से यह अनिवार्य है कि राज्यों की असमानताएं दूर की जाएं। यह उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि सभी राज्यों को न्यूनाधिक रूप से समान आधार पर रखा जाए। (क) से (ङ) तक में उल्लिखित किसी विकल्प को अपनाने से राज्यों में असमानताएं बढ़ जाएंगी। अतः हम सिफारिश करते हैं कि विद्यमान कार्यविधि जारी रखी जाने के साथ-साथ वित्त आयोग को एक सिद्धान्त अपनाना चाहिए जिसके अधीन वित्त आयोग द्वारा यथार्थ मूल्यांकन के आधार पर सभी राज्यों की कुल गैर-योजना व्यय के विनिर्दिष्ट प्रतिशत तक अधिशेष राजस्व देने की सिफारिश की जाए। ऐसा करते समय केन्द्र सरकार की आवश्यकताओं और उत्तरदायित्वों की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए।

5.3 हम इस विचार से सहमत हैं कि क्षेत्रीय असमानताएं केवल ऐसा मजबूत केन्द्र ही समाप्त कर सकता है जिसके राजस्व के स्रोत लचीले हों और जिसे उपलब्ध निधियों का प्रयोग आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों के विकास के लिए करने का विवेकाधिकार हो। राज्यों के बीच संसाधनों के वितरण की मौजूदा कार्यविधि जारी रखी जानी चाहिए, तथापि अंतरण का तरीका ऐसा होना चाहिए जिससे कि क्षेत्रीय असमानताएं समाप्त करने और सामाजिक तथा आर्थिक औचित्य प्राप्त करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर संसाधन उपलब्ध कराए जा सकें।

5.4 वस्तुत: यह ठीक नहीं है कि हाल ही के वर्षों में संघ सरकार के लेखाओं में बहुत घाटा हुआ है और इसका मुख्य कारण है संघ के कुल संसाधनों के 30 प्रतिशत की सीमा तक राज्यों को अंतरण व्यय पर नियंत्रण करना और यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि उपलब्ध संसाधनों का स्तर कुछ भी हो, उनका सदैव प्रभावी और समुचित प्रयोग किया जाए। घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग केवल सम्पूर्ण राष्ट्रीय महत्व के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि इस कारण से कि संघ या राज्य अत्यधिक वित्तीय संकट में हैं। यदि सम्पूर्ण स्थिति ऐसी नहीं है कि घाटे की वित्त-व्यवस्था की जाए तो संघ सरकार को उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए और कर लगाकर अतिरिक्त संसाधन जुटाने चाहिए।

5.5 अन्तर्राज्यीय वित्तीय असमानताएं बढ़ने का कारण निश्चित रूप से इस बात का सूचक है कि संसाधनों के अंतरण की वर्तमान प्रणाली समृद्ध और अपेक्षाकृत गरीब राज्यों के बीच संसाधनों के अन्तर को कम करने के लिए पूर्णतः समुचित नहीं है। अतः हम चाहते हैं कि आयोग निम्नलिखित उपायों पर विचार करे :—

(क) वित्त आयोग के माध्यम से अंतरण :—क्रमिक वित्त आयोगों ने राज्यों के बीच केन्द्र सरकार के करों और शुल्कों के वितरण के ऐसे सिद्धांत तैयार किए हैं जिनका सीधा सम्बन्ध उनकी व्यावहारिक आवश्यकताओं से नहीं है परिणामस्वरूप अनेक राज्य केन्द्र करों और शुल्कों के हिस्से से अपने गैर-योजना खर्च और अपने उत्तरदायित्वों का उचित रूप से निर्वहन नहीं कर पाए हैं। अतः हम सिफारिश करते हैं कि वित्त आयोग केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का प्रयोग वास्तविक आधार पर राज्यों के राजस्व घाटे को पूरा करने तथा संविधान के अनुच्छेद 275 (i) के अन्तर्गत सहायता अनुदान देने की सिफारिश पैरा 5.2 में यथानिर्दिष्ट अधिशेष सुनिश्चित करने के लिए करे। महत्वपूर्ण अंश अर्थात् 30 प्रतिशत की सीमा तक राज्यों की गैर-योजना खर्च की सेवाओं में सुधार के लिए दिया जाना चाहिए और उसे राज्य की योजना के लिए संसाधनों की सम्बद्ध नहीं किया जाना चाहिए।

(ख) योजना आयोग के माध्यम से अंतरण :—योजना सहायता इस तरीके से दी जानी चाहिए कि पिछड़े राज्य एक निश्चित अवधि में विकसित राज्यों के बराबर आ जाएं। राज्य की गैर-योजना सहायता अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण होने वाले आकस्मिक खर्च को पूरा करने के लिए केवल वास्तविक आवश्यकता के आधार पर दी जानी चाहिए।

5.6 यदि पैरा 5.5 में की गई सिफारिशें मान ली जाती हैं तो विशेष संघीय निधि संस्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि मौजूदा कार्यविधि जारी रखी जाती है तो पैरा 5.5 में निर्दिष्ट अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए विशेष संघीय निधि की संस्थापना की जानी चाहिए।

5.7 हम किसी केन्द्र कर का राज्य को अंतरण करने का सुझाव नहीं देना चाहते क्योंकि ऐसा करने से राज्यों के बीच असमानताएं बढ़ जाएंगी। समृद्ध राज्य और समृद्ध बन जाएंगे तथा गरीब राज्य और गरीब हो जाएंगे।

5.8 हम सहमत हैं कि देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालने वाली कराधान नीति के खण्डात्मक दृष्टिकोण का यथासाध्य परिहार किया जाना चाहिए। तथापि, हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि बिक्री-कर लगाने और वसूल करने का अधिकार केन्द्र को अभ्यर्पित कर दिया जाए क्योंकि यह राज्यों के लिए राजस्व प्राप्ति का मुख्य लचीला स्रोत है। अन्तर्राज्यीय बिक्री-कर के मामले में, भार पड़ोसी राज्यों की जनता पर पड़ता है। परन्तु वसूली का समायोजन अन्य राज्यों द्वारा किया जाता है। अतः सुझाव यह है कि अन्तर्राज्यीय बिक्री-कर केन्द्र सरकार द्वारा वसूल किया जाना चाहिए और उपभोक्ता को वापस कर दिया जाना चाहिए।

5.9 हमारा सुझाव है कि पैराग्राफ 5.5 में सुझाए गए आशोधनों के साथ वर्तमान कार्यविधि जारी रखी जाए।

5.10 मौजूदा व्यवस्था के अधीन अन्तर्राज्यीय असमानताएं कम नहीं हुई है। वर्तमान प्रणाली हालांकि व्यय में कुछ बचत करने को प्रोत्साहन दे रही है किन्तु इसके परिणामस्वरूप मौजूदा परिसम्पत्तियों के उपयुक्त रखरखाव में लापरवाही हुई है। वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर संसाधनों का अन्तरण अधिकांशतः अन्तर दूर करने के लिए किया गया है और योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के जरिए राज्यों को संसाधनों का अंतरण केन्द्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा योजना आयोग को उपलब्ध कराई गई निश्चित राशि के सामान्य फार्मूले पर आधारित वितरण के आधार पर किया गया है। किसी भी मामले में अवक्रमण स्वीकृत खर्च या विकास की विनिर्दिष्ट आवश्यकताओं के विश्लेषण के आधार पर नहीं किया गया है।

5.11 यह कहना ठीक नहीं होगा कि राज्यों ने वित्तीय सिद्धान्तों के मानकों की अवहेलना करके अपनी राजस्व अपेक्षाओं को बढ़ा-चढ़ाकर बतानी है। वस्तुतः निर्धन राज्य अन्य विकसित राज्यों में प्रचलित के समान प्रशासनिक और अन्य सेवाओं के स्तर का विस्तार करने को उत्सुक हैं। वस्तुतः एक राज्य के मानक दूसरे राज्य से भिन्न होने चाहिए। यद्यपि सघन आबादी वाले राज्यों के मामले में मानक नियत करने की मुख्य कसौटी जनसंख्या हो सकती है किन्तु छितरी आबादी वाले राज्यों के मामले में मानक नियत करने का आधार क्षेत्र तथा जनसंख्या होना चाहिए।

5.12 पहले पैराग्राफ 5.5 में सिफारिश किए गए अनुसार गैर-योजना खर्च पूरा करने के लिए राज्यों को केन्द्रीय करों का हिस्सा उनकी सभी राजस्व

आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जबकि अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत सहायता अनुदान का प्रयोग गैर-योजना राजस्व खर्च के विनिर्दिष्ट अधिशेष राशि की प्रतिशतता सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए।

5.13 जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत सहायता अनुदान से राज्यों के गैर-योजना राजस्व खर्च के विषय में अधिशेष राशि सुनिश्चित हो जाएगी ताकि राज्य महगाई भत्ते की नई किस्त देने के कारण अपनी अपेक्षाओं को पूरा कर सके और गैर-योजना की प्रशासनिक सेवाओं में सुधार कर सकें।

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि जनजाति बहुल मेघालय को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 275(1) के द्वितीय परन्तुक के खण्ड (ख) के अन्तर्गत सहायता अनुदान दिया जाना चाहिए। इस संदर्भ में यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जो क्षेत्र अब मेघालय राज्य में आ गया है वह संविधान के निर्माण के समय असम का हिस्सा था और जब मेघालय स्वायत्त राज्य बना उस समय अनुच्छेद 275(1) के अधीन उसे विशेष विचार किया गया था।

5.14 हम ऐसे किन्हीं उपायों की सिफारिश नहीं करते। यह समाधन केन्द्र के पास प्रयोग के लिए उसके विवेकाधीन रहने चाहिए।

5.15 मौजूदा तरीका प्राय: सन्तोषजनक है क्योंकि उसके द्वारा समुदाय की कुल बचत सार्वजनिक और प्राइवेट क्षेत्रों तथा केन्द्र और राज्यों के बीच उचित अनुपात में बांट दी जाती है बशर्ते कि पैराग्राफ 55 में सिफारिश किए गए अनुसार राज्यो की विकास की आवश्यकताओं का समुचित रूप से ध्यान रखा जाए।

5.16 यदि राज्यों को केन्द्रीय संसाधनों का अवक्रमण पूंजीगत लेखे सम्बन्धी आवश्यकता, जिसमें ऋण और ब्याज के दायित्व भी शामिल हों।

5.17 राज्यों की सारी आवश्यकताओं के आधार पर किया जाए तो इस स्थिति में आसानी से सुधार किया जा सकता है।

5.18 और 5.20 हम बाजार उधार ऋणों से सम्बन्धित नीति में किसी मुख्य परिवर्तन का समर्थन नही करते क्योंकि यदि राज्य बाजार से ऋण वसूल करेंगे तो यह न केवल समृद्ध राज्यो के पक्ष में होगा बल्कि इससे राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

राज्य की विकास संबंधी आवश्यकताओं का वास्तविक रूप से ध्यान रखना चाहिए और संसाधनों का आबंटन तदनुसार किया जाना चाहिए।

5.19 वर्तमान प्रणाली अनुचित नहीं लगती।

5.21 राज्य सरकारों को घाटे की वित्त-व्यवस्था नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा उनकी सारी आवश्यकताओं पर वित्त और योजना आयोग को ध्यान रखना होगा। राज्यों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अर्थोपाय पेशगियां देने का अभिप्राय केवल यह है कि अस्थायी वित्तीय कठिनाइयो पर काबू पाया जा सके। अर्थोपाय पेशगियों की सीमा मनमाने ढंग से नियत नहीं की जानी चाहिए। समय-समय पर इसकी समीक्षा की जानी चाहिए तथा राज्य सरकारों के सम्पूर्ण लेन देन की विनिर्दिष्ट प्रतिशतता के रूप में ही सीमा नियत की जानी चाहिए।

5.22 ऐसा सामान्यीकरण सभी राज्यों के लिए नही किया जा सकता। किन्तु, यह सत्य है कि विभिन्न राज्यो की कर वसूलियां व्यापक भिन्नता है। केन्द्र और राज्य सरकारों की कर वसूलियों की समीक्षा की जानी चाहिए और जहां सम्भव हो वहां स्थिति में सुधार करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् में विचार विमर्श किया जाना चाहिए।

5.23 अर्थव्यवस्था में बेहिसाब धनराशि की मौजूदगी से प्रणाली में होने वाली त्रुटि का पता चलता है। प्रणाली की समीक्षा की जानी चाहिए और ऐसी त्रुटि को दूर करने के लिए प्रभावी उपाय किए जाने चाहिए। प्रशासन और आर्थिक प्रबन्ध की कार्यकुशलता में सार्वजनिक उपक्रमों के प्रतिलाभ की दर में भी सुधार किया जाना चाहिए।

5.24 केन्द्र सरकार के लिए यह एक अच्छी परिपाटी होगी कि वह अनुच्छेदों में दिए गए शुल्कों या करों को वसूल करने या उनकी दर में संशोधन करने या किसी शुल्क या कर को समाप्त करने के किसी प्रस्ताव पर विचार करने से पहले राज्य सरकारों के विचार मालूम कर लें तथा जिन मदों के सम्बन्ध में बिक्री कर के बदले अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाया जाना हो उन मदों के उत्पाद शुल्क की दर मेंसंशोधन करने के मामले में राज्य सरकार के विचार मालूम कर ले।

5.25 हम यह महसूस करते हैं कि जहां तक इस राज्य का सम्बन्ध है संविधान के अनुच्छेद 269 का समुपयोग करके पर्याप्त राजस्व वसूल करने की गुंजाइश बहुत सीमित हैं।

5.26 अधिकांश राज्य सरकारें यात्रियों पर और सड़क परिवहन द्वारा ले जाए जाने वाले माल पर 10 प्रतिशत की दर से कर वसूल कर रहे हैं। अत: यह उपयुक्त हैं कि रेल के यात्री किराये और माल भाड़े की सकल आय का VII भाग विभाज्य पूल में रखा जाए।

5.27 कोई टिका-टिप्पणी नहीं है।

5.28 हमने पैराग्राफ 5.5 में यह सुझाव दिया है कि केन्द्र सरकार घाटे वाले राज्यों की असम्भावित और अपरिहार्य अपेक्षाओं के खर्च के अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता देकर पूरा करे जबकि बाढ़ नियंत्रित और सूखे की स्थिति पर काबू पाने के लिए दीर्घकालीन उपाय योजना से वित्त पोषण द्वारा जारी रखे जाएं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण अपेक्षित राहत और क्षति का पूरा खर्च इस प्रयोजन के लिए वित्त आयोग द्वारा नियत निधियों से अधिक खर्च के अतिरिक्त केन्द्र सरकार द्वारा वहन किया जाए।

5.29 हम महसूस करते है कि इन परिषदों में से किसी परिषद की स्थापना करना आवश्यक नहीं है।

5.30 विवाद का वास्तविक मुद्दा शक्ति और संसाधनों के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन और देश के विभिन्न भागों का संतुलित करने के संबंध में है। यह भी महत्वपूर्ण है कि निधियों का समुचित खर्च किया जाए ताकि उससे अधिक से अधिक और विशेषकर कमजोर वर्गों के लोग लाभान्वित हों।

5.31 हम सहमत हैं कि राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार दोनों का खर्च सूक्ष्म संवीक्षा के अध्यधीन होना चाहिए। राज्य सरकारों के संबंध में यह कार्य इस समय की तरह वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा तथा केन्द्र सरकार के खर्च के संबंध में राष्ट्रीय विकास परिषद और वित्त आयोग द्वारा किया जा सकता है। हम किसी अन्य तंत्र की स्थापना किए जाने की आवश्यकता नही समझते।

5.32 वर्तमान लेखाकरण पद्धति से विभिन्न स्तरों पर बहुत विलम्ब होता है। वर्तमान पद्धति के अधीन राज्य सरकारों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे खर्च पर कोई प्रभावी नियंत्रण रख सकें। अत्यन्त प्रभावी लेखाकरण पद्धति तैयार करने के लिए पूरी पद्धति की सम्यक् समीक्षा किया जाना आवश्यक है। जैसा कि केन्द्रीय मंत्रालयों के मामले में पहले ही किया गया है, नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक को राज्य के लेखाओं के रखरखाव के उत्तरदायित्व से मुक्त किया जाए तथा अखिल भारतीय लेखा सेवा को अखिल भारतीय सेवाओं में परिवर्तित किया जाए।

5.33 "वाउचर लेखा परीक्षा" की वर्तमान पद्धति को पूर्णत: समाप्त नही किया जा सकता। मूल्यांकन लेखा परीक्षा की वांछनीयता से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु यदि उक्त लेखा परीक्षा केवल परियोजना पूरी होने के बाद ही की जाएगी तो राज्य सरकार के लिए कोई सुधारात्मक उपाय करना सम्भव नहीं होगा।

5.34 कोई टिका-टिप्पणी नही है।

5.35 वर्तमान पद्धति में विनियोजन लेखाओं में दिए गए आंकड़े सदैव ठीक नहीं होते और सम्बन्धित मंत्रालय में उनका समाधान भी नहीं हो पाता।

महालेखाकार की बहियों में बहुत गलत वर्गीकरण हो जाता है। यदि महालेखाकार मासिक लेखे समय पर तैयार करे और सम्बन्धित विभागों को हर महीने आंकड़ों के सत्यापन की सुविधा प्रदान करे तो विनियोजन लेखे उचित रूप से ठीक होंगे।

5.36 यद्यपि लोक लेखा समिति और सार्वजनिक उपक्रमों की समिति ने अनियमितताओं को उजागर करके बहुत उपयोगी प्रयोजन सिद्ध किया है, तथापि खर्च पर समुचित नियंत्रण रखना आहरण तथा संवितरण अधिकारी, नियंत्रक अधिकारी, प्रशासनिक विभागों और वित्त विभाग के विभागाध्यक्ष पर निर्भर करता है।

5.37 प्राक्कलन समिति की रिपोर्ट से नीतियों और कार्यक्रमों के सुधार करने में मदद मिलती है किन्तु यह संवीक्षा और खर्च पर कड़ी निगरानी रखने का काम नहीं कर सकती, इसके लिए केवल आन्तरिक लेखा परीक्षा की व्यापक पद्धति ही प्रभावी हो सकती है।

5.38 हम व्यय आयोग की स्थापना की आवश्यकता नहीं समझते। यह भूमिका विधान मण्डल और नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक अदा करते हैं।

5.39 हम इस बात से सहमत हैं कि विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए आशयित निधियों का प्रयोग किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं करना चाहिए। केन्द्र सरकार द्वारा इसके नियंत्रण के संबंध में हमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु राज्य सरकार की कार्य योजनाओं के संबंध में मंत्रालयों की किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

भाग VI

आर्थिक तथा सामाजिक योजना

6.1, 6.2, 6.3, 6.4, 6.5, 6.7, 6.9 और 6.12 संविधान में राष्ट्रीय विकास परिषद् का कोई उल्लेख नहीं है। योजना आयोग का भी सांविधानिक या सांविधिक आधार नहीं है। इस समय योजनाएं राज्य की आकांक्षाओं को समुचित रूप से प्रस्तुत नहीं करती या उनकी (राज्यों की) प्रतिबद्धता को सुरक्षित नहीं करती। एक ओर तो राष्ट्रीय विकास परिषद् के माध्यम से किए गए विचार-विमर्श का स्तर समुचित नहीं है जबकि दूसरी ओर वैध रूप से पूर्णतः राज्य के क्षेत्राधिकार में आने वाले कार्यक्रमों के संबंध में योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों का अत्यधिक हस्तक्षेप है। परिणामस्वरूप योजनागत् योजनाएं तैयार करने और उन्हें वित्त-पोषित करने के संबंध में राज्यों की भूमिका आश्रित के समान है। योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों को प्रमुख कार्य दिए जाने से राज्य योजना आयोग बोर्ड प्रभावी नहीं रहे हैं।

राष्ट्रीय विकास परिषद् एक सांविधिक निकाय होना चाहिए जिसमें प्रधान मंत्री, केन्द्रीय मंत्री, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और उपयुक्त विशेषज्ञ हों और उसकी एक स्थायी समिति होनी चाहिए जिसकी बैठक अक्सर होती रहे। योजना आयोग इसका सचिवालय हो सकता है। आयोग योजना और निवेश के सभी पहलुओं के संबंध में परामर्श दे सकता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् के अनुमोदनार्थ मसौदा योजना तैयार कर सकता है और उसे उच्च स्तर की प्राथमिकताओं और उद्देश्यों को नियत करने का कार्य भी दिया जा सकता है। उसे इस बात की भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह संसाधन प्राप्त करने के संबंध में परामर्श दे सके।

जो विषय राज्यों के क्षेत्र में आते हैं उन विषयों के सम्बन्ध में विस्तृत योजना बनाने का कार्य राज्यों को दे देना चाहिए। राज्य योजनाओं और प्रस्तावों को योजना आयोग की सूक्ष्म संवीक्षा के अध्यधीन रखने की वर्तमान पद्धति को समाप्त किया जाना चाहिए।

6.6 राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को सम्मिलित करना आवश्यक है। राज्य सरकारों के संसाधन जुटाने संबंधी प्रयासों पर योजना आयोग विचार-विमर्श कर सकता है और राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को सम्मिलित करने के लिए राज्य सरकारों का मार्गदर्शन भी कर सकता है।

6.8 विशेष दर्जे के राज्यों को अन्य राज्यों की तुलना में सहायता देने की पद्धति जारी रखी जानी चाहिए। विशेष दर्जे के राज्यों के बीच निधियों का आवंटन करने के संबंध में योजना आयोग द्वारा अपनाए गए मापदण्ड के बारे में राज्य को जानकारी नहीं है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि विशेष दर्जे के राज्यों में भी जिन राज्यों में पर्याप्त जनजातीय आबादी है उन्हें अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता दी जाती है। यह सहायता जनजातीय उप-योजना के रूप में है और इसे गृह मंत्रालय द्वारा निधियां प्रदान की जाती है। किन्तु उक्त सहायता मेघालय और नागालैण्ड, जिसमें बहुसंख्या में जनजातीय लोग हैं, को नहीं दी जाती। जनजातीय उप-योजना क्षेत्र में विभिन्न विकासात्मक कार्यक्रमों को निधियां प्रदान करना स्पष्टतः इस बात पर आधारित है कि विभिन्न क्षेत्रों में कितना विकास हुआ है। उसी मापदण्ड को लागू करते हुए, योजना आयोग या गृह मंत्रालय (या दो राज्य सरकारों) के लिए यह सम्भव हो सकता है कि वे मेघालय (और नागालैण्ड) के ऐसे पिछड़े क्षेत्रों का पता लगा लें, जिनमें विकासात्मक कार्यक्रम को तेज किया जाना चाहिए और जिनके लिए जनजातीय उप-योजना के पैटर्न पर निधियां उपलब्ध कराई जाएं।

6.10 अधिकतर केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं राज्य योजना की प्राथमिकताओं को विकृत कर देती हैं क्योंकि वह राज्य सरकारों को उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित करता है। राज्य विषय से संबंधित केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं को पर्याप्ततः कम किया जाना चाहिए। राज्यों में अपनाई गई इन योजनाओं को पूर्णतः केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त-पोषित किया जाना चाहिए।

6.11 योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन को राज्य मूल्यांकन संगठन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना चाहिए तथा मूल्यांकन में एकरूपता लाने के लिए कार्यप्रणाली और संगठन के सम्बन्ध में व्यापक मार्गदर्शी सिद्धान्त भी निर्धारित किए जाने चाहिएं।

6.13 जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, मौजूदा परिस्थितियों में योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों का अत्यधिक हस्तक्षेप है और इस कारण से राज्य योजना बोर्ड का प्रभाव कम हो गया है। इस समय राज्य योजना बोर्ड राज्य योजनाएं तैयार करने का काम कर रहे हैं। तथापि, बाद में योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा योजना में परिवर्तन कर दिया जाता है और इसके साथ केन्द्रीय क्षेत्र की अनेक योजनाएं जोड़ दी जाती हैं। इस प्रकार योजना तैयार करने में राज्य योजना बोर्ड की भूमिका वस्तुतः समाप्त हो जाती है। राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों को अपना कार्य व्यापक मार्गदर्शी सिद्धान्त और सम्भवतः मुख्य क्षेत्र संबंधी परिव्यय निर्धारित करने तक सीमित रखना चाहिए और विस्तृत योजना तैयार करने का कार्य राज्य योजना बोर्ड पर छोड़ देना चाहिए।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 की अनुसूची की योजना मुख्य रूप से ऐसे उद्योगों की स्थापना पर नियंत्रण करने के लिए बनाई गई है जो लघु उद्योगों के लिए रक्षा, निवेश और नीति की दृष्टि से राष्ट्रीय महत्व के हैं। जहां तक रक्षा प्रयासों से सम्बद्ध औद्योगिक प्रस्तावों का सम्बन्ध है, वर्तमान व्यवस्था में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है। जिन क्षेत्रों में अधिक निवेश किया जाता है और वित्तीय संसाधनों का संचालन खर्च करना आवश्यक है, उन क्षेत्रों में अनुज्ञप्ति प्रक्रिया से विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए क्योंकि यह सम्पूर्ण राष्ट्रीय महत्व का पहलू है। जिन क्षेत्रों में अनुज्ञप्ति प्रदान करना लघु उद्योगों के संरक्षण का साधन बन गया है और इस प्रश्न में उद्धृत उदाहरण सुसंगत हैं, आंचलिक आवश्यकता को पूरी करने की सीमा तक अनुज्ञप्ति प्रदान करने का काम राज्य सरकार को सौंपा जाना चाहिए।

7.2 लघु उद्योगों के संरक्षण की दृष्टि से मदों को सम्मिलित करने के लिए परिभाषा को सीमित करना आवश्यक नहीं है। तथापि, उन्हें अलग अनुसूची में समाविष्ट किया जाना चाहिए और अनुज्ञप्ति प्रदान करने की शक्तियां राज्यों को सौंप दी जानी चाहिएं।

7.3 जहां अनुज्ञप्ति प्रदान करना केन्द्रीय सरकार का कार्य है वहां अन्य अनुमति भी एक ही कार्यालय से मिल जानी चाहिए । जिन मामलों में लाइसेंस राज्यों द्वारा दिए जाएँ उन मामलों में भी उसी प्रकार की अनुमति एक एजेंसी द्वारा दी जानी चाहिए ।

7.4 अनेक राज्य, विशेषकर पिछड़े राज्य लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए पूर्णत: सुगठित नहीं हैं । इसका मुख्य कारण है विभिन्न उद्योगों की अपेक्षाओं की जटिलता, नीतियों और कार्यक्रमों में तदर्थ परिवर्तन, कच्चे माल की सरकारी खरीद करने और उधार आदि से सम्बन्धित सभी विषयों के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति की अपेक्षा होना । यदि वस्तुत: विस्तृत योजना बनाने का कार्य और प्रशासन का ढांचा विकेन्द्रीकृत हो जाता है तो यह कार्य अधिक सरल हो जाएगा ।

7.5 कोई टिका-टिप्पणी नहीं है ।

7.6 जी, हाँ ।

7.7 यह महसूस किया गया है कि निवेश का निर्णय करने के लिए मूलभूत आधार वास्तविक मानदण्ड होना चाहिए और इस संबंध में सभी राज्यों को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, अन्तिम निर्णय किसी राज्य के औद्योगिक पिछड़ेपन को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए और यह निर्णय अन्तर्राज्यीय परिषद् द्वारा किया जाना चाहिए ।

7.8 औद्योगिक रूप से पिछड़े जिलों के चयन/पहचान करने के लिए मानदण्ड ठीक है । फिर भी, प्रोत्साहनों को राज्यों के परामर्श से और अधिक यथार्थ बनाए जाने की आवश्यकता है ।

भाग VIII
व्यापार तथा वाणिज्य

8.1 अनुच्छेद 304 के अधीन यथा अपेक्षित प्राधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए ।

कृषि

9.1 हम केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, 1967 के प्रशासनिक सुधार आयोग के विचारों से सहमत हैं ।

9.2 हम इस बात से सहमत हैं कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं यथासम्भव शीघ्र पैरा 9(2)(iii) की शर्तों के अध्यधीन राज्य क्षेत्र का भाग होनी चाहिए । इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(i) सामान्यत: केन्द्र सरकार से समय पर स्वीकृति प्राप्त नहीं होती और राज्य सरकार द्वारा नियत राशि प्राय: ऐसी योजनाओं के कार्यान्वित न होने के कारण अभ्यर्पित कर दी जाती है ।

(ii) केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित मानक राज्य के लिए सदैव उपयुक्त नहीं होते ।

(iii) इस सम्बन्ध में हमारा विशेष सुझाव यह है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं राज्य क्षेत्र का भाग तभी बन सकती हैं जबकि राज्य यह सोचता हो कि ऐसी योजनाएं संकल्पनात्मक तथा प्रचालनात्मक रूप से राज्य की प्रौद्योगिकी कृषि-आर्थिक स्थिति के अनुकूल हैं ।

9.3 योजना आयोग व्यापक राष्ट्रीय प्राथमिकताएं निर्दिष्ट करता है और केन्द्रीय मंत्रालयों के सहयोग से कृषि तथा सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र की योजनाएं निर्धारित करता है । इसका परिणाम यह होता है कि हमारे पास अत्यधिक विविधता वाले सम्पूर्ण देश के लिए योजनाओं की घिसी-पिटी प्रणाली बनी रहती है । विकास-सम्भावनाओं और विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई जाने वाली कार्य योजना का अध्ययन करने के लिए संयुक्त कार्यकारी ग्रुपों की स्थापना लाभप्रद होगी । तथापि, ऐसे कार्यकारी ग्रुप केवल सिफारिश करने वाले होने चाहिएं, इससे अधिक कुछ नहीं ।

9.4 (क) जहां तक हमारे राज्य का सम्बन्ध है, केन्द्र द्वारा कृषि मदों का न्यूनतम मूल्य नियत करने से कोई प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि जहां न्यूनतम मूल्य नियत किए गए हैं वहां आज तक खुले बाजार के मूल्य अनाज, जूट और कॉटन के लिए नियत न्यूनतम मूल्य से सदैव अधिक रहे हैं । किन्तु, यदि खुले बाजार के मूल्य न्यूनतम नियत मूल्यों से कम हो जाते हैं तो न्यूनतम मूल्य नियत करने की केन्द्रीय नीति कृषकों के हितों को सुरक्षित रखने में पूर्णतया प्रभावी होगी ।

(ख) कोई टिका-टिप्पणी नहीं है ।

(ग) उर्वरक, बीज और उधार आदि जैसे कार्ययोजना निवेश के सम्बन्ध में केन्द्रीय नीति पूर्णतया प्रभावी हैं और अलग-अलग राज्य की अपेक्षाओं के अनुसार जारी रहनी चाहिए ।

(घ) कोई टिका-टिप्पणी नहीं है ।

9.5 इस समय भारतीय कृषि तथा अनुसंधान परिषद् और कृषि निदेशालय के बीच कोई उपयुक्त तालमेल नहीं हैं ।

खाद्य तथा नागरिक आपूर्ति

10.1 और 10.2 सरकारी खरीद का मूल्य निर्धारित करने, भण्डार करने, लाने-ले जाने आदि के क्षेत्र में केन्द्र-राज्य सहयोग और समन्वय में सुधार किया जाना आवश्यक है और इस प्रयोजन से विचार-विमर्श करने के लिए तथा इस क्षेत्र में कार्यरत एजेंसियों को परामर्श देने के लिए अन्तर्राज्यीय सलाहकार निकाय की स्थापना की जानी चाहिए । ऐसा निकाय मेघालय जैसे राज्यों के लिए सहायक होगा क्योंकि वह सामान्यत: खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुओं के लिए केन्द्रीय पूल पर निर्भर रहता है । प्रस्तावित निकाय आवश्यक वस्तु, अधिनियम तथा अन्य केन्द्रीय अधिनियमों के प्रवर्तन और प्रशासन की आवधिक समीक्षा भी कर सकता है ।

शिक्षा

11.1 यह छोटे राज्यों के हित में है कि शिक्षा को समवर्ती सूची में ही रहने दिया जाए । तथ्यों से यह सिद्ध है कि शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में केन्द्रीकरण वांछनीय है और ऐसे मामलों में केन्द्र का हस्तक्षेप केवल मार्गदर्शी स्वरूप का है ।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का कार्य वस्तुपरक होना चाहिए । इस संगठन की राष्ट्रीय स्तर पर पुन: संरचना की जानी आवश्यक है । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद्, एन० आई० ई० पी० ए० आदि जैसे राष्ट्रीय निकायों के कार्य का मार्गदर्शन करने के लिए एक राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद् होनी चाहिए जिसमें सभी राज्यों, केन्द्र के प्रतिनिधि और प्रतिष्ठित शिक्षाविद् हैं ।

11.3 इस बात में मतैक्य होना चाहिए कि राष्ट्रीय उद्देश्य का व्यापक ढांचा हो ताकि राज्यों को इतनी स्वतंत्रता मिल जाए कि वे अपनी आवश्यकताओं और विशिष्टताओं के अनुसार नीति का अनुसरण कर सकें ।

11.4 संविधान में विनिर्दिष्ट उपबन्ध—अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त हैं ।

11.5 हमारे सम्मुख उत्तर पूर्वी भारत (असम को छोड़कर) में अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षा में हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने का मामला है । अकस्मात हिन्दी थोपने से विशेषत: इस क्षेत्र के अनु० जनजाति के परीक्षार्थी जिनकी मातृभाषा संविधान की 8वीं अनुसूची में दी गई भाषाओं में नहीं हैं, परीक्षा देने से वंचित और असहाय हो जाएंगे । ऐसे निर्णय करने से पहले राज्य से परामर्श किया जाना चाहिए ।

भाग XII
अन्त: सरकारी समन्वय

12.1 केन्द्र-राज्य सम्बन्धों और अन्त: सरकारी समन्वयों से सम्बन्धित मामलों पर विचार करने के लिए वित्त आयोग के समान स्थायी स्वरूप के एक स्वायत्त और स्वतन्त्र निकाय की स्थापना की जानी चाहिए ।

केन्द्र-राज्य संबंध आयोग के सम्मुख मुख्य मंत्री का स्वागत भाषण

मेघालय सरकार आप का और श्री सिवारमण का स्वागत करने में हर्ष का अनुभव करती है और हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं कि आयोग ने यहां आने का कष्ट किया और हमें अपने विचार प्रकट करने का अवसर दिया। हमें विश्वास है कि गहन और विविध अनुभव वाले आप जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ यह आयोग आप को सौंपे गए राष्ट्रीय महत्व के कार्य के साथ पूरा न्याय करेंगे।

विशेष रूप से संघ और राज्यों के बीच संबंधों के संदर्भ में संविधान की कार्यविधि ने काफी ध्यान आकर्षित किया है और विद्वानों, समितियों और प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा विश्लेषण और चर्चा का विषय बना हुआ है। संघ और राज्यों के बीच सभी क्षेत्रों में अधिकारों कार्यों और उत्तरदायित्वों के संबंध में विद्यमान व्यवस्था की कार्यविधि की विशिष्ट रूप से जांच और समीक्षा करने तथा समुचित परिवर्तनों, यदि कोई हों, के लिए सुझाव देने के लिए इस आयोग को गठित करने के संबंध में केन्द्रीय सरकार का निर्णय और इस संबंध में किए गए उपाय सराहनीय प्रयास हैं। यह आवश्यक हो गया है कि इस महत्वपूर्ण विषय की प्रामाणिक जांच की जाए।

संविधान सभा में हमारे संविधान के सिद्धान्तों पर हुई चर्चा में तीन विभिन्न विकल्पों—केन्द्र शासित राज्य, संघ शासन—जिसमें प्रभावशील केन्द्र हो और शेष अधिकार केन्द्र में निहित हों, या ऐसा संघ शासन—जिसमें अधिक अधिकार राज्यों के पास हो; पर विचार किया गया। इस ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए कि भारत सामान्य राजनैतिक पद्धति के साथ एकीकृत देश के रूप में सामने आ रहा है और देश को संगठित करने वाली सांस्कृतिक विविधता तथा पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए अन्ततः यह निर्णय लिया गया कि केन्द्र शासित राज्य राजनैतिक और प्रशासनिक दोनों रूप से एक अवनतिशील कदम साबित होगा और हमारे संविधान का "सर्वाधिक सशक्त स्वरूप यह हो सकता है, जिसके अंतर्गत एक मजबूत केन्द्र वाली संघ सरकार की स्थापना की जाए" जिसमें शेष अधिकार केन्द्र में ही निहित हों।

संविधान को अपनाने के बाद देश में विकास के लिए राष्ट्रीय योजनाएं बनाई गई। राष्ट्रीय योजना आरंभ करने के साथ संघ सरकार का प्रभाव-क्षेत्र उतना विस्तृत हो गया कि उसमें विकास से संबंधित लगभग सभी विषय शामिल हो गए और इसके परिणामस्वरूप संघ और राज्यों के बीच अधिकारों और विषयों का विभाजन और भी अधिक स्पष्ट हो गया है। राष्ट्रीय योजना, जिस में विस्तृत राज्य योजनाएं भी शामिल हैं, के गठन, केन्द्रीय एजेंसी द्वारा साल-दर-साल राज्यों के संसाधनों और विकास संबंधी स्कीमों की जांच, केन्द्रीय एजेंसी द्वारा वार्षिक आधार पर निर्धारित केन्द्रीय सहायता की मात्रा, राज्य योजनाओं के संबंध में योजना आयोग और केन्द्रीय सरकार से अपेक्षित अनुमोदन लेने और राज्य के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों के संबंध में केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों की बढ़ती हुई संख्या से प्रशासनिक और वित्तीय केन्द्रीयकरण को बढ़ावा मिला है। किसी ऐसी संस्थागत व्यवस्था के अभाव के कारण, जिसके माध्यम से राज्य केन्द्रीय वित्तीय एजेंसियों और राष्ट्रीयकृत बैंकों की नीतियों और कार्यविधि पर अपने विचार प्रकट कर सकें, जिन के पास बचत केन्द्रित होती है और जिन पर कृषि, उद्योग, आवास, जल-पूर्ति और विद्युत विकास जैसे क्षेत्रों में, जो हर राज्य के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं—अधिकांश पूंजी—निवेश निर्भर करता है—यह समस्या और अधिक जटिल ही हुई है।

अतः देश के राज्य तंत्र के सामने यह चुनौती है कि राष्ट्रीय विकास संबंधी योजना की और स्थानीय नेतृत्व तथा स्थानीय बचत और निवेश की अपेक्षाओं को कैसे संतुलित किया जाए।

राज्य सरकार का यह विचार है कि देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने तथा उसके संवर्धन के लिए और देश के विकास के लिए राष्ट्रीय योजना बनाने के लिए एक शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है। हमारा इस विषय में भी दृढ़ विचार है कि राज्यों को भी समान रूप से शक्तिशाली होना चाहिए क्योंकि केन्द्र की शक्ति राज्यों की शक्ति में ही निहित है।

अत्यधिक योजना, वित्तीय और प्रशासनिक केन्द्रीयकरण एक स्वस्थ लक्षण नहीं है। देश के विकास और संतुलित क्षेत्रीय विकास के संबंध में राष्ट्रीय योजना बनाए जाने की आवश्यकता के संदर्भ में केन्द्रीय एजेंसियों के सहयोग की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं है जैसा कि वर्तमान में उनके इस विस्तृत पैमाने पर सहयोग दिया जा रहा है। राष्ट्रीय योजना के लिए की जाने वाली संस्थागत व्यवस्था में और राज्यों की बढ़ी हुई जिम्मेदारियों के अनुपात में उन्हें अधिक साधन प्रदान करने और अन्तर-राज्य संवितरण करने के संबंध में संस्थागत व्यवस्थाओं में सुधार की काफी गुंजाइश है। केन्द्र-राज्य और राज्यों के बीच उद्देश्यपूर्ण परामर्श के लिए नई कार्यप्रणालियां अपनाने की आवश्यकता है। हम यह महसूस करते हैं कि आंचलिक परिषदों की पद्धति को मजबूत बनाया जाना चाहिए। और दक्षिण-पूर्व के राज्यों को पूर्वी आंचलिक परिषद में शामिल कर के उन्हें पड़ोसी राज्यों के साथ विचार-विमर्श करने का भी अवसर दिया जाना चाहिए।

हमने आयोग से प्राप्त प्रश्नावली के जवाब में वैधानिक, प्रशासनिक और वित्तीय तथा विकास संबंधी क्षेत्रों के विभिन्न मुद्दों पर राज्य सरकार के विचारों को ब्यौरे-वार उत्तर के रूप में प्रस्तुत किया है। मैं, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर रोशनी डालना चाहूंगा।

आयोग की प्रश्नावली में केन्द्र-राज्य संबंधों के विषय में सभी पक्षों को पूर्ण रूप से शामिल किया गया है। हम महसूस करते हैं कि विधायी संबंधों के अधीन अधिकारों के वितरण में जो पक्षपात किया गया है, वह संघ सरकार के पक्ष में ही है, परन्तु "सार्वजनिक हित" या "राष्ट्रीय महत्व" की आड़ में संघ के अधिकार क्षेत्र में धीरे धीरे विस्तार करना वांछनीय नहीं है। जब तक रक्षा और समुचित नियंत्रण के प्रयोजन से यह आवश्यक न हो 'राज्य सूची' में विनिर्दिष्ट राज्य सरकार के अधिकार-क्षेत्र को घटाया न जाए या उस में कोई बाधा उत्पन्न न की जाए।

हमारा यह विचार है कि राज्यपाल का पद वर्तमान राजनैतिक स्थिति में आवश्यक है किन्तु राज्यपाल के लिए कुछ ऐसे मानदण्ड निर्धारित किए जाने चाहिएं जिन से वह ठीक प्रकार से कार्य कर सके। इस उच्च पद के पदधारियों का चुनाव करते समय बहुत अधिक सावधानी बरतना अपेक्षित है और राज्यपाल का चयन करते समय राज्यों से अवश्य परामर्श किया जाना चाहिए। राज्यपाल संघ और राज्यों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं और उस का एक दूसरे के विरुद्ध एक एजेंट के रूप में प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। इस संबंध में अब तक हमारे सामने कोई समस्या नहीं आई है।

राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने से संबंधित वर्तमान विनियमों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है या नहीं इस प्रश्न के संबंध में हमारी प्रतिक्रिया यह है कि यदि वर्तमान प्रणाली को सूझ-बूझ और विवेक से कार्यान्वित किया जाए तो यह काफी प्रभावशाली होगी। किन्तु राज्यों को राष्ट्रपति शासन लागू करने से पहले तब तक अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए जब तक कि सत्तारूढ़ दल सदन में पराजित न हो गया हो। हमारा यह भी विचार है कि अखिल भारतीय सेवाओं की प्रबंध व्यवस्था की भी समीक्षा की जानी चाहिए। वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक नहीं है और संविधान के निर्माताओं की आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं है।

पिछले पन्द्रह वर्षों में मेघालय में वित्तीय प्रशासन के संबंध में हमारा जो अनुभव रहा है उस को देखते हुए हमारा यह विचार है कि समृद्ध राज्यों के स्रोतों की निर्धन राज्यों में और केन्द्र से अन्य राज्यों में इन स्रोतों की अन्तरण की योजना

45—376 M. of HA/ND/87

समान अनुपात में नहीं रही है और न ही प्रभावशाली है । चूंकि वित्त आयोग ने सामान्य रूप से राज्यों की प्राप्तियों और व्यय के प्रति एक व्यवहारिक दृष्टिकोण नहीं अपनाया है । क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के लिए राज्यों के बीच वित्तीय असंतुलन को समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है । अतिरिक्त कर लगाने के स्थान पर विद्यमान करों को अधिक युक्तिसंगत तरीके से पुन: आवंटित करना जरूरी है और योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली सहायता का उद्देश्य पिछड़े हुए राज्यों को आगे लाना ही होना चाहिए । हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि वर्तमान में जो केन्द्र द्वारा लगाए जाने वाले कर हैं उन्हें राज्यों को सौंप दिया जाए क्योंकि इससे केवल समृद्ध राज्यों को ही लाभ होगा । हम चाहेंगे कि वित्तीय योजना तैयार करते समय एक अधिक यथार्थपूर्ण रवैया अपनाया जाए और राज्य सरकार के लिए क्षेत्रीय आबंटन उसकी वास्तविक आवश्यकताओं और निष्पादन पर ही निर्धारित होना चाहिए । राज्यों की योजनाएं तैयार करते समय और उन के आकार और विषयों को अंतिम रूप देते समय राज्य में संभावित स्रोतों व साधनों को ही आधार बनाना चाहिए तथा राज्य के विकास और उसकी विशेष आवश्यकताओं के बीच की जो कमियां हैं उन्हें भी ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा राज्य की योजनाएं एक नेमी तरीके से नहीं बनाई जानी चाहिए । इस संदर्भ में अनुच्छेद 275(1) (क) के दूसरे परन्तुक के उप-पैरा (क) और (ख) के अधीन अनुदान प्राप्त करने के संबंध में मेघालय का एक मामला बनता है । यह अनुदान उस समय भी उपलब्ध था जब एक स्वायत्त मेघालय राज्य (अनुच्छेद 275–आई० ए०) का गठन किया गया था किन्तु इस अनुदान को उस समय रोक दिया गया जब एक पूर्ण मेघालय राज्य की स्थापना की गई थी । यह उल्लेखनीय है कि मेघालय उस समय असम का एक भाग था जब संविधान बनाया गया था । इस राज्य को उस आदिवासी उपयोजना को भी लाभ दिया जाना चाहिए जो आदिवासी लोगों के विकास के लिए अन्य राज्यों की उपलब्ध कराई गई ।

वर्तमान प्रणाली में राज्य की योजना के उद्देश्यों के प्रति कोई वचनबद्धता नहीं है क्योंकि यह उद्देश्य राज्य को सक्रिय सहभागिता के बिना तैयार किए गए हैं । हमारा यह विचार है कि योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद् के सचिवालय के रूप में कार्य करना चाहिए और यह एक सांविधिक निकाय होना चाहिए । राष्ट्रीय विकास परिषद के मुख्य मंत्रियों के परामर्श से व्यापक स्तरीय लक्ष्यों और स्रोतों के आबंटन की रूप-रेखा तैयार कर के निर्णय कर लेना चाहिए । राज्य सरकारों को राज्यों की विस्तृत क्षेत्रीय योजनाओं के संबंध में और अधिक स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए । इस सीमा तक राज्य विषयों से संबंधित केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों की संख्या में काफी कमी की जानी चाहिए ।

राज्यों को स्रोतों के अन्तरण से संबंधित सभी मामलों में एक एकीकृत तथा समन्वित दृष्टिकोण अपनाना अत्यन्त आवश्यक है । अत: हम राष्ट्रीय उधार परिषद (नेशनल क्रेडिट काउंसिल), राष्ट्रीय ऋण परिषद (नेशनल क्रेडिट काउंसिल), राष्ट्रीय आर्थिक परिषद (नेशनल इकनॉमिक काउंसिल) और राष्ट्रीय व्यय आयोग आदि जैसे निकाय बनाए जाने के पक्ष में नहीं हैं । हमारा यह विचार है कि पुनर्गठित राष्ट्रीय विकास परिषद अपनी समितियों के माध्यम से इन मामलों पर अधिक प्रभावशाली तरीके से कार्य करने में सक्षम होना चाहिए ।

इन कुछ प्रेक्षणों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा ।

नागालैंड सरकार

(क) प्रश्नावली और अतिरिक्त मुद्दों के उत्तर

(ख) ज्ञापन

नागालैण्ड

प्रश्नों के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

हमारे संविधान के निर्माताओं को पूरे देश और इस विशाल देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के बारे में गहरी जानकारी थी । इसलिए उन्होंने यह उचित समझा कि विश्व में प्रचलित विभिन्न सांविधानिक प्रणालियों की उत्कृष्ट विशेषताओं को भारत के संविधान में सम्मिलित कर लिया जाए और साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा कि किसी विशेष सांविधानिक प्रणाली में जो दोष हो उन्हें इस में शामिल न किया जाए । इस के परिणामस्वरूप भारत का संविधान तैयार करने में एक मध्यमार्ग अपनाया गया जो वास्तव में एकात्मक विशेषताएं लिए हुए संघीय संरचना का एक मिला जुला रूप है । इस प्रकार तैयार किए गए भारत के संविधान में अधिकारों को संघ और राज्यों के बीच बांटा गया है और अधिकारों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि जिस से समग्र रूप से देश की एकता और समरूपता बनी रहे । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ अधिकार विशेष रूप से केवल राज्यों को ही दिए गए हैं और संघ सरकार को जो अधिकार दिए गए हैं वे केवल कुल मिला कर देश से संबंधित मामलों के संबंध में ही हैं । राज्यों को जो अधिकार दिए गए हैं उन पर संविधान के भाग XVIII के अधीन आपात काल की घोषणा के दौरान कुछ प्रतिबंध भी लगाए गए हैं ।

इस प्रकार भारत का संविधान सही अर्थों में "संघीय" नहीं है किन्तु इसे "अर्ध संघीय" कहा जा सकता है ।

1.2 भारत के संविधान में विधायी अधिकार सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों में संघ और राज्यों के बीच वितरित किए गए इन अधिकारों का वितरण मूल रूप से ठोस सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है और नागालैण्ड सरकार की राय में इस संबंध में इन में कोई अधिक संशोधन करना आवश्यक नहीं है ।

तथापि यह सुझाव दिया जाता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 356 के खण्ड I के उप-खण्ड (ख) में कुछ संशोधन किया जाना चाहिए । उक्त उप-खण्ड में राज्य के विधान मंडल के अधिकारों का उप-खण्ड (ख) जैसा वह हो, के अनुसार संसद के प्राधिकार द्वारा या उस के अधीन प्रयोग किया जा सकेगा । उक्त उप-खण्ड के अधीन संसद कानून द्वारा राज्य विधान मंडल के अधिकारों का प्रयोग करने का प्राधिकार दे सकते हैं और ऐसे उदाहरण हैं जिनमें संसद द्वारा बनाए गए कानून के अधीन ऐसे अधिकार राष्ट्रपति को दिए गए हैं ।

यह सुझाव दिया जाता है कि राज्य विधान मंडल के अधिकारों का प्रयोग संसद द्वारा अवसर आने पर राज्य के लिए कानून बनाने के संबंध में ही किया जाना चाहिए ।

नागालैण्ड राज्य सरकार का यह मत है कि उच्चतम न्यायालय की अपील करने की प्रणाली को समाप्त करना वांछनीय नहीं होगा । तथापि यह सुझाव दिया जाता है कि सांविधानिक मामलों और संसदीय कानूनों और राज्यों के कानूनों की वैधता से संबंधित मामलों पर ही विचार करने के लिए उच्चतम न्यायालय में एक अलग प्रभाग होना चाहिए और दूसरा प्रभाग उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध विशेष अनुमति प्रदान कर के उच्चतम न्यायालयों में स्वीकार की गई अपीलों पर कार्यवाही करने के लिए होना चाहिए । सेवासंबंधी मामलों और कर संबंधी जो विभिन्न कानून लागू हैं उन से संबंधित मामलों को निपटाने के लिए उपयुक्त न्यायाधिकरणों का गठन करना भी वांछनीय होगा जिन के परिणामस्वरूप इस प्रकार से गठित न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों को अंतिम रूप दिया जा सके ।

1.3 पूर्व प्रश्नों के संबंध में दिए गए उत्तरों को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार का यह मत है कि सामान्य काल में और आपात काल में भी अधिकारों और कार्यों का अत्यधिक विकेन्द्रीयकरण करना आवश्यक नहीं है ।

1.4 जहां तक राज्य सरकार को जानकारी है आज संसार में कहीं भी पारंपरिक प्रकार की संघीय शासन व्यवस्था विद्यमान नहीं है ।

1.5 राज्य सरकार जैसा कि उक्त प्रश्न में उल्लिखित है, विख्यात सांविधानिक विशेषज्ञों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का पूर्ण समर्थन करते है । राज्य सरकार इस विचार से सहमत है कि संघ-राज्य संबंधों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों, समस्याओं, तनावों और प्रश्नों का बिना किसी बड़े सांविधानिक संशोधनों के समाधान किया जा सकता है और संघ-राज्य संबंधों में सर्वांगिन संविधान के मूल स्वरूप और स्कीम में कोई उल्लेखनीय दोष नहीं है ।

1.6 राज्य सरकार इस बात से पूर्णत: सहमत है कि देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना देश में एकता और अखण्डता बनाए रखना नि:संदेह सब से महत्वपूर्ण कार्य है । संविधान के विभिन्न भागों के उपबन्धों में इन का उल्लेख किया गया है और उपर्युक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इन सभी उपबंधों का उचित कार्यान्वयन ही पर्याप्त है ।

1.7 संविधान के जिन उपबंधों में संघ और राज्यों को इस संबंध में कुछ दायित्व सौंपे गए हैं वे संपूर्ण रूप से देश के हित को ध्यान में रखते हुए उचित हैं ।

संविधान के अनुच्छेद 356(1)(ख) के संबंध में दिए गए सुझाव के अतिरिक्त इस प्रश्न में उल्लिखित अन्य अनुच्छेदों के संबंध में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है ।

1.8 मूल रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद तीन में कोई परिवर्तन करना जरूरी नहीं है । तथापि भिन्न-भिन्न राज्यों की अपनी अपनी सीमाओं के संबंध में एक या अधिक राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवाद या विवादों को समाप्त करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसे विवाद या विवादों को समाप्त करने के लिए एक आयोग या आयोगों की नियुक्ति के संबंध में उपबंध शामिल करना वांछनीय होगा । ऐसे आयोग या आयोगों के अधिकारों और कार्यों का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए और संबंधित राज्यों को आयोग या आयोगों के समक्ष अपने-अपने मामले प्रस्तुत करने, अपने-अपने दावों के समर्थन में सामग्री और दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए उन्हें अवसर प्रदान करने के लिए उचित व्यवस्था भी की जानी चाहिए । इस प्रकार गठित आयोग या आयोगों की सिफारिश पर संसद ऐसे कानून बना सकती है, जिनके अधीन भारत के संविधान के अनुच्छेद 3 में यथानिर्दिष्ट के अनुसार किसी राज्य की सीमाओं से वृद्धि या कमी की जा सकती है या उन में कोई परिवर्तन किया जा सकता है ।

अनुच्छेद 371 (क)

एक अन्य अनुच्छेद, अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 371(क) जो केवल नागालैण्ड राज्य पर लागू होता है का उल्लेख करना जरूरी है और उस के संबंध में नीचे इस प्रकार टिप्पणी दी जा रही है । उक्त अनुच्छेद को नागा-जन सम्मेलन के प्रतिनिधि मंडल और भारत सरकार के प्रतिनिधियों के बीच नागालैण्ड राज्य के गठन से पूर्व तत्कालीन प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा की गई पहल के परिणामस्वरूप किए गए करार के आधार पर संविधान में शामिल किया गया था । उक्त करार सामान्य रूप से "16 सूत्रीय करार" के रूप में जाना जाता है । उक्त करार के खण्ड 7 को लागू करने के लिए संविधान (13 वां संशोधन)

अधिनियम, 1962 द्वारा संविधान में धारा 371 (क) को शामिल किया गया था । उक्त अनुच्छेद को स्पष्ट रूप से इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान में शामिल किया गया था कि संविधान में किसी बात के होते हुए भी खण्ड (I) से (IV) तक में उल्लिखित चार मामलों के संबंध में संसद का कोई भी अधिनियम तब तक नागालैण्ड राज्य पर लागू नहीं होगा जब तक नागालैण्ड विधान सभा एक संकल्प पारित कर के ऐसा निर्णय न कर ले । उक्त उपबंध में यह स्पष्ट है कि संसद द्वारा उक्त चार मामलों के संबंध में, उक्त अनुच्छेद के लागू होने से पूर्व या उसके बाद बनाए गए सभी कानून तब तक नागालैण्ड राज्य पर लागू नहीं होंगे जब तक नागालैण्ड विधान सभा ऐसा निर्णय न ले । यह सुझाव दिया जाता है कि उक्त अनुच्छेद 371 (क) के प्रवर्तन से पूर्व संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के संबंध में अनुच्छेद 371(क) की प्रयोज्यता के विषय में उक्त अनुच्छेद में जो उल्लिखित है उस को स्पष्ट किया जाना चाहिए ताकि इस मामले में किसी को कोई शंका न रहे ।

उक्त अनुच्छेद 371 (क) में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है कि ऊपर उल्लिखित चार मामलों के संबंध में संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून को यदि नागालैण्ड विधान सभा कोई संकल्प पारित कर के नहीं अपनाती तो उस का क्या परिणाम होगा । इस में यह भी निहित है कि ऐसी स्थिति में नागालैण्ड राज्य विधान मंडल उक्त अनुच्छेद में उल्लिखित चार मामलों के संबंध में कानून बनाने के लिए सक्षम होगा और राज्य विधान मंडल द्वारा इस प्रकार बनाए गए कानून नागालैण्ड राज्य में लागू होंगे । इस में यह भी निहित है कि इस के परिणामस्वरूप जो स्थिति होगी उस में नागालैण्ड राज्य को उपर्युक्त चार मामलों के संबंध में पूरे कार्यकारी अधिकार होंगे और वह, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उक्त मामलों के संबंध में कानून बनाने के लिए भी सक्षम होगा ।

ऊपर दी गई टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव दिया जाता है कि उक्त अनुच्छेद में क्या निहित है इसे स्पष्ट करने के लिए और ऊपर उल्लिखित 16 सूत्रीय करार के आधार पर उक्त अनुच्छेद को संविधान में शामिल करते समय जैसा वांछित था उस के अनुसार उक्त अनुच्छेद को एक प्रभावी उपबंध बनाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 371(क) में आवश्यक संशोधन किए जाएं ।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 जैसा ऊपर कहा गया है संघ और राज्यों के बीच विधायी अधिकारों के वितरण की योजना में मूलतः कुछ भी गलत नहीं है ।

संघ सूची में कुछ विधायी प्रविष्टियां हैं, जैसे प्रविष्टि 7, 52, 53, 54 और 56, जिन में संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह उपर्युक्त प्रविष्टियों में विनिर्दिष्ट मामलों को रक्षा या युद्ध के दौरान या सार्वजनिक हित के लिए या किसी प्रकार के किसी अन्य हित के लिए अनिवार्य घोषित करे । उक्त प्रविष्टियों द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए संसद उक्त प्रविष्टियों में निर्दिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय समय पर कानून बनाती रही है । उक्त प्रविष्टियों द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए संविधान द्वारा बनाए गए कानून यद्यपि राज्य के विधान मंडलों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं किन्तु इन्हें उस के अतिक्रमण के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए ।

2.2 वर्तमान उपबंधों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करना जरूरी नहीं है ।

2.3 केन्द्र सरकार द्वारा समवर्ती सूची में उल्लिखित किसी मामले पर कोई कानून बनाने से पहले राज्य सरकारों की राय ले लेना वांछनीय होगा । किन्तु राज्य सरकारों द्वारा इस संबंध में जो भी राय दी जाए वह केवल सुझावों के रूप में होनी चाहिए और केन्द्र सरकार पर बाध्यकारी नहीं होनी चाहिए । तथापि, विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा दी गई राय से केन्द्र सरकार को समवर्ती सूची में आने वाले मामलों पर कानून बनाने में सहायता अवश्य मिल सकती है ।

2.4 और 2.5 राज्य सरकारों का यह मत है कि इस संबंध में संविधान के विद्यमान उपबंधों में कोई अधिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है ।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 राज्यपाल की भूमिका के संबंध में संविधान में जो वर्तमान उपबंध हैं, वे आवश्यक हैं और उन में कोई अधिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है । इस मामले से संबंधित सांविधानिक उपबंधों में यह अपेक्षित है कि संबद्ध राज्यपालों द्वारा अधिकारों का प्रयोग संविधान की शर्तों के अनुसार ही किया जाए । एक या दो बार अधिकारों के प्रयोग में हुई चूक से इस बात का औचित्य सिद्ध नहीं होता कि संविधान के विद्यमान उपबंधों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जाए । यह वांछनीय है कि इस बात पर अधिक जोर दिया जाए कि संबद्ध राज्यपाल इन अधिकारों का प्रयोग करते समय संविधान के प्रति निष्ठावान रहे, जैसा कि संविधान के उपबंधों में निर्दिष्ट है ।

3.2 चूंकि राज्य के राज्यपाल का पद अत्यधिक सम्मान व आदर का पद होता है । अतः संविधान में यह प्रकल्पित है कि राज्यपाल को किसी ऐसी बात से प्रभावित हुए बिना, जिस का उल्लेख संविधान में नहीं है, संविधान की शर्तों के अनुसार ही कार्य करना चाहिए और यदि वह ऐसा करता है तो इससे निःसंदेह संघ और राज्य के संबंध और अधिक प्रगाढ़ होने में सहायता मिलेगी ।

3.3 (क) संविधान के अनुच्छेद 356 (क) के अधीन कार्यवाही करने का सुझाव देते हुए संसद के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय यह आवश्यक है कि राज्यपाल किसी बात से प्रभावित न हो कर सार्वजनिक हित में निष्पक्ष रूप से कार्य करे और राज्य के हालात की सच्ची और सही तस्वीर प्रस्तुत करे ।

(ख) चूंकि संविधान के अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्य मंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति मुख्य मंत्री के परामर्श से राज्यपाल द्वारा की जानी होती है, अतः यह आवश्यक है कि इस प्रकार से नियुक्त किए गए मुख्य मंत्री को सदन के अधिकांश सदस्यों का स्पष्ट समर्थन प्राप्त हो । इस अधिकार का प्रयोग करते समय यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति को मुख्य मंत्री नियुक्त किया गया हो वह केवल कुछ सदस्यों के समर्थन पर ही आश्रित न हो बल्कि राज्य की सरकार चलाने के लिए उसे सदन के अधिकांश सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो ।

(ग) संविधान के अनुच्छेद 174(2) के अधीन सदन का सत्रावसान या विधान सभा भंग करते समय राज्यपाल को एक सांविधानिक राज्यपाल के रूप में अर्थात् राज्य के मुख्य मंत्री के परामर्श पर कार्य करना होता है ।

3.4 से 3.6 जहां तक नागालैण्ड राज्य का संबंध है राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित और संविधान के उपबंधों की शर्तों के अनुसार आवश्यक कार्यवाही के लिए राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत किए गए विधेयकों के संबंध में कभी कोई कठिनाई नहीं हुई ।

3.7 संविधान के अनुच्छेद 157 के अधीन ऐसा व्यक्ति जो, भारत का नागरिक हो, जिसने 35 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो, राज्यपाल के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होता है । यह सुझाव दिया जाता है कि किसी राज्य के राज्यपाल पद पर नियुक्ति के लिए योग्यताएं निर्धारित करने के संबंध में मुख्य मार्गदर्शी सिद्धान्त अवश्य होने चाहिएं क्योंकि किसी राज्य के राज्यपाल को ऐसे अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्यों और कार्यों का निष्पादन करना पड़ता है जिन के लिए अनिवार्यतः राज्य के राज्यपाल के रूप में विविध मामलों पर कार्यवाही करने के लिए आवश्यक जानकारी और अनुभव अपेक्षित होता है । राज्यपाल के रूप में नियुक्त किसी व्यक्ति का कार्यकाल पूरे पांच वर्ष का होना चाहिए । इस संबंध में यह बात विचार योग्य है कि क्या यह वांछनीय होगा कि किसी राज्य के राज्यपाल के उच्च पद पर एक बार नियुक्त व्यक्ति राज्यपाल के रूप में कार्य करने के बाद संसद या राज्य सभा या किसी राज्य विधान मंडल का सदस्य होने की अनुमति दी जाए । यह वांछनीय नहीं होगा कि राज्यपाल को उसके पद से हटाए जाने के मामले में वही प्रक्रिया अपनाई जाए तो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाए जाने के मामले में अपनाई जाती है ।

3.8 जैसा कि उक्त प्रश्न में सुझाव दिया गया है राज्यपाल की भूमिका वांछनीय नहीं है ।

3.9 राज्यपाल द्वारा एक या दो अपवादजनक मामलों में ही मुख्य मंत्री के चुनाव के संबंध में आलोचना की जा सकती है, किन्तु इस से विद्यमान उपबंधों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का औचित्य सिद्ध नहीं होता है । जर्मन संघीय गणराज्य के संविधान में मूल कानून के अनुबंध 67 में जैसा कोई उपबंध लागू करना इस समय भारत में उपयुक्त नहीं होगा ।

3.10 राज्यपालों द्वारा विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार किया जाए इस संबंध में मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करते समय प्रशासनिक सुधार आयोग ने जो सिफारिशें की हैं उनसे अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति संभव नहीं होगी क्योंकि विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग संबंधित प्राधिकारी के सर्वोत्तम निर्णय और बुद्धिमत्ता के अनुसार किया जाना चाहिए । यथा प्रस्तावित ऐसे मार्गदर्शी सिद्धान्तों की सांविधानिक वैधता संदिग्ध हो सकती है । इसके अतिरिक्त जिन मार्गदर्शी सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है उनकी सांविधानिक वैधता भी संदिग्ध हो सकती है । इसके अलावा यह मार्गदर्शी सिद्धान्त विशेष उपयोग के भी नहीं होंगे ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 भारत जैसे विशाल देश में संविधान के अनुच्छेद 256, 257 और 363 जैसे अनुच्छेदों को शामिल किए जाने का एक पुष्ट आधार बनता है । उक्त अनुच्छेदों द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों के संबंध में भारत के बृहत् परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए क्योंकि उक्त अनुच्छेदों में से किसी के अधीन अधिकारों के गलत प्रयोग से उक्त अनुच्छेदों को निकालने या उनमें काफी अधिक संशोधन करने का कोई औचित्य नहीं बनता ।

4.2 संविधान के अनुच्छेद 365 में दिए गए उपबंध को एक आरक्षित उपबंध के रूप में रखा जाना चाहिए । यह हो सकता है कि उक्त अनुच्छेद के अधीन वास्तव में अधिकारों के प्रयोग का अवसर आए ।

4.3 संविधान के अनुच्छेद 256 या 257 के अधीन अधिकारों का प्रयोग हमेशा पूरी सावधानी से किया जाना चाहिए और केवल तब किया जाना चाहिए जब उक्त अनुच्छेदों के अधीन अधिकारों का प्रयोग करना बिल्कुल जरूरी हो जाए । उक्त अनुच्छेदों का आशय संभवत: यही है ।

4.4 संविधान के अनुच्छेद 356 द्वारा या उसके अधीन प्रदान किए गए अधिकारों को अपवाद स्वरूप नहीं समझा जाना चाहिए और संविधान में इसका प्रावधान बहुत सोच समझ कर किया गया है । उक्त अनुच्छेद के अधीन अधिकारों का प्रयोग अब तक उक्त अनुच्छेद के अधीन प्रकल्पित स्थिति के समाधान के लिए किया जाता है ।

4.5 संविधान के अनुच्छेद 356 के खण्ड IV, में दिए गए उपबन्ध संविधान के 42 वें संशोधन के बाद जिस रूप में हैं उन्हें उसी रूप में रखा जाना चाहिए किन्तु उक्त प्रश्न के दूसरे पैराग्राफ में उल्लिखित संभावित समस्याओं के समाधान के लिए किसी भी राज्य में उत्पन्न होने वाली ऐसी स्थिति को सुलझाने के लिए कुछ उपबंधों को शामिल करना जरूरी है । ऐसे उपबंध शामिल करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे किसी अधिकार का दुरुपयोग न किया जाए जो, उक्त प्रश्न के दूसरे पैरा में उल्लिखित, संभावित समस्याओं के समाधान के लिए राज्यों को दिए जाएं ।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 नहीं ।

5.2 हम भाग (घ) और (क) में दिए गए सुझावों से सहमत हैं ।

5.3 केन्द्र सरकार मजबूत हो इस बात को ध्यान में रखते हुए हम इस सुझाव से सहमत है । हमारा यह विचार है कि क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करने के लए केन्द्रीय स्तर पर एक ऐसी मजबूत सरकार का होना जरूरी है जिस के पास राजस्व के मूल्य सापेक्ष साधन हों और पिछड़े राज्यों के विकास के लिए उसके पास जो धनराशि उपलब्ध है उसका इस्तेमाल करने के लिए अधिक विवेकाधीन अधिकार हों ।

5.4 नहीं । हम इस पैरा के भाग (i) और (ii) और 2 में दिए गए सुझावों से सहमत है ।

5.5 (क) करों का हिस्सा.--इस का वितरण संबंधित राज्य के पिछड़ेपन के आधार पर किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त आय कर का 25 प्रतिशत हिस्सा और उत्पाद शुल्क का 10 प्रतिशत हिस्सा पहाड़ी राज्यों के लिए आरक्षित रखा जाना चाहिए ।

(ख) और (ग) योजना सहायता और योजनेतर सहायता --यह भी राज्य के पिछड़ेपन पर आधारित होना चाहिए जिससे कि एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच विषमताओं को दूर किया जा सके ।

5.6 राज्य सरकार का यह मत है कि संविधान में एक ऐसा विशेष उपबंध शामिल किया जाए जिससे केन्द्र सरकार आर्थिक रूप से अविकसित राज्यों को उदारतापूर्वक अनुदान दे सके ताकि उन राज्यों में अधिक तेजी से विकास हो सके और उनका आर्थिक स्तर ऊंचा करके विकसित राज्यों के बराबर लाया जा सके ।

5.7 कोई टिप्पणी नहीं ।

5.8 हम सहमत है ।

5.9 हम सहमत हैं ।

5.10 बहुत थोड़ी सीमा तक ।

5.11 कोई टिप्पणी नहीं ।

5.12 हम सहमत हैं ।

5.13 हम सहमत हैं ।

5.14 राज्य सरकार का यह विचार है कि केन्द्र स्तर पर ऐसी मजबूत सरकार होनी चाहिए । अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान को जारी रखा जाना चाहिए ।

5.15 नहीं ।

5.16 राज्यों में वित्तीय असंतुलन और ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण यह है कि इनके अपने साधन बहुत सीमित हैं और उन साधनों में काफी वृद्धि की जानी चाहिए ।

5.17 वही टिप्पणी जो मद 5.16 में दी गई है ।

5.18 हम सहमत नहीं है । वर्तमान प्रतिबंध जारी रखे जाएं ।

5.19 नागालैण्ड से संबद्ध नहीं । अत: कोई टिप्पणी नहीं ।

5.20 हमारा यह विचार है कि वर्तमान प्रणाली संतोषजनक है ।

5.21 वही टिप्पणी जो उपर्युक्त मद 5.16 में दी गई है ।

5.22 नहीं । जहां तक नागालैण्ड का सम्बन्ध है अतिरिक्त साधन जुटाने की संभावनाएं बहुत सीमित हैं । इसके बावजूद राज्य में लक्ष्य से अधिक काम किया गया ।

5.23 हमारी कोई टिप्पणी नहीं है ।

5.24 हम सहमत हैं ।

5.25 और 5.26 हम इस बात से सहमत है कि उक्त अनुदान में वृद्धि की जानी चाहिए ।

5.27 कोई टिप्पणी नहीं ।

5.2 प्राकृतिक विपत्तियों के लिए दी जाने वाली सहायता अनुदान के रूप में होनी चाहिए क्योंकि इन के लिए कर देने से ऋणग्रस्तता में विशेष रूप से घाटे वाले राज्य की ऋणग्रस्तता में वृद्धि होगी ।

5.29 कोई टिप्पणी नहीं ।

5.30 हम सहमत हैं ।

5.31 हम पहले ही बता चुके हैं कि वित्त आयोग एक ऐसा स्थायी संगठन होना चाहिए जो हर वर्ष राज्यों की आवश्यकताओं पर विचार कर सकता हो ।

5.32 से 5.35 कोई टिप्पणी नहीं ।

5.36 और 5.37 वर्तमान प्रणाली संतोषजनक है ।

5.38 वही जैसा 5.31 में दिया गया है ।

5.39 कोई टिप्पणी नहीं ।

यह सुझाव किया जाता है कि अनुच्छेद 371(क) (1) के उप खण्ड (क) और (ग) को उक्त अनुच्छेदों में आवश्यक संशोधन कर के उक्त अनुच्छेद से निकाल दिया जाना चाहिए । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पूरे नागालैंड राज्य में पूर्णतया शान्ति है और पिछले अनेक वर्षों से राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थिति भारत के अन्य राज्यों से कहीं अधिक बेहतर है । अतः भारत के संविधान के अनुच्छेद 371(क) के 2 खण्डों को अब जारी रखना जरूरी नहीं है । इसके अतिरिक्त जैसा कि खण्ड (घ) में प्रकल्पित है, ट्वेनसँग जिले की क्षेत्रीय परिषद भी अब नहीं है । उपर्युक्त को देखते हुए अनुच्छेद 371(क) (1) के खण्ड (ख) से (घ) और उक्त अनुच्छेद के खण्ड (2) को सांविधानिक संशोधन से निकाल दिया जाना चाहिए ।

चूंकि नागालैंड संविधान में उल्लिखित अन्य राज्यों जैसा ही एक राज्य है अतः उक्त खण्ड (ख) और (ग) को जारी रखना अब जरूरी नहीं है और इन्हें निकाल दिया जाना चाहिए ।

उक्त अनुच्छेद 371(क) के उप खण्ड (घ) और खण्ड 2 अनुपयोगी हो चुके हैं क्योंकि उप खण्ड 2 में जैसा उल्लिखित है उसके अनुसार नागालैण्ड राज्य के गठन की तारीख से 10 वर्ष की अवधि बीत चुकी है और उक्त उप-खण्ड के अधीन बढ़ाई गई अवधि भी समाप्त हो चुकी है ।

ज्ञापन

अध्याय I

प्रस्तावना

भौतिक एवं आर्थिक स्थितियां

नागालैंड भारतीय संघ का एक सब से छोटा और सबसे अधिक पिछड़ा हुआ राज्य है । इसके उत्तर की ओर अरुणाचल प्रदेश, पश्चिम की ओर असम, पूर्व की ओर बर्मा और दक्षिण की ओर मणिपुर हैं और इस राज्य का क्षेत्र फल 16,527 वर्ग कि० मी० है । पश्चिम में निचले पहाड़ी क्षेत्र को छोड़ कर राज्य का पूरा क्षेत्र पहाड़ियों से घिरा है जिन की ऊंचाई 900 से 3,000 मी० के बीच है, इन पहाड़ियों की ढलान विशेष रूप से पूर्वी क्षेत्र में काफी नीची है । यद्यपि नागालैंड में खनिज और वन साधनों के समृद्ध भंडार हैं फिर भी यह राज्य सामाजिक और आर्थिक विकास के क्षेत्रों में पिछड़ा रहा है । कुछ सीमा तक इस का कारण राज्य के विकट तराई वाले क्षेत्र और इस की अवस्थिति है । किन्तु अन्य बातों से बढ़कर राज्य के पिछड़ेपन का मुख्य कारण यह है कि राज्य में आर्थिक विकास के लिए जो पूंजी निवेश किया गया है वह इस की आवश्यकता से काफी कम है । यह स्पष्ट है कि उन ऐतिहासिक परिस्थितियों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है जिनके परिणामस्वरूप विद्रोह के दीर्घ और घातक अनुभव के बाद 1 दिसम्बर, 1963 को राज्य का गठन हुआ। सांविधिक रूप से राज्य की स्थापना 1 दिसम्बर 1963 को की गई किन्तु 1975 तक यह राज्य योजना और शांतिपूर्ण आर्थिक विकास में देश के अन्य भागों के साथ पूरी तरह से भाग नहीं ले सका । राज्य का गठन उसके सीमित साधनों को अच्छी तरह से जानते हुए किया गया । निःसंदेह यद्यपि यह राज्य एक छोटा राज्य है फिर भी यह राज्य देश की सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य है ।

इस राज्य के गठन से लोगों के सामाजिक-आर्थिक विकास की दिशा में उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने का सरकार को भी अवसर मिला है लेकिन विकास के लिए आधारभूत सुविधाएं जुटाने के लिए राज्य में अब तक जो पूंजी निवेश किया गया है वह संतोषजनक नहीं रहा है ।

2. राज्य में कोई बड़ी नदियां नहीं हैं । सबसे लंबी नदी दोयांग नदी है, जिस में असम घाटी में प्रवेश करने और ब्रह्मपुत्र से मिलने से पहले राज्य के अन्दर केवल कुछ किलोमीटर तक ही नाव से जाया जा सकता है । राज्य की अन्य महत्वपूर्ण नदियां दीखू झांजी और धनसिरी है, जो ब्रह्मपुत्र एवं दीजू और थूंगी से मिलती है जो बर्मा की ओर बहती है और चिंदविंद नदी से जा कर मिलती है ।

3. यह उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व लोग एक दूसरे से अलग अलग गांवों में रह रहे थे और बाहरी व्यक्तियों द्वारा किसी प्रकार के हस्तक्षेप को गंभीरता से लिया जाता था । किन्तु अब यह अलगाव तेजी से समाप्त हो रहा है और काफी लोक बाहर निकल कर आ रहे हैं, बाहरी दुनिया से संपर्क स्थापित कर रहे हैं । सामाजिक रूपांतरण की गति प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक एवं सामाजिक विकास की आकांक्षा से संबंधित है हर गांव में मूलभूत सुविधाएं, जैसे सड़कें, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा संबंधी देखभाल, जल पूर्ति, बिजली, अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था और जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है । राज्य अभी विभिन्न आर्थिक पक्षों के संबंध में निम्नतम स्तर पर है । राज्य में आदिवासियों की जनसंख्या 84 प्रतिशत है और इसलिए नागालैंड की सामाजिक-आर्थिक स्थिति देश के अन्य भागों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति से सर्वथा भिन्न है । आदिवासियों की घनी आबादी वाले ऐसे क्षेत्रों में संक्रमण-काल के दौरान अधिक छूट देनी होगी जिससे कि आदिवासी लोग उद्धार एवं उन्नति की भावना को पूरी तरह से समझ सकें और भावनात्मक स्तर पर पूरे देश से जुड़ सकें ।

4. राज्य में कोई केन्द्रीय क्षेत्रक परियोजनाएं नहीं है, राज्य में केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं से पूरी धनराशि भी प्राप्त नही हो रही, जिससे वह अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सके । सड़क परिवहन एकमात्र साधन है और यह काफी महंगा साधन है इसके परिणामस्वरूप नागालैंड में देश के दूसरे भागों की तुलना में मूल्य भी काफी अधिक है । अब यह राज्य विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में आरंभ की गई योजना विकास की प्रक्रिया के माध्यम से उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है काफी लम्बे समय तक विद्रोह की स्थिति रहने के कारण राज्य में विकास संबंधी प्रयास काफी देर से शुरू किए गए । इस का परिणाम यह हुआ है कि लोगों ने अभी तक योजना के वास्तविक प्रभाव को महसूस नहीं किया है । इसके अतिरिक्त तकनीकी और अनुभवी व्यक्तियों एवं तकनीकी जानकारी का अभाव राज्य की उन्नति में अन्य बाधाएं रही हैं । इन कमियों और अभावों को सुनियोजित ढंग से व्यापक पूंजी निवेश कर के दूर किया जा सकता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य सरकार को न केवल पहले से बनाई गई परिसम्पत्तियों के उचित अनुरक्षण के लिए ही, अपितु प्रशासन के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए भी, जिसका लेखा जोखा मुख्यत: योजनेत्तर पक्ष में रखा जाता है, पर्याप्त साधन उपलब्ध कराए जाने चाहिएं ।

5. जरूरत इस बात की है कि नागालैण्ड राज्य की आवश्यकताओं पर उस की संभावित क्षमताओं तथा आर्थिक कमियों को ध्यान में रखते हुए सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाए और इस प्रकार यहां के लोगों और राज्य के आर्थिक आधार को ऊंचा उठाया जाए [जिससे कि राज्य अपने ही साधनों को और अधिक विकसित कर सके और अपनी अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बना सके ।

जनसंख्या

6. 1961 में राज्य की जनसंख्या 3.69 लाख थी जो 1971 में बढ़कर 5.16 लाख और 1981 में 7.75 लाख हो गई । पिछले तीन दशकों में जनसंख्या में वृद्धि की यह प्रतिशतता देश में सबसे अधिक है । नागालैण्ड में पिछले दो दशकों में जनसंख्या में वृद्धि की प्रतिशतता इस प्रकार है :—

वर्ष	जनसंख्या (लाखों में)	प्रतिशतता वृद्धि
1961	3.69	—
1971	5.15	39.80
1981	7.75	50.19

लोग

7. नागालैन्ड की जनसंख्या में मुख्यत: 16 जनजातियां हैं । आमतौर पर यहां 16 बोलियां बोली जाती हैं । सामान्य रूप से एक जनजाति के लोग दूसरी जनजाति की बोली नहीं समझते । उन में आपस में संचार का माध्यम सामान्यत: नेगमीज है, जो असमिया और आस पास के क्षेत्रों की बोली जाने वाली अन्य भाषाओं का मिला हुआ रूप है । यह भाषा लोगों के लिए संचार माध्यम का काम करती है । प्रत्येक जनजाति की अपनी अलग संस्कृति और नीति रिवाज हैं ।

जलवायु और वर्षा

8. कुछ क्षेत्रों में भारी वर्षा के कारण अकसर भू स्खलन हो जाता है और पहाड़ियां गिर जाती हैं । सामान्य रूप से वर्षा औसत से भी अधिक होती है । अधिक ऊंचाई के कारण यहां तापमान बहुत कम रहता है और शीत ऋतु में कुछ दिनों में तो यह 0° सेंटीग्रेड तक पहुंच जाता है ।

46—376 M. of HA/ND/87

प्रशासनिक व्यवस्था

9. राज्य में सात जिले कोहिमा, मोकोकचुंग, ट्वेनसैंग, फेक, जुन्हीबोटो, वोखा और मोन हैं। इन जिलों का गठन इसलिए किया गया ताकि लोगों को आसानी से प्रशासनिक सुविधा प्राप्त हो सके और राज्य में सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रक्रिया की गति को बढ़ाया जा सके।

कृषि और उद्योग का राज्य की आय में योगदान

10. यहां के लोगों की जीविका का मुख्य आधार कृषि है। राज्य में घरेलू उत्पादों का 35.6 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता है और केवल 3.51 प्रतिशत ही संगठित विनिर्माण क्षेत्र से प्राप्त होता है। 1971 में जनसंख्या में से 80.85 प्रतिशत लोग गांव में रह रहे थे और 1981 की जनगणना के अनुसार इस प्रतिशतता में कुछ कमी हुई है किन्तु अभी भी काफी संख्या में लोग, अर्थात् 84.54 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में ही रह रहे है और अपनी जीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि पर ही आश्रित हैं। नागालैंड दो नगरों दीमापुर और कोहिमा को छोड़कर शेष जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में ही रहती है।

11. कृषि के तरीके अभी भी पुराने ही हैं। लगभग 62.3 प्रतिशत कृष्ट क्षेत्र झूमिंग के अन्तर्गत आता है जिस क्षेत्र में एक से अधिक बार बुवाई की जाती है वह 2 प्रतिशत कृष्ट क्षेत्र ही है। राज्य में खाद्यान्न उत्पादन की कमी है और यह मुख्यत: अन्य राज्यों से खाद्यान्न के आयात पर ही निर्भर रहता है। जो लम्बी दूरियों और अधिक परिवहन प्रभारों के कारण हमेशा महंगा पड़ता है।

औद्योगिक पिछड़ापन

12. राज्य में बड़े और मध्यम उद्योगों की कमी है। वस्तुत: राज्य में अभी औद्योगिकरण की शुरुआत की जानी है। राज्य में केवल तीन मध्यम आकार की औद्योगिक परियोजनाएं ही उल्लेखनीय है, अर्थात दीमापुर में स्थित नागालैंड शुगर मिल्स लिमिटेड, तिजित में स्थित प्लायवुड फैक्टरी और तुली में स्थित पेपर मिल। लुगदी और कागज मिल में 1-7-1982 से ही उत्पादन आरंभ किया गया। कुल मिला कर नागालैंड में, देश में 1978-79 में 88,077 *फैक्टरियों की तुलना में केवल 8 फैक्टरियां ही थीं। इस प्रकार किसी राज्य में स्थित औद्योगिक यूनिटों के संबंध में नागालैंड अन्य राज्यों से सबसे पीछे है। छठी योजना के दौरान फेक जिले के बजेहो नामक स्थान में एक लघु सीमेंट संयंत्र लगाया जा रहा है। 1978-79 में विनिर्माण के 13.306 करोड़ रुपए के अखिल भारतीय विनिर्माण मूल्य की तुलना में इस राज्य में केवल 3.84 करोड़ रुपए (विनिर्माण लघु उद्योग क्षेत्र के अधीन मूल्य के रूप में प्राप्त हुए। 1971 की जनगणना के अनुसार पूरे देश में एक लाख की आबादी में 902 औद्योगिक कामगारों की तुलना में यहां औद्योगिक कामगारों की कुल संख्या 90 ही थी।

खनिज पदार्थ

13. नागालैंड में खनिज पदार्थ काफी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। नागालैंड में अब तक पाए गए खनिज पदार्थों में से मुख्य खनिज पदार्थों में उच्च ग्रेड के चुना पत्थर के विशाल भंडार, कोयले के पर्याप्त भंडार, क्रोमियम-निकल-कोबाल्ट वाले मैग्नाटाइट युक्त तांबे के भंडार, सीसा, जस्ता, मौलीबेडनम, जिसमें सोने, चांदी, टिन आदि के मिलने की संभावना है और मिट्टी और स्लेट जैसे लघु खनिज पदार्थ प्रमुख हैं। जहां तक कोयले का संबंध है, यह अनुमान लगाया जाता है कि बोर्जन कोल फील्ड में 6.50 मिलियन टन कोयले के भंडार होने की संभावना है। अत्यन्त उच्च श्रेणी के चूना पत्थर के अनुमानित भंडार की मात्रा 375 मिलियन टन है। मैग्नाटाइट के भंडार, इस में निकल होने के कारण एक आकर्षण की वस्तु बन गया है, वह उत्तर पूर्वी भारत का एक मूल्यवान धातु खनिज पदार्थ है। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग ने भी वोखा जिले के टमोरी चैमपांग क्षेत्र में एक वाणिज्यिक तेल क्षेत्र की हाल ही में स्थापना की है। इन खनिज पदार्थों की पूरी तरह से खोज की जानी चाहिए लेकिन साधनों के अभाव में इस कार्य में अधिक प्रगति नहीं की जा सकती है।

परिवहन

14. राज्य परिवहन और संचार सुविधाओं के क्षेत्र में भी काफी पीछे है। राज्य मे लगभग 10 क्षेत्र ऐसे है जहां लोग रहते हैं। किन्तु अभी तक इन स्थानों तक पहुंचने के लिए सड़कें नहीं हैं। इन क्षेत्रों में आवश्यक वस्तुएं लगभग पूरे वर्ष विमानों से गिराई जाती हैं। यहां केवल एक ही रेलवे लाइन है जो दिमापुर से हो कर गुजरती है और यह रेलवे लाइन लगभग 9.35 कि०मी० लम्बी है। अत: दिमापुर रेलवे स्टेशन आपूर्ति का एक स्रोत है और पूरे नागालैंड और मणिपुर राज्य के लिए एक ही रेलवे केन्द्र है।

राज्य के कम स्त्रोतों को बढ़ाने की क्षमता

15. उपर्युक्त पैराग्राफ दर्शाते हैं कि राज्य की अर्थव्यवस्था निश्चित रूप से निम्न है और राज्य आत्मनिर्भर बनने में असमर्थ रहा है। राज्य को समस्याओं के जिन आयामों से जूझना पड़ रहा है वे काफी हैं। ऊपर बताई गई कमियां ऐसी स्थिति को बढ़ावा देती है, जिस में अतिरिक्त स्रोत बढ़ाने की राज्य की क्षमता सीमित रह जाती है। अखिल भारतीय कर राजस्व की 45.9 प्रतिशत औसत की तुलना में राज्य का कुल कर राजस्व, राज्य के कुल राजस्व का केवल 5.3 प्रतिशत भाग है।

16. राज्य की स्रोत बढ़ाने की कमजोर क्षमता प्रत्यक्ष रूप से लोगों के कमजोर आर्थिक आधार से जुड़ी हुई है। अत: पर्याप्त कर क्षमता के बगैर, सम्पूर्ण राज्य पिछड़े क्षेत्र वाली श्रेणी में आता है।

अध्याय II

संविधान और विधान

भाग I

संविधान लागू करते समय विशेष रूप से केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित उपबंधों के संबंध में नागालैंड राज्य का यह मत है कि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिस में राज्य सरकार ने कोई अनावश्यक दबाव महसूस किया हो। अत: केन्द्र राज्य संबंधों में संबंधित मामलों में कोई मूल परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

2. हमारे संविधान के निर्माताओं ने पूरे देश और इस विशाल देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के संबंध में अपने विस्तृत ज्ञान के आधार पर यह उचित समझा कि संसार में प्रचलित विभिन्न सांविधानिक प्रणालियों की सर्वोतम विशेषताओं को भारत के संविधान में सम्मिलित कर लिया जाए और साथ ही उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि किसी विशेष सांविधिक प्रणाली में व्याप्त दोष हमारे संविधान में न आने पाये। इस के परिणामस्वरूप संविधान बनाते समय एक ऐसा मध्यमार्ग अपनाया गया जो वास्तव में संघीय संरचना एवं एकात्मक विशेषताओं का एक मिला-जुला रूप है। इस प्रकार तैयार किए गए भारत के संविधान में अधिकारों को संघ और राज्यों के बीच बांट दिया गया है और अधिकारों का वितरण इस प्रकार किया गया है जिससे कि पूरे देश में एकरूपता तथा एकता बनी रहे। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ अधिकार केवल राज्यों को ही प्रदान किए गए है और संघ सरकार को पूरे देश से संबंधित मामलों के संबंध में ही अधिकार प्रदान किए गए है। राज्यों को दी गई शक्तियों पर संविधान के भाग XVIII के अधीन आपात स्थिति की घोषणा ने कुछ प्रतिबंध लगा दिए गए थे। इस प्रकार भारत का संविधान सच्चे अर्थों में "संघीय संविधान" नहीं है अपितु इसे 'अर्ध संघीय' कहा जा सकता है।

3. भारत के संविधान में विधायी अधिकारों को सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों में संघ सरकार और राज्यों के बीच बांटा गया है। इन अधिकारों का वितरण मूल रूप से ठोस सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है और नागालैंड सरकार के मतानुसार इन में कोई अधिक संशोधन करना आवश्यक नहीं है।

*स्रोत : राज्य औद्योगिक परिषद तथा भारतीय पूंजी, निवेश निगम, नयी दिल्ली, कोरियर, अक्तूबर, 1982.

स्रोत : केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन राष्ट्रीय लेखा आंकड़े 1970-71—1979-80.

4. किन्तु भारत के संविधान के अनुच्छेद 356 के खण्ड (I) के उप खण्ड (ख) में कुछ संशोधन किया जाना चाहिए। उक्त उप खण्ड में राज्य के विधान मंडल के अधिकारों का प्रयोग उप खण्ड (ख) के अनुसार संसद के प्राधिकार द्वारा या उस के अधीन किया जा सकेगा। उक्त उप खण्ड के अधीन संसद कानून द्वारा राष्ट्रपति को राज्य विधान मंडल के अधिकारों का प्रयोग करने का प्राधिकार दे सकती है और ऐसे उदाहरण हैं जिन में संसद द्वारा बनाए गए कानून द्वारा राष्ट्रपति को ऐसे अधिकार दिए गए है।

यह सुझाव दिया जाता है कि राज्य विधान मंडल के अधिकारों का प्रयोग राज्य के लिए बनाए जाने वाले कानूनों को आवश्यकतानुसार लागू करने के लिए संसद द्वारा ही किया जाएगा।

5. नागालैंड सरकार का यह मत है कि न्यायालय को अपील करने की प्रणाली को सर्वथा समाप्त करना वांछनीय नहीं होगा। तथापि यह सुझाव दिया जाता है कि उच्चतम न्यायालय में एक ऐसा अलग प्रभाग होना चाहिए जहां केवल सांविधिक मामलों पर और संसदीय कानूनों और राज्य के कानूनों की वैधता से सम्बद्ध या अन्य मामलों पर कारंवाई की जा सके और एक अन्य प्रभाग ऐसा होना चाहिए जहां उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों के विरुद्ध विशेष अनुमति की स्वीकृति दे कर उच्चतम न्यायालय में स्वीकृत अपीलों पर कारंवाई की जा सके। सेवा संबंधी मामलों और कर संबंधी जो विभिन्न कानून लागू है उनसे संबंधित मामलों को निपटाने के लिए उपयुक्त न्यायाधिकरणों का गठन करना भी वांछनीय होगा जिन के परिणामस्वरूप इस प्रकार से गठित न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों को अंतिम रूप दिया जा सके।

6. राज्य सरकार का यह मत है कि सामान्य काल में और आपात काल में भी अधिकारों और कार्यों का अत्यधिक विकेन्द्रीकरण करना आवश्यक नहीं है।

7. जहां तक राज्य सरकार को जानकारी है आज संसार में कहीं भी पारपरिक प्रकार की संघीय शासन प्रणाली विद्यमान नहीं है। राज्य सरकार इस विचार से सहमत है कि संघ-राज्य संबंधों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों, समस्याओं तनावों और प्रश्नों का बिना किसी बड़े सांविधिक संशोधनों के समाधान किया जा सकता है और संघ-राज्य संबंधों से संबंधित संविधान के मूल स्वरूप और स्कीम में कोई उल्लेखनीय दोष नहीं है।

8. राज्य इस बात से पूर्णत: सहमत है कि देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना देश में एकता और अखण्डता बनाए रखना नि:संदेह सब से महत्वपूर्ण कार्य है। संविधान के विभिन्न भागों के उपबंधों में इन का उल्लेख किया गया है और उपर्युक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इन सभी उपबंधों का उचित कार्यान्वयन ही पर्याप्त है।

9. संविधान के जिन उपबंधों में संघ और राज्यों को इस संबंध में कुछ दायित्व सौंपे गए है वे सम्पूर्ण रूप से देश के हित को ध्यान में रखते हुए उचित हैं। संविधान के अनुच्छेद 356 (1)(ख) के संबंध में दिए गए सुझाव के अतिरिक्त इस प्रश्न में उल्लिखित अन्य अनुच्छेदों के संबंध में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है। मूल रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद तीन में कोई परिवर्तन करना जरूरी नहीं है। तथापि भिन्न, भिन्न राज्यों की अपनी अपनी सीमाओं के संबंध में एक या अधिक राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवाद या विवादों को समाप्त करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसे विवाद या विवादों को समाप्त करने के लिए एक आयोग या आयोगों की नियुक्ति के संबंध में उपबंध शामिल करना वांछनीय होगा। ऐसे आयोग या आयोगों से अधिकारों और कार्यों का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए और संबंधित राज्यों को आयोग या आयोगों के समक्ष अपने अपने मामले प्रस्तुत करने, अपने अपने दावों के समर्थन में सामग्री और दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए उन्हें अवसर प्रदान करने के लिए उचित व्यवस्था भी की जानी चाहिए। इस प्रकार गठित आयोग या आयोगों की सिफारिशों पर संसद ऐसे कानून बना सकती है जिन के अधीन भारत के संविधान के अनुच्छेद 3 में यथा निर्दिष्ट के अनुसार किसी राज्य की सीमाओं में वृद्धि या कमी की जा सकती है या उन में कोई परिवर्तन किया जा सकता है।

अनुच्छेद 371(क)

10. एक अन्य अनुच्छेद अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 371(क), जो केवल नागालैंड राज्य पर लागू होता है, का उल्लेख करना जरूरी है और उस के संबंध में नीचे इस प्रकार टिप्पणी दी जा रही है। उक्त अनुच्छेद को, नागा-जन सम्मेलन के प्रतिनिधि मंडल और भारत सरकार के प्रतिनिधियों के बीच नागालैंड राज्य के गठन से पूर्व तत्कालीन प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा की गई पहल के परिणामस्वरूप किए गए करार के आधार पर संविधान में शामिल किया गया था। उक्त करार सामान्य रूप से '16-सूत्रीय करार' के रूप में जाना जाता है। उक्त करार के खण्ड 7 को लागू करने के लिए संविधान (13वां संशोधन) अधिनियम, 1962 द्वारा संविधान में धारा 371(क) को शामिल किया गया था। उक्त अनुच्छेद को स्पष्ट रूप से इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान में शामिल किया गया था कि संविधान में किसी बात के होते हुए भी खण्ड (I) से (IV) तक में उल्लिखित चार मामलों के संबंध में संसद का कोई भी अधिनियम तब तक नागालैंड राज्य पर लागू नहीं होगा जब तक नागालैंड विधान सभा एक संकल्प पारित कर के ऐसा निर्णय न ले। उक्त उपबंध में यह स्पष्ट है कि संसद द्वारा उक्त चार मामलों के संबंध में, उक्त अनुच्छेद के लागू होने से पूर्व या उस के बाद बनाए गए सभी कानून तब तक नागालैंड राज्य पर लागू नहीं होंगे जब तक नागालैंड विधान सभा ऐसा निर्णय न ले। यह सुझाव दिया जाता है कि उक्त अनुच्छेद 371(क) के प्रवर्तन से पूर्व संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के संबंध में अनुच्छेद 371(क) की प्रयोज्यता के विषय में उक्त अनुच्छेद में जो उल्लिखित है उसको स्पष्ट किया जाना चाहिए ताकि इस मामले में किसी को कोई शंका न रहे।

11. उक्त अनुच्छेद 371(क) में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है कि ऊपर उल्लिखित चार मामलों के संबंध में संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून को यदि नागालैंड विधान सभा कोई संकल्प पारित कर के नहीं अपनाती तो उस का क्या परिणाम होगा। इस में यह भी निहित है कि ऐसी स्थिति में नागालैंड राज्य विधान मंडल उक्त अनुच्छेद में उल्लिखित चार मामलों के संबंध में कानून बनाने के लिए सक्षम होगा और राज्य विधान मंडल द्वारा इस प्रकार बनाए गए कानून नागालैंड राज्य में लागू होंगे। इस में यह भी निहित है कि इस के परिणामस्वरूप जो स्थिति होगी उस में नागालैंड राज्य को उपर्युक्त चार मामलों के संबंध में पूरे कार्यकारी अधिकार होंगे और वह, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उक्त मामलों के संबंध में कानून बनाने के लिए भी सक्षम होगा।

12. ऊपर दी गई टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए यह सुझाव दिया जाता है कि उक्त अनुच्छेद में क्या निहित है इसे स्पष्ट करने के लिए और ऊपर उल्लिखित '16-सूत्रीय करार' के आधार पर उक्त अनुच्छेद को संविधान में शामिल करते समय जैसा वांछित था उस के अनुसार उक्त अनुच्छेद को एक प्रभावी उपबंध बनाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 371(क) में आवश्यक संशोधन किए जाएं।

13. यह सुझाव दिया जाता है कि अनुच्छेद 371(क)(1) के उप खण्ड (क) और (ग) को उक्त अनुच्छेदों में आवश्यक संशोधन कर के उक्त अनुच्छेद से निकाल दिया जाना चाहिए। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पूरे नागालैंड राज्य में पूर्णतया शान्ति है और पिछले अनेक वर्षों से राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थिति भारत के अन्य राज्यों से कहीं अधिक बेहतर है। अत: भारत के संविधान के अनुच्छेद 371(क) के 2 खण्डों को अब जारी रखना जरूरी नहीं है। इसके अतिरिक्त जैसा कि खण्ड (घ) में प्रकल्पित है ट्वेनसैंग जिले की क्षेत्रीय परिषद भी अब नहीं है। उपर्युक्त को देखते हुए अनुच्छेद 371(क)(1) के खण्ड (ख) से (घ) और उक्त अनुच्छेद के खण्ड (II) को सांविधानिक संशोधन से निकाल दिया जाना चाहिए।

14. चूंकि नागालैंड सांविधान में उल्लिखित अन्य राज्यों जैसा ही एक राज्य है, अत: उक्त खण्ड (ख) और (ग) को जारी रखना अब जरूरी नहीं है और इन्हें निकाल दिया जाना चाहिए।

15. उक्त अनुच्छेद 371-क के उप खण्ड (घ) और खण्ड II अनुपयोगी हो चुके हैं क्योंकि उप खण्ड II में जैसा उल्लिखित है उस के अनुसार नागालैंड राज्य के गठन की तारीख से 10 वर्ष की अवधि बीत चुकी है और उक्त खण्ड के अधीन बढ़ाई गई अवधि भी समाप्त हो चुकी है।

भाग II

विधायी-संबंध

16. जैसा कि ऊपर कहा गया है संघ और राज्यों के बीच विधायी अधिकारों के वितरण की योजना में मूलत: कुछ भी गलत नहीं है।

17. संघ सूची में कुछ विधायी प्रविष्टियां हैं, जैसे प्रविष्टी 7, 52, 53, 54 और 56 जिन में संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह उपर्युक्त प्रविष्टियों में विनिर्दिष्ट मामलों को रक्षा या युद्ध के दौरान या सार्वजनिक हित के लिए या किसी प्रकार के किसी अन्य हित के लिए अनिवार्य घोषित करे। उक्त प्रविष्टियों द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए संसद उक्त प्रविष्टियों में निर्दिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय-समय पर कानून बनाती रही है। उक्त प्रविष्टियों द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए संविधान द्वारा बनाए गए कानून यद्यपि राज्य के विधान मंडलों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं किन्तु इन्हें इन के अतिक्रमण के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। वर्तमान उपबंधों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करना जरूरी नहीं है।

18. केन्द्र सरकार द्वारा समवर्ती सूची में उल्लिखित किसी मामले पर कोई कानून बनाने से पहले राज्य सरकारों की राय ले लेना वांछनीय होगा। किन्तु राज्य सरकारों द्वारा इस संबंध में जो भी राय दी जाए वह केवल सुझावों के रूप में होनी चाहिए और केन्द्र सरकार पर बाध्यकारी नहीं होनी चाहिए। तथापि विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा दी गई राय से केन्द्र सरकार को समवर्ती सूची में आने वाले मामलों पर कानून बनाने में सहायता अवश्य मिल सकती है। राज्य सरकारों का यह मत है कि इस संबंध में संविधान में विद्यमान उपबंधों में कोई अधिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

19. राज्यपाल की भूमिका के संबंध में संविधान में जो वर्तमान उपबंध हैं, वे आवश्यक हैं और उन में कोई अधिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। इस मामले से संबंधित सांविधानिक उपबंधों में यह अपेक्षित है कि सम्बद्ध राज्यपालों द्वारा अधिकारों का प्रयोग संविधान की शर्तों के अनुसार ही किया जाए। एक या दो बार अधिकारों के प्रयोग में हुई चूक से इस बात का औचित्य सिद्ध नहीं होता कि संविधान के विद्यमान उपबंधों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन किया जाए। यह वांछनीय है कि इस बात पर अधिक जोर दिया जाए कि सम्बद्ध राज्यपाल इन अधिकारों का प्रयोग करते समय संविधान के प्रति निष्ठावान रहे, जैसा कि संविधान के उपबंधों में निर्दिष्ट है।

20. चूंकि राज्य के राज्यपाल का पद अत्यधिक सम्मान व आदर का पद होता है, अत: संविधान में यह प्रकल्पित है कि राज्यपाल को किसी ऐसी बात से प्रभावित हुए बिना जिस का उल्लेख संविधान में नहीं है, संविधान की शर्तों के अनुसार ही कार्य करना चाहिए और यदि वह ऐसा करता है तो इससे नि:संदेह संघ और राज्य के संबंध और अधिक प्रगाढ़ होने में सहायता मिलेगी।

21. संविधान के अनुच्छेद 356(क) के अधीन कार्यवाही करने का सुझाव देते हुए संसद के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय यह आवश्यक है कि राज्यपाल किसी बात से प्रभावित न हो कर सार्वजनिक हित में निष्पक्ष रूप से कार्य करे और राज्य के हालात की सच्ची और सही तस्वीर प्रस्तुत करे।

22. चूंकि संविधान के अनुच्छेद 164 के अधीन मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति मुख्यमंत्री के परामर्श से राज्यपाल द्वारा की जानी होती है, अत: यह आवश्यक है कि इस प्रकार से नियुक्त किए गए मुख्य मंत्री को सदन के अधिकांश सदस्यों का स्पष्ट समर्थन प्राप्त हो। इस अधिकार का प्रयोग करते समय यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया हो वह केवल कुछ सदस्यों के समर्थन पर ही आश्रित न हो बल्कि राज्य की सरकार चलाने के लिए उसे सदन के अधिकांश सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो।

23. संविधान के अनुच्छेद 174(2) के अधीन सदन का सत्रावसान या विधान सभा भंग करते समय राज्यपाल को एक सांविधिक राज्यपाल के रूप में, अर्थात् राज्य के मुख्य मंत्री के परामर्श पर कार्य करना होता है।

24. जहां तक नागालैंड राज्य का संबंध है राज्य विधान मंडल द्वारा पारित और संविधान के उपबंधों की शर्तों के अनुसार आवश्यक कार्यवाही के लिए राज्यपाल के सम्मुख प्रस्तुत किए गए विधेयकों के संबंध में कभी कोई कठिनाई नहीं हुई।

25. संविधान के अनुच्छेद 157 के अधीन ऐसा व्यक्ति जो भारत का नागरिक हो जिस ने 35 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो, राज्यपाल के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र होता है। यह सुझाव दिया जाता है कि किसी राज्य के राज्यपाल पद पर नियुक्ति के लिए योग्यताएं निर्धारित करने के संबंध में कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्त अवश्य होने चाहिएं क्योंकि किसी राज्य के राज्यपाल को ऐसे अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्यों और कार्यों का निष्पादन करना पड़ता है जिन के लिए अनिवार्यत: राज्य के राज्यपाल के रूप में विविध मामलों पर कार्यवाही करने के लिए आवश्यक जानकारी और अनुभव अपेक्षित होते है। राज्यपाल के रूप में नियुक्त किसी व्यक्ति का कार्य काल पूरे पांच वर्ष का होना चाहिए। इस संबंध में यह बात विचार योग्य है कि क्या यह वांछनीय होगा कि किसी राज्य के राज्यपाल के रूप में उच्च पद पर एक बार नियुक्त व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में कार्य करने के बाद संसद या राज्य सभा या किसी राज्य विधान मंडल का सदस्य होने की अनुमति दी जाए। यह वांछनीय नहीं होगा कि राज्यपाल को उसके पद से हटाए जाने के मामले में वही प्रक्रिया अपनाई जाए जो उच्चतम न्यायालय या उच्चन्यायालय के न्यायाधीश को हटाए जाने के मामले में अपनाई जाती है।

26. राज्यपाल द्वारा एक या दो अपवादजनक मामलों में ही मुख्यमंत्री के चुनाव के संबंध में आलोचना की जा सकती है, किन्तु इससे विद्यमान उपबंधों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का औचित्य सिद्ध नहीं होता। जर्मन संघीय गणराज्य के संविधान में मूल कानून के उपबंध 67 जैसा कोई उपबंध लागू करना इस समय भारत में उपयुक्त नहीं होगा।

27. राज्यपालों द्वारा विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार किया जाए इस संबंध में मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करते समय प्रशासनिक सुधार आयोग ने जो सिफारिशें की हैं उन से अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति संभव नहीं होगी क्योंकि विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग संबंधित प्राधिकारी के सर्वोत्तम निर्णय और बुद्धिमत्ता के अनुसार किया जाना चाहिए यथा प्रस्तावित ऐसे मार्गदर्शी सिद्धान्तों की सांविधानिक वैधता संदिग्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त जिन मार्गदर्शी सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है उन की सांविधानिक वैधता भी संदिग्ध हो सकती है। इसके अलावा यह मार्गदर्शी सिद्धान्त विशेष उपयोग के भी नहीं होंगे।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

28. भारत जैसे विशाल देश में संविधान के अनुच्छेद 256, 257 और 363 जैसे अनुच्छेदों को शामिल किए जाने का एक पुष्ट आधार बनता है। उक्त अनुच्छेदों द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों के संबंध में भारत के वृहत परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए क्योंकि उक्त अनुच्छेदों में से किसी के अधीन अधिकारों के गलत प्रयोग से उक्त अनुच्छेदों को निकालने और/या उन में काफी अधिक संशोधन करने का कोई औचित्य नहीं बनता।

29. संविधान के अनुच्छेद 365 में दिए गए उपबंध को एक आरक्षित उपबंध के रूप में रखा जाना चाहिए। यह हो सकता है कि उक्त अनुच्छेद के अधीन वास्तव में अधिकारों के प्रयोग का अवसर आए।

30. संविधान के अनुच्छेद 256 या 257 के अधीन अधिकारों का प्रयोग हमेशा पूरी सावधानी से किया जाना चाहिए और केवल तब किया जाना चाहिए जब उक्त अनुच्छेदों के अधीन अधिकारों का प्रयोग करना बिल्कुल जरूरी हो जाए। उक्त अनुच्छेदों का आशय संभवत: यही है।

31. संविधान के अनुच्छेद 356 द्वारा या उस के अधीन प्रदान किए गए अधिकारों को अपवाद स्वरूप नहीं समझा जाना चाहिए और संविधान में इन का

प्रावधान बहुत सोच समझ कर किया गया है। उक्त अनुच्छेद के अधीन अधिकारों का प्रयोग अब तक उक्त अनुच्छेद के अधीन प्रकल्पित स्थिति के समाधान के लिए किया जाता है।

32. संविधान के अनुच्छेद 356 के खण्ड (4) में दिए गए उपबन्ध संविधान के 42वें संशोधन के बाद जिस रूप में है उन्हें उसी रूप में रखा जाना चाहिए। तथापि संभावित समस्याओं के समाधान के लिए किसी भी राज्य में उत्पन्न होने वाली ऐसी स्थिति को सुलझाने के लिए कुछ उपबंधों को शामिल करना जरूरी है। ऐसे उपबंध शामिल करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे किसी अधिकार का दुरुपयोग न किया जाए जो संभावित समस्याओं के समाधान के लिए राज्यों को दिए जाएं।

अध्याय III

वित्तीय संबंध योजना और सामान्य

इस समय जो विवादाधीन विषय है वह है अनेकता में एकता। एकता इस पूर्वधारणा के साथ आती है कि अनेकता अवश्य होगी। क्योंकि यदि अनेकता न हो तो एकता की परिकल्पना करने का प्रश्न ही नहीं उठता इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही संघीय स्वरूप की सरकार के कार्य चालन का अध्ययन करना होगा। इस संबंध में विख्यात लेखक जेम्स बायस ने संघ सरकार की तुलना और परिवार अर्थात् सूर्य एवं ग्रहों से की है। उन का कथन है "प्रत्येक संघ के लिए यह आवश्यक है कि वह अपकेन्द्रीय या अभिकेन्द्रीय शक्तियों का संतुलन बनाए रखे ताकि न तो ग्रह राज्य उड़ कर अंतरिक्ष में चले जाएं और न ही केन्द्र सरकार का सूर्य उनको अपनी आग की लपेट में ले ले"। ग्रहों को ऐसी स्थिति में रखना जरूरी है जिससे वे सूर्य की परिक्रमा करने के कार्य से विचलित न हों और साथ ही ग्रहों में इतनी शक्ति हो कि वे सूर्य के समीप इसलिए न जाएं कि इनका आस्तित्व ही न समाप्त हो जाए। दूसरे शब्दों में केन्द्र सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों के बीच एक संतुलन बना रहना चाहिए।

2. सामान्य रूप से केन्द्र राज्य संबंधों के तीन ऐसे मुख्य क्षेत्र हैं जिन में प्राय: विवाद उत्पन्न होते है। प्रथम क्षेत्र विधायी प्राधिकार का है, दूसरा वित्तीय सहभागिता का है और तीसरा योजना से सम्बद्ध है। प्रथम क्षेत्र के बारे में अध्याय II में विस्तार से चर्चा की गई है। जहां तक दूसरे और तीसरे क्षेत्रों का संबंध है, इन के बारे में अनुवर्ती पैराग्राफों में चर्चा की जा रही है।

3. संविधान के अधीन केन्द्र की राष्ट्रीय रक्षा, विदेश कार्य और संचार कार्य आदि से संबंधित महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मामलों के अनुरक्षण की जिम्मेदारी सौंपी गई है किन्तु आर्थिक सामाजिक विकास का दायित्व मुख्यत: राज्य सरकारों का है। यह कार्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह ऐसे क्षेत्र में आता है जो प्रत्यक्ष रूप से लोगों के जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। अत: केन्द्र राज्य संबंधों का मूल मानदंड यह होना चाहिए कि केन्द्रीय स्रोतों से राज्य सरकारों को दी जाने वाली निधियों का मुख्य आधार इस संकल्पना पर आधारित होना चाहिए कि संघीय वित्तीय प्रणाली इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि संघ सरकार की अधिशेष निधियां उन राज्यों को दे दी जाएं जिन्हें उनकी बहुत अधिक आवश्यकता हो और उन राज्यों को भी उदारतापूर्वक दी जाए जिन की अपनी परिसम्पत्तियां बनाने की क्षमता सीमित हो। नागालैंड जैसे राज्यों के मामले में ऐसा करना और भी जरूरी है, जिन से राजस्व के साधन, उन के अत्यधिक अविकसित और पिछड़े हुए स्वरूप को देखते हुए बहुत कम है। इसके परिणामस्वरूप देश के पिछड़े हुए राज्यों और विशेष रूप से नागालैंड में साधनों और उत्तरदायित्वों के बीच अत्यधिक असंतुलन की स्थिति व्याप्त है।

4. यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि जिन राज्यों में योजनेत्तर राजस्व की कमी है उन में प्राय: योजनेत्तर पूंजी का भी अभाव है। इस का मुख्य कारण यह है कि विशेष रूप से पिछड़े हुए राज्यों में योजनाबद्ध विकास के लिए कर्जों के निवेश से अपेक्षित प्रतिलाभ नहीं मिलता जिस के परिणामस्वरूप संबंधित राज्य सरकारें कर्जों की, उन पर ब्याज सहित वापस अदायगी केन्द्र सरकार को नहीं कर पातीं क्योंकि पूंजी निवेश से होने वाले प्रतिलाभ का निर्धारण प्राय: संबंधित क्षेत्र के आर्थिक कार्य के स्तर के आधार पर किया जाता है।

5. तदनुसार हमारा यह विचार है कि केन्द्रीय प्राप्तियों के शेयरों में यथासंभव व्यापक स्तर पर संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि केन्द्र सरकार अत्यधिक कमजोर और पिछड़े राज्यों की सहायता कर सके और उन में विद्यमान साधनों के असंतुलन की स्थिति के परिणामस्वरूप व्याप्त असंतुलन की स्थिति दूर कर सके।

6. अत: केन्द्र राज्य संबंधों के आयोग से हमारा यह अनुरोध है कि वे साधनों के अन्तरण की एक ऐसी स्कीम की सिफारिश करे, जिसकी सहायता से कम आर्थिक क्षमता वाले राज्य प्रशासनिक, सामाजिक और विकास सेवाओं के स्तर पर राष्ट्रीय मानदंडों के अनुरूप अपना स्तर बना सकें। जब तक यह उद्देश्य पूरा नहीं होता तब तक विभिन्न राज्यों को साधनों के अन्तरण का एक ऐसा तरीका अपनाया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत निर्धन राज्य समृद्ध राज्यों की तुलना में इन सेवाओं में अधिक तेजी से विकास कर सकें।

7. औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना के स्थान का निर्धारण केन्द्र सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों के आधार पर किया गया था और उन क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई थी जहां पहले से विकसित संचार व्यवस्था, विपणन सुविधाएं, विद्युत और तकनीकी जानकारी उपलब्ध थी। दूसरे नागालैंड जैसे राज्यों द्वारा राष्ट्रीय साधनों में किए गए अपेक्षाकृत कम योगदान के परिणामस्वरूप वित्तीय आयोग ने भी ऐसे राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहायता देने के प्रश्न पर पर्याप्त विचार नहीं किया है। सार्वजनिक या निजी क्षेत्र में पर्याप्त केन्द्रीय सहायता के अभाव और अपेक्षाकृत कम विकसित उद्यमी कौशल के परिणामस्वरूप ऐसे राज्यों में पूंजी निवेश भी कम मात्रा में हुआ है। इसके परिणामस्वरूप नागालैंड जैसे पिछड़े राज्यों में पिछड़ापन और भी अधिक बढ़ता रहा है और दूसरे सुविकसित राज्यों में जो आरंभिक आर्थिक लाभ हुए थे, उन में लगातार वृद्धि हो रही है, जिस के कारण आर्थिक खाई और भी अधिक बढ़ती जा रही है।

8. वांछित कल्याण कार्यों संबंधी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विकास कार्यक्रम एवं इन सामाजिक दायित्वों के कार्यान्वयन के लिए राज्य को अधिक साधन जुटाने होंगे। राज्य के पास जो साधन उपलब्ध हैं वे बहुत सीमित हैं और उन में कोई वृद्धि नहीं हो रही है। राज्य सरकार के प्रयासों के बावजूद कुछ ऐसे कारण हैं जिन के परिणामस्वरूप एक विशेष स्तर से आगे राज्य के साधनों का विस्तार नहीं हो पा रहा है। उदाहरण के लिए बिक्री कर की दर में एक दर विशेष से आगे वृद्धि करना संभव नहीं है। इसी प्रकार राज्य में शराब पर उत्पाद शुल्क और अन्य करों की भी यही स्थिति है। यहीं पर राज्य सरकार अपने आप को एक ऐसी असहाय स्थिति में पाती है जहां वह लोगों के आर्थिक स्तर में वृद्धि करने और समाज कल्याण की दिशा में प्रगति करने के लिए वचनबद्ध है।

9. जहां तक निगम कर और आय कर पर केन्द्रीय अधिभार का संबंध है, इससे पूर्व अनेक राज्यों ने यह अनुरोध किया है कि इन करों के भार को आपस में बांट लिया जाना चाहिए। विभिन्न वित्त आयोगों का यह मत रहा है कि ये कर केन्द्र के पास ही रहने चाहिएं क्योंकि इस संबंध में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए संविधान में संशोधन करना जरूरी है। इस में कोई संदेह नहीं कि निगम कर और केन्द्रीय अधिभार की दर में गत वर्षों के दौरान काफी वृद्धि हुई है और इन से अब काफी धनराशि प्राप्त हो रही है। निगम कर से प्राप्त होने वाले राजस्व में गत दस वर्षों में 15 प्रतिशत की चक्रवर्ती दर से वृद्धि हुई है। छठे वित्त आयोग ने यह सुझाव दिया है कि उन को विभाज्य पूल में शामिल किए जाने के प्रश्न पर राष्ट्रीय विकास परिषद जैसे उच्चतम नीति निर्धारक निकाय द्वारा विचार किया जाना चाहिए। राज्य सरकार का यह विचार है कि सरकारिया आयोग को इस बात की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए कि निगम कर को केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच विभाजित किया जाना चाहिए।

10. इसी प्रकार यह भी उल्लेखनीय है कि आय कर पर लगाया जाने वाला अधिभार आय कर से भिन्न नहीं है। इसे केन्द्र द्वारा अपने लिए विनि-योजित किया गया है। केन्द्र द्वारा बढ़ते हुए राजस्व को अनिश्चित काल के लिए इस प्रकार अपने लिए विनियोजित कर लेने से राज्य सरकारें निरंतर राजस्व प्राप्ति के स्रोत से वंचित हो गई हैं। अत: यह सुझाव दिया जाता

है कि यह अधिभार केवल एक सीमित अवधि के लिए लगाया जाए और बाद में इसे आयकर की मूल दर में मिला लिया जाए ताकि इस स्रोत से बढ़ती हुई प्राप्तियों का लाभ राज्यों को भी मिल सके। आयोग से अनुरोध है कि वह इस पर विचार करे।

11. जहां तक आय कर और संघीय उत्पाद शुल्क के विभाज्य पूल का संबंध है, राज्य सरकार ने आठवें वित्त आयोग से यह अनुरोध किया था कि आय कर का 25 प्रतिशत हिस्सा और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का 10 प्रतिशत हिस्सा पहाड़ी राज्यों के लिए विनियोजित किया जाए। चूंकि इन राज्यों की ऐसी विशेष समस्याएं होती हैं जिन का समाधान अग्रता के आधार पर किया जाना जरूरी होता है। जब तक ऐसे अभावों से ग्रस्त क्षेत्रों के क्षेत्रीय असंतुलन और पिछड़ेपन को दूर नहीं किया जाता तब तक ऐसे राज्यों के लोगों के बीच निरंतर एक असंतोष की भावना बनी रहेगी। हमें यह जानकर खुशी हुई है कि आठवें वित्त आयोग ने घाटे वाले राज्यों को इस कमी की सराहना की है। आयोग का यह कथन है कि घाटे वाले राज्य भी संघ के सदस्य हैं और उन्हें असहाय* नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए। तदनुसार आयोग दस घाटे वाले राज्यों-असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, उड़ीसा, सिक्किम, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल (राजस्थान में केवल 1984-85 में ही घाटे की स्थिति थी) के लिए पांच प्रतिशत केन्द्रीय उत्पाद शुल्क निर्धारित किया है। राज्य सरकार का यह विचार है कि पांच प्रतिशत के इस हिस्से को बढ़ा कर दस प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए। अत: हम सरकारिया आयोग से यह निवेदन करते हैं कि वह 1984-89 की पूर्वानुमानित अवधि के दौरान घाटे वाले राज्यों के हिस्से को पांच प्रतिशत से बढ़ा कर दस प्रतिशत करने के प्रश्न पर विचार करें और इस के लिए सिफारिश करें। जहां तक रेल यात्री किराए का संबंध है, आठवें वित्त आयोग ने राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान को 23.12 करोड़ रुपए से बढ़ा कर 95 करोड़ करने की सिफारिश की है। 1971-72 से रेलवे की यात्री किराए से वार्षिक आय तथा सकल आय में लगभग 15 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आठवें वित्त आयोग की सिफारिश उचित प्रतीत होती है। हम आशा करते हैं कि सरकारिया आयोग रेलवे सम्मेलन समिति से इसे अनुमोदित करने का आग्रह करेगा।

12. हमारा यह भी विचार है कि केन्द्रीय क्षेत्र की परियोजनाओं की स्थापना के लिए स्थान का निर्धारण करते समय क्षेत्रीय असंतुलन को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए और परियोजना की स्थापना केवल इसी आधार पर नहीं की जानी चाहिए कि ऐसे क्षेत्र विशेष में औद्योगिक और स्थान संबंधी सुविधाएं उपलब्ध हैं, जहां पहले से ही कई उद्योग स्थापित हैं।

13. केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण द्वारा किसी विद्युत परियोजना की स्वीकृति और अनुमोदन के लिए 1950 में विद्युत परियोजनाओं के लिए एक करोड़ रुपए की जो आर्थिक सीमा निर्धारित की गई थी, वह अभी भी लागू है। इसका परिणाम यह हुआ है कि राज्य सरकारें 35 वर्ष पूर्व जिन परियोजनाओं को अपने आप आरंभ कर सकती थीं, उन्हें अब लागत में वृद्धि हो जाने के कारण स्वीकृति के लिए केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करना पड़ता है। छोटी-छोटी स्कीमों के संबंध में भी जांच करने में केन्द्रीय प्राधिकारी इतना समय लगा देते हैं कि एक छोटी स्कीम की स्वीकृति में लगभग दो या तीन वर्ष लग जाते हैं। तीन केन्द्रीय प्राधिकारियों को एक विशेष आकार से बड़ी स्कीमों और ऐसी परियोजनाएं सौंपी जा सकती हैं, जिन में कुछ अन्तर्राज्यीय कठिनाइयां सामने आती हों।

14. साधनों के अन्तरण के संबंध में वित्त आयोग ने जो रवैया अपनाया है उसका आधार केवल एक कमी को औपचारिक रूप से पूरा करना ही है और योजना के लिए केन्द्रीय सहायता द्वारा साधनों का अन्तरण एक सामान्य सूत्र के अधीन वितरण के आधार पर किया गया है। साधनों के अन्तरण से न तो कार्य क्षमता में कोई वृद्धि हुई है और न ही विभिन्न राज्यों के बीच विसंगतियों में कोई कमी आई है। अत: साधनों के अन्तरण पर लागू होने वाले सिद्धान्तों में बुनियादी परिवर्तन करना वांछित है।

15. अन्तर्राज्यीय वितरण के सिद्धान्त ऐसे होने चाहिएं कि जिनके अनुसार उन्नत राज्यों के पास भारी मात्रा में अधिशेष साधन न बचें। इस संबंध में कुछ निश्चित मानदंड अपनाए जाने चाहिएं और राष्ट्रीय महत्व के मामलों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

16. केन्द्र और राज्यों के बीच और अंतत: विभिन्न राज्यों के बीच युक्तियुक्त तरीके से साधनों के वितरण के मामले में मूल आवश्यकता यह है कि घाटे वाले और पहाड़ी राज्यों को दी जाने वाली कुछ केन्द्रीय सहायता में वृद्धि की जानी चाहिए।

17. राष्ट्रीय विकास परिषद और उसकी समितियां आयोजना और केन्द्रीय सहायता जैसी अधिकांश समस्याओं का समाधान कर सकेंगी। राष्ट्रीय क्रेडिट परिषद्, राष्ट्रीय आर्थिक परिषद और राष्ट्रीय व्यय आयोग जैसे अनेक संगठन बनाना जरूरी नहीं होगा। हमारा यह विचार है कि वित्त आयोग को एक ऐसा स्थायी संगठन बनाया जाना चाहिए, जो राज्यों की आवश्यकताओं पर उचित प्रकार से कार्यवाही कर सकता हो।

18. घाटे वाले राज्य समान साधनों के अभाव में केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों का पूरा उपयोग नहीं कर पाते हैं। अत: इन स्कीमों का पूरा वित्त पोषण केन्द्र द्वारा किया जाना चाहिए।

19. औद्योगिक पिछड़ापन सामान्य पिछड़ेपन से भिन्न होता है। राज्यों ने सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए आधारभूत सुविधाएं जुटाने के लिए काफी धनराशि खर्च की है। इसके परिणामस्वरूप राज्य में साक्षरता की दर में काफी वृद्धि हुई है और भौतिक साधनों के मूल स्रोतों का भी अत्यधिक विकास हुआ है। किन्तु दूसरी ओर औद्योगिक प्रगति की गति धीमी रही है और राज्य में बेरोजगारी बढ़ रही है। नीति निर्माताओं एवं आयोजनाकारों का यह विशेष उद्देश्य होना चाहिए कि वे ऐसे राज्यों में व्यापक स्तर पर औद्योगिक पूंजी निवेश करने की व्यवस्था करें।

संलग्न अनुबंध के अनुसार प्रश्नावली के उत्तर (सरकारिया आयोग)

I. यह कहना सही नहीं होगा कि पहल और नेतृत्व एवं परामर्शी सेवाएं प्रदान करने का काम केवल केन्द्रीय मंत्रालयों पर ही छोड़ देना चाहिए। प्रत्येक राज्य की सांविधानिक रूप से स्थापित अपनी लोकप्रिय सरकार है। आयोजना के मामले में भी राज्य सरकार को पहल करनी चाहिए और अपने राज्य की सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार अपनी योजना की रूप रेखा तैयार करने में नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। हर राज्य की सामाजिक आर्थिक अवस्था भिन्न-भिन्न होती है। स्थानीय सरकार और नेतागण अपनी समस्याओं को केन्द्रीय मंत्रालयों की तुलना में ज्यादा बेहतर तरीके से जानते और समझते हैं। अत: आयोजना के सभी मामलों में पहल और नेतृत्व प्रदान करने का काम वास्तव में राज्य सरकार पर ही छोड़ देना चाहिए। किन्तु सभी सदस्य राज्यों को प्रभावित करने वाली सामान्य राष्ट्रीय नीतियों के मामले में केन्द्रीय मंत्रालयों की पहल और नेतृत्व का संविधान के उपबंधों के अधीन स्वागत है। जहां तक परामर्शी सेवाओं का संबंध है, नागालैंड जैसे कुछ ऐसे पिछड़े राज्यों में जिनके पास अपने कोई विशेषज्ञ नहीं हैं, और जहां विभिन्न शाखाओं में विशेषज्ञ तैयार करने में कुछ समय लगेगा। केन्द्रीय मंत्रालय राज्य सरकार की मांगों और आवश्यकताओं के अनुसार परामर्शी सेवाएं प्रदान कर सकते हैं। जहां तक केन्द्रीय मंत्रालयों का अपेक्षित सूचनाएं देने और अच्छे कार्यक्रम और विधियों के संबंध में आवश्यक ब्यौरे और आंकड़े प्रदान करने के संबंध में एक अभिकरण के रूप में काम करने का संबंध है, हम इस सुझाव का स्वागत करते हैं।

II. (1) वर्तमान प्रथा यह है कि राज्य सरकारें योजना आयोग द्वारा विहित मार्गदर्शी सिद्धान्तों और प्रारूप के आधार पर अपनी योजनाएं स्वयं बनाती हैं। जब राज्य की योजनाओं पर कार्यचालन ग्रुप के स्तर पर और अंतिम रूप से विचार विमर्श किया जाता है तब सम्बद्ध मंत्रालयों को भी इसमें सम्बद्ध किया जाता है। इस संबंध में नागालैंड राज्य के विचार इस प्रकार हैं :—

---

*आठवें वित्त आयोग की रिपोर्ट का पृष्ठ 50 पैरा 6.25 और पृष्ठ 54 सारणी 2.

नागालैंड, जो एक अत्यधिक पिछड़ा और निर्धन राज्य है और जिसके अपने कोई साधन नहीं हैं, की स्थिति अत्यन्त प्रतिकूल है। राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजनाओं के संबंध में भी नागालैंड में काम देर से शुरू हुआ। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए नागालैंड एवं अन्य उत्तरीय उत्तर-पूर्वी राज्यों और जम्मू कश्मीर को विशेष वर्ग के राज्यों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। किन्तु विकास कार्यों के लिए राष्ट्र के साधनों का आबंटन करते समय भारत सरकार ने जनसंख्या क्षेत्र जैसे जो मानदंड निर्धारित किए हैं वे मानदंड और विशेष रूप से योजना तथा योजनेत्तर कार्यों के बीच जो साधनों का एक अन्तराल है, वह नागालैंड जैसे पिछड़े हुए राज्य के हितों के प्रतिकूल है। नागालैंड जैसे राज्य, जिसकी जनसंख्या भी अधिक नहीं है और जिसका भू-भाग विकास कार्य के लिए अनुकूल नहीं और जहां जीवन निर्वाह की लागत भी काफी अधिक है और जो अब तक उपेक्षित ही रहा है उसे राष्ट्रीय सम्पत्ति में से अपने हिस्से के रूप में अधिक साधनों के आबंटन की आवश्यकता है। राज्य सरकार के अधिक विकास कार्य अपने हाथ में लेने के दृढ़ संकल्प और आकांक्षा के बावजूद परियोजनाओं का चुनाव करने और उनकी स्थापना के लिए स्थान निर्धारित करने और साधनों के आबंटन के संबंध में अंतिम निर्णय अभी भी केन्द्र सरकार ही करती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उन्नत राज्य और अधिक उन्नत हो रहे हैं और पिछड़े हुए राज्य और अधिक पिछड़ रहे हैं। इस अन्तराल को पूरा करने के लिए पिछड़े राज्यों को अधिक साधन आबंटित करना जरूरी होगा जिससे कि उन्हें अन्य उन्नत राज्यों के समान स्तर पर लाया जा सके और राष्ट्रीय एकता को और अधिक मजबूत बनाया जा सके। यह भी उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा या योजना आयोग द्वारा बनाई गई अच्छी नीतियों और मार्गदर्शी सिद्धांतों के बावजूद यह संभव है कि वे राज्य की विशेष और जटिल स्थानीय समस्याओं का मूल्यांकन न कर सकें। यद्यपि नागालैंड जैसे कुछ राज्यों को विशेष वर्ग के राज्यों के रूप में घोषित किया गया है किन्तु साधनों का आबंटन करते समय योजना और योजनेत्तर कार्यों के बीच के अन्तराल को इस प्रकार से आपस में जोड़ दिया जाता है कि योजनेत्तर व्यय में साधनों के अन्तराल की योजना के साधनों से कटौती कर ली जाती है। एक हाथ से देने और दूसरे हाथ से वापस ले लेने की यह प्रणाली उन राज्यों के हितों के प्रतिकूल है जहां साधनों की उपलब्धता का कोई आधार नहीं है। यद्यपि यह आवश्यक है कि सभी को वित्तीय अनुशासन और वित्त व्ययता का पालन करना चाहिए, तथापि एक बार निर्धारित किए गए योजना साधनों में योजनेत्तर साधनों में अंतराल के कारण कटौती नहीं की जानी चाहिए।

(2) हमें केन्द्रीय मंत्रालयों या योजना आयोग द्वारा विभिन्न विभागीय क्षेत्रों में अध्ययन, अनुसंधान, सर्वेक्षण आदि का आयोजन करने और आधार सामग्री एवं आर्थिक तथा सांख्यिकीय आंकड़े एकत्र करने पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु यह कार्य राज्य सरकार के निकट सहयोग से किया जाना चाहिए। किन्तु जैसी कि ऊपर कहा गया है सांख्यिकीय आंकड़ों से समाज की वास्तविक आर्थिक सामाजिक स्थिति का पता नहीं चलता है। उदाहरण के लिए जनसंख्या के आधार पर प्रति व्यक्ति आय और साधनों का आबंटन बहुत अधिक आता है। किन्तु लोगों को मिलने वाले वास्तविक वित्तीय लाभ बहुत कम होते हैं क्योंकि साधनों का काफी बड़ा भाग पूंजीगत निवेश और मूल सुविधाओं के विकास पर ही खर्च हो जाता है अत: जनसंख्या के आधार पर परिकलित प्रति व्यक्ति आय से लोगों की आर्थिक स्थिति का सही पता नहीं चलता है।

3. कोई टिप्पणी नहीं। चूंकि यह केन्द्रीय मंत्रालयों और योजना आयोग के बीच का मामला है।

4. नि:संदेह यह जरूरी है कि कार्यक्रमों और राज्य योजनाओं के संबंध में दी जाने वाली सहायता का निर्धारण करते समय केन्द्रीय मंत्रालय के विचारों को भी ध्यान में रखा जाए। किन्तु हमारा अनुभव यह रहा है कि केन्द्रीय मंत्रालयों की राज्य में कोई एजेंसियां न होने के कारण राज्य सरकारें स्थानीय स्थितियों का सही मूल्यांकन नहीं कर सकतीं। यदि राज्य में केन्द्र की कोई क्षेत्रीय संस्थाएं भी हों तब भी वे राज्य की विशिष्ट समस्याओं का पूरी तरह से समन्वय नहीं कर सकती है और न ही वे उनको समझ सकती हैं। अत: विकास कार्यों का और केन्द्रीय सहायता के लिए राज्य-योजनाओं का निर्धारण करते समय राज्य सरकार के विचारों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि राज्य सरकार का मुख्य इंजीनियर कोई महत्वपूर्ण परियोजना बनाता है तो केन्द्रीय निर्माण एवं आवास मंत्रालय, जिनके राज्य में क्षेत्रीय अधिकारी होते हैं, इस बात पर जोर देता है कि ऐसी परियोजना को मंत्रालय को भेजने से पहले उसके क्षेत्रीय अधिकारियों से उस परियोजना के संबंध में स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। चूंकि केन्द्रीय मंत्रालयों के अपने तकनीकी कार्मिक होते हैं, अत: विलम्ब से बचने के लिए ऐसी परियोजनाएं सीधे मंत्रालयों को भेजी जानी चाहिए।

5. राज्य सरकार का यह मत है कि एक बार योजना के आकार का और संबंधित कार्यक्रमों का निर्धारण हो जाने के बाद विभिन्न योजना स्कीमों की समीक्षा का काम राज्य सरकार पर छोड़ देना चाहिए और उसे केन्द्रीय मंत्रालयों को नहीं सौंपना चाहिए। राष्ट्रीय राजमार्गों जैसी स्कीमों के लिए केन्द्र के नियंत्रण में जो निधि होती है, उसके संबंध में समीक्षा और सविस्तार की जांच केन्द्र को करनी चाहिए।

III. हम इस बात से सहमत हैं, बशर्ते कि ऐसी अनुसंधान रिपोर्ट राज्य सरकारों को उपलब्ध कराई जाएं।

IV. केन्द्रीय मंत्रालय अपने मूल्यांकन दल को यथासमय भेज सकेंगे इसमें संदेह ही है। अन्यथा यह सुझाव बहुत अच्छा है और राज्य सरकार भी ऐसे मूल्यांकन एवं निरीक्षण दलों को पूरा सहयोग देगी।

V. केन्द्रीय मंत्रालय के लिए क्षेत्रीय या अखिल भारतीय आवश्यकताओं को पूरा करने वाली स्कीमों या गतिविधियों को सीधे अपने हाथ में लेना उचित नहीं होगा। सदैव यही उचित होगा कि ऐसी गतिविधियों या स्कीमों का काम राज्य सरकारों के परामर्श से और उनके निकट सहयोग से ही किया जाए।

VI. हमें इस बात पर कोई आपत्ति नहीं होगी कि ऐसी परियोजनाओं को आरंभ करने से पहले राज्य सरकार को विश्वास में ले कर उनकी सहमति ली जाए।

VII. हमें इस बात पर भी कोई आपत्ति नहीं होगी कि किसी राज्य विशेष में कार्यान्वित किए जाने वाले सभी विदेशी एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहायता प्राप्त कार्यक्रमों में केन्द्रीय मंत्रालयों का करारों के अनुपालन के लिए अपेक्षित सीमा तक निकट सहयोग हो।

VIII. हम सहमत हैं और हमें आशा है कि ऐसे समन्वय एवं सहयोग से हमें लाभ होगा।

IX. कोई आपत्ति नहीं है।

X. केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय मंत्रालय में इन स्कीमों के संबंध में निर्धारित किए जाने वाले समरूप तरीकों/विधियों/योजनाओं/लागतों को सभी राज्यों पर एक समान लागू नहीं किया जा सकता। राज्य सरकार को स्थानीय आवश्यकताओं और स्थितियों के अनुरूप ऐसी स्कीमों में संशोधन करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

XI. हम इस सुझाव का स्वागत करते हैं।

XII. हमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु सौहार्दपूर्ण केन्द्र-राज्य संबंधों के हित में यह उचित होगा कि अखिल भारतीय स्वैच्छिक या स्वायत्त संस्थाओं के संबंध में भी कार्रवाई करते समय राज्य सरकार को हमेशा विश्वास में लिया जाए।

राज्य-सूची में निर्दिष्ट विषयों के संबंध में केंद्रीय मंत्रालयों और योजना विभागों के कार्य

(i) राज्यों को पहल करने, नेतृत्व प्रदान करने और परामर्शी सेवाएं प्रदान करने और विशेष रूप से देश के किसी एक भाग में अपनाए गए अच्छे कार्यक्रमों और विधियों के संबंध में ब्यौरे और आंकड़े प्रदान करने के लिए एक सूचना अभिकरण के रूप में काम करना।

(ii) संबंधित विकास क्षेत्र के लिए राज्यों के निकट सहयोग से राष्ट्रीय आयोजना तैयार करने की जिम्मेदारी लेना और इस प्रयोजन के लिए सुचारु

रूप से चालित आयोजना एवं सांख्यिकीय यूनिटों का विकास करना । इस जिम्मेदारी में अन्य बातों के साथ निम्नलिखित बातें भी शामिल होंगी :—

(1) जिन क्षेत्रकों के साथ मंत्रालयों का संबंध है, उनके लिए योजनाएं तैयार करने में योजना आयोग की सहायता करना और उनके उपर्युक्त ब्यौरे तैयार करना ।

(2) उपर्युक्त प्रयोजन के लिए आरंभिक कार्य करना, जिसमें ऐसे अध्ययन, अनुसंधान और सर्वेक्षण शामिल होंगे जिनका इन क्षेत्रकों के विकास से संबंध हो और आधार सामग्री एवं आर्थिक एवं सांख्यिकीय आंकड़े एकत्र करना ।

(3) योजना आयोग द्वारा बनाए गए कार्य चालन दल को योजना के संबंध में तकनीकी और अन्य सहायता प्रदान करना एवं विकास परिषदों को भी सहायता प्रदान करना ।

(4) उन राज्य योजनाओं के संबंध में कार्यक्रमों का निर्धारण करने में योजना आयोग की सहायता करना, जिनके संबंध में आर्थिक सहायता अपेक्षित है ।

(5) ऐसी राज्य योजना स्कीमों के निष्पादन से पूर्व उनकी ब्यौरेवार समीक्षा करना, जिन स्कीमों को मंत्रालयों द्वारा लागू नीति के अनुसार समीक्षा अपेक्षित है ।

(iii) ऐसे मामलों के संबंध में अनुसंधान करना जो राज्यों के अनुसंधान स्रोतों से परे हैं या जिनका राष्ट्रीय महत्व है ।

(iv) कार्यक्रमों के मूल्यांकन में इस उद्देश्य से पहल करना कि कार्यक्रमों की जांच की जा सके और उनके कार्यान्वयन में आने वाली बाधाओं का पता लगाया जा सके और उनको दूर करने के लिए किए जाने वाले उपायों और समायोजनों आदि के संबंध में परामर्श देना ।

(v) ऐसे कार्यकलाप या स्कीमें सीधे कार्यान्वित करना जिनसे क्षेत्रीय या अखिल भारतीय आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके ।

(vi) प्रायोगिक परियोजनाएं आरंभ करना ।

(vii) विदेशी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और एजेंसियों से किए गए करारों के अनुसार आरंभ किए गए कार्यक्रमों का समन्वय करना और उक्त करारों का अनुपालन करने के लिए अपेक्षित सीमा तक उनके कार्यान्वयन से सम्बद्ध रहना ।

(viii) ऐसे समन्वय कार्यों पर ध्यान देना जिन पर केन्द्रीय स्तर पर उचित प्रकार से कार्यवाही की जा सकती है ।

(ix) विभिन्न विषयों पर विचारों से आदान-प्रदान के लिए और मार्गदर्शी सिद्धान्तों के निरूपण के लिए राज्य प्रतिनिधियों को एक मंच प्रदान करना और उन्हे इन सब बातों पर विचार-विमर्श करने के लिए अवसर प्रदान करना ।

(x) केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें ।

(xi) आधारात्मक या उच्च स्तर के प्रशिक्षण कार्यक्रम आरंभ करना, अर्थात, आयोजकों तथा प्रशासकों को प्रशिक्षण देना और प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देना और राज्यों को अपनी प्रशासनिक एवं तकनीकी क्षमता विकसित करने में दूसरे तरीकों से सहायता देना ।

(xii) अखिल भारतीय स्वैच्छिक एवं स्वायत्त संगठनों (राज्य या निम्न स्तरों पर ऐसे संगठनों से भिन्न) से संबंध रखना ।

उड़ीसा सरकार

(क) प्रश्नों के उत्तर

(ख) मुख्य मंत्री द्वारा आयोग के समक्ष मामले को प्रस्तुत करना

47—376 M. of HA/ND/87

उड़ीसा

प्रश्नों के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1. मूल संघीय व्यवस्था के साथ–साथ विद्यमान केन्द्रीयकरण के अनेक तत्वो के होते हुए भी हमारे संविधान को एक संघीय संविधान के रूप में माना जा सकता है, यह एक सुस्थापित तथ्य है। जैसा कि संविधान सभा के वाद–विवादों से स्पष्ट है, संविधान निर्माताओं ने सशक्त केन्द्र के साथ संघ की स्थापना करने का जो निर्णय लिया था वह एक उनका सुविचारित निर्णय था। एक राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण (एकात्मक सरकार के परिणामस्वरूप निर्मित) के विशिष्ट लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए और विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान सामाजिक आर्थिक विभिन्नता और उसकी एकता और अखंडता बनाए रखने की ऐतिहासिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए एक सशक्त केन्द्र के साथ संघीय शासन प्रणाली ही सब से उपयुक्त विकल्प था। यदि हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस बात पर विचार करें तो संविधान में निर्दिष्ट केन्द्रीयकरण के लक्षण अपने आप में उस स्थिति में अद्वितीय नहीं समझे जा सकते जब कि प्रतिष्ठित संघ सरकारों में स्पष्ट रूप से एकतंत्रीय प्रकृति का विकास हुआ है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की संघ सरकार ने, जिसे एक आदेश के रूप में स्वीकार किया जाता है, राज्यपालों के सम्मेलनों की प्रथा/प्रणाली से और संघीय तथा राज्य सरकारों के अधिकारियों की प्राय: होने वाली बैठकों के परिणामस्वरुप संविधान से इतर एकतंत्रीय शासन प्रणाली के लक्षणों का विकास हुआ है। अत: सशक्त केन्द्र के साथ एक संघीय सरकार, एक ऐतिहासिक आवश्यकता रही है और वर्तमान काल में इसकी आवश्यकता देश को प्रभावित करने वाली सामाजिक–राजनैतिक असंतुलन की स्थिति से भी पर्याप्त रूप से प्रमाणित होती है। इस परिप्रेक्ष्य में भारत का स्वरूप संघीय स्वरुप है और एक संघ सरकार के मुख्य आधारभूत लक्षणों के अनुसार इसमें दोहरी राजनीतिक शासन व्यवस्था है जिसमें केन्द्रीय स्तर पर संघ सरकार और बाह्य स्तर पर राज्य सरकारों की स्थापना की गई है और इनमें से प्रत्येक को संविधान द्वारा समनुदेशित क्षेत्रों में प्रयोग किए जाने वाले शासकीय अधिकार प्राप्त हैं।

1.2. संविधान की मूल योजना पुष्ट है और इसमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता नही है। यद्यपि इसमें संशोधन की गुंजाइश आवश्यक है। किन्तु केन्द्रीय परिवीक्षण और नियंत्रण को देश की एकता और अखंडता बनाए रखने के हित में कम नहीं किया जाना चाहिए।

1.3. सांविधानिक रूप से अधिकारों के अन्तरण की विद्यमान व्यवस्था जिसके अधीन राज्य स्तर पर यथोचित स्वायत्तता प्रदान की गई है, पर्याप्त है और अत्यधिक संगत व दक्षता पूर्ण एवं निष्पक्ष व्यवस्था है। इसमें सामान्य काल में या आपात काल के दौरान कोई परिवर्तन करना अपेक्षित नहीं होता है। हमारा यह विचार है कि अत्यधिक स्वायत्तता के अपने खतरे होते हैं जिनके कारण स्थानीय और क्षेत्रीय असंतलुन की स्थिति पैदा हो जाती है। हमारे देश में उन्नत राज्यों को पिछड़े राज्यों के साथ मिल कर चलना होगा और उनमें एकरूपता लाना संघ सरकार की जिम्मेदारी हैं। सामान्य और आपात काल के प्रावधानों का अलग-अलग विभाजन करने से सामान्य काल में भी आपात काल जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

1.4. यह संकल्पना एक अमूर्त संकल्पना ही है। वर्तमान युग में सरकार के कार्य इतने जटिल और परस्पर आश्रित बन गए हैं कि कोई "समकक्ष एवं सम्पूर्ण रूप से स्वतंत्र" प्रणाली अपने आप को बनाए नहीं रख सकती। वस्तुत: आज कोई पारम्परिक सघीय प्रणाली नहीं है और प्रत्येक देश अपनी जनता और अन्य संगत कारणों के अनुरुप अपने प्रकार की संघीय प्रणाली अपनाता है।

1.5. कुल मिलाकर ये टिपणियां वैध प्रतीत होती हैं। हम (च) (i) और (ii) में उल्लिखित विचारों से सहमत हैं। राजनीतिक निरंकुशवाद को रोकने के लिए एक सशक्त संस्थागत शासन प्रणाली होनी चाहिए। संविधान की भावना और मूल्यों का ब्रिटिश संविधान की भांति स्वस्थ पर परम्पराओं का विकास करके और कार्यविधियों को अपना कर निरन्तर अनुपालन करना चाहिए।

1.6. हां। यह भारतीय संविधान के पहले अनुच्छेद द्वारा ही सुनिश्चित कर लिया गया है जिसमें यह उपबंधित है कि हमारा देश राज्यों का संघ होगा और इसमें एकल नागरिकता, मूल अधिकारों, एकीकृत न्यायपालिका, संयुक्त लेखा एवं लेखा परीक्षा, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति, एकल निर्वाचन आयोग, अखिल भारतीय सेवा, वित्त आयोग, संसद का अधिपत्य (भाग–XI–अध्याय-I) आपात कालीन उपबंधों (भाग XVIII) समवर्ती अधिकारों एवं अल्प सख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की सुरक्षा के लिए सांविधानिक दायित्वों का भी संविधान में प्रावधान है। वित्तीय एकीकरण, विभाजित करों, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदानों और एक सांविधिक वित्त आयोग के माध्यम से सुनिश्चित कर लिया गया है।

1.7. यदि केन्द्र और राज्यों का एक दूसरे के प्रति दायित्व परस्पर अनुरूप न हो और प्रथम दृष्टय: इसके परिणामस्वरूप कुछ मामलों में राज्यों की स्थिति असुरक्षित हो जाती हो तो भी इस प्रकार की संतुलन व्यवस्था पूर्ण रूप से अनभिप्रेत नही थी। भारतीय सांविधानिक प्रणाली में राज्यों के पास केन्द्र में समान प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं होता जैसा कि अमेरिकी राज्यों में है जिन्हें सेनेट में समान प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त है। केन्द्र का प्रभुत्व राज्यों द्वारा वादयोग्य संघीय निदेशों के संबंध में न्यायिक राहत मांगने से आंशिक रुप से कम हो जाता है। किन्तु इस संबंध में अधिक व्यवहारिक रवैया तो यह होगा कि राज्यों के प्रति केन्द्र के दायित्व में न केवल बढ़ती हुई क्षेत्रीय अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए वृद्धि की जानी चाहिए बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए ही उसका क्षेत्र विस्तार किया जाना चाहिए कि योजना आयोग एवं वित्त आयोग द्वारा की जाने वाली व्यवस्थाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी विशेष व्यवस्था करके कम विकसित राज्यों को विकास के अधिक अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे कि वे उनमे भी विकसित राज्यों के समान उन्नति कर सकें।

1.8. नहीं। संसद के लिए अनुच्छेद तीन में निर्दिष्ट अधिकार अपने पास रखना जरुरी है। वर्तमान स्थिति यथारूप जारी रखी जानी चाहिए।

भाग II

विधायी संबंध

2.1. हमारे विचार से राज्य को संविधान द्वारा राज्य सूची को आबंटित सभी मामलों पर विधान बनाने के लिए पूर्णरूप से सक्षम होना चाहिए, अन्यथा संविधान में प्रकल्पित व्यवस्था उचित प्रतीत होगी। इस संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 246 की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है जिसमें राज्य सूची को स्पष्ट रूप से संघ सूची और समवर्ती सूची के अधीन दिखाया गया है। अनुच्छेद 246 (i) में "इस बात के होते हुए भी" अभिव्यक्ति और अनुच्छेद 246 (ii) में "के अध्याधीन रहते हुए" की अभिव्यक्ति

से राज्य सूची में अतिक्रमण की संभावनाएं हो जाती हैं और राज्य के लिए ऐसी आकस्मिक स्थिति में न्याय प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है। अत: उपर्युक्त अभिव्यक्तियों को निकालने के विकल्प पर विचार किया जाए। खान और खनिज विकास अधिनियम और औद्योगिक विकास अधिनियम में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(i) सूची II की प्रविष्टि 23 के अनुसार खानों और खनिज विकास के विनियमन के लिए कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस को सूची-I के उपबंधों (स्पष्टत: सूची-I की प्रविष्टि-54) के अध्यधीन रखा गया है जिसमें "खानों और खनिज विकास केन्द्र इस सीमा तक विनियमन का प्रावधान है जिस सीमा तक संघ सरकार के नियंत्रण के अधीन संसद द्वारा एक कानून के अधीन ऐसा विनियमन और विकास लोकहित में उचित घोषित किया जाए"। दूसरे शब्दों में संघ सरकार की संसद के पास यह अधिकार है कि वह सम्पूर्ण विषय को अपने नियंत्रण में ले सकती है और प्रविष्टि 23 में दिए गए अधिकार या राज्य विधान मंडलों के लिए कोई अर्थ नहीं रह जाता। वस्तुत: वर्तमान खान और खनिज विकास कानून केन्द्र सरकार द्वारा बनाया गया है और राज्य विधान मंडल को इस विषय पर कोई कानून बनाने की उस की क्षमता से पूर्णतय: वंचित कर दिया गया है।

(ii) उद्योगों से संबंधित इस सूची की अगली प्रविष्टि-24, सूची-I की प्रविष्टि 52 के उपबंधों के अध्यधीन रखी गई। प्रविष्टि 52 में यह प्रावधान है कि "उद्योग, जिनका संसद द्वारा कानून के अधीन संघ सरकार द्वारा नियंत्रण घोषित किया गया है, लोकहित में उचित है"। संसद, द्वारा कानून के अधीन औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम की भांति किसी भी उद्योग को संघ सरकार के नियंत्रण के अधीन घोषित करते ही राज्य विधान मंडल की इस संबंध में कानून बनाने की क्षमता समाप्त हो जाती है। कई मामलों में राज्य सरकार कुछ ऐसे उद्योगों की कोई सहायता नहीं दे सकी है जिन को संघ सरकार के नियंत्रण में रखा गया है और कानून बनाने की क्षमता के अभाव में संबंधित उद्योग की वित्तीय या आर्थिक कठिनाई को भी दूर नहीं कर सकी।

(iii) सूची-I की इस प्रविष्टि-52 के कारण राज्य में व्यापार और वाणिज्य पर तथा उत्पादन आपूर्ति और माल के वितरण पर भी आंशिक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, जैसा कि उस उद्योग के संबंध में राज्य-सूची की प्रविष्टि 26 और 27 में उल्लिखित है, जिस का नियंत्रण समवर्ती सूची की प्रविष्टि-33 में यथा निर्दिष्ट के अनुसार संसद द्वारा बनाए गए कानून के अधीन संघ सरकार को दिया गया।

2.2 (I) हमारा यह विचार है कि व्यापार और वाणिज्य राज्य विधान मंडल की क्षमता के अन्तर्गत ही होना चाहिए, भले ही वह अनिवार्य और गैर-अनिवार्य वस्तुओं से संबंधित है।

सारांश में यह सुझाव दिया जाता है कि सूची-II में निर्दिष्ट वित्तीय और कराधान से संबंधित मामलों के बारे में कुछ विधायी अधिकारों को संसद द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से मुक्त कर दिया जाना चाहिए, जैसे कि प्रविष्टी 50 और 57, क्योंकि राज्य विधान मंडल के पास राज्य के राजस्व को बढ़ाने के लिए कर लगाने की अत्यन्त सीमित मदें हैं।

2.3. हां।

2.4. चूंकि संसद द्वारा राज्य विधान मंडल का कानून बनाने का अधिकार "राष्ट्रीय हित" में या "लोकहित" में अपने हाथ में ले लेना हमेशा एक अस्थायी प्रकार का मामला होता है, अत: कानून बनाने का ऐसा अधिकार, मामले की उपयुक्तता के अनुसार अस्थायी अवधि का होना चाहिए। अनुच्छेद 249 का वर्तमान उपबंध किसी आवश्यक स्थिति के समाधान के लिए उचित प्रतीत होता है।

2.5. प्रश्न सं० 2.2 का उत्तर देते समय इस मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की गई है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1. संविधान में यह परिकल्पना की गई है कि राज्यपाल राज्य का मुखिया होता है, जिस के नाम से राज्य सरकार चलाई जाती है। उसे उन स्थितियों को छोड़ कर मंत्री परिषद की सलाह से सरकार चलाने में कार्यवाही करनी होती है, जब उसे अनुच्छेद 356 के अधीन मुख्य मंत्री की इच्छा को कार्यान्वित करना होता है और राष्ट्रपति को उस की सूचना देनी होती है। उड़ीसा में राज्यपाल ने हमेशा राज्य के सांविधानिक मुखिया के रूप में कार्य किया है और उस ने संविधान द्वारा प्रदान की गई भूमिका को पूरा किया है। हमारे पास ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें राज्य के किसी राज्यपाल ने संविधान के अधीन प्रकल्पित अधिकारों का विचलन करते हुए कार्य किया हो।

3.2. राज्यपाल को प्राथमिक रूप से सरकार के सांविधानिक मुखिया के रूप में कार्य करना होता है। इस के अतिरिक्त वह केन्द्र सरकार के प्रहरी/एजेंट के रूप में कार्य करता है। केन्द्र के साथ अच्छे संबंध बनाए रखने के लिए उसे राज्य सरकार के माध्यस्थ के रूप में कार्य करना चाहिए और राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के बीच एक सम्पर्क एजेंसी के रूप में भी कार्य करना चाहिए और उसे केन्द्र और राज्य के बीच उच्च नीतियों का स्वरूप निर्धारण करने में भी सहायता करनी चाहिए।

3.3. प्रश्न में निर्दिष्ट (क), (ख) और (ग) के अधीन अपने दायित्वों का निष्पादन करते समय राज्यपाल को विद्यमान स्थिति से संबंधित उद्देश्य को छोड़कर किसी अन्य उद्देश्य से प्रभावित नहीं होना चाहिए। (क), (ख) और (ग) के अधीन राज्यपाल को दिए गए अधिकार असाधारण प्रकार के अधिकार हैं और उनका प्रयोग बड़ी सावधानी और सूझ-बूझ से किया जाना चाहिए, ताकि संघीय संविधान के स्वरूप के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों के बीच उपयुक्त सम्पर्क बनाए रखा जा सके। किन्तु इस संबंध में संविधान के विद्यमान उपबंधों में कोई परिवर्तन करने का सुझाव नहीं दिया जाता है।

3.4. संविधान निर्माताओं का इरादा और प्रयोजन कानून बनाने में एकरूपता सुनिश्चित करना था और यह भी सुनिश्चित करना था कि संविधान की उपेक्षाओं का अनुपालन किया जाए, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 254 और 255 और भाग VI का अध्याय V और अनुच्छेद 368 दृष्टव्य है। हमारे संविधान में कानून बनाने के मामलों में यूनाइटेड किंगडम की जांच और संतुलन प्रणाली को अपनाया गया है। अत: यह अपेक्षित है कि किसी कानून में झलकने वाले विधान मंडल के सदस्यों के प्रगतिशील विचारों पर राज्यपाल द्वारा नियंत्रण रखा जाए, जो (राज्यपाल) विधान मंडल का ही एक भाग है और संविधान सभा की भांति ही उसका भी महत्व है और उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई बनाया गया कानून संविधान के उपबंधों के अनुरूप है और देश में विद्यमान सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में औचित्यपूर्ण है। यह एक स्वस्थ्य एवं आवश्यक व्यवस्था है और उड़ीसा में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें राज्यपाल ने किसी विधेयक को मंत्री परिषद के परामर्श के विरुद्ध राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा हो।

3.5. हां, यद्यपि ऐसे मामले भी हैं जिन में भारत सरकार ने राष्ट्रपति के विचारार्थ प्राप्त विधेयकों में दिए गए उपबंधों में कुछ परिवर्तन करने के सुझाव दिए हैं तथापि यह केन्द्र की तानाशाही का मामला नहीं है। जब कभी ऐसे मामलों में केन्द्र सरकार के सुझाव स्वीकार किए गए हैं, वे सुझाव केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा आपस में विचार-विमर्श करने के बाद ही स्वीकार किए गए हैं। हमारे राज्य के मामले में ऐसी स्थिति भूमि सुधार अधिनियम और माध्यस्थम उड़ीसा (संशोधन) अधिनियम में संशोधन को लेकर उत्पन्न हुई है लेकिन केन्द्र ने इन मामलों में अपना कोई निर्णय थोपने की कोशिश

नहीं की है। किसी विधेयक पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त करने में विलम्ब अवश्य हुआ है, जैसे कि 1979 में भेजे गए उड़ीसा भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम के मामले में हुआ है तथापि सतर्कता बरत कर इस प्रकार के विलम्ब से बचा जा सकता है।

3.6. हां, यह सही स्थिति है। राज्यपाल सामान्य रूप से राज्य के सांविधानिक मुखिया के रूप में काम करते रहे हैं और उन्होंने संविधान में प्रकल्पित भूमिका पूरी की है। तथापि विभिन्न राज्यपालों ने उस समय भिन्न-भिन्न मानदंड अपनाए हैं जब उन्हें सरकार बनाने के लिए उस स्थिति में किसी दल के नेता को आमंत्रित करने या न करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने का अनुरोध किया गया था, जब दल के नेता के लिए बहुमत का समर्थन स्पष्ट नहीं था या जब अनुच्छेद 356 के अधीन उन्हें कार्यवाही करने या न करने की सिफारिश करनी थी। इस संबंध में उड़ीसा उच्च न्यायालय के विजयानंद को चर्चित मामले का हवाला दिया जा सकता है।

3.7. नहीं।

3.8. नहीं, यह कार्य मुख्य मंत्री पर छोड़ देना चाहिए, जिसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्यपाल एक अंपायर है। उसे किसी राजनीतिक परिगणना से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए। अध्यक्ष को ही सदन में इस बात का सत्यापन करना चाहिए कि किस दल को विधान मंडल में बहुमत प्राप्त है।

3.9. नहीं, हमारा यह विचार है कि जर्मन संघीय गणराज्य के मूल कानूनों के अनुच्छेद 67 के अनुरूप संविधान में एक उपबंध शामिल करना उचित नहीं होगा क्योंकि ऐसा करना भारतीय राजनीतिक संस्कृति के लिए उपयुक्त नहीं है। किसी प्रत्याशित दल की अस्थिरता की स्थिति में बेहतर विकल्प तो विधान सभा को भंग कर देना ही होगा और विद्यमान सरकार को कामचलाऊ सरकार के रूप में काम करते रहने की अनुमति देनी होगा और नए चुनाव कराने के आदेश जारी करने होंगे। प्रसंगवश हाल ही में बनाए गए दल-बदल विरोधी कानून से भविष्य में ऐसी स्थिति का समाधान करने में काफी सहायता मिलेगी।

3.10. राज्यपालों द्वारा अपने विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए अपनाए जाने वाले कोई मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित किए जाएं अथवा नहीं, इस प्रश्न पर संविधान सभा द्वारा विचार-विमर्श किया गया था और यह निर्णय लिया गया था कि ऐसे मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाना आवश्यक वांछनीय नहीं हैं। इसके बाद में राष्ट्रपति द्वारा 1970 में नियुक्त की गई राज्यपालों की एक समिति ने इस प्रश्न पर विचार किया और उस समिति ने भी इस प्रकार के कोई सिद्धान्त बनाने का परामर्श दिया। हमारा यह मत है कि इसके लिए कोई मार्गदर्शी सिद्धान्त जरूरी नहीं है और विवेकाधीन अधिकारों का प्रयोग राज्यपालों पर छोड़ देना चाहिए। वे (राज्यपाल) राज्य में विद्यमान और केन्द्र में किसी समय विशेष पर विद्यमान राजनीतिक स्थिति के अनुसार अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। हमारा यह भी विचार है कि लिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों के होने से मुकदमे बाजी होगी और उसके परिणामस्वरूप सांविधानिक अवरोध की स्थिति उत्पन्न होगी।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 व 4.2 जैसा कि 1.2 के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है संविधान में अनुच्छेद 256 और 257 का होना परम आवश्यक है। भारत के संविधान में एक ऐसे संघीय राजतंत्र की परिकल्पना की गई है जिसमें कुछ सशक्त एकात्मक विशेषताएं हों। यह व्यवस्था यद्यपि संघीय सांविधानिक प्रणाली के आदर्श स्वरूप से बिल्कुल भिन्न है फिर भी यह भारतीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त प्रतीत होती है। यह उल्लेखनीय है कि ऐसी शासन प्रणाली में संघ सरकार की भूमिका के संबंध में अनुच्छेद 256, 257 और 365 को संविधान में शामिल करके सांविधानिक संस्वीकृति प्रदान की गई है।

तथापि यह भी उल्लेखनीय है कि जब तक कोई असाधारण स्थिति का मामला न हो या जब तक कि कोई राज्य या राज्यों का समूह कोई ऐसा कार्य न कर रहा हो जो स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय नीति और उसके उद्देश्यों के विरुद्ध न हो तब तक अनुच्छेद 256, 257 और 365 में संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त अधिकारों का कदापि प्रयोग न किया जाए। यदि इस संबंध में कोई छोटी-मोटी त्रुटियां हो जाएं और राज्य की किसी बात से असहमति हो तो ऐसे मामलों का समाधान उपयुक्त संस्थागत व्यवस्था करके किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से वाद-विवाद, विचार-विमर्श और परामर्श के अवसर उपलब्ध होंगे। हमारे संविधान का लक्ष्य एक लोकतांत्रिक परम्परा का निर्माण करना है, सत्तावादी परम्परा का नहीं, और संविधान के अनुच्छेद 256, 257 और 365 के अधीन निहित अधिकारों का प्रायः प्रयोग करके इस लक्ष्य से विचलित नहीं होना चाहिए।

4.3. हमारा यह विचार है कि प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश ठीक है और हम यह भी सिफारिश करते हैं कि अनुच्छेद 256 के अधीन राज्य सरकार को कोई निदेश जारी करने से पहले विवाद के मुद्दों का समाधान करने की सभी संभावनाओं को देख लेने के बाद प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सुझाया गया तरीका अपनाया जाना चाहिए।

4.4. उड़ीसा में पिछले 35 वर्षों के दौरान इस असाधारण अधिकार का दो बार प्रयोग किया गया है। यद्यपि यह विचार है कि सामान्य रूप से पूर्वोपाय के इस असाधारण अधिकार का प्रयोग ठीक प्रकार से किया गया है किन्तु 1977 में जनता पार्टी की विजय के परिणामस्वरूप इस असाधारण अधिकार का सहारा लिया गया और दूसरी बार 1980 में लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की जीत के परिणामस्वरूप इसका सहारा लिया गया। किन्तु इस अधिकार का प्रयोग अत्यन्त विवादपूर्ण था और इसका प्रयोग उक्त अनुच्छेद के संबंधित उपबंधों के विपरीत था। अतः हमारा यह विचार है कि इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए अनुच्छेद 356 में आवश्यक पूर्वोपाय का प्रावधान किया जाना चाहिए।

4.5. देर तक राष्ट्रपति शासन का लागू रखना इन कठिनाइयों का हल नहीं है। अतः खण्ड (IV) और (V) के अधीन निर्दिष्ट उपबंधों में कोई परिवर्तन करना जरूरी नहीं है।

4.6. इस संबंध में वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक है।

4.7. केन्द्रीय एजेंसियों को अनिवार्यतः जारी रखा जाना चाहिए। हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि इन एजेंसियों ने राज्यों की स्वायत्तता पर अनुचित तरीके से हस्तक्षेप किया है। इन एजेंसियों को जो विशेषाधिकार दिए गए हैं उनके अन्तर्गत कार्य करते हुए वे इस बात के प्रति पूर्णतः सतर्क हैं कि वे ऐसे किसी क्षेत्र का अतिक्रमण न करें, जो एक मात्र राज्य के क्षेत्र में आता है। ये एजेंसियां मुख्य रूप से देश से संबंधित कार्यों या एक से अधिक राज्यों से संबंधित कार्य को ही अपने हाथ में लेती हैं। सामान्य रूप से हमने उनकी भूमिका को अत्यधिक सहायक और सकारात्मक पाया है। हमें यह भी याद रखना होगा कि इनमें से कुछ एजेंसियां संसद द्वारा पारित संगत अधिनियमों के अधीन बनाई गई हैं, अतः उनके कार्यचालन के संबंध में केन्द्र और राज्य के बीच किसी प्रकार का विवाद होने की कोई संभावना नहीं है।

4.8. परिवर्तनशील समय और परिस्थितियों में अखिल भारतीय सेवाएं निश्चित रूप से संविधान निर्माताओं की आशाओं पर खरी उतरी हैं। अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में संघ सरकार का उस पर पर्याप्त नियंत्रण अवश्य होना चाहिए। जो विद्यमान व्यवस्था है और उन पर संघ और राज्य सरकारों का जो नियंत्रण है उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए।

4.9. चूंकि कानून राज्य का विषय है अतः राज्य सरकार को इस क्षेत्र में अपनी वैध भूमिका पूरी करने देनी चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उसे केन्द्र की सहायता भी लेनी चाहिए भले ही कानून और व्यवस्था की स्थिति के अनुसार सेना बुलाना या अर्ध [illegible]

आवश्यक हो। तथापि किसी ऐसी गंभीर आपात स्थिति या स्थितियों में, जिसमें देश की अखंडता को खतरा हो, केन्द्र को आवश्यक कार्यवाही करने में कोई बाधा नही पहुंचानी चाहिए। इस संदर्भ में भारत की अखंडता की सुरक्षा के लिए अनुच्छेद 355 अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। अत: ऐसी स्थिति में केन्द्रीय आक्रमण और आंतरिक उपद्रव का विरोध करने का कोई प्रश्न ही नही उठना चाहिए। यद्यपि कोई भी केन्द्रीय सेना राज्य में तब तक तैनात नही की जानी चाहिए जब तक केन्द्र सरकार द्वारा उसके लिए मांग न की जाए।

4.10. इस संबंध में संविधान के अधीन निर्दिष्ट वर्तमान स्कीम को जारी रखा जाए। किन्तु आकाशवाणी या दूरदर्शन और अन्य प्रचार माध्यमों, जैसे संगठनों के प्रशासन में राज्य सरकार के कार्यों से संबंधित सूचना के सही सही प्रसारण और प्रकाशन में उनके द्वारा अदा की गई भूमिका को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकारों के विचारों को भी महत्व दिया जाना चाहिए। एक ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत राज्यों को केन्द्रीय मार्गनिर्देशों के अधीन और केन्द्र सरकार के निदेशों के अनुरूप अपने कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए दूरदर्शन एवं रेडियो कार्यक्रमों में एक विनिर्दिष्ट अवधि आबंटित की जानी चाहिए।

4.11. ऐसा प्रतीत होता है कि आंचलिक परिषदों ने अब तक अपने उन उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पूरा नहीं किया है, जिनके लिए उनकी स्थापना की गई थी।

4.12. हमारा यह मत है कि केन्द्र राज्य संबंधों को प्रभावित करने वाली विभिन्न समस्याओं और विषयों के समाधान के लिए केन्द्र और राज्यों के बीच परामर्श के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कुछ संस्थागत प्रबंध किए जाने चाहिए। विभिन्न राज्यों के बीच होने वाले विवादों का समाधान एक ऐसे मंच से किया जाना चाहिए, जिसमें राज्यों और संबंधित केन्द्रीय मंत्रालयों के प्रतिनिधि शामिल हों। ऐसे विवादों को निपटाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय परिषद बनाना उपयुक्त नही होगा। इसके अतिरिक्त केन्द्र या राज्यों के सांविधानिक दायित्वों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए किसी परिषद में उनकी समीक्षा नही की जानी चाहिए और न ही उन पर कोई विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। विभिन्न राज्यों के बीच के जिन विवादों का समाधान विचार-विमर्श से न किया जा सकता हो उन्हें उपयुक्त न्यायिक या अर्ध-न्यायिक तंत्र के समक्ष ले जाना चाहिए।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1. यदि हम राज्य में बुनियादी प्रशासनिक सेवाएं प्रदान करने के लिए राज्य सरकार की आर्थिक जरूरतों पर ध्यान दें तो हम यह पाएंगे कि केन्द्रीय करों में से अपना हिस्सा प्राप्त करते हुए और विधिवत् संगठित वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर सहायता अनुदान उपलब्ध कराते हुए राज्य की आवश्यकताओं और उनके साधनों के बीच की कमी को पूरा करने के लिए जो व्यवस्था की गई है उसके संबंध में सभी ने विश्वास व्यक्त किया है और इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि संविधान निर्माताओं द्वारा प्रकल्पित अन्तरण की यह स्कीम सफल रही है और संविधान निर्माताओं की आशाओं पर खरी उतरी है। यह व्यवस्था जारी रहे इसे राज्य सरकार का विश्वास प्राप्त होता रहे इसके लिए इस संबंध में एक सशक्त परम्परा स्थापित करनी होगी कि वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशें भारत सरकार द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकार कर ली जाएं।

तथापि राज्य में विकास संबंधी विभिन्न कार्यकलापों के वित्त पोषण के लिए राज्य की बढ़ती हुई आवश्यकताएं, जिनके अन्तर्गत केन्द्र से राज्य को अपेक्षाकृत काफी अधिक मात्रा में साधनों का अन्तरण करना जरूरी है, वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र में नहीं आती है और उन पर योजना आयोग द्वारा कार्यवाही की जाती है। हमारा यह विचार है कि यह एक ऐसा क्षेत्र क्षेत्र है जिसमें साधनों के अन्तरण के विद्यमान सिद्धान्तों में अभी काफी सुधार एवं परिवर्तन वांछनीय हैं। अत: इस सुझाव के साथ कि वर्तमान कार्यप्रणाली में सुधार किया जाना चाहिए और योजना आयोग एवं वित्त आयोग के बीच प्रभावशाली समन्वय होना चाहिए, हम यह सिफारिश करते हैं कि राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता की मात्रा और उसके वितरण के निर्धारण के संबंध में वस्तुपरक दृष्टि से एक सही मानदंड निर्धारित किया जाना चाहिए और उसका पूरी तरह से अनुपालन किया जाना चाहिए।

5.2. प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन दल द्वारा उल्लिखित मामले की स्थिति अभी भी वैध है। जहां तक दिए गए विकल्प का संबंध है, हमारे विचार इस प्रकार हैं :--

हम केन्द्र और राज्यों के बीच आर्थिक सम्बन्धों को बिल्कुल अलग करने के पक्ष में नहीं है और हमारा यह विचार है कि ऐसा करना न तो वांछनीय होगा और न ही व्यावहारिक। इसी प्रकार कराधान के सभी अधिकार संघ सरकार के ही पास होना वांछनीय नहीं है। हमारा यह विश्वास है कि भारत जैसे देश में संघ सरकार से राज्य सूची को कुछ करों का अन्तरण पर्याप्त नहीं होगा। इससे अधिक समृद्ध राज्यों की आर्थिक स्थिति में तो सुधार हो सकता है किन्तु ऐसा करना निर्धन राज्यों के हितों के प्रतिकूल होगा। केन्द्र के अपनी पास भी काफी कम साधन रह जाएंगे। निर्धन राज्यों के पास पर्याप्त साधन न होने के कारण वे अभावग्रस्त रहेंगे।

कुछ ऐतिहासिक कारणों से उत्पादन, खपत और अन्य आर्थिक कार्यकलाप, जो हमारी अर्थव्यवस्था के आधुनिक और संगठित क्षेत्रों को बनाए रखते हैं और जो संघ या राज्यों के साथ सभी करों के लिए एक आधार का कार्य करते हैं, संघ के राज्यों के विशिष्ट क्षेत्र में ही होते है। यद्यपि इन क्षेत्रों में कार्यकलापों का आधार पूरे देश की जनसंख्या ही है और पूरे देश की क्रय शक्ति इन क्षेत्रों में उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च होती है, अत: अधिक कराधान अधिकार राज्यों को अन्तरित किए जाने के बाद इसका लाभ केवल उन राज्यों के साधनों को होगा जिनमें यह क्षेत्र स्थित हैं।

जैसा कि पहले कहा गया हम कराधान के ज्यादा से ज्यादा अधिकारों को राज्यों को अन्तरित करने के विचार के पक्ष में नहीं हैं क्योंकि इससे अधिक समृद्ध क्षेत्रों से निर्धन क्षेत्रों को साधनों के अन्तरण की प्रणाली में व्यतिक्रम आ जाएगा और अधिक समृद्ध क्षेत्रों को अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगेगी। न ही हम इस पक्ष में हैं कि कराधान के अधिकार संघ-सूची को अन्तरित किए जाएं। ऐसा करने से राज्य पूरी तरह केन्द्र पर आश्रित हो जाएंगे।

दूसरी ओर हमारा यह विचार है कि योजनाबद्ध विकास के संदर्भ में यह जरुरी है कि राज्यों की आर्थिक आवश्यकताओं का एक पूरा जायजा लिया जाए और साधनों का अन्तरण पूर्व निर्धारित सिद्धांत के अनुसार किया जाए और राज्य की आवश्यकताओं और उसके अपने साधनों के बीच की कमी का निर्धारण करके किया जाए ताकि केन्द्र से राज्य को अन्तरित होने वाली धनराशि में वृद्धि की जा सके। सभी प्रकार के आयकर (निगम कर तथा अधिभार सहित) और सभी प्रकार के उत्पाद शुल्क की राशि राज्यों के साथ बांटी जानी चाहिए और राज्यों को सुनिश्चित अन्तरण द्वारा अधिकांश साधन प्राप्त होने चाहिए और अंतर्राज्यीय वितरण के सिद्धान्त ऐसे होने चाहिए कि उन्नत राज्यों के पास बहुत अधिक अधिशेष राशि नहीं बची रहनी चाहिए। संघ और राज्यों के बीच कर साधनों से इतर साधनों के अधिक न्यायसंगत वितरण के लिए संस्थागत प्रबंध भी किए जाने चाहिए।

5.3 हम इस मत से सहमत हैं कि क्षेत्रीय असंतुलन को एक ऐसे सशक्त केन्द्र द्वारा कम किया जा सकता है जिसमें राजस्व के अधिक स्रोत उपलब्ध हों और जिसके पास ऐसे अधिक विवेकाधीन अधिकार हों जिनके अन्तर्गत केन्द्र अपने पास उपलब्ध धनराशि का उपयोग निर्धन राज्यों के विकास के लिए कर सके। तथापि केन्द्र सरकार को क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के लिए अब अधिक साहसिक कदम उठाने होंगे और इस संबंध में अधिक प्रगतिशील नीतियां अपनानी होंगी।

5.4 हम यह नहीं समझते कि केन्द्रीय राजस्व खाते में जो घाटा दिखाई देता है वह किसी प्रकार से राज्यों को साधनों के अन्तरण के कारण

है। दूसरी और हमारा यह मत है कि केन्द्र से राज्यों को और अधिक मात्रा में साधनों के अन्तरण की गुंजाइश है और उसका औचित्य भी है क्योंकि अब तक वित्त आयोग और योजना आयोग के माध्यम से जो साधनों का अन्तरण किया जा रहा है वह अधिक होना तो दूर, पर्याप्त भी नहीं है। केन्द्र सरकार को यथासंभव अधिक साधन जुटाने चाहिएं और उसे पहले से लगाए गए करों की अधिक वसूली करके और पहले की अपेक्षा अधिक उन्नत अर्थव्यवस्था द्वारा और व्यय पर नियंत्रण करके और विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, जिनमें भारी मात्रा में पुंजी लगाई गई है, के कार्य निष्पादन में सुधार करके अधिक साधन जुटाने चाहिएं। हमारा यह सुझाव है कि राजस्व संबंधी घाटे से बचा जाना चाहिए किन्तु यह संभव है कि पूर्ण रूप से घाटे का वित्तपोषण अपरिहार्य न हो। किन्तु इसे यथोचित सीमाओं के अन्दर ही रखा जाना चाहिए और अर्थव्यवस्था पर इसके मुद्रा स्फीतिकारी प्रभाव को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

5.5. इस समय केन्द्र से राज्यों को साधनों का अन्तरण निम्नलिखित माध्यमों से किया जाता है :—

(i) वित्त आयोग के माध्यम से,

(ii) योजना आयोग के माध्यम से, और

(iii) विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा कार्यान्वित की जाने वाली केन्द्रीय स्तर पर प्रायोजित स्कीमों और केन्द्रीय क्षेत्र की स्कीमों के रूप में विवेकाधीन अन्तरणों के माध्यम से।

यह तथ्य, कि अपेक्षाकृत कम विकसित राज्य अभी भी कम विकसित ही हैं और अंतर्क्षेत्रीय विसंगतियों में योजनाओं के 35 वर्षों के बाद भी वृद्धि हो रही है, निश्चित रूप से इस बात का सूचक है कि साधनों के अन्तरण की वर्तमान स्कीम निर्धन और समृद्ध राज्यों के बीच साधनों के अन्तराल को पूरा करने में सफल नहीं हुई है। हम चाहेंगे कि आयोग साधनों के अन्तरण की निम्नलिखित वैकल्पिक स्कीम पर विचार करे।

(क) **वित्त आयोग के माध्यम से अन्तरण**—एक के बाद दूसरे वित्त आयोगों का यह रवैया रहा है कि साधनों के संबंध में राज्यों की आवश्यकताओं पर ध्यान दिए बिना ही संघीय करों और शुल्कों को केन्द्र और राज्यों के बीच वितरित किया जाता रहा है। इसके परिणामस्वरूप जिन विकसित राज्यों के पास अधिक साधन उपलब्ध हैं और जो वचनबद्ध योजनेत्तर व्यय को पूरा करने के लिए अपनी सारी आवश्यकताएं अपने ही साधनों से पूरी कर सकते हैं या संभवत: जिनके लिए केन्द्र से केवल सीमित सहायता की ही आवश्यकता होती है, उन राज्यों के पास इन फार्मूलों के अनुसार संघीय करों में अपना हिस्सा प्राप्त करने के बाद अपने योजनेतर राजस्व खातों में भारी मात्रा में अधिशेष राशि बची रहती है। साथ ही निर्धन राज्य, जिनके पास बहुत कम साधन उपलब्ध होते हैं और जिनके अपने राजस्व की राशि उनकी अपनी योजनेत्तर आवश्यकताओं से बहुत कम होती है, उनके अपने योजनेतर राजस्व खाते में कर विभाजन फार्मूले के अनुसार केन्द्रीय करों में अपना हिस्सा प्राप्त करने के बाद भी घाटा ही बचा रहता है। वित्त आयोग सहायता अनुदान दे कर केवल इस कमी को पूरी अवश्य करता है और इससे इन राज्यों का घाटा समाप्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है, जिसमें अधिक समृद्ध राज्यों के पास अपने योजना परिव्यय के वित्त पोषण के लिए उनके अपने वर्तमान राजस्व से काफी अधिक मात्रा में अधिशेष राशि बची रहती है, जबकि निर्धन राज्यों के पास कोई अधिशेष राशि नहीं बचती।

वास्तव में योजनेत्तर पुंजीगत राशि के संवितरणों और सरकारी कर्मचारियों को अतिरिक्त मंहगाई भत्ते की संस्वीकृति के परिणामस्वरूप होने वाली अतिरिक्त देयताओं को हिसाब में शामिल करने के बाद इन राज्यों के अपने राजस्व खाते में काफी अधिक मात्रा में घाटा बचा रहता है जिसको सबसे पहले धनराशि उधार ले कर पूरा करना होता है और उनकी योजनाओं के लिए वास्तव में कोई प्रावधान करने से पहले योजनाओं के लिए अतिरिक्त साधन भी जुटाने होते हैं।

हमारा यह सुझाव है कि राज्य की विकास योजनाओं के वित्त पोषण के लिए राज्य की साधन संबंधी आवश्यकताओं पर कोई ध्यान दिए बिना ही राज्य के योजनेत्तर खातों के घाटे को सहायता अनुदान दे कर पूरा करने के इस अनिवार्यत: नकारात्मक दृष्टिकोण को बदला जाना चाहिए। हमारा यह सुझाव है कि एक के बाद दूसरे वित्त आयोगों द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण को अब छोड़ दिया जाना चाहिए और राज्य की साधन संबंधी आवश्यकताओं के संबंध में एक अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। वित्त आयोग के अधिनिर्णय ऐसे होने चाहिए कि जिनसे निर्धन राज्यों एवं समृद्ध राज्यों के पास अपनी सभी वचनबद्ध देयताओं को पूरा करने के बाद अपने वर्तमान राजस्व में से कुछ अधिशेष राशि अवश्य बची रहनी चाहिए, जिससे वे अनिवार्य प्रशासनिक सेवाएं प्रदान कर सकें और जो उनकी विकास योजनाओं के वित्त पोषण का आधार बन सके। वास्तव में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वर्तमान राजस्व में से उपलब्ध प्रति व्यक्ति अधिशेष राशि सभी राज्यों के लिए लगभग एक समान होनी चाहिए। हमारे सुझाव के अनुसार अन्तरण एवं सहायता अनुदान की वैकल्पिक स्कीम के मार्गदर्शी सिद्धान्त इस प्रकार होंगे :—

(i) जिन राज्यों के पास आय कर, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क और सम्पदा शुल्क से अपने हिस्से की राशि प्राप्त करने के बाद भी अपने योजनेत्तर राजस्व खातों में घाटा पाया जाए, उन्हें शून्य घाटे के स्तर तक लाने के लिए आवश्यक संघीय उत्पाद शुल्क के विभाज्य पूल में से सबसे पहले धनराशि की अदायगी की जाए। संघीय उत्पाद शुल्क के विभाज्य पूल की शेष राशि का राज्यों के बीच वितरण अन्तरण के एक समान फार्मूले के आधार पर किया जाए। इस फार्मूले का विस्तृत ब्योरा हमने प्रश्न सं० 5.12 के अपने उत्तर में दिया है। इसके प्रयोग से ही वह वर्तमान स्थिति एकदम बदल जाएगी जिसमें समृद्ध राज्यों को तो काफी अधिक धनराशि प्राप्त होती है जबकि निर्धन राज्यों को केन्द्र से सहायता अनुदान के रूप में इतनी ही राशि प्राप्त होती है, जिससे वे अपने योजनेत्तर राजस्व खाते की कमी को पूरा ही कर पाते हैं। इसके स्थान पर अब प्रत्येक राज्य के पास इतनी राशि उपलब्ध होगी जिससे वे अपनी योजनेत्तर देयताएं पूरी कर सकेंगे और उनके पास कुछ अधिशेष राशि भी बची रहेगी, जिसका उपयोग वे किसी अप्रत्याशित व्यय को पूरा करने के लिए कर सकेंगे और साथ ही अपनी विकास योजना के वित्त पोषण के लिए भी उसका उपयोग कर सकेंगे।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 275 (i) के अधीन उन राज्यों को भी सहायता अनुदान दिया जाना चाहिए जो अपने कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशासन और अनिवार्य सेवाओं के स्तर में इसलिए सुधार लाना चाहते हैं ताकि उन्हें वे राष्ट्रीय स्तर पर ला सकें। राहत कार्यों से संबंधित व्यय के वित्त पोषण के लिए भी सहायता अनुदान दिया जाना चाहिए। इस संबंध में हमारे विस्तृत सुझाव प्रश्न सं० 5.13 और 5.28 के हमारे उत्तर में दिए गए हैं।

(iii) हमारा यह भी विचार है कि एक के बाद दूसरे वित्त आयोगों की मूल्यों की स्थिरता के बारे में जो धारणा है वह यथार्थपूर्ण नही है और यह बात पिछले 35 वर्षों के दौरान मूल्य स्तर में लगातार होने वाली वृद्धि से भी सिद्ध होती है। हमारा यह सुझाव है कि सभी राज्यों को केन्द्र के नियमों के अनुसार ही अपने कर्मचारियों के अतिरिक्त महंगाई भत्ता देनी चाहिए। चूंकि मूल्यों पर केवल केंद्र सरकार का ही नियंत्रण होता है और मूल्य स्तर में परिवर्तन, जिस के कारण अतिरिक्त मंहगाई भत्ते की स्वीकृति देनी पड़ती है, केन्द्र सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली घाटे की वित्त व्यवस्था, क्रेडिट, विस्तार आदि जैसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनाई जाने वाली नीतियों का ही परिणाम है, अत: अतिरिक्त मंहगाई भत्ते की स्वीकृति के कारण राज्य सरकारों की अतिरिक्त देयता का भार केन्द्र सरकार को वहन करना चाहिए। अतिरिक्त मंहगाई भत्ते की वास्तविक

आवश्यकताओं के आधार पर राज्य सरकारों को वार्षिक सहायता अनुदान स्वीकृत किया जाना चाहिए ।

(iv) वित्त आयोगों ने भी राज्य सरकारों के राजस्व संबंधी पूर्वानुमानों का पुन: निर्धारण करते समय, जो वास्तव में कभी भी सही सिद्ध नहीं होते, कुछ शीर्षों से प्राप्तियों की राशि ले ली है । इससे घाटे वाले राज्यों को कठिनाई होती है । वित्त आयोग को जहां तक हो सके इस प्रथा को भविष्य में नहीं अपनाना चाहिए ।

(ख) **योजना आयोग के माध्यम से अन्तरण.**—इस समय राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के स्तर का निर्धारण समय-समय पर यथा संशोधित गाडगिल फार्मूले के अनुसार किया जाता है । हमारा यह विचार है कि गाडगिल फार्मूले पर आधारित वर्तमान व्यवस्था का पुनरीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए क्योंकि यह हमारे समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है । योजना आयोग द्वारा हर वर्ष परिव्यय और केन्द्रीय सहायता का जो पुनरीक्षण तथा समायोजन किया जाता है, वह अब एक यांत्रिक एवं गणकीय कार्य बन गया है । यह आवश्यक है कि योजना प्राधिकारियों को विकास की दर बढ़ाने के लिए राज्य के पूंजी निवेश की आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करना चाहिए । इससे संबंधित राज्य एक उचित समय में देश के अन्य राज्यों के समान विकास कर सकेगा । यह किसी फार्मूलाबद्ध स्थिति में संभव नहीं है । अत: हमारा यह सुझाव है कि विभिन्न राज्यों के योजनाबद्ध विकास के लिए केन्द्रीय सहायता के आबंटन के लिए एक अधिक रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, जिस के अनुसार किसी राज्य द्वारा अपनी योजना के लिए केन्द्र से प्राप्त होने वाली सहायता का निर्धारण किसी कठोर फार्मूले के आधार पर नहीं किया जाएगा, बल्कि योजना आयोग द्वारा तैयार की गई व्यापक परिप्रेक्ष्य वाली ऐसी योजना के अनुसार पूंजी निवेश के अपेक्षित स्तर के अनुसार ही किया जाएगा, जिस का लक्ष्य धीरे धीरे क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना है तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को विकसित करना है । स्पष्टत: योजना आयोग को यह सुनिश्चित करना होगा कि ऐसी व्यवस्था निष्पक्ष रूप से लागू की जाती है । हमारा यह भी विचार है कि केंद्रीय सहायता के वर्तमान तरीके के अंतर्गत, जिस में से 70 प्रतिशत कर्ज के रूप में और 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में दिया जाता है, राज्य सरकारों पर कर्ज की वापस अदायगी का काफी अधिक बोझ पड़ जाता है और वस्तुत: इस के परिणामस्वरूप केन्द्र से जो सहायता मिलती है वह बहुत ही कम होती है । हम ने प्रश्न सं० 5.17 के अपने उत्तर में इस प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की हैं । हमारा यह सुझाव है कि केन्द्रीय सहायता में कर्ज केवल 30 प्रतिशत होना चाहिए और शेष 70 प्रतिशत अनुदान के रूप में दिया जाना चाहिए ।

(ग) **केन्द्रीय क्षेत्रक और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के माध्यम से साधनों का अन्तरण.**—विभिन्न केन्द्रीय क्षेत्रक स्कीमों और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के अन्तर्गत राज्यों के बीच साधनों का आबंटन इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि कम विकसित क्षेत्रों में पूंजी निवेश के स्तर में वृद्धि हो सके और इससे पिछड़े क्षेत्रों में विकास की गति में तेजी लाई जा सके और ये क्षेत्र अधिक विकसित राज्यों के स्तर तक तेजी से पहुंच सकें । इस प्रकार केन्द्रीय क्षेत्रक स्कीमों और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के अन्तर्गत किए जाने वाले अन्तरणों से राज्य की योजना सहायता की प्रतिपूर्ति होनी चाहिए । अत: योजना आयोग को विभिन्न केन्द्रीय योजनाओं और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमों में परिव्यय के स्तर का निर्धारण करते समय राज्य-वार आबंटनों का भी निर्धारण करना चाहिए । इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा किए जाने वाले समान अंशदान, जैसे किन्हीं कारणों से यदि योजना आयोग की स्वतंत्रता में कोई हस्तक्षेप होता हो तो उनको छोड़ देना चाहिए ।

हमारा यह विचार है कि यदि कम विकसित राज्यों को एक उचित समय के अन्दर संघ के आर्थिक रूप से विकसित अन्य राज्यों की बराबरी पर आना है तो केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण के संबंध में अपनाए जाने वाले दृष्टि-कोण में मूल परिवर्तन करना आवश्यक होगा । आयोग को इस बात पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए । जब तक इस दिशा में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक कर विभाजन या योजना अन्तरण आदि का कोई भी फार्मूला अधिक सहायक नहीं होगा ।

5.6 हमारे देश में आर्थिक रूप से अविकसित क्षेत्रों के लिए एक विशेष संघीय निधि बनाना जरूरी नहीं समझा जाता है । क्षेत्रीय असमानताओं और असंतुलनों की समस्या का योजना के विद्यमान संस्थागत रूप के अन्तर्गत ही समाधान किया जा सकता है । वास्तव में जरूरत इस बात की है कि कुछ चुने हुए क्षेत्रों में मूलभूत विकास के साधनों के संबंध में अधिक गहन परिव्यय और अधिक आय प्राप्त करने वाली स्कीमें तैयार की जाएं और यह कार्य राज्य की और केन्द्र की योजनाओं के समग्र स्वरूप के अन्तर्गत ही उपयुक्त क्षेत्र विकास संबंधी उपयोजनाएं तैयार कर के आसानी से सुनिश्चित किया जा सकता है ।

5.7 इस प्रश्न में उल्लिखित सिद्धान्त बिल्कुल ठीक प्रतीत होते है और इन में कोई परिवर्तन करना अपेक्षित नहीं है । तथापि विभाज्य पूल में साधनों की ऐसी वैध मदों को शामिल कर के, जिन्हें किसी न किसी कारण से अब तक पूल से बाहर रखा गया है, सांविधिक अन्तरणों की विद्यमान स्कीम के अन्तर्गत एक अधिक बड़ा विभाज्य पूल बनाना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए ।

(कृपया प्रश्न 5.2 का उत्तर भी देखें ।)

5.8 हम इस बात से सहमत है कि करों के संबंध में अपनाया जाने वाला रवैया अपूर्ण नहीं होना चाहिए । तथापि कर केवल कानून बना कर ही लगाए जा सकते है और यह हमारे संविधान का मूल एवं अपरिवर्तनीय लक्षण है कि कानून बनाने का अधिकार केवल संसद या राज्य विधान मंडलों के पास निहित है । संबंधित विधायी निकाय ही करों के संबंध में बनाए जाने वाले कानून बनाने के लिए सक्षम हैं । संसद विधायी अधिकारों पर नियंत्रण रखने वाली वित्त मंत्रियों की समिति हमारे संविधान के मूल लक्षणों के अनुरूप नहीं होगी और न ही उस के उपयुक्त होगी । तथापि हम इस बात से सहमत हो सकते हैं कि कुछ ऐसी कर संबंधी मदें चुन कर, जो इस समय राज्य सूची में शामिल है, केन्द्र द्वारा विनियमन के लिए स्वीकार की जा सकती हैं, जैसे कि हम ने इस बात पर सहमति व्यक्त की है कि इस व्यवस्था में कुछ गारंटियों और पूर्वोपायों के अधीन बिक्री कर के स्थान पर केन्द्रीय कर (उत्पाद-शुल्क) को लागू किया जा सकता है ।

5.9 हम सुझाए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं है क्योंकि हम यह समझते हैं कि एक ही निकाय की स्थापना करना एक व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं है ।

हमारा यह सुझाव है कि योजना और योजनेत्तर व्यय को पूरा करने के लिए साधनों के अन्तरण के संबंध में निम्नलिखित वैकल्पित व्यवस्था की जानी चाहिए :—

(क) वित्त आयोग को बनाए रखना चाहिए और उसे पहले की भांति कार्य करते रहना चाहिए और उसे योजनेत्तर आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी सुझाव देने चाहिए ।

(ख) तकनीक के चयन, पूंजी निवेश मानदंड, परियोजना तैयार करने आदि के संबंध में मार्गदर्शन देने के लिए एक योजना आयोग भी होना चाहिए । इस आयोग को योजना परिव्यय के वित्त पोषण के लिए केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण के संबंध में निर्णय करना चाहिए ।

(ग) योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच अच्छा समन्वय होना चाहिए । हमारे विचार से किसी राज्य द्वारा अपनी योजना के लिए प्राप्त की जाने वाली केन्द्रीय सहायता का निर्धारण किसी कठोर फार्मूले से नहीं किया जाना चाहिए बल्कि इसका निर्धारण योजना आयोग द्वारा राज्यों के लिए तैयार की गई व्यापक योजना के अनुसार संबंधित राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही किया जाना चाहिए ताकि संबंधित राज्य को एक निर्धारित समय में देश के अन्य भागों के समान स्तर तक लाया जा सके । जिन स्कीमों में यह प्रावधान हो कि राज्य सरकारें भी अपने विकास के लिए समान अंशदान करें, उन स्कीमों को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए क्योंकि उन से योजना आयोग द्वारा परिकलित साधनों के आबंटन की प्रक्रिया असफल हो जाती है । राज्यों को योजना संबंधी सहायता का अन्तरण एक औपचारिक यांत्रिक तरीके से

नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसका निर्धारण राज्य में विकास की विशेष गति प्राप्त करने के लिए राज्य की पूंजीगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए ।

5.10 और 5.11 जहां तक उत्तरवर्ती वित्त आयोग, वित्त आयोग के परामर्श से साधनों के अन्तरण का संबंध है, हमारा यह विचार है कि प्रत्येक उत्तरवर्ती वित्त आयोग ने राज्यों के व्यय के पूर्वानुमान के संबंध में अत्यधिक प्रासंगिक रवैया अपनाया है, हमारे विचार से इससे एक ओर तो राज्य सरकारों के व्यय में दक्षता और मितव्ययता बरतने के लिए प्रोत्साहन मिला है तो दूसरी ओर राज्यों में सार्वजनिक व्यय में जो विषमता है, उसमें कमी आई है। वित्त आयोगों ने प्रशासन के स्तर को बढ़ाने के लिए जिन स्कीमों की सिफारिश की है वे विभिन्न राज्यों की प्रशासनिक सेवा की गुणवत्ता की विसंगतियों को कम करने में काफी उपयोगी रही है । हम यह आशा करते हैं कि भावी वित्त आयोग भी इसी प्रकार का प्रारम्भिक रवैया अपनाएंगे ताकि इस प्रवृत्ति को और बल मिल सके । विभिन्न राज्यों की व्यय संबंधी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करने के लिए प्रारंभिक रवैया अपनाने का एक नुकसान भी है, जो यह है कि इस से राज्य सरकारें अपनी वित्तीय व्यवस्था पर नियंत्रण नहीं रख पाती हैं और जनवादी उपाय भी नहीं कर पाती हैं जिसके परिणामस्वरूप राजस्व में हानि तो होती ही है और अनावश्यक व्यय भी होता है । ऐसे प्रारम्भिक रवैये से राज्य सरकारों द्वारा बहुत अधिक राजस्व के घाटे के संबंध में किए गए पूर्वानुमान निरर्थक सिद्ध हो जाएंगे और जिस से न केवल राज्य सरकारों में व्यय में दक्षता एवं मितव्ययता बरतने की एक ऐसी प्रवृत्ति पनपेगी बल्कि वित्त आयोग के समक्ष अपनी वास्तविक आवश्यकताएं प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी पनपेगी । तथापि जहां तक योजना आयोग के परामर्श से अन्तरणों का संबंध है हमारा यह विचार है कि ऐसे अन्तरण केन्द्रीय वित्त मंत्रालय द्वारा योजना आयोग को उपलब्ध कराई गई धनराशि के एक सामान्य फार्मूले के आधार पर ही किए जाते हैं और कुल मिलाकर राज्य की विशिष्ट आवश्यकताओं को नजर अंदाज करते हुए ऐसा किया जाता है । जैसा हम पहले सुझाव दे चुके हैं क्षेत्रीय विसंगतियों को दूर करने के लिए और राज्यों के विकास के लिए योजना आयोग द्वारा तैयार की गई व्यापक योजना को ध्यान में रखते हुए राज्यों की योजना के संबंध में केन्द्रीय योजना सहायता के अधीन साधनों के अन्तरण के लिए वस्तुपरक मानदंड तैयार किया जाना चाहिए और अपनाया जाना चाहिए ।

5.12 हम सातवें वित्त आयोग के उस प्रस्ताव से सहमत हैं जिस के अन्तर्गत साधनों के अधिकांश अन्तरणों की व्यवस्था करों के विभाजन द्वारा की गई है और संविधान के अनुच्छेद 275 (1) के अधीन सहायता अनुदान की केवल एक अनुपूरक भूमिका ही रखी गई है । अन्तरण की स्कीम इस प्रकार तैयार की जानी चाहिए जिससे विकसित और कम विकसित राज्यों के बीच के अन्तराल को समाप्त किया जा सके और साथ ही केन्द्र के पास भी पर्याप्त साधन बच रहे । जिन राज्यों में आय कर, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, सम्पदा शुल्क, रेलवे किरायों के कर संबंधी अनुदानों और कृषि सम्पत्ति पर धन कर से संबंधित अनुदानों में से अपना हिस्सा प्राप्त करने के बाद अपने योजनेत्तर राजस्व खातों में घाटे की स्थिति हो, उन राज्यों को शून्य घाटे के स्तर तक लाने के लिए सर्वप्रथम उन्हें संघीय उत्पाद शुल्क के विभाज्य पूल से अदायगी की जानी चाहिए ।

अन्तरण के एक समान फार्मूले में निम्नलिखित बातें शामिल की जा सकती हैं :—

(i) सभी राज्यों की कुल जनसंख्या के अनुपात में जनसंख्या की प्रतिशतता ;

(ii) सभी राज्यों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों की कुल संख्या के अनुपात में किसी राज्य में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के लोगों की प्रतिशतता ;

(iii) राज्य में प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद का विपरीत अनुपात ;

(iv) प्रत्येक राज्य में प्रति व्यक्ति घरेलू खपत का विपरीत अनुपात ।

5.13 हमारा यह विचार है कि सहायता अनुदान को केवल विकसित और कम विकसित राज्यों के बीच विभिन्न प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों को कम करने तक ही सीमित रखा जाना चाहिए, इसके पीछे उद्देश्य यह है कि राज्यों की सीमाओं के निरपेक्ष देश में इन सेवाओं का एक सम एवं न्यूनतम राष्ट्रीय स्तर बनाए रखने का प्रयास किया जा सके । सहायता अनुदान अलग-अलग राज्यों को भी दिया जा सकता है, जैसाकि आठवें वित्त आयोग द्वारा किया गया है । इस सहायता अनुदान से संबंधित राज्य अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण या राष्ट्रीय महत्व की समस्याओं के कारण अपनी वित्त व्यवस्था पर पड़ने वाले विशेष भार को वहन कर सकते हैं ।

तथापि जैसे कि पहले प्रथा रही है, राज्य सरकार के राजस्व खातों के घाटे को पूरा करने के लिए सहायता अनुदान देना बंद कर देना चाहिए । जैसा कि उपर्युक्त प्रश्न सं० 12 के हमारे उत्तर में स्पष्ट किया गया है, संघीय उत्पाद शुल्क के विभाज्य पूल में से इसे प्रथम प्रभार के रूप में लिया जाना चाहिए ।

5.14 हमारा यह विचार है कि विशेष धारक बांड स्कीमें उन करों के बदले में हैं, जिन्हें वसूल किया जा सकता था और राज्यों के साथ बांटा जा सकता था, अत: इन से प्राप्त पूरी आय की राशि को राज्यों के साथ बांटा जाना चाहिए ।

जहां तक पेट्रोलियम कोयले आदि के प्रशासित मूल्यों का संबंध है, जैसा कि नीचे स्पष्ट किया गया है, उनसे प्राप्त होने वाले राजस्व को विभाज्य पूल में शामिल करने का औचित्य है :—

उत्पाद शुल्क से प्राप्त होने वाला राजस्व केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजित कर लिया जाता है किन्तु हाल ही में केन्द्र ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के उत्पादों के मूल्य बढ़ा कर अपने लिए साधन जुटाने में सफलता प्राप्त की है और राज्यों को भी उस स्थिति में लाभ हुआ होता यदि इन उत्पादों पर उत्पाद शुल्क लगाया गया होता किन्तु वे (राज्य) अतिरिक्त साधनों से वंचित रह गये । चूंकि राज्य प्रशासित मूल्यों के कारण राजस्व प्राप्ति से वंचित रह जाता है, इसलिए यदि केन्द्र द्वारा इन से प्राप्त राजस्व को भी विभाज्य पूल का एक भाग बना दिया जाए तो यह उचित होगा । इस के अतिरिक्त हम इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि इन मदों पर राज्य सरकारों को रायल्टी देनी पड़ेगी । अत: हमारा यह विचार है कि इन वस्तुओं के उपभोक्ता मूल्यों में बार-बार परिवर्तन करते समय चार वर्षों के लिए इनकी रायल्टी को स्थिर रखना अनुचित है । हमारा आग्रह है कि इन वस्तुओं की रायल्टी की दरों को एक नियत प्रतिशतता के रूप में प्रशासित मूल्यों के साथ जोड़ा जाए ताकि जब कभी इनके मूल्यों में वृद्धि की जाए तब इनमें अपने आप ही संशोधन हो जाए और इसके परिणामस्वरूप राज्य को इन वस्तुओं के मूल्यों में संशोधन करने के कारण केन्द्र को प्राप्त होने वाले अतिरिक्त साधनों में से अपने आप ही हिस्सा मिल जाएगा ।[1]

5.15 इस समय राष्ट्रीयकृत बैंकों और भारतीय जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, नाबार्ड, आदि जैसी केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से बचत पर जोर दिया जा रहा है और ऐसे कोई संस्थागत प्रबंध नहीं किए गए हैं जिनके माध्यम से राज्य इन संस्थाओं (जिन पर हम पूर्णतया आश्रित हैं) की नीतियों और कार्यचालन के संबंध में तथा कृषि, उद्योग, आवास जल-पूर्ति और शहरी आधारभूत साधनों में पूंजी निवेश संबंध में अपने विचार व्यक्त कर सकें, यद्यपि यह सभी प्रत्येक राज्य के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है । स्थानीय बचतों और स्थानीय पूंजी निवेशों के बीच संबंध नहीं रहा है, जिसका दोनों पर हानिकर प्रभाव पड़ा है । इसके अतिरिक्त जैसाकि पहले बताया जा चुका है, सार्वजनिक क्षेत्र के कुल साधनों में राज्य के हिस्से में भी कमी आई और केन्द्र से राज्यों को पूंजीगत साधनों के अन्तरण में कमी कर के इस कमी के अधिकांश भाग को पूरा कर दिया जाता है । इस प्रवृत्ति में, राज्य की वित्त व्यवस्था और विकास की आवश्यकताओं के हित में, सुधार करना आवश्यक है । हमारा यह दृढ़ विचार है कि सार्वजनिक और निजी—दोनों क्षेत्रों की बचतों का उपयोग सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए ही किया जाना चाहिए, क्योंकि हम ने योजनाबद्ध आर्थिक विकास के दर्शन को अपनाया है । योजना कार्यों के लिए कुल राष्ट्रीय बचत में से कितने अनुपात में पूंजी लगाई जाए यह एक ऐसा मामला है जिस का निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा राष्ट्रीय नीति के विचारों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । केन्द्र और राज्यों के बीच साधनों के वितरण के जिस पक्ष पर पुनर्विचार करना अपेक्षित है वह यह है कि बचत का ज्यादा बड़ा भाग

केन्द्र की कुल एवं औसत प्राप्तियों के एक अनुपात के रूप में राज्यों को मिलना चाहिए। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा विभिन्न राज्यों में धनराशि उधार देने के लिए इस समय निधियों के आबंटन के संबंध में प्रयुक्त क्रेडिट-जमा के अनुपात का मानदंड उपयुक्त नहीं है। क्रेडिट-जमा के अनुपात का उपयोग देश में समग्र रूप से प्रत्येक बैंक के उधार देने संबंधी कार्यकलापों की आयोजना तैयार करने के लिए एक मानदंड के रूप में किया जाना चाहिए। किसी राज्य विशेष को क्रेडिट का आबंटन उस राज्य के व्यापक योजना परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत क्रेडिट संबंधी आवश्यकताओं और उसे खपाने की क्षमता के आधार पर किया जाना चाहिए। बैंकों द्वारा दिए गए कर्जों की वसूली सुनिश्चित करने के लिए सावधानी अवश्य बरती जानी चाहिए।

5.16 यह सही है कि अधिकांश राज्यों को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता और ओवर ड्राफ्ट की समस्याओं के कारण हानि उठानी पड़ती है, कि उनके पास राजस्व के लचीले साधन नहीं होते, कर्जों की वापस अदायगी भी राज्यों का एक बड़ा बोझ बन गया है।

5.17 प्रशासनिक सुधार आयोग के दल के प्रेक्षण वैध प्रतीत होते हैं। ऋणग्रस्तता और कार्यक्रमों का पुन: निर्धारण इस समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता। पुन: निर्धारण और बट्टे खाते के बावजूद राज्य सरकार केन्द्रीय सहायता के रूप में काफी अधिक कर्जे ले लेती हैं और उस पर वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सीमा से भी काफी अधिक इन कर्जों की वापस अदायगी का भार रखता है। केन्द्रीय कर्जों की वापस अदायगी से संबंधित देयताओं का विवरण संलग्न है। हमारा यह सुझाव है कि योजना सहायता में केन्द्रीय ऋण अनुपात की स्वीकृति को उलट दिया जाए और विशेष रूप से निर्धन राज्यों के मामले में, इसमें से 70 प्रतिशत अनुदान के रूप में दिया जाए और 30 प्रतिशत कर्जे के रूप में।

5.18 हम यह नहीं समझते कि सार्वजनिक ऋण लेने की राज्यों की स्वतंत्रता पर विद्यमान प्रणाली में कोई अनुचित रोक लगाई गई है।

5.19 बाह्य-सहायता प्राप्त परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए केन्द्र द्वारा राज्य को दी जाने वाली अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता को योजनाओं की समग्र केन्द्रीय सहायता से अलग करके नहीं समझा जाना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए योजना संबंधी ऋणों पर लगाए जाने वाले ब्याज की दर के समान बाह्य-सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए दी जाने वाली अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता पर ब्याज लगाने को अनुचित नहीं समझा जाना चाहिए।

5.20 हमारे विचार से भारतीय रिजर्व बैंक का कार्य काफी संतोषजनक है और आस्ट्रेलियाई प्रणाली के आधार पर एक अलग ऋण परिषद् बनाना जरूरी नहीं है।

5.21 इस स्थिति के लिए जिम्मेदार मुख्य कारण इस प्रकार है :—

(1) उन राज्यों के मामले में जिनके पास वित्त आयोग की सिफारिश के परिणामस्वरूप पर्याप्त राजस्व अधिशेष नहीं है, यह पाया गया है कि यद्यपि योजना अवधि के दौरान स्कीमों की प्रगति के साथ-साथ और बढ़ती हुई लागत के कारण निधियों की आवश्यकता बढ़ जाती है, किन्तु महंगाई भत्ते की किश्तों की स्वीकृति के कारण और लागत में वृद्धि से संबंधित व्यय की अन्य मदों के कारण राज्यों के साधनों में काफी गिरावट आई है। चूंकि राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता में कोई समान वृद्धि नहीं होती है अत: राज्य के साधन योजनेतर और योजना—दोनों पक्षों में लागत की वृद्धि और मांग की वृद्धि के बीच ही बंट कर रह जाते हैं, जिससे ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जिसमें ओवरड्राफ्ट अपरिहार्य हो जाता है। स्थिति उस समय और भी बिगड़ जाती है जब राज्य के अन्दर ही यह पाया जाता है कि सड़क परिवहन, राज्य विद्युत बोर्ड और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से प्राप्त होने वाली आय में कोई वृद्धि नहीं होती, बल्कि कुछ मामलों में तो यह स्थिति काफी बिगड़ ही जाती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी किसी योजना अवधि के दौरान राज्य सरकारें कुछ नई स्कीमों को योजना स्कीमों के रूप में शामिल करने के लिए या उन्हें योजना स्कीमों के रूप में ही समझने के लिए मजबूर हो जाती है।

(2) केन्द्र द्वारा प्रायोजित/केन्द्रीय क्षेत्र की स्कीमों, बाह्य-सहायता प्राप्त स्कीमों के साधनों की अधिकांश राशि वर्ष के दूसरे भाग में ही दी जाती है, यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि हाल ही में इस संबंध में कुछ सुधार हुआ है, चूंकि इनकी अदायगी किश्तों में की जा रही है। पूर्वोपायों के संबंध में यह सुझाव दिया जाता है कि:—

(क) राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के निर्धारण और वितरण की प्रणाली को पूर्णतया संशोधित किया जाना चाहिए ;

(ख) केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों/केन्द्रीय क्षेत्र आदि की स्कीमों के लिए इस बात की बजाए कि राज्य पहले व्यय करें और बाद में उसकी प्रतिपूर्ति प्राप्त करें, बजट में निर्दिष्ट कुल व्यय की राशि तिमाही अग्रिमों के रूप में राज्य सरकार को दी जानी चाहिए और उसे संबंधित राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त प्रमाणपत्रों के आधार पर किए गए वास्तविक व्यय में से समायोजित किया जाना चाहिए ;

(ग) चूंकि महंगाई भत्ते की किश्तों की स्वीकृति से सबसे अधिक अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होती है और महंगाई भत्ते की किश्तें स्वीकृत करने का मुख्य कारण अर्थव्यवस्था में अत्यधिक मुद्रास्फीति होने के परिणामस्वरूप (जिसके लिए केन्द्र सरकार ही जिम्मेदार होती है क्योंकि मूल्यों की स्थिति में वृद्धि या कमी उसी के हाथ में होती है) जीवन निर्वाह की लागत में वृद्धि होती है, अत: राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में किए गए व्यय को केन्द्र द्वारा हर वर्ष सहायता अनुदान देकर पूरा किया जाना चाहिए ;

(घ) राज्य सरकार को योजना अवधि के दौरान अपनी ओर से योजना में कोई नई स्कीम शामिल नहीं करनी चाहिए। राज्य सरकार को सड़क परिवहन, राज्य विद्युत बोर्ड, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए अनुमानित प्राप्तियों में वृद्धि करने का भरसक प्रयास करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन स्रोतों से प्राप्त होने मिले राजस्व में कोई कमी न हो।

5.22 हमारे विचार से हमारी राज्य सरकार ने योजनाओं हेतु अतिरिक्त साधन जुटाने के लिए राजस्व के विभिन्न स्रोतों की व्यवस्था करने का हर संभव प्रयत्न किया है।

5.23 हम इन विचारों से सहमत नहीं हैं। तथापि, केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि वह अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाली सभी मदों से प्राप्त होने वाले राजस्व का मूल्यांकन करे और सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य-कुशलता बढ़ा कर उसके द्वारा दिए जाने वाले अंशदान में भी वृद्धि करें। उदाहरणार्थ, देश में अर्थव्यवस्था में बिना हिसाब-किताब के धन के प्रसार में वृद्धि व्यवस्था में होने वाले रिसावों का यथेष्ठ प्रमाण है। इस समय सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों द्वारा किए जाने वाले अतिरिक्त उत्पादन में सुधार की काफी गुंजाइश है। एक तर्कसंगत कराधान प्रणाली और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, जो सामाजिक सेवा/बाध्यता के बड़े घटकों के नीचे दबे हुए न हों, के लिए अधिक व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाना ही इसका उपचार हो सकता हैं।

5.24 हां, यह एक स्वस्थ परंपरा होगी।

5.25 हम इस संबंध में 8वें वित्त आयोग के विचारों से सहमत हैं कि संविधान के अनुच्छेद 269 के सदुपयोग से अतिरिक्त राजस्व प्राप्ति की व्यापक संभावना नहीं है।

5.26 चूंकि 8वें वित्त आयोग ने इसमें वृद्धि की सिफारिश की है और केन्द्र सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार कर ली है इसलिए हमें इस विषय पर और कुछ नहीं कहना।

5.27 कोई टिप्पणी नहीं।

5.28 राज्यों को प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराने के प्रावधान में दो मुख्य कमियां है :—

(क) बाढ़ एवं चक्रवातों की स्थिति में मार्जिन राशि के मामलों में किए गए खर्च का 25% राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए। इससे राज्य सरकार के खाते में निरपवाद रूप से घाटा आ जाता है । हमारा सुझाव है कि बाढ़ या चक्रवात के परिणामस्वरूप जीर्णोद्धार, पुनरुद्धार इत्यादि पर किया जाने वाला खर्च, केन्द्र सरकार वहन करें ;

(ख) सूखा राहत पर किए जाने वाले खर्च को अब योजना खर्च मान लिया गया है तथा यह अग्रवर्ती योजना सहायता के अन्तर्गत आता है जिसकी वसूली बाद के वर्षों में की जाती है । हमारा सुझाव है सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में चलाई जाने वाली उपयुक्त सूखा नियंत्रण एवं सुधार योजनाओं तथा रोजगार उपलब्ध कराने के कार्यों के पूरे खर्च के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अनुदान दिए जाने चाहिए ।

5.29 हमारे विचार से ऐसी संस्थाओं की कोई आवश्यकता नही है । हमारी वर्तमान संस्थाएं इन सभी कार्यों को भली-भांति कर रही हैं ।

5.30 यह वक्तव्य इतना आम है कि इसके लिए विशिष्ट टिप्पणियों की आवश्यकता नही है । तथापि हम इस विचार से पूरी तरह सहमत नहीं हैं कि इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि निधि कौन एकत्रित करता है और हमें उनका वितरण किस प्रकार किया जाता है । ये मुद्दे अति महत्वपूर्ण हैं और विशेषकर यह मुद्दा कि निधियों का वितरण किस ढंग से किया जाता है । निधियों का विवेक पूर्ण वितरण वित्त प्रबंध की व्यवस्था के लिए अनिवार्य शर्त है चाहे यह वितरण केन्द्र द्वारा किया जाए या राज्यों द्वारा । तथापि, यह इस मूल प्रश्न के प्रतिकूल नहीं जाता कि कमजोर राज्यों के पास उन्हें सौंपी गई जिम्मेवारियों को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिएं ।

5.31 हम कथन (क) या (ख) से सहमत नही है और हम ऐसे तंत्र की आवश्यकता अनुभव नहीं करते ।

5.32 नियंत्रक महालेखापरीक्षक की भूमिका तथा संविधान के अनुच्छेद 150 एवं 151 में विहित क्रियाविधि से प्रचालन संबंधी कोई कठिनाई आने की संभावना नही है । तथापि, हमने पाया कि राष्ट्रीय लेखों के वर्तमान स्वरूप द्वारा सभी राज्यों के लिए लेखों का तुलनात्मक निर्धारण संभव है, इसलिए यह जारी रहना चाहिए । 1970 में लेखों में कुछ सुधार किए गए थे ।

तथापि, विकास और सरकार की तेजी से बदलती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए यह आवश्यक है कि हर पांच वर्ष बाद लेखों की समीक्षा की जाए और यदि आवश्यक हो तो उनमें संशोधन किया जाए । लेखों को तैयार करने की विधि का भी अध्ययन और उनका आधुनिकीकरण किया जाना चाहिए । इस समय राज्य सरकार के लिए वित्त नियंत्रण की कोई प्रभावी प्रणाली रख पाना संभव नहीं हो रहा क्योंकि आंकड़े 3/4 मास के बाद प्राप्त हो रहे हैं जबकि उनकी प्राप्ति की निर्धारित समय सीमा 1/2 मास है । यहां तक कि भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए किसी दिन विशेष के रोकड़ शेष के आंकड़ों से भी वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलता । उनसे 20/25 दिन पूर्व की अवधि की प्राप्तियों और खर्च की आंशिक स्थिति का ही पता चलता है । हमारा यह भी सुझाव है कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक को राज्य के लेखों के अनुरक्षण की जिम्मेवारी से मुक्त किया जाए और 7वी योजना में यह प्रक्रिया पूरी हो जाएगी ।

5.33 यद्यपि लेखापरीक्षा की वर्तमान प्रणाली काफी हद तक वाउचर लेखापरीक्षा पर निर्भर है, हाल में महालेखापरीक्षक द्वारा मूल्यांकन लेखापरीक्षा को अपनाया गया है । कई महत्वपूर्ण योजनाओं में मूल्यांकन या निष्पादन का आकलन किया जाता है । परन्तु वाउचर लेखा परीक्षा को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि खर्च की अनियमितता, दुर्विनियोजन इत्यादि का पता लगाने के लिए यह लेखापरीक्षा का आधार है । इसके अतिरिक्त, समुचित मूल्यांकन लेखापरीक्षा केवल तभी संभव है जब उन सभी विभागों/कार्यकलापों में निष्पादन बजट व्यवस्था प्रारंभ की जाए जहां कार्य की मात्रा का तर्कसंगत ढंग से निर्धारण हो सकता हो । इसलिए, सभी प्रमुख सरकारी विभागों में वाउचर लेखापरीक्षा को मूल्यांकन लेखापरीक्षा द्वारा अनुपूरित किया जाना चाहिए ।

5.34 भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक (कर्त्तव्य) के सेवा के कार्य एवं शर्तें अधिनियम, 1971 की धारा 13 के उपबंधों के अधीन, नियंत्रक महालेखापरीक्षक का कार्य समेकित निधि से किए गए सारे खर्च और आकस्मिकता निधि एवं लोक लेखे के सभी लेन-देनों की लेखापरीक्षा करना होगा । अधिनियम की धारा 14 के अधीन नियंत्रक महालेखापरीक्षक समेकित निधि से दिए गए अनुदानों एवं ऋणों द्वारा मुख्यतया वित्तपोषित किसी व्यक्ति की सारी प्राप्तियों एवं खर्च की लेखापरीक्षा करेगा । "मुख्यतया वित्त-पोषित" की परिभाषा यह है कि 5 लाख रु० या कुल खर्च 75% से कम न हो। ऐसे अनेक स्वायत्त निकाय है जो लेखापरीक्षा के मामले में नियंत्रक महालेखापरीक्षा के कार्यक्षेत्र से पूर्णतया बाहर है जैसे पंजीकृत समितियां या जिनकी स्थापना पृथक् कानून के तहत की गई है जैसे विश्वविद्यालय या सरकार द्वारा आंशिक या पूर्ण रूप से वित्तपोषित निकाय जिनका प्रशासन, प्रत्यक्ष रूप में सरकार द्वारा चलाया जाता है । यह सुझाव दिया जाता है कि न्यूनतम 25 लाख रु० के कुल खर्च के न्यूनतम 75% निवेश वाले सरकार द्वारा आंशिक या पूर्णतया वित्तपोषित सभी निकायों की लेखा परीक्षा के मामले में नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कार्यक्षेत्र के अधीन लाया जाना चाहिए ।

5.35 नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा प्रस्तुत लेखापरीक्षा रिपोर्ट में निम्नलिखित मदें सम्मिलित होती हैं :—

(1) सिविल खर्च की लेखापरीक्षा रिपोर्ट ।

(2) लेखापरीक्षा रिपोर्ट (राजस्व प्राप्तियां) ।

(3) विनियोजन लेखे ।

(4) वित्तीय लेखे ।

(5) व्यापारिक स्थापनाओं से संबंधित लेखे ।

रिपोर्टों में पूर्णतया परिशुद्ध आंकड़े होते हैं क्योंकि प्रायः ये लिखित दस्तावेजों और संबंधित अधिकारियों से किए गए विचार-विमर्श पर आधारित होते है । तथापि, विनियोजन लेखों में उचत लेखों के प्रचालन के माध्यम से लेखों के समाधान और निर्माण कार्य एवं खरीद के अधीन खर्च दर्ज करने की प्रक्रिया में सुधार की काफी गुंजाइश है । इस समय इन मामलों में लेखे पर्याप्त रूप से परिशुद्ध नहीं होते क्योंकि उनमें निश्चित समय में सही स्थिति का पता नहीं चलता । इस दिशा में सुधार के लिए कम्प्यूटरीकरण के माध्यम से आधुनिकीकरण करना होगा । रिपोर्टों की व्यापकता के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन रिपोर्टों में वही मदें सम्मिलित होती है जो नमूना लेखापरीक्षा के समय लेखापरीक्षक के ध्यान में आती है । यद्यपि सारी प्रणाली का विश्लेषण लेखापरीक्षा द्वारा किया जाता है, फिर भी करण एवं अकरण की ऐसी अनेक मदें हो सकती हैं जिन्हे लेखापरीक्षा रिपोर्ट में सम्मिलित न किया गया हो। इसके अतिरिक्त, बड़ी परियोजना के मामले में लेखापरीक्षा से केवल चूक/व्यतिक्रम की ही कुछ बातों का पता चल पाता है, उससे निष्पादन, समीक्षा एवं उपलब्धियों की विस्तृत तसवीर सामने नहीं आ पाती । व्यापारिक उपक्रमों/परियोजनाओं के मामले में ब्योरेवार व्यापक समीक्षा नहीं की जाती जिसमें लाभकारिता या व्यापारिक व्यावहारिकता का विश्लेषण किया गया हो । यदि इन पक्षों को ध्यान में रखा जाए तो लेखापरीक्षा के स्तर में काफी सुधार हो सकता है ।

5.36 लोकतंत्र में विधायिका तथा इसकी समितियां, खर्च को स्वीकृत करने और उसका नियंत्रण करने के लिए सर्वोच्च प्राधिकारी होती है । यद्यपि केन्द्र या राज्य की लोक लेखा समिति केवल नियंत्रक महालेखापरीक्षक की लेखापरीक्षा रिपोर्ट में विनिर्दिष्ट चूक एवं व्यतिक्रम के व्यक्तिगत मामलों की ही जांच करती है, यह उस खर्च को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त जांच नहीं है जो वास्तव में आदान एवं संवितरण अधिकारियों जैसे विभिन्न प्राधिकारियों, नियंत्रण कार्यालय या विभागाध्यक्ष, प्रशासन विभाग तथा वित्त विभाग द्वारा किया जाता है । जब तक ऊपर से नीचे तक ये सभी एजेंसियां वित्त नियंत्रण के नियमों एवं मानदंडों के पालन में सहयोग नहीं करतीं, नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा चूक एवं व्यतिक्रम के कुछ मामले प्रकाश में लाने से काम नहीं चलेगा । इसलिए, यह सुझाव दिया जाता है कि वित्त नियंत्रण को सुनिश्चित बनाने के लिए इन विभिन्न प्राधिकारियों द्वारा वित्त मानदंडों का सतर्कतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए तथा नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा प्रकाश में लाए गए चूकों के गंभीर मामलों पर लोक

लेखा समिति द्वारा समुचित कारंवाई हेतु विचार किया जाना चाहिए ताकि उनकी पुनरावृत्ति पर रोक लगाई जा सके। समितियां अपनी रिपोर्टों में स्वयं को केवल नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा उठाए गए मुद्दों तक ही सीमित रखने की बजाय, जैसा कि वास्तव में कुछ मामलों में केन्द्र एवं राज्य दोनों की लोक लेखा समितियों द्वारा किया गया है, खर्च में होने वाली सामान्य वृद्धि जैसे मूल मुद्दे भी उठा सकते हैं।

5.37 यह सच है कि प्राक्कलन समिति वर्तमान नीति एवं कार्यक्रमों में सुधार से संबंधित विषयों पर सरकार को सलाह दे सकती है। परन्तु अनुभव से यह तथ्य सामने आया है कि समिति इस संबंध में मूल्यवान सुझाव देने में असमर्थ रही है क्योंकि इसके सदस्यों के पास प्रायः आवश्यक अनुभव और सुविज्ञता नहीं होती। इसलिए, यह सुझाव दिया जाता है कि वे उनके आकलन के लिए सुविज्ञता वाले अनुभवी व्यक्तियों को सहयोजित करें।

5.38 हमारे विचार से, केन्द्र तथा राज्यों के खर्च के औचित्य के मूल्यांकन के लिए किसी पृथक् व्यय आयोग की आवश्यकता नहीं है क्योंकि नियंत्रक महालेखापरीक्षक यह कार्य कुशलतापूर्वक जारी रख सकता है। जिम्मेवारी को द्विशाखित करने से कार्यकुशलता कम ही सकती है। इसके अतिरिक्त जांच एजेंसियों का प्रचुर संख्या में होना वांछनीय नहीं है क्योंकि इससे बहिः क्षेत्रीय कार्य निष्पादन में बाधा पड़ सकती है।

5.39 यह वांछनीय है कि पूर्व खर्च जांच के स्थान पर पश्च-खर्च जांच पर बल दिया जाए। योजनाओं एवं स्कीमों को पूर्व-खर्च चरण में उनकी सामान्य जांच करके स्वीकृत किया जा सकता है और पश्च-खर्च चरण में कार्य एवं खर्च की निगरानी करके विस्तृत जांच की जा सकती है। राज्य सरकारों को संबंधित मंत्रालयों से अपनी स्कीमें मंजूर करवाने में कई बार थोड़ा अधिक समय लगता है। समय नष्ट करने वाली वर्तमान प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकता है। यदि आवश्यक हो तो केन्द्र उपयुक्त मामलों में विशिष्ट परियोजनाओं के लिए बाह्य क्षेत्रीय जांच के लिए विशेषज्ञ नियुक्त करके निर्धारित निधियों के उपयोग को सुनिश्चित कर सकता है। इसके अतिरिक्त इस ओर भी ध्यान दिलाया जाता है कि अनुभव के आधार पर यह तथ्य सामने आया है कि केन्द्र द्वारा चलाई जा रही और उसके द्वारा सहायता प्राप्त स्कीमों एवं परियोजनाओं के विवरण के संबंध में केन्द्रीय प्रशासनिक मंत्रालयों की पूर्व अनुमति प्राप्त करने से विलम्ब होता है। यह जानकारी प्राप्त होने के बाद आठवें वित्त आयोग द्वारा अनुमोदित उन्नयन अनुदानों और व्यवस्थाओं के अधीन आने वाली सभी स्कीमों को स्वीकृत करने के लिए राज्य स्तर पर शक्ति प्राप्त समितियों की स्थापना की गई। केन्द्र द्वारा सहायता प्राप्त/प्रायोजित स्कीमों के मामले में भी केन्द्रीय मंत्रालयों के प्रतिनिधियों एवं विशेषज्ञों को सम्मिलित करके ऐसी संस्थागत व्यवस्थाओं पर विचार किया जा सकता है।

भाग VI

आर्थिक एवं सामाजिक योजना

6.1 केन्द्र और राज्यों के बीच योजना संबंधों में निस्सन्देह तीन कमियां चली आ रही हैं परन्तु चूंकि काफी समय बीत गया है और विशेषकर, हाल में राष्ट्रीय योजनाओं और संबंधित राज्य की योजनाओं के निर्माण के संबंध में केन्द्र और राज्यों के मध्य काफी विचार विनिमय/सलाह-मशविरा/सहयोग होता रहा है। वर्तमान स्थिति में सुधार लाने और सामने आयी कमियों को कम करने, उन्हें समाप्त करने के लिए हम निम्नलिखित उपाय की सिफारिश करेंगे। राष्ट्रीय विकास परिषद्, राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण के लिए नीति लक्ष्य निर्धारित करती है। केन्द्रीय और राज्य स्तरीय योजनाओं का निर्माण इन लक्ष्यों के अनुसार तथा उनकी संबंधित वरीयताओं को ध्यान में रख कर किया जाता है। मुख्य मंत्रियों की परिषद् के साथ संबद्धता के परिणाम स्वरूप नीति लक्ष्यों को राज्य सरकारों की वचनबद्धता प्राप्त हो जाती है। तथापि कई बार नीति निर्धारण की प्रक्रिया में ऐसे मुद्दे भी सम्मिलित होते हैं जिन पर कड़ी निगरानी की आवश्यकता होती है। इसे सुविधा-जनक बनाने के लिए सुझाव दिया जाता है कि :—

(क) योजना के लिए नीति निर्धारण की प्रक्रिया में राज्यों के विकास प्रशासन से संबद्ध कर्मचारियों को सम्मिलित किया जाए।

(ख) राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकों से पहले या बाद में अधिकारी स्तर की बैठकें की जाएं।

(ग) राष्ट्रीय विकास परिषद् के निर्णय पर योजनाबद्ध ढंग से अनुवर्ती कारंवाई की जाए। केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा बनाई गई योजनाओं के संबंध में राज्य सरकारों या कम से कम उनमें से ऐसी राज्य सरकारों को सम्बद्ध करना लाभप्रद रहेगा जो योजनाओं के निर्माण के चरण में उनसे संबंधित हैं। योजना कार्यक्रमों के निर्धारण में केन्द्र की प्रमुख किन्तु प्रभुत्व विहीन भूमिका होनी चाहिए। इससे राज्य के साधन सहित उनकी समस्या को अच्छे ढंग से समझने में आसानी होगी। चूंकि पिछड़े राज्य के पास साधनों की कमी होती है और उन्हें काफी वचनबद्धताएं पूरी करनी होती हैं इसलिए केन्द्र को राज्यों की अन्तर्राज्यीय और/या राष्ट्रीय महत्व की बड़ी परियोजनाओं को अपने साधनों से लागू करने का कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए।

6.2 राष्ट्रीय विकास परिषद् को एक सांविधिक आधार देने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इससे उल्टे इसके कार्य में रुकावट आएगी। अनुमोदित योजनाओं को लागू करने के लिए राज्यों को वित्तीय साधन उपलब्ध कराने में भी समस्याएं आ सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, राज्य योजनाओं के अनुमोदन के लिए सांविधिक शक्तियों वाले किसी शीर्ष निकाय का निर्माण विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों के भी विपरीत होगा। तर्क के आधार पर किसी एक सांविधिक परिषद् से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह सभी राज्यों के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद् के रूप में कार्य करे। तथापि राष्ट्रीय विकास परिषद् को एक ऐसी कार्य प्रणाली विकसित करनी चाहिए जिसे "कारबार के नियमों" के एक सेट में सम्मिलित किया जा सके।

6.3 राज्य योजना स्कीमों के संबंध में योजना आयोग प्रायः राज्य सरकारों की सलाह से कार्य करता है। तथापि, यह वांछनीय होगा कि केन्द्रीय योजना तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीम के निर्माण में भी राज्य सरकारों को संबद्ध किया जाए। इसके परिणाम स्वरूप वे स्कीमों को लागू करने और अपनी स्थानीय परिस्थितियों/आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें समायोजन करने के लिए अपने साधनों की पूर्व-समीक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे। इस संबंध में प्रश्न 6.1 के उत्तर में दिए गए सुझावों पर विचार किया जाए।

6.4 हम न तो योजना आयोग को एक स्वायत्त निकाय बनाने के हक में हैं, और न ही एक-पूर्ण परामर्शदाता निकाय बनाने के हक में हैं। और न ही हम यह व्यवहार्य मानते हैं कि इसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाए। इस समय योजना आयोग में केन्द्रीय मंत्री, अर्थशास्त्री प्रौद्योगिक एवं प्रबंध विशेषज्ञ होते हैं और इसे बनाए रखा जाना चाहिए। तथापि राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय योजनाओं के निर्माण के लिए योजना आयोग को कार्य करने की पूरी स्वायत्तता दी जानी चाहिए।

6.5 यह सम्भव है कि एक स्वायत्त निकाय के रूप में योजना आयोग "केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के साथ निकट मेल मिलाप और परामर्श से कार्य न कर सकें"। चूंकि भारत में और विशेषकर पिछड़े राज्यों में योजना के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ होना बाकी है, इसलिए एक स्वायत्त निकाय के बजाय प्रशासनिक और परामर्शदायी दोनों प्रकार के कार्य करने वाला योजना आयोग लाभप्रद होगा जो राष्ट्रीय स्तर पर "योजना, निवेश और निर्णय लेने की प्रक्रिया" का निरीक्षण करे।

6.6 राज्य स्तरीय योजनाओं का निर्माण करते समय राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखा जाता है ताकि वे राष्ट्रीय उद्देश्यों में सहायक हो सकें। इससे राज्यों की स्वायत्तता घट नहीं जाती। राज्य योजना, स्कीमों की, योजना आयोग द्वारा समीक्षा किए जाने के संबंध में, प्रश्न 6.1 और 6.3 के उत्तर में यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्र को योजना नीतियों के निर्माण में प्रमुख किन्तु प्रभुत्वविहीन भूमिका निभानी चाहिए।

प्रश्न 6.1 और 6.3 के जवाब में दिए गए अन्य सुझावों को अपनाने से राज्य की स्वायत्तता को किसी भी तरह क्षति पहुंचाए बिना राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को बनाए रखने में काफी हद तक मदद मिलेगी।

6.7 योजना आयोग के गठन के समय से साधनों की उपलब्धता के संदर्भ में राज्य योजना के आकार के लिए, आयोग के माध्यम से केन्द्रीय सहायता (ऋण एवं अनुदान) देने में कोई असुविधा नही है। तथापि, जैसा कि पहले बताया जा चुका है राज्य योजना के लिए दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता की मात्रा वित्त मंत्रालय के अनुरोध पर अब तदर्थ आधार पर निर्धारित की जाती है। इसमें संशोधन करने की आवश्यकता है क्योंकि इस व्यवस्था के तहत किसी योजना अवधि के दौरान जब कि उनकी क्षतिपूर्ति के लिए केन्द्रीय योजना के साधनों में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है जिससे मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिलता है, राज्य योजनाओं को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में उसके अनुरूप वृद्धि नहीं हो पाती। इसलिए हम, योजना के लिए योजना तथा केन्द्रीय सहायता की कुल प्रमात्रा को राज्यों की योजनाओं में सम्मिलित करने के लिए ऐसे तंत्र के विकास की वकालत करेंगे जिससे राज्यों के साधनों में होने वाली यह क्षति रुक जाए।

6.8 केन्द्रीय योजना सहायता के निर्धारण में गाडगिल फार्मूले में जनसंख्या को 60%, पिछड़ेपन को 20% और राज्य के कर निर्यातों और विशेष समस्याओं दोनों को दस-दस प्रतिशत अधिप्रतिनिधित्व दिया जाता है। राज्यवार हिस्सों को कम विकसित राज्यों के हक में परिवर्तित करने के महत्वपूर्ण कार्यों के लिए फार्मूले को अधिक प्रगामी बनाने में सफलता नहीं मिली है। कुल आबादी के अनुसार समायोजित आय का फार्मूला यद्यपि काफी प्रगतिशील है, यह आबंटनीय साधनों में से केन्द्रीय सहायता के पात्र सभी राज्यों के समानुपातिक हिस्सों को भी ध्यान में रखता है। इसलिए गरीब राज्यों का हिस्सा कम हो जाता है। चूंकि ऐसे पिछड़े राज्यों को जिनकी अधिकतर जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है केन्द्रीय सहायता के बड़े हिस्से की आवश्यकता होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि गाडगिल फार्मूले में निम्नलिखित ढंग से संशोधन किए जाएं :—

(क) गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या के लिए कर प्रयासों का निर्धारण उपभोग्य आवश्यकताओं को निकालकर होने वाली आय पर किया जाए ;

(ख) जनसंख्या को दिए गए अधिप्रतिनिधित्व को 60% से घटाकर 50% कर दिया जाए ; और

(ग) पूरे भारत की औसत से नीचे की प्रति व्यक्ति आय को दिए गए अधिप्रतिनिधित्व को 20% से बढ़ाकर 30% कर दिया जाए।

6.9 सातवीं योजना में कुल जनसंख्या के अनुसार समायोजित आय फार्मूले के आधार पर केन्द्रीय सहायता भी बंद कर दी जाए। इसके अतिरिक्त, इस समय गाडगिल फार्मूले के अनुसार सहायता का 30% अनुदानों के रूप में और 70% ऋणों के रूप में दिया जाता है। इससे राज्यों पर एक बहुत बड़ा अनुचित बोझ पड़ता है। यह सुझाव दिया जाता है कि जैसा हमने पहले सुझाया है कि फार्मूले में ऐसा संशोधन भी किया जाए कि उसमें सहायता का 70% अनुदान के रूप में देने और 30% ऋणों के रूप में देने की व्यवस्था हो।

6.10 केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें बड़ी संख्या में आरंभ करने से कभी कभी राज्य योजना की प्राथमिकताओं का रूप बदल जाता है। बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए निधियों की पूर्व-व्यवस्था भी समस्या की गंभीरता में वृद्धि करती है। राज्य सरकारों को केन्द्रीय सेक्टर की स्कीमों की तुलना में अपनी प्राथमिकताएं निर्धारित करने के योग्य बनाने के लिए यह लाभप्रद रहेगा यदि योजना प्रारंभ करते समय केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय योजना के तहत आने वाले सभी कार्यक्रमों को पेश किया जाए तथा उन्हें ध्यान में रखा जाए। योजना अवधि के दौरान नई केन्द्रीय सेक्टर स्कीमें प्रारंभ करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जाए। चूंकि केन्द्रीय सेक्टर स्कीमों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करना होता है, यह भी उचित होगा कि उन्हें सारा धन केन्द्रीय साधनों से दिया जाए ताकि राज्य सरकारें अपने अल्प साधनों का उपयोग, उनकी अपनी अन्य स्कीमों के लिए कर सकें।

6.11 योजना आयोग तथा राज्यों के निगरानी तंत्रों को मजबूत बनाया जाना चाहिए। यद्यपि योजना आयोग द्वारा समय-समय पर दिशा-निर्देश जारी किए जाते हैं, फिर भी राज्यों द्वारा उनका समान रूप से पालन नहीं किया जाता। राज्यों के विकास के स्तर भिन्न-भिन्न होने के कारण प्रभावी निगरानी के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न स्तरों की कार्यप्रणाली एवं संगठन के लिए दिशा-निर्देश उपलब्ध कराए जाएं। निचले स्तरों पर भी निगरानी की पर्याप्त व्यवस्था की जाए। चूंकि विभिन्न बाह्य: क्षेत्रीय एजेंसियों द्वारा बहुत से छोटे कार्यक्रम चलाए जाते है, सामान्यत: स्टाफ की अपर्याप्तता के कारण, उनका जोर निगरानी और समीक्षा की बजाय उन्हें लागू करने पर अधिक रहता है। योजना आयोग से समय-समय पर मिलने वाली सहायता और निदेशों के परिणाम स्वरूप राज्य स्तर पर निगरानी प्रक्रिया में सहायता मिलती है परन्तु उप-राज्य स्तर पर निगरानी की आवश्यकताओं के संबंध में अभी भी बहुत कुछ करना अपेक्षित है। इन परिस्थितियों में, यह लाभप्रद रहेगा यदि योजना आयोग द्वारा विभिन्न राज्यों को उनकी आवश्यकता अनुसार योजना कार्यक्रमों की निगरानी और उनके मूल्यांकन के लिए स्कीमवार दिशा-निर्देश उपलब्ध कराए जाएं। राज्य स्तर पर प्रशिक्षण को मजबूत किया जाए और उप-राज्य स्तरों पर निगरानी और मूल्यांकन प्रयासों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए संगठनात्मक सहायता उपलब्ध कराई जाए।

6.12 संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए विकेन्द्रित नियोजन आवश्यक है। विकेन्द्रित नियोजन के रास्ते में साधनों का अभाव एक मुख्य बाधा है। राज्य के साधनों में सुधार के लिए केन्द्रीय सहायता की उपलब्धता से संबंधित सुझाव, प्रश्न 6.8 और 6.9 के उत्तरों में दिए गए हैं। बहुत सारे केन्द्रीय सेक्टर की और बाहर से सहायता प्राप्त स्कीमों के कार्यान्वयन को ध्यान में रखते हुए राज्य स्तरीय योजना स्कीमों के लिए पर्याप्त निधियां निर्धारित करने के रास्ते में आने वाली कठिनाईयों को भी प्रश्न 6.10 के उत्तर में दर्शाया गया है। वर्तमान बाधाओं को दूर करने के लिए सुझाव दिए जाते हैं कि :—

(क) योजना नीतियों का निर्माण साधनों को ध्यान में रखकर किया जाए और योजना कार्यक्रमों के पीछे पर्याप्त साधन होने चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप राज्यों के लिए फार्मूला आधारित साधन निर्धारण व्यवस्थाओं के, पुन: स्थिति निर्धारण की आवश्यकता होगी।

(ख) राष्ट्रीय विकास परिषद् और सहभागी राज्यों के अन्य सरकारी ग्रुपों में केन्द्रीय प्राथमिकताओं और साधनों की सहायता के खातों के संबंध में एक व्यापक करार किया जाना चाहिए। अन्य सेक्टरों में पारस्परिक विचार विमर्श के बाद राज्यों द्वारा की जाने वाली पहल का समर्थन किया जाए।

(ग) राज्यों में चल रही विकेन्द्रीकृत योजनाओं की देखभाल राज्यों द्वारा की जाए और इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त आर्थिक मदद दी जाए।

6.13 विभिन्न राज्यों के राज्य योजना बोर्डों का संवर्धन एवं विकास भिन्न भिन्न प्रकार से हुआ है। तथापि, जैसे जैसे राज्य योजना बोर्डों का अनुभव बढ़ रहा है, राष्ट्रीय योजनाएं उत्तरोत्तर अधिक सूचनात्मक होती जाएंगी और उनका आदेश सूचक स्वरूप घटता जाएगा फिर भी, अभी समय नहीं आया है जब हम यह कह सकें कि कोई सूचनात्मक राष्ट्रीय योजना बनाई जा सकती है और राज्यों के योजना निर्माण में योजना आयोग तथा केन्द्रीय मंत्रालयों की भूमिका को घटाकर न्यूनतम कर दिया जाए। वास्तव में हमारे जैसी मिश्रित अर्थ व्यवस्था में राष्ट्रीय योजना के आदेशात्मक एवं सूचनात्मक दोनों रूप चलते रहेंगे, जो इस बात पर निर्भर करेंगे कि हमारा संबंध अर्थ व्यवस्था के कौन से सेक्टर से है तथा कौन सी मुख्य परियोजनाओं पर कार्रवाई हो रही है।

भाग VII

विविध

7.1 6 अप्रैल, 1948 के औद्योगिक नीति संकल्प के नीति लक्ष्यों को निरूपित करते हुए संसद ने उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 लागू किया था। समय समय पर 1956, 1970, 1973, 1980 तथा 1981 के औद्योगिक नीति संकल्पों में उद्घोषित भारत सरकार के नीति लक्ष्यों में आए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए इसमें समय समय पर संशोधन किए गए हैं। इन नीति संकल्पों में योजना लक्ष्यों को विशेषकर उन योजना लक्ष्यों को जिनमें औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों का अधिमान्य विकास तथा क्षेत्रीय असन्तुलन दूर करने और निवेशों के उचित वितरण द्वारा आर्थिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा

देने और मुख्य आनुषंगिक कार्यक्रम से जुड़ी केन्द्रीय योजनाओं की स्थापना जैसे लक्ष्यों को ध्यान में रखा गया है। इस संबंध में उपर्युक्त अधिनियम द्वारा आरम्भ की गई लाइसेंस प्रणाली को कुछ गिने चुने महानगरी केन्द्रों में उद्योगों के केन्द्रित हो जाने के कारण बने क्षेत्रीय असन्तुलन को ठीक करने के लिए उद्योगों के छितराव के साधन के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। आजादी से पहले उड़ीसा राज्य का कोई उद्योगीकरण नहीं हुआ और केन्द्रीय सेक्टर परियोजनाओं में निवेशों और पिछड़े तथा बिना उद्योग वाले जिलों में उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों द्वारा दी गई भरपूर सहायताओं के बावजूद यह आज भी औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ राज्य है। इसलिए यह जरूरी है कि पिछड़े क्षेत्रों में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में उद्योग स्थापित करने के आजकल प्रचलित केन्द्रीय लाइसेंस प्रणाली को पूरे जोर शोर से लागू किया जाए। इसलिए हम इस बात से सहमत नहीं है कि प्रथम अनुसूची में संशोधन करके मूल सांविधानिक स्कीम को नष्ट कर दिया गया है। सूची 1 को मद 52 के अनुसार संसद को उन सभी उद्योगों के संबंध में कानून बनाने की शक्तियाँ प्राप्त हैं जिन पर केन्द्र के नियंत्रण को संसद ने कानून बनाकर लोकहित के लिए समयोचित घोषित कर दिया है चूंकि योजना लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए औद्योगिक अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची में सम्मिलित अधिकतर उद्योगों का नियंत्रण और विनियमन आवश्यक है इसलिए इस विनियमन को लोकहित के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि हम उद्योग (विकास एवं विनियमन) अधिनियम की स्कीम में परिकल्पित लाइसेंस प्रणाली का समर्थन करते है, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अधिनियम की प्रथम अनुसूची के कार्य क्षेत्र का विस्तार करने और स्वयं प्रश्नावली में नाम निर्दिष्ट बहुत सी कम महत्वपूर्ण मदों को इसमें शामिल करने के कार्य में कुछ हद तक कठोरता अपनाई गई है जिसके परिणाम स्वरूप बुनियादी परियोजनाओं में काफी हदतक विलम्ब हुआ है। रेजर ब्लेड, गोंद, माचिस की तीलियाँ, रद्दी माल, पेंट, वार्निश, तुला मशीनों, सिलाई मशीनों, लालटेनों, स्टील फर्नीचर, छुरी कांटे, प्रेशर कुकरों, कृषि के औजारों, साइकिलों, जूतों, घरेलू उपकरण एवं औजारों, टाईपराइटरों, चीनी मिट्टी तथा मिट्टी के बर्तन, तेल वाले स्टोव इत्यादि मदों को लाइसेंस व्यवस्था को राज्य सरकारों को देना लाभप्रद रहेगा। यदि आवश्यक हो तो इन मदों को लाइसेंस देने के संबंध में, भारत सरकार द्वारा विस्तृत दिशा निर्देश दिए जा सकते हैं जिनके अनुसार औद्योगिक यूनिटों को लाइसेंस देने से संबंधित राज्य सरकार की शक्तियों को विनिर्यमित किया जाएगा।

हालांकि हम इस बात से सहमत नहीं है कि मूल सांविधानिक स्कीम को समाप्त कर दिया गया है, फिर भी हमारे विचार से उपभोग की वस्तुओं, आम तौर पर क्षेत्रीय बाजारों की मांग की पूर्ति करने वाली मदों के मामले में यह बेहतर होगा कि संसद कानून में संशोधन करके इनको लाइसेन्स देने की शक्ति, राज्य सरकारों को प्रदान कर दें।

7.2 जैसा कि पूर्ववर्ती पैरों में कहा गया है, संसद उन सभी उद्योगों के बारे में कानून बनाने में सक्षम है, जिनका विनियमन "लोकहित", में समयोचित समझा गया हो। संविधान में "राष्ट्रीय लोकहित" का कहीं भी जिक्र नहीं है इसलिए हमारे विचार से किसी उद्योग को विनिर्यमित करने के लिए कानून बनाने की, संसद को सक्षमता को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए "राष्ट्रीय लोकहित" को परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं है। योजना आयोग द्वारा निर्मित और राष्ट्रीय विकास परिषद् जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि भी होते है, द्वारा अनुमोदित पंचवर्षीय योजनाओं में सम्मिलित नियोजित विकास के राष्ट्रीय लक्ष्यों को कार्यान्वित करने के लिए, यह आवश्यक है कि उद्योगों के विकास एवं वितरण को नियंत्रित एवं विनिर्यमित करने की, संसद की विधायी शक्तियों को किसी भी रूप में सीमित न किया जाए। तथापि, जैसा कि प्रश्न संख्या 7.1 के उत्तर में हमने कहा है, अधिकतर वस्तुओं और उपभोग किस्म की वस्तुओं को जो क्षेत्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, प्रथम अनुसूची में से निकाला जा सकता है और उनकी अलग से सूची बनाई जा सकती है जिनके लिए लाईसेंस देने की शक्तियां, राज्य सरकार को दी जा सकती हैं।

7.3 इस समय उद्योग रहित जिला में किए गए स्थानान्तरण को छोड़कर औद्योगिक परियोजनाओं के स्थान परिवर्तन से संबंधित सभी मामलों में, भारत सरकार के उद्योग मंत्रालय का अनुमोदन आवश्यक है। यह बहुत असुविधाजनक सिद्ध हुआ है जिसके परिणाम स्वरूप भारत सरकार के साथ काफी लंबे समय तक पत्र व्यवहार करना पड़ा है और इससे औद्योगिक परियोजनाओं की स्थापना में काफी विलंब हुआ है। यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसे स्थान परिवर्तन के अनुमोदन की शक्तियाँ, राज्य सरकार को दे दी जाएं बशर्ते यह भारत सरकार द्वारा अनुमोदित सम्पूर्ण नीति रूपरेखा के अनुरूप हो, दूसरे शब्दों में यदि किसी परियोजना को पिछड़े जिले में स्थापित करने के लिए अनुमोदित किया गया हो तो राज्य सरकार उसको किसी अन्य क्षेत्र में स्थानान्तरित करने की अनुमति दी जा सकती है।

मूल आवेदक के आशय पत्र को दूसरे पक्षकार को अन्तरित करने के मामले में, इस समय उद्योग मंत्रालय भारत सरकार के पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि यह शक्ति इस शर्त के साथ राज्य सरकार को दे दी जाए कि इन पर भारत सरकार द्वारा जारी दिशा निर्देशों और एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार पद्धति (एम०आर०टी०पी०) अधिनियम के उपबंधों के अनुसार अमल किया जाएगा ताकि आर्थिक शक्ति को एक स्थान पर केन्द्रित होने के लक्ष्यों एवं इस संबंध में भारत सरकार के अन्य नीति-निर्देशों का ध्यान रखा जाएगा। हाल में, भारत सरकार के प्रशासनिक मंत्रालयों को कुछ मदों के मामले में विदेशी सहयोग से संबंधित शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि राज्य सरकार को संबंधित राज्यों की औद्योगिक परियोजनाओं के लिए विदेशी सहयोग की व्यवस्थाओं को मंजूर करने की ऐसी ही शक्तियाँ दी जाएँ। इन शक्तियों का उपयोग इस उद्देश्य के लिए भारत सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के तहत किया जाए। इस समय पूंजी निर्गम पूंजीगत वस्तुएँ एवं कच्चे माल के आयात के लिए केन्द्रीय समाशोधन प्राप्त करने में काफी कठिनाई होती है पूंजी-निर्गम के समाशोधन प्रस्तावों की शक्तियाँ जो इस समय पूंजी निर्गम के नियंत्रक के पास होती हैं, को राज्य सरकारों को सौंपा जा सकता है जिनका प्रयोग प्रत्येक राज्य के लिए भारत सरकार द्वारा निर्धारित कुल सीमा के तहत किया जाएगा। साथ-साथ पूंजी-निर्गम के सभी प्रस्तावों के समाशोधन में तेजी लाने के लिए पूरी शक्तियों वाले क्षेत्रीय केन्द्र स्थापित किए जाएं।

क्योंकि पूंजीगत वस्तुओं तथा कच्चे माल के आयात से संबंधित विस्तृत दिशा-निर्देश उपलब्ध हैं इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसी मदों के आयात के विशिष्ट प्रस्तावों के समाशोधन की शक्तियाँ राज्य सरकारों को देना लाभप्रद रहेगा। ऐसी शक्तियां मिलने के परिणामस्वरूप राज्य सरकार तथा राज्य विकास एजेंसियां इस संबंध में भारत सरकार द्वारा जारी राष्ट्रीय दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए सभी औद्योगिक परियोजनाओं का तेजी से समाशोधन करने में समर्थ हो जाएंगी।

साथ-साथ पूंजीगत वस्तुओं एवं कच्चे माल तथा विदेशी सहयोग के सभी प्रस्तावों के समाशोधन की पूर्ण शक्तियों वाले क्षेत्रीय बोर्डों की भी स्थापना की जाए जिनमें क्षेत्रीय अंचल में आने वाले राज्यों के प्रतिनिधि हों।

7.4 लघु, बहुत छोटे तथा कारीगर सेक्टरों की सहायता करने के लिए राज्य सरकार ने कई कदम उठाए हैं। विशेषतया हथकरघा, चमड़े का सामान बनाने वाले तथा हस्तशिल्पों में कार्य करने वाले कारीगरों को सहकारी समितियों के रूप में संगठित कर दिया गया है। जिलास्तर पर, उनके उत्पादों को बेचने तथा उनके कच्चे माल की आवश्यकताओं की पूर्ति में प्राथमिक सरकारी समितियों की सहायता करने के उद्देश्य से बहु-उद्देशीय सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं। वास्तव में इन्हें राज्य स्तरीय सहकारी समितियों से जोड़ दिया गया है। इन स्थानों पर कच्चे माल के बैंक भी स्थापित किए गए हैं जहाँ पर किसी व्यवसाय विशेष के कारीगरों की भरमार है। लघु उद्योग निगम भी लघु क्षेत्र के उद्योगों के कच्चे माल तथा विपणन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाँच करता है।

इसके बावजूद, तथ्य यह है कि ये संगठन लघु, बहुत छोटे तथा ग्रामीण सेक्टरों के सभी कारीगरों एवं उद्यमियों को सम्मिलित करने में सफल नहीं हो पाए हैं, और न ही वे खुले बाजार के कारबार के विकल्प के रूप में स्वयं को कार्यात्मक रूप में स्थिर बनाने में सफल हुए है। यह आवश्यक है कि इन सहकारी समितियों को स्थिर करने के लिए भारत सरकार विशेष सहायता अनुदानों के रूप में इनकी सहायता के लिए आगे आए। अनुसंधान एवं विकास के क्षेत्र

सभी राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं को परंपरागत शिल्प के लिए ऐसी समुचित प्रौद्योगिकियों का पता लगाने में पहल करनी चाहिए जिनसे कठिन एवं नीरस कार्य की समाप्ति के साथ-साथ बेहतर गुणवत्ता के उत्पाद, अधिक उत्पादन सुनिश्चित हों तथा साथ ही इससे बहुत अधिक मजदूरों की नौकरियां समाप्त न होने पाएं। इसलिए, प्रौद्योगिकी अंतरण एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जहां केन्द्रीय एजेंसियों को राज्य स्तर की संस्थाओं की सहायता के लिए आगे आना चाहिए। इसी प्रकार, वे निर्यात की संभावनाओं एवं अखिल-भारतीय बाजारों का पता लगाने तथा मांग की प्रवृत्तियों, फैशन अभिकल्पों तथा जहां आवश्यक हो वहां समुचित प्रौद्योगिकियों के अंतरण में एक अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

7.5 यदि हम केन्द्रीय वित्तपोषक संस्थाओं के निष्पादन का मूल्यांकन करें तो अनिवार्यत: इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि उड़ीसा जैसे पिछड़े प्रदेशों में वित्त-पोषक संस्थाओं के माध्यम से बहुत कम निवेश किया गया है। इस संबंध में जो घिसा-पिटा तर्क दिया जाता है वह यह है कि उद्योग स्थापित करने और परिणामस्वरूप ऋणों की मंजूरी के लिए पर्याप्त आवेदन पत्र नहीं आते। यद्यपि हाल में, केन्द्रीय वित्तपोषक संस्थाओं से मिलने वाली निधियों के प्रवाह में सुधार हुआ है, इसका सारा श्रेय राज्य एजेंसियों के प्रोत्साहनात्मक प्रयासों को जाता है। आजकल जब किसी परियोजना के वित्तपोषण में लाइसेंसदाता प्राधिकरण के अतिरिक्त केन्द्रीय वित्तपोषक संस्थाओं की भी बहुत बड़ी भूमिका होती है, इसलिए उनके स्थान निर्धारण के संबंध में यह सुझाव देना बिल्कुल संगत होगा कि उन्हें उड़ीसा जैसे औद्योगिक रूप से पिछड़े राज्यों में परियोजनाओं को अधिक प्राथमिकता के आधार पर वित्तपोषित करने के लिए प्रोत्साहित करने के आदेश दिए जाएं। इस संबंध में एक स्पष्ट नीति-निर्धारण से बहुत मदद मिलेगी। हम ऐसे नीतिलिखत को तैयार करने की जोरदार सिफारिश करेंगे।

7.6 यह आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्र द्वारा किए जाने वाले निवेश क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने के एवं देश के सभी भागों में उद्योगों के न्याय-संगत वितरण को सुनिश्चित बनाने के लक्ष्य को आवश्यक महत्व देते हुए प्रति-स्पर्धी स्थलों के अवस्थानात्मक लाभों का निष्पक्ष मूल्यांकन करने के बाद किए जाएं। इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु गठित राष्ट्रीय समिति ने गुजरात, हरियाणा, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल को औद्योगिक रूप से विकसित राज्य घोषित करने की सिफारिश की है। इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया जाए और मुख्य केन्द्रीय औद्योगिक परियोजनाओं में किए जाने वाले निवेशों पर निर्णय लेते समय अन्य राज्यों को महत्व दिया जाना चाहिए निहितार्थ के अनुसार जिन्हें औद्योगिक रूप से पिछड़े राज्य माना जाएगा। इस संदर्भ में, यह सुझाव दिया जाता है कि भारत सरकार के सार्वजनिक निवेश बोर्ड, जो केन्द्रीय सेक्टर के सभी प्रस्तावों पर विचार करता है में इस प्रयोजन के लिए बनाई गई संक्षिप्त सूची में सम्मिलित राज्य सरकारों के प्रतिनिधि भी होने चाहिए। इससे यह सुनिश्चित हो जाएगा कि संबंधित राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा सभी स्थलों के तुलनात्मक लाभों के बारे में बोर्ड के सामने पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

7.7 हां। बंगलूर, हैदराबाद एवं भोपाल जैसे कुछ चुने हुए स्थानों पर भारी उद्योगों में प्रत्यक्ष केन्द्रीय निवेश के मामले में बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। यह सुझाव दिया जाता है कि प्रत्येक पिछड़े राज्य में मशीनी औजारों, बिजली के भारी साज-सामान, इलेक्ट्रानिक विकास, भारी मशीनरी तथा संरचनात्मक साजसामान जैसे भारी उद्योगों तथा अन्य ऐसे उद्योग जिनमें भारी निवेश की आवश्यकता होती है में केन्द्रीय सेक्टर के निवेशों के लिए विकसित एक केन्द्रीय क्षेत्र होना चाहिए। पिछड़े राज्यों को केन्द्रीय क्षेत्र में भारी निवेशों की आवश्यकता वाले ऐसे उद्योगों के आबंटन में पर्याप्त महत्व दिया जाना चाहिए।

7.8 इस समय, उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न केन्द्रीय सेक्टर के प्रोत्साहनों के लिए पिछड़े जिलों/क्षेत्रों एवं उद्योग विहीन जिलों की पहचान की गई है। उड़ीसा के मामले में जिले को एक इकाई माना गया है यद्यपि विशिष्ट क्षेत्रों (खण्डों) को ज्यों ही वे औद्योगिक रूप से विकसित हो जाते हैं प्रोत्साहन स्कीमों के कार्य-क्षेत्र से निकाल दिया जाता है। यदि राज्य की अर्थ व्यवस्था को मजबूत बनाना है तो यह आवश्यक है कि सारे राज्य को औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ घोषित किया जाए और पिछड़े राज्य के सभी जिलों को वही विशेष प्रोत्साहन दिए जाएं जो किसी उद्योग विहीन जिले को दिए जाते हैं। निस्सन्देह, कुछ विशेष चुने हुए औद्योगिक रूप में अत्यधिक विकसित खण्डों को अपवाद माना जा सकता है।

पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु गठित राष्ट्रीय समिति ने अपनी रिपोर्ट में घरेलू साजसामान से इतर वस्तुएं बनाने वाले उन सभी केन्द्रों को "मौजूदा औद्योगिक केन्द्र" कहा है जिनमें 1971 की जनगणना के अनुसार रोजगार का स्तर 10,000 से ऊपर है। उन्होंने उन क्षेत्रों को औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्र कहा है जो समीपता फार्मूले के आधार पर इन क्षेत्रों के निकट नहीं है। समीपता को मौजूदा केन्द्रों की प्रत्येक श्रेणी में निम्नलिखित कट दूरी (कट-ऑफ) के आधार पर परिभाषित किया गया है।

मौजूदा केन्द्र में गैर घरेलू निर्माण में रोजगार का स्तर	दूरी कि०मी०
150 हजार से ऊपर	150
50 से 150 हजार	100
25 से 50 हजार	75
10 से 25 हजार . . .	50

हमने इन सिफारिशों का समर्थन किया है सिवाय इसके कि किसी मौजूदा औद्योगिक केन्द्र का प्रभाव क्षेत्र राज्य की सीमा से बाहर नहीं माना जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, जमशेदपुर के औद्योगिक केन्द्र होने से उससे सटे हुए उड़ीसा राज्य के क्योंझार एवं मयूरभंज जिलों के औद्योगिक विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। हमारा निश्चित मत है कि किसी मौजूदा केन्द्र का औद्योगिकरण आवेग प्रभाव उस राज्य की प्रादेशिक सीमाओं तक ही सीमित रहेगा जिस राज्य में ऐसे मौजूदा केन्द्र स्थित है। चूंकि प्रत्येक राज्य की प्रशासनिक तथा औद्योगिक संस्कृति भिन्न-भिन्न होती है, यह अपेक्षा करना सच्चाई से मुंह मोड़ना होगा कि पड़ोसी राज्य किसी अन्य राज्य में स्थित मौजूदा केन्द्रों द्वारा उत्पन्न औद्योगिक प्रभाव का पूरा लाभ उठा पाएगा। इसलिए, मौजूदा केन्द्रों से समीपता अनुसार पिछड़े क्षेत्रों को परिभाषित करने की पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु गठित राष्ट्रीय समिति की धारणा तभी लाभदायक होगी यदि किसी मौजूदा केन्द्र के प्रभाव-क्षेत्र को विद्यमान राज्यों की राजनीतिक सीमाओं तक ही सीमित कर दिया जाए। उस स्थिति में, सुंदरगढ़ जिले के कुछ खंडों को छोड़कर जहां राउरकेला इस्पात संयंत्र लगाया गया है, सारा उड़ीसा राज्य औद्योगिक रूप से पिछड़ा क्षेत्र घोषित किए जाने का पात्र होगा। समिति की अन्य सिफारिशों को स्वीकार कर लिया जाए जिनमें गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब तथा पश्चिमी बंगाल को औद्योगिक रूप से उन्नत राज्यों की श्रेणी में रखा गया है। शेष राज्यों, जो परिभाषा के अनुसार औद्योगिक रूप से पिछड़े राज्य बन जाते हैं, को केन्द्रीय इमदाद, वित्तीय रियायत तथा आयकर अधिनियम की धारा 80 एच० एच० के तहत मिलने वाली अन्य रियायतों दोनों के मामले में वरीयता देने का पात्र माना जाना चाहिए। हमने सिफारिश की है कि औद्योगिक रूप से पिछड़े घोषित सभी जिलों क्षेत्रों पर सहायता के तीनों तरीके अर्थात् केन्द्रीय इमदाद, रियायती वित्त तथा आयकर अधिनियम के तहत दी जाने वाली रियायतें, एक साथ लागू किए जाने चाहिएं। समिति की यह सिफारिश है कि केन्द्रीय इमदाद तथा रियायती वित्त का भौगोलिक क्षेत्र वही होना चाहिए जिसका हमने समर्थन किया है।

8.1 हमारे विचार से देश में ऐसे प्राधिकरण की स्थापना का समय आ गया है कि जिस पर अनुच्छेद 307 के तहत विचार किया गया है।

9.1 महत्वपूर्ण क्रियाकलापों का उत्तरदायित्व संभालने के रूप में केन्द्र की भूमिका की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि उस मामले में अखिल भारतीय दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

मृदा संरक्षण के कुछ कार्यक्रम, अन्तर्राज्यीय उलझाव की प्रकृति वाले होते हैं और इन कार्यक्रमों को लागू करने में भारी पूंजी निवेश तथा निकट समन्वय की आवश्यकता होती है। राज्यों के लिए केन्द्र से मिलने वाली वित्तीय

सहायता के बिना ऐसे कार्यक्रमों को अकेले लागू करना सम्भव नहीं होगा। इसलिए अन्य राज्यों के मामले में आने वाली समस्याओं का अन्य राज्यों के साथ समन्वय की सीमा तक मूल्यांकन करते हुए तथा उपयुक्त स्कीमों के कार्यान्वयन हेतु पर्याप्त वित्तीय सहायता देने में और अधिनिर्णय के द्वारा उनके उत्तरकालीन अनुरक्षण के लिए केन्द्र का सम्मिलित होना आवश्यक प्रतीत होता है।

9.2 हम राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) की इस सिफारिश से सहमत हैं कि एक दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य विकसित किया जाए जिसमें राज्य एजेंसी के माध्यम से लागू की जाने वाली केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें अन्ततोगत्वा राज्य सेक्टर का एक भाग बन जाएं और उनकी संख्या कम-से-कम होनी चाहिए। तथापि, किसी राज्य में केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित लागू की जाने वाली स्कीमों की संख्या काफी हद तक समस्या की प्रकृति तथा उससे निपटने के लिए राज्य के पास उपलब्ध वित्तीय साधनों पर निर्भर करेगी। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि इस नई व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप राज्यों की कृषि विकास की विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु केन्द्र से मिलने वाली वित्तीय सहायता की मात्रा में कमी न आने पाए।

9.3 योजना आयोग के तत्वावधान में संयुक्त कार्यदल बनाए जाने के परिणामस्वरूप राज्य विभिन्न केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों को राज्यों से मिलने वाली प्रतिपुष्टि तथा विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों और वातावरण की बाध्यताओं को ध्यान में रखते हुए किए गए आवश्यक परिवर्तनों का लाभ मिलेगा।

9.4 कृषि मदों की न्यूनतम या उचित कीमत निर्धारण में केन्द्रीय प्रोत्साहन काफी लाभप्रद रहा है और हम इसे जारी रखने का पूरा समर्थन करते हैं। सिंचाई के मामले में हमारा सुझाव है कि उन परियोजनाओं के संबंध में स्कीमें मंजूर करने का कार्यक्रम राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाए जिनमें कोई अन्तर्राज्यीय उलझाव नहीं है या जिन्हें विदेश से वित्तीय सहायता नहीं मिलती है और पांच करोड़ रुपए से ऊपर की लागत वाली सभी परियोजनाओं की विस्तृत छानबीन की वर्तमान प्रणाली को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। तथापि एक निश्चित लागत स्तर से ऊपर की परियोजना की निगरानी और मूल्यांकन योजनाओं को अन्तिम रूप देते समय तथा केन्द्रीय तकनीकी एजेंसियों द्वारा भी किया जाना चाहिए।

अन्तर्राज्यीय जल परियोजनाओं के संबंध में केन्द्रीय एजेंसियों द्वारा अनुमोदन प्राप्त करने की आवश्यकता को बनाए रखना लाभप्रद है, अन्तर्राज्यीय जल वितरण के मामले में माध्यस्थम तथा अधिकरण की नियुक्ति की प्रक्रिया अच्छी प्रकार से अधिकथित है और जब भी आवश्यक हो इन्हें अपनाया जाना चाहिए।

जहां तक वनखंडों की नीति तथा प्रशासन का संबंध है, पहले यह पूर्णतया राज्य का विषय होता था। परन्तु हाल में केन्द्र सरकार ने इस विषय को समवर्ती सूची में सम्मिलित करके तथा वन संरक्षण कानून लागू करके बड़े स्तर पर हस्तक्षेप किया है। राज्य सरकारों को वन कटाई के छोटे से छोटे मामलों की सूचना भी केन्द्र सरकार को देनी होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि इस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है तथा वन संपदा के संरक्षण संबंधी राष्ट्रीय लक्ष्यों का पालन करते हुए जिनके बारे में सुस्पष्ट दिशानिर्देश निर्धारित किए जाएं राज्य सरकारों को वन प्रशासन के संबंध में पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। लाभप्रद निवेश जिनमें ऋण भी सम्मिलित हैं के संबंध में केन्द्र द्वारा की गई पहल समुचित रही है तथा हम इन्हें जारी रखने का समर्थन करेंगे।

9.5 भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के माध्यम से कृषि अनुसंधान केन्द्र संबंध में हमारा विचार है कि प्रादेशिक यूनिटें स्थापित करके अनुसंधान संस्थाओं को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए तथा राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों एवं अनुसंधान संस्थाओं को इसमें पूरी तरह सम्मिलित करके इसके द्वारा राज्य में समन्वित परियोजनाओं को भी विस्तार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक के बारे में हमें कोई सुझाव नहीं देना है।

10.1 खाद्यान्नों तथा अन्य अनिवार्य वस्तुओं की कीमत निर्धारण उनके भंडारण लाने ले जाने तथा वितरण के क्षेत्रों में मानदंड निर्धारित करने से पहले राज्यों से सलाह कर ली जानी चाहिए। जब तक राष्ट्रहित में न हो, एकतरफा निदेश देने से बचा जाना चाहिए।

10.2 केन्द्र तथा राज्यों के मध्य उत्पन्न मतभेदों को दूर करने तथा उनके बीच और अधिक सामंजस्य एवं सौहार्द लाने के लिए किसी असांविधिक मंच द्वारा की गई आवधिक समीक्षाएं काफी लाभप्रद हो सकती है।

11.1 अनावश्यक केन्द्रीयकरण तथा राज्य की पहलशक्ति एवं सत्ता में केन्द्र द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप राज्यों के अनुभव के आधार पर सही सिद्ध नहीं होते। मानकीकरण के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप यद्यपि कई बार कठिनाई उत्पन्न हुई हैं, परंतु ऐसी अधिकांश कठिनाइयों को संतोषजनक ढंग से हल कर लिया गया।

उदाहरण के रूप में यह उल्लेख किया जा सकता है कि राज्य सरकार ने राज्य के विश्वविद्यालयों के वर्तमान अधिनियमों का स्थान लेने के लिए एक विस्तृत विधेयक तैयार किया है। वर्तमान अधिनियमों के बहुत से उपबन्धों में, उन अधिनियमों में अन्तर्विष्ट उपबंधों की कार्यप्रणाली के आधार पर आशोधन करने का प्रस्ताव है। विधेयक का प्रारूप केन्द्र सरकार को भेजा गया था जिसने संभवतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग/केन्द्र सरकार द्वारा तैयार आदर्श विधान के आधार पर उसमें कई प्रेक्षण किए/राज्य सरकार का विचार था कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा केन्द्र सरकार द्वारा दिए गए सुझाव इस राज्य के विश्वविद्यालयों में चल रही वर्तमान परिस्थिति के संदर्भ में उपयुक्त या व्यावहारिक नहीं हैं। विचार-विमर्श एवं पत्र व्यवहार के एक लंबे सिलसिले के बाद, केन्द्र सरकार इस बात पर सहमत हुई कि राज्य सरकार विधेयक को अधिनियमित कर सकती है, परन्तु उसने राज्य सरकार के विचारार्थ उस पर कई प्रेक्षण किए। इस संदर्भ में कुछ लोगों का मत है कि यह आवश्यक नहीं है कि केन्द्र सरकार द्वारा किए गए बहुत हद तक केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के प्रबंध के अनुभव के आधार पर तैयार प्रतिमान राज्य के विश्वविद्यालयों के लिए भी उपयुक्त हों और यह भी आग्रह नहीं किया जाना चाहिए कि राज्य के सभी विश्वविद्यालयों, केन्द्रीय प्रतिमान के अनुरूप कार्य करें। राज्यों को केन्द्र सरकार द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता को प्रायः विशेष स्कीमों से जोड़ दिया जाता है। अन्य शब्दों में, वित्तीय सहायता केवल उन्हीं राज्यों को दी जाती है जो केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों को लागू करती है और सहायता की मात्रा स्कीम के लागू करने की सीमा के अनुसार तय की जाती है। अधिकतर स्कीमों में राज्यों की वित्तीय भागीदारी भी परिवर्ती अनुपातों में रहती है। यह आवश्यक नहीं है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें, राज्य की शिक्षा संबंधी प्राथमिकताओं के अनुरूप ही हों। अन्य शब्दों में, यदि राज्य सरकारों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता को विशिष्ट स्कीम से जोड़कर न दिया जाए तो यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार उपलब्ध कराए गए धन को राज्य, उसी किस्म की स्कीम पर खर्च करे तथा उस स्थिति में राज्य सरकार उस धन को प्राथमिकता वाले क्षेत्रों (सेक्टरों) में खर्च करने की स्थिति में होगी। उदाहरण के लिए, यदि किसी राज्य विशेष की शिक्षा संबंधी दूरदर्शन कार्यक्रम आरंभ करने के लिए इसके लिए उद्दिष्ट धन उस कार्यक्रम से जोड़े बिना उपलब्ध कराया जाता है तो राज्य उस राशि का उपयोग दूरदर्शन कार्यक्रम पर खर्च करने की बजाय मूल आधारिक संरचनात्मक तथा उसी क्षेत्र अर्थात् प्राथमिक क्षेत्र के अन्य कमियों की पूर्ति हेतु खर्च कर सकता है।

इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है यदि केन्द्र को तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें, राज्यों की आवश्यकताओं तथा प्राथमिकताओं से संबद्ध हों। तथापि, विभिन्न राज्यों में उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं तथा विभिन्न कक्षाओं के शिक्षा स्तरों के लिए किसी एकरूप मानक की सख्त आवश्यकता है। चूंकि हो सकता है राज्य सरकार के लिए यह संभव न हो कि वह सिर्फ अपने साधनों के सहारे शिक्षा सुविधाओं में एकरूपता ला सके अतः यह आवश्यक है कि केन्द्र सरकार हस्तक्षेप करे और शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े राज्यों को एक न्यूनतम राष्ट्रीय स्तर तक लाने में उनकी सहायता करे। यह भी आवश्यक है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अपेक्षित निपुणता के मानदंड या स्तर के लिए कोई एकरूप मानक होना चाहिए। एकरूपता की आवश्यकता कम से कम मैट्रिक तथा जमा

2 (प्लस-2) स्तरों पर बहुत अधिक है। विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाए जाने वाले मानदंडों में बिल्कुल भिन्नता के कारण न केवल एक राज्य से दूसरे राज्य में आने जाने में बाधा आएगी बल्कि इसमें एक राज्य में अर्जित अर्हताओं का दूसरे राज्य की संस्थाओं द्वारा मान्यता प्रदान न किए जाने का खतरा भी निहित है। चूंकि केन्द्र सरकार ही एकमात्र ऐसी एजेंसी है जो ऐसा कर सकती है इस लिए उसके लिए यह आवश्यक है कि वह न केवल यह सुनिश्चित करे कि विभिन्न राज्यों के पाठ्यक्रम तथा शिक्षण के स्तरों में कम से कम जमा 2 कक्षा तक पर्याप्त एकरूपता हो, बल्कि जो राज्य इन क्षेत्रों में अभी तक न्यूनतम स्तर से नीचे हैं उन्हें न्यूनतम स्तर पर लाने में उनकी सहायता करे।

11.2 (i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दिए गए अनुदान कुल मिलाकर प्रोत्साहक की अपेक्षा अनुक्रियात्मक रहे हैं क्योंकि आयोग विश्वविद्यालयों एवं कालेजों की आवश्यकता का स्वयं निर्धारण करने तथा उसके आधार पर उनकी सहायता करने की अपेक्षा विश्वविद्यालयों तथा कालेजों से प्राप्त प्रस्तावों के प्रति उत्तर स्वरूप कार्य करता है। परिणामस्वरूप, ऐसे मामले भी प्रकाश में आए है जहां आयोग द्वारा कम प्राथमिकता वाली परियोजनाओं को धन दे दिया गया जबकि उच्च प्राथमिकता वाली मदों एवं मूल संरचनात्मक तथा अन्य कमियों जैसे प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों इत्यादि की कमियों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया।

(ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता पक्षपातपूर्ण होती है क्योंकि ऐसा करने में आयोग राज्य विश्वविद्यालयों एवं संबद्ध कालेजों की अपेक्षा जिनमें विद्यार्थियों की 83% संख्या होती है, केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के प्रति अधिक उदार रहता है। प्रति विद्यार्थी औसत वार्षिक निवेश के दृष्टिकोण से भी विभिन्न राज्यों एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों की दिए जाने वाले अनुदानों में काफी विभिन्नता पाई जाती है।

(iii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत अधिकांश अनुदानों में राज्य सरकार और/या संबंधित संस्थाओं द्वारा किया जाने वाला अनुरूपयोजी अंशदान सम्मिलित होता है। काफी स्कीमें इसी कारण कार्यान्वित नहीं की जा सकी क्योंकि राज्य तथा संबंधित संस्थाएं अपना हिस्सा देने में असमर्थ थीं। इस अनुबंध का एक खेदजनक परिणाम यह भी है कि जो राज्य साधनों के अभाव के कारण अपने कालेजों एवं विश्वविद्यालयों की मूल कमियां पूरी करने के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं करा सकता वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अंशदान से वंचित रह जाता है और पिछड़ापन स्थायी हो जाता है।

(iv) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भावी जनशक्ति की आवश्यकता के नए एवं उभरते हुए पाठ्यक्रम प्रारंभ करने के कार्य की उन्नति एवं प्रोत्साहन के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाए हैं। उसकी प्रवृत्ति भावी जनशक्ति की आवश्यकताओं के लिए उत्तरोत्तर क्रांतिक महत्व प्राप्त करते जा रहे नए क्षेत्रों में पाठ्यक्रम प्रारंभ करने के कार्य को बढ़ावा देने की अपेक्षा मौजूदा एवं पारंपरिक विभागों की समर्थन और धन देने की रही है।

(v) साधनों का विभिन्न संस्थाओं तथा विभिन्न विद्या शाखाओं के मध्य आबंटन कुछ निराशा जनक रहा है तथा उससे प्राथमिकता की किसी निश्चित योजना का पता नहीं चलता है।

(vi) उच्च शिक्षा का क्षेत्र अशिक्षाप्रद विषमताओं की एक तस्वीर प्रस्तुत करता है। औसत दर्जे से नीचे की तथा अवमानक संस्थाओं के विस्तृत पठार के बीच में उत्कृष्टता के कुछेक शिखर मौजूद हैं। इस विषमता को दूर करने का कोई स्वैच्छिक प्रयास नहीं किया गया है।

(vii) भूतकाल में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने राज्य सरकार के कालेज शिक्षकों की परिलब्धियों में सुधार लाने के लिए धन दिया है। तथापि यह वित्तीय सहायता सिर्फ वेतन तक ही सीमित रखी गई और इसमें मंहगाई भत्ते/अतिरिक्त मंहगाई भत्ते को सम्मिलित नहीं किया गया। इससे राज्य के बजट पर बहुत बड़ा वित्तीय बोझ पड़ता है। यह सुझाव दिया जाता है कि विश्व विद्यालय अनुदान आयोग को कालेज शिक्षकों की परिलब्धियों में सुधार का सुझाव देते समय अपनी वित्तीय सहायता में वेतन और मंहगाई भत्ते/अतिरिक्त मंहगाई भत्ते दोनों को शामिल करना चाहिए। यह भी सुझाव दिया जाता है कि विश्व विद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि वह अविकसित राज्यों में प्रत्येक जिले के कम से कम एक कालेज को न्यूनतम आदर्श स्तर तक लाने हेतु सभी संभव तरीकों से उसकी सहायता करे।

11.3 शिक्षा के संबंध में एक राष्ट्रीय नीति होनी चाहिए ताकि देश भर में शिक्षा के ढांचे/स्वरूप में कुछ एकरूपता रहे और विद्यार्थी एक राज्य से दूसरे राज्य में आ-जा सकें। इस नीति की विस्तृत रूपरेखा राज्य सरकारों की सलाह पर भारत सरकार द्वारा तैयार की जाए तथा इसके कार्यान्वयन एवं ब्यौरों का कार्य, संबंधित राज्य-सरकारों पर छोड़ दिया जाए। इस नीति के वास्तविक कार्यान्वयन के लिए केन्द्र एवं राज्यों के मध्य, निरंतर विचार-विमर्श एवं परामर्श होना चाहिए।

राज्य सरकारों के शिक्षा मंत्रियों एवं शिक्षा सचिवों तथा विश्वविद्यालय के कुलपतियों का सम्मेलन एक नियमित प्रक्रिया है। इसमें भाग लेने वालों की संख्या अधिक होने तथा इसकी कार्य सूची काफी लम्बी होने के कारण सुस्पष्ट निर्णयों पर पहुंचना कई बार कठिन हो जाता है। ये बैठकें विचारों के आदान-प्रदान का एक मंच उपलब्ध कराने के उद्देश्य से निस्संदेह काफी लाभदायक सिद्ध होती है परन्तु विशिष्ट मुद्दों पर सर्वसम्मत राय कायम करने के कार्य में ये बहुत सफल नहीं रही हैं। यह वांछनीय होगा कि ऐसे क्षेत्रों की पहचान की जाए जिनका मानकीकरण किया जाए या जिनमें एकरूपता लाई जानी चाहिए तथा जिनमें केन्द्रीय हस्तक्षेप आवश्यक समझा गया हो। ऐसे कार्यदल नियुक्त किए जा सकते हैं जो विभिन्न राज्य सरकारों एवं विश्वविद्यालयों से परामर्श करके प्रत्येक क्षेत्र का गहन अध्ययन करें और शिक्षा मंत्रियों के उच्चस्तरीय सम्मेलन में स्वीकृति एवं कार्यान्वयन हेतु अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करें।

11.4 शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना एवं प्रबंध के मामले में अल्पसंख्यकों को अनिवार्यत: निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है :—

(i) सभी अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की शिक्षा संस्था स्थापित करने तथा उसका प्रशासन चलाने का अधिकार होगा ? और

(ii) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में कोई राज्य किन्हीं शिक्षा संस्थाओं के साथ इस आधार पर पक्षपात नहीं करेगा कि उसका प्रबन्ध किसी अल्पसंख्यक समुदाय के हाथ में है।

इन सांविधानिक अधिकारों के कार्यान्वयन के संबंध में कुछ संदेह उत्पन्न हुए है। प्रासंगिक मुद्दों का वर्णन नीचे किया जा रहा है :—

(क) क्या अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद की कोई संस्था स्थापित करने का उस दशा में भी आत्यंतिक अधिकार है जब वे संस्थाएं उस सामान्य मानदंड पर खरी न उतरती हों जो ऐसी ही उन अन्य संस्थाओं पर लागू होता हो जिनकी स्थापना या प्रबंध अल्पसंख्यक समुदाय के हाथ में न हो। इस अपेक्षा का संबंध शिक्षकों की न्यूनतम शैक्षिक योग्यता, कक्षा के लिए पर्याप्त स्थान की व्यवस्था, खेल के मैदान तथा किसी स्कूल के लिए आवश्यक समझी जाने वाली अन्य संरचनात्मक सुविधाओं की व्यवस्था इत्यादि जैसे मानदंडों से हो सकता है।

(ख) क्या किसी संस्था को तब भी एक अल्पसंख्यक संस्था माना जाए जबकि विद्यार्थियों का भारी बहुमत अल्पसंख्यक समुदाय से संबंध न रखता हो और जबकि किसी संस्था में ऐसी विशेषताएं न हो जो उसे अन्य शिक्षा संस्थाओं से अलग करती हों।

(ग) गैर-सरकारी शिक्षा संस्थाओं को कुछ शर्तें पूरी करने की शर्त पर सहायता अनुदान दिया जाता है जिनमें सरकार द्वारा निर्धारित आवश्यक न्यूनतम योग्यता रखने वाले शिक्षकों की नियुक्ति करना शिक्षकों की भर्ती चयन बोर्ड द्वारा करना, नियुक्तियों एवं पदोन्नतियों के लिए सक्षम सरकारी प्राधिकारी से पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना इत्यादि सम्मिलित हैं। इस उपबंध के अनुच्छेद 30(2) के तहत सुस्पष्ट पठन से यह लगेगा कि अल्पसंख्यक संस्थाएं सहायता अनुदान की पात्र तभी होंगी जब वे भी उन्हीं शर्तों को पूरी करें जिन्हें पूरी करने पर गैर-अल्पसंख्यक संस्थाओं को सहायता अनुदान दिया जाता है। एक प्रश्न जो विचारार्थ सामने आता है वह यह है कि क्या ऐसी शर्तें पूरी करने के आग्रह से अल्पसंख्यक संस्थाओं के शिक्षा संस्थाओं का प्रशासन अपनी मर्जी के अनुसार चलाने के अधिकार का उल्लंघन तो नहीं होता।

(घ) क्या सरकार अल्पसंख्यक के संस्थाओं के कर्मचारियों को वेतन एवं भत्तों, सेवा की सुरक्षा मनमाने या कदाशय वाले दण्ड इत्यादि के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने के लिए किसी अधिकार का प्रयोग कर सकती है ।

11.5 शिक्षा कार्यक्रम से संबंधित किसी समस्या के संबंध में केन्द्र और राज्य के मध्य मुद्दों संबंधी किसी संघर्ष का कोई विशेष उदाहरण सामने नहीं आया है ।

12.1 भारतीय संविधान के उपबंध विस्तृत हैं और इसमें बहुत अधिक संदिग्ध क्षेत्र नहीं बचते जिनके लिए संयुक्त राज्य अमेरिका, जहाँ संविधान संक्षिप्त है और उसे अनुभव की भूषा में विकसित होने दिया जाता है, के नमूने पर किसी सलाहकार आयोग की स्थापना की सिफारिश की जाए । राष्ट्रीय लोक वित्त द्वारा अपनाई गई पद्धति के आधार पर केन्द्र राज्य संबंधों पर अनुसंधान अधिकांश शोभक समस्याओं के समाधान के लिए एक स्वागत योग्य कदम होगा ।

राज्य योजना स्कीमों के लिए केंद्रीय ऋणों की चुकौती देयताओं को दर्शाने वाला विवरण

(i) 1980–85 की अवधि (रु० करोड़ों में)

	1980–81 (लेखे)	1981–82 (लेखे)	1982–83 (लेखे)	1983–84 (लेखे)	1984–85 (बजट अनुमान)
(i) केन्द्रीय सहायता	145.26	134.55	145.36	157.93	168.36
(क) उपर्युक्त (i) का ऋण 70% की दर पर .	100.00	94.18	101.75	109.11	117.85
(ii) ऊपर (i) (क) में दिखाए गए समेकित ऋणों पर वास्तव्य देयता :					
(क) पुनर्नियत ऋण 1978–79 (सातवें वित्त आयोग से)	17.01	17.01	17.01	17.01	17.01
(ख) 1979–80 से 1983–84 के दौरान लिए गए ऋण	6.38	13.60	19.64	27.08	34.18
(ग) 1982–83 के दौरान . . . ओवर ड्राफ्टों (24.43 करोड़ रु०) के लिए ऋण .	..	..	..	..	4.89
(घ) जोड़	23.39	30.61	36.65	44.09	56.08

(ii) अवधि—1985–89 (रु० करोड़ों में)

	1985–86	1986–87	1987–88	1988–89
(iii) अनुमानित केन्द्रीय सहायता 200.00 करोड़ रु० प्रतिवर्ष	200.00	200.00	200.00	200.00
(क) उपर्युक्त (iii) पर 70% की दर पर लिया गया ऋण	140.00	140.00	140.00	140.00
(iv) समेकित ऋण एवं (iii) (क) के सामने दर्शाए गए ऋण पर देय वापसी				
(क) पुनर्नियत ऋण 1983–84 (8वें वित्त आयोग द्वारा)	15.30	15.30	15.30	15.30
(ख) 1984–85 के दौरान पूर्वानुमानित ऋण .	7.86	7.86	7.86	7.86
(ग) 1985–86 के दौरान पूर्वानुमानित ऋण .	..	9.34	9.34	9.34
(घ) 1986–87 के दौरान पूर्वानुमानित ऋण .	..	..	9.34	9.34
(ङ) 1987–88 के दौरान पूर्वानुमानित ऋण .	..	..	..	9.34
(च) 1988–89 के दौरान पूर्वानुमानित ऋण .	..	..	..	..
(छ) 1982–83, 1983–84 के दौरान प्राप्त किए गए ओवर ड्राफ्ट के लिए ऋण . . .	13.09	13.09	13.09	13.09
(ज) जोड़ . . .	36.25	45.59	54.93	64.27

मुख्य मंत्री द्वारा आयोग के सामने उड़ीसा सरकार के मामले की प्रस्तुति

तीन दशकों से भी पहले, अपने को एक संविधान देते समय भारत के लोगों ने अपने पिछले ऐतिहासिक अनुभव को देखते हुए समझबूझकर अपनी पसंद एवं विकल्प एक मजबूत केन्द्र वाली परिसंघीय राज्य व्यवस्था के पक्ष में प्रस्तुत किए थे। उस समय देश का शासन चलाने के लिए की गई व्यवस्थाओं में इस बात पर भी विचार किया गया था कि गंभीर आपात्स्थिति के समयों में भारत का परिसंघीय संविधान स्वयं को वास्तव में एक एकात्मक प्रणाली में परिवर्तित कर सकता है। संविधान में राष्ट्रपति को वित्तीय आपातस्थिति की घोषणा करने या किसी राज्य का प्रशासन उस दशा में अपने हाथ में लेने की शक्तियां प्राप्त है जब वे इस बात से संतुष्ट हो जाएं कि किसी राज्य में प्रशासनिक ढांचा विफल हो चुका है या कोई राज्य केन्द्र द्वारा दिए गए निदेशों का पालन करने या उन्हें लागू करने में विफल रहा है। जिन विचारों ने भारत के लोगों को सांविधानिक प्रणाली जो किसी परिसंघ के पुरातन आदर्श से लगभग मूलभूत रूप में हटकर थी, अपनाने के लिए प्रेरित किया, वे थे देश की एकता, अखंडता, स्वतंत्रता को बनाए रखना तथा राष्ट्र के इतिहास में पहली बार एक लोक राजनीतिक प्रणाली का अभ्युदय।

इन बीच के वर्षों में विभिन्न दिशाओं में काफी विकास देखने में आया है। शायद इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है आर्थिक विकास के साधन के रूप में राष्ट्रीय योजनाओं को प्रारंभ किया जाना जिनके परिणामस्वरूप प्रशासनिक एवं वित्तीय क्षेत्रों में केन्द्र के प्रभाव को अधिक बल मिला। यह प्रवृत्ति, संघवाद के सिद्धान्तों के प्रतिकूल नहीं है क्योंकि समकालीन आधुनिक संविधान विशेषज्ञों ने यह स्वीकार किया है कि एक आधुनिक शासन प्रणाली की जटिलताओं एवं व्यापकता के संदर्भ में संघीय केन्द्रीकरण की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। हाल में राजनीतिक सिद्धान्त में संघवाद को "एक संस्थागत संकल्पना की अपेक्षा एक कार्यात्मक संकल्पना" अधिक माना है। यह भी कहा जाता है कि "कोई भी सिद्धान्त जो यह दावा करता है कि कुछ लचीली विशेषताओं के बिना कोई राजनीतिक प्रणाली संघीय नहीं हो सकती, इस तथ्य की अनदेखी करता है कि भिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेशों में संस्थाओं की भूमिकाएं बदल जाती हैं।" आधुनिक प्रौद्योगिक विकास तथा किसी राष्ट्रीय सरकार पर देश तथा इसके लोगों के सामने आ रही विविध एवं बहुआयामी समस्याओं से सही ढंग से निबटने के लिए डाली गई जिम्मेदारी के संदर्भ में संघवाद का पारंपरिक सिद्धान्त बहुत हद तक अप्रासंगिक आधारहीन लगेगा।

जिन बाध्यताओं ने तीस से भी अधिक वर्ष पहले भारत के लोगों और संविधान निर्माताओं को एक मजबूत केन्द्र के पक्ष में मत देने के लिए प्रभावित किया था वे आज भी तर्कसंगत तथा प्रासंगिक हैं। समग्र राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर एक मजबूत केन्द्र का पक्षपोषण करते समय राज्य सरकार इस बात पर भी बल देगी कि वित्त, योजना तथा प्रशासन के क्षेत्रों के संघीय केन्द्रीकरण के फलस्वरूप हमारे संविधान को मूल योजना में राज्यों को प्रदान को गई हैसियत एवं स्थिति को प्रभावित करने को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। राज्यों का लोगों से निकटतम संबंध होता है तथा राज्यों को अधिक से अधिक उतने कार्य करने का अधिकार दिया जाना चाहिए जो केन्द्र के हित में हों।

आयोग द्वारा परिचालित प्रशासनिक विकासीय, वित्तीय तथा विधायी मामलों संबंधी विस्तृत प्रश्नावली के संबंध में राज्य के सुविचारित दृष्टिकोण पहले ही प्रस्तुत किए जा चुके हैं। मैं राज्य सरकार द्वारा इस प्रश्न के उत्तर में दिए गए विस्तृत उत्तरों में प्रस्तुत दृष्टिकोण पर संक्षिप्त में विचार करना चाहता हूं।

हमने कुल मिलाकर केन्द्र-राज्य तथा समवर्ती सूचियों में नाम-निर्दिष्ट विधायी शक्तियों के वितरण की वर्तमान योजना को बनाए रखने की वकालत की है। तथापि राज्य को उन सभी मामलों में कानून बनाने के लिए पूर्णतया सक्षम बनाया जाना चाहिए जो संविधान द्वारा राज्य सूची को आबंटित को गई है। कुछ प्रतिबंधों के परिणामस्वरूप जैसे कि अनुच्छेद 246(1) तथा 246 (2) में अभिव्यक्त किए गए हैं, राज्य सूची में अतिक्रमण की संभावनाएं उत्पन्न हो जाती है, तथा ऐसी आकस्मिकता में राज्य सरकार के लिए न्यायिक प्रतितोष मांगना कठिन हो सकता है। अतः इन उपबंधों को हटाने के विकल्प पर विचार किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह सुझाव दिया जाता है कि वित्तीय मामलों तथा कराधान से संबंधित सूची में नाम-निर्दिष्ट कुछ विधायी शक्तियों को संसद के निर्बन्धनों से मुक्त किया जाए क्योंकि राज्यों के पास अपने राजस्वों को बढ़ाने के लिए कराधान के बहुत सीमित क्षेत्र होते हैं।

जहां तक राज्य विधान मंडल की विधि निर्माण संबंधी शक्तियों को "राष्ट्रीय हित" या "लोक हित" में संसद द्वारा ग्रहण करने का प्रश्न है उसके लिए यह उपयुक्त होगा कि ऐसी पूर्णतया स्थायी आधार पर और इसीलिए बहुत ही सीमित अवधि का होना चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका के संबंध में हमारा विचार है कि राज्यपाल सांविधानिक प्रमुख होता है तथा अपेक्षित भूमिका निभाने के लिए संविधान के अधीन उसको दी गई शक्तियां पर्याप्त हैं। हमारे अनुभव के अनुसार, ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जब राज्यपाल ने सांविधानिक मानदंडों से हटकर कार्य किया हो। इसलिए हम विधेयकों को राष्ट्रपति के विचार के लिए रोके रखने की उसकी शक्ति सहित राज्यपाल की शक्तियों में किसी आशोधन की सिफारिश नहीं करते। राष्ट्रपति का अनुमोदन प्राप्त करने में हुए विलंब के कुछ मामलों को छोड़कर, जिसपर सतर्कता द्वारा विजय पाई जा सकती है, हम नहीं सोचते कि केन्द्र ने उसकी सहमति के लिए रोके गए विधेयकों में निरंकुश परिवर्तन थोपे हों। विलंब को दूर करने के लिए प्रक्रिया में एक बाध्यकारी समयढांचा निर्मित किया जाए। जिसके अन्दर-अन्दर ऐसे विधेयकों का या तो अनुमोदन कर दिया जाएगा या उन्हें पुनर्विचार के लिए लौटा दिया जाएगा।

यद्यपि विभिन्न राज्यपालों ने अनिश्चितता की स्थिति में सरकार बनाने के लिए नेताओं को बुलाने या न बुलाने के मामले में या अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई करने की सिफारिश करने या न करने के मामले में, अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग करते हुए विभिन्न मानदंड अपनाएं हैं, ऐसी विभिन्नताएं इस प्रक्रिया का एक स्वाभाविक अंग है। इसलिए हमारा मत है कि किसी समय विशेष की राजनीतिक परिस्थिति के संदर्भ में विवेकाधिकारों के प्रयोग का मामला राज्यपाल पर छोड़ दिया जाना चाहिए जिसे उनका इस्तेमाल परम निष्पक्षता के साथ करना चाहिए। किसी लिखित मार्गनिर्देश का अधिरोपण न केवल अनावश्यक होगा बल्कि इससे मुकदमेबाजी तथा सांविधानिक गतिरोध उत्पन्न होने की संभावना है।

हमारे इस आधार-वाक्य कि एक मजबूत केन्द्र हमारे देश की एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है, के अनुरूप हम संविधान के अनुच्छेद 256 एवं 257 को इस कथन के साथ बनाए रखने की सिफारिश करते हैं कि इन शक्तियों का प्रयोग बहुत ही कम तथा केवल असाधारण परिस्थितियों से निपटने के लिए ही किया जाना चाहिए। मामूली विपथनों, यदि कोई हो, तथा राज्यों द्वारा असहमत होने की अन्य स्थितियों की समुचित संस्थागत व्यवस्था, जिससे बहस, विचार-विमर्श तथा परामर्श के अवसर उपलब्ध होंगे, के माध्यम से सुलझा लिया जाना चाहिए।

पिछले 35 वर्षों में अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य उपबंधों का केवल दो बार अवलंब लिया गया है। हमारे विचार से जहां इस असाधारण उपचारी शक्ति का उपयोग प्रायः समुचित रूप में किया गया है, वास्तविक घटनाएं विवाद से परे नहीं रही हैं। इसलिए हम अनुभव करते हैं कि किसी तोड़-मरोड़ की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए अनुच्छेद 356 में आवश्यक सुरक्षा उपाय किए जाने चाहिए।

किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता के लिए केन्द्रीय बल के स्थान एवं प्रयोग के विषय में विवादास्पद मत व्यक्त किए गए हैं। हमारा यह विचार रहा है कि यद्यपि कानून और व्यवस्था, जो राज्य का मामला है, के क्षेत्र में राज्य को अपनी विधिसम्मत भूमिका निभाने देना चाहिए, परन्तु केन्द्र को गंभीर आपात्स्थिति तथा देश की अखंडता के खतरे की परिस्थितियों में कार्रवाई करने में असमर्थ नहीं बनाया जा सकता। तथापि, सामान्यतया, किसी राज्य में तब तक कोई केन्द्रीय बल तैनात नहीं किया जाना चाहिए जब तक ऐसा करने के लिए अधियाचना न की गई हो। इसी प्रकार, रेडियो एवं दूरदर्शन प्रसारणों को केन्द्रीय सूची में सम्मिलित किया गया है, हमारा विचार है कि संचार के माध्यमों के रूप में उनकी अहम भूमिका को देखते हुए रेडियो एवं दूरदर्शन के प्रशासन/संचालन एवं कार्यक्रम-निर्माण में राज्य को भी अधिकार दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त हम यह सुझाव देंगे कि केन्द्र के मार्ग-निर्देशों एवं निदेश के अधीन ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिसके तहत राज्यों को अपने प्रसारण हेतु दूरदर्शन एवं रेडियो कार्यक्रमों की विशिष्ट अवधि प्रदान की जानी चाहिए।

हमारे विचार से यह आवश्यक नहीं है कि अन्तर्राज्यीय तथा केन्द्र-राज्य मतभेदों के समाधान के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की जाए जैसाकि अनुच्छेद 263 के तहत अभिकल्पित किया गया है। इसके अतिरिक्त यदि ऐसी परिषद् स्थापित कर भी दी गई तो वह इन मतभेदों की जांच के हिसाब से एक बड़ा और दुष्परिचालनीय निकाय होगी। हमारे मतानुसार, यह उपयुक्त नहीं होगा कि केन्द्र या राज्य से संबंधित न्यायगत सांविधानिक बाध्यताओं से उत्पन्न विवादों पर किसी परिषद् में विचार-विमर्श किया जाए एवं उनकी समीक्षा की जाए। इसके स्थान पर, हमारा सुझाव है कि अन्तर्राज्यीय एवं केन्द्र-राज्य के मतभेदों को एक मंच में सुलझाया जाए जिसमें संबंधित राज्यों तथा संबंधित केन्द्रीय मंत्रालयों के प्रतिनिधि हों। जिस विवाद का समाधान इस व्यवस्था द्वारा न हो पाए उसे न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक मंचों को सौंप दिया जाए।

वित्तीय संबंधों के क्षेत्र में जहां तक मूल प्रशासनिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए राज्य सरकार की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति का संबंध है, हमारा विचार है कि प्रश्नावली के भाग V के प्रश्न के उत्तरों में हमारे द्वारा सुझाए गए कुछ आशोधनों के अधीन संविधान निर्माताओं द्वारा अभिकल्पित न्यागमन की योजना कुल मिलाकर संतोषप्रद रही है। इसी प्रकार राज्यों की आवश्यकताओं तथा उनके साधनों के बीच के अन्तर को वित्त-आयोग की सिफारिशों पर केन्द्रीय करों को बांटकर तथा सहायता अनुदान उपलब्ध कराकर पाटने की व्यवस्था पर सभी का विश्वास है। तथापि, इन व्यवस्थाओं से कोई तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने के लिए एक मजबूत परंपरा की स्थापना करनी पड़ेगी कि भारत सरकार भी वित्त आयोग की सिफारिशों को पूर्णतया स्वीकार कर लेगी।

जहां तक विभिन्न विकास गतिविधियों के वित्तपोषण के लिए राज्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं का प्रश्न है, हमारे विचार से वित्त आयोग के माध्यम द्वारा साधन-अंतरण की वर्तमान प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार किए जाने की आवश्यकता है। हमारे विचार से, राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता की प्रमात्रा के निर्धारण तथा उसके समुचित वितरण के लिए कड़े वस्तुनिष्ठ मानदंड निर्धारित करने की आवश्यकता है। क्षेत्रीय विषमताएं एवं असंतुलन दूर करने की हमारी स्वीकृत वचनबद्धता को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार द्वारा साधन आबंटन के संबंध में अब तक अपनाई गई नीति की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील नीति अपनाए जाने की आवश्यकता है। इस संबंध में प्रश्नावली के प्रश्न 5.5 एवं 6.8 के उत्तर में दिए गए हमारे विशिष्ट सुझाव का हवाला दिया जा सकता है।

यह तथ्य कि योजना के 35 वर्ष बाद भी अन्तक्षेत्रीय विषमताएं न केवल बनी हुई हैं अपितु बढ़ती हुई भी नजर आती हैं, स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि साधनों के अन्तरण की योजना कारगर सिद्ध नहीं हुई है और स्थिति में सुधार लाने के लिए इस संबंध में तुरंत कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है। हमारा विश्वास है कि न्यायोचित आर्थिक विकास एवं क्षेत्रीय विषमताएं दूर करने के लिए संघ के कमजोर राज्यों की उन्नति के लिए केन्द्र का मजबूत होना आवश्यक है। इसलिए हम इस पक्ष में नहीं हैं कि केन्द्र की कराधान की शक्ति का बहुत बड़े पैमाने पर राज्यों को अन्तरण कर दिया जाए क्योंकि इसके फलस्वरूप साधनों के धनी क्षेत्रों से निर्धन क्षेत्रों की ओर बहाव की वर्तमान प्रणाली भी कमजोर पड़ जाएगी। और न ही हम केन्द्र की और अधिक कराधान शक्तियां अंतरित करने की सिफारिश करेंगे क्योंकि इसके परिणामस्वरूप राज्य आर्थिक निर्भरता की स्थिति में हो जाएंगे। तथापि, हम वित्त आयोग तथा योजना आयोग के माध्यम से साधनों के केन्द्र से राज्यों को अधिक हस्तांतरण की जोरदार वकालत करेंगे। इसके लिए हमारे विचार से जब भी संभव हो केन्द्र को वर्तमान ढांचे के तहत और अधिक साधन जुटाने चाहिए।

यद्यपि साधनों के अन्तरण के संबंध में हमारे विस्तृत सुझाव प्रश्नावली के भाग-V के उत्तर में दिए गए हैं, हम आयोग का ध्यान केन्द्रीय सहायता के रूप में राज्यों द्वारा प्राप्त ऋण के कारण उन पर चढ़े अत्यधिक ऋणभार की ओर दिलाएंगे जिसके परिणामस्वरूप उन पर चुकौती देयताओं तथा ब्याज का बहुत भारी बोझ पड़ जाता है। हमारे विचार से ऋणभार की आवधिक समीक्षा तथा चुकौती के पुनर्निर्धारण के मामले को वित्त आयोग को सौंपने मात्र से ही उसका स्थायी हल नहीं निकल आएगा, इसके लिए और अधिक आमूल उपायों की आवश्यकता है। हमारा विचार है कि योजना सहायता में ऋण देने का अनुपात आरक्षित किया जाना चाहिए और विशेषतया उन राज्यों को इस ऋण का 70% भाग अनुदान के रूप में तथा 30% ऋणों के रूप में दिया जाना चाहिए जिनकी प्रतिव्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम है।

इसके अतिरिक्त हम यह सिफारिश करेंगे कि बाढ़ एवं चक्रवात जैसी प्राकृतिक आपदाओं के बाद मरम्मत पुनरुद्धार इत्यादि पर आने वाले खर्च का वहन पूरी तरह से केन्द्र सरकार करे तथा सूखे पर होने वाले खर्च को भी मौजूदा हालात की तरह अग्रिम योजना सहायता मानने की अपेक्षा उसका वहन पूर्ण रूप से केन्द्रीय अनुदानों द्वारा किया जाना चाहिए।

राज्यों को साधनों के अंतरण पर निर्णय लेते समय महंगाई भत्ते तथा अतिरिक्त मंहगाई भत्ते के भुगतान, जो कीमत की स्थिति का एक भाग है तथा जिससे राज्यों पर भारी बोझ पड़ता है, को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

आर्थिक तथा सामाजिक योजना से संबंधित प्रश्न का हमारे द्वारा दिया गया उत्तर इस आधार-वाक्य पर आधारित है कि इसके निर्माण में केन्द्र को एक सलाहकार की भूमिका निभानी चाहिए तथा उसे इस मामले में राज्यों के विकल्प में अनावश्यक रूप से सुधार नहीं लाना चाहिए।

योजना निर्माण की प्रक्रिया में हम किसी बड़े संरचनात्मक परिवर्तन का पक्षपोषण नहीं करते। न तो राष्ट्रीय विकास परिषद् को एक कानूनी आधार देने से और न ही योजना आयोग को एक स्वायत्त एवं पूर्णतया सलाहकार निकाय बनाने से कोई विशेष लाभ होगा। तथापि, राष्ट्रीय विकास परिषद् को एक सुस्पष्ट कार्यविधि विकसित करनी चाहिए जिसे कारबार नियमों के संकलन में निगमित किया जा सके, जबकि योजना आयोग की निवेश आयोजना के क्षेत्र में एक अधिक निर्णायक भूमिका होनी चाहिए।

उपलब्ध केन्द्रीय सहायता के समुचित वितरण के प्रश्न पर हमने पाया है कि मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए किसी योजना अवधि के दौरान जबकि केन्द्रीय योजना के साधनों में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है, राज्य योजनाओं के लिए कोई तदनुरूप राहत उपलब्ध नहीं कराई जाती। इसलिए राज्य के साधनों में इस ह्रास को रोकने तथा राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता की कुल प्रमात्रा निर्धारित करने के लिए हम एक प्रणाली विकसित किए जाने की वकालत करेंगे।

जबकि योजना साधनों के अंतरण के मानदंडों को अधिक प्रगतिशील बनाया जाना चाहिए, यह भी पूर्ण रूप से समझना चाहिए कि केन्द्रीय सेक्टर की योजनाओं का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति होता है, इसलिए यह उचित है कि इनके लिए पूरा धन केन्द्र द्वारा दिया जाए ताकि राज्य अपने अल्प साधनों

का उपयोग किसी अन्य उपयुक्त उद्देश्य के लिए कर सके। अनुपयोगी अंशदान जैसा किसी भी कारक को समाप्त कर दिया जाना चाहिए जो राष्ट्रीय स्तर से नीचे की प्रतिव्यक्ति आय वाले राज्यों के लिए एक बेड़ी की तरह कार्य करता है।

हमारी सांविधानिक प्रणाली की अनिवार्य शर्त, देश की एकता एवं अखंडता को बनाए रखना तथा विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले इसके लोगों के लिए द्रुत एवं संतुलित विकास के लाभ सुनिश्चित करना है। हमारी संघीय राज्य-व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र-राज्य संबंधों को इस तरह से अभिकल्पित किया जाना चाहिए कि वे इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हों। राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र को सौंपी गई बृहत्तर भूमिका को बनाए रखा जाना चाहिए।

संक्षेप में हमारा यह निश्चित मत है कि हमारे राष्ट्र के न्यायसंगत एवं उचित विकास, क्षेत्रीय विषमताएं दूर करने तथा देश के विभिन्न भागों में रहने वाली बहुत बड़ी पिछड़ी जनसंख्या के हित के लिए एक मजबूत केन्द्र का होना अनिवार्य है। एक मजबूत केन्द्र के बारे में हमारे संविधान-रचयिताओं की मूल संकल्पना को किसी भी रूप में तनूकृत नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही राज्यों की सुपरिभाषित स्वायत्तता में कोई अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए तथा भूतकाल में जो भी विसंगतियां हुई हों उन्हें दूर किया जाना चाहिए। राष्ट्र की एकता और अखंडता को अन्य सभी बातों से ऊपर रखा जाना चाहिए। राज्यों को संविधान के आदर्शों, जिन्हें हमारे संविधान निर्माताओं ने इतने उत्साह से प्रतिपादित किया था, को बनाए रखने में एक स्वतन्त्र भूमिका निभानी चाहिए।

राजस्थान सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) मुख्य मंत्री द्वारा आयोग के सम्मुख प्रस्तुत दृष्टिकोण

राजस्थान

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 हमारे संविधान निर्माताओं ने सहकारी संघीय प्रणाली को अपनाया। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएं हैं केन्द्र एवं राज्य सरकार ही परस्पर-निर्भरता तथा उनके बीच प्रशासनिक सहयोग और राज्य की केन्द्र पर आंशिक वित्तीय निर्भरता। डा० अंबेडकर ने संविधान सभा में दिए गए अपने भाषण में कहा है, "प्रारुप-समिति यह स्पष्ट करना चाहती थी कि यद्यपि भारत एक संघ बनने जा रहा है, यह संघ राज्यों द्वारा एक संघ में सम्मिलित होने के लिए किए गए किसी करार का परिणाम नहीं है और क्योंकि यह संघ किसी करार के परिणाम-स्वरुप नहीं बना है इसलिए किसी राज्य को इससे अलग होने का अधिकार नहीं है"। संविधान द्वारा अधिरोपित सीमाएं एवं शर्तों के अधीन, केन्द्र एवं राज्यों, दोनों को अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वोच्चता प्राप्त है। अवशिष्ट अधिकार केन्द्र के पास होते हैं। एक विशिष्ट विशेषता यह है कि सामान्य परिस्थितियों में संविधान का सहकारी संघीय स्वरूप अभिभावी होता है परन्तु गंभीर आपात्स्थिति के समय यह स्वयं को एक एकात्मक प्रणाली में परिवर्तित कर लेता है।

1.2 मोटे तौर पर, प्रश्न में संदर्भगत अनुच्छेद के उपबंधों को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं लगती है। तथापि, यह उपयुक्त होगा यदि राज्यों को अपने साधनों की वृद्धि करने में समर्थ बनाने के लिए संविधान की राज्य सूची में और अधिक मदें जोड़ दी जाएं।

1.3 हम सहमत हैं। उन गतिविधियों एवं कार्यक्रमों में राज्यों को अधिक सम्मिलित किया जाए जिनका राज्यों के लिए विशेष महत्व होता है जैसे डाक व तार सुविधाओं का विस्तार, आंतरिक संचार, रेडियो एवं दूरदर्शन प्रसारण के कार्यक्रम-निर्माण, एक निश्चित सीमा तक उद्योगों के लाइसेंस देना, रेलवे के विस्तार कार्यक्रम इत्यादि।

1.4 उपर्युक्त प्रणाली विद्यमान नहीं है।

1.5 हमारे विचार में संविधान मूल रूप में इतना मजबूत एवं लचीला है कि वह बदलते हुए समयों की चुनौतियों का सामना कर सके।

1.6 देश की स्वतंत्रता, एकता और अखंडता परम महत्व के मामले हैं जो अन्य सभी बातों पर अभिभावी होने चाहिए। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अनुच्छेद 249, 256, 257 तथा अनुच्छेद 352 से 356 एवं 360 में अन्तर्विष्ट आपात्कालीन उपबंधों एवं अनुच्छेद 365 को संविधान में सम्मिलित किया गया है। ऐतिहासिक रूप से देखें तो एक कमजोर केन्द्र ने विखण्डनकारी प्रवृत्तियों को जन्म दिया है, दूसरी ओर एक मजबूत केन्द्र ने देश को एकता के सूत्र में पिरोए रखा है। अब जबकि अपकेन्द्री शक्तियों और ऐसी ही प्रवृत्तियां भाषावाद, क्षेत्रवाद, धार्मिक अलगाववाद के रूप में अपने सिर उठा रही हैं, अभिकेन्द्री शक्तियों को बढ़ावा देने वाले उपबंधों को न केवल संविधान में बनाए रखा जाए, अपितु उनको और मजबूत किया जाए।

1.7 हम किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं देते।

1.8 अनुच्छेद 3 में किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 विधायी शक्तियों के केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वितरण की योजना मूलरूप में कोई दोष नहीं है।

2.2 विचारों को विशिष्ट प्रश्नों के उत्तर देते समय बाद में व्यक्त किया गया है।

2.3 हां। समवर्ती सूची में अन्तर्विष्ट मदों या संविधान की सातवीं अनुसूची में संशोधन से संबंधित कोई विधि-निर्माण करते समय केन्द्र सरकार को राज्य सरकार से परामर्श करना चाहिए।

2.4 सामान्यतया संसद् द्वारा राज्यों की अनन्य अधिकारिता के अन्तर्गत आने वाली मदों पर बनाया जाने वाला विधान एक निर्धारित अवधि के लिए होना चाहिए जिसकी समाप्ति के बाद उसका पुनर्विलोकन किया जाए परन्तु कुछ विषयों को राष्ट्रीय महत्व के विषय घोषित कर दिया जाए और उनके लिए कोई समयावधि निर्धारित न की जाए। संसद् में किसी भी कानून को कभी भी निरसित करने की शक्ति अन्तर्निहित होती है। उदाहरण के तौर पर केन्द्रीय सूची की सूची संख्या I की अनुसूची VII की प्रविष्टि संख्या 56 को संशोधन के बाद निम्न रूप में पढ़ा जाए:

> "राज्यों के मध्य पानी एवं विद्युत के विनियमन एवं विकास जहां ऐसा नियंत्रण, विनियमन एवं विकास केन्द्र के नियंत्रण में है, को संसद् द्वारा लोकहित में समीचीन घोषित किया जाता है।" इस संशोधन के उपनियम/उपपरिणाम के रूप में अनुच्छेद 262 को ऐसे संशोधित करना होगा कि वह निम्न रूप में पढ़ा जाए:
>
> "अनुच्छेद 262—अन्तर्राज्यीय नदियों के जल या नदी-घाटियों या नदी-क्षेत्रों तथा विद्युत से संबंधित विवादों पर न्यायनिर्णय:
>
> (1) संसद् कानून द्वारा किसी अन्तर्राज्यीय नदी के जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण, नदी-घाटी से या यदि राज्य या उसका कोई क्षेत्र ऐसी नदी के नदी-क्षेत्र में पड़ता हो तो ऐसे नदी-क्षेत्र से संबंधित किसी विवाद या शिकायत, तथा राज्यों के मध्य विद्युत संबंधी विवादों न्याय-निर्णय के लिए व्यवस्था कर सकती है।"

राज्य का मत है कि अन्तर्राज्यीय जल-विवाद अधिनियम में हाल ही में किया गया संशोधन जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार को रावी-व्यास जल अधिकरण गठित करने का प्राधिकार प्राप्त हो गया है, केवल एक विवाद विशेष के लिए ही है तथा इसके अन्तर्गत सभी विवाद नहीं आते।

यदि आयोग आनंदपुर साहिब प्रस्ताव की भी परीक्षा कर रहा है (क्योंकि इस मुद्दे पर प्रश्नावली में कोई प्रश्न नहीं है), तो इस विषय में राज्य सरकार की टिप्पणियां निम्नलिखित हैं:—

(क) प्रस्ताव सं० 1 में "देश के सांविधानिक ढांचे का वास्तविक एवं अर्थपूर्ण संघीय सिद्धांतों के आधार पर पुनर्निर्माण करने" की मांग की गई है। इस विषय में राज्य सरकार का विचार है कि राष्ट्रीय एकता के हित में केन्द्र को और अधिक मजबूत बनाया जाए।

(ख) प्रस्ताव सं० 2 (ख) में पंजाबी भाषी क्षेत्रों को पंजाब में "मिलाने" की मांग की गई है। जहां तक इस भाग का संबंध राजस्थान के किसी क्षेत्र के बारे में प्रस्ताव लेखकों के नापाक इरादों से है, राज्य सरकार इसका विरोध करेगी।

(ग) प्रस्ताव सं० 2 (ग), जिसका संबंध हैड वर्क्स के नियंत्रण से है तथा जिसमें यह मांग की गई है कि यह नियंत्रण पंजाब के हाथ में होना चाहिए, बिल्कुल अस्वीकार्य है तथा इसका विरोध किया जाना चाहिए। इस मांग का भी विरोध किया जाना चाहिए कि राज्य-पुनर्गठन अधिनियम (वर्तमान पंजाब तथा हरियाणा राज्यों के संबंध में) में संशोधन किया जाए।

50—376 M. of HA/ND/87

(च) जहां तक राजस्थान के हिस्से का संबंध है प्रस्ताव सं० 2 (घ) का विरोध आवश्यक है जिसमें स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा रावी-ब्यास जल के वितरण के बारे में दिए गए अधिनिर्णय में जिसे पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान के मुख्यमंत्रियों ने अपने राज्यों की ओर से बिना किसी शर्त के स्वीकार किया था, इसके अभिकथित रूप में "यादृच्छिक एवं अन्यायपूर्ण" होने के आधार पर संशोधन करने की मांग की गई है।

2.5 जल तथा विद्युत को राष्ट्रीय संसाधन घोषित किया जाए तथा उनके संबंध में कानून बनाने में केवल संसद् को ही सक्षम होना चाहिए। यह कदम विखंडनकारी प्रवृत्तियों की समाप्ति तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को बढ़ावा देने के लिए उठाए गए परम महत्वपूर्ण कदमों में से एक होगा, नहरों तथा विद्युत लाइनों को अक्षरशः भारत को इकट्ठा बांधे रखना चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1(क) राज्यपाल का पद केन्द्र तथा राज्य के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी स्थापित करने के लिए होता है। वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि होता है। संविधान निर्माताओं द्वारा राज्यपाल का राज्य तथा केन्द्र के बीच एक शक्तिशाली कड़ी के रूप में चुनाव करना न्यायोचित है।

(ख) हमारे मतानुसार कुल मिलाकर राज्यपाल की एजेंसी में राज्य में विद्यमान उस समय की स्थिति के अनुसार अपनी पूरी योग्यता से कार्य किया है।

3.2 राज्यपाल को अपनी दोनों हैसियतों अर्थात्, केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि तथा राज्य के सांविधानिक प्रमुख इन दोनों रूपों के बीच संतुलन बनाए रखना होता है। उसे यह संतुलन अपने निष्पक्ष व्यवहार तथा स्वस्थ विवेकाधिकार के आधार पर बनाए रखना होता है। केन्द्र तथा राज्य के बीच स्वस्थ संबंध विकसित करने का यह एकमात्र तरीका है। इन दोनों में से किसी एक तरफ उसके झुकाव से उनके संबंधों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

3.3 राज्यपाल को अपनी सर्वोत्तम विवेकबुद्धि से कार्य करना होता है और कुल मिलाकर राज्यपाल अनुच्छेद 356(1), 164 तथा 174(2) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायपूर्ण तथा निष्पक्ष रहे हैं।

3.4 हमारा विचार है कि अनुच्छेद 200 एवं 201 के प्रयोग में लाई जाने वाली शक्तियां राज्यपाल तथा भारत के राष्ट्रपति में ही निहित रहनी चाहिए। तथापि संविधान के अनुच्छेद 201 के अधीन स्वीकृति या अस्वीकृति देने के लिए समुचित समय सीमा निर्धारित की जाए।

3.5 हम भारतीय विधि संस्थान के तत्वावधान में किए गए मामला-अध्ययन के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि राष्ट्रपति की स्वीकृति देते समय केन्द्र राज्य पर अपनी नीतियां नहीं थोपता तथा राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति देने की प्रक्रिया ने राज्य की स्वायत्तता के लिए एक महत्वपूर्ण खतरे के रूप में कार्य नहीं किया है। अध्ययन से यह लगता है कि राज्यों के विधेयक जब राष्ट्रपति के पास भेजे जाते हैं तो केन्द्र सरकार उनकी केन्द्रीय सांविधिक आवश्यकता, के पालन, केन्द्र सरकार की नीतियों के अनुपालन, वर्तमान केन्द्रीय विधान एवं इसकी वैधानिकता से अधिकारातीत है या नहीं इत्यादि जैसे मामलों के संदर्भ में उनकी संवीक्षा करती है। यदि कोई विलंब होता है तो इसका आशय यह नहीं है कि राष्ट्रपति स्वीकृति राज्य की स्वायत्तता के लिए एक खतरे के रूप में कार्य करती है। ऐसे मामले बहुत कम हैं जिनमें स्वीकृति रोकी गई है। अब तक राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं की गई है।

3.6 हमारा विचार है कि राज्यपाल न तो केन्द्र का एजेंट है और न ही राज्य का मात्र एक सजावटी प्रमुख है अपितु वह केन्द्र तथा राज्य के मध्य निकट संपर्क के लिए एक कड़ी का कार्य करता है।

3.7 हम सहमत नहीं हैं।

3.8 हम इस सुझाव से सहमत नहीं हैं।

3.9 ऐसी धारणा है कि ऐसी व्यवस्था भारत के लिए व्यवहार्य नहीं है।

3.10 संविधान में इस बारे में कोई मार्गनिर्देशों की कोई व्यवस्था नहीं की गई है कि राज्यपालों द्वारा अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग किस प्रकार किया जाए। संविधान में ऐसा उपबंध सम्मिलित किया जाए तथा उसके बाद यदि प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश पर कोई मार्गनिर्देश निर्धारित किया जाए तो उसकी इस व्यावहारिक उपयोगिता होनी चाहिए। यह सच है कि प्रत्येक अवसर पर राज्यपाल के सम्मुख आने वाली परिस्थितियां तथा स्थितियां एक समान नहीं होती तथा राज्यपालों को प्रत्येक मामले में अपने निर्णय का चुनाव करना पड़ता है, फिर भी राज्यपाल के मार्गदर्शन के लिए कुछ सामान्य दिशा-निर्देश निर्धारित किए जा सकते हैं।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 अनुच्छेद 256, 257 एवं 365 जो राज्यों को उनकी कार्यपालन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए निदेश देने की शक्ति, केन्द्र को प्रदान करते हैं, का केन्द्र सरकार के सुचारू दैनिक कार्यसंचालन के लिए अत्यधिक महत्व है। ये अनुच्छेद केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी कार्यपालन क्षेत्र में एक सहयोग की प्रणाली निर्मित करने के संविधान निर्माताओं के प्रयासों पर प्रकाश डालते हैं। उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्र ने समय-समय पर राज्यों को निदेश जारी किए हैं।

ऐसा कोई ज्ञात मामला नहीं है जहां किसी राज्य को अनुच्छेद 365 का अवलंब लेने की धमकी के तहत अनुच्छेद 256 व 257 के अधीन जारी निदेशों का पालन करने के लिए मजबूर किया गया हो। परन्तु, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अनुच्छेद 365 से केन्द्र को उस द्वारा राज्यों को दिए गए निदेशों की अवज्ञा करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न स्थितियों से निपटने के लिए शक्ति प्राप्त हो जाती है।

4.2 हम दूसरे मत से सहमत हैं कि अनुच्छेद 365 को हटाया न जाए तथा यह एक आरक्षित उपबंध के रूप में रहे।

4.3 प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश नई नहीं है। इसका संकेत केवल इसी ओर है कि केन्द्र को हमेशा नियंत्रण बनाए रखना चाहिए। इस सिफारिश से यह सिद्ध होता है कि राज्य की स्वायत्तता का आदर किया जाना आवश्यक है। अनुभव से पता चलता है कि केन्द्र ने केवल जरूरी मामलों में ही निदेश जारी किए हैं तथा अनुच्छेद 256 एवं 257 के तहत प्रदत्त विपुल शक्तियों के उदाहरणों का अभाव है।

4.4 हमारे विचार से अनुच्छेद 356 के तहत निर्धारित की गई इस असाधारण उपचारी शक्ति का उपयोग सही ढंग से किया गया है।

4.5 नहीं। अनुच्छेद 356 के (4) एवं (5) खंडों के अधीन निर्धारित सीमाएं शक्ति के दुरुपयोग को रोकने की दिशा में सकारात्मक कदम है। खंड (4) में निर्धारित 6 मास की अवधि बिल्कुल न्यायोचित है। खंड (4) के परंतुक के अधीन किसी राज्य को राष्ट्रपति शासन के अधीन रखे जाने की कुल अवधि तीन वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है। राष्ट्रपति शासन को एक वर्ष से अधिक न रखे जाने की स्थिति में खंड (5) ने केवल कुछ उपरिकाएं रख दी हैं। प्रश्न में जिन परिस्थितियों पर विचार किया गया है और उदाहरणार्थ, जो इस समय असम और पंजाब में विद्यमान है, उनसे निबटने के लिए अनुच्छेद 356 के उपबंध पर्याप्त हैं। 1950-84 की अवधि के दौरान 60 से अधिक मामलों में राष्ट्रपति शासन की अवधियों के अवलोकन के बाद पता चलता है कि केवल 9 मामलों में राष्ट्रपति शासन की अवधि एक वर्ष से अधिक थी और अधिकतर मामलों में परिस्थिति कम समय में ही सामान्य हो गई थी।

4.6 जनगणना तथा चुनाव जैसे कार्यों के कार्यान्वयन की वर्तमान व्यवस्थाएं संतोषप्रद ढंग से कार्य कर रही हैं।

4.7. उन्हें सौंपे गए विशिष्ट कार्यों के निष्पादन में केन्द्रीय एजेंसियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तथापि, यह सुझाव दिया जाता है कि राज्यों को इन निगमों के लिए चक्रानुक्रम से नामजद किया जाए तथा उनकी भूमिका एवं कार्यों को बिल्कुल स्पष्ट किया जाना चाहिए। जहां कहीं भी ऐसे केन्द्रीय निकायों से स्पष्टीकरण/निकासी के लिए कहा जाए उसके लिए एक समयावधि निर्धारित की जानी चाहिए।

4.8. अखिल भारतीय सेवाओं ने संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं की काफी हद तक पूर्ति की है। अखिल भारतीय सेवाएं प्रशासन तथा राष्ट्रीय अखंडता में दोनों में काफी प्रभावी सिद्ध हुई हैं। कुछ और अखिल भारतीय सेवाओं अर्थात, न्यायिक, इंजीनियरी, डाक्टरी सेवाओं के सर्जन की आवश्यकता है।

इस समय अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र का नियंत्रण भर्ती एवं अनुशासनात्मक कार्रवाई के मामलों में है। इस सेवा के हित में यह आवश्यक है कि केन्द्र सरकार ऐसा नियंत्रण बनाए रखे ताकि अखिल भारतीय स्तर पर एकरूपता रहे और ऐसी सेवाओं से संबंधित अधिकारी अधिक प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें। यदि राज्य सरकारों का नियंत्रण इन सेवाओं पर बढ़ा दिया जाता है तो अखिल भारतीय सेवाएं बनाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। इसलिए, अखिल भारतीय सेवाओं पर राज्य सरकारों का नियंत्रण बढ़ाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

4.9 हम सहमत हैं कि अनुच्छेद 355 के आधार पर केन्द्र सरकार किसी भी राज्य में गृह युद्ध की स्थिति में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस तथा अन्य सशस्त्र बलों की तैनाती एवं उनके प्रयोग में स्वप्रेरणा से भी सक्षम है।

4.10 आकाशवाणी तथा दूरदर्शन प्रसारणों के कार्यक्रम तैयार करने में राज्यों की भागीदारी को बढ़ाया जाए।

4.11 उत्तरी आंचलिक परिषद् तथा इसकी स्थायी समितियों के विचार विमर्श ने पार्टी हितों से ऊपर उठकर केन्द्र-राज्य हितों को सामूहिक रूप से आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

4.12 हां। यदि राष्ट्रपति समझते हैं कि ऐसी परिषद् की स्थापना से लोकहित की पूर्ति होगी तो ऐसी संस्थाओं की स्थापना से अन्तर्राज्यीय तथा केन्द्र-राज्य मतभेदों एवं मुद्दों को सुलझाने तथा उनके मध्य बेहतर सहयोग को सुनिश्चित बनाने में अवश्य मदद मिलेगी। परिषद् को अनुच्छेद 263 (क) से (ग) में उल्लेखित कर्तव्य सौंपे जाने चाहिए। प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष हों तथा मंत्रीमंडल द्वारा नामजद दो केन्द्रीय मंत्री, संबंधित राज्यों के मुख्यमंत्री या संबंधित केन्द्र-शासित प्रदेशों के प्रशासक इसके सदस्य होने चाहिए। जब उससे संबंधित मामला उठाया जाए तो संस्था संबंधित केन्द्रीय मंत्री को सहयोजित कर सकती है।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 संविधान निर्माताओं द्वारा विचारित न्यागमन की योजना ने सही ढंग से कार्य नहीं किया है। वित्त आयोग की सिफारिशों पर राष्ट्रपति द्वारा किए जाने वाले आवधिक परिवर्तनों की प्रणाली भी राज्यों की बढ़ती आवश्यकताओं का समुचित ढंग से मूल्यांकन करने में असफल रही है। इसे इस तथ्य द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है कि बढ़ती मुद्रास्फीति ने उत्तरोत्तर वित्त आयोग द्वारा विचारित राजस्व बेशी/बचत पर लगभग पानी फेर दिया है। इसलिए, पूर्वानुमानित राजस्व बेशी में से योजना परिव्यय के वित्तपोषण की तो बात ही छोड़ दें, राज्यों को निस्सहाय छोड़ दिया जाता है। राजस्थान के मामले में, सातवें वित्त आयोग ने 220.28 करोड़ रु० की राजस्व बेशी पर विचार किया जबकि आंकड़े इस दिशा में 30 करोड़ रु० के घाटे की ओर संकेत करते हैं। दो कारणों ने पंचवर्षीय अवधि के मूल्यांकन को अवास्तविक बना दिया है। इनमें से एक है मुद्रास्फिति की बढ़ती हुई दर जिससे व्यय प्राक्कलन गड़बड़ा जाते हैं और दूसरा कारण है पंचवर्षीय योजनाओं की प्रणाली के माध्यम से विकास योजनाओं का कार्यान्वयन। योजना प्रक्रिया ने लोगों की अपेक्षाओं को बढ़ा दिया है और जब मुद्रास्फिति के कारण केन्द्र द्वारा राज्य को अन्तरित संसाधनों का ह्रास हो जाता है तो विकास कार्यक्रमों को नुकसान पहुंचता है परन्तु राज्य हर कीमत पर लोगों की अपेक्षाओं की पूर्ति करना चाहते हैं जिसका परिणाम भारी ओवरड्राफ्टों के रूप में सामने आता है। केवल यही कारण छठी पंचवर्षीय योजना में राज्यों के भारी घाटे के लिए उत्तरदायी है।

यह अपेक्षा सच साबित नहीं हुई है कि अपनी बढ़ती जिम्मेदारियों के निर्वाह हेतु राज्यों की राजकोषीय आवश्यकताओं की पूर्ति एक न्यागमन योजना द्वारा आंशिक रूप में विशेष कुछ करों एवं शुल्कों की आय को राज्यों के साथ बांटकर तथा आंशिक रूप में केन्द्र से मिलने वाले सहायता अनुदानों से हो जाएगी। इस प्रणाली में मूल संरचनात्मक दोष है जिन्हें दूर किए जाने की आवश्यकता है तथा जिन्हें बाद के प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट किया गया है। यह संरचनात्मक असंतुलन इस तथ्य से स्पष्ट हो जाएगा कि राजस्व लेखे तथा पूंजी लेखे दोनों में केन्द्र सरकार की आवश्यकताएं इसकी प्राप्तियों से बहुत कम हैं जैसाकि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है :

	प्रतिशत हिस्सा	
	केन्द्र	राज्य
1. केन्द्र एवं राज्य सरकारों की संयुक्त राजस्व प्राप्तियां	63	37
2. केन्द्र एवं राज्य सरकारों का संयुक्त राजस्व खर्च .	45	55
3. संयुक्त पूंजी प्राप्तियां . . .	81	19
4. संयुक्त पूंजी खर्च	55	45

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि राज्यों के खर्च से उनकी प्राप्तियां काफी कम थीं जिसके परिणामस्वरूप अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें केन्द्र सरकार पर निर्भर रहना पड़ा।

इसके अतिरिक्त अपने कर्मचारियों के प्रति केन्द्र सरकार की एकपक्षीय एवं वर्गीय वेतन नीति का राज्यों के वित्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि उन्हें भी सहानुभूति में अपने कर्मचारियों के लिए उच्च वेतन देने पड़े। क्योंकि संविधान निर्माताओं ने वेतन तथा/या भत्तों के बार-बार होने वाले संशोधनों पर विचार नहीं किया, अत: राज्यों के घाटे स्वत: समायोजित करने की एक पद्धति की अत्यधिक आवश्यकता है।

इसी प्रकार, राज्यों को दिए जाने वाले ऋणों एवं अनुदानों की एक सुविचारित नीति के न होने से राज्यों के वित्तों पर काफी बोझ पड़ा। सूखे के वर्षों में ऋणों के द्वारा राहत खर्चों का वित्तपोषण राज्यों के वित्तों पर पड़ने वाले बोझ का एक अन्य उदाहरण है जिस पर प्राय: वित्त आयोग द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन में ध्यान नहीं दिया जाता।

चूंकि वित्त आयोग की सिफारिशों पर पंचवार्षिक अवधि के दौरान पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता, केन्द्र द्वारा अनुदान देकर घाटा पूर्ति के तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया है जिसका नतीजा होता है ओवरड्राफ्ट तथा परिणामस्वरूप विकास प्रयत्नों की गति का धीमा पड़ जाना।

इसलिए, राज्य वर्तमान सांविधानिक व्यवस्थाओं में उपांतरण का जोरदार आग्रह करता है ताकि केन्द्र से राज्यों को किए जाने वाले संसाधन अंतरणों की पांच वर्ष के बाद की जाने वाली आवधिक समीक्षा के स्थान पर उनकी समीक्षा तथा राज्यों के वित्तों का मूल्यांकन प्रति वर्ष किया जा सके और गैर-योजना अनुदान के द्वारा घाटे को पूरा किया जा सके।

5.2 यह सत्य है कि सभी गैर-योजना खर्चों की पूर्ति के लिए राज्य के संसाधन स्वयं में पर्याप्त नहीं होते और इसलिए केन्द्र पर उनकी निर्भरता बहुत अधिक

होती है जो बढ़ती जाती है । निम्नलिखित तालिका इस दावे का समर्थन करेगी जिसमें राजस्थान के आंकड़े दिए गए हैं :

(रुपए करोड़ों में)

वर्ष	गैर-योजना राजस्व खर्च	राज्य के संसाधन से आय: राज्यकरों से प्राप्त	करेतर मदो राजस्व	गैर-योजना सहायता अनुदानों	जोड़	गैर-योजना राजस्व खर्च एवं प्राप्तियों में अंतर (स्तंभ 2—6)
1	2	3	4	5	6	7
1980–81	554	230	198	15	443	(--)111
1981–82	688	312	176	43	531	(--)157
1982–83	807	389	233	9	631	(--)176
1983–84	914	430	280	26	736	(—)178
1984–85	1033	473	254	9	736	(--)297

इस प्रकार केन्द्र पर पूर्ण निर्भरता सुस्पष्ट है । इसके अतिरिक्त केन्द्रीय करो की भागीदारी से भी एक साहसिक योजना आरंभ करने के लिए पर्याप्त अधिशेष नहीं बचता । इस संदर्भ में यह निर्दिष्ट किया जा सकता है कि दो प्रकार के करो को केन्द्र एवं राज्यों के बीच आपस में बांटा जाता है अर्थात् जिनकी भागीदारी संविधान के तहत अनिवार्य है (आयकर, अनुच्छेद 270 के तहत), तथा जिनकी भागीदारी को केन्द्र सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है (केन्द्रीय उत्पादन शुल्क, अनुच्छेद 272 के तहत) ।

केन्द्रीय करों का संवितरण संलग्न तालिका मे दिया गया हैं :

(रूपए करोड़ों में)

वर्ष	गैर-योजना राजस्व खर्च एवं प्राप्तियों में अंतर	केन्द्रीय करों से प्राप्तिया: आयकर	केन्द्रीय उत्पादन शुल्क	जोड़	कॉलम 5 तथा कॉलम 2 का अंतर
1	2	3	4	5	6
1980–81 .	(—)111	44	130	174	(+)63
1981–82 .	(—)157	44	152	196	(+)39
1982–83 .	(—)176	49	164	213	(+)37
1983–84 .	(—)178	51	191	242	(+)64
1984–85 .	(—)297	53	211	265	(—)32

सांविधिक रूप मे विभाजि करो (आयकर) के मुकाबले बांटे जाने वाले करों (केन्द्रीय उत्पादन शुल्क) के हिस्से का बहुत अधिक होना भी केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता का द्योतक है ।

देनदार-लेनदार संबंध की समाप्ति के लिए प्रश्न में ऊपर सुझाए गए दृष्टिकोणो को संयुक्त रूप में अपना कर अर्थात् तंबाकू तथा भारत में निर्मित या उत्पादित अन्य वस्तुओं के उत्पादन शुल्क से संबंधित संविधान की सातवी अनुसूची की केन्द्रीय सूची की सूची I की विशिष्ट प्रविष्टि 84 में दिए गए लचीले संसाधनों के अन्तरण की प्रणाली में संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता है ।

इस संबंध में यह निर्दिष्ट किया जा सकता है कि राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता कम करने या पूर्णतया समाप्त करने के लिए राज्यों को राजस्व के पर्याप्त एवं लचीले स्रोत उपलब्ध कराने की आवश्यकता है । इस उद्देश्य के लिए केवल उसी कर को राज्यों को आबंटित किया जाए जिसमें संसाधन क्षमता हो और जिसे समान रूप में बेहतर ढंग से बांटा जा सके ।

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क ऐसा ही एक कर है जिसे आयकर की तरह राज्यों को सांविधानिक रूप में पूर्ण रूप में आबंटनीय श्रेणी में स्थानान्तर करने की आवश्यकता है यद्यपि एकरूपता की दृष्टि से इसे केन्द्र द्वारा एकत्रित किया जा सकता है ।

निगम कर तथा सीमा शुल्कों को केन्द्र के पास रखा जाए ।

आयकर पर लगने वाले अधिभार के संबंध में जिसका विनियोजन इस समय अनुच्छेद 271 के तहत, पूर्ण रूप में केन्द्र के हाथ में है, सातवें वित्त आयोग के विचारों को नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है :

"हमारे विचार से अनुच्छेद 271, स्पष्ट शब्दों में यह अभिकथित नहीं करता कि केन्द्रीय अधिभार का उपयोग किन्हीं आकस्मिक/आपाती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए केन्द्र द्वारा किया जाए, एक अंतर्निहित मान्यता है कि अधिभार की वसूली केवल अप्रत्याशित घटनाओं की आवश्यकता-पूर्ति के लिए ही की जाए तथा इसकी वसूली उतनी अवधि के लिए ही की जाए जितने समय ऐसी अप्रत्याशित घटनाएं बनी रही हैं । इस दृष्टि से अनिश्चित समय तक लागू रहने वाले अधिभार को एक अतिरिक्त आयकर कहा जा सकता है, जो आयकर की अन्य प्राप्तियों की तरह आबंटनीय होगा । आयकर पर लगाया गया अधिभार उत्तरोत्तर बढ़ा है तथा यह आयकर वसूली का एक स्थायी अंग बन गया है । यह सुपरिचित तथ्य है कि किसी कर से प्राप्त अधिकतम आय सुनिर्धारित होती है । अधिभार की वसूली से मूल कर से होने वाली आय की क्षमता घट जाती है । इसलिए, न्यायसंगत यही होगा कि या तो अधिभार को मूल कर के साथ मिला दिया जाए या उसे राज्यों के साथ बांटा जाने योग्य बनाया जाए ।"

5.3 जिन विचारों में यह कहा गया है कि राज्यों को अधिक वित्तीय शक्तियां देने से पलड़ा धनी राज्यों की ओर अधिक झुक जाएगा, उनमें शायद केवल कराधान शक्तियों के अन्तरण पर ही विचार किया गया है, समस्त संसाधनों के न्यागमन पर नहीं । राजस्थान जैसे कम विकसित राज्यों के लिए कुल संयुक्त निधि में से सांविधानिक अंतरणों के द्वारा अधिक संसाधनों की आवश्यकता है जिसमें वैवेकिक अंतरणों के स्थान पर उत्फुल्लता का तत्व अन्तर्निमित हो । इसे आबंटनीय करों की सूची में वृद्धि करके सुनिश्चित किया जा सकता है, रेल्वे जैसे केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के अभिशेषों को आबंटित करने का अर्थ होगा कुल विभाजनीय पूल में महत्वपूर्ण वृद्धि । राज्यों का परस्पर हिस्सा निर्धारण करते समय एक आवश्यकता-उन्मुख सूत्र तैयार करते हुए पिछड़े राज्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए ताकि क्षेत्रीय असंतुलन को मिटाया जा सके ।

इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय क्षेत्र की परियोजनाओं में निवेश को इस प्रकार से समन्वित किया जाए कि जिससे क्षेत्रीय विषमताएं कम हों ।

5.4 एक विकासशील अर्थव्यवस्था में उत्पादक खर्च के वित्तपोषण के लिए घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाया जा सकता है तथा इसका सहारा उस सीमा तक लिया जा सकता है जहां तक यह मुद्रास्फिति का दबाव उत्पन्न न करे ।

इन तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर खर्च पर बेहतर ढंग से नियंत्रण किए जाने की आवश्यकता हैं । इसके अतिरिक्त अधिक राजस्व देने वाले संसाधनों को भी उस सीमा तक काम में लाया जाना चाहिए जिस सीमा तक उनसे निवेश में बाधा न पड़े ।

राज्य सरकार का मत है कि ऊपर तथा बाद के प्रश्नों के उत्तर में सुझाई गई न्यागमन एवं अंतरणों की योजना तथा पिछड़े राज्यों में हुए कम असंरचनात्मक विकास पर बल देने वाले आवश्यकता-उन्मुख सूत्र तैयार करने से राज्यों को पर्याप्त संसाधन सुनिश्चित होंगे तथा केन्द्र को राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए घाटे की अर्थव्यवस्था अपनाने की आवश्यकता नही पड़ेगी । परिणामस्वरूप, यदि घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा लिया भी जाता है तो यह केन्द्र के प्रयोजनों के लिए ही होगा जिन्हें खर्च पर नियंत्रण के द्वारा नियंत्रणीय सीमाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

5.5 राजस्थान राज्य की सरकार का यह मत है कि आबंटनीय करो से प्राप्त कुल प्राप्तियों के राज्यों को आबंटनीय कुल हिस्सों की राज्यों के मध्य परस्पर बांटने के लिए जो दो मानदंड अपनाए जाने चाहिए उनमें पर्याप्तता एवं प्रगतिशीलता हों । सभी करों से प्राप्त राजस्वों को उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बांटा जाए तथा

वर्तमान मे प्रयुक्त प्रचुरता के सूत्र से बचा जाए । आयकर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों एवं उत्पाद इत्यादि के अतिरिक्त शुल्कों को आबंटित करने के मानदंड तथा इन करों में विभिन्न राज्यों के प्रतिशत हिस्से बिल्कुल अलग-अलग हैं । क्योंकि यह सर्वमान्य तथ्य है कि प्रगतिशीलता उत्पादन राजस्व के वितरण की एक विशिष्टता होनी चाहिए आयकर वितरण के लिए नहीं ।

वितरण फार्मूले के बारे में यह स्पष्ट किया जाए कि इसके लिए प्रयुक्त मानदंड हैं वसूली, जनसंख्या, प्रतिव्यक्ति राज्य का घरेलू उत्पादन तथा गरीबी-अनुपात ।

वसूली के संबंध में यह स्पष्ट किया जाए कि तुलनात्मक रूप से विकसित राज्यों द्वारा अधिक कर वसूली का कारण उनका मजबूत औद्योगिक आधार है ऐसा ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक कारणों तथा इस तथ्य के कारण है कि हाल के वर्षों में संस्थागत निधियों का इन राज्यों की ओर अनुचित बहाव के कारण है । वसूली मानदंड विशेष रूप में अनुचित है क्योंकि इससे केवल विषमताएं ही स्थायी होती हैं । राज्य सरकार का मत है कि इस मानदंड का प्रयोग निधियों के न्यागमन के लिए कभी नहीं किया जाना चाहिए ।

उनके कमजोर आंकड़ा आधार तथा प्राक्कलन विशेषकर तीसरे सेक्टर के प्राक्कलन के लिए समुचित मानकों के अभाव के कारण राज्य घरेलू उत्पादन के प्राक्कलनों में गंभीर कमियां हैं । बहुत हद तक कैलोरी अन्तर्ग्रहण के कारण कुछ क्षेत्रों में गरीबी दर की तीव्र आलोचना हुई है । इस प्रकार दोनों मानदंड उचित नहीं है ।

राज्य का अनुरोध है कि राज्यों के मध्य परस्पर कर की विभाज्य आय के बंटवारे या उसके वितरण की सिफारिश करते समय विकास के स्तरों को ध्यान में रखा जाए । उपयुक्त सूत्र (i) 50 प्रतिशत जनसंख्या, जिसमें क्षेत्रों को महत्व दिया गया हो, पर तथा 50 प्रतिशत आधारिक संरचना के सूचकांक प्रतिलोम, जिसमें अखिल भारतीय सूचकांक को 100 माना गया हो, पर आधारित होना चाहिए । इस कार्यक्रम में क्षेत्र के तत्व को इस तथ्य को ध्यान में रखकर सम्मिलित किया गया है कि क्षेत्र का आकार अधिक होने से इकाई लागत बढ़ जाती है और आधारिक संरचना, जो किसी अर्थव्यवस्था के विकास की एक पूर्वापेक्षा है, के विकास में रुकावट आती है । आधारिक संरचना से सूचकांक से विकास को बढ़ावा देने हेतु उपलब्ध मूलभूत तत्वों के संबंध में और अधिक निवेश करने हेतु राज्य की राजकोषीय आवश्यकताओं का पता चलता है । आधारिक संरचनाओं का सूचकांक ही एकमात्र वह सूचकांक है जिसमें आधारिक संरचना के विकास तथा उत्पादन पर पूरा ध्यान दिया गया है ।

केवल यही सूत्र ही (50 प्रतिशत जनसंख्या, जिसमें क्षेत्रफल को महत्व दिया गया हो, तथा 50 प्रतिशत आधारिक संरचना पर आधारित) इतना प्रगतिशील लगता है जिससे पिछड़े राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है ।

योजना सहायता के संबंध में राज्य सरकार का मानना है कि चूंकि जैसा इस तथ्य से स्पष्ट है कि क्षेत्रीय विषमताएं अभी भी बनी हुई है, सूत्र सहायता प्रभावी नहीं रही हैं इसलिए केन्द्रीय सहायता के अन्तरण की प्रणाली की पुनर्संरचना की आवश्यकता नहीं है । राज्य सरकार का सुझाव है कि मूल सामाजिक आर्थिक सेक्टरों के स्तरों को विकसित राज्यों के स्तरों तक ऊपर उठाने के लिए निधियों का निर्धारण तथा इस आवश्यकता पर आधारित योजना के लिए आवश्यक निधियों की पूर्ति राज्यों के अपने संसाधन काट लेने के बाद पूर्ण रूप से केन्द्र सरकार द्वारा की जाए ।

अतिशेष का वितरण उसी आधार पर किया जाए जिस आधार पर कर न्यागमन करने की सिफारिश की गई है ।

वर्ष दर वर्ष के घाटों, यदि कोई हो (यद्यपि ऊपर सुझाए गए अंतरणों की योजना से घाटों की संभावना बहुत ही कम है) की पूर्ति तथा प्राकृतिक आपदाओं तथा इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयों से निबटने के लिए किए गए खर्चों के लिए पूरी गैरयोजना सहायता दिए जाने की आवश्यकता है ।

5.6 अल्प विकसित क्षेत्रों का देश के अन्य अल्प विकसित क्षेत्रों के अनुपात में तेजी से विकास करने के लिए एक विशेष संघीय निधि की स्थापना का विचार अति सराहनीय है । यह सच है कि आयोग की सिफारिशें तथा योजना निधियां का न्यागमन सपन्न राज्यों के पक्ष में रहे है और क्षेत्रीय विषमताएं बनी रहती है । दूसरे वित्त आयोग ने प्रति व्यक्ति अंतरणों के मामले में राजस्थान राज्य को कम संख्या 6 पर रखा था । सातवें वित्त आयोग ने प्रति व्यक्ति अंतरणों के मामले में इसे घटाकर 19 वें स्थान पर कर दिया । योजना अंतरणों का भी यही हाल है । राज्य सरकार को यूगोस्लाविया के नमूने पर एक निधि के निर्माण पर कोई आपत्ति नहीं है बशर्ते यह सुनिश्चित किया जाए कि संपूर्ण केन्द्रीय निवेश इस निधि के माध्यम से हो तथा केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का संचालन भी इसी निधि द्वारा किया जाए । इस निधि से विभिन्न राज्यों में किए जाने वाले निवेश प्रत्येक राज्य की आवश्यकता के अनुसार किए जाए । इस निधि का संचालन एक कानूनी निकाय द्वारा किया जाए जिसे संविधान में परिभाषित किया जाए । यदि सभी राज्यों को इसमें सम्मिलित न किया जा सके तो शासी परिषद् में प्रत्येक राज्य को बारी–बारी से सम्मिलित किया जाए । राज्यों की शिकायतों को न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से दूर करने की व्यवस्था भी प्रारंभ की जानी चाहिए ।

5.7 राज्य, बिक्री कर के अन्तर्गत आने वाले कपड़े, चीनी, तंबाकू जैसे पण्यों पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाने संबंधी शक्तियों के प्रत्यावर्तन का जोरदार आग्रह करता है । तर्क बिल्कुल सीधा है । इन सभी पण्यों पर लगने वाले अतिरिक्त उत्पादन शुल्क से होने वाली कुल आय, कुल मिलाकर सभी राज्यों के मामले में अन्य पण्यों से प्राप्त कुल कर, राजस्व के अनुपात में नहीं रही है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजस्व में सीधे रूप से जुड़े राज्यों द्वारा किसी कर का प्रबंध किया जाना अधिक अच्छा है । यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि मूल तथा अतिरिक्त उत्पादन शुल्कों के अनुपात के संबंध में की गई प्रतिबद्धता का पालन नहीं किया गया है । अन्य करों के संबंध में राज्य वर्तमान व्यवस्थाओं को ही वरीयता देता है । तथापि, जैसा पहले उल्लेख किया गया है इसके परिणाम-स्वरूप पूर्ण रूप से सौंपे गए करों की सूची के बढ़ने की संभावना है ।

5.8 राज्य निगम कर, धन कर, संपदा शुल्क तथा सीमा शुल्क जैसे केन्द्रीय करों की वसूली में अभिदान करेगा । आयकर तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों को पूर्ण रूप में केन्द्र को सौंप दिया जाना चाहिए तथापि एकरूपता की दृष्टि से इनकी वसूली केन्द्र सरकार द्वारा की जाए । राज्य सरकार का यह भी मानना है कि ऐसे निकाय को कानूनी रूप से प्रतिष्ठित किया जाए जिसकी सिफारिशों को अन्तिम माना जाए ।

राज्य बिक्री करों के संबंध में किसी भी प्रकार की वसूली केन्द्र द्वारा किए जाने के पक्ष में नहीं है ।

5.9 राज्य का सुझाव है कि प्रत्येक राज्य की पूंजी तथा राजस्व आवश्यकताओं की साल दर साल समीक्षा की जाए । राज्य यह पसंद करेगा कि योजना तथा गैर योजना दोनों प्रकार के सभी वित्तीय अंतरणों के संबंध में पूंजी तथा राजस्व संसाधनों के मूल्यांकन के आधार पर कार्य करने वाला केवल एक ही संगठन हो । इस संगठन का गठन कानूनी रूप में किया जाए तथा उसे प्रत्यक्ष कार्यपद्धति पर आधारित सारी आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करनी चाहिए ।

5.10 सरकारी व्यय, प्राप्तियों की शर्त से बंधा है । इसलिए, राज्यों के सरकारी खर्च से संबंधित विषमताओं को कम करने की प्रक्रिया भी निधियों की उपलब्धता पर प्रत्यक्ष रूप से आश्रित है । चूंकि एक के बाद एक आने वाली वित्त आयोगों की रिपोर्टें संसाधन अंतरणों की विषमताओं को कम करने में असफल रही है इसलिए सरकारी खर्च की विषमताओं कम करने में रिपोर्ट का कोई असर नहीं हुआ है । स्तर को ऊंचा उठाने के लिए गैर-योजना अनुदान इतने अपर्याप्त रहे हैं कि उनसे सरकारी खर्च के स्तरों पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ा है ।

खर्च की कार्यदक्षता एवं बचत का वित्त आयोग की सिफारिशों से कोई संबंध नहीं है ।

5.11 राज्य इस विचार से सहमत नहीं है कि संसाधन अंतरण की वर्तमान पद्धति में अतिरंजित राजस्व घाटे, जनप्रिय तरीके अपनाने के पूर्वानुमान, जिनके कारण राजस्व की हानि होती है तथा उपलब्ध साधनों से अधिक खर्च हो जाता है, के रूप में वित्तीय अनुशासनहीनता तथा अपव्यय / अदूरदर्शिता की अन्तर्जात प्रवृत्तियां विद्यमान है । स्थिति इसके विपरीत है । वित्त आयोगों की भूमिका राजस्व प्राप्तियों तथा खर्च के पूर्वानुमान के निर्धारण में न्यायसंगत नहीं रही है जिसका परिणाम हुआ घाटा एवं ओवरड्राफ्ट जो इस तथ्य से स्पष्ट हो जाएगा कि सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित 220 करोड़ रु० के राजस्व अधिशेष के विपरीत राज्य

सरकार ने 30 करोड़ रु० का घाटा दिखाया। अब तक राजस्थान सरकार ने कोई अनप्रिय उपाय नहीं किया है। यह कहना गलत है कि राजस्थान सरकार की प्रवृत्ति उपलब्ध साधनों के अनुरूप खर्च न करने की रही है चूंकि बचाए गए हर पैसे का विकास के लिए निधियां उपलब्ध कराने में योगदान होता है और राज्य में हमेशा निधियों का अकाल रहा है। राज्यों का बहुत कुछ दांव पर लगा रहता है क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप में लोगों के संपर्क में आते हैं और वे खर्च करने में लापरवाही नहीं बरत सकते।

5.12 राज्य सातवें वित्त आयोग के विचारों से मोटे तौर पर इस सुझाव के साथ सहमत है कि अधिकांश संसाधनों का अंतरण कर बंटवारे के माध्यम से किया जाए तथा अनुच्छेद 275 के तहत कुल राजस्व अंतरण के कार्यक्रम में सहायता अनुदानों की भूमिका यथासंभव गौण होनी चाहिए।

5.13 सातवें वित्त आयोग द्वारा अनुच्छेद 257 के तहत दी जाने वाली सहायता अनुदान के संबंध निर्धारित सिद्धान्त ठीक लगते हैं, तथापि, व्यवहार में इसके प्रयोग में काफी दोष पाए गए हैं। सर्वप्रथम राजकोषीय अंतराल को पाटने के लिए राजस्व लेखे में प्राप्तियों तथा खर्च का निर्धारण लक्ष्य से बिलकुल हटकर था। क्योंकि 220 करोड़ रु० के प्राक्कलित अधिशेष के विपरित राज्य सरकार को वर्तमान राजस्वों के शेषों से 30 करोड़ रु० का घाटा हुआ। विकसित तथा अल्प विकसित राज्यों में विभिन्न प्रशासकीय तथा सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता में विद्यमान विषमताओं को कम करने हेतु राजस्थान को दिए गए सहायता अनुदान इतने पर्याप्त नहीं रहे हैं कि उनसे राज्य विकसित राज्यों के स्तरों तक पहुंचने में समर्थ हो सके।

इसी प्रकार सूखे एवं अभाव की स्थितियों से उत्पन्न विशेष परिस्थितियों, जो राष्ट्रीय महत्व/चिन्ता, के विषय हैं, के परिणामस्वरूप राज्य के वित्तों पर पड़ने वाले विशेष बोझ से निबटने के लिए दिए गए अनुदान अपर्याप्त थे। राहत कार्यों के लिए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित कुल आवश्यकताओं तथा केन्द्र सरकार द्वारा दी गई राहत सहायता में बड़ा भारी अंतर था। अभाव बहुत अधिक था तथा केन्द्र सरकार सातवें वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए पर्याप्त सहायता अनुदान देने में असफल रही है।

राज्य सरकार यह आग्रह करती है नगरपालिका सेवाओं सहित प्रशासकीय एवं सामाजिक सेवाओं के स्तरों में एकरूपता लाने के लिए तथा राहत खर्च के वित्त पोषण जैसी विशिष्ट परिस्थितियों के कारण राज्यों के वित्त पर पड़नेवाले बोझ से निबटने के लिए राज्यों को पर्याप्त अनुदान दिए जाएं।

5.14 पेट्रोलियम पदार्थों, कोयले लोहे इस्पात (स्टील) जैसी जन उपभोग की मदों की निर्देशित कीमतों में परिशोधन करके भारत सरकार पर्याप्त संसाधन एकत्र करती रही है। चूंकि बढ़ी हुई कीमतों से प्राप्त अतिरिक्त आय का विनियोजन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है इसलिए ये उत्पादन शुल्क से बाहर होती हैं, राज्यों को इनमें से कोई हिस्सा नहीं दिया जाता। उपकर, जिनमें राज्यों का हिस्सा नहीं होता, की दरों में वृद्धि कर दी जाती है जो राज्यों के लिए हानिकारक है। उपकर में वृद्धि करने की बजाय यदि मूल उत्पादन शुल्क में वृद्धि कर दी जाए तो राज्यों को उसमें हिस्सा मिलेगा।

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि विशेष धारक बांड योजना से होने वाली आय तथा पैट्रोलियम, कोयले इत्यादि जैसी मदों की निर्देशित कीमतों से एकत्र होने वाले राजस्व को संसाधनों के विभाज्य पूल के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। कारण बिल्कुल सीधा है विशेष धारक बांड बिना हिसाब किताब के धन या काले धन का पता लगाने के लिए जारी किए गए थे जो पहले कर पाश से बच जाते थे। यदि आयकर विभाग, जिसका प्रशासन व संचालन केन्द्रीय सरकार के हाथ में है, पर्याप्त सतर्क रहता तो इस आय को कुल प्राप्तियों में सम्मिलित किया जा सकता था और वह राज्यों में बांटे जाने वाले विभाज्य पूल का एक हिस्सा बन सकती थी। यह सिर्फ आय को कराधीन क्षेत्र के अन्तर्गत लाने का मामला है तथा यह आय भी आयकर अधिनियम के अन्तर्गत की जाने वाली अन्य प्राप्तियों की तरह ही विभाजीय होनी चाहिए। पैट्रोलियम उत्पादनों तथा कोयले इत्यादि जैसी मदों की निर्देशित कीमतों में वृद्धि करना ऐसे राजस्वों को वसूल करने का एक निपुण प्रयास है जिन्हें विभाज्य पूल से बाहर रखा गया है यद्यपि उनकी मूल प्रकृति एवं विषय-वस्तु के अनुसार उनका मूल केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों के साथ घनिष्ठ संबंध है। यदि केन्द्र सरकार ने मूल उत्पादन शुल्कों को निर्देशित कीमतों के स्तर तक बढ़ा दिया होता तो यह अभिवृद्धि वित्त आयोग द्वारा सिफारिश की गई सीमा तक विभाज्य पूल में चली जाती और राज्यों को इसमें से हिस्सा मिल जाता। केन्द्र सरकार द्वारा निर्देशित कीमतों में वृद्धि से प्राप्त कुल राजस्व प्राप्ति को विभाज्य पूल में सम्मिलित किया जाए और वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों के न्यायसंगत सूत्र के अनुसार उसे राज्यों में बांटा जाए।

सभी श्रेणियों को मूल उत्पादन शुल्कों में मिला देना चाहिए।

5.15 प्रकटत: समुदाय की बचतें गैरसरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा आपस में बांट ली जाएंगी। सार्वजनिक क्षेत्र अपनी पूंजी आवश्यकताओं तथा लोगों से मिलने वाली प्रतिक्रिया की सीमा तक संस्थागत स्रोतों के माध्यम से बचतों को बढ़ावा दे सकता है। बंटवारे की पद्धतियों को संतोषप्रद नहीं माना गया है क्योंकि उनकी अर्थव्यवस्था के उन्नयन हेतु निवेश पर किए जाने वाले खर्च के हिसाब से अल्प विकसित राज्यों का हिस्सा बिल्कुल अपर्याप्त होता है। पिछले वर्ष के बाजार उधार में 10 प्रतिशत की अनुमति देना पिछड़ेपन को स्थायी बनाना है। इसके अतिरिक्त, जीवन बीमा निगम के वित्त को योजना संसाधन के साथ बांधने से कोई साहसिक योजना आरंभ नहीं की जा सकती। यहां तक कि बैंक ऋण भी विकसित राज्यों के पक्ष में ही जाते हैं।

राज्यों का हिस्सा पूंजी खर्च के अनुपात में होना चाहिए तथा उसे प्रत्येक राज्य की आधारित संरचना के विकास तथा उत्पादन क्षमता के निर्माण में एक विशेष स्तर प्राप्त करने के लिए राज्य की आवश्यकताओं के आधार पर निकाला जाना चाहिए। राज्यों में एकत्र की गई छोटी बचतों के दो तिहाई हिस्से की वर्तमान परंपरा की अपेक्षा के सम्पूर्ण राशि को योजना संसाधन के रूप में प्रयुक्त करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

राज्य यह भी सुझाव देना चाहेगा कि पिछले वर्षों की अपेक्षा उस हद तक बाजार उधारों में वृद्धि करने की अनुमति देकर वर्तमान पद्धतियों में आशोधन किया जाए जिस हद तक अर्थव्यवस्था उन्हें आत्मसात कर सके। जीवन बीमा निगम की निधियों को योजना संसाधन से अलग कर दिया जाए।

5.16 यह सच है कि राज्यों का राजकोषीय असंतुलन बढ़ रहा है जो उन पर बढ़ रहे कर्ज से स्पष्ट है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि राज्यों पर उनके सामान्य विनियंत्रक कार्यों के अतिरिक्त आर्थिक विकास तथा सामाजिक सेवाएं उपलब्ध कराने की जिम्मेवारियां भी लाद दी गई हैं। इसके अतिरिक्त, जब राज्य सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित होता है तो राहत कार्यों के लिए खर्च करना पड़ता है। दुर्भाग्यवश राज्य में 1979-80 से लेकर लगातार पांच वर्षों तक भयंकर सूखा पड़ा है। वास्तव में एक भी ऐसा जिला नहीं था जो सूखे की चपेट में न आया हो।

मुख्यतया राजस्व के सभी लचीले स्रोत केन्द्र सरकार के पास होने के परिणामस्वरूप राज्य की सीमित संसाधन क्षमता के कारण राज्य को अपने विकास खर्च तथा गैर-योजना दायित्वों की पूर्ति के लिए राज्य खतरनाक ढंग से केन्द्र सरकार पर आश्रित है। इसके अतिरिक्त, राज्य की आवश्यकताओं के निर्धारण में वित्त आयोग का मूल्यांकन अनुचित तथा न्यायसंगत असाम्यिक रहा है। कपड़े, तंबाकू एवं चीनी पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाकर तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार पर प्रतिबंध लगाकर और केन्द्रीय बिक्रीकर इत्यादि लगाकर राज्य के क्षेत्र में किए गए अतिक्रमण ने राज्य के संसाधनों को कम करने में और योगदान दिया है। अर्थव्यवस्था में देखी गई मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्ति, जिसके ऊपर राज्य का बहुत कम नियंत्रण है क्योंकि मुद्रा संबंधी तथा राजकोषीय नीतियों का निर्धारण केन्द्र द्वारा किया जाता है, के परिणामस्वरूप लोगों को सेवाएं उपलब्ध कराने की लागत बढ़ जाती है। महंगाई भत्ते तथा पेंशनी लाभों को मिलाकर अन्य भुगतानों, जिनके लिए केन्द्र प्राय: एक नीति-निर्धारक का कार्य करता है, के फलस्वरूप बढ़ती हुई लागतें और भी बढ़ जाती हैं। राज्यों के पास भारत सरकार से सहायता मांगने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं बचता। इस प्रकार बढ़ते कर्ज भार का कारण लापरवाही से किया गया खर्च नहीं है बल्कि इसका कारण संविधान की वर्तमान व्यवस्था के अनुसार संसाधन अंतरण की पद्धति है तथा इस कर्ज भार को ऐसे ऋणों की माफी से कम किया जा सकता है जो इतना प्रतिफल नहीं दे पाते की उनकी चुकौती की जा सके।

5.17 केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों का सबसे अधिक परेशान करने वाला लक्षण यह रहा है कि राज्य से केन्द्र सरकार को ऋणों तथा उसके ब्याज के रूप में किए जाने वाले विपरित अंतरणों की राशि अधिक होती है। नीचे दिए गए वर्षवार विवरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन पिछले वर्षों में स्थितियां बद से बदतर होती गई है।

(रुपये करोड़ों में)

वर्ष	केन्द्र सरकार से प्राप्त ऋण (अर्थोपाय अग्रिम को छोड़कर)	केन्द्र सरकार को वापस किए गए ऋण (अर्थोपाय अग्रिम को छोड़कर)			अंतर (कॉलम 2-5) का
		मूल धन	ब्याज	जोड़	
1	2	3	4	5	6
1977-78	75.68	39.93	40.93	80.32	4.64
1978-79	123.26	40.20	43.17	83.37	39.89
1979-80	114.54	32.50	49.02	18.52	33.02
1980-81	140.32	93.44	46.05	139.49	0.74
1981-82	170.03	56.26	57.30	113.56	56.47
1982-83	524.88	92.90	61.29	154.19	370.69
1983-84	188.40	91.34	72.64	163.96	24.44
1984-85	183.84	141.36	101.36	243.72	(--) 59.92

बढ़ते हुए कर्ज के लिए उत्तरदायी कारणों को संक्षेप में प्रश्न 5.16 के उत्तर में दिया गया है। यहां यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि उस स्थिति में सुधार के लिए, जहां केन्द्र सरकार को किए जाने वाले विपरित अंतरणों की राशि केन्द्र सरकार द्वारा दी गई ऋण सहायता से अधिक होती है, वहां निधीयन व्यवस्थाओं में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है।

आसन्न आशोधन का संबंध राज्य योजना स्कीमों, बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं तथा राहत खर्च के लिए वित्त-पोषण से है। राज्य योजना सहायता पर 70:30 ऋण अनुदान अनुपात की शर्त लगाई गई है।

यह अनुपात ठोस तर्क पर आधारित नहीं है तथा इसे अन्तिम उपयोग की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए जो राज्य को नगण्य प्रतिफल मिलने की दशा में आधारिक संरचना तथा सामाजिक सेवाओं के उद्देश्य से बहुत ही कम है। इसलिए, सहायता को ऋण के रूप में अंतरित करना उपयुक्त नहीं लगता।

बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए दी गई सहायता भी राज्य के कर्ज को बढ़ाती है क्योंकि राज्यों को दी जाने वाली संसाधनों की अतिरिक्त मात्रा सामान्य राज्य योजना सहायता की तरह 70:30 के ऋण अनुदान अनुपात में दी जाती है।

दूसरा सहायक तत्व है प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में राहत के लिए खर्च का वित्त-पोषण क्योंकि आधी सहायता कर्ज के रूप में दी जाती है। खर्चे से टिकाऊ परिसम्पत्तियां नहीं बन पातीं क्योंकि आधारभूत उद्देश्य नौकरी देना भी है जो कि दूर-दूर बिखरे हुए स्थानों पर उपलब्ध करानी होती है। इसका इलाज सातवें वित्त आयोग द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार अनुत्पादक कर्जों को बट्टे खाते डालने में है। इस आधार पर बकाया कर्जों को दो वर्गों में बांटा जाए, अर्थात् उत्पादक तथा अनुत्पादक। उत्पादक कर्ज वह हो सकते हैं जिनसे इतना प्रतिलाभ हो सकता है जो मूलधन और उसका ब्याज अदा करने के लिए पर्याप्त हो। बाकी कर्जों को अनुत्पादक कार्य माना जा सकता है। अनुत्पादक कर्जों को बट्टे खाते डाला जा सकता है।

भविष्य के लिए भी केन्द्रीय सहायता नियत कर्ज, अनुदान अनुपात के आधार पर जुटाने की आवश्यकता नहीं बल्कि वह ऊपर सुझाए गए ढांचे के आधार पर हो सकती है, अर्थात् कुल योजनागत् सहायता, उत्पादक उद्देश्यों को छोड़कर अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए और उत्पादक उद्देश्यों के लिए दिया गया अनुदान कर्ज के तौर पर दिया जाना चाहिए जो कि वर्तमान की तरह 15 किश्तों में चुकाए जाने योग्य हो।

5.18 बाजार से उधार लेने की नीति के मामले में किसी बड़े परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया जा रहा।

किन्तु हाल ही में उधार लेने की राज्यों की आजादी पर प्रतिबंध लगाए गए हैं जिनमें कम से कम अनुमोदित योजनागत् योजनाओं के लिए नाबार्ड और जीवन बीमा निगम जैसी वित्तीय संस्थाओं से उधार लेने के बारे में ढील दी जानी चाहिए।

5.19 अधिकतर परियोजनाओं के लिए भारत सरकार को 0.75 से 1.25 प्रतिशत के अल्प सेवा शुल्क पर भारत सरकार को सहायता उपलब्ध की जाती है और यह राशि 40 से 50 वार्षिक किस्तों में चुकाई जाती होती है। किन्तु राज्य सरकार से इस परियोजनाओं की बाबत अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता 15 वार्षिक किश्तों में चुकाने की अपेक्षा की जाती है जिन पर 5.50 से 6.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष का ब्याज लगता है और यह वह दर है जो योजनागत सहायता पर लागू होती है और अपेक्षाकृत काफी अधिक दर है। अधिक दरें लिया जाना उचित प्रतीत नहीं होता। राज्य का यह पक्का मत है कि जो राज्य बाहर से सहायता प्राप्त योजनाएं हाथ में लेते हैं उन्हें अतिरिक्त योजनागत् सहायता के रूप में दिए गए कर्ज उन्हीं शर्तों पर दिए जाने चाहिए जिन पर कि भारत सरकार द्वारा बाहरी एजेंसियों से कर्ज प्राप्त किए जाते हैं।

5.20 आस्ट्रेलियाई नमूने पर परिषद् गठित करने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती। भारतीय रिजर्व बैंक को केन्द्र-राज्यों और निजी क्षेत्र के बाजार से उधार लेने की समूची प्रक्रिया का समन्वय करना चाहिए। इस समय भारतीय रिजर्व बैंक केवल केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियां खरीद सकता है, राज्य सरकार की नहीं। रिजर्व बैंक को राज्य सरकार की प्रतिभूतियां खरीदने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।

5.21 ओवर ड्राफ्टों के कारण राजस्थान जैसे कम आबादी सघनता वाले तथा पिछड़े हुए राज्यों को पर्याप्त संसाधन न जुटाने के अलावा वित्त आयोगों द्वारा राजस्व प्राप्तियों और खर्च का अयथार्थपूर्ण अनुमान, कर्जों पर बढ़ती हुई ब्याज की देनदारी, कर्मचारियों को महंगाई भत्तों और भुगतानों की बाबत अनिवार्य खर्च जिसकी शुरुआत केन्द्रीय सरकार करती है, और प्राकृतिक आपदाओं की विभीषिका को कम करने के लिए राहत कार्यों पर किया गया खर्च जिसके लिए वित्त-पोषण ढांचा राज्यों के लिए उपयुक्त नहीं है और पूंजीगत परिसम्पत्तियों के अनुरक्षण के लिए अपर्याप्त व्यवस्था आदि हैं।

इसका इलाज पूर्णत: निर्धार्य श्रेणी में संघीय उत्पाद शुल्कों में बढ़ोतरी करके और आयकर पर अधिकर, धारक बाण्डों, पेट्रोलियम तथा कोयला आदि के निर्धारित मूल्यों को बढ़ाने के कारण हुई वृद्धि के जरिए राज्यों को पर्याप्त धन-राशि देने में निहित है। इसके अलावा राज्यों के वित्तों की वार्षिक समीक्षा प्रक्रिया से समस्या हल हो जाएगी क्योंकि यदि अनिवार्य आवश्यकताओं के कारण कोई घाटा होगा तो उसे पूरा किया जा सकेगा और तदनुसार तरीकों और साधनों में संशोधन कर दिया जाएगा।

5.22 इस दृष्टिकोण को सभी राज्यों के लिए सामान्य नहीं माना जा सकता कि राज्य में अपने राजस्व के संसाधनों का पर्याप्त प्रयोग नहीं किया जा रहा। जहां तक राजस्थान का संबंध है यह दृष्टिकोण सही नहीं है। जैसा कि इस बात से जाहिर हो जाएगा कि योजना आयोग द्वारा 750 करोड़ रुपए का अतिरिक्त संसाधन लक्ष्य छठी योजना के लिए नियत किया गया था, वह पूरा कर लिया गया है।

5.23 यह सही है कि यथेष्ठ प्रभावशाली ऊंचाइयां प्राप्त कर लेने के बावजूद केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र से निवेशों पर अपेक्षित प्रतिलाभ नहीं हुआ है। 1982-83 में चल रहे 193 केन्द्रीय क्षेत्र के सरकारी उद्यमों में से 110 ने करपूर्व लाभ कमाया था जिसकी राशि 2520 करोड़ रु० थी जिसमें से 1828 करोड़ रु० 12 पेट्रोलियम कम्पनी के थे। बकाया उद्यमों को 975 रु० का घाटा हुआ था। इस प्रकार यदि पेट्रोलियम कम्पनियों को निकाल दिया जाए तो सरकारी उद्यमों के कार्यकलाप में

घाटा ही दिखाई देता है । वर्ष 1983-84 के पूर्वार्द्ध के लिए उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि सभी सरकारी उद्यमों को यदि मिलाकर देखा जाए तो उनका 113 करोड़ रु० का निवल घाटा था । हमारा समाज किए गए निवेश के बलिदान के अनुसार वित्तीय प्रतिलाभ की अपेक्षा करता है । राज्य सरकार के पास केन्द्रीय कराधान में काफी गड़बड़ के बारे में टिप्पणी करने के लिए पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं किन्तु कुछ प्रेस रिपोर्टों से पता चलता है कि उन गड़बड़ियों को हटाने की कोशिश की जा रही है । इसके अलावा विशेष धारक बाण्डों के जारी करने से हुई वसूलियों से पता चलता है कि पहले कहीं गड़बड़ हुई थी इसका इलाज उद्यमों के कार्यचालन का गहरा अनुशीलन और कारगर कड़ा नियंत्रण रखने में है और कर की वसूली में भी ।

5.24 उगाही करने या दर ढांचे को बदलने या अनुच्छेद 268 और 269 में उल्लिखित शुल्कों या करों में से किसी को समाप्त करने के लिए विधेयक प्रस्तुत करने से पहले राज्य, राज्य सरकार के साथ पहले से परामर्श किए जाने को तरजीह देगा । राज्य कोई विधेयक या संशोधन पेश करने के लिए जो कि राज्य करने के इच्छुक हों, राष्ट्रपति के साथ-साथ "राज्यों" को भी अनुच्छेद 274 में संशोधन का सुझाव भी देता है ।

5.25 राज्य संसाधनों को बढ़ाने के लिए विशेषकर रेल किरायों और भाड़ों पर कर दोबारा लगा कर रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा ले जाए गए माल या यात्रियों पर सीमान्त करों की उगाही करके समाचार-पत्रों की बिक्री या खरीद और उनमें छपे विज्ञापनों पर कर लगाकर संसाधनों को बढ़ाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 269 का बेहतर इस्तेमाल किया जाना चाहिए ।

राज्य संघीय उत्पाद शुल्कों के लिए निर्धारित अनुपात में राज्यों को आबंटित की जाने वाली किसी कर से प्राप्त पूरी आय की भी "पूलिंग" करनी चाहिए ।

5.26 रेलवे यात्री किराया, कर की एवज में अनुदान, रेल किराए की वसूली में हुई वृद्धि के अनुपात में संशोधित करके बढ़ाया जाना चाहिए ।

5.27 चूंकि सभी संघ शासित क्षेत्रों के पूरे खर्च की जिम्मेवारी राज्य सरकार की है, इसलिए संघ शासित क्षेत्रों को करों में कोई हिस्सा देने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

5.28 प्राकृतिक आपदा से निपटने के लिए राज्यों को केन्द्रीय सहायता देने के संबंध में वर्तमान प्रबंध अत्यन्त असंतोषजनक हैं और राज्यों को सूखा राहत के लिए दी गई मात्रा बहुत ही अपर्याप्त है । बाढ़ और सूखा पड़ने के कारण प्राकृतिक आपदाओं के मामले में भेदभावपूर्ण व्यवहार भी न्यायसंगत नहीं है । वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए वित्तीय प्रबंधों में यह व्यवस्था की गई है कि केन्द्रीय सरकार से सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए जिसमें से वार्षिक योजना के लिए अधिक से से अधिक 5% योजना से अंशदान माना जाएगा और शेष आवश्यकता केन्द्रीय अध्ययन दल की सिफारिशों पर केन्द्रीय सरकार द्वारा पूरी की जाएगी । आयोग ने यह उल्लेख किया था कि यदि खर्च की आवश्यकताएं योजना अंशदान द्वारा पर्याप्त रूप से पूरी नहीं की जा सकती तो अतिरिक्त खर्च को आपदा की विशेष प्रचण्डता का संकेत माना जाना चाहिए जिससे पूरे खर्च की सीमा तक राज्य सरकार को, केन्द्रीय सरकार द्वारा सहायता का औचित्य सिद्ध हो सके जिसमें से आधा अनुदान के रूप में होगा और आधा कर्ज के रूप में ।

राहत कार्यों पर होने वाले खर्च को योजना से जोड़ना उपयुक्त नहीं । किसी सूखा वर्ष में जिस प्रकार का राहत कार्य आवश्यक होता है वह टिकाऊ परिसम्पत्ति में योगदान करने वाला या कोई वित्तीय प्रतिलाभ दिलाने के लिए सक्षम नहीं माना जा सकता । वेतनों के लिए खर्च का बड़ा हिस्सा रखने और अधिक से अधिक 40% तक सामग्री संबंधी भाग को सीमित करने की मजबूरी कोई टिकाऊ परिसम्पत्ति बनाने में मुश्किल पैदा कर देती है । इन विकेन्द्रीकृत रोजगार मूलक राहत कार्यों को योजनागत् कार्यक्रमों के रूप में जोड़ने के किसी प्रयास से योजना की प्राथमिकताओं में विकृति ही पैदा होती है और इन कार्यों में से कुछ को स्थायी रूप से लाभकर बनाने के उद्देश्य से इन्हें पूरा करने या उनमें सुधार लाने के लिए निवेश करने के वास्ते योजनागत् कार्यक्रमों पर एक प्रभावी दायित्व पैदा हो जाता है । कुछ मामलों में तो यह भी संभव नहीं होता क्योंकि इन विकेन्द्रीकृत स्थानों पर जिस किस्म के कार्य उपलब्ध होते हैं उनसे इस प्रकार का विकास करने में कोई सहायता नहीं मिलती जिससे कि राष्ट्रीय या राज्य योजना में प्रत्याशित कोई भावी आर्थिक लाभ हो सके ।

इसलिए राज्य सरकार का यह मत है कि सूखा राहत के लिए केन्द्रीय सहायता को योजनागत् खर्च न माना जाए । इसके अलावा पूरी केन्द्रीय सहायता योजनेतर अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है इसके किसी भी हिस्से को कर्ज मानने का कोई औचित्य नहीं है । कर्ज के रूप में सहायता देने से उस खर्च के कारण जिससे कोई वित्तीय या आर्थिक प्रतिलाभ किसी भी तरह से नहीं हो सकता राज्य के कमजोर संसाधनों पर और भी बोझ पड़ता है जिससे कि अन्यथा बचा जा सकता है ।

राज्य यह भी निवेदन करना चाहेगा कि केन्द्रीय अध्ययन दलों द्वारा खर्चों की आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय संबंधित राज्य के प्रतिनिधियों को अनिवार्य रूप से सहयोजित किया जाना चाहिए ।

5.29 रिजर्व बैंक, नाबार्ड और इडबी के माध्यम से जिनमें कि राज्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए, विकासात्मक परियोजनाओं के वित्त-पोषण के बारे में समग्र समन्वय की भूमिका निभाता रह सकता है । भारतीय रिजर्व बैंक को राष्ट्रीय विकास परिषद् के निदेशों के अंतर्गत कार्य करना चाहिए और यह एक सांविधिक निकाय होना चाहिए जिसमें सभी राज्यों के मुख्यमंत्री होने चाहिएं ।

5.30 इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि धनराशि समझदारी से खर्च की जाती है और लाभ अधिकतर जनता को मिलता है । संविधान की वर्तमान व्यवस्थाओं के अंतर्गत सार्वजनिक धन के हिसाब-किताब का पूरा ख्याल रखा जाता है ।

5.31 हम इस मत से सहमत हैं कि संघ के खर्च की समीक्षा प्रतिवर्ष उसी संगठन द्वारा की जानी चाहिए जो राज्य वित्तों की वार्षिक समीक्षा के लिए जिम्मेदार हो ।

राजस्थान राज्य ने किसी लोक प्रचलित प्रकार के किसी उपाय पर खर्च नहीं किया है जो भी विकासात्मक खर्च किया गया है वह योजना के हिस्से के तौर पर किया गया है जिसकी चर्चा योजना आयोग से की गई है और ऐसा करते समय राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है जहां सामाजिक सेवाओं का स्तर अत्यन्त नीचा है ।

राष्ट्रीय व्यय आयोग से और भी भ्रम पैदा हो सकता है और इस लिए हम इसके पक्ष में नहीं हैं । इससे पहले सार्वजनिक खर्च का अध्ययन करने के लिए 1978 में एक समिति गठित की गई थी जो कि 1979 में समाप्त कर दी गई और जिसका स्पष्ट कारण यह था कि यह उपयोगी नहीं पाई गई ।

5.32 यह पाया गया है कि महालेखाकार द्वारा लेखों का सही हिसाब देने में विलम्ब किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार को प्रभावी वित्तीय नियंत्रण करने में कठिनाई होती है । राज्य सरकार का मत है कि लेखा परीक्षा और लेखा कार्य के बीच विभाजन होना चाहिए । लेखा परीक्षा का कार्य भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक के पास रहना चाहिए तथा लेखों का कार्य राज्यों को हस्तांतरित कर दिया जाना चाहिए ।

5.33 वाउचर लेखा परीक्षा को पूर्णतया छोड़ नहीं दिया जा सकता और उसे जारी रहने देने होगा । तथापि, मूल्यांकन लेखा परीक्षा पद्धति को धीरे-धीरे इस प्रकार विकसित किया जाना चाहिए कि लेखा परीक्षा अधिक अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण हो ।

5.34 धीरे-धीरे मूल्यांकन लेखा परीक्षा पर बल दिया जाना चाहिए । संसदीय विधान द्वारा 1971 में नियंत्रक महालेखा परीक्षक को प्रदत्त की गई वर्तमान शक्तियां उसे अपना कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए पर्याप्त हैं ।

5.35 नियंत्रक महालेखापरीक्षक की रिपोर्ट पर्याप्त विस्तृत और सही मानी जाती है ।

5.36 लोक लेखा समिति और लोक उपक्रम समिति जिन वर्तमान व्यवस्थाओं के जरिए नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की रिपोर्टों की जांच करती है वह व्यवस्था., अपर्याप्त व्यय-नियंत्रण के बारे में की गई शिकायत का उत्तर देने के बारे में जांच-कार्य के लिए पर्याप्त है ।

5.37 हां, प्राक्कलन समिति, प्रशासन को उपयोगी विधायी और प्रशासनिक सलाह देने के लिए एक पहरेदार का काम करती है ।

5.38 जैसा कि प्रश्न 5.31 के उत्तर में पहले ही सूचित किया जा चुका है हम एक व्यय आयोग के पक्ष में नहीं हैं ।

5.39 यह सच है कि संबद्ध प्रशासनिक मशीनरी, कार्य योजना की मंजूरी के लिए क्षोभक है और पर्याप्त विलम्ब का कारण है । केन्द्रीय मंत्रालय की भूमिका व्यापक नीति निर्देशक सिद्धान्त बनाने और एक बार किए गए व्यय के परिणामों का मूल्यांकन करने तक ही सीमित होनी चाहिए ; नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा लेखा परीक्षा की वर्तमान व्यवस्था से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि किसी विनिर्दिष्ट उद्देश्य के लिए उपलब्ध कराई गई निधि का खर्च वास्तव में उसी उद्देश्य के लिए किया जाता है ।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 योजना के लिए राज्यों की पूर्ण प्रतिबद्धता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्यों के परामर्श और सहयोग को और अधिक सार्थक बनाया जाए । इसके लिए यह आवश्यक होगा कि राष्ट्रीय विकास परिषद को प्रस्तुत किए जाने वाले योजना के प्रस्तावित नमूने पर निर्णय लेने से पहले योजना आयोग द्वारा तैयार किए गए विभिन्न विकल्पों और नमूनों का विस्तृत ब्योरा राज्यों को दिया जाए । इन नमूनों पर पहले राज्यों के योजना सचिवों के साथ सार्थक वार्ता के लिए अधिकारिक स्तर पर विचार-विमर्श कर लेना चाहिए । योजना सचिवों की अधिकारिक स्तर की समिति को इन नमूनों के अतिरिक्त योजना में सम्मिलित प्रस्तावों की रूपरेखा का ब्योरा भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि उन मामलों में सम्भव सीमा तक राज्यों के विचारों को भी योजना प्रस्ताव में शामिल किया जा सके, जिनमें इस अवस्था में कोई राजनीतिक निर्णय लेना आवश्यक नहीं समझा जाता है ।

अधिकारिक स्तर की बैठक में हुए विचार-विमर्श में की गई टिप्पणियों पर विस्तृत विचार-विमर्श करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद की एक उप समिति गठित की जाए और उपर्युक्तानुसार गठित अधिकारिक स्तर की समिति और उप-समिति के सुझावों के आधार पर अंतिम निर्णय लेने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् से कहा जाए ।

जैसा कि प्रश्न में केन्द्र-राज्य के पारस्परिक संबंधों के बारे में बताया गया है, केन्द्र-राज्यों के संबंध अच्छे न होने का एक मुख्य कारण यह है कि केन्द्रीय मंत्रालय प्रायः अपने-अपने विभागों के लिए अलग-अलग होकर कार्य करते हैं । इसका उपाय यह है कि राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों और मानदण्डों के अनुसार विभिन्न राज्यों की आवश्यकताओं को पहचान कर यह सुनिश्चित किया जाए कि अल्प विकसित राज्यों को अपने समीपवर्ती विकसित राज्यों के स्तर तक आने के लिए पर्याप्त धन राशि उपलब्ध करायी जाती है । इनसे केन्द्र राज्यों के संबंध अपने आप ही अच्छे हो जाएंगे और उनमें और सुधार करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी क्योंकि राज्य या केन्द्रीय मंत्रालयों के पास कोई विकल्प ही नहीं रह जाएगा ।

योजना तैयार करने में केन्द्र की भूमिका राज्यों के परामर्श और सहयोग के साथ मूल नीति का खाका तैयार करने तक सीमित होनी चाहिए और जब एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लिया जाए तो यह विकल्प राज्यों के लिए छोड़ देना चाहिए कि वह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कौन सा तरीका अपनाते हैं ।

6.2 राष्ट्रीय विकास परिषद् को सांविधिक दर्जा दिया जाना चाहिए । एक ऐसी प्रणाली बनाई जानी चाहिए जिसके द्वारा राज्यों की अनिवार्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उनकी वित्तीय आवश्यकताएं निर्धारित करने के लिए हर वर्ष नियमित रूप से समीक्षा की जा सके ।

6.3 योजना आयोग ने समय बीतने के साथ-साथ योजना बनाने के लिए एक केन्द्रीकृत एजेंसी का रूप धारण कर लिया है, जो कि अब भारत सरकार के ऐसे साधारण तंत्र का भाग नहीं है, जो प्रत्येक कार्यक्रम का निर्धारण करता है । केन्द्र और राज्य स्तर के विभाग परामर्श और सहायता के लिए आयोग पर ज्यादा से ज्यादा निर्भर करने लगी है । जहां तक योजना तैयार करने में राज्य सरकारों के सहयोग का संबंध है उनसे अधिक परामर्श नहीं किया जाता । वास्तव में योजना आयोग का वर्तमान संगठन एक सलाहकार निकाय की बजाय एक प्राधिकरण के रूप में ज्यादा कार्य कर रहा है । यह बेहतर होगा कि पद्धति को लागू करने में प्रत्येक महत्वपूर्ण स्तर पर राज्यों का सक्रिय सहयोग अवश्य प्राप्त किया जाए ताकि राज्यों को भी यह महसूस हो कि राष्ट्रीय स्तर पर योजना तैयार करने में उनका भी काफी सहयोग रहता है । यह कार्य योजना आयोग का होगा कि वह राष्ट्रीय/राज्य स्तर के महत्व के मामलों पर कोई निर्णय लेने से पहले राज्य के विचार बराबर प्राप्त करे और उन्हें उचित महत्व दे । ऐसे मामले में, जो पूर्णतया राज्यों की सूची में है अथवा समवर्ती सूची में हैं, राज्यों के विचारों को तब तक प्रमुखता दी जाए जब तक कि ये मामले राष्ट्रीय नीति, सुरक्षा नीति या अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं के विरुद्ध न हों । इसके अतिरिक्त योजना आयोग और केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा गठित प्रत्येक कार्यकारी दल में सभी राज्यों के प्रतिनिधि होने चाहिए ।

सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व देने से योजना आयोग का संगठन काफी बड़ा हो जाएगा, लेकिन इसके समाधान के लिए राज्यों को बारी-बारी से प्रतिनिधित्व देने की पद्धति अपनाई जा सकती है ।

6.4 इसमें अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री के अतिरिक्त वित्त मंत्री, कृषि, उद्योग और वाणिज्य मंत्री स्थायी सदस्य होते हैं । इसमें प्रशासकों, अर्थशास्त्रियों और तकनीशियनों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाता है, इसमें अतिरिक्त राज्यों के मुख्य मंत्रियों की सिफारिश पर दो या तीन सदस्य बारी-बारी से राज्यों से भी लिए जाने चाहिए ।

6.5 भारत सरकार के एक विभाग के रूप में योजना आयोग का वर्तमान स्वरूप जारी रखा जाना चाहिए ।

6.6 चूंकि राज्य केन्द्र की संघटक इकाइयां हैं, इसलिए यह उचित होगा कि राज्यों की योजना में राष्ट्र की प्राथमिकताओं को दिखाया जाए । ये राष्ट्रीय प्राथमिकताएं योजना आयोग द्वारा विकास के लिए तय की गई कुछ व्यापक वैकल्पिक योजनाएं होंगी, जो कि सरकार द्वारा विधिवत समर्थित होनी चाहिए । तथापि, यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्यों की योजना में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को शामिल किया गया है, योजना आयोग राज्य की विकास योजनाओं के लिए कार्यकारी और निर्णय लेने संबंधी शक्तियां अपने हाथ में नहीं लेगा । बल्कि आयोग राज्यों को यह सलाह देगा कि वे किस प्रकार अपनी योजना तैयार करें और आरंभिक स्तर पर राज्यों के सहयोग के साथ आवश्यक धनराशि के प्रावधान, निर्धारित लक्ष्यों और क्षेत्रीय विसंगतियों व राज्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लक्ष्य निर्धारित करने के लिए सुझाव देगा । इससे राज्यों को अपनी विशिष्ट प्राथमिकताओं को योजनाबद्ध करने में अपेक्षाकृत व्यापक सुविधा होगी और योजना आयोग उनके लिए मार्गदर्शक, दोस्त और दार्शनिक का कार्य करेगा ।

6.7 राज्यों को केन्द्र द्वारा निम्न तीन प्रकार की सहायता दी जाती है:—

(i) राज्य योजना के लिए ब्लाक योजना सहायता ।

(ii) विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता ।

(iii) सूखा राहत के लिए केन्द्रीय सहायता ।

केन्द्र द्वारा राज्यों को योजना के लिए दी जाने वाली सहायता, यहां तक कि सूखा राहत के लिए दी जाने वाली सहायता के अंतरण का तरीका इस प्रकार है कि राज्यों पर ऋण का बोझ हर वर्ष बढ़ता जा रहा है । हाल में पंजाब और हरियाणा राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों का ऋण-भार देश में सर्वाधिक है ।

करों और शुल्कों के कैम ऐम में मूल और ब्याज की वापस अदायगी के रूप में केन्द्र सरकार को राजस्व का अंतरण किया जाता है । राजस्थान सरकार ने पिछले कुछ वर्षों से जो तरीका अपनाया है उसका परिणाम यह रहा है कि केन्द्र सरकार ने बहुत कम राशि प्राप्त की है ।

वर्तमान में ब्लाक योजना सहायता के लिए ऋण-अनुदान का अनुपात 70:30 है । यह अनुपात समग्र रूप से राज्यों के हित में नहीं है, विशेषकर राजस्थान जैसे अल्प-विकसित राज्य के लिए तो बिल्कुल ही हित में नहीं है । वास्तव में राज्यों के बकाया ऋण के बढ़ते हुए बोझ के कारण इस समस्या पर नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए । यह निर्विवाद है कि केन्द्र सरकार भी करों में बढ़ोतरी करके अपने वित्तीय स्रोत बढ़ाकर राज्य सरकारों के विकास कार्यों के लाभ में अपना हिस्सा प्राप्त करती है । अत: यह तर्कसंगत बात है कि केन्द्र सरकार को भी कुछ जिम्मेदारियां अपने ऊपर लेनी चाहिए । इसके अतिरिक्त यह समझना भी उचित नहीं है कि राज्य सरकार द्वारा लगाई गई पूंजी से इतना प्रतिलाभ प्राप्त हो जाए कि इससे पूंजीनिवेश की राशि वापस प्राप्त की जा सके । इन सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार का यह विचार है कि ब्लाक योजना सहायता के लिए दिए जाने वाले ऋण-अनुदान के अनुपात में संशोधन किया जाना चाहिए ।

राज्यों द्वारा परिचालित विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए केन्द्र द्वारा प्राप्त आर्थिक सहायता को अंतरित करने के तरीके में भी संशोधन करने की आवश्यकता है । इन परियोजनाओं की व्यवस्था पूर्णतया राज्य योजना के अधीन की जाती है लेकिन केन्द्र सरकार को प्राप्त होने वाली प्रतिपूर्ति में से राज्यों को केवल 70 प्रतिशत राशि ऋण के रूप में और 30 प्रतिशत अनुदान के रूप में अंतरित की जाती है । केन्द्र सरकार लगभग 0.75 प्रतिशत सेवा-प्रभारों के अतिरिक्त कोई ब्याजप्रभार अदा नहीं करती है और प्राय: ऋण की वापसी की अवधि 40-50 वर्ष होती है । दूसरी ओर राज्य सरकार को ऋण-राशि की वापसी 15 वर्ष के अन्दर करनी होती है, जिसके लिए 5.25 से 6.5 प्रतिशत तक की दर से ब्याज की वसूली की जाती है । इसके अतिरिक्त ऐसी परियोजना की पूर्ण लागत राज्य की योजना की अधिकतम सीमा का एक भाग होती है, तदनुसार एक विस्तृत योजना का परिव्यय विशिष्ट परियोजनाओं से सम्बद्ध हो जाता है । अत: राज्य सरकार का यह अनुरोध है कि विशिष्ट परियोजनाओं के संबंध में बाह्य एजेंसियों से प्राप्त सम्पूर्ण आर्थिक सहायता की राशि राज्य सरकारों को उन्हीं आसान शर्तों पर दे दी जाए ।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है कि उसमें सूखा पड़ने की अत्यधिक सम्भावना होती है । विद्यमान वित्तीय व्यवस्था में सीमांत धन राशि और इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा योजना के अन्तर्गत आर्थिक सहायता भी उपलब्ध करायी जाती है । किन्तु यह महसूस किया जाता है कि राहत कार्यों पर किए जाने वाले व्यय को योजना व्यय में नहीं जोड़ा जाना चाहिए क्योंकि इनका स्वरूप ऐसा है कि इन विकेन्द्रीकृत नियोजन प्रधान कार्यों से कोई आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता । योजना के अन्तर्गत इन्हें शामिल करने से योजना की प्राथमिकताओं को हानि ही पहुंचती है और इन कार्यों को पूरा करने के लिए और अधिक पूंजीनिवेश करने के संबंध में योजना पर एक अतिरिक्त भार पड़ता है । इन कार्यों को इस दृष्टि से देखा जाना चाहिए कि इनके द्वारा प्रभावित लोगों को केवल राहत और रोजगार ही दिया जा सकता है । कर्ज के रूप में खर्च के लिए सहायता देना भी उचित नहीं है । अत: सूखा राहत के लिए दी जाने वाली सहायता भारत सरकार द्वारा शत प्रतिशत योजनेतर अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए ।

6.8 और 6.9 योजनाबद्ध विकास का एक मुख्य उद्देश्य विकास में क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करना ही है । मूल रूप से इसके लिए संगठित प्रयास करना होगा और विकास की दिशा में जो कमियां हैं उन्हें दूर करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन भी जुटाने होंगे । राज्य सरकारों के पास अपने उत्तरदायित्व पूरे करने के लिए जो साधन उपलब्ध हैं वे बिल्कुल अपर्याप्त हैं । इस कमी को दूर करने के लिए केन्द्र सरकार समय समय पर तदर्थ आधार पर कर्ज और अनुदान देती है । केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को निधियों के अंतरण के लिए जो फार्मूला बनाया गया है उसका भी पिछड़े राज्यों पर काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । संशोधित गाडगिल फार्मूला में, जिसमें जनसंख्या संबंधी तत्व को सबसे अधिक महत्व दिया गया है, घनी आबादी वाले राज्यों को अनावश्यक महत्व दिया गया है, जबकि अधिक बड़े क्षेत्रों वाले और सेवाएं प्रदान करने के लिए प्रति यूनिट उच्चतर लागत वाले राज्यों को इससे काफी हानि होती है । बड़े क्षेत्रों वाले राज्यों को दूसरे राज्यों की तुलना में सामाजिक सेवाओं पर अधिक धनराशि खर्च करनी पड़ती है । राज्य योजना के वित्त पोषण के लिए साधनों की उपलब्धता की सीमा के अन्तर्गत राज्य योजना के आकार के निर्धारण की प्रणाली के अन्तर्गत राज्य के पिछड़ेपन को ध्यान में नहीं रखा गया है जिसका मुख्य कारण वित्तीय साधन न जुटा सकने की उनकी असमर्थता ही है । यदि अपर्याप्त साधनों वाले पिछड़े राज्यों को अपने ही वित्तीय साधनों से योजना तैयार करनी हो तो ऐसे राज्य प्रतिकूल स्थिति में होने के कारण विकास की गति को आगे बढ़ा पाने में औरों की तुलना में अधिक कठिनाई महसूस करते हैं और इससे क्षेत्रीय असंतुलन में वृद्धि होती है और इस प्रकार योजना का एक मूल उद्देश्य अर्थात् क्षेत्रीय असंतुलन और विकास की विसंगतियों को दूर करने का उद्देश्य ही पूरा नहीं हो पाता ।

राज्य योजनाओं के वित्त पोषण के लिए सहायता देने का तरीका प्रत्येक राज्य की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए और यह सुनिश्चित करके निर्धारित किया जाना चाहिए कि प्रत्येक राज्य के पास निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध हो । अत: राज्य सरकार यह चाहेगी कि एक फार्मूला तैयार किया जाए, जिसके परिणामस्वरूप कम आबादी वाले पिछड़े राज्यों को केवल जनसंख्या पर आधारित राज्यों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक धनराशि आबंटित की जा सके । योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की स्कीम तैयार करते समय उसमें जनसंख्या के हिस्से को कम करके राज्य के क्षेत्र पर भी उचित ध्यान दिया जाना चाहिए ।

यह भी जरूरी है कि दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता को दो भागों में अर्थात गैर-फार्मूला सहायता और फार्मूला सहायता में बांट लिया जाना चाहिए । कम विकसित राज्यों के महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों के स्तर को बढ़ाकर अधिक विकसित राज्यों में विद्यमान स्तरों तक लाने के लिए अपेक्षित धनराशि का निर्धारण किया जाना चाहिए और राज्यों के अपने साधनों की राशि को घटाने के बाद जितनी धनराशि की आवश्यकता हो उतनी पूरी धनराशि गैर-फार्मूला भाग के अधीन केन्द्रीय सहायता के रूप में दी जानी चाहिए ।

फार्मूला सहायता के अधीन जनसंख्या का मूल्यांकन क्षेत्र के आधार पर किया जाना चाहिए और विभिन्न राज्यों को दी जाने वाली निधियों में अपेक्षित हिस्से का निर्धारण करने के लिए आधारभूत सुविधाओं के तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए-।

यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ मामलों में राज्यों को अंतरित की जाने वाली निधियों के लिए निर्धनता को एक मानदण्ड के रूप में शामिल किया गया है । भोजन में जितनी कैलोरी होती है उसके आधार पर निर्धनता के मानदण्ड में जलवायु, काम के हालात और खान-पान की आदतों में भिन्नता के कारण बिल्कुल गलत अनुमान लगाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त इसमें केवल भोजन में कैलोरी की मात्रा का ही अनुमान लगाया जाता है किन्तु इसके लिए अपेक्षित साधनों पर विचार नहीं किया जाता । अत: राज्यों की निधियों के अंतरण का निर्धारण करने के लिए निर्धनता के मानदण्ड का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए ।

विशेष क्षेत्र विकास कार्यक्रम इस तर्क पर आरम्भ किए गए हैं कि कुछ भौगोलिक क्षेत्रों की कुछ अत्यंत विशेष पारिस्थितिक और सामाजिक आर्थिक विशेषताएं होती हैं जिन पर जब तक विशेष रूप से ध्यान न दिया जाए तब तक उनके रहते हुए वर्तमान योजना प्रक्रिया को और उसके अन्तर्गत विकसित स्कीमों को अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित नहीं किया जा सकता । पहाड़ी क्षेत्रों को इस वर्ग से संबद्ध क्षेत्रों के रूप में मान्यता दी जा चुकी है । राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र भी इसी वर्ग में आते हैं और उन पर तत्काल विशेष ध्यान देना अपेक्षित है । रेगिस्तानी क्षेत्रों के विकास के लिए बहुत अधिक धन लगाने की आवश्यकता है, जो राज्य के साधनों से परे है । अत: यह अत्यंत आवश्यक है कि विशेष विकास कार्यक्रम रेगिस्तानी क्षेत्रों पर भी लागू किए जाएं और उनके लिए पहाड़ी क्षेत्रों को दी जाने वाली सहायता के समान आर्थिक सहायता दी जाए ।

6.10 मूल रूप से केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें संघ सरकार द्वारा अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही लागू की जाती हैं लेकिन अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के अन्तर्गत क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए और सभी स्कीमें एक ही प्रकार से सभी राज्यों पर लागू नहीं की जानी चाहिए। अतः ऐसी स्कीमों में उपयुक्त बातों को शामिल करने के लिए काफी गुंजाइश रखी जानी चाहिए और केन्द्र द्वारा प्रायोजित कुछ स्कीमें विशिष्ट क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाई जानी चाहिए। जब तक इन स्कीमों के माध्यम से पिछड़े राज्यों का तेजी से विकास किया जा सकता है और स्थानीय समस्याओं का प्रभावशाली तरीके से समाधान किया जा सकता है तब तक इस प्रणाली का हार्दिक स्वागत है। किंतु पिछले अनुभव के आधार पर ऐसी स्कीमों की मंजूरी और समीक्षा की सभी शक्तियां विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों को देना उचित नहीं होगा और इसके लिए मात्र एक उदार दृष्टिकोण अपनाना उचित होगा और प्रतिपूर्ति की कार्यविधि को अधिक सरल बनाना उपयुक्त होगा। इसके अतिरिक्त केन्द्र द्वारा प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रों की स्कीमों के लिए उपलब्ध करायी जाने वाली सहायता के स्वरूप और सहायता की मात्रा के संबंध में भी पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप देने से पूर्व निर्णय कर लिया जाना चाहिए। सहायता के स्वरूप में एवं समरूप अंशदान के स्वरूप में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए जिससे पंचवर्षीय योजना के दौरान राज्यों की हानि हो और व्यय की वहन करने के मामले में पिछले राज्यों को तरजीह दी जानी चाहिए।

कम से कम पिछड़े क्षेत्रों से सम्बद्ध महत्वपूर्ण स्कीमों के लिए केन्द्र की पूरी आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

6.11 मुख्य परियोजना के लिए क्षेत्रीय अधिकारियों और अर्थशास्त्रियों के निकट सहयोग से परियोजना पर निरन्तर निगरानी रखने की प्रणाली लागू की जानी चाहिए।

मामलों की शीघ्र जांच और समाधान के लिए कम्प्यूटरों और डाटा प्रकमण उपस्करों का प्रयोग आरम्भ किया जाना चाहिए।

कार्यक्रम कार्यान्वयन, उसकी निगरानी और मूल्यांकन के संबंध में सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए केन्द्र और राज्यों के निकट संबंध को बढ़ाने की आवश्यकता है।

6.12 वर्तमान के केन्द्र और राज्यों के बीच योजना तैयार करने के मामलों में कोई व्यवधान नहीं है। योजना आयोग के नीति दिशा निर्देशों के अनुसार राज्यों द्वारा तैयार किए गए योजना के मसौदे की योजना आयोग द्वारा गठित कार्यकारी दल द्वारा जांच की जाती है व उस पर विचार-विमर्श किया जाता है और योजना के उपलब्ध वित्तीय संसाधनों को ध्यान में रखकर योजना का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। राज्यों का इस संबंध में ज्यादा स्वतंत्रता नहीं है।

जैसा कि ऊपर अन्यत्र कहा गया है इस बात कि आवश्यकता है कि राष्ट्रीय विकास परिषद की कुछ उप-समितियां गठित करके योजना बनाए जाने की आरम्भिक अवस्था से ही उसमें राज्यों को अधिक सक्रिय रूप से संबद्ध किया जाए और योजना आयोग से यह कहा जाए कि वे योजना तैयार करने में राज्यों का भी सहयोग ले। एक बार योजना अनुमोदित हो जाए तो उसे कार्यान्वित करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार योजना प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण से निसन्देह राज्यों में सक्रिय भागीदारी और सहकारी संघीय भावना उत्पन्न होगी। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि राज्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता दी जाए और योजना के कार्यान्वयन का काम अनुमोदित योजना तथा उसके अधीनिश्चत स्वरूप के अनुसार बिना किसी शर्त के राज्यों पर छोड़ देना चाहिए।

देश में पिछले तीन दशकों से भी अधिक समय से योजना के कार्य के परिणामस्वरूप राज्य भी योजना के कार्य में काफी निपुण हो गए हैं। योजना तैयार करना राज्यों की मांगों को एक स्थान पर एकत्र करने का कार्य मात्र नहीं है अपितु यह कार्य योजना के उद्देश्यों और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए संबंधित क्षेत्र में संभावित क्षमताओं और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आधार पर एक सुविचारित एवं सुनियोजित कार्य है। राजस्थान में योजना बनाने, उसके कार्यान्वयन और समीक्षा के कार्य के लिए राज्य स्तर पर पूर्ण स्वतंत्र विभाग है। महत्वपूर्ण कोर क्षेत्रक विभागों की योजना तैयार करने उनके कार्यान्वयन और उनके क्षेत्र कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए अपनी व्यवस्था है। इस प्रयोजन के लिए राज्य में बनाए गए अलग संगठन द्वारा समवर्ती और कार्योत्तर मूल्यांकन भी किया जाता है। राज्य योजना बोर्ड का पुनर्गठन किया जा रहा है।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम इस बात से सहमत हैं कि प्रथम अनुसूची का उसके मूल सीमा क्षेत्र से बहुत अधिक आगे बढ़ाया गया है जिसके परिणामस्वरूप उद्योग संघ सरकार का ही एक विषय हो गया है। मूल विचार तो लाइसेंस संबंधी कार्यविधियों को केवल उन कोर उद्योगों पर लागू करना था जिनका एक विशिष्ट महत्व था और यह नहीं कि अनुसूची लगभग सभी उद्योगों पर लागू की जाए।

यह तर्क दिया जा सकता है कि औद्योगिक लाइसेंस देना पिछड़े क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा देने का एक साधन है। किन्तु पिछले अनुभव से इस बात की पुष्टि नहीं होती कि औद्योगिक लाइसेंस देना पिछड़े क्षेत्रों के विकास का एक प्रभावशाली साधन रहा है। वस्तुतः अधिकांश लाइसेंस पहले से विकसित राज्यों को ही दिए गए हैं और यह प्रगति आज भी चल रही है, यह भी सिद्ध हो गया है कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा दिए जाने वाले प्रोत्साहन और वित्तीय संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली रियायतें पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विस्तार और औद्योगिक युनिटों की स्थापना सुनिश्चित करने के अधिक महत्वपूर्ण साधन हैं। अतः हमारा यह विचार है कि इस अनुसूची को केवल ऐसे कोर उद्योगों तक सीमित रखा जाए जो देश की अर्थ व्यवस्था के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

लाइसेंस देने के लिए भारत सरकार द्वारा अपनाए जाने वाले मौजूदा सामान्य तरीके के अनुसार भी पांच करोड़ रुपये या उससे अधिक राशि के पूंजी निवेश वाले बड़े पैमाने के उद्योगों को भारत सरकार द्वारा लाइसेंस दिया जाता है और मध्यम और छोटे पैमाने के उन उद्योगों को, जिन पर बड़े पैमाने के उद्योगों की ऊपर उल्लिखित परिभाषा लागू नहीं होती राज्य सरकारों पर छोड़ दिया जाता है। किन्तु इस सामान्य नियम का भी प्रायः अनुपालन नहीं किया जाता; विविध मंत्रालयों ने ऐसे मामलों में भी लाइसेंस देने, अनुमति/स्वीकृति देने की शक्तियां प्राप्त कर ली हैं जिनमें किए जाने वाले पूंजी निवेश की राशि बहुत कम होती है। गेहूं पीसने की चक्की, इलैक्ट्रानिक उद्योग, बिजली का करघा, कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनकी स्थापना के लिए केन्द्रीय मंत्रालयों या विभागों से अनुमति लेना जरूरी होता है। इससे परिहार्य विलम्ब होता है और राज्यों की वह भूमिका भी समाप्त हो जाती है जिसकी उनसे आशा की जाती है।

7.2 (i) राज्य सरकार कोई कठोर मानदण्ड लागू करने के पक्ष में नहीं है। "राष्ट्रीय सार्वजनिक हित" का संबंध केवल भारत की अर्थव्यवस्था के लिए विशेषरूप से महत्वपूर्ण उद्योगों के साथ ही होना चाहिए। यह परीक्षण उद्योग को विनियमित करने वाले सभी विधानों पर लागू किया जाना चाहिए।

7.2 (ii) अनुसूची की प्रत्येक प्रविष्टि के गुण-दोषों पर विचार किए बिना हमारा पुनः यह निवेदन है कि अनुसूची में किसी उद्योग को शामिल करने के लिए जो सामान्य सिद्धान्त लागू किया जाना चाहिए वह यह होना चाहिए कि ऐसा उद्योग कोर क्षेत्रक से संबद्ध होना चाहिए और समग्र रूप से देश की अर्थ-व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण होना चाहिए। इस परीक्षण को लागू करके अनुसूची में ठीक प्रकार से काट-छांट करके उसे व्यवस्थित रूप दिया जा सकता है।

7.3 जैसा ऊपर स्पष्ट किया गया है औद्योगिक लाइसेंस हमारे उद्योगों के लिए अनिवार्य उपबंध नहीं होना चाहिए। सामान्य रूप से हमारा उद्योग पहले से ही विनियमित है और सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी करके और उन्हें उपयुक्त रियायतें और प्रोत्साहन देकर अप्रत्यक्ष नियंत्रण द्वारा बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। कोर क्षेत्रक के उद्योगों को छोड़ कर कोई भी व्यक्ति बिना किसी लाइसेंस के कोई भी उद्योग लगाने के लिए स्वतंत्र

होना चाहिए बशर्ते कि संबंधित राज्य सरकार उसे आवश्यक मूलभूत सुविधाएं प्रदान करने का आश्वासन दे सकें। यह बात उन उद्योगों पर लागू होगी जिन्हें आयातित कच्चे माल की आवश्यकता नहीं होती। पूंजीगत निर्गमों, पूंजीगत माल और विदेशी सहयोग के लिए केन्द्रीय स्वीकृति पहले की भांति दी जाती रहनी चाहिए क्योंकि वर्तमान कार्यविधि काफी सन्तोषजनक है।

7.4 लघु उद्योग के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमी विपणन के क्षेत्र में है। अलग-अलग यूनिटों को अपनी वस्तुओं की बिक्री करने के लिए बाजार ढूंढने में काफी कठिनाई होती है और कुछ राज्यों को छोड़कर इस कार्य में उन्हें नाममात्र का समर्थन प्राप्त होता है। प्रत्येक राज्य को लघु और ग्रामीण उद्योगों के लिए अधिक सार्थक तरीके से विपणन संबंधी समर्थन, देना होगा और इस प्रयोजन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक शीर्ष संगठन भी होना चाहिए। जहां तक कच्चे माल का संबंध है लघु उद्योग निगम के माध्यम से इसकी आपूर्ति की जो विद्यमान व्यवस्था है वह पर्याप्त प्रतीत नहीं होती

किन्तु लोहा इस्पात, अन्य धातुएं, कोयला रसायन और कुछ पैट्रोलियम उत्पाद जैसे अनेक प्रकार के कच्चे माल को कमी होने के कारण या जिनका उत्पादन केन्द्रीय अंतरक के अधीन किया जा रहा है, इनका आबन्टन राज्यों को भारत सरकार द्वारा किया जाता है। कुछ राज्यों को जिनमें ऐतिहासिक कारणों से औद्योगिकरण का काम कुछ विलम्ब से शुरू हुआ है, कच्चे माल का आबन्टन कम मात्रा में किया जा रहा है। आबन्टन की प्रणाली अधिक न्यायसंगत होनी चाहिए। इसके अन्तर्गत औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों को दुर्लभ कच्चे माल की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति करके उनमें उद्योगों के विकास को बढ़ावा भी दिया जाना चाहिए।

7.5 केन्द्रीय वित्त संस्थाएं राज्य योजनाओं के लिए कर्ज नहीं दे रही हैं, बल्कि वे सीधे ही या राज्य की वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से अलग-अलग उद्योगों को कर्ज दे रही हैं। तथापि, केन्द्रीय वित्तीय संस्थाएं अपनी आर्थिक सहायता की अधिकांश राशि ऐसे अधिक विकसित राज्यों को दे रही हैं जहां से अधिकांश आवेदन पत्र प्राप्त होते हैं। इससे पिछड़े राज्यों को हानि होती है। केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं को औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों के विकास में अधिक सक्रिय रूप से रुचि लेनी होगी और ऐसे क्षेत्र में पूंजी निवेश के प्रस्तावों को प्राथमिकता देनी होगी।

उन्हें राज्यों से आवेदनों की प्रतिक्षा में मात्र निष्क्रिय होकर नहीं बैठ जाना चाहिए बल्कि उन्हें अधिक सार्थक भूमिका निभानी चाहिए और पिछड़े राज्यों को बढ़ावा देना चाहिए। इसके सदृश्य यह उल्लेखनीय है कि भारी संख्या में राज्यों से प्राप्त निवेदनों के परिणामस्वरूप भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को इस बात के लिए तैयार कर लिया है कि वे कमी वाले राज्यों को राष्ट्रीय औसत के स्तर तक लाने की दिशा में अधिक सक्रिय भूमिका निभाएं। किन्तु राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के मामले में इस समय यह नीति नहीं अपनाई जा रही है। भारत सरकार या भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को एक शीर्ष वित्तीय संस्था के रूप में यही रवैया अपनाना चाहिए।

नीचे की सारणी के आंकड़ों से वर्तमान विसंगतियों और उन तथ्यों का पता चलता है जिनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि समृद्ध राज्यों को अधिक सहायता मिल रही है और उनकी आर्थिक स्थिति अधिक सुदृढ़ हो रही है जबकि कमी वाले राज्यों को कम सहायता मिल रही है और वे और भी पीछे होते जा रहे हैं, उन्नत और पिछड़े राज्यों के बीच खाई बढ़ती जा रही है।

1984-85 के दौरान मंजूर आर्थिक सहायता और मार्च, 1985 के अंत तक संचित धनराशि

(करोड़ रुपयों में)

क्रम सं०	राज्य/संस्थान	मार्च 1985 तक संचित धनराशि							
		आई० डी० बी० आई०	आई० एफ० सी० आई०	आई० सी० आई० सी० आई०	एल० आई० सी०	यू० टी० आई०	जी० आई० सी०	कुल	कुल का प्रतिशत
		1	2	3	4	5	6	7	8
1.	आन्ध्र प्रदेश .	1,234.85	248.20	236.83	82.25	62.27	34.80	1,899.20	8.28
2.	आसाम . .	131.08	25.70	16.56	14.36	1.54	1.15	190.39	0.82
3.	बिहार . .	392.01	63.00	109.98	75.98	33.45	14.21	689.09	3.00
4.	गुजरात . .	1,904.18	252.30	425.08	158.89	99.55	56.31	2,896.31	12.62
5.	हरियाणा .	453.53	77.00	82.64	12.64	22.47	21.14	669.42	2.92
6.	हिमाचल प्रदेश .	157.08	26.64	18.06	3.47	1.34	2.94	209.53	0.91
7.	जम्मू और कश्मीर .	146.36	13.66	7.65	1.70	0.50	0.35	170.22	0.74
8.	कर्नाटक . .	1,052.84	173.06	214.15	67.95	110.63	27.83	1,746.46	7.17
9.	केरल . .	482.31	81.10	56.21	19.21	8.31	4.97	652.11	2.89
10.	मध्य प्रदेश .	597.87	98.30	127.95	32.67	57.60	35.24	949.63	4.14
11.	महाराष्ट्र .	2,029.76	364.79	766.78	357.73	340.37	199.76	4,059.10	17.73
12.	मणिपुर . .	3.54	..	..	..	..	..	3.54	0.01
13.	मेघालय .	16.44	2.74	0.54	1.74	..	..	21.46	0.09
14.	नागालैंड .	9.41	0.67	0.17	..	..	..	10.25	0.04
15.	उड़ीसा . .	525.87	87.60	85.65	32.59	21.76	13.89	767.36	3.34
16.	पंजाब . .	464.57	100.12	81.65	19.47	24.13	8.80	698.74	3.04
17.	राजस्थान .	686.29	138.87	127.93	31.21	23.51	14.65	1,022.46	4.46
18.	सिक्किम .	4.94	1.00	1.00	..	..	..	6.94	0.03
19.	तमिलनाडु .	1,520.45	201.91	279.44	119.29	78.62	34.85	2,234.56	9.74
20.	त्रिपुरा . .	9.93	1.16	0.56	0.36	..	..	12.01	0.05
21.	उत्तर प्रदेश .	1,491.73	250.55	189.66	98.07	44.67	39.56	2,114.24	9.21
22.	पश्चिम बंगाल .	776.79	137.06	161.29	134.00	104.59	41.61	1,355.34	5.91
23.	संघ शासित राज्य .	477.44	51.63	80.53	34.55	7.97	18.01	670.13	2.92
	कुल . .	14,569.64	2,397.52	3,070.31	1,298.13	1,043.28	670.07	22,948.95	

7.6 यह सच है कि केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की स्थापना के स्थान का निर्धारण करते समय राज्यों से कभी नहीं पूछा जाता। इस संबंध में जो निर्णय लिए जाते हैं वे भी कभी-कभी विशुद्ध रूप से अर्थव्यवस्था संबंधी विचारों से भिन्न आधारों पर लिए जाते हैं। केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में जो पूंजी निवेश किया जाए उसका उपयोग औद्योगिक रूप से पिछड़े राज्यों के विकास के लिए किया जाए।

यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में, जो कि देश के कुल क्षेत्र का 1/10 वें भाग के बराबर है, लगभग पिछले दो दशकों में केन्द्रीय क्षेत्र की एक भी नई परियोजना की स्थापना नहीं की गई। निम्नलिखित सारणी से इस प्रकार की प्रवृत्ति का पता चल जाएगा। इसको ठीक किया जाना चाहिए और न्यायसंगत बनाया जाना चाहिए।

केन्द्रीय सार्वजनिक उपक्रमों में संचयी पूंजी-निवेश (सकल ब्लाक) में राज्यों के हिस्से की प्रतिशतता (1963—1983)

राज्य

वर्ष	आंध्र प्रदेश	असम	बिहार	गुजरात	हरियाणा	हि० प्रदेश	कर्नाटक	केरल
1963 . .	0.8	1.5	15.9	0	..	नाममात्र	3.6	0.2
1964 . .	1.0	1.8	16.9	0.1	..	नाममात्र	3.5	1.5
1965 . .	1.5	2.1	17.7	0.1	..	नाममात्र	3.0	1.8
1966 . .	2.4	1.5	17.6	1.4	..	नाममात्र	2.9	2.0
1967 . .	3.0	1.4	17.2	1.4	..	नाममात्र	2.9	2.2
1968 . .	2.9	2.0	17.8	2.9	0.3	नाममात्र	2.7	2.6
1969 . .	2.9	2.1	20.8	2.9	0.2	नाममात्र	2.7	3.4
1970 . .	2.9	2.2	23.0	2.9	0.2	नाममात्र	2.7	3.4
1971 . .	3.0	2.1	24.9	4.2	0.2	नाममात्र	2.7	3.4
1972 . .	3.1	3.1	25.9	4.3	0.2	नाममात्र	2.8	3.3
1973 . .	3.5	3.2	26.9	4.7	0.2	नाममात्र	2.9	3.2
1974 . .	3.8	3.0	27.8	4.7	0.2	नाममात्र	3.0	3.3
1975 . .	4.3	3.2	26.8	4.8	0.3	नाममात्र	3.0	3.2
1976 . .	4.2	3.6	25.1	4.8	0.7	0.2	2.8	3.4
1977 . .	4.2	3.4	27.2	5.7	1.5	0.4	2.9	3.0
1978 . .	4.4	3.3	25.2	5.6	1.3	0.8	3.7	3.9
1979 . .	4.2	3.0	22.6	5.0	1.7	0.8	4.1	3.0
1980 . .	5.1	3.4	20.7	5.8	1.6	0.8	4.9	2.8
1981 . .	5.5	3.7	19.7	6.6	1.5	—	4.7	2.7
1982 . .	5.4	5.7	18.0	5.0	1.3	0.7	4.3	2.4
1983 . .	7.5	5.5	16.6	3.9	1.1	0.6	3.7	2.2

राज्य

वर्ष	मध्य प्रदेश	महाराष्ट्र	उड़ीसा	पंजाब	राजस्थान	तमिलनाडु	उ०प्रदेश	प० बंगाल
1963 . .	23.7	2.0	21.4	2.8*	0.2	8.3	0.2	19.4
1964 . .	23.8	2.6	19.2	2.6*	0.2	9.1	0.7	17.4
1965 . .	23.9	2.7	17.4	2.4*	0.2	9.3	1.8	16.2
1966 .	23.3	3.1	15.2	2.0*	0.2	9.1	2.6	27.2
1967 . .	21.8	3.2	14.3	1.8*	0.3	9.3	3.5	17.7
1968 . .	19.6	3.5	14.8	1.2	0.7	8.9	4.8	15.3
1969 . .	18.2	3.4	14.2	1.1	0.9	8.8	4.6	13.8
1970 . .	16.5	3.6	13.4	1.0	1.0	9.2	4.6	13.5
1971 . .	15.5	3.5	12.6	0.9	1.1	8.8	4.3	12.7
1972 . .	14.8	3.6	11.7	0.9	1.4	8.4	4.2	12.6
1973 . .	14.0	3.9	11.0	0.8	1.8	7.5	4.6	12.5

राज्य

वर्ष	मध्य प्रदेश	महाराष्ट्र	उड़ीसा	पंजाब	राजस्थान	तमिलनाडु	उ०प्रदेश	प० बंगाल
1974 . .	13.8	3.9	10.1	0.8	2.2	6.9	4.1	12.3
1975 . .	13.4	4.9	9.3	1.2	2.6	6.2	4.1	12.6
1976 . .	18.2	5.0	8.3	2.2	2.5	6.7	4.1	7.6
1977 . .	16.2	6.8	7.0	2.1	2.5	5.1	4.1	8.3
1978 . .	16.1	8.1	5.9	2.0	2.5	5.1	4.4	9.5
1979 . .	14.5	7.6	5.8	2.7	2.9	4.9	5.2	8.4
1980 . .	14.7	8.6	6.2	2.3	2.2	5.0	5.7	10.2
1981 . .	14.6	10.0	5.8	2.3	2.0	5.1	5.6	9.7
1982 . .	14.2	13.3	5.7	2.0	2.1	4.8	6.0	8.6
1983 . .	13.6	14.1	5.4	1.7	2.0	4.7	8.9	8.5

स्रोत: केन्द्र सरकार के औद्योगिक एवं वाणिज्यक उपक्रमों के कार्यचालन के संबंध में लोक उद्यम ब्यूरो की वार्षिक रिपोर्ट। भारत सरकार—विभिन्न मामले।

टिप्पणी :— ना० — नगण्य मात्र

*पंजाब और हरियाणा

—आंकड़े उपलब्ध नहीं।

7.7 यह आलोचना निराधार नहीं है कि केन्द्रीय सार्वजनिक पूंजी-निवेश में कुछ राज्यों की उपेक्षा की गई है। राजस्थान में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 2% पूंजी निवेश किया गया है, यद्यपि यह माना जाता है कि यह एक औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ राज्य है। केन्द्र सरकार की यह भी एक प्रवृत्ति है कि वह केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र में ऐसे अधिक समृद्ध राज्यों में पूंजी-निवेश करती है, जो बेहतर प्रोत्साहन और रियायतें दे सकते हैं।

इस प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए और केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की स्थापना करते समय पिछड़े हुए राज्यों के विकास पर जोर देते हुए अधिक न्यायसंगत वितरण किया जाना चाहिए।

7.8 औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्र कौन से हैं, इस बात का निर्धारण करने के लिए अपनाया जाने वाला तरीका काफी पुराना हो गया है और इसका सावधानी से पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। किसी भी स्थिति में यह नहीं है कि पिछड़े क्षेत्रों के रूप में वर्गीकृत क्षेत्रों के विकास के स्तर में काफी अधिक परिवर्तन हुआ है और इसलिए पिछड़े क्षेत्रों का पुन: वर्गीकरण करने की तत्काल आवश्यकता है। पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए केन्द्र सरकार और वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए जाने वाले प्रोत्साहन आंशिक रूप से सफल रहे हैं विशेष रूप से इन प्रोत्साहनों से उन क्षेत्रों में सफलता मिली है जहां मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध थीं।

वर्तमान तरीके के अनुसार पूरे जिले को ही औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्र के रूप में माना जाता है। कुछ मामलों में यह हो सकता है कि पूरा जिला औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ न पाया जाए किन्तु जिले का कोई एक स्थान या क्षेत्र औद्योगिक रूप से पिछड़ा हो सकता है। अत: औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्र का निर्धारण करने के वर्तमान तरीके में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए ताकि जिले के अन्दर औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए स्थानों या क्षेत्रों जैसे विकास खण्ड का निर्धारण करके उसे पिछड़ा हुआ क्षेत्र घोषित किया जा सके।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 अन्तर-राज्यीय वाणिज्य और व्यापार पर कोई कठोर प्रतिबंध नहीं लगाया गया है और नही इस संबंध में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच भेद-भाव का कोई आरोप रहा है। वर्तमान परिस्थितियों में संविधान के अनुच्छेद 307 के अधीन जो उपबंध निर्दिष्ट हैं वह आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

कृषि

9.1 राज्य का यह दृढ़ मत है कि कृषि क्षेत्र में किए जाने वाले आवश्यक कार्यों के लिए जिम्मेदारी उठाने के संबंध में केन्द्र सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए और इसे एक राज्य का विषय मानते रहना चाहिए।

9.2 केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें सामान्य रूप से अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर और प्राय : राज्यों की विशिष्ट आवश्यकताओं का मूल्यांकन किए बिना ही प्रायोजित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्कीम की निर्धारित अवधि पूरी होने के बाद उसका प्रतिबद्ध दायित्व राज्य सरकारों को वहन करना चाहिए क्योंकि स्कीम से संबंधित कर्मचारियों को हटाया नहीं जा सकता। स्कीम के अखिल भारतीय स्वरूप के कारण भी कर्मचारियों के वेतनमानों में इसलिए अव्यवस्था उत्पन्न हुई है क्योंकि संघ सरकार का यह आग्रह रहा है कि वह कुछ विशिष्ट स्कीमों के अधीन ही कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी।

अत: राज्य सरकार का यह विचार है कि मूल रूप से राष्ट्रीय महत्व की मदों के संबंध में केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें कम से कम चलाई जाएं। ये स्कीमें उस स्थिति में आर्थिक रूप से राज्य सरकारों पर नहीं डाली जानी चाहिए और इनका पूरा वित्त पोषण संघ सरकार द्वारा ही किया जाना चाहिए। यदि ये स्कीमें वर्ष के बीच में या पंचवर्षीय योजना के बीच में प्रायोजित की जाती हैं क्योंकि राज्य योजना की निधियां पहले से ही अन्य कार्यक्रमों के लिए विनियोजित होती हैं।

9.3 इस संबंध में अपेक्षित सहयोग भी नहीं मिल रहा है। राज्य सरकार संयुक्त कार्यचालन समूह के गठन का स्वागत करेगी और केन्द्र और राज्य के कार्यचालन ग्रुपों के बीच निरन्तर विचार-विमर्श से भी राज्य सरकार को खुशी होगी।

9.4 कृषि संबंधी वस्तुओं के न्यूनतम या उचित मूल्य निर्धारण से संबंधित मद की चर्चा प्रश्न 4.7 के उत्तर में की गई है।

जहां तक सिचाई का संबंध है राज्य सरकार इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहेगी कि अन्तर-राज्यीय जल व्यवस्था के लिए केन्द्रीय एजेन्सियों से अनुमोदन लेने या प्राप्त करने की अनिवार्यता को बनाए रखना लाभकारी होगा। यह भी उल्लेखनीय है कि नदी जल का बंटवारा करने से संबंधित अन्तर-राज्यीय विवाद संविधान से भी पुराने हैं। संविधान के निर्माताओं को इस समस्या की जानकारी थी और इसलिए उन्होंने अनुच्छेद 262 में संसद को अन्तर-राज्यीय जल विवादों के संबंध में कानून बनाने का प्राधिकार दिया। संसद ने अन्तर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1950 बनाकर यह कार्य पूरा किया।

पिछले वर्षों में केन्द्र सरकार ने यह बेहतर समझा है कि अन्तर-राज्यीय जल विवादों का समाधान बात-चीत करके किया जाए और इस प्रकार केन्द्र सरकार ने विवादाधीन राज्यों के बीच मध्यस्थता करने की अपनी क्षमता को बरकरार रखा है। उन विवादों को निपटाने में दो कारणों से विलम्ब होती है—पहला विवाद न्यायाधिकरण को भेजने से और फिर उसके बाद किसी विवाद विशेष के लिए गठित न्यायाधिकरण द्वारा अपना निर्णय देने में।

वर्तमान व्यवस्था का एक विकल्प यह हो सकता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इन विवादों को निपटाने के लिए उसी प्रकार कानून बनाया जाएं जिस प्रकार अनुच्छेद 131 में अन्य विवादों के निपटान के लिए व्यवस्था है, या नदियों के अधिकार केन्द्र सरकार को अंतरित कर दिए जाएं। संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया और पश्चिम जर्मनी में अन्तर-राज्यीय जल-विवाद न्यायिक प्रक्रिया द्वारा निपटाए जाने की व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है।

राज्य सरकार यह चाहेगी कि अन्तर-राज्यीय विवाद तथा केन्द्रीय जल परियोजना से संबंधित विवाद शीघ्रता से निपटाने के लिए विद्यमान उपबंधों को अधिक सख्ती से लागू किया जाए ताकि संबंधित राज्यों को अधिक कोई शिकायत न हो।

वन-नीति और प्रशासन के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि वन-संरक्षण कानून बनाने के बाद इस क्षेत्र में केन्द्र सरकार का अत्यधिक प्रभुत्व रहा है। राज्य सरकार का यह सुझाव है कि राज्य के मुख्य वन संरक्षक को हर राज्य में वन-नीति लागू करने के लिए उत्तरदायी प्राधिकारी के रूप में घोषित किया जाए ताकि मामलों का शीघ्रता से निपटारा किया जा सके और सभी मामलों को भारत सरकार को भेजने की आवश्यकता न हो।

9.5 कोई समस्या नहीं।

खाद्यान्न नागरिक आपूर्ति

10.1 इस संबंध में की गई वर्तमान व्यवस्था सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन खाद्यान्नों और अन्य अनिवार्य वस्तुओं की नियमित आपूर्ति बनाए रखने के लिए राज्यों के दायित्वों को देखते हुए ठीक है।

खाद्यान्नों एवं अन्न वस्तुओं के आबंटन का निर्णय करते समय राज्य सरकारों से परामर्श नहीं किया जाता। राज्य सरकारों से परामर्श किया जाना आवश्यक है और तीन महीने में एक बार राज्य सरकारों से अवश्य परामर्श किया जाना चाहिए ताकि खाद्यान्नों का आबंटन वास्तविक आवश्यकता के आधार पर किया जा सके। एक ऐसा अन्य क्षेत्र भी है जिसमें केन्द्र-राज्य के बीच संपर्क की स्थिति में सुधार करना वांछनीय प्रतीत होता है, यह क्षेत्र विशेष रूप से खाद्यान्न और चीनी के लाने ले जाने से संबंधित है। इस प्रकार अन्य राज्यों को वस्तुएं भेजने से पहले केन्द्र सरकार को राज्य सरकार से परामर्श कर लेना चाहिए। केन्द्र सरकार को राज्य से बाहर स्थित फैक्टरियों से उगाही की चीनी ले जाते समय राज्य सरकारों से भी परामर्श करना चाहिए ताकि वस्तुओं की प्राप्ति में होने वाले विलम्ब से बचा जा सके।

10.2 यह आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि ऐसा करने से कार्यान्वयन में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है और जहां आवश्यक हो वहां अपेक्षित टिप्पणियों/प्रतिस्थापनों/परिवर्तनों पर विचार किया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केन्द्र सरकार के स्तर पर वार्षिक बैठकों का आयोजन किया जाना चाहिए।

शिक्षा

सामान्य

पिछड़े हुए राज्यों और जिलों में प्राथमिक शिक्षा को व्यापक स्तर पर लागू करने के लिए केन्द्र सरकार से आर्थिक सहायता मिलना जरूरी है। किसी भी राज्य में शिक्षा के स्तर पर पिछड़े हुए जिलों में शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए यह आर्थिक सहायता केन्द्र सरकार द्वारा दी जाने वाली कुल आर्थिक सहायता का एक भाग ही होना चाहिए। पिछड़े हुए राज्यों में शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रौद्योगिक क्रान्ति लाना और कृषि क्षेत्र की भांति ही इसके लिए आर्थिक सहायता व अन्य सुविधाएं प्रदान करना भी केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी है। यह सच है कि कृषि के क्षेत्र में प्रति हैक्टर निवल आय की वृद्धि के समान केन्द्र द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय उन्नति के लिए मानवीय संसाधनों एवं पूंजी निवेश में कोई स्पष्ट, प्रत्यक्ष एवं तात्कालिक लक्षण दिखाई नहीं देते। तथापि, इस प्रकार आर्थिक सहायता प्रदान करने से पिछड़े हुए राज्यों की शिक्षा के स्तर में सुधार करने और विभिन्न क्षेत्रों में लोगों द्वारा अपने कौशल के स्तर में उन्नति करने में सहायता मिलेगी।

शिक्षा के लिए निर्धारित देश के वित्तीय साधनों का यथोचित और प्रभावशाली विभाजन करते समय केन्द्र सरकार को पिछड़े हुए राज्यों और जिलों पर विशेष ध्यान देते हुए अपने दायित्व का निर्वहन करना चाहिए।

11.1 राज्यों में शैक्षिक प्रगति और विकास के लिए पर्याप्त स्रोत व साधन उपलब्ध हैं। केन्द्रीय स्तर पर लिए जाने वाले महत्वपूर्ण निर्णय शिक्षा मंत्रालय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय सम्मेलनों में परस्पर परामर्श के बाद ही लिए जाते हैं। केन्द्र ने शिक्षा के मानकीकरण की दिशा में सार्थ प्रयास किए हैं और उनसे प्रगतिशील नीतियों को अपनाने में राज्य सरकारों के सामने कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मामले को छोड़कर शिक्षा के "केन्द्रीकरण" और "मानकीकरण" की आलोचना अनुचित प्रतीत होती है।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ऐसे मनमाने निर्णय लेकर जिनसे राज्य सरकारों के लिए जटिलताएं ही उत्पन्न हुई हैं, शैक्षिक एवं प्रशासनिक मामलों में विश्वविद्यालयों का मार्गदर्शन करने में असफल रहा है। यह आयोग:—

(i) मात्रात्मक वृद्धि और गुणवत्ता से संबंधित उत्कृष्टता के बीच परस्पर उचित समन्वय नहीं कर सका है, और

(ii) एकात्मक, संबद्ध आदि जैसे विभिन्न प्रकार के विश्वविद्यालयों के लिए इष्टतम आकार का निर्धारण भी नहीं कर सका है, और

(iii) विभिन्न क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की वित्तीय आवश्यकताओं के निर्धारण के लिए उचित मार्ग-निर्देश भी निर्धारित नहीं कर सका है।

विश्वविद्यालयों को आर्थिक सहायता देने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की भूमिका अत्यंत दोषपूर्ण रही है और अनुदानों के वितरण में कोई सुव्यवस्थित तरीका भी नहीं अपनाया जाता।

राज्य सरकार का यह विचार है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले राज्य सरकारों से अवश्य परामर्श कर लेना चाहिए। आर्थिक सहायता की राशि का वितरण सभी विश्वविद्यालयों को इस बात का ध्यान रखे बिना कि कोई विश्वविद्यालय केन्द्रीय विश्वविद्यालय है अथवा नहीं उचित तरीके से किया जाना चाहिए।

11.3 वर्तमान संस्थागत व्यवस्था ठीक प्रतीत होती है बशर्ते कि सम्मेलनों का आयोजन हर वर्ष किया जाए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्यों में राज्यों की भूमिका और अधिक सुदृढ़ बनायी जानी चाहिए। इसी प्रकार भारतीय विश्वविद्यालय संघ को भी सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए।

11.4 कोई कठिनाई नहीं हुई है।

11.5 कोई कठिनाई नहीं हुई है।

अन्तर सरकारी समन्वय

12.1 एक अलग आयोग या परिषद् का गठन आवश्यक नहीं है।

19-3-1987 को आयोग के समक्ष प्रस्तुत किए गए राजस्थान के मुख्यमंत्री के विचार

न्यायाधीश सरकारिया जी एवं मित्रों,

मैं आपके प्रति आभार व्यक्त करता हूं कि आपने मुझे केन्द्र-राज्य-संबंधों पर आयोग के प्रश्नों पर व्यक्तिगत रूप से अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया। इन प्रश्नों के लिखित उत्तर हम आयोग को पहले ही भेज चुके हैं, यहां मैं कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डालना चाहूंगा जिन पर आयोग को विशेष ध्यान देना चाहिए या विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

2. संविधान के मूल स्वरूप के संबंध में हमारी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। हम एक सशक्त केन्द्रीय सरकार चाहते हैं। एक सशक्त केन्द्रीय सरकार ही भाषावाद, क्षेत्रीयता एवं धार्मिक पृथक्करण आदि जैसी भ्रामक एवं विखंडनकारी प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर सकती है, जो देश की एकता, अखंडता और सामाजिक संस्कृति के लिए खतरा बनी हुई है। देश की सुदीर्घ ऐतिहासिक परम्परा भी इस तथ्य को पूर्णतया सिद्ध करती है। हमारा देश एक सशक्त केन्द्र सरकार के कारण ही एकजुट और अखंड रहा है। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमारा यह विचार है कि :—

(क) अनुच्छेद 256, 257, 354, 357 एवं 365 जो केन्द्र के प्रशासनिक एवं आपातकालीन अधिकारों से संबंधित हैं, उचित हैं, तथा आवश्यक हैं।

(ख) कर से इतर मामलों में संघ, राज्य एवं समवर्ती सूचियों की वर्तमान प्रणाली जारी रखी जानी चाहिए, यद्यपि उनमें कुछ परिवर्तन किए जाने चाहिए, जो इस प्रकार हैं—पानी और बिजली जो विकास की प्रक्रिया के साथ अत्यंत महत्वपूर्ण हो गए हैं, इन्हें राष्ट्रीय साधनों के रूप में घोषित किया जाना चाहिए और उन पर कानून बनाने के लिए केवल संसद को ही सक्षम होना चाहिए। सभी नदियों और बिजली की परियोजनाओं का वास्तविक नियंत्रण केन्द्र सरकार के पास होना चाहिए। राष्ट्रीय हित को बढ़ाने के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम होगा। वस्तुत: नहरें और बिजली की लाइनें रस्सियों की भांति भारत के विभिन्न राज्यों को एक दूसरे के साथ बांध देंगी, इसके लिए VII वीं अनुसूची की सूची की प्रविष्टि 56 और अनुच्छेद 262 में उपयुक्त संशोधन करना आवश्यक है। पानी और बिजली से संबंधित विवादों के उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक समाधान के लिए एक कानून बनाया जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 131 में पहले से ही यह व्यवस्था है कि अन्य मामलों से संबंधित विवादों का इसी प्रकार समाधान उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए। अमेरिका, आस्ट्रेलिया जैसे देशों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्तर-राज्यीय विवादों के समाधान को स्वीकार किया जाता है।

इससे पहले जो हमने अधिक बुनियादी सुझाव दिया है, यदि उसे स्वीकार नहीं किया जाता तो राज्य सरकार कम से कम यह चाहेगी कि अन्तर-राज्यीय जल विवादों तथा जल वितरण केन्द्रों के केन्द्रीय नियंत्रण संबंधी विवादों को शीघ्र निपटाने के लिए विद्यमान उपबंधों को अधिक सख्ती से लागू किया जाए ताकि संबंधित राज्यों को कोई शिकायत न हो।

3. यदि आयोग आनन्दपुर साहिब संकल्पों की भी जांच कर रहा हो तो हमारा यह विचार है कि :—

(क) संकल्प संख्या 1 के संबंध में केन्द्र को राष्ट्रीय अखंडता के हित में अधिक सशक्त एवं मजबूत बनाया जाना चाहिए।

(ख) संकल्प संख्या 2 के संबंध में हम राजस्थान राज्य के किसी भाग को पंजाब राज्य में मिलाने का विरोध करते हैं। हम इस प्रकार के विस्तारवाद की किसी भी ऐसी नीति का पूर्णतया विरोध करते हैं।

(ग) पंजाब द्वारा जल वितरण केन्द्रों के नियंत्रण से संबंधित संकल्प संख्या 2(ग) भी हमें बिल्कुल स्वीकार नहीं हैं। हम पानी में राजस्थान के हिस्से के संबंध में भी इस संकल्प का कड़ा विरोध करते हैं।

(घ) हम इसी प्रकार संकल्प संख्या 2(घ) से बिल्कुल सहमत नहीं हैं जिसमें स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा रावी-व्यास नदियों के जल के वितरण के संबंध में दिए गए उस निर्णय में संशोधन की मांग की गई है जिसे, हरियाणा और राजस्थान के मुख्यमंत्रियों ने अपने अपने राज्यों की ओर से बिना किसी शर्त के स्वीकार किया था।

यद्यपि यह पहले भी कहा जा चुका है फिर भी मैं इस बात पर पुन: जोर देना चाहूंगा कि हमे उपकेन्द्रीय शक्तियों की अपेक्षा अभिकेन्द्रीय शक्तियों को बढ़ावा देना चाहिए।

4. वर्तमान रूप में राज्यपाल के पद को बनाए रखा जाना चाहिए क्योंकि यह केन्द्र और राज्य के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है।

इस अनुभव के आधार पर हमारा यह भी विचार है कि राज्यपालों न संविधान के भिन्न उपबंधों के अधीन दिये गये अपने अधिकारों ओर आपातकालीक उपबंधों से संबंधित अधिकारों का प्रयोग करते हुए निष्पक्षता से और बिना किसी पूर्वाग्रह के कार्य किया है।

किसी विवादपूर्ण स्थिति में सरकार बनाने के लिए किसी दल विशेष के नेता को आमंत्रित करने के अधिकार का राज्यपालों ने प्राय: उचित एवं निष्पक्ष तरीके से प्रयोग किया है। तथापि, हम निम्नलिखित दो मुद्दों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे :—

(i) राज्यपाल को किसी विवादपूर्ण स्थिति में विधायकों की संख्या की जांच करने और उसका सत्यापन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके लिए विधानसभा ही उपयुक्त एवं लोकतांत्रिक संघ है, किन्तु किसी जटिल स्थिति में राज्यपाल को अपने सामान्य विवेकाधिकार का प्रयोग करते रहना चाहिए।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 201 के अधीन किसी विधेयक को स्वीकृति देने या उसे अस्वीकार करने के लिए एक उचित समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। राष्ट्रीय स्तर पर भी यही सिद्धान्त लागू होना चाहिए।

5. वित्तीय मामलों के संबंध में हम एक ऐसे विशेष पक्ष पर जोर देना चाहेंगे जिसके अन्तर्गत हमारे कई मुद्दे आ जाएंगे। संविधान की वर्तमान स्कीम के अधीन देश के सामान्य नागरिकों को सीधे प्रभावित करने वाले अधिकांश विकास कार्यक्रमों के लिए राज्य सरकारों को धनराशि प्रदान करनी चाहिए और उन्हें ही ये कार्यक्रम निष्पादित करने चाहिए। किन्तु दूसरी ओर राज्य सरकार के पास जो साधन उपलब्ध हैं वे विकास संबंधी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं हैं। देश की एकता और अखंडता एवं सांवैधानिक व्यवस्था का उचित अनुरक्षण तभी किया जा सकेगा जब देश के सामान्य नागरिकों की बुनियादी जरूरतें पूरी की जाएंगी। किन्तु राज्य सरकारों के लिए उपलब्ध अधिकांश करों में कोई वृद्धि नहीं की जा सकती। इस प्रकार संविधान में निर्दिष्ट आर्थिक प्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि राज्यों में विकास के भिन्न-भिन्न स्तरों के कारण साधनों की उपलब्धता भी अलग-अलग है। इसका परिणाम यह हुआ है कि विभिन्न राज्यों में रहने वाले लोगों का बुनियादी आवश्यकताओं के संबंध में स्तर भी भिन्न भिन्न है। इस प्रकार वास्तव में लोगों की मूल आवश्यकताएं किसी राज्य विशेष में उनके प्रवास के आधार पर पूरी की जाती है न कि देश की सामान्य नागरिकता के आधार पर। हमारा यह विचार है कि सामान्य नागरिकता के पक्ष

को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और प्रवास की संकल्पना को महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह होगा कि देश के प्रत्येक नागरिक की, चाहे वो किसी राज्य का प्रवासी हो, बुनियादी आवश्यकताएं अवश्य पूरी की जानी चाहिए। इस संबंध में राज्यों की और अधिक वित्तीय साधन और अधिकार देने के लिए हम निम्नलिखित सुझाव देना चाहेंगे :—

(i) विद्यमान संवैधानिक व्यवस्था के अधीन राज्यों की आर्थिक आवश्यकता और साधनों के बीच जो अन्तर है उसमें काफी वृद्धि हुई है। इस प्रकार विकास कार्य संबंधी व्यय के वित्त पोषण के लिए राज्यों को केन्द्र सरकार पर ही अधिक निर्भर रहना पड़ता है। राजस्व के इस अन्तर का वित्त आयोग जैसे संवैधानिक अधिकरण द्वारा किया गया आवधिक मूल्यांकन यथार्थपूर्ण नहीं है। वित्त आयोग के पूर्वानुमान में सामान्य रूप से माल और सेवाओं की लागत में होने वाली भावी वृद्धि को इस पूर्वधारणा पर ध्यान में नहीं रखा गया है, कि इस कमी को राजस्व में होने वाली वृद्धि से पूरा कर लिया जाएगा। देश में कर की दर सबसे अधिक और विकास की गति बहुत धीमी होने के परिणामस्वरूप यह बात सच नहीं सिद्ध हुई है। इसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सहायता का राज्यों को अन्तरण अपर्याप्त रहा है और अनिवार्य व आवश्यक व्यय में भी कमी करनी पड़ी है जिसके कारण विकास और प्रशासन की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। सरकार का यह दृढ़ विचार है कि निधियों के अंतरण के संवैधानिक प्रणाली में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि राज्यों के साधनों और आर्थिक आवश्यकताओं के बीच जो कमी है उसे समाप्त किया जा सके या कुछ कम अवश्य किया जा सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश के सभी नागरिकों को, चाहे वे किसी राज्य के हों विकास संबंधी एवं अन्य न्यूनतम सुविधाएं अवश्य प्राप्त हो सकें।

(ii) राज्य की आर्थिक आवश्यकताओं और उनके लिए उपलब्ध साधनों के बीच जो अंतराल है उसे निम्नलिखित तीन तरीकों से पूरा किया जा सकता है :—

(क) करों का हिस्सा।

(ख) योजनागत सहायता।

(ग) योजनेतर सहायता।

(iii) विभाज्य साधनों के राज्यों के बीच वितरण के वर्तमान फार्मूले में, जो वसूली, जनसंख्या, प्रति व्यक्ति आय, घरेलू उत्पाद और निर्धनता के अनुपात के मानदण्ड पर आधारित है, परिवर्तन किया जाना चाहिए। वसूली का फार्मूला उन विकसित राज्यों के अनुकूल हैं जिसमें पत्तनों और विपणन केन्द्रों की सुविधाएं हैं और जहां अधिकांश उद्योग स्थापित हैं। राज्यों के घरेलू-उत्पादों के प्राक्कलनों पर उनके संकुचित क्षेत्र का भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्राक्कलन तैयार करने के लिए विशेष रूप से तीसरे क्षेत्र के लिए पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं और नही उपयुक्त मानदण्ड उपलब्ध हैं। निर्धनता के अनुपात की भी भोजन में कैलोरी को मात्रा को एक आधार बनाने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में काफी अधिक आलोचना की गई है। यह मानदण्ड यथार्थ- पूर्ण नहीं है, यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि महाराष्ट्र और गुजरात जैसे उन्नत राज्यों के गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की प्रतिशतता राजस्थान जैसे निर्धन राज्य से अधिक है। वर्तमान फार्मूले के परिणामस्वरूप समृद्ध राज्य और अधिक समृद्ध हो गए हैं और निर्धन राज्य अधिक निर्धन हो गए हैं। हमारे विचार से विभाज्य साधनों के वितरण का उपयुक्त फार्मूला निम्न प्रकार होना चाहिए :—

(क) क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए जन संख्या के आधार पर 50% और मूलभूत सुविधाओं के सूचकांक (अखिल भारतीय सूचकांक को 100 मानते हुए) के विपरीत के आधार पर 50%। यहां क्षेत्र को ध्यान में रखने का प्रस्ताव इस तथ्य को देखते हुए रखा गया है कि क्षेत्र की विशालता से प्रति इकाई लागत बढ़ जाती है और मूलभूत सुविधाओं के विकास में कमी आ जाती है जो अर्थव्यवस्था के विकास की एक पूर्वशर्त है और उसको सूचित करती है।

(iv) भारत सरकार से प्राप्त होने वाली योजना-सहायता के फार्मूले में भी विशेष रूप से इसी लिए संशोधन किया जाना चाहिए क्योंकि इससे क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि हुई है। हमारे विचार से आर्थिक सहायता के निर्धारण का मूल मानदण्ड यह होना चाहिए कि सभी राज्यों में महत्वपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों के स्तर को विकसित राज्यों के स्तरों तक लाने के लिए आवश्यक निधियों का निर्धारण किया जाए। केन्द्र सरकार को इस प्रकार से निर्धारित निधियों की पूरी राशि राज्य में उपलब्ध उसके अपने साधनों की राशि को घटाकर राज्य को उपलब्ध करायी जानी चाहिए। योजना सहायता की शेष राशि का वितरण उसी आधार पर किया जा सकता है जिस आधार पर कर के अंतरण के लिए इसके पूर्व सुझाव दिया गया है।

(v) योजनेतर आर्थिक सहायता यदि कोई घाटा हो तो उसे पूरा करने के लिए पूरी दी जानी चाहिए, (यद्यपि अब स्थानांतरण की जिस स्कीम का सुझाव दिया गया है उसके कार्यान्वयन से घाटा होने की संभावना बहुत कम है) और प्राकृतिक विपत्तियों और इसी प्रकार की अन्य विपत्तियों को दूर करने के लिए किए गए को पूरा करने के लिए योजनेतर आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। यह आर्थिक सहायता योजनेतर अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए।

(vi) राज्य सरकार आर्थिक रूप से अविकसित क्षेत्रों में विकास सुनिश्चित करने के लिए एक विशेष "संघ निधि" बनाने के विचार का स्वागत करती है।

(vii) राज्य सरकार उन वस्तुओं के संबंध में बिक्री कर लगाने का अधिकार पुनः राज्य सरकार को दिए जाने के लिए आग्रह करती है, जिन वस्तुओं अर्थात् कपड़ा, चीनी और तम्बाकू पर इस समय अतिरिक्त उत्पाद-शुल्क लगाया जाता है। ऐसे उत्पाद-शुल्क के होने वाली आय, केन्द्र सरकार को उत्पाद-शुल्क से होनेवाली आय से या राज्य सरकार को अन्य वस्तुओं पर बिक्री कर से होने वाली आय से अनुपात में कम है। यदि बिक्री कर को जारी रखा जाता तो राज्य सरकारों को इन मदों पर अधिक आय हुई होती।

(viii) संघीय उत्पाद शुल्क की आय, आयकर की भांति राज्यों के साथ पूरी-पूरी बांटी जानी चाहिए।

(ix) रेल यात्रा किराए के बदले में दिया जाने वाला अनुदान रेल किराये की वसूली में वृद्धि के अनुपात में दिया जाना चाहिए।

(x) खनिज पदार्थों (जो राज्य से प्राप्त होते हों) पर रायल्टी लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया जाना चाहिए। इस अधिकार का प्रयोग राज्य सरकारों को भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाले मार्ग-निर्देशों के अनुसार करना चाहिए। वर्तमान प्रणाली के अधीन रायल्टी की दरों में कानूनी तौर पर 4 वर्ष से पहले वृद्धि नहीं की जा सकती। वास्तव में भारत सरकार इन दरों में 6 से 7 वर्ष के पहले वृद्धि नहीं करती।

(xi) उद्योगों में केन्द्र सरकार द्वारा पूंजी लगाए जाने से उत्पादन में वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकारों को अधिक कर राजस्व की प्राप्ति होती है। इस समय यह पूंजी निवेश राज्यों के बीच समान रूप से वितरित नहीं किया जा रहा। राजस्थान जैसे राज्य में केन्द्र सरकार के कुल पूंजी निवेश का मुश्किल से 2 प्रतिशत भाग ही लगाया जा रहा है। इसमें उस फार्मूले के अनुसार वृद्धि की जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत किसी राज्य के क्षेत्र और जनसंख्या दोनों को पूंजी निवेश का निर्धारण करते समय ध्यान में रखा गया है। हमारा तर्क बहुत सीधा है। देश के सभी भाग देश की सम्पन्नता में उचित तरीके से समान हिस्सा पाने के हकदार हैं।

(xii) भारत सरकार पैट्रोलियम उत्पादों, कोयला, लोहा, इस्पात आदि जैसी मदों के लागू किए गए मूल्यों में संशोधन करके आर्थिक साधनों में काफी वृद्धि करता रहा है। इस प्रकार से उपचित राजस्व को विभाज्य पूल से बाहर होने के कारण संघ सरकार पूर्णरूप से अपने पास रख लेती है। प्रशासित मूल्यों में वृद्धि करने के स्थान पर उत्पाद शुल्क में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि राज्य भी अतिरिक्त राजस्व में से हिस्सा पाने के हकदार बन सके। इसी प्रकार राज्यों की उपकरों की दरों में संशोधन से केन्द्र सरकार को प्राप्त होने वाले अतिरिक्त राजस्व में से कोई हिस्सा नहीं मिलता। उपकर में वृद्धि करने की बजाय यदि मूल उत्पाद शुल्क में ही बृद्धी कर दी जाती है तो राज्यों को भी केन्द्र सरकार को प्राप्त होने वाले अतिरिक्त राजस्व से लाभ होगा।

(xiii) राज्य सरकारों द्वारा लघु-बचतों के रूप में प्राप्त की गई पूरी राशि को, जैसा कि इस समय किया जाता है अर्थात् 2/3 हिस्से की बजाय योजना के एक साधन के रूप में प्रयोग करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

(xiv) अधिकतम सामुदायिक बचतों की राशि राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा ले ली जाती है। यह समझा जाता है कि बैंकों की वर्तमान जमा राशि एक लाख करोड़ रुपये से अधिक है। बाजार में दी गई उधार राशियों या अग्रता वाले क्षेत्र में खर्च की गई धनराशि के अलावा राजस्थान जैसे अविकसित राज्यों का ऐसी बड़ी व्यापक बचत की राशि में एक सीमित हिस्सा है। इस संबंध में एक उपयुक्त कार्य प्रणाली तैयार की जानी चाहिए ताकि इस बचत की राशि राज्यों को भारत सरकार के साथ बराबर-बराबर मिल सके और उनके अपने बीच भी उसे बराबर-बराबर बांटा जा सके।

(xv) एक अन्य क्षेत्र की ओर भी आयोग का ध्यान आकर्षित किया जाता है। यह क्षेत्र प्राकृतिक विपत्तियों के परिणामस्वरूप राज्य सरकारों द्वारा किए जाने वाले राहत संबंधी व्यय के वित्त-पोषण के संबंध में विद्यमान व्यवस्था से संबंधित है। विद्यमान व्यवस्था के अन्तर्गत सूखे के मामले में यदि राहत कार्यों पर किया जाने वाला खर्च सीमांत राशि से अधिक है तो राज्य सरकार की वार्षिक योजना परिव्यय के 5 प्रतिशत तक की राशि का अंशदान अपनी योजना निधि में से करना होगा। सरकार का यह योजना संबंधी अंशदान अग्रिम योजना सहायता के अन्तर्गत आता है और इसे सूखे की समाप्ति से 5 वर्ष के अन्दर केन्द्रीय सहायता की अधिकतम राशि में से समायोजित किया जाता है। केन्द्रीय दल और उच्च स्तरीय समिति द्वारा–यथा-निर्धारित खर्च संबंधी आवश्यकता यदि किसी विशेष मामले में राज्य योजना अंशदान को हिसाब में शामिल करके भी पर्याप्त रूप से पूरी नहीं की जा सकती तो अतिरिक्त खर्च की इस बात का संकेत मान लिया जाता है कि ऐसी विशेष गम्भीर प्रकृति की विषमता आन पड़ी है जिसके लिए केन्द्र सरकार के लिए राज्यों को आधी राशि अनुदान के रूप में और आधी कर्ज के रूप में अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए देना आवश्यक हो जाता है।

राहत के उपायों के व्यय को योजना के साथ जोड़ना उचित नहीं है क्योंकि इसका स्वरूप ही ऐसा है कि इसके अन्तर्गत ये विकेन्द्रीकृत नियोजन संबंधी कार्यों से किसी प्रकार का वित्तीय प्रतिलाभ होने की संभावना नहीं है। इनको योजना में शामिल कर लेने से योजना की अग्रताओं में एक बाधा उत्पन्न हो जाती है और इन कार्यों को पूरा करने के लिए इन पर अतिरिक्त पूंजी लगाने के लिए योजना पर एक बोझ पड़ जाता है।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि केन्द्र द्वारा राज्यों को सूखा राहत संबंधी व्यय के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता मोटे तौर पर कर्ज ही है। इससे राजस्थान जैसे राज्यों पर एक भारी बोझ पड़ जाता है जहां अक्सर सूखा पड़ता है। वर्तमान अकाल लगातार तीसरा और पिछले नौ वर्षों में आठवां अकाल है। अप्रैल 1980 से सितम्बर 1988 तक राज्य सरकार को 370 करोड़ रुपये की अग्रिम योजना सहायता लेनी पड़ी जिसके फलस्वरूप राज्य सरकार पर 245 करोड़ रुपये की देयता हो गई। इसके अतिरिक्त राज्य को सूखा पीड़ित क्षेत्रों में कर्जों और अन्य प्राप्त राशियों की वसूली को निलंबित करके लोगों को राहत देनी पड़ती है। लगातार सूखा पड़ने की स्थिति में इस विपत्ति को एक अत्यंत गम्भीर प्रकार की विपत्ति समझा जाना चाहिए और राहत संबंधी व्यय के लिए सम्पूर्ण आर्थिक सहायता अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसी विपत्तियों को राष्ट्रीय स्तर की विपत्तियां समझा जाना चाहिए और उसे दूर करने के लिए आर्थिक रूप से कमजोर राज्य की बजाय राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए।

6. आर्थिक एवं सामाजिक योजना के संबंध में मेरी टिप्पणी इस प्रकार है :—

(i) राजस्थान इस पक्ष में है कि योजना आयोग का अस्तित्व देश की आर्थिक एवं सामाजिक योजना तैयार करने में उसकी भूमिका के लिए वर्तमान की भांति भारत सरकार के एक विभक्त के रूप में बनाए रखा जाना चाहिए। किन्तु यह सुझाव दिया जाता है कि पंचवर्षीय योजना एवं वार्षिक योजनाओं पर पहले राज्यों के योजना सचिवों के साथ शासकीय स्तर पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए और उसके बाद शासकीय स्तर की बैठकों में हुई चर्चा की टिप्पणियों पर विस्तृत विचार विमर्श के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद की उप समिति का गठन किया जाना चाहिए और अन्ततः राष्ट्रीय विकास परिषद को उसके प्रारूप पर विचार विमर्श करना चाहिए। यह भी सुझाव दिया जाता है कि राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा निर्धारित मार्ग-निर्देशों या मानदण्डों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न राज्यों की आवश्यकताओं की यह सुनिश्चित करने के लिए पहचान की जानी चाहिए कि कम विकसित राज्यों को विकसित राज्यों के स्तर तक आने के लिए पर्याप्त निधि दी जाती है। योजना कार्य में केन्द्र की भूमिका केवल उससे संबंधित मूल नीति तैयार करने तक ही सीमित होनी चाहिए और निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके निर्धारित करने का काम राज्यों पर छोड़ देना चाहिए। इस कार्य की प्रत्येक महत्वपूर्ण अवस्था पर राज्यों की पूरा व निकट सहयोग सुनिश्चित करने के लिए एक कार्य प्रणाली तैयार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

(ii) जैसा पहले बताया जा चुका है कर्जों और अनुदानों के रूप में योजना आयोग के माध्यम से राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता को एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना आवश्यक है। 70:30 कर्ज अनुदान अनुपात में दी जाने वाली ब्लाक केन्द्रीय सहायता की वर्तमान प्रणाली पूर्णतया अनुपयुक्त है और विशेष रूप से राजस्थान जैसे पिछड़े राज्यों के तो बिल्कुल अनुकूल नहीं है, जिसके बढ़ते हुए ऋण-भार को देखते हुए इस समस्या पर नए सिरे से विचार करना अपेक्षित है। यह निर्विवाद सत्य है कि संघ सरकार भी राज्य सरकारों द्वारा अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि करके विकास की दिशा में किए गए प्रयासों से होने वाले लाभ में से एक हिस्सा प्राप्त करती है और तार्किक रूप में केन्द्र सरकार को भी कुछ जिम्मेदारियां पूरी करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त लम्बी प्रारम्भिक अवधि को देखते हुए यह भी औचित्यपूर्ण नहीं है कि पूरे पूंजी-निवेश के संबंध में यह समझा जाए कि उससे इतना प्रतिलाभ हो कि उससे उस कर्ज की वापसी की जा सके। अतः राज्य सरकार का यह विचार है कि ब्लाक योजना सहायता के लिए कर्ज अनुदान के अनुपात को उलटकर 30:70 कर दिया जाए।

(iii) बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए राज्य सरकार का यह अनुरोध है कि किसी विशिष्ट परियोजना के लिए बाह्य एजेंसियों से प्राप्त धनराशि उन्हीं शर्तों पर राज्यों को दे देनी चाहिए जिन शर्तों पर भारत सरकार को इन एजेंसियों से प्राप्त होती है। विद्यमान व्यवस्था के अनुसार बाह्य एजेंसी से प्राप्त कर्ज की राशि की केवल 70 प्रतिशत राशि ही योजना सहायता के रूप में राज्य सरकार को

दी जाती है जिसमें से 70 प्रतिशत कर्ज होता है और 30 प्रतिशत अनुदान ।

(iv) राज्य योजना के आकार के निर्धारण की जो प्रणाली है उसमें राज्यों के पिछड़ेपन को ध्यान में नहीं रखा जाता जिसका मुख्य कारण आर्थिक साधन जुटाने की उनका कम सामर्थ्य है । यदि पिछड़े राज्यों को अपर्याप्त साधनों की सहायता से और अपने वित्तीय साधनों की सीमा में रहते हुए ही योजना तैयार करनी हो तो ये राज्य एक प्रतिकूल स्थिति में होने के कारण विकास की गति को कभी भी आगे नही बढ़ा सकेंगे और इसके क्षेत्रीय असंतुलन और भी बढ़ जाएगा । अतः यह सुझाव दिया जाता है कि एक ऐसा फार्मूला बनाया जाना चाहिए जिसमें कम जनसंख्या वाले पिछड़े राज्यों को उनके क्षेत्र को भी उचित रूप से ध्यान में रखते हुए अधिक निधि का आबंटन किया जाए ।

यह भी आवश्यक है कि कुल केन्द्रीय सहायता को दो भागों अर्थात् गैर-फार्मूला सहायता और फार्मूला सहायता में बांट दिया जाए । कम विकसित राज्यों के कुछ मुख्य आर्थिक-सामाजिक क्षेत्रों का स्तर बढ़ाकर अधिक विकसित राज्यों के सामाजिक आर्थिक क्षेत्रों के स्तर तक लाने के लिए अपेक्षित निधियों का निर्धारण किया जाना चाहिए और इन राज्यों के अपने साधनों को घटाने के बाद जितनी निधि की आवश्यकता हो उतनी निधि की पूरी राशि गैर-फार्मूला भाग के अधीन केन्द्रीय सहायता के रूप में दी जानी चाहिए ।

फार्मूला-सहायता के अधीन जनसंख्या का मूल्यांकन क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए और विभिन्न राज्यों को अंतरित की जाने वाली निधियों में राज्य के हिस्से का निर्धारण करने के लिए मूलभूत आवश्यकताओं के सूचकांक को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(v) केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के लिए यह उल्लेखनीय है कि पंच-वर्षीय योजना को अंतिम रूप देने से पहले इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि सहायता का स्वरूप क्या होगा और कितनी मात्रा में सहायता उपलब्ध होगी और पंचवर्षीय योजना के दौरान इसमें ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए जिससे राज्यों को हानि हो । पिछड़े क्षेत्रों से संबद्ध महत्वपूर्ण स्कीमों के लिए केन्द्र द्वारा पूरी आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए । यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जिस निर्धन राज्य की प्रति-व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम हो उस राज्य से अपेक्षित हिस्से की राशि 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए ।

सारांश में हमारा यह दृढ़ मत है कि संघ सरकार को सशक्त ही बने रहना चाहिए क्योंकि देश की अखंडता और एकता से बड़ी कोई चीज नहीं है । राज्यों में राज्यपाल का पद बनाए रखा जाना चाहिए । तथापि, देश के समान और शीघ्र विकास की आवश्यकता के लिए वित्तीय साधनों के अंतरण की स्कीम का नवीकरण किया जाना चाहिए । तभी जनता को सीधे प्रभावित करने वाली यह स्कीम पूरे देश में लागू की जा सकेगी । इसी प्रकार बार-बार पड़ने वाले सूखे के संबंध में राष्ट्रीय स्तर पर उपाय किए जाने चाहिए और उसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर ही आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए । इस सुझाव से यथापूर्व स्थिति में व्यवधान उत्पन्न होगा और संभव है कि इसका कुछ प्रतिरोध भी हो किंतु जो महत्वपूर्ण है वह है राष्ट्रीय विकास और एकता । यह आवश्यक है कि देश के सभी नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हों और उन्हें न्यूनतम सुविधाएं भी अवश्य प्राप्त हों तभी सर्वनिष्ठ एवं संतुष्ट नागरिकता की संकल्पना पूरी होगी ।

सिक्किम सरकार

प्रश्नों के उत्तर

सिक्किम

प्रश्नों के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 भारत का संविधान न तो विशुद्ध रूप से संघीय है और न ही एकात्मक । यह दोनों का सम्मिलित रूप है, जिसमें एक सशक्त केन्द्र को अधिक महत्व दिया गया है । संविधान निर्माताओं का उद्देश्य एक ऐसे सशक्त केन्द्रीय अधिकारतंत्र का निर्माण करना रहा है जो बाह्य आक्रमण का प्रतिरोध करे और ऐसी आंतरिक विघटनकारी शक्तियों पर भी नियंत्रण रखे जो किसी नए राज्य को क्षति पहुंचाए ।

1.2 राज्यों को अधिक अधिकार और उत्तरदायित्व देने की आवश्यकता के बारे में दो मत नहीं हो सकते तथापि, इस बात के लिए पूरी सावधानी बरती गई है कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता बनाए रखने के दायित्व पर इनका कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े । इसी सन्दर्भ में राजमन्नार समिति के विचारों की जांच की जानी चाहिए । इस विषय में जल्दबाजी में कोई निर्णय लेने से पहले उपर्युक्त अनुच्छेदों में उल्लिखित उपबंध को हटाने, उसमें आंशिक या काफी अधिक संशोधन करने के प्रश्न का ध्यानपूर्वक और अधिक विचार से अध्ययन किया जाना चाहिए ।

उच्चतम न्यायालय को अपील किए जाने के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि यह देश का उच्चतम न्यायालय है और अब तक यह गौरवपूर्ण एवं निष्ठापूर्ण तरीके से कार्य करता रहा है । अतः इसके अधिकारों को छेड़ना नहीं चाहिए ।

1.3 यह सच है कि भारत एक विशाल एवं बहुजातीय देश है । इस देश का आकार इतना बड़ा है और इसमें इतनी अधिक विविधताएं हैं कि उनके कारण राज्यों को और अधिक अधिकार और उत्तरदायित्व दिए जाने चाहिए जिससे कि वे राष्ट्रीय एकता की सीमाओं में सभी क्षेत्रों में अपना विकास कर सकें । यह भी उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी यह सिफारिश की है कि राज्यों को ऐसी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए अधिक से अधिक अधिकार दिए जाएं जिनमें केन्द्र का प्रत्यक्ष रूप से हित निहित है या जो राज्यों द्वारा केन्द्र के एजेंट के रूप में कार्यान्वित की जाती हैं ।

1.4 सिद्धान्त रूप से एक संघीय संविधान में यह प्रकल्पित है कि केन्द्र और क्षेत्रीय सरकारें अपने अपने कार्य क्षेत्रों में स्वतंत्र हैं, किन्तु वास्तविक स्थिति यह नहीं है ।

इस संबंध में संयुक्त राज्य अमरिका, आस्ट्रेलिया और कनाडा के संघीय संविधान का उल्लेख किया जा सकता है ।

1.5 इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारा संविधान बदलते हुए समय की चुनौती को स्वीकार करने के लिए मूल रूप से काफी परिवर्तनशील है । हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि कोई भी संविधान अपने आप में पूर्ण नहीं है और न कभी हो सकता है अतः नई-नई चुनौतियों और नई परिस्थितियों के समाधान के लिए उनमें संशोधन करने पड़ते हैं । महत्वपूर्ण तो यह है कि ऐसा करते समय स्वस्थ परम्पराएं और कार्यविधियां बनाई जाएं । अतः इसके लिए कार्यशील सहयोग अपेक्षित है जिसके परिणामस्वरूप संविधान की भावना और आशय के अनुसार ही केन्द्र-राज्य संबंध मधुर रखे जा सकते हैं ।

1.6 इसमें कोई दो मत नहीं है कि देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना और देश की एकता एवं अखंडता को बनाए रखना सबसे अधिक आवश्यक है । संविधान के निर्माताओं ने इस बात को ध्यान में रखते हुए इसे सबसे अधिक प्राथमिकता दी है । अतः संविधान में ऐसे अनेक अनुच्छेद हैं जिनके अनुसार इस उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिए एक सशक्त केन्द्र बनने की परिकल्पना की गई है ।

1.7 आपके प्रश्न में उल्लिखित अनुच्छेदों को लागू करने में हुए अनुभव को ध्यान में रखते हुए संघ सरकार और राज्यों के दायित्वों की सावधानी से समीक्षा करना जरूरी है । तथापि यह भी उल्लेखनीय है कि यदि केन्द्र और राज्य के बीच परस्पर विश्वास होगा तो केन्द्र-राज्य संबंधों में तनाव की स्थिति को काफी हद तक समाप्त किया जा सकता है ।

1.8 संविधान में राष्ट्रपति को उस स्थिति में एक अन्तर-राज्यीय परिषद् बनाने का अधिकार दिया गया है यदि उसे यह प्रतीत हो कि ऐसा करना लोक हित में उचित होगा । इस परिषद का एक कार्य यह होगी कि वह केन्द्र और राज्यों के बीच या दो या अधिक राज्यों के बीच सामान्य हित के विषयों की जांच करेगी और उन पर विचार-विमर्श करेगी । यह वांछनीय होगा कि आपके प्रश्न में उल्लिखित ऐसे मामले के सभी पक्षों की जांच करने के लिए उसे अन्तर्राज्यीय परिषद को सौंप दिया जाए ।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 राज्य सूची में उल्लिखित वन, शिक्षा, कृषि जैसे विषय समवर्ती सूची में शामिल कर लिए गए हैं । हमारे विचार से समवर्ती सूची की प्रविष्टियां निम्नलिखित विषयों तक सीमित होनी चाहिए :—

(क) राष्ट्रीय सुरक्षा,
(ख) राष्ट्रीय अखंडता, और
(ग) व्यापार की स्वतंत्रता

इन प्रविष्टियों से संबंधित प्रविष्टि को छोड़कर समवर्ती सूची का इस दृष्टि से पुनरीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए जिससे कि राज्य को कानून बनाने का अधिक उदार अधिकार दिया जा सके ।

2.2 राज्य सूची में उल्लिखित वन, शिक्षा, कृषि जैसे विषयों को समवर्ती सूची में शामिल कर लिया गया है । हमारे विचार में समवर्ती सूची की प्रविष्टि निम्नलिखित तक सीमित होनी चाहिए :—

(क) राष्ट्रीय सुरक्षा,
(ख) राष्ट्रीय अखण्डता, और
(ग) व्यापार की स्वतंत्रता

इन प्रविष्टियों से संबंधित प्रविष्टि को छोड़कर समवर्ती सूची का इस दृष्टि से पुनरीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए जिससे कि राज्य को कानून बनाने का अधिक उदार अधिकार दिया जा सके ।

2.3 यह केन्द्र और राज्यों के बीच बेहतर संबंध सुनिश्चित करने के हित में है कि केन्द्र सरकार समवर्ती सूची के किसी विषय पर कानून बनाने से पहले राज्य सरकारों से परामर्श करे । संविधान में ऐसा उपबंध अवश्य होना चाहिए ।

2.4 राज्य की एकमात्र क्षमता के अधीन किसी विषय पर "राष्ट्रीय हित" या "लोक हित" में कानून बनाने का केन्द्र सरकार का अधिकार स्थायी स्वरूप का नहीं होना चाहिए । इसके लिए एक समय-सीमा अवश्य निर्धारित की जानी चाहिए ।

2.5 विधायी क्षेत्र में निम्नलिखित विषयों पर भी विचार किया जा सकता है :—

(क) समवर्ती सूची का पुनरीक्षण,

(ख) उन अनुच्छेदों का पुनरीक्षण जिनके अन्तर्गत राज्य के विषयों पर संसद को कानून बनाने का अधिकार दिया गया है,

(ग) अनुच्छेद 254 के परन्तुक की प्रयोज्यता का पुनरीक्षण,

(घ) खेल, कृषि, शिक्षा आदि से संबंधित विषयों का राज्य सूची में अंतरण ।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 केन्द्र राज्य संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल की भूमिका की पूर्णतया समीक्षा की जानी चाहिए । यह सच है कि कुछ राज्यपालों ने पूरी निष्पक्षता से कार्य किया है किन्तु कुछ ऐसे भी राज्यपाल हुए हैं, जिन्होंने संविधान की भावना के अनुरूप कार्य नहीं किया है । अतः ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनमें राज्यपालों ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया है । सिक्किम को भी मई, 1984 में इसका कटु अनुभव हुआ था । ऐसे उदाहरणों के परिणामस्वरूप केन्द्र-राज्य के संबंध अच्छे नहीं रह सकते । अतः इस मामले की समीक्षा की जानी चाहिए ।

3.2 राज्यपाल प्रशासनिक कार्यों के संबंध में एक कड़ी का काम करेगा । राज्यपाल मंत्रिपरिषद् के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता ।

3.3 उपर्युक्त (क), (ख) और (ग) ऐसे मामलों से संबंधित हैं जो राज्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । अनुच्छेद 356(i) के अधीन राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए राज्यपाल को अत्यन्त तटस्थ और स्वतंत्र होकर कार्य करना चाहिए । राज्यपाल को केवल ऐसे व्यक्ति को मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त करना चाहिए जिसका विधान सभा में बहुमत हो । इस संबंध में कोई दो राय नहीं हैं । ऐसी स्थिति में, जिसमें किसी भी दल का विधान मण्डल में बहुमत न हो, राज्यपाल को उस दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए जिसके सबसे अधिक सदस्य हों । राज्य विधान सभा मुख्यमंत्री की नियुक्ति के 15 दिन के अन्दर अवश्य बुलायी जानी चाहिए ।

"राज्यपाल की कृपा" का अर्थ यह है कि कोई सरकार तब तक बनी रहेगी जब तक उसे विधान सभा का पूरा विश्वास प्राप्त होगा । राज्यपाल की कृपा का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिससे कि राज्यपाल अपनी पसंद और नापसंद के अनुसार कार्य कर सके ।

अनुच्छेद 174 (2) के संबंध में राज्यपाल को मुख्यमंत्री के परामर्श से कार्य करना चाहिए ।

3.4 इन अनुच्छेदों में राज्यपाल को विवेकाधीन अधिकार दिए गए हैं और दुर्भाग्यवश कुछ राज्यपालों ने इन अधिकारों का स्वतंत्र और तटस्थ रूप से प्रयोग नहीं किया है । राज्यपाल और राष्ट्रपति के लिए क्रमशः अनुच्छेद 200 और 201 के अधीन निर्णय लेने के लिए एक समय सीमा अवश्य होनी चाहिए । सामान्य रूप से राज्यपाल को विधान सभा द्वारा पारित विधेयकों को अवश्य स्वीकृत करना चाहिए ।

हमारा यह विचार है कि अनुच्छेद 201 का इस विशिष्ट उपबंध के साथ पुनरीक्षण किया जाना चाहिए कि ऐसी कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके अधीन किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए ।

3.5 भारतीय विधि संस्थान के तत्वावधान में किए गए अध्ययन के परिणाम वस्तुतः काफी आश्चर्यजनक हैं और परेशान करने वाले हैं । इस प्रक्रिया पर रोक लगायी जानी चाहिए । स्वीकृति के लिए ऐसी समय सीमा अवश्य होनी चाहिए जिसके अन्दर मामले पर विचार करने और स्वीकृति प्रदान करने की प्रक्रिया पूरी हो जानी चाहिए ।

3.6 जैसा कि पहले कहा गया है कुछ राज्यपालों ने संविधान की भावना के अनुरूप निष्पक्ष एवं उचित रूप से कार्य नहीं किया है । उसके लिए स्वस्थ परम्पराएं बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता । वस्तुतः उन्होंने संवैधानिक लोकतंत्र के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध काम किया है । मई, 1984 में राज्यपाल द्वारा इन सिद्धान्तों के प्रतिकूल कार्य करने की घटना का सिक्किम एक ज्वलंत उदाहरण है । यह राज्यपाल श्री होमी जे० तलयार खान थे ।

3.7 राष्ट्रपति को सीधे ही राज्यपाल को पद से हटा देना चाहिए, क्योंकि राज्यपाल की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा की जाती है ।

3.8 हम सहमत हैं ।

3.9 जर्मन संघीय गणराज्य के संविधान में निर्दिष्ट कार्य विधि हमारे लिए उपयुक्त नहीं है । लोकतंत्र में उस व्यक्ति के गुण ही ज्यादा महत्वपूर्ण है जो राज्यपाल के उच्च पद पर आसीन होता है ।

3.10 राज्यपाल द्वारा अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले ऐसे महत्वपूर्ण मामलों पर की गई कार्रवाई को देखते हुए प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें स्वीकार करनी ही पड़ती हैं ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 राज्य सरकार को उस स्थिति में अनुच्छेद 256 और 257 को रखने में कोई आपत्ति नहीं है जब 365 के अधीन निर्दिष्ट अधिकारों का केन्द्र द्वारा आश्रय लिया जाता है । संबंधित राज्य को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए और अधिकारों का अंतरण तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए कल्पना पर नहीं ।

4.2 राज्य सरकार को अनुच्छेद 365 को बनाए रखने में कोई आपत्ति नहीं ।

4.3 राज्य सरकार प्रशासनिक सुधार आयोग से सहमत है ।

4.4 अनुच्छेद 365 के अधीन अधिकारों का प्रयोग करते समय केन्द्र सरकार सरकार की रिपोर्ट से या स्थिति के अपने मूल्यांकन से प्रभावित नहीं होगी । इस संबंध में पूरी सावधानी बरती जानी चाहिए । जिस तरीके से सिक्किम में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया, वह अपने आप में एक अनुभव है ।

4.5 राष्ट्रपति का शासन यथासम्भव कम अवधि तक सीमित होना चाहिए ।

अनुच्छेद 356 के खण्ड 4 और 5 में उपयुक्त संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए ताकि राज्य में राष्ट्रपति शासन एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए लागू न किया जा सके ।

4.6 वर्तमान व्यवस्था जारी रखी जानी चाहिए क्योंकि इसके अन्तर्गत संतोषजनक ढंग से कार्य हो रहा है ।

4.7 इन एजेंसियों के कार्य का पुनरीक्षण करने की आवश्यकता महसूस की गई है क्योंकि इनके कारण राज्य के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप होता रहा है जिसके परिणामस्वरूप राज्य के विकास की गति में रुकावट आयी है । इस बात की आवश्यकता को काफी अधिक महसूस किया गया है कि उनके कुछ कार्य अधिकार राज्य सरकारों को सौंप दिए जाने चाहिए ।

4.8 सामान्य रूप से अखिल भारतीय सेवाओं से संविधान निर्माताओं की अपेक्षाएं पूरी हुई हैं । किन्तु यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इन सेवाओं के अधिकारी किसी राज्य में कार्य करते समय संबंधित राज्य सरकार के पर्यवेक्षण में ही कार्य करें ।

4.9 एक सामान्य नीति के रूप में राज्य में केन्द्रीय बल के प्रयोग से पूर्व राज्य सरकार की सहमति अवश्य लेनी चाहिए । केवल अत्यंत विकट मामलों में ही संघ सरकार अपने आप निर्णय ले सकती है ।

4.10 हम इस दृष्टिकोण से सहमत है कि प्रसारण का कार्य संघ सूची में ही बना रहना चाहिए लेकिन जैसा सुझाव दिया गया था प्रसारण और दूरदर्शन की सुविधाएं केन्द्र और राज्यों के बीच निष्पक्ष रूप से विभाजित की जानी चाहिए और ऐसा करते समय प्रत्येक राज्य के लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को भी समान महत्व दिया जाना चाहिए । समाचारों के प्रसारण में कुछ राज्यों को अधिक महत्व देने की वर्तमान स्थिति अवश्य समाप्त की जानी चाहिए और देश के अन्य क्षेत्रों के समाचारों की भी समान महत्व दिया जाना चाहिए ।

4.11 पूर्वी आंचलिक परिषद से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है ।

4.12 वर्तमान स्थिति को देखते हुए एक अन्तरराज्यीय परिषद का गठन किया जाना चाहिए क्योंकि अन्तरराज्यीय और केन्द्र राज्य के मतभेदों को दूर करने के लिए एक ऐसी संस्था का गठन करना वांछनीय होगा ।

इस संस्था के कार्यों और स्वरूप के संबंध में केन्द्र और राज्यों के बीच विचार-विमर्श के बाद अंतिम निर्णय लिया जा सकता है ।

भाग II

वित्तीय संबंध

5.1 कुल मिलाकर संविधान निर्माताओं द्वारा प्रकल्पित अंतरण की स्कीम काफी सफल रही है तथापि, सिक्किम जैसे छोटे और पिछड़े राज्य की तथा अन्य उत्तरी पूर्वी राज्यों की आवश्यकता पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए । जहां कुछ बड़े राज्य साधन एकत्र करने की अपनी क्षमताओं के कारण और अधिक समृद्ध हो रहे हैं वहां पिछड़े हुए राज्यों में साधन जुटाने की क्षमता बहुत ही कम है । जब तक केन्द्र सरकार इन राज्यों की बड़े पैमाने पर सहायता नहीं करती तब तक उनके लिए प्रगति करना असंभव होगा । अत: अंतरण की प्रक्रिया के दौरान स्थिति के इस पक्ष को भी ध्यान में रखना होगा ।

परिस्थितियों को देखते हुए यह उचित होगा कि वित्त आयोग वित्तीय साधनों का वितरण करते समय पिछड़े राज्यों को अधिक महत्व अवश्य दे ।

5.2 केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल की टिप्पणी अभी भी वैध है क्योंकि राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता में अभी भी वृद्धि हो रही है । निगम कर, सीमा शुल्क और आयकर पर लगाए जाने वाले अधिभार को विभाज्य पूल में लाना जरूरी है किंतु साथ ही इन करों का बंटवारा करते समय पिछड़े राज्यों के साथ भेद भाव नहीं बरता जाना चाहिए । केन्द्र और राज्यों दोनों द्वारा वित्तीय अनुशासन की आवश्यकता पर अधिक बल देने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

कुछ लचीले कराधान शीर्षों को राज्य के अधीन लाया जाना चाहिए ताकि राज्य के साधनों में वृद्धि हो सके ।

5.3 हम उपर्युक्त टिप्पणियों से पूर्णतया सहमत है और इस दृष्टिकोण से भी सहमत हैं कि क्षेत्रीय साधनों के अभाव को ऐसे सशक्त केन्द्र द्वारा कम किया जा सकता है जिसके पास राजस्व के लचीले स्रोत उपलब्ध हों । केन्द्र को अपने पास उपलब्ध निधियों का निर्धन राज्यों के विकास के लिए प्रयोग करने का विवेकाधिकार भी अवश्य होना चाहिए तभी केन्द्र सरकार राजनीति के निर्देशात्मक सिद्धान्तों में उल्लिखित अपने दायित्वों और उत्तरदायित्वों को पूरा कर पाएगी, अन्यथा समृद्ध राज्य और समृद्ध होते जाएंगे ।

5.4 इसमें कोई संदेह नहीं है कि समृद्ध राज्यों को आर्थिक सहायता के जरिए केन्द्रीय पूल में अंशदान करना होगा । इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि व्यय पर बेहतर तरीके से नियंत्रण रखना परम आवश्यक है ।

घाटे की वित्त व्यवस्था तभी की जानी चाहिए जब ऐसा करना विकासशील अर्थ व्यवस्था के हित में परम आवश्यक हो ।

5.5 जहां वित्त आयोग योजनेतर पक्ष के साधनों और आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है वहां योजना आयोग राज्यों की विकास संबंधी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है । इन दोनों निकायों को पिछड़े और निर्धन राज्यों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करते समय अधिक तटस्थ होकर कार्य करना चाहिए । पिछड़े राज्यों की जनता की बढ़ती हुई आशाओं पर भी पूरा ध्यान देना होगा ताकि इन दोनों निकायों से पर्याप्त सहायता पाकर ये राज्य अपने अपने विकास की गति में तेजी ला सकें और देश के अन्य राज्यों के समान स्तर पर आ सकें । यह स्पष्ट है कि वित्तीय साधनों के अन्तरण का तरीका समान नहीं रहा है ।

इसके लिए निर्धारित किए जाने वाले मानदण्ड ऐसे होने चाहिए जिसके अंतर्गत राज्यों को योजनाबद्ध तरीके से सहायता की जाए और उनके बीच करों का मात्र बंटवारा न किया जाए ।

5.6 राज्य सरकार मूल रूप से विशेष संघीय नीति के कट्टर विरुद्ध है जिससे, कमजोर राज्यों को सहायता दी जा सकती है ।

5.7 कुछ लचीली कर योग्य मदों में परिवर्तन करना आवश्यक है ताकि राज्य सरकार अधिक वित्तीय साधन जुटा सके ।

5.8 संघीय कर और राज्य कर अलग अलग होने चाहिए । राज्य सरकारों को अपने कर लगाने की छूट दी जानी चाहिए । राज्य सरकार अधिक कराधान अधिकार प्राप्त करने के पक्ष में है ।

5.9 वर्तमान स्थिति के अनुसार योजना आयोग और वित्त आयोग के कार्य एक दूसरे के पूरक हैं । नि:सन्देह वित्तीय अंतरणों को दोहरी भूमिका निभाने के लिए एक स्थायी वित्त आयोग बनाने का सुझाव विचारणीय है । यह सर्वविदित है कि कुछ राज्य सरकारें विभिन्न वित्त आयोगों के विचारों से प्रसन्न नहीं हैं । कुछ राज्यों का यह भी विचार है कि योजना आयोग उनके प्रति निष्पक्ष नहीं रहा है । उन परिस्थितियों में एक निकाय का गठन करने का विचार सारवान है । इसका अंतत: विश्लेषण किया जाए तो यदि ये दोनों निकाय और राज्य अपने अपने मूल्यांकन तटस्थतापूर्वक और निष्पक्ष होकर करें तो यह अधिक लाभदायक होगा ।

5.10 राज्य सरकार इस विचार से पूरी तरह सहमत है । कानूनी और विवेकाधीन दोनों प्रकार के अंतरणों से सार्वजनिक व्यय की विसंगतियों में कमी आई है ।

5.11 इस प्रश्न में व्यक्त किए गए विचारों से हम सहमत हैं । वित्तीय अनुशासन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है । सभी प्रगतिशील स्कीमों को उपलब्ध वित्तीय साधनों की सीमाओं में ही कार्यान्वित करना होगा । साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित करना होगा कि केन्द्र और राज्यों के बीच आबंटन इस प्रकार से किया जाए ताकि पिछड़े हुए राज्यों को और अधिक सहायता मिल सके जिससे वे अपने विकास की गति में तेजी ला सकें । इस बात की सावधानी भी बरती जानी चाहिए कि राज्य फिजूल खर्ची न करें ।

5.12 राज्य सरकार सातवें वित्त आयोग से सहमत है ।

5.13 राज्य सरकार इन विचारों से सहमत है ।

5.14 ये सुझाव उचित है कि विशेष धारक बाण्डों की स्कीम से प्राप्त होने वाली राशि की और संबंधित मदों के लगाए गए मूल्यों में वृद्धि करने से प्राप्त होने वाले राजस्व के साधनों के विभाज्य पूल में शामिल कर लिया जाना चाहिए । ऐसा करने से राज्यों के वित्तीय साधनों मे और अधिक वृद्धि होगी और उसके फलस्वरूप वे कुछ आवश्यक प्रगतिशील स्कीमों को अधिक तेजी से कार्यान्वित कर सकेंगे । यद्यपि हम इस विचार से पूरी तरह सहमत नहीं है फिर भी हम यह कहना चाहेंगे कि केन्द्र को साधनों का विभाजन करते समय राज्यों के हित को सर्वाधिक ध्यान में रखना चाहिए ।

5.15 समुदाय में उपलब्ध बचतों की राशि का वितरण करते समय एक समान और युक्तियुक्त मानदण्ड अपनाना चाहिए । बचतों की राशि पूरे देश की ही राशि होती है । अत: इसका विभाजन करते समय केवल राज्यों के क्षेत्र, जनसंख्या और उनकी साधन जुटाने की क्षमता को ही आधार नहीं बनाना चाहिए, अन्यथा सिक्किम जैसे छोटे राज्यों को इससे सबसे अधिक हानि होगी ।

5.16 हम राज्य की जिम्मेदारियों के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं और हम यह भी जानते हैं कि ये जिम्मेदारियां बढ़ रही हैं। केन्द्र सरकार को भी इस बात का अहसास होना चाहिए कि लोकतांत्रिक सामाजिक देश में राज्य की जिम्मेदारियां तो हमेशा बढ़ती रहती हैं क्योंकि उन्हें समाज के कल्याण के लिए अनेक उपाय करने होते हैं। अतः इस पक्ष पर भी विचार करना आवश्यक है। मुद्रास्फीति या प्राकृतिक आपदाओं जैसी कुछ परिस्थितियों में भी राज्यों के लिए अपने वित्तीय साधनों में कार्य करना कठिन होगा। इसके फलस्वरूप घाटा तो होगा ही किंतु इसे फिजूलखर्ची करने का कोई तर्क नहीं बनाना चाहिए क्योंकि इससे काफी अधिक आर्थिक असंतुलन हो जाएगा।

5.17 हम इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि राज्यों में ऋणग्रस्तता की बढ़ती हुई समस्या का आवधिक पुनरीक्षण करना अत्यंत आवश्यक है। संभवतः इस समस्या पर गहराई से विचार करने के लिए एक स्वतंत्र निकाय का गठन करना अधिक उपयोगी होगा।

5.18 चूंकि सिक्किम एक छोटा सा राज्य है और इसकी उधार लेने की क्षमता न के बराबर है इसलिए हम यह सुझाव ही दे सकते हैं कि राज्य को उपलब्ध वित्तीय साधनों की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

5.19 हमारा यह मत है कि विदेशों से लिए जाने वाले ऋणों पर केन्द्र को राज्य से उस दर से अधिक दर पर ब्याज नहीं लेना चाहिए जिस दर पर केन्द्र सरकार विदेशी उधारदाता को ब्याज देती है। हमारा यह भी मत है कि परियोजनाओं से संबद्ध बाह्य आर्थिक सहायता राज्यों को उपलब्ध करायी जानी चाहिए। इस संबंध में पूरी वर्तमान व्यवस्था की समीक्षा करना वास्तव में उपयोगी होगा।

5.20 इस संबंध में विभिन्न राज्यों के अलग अलग विचारों को ध्यान में रखते हुए और पूरे देश की स्थिति को भी ध्यान में रखते हुए ऋण परिषद बनाना वांछनीय होगा। इसका कोई औचित्य नहीं होगा कि हम आस्ट्रेलिया में विद्यमान ऋण परिषद की नकल करें। भारतीय रिजर्व बैंक को अपने दायित्वों और जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए और अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

5.21 चूंकि अब ओवरड्राफ्ट की प्रणाली समाप्त कर दी गई है इसलिए राज्य सरकार को इस संबंध में कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

5.22 चूंकि सिक्किम राज्य के पास राजस्व के अत्यन्त सीमित साधन हैं इसलिए यदि वह अपने सभी क्षेत्रों से साधन जुटाने का प्रयास भी करे तो भी उसके लिए पर्याप्त धन जुटाना संभव नहीं होगा।

5.23 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के कार्य निष्पादन में सुधार की काफी अधिक गुंजाइश है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में अब तक पूंजीगत निवेश पर प्रत्याशित मात्रा में प्रतिलाभ नहीं दिया है।

केन्द्रीय करों में होने वाली अत्यधिक चोरी को रोकने के लिए केन्द्रीय प्राधिकारियों को पर्याप्त पूर्वोपाय करना चाहिए।

5.24 इस सुझाव को कार्यान्वित करना निश्चित रूप से एक स्वस्थ परंपरा होगी।

5.25 हम इस सुझाव से सहमत हैं कि राज्यों के साधनों में वृद्धि करने के लिए अनुच्छेद 269 को अधिक कारगर तरीके से लागू किया जाना चाहिए।

5.26 कोई टिप्पणी नहीं।

5.27 कोई टिप्पणी नहीं।

5.28 यह सही है कि यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें राज्यों को काफी अधिक कठिनाई हो रही है। हमारे सिक्किम राज्य में हर वर्ष भूस्खलनों और आंधी-तूफानों के रूप में प्राकृतिक आपदाएं आती हैं। ऐसी आपदाओं को राष्ट्रीय समस्या के रूप में समझा जाना चाहिए और केंद्र सरकार को ऐसी स्थितियों के समाधान के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता अवश्य देनी चाहिए। इस संबंध में सातवें वित्त आयोग ने जो फार्मूला सुझाया है वह अपर्याप्त प्रतीत होता है। यह भी आवश्यक है कि केन्द्रीय अधिकारी यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावित क्षेत्रों का अवश्य दौरा करें कि राहत कार्यों के लिए दी गई आर्थिक सहायता का उचित प्रकार से और प्रभावकारी ढंग से उपयोग किया जाता है।

5.29 हमें राष्ट्रीय ऋण निगम, राष्ट्रीय उधार परिषद एवं राष्ट्रीय अर्थ परिषद की स्थापना पर कोई आपत्ति नहीं है।

5.30 हम इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि निधियों की धनराशि पूरी सावधानी से खर्च की जाए और उसका अधिकांश लाभ लोगों को ही मिले, साथ ही निधियों की यथा समय वसूली और उनका वितरण भी ऐसे महत्वपूर्ण मामले हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है।

5.31 (क) हम इस बात से सहमत हैं कि संघ सरकार के व्यय का आवधिक मूल्यांकन करना आवश्यक है। ऐसा करने से सब संतुष्ट हो जाएंगे। हम इस बात से भी पूरी तरह सहमत हैं कि राज्यों विशेष रूप से निर्धन राज्यों की सहायता करने के लिए अतिरिक्त साधन जुटाए जाने चाहिए।

(ख) इस संबंध में कड़े वित्तीय अनुशासन की परम आवश्यकता है। जो राज्य बार-बार अनुरोध करने के बावजूद वित्तीय अनुशासन न बरतें उन्हें केन्द्र को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए।

(ग) हम एक स्थायी राष्ट्रीय व्यय आयोग की स्थापना के पक्ष में नहीं हैं। हमारा यह विश्वास है कि केन्द्र और राज्यों-दोनों में अपनी-अपनी जिम्मेदारियां इस प्रकार पूरी करने की क्षमता है कि लोग उनके कार्यों से संतुष्ट हो जाएंगे।

5.32 वर्तमान प्रणाली को जारी रखा जाना चाहिए।

5.33 इस अवस्था में "मूल्यांकन लेखा परीक्षा" को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक उसका कोई वैज्ञानिक आधार न हो इस समय "वाउचर लेखा परीक्षा" प्रणाली का प्रचलन है और इसे पहले से ही कार्यान्वित किया जा रहा है। "मूल्यांकन लेखापरीक्षा" प्रणाली को तब लागू किया जा सकता है जब :—

(1) इसे लेखा परीक्षा विज्ञान के रूप में विकसित किया जाए।

(2) इस प्रणाली का विकास स्वीकृत वैज्ञानिक मानदण्डों के आधार पर किया जाए।

5.34 हम यह समझते हैं कि संसद में नियंत्रक महालेखापरीक्षक को संघ और राज्य सरकारों के व्यय पर प्रभावकारी निगरानी रखने के लिए पर्याप्त अधिकार तथा कर्तव्य सौंपे गए हैं।

5.35 हम इस बात से संतुष्ट हैं कि नियंत्रक महालेखापरीक्षक की रिपोर्ट काफी व्यापक और सही है। साथ ही हमारा यह विचार है कि आवश्यकता पड़ने पर उसे कुछ ऐसे अधिकार भी दिए जाने चाहिए जिनसे वह सार्वजनिक व्यय के स्वरूप और प्रवृत्ति के संबंध में जनता को आवश्यक जानकारी दे सके।

5.36 इस संबंध में हम प्रश्न सं० 5.35 के उत्तर में ऊपर अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं।

5.37 विद्यमान व्यवस्था को जारी रखा जा सकता है।

5.38 हमारा यह विचार है कि व्यय कमीशन की स्थापना जरूरी नहीं है।

5.39 हम इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं कि व्यय के बाद धनराशि के उपयोग संबंधी बातों पर निगरानी रखी जानी चाहिए। साथ ही यह देखने में आया है कि कुछ मामलों में राज्यों द्वारा प्रस्तुत की गई कार्य निष्पादन-संबंधी योजनाओं को स्वीकृति प्रदान करने में संबंधित मंत्रालय ने काफी देर की है। इस प्रकार की अनावश्यक देरी से काफी कठिनाई होती है और स्वीकृति प्रदान करने में संबंधित मंत्रालय को कोई देर नहीं करनी चाहिए।

भाग VI

आर्थिक एवं सामाजिक योजनाएं

6.1 हम इस बात से सहमत हैं कि योजना तैयार करते समय राज्य सरकारों से पर्याप्त परामर्श नहीं किया जाता और छोटे राज्यों की विशेष आवश्यकताओं पर भी वास्तव में पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। यद्यपि आंशिक रूप से इसका एक कारण यह है कि कुछ राज्य सरकारों ने अभी तक योजना तैयार करने और विकास कार्यों के लिए कोई पूर्णकालिक तंत्र नहीं बनाया है, फिर भी, इस दिशा में राज्य सरकारों से अधिक व्यापक परामर्श करके सफलता प्राप्त की जा सकती है। यह भी महसूस किया जाता है कि सभी राज्यों के लिए सार्वभौमिक रूप से अपनाए जाने वाले जो मानदण्ड केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गए हैं उनमें उपयुक्त परिवर्तन करना आवश्यक है जिससे छोटे राज्यों की विशेष आवश्यकताओं पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जा सके।

6.2 हम नहीं समझते कि राष्ट्रीय विकास परिषद को एक कानूनी निकाय बना देने से कोई विशेष लाभ होगा। राष्ट्रीय विकास परिषद अपने विद्यमान रूप में केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों का सर्वोच्च राजनीतिक स्तर पर प्रतिनिधित्व करती है और इस परिषद को राष्ट्र के लिए विकास योजनाओं को अंतिम रूप से अनुमोदित करने का प्राधिकार दिया गया है। इस व्यवस्था को जारी रहने दिया जा सकता है बशर्ते कि अलग-अलग राज्य सरकारों से विस्तार से परामर्श करने के लिए और अधिक समय लगाया जाए और राष्ट्रीय विकास परिषद स्वयं भी विकास संबंधी योजनाओं पर पूर्णतया और ध्यानपूर्वक विचार करे।

6.3 हमारा यह विचार है कि योजना आयोग का गठन एक स्वतंत्र निकाय के रूप में होना चाहिए और अर्थशास्त्री, प्रौद्योगकीविद् तथा प्रबंध विशेषज्ञ एवं प्रशासक, देश की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरी तरह से समझते हुए उनके आधार पर अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक दोनों प्रकार की ऐसी सिफारिशें करें जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश का आर्थिक विकास तेज गति से हो सके। इस प्रकार के निकाय को निःसंदेह सभी संबंधित संस्थाओं तथा राज्य सरकारों से अवश्य परामर्श करना चाहिए ताकि तैयार की जाने वाली योजनाएं अधिक से अधिक व्यावहारिक हों।

6.4 हमारा यह विचार है कि योजना आयोग का गठन एक स्वतंत्र निकाय के रूप में होना चाहिए और अर्थशास्त्री, प्रौद्योगकीविद् तथा प्रबंध विशेषज्ञ एवं प्रशासक, देश की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरी तरह से समझते हुए उनके आधार पर अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक दोनों प्रकार की ऐसी सिफारिशें करें जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश का आर्थिक विकास तेज गति से हो सके। इस प्रकार के निकाय को निःसंदेह सभी संबंधित संस्थाओं तथा राज्य सरकारों से अवश्य परामर्श करना चाहिए ताकि तैयार की जाने वाली योजनाएं अधिक से अधिक व्यावहारिक हों।

6.5 हमारा यह मत है कि योजना आयोग को एक स्वायत्त निकाय होना चाहिए और इसकी स्थापना एक सांविधिक संस्था के रूप में की जानी चाहिए ताकि वह जो भी कार्य करे उसे उचित कानूनी मंजूरी प्राप्त हो। इस समय यद्यपि योजना आयोग ऐसे तरीके से कार्य कर रहा है जो, केन्द्र सरकार और राज्य सरकार दोनों के लिए बाध्यकारी है फिर भी उसके ऐसे कार्यों के लिए कोई उचित सांविधिक स्वीकृति प्राप्त नहीं है।

6.6 हम इस बात से सहमत हैं कि राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को राज्य योजनाओं में अवश्य शामिल किया जाना चाहिए तथापि, हमने यह देखा है कि राष्ट्रीय प्राथमिकताओं का निर्णय करते समय राज्य सरकारों विशेष रूप से छोटे राज्यों की विशेष आवश्यकताओं की पूरी तरह से ध्यान में नहीं रखा जाता है। उदाहरण के लिए सिंचाई को एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्राथमिकता समझा जाता है किन्तु सिक्किम जैसे राज्य पर इस संबंध में राष्ट्रीय मानदण्डों को लागू करने का परिणाम निधियों का गलत उपयोग ही होगा। हमारा यह आग्रह है कि राष्ट्रीय प्राथमिकताएं लागू करते समय राज्य सरकारों से अवश्य परामर्श किया जाना चाहिए।

6.7 यद्यपि हमारा यह विचार है कि राज्यों को योजना आयोग के माध्यम से केन्द्रीय सहायता देने की वर्तमान प्रणाली संतोषजनक है किन्तु हमने यह पाया है कि ऐसे मामले में जिसमें किसी राज्य विशेष में किन्हीं ऐसी स्कीमों को कार्यान्वित किया है जो अनेक राज्यों के लिए लाभकारी है तो उस राज्य विशेष को उस समय अनुपात में बहुत अधिक ब्याज का भार वहन करना पड़ता है जब उन स्कीमों के लिए कर्ज मंजूर किए जाते हैं। हमारा यह अनुरोध है कि ऐसी स्कीमों के लिए सहायता मुख्य रूप से अनुदानों के रूप में दी जानी चाहिए।

6.8 कुल मिलाकर राज्य योजना के आकार का निर्धारण करने की प्रणाली इस बात को छोड़कर संतोषजनक रही है कि जब आर्थिक कठिनाइयों के कारण योजना के आकार में कटौती करने की मांग की गई हो, भले ही आर्थिक कारणों से राज्य सरकार द्वारा परिभाषित कार्यक्रम पूर्णतया औचित्यपूर्ण और ठोस हो। अतः हमारा यह सुझाव है कि आर्थिक रूप से अधिक पिछड़े राज्यों के मामले में उनकी सभी आवश्यकताओं को योजना में शामिल करने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए ताकि पिछड़े राज्यों को उन्नत राज्यों के स्तर तक लाने का योजना का मूल उद्देश्य पूरा हो सके।

6.9 कुल मिलाकर राज्य योजना के आकार का निर्धारण करने की प्रणाली इस बात को छोड़कर संतोषजनक रही है कि जब आर्थिक कठिनाइयों के कारण योजना के आकार में कटौती करने की मांग की गई हो, भले ही आर्थिक कारणों से राज्य सरकार द्वारा परिभाषित कार्यक्रम पूर्णतया औचित्यपूर्ण और ठोस हो। अतः हमारा यह सुझाव है कि आर्थिक रूप से अधिक पिछड़े राज्यों के मामले में उनकी सभी आवश्यकताओं को योजना में शामिल करने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए ताकि पिछड़े राज्यों को उन्नत राज्य के स्तर तक लाने का योजना का मूल उद्देश्य पूरा हो सके।

6.10 यह सही है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित अनेक योजनाओं के कारण राज्यों की योजना संबंधी प्राथमिकताओं को पूरा करने में कुछ सीमा तक बाधाएं उत्पन्न हुई है और इस स्थिति में आमूल परिवर्तन नहीं किया जा सकता। हमारी यह सिफारिश है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित की जाने वाली किसी स्कीम के संबंध में कोई निर्णय लेने से पहले राज्य सरकारों से अच्छी तरह परामर्श किया जाना चाहिए और संबंधित स्कीम को राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत एक प्राथमिकता की स्कीम के रूप में शामिल किए जाने की संभावना पर भी विचार किया जाना चाहिए।

6.11 यद्यपि योजना आयोग में स्कीमों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने और उनका मूल्यांकन करने से संबंधित तंत्र को और अधिक मजबूत किया गया है किंतु राज्य स्तर पर इस तंत्र में काफी अधिक सुधार लाना आवश्यक है।

6.12 यद्यपि विकेन्द्रीकृत योजना काफी अधिक महत्वपूर्ण है किंतु दुर्भाग्यवश अभी तक इस दिशा में अधिक से अधिक केन्द्रीकृत योजना तैयार करने की प्रवृत्ति रही है। इसका कारण केवल यही नहीं है कि उपलब्ध साधनों का अधिकांश भाग केन्द्र सरकार के पास ही रहता है, बल्कि यह भी है कि राज्य स्तरों पर योजना संबंधी तंत्र की स्थापना ऐसे तरीके से नहीं की गई है जिसके आधार पर राज्य सरकार ऐसी योजनाएं तैयार कर सकें जो तकनीकी रूप से उच्च स्तर की हों और जिनकी संवीक्षा करने पर उनमें कोई दोष नजर न आए। राज्य स्तरों पर ऐसे विशेषज्ञों का दल तैयार करना होगा, जिसमें अर्थशास्त्री और प्रशिक्षित शामिल हों। केवल कुछ ही राज्यों को इस दिशा में सफलता प्राप्त हुई है। ऐसा योजना तंत्र तैयार करने के लिए केन्द्र द्वारा राज्यों की सहायता देने से राज्य ऐसी योजनाएं तैयार कर सकेंगे जिन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार किया जा सकता है। राज्यों को भी वर्तमान की तुलना में अपनी योजनाओं को धीरे-धीरे बड़े पैमाने पर तैयार करने की क्षमता अर्जित करनी होगी।

6.13 यह प्रश्न कि राष्ट्रीय योजनाएं धीरे-धीरे अधिक प्रतिनिधि योजनाएं बनें, केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं करता कि राज्य सरकार योजनाओं को कार्यान्वित करने में कितने प्रभावकारी तरीके से सहयोग दे सकती है, बल्कि उन क्षेत्रों पर भी निर्भर करता है जिनमें हमारे विचार से सरकार का हस्तक्षेप जरूरी है। सात योजनाओं को कार्यान्वित करने के बाद देश ने औद्योगिक एवं कृषि के क्षेत्र में ऐसी सफलता प्राप्त की है कि अब हम निजी क्षेत्रों में भी अनेक परियोजनाएं कार्यान्वित कर सकते हैं जिससे कि, जैसा कि अन्य अनेक देशों में हुआ

है, हम भी अपने देश की अर्थ व्यवस्था की दर में समग्र रूप से वृद्धि होने की आशा कर सकते हैं। इससे मध्यवर्ती सरकारी व्यय को कम करने में सहायता मिलेगी जो देश पर पहले से ही एक भार के रूप में सिद्ध हो रहा है। यह इस तथ्य के संदर्भ में भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि इस समय केन्द्र सरकार को वर्तमान राजस्व में से अपनी वर्तमान देयताओं को भी पूरा करने में कठिनाई हो रही है और स्थापना संबंधी व्यय इतना अधिक बढ़ गया है कि राष्ट्रीय बजट में से अधिकांश राशि उसी पर खर्च हो जाती है।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम इस बात से सहमत हैं कि काफी अधिक मात्रा में उद्योगों को, उनके उत्पादन मूल्य को ध्यान में रखते हुए प्रथम अनुसूची में शामिल करने के लिए उसका विस्तार करना राज्यों के हितों के प्रतिकूल सिद्ध हुआ है। यदि राज्यों को एक साबुन की फैक्टरी लगाने के लिए लाइसेंस प्राप्त करने के लिए केन्द्र के पास दौड़ना पड़े तो राज्यों की स्थिति का भली-भांति अनुमान लगाया जा सकता है। कोर उद्योग या रक्षा प्रयोजनों से संबंधित उद्योग या ऐसे उद्योग के सम्बन्ध में, जिनमें बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश की आवश्यकता है, लाइसेंस जारी करने पर केन्द्र का अधिकार होना तर्कसंगत है। दुर्भाग्यवश जैसा कि उपर्युक्त प्रश्न में उल्लिखित हैं ऐसी अनेक उपभोक्ता मदें हैं जो संघीय सूची में आती हैं। ऐसे उद्योगों को राज्य के क्षेत्राधिकार में अंतरित कर दिया जाना चाहिए। उपभोक्ता उद्योगों को उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के विषय क्षेत्र से बाहर रखा जाना चाहिए।

सिक्किम सरकार के बार-बार अनुरोध करने के बावजूद केन्द्र सरकार ने लाइसेंसो की स्वीकृति में त्रुटियां होने के कारण लाइसेंस जारी नहीं किया है अथवा उनका नवीकरण नहीं किया है।

7.2 रक्षा उद्योगों और कोर उद्योगों तथा ऐसे उद्योगों को भी राष्ट्रीय सार्वजनिक हित की परिसीमा में लाया जाना चाहिए जिनमें पूंजी लगाना राज्य सरकार की वित्तीय क्षमता के परे है। साथ ही केन्द्र सरकार को राज्य सरकारों पर विश्वास करना चाहिए। अतः यह महसूस किया जाता है कि उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट अनेक मदों को राज्यों के क्षेत्राधिकार में अंतरित किया जा सकता है।

1. धातु-कर्म संबंधी उद्योग :
   (i) लोह और इस्पात संरचनाएं
   (ii) लोह और इस्पात को पाइपें
   (iii) लोह और इस्पात के अन्य उत्पाद
   (iv) लोह और इस्पात की ढलाई तथा गढ़ाई

2. विद्युत उपस्कर :
   (i) बिजली के मोटर
   (ii) बिजली के लैम्प
   (iii) बिजली के पंखे
   (iv) एक्स-रे उपस्कर
   (v) इलेक्ट्रॉनिक उपस्कर
   (vi) घरेलू उपकरण जैसे बिजली की इस्त्री, हीटर और उसी प्रकार की अन्य वस्तुएं
   (vii) भण्डारण बैटरियां
   (viii) शुष्क सेल

3. दूर-संचार :
   (i) रेडियो रिसीवर जिसमें प्रवर्धन तथा जन संबोधन उपस्कर शामिल है
   (ii) दूरदर्शन सेट

4. परिवहन :
   (i) मोटर साइकिल, स्कूटर और इसी प्रकार की अन्य चीजें
   (ii) साइकिलें
   (iii) अन्य जैसे फोर्म लिफ्ट ट्रक और इसी प्रकार के अन्य परिवहन

5. कृषि संबंधी यंत्र :
   (i) कृषि संबंधी औजार

6. विविध यांत्रिक और इंजीनियरी उद्योग :
   (i) प्लास्टिक से बने सामान
   (ii) दस्ती औजार, छोटे-मोटे औजार और इसी प्रकार के अन्य सामान
   (iii) रेज़र ब्लेड
   (iv) प्रेशर कुकर
   (v) कटलरी
   (vi) इस्पात के फर्नीचर

7. वाणिज्यिक, कार्यालय और घरेलू उपस्कर :
   (i) टाइप राइटर
   (ii) परिकलन मशीनें
   (iii) निर्वात मार्जक (वैक्युम क्लीनर)
   (iv) सिलाई और बुनाई की मशीनें
   (v) लालटेन

8. चिकित्सा और सर्जरी के उपकरण :
   (i) सर्जरी के लिए यंत्र-रोगाणुनाशक, ऊष्मायित्र (इन्क्यूबेटर) और इसी प्रकार के अन्य यंत्र

9. गणितीय, सर्वे और आरेखण (ड्राइंग) यंत्र :
   (i) गणितीय, सर्वे और आरेखण (ड्राइंग) यंत्र

10. फर्टिलाइजर :
   (i) मिश्रित फर्टिलाइजर

11. रासायनिक वस्तुएं (फर्टिलाइजर से भिन्न) :
   (i) रंग, वार्निस और इनेमल

12. कागज और लुगदी जिसमें कागज से बनी वस्तुएं भी शामिल हैं :
   (i) पैकिंग के लिए कागज (नालीदार कागज, दस्तकारी कागज, कागज के लिफाफे, -कागज के डिब्बे और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं)
   (ii) लुगदी--लकड़ी की लुगदी यांत्रिक, रासायनिक (जिसमें विलयनशील लुगदी भी शामिल है)

13. साबुन, कॉस्मेटिक्स और प्रसाधन सामग्री :
   (i) साबुन
   (ii) कॉस्मेटिक्स
   (iii) इत्रसाजी
   (iv) प्रसाधन संबंधी वस्तुएं

14. रबर का सामान :
   (i) टायर और ट्यूब
   (ii) सर्जरी और चिकित्सा संबंधी उत्पाद जिसमें रोग रोधी दवाइयां भी शामिल हैं
   (iii) जूते-चप्पल आदि वस्तुएं

15. चमड़ा, चमड़े से बनी और पिकर्स :
   (i) चमड़े, चमड़े से बनी वस्तुएं और पिकर्स

16. कांच :
   (i) बर्तन
   (ii) चादरी एवं पट्ट कांच
   (iii) चश्मे के लिए कांच
   (iv) प्रयोगशाला के लिए बर्तन

(v) रेशेदार कांच

(vi) कांच के विविध भाण्ड

17. लकड़ी के उत्पाद :

(i) प्लाइवुड

(ii) हार्डबोर्ड, फाइबरबोर्ड, चिप बोर्ड और इसी प्रकार के अन्य बोर्ड

(iii) माचिस

(iv) विविध (फर्नीचर, बोबिन्स, शटल और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं)

18. खाद्य संसाधन उद्योग :

(i) डिब्बाबंद फल और फलों के उत्पाद

(ii) दूध से बनी वस्तुएं

(iii) माल्टयुक्त वस्तुएं

(iv) आटा

(v) अन्य संसाधित खाद्य पदार्थ ।

7.3 राज्य सरकार केंद्र सरकार के समग्र पर्यवेक्षण के अधीन लाइसेंस जारी करने/नवीकरण करने से संबंधित कार्य अपने पास रखना चाहेगी ।

7.4 कच्चे माल के आबंटन के लिए पहले से ही उपयुक्त योजना बनाना आवश्यक है । इस प्रणाली को सुव्यवस्थित करना भी आवश्यक है । वर्तमान स्थिति को देखते हुए विभिन्न संस्थाओं के बीच अधिक समन्वय और अधिक वित्तीय सहायता से इसमें सुधार करने की काफी गुंजाइश है । वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजना के स्वरूप का विकेन्द्रीकरण करना भी आवश्यक है ।

7.5 सिक्किम देश का सबसे छोटा राज्य है और इसकी साधन जुटाने की क्षमता नगण्य है । राज्य की योजनाओं का वित्त पोषण केन्द्र द्वारा किया जाता है । अतः राज्य की योजनाओं का कार्यान्वियन केन्द्र के आबंटन की सीमा में ही करना होगा । चूंकि राज्य में सार्वजनिक क्षेत्र के कोई उल्लेखनीय उद्योग नहीं है इसलिए औद्योगिक विकास बैंक या औद्योगिक वित्त निगम या केन्द्र द्वारा नियंत्रित अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेने का कभी प्रश्न ही नहीं उठा है ।

7.6 सिक्किम में सार्वजनिक क्षेत्र के कोई उद्योग नहीं है । इसलिए जहां तक इस राज्य का संबंध है उपर्युक्त प्रश्न केवल सैद्धांतिक प्रश्न मात्र है । राज्यों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की स्थापना अत्यंत महत्वपूर्ण है । तथापि, इस समय इस राज्य में कोई भी उद्योग नहीं है इसलिए इस प्रश्न पर कोई टिप्पणी नहीं की जा सकती ।

7.7 जहां तक भारी उद्योगों का संबंध है सिक्किम का इनसे कोई वास्ता नहीं है । वस्तुतः सिक्किम बहुत चाहता है कि राज्य में सार्वजनिक या निजी क्षेत्र के भारी या मध्यम उद्योगों की स्थापना की जाए ताकि राज्य अपनी क्षमताओं का उपयोग कर सके । जब तक राज्य में ऐसे उद्योग नहीं होंगे तब तक यह प्रश्न असंगत है ।

राज्य में अब तक किसी भारी उद्योग की स्थापना नहीं की गई । वस्तुतः सिक्किम बहुत चाहता है कि राज्य में ऐसे उद्योग स्थापित किए जाए लेकिन अब तक कोई केन्द्रीय स्कीमे नहीं लागू की गई है ।

7.8 यह सही है कि सिक्किम को औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ राज्य माना गया है किंतु दुर्भाग्यवश केन्द्र ने राज्य का पिछड़ापन दूर करने के लिए यहां कोई उद्योग स्थापित नहीं किया है । राज्य के पास अपने आप कोई उद्योग स्थापित करने के लिए सीमित साधन हैं । राज्य में उद्योगों की स्थापना केवल केन्द्र की सहायता से ही की जा सकती है जो दुर्भाग्यवश राज्य को नहीं प्राप्त हो रही है । इसका परिणाम यह है कि राज्य में ऐसी कोई भी औद्योगिक इकाई नहीं है जिसका उल्लेख किया जा सकता हो । अधिक महत्वपूर्ण तो राज्य में मूलभूत सुविधाओं का विकास करना है जिससे बाहर के उद्यमियों को राज्य में उद्योग लगाने के लिए आकर्षित किया जा सके । जब तक राज्य में सार्वजनिक या निजी-क्षेत्र द्वारा पूंजी नहीं लगाई जाएगी तब तक सिक्किम के लिए स्वयं औद्योगीकरण करना अत्यंत कठिन होगा ।

सिक्किम जैसे पहाड़ी राज्य में जिलों/क्षेत्रों को पिछड़े जिलों या क्षेत्रों के रूप में घोषित करने के लिए जो मानदण्ड निर्धारित किया जाएगा उसके अनुसार उन्हें केवल पिछड़ा घोषित करके छोड़ देना ही पर्याप्त नहीं होगा । सार्वजनिक उद्यमों में केन्द्र द्वारा पूंजी लगाने और सुगम ऋण उदारता पूर्वक देने पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए ।

व्यापार तथा वाणिज्य

8.1 हां, राज्य सरकार अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना और खण्ड (क) (ख) और (ग) को कार्यान्वित करने के लिए सहमत है ।

कृषि

9.1 कृषि की वर्तमान स्थिति के विषय में, जहां तक उसे सूची में शामिल करने का संबंध है, यह वांछनीय है कि यथापूर्व स्थिति बनाए रखी जाए । देश में कृषि के विकास के लिए योजनाएं और कार्यक्रम बनाने के संबंध में केन्द्र को समान अधिकार होना चाहिए । देश में कृषि का विकास, राज्यों और केन्द्र द्वारा संयुक्त रूप से निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार होना चाहिए । तथापि, हाल ही में यह पाया गया है कि केन्द्र, राज्य सरकार द्वारा लागू की जाने वाली कृषि संबंधी स्कीमों के संबंध में निर्णय लेने में अधिक प्रबल भूमिका अदा करता रहा है । यह वांछनीय नहीं है, क्योंकि इतने बड़े देश के लिए कृषि के क्षेत्र में केन्द्रीकृत तरीके से विकास संबंधी स्कीमें तैयार करना संभव नहीं है । देश के विभिन्न क्षेत्रों में कौन-कौन सी फसलें उपयुक्त हैं यह अलग-अलग क्षेत्रों पर निर्भर करता है और समीपस्थ इलाकों के संबंध में भी यह बात सही है जिसके कारण क्षेत्रीय आधार पर स्कीमें तैयार करना जरूरी हो जाता है । इस संबंध में केन्द्र का कार्य केवल नीतियां, प्राथमिकताएं और मार्गदर्शी सिद्धान्त तक ही सीमित होना चाहिए । राज्य सरकार को केन्द्र द्वारा तैयार की गई नीतियों और मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अन्तर्गत स्वतंत्र रूप से स्कीमों को लागू करने का अधिकार अवश्य दिया जाना चाहिए ।

9.2 हमारे राज्य में अनेक केन्द्र और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें चल रही है । इन स्कीमों में हर वर्ष वृद्धि हो रही है । केन्द्र द्वारा शत प्रतिशत नियंत्रित स्कीमें राज्य सरकार को नहीं सौंपी जाएंगी क्योंकि ये स्कीमें राज्य को आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के आधार पर दी गई है । केन्द्र सरकार इन स्कीमों को सीधे चलाने की अधिक बेहतर स्थिति में होगी । केन्द्र द्वारा प्रायोजित अन्य स्कीमों से अधिकांशतः राज्य की आवश्यकताएं पूरी नहीं होती । इन स्कीमों में आवश्यकतानुसार ज्यादा परिवर्तन नहीं किया जा सकता । इसीलिए राज्य सरकार इनको ठीक प्रकार से कार्यान्वित नहीं कर पाती । देश के आकार, कृषि-जलवायु की स्थितियों में भिन्नता और भौगोलिक स्थिति में अत्यधिक भिन्नता आदि को देखते हुए पूरे देश के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित एक समान स्कीमें चलाना कभी भी संभव नहीं है । केन्द्र केवल उन्हीं केन्द्रीय प्रायोजित स्कीमों को रख सकता है जिन्हें पूरे देश में एक ही तरीके से चलाया जा सके । तथापि, केन्द्र को कार्यक्रमों का नियमित तरीके से और उचित प्रकार से मूल्यांकन करना चाहिए ।

राज्य सरकार केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों को लागू करने में निरंतर प्रशासनिक कठिनाइयों का सामना करती रही है, विशेष रूप से यथासमय निधियां प्रदान करने, लेखे रखने, संबंधित निदेशालय को प्रस्तुत करने के लिए रिपोर्टें तैयार करने के काम की मात्रा के संबंध में राज्य सरकार को निरंतर प्रशासनिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है । राज्य सरकार की केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के कार्य में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए ।

9.3 (1) केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीम तैयार करते समय राज्य का भी सहयोग लिया जाना चाहिए क्योंकि इन स्कीमों से अंततः राज्य को ही लाभ मिलता है । यदि ऐसा नहीं किया जाता तो हो सकता है कि ये स्कीमें राज्य के लिए उपयुक्त सिद्ध न हों और इसके परिणामस्वरूप अलाभकर व्यय हो सकता है ।

(2) हम इस सुझाव से सहमत हैं कि इस प्रयोजन के लिए केन्द्र और राज्य के कार्य चालन समूहों को आपस में निरंतर विचार-विमर्श करते रहना चाहिए । योजनाएं और कृषि के विकास के लिए कार्यक्रम बनाने के कार्य में केन्द्र और राज्य

के बीच परस्पर सहयोग में काफी वृद्धि हुई है। केन्द्र, फसलों के उत्पादन में वृद्धि के लिए ही नहीं बल्कि कृषि संबंधी साधनो की व्यवस्था करने और उनके वितरण के लिए भी नियमित रूप से बैठकों, सम्मेलनों आदि का आयोजन करता रहा है। इसके अतिरिक्त केन्द्र, राज्य द्वारा इस दिशा में की गई प्रगति की भी नियमित रूप से समीक्षा करता रहा है। उत्तर पूर्वी राज्यो के लिए जिनमें सिक्किम भी शामिल है, ऐसी बैठकें, सम्मेलन आदि बारी-बारी से राज्यों में ही किए जाने चाहिए। क्योंकि इन राज्यों में कृषि-जलवायु संबंधी स्थिति, भौगोलिक स्थिति, पिछड़ापन, आदिवासी जनसंख्या की अधिकता आदि स्थितियां एक समान हैं और ये राज्य दिल्ली से भी काफी अधिक दूरी पर है। इन राज्यों में विषय विशेषज्ञों की संख्या बहुत कम होने के कारण केन्द्र द्वारा आयोजित सभी बैठकों में भाग लेने के लिए अधिकारियों को प्रतिनियुक्त करना काफी कठिन हो जाता है। ऊपर दिए गए कारणो से इन राज्यों की आवश्यकताओं पर एक भिन्न आधार पर विचार किया जाना चाहिए।

9.4 (क) कृषि संबंधी विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की लागत एक राज्य से दूसरे राज्य में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में और एक ब्लाक से दूसरे ब्लाक में भिन्न-भिन्न होती है जिसके कारण हम पूरे देश के लिए एक समान मूल्य निर्धारण की कभी कल्पना नहीं कर सकते। विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों का निर्धारण, उत्पादन की लागत को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए और मूल्य निर्धारण का आधार औसत लागत को न बनाकर विभिन्न क्षेत्रों के लिए वास्तविक लागत को बनाया जाना चाहिए। कृषि-मूल्य निर्धारण आयोग केवल चुनी हुई वस्तुओं के मूल्यों का निर्धारण करता है जिसके कारण केवल राज्यों के किसानों को ही लाभ होता है। अदरख, आलू, इलायची, संतरे, फल और सब्जी आदि जैसी वाणिज्यिक या नकदी फसल उगाने वाले किसानों पर भी कृषि-मूल्य निर्धारण आयोग की शर्तें लागू होनी चाहिए। केन्द्र सरकार को इन मदों को प्राप्त करने और इनके विपणन की व्यवस्था उसी तरीके से करनी चाहिए जिस तरीके से अन्य वस्तुओं के लिए की जाती है।

(ख) जिन राज्यों के पास जल-साधन उपलब्ध हैं उनको जल-साधनों से लाभान्वित होने वाले राज्यों से पर्याप्त राजस्व मिलना चाहिए।

(ग) केन्द्र, महत्वपूर्ण साधनों की पूर्ति करने एवं उनकी व्यवस्था करने और ऋण प्रदान करने में एक निर्णायक भूमिका अदा करता रहा है। अतः ऐसे साधनों को आपूर्ति के संबंध में केन्द्र की सक्रियता से राज्य के विकास संबंधी कार्यों पर काफी अधिक प्रभाव पड़ता है। राज्यों के विकास संबंधी कार्यक्रमों के लिए यथा समय साधनों की व्यवस्था करने में केन्द्र का प्रयास अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

9.5 केन्द्रीय अनुसंधान संस्थाएं और वित्तीय संस्थाएं अपने दायित्वों का निर्वाह संतोषजनक ढंग से कर रही हैं। तथापि, ऐसे संगठनों से पूरा लाभ उठाना तो राज्य सरकार पर ही निर्भर करता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद को यदि पर्याप्त प्रोत्साहन, भौतिक सुविधाएं तथा आवागमन के साधन प्रदान किए जाएं तो उनके कार्यों में काफी अधिक सुधार हो सकता है। राज्य और केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान के बीच बेहतर सहयोग और समन्वय की आवश्यकता है।

खाद्य और नागरिक आपूर्ति

10.1 खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने, उनके मूल्य निर्धारण, भण्डारण, उनको लाने ले जाने और उनके वितरण के क्षेत्रों में केन्द्र-राज्य में सम्पर्क की स्थिति में सुधार करने की काफी गुंजाइश है। इन मामलों से संबंधित नीतियों का निर्धारण करते समय राज्य सरकारों से पूर्व परामर्श अवश्य किया जाना चाहिए।

10.2 आर्थिक समीक्षा बहुत जरूरी है क्योंकि यह अत्यंत उपयोगी है। आवश्यक वस्तु अधिनियम के अधीन केन्द्र सरकार का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करने की वर्तमान व्यवस्था की पूरी तरह से समीक्षा करने की आवश्यकता है।

आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा (5) में इस प्रकार से संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए जिससे वह शक्तियों के प्रत्यायोजन का मामला न रहे, अपितु उसे राज्य या केन्द्र का ही मामला होना चाहिए।

शिक्षा

11.1 हमारा यह विचार है कि यह कहना कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीकरण और मानकीकरण है, एक अतिव्याप्त कथन है जिससे बचा जा सकता है। कम से कम हमारे राज्य को तो राज्य सरकारों की पहल और प्राधिकार के क्षेत्र में केन्द्र के हस्तक्षेप का कोई अनुभव नही हुआ है। शिक्षा को राज्य-सूची में पुनः शामिल करने के प्रस्ताव की पूरी तरह से समीक्षा की जानी चाहिए।

11.2 इस संबंध में राज्य सरकार की कोई टिप्पणी नही करनी है।

11.3 इस संबंध में राज्य सरकार को कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

11.4 नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 29 और 30 की प्रयोज्यता की समीक्षा की जानी चाहिए।

11.5 जहां तक सिक्किम का संबंध है, शिक्षा के संबंध में और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कारण भी केन्द्र और राज्य के बीच किसी विवाद की हमें कोई जानकारी नही है।

सरकारों के बीच परस्पर समन्वय

12.1 यही उचित समय है जब केन्द्र-राज्य संबंधों को लेकर सामने आने वाली कठिनाइयों और समस्याओं के समाधान के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद जैसा निकाय या तंत्र होना चाहिए। ऐसे निकाय या संस्था की सिफारिश सरकारों के बीच परस्पर संबंधों और समन्वय में सुधार करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होगी। ऐसी संस्था की स्थापना की आवश्यकता पर और अधिक बल देने की कोई जरूरत नही है। केन्द्र-राज्य संबंधों पर लगातार निगरानी रखी जानी चाहिए। यह कार्य कुछ सीमा तक राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन स्थापित आंचलिक परिषदों द्वारा किया जा रहा है। यह सुझाव दिया जाता है कि सरकारिया आयोग जैसे आयोगों की स्थापना नियमित अंतरालों पर की जानी चाहिए।

तमिलनाडु सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) आयोग द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दों के उत्तर

तमिलनाडु

प्रश्नों के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री डा० सी० एम० अन्नादुराई ने विधान सभा में अपने भाषण में और अन्यत्र भी इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया है कि साधनों के वितरण में अत्यधिक असंतुलन की स्थिति को दूर करने के लिए और संवैधानिक, वित्तीय तथा अन्य क्षेत्रों में राज्यों को और अधिक अधिकार प्रदान करने के लिए तथा वास्तविक संघ राज्य की स्थापना के लिए भारत के संविधान की समीक्षा और पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए । वर्तमान मुख्यमंत्री डा० एम० जी० रामचन्द्रन ने भी केन्द्र-राज्य संबंधों के संबंध में और विशेष रूप से संवैधानिक, प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्रों में राज्यों को और अधिक अधिकार प्रदान किए जाने के लिए संविधान की समीक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है । अतः तमिलनाडु सरकार, केन्द्र-राज्य संबंधों पर भारत सरकार द्वारा जून 1983 में न्यायाधीश सरकारिया की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किए जाने का स्वागत करती है ।

2. श्री के० सी० ह्वेरे के अनुसार संघीय सिद्धान्त का अर्थ यह है की अधिकारों को विभाजित करने का ऐसा तरीका जिससे सामान्य एवं क्षेत्रीय सरकारें एक क्षेत्र में समन्वय से कार्य करें और स्वतंत्र रहें। (फेडेरल गवर्नमेन्ट—चौथा संस्करण—के० सी० ह्वेरे) ।

3. संयुक्त राज्य अमरीका में राज्य अपना-अपना संविधान बनाए रखते हैं और राज्य के अधिकार केवल इस सीमा तक ही सीमित होते हैं कि कुछ अधिकार राज्यों को नहीं दिए जाते या संघ सरकार को सौंप दिए जाते हैं जिसे सरकार के अधिकार प्राप्त हैं । आस्ट्रेलिया की स्थिति भी इसी प्रकार की है अर्थात, संयुक्त राज्य अमरीका और आस्ट्रेलिया, दोनों में अवशिष्ट अधिकार राज्यों में निहित होते हैं । स्विटजरलैण्ड के संविधान में सरकार के अधिकार अमरीकी प्रणाली के आधार पर राष्ट्रीय और कैण्टोनल सरकारों के बीच बांटे गए हैं । संघ सरकार को राष्ट्रीय महत्व के अधिकार दिए गए हैं और अवशिष्ट अधिकार कैण्टनों को दिए गए हैं किंतु कैण्टनों को अपने-अपने क्षेत्र में परम्पधिकार प्राप्त हैं, यद्यपि उन पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए हैं, (क) उनके संविधान गणतंत्रात्मक होने चाहिए, (ख) उनके संविधान संघीय संविधान के प्रतिकूल नहीं होने चाहिए, (ग) उनमें लोकप्रिय मतदान द्वारा संशोधन या परिवर्तन आवश्य किया जा सकता हो । स्थानीय स्वायत्तता की भावना अभी भी स्विटजरलैण्ड में है । कैण्टनों के पास अभी भी अवशिष्ट अधिकार हैं ।

4. वस्तुपरक संकल्प में, जो पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा 13 दिसंबर 1946 को भारत की संविधान सभा में रखा गया था, यह उल्लेख किया गया है कि प्रान्तों के पास स्वायत्त इकाइयों का दर्जा होना चाहिए तथा उनके पास अवशिष्ट अधिकार होने चाहिए और उन्हें ऐसे अधिकारों और कार्यों को छोड़कर, जो केन्द्र सरकार में निहित हैं या उसको सौंपे गए हैं या उसके पास हैं या इन अधिकारों के परिणामस्वरूप उसे (केन्द्र को) प्राप्त हुए हैं, सरका और प्रशासन के सभी अधिकारों का प्रयोग करने और कार्य करने का अधिकार होना चाहिए । पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा रखे गए वस्तुपरक प्रस्ताव का पाठ इस प्रकार है :—

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि :—

"(1) यह संविधान सभा भारत को एक स्वतंत्र प्रभुतासंपन्न गणतंत्र घोषित करने और देश के भावी नियंत्रण के लिए एक संविधान बनाने के लिए दृढ़ता और सत्यनिष्ठापूर्वक संकल्प करने की घोषणा करती है,

(2) जो क्षेत्र इस समय ब्रिटिश भारत में हैं, जो क्षेत्र इस समय भारतीय राज्यों के रूप में हैं, और भारत के ऐसे अन्य भाग जो ब्रिटिश भारत से बाहर हैं और ऐसे अन्य क्षेत्र जो स्वतंत्र प्रभुतासंपन्न भारत के रूप में गठित किए जाने के लिए सहमत हैं वे सभी एक संघ के रूप में होंगे, और

(3) कथित क्षेत्र, चाहे वे अपनी वर्तमान सीमाओं के अंतर्गत हों या संविधान सभा द्वारा निर्धारित सीमाओं में हों और उसके बाद संविधान के कानून के अंतर्गत निर्धारित सीमाओं में हों, उन सभी का दर्जा स्वायत्त इकाइयों का होगा और उनके पास अवशिष्ट अधिकार होंगे और उन्हें ऐसे अधिकारों और कार्यों को छोड़कर, जो केन्द्र सरकार में निहित हैं या उसको सौंपे गए हैं या उसके पास हैं या इन अधिकारों के परिणामस्वरूप उसे (केन्द्र को) प्राप्त हुए हैं, सरकार और प्रशासन के सभी अधिकारों का प्रयोग करने और कार्य करने का अधिकार होगा, और

(4) प्रभुतासंपन्न स्वतंत्र भारत और संघटक भाग तथा सरकार के अंगों के अधिकारी और प्राधिकार जनता से प्राप्त किए जाते हैं, और

(5) भारत की समस्त जनता को कानून और सार्वजनिक नैतिकता के अध्याधीन रहते हुए न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सुरक्षा, बराबरी का दर्जा, समान अवसर, कानून के समक्ष न्याय प्राप्त करने के समान अवसर, विचार, अभिव्यक्ति, धर्म, निष्ठा, पूजा, व्यवसाय, सभा और कार्य की स्वतंत्रता की गारण्टी दी जाएगी उसकी रक्षा की जाएगी, और

(6) अल्पसंख्यकों, पिछड़े और आदिवासी क्षेत्रों, दलित वर्ग तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सुरक्षा के पर्याप्त पूर्वोपाय किए जाएंगे, और

(7) भारत गणतंत्र राज्य के क्षेत्र की अखण्डता की और भूमि, समुद्र और आकाश में उसके प्रभुतासंपन्न अधिकारों की सभ्य राष्ट्रों के न्याय और कानून के अनुसार रक्षा की जाएगी, और

(8) इस पुरातन भूमि की विश्व में उचित एवं सम्माननीय स्थान प्राप्त है और यह विश्वशांति और मानव जाति के कल्याण के लिए पूर्णतया सहयोग प्रदान करने के लिए तत्पर है ।"

5. थिरू एल० कृष्णास्वामी भारती (मद्रास: जनरल) ने 9 नवम्बर 1948 को संविधान सभा में अपने भाषण में इस बात की आलोचना की है कि भारतीय संविधान ने केन्द्र का बोझ बहुत अधिक बढ़ा दिया है और इसमें आवश्यकता से अधिक केन्द्रीकरण की भी प्रवृत्ति है । इस संदर्भ में उनके भाषण का निम्नलिखित अंश संगत है :—

"डा० अम्बेडकर का यह कथन है कि संविधान का प्रारूप संघीय है । पूरे संविधान का यदि सावधानी से अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इसका स्वरूप संघीय की अपेक्षा एकात्मक अधिक है । यदि मैं अपने विचार प्रतिशतता के रूप में प्रस्तुत करूं तो मुझे यह कहना होगा कि यह 75% एकात्मक है और 25% संघीय है । अनेक माननीय सदस्यों ने एक सशक्त केन्द्र की आवश्यकता की बात जोरदार शब्दों में कही है । मैं नहीं समझता कि इस पर अत्यधिक जोर देना जरूरी है क्योंकि यह तो स्पष्ट है कि केन्द्र को मजबूत होना ही चाहिए।

54—376 M. of HA/ND/87

विशेष रूप से देश के मौजूदा हालत में। किंतु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस बात पर आवश्यकता से अधिक बल दे रहे हैं। मेरा यह विचार है कि यह जरूरी नहीं है कि एक सशक्त केन्द्र होने का यह अभिप्राय ही कि उसके परिणामस्वरूप प्रान्त कमजोर रह जाएंगे। ऐसा प्रयास किया जा रहा है और यह भी पाया गया है कि केन्द्र पर आवश्यकता से अधिक बोझ डालने की प्रवृत्ति होती जा रही है और अत्यधिक केन्द्रीकरण करने की भी प्रवृत्ति ही रही है। मुझे प्रसन्नता है कि डा० अम्बेडकर ने एक प्रकार से चेतावनी दी है। मेरा यह विचार है कि संविधान को वास्तव में लागू करते समय केन्द्र को अधिक अधिकार देने से संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होगी। यह तो सर्वविदित है कि एक जंजीर की ताकत उसकी सबसे कमजोर कड़ी में होती है और प्रान्तों को प्रतिद्वन्दी सरकारी संगठन नहीं समझा जाना चाहिए। केन्द्र अपने पास आवश्यकता से अधिक अधिकार रखने का प्रयास कर रहा है।

मेरे विचार में अस्थायी व्यवस्था के अंतर्गत केन्द्र द्वारा प्रथम पांच वर्षों के लिए प्रान्तीय विषयों को भी अपने नियंत्रण में लेने का प्रयास किया गया।"

प्रोफेसर एन० जी० रंगा (मद्रास : जनरल) ने 9 नवंबर 1948 को संविधान सभा में अपने भाषण में यह कहा है कि वह एक सशक्त केन्द्र के यथाकथित नारे के पक्ष में नहीं हैं और केन्द्र को विशेष रूप से सशक्त बनाने के लिए इस प्रकार आरंभिक प्रयास करना निरर्थक ही नहीं खतरनाक भी है और वस्तुपरक संकल्प में वे चाहते थे कि प्रान्तों को अवशिष्ट अधिकार प्राप्त हों। उनके भाषण का संगत अंश इस प्रकार है :—

"महात्मा गांधी ने तीस वर्षों तक विकेन्द्रीकरण का समर्थन किया है। कांग्रेसी के रूप में हम विकेन्द्रीकरण के प्रति वचनबद्ध हैं। वस्तुतः आज सारा विश्व ही विकेन्द्रीकरण के पक्ष में है। यदि हम दूसरी ओर केन्द्रीकरण चाहते हैं तो मैं इस सदन को यह चेतावनी देना चाहूंगा कि हम रूसीकरण और सर्वाधिकारवाद की ओर बढ़ेंगे और लोकतंत्र की ओर नहीं। अतः महोदय, मैं एक सशक्त केन्द्र के तथाकथित नारे के पक्ष में नहीं हूं। केन्द्र तो मजबूत होगा ही और आधुनिक औद्योगिक विकास एवं आर्थिक स्थितियों के अनुसार और भी अधिक मजबूत होगा। अतः केन्द्र को विशेष रूप से मजबूत बनाने का यह आरंभिक प्रयास निरर्थक ही नहीं बहुत खतरनाक भी है। हमने जो शुरू में वस्तुपरक संकल्प पारित किया है उसमें हमने चाहा है कि प्रान्तों को अवशिष्ट अधिकार प्राप्त हों किंतु दो वर्ष की अल्पावधि में ही इन प्रारूपकारों ने लोकमत की जो व्याख्या की है उसके अनुसार यह लोकमत केन्द्र में सर्वथा एवं पूर्ण केन्द्रीकरण तथा केन्द्र को आवश्यकता से अधिक मजबूत बनाने के पक्ष में हो गया है।

मैं निश्चित रूप से समवर्ती विषयों के रूप में इतने अधिक विषय रखने के पक्ष में नहीं हूं। जैसा कि श्री संथानम ने उस दिन ठीक ही कहा था कि जिसे आप आज एक समवर्ती विषय समझते हैं वह अगले पांच या दस वर्षों में पूर्णरूप से एक संघीय विषय बन सकता है। अतः यद्यपि मैं अवशिष्ट अधिकारों को केन्द्र सरकार के पास रखे जाने के लिए बिल्कुल सहमत हूं किंतु मैं निश्चित रूप से यह नहीं चाहता कि प्रान्तों को कमजोर कर दिया जाए। जैसा कि संविधान के इस प्रारूप में उल्लिखित है।

महोदय, केन्द्र सरकार को अत्यधिक केन्द्रीकरण करने और उसे अधिक मजबूत बनाने में एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिणाम यह होगा कि इससे अधिकार केन्द्र सरकार को नहीं सौंपे जाएंगे बल्कि केन्द्रीय सचिवालय को दे दिए जाएंगे। केन्द्रीय सचिवालय के चपरासी या दफादार से लेकर सचिव तक में से प्रत्येक अपने को किसी प्रान्त के प्रधानमंत्री से अधिक महत्वपूर्ण समझता है और प्रान्तों के मुख्यमंत्रीयों को केन्द्र से कोई काम करवाने के लिए एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय में भटकना पड़ता है। हम जानते हैं कि संसदीय जीवन में मंत्रियों के लिए सचिवालय में इन विभिन्न सचिवों द्वारा जो कुछ किया जा रहा है उस पर पूरा नियंत्रण रखना कितना कठिन है। इन परिस्थितियों में इन प्रान्तीय सरकारों को परतंत्र बनाना और उन्हें केन्द्रीय सचिवालय और केन्द्रीय नौकरशाही की कृपा पर छोड़ देना वास्तव में बहुत अधिक खतरनाक है।"

थिरू एम० थिरूमला राव (मद्रास : जनरल) ने 9 नवंबर 1948 को संविधान सभा में अपने भाषण में यह कहा कि एक सशक्त केन्द्र का अभिप्राय कमजोर प्रान्तों से नहीं होना चाहिए और प्रान्त भी उतने ही मजबूत होने चाहिए ताकि वे अपने विविध कर्तव्यों का सुचारू रूप से पालन कर सकें और स्कीमें बना सकें और उन्हें अपने कार्यों के निष्पादन के लिए केन्द्र को मजबूत बनाने में योगदान करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन प्रदान किए जाने चाहिए। इस संबंध में उसके भाषण का निम्नलिखित अंश संगत है :—

"हमें निःसंदेह एक सशक्त केन्द्र की जरूरत है लेकिन एक सशक्त केन्द्र का अभिप्राय कमजोर प्रान्त नहीं होना चाहिए और प्रान्त भी उतने ही मजबूत होने चाहिए ताकि वे अपने विविध कर्तव्यों को सुचारू रूप से पालन कर सकें और स्कीमें बना सकें और उन्हें अपने कार्यों के निष्पादन के लिए केन्द्र को मजबूत बनाने में योगदान करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन प्रदान किए जाने चाहिए।"

थिरू महबूब अली बेग साहब बहादुर (मद्रास : मुस्लिम) ने 9 नवंबर 1948 को संविधान सभा में अपने भाषण में यह बताया कि संविधान के प्रारूप के उपबंधों में यह स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है कि संघीय प्रणाली को एकात्मक प्रणाली में परिवर्तित किया जा सकता है। उनके भाषण का संगत अंश इस प्रकार है :—

"महोदय, जहां तक संविधान के स्वरूप का संबंध है, मैं संविधान के प्रारूप में निर्दिष्ट संविधान के स्वरूप से सहमत नहीं हूं। लोग यह समझते हैं कि केन्द्र अवश्य मजबूत होना चाहिए और जब तक केन्द्र मजबूत नहीं होगा, तब तक प्रान्त केन्द्र के मजबूत होने में हमेशा बाधा उत्पन्न करेंगे। यह एक गलत दृष्टिकोण है। यदि प्रान्तों को स्वायत्त बना दिया जाए तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इससे केन्द्र कमजोर ही हो जाएगा। हम यहां क्या देखते है ? मेरा यह विचार है कि प्रान्त केवल गौरवशाली जिला बोर्ड बनकर ही रह जाएंगे— इस संबंध में अनुच्छेद 275 द्रष्टव्य है जिसमें यह प्रावधान है कि आपात स्थिति में सभी अधिकार केन्द्र द्वारा हथियाए जा सकते हैं। अनुच्छेद 226, 227 और 229 देखें। केन्द्र सभी मामलों में प्रान्तों के लिए कानून बना सकता है और संघीय सूची तथा समवर्ती सूची को भी देखें। इन सबसे यह स्पष्ट है कि केन्द्र सरकार द्वारा, जो इस संघीय प्रणाली का अतिक्रमण करना चाहती है और इसे एकात्मक प्रणाली में परिवर्तित करना चाहती है, यह काम आसानी से किया जा सकता है। अब खतरा इस बात का है कि इस प्रकार की सरकार सर्वसत्तात्मक सरकार बन जाएगी। यही खतरा संविधान के उस रूप में है जो संविधान के प्रारूप में निर्दिष्ट है।"

थिरू के० संतानाम (मद्रास : जनरल) ने 8 नवंबर 1948 को अपने भाषण में यह बताया कि उन्हें इस बात की ओर संकेत करना चाहिए कि समवर्ती सूची वांछनीय है या नहीं, अन्यथा उन्हें यह सुनिश्चित करना होगा कि समवर्ती सूची में कम से कम विषय रखे जाए या उन्हें समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों के संबंध में केन्द्र और प्रांतीय क्षेत्राधिकार की सीमा की व्याख्या करनी चाहिए। उनके भाषण का संगत अंश इस प्रकार है :—

"महोदय, डा० आम्बेडकर ने दोहरे राजनीति तंत्र की चर्चा की है। अब हमारे पास तीन सूचियां हैं—संघीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची। प्रारूपका समिति ने समवर्ती सूची के विषय क्षेत्र की सीमा में विस्तार किया है। हमें समवर्ती सूची का अनुभव है। इससे केन्द्र और प्रान्तों के बीच का भेद अस्पष्ट हो जाता है। इस समय सभी संघीय संविधानों की एक ऐसी अपरिहार्य राजनीतिक प्रवृत्ति बन गई है कि संघीय सूची में वृद्धि होती जाती है और

समवर्ती सूची कम होती जाती है, क्योंकि एक बार जब केन्द्रीय विधान मंडल विधान के लिए क्षेत्र विशेष का अधिकार अपने हाथ में ले लेता है तो उस पर प्रान्तीय विधान मंडल का अधिकार समाप्त हो जाता है अतः हमें यह मानकर चलना चाहिए कि दस या पंद्रह वर्ष की अवधि में पूरी समवर्ती सूची स्वतः संघीय सूची में अन्तरित हो जाएगी। हमें यह अवश्य स्पष्ट करना चाहिए कि क्या हम यही चाहते हैं कि क्या यह वांछनीय है। यदि हम यह नहीं चाहते तो हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि समवर्ती सूची का विषय-क्षेत्र निरंतर न्यूनतम सीमा तक प्रतिबंधित किया जाता है या इस सूची में उल्लिखित विषयों के संबंध में केन्द्रीय या प्रान्तीय अधिकार क्षेत्र की व्याख्या करनी होगी।"

6. डा० अन्ना का 1963 में यह विचार था कि संविधान में जिस संघीय स्वरूप का उल्लेख किया गया है उसको 1963 से पूर्व 13 वर्षों तक जिस प्रकार लागू किया गया है उससे राज्य सरकारों को निराशा हुई है और ये राज्य तेजी से खैरात प्राप्त करने वाले निगम बनते जा रहे हैं। इस संदर्भ में उनके भाषण का संगत अंश इस प्रकार है :—

—डा० अन्ना ने दिसंबर 1963 में अपने भाषण में यह कहा कि :—

"हमारा स्वरूप संघीय है। इसीलिए संविधान निर्माता संघीय स्वरूप चाहते थे, एकात्मक स्वरूप नहीं क्योंकि जैसा कि अनेक राजनीतिक दार्शनिकों ने कहा है—भारत एक विशाल देश है—वस्तुतः इसे एक उप महाद्वीप कहा गया है—यहां इतना अधिक मत—वैभिन्य है। यहां की परम्पराएं इतनी भिन्न हैं और इतिहास में भी इतनी भिन्नता है कि यहां इस्पात के ढांचे के समान कठोर एकात्मक स्वरूप नहीं रखा जा सकता। मेरी यह शिकायत है और पी एस पी सदस्य श्री गुरुपदस्वामी और अन्य लोगों ने भी इसका समर्थन किया है कि इन तेरह वर्षों में संघीय स्वरूप की कार्यशीलता से राज्य सरकारों को निराशा हुई है। यह संभव है कि वे मेरी इस बात का समर्थन न करें कि राज्य सरकारें तेजी से खैरात प्राप्त करने वाले निगम बनते जा रहे हैं। वे यह महसूस करते हैं कि उनकी उपेक्षा की गई है और उनका यह महसूस करना स्वाभाविक है कि उन्हें और अधिकार दिए जाएं........। मैं जो कहना चाहता हूं वह यह है कि संघीय स्वरूप को जिस प्रकार से लागू किया गया है उससे राज्यों को बहुत अधिक निराशा हो रही है और उनकी यह मांग है कि केन्द्र सरकार इस बात पर विचार करे कि संविधान की समीक्षा की जानी चाहिए और उसका पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए। और इस संबंध में मुझे एक ऐसे महान व्यक्ति का समर्थन प्राप्त है जो अपनी इच्छानुसार मंत्रिमंडल को छोड़ सकता है और मंत्रिमण्डल में शामिल हो सकता है। मेरा अभिप्राय आर्थिक कार्य एवं रक्षा समन्वय माननीय मंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारी से है। महान आत्मा स्वर्गीय फिरोज गांधी की स्मृति में नई दिल्ली की एक संस्था में 8 सितंबर, 1962 को अपने अभिभाषण में उन्होंने यह कहा है कि संविधान निर्माताओं के रूप में उन्होंने संविधान की दस वर्षीय समीक्षा के लिए कोई प्रावधान नहीं रखा है। यही नहीं उन्होंने यह भी कहा कि इसके अतिरिक्त लोकमत को प्रधानता दी जानी चाहिए .... ताकि संघ को वास्तव में एक संघ बनाया जा सके।"

"मुझे उनकी असमर्थता से पूरी सहानुभूति है लेकिन मैं उन्हें यह बताना चाहूंगा कि मैं अंग्रेजी का समर्थन करता हूं केवल इसलिए नहीं करता कि मैं उस पर मोहित हूं न ही इसलिए कि मैं यह समझता हूं कि अंग्रेजी को मेरी मातृभाषा से अधिक ऊंचा दर्जा दिया जाए बल्कि इसलिए ऐसा मानता हूं कि यह सर्वाधिक सुविधाजनक अस्त्र है और सर्वाधिक सुविधाजनक माध्यम है जिसके लाभ या हानियां एक समान हैं। यह बताने के लिए अनेक तर्क दिए गए हैं कि भारत की अपनी एक सामान्य भाषा अवश्य होनी चाहिए और यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाता है तो भारतीय भाषाओं में एक भाषा ही भारत की सामान्य भाषा बन सकती है। इस बात पर किसी को संदेह नहीं है कि यदि भारत एक एकात्मक राज्य हो तो यह तर्क समीचीन है। लेकिन भारत एक संघीय राज्य है।

भारतीय समाज बहुविध समाज है और हमारी राजनीतिक प्रणाली सामाजिक है और बहुविध समाज और सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली में मैं समझता हूं कि एक सामान्य भाषा का समर्थन करने से अनजाने ही अन्याय हो जाएगा और समाज के कुछ वर्ग अनचाहे ही असुविधापूर्ण स्थिति में आ जाएंगे।

"यह बताया गया है कि हिन्दी को ही राजभाषा बनने का अधिकार है क्योंकि यह देश के 42% लोगों द्वारा बोली जाती है। यदि ये 42% लोग पूरे देश में बिखरे हों तो यह तर्क न्यायसंगत होगा और यह नीतिपूर्ण भी होगा। लेकिन ये 42% लोग सघन और समीपस्थ क्षेत्रों में ही रहते है। ये लोग पूरे देश में नहीं फैले हुए है। अतः यदि हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए इन 42% लोगों को आधार मान लिया जाता है तो आप भारत के एक सघन और समीपस्थ क्षेत्र को एक स्थायी और शाश्वत लाभ दे रहे हैं और इसके विपरीत अन्य क्षेत्रों को एक स्थायी नुकसान पहुंचा रहे हैं। यदि 20% लोग भी पूरे भारत में हिन्दी बोलते हों तो हम कह सकते हैं कि सभी भाषाओं में से हिन्दी ही कन्याकुमारी से हिमालय पर्वत श्रृंखला तक जानी जाती है। हमारी जनसंख्या में से 20% लोग तो अवश्य हिन्दी जानते है। अतः हिन्दी को राजभाषा बना दिया जाना चाहिए। मैं यह मान सकता हूं यद्यपि मैं इसका समर्थन नहीं कर सकता। इसके पीछे जो तर्क है उसे मैं समझ सकता हूं लेकिन उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश के सघन क्षेत्रों के इन 42% लोगों को आधार मानकर उक्त तर्क प्रस्तुत करना कहां तक न्यायसंगत है। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने ही एक बार कहा था 'इंडिया अर्थात्, भारत अर्थात्, उत्तर प्रदेश'............

प्रधानमंत्री ने कहा था कि अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा। अंग्रेजी का प्रयोग जारी है। कैसे ? हिन्दी के साथ एक सह राजभाषा के रूप में नहीं अपितु कुछ प्रयोजनों के लिए ही जिनका निर्णय सरकार करेगी। लेकिन प्रधानमंत्री ने कहा है कि अंग्रेजी एक सह-राजभाषा बनी रहेगी और यदि प्रधानमंत्री के इस आश्वासन को पूरी तरह से लागू किया जाना है तो मैं गृहमंत्री से यह अनुरोध करूंगा कि यह इस विधेयक को छोड़ दें' अपनी कमर कस लें और इसके परिणामों का सामना करने के लिए तैयार हो जाएं क्योंकि वे साहसी लोग हैं और संविधान में संशोधन का प्रस्ताव लाएं और यथापूर्व स्थिति बनाए रखें अर्थात्, अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखें। कृपया यह न समझें चूंकि यह एक विदेशी भाषा है इसलिए हमें इसको छोड़ देना चाहिए......। अतः मैं गृहमंत्री से अनुरोध करता हूं कि वह भाषा-समस्या का पुनर्मूल्यांकन करें और पुनर्मूल्यांकन होने तक यथापूर्व स्थिति बनाए रखने और अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने के लिए संविधान में संशोधन करें।'

अन्ना ने मार्च 1965 में राज्यसभा में अपने भाषण में यह कहा।

"अतः हमें तब तक अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने की वर्तमान यथास्थिति को बनाए रखना चाहिए जब तक हमारी ऐसी स्थिति न हो जाए कि जब तक सभी चौदह राष्ट्रीय भाषाएं, राजभाषाएं न बन जाएं। संभवतः भारत को एक और संगठित बनाए रखने के लिए हमें जो मूल्य चुकाना होगा वह बहुभाषावाद के रूप में होगा। आप हिन्दी लाकर तो भारत को विखंडित कर देंगे किंतु यदि आप भारत को एक देखना चाहते हैं और यदि आप ऐसा भारत चाहते है जिसमें कोई यह अनुभव न करे कि एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र पर हावी हो जाएगा। यदि आप यह नहीं चाहते कि लाखों लोगों के मन-मस्तिष्क पर वास्तव में यह खतरा घर कर जाए और यदि आप ऐसा भारत बनाना चाहते हैं जिस पर हममें से प्रत्येक को गर्व हो तो आपको बहुभाषावाद की समस्या को भी ध्यान में रखना होगा।"

7. 1965 में तमिलनाडु के लोगों ने सामान्य रूप से अहिन्दी भाषी लोगों पर विशेष रूप से तमिल भाषी लोगों पर हिन्दी थोपे जाने के विरोध में सामूहिक रूप से विरोध किया । तमिलनाडु में इस आंदोलन से अनेक लोगों की जानें गयीं और हजारों लोगों को इसके लिए जेल भेज दिया गया । पूरे तमिलनाडु राज्य में खलबली मच गयी । 1965 में हिन्दी लागू किए जाने का राष्ट्रीय अखण्डता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा । इसके परिणामस्वरूप 1968 में राजभाषा अधिनियम, 1963 में संशोधन किया गया । संशोधनकारी विधेयक के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के विवरण में केन्द्र सरकार द्वारा इस बात का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि स्वर्गीय प्रधानमंत्री के उन आश्वासनों को सांविधिक मान्यता प्रदान करना आवश्यक समझा गया है जिनमें उन्होंने यह कहा था कि जब तक अहिन्दी भाषी लोग कोई परिवर्तन न चाहें तब तक अंग्रेजी भाषा के प्रयोग को जारी रखा जाएगा और इस प्रावधान को शामिल करने का भी प्रस्ताव रखा गया कि कुछ मामले में हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी अनिवार्य रूप से किया जाए यहां यह उल्लेखनीय है कि सामान्य रूप से अहिन्दी भाषी लोगों ने् । विशेष रूप से तमिलनाडु के लोगों ने यही मांग की थी कि स्व० पं० जवाहर लाल नेहरू के इस आश्वासन को लागू करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाए कि जब तक अहिन्दी भाषी लोग परिवर्तन न चाहें तब तक अंग्रेजी भाषा का संघ की राजभाषा के रूप में प्रयोग जारी रहेगा । किंतु संविधान के इस संशोधन को लागू नहीं किया गया । इसके स्थान पर राजभाषा अधिनियम् अर्थात, धारा 3 का सांविधिक रूप से संशोधन किया गया् । जिसे संसद् में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत द्वारा संशोधित किया जा सकता है या रद्द किया जा सकता है । इस संशोधन में भी "हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग नियत तारीख से जारी रखा जा सकता है" । अभिव्यक्ति की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की गई । अर्थात्, क्या यह अनिवार्य है या मात्र विवेक के अधीन है ।

8. जब 1968 में डा० अन्ना मुख्यमंत्री थे तब राज्यपाल के भाषण में इस बात का उल्लेख इस प्रकार किया गया था :—

"5. भाषा समस्या एक प्रकार से एक वास्तविक सहकारी संघीय राजनीति तंत्र के विकास की एक ऐसी बड़ी समस्या का भाग है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों और जीवन प्रणाली का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्यों को अपना-अपना उचित स्थान अवश्य मिलता है । केन्द्र और राज्यों के बीच जिम्मेदारियों की तुलना में साधनों के वितरण में अत्यधिक असंतुलन की स्थिति से केन्द्र और एक विशाल संघ राज्य की संघटक इकाइयों के बीच जो स्वस्थ संबंध होने चाहिए वे खराब हुए हैं । वास्तविक संघीय प्रणाली का अभिप्राय यह है कि केन्द्र तथा उसकी इकाइयों के पास अपने-अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए और संवैधानिक रूप से राज्य की क्षमता के अधीन आने वाले मामलों के संबंध में केन्द्र से मिलने वाले विवेकाधीन ऋणों और अनुदानों की केवल गौण भूमिका होनी चाहिए .... । मेरी सरकार का यह दृढ़ मत है कि पिछले 15 वर्षों के अनुभव को देखते हुए केन्द्र और राज्य के बीच साधनों और अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करने से संबंधित संविधान के उपबंधों की उच्चस्तरीय समीक्षा करना अनिवार्य है । स्पष्टतः इस प्रकार की समीक्षा में कुछ समय तो अवश्य लगेगा और इस समीक्षा के विषय क्षेत्र को सभी संबंधितों के परामर्श से ध्यानपूर्वक परिभाषित करना होगा ।"

9. विधान सभा में इस विषय पर बोलते हुए अरिगनार अन्ना ने कहा :

"राज्यपाल ने अपने अभिभाषण में स्पष्ट रूप से यह कहा है कि केन्द्र और राज्यों के बीच के संबंधों का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। राज्यपाल के अभिभाषण में इस बात का उल्लेख जिस सद्भाव पूर्ण तरीके से किया गया है उसके लिए हमारे दल के सदस्यों का आभार व्यक्त करना उचित होगा ।"

यदि यह तर्क दिया जाए कि केन्द्र राज्य संबंधों के बारे में बात-चीत करने से देश की अखण्डता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो मैं स्पष्ट रूप से यह कहूंगा कि अखण्डता पर तभी प्रभाव पड़ेगा जब उसके बारे में गोपनीय रूप से बातचीत की जाए । जब तक साथ-साथ रहने के तरीकों के बारे में और अधिकारों के बटवारे के बारे में हम खुलकर चर्चा नहीं करेंगे तब तक केन्द्र राज्य संबंधों के बारे में बात-चीत करना उतना ही कठिन होगा जितना कि किसी बर्तन में रखे सांप के साथ रहना जैसा कि तिरुक्कुरल में हो रहा है । अधिकारों के संबंध में आपस में विचार-विमर्श करने के बाद परस्पर संबंधों में सुधार किए बिना देश की अखण्डता के बारे में चर्चा करना उचित नहीं होगा और न ही इससे कोई लाभ होगा । जब इसके आधार पर भाषा के प्रश्न से संबंधित संकल्प प्रस्तुत किया गया तो थिरुमा पो० सी० ने यह स्पष्ट किया कि इस प्रश्न का समाधान तभी किया जाएगा जब केन्द्र सरकार के पास संचित सभी अधिकारों का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए । राज्यपाल ने अपने अभिभाषण में इस बात का उल्लेख किया है कि केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के परस्पर संबंधों का पुनर्गठन किया जाना चाहिए । इसके लिए संवैधानिक कानून के प्रश्न की भी जांच की जानी चाहिए । इस सरकार की यही नीति है । केरल राज्य में जहां थिरु नंबूदिरिपाद मुख्य मंत्री थे, यह मांग जोर पकड़ रही है । दो मास हुए मुख्यमंत्री सम्मेलन के दौरान थिरु नंबूदिरिपाद ने आर्थिक क्षेत्र में अधिकारों के विकेन्द्रीकरण की विधियों पर प्रकाशित एक पुस्तक का विमोचन किया और उन्होंने मुख्यमंत्री सम्मेलन के समक्ष यह पुस्तक संवीक्षा के लिए रखी । इसी प्रकार यह संकल्पना अनेक अन्य स्थानों और अनेक अन्य राज्यों में काफी ध्यान आकर्षित कर रही है । जहां तक मेरी जानकारी है, मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि अगले दस वर्षों में यही प्रश्न सभी लोगों की जुबान पर होगा । इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मैं इस बारे में ऐसा महसूस करता हूं मुझे दूसरों के सामने अपने स्पष्ट विचार प्रस्तुत करते हुए बहुत खुशी हो रही है । राज्यपाल के अभिभाषण में उल्लिखित विकेन्द्रीकरण की बात का समर्थन करने के लिए इस सरकार ने इस दृष्ट बात को अस्वीकार कर दिया है कि हिन्दी भाषा को राजभाषा बनाया जाना चाहिए । राज्यपाल के अभिभाषण में इस बात का भी उल्लेख है । यह एक गलत धारणा है किंतु अनेक लोग इस बात को बलपूर्वक मानते हैं । अंग्रेजी में अभिव्यक्त करना "हिन्दी की अनिवार्यता है" । अतः किसी न किसी प्रकार से हिन्दी को लाना ही होगा । हमारी भी यही धारणा है कि हिन्दी अपरिहार्य है ।

सरकार ने "हिन्दी की अनिवार्यता—हिन्दी अवश्य आएगी " की चेतावनी को स्वीकार नहीं किया है । यदि यह तर्क दिया जाता है कि एक सामान्य भाषा होना एक आवश्यकता है तो यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए कि एक सामान्य भाषा किसके लिए आवश्यक है ? यदि मेरी मातृभाषा तमिल है और मेरे मित्र हण्डे की मातृभाषा कन्नड़ है और मेरे मित्र विनायकम की मातृभाषा तेलुगु है तो तीनों व्यक्तियों के लिए एक भाषा कन्नड़ या तमिल या तेलुगु नहीं हो सकती ।"

(29 फरवरी 1968) । "संविधान के अधीन राजस्व प्राप्ति के विस्तृत अवसर केन्द्र सरकार को समनुदेशित किए गए हैं और इसके प्रतिकूल शिक्षा जन स्वास्थ्य और विस्तृत स्वरूप के व्यापक दायित्वों पर होने वाले व्यय राज्य सरकार को समनुदेशित किए गए हैं ।

(6 मार्च, 1968) "जब यह कहा जाता है कि "मैं" "हम" "हमारे" तो मेरा यह निवेदन है कि आप राजनीतिक दलों को भूल जाएं और एक जुट होकर केन्द्र सरकार से इस संबंध में अनुरोध करें और वित्तीय समस्याओं को लेकर आपस में वाद-विवाद न करें ।

(8 मार्च 1968) "उन्होंने यह कहा है कि चाहे किसी भी समस्या का समाधान किसी भी तरीके से किया जाए किन्तु उससे राष्ट्रीय अखण्डता और भारतीय एकता को कोई खतरा नहीं होना चाहिए । मैं इसका हार्दिक स्वागत करता हूं और समर्थन करता हूं ।

किसी शिकायत का मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि विघटन की मांग की जा रही है। मैंने कई बार कहा है कि ऐसा विचार भी नहीं लाना चाहिए और मैं फिर यही कहता हूं कि यह सोचना भी ठीक नहीं है। मैं अनेक समस्याओं के बारे में राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अखण्डता को ही ध्यान में रखकर विचार करता रहा हूं। मैंने यह प्रश्न यह सोचकर नहीं उठाया है कि इससे राष्ट्रीय अखण्डता कम हो या देश की एकता नष्ट हो जाए।"

10. यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान में जिस प्रणाली की सरकार का उल्लेख है वह वयस्क मताधिकार वाली लोकतांत्रिक सरकार है। विधान सभा के सदस्यों का चुनाव लोगों द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। जिस व्यक्ति को विधान सभा का विश्वास प्राप्त होता है, उसे राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में मुख्यमंत्री राज्य के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है और वह राज्य का कार्यपालक मुखिया है। मुख्यमंत्री को जब तक विधान सभा का विश्वास प्राप्त होता है तब तक उसे मुख्यमंत्री बने रहने का अधिकार है।

11. किंतु पिछले अनेक वर्षों के दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव से यह पता चलता है कि कार्यरत मंत्रिमंडल को बर्खास्त करने के बाद राष्ट्रपति शासन लागू करने के संबंध में अनुच्छेद 356 के अधीन दिए गए अधिकार का अनुचित ढंग से और प्रायः राजनीतिक प्रेरणा से प्रयोग किया गया है। लोकप्रिय तरीके से चुनी गई सरकार को बर्खास्त करने के बाद अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू करने के उदाहरण हैं। इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि केन्द्र द्वारा अनुच्छेद 356 के अधीन दिए गए अधिकारों का अनुचित एवं मनमाने ढंग से प्रयोग किया गया है। ऐसे उदाहरण "भाग IV—प्रशासनिक संबंध" के अंतर्गत निर्दिष्ट हैं।

पंजाब में मंत्रिमण्डल को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू करने के ऐसे अप्रत्याशित परिणाम हुए कि यदि लोकप्रिय सरकार को बने रहने दिया गया होता तो उन परिणामों से बचा जा सकता था। आंध्र प्रदेश में तत्कालीन राज्यपाल श्री रामलाल द्वारा एन० टी० रामाराव—मंत्रिमण्डल की बर्खास्तगी लोकतंत्र की हत्या थी।

12. यद्यपि यह कहा गया है कि भारतीय संविधान अर्द्धसंघीय है या भारत एकात्मक एवं संघात्मक स्वरूप का मिश्रण है किंतु पिछले 35 वर्षों के दौरान एकात्मक स्वरूप ही अधिक प्रबल रहा है और राज्यों का दर्जा मात्र खैरात प्राप्त करने वाले निगमों या नगर पालिका प्राधिकरणों जैसा बनकर रह गया है, जिसकी परिकल्पना संविधान निर्माताओं ने नहीं की थी। भारत भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोगों का देश है जिसमें बहुविध समाज एवं जातिवाद भिन्न-भिन्न धर्मों और भिन्न-भिन्न भाषाओं का बोलबाला है। भारत बहुभाषावाद वाला देश है और किसी एक क्षेत्र की भाषा को भले ही उस क्षेत्र में दो या उससे अधिक राज्य हों देश की अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक प्रधानता नहीं दी जा सकती और न ही दी जानी चाहिए। स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजी हमारी राजभाषा थी और भारत के संविधान के लागू होने के बाद हिन्दी को राजभाषा बनाया गया है। यद्यपि राजभाषा अधिनियम के अधीन सांविधिक रूप से अधिनियम में निर्दिष्ट कुछ प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के प्रयोग की भी अनुमति दी गई है, किंतु संविधान में अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में मान्यता नहीं दी गई है। न ही अंग्रेजी को 8वीं अनुसूची में शामिल किया गया है। तमिलनाडु सरकार का यह मत है कि अंग्रेजी को 8वीं अनुसूची में शामिल किया जाना चाहिए और 8वीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाओं को देश की राजभाषाएं बनाया जाना चाहिए। तब तक पंडित नेहरू के इस आश्वासन को जब तक अहिन्दी भाषी लोग परिवर्तन न चाहें तब तक अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखा जाएगा, संवैधानिक गारण्टी प्रदान की जानी चाहिए और इस प्रयोजन के लिए एक संशोधन द्वारा संविधान में उपयुक्त उपबंध शामिल किया जाना चाहिए।

13. तमिलनाडु सरकार के मुख्यमंत्री डा० एम० जी० रामचंद्रन हैं जो आल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पार्टी के संस्थापक नेता हैं। इस पार्टी ने स्व० डा० अन्ना की नीतियों को ही अपनी मूल नीति के रूप में अपनाया है जिसका उल्लेख पृष्ठ 3—6 पर दिए गए वाक्यों में किया गया है। तमिलनाडु सरकार का अपनी इस नीति के अनुसार यह दृढ़ मत है कि संविधान में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए जिससे राज्य और केन्द्र सरकार आपस में समन्वय द्वारा कार्य करें और सांविधिक एवं प्रशासनिक, दोनों रूपों से वास्तव में संघीय शासन प्रणाली की स्थापना हो। तमिलनाडु सरकार विधायी एवं वित्तीय क्षेत्रों में राज्यों के लिए अधिक अधिकारों की मांग तो करती है किंतु वह किसी प्रकार से यह नहीं चाहती कि इससे देश की एकता एवं अखण्डता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़े। तमिलनाडु सरकार ने जो सुझाव दिए हैं वे सभी इस मूल सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए दिए हैं कि भारत एक राष्ट्र है और हर हालत में राष्ट्र की एकता और अखण्डता बनाए रखी जानी चाहिए और देश की एकता और अखण्डता को जब भी खतरा होगा तब तमिलनाडु सरकार अपनी पूरी ताकत से उसको दूर करेगी।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने सतपाल बनाम पंजाब राज्य (1982 1 एस० सी० सी० 12) के मामले में यह निर्णय दिया है कि "हमारा संविधान ऐसा है जो एकात्मक एवं संघीय शासन प्रणाली का मिला-जुला रूप है"। तमिलनाडु सरकार का यह मत है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल ने संविधान में निर्दिष्ट इन एकात्मक विशेषताओं का प्रयोग उन राज्यों की सरकारों को अस्थिर करने के लिए किया है, जिन राज्यों में केन्द्र की सत्तारूढ़ दल से भिन्न दल की सरकारें हैं।

15. तमिलनाडु सरकार का दृढ़ विचार है कि भारत को एक सच्चा परिसंघ बनाया जाना चाहिए जहां केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार समान हों और स्वतंत्र साझेदार हों और जहां अवशिष्टीय विधायी अधिकार, जिसमें अवशिष्टीय कराधान विनिर्धारण का अधिकार शामिल है राज्य सरकार में निहित होंगे और केन्द्र को विदेशी सम्पर्क, रक्षा, सीमा शुल्क, मुद्रा, संघ लोक सेवा आयोग, नागरिकता जैसे सीमित अधिकार ही प्राप्त होने चाहिए। प्रो० के० सी० व्हेयरे के अनुसार सच्चे परिसंघीय सिद्धान्त के अनुसार अधिकारों का विभाजन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे सामान्य और क्षेत्रीय सरकार अपनी ही सीमा में समेकित और स्वतन्त्र हों। परन्तु भारत में प्रचलित मौजूदा परिस्थितियों में परिसंघ के सच्चे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ वर्ष लगेंगे जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है। जब तक यह लक्ष्य प्राप्त न कर लिया जाए मौजूदा सांविधानिक गठन में सुधार किया जाना चाहिए जिससे कि अधिकारों का विकेन्द्रीकरण जो कि अब केन्द्र के हाथ में हैं सुनिश्चित किया जा सके तथा राज्यों को विधायी और वित्तीय तथा प्रशासनिक क्षेत्र के पहलुओं में अधिक स्वायत्तपूर्ण बना दिया जाए।

16. तमिलनाडु सरकार का विचार है कि विधायी क्षेत्र में अवशिष्टीय अधिकार जिसमें अवशिष्टीय कराधान विनिर्धारण की शक्ति शामिल है, राज्य सरकार को निहित की जानी चाहिए।

अनुच्छेद 31-ए अथवा अनुच्छेद 31-सी के अधिकार क्षेत्र में आने वाले कोई भी विधेयक, राष्ट्रपति की अनुमति के लिए नहीं रखे जाने चाहिए। अनुच्छेद 31-ए का पहला परन्तुक तथा अनुच्छेद 31-सी का परन्तुक और अनुच्छेद 200 के दो परन्तुक और अनुच्छेद 201 का परन्तुक हटा दिए जाने चाहिए। अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा अनुमति रोके रखने से सम्बन्धित प्रावधान को हटा दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 304 (बी) का परन्तुक (जिसमें कुछ विधेयकों के मामले में राष्ट्रपति की मन्जूरी अपेक्षित है) को भी हटा दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 249 (जिसमें संसद् को राष्ट्रहित में राज्य सूची में दर्ज किसी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने सम्बन्धी अधिकार दिए गए हैं) को हटा दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 252 (जिसमें संसद् को अधिकार दिया गया है कि वह अनुमति से दो या दो से अधिक राज्यों के लिए कानून बना सकती है और किसी भी अन्य राज्य द्वारा यह कानून अपनाया जा सकता) को हटा दिया जाना चाहिए। साथ ही, अनुच्छेद 252 (2) के प्रावधान में भी इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए जिससे केन्द्र और राज्य के बीच अधिकारों को परस्पर सम्बन्धित बताया जा सके न कि उसे ही केवल विशेष माना जाए।

यह भी सुझाव दिया जाता है कि 154(2) (बी) और 258 (2) अनुच्छेदों का भी संशोधन किया जाना चाहिए जिसके अनुसार यदि संघ को इन दो अनुच्छेदों में उल्लिखित अधिकार का प्रयोग करना पड़े तो उसे राज्य सरकार की अनुमति लेनी पड़ेगी।

संवर्ती सूची में की गई कानूनी प्रविष्टियां कम से कम कर दी जानी चाहिए और संवर्ती सूची में जो विषय दिए गए हैं उन्हें राज्य सूची में अन्तरित कर दिया जाना चाहिए जैसा कि कानूनी सम्बन्धों के अन्तर्गत तैयार की प्रश्नावली के उत्तर में बताया गया है।

प्रशासनिक सम्बन्धों को मद्देनजर रखते हुए तमिलनाडु सरकार ने सुझाव दिया है कि अनुच्छेद 256 (राज्य और संघ का दायित्व), अनुच्छेद 257 (कुछ मामलों में राज्य पर संघ का नियन्त्रण), अनुच्छेद 356 (राज्यों में संवैधानिक तन्त्र के असफल होने की स्थिति में किए गए प्रावधान), अनुच्छेद 357 (अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत जारी उद्घोषणा के अन्तर्गत विधायी शक्तियों का प्रयोग), अनुच्छेद 360 (वित्तीय-आपातस्थिति के लिए किए गए प्रावधान), और अनुच्छेद 365 (संघ द्वारा दिए गए निर्देशों को कार्यान्वित न कर पाने अथवा पूरा न कर पाने का प्रभाव) को हटा दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 263 [अन्तर-राज्य परिषद् (कौंसिल) के सम्बन्ध में प्रावधान] को हटा दिया जाए।

अनुच्छेद 339(2) को अवश्य हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी राज्य के अनुसूचित जनजाति के लोगों का कल्याण कार्य उतना ही राज्य सरकार से सम्बन्धित हैं जितना केन्द्र सरकार से रखता है। अतः किसी भी राज्य को इस सम्बन्ध में निर्देश देने की आवश्यकता नहीं है कि किस प्रकार अनुसूचित जन-जातियों के कल्याण कार्य को बढ़ावा दिया, उन्नत बनाया जाए।

अनुच्छेद 344 (6) को भी हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि हिन्दी भाषा के इस्तेमाल, अंग्रेजी के इस्तेमाल को कम करने आदि जैसे नाजुक मुद्दों पर राष्ट्रपति द्वारा पारित निर्देश राज्य की प्रतिष्ठा और उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के प्रतिकूल होने के कारण ठेस पहुंचा सकते हैं।

अनुच्छेद 350(ए) में (प्राथमिक-स्तर तक मातृ-भाषा में शिक्षण की सुविधा) किसी भी राज्य को, राष्ट्रपति द्वारा दिए गए निर्देशों से सम्बन्धित प्रावधानों को अवश्य ही हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि, यह राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों से सम्बन्धित बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर तक मातृ-भाषा में शिक्षण की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध कराए और राज्य इस कर्तव्य को पूरी निष्ठा से बिना राष्ट्रपति के निर्देशों या किन्हीं अनुदेशों के पूरा कर सकता है।

जहां तक वित्तीय सम्बन्धों का प्रश्न है राज्य को वित्तीय रूप से अधिक स्वायत्त बनाना चाहिए और राज्य का कराधान आधार भी बढ़ाया जाना चाहिए तथा राज्य को केवल अनुदान प्राप्त करने वाला निकाय ही बन कर नहीं रह जाना चाहिए। तमिलनाडु सरकार ने सुझाव दिया है कि कार्पोरेशन-कर और साथ ही आयकर पर अधिभार विभाज्य होना चाहिए और आयकर के मामले में सम्बन्धित राज्य के लिए एक निश्चित सीमा होनी चाहिए। अनुच्छेद 268 के अन्तर्गत शुल्क उगाहने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 269 में उल्लिखित के अनुसार केन्द्र सरकार को, कुछ विशेष करों को न उगाहे जाने के बदले में, राज्य सरकारों को पर्याप्त धन देना चाहिए।

प्रशासनिक खर्चों में वृद्धि वास्तव में राजस्व को घटाती है और स्रोतों और वचनबद्धता के बीच के अन्तर को बढ़ाती है, इसलिए तर्कसंगत यह होगा कि इसको करों का अन्तरण बढ़ा कर पूरा किया जाए।

जहां तक योजना आयोग का सम्बन्ध है, मौजूदा योजना आयोग को केन्द्रीय और राज्य योजना आयोगों में परिवर्तित किया जाना चाहिए जिसका गठन कानूनी आधार पर किया जाए जैसा कि वित्तीय आयोग के सम्बन्ध में किया गया। मौजूदा योजना आयोग संवैधानिक स्कीम के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है और वह एक अतिरिक्त संवैधानिक प्राधिकरण है अतः उसे समाप्त कर दिया जाए।

राज्यों को और अधिक समर्थ बनाने के लिए 10 साल की अवधि के बाद संविधान की समीक्षा किया जाना आवश्यक है। उस प्रयोजन से एक नई संविधान सभा गठित की जाए जिसमें प्रत्येक राज्य से बराबर सदस्य संख्या ले ली जाए।

17. उपरोक्त स्थिति को मद्देनजर रखते हुए सरकारिया आयोग द्वारा जारी प्रश्नावली के अनुबन्ध के अनुसार तमिलनाडु सरकार ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

अनुबंध

भाग I

प्रस्तावना

1.1 से 1.8 तक यह सरकार प्रश्नावली के सभी प्रयोजन को मद्देनजर रखते हुए न कि क्रमानुसार प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न करते हुए भाग I में दिए गए प्रश्नों के उत्तर देने को तरजीह देती है।

यद्यपि यह घोषित किया गया है कि हमारे संविधान की पूरी रूपरेखा मजबूत केन्द्र युक्त परिसंघ है, फिर कभी इस प्रकार का स्पष्ट प्रयोजन हमारे संविधान के कार्यचालन में यह प्रकट नहीं किया गया जिसे हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारत संघ (ए आई आर 1963 सं० न्याय 1241) में सही-सही यह विशेष रूप से वर्णित किया है कि यह अपने स्वरूप में सच्चा परिसंघ नहीं है। हम आदरपूर्वक न्यायमूर्ति सुब्बाराव द्वारा प्रतिपादित फार्मूला स्वीकार करते हैं जिन्होंने इस मामले में कहा कि किसी संविधान ने संघीय सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है या नहीं, इस बात को निश्चित करने की सही परीक्षा यह है कि क्या उस संविधान में अधिकारों का विभाजन इन तरीके से करने की व्यवस्था की गई है कि सामान्य और क्षेत्रीय सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में पर्याप्त रूप से एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। भारतीय जनता ने अनुभव से जाना है कि भारत की जनता जो कि देश के विभिन्न भागों और विभिन्न परिस्थितियों में निवास करती है सजग रूप से यह महसूस करती है कि केन्द्र को मजबूत बनाने के लगातार प्रयत्न के कारण राज्य जो उसके अंग है मात्र प्रारंभी और आज्ञाकारी बना दिए जाने के कारण परिसंघीयता के सच्चे सिद्धान्तों से दूर हट गए हैं। भारत परिसंघ के कार्यचालन में ऐसी अनिश्चितता और प्रत्यक्ष विचलन के कारण सर इवोर जेन्निंग्स ने भारतीय संविधान को मजबूत केन्द्रीयकृत प्रवृत्ति वाला परिसंघ बताया है। परिसंघीय सार, केन्द्र और राज्य के बीच अपने-अपने सम्बन्धित पहलुओं में सरकारी अधिकारों के बराबर विभाजन पर निर्भर है। डाईसी ने व्यवस्था की है कि "किसी देश को शासित करने के लिए परिसंघीयता एक जटिल सरकारी तन्त्र है ..... परिसंघीयता एकता के साथ विविधता, केन्द्रीयकरण के साथ विकेन्द्रीकरण और राष्ट्रीयता के साथ स्थानिकता में तालमेल बैठाती है। परिसंघीय व्यवस्था की क्षेत्रीयता जो उस अधिकार में निहित है यानि कि एक साथ ही संकेन्द्रित भी है और विभाजित भी"।

यद्यपि कहा जाता है कि हमारे संविधान का मूल गठन परिसंघीय है फिर भी कुछ उपबंध जो अन्य संविधानों में नहीं पाए जाते हैं किसी सीमा तक हमारे संविधान को एकरूप बनाते हैं न कि परिसंघीय। प्रावधान जैसे कि अनुच्छेद 256, 257, 356, 365, 200 और 201, 31-सी, 31-ए(1), 254(2) और 304 (बी) परन्तुक, जनता और न्यायविदों द्वारा की गई इस निरन्तर टिप्पणी को समर्थन प्रदान करते हैं कि हमारा संविधान सच्चे रूप में परिसंघीय नहीं है। परिसंघ राज्य एक राजनैतिक तन्त्र होना चाहिए जिसमें राज्य के अधिकारों को बरकरार रखते हुए राष्ट्रीय एकता और अधिकारों के साथ राज्य अधिकार का तालमेल बैठाया जाना चाहिए। परिसंघ में यही वह आवश्यक तत्व था जिसने संयुक्त राज्य के संविधान में दसवें संशोधन को बढ़ावा दिया। इसी संशोधन के अन्तर्गत यह कानून बनाया गया कि संविधान द्वारा संयुक्त राज्य को प्रत्यायोजित

न किए गए अधिकार, जो न तो संविधान द्वारा राज्यों को निषिद्ध हैं, क्रमश: राज्यों के लिए या जनता के लिए आरक्षित हैं। एक ओर तो राष्ट्र के बीच एक ही संविधान के अन्तर्गत और दूसरी ओर अलग-अलग राज्यों के अन्तर्गत अधिकारों के विभाजन द्वारा राज्यों की स्वतन्त्रता के साथ राष्ट्रीय एकता स्थापित की जा सकती है। इस मत से पूर्णत: विकसित परिसंघीयता की तीन महत्वपूर्ण विशेषताएं सामने आती हैं जैसे कि, संविधान की सर्वोच्चता सरकार की विभिन्न शक्तियों के सीमित और समेकित प्राधिकार के साथ निकायों के बीच संवितरण, संविधान के व्याख्याता के रूप में काम करने का न्यायालय का प्राधिकार केवल इस बात की प्रत्याशा कि इस सिद्धांत का आदर किया जाए कि "प्रत्येक समस्त के लिए है और समस्त प्रत्येक के लिए" अपने आप में पर्याप्त नहीं है। इसे व्यवहार में लाया जाए न कि एक नीतिवचन बना कर रखा जाए।

इस सरकार ने अपनी रिपोर्ट में विस्तार से इस बात पर विचार किया है कि किस प्रकार लगभग 35 साल पहले संविधान को बनाने वाले स्थापकों द्वारा बनाए गए संविधान में कुछ अप्रिय अनुच्छेदों के अभिचार द्वारा राज्यों को स्वायत्तता कम हुई है। अत: यह स्पष्ट है कि हमारे संविधान को पूर्णत: परिसंघीय नहीं कहा जा सकता और हमारे संविधान में कठोर प्रावधानों के होने से और उन हानिकर अनुच्छेदों के सुविधाजनक अभिचार से जो अन्य परिसंघों में स्पष्ट रूप से नहीं है, हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि अन्य संविधानों में मौजूद विलक्षण मुद्दों के अभाव हमारे संविधान के परिसंघीय सिद्धान्तों की नींव को धीरे-धीरे तोड़ रहे हैं। सरकार ने इस विषय पर विस्तार से काम किया है कि "विधायी अधिकारों का पुन: विभाजन" या तो "विधायी सम्बन्ध" भाग II और "प्रशासनिक सम्बन्ध" भाग IV पर काम करते समय तीन सूचियों में प्रविष्टियों के रूप में या अनुच्छेदों में दिया जाए। जहां तक राज्यों की सूची II में अधिक कर राजस्वों के आबंटन का सम्बन्ध है हमने "वित्तीय संबंध" भाग V पर काम करते समय अपने विशेषज्ञों की टिप्पणी दे दी थी। ऐसे मामलों पर केन्द्र का प्रभाव जो मुख्यत: राज्यों से सम्बन्धित विषय है और उनकी सामर्थ्य सीमा के भीतर हैं, पर भी विचार किया गया। श्री सीतलवाड ने प्रश्न उठाया कि बदलती परिस्थितियों के दबाव में परिसंघीयता द्वारा स्थापित सैद्धांतिक अड़चनें समाप्त हो गई हैं और केन्द्र तथा क्षेत्रीय शक्तियां एक दूसरे के साथ मिल कर काम रही हैं।

सरकार का विचार है कि कठिनाइयों संबंधी मामले, तनाव और समस्याएं जो कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों के बीच उत्पन्न होते हैं उनका कारण हमारे मौजूदा संविधान में देखे जाने वाले मूलभूत गठन और योजनाबद्ध योजना में काफी मात्रा में पाए जाने वाले दोष है। राज्य की स्वायत्तता को, केन्द्र के कीर्तिस्व पर नहीं छोड़ा जा सकता। राज्यों की ओर से धर्म-परायण इरादों के साथ एक घोषणा यह की गई कि उनके सच्चे मनोभाव के सिद्धान्त के आधार पर उनकी तथाकथित स्वायत्तता पर विश्वास किया जाए और चूंकि संविधान का उद्देश्य बिल्कुल पकड़ में नहीं आने वाला है अत: उसे लागू करने में अक्षमता का सामना करना पड़ता है। आगे आने वाले अध्यायों में हमारे विचार विमर्श में हमने यह सुझाव दिया है कि स्वस्थ रूढ़ियों और प्रणालियों को अपनाना हितकर होगा तथा अब समय आ गया है कि जब कभी आवश्यक हो संविधान के प्रावधान में उपयुक्त संशोधन करके केन्द्र और राज्य के बीच होने वाले तनावों और मतभेदों को दूर किया जाए और इस प्रकार हमारे देश की खुशहाली और उसके विकास से सम्बन्धित गुणोत्तर प्रगति को प्राप्त करने के लिए केन्द्र और राज्य के बीच सौजन्यपूर्वक तालमेल बनाए रखा जा सके। हमने आगे दिए गए विचारों में यह भी प्रकट किया है कि अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत गठित किया जाने वाला परामर्शी निकाय अप्रभावी होगा क्योंकि उस कौंसिल का गठन मात्र ही उत्तेजक मतभेदों से भरा हुआ है। हमने इस पहलू पर उस समय भी विचार किया है जब "प्रशासनिक सम्बन्धों" के अध्याय पर बात की है।

संविधान के अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार है कि वह किसी भी राज्य से क्षेत्र को अलग करके नया राज्य गठित करे या दो या दो से अधिक राज्यों को मिला कर या किसी राज्य के एक भाग को या उसके राज्यक्षेत्र में अन्य क्षेत्र जोड़े या फिर किसी राज्य के क्षेत्रफल को बढ़ाए या घटाए या किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन करे या फिर किसी राज्य के नाम को ही बदल दे। जहां प्रस्तावित विधेयक क्षेत्र, सीमाओं या राज्य के नाम पर प्रभाव डाले तो विधेयक की विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर उस पर विचार व्यक्त करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा राज्य विधान सभा में भेजा जाए। संविधान के अन्तर्गत अब केवल राज्य विधान सभा के विचारों को सुनिश्चित करना ही शेष रह जाएगा। अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत वर्तमान योजना में संविधान के परिसंघीय गठन के प्रति विरोध प्रकट किया गया है। जब तक कि ऐसे राज्य जिनके क्षेत्र, सीमाएं या नाम प्रभावित होते हों, विधेयक के लिए अपनी सहमति व्यक्त करें तब तक कोई भी विधेयक संसद में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा। संसद में विधेयक को प्रस्तुत करने की पूर्व शर्त के रूप में अनुच्छेद 3 को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए, जिससे सम्बन्धित राज्यों की सहमति अपेक्षित हो।

संवैधानिक मामलों को छोड़कर जहां तक सर्वोच्च न्यायालय को की जाने वाली अपीलों को समाप्त करने का सम्बन्ध है यह अच्छा सुझाव है क्योंकि ऐसी प्रणाली अमरीकी संविधान में पाई जाती है। इस सम्बन्ध में यदि हम अमरीकी संविधान के प्रावधानों का अनुकरण करते हैं तो हमें अमरीकी परिसंघीय अदालतों से सम्बन्धित सभी उपबन्धों को अपने भारतीय संविधान में शामिल करना होगा। ऐसी स्थिति में हमें देश को अनेक न्यायिक जिलों में विभाजित करना पड़ेगा और ऐसे प्रत्येक जिले के लिए एक जिला संघीय न्यायालय गठित करना होगा। इसके बाद हमें एक सर्किट न्यायालय गठित करना पड़ेगा जिसका अधिकार क्षेत्र कुछ विशिष्ट न्यायिक जिलों पर होगा और अन्तिम रूप से सर्वोपरि स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय को मान्यता दी जा सकती है। इसके अलावा सभी सांवैधानिक मामलों को निर्णीत करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में नौ अथवा ग्यारह न्यायाधीशों की एक निश्चित सांवैधानिक न्यायपीठ होनी चाहिए जैसा कि संयुक्त राज्य में है। परिसंघीय न्यायालयों के सम्बन्ध में जब भारतीय संविधान में ऐसे परिशोधन लाए जाएं तो मौजूदा उच्च न्यायालय, सभी उद्देश्यों के लिए प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय के रूप में कार्य कर सकेंगे जैसा कि संयुक्त राज्य में प्रत्येक राज्य का सर्वोच्च न्यायालय कार्य करता है। इसलिए केवल सांवैधानिक मामलों को छोड़कर, सर्वोच्च न्यायालय को सिर्फ अपीलें न भेजना तब तक अर्थहीन है, जब तक कि हम संयुक्त राज्य के परिसंघीय गठन के साथ तालमेल बैठाते हुए परिसंघीय न्यायालयों के गठन में आमूल परिवर्तन न करें।

एक बुजुर्ग राजनेता श्री के० संथानम् ने ठीक ही कहा है कि अनिश्चित अस्वास्थ्यकर पैतिकवाद की प्रवृत्ति, जिसने स्वतन्त्रता के पहले दो दशकों के दौरान एक ही पार्टी के प्रमुख के परिणामस्वरूप भारतीय परिसंघीयता को ग्रसित कर लिया है जितनी हानिकारक केन्द्र के लिए है उतनी ही राज्यों के लिए अहितकर और उत्तेजनापूर्ण है।

प्रश्नावली के अन्य भागों से सम्बन्धित हमारी टिप्पणियों और सिफारिशों के प्रकाश में इस सरकार का यह विचार है कि ऐसे सुझावों को स्वीकार करना निश्चित ही हमारे संविधान को सच्चा परिसंघ बनाएगा।

सरकार का विचार है कि यह परिचयात्मक टिप्पणी भाग I में दी गई प्रश्नावली के उद्देश्य का उत्तर दे देती है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि प्रश्नावली के अन्य भागों में प्रकट की गई टिप्पणियों और विचारों को मद्देनजर रखते हुए प्रश्नों का क्रमानुसार उत्तर नहीं दिया गया है।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 से 2.5 तक संविधान के भाग XI और विशेषकर अनुच्छेद 245 से 255 में केन्द्र और राज्यों के बीच जो अन्तर-सम्बन्ध दिया गया है यद्यपि संघ और राज्यों के बीच विधायी सम्बन्धों की सीमा के लिए योजना तैयार करता है परन्तु अनुभव से यह पता चलता है कि राज्यों ने अनेक क्रियात्मक क्षेत्रों में सम्बन्धित राज्यों की जनता की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुकूल अपनी नीति को लागू करने में कठिनाई का सामना किया है। जब केन्द्र और राज्यों में एक ही शासक पार्टी हो तो जाहिर है कि उन दोनों के बीच नीति निर्धारण के मामलों में और उनको लागू करने के मामले में कोई मनमुटाव नहीं होगा परन्तु आज जैसी कि मामले की स्थिति है, विभिन्न राजनैतिक सिद्धान्त रखने वाले अनेक राज्य और क्षेत्रीय पार्टियां पैदा हो जाने के कारण चाहे वह क्षेत्रीय हो या राज्य स्तर की हों उनमें

असमंजस पैदा हो गया है और इस कारण केन्द्र राज्य सम्बन्धों में गर्मी आ गई है विशेषकर विधायी क्षेत्र में ।

अपने को प्रगतिशील बनाने के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य की सम्बद्ध आवश्यकता, उसकी स्थिति, उसकी जनता की आकांक्षा, अपेक्षित जनकल्याण साधन और सामाजिक-आर्थिक साधन के अनुसार अलग-अलग होती है । वर्तमान समय में जब राज्य कल्याण के हित में तत्काल कानून बनाया गया तो संवैधानिक कानून के अन्तर्गत प्रणाली शासनादेशों ने राज्य सरकारों के लिए उनके द्वारा अपनाई गई नीतियों (पालिसियों) पर आधारित उनके उद्देश्यों का अनुपालन करना कभी-कभी अव्यवहार्य और असंभव बना दिया है ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं है जिनमें किसी विशेष विषय पर किसी विशेष राज्य के द्वारा अपेक्षित कानून में केन्द्रीय सरकार ने विलम्ब किया है ।

तमिलनाडु भूमि सुधार (भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारण) दूसरा संशोधन विधेयक, 1980 से सम्बन्धित एक उदाहरण को उद्धृत करते हुए जिसमें बेनामी लेनदेनों के मामले में बचाव के रास्तों को रोकने का प्रयत्न किया गया था ताकि केवल कृषि विधेयकों को लागू किया जा सके केन्द्र द्वारा यह विचार अस्वीकृत कर दिया गया । औद्योगिक विवाद (तमिलनाडु संशोधन) विधेयक, 1981 और तमिलनाडु धार्मिक और धर्मार्थ परिदाय (संशोधन) विधेयक, 1981, जो क्रमश: 10 जून, 1981 और 23 सितम्बर, 1981 को भारत सरकार को भेजे गए थे उन पर अभी भी राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी है । इसके बाद भारतीय औषधि विधेयक, 1983 के प्रैक्टीशनरों के राज्य रजिस्टर का तमिलनाडु मान्यता प्राप्ति और तमिलनाडु पट्टा पासबुक विधेयक, 1983 जो कि भारत सरकार को क्रमश: 14 फरवरी, 1983 और 29 दिसम्बर, 1983 को भेजे गए थे तथा तमिलनाडु भवन और निर्माण कर्मचारी (रोजगार की शर्तें और विविध प्रावधान) विधेयक, 1984, जो भारत सरकार को 8 नवंबर, 1984 में भेजे गए थे अभी भी राष्ट्रपति की अनुमति की प्रतीक्षा में हैं । ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनसे राज्यों की आशंका न्यायोचित सिद्ध होती है कि केन्द्र सरकार आशयित कानून सम्बन्धी उनकी अपील या निर्णय को रोके रखने का प्रयत्न कर रही है जिसके लिए राज्य विधान सभा के दोनों सदनों का समर्थन प्राप्त है । राज्य विधान सभा द्वारा अपने अधीन बनाए गए कानून की प्रगति जो मख्यत: कुछ शान्त और प्रगतिशील प्रयोजनों को प्राप्त करना है, केन्द्र द्वारा उन्हें रोक लिया गया है और इसलिए यह महसूस किया जा रहा है कि केन्द्र द्वारा अपनाया गया मौजूदा स्वरूप जिसमें राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजे गए विधेयक की मंजूरी में विलम्ब करना या उसे अस्वीकृत करने की प्रवृत्ति की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और गठन को विशेष रूप से इस रूप में संशोधित किया जाना चाहिए कि जहां राज्य विधान सभा ने कानूनी उपाय पारित कर दिए हों और जहां राज्य में दोनों सदन हों और वे काम करते हों वहां उन राज्यों ने दोनों सदनों के समर्थन प्राप्त कर लिए हों राष्ट्रपति को सूचित किया जाना चाहिए कि बिना किसी रोक टोक के विधेयक को अनुमति दे दें । यद्यपि परिसंघीय पद्धति में क्षेत्रीय अन्तर्बंधन के सिद्धान्त का उदारतापूर्वक निर्वचन किया जाना चाहिए । फिर भी पिछले अनुभव को मद्देनजर रखते हुए और विशेषकर इस कारण से कि केन्द्र और राज्य में एक ही शासक पार्टी न होने के कारण राज्यों को लाभ नहीं मिल पाए हैं । निर्धारित सीमा के भीतर कार्यचालन के सिद्धान्त के अनुभव को मद्देनजर रखते हुए और जनता की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुसार लागू किया जाना चाहिए ।

राष्ट्रपति की असहमतिरूपी तलवार की स्थिति का सामना न करना पड़े इस दृष्टि से इस स्थिति में यह सुविधाजनक होगा कि संविधान के ऐसे प्रावधानों पर विचार कर लिया जाए जिनमें राज्य विधान मंडल द्वारा पास किए गए विधेयकों की अधिकार सीमा और कार्यप्रणाली के बारे में पता लगा लिया जाए । अनुच्छेद 201 के अधीन जब गवर्नर द्वारा किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए रखा जाता है तो राष्ट्रपति के पास यह विकल्प है कि वह इस विधेयक को मंजूरी दे या रोक ले । यद्यपि यह अकाट्य है कि जब राष्ट्रपति ऊपर बताए रूप में काम कर रहा हो तो वह केंद्र में अपने मंत्रीमण्डल की सलाह से काम करेगा । विधेयक को मंजूरी देने या रोके रखने के बारे में राष्ट्रपति द्वारा अपनाई जाने वाली रूढ़ियों अथवा मार्गदर्शनों के अभाव में हमारा यह विचार है कि कुछ संकटपूर्ण स्थितियों में जो इन परिस्थितियों में उत्पन्न हुई हों यह प्रक्रिया नहीं अपनाई जानी चाहिए ।

यह इसी सन्दर्भ में है कि अधिकार क्षेत्र या अन्तर्बंधन की निर्धारित सीमाओं का सिद्धान्त ऐसे निर्धारित अधिकार क्षेत्र के मुकाबले धुंधला पड़ गया है । यदि विधान संविधान की अनुसूची VII में दी गई व्यवस्था के अनुसार राज्य सूची के अन्तर्गत आता है तो विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ भेजने की आवश्यकता नहीं है । यदि विषय समवर्ती सूची के अन्तर्गत आता है तो हमारा विचार है कि इसके लिए राज्यपाल की स्वत: मंजूरी रहती है । जैसा कि 1935 के भारत सरकार अधिनियम की समवर्ती सूची से सम्बन्धित संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट में बताया गया है, "यदि मामले की स्थिति यथावत् रहे तो राज्य विधान यह अनुभव कर सकता है कि वह खतरनाक अतिक्रमण होगा ।" समिति ने यह भी कहा कि यदि विषय अपने आप में अनिवार्यत: स्वरूप में क्षेत्रीय किस्म के हों और उन्हें मुख्यत: क्षेत्रीय नीति के अनुसार क्षेत्रों द्वारा संचालित किया गया हो तो उस विशेष विषय से सम्बन्धित राज्य विधान की मान्यता में बाधा नहीं डाली जानी चाहिए । हर हालत में प्रश्न 2.3 के लिए हमारा उत्तर सकारात्मक होगा ।

इस सरकार का यह भी विचार है कि समवर्ती सूची के अन्दर आने वाले विषय के सम्बन्ध में संसद द्वारा कोई कानून नहीं बनाया जाना चाहिए केवल राज्य विधान की सहमति की स्थिति को छोड़कर । यदि इस प्रकार की कोई सहमति प्राप्त न की गई हो तो संसद द्वारा किसी समवर्ती विषय के सम्बन्ध में बनाया गया कानून उस राज्य पर लागू नहीं होगा ।

उपरोक्त प्रस्तावना टिप्पणियों के साथ यह सरकार प्रश्नों को क्रमानुसार उत्तरीत करने के बजाए हमारे संविधान के अनुच्छेदों और साथ ही अनुसूची VII की सूची I, सूची II, और सूची III में की गई विभिन्न प्रविष्टियों के अनुरूप कार्रवाई कर रही है तथा सम्बन्धित अनुच्छेद अथवा प्रविष्टि के सामने इससे सम्बन्धित सिफारिशें कर रहे हैं ।

अनुच्छेद 31-ए, 31-सी, 200, 201, 246 और 254 (2)

हमारी प्रस्तावना टिप्पणियों में हमने उस स्थिति में राज्य सरकार द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाइयों के बारे में विचार किया है जिसमें राज्य द्वारा किए जाने वाले महत्वपूर्ण और अनिवार्य विधानों पर राष्ट्रपति की मंजूरी लेना या तो अस्वीकृत किया गया था या अकारण ही देर लगा दी गई थी । राज्य विधान मण्डल अपने आप में एक स्वतंत्र विधायी निकाय होने के कारण किसी भी रूप में केन्द्र विधान मण्डल के अधीनस्थ नहीं है । यह भी स्पष्ट है कि राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों और विशेषकर अनुसूची VII में उल्लिखित सूचियों के अन्तर्गत राज्य के अधिकारक्षेत्र को ही पूर्ण रूप से सौंपे गए विषयों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार से किसी भी रूप में अधीनस्थ नहीं है यदि केन्द्र सरकार राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित किसी नीति या संवैधानिक या कानूनी पहलू के बारे में निर्णय देने के लिए बैठी है तो उसकी इस भूमिका को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए इस उद्देश्य से नीचे बताए गए पैरा के रूप में संविधान में विशेष संशोधन किया जाना चाहिए । पैरा इस प्रकार है ---

"जहां राज्य विधान मण्डल ने सूची III में की गई प्रविष्टियों के सन्दर्भ में अपनी क्षमता के ही भीतर और राज्य की स्थानीय समस्याओं के अनुरूप विधायी उपाय पारित किए हों तो राष्ट्रपति को सलाह दी जा सकती है कि बिना किसी आपत्ति के विधेयक को मन्जूरी दे दें ।"

इस स्थिति में संविधान के अनुच्छेद 200 और 201 पर भी विचार किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 200 में विधेयक को मन्जूरी देने के बारे में विचार किया जाता है और उसमें राज्यपाल को यह अधिकार देने की शक्ति निहित है कि वह उस पर अपनी मंजूरी दे दे या फिर अपनी मंजूरी रोके रखे या फिर यह घोषणा करे कि वह राष्ट्रपति के विचारार्थ उक्त विधेयक को रोक कर रख रहा है । अनुच्छेद 201 में ऐसी परिस्थिति पर कार्रवाई की जाती है जहां विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक लिए जाते हैं क्योंकि अनुच्छेद 200 और 201 दोनों ही एक समान उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बनाए गए हैं । ऐसे अवसर आए हैं जब राज्य के स्तर पर न तो गवर्नर अथवा केन्द्र के स्तर पर राष्ट्रपति निश्चित मानदण्डों के लिखित रूप का पालन कर सके हैं जबकि राज्यपाल ने और राष्ट्रपति ने उस विधेयक पर मंजूरी देने में इन्कार कर दिया है । संविधान इस मुद्दे पर मौन है । संयुक्त राज्य अथवा आस्ट्रेलिया में राष्ट्रीय कार्यकारिणी के विचारार्थ राज्य विधान को रोके रखने का कोई प्रावधान नहीं है । सम्भवत: कनाडा के संविधान की प्रेरणा से ही ऐसा प्रावधान हमारे संविधान में लाया गया । राज्य सूची के अन्तर्गत अपनाए गए विधानों के मामले में यह उतना ही सच्चे परिसंघीय विधान के विरुद्ध होगा जितना

यह राज्य स्वायत्तता पर प्रभाव डालेगा। ऐसे मामलों में राज्यपाल को राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक रोके रखने की आवश्यकता नहीं है जिनमें राज्य द्वारा अपनाए जाने वाले कानून या विधान केवल राज्य विधायी क्षेत्र के अन्तर्गत आते है।

अनुच्छेद 31-ए अथवा 31-सी की अधिकार सीमा में आने वाला कोई भी विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ रोके रखने की आवश्यकता नहीं है तदनुसार परिच्छेद 31-ए का पहला परन्तुक, अनुच्छेद 31-सी का परन्तुक, अनुच्छेद 200 के दो परन्तुक और अनुच्छेद 201 का परन्तुक हटा दिया जाना चाहिए। अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा मन्जूरी रोके रखने से सम्बन्धित प्रावधान भी हटा दिया जाना चाहिए।

सरकार सुझाव देती है कि अनुच्छेद 246 नीचे दिए अनुसार पढ़ा जाए :—

"246, संसद और राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाये गए कानूनी सम्बन्धी-विषय (I) संसद को सातवीं अनुसूची में दी गई सूची एक में उल्लिखित किसी भी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने का एकमात्र अधिकार प्राप्त है (इस संविधान में जिसे "केन्द्री सूची" के रूप में जिसका उल्लेख किया गया है)।"

(2) संसद और खण्ड (I) के अधीन, किसी भी राज्य के विधान मण्डल के सातवीं अनुसूची में सूची III में उल्लिखित किसी भी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। (इस संविधान में "समवर्ती सूची" के रूप में उल्लिखित) बशर्ते कि जब तक राज्य विधान-मण्डल की सहमति न मिल जाए तब तक संसद द्वारा ऐसा कोई कानून नहीं बनाया जाएगा।

(3) किसी भी राज्य के विधान मण्डल को सातवीं अनुसूची की सूची II में उल्लिखित किसी भी मामले के सम्बन्ध में ऐसे राज्य के लिए या उसके किसी भाग के लिए कोई भी कानून बनाने का पूरा अधिकार प्राप्त है (इस संविधान में "राज्य सूची" के रूप में उल्लिखित।)

(4) "राज्य सूची" में उल्लिखित किसी मामले के बावजूद राज्य में शामिल न किए गए भारत के क्षेत्र के किसी भाग से सम्बन्धित किसी मामले के सम्बन्ध में संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है।

संसद और राज्यों दोनों ही के अपने-अपने विधायी क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेष अधिकारों की रक्षा करने के उद्देश्य से सरकार का यह विचार है कि अनुच्छेद 246 को सुझाए गए रूप में पढ़ा जाए।

ऊपर सुझाई गई हमारी सिफारिशों के प्रकाश में सरकार में सुझाव दिया है कि अनुच्छेद 254(2) का परन्तुक नीचे बताए अनुसार पढ़ा जाए :—

"बशर्ते कि संसद को उस विषय के सम्बन्ध में किसी भी समय कोई कानून बनाने का अधिकार नहीं है जिसमें किसी विषय को जोड़ने, संशोधन करने, परिवर्तन करने या निरसित करने का कानून शामिल है जो कि राज्य के विधानमण्डल द्वारा तैयार किया गया है।"

अनुच्छेद 246-ए—हम एक नए अनुच्छेद 246-ए जो नीचे बताए अनुसार पढ़ा जाएगा शामिल करने का सुझाव देते हैं जो समवर्ती सूची की प्रविष्टि 45 पर हमारी अभ्युक्तियां देखिए।

"246-ए—संसद को राज्य सरकार के किसी मन्त्री के आचरण के सम्बन्ध में कोई जांच-आयोग बैठाने के आदेश देने का अधिकार नहीं है। संसद को राज्य सरकार के किसी भी या सभी मन्त्रियों के सम्बन्ध में जब वे पद पर हों या पदत्याग देने के बाद किसी भी मन्त्री के आचरण के सम्बन्ध में कोई जांच आयोग बैठाने के सम्बन्ध में कानून (नियम) बनाने का अधिकार नहीं है।"

अनुच्छेद 247:—न्याय प्रशासन एक ऐसा जरिया है जिस पर विधि की सम्यक् प्रक्रिया के अनुपालन के लिए राज्य सरकार पूरी तरह निर्भर रह सकती है। जब से संविधान बना है, संसद द्वारा बनाए विधि के अच्छे प्रशासन के लिए अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना के लिए संसद उपबंधित नहीं है। इन शक्तियों का इस्तेमाल उन मामलों में अपेक्षित है जहां राष्ट्रीय हित या आपात स्थिति के कारण अतिरिक्त न्यायालयों को स्थापित करने के लिए ऐसा प्रावधान हो। ऐसी स्थिति हाल ही में पंजाब में आई थी। परन्तु अनुच्छेद 247 इतना विस्तृत है कि जिसके तहत संसद शान्ति के दौरान भी सामान्य, सिविल और दाण्डिक अधिकारिता के सम्बन्ध में कार्रवाई करने के लिए अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना करने में असमर्थ है और यह संसद द्वारा बनाए गए अच्छे कानून प्रशासन के प्रयोजन से किया गया है। चूंकि विधि की इस सम्यक् प्रक्रिया का पालन करना राज्य की भी जिम्मेदारी है इसलिए इस प्रावधान (उपबन्ध) को हटाया जा सकता है। हमारा सुझाव है कि :—

हालांकि, राष्ट्रीय आपातकाल के मामले में या दिए गए राष्ट्रीय हित में सहायक होने के मामले में संसद द्वारा ऐसे न्यायालयों के बनाए जाने में सहाय-तार्थ एक परन्तुक जोड़ा जा सकता है, फिर भी "राष्ट्रीय हित" अभिव्यक्ति की संविधान में हो व्याख्या की गई है। हमारी मुख्य सिफारिश है कि अनुच्छेद-247 को जिस रूप में वह है, हटा दिया जाए।

अनुच्छेद 248:—यह अनुच्छेद समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में न उल्लिखित किसी विषय के सम्बन्ध में संसद के विधायी अवशिष्टीय अधिकारों से सम्बन्ध रखता है। इस प्रावधान का अन्य महत्वपूर्ण परिसंघीय संविधानों में कोई समानान्तर संविधान नहीं है। यहां तक कि अमरीकी संविधान में, परिसंघ को केवल प्रमाणित शक्तियां ही प्राप्त हैं जबकि राज्य को अवशिष्टीय शक्तियां दी गई हैं। अमरीकी संविधान के दसवें संशोधन में नीचे बताए गए रूप में व्यवस्था की गई है :—

"संविधान द्वारा संयुक्त राज्यों को प्रत्यायोजित न की गई शक्तियां और न ही इसके द्वारा राज्यों को निषिद्ध शक्तियां क्रमश: राज्यों के लिए रोक कर रख ली जाएंगी।"

इसी प्रकार आस्ट्रेलियाई संविधान में भी अवशिष्टीय शक्तियां राज्य विधान मण्डल में निहित हैं। इस प्रकार संघ (केन्द्र) संसद को अवशिष्टीय शक्तियों का दिया जाना राज्य विधान मण्डलों को दिए गए अधिकारों की अनदेखी करना है है जो परिसंघवाद के संभावित मतों (विचारों) के विपरित है। परिणामस्वरूप संविधान का अनुच्छेद 248 समवर्ती सूची या संघी सूची में शामिल न किए गए मामलों के सम्बन्ध में राज्य विधान मण्डल में विधान की विहित अवशिष्टीय शक्तियों का अनुकल्प होगा। इस शक्ति में, उन किन्हीं भी सूचियों में शामिल न किए गए कर को लगाए जाने के सम्बन्ध में किसी भी कानून को बनाने की शक्ति स्वत: ही शामिल है। इसलिए यह जरूरी है कि सूची I में भी प्रविष्टि 97 को हटा दिया जाए। बल्कि राज्य सूची में एक नई प्रविष्टि शामिल की जाए।

इसलिए हमारी सिफारिशें इस प्रकार है :—

(क) अनुच्छेद 248 को हटा दिया जाए;

(ख) संघ सूची में प्रविष्टि 97 हटा दी जाए; और

(ग) राज्य सूची की सूची II में प्रविष्टि 67 के नाम से एक नई प्रविष्टि शामिल कर ली जाए, जिसे इस प्रकार पढ़ा जाए :—

"67—ऐसा कोई भी अन्य मामला जो सूची I या सूची III में शामिल न किया गया हो और किसी भी ऐसे कर को शामिल करते हुए को उन किन्हीं भी सूचियों में शामिल न हो।

अनुच्छेद 249:—यह एक और अनुच्छेद है जिसमें संसद को शक्तियां दी गई है। इस अनुच्छेद में फिर से राष्ट्रीय हित का सन्दर्भ दिया गया है जिसकी व्याख्या नहीं की गई है। यह संसद को, राष्ट्रीय हित में राज्य सूची में शामिल मामलों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार देता हैं। इस प्रकार के विधान निश्चायक स्थिति बनाते हैं यदि राष्ट्रीय हित में, कम से कम दो तिहाई सदस्य उपस्थित हों और इस विधान को लाने के मतों द्वारा राज्य कौंसिल द्वारा एक संकल्प समेकित हो। अनुच्छेद 249 में अनुध्यात के अनुसार कानून बनाने के लिए संसद के लिए यह दूसरे दर्जे का उदाहरण है। इस प्रकार मान ली गई विधायी क्षमता न्यायिक जांच के अधिकार क्षेत्र से बाहर है जैसा कि पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारतीय संघ (ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1241) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देखा गया। ऐसे विशिष्ट भारतीयों ने जिन्हें इस अनुच्छेद को शामिल किए जाने के संबंध में विवेचना की थी उन्होंने भी इसे स्वीकार किए जाने को पसंद नहीं किया था। इसके अलावा यह अनुच्छेद उदाहरण रहित है और संसार के किसी भी संविधान में इसके समानान्तर प्रावधान नहीं है। राष्ट्रीय हित में

राज्य विधान मण्डल पर प्रतिबन्ध लगाने से सम्बन्धित राज्य परिषद को दिए गए ऐसे पूर्णाधिकार, जिनका कोई निश्चित अर्थ नहीं है, निश्चय ही राज्यों के अधिकारों का दमन करने के रूप में लिया जाना चाहिए जो संविधान के ही ढांचे के अन्तर्गत बनाए अनुसार कानून अधिनियमित कर सकता है। अनुच्छेद 249 के प्रतिधारण के परिणामस्वरूप पूर्ण रूप से राज्य विधान मण्डल के ही अधिकार में आने वाले मामलों में राज्य परिषद द्वारा किए जाने वाले अतिक्रमण की मान्यता का स्थायीकरण हो जाएगा। यह स्थिति उस समय होगी जब राज्य परिषद को लोक सभा का गठन करने वाली सत्तारूढ़ पार्टी के सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो।

अतः हम सुझाव देते हैं कि अनुच्छेद 249 को हटा दिया जाए।

अनुच्छेद 250 और 251—सरकार का यह मत है कि यदि आपात स्थिति की उद्घोषणा की गई हो तो राज्य सूची से सम्बन्धित किसी मामले के सम्बन्ध में कानून बनाने का कोई भी अधिकार संसद को अपने पास नहीं रखना चाहिए। आपातकाल स्थिति की उद्घोषणा के बावजूद राज्य, अपने लोकप्रिय विधान मण्डलों के माध्यम से कार्य चलाता है। यदि संसद आपातकाल अवधि के दौरान राज्य सूची में आने वाले किसी मामले के सम्बन्ध में कानून बनाने के अधिकारों को अपने तक रखना है तो राज्य में लोकप्रिय विधान मण्डलों के होने के बावजूद यह सरकार महसूस करती है कि यह आवश्यक है कि ऐसे विधान केवल तभी लागू किए जा सकते हैं यदि इस आशय का एक संकल्प राज्य विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित किया जाता है।

वस्तुत: अनुच्छेद 251 के पाठ में, अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत या आपात स्थिति के दौरान संसद द्वारा कानून बनाने की संभावना को ध्यान में रखा गया और उसकी स्पष्ट रूप से कल्पना की गई है। यह राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाए गए कानूनों के विपरीत होगा। अत: यह सुझाने के लिए एक अंत: प्रेरित संकेत है कि ऐसे कानून चाहे वे आपात स्थिति के दौरान क्यों न बनाए गए हों, इस प्रकार नहीं बनाए जाने चाहिए कि राज्य के कानूनों की नाक पर रखा जाए क्योंकि ये कानून राज्य के लोगों की इच्छाओं को विधिवत् प्रतिबिंबित करते हैं। कानून में सुसंगतता, उसके सतत पालन की कसौटी है।

इसलिए सरकार सुझाव देती है कि अनुच्छेद 250 और 251 को भी हटा दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 252:—क्रमश: संसद अथवा राज्यों द्वारा बनाए गए अधिनियमों को संशोधित करने अथवा निरसित करने के अधिकारों के सम्बन्ध में परस्पर सामंजस्य के अभाव में यह सरकार महसूस करती है कि अनुच्छेद 252 (2) में इस प्रकार से परिवर्तन किया जाना चाहिए कि जिससे राज्य विधान मण्डल और संसद दोनों ही को ऐसे कानून को निरसित करने या फिर उसमें परिवर्तन करने में सक्षमता प्राप्त हो सके।

संविधान के अधीन जिस सर्वोपरिस्थिति में केन्द्र को रखा गया है, उस स्थिति के सन्दर्भ में, परिसंघ प्रणाली को स्वीकार करने के बावजूद, केन्द्र सरकार के लिए यह आसान हो जाएगा कि वह राज्य विधान मण्डलों को संकल्प पारित करने के लिए कहे जिससे वे दो या दो से अधिक राज्यों के लिए विधान तैयार करने के अपने आशय में सन्तुष्टि प्राप्त कर सके। यदि केन्द्रीय सरकार यह चाहती है कि कोई ऐसा कानून बनाया जाए जिसके बनाने से दो या दो से अधिक राज्यों के लिए वह कानून एक समान लागू हो तो केन्द्र सरकार की इच्छा पर है कि वह लोगों की राय को महत्व देते हुए और राज्य के कल्याण के सन्दर्भ में राज्य विधान मण्डल द्वारा कानून बनाने के लिए सम्बन्धित राज्यों को नमूना विधेयक की एक प्रति भेजे और साथ ही उन अनेक सिद्धान्तों को मद्देनजर रखे जो विभिन्न रूपों में प्रत्येक राज्य में प्रचलित है। इस सन्दर्भ में यदि राज्य विधान मण्डल द्वारा कोई संकल्प पास भी कर दिया जाता है तो यह कोई जरूरी नहीं है कि संसद को राज्य-क्षेत्र में कानून बनाने की शक्ति होगी। इस सरकार की प्रारंभिक सिफारिश यह है कि अनुच्छेद 252 को हटा दिया जाए। इसके लिए दूसरा सुझाव यह भी है कि अनुच्छेद 252(2) को इस प्रकार संशोधित किया जाए कि केन्द्र और राज्य के बीच अधिकारों का वितरण पारस्परिक हो न कि अनन्य।

अनुच्छेद 304:—अनुच्छेद 304 (बी) का परन्तुक जिसे केन्द्र के विधेयकों के मामले में राष्ट्रपति की मन्जूरी अपेक्षित है को हटा दिया जाना चाहिए। कृपया इसके अलावा प्रश्न 8.1 के अन्तर्गत दी गई हमारी अभ्युक्तियों को भी देखें।

अनुच्छेद 154 (2)(बी), 258(2) और 164:—संविधान द्वारा विधायी शक्तियां या तो केन्द्र को दी गई हैं या राज्यों को। जहां इस प्रकार दो सदनों वाले विधान मण्डल प्राधिकारियों को कानून चलाने का अधिकार दिया गया हो पहले प्रत्यायोजित शक्तियां प्रत्यायोजित नहीं की जा सकेंगी (प्रत्यायोजित शक्ति का और आगे प्रत्यायोजन नहीं होगा) अत:, संसद को संविधान के अन्तर्गत प्रत्यायोजित शक्तियां पुन: प्रत्यायोजित नहीं की जाएंगी। इस सन्दर्भ में अनुच्छेद 154 (2) (बी) और 258 (2) में संशोधन की आवश्यकता है।

अनुच्छेद 154 (2) (बी) के अधीन संसद, राज्यपाल से अधीनस्थ किसी भी प्राधिकारी को कानून द्वारा कार्य सौंप सकती है। अनुच्छेद 258(2) के अधीन भी संसद कानून द्वारा, किसी राज्य या उनके अधिकारियों और प्राधिकारियों को शक्तियां प्रदान कर सकती हैं और ड्यूटियां सौंप सकती हैं। वस्तुत: यह संसद द्वारा की जाने वाली विधायी शक्ति की अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्रवाई होगी। केन्द्र द्वारा राज्यों को शक्तियां प्रदान करने की शक्ति के सम्बन्ध में कार्रवाई करते समय जब अनुच्छेद 258(1) राज्य सरकार की मन्जूरी प्राप्त करने के लिए अभिव्यक्त रूप में उपबंधित हों तो ये उपबंध क्रमश: अनुच्छेद 154 (2) (बी) और 258(2) दोनों में नहीं होंगे।

इसलिए हमारा सुझाव है कि इन दोनों अनुच्छेदों में इस संशोधन की आवश्यकता है कि यदि केन्द्र इन दोनों अनुच्छेदों में शामिल के अनुसार शक्ति का इस्तेमाल करता है तो राज्य की मन्जूरी ले ली जानी चाहिए।

अनुच्छेद 164 के सम्बन्ध में, भाग III में दिए "राज्यपाल का कार्यक्षेत्र" में उल्लिखित हमारी सिफारिशों का सन्दर्भ देखें।

सरकार ने संघ सूची (सूची I), राज्य सूची (सूची II) और समवर्ती सूची (सूची III) में प्रविष्टियों के परिवर्तन, परिशोधन और उनके हटाए जाने के सम्बन्ध में सुझाव दिए हैं।

सूची-I-संघ (केन्द्र) सूची

प्रविष्टि 2-ए:— "संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल का या उसकी किसी टुकड़ी या यूनिट का किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता से अभियोजन, ऐसे अभियोजन के समय ऐसे बलों के सदस्यों की शक्तियां, अधिकारिता, विशेषाधिकार और दायित्व"।

प्रविष्टि 2-ए वास्तव में संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 के तहत केन्द्र की सशस्त्र सेना जैसे कि सी० सु० ब०, के० रि० पु० आदि के नियन्त्रण के लिए केन्द्र सरकार को अधिकार देने के लिए इसलिए बनाया गया कि जब किसी राज्य सरकार द्वारा उनके अनुरोध करने पर उनके राज्य की सिविल शक्ति की सहायतार्थ इनका किसी राज्य में अभियोजन किया जाना हो। राज्य सरकार के पास केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के अधिग्रहण का अधिकार है जब उनके पास इस बात के लिए स्पष्ट कारण हों कि गंभीर अशांति की संभावित स्थिति में राज्य पुलिस बल उससे निपटने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। केवल राज्य सरकार जो सरकारी आदेशों और सम्पत्ति की रक्षा तथा उपद्रवों को शान्त करने के प्रयोजन से केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को बुला सकती है। सरकार का सुझाव है कि प्रविष्टि 2-ए को हटा दिया जाए।

प्रविष्टि 7:—"संसद द्वारा विधि द्वारा रक्षा के प्रयोजन के लिए या युद्ध के संचालन के लिए आवश्यक घोषित किए गए उद्योग।"

सरकार ने सुझाव दिया है कि प्रविष्टि 7 को नीचे लिखे अनुसार परिशोधित किया जा सकता है: "सेना (युद्ध सामग्री) के लिए अनिवार्य उद्योग"।

प्रविष्टि 24:—यन्त्र नोदित जलयानों के सम्बन्ध में ऐसे अन्तर्देशीय जलमार्गों पर पोत-परिवहन और नौपरिवहन जो संसद द्वारा विधि द्वारा राष्ट्रीय जलमार्ग घोषित किए गए हैं, ऐसे जलमार्गों पर मार्ग का नियम।

यह प्रविष्टि अधिक विस्तार में है। इस प्रविष्टि में नदियों के अन्तर्देशीय जलमार्गों पर पोत परिवहन और नौपरिवहन शामिल किए जा सकते हैं जो कि पूर्णत: एक राज्य विशेष के भीतर हों। दूसरे शब्दों में, इसमें अन्तर-राज्य नदियों के अन्तर्देशीय जलमार्गों पर चलने वाले पोत परिवहन और जहाजरानी शामिल

है। अन्तर–राज्य नदियों के अन्तर्देशीय जलमार्गों पर पोत परिवहन और जहाजरानी पूरी तरह से राज्य पर निर्भर होगी जिसके सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय संसद को दखल देने का कोई अधिकार नही है अत: प्रविष्टि 24 की भाषा में परिशोधन किया जाना चाहिए। इसके अलावा "कानून के अनुसार संसद द्वारा राष्ट्रीय जलमार्ग के रूप में घोषित" को हटा दिया जाना चाहिए।

जो कथन हमने उपर कहा है उसके प्रकाश में, हम इस प्रकार आशोधन करने का सुझाव देते है : "प्रविष्टि 24 अन्तर-राज्य नदियों में अन्तर्देशीय जल-मार्गों पर पोत परिवहन और जहाजरानी; ऐसे जल मार्गों पर मार्ग सम्बन्धी नियम"।

"**प्रविष्टि 25**:—समुद्रीय पोतपरिवहन और नौपरिवहन, जिसके अन्तर्गत ज्वारीय जल में पोतपरिवहन और नौपरिवहन है, वाणिज्यिक समुद्री बेड़े के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा राज्यों और अन्य अभिकरणों द्वारा दी जाने वाली ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन।"

समवर्ती सूची में प्रविष्टि 25 के सन्दर्भ में सरकार के सुझावों को मद्देनजर रखते हुए सरकारी सुझाव है कि :—

प्रविष्टि 25 में "समुद्री वाणिज्य के लिए शिक्षण एवं, प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा राज्यों और अन्य एजेंसियों द्वारा प्रबन्ध किए गए ऐसे शिक्षण और प्रशिक्षण सम्बन्धी विनियम" इस वाक्यांश को हटा दिया जाए।

"**प्रविष्टि 30**:—रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा अथवा यन्त्र नोदित जलयानों में राष्ट्रीय जलमार्गों द्वारा यात्रियों और माल का वहन।"

चूंकि हमने प्रविष्टि 24 में परिवर्तन सुझाए थे अत: परिणामस्वरूप प्रविष्टि 30 में संशोधन किए जाने हैं, इसलिए "राष्ट्रीय" शब्द जो कि "द्वारा" और "जलमार्ग" के बीच है को शब्दांश "अन्तर्राज्यीय नदी" में बदल दिया जाए।

संशोधन के बाद, सुझाव यह है कि प्रविष्टि 30 को इस प्रकार पढ़ा जाए :—

"रेलवे, समुद्र अथवा वायुमार्ग या यांत्रिक रूप से नोदित पोतों में राष्ट्रीय जल मार्ग द्वारा यात्रियों और माल का वहन"।

"**प्रविष्टि 31**:—डाक–तार, टेलीफोन, बेतार, प्रसारण और वैसे ही अन्य संचार साधन।"

कृपया भाग IV में दिए हमारे प्रश्न 4-10 के उत्तर में दी गई अभ्युक्तियां देखें— "प्रशासनिक सम्बन्ध"

"**प्रविष्टि 32**:—संघ की सम्पत्ति और उससे राजस्व, किन्तु किसी राज्य में स्थित सम्पत्ति के सम्बन्ध में, वहां तक के सिवाय जहां तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध करे, उस राज्य के विधान के अधीन रहते हुए।"

अन्तिम वाक्यांश "बशर्ते कि संसद द्वारा कानून से अन्यथा कोई व्यवस्था न की गई हो" अनावश्यक है। वास्तव में ऐसा प्रावधान अनुच्छेद 285 में ही कर दिया गया है। अनुच्छेद 285 खण्ड (1) "बशर्ते कि संसद द्वारा कानून से अन्यथा कोई व्यवस्था न की गई हो" केन्द्र की सम्पत्ति को राज्य द्वारा या राज्य के ही अन्तर्गत किसी प्राधिकारी द्वारा लागू किए गए सभी करों से छूट दी जाएगी।" नामक पाठ्यांश का सन्दर्भ अवसर लिया जाता है। इस उपबंध के अलावा सरकार सुझाव देती है कि "बशर्ते कि संसद द्वारा कानून से अन्यथा कोई व्यवस्था न की गई हो" नामक अन्तिम वाक्यांश को हटा दिया जाए।

प्रविष्टि 33:—पहले से विद्यमान सम्पत्ति के अधिग्रहण और अर्जन की संकल्पना के संबंध में किए गए परिवर्ती उपबधों और चूंकि संविधान का अनुच्छेद 31 विशेष रूप से हटा दिया गया है की इस तथ्य को मद्देनजर रखते हुए यह सरकार प्रविष्टि की बनाए रखने का सुझाव देती है जो कि मूल रूप से नीचे बताए अनुसार पढ़ा जाता था :

"केन्द्र के प्रयोजनों से सम्पत्ति का अधिग्रहण और अर्जन"

प्रविष्टि 40:—"भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा संचालित लाटरियां"।

राज्य सरकार द्वारा आयोजित लाटरियां पूरी तरह स्थानीय मामला है। यह अपने आयाम या स्वरूप में राष्ट्रीय नहीं हो जाता। इसलिए संघ सूची में "राज्य सरकार द्वारा आयोजित लाटरियों" को बनाए रखने में कोई तुक नहीं है।

अत: सरकार सुझाव देती है कि "अथवा किसी राज्य की सरकार" नामक वाक्यांश प्रविष्टि 40 से हटा दिया जाना चाहिए और एक नई प्रविष्टि जैसे "किसी राज्य सरकार द्वारा आयोजित लाटरियां" राज्य सूची में शामिल कर ली जाए।

प्रविष्टि 45:—"बैंककारी"–संयुक्त राज्य और आस्ट्रेलिया जैसे अन्य परिसंघीय देशों में राज्यों में भी स्वशासित बैंक हैं। अत: बैंकिंग पूर्ण रूप से केन्द्र सरकार के अधिकार में नहीं दिए जाने चाहिए। हालांकि केन्द्रीय बैंक अर्थात् मुख्य बैंक जो सामान्यत: अन्य बैंकों के लिए नियम और विनियम निर्धारित करता है और जो सामान्यत: अर्थशास्त्रियों द्वारा संघ सूची में बैंकरों के बैंक के रूप में प्रतिष्ठित है। अत: हम सुझाव देते हैं कि प्रविष्टि 45 में "बैंकिंग" शब्द को "केन्द्रीय बैंक अथवा रिजर्व बैंक" शब्द में बदल दिया जाए।

सरकार सुझाव देती है कि प्रविष्टि "बैंकिंग" को समवर्ती सूची में स्थानान्तरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 48:— "स्टॉक एक्सचेंज और वायदा बाजार" स्टॉक एक्सचेंजों और वायदा बाजारों के मामले में चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाए वे अनिवार्य रूप से अन्तर राज्यीय स्वरूप के होंगे, जो स्वाधीन वाणिज्य और व्यापारी वस्तुओं से सम्बन्धित होंगे, उनको संघसूची में रखने की आवश्यकता नहीं है। हम सुझाव देते हैं कि यह प्रविष्टि जहां तक इसका संबंध "वायदा बाजारों" से है राज्य सूची में स्थानान्तरित कर दिए जाने चाहिए।

"**प्रविष्टि–51** : भारत से बाहर निर्यात किए जाने वाले या एक राज्य से दूसरे राज्य को परिवहन किए जाने वाले माल की क्वालिटी के मानक नियत करना"

प्रविष्टि 51 में, सरकार सुझाव देती है कि "अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजे गए" अभिव्यक्ति को हटा दिया जाए। यह इसलिए है कि प्रत्येक राज्य अन्य राज्यों से खरीदे जाने वाले सामान की किस्म को अपने आप आंक सकता है और उनके द्वारा बाहर भेजे जाने वाले सामान को स्वीकृत करने का निर्णय सम्बन्धित राज्यों के स्वविवेक पर छोड़ा जाना चाहिए।

सरकार का विचार है कि प्रविष्टि 51 को "भारत से बाहर निर्यात किए जाने वाले सामान के लिए किस्म का नामक स्थापित करना" के रूप से पढ़ा जाए।

"**प्रविष्टि 52**:—वे उद्योग जिनके सम्बन्ध में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि उन पर संघ का नियन्त्रण लोकहित में समीचीन है।"

52 के अन्तर्गत "उद्योग, केन्द्र द्वारा जिनका नियन्त्रण, लोकहित में कानून द्वारा संसद में समयोचित घोषित" संसद की पूर्ण विधायी क्षमता के अन्तर्गत आती है। उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 इस प्रविष्टि के सन्दर्भ में पारित किया गया है। परन्तु संसद ने अनेक मदें उद्योग (विकास और विनियमन अधिनियम, 1951 के अधिकार क्षेत्र में ले ली है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि सूची II को प्रविष्टि 24 के अन्तर्गत विधायी शक्ति, अर्थात् उद्योग सूची I की 7 और 52 प्रविष्टियों में किए गए प्रावधान के अधीन, वास्तव में उस सीमा तक अप्रभावी हो जाती है जिस सीमा तक संसद ने किसी उद्योग को उद्योग (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1951 या प्रविष्टि 52 के अन्तर्गत किसी अन्य अधिनियम के अधिकार क्षेत्र में नियन्त्रित उद्योग के रूप में शामिल कर लिया है जिसके बारे में राज्य विधानमण्डल कानूनी रूप से असक्षम है। यह इस आशय से अवांछनीय है। संविधान के परिसंघीय गठन को प्रभावित करता है कि राज्य विधान मण्डल को सूची I की प्रविष्टि 52 के अन्तर्गत संसद द्वारा अधिनियमित अधिनियमों के अन्तर्गत आने वाले नियन्त्रित उद्योगों के सम्बन्ध में असक्षम बना देता है।

इसके अलावा "लोकहित में" अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि कोई और हर एक उद्योग प्रविष्टि 52 के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जा सकता है। इसलिए तमिलनाडु सरकार का यह दृढ़ विचार है कि "राष्ट्रीय विकास" के लिए निर्णायक महत्वपूर्ण मुख्य उद्योग का उल्लेख प्रविष्टि में ही निर्दिष्ट कर दिया जाना चाहिए। प्रविष्टि 52 को नीचे उल्लिखित रूप में पढ़ा जाए :—

"52, नीचे निर्दिष्ट उद्योग :—

1. **धात्विक उद्योग :**
   - (क) अयस्क (लोहा)
     - (1) लोहा और इस्पात (धातु)
     - (2) अयस्क–मिश्र धातु

(3) लोहे और इस्पात की ढाली हुई वस्तुएं और फोर्जिंग

(4) लोहे और इस्पात के ढांचे

(5) लोहे और इस्पात की पाइपें

(6) विशिष्ट इस्पात

(7) लोहे और इस्पात के अन्य उत्पाद

(ख) अलोह:

(1) बहुमूल्य धातुएं, जिसमें सोना और चांदी तथा उसकी मिश्र धातुएं शामिल हैं।

(2) अन्य अलोह धातुएं और उनकी मिश्र धातुएं।

(3) अर्ध विनिर्मित वस्तुएं और विनिर्मित वस्तुएं।

2. ईंधन:

(1) कोयला, लिग्नाइट, कोक और उनसे तैयार वस्तुएं।

(2) खनिज तेल (अपरिष्कृत तेल), मोटर और विमानन में इस्तेमाल होने वाला स्पिरिट, डीजल तेल, मिट्टी का तेल, ईंधन तेल, डाइवर्स हाइड्रो कार्बन तेल तथा उनके प्रकार (ब्लेंड) जिसमें सिंथेटिक ईंधन, स्नेहक तेल और इसी प्रकार की वस्तुएं शामिल हैं।

(3) ईंधन गैस (कोयला गैस, प्राकृतिक गैस और उसी प्रकार के अन्य गैस)।

3. भाप पैदा करने वाले संयंत्र: (भाप पैदा करने वाले संयंत्र)

4. प्राइम मूवर्स (विद्युत जनित्रों के अलावा)

(1) भाप इंजिन और टरबाईन

(2) आन्तरिक ज्वलनशील इंजिन

5. दूर संचार:

(1) टेलीफोन

(2) टेलीग्राफ उपस्कर

(3) बेतार संचार उपकरण

(4) रेडियो रिसीवर, जिसमें संवर्धन (एम्पलीफाइंग) और लोक सम्बोधन व्यवस्था शामिल है।

(5) टेलीविजन सैट

(6) टेलीप्रिंटर

6. परिवहन व्यवस्था:

1. वायुयान
2. ऐसे पोत और अन्य जहाज जो शक्ति चालित हैं।
3. रेलवे लोकोमोटिव
4. रेलवे माल-डिब्बा

7. उर्वरक:

1. अजैव-उर्वरक
2. जैव उर्वरक
3. मिश्रित उर्वरक

8. रसायन (उर्वरकों के अलावा):

1. कोलतार आसवित उत्पाद जैसे कि नैफ्थालिन-ए-थासीन और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं।
2. विस्फोटक पदार्थ जिसमें बारुद पाउडर, सुरक्षा फ्यूज शामिल हैं।

9. कागज और लुग्दी जिसमें कागज से बनी वस्तुएं शामिल हैं:

1. कागज लिखने वाला, मुद्रण और रैपिंग कागज
2. न्यूजप्रिंट
3. लुग्दी-लकड़ी की लुग्दी यांत्रिक रसायनिक जिसमें घुलन शील लुग्दी भी शामिल है।

10 चीनी:

चीनी

11 रबड़-उद्योग:

रबड़ और वाल्व

इन विनिर्देशनों को भी राष्ट्रीय विकास या मुख्य उद्योगों के लिए संकट-कालीन महत्व के उद्योगों तक सीमित कर दिया जाना चाहिए। अतः सूची की प्रविष्टि 24 को नीचे लिखे अनुसार पढ़ा जाए:—

"सूची I की प्रविष्टि 7 और 32 में विनिर्दिष्ट उद्योगों के अलावा उद्योग"

प्रविष्टि 53, 54 और 55:—

"प्रविष्टि 53:—तेल क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पदा का विनियमन और विकास, पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पाद, अन्य द्रव और पदार्थ जिनके विषय में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि वे खतरनाक रूप से ज्वलनशील हैं।"

"प्रविष्टि 54:—उस सीमा तक खानों का विनियमन और खनिजों का विकास जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद् विधि द्वारा, लोकहित में समीचीन घोषित करे।"

प्रविष्टि 55: "खानों और तेल क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा की विनियमन"।

प्रविष्टि 56:—उस सीमा तक अन्तराज्यिक नदियां और नदी घाटियों का विनियमन और विकास जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियम और विकास को संसद विधि द्वारा लोकहित में समीचीन घोषित करे।"

इस प्रविष्टि को मद्दे नजर रखते हुए सरकार ने पहले ही अपने विस्तार प्रस्तुत कर दिए हैं। यह सरकार सुझाव देती है प्रविष्टि 56 को नीचे लिखे अनुसार पढ़ा जाए:—

"56:—अन्तर राज्यीय नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास, अन्तर्राज्यीय नदियों के पानी का भारत के किसी भी राज्य के किसी भी भाग में दिया परिवर्तन और राज्यों के बीच उन अन्तर्राज्यीय नदियों के पानी के भाग का प्रभाजन, (इसमें राज्यों के भीतर किया जाने वाला इस्तेमाल शामिल नहीं है) उस सीमा तक किया जाएगा जिस सीमा तक इन विनियमों, विकास, दिशा परिवर्तन और प्रभाजन के संबंध में लोक हित में कानून के तहत संसद द्वारा इनको केन्द्र के नियंत्रणाधीन समयोजित घोषित किया हो"।

प्रविष्टि 58:— "संघ के अभिकरणों द्वारा नमक का विनिर्माण, प्रदाय और वितरण, अन्य अभिकरणों द्वारा किए गए नमक के विनिर्माण, प्रदाय और वितरण का नियमन और नियन्त्रण।"

इस प्रविष्टि में "अन्य एजेंसियों द्वारा विनिर्माण का विनियमन और नियंत्रण तथा नमक की पूर्ति और संवितरण" पूरी तरह स्थानीय क्रियाकलाप है। इस मद का प्रविष्टि 58 में शामिल किया जाना शक्तियों के वितरण के मूल सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करता है। अत: इस वाक्यांश को प्रविष्टि 58 से हटा दिया जाए।

सरकार सिफारिश करती है कि प्रविष्टि 58 को इस प्रकार पढ़ा जाए: "संघीय एजेंसियों द्वारा नमक का विनिर्माण, पूर्ति और वितरण।"

प्रविष्टि 60:—"प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्मों को मंजूरी।"

यह प्रविष्टि सूची II में इस औचित्य से दी गई है कि राज्य विधान मण्डल को इससे संबंधित सभी जटिलताओं पर कानूनी अधिकार प्राप्त हो। केन्द्र द्वारा नामित सेंसर बोर्ड द्वारा सेंसर की जाने वाली वर्तमान पद्धति, जिसमें संभव है कि प्रत्येक राज्य को प्रत्यावेदन के लिए पर्याप्त सुविधा दे दी गई हो कि नहीं, यह ऐसा मुद्दा है कि जिसके संबंध में इस प्रविष्टि के वास्तविक तात्पर्य पर विचार करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। भारत के पास अब प्रत्येक राज्य के संबंधित विशिष्ट रीतिरिवाजों, संस्कृती, व्यवहारों और आदतों के आधार पर एक भाषाई आधार हो गया है। यहां तक कि कई बार विश्वास भी मूलतः भिन्न होते हैं। चलचित्र दर्शी (सिने कैमरा) प्रदर्शनी का इन दिनों संचार और सूचना के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान है। विभिन्न रुचियों, अलग-अलग संस्कृति, हमारे देश के प्रत्येक राज्य की जनता की मोरेक संबंधी आदतों को ध्यान में रखते हुए प्रदर्शनी के लिए-चलचित्र-दर्शी

फिल्मों की मंजूरी का अधिकार राज्यों के नियंत्रण और पर्यवेक्षण अधीन होना चाहिए और न कि संसद विधान का विषय बनाया जाना चाहिए ।

सरकार का सुझाव है कि यह प्रविष्टि, राज्यों के स्वतंत्र विकासात्मक विवेक को ध्यान में रख कर विचार करते हुए, राज्य सूची में स्थानांतरित कर दी जाए ।

"प्रविष्टि 62 :—इस संविधान के प्रारम्भ पर राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, इम्पीरियल युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक और भारतीय युद्ध स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं और भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या भागत: वित्तपोषित और संसद द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैसी ही कोई अन्य संस्था ।"

इससे पूर्व कही गई हमारी टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए सरकार सिफारिश करती है कि :—

प्रविष्टि 62 से विलोपन, अंतिम वाक्यांश "या अंशत: और जिन्हें कानून के तहत संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के संस्थान घोषित किया गया है ।"

प्रविष्टि 63 :— "इस संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं, अनुच्छेद 371 ङ के अनुसरण में स्थापित विश्वविद्यालय, संसद द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्था ।"

प्रविष्टि 63 में सरकार अन्तिम वाक्यांश को हटा दिए जाने की सिफारिश करती है "अन्य संस्थान जिन्हें कानून के तहत संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के संस्थान घोषित किया गया है ।"

प्रविष्टि 64 :— "भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या भागत: वित्तपोषित और संसद द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्थाएं ।"

प्रविष्टि 64 में सरकार सिफारिश करती है कि अन्तिम वाक्यांश "या अंशत: वित्त पोषित है और कानून के तहत जिन्हें संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के संस्थान घोषित किया गया है" को हटा दिया जाए ।

प्रविष्टि 66 :— "उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का समन्वय और अवधारण ।"

"उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान के लिए यथापित संस्थानों और वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थानों में समेकन और मानकों का निर्धारण ।"

प्रविष्टि 67 :—"संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष ।"

सरकार का विचार है कि इन दोनों प्रविष्टियों को राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए ।

प्रविष्टि 76 :—"संघ के और राज्यों के लेखाओं की लेखापरीक्षा ।"

राज्यों के लेखों की लेखापरीक्षा राज्य सूची में रखी जानी चाहिए । अत: सरकार सिफारिश करती है कि :—

प्रविष्टि 76 में, "और राज्यों के" के शब्द को हटा दिया जाना चाहिए ।

प्रविष्टि 84 :— "भारत में विनिर्मित या उत्पादित तम्बाकू और अन्य माल पर उत्पाद-शुल्क जिसके अन्तर्गत" —

(क) मनुष्य द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली शराब;

(ख) अफीम, भारतीय चरस और अन्य नशीली दवाइयां और नशीले पदार्थ;

परन्तु इसमें ऐसे औषधीय और प्रसाधन सम्पाक शामिल हैं जिनमें इस प्रविष्टि के उप-पैरा (ख) में दिए गए नशीले या कोई भी अन्य पदार्थ शामिल है ।"

शराब (ऐलकोहोल) या कोई भी पदार्थ जिसमें मादक द्रव्य शामिल हों, से तैयार की गई दवाइयां और प्रसाधन सम्पाकों पर उत्पाद-शुल्क वसूल करने का अधिकार औचित्य से राज्य विधान मण्डल के नियंत्रणाधीन होना चाहिए । यह ध्यान दिया जाए कि राज्य सूची की प्रविष्टि 51 के अन्तर्गत मनुष्य द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली शराब और अफीम, भारतीय चरस और अन्य नशीली दवाएं व नशीले पदार्थों पर उत्पाद शुल्क वसूल करने का अधिकार पूरी तरह केवल राज्य विधानमण्डल को दिया गया है । परन्तु उस प्रविष्टि में वे औषधीय और प्रसाधन सम्पाक जिनमें ऐलकोहॉल या अफीम, भारतीय चरस और अन्य नशीली दवाएं व नशीले पदार्थों के कोई भी तत्व निहित हैं, को शामिल नहीं किया गया है । इनका शामिल किया जाना (यानी अपवर्जन) आवश्यक नहीं है । अत: सरकार सिफारिश करती है कि :

राज्य सूची की प्रविष्टि 51 में अपवर्जन अंश को हटा दिया जाए, और संघ सूची की प्रविष्टि 84 में से अन्तर्वेशन अंश को हटा दिया जाए ।

प्रविष्टि 85 :— "निगम-कर"

इस प्रविष्टि के संबंध में भाग V के "वित्तीय संबंध" में दिए गए हमारे सुझावों का संदर्भ देखें ।

प्रविष्टि 90 :— "स्टॉक एक्सचेंजों और वायदा बाजारों में संव्यवहारों पर स्टॉम्पशुल्क से भिन्न कर"। प्रविष्टि 48 के संबंध में दी गई हमारी टिप्पणी के विचार में अभिव्यक्ति "और भावी बाजार" को हटा दिया जाए और "भावी बाजारों पर कर" अभिव्यक्ति को राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए ।

प्रविष्टि 97 :— "कोई अन्य विषय जो सूची 2 या सूची 3 में प्रगणित नहीं है और जिसके अंतर्गत कोई ऐसा कर है जो उन सूचियों में से किसी सूची में उल्लिखित नहीं है ।"

यह प्रविष्टि अनुच्छेद 248 की उपनिगमन स्वरूप लगती है । हमारा सुझाव है कि अनुच्छेद 248 के संबंध में कार्रवाई करते समय, अनुच्छेद 248 और प्रविष्टि 97 दोनों को ही हटा दिया जाए और एक नई प्रविष्टि 67 को राज्य सूची में शामिल कर दिया जाए —इस संबंध में अनुच्छेद 248 के अन्तर्गत दिए गए हमारे सुझाव देखें । सिफारिशों और सुझावों को मद्देनजर रखते हुए, अनुच्छेद 248 के संदर्भ में कार्रवाई करते समय सरकार का पुन: यह कहना है कि :

प्रविष्टि 97 और अनुच्छेद 248 दोनों को हटा दिया जाए ।

सूची-II राज्य सूची

प्रविष्टि 1—"लोक व्यवस्था (किन्तु इसके अन्तर्गत सिविल शक्ति की सहायता के लिए नौसेना, सेना या वायु सेना या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल का या उसकी किसी टुकड़ी या यूनिट प्रयोग नहीं)"

प्रविष्टि 1 में पूर्ण अभिव्यक्ति "या संघ या अन्य किसी सेना जो केन्द्र के नियंत्रणाधीन हो की अन्य कोई भी सशस्त्र सेना" को हटा दिया जाए । वास्तव में, इस उपबंध को अधिकत: संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा लागू कर दिया गया था । इस अभिव्यक्ति को हटा दिए जाने के बाद प्रविष्टि 1 को इस प्रकार पढ़ा जाएगा :

"सरकारी आदेश (परन्तु इसमे सिविल शक्ति की सहायतार्थ इसमे कोई भी नौसेना, सेना या वायुसेना या उसकी कोई सैन्य टुकड़ी या यूनिट का इस्तेमाल शामिल नहीं है ।"

प्रविष्टि 2—सूची I की प्रविष्टि 2क के उपबन्धों के अधीन रहते हुए पुलिस (जिसके अन्तर्गत रेल और ग्राम पुलिस है) ।

प्रविष्टि 2 में, अभिव्यक्त "सूची I की प्रविष्टि 2 के उपबंधों की शर्त के अधीन" को हटा दिया जाए । इस अभिव्यक्ति को हटा दिए जाने के बाद प्रविष्टि 2 इस प्रकार पढ़ी जाएगी :

"पुलिस (रेलवे और ग्रामीण पुलिस सहित)"

प्रविष्टि 12—राज्य द्वारा नियन्त्रित या वित्तपोषित पुस्तकालय, संग्रहालय या वैसी ही अन्य संस्थाएं, संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित किए गए प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारकों और अभिलेखों से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेख ।

प्रविष्टि 12 में अभिव्यक्त "कानून के तहत या संसद द्वारा राष्ट्रीय महत्व के घोषित किया गया हो" को हटा दिया जाए । बाद में सरकार की इस सिफारिश पर कि प्रविष्टि 67 को संघ सूची से राज्य सूची में स्थानान्तरित कर दिया जाए, तो प्रविष्टि 12 को इस प्रकार पढ़ा जाएगा —

"राज्य द्वारा नियंत्रित या वित्त पोषित पुस्तकालय संग्रहालय और अन्य इसी प्रकार के संस्थान, प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्वीय स्थान और खण्डहर।"

नई प्रविष्टि 12-ए —इस सरकार की सिफारिश के परिणामस्वरूप कि प्रविष्टि 66 को संघ सूची से राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए और नीचे उल्लिखित प्रविष्टि को प्रविष्टि 12 के बाद लिखा जाए :—

"12-ए उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान के संस्थानों में मानकों का समन्वय और निर्धारण और वैज्ञानिक तथा तकनीकी संस्थान ।"

प्रविष्टि 13—संचार साधन, अर्थात् सड़कें, पुल, फेरी और अन्य संचार साधन जो सूची 1 में विनिर्दिष्ट नहीं हैं; नगरपालिका ट्राम, रज्जुमार्ग, अन्तर्देशीय जलमार्ग और उन पर यातायात, यंत्र नोदित यानों से भिन्न यान ।

प्रविष्टि 13 में, अभिव्यक्त "इन जल मार्गों के संबंध में सूची–I और सूची-III के उपबंधों की शर्तों के अधीन" को हटा दिया जाए ।

तब प्रविष्टि 13 को इस प्रकार पढ़ा जाएगा :

"संचार, यानी कि सड़कें, पुल नौकाएं और वे अन्य संचार साधन जो सूची I में विनिर्दिष्ट न हो और नगरपालिका ट्राम-पथ, रज्जुमार्ग अन्तर्देशीय जलमार्ग, अन्तर्राज्यीय नदियां और उस पर चलने वाला यातायात तथा यांत्रिक नोदन वाहनों सहित वाहन ।"

प्रविष्टि 24 — इस संबंध में कृपया सूची I की प्रविष्टि 52 के अन्तर्गत दी गई हमारी टिप्पणी देखें ।

प्रविष्टि 26—"सूची III की प्रविष्टि 33 के उपबंधों की शर्त के अधीन राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य ।"

प्रविष्टि 26 का जहां तक संबंध है, सरकार ने निर्णय किया है कि समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 को राज्य सूची में लाया जाए और इसलिए प्रविष्टि 26 को नीचे लिखे अनुसार पढ़ा जाए :

"नीचे उल्लिखित मुद्दों के संबंध में व्यापार और वाणिज्य सहित राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य :

(क) किसी भी उद्योग के उत्पादन और इसी प्रकार के उत्पादनों की किस्म की आयातित वस्तुएं,

(ख) तेल और तिलहनों सहित खाद्य पदार्थ,

(ग) खली सहित पशु-चारा और अन्य सान्द्र,

(घ) कच्ची कपास, ओटाई हुई या बिना ओटाई हुई और बिनौले; तथा

(ङ) कच्चा-पटसन ।"

प्रविष्टि 27—"सूची III की प्रविष्टि 33 के उपबंधों के अधीन रहते हुए "माल का उत्पादन प्रदाय और वितरण ।"

प्रविष्टि 27 में भी सरकार द्वारा सूची III की प्रविष्टि 33 के उपबंधों को लाने का निश्चय किया गया था और प्रविष्टि 24 को नीचे बताए गए रूप में पुनः इस प्रकार पढ़ा जाएगा :

"निम्नलिखित के उत्पादन, पूर्ति और वितरण में माल का उत्पादन, पूर्ति और वितरण शामिल है :—

(क) किसी भी उद्योग के उत्पादन इसी प्रकार के उत्पादनों की किस्म की आयातित वस्तुएं;

(ख) खाद्यान्न जिसमें खाद्य तेल और तिलहन शामिल हैं,

(ग) खली सहित पशु चारा और सान्द्र;

(घ) कच्ची कपास, ओटाई हुई या बिना ओटाई हुई तथा बिनौले; और

(ङ) कच्चा पटसन ।"

प्रविष्टि 33—"नाट्यशाला और नाट्यप्रदर्शन; सूची I की प्रविष्टि 60 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, सिनेमा; खेलकूद, मनोरंजन और आमोद ।"

प्रविष्टि 33 में "अभिव्यक्त सूची I की प्रविष्टि 60 में उपबंधों के अधीन" को हटा दिया जाए । इस वाक्यांश को हटा दिए जाने के बाद प्रविष्टि 33 को इस प्रकार पढ़ा जाए :

"थिएटर और नाट्य प्रदर्शन, सिनेमा, खेलकूद, मनोरंजन और कौतुक प्रदर्शन ।"

प्रविष्टि 33-ए—संघ सूची की प्रविष्टि 60 के अन्तर्गत हमारी टिप्पणी को मद्दे नजर रखते हुए सरकार यह सुझाव देती है कि एक नई प्रविष्टि 33-ए जो इस प्रकार पढ़ी जाए : "प्रदर्शन के लिए चल चित्रदर्शी फिल्मों की मंजूरी ।"

प्रविष्टि 33-बी—प्रश्न 4.10 के अन्तर्गत हमारी टिप्पणी को मद्दे नजर रखते हुए यह सरकार एक नई प्रविष्टि 33-बी का सुझाव देती है जो "प्रसारण एवं टेलीविज" पढ़ी जाए ।

प्रविष्टि 36—यह सरकार मूल प्रविष्टि 36 को पुनःस्थापित करने का सुझाव देती है जिसमें खण्ड "सूची III की प्रविष्टि 42 के उपबंधों के अधीन" हटाने के अलावा ।

प्रविष्टि 36 को इस प्रकार पढ़ा जाए :—

"सम्पत्ति का अर्जन और मांग केन्द्र के प्रयोजन से अतिरिक्त ।"

प्रविष्टि 51—राज्य में विनिर्मित या उत्पादित निम्नलिखित माल पर उत्पादशुल्क और भारत में अन्यत्र विनिर्मित या उत्पादित वैसे ही माल पर उसी दर या निम्नतर दर से प्रतिशुल्क :

(क) मानवीय उपभोग के लिए ऐल्कोहाली लिकर,

(ख) अफीम, इण्डियन हेम्प और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक पदार्थ,

किन्तु जिसके अन्तर्गत ऐसी औषधीय और प्रसाधन निर्मितियां नहीं हैं जिनमें ऐल्कोहाल या इस प्रविष्टि के उपपैरा (ख) का कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट है ।

सूची I में प्रविष्टि 84 के संबंध में हमारे सुझावों को मद्दे नजर रखते हुए प्रविष्टि 51 को इस प्रकार पढ़ा जाए:—

"राज्य में विनिर्मित या उत्पादित निम्नलिखित सामान पर उत्पाद शुल्क तथा प्रतिकारी शुल्क और भारत में अन्य स्थानों में विनिर्मित या उत्पादित इसी प्रकार के सामान पर निचली दरें ।

(क) मनुष्य द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला मादक द्रव्य,

(ख) अफीम, भारतीय चरस और अन्य नशीली दवाइयां और नशीले पदार्थ ।"

प्रविष्टि 57—"सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सड़कों पर उपयोग के योग्य यानों पर कर, चाहे वे यन्त्र नोदित हों या नहीं, जिनके अंतर्गत ट्रामकार हैं ।"

अभिव्यक्ति "सूची III की प्रविष्टि 35 के उपबंधों के अधीन" को हटा दिया जाए ।

उपर्युक्त अभिव्यक्ति हटा लिए जाने के बाद प्रविष्टि 57 इस प्रकार पढ़ी जाएगी ।

"वाहनों पर कर चाहे वे यांत्रिक रूप से नोदित हों या नहीं परन्तु ट्रामकारों सहित सड़कों पर इस्तेमाल के लिए उपयुक्त हों ।"

सरकार नीचे लिखे अनुसार एक नई प्रविष्टि को शामिल किए जाने की भी सिफारिश करती है :

"प्रविष्टि 57-ए—यांत्रिक रूप से नोदित वाहनों पर कर जिनमें सिद्धान्त शामिल हैं जिन पर इस प्रकार के वाहनों पर कर की वसूली की जाती है।"

सूची III-समवर्ती सूची

सरकार का विचार है कि समवर्ती सूची, जिसका उद्देश्य विधान में एकरूपता बनाए रखना है और इसके अलावा उन मामलों तक सीमित है जो अखिल भारतीय महत्व के हैं और जिनमें पूरे देश का हित है तथा इसे कम से कमतर कर अन्य प्रविष्टियों को राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 3. किसी राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था बनाए रखने या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं को बनाए रखने सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध; इस प्रकार निरोध में रखे गए व्यक्ति।

सरकार का विचार है कि उद्धृत "अथवा समुदाय के लिए आवश्यक पूर्ति और सेवाओं का अनुरक्षण" को छोड़ कर शेष प्रविष्टि सूची II में अंतरित की जा सकती है। राज्य सूची में..

एक नई प्रविष्टि 1-ए के रूप में जोड़ दी जाए जो इस प्रकार पढ़ी जाए:—

"प्रविष्टि 1-ए:- राज्य की सुरक्षा से संबद्ध या सार्वजनिक सुव्यवस्था से संबंधित कारणों के लिए निवारण निरोध (सूची II,) ऐसे निरोध से संबंधित व्यक्ति"

उपर्युक्त आशोधन के बाद, मौजूदा प्रविष्टि 3 को इस प्रकार पढ़ा जाए :

"समुदाय के लिए आवश्यक पूर्ति और सेवाओं के अनुरक्षण से संबंधित कारणों के लिए निवारक निरोध; ऐसे निरोध से संबंधित व्यक्ति।"

प्रविष्टि 4. बंदियों, अभियुक्त व्यक्तियों और इस सूची की प्रविष्टि 3 में विनिर्दिष्ट कारणों से निवारक निरोध में रखे गए व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना।

इस प्रविष्टि को इस शर्त के अधीन राज्य सूची में अंतरित किया जाना चाहिए कि एक राज्य से दूसरे राज्य को अंतरित किए जाने वाले बंदियों को दूसरे राज्य की अनुमति से अंतरित किया जाना चाहिए।

प्रविष्टि 5. विवाह और विवाह-विच्छेद; शिशु और अवयस्क; दत्तक-ग्रहण; विल, निर्वसीयतता और उत्तराधिकार; अविभक्त कुटुम्ब और विभाजन; वे सभी विषय जिनके सम्बन्ध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्षकार इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अपनी स्वीय विधि के अधीन थे।

यह प्रविष्टि अपने पूर्ण रूप में राज्य सूची में अंतरित कर दी जाए क्योंकि इस प्रविष्टि से संबद्ध विषय वस्तु का राज्य की प्रजा की स्वकानून पर निश्चयात्मक प्रभाव पड़ता है। स्वीय-कानून निःसंदेह एक राज्य से दूसरे राज्य के लिए भिन्न होता है।

"अनुयोज्य दोष"

प्रविष्टि 8: सरकार सुझाव देती है कि इस प्रविष्टि को अधिक बेहतर प्रशासनिक दक्षता के लिए राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 10: "न्यास और न्यासी"

और

प्रविष्टि 11 : "महा-प्रशासक और शासकीय न्यासी"

सरकार सुझाव देती है कि इन प्रविष्टियों को अधिक बेहतर प्रशासनिक दक्षता के लिए राज्य सूची के स्थानांतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 11क : न्याय प्रशासन, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों का गठन और संगठन।

यह प्रविष्टि 3 जनवरी, 1977 से संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा शामिल की गई। इस प्रविष्टि को राज्य सूची में प्रविष्टि 3 के रूप में उसी प्रकार रखा जाए जैसे कि मूलतः यह 3 जनवरी, 1977 से पूर्व थी। इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची में लाए जाने का कोई औचित्य नहीं है। ऐसा आपातकाल-अवधि के दौरान किया गया था और अब इसके समवर्ती सूची में रखे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रविष्टि को राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए और प्रविष्टि 3-ए संख्या दी जाए।

प्रविष्टि 15 : इस प्रविष्टि को राज्य सूची में स्थानांतरित किया जा सकता है ('प्रविष्टि 9-ए)।

प्रविष्टि 16 : पागलपन और मानसिक हीनता, जिसके अन्तर्गत पागलों और मानसिक रूप से हीन व्यक्तियों को ग्रहण करने या उनका उपचार करने के स्थान हैं।

इस प्रविष्टि में ऐसी विषयवस्तु है जो पूर्णतः स्थानीय किस्म की है। इसलिए, प्रविष्टि 16 को राज्य सूची में स्थानांतरित किया जा सकता है और उसे प्रविष्टि 9-बी की संख्या दी जा सकती है।"

प्रविष्टि 17 : "पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण" इस प्रविष्टि में "पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण" के संबंध में चर्चा की गई है अतः यह भी स्थानीय विषय-वस्तु है। इसलिए इस प्रविष्टि को राज्य सूची में स्थानांतरित किया जा सकता है और प्रविष्टि 15-ए के रूप में जोड़ा जा सकता है।

प्रविष्टि 17-ए : "वन" :—"वन" जो कि 3 जनवरी, 1977 से संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा समवर्ती सूची में शामिल कर दिया था उसे पुनः राज्य सूची में दर्ज कर लिया जाए। इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची में रखे जाने का कोई भी औचित्य नजर नहीं आता। 3 जनवरी, 1977 तक जो स्थिति थी, कि "वन" राज्यविधान के अन्तर्गत थे। अतः सरकार सिफारिश करती है कि राज्य सूची की प्रविष्टि 19 को उसी में रहने दिया जाए।

प्रविष्टि 17-बी : "वन्य जीवजन्तुओं और पक्षियों का संरक्षण"

यह प्रविष्टि 3 जनवरी, 1977 से संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा शामिल की गई। 3 जनवरी, 1977 तक यह विषय-वस्तु पूर्णतः राज्य सूची की मूल प्रविष्टि 20 के संदर्भानुसार राज्य विधान-मण्डल के अधिकार में थी। इसलिए सरकार का सुझाव है कि :

प्रविष्टि 17 बी को, राज्य सूची की प्रविष्टि 20 के रूप में ही रखा जाए।

प्रविष्टि 19 : अफीम के सम्बन्ध में सूची I की प्रविष्टि 59 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, मादक द्रव्य और विष।

सूची I की प्रविष्टि 52 के संबंध में उल्लेख करते समय हम पहले ही इस बात की व्याख्या कर चुके हैं कि यहां तक कि ऐसा (एल्कोहल) मादक द्रव्य जिसे किसी भी रूप में मादक पेय में आधार बनाया गया हो राज्य का मुद्दा है। इस प्रविष्टि को राज्य सूची में शामिल किया जाना इस बात को भी औचित्य पूर्ण ढंग से स्पष्ट करता है कि इस प्रविष्टि में शामिल मुद्दों के संबंध में कार्रवाई करने में राज्य सरकार अधिक अच्छी स्थिति (सक्षम) में है।

अतः हम सुझाव देते हैं कि इस प्रविष्टि को राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए और इसे राज्य सूची की प्रविष्टि 8-ए के रूप में रखा जाए।

प्रविष्टि 22 : व्यापार संघ; औद्योगिक और श्रम विवाद।

प्रविष्टि 23 : "सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा"; रोजगार नियोजन ----- और बेकारी।"

प्रविष्टि 24 : श्रमिकों का कल्याण, जिसके अन्तर्गत कार्य की दशएं, भविष्य निधि, नियोजक का दायित्व, कर्मकार प्रतिकर, अशक्तता और वार्धक्य पेंशन और प्रसूति सुविधाएं हैं।

इन प्रविष्टियों की विषयवस्तु उचित रूप से राज्य-विधान मण्डल से संबंधित विषयवस्तु है। चूंकि राज्य सरकार इन प्रविष्टियों में शामिल मामलों के संबंध में उनके महत्व को अधिक अच्छी तरह समझ सकती है इसलिए इन प्रविष्टियों को राज्य सूची में रूपांतरित कर दिया जाए और इन्हें क्रमश: प्रविष्टि 10 ए, 10बी और 10सी की संख्या दी जाए।

प्रविष्टि 25 : सूची 1 की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, शिक्षा जिसके अन्तर्गत तकनीकी शिक्षा, आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय हैं; श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण।

इस प्रविष्टि को राज्य सूची में प्रविष्टि 11 के रूप में स्थानांतरित कर दिया जाए।

सरकार यह सुझाव भी देती है कि प्रविष्टि 11-ए के रूप में एक नई प्रविष्टि राज्य सूची में शामिल की जाए और उसे इस प्रकार पढ़ा जाए :

प्रविष्टि 11 ए : व्यापारी बेड़े के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण व्यवस्था और राज्यों और अन्य एजेंसियों द्वारा उपलब्ध इस शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए विनियमन।"

प्रविष्टि 27 : भारत और पाकिस्तान डोमिनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल निवास स्थान से विस्थापित व्यक्ति की सहायता और पुनर्वास।

सरकार सुझाव देती है कि :

अभिव्यक्ति "भारत और पाकिस्तान का अधिक्षेत्र बनाए जाने के कारण" को हटा दिया जाए।

प्रविष्टि 28 : पूर्त कार्य और पूर्त संस्थाएं, पूर्त और धार्मिक विन्यास और धार्मिक संस्थाएं।

तमिलनाडु राज्य में विशेष रूप से विभिन्न हितकारी – विधान चल रहे हैं और परोपकारी और धार्मिक धर्मस्व निधियां और धार्मिक संस्थानों के अच्छे प्रशासन चालन के संबंध में कई पालिसियां चल रही हैं। यहां तक कि हमारे संविधान के लागू होने से पूर्व इस प्रकार के विषय पूर्णत: संविधानी यूनिटों के अन्तर्गत थे इसलिए इस प्रविष्टि को राज्य सूची में स्थानांतरित करना औचित्यपूर्ण होगा और इसी सूची में इसे प्रविष्टि 34-ए की संख्या दी जाए।

प्रविष्टि 30 : जन्म-मरण सांख्यिकी, जिसके अन्तर्गत जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण है।

तमिलनाडु में जन्म और मृत्यु के पंजीकरण के संबंध में स्थानीय अधिनियम है। केन्द्र द्वारा इस स्थानीय अधिनियम पर रोक लगाने का मात्र इतना ही अभिप्राय है कि राज्य में जो पहले से अधिनियम चला आ रहा है उसे ही रखा जाए। यहां तक कि संविधान से पूर्व भी इसे पूर्णत: विधान के रूप में प्रान्तों द्वारा माना जाता रहा है अत: सरकार सुझाव देती है कि यह प्रविष्टि औचित्य से पूर्णत: राज्य सरकार की विषय-वस्तु (मुद्दा) है। सरकार सिफारिश करती है कि इस प्रविष्टि को राज्य सूची में प्रविष्टि 6-ए के रूप में शामिल कर दिया जाए।

प्रविष्टि 31 : संसद द्वारा बनाई गई विधि या विद्यमान विधि द्वारा या उसके अधीन महापत्तन घोषित पत्तनों से भिन्न पत्तन।

स्पष्ट रूप से यह प्रविष्टि छोटे पत्तनों के संबंध में है। सरकार सुझाव देती है कि ऐसे छोटे जो संविधान से पूर्व प्रान्तीय सूची में थे उन्हें राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए और प्रविष्टि 13-बी संख्या दी जाए।

प्रविष्टि 32 : राष्ट्रीय जलमार्गों के सम्बन्ध में सूची के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, अन्तर्देशीय जलमार्गों पर यन्त्र नोदित जलयानों के संबंध में पोतपरिवहन और नौपरिवहन तथा ऐसे जलमार्गों पर मार्ग का नियम और अन्तर्देशीय जलमार्गों द्वारा यात्रियों और माल का वहन।

यह सरकार सुझाव देती है कि :

इस प्रविष्टि को प्रविष्टि 13-ए के नाम से राज्य सूची में स्थानान्तरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 33 : कृपया इसके संबंध में राज्य सूची की प्रविष्टि 26 और 27 के अन्तर्गत दी गई हमारी अभ्युक्तियां देखें।

प्रविष्टि 33-क : बाट और माप, जिनके अन्तर्गत मानकों को नियत किया जाना नहीं है।

इस प्रविष्टि को 3 जनवरी, 1977 से संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा शामिल किया गया था। यह प्रविष्टि मूलत: राज्य सूची की प्रविष्टि 29 के रूप में थी। अत: सरकार सिफारिश करती है कि :—

इस प्रविष्टि को राज्य सूची में प्रविष्टि 29 के रूप में ही रहने दिया जाए।

प्रविष्टि 34 : इस संबंध में कृपया भाग VII विविध के अन्तर्गत दी गई हमारी अभ्युक्तियां देखें।

प्रविष्टि 35 : यन्त्र नोदित यान जिसके अन्तर्गत वे सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर उद्गृहीत किया जाना है।

राज्य सूची की प्रविष्टि 57 जो समवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 के अन्तर्गत रखी गई है, की भाषा के संबंध में अपने विचार प्रकट करते समय हमने सिफारिश की थी कि प्रविष्टि 57 में उचित संशोधन अपेक्षित है। इसी प्रकार आगे भी यांत्रिक रूप से नोदित पोतें असल में राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन हैं और इसके लाइसेंस जारी करने, कर वसूलने आदि की जिम्मेदारी राज्य प्रशासन की है। अत: सरकार सिफारिश करती है कि :—

इस प्रविष्टि को राज्य सूची में प्रविष्टि 57-ए संख्या देते हुए, स्थानांतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 36 : कारखाने

प्रविष्टि 37 : बॉयलर

इन दोनों प्रविष्टियों का राज्य के विकासशील कार्यकलापों पर प्रभाव पड़ता है और साथ ही उद्योगों आदि की उन्नति शामिल है। अत: सरकार की सिफारिश है कि :—

इन प्रविष्टियों को राज्य सूची में प्रविष्टि 25-ए और 25-बी क्रमश: के रूप में स्थानांतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 39 : "समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय" (प्रिंटिंग प्रेस)

"चाहे इसे सरकारी आदेश के रूप में या शैक्षणिक उन्नति (विकास) के नजरिए से या संचार और प्रचार द्वारा प्राप्त सामान्य लाभ के रूप लिया जाए, यह प्रविष्टि हर दृष्टि से राज्य सूची में ही रहनी चाहिए। इस प्रविष्टि से संबंधित विषय-वस्तु (मुद्दों) से संबंधित नियमों को लागू करने के लिए प्रशासनिक कार्य-प्रणाली राज्यों के पास ही होगी।" अत: सरकार सिफारिश करती है कि :

इस प्रविष्टि को राज्य सूची में प्रविष्टि 25-सी के रूप में स्थानांतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 40 : इस संबंध में कृपया सूची I की प्रविष्टि 67 के अन्तर्गत दी गई हमारी टिप्पणी देखें।

प्रविष्टि 42 : "सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण" सूची I में प्रविष्टि 33 और सूची II में प्रविष्टि 36 को पुन: व्यवस्थित करने के संबंध में दिए गए हमारे सुझावों को मद्देनजर रखते हुए और साथ ही इस बात पर विचार करते हुए कि अनुच्छेद 31 की संविधान (बयालिसवां संशोधन)

अधिनियम, 1978 द्वारा हटा दिया गया है अत: सरकार सिफारिश करती है कि :

इस प्रविष्टि को हटा दिया जाए।

प्रविष्टि 45: सूची 2 या सूची 3 में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच और आंकड़े।

यह प्रविष्टि न्यायालय द्वारा व्याख्यापित की गई है ताकि संसद, पूर्णत: राज्य विधान क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मामलों के संबंध में एक जांच आयोग बैठाए जाने के आदेश दे सके। वस्तुत: जांच आयोग अधिनियम, 1952 (1952 का केन्द्रीय अधिनियम, 60) की वैधता का औचित्य इस प्रविष्टि के संदर्भ में है। राज्य सरकार के मंत्रियों के चरित्र के संबंध में चाहे वे उस समय पद पर हों, जांच आयोग के आदेश देने के लिए जांच आयोग अधिनियम के अधीन शक्ति, केन्द्रीय सरकार के पास निहित है और इन शक्तियों का इस्तेमाल, जांच आयोग अधिनियम, 1952 के अधीन किया जाए। परिसंघीय व्यवस्था में यह असंभव है कि केन्द्रीय सरकार को किसी राज्य के मंत्री के चरित्र के संबंध में जबकि वह पद पर हो या मंत्रियों के पिछले चरित्र के संबंध में जांच आयोग बैठाने के आदेश देने की शक्ति हो। इसलिए यह आवश्यक है कि संसद को राज्य सरकार के मंत्रियों के चरित्र के संबंध में जांच आदेश देने की शक्ति नहीं होनी चाहिए। केन्द्र में और राज्य स्तर पर सत्तारूढ़ विभिन्न पार्टियों के संदर्भ में यह विषय बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। लगभग सभी मामलों में, केन्द्रीय सरकार उसी हालत में राज्य सरकार के मंत्रियों के चरित्र के संबंध जांच आयोग बैठाने का सहारा लेती है जब राज्य सरकार का मुख्य मंत्री ऐसी पार्टी का प्रमुख हो जो केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी से भिन्न पार्टी का हो। यह "जांच और आंकड़े" विषय पूर्णत: राज्य विधान मण्डल को सौंप दिया जाना चाहिए और इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस प्रविष्टि को राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए। सरकार ने पहले भी सुझाव दिया था कि :

प्रविष्टि 45 को समवर्ती सूची से हटा दिया जाए।

तथापि, यदि इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची में रखे जाने का प्रस्ताव किया जाता है तो सरकार का सुझाव है कि, प्रविष्टि को पुन: इस प्रकार लिखा जाए :—

"सूची II या सूची III में विनिर्दिष्ट किसी भी मामले के प्रयोजन से जांच और आंकड़े परन्तु इसमें राज्य सरकार के किसी भी मंत्री के पद पर रहते या पद छोड़ने के बाद उसके चरित्र के संबंध में जांच शामिल नहीं है।"

दूसरे शब्दों में संसद को राज्य सरकार के मंत्रियों, जब वे पद पर हों या पद छोड़ने के बाद, के चरित्र के संबंध में जांच आयोग के आदेश देने का अधिकार नहीं है। परन्तु राज्य सरकार को इस बात को छूट है कि वह राज्य सरकार के किसी मंत्री, चाहे वह पद पर हो या पद छोड़ने के बाद, के चरित्र के संबंध में जांच के लिए जांच आयोग नियुक्त कर सकती है। इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए सरकार का सुझाव है कि :

संविधान के भाग XI के अध्याय I में एक मुख्य संशोधन नीचे लिखे अनुसार किया जाए :—

"246-ए किसी भी संसद को यह अधिकार नहीं है कि वह राज्य सरकार के किसी मंत्री के चरित्र के संबंध में जांच आयोग बैठाने का आदेश दे—न ही संसद के पास इस बात का अधिकार है कि वह राज्य सरकार के किसी भी या सभी मंत्रियों के संबंध में जब वे अपने पद पर हों या पदच्युत होने के बाद की स्थिति में हो, उन पर जांच आयोग बैठाने के संबंध में कोई कानून बनाए।"

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

जहां तक राज्यपाल की भूमिका का संबंध है, तमिलनाडु सरकार का विचार है कि राज्यपाल का पद हटा दिया जाना चाहिए। क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया राज्यपाल पिछले जमाने की विरासत है यह एक पुरावशेष है जिसका अस्तित्व बर्तानी उपनिवेश पद्धति पर आधारित है साथ ही हाल में हुए उदाहरणों से स्पष्ट पता चलता है कि राज्यपाल अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने से नहीं झिझकते और मंत्री परिषद्, को भी बरखास्त कर सकते हैं बावजूद इसके कि मंत्री परिषद् को विधान मण्डल का पूर्ण विश्वास प्राप्त होता है। अधिकारों के इस प्रकार दुरुपयोग की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए राज्यपाल का पद हटा दिया जाना चाहिए। राज्यपाल संविधान के उपबंधों के अनुरूप अधिकारों का कड़ाई से पालन करने के स्थान पर केन्द्र के एजेंटों के रूप में अधिक कार्य करते रहे हैं। इससे राज्यपाल के कार्यालय और उससे संबद्ध स्थापनाओं पर राज्य के राजकोष से होने वाले बड़े व्यय को भी बचाया जा सकता है। राज्य में इस प्रकार के प्रमुख सजावटी व्यक्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं है। इस विचार को मद्देनजर रखते हुए तमिलनाडु सरकार का यह दृढ़ विचार है कि राज्यपाल का कार्यालय समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए अधिनियम 153 से 162 को हटा दिया जाए और अधिनियम 153, 164, 166, 167 से संबद्ध आवश्यक संशोधन तथा संविधान के अन्य उपबंधों का भी पालन किया जाना चाहिए।

अब राज्यपाल द्वारा लागू किए गए सभी अधिकार मुख्य मंत्री द्वारा लागू किए जाएंगे और केन्द्र सरकार राज्य सरकार से जो भी सूचना प्राप्त करना चाहे मुख्य मंत्री से ही प्राप्त करे न कि किसी एजेंसी के माध्यम से। यद्यपि, यदि राज्यपाल के पद को बरकरार रखने का निश्चय किया जाता है तो नीचे उल्लिखित टिप्पणी की जाए :—

राज्यपाल को ऐसे मुख्य मंत्री द्वारा राष्ट्रपति को भेजे गए चार नामों से युक्त एक पैनल में से चुना जाए तो मंत्री ऐसी परिस्थिति में विधान सभा का विश्वास-पात्र हो जिस परिस्थिति में विधान सभा यह निश्चित करे कि किसी भी स्थिति में राज्यपाल का बने रहना राज्य के हित में नहीं होगा तो विधान सभा द्वारा इस आशय का संकल्प पारित करके राष्ट्रपति अपने द्वारा पारित ऐसे संकल्प को एक प्रति भेज कर राज्यपाल को हटा सकता है।

3.1(क)—भारत के संविधान के अंतर्गत किसी राज्य के राज्यपाल को पांच भूमिकाएं अदा करनी पड़ती हैं। प्रथमत: महत्वपूर्ण तो उसका किसी राज्य का प्रमुख होना है तथा राज्य के कार्यकारी अधिकारों का भंडार है। यह संविधान के अनुच्छेद 153 और 154 के उपबंधों से स्पष्ट जाहिर है। राज्य के कार्यकारी अधिकार की सीमा संविधान के अनुच्छेद 162 में निर्दिष्ट की गई है। चूंकि संविधान द्वारा सरकार की संसदीय पद्धति अपनाई गई है राज्यपाल का यह दायित्व है कि वह मंत्रियों की परिषद् की सहायता और सलाह पर कार्य को अंजाम दे। ये मंत्री परिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। राज्य के प्रमुख के उच्च कार्यालय की प्रतिष्ठा को बनाए रखने की पारम्परिक संकल्पना के अनुरूप राज्यपाल को अनेक महत्वपूर्ण अधिकार दिए गए हैं जिन्हें मंत्री परिषद्, की सलाह पर लागू किया जाना होता है। राज्य का कार्य व्यापार राज्यपाल के नाम पर चलाया जाता है (अनुच्छेद 166) और मंत्री परिषद् के संदर्भ में वह अपने परम्परागत अधिकारों का प्रयोग करता है अर्थात् सूचित करने का अधिकार, चेतावनी देने का अधिकार और सलाह देने का अधिकार (अनुच्छेद 167)।

द्वितीयत: वह राज्य विधान मण्डल का एक अनपहार्य हिस्सा है (अनुच्छेद 168) तथा उसे नीचे बताए गए महत्वपूर्ण कार्य लागू करने का अधिकार भी प्राप्त है :—

(1) राज्य विधान मण्डल के प्रत्येक सदस्य को बुलाने और उसके सत्र के अवसान करने का अधिकार और राज्य विधान सभा को भंग करना (अनुच्छेद 174);

(2) राज्य विधान मण्डल के सदन या सदनों को संबोधित करना, संदेश भेजने का अधिकार (अनुच्छेद 175);

(3) प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के प्रारंभ होने पर राज्य विधान मण्डल को संबोधित करने का अधिकार (अनुच्छेद 176);

(4) राज्य विधान सभा द्वारा पास किए गए विधेयक की स्वीकृति का अधिकार या रोके रखने का अधिकार अथवा दो सदनों वाले विधान मण्डल के मामले में दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक (अनुच्छेद 200); और

(5) विधान मण्डल की मध्यावकाश के दौरान अध्यादेशों के प्रख्यापन का अधिकार; आदि

तृतीयत: सांविधानिक गतिविधियों की कड़ी में राज्यपाल को कुछ व्यतिकारी दायित्वों को पूरा करना पड़ता है जिससे कि वह राज्य और केन्द्र के बीच प्रभावी कड़ी का काम कर सके। राज्यपाल केन्द्रीय सरकार की ओर से राज्यों के प्रति अपने कुछ कर्त्तव्य भी निष्पादित करता है। यह अनुच्छेद 355 के उपबंधों जिसे कि अनुच्छेद 356 के उपबंधों के साथ पढ़ा जाए से स्पष्ट जाहिर है इन प्रावधानों से यह विचार भी सामने आता है कि राज्यपाल से यह आशा की जाती है कि वह अपनी भूमिका को इतने समुचित ढंग से निभाए कि जिससे केन्द्रीय सरकार राज्यों की ओर अपने सांविधानिक कर्त्तव्यों को भली-भांति निभा सके।

चतुर्थत: राज्यपाल नीचे बताए गए विषयों के संबंध में राज्य और केन्द्र के बीच एक प्रभावी कड़ी है—

(1) अनुच्छेद 200 और 201 के अंतर्गत राष्ट्रपति के विचारार्थ राज्य विधेयकों का आरक्षण;

(2) अनुच्छेद 254(2) और अनुच्छेद 282(2) के अंतर्गत राज्य विधेयकों का आरक्षण;

(3) अनुच्छेद 304(बी) के अंतर्गत राष्ट्रपति की मंजूरी प्राप्त करना;

(4) अनुच्छेद 255 के अंतर्गत अपेक्षित अनुसार राज्य अधिनियम के लिए राष्ट्रपति की मंजूरी प्राप्त करना;

(5) अनुच्छेद 256 और 257 के उपबंधों के संबंध में राज्य अनुपालन और अनुच्छेद 256 और 257 तथा 339(2) के अंतर्गत जारी निर्देश। इन मामलों में राज्यपाल बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अंतत। संविधान में अनेक ऐसी परिस्थितियां उल्लिखित है जिनमें उसे राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में काम करना पड़ता है' उदाहरण के लिए अनुच्छेद 239(2) में इस बात की व्यवस्था की गई है कि यदि किसी राज्य का राज्यपाल साथ वाले संघ क्षेत्र के लिए प्रशासक के रूप में नियुक्त किया गया हो तो उससे यह आशा की जाती है कि वह अपने कार्यों को इस प्रकार लागू करे कि जिससे वह उस प्रशासक का कर्त्तव्य स्वतंत्र रूप से निभा सके जिसमें उसे अपने मंत्री परिषद की सहायता न लेनी पड़े अनुच्छेद 371 और 371-ए ये अनुच्छेद महाराष्ट्र, गुजरात और नागालैंड के राज्यपाल को विशेष उत्तरदायित्व प्रदान करते हैं ये अधिकार इस वर्ग के अंतर्गत कुछ विशिष्ट प्रयोजनों को भी पूरा कर देते है इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा राज्य सरकार के सभी या किसी कार्य को मान लेने और राष्ट्रपति की उद्घोषणा को जारी करने के बाद राज्यपाल उतनी अवधि के लिए राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में काम करता है जितनी अवधि के लिए यह उद्घोषणा लागू रहती है।

3.1(ख) केरल, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश में उपकुलपतियों की नियुक्ति के मामले में कभी-कभी राज्यपाल और मंत्री मण्डल के बीच मतभेद उठ खड़े होते देखे गए हैं इन राज्यों के राज्यपालों का यह विचार था कि विश्वविद्यालय के कुलाधिपतियों के रूप में उन्हें उपकुलपतियों को चुनने का विवेकाधिकार प्राप्त है। परन्तु राज्यपाल द्वारा इस विवेकाधिकार के प्रयोग करने का मंत्री मण्डल ने विरोध किया चूंकि राज्यपाल यहां राज्य के प्रमुख के रूप में कार्य करता है इसलिए जब वह राज्य मंत्रीमण्डल द्वारा दी गई सलाह के विरुद्ध उपकुलपतियों की नियुक्ति करता है तो ऐसा लगता है कि वह अपने कार्य की सीमा को लांघ गया है।

राज्यपाल को अपने कार्य करने में जो या तो संविधान के अधीन या फिर किसी अधिनियम के अधीन हों जो कि राज्य विधान मण्डल या संसद द्वारा पारित किए गए हों, मंत्री परिषद द्वारा दी गई सलाह को स्वीकृत करके उन पर कार्रवाई करनी पड़ती है, उपकुलपतियों की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल को केवल मंत्री परिषद, द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है।

राज्य के प्रमुख के रूप में राज्यपाल का एक और महत्वपूर्ण कार्य मुख्य मंत्रियों की नियुक्ति से संबंधित है। नि:संदेह, जब एक कोई एक ही पार्टी जनता से स्पष्ट आदेश प्राप्त कर लेती है तो यह कठिनाई सामने नहीं आती। सारी समस्या तो तब उठ खड़ी होती है जब जनता से स्पष्ट आदेश के बिना कोई भी पार्टी सरकार गठित करने के योग्य नहीं होती। अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी स्थिति में मुख्य मंत्री नियुक्त करने के कार्य को राज्यपाल कैसे पूरा करे। पिछले 34 वर्षों के दौरान इस प्रकार की कई परिस्थितियां सामने आई हैं ऐसी परिस्थितियों के दौरान राज्यपालों ने अपने स्वविवेकाधिकार का इस्तेमाल करते हुए ऐसे व्यक्तियों को आमंत्रित किया है जो उनके विचार में मंत्री मण्डल गठित करने के लिए सदन में बहुमत तैयार कर सकते हैं।

हाल ही में, जब केरल, हरियाणा, कर्नाटक आदि राज्यों में इसी प्रकार की परिस्थितियां उठ खड़ी हुई तो राज्यपालों ने मंत्री पद के लिए प्रत्याशी व्यक्तियों की नियुक्ति के संदर्भ में बहुमत की दृष्टि से अपने आप को संतुष्ट करने के लिए नवीन पद्धतियां अपनाई, इन नवीन पद्धतियों में राज्य विधान सभा के सभी सदस्यों का प्रत्यक्ष सत्यापन विभिन्न नेताओं द्वारा राज्य विधान सभा के सदस्यों का प्रदर्शन, हस्ताक्षर सत्यापन आदि शामिल हैं। ये बहुत गलत पद्धतियां हैं और राज्यपाल के उच्च पद पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। ऐसी पद्धति इसी प्रकार की परिस्थितियों में ब्रिटेन में कभी भी इस्तेमाल नहीं हुई इसलिए हम यह विचार प्रकट करते हैं कि जब कोई राजनीतिक पार्टी सरकार गठित करने के लिए जनता से स्पष्ट आदेश प्राप्त करने में असफल रहती है या जब अविश्वास प्रस्ताव के परिणामस्वरूप कोई मंत्रालय हटा दिया जाता है ऐसे ही अन्य अवसरों पर हमने सुझाव दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 164 में संशोधन किया जाना चाहिए। जब कोई भी राजनैनिक पार्टी बहुमत प्राप्त नहीं करती तो राज्य प्रमुख को स्वत: ही विधान सभा बुलानी चाहिए ताकि मुख्य मंत्री के लिए किसी व्यक्ति को चुना जा सके तथा इस प्रकार चुना गया व्यक्ति राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाएगा।

विधान मंडल के हिस्से के रूप में राज्यपाल को कुछ कार्य करने पड़ते हैं ऐसा ही एक कार्य है जैसा कि पहले बताया जा चुका है राष्ट्रपति के विचारार्थ राज्य विधेयकों को रोके रखना और अनुच्छेद 254(2) और 288(2) के अंतर्गत उनकी सम्पत्ति प्राप्त करना है। इन अनुच्छेदों के अधीन राष्ट्रपति के विचारार्थ राज्य विधेयकों को रोके रखने तथा अनुच्छेद 254(2) के अंतर्गत समवर्ती विषय के संबंध में किए गए पूर्व प्रचलित केन्द्रीय विधान के अध्यारोहण के लिए राज्य विधान के संदर्भ में तथा अनुच्छेद 288(1) उल्लिखित प्रावधानों से मुक्ति पाने के लिए राष्ट्रपति की मंजूरी प्राप्त करना आवश्यक है। पूर्ण विचार विमर्श के लिए भाग II—विधायी संबंध के अंतर्गत हमारी टिप्पणियों का संदर्भ देखा जा सकता है।

राज्य विधान मण्डल के हिस्से के रूप में राज्यपाल द्वारा निष्पादित किया जाने वाला एक और महत्वपूर्ण कार्य है राज्य विधान मण्डल के सदन अथवा सदनों को बुलाना तथा उनकी अवधि बढ़ाना तथा राज्य विधान सभा को भंग करना। राज्य विधान मण्डल के सदन अथवा सदनों को बुलाने तथा उनकी अवधि बढ़ाने का कार्य राज्य मंत्रीमण्डल की सलाह पर किया जाता है। परन्तु पिछले 34 वर्षों में केवल कुछ एक अवसर ही ऐसे आए हैं जब कुछ राज्यपालों ने राज्यमंत्री मण्डल की सलाह के विरुद्ध अपने अधिकारों का इस्तेमाल किया। यह अवसर मुख्यत: पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश आदि जैसे राज्यों में चौथे आम चुनाव के बाद हुआ। नि:संदेह ये राज्यपालों द्वारा की गई कुछ ज्यादतियों में से हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पिछले 34 वर्षों में संविधान में परिनिर्धारित भूमिका अदा करने में राज्यपाल ने बहुत हद तक संविधान के मानदण्डों एवं उपबंधों का पालन करने की कोशिश की, परन्तु कुछ अवसरों पर राज्यपालों ने ऐसे संविधानिक मानदण्डों से हट कर कार्य किया तथा अपनी कार्यकारी लक्ष्यों से परे काम किया।

पार्टी के सदस्यों को राज्यपालों के रूप में नियुक्त करना आपत्तिजनक नहीं है बशर्ते कि वे सक्षम हो तथा उन्हें आदर प्राप्त हो तथा वे पक्षपात रहित कार्य करते हो। यदि किसी राजनीतिज्ञ को राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जाता है तो उसे परिपाटी के अनुरूप पार्टी तथा राजनीतिक संबंधों से ऊपर उठ कर कार्य करना होगा जैसा कि लोक सभा के अध्यक्ष के मामले में है। जो परिपाटी लोक

सभा के अध्यक्ष की अभिलाषित करती है । वही राजनीतिज्ञ राज्यपाल के मामले में भी अपनाई जानी चाहिए । परन्तु, दुर्भाग्यवश ऐसी कोई परिपाटी विकसित नहीं हुई तथा राजनीतिज्ञ राज्यपाल ने पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया तथा इसके परिणाम-स्वरूप केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव विकसित होने लगा । अर्धसंघीय गठन में जैसा कि भारतीय संविधान का गठन है, केन्द्रीय सरकार का पक्षपातपूर्ण रवैया छोड़ना पड़ेगा विशेषकर उन राज्यों की सरकारों के विरुद्ध जो केन्द्र में सत्ताधारी पार्टी से संबंध नहीं रखते । यदि केन्द्र में सत्ताधारी पार्टी सभी राज्य सरकारों चाहे वे किसी राजनैतिक संबंधों से क्यों न जुड़ी हों के प्रति समुचित रवैया नहीं अपनाती तो केन्द्र-राज्यों के बीच सुचारू संबंध असंभव है । राज्यों में विरोधी सरकारों की ओर केन्द्र सरकार का रवैया, केन्द्र में सत्ताधारी पार्टी की पक्षपातपूर्ण अग्रता से प्रभावित नहीं होना चाहिए । संविधान के गठन से ही राज्य सरकारों की ओर पक्षपात रहित समान रवैया अपनाने की केन्द्र सरकार की कोई स्वस्थ परिपाटी नहीं रही है बावजूद राजनैतिक संबंधों के केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी, राज्यों में अपना पार्टी हित का ध्यान पहले रखती है तथा कभी-कभी राज्यपालों को केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी से संबंध न रखने वाली राज्य सरकारों को बरखास्त करने की दृष्टि से केन्द्र के आदेशों का पालन करना पड़ता है । पहले अ० भा० अ० द्र० मु० क० सरकार और अन्य सरकारों की बरखास्तगी तथा सिक्किम सरकार की बरखास्तगी के मामले कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण मामले हैं । राज्यपाल ने कभी-कभी ब्रिटिश सांविधानिक परिपाटी और पद्धतियों के विपरीत कार्य किया है तथा पदासीन मुख्यमंत्री को इस बात का मौका दिए बिना कि वह इस बात का परीक्षण करे कि उसने असैंबली में अपना मत खो दिया है या पा लिया है, मनमानी रीति से कार्य किया है, सर इवॉर जैनिंग्स ने अपनी पुस्तक "कैबिनेट गवर्नमेंट" में बात उठाई है कि :—

"यदि महामहिम (किंग) ऐसा समझता है कि सरकार ने अपना बहुमत खो दिया है और यदि यह बात उसके किसी मतलब की है तो उसका यह स्पष्ट कदम होगा कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि क्या उसका अनुमान सही है तथा उसकी समाप्ति पर बल दे । यदि मंत्री परिषद्, में समाप्ति की "सलाह" देने से मना कर देते हैं तो उन्हें त्याग पत्र दे देना चाहिए और यदि वे त्याग पत्र नहीं देते हैं तो उन्हें बरखास्त कर देना चाहिए ।

परन्तु क्या ऐसा पूर्वानुमान लगाना उसके कर्त्तव्य में आता है ? क्या वह इस प्रकार का निर्णय देने के लिए जनता की राय से पर्याप्त रूप से सम्पर्क में है? यह सुझाव दिया जाता है कि दूसरे सवाल का उत्तर नकारात्मक है । यद्यपि उसका "शानदान अलगाव" उसको दूसरों के मुकाबले अधिक पक्षपात रहित बनाता है, तो भी वह उसे मत प्रकट करने से अलग रखता है । इसे वह केवल समाचार-पत्रों, उप चुनावों तथा उसके अपने संगी साथियों के माध्यम से ही जान सकता है । सबसे पहले तो यह कहना ही पर्याप्त होगा कि लंदन के समाचार पत्रों का एक मत से विरोध करना भी कोई मानदण्ड नहीं है और दूसरी ओर यह कहा जा सकता है कि उपचुनाव (जैसा कि डिजराइली ने पता लगाया था) से धोखा ही सकता है, विशेष कर उसके जो उनसे दूर हों । तीसरी ओर इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि यह हमेशा अधिक पक्षपातपूर्ण रहता है और महामहिम को इस संबंध में अधिक जानकारी रहती है" ।

उन्होंने आगे भी यह कहा है कि :

"गणतंत्र की सरकार में प्रतिस्पर्धी नीतियां होती हैं और इस प्रकार पार्टियों की आपसी दुश्मनी होती है । अपनाई जाने वाली नीति वह होती है जो "हाउस ऑफ कामन्स" द्वारा अनुमोदित हो साथ ही यह शर्त होती है कि सरकार अपने अधिकार से चुने हुए लोगों से अपील करे । इसलिए यदि हाउस ऑफ कामन्स में सरकार हार जाती है तथा जनता से अपील नहीं करती अथवा यदि जनता से अपील करती भी है और फिर भी हार जाती है तो एक नई सरकार गठित करनी पड़ेगी । महारानी का कार्य तो केवल सरकार की सुरक्षा प्रदान करना है, न कि ऐसी सरकार गठित करने का प्रयत्न करना जिससे उसके द्वारा (महारानी) अनुमोदित नीति को मंजूर करने की संभावना हो ऐसा करने का मतलब है, गुटबाजी में अपने आप को लगाना । यह कमोवेशी अधिपति की पक्षपात रहित होने के विश्वास के लिए अनिवार्य है, केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि महारानी को वस्तुत: पक्षपात रहित होना चाहिए अपितु ऐसा लगना चाहिए कि वह पक्षपात रहित कार्य कर रही है । इसको स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने की केवल एक पद्धति है कि विरोध पक्ष नेता को तत्काल बुलाया जाए" ।

राज्यपाल का कार्य केवल सरकार को सुरक्षित करना है न कि सरकार को गठित करना । यह इसलिए है कि संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अंतर्गत राज्यपाल द्वारा अधिकारों के इस्तेमाल के संबंध में सांविधानिक रूढ़ियों और पद्धतियों को अपनाया नहीं गया और इसलिए केन्द्र और राज्य के बीच संघर्ष और तनाव बना रहता है । इसलिए केन्द्र के कर्त्तव्य है कि राज्यपालों के रूप में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करे जो प्रतिष्ठित, और चरित्रबल रखते हों और सक्षम हों । यदि केन्द्र ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करता है जो आज्ञाकारी और केन्द्र के कहने पर चलने वाले हों तो यह अवश्यम्भावी है कि केन्द्र और राज्य के बीच तनाव और संघर्ष बना रहेगा । जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र और राज्य के बीच तनातनी बनी रहेगी ।

3.2 बी० जी० खेर, बंबई के भूतपूर्व मुख्यमंत्री का विचार है कि :

"हमारे द्वारा गठित किए जाने वाले संविधान के अंतर्गत राज्यपाल को दिए गए बहुत थोड़े अधिकारों के बावजूद कोई भी राज्यपाल यदि वह अच्छा राज्यपाल है तो अनेक अच्छे और महान कार्य कर सकता है तथा यदि वह दुष्ट राज्यपाल है तो बड़ा अनिष्ट कर सकता है"—सी ए डी VIII पृष्ठ 434 ।

केन्द्र राज्य संबंधों के स्वस्थ प्रोत्साहन के लिए राज्यपाल को अपनी विभिन्न भूमिकाओं के अधिकार क्षेत्र और सीमाओं को सही-सही व्याख्या करते हुए अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए । दूसरे शब्दों में राज्यपाल के चार प्रकार के कर्त्तव्यों के अधिकार क्षेत्र तथा सीमाओं का सही-सही निर्धारण होना चाहिए और इन चार कर्त्तव्यों के बीच स्पष्ट अन्तर बनाए रखा जाना चाहिए । इसके अलावा, केन्द्र और राज्य के बीच ऐसा अच्छा संबंध राज्यपाल के व्यक्तित्व पर बहुत निर्भर करता है ।

इस प्रश्न पर नीचे बताए गए शीर्षों के अंतर्गत विचार किया जाना चाहिए :—

(1) राज्यपाल का व्यक्तित्व,

(2) राज्यपाल की प्रवृत्ति,

(3) राज्य के कार्यकारी प्रमुख के रूप में अपने स्वविवेकाधिकार का प्रयोग करते समय तथा राज्य विधान मण्डल के हिस्से के रूप में अपने अधिकार का प्रयोग करते समय भी अपेक्षित असाधारण सावधानी ।

निस्संदेह, राज्यपाल का व्यक्तित्व, राज्यपाल का पद धारित करने वाले व्यक्ति की ऊंची महत्ता पर निर्भर करता है जिस पद को वह मानव गतिविधियों के एक या अनेक पहलुओं से अर्जित करता है । पन्तु यह बहुत कुछ चयन की पद्धति अथवा राज्यपाल की नियुक्ति पर निर्भर करता है । क्योंकि किसी चयन पद्धति अथवा नियुक्ति प्रक्रिया के लिए जो सीधे-सीधे पक्षपातपूर्ण राजनीति को बढ़ावा देता है । राजपाल के पद को धारण करने वाले व्यक्ति की महत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है । संविधान के अंतर्गत राज्यपाल द्वारा किए गए कामों के औचित्य के बारे में जनता के मन में संदेह उत्पन्न होने से, जो कि बहुधा राज्यपालों को नियुक्त करने की वर्तमान पद्धति के कारण होता है, केन्द्र और राज्यों के बीच अच्छे तथा सद्भावपूर्ण संबंधों को बनाए रखने में क्षति पहुंचा सकता है । किसी मुख्य मंत्री द्वारा हाल ही में प्रकट किए गए मतानुसार "मुझे डर है कि हम सबको निरंतर तथा नाहक दखल का सामना करना पड़ेगा और राजनैतिक उद्देश्यों की दृष्टि से जनता की इच्छा को लगातार दमघोटू वातावरण का खतरा बना रहेगा" । अब राष्ट्रपति मुख्य मंत्रियों से परामर्श लेने के बाद राज्यपालों की नियुक्ति करते है । सलाह मशविरा सिद्धान्त को संविधान से कई समर्थन प्राप्त नहीं है । इसलिए राज्यपालों की नियुक्ति के मामले में मुख्य मंत्रियों से सलाह न लेना अथवा अस्वीकार करना ऐसी नियुक्ति को अवैध साबित नहीं करेगा । वस्तुत: हाल ही में की गई कुछ नियुक्तियों के मामले में केन्द्र सरकार ने संबंधित मुख्य मंत्रियों की सलाह नहीं ली । अत: जाहिर है कि राज्य बहुधा राज्यपालों की नियुक्ति को केन्द्र सरकार द्वारा उन पर थोपें गए बोझ के रूप में महसूस करते हैं । ऐसा दृष्टिकोण अच्छे केन्द्र-राज्य संबंधों के लिए बहुत सहायक नहीं है इसलिए राज्यपालों के चुनाव अथवा नियुक्ति की नई पद्धति खोजी जानी चाहिए । राज्य प्रमुख और

राज्य मंत्री मण्डल के बीच सद्भावपूर्ण संबंध बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि राज्य मंत्री मंडल से हमेशा सलाह मशावरा लिया जाए तथा मुख्य मंत्री की सहमति प्राप्त की जाए।

हमारा विचार है कि अनुच्छेद 153 के परन्तुक में, जिसमें कि एक ही व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जा सकता है, को हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि यह संकल्पना यह प्रभाव दर्शाती है कि राज्यों को केवल निगमों अथवा प्रशासनिक इकाइयों के रूप में माना जाता है न कि परिसंघ के संवैधानिक अस्तित्व के रूप में। यदि अनुच्छेद 153 का परन्तुक हटा दिया जाए तो इसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 158 का खण्ड (3-ए) भी हटाया जाना चाहिए।

3.3 (क) इस प्रश्न का पूरा उत्तर भाग IV–प्रशासनिक संबंध पर कार्रवाई करते समय दे दिया गया है।

(ख) मुख्य मंत्रियों की नियुक्ति से संबंधित पहले व्यक्त किए गए हमारे विचार के अतिरिक्त हमने पहले ही कह दिया है कि यदि कोई राजनैतिक पार्टी पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेती है तथा चुनाव में जनता से स्पष्ट आदेश प्राप्त कर लेती है तो राज्यपाल के पास इस विकल्प के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता कि वह उस पार्टी के नेता को आमंत्रित करे। केवल उन अनिश्चित परिस्थितियों से संबंधित मामले में जहां किसी एक पार्टी को बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है। राज्यपाल को किसी एक राजनैतिक ग्रुप के एेसे नेता को नियुक्त करना चाहिए जो उसकी राय में मुख्यमंत्री के रूप में एक स्थायी मंत्रीमण्डल का गठन करने की क्षमता रखता हो। एेसी कठिन परिस्थिति में अपने कर्त्तव्यों का निष्पादन करते समय उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह कार्य बहुत ही सावधानी तथा सूझबूझ से करे। किसी विशिष्ट पार्टी की क्षति का प्रत्यक्ष सत्यापन करने की पद्धति अथवा हस्ताक्षर सत्यापन आदि एेसी अनुचित पद्धतियां हैं जिनसे राज्यपाल के कार्यालय को अप्रतिष्ठित कर सकती है।

(ग) जहां तक सदन के सत्रावसान का संबंध है यह आवश्यक रूप से मुख्य मंत्री सलाह पर ही किया जाना चाहिए समस्या तो उस समय उठ खड़ी होती है जब विधान सभा भंग का समय आता है, जब यदि मुख्य मंत्री जिस विधान सभा का बहुमत प्राप्त है राज्यपाल को सदन भंग करने की सलाह देता है, उस समय राज्यपाल को मुख्यमंत्री की सलाह इस सामान्य कारण से स्वीकार कर लेना चाहिए कि यदि वह एेसी सलाह अस्वीकृत कर देता है तो वह (राज्यपाल) सरकार चलाने के लिए मुख्य मंत्री के रूप में नामित नहीं कर सकता। परन्तु यदि हारा हुआ मुख्य मंत्री राज्यपाल को विधान सभा भंग करने की सलाह देता है तो राज्यपाल इस सलाह को मानने के लिए कर्त्तव्य बद्ध नहीं है, परन्तु वह अनुच्छेद 164 के खण्ड (1-ए) में प्रस्तावित हमारे द्वारा दी गई कार्यविधि का अपनाने के लिए कर्त्तव्य बद्ध है।

3.4 इस प्रश्न का विधायी संबंध-भाग II में उत्तर दिया गया है।

3.5 इस प्रश्न का उत्तर विधायी संबंध-भाग II में दिया गया है।

3.6 हम राज्यपाल की तथाकथित इस दोहरी भूमिका को नहीं मानते। यह विचार कि राज्यपाल न तो केन्द्र का एजेंट है न केवल राज्य का सजावटी प्रमुख है परन्तु केन्द्र और राज्य के बीच "एक निकट कड़ी है" असली स्थिति को बताता है। जैसी कि पहले व्याख्या की जा चुकी है राज्यपाल संविधान के अधीन चार महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करता है। जहां तक भारतीय संविधान का संबंध है यह स्थिति अधिक सही स्थिति है। जैसा की व्यवस्था की गई है। इन चार भूमिकाओं को अदा करने के लिए राज्यपाल सब मिलाकर संविधानिक प्रावधानों का पालन करेगा। परन्तु कुछ एक अवसरों पर राज्यपाल उनसे हट कर भी कार्य कर सकते हैं। इन्हीं कारणों से हम कुछ सिफारिशें कर रहे हैं।

3.7 राज्यपाल का कार्यालय एक राजनैतिक कार्यालय है, अतः इसका सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की स्थिति से तुलना नहीं की जानी चाहिए। राज्यपाल से यह आशा नहीं की जाती कि वह संविधान के अंतर्गत केन्द्र और राज्यों के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करे। इसलिए गारंटीकृत अवधि वेतन आदि उसके मामले में उसकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की पद्धतियों के रूप में उत्पन्न नहीं होती। संविधान के मौजूदा प्रावधान इसके लिए पर्याप्त हैं।

3.8 हम इस विचार से सहमत नहीं हैं केवल उस स्थिति को छोड़कर जिसमें हमने स्पष्ट रूप से उस समय सुझाव दे दिया था जब अनुच्छेद 164 के नीचे संशोधन करने के लिए कहा था। यदि इस प्रकार का विचार मान लिया जाता है तो हम राज्यपाल को इस बात के लिए बाध्य करेंगे कि वह राज्य की दिन प्रतिदिन की राजनीति में उलझा ले। इस प्रकार की प्रक्रिया को अपनाना राज्यपाल की उच्च स्थिति के लिए प्रतिकूल होगा। इसके अलावा एेसा करने के परिणामस्वरूप इस विशेष मामले में अध्यक्ष के कार्यों में दखलांदाजी देना होगा।

3.9 अनुच्छेद 164 के संशोधन का सुझाव देते समय नीचे दी गई हमारी सिफारिशों का संदर्भ देखा जाए :—

इस संबंध में हम यह कहना चाहेंगे कि जर्मन संघीय गणराज्य के संविधान के अनुच्छेद 67 खण्ड (1) किसी भी रूप में अच्छा समाधान प्रस्तुत नहीं करता। पश्चिमी जर्मनी के संविधान के अनुच्छेद 67(1) में कहा गया है :—

"बंडेस्टैग, फेडरल चांसलर के प्रति अविश्वास केवल उस स्थिति में व्यक्त कर सकता है जब वह अपने सदस्यों के बहुमत सहित उत्तराधिकारी चुन ले तथा जब फेडरल प्रेसीडेंट से फेडरल चांसलर का पद से हटाने का अनुरोध करे। फेडरल प्रेसीडेंट को इस अनुरोध का पालन करना चाहिए तथा चुने हुए व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए।"

उक्त अनुच्छेद 67(1) में दिए गए उपबंधों का आशय मंत्रालय के स्थायित्व को सुनिश्चित करना है तथा क्षुद्र अविश्वास प्रस्तावों को रोकना है। यह बात पश्चिमी जर्मनी के संविधान के अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) में दिए गए शब्द "केवल" से स्पष्ट है। इसलिए, पश्चिमी जर्मनी में किसी भी और तरीके द्वारा अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, जर्मनी में विरोधी पार्टी द्वारा किसी मंत्रालय के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव तभी लाया जा सकता है जब वह बहुमत वोट सहित नया नेता चुन सकता है। भारतीय संविधान में इसी प्रकार के उपबंधों को शामिल करने का सुझाव यह हो सकता है कि यदि भारतीय संविधान में इसी प्रकार का उपबंध शामिल किया जाता है तो राज्य की विधान सभा मुख्य मंत्री में अपना अविश्वास तभी प्रकट कर सकती है जब वह उसका उत्तराधिकारी चुन ले तथा राज्यपाल से अनुरोध करे कि वह मुख्य मंत्री को हटा दे। एेसी स्थिति में राज्यपाल इस अनुरोध का पालन करेगा तथा मुख्यमंत्री के रूप में चुने गए व्यक्ति को नियुक्त करेगा। यदि भारतीय संविधान में इस प्रकार का प्रावधान शामिल कर लिया जाता है तो राज्य विधान सभा की विरोधी पार्टियां मुख्य मंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अपना अधिकार खो देंगी, बशर्ते कि वे उस पुराने मुख्यमंत्री के स्थान पर नए मुख्य मंत्री को चुनने के लिए अपना बहुमत प्राप्त कर लेते हैं। हम नहीं सोचते कि भारत में राजनैतिक पार्टियां अपनी स्वतंत्रता पर इस प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार करने के लिए तैयार होंगी जिसके अधीन उन्हें सरकार की पार्टी का सामना करने के लिए मंत्रालय के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करना पड़ा। इसके अलावा पश्चिम जर्मनी के संविधान के अनुच्छेद 67(1) के उपबंधों को भारतीय संविधान में शामिल किया जाना हो तो जिससे कि राज्यपाल और राज्य विधान मंडल के बीच संबंधों का विनियमित किया जा सकता हो उन स्थिति में हम पश्चिमी जर्मनी के संविधान के अनुच्छेद 68 को भी आवश्यक रूप से शामिल करना होगा जो कि अनुच्छेद 67(1) का स्वभाविक उप-सिद्धान्त है। पश्चिमी जर्मनी संविधान का अनुच्छेद 68(1) में कहा गया है कि "यदि बंडस्टैग के सदस्यों के बहुमत द्वारा विश्वास वोट के लिए फेडरल चांसलर के प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया जाता है तो फेडरल चांसलर के प्रस्ताव पर 21 दिन के भीतर बंडस्टैग को भंग किया जा सकता है। भंग करने का यह अधिकार उस स्थिति में व्यपगत हो जाएगा जब बंडस्टैग अपने सदस्यों के बहुमत से एक और फेडरल चांसलर को चुन लेता है।" इन प्रावधानों को प्रस्तुत करने से समस्याओं के हल होने की अपेक्षा बढ़ जाने की संभावना अधिक है।

3.10 हम प्रशासनिक सुधार आयोग के विचार से सहमत नहीं है। राज्यपाल को मार्ग निदेश जारी करने का विचार ही जो कि पर्याप्त नहीं है, इस मामले में कि उसे अपने स्वविवेकाधिकार का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए, यह मान लेती है कि राज्यपाल के कार्यालय को किसी नगर पालिका या नगर निगम के आयुक्त या सचिव के कार्यालय के समान माना जा रहा है। राज्य अपने स्वायत्त शासन की मांग करते हैं और राज्यपाल की स्थिति को केन्द्र की किसी दखलांदाजी से स्वतंत्र रखना चाहते हैं। इसलिए यदि हम राष्ट्रपति के नाम पर राज्यपाल को मार्ग

निर्देश जारी करने के संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग के विचार मान लेते हैं तो अन्तर-राज्यीय परिषद् के साथ विचार विमर्श करने के बाद भी जिसे (परिषद् को) अनुच्छेद 363 के अंतर्गत कुछ कार्य करने होते हैं तो राज्यपाल को मार्ग निर्देश देने के संबंध में हमारे द्वारा प्रशासनिक सुधार आयोग के विचार मान लेने पर पर राज्यपाल को राज्य का संविधानिक प्रमुख बनाने के तमाम प्रयास बेकार सिद्ध हो जाते हैं। यहां पंडित जवाहरलाल नेहरू को उद्धत करना प्रासंगिक होगा। पंडित नेहरू ने कहा था "राज्यपाल राजनीतिक नियुक्ति नहीं है और इस प्रत्येक आने वाली नई सत्ता के साथ नहीं बदला जाना चाहिए। यह अत्यधिक उत्तम होगा यदि राज्यपाल स्थानीय राजनीति और गतिविधियों से संबंध न रखे, परन्तु निस्संदेह राज्य के लिए स्वीकार्य अलग-थलग रहने वाला व्यक्ति हो परन्तु उस पार्टी के तंत्र के हिस्से के रूप में ज्ञात न हो सर्वोच्च न्यायालय ने हर गोविन्द पन्त बनाम रघुलाल तिलक और अन्य (ए आई आर 1979 एस०सी० पृष्ठ 1109) में निर्धारित किया है कि राज्यपाल भारत सरकार के निर्देशों को मानने के लिए बाध्य नहीं है, न ही वह अपने कार्यों और ड्यूटियों को निष्पादित करने की पद्धति के लिए भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी है। राज्यपाल का पद स्वतंत्र संविधानीक पद है जो भारत सरकार के नियंत्रणाधीन नहीं है अतः हमें यह कहना पड़ता है कि मार्गनिर्देश निर्धारित करने का प्रस्ताव राजनीतिक रूप से अनुचित है तथा संविधानिक दृष्टि से अतर्कसंगत है। राज्यपाल जैसे संविधानिक पदाधिकारी को एसे मार्ग निदेश जारी करके उसके ऊंचे पद को कम दिखाना उचित नहीं है। हमें इस क्षेत्र से रूढ़ियों को विकसित करना चाहिए। यह प्रश्न पर व्यापक रूप से भाग IV—प्रशासनिक संबंध, में कारवाई की गई है।

पहले से ही व्यक्त विचारों के अतिरिक्त सिफारिशें

(1) अनुच्छेद 153 के परन्तुक में इस बात का उल्लेख किया गया है कि "बशर्ते कि इस अनुच्छेद में ऐसी कोइ बात नहीं कही गई हो जिससे दो या दो से अधिक राज्यों के लिए किसी एक व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में नियुक्त करने से रोका गया है" इस परन्तुक को हटा दिया जाना चाहिए। दो या दो से अधिक राज्यों के लिए राज्य के रूप में एक व्यक्ति को नियुक्त करने के विचार से इस बात का प्रभाव पड़ता है कि राज्य संविधान में संघ के संविधानिक अस्तित्व के रूप में अस्तित्व न रखते हुए केवल निगम अथवा प्रशासनिक इकाइयों के रूप में मान लिए जाते है किसी अन्य संघ संविधानिक में ऐसा प्रावधान नहीं पाया जाता।

अनुच्छेद 153 के परन्तुक को हटा दिए जाने के परिणामस्वरूप अनुच्छेद 158 के खण्ड 3(ए) को भी हटाना पड़ेगा। अनुच्छेद 158 के खण्ड (3)ए में यह कहा गया है कि "जहां एक ही व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जाता है तो राज्यपाल को देय परिलब्धियों और भत्तों को ऐसे अनुपात में राज्यों के बीच बांट दिया जाता है जैसा कि राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा निर्धारित करे"।

(2) राज्यपाल की नियुक्ति मुख्यमंत्री की सहमति से राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। जिसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 155, जो राज्यपाल की नियुक्ति से संबंधित है इस उद्देश्य से समुचित रुप से संशोधित किया जाएगा।

(3) अनुच्छेद 160 में यह कहा गया है कि "राष्ट्रपति ऐसे प्रावधान कर सकते हैं जो वे किसी राज्य के राज्यपाल के कार्य निष्पादन के लिए उचित समझते हैं यह प्रावधान उस स्थिति में किया जाएगा जिसकी आपात, कालीन व्यवस्था इस अध्याय में नहीं की गई है"। अनुच्छेद 160 में मुक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है और उसमें राष्ट्रपति को व्यापक स्वनिर्णय के अधिकार दिए गए है। वाक्यांश "जिसकी आपात् कालीन व्यवस्था इस अध्याय में नहीं की गई है" बहुत व्यापक है तथा इस तथ्य को दृष्टि से राजनीतिक युक्ति चालन के लिए विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत करता है कि राष्ट्रपति को केन्द्रीय मंत्री मण्डल द्वारा दी गई सलाह के आधार पर कार्य करना चाहिए। इस बात पर विचार करने की संभावना की जा सकती है कि इस प्रावधान की व्यवस्था राष्ट्रपति को नियम बनाने में सहायता करने की दृष्टि से की गई है ताकि राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में अपने कार्य को निष्पादित कर सके। वस्तुतः जैसा कि इस रिपोर्ट में पहले उल्लेख किया गया है, राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में संविधान में विनिर्दिष्ट कुछ कार्यों को निष्पादित करता है। परन्तु अनुच्छेद की भाषा ऐसी लचीली है कि उसमें राज्यपाल के अन्य कर्त्तव्यों को भी शामिल कर लिया जा सकता है। इस अनुच्छेद में संशोधन की आवश्यकता है।

(4) संविधान के अनुच्छेद 163(1) में इस बात की व्यवस्था की गई है कि मंत्री परिषद् को राज्यपाल को उसके कर्त्तव्य निष्पादित करने में सहायता करनी चाहिए साथ ही सलाह भी देनी चाहिए, केवल उस स्थिति को छोड़कर जब इस संविधान के अंतर्गत अथवा इस संविधान द्वारा जहां तक संभव हो उसे (राज्यपाल को) अपने कर्त्तव्य या किसी एक कर्त्तव्य को अपने स्वविवेक से लागू करना पड़े। इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 74(1) से तुलना करना उचित होगा, अनुच्छेद 74(1) राष्ट्रपति से संबंधित है। इस अनुच्छेद में यह अभिव्यक्ति "केवल उस स्थिति को छोड़कर जब इस संविधान के अंतर्गत आता इस संविधान द्वारा जहां तक संभव हो उसे (राज्यपाल को) अपने कर्त्तव्य या किसी एक कर्त्तव्य को अपने स्वविवेक से लागू करना पड़े" इस वाक्यांश का कोई स्थान नहीं। संविधान से संघ तथा राज्य दोनों ही की सरकारी संसदीय प्रणाली में इस बात का उल्लेख है। अतः संविधान के अनुच्छेद 74(1) के कथित अनुसार अनुच्छेद 163(1) में संशोधन करना आवश्यक है। अतः अनुच्छेद 163 (1) का नीचे बताए गए रूप में पुनः नया रूप प्रस्तुत किया जा सकता है :—

"सर्वोपरि रूप से मुख्यमंत्री के साथ एक मंत्री परिषद्, होनी चाहिए जो राज्यपाल को इस बात की सहायता और सलाह देगी कि वह ऐसी सलाह के अनुसार कैसे अपने कर्त्तव्य का पालन करे"।

बशर्ते के अनुच्छेद 239(2) 371 और 371-ए के अंतर्गत राज्यपाल को स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए कर्त्तव्यों के संबंध में वह अपने स्वविवेकाधिकार का पालन करेगा।"

(5) अनुच्छेद 163(2) में कहा गया है कि "यदि इस संबंध में कोई प्रश्न उठ खड़ा होता है कि राज्यपाल संविधान के अधीन या संविधान द्वारा स्वविवेकाधिकार का इस्तमाल करते हुए किसी मामले को निपटा सकता है या नहीं इस संबंध में राज्यपाल का स्वविवेकाधिकार से लिया गया निर्णय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा किए गए किसी कार्य की विधिमान्यता पर इस आधार पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जाएगा कि उसे अपने स्वविवेकाधिकार का इस्तमाल करना चाहिए था कि नहीं।" राज्यों में सरकारी मंत्री मण्डल प्रणाली के प्रभावी कार्य चालन के लिए यह प्रावधान बहुत अधिक सहायक नहीं होगा। अतः इसे हटा दिया जाना चाहिए।

(6) संविधान के अनुच्छेद 164 (1) के अंतर्गत राज्यपाल को मुख्यमंत्री की नियुक्ति करनी होगी तथा अन्य मंत्रियों को राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह पर नियुक्त करेगा और मंत्री, राज्यपाल के कार्यकाल के दौरान कार्य करते रहेंगे। खण्ड (2) में इस बात की व्यवस्था की गई है कि मंत्री परिषद, राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।

संसदीय लोकतंत्र की धारणाओं के अनुरूप यह वांछनीय है कि संविधान के अनुच्छेद 164 में खण्ड (1) के बाद खण्ड (1-ए) के रूप में एक विशेष प्रावधान शामिल कर लिया जाना चाहिए जिसमें कि इस बात की व्याख्या की गई हो कि राज्य में किस रूप में मंत्री मण्डल का गठन किया जाए। खण्ड (1-ए) को नीचे बताए अनुसार जोड़ा जाना चाहिए :—

(1-ए) (क) राज्यपाल को मुख्यमंत्री के रूप में पार्टी के उस नेता को नियुक्त करना चाहिए जिसको विधान सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त हो।

(ख) जहां राज्यपाल इस बात से संतुष्ट न हो कि किसी एक पार्टी को विधान सभा में सम्पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है तो वह अपने आप ही किसी मुख्य-मंत्री का चुनाव करने के लिए विधान सभा बुला सकता है और चुना गया व्यक्ति राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया जाएगा।

(ग) किसी मंत्री को निष्कासित करने के संबंध में मुख्यमंत्री द्वारा दी गई सलाह राज्यपाल को माननी (स्वीकार) चाहिए।

(घ) यदि किसी समय राज्यपाल को ऐसी लगता है कि मुख्य मंत्री ने विधान सभा के सदस्यों का बहु संख्या में विश्वास खो दिया है तो उसे तत्काल ही तथा अपने आप ही विधान सभा बुला लेनी चाहिए जिससे कि मुख्यमंत्री सदन में विश्वास मत प्राप्त कर ले।

(ङ) (i) यदि मुख्य मंत्री विश्वास मत प्राप्त करने में असफल रहता है और प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं कर पाता तो उसे त्याग पत्र दे देना चाहिए, ऐसे त्याग पत्र देने के समय विधान सभा में कोई पार्टी

पूर्ण रूप से बहुसख्या मे हो तो राज्यपाल अपने आप ही ऐसी पार्टी के नेता को मुख्य मंत्री नियुक्त करेगा ।

(ii) यदि मुख्यमंत्री पैराग्राफ (i) के अंतर्गत त्यागपत्र देने में असफल रहता है अथवा विधान सभा मे कोई सम्पूर्ण बहुमत वाली पार्टी मौजूद न हो तो राज्यपाल तत्काल ही अपने आप ही विधान सभा बुलाएगा । विधान सभा उस नए मुख्यमंत्री का चयन करेगी जिसे राज्यपाल मुख्य-मंत्री के रूप में नियुक्त करेगा अथवा इसके बदले विधान सभा ऐसा सकल्प पारित करेगी जिसमें उस विधान सभा को भंग करने की सिफारिश करेगी जो राज्यपाल को बाध्य करती है ।

(iii) यदि विधान सभा नए मुख्य मंत्री का चुनाव करने में असफल रहती है या उप खण्ड (घ) के अंतर्गत विश्वास मत प्राप्त करने की तारीख को और उस तारीख से एक महीने की अवधि के अन्तर पैराग्राफ (ii) में किए गए उल्लेखानुसार संकल्प पारित करने के असफल रहती है तो विधान सभा एक महीने उक्त अवधि के समाप्त होने पर भंग हो जाएगी ।

(च) जब विधानसभा उपखण्ड (ङ) के अंतर्गत तथा विधान सभा प्रारम्भ होने की तारीख तथो उस तारीख से और नयी विधान सभा द्वारा, नए मुख्य मंत्री पुन: लिए जाने की तारीख तक भंग कर दी जाती है तो मुख्य मंत्री तथा अन्य मंत्री जो उस तारीख की पद पर बने रहते हैं जिस तारीख को उपखण्ड (ङ) के अंतर्गत विधान सभा भंग कर दी जाती है केवल मंत्रालय के संरक्षक के रूप में पद पर बने रहेंगे ।

(7) अगला अनुच्छेद जिस पर हमें गंभीर रूप से विचार करना है अनुच्छेद 169, खण्ड (1) है । इस अनुच्छेद में कहा गया है कि "अनुच्छेद 168 में किए गए उल्लेख के बावजूद संसद कानून द्वारा ऐसे राज्य की विधान परिषद् को भंग करने की व्यवस्था कर सकती है अथवा किसी राज्य में ऐसी परिषद न होने पर ऐसी परिषद् के गठन के लिए कानून द्वारा व्यवस्था कर सकती है यदि राज्य विधान सभा इस आशय का एक संकल्प विधान सभा की कुल सदस्यता की बहुसंख्या द्वारा पारित करे और इस संकल्प के लिए उसे कम-से-कम दो तिहाही मौजूद विधान सभा के सदस्यों की बहुसंख्या और मत प्राप्त हो ।"

इस अनुच्छेद में "संसद" शब्द के पश्चात् "कर सकती" शब्द के स्थान पर "करेगी" शब्द लगाना आवश्यक है । इसे इस प्रकार बदला जाना बेहतर होगा कि "संसद कानून" द्वारा जिन राज्यों में परिषद् है उनकी विधान परिषद् के उन्मूलन के लिए व्यवस्था करेगी या जिन राज्यों में ऐसी कोई परिषद् नहीं है उनमें परिषद् बना सकेगी, यदि राज्य की विधानसभा उपस्थित और मतदान करते वाले सदस्यों के कमसे कम दो तिहाई से अधिक मतों के बहुमत द्वारा ऐसा प्रस्ताव पास करती है ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 से 4.4 इन चारों प्रश्नों पर उनके प्रयोजनों, कार्य और प्रयोगों के अनुसार प्रकाश डाला जाना चाहिए ।

संविधान में अनुच्छेद 256, 257, 365 और 356 चार ऐसे अनुच्छेद है जो उन अनुच्छेदों के अधीन संघ द्वारा अधिकारों के संभव एकात्मक व्यवहार की दृष्टि से राज्यों पर उत्प्रेरक और दैववादी दोनों प्रभाव डालते हैं । जिस परिकल्पना पर अनुच्छेद 256 और 257 के अन्तर्गत कार्यकारी अधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है, जिस सामग्री पर राष्ट्रपति व्यक्तिपरक ढंग से सन्तुष्ट हो सकते हैं कि ऐसी दशा आ गई है जिसमें राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार काम नहीं कर सकती, राज्य सरकार की रिपोर्ट जो कि अनुच्छेद 356 के अधीन रिपोर्ट देने की अनियंत्रित, खुली, स्वेच्छाचारी शक्तियों के अधीन दी जाती है, और अवशिष्ट उपबन्ध जो अनुच्छेद 356 के अधीन किन्हीं भी उपयुक्त या स्वीकार्य प्रतिबन्धों द्वारा नियन्त्रित नहीं है और अन्तिम कदम जिसकी परिणति संघ कार्यकारी शक्तियों के अभिग्रहण और कार्यान्वयन द्वारा होती है, चाहे उपचारात्मक के रूप में हो या सुधारात्मक रूप में, ये हमारे देश में राज्यों के मन में सीधे आशंका पैदा करती है, कि क्या कार्यकारी शक्ति का ऐसा प्रयोग पूर्णतया सुसंगत और राज्यसंघ की सर्वत्र स्वीकार्य धारणाओं के अनुरूप है ।

ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जिससे राज्यों के मन में भय और आशंका उत्पन्न हो । कार्यकारी शक्तियों का जरूरत से ज्यादा उपयोग और उसके अधीन लिए गए राज्यों के संवैधानिक स्तर जैसा कि संविधान में सोचा गया है प्रभाव डालने वाले अन्तिम कदमों का इतिहास सन् 1951 से ही शुरू हो जाता है ।

उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

1. सन् 1951 में पंजाब में राष्ट्रपति शासन का आरोपण और डा० जी० सी० भार्गव, मुख्यमन्त्री का त्यागपत्र ।
2. सन् 1953 में पेप्सू में ज्ञान सिंह राड़ेवाला मन्त्रालय भंग ।
3. सन् 1953 में केरल में विधान सभा भंग ।
4. सन् 1954 में श्री टी० प्रकासम मन्त्रालय ने त्यागपत्र दिया और आन्ध्र प्रदेश में राष्ट्रपति शासन का आरोपण ।
5. सन् 1956 में केरल में श्री जी० गोविन्दा मेनन मन्त्रालय का पतन और राष्ट्रपति शासन का आरोपण ।
6. सन् 1959 में केरल में श्री ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद मन्त्रिमण्डल भंग और राष्ट्रपति शासन का आरोपण ।
7. सन् 1961 में उड़ीसा में श्री महताब मन्त्रिमण्डल का पतन और राष्ट्रपति शासन का आरोपण ।
8. केरल में श्री आर० शंकर मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध विश्वास प्रस्ताव पारित नहीं हुआ और परिणामत: 10 सितम्बर 1964 को राष्ट्रपति ने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया ।
9. सन् 1966 में पंजाब के मुख्यमन्त्री श्री रामकृष्ण ने त्यागपत्र दिया और राज्य विधान मण्डल के अधिकारों का निलम्बन करते हुए राष्ट्रपति शासन की घोषणा हुई ।
10. सन् 1966 में गोवा में महाराष्ट्रवादी गोमतंक पार्टी सरकार ने त्याग पत्र दिया और गोवा विधान सभा का निलम्बन करते हुए राष्ट्रपति शासन की घोषणा ।
11. मार्च 1965 में केरल राज्य का प्रबन्ध राष्ट्रपति ने ले लिया, चूंकि कोई भी राजनीतिक पार्टी सरकार बनाने की स्थिति में नहीं थी ।
12. सन् 1967 में राजस्थान में राज्य विधान मण्डल का निलम्बन करते हुए राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ ।
13. 25 अक्तूबर, 1967 को राष्ट्रपति ने मणिपुर विधान सभा और मन्त्री परिषद को निलम्बित किया ।
14. 21 नवम्बर, 1967 को राष्ट्रपति ने राव बीरेन्द्र सिंह के नेतृत्व वाले संयुक्त मोर्चा मन्त्रिमण्डल को भंग किया और हरियाणा विधान सभा को भंग किया ।
15. सन् 1968 में उत्तर प्रदेश में विधान सभा और चरण सिंह के प्रतिनिधित्व वाली मन्त्री परिषद को निलम्बित करते हुए राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ ।
16. सन् 1968 में बिहार में श्री भोला पासवान शास्त्री का त्याग पत्र और राष्ट्रपति शासन की घोषणा ।.
17. सन् 1968 में राष्ट्रपति ने पांडिचेरी विधान सभा भंग की और राष्ट्रपति शासन लागू किया ।
18. सन् 1968 में पश्चिमी बंगाल राज्य मन्त्रिमण्डल भंग और राष्ट्रपति शासन आरोपित ।
19. सन् 1968 में श्री लक्ष्मण सिंह गिल, मुख्यमन्त्री, पंजाब ने त्याग पत्र दिया और राष्ट्रपति शासन का आरोपण ।
20. सन् 1969 में राष्ट्रपति ने बिहार सभा को निलम्बित किया और श्री भोला पासवान शास्त्री मन्त्रालय के पतन के बाद राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ ।
21. सन् 1969 में मणिपुर में किइरंग सिंह ने अपने मंत्रि परिषद का त्याग पत्र दिया और परिणामतया विधान सभा भंग हुई और राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ ।

22. सन् 1970 में उत्तर प्रदेश में श्री चरण सिंह मन्त्रालय के भंग होने के बाद राष्ट्रपति शासन का आरोपण हुआ।

23. उड़ीसा के मुख्यमन्त्री श्री आर० एन० सिंह दिओ ने त्याग पत्र दिया, 11 जनवरी, 1971 में विधान सभा निलम्बित हुई और जनवरी, 1971 में राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ।

24. उड़ीसा में 23 जनवरी, 1971 में विधान सभा भंग हुई और राष्ट्रपति शासन लागू हुआ।

25. मार्च, 1970 में पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री के रूप में श्री अजय मुखर्जी का त्याग-पत्र, विधान सभा का निलम्बन और राष्ट्रपति शासन का आरोपण।

26. 30 जुलाई, 1970 में पश्चिमी बंगाल में विधान सभा का भंग होना और राष्ट्रपति शासन का जारी होना।

27. सन् 1970 में केरल में श्री सी० अच्युत मेनन ने त्याग पत्र दिया, विधान सभा भंग हुई, राष्ट्रपति शासन की घोषणा।

28. मैसूर में श्री विरेन्द्र पाटिल ने त्याग पत्र दिया। मार्च, 1971 में विधान सभा को निलम्बित करते हुए राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ।

29. अप्रैल, 1971 में मैसूर में सभा भंग हुई।

30. मई 1971 में गुजरात के मुख्यमन्त्री श्री हितेन्द्र देसाई ने त्याग-पत्र दिया, सभा भंग हुई और राष्ट्रपति शासन का आरोपण हुआ।

31. राज्यपाल डॉ० डी० सी० पवाटे ने पंजाब सभा भंग की और उसके पश्चात् राष्ट्रपति को शासन का भार अपने हाथ में लेने की सलाह दी। जून 1971 में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।

32. 25 जून, 1971 में पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल ने विधान सभा भंग की और 29 जून को राष्ट्रपति ने शासन अपने हाथ में ले लिया।

33. बिहार में श्री भोला पी० शास्त्री मन्त्रिमण्डल ने त्याग पत्र दिया और जनवरी 1972 में राष्ट्रपति ने राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया।

34. मार्च, 1973 में जब सतपति मन्त्रिमण्डल ने अपना बहुमत खो दिया तो विधान सभा को भंग करते हुए राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा हुई।

35. मार्च, 1973 में मणिपुर में अलिमुद्दीन मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दिया, राष्ट्रपति ने विधान सभा भंग की और राष्ट्रपति शासन का आरोपण हुआ।

36. जनवरी 1974 में पाण्डिचेरी के मुख्यमन्त्रि श्री एस० डी० एम० फारुक मरिकर ने त्यागपत्र दिया, राष्ट्रपति शासन लागू किया।

37. मार्च 1974 में, पाण्डिचेरी में श्री रामास्वामी मन्त्रिमण्डल ने त्याग पत्र दिया और राष्ट्रपति शासन लागू किया।

38. नवम्बर 1971 में त्रिपुरा में सेनगुप्ता मन्त्रालय ने त्यागपत्र दिया और राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ।

39. श्री पी० वी० नरसिंहा राव, मुख्यमन्त्री, आन्ध्र प्रदेश ने त्यागपत्र दिया और जनवरी 1973 में सभा भंग करते हुए राष्ट्रपति शासन की घोषणा की।

40. जून, 1973 में उत्तर प्रदेश में श्री कमलापति त्रिपाठी मुख्यमन्त्री ने त्यागपत्र दिया और राष्ट्रपति शासन आरोपित हुआ।

41. गुजरात में श्री चिमनभाई पटेल, मुख्यमन्त्री ने त्यागपत्र दिया और विधान सभा को निलम्बित करते हुए राष्ट्रपति शासन अधिरोपित हुआ।

42. मार्च, 1975 में गुजरात विधान सभा भंग हुई, राष्ट्रपति शासन लागू हुआ।

43. नवम्बर, 1976 में उत्तर प्रदेश में जब श्री एच० एन० बहुगुणा मुख्यमन्त्री थे तो विधान सभा को निलम्बित किया गया।

44. दिसम्बर 1976 में उड़ीसा में श्रीमती सतपथी, मुख्यमन्त्री का पदच्युत किया गया।

45. मार्च, 1976 में बजट मांग पर गुजरात के मुख्यमन्त्री श्री बाबभाई पटेल हारे, विधान सभा निलम्बित हुई।

46. मार्च, 1975 में नागालैंड में जॉन बोस्को जसोकी मन्त्रि मण्डल राजनीतिक दलबदल के कारण टिकाऊ नहीं हो सका, विधान सभा निलम्बित की गई।

47. मई 1975 में नागालैंड में विधान सभा भंग हो गई।

48. सन् 1976 में तमिलनाडु में श्री करुणानिधि मन्त्रिमण्डल बरखास्त और राष्ट्रपति शासन का आरोपण।

49. मई 1977 में मिजोरम के मुख्यमन्त्री श्री सी० चगा ने त्यागपत्र दिया और विधान सभा भंग हो गई।

50. नवम्बर 1977 में त्रिपुरा में श्री आर० आर० गुप्ता मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दिया और विधान सभा भंग कर दी गई।

51. सन् 1977 में कर्नाटक में जनता सरकार द्वारा डी० देवराज उर्स सरकार को बरखास्त किया गया।

52. जब मिजोरम में श्री टी० सैलो मुख्यमन्त्री थे, तो नवम्बर 1978 में विधान सभा भंग हुई।

53. सन 1978 में पांडिचेरी में रामस्वामी सरकार बरखास्त कर दी गई।

54. गोवा में जब श्रीमती एस० काकोडकर मुख्यमन्त्री थी, अप्रैल, 1979 में सभा बरखास्त हुई थी।

55. जब अरुणाचल प्रदेश में श्री टोमो रिबा मुख्यमन्त्री थे, नवम्बर 1979 में विधान सभा बरखास्त हुई थी।

56. केरल में जब श्री सी० एस० मोड़किया मुख्य मन्त्री थे, दिसम्बर 1979 में विधान सभा बरखास्त हुई।

57 से 65. सन, 1977 में नौ राज्य सरकारें—उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश जनता सरकार द्वारा बरखास्त कर दी गईं।

66. मई 1977 में मणिपुर में जब श्री आर० डोरेन्द्र सिंह मुख्यमन्त्री थे सभा निलम्बित कर दी गई।

67. दिसम्बर, 1977 में, जब असम में श्री जे० एस० हजारिका मुख्यमन्त्री थे विधान सभा निलम्बित कर दी गई।

68. नवम्बर, 1979 में, मणिपुर में जब श्री वाई० याहिजा मुख्यमन्त्री थे विधान सभा भंग की गई।

69. अगस्त, 1979 में, सिक्किम में जब श्री दोरजी मुख्य मन्त्री थे विधान सभा भंग की गई।

70 से 78. सन, 1980 में, नौ राज्य सरकारें—उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु, उड़ीसा, गुजरात, और महाराष्ट्र बरखास्त कर दी गईं।

79. जून 1981 में असम में जब श्री अनवर तैमूर मुख्यमन्त्री थे विधान सभा निलम्बित की गई।

80. फरवरी, 1981 में मणिपुर में, जब श्री रिशांग कैशिंग मुख्यमन्त्री थे विधान सभा निलम्बित की गई।

81. अक्तूबर 1981 में केरल में जब श्री के० ई० नयानर मुख्यमन्त्री थे, विधान सभा भंग की गई।

82. मार्च 1982 में केरल में जब श्री करुणाकरन मुख्यमन्त्री थे, विधान सभा भंग की गई।

83. मार्च 1982 में केरल में, जब श्री के० सी० गोसाई मुख्यमन्त्री थे विधान सभा भंग की गई।

84. जून 1982 में पाण्डिचेरी में, जब श्री डी० रामचन्द्रन मुख्यमन्त्री थे, विधान सभा भंग की गई।

85. अक्तूबर, 1983 में पंजाब में जब श्री दरबारा सिंह मुख्यमन्त्री थे विधान सभा निलम्बित की गई।

86. सन् 1984 में सिक्किम मन्त्रालय की बरखास्ती।

87. सन् 1984 में पंजाब मन्त्रिमण्डल की बरखास्ती।

उपर्युक्त मामलों में तथ्यों और परिस्थितियों का विश्लेषण करने से यह प्रतीत होता है कि अनुच्छेदों 256, 257, 365 और 356 को एक साथ पढ़ते हुए उनके शब्दों और भावों से उद्भूत असाधारण उपचारात्मक या तथाकथित सुधारात्मक शक्तियों का प्रयोग किया गया, इन शक्तियों का न केवल प्रयोग किया गया बल्कि अनुचित रूप से प्रयोग किया गया क्योंकि ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी कि राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार कार्य न कर सकती। अन्य बातों के अतिरिक्त अनुच्छेद 256 का उद्देश्य संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और वर्तमान कानूनों का राज्य सरकारों द्वारा पालन किए जाने को सुनिश्चित करना है। इस प्रकार के अनुच्छेद की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है क्योंकि संसद जो कानून बनाती है और वर्तमान कानून जो राज्यों पर लागू होते हैं उन पर चलने और उनका पालन करने के लिए राज्य बाध्य हैं। यह अनुच्छेद पूर्णतया अनावश्यक है। जब प्रशासन सुधार आयोग ने यह महसूस किया कि अनुच्छेद 256 या अनुच्छेद 257 के अधीन राज्य को ऐसे निर्देश जारी करने से पूर्व साधारणतया जिसका परिणाम सख्त कदम होंगे और जो कि प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार संघर्ष के सभी मुद्दों का समाधान करने के लिए उपलब्ध अन्य सभी साधनों का प्रयोग करने के बाद उठाए जाने चाहिए, आयोग, अनुच्छेद 365 तथा 356 के संग पठित अनुच्छेद 256 और 257 के अधीन कार्यपालिका शक्तियों को अपने हाथ में लेने के आपत्तिजनक स्वरूप के बारे में स्वयं पूर्णतः सन्तुष्ट था। इसलिए ये अनुच्छेद, संकल्पना और व्यवहार में अनिष्टकारी संभावनाओं से युक्त हैं और ये राज्यों के क्रिया-कलापों में गम्भीर हस्तक्षेप करते हैं क्योंकि इनमें कार्य पालिका और विधायी दोनों शक्तियाँ निहित हैं। यद्यपि, संविधान के निर्माताओं को अन्तर्राज्य परिषद जैसे किसी निकाय की उपयोगिता के बारे में जानकारी थी तथापि उन्होंने अनुच्छेद 263 के अधीन कोई ऐसी परिषद नहीं बनाई और न ही पिछले 34 वर्षों से ऐसी परिषद बनाने का प्रयास ही किया जिसमें निर्धारित कर्तव्यों को निभाने वाला, कोई विशेषज्ञ निकाय हो।

ऐसी अभिव्यक्तियों के प्रयोग से जैसे कि :

(क) संसद द्वारा बनाई गई विधियों का अनुपालन सुनिश्चित रहे और इस प्रयोजन के लिए जो भी निर्देश जारी करना आवश्यक हो (अनुच्छेद 256),

(ख) संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई अड़चन या उस पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और इस प्रयोजन के लिए यथा आवश्यक निर्देश जारी करने की परिणामी शक्ति [अनुच्छेद 257(1)],

(ग) किन्हीं अनुदेशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफल रहने पर यह मान लेना कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है (अनुच्छेद 365),

(घ) राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि उस राज्य के शासन का कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिए (अनु० 356)।

इससे यह लगता है कि संघ को संविधान के अन्दर जो शक्तियाँ दी गई हैं उनका राज्यों के ऊपर सर्वव्यापी प्रभाव है जिससे राज्यों की स्वायत्तता का सिद्धान्त धराशायी हो जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पिछले तीन दशकों में ऐसी शक्तियों के प्रयोग ने यह स्पष्ट कर दिया है ऐसी शक्तियों का अत्यधिक उपयोग या दुरुपयोग हुआ जिसके परिणामस्वरूप असाधारण कदम उठाए गए और राज्य स्वायत्तता के महल को धराशायी किया गया। हम पहले ही यह बता चुके हैं कि अनुच्छेद 256 और 257, 365 और 356 के बीच शृंखलित प्रक्रिया से, जिसका स्वरूप उत्प्रेरक प्रभाव युक्त है, राज्यों की स्वायत्ता में गंभीर हस्तक्षेप का होना लाजमी है। इसलिए प्रश्न 4.1 से 4.4 के चारों प्रश्नों का हमारा मिलाजुला उत्तर यह है कि अनुच्छेद 256, 257, 365 और 356 हटा दिए जाने चाहिए क्योंकि राज्यों की यह उम्मीद कि यह आरक्षित उपाय हैं, अन्ततः धोखा सिद्ध हुई है और चूंकि प्रशासनिक सुधार आयोग ने स्वयं कहा है कि राष्ट्रपति द्वारा शासन सम्भाल लेना (अनुच्छेद 356 के अधीन) कोई अपवादिक मामला नहीं रहा बल्कि यह एक आम बात हो गई है और संविधान में निर्धारित की गई यह कड़वी दवाई अन्तिम उपाय के रूप में इस्तेमाल किए जाने की अपेक्षा रोजमर्रा की खुराक की तरह दी जाने लगी है। इस प्रकार का भी यह मत है कि अनु० 357 और 360 हटा दिए जाने चाहिए।

इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि जहाँ तक केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध है, केन्द्र में राष्ट्रपति शासन लागू करने का कोई प्रावधान नहीं है। जब किसी निर्वाचित राष्ट्रपति को केन्द्र में राष्ट्रपति शासन लागू करने का और मन्त्री परिषद की सहायता के बिना कार्य करने का कोई अधिकार नहीं है तो राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का कोई औचित्य नहीं है। राज्य में संवैधानिक अव्यवस्था होने की स्थिति में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि चुनाव करवाने और नई सरकार गठित करने की लोकतान्त्रिक प्रक्रिया अपनाई जाए जैसा कि केन्द्र के मामले में होता है।

4.5 प्रश्न 4.1 से 4.4 के उत्तरों को देखते हुए इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। हमें इस पर कोई टिप्पणी नहीं देनी है।

4.6 यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें प्रशासनिक कार्यकलापों के विकेन्द्रीकरण की संकल्पना लागू की गई है। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण किए जाने के ऐसे प्रयास की अवश्य सराहना की जानी चाहिए। इसके अलावा, राज्य सरकारें जनगणना और चुनावों जैसे सम्बन्धित मामलों को निपटाने में केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा बेहतर स्थिति में होनी चाहिए।

4.7 सर्वप्रथम हमें इन सभी अभिकरणों को दो भागों में बांटना होगा—(1) राज्य सूची में शामिल विषयों से सम्बद्ध अधिकरण और (2) समवर्ती सूची में शामिल विषयों से सम्बद्ध अभिकरण। अनुच्छेद 258 के अनुसार राज्य सूची में शामिल विषयों से सम्बद्ध केन्द्रीय अभिकरणों को, बिना राज्य सरकार की सहमति या राज्य सरकार द्वारा जब तक अनुच्छेद 258 के अधीन संघ राज्य को कार्य का हस्तांतरण न कर दिया जाए या सौंपा न जाए, राज्यों में काम करने की नीति सम्बन्धी निर्देश देना और सिद्धान्त बनाने का संवैधानिक प्राधिकार नहीं है। अतः केन्द्रीय अभिकरण द्वारा राज्य सूची में शामिल विषयों से सम्बद्ध कोई भी काम करना राज्य की स्वायत्ता में हस्तक्षेप माना जाएगा।

संसद को चाहिए कि राज्य विधान मण्डल की सहमति के बिना समवर्ती सूची में शामिल विषय के सम्बन्ध में विधि निर्माण का कार्य अपने हाथ में न ले। यदि किन्हीं मामलों में संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के लिए राज्य विधान मण्डल ने अपनी सहमति नहीं दी तो संसद द्वारा बनाए गए कानून राज्य पर लागू नहीं किए जाने चाहिए।

किन्तु समवर्ती सूची में शामिल विषयों से सम्बद्ध केन्द्रीय अभिकरण, समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में कार्य कर सकती है जिनमें सभी सदस्य संघ संसद के ही नहीं है बल्कि राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल हैं। इस प्रकार के कार्यों को उनकी समुचित भूमिका माना जाना चाहिए।

समवर्ती विषयों से सम्बद्ध ऐसे केन्द्रीय अभिकरण जिनमें सभी सदस्य संघ के हैं राज्यों के प्रतिनिधियों के बिना कार्य कर सकते हैं क्योंकि ऐसे अधिकरणों के कार्यों को संघीय सिद्धान्त का उल्लंघन नहीं माना जा सकता। इस विशिष्ट प्रश्न का उत्तर देने में और विशेष रूप से दक्षिणी राज्यों पुराने मतभेदों और भ्रान्तियों को देखते हुए अन्तर्राज्य नदियों के विनियमों के बारे में हम ऐसा सुझाव देने पर बाध्य हैं जैसा कि संविधान की अनुसूची-VII की सूची I की प्रविष्टि 56 के साथ पठित अनुसूची-VII की सूची II में प्रविष्टि 17 में विहित है। हाल ही में, जल विवाद जिसमें जल नियंत्रण और अन्तर्राज्य नदियों का जल वितरण शामिल है, उठे हैं, विशेष रूप से एक ओर तमिलनाडु और दूसरी ओर कर्नाटक के बीच। एक दक्षिणी राज्य से दूसरे दक्षिणी राज्य में अन्तर्राज्य नदियों के सही वितरण संबंधी मामलों पर पत्राचार करने में काफी समय लगता है। राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद और राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण के होते हुए भी किसी योजक स्कीम को कार्यान्वित करना बहुत कुछ सम्बन्धित राज्य सरकारों के सहयोग पर निर्भर करता है। कई मौसमी समस्याएं आती हैं और कोई भी राज्य समस्याग्रस्त राज्यों के सन्तोषानुसार स्वीकार्य या समन्वित हल नहीं खोज पाता। हमारा सुझाव है कि पत्र व्यवहार में देरी को रोकने के लिए अन्तर्राज्य जल विवाद संबंधी सभी विवाद

सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्थायी रूप से गठित एक अभिकरण को भेज दिए जाने चाहिए ।

4.8 अखिल भारतीय सेवाओं जिनमें भारतीय प्रशासन सेवाएं और भारतीय पुलिस सेवाएं शामिल हैं, को रखना आवश्यक नहीं है । यह सरकार महसूस करती है कि अन्य राज्यों के अधिकारियों को इस राज्य में न लाया जाए चूंकि वह वहां के लोगों की भावनाओं को नहीं समझ सकते । दो प्रकार की सेवाएँ होनी चाहिए— (1) राज्य सरकार के प्रयोजन के लिए राज्य सिविल सेवा और (2) संघीय सरकार के लिए केन्द्रीय सेवा । केन्द्रीय सेना में केन्द्र द्वारा राज्यों में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में कार्मिकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रीय अखण्डता के हित में राज्यों के कर्मचारियों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए ।

4.9 केन्द्रीय रिजर्व पुलिस दल अधिनियम 1949 (सन् 1949 का केन्द्रीय अधिनियम 66) के उपबन्धों के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल गठित किया जाता है । केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की तैनाती के सम्बन्ध में सरकार का सुझाव है कि यह तैनाती राज्यों के अनुरोध या सहमति पर की जानी चाहिए । सरकार ने पहले ही यह सुझाव दिया है कि संविधान की 7वीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 2-क को समुचित रूप से संशोधित किया जाए ताकि इसका संघीय संरचना पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न हो ।

4.10 सन् 1956 में, पांच क्षेत्रीय परिषदें बनाई गई थीं । इनका गठन अन्तः सरकारी परामर्श और सहयोग के एक तन्त्र के रूप में, विशेषकर सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग के लिए किया गया था । परिणामतः उनका मुख्य कार्य कार्मिक एवं सामाजिक आयोजन के क्षेत्र में जन-हित के मामलों पर सिफारिशें करना है । इसके अलावा, सीमा-विवाद, भाषाई अल्पसंख्यकों और अन्तर्राज्यीय परिवहन सम्बन्धी मामलों पर विचार विमर्श करना और उस पर सिफारिशें करना भी उनके कार्य क्षेत्र में आता है । दूसरे शब्दों में, क्षेत्रीय परिषदों को सौंपे गए कार्य ऐसे हैं कि उनसे ये परिषद पर्याप्त क्षमता सम्पन्न हो गई हैं । जैसा कि डा० दुर्गादास बासु ने मत व्यक्त किया है "इनसे इकाइयों के बीच के झगड़ों को समाप्त करने में काफी मदद मिलेगी जो संघीय प्रणाली में विहित होते हैं" । इस सरकार का यह विचार है कि यह सभी सम्बन्धितों के हित में है कि क्षेत्रीय परिषदों को इस रूप में क्रियाशील बनाया जाए ताकि वे राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 की आकांक्षाओं को पूरा कर सकें । क्षेत्रीय परिषद के किसी भी निर्णय को सम्बद्ध राज्य द्वारा लागू किया जाना चाहिए, भारत सरकार को निर्देश देने का अधिकार होना चाहिए ।

4.12 हम शुरू में ही कह दें कि अनु० 263 जैसा कि वह इस समय है अधीन गठित किसी भी अन्तर्राज्यीय परिषद का कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं होगा । ज्ञातव्य है कि अनुच्छेद 263 में दो बातों के बारे में कहा गया है—(1) अन्तर्राज्य विवादों की जांच और उन पर सलाह और (2) राज्यों के बीच या संघ और राज्यों के बीच समान हितों के मामलों पर जांच करना, विचार विमर्श करना और उन पर सिफारिशें करना । अनुच्छेद 263 का स्वर और भाषा इस प्रकार की कि उसके अधीन गठित किसी परिषद द्वारा दी गई सलाह, की गई सिफारिशें और उनके निष्कर्ष, किसी भी पक्ष पर बाध्यकर नहीं है । अधिक से अधिक ऐसी सलाहों, सिफारिशों आदि का अनुरोधात्मक मूल्य हो सकता है । दूसरी ओर, यदि परिषदों का गठन उचित रूप से नहीं किया गया है तो न केवल उनकी सिफारिशें और सलाह ही सम्बद्ध पक्षों पर प्रभाव डालने में असफल रहेंगी बल्कि साथ-साथ देश के राजनीतिक ढांचे में एक स्थायी उलझन भी बन सकती है । अतः हमारा सुझाव है कि समूचा अनु० 263 जिसमें अन्तर्राज्य परिषद बनाने सम्बन्धी सिफारिशें की गई हैं, हटा दिया जाए ।

पहले से ही बताए गए विचारों के अलावा अन्य सिफारिशें

(1) हमने पहले जो विचार दिए हैं उनके अनुरूप अनुच्छेद 256, 257, 356, 357, 360 और 365 को हटा दिये जाए ।

(2) अनुच्छेद 263 को भी हटा दिया जाना चाहिए ।

(3) अनुच्छेद 339(2) को अवश्य हटा दिया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी राज्य की अनुसूचित जन-जाति के हित का जितना सम्बन्ध संघ सरकार से है उतना ही राज्य सरकार से भी है । अतः किसी भी राज्य को यह निर्देश देने की जरूरत नहीं है कि किस प्रकार अनु० जन जाति के कल्याण को संवर्धित किया जाए ।

(4) अनुच्छेद 344(6) को हटा दिया जाए क्योंकि हिन्दी भाषा के प्रयोग, अंग्रेजी भाषा का कम प्रयोग, आदि जैसे नाजुक मामलों पर राष्ट्रपति द्वारा जारी निर्देश राज्य की मर्यादा और उसके अस्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे ।

(5) अनुच्छेद 350 क के निर्देश देने सम्बन्धी प्रावधान हटा दिए जाएं क्योंकि भाषाई अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा उनकी मातृ-भाषा में करने सम्बन्धी अनुदेशों के लिए समुचित व्यवस्था करना राज्य का कर्त्तव्य है और राज्य पर यह विश्वास किया जा सकता है कि वह राष्ट्रपति के अनुदेशों या निर्देशों के बिना भी यह कर्त्तव्य विश्वासपूर्वक निभा सकेंगे ।

भाग V

वित्तीय संबंध

सामान्य अभियुक्तियाँ

जब संविधान का निर्माण हुआ था तो केन्द्र और राज्यों के बीच उनकी तत्कालीन और भावी आवश्यकताओं या वित्तीय संसाधनों में स्थायी विषमताओं से सम्बद्ध आवश्यकताओं पर गहराई से विचार नहीं किया गया था । जो पद्धति संविधान बनाते समय सोची गई थी वही छोटे-मोटे संशोधनों के साथ चलती रही जो कि हमेशा केन्द्र के पक्ष में रही है । इस वित्तीय ढांचे के निरन्तर चलते रहने के कारण ही केन्द्र का इसमें न्यूनाधिक स्वार्थ पैदा हो गया और राज्यों में वित्त के वितरण के सम्बन्ध में उनकी पकड़ बहुत मजबूत हो गई है । अनुच्छेद 269 के बावजूद, केन्द्र ने बिना किसी ठोस कारण के उन स्रोतों का पूरी तरह लाभ नहीं उठाया है जिनकी अनुच्छेद में कल्पना की गई थी और इस कारण केन्द्र की चूक की वजह से राज्यों को नुकसान उठाना पड़ा है । वित्त आयोग हालांकि एक सांविधिक निकाय है जिसे अनुच्छेद 280 से अपनी शक्ति प्राप्त होती है लेकिन योजना आयोग जिसकी ऐसी कोई सांविधिक बुनियाद नहीं है और कार्यपालिका की पैदाईश है, केन्द्र और राज्यों के बीच वित्त के वितरण के मामले में उसकी बात न्यूनाधिक अन्तिम मानी जाती है । अब समय आ गया है कि वित्तीय क्षेत्र में इन दोनों आयोगों के बीच भ्रान्तियों और दोहरेपन को समाप्त किया जाए । समान वितरण के नाम पर और इसलिए भी कि राज्य बिना किसी सहायता प्राप्त संसाधनों से अपनी योजनाओं में पूंजी निवेश कर सके वित्त आयोग और योजना आयोग के कार्यों को पुनः निर्धारित करने और उनमें सामन्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता है । योजना आयोग को आपात परिस्थितियों के मामलों और राष्ट्रीय हित के मामलों को छोड़कर, राज्यों द्वारा तैयार की गई योजनाओं को वित्त आयोग के विचारार्थ रखने के लिए स्वीकार कर लेना चाहिए । भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री के० सुब्बाराव के निम्नलिखित सुझाव विशेष रूप से विचार की अपेक्षा करते हैं :

> "अतः अब समय आ गया है कि संघ और राज्य के बीच वित्तीय सम्बन्धों को पुर्ननिर्धारित करने के लिए और संघ तथा राज्यों की आवश्यकताओं को देखते हुए केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों को पुनः आबंटित किया जाए और ऐसे उपाय किए जाएं कि इन सुझावों के आधार पर संविधान में संशोधन किया जाए" ।

राष्ट्रपति निक्सन के शब्दों में :—

> "धन वहां लगाया जाए जहां उसकी आवश्यकता है शक्ति वहां लगे जहां जनता है आइए हम अपने संसाधनों का मिलजुलकर प्रयोग करें, हम राज्यों और इलाकों को वित्तीय संकट के कगार से उभारने के लिए अपने संसाधनों का साझा प्रयोग करें——"

> "यदि हम अधिक शक्ति को अधिक स्थानों पर लगाते हैं तो हम सरकार को अधिक स्थानों तक और अधिक रचनात्मक बनाते हैं" ।

अन्तिम विश्लेषण के रूप में, योजना आयोग को भी एक संविधि के अधीन गठित किया जाना चाहिए और उसकी सिफारिशें भी मात्र परामर्शी होनी चाहिए और साथ ही राष्ट्रीय विकास परिषद, केन्द्र तथा राज्यों को भी चाहिए कि एक दूसरे की शक्तियों का उल्लंघन किए बिना अपना काम करें । उच्च शक्ति प्राप्त वित्त आयोग का गठन करना समय की मांग है जिससे कि वित्तीय सम्बन्धों को फिर से निर्धारित किया जाए और सुविचारित स्कीमों और योजनाओं के अनुसार निधियों का आबंटन किया जाए । उदाहरण स्वरूप, संघ और राज्यों के बीच

वित्तीय सम्बन्धों की असमानता, संविधान के अनुच्छेद 289 के सन्दर्भ में सामने लाई जा सकती है। अनुच्छेद 289(2) के अधीन संसद को किसी राज्य सरकार के द्वारा या उसकी ओर से किए जाने वाले किसी भी प्रकार के व्यापार या व्यवसाय के सम्बन्ध में, उससे सम्बद्ध किसी अन्य कार्य के सम्बन्ध में कर लगाने का अधिकार है। बावजूद अनुच्छेद 289 के खण्ड (3) के जिसमें संसद की किसी व्यापार या व्यवसाय को सरकार के सामान्य कार्यों का आनुषंगिक घोषित करने सम्बन्धी कानून का अधिकार है, यह प्रावधान अपने आप में भेदभाव पैदा करता है। संघ निस्संदेह व्यापार एवं व्यवसाय करता है और उनसे सम्बद्ध कई कार्यों से भी उसका सम्बन्ध रहता है। लेकिन संघ को ऐसे व्यावसायिक जोखिमों से होने वाली आय पर कर लगाने का कोई विचार नहीं किया जाता किन्तु राज्यों के साथ भेदभाव किया जाता है। संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के अधीन लगाए गए ऐसे करों को ए० आई० आर० 1964 एस–सी 1486 पृष्ठ 493 में न्यायिक मान्यता प्राप्त है। अतः अनुच्छेद 289(2) और (3) को हटा दिया जाए ताकि केन्द्र और संघ के राज्यों को उनके कारोबार में विशेषकर व्यापार एवं व्यवसाय के मामले में समान धरातल पर रखा जा सके।

राज्य के तीन प्रकार के वित्तीय सम्बन्ध होते हैं। एक है जो कर वसूल करते हैं उनके आबंटन द्वारा, दूसरा है अनुदानों द्वारा और तीसरा योजना आबंटन द्वारा।

संसाधनों के वितरण में केन्द्र ने सीमा शुल्क, उत्पादन शुल्क, अन्य दवाइयां, प्रसाधन सामग्री और एल्कोहॅल पदार्थों, निगम कर, आय कर से हिस्सा और साथ ही अपने प्रयोजनों के लिए आय कर पर प्रभार लगाने के अधिकार को अपने पास रखा है और इस प्रकार जो कर राज्यों को आबंटित है वे भी संघ द्वारा स्वयं उगाहे और एकत्रित किए जाते हैं।

राज्यों के पास राजस्व के मुख्य स्रोत केवल भूमि राजस्व, एल्कोहॅल, पदार्थों पर उत्पाद शुल्क बिक्री कर और आयकर का एक हिस्सा है। इससे सम्बद्ध अनुच्छेद 268, 269, 270 और 271 हैं। सूची I के बारे में प्रविष्टि 82 से 86 तक है। सूची II के बारे में प्रविष्टि 45 से 57 तक है।

संघ को राजस्व से ज्यादा संसाधन देने की वितरण प्रणाली ने राज्यों की आवश्यकताओं और संसाधनों में एक स्थायी खाई बना दी है।

संघीय वित्त के लिए वित्तों और संसाधनों की खाई को पाटना एक महत्वपूर्ण समस्या है। संविधान में इस खाई को पाटने के लिए तीन सूत्री योजना है :—

(1) प्रथम राज्यों को निगम कर को छोड़ कर आय पर कर, कतिपय पण्यों पर संघीय उत्पाद शुल्क का कुछ हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।

(2) दूसरा, राज्यों को संघ द्वारा उगाहे गए कतिपय करों जैसे—सम्पदा शुल्क, रेलभाड़े पर कर, बिक्री कर के बदले में उगाए गए अतिरिक्त उत्पादन शुल्क की पूरी राशि प्राप्त करने का अधिकार है।

(3) तीसरा, संविधान में राजस्व पर सहायता अनुदान प्रणाली की व्यवस्था की गई है।

अब यह बात हमारे देखने की है कि कहाँ तक यह खाई पाटी गई है।

अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान जहां इस प्रकार का क्रय या विक्रय होता है वहां माल की बिक्री या खरीद पर कर लगाने का अधिकार अनन्य रूप से संसद को दिया गया है—अनुच्छेद 269 (1) (छ) और सूची I की प्रविष्टि 92 क जैसा कि संविधान (छटा संशोधन), अधिनियम, 1956 द्वारा समाविष्ट किया गया है। इस शक्ति के प्रयोग में संसद ने 1956 का केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम बनाया जिसमें संसद को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान, जहां इस प्रकार की बिक्री या खरीद होती है, माल की बिक्री या खरीद पर कर निर्धारण करने सम्बन्धी सिद्धान्त तय कर सके जिससे कि अनुच्छेद 269 (1) (छ) के अधीन संघ, बिक्री कर लगाए जा सके।

राज्यों के वितरण, अधिकारों की सीमा निर्धारण और आयोजना के लिए सहायता के आबंटन का अभी तक का अनुभव ऐसा है कि उससे कड़वाहट ही पैदा होती है इस कड़वाहट को शीघ्र दूर किया जाए। केन्द्र और राज्यों के बीच लाभकारी सम्बन्धों को विकसित करने के ऐसे उपाय करना बहुत जरूरी हो गया है।

राज्य का मुख्य तर्क यह है कि राज्य सरकार को भी अपनी मांग को पूरा करने के संसाधनों पर उसी प्रकार अधिकार होना चाहिए जैसा कि केन्द्र को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के संसाधनों पर होता है। संघीय सरकार और राज्य के आय के स्वतन्त्र संसाधन होने चाहिए जो आपसी हस्तक्षेप से मुक्त हों। सन्तुलनकारी उपाय को केवल खाई भरने की गुंजाइश के तौर पर ही लिया जाना चाहिए। यह महसूस किया गया है कि राज्यों के पास ऐसी निधियाँ बनाने वाले संसाधन अपेक्षाकृत कम लचीले और अपर्याप्त हैं। केन्द्र पर निर्भरता बहुत अधिक है। यह भी महसूस किया गया है कि राज्यों में वित्त के बटवारे में और राज्यों की ओर से एकत्र किए जाने वाले करों के वितरण में और संघ द्वारा राज्यों को विवेकाधीन अनुदानों के मामलों में संवैधानिक रूप से वितरण ठीक नहीं किया गया है—उसमें मनमाना व्यवहार करने की गुंजाइश है। राज्य में निधियों को बनाने के संसाधन अपेक्षाकृत अपर्याप्त हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्यों को अनुदानों और ओवर ड्राफ्ट के लिए केन्द्र पर निर्भर होना पड़ता है। संसाधनों के असन्तुलन के कारण संविधान के सम्बद्ध अनुच्छेद में संशोधन किया जाना आवश्यक है जिससे राज्यों की विकासशील आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप पर्याप्त वित्तीय संसाधन मिल सकें। ऐसा होने पर ही विकास की जिम्मेदारी और उसे निभाने की शक्ति बराबर हो सकेगी और केन्द्र से अनुदान प्राप्त करने की बात अनावश्यक हो जाएगी। इससे केन्द्र अपना मन आकस्मिक सहायता के अधिक युक्तिसंगत मामलों के लिए आरक्षित रख सकेगा।

राज्यों को सहायतार्थ अनुदान के रूप में और विशिष्ट करों के हिस्से के रूप में संघीय सहायता का प्रावधान करने पर संविधान ने संघ राज्य से स्वतन्त्र एक ऐसे तन्त्र की कल्पना की जो सहायता की मात्रा को निर्धारित करे और साथ ही उन सिद्धान्तों का भी निर्धारण करे जिस पर यह उपलब्ध कार्रवाई की जाएगी। यह व्यवस्था वित्त आयोग के रूप में की गई जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा हर पांचवे वर्ष की जाती है ताकि संघ-राज्य वित्तीय संबन्धों में परिस्थिति को देखते हुए आवधिक समायोजन किए जा सके। भारतीय संघीय प्रणाली में वित्त आयोग एक अपूर्व प्रयोग है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इसकी परिकल्पना "एक ऐसे अर्द्ध विवाचक निकाय के रूप में की" जिसका कार्य केन्द्र और राज्यों के बीच न्याय करना है। यह एक ऐसा प्राधिकरण है जिसका अन्य संघों में कोई जोड़ नहीं है। आस्ट्रेलिया का कामन वैल्थ ग्रान्ट कमीशन ही दूसरा ऐसा एक निकाय है जिसकी इससे कुछ समानता है तथापि हैसियत और क्षमता क्षेत्र को लेकर दोनों में भारी अन्तर है। भारतीय वित्त आयोग संविधान द्वारा निर्मित है और यह विधिक निकाय नहीं है यह 5 वर्ष में केवल एक बार बैठता है। दूसरी ओर कॉमन वैल्थ ग्रान्ट कमीशन की स्थापना कॉमन वैल्थ पार्लियामेंट द्वारा 1933 में की गई थी और यह एक स्थायी निकाय है और यह पश्चिम आस्ट्रेलिया और तस्मानिया के घाटे के राज्यों को वित्तीय आवश्यकता अनुदानों की सिफारिशें करता है। आस्ट्रेलिया में इसके सदस्यों की नियुक्ति 3 वर्षों के लिए होती है। भारत में उनकी नियुक्ति लगभग एक वर्ष के लिए की जाती है। आयोग जब अपना निर्धारित कार्य पूरा कर लेता है तो यह भारमुक्त हो जाता है। इस प्रकार, भारत में इस आयोग के काम में कोई निरन्तरता नहीं है। इसके अलावा आस्ट्रेलिया के आयोग की तुलना में भारतीय वित्त आयोग की जिम्मेदारियां अधिक हैं क्योंकि इसे संघ और राज्यों के बीच करों की हिस्सेदारी और साथ ही राज्यों की वित्तीय आवश्यकता अनुदानों की सिफारिश करनी होती है। इतना ही नहीं अन्तर-सरकारी वित्तीय सम्बन्धों से जुड़े अन्य प्रश्न भी समय-समय पर इसे भेजे जाते हैं। वित्त आयोग के प्रावधानों का आशय राज्यों को यह विश्वास दिलाना है कि वितरण की योजना संघ द्वारा मनमाने ढंग से नहीं बनाई जाएगी बल्कि यह एक स्वतन्त्र आयोग की सिफारिशों पर आधारित होगी जो ये सिफारिशें देते समय राज्यों की बदली हुई आवश्यकताओं का भी जायजा लेगा। संविधान के अनुच्छेद 280 ने, जिसमें वित्त आयोग गठित करने का प्रावधान है, संसद को, आयोग का सदस्य नियुक्त किए जाने के लिए अपेक्षित अर्हताओं का और उस प्रणाली का जिसके अनुसार उन्हें चुना जाए का निर्धारण करने का प्राधिकार देता है और साथ ही उन शक्तियों का भी निर्धारण करता है जिससे वह अपने कार्य निष्पादित करता है। तदनुसार, संसद ने वित्त आयोग (विविध प्रावधान) अधिनियम, 1951 पास किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस आयोग में एक

अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होंगे। उनकी अर्हताओं के सम्बन्ध में, अध्यक्ष ऐसा होना चाहिए जिसे लोक कार्यों का अनुभव हो और इसके सदस्य ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हों या उसकी योग्यता रखते हों अथवा जिन्हें सरकार के वित्त लेखों की विशेष जानकारी हो अथवा जिन्हें वित्तीय मामलों और प्रशासन का व्यापक अनुभव हो अथवा जिन्हें अर्थ शास्त्र का विशेष ज्ञान हो।

संविधान के अनुच्छेद 280(3) में वित्त आयोग के कार्य निर्धारित किए गए हैं इस आयोग को राष्ट्रपति को ये सिफारिशें करनी होती हैं (क) करों की कुल उगाही को संघ और राज्यों के बीच वितरित करना, जो इनके बीच बांटे जाते हैं या बांटे जाते हों और साथ ही उस उगाही में राज्यों में उनके अपने-अपने हिस्सों का आबंटन (ख) भारत की समेकित निधियों में से राजस्व की सहायता अनुदानों को शासित करने वाले सिद्धान्त और (ग) कोई अन्य मामले जो ठोस वित्त व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग के पास भेजे जाएं। संविधान के अन्तर्गत आयकर के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशों पर निर्णय राष्ट्रपति द्वारा और अन्य कर सहायता अनुदानों आदि के सम्बन्ध में संसद द्वारा लिया जाता है।

आयोग अपनी प्रक्रिया स्वयं निर्धारित करने के लिए सक्षम है और उसे साक्षियों को बुलाने, किसी प्रलेख को प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा करने और किसी भी न्यायालय या कार्यालय से कोई भी सार्वजनिक रिकार्ड मंगवाने के मामले में सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त हैं। आयोग किसी ऐसे मुद्दे या विषय पर जो आयोग की राय में उसके विचारार्थ प्रस्तुत किसी मामले में महत्वपूर्ण है या संगत है, किसी व्यक्ति से कोई भी सूचना मांगने के लिए प्राधिकृत है।

वित्त आयोग को भारतीय संघीय वित्तीय सम्बन्धों का सन्तुलनकारी पहिया माना जा सकता है केन्द्र से राज्यों को निधियों के अन्तरण का आधार संविधान में नियत नहीं किया गया है। इसे लचीला छोड़ दिया गया है ताकि वित्त आयोग समय-समय पर इसे समायोजित कर सके। 1950 में संविधान लागू होने से इन मुद्दों पर 8 ऐसे आयोगों ने अपनी सिफारिशें दी हैं। निस्संदेह ऐसे प्रत्येक आयोग के साथ राज्यों को अन्तरित केन्द्रीय निधियों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है।

इस प्रक्रिया में कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। पहले आयोग की नियुक्ति से पूर्व केन्द्रीय आय कर का 50 प्रतिशत राज्यों को अन्तरित किया गया था। राज्यों के संसाधन बढ़ाने के लिए पहले आयोग ने केन्द्रीय आय कर में राज्यों का हिस्सा बढ़ा कर 55 प्रतिशत कर दिया, दूसरे आयोग ने इसे बढ़ा कर 60 प्रतिशत किया, तीसरे ने 66.6 प्रतिशत और चौथे ने इसे 75 प्रतिशत कर दिया। पांचवें आयोग ने इसे इसी स्तर पर रहने दिया क्योंकि केन्द्रीय सरकार चूंकि आयकर लगाने और इसकी उगाही के लिए जिम्मेदार है अत: उसका इसमें महत्वपूर्ण हित होना चाहिए। आठवें वित्त आयोग ने इसे बढ़ा कर 85 प्रतिशत कर दिया है।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क को जो संविधान के अन्तर्गत केवल वैकल्पिक रूप से ही आबंटनीय है अब केन्द्र और राज्यों के बीच बांटा जाता है। इस प्रक्रिया को एक बहुत मामूली स्तर पर पहले आयोग ने शुरु किया परन्तु उसके बाद प्रत्येक आयोग के साथ केन्द्र और राज्यों के बीच उत्पाद शुल्क के बंटवारे की प्रक्रिया लगातार आगे बढ़ती गई है। चौथे आयोग ने केन्द्र के समूचे उत्पाद राजस्वों का 20 प्रतिशत तक राज्यों के साथ आबंटन कर दिया। पांचवें आयोग ने भी यही अनुपात बनाए रखा किन्तु विभाज्य पूल में विशेष उत्पाद शुल्कों को मिलाकर केन्द्र से राज्यों को मिलाने वाले राजस्व को बढ़ा दिया। आठवें आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों के हिस्से को बढ़ाकर 45 प्रतिशत कर दिया गया है जिसमें 5 प्रतिशत उन राज्यों के लिए निश्चित किया गया है जो अवमूल्यन के बाद भी राजस्व घाटे की स्थिति में थे। अब तक ये विशेष शुल्क अनन्य रूप से केन्द्रीय प्रयोजनों के लिए ही प्रयोग किए जा रहे थे। केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों को राज्यों के साथ बांटने से राज्यों के वित्तीय संसाधनों को बढ़ाने में बहुत मदद मिली है क्योंकि एक ऐसी अर्थ व्यवस्था में जो तेजी से औद्योगीकरण की ओर जा रही है, उत्पाद शुल्क राजस्व का वर्धमान स्रोत है।

यह दावा किया जाता है कि वित्तीय आवश्यकता अनुदानों के क्षेत्र में भी राज्यों को मिलने वाले राजस्व में पिछले कुछ वर्षों में भारी वृद्धि की गई है। पहले आयोग ने सात राज्यों के लिए एक वर्ष में 5 करोड़ 5 लाख की राशि की सिफारिश की। दूसरे आयोग ने इस राशि को बढ़ाकर 11 राज्यों के लिए एक वर्ष में 39.5 करोड़ रु० कर दिया, पांचवें आयोग ने आन्ध्र प्रदेश, असम जम्मू और काश्मीर, केरल, मैसूर, तमिलनाडू, उड़ीसा, राजस्थान, पश्चिम बंगाल को 5 वर्ष की अवधि में 637.85 करोड़ रु० की वित्त आवश्यक अनुदान की सिफारिश की। आठवें वित्त आयोग ने 2.200 करोड़ रु० के अन्तर पाटने वाले अनुदान की सिफारिश की।

केन्द्रीय निधियों के विभाज्य पूल में राज्यों का हिस्सा नियत करने में प्रत्येक आयोग ने क्षेत्रीय असमानता को कुछ हद तक दूर करने के प्रयास किए ताकि निर्धन राज्यों के संसाधनों को मजबूत किया जाए। उदाहरण के लिए आयकर राजस्व के विभाज्य पूल में राज्यों का हिस्सा नियत करने में जनसंख्या कारक को अधिक महत्व दिया जाता है, जबकि उगाही कारक को बहुत कम। पहले आयोग ने जनसंख्या के आधार पर 80 प्रतिशत उगाही के आधार पर 20 प्रतिशत वितरण का सुझाव दिया है। तीसरे और चौथे आयोग ने भी इसी सिद्धान्त को अपनाया किन्तु दूसरे आयोग ने हालांकि यह मत व्यक्त किया कि उगाही का सिद्धान्त वितरण के लिए न्यायोचित आधार नहीं है। इसलिए इसको पूरी तरह समाप्त करके जनसंख्या के सिद्धान्त का अधिकार अपनाया जाना चाहिए, फिर भी उगाही को 10 प्रतिशत और जनसंख्या का 90 प्रतिशत महत्व प्रदान किया गया। पांचवें आयोग ने भी यही फार्मूला स्वीकार किया। केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों को राज्यों के बीच जनसंख्या के आधार पर 80 प्रतिशत और सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन सहित विभिन्न मानदण्डों के आधार पर 20 प्रतिशत आबंटित किया। अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत वित्तीय आवश्यकता अनुदान देते समय राज्य की मुख्य वित्तीय आवश्यकताएं ध्यान में रखी जाती हैं। वित्तीय आवश्यकता अनुदानों को प्रदान करने का तन्त्र कुछ हद तक अपर्याप्त है और उसमें बहुत कुछ करना बाकी है।

तथापि, इन सभी फार्मूलों में जो आठवें वित्त आयोग ने तैयार किए थे, केवल उन्हीं मामलों में 1971 की जनसंख्या को आधार बनाया गया, जिनमें जनसंख्या एक सुस्पष्ट कारक था। तथापि प्रति व्यक्ति आय की संगणना जैसे अन्य मामलों में जहां जनसंख्या केवल प्रत्यक्ष कारक होता है, वर्तमान जनसंख्या को ही ध्यान में रखा गया था। इस प्रकार 1971 की जनसंख्या को अपनाने की प्रणाली इस लक्ष्य के विपरीत जाती है कि जिन राज्यों ने परिवार नियोजन के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम किया था उनको दण्ड न दिया जाए। यह बात बलपूर्वक कही जा सकती है कि वर्तमान जनसंख्या को अपनाने से जिन राज्यों ने परिवार-नियोजन के सम्बन्ध में, जो कि सर्वोच्च अपना प्राप्त राष्ट्रीय लक्ष्य है, अच्छा काम किया है उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। राज्य सरकार भी विभिन्न मंचों पर इस बात पर बल देती रही है कि इस प्रवृति को बदला जाए और जिन मामलों में जनसंख्या अप्रत्यक्ष कारक है उनमें भी 1971 की जनसंख्या को ही सामने रखा जाए।

इसमें सन्देह नहीं कि वित्त आयोग की सिफारिशें एक परिपाटी के रूप में ही स्वीकार की जाती हैं। कानून की नजर से, आयोग की सिफारिशें राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी नहीं हैं। यद्यपि डा० अम्बेडकर का भी यह मत था कि कोई भी कार्य करते समय राष्ट्रपति को संघीय आयोग की सिफारिशों का अनुसरण करना चाहिए और मनमाने रूप से काम नहीं करना चाहिए। किन्तु व्यावहारिक रूप से कई सिफारिशें संघीय सरकार ने स्वीकार नहीं की। अत: यह महसूस किया गया है कि वित्त आयोग को एक स्थायी निकाय बनाया जाए और उसका एक अपना सचिवालय हो। संविधान में संशोधन करके यह स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए कि वित्त आयोग की सिफारिशें केन्द्र और राज्यों दोनों के लिए बाध्यकारी होनी चाहिए। केन्द्र द्वारा राज्यों को योजना और गैर योजना व्यय के लिए दिए जाने वाले अनुदान वित्त आयोग अथवा उसी के समान किसी सांविधिक स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निकाय की सिफारिशों पर ही दिए जाने चाहिए।

वित्त आवश्यकता अनुदानों के अलावा, संविधान में "विशिष्ट प्रयोजन अनुदानों" का भी प्रावधान है जो वित्त आयोग की सिफारिशों पर केन्द्र के

विवेकानुसार ऐसे कार्यों के संवर्धन के लिए दी जाती है जिन्हें वांछित राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए केन्द्र चाहता हो। योजनाओं के प्रभाव से इन अनुदानों में बहुत वृद्धि की गई है और इन्होंने वित्त आधारित अनुदानों का महत्वपूर्ण काम कर दिया है। अनुच्छेद 282 के अधीन अनेक अनुदान योजना कार्यक्रमों से बाहर अनेक राज्य गतिविधियों के लिए दिए जाते है।

हालांकि संविधान ने केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों के लिए बहुत व्यापक और लचीली योजना बनाई है तो भी सच यह है कि इसके वास्तविक कार्य-चालन में अनेक समस्याएं विद्यमान है। केन्द्र से राज्यों की अधिक वित्तीय आबटनों के लिए समय-समय पर मांगे की जाती हैं।

ऐसी मांगे किए जाने के मुख्य दो कारण हैं। पहला कारण राज्य स्तर पर कार्यों और संसाधनों के बीच असन्तुलन है। इस असंतुलन का मुख्य कारण आयोजना है। उनके कर संसाधन स्थिर है। जबकि राष्ट्रीय निर्माण की गतिविधियों पर किए जाने वाले खर्च बहुत अधिक हैं। अनुदानों और ऋणों के रूप में प्रत्येक वर्ष दिए जाने वाली भारी केन्द्र सहायता के बावजूद वे अपने आप को इस स्थिति में नहीं पाते कि अपनी वचनबद्धता को पूरा कर पाएं।

साथ ही राज्यों में विभिन्न सामाजिक सेवाओं के बीच भारी असमानताएं है, उन्हे सामान धरातल पर लाने के लिए पर्याप्त उपाय नही किए गए। पांचवे आयोग की रिपोर्ट में दिए गए आकड़ों के अनुसार शिक्षा पर किया गया प्रति व्यक्ति व्यय बिहार में केवल 4.98 रु० था जबकि नागालैण्ड में 46 रु० 8 पैसे। इसके बाद केरल का नम्बर आता है जहां यह व्यय 21 रु० 11 पैसे है। इसी प्रकार सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति व्यय बिहार में 0.23 रु० था जबकि नागालैण्ड में यह 4.41 रु० था और राजस्थान में 4.29 रु०। ऐसे अनेक उदाहरण हो सकते हैं।

वित्तीय आवश्यकता अनुदान और वित्त आयोग संबंधी विचार भारत ने आस्ट्रेलिया से लिए हैं। आस्ट्रेलिया में कॉमन वेल्थ ग्रान्ट कमीशन कार्य कमी वाले राज्यों की सामाजिक गतिविधियों की राष्ट्रीय स्तर तक लाना है। भारत में वित्त आयोग इस प्रकार का कार्य नही करता। यह कुछ राज्यों में सामाजिक सेवाओं पर व्यय के वर्तमान उच्च स्तर को ध्यान में रखता है किन्तु दूसरे राज्यों में इन सामाजिक सेवाओं पर व्यय के कम स्तर को उनके बराबर लाने का प्रयास करता है।

इस रवैये से बड़ी विषम स्थिति पैदा हो जाती है जहां ऐसे राज्य जिन्होंने विवेकशील वित्तीय प्रबन्ध व्यवस्था दिखाई, वे घाटे में रहे और फिजूलखर्ची करने वाले फायदे में रहे। इस प्रकार अन्तर पाटने का वित्त आयोग द्वारा अपनाया गया रवैया कुछ राज्यों द्वारा बेहतर उगाही को सुनिश्चित करने के लिए कराधान के सभी सम्भव स्रोतों का लाभ उठाने और कर उगाही तन्त्र को दक्षतापूर्वक कारगर बनाने के लिए किए गए उपायों को नजरअन्दाज कर देता है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि वित्त आयोग को राज्यों की कर प्राप्तियों का जायजा लेने और साथ ही राजस्व व्यय का भी जायजा लेने में मानकीय रवैया अपनाना चाहिए जिसमें सभी राज्यों के लिए सेवा मान का एक न्यूनतम स्तर सुनिश्चित हो सके और तब ही चालू राजस्व से घाटा/अधिशेष निकाला जाए। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार का मानकीय दृष्टिकोण वित्त आयोग द्वारा बिजली बोर्डों और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के प्रतिफलों के सम्बन्ध में अपनाया जा रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि केन्द्र सरकार के व्यय और कर प्राप्तियों को भी इसी प्रकार की संवीक्षा और मानकीय दृष्टिकोण के अधीन लेने की आवश्यकता है।

संविधान में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों के जिस सहज प्रचालन की संकल्पना की गई थी, आयोजना की मजबूरियों ने उसे धूमिल कर दिया है। योजना आयोग और वित्त आयोग के कार्यों में कुछ दोहरापन आ गया है। सच्चाई यह है कि इस समय राज्यों को वित्त आयोग की अपेक्षा योजना आयोग के माध्यम से अधिक राशि मिलती है और वित्त आयोग को योजना आयोग ने कुछ हद तक गौण बना दिया है। राज्य इस व्यवस्था से बहुत सन्तुष्ट नहीं है कि योजना अनुदानों की सिफारिशें योजना आयोग करता है। उनका तर्क है कि योजना आयोग का गठन केन्द्र सरकार द्वारा एक कार्यपालक आदेश के माध्यम से किया गया है अतः योजना अनुदानों के आबंटन को शासित करने वाले सिद्धान्त संसद के कानूनों द्वारा निर्मित किसी अलग निकाय द्वारा बनाए जाने चाहिए और इस सन्दर्भ में वित्त आयोग का सुझाव दिया गया है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर अपनी रिपोर्ट में इस सुझाव का समर्थन किया है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिश की है कि भविष्य में वित्त आयोग से उन सिद्धान्तों पर सिफारिशें करने के लिए कहा जाए जो राज्यों को योजना अनुदान का वितरण करने पर लागू हों किन्तु साल दर साल इन सिद्धान्तों को लागू करने का काम योजना आयोग और केन्द्र सरकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए। वित्त आयोग की सिफारिशें योजना आयोग के साथ प्रभावी ढंग से समन्वित हो सकें इसके लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने सुझाव दिया है कि योजना आयोग का एक सदस्य वित्त आयोग में भी नियुक्त किया जाए। कई बार सवाल उठाया गया है कि क्या अनुच्छेद 282 का निर्माण केवल अवशिष्ट अनुच्छेद के रूप में किया गया था या इसका आशय ऐसी बड़ी निधियों के अन्तरण के लिए इस्तेमाल किया जाना था जैसा कि आजकल योजना प्रयोजनों के लिए किया जा रहा है। इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि राज्यों की योजना उद्देश्य के लिए निधियां भी वित्त आयोग के माध्यम से अनुच्छेद 275 के अधीन दी जानी चाहिए न कि योजना आयोग द्वारा। इस व्यवस्था में सबसे बड़ी खामी यह है कि वित्त आयोग 5 वर्ष में केवल एक बार बैठता है और राज्यों द्वारा योजना लक्ष्यों की प्राप्तियों का मूल्यांकन इस आयोग द्वारा 5 वर्षों में केवल एक बार किया जा सकता है। इससे राज्यों को मनमाने ढंग से और ऐसी योजनाओं पर धन खर्च की छूट मिल जाएगी जैसा वह चाहें। इस प्रकार सम्पूर्ण योजना प्रक्रिया ही भटक जाएगी।

राज्यों की ऋण ग्रस्तता से सम्बन्धित मसलों पर विचार करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति बनाई जाए। विश्व बैंक के नमूने पर विकास बैंक जैसा प्राधिकरण बनाने की वांछनीयता पर विचार करने के लिए भी एक समिति बनाई जाए—यह विकास बैंक ऋण के लिए राज्यों द्वारा केन्द्र को भेजे गए मामलों पर विचार करेगा। प्राकृतिक आपदाओं से राहत के लिए प्रत्येक राज्य के लिए एक निधि होनी चाहिए और इस निधि का प्रयोग बाजार उपायों के रूप में भी किया जा सकता है। करों में संशोधन, निगम कर सीमा शुल्क और निर्यात शुल्क तथा विभाज्य पूल में परिसम्पत्तियों के पूंजीगत मूल्य पर कर-केन्द्र और राज्यों द्वारा बांटा जाना चाहिए।

उत्पादन शुल्क—सभी उत्पादन शुल्क और उप कर, विशेष नियामक या अन्यथा जो संघ की इच्छानुसार आबटनीय है, अनिवार्य रूप से संघ और राज्यों के बीच आबटन योग्य बनाए जाने चाहिए।

अतिरिक्त उत्पाद शुल्क राज्यों की सहमति से ही जारी रखे जाने चाहिए।

यदि अतिरिक्त उत्पाद शुल्क समाप्त किए जाते हैं और उनकी जगह राज्यों द्वारा बिक्री कर लागू किया जाता है तो केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 (1956 का केन्द्रीय अधिनियम 74) की धारा 14 और 15 को, जहां तक कर की दर और कर लगाए जाने की अवस्था का सम्बन्ध है, बिक्री कर लगाने पर प्रतिबंध पूरी तरह समाप्त किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 286 के खण्ड 3 के अधीन संसद के अधिकारों का प्रयोग राज्यों से विचार-विमर्श किए बिना न किया जाए।

भविष्य में, कोई भी अधिकार नहीं लगाए जाने चाहिए क्योंकि इससे राज्यों की मिलने वाली वह आय चली जाती है जो हिस्से की अधिकता के रूप में इन्हें मिलती।

अनुदान—केन्द्र द्वारा राज्यो को दिए जाने वाले अनुदान-योजना खर्च और गैर-योजना खर्च-दोनों के लिए वित्त आयोग या उसी प्रकार के केन्द्र कानूनी निकाय जैसे स्वतन्त्र और निष्पक्ष निकाय की सिफारिशों पर दिए जाने चाहिए।

वित्त आयोग—संविधान में यह स्पष्ट रूप से प्रावधान होना चाहिए कि वित्त आयोग की सिफारिशें सभी पक्षों-केन्द्र और राज्यों दोनों के लिए बाध्यकर होंगी।

ऋण और राज्यों की ऋण ग्रस्तता—राज्यों की ऋण ग्रस्तता से सम्बन्धित समूचे मामलों पर विचार करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति गठित की जाए

राहत कोष--प्रत्येक राज्य में प्राकृतिक आपदाओं से राहत के लिए एक कोष होना चाहिए, इस कोष का प्रयोग सुधारक उपायों के लिए भी किया जाए ।

हम इन प्रश्नों का क्रमवार उत्तर दे रहे हैं ।

5.1 यह एक सुविदित और सुस्थापित तथ्य है कि वित्तीय संसाधनों के आबंटन की योजना ने भारत सरकार को बहुत प्रबल स्थिति में ला दिया हैं । इसके कारण निम्नलिखित हैं :

(क) केन्द्र को सौंपे गए राजस्व राज्यों की अपेक्षाकृत बहुत अधिक लाभप्रद और लचीले हैं ।

(ख) भारत के संविधान के उपबन्धों के अनुसार बाजार से ऋण लेने को केन्द्रित कर दिया है । भारत सरकार की पूर्व अनुमति के बिना और राज्य सरकारें जो पहले से ही कर्जदार हैं, कोई ऋण नहीं ले सकती ।

(ग) व्यावहारिक तौर पर यह कहा जा सकता है कि घाटे की अर्थ व्यवस्था करना केन्द्र का ही अनन्य अधिकार है । राज्य सरकार यदि ऐसा प्रयास करती है तो उसका परिणाम हमेशा अनधिकृत "ओवर ड्राफ्ट" होगा, जिस पर केन्द्र की ताड़ना मिलती है—देखें वित्तीय सम्बन्ध में सूची I की प्रविष्टि 45 पर हमारी टिप्पणी है ।

यह भी ज्ञातव्य है कि संविधान में संसाधनों के अन्तरण की जो परिकल्पना की गई है उसके परिणाम स्वरूप दोनों में भारी खाई आ गई है क्योंकि भारत सरकार द्वारा जो राशि प्राप्त की जाती है वह उसे राज्य सरकारों में इस तरह से नहीं बांटती कि वे अपनी सार्विधिक जिम्मेदारियां निभा सकें । बाजार ऋणों में राज्य सरकार का हिस्सा जो तीसरी योजना में 62.7 प्रतिशत था वह छटी पंचवर्षीय योजना में गिरकर 23 प्रतिशत (अनुमानित) रह गया है । इसी प्रकार भारत सरकार ने विभिन्न वित्त आयोग के निर्णयों को तोड़ने-मरोड़ने की कला भी सीख ली है । यह बात सातवें वित्त आयोग की अवधि से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है जबकि उसके निर्णय की शर्तों के अनुसार 1980-81 में 28.77 प्रतिशत तक कर राजस्व का अन्तरण करना पड़ा । तथापि, बाद के वर्षों में भारत सरकार ने उन क्षेत्रों में कराधान की दर बढ़ाने की सोची-समझी नीति अपनाई जो राज्य सरकारों के साथ विभाज्य नहीं थे जैसे कि अतिरिक्त आयकर, अतिरिक्त उत्पादन शुल्क और आयात शुल्क इत्यादि, और दूसरी ओर ऐसे करों में रियायतें देने की घोषणा की जो राज्य सरकारों के साथ विभाज्य थे । इससे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई जहां विभाज्य कर कम होकर 1983-84 में 25.5 रह गए । देखें तालिका-I ।

तालिका I

मद	1969-70	1970-71	1971-72	1972-73	1973-74	1974-75
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
						(करोड़ रुपए में)
(I) भारत सरकार का कुल राजस्व .	36,89	40,97	49,72	56,45	62,46	77,82
(II) कुल राजस्व कर . .	28,23	32,07	38,72	45,10	50,73	63,22
(III) राज्य को अन्तरण करों में हिस्सा .	6,22	7,55	9,45	10,66	11,74	12,24
(क) आयकर . . .	2,93	3,59	4,62	4,92	5,32	5,12
(ख) सम्पदा शुल्क . .	7	6	8	8	11	9
(ग) संघ उत्पाद शुल्क . .	3,22	3,90	4,75	5,66	6,31	7,03
(IV) अविभाज्य कर राजस्व (II—III)	22,01	24,52	29,27	34,44	38,99	50,98
(क) निगम कर. . .	3,53	3,71	4,72	5,58	5,83	7,09
(ख) सीमा शुल्क . .	4,23	5,24	6,96	8,57	9,95	13,33
(ग) अन्य कर . . .	14,25	15,57	17,59	20,29	23,20	30,56
क. III÷II × 100 . .	22,04	23,55	24,41	23,64	23,15	19,36
(V) गैर कर राजस्व (I—II) . .	8,66	8,90	11,00	11,35	21,73	14,60
(VI) राज्य को अन्तरण अन्य अन्तरण .	5,32	5,66	8,52	9,26	9,37	10,22
(VII) निबल अविभाज्य गैर कर राजस्व (V—VI) . .	3,34	3,24	2,48	2,09	2,36	4,38
(VIII) कुल—राज्य को अन्तरण (III+VI)	11,54	13,22	17,96	19,93	21,11	22,46
(IX) कुल अविभाज्य राजस्व कर+गैर कर (IV+VII) . .	25,35	27,75	31,76	36,52	41,35	55,36

मद	1975–76	1976–77	1977–78	1978–79	1979–80	1980–81	1981–82	1982–83 संशोधित अनुमान	1983–84 बजट अनुमान	1984–85
(1)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)	(13)	(14)	(15)	(16)	(17)
									(करोड़ में रुपए)	
(I)	97,67	1,10,03	1,15,90	1,31,97	1,47,46	1,66,20	1,98,49	2,27,31	2,62,10	2,94,82
(II)	76,09	82,71	88,58	1,05,25	1,19,74	1,31,80	1,58,47	1,76,96	2,09,46	2,29,92
(III)	15,99	16,90	17,98	19,57	34,06	37,92	42,74	46,39	52,46	57,39
(क)	7,34	6,52	6,75	7,07	8,65	10,02	10,17	11,32	11,72	12,25
(ख)	8	10	10	11	11	12	17	16	127	17
(ग)	8,57	10,28	11,13	12,40	25,30	27,77	32,40	34,91	40,57	44,97
(IV)	60,10	65,81	70,60	85,68	85,68	93,88	1,15,73	1,30,57	1,57,20	1,72,53
(क)	8,62	9,84	12,21	12,51	13,92	13,11	19,70	21,85	25,65	25,88
(ख)	14,19	15,54	18,24	24,49	29,24	34,09	43,00	51,19	48,79	66,50
(ग)	37,29	40,43	40,15	48,68	42,52	46,68	53,03	57,53	72,56	80,15
क.	21,02	20,44	20,30	18,60	28,45	28,77	26,93	26,22	25,05	24,96
(V)	21,58	27,32	27,32	26,72	27,72	34,40	40,02	50,35	52,54	64,90
(VI)	12,18	15,05	18,38	24,73	20,83	26,23	27,82	34,55	42,86	48,19
(VII)	9,40	12,27	8,94	1,99	6,89	8,17	12,20	15,80	9,78	16,81
(VIII)	28,17	31,95	36,36	44,29	54,89	64,14	70,56	80,94	95,32	1,05,58
(IX)	69,50	78,08	79,54	87,68	92,57	1,02,06	1,27,93	1,46,37	66,78	1,89,34

5.2, 5.3, 5.7, 5.8, 5.24, 5.25 और 5.26—भारत जैसे देश में वित्तीय संघवाद को आदर्श के रूप में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए :—

(1) केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों की गारन्टी देना ।
(2) क्षेत्रीय असमानताओं और असन्तुलनों को कम करना ।
(3) संविधान में दी गई व्यवसाय की स्वतन्त्रता की गारन्टी देना ।
(4) न केवल सरकार के बल्कि समूचे समाज के वर्तमान संसाधनों के सर्वोत्तम प्रयोग को सुस्थापित करना, और
(5) कर प्रशासन में दक्षता सुनिश्चित करना ।

वित्तीय संघवाद की ऐसी संरचना करना बहुत कठिन है जो ये सभी शर्तें पूरी करती हो । यद्यपि यह स्थिति एक आदर्श स्थिति होगी, परन्तु इस आदर्श को हासिल करना प्राय: असंभव है । किसी भी व्यावहारिक स्थिति में इन सभी कारकों की खींचा तानी के बीच एक समझौता लाना ही पड़ता है । संविधान का निर्माण करते समय जो परिस्थितियां विद्यमान थीं, हो सकता है उन्होंने संविधान निर्माताओं को उन संसाधनों के बंटवारे के सिद्धान्त पर पहुंचने में मदद की हो जो अब मौजूद है । निश्चित रूप से इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा तन्त्र हमेशा के लिए पूर्ण और आदर्श तन्त्र बना रहेगा । हमारे पिछले अनुभवों ने स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि अब इस तन्त्र की उपयोगिता समाप्त हो गई है और इसकी समीक्षा करने की भारी आवश्यकता है । इन मुद्दों को स्पष्ट करने के लिए हम देखने के लिए वर्तमान तन्त्र की संक्षेप में जांच करना चाहेंगे कि नये वित्तीय संघवाद के संभव लक्ष्यों तक पहुंचने में इसने क्या मदद की है ।

जहां तक अपर्याप्तता का प्रश्न है यह एक सुस्थापित तथ्य है कि राज्य सरकारें जनता के निकट सहयोग से कार्य करती हैं और उन पर शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, कानून और व्यवस्था बनाए रखने, जिला प्रशासन आदि संवेदन शील सेवाएं उपलब्ध करवाने की भारी जिम्मेदारी है । यह भी उतना ही सुस्थापित तथ्य है कि प्रशासन के इन क्षेत्रों में जनता की आवश्यकताएं उन क्षेत्रों की अपेक्षा बहुत तेजी से बढ़ रही हैं, जो केन्द्र का विषय है । संचार, सुरक्षा इत्यादि के महत्व से इंकार किए बिना यह कहना पड़ता है कि जो सेवाएं राज्य का विषय है उनमें मांग की लोच बहुत अधिक है । जनता की बढ़ती हुई आकांक्षाओं के इस वातावरण में राज्य वस्तुत: इस तथ्य की ओर उत्तरोत्तर अधिक जागरूक हो रहे हैं कि राज्य सरकारों को उपलब्ध संसाधन या राजस्व से उनकी प्राप्ति में लोच बहुत कम है । अत: संसाधनों की पर्याप्तता की कसौटी पर कसने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाएगा कि राज्यों पर ऐसे कार्यों का भारी बोझ डाला गया है जिनमें आय की लोच बहुत अधिक है जबकि उनको जो संसाधन उपलब्ध हैं उनमें आय की लोच बहुत कम है । इससे केन्द्र पर राज्य सरकारों की आश्रिता बढ़ी है और संघीय संरचना में इस अस्वस्थ-प्रवृत्ति को दुरुस्त करना आवश्यक है ।

2. किसी भी संघ की वित्तीय नीति का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त क्षेत्रीय असमानता को दूर करना और राज्यों के निरन्तर एक समान और न्यायसंगत विकास को सुनिश्चय करना होगा । हमारे पिछले अनुभवों के सन्दर्भ में यह देखा जा सकता है कि वर्तमान तन्त्र उन कारणों से, जिन पर अलग से विचार किया जाएगा, इस प्रयोजन को पूरा करने से बहुत अधिक सफल नहीं रहा । तालिका I से यह देखा जा सकता है कि 1974-75 से 1980-81 की अवधि में तमिलनाडु जैसे राज्यों की प्रति व्यक्ति आय समूचे देश की प्रति व्यक्ति आय की प्रतिशतता की तुलना में न्यूनाधिक स्थिर रही है जबकि दूसरी ओर पंजाब में यह अनुपात 150 से बढ़कर लगभग 200 प्रतिशत और हरियाणा के लिए 140 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 165 प्रतिशत हो गया है, जबकि उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्य के लिए भी यह अनुपात 70 प्रतिशत से बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया है । यह केवल दिखाने के लिए है कि वर्तमान तन्त्र में या तो क्षेत्री असमानताओं को दूर करने के पर्याप्त रूप से कठोर उपाय करने की आवश्यकता नहीं है या उसने ऐसा किया ही नहीं है । इन मामलों में सबसे अधिक हानि मध्य आय राज्यों की हुई जिन्हें कमजोर होने दिया गया । पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों ने जो पहले ही विकास की ओर बढ़ रहे थे अब अपनी सापेक्ष समृद्धि में और वृद्धि की है । इस तन्त्र से संभवत: निर्धन राज्यों को लाभ मिला है किन्तु यह लाभ भी केवल सीमान्त ही रहा है जैसे कि उत्तर प्रदेश के मामले में देखा जा सकता

है। स्पष्ट ही अतीत में वित्त आयोग ने ऐसा आत्यन्तिक दृष्टिकोण नहीं अपनाया है जिससे विभेदक अन्तरण इतना प्रगामी बने कि वर्तमान असमानताओं पर कोई असर डाल सके।

3. जहां तक संविधान में दी गई व्यापार की स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है हमें केवल इतना कहना है कि इस स्वतन्त्रता पर कोई प्रभाव डाले बिना सभी करों को लगाने की शक्तियां राज्य सरकारों को सौंपना बिल्कुल संभव है।

4. प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि वित्तीय संघवाद को यह बात नजर-अन्दाज नहीं करनी चाहिए कि भारत जैसे एक बहुत बड़े देश में इस अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करने में अन्तर्राज्यीय व्यापार अत्यधिक भूमिका अदा करता है और इस सम्बन्ध में किसी भी अपूर्ण रवैये से जिसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि कई वर्तमान करों को लगाने के अधिकार राज्यों को देने होंगे, संसाधनों के अधिकतम उपयोग पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। सम्भवतया यह महसूस किया जाता है कि भारत जैसे विशाल देश में, जहां पूर्ति और मांग का समीकरण समूचे देश में फैला हुआ है, संसाधनों का अधिकतम उपयोग तभी संभव होगा जब किसी भी अन्तंक्षेत्रीय लेन-देने से सम्बन्धित कर को संघ सूची में शामिल किया जाए। हम महसूस करते हैं कि इस धारणा की अधिक सावधानी से जांच करने की आवश्यकता है और उन करों को सुस्पष्ट करने का सुव्यवस्थित प्रयास किया जाना चाहिए जो संसाधनों के अधिकतम उपयोग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना राज्य सरकारों के दायरे में लाए जा सकते हैं। हम यहां यह भी कहना चाहेंगे कि कतिपय शीर्षों के अन्तर्गत जिन पर सविस्तर चर्चा बाद में की जाएगी, राज्य सरकारों द्वारा करों के अधिक दक्ष प्रशासन की वेदी पर मामूली गड़बड़ियों को बली भी दी जा सकती है। लेकिन इस दौरान हम संविधान के अनुच्छेद 268, 269 और 270 की ओर भी ध्यान दिलाना चाहेंगे। अनुच्छेद 268 का सम्बन्ध उन शुल्कों से है जो संघ द्वारा लगाए और उगाहे जाते हैं लेकिन जिनका विनियोजन राज्यों द्वारा किया जाता है। इनमें स्टैम्प शुल्क, औषधियों और प्रसाधन सामग्रियों पर उत्पाद शुल्क जैसी मदें शामिल हैं। जाहिर है कि ये शुल्क किसी बड़ी हद तक अर्न्तराज्यीय लेन-देन के अन्तर्गत नहीं आते। यह कोई भी नहीं कहेगा कि यदि राज्यों को इनके सम्बन्ध में कर लगाने, उगाहने और विनियोजित करने के सक्षम बना दिया जाए तो इससे किसी भी रूप में संसाधनों की अधिकतम उपयोग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर, इससे राज्य सरकारों को विकास कार्यों के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाने में और स्वतन्त्रता मिलेगी। हम इन शुल्कों को अनुच्छेद 268 में लाने का कोई औचित्य नहीं देखते और इन्हें लगाने का जिम्मा सीधे राज्य सरकारों को सौंपा जा सकता है।

5. अनुच्छेद 269 का सम्बन्ध उन करों से है जो लगाए और उगाहे तो संघ द्वारा जाते हैं और सौंपे राज्यों को जाते हैं। हम महसूस करते हैं कि कृषि भूमि से इतर सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्क और कृषि भूमि से इतर भूमि के सम्बन्ध में सम्पदा शुल्क को भी पूर्वोक्त पैरा में बताए गए कारणों से राज्य सरकारों को सौंपा जा सकता है। रेल, समुद्र या विमान द्वारा ढोए गए माल या यात्रियों के सम्बन्ध में सीमा कर, समाचार पत्रों की खरीद और बिक्री पर तथा उनमें छपे विज्ञापनों पर कर, अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान की गई माल की खरीद और बिक्री पर कर को भी अनुच्छेद 268 की सीमा में लाया जा सकता है।

6. जहां तक कर प्रशासन और उगाही की दक्षता का सम्बन्ध है, हमारा मत है कि यदि कर का प्रशासन और उगाही उसी प्राधिकरण द्वारा की जाए जिसके पास उसका विनियोजन करने का अधिकार है तो कर दक्षता सर्वोत्तम होती है। हम यह भी महसूस करते है कि यदि कर का प्रशासन और उगाही एक प्राधिकरण द्वारा हो और उसका विनियोजन किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा तो दक्षता बहुत कम हो जाती है। यद्यपि इस धारणा के पक्ष में अकाट्य प्रमाण देना सहज नहीं है किन्तु ऐसे कई संकेत उपलब्ध हैं जो इस ओर इशारा करते हैं। भारत सरकार द्वारा विगत् में दिखाई गई यह प्रवृत्ति कि भारत सरकार द्वारा आयकर में दी गई विभिन्न राहतों, जो कि 90 प्रतिशत तक राज्य सरकारों के हिस्से में जाता है और साथ ही आयकर पर अतिरिक्त अधिभार को बढ़ाने की प्रवृत्ति जिसका विनियोजन पूर्णत: भारत सरकार द्वारा किया जाता है, एक ऐसा उदाहरण है जो तत्काल ध्यान में आता है, यदि हम नीचे दी गई तालिका 3 को देखें तो हम निष्कर्ष पर पहुंचेंगे। यह जाहिर है कि 1973-74 से 1981-82 की अवधि में बिक्री कर (जिसका प्रशासन और विनियोजन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है) और उत्पाद शुल्क (जिसका प्रशासन और विनियोजन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है), दोनों ने 300 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दिखाई है जबकि उत्पाद शुल्क, जिसकी उगाही भारत सरकार करती है, जिसका 25 प्रतिशत से 40 प्रतिशत तक (विशिष्ट आयोग के निर्णयों के लिए) राज्यों के साथ बांटा जाता है, में इसी अवधि में 180 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस बात को एक ओर बढ़ते हुए आयात प्रतिस्थापन की पृष्ठभूमि में और साथ ही इस तथ्य को सामने रखते हुए देखा जाना चाहिए कि उद्योग विकास का परिणाम कम से कम इन दोनों करों के विकास की दरों में समान होना चाहिए था। आय कर के सम्बन्ध में और भी अधिक स्पष्ट संकेत उपलब्ध हैं जिनको और बड़ी मात्रा में राज्यों के साथ बांटा जाता है। इस समय 100 प्रतिशत से कम वृद्धि दिखाई है। इसके साथ ही आयकर पर अतिरिक्त अधिभार में 150 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। इस तुलना में जहां तक हो सका है हमने उन्हीं करों की तुलना की है जो तुलनीय है क्योंकि जाहिर है, विभिन्न करों की लोच अलग-अलग होती है। तथापि जो कर औद्योगिक उत्पादन और व्यापार से सम्बद्ध है और तुलनीय है, उनकी तुलना की गई है। इसी प्रकार आय से सम्बद्ध कर तुलनीय है अत: उनकी एक दूसरे के साथ तुलना की गई है। इस विचार-विमर्श से यह सहज स्पष्ट है कि करों के प्रशासन की दक्षता का इस तथ्य से निकट सम्बन्ध है कि किस प्राधिकरण ने करों से प्राप्त आय का विनियोजन करना है। अत: करों के प्रशासन के हित में ऐसे करों को भी लगाना और प्रशासित करने का अधिकार प्रगामी रूप से राज्य सरकारों को देना उचित होगा जो अब तक संविधान के अनुच्छेद 268 और 269 में शामिल किए गए हैं।

इस परिस्थिति में संभवत: एक वैकल्पिक सुझाव भी दिया जा सकता है। अनुच्छेद 269 में उल्लिखित 8 करों में से कुछ ही कर लगाए जाते हैं, सभी नहीं। परिणामस्वरूप, राज्य इन न लगाए गए करों से राजस्व नहीं प्राप्त कर सके। ऐसा प्रतीत होता है कि वित्त आयोग स्वयं भी इन करों के विस्तृत अध्य- के पश्चात् इस परिणाम पर पहुंचा है कि इनमें कुछ कर प्रशासनिक असुविधाओं, कम उत्पाद और वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों के कारण नहीं लगाए जा सके। वित्त आयोग की राय के बावजूद, यह स्वीकार करना होगा कि अनुच्छेद 269 में उल्लिखित करों में से कुछ को न लगाना राज्यों को उनकी आय से वंचित करना होगा। **अतः राज्य सरकार का सुझाव है कि अनुच्छेद 269 में उल्लिखित कुछ करों को न लगाने के बदले केन्द्र सरकार को काफी बड़ी राशि राज्यों को देनी चाहिए।**

हम यह भी कहना चाहेंगे की केन्द्र को अधिक धन प्राप्ति और ऐसे संसाधनों के बेहतर उपयोग के लिए उन करों का भी पूरी तरह प्रयोग करना चाहिए जिन्हें अभी तक छुआ नहीं गया है।

सारांश स्वरूप यह कहा जा सकता है कि यदि वित्तीय संघवाद के 5 मूलभूत सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाए तो यह स्पष्ट होगा कि वर्तमान व्यवस्था, इन प्रयोजनों के लिए बहुत अच्छी नहीं रही है और इसे पुनर्गठित करने की आवश्यकता है। यह भी कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 268 में शामिल करों को लगाने और उनका प्रशासन करने के लिए राज्य सरकारों पर छोड़ा जा सकता है। अनुच्छेद 269 में शामिल कुछ अन्य कर भी, जैसे कि कृषि-इतर भूमि के उत्तराधिकार से प्राप्त कर और कृषि इतर भूमि के संबंध में सम्पदा शुल्क को लगाने के लिए राज्य सरकार को सौंप दिए जाए। वैसे भी इन करों का विनियोजन इस समय राज्य सरकार द्वारा किया जा रहा है अत: भारत सरकार को राजस्व की कोई हानि नहीं होगी। अन्य सभी कर जो इस समय अनुच्छेद 269 में शामिल हैं, अनुच्छेद 268 के अन्दर लगाए जा सकते हैं, सिवाए शेयर बाजार पर टैक्सों के। इससे भारत सरकार के संसाधनों पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। जहां तक आय कर और उस पर अतिरिक्त अधिभार का सम्बन्ध है, इसे अनुच्छेद 269 की परिधि में लाया जा सकता है। इससे क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लक्ष्य पर भी कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा। चूंकि भारत सरकार के संसाधनों का लगभग 85 प्रतिशत निगम कर, सीमा शुल्क और संघ उत्पाद शुल्कों से आता है, इसलिए यह महसूस किया गया है कि कराधान की शक्तियों के बटवारे की जिस योजना का यहां सुझाव दिया गया है, जिस माध्यम

से भारत सरकार क्षेत्रीय असन्तुलनों को दूर करना चाहती है, उससे उसकी वित्तीय स्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। साथ ही साथ इससे राज्य सरकारों को अतिरिक्त संसाधन जुटाने में कुछ और लचीलापन शामिल होगा तथा राज्य सरकारों को और अधिक राजस्व के संसाधन मिलेंगे। किन्तु एक अंतरिम व्यवस्था के रूप में भी जो शक्तियां यहां सुझाई गई हैं वे निश्चित रूप से राज्य सरकारों को सौंप दी जानी चाहिए ताकि राज्य अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों को और अधिक कुशलता से निभा सकें। जहां तक अन्य करों को बांटने का सम्बन्ध है, उल्लेखनीय है कि शुरू में निगम कर, आय कर में शामिल थे। 1959 के वित्तीय अधिनियम ने इसे अलग रखा और उस विभाज्य पूल को काफी छोटा कर दिया जिस पर वैधानिक रूप से राज्यों का अधिकार था। निगम कर अब राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत बन गया है और राज्य सरकारों को उसमें अपने वाजिब हिस्से से वंचित किया जा रहा है। अतः इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि निगम कर और साथ ही आयकर पर अधिकार को विशेष रूप से राज्यों के साथ विभाज्य बनाया जाना चाहिए।

हमारा सुझाव है कि निगम कर और आय कर पर अधिभार को विभाज्य बनाया जाना चाहिए और सम्बन्धित राज्य के लिए निश्चित किया जाना चाहिए जैसा कि आय कर के मामले में किया जाता है।

तालिका I

प्रतिव्यक्ति निवल राज्य घरेलू उत्पाद

राज्य	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	1978-79	1979-80	1980-81
1	2	3	4	5	6	7	8
हरियाणा . .	1,400	1,514	1,761	1,935	1,990	1,923	2,335
महाराष्ट्र . .	1,435	1,455	1,535	1,677	1,797	2,021	2,277
पंजाब . .	1,585	1,688	2,050	3,217	2,382	2,611	2,768
तमिलनाडु . .	964	997	1,066	1,203	1,225	1,274	1,269
अखिल भारतीय .	1,006	1,024	1,082	1,198	1,250	1,316	1,537
उत्तर प्रदेश . .	740	727	819	896	894	962	1,272
बिहार . .	706	669	716	759	791	795	870
मध्य प्रदेश .	825	790	807	951	927	877	1,777
उड़ीसा . .	780	834	797	912	1,046	931	11,470

तालिका-2

भारत सरकार की कर प्राप्तियों और संवृद्धि की प्रकृति का विवरण

	1973-74		1974-75		1975-76		1976-77
1	2		3		4		5
आय कर (अधिभार सहित)	7,45.16		8,74.71		12,14.36		11,94.38
संवृद्धि प्रतिशतता		17.34		38.87		(-)1.64	
आयकर पर अधिभार (संघ, विशेष और अतिरिक्त) .	41.96		47.65		62.69		63.53
संवृद्धि प्रतिशतता		13.56		31.56		1.33	
आय कर (अधिभार को छोड़कर) . . .	7,03.20		8,26.76		11,51.67		11,30.85
संवृद्धि प्रतिशतता		17.57		39.29		(—)1.80	
निगम कर	5,82.60		7,09.48		8,61.70		9,84.23
संवृद्धि प्रतिशतता		21.77		21.45		14.21	
सीमा शुल्क	9,96.43		13,32.90		14,19.40		15,53.70
संवृद्धि प्रतिशतता . . .		33.76		6.48		9.46	
संघ उत्पाद शुल्क	26,02.13		32,30.52		38,44.78		42,21.45
संवृद्धि उत्पाद		24.14		19.01		9.79	
राज्य बिक्री कर—							
बिक्री कर	1,32.25		1,88.00		2,09.00		2,29.00
संवृद्धि प्रतिशतता		42.16		11.17		9.57	
अतिरिक्त उत्पाद शुल्क में तमिलनाडु का हिस्सा—							
बिक्री कर के बदले में शुल्क			15.00		13.00		18.00
संवृद्धि प्रतिशतता		(-)13.34		38.47		22.23	

तालिका- 2—(जारी)

	1977-78		1978-79		1979-80		1980-81		1981-82
	6		7		8		9		10
	1,02.02		11,77.39		13,40.31		15,06.39		14,75.50
(-)16.10		17.50		13.83		12.39		(-)2.05	
	74.77		1,15.92		1,83.61		1,22.42		1,07.86
17.69		55.03		58.39		(-)33.32		(-)11.81	
	9,27.25		10,61.47		11,56.70		13,83.97		13,67.54
(-)18.00		14.47		8.97		19.64		(-)1.18	
	12,20.77		12,51.47		13,91.90		13,10.79		19,09.97
24.03		2.51		11.22		(-)5.82		50.28	
	18,24.10		24,48.74		29,24.16		34,09.28		43,00.36
17.40		34.24		19.41		16.59		25.13	
	44,47.51		53,41.95		69,11.09		65,00.02		74,20.74
5.35		20.11		12.52		8.13		14.10	
	2,42.00		2,94.00		3,25.00		4,57.00		5,44.00
5.68		21.49		10.55		40.62		19.04	
	22.00		22.00		26.00		29.00		35.00
22.23		21.49		18.19		11.54		20.68	

तालिका 3

भारत सरकार की कर प्राप्तियों और संवृद्धि की प्रकृति का विवरण

विवरण	1973-74		1974-75		1975-76		1976-77
1	2		3		4		5
आय कर (अधिभार सहित)	7,45.16		8,74.41		12,14.36		11,94.38
संवृद्धि प्रतिशतता		17.34		38.87		(-) 1.64	
आयकर के अधिभार (संघ, विशेष और अतिरिक्त) .	41.96		47.65		62.69		63.53
संवृद्धि की प्रतिशतता		13.56		31.56		1.33	
आयकर (अधिभार को छोड़कर) . . .	7,03.20		8,26.76		11,51.67		11,30.98
संवृद्धि प्रतिशतता		17.57		39.29		(—)1.80	
निगम कर	5,82.60		7,09.48		8,61.70		9,84.23
संवृद्धि प्रतिशतता		21.77		21.45		14.21	
सीमा शुल्क	9,96.43		13,32.90		14,19.40		15,53.70
संवृद्धि प्रतिशतता		33.76		6.48		9.46	
संघ उत्पाद शुल्क	26,02.13		32,30.52		38,44.78		42,21.45
संवृद्धि प्रतिशतता		24.14		19.01		9.79	

तालिका-3—(जारी)

	6		7		8		9		10
	10,02.02		11,77.39		13,43.31		15,06.39		14,75.50
(-)16.10		17.50		13.83		12.39		(-)2.05	
	74.77		1,15.92		1,83.61		1,22.42		1,07.96
17.69		55.03		58.39		(-)33.32		(-)11.81	
	9,27.25		10,61.47		11,56.70		13,83.97		13,67.54
(-)18.00		14.47		8.97		19.64		(-) 1.18	
	12,20.77		12,51.47		13,91.00		13,10.79		19,69.97
24.03		2.51		11.22		(-)5.82		5.28	
	18,24.10		24,48.74		29,24.16		34,09.28		43,00.36
17.40		34.24		19.41		16.59		26.13	
	44,47.51		53,41.95		60,11.09		65,00.02		74,20.74
5.35		20.11		12.52		8.13		14.16	

5.4 यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में क्षेत्रीय असंतुलन कम करना एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए। तथापि यह उल्लेखनीय है कि संसाधनों को जुटाने के लिए केन्द्र के पास जो शक्तियां हैं वे भी इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए पर्याप्त है। पिछड़े राज्यों के विकास के प्रयासों को मदद देने के लिए नए संसाधन जुटाने और फिर उन्हें इस ढंग से विभिन्न राज्यों में बांटने से, जिससे कि वर्तमान असमानता और अधिक बढ़े, इसकी अपेक्षा जैसा कि पहले बताया जा चुका है यह अधिक महत्वपूर्ण है कि वर्तमान संसाधनों को और अधिक विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाए। यह भी उल्लेखनीय है कि वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार राज्य सरकारों को अन्तरण करने के बाद यदि भारत सरकार के पास धन की कमी हो जाती है तो घाटे की अर्थ-व्यवस्था करना इस समस्या का कोई आदर्श हल संभवतः नहीं है। जहां तक संभव हो, भारत सरकार केन्द्र द्वारा प्रायोजित परिव्यय में कमी करके इस स्थिति से निपट सकती है। हम यह भी बताना चाहेंगे कि यदि भारत सरकार घाटे की अर्थव्यवस्था पर बल देती है तो यह भी समझना चाहिए कि धन पूर्ति में अनुवर्ती वृद्धि से भी मुद्रा स्फीति में बहुत वृद्धि होगी और साथ ही उसे महंगाई भत्ते की बढ़ती हुई किस्तों और बढ़ती हुई लागतों, विशेषकर पंचवर्षीय योजना के अधीन आने वाले निर्माण कार्यों में लागत वृद्धिया वित्त आयोग के उक्त अनुदानों के अधीन राज्य सरकार की वचनबद्धता को बड़े पैमाने पर पूरा करने के लिए भी उसे आगे आना होगा।

मुद्रा स्फीति से सम्बद्ध अन्तरण के अभाव में यह कहा जा सकता है कि घाटे की अर्थव्यवस्था, वित्त आयोग के निर्णय को कमजोर करने का एक अप्रत्यक्ष तरीका है।

5.5 अमीर और निर्धन राज्यों के बीच के अन्तर को पाटने में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा निभाई गई भूमिका को देखते समय हम इन दोनों निकायों में अन्तर करना चाहेंगे। हमारा निरंतर यह मत रहा है कि ज्यादा से ज्यादा संसाधन वित्त आयोग द्वारा अन्तरित किए जाने चाहिए जो कि एक सांविधिक निकाय है। यह आयोग एक अर्ध-न्यायिक निकाय के रूप में काम करता है और इसका स्वरूप ही ऐसा है कि यह राजनीतिक विचारों और उस अस्वस्थ क्षेत्रीयवाद से ऊपर उठता है जो हमारे संघीय प्रजातन्त्र की जड़ों पर प्रहार कर रहा है। अपने इसी दृष्टिकोण के अनुरूप हमारा कहना है कि संसाधनों का अंतरण केवल वित्त आयोग के माध्यम से ही किया जाना चाहिए।

हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि केन्द्र से राज्यों को संसाधनों का अंतरण करने की वर्तमान पद्धति ने विभिन्न राज्यों के आर्थिक स्तर के अन्तर को केवल बढ़ाया ही है। सर्वाधिक प्रभावित राज्य मध्यम आय वर्ग के हैं जिन्हें दुर्भाग्यवश इस मिथ्या धारणा के अधीन संसाधनों से वंचित रखा गया है कि वे ऐसी अवस्था तक पहुंच गए हैं जहां वे अपना ध्यान स्वयं रख सकते हैं। वस्तुतः वे ऐसी अवस्था तक पहुंच गए थे जहां से उन्हें एक "बड़ा धक्का" देने से वे आत्मनिर्भर समृद्धि तक पहुंच जाते जैसा कि महाराष्ट्र और पंजाब जैसे राज्यों के मामले में हुआ है। किन्तु मध्यम आय वर्ग के राज्यों को संसाधनों के अंतरण का तरीका इतना अनुचित रहा है कि क्रमशः अनेक राज्य अन्य राज्यों की तुलना में धीरे-धीरे गिरावट की ओर बढ़ चले हैं। तालिका "क" से यह देखा जा सकता है कि संघ योजना आयोग के माध्यम से तमिलनाडु को 1980–85 के दौरान अंतरित प्रति व्यक्ति संसाधन मात्र 161 रु० है।

तालिका "क"

1980-84 के लिए प्रति व्यक्ति अंतरण

राज्य	(1979–84) सातवें वित्त आयोग के माध्यम से	(1980–85) संघ योजना आयोग के माध्यम से	जोड़
1	2	3	4
		(रुपए)	
आन्ध्र प्रदेश . .	340	208	548
आसाम . . .	355	..	355
बिहार . . .	398	223	616
गुजरात . . .	361	225	586
हरियाणा . . .	307	234	541
कर्नाटक . . .	343	184	527
केरल . . .	361	202	563
मध्य प्रदेश . . .	383	243	626
महाराष्ट्र . . .	340	174	514
उड़ीसा . . .	449	301	750
पंजाब . .	310	221	531
राजस्थान . . .	350	243	593
तमिलनाडु . .	365	161	526
उत्तर प्रदेश . .	375	218	593
पश्चिम बंगाल . .	360	153	513

तथापि महाराष्ट्र, पंजाब और हरियाणा का प्रतिव्यक्ति अंतरण क्रमशः 174 रु०, 321 रु० और 234 रु० रहा है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि योजना आयोग वे राज्यों के बीच संसाधनों के अंतरण का काम इस तरह सही

किया जो राज्यों के बीच के अंतर की खाई को पाटने में सहायक हो । इसके विप-रीत, हम देखते है कि वित्त आयोग अपने दृष्टिकोण में अधिक प्रगतिशील रहा है हालांकि वह भी पर्याप्त प्रगतिशील नहीं रहा । इन सबका कुल परिणाम यह है कि निर्धन राज्य निर्धन बने रहे और अमीर राज्य और समृद्ध हुए, संभवतः निर्धन राज्यों के मूल्य पर इस संबंध में हम नीचे तालिका "ख" की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे । इस तालिका से स्पष्ट है कि समूचे देश में प्रति व्यक्ति निवल राज्य घरेलू उत्पाद 1974-75 से 1980-81 की अवधि में लगभग 50% बढ़ा ।

तालिका 'ख'

प्रति व्यक्ति निवल राज्य घरेलू उत्पाद

राज्य	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	1978-79	1979-80	1980-81
1	2	3	4	5	6	7	8
हरियाणा . .	1,408	1,514	1,761	1,935	1,990	1,923	2,335
महाराष्ट्र . .	1,435	1,455	1,535	1,677	1,797	2,021	2,277
पंजाब . .	1,585	1,688	2,050	3,217	2,382	2,611	2,768
तमिलनाडु . .	964	997	1,066	1,203	1,225	1,274	1,269
अखिल भारतीय .	1,006	1,024	1,082	1,198	1,250	1,316	1,537
उत्तर प्रदेश . .	740	727	819	896	894	962	1,272
बिहार . .	706	669	716	759	791	795	870
मध्य प्रदेश . .	825	790	807	951	927	877	1,177
उड़ीसा . .	780	834	797	912	1,046	931	1,147

पंजाब जैसे समृद्ध राज्य में ये इसी अवधि में 75% से अधिक बढ़ी और हरि-याणा में लगभग 65% । इसी अवधि में तमिलनाडु जैसे मध्यम आय वाले राज्य में ये केवल 30% बढ़ी । दूसरी ओर उत्तर प्रदेश और उड़ीसा जैसे कम आय वाले राज्यों में विकास की दर बेहतर रही जो क्रमशः करीब 60% और 45% बैठती हैं । उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि संसाधनों के अंतरण की वर्तमान प्रणाली ने संतोषजनक ढंग से काम नहीं किया ।

हम नीचे संसाधनों के अधिक उचित और न्यायसंगत अंतरण के तरीके की एक वैकल्पिक योजना की रूप-रेखा दे रहे हैं । मोटे तौर पर हमारा सुझाव है कि संसाधनों के बंटवारे के संबंध में तीन प्रकार के दृष्टिकोण होने चाहिए । सभी प्रकार के करों के अंतरण के लिए एक फार्मूला होना चाहिए और कर स्रोतों के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए । इस परन्तुक के साथ कि यदि किसी वर्तमान कर के स्थान पर कोई केन्द्रीय कर लगाया जाता है तो इस केन्द्रीय कर के वितरण के लिए एक ऐसा अलग फार्मूला तैयार किया जाए ताकि उस राजस्व को संरक्षण मिल सके जो यदि राज्य स्वयं वह कर लगाता तो उसे प्राप्त होता । इसी प्रकार, राज्य सरकारों की विकासशील आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक फार्मूला बनाया जाना चाहिए और विकासशील प्रयोजनों के लिए फार्मूले से बाहर जाकर सहायता नहीं करनी चाहिए । राज्यों के बीच बाजार ऋण के वितरण का एक अलग फार्मूला हो सकता है । जहां तक करों के अंतरण का प्रश्न है, यह देखा गया है कि विभिन्न राज्यों के बीच असमानता कम करने के अतिरिक्त उत्साहित प्रयासों से प्रायः ऐसी भी परिस्थितियां उत्पन्न हुई है जहां वर्तमान संसाधनों के अदक्ष और अप्रभावी प्रबंध को बेहतर समझा गया है । करों के अंतरण में असमानता कम करने और दक्ष प्रबंध व्यवस्था को प्रोत्सा-हित करने की परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच प्रभावकारी संतुलन कायम करने का प्रयास करना चाहिए । हमारा सुझाव है कि पिछड़ेपन के मानदण्ड के साथ ही संसाधन पैदा करने और प्राकृतिक संसाधनों की कमी के बावजूद उनका सर्वोत्तम प्रयोग करने के राज्य के प्रयासों को भी ध्यान में रखना वांछनीय होगा । यह महसूस किया गया है कि इस प्रयोजन के लिए बनाए जाने वाले फार्मूले सामान्य और प्रभावकारी होने चाहिए । अतः अनेक कारकों को ध्यान में रखने की बजाय हम चाहेंगे कि यह फार्मूला सीमित कारकों पर ही आधारित हो तो निर्धनता और राज्य के संसाधनों को ठीक-ठीक और प्रभावकारी तरीके से परिलक्षित कर सकेगा । जहां तक योजना सहायता का संबंध है, एक ऐसा न्यायसंगत फार्मूला खोजना होगा जिसमें एक ऐसे आधार पर जनसंख्या को 50% महत्व दिया जाए जिसे समग्र विकास दर से समायोजित किया जाए । शेष भारिता पिछड़ेपन के संदर्भ में प्रयासों और सरकारों में प्राकृतिक संसाधनों के पिछड़ेपन के सूचकों इत्यादि के लिए होनी चाहिए ।

5.6 जैसा कि संक्षेप में पहले ही बताया जा चुका है योजना आयोग ने, जो कि एक असांविधिक निकाय है, अनुच्छेद 280 में विचारित सांविधिक आयोग के कर्तव्यों पर अधिक्रमण किया है, इसका परिणाम यह दिखाई देता है कि असांविधिक विवेकाधीन अनुदानों इत्यादि के संबंध में योजना आयोग की सिफारिशें अक्सर बिना किसी उपयुक्त संस्वीकृति के होती है राष्ट्रीय विकास परिषद् का भी, जो कि एक असांविधिक निकाय है, का निर्माण वित्त के न्याय संगत वितरण के लिए किया गया था किन्तु वह भी इस वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा । इसी कारण से राज्य सरकार ने संविधान के अनु० 280 में यथा परिकल्पित उच्च शक्ति प्राप्त वित्त आयोग स्थापित करने की सिफारिश की जिसमें संघ और राज्यों के प्रतिनिधि हों जो राज्यों को करों और अनुदानों सहित वित्त के वितरण का प्रबंध करे । इस सिलसिले में सरकार की राय है कि वित्त और योजना आयोग का वर्तमान कार्य इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त नही है ।

5.9 आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन (खण्ड I) के अध्याय I, पैरा 13 में इस सरकार ने कहा है "हम महसूस करते है कि वित्त आयोग अपने आपको अपने द्वारा यथा अनुमोदित गैर-योजना राजस्व अंतर तक ही सीमित न रखे । हमारी राय है कि यदि वित्त आयोग राज्य की कुल आवश्यकताओं की तुलना में राज्य की वित्तीय असमानताओं की समूची समस्या का एक समग्र एकीकृत दृश्य सामने रखे तो यह राज्य के हितों के लिए अधिक सार्थक होगा । ऐसा तभी किया जा सकता है जब वित्त आयोग गैर-योजना और योजना आवश्यकताओं की सम्पूर्ण-तया विचार करें" । इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए यह कहना सर्वथा उचित होगा कि सभी वित्तीय अंतरणों (योजना और गैर-योजना) के लिए केवल एक ही संगठन अर्थात् वित्त आयोग हो, तो बेहतर होगा । इस स्थिति में योजना आयोग की भूमिका विभिन्न योजनाओं में अग्रताएं निर्धारित करने तक सीमित होगी जिससे कि उपलब्ध संसाधनों का सर्वोत्तम संभव उपयोग हो सके ।

यह देखा गया है कि पिछले कुछ वर्षों से संघ योजना आयोग की स्वायत्त हैसियत घटती जा रही है । वह दिन दूर नही कि संघ योजना आयोग भारत सरकार का एक हिस्सा मात्र बन कर रह जाएगा । दूसरी ओर, वित्त आयोग का एक सांविधिक उद्गम है, और उससे यह उम्मीद की जा सकती है कि वह संघ योजना आयोग, ऋण परिषद्, व्यय आयोग इत्यादि जैसे अन्य निकाय

रखने की बजाय संविधान में निर्धारित अपने कामों को अधिक निष्पक्ष भाव से किया सकेगा । यह दृष्टिकोण अपनाना वांछनीय होगा कि वित्त आयोग का प्रवेश संसाधनों के वितरण की समूची परिधि में हो सकता है ।

5.10 वित्त आयोग द्वारा अपनाई गई कार्य पद्धति और उसके पास समय की कमी, आयोग के लिए दक्षता बढ़ाने और व्यय में कमी लाने का काम बहुत मुश्किल कर देती है । यदि एक स्थायी वित्त आयोग भी बना दिया जाए तो भी ऐसी हल्की निगरानी या दक्ष लेखापरीक्षा लेना बहुत कठिन होगा जो सार्थकतापूर्वक दक्षता बढ़ाने और व्यय में कमी लाने में वित्त आयोग की सहायता कर सके । इतना ही नहीं, इससे भविष्य में राज्य सरकारों के क्रिया कलापों में अधिक हस्तक्षेप भी हो सकता है और इससे संभवतः राज्यों की अधिक स्वायत्तता की संकल्पना भी कमजोर होगी । अब भी वित्त आयोग द्वारा राज्य विद्युत बोर्डों, परिवहन निगमों और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों से कुछ मानकीय विवरणियां मंगाकर और वर्तमान परिसम्पत्ति के रख-रखाव के लिए कुछ मानदण्ड निर्धारित करके इस समस्या पर काबू पाने के अधूरे मन से कुछ प्रयास कर रहा है । किन्तु इस कार्य को किसी संगत परिणाम तक नहीं पहुंचाया जाता और सभी राज्य सरकारों के आय और व्यय का बहुत बड़ा हिस्सा किसी भी वांछनीय कसौटी पर कसा ही नहीं जाता । आय और व्यय के इस हिस्से के लिए वित्त आयोग केवल पिछले वर्षों के व्यवहारिक आंकड़े लेता है और उन्हीं के आधार पर कार्रवाई करता है । इससे निस्संदेह अविचारित वित्तीय प्रबंध की ओर जाने की प्रवृत्ति बढ़ेगी । अतः यह महसूस किया गया है कि यदि आय और व्यय की सभी महत्वपूर्ण मदों के लिए कुछ निश्चित मानदण्ड निर्धारित किए जाएं तो अच्छा होगा । यह मानदण्ड राज्य घरेलू उत्पाद संसाधनों की उपलब्धता और उनके प्रयोग, कर प्रयास, जनसंख्या, साक्षरता जैसे कतिपय सम्बन्धित कारकों पर निर्धारित किया जा सकता है । यदि ऐसा हो जाए तो सभी राज्यों के लिए वित्त आयोग के माध्यम से न्याय के युक्तिसंगत और समान स्तर की व्यवस्था करना शायद संभव हो सकेगा और साथ ही उन्हें अपने संसाधन बढ़ाने के लिए उचित प्रयास करने पर भी मजबूर किया जा सकेगा ।

5.11 यह सही है कि संसाधनों के अंतरण की वर्तमान व्यवस्था ने राजस्व घाटे के पूर्वानुमानों को संभवतः बढ़ा-चढ़ाकर बताने की प्रवृत्ति पैदा की है । किंतु वित्त आयोग भी इन पूर्वानुमानों को उपयुक्त स्तर पर सुधारने और वास्तविकता के और करीब लाने के लिए समुचित रूप से साधन सम्पन्न है ।

जहां तक फिजूलखर्ची का आरोप है यह कहा जा सकता है कि विधिवत् निर्वाचित राज्य सरकार अपने कार्य क्षेत्र में इस बात का फैसला करने के लिए सबसे बड़ा निर्णायक है कि अपनी जनता के कल्याण के लिए किन योजनाओं को कार्यान्वित करना है । केन्द्र या किसी अन्य राज्य सरकार के लिए ऐसी कुछ योजनाओं की लोकप्रिय उपाय कह कर आलोचना नहीं करनी चाहिए ।

साथ ही साथ हमें वित्तीय प्रबन्ध को पुरस्कृत करने की आवश्यकता को स्वीकार करना होगा । यह कहना उचित होगा कि तमिलनाडु जैसे कम संसाधनों वाले राज्य द्वारा अच्छे कर प्रयासों को, संसाधन अंतरण फार्मूले में इस कारक को पर्याप्त भारिता देकर पुरस्कृत किया जाना चाहिए ।

5.12 और 5.13 इस प्रश्न पर आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन (खण्ड 1) के अध्याय एक के पैरा 10, 11 और 15 में विचार किया जा चुका है । मोटे तौर पर हमारा दृष्टिकोण यह है कि कम से कम 90% राशि को अंतरण के रूप में और शेष को सहायता अनुदान के रूप में दिया जाना चाहिए । ध्यान में रखने लायक एक और बात यह है कि अंतरण के बाद मध्यम आय राज्यों की प्रति व्यक्ति आधिक्य समृद्ध राज्यों के न्यूनाधिक समकक्ष होना चाहिए क्योंकि मध्य आय राज्यों को अपनी विशेष समस्याएं हल करने के लिए इसकी आवश्यकता होगी ।

हमारे इस दृष्टिकोण का आधार यह था कि सहायता अनुदान का स्वरूप मुख्यतया यादृच्छिक होगा और इनसे केन्द्र सरकार को संभवतः कुछ राज्यों के पक्ष में काफी अधिक छूट मिल जाएगी, अतः इस पहलू पर फिर बल देने की आवश्यकता है । यदि हम सहायता अनुदान को न्यूनतम संभव स्तर पर रोकना चाहते हैं तो हमें कहना होगा कि सहायता अनुदान को करों और शुल्कों के अंतरण के बाद बचे वित्तीय अंतर को पाटने के लिए ही दिया जाना चाहिए ।

हमारा सुझाव है कि इस समय अपनाए गए राजस्व अंतरण फार्मूला के स्थान पर वित्तीय कमी फार्मूला रखा जाना चाहिए ।

आठवें वित्त आयोग के समक्ष अपनाए गए हमारे दृष्टिकोण से यह यद्यपि कुछ भिन्न होगा तथापि इसमें कोई अंतर-विरोध नहीं है । इस ज्ञापन में हमने योजना आयोग और वित्त आयोग के बीच विद्यमान द्विभाजीकरण को ध्यान में रखा था जिसमें वित्तीय अंतरण के अपने फार्मूले पर पहुंचने में वित्त आयोग को योजना खर्च को शामिल करने से वर्जित किया गया था । हम जो योजना सुझा रहे हैं उसके अनुसार वित्त आयोग को न केवल योजना से इतर आवश्यकताओं को बल्कि राज्य सरकारों की समग्र योजना आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए और उसे एक ऐसा फार्मूला तैयार करने में सक्षम होना चाहिए जिसमें राज्य सरकारों की योजना, गैर-योजना आवश्यकताओं और अन्य विशेष बोझों को भी ध्यान में रखा गया हो । इससे यह सुनिश्चित होगा कि केन्द्र सरकार किसी बड़ी सीमा तक पक्ष-पात का खेल नहीं खेल सकेगी ।

जहां तक प्रशासन के स्तर को उन्नत करने के अनुदानों का संबंध है इसे समाप्त करना होगा । एक बार आयोग को जब राज्य सरकारों के योजना और गैर-योजना व्यय के समूचे कार्य क्षेत्र तक जाने की अनुमति होगी तो उन्नत करने के लिए कोई विशेष प्रावधान करने की आवश्यकता नहीं होगी ।

5.14 इस सरकार का दृष्टिकोण आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन (खंड 1) के अध्याय 1 के पैरा 26.1 और 27 में प्रस्तुत किया जा चुका है । तथापि हम यह कहना है कि भारत सरकार की विशेष धारक बाण्ड योजना से और पेट्रोलियम, कोयला इत्यादि मदों पर प्रशासित मूल्यों को बढ़ाने से प्राप्त राजस्व को भी बांटना चाहिए । हम महसूस करते हैं कि यह बात निम्नलिखित कारणों से न्यायसंगत है ।

जहां तक विशेष धारक बाण्डों का संबंध है इनकी राशि वैसे भी आयकर के रूप में भारत सरकार को मिलती जो कि राज्य सरकारों के साथ विभाज्य है । भारत सरकार चूंकि समय पर वह राजस्व वसूल नहीं कर सकी जो उसे करनी चाहिए थी तभी विशेष धारक बाण्ड जैसी योजनाएं बनाई गई जो और कुछ नहीं सिर्फ उस काले धन को नियमित बनाना है जिस पर आय कर नहीं दिया गया था । सिद्धान्त रूप में बकाया आय कर के रूप में देखा जाना चाहिए और इसे राज्य सरकारों के साथ बांटा जाना चाहिए । हम यह भी कहना चाहेंगे कि वर्तमान विशेष धारक बाण्ड ही नहीं बल्कि ग्रामीण पुनर्निर्माण बाण्ड इत्यादि जैसे बाण्ड भी राज्य सरकारों के साथ आबंटनीय होने चाहिए ।

जहां तक प्रशासित मूल्यों को बढ़ाने का संबंध है उन पर भी यही दलील लागू की जा सकती है । हम कहना चाहेंगे कि भारत सरकार के पास उत्पाद शुल्क बढ़ाकर इन संसाधनों को बढ़ाने से रोकने का कोई न्यायोचित कारण नहीं है । हमारी राय यह है कि जिस प्रयोजन के लिए प्रशासित मूल्य बनाये जाते हैं वे उत्पाद शुल्क बढ़ाकर भी किए जा सकते हैं जो कि राज्य सरकारों के साथ आबंटनीय है । यदि भारत सरकार को ऐसी कार्रवाई करने में कोई बुनियादी आपत्ति है तो भी उसके लिए एक ऐसा उपाय खोजना संभव होना चाहिए कि प्रशासित मूल्यों को बढ़ाने से राज्य सरकारों को जो अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है उसकी भरपाई हो सके । इस मनमानी वृद्धि से जिन क्षेत्रों में सबसे बुरा प्रभाव पड़ा है वे हैं बिजली बोर्ड, परिवहन निगम और राजमार्ग विभाग । हमारा निवेदन है कि जब वित्त आयोग अपने निर्णय को अन्तिम रूप देता है तो वह बिजली बोर्ड और परिवहन निगम पर किए गए पूंजी निवेश पर एक निश्चित प्रतिलाभ को ध्यान में रखता है । तथापि जब निवेशों की लागत भारत सरकार द्वारा मनमाने ढंग से बढ़ा दी जाती है तो ये सभी गणनाएं पूरी तरह गड़बड़ा जाती हैं । राज्य सरकारों के लिए, जो कि जनता के सीधे सम्पर्क में होती हैं, निवेश लागत में वृद्धि को उपभोक्ताओं तक ले जाना संभव नहीं होता । वस्तुतः ऐसी वृद्धियों का अर्थव्यवस्था के सभी अंगों में मूल्यों पर जो प्रवर्धक प्रभाव पड़ता है उसकी वजह से ऐसा करना संभव ही नहीं है । इस संदर्भ में हम यह कहना चाहते हैं कि पिछले 10 वर्षों में 1974-75 और 1983-84 की अवधि में कोयले और भट्टी के तेल तथा भाड़े की दरों में संशोधन के कारण तमिलनाडु बिजली बोर्ड को की गई बचनबद्धता लगभग 350 करोड़ रुपए की

बैठती है। यह कहने की बात नहीं है कि यदि इतनी वृद्धि को उपभोक्ता के पास विशेषकर किसानों के पास जाने दिया जाए तो इससे मुद्रा स्फीति का बहुत भारी दबाव बनेगा अतः राज्यों के पास इसके सिवाए कोई चारा नहीं कि वे इस बढ़े हुए बोझ को अपने अल्प संसाधनों से झेलें।

इसी प्रकार इसी अवधि में बिटुमन की लागत 5 से 6 गुणा बढ़ी है जिससे राज के कोष पर 60 करोड़ रुपए का भार पड़ा है। यह सारा भार पूरी तरह राज्य सरकारों को वहन करना पड़ता है क्योंकि सड़कें परिवहन क्षेत्र का मेरुदण्ड हैं जो कि औद्योगिक विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि जहां तक राज्य सरकारों का संबंध है, प्रशासित मूल्यों में वृद्धि के कारण अतिरिक्त बोझ उपभोक्ताओं पर नहीं लादा जा सकता और इससे अंतः राज्य के अल्प संसाधन ही क्षीण होते हैं और समूची अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। वित्त आयोग करों का अंतरण कर और गैर-कर दोनों प्रकार के राजस्वों को ध्यान में रखकर निर्धारित करता है। गैर-कर राजस्व में बिजली बोर्ड और परिवहन निगमों इत्यादि के अंशदान भी शामिल होते हैं। प्रशासित मूल्यों में वृद्धि से वस्तुतः इस राजस्व में कमी होती है और उसी मात्रा तक संसाधनों और वचनबद्धता के बीच का अन्तर बढ़ता है। अतः कराधान में अंतरण को बढ़ाकर इसकी भरपाई की जानी चाहिए।

तालिका-I

(रु० लाखों में)

वर्ष	सरकारी सड़कों की लंबाई कि०मी० में	बिटुमन 1 मी० ट० आई०एस०डी० दरें		औसत लागत	खपत/अपेक्षित बिटुमन (अनुमान)	आई०एस०डी० दरों पर खपत किये गये बिटुमन की लागत (औसत) लाखों में	सन् 1978-79 के बाद बिटुमन मूल्य में अचानक वृद्धि को स्वीकार किए बिना खपत किए गए बिटुमन की लागत
		पैकेट	वजन				
1	2	3	4	5	6	7	8
1974-75 . .	29,248	615	..	..	46,200	2,84.13	2,84.13
1975-76 . .	31,444	1,070	..	..	48,400	5,17.88	5,17.88
1976-77 . .	31,906	1,070	..	..	49,000	4,24.30	5,24.30
1977-78 . .	32,582	1,070	..	..	54,000	5,35.00	5,35.00
1978-79 . .	33,331	1,070	850	960	54,000	5,18.40	5,18.40
1979-80 . .	33,556	1,622	1,313	1,468	960 रु० मी० की औसत दर को अपनाते हुए।		
1980-81 . .	33,960	2,450	2,150	2,300	60,000 75,000	8,80.80 17,25.00	5,76.00 7,20.00
1981-82 . .	35,607	2,759	2,462	2,611	90,000	23,49.90	8,64.00
1982-83 . .	36,264	2,851	2,329	2,590		24,86.40	9,21.60
1983-84 . .	38,607	2,851	2,329	2,590	98,000	25,38.20	9,40.80
					जोड़ . .	1,23,60.00 लाख रु० (या) 24 करोड़ रु०	64,02.11 लाख रु० (या) 64 करोड़ रु०

राज्य सरकार की परिणामी अतिरिक्त वचनबद्धता.

124 करोड़ रु०—64 करोड़ रु०=60 करोड़ रु०, 10 वर्षों में 60 करोड़ रु०।

तालिका 2

पिछले दस वर्षों के दौरान डीजल में मूल्य वृद्धि के कारण संसाधनों में ह्रास (करोड़ रुपए में)

क्रम सं०	मूल्य वृद्धि की तारीख	प्रति लीटर मूल्य वृद्धि (रुपए में) से	तक	लागत में प्रति कि० वृद्धि (पैसों में) से	तक	लागत में प्रति कि० वृद्धि (पैसों में)	संचयी वृद्धि	अगली वृद्धि तक कि०मी० रन	अतिरिक्त खर्च
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1	01-4-1974 .	0.86	1.02	25	29	4	4	4,421	1.77
2	01-8-1975 .	1.02	1.21	29	35	5	10	22,857	2.86
3	01-4-1976 .	1.21	1.36	35	39	4	14	14,309	20.03
4	01-4-1979 .	1.36	1.48	39	42	3	17	2,037	3.46
5	17-8-1980 .	1.48	1.65	42	45	3	20	5,150	10.30
6	08-6-1980 .	1.65	2.27	45	63	18	38	4,177	15.87
7	13-1-1981 .	2.27	2.69	63	74	11	49	3,753	10.39
8	11-7-1981 .	2.69	3.05	74	84	10	59	13,510	79.71
9	15-2-1983 . (31-3-1984 तक)	3.05	3.38	84	93	9	68	9,253	62.92
									215.31

राज्य सरकार द्वारा बाजार से ऋण लेना

5.15, 5.18 और 5.20 पिछले कई वर्षों से बाजार ऋण सार्वजनिक वित्त व्यवस्था में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। तथापि जैसा कि तालिका 1 से स्पष्ट है धन के इस स्रोत का महत्व हाल ही के वर्षों में काफी बढ गया है। साथ ही ऋण का स्वरूप भी काफी बदल गया है और बाजार ऋण अब न्यूनाधिक बंदी बाजार से ऋण रह गया है।

बाजार ऋणों पर केन्द्र की गला-घोटू जकड़

भारत में जहां पूंजी बाजार अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुआ है और निवेश बैंकिंग की संकल्पना अभी अपने शैशव काल में है केन्द्र की नियन्ता स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है क्योंकि वह अधिकांश ऐसे वाणिज्यिक बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों को नियन्त्रित करता है जो सार्वजनिक बचतों की इकट्ठा करते हैं वस्तुतः बाजार ऋणों की सम्पूर्ण प्रक्रिया भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समन्वित की जाती है और कोई भी बाजार ऋण केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना संभव नहीं है यदि ऋण लेने वाला संगठन चाहे वह राज्य सरकार या कोई वित्तीय संस्थान केन्द्र सरकार का ऋणी है चूंकि ये सभी संगठन केन्द्र सरकार के ऋणी है इस लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समन्वित की जाती है और कोई भी बाजार ऋण केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना संभव नहीं है यदि ऋण लेने वाला संगठन चाहे वह राज्य सरकार या कोई वित्तीय संस्थान केन्द्र सरकार का ऋणी है चूंकि ये सभी संगठन केन्द्र सरकार के ऋणी है इसलिए भारतीय रिजर्व बैंक राज्य सरकारों को ऋण केवल भारत सरकार के निर्देश के अधीन ही जारी करता है अथवा बाजार ऋण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा योजना आयोग और संघीय वित्त मंत्रालय की सलाह पर विभिन्न राज्यों को आबंटित किए गए है। 1969 के बाद राष्ट्रीयकृत बैंक यदि भारतीय रिजर्व बैंक के अधीन अंशदान करते है तो बाजार ऋण भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को जमा राशि का आबंटन मात्र है। अतः आश्चर्य की कोई बात नहीं कि पिछले वर्षों से भारत सरकार कुल उपलब्ध बाजार ऋणों को अधिक से अधिक विनियोजित करता रहा है।

राज्य सरकारों को वितरण का हिस्सा

जहां तक केन्द्र और राज्यों के बीच बाजार ऋणों के सापेक्ष हिस्से का प्रश्न है यह स्पष्ट है कि प्रथम योजना में राज्यों का हिस्सा जो कुल बाजार ऋणों का 75 प्रतिशत था, छठे योजना आयोग अनुमानों के अनुसार गिरकर 23.08 रह गया है। इतना ही नहीं जैसा कि तालिका 20 से स्पष्ट है कि कुल बाजार ऋण जो प्रथम योजना में 204 करोड़ रु० थे छठी योजना में बढ़कर 19,500 हो गए है। यह वृद्धि 90 गुणा बैठती है। यदि हम अपने आपको 70 के दशक तक ही सीमित रखें तो भी वृद्धि की दर लगभग 29 प्रतिशत प्रति वर्ष आती है। इसकी तुलना में केन्द्र सरकार ने हाल ही में पिछले वर्षों के राज्य सरकार बाजार ऋणों की अनुभव सीमा में केवल 10 प्रतिशत की वृद्धि की अनुमति दी है। जाहिर है कि शेष वृद्धि को केन्द्र सरकार ने अपनी योजनाओं के वित्त पोषण के लिए और कुछ हद तक राज्यों को योजना सहायता देने में इस्तेमाल किया है। इस सबका परिणाम यह है कि बाजार ऋण जो कि प्रथम योजना में केन्द्र के योजना परिव्यय का 9.75 प्रतिशत थे अब योजना परिव्यय 30.76 प्रतिशत है जबकि राज्य योजना परिव्यय के संबंध में यह प्रतिशत जो प्रथम योजना में 10.87 था छठी योजना में कम होकर 9.26 प्रतिशत रह गया। केन्द्र और राज्यों के योजना परिव्यय और राज्यों के योजना परिव्यय और बाजार ऋणों का तुलनात्मक विवरण तालिका 3 में देखा जा सकता है।

इन परिस्थितियों में कुछ ऐसे सुस्थापित सिद्धान्त निर्धारित करने की भारी आवश्यकता है जिन पर से बाजार ऋण केन्द्र और राज्यों के बीच न्यायसंगत ढंग से और राज्यों के बीच समस्तरीय रूप से बांटे जा सकते हैं।

केन्द्र और राज्यों के बीच बंटवारा

ऊपर जो कुछ कहा गया है इससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बाजार ऋणों को न्यायसंगत ढंग से बांटने की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाए उतना थोड़ा है। राज्य सरकारों का हिस्सा बढ़ाने की दलील को संभवतः यह कह कर काटा जाएगा कि इसका अनिवार्य परिणाम केन्द्रीय सहायता में कमी के रूप में होगा और कुल मिलाकर इसका असर न के बराबर होगा। तथापि उल्लेखनीय है कि राज्य योजना परिव्यय के प्रतिशत के रूप में केन्द्रीय सहायता जो तीसरी योजना में 60.39 प्रतिशत थी, छठी योजना में कम होकर 31.58 प्रतिशत रह गई है। इस बात पर भी बल देना होगा कि हमने जिस संघीय ढांचे को अपनाया है उसमें कि बाजार ऋणों का साम्यिक् बंटवारा ही न्यायसंगत है क्योंकि योजना के वित्त पोषण के लिए बाजार ऋणों का प्रयोग केन्द्र और राज्यों दोनों ने किया है। यह उचित ही होगा कि केन्द्र और राज्यों दोनों के योजना परिव्ययों के अनुपात से ही इसका बंटवारा किया जाए। इस प्रकार के हिस्से से केन्द्र और राज्य दोनों की योजना की वित्त पोषण के लिए समान स्तर की सहायता मिल सकेगी। उदाहरण के लिए जैसा कि छठी योजना में है केन्द्र और राज्यों के सापेक्ष हिस्से 50—50 प्रतिशत हैं अतः बाजार ऋणों को भी इसी अनुपात से बाँटा जा सकता है।

इसी प्रकार राज्यों के बीच भी उचित और न्यायसंगत सिद्धान्तों के आधार पर बटवारा किया जा सकता है ।

राज्यों के बीच बटवारा

अतीत में बाजार ऋणों का राज्यों के बीच बांटने का काम पिछले वर्षों के ऋणों के स्तर पर 10 प्रतिशत की वृद्धि करके तदर्थ आधार पर और मनमाने ढंग से किया गया है । अतः जो राज्य दुर्भाग्यवश निम्न स्तर पर थे उसी स्तर पर बने रहे और एक न्यायसंगत स्तर पर लाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया । वस्तुतः यदि 1969–79 की अवधि में प्रतिव्यक्ति बाजार ऋणों के समान को देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि तमिलनाडु में जहां प्रतिव्यक्ति बाजार ऋण की 1969–79 में सिर्फ 90 प्रतिशत की वृद्धि हुई वहीं इसी अवधि में पश्चिम बंगाल में लगभग 600 प्रतिशत की वृद्धि हुई । वह भी स्पष्ट है कि राज्यों के बीच भी भारी असमानताएं है जैसा कि 1978–79 में उत्तर प्रदेश में प्रति व्यक्ति ऋण 5.78 रु० का जबकि नागालैण्ड में 52.80 रु० और हरियाणा तथा गुजरात जैसे अत्याधिक विकसित राज्यों में यह राशि क्रमशः 15.47 रु० और 12.10 रु० थी । इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि राज्यों के बीच बाजार ऋणों की वर्तमान हिस्सेदारी में असंतुलनों को दुरुस्त करने की कोई चेष्टा किए बिना निरुद्देश्य झुकाव की नीति का अनुसरण किया जा रहा है । वर्तमान प्रणाली अधिक बाजार ऋणों वाले पिछड़े राज्यों के बिल्कुल पक्ष में नहीं है न ही इससे केन्द्र सरकार की कोई ऐसी प्रवृत्ति दिखाई देती है कि वह बाजार ऋणों के आबंटन पर ऊंचे ऋण सेवा प्रभारों के बोझ से इन राज्यों को बचाना चाहती है और अनुदानों के रूप में उनकी क्षतिपूर्ति करना चाहती है । जैसा कि पहले कहा गया है आज जो स्थिति है वह निरुद्देश्य झुकाव की स्थिति है अतः समय की मांग है कि बाजार ऋणों के बटवारे के उचित और न्यायसंगत सिद्धान्त तैयार किए जाएं । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रपति को अनुच्छेद 280 (3) (ग) के अधीन अपनी शक्तियों का उदारतापूर्वक प्रयोग करना चाहिए ।

यह बताना उचित ही होगा कि बाजार ऋणों के जो आंकड़े संघीय योजना आयोग ने दिए हैं वे भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों से मेल नहीं खाते । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए आंकड़े तालिका 6 में उद्धृत हैं । इससे स्पष्ट होता है कि जहां तमिलनाडु में बाजार ऋणों में 1973–74 से 1982–83 के बीच लगभग 32 प्रतिशत की वृद्धि हुई । उत्तर प्रदेश में इसी अवधि में 228 प्रतिशत से अधिक की और आंध्र प्रदेश में 276 प्रतिशत की वृद्धि हुई । इससे एक बार फिर वित्त आयोग द्वारा बटवारे के उचित और न्यायसंगत सिद्धान्त तय करने की महत्वपूर्ण आवश्यकता को बल मिलता है । हम पुनः जोर देकर कहना चाहेंगे कि विभिन्न राज्यों में समग्र रूप से जनता की बचतों को बांटते समय और बाजार ऋणों का आबंटन करते समय भारत सरकार को वित्त आयोग के निर्णयों का अनुसरण करना चाहिए । भविष्य में बाजार ऋणों के बटवारे का उपयुक्त फार्मुला सुझाने के लिए वित्त आयोग का सहारा लिया जा सकता है । इसके वास्तविक निष्पादन को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समन्वित किया जाना जारी रखा जा सकता है । एक अलग ऋण परिषद स्थापित करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि अभिकरणों की संख्या बढ़ाने से एक ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है जब वह एक दूसरे के विरुद्ध काम करने लगें ।

तालिका 1

(रुपय करोड़ में)

योजना अवधि	सार्वजनिक क्षेत्र योजना परिव्यय	बाजार ऋण	सार्वजनिक क्षेत्र योजना परिव्यय की प्रतिशतता के अनुसार बाजार ऋण
(1)	(2)	(3)	(4)
प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56 वास्तविक आंकड़े) .	1,960	204	10.41
द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61 वास्तविक आंकड़े) .	4,672	756	16.18
तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66 वास्तविक आंकड़े) .	85,77	823	9.60
वार्षिक योजनाएं (1966–69 वास्तविक आंकड़े) .	6,625	725	10.94
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–75 अद्यतन अनुमान) .	16,160	2,788	17.25
पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–79 संशोधित अनुमान) .	39,303	5,879	14.96
वार्षिक योजना 1979–80 (मूल योजना अनुमान) .	12,601	2,371	18.81
छठी पंचवर्षीय योजना (मूल योजना अनुमान) (1980–85) .	97,500	19,500	20.00

तालिका 2

केन्द्र और राज्यों के बीच बाजार ऋणों का आबंटन

(रुपये करोड़ में)

योजना अवधि	कुल बाजार ऋण	केन्द्र द्वारा बाजार ऋण	कुल बाजार ऋणों का प्रतिशतता रूप में केन्द्र के ऋण	राज्यों द्वारा बाजार ऋण	कुल बाजार ऋण की प्रतिशतता के रूप में राज्य बाजार ऋण
प्रथम योजना (1951–56) .	204	49 .	24.00	155	76.00
द्वितीय योजना (1956–61) .	756	400	52.91	356	47.09
तृतीय योजना (1961–66)	823	307	37.:30	516	62.70
वार्षिक योजना (1966–69)	725	384	52.97	341	47.03
चतुर्थ योजना (1969–74) (अद्यतन अनुमान)	2,788	1,744	62.55	1,044	37.44
पंचवर्षीय योजना (संशोधित अनुमान) (1974–79)	5,879	3,746	63.72	2,133	36.28
वार्षिक योजना (1979–80) (मूल अनुमान)	2,371	1,850	78.02	521	21.98
छठीं योजना (1980–85) . (मूल छठी योजना अनुमान)	19,500	15,000	76.92	4,500 .	23.08

तालिका 3
केन्द्र और राज्यों की योजना परिव्यय और बाजार ऋण

योजना अवधि	केन्द्र			राज्य		
	योजना परिव्यय	बाजार ऋण	केन्द्र के योजना परिव्यय के प्रतिशतता के रूप में बाजार ऋण	योजना परिव्यय	बाजार ऋण	राज्यों के योजना परिव्यय के प्रतिशतता के रूप में बाजार ऋण
1	2	3	4	5	6	7
प्रथम योजना (1951-56) . . (वास्तविक आंकड़े)[1]	535	49	9.15	425	155	10.87
द्वितीय योजना (1956-61) . . (वास्तविक आंकड़े)[1]	2,590	400	15.44	2,082	356	17.10
तृतीय योजना (1961-66) . . (वास्तविक आंकड़े)[1]	4,412	307	6.96	4,165	516	12.39
वार्षिक योजना (1966-69) . . (वास्तविक आंकड़े)[1]	3,565	384	10.77	3,060	341	11.14
चतुर्थ योजना (1969-74 अद्यतन अनुमान)	8,793	1,744	19.83	7,367	1,044	14.17
पांचवीं योजना (1974-79) . . (संशोधित अनुमान)[1]	20,586	3,146	18.19	18,717	2,133	11.40
वार्षिक योजना (1979-80) . . (मूल अनुमान)	6,639	1,850	27.87	5,962	521	8.74
छठी योजना (1980-85) . .	48,900	15,000	30.67	48,600	4,500	9.26

तालिका 4
केन्द्रीय सहायता

योजना अवधि	केन्द्रीय सहायता	
	कुल	राज्य योजना परिव्यय का प्रतिशत
1	2	3
तृतीय योजना (1961-66)	2,515	60.38
वार्षिक योजना (1966-69)	1,767	57.90
चतुर्थ योजना (1969-74)	3,535	47.98
पांचवी योजना (1974-78)	5,271	41.48
वार्षिक योजना (1978-79)	2,885	48.01
वार्षिक योजना (1978-79)	2,694	45.19
		(संशोधित अनुमान)
छठी योजना (1980-85)	15,350	31.58

तालिका 5

1969-79 के दौरान राज्य सरकारों का प्रति व्यक्ति बाजार ऋण आदान

राज्य	1969-70	1970-71	1971-72	1972-73	1973-74	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	1978-79
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1. आंध्र प्रदेश .	2.71	2.61	2.91	4.86	4.83	5.05	4.83	5.81	5.84	6.43
2. असम . .	5.50	4.59	4.77	5.73	7.54	7.57	7.57	7.65	9.29	9.37
3. बिहार . .	1.50	1.22	1.36	2.95	4.26	4.36	4.38	4.80	5.27	5.80
4. गुजरात .	10.28	6.75	7.84	7.52	8.15	9.22	9.08	10.00	11.00	12.10
5. हरियाणा .	11.02	8.75	8.33	10.59	11.61	14.70	11.65	12.77	14.06	15.47
6. हिमाचल प्रदेश .	..	..	..	6.06	8.66	8.62	8.65	9.51	10.40	11.43
7. जम्मू और कश्मीर	..	..	..	4.78	14.35	14.36	14.47	15.89	17.48	19.22
8. कर्नाटक .	6.94	5.64	5.99	5.88	7.52	7.58	7.49	8.26	9.08	9.99
9. केरल . .	2.37	3.97	5.36	9.12	9.26	9.06	10.19	10.19	11.25	12.38
10. मध्य प्रदेश .	2.02	3.05	2.98	3.03	4.63	4.57	4.64	5.10	5.61	6.17
11. महाराष्ट्र .	7.08	5.50	6.18	7.28	6.30	6.34	6.72	7.36	8.10	8.90
12. मणिपुर .	..	..	..	10.09	12.55	32.14	12.45	13.82	15.18	16.73
13. मेघालय .	..	..	..	11.00	11.00	38.80	20.00	24.20	26.60	29.30
14. नागालैण्ड .	..	..	..	22.20	39.60	115.80	39.60	43.60	48.00	52.80
15. उड़ीसा .	2.30	3.64	4.68	3.01	5.80	5.99	5.79	6.38	7.02	7.72
16. पंजाब .	7.70	6.95	6.67	7.46	7.36	10.39	7.78	8.04	8.84	9.72
17. राजस्थान .	2.52	3.74	3.75	7.98	8.90	8.84	9.30	9.68	10.65	11.71
18. सिक्किम .	..	..	..	..	..	..	..	..	..	..
19. तमिलनाडु .	4.49	5.19	4.69	4.97	6.36	5.88	6.41	7.01	7.71	8.48
20. त्रिपुरा .	..	..	..	..	..	10.37	8.62	9.50	10.44	11.50
21. उत्तर प्रदेश .	1.54	1.52	1.98	2.97	4.34	4.15	4.40	4.78	5.25	5.78
22. पश्चिम बंगाल .	1.78	4.06	4.45	7.93	9.26	9.28	9.30	10.19	11.20	12.32
सभी राज्य (औसत)	..	3.64	3.97	5.35	6.43	6.76	6.62	7.21	7.94	8.73

टिप्पणी : सभी राज्यों की प्रति व्यक्ति बाजार ऋण औसत 1971 की जनसंख्या के आधार पर परिकलन की गई है।

तालिका 6

प्रश्न 5.15, 5.18 और 5.20

1973-74 से 1982-83 के दौरान राज्य सरकार का निवल बाजार ऋण आदान विवरण

राज्यों के नाम	1973-74	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	1978-79	1979-80	1980-81	1981-82	1982-83	1973-74 और 1981-82 के बीच हुई वृद्धि का प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
											(लाखों में रुपए)
1. आंध्र प्रदेश .	13,03	21,04	24,41	13,04	13,01	13,43	12,89	13,35	41,11	49,64	276,36
2. असम . .	5,54	5,66	8,58	5,17	5,72	4,53	5,48	6,22	7,76	8,24	48,78
3. बिहार . .	11,09	14,86	15,22	11,03	11,05	11,13	11,21	10,53	22,15	22,83	105,86

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
4. गुजरात .	9,70	13,71	18,29	12,17	12,41	12,14	11,99	13,51	15,04	16,49	70,00
5. हरियाणा .	8,04	12,36	9,39	8,10	9,63	9,40	7,90	9,21	9,91	10,42	29,60
6. हिमाचल प्रदेश .	1,38	1,37	1,38	1,69	1,67	1,66	1,69	1,76	1,93	2,48	79,71
7. जम्मू और कश्मीर	2,48	2,44	2,49	2,54	2,48	2,48	2,48	2,80	3,06	3,58	44,35
8. कर्नाटक .	9,12	19,12	18,01	11,71	11,76	13,31	12,15	13,78	14,06	17,02	86,62
9. केरल . .	4,94	5,91	9,14	6,23	8,60	11,30	13,78	16,43	19,80	23,05	363,78
10. मध्य प्रदेश .	5,57	5,32	9,99	4,80	5,07	5,63	4,83	5,50	10,12	11,25	101,97
11. महाराष्ट्र .	13,03	15,52	27,11	13,35	13,25	13,14	13,20	13,16	14,71	16,15	23,94
12. मणिपुर .	1,38	3,58	1,38	1,66	1,65	1,93	2,20	2,52	3,05	3,30	139,13
13. मेघालय .	1,11	3,88	1,10	1,41	..	..	1,38	1,51	..	4,68	321,62
14. नागालैण्ड .	1,99	5,80	1,93	2,22	2,48	2,76	3,03	3,33	4,16	4,40	121,11
15. उड़ीसा .	6,65	7,07	14,72	7,50	6,74	6,74	6,60	7,55	18,96	23,03	246,32
16. पंजाब .	5,54	9,76	7,51	5,28	2,92	3,49	5,63	6,13	7,02	7,40	33,57
17. राजस्थान .	15,55	15,65	20,76	17,89	17,74	17,80	17,87	19,13	53,70	38,49	147,52
18. सिक्किम .	..	..	..	..	..	..	..	..	..	..	..
19. तमिलनाडु .	13,05	14,62	26,30	13,24	13,15	13,22	12,91	13,09	16,46	17,19	31,72
20. त्रिपुरा .	..	1,66	1,38	1,69	1,65	1,93	2,20	2,49	3,03	4,69	182,53
21. उत्तर प्रदेश .	29,63	27,87	40,52	30,09	29,28	31,07	29,85	30,74	77,93	97,29	228,35
22. पश्चिम बंगाल	7,76	7,92	14,93	7,84	7,87	7,82	7,88	7,51	9,95	17,25	122,29
सभी राज्य (कुल)	166,61	215,02(क)	274,54	178,65	178,12	184,95	187,14	201,07	333,90	398,26	97,62

(क) कुल नहीं जोड़ा जाएगा ।

अंतिम साधन : (1) मुद्रा एवं वित्त रिपोर्ट, खण्ड II-- 1974-75 को छोड़कर ।

(2) 1974-75 के लिए राज्य सरकार के वित्त अधिनियम 1976-77, दिसम्बर, 1976 में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के बुलेटिन में प्रकाशित हुए ।

प्रश्न 5.15, 5.18 और 5.20

5.16 और 5.17 नीचे दी गई तालिका से यह मालूम किया जा सकता है कि राज्य सरकार, भारत सरकार से प्राप्त ऋणों और उनके ब्याज के पुनर्भुगतान के रूप में ही भारत सरकार से प्राप्त ऋणों का लगभग 60 प्रतिशत अदा कर रही है । वस्तुतः 1973-74 जैसे कुछ वर्षों में पुनर्भुगतान और ब्याज की राशि उस वर्ष के दौरान प्राप्त किए गए ऋण की अपेक्षा अधिक थी । यह इस बात को स्पष्ट करता है कि पिछले कई वर्षों में राज्य ऋणग्रस्तता के ऐसे स्तर पर पहुंच गए हैं कि उन्हें केवल पहले के ऋणों का भुगतान करने के लिए भी अधिक से अधिक ऋण लेना पड़ता है । असंख्य ऐसे कारण हैं जिन्होंने राज्य सरकारों की उच्च डिग्री की ऋणग्रस्तता में सहयोग किया है । उनको निम्नलिखित ढंग से क्रमबद्ध किया गया है :

(1) भारत सरकार ने जिन शर्तों पर राज्य सरकारों को निधियां मंजूर की हैं, हमेशा उन शर्तों से अधिक अनुकूल शर्तों पर स्वयं निधियां उधार ली हैं ।

(2) इन अधिकांश ऋणों को ऐसे विकासात्मक कार्यकलापों के लिए नियत किया गया है, जो स्वरूप में अनुत्पादक हैं और जिनके संबंध में राज्य सरकार को किसी भी प्रकार के प्रतिफल की आशा नहीं है । इन ऋणों को उचित रूप से अनुदान के रूप में माना जाना चाहिए था और उन्हें ऋण के रूप में मान लेने से राज्य सरकार की ऋणग्रस्तता और अधिक बढ़ गयी है ।

हम इस बात को महसूस करते हैं कि भविष्य में स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से विदेशी एजेंसियों से लिए गए ऋणों को उन्हीं शर्तों पर राज्य सरकारों को दिया जाना चाहिए जिन पर उन्हें प्राप्त किया गया है । इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों को दी गई सहायता को वाणिज्यिक और गैर-वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए दी गयी सहायता के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। ऐसी किसी भी सहायता को अनुदान के रूप में दिया जाना चाहिए, जो गैर-वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए हो तथा जिसके संबंध में राज्य सरकारों को किसी भी प्रकार के उपयुक्त प्रतिफल की आशा न हो । उत्पादक प्रयोजनों के संबंध में भी यदि विकासशील और पिछड़े राज्यों में पुनर्भुगतान की शर्तें तथा ब्याज की दरें अलग-अलग हों तो उपयुक्त होगा ।

तालिका I

केन्द्रीय सरकार से लिए गए राज्य सरकार के उधार

प्रश्न 5.16 और 5.17

(रुपए लाखों में)

वर्ष	भारत सरकार को ऋणों का पुनःभुगतान (क)	भारत सरकार से प्राप्त ऋणों पर ब्याज (ख)	वर्ष के दौरान प्राप्त किए गए ऋण (ग)	क/ग × 100	(क+ख)/ग × 100
1973-74	49,35	20.27	60,25	82	116
1974-75	22,21	18,51	53,42	42	77
1975-76	50,94	21,61	78,90	65	92
1976-77	31,64	23,26	99,32	32	56
1977-78	35,28	26,95	189,10	26	45
1978-79	43,31	32,40	165,34	27	46
1979-80	34,53	26,18	1,26,28	28	48
1980-81	40,17	55,57	1,54,50	26	62
1981-82	47,57	49,78	1,54,62	31	63
1982-83	54,85	57,04	1,75,57	32	64
1983-84 (अनंतिम) परिशोधित प्राक्कलन	86,46	65,80	2,08,59	42	73
1984-85 (अनंतिम), बजट प्राक्कलन	74,85	63,16	1,92,06	39	72

टिप्पणी : (i) ऋण में अर्थोपाय अग्रिमों को शामिल नहीं किया गया है ।
(ii) ब्याज में अर्थोपाय अग्रिमों पर ब्याज शामिल किया गया है ।

तालिका II

केन्द्रीय सरकार से लिए गए राज्य सरकार के उधार

(रुपए लाख में)

वर्ष	निवल ऋण	तमिलनाडु की राजस्व प्राप्ति	तमिलनाडु का राजस्व अधिशेष	प्रति व्यक्ति निवल ऋण	प्रति व्यक्ति राजस्व प्राप्तियां	पुनर्भुगतान × 100 / राजस्व प्राप्तियां	राजस्व अधिशेष
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
1973-74	10,90	4,86,30	13,67	2,65	118,04	11	361
1974-75	31,21	5,20,29	(-) 8,07	7,58	128.29	5	(-) 276
1975-76	27,96	5,63,36	5,44	6.79	136.74	9	937
1976-77	67,68	6,28,98	61	16.43	152.67	5	5,187
1977-78	1,03,82	6,82,05	(-) 24,07	25.20	165.55	6	(-) 147
1978-79	1,22,03	8,01,48	47,97	29.62	195.54	6	91
1979-80	91,75	9,44,85	95,30	22.27	229.34	4	37
1980-81	1,14,41	12,79,96	1,27,71	23.69	265.01	4	32
1981-82	1,07,05	14,41,55	81,66	22.17	198.46	4	59
1982-83	1,20,72	16,78,02	1,01,94	25.00	347.42	4	54
1983-84 (परिशोधित प्राक्कलन)	1,22,13	18,92,86	23,53	25.29	391.96	5	368
1984-85 (बजट प्राक्कलन)	1,17,21	20,65,43	1,19,05	24.27	427.63	4	63

तमिलनाडु की जनसंख्या : 1971 की जनगणना-412 लाख ।
1981 की जनगणना-483 लाख ।

5.19 हाल के वर्षों में भारत सरकार ने विदेशी ऋण लेने की अपनी नीति को उत्तरोत्तर उदारीकृत किया है। इसलिए विशिष्ट परियोजनाओं पर राज्य सरकार के विकास संबंधी खर्च को वित्त पोषित करने के अन्य विदेशी सरकारों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों से ऋण प्राप्त किए गए हैं। 1984-85 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ऋण को छोड़कर बाकी विदेशों से लिए गए बाकी ऋण की राशि लगभग 17,000 करोड़ रुपए और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गए ऋण की राशि को शामिल करते हुए लगभग 21,000 करोड़ रुपए का ऋण है। किंतु विदेशों से ऋण प्राप्त करने की पद्धति की रूप-रेखा इस प्रकार तैयार की गई जिससे कि केन्द्रीय सरकार की तुलना में राज्य सरकारों के अहित में कार्य हुआ। हालांकि यह स्वाभाविक है कि विदेशी एजेंसियों के माध्यम से प्राप्त किए गए ऋण भारत सरकार के माध्यम से ही राज्यों को दिए जाते हैं, अतः भारत सरकार को भुगतान की शेष रकम की स्थिति को ध्यान में रखते हुए समायोजन करना होता है। तथापि आसान शर्तों पर विदेशी एजेंसियों से ऋण प्राप्त करने तथा फिर उसे पुनर्भुगतान की अत्यधिक कठोर शर्तों तथा अपेक्षाकृत ब्याज की उच्च दरों पर भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों को दिए जाने का कोई औचित्य नहीं है।

अन्यत्र यह भी बताया गया है कि राज्य सरकार के ऋण भार ने पहले ही उसके अपर्याप्त ससाधनों को समाप्त कर दिया है, और इसलिए यह अत्यधिक अत्यावश्यक है कि राज्य सरकारों को ऋण भार से राहत प्रदान की जाए। यह भी दिखाया गया है कि किसी विशेष वर्ष में तमिलनाडु को जितना ऋण प्राप्त हुआ उसका 70 प्रतिशत ऋणों के पुनर्भुगतान और उस पर दिए गए ब्याज में ही व्यय हो गया। ऐसी स्थिति में भारत सरकार को भी अपने ऋणों में से राज्य सरकारों को पुनर्भुगतान की आसान शर्तों पर ऋण देना चाहिए और निश्चित रूप से भारत सरकार को विदेशी एजेंसियों से प्राप्त ऋणों की शर्तों में संशोधन नहीं करना चाहिए ताकि राज्य सरकारें, जिनके संसाधन पहले से ही तंग हैं, उनकी वित्तीय स्थिति और अधिक खराब न हो।

इस संबंध में हम निम्नलिखित तालिका "क", जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ऋण को छोड़कर शेष की स्थिति बताती है, की ओर ध्यान आकर्षित करेंगे।

"तालिका क"

(रुपए करोड़ में)

देश/संस्थाएं	विदेशी ऋण पर ब्याज	बकाया ऋण	ब्याज की औसत दर
(1)	(2)	(3)	(4)
फ्रांस . . .	16.00	3.31	4.8
पश्चिम जर्मनी . . .	25.55	15506	1.7

तालिका क (जारी)

1	2	3	4
जापान . . .	45.82	11.19	4.2
हालैंड . . .	11.57	5.81	1.9
ब्रिटेन . . .	3.45	5.96	0.6
अमरीका . . .	69.82	30.72	2.2
अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ	69.97	67.26	1.0
विश्व बैंक (अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक)	1,35.38	9.64	14.0
कुवैत . . .	5.63	.93	6.0
साऊदी अरब . .	14.02	.84	4.8
संयुक्त अरब .	1.51	.17	..
रूस . . .	10.46	3.15	3.3
अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष न्यास निधि	3.06	5.75	0.5
अन्य	5.81		
	4,08.05	1,70.00 (लगभग)	-2.4

यह देखा जा सकता है कि विभिन्न विदेशी स्रोतों से प्राप्त किए गए ऋणों पर 10.5 प्रतिशत से 14 प्रतिशत तक ब्याज लगाया जाता है। ब्याज की औसत दर निकाली जाएगी तो वह केवल 2.4 प्रतिशत होगी जोकि, भारत सरकार अपने विदेशी लेनदारों को अदा करती है। दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार राज्य-सरकारों को कठोर शर्तों पर ऋण देती आ रही है। इस प्रकार की बहुत सी सहायता उन्हीं शर्तों पर राज्य योजना सहायता के भाग के रूप में दी गई है, जिनके लिए राज्य सरकार को ब्याज की दर के रूप में 7 प्रतिशत अदा करना पड़ता है।

इस संबंध में कुछ उदाहरणों के संदर्भ में हम यह बताना चाहेंगे कि भारत सरकार ने किस सीमा तक अपनी शर्तों में संशोधन किया है, जिससे राज्य सरकारों का अहित हो रहा है। निम्नलिखित तालिका "ख" से यह मालूम किया जा सकता है कि कृषि संबंधी उत्पादन में सुधार लाने के लिए विश्व बैंक द्वारा सहायता प्रदान की गई प्रशिक्षण और दौरा योजना के लिए भारत सरकार ने 3/4 प्रतिशत की दर पर ऋण प्राप्त किया, लेकिन बाद में 5½ प्रतिशत की दर पर यह ऋण राज्य सरकारों को दिया गया।

तालिका "ख"
विदेशी एजेंसी की सहायता

परियोजना	ऋण	अनुदान	ब्याज की दर	ऋण	अनुदान	ब्याज की दर	आंतरिक भार
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
	प्रतिशत		प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
1 एम०एन०बी०पी० (अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ)	100	..	3/4	70	30	5,1/2	4,3/4
2 टी०एन०एन०पी० लिमिटेड (विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक)	100	..	10.08 (यह प्रतिशत बदलता है)	100	30	14	3.92
3 प्रशिक्षण और दौरा प्रणाली (विश्व बैंक) औसत प्रतिशत	100	..	3/4 (प्रतिशत ब्याज प्रभार) 3.86%	100	..	5,1/2 8.33%	4,3/4 3.86%

इसी प्रकार वाणिज्यिक आधार पर राज्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम यथा तमिलनाडु न्यूजप्रिंट पेपर्स लिमिटेड के लिए भारत सरकार ने 10.8 प्रतिशत की औसत दर पर विश्व बैंक से ऋण प्राप्त किया, लेकिन इसे 14 प्रतिशत ब्याज की दर पर राज्य सरकार को दिया। केवल यही नहीं, स्वीडन की अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसी ने सामाजिक वन संबंधी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए भारत सरकार को पूर्ण अनुदान दिए हैं। लेकिन भारत सरकार ने इस अनुदान की राशि को राज्य सरकारों को देते समय 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान की राशि में बदल दिया है और उन्होंने इस राशि पर 7 प्रतिशत की दर से ब्याज वसूल की है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि हालांकि भारत सरकार विदेशी एजेंसियों से प्राप्त किए गए उधार को समन्वित करने का कार्य जारी रख सकती है, क्योंकि इसका विदेशी मुद्रा की उपलब्धता तथा भुगतान स्थिति के शेष से निकट का संबंध है, लेकिन फिर भी भारत सरकार को संपूर्ण ऋण पर सेवा प्रभार के रूप में 1.0 प्रतिशत के नाममात्र की राशि की कटौती करके ऋण की संपूर्ण राशि जिन शर्तों पर विदेशी एजेंसी से प्राप्त की है, उन्हीं शर्तों पर राज्य सरकारों को देनी चाहिए। हमारे विचार से ऐसा करना केवल उचित ही नहीं होगा बल्कि बुरी तरह से ऋणग्रस्त राज्य सरकारों की स्थिति में सुधार करने में भी यह दूर तक सहायक सिद्ध होगी।

5.21. इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि राज्य सरकारों द्वारा बड़ी संख्या में ओवरड्राफ्ट लेने की सुविधा प्रत्यक्ष रूप से इस समय लागू न्यागमन पद्धति की कमजोरी है। वित्त आयोग के अधिनिर्णय में महंगाई भत्ते की ऐसी अतिरिक्त किस्तों को ध्यान में नहीं रखा गया जो सरकारी कर्मचारियों को सस्वीकृत की जानी थीं। इसी प्रकार राज्य सरकार के संसाधनों की गणना करते समय विद्युत बोर्ड और परिवहन निगम के संबंध में बढ़ाई गई ऐसी आर्थिक सहायता, जो अधिनिर्णय अवधि के दौरान भारत सरकार द्वारा लागू की गई कीमतों में वृद्धि के कारण देय हो जाती है, के परिणामस्वरूप राज्य सरकार की अतिरिक्त वचनबद्धता को भी ध्यान में नहीं रखा गया है। इसी प्रकार योजना परिव्यय तथा राज्य योजना सहायता को अंतिम रूप देते समय लागत वृद्धि के लिए पर्याप्त गुंजाइश नहीं रखी गयी है। ये ऐसे कारण हैं जो मुख्य रूप से राज्य सरकारों के द्वारा लगातार लिए जाने वाले ओवरड्राफ्टों के लिए उत्तरदायी हैं। प्रश्न संख्या 5.14 के उत्तर में इसको दूर करने का उपाय पहले ही सुझा दिया गया है।

5.22. हम इस बात को फिर दुहराते हैं कि राज्य सरकार को समनुदेशित किए गए कर इतने लाभप्रद और लचीले नहीं हैं, जितने कि केन्द्रीय सरकार को समनुदेशित किए गए कर हैं। वास्तव में केवल एक कर (बिक्री कर) ही ऐसा कर है, जो अतिरिक्त संसाधनों की स्थिति परिवर्तन करने के संबंध में राज्य सरकार को कुछ गुंजाइश देता है। केवल कराधान ही आय का सापेक्ष स्रोत होने पर पहले ही इससे पूर्णसंभव सीमा तक लाभ उठाया जाता है। यह बताना संगत होगा कि 1973-74 से 1981-82 की अवधि के दौरान उत्पादन-शुल्क 185-18 की तुलना में बिक्री कर (तमिलनाडु) 311.34 प्रतिशत बढ़ गया। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रश्न संख्या 5.22 में किया गया सामान्यीकरण न तो उचित है और न ही उपयुक्त है (तालिका)।

तालिका

(रुपए करोड़ में)

मदें	1973-74	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	1978-79	1979-80	1980-81	1981-82
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)
केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क .	2,602.13	3,230.52	3,844.78	4,221.45	4,447.51	5,341.95	6,011.09	6,500.02	7,420.74
विकास का प्रतिशत .		24.14	19.01	9.79	5.35	20.11	12.52	8.13	14.16
राज्य बिक्री कर									
बिक्री कर .	132.25	188.00	209.00	229.00	242.00	294.00	325.00	457.00	544.00
विकास का प्रतिशत .		42.16	11.17	9.57	5.68	21.49	10.55	40.55	19.04

5.23. इस विषय के संबंध में राज्य सरकार का दृष्टिकोण आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन के खंड I के अध्याय 1 के पैरा 25 और 26.1 में दिया गया है। हम इस बात से सहमत हैं कि, केन्द्रीय करों में भारी चोरी हुई है और पूंजी निवेश पर जो प्रतिफल प्राप्त हुआ है, वह भी अपर्याप्त है। इस स्थिति में सुधार लाने के लिए किए जाने वाले उपायों का निर्णय करने के संबंध में केन्द्रीय सरकार संभवतः बहुत अच्छी स्थिति में होगी।

परंतु इस बात पर जोर दिया जाएगा कि केन्द्रीय सरकार के संसाधन निकालते समय वित्त आयोग पूंजी निवेश पर न्यूनतम स्वीकार्य प्रतिफल तथा बकाया की वसूली, जो राज्य सरकारों के संसाधन के पूर्वानुमान के संबंध में की गई है, को ध्यान में रखेगा।

5.26. इसे आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन के खंड I के अध्याय V के पैरा 1,2.1, 2.2, 3 और 4 में शामिल किया गया है। निम्नलिखित तालिका यह दिखाती है कि ग्यारह वर्ष की अवधि में रेल भाड़े से वसूली तीन गुना से अधिक हो गई है। इसलिए यह उपयुक्त है कि यात्री किराए की वसूलियों में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए वित्त आयोग द्वारा राज्य सरकारों को यथानुपात मुआवजा दिया जाए।

तालिका

भारतीय रेल द्वारा ढोए गए यात्रियों से प्राप्त आय (अखिल भारतीय आंकड़े)

(रुपए लाखों में)

वर्ष	उपनगरीय	गैर उपनगरीय	कुल योग
(1)	(2)	(3)	(4)
1969-70 . .	28,65	2,50,21	2,78,86
1970-71 . .	29,94	2,65,55	2,95,49
1972-73 . .	32,14	2,87,99	3,20,13
1973-74 . .	35,67	3,08,14	3,20,13
1974-75 . .	41,50	3,71,05	4,12,55

(1)		(2)	(3)	(4)
1975-76	. .	50,53	4,63,59	5,14,12
1976-77 (आर०ई०)	.	उपलब्ध नहीं है	उपलब्ध नहीं है	5,72,19
1977-78	. .	61,92	5,59,73	6,21,65
1978-79	. .	66,80	6,05,97	6,72,77
1979-80	. .	78,32	6,60,50	7,38,82
1980-81	. .	90,51	7,36,95	8,27,47
1981-82 (बी०ई०)	.	उपलब्ध नहीं है	उपलब्ध नहीं है	9,31,75
1982-83 (बी०ई०)	.	उपलब्ध नहीं है	उपलब्ध नहीं है	11,94,19

उ०न० "उपलब्ध नहीं है" सूचित करता है।

5.27. हमारे पास इस विषय पर देने के लिए किसी भी प्रकार की अभ्युक्तियां नहीं हैं

5.28. आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन के खंड 1 के अध्याय X के पैरा 5,9,10, 11 और 13 में इस सरकार के विचारों को विस्तार से बताया गया है। ये सिफारिशें सुविस्तृत हैं और इन्हें ऐसे ही रखा जाएगा। केवल एक ऐसा अतिरिक्त मुद्दा, जिस पर संभवतः प्रकाश डाला जा सकता है, यह है कि सामान्यतः भारत सरकार राहत पर किए गए खर्च की केवल उच्चतम सीमा को ही निर्धारित नहीं करती, अपितु इस कुल उच्चतम सीमा में इसे अलग-अलग क्षेत्रों में आबंटित भी करती है। इस प्रकार का आबंटन केवल अनावश्यक ही नहीं है, अपितु हानिकारक भी है। प्रथम स्थिति में ऐसी राज्य सरकारें, जो लोगों के निकट संपर्क में होती हैं, इन आबंटनों को वास्तविक अपेक्षाओं के आधार पर करने के लिए सबसे अधिक योग्य है। दूसरे सामान्यतः विपदा आरंभ होने के महीनों बाद केन्द्रीय दल का निरीक्षण होता है और यदि राज्य सरकार केन्द्रीय दल द्वारा किए गए आबंटन के इंतजार में रहती है तो अधिकतर विलंब के कारण राहत के वास्तविक प्रयोजन विफल हो जाते हैं। हम इस बात की सिफारिश करते हैं कि यदि भारत सरकार ने एक बार उपयुक्त मदों को दी गई सहायता को उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी है, तो ऐसा करने से राज्य सरकारों के विविध क्षेत्रों में इस राशि का पारस्परिक वितरण किया जाएगा। यद्यपि भारत सरकार अब भी इस बात को निश्चित कर सकती कि केवल उपयुक्त मदों पर ही खर्च किया गया है, लेकिन इन उपयुक्त मदों पर खर्च की सीमा हटा दी जानी चाहिए।

5.29. राज्य सरकार संभवतः इस बात पर डटी रहेंगी कि संसाधनों के सभी प्रकार के अंतरण एक निकाय अर्थात वित्त आयोग के माध्यम से ही होने चाहिए ताकि सभी परिप्रेक्ष्यों में समस्याओं के संबंध में विचार किया जा सके और समकालित नजरिया विकसित किया जा सके।

5.30. इस विषय पर प्रस्तुत किए गए सुझाव से हम सहमत नहीं है। संविधान के अंतर्गत राज्य सरकार की सुस्पष्ट भूमिका है और उसे इन जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए सुनिर्धारित संसाधन भी दिए गए हैं। केन्द्रीय सरकार इस तर्क से राज्य के कार्यकलापों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती कि सभी प्रकार की निधियां जनता से ही प्राप्त होती है और उन निधियों को जनसाधारण को लाभ पहुंचाने के विचार से ही खर्च किया जाता है अतः यह जानना आवश्यक नहीं है कि इस कार्य को कौन करता है।

5.31. आठवें वित्त आयोग के ज्ञापन के खंड 1 के अध्याय I के पैरा 22, 23 और 24 में सरकार के विचार बताए गए हैं।

5.32 से 5.38. ये प्रश्न उस समीक्षा की सीमा से संबंधित है, जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक लोक-लेखा समिति और प्राक्कलन समिति द्वारा की जाती है। इस संबंध में इस बात को माना जा सकता है कि विद्यमान कार्यविधि महालेखाकार को राज्य सरकारों के लेखाओं की समीक्षा करने और विधान मंडल को प्रस्तुत किए जाने के लिए एक व्यापक रिपोर्ट देने का समुचित रूप से अधिकार प्रदान करती है। यहां तक कि ऐसे मुद्दों, जिनको महालेखाकार ने शामिल नहीं किया है, उनकी भी बात में लोक-लेखा समिति तथा सरकारी उपक्रम समिति द्वारा अधिक विस्तार से जांच की जाती है। उसी रूप में विद्यमान कार्यविधि यह सुनिश्चित करने के लिए उचित है कि सरकारी धन ठीक से तथा लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा कार्यपालक को अनुमत्य समग्र सीमा के अनुसार खर्च किया जाता है। जहां तक व्यय आयोग नियत करने के प्रश्न का संबंध है तो इसका सामान्य रूप से विरोध किया जाना चाहिए,क्योंकि नियंत्रक महालेखापरीक्षक की सिफारिशों को ध्यान में रखने के बाद व्यय के औचित्य की विधान मंडल की समितियों द्वारा पहले ही विस्तार से जांच कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त यदि संघ और राज्यों द्वारा किए गए खर्च के औचित्य का मूल्यांकन करने के प्रयोजन के लिए व्यय आयोग नियत किया जाता है तो, इस बात की संभावना है कि कुछ वर्षों में उक्त आयोग केन्द्र द्वारा अनुचित रूप से उसी प्रकार प्रभावित होगा, जैसा कि योजना आयोग के मामले में हुआ है और इस योजना का व्यावहारिक कार्यान्वयन हमारे संविधान की संघ संरचना के विरुद्ध होगा।

5.39. यही हमारा तर्क है कि केन्द्रीय सरकार, केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं को यथा संभव सीमा तक चरणों में समाप्त कर दे, और उन क्षेत्रों से पूर्णरूप से हट जाए, जो संविधान के अंतर्गत राज्यों को विशेष रूप से सौंपे गए हैं। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि राज्य सरकारें अपनी जनता के अधिक निकट संपर्क में हैं और वे उनकी अपेक्षाओं को निर्धारित करने में सबसे अधिक समर्थ है। इसलिए यहां तक कि विद्यमान योजनाओं के लिए भी इस बात में भारत सरकार का कोई औचित्य दिखाई नहीं पड़ता कि वह केन्द्र में संबद्ध प्रशासनिक मंत्रालय से राज्य द्वारा प्रतिपादित की गई कार्ययोजनाओं के लिए भी पहले अनुमति लेने पर जोर दे। उक्त अनुबंध केवल विलंब का कारण ही नहीं है अपितु यह परिहार्य क्षोभ तथा मतभेद का मूल कारण भी है। राज्य सरकारें, जो लोगों के निकट संपर्क में है और उनके प्रति जवाबदेह भी हैं, को विस्तृत रूपरेखाओं में अपनी योजनाओं को प्रतिपादित करने तथा उन्हें कार्यान्वित करने के योग्य माना जाना चाहिए।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

"आर्थिक और सामाजिक योजना" शीर्षक तथा समवर्ती सूची की सूची XII संख्या III में प्रविष्ट 20 के रूप में इस विषय को शामिल करना ही इस बात का सूचक है कि उक्त आर्थिक और सामाजिक योजना से अभिप्राय केन्द्र और राज्य दोनों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं पर प्रकाश डालना है। आज भी राष्ट्रीय विकास परिषद् के अतिरिक्त योजना आयोग केन्द्र द्वारा पारित सम्यक् संकल्पों के अनुसार कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद के अलावा योजना आयोग अनुच्छेद 280 में स्वीकार किए गए वित्त आयोग से भिन्न सांविधिक प्रतिष्ठान तथा मान्यता के बिना सिफारिशी निकाय के रूप में कार्य कर रहे है। हालांकि राष्ट्रीय विकास परिषद् अपने नाम से ही अपने स्वरूप में राष्ट्रीय होने को मजबूर है, लेकिन फिर भी यह देखा गया है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के बजाय विशेष परियोजनाओं के संबंध में राज्यों द्वारा अपने दावों को मनवाने के लिए उनका मंच बन गई है। राष्ट्रीय विकास परिषद् के पद स्थिति को यथेष्ट रूप में कम कर दिया गया है और यह केवल अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए ही एक परिषद् के रूप में कार्य कर रही है, अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजनेताओं तथा अर्थशास्त्रियों ने इन शब्दों में यह बताया है कि दोनों ही निकाय अर्ध राजनीति निकायों के रूप में कार्य कर रहे है और न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने इन निकायों के बारे में ऐसी कहा है कि केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् से सभी प्रकार से समकालित ये निकाय "सुपर केबिनेट" के रूप में कार्य कर रहे हैं। वास्तव में योजना आयोग, जो कि शिखर पर है, उसकी कार्यप्रणाली को सीधे ही ऐसे एकल अखंडित रूप का नाम दिया गया है, जिसे केन्द्र द्वारा नियंत्रित किया जाता है, हालांकि राज्य में समवर्ती और राज्य विषयों के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। इसलिए इन मुद्दों को दृष्टिगत रखते हुए योजनाओं के निरूपण सूत्रबद्ध तथा निष्पादित करने के मामले में केन्द्र की इच्छा उस समय जाहिर होती है, जब अनुच्छेद 282 के अंतर्गत असांविधिक विवेकाधीन अनुदानों को परिकलित किया जाता हो। राष्ट्रीय विकास परिषद् तथा योजना आयोग की सिफारिश के आधार पर राज्यों से यह आशा की जाती है कि वे ब्लाक अनुदान और ऋणों के

रूप में विवेकाधीन अधिदान प्राप्त करें, लेकिन उन्हें राज्यों द्वारा परिकल्पित तथा निरूपित की गई विशेष योजनाओं की आवश्यकताओं की गहनता तथा बोझ से नहीं मापा गया है। यदि योजना आयोग को स्वतंत्र आधार पर कार्य करने दिया जाए तथा इसी प्रकार उसे सामाजिक और आर्थिक योजना के संबंध में संघ और राज्य दोनों से एक ही साथ परामर्श करने का समकालीन अधिकार प्राप्त हो तो इस क्षोभजनक टिप्पणी से बचा जा सकता है कि राज्यों की प्रगति के लिए वित्तीय संसाधन प्राप्त करने के मामले में राज्यों की स्वायत्तता का संघ द्वारा विरोध किया जा रहा है। ऐसे सामूहिक और सहयोगी प्रयासों के संबंध में केवल राज्य की परियोजनाओं को योजनाबद्ध करने के मामले में ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय परियोजनाओं के संबंध में भी विचार किया जाना चाहिए और योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद् के साथ मिलकर अपना ध्यान इस प्रकार केन्द्रित करना चाहिए जिससे कि बड़ी संख्या में लोगों की अपेक्षाओं और इच्छाओं के अनुसार संघ और राज्य दोनों के लिए ही देश के वित्त का समान वितरण सुनिश्चित करना किया जा सके। मुख्य परियोजनाओं की ब्यौरेवार तैयार करने के संबंध में केन्द्र का हस्तक्षेप महसूस किया जाता है। इसके साथ-साथ जब केन्द्र केन्द्रीय योजनाओं के संबंध में राष्ट्रीय विकास परिषद् की इस प्रकार की सिफारिशों के संबंध में कार्रवाई करता है तो इस तथ्य के होते हुए भी कि संबद्ध राज्यों में जो कि उक्त योजनाओं को कार्यान्वित करने वाला प्रारंभिक निर्माता है, उक्त योजनाओं के संबंध में राज्य के विचार तथा उनकी भागीदारी को निम्नतम स्थान पर रखा जाता है।

योजना आयोग को सांविधिक आधार देने की आसन्न आवश्यकता के अतिरिक्त भी छोड़कर योजना आयोग अलग-अलग रवैयों, विचारधाराओं, बुद्धि, भौतिक तथा आध्यात्मिक स्तरों सहित भारत के व्यापक आयाम को ध्यान में रखेगा और अपने कार्यकलापों का इस रूप में निराकरण करेगा कि ईकाइवार तथा केन्द्रीकृत योजनाओं की अपेक्षा एक ऐसी लोकतंत्रीय योजनाओं के संबंध में मांग करे, जो केन्द्र और राज्य, दोनों के लिए लाभप्रद हो। जैसा कि न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बताया कि "योजना लोकतंत्रीय होनी चाहिए और अत्याधिक केन्द्रीकरण तथा दफ्तरशाही-करण के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत पहल की भावना की ओर उन्मुख नहीं होनी चाहिए। योजना को पांच वर्ष की अवधि तक निष्पादित होने वाले कार्य कलाप के रूप में ही नहीं माना जाना चाहिए, अपितु इसमें चालू अथवा आरंभी प्रवृत्तियों के संबंध में निरंतर निगरानी भी अपेक्षित है" और यहां तक की पांच वर्ष की अवधि में जब कभी भी उक्त योजनाओं की पुनः स्थिति निर्धारण आवश्यक हो तो इस कार्य को नवीन अपेक्षाओं और मांगों को ध्यान में रखते हुए समायोजित किया जाना चाहिए।

पुनः संघ सूची की प्रविष्टि 52 के साथ पठित उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम 1951 ने बहुत अधिक संदेह उत्पन्न कर दिया है और इसी परिप्रेक्ष्य में हमने भाग II (विधायी संबंध) के संबंध में कार्रवाई करते समय प्रविष्टि 52 में आवश्यक संशोधन करने का सुझाव दिया है। उक्त प्रारंभिक अभ्युक्तियों की पृष्ठभूमि में उस सरकार ने उस भाग में प्रश्नों के उत्तर दिए हैं।

6.1 सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची की प्रविष्टि 20 में संघ और राज्य दोनों के लिए आर्थिक और सामाजिक योजना की कार्य प्रणाली रूपरेखा बनाते समय अपनायी जाने वाली कार्य प्रणाली के संबंध में योजनाकार को चौंका देने वाली हैं। समवर्ती सूची में की गई प्रविष्टि इस विचार का विशेषीकरण करता है कि आर्थिक और सामाजिक योजना के संबंध में कानून बनाने की प्रक्रिया के दौरान न तो संसद राज्य विधायी क्षेत्र को अनदेखा कर सकती है और न ही आर्थिक और सामाजिक योजना के संबंध में कानून बनाते समय राज्य विधानमंडल संघ विधायी क्षेत्र की बराबरी कर सकता है। ऐसा इस अर्थों में है कि केन्द्र और राज्य के बीच समन्वित कार्य के आधार के रूप में इस उपबंध को स्वीकार किया जाए, चाहे वे केन्द्र और राज्य अपने कार्यकलाप के संबंध क्षेत्र में योजना तथा आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने से संबद्ध हो। जैसा हमारी उक्त प्रारंभिक अभ्युक्तियों में बताया गया कि योजना आयोग पर सुपर केबिनेट का आवरण है या इसे केन्द्र द्वारा नियंत्रित एकल अखंडित खंड के रूप में माना गया है, इसलिए विशेषज्ञों द्वारा संचालित किए गए प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन दल ने सीधे ही योजना संबंध में उन तीन कमियों का उल्लेख किया, जिन्हें प्रश्न में निर्दिष्ट किया गया है और इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु गंभीर समस्या इस बात की है कि इन कमियों को दूर करने अथवा किसी भी तरह से प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन द्वारा सूचीबद्ध की गई कमियों को कम करने के लिए कौन से सुधारक उपाय और कार्यविधिक परिवर्तन आवश्यक हैं। विद्यमान दोषों को दूर करने के उद्देश्य से हमने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं :—

(1) संघ की संसद को केन्द्रीय योजना बोर्ड निर्मित करने के लिए समवर्ती सूची की प्रविष्टि 20 के संबंध में कानून बनाना होगा। इसमें बोर्ड का संविधान, कार्यों और अधिकारों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। उसे विशेष रूप से इस बात का भी उल्लेख करना होगा कि केन्द्रीय योजना बोर्ड को संघ विषयों, योजनाओं के राज्यक्षेत्रीय और क्षेत्रीय आबंटन, उक्त योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए प्राथमिकता आदि देने से संबंधित केन्द्रीय योजनाओं में सूचीबद्ध केन्द्रीय संसाधनों की उपलब्धता निर्धारित करने आदि से स्वयं को संबद्ध करना होगा।

(2) राज्य विधानमंडल को राज्य योजना बोर्ड गठित करने के उद्देश्य से अलग से विधान पारित करना होगा। उक्त राज्य विधानमंडल में राज्य योजना बोर्ड के संविधान, उसके अधिकारों और कार्यों को निर्धारित करना होगा। इसमें इस बात का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख करना होगा कि राज्य योजना बोर्ड राज्य संसाधनों की उपलब्धता, राज्य विषयों से संबंधित राज्य योजनाओं, उक्त योजनाओं के राज्यक्षेत्रीय और क्षेत्रीय आबंटन तथा उनमें निर्धारित की जाने वाली प्राथमिकताओं से स्वयं को संबद्ध करेंगे।

(3) केन्द्रीय योजना बोर्ड तथा राज्य योजना बोर्ड द्वारा इस प्रकार तैयार की गई योजनाओं को विचार-विमर्श हेतु राष्ट्रीय विकास परिषद् को प्रस्तुत किया जाएगा। राष्ट्रीय विकास परिषद् विशेषज्ञ सलाहकार समिति को नियुक्त करेगा जिसमें प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, प्रबंध विशेषज्ञ, समाजविज्ञानी तथा इंजीनियर होंगे। इस समिति को केन्द्रीय योजना बोर्ड तथा राज्य योजना बोर्ड द्वारा सुझाई गई योजनाओं की स्कीमों के संबंध में नियत अवधि के भीतर अपनी विशेषज्ञ सलाह देनी होगी और उसमें प्रत्येक वर्ग में क्षेत्रवार तथा राज्य क्षेत्रीय वार योजनाओं का आबंटन करने के संबंध में अग्रता, संसाधनों की आवश्यकता तथा समय घटकों आदि का स्पष्ट रूप से उल्लेख करना होगा। इस समिति को जहां कहीं भी संभव हो, केन्द्रीय योजना बोर्ड तथा राज्य योजना बोर्ड द्वारा सुझाई गई योजनाओं में सामंजस्य स्थापित करने की भी सिफारिश करनी चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग के बीच मध्यवर्ती के रूप में स्थायी समिति के प्रवर्तन से केन्द्रीय और राज्य दोनों ही प्रकार के स्तरों पर देश के लिए अर्थपूर्ण आर्थिक और सामाजिक योजना प्रारंभ की जा सकती है, जिससे कि योजना प्रारंभ करने के दृष्टिकोण और परिप्रेक्ष्य से न केवल राष्ट्र की आवश्यकताएं ही पूरी हो सकती हों, अपितु राज्य के विकास कार्यक्रमों तथा प्राथमिकताओं को भी सुनिश्चित किया जा सकता हो और अंतिम विश्लेषण में संघ और राज्यों के बीच संसाधनों का उचित आबंटन किया जाना चाहिए।

(4) सलाहकार समिति की रिपोर्ट अनुमोदनार्थ राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए। सलाहकार समिति की रिपोर्ट एक बार स्वीकृत हो जाने पर केन्द्रीय योजनाएं केन्द्रीय सरकार द्वारा या तो सीधे ही कार्यान्वित की जाए या फिर राज्य सरकारों द्वारा समुच्चयित अनुदानों अथवा योजनाबद्ध अनुदानों को देकर कार्यान्वित करायी जाए। इस बात का भी विशेष रूप से उल्लेख करना होगा कि कौन-सी योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाएं हैं तथा कौन सी समुच्चयित अनुदान अथवा अनुदान से संबद्ध योजनाएं हैं। राज्य की योजनाएं राज्यों के प्रशासनिक अधिकार में होनी चाहिए। लेकिन यदि संसाधनों में कोई कमी हो तो उसे वित्त आयोग द्वारा निर्धारित किए गए केन्द्रीय अनुदानों को पूरा करना होगा।

यदि ऊपर उल्लिखित कार्रवाईयां पूरी कर ली गई हों तो केन्द्र और राज्यों के बीच योजना संबंध में विद्यमान दोष को दूर करने तथा प्रशासनिक सुधार आयोग

अध्ययन दल द्वारा सूचीबद्ध की गई त्रुटियों को कम करने में काफी हद तक सहायक होंगी ।

6.2 6.1 प्रश्न के उत्तर में हमने निश्चित रूप से राष्ट्रीय विकास परिषद् की निरंतरता को मान लिया है, लेकिन इसे संसद द्वारा बनाई गई विधि के अनुसार नियंत्रित किया जाना चाहिए । इसलिए हमारी ओर से इस सुझाव को मानने में कोई कठिनाई नहीं है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् को सांविधिक आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए । जिसमें प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में सभी राज्यों के मुख्य मंत्री तथा सदस्यों के रूप में अलग-अलग क्षेत्रों के विशेषज्ञ हो ।

जहां तक समस्या के दूसरे पहलू का संबंध है असांविधिक निकाय यथा योजना आयोग को हमारे द्वारा संस्तुत राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन करके अभिमुक्त करना होगा, योजना आयोग द्वारा की गई किसी भी प्रकार की ऐसी कार्यवाही, जो कार्यपालक विवेक से की गई हो, केवल अनावश्यक ही नहीं होगी, अपितु यह निश्चित रूप से निरर्थक कार्यवाही भी होगी । इसलिए योजना आयोग को सांविधिक आधार पर सुनिश्चित रूप से निर्धारित किए गए दो समवर्ती निकायों यथा केन्द्रीय योजना बोर्ड और राज्य योजना बोर्ड द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए । केन्द्रीय अथवा राज्य स्तर पर सभी योजनाओं को राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति प्राप्त होने से पहले उक्त योजनाओं से संबंधित विविध विवरणों का गहन अध्ययन करने के लिए क्रमश: विशेषज्ञ सलाहकार समिति की सलाह भी प्राप्त होगी । विशेषज्ञ सलाहकार समिति द्वारा की गई उक्त सिफारिशों पर अवश्य ही विचार-विमर्श किया जाएगा और अंत में उनके अनुमोदन को उक्त परिषद् का गठन करने वाली विधि में यथा उपबंधित अनुसार सुनिश्चित किया जाएगा । हमारा विचार है कि यदि केन्द्र और राज्य दोनों के लाभ के लिए योजनाएं सरलीकृत की गई हों, उन पर विचार किया गया हो तथा अंत में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित की गई हो तो उसी के अनुसार केन्द्र और राज्यों द्वारा उक्त अनुमोदित योजनाएं स्वतंत्र रूप से कार्यान्वित की जानी चाहिए । हमारे द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय विकास परिषद् के गठन तथा केन्द्र अथवा राज्य की योजना को अपनी मोहर और स्वीकृति प्रदान करने के लिए उनके द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यप्रणालियों के अधीन हम इस समस्या के संबंध में दिए गए सुझाव से सहमत हैं ।

6.3 चूंकि हमारी यह राय है कि असांविधिक योजना आयोग को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तो फिर कुछ परिवर्तन करके इसे जारी रखने का प्रश्न ही नहीं उठता । इसके स्थान पर प्रश्न 6.1 के हमारे उत्तर में दिए गए सुझाव के अनुसार सांविधिक निकायों का गठन किया जाना चाहिए । इस प्रकार का परिवर्तन केन्द्र और राज्यों के बीच सुव्यवस्थित योजना संबंध स्थापित करने में बहुत बड़ा कदम होगा ।

6.4 यदि हम विद्यमान योजना आयोग जारी रखने के लिए सहमत है तो इन तीन सुझावों पर विचार करना होगा । चूंकि हम विद्यमान योजना आयोग को जारी नहीं रखना चाहते तो इन तीन सुझावों के संबंध में विचार प्रकट करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है । किंतु यदि विद्यमान योजना आयोग को जारी रखा जाना है तो हम यह कहेंगे कि योजना आयोग के संघटन के संबंध में दूसरा सुझाव अधिक उपयुक्त है । अर्थात् यदि योजना आयोग को इस प्रकार संघटित किया गया हो जैसे कि इसे अर्थशास्त्रियों, प्रोद्योगविदों तथा प्रबंध विशेषज्ञों की उच्च-कोटि का सलाहकार निकाय बनाया जाए तो ऐसा करना बेहतर होगा । राजनीतिक उथलपुथल से प्रभावित हुए बिना उक्त विशेषज्ञ निकाय निष्पक्ष तरीके से कार्य करता है तो प्रवर्तक केन्द्रीय सरकार की लीक पर चले बिना योजना आयोग बेहतर परिणाम प्रस्तुत करेगा तथा केन्द्र और राज्यों के बीच बेहतर योजना संबंध स्थापित करेगा ।

6.5 यदि योजना आयोग को जारी रखा जाना हो तो हम इस सुझाव से सहमत होंगे कि इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् के अधीन स्वायत्त निकाय बनाया जाए । ऐसा कानून जिसकी परिकल्पना सरकार ने की है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् के सांविधानिक कार्यों और अधिकारों को शामिल करेगा, स्वायत्त निकाय के रूप में योजना आयोग के सृजन कार्य और अधिकारों और जिन विषयों के संबंध में परामर्श देने के क्षेत्र के संबंध में एक अलग अध्याय की व्यवस्था की जा सकती है । लेकिन इस विचार से सहमत होना कठिन है कि योजना आयोग को ऐसे कार्य जैसे कि राष्ट्रीय स्तर पर योजना का निरीक्षण करना; निवेश करना तथा निर्णय देना दिए जाएं । अधिक से अधिक यह सलाहकार निकाय ही हो सकता है पर्यवेक्षण निकाय नहीं । योजना की स्कीमों के संबंध में अंतिम निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद् का होना चाहिए और इन्हें कार्यान्वित करने का अधिकार केन्द्र और राज्य सरकारों को देना होगा ।

6.6 योजना आयोग को जारी रखने के संबंध में हमारे पहले दिए गए विचार तथा इसकी स्थिति को पुन: निर्धारित करने के लिए दिए गए विकल्प के अनुसार हम इस विचार से सहमत नहीं है कि राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर विचार करने तथा उन्हें समाविष्ट करने की आवश्यकता है । उक्त कार्रवाइयों से योजना आयोग को राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप करने का बहुत अधिक मौका मिलेगा । वास्तव में इस दिशानिर्देश की स्वीकृति के परिणाम स्वरूप योजना आयोग का दृष्टिक्षेप, जैसी स्थिति में वह आज है, राष्ट्रीय विकास परिषद् के विचारों से बिल्कुल अलग होगा । ऐसा करने से पुन: राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा बनाई तथा स्वीकार की गई योजनाओं के संबंध में योजना आयोग निरीक्षण करेगा । यह बेहतर होगा कि राष्ट्रीय और राज्य योजनाओं में अलग-अलग प्राथमिकताएं दी जाएं । यदि प्रश्न 6.1 के उत्तर में हमारे द्वारा दिए गए सुझावों पर विचार किया गया है तो ये सुझाव विद्यमान कठिनाइयों को दूर करने तथा राज्य स्वायत्तता के क्षय को रोकने में काफी हद तक सहायता करेंगे ।

6.7 चूंकि योजना आयोग एक असांविधिक निकाय है और केन्द्रीय सरकार तथा उसकी विचारधारा पर बहुत अधिक आश्रित रहता है तो योजना आयोग द्वारा राज्यों को ऋण और अनुदानों के रूप में केन्द्रीय सहायता की सरणीकृत करने की मौजूद प्रणाली ने भली भांति कार्य नहीं किया है । सांविधिक द्वारा योजना आयोग के अधिकारों, कार्यों और कार्यकाल आदि को विशेष रूप में निर्धारित नहीं किया गया है । इसके अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री तथा सदस्यों के रूप में केन्द्रीय मंत्रीमंडल के कुछ महत्वपूर्ण सदस्यों के साथ योजना आयोग वस्तुत: केन्द्रीय सरकार का पक्ष वक्ता बन कर रह गया है । ऐसी परिस्थिति तथा अधिकारों के होते हुए योजना आयोग से राज्यों के संबंध में निष्कपट व्यवहार करने की उम्मीद करना कठिन है। अनुच्छेद 282 के अनुसार नियत किया गया अनुदान विवेकाधिन अनुदान है और योजना आयोग द्वारा इसका वितरण कराने से राज्यों को लाभ नहीं हुआ है । राज्यों को विविध योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए इस तरीके से ऋण दिए गए हैं कि आज लगभग सभी राज्य ऋणों के बहुत बड़े भाग का उपयोग केन्द्रीय सरकार को दिए गए ऋण को उतारने में कर रहे हैं । यह कहा गया है और ठीक ही कहा गया है कि राज्य के अपर्याप्त वित्तीय संसाधन तथा विकास संबंधी योजनाओं के लिए उनके बहुत अधिक परिव्यय की आवश्यकता के संदर्भ में योजनाओं के कार्यान्वयन में केन्द्रीय सहायता की निर्णायक भूमिका बन जाती है । इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि राज्य ही ऐसे हैं, जिन्हें योजना विकास के लिए बहुत अधिक संख्या में आवश्यक योजनाओं को निष्पादित करना पड़ता है । अंत में योजना विविध क्षेत्रों जैसे कि केन्द्रीय क्षेत्र, राज्य क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में वृद्धि के अभीष्ट लक्ष्यों का अभिष्ट परिव्यय रूपांतरण बन जाती है । सांविधानिक रूप से केन्द्रीय और राज्य क्षेत्रों की योजना में राज्य सूची, समवर्ती सूची तथा संघ सूची से संबंधित विषयों पर योजनाएं सूचीबद्ध की जानी चाहिए । यह भी भलीभांति ज्ञातव्य है कि केन्द्र के पूंजी निवेश औद्योगिक विकास तथा परिवहन और संचार व्यवस्था के विकास के लिए ही बहुत अधिक किए गए हैं, जबकि राज्य परिव्यय को सिंचाई, बिजली, कृषि तथा विविध समाज सेवाओं के लिए निर्दिष्ट किया गया है । केन्द्र द्वारा दो प्रकार की योजनाओं को सहायता दी जाती है, केन्द्र द्वारा सहायता प्रदान की गई तथा केन्द्र द्वारा प्रवर्तित योजनाओं के लिए । केन्द्र द्वारा प्रवर्तित योजनाओं के लिए अनुदान/ऋण सामान्यत: बहुत अधिक है । केन्द्र द्वारा प्रवर्तित योजनाओं और स्वतंत्र अध्ययन में उनकी अपनी पहल पर सिफारिश की जाती है । उदाहरण के लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम, संक्रामक रोगों का उन्मूलन और नियंत्रण, पिछड़े वर्गों का कल्याण, विभिन्न कृषि उत्पादन कार्यक्रमों आदि की उम्मीद करना पूर्णत: संभव है । इसके अतिरिक्त योजना के द्वारा संकुलित क्षेत्रों में शहरीकरण द्वारा अनिवार्य बनाई गई प्रशासनिक तथा अन्य सेवाओं के बढ़ जाने के कारण राज्यों के लिए विकास का भारी खर्च उत्पन्न हो गया है । परिणामस्वरूप ऋण मंजूर करने तथा उसकी वसूली की प्रणाली ने विद्यमान योजना स्वरूप के अंतर्गत राज्यों के लिए काफी कठिनाई उत्पन्न कर दी है । यह कहा गया है कि योजना आयोग अथवा राज्य वित्त द्वारा योजना तथा ऋणों को सारणीकृत करने का प्रभाव असंतोषजनक

है। यह बताया गया है कि तीसरी योजना के लिए सभी राज्यों का ऋण भुगतान पर खर्च (ऋण की कटौती अथवा परिहार के लिए विनियोजन शामिल करते हुए) 1934 करोड़ रुपए हो गया है, जो कि तीसरी योजना के अतिरिक्त 610 करोड़ रूपए के कराधान से अधिक है। यह भारतीय रिजर्व बैंक के मई 1966 के बुलेटिन के अनुसार है। इसलिए लेखक द्वारा संगत रूप में यह टिप्पणी की गई कि केन्द्र योजना प्रयोजनों के लिए एक हाथ से अनुदान देता है तथा ऋणों पर ब्याज प्रभार के रूप में उन अनुदानों का काफी भाग वापस प्राप्त कर लेता है। यह केन्द्र के उस नियंत्रण पर प्रकाश डालता है, जोकि उसने सहायता अनुदानों के मामले में रखा हुआ है। इसलिए राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित किए गए अनुसार वित्त आयोग द्वारा ऋण अथवा अनुदानों के रूप में केन्द्रीय सहायता को सारणीकृत करना बेहतर है।

6.8 इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस तर्क में सार है कि राज्यों के योजना आकार में केन्द्रीय योजना सहायता की स्वतंत्र रूप से पूर्व निर्धारित मात्रा और निर्धारित संसाधनों को जोड़ देने की वर्तमान पद्धति अस्थायी है। किन्तु राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि जहां तक आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों की आवश्यकता का संबंध है वित्त आयोग अंतरणा का आकलन करते समय और साथ-साथ अनुदानों यथा वित्तीय घाटे, प्रशासन के स्तर को सुधारने आदि के लिए उनका पूरा ध्यान रखती है। इसलिए गाडगिल फार्मूला की सें उपयुक्तता परिवर्तन करने की आवश्यकता की जांच करते समय योजना सहायता के गरीब तथा आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों की आवश्यकता तथा अलग-अलग राज्यों में समानता का निश्चित स्तर बनाए रखने की आवश्यकता के बीच विवेकसम्मत सामंजस्य बनाना है। राज्य सरकार ने अलग-अलग मंचों से अन्य आवश्यक मुद्दे पर जोर दिया है, अर्थात् प्रति व्यक्ति आय जैसे घटक शामिल करते हुए सभी घटकों में गाडगिल फार्मूले का प्रयोग करते समय केवल 1971 की जनसंख्या को ही ध्यान में रखा जाए ताकि ऐसे राज्यों को दण्ड न दिया जाए जिन्होंने पूर्ण गंभीरता से परिवार नियोजन कार्यक्रम को कार्यान्वित किया है। इस बात पर भी जोर दिया जाए कि जब उच्च राज्य आय वाले सभी प्रकार की योजनाओं की आवश्यकता का ध्यान रख सकते हैं और वित्त आयोग तथा योजना आयोग, दोनों के द्वारा निम्न आय वाले राज्यों की समुचित रूप से व्यवस्था की गई है तो इस प्रक्रिया में मध्यम आय वाले राज्यों के साथ ही अनुपयुक्त व्यवहार किया गया है। गाडगिल फार्मूले में किए गए किसी संशोधन इस असंतुलन की स्थिति में सुधार किया जाना चाहिए ताकि मध्यम आय वाले ऐसे राज्यों, जो न्यूनाधिक प्रगति की प्रारम्भिक अवस्था में हैं, को पूर्व निर्धारित अवधि में विकास संबंधी कार्यों में प्रोत्साहन दिया जा सके।

6.9 हमने पहले ही इस बात का उल्लेख कर दिया है कि केन्द्र द्वारा प्रवर्तित योजनाओं तथा केन्द्र द्वारा सहायता प्रदान की गई योजनाओं के निष्पादन के संबंध में निधियों के आबंटन की वर्तमान पद्धति से राज्यों को किस प्रकार आर्थिक कठिनाई होनी ही है। उक्त आर्थिक कठिनाई के लिए उत्तरदायी क्षोभ का मुख्य कारण गैर-विकास खर्च में ऐसी असामान्य वृद्धि है, जिसे राज्य पूर्ण रूप से पूरा करने की स्थिति में नहीं हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि विविध योजनाओं, चाहे केन्द्र द्वारा प्रवर्तित हों, अथवा केन्द्र द्वारा सहायता प्रदत्त हों, द्वारा किए गए आर्थिक कार्यकलापों ने कर संसाधन के क्षेत्र में वृद्धि करके नई दिशा दी है। किंतु कर के बढ़े हुए संसाधन भी वृद्धि के बढ़ते हुए गैर-विकासात्मक खर्च जिसे किसी राज्य को करना पड़ता है के साथ समगति नहीं बनाए रख सके। उदाहरण के तौर पर केन्द्र द्वारा सहायता प्रदान की गई मुख्य परियोजनाओं के कार्यान्वयन के मामले में उक्त परियोजनाओं का निष्पादन और कार्यान्वयन सदैव राज्यों ने ही किया है। इस बात की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि केन्द्र द्वारा प्रवर्तित अथवा केन्द्र द्वारा सहायता प्रदत्त प्रत्येक योजना को भौगोलिक रूप से राज्य विशेष की सीमाओं में ही निष्पादित किया जाना है। उसी रूप में जब योजना अपने कार्यान्वयन की ओर प्रगतिशील होती है तो राज्य को स्थल प्राप्ति, कच्चे माल के परिवर्तनशील मूल्य ढांचे, लोक-स्वास्थ्य के संबंध में किए गए उपायों, कानून और व्यवस्था बनाए रखने आदि को शामिल करते हुए विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्व लेना पड़ता है। केन्द्र द्वारा प्रवर्तित योजना अथवा केन्द्र द्वारा सहायता प्रदत्त योजना में राज्यों का समन्वयन इस अपरिहार्य विचार के कारण है कि यह केवल इसके सफल कार्य के लिए ही आवश्यक नहीं है, अपितु राज्यों के तेज गति से कार्य करने के लिए भी यह आवश्यक है। जब उक्त योजनाओं के बारे में सोचा जा रहा हो तब भी निकट संबंध आवश्यक है और योजनाओं का निष्पादन प्रारंभ होने पर इस संबंध को छोड़ा नहीं जाना चाहिए तथा वास्तव में संबंधित योजना के समापन तक इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। केन्द्र और राज्य के बीच उक्त अंत: समन्वयित कार्यकलाप परियोजनाओं से संबद्ध आवश्यक ब्यौरों का पता लगाने के लिए आवश्यक है और इसकी समाप्ति वास्तविक लक्ष्य तथा समग्र राष्ट्रीय प्रगति के रूप में एक महत्वपूर्ण विषय है। यदि आमतौर पर उक्त विचारों तथा कार्यों के आदान-प्रदान से योजनाओं के निरुपण और कार्य को प्राथमिकता दी गई तथा यदि संबंधित सहायता सुनिश्चित कर ली गई तो किसी भी क्षेत्र में केन्द्रीय सहायता प्रदान करने की वर्तमान पद्धति में असंतुलन की स्थिति से बचा जा सकता है।

तमिलनाडु राज्य में, तमिलनाडु टाउन एंड कंट्री प्लानिंग ऐक्ट 1971 (1972 का तमिलनाडु एक्ट 35) पारित करने से पहले तमिलनाडु टाउन प्लानिंग एक्ट, 1920 के अधीन नगर भूमि के विकास के लिए योजनाएं स्वीकार की गई। निरसित अधिनियम के अंतर्गत विविध मामले यथा सड़कों और संचार साधनों का निर्माण, भूमि अर्जन, परिवहन सुविधाएं, जल-पूर्ति, प्रकाश व्यवस्था, जलनिकास, धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए भूमि का आरक्षण, अस्पताल और डिस्पेंसरी तथा अन्य लोक हित और इसमें दिए गए लक्ष्यों से भिन्न मामले ऐसे ही कुछ मामलों में से हैं, जिन पर टाउन प्लानिंग स्कीम में विचार किया जाएगा। निरसित अधिनियम की धारा 23 निम्नलिखित रूप में है :

> "23. खुशहाली अंशदान उगाहने का अधिकार—यदि टाउन प्लानिंग स्कीम बनाए जाने से संपत्ति का मूल्य बढ़ गया हो अथवा उसके बढ़ जाने की संभावना हो तो यदि नगरपालिका, धारा 14 के अंतर्गत योजना संस्वीकृत करते हुए राज्य सरकार की अधिसूचना प्रकाशित होने की तारीख के बाद कम से कम तीन महीने के अंदर योजना द्वारा निर्दिष्ट समय (यदि हो) के भीतर इस उद्देश्य का दावा करती है तो वह उक्त संपत्ति के मालिक से इस वर्षों के लिए तथा अधिक से अधिक दस प्रतिशत तक मूल्य में वृद्धि का ऐसा एक समान प्रतिशत जिसे योजना द्वारा निश्चित किया गया हो पर वार्षिक खुशहाली अंशदान वसूल करने की हकदार होगी।

परंतु इस प्रकार वसूल किये गए अंशदानों की कुल राशि आगामी धारा के अंतर्गत पता निर्धारित की गई उक्त वर्षों की अवधि में मूल्य में अधिकतम वृद्धि के आधे से अधिक नहीं होगी।

इसलिए उक्त अधिनियम में उक्त योजनाओं के हिताधिकारियों से खुशहाली अंशदान अदा करने की अपेक्षा करते हुए राज्य द्वारा किए गए खर्च की वापस प्रतिपूर्ति की व्यवस्था की जाती है, ताकि राज्य और उसके लोगों के हित के लिए राज्य द्वारा किया गया खर्च निश्चित सीमा तक लौटाया जा सके। ऐसे कुछ उपबंध हैं, जिन पर संसद में कानून राष्ट्रीय विकास परिषद का सृजन करते समय बनाने के लिए विचार किया जा सकता है, ताकि केन्द्रीय अथवा राज्य राजकोष का अतिक्रमण किए बिना सुविधाएं प्रदान की जा सकें। राज्य के खर्च की प्रतिपूर्ति की उक्त प्रणाली यदि अपनाई गई तो इस प्रणाली में असंतुलन की स्थिति का उन्मूलन तथा इसी प्रकार राज्यों की केन्द्रीय योजना सहायता की असमान व्यवस्था के संबंध में की गई आलोचना को भी समाप्त किया जा सकेगा।

6.10 हम इस विचार से सहमत हैं। केन्द्र द्वारा प्रायोजित अधिकांश योजनाएं अनुत्पादक योजनाएं हैं। चूंकि उक्त अनुत्पादक योजनाओं को स्वीकार करने के लिए राज्यों के पास पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं हैं, इसीलिए वे केन्द्र द्वारा प्रवर्तित उक्त योजनाओं को स्वीकार करने के इच्छुक हैं और इस कारण राज्य योजना प्राथमिकताएं विकृत हो जाती हैं। इसीलिए हमने यह सुझाव दिया है कि केन्द्र द्वारा प्रवर्तित ऐसी योजनाओं, जो स्वरूप में अनुत्पादक हैं, को केन्द्र सरकार पूर्ण रूप से वित्त प्रदान करे। इस कार्य में राज्य की पर्यवेक्षी भूमिका होगी। इसके अतिरिक्त केन्द्र द्वारा प्रायोजित उक्त योजनाओं के कार्यान्वयन के कारण केन्द्रीय सरकार को विकास संबंधी खर्च का प्रावधान करने के लिए निश्चित रूप से बाध्य किया जाना चाहिए।

6.11 यह संभव है कि प्रत्येक राज्य के योजना आयोग में स्थापित परिवीक्षण और मूल्यांकन कार्य प्रणाली ठीक से कार्य कर रही हो। परंतु केन्द्र और राज्य के संबंधों की दृष्टि से जो बात महत्वपूर्ण है, वह यह है कि उसी प्रकार की ऐसे तन्त्र का सृजन किया जाए जिससे उनके संबंध में क्षोभ पैदा न हों। इसलिए हम

यह सुझाव देते हैं कि केन्द्र और राज्य की योजनाओं के कार्यान्वयन का अलग-अलग अवलोकन करने के लिए अलग-अलग परिवीक्षण और मूल्यांकन तन्त्र बनाने के लिए केन्द्र और राज्यों को पूर्ण अधिकार दिया जाना चाहिए। यह देखने के लिए कि राज्यों को अभीष्ट परिणाम प्राप्त हुए हैं, राज्य निधियों के निवेश की निगरानी रखने के संबंध में केन्द्र के तन्त्र की कोई आवश्यकता नहीं है।

6.12 हम इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं कि विकेन्द्रीकरण योजना से हमारी योजना पद्धति में "सहयोगी संघवाद" की भावना पनपने में काफी हद तक सहायता मिलेगी। वास्तव में इस विचार को अपने ध्यान में रखते हुए हमने प्रश्न 6.1 के अपने उत्तर में युक्तियुक्त विकेन्द्रीकृत योजना पद्धति का सुझाव दिया है। प्रश्न 6.1 के उत्तर में हमने विकेन्द्रीकृत योजना पद्धति की पूरी तसवीर प्रस्तुत कर दी है। यदि उक्त सुझावों को स्वीकार तथा कार्यान्वित किया गया तो हमें विश्वास है कि ये सुझाव योजना तैयार करने तथा उसे कार्यान्वित करने की अवस्था में राज्यों और केन्द्र के बीच उचित सहयोग सुनिश्चित करने में मदद करेंगे।

6.13 जो कुछ भी यहां कहा गया है, वह सत्य हो सकता है। लेकिन यह राय देना कि जब कभी भी राज्य योजना बोर्ड अनुभव प्राप्त कर लेंगे तो राष्ट्रीय योजना क्रमिक रूप में निर्देशात्मक अधिक तथा आदेशात्मक कम हो जाएगी, इसके लिए हमें पहले विद्यमान पद्धति को जारी रखने की बात माननी होगी। चूंकि हम विद्यमान पद्धति को जारी रखने का सुझाव नहीं देते, अतः हम इसमें दिए गए सुझाव का समर्थन भी नहीं कर सकते। जैसा कि हमने पहले ही सुझाव दिया है कि राज्य योजना बोर्ड अलग-अलग दो स्तरों, एक केन्द्रीय स्तर तथा दूसरे राज्य स्तर पर कार्य करते हैं, लेकिन ये राष्ट्रीय विकास परिषद् के तत्वाधान में एक होकर कार्य करें और देश की आर्थिक तथा सामाजिक योजना में काफी हद तक योगदान दे सकते हैं। उक्त रीति से कार्य करने पर केन्द्र और राज्यों के बीच अधिक आवश्यक सहयोग तथा सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित होंगे।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1. इस सरकार ने पहले ही "विधायी संबंध" शीर्षक के अंतर्गत यह सुझाव दिया है कि प्रविष्टि 52 के स्थान पर नई प्रविष्टि प्रतिस्थापित की जानी चाहिए और इस नई प्रविष्टि में उद्योगों का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए तथा तदनुसार "विधायी संबंध" शीर्षक के अंतर्गत सुझाव दिए गए अनुसार प्रविष्टि 52 को नया रूप दिया जाए। परंतु ऐसे उद्योगों, जिनके संबंध में संसद को कानून बनाने का अधिकार है, औद्योगिक नीति समय-समय पर भारत सरकार द्वारा बनाई जाती है। भारत सरकार का यह विचार है कि औद्योगिक विकास एक अंतः सैद्धान्तिक अवधारणा है। यह, अवधारणा केवल विनिर्माण संबंधी कार्य से ही संबंधित है अपितु संबंधित सभी प्रकार के आधारिक संरचना संबंधी विकास; लाइसेंस देने और सामूहिक नीतियों, राजकोष, व्यापार और मूल्य नीतियों; औद्योगिक संबंध तथा प्रबंध, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विकास तथा व्यापक सामाजिक-आर्थिक नीतियों से भी संबंधित हैं। चूंकि औद्योगिक नीति के कार्यान्वयन के लिए केन्द्र में और साथ ही केन्द्र और राज्यों के बीच विभिन्न स्तरों पर निकट और प्रभावी समन्वयन और मानीटरिंग की आवश्यकता है।

इसलिए भारत सरकार के लिए औद्योगिक नीति बनाते समय राज्य सरकारों से पूर्व परामर्श करना वांछनीय होगा। इस समय पूर्व परामर्श नहीं किया जाता है। राज्यों को औद्योगिक विकास कार्यक्रमों की व्यवस्था करने का मुख्य कार्य दिया जाता है। इसलिए मुख्य औद्योगिक नीति बनाने के कार्य में राज्यों को शामिल किया जाना चाहिए।

उद्योग प्रारंभ करने का इच्छुक उद्यमी भारत सरकार को अपना आवेदनपत्र प्रस्तुत करता है और इस आवेदनपत्र को तीन अथवा चार सप्ताह के भीतर अपनी टीका-टिप्पणी प्रस्तुत करने के लिए राज्य सरकार के पास भेज दिया जाता है। यहां तक कि कुछ ऐसे भी मामले हैं, जिनमें राज्य सरकार की टीका-टिप्पणियां प्राप्त होने से पहले ही भारत सरकार अपना निर्णय ले लेती है और उस निर्णय की सूचना दे देती है। राज्य सरकार को अपने विचार प्रस्तुत करने का मौका दिए जाने पर भारत सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह उद्यमी के आवेदनपत्र के संबंध में निर्णय देने से पहले राज्य सरकार के लिए अनुमत समय सीमा के भीतर उसकी टीका-टिप्पणियों की प्रतीक्षा करे।

इस संबंध में दूसरा सुझाव यह है, कि उद्यमियों के आवेदनपत्र लाइसेंस देने वाली उप-समिति के समक्ष रखे जाएं। लाइसेंस देने वाली उप-समिति में राज्य सरकार का कोई भी प्रतिनिधित्व नहीं है। **लाइसेंस देने वाली उप-समिति में राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि वह आवेदनपत्र पर अपने विचार प्रस्तुत कर सके।**

उद्योगों की परिव्याप्ति सुनिश्चित करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों को कुछ छूट दी गई है। देश भर में पिछड़े क्षेत्रों को एक समान रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। कुछ राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों का ब्लॉक अथवा तालुका या जिले के रूप में उल्लेख किया जाता है। पिछड़े क्षेत्रों के निर्धारण के संबंध में राज्य सरकार के पूर्व परामर्श से इस बारे में स्थिति ठीक हो जाएगी।

1979 में भारत सरकार ने इस आशय के दिशानिर्देश जारी किए थे कि यदि एक ही राज्य में कोई उपक्रम उसके संपूर्ण अथवा आंशिक विनिर्माण कार्यों को प्रगतिशील क्षेत्र से पिछड़े क्षेत्र में अथवा अधिसूचित पिछड़े क्षेत्र से अन्य अधिसूचित पिछड़े क्षेत्र में ले जाने की इच्छा रखता है, तो भारत सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है, बशर्ते कि औद्योगिक उपक्रम ने राज्य सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त कर ली हो। राज्य सरकार का यह अधिकार अब भारत सरकार ने ले लिया है। और अब स्थान परिवर्तन के सभी मामलों को अनुमोदनार्थ भारत सरकार को भेजा जाता है। इस बात का कोई कारण नहीं है कि इस प्रत्यायोजन को क्यों नहीं बनाए रखा जाना चाहिए। उद्योगपति मुश्किल में पड़ जाएंगे, क्योंकि उक्त मामलों में उन्हें भारत सरकार से अनुमति प्राप्त करनी होगी। **इसलिए भारत सरकार को राज्य में ही स्थान परिवर्तन की अनुमति देने के लिए राज्य सरकार को दुबारा से इस अधिकार का प्रत्यायोजन करते हुए संशोधित निर्देश जारी करने चाहिए।**

राज्य सरकार का भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (भा० औ० वि० बैं०), भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (भा० औ० वि० नि०) जैसी केन्द्रीय वित्त संस्थाओं में कोई भी प्रतिनिधित्व नहीं है, हालांकि राज्य वित्तीय संस्थाएं प्रमुख रूप से इन संस्थाओं से उधार लेती हैं। **अलग-अलग राज्य सरकारों के लिए आवर्ती आधार पर प्रतिनिधित्व पर विचार किया जाना चाहिए।** क्षेत्रीय मंडल स्थापित किए जाने चाहिए और इन क्षेत्रीय मंडलों में क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

इस समय केवल आशयपत्र को औद्योगिक लाइसेंस में बदलने के समय की प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों से स्वीकृति लेना एवं अपेक्षित शर्तें निर्धारित की गई है और बहुत से मामलों में बोर्ड को भेजे बिना ही औद्योगिक लाइसेंस भी मंजूर कर दिए जाते हैं। जब उद्योग चालू होने के लिए लगभग तैयार हो जाते हैं तो वे स्वीकृति के लिए बोर्ड के पास प्रस्ताव भेजते हैं। उक्त आकस्मिकता से बचने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से उद्योगों को आशयपत्र जारी करने के समय भी परामर्श लिया जाना चाहिए।

हम इस विचार से सहमत हैं कि उद्योगों के उत्पादन के मूल्य के रूप में उनके बहुत बड़े अनुपात को शामिल करने के कारण प्रथम अनुसूची के इस अव्यवस्थित विस्तार के परिणामस्वरूप "मूलभूत सांविधानिक योजना" प्रत्यक्ष रूप से समाप्त हो गई है और "उद्योग" वस्तुतः "संघ विषय" में बदल गए हैं। भाग II में "विधायी संबंध" शीर्षक के अंतर्गत भी इस पर विचार किया गया है। क्योंकि प्रविष्टि 52 में "लोक हित" अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है, अतः राज्य स्वायत्तता का अतिक्रमण करते हुए नियंत्रित मदों के रूप में अनेक मदों के समावेश को ध्यान में रखते हुए प्रविष्टि 52 में आमूल परिवर्तन करना आवश्यक है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इस प्रविष्टि के अंतर्गत अनुसूची में ऐसे किसी भी उद्योग को शामिल कर लिया जाता है, जो केन्द्र सरकार की राय में लोक हित अथवा राष्ट्रीय महत्व का है। यहां तक कि अन्य उद्योगों के साथ साबुन, पेंट, माचिस, गोंद आदि उद्योगों के संबंध में इस प्रश्न पर दिया गया उदाहरण उपयुक्त रूप से प्रमाणित करता है कि ऐसे उद्योगों को उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम 1951 के अंतर्गत शामिल कर लिया गया है, जो

वास्तव में राष्ट्रीय महत्व के नहीं हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रविष्टि 52, जिसकी परिभाषा नहीं दी गई है और जो व्यवहार्य रूप में पूर्णतया व्यापक है, में "विधायी संबंध" शीर्षक के अंतर्गत सुझाव दिए गए अनुसार उद्योगों का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए संशोधन किया जाना चाहिए।

7.2 भाग II के प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस सरकार द्वारा अभिव्यक्त की गई राय को ध्यान में रखते हुए यह सरकार इस बात को मानती है कि "विधायी संबंध" शीर्षक के अंतर्गत सुझाव दिए गए अनुसार प्रविष्टि 52 में उद्योगों का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए संशोधन किया जाना चाहिए तथा अनुच्छेद 249 को निकाल दिया जाना चाहिए। इसलिए इस संदर्भ में किसी भी प्रकार के सुझाव नहीं दिए गए हैं।

प्रश्न संख्या 7.3, 7.4, 7.7 और 7.8 को इस सामान्य टिप्पणी में शामिल किया गया है।

7.5 वित्तीय संस्थाओं द्वारा दी जानेवाली सहायता के लिए उचित मानक इसलिए निर्धारित किए जाने चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक राज्य को अपना उचित हिस्सा प्राप्त हो क्योंकि राज्यों को सहायता दिए जाने के संबंध में पक्षपाती रवैया रखने के कारण इन संस्थाओं की आलोचना की गई है।

7.6 सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश के स्थान-निर्धारण का निर्णय लेने के संबंध में अपनाया गया, वस्तुपरक मानदंड आधारित संरचना संबंधी सुविधाओं और इसके साथ ही क्षेत्र के पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर होना चाहिए। इस संबंध में राज्य का पूर्व परामर्श प्रथम मानदंड होना चाहिए।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 किसी भी व्यवसाय, व्यापार अथवा कारोबार को चलाने के संबंध में नागरिक विशेष के मूलभूत अधिकार को ध्यान में रखते हुए व्यापार और वाणिज्य के विषय को विशिष्टता प्रदान करनी होगी। अंत: राज्य व्यापार तथा अन्तर-राज्य व्यापार के बीच विभेद किया जाना चाहिए। जहां तक अंत: राज्य व्यापार का संबंध है, "विधायी संबंध" (विशेष रूप से प्रविष्टि 33 का समवर्ती सूची से राज्य-सूची में अंतरण) के विषय में कार्रवाई करते समय दी गई हमारी सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए यह उचित है कि अनुच्छेद 382 में संशोधन करने के लिए केन्द्र-राज्य संबंधों को बनाए रखना उचित होगा, जिससे कि अन्तर-राज्य व्यापार और वाणिज्य के किसी पक्ष-व्यवहार से बचा जा सके और उसे अंत: राज्य व्यापार और वाणिज्य तक ही सीमित रखा जा सके उन परिवर्तनों और युक्तियों, जो संघ और राज्य के बीच विद्यमान व्यवस्था की समीक्षा करने के लिए उपयुक्त हैं, की सिफारिश करने के संबंध में ऐसे लक्ष्यों, जिसके लिए न्यायमूर्ति सरकारिया आयोग की स्थापना की गई; को प्राप्त करने के उद्देश्य से विशेष रूप से जहां तक व्यापार और वाणिज्य का संबंध है, संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ) के अंतर्गत दिए गए मूल अधिकार को ध्यान में रखते हुए इस सरकार का यह विचार है कि केन्द्र और राज्य को अलग अलग रखा जाना चाहिए। अनुच्छेद 302 का संशोधन करने के मामले में पहले की गई सिफारिश के अतिरिक्त "प्रतिबन्ध" शब्द के पहले "उचित" शब्द जोड़ा जा सकता है।

इस सरकार को अनुच्छेद 303 और अनुच्छेद 304 में अपेक्षित करों में विभेद से बचने के संबंध में किसी भी प्रकार की टीका टिप्पणी नहीं करनी है। परंतु इस सरकार का यह विचार है कि अनुच्छेद 304 का परंतुक हटा दिया जाना चाहिए। अनुच्छेद 304 अधिकार प्रदान करने वाला उपबंध है। अनुच्छेद के अंतर्गत लगाए जाने वाले कर भेदमूलक नहीं होने चाहिए और राज्य विधानमंडल द्वारा लगाया जाने वाले प्रतिबंध उचित तथा लोक हित में होने चाहिए। इसलिए अनुच्छेद 304 के संबंध में हमारी कोई टीका-टिप्पणी अपेक्षित नहीं है। अनुच्छेद के परंतुक में यह अपेक्षा की जाती है कि राज्य विधानमंडल में व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता के संबंध में प्रतिबंध लगाने से संबंधित कोई भी बिल अथवा संशोधन प्रस्तुत करने से पहले राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति प्राप्त की जानी चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि उक्त पूर्व संस्वीकृति केवल अंत: राज्य व्यापार और वाणिज्य पर लगाए जाने वाले प्रतिबंधों के संबंध में ही आवश्यक नहीं है, अपितु यह पूर्व संस्वीकृति राज्य की सीमाओं में वाणिज्यिक कार्यकलापों को नियमित करने अथवा उन पर रोक लगाने के लिए भी अपेक्षित है। विधायी शक्तियों के विभाजन के संबंध में हमने यह सुझाव दिया है कि राष्ट्रपति के विचार तथा स्वीकृति के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए बिलों के आरक्षण से संबंधित संविधान में सभी उपबंधों (अनुच्छेद 288 (2) को छोड़कर) को पूर्णतया हटा दिया जाना चाहिए। व्यापार और व वाणिज्य की स्वतंत्रता के संबंध में राज्य विधानमंडल के अधिनियम के अनुसार लगाए गए प्रतिबंध उचित है या नहीं और वे अनुच्छेद 304(ख) के प्रयोजनों के लिए लोक हित में है या नहीं इन दोनों ही प्रश्नों का निर्णय अन्ततः उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय को करना होगा। यदि न्यायालय को यह लगे कि प्रतिबंध अनुचित है अथवा लोक हितों के विरुद्ध हैं, तो राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति अथवा उसकी बाद में दी गई सहमति से कमी को दूर नहीं किया जा सकता। यदि विधान अन्यथा वैध हो और प्रतिबंध उचित तथा लोक हित में हो तो राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति अनावश्यक होगी। किसी भी स्थिति में राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति से संबंधित आवश्यकता राज्य विधानमंडलों को दिए गए क्षेत्र का सीधे ही अतिक्रमण होगा। इसलिए हम यह सिफारिश करते हैं कि अनुच्छेद 304 के परंतुक को हटा दिया जाए। अन्य अनुच्छेद यथा 301 और 307 के संबंध में हमारा और कोई सुझाव नहीं है।

विशेष प्रश्न 8.1 के संबंध में हमारा विचार है कि व्यापार और वाणिज्य में बेहतर केन्द्र-राज्य संबंध सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित के संबंध में प्राधिकरण नियुक्त करना आवश्यक है—

(क) सर्वेक्षण करने तथा अंत: राज्य व्यापार और वाणिज्य के संबंध में लगाए गए प्रतिबंधों पर आवधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए;

(ख) व्यापार और वाणिज्य को आसान बनाने के विचार से लगाए गए प्रतिबंध को युक्तिसंगत बनाने अथवा उनमें संशोधन करने के संबंध में उपायों की सिफारिश करने के लिए; और

(ग) वाणिज्य मंडल, जिसमें शिखर निकाय जैसे एफ आई सी सी आई भी शामिल है, से प्राप्त शिकायतों की जांच-पड़ताल करने के लिए।

कृषि

9.1 हम केन्द्र-राज्य संबंध (1967) पर प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा की गई टीका-टिप्पणी से सहमत हैं। कृषि, जिसमें बागवानी, पशुपालन, वनविज्ञान और मीन उद्योग शामिल हैं, को मुख्यत: राज्य का विषय ही माना जाना चाहिए। यह अनुभव किया गया है कि केन्द्र सरकार कृषि में बड़ी संख्या में क्षेत्रों को अपने हाथ में ले रही है और अलग-अलग राज्य को बहुत-सी निधि भी प्रदान कर रही है जो राज्यों द्वारा डाले गए दबाव पर निर्भर होती है। कुछ मामलों में, कुछ क्षेत्रों में सहायता की आवश्यकता और महत्व के बावजूद केन्द्र की ओर से मूल्यांकन के अभाव तथा स्थानीय समस्याओं को ठीक से न समझे जाने के कारण केन्द्रीय सहायता सुलभ नहीं हो पाती है। इसलिए यह अनुभव किया गया है कि केन्द्र से दी जाने वाली सहायता विशिष्ट मामलों के गुणावगुण पर निर्भर नहीं है, अपितु इसके बजाए असन्तुलित सहायता जारी है। इस प्रकार की स्थिति के लिए दोषनिवारक उपाय आवश्यक हैं और जब तक कार्य में केन्द्र का समान प्रतिबंधित नहीं कर दिया जाता तब तक पक्षपात अथवा अनुचित पक्षपात पर्याप्त रूप से चलता रहेगा। इसलिए राज्यों को एक समान माने जाने तथा अनियंत्रित वास्तविक कार्य से बचने और विविध योजनाओं, जिसमें विस्तृत वित्तीय वचनबद्धता और केन्द्र से सहायता शामिल है, को स्वीकृति देने के विचार से समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 के विस्तार पर प्रतिबंध लगाना आवश्यक है।

हालांकि कृषि राज्य का विषय है, लेकिन फिर भी राज्य को जब कभी भी बाढ़ से बरबादी अथवा लगातार सूखा पड़ने से क्षति पहुंचती है तो कृषि का वास्तव में वास्तविक विकास करने के लिए केन्द्र अपनी रुचि दिखाए, अन्यथा राज्य के राजकोष पर इसका बहुत बड़ा बोझ होगा।

इसलिए प्रविष्टि 33 और 34 को राज्य सूची में अंतरित कर दिया जाए क्योंकि इससे राष्ट्रीय अथवा लोकहित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है। सरकार यह भी सुझाव देती है कि ऐसी किसी भी स्थिति में जब राज्य विशेष को बाढ़ से बरबादी अथवा लगातार सूखे से हानि पहुंचती है तो केन्द्र इस

कार्य में अपनी रुचि दिखाए और केवल उक्त आपाती स्थितियों में ही सहायता न दे, अपितु उनके लिए विविध निवारक उपायों को भी बढ़ावा दे ।

9.2 कृषि को केवल राज्य का विषय ही माना जाना चाहिए और वास्तविक कार्य के लिए जिम्मेदारी / नियंत्रण के संबंध में केन्द्र पर अधिक दायित्व नही छोड़ा जाना चाहिए । विभिन्न राज्यों की जनसंख्या की खान-पान की आदतों के अलावा भिन्न-भिन्न कृषि जलवायु मंडलों में भी बहुत अधिक भिन्नता है और इस क्षेत्र में व्यापक सामान्यीकरण संभव नही है । इसके अलावा विभिन्न फसलों के लिए अखिल भारतीय लक्ष्य निर्धारित करते समय समान मानदंड नही अपनाए गए हैं । उदाहरण के लिए गेहूं और चावल के मूल्य में समानता नहीं है जिसके परिणामस्वरूप चावल के उत्पादन से उत्तरी क्षेत्र के किसान की तुलना में दक्षिणी क्षेत्र के किसानों को हानि हुई है ।

केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के मामले में भी इसी प्रकार भारत सरकार द्वारा पर्याप्त परिव्यय वाली योजनाएं प्रारंभ की जाती है जैसे, 1983–84 में कृषि वनशास्त्र के लिए 184 लाख । किंतु यदि राज्य द्वारा यह कार्य जारी रखा गया तो विद्यमान वचनबद्धताओं को पूरा करने के बाद राज्य निधि में राशि का यथेष्ट आबंटन आसानी से प्राप्त नही होगा । अत: यदि राज्यों से दीर्घ समय की सापेक्ष महत्व की योजनाएं तैयार करने को कहा जाए और भारत सरकार द्वारा आवश्यक वित्तीय सहायता का आश्वासन दिया जाए तो पर्याप्त होगा । भारत सरकार द्वारा ब्लाक अनुदानों की स्वीकृति दी जानी चाहिए और उन्हें ऐसी किसी भी कृषि संबंधी परियोजना, जिसे वह उचित समझे, के लिए राज्य सरकार पर छोड़ देना चाहिए । इसके अतिरिक्त यह परिपाटी है कि केन्द्रीय निधियां पूंजीगत व्यय के लिए नहीं प्रत्युत केवल राजस्व संबंधी खर्च के लिए ही मंजूर की जाती हैं । इसमें बड़ी सीमा तक छूट दी जानी चाहिए और स्थायी इमारतों का निर्माण करने तथा उपस्कर क्रय करने के लिए केन्द्रीय निधियों को लंबी समय अवधि तक आबंटित किया जाना चाहिए ।

राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) की यह सिफारिश कि लंबे समय की परिदृष्टि का विकास किया जाए जिसमें कि केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित ऐसी योजनाएं राज्य एजेंसी द्वारा कार्यान्वित की जाएं जो अन्तत: राज्य क्षेत्र का भाग बन जाएं और इनकी संख्या न्यूनतम रखी जाए यह बात मानने योग्य है । ऐसा इसलिए है क्योंकि केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के वार्षिक कार्यान्वयन में अड़चनें हर वर्ष आती हैं जिससे विभिन्न कार्यक्रमों की प्रगति में कमी आती हैं । इसलिए यह उचित होगा कि कृषि संबंधी कार्यक्रमों को सही दिशा में मौसमी सीमाओं के अन्तर्गत फसल संबंधी कार्यक्रमों/योजनाओं को राज्य क्षेत्र के भाग के रूप में कार्यान्वित किया जाए । इसके अतिरिक्त विशेष राज्यों की केवल स्थानीय दशाओं के आधार पर ही नई योजनाएँ तैयार करनी होंगी और इनका अनेक राज्यों के संबंध में सामान्यीकरण नही किया जा सकता । राज्य एजेंसी द्वारा राज्य क्षेत्र के अंतर्गत योजना को जारी रखने के कार्य को अपने हाथ में लेने से पहले लंबे समय अवधि की सहायता की योजना बनाई जानी चाहिए ।

9.3 हालांकि राज्य और केन्द्र से केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएँ तैयार करने के संबंध में समान भागीदार होने की उम्मीद की जाती है, लेकिन फिर भी अकेला केन्द्र योजना के कार्यान्वयन के लिए निबन्धन और शर्तें विनिर्दिष्ट नहीं कर सकता अर्थात् गहन कपास विकास कार्यक्रम संबंधी स्टाफ के लिए केन्द्रीय निधियां उपलब्ध नहीं कराई जाती क्योंकि उन्हें प्रशिक्षण और निरीक्षण संबंधी कार्यक्रम में शामिल कर दिया गया है ।

केन्द्र और राज्य, दोनों के ही कार्यकारी ग्रुपों को बहुधा अपने विचारों का आदान प्रदान करने के लिए प्राय: मिलना चाहिए और राज्य के सामने आने वाली कठिनाइयों को केन्द्र द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए । अंतत: बड़ी संख्या में लोगों के हित के लिए कार्यान्वित किए जाने वाले कार्यक्रमों की प्राथमिकताओं को समझने के लिए कार्यकारी ग्रुपों द्वारा उचित दिशा निर्देश तैयार किए जाने चाहिए ।

राष्ट्रीय कृषि आयोग के सुझाव को इसलिए दोहराए जाने की आवश्यकता है, जिससे कि आपसी परामर्श के महत्व तथा स्वीकृत कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की उपेक्षा न हो जाए ।

9.4 कृषि संबंधी मदों, विशेष रूप से धान, के न्यूनतम उचित मूल्य के निर्धारण के संबंध में राज्य निश्चित रूप से अलाभकारी स्थिति में हैं । बहुधा स्थानीय दशाओं में परिवर्तनशीलता की बात को ध्यान में नहीं रखा जाता और निर्धारित किया गया मूल्य कभी-कभी उत्पादन की वास्तविक लागत से पूर्णतया असंबद्ध होता है । ऐसा इसलिए है कि देश के विभिन्न भागों में दशाएं बहुत अधिक परिवर्तनशील हैं चाहे वही फसल क्यों न उगाई गई हो । इसलिए कृषि उपज के लिए न्यूनतम उचित मूल्य लागू करने के मामले में निर्णय करने के संबंध में राज्य सरकारें घनिष्ठ रूप से संबद्ध होनी चाहिए । गेंहू और धान के मूल्य में समानता नहीं आई है, जबकि इनके मूल्यों में समानता लाने के लिए बहुत समय से दबाव भी डाला गया है ।

यह केवल इस राज्य के मुख्य भोजन की आर्थिक कृषि के संबंध में समस्या ही प्रस्तुत नहीं करती अपितु इससे राजनीतिक भेदभाव भी प्रकट होता है ।

सिंचाई में जल के उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम प्रयोग किया जाना चाहिए । इस संबंध में भाग IV में दिए गए हमारे सुझावों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

महत्वपूर्ण निवेशों, जिसमें ऋण भी शामिल है, की व्यवस्था अपर्याप्त है और समय-समय पर राज्य द्वारा दिए गए सुझावों के अनुसार इसे बढ़ाया जाना चाहिए।

राज्यों को राज्य के कल्याण के लिए वन नीति बनाने तथा उसके प्रशासन के संबंध में अधिकतम अधिकार दिए जाने चाहिए ।

जब से संविधान लागू हुआ तब से "वन" राज्य का ही विषय था । लेकिन 3 जनवरी, 1977 से लागू संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 में उपर्युक्त विषय को संविधान की समवर्ती सूची में रख दिया गया है और इसके अनुसार केन्द्र और राज्य दोनों ही उपर्युक्त विषय के संबंध में कानून बना सकते हैं । सरकार यह महसूस करती है कि "वन" विषय को राज्य सूची में ही रखा जाना चाहिए, जैसी स्थिति उक्त संविधान (बयालीसवा संशोधन) अधिनियम लागू होने से पहले थी ।

हाल ही में केन्द्रीय सरकार ने वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 (1980 का केन्द्रीय अधिनियम, 63) पारित किया है, जो 25 अक्तूबर 1980 से लागू हुआ है । केन्द्रीय अधिनियम ने राज्य सरकार के लिए बहुत-सी कठिनाइयां उत्पन्न कर दी हैं । ऊपर उल्लेख किए गए वन (संरक्षण) अधिनियम के अनुसार भारत सरकार की पूर्व सहमति के बिना वानिकी प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए वन भूमि अथवा उसके किसी भाग का उपयोग नहीं किया जा सकता । इस अधिनियम के अनुसार गैर वन प्रयोजनों से अभिप्राय पुन: वन रोपण से भिन्न प्रयोजन के लिए वन भूमि अथवा उसके भाग को तोड़ना अथवा साफ करना है ।

राज्य सरकार को भारत सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना वन भूमि को अनारक्षित करने का अधिकार भी नहीं है ।

यदि वन-भूमि के छोटे से टुकड़े में सड़क बनाई जानी हो अथवा सार्वजनिक जल आपूर्ति योजना के संबंध में वन-भूमि का छोटा सा टुकड़ा दिया जाना हो, तो वन (संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत भारत सरकार की पूर्व-स्वीकृति प्राप्त करनी होगी ।

यही तक कि यदि किसी कृषक को जल मार्ग से ऐसी पाइप लाइन लेनी हो, जो वन प्रांत से गुजरती हो, तो मामला भारत सरकार को भेजना पड़ता है और उसकी पूर्व सहमति प्राप्त करनी पड़ती हैं ।

इसके अतिरिक्त यदि वन (संरक्षण) अधिनियम लागू होने के बहुत पहले से ही वन भूमि स्थायी रूप से दे दी गई हो और भूमि का स्वरूप पूर्णतया बदल गया हो, लेकिन यदि अब दी गई अधिसूचना के अनुसार वन भूमि को पहले अनारक्षित किया जाना हो तो स्वीकृति के लिए प्रस्ताव भारत सरकार के पास भेजना होगा ।

इसके अतिरिक्त यदि ग्रामों, विशेष रूप से जनजाति क्षेत्रों में विद्युत कनेक्शन देने के लिए संचरण लाइन डाली जानी हो, तो इस संबंध में प्रस्ताव भारत सरकार के पास भेजने होंगे । अत: जनजाति से संबंधित विकास संबंधी कार्यों के तुरंत कार्यान्वयन पर इस अधिनियम ने बहुत अधिक प्रतिकूल प्रभाव डाला है ।

राज्य सरकारें जनसाधारण की आवश्यकताओं के सीधे संपर्क में हैं और यह उनका सांविधिक कर्तव्य है कि वे यह देखें कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, यह सरकार उपयुक्त अनुमोदन प्राप्त करने के बाद भारत सरकार के पास प्रस्ताव भेजती है। उन्हीं मामलों में भारत सरकार ने अनुरोध अस्वीकार कर दिए हैं। यदि ऐसे प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया गया हो, जिनके संबंध में उच्च स्तर पर पर्याप्त विचार विमर्श हो गया है, तो ऐसा होने से राज्य सरकारों के लिए स्वाभाविक रूप से परेशानी उत्पन्न हो जाती है और इससे उन व्यक्तियों के सामने उनकी प्रतिष्ठा नहीं रह पाती, जिनकी अत्यावश्यकताओं को पूरा किया जाना है। वनों के संरक्षण के मामले में राज्य सरकारें भारत सरकार के साथ हैं। परंतु राज्य सरकारें यह महसूस करती हैं कि वन (संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत विकल्प के रूप में कम से कम निम्नलिखित तथा ऐसे ही मामलों में राज्य सरकार को कुछ हद तक अधिकार दिए जाने आवश्यक हैं :—

(1) जब वन के भीतरी भाग में संचरण लाइनें बिछाई जानी हों तो प्रस्ताव भारत सरकार के पास भेजने की आवश्यकता न हो, क्योंकि इस बात का हमेशा बहुत ध्यान रखा जाता है कि कम से कम पेड़ काटे जाएं।

(2) जनजाति तथा अन्य लोगों के कल्याण के लिए वन विभाग द्वारा सड़कें बनाई जा रही हैं। अच्छी मौसमी सड़कें बनानी हों तो प्रस्ताव भारत सरकार के पास भेजने की आवश्यकता न हो। यदि आरक्षित वनों में राजमार्ग और ग्रामीण निर्माण कार्य विभाग द्वारा 20 फुट अथवा उससे अधिक चौड़ी पक्की सड़कें बनाई जानी हों तो उक्त प्रस्ताव भारत सरकार के पास भेजे जाएंगे।

भारत सरकार ने अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 (1956 का केन्द्रीय अधिनियम 33) अधिनियमित किया है, जिसमें अंत: राज्य नदियां तथा नदी घाटियों के जल से संबंधित विवादों के न्याय-निर्णय का उपबंध किया गया है। नदी के जल प्राप्त करने के अधिकार के संबंध में आन्तर्राज्यिक विवादों को नियंत्रित करने के लिए अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 को जारी रखा जाना चाहिए और उक्त विवाद के उत्पन्न होते ही तत्काल भारत सरकार द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन अधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिए, जिससे कि अविलंब समस्याओं का समाधान किया जा सके। एक बार हकदारी का निर्णय हो जाने पर बेसिन प्राधिकरण गठित किया जाना चाहिए ताकि वर्तमान पद्धति में पानी का न्यायसंगत वितरण और संबद्ध राज्यों और बेसिन राज्यों के बीच हुए करार तथा परम्परागत अधिकारों के अनुरूप जल का न्यायसंगत आबंटन किया जा सके। नदी बेसिन प्राधिकरणों की व्यवस्था करने के लिए अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए।

इस संदर्भ में एक अन्य मुद्दा यह है कि अधिनियम के अंतर्गत दिए गए अधिकरण के निर्णय को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाए। उक्त अधिनियम की धारा 6 में इस बात का उल्लेख किया गया है कि अधिकरण का निर्णय अंतिम है और विवाद करने वाले पक्षकारों के लिए आबद्धकर है और इस निर्णय को उनके द्वारा लागू किया जाएगा तब भी यह प्रश्न उठता है कि निर्णय को कैसे लागू किया जाए। यहां पर इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि माध्यस्थम अधिनियम, 1948 (1948 का केन्द्रीय अधिनियम X) की धारा 17 में संबंधित न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि वह मध्यस्थ के अधिनिर्णय के अनुसार निर्णय सुनाए और इस प्रकार सुनाए गए निर्णय के आधार पर डिक्री दे। 1956 के केन्द्रीय अधिनियम में समान उपबंध के न होने पर यह पूर्णतया संदेहास्पद है कि अनुशासनहीन राज्य में इस अधिकरण के निर्णय को प्रभावी रूप में कार्यान्वित किया जा सकेगा।

इसलिए यह सरकार अधिनियम में संशोधन करने अथवा उसमें नया उपबंध अन्तर्विष्ट करने का सुझाव देती है ताकि विवाद करने वाले पक्षकारों को ज्ञात विधिक प्रक्रिया से अधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय को लागू करने का अधिकार प्राप्त हो जाए।

विशेष रूप से उल्लेख किए जाने वाले कार्यों को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् तथा नदी बेसिन आयोग नियुक्त किए जाने चाहिए। केन्द्र और राज्यों के बीच और विचार विमर्श करके कार्य प्रणालियों को विनिर्दिष्ट करना होगा।

भारत सरकार को देश में सभी अन्तर्राज्यिक नदियों को राष्ट्रीय नदियां घोषित कर देना चाहिए क्योंकि अधिकांश रूप से सभी बड़ी नदियां अन्तर्राज्यिक स्वरूप की ही हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि किसी भी अधिकरण के लिए यह अनिवार्य हो कि वह अपने निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था करे और ऐसी व्यवस्था सभी राज्यों के लिए आबद्धकर हो।

किंतु अन्तरराज्यिक जल विवाद अधिनियम 1956 में सुझाया गया संशोधन, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रश्न 4.7 के उत्तर में दिए गए विचार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि अन्तर्राज्यिक नदियों से संबंधित सभी प्रकार के विवादों को उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित स्थायी अधिकरण को भेजा जाना चाहिए। यदि इस विचार को मान लिया जाए तो अन्तर्राज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 का निरसन या उसमें संशोधन करना आवश्यक होगा।

9.5 भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के शासी निकाय में दक्षिणी राज्यों को अधिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की आवश्यकता है यथा तमिलनाडु की जलवायु संबंधी दशाएं पूर्णतया भिन्न हैं और उनकी आवश्यकताएं उत्तरी भारत के राज्यों से अलग हैं। केवल इस एक बात से ही दक्षिणी राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निधियों के उचित प्रवाह को सुनिश्चित किया जा सकता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् जैसे नीति निर्धारण करने वाले निकाय में पशुपालन और कृषि के राज्य निदेशकों को सदस्यों के रूप में सहयोजित किया जाना चाहिए।

इस राज्य का यह अनुभव है कि अनुसंधान संस्थाओं की भूमिका के संदर्भ में तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय द्वारा दी गई किस्में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा दी गई किस्मों की अपेक्षा किसानों के लिए अधिक लाभप्रद हैं संभवत: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद गेहूं और अन्य ऐसी किस्मों पर अपना अधिक ध्यान केंद्रित कर रही है, जो उन स्थानों के लिए उपयुक्त हैं, जहां पर ये अनुसंधान केन्द्र स्थित हैं। यह सस्य विज्ञान से संबंधित पद्धतियों का भी मामला है। यह केवल तभी लाभप्रद होगा जबकि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अधिक से अधिक केन्द्र राज्य के कृषि जलवायु संबंधी मंडलों में स्थापित किए जाएं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् से यह अनुरोध किया जाना चाहिए कि वह देश में सब्जी तथा फल विपणन प्रणाली को विकसित करने के लिए फसल काटने के बाद की टैक्नोलोजी, पैकिंग, भंडारण और शीत भंडारण, परिवहन, डिब्बा संबंधी जिम्मेवारी ले।

1981 के केन्द्रीय अधिनियम 61 (राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक अधिनियम, 1981) (1981 का केन्द्रीय अधिनियम 61) की उद्देशिका में इस बात का उल्लेख किया गया है कि एकीकृत ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने तथा ग्रामीण क्षेत्रों और उनसे संबंधित अथवा प्रासंगिक मामलों के संबंध में उन्नति सुनिश्चित करने के विचार से कृषि, लघु उद्योगों, कुटीर तथा ग्राम उद्योगों, हस्तशिल्प तथा अन्य ग्रामीण हस्तकौशल्य और अन्य संबद्ध आर्थिक कार्य-कलापों को बढ़ावा दिए जाने के संबंध में ऋण की व्यवस्था करने के लिए कृषि और ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड) की स्थापना की गई है। 19 मार्च, 1983 को भारत सरकार ने प्रथम निदेशक मंडल नियुक्त किया। नाबार्ड के निदेशक मंडल में सहकारी बैंकों के दो प्रतिनिधि, वाणिज्यिक बैंकों का एक प्रतिनिधि, भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार के तीन-तीन प्रतिनिधि, राज्य सरकारों के दो प्रतिनिधि तथा ग्रामीण हस्तकौशल, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों तथा लघु उद्योगों के दो विशेषज्ञ हैं। यह विचार किया गया है कि राज्य सरकारों को अधिक प्रतिनिधित्व देने के लिए निदेशक मंडल की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए, क्योंकि नाबार्ड से संबंधित अधिकतर विषय राज्य सूची के अंतर्गत आते हैं।

वित्त प्रदान करने के मामले में नाबार्ड और उसके हिताधिकारियों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आना चाहिए। नाबार्ड द्वारा इस समय प्रयोग में लाई गई पद्धतियों से हिताधिकारी को बढ़े हुए ब्याज का भुगतान करने में अधिक हानि होती है, क्योंकि आवेदन पत्रों को अन्य ऐसी एजेंसियों के माध्यम से अग्रेषित किया जाता है तथा उनकी संवीक्षा की जाती है, जिसमें प्रत्येक अवस्था के लिए ब्याज की दर बढ़ जाती है, यदि नाबार्ड वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सीधे ही आवेदन पत्र प्राप्त करे तो बढ़ी हुई ब्याज की दर के बोझ से बचा जा सकता है।

खाद्य और सिविल आपूर्ति

10.1 प्रत्येक राज्य में खाद्य विभाग खाद्यान्नों तथा अनिवार्य वस्तुओं की आपूर्ति को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है। ऐसा विशेष रूप से उस समय होता है जब समुदाय के अल्प सुविधा प्राप्त तथा कमजोर वर्गों के हितों को ध्यान में रखा गया हो। इस संबंध में तमिलनाडु की जनता को केन्द्र और राज्य की दोहरी जिम्मेदारी के संबंध में पूर्णतया जानकारी नहीं दी गयी है। केन्द्र और राज्य में परामर्श की वर्तमान व्यवस्था राज्य सरकार की वास्तविक जिम्मेदारी के अनुरूप नहीं है। जैसा कि बाद में स्पष्ट किया गया है कि प्रापण, मूल्य और वितरण के क्षेत्रों में केन्द्र राज्य संपर्क में सुधार की काफी गुंजाइश है। निम्नलिखित स्थिति का वर्गीकरण तथा विश्लेषण शीर्ष कों के अन्तर्गत किया जा सकता है :—

वसूली

सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बनाए रखने के लिए राज्य सरकार को अनिवार्यत: आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करना होगा। राज्य के लिए यह संभव नहीं है कि वह प्रतिकूल मौसमी दशाओं, विशेष वस्तु के उत्पादन के अभाव आदि जैसे कारणों से राज्य की सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा आपूर्ति करने के लिए अपेक्षित खाद्यान्नों अथवा अन्य वस्तुओं की पूरी मात्रा प्राप्त कर ले। जहां तक तमिलनाडु का संबंध है यह राज्य चावल के उत्पादन में पूर्णत: आत्मनिर्भर हो सकता है, बशर्ते कि मौसमी दशाएं सामान्य हों। जब कभी मानसून की वर्षा नहीं होती तो तमिलनाडु राज्य कमी वाला राज्य बन जाता है, और पिछले कुछ वर्षों में ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हुई है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि राज्य की वसूली के अतिरिक्त केन्द्रीय पूल सहायता प्राप्त की जाए। इसके अतिरिक्त जब कभी भी तमिलनाडु सरकार खुले बाजार में अन्य राज्यों से चावल अथवा गेहूं क्रय करना चाहती है तो उसे केन्द्र से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है। यहां तक कि तमिलनाडु राज्य को राज्य सरकार की अन्य एजेंसियों से क्रय करने के लिए भारत सरकार से अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है। इसके अलावा भारतीय रिजर्व बैंक राज्य के बाहर से क्रय करने के लिए ब्याज की उच्च दर वसूल करता है। यद्यपि गैर सरकारी व्यापारी अन्य राज्यों से क्रय करने के लिए स्वतंत्र है बशर्ते कि वह वहां देय लेवी का भुगतान कर दे परन्तु राज्य सरकारें अन्य राज्यों से गेहूं या चावल नहीं खरीद सकती चाहे वह लेवी प्रदत्त स्टाक ही क्यों न हो। भारत सरकार से अनुमोदन प्राप्त करने में परेशानी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जहां तक कि गैर सरकारी व्यापारी बाहर से स्वतंत्रतापूर्वक क्रय करते हैं, तो यह बात स्पष्ट नहीं है कि केवल राज्य सरकारों को ही भारत सरकार की सहमति क्यों लेनी पड़ती है। कोई भी सरकार राज्य के लिए अपेक्षित मात्रा से अधिक क्रय नहीं करेगी। खाद्य, जो राज्य का विषय है, से संबंधित मामलों में अधिक नियंत्रण वांछनीय नहीं है।

यदि अन्य राज्यों से क्रय करने के लिए भारत सरकार अपनी सहमति दे देती है तो भी भारतीय रिजर्व बैंक उनके द्वारा दी गई नकद उधार सहायता के लिए ब्याज की उच्च दर वसूल करता है। अत: ब्याज की उच्च दर से चावल का मूल्य बढ़ जाता है। मूल्यों में वृद्धि होने से जनता प्रतिकूल आलोचना करती है और राज्य सरकार जनता के प्रति जवाब देह होती है यद्यपि उसका मूल्य पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं है।

जहां तक केन्द्रीय पूल में आबंटन का संबंध है, वस्तुओं की मात्रा नियत करने की केन्द्रीय सरकार की अपनी नीति है और राज्य सरकार अपना उपयुक्त शेयर प्राप्त नहीं कर पाती। जब कभी भी वस्तुएं अधिशेष होती हैं तो राज्य सरकार निस्संदेह केन्द्रीय पूल में अंशदान करती है। साथ ही जब तमिलनाडु राज्य में वस्तुएं अधिशेष न हों तो केन्द्रीय पूल में अंशदान करने तथा उसे पुन: प्राप्त करने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि इसमें मूल्यों में वृद्धि को छोड़कर और कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसलिए केन्द्रीय पूल में अंशदान करने के संबंध में आग्रह केवल तभी किया जाना चाहिए जबकि वास्तव में सुविधाजनक अधिशेष हो। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :—

(1) राज्य सरकार अथवा उसकी एजेंसियों को यह अनुमति दी जानी चाहिए कि वे केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना अधिशेष वाले राज्यों से लेवी धान और चावल का क्रय कर लें।

(2) इस संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक को ब्याज की साधारण दर वसूल करनी चाहिए।

मूल्य

भारत सरकार कृषि मूल्य आयोग की सिफारिश के आधार पर वसूली मूल्य, जिसे समर्थन मूल्य के रूप में जाना जाता है, निर्धारित करती है। उक्त मूल्य निर्धारण गेहूं आदि के संबंध में भी किया जाता है। मूल्य निर्धारित करते समय भारत सरकार कृषि मूल्य आयोग की सिफारिश को ध्यान में रखती है, जो सिफारिश करने से पहले राज्य सरकार से परामर्श करता है। लेकिन कठिनाई यह है कि जब गेहूं के संबंध में उत्पादन लागत को ध्यान में रखा जाता है तो उसी उत्पादन लागत को चावल पर लागू नहीं किया जा सकता।

लेवी के माध्यम से क्रय करते समय भारत सरकार द्वारा निर्धारित किए गए मूल्य दिए जाएंगे और बढ़ी हुई दर नहीं दी जाएगी। इस प्रकार, जब निजी व्यापारी उच्च मूल्य पर क्रय करते हैं तो राज्य सरकार केवल निम्न मूल्य ही अदा करने को बाध्य है। यदि व्यापारी बेहतर मूल्य देता है तो कोई भी किसान सरकार को धान नहीं बेचेगा। हालांकि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3(3ख) में राज्य सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह कुछ शर्तों के अध्यधीन केन्द्रीय सरकार की सहमति से वसूली मूल्य निर्धारित करे, परन्तु व्यवहार में राज्य सरकार इस अधिकार का प्रयोग नहीं कर पा रही है। इस दृष्टि से सरकार का सुझाव है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 की धारा 3(3ख) में से वसूली मूल्य निर्धारित करने के मामले में "केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन" अभिव्यक्ति निकाल दी जाए और केलव वास्तविक समन्वय सुनिश्चित किया जाए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का वितरण :—

समाज के कमजोर वर्गों के विशेष संदर्भ में जनसाधारण को उचित और उपयुक्त मूल्यों पर अनिवार्य वस्तुओं की उपलब्धता और वितरण सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को संगठित करने तथा उसे मजबूत बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। हालांकि राज्य सरकार ने उचित दर की दुकानों, जिसमें ग्राम स्तर की दुकानें भी शामिल हैं, द्वारा सुगठित वितरण प्रणाली का संगठन करने पर बहुत ध्यान दिया है तथा गहन प्रयास भी किए हैं, लेकिन फिर भी राज्य सरकारें राशन की दुकानों से आपूर्ति करने के लिए खाद्य तेल जैसी आवश्यक वस्तुओं की समुचित मात्रा प्राप्त नहीं कर पाती हैं। अन्य शब्दों में, भारत सरकार द्वारा नियत की गई मात्रा की आपूर्ति मांग को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है। इसलिए निम्न मूल्य पर खाद्य तेलों के मूल्य को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। सम्माननीय मुख्यमंत्री डा० एम० जी० रामचन्द्रन ने देश में पहली बार तमिलनाडु राज्य में निरक्षरता समाप्त करके शिक्षा तथा दोपहर के पोषक भोजन (लगभग 84 लाख बच्चों तथा वृद्ध पेंशनभोगियों को भोजन देना) की अनेक योजनाओं के बारे में विचार किया और वृद्ध तथा अल्पसुविधा-प्राप्त लोगों के कल्याण के लिए योजनाओं का भार वहन करने का दायित्व अपने ऊपर लिया। उक्त सभी योजनाओं में खाद्यान्नों तथा अन्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है। **इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि जहां तक तमिलनाडु राज्य का संबंध है, उक्त कल्याण संबंधी योजनाओं को जारी रखने के लिए मूल्यों का इकतरफा नियंत्रण रखा जाए।**

10.2. भारतीय संविधान की अनुसूची VII की सूची III की प्रविष्टि 33 के अनुसार खाद्य पदार्थों, जिसमें खाद्य तिलहन तथा तेल शामिल हैं, का उत्पादन, आपूर्ति और वितरण को समवर्ती सूची में रखा गया है।

खाद्य और सिविल आपूर्ति के संबंध में निम्नलिखित अधिनियम केन्द्रीय अधिनियम हैं :—

(i) आवश्यक वस्तु (विशेष उपबंध) अधिनियम 1981 द्वारा यथा संशोधित आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955।

(ii) धान कुटाई उद्योग (विनियमन) अधिनियम, 1958।

(iii) भाण्डागारण निगम अधिनियम, 1962।

(iv) उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951।

(v) चोर बाजारी का निवारण तथा आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति का अनुरक्षण अधिनियम, 1980।

उक्त अधिनियमों का तात्पर्य उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुओं का समान वितरण और उपलब्धता को सुनिश्चित करना है तथा इसके साथ ही मूल्यों को भी नियंत्रण में रखना है। ये अधिनियम व्यापारियों द्वारा अनुचित मुनाफाखोरी तथा शोषण रोकने में भी सहायक है।

आवश्यक वस्तु अधिनियम राज्य के खाद्य विभाग का मुख्य आधार है। उक्त अधिनियम की धारा 3 में उत्पादन, आपूर्ति तथा वितरण को नियमित करने अथवा उस पर रोक लगाने के विभिन्न मामलों के संबंध में राज्यों को नियंत्रण आदेश जारी करने का अधिकार दिया गया है। इस धारा के अंतर्गत जारी किए जाने वाले किसी भी नियंत्रण आदेश में धारा 5, जिसमें अधिकारों के प्रत्यायोजन का उपबंध किया गया है, के संदर्भ में भारत सरकार की सहमति अपेक्षित है। धारा 5 के अधीन प्रत्यायोजन वास्तविक प्रत्यायोजन नही है, प्रत्येक समय यदि आदेश जारी किया जाना हो अथवा विद्यमान नियंत्रण आदेश में संशोधन किया जाना हो तो भारत सरकार की पूर्व सहमति प्राप्त करनी पड़ती है। **आवश्यक वस्तुओं पर प्रभावी नियंत्रण रखने तथा उनका उचित वितरण करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि केन्द्र से सहमति प्राप्त किए बिना राज्य सरकार द्वारा उक्त आदेश जारी किए जाएं।**

कमी वाले राज्यों की सहायता करने के लिए भारत सरकार के पास खाद्यान्नों के लिए केन्द्रीय पूल है। यह केन्द्रीय पूल ऐसी मदों को आयात कर सकता है, जिनकी आपूर्ति कम है। इस दृष्टि से भारत सरकार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

तमिलनाडु राज्य खाद्य और आपूर्ति विभागों के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में असुविधा महसूस कर रही है क्योंकि आवश्यक वस्तु अधिनियम केंद्रीय विधान है। राज्य के संशोधनों अथवा अधिसूचनाओं में भारत सरकार की सहमति आवश्यक है। बार-बार भारत सरकार की सहमति प्राप्त करना कार्य में बाधा डालता है। कुछ अधिसूचनाओं पर इस आधार पर आपत्ति की गयी है कि भारत सरकार की सहमति प्राप्त नहीं की गई थी अथवा भारत सरकार से प्राप्त सहमति विनिर्दिष्ट नही थी। खाद्य जैसे नाजुक मामले में तात्कालिक जिम्मेदारी राज्य की होती है। **इसलिए राज्य सरकारों को अधिक अधिकार दिए जाने चाहिए।** उदाहरण के लिए, स्थानीय दशाओं के संदर्भ में वसूली मूल्य राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए।

प्रत्यायोजन के कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं :--

गेहूं पीसने की आटे की मिलें

गेहूं पीसने की आटे की मिल (लाइसेंस और नियंत्रण) आदेश 1957 के अंतर्गत गेहूं पीसने की आटे की मिलों के बारे में भारत सरकार ने 28 फरवरी 1959 तक नियंत्रण कार्यों की देखभाल की। किंतु 1 मार्च 1969 से इन कार्यों को राज्य सरकार को सौंप दिया गया। इन नियंत्रण कार्यों में नए मिल लाइसेंस जारी करने, पहले जारी किए गए मिल लाइसेंसों का नवीकरण करने, गेहूं पीसने की आटे की मिलों को निदेश जारी करने, उक्त आदेश के उपबंधों का उल्लंघन करने के कारण गेहूं पीसने की आटे की मिलों पर शास्तियां अधिरोपित करने, गेहूं पीसने की आटे की मिलों द्वारा बढ़िया माल का विनिर्माण सुनिश्चित करने के लिए निरीक्षण करने तथा अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध की गई अपीलों पर विचार करने के कार्यों को शामिल किया गया। भारत सरकार ने 6 फरवरी 1982 से नए मिल लाइसेंस जारी करने, खराब मिलों पर शास्तियां अधिरोपित करने तथा अनुज्ञापन प्राधिकारी के आदेशों से असंतुष्ट मिलों द्वारा दी गई अपीलों पर विचार करने और उन पर निर्णय करने के अधिकारों को पुन: प्राप्त कर लिया है। भारत सरकार ने गेहूं पीसने की आटे की मिल (लाइसेंस और नियंत्रण) आदेश, 1957 में उपयुक्त रूप में संशोधन करते हुए तथा भारत सरकार के उपसचिव (विकास और विनियमन) खाद्य विभाग, को नए अनुज्ञापन प्राधिकारी के रूप में नियुक्त करते हुए तदनुसार अधिसूचनाएं जारी की हैं। गेहूं पीसने की आटे की मिल (लाइसेंस और नियंत्रण) आदेश 1957 में भारत सरकार द्वारा जारी किए गए संशोधनों के अनुसार अपेक्षित परिवर्तन निम्नलिखित हैं :--

(i) 6 फरवरी 1982 से भारत सरकार को मिल लाइसेंसों को जारी करने के अधिकार प्रदान किया गया। उपसचिव (विकास और विनियमन) खाद्य विभाग की नियुक्ति नए अनुज्ञापन प्राधिकारी के रूप में की गई है। तदनुसार अनुज्ञापन प्राधिकारी की नियुक्ति करने की तारीख से पहले राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए सभी आदेश उसी तारीख से लागू नहीं रहेंगे।

(ii) राज्य सरकारों से अब यह अपेक्षा की गई है कि वे मिल लाइसेंस का नवीकरण आदि करने के लिए उक्त आदेश के खंड 2(ख) के अंतर्गत विनिर्दिष्ट प्राधिकारी की नियुक्ति करते हुए आदेश जारी करें।

(iii) यद्यपि राज्य सरकार लाइसेंसों के नवीकरण का अधिकार बनाए रखेगा फिर भी 12 महीने से अधिक समय के लिए बन्द पड़ी आटे की मिलों के संबंध में लाइसेंसों को नवीकृत करने अथवा लाइसेंस समाप्त हो जाने के बाद 30 दिन के भीतर उसे नवीकृत न कराया गया हो तो नवीकरण से पूर्व इसका हवाला भारत सरकार को देगी।

(iv) मिल के लाइसेंस को समाप्त करने अथवा उसे रद्द करने के संबंध में अब यह अधिकार केन्द्रीय सरकार को दिया गया है, जो संबंधित राज्य सरकार से प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर इस अधिकार का प्रयोग करेगी।

(v) अनुज्ञापन प्राधिकारी अथवा विनिर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए आदेशों के विरुद्ध की गई सभी अपीलें संघ के खाद्य सचिव को प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(vi) लाइसेंस के लिए निदेश जारी करने के अधिकारों को राज्य सरकार (विनिर्दिष्ट प्राधिकारी) द्वारा प्रयोग किए जाने की इस शर्त के अनुसार जारी रखा जाएगा कि ऐसे स्रोत, जिससे तथा जिस तरीके से गेहूं उत्पादों के विनिर्माण के लिए प्राप्त किया जाएगा, के संबंध में कोई भी निदेश इस समय तक केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना राज्य सरकार द्वारा जारी न किया जाए। मिलों को गेहूं का उप-आबंटन तथा कुल प्रतिशत का निर्धारण राज्य सरकार करेगी।

उक्त आदेश के अंतर्गत "विनिर्दिष्ट प्राधिकारी" के अधिकार और कर्तव्य निम्नलिखित हैं :-

(i) मिल के लाइसेंसों का नवीकरण करना अथवा उनका नवीकरण करने से इंकार करना।

(ii) ऐसे स्रोत, जिससे तथा जिस तरीके से गेहूं उत्पादों के विनिर्माण के लिए प्राप्त किया जाएगा, गेहूं उत्पादों की विभिन्न किस्मों के उत्पादन अथवा विनिर्माण और इसके साथ-साथ पैकिंग के आकार, पैकिंग करने के तरीके तथा इसी प्रकार गेहूं उत्पादों के निपटान के संबंध में निदेश जारी करना।

(iii) उक्त आदेश, जिसमें मिल के लाइसेंस को समाप्त करने अथवा उसे रद्द करने का उपबंध है, के खंड 11 के अंतर्गत कार्रवाई करने के लिए उक्त आदेश के उपबंधों तथा मिल के लाइसेंस की शर्तों का अतिक्रमण और उल्लंघन करने के संबंध में अनुज्ञापन प्राधिकारी को सूचना देना।

जब खाद्य से संबंधित सरकारी विभाग के सचिव को अपीलीय अधिकार प्रदान किए गए थे तो सिविल आपूर्ति के संयुक्त आयुक्त को अनुज्ञापन प्राधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। अब लाइसेंस देने के अधिकारों के अतिरिक्त अपीलीय अधिकार भी भारत सरकार ने ले लिए हैं। अब अनुज्ञापन प्राधिकारी भारत सरकार के खाद्य विभाग के उपसचिव (विकास और विनियमन) है और अपील प्राधिकारी संघ खाद्य सचिव हैं। उक्त आदेश के खंड 11 के संशोधित उपबंध के अनुसार "विनिर्दिष्ट प्राधिकारी" से रिपोर्ट प्राप्त हो जाने पर ही मिल के लाइसेंस को समाप्त करने अथवा उसे रद्द करने के संबंध में अनुज्ञापन प्राधिकारी द्वारा कार्रवाई की जाती है।

तमिलनाडु में चावल के बाद गेहूं तथा गेहूं उत्पादों का ही लगभग संपूर्ण जनता द्वारा उपभोग किया जाता है। गेहूं उत्पाद यथा मैदा और सूजी पोषक होने के अलावा गृहणियों द्वारा तुरंत और आवश्यक उपयोग के लिए भी सुप्रसिद्ध हैं। मैदा और सूजी के उत्पादन, नियंत्रण और वितरण पर प्रभावी नियंत्रण केवल तभी रखा जा सकता है यदि गेहूं पीसने की आटे की मिलों पर राज्य सरकार

को नियंत्रण अधिकार हों। प्रभावी प्रशासन के लिए अधिकारों का विकेन्द्रीकरण तथा राज्य सरकारों को अधिक अधिकार देना वांछनीय होगा। लेकिन यहां तक कि ऐसे अधिकारों को भी ले लिया गया है, जिनका राज्य सरकारें निरंतर उपयोग कर रही हैं। गेहूं पीसने की आटे की मिलों पर प्रभावी नियंत्रण रखने तथा उचित उत्पादन को सुनिश्चित करने और ग्राहकों को मैदा और सूजी का वितरण करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार से सामान्य दिशानिर्देशों के अनुसार गेहूं पीसने की आटे की मिलों को लाइसेंस देने के अधिकार दुबारा से राज्य सरकारों को दे दिए जाएं।

दालें

तमिलनाडु में दालों का अभाव है। हमारे राज्य में दालों की आवश्यकता को अधिकांशत: विदेश तथा उत्तरी राज्यों के आयात से पूरा किया जाता है। इन आयातकों में केवल निजी व्यापारियों को ही शामिल नहीं किया गया, अपितु ऐसे कमीशन एजेंटों को भी शामिल किया गया है, जिन्होंने इस राज्य के बाहर व्यापारियों को हमारे राज्य में माल भेजने के लिए राजी किया। दालों का बड़े पैमाने पर आयात होने के कारण मूल्यों को स्थिर रखा गया है।

हाल ही में सरकार ने दालों के व्यापारियों से ऐसे असंख्य अभ्यावेदन प्राप्त किए हैं, जिनमें सरकार से यह अनुरोध किया गया है कि वह दालों, खाद्य तिलहनों तथा खाद्य तेलों (भंडारण नियंत्रण) आदेश 1977 में निर्धारित किए गए अनुसार दालों के स्टाक को उच्चतम सीमा लागू करने से उन्हें छूट प्रदान करे तथा इसके साथ ही वे दालों के स्टॉक की उच्चतम सीमा बढ़ाए जाने के संबंध में भारत सरकार को लिख रहे हैं। भारत सरकार ने ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया है, जिनमें उच्चतम सीमा को बढ़ाए जाने का अनुरोध किया गया है। इस समय दालों, खाद्य तिलहनों तथा खाद्य तेलों (भंडारण नियंत्रण) आदेश 1977 का खंड 4 लागू करने से विदेश से आयात की गई दालों के विशिष्ट परेषण के संबंध में राज्य सरकारों की विशेष सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार द्वारा छूट दी गई है। दालों के थोक विक्रेताओं तथा कमीशन एजेंटों से प्राप्त किए गए ऐसे आवेदनपत्रों की संख्या बहुत अधिक है, जिनमें विदेशों से उनके द्वारा आयात की गई दालों के परेषण के संबंध में संग्रहण सीमा में छूट देने का अनुरोध किया गया है। छूट देने तथा संग्रहण सीमाओं से आयातित स्टॉक को छूट देने की अधिसूचना जारी करने के संबंधों में भारत सरकार को प्रभावित करने में काफी समय का अंतराल शामिल है। इसी बीच प्रवर्तन प्राधिकारियों के लिए यह बात स्पष्ट है कि वे निर्धारित सीमाओं से अधिक स्टॉक रखने वाले व्यापारियों/कमीशन एजेंटों के विरुद्ध कार्रवाई करें और इस बात को मानें कि ऐसा करना नियंत्रण आदेश के उपबंधों का उल्लंघन करना है। ऐसा होने की वजह से दालों का आयात करने वाले व्यापारियों को अनेक कठिनाइयों का अनुभव हुआ है। जब इस सरकार ने प्रवर्तन प्राधिकारियों द्वारा की गई कार्रवाई का समर्थन किया है तो यह माना गया है कि इस स्थिति में सुधार करने की अत्यावश्यकता है। दालें, खाद्य तिलहन तथा खाद्य तेल (भंडारण नियंत्रण) आदेश, 1977 अनिवार्य रूप से जमाखोरी न करने का उपाय है और इसका लक्ष्य निजी व्यापारियों द्वारा दालों की चाहे कितनी भी मात्रा का आयात किया गया हो को बाजार में लाया जाए। दाल, खाद्य तिलहन तथा खाद्य तेल (भंडारण नियंत्रण) आदेश 1977 के खंड 7क में केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से राज्य सरकार द्वारा संग्रहण सीमाओं में छूट देने के संबंध में उपबंध किया गया है। ऐसे मामले, जिनमें छूट दिए जाने की प्रामाणिकता को मान लिया गया हो, में यदि भारत सरकार को हवाला दिए बिना ही दालों के स्टॉक की उच्चतम सीमा में छूट दिए जाने का अधिकार राज्य सरकार को दे दिया गया तो इससे उचित मूल्य पर ग्राहकों को दाल उपलब्ध कराने के अतिरिक्त व्यापारियों को भी बहुत लाभ होगा।

मिट्टी का तेल

इस समय मिट्टी के तेल की थोक बिक्री का व्यापार भारत सरकार द्वारा उसकी तेल कंपनियों को दे दिया गया है। वर्ष 1979 में भारत सरकार के मिट्टी के तेल के आबंटन में कमी होने तथा इसके परिणामस्वरूप मिट्टी के तेल का अभाव हो जाने के कारण उसकी उपलब्ध मात्रा का समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए राशन कार्डों पर तेल वितरित किया जाता है। इस राज्य में मिट्टी के तेल के खुदरा वितरण का कार्य तमिलनाडु सिविल आपूर्ति निगम तथा सहकारी समितियों को दिया गया है। ये संस्थाएं राशन कार्ड धारकों को मिट्टी का तेल वितरित करने के लिए निजी थोक विक्रेताओं से तेल लेती हैं। मिट्टी का तेल ऐसी आवश्यक वस्तु है, जिसकी समाज के कमजोर वर्गों को खाना पकाने तथा प्रकाश के लिए ईंधन के रूप में जरूरत होती है। इस राज्य में राज्य सरकार मिट्टी के तेल के खुदरा वितरण की देखभाल तो कर रही है, लेकिन उसे थोक बिक्री डिपो के स्थान निर्धारण तथा उसकी स्थापना के संबंध में आदेश देने के कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं है। ऐसा इन्हीं बातों के औचित्य में होगा कि नए थोक बिक्री व्यापारियों को नियुक्त करने के अधिकार राज्य प्रशासन को दे दिए जाने चाहिए। तमिलनाडु सिविल आपूर्ति निगम तथा सहकारी समितियों के पूरे राज्य में फुटकर दुकानों (17,926 उचित मूल्य की दुकानें) का नेट वर्क है, जिसमें साधारण जनता को आवश्यक वस्तुएं वितरित की जाती हैं। जब कभी भी तथा जहां कहीं भी प्रस्ताव किया गया हो, तमिलनाडु सिविल आपूर्ति निगम तथा सहकारी समितियों को मिट्टी के तेल की थोक बिक्री करने के लिए तैयार किया गया है। जहां तक कि यदि विशेष थोक बिक्री की दुकान खोलना आर्थिक रूप से व्यवहार्य न हो तो तमिलनाडु सिविल आपूर्ति निगम साधारण जनता के हितों को पूरा करने तथा खुदरा दुकानों को बेरोकटोक आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए उक्त थोक व्यापार का उत्तरदायित्व भी ले सकती है।

हमारे सुझाव को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार स्वयं को प्रमुख नीतियों, अंतः राज्य लेनदेन और आयात आदि तक परिसीमित रखे। सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा सिविल आपूर्ति के मामले यदि राज्य को सौंप दिए जाएं तो इससे बेहतर कार्य किया जाएगा।

11.1 हम 11.1 से 11.5 तक क्रमानुसार प्रश्नों का उत्तर देने के बजाए "शिक्षा" विषय पर समेकित टिप्पणी प्रस्तुत करने के कार्य को तरजीह देंगे। इसके बाद दी गई टिप्पणी में हमने संविधान के बयालीसवें संशोधन से पहले तथा बाद में सांविधानिक स्थिति; 1950 के पहले तथा बाद में "शिक्षा" विषय से संबंधित ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य; राज्य सूची में शिक्षा को पुन: प्रतिष्ठित किए जाने की आवश्यकता, तमिलनाडु राज्य द्वारा अपनाई गई भाषा नीति, राज्य के विश्वविद्यालयों तथा कालेजों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता देने के असमानता तथा संविधान के अनुच्छेद 25 और 30 के वास्तविक लक्ष्य को पुन: निश्चित करने की आवश्यकता के संबंध में विचार-विमर्श किया है।

क. संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम 1976 के पहले तथा बाद में सांविधानिक स्थिति।

42वां संशोधन करने से पहले तथा बाद में भारतीय संविधान की VII अनुसूची में दिए गए अधिकारों की सूची में प्रारंभ संबद्ध मदों को लिपिबद्ध करना लाभप्रद होगा।

42वां संशोधन करने से पहले संघ सूची (सूची-I)	42वां संशोधन करने के बाद संघ सूची (सूची-I)
63. इस संविधान के प्रारंभ होने पर निम्नलिखित रूप में जानी गई संस्थाएं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लीम विश्व विद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय, अनुच्छेद 371 के अनुसार स्थापित विश्वविद्यालय, संसद द्वारा घोषित की गई अन्य कोई ऐसी संस्था, जिसे विधि अनुसार राष्ट्रीय महत्व की संस्था माना जाता है।	
64. भारत सरकार द्वारा पूर्णत: अथवा अंशत: वित्तपोषित वैज्ञानिक अथवा तकनीकी शिक्षण की संस्थाएं और संसद द्वारा घोषित की गई ऐसी संस्था, जिसे विधि अनुसार राष्ट्रीय महत्व की संस्था माना जाता है।	

65. निम्नलिखित के लिए संघ एजेंसियां और संस्थाएं :— (क) ऐसे व्यावसायिक अथवा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए, जिसमें पुलिस अधिकारियों का प्रशिक्षण भी शामिल है; अथवा (ख) विशेष अध्ययन अथवा अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए; या (ग) जांच-पड़ताल अथवा अपराध का पता लगाने में दी गई वैज्ञानिक अथवा तकनीकी सहायता के लिए। 66. समन्वयन और निर्धारण अथवा उच्च शिक्षा या अनुसंधान के लिए संस्थाओं का स्तर तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाएं।	63 से 66 : 42वां संशोधन करने से पहले उपर्युक्त के अनुसार।]

42 वां संशोधन करने से पहले राज्य सूची (सूची II)	42वां संशोधन करने के बाद राज्य सूची (सूची II)
11. शिक्षा, इसमें सूची I की प्रविष्टियों 63, 64, 65 और 66 तथा सूची III की प्रविष्टि 25 के उपबंधों के अनुसार विश्वविद्यालयों को भी शामिल किया गया है।	मद II को काट दिया गया है।

समवर्ती सूची (सूची III)	समवर्ती (सूची (सूची III)
25. श्रमिक का व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण।	25. शिक्षा, इसमें तकनीकी तथा चिकित्सा संबंधी शिक्षा और सूची I की प्रविष्टियों 63, 64, 65 और 66 के उपबंधों के अनुसार विश्वविद्यालयों तथा श्रमिक के व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण को भी शामिल किया गया है।

ख. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

I. 1950 तक

हमारे देश में पिछले 130 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र और राज्य के संबंधों की बहुत ही विचित्र स्थिति देखने में आई है। 1833 से पहले हम पूर्णतया ऐसी विकेन्द्रीकरण की स्थिति में थे, ब्रिटिश साम्राज्य की तीनों प्रेसीडेंसियों ने अपनी शिक्षा-नीति अपनाई जो कि लंदन में निदेशकों की अदालत के केवल दूरस्था तथा असामूहिक पर्यवेक्षण के अधीन थी। 1933 का चार्टर अधिनियम अन्य अंतिम छोर पर पहुंच गया और इस अधिनियम ने देश में प्रशासन का अत्यधिक केन्द्रीकृत रूप बनाया तथा इसके अंतर्गत किसी अन्य विषय की तरह शिक्षा का विषय भी भारत सरकार की जिम्मेदारी हो गया। उदाहरण के लिए इस अवधि के दौरान प्रांतों में लोक निदेश के निदेशकों ने यह शिकायत की कि वे कलकत्ता की इंपीरियल सरकार की संस्वीकृति के बिना एक रुपया भी खर्च नहीं कर सकते। इस प्रकार यह केन्द्रीकरण की अति की अवधि थी। 1870 में लार्ड मेयो ने प्राधिकार के विकेन्द्रीकरण की अवधि की शुरुआत की। यह विकेन्द्रीकरण 1918 तक धीरे-धीरे बढ़ता रहा और उस समय तक प्रान्तीय सरकारों ने शिक्षा पर बहुत अधिकार प्राप्त कर लिए हालांकि आवश्यक मामलों में भारत सरकार ने अपने यथेष्ट पर्यवेक्षी अधिकारों का प्रयोग जारी रखा। इसके अतिरिक्त भारतीय शिक्षा सेवा भी थी, जो 1897 में प्रारंभ की गई और जिसके अधिकारियों ने सभी प्रांतीय शिक्षा विभागों में आवश्यक पदों को भरा। इसलिए इस अवधि को सीमित लेकिन आवश्यक केन्द्रीय नियंत्रण सहित व्यापक विकेन्द्रीकरण की अवधि के रूप में माना जा सकता है।

सन् 1919 के भारत सरकार के अधिनियम ने और अधिक आमूल परिवर्तन किए। इससे बहुमत से मनोनीत किए गए विधानमंडल के लिए उत्तरदायी भारतीय मंत्रियों के नियंत्रण में प्रांतों में द्वैध शासन प्रारंभ हुआ। इसलिए इसके निष्कर्ष रूप में शिक्षा पर केन्द्रीय नियंत्रण यदि पूर्णतः हटाया न गया हो तो भी इसे न्यूनतम तक कम करना होगा। इसके परिणामस्वरूप जो कुछ भी हुआ उसे हारटोग समिति शिक्षा और भारत सरकार के बीच "विच्छेद" कहती है। यह स्थिति 1950 तक बनी रही, हालांकि 1935 के बाद केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की पुनः स्थापना करके उक्त उपायों से भारत सरकार को उसी स्थिति में वापस लाने के लिए कुछ असंगत प्रयास भी किए गए।

(II) 1950 से

1950 में संविधान को अपनाने से स्थिति में कुछ सीमा तक परिवर्तन हुआ। भारत सरकार अधिनियम 1919 अथवा 1935 की अपेक्षा अब शिक्षा के संबंध में भारत सरकार को बहुत अधिकार प्राप्त हो गए थे और उच्च-शिक्षा में समन्वय करना तथा स्तर बनाए रखना केन्द्र की जिम्मेदारी हो गई थी। केंद्रीकरण की ओर इस झुकाव की तीन बाह्य घटकों से अनुचित रूप से समर्थन किया गया यथा (1) योजना आयोग के परिणामी सृजन तथा पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण, जिसमें केन्द्र और राज्य दोनों के ही विकास संबंधी कार्य शामिल है, के साथ विकास को तकनीक के संबंध में योजना अपनाना, (2) विशेष शिक्षा योजनाओं के लिए चिन्हित बड़े केन्द्रीय अनुदानों की संख्याएं, (3) केन्द्र और राज्य में सत्तारूढ़ उसी पार्टी की राजनीतिक घटनाएं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि 1967 तक शिक्षा, जोकि सांविधानिक रूप से राज्य का विषय है, को सार रूप में समवर्ती विषय के रूप में उस पर नियंत्रण किया गया।

42वां संशोधन होने से पहले केन्द्रीय सरकार का शिक्षा पर यथेष्ट नियंत्रण था। उच्चतम न्यायालय ने संघ सूची की मद 66 के अंतर्गत समन्वय करने के अधिकार की व्याख्या इस प्रकार की कि "यह अधिकार केवल मूल्यांकन करने के लिए ही नहीं, अपितु सख्त कार्यवाही के लिए संबंधों में सामंजस्य स्थापित करने या उन्हें सुनिश्चित करने के लिए भी था।" 1968-69 में संघ शिक्षा मंत्रालय के प्रशासन की रिपोर्ट में अभिव्यक्त किए गए केन्द्रीय सरकार के विचार निम्नलिखित थे :—

> "संविधान में शिक्षा को अनिवार्य रूप से राज्य का विषय बनाया है, लेकिन भारत सरकार को यथेष्ट जिम्मेदारियां भी दी हैं। उदाहरण के लिए संघ सरकार केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, राष्ट्रीय महत्व की सभी संस्थाओं हिंदी के संवर्धन, बढ़ावा तथा प्रचार, उच्च शिक्षा में समन्वय करने तथा स्तर बनाए रखने, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा और अनुसंधान तथा विदेश में रह रहे भारतीय विद्यार्थियों के कल्याण और अन्य देशों के साथ उनके सांस्कृतिक तथा शिक्षा संबंधी समझौतों के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेवार है। सामाजिक और आर्थिक योजना, जिसमें शैक्षिक योजना भी शामिल होती है, समवर्ती जिम्मेवारी है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों, की शिक्षा के संबंध में केन्द्र को विशेष जिम्मेवारियां भी दी गई हैं।"[7]

(ग.) राज्य सूची से शिक्षा हटाने के संबंध में की गई कार्रवाइयां (42वां संशोधन होने तक असफल)

2 सितंबर 1949 को भारत की संविधान सभा में संविधान के प्रारूप की संबद्ध प्रविष्टियों पर विचार-विमर्श किया गया और राज्य सूची से शिक्षा हटाए जाने के संबंध में गलत और व्यर्थ सुझाव दिए गए। श्री टी० टी० कृष्णामाचारी ने निम्नलिखित शब्दों में उनके तर्कों का खण्डन किया गया—"जहां तक प्रारूप समिति का संबंध है, मैं तुरंत इस बात का खंडन करूंगा कि केन्द्र को अधिक क्षमता देने या प्रांतों को छोड़ दिए जाने के संबंध में कोई विचार है। जिस सीमा तक हम काम करने के योग्य हैं और हमने जो कुछ भी किया केवल यही देखने के लिए किया गया है कि केन्द्र को केवल वही अधिकार दिए जाते हैं, जो प्रांतों के कार्यों का समन्वय करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हैं। मेरे सम्माननीय मित्र, जिन्होंने "शिक्षा" को समवर्ती सूची में शामिल करने या फिर शिक्षा के संबंध में प्रविष्टि 18 के विस्तार को सेकेण्डरी कक्षा तक सीमित करने के लिए ये संशोधन किए हैं यदि सूची- I में शिक्षा से संबंधित मदों का अवलोकन करने में प्रसन्न हैं तो उन्हें इस बात की जानकारी हो जाएगी कि हमने जो व्यवस्था की है, सदन ने उन उपबंधों को स्वीकार कर लिया है, जो उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक

शिक्षा तथा इसके साथ ही वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में राज्यों के शिक्षा संबंधी कार्यकलापों का समन्वय करने में केन्द्र को अधिक अधिकार प्रदान करते हैं। अर्थात जहां तक केन्द्रीय सरकार की सीमा निश्चित है, उस सीमा से परे जाना केन्द्रीय सरकार की समझदारी नहीं होगी।

"मैं समझता हूं कि यही सही होगा जिसे हम संभवत: कर सकते हैं कि हम इस विचार पर दृढ़ रहें कि राज्यों के पास अपनी स्वयत्ता के लिए बहुत से उपाय हैं और केन्द्र को सुरक्षा, रक्षा और सामान्यत: देश की भलाई जैसे विषयों पर ही कार्रवाई करनी चाहिए और अन्य बातों को राज्यों के लिए छोड़ देना चाहिए।"

बाद में राज्य-सूची से शिक्षा को हटाए जाने अर्थात् राज्य-सूची से उच्च-शिक्षा के समवर्ती सूची में अंतरण के संबंध में सप्रू समिति 1935 की सिफारिश शिक्षा को पूर्ण रूप से समवर्ती सूची में अंतरित करने के लिए एस० सी० सामंत के संविधान (संशोधन) बिल 1971 के संबंध में समय-समय पर अविवेकी सुझाव दिए गए। इनमें से कोई भी प्रयास सफल नहीं हुआ क्योंकि केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार, दोनों ही उक्त अनुचित कार्यवाही के विरुद्ध थीं। लेकिन 42वां संशोधन पारित करने से प्रत्यक्ष रूप से ऐसी अवांछनीय स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें शिक्षा को समवर्ती सूची में रख दिया गया है।

(घ) राज्य-सूची में शिक्षा के बने रहने की आवश्यकता

यहां तक कि युनाइटेड किंगडम जैसे छोटे राष्ट्रों, जिनमें एकक संविधान है, के ज्ञात जनमत शिक्षा जैसे क्षेत्र में केन्द्रीयकृत नियंत्रण के विरुद्ध हैं। सी० नारथियोटे पर्किंसन ("दि ला आफ डिलेंजान मुरे, लंदन 1970" "राज्य और अधिकार" अध्याय देखें) के निम्नलिखित विचार को जानना रोचक होगा :—

"स्वास्थ्य और आवास की चर्चा पेरिस या रोम में समय होने पर भी नहीं की जानी चाहिए बल्कि उन्हीं मामलों पर विचार किया जाना चाहिए जो वास्तव में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हैं। हमारी वर्तमान नीति अप्रान्त स्तर पर पहल को समाप्त करना है ताकि केन्द्र में कार्य व्यापार के लिए समय न बचे--"

"पागलखाने से आकर तो कोई ऐसी पद्धति का प्रस्ताव नहीं रखेगा जिसके द्वारा एक शिक्षा नीति जिस पर एडिनवर्ग में सहमति हो गई हो, लंदन में आकर बहस का विषय बन जाए। बुद्धिभ्रम इसी में दिखाई पड़ता है जिसे कि कोई औसत बुद्धि वाला भी जान सकता है। हमारा प्रशासन जैसा है काफी क्लेशप्रद है। इसके अतिरिक्त भारी जटिलताएं तो आत्महत्या के समान हैं।"

भारत जैसे विराट देश में जहां संघीय संविधान है शिक्षा को समवर्ती सूची में बनाए रखने की बात और भी अबुद्धिमत्ता पूर्ण होगी जबकि भारत के संविधान की नीव रखने वाले हमारे अंग्रेजों ने शिक्षा को राज्य सूची के अधीन सही जगह पर रखा था।

एक भूतपूर्व शिक्षा मंत्री, डा० बी० के० आर० वी० राव ने 1970 में स्वयं इस बात का हवाला दिया कि पहले (जब शिक्षा राज्य सूची में थी) भी ऐसी शिकायतें थीं कि केन्द्र द्वारा प्रवर्तित क्षेत्र में गैर अनिवार्य योजनाओं को शामिल किया गया, केन्द्रीय निधियों का उपयोग संदिग्ध महत्व की योजनाओं में किया जाता है, या केन्द्र के अधिकारियों का अत्यधिक प्रभुत्व, अनावश्यक लालफीताशाही के लिए फालतू खर्च और मानकीकृत विनियमों में समरूपता के उदाहरण। केन्द्र द्वारा प्रवर्तित क्षेत्रों में लागू होने वाली उपर्युक्त आपत्तियां समान रूप से शिक्षा को समवर्ती सूची में रखने पर भी लागू होती हैं।

शिक्षा के स्वस्थ विकास के लिए यह सहायक होगा कि यदि केन्द्र सरकार अन्य चीजों में से केन्द्र प्रवर्तित और केन्द्रीय क्षेत्र योजनाओं के परिव्यय के आकार को कम कर दें (परन्तु इसके बदले राज्यों में बराबरी के आधार पर निधि का आवंटन कर दे), राज्यों द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं की दुगना न करें (अर्थात् केन्द्रीय स्कूल आदि बनाकर); और विभिन्न राज्यों में समान वितरण हो और उच्च शिक्षा और भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओं के विकास के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आदि के माध्यम से निधियों को भाषायी ग्रुपों में बांटा जाए;

भाषा की समस्या

23 जनवरी, 1968 को हुई विशेष बैठक में तमिलनाडु विधान सभा के अधिवेशन का पालन करते हुए तमिलनाडु (जनवरी 1968 से) निरंतर द्विभाषा के ऐसे फार्मूले का पालन कर रहा है, जिसके अंतर्गत तमिलनाडु के स्कूलों में अध्ययन की जाने वाली भाषाएं निम्नलिखित हैं :—

भाग-क—क्षेत्रीय भाषा (अथवा मातृ भाषा, यदि यह क्षेत्रीय भाषा से भिन्न हो)।

भाग-ख—अंग्रेजी अथवा अन्य अभारतीय भाषा

भाग-क की भाषा कक्षा I से तथा भाग-ख की भाषा कक्षा III से सिखाई जाती है। दोनों ही भाषाओं में परीक्षाएं अनिवार्य हैं।

23 जनवरी, 1968 को भाषा की समस्या पर तमिलनाडु विधान सभा द्वारा पारित किए गए संकल्प में तमिलनाडु के लोगों की आशंका के बारे में यह बताया गया है कि हिन्दी जो उन क्षेत्रीय भाषाओं में से एक भाषा है, जिसे राजभाषा के रूप में अपनाया गया है, यह हिन्दी भाषा भारत की एकता तथा अखंडता को भंग कर देगी और इससे अन्य भाषा के क्षेत्रों पर एक भाषा का अधिकार हो जाएगा। तमिल तथा अन्य राष्ट्रभाषाओं को संघ की राजभाषा के रूप में अपनाना चाहिए और तदनुसार संविधान में संशोधन किए जाने चाहिए और जब तक यह कार्य नहीं कर लिया जाता तब तक केवल अंग्रेजी को ही राजभाषा के रूप में जारी रखना चाहिए इस बात पर भी जोर दिया गया कि यह पता लगाने के लिए अर्थोपाय सोचे जाने चाहिए कि अहिन्दी क्षेत्रों के लोगों को कोई नुकसान न हो, संकल्प में इस बात का भी उल्लेख किया गया कि सरकार की हिंदी लागू करने की स्कीम को स्वीकार नहीं करता। संकल्प में यह भी बताया गया है कि त्रिभाषा फार्मूले को बेकार घोषित कर दिया जाना चाहिए और एन०सी०सी० तथा अन्य समान कोर में कमान के हिंदी शब्द प्रयोग नहीं किए जाने चाहिए।

2. 7 जुलाई, 1977 को राज्यपाल ने तमिलनाडु विधान मंडल को संबोधित करते हुए निम्नलिखित घोषणा की थी :—

"मेरी सरकार की यह दृढ़ नीति होगी कि वह ऐसा द्विभाषा फार्मूला कार्यान्वित करे, जो हमारे स्वर्गीय मुख्यमंत्री अन्ना द्वारा प्रस्तुत किया गया था। तथा सर्वसम्मति से इसी सभाद्वारा स्वीकार किया गया था यह फार्मूला पूर्ण रूप से तमिलनाडु के लोगों की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व प्रतिबिंबित करता है।"

इसलिए इस सरकार का यह सुझाव है कि अंग्रेजी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाना चाहिए और आठवीं अनुसूची की सभी भाषाओं को संघ की राजभाषा के रूप में घोषित किया जाना चाहिए। जब तक यह निर्णय नहीं कर लिया जाता तब तक केन्द्र और राज्य के बीच सम्पर्क और राज्यों में पारस्परिक सम्पर्क के लिए अंग्रेजी का प्रयोग संघ की राजभाषा के रूप में करना चाहिए।

3. संघ सरकार भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट सभी भाषाओं के विकास के संबंध में समान वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए।

4. तमिल संस्कृत के समान या की अपेक्षा प्राचीन शास्त्रीय भाषा है। इसके अतिरिक्त अब तमिल भारत के केवल 5 करोड़ लोगों द्वारा ही नहीं बोली जाती, अपितु भूमंडल के विविध भागों जैसे श्रीलंका, मलेशिया, मारीशस, फिजी द्वीप में कुछ और करोड़ों लोगों द्वारा बोली जाती है। उत्तरी भारत की भारतीय आर्य भाषाओं में संस्कृत का वही स्थान है जो दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाओं में तमिल के अनुरूप है। इसलिए संघ सरकार को तमिल के अध्ययन को बढ़ाने के लिए उसी तरीके से सहायता प्रदान करनी चाहिए, जिस तरीके से संस्कृत के अध्ययन के लिए सहायता दी जाएगी।

विश्वविद्यालयों तथा कालेजों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता के अंतरण में अन्त: राज्य असमानता है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की राशि का अधि भाग प्राप्त किया है, और अन्य विश्वविद्यालयों का हिस्सा कम है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अखिल भारतीय स्वरूप के अधिक विश्वविद्यालय नहीं हैं (क्योंकि सामान्यत: केवल संबंधित इलाकों के विद्यार्थी ही इन विश्वविद्यालयों में शामिल होते हैं) इन परिस्थितियों में उच्च शिक्षा के लिए केन्द्रीय निधियां वितरित करने के संबंध में एक ऐसा समान फार्मूला निकालना पड़ेगा, जो राज्यों के विश्वविद्यालयों तथा कालेजों द्वारा किए गए दावों के संबंध में निर्णय देगा।

संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के अंतर्गत उपबंधों, जोकि अल्पसंख्यकों की सांप्रदायिक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रबंध के अधिकारों से संबंधित है, को प्रतिबंधित करते हुए उनकी अधिक कठोरता से परिभाषा दिए जाने की आवश्यकता है, ताकि अल्पसंख्यकों के वास्तविक हितों की रक्षा की जा सके। उन उपबंधों, को अब विद्यमान हैं (तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा जैसी उनकी व्याख्या की गई है) का अधिक. र दुरुपयोग हुआ है।

उक्त उपबंधों की पुन: परिभाषा देकर इस स्थिति में सुधार किया जाए।

राज्यपाल की भूमिका उसके अधिकारों का विस्तार और सीमा

जहां तक शिक्षा का संबंध है तो ऐसे कार्यों, जिन्हें वह निष्पादित करता है तथा ऐसे अधिकारों, जिनका वह अपनी हैसियत से प्रयोग करता है, के संबंध में राज्यपाल की वही भूमिका होती है, जोकि राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलपति की होती है।

2. कन्वेन्शन के अनुसार तमिलनाडु के सभी विश्वविद्यालयों में राज्यपाल ही कुलपति है। विश्वविद्यालयों से संबंधित संविधि के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति उसकी व्यक्तिगत हैसियत से नहीं की गई है, अपितु यह नियुक्ति पदेन है। वह केवल उतने समय तक ही कार्य करता है, जितने समय तक वह राज्यपाल के पद पर बना रहता है। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि केवल राज्यपाल के पद पर होने के कारण ही वह कुलपति के रूप में कार्य करता है। कुलपति के रूप में राज्यपाल के कार्यों के संबंध में भिन्न-भिन्न राय ये थीं कि उसे राज्यपाल के विवेक से कार्य करना चाहिए अथवा संविधान के अनुच्छेद 163 के अंतर्गत लिपिक-वर्ग की सलाह से कार्य करना चाहिए। विश्वविद्यालय अधिनियम के उपबंधों के अनुसार उक्त सांविधिक पद पर राज्यपाल की नियुक्ति इसलिए की गई है, क्योंकि वह राज्य सरकार का प्रमुख व्यक्ति है और संभावित रूप से यह विचार है कि राज्य के प्रमुख व्यक्ति के रूप में वह मनोनीत सरकार के विचारों को व्यक्त करेगा और चूंकि उसी रूप में सीधे राज्य सरकार के पक्ष में उक्त नियुक्ति करना संभव नहीं होगा। यदि यह विचार सही है तो राज्यपाल को अनुच्छेद 163(3) के अंतर्गत कार्यों राज्य सरकार के कार्य तथा अनुच्छेद 163 (1) के अंतर्गत कार्यों के अर्थ में शामिल किया गया माना जाएगा।

3. जहां तक विश्वविद्यालय के मामलों का संबंध है विविध सांविधिक निकायों के कुलपति की नियुक्ति करते समय तथा व्यक्तियों को नामित करते समय राज्यपाल की भूमिका कुलपति के रूप में होती है।

लोकतंत्र के लिए यह अच्छा प्राख्यापन होगा कि इस संबंध में राज्यपाल ऐसे मंत्रि-परिषद की सलाह पर कार्य करे, जो अपने विवेक की अपेक्षा जनता का विश्वास (जब तक वे मंत्री होते हैं) प्राप्त किए हुए होती हैं। यह विश्वविद्यालय के मामलों में सरकार के विचार बताने के संबंध में प्रासंगिक रूप से कुलपति तथा अन्य सदस्यों की सहायता करेगा। प्रश्न 3.1 (भाग IV-राज्यपाल की भूमिका) का उत्तर देने में आगे स्पष्टीकरण के लिए सरकार के विचार को ध्यान से पढ़ा जा सकता है।

अन्त: सरकारी समन्वय

12.1 इस प्रकार का यह विचार है कि हमारे देश में अंत: सरकारी संबंधों का परामर्श, आयोग (ए सी ई आर), जैसी संस्थाएं खोली जानी चाहिए, जिसमें ऐसी समस्याओं के संबंध में तत्काल कारंवाई की जाएगी, जो भारत में केन्द्र राज्य संबंधों के विषय में उत्पन्न होंगी, हमने पहले ही यह विचार अभिव्यक्त कर दिया है कि संविधान के अस्तित्व में आने के बाद से अंत: राज्य परिषद् के गठन के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 263 में स्पष्ट उपबंध के होते हुए भी उक्त अन्त: राज्य परिषद के बारे में न तो सोचा गया है और न ही कभी इसके गठन के संबंध में विचार किया गया है। उक्त परिस्थितियों में तथा जैसे कि अनुच्छेद 263 में अपेक्षित अन्त: राज्य परिषद् के गठन की कोई संभावना नहीं है और यदि इस परिषद् का गठन कर भी लिया गया है तो लोगों की इच्छाओं के अनुसार उसे कार्यशील नहीं बनाया गया है। इस सरकार का यह विचार है कि विविध राज्यों तथा केन्द्र में समन्वय तथा सहयोग की भावना में यथाशीघ्र सुधार लाने के संबंध में अंत: राज्य सरकारी संबंधों पर सलाहकार आयोग की स्थापना करना मुख्य साधन होगी।

इसके संघटन के संबंध में यह सरकार सुझाव देती है कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में सभी राज्यों के मुख्य मंत्रियों का गठन किया जा सकता है।

उक्त सलाहकार आयोग की सिफारिशों को संविधान के अनुच्छेद 281 में यथा उपबंधित वित्त आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के बराबर माना जाएगा, इसके परिणामस्वरूप इन सिफारिशों के साथ-साथ सलाहकार आयोग की निर्धारित की गई कारंवाई के विषय में व्याख्यात्मक ज्ञापन के सहित उक्त सिफारिशों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। इसे ध्यान में रखते हुए संयुक्त राज्य अमरीका के समान संस्थान जिसने समय की चुनौती का सफलता से सामना कर लिया है कि स्थापना की जाए जो केवल भारत के लोगों विशेषक तमिलनाडु राज्य के लोगों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करेगा बल्कि केन्द्र और राज्य के बीच कभी-कभी या अन्यथा उत्पन्न होने वाले तनाव और समस्याओं पर तुरंत और शीघ्र विचार तथा निपटान का साधन बनेगा।

सिफारिशों का सार

प्रारंभिक।

तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्य मंत्री डा० सी० एन० अन्नादुरई ने भारतीय संविधान की समीक्षा तथा उसका पुन: मूल्यांकन करने की आवश्यकता पर इसलिए जोर दिया, ताकि संसाधनों का वितरण करने में गंभीर असंतुलन की स्थिति को दूर किया जा सके और सही संघवाद की स्थापना करने के विचार से विधायी, वित्तीय और अन्य क्षेत्रों में राज्यों के अधिक अधिकार सुनिश्चित किए जा सकें। वर्तमान मुख्य मंत्री डा० एम० जी० रामचन्द्रन ने केन्द्र-राज्य संबंधों तथा विशेष रूप से विधायी, प्रशासनीक तथा वित्तीय क्षेत्रों में राज्य को अधिक अधिकार देने के संबंध में संविधान की समीक्षा करने की आवश्यकता का भी उल्लेख किया है।

तमिलनाडु सरकार का यह दृढ़ विचार है कि भारत को सही संघ बनाया जाए और इसमें केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकार समान तथा स्वतंत्र भागीदार होंगी तथा अवशिष्ट विधायी अधिकार जिसमें अवशिष्ट कराधायक अधिकार भी शामिल है, राज्य सरकार को प्रदान किए जाए और केन्द्रीय सरकार को केवल सीमित अधिकार ही दिए जाए। विद्यमान सांविधिक गठन में इसलिए संशोधन किया जाना चाहिए ताकि उन अधिकारों का विकेन्द्रीकरण सुनिश्चित किया जा सके, जो अब केन्द्र को प्राप्त हैं तथा राज्य को वित्त के अलावा विधायी तथा प्रशासनिक, दोनों ही क्षेत्रों में अधिक स्वायत्त बनाया जाना चाहिए।

उपर्युक्त लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए तमिलनाडु की सरकार ने सरकारिया आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली का उत्तर दिया है। सिफारिशों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :—

भाग I

परिचायक

हालांकि हमारे संविधान की आधारिक संरचना को स्वरूप से संघीय संरचना कहा गया है, लेकिन फिर भी कुछ ऐसे उपबंध हैं जो अन्य संविधान में नहीं हैं तथा जो एक निश्चित सीमा तक हमारे संविधान को ईकाई बनाते हैं, संघीय नहीं। अनुच्छेद 256, 257, 356, 365, 200 और 201, 31-ग, 31-क(1), 254 (2) और 304(ख) के उपबंधों के परतुक में लोगों तथा विधिवेत्ताओं द्वारा की गई इस स्थायी टिप्पणी की पुष्टि की गई है कि हमारा संविधान पूर्णतया संघीय नहीं है।

लगभग 35 वर्ष पूर्व संविधान निर्माताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए संविधान में कुछ अरुचिकर अनुच्छेदों से राज्यों की स्वायत्ता समाप्त हो गई है। ऐसी कठिनाइयां, तनाव और समस्याएं, जो संघ राज्य संबंध में उत्पन्न हुई, हमारे संविधान में वर्तमान में परिकल्पना की गई योजनाबद्ध योजना तथा मूलभूत ढांचे में वास्तविक दोषों के कारण हैं। केन्द्र की सदाशयता पर राज्य की स्वायत्ता को नहीं बनाए रखा जा सकता।

इसलिए समुचित परिपाटियां और कार्यविधियां प्रस्तुत करना हितकर होगा तथा जहां कहीं भी आवश्यक हो संविधान के उपबंधों में उपयुक्त रूप से संशोधन करते हुए केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव तथा मनमुटाव दूर करने और उनमें मैत्री तथा सामंजस्य बनाए रखने का समय अब आ गया है। सत्य यह है कि सही

10. खोजें :

11. रक्षा उद्योग :

आयुध और गोला बारूद

53. निकाल दिया गया

54. निकाल दिया गया

55. निकाल दिया गया

56. अन्तर राज्यीय नदियों और घाटियों का विनियमन और विकास, भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग को अन्तर-राज्यीय नदियों के जल का पथान्तर और अन्तर राज्यीय नदियों के जलों का राज्यों (किन्तु राज्यों में हो रहे उपयोग को न शामिल करते हुए) के बीच प्रभाजन इस सीमा तक कि संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन, विकास, पथान्तर और प्रभाजन के संबंध में लोक हित में समाचोचित विधि द्वारा संसद ने घोषणा की हो ।

57. राज्यक्षेत्रीय सागरखण्ड से बाहर मछली पकड़ना और मत्स्य उद्योग ।

58. संघीय एजेंसियों द्वारा नमक का विनिर्माण, पूर्ति और वितरण ।

59. अफीम के निर्यात के लिए उसकी खेती, विनिर्माण और बिक्री ।

60. निकाल दिया गया है ।

61. संघ के कर्मचारियों से संबंधित औद्योगिक विवाद ।

62. इस संविधान के प्रारंभ पर नेशनल लाइब्रेरी, इण्डियन म्यूजियम, द इम्पीरियल वार म्यूजियम, द विक्टोरिया मेमोरियल और इण्डियन वार मेमोरियल नामों से ज्ञात संस्थाएं और भारत सरकार द्वारा पूरी तरह से वित्त पोषित इसी प्रकार की कोई अन्य संस्था ।

63. इस संविधान के प्रारंभ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं अनुच्छेद 371 (ड) के अनुसरण में स्थापित विश्वविद्यालय ।

64. भारत सरकार द्वारा पूरी तरह से वित्त पोषित वैज्ञानिक अथवा तकनीकी शिक्षा संस्थाएं ।

65. निम्नलिखित के लिए संघ एजेंसियां और संस्थाएं--

(क) पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण सहित व्यावसायिक, रोजगार संबंधी अथवा तकनीकी प्रशिक्षण; अथवा

(ख) विशेष अध्ययन अथवा अनुसंधान की प्रोन्नति; अथवा

(ग) अपराध की जांच-पड़ताल अथवा पता लगाने में वैज्ञानिक अथवा तकनीकी सहायता ।

66. निकाल दिया गया ।

67. निकाल दिया गया ।

68. भारतीय सर्वेक्षण, भारत का भू-वैज्ञानिक, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान और मानवशास्त्र सर्वेक्षण, मौसम-विज्ञान संगठन ।

69. जनगणना ।

70. संघ लोक सेवाएं, अखिल भारतीय सेवाएं; संघ लोक सेवा आयोग ।

71. संघ पेंशनें, अर्थात् भारत सरकार द्वारा अथवा भारत की संचित निधि में से संदेय पेंशनें ।

72. संसद के लिए राज्यों के विधान मण्डलों और राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पदों के लिए निर्वाचन, निर्वाचन आयोग;

73. संसद-सदस्यों, राज्य सभा के सभापति और उप-सभापति के और लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते ।

74. संसद के प्रत्येक सदन और सदस्यों और प्रत्येक सदन की समितियों के अधिकार, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां; संसद की समितियों या संसद द्वारा नियुक्त आयोगों के समक्ष साक्ष्य देने अथवा दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए व्यक्तियों को हाजिर कराना ।

75. राष्ट्रपति और राज्यपालों की परिलब्धियां, भत्ते, विशेषाधिकार और अनुपस्थिति, छुट्टी के संबंध में अधिकार; संघ के मंत्रियों के वेतन और भत्ते नियंत्रक महालेखापरीक्षक के वेतन, भत्ते और अनुपस्थिति की छुट्टी के संबंध में अधिकार और सेवा की अन्य शर्तें ।

76. संघ के लेखाओं की लेखापरीक्षा ।

77. उच्चतम न्यायालय का संविधान, संगठन, (ऐसे न्यायालय की अवमानना सहित) अधिकार क्षेत्र और अधिकार और उसमें लिया जाने वाला शुल्क; उच्चतम न्यायालय में वकालत करने के लिए हकदार व्यक्ति ।

76. उच्च न्यायालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों के बारे में उपबंधों को छोड़कर उच्च न्यायालयों का संविधान और संगठन (अवकाश सहित); उच्च न्यायालयों में वकालत करने के लिए हकदार व्यक्ति ।

79. किसी उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का किसी संघ राज्य क्षेत्र में विस्तार और अधिकार क्षेत्र का अपवर्जन ।

80. किसी राज्य के पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकारिता का उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र पर विस्तारण, किंतु इस प्रकार नहीं कि एक राज्य की पुलिस उस राज्य से बाहर किसी क्षेत्र में बिना उस राज्य की सरकार की सहमति के, जिसमें ऐसा क्षेत्र स्थित है, शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग करने में समर्थ हो सके; किसी राज्य के पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकारिता का उस राज्य से बाहर रेल क्षेत्रों पर विस्तारण ।

81. अन्तर्राज्यिक प्रवास; अन्तर्राज्यिक संगरोध ।

82. कृषि आय से भिन्न आय पर कर ।

83. सीमाशुल्क, जिसके अन्तर्गत निर्यात शुल्क है ।

84. भारत में विनिर्मित या उत्पादित तम्बाकू और अन्य माल पर उत्पाद शुल्क, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित शामिल नहीं हैं :--

(क) मानवीय उपभोग के लिए मद्य शराब ।

(ख) अफीम, इन्डियन हेम्प और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक पदार्थ ।

85. निगम कर ।

86. व्यष्टियों और कम्पनियों, की आस्तियों, जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि शामिल नहीं है, के पूंजीगत मूल्य पर कर; कम्पनियों की पूंजी पर कर ।

87. कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के संबंध में सम्पदा शुल्क ।

88. कृषि भूमि से भिन्न सम्पत्ति के उत्तराधिकारी के संबंध में शुल्क ।

89. रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा ले जाए जाने वाले माल या यात्रियों पर सीमा कर, रेल भाड़ों और माल भाड़ों पर कर ।

90. स्टाक एक्सचेंजों के संव्यवहार पर स्टाम्प शुल्क से भिन्न कर ।

91. विनिमय पत्रों, चेकों, वचन पत्रों, वहन पत्रों, प्रत्यय पत्रों, बीमा पालिसियों, शेयरों के अन्तरण, डिबेंचरों, परोक्षियों और प्राप्तियों के संबंध में स्टाम्प शुल्क की दर ।

92. समाचार पत्रों के क्रय या विक्रय और उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर ।

92क. समाचारपत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर उस स्थिति में कर, जिसमें ऐसा क्रय या विक्रय अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है ।

92ख. माल के परेषण पर (चाहे परेषण उसके करने वाले व्यक्ति को या किसी अन्य व्यक्ति को किया गया है), उस स्थिति में कर जिसमें ऐसा परेषण अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है ।

93. इस सूची के विषय में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध ।

94. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच, सर्वेक्षण और आंकड़े ।

95. उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और शक्तियां नावधिकरण विषयक अधिकारिता ।

96. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में फीस, किन्तु इसके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीस नहीं है ।

97. निकाल दिया गया ।

सूची II-राज्य सूची

1. लोक व्यवस्था (किन्तु इसके अन्तर्गत सिविल शक्ति की सहायता के लिए नौसेना, सेना या वायु सेना या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल का या उसकी किसी टुकड़ी या यूनिट का प्रयोग नहीं है) ।

1.क. राज्य की सुरक्षा अथवा लोक आदेश पालन से संबंधित कारणों के लिए निवारक निरोध, ऐसे निवारक के अधीन आए व्यक्ति ।

1.ख. अन्य राज्य की सहमति से इस सूची की प्रविष्टि I क और III सूची की प्रविष्टि 3 में विनिर्दिष्ट कारणों के लिए बंदियों, निवारक निरोधक के अधीन अभियुक्त व्यक्तियों और व्यक्तियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में से हटाना ।

2. पुलिस (जिसके अन्तर्गत रेल और ग्राम पुलिस है) ।

3. उच्च न्यायालय के अधिकारी और सेवक, भाटक और राजस्व न्यायालयों की प्रक्रिया; उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों में ली जाने वाली फीस ।

3.क. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को छोड़कर सभी न्यायालयों के प्रशासन; संविधान; और संगठन का प्रशासन ।

3.ख. न्यायालय की अवमानना, किंतु उच्चतम न्यायालय की अवमानना इसमें शामिल नहीं है ।

4. कारागार, सुधारगृह, बोर्स्टल संस्थाएं और उसी प्रकार की अन्य संस्थाएं और उनमें निरुद्ध व्यक्ति, कारागारों और अन्य संस्थाओं के उपयोग के लिए अन्य राज्यों से समझौता ।

5. स्थानीय शासन अर्थात् नगर निगमों, सुधार न्यास, जिला बोर्डों, खनन बस्ती प्राधिकारियों और स्थानीय स्वशासन या ग्राम प्रशासन के प्रयोजनों के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकारियों का गठन और शक्तियां ।

5.क. न्यास और न्यासी ।

5ख. महा प्रशासक और शासकीय न्यासी ।

6. लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता; अस्पताल और औषधालय ।

6.क. जन्म-मरण के आंकड़े और जन्म और मरण का पंजीकरण ।

7. भारत से बाहर के स्थानों की तीर्थयात्राओं से भिन्न तीर्थ यात्राएं ।

7.क. विवाह और तलाक; शिशु और अवयस्क; दत्तक-ग्रहण, वसीयत, निर्वसीयतता और उत्तराधिकार; संयुक्त परिवार और विभाजन; ऐसे सभी मामले, जिनके संबंध में पार्टियां इस संविधान के प्रारम्भ के एकदम पहले अपनी व्यक्तिगत विधि के अधीन न्यायिक प्रक्रिया में थी ।

8. मादक द्रव्य अर्थात् मादक द्रव्यों का उत्पादन, विनिर्माण, कब्जा, परिवहन, क्रय और विक्रय ।

8.क. अफीम के संबंध में सूची I की प्रविष्टि 59 के उपबंधों के अधीन दवाएं और जहर ।

9. निःशक्त और नियोजन के लिए अयोग्य व्यक्तियों की सहायता ।

9.क. भ्रमण : खानाबदोश और भ्रमणशील जातियां ।

9.ख. पागलपन और मनोदौर्बल्य, इसमें पागल व्यक्ति और मानसिक रूप से अपूर्ण व्यक्ति के दाखिल होने अथवा इलाज के लिए स्थान भी शामिल हैं ।

10. कब्र खोदना और कब्रिस्तान; शव-दाह और श्मशान ।

10.क. ट्रेड यूनियन, औद्योगिक और श्रम विवाद ।

10.ख. सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा दिलाना; रोजगार और बेरोजगारी ।

10.ग. काम की स्थितियां, भविष्य निधियां, कर्मचारी की देयता, कामगार-मुआवजा, असमर्थता और वार्धक्यता पेंशन और मातृत्व हितों सहित श्रमिक कल्याण ।

11. सूची I की प्रविष्टियां 63, 64 और 65 के उपबंधों के अधीन शिक्षा, इसमें तकनीकी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा, विश्वविद्यालयी शिक्षा शामिल है। श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण ।

11.क. व्यापारी बेड़े से सम्बन्धित शिक्षा और प्रशिक्षण का उपबंध और राज्य और अन्य एजेंसियों द्वारा व्यवस्था की गई ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन ।

12. राज्य द्वारा नियंत्रित या वित्त पोषित पुस्तकालय, संग्रहालय या वैसी ही अन्य संस्थाएं; प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेख और पुरातत्व स्थल और अवशेष ।

12.क. उच्च शिक्षा अथवा अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं के लिए संस्थाओं में समन्वयन और मानकों का निर्धारण ।

13. संचार साधन अर्थात् सड़कें, पुल, फैरी और अन्य संचार साधन जो सूची I में विनिर्दिष्ट नहीं हैं, नगरपालिका ट्राम; रज्जुमार्ग, अन्तर्देशीय जलमार्गों, अन्तर्राज्यीय नदियों और उन पर यातायात, यांत्रिक तौर पर चलाए जाने वाले वाहनों सहित वाहन ।

13.क. यांत्रिक तौर पर चलाए जाने वाले पोतों के संबंध में अन्तर्देशीय जलमार्गों पर नौवहन और नौसंचालन और ऐसे जलमार्गों पर सड़क के नियम और राष्ट्रीय जलमार्गों के संबंध में सूची I के उपबंधों के अधीन अन्तर्देशीय जलमार्गों पर यात्रियों और माल का परिवहन ।

13.ख. संसद द्वारा घोषित अथवा बनाई गई विधि के अधीन अथवा मौजूदा विधि के अधीन आने वाले बड़े पत्तनों के अतिरिक्त अन्य पत्तन ।

14. कृषि जिसके अन्तर्गत कृषि शिक्षा और अनुसंधान, नाशक जीवों से संरक्षण और पादप रोगों का निवारण है ।

15. पशुधन का परिरक्षण, संरक्षण और सुधार तथा जीव जन्तुओं के रोगों का निवारण; पशु चिकित्सा प्रशिक्षण और व्यवसाय ।

15क. पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम ।

16. कांजी हाउस और पशु अतिचार का निवारण ।

17. सूची I की प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन रहते हुए जल, अर्थात् जल प्रदाय, सिंचाई और नहरें, जल निकास और तटबंध, जल भण्डारकरण और जलशक्ति ।

18. भूमि, अर्थात् भूमि में या उस पर अधिकार, भू-धृति जिसके अन्तर्गत भूस्वामी और अभिधारियों का संबंध है और भाटक का संग्रहण, कृषि भूमि का अन्तरण और अन्य संक्रमण, सुधार और कृषि ऋण, उपनिवेशन ।

19. वन ।

20. जंगली पशु और पक्षियों का संरक्षण ।

21. मीन उद्योग ।

22. सूची I की प्रविष्टि 34 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, प्रतिपाल्य अधिकरण, विल्लंगमित और कुर्क की गई सम्पदा ।

23. संघ के नियंत्रण के अधीन विनियमन और विकास के संबंध में सूची I के उपबंधों के अधीन रहते हुए, खानों और खनिज विकास का विनियमन ।

24. सूची I की प्रविष्टियां 7 और 52 में विनिर्दिष्ट उद्योगों के अतिरिक्त अन्य उद्योग ।

24क. वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिकार, व्यापार संघ और ट्रस्ट ।

25. गैस और गैस संकर्म ।

25.क. फैक्टरियां ।

25.ख. बायलर ।

25.ग. समाचार पत्र, पुस्तकें और प्रिंटिंग प्रेस ।

26. निम्नलिखित में व्यापार और वाणिज्य सहित राज्य के अन्दर व्यापार और वाणिज्य :—

(क) किसी उद्योग के उत्पाद और उत्पाद के ऐसे ही किस्म का आयातित माल;

(ख) खाद्य तेल बीजों और तेल सहित खाद्य पदार्थ;

(ग) पशु चारा; खली और सान्द्र;

(घ) कच्चा कपास, चाहे ओटी हुई हो अथवा बिना ओटी और बिनौला; और

(ङ) कच्चा जूट ।]

27. निम्नलिखित के उत्पादन, पूर्ति और वितरण सहित मालों का उत्पादन, पूर्ति और वितरण :—

(क) किसी उद्योग के उत्पाद और उत्पाद के ऐसे ही किस्म का आयातित माल;

(ख) खाद्य तेल बीजों और तेल सहित खाद्य पदार्थ;

(ग) पशु चारा, इसके साथ ही खली और अन्य सान्द्र;

(घ) कच्चा कपास, चाहे ओटी हुई हो अथवा बिना ओटी और बिनौला; और

(ङ) कच्चा जूट ।

28. बाजार और मेले] ।

28.क. वायदा बाजार ।

28.ख. अनुमोज्य दोष ।

29. मानकों की स्थापना को छोड़कर बजन और माप ।

30. साहूकारी और साहूकार; कृषि ऋणिता से राहत ।

31. पाथशाला और पाथशालापाल ।

31.क. खाद्य पदार्थ और अन्य सामग्रियों का अपमिश्रण ।

32. ऐसे निगमों को जो सूची I में विनिर्दिष्ट निगमों से भिन्न हैं और विश्वविद्यालयों का निगमन, विनियमन और परिसमापन; अनिगमित व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और धार्मिक और अन्य समितियां और संगम, सहकारी समितियां ।

33. नाट्यशाला और नाट्य प्रदर्शन; सिनेमा, खेलकूद, मनोरंजन और आमोद ।

33.क. प्रदर्शन के लिए चलचित्र–प्रक्षेपक की संस्वीकृति ।

33.ख. प्रसारण और दूरदर्शन ।

34. दांव और द्यूत ।

34.क. सहायतार्थ प्रदर्शन और धर्मार्थ संस्थाएं, धर्मार्थ और पुण्यार्थ निधि और धार्मिक संस्थाएं ।

34.ख. राज्य सरकार द्वारा आयोजित लाटरियां ।

35. राज्य में निहित अथवा उसके कब्जे में निर्माण कार्य, भूमि और भवन ।

36. संघ के प्रयोजन के अतिरिक्त सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण ।

37. संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए राज्य के विधान मण्डल के लिए निर्वाचन ।

38. राज्य के विधान-मण्डल के सदस्यों, विधान सभा के अध्यक्षों और उपाध्यक्ष और यदि विधान परिषद् है तो, उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते ।

39. विधान सभा और उसके सदस्यों और समितियों और यदि विधान परिषद है तो उस विधान परिषद और उसके सदस्यों और समितियों के अधिकार और विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां, राज्य के विधानमण्डल की समितियों के समक्ष साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों को हाजिर कराना ।

40. राज्य के मंत्रियों के वेतन और भत्ते ।

41. राज्य लोक सेवाएं; राज्य लोक सेवा आयोग ।

42. राज्य की पेंशनें अर्थात् राज्य द्वारा या राज्य की संचित निधि से संदेय पेंशनें ।

43. राज्य का लोक ऋण ।

43.क. राज्य के लेखों की लेखापरीक्षा ।

44. निखात निधि ।

45. भूराजस्व जिसके अन्तर्गत राजस्व का निर्धारण और संग्रहण, भू–अभिलेख रखना, राजस्व के प्रयोजन के लिए और अधिकारों के अभिलेखों के लिए सर्वेक्षण और राजस्व का अन्य संक्रमण है ।

45.क. मूल्य नियंत्रण ।

46. कृषि–आय पर कर ।

47. कृषि भूमि के उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क ।

48. कृषि भूमि के संबंध में संपदा शुल्क ।

49. भूमि और भवनों पर कर ।

50. संसद द्वारा विधि से खनिजों के विकास के संबंध में अधिरोपित निर्बन्धनों के अधीन रहते हुए, खनिज संबंधी अधिकारियों पर कर ।

51. राज्य में विनिर्मित या उत्पादित निम्नलिखित माल पर उत्पाद–शुल्क और भारत में अन्यत्र विनिर्मित या उत्पादित वैसे ही माल पर उसी दर या निम्नस्तर से प्रतिशुल्क—

(क) मानवीय उपभोग के लिए मादक शराब ।

(ख) अफीम, इन्डियन हेम्प और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक पदार्थ ।

52. किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग या विक्रय के लिए माल के प्रवेश पर कर ।

53. विद्युत के उपभोग या विक्रय पर कर ।

54. सूची I की प्रविष्टि 92–क के उपबंधों के अधीन रहते हुए समाचार–पत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर कर ।

55. समाचारपत्रों में प्रकाशित और रेडियो या दूरदर्शन द्वारा प्रसारित विज्ञापनों से भिन्न विज्ञापनों पर कर ।

56. सड़कों या अन्तर्देशीय जलमार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर कर ।

57. सड़कों पर उपयोग के योग्य वाहनों पर कर, चाहे वे यंत्र नोदित हों या नहीं, जिनके अन्तर्गत ट्राम–कार है ।

57.क. यांत्रिक तौर पर चलाए जाने वाले वाहनों पर कर लगाए जाने के लिए लागू किए गए सिद्धांतों सहित उन पर लगाए गए कर ।

58. जानवरों और नौकाओं पर कर ।

59. उपकरण ।

60. व्यवसायों, व्यापारों, आजीविकाओं और नियोजन पर कर ।

60.क. विधिक, चिकित्सीय और अन्य व्यवसाय ।

61. प्रति व्यक्ति कर ।

61.क. वायदा–बाजारों पर कर ।

62. विलास वस्तुओं पर कर, जिनके अन्तर्गत मनोरंजन, आमोद, दांव और द्यूत पर कर है ।

63. स्टाम्प–शुल्क की दरों के संबंध में सूची I के उपबंधों में विनिर्दिष्ट दस्तावेजों से भिन्न दस्तावेजों के संबंध में स्टाम्प–शुल्क की दर ।

63.क. कार्यालय में रहते हुए अथवा कार्यालय से मुक्त होने के बाद राज्य सरकार के किसी मंत्री के आचरण के संबंध में जांच सहित इस सूची में विनिर्दिष्ट मामलों में से किसी के प्रयोजन के लिए जांच और आंकड़े ।

64. इस सूची के विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध ।

65. उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और अधिकार ।

66. इस सूची के किसी भी मामले के संबंध में फीस परंतु इसमें किसी अदालत में ली गई फीस शामिल नही है ।

67. सूची I अथवा सूची III में उल्लेख न किए गए कोई अन्य मामले, साथ ही इसमें से किसी भी सूची में उल्लेख न किए गए कोई अन्य कर भी शामिल हैं

सूचि III समवर्ती सूचि

1. दण्ड विधि, जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आते हैं, किंतु इसके अन्तर्गत सूची I या सूची II में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध और सिविल शक्ति की सहायता के लिए नौसेना, सेना या वायुसेना अथवा संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का प्रयोग नहीं है ।

2. दण्ड प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आते हैं ।

3. समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं के बनाए रखने संबंधी कारणों से निवारक निरोध; इस प्रकार निवारक में रखे गए व्यक्ति ।

4. निकाल दिया गया ।

5. निकाल दिया गया ।

6. कृषि भूमि से भिन्न संपत्ति का अन्तरण; विलेखों और दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण ।

7. संविदाएं जिनके अन्तर्गत भागीदारी, अभिकरण, वहन की संविदा और अन्य विशेष प्रकार की संविदाएं हैं, किंतु कृषि भूमि संबंधी संविदाएं नहीं हैं ।

8. निकाल दिया गया ।

8.क. बैंकिंग ।

9. शोधन अक्षमता और दिवाला ।

10. निकाल दिया गया ।

11. निकाल दिया गया ।

11.क. निकाल दिया गया ।

12. साक्ष्य और शपथ : विधियों, लोक कार्यों और अभिलेखों को मान्यता और न्यायिक कार्यवाहियां ।

13. सिविल प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत आते हैं, परिसीमाएं और माध्यस्थम् ।

14. निकाल दिया गया ।

15. निकाल दिया गया ।

16. निकाल दिया गया ।

17. निकाल दिया गया ।

17.क. निकाल दिया गया ।

18. निकाल दिया गया ।

19. निकाल दिया गया ।

20. आर्थिक और सामाजिक योजना ।

20.क. जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन ।

21. निकाल दिया गया ।

22. निकाल दिया गया ।

23. निकाल दिया गया ।

24. निकाल दिया गया ।

24.क. तेल क्षेत्रों और खनिज तेल स्रोतों का विनियमन और विकास; पैट्रोल और पैट्रोलियम उत्पाद; खतरनाक तौर पर ज्वलनशील संसद–विधि द्वारा घोषित अन्य द्रव और पदार्थ ।

24.ख. लोकहित में उपयुक्त संसद के विधि द्वारा घोषित संघ के नियंत्रण के अधीन विनियमन और विकास की सीमा तक खानों और खनिज विकास का विनियमन ।

24.ग. श्रमिक का विनियमन और खानों और तेल क्षेत्रों में सुरक्षा ।

25. निकाल दिया गया ।

26. निकाल दिया गया

27. अपने मूल निवास स्थान से विस्थापित व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास ।

28. निकाल दिया गया ।

29. मानवों, जीवजन्तुओं या पौधों पर प्रभाव डालने वाले संक्रामक या सांसर्गिक रोगों अथवा नाशकजीवों के एक राज्य से दूसरे राज्य में फैलने का निवारण ।

30. निकाल दिया गया ।

31. निकाल दिया गया ।

32. निकाल दिया गया ।

33. निकाल दिया गया ।

33.क. निकाल दिया गया ।

34. निकाल दिया गया ।

35. निकाल दिया गया ।

36. निकाल दिया गया ।

37. निकाल दिया गया ।

38. विद्युत ।

39. निकाल दिया गया ।

40. निकाल दिया गया ।

41. ऐसी सम्पत्ति की (जिसके अन्तर्गत कृषि भूमि है) अभिरक्षा, प्रबंध और व्ययन जो विधि द्वारा निष्क्रांत सम्पत्ति घोषित की जाए ।

42. निकाल दिया गया ।

43. किसी राज्य में, उस राज्य से बाहर उद्भूत कर से संबंधित दावों और अन्य लोक मांगों की वसूली जिनके अन्तर्गत भू–राजस्व की बकाया और ऐसी बकाया के रूप में वसूल की जा सकने वाली राशियां हैं ।

44. न्यायिक स्टाम्पों के द्वारा संगृहीत शुल्कों या फीसों से भिन्न स्टाम्प शुल्क, किंतु इसके अन्तर्गत स्टाम्प–शुल्क की दरें नहीं हैं ।

45. सूची III में विनिर्दिष्ट मामलों में से किसी मामले के प्रयोजन के लिए जांच और आंकड़े किंतु इसमें राज्य सरकार के किसी मंत्री, चाहे वह पद पर हो अथवा पदमुक्त हो, के आचरण के संबंध में जांच शामिल नहीं है ।

46. उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और अधिकार ।

47. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में फीस, किंतु इसके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीस नहीं है ।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

हमारा मुख्य विचार है कि राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल का पद हमें अतीत की विरासत

से मिला है । संविधान के अधीन राज्यपाल को सदैव मंत्रियों की परिषद की सलाह पर कार्य करना होता है । चूंकि इसे पूरी तरह से सांविधिक पद बनाए जाने का प्रस्ताव है अत: राज्यपाल के लिए तनिक भी विवेकाधिकार का क्षेत्र नहीं है और राज्यपाल का पद निरर्थक है । कुछ मामलों में राज्यपाल अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने में संकोच नहीं करते और इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना कि मंत्रियों की परिषद को विधान मण्डल का पूर्ण विश्वास प्राप्त है, वे मंत्रिपरिषद को बरखास्त कर देते हैं । इस प्रकार के अधिकार के दुरुपयोग की पुनरावृत्ति से बचने के लिए राज्यपाल का पद समाप्त किया जा सकता है । जिसके परिणामस्वरूप मुख्यमन्त्री में सभी कार्यकारी अधिकार निहित किए जा सकते हैं ।

यदि राज्यपाल का पद बनाए रखना है तो यह सुझाव है कि विधान सभा के विश्वास को प्राप्त करने वाले मुख्य मंत्री द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत चार नामों की सूची से उसका चयन किया जाए । ऐसे मामले में यदि विधान सभा निर्णय करती है कि राज्यपाल के पद को बनाए रखना राज्य के हित में नहीं होगा तो विधान सभा द्वारा इस संबंध में प्रस्ताव पास करके राष्ट्रपति के पास भेजे जाने पर, राष्ट्रपति को उस प्रस्ताव को प्रति प्राप्त होने पर राज्यपाल को हटा देना चाहिए ।

यदि राज्यपाल के पद को बनाए रखने का निर्णय किया जाता है तो इस संबंध में निम्नलिखित सिफारिशें की जाती हैं :—

ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं होना चाहिए जिसके बारे में राज्यपाल स्वनिर्णय का अधिकार रखता हो । सभी मामलों के संबंध में राज्यपाल को मुख्यमंत्री अथवा मंत्रि–परिषद की सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए ।

राज्य विधान मण्डल के अहस्तान्तरणीय अंश के रूप में अपनी भूमिका में राज्यपाल का कार्य मात्र सरकार को सुरक्षित रखना होता है न कि मंत्रालय का गठन करना ।

राज्य विधानमण्डल के सदन अथवा सदनों को बुलाने अथवा स्थगित कर ने के महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करते समय राज्यपाल को राज्य मन्त्रिमण्डल की सलाह पर ही ऐसा करना चाहिए ।

विधान सभा भंग करने के अधिकार का प्रयोग करते समय भी राज्यपाल को राज्य मंत्रिमण्डल को सलाह पर ही ऐसा करना चाहिए ।

यदि मुख्य मंत्री द्वारा प्रस्तुत नामों की सूची से राज्यपाल की नियुक्ति के सुझाव को स्वीकार नहीं किया जाता तो राज्यपाल और राज्य मंत्रिमण्डल के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के हित में यह आवश्यक है कि राज्य मंत्रिमण्डल से सदैव सलाह ली जाए और राज्यपाल की नियुक्ति से पहले मुख्यमन्त्री की सहमति प्राप्त कर ली जाए । राज्यपाल के कार्य करने के तरीके के लिए दिशा-निर्देश जारी करना भी उचित नहीं है, क्योंकि यह राज्यपाल के उच्च पद के लिए अपमानजनक स्थिति होगी ।

राज्यपाल न तो केन्द्र का एजेंट होता है न ही राज्य का मात्र आलंकारिक प्रधान, बल्कि वह केन्द्र और राज्य के बीच एक सूक्ष्म कड़ी है ।

संसदीय लोकतंत्र की धारणाओं से सामंजस्य रखते हुए मुख्यमंत्री की नियुक्ति कैसे की जानी चाहिए इस बात का विस्तृत उल्लेख करते हुए संविधान के अनुच्छेद 164 में खण्ड (1) के बाद संविधान में एक विशेष उपबंध शामिल किया जाना चाहिए । नया खण्ड (Iक) निम्नलिखित प्रकार से है :—

"(Iक) (क) राज्यपाल को विधान सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त करने वाले दल के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करना चाहिए ।

(ख) यदि राज्यपाल इस बात से संतुष्ट न हो कि विधान सभा में किसी भी एक पार्टी को बहुमत प्राप्त है, ऐसे मामले में वह मुख्य मंत्री चुने जाने के लिए अपने स्वयं के प्रस्ताव पर विधान सभा की बैठक बुलाए और इस बैठक में चुने गए व्यक्ति को राज्यपाल द्वारा मुख्य मंत्री नियुक्त किया जाना चाहिए ।

(ग) किसी मंत्री को बरखास्त करने के लिए मुख्य मंत्री द्वारा राज्यपाल को दी गई सलाह राज्यपाल द्वारा स्वीकार की जानी चाहिए ।

(घ) किसी समय यदि राज्यपाल को महसूस हो कि मुख्य मंत्री ने विधान सभा के सदस्यों के बहुमत का विश्वास खो दिया है, तो राज्यपाल को मुख्यमंत्री द्वारा सदन में विश्वास का मत प्राप्त किए जाने के लिए तुरंत अपने स्वयं के प्रस्ताव पर विधान सभा की बैठक बुलानी चाहिए ।

(ङ) (i) यदि मुख्य मंत्री विश्वास का मत पाने के प्रयत्न में असफल रहता है, अथवा इसके प्रयत्न करने पर ऐसा विश्वास के मत को प्राप्त करने में असफल रहता है तो ऐसी स्थिति में मुख्य मंत्री को अपने पद से तुरंत त्याग पत्र देना होगा । यदि मुख्य मंत्री के त्यागपत्र देने के समय विधान सभा में किसी अन्य दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त है तो राज्यपाल अपने स्वयं के प्रस्ताव से ऐसे दल के नेता को मुख्यमंत्री के रूप में चुनेगा ।

(ii) जहां पैराग्राफ (i) के अधीन मुख्य मंत्री त्यागपत्र देने में असफल रहता है अथवा विधान सभा में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त है, तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल अपने स्वयं के प्रस्ताव पर विधान सभा की बैठक बुलाएगा । विधान सभा नए मुख्य मंत्री बनाए जाने के लिए किसी व्यक्ति का चयन करेगी अथवा विकल्प रूप में विधान सभा भंग किए जाने की सिफारिश के लिए विधान सभा प्रस्ताव पास करेगी जो राज्यपाल के लिए बाध्यकारी होगा ।

(iii) यदि विधान सभा नए मुख्यमंत्री का चुनाव करने में अथवा पैराग्राफ (ii) में उल्लेखानुसार उपखण्ड (घ) के अधीन विश्वास प्रस्ताव प्राप्त करने की तारीख को या एक माह के भीतर प्रस्ताव पास करने में असफल रहती है तो एक माह की उपर्युक्त अवधि समाप्त होने पर विधान सभा भंग हो जाएगी ।

(च) जब उपखण्ड (ङ) के अधीन विधान सभा भंग हो जाती है और विधान सभा की अवधि के दौरान और विधान सभा प्रारम्भ होने की और नई विधान सभा द्वारा नए मुख्यमंत्री के चुनाव की तारीख की समाप्ति तक मुख्यमंत्री और राज्य मंत्री जो उपखण्ड (ङ) के अधीन भंग विधान सभा के दौरान अपने पद पर थे, वे केवल कामचलाऊ मंत्रालय के रूप में ही अपने पद पर रहेंगे ।

कोई भी व्यक्ति एक ही समय में एक राज्य/संघ क्षेत्र से अधिक का राज्यपाल नहीं होना चाहिए ।

अनुच्छेद 153 का परन्तुक निकाल दिया जाना चाहिए । उक्त परन्तुक के निकाल दिए जाने के परिणामस्वरूप अनुच्छेद 158 का खण्ड (3–क) भी निकाल दिया जाना चाहिए ।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति मुख्य मंत्री की सहमति से की जानी चाहिए । परिणामत: अनुच्छेद 155 उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाना चाहिए ।

राज्यपाल संविधान में उल्लिखित कुछ विशेष कार्यों को राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में पूरा करता है किंतु अनुच्छेद 160 की भाषा इस प्रकार है कि इसके अन्तर्गत राज्यपाल के अन्य कार्य भी आ सकते है । अनुच्छेद में संशोधन की अपेक्षा है ।

संविधान का अनुच्छेद 163 (1) में यह व्यवस्था है कि मंत्रिपरिषद राज्यपाल को उसके कार्यों को करने में सहायता और सलाह देगी सिवाय इसके कि इस संविधान के द्वारा अथवा अधीन जहां तक वह अपने कार्यों अथवा स्वनिर्णय का प्रयोग करना चाहता है, इसे भी संविधान के अनुच्छेद 74(1) की तरह ही संशोधीन किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 163(1) को निम्नलिखित रूप में पुन: प्रस्तुत किया जा सकता है :—

"मुख्यमंत्री के साथ मंत्रियों की परिषद राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए होनी चाहिए और राज्यपाल अपने कार्यों को पूरा करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा ।

बशर्ते कि अनुच्छेद 239(2), 371 और 371-क के अधीन राज्यपाल को प्रकटत: प्रदत्त कार्यों के संबंध में राज्यपाल स्वनिर्णय से अपने कार्यों को करेगा ।"

अनुच्छेद 163(2) राज्य में सरकार की मंत्रिमंडलीय पद्धति के प्रभावकारी ढंग से कार्य करने में सहायक नहीं हो सकता । अत: इस अनुच्छेद को निकाल दिया जाए ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

संघ द्वारा राज्य को निदेश जारी करना और राज्यों में राष्ट्रपति शासन.—अनुच्छेद 256, 257, 365 और 356 के अधीन संघ द्वारा कार्यकारी शक्तियों के ऐकिक प्रयोग की संभावना की दृष्टि से ये अनुच्छेद राज्य पर उत्प्रेरक और भाग्यवादी प्रभाव रखते है। अतः इन अनुच्छेदों को निकाल दिया जाना चाहिए क्योंकि इन अनुच्छेदों का प्रभाव ऐसा है कि संघ द्वारा आरक्षित शक्तिया राज्यों के स्वायत्तता के सिद्धान्त को समाप्त करने में अनर्थकर-निम्नतम बिन्दु तक अभिभावी प्रभाव रखती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि पिछले तीन दशकों के दौरान ऐसी शक्तियों के प्रयोग ने प्रमाण्य रूप में बाध्यकर साबित कर दिया है कि ऐसी शक्तियों के आधिक्य अथवा दुरूपयोग से असामान्य कारंवाई की गई हैं और राज्य स्वायत्ता का भवन टुकड़े-टुकड़े हो गया है। अनुच्छेद 357 और 360 भी निकाल दिया जाए।

राज्य और समवर्ती सूची से संबंधित विषयों की व्यवथा के लिए केन्द्रीय एजेंसियां :—कृषि मूल्य आयोग, केन्द्रीय जल आयोग, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण आदि जैसी केन्द्रीय एजेंसियां राज्यों की सुस्पष्ट सहमति के बिना राज्य सूची में राज्य द्वारा प्रबंध किए जाने वाले विषयों के संबंध में व्यवस्था करने के लिए नहीं बनाई जा सकती हैं।

अन्तर्राज्यीय जल विवाद :—अन्तर्राज्यीय जल विवाद से संबंधित सभी विवादों को उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए गए स्थायी अधिकरण को भेज दिया जाना चाहिए।

अखिल भारतीय सेवा:—भा० पु० सेवा और भा० प्र० सेवा सहित अखिल भारतीय सेवाओं को रखना आवश्यक नहीं है। केवल दो सेवाएं होनी चाहिए अर्थात् (i) राज्य सरकार के प्रयोजन के लिए राज्य सिविल सेवा, और (ii) संघ सरकार के प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सेवा। केन्द्रीय सेवा में राज्यों में स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयों में राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल :—केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल का अभियोजन राज्य की सहमति अथवा अनुरोध पर ही करना चाहिए।

आंचलिक परिषदें :—राज्यों के पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन बनी आंचलिक परिषदों को संबद्ध राज्यों के हित में इस प्रकार से गतिशील किया जाना चाहिए कि उपर्युक्त अधिनियम के अधीन अपेक्षाओं को पूरा किया जा सके।

अन्तर्राज्यीय परिषद् :—अनुच्छेद 263 के अधीन बनाई गई अन्तर्राज्यीय परिषद् का कोई भी व्यावहारिक मूल्य नहीं होगा क्योंकि दी गई सलाह, की गई सिफारिशों और निकाले गए निष्कर्षों का किसी भी पार्टी पर बाध्यकारी प्रभाव नहीं पड़ता। अतः अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की व्यवस्था के लिए सम्पूर्ण अनुच्छेद 263 को पूर्णतः निकाल दिया जाए।

अनुच्छेद 339 (2), अनुच्छेद 344 (6) और अनुच्छेद 350-क के अधीन निदेश जारी करना:—उपर्युक्त अनुच्छेदों को निकाल दिया जाए।

भाग V

वित्तीय संबंध

वित्त आयोग :—वित्त आयोग का गठन अनुच्छेद 280 के अधीन किया गया है। इसमें राज्यों को प्रतिनिधित्व देते हुए इसे पुनर्गठित किया जाना चाहिए। वित्त आयोग की सिफारिशें केन्द्र और राज्यों, दोनों को सभी पार्टियों के लिए बाध्यकारी हों। संविधान में इस संबंध में संशोधन किए जाने चाहिए।

वित्त आयोग को स्वयं को गैर-योजना राजस्व अन्तराल तक ही सीमित नहीं कर लेना चाहिए बल्कि वित्तीय असंतुलन की सम्पूर्ण समस्या के एकीकृत रूप से विचार करना चाहिए। राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध, मध्यम आय और निर्धन राज्यों की श्रेणी में श्रेणीबद्ध किया जाना चाहिए। तमिलनाडु, जो मध्यम आय श्रेणी के अन्तर्गत आता है उसे अतिरिक्त अनुदानों का विनिधान किया जाना चाहिए।

वित्त आयोग को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि मध्यम आय के राज्यों की प्रति व्यक्ति फालतू आय तुलनीय है और कमोबेश अपेक्षाकृत समृद्ध राज्यों के बराबर है। राज्यों को सभी निधियां वित्त आयोग के माध्यम से दी जानी चाहिएं।

उत्पाद शुल्क :—सभी उत्पाद शुल्क और उपस्कर, विशेष व्यवस्थापन अथवा अन्य, जो संघ के विकल्प पर साझायोग्य है, उसे संघ और राज्यों के बीच आवश्यक रूप से विभाज्य होना चाहिए।

उत्पाद शुल्क का अतिरिक्त शुल्क राज्यों की सहमति से ही जारी रखा जाना चाहिए।

शुल्कों और करों का उद्ग्रहण और वसूली:—अनुच्छेद 268 तुरन्त उद्ग्रहण और वसूली के लिए राज्यों को सौंपा जा सकता है। अनुच्छेद 269 के अधीन कृषि भूमि के अतिरिक्त संपत्ति में उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क और कृषि भूमि के अतिरिक्त संपत्ति के संबंध में सम्पदा शुल्क को भी राज्यों को सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार रेल, समुद्र अथवा वायुयान द्वारा ले जाए गए माल अथवा यात्रियों पर सीमा कर, समाचार-पत्र की बिक्री अथवा क्रय और विज्ञापन पर कर को अनुच्छेद 268 के क्षेत्र के अधीन लाया जा सकता है।

अनुच्छेद 269 में विनिर्दिष्ट बहुत-से करों को उद्ग्रहित नहीं किया गया है। अतः संघसरकार को कुछ कर विशेष के गैर-उद्ग्रहण के स्थान पर राज्यों को पर्याप्त राशि देनी चाहिए।

संबद्ध राज्य के लिए आय कर के मामले के समान ही निगम करों और आयकरों पर अधिभार विभाज्य और उद्दिष्ट होना चाहिए।

अनुदान :—योजना और गैर-योजना, दोनों के ही खर्च के लिए राज्यों को केन्द्र द्वारा अनुदान वित्त आयोग अथवा इसी प्रकार के सांविधिक निकाय जैसे स्वतंत्र और निष्पक्ष निकाय की सिफारिश पर दिया जाना चाहिए।

राज्यों के ऋण और ऋणग्रस्तता:—राज्यों की ऋणग्रस्तता से संबंधित सम्पूर्ण मामले पर विचार करने के लिए विशेषज्ञों की समिति बनाई जानी चाहिए।

राहत निधि :—प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न संकट से राहत के लिए प्रत्येक राज्य के लिए निधि होनी चाहिए। सुधारात्मक उपायों के लिए भी निधि का उपयोग किया जा सकता है।

बाजार ऋण :—इस समय बाजार ऋण का राज्यों के बीच वितरण पिछले वर्षों के ऋण स्तर की अपेक्षा 10 प्रतिशत की वृद्धि करते हुए निहायत अस्थायी और विवेकाधीन तरीके से किया गया है। अतः बाजार ऋण के वितरण का उचित और न्यायसंगत सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाना चाहिए। विचाराधीन उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रपति को अनुच्छेद 280(3)(ग) के अधीन अपने अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए।

यह वांछनीय है कि वित्त आयोग को बाजार ऋण की साझेदारी के लिए उपयुक्त फार्मूले का सुझाव देना चाहिए। राज्य सरकार और भारत सरकार को वित्त आयोग के निर्णय के अनुसार कार्य करना चाहिए। वास्तविक निष्पादन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समन्वय जारी रखा जा सकता है। ऋण परिषद् बनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि एजेंसियों की संख्या बढ़ जाने से कार्य के तरीके के संबंध में गलतफहमी पैदा हो सकती है।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद्

योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना के प्रभारी दो बड़े निकाय अनुच्छेद 280 में मान लिए गए वित्त आयोग के समान सांविधिक आधार और मान्यता नहीं रखते हुए अब केवल सिफारिशी निकाय रह गए हैं। अतः योजना निकायों के संविधान में निम्नलिखित परिवर्तन किए जा सकते हैं :—

(1) संघीय संसद् को योजना का केन्द्रीय बोर्ड बनाने के लिए विधि बनानी चाहिए। इसे इसके संविधान, कार्यों और अधिकारों की स्पष्ट परिभाषा बतानी चाहिए। केन्द्रीय बोर्ड को केवल केन्द्रीय योजना से संबंधित साधनों की उपलब्धता का मूल्यांकन करना चाहिए।

(2) राज्य विधान मण्डल को योजना राज्य बोर्ड बनाने के प्रयोजन के लिए अलग विधि निर्माण करना चाहिए। यह बोर्ड स्वयं राज्य के

मामलों से संबंधित साधनों और प्राथमिकताओं के संबंध में पता लगाएगा ।

(3) केन्द्रीय बोर्ड और राज्य बोर्ड द्वारा इस प्रकार तैयार की गई योजनाएं विचार के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् के पास भेज दी जानी चाहिए ।

राष्ट्रीय विकास परिषद् को प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, प्रबंध विशेषज्ञों, समाज शास्त्रियों और इंजीनियरों की विशेषज्ञ सलाहकार समिति तैयार करनी चाहिए । इस समिति को समय की अनुबद्ध अवधि के अन्दर अपनी सुविज्ञ-सलाह देनी चाहिए । सलाहकार समिति को केन्द्रीय और राज्य बोर्ड द्वारा सुझाव रूप में प्रस्तुत की गई योजनाओं का भी यथासंभव समन्वय करते हुए सिफारिश करनी चाहिए । इससे राज्य सरकार की प्राथमिकताओं की उपेक्षा किए बिना अर्थपूर्ण योजना का निष्पादन सुनिश्चित किया जा सकेगा ।

तथापि यदि योजना आयोग को जारी रखना हो तो यह राष्ट्रीय विकास परिषद् के अधीन एक स्वायत्त निकाय के रूप में काम करेगा । योजना आयोग को ऐसे काम नहीं दिए जाने चाहिए जो राज्य स्तर पर योजनाओं की उपेक्षा करते हों और राष्ट्रीय स्तर पर उन पर निर्णय करने वाले हों । इसे केवल एक सलाहकार-निकाय के रूप में ही होना चाहिए । अंतिम निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद् और केन्द्र और राज्य सरकार पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए ।

भाग VII

विविध

उद्योग

सूची I की प्रविष्टि 52 के अधीन "उद्योग को संसद् की विधि द्वारा संघ के नियंत्रण में घोषित किया गया है, जो लोक हित में उचित है" इस प्रकार यह सिर्फ संसद् की विधायी सक्षमता के अन्तर्गत आता है । इस प्रविष्टि को ध्यान में रखते हुए राज्य विधान मण्डल को उपर्युक्त प्रविष्टि 52 के अन्तर्गत संसद् द्वारा बनाए गए अधिनियम के अधीन आने वाले उद्योगों के संबंध में अक्षम बना दिया गया है । अत: प्रविष्टि 52 के बदले में नई प्रविष्टि की जानी चाहिए जिसके द्वारा स्वयं प्रविष्टि में उद्योगों को उल्लिखित कर दिया जाएगा । इस संबंध में कृपया संशोधित संघ सूची की प्रविष्टि 52 देखें । तथापि उद्योगों के संबंध में जिसमें संसद् को विधि निर्माण का अधिकार है, भारत सरकार द्वारा औद्योगिक नीति निर्माण करते समय वांछनीय होगा कि राज्य सरकार से पहले ही सलाह ले ली जाए ।

राज्य सरकार को लाइसेंस उप-समिति में भी प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए ताकि आवेदन-पत्रों पर राज्य सरकारें अपने विचार दे सकें । अंतिम निर्णय राज्यों की सिफारिशों के आधार पर लिया जाना चाहिए ।

जहां तक राज्य के अन्दर विनिर्माण कार्यों के स्थान परिवर्तन का संबंध है, भारत सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त करने की व्यवस्था करनी चाहिए और राज्य सरकार को उसकी अनुमति देने के लिए भारत सरकार को प्रतिनिधान का प्रत्यावर्तन करते हुए परिशोधित अनुदेश जारी करना चाहिए ।

आई० डी० बी० आई० आई० एफ० सी० आई० आदि जैसी केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं में विविध राज्य सरकारों के प्रतिनिधित्व के संबंध में आवर्ती आधार पर विचार किया जाना चाहिए ।

व्यापार और वाणिज्य

व्यापार और वाणिज्य में केन्द्र और राज्य के संबंध बेहतर बनाने के पक्ष में निम्नलिखित के संबंध में प्राधिकार की नियुक्ति करना आवश्यक है :—

(क) सर्वेक्षण करना और अन्तर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य पर लगाए गए प्रतिबंधों के संबंध में आवधिक तौर पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना;

(ख) व्यापार और वाणिज्य को सुगम बनाने की दृष्टि से लगाए गए प्रतिबंधों को युक्तिसंगत बनाने अथवा आशोधन के उपायों की सिफारिश करना; और

(ग) फिक्की जैसे शीर्ष निकाय सहित वाणिज्य-कोष्ठों से आई शिकायतों की जांच करना ।

संविधान के अनुच्छेद 304 (ख) के परन्तुक के अधीन राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति प्राप्त करने से संबंधित अपेक्षा राज्य विधान मण्डल को सौंपे गए कार्यक्षेत्र का प्रत्यक्षत: अतिक्रमण है । अत: अनुच्छेद 304 (ख) को निकाल दिया जाना चाहिए ।

कृषि

उद्यान-विज्ञान, पशु-कृषि कर्म, वन-विज्ञान और मत्स्य उद्योग सहित कृषि को मूलत: राज्य-विषय के रूप में माना जाना चाहिए ।

कृषि उत्पादन के लिए न्यूनतम उचित मूल्य को लागू करने के मामले में निर्णय करते समय राज्य सरकार को आंतरिक तौर पर शामिल करना चाहिए ।

अन्तर्राज्यीय नदियां

अन्तर्राज्यीय नदियों को राष्ट्रीय नदियों के रूप में घोषित किया जाना चाहिए ।

खाद्य और नागरीक आपूर्ति

अधिप्राप्ति.— (1) केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना राज्यों से अतिरिक्त उद्ग्रहित धान और चावल खरीदने के लिए राज्य सरकार अथवा इसकी एजेंसियों को अनुमति होनी चाहिए ।

(2) भारतीय रिजर्व बैंक को इस संबंध में ब्याज की रियायती दर वसूल करनी चाहिए ।

मूल्य.—अधिप्राप्ति मूल्य के निर्धारण के मामले में केन्द्र सरकार का पूर्व अनुमोदन आवश्यक नहीं है ।

जन वितरण व्यवस्था के माध्यम से अनाजों और अन्य आवश्यक वस्तुओं का वितरण.—शिक्षा, निरक्षरता दूर करने, पौष्टिक मध्याह्न-आहार योजना (लगभग 84 लाख बच्चों और वृद्ध पेंशनभोगियों का पालन-पोषण) के उद्देश्य से माननीय मुख्यमंत्री डा० एम० जी० रामचन्द्रन द्वारा देश में पहली बार बहुत-सी योजनाओं के संबंध में विचार किया गया । अत: मुख्यमंत्री की पौष्टिक मध्याह्न आहार योजनाओं जैसी कल्याणकारी योजनाओं को जारी रखने के लिए अनिवार्य वस्तुओं के मूल्यों में आर्थिक सहायता-प्राप्त नियंत्रण रखना आवश्यक है ।

गेहूं रोलर आटा मिल.—रोलर आटा मिलों पर प्रभावकारी नियंत्रण के उद्देश्य से और उपभोक्ताओं को मैदा और सूजी के उचित उत्पादन और वितरण को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि रोलर आटा मिलों को लाइसेंस देने का अधिकार भारत सरकार के सामान्य मार्गनिर्देशों के अधीन पुन: राज्य सरकारों को दे दिया जाना चाहिए ।

दालें.— यदि भारत सरकार के संदर्भ के बिना राज्य सरकार को प्रामाणिक मामलों में दालों के स्टाक की सीमा से छूट की मंजूरी के लिए अधिकार दे दिए जाते हैं तो उचित मूल्य में ग्राहकों को बहुतायत में दालें उपलब्ध कराने के साथ-साथ इससे व्यापारियों का भी बहुत भला होगा ।

मिट्टी का तेल.—नए थोक व्यापारी की नियुक्ति का अधिकार राज्य-प्रशासन को होना चाहिए ।

शिक्षा

संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम, 1976, "शिक्षा" रिपोर्ट के पास हो जाने से इसे समवर्ती सूची के अन्तर्गत रख दिया गया है । जब भारत के संविधान के संस्थापकों ने शिक्षा को मूल रूप से उचित स्थान देकर राज्य सूची के अधीन रख दिया है, यह आवश्यक है कि "शिक्षा" को राज्य सूची में पुन: वापस लाया जाए ।

भाषा.—अंग्रेजी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाना चाहिए और आठवीं अनुसूची की सभी भाषाओं को संघ की राजभाषा घोषित कर दिया जाना चाहिए । जब तक यह निर्णय नहीं किया जाता है तब तक अंग्रेजी को संघ की राजभाषा के रूप में प्रयोग किया जाना/जारी रखा जाना चाहिए । अंग्रेजी को केन्द्र और राज्य के बीच संप्रेषण और राज्यों के बीच आपस में संप्रेषण दोनों के लिए ही उपयोग किया जाना चाहिए ।

अंतः सरकारी समन्वय

संयुक्त राज्यों में अन्त: सरकारी संबंधों पर सलाहकार आयोग के समान संस्था स्पष्टत: समय की परीक्षा में खरी उतरी है, जो केवल भारत की ओर विशेष

रूप से तमिल नाडु की आशाओं को ही पूरा नही करेगी बल्कि केन्द्र और राज्य के बीच उठने वाली मौसमी अथवा अन्य बहुत-सी उत्तेजक बातों और समस्याओं पर तुरंत और शीघ्र विचार और निपटान में भी सहायक होगी ।

अनुपूरक प्रश्नावली संख्या-4

(i) से (vi)

1. जैसा कि भाग III में पहले ही उल्लेख किया गया है कि तमिलनाडु सरकार की दृष्टि में राज्यपाल की भूमिका, राज्यपाल का पद स्वयं अनावश्यक है और उसी रूप में उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है जो कि अतीत की विरासत है । राज्यपाल की संस्था अपनी उपयोगिता से अधिक समय तक टिकी रही है । भारत के अधिकतर राज्यों के हाल के ही उदाहरणों द्वारा आंका गया है कि राज्यपाल केन्द्र सरकार के एजेंट के रूप में अधिक काम करता है । तथापि यदि राज्यपाल का पद बनाए रखना है तो अनुपूरक प्रश्नावलियों के संबंध में निम्नलिखित अभ्युक्तियां आवश्यक है :

प्रश्न संख्या 1 के संबंध में, तमिलनाडु सरकार का विचार है कि राज्यपाल को अपने कार्य करने में स्वनिर्णय के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए और सभी मामलों के संबंध में राज्यपाल को मुख्यमंत्री अथवा मंत्रिपरिषद् की सलाह के लिए बाध्य होना चाहिए ।

इस सरकार का यह भी विचार है कि "भाग III—राज्यपाल की भूमिका" शीर्षक के अधीन इस सरकार द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 74 (1) के समान ही अनुच्छेद 163 (1) भी संशोधित किया जाना चाहिए ।

डा० अम्बेडकर ने संविधान सभा में अपने विचार व्यक्त किए थे कि राज्यपाल केवल आलंकारिक प्रधान है । ऐसा ही उच्चतम न्यायालय ने राम जवयास के मामले (ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 549) में कहा था कि राज्यपाल कार्यपालिका का औपचारिक अथवा सांविधानिक प्रधान है और वास्तविक कार्यकारी अधिकार मंत्रियों अथवा मंत्रीमण्डल में निहित हैं । शमशेर सिंह के मामले में न्यायमूर्ति ए० एन० राय द्वारा स्पष्ट किया गया था, जिन्होंने अपने स्वयं और न्यायमूर्ति पालेकर, मैथ्यू, चन्द्रचूड और अलगिरिस्वामी की ओर से निर्णय दिया था कि अनुच्छेदों में जहां "स्वनिर्णय के आधार पर कार्य करने" की अभिव्यक्ति है, वह राज्यपाल के अधिकारों और कार्यों की अपेक्षा राज्यपाल की विशेष जिम्मेदारियों के संबंध में है । ये अनुच्छेद 371-क(1) (ख), 371-क(1) (घ), 371-क (2) (ख) और 371-क (2) (च) है । न्यायमूर्ति ए० एन० राय ने छठी अनुसूची में दो पैराग्राफों, अर्थात् 9(2) और 18(3) का भी हवाला दिया है यद्यपि पैराग्राफ 18 अब निकाल दिया गया है । इसमें कोई संदेह नहीं कि शमशेर सिंह के मामले में अनुच्छेद 200 के अधीन और अनुच्छेद 356 के अधीन भी राज्यपाल के विवेकाधिकार को बहुमत द्वारा मान्यता दी गई थी किंतु इस सरकार का विचार है कि जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि सभी मामलों के संबंध में राज्यपाल को अपने कार्यों को पूरा करने में सदैव मंत्रि परिषद् की सलाह द्वारा बाध्य होना चाहिए और अनुच्छेद 356 को निकाल दिया जाना चाहिए ।

2. जैसाकि पहले ही कहा गया है कि इस सरकार का सुझाव कि राज्यपाल के पास कतई विवेकाधिकार नहीं होना चाहिए अतः राज्यपाल के विवेकाधिकार को विनियमित करने के लिए सिद्धान्तों के निर्धारण का प्रश्न ही नही उठता ।

3. शमशेर सिंह के मामले में बहुमत ने विचार प्रकट किया है कि अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल मंत्रि परिषद् की सलाह का लिहाज किए बिना कार्य कर सकता है और ऐसे मामलों में जहां राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना है उसे अपने कार्यों को अपने सर्वोत्तम निर्णय द्वारा पूरा करना चाहिए । तमिलनाडु सरकार का विचार है कि अनुच्छेद 200 के संबंध में, जो राज्यपाल द्वारा बिलों की अनुमति से संबंधित है, राज्यपाल को सदैव मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करना चाहिए और उसे मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य होना चाहिए और केवल मंत्रिपरिषद् और मुख्यमंत्री में निहित वास्तविक कार्यकारी अधिकारों के संबंध में उसे किसी प्रकार का विवेकाधिकार नही होना चाहिए और राज्यपाल केवल सांविधानिक नाममात्र का प्रधान होने के कारण, यह सरकार अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल में विवेकाधिकार निहित करने में सहमत नही है । न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर जिन्होंने अपनी ओर से और न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती की ओर से राजकीय अनुमति से संबंधित डी स्मिथ के बयान का अनुमोदन किया है । इस संबंध में निम्नलिखित अंश प्रासंगिक होगा :—

> "हमें कोई संदेह नहीं कि राजकीय अनुमति के संबंध में डी स्मिथ का बयान भारत के राष्ट्रपति और सरकार के लिए उपयुक्त है ।
>
> राजकीय अनुमति की इस आधार पर अस्वीकृति कि राजाध्यक्ष ने किसी बिल का जोरदार अनुमोदन कर दिया है अथवा यह अत्यधिक विवादास्पद था, किसी भी स्थिति में यह गैर-सांविधानिक ही होगा । केवल उन्हीं परिस्थितियों में राजकीय अनुमति को अस्वीकार करना उचित ठहराया जा सकता है यदि सरकार को स्वयं सलाह देनी पड़े कि यह अत्यधिक असंभव आकस्मिकता है—अथवा तभी संभव है यदि यह कुख्यात था कि बिल को अनिवार्य कार्यविधि संबंधी अपेक्षाओं की अवहेलना करके पास कर दिया गया है, किन्तु बाद की स्थिति में सरकार का विचार होगा कि व्यतिक्रम अनुमति प्राप्त कारवाई की वैधता को प्रभावित नही करेगा, अनुमति देने के विवेक को सिद्ध किया जा सकेगा ।"

इस विचार से सामंजस्य रखते हुए सरकार का सुझाव है कि अनुच्छेद 200 के दो उपबंधों को निकाल दिया जाना चाहिए । इसी प्रकार यदि राष्ट्रपति की अनुमति के लिए बिल आरक्षित है तो भारत सरकार को बिल की अनुमति दिए जाने के लिए राष्ट्रपति को सलाह देनी चाहिए । राष्ट्रपति को विवेकाधिकार नहीं है कि वह अपनी अनुमति देने से इंकार कर दे । तदनुसार यह सुझाव दिया जाता है कि अनुच्छेद 201 के उपबंध को निकाल दिया जाए ।

अनुच्छेद 254 का जहां तक संबंध है, "विधायी संबंध" शीर्षक के अधीन यह सरकार सुझाव देती है कि अनुच्छेद 254(2) के उपबंध को निम्नलिखित रूप में प्रतिस्थापित किया जाए :—

> "बशर्ते कि संसद् को राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि में जोड़ने, संशोधन करने, परिवर्तन अथवा निरस्त करने सहित उसी मामले के संबंध किसी समय कोई विधि बनाने का अधिकार नहीं होगा ।"

4. इस सरकार का विचार है कि अनुच्छेद 31-क अथवा 31-ग के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले किसी भी बिल को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करने की आवश्यकता नहीं है । मंत्रिपरिषद् राज्य विधान मण्डल के प्रति जिम्मेदार है और परिणामतः उनमें पूरी तरह से और सम्पूर्णतः कार्यकारी अधिकार निहित हैं । राज्यपाल को इस आधार पर राष्ट्रपति के विचार के लिए बिल आरक्षित रखने की छूट नहीं होनी चाहिए कि उसके विचार से बिल को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाना चाहिए जबकि मंत्रिपरिषद् ने इस बात की सलाह दे दी थी कि ऐसे आरक्षण की आवश्यकता नहीं है । तदनुसार तमिलनाडु की सरकार सुझाव देती है कि अनुच्छेद 31-क का पहला परन्तुक और अनुच्छेद 31-ग के परन्तुक को निकाल दिया जाना नितांत आवश्यक है ।

यदि इन उपबंधों को निकाल दिया जाता है और अनुच्छेद 200 के अधीन व्यक्त किए गए विचारों के प्रकाश में राज्यपाल समवर्ती सूची के अन्तर्गत आने वाले ऐसे विषयों को छोड़कर जिस पर अनुच्छेद 254 के उपबंध लागू होते है और जिसके लिए राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा, राष्ट्रपति के विचार के लिए किसी भी बिल को आरक्षित रखने की छूट नहीं होगी । किंतु फिर भी ऐसे मामलों में, जहां राष्ट्रपति के विचार के लिए बिल को आरक्षित रखा जाता है, राष्ट्रपति को किसी भी परिस्थितियों में अपनी अनुमति देने से इंकार करने की छूट नहीं होगी । तमिलनाडु सरकार यह दोहराना चाहती है कि राज्य विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत बिल की वैधानिकता का जहां तक प्रश्न है, राज्य विधान मण्डल और राज्य सरकार के निर्णय पर संघ सरकार निर्णय नहीं कर सकती है ।

जहां तक अनुच्छेद 304 (ख) के उपबंध का प्रश्न है, जिसके लिए विधान मण्डल में बिल अथवा संशोधन प्रस्तुत किए जाने अथवा रखे जाने से पहले राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति अपेक्षित है, इस संबंध में इस सरकार का विचार है कि भाग VII विविध में "व्यापार और वाणिज्य" शीर्षक के अन्तर्गत उल्लिखित कारणों से इस उपबंध को निकाल दिया जाना चाहिए । राज्यपाल की इस राय के आधार पर कि संसद् द्वारा रखे गए बिल के संबंध में विधि की नीति का उल्लंघन

प्रतीत होता है। राष्ट्रपति के विचार के लिए किसी बिल को आरक्षित रखने के संबंध में उसे अपने विवेकाधिकार के प्रयोग की छूट नहीं होनी चाहिए।

5. बिल की वैधानिकता अथवा बिल उच्च न्यायालय की स्थिति के लिए खतरा पैदा कर सकता है या नहीं इसका कार्य निर्णय राज्य की कार्यपालिका करेगी। इस प्रश्न पर राज्यपाल अथवा संघ सरकार को निर्णय करने की छूट नहीं होनी चाहिए। राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य है।

संघ सरकार को स्वयं अनुच्छेद 143 के अधीन किसी राज्य-बिल को उच्चतम न्यायालय भेजने के लिए स्वयं राष्ट्रपति को सलाह नहीं देनी चाहिए। अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत बिल को उच्चतम न्यायालय भेजे जाने का कार्य केवल संबद्ध राज्य सरकार की इच्छा पर ही होना चाहिए न कि किसी अन्य कारण से।

चूंकि यह राज्य सरकार पर है कि वह अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय को भेजे जाने वाले बिल को सम्पूर्ण रूप में अथवा बिल के विनिर्दिष्ट उपबंध को ही भेजने का सुझाव दे किंतु यह उच्चतम न्यायालय पर है कि वह चाहे तो सम्पूर्ण बिल की जांच कर सकता है अथवा राष्ट्रपति द्वारा भेजे गए केवल राज्य सरकार द्वारा वांछित, उन उपबंधों की ही।

अनुपूरक प्रश्नावली संख्या-5

1. जैसा कि पहले भाग III में राज्यपाल की भूमिका का उल्लेख किया गया है, सरकार का विचार है कि राज्यपाल का पद स्वयं में अनावश्यक है और उसी रूप में समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, यह अतीत की विरासत है। राज्यपाल की संस्था अपने उपयोग से अधिक समय तक बनी रही है। भारत के अधिकतर राज्यों में हाल के उदाहरणों से आंका गया है कि राज्यपाल केन्द्र सरकार के एजेंट के रूप में अधिक कार्य करता है किंतु यदि राज्यपाल का पद बनाए रखना है तो अनुपूरक प्रश्नावली के संबंध में निम्नलिखित अभ्युक्तियां आवश्यक हैं :—

तमिलनाडु सरकार का सुझाव है कि यदि राज्यपाल के पद को बनाए रखना है तो उसका चयन विधान सभा में विश्वास प्राप्त मुख्यमंत्री द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत चार नामों की सूची से किया जाना चाहिए।

राज्यपाल के चुनाव को केवल राजनीतिज्ञ अथवा सेवानिवृत्त सिविल/रक्षा कार्मिक तक प्रतिबंधित करने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा व्यक्त विचार निम्नलिखित हैं :—

"कभी-कभी वह उसी प्रांत का व्यक्ति हो सकता है। हम इसे खारिज नहीं करते। किंतु आमतौर पर संभवतः यह वांछनीय होगा कि वह कोई बाहर का प्रतिष्ठित व्यक्ति हो, यदा कदा ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जिसने राजनीति में बहुत हिस्सा न लिया हो। संभवतः राजनीतिज्ञ अपने क्रिया-कलापों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय कार्य क्षेत्र पसंद करें किंतु एक प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्री अथवा जीवन के अन्य क्षेत्रों से आया हुआ प्रतिष्ठित व्यक्ति जो स्वाभाविक तौर पर सरकार को पूरा सहयोग देते हुए और हर तरह से किसी भी मूल्य पर सरकार की नीतियों को संपन्न करने के लिए सहयोग देता है कि नीति का पालन किया जा सके, फिर भी ऐसा व्यक्ति जनता के समक्ष थोड़ा-सा पार्टी से हट कर ही प्रतिनिधित्व करेगा और फलस्वरूप निश्चय ही वह पार्टी-मशीन के अंग के रूप में काम करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा सरकार की अधिक सहायता करेगा। मैं मानता हूं कि वास्तव में यह अन्य प्रक्रिया से इस दृष्टि से अधिक प्रजातांत्रिक प्रक्रिया है क्योंकि बाद के उदाहरण वाला व्यक्ति मशीनतंत्र को अधिक सुचारू रूप से नहीं चलाएगा।" (सी०ए०डी० खण्ड VIII, पृ० 455)।

किन्तु कठिन परीक्षा यह है कि क्या चुना गया ऐसा व्यक्ति अत्यधिक क्षमता वाला, पूर्ण निष्ठावान और पक्षपातपूर्ण राजनीति से मुक्त है।

2. तमिलनाडु सरकार का विचार है कि यदि मंत्रिपरिषद् निर्णय करती है कि राज्य में राज्यपाल विशेष का बना रहना राज्य के हित में नहीं है तो इस संबंध में विधान सभा द्वारा पास किए गए प्रस्ताव पर और ऐसे प्रस्ताव की प्रति प्राप्त होने पर राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को पद से हटा दिया जाना चाहिए।

3. राज्यपाल का कार्यकाल निश्चित होना चाहिए। किंतु, फिर भी, ऊपर प्रस्तावित तरीके से विधान सभा द्वारा इस संबंध में पास किए गए प्रस्ताव पर राष्ट्रपति उसे पद से मुक्त कर सकता है।

नए कार्यकाल में उसी राज्यपाल की पुन: नियुक्ति नहीं होनी चाहिए।

4. राज्यपाल की सेवा निवृत्ति के बाद पेंशन उदार होनी चाहिए। राज्यपाल को सेवा निवृत्ति के बाद भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन किसी लाभप्रद पद के लिए अपात्र माना जाना चाहिए। इसी प्रकार केन्द्र अथवा राज्य में मंत्री, भारत का राष्ट्रपति, भारत का उप-राष्ट्रपति अथवा संसद् सदस्य अथवा राज्य विधान मण्डल का सदस्य जैसे किसी निर्वाचित पद को संभालने के लिए भी उसे अपात्र माना जाना चाहिए।

5. यह सरकार राज्यपाल द्वारा केन्द्र को पाक्षिक रिपोर्ट भेजे जाने की चालू प्रथा का अनुमोदन नहीं करती है। बेहतर है कि यह रिपोर्ट मुख्यमंत्री द्वारा भेजी जाए। तथापि इसके लिए स्पष्ट व्यवस्था की जानी चाहिए कि मुख्यमंत्री द्वारा केन्द्र को पाक्षिक रिपोर्ट भेजी जाए।

यदि मुख्यमंत्री को केन्द्र के पास रिपोर्ट भेजनी होगी तो वह रिपोर्ट की विषय-वस्तु क्या होनी चाहिए इसका निर्णय करने के लिए निर्णायक के रूप में कार्य करेगा। चूंकि यह सुझाव दिया जाता है कि राज्यपाल को रिपोर्ट भेजने की जिम्मेदारी नहीं दी जानी चाहिए, अत: अन्य प्रश्नों के जवाब का प्रश्न ही नहीं उठता।

6.1 और 6.2 प्रश्न के जवाब पहले ही दिए जा चुके हैं। राज्यपाल के विवेकाधिकार के आधार पर कार्य के लिए कोई भी क्षेत्र नहीं होना चाहिए।

यहां तक कि विश्वविद्यालय के कुलपति के अधिकारों का प्रयोग करने के संबंध में भी संविधान में इस संबंध में विशेष रूप से संशोधन किया जाना चाहिए कि उसे मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही इस अधिकार का प्रयोग करना चाहिए।

6.3 और 6.4 इस प्रश्न का जवाब भाग III के अन्तर्गत "राज्यपाल की भूमिका" शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है। इस सरकार द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 164 (1 क) इस प्रश्न का जवाब देता है। राज्यपाल को यह निर्णय करने की छूट नहीं होनी चाहिए कि मुख्यमंत्री राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में लगा हुआ पाया जाता है अथवा उन्हें उत्साहित करता है अथवा भ्रष्ट कार्यों में लगा हुआ है। मुख्यमंत्री वास्तविक कार्यपालिका है और वह जन प्रतिनिधि है। राष्ट्रपति शासन का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि इस सरकार का विचार है कि अनुच्छेद 356 को ही निकाल दिया जाना चाहिए।

6.5 राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को मार्गनिर्देश जारी करना अनावश्यक है परिणामत: इस प्रयोजन के लिए संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। राज्यपाल को सदैव मंत्रि परिषद् की सलाह पर कार्य करना चाहिए।

कानून और व्यवस्था

7.1 और 7.2 किसी राज्य में आंतरिक अशान्ति की स्थिति में सशस्त्र सेनाओं की तैनाती संबद्ध राज्य सरकार के अनुरोध पर ही की जानी चाहिए। यह सरकार सूची I की प्रविष्टि 2-क के निकाले जाने का सुझाव देती है।

7.3 इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य के अन्दर शांति और सुरक्षा की स्थिति के संबंध में सूचना प्राप्त करने की केन्द्र सरकार को छूट है। किन्तु रिपोर्ट प्रस्तुत करने में असफल रहने का अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि संघ के कार्यपालिका-अधिकार के प्रयोग में बाधा डाली जा रही है। इस सरकार ने पहले ही सुझाव दिया है कि अनुच्छेद 257 को निकाल ही दिया जाना चाहिए।

7.4 और 7.5 यदि राज्य में आंतरिक अशांति है तो केन्द्र को संबद्ध मुख्यमंत्री से आवश्यक सूचना प्राप्त करने की छूट है और इस संबंध में मुख्यमंत्री के सुझाव केन्द्र सरकार द्वारा कार्यान्वित किए जाएं। किन्तु किन्हीं भी परिस्थितियों में इस आधार पर राष्ट्रपति शासन लागू नहीं किया जा सकता कि राज्य में आन्तरिक गड़बड़ी है अथवा इस आधार पर कि बाह्य आक्रमण है।

इस सरकार का दृढ़ विचार है कि अनुच्छेद 356 को ही निकाल दिया जाना चाहिए। संविधान सभा में इस अनुच्छेद के संदर्भ में डा० अम्बेडकर ने निम्नलिखित बातें कहीं हैं :—

"सामान्य बहस के दौरान यह सुझाव दिया गया है कि इन अनुच्छेदों का दुरूपयोग होने की संभावना है, मैं कह सकता हूं कि मैं इस बात से पूर्णत: इंकार नहीं करता कि अनुच्छेदों के दुरूपयोग होने अथवा राजनीतिक

प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने की संभावना है। किंतु यह आपत्ति संविधान के प्रत्येक ऐसे अंश पर उठाई जा सकती है जो प्रांतों की अवहेलना करने का अधिकार केन्द्र को देते हैं। वास्तव में मैं अपने माननीय मित्र श्री गुप्ता के द्वारा कल व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हूं कि हमें इस बात की आशा करनी चाहिए कि ऐसे अनुच्छेदों को कभी भी कार्यान्वित नहीं किया जाएगा और वे अप्रचालित नियम बने रहेंगे। मैं आशा करता हूं कि राष्ट्रपति, जिसे ये अधिकार प्रदान किए गए हैं प्रांतों के प्रशासन को वास्तव में स्थगित करने से पहले उचित सावधानियां बरतेगा। मैं आशा करता हूं कि पहले वह उस प्रांत द्वारा की गई गलती के संबंध में केवल चेतावनी जारी करेगा कि संविधान में आशा किए गए अनुसार कार्य नहीं हो रहे हैं। यदि चेतावनी बेकार हो जाती है तो दूसरी बात वह यह करेगा कि उस प्रांत के व्यक्तियों द्वारा मामले को निपटाने देने के लिए चुनाव का आदेश देगा। यदि दोनों ही उपाय बेकार साबित हो जाते हैं तभी वह इस अनुच्छेद का सहारा लेगा। केवल इन्हीं परिस्थितियों में वह इस अनुच्छेद का सहारा लेगा" (सी०ए०डी० खण्ड (IX) पृष्ठ 176–177)।"

किन्तु ऐसे सभी उदाहरणों में जिसमें राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है। डा० अम्बेडकर ने अपने भाषण में जैसा कहा था या सोचा है की प्रत्यक्षत: उल्लंघन है। यह सरकार सुझाव देती है कि अनुच्छेद 356 को निकाल दिया जाना चाहिए क्योंकि यह संविधान की संघीय संरचना के विरुद्ध है। भाग IV के अन्तर्गत "प्रशासनिक संबंध" शीर्षक के अधीन इस सरकार के विचारों को विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है।

राष्ट्रपति शासन

8.1 और 8.2 इस सरकार के सुझाव को दृष्टि में रखते हुए अनुच्छेद 356 में को ही निकाल दिए जाने से इस प्रश्न के जवाब का प्रश्न ही नहीं उठता।

राज्यों के बीच सामंजस्य

9.1 और 9.4 अन्तर राज्यीय परिषद के प्रश्न पर कृपया भाग IV के अन्तर्गत, "प्रशासनिक संबंध" शीर्षक के अधीन इस प्रकार के दृष्टिकोण का संदर्भ देखें।

क्षेत्रीय परिषदों को सक्रिय किया जाए और उन्हें अधिक प्रभावकारी बनाया जाए।

केन्द्र के निदेशों का पालन करने में असफलता

10. केन्द्र सरकार द्वारा अनुच्छेद 356 का अत्यधिक दुरुपयोग किया गया है। यह सरकार सुझाव देती है कि अनुच्छेद 356 को निकाल दिया जाए। अत: इस प्रश्न के जवाब का प्रश्न ही नहीं उठता। अनुच्छेद 356 को निकाल ही दिया जाए।

अनुपूरक प्रश्नावली 6

6. भारत के संविधान के अनुच्छेद 249 से संबंधित प्रश्न का जहां तक संबंध है, इस सरकार ने पहले ही सुझाव दिया है कि इस अनुच्छेद को, भाग II–विधायी संबंध में उल्लिखित कारणों से पूरी तरह से निकाल दिया जाना चाहिए। अत: यह प्रश्न ही नहीं उठता।

अनुपूरक प्रश्नावली संख्या 7

7. अनुच्छेद 252 के संबंध में इस सरकार का विचार है कि इस अनुच्छेद को निकाल दिया जाए। वैकल्पिक रूप में अनुच्छेद 252 (2) का संशोधन इस प्रकार से किया जाना चाहिए ताकि केन्द्र और राज्य दोनों में ही पारस्परिक रूप से अधिकार निहित किए जा सकें न कि सिर्फ किसी एक को। कृपया भाग II "विधायी संबंध" के अन्तर्गत दी गई अभ्युक्तियां देखें।

अनुपूरक प्रश्नावली संख्या 8

1. उच्चतम न्यायालय ने सतपाल बनाम पंजाब राज्य (1982 आई एस सी सी) में उल्लेख किया है कि "हमारा संविधान एकात्मक विशेषताओं के साथ संघात्मक संरचना का संयोजन है।" तमिल नाडु सरकार का विचार है कि संविधान के एकात्मक विशेषताएं होने के कारण ही केन्द्र में सत्ता में रहने वाली पार्टी उन राज्यों की सरकारों को अस्थिर करती रही है कि जिन राज्यों में उसकी पार्टी की सरकारें नहीं होती हैं।

2. तमिलनाडु सरकार का यह दृढ़ विचार है कि देश की एकता और अखंडता को किसी भी तरीके से क्षति नहीं पहुंचाई जानी चाहिए। इसी समय विविध शीर्षकों के अधीन इस रिपोर्ट के पहले हिस्से में राज्यों को अधिक अधिकार दिए जाने के लिए संशोधन के लिए सुझाव दिए गए हैं ताकि राज्य सरकारें उस राज्य के लोगों की सेवा कर सकें (जिसके प्रत्यक्ष सम्पर्क में वे हैं)

3. भाग IV "प्रशासनिक संबंध" शीर्षक के अन्तर्गत इन अनुच्छेदों के संबंध में कारंवाई की गई है।

4. "राष्ट्रीय हित अथवा जन हित" जैसी अभिव्यक्ति अस्पष्ट है और मात्र राज्य विधान मण्डल और राज्य सरकारों को आबंटित विधायी और कार्यपालिकीय कार्य क्षेत्रों में केन्द्र सरकार और संघीय संसद द्वारा अतिक्रमण के लिए प्रयोग की जाती है। यह आलोचना कि सातवीं अनुसूची की सूची II में संयुक्त प्रविष्टियों को संघीय संसद ने छीन लिया है और इस प्रकार सुस्थापित तरीके से राज्य के विधायी कार्यक्षेत्र में अनुचित तरीके से अतिक्रमण कर लिया है और तमिलनाडु सरकार इस राय से सहमत है।

प्रश्न यह है कि संविधान में किस प्रकार संशोधन किया जाए कि रिपोर्ट के विविध भागों में विविध शीर्षकों के अन्तर्गत केन्द्र को दी गई शक्ति को प्रभावित किए बिना कैसे उसी स्थिति में राज्य के अपेक्षाकृत अधिक अधिकार सुनिश्चित किए जाएं।

5. अन्तर्राज्यीय परिषदों से संबंधित प्रश्न के संबंध में कारंवाई भाग V "प्रशासनिक संबंधी" शीर्षक के अन्तर्गत की गई है।

6. संविधान की मूल विशेषताओं के संबंध में निम्नलिखित मूल विशेषताओं को मान्यता दी जा सकती है :—

1. देश की एकता और अखण्डता।
2. सार्वभौम प्रजातांत्रिक गणतंत्रात्मक संरचना।
3. इस टिप्पणी के पहले भाग में सुझाव दिए गए परिशोधनों के साथ संविधान की संघात्मक संरचना।
4. संविधान की सर्वोच्चता।
5. सरकार की संसदीय पद्धति।
6. न्यायिक समीक्षा।

7. सातवीं अनुसूची के अन्तर्गत विधायी अधिकारों के वितरण का जहां तक संबंध है इस विषय का भाग-II "विधायी संबंध" शीर्षक के अन्तर्गत पहले ही उल्लेख किया गया है और इस सरकार ने संशोधित संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के संबंध में सुझाव दिए हैं।

8. संघ और राज्यों के बीच मतभेद कम करने अथवा हल्के करने के लिए इस सरकार ने विविध शीर्षकों के अन्तर्गत विविध संशोधनों के लिए सुझाव दिए हैं। उनका उल्लेख किया जा सकता है।

9. अनुच्छेद 370 के संबंध में सरकार का विचार है कि इसे निकाल दिया जाना चाहिए।

10. इस प्रश्न पर कि बिक्री कर समाप्त कर दिया जाए और इसके बदले में राज्यों की सलाह से संघ द्वारा अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाया जाए और स्वयं राज्यों द्वारा उसकी वसूली की जाए, राज्य सरकार का दृढ़ विचार है कि बिक्री कर समाप्त नहीं किया जाए। यह सुझाव दिया कि बिक्री कर के बदले में राज्यों की सलाह से सरकार द्वारा अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाया जाए और राज्यों द्वारा उसकी वसूली की जाए, तमिल नाडु सरकार इस प्रस्ताव को अस्वीकार करती है। बिक्री कर सिर्फ विधान मण्डल द्वारा विधि निर्माण का विषय है। बिक्री कर राज्यों द्वारा लगाया जाएगा और उसी के द्वारा उसकी वसूली की जाएगी।

न्यायमूर्ति सरकारिया द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दों के जवाब

राज्यपाल की भूमिका

अध्यक्ष ने राज्यपाल के पद को समाप्त किए जाने के संबंध में और अनुच्छेद 153, 159 के निकाले जाने के प्रश्न पर राज्य सरकार के जवाब मांगे हैं।

भाग III—राज्यपाल की भूमिका के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के पृष्ठ 26 पर राज्यपाल के पद की समाप्ति के सुझाव दिए जाने के कारण दिए गए हैं। इसके मुख्य कारण हैं कि राज्यपाल का पद ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के अस्तित्व में लाने के कारण पुरावशेष हैं। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यपालों ने कुछ पार्टी हितों को पूरा करने के लिए संविधान की विचारधारा और प्रलेखों के विरुद्ध अपने पदों का दुरुपयोग किया है। वास्तविक कार्यपालिका राज्य का मुख्यमंत्री होगा, जिसे राज्य के लोगों ने चुना है। जिन अधिकारों का प्रयोग राज्यपाल द्वारा किया जाना हैं कि उनका प्रयोग मुख्य मंत्री द्वारा किया जा सकता हैं।

राज्य सरकार का सुझाव है कि ऐसा कोई भी कार्य क्षेत्र नहीं होना चाहिए जहां राज्यपाल स्वनिर्णय से कार्य करें। चूंकि वास्तविक कार्यपालिका मुख्य मंत्री है अतः राज्यपाल का पद अनावश्यक है। इस दृष्टि से यह सुझाव दिया गया था कि राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

इस आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि अनुच्छेद 153 से 162 को निकाल दिया जाए। अनुच्छेद 153 में प्रत्येक राज्य के लिए राज्यपाल की व्यवस्था की गई है और अनुच्छेद 159 राज्य द्वारा पद की शपथ से संबंधित हैं। ये सभी अनुच्छेद राज्यपाल के पद से संबंधित हैं, अतः यदि राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाता है तो इन अनुच्छेदों को भी निकाल देना होगा।

अनुच्छेद 163

अनुच्छेद 163 के संबंध में मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका (डब्ल्यू०पी०सं० 1957–185) में प्रश्न उठाया गया था कि एक दिन में केवल मुख्य मंत्री की नियुक्ति और शपथ ग्रहण और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति और शपथ ग्रहण दूसरे दिन किया जाना गैर सांविधानिक है। यह विचार आर आर दलवाई बनाम तमिलनाडु सरकार मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा सुलझाया गया था। निम्नलिखित अंश प्रासंगिक हैं :—

"69. यह एक परम्परा-सी बन गई है कि मुख्य मंत्री सामान्यतः अकेले शपथ ग्रहण करता है और इसके बाद वह विचार करता है कि अपने मंत्रिपरिषद में किसे मंत्री के रूप में नामांकित करे। अब ऐसा प्रतीत होता है कि 1977 में भारत के प्रधान मंत्री ने भी 24 मार्च 1977 में अकेले ही शपथ ग्रहण की और अन्य मंत्रियों ने 26 मार्च, 1977 को। संविधान में इस संबंध में कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं है कि जिस दिन मुख्य मंत्री शपथ ग्रहण करेगा उसी दिन अन्य मंत्रियों को भी शपथ ग्रहण करना चाहिए। सरकार का संसदीय प्रजातंत्र और मंत्रि मण्डल पद्धति सामान्यतः किस तरीके से कार्य करता है और मंत्रिपरिषद के निर्माण के संबंध में निर्णय करने के लिए मुख्य मंत्री के रूप में मुख्य मंत्री द्वारा विशेषाधिकार के उपयोग पर विचार करते हुए हम कोई कारण नहीं पाते, विशेष रूप से कार्य के मौजूदा नियमों को देखते हुए हम यह विचार नहीं कर सकते कि अन्य मंत्रियों के शपथ ग्रहण तक मुख्य मंत्री सरकार के कार्यपालिकीय कार्य नहीं कर सकता है। वास्तव में यह पूर्व धारणा है कि राज्यपाल द्वारा उचित समझे गए समय के अन्दर मुख्य मंत्री अन्य मंत्रियों के नाम राज्यपाल को सूचित करेगा, जिनकी नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अधीन राज्यपाल द्वारा की जानी है। अतः हमारे द्वारा सोचा समझा गया विचार यह है कि दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा 14 फरवरी, 1985 से पहले राज्यपाल के कार्यपालिकीय अधिकारों के प्रयोग में कोई वित्तीय निर्णय करते समय किसी प्रकार की सांविधिक अयोग्यता से क्षति नहीं हुई है।

इसके पक्ष में विनिर्दिष्ट उपबंध किए जाने के लिए सुझाव दिए जाने का कारण यह है कि अन्य उच्च न्यायालय और संभवतः उच्चतम न्यायालय इसके प्रतिकूल विचार रख सकते हैं और इस बात की गुंजाइश न छोड़ने के लिए अनुच्छेद 163 में संशोधन के लिए सुझाव दिया गया है। यह सरकार इस बात से सहमत हैं कि संविधान को ब्यौरे से अतिभारित नहीं किया जाना चाहिए।

अध्यक्ष ने यह भी कहा है कि स्वीकार किए गए सामान्य सिद्धांत यह हैं कि राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह से ही अपने अधिकार का प्रयोग करेगा और राज्यपाल मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य है। शमशेर सिंह के मामले (ए आई आर 1974 एस सी 2192) में अध्यक्ष ने प्रसन्नता के साथ जिसका हवाला दिया है, इस संबंध में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :—

55. अनुच्छेद 356 के अधीन रिपोर्ट तैयार करने में राज्यपाल अपने मंत्रिपरिषद् की सहायता और सलाह के विरुद्ध भी अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने में औचित्य सिद्ध कर सकता है। इसका कारण है कि सांविधानिक मशीनरी की असफलता मंत्रिपरिषद के आचरण के कारण हो सकती है। राज्यपाल को यह विवेकाधिकार दिया जाता है कि वह राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकने में समर्थ हो सके तथापि राष्ट्रपति को सभी मामलों में अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह से कार्य करना चाहिए। इस संदर्भ में अनुच्छेद 163(2) व्याख्येय है कि अपने विवेकाधिकार के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अंतिम होगा और उसकी वैधता पर विवाद नहीं किया जा सकेगा। ऐसी रिपोर्ट पर राष्ट्रपति द्वारा की गई कार्रवाई एक अलग विषय हैं। राष्ट्रपति अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है। अन्य सभी मामलों में जहां राज्यपाल अपने स्वनिर्णय से कार्य करता है वह मंत्रिपरिषद के साथ सद्भाव रखते हुए कार्य करेगा। संविधान का यह उद्देश्य कभी नहीं है कि राज्यपाल को मंत्रिपरिषद देकर के खिलाफ जाने की अनुमति देकर राज्य के अन्दर समानान्तर प्रशासन की व्यवस्था करे।

56. इसी प्रकार अनुच्छेद 200 एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करता है जहां राज्य पाल मंत्रि परिषद की सलाह का लिहाज किए बिना कार्य कर सकता है। ऐसे मामलों में जहां राज्यपाल अपने स्वनिर्णय का प्रयोग करता है, उसे अपने कार्यों को अधिकतम विवेक से करना चाहिए। राज्यपाल द्वारा ऐसी कार्यविधि अपनाई जाना अपेक्षित है जो राज्य के लिए हानिकार न हो।

57. पूर्ववर्ती कारणों से हम समझते हैं कि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल कार्यपालिका में निहित सभी मामलों में चाहे वे कार्य स्वरूप में कार्यपालिकीय हों अथवा विधायी, संघ में प्रधान के रूप में प्रधान मंत्री के साथ मंत्रि परिषद और राज्य में प्रधान के रूप में मुख्य मंत्री के साथ मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करता है। न राष्ट्रपति और न ही राज्यपाल को कार्यपालक कार्यों का निष्पादन व्यक्तिगत तौर पर करना होता है। वर्तमान अपील का संबंध राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय से परामर्श के बाद संविधान के अनुच्छेद 234 में अपेक्षानुसार राज्यपाल द्वारा की जाने वाली राज्य की न्यायिक सेवा के लिए जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति से है। राज्य की न्यायिक सेवा से संबंधित व्यक्तियों की नियुक्ति अथवा बरखास्तगी अथवा स्थानान्तरण व्यक्तिगत कार्य न होकर संविधान के अधीन उसकी ओर से नियमों के अनुसार राज्यपाल द्वारा किए गए कार्यपालक कार्य हैं"।

उपर्युक्त निर्णय से यह पता चलता है कि पांच न्यायाधीशों के बहुमत ने यह माना है कि राज्यपाल को अनुच्छेद 356 के अधीन रिपोर्ट भेजते समय विवेकाधिकार है। इसके बाद न्यायपीठ का मानना है और कहना है कि अनुच्छेद 200 एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करता है जहां मंत्रिपरिषद की सलाह पर विचार किए बिना राज्यपाल कार्य कर सकता है। यह वांछनीय स्थिति नहीं है। राज्य विधान मण्डल

के दोनों सदनों द्वारा पास किया गया बिल राज्यपाल द्वारा स्वत: पास कर दिया जाना चाहिए। किंतु उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों की टिप्पणी निम्नलिखित है :—

"153. हम संविधान के इस भाग की विधि के संबंध में घोषणा करते हैं कि राष्ट्रपति और राज्यपाल विविध अनुच्छेदों के अधीन सभी कार्यपालक कार्यों और अन्य अधिकारों के अभिरक्षक हैं और कुछ सुस्पष्ट अपवादात्मक स्थितियों को छोड़कर अपने मंत्रियों की सलाह पर ही इन उपबंधों के आधार पर अपने औपचारिक सांविधानिक अधिकारों का प्रयोग करेंगे। सताग्रही अथवा सुविस्तृत हुए बिना वे स्थितियां निम्नलिखित से संबंधित हैं :—(क) प्रधान मंत्री (मुख्यमंत्री) का चयन यद्यपि यह चयन सर्वोच्च विचार द्वारा प्रतिबंधित है कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त करना चाहिए, (ख) ऐसी सरकार की बरखास्तगी, जिसने सदन में बहुमत खो दिया हो किंतु पद छोड़ने से इंकार करती हो, (ग) सदन को भंग करना देश के समक्ष आवश्यक अपील करना है। हालांकि इस मामले में राज्य के प्रधान को राजनीति में शामिल नहीं होना चाहिए और उसे अपने प्रधान मंत्री (मुख्यमंत्री) से सलाह लेनी चाहिए जो अन्तत: कार्रवाई की जिम्मेदारी लेगा। हम इन स्थितियों में सांविधानिक औचित्य की विस्तृत जांच नहीं करते सिवाय सावधान रहने की चेतावनी देने के कि यहां 'प्रजातंत्र के जोखिम' के कारण कार्रवाई आवश्यक है और इस प्रकार सदन अथवा राष्ट्र को अपील करना स्पष्ट रूप से बाध्यकारी हो जाना चाहिए। हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजशाही सम्मति से संबंधित डी० स्मिथ का बयान भारत के राष्ट्रपति और राज्यपाल के लिए भी सही है।"

"इस आधार पर राजशाही सम्मति को इंकार करना कि राज्य के किसी बिल को दृढ़ता पूर्वक अस्वीकार किया है अथवा यह अत्यधिक विवादास्पद है, अत: असांविधिक होगा। केवल इसी स्थिति में राजशाही सम्मति देने से इंकार करना उचित ठहराया जा सकता है, यदि सरकार स्वयं ही ऐसी कार्यविधि के लिए सलाह दे कि यह अत्यधिक संभावित आकस्मिकता है— अथवा सम्भवत: यह बुरी स्थिति है कि बिल अधिदेशात्मक कार्यविधि संबंधी अपेक्षाओं की अवहेलना करके पास किया गया था, किंतु बाद की स्थिति में चूंकि सरकार का विचार होगा कि बिल के लिए सहमति मांगी गई है उसके संबंध में व्यतिक्रम कार्यविधि की वैधता को प्रभावित नहीं करेगा अत: सहमति देना ही विवेकपूर्ण है"।

अत: बहुमत का विचार है कि राज्य विधान मण्डल द्वारा पास किए गए बिल को सहमति देने के अधिकार का प्रयोग करते समय राज्यपाल मंत्रिपरिषद की सलाह पर विचार किए बिना कार्य कर सकता है।

इस स्थिति से बचा जाना चाहिए और यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि बिल के अनुसार सहमति देने के लिए राज्यपाल सदा ही मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य है और इस संबंध में उसे किसी प्रकार का विवेकाधिकार नहीं है।

अनुच्छेद 356 :

राज्य सरकार ने पहले ही सुझाव दिया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 356 को निकाल दिया जाना चाहिए कि केन्द्र में शासन कर रही पार्टी चाहे पार्टी का संघटन किसी भी प्रकार का हो, राज्य में शासन कर रही भिन्न पार्टी की सरकार के खिलाफ अपने अधिकार का प्रयोग करती है। अत: राज्य सरकार पुन: यह सुझाव देती है कि अनुच्छेद 163(1) को निम्नलिखित तरीके से संशोधित किया जाना चाहिए :—

"राज्यपाल की सहायता और सलाह देने के लिए शीर्ष में मुख्य मंत्री के साथ मंत्रिपरिषद होगी और राज्यपाल अपने कार्यों की उसकी सलाह के अनुसार करेगा :

किन्तु अनुच्छेद 239(2), 371 और 371-क के अधीन राज्यपाल को स्पष्ट रूप से प्रदत्त कार्यों के संबंध में वह अपने कार्यों के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकेगा।

राज्यपाल को सदैव मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए संबंध में स्थिति संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम द्वारा किए गए संशोधन के अनुसार अनुच्छेद 74(1) में निर्धारित के अनुसार ही है। केन्द्र में जो स्थिति राष्ट्रपति की है, राज्य में वही स्थिति राज्यपाल की है। यह सिद्धांत बहुत से मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है : उदाहरण के तौर पर राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य (ए आई आर 1955 एस सी 549 पृ० 556) संजीवी नायडू बनाम मद्रास राज्य (ए आई आर 1970 (एस सी 1102 पृ० 1106) यू एन आर राव बनाम इंदिरा गांधी (ए आई आर 1971 एस सी 1002 पृष्ठ 1005) और समशेर सिंह का मामला (ए आई आर 1974 एस सी पृष्ठ 2192)

प्रस्तावित अनुच्छेद 164 (1-क) :

मुख्य मंत्री की नियुक्ति के सिद्धान्त के रूप में मार्गदर्शी सिद्धान्तों के रूप में अनुच्छेद 164(क) के सन्निवेश के संबंध में राज्य सरकार द्वारा दिए गए सुझाव के संबंध में अध्यक्ष का कहना है कि अनुच्छेद 164(1-क) के कार्यान्वयन में परेशानी हो सकती है। परन्तु राज्य सरकार जिस मुद्दे पर जोर देना पसंद करेगी वह यह है कि राज्यपाल को ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करनी चाहिए जिसे विधान सभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त हो और पूर्ण बहुमत प्राप्त न होने की स्थिति में राज्यपाल को ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करनी चाहिए जिसे विधान मण्डल का विश्वास प्राप्त हो। मुख्य मंत्री की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार के प्रयोग की छूट नहीं होनी चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस संबंध में परम्पराएं रही हैं। किंतु इस आयोग को यह अच्छी तरह से मालूम है कि बहुत से उदाहरणों में किस प्रकार इस परंपरा का उल्लंघन किया गया है और राज्यपाल ने इस तथ्य के बावजूद कि किसी ऐसे व्यक्ति को जिसे विधान मण्डल का विश्वास प्राप्त नहीं है, मुख्य मंत्री के रूप में नियुक्त करने की कोशिश की है। इसी स्थिति के कारण प्रस्तावित अनुच्छेद 164 (1-क) के रूप में इस सरकार को सुझाव देना पड़ा कि मूल सिद्धांत यह होना चाहिए कि मुख्य मंत्री को सदैव विधान सभा का विश्वास प्राप्त होना चाहिए और यदि वह संभव नहीं है तो प्रजातांत्रिक पद्धति के रूप में चुनाव कराए जाने चाहिए।

अध्यक्ष ने कानून और व्यवस्था की समस्या के संबंध में प्रश्न उठाया है। इस संबंध में कहना यह है कि समस्या राज्य के लिए विशेष नहीं होनी चाहिए। केन्द्र में भी ऐसे मुद्दे उठ सकते हैं। स्थिति यह है इस संबंध में राज्य सरकार का अनुरोध है कि जो भी दृष्टिकोण केन्द्र के संबंध में लागू होगा वही राज्य के संबंध में भी लागू किया जा सकता है। भारत के प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में जो उपबंध लागू होते हैं वही उपबंध राज्यों में मुख्य मंत्री की नियुक्ति के संबंध में लागू होने चाहिए।

अध्यक्ष ने विधान सभा को निलंबित प्राणवत्ता की स्थिति में रखे जाने का सुझाव दिया है। यह उनके लिए सुखद स्थिति नहीं होगी। इसमें सौदेबाजी को बढ़ावा मिलेगा और एक पार्टी से दूसरी पार्टी में आयारामों और गयारामों की भरमार हो जाएगा यह स्थिति संविधान (बावनवां) संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में शामिल किए गए दल-बदल विरोधी कानून के बावजूद होगी।

अनुच्छेद 356 :

अनुच्छेद 356 का जहां तक संबंध है इस सरकार का दृढ़ विचार है कि इसे सम्पूर्ण रूप से निकाल दिया जाना चाहिए। राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के स० पृ० 34–35 में उल्लिखित सरनामी उदाहरणों से पता चलेगा कि इस अनुच्छेद का कितना दुरूपयोग किया गया है और यह आशा करना व्यर्थ होगा कि भविष्य में इसका उपयोग ही कम किया जाएगा। वास्तव में डा० अम्बेडकर ने संविधान सभा के अपने भाषण में कहा है कि यह अनुच्छेद मृत दस्तावेज होगा, किंतु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं है। राज्य सरकार के कार्यों में दखल करने के लिए केन्द्र के लिए यह अत्यंत सजीव अनुच्छेद हो गया है। अनुच्छेद 356 संघवाद के मूल सिद्धांतों के खिलाफ है अत: इसे निकाल देना चाहिए।

अध्यक्ष द्वारा सुरक्षा उपायों के संबंध में दिए गए सुझावों अर्थात् अनुच्छेद 352(7) और 357(8) जैसे खंडों को शामिल किए जाने से किंचित भी सुरक्षा उपाय नहीं होंगे क्योंकि यह एकदम असंभव है कि संसद राष्ट्रपति शासन लागू करने का अनुमोदित कर दे, जबकि केन्द्र की शासक पार्टी को संसद में सदैव बहुमत प्राप्त है।

अनुच्छेद 263 ।

राज्य सरकार का सुझाव है कि अनुच्छेद 263, जिसकी व्यवस्था अन्तर-राज्य परिषदों के गठन के लिए की गई है निकाल दिया जाए। राज्य सरकार की रिपोर्ट के पृ० 40 पर जैसा कि पहले ही प्रस्तुत किया गया है कि अनुच्छेद 263 के अधीन किसी भी अन्तर राज्य परिषद का व्यावहारिक मूल्य नहीं होगा। अनुच्छेद 263 के अभिप्राय और भाषा इस प्रकार है कि इसके अधीन स्थापित की गई परिषद, द्वारा दी गई कोई भी सलाह की गई सिफारिशें या निकाले गये निष्कर्ष किसी भी दल के लिए बाध्यकारी नहीं है और इसका मूल्य मात्र सिफारिशी है। इसके अतिरिक्त संविधान के प्रारंभ से अब तक 35 वर्ष व्यतीत होने के बाद भी अनुच्छेद 263 के अधीन अन्तरराज्यीय परिषद स्थापित नहीं की गई है। यही कारण है कि सरकार ने सुझाव दिया है कि अन्तर्राज्यीय परिषद को समाप्त कर दिया जाए।

अन्तरराज्यीय जल-विवाद

जहां तक अन्तरराज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 का संबंध है, इस समय अधिनियम की जो स्थिति है उसका व्यावहारिक महत्व नहीं है। अधिनियम की धारा 4(1) के अधीन जब राज्य सरकार द्वारा जल विवाद के संबंध में कोई अनुरोध किया जाता है और केन्द्र सरकार के विचार से जल विवाद को समझौतों से नहीं सुलझाया जा सकता है, ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार सरकारी गजट में सूचना द्वारा जल विवाद के अधिनिर्णय के लिए जल विवाद न्यायाधिकरण संगठित करेगा। अधिनियम की धारा 6 में उल्लेखित है कि केन्द्र सरकार सरकारी गजट में न्यायाधिकरण के निर्णय को प्रकाशित करेगी और उसका निर्णय विवाद-ग्रस्त पक्षों के लिए बाध्यकारी होगा और उनके द्वारा उसे लागू माना जाएगा। इस धारा 6 का बाद में संशोधन नहीं किया गया है। अब प्रश्न यह है कि यदि कोई राज्य सरकार न्यायाधिकरण के अधिनिर्णय को लागू नहीं करती है तो उसे लागू किस प्रकार कराया जाए। 1968 के अधिनियम संशोधन में अधिनिर्णय को लागू कराने के संबंध में कार्रवाई नहीं की गई। यही कारण है कि इस सरकार ने इस रिपोर्ट के पृ० 89 में इस अधिनियम में संशोधन करके एक नए उपबंध में प्रस्तुत करने का सुझाव दिया है ताकि विवादग्रस्त पक्षों को न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए अधिनिर्णय को लागू करने के लिए आनी मानी विधिक कार्यविधि के माध्यम से राहत मिल सके। रिपोर्ट के पृ० 89 में यह भी सुझाव दिया गया है कि भारत सरकार देश की सभी अन्तरराज्यीय नदियों को राष्ट्रीय नदियों के रूप में घोषित कर सकती है क्योंकि अधिकतर बड़ी नदियां अन्तर राज्यीय स्वरूप की हैं। उसी पृष्ठपर यह सुझाव दिया गया है कि अन्तरराज्यीय नदियों से संबंधित सभी विवाद उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए गए स्थायी न्यायाधिकरण को भेजे जाएं और यदि यह विचार स्वीकार लिया जाता है तो अन्तरराज्यीय जल विवाद अधिनियम 1956 को रद्द किया जाना अथवा संशोधित किया जाना अपेक्षित है। राज्य सरकार अध्यक्ष द्वारा सुझाए गए विचारों से सहमत है कि अनुच्छेद 262 निकाल दिया जाए और अन्तरराज्यीय जल विवादों के निर्णय के लिए अधिकारिता उच्चतम न्यायालय को दी जाए और उच्चतम न्यायालय का कोई भी निर्णय अथवा आज्ञप्ति स्वत: बाध्यकारी होगी। अध्यक्ष द्वारा दिया गया यह सुझाव कि मामला पहले अन्तर राज्यीय परिषद के पास लाया जाना चाहिए और मतभेदों का पता लगाया जाना चाहिए और निपटाया जाना चाहिए और यदि इसे निपटाया नहीं जा सके तो केन्द्र सरकार की ओर से अधिदेशात्मक होगा कि वह न्यायाधिकरण बनाए जो कि समय व्यय करने वाली कार्यविधि होगी और अन्तरराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 में पाए जाने वाले दोषों को दोबारा दोहराया जाएगा। अन्तरराज्यीय परिषद के पास मामला ले जाने से समय अधिक खर्च होगा, अन्तरराज्यीय परिषद के निर्णय के समय लगेगा, और यदि अन्तर्राज्यीय परिषद द्वारा मामले न निपटाए जा सकने की स्थिति में केन्द्र सरकार को सूचित किए जाने पर न्यायाधिकरण बनाया जाता है तो भी समय लगेगा।

अनुच्छेद 254 ।

अनुच्छेद 254 के अधीन बिलों के आरक्षण के संबंध में तथ्यों और आंकड़ों के संबंध में अध्यक्ष द्वारा दिए गए सुझावों का जहां तक संबंध है, निम्नलिखित बातें प्रस्तुत हैं :—

राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत मुख्य बात यह है कि जब अनुच्छेद 254(2) के [illegible] पूर्व कानून में असंगति के आधार पर कोई बिल राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो वास्तव में केन्द्र सरकार बिल के संबंध में अपील करती है, ऐसी भी मामले देखने में आए हैं जब कोई बिल विधान मण्डल के दोनों सदनों में एकमत से पास कर दिया गया है और मुख्यमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति के विचार के लिए राज्यपाल उसे आरक्षित रखता है, गृह मंत्रालय, जो समन्वयी मंत्री मंत्रालय है द्वारा बिल को 4 अथवा 5 मंत्रालयों को भेजा जाता है। प्रत्येक मंत्रालय अपनी अभ्युक्ति देने में अपने अनुसार समय लगाती हैं और बिल की संवीक्षा नीति और सांविधानिक कोण से की जाती है। जहां तक नीति का संबंध है, राज्य से संबद्ध मामलों पर राज्य सरकार ही सर्वोत्तम नीति के संबंध में निर्णयकर्ता हो सकती है और राज्य सरकार के नीतिगत निर्णय और बिल के रूप में विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत निर्णय पर केन्द्र सरकार को निर्णय नहीं करना चाहिए। यदि यह प्रवृत्ति जारी रही तो राज्य विधान मंडल केन्द्र सरकार के अधीनस्थ हो जाएगी जिस पर संविधान में किंचित विचार नहीं किया है। अत: अनुरोध है कि जब तक कि बिल भारत की प्रभुसत्ता अखंडता और एकता के लिए खतरनाक न हो, केन्द्र सरकार को उसमें निहित नीति की दृष्टि से कभी जांच पड़ताल नहीं करनी चाहिए। पुन: यह दोहराया जाता है कि केन्द्र सरकार मामले की सांविधानिकता पर निर्णय करती है। यह प्रश्न कि अधिनियम विशेष सांविधानिक है अथवा नहीं, उच्चतम न्यायालय के अतिरिक्त कोई भी इसका जवाब निर्णायक तौर पर नहीं दे सकता। यहां तक कि उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम नहीं है और उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय के निर्णय को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता है और संविधान के अनुच्छेद 141 में उल्लेख है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि सभी न्यायालयों के लिए बाध्यकारी होगी। यदि राज्य सरकार समझती है कि बिल सांविधानिक है तो केन्द्र सरकार को उस पर निर्णय करने का अधिकार नहीं क्योंकि केन्द्र सरकार द्वारा किया गया निर्णय भी अपने आप में अंतिम नहीं है और संविधान में भी केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे निर्णय को अंतिम माने जाने के संबंध में उल्लेख नहीं है। अत: अनुरोध है कि जब मुख्य मंत्री की सलाह पर राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की सम्मति के लिए बिल आरक्षित रखा जाता है, राष्ट्रपति को स्वत: बिलपर सम्मति दे देनी चाहिए।

उदाहरण

1. बिलों पर सम्मति देने में विलम्ब ।

1. औद्योगिक विवाद (तमिलनाडु संशोधन) बिल, 1981 (1981 का विधान सभा बिल सं० 43) :—

यह बिल राज्य विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा पास कर दिया गया है और इसे 10 जून, 1981 के पत्र सं० 168 53/81- में राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया था।

औद्योगिक विवाद, अधिनियम 1947 (1947 के केन्द्रीय अधिनियम XIV) के अधिन यदि विवाद के संबंध में श्रम न्यायालय द्वारा निर्णय किया जाना है तो सरकार द्वारा संदर्भ दिया जाना आवश्यक है। यह निर्णय किया गया है कि उपर्युक्त अधिनियम की धारा 2-क के अधीन की गई किसी समाधान कार्यवाही के दौरान यदि कोई निपटारा हो जाता है तो असंतुष्ट औद्योगिक कामगार को उपर्युक्त अधिनियम की धारा-2-क के अन्तर्गत आने वाले औद्योगिक विवाद को सरकार द्वारा उक्त श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय का कोई हवाला दिए बिना निर्धारित तरीके से सीधे श्रम न्यायालय ले जाने की अनुमति होनी चाहिए और श्रम न्यायालय को ऐसे मामलों के अधिनिर्णय के लिए इस प्रकार कार्यवाही करनी चाहिए जैसे अधिनिर्णय के लिए इसे ऐसा विवाद भेजा गया हो और ऐसे अधिनिर्णय पर श्रम न्यायालय द्वारा औद्योगिक विवादों के अधिनिर्णय से संबंधित अधिनियम के अधीन सभी उपबंध लागू होंगे। उपर्युक्त अधिनियम की धारा 11 की उप धारा (4) के अनुसार अब समाधान अधिकारी को विवाद में दिए गए प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति को लाने और उसकी जांच करने का अधिकार नहीं है। यह आवश्यक समझा जाता है कि किन्हीं अभिलेखों की मांग के अतिरिक्त समाधान अधिकारी को व्यक्तियों को उपस्थिति के लिए मजबूर करने और शपथ दिलाकर जांच करने का भी अधिकार होना चाहिए अथवा प्रलेखों को प्रस्तुत करने के लिए विवश करने के अधिकार के अतिरिक्त जांच के लिए आयोग जारी करने का भी अधिकार होना चाहिए। बिल में उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

बिल को इस आधार पर आरक्षित रखा गया था कि यह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947, जो समवर्ती विषय पर मौजूदा कानून था, के उपबंधों के प्रतिकूल था ।

21 जुलाई 1981 को गृह मंत्रालय से एक पत्र प्राप्त हुआ था जिसमें इस बात का उल्लेख था कि विषय पर श्रम मंत्रालय से विचार-विमर्श किया गया था, उसने सूचित किया है कि केन्द्र सरकार पहले से ही राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित बिल के विषय पर औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में संशोधन करने के लिए विचार कर रही है और कि विषय पर केन्द्र सरकार के निर्णय के लिए विचाराधीन प्रस्ताव को राज्य सरकार आस्थागित मान सकती है ।

7 दिसम्बर 1981 को राज्य सरकार ने पुनः चिंता जताई कि बिल को संविधि संग्रह में रखा जाना चाहिए और उससे उद्भूत हित यथाशीघ्र मजदूर वर्ग को उपलब्ध कराए जाने चाहिए और कि यह भारत सरकार द्वारा विचारित विषय को कानून बनने में कुछ अधिक समय लग सकता है ।

पहली फरवरी 1983 को भारत सरकार ने राज्य सरकार को सूचित किया कि सचिवों की समिति के समक्ष बिल रखा गया था उन्होंने महसूस किया कि कामगार को अधिकार प्रदान किए जाने का प्रयत्न सामान्य अनुप्रयोज्यता नहीं होनी चाहिए और उद्योगों और सेवाओं को कुल विशेष श्रेणियों अर्थात, अनिवार्य सेवाएं और अति महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर उपबंधों को लागू करने से रोका जाना चाहिए । राज्य सरकार को इस संबंध में प्रस्ताव को संशोधित करने के लिए विचार करने की सलाह दी गई थी ।

4 अक्तूबर 1983 को औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2-क के उपबंधों के संबंध में भारत सरकार को सूचित किया गया था कि यह उपबंध कामगार विशेष को सेवा मुक्त करने, बरखास्त करने, छंटनी करने अथवा सेवा समाप्त करने से संबंधित व्यक्तिगत विवादों तक ही सीमित है, बिल में हड़ताल और तालाबंदी आदि के मामले नहीं आते है, जो कि औद्योगिक क्षेत्र पर विस्तृत प्रभाव रखते हैं । भारत सरकार को सूचित किया गया था कि जैसा कि भारत सरकार ने पहले ही उपर्युक्त बिल पर अपनी सहमति दे दी थी और चूंकि बिल दोनों सदनों से पास हो गया था, अतः राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने में शीघ्रता की जाए ।

6 मार्च 1984 को उस समय के राज्य श्रम मंत्री ने उस समय के श्रम मंत्री श्री वीरेन्द्र पाटिल को सूचित किया था कि राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा बनाई गई सनत मेहता समिति ने भी लगभग इन्हीं दृष्टियों से सिफारिश की थी और उन्होंने अब तक इस संबंध में निर्णय नहीं लिया है और जिस समय तक निर्णय लिया जाना था, प्रस्तावित संशोधन के लिए भारत सरकार की स्वीकृति की सूचना देना उनके लिए संभव न था ।

भारत सरकार के दृष्टिकोण का ध्यान में रखते हुए इस सरकार ने भारत सरकार को सूचित किया कि सनत मेहता समिति की रिपोर्ट पर भारत सरकार द्वारा निर्णय लिए जाने तक इस सरकार ने प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया है । इस प्रकार यह बिल लम्बे पत्राचार के बीच पड़ा रह गया । बिल अभी भी भारत सरकार के विचाराधीन है ।

2. तमिल नाडू हिन्दू धर्मार्थ और धर्मस्व निधि (संशोधन) बिल, 1981 (1981 का एल० ए० बिल सं० 64)—23 सितम्बर 1981 को यह बिल पत्र संख्या 28802/81-2 में राष्ट्रपति की सम्मति प्राप्त करने के लिए भारत सरकार को भेजा गया । भारत सरकार को बहुत बार अर्थात्, 24 अक्तूबर 1981, 3 दिसम्बर 1981, 11 जनवरी 1982, 10 फरवरी 1982 और 18 मार्च 1982 को याद दिलाया गया । 17 मार्च, 1982 को भारत सरकार ने बिल के संबंध में कुछ आपत्तियां उठाते हुए और राज्य सरकार की टिप्पणियां मांगते हुए श्री ला श्री अमवालबेना पन्डारा सन्नाथी अवल के प्रतिवेदनों को आगे भेजा । 7 दिसम्बर 1982 को राज्य सरकार की टिप्पणियां भेज दी गई थी । अदिनाधार द्वारा उठाए गए विधिक तर्क भी स्पष्ट थे । इस बात का भी उल्लेख कर दिया गया था कि रिट याचिका में मद्रास उच्च न्यायालय का निर्णय विवादास्पद बिल पर लागू नहीं होता था और यह भी कि उच्चतम न्यायालय में अपील करना बेहतर स्थिति होगी ।

पुनः 17 जून, 1982 को भारत सरकार ने श्री ला श्री अमवालबेना पन्डारा सन्नाथी का एक और प्रतिवेदन भेजा और राज्य सरकार की टिप्पणियां मांगी ।

पुनः 4 जनवरी, 1983 को भारत सरकार ने राज्य सरकार से टिप्पणियां मांगी और सुझाव दिया कि शायद यह उचित होगा कि या तो उच्चतम न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा कर ली जाए या फिर मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय की समीक्षा किए जाने के लिए कोई कार्रवाई की जाए ।

इस सरकार ने 2, अप्रैल 1983 को भारत सरकार द्वारा उठाए गए मुद्दों का जवाब दिया और कहा कि बिल सांविधानिक था और सहमति देने में शीघ्रता की जाए । इसके बाद अनुस्मारक भेजे गए थे ।

पुनः 8 जून, 1983 को भारत सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 26 के संबंध में इस प्रकार सरकार से टिप्पणियां मांगी । पहली दिसम्बर, 1983 को इस सरकार ने जवाब दिया कि बिल अनुच्छेद 26 का उल्लंघन नहीं करता है और राष्ट्रपति की सहमति के लिए शीघ्रता करने की मांग की । इसके बाद पुनः और अनुस्मारक भारत सरकार को भेजे गए थे ।

7 जनवरी, 1984 को भारत सरकार ने गुजरात उच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों का हवाला दिया और टिप्पणी की मांग की । 5 जून, 1984 को यह बतलाया गया कि गुजरात निर्णय इस पर लागू नहीं होता और राष्ट्रपति को सहमति प्राप्त करने के लिए शीघ्रता की मांग की गई । 9 जुलाई, 1984 को भारत सरकार की अभ्युक्ति थी कि ऐसे उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए न्यासी को हटाया जाना जो अपने कार्यों को पूरा करने की क्षमता नहीं रखता, संविधान के अनुच्छेद 26 का उल्लंघन होगा । इस सरकार ने इस बात का उल्लेख करते हुए कि बिल सांविधानिक है और विषय पर टिप्पणी संलग्न करते हुए राष्ट्रपति की सम्मति की मांग के साथ उस समय के संघ विधि मंत्री को विधि मंत्री के अर्ध सरकारी पत्र द्वारा पुनः जवाब दिया ।

4 जुलाई, 1985 को भारत सरकार को पुनः याद दिलाया गया था । 19 अगस्त, 1985 को राज्य सरकार के विधि सचिव ने संघ विधि सचिव, विधि मंत्रालय से मामले के बारे में विचार-विमर्श किया और इस बात का उल्लेख करते हुए सांविधानिक स्थिति स्पष्ट की कि महालिंगा थम्बीरान के मामले (ए आई आर 1974 एस सी 199) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है । परम्परा को संविधि द्वारा संशोधित किया जा सकता है और तदनुसार राज्य विधान मण्डल द्वारा पास किया गया बिल सांविधानिक तौर पर वैध है । उस समय के संघ विधि सचिव के महाधिवक्ता की प्राप्त की गई राय चाही । 2 सितम्बर, 1985 को उस विषय पर महाधिवक्ता से राय देने को कहा गया और जवाब की प्रतीक्षा है । भारत सरकार का दृष्टिकोण है कि अधिनियम के अधीन न्यासी की बरखास्तगी, कार्यों को पूरा कर पाने की क्षमता न होने के कारण उत्तराधिकारी की नियुक्ति का जहां तक संबंध है वह असांविधानिक है । न्यासी को हटाया जाने से पहले बिल में पर्याप्त सुरक्षा उपाय है । उच्च न्यायालय में अपील के साथ एक मुकदमा सिविल कोर्ट में पड़ा हुआ है । इस मामले में सम्मति देने में विलम्ब किया जा रहा है क्योंकि भारत सरकार का विचार है कि बिल सांविधानिक नहीं है । इस संबंध में यह निवेदन है कि इस बात का फैसला उच्चतम न्यायालय करेगा कि राज्य विधान-मण्डल द्वारा पास किया गया बिल सांविधानिक है अथवा नहीं । अतः भारत सरकार बिल की सांविधानिकता का फैसला करने के उच्चतम न्यायालय के कार्य को अपने हाथों में नहीं ले सकती है ।

3. तमिलनाडु द्वारा भारतीय चिकित्सा के चिकित्सकों की राज्य पंजी की मान्यता बिल, 1983 (1983 का एल० ए० बिल सं० 14) बिल को 14 फरवरी, 1983 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए भारत सरकार के पास भेजा गया था ।

भारतीय चिकित्सा तमिलनाडु बोर्ड द्वारा रखे गए भारतीय चिकित्सा-पंजीकार का कोई सांविधिक आधार नहीं है और यह केवल समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा जारी कार्यपालक आदेश पर आधारित है । भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् अधिनियम, 1970 (1970 का केन्द्रीय अधिनियम 48) के अन्तर्गत गठित केन्द्रीय परिषद् के लिए भारतीय चिकित्सा की आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी पद्धतियों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों का चुनाव उपर्युक्त केन्द्रीय अधिनियम की धारा 2(1) (ज) में दी गई परिभाषा के अनुसार "भारतीय चिकित्सा के राज्य-पंजीकार" के संबंध में किया गया है । सरकार को यह प्रतिवेदन किया गया है कि अब तक भारतीय चिकित्सा की राज्य पंजी को सांविधिक आधार नहीं दे दिया

जाता, तब तक उपर्युक्त राज्य रजिस्टर में पहली फरवरी 1983 तक पंजीकृत चिकित्सकों को उपर्युक्त चुनाव के लिए अथवा उसमें मतदान के लिए अपात्र समझा जाएगा। अतः यह प्रस्ताव आवश्यक विधि-निर्माण द्वारा भारतीय चिकित्सा के उपर्युक्त रजिस्टर को आवश्यक सांविधिक आधार दिए जाने के लिए था। बिल में उपर्युक्त उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

27 जून, 1984 को भारत सरकार ने राज्य सरकार से यह आश्वासन दिए जाने के लिए अनुरोध किया कि बिल में संशोधन राष्ट्रपति की अनुमति के बाद ही किए जाएंगे।

4. तमिलनाडु भवन और निर्माण कामगार [नियोजन] की शर्तें और विविध उपबन्ध (बिल 1984) 1983 की एल० ए० बिल संख्या 44]:—

—8 नवम्बर, 1984 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए बिल भारत सरकार के पास भेजा गया था।

इस समय भवन और निर्माण कार्य में लगे कामगारों के संबंध में उनके वेतन स्वास्थ्य और सुरक्षा और कार्य की अन्य शर्तों के संबंध में उनके हितों की सुरक्षा के लिए कोई अलग से विधि नहीं है इस संबंध में अलग से विधि निर्माण की अत्यधिक आवश्यकता महसूस की गई है। अतः सरकार ने इस राज्य में भवन और निर्माण कार्य में लगे कामगारों की कार्य शर्तों को नियमित करने के लिए अलग से विधि निर्माण करने के संबंध में निर्णय किया है। बिल में उपर्युक्त उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

23 मार्च, 1985 को भारत सरकार ने कुछ स्पष्टिकरण मांगे।

5. तमिलनाडु भूमि [सुधार (भूमि के संबंध में सीमानिर्धारण) संशोधन बिल 1985 (1985 को एल० ए० बिल संख्या 44):—

31 जुलाई, 1985 को बिल, राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए भारत सरकार के पास भेजा गया था।

तमिलनाडु भूमि सुधार [भूमि अधिनियम, 1961 (त०ना० अधिनियम, 58/61) के संबंध से सीमा निर्धारण] के मौजूदा उपबंधों के अनुसार कोई भी पब्लिक न्यास और शैक्षणिक संस्था भूमि अधिग्रहण नहीं कर सकती।

सरकार को इस संबंध में इस प्रकार के अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं कि उपर्युक्त अधिनियम के अधीन भूमि अधिग्रहण पर लगाए गए उपर्युक्त निषेध से शैक्षणिक संस्थाओं और अस्पतालों के विकास में बाधा पहुंची है। यहां तक कि सदाशयी प्रयोजनों के लिए भी अर्थात, शैक्षणिक संस्थाओं और अस्पतालों की स्थापना अथवा विस्तार के लिए लोक न्यास, शैक्षणिक संस्थाएं और अस्पताल भूमि अधिग्रहण नहीं कर सकते हैं। अतः उपर्युक्त अधिनियम में संशोधन करना आवश्यक समझा गया है ताकि ऐसी संस्थाओं की अनुमति के लिए आदेश में सरकार द्वारा लगाई जा सकने वाली शर्तों के अधीन ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं और अस्पताल के प्रयोजन के लिए भूमि रखने अथवा भूमि अधिग्रहण के लिए लोक न्यास, शैक्षणिक संस्थाओं और अस्पतालों के पक्ष में अनुमति देने के लिए सरकार को उपयुक्त रूप देने से अधिकार प्राप्त हो सके। उपर्युक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए उपर्युक्त अधिनियम को उपर्युक्त रूप से संशोधित करने का निर्णय किया गया है। बिल में उपर्युक्त प्रस्ताव को कार्य रूप देने का प्रयास किया गया है। विधान सभा में जिस रूप में बिल के उपबंधों को प्रस्तुत किया गया विधान मण्डल के दोनों सदनों द्वारा उन्हें उसी रूप में पास कर दिया गया।

26 नवम्बर, 1985 को भारत सरकार से एक अंतरिम जवाब प्राप्त हुआ था। भारत सरकार को 16 दिसम्बर, 1985 को अनुस्मारक भेजा गया।

6. तमिलनाडु शहरी भूमि (सीमा निर्धारण और विनियमन) संशोधन बिल, 1985 (1985 की एल० ए० बिल संख्या 45):—

जुलाई, 1985 राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए बिल को भारत सरकार के पास भेजा गया था।

तमिलनाडु शहरी भूमि (सीमा निर्धारण और विनियमन), अधिनियम, 1978 (1978 का तमिलनाडु अधिनियम, 24) के मौजूदा उपबंधों के अनुसार लोक पुण्यार्थ अथवा धर्मार्थ न्यास, शैक्षणिक संस्थाएं, अस्पताल और औद्योगिक उपक्रम अपनी खाली भूमि को न्यास के उद्देश्यों को बढ़ावा देने के प्रयोजन के लिए अथवा शैक्षणिक संस्थाओं की शैक्षिक क्रियाकलापों को बढ़ाने के प्रयोजन के लिए अथवा औद्योगिक उपक्रमों के औद्योगिक विकास को सुरक्षित रखने अथवा बनाए रखने के लिए भी नहीं बेच सकते हैं। इस संबंध में ये अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं कि ऐसी पुण्यार्थ अथवा धर्मार्थ न्यासों, शैक्षणिक संस्थाओं, अस्पतालों और औद्योगिक उपक्रमों द्वारा रखी गई खाली भूमि का सम्पूर्ण अथवा कुछ हिस्सा बेचने पर निषेध के कारण उपर्युक्त न्यासों, शैक्षणिक संस्थाओं, अस्पतालों और औद्योगिक उपक्रमों के विकास में बाधा पड़ती है। अतः यह आवश्यक समझा गया है कि लोक पुण्यार्थ अथवा धर्मार्थ न्यास जो शैक्षणिक संस्था अथवा अस्पताल खोलने के उत्सुक हैं अथवा न्यास के उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं और यदि उनके पास पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं हैं तो उस स्थिति में उपर्युक्त उद्देश्यों की पूरा करने के लिए इनके द्वारा रखी गई खाली भूमि को सम्पूर्ण रूप में अथवा आंशिक तौर पर बिक्री, बंधक, पट्टे अथवा अन्य तरीके से अन्तरण के लिए अनुमति दी जा सकती है। यह अनुमति उन न्यासों, संस्थाओं आदि द्वारा सरकार को आवेदन पत्र दिए जाने पर दी जा सकती है। सरकार द्वारा जारी किए गए अनुमति स्वीकृति आदेश में लगाई गई शर्तों के अधीन यह अनुमति दी जाएगी। इसी प्रकार शैक्षणिक संस्थाओं, अस्पतालों और औद्योगिक उपक्रमों के मामले में यह आवश्यक समझा गया है कि ऐसी संस्थाओं द्वारा रखी गई खाली भूमि को सम्पूर्ण रूप से अथवा अंशतः बिक्री, बंधक, पट्टे अथवा अन्य प्रकार से अन्तरण के लिए उन्हें सरकार द्वारा अनुमति दी जा सकती है ताकि ऐसी संस्थाओं, औद्योगिक उपक्रमों और न्यासों के पक्ष में, अनुमति की स्वीकृति आदेश देने में सरकार द्वारा लगाई गई शर्तों के अधीन शैक्षणिक संस्थाओं अथवा अस्पतालों के क्रियाकलापों की बढ़ाने के प्रयोजन के लिए अथवा औद्योगिक उपक्रमों को सुरक्षित रखने और बनाए रखने अथवा औद्योगिक उपक्रमों के क्रियाकलापों को बढ़ाने के लिए ऐसे अन्तरण की प्राप्तियों का उपयोग किया जा सके। तदनुसार यह निर्णय किया गया है कि उपर्युक्त प्रयोजन के लिए अधिनियम को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाए। उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास इस बिल में किया गया है। बिल के उपबंध विधान सभा में जिस रूप में प्रस्तुत किए गए हैं मण्डल के दोनों सदनों द्वारा उन्हें उसी रूप में पास कर दिया गया।

26 अगस्त, 1985 को भारत सरकार ने उस पर अपनी कुछ अभ्युक्तियां प्रस्तुत कीं। बिल अभी भी भारत सरकार के विचाराधीन है।

II. अनुमति निर्धारण करना

तमिलनाडु भूमि सुधार (भूमि सीमा का निर्धारण) दूसरा संशोधन बिल, 1980 (1980 की एल० ए० बिल संख्या 26)—30 अगस्त, 1980 को यह बिल राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भारत सरकार के पास भेजा गया।

बिल के खण्ड 5 द्वारा मूल अधिनियम में अध्याय III के रूप एक नए अध्याय को शामिल करने की मांग की गई है। उपर्युक्त नये अध्याय III-क में नई धाराएं 23-क से 23-छ तक हैं। नई धारा 23-क को उप धारा (1), पहली जनवरी, 1959 को अथवा उसके बाद और 6 अप्रैल, 1960 से पहले न्यास सहित कोई व्यक्ति, जिसके पास 6 अप्रैल, 1959 तक सीमा विस्तार से अधिक भूमि थी अथवा न्यास सहित किसी व्यक्ति के पास उस तारीख तक सीमा विस्तार से अधिक भूमि होती, यदि उसने ऊपर उल्लिखित अन्तरण न कर दिया होता, तो ऐसे सभी अन्तरण के मामलों को अविधिमान्य मानती है। उपर्युक्त धारा 23-क की उपधारा (2) में किसी व्यक्ति (न्यास के अतिरिक्त) के लिए उसमें व्यवस्था की गई शर्तों के अधीन शुष्क भूमि के रूप में परिभाषित पांच साधारण एकड़ अथवा नाम—भूमि के रूप में परिभाषित ढाई साधारण एकड़ की एक यूनिट तक की छूट की मांग की गई है। उपर्युक्त धारा 23-क की उप धारा (4) के अन्तर्गत भूमि आयुक्त द्वारा अधिसूचना प्रकाशित किए जाने की व्यवस्था की गई है कि लोक प्रयोजन के लिए फालतू भूमि अपेक्षित है और ऐसी अधिसूचना के प्रकाशन पर उसमें विनिर्दिष्ट भूमि को लोक प्रयोजन के लिए उपार्जित और सभी ऋण भार से मुक्त सरकार में निहीत मान लिया जाएगा। नई धारा 23-ग में अन्य बातों के साथ-साथ मूल अधिनियम के अधीन उपार्जित भूमि के संबंध में देय राशि से संबंधित उपबन्धों सहित उस अधिनियम में शामिल उपबन्धों के लागू करने की व्यवस्था है। नई धारा 23-ङ में धारा 23-क (1) में उल्लिखित अन्तरणों से संबंधित सूचना और ब्यौरे एकत्र करने के प्रयोजन के लिए उसमें उल्लिखित व्यक्तियों की समिति बनाने के लिए व्यवस्था है।

13 मार्च, 1981 को भारत सरकार ने तन्जोर जिला कृषक संघ से प्राप्त अभ्यावेदन के साथ एक पत्र भेजा और उसमें निम्नलिखित बातों का भी उल्लेख किया :—

"संघ सरकार के विभिन्न विभागों में बिल की जांच किए जाने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हुई हैं :—

(i) तमिलनाडु बिल में 1 जनवरी, 1958 को अथवा उसके बाद और 6 अप्रैल, 1960 से पहले जबकि तमिलनाडु भूमि सुधार (भूमि सीमा निर्धारण) अधिनियम 1961 लागू हुआ, किए गए कुछ अन्तरणों को अविधिमान्य माने जाने की मांग है। प्रस्तावित अविधिमान्यता न सिर्फ जन नीति की दृष्टि से नीति विरुद्ध होगी बल्कि लागू करने में भी अत्यधिक भेद मूलक होगी। जब तक कि कोई विशेष कारण न हों भूमि के सम्बन्ध में निर्धारित अधिकारों में छेड़-छाड़ न किया जाए और इसके अतिरिक्त नागरिकों के सम्पत्ति अधिकारों की अनिश्चितता को रोकने का उत्तरदायित्व है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इन अधिकारों को जन हित को हानि पहुंचाए जाने के तरीके से लागू नहीं किया जा रहा है। तथापि यह स्पष्ट है कि यदि इसमें किए जाने वाले किसी आशोधन से महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता हो तो इन अधिकारों में आशोधन किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में इस संबंध में कोई सूचना नहीं है कि संदर्भ के अधीन अन्तरण की प्रस्तावित अविधिमान्यता किसी प्रकार से जनहित से जुड़ी हुई है। इसमें कोई संदेह नही कि राज्य सरकार ने कहा है कि मार्च, 1958 में किसी समय विधान सभा में उस समय के राजस्व राज्य मंत्री के द्वारा सीमा निर्धारण किए जाने के लिए कानून बनाने की संभावनाओं का उल्लेख किए जाने के तुरंत बाद कुछ बड़े भूमि धारियों ने अपनी भूमि के अंश को अंतरित कर दिया था ऐसा विश्वास किया जाता है किंतु ऐसी कोई सूचना नही कि यह अंतरण इस सीमा तक हुआ है। मूल अधिनियम 2 मई, 1962 को फोर्ट सेंट जार्ज गजट में प्रकाशित हुआ था किन्तु 6 अप्रैल, 1960 से लागू किया गया जब बिल गजट में प्रकाशित हुआ था। अधिनियम के उपबंधों को विफल करने की दृष्टि से बाद वाली तारीख के बाद किए गए अंतरण अविधिमान्य कर दिया गया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जब मूल अधिनियम को बनाया गया था उस समय राज्य सरकार ने सोचा कि यदि लगभग 2 वर्ष पहले की तारीख से अधिनियम को पूर्वप्रभावी बनाया जाता है तो बड़ी संख्या में जाली अंतरण अविधिमान्य घोषित किए जा सकेंगे। इन वर्षों के दौरान राज्य सरकार को इस नीति की समीक्षा करने का कभी अवसर नहीं मिला। लगभग दो दशक पहले किए गए अंतरणों के मामले को इस अवस्था में पुनः समीक्षा करने जैसी असाधारण कार्रवाई से ऐसा प्रतीत होता है कि लोक हित को ध्यान में रख कर ऐसा करने की आवश्यकता महसूस की गयी है। परंतु यह असंभव नही है कि ऐसे उपाय से किसी मूर्त अथवा ठोस के परिणाम निकलने के बजाय भूमि अधिकारों में अनिश्चित स्थितियों को बढ़ावा ही मिलेगा।

(ii) बिल के भेदमूलक स्वरूप का जहां तक संबंध है, प्रस्तावित खण्ड 23-क के उपखण्ड (I) के संबंध में स्पष्टीकरण के लिए एक सन्दर्भ दिया जा सकता है, जिसके अनुसार "अन्तरण" के अन्तर्गत विभाजन शामिल नहीं होता है। यदि यह मान लिया जाए कि 1958 में उस समय के राजस्व मंत्री की घोषणा के कारण बड़ी तादात में जाली अन्तरण किए गए थे, तो यह मान लेना उचित होगा कि उतनी बड़ी संख्या में अन्तरण विभाजन के माध्यम से हुई होगी। यदि विभाजन की अवहेलना नहीं की जाए तो ऐसा अन्तरण, जो कि एक कानूनी कहानी से अंकित कुछ भी नही हैं, (चूंकि भूमि परिवार के पास ही रहती है) विधिमान्य हो जाता है, जब कि ऐसा अन्तरण वास्तव में जो दूसरे व्यक्ति का हित वहन करेंगे वह रद्द हो जाएंगे। यह स्वाभाविक है कि विभाजन की युक्ति के माध्यम से बड़ी संख्या में जाली अन्तरण किया गया हो। और यदि विभाजन में हस्तक्षेप किए जाने से इस बिल को वंचित रखा जाता तो कपटपूर्ण अन्तरणों को संरक्षण देते समय असली अन्तरणों के प्रति पक्षपात हो जाना।

(iii) वैधानिक स्थिति का जहां तक संबंध है, प्रस्तावित संशोधन संविधान के अनुच्छेद 31-क के दूसरे उपबन्ध का नियम विरुद्ध प्रयोग होगा। उपर्युक्त उपबन्ध के अनुसार यह निर्धारित किया गया है कि जहां किसी संपदा के राज्य द्वारा अधिग्रहण किए जाने के लिए किसी कानून के अनुसार उपबन्ध बनाए जाते है और जहां कोई भी ऐसी भूमि उसमें शामिल होती है जो किसी व्यक्ति द्वारा उसकी व्यक्तिगत कृषि के अधीन है, राज्य के लिए यह विधि सम्मत नहीं होगा कि वह फिलहाल लागू किसी कानून के तहत उस व्यक्ति पर लागू भूमि हदबंदी सीमा के अन्दर आने वाली भूमि का कोई हिस्सा अधिग्रहण कर ले अथवा कोई इमारत अथवा निर्मित संरचना अथवा उसके संबद्ध भाग को अधिग्रहण कर ले। ऐसा करना उस समय तक उचित नही होगा जब तक कि ऐसी भूमि, इमारत अथवा संरचना के अधिग्रहण से संबंधित कानून में उसके बाजार मूल्य की दर पर मुआवजा के लिए अदायगी की व्यवस्था नहीं कर दी जाती।

(iv) प्रस्तावित विधि-निर्माण का जहां तक संबंध है यह उपर्युक्त उपबंध में उल्लिखित किसी संपदा के बाजार मूल्य पर मुआवजे की अदायगी की व्यवस्था को निकाल देता है। उसको ध्यान में रखते हुए विधेयक उक्त सीमा तक असांविधानिक होगा। नौवी अनुसूची (मद 46) में मूल्य अधिनियम शामिल कर लेने के तथ्य मात्र से किए जाने के लिए प्रस्तावित संशोधन को बनाए नही रखा जाएगा।

ऊपर उल्लिखित विचारों को ध्यान में रखते हुए उक्त तमिलनाडु विधेयक के लिए राष्ट्रपति की अनुमति देने के संबंध में सिफारिश करना सम्भव नहीं होगा।

4 मई, 1981 को भारत सरकार को उत्तर दिया गया और उसमें इस का उल्लेख किया गया कि विधेयक में भूमि सीमा विधान के बचाव के रास्तों को बंद करने तथा सीमा कानून के वास्तविक प्रयोजन को पूरा करने की मांग की गई है। इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि तमिलनाडु सरकार ने पहले ही यह अभिव्यक्त कर दिया है कि बिल को संविधान की नौवी अनुसूची में इसलिए शामिल किया जाएगा, जिससे कि कानून के संबंध में यह चुनौती न दी जा सके कि यह संविधान के अनुच्छेद 31-क के खण्ड (I) के दूसरे परंतुक का उल्लंघनकारी है। 4 मई, 1981 को मुख्यमंत्री ने प्रधानमंत्री के पास एक पत्र भेजा। 12 अक्तूबर, 1981 को पत्र संख्या 17/68/80 न्यायिक में भारत सरकार के उप-सचिव ने तमिलनाडु सरकार, विधि विभाग के सचिव को संबोधित किया और यह उल्लेख किया कि राष्ट्रपति की अनुमति को रोक दिया गया था। उस पत्र में जो कहा गया निम्नलिखित है :—

"उपर्युक्त विषय के संबंध में तारीख 30 अगस्त, 1980 के आपके पत्र संख्या 21045/80—1 के संदर्भ में मुझे यह निदेश हुआ है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति की अनुमति रोकते हुए विधेयक की दो अधिप्रमाणित प्रतियां इसके साथ लौटा दूं। तारीख 22 जनवरी, 1982 के पत्र में भारत सरकार के जिस कारण का उल्लेख किया, वह निम्नलिखित है :—

"मुझे यह निदेश हुआ है कि मैं ऊपर उद्धृत विषय के संबंध में तारीख 5 जनवरी, 1982 के आपके पत्र संख्या 21045/80—9 का उल्लेख करूं और यह बता दूं कि मामले पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था और भारत सरकार का यह विचार था कि बिल में से अलग किए गए लेनदेन लगभग दो दशक पहले किए गए थे। मध्यवर्ती अवधि के दौरान शामिल भूमि का कई बार आदान प्रदान किया गया और सभी संभावनाओं में विद्यमान स्वामी असद्भावपूर्वक लेनदेन करने का पक्षकार नहीं रहा। यदि छोटे भूमिधारियों और वास्तविक कृषकों को छूट दे दी गई हो और यदि विभाजन द्वारा किए गए लेनदेनों को छूट दे दी गई हो तो अवशिष्ट मामले थोड़े से ही होंगे और वे उन असाधारण उपायों को न्यायोचित सिद्ध नहीं करेंगे। जिनका विधेयक में अवलोकन किया गया है।

राज्य सरकार ने इस बात का उल्लेख किया कि मूल अधिनियम, जिसे राष्ट्रपति की सहमति से अधिनियमित किया गया, में विभाजन की योजना है। जबकि इसे अस्वीकृत नहीं किया गया है, भारत सरकार ने समय-समय पर राज्य सरकार से उन उपबंधों के संबंध में पुनर्विचार करने का आग्रह किया, जिनके परिणामस्वरूप सीमा कानून से बाहर थोड़ी सी भूमि शेष रह गई है और इन सुझाओं के संबंध में, टिप्पणी दी जानी चाहिए। संक्षेप में, विभाजन द्वारा किए गए लेन-देनों के संबंध में दी गई छूट विभेद-मूलक थी तथा विधेयक के स्वीकार किए गए प्रयोजन के विपरित थी। इसके अलावा भारत सरकार भूमि संबंधित निर्धारित तथा चिरकालिक अधिकारों को बाधा पहुंचाने के तब तक पक्ष में नहीं थी, जब तक कि अप्रतिरोध्य कारण न हों और इस मामले में ये कारण नहीं है।

विधान, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 31 के दूसरे उपबन्ध में निर्दिष्ट किसी संपदा के बाजार मूल्य पर मुआवजे का भुगतान करने का उपबंध नहीं है, में उक्त परन्तुक के अनुसार प्रत्याभूति का उल्लंघन किया जाता है। उसको ध्यान में रखते हुए विधेयक उक्त सीमा तक असांविधानिक होगा और नौवी अनुसूची (मद 46) में मूल अधिनियम शामिल कर लेने के तथ्य मात्र से किए जाने के लिए प्रस्तावित संशोधन को बनाए नहीं रखा जाएगा।"

अत: यह देखा जाएगा कि भारत सरकार निर्धारित किए गए और चिरकालिक अधिकारों में बाधा पहुंचाने के पक्ष में नहीं थीं। यह बताया जाए कि यह एक विधेयक है जो कि राज्य विधान मंडल के दोनों सदनों द्वारा एकमत से पारित किया गया था।

अनुच्छेद 256, 257, और 258 :

(क) जैसा कि "प्रशासकिय सम्बन्ध" शीर्षक के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के पृष्ठ 34 में उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 256, 257, 265 और 356 संविधान के ये ऐसे चार अनुच्छेद हैं जिनका इन अनुच्छेदों के अनुसार संघ द्वारा कार्यकारी शक्ति के सम्भावित एकात्मक प्रयोग के विचार से, राज्यों पर उत्प्रेरणात्मक और विनाशकारी प्रभाव है। जैसा कि रिपोर्ट के पृष्ठ 37 में उल्लेख किया गया है, अभिव्यक्ति निम्नलिखित है जैसे (क) संसद द्वारा बनाए गए कानूनों के अनुपालन और इस प्रयोजन के लिए यथावश्यक निदेश जारी करने को सुनिश्चित करने के विषय में (अनुच्छेद 256)।

(ख) उस प्रयोजन के लिए यथा आवश्यक निदेश जारी करने के बाबत संघ की कार्यकारी शक्ति और परिणाम शक्ति के प्रयोग में विघ्न न पहुंचाना या प्रतिकूल प्रभाव न डालना।

(ग) संघ द्वारा दिए गए निदेशों का अनुपालन न करने या इन्हें लागू न करने से यह उपधारणा उत्पन्न होती है कि इनके कारण ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य संविधान के उपबन्धों के अनुसार निदेश जारी नहीं कर सकती (अनुच्छेद 365)।

(घ) राज्यपाल की रिपोर्ट अथवा राष्ट्रपति द्वारा राज्य के शासन (अनुच्छेद 326) से संबंधित सभी कार्यों को संभाले जाने से संविधान द्वारा संघ के लिए विशेष स्थिति के लिए आरक्षित शक्तियों के समावेश से राज्य को स्वायत्तता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और वह समाप्त हो जाएगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि पिछले तीन दशकों में उक्त शक्ति के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि उक्त शक्तियों का अत्यधिक दुरुपयोग हुआ है। जिसके परिणामस्वरूप असाधारण कार्रवाई की गई और राज्यों को स्वायत्तता का भवन चूर-चूर हो गया। हम पहले ही यह विचार व्यक्त कर चुके हैं कि अनुच्छेद 256, 257, 265 और 356 के बीच में शृंखलित अभिक्रिया, जिसका उत्प्रेरणात्मक प्रभाव है, से राज्य की स्वायत्तता में विनाशकारी अनुचित हस्तक्षेप हुआ है। अत: अनुच्छेद 256, 257, 265 और 365 को निकाल दिया जाए; इसे एक विशेष उपाय के रूप में आरक्षित किए जाने की राज्य की आशाएं खत्म हो गई हैं और जैसा कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी कहा है कि राष्ट्रपति द्वारा शासन को बागडोर संभालना (अनुच्छेद 356 के अधीन) अपवादपूर्ण स्थिति नहीं रही है। बल्कि एक सामान्य प्रक्रिया बन गई है और संविधान में निर्धारित तीक्ष्ण औषधि दैनिक आहार के रूप में प्रयोग की जाती है और इसे अन्तिम उपाय के रूप में प्रयोग करने की बजाय सामान्य स्थिति में प्रयोग किया जाता है। सरकार का विचार है कि अनुच्छेद 357 और 360 भी निकाल दिए जाने चाहिए।

योजना :

अध्यक्ष द्वारा दिए गए सुझावों के सम्बन्ध में, स्थानीय निकायों को योजना का काम सौंपा जा सकता है और कुछ काम राज्य सरकार द्वारा कराए जा सकते हैं, निवेदन किया गया है कि स्थानीय निकायों को नियंत्रित करने वाले विभिन्न कानून इस प्रयोजन के लिए उपबंधित हैं और विशेषत: तमिलनाडु नगर और ग्राम योजना अधिनियम, 1971 में योजना, जिसमें मद्रास के मेट्रोपोलिटन शहर के लिए योजना शामिल है, विनियम से संबंधित उपबंध अन्तर्विष्ट हैं।

संघ-सूची की प्रविष्टि संख्या-52 :

राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के पृष्ट संख्या 17–18 में बताया गया है कि उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 इस प्रविष्टि के अनुसार ही पारित किया गया है और संसद ने इस अधिनियम के अन्तर्गत बहुत सी मदें शामिल की है जिसके परिणामस्वरूप सूची-II, अर्थात् सूची-II की प्रविष्टि संख्या 7 और 52 के उपबन्धों के अन्तर्गत आने वाले "उद्योग" की प्रविष्टि संख्या-24 में उल्लिखित विधायी शक्तियां उस सीमा तक वास्तव में अप्रभावी हो जाती हैं जिस सीमा तक संसद ने उद्योग अधिनियम (विकास और विनियमन) 1951 के क्षेत्र के अन्तर्गत या प्रविष्टि संख्या-52 के किसी अन्य अधिनियम में किसी उद्योग को नियंत्रित उद्योग के रूप में शामिल किया है जिसके परिणामस्वरूप राज्य विधान मण्डल की विधायी शक्तियां छिन गई हैं। इससे संविधान की परिसंघीय संरचना निश्चय ही प्रभावित होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूची-I की प्रविष्टि-52 के अन्तर्गत संसद द्वारा अधिनियमित अधिनियमों के अन्तर्गत आने वाले नियंत्रित उद्योग के सम्बन्ध में राज्य विधान मण्डल को असक्षम बना दिया गया है।

इसके अतिरिक्त "लोकहित में" का अर्थ इतना व्यापक है कि प्रविष्टि-52 के अन्तर्गत किसी भी उद्योग को शामिल किया जा सकता है। इसी कारण तमिलनाडु सरकार ने यह सुझाव दिया है कि इस प्रविष्टि में ही "राष्ट्रीय विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण मूल उद्योग" जोड़ दिया जाए और तमिलनाडु सरकार ने राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के पृष्ट 18 पर प्रविष्टि-52 को ही नया रूप दिया है। राज्य सरकार ने यह अनुरोध किया है कि आयोग इस विषय पर विचार करे और विशेष रूप से यह बताए कि प्रविष्टि-52 में किन-किन मदों को शामिल किया जाए। अध्यक्ष का सुझाव है कि यदि आयोग विस्तृत रूप से विचार करता है तो इसमें बड़ी जोखिम होगी क्योंकि इस प्रयोजन से पुनर्विचार करना आवश्यक होगा और यदि आयोग तमिलनाडु सरकार के इस सुझाव को स्वीकार कर सकता है कि प्रविष्टि-52 में ही संसद या केन्द्रीय सरकार का उल्लेख न किया जाए और केवल उद्योगों का ही उल्लेख किया जाए ताकि सूची-II की प्रविष्टि, 24 के अन्तर्गत राज्य विधान मण्डल की दी गई विधायी शक्तियों और राज्य सरकार को दी गई केन्द्र के समकक्ष कार्यकारी शक्तियों का अतिक्रमण न हों।

त्रिपुरा सरकार

ज्ञापन

त्रिपुरा

ज्ञापन

आयोग ने हमें एक प्रश्नावली भेजी है जिसमें विभिन्न भाग हैं। हम प्रत्येक प्रश्न का अलग से उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते। हम आयोग के समक्ष निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण देना चाहते हैं।

हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि हमारा संविधान मूल रूप से इतना ठोस और लचिला है कि परिस्थितियां में परिवर्तन होने पर भी वह कारगर सिद्ध हो सकता है। 34 वर्षों की अवधि में हमारे संविधान में 45 बार संशोधन किया जा चुका है। यदि आयोग किसी ऐसे प्रतिष्ठित लोकतांत्रिक देश के किसी अन्य संविधान का उदाहरण दे सके जिसमें 34 वर्षों में इतने अधिक परिवर्तन किए गए हों तो भारत की जनता इस बात के लिए आयोग की आभारी होगी।

संघ और राज्य के संबंध में कठिनाइयां, विवाद, तनाव, और समस्याएं होने का मुख्य कारण हमारे संविधान की योजना और मूल संरचना में आंशिक कमियां हैं। यह भी सत्य है कि पिछले कई वर्षों से राज्य के हितों की रक्षा के लिए संविधान में दी गई न्यूनतम गारंटी के अनुसार कार्य नहीं हुआ है।

इन कठिनाइयों, समस्याओं और विवादों को संविधान में बहुत संशोधन किए बिना सुलझाया नहीं जा सकता है। इस प्रश्नावली में इन संबंधों के बिगाड़ का ब्यौरा नहीं दिया गया है इसलिए इस संबंध में कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। अतएव कार्यकारी पद्धति और कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाना पूर्णतया आवश्यक है। इनके कारण संघ राज्य संबंधों में तनाव पैदा होता है। परन्तु केवल कार्यकारी पद्धतियों और कार्यप्रणालियों में परिवर्तन करने से ही समस्या का समाधान नहीं होगा इसके लिए संविधान में ही उचित संशोधन करना आवश्यक है। पिछले वर्षों के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सलाहकार निकाय बनाने से कोई लाभ नहीं होगा। इस संबंध में सामान्यत: यह अनुभव किया गया है कि सलाहकार निकायों की स्पष्ट शिफारिशों को नहीं माना गया है क्योंकि इससे निहित स्वार्थ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

हम इस बात से सहमत है कि देश की स्वतंत्रता और एकता तथा अखण्डता की रक्षा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हैं। परन्तु यह खेद की बात है कि इस संबंध में संविधान में कोई व्यवस्था नहीं की गई है। बल्कि हमारा अनुभव यह है कि सामयिक, राजनीतिक, लाभ तथा पूंजीवादी और साम्राज्यवादी देशों को लाभ पहुंचाने के लिए और उनके हितों की रक्षा के लिए देश में फूट डालने वाली ताकतों को सक्रिय बनाने के अवसर दिए गए हैं। सम्पूर्ण देश में केन्द्र और राज्य के दायित्वों से संबंधित और राज्यों के आपसी संबंधों से संबंधित संवैधानिक उपबन्ध उचित नहीं है। इन उपबन्धों पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है ताकि राज्य को उन मामलों में पूरी स्वायत्तता दी जा सके जिनका संबंध केवल राज्य से ही है।

हमारे संविधान में दिए गए उपबन्धों के अनुसार "इण्डिया" अर्थात्" "भारत" देश राज्यों का एक संघ है। संविधान के अनुच्छेद–3 के अन्तर्गत संसद को विशिष्ट कार्यविधि अपनाकर (क) नया राज्य बनाने (ख) मौजूदा राज्यों की सीमाओं और नामों में परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया है। संसद को जो भी शक्ति दी गई हो हमारे संविधान में दी गई राज्य की संकल्पना के अनुसार हम राज्य की परिभाषा में परिवर्तन नहीं कर सकते उसे पूरी तरह से समाप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। हमारे संविधान की योजना से ही संविधान के नव परिसंघीय स्वरूप का पता चलता है। केन्द्र और राज्य के बीच विभिन्न कार्यकारी शक्तियों वैधानिक और न्यायिक शक्तियों—का वितरण देखकर यह पता चलता है कि भारत एक परिसंघीय देश है। हालांकि यह राज्यों, का प्राचीन परम्परा गत स्वरूप जैसे राज्यों और केन्द्र के बीच करार और राज्यों आदि का अलग संविधान नहीं है।

हमारा विचार है कि संसद को संघराज्य क्षेत्रों को राज्य बनाने का अधिकार होना चाहिए परन्तु उसे संविधान के अनुच्छेद-3 में दिए अनुसार अन्य शक्तियां या कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। यदि संसद को इस प्रकार की शक्तियां दी गई तो फुट डालने वाली ताकतें सदैव संविधान के अनुच्छेद-3 की शक्तियों का प्रयोग करते हुए आवश्यक अधिनियमन पारित करने के लिए केन्द्र सरकार पर दबाव डालने का प्रयत्न करेगी और वस्तुत: संसद को प्राप्त इस शक्ति के कारण हमारे देश में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं।

हमें यह नजर अन्दाज नहीं करना चाहिए कि उद्देशिका में अत्यधिक विवादास्पद 42वां संशोधन करके हमने 'समाजवादी' शब्द शामिल कर लिया है और यह आशा की जाती है कि इस प्रकार का शब्द शामिल करने का एक विशिष्ट उद्देश्य रहा होगा। मौजूदा राजनैतिक प्रणाली में हमें दो प्रकार के संघवादों का पता चलता हैं। (1) समाजवादी संघवाद (2) पूंजीवादी संघवाद। यदि हम रूस के संविधान की ओर देखें तो हमें समाजवादी संघवाद का नमूना मिलेगा। नि:संदेह सोवियत संविधान, 1977 उस देश में लम्बी अवधि से समाजवादी शासन के बाद ही लागू हो सका। परन्तु देश में समाजवादी शासन होने के लिए भी संविधान में कुछ ऐसे उपबंध होने चाहिए जिनसे समाजवादी अर्थव्यवस्था स्थापित की जा सके और इससे समाजवादी संघवाद स्थापित किया जा सके।

परन्तु यह बात कहना ठीक नहीं होगा कि संविधान की उद्देशिका में "समाजवाद" शब्द शामिल करने से ही किसी देश को समाजवादी देश में बदला जा सकता है।

हमारे संविधान में दिए अनुसार संघवाद और लोकतंत्र को सार्थक करने के लिए हमें अपने संविधान में संशोधन करना होगा। बहुत से मामलों में मौजूदा संविधान प्रभावशाली नही रहा है और कई मामलों में इसे गणतंत्र का गला घोटने के लिए इस्तेमाल किया गया है तथा इसका प्रयोग कमजोर लोगों को दबाने के लिए किया जा रहा है। संविधान की उद्देशिका में प्रयुक्त वामपंथी आदर्शों को व्यक्त करने वाले सुन्दर शब्द निरर्थक और अब ये प्रभावहीन हो गए हैं। वास्तव में संविधान लागू होने के बाद वाली अवधि में सामाजिक न्याय और मानव प्रतिष्ठा को बेरहमी से समाप्त कर दिया गया है। गरीब लोगों का बेहरमी से शोषण किया गया है और कुछ लोगों ने पुंजी संचित की है। हमारे संविधान के उपबन्धों में ऐसी व्यवस्था होने के कारण ही यह सब संभव हुआ है। हमारे संविधान में किए गए मूल प्रावधान के कारण पूंजीवाद को बढ़ावा मिलता है और बहुत बड़ी संख्या में जनता का शोषण होता है। संविधान के इस मूल स्वरूप को अक्षत रखते हुए संविधान की उद्देशिका मे "समाजवादी" शब्द जोड़ देने से ही हमारा देश समाजवादी नहीं बन जाएगा। अब तक बहुत से देशों में समाजवाद आ गया हैं और इसको अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकार कर लिया गया है तथा इसकी एक निश्चित प्रशासन व्यवस्था है। संविधान मे 'समाजवाद' शब्द शामिल करने से यह न्यायसंगत हो जाता है कि संविधान के उपबन्धों में इस प्रकार से संशोधन किया जाए समाजवादी संघवाद का आदर्श प्राप्त करने के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना की जा सके। हमारे संविधान में ऐसे उपबन्ध भी होने चाहिए जिनके आधार पर संविधान की उद्देशिका में जोड़े गए "समाजवाद" शब्द की सार्थक करने के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था और समाजवादी शासन स्थापित किया जा सके। हमारे पूरे संविधान में संशोधन किए जाने चाहिए ताकि समाजवादी संघवाद, समाजवादी अर्थव्यवस्था, समाजवादी समाज की स्थापना की जा सके और सामाजिक दृष्टि से न्याय किया जा सके

64—376 M. of HA/ND/87

क्योंकि हमारे देश की मौजूदा पूंजीवादी प्रणाली से ऐसी किसी व्यवस्था की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

1950 में बनाए गए संविधान को सैद्धांन्तिक दृष्टि से संघीय घोषित किया गया था किन्तु व्यवहार में यह अत्यधिक केन्द्रीकरण सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त वास्तव में लागू करते समय यह अत्यधिक-केन्द्र-प्रधान हो गया है। इसका कारण यह है कि संविधान बनाते समय और इसके बाद तीस वर्ष तक केन्द्र में जो राजनीतिक पार्टी शासन कर रही थी वही और सभी राज्यों में सत्तारूढ़ थी इसलिए ऐसा संभव हो सका।

राज्यों की स्वैच्छा से उन अधिकारों का समर्पण करने के लिए कहा गया जिनकी उनके लिए संविधान में मूलतः व्यवस्था की गई थी। पिछले 37 वर्षों के दौरान संविधान में ऐसे संशोधन किए गए जिनसे राज्यों को मूलतः दी गई स्वायत्तता छीन ली गई।

यही कारण है कि जिस क्षण अन्य पार्टियों ने राज्य में प्रशासन करना शुरू किया उस समय केन्द्र राज्य संबंधों का प्रश्न एक विवाद का विषय बन गया। जैसे ही गैर-कांग्रेसी राज्य सरकारों ने अधिक शक्तियों और स्रोतों के लिए आंदोलन किया कांग्रेस-शासित राज्यों ने भी अपनी मांगें प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। राज्य सरकारों द्वारा एक के बाद दूसरे वित्त आयोगों के सामने प्रस्तुत ज्ञापन देखने से यह जानकारी मिलेगी कि राज्य के स्रोतों पर अधिकार करने की एक प्रक्रिया का जो इस समस्त अवधि के दौरान निरंतर चली आ रही है, विरोध करने वालों में कांग्रेस द्वारा शासित राज्यों और अन्य राज्य सरकारों में कोई अन्तर नहीं है।

अतः संघ और राज्यों के बीच के संबंधों पर पूर्ण और विस्तृत विचार करने की आवश्यकता है। मूलतः संविधान की रचना करते समय ही परिसंघीय सिद्धान्तों और राज्य-स्वायत्तता संबंधी सीमों का उल्लंघन किया गया। हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं है कि मूल संविधान में कोई कमी नहीं है और केवल इसको लागू करने के संबंध में ही कमी है। इसके साथ-साथ हम यह भी मानते हैं कि लागू करने में भी दोष रह जाता है। राज्यों को संविधान में उल्लिखित स्वायत्तता भी सही अर्थों में नहीं दी गई है। अतः हम यह सुझाव देते हैं कि संविधान के मूल उपबन्धों की पूरी तरह से पुनः जांच की जाए। परन्तु पुनः जांच किस प्रकार की जाए इस संबंध में कुछ कहने से पहले हम केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में अपनी सामान्य स्थिति पर स्पष्ट कर दें।

हमें देश में एकता बनाए रखनी चाहिए और विघटनकारी ताकतों से लड़ना चाहिए। हम निश्चित रूप से देश को बचाने में समर्थ, प्रभावी और देश के आर्थिक जीवन का संगठन और समेकन करनेवाले केन्द्र के पक्ष में हैं। और यह भी चाहते हैं कि केन्द्र के पास ऐसी पर्याप्त शक्तियां हो कि वह विदेश नीति, संचार, विदेश व्यापार आदि जैसे अन्य कार्य कर सके।

दुर्भाग्य से सत्तारूढ़ दल तानाशाही शक्तियों का प्रयोग करके जनता की एकता और भारत को बाहरी आक्रमण से बचाने की इच्छा का अनुचित लाभ उठाती है और संघटक राज्यों की शक्तियों का उल्लंघन करती है और उन्हें कम करती है। सत्तारूढ़ दल मजबूत केन्द्र का अर्थ तानाशाही केन्द्र समझती है और यह मानता है कि राज्य को केन्द्र के आदेश मानने ही होंगे। आपात काल में किए गए 42 वें संशोधन से राज्य की स्थिति भारत सरकार के अधीनस्थ आश्रित हो गई थी। इससे पता चलता है कि उनकी शक्तियों को हथियाना ही अधिकारवादी शासन की वास्तविक इच्छा थी। अतः केन्द्र-राज्य संबंधों का प्रश्न केवल भारतीय एकता के प्रश्न से ही नहीं है बल्कि यह तानाशाही और लोकतान्त्रिक शक्तियों के संघर्ष से जुड़ा एक विवादास्पद प्रश्न है।

यह केवल संयोग ही नहीं है कि स्वतंत्रता के बाद बनाए गए संविधान में विकास के लिए पूंजीवादी मार्ग अपनाया गया है जिसके लिए भारत को एकीकृत, एकल और सजातीय होना आवश्यक है। इसमें जमींदारों के साथ मिले हुए बड़े पूंजीवादियों की आवश्यकताओं का पता चलता है। इसमें लोकतंत्र की मांग, राज्यों की स्वायत्तता या भाषाओं की समानता की मांग को पूंजीपतियों के आर्थिक प्रभुत्व और राजनैतिक शक्तियों में बाधास्वरूप माना गया है।

ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच परस्पर विरोध बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। बहुधा इन विरोधों के पीछे राज्यों के मध्यवर्गीय नागरिक समूह के बीच परस्पर गहरा संघर्ष होता है और यह पूंजीवादी मार्ग से होने वाले विकास की असमानता के कारण निरन्तर बढ़ता चला जाता है।

केन्द्र की पूर्वनियोजित निहित स्वार्थवाली नीतियां, सामंती शक्तियों और तानाशाही एजेन्सियों के साथ इसकी साठगांठ, आर्थिक संकट, जनता की निर्धनता के कारण लोकतांत्रिक अधिकारों और केन्द्र द्वारा राज्यों के अधिकारों का अतिक्रमण होता है।

उक्त प्रक्रिया के साथ-साथ राज्य, आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया केन्द्र पर आश्रित हो जाते हैं। केन्द्र ही राज्यों द्वारा ली जाने वाली ऋण की राशि सुनिश्चित करता है, बैंकों द्वारा राज्यों को उपबन्ध कराई जाने वाली राशि पर भी केन्द्र का ही एकाधिकार है और केन्द्र द्वारा मंजूर किए जाने वाले तदर्थ अनुदानों पर ही राज्य निर्भर करते हैं। इन सबके साथ-साथ राज्य योजना के आकार का निर्धारण करने की पद्धति के कारण राज्य योजना एक मजाक बन जाती है और केन्द्रीय योजना की सहायक योजना मात्र बन कर रह जाती है जिसे उन बड़े व्यवसायियों को सुविधानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है जो केन्द्रीय योजना पर छाए रहते हैं। इसके कारण राज्य में पिछड़ापन और असमानता बनी रहती है। राज्यों की योजनाएं राज्यों के लोगों की आवश्यकताओं और समस्त भारत की विकास संबंधी वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन नहीं बन पाती है।

संविधान में संघवादी तत्व होने के बावजूद भी बहुत वर्षों से केन्द्र में राजनैतिक और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण होने के कारण केन्द्र इन संघीय तत्वों पर हावी हो रहा है। आपातस्थिति में बनाए गए संवैधानिक संशोधन अधिनियम केन्द्र को राज्यों में राज्य सरकार की पूर्व-सहमति लिए बिना केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को भेजने की शक्ति प्रदान करते हैं और इनमें यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि इन सेनाओं को राज्य में तैनात किया गया तो ये केवल केन्द्र सरकार से ही आदेश प्राप्त करेंगी। राज्य के कुछ क्षेत्रों को अशांत क्षेत्र घोषित करने और सेना भेजने संबंधी केन्द्र की एक-पक्षीय शक्तियां इन अधिनियमों की निरंकुशता का एक और उदाहरण हैं। इनसे अत्यधिक केन्द्रीकरण होना अवश्यभावी ही था।

संविधान में केन्द्र को देश के किसी भाग में होने वाली समस्याओं में हस्तक्षेप करने और उनका समाधान करने के लिए पर्याप्त शक्तियां दी गई हैं। इसके अलावा एक ही दल के तीस वर्षों तक केन्द्रीय शासन में रहने के कारण भी केन्द्र ने अपने लिए कुछ शक्तियां अर्जित कर ली हैं। अधिकतर राज्यों में इसी पार्टी का शासन है। इन अपार शक्तियों का प्रयोग राज्य चुनावों में विधिवत चुनी गई विरोधी दलों के शासन के विरुद्ध किया जाता है। राज्यपाल की शक्तियों का दुरुपयोग करते हुए केन्द्र में शासन करने वाले दल के अल्पसंख्यक मंत्रियों को लेकर मंत्री मण्डल बनाए गए और निर्वाचन-मंडल के निर्णय को रद्द कर दिया गया।

ठीक इसी प्रकार राज्य विधान सभाओं द्वारा पारित विधेयकों को राष्ट्रपति की मंजूरी न देकर केन्द्र, जनता के हितों के लिए पारित प्रगतिशील कानून ध्वस्त करने में सफल हुआ हैं। केरल सरकार द्वारा 1957–59 में आरम्भ की गई भूमि और शिक्षा सुधार संबंधी प्रक्रिया में केन्द्र ने रुकावट डाली है। हाल ही में पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार द्वारा पारित भूमि-संबंधी कानून केन्द्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया परन्तु राष्ट्रपति ने इसे मंजूर नहीं किया यद्यपि विधान सभा ने इसे बहुत पहले ही पास कर दिया था। केन्द्र सरकार ने पहले वाली वामपंथी सरकार द्वारा गुप्त मतदान पर पारित ट्रेड यूनियनों को मान्यता प्रदान करने संबंधी उपाय को राष्ट्रपति की स्वीकृति रोक ली गई है। राज्य के उच्च सदन को समाप्त करने संबंधी आंध्र बिल भी रोक लिया गया है।

भारत की एकता की रक्षा, लोकतंत्र की रक्षा सुयोजित आर्थिक विकास का समन्वय और अन्य मूल कार्यों के लिए केन्द्र और राज्य सरकार के क्रिया-कलापों में पूर्ण और वास्तविक समन्वय आवश्यक है। इसी कारण हम राज्यों को स्वायत्तता देने के पक्ष में है। इसके बिना भारत की एकता नहीं रहेगी और एक राष्ट्र और एक देश की भावना भी कमजोर पड़ जाएगी। विभाजक ताकतों के आक्रमण के विरुद्ध एकजुट होने के लिए एकता की भावना और इच्छा होना आवश्यक है और राज्य स्वायत्तता ही इस आवश्यकता को पूरा करने

में सहायता करेगी। राज्य विधान सभाओं और सरकारों को उन्हें चुनने वाली जनता की इच्छाएं और अधिदेशों को पुरा करते के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता और शक्तियां होनी चाहिए। राज्य में निर्वाचित विधानसभाओं और सरकारों की यह स्वतंत्रता न देने का अर्थ होगा कि केन्द्र में शासन करने वाले दल पार्टी से प्राप्त अधिदेश ही महत्वपूर्ण हैं और संघ के संगठक राज्य केन्द्र के आश्रित मात्र है और ऐसी मान्यता के कारण ही भारतीय लोकतंत्र को शक्ति आदि रह जाती है।

हम इस बात में विश्वास नहीं करते कि इस प्रश्न का सही समाधान होने से ही भारतीय जनता की समस्याओं का समाधान हो जाएगा। इनका समाधान तो समाज की मूल संरचना को बदलने से ही होगा। परन्तु राज्यों को स्वायत्तता देने और केन्द्र और सत्ताधारी दल के तानाशाही शिकंजे से बचने के साधन प्रदान करने से, लोगों को केन्द्र तथा राज्य के निहित स्वार्थ का विरोध करने में सहायता मिलेगी।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 263 में संशोधन किया जाए और उसको पुनः लिखा जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अन्तर्राज्यीय परिषद से संबंधित संविधान के उपबन्धों का पालन अनिवार्य हो और इन्हें अन्तः राज्य परिषद के गठन के लिए अनिवार्य माना जाए। इस परिषद को नीचे बताए अनुसार संगठित किया जाए :—

(i) इसका अध्यक्ष प्रधान मंत्री होगा।

(ii) परिषद में एक उप-अध्यक्ष भी होगा और उप-अध्यक्ष के पद पर राज्यों के मुख्यमंत्री प्रतिवर्ष बारी-बारी से कार्य करेंगे।

(ii) इस परिषद के सदस्य केवल प्रधान मंत्री और विभिन्न राज्यों के सभी मुख्य मंत्री होंगे। परिषद की बैठक वर्ष में कम से कम चार बार होगी और प्रधान मंत्री उप-अध्यक्ष के परामर्श से बैठक की कार्यसूची निश्चित करेंगे। विशेष मामलों जैसे अनुच्छेद 356 या 365 में उल्लिखित विषयों पर विचार करने के लिए उस परिषद की आपात बैठकें बुलाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। परिषद का एक स्थायी सचिवालय हो जिसे संघ और राज्यों द्वारा संयुक्त रूप से वित्तपोषित किया जाए।

अन्य कार्यों के साथ-साथ अन्तःर्राज्यीय परिषद को निम्नलिखित कार्य भी करने होंगे :—

(क) राज्यों की सीमाओं के बारे में या संविधान के अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत आने वाले अन्य मामलों के बारे में किसी प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करना।

(ख) यदि राज्य विधान सभा द्वारा पारित किया गया कोई बिल राष्ट्रपति के सामने प्रस्तुत किया गया हो तो उस पर अपने विचार व्यक्त करना।

(ग) कार्यरत गवर्नर को हटाने से संबंधित प्रश्नों पर विचार करना।

(घ) यह सुनिश्चित करना कि अनुच्छेद 256 और 257 के अन्तर्गत निर्देश जारी किए जाएं या नहीं और यदि अनुच्छेद 365 में उल्लिखित स्थितियां उत्पन्न होने की संभावना हो तो इस अनुच्छेद के अनुसार कार्रवाई करना।

(ङ) इस संबंध में निर्णय करना कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाए या नहीं।

(च) राज्य के राज्यपाल को मार्ग निर्देशन देना।

(छ) स्थायी एजेंसियों के कार्य और उत्तरदायित्व निर्धारित करना, संघ और राज्यों के बीच स्रोतों के वितरण का पर्यवेक्षण करना और नियंत्रण रखना।

(ज) जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है राष्ट्रीय विकास परिषद की सहायता के लिए अनुच्छेद 263 के अनुसार अन्तर्राज्यीय परिषद का संगठन उचित रूप से किया जाए और उसमें राज्य सरकारों के प्रतिनिधित्व को महत्व दिया जाए। योजना आयोग को अन्तर्राज्यीय परिषद का सचिवालय बना दिया जाए और इसके प्रस्तावों पर परिषद द्वारा निर्णय किया जाए तथा निर्णय करते समय राज्य सरकारों के विचारों को उचित महत्व दिया जाए। केन्द्रीय मंत्रालयों को योजना आयोग के कार्यों में दखल देने की अनुमति न दी जाए और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं की संख्या घटाकर कम से कम कर दी जाए। ऊपर बताए अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद के स्थान पर विधिवत संशोधित अनुच्छेद 263 के अनुसार जैसा कि उपर सुझाव दिया गया है संगठित अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना की जाए।

संविधान के अनुच्छेद 247 से 254 में इस प्रकार संशोधन किया जाए कि राज्य-सूची से संबंधीत मदों पर कानून बनाने के लिए ससद के पास छः मास से अधिक अवधि तक शक्तियां न रहें और इसमें से प्रत्येक प्रस्तावित कानून को पहले अंतर्राज्यीय परिषद से अनुमोदित करवा लिया जाए तथा यदि किसी प्रस्ताव पर पुनर्विचार करना हो तो इस संबंध में अंतर्राज्यीय परिषद का पूर्व-अनुमोदन ले लिया जाए। संविधान में इसलिए संशोधन किया जाए कि समवर्ती सूची को बिल्कुल समाप्त किया जा सके और समवर्ती सूची में उल्लिखित सभी मदों को राज्य सूची अर्थात,सूची-II में दर्ज कर दिया जाए। सूची-I में उल्लिखित शेष शक्तियां केन्द्र सरकार को देने के बजाए राज्य सरकार को दे दी जाए।

अखिल भारतीय सेवाएं बनाए रखी जाएं परन्तु उनके संबंध में ऐसी व्यवस्था की जाए कि सभी प्रयोजनों के लिए अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी किसी विशेष राज्य में सेवा करते हुए भी उस राज्य सरकार के अनुशासनिक अधिकार में रहें न कि केन्द्र सरकार के अधिकार में।

हमने अनेकता में एकता का सिद्धान्त अपनाया है, प्रत्येक राज्य की अपनी विशेषताएं, परम्परा, संस्कृति, भाषा आदि होती हैं। अतः केवल राज्य ही शिक्षा की उचित योजना चलाकर अपनी परम्पराओं, संस्कृतियों, विशेषताओं आदि को बनाए रख सकता है और उन्हें समृद्ध कर सकता है। हमारे राष्ट्र की एकता और सार्थक एकीकरण के लिए इन संस्कृतियों, परम्पराओं, भाषाओं आदि की प्रगति और संरक्षण अत्यावश्यक है।

शिक्षा केवल राज्य के अधिकार क्षेत्र में ही होनी चाहिए ताकि प्रत्येक राज्य, केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना, राज्य की संस्कृति, परम्परा, भाषा आदि को समृद्ध करने एवं उन्नत करने के लिए पूरा प्रयत्न कर सके।

राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार करने के साथ-साथ ही हमें केन्द्र को रक्षा, विदेशी कार्य जिनमें विदेश-व्यापार, मुद्रा और संचार और आर्थिक समन्वय भी शामिल हैं, और जो केवल केन्द्र द्वारा ही किए जा सकते हैं। केन्द्र को सौंपकर मजबूत बनाना होगा। ये कार्य एक राज्य नहीं कर सकेगा।

भारी उद्योगों, विद्युत शक्ति, तेल और कोयला या सिंचाई योजनाएं जिनका संबंध एक से अधिक राज्यों से है, संघ सूची में दर्ज किया जाए ताकि इनके लिए एक सामान्य नीति बन सके। औद्योगिक लाइसेंस से संबंधित मामलों में, केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों के बंटवारे के संबंध से काफी संशोधन करना आवश्यक होगा। सातवीं अनुसूची की सूची पुनः बनाई जाए ताकि राज्य को अधिकतर उद्योगों के संबंध में विशिष्ट शक्तियां प्रदान की जा सकें।

संघ सरकार द्वारा राज्यों में तैनात केन्द्रीय रिजर्व पुलिस या अन्य पुलिस बलों को वापस बुला लिया जाए। कानून और व्यवस्था तथा पुलिस जैसे विषय राज्य के पास होने चाहिए। और केन्द्र को अपनी विशेष सेनाएं भेजकर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका

यह एक ऐसा प्रावधान है जिसे ब्रिटिश संविधान के उपबन्धों से लिया गया है और जिसका उल्लेख वर्ष 1950 में संविधान में शामिल किया गया है। संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल (गवर्नर) ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त व्यक्ति होता था और वह गवर्नर जनरल के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी होता था। स्वतंत्र भारत के नए संविधान में इस संबंध में केवल यह परिवर्तन किया गया कि राज्यपाल केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होने लगा। जिसका अर्थ है कि वह केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का एजेंट होता है। वास्तव में केन्द्र में सत्तारूढ़ दल द्वारा राज्यपाल के पद का इस्तेमाल राज्यों के लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार सरकार चुनने से रोकने और उनपर आकांक्षित सरकार आदि थोपने के

लिए किया जाता है। इस पद का इस्तेमाल सत्तारूढ़ दल के ही किसी गुट के ऐसे नेता को बचाने के लिए भी किया जाता है जो अपने 'हाई कमान' की आंखों की किरकिरी हो। अतः किसी भी व्यक्ति के लिए राज्यपाल को "निष्पक्ष" कहना हास्यास्पद हो गया है।

अतएव इस पद को समाप्त कर दिया जाए और यदि किसी कारणवश ऐसा करना संभव न हो तो यह पद ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति करके भरा जाए जिसे राज्य विधान सभा का विश्वास प्राप्त हो, यदि निर्वाचित विधान सभा में कोई परिवर्तन किया जाना हो तो राज्यपाल को बने नहीं रहने देना चाहिए। वर्तमान व्यवस्था में निर्वाचित कार्यपालिका जैसे मंत्रि-परिषद और राज्य के औपचारिक अध्यक्ष के बीच जो निर्वाचित विधानसभा के प्रति उत्तरदायी नहीं है परन्तु केन्द्र की कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी है, मतभेद हो जाते है।

राज्यपाल का पद हमारे संविधान का "केन्द्र बिन्दु" है। यह पद अपने निहित स्वार्थ की रक्षा के लिए ब्रिटिश तानाशाहों द्वारा बनाया गया था और अब सत्ताधारी पार्टी के निहित स्वार्थ की रक्षा के लिए बनाए रखा है। लोकतांत्रिक समाज में राज्यपाल का काम जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया गया जाता है, जनता के प्रतिनिधियों पर निगरानी रखना है जो प्रजातंत्र की संकल्पना के प्रतिकूल है। अतः इस पद को समाप्त कर दिया जाए और यदि किसी कारण से ऐसा करना संभव न हो तो इस पद को उपर उल्लिखित व्यक्ति द्वारा भरा जाए और इस पद के कार्य अनुच्छेद 263 में दिए गए प्रावधानों के अनुसार निश्चित किए जाए।

प्रशासनिक संबंध

राज्यपाल के पद के अलावा, अनेक ऐसे प्रावधान हैं जो केन्द्र द्वारा राज्य के शासन में हस्तक्षेप करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करते हैं। इनमे से महत्वपूर्ण है केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को बरखास्त करने और राज्य विधान सभाओं आदि को भंग करने की शक्तियां। इनका प्रयोग पक्षपात पूर्ण तरीके से किया गया है।

हमारे संविधान मे अखिल भारतीय सेवाओं का विशेष स्वरूप है और यह कहा जा सकता है कि हमारे देश का प्रशासन, सरकार का मंत्रिमंडल और नौकरशाही का विचित्र सम्मिश्रण है। फिर भी हम अपने वर्तमान संविधान की संरचना में नौकरशाही की प्रमुख भूमिका को नजरअन्दाज नहीं कर सकते। इस स्थिति को बदलना ही होगा।

भारतीय प्रशासन सेवा, भारतीय पुलिस सेवा आदि अखिल भारतीय सेवाए हैं जिनके अधिकारी राज्यों मे नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु जो केन्द्र सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण में रहते हैं। यह प्रणाली समाप्त कर देनी चाहिए। केवल संघ सेवाएं और राज्य सेवाएं होनी चाहिए और इनमें क्रमशः संघ सरकार और संबंधित राज्य सरकार द्वारा भर्ती की जानी चाहिए। संघ सेवाओं के कार्मिकों पर संघ सरकार का अनुशासनिक नियंत्रण होना चाहिए और राज्य सेवाओं के कार्मिकों पर संबंधित राज्य सरकार का अनुशासनिक नियंत्रण होना चाहिए। केन्द्र सरकार का राज्य सेवाओं के कार्मिकों पर कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। इस संबंध में उचित प्रावधान किए जाएँ ताकि राज्य सरकार के अधीन सेवा करते समय अखिल भारतीय सेवाओं से संबंध रखने वाले व्यक्ति उस राज्य के अनुशासनिक नियंत्रण में रहें न कि केन्द्र सरकार के नियंत्रण में।

वित्तीय संबंध

राज्य सरकारों तथा उन राज्य सरकारों ने जो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल की ही है इस संविधान के वित्तीय उपबंधों को छोड़कर, किसी अन्य भाग की इस प्रकार व्यापक आलोचना नहीं की गई है। राज्य सरकारों द्वारा उत्तरवर्ती वित्त आयोग के समक्ष प्रस्तुत ज्ञापन से पता चलेगा कि वित्तीय शक्तियों और स्रोतों के मामले में केन्द्र और राज्यों के बीच कितना गहरा भेद रखा गया है। इस प्रकार से वित्तीय संबंधों में पूरा परिवर्तन अपेक्षित है जबकि प्रशासन का प्रत्येक ऐसा विभाग जिसमें अधिक व्यय होता है (रक्षा और विदेश-कार्य के अलावा) राज्य सरकार के पास है और राजस्व प्राप्ति की सभी मदें केन्द्र के पास हैं।

वित्त आयोग और राजस्व के वितरण से संबंधित अनुच्छेदों का संशोधन किया जाए ताकि वित्त आयोग राज्यों को सभी स्रोतों से केन्द्र द्वारा उगाहे गए कुल राजस्व का 75% आवंटन कर सके। राज्यों द्वारा केन्द्र से मांग करने की व्यवस्था को समाप्त करना अत्यावश्यक है। वित्त आयोग ही इसे सुनिश्चित करेगा कि राज्यों के बीच इस प्रकार की कुल उगाही गई राशि का 75% [illegible] किस अनुपात में बांटा जाए और किस सिद्धान्त पर इस राशि का बंटवारा किया जाए ताकि केन्द्र और राज्यों के बीच बांटे जाने वाले राजस्व के अनुपात को सुनिश्चित किया जा सके। इस आयोग का कार्य केवल वह राशि निर्धारित करना होगा जो केन्द्र द्वारा की गई कुल वित्तीय उगाही में से प्रत्येक राज्य को मिलनी चाहिए।

अनुच्छेद 280, खंड 3, उपखंड 'क' हटा दिया जाए जिसमें "संघ और राज्यों के बीच करों से होने वाली निवल आय को संघ और राज्य सरकारों के बीच बांटने का प्रावधान है" और समस्त खंड की रचना पुनः की जाए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि राज्यों के बीच आय का विभाजन करने के संबंध में राष्ट्रपति से सिफारिश करने का कार्य आयोग का है। राज्य को कर लगाने और अपने लिए सार्वजनिक ऋण प्राप्त करने के संबंध में अधिक शक्तियां दी जानी चाहिए। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सातवी अनुसूची संघ, राज्य और समवर्ती सूची में उचित संशोधन किया जाए। परन्तु इस शीर्ष में आने वाले विषय ऊपर प्रस्तावित अनुच्छेद 263 के उपबन्धों में दिए अनुसार ही होंगे।

आर्थिक और सामाजिक योजना

ऊपर हमने यह बताया है कि आर्थिक विकास की योजना और समन्वय कार्य केन्द्र का ही उत्तरदायित्व होना चाहिए जिसे अंतर्राज्यीय समिति के माध्यम से लोकतांत्रिक तरीके से कार्यान्वित किया जाना चाहिए। इस समिति में राज्यों और केन्द्र का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए और जिसका कार्यकारी अंग राष्ट्रीय विकास परिषद (एन० डी० सी०) और योजना आयोग होना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य से योजना केन्द्र सरकार बनाती है और केन्द्र में सत्तारूढ़ दल राज्य पर अपनी इच्छानुसार योजना थोपती है। इसके साथ-साथ सत्ताधारी दल द्वारा चलाई जाने वाली योजना की नीतियां इस प्रकार की होती हैं जिनसे उनकी बुद्धि का दिवालियापन प्रमाणित होता है और जिनके फलस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई है।

इस स्थिति से उत्पन्न होने वाले संकट का सही समाधान योजना संबंधी नीतियों में पूर्ण रूप से परिवर्तन करना है। कदाचित यह कार्य ऐसे विधिक-संवैधानिक परिवर्तनों के अन्तर्गत नहीं आता है—जिन पर यह आयोग विचार कर रहा है। परन्तु हम यह अनुरोध करेंगे कि यह आयोग केन्द्रीय योजना के नाम पर राज्यों के समस्त आर्थिक क्रियाकलाप के केन्द्रीकरण की मांग (जिसकी मांग सत्ताधारी दल द्वारा की गई है) स्वीकार न करे और न ही केन्द्रीकृत योजना का परित्याग करे जैसा कि कुछ अन्य दलों ने सुझाव दिया है। इसका एकमात्र हल यह होगा कि योजना तो केन्द्रीकृत ही हो किन्तु नीतिनिर्धारण और उसके कार्यान्वयन में राज्य सक्रिय रूप से भाग ले या केन्द्रीकृत किन्तु लोकतांत्रिक मार्गदर्शन से राज्यों को स्वायत्तता दी जाए और नीचे के स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया जाए। परन्तु इस शीर्ष के अन्तर्गत आने वाला विषय अनुच्छेद 263 के उपबन्धों के अनुसार ही होगा जैसा कि ऊपर कहा गया है।

विविध

अंत में हम इस संदर्भ में संघ-राज्य संबंधों के चार पक्षों का उल्लेख करते हैं। ये चार पक्ष हैं प्रशासन की भाषा, निर्वाचन पद्धति, भारतीय-संघ के अन्तर्गत कश्मीर का विशेष स्थान और उत्तर-पश्चिम क्षेत्र का विशेष स्वरूप।

हमारा विचार है कि बढ़ते हुए आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक आदान-प्रदान के दौरान भारत के विभिन्न राज्यों के नागरिक अपनी आवश्यकता के अनुरूप विचारों के आदान-प्रदान की भाषा का विकास कर लेंगे। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि कोई एक भाषा बोलने वाले पर कोई अन्य भाषा न थोपी जाए। हम सब अहिन्दी भाषी नागरिकों को हिन्दी सीखने के लिए उत्साहित करने के पक्ष में हैं फिर भी हमारा विचार है कि सभी भारतीय भाषाओं को बराबर मान्यता दी जानी चाहिए। सभी अधिनियम, सरकारी आदेश और केन्द्र के संकल्प सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने चाहिए। प्रशासन, विधानसभा, न्यायपालिका में और शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग बन्द होना चाहिए

और इसके स्थान पर संबंधित राज्य के नागरिकों की भाषा को स्थान देना चाहिए। नागरिकों की अपने शैक्षिक संस्थानों में अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने तथा साथ ही राज्य से शिक्षा के माध्यम के रूप में उच्चतर स्तर तक इसका प्रयोग करने के अधिकार को मान्यता दी जानी चाहिए। उर्दू भाषा और इसकी लिपि की रक्षा की जाए। आठवीं अनुसूची में नेपाली भाषा को सम्मिलित करने के लिए संशोधन किया जाए।

वर्तमान निर्वाचन-पद्धति से अल्पसंख्यक मत वाली पार्टी संसद या विधान-सभाओं में अधिक संख्या में सीटें प्राप्त कर सकती है। इसके अनर्थकारी परिणाम आपातस्थिति में देखने को मिले जब अल्पसंख्यक मतों से निर्वाचित कांग्रेस सरकार ने ऐसे-ऐसे साधन अपनाए जिनसे नागरिक स्वतंत्रता और नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकरों का हनन हुआ तथा संसद और राज्य विधान सभाओं को केवल एक दल की रबड़ स्टाम्प बना लिया गया—यह सब "संसद की सर्वोच्चता" के नाम पर किया गया। इसके बाद जो भी स्वायत्तता राज्यों के पास बची थी वह भी छीन ली गई। अतः समानुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति अपनाना आवश्यक है और प्रत्याह्वान के अधिकार की व्यवस्था की जाए। भारतीय संघ के अन्तर्गत कश्मीर की वर्तमान विशेष स्थिति को बनाए रखा जाए।

कई वर्षों से समस्त उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की अवहेलना की गई है। संविधान में इस समस्त क्षेत्र के लिए, अपने सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए जिसमें त्रिपुरा राज्य भी शामिल है, कुछ विशेष प्रावधान किए जाएं ताकि वे अन्य राज्यों की बराबरी कर सकें। अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा करने के लिए संविधान में संशोधन करने के बाद जिन क्षेत्रों में जनजाति के लोग अधिक हों उनमें "क्षेत्रीय स्वायत्तता" दी जाए।

त्रिपुरा राज्य सहित प्रत्येक राज्य के लिए एक अलग उच्च न्यायालय होना चाहिए क्योंकि राज्य के गरीब नागरिकों के लिए यह संभव नहीं है कि वे उच्चतम न्यायालय में अपनी शिकायतों को ले जा सकें। कुल आबादी के 80% (अस्सी प्रतिशत) से अधिक लोग गरीबी का जीवन बिताते हैं। त्रिपुरा राज्य में सभी कार्य-दिवसों को उच्च न्यायालय के समस्त कार्यों के लिए उच्च न्यायालय की न्यायपीठ नहीं है। आजकल त्रिपुरा राज्य गौहाटी उच्च न्यायालय के अधिकारक्षेत्र के अन्तर्गत है और इसकी प्रधान पीठ गौहाटी में ही है। राज्य की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि सड़क से गौहाटी जाने में न केवल अधिक व्यय होता है अपितु इसमें अधिक समय भी लगता है। केवल धनी व्यक्ति ही वायुयान द्वारा गौहाटी जा सकते हैं और उच्च न्यायालय में मुकदमा कर सकते हैं। इन परिस्थितियों में राज्य की निर्धन जनता को न्यायालय के सभी कार्य दिवसों को राज्य के उच्च न्यायालय में न्याय नहीं मिल पाता। इन परिस्थितियों में राज्य की निर्धन जनता को उच्च न्यायालय द्वारा संविधान अनुच्छेद 226, अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत दी जाने वाली अर्थात्, केवल उच्च न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले सिविल, और दांडिक दोनों से संबंधित अत्यावश्यक अंतवर्ती आदेश एक सपना बन गए हैं इसलिए त्रिपुरा राज्य में एक अलग उच्च न्यायालय होना आवश्यक है। न्याय करना और न्यायपालिका की स्वतंत्रता हमारे संविधान की मूल विशेषताएं हैं। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय होना चाहिए और उसका उच्चतम न्यायालय भी उसी राज्य में होना चाहिए ताकि राज्य की निर्धन जनता अनावश्यक व्यय किए बिना राज्य के उच्चतम न्यायालय में जा सके। उत्तर पश्चिम क्षेत्र के पांच राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय होने से उस क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों को न्याय नहीं मिल पाता है। संविधान के अनुच्छेद 231 को हटा दिया जाए। उत्तर पश्चिम क्षेत्र में प्रत्येक राज्य के लिए अलग उच्च न्यायालय होना चाहिए।

उत्तर प्रदेश सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) ज्ञापन

उत्तर प्रदेश

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1. संघीय संविधान के अनुसार एक दोहरी शासन-व्यवस्था की गई है जिसमें दो स्तरों पर सरकार बनाई जाती है, एक केन्द्रीय स्तर पर जिसका अधिकार-क्षेत्र संपूर्ण देश पर होता है और दूसरी क्षेत्रीय स्तर पर, ये दोनों अपने अधिकार का प्रयोग अपने ही क्षेत्र में करती है। संघीय देश के नागरिकों पर दो सरकारों-केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय सरकारों के कानून लागू होते हैं। दोनों सरकारें सरकारी कार्यों को आपस में बांट लेती हैं और इनमें से प्रत्येक सरकार संविधान के अन्तर्गत उसे प्रदान किए गए क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करती हैं। संघीय संविधान की ये बुनियादी शर्तें हमारे देश में पूरी की गई है।

(2) निःसंदेह हमारे संविधान में ऐसी अनेक विशेषताएं हैं जो अन्य संघीय देशों के संविधानों से अलग हैं। ये विशेषताएं इस प्रकार हैं :—

(क) भारतीय संविधान में केन्द्रीयकरण का प्रावधान अधिक है। केन्द्र के पास अधिक अधिकार हैं और राज्यों की तुलना में केन्द्र अधिक प्रभावशाली हैं।

(ख) आपातकालिक उपबन्धों के अन्तर्गत इस प्रणाली को लगभग एक तंत्रीय प्रणाली के रूप में रूपान्तरित करने का प्रावधान है ताकि राष्ट्रीय आपातस्थितियों का प्रभावशाली ढंग से सामना किया जा सके।

(ग) कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद् राज्य से संबंधित विषयों में भी कानून बनाने के लिए सक्षम है।

(घ) संविधान में संशोधन की प्रक्रिया अधिक कठोर नहीं है।

(ङ) भारत में शासन-व्यवस्था तो दोहरी है किन्तु नागरिकता केवल एक ही है।

(3) इन विशेषताओं के होते हुए भी संघीय प्रणाली के अनिवार्य तत्व भारतीय संविधान में विद्यमान हैं। निःसंदेह केन्द्र सरकार अधिक शक्तिशाली है फिर भी राज्य, केन्द्र के एजेन्ट नहीं हैं। राज्यों का अस्तित्व संविधान के अधीन है न कि केन्द्र की अनुमति से। राज्यों को संविधान से अधिकार मिलते हैं न कि केन्द्रीय कानूनों से। केन्द्र सरकार संविधान के संघीय उपबन्धों में कोई संशोधन नहीं कर सकती है अपितु इस प्रकार के संशोधन केन्द्र और राज्यों के परस्पर सहयोग से ही किए जा सकते हैं। इस प्रकार संघीय प्रणाली के अनिवार्य तत्व भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं।

1.2 संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण काफी संतुलित ढंग से किया गया है। विशाल क्षेत्र, भारी जनसंख्या, अनेक विविधताओं एवं बहु-आयामी समस्याओं से युक्त हमारे देश में संघ सरकार को राज्यों के संबंध में पर्यवेक्षी भूमिका देना वांछनीय ही नहीं अपितु आवश्यक भी प्रतीत होता है। दूसरे किसी अन्य उद्देश्य की तुलना में राष्ट्र की एकता और अखंडता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

1.3 सामान्य स्थितियों में अधिकारों का विभाजन सर्वथा उचित और व्यापक है और आपातकाल के लिए भी पर्याप्त हैं। राज्यों को और अधिक अधिकार और कार्य सौंप कर विकेन्द्रीकरण करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

1.4 संभवतः, सिद्धान्ततः प्रकल्पित परम्परागत संघीय शासन प्रणाली संसार में कहीं भी विद्यमान नहीं है। संपूर्ण रूप से संघीय स्वरूप की सरकार हमारे जैसे देश के लिए उपयुक्त हो भी नहीं सकती।

1.5 मूल रूप से हमारा संविधान इतना पुष्ट और लचीला है कि इसके अनुसार बदलते समय की मांगों को भी पूरा किया जा सकता है। संघ-राज्य संबंधों में जो कठिनाईयां उत्पन्न हुई हैं उनके चाहे जो भी अन्य कारण हों, किन्तु ये कठिनाइयां संविधान के स्वरूप में किसी दोष के कारण नहीं आ रही हैं। और इन कठिनाईयों को संविधान में कोई विशेष संशोधन किए बिना मौजूदा संविधान के अन्तर्गत ही दूर किया जा सकता है।

1.6. और 1.7 यह राज्य सरकार इस विचार से पूरी तरह सहमत है कि देश की स्वतंत्रता, एकता एवं अखंडता की सुरक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारत के संविधान में केन्द्र में एक सशक्त सरकार की परिकल्पना की गई है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसमें अनेक उपबन्ध दिए गए है। विधायी कार्यों और अधिकारों का आबंटन इस प्रकार से किया गया है कि राष्ट्रीय महत्व के उन मामलों को जिनके लिए पूरे देश में एक समान कानून बनाना आवश्यक हो संघीय सूची में रखा गया है। समवर्ती अर्थात् संघीय सूची में ऐसे विषय रखे गए हैं जिनके संबंध में संसद पहले से कोई कानून बनाना आवश्यक या उचित न समझे किन्तु बाद में यदि किसी स्थिति में कोई मामला राष्ट्रीय महत्व का हो जाता है और उसके संबंध में सम्पूर्ण भारत में कार्रवाई करना आवश्यक हो जाता है तो केन्द्र सरकार उस मामले में आवश्यक कानून बना सकती है। भारत के संविधान की सूची-I की प्रविष्टि संख्या-97 के अनुसार केन्द्र को कुछ अवशिष्ट अधिकार दिए गए हैं। अनुच्छेद 249 के अनुसार राष्ट्रीय हित में राज्य-सूची के किसी मामले में संसद को कानून बनाने का अधिकार है।

इसके पश्चात्, संविधान में आपातस्थिति के लिए प्रावधान दिए गए है। उस अवधि के दौरान, जिसमें अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत जारी आपात स्थिति की उद्घोषणा की गई हो संसद को राज्य सूची में विहित किसी मामले के संबंध में देश के संपूर्ण या किसी भाग के लिए कानून बनाने का अधिकार होगा। अनुच्छेद 354 से 357 के उपबन्ध भी राष्ट्र की एकता और अखंडता की रक्षा करने में भी सहायक हैं। जिस अवधि में आपात स्थिति की उद्घोषणा की गई हो उसमें अनुच्छेद 354 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के आदेश जारी किए जा सकते हैं ताकि अनुच्छेद 268 से 279 के उपबन्धों के अनुसार संघ और राज्यों के बीच राजस्व के बंटवारे के उपबन्धों में उचित रूप से संशोधन किया जा सके। अनुच्छेद 355 के अन्तर्गत संघ को यह कार्य सौंपा गया कि वह प्रत्येक राज्य की बाह्य आक्रमणों और आंतरिक झगड़ों से रक्षा करे और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार ही चलाई जा रही है। यदि राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट हो जाए कि राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती है तो राज्य के गवर्नर से इस आशय की रिपोर्ट प्राप्त होने पर राज्य के सभी या कुछ कार्य या शक्तियां और राज्य के प्राधिकारों की उस समय राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति, अपने हाथ में ले सकता है। संघ को यह शक्ति भी दी गई है कि वह यह सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकार को निर्देश जारी करे कि प्रत्येक राज्य की कार्यकारी शक्ति का इस प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है जिससे संघ की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग करने में कोई बाधा नहीं आती या उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। संघ को केन्द्रीय नियमों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए किसी भी राज्य को निर्देश जारी करने की शक्ति है (अनुच्छेद 256 और 257)। उक्त निर्देशों का पालन न करने पर राष्ट्रपति कानूनन यह मान सकता है कि इस स्थिति में संविधान के उपबन्धों के अनुसार किसी राज्य की सरकार नहीं चलाई जा सकती। ये शक्तियां असाधारण परिस्थितियों में प्रयोग करने के लिए दी गई हैं ताकि देश में एकता और अखंडता बनी रहे। ये शक्तियां उचित और न्यायोचित हैं।

1.8. निःसंदेह संसद को किसी राज्य या राज्यों के किसी भाग से कुछ क्षेत्र को अलग करके नया राज्य बनाने और किसी राज्य के क्षेत्र या नाम में परिवर्तन

65—376 M. of HA/ND/87

करने की शक्ति प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार का अधिनियम तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि संबंधित राज्य या राज्यों के विचार न जान लिए जाएं। इस संबंध में ऐसा प्रतीत होता है कि किसी राज्य के क्षेत्र या नाम में परिवर्तन करने का कोई प्रश्न तब तक नहीं उठता जब तक असाधारण परिस्थितियों में इसकी आवश्यकता न पड़े। अतः, हमारे विचार में इस उपबन्ध में आशोधन करने की आवश्यकता नहीं है।

भाग II

वैधानिक संबंध

2.1 संविधान के अनुच्छेद 249 में दिए अनुसार राज्य के किसी विषय में संसद द्वारा उस स्थिति में कानून बनाने का प्रावधान है। जबकि ऐसा करना राष्ट्रीय हित में आवश्यक हो। इसी अनुच्छेद में इस प्रावधान के दुरुपयोग से बचने के लिए दोहरी सुरक्षा का प्रावधान किया गया है। संसद द्वारा इस अधिकार का प्रयोग करने के लिए यह शर्त रखी गई है कि इस संबंध में पहले राज्य सभा द्वारा एक संकल्प पारित होना चाहिए। कुछ मनोनीत सदस्यों को छोड़कर राज्य सभा का गठन राज्य विधान मंडलों से चुने गए सदस्यों द्वारा किया जाता है, जिनके द्वारा राज्य के अधिकारों की तब तक अवहेलना होने की अपेक्षा नहीं की जाती जब तक कि राष्ट्रीय हित में प्रस्तावित कानून बनाना वास्तव में जरूरी न हो। दूसरे, कोई संकल्प तब तक पारित नहीं समझा जाता जब तक उसके समर्थन में दो-तिहाई बहुमत प्राप्त न हो जाए। इस प्रकार इस संकल्प के दुरुपयोग या केन्द्र द्वारा राज्य के वैधानिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की संभावना बहुत कम है। जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य का संबंध है ऐसा कोई मामला नहीं है जिसमें केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय या सार्वजनिक हित की आड़ लेकर राज्य के वैधानिक क्षेत्र में कभी हस्तक्षेप किया हो।

2.2 केन्द्र और राज्य के बीच वैधानिक अधिकारों का वितरण विस्तृत रूप से किया गया है। अधिकारों के इस वितरण की एक विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत केन्द्र और राज्य के लिए विषयों की एक लम्बी समवर्ती-सूची विद्यमान है। और इससे इसमें दिए गए किसी भी विषय के संबंध में केन्द्र और राज्य विधान सभा दोनों की आवश्यकताओं को पूरा करने के मामले में संतुलन रखा गया है। स्थानीय परिस्थितियों को देखकर राज्य समवर्ती सूची में शामिल किसी भी विषय में कानून बना सकता है तथापि यदि कोई मामला राष्ट्रीय महत्व का बन जाता है और उसके संबंध में अखिल भारतीय आधार पर समान कार्रवाई करना अपेक्षित होता है तो केन्द्र सरकार आवश्यक विधान बनाने की कार्रवाई कर सकती है, संभव है कि इसमें कहीं कोई कमी हो किन्तु वैधानिक अधिकारों के व्यापक वितरण से पिछले 35 वर्षों में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई है और यह अत्यन्त सफल रहा है। अतः वैधानिक अधिकारों के वितरण में कोई परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है।

2.3 निश्चित रूप से भारत सरकार के लिए यह वांछनीय होगा कि वह समवर्ती सूची में शामिल किसी मामले पर कोई कानून बनाने से पहले राज्य सरकार से परामर्श करे तथापि इस प्रयोजन से कोई संवैधानिक उपबन्ध बनाना आवश्यक प्रतीत नहीं होता और यह कार्रवाई परम्परा के रूप में ही की जानी चाहिए। इसमें काम चलाने के लिए यह व्यवस्था भी होनी चाहिए कि यदि कोई राज्य सरकार एक निर्दिष्ट समय के अन्दर, अपनी राय न दे तो यह मान लिया जाएगा कि राज्य सरकार को प्रस्तावित विधान के संबंध में कोई आपत्ति नहीं है।

2.4 अनुच्छेद-249 के अन्तर्गत निर्दिष्ट संकल्प एक अवधि विशेष के लिए ही लागू रहता है। यह उक्त अनुच्छेद के प्रयोजन के अनुरूप है। किसी राज्य संबंधी विषय पर संसद द्वारा एक अल्प अवधि के लिए कोई कानून बनाना राष्ट्रीय हित में हो सकता है किन्तु, वह स्थिति कुछ समय के बाद बदल सकती है जिसके कारण ऐसा संकल्प पारित किया गया हो। ऊपर दिए अनुसार इस प्रकार बनाया गया कानून प्रभावी नहीं रहेगा और राज्य विधान-मंडल का अधिकार उसे वापस मिल जाएगा। यदि कभी यह जरूरी समझा जाए कि संसद को किसी राज्य के विषय में कोई स्थायी कानून बनाना आवश्यक है तो ऐसा मामला राज्य सूची से संघ सूची में अंतरित कर दिया जाना चाहिए। किन्तु अनुच्छेद-249 में निर्दिष्ट आपवादिक शक्ति एक अवधि विशेष के लिए ही होनी चाहिए, स्थायी नहीं।

2.5 केन्द्र और राज्यों के बीच वैधानिक शक्तियों का वर्तमान वितरण उचित है और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 हमारे संविधान निर्माताओं ने मजबूत केन्द्र की संकल्पना की है। यही कारण है कि भारत में राज्यों की वही स्थिति नहीं है जो संयुक्त राज्य अमरीका की संघीय यूनिटों की है। यद्यपि राज्यों को सरकारी शक्तियां दी गई हैं फिर भी राज्यों पर केन्द्र का पूरा नियंत्रण रहता है और राज्यों को केन्द्र के निर्देशानुसार कार्य करना होता है। केन्द्र, राज्यपाल जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करता है के माध्यम से अपने पर्यवेक्षी क्रियाकलाप करता है। इस प्रकार संविधान के अनुसार राज्यपाल दोहरे उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है अर्थात केन्द्र के प्रति और राज्य की कार्यपालिका के प्रति जिसका वह अध्यक्ष है, अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करता है। कुल मिलाकर राज्यपाल संविधान द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्वों को जनता की आकांक्षाओं के अनुसार निर्वहन कर रहे हैं। जब तक राज्यों में उसी दल का शासन था जो केन्द्र में सत्तारूढ़ थी तब तक कोई कठिनाई नहीं होती थी। इस स्थिति में परिवर्तन होने के कारण कुछ कठिनाइयाँ सामने आईं। परन्तु इस राज्य को अब तक किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा है।

3.2 यदि राज्यपाल जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए अपने संवैधानिक कर्तव्य का निर्वहन ईमानदारी और निष्पक्ष रूप से करे तो वह राज्य और केन्द्र में अच्छे संबंध बनाए रखने के लिए कार्य कर सकता है।

3.3 राज्यपाल राज्य का केवल आलंकारिक अध्यक्ष ही नहीं है। उसके पास महत्वपूर्ण संवैधानिक कार्य है जिनका उसे निष्पादन करना होता है। राज्य में राज्यपाल ही मुख्य मंत्री की नियुक्ति करता है, सदन को भंग कर सकता है या यदि राज्य में संवैधानिक तन्त्र असफल हो जाए तो वह अनुच्छेद 356 के उपबन्धों का सहारा ले सकता है। वह किसी दल का सदस्य नहीं है। वह संविधान के प्रति निष्ठावान रहने के लिए वचनबद्ध होता है और संवैधानिक उपबन्धों के अनुसार राज्य की जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यों का ईमानदारी और निष्पक्ष रूप से निष्पादन करता है।

(क) अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत कार्रवाई के संबंध में राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजने के मामले में उसे किसी राजनीतिक पार्टी के हित-साधन का कार्य नहीं करना चाहिए। उसे दूसरी स्थिर सरकार बनाने की सभी संभावनाओं पर विचार करना चाहिए। तटस्थ मूल्यांकन करने के पश्चात् यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस प्रकार की कोई संभावना नहीं है, तभी वह अनुच्छेद 356(1) के अंतर्गत रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकता है।

(ख) मुख्य मंत्री की नियुक्ति करते समय उसे निष्पक्ष और तटस्थ होकर निर्णय करना चाहिए। यदि किसी राजनीतिक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है और वह अपना नेता चुनने में समर्थ है तो ऐसी स्थिति में कोई कठिनाई नहीं होगी। कठिनाई केवल उस स्थिति में होती है जब किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो। ऐसे मामलों में राज्यपाल को ऐसी पार्टी का चुनाव करना होता है जो राज्य में स्थिर सरकार बना सके। जिस पार्टी के पास अधिक सीटें हों उसी पार्टी को सरकार बनाने का अवसर दिया जाए।

(ग) मंत्रि परिषद् के परामर्श से ही सदन का सत्रावसान करना होता है। संभव है किसी समय सदन का कार्य समाप्त हो जाए या निरंतरता बनाए रखने के लिए कोई महत्वपूर्ण अध्यादेश पुनः प्रख्यापित करना पड़े और निर्धारित समय के अन्दर बिल के स्थान पर दूसरा बिल पारित किए जाने की गुंजाइश न हो तो ऐसी परिस्थितियों में सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सत्रावसान के संबंध में परामर्श दे और तदनुसार गवर्नर कार्रवाई करे।

परन्तु सदन भंग करने के बाद ऐसा अवसर भी आ सकता है जिसमें उसे स्वतंत्र रूप से कार्रवाई करने को कहा जा सकता है। यदि सदन की अवधि पूरी होने वाली हो और चुनाव होना हो तो राज्यपाल सदन की अवधि समाप्त होने

से कुछ समय पहले मंत्रिमंडल का सदन भंग करने संबंधी परामर्श स्वीकार कर सकता है। परन्तु यदि सरकार का सदन में बहुमत न हो तो सदन भंग करने के संबंध में हारे हुए मंत्रिमंडल की सिफारिश का कोई अधिक महत्व नहीं होता। सदन भंग करना एक गंभीर कार्य है और इसके परिणामस्वरूप मध्यावधि चुनाव करवाने पड़ते हैं और उन पर बहुत खर्चा होता है। बिना किसी पर्याप्त आधार के सदन भंग नहीं करना चाहिए।

3.4 राज्यपाल राज्य विधानसभा का अभिन्न अंग है। अतः बिल पारित करने के लिए किसी भी स्तर पर उसका सहयोग लेना अनिवार्य है। संभव है, बिल में ऐसे परिवर्तन करके उसे पारित किया जाए जिनको करने के संबंध में सरकार ने मूल रूप से विचार न किया हो। इतना ही नहीं बिल पारित हो जाने के पश्चात् भी नागरिकों की प्रतिक्रिया जानने के लिए सरकार उसके संबंध में पुनः विचार कर सकती है। राज्य विधान सभा की सहमति आवश्यक होने से यह लाभ होगा कि सरकार को प्रस्तावित कानून के विभिन्न पक्षों और परिणामों पर पुनः विचार करने का अवसर मिल जाएगा तथा राज्यपाल को यह अधिकार है कि बिल पर पुनः विचार करने के लिए बिल को वापस विधान सभा में भेज दें।

राष्ट्रपति की सहमति के लिए बिल भेजने की आवश्यकता मुख्यतः समवर्ती सूची के उन मामलों में पड़ती है जहां राज्य का कानून राष्ट्रपति की सहमति के बिना केन्द्र के कानून पर हावी न हो सकता हो। इसके अलावा ऐसी परिस्थितियों की कल्पना भी की जा सकती है जिनमें राज्यपाल, मामले के राष्ट्रीय महत्व को देखते हुए उसे केन्द्रीय सरकार के ध्यान में लाना उचित समझता हो। उत्तर प्रदेश में ऐसा कोई भी अवसर नहीं आया जब राज्यपाल ने मंत्रि-परिषद् के परामर्श या संविधान के उपबन्धों के आशय, भाव और प्रयोजन के विरुद्ध राष्ट्रपति की सहमति के लिए कोई बिल भेजा हो या अस्वीकृत किया हो।

3.5 यह कहना सही नहीं होगा कि राष्ट्रपति की मंजूरी लेने की प्रक्रिया ने राज्य की स्वायत्तता के लिए खतरे का काम किया है। पिछले 35 वर्षों के दौरान वर्ष 1973 में ही केवल एक ऐसा अवसर आया था जब राज्य विधानसभा द्वारा पारित ऐसा बिल राष्ट्रपति द्वारा रोका गया था जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता में कुछ संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया था। मंजूरी न देने का कारण यह बताया गया था कि संसद् ने इसे हाल ही में अधिनियमित किया था और यह नया हो है। भारत सरकार का विचार था कि राज्य विधान में प्रस्तुत प्रस्तावों पर विधिवत् विचार किया जाएगा और केन्द्रीय विधान द्वारा उसमें आवश्यक संशोधन शामिल किए जाएंगे। बाद में इस मामले पर राज्य सरकार द्वारा पुनः विचार किया गया और कुछ महत्वपूर्ण उपबंधों को अधिनियमित किया गया जिनके संबंध में विधिवत् सहमति दे दी गई थी। इस घटना को राज्य की स्वायत्तता के लिए खतरा नहीं माना जा सकता। इस राज्य सरकार का यह अनुभव है कि जब कभी भी नए अधिनियम के किसी विशेष उपबन्ध के संबंध में भारत सरकार को कोई संदेह हुआ है तो केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के अधिकारियों के बीच अनौपचारिक विचार-विमर्श हुआ तथा उस मुद्दे को स्पष्ट किया गया और केन्द्र द्वारा अधिनियमन को स्वीकृति दे दी गई। अतः राज्य विधान सभा द्वारा पारित बिलों के लिए राष्ट्रपति की सहमति लेने के संबंध में कोई शिकायत नहीं है।

विधान मंडल

3.6 गवर्नर, राज्य का केवल आलंकारिक अध्यक्ष नहीं है। उसके कार्य का एक उद्देश्य होता है और उसे कुछ संभावित स्थितियों में अपने विवेकानुसार काम करना होता है। दूसरी ओर यह मानकर कि वह राज्य का अध्यक्ष है उसे केन्द्र का एजेंट भी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि केन्द्र के साथ निकट संबंध बनाए रखना उसके कर्त्तव्य में शामिल होता है। हमारे विचार में, राज्यपाल ने सामान्यतया संविधान और स्वस्थ परंपराओं के अनुसार और जनता के हित के लिए न्यायसंगत ढंग से कार्य किया है।

3.7 उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने संबंधी प्रावधानों के अनुसार किसी राज्यपाल को हटाने की पद्धति का प्रावधान करना उचित नहीं होगा। गवर्नर पर महाभियोग चलाने का कोई प्रश्न ही नहीं होता क्योंकि वह संविधान के अनुच्छेद 156 के उपबंधों के अनुसार राष्ट्रपति की प्रसादानुसार ही पदभार संभालता है। इसके विपरीत उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय के न्यायाधीश संविधान में निर्धारित आयु तक ही पद संभालने के लिए नियुक्त किए जाते हैं न कि राष्ट्रपति के प्रसाद के अनुसार। राज्यपाल और न्यायाधीश के पद में कार्य की दृष्टि से भारी अन्तर है। यह राज्य सरकार इस सुझाव से सहमत नहीं कि किसी भी राज्यपाल को पूरे पांच साल की अवधि के लिए नियुक्त किया जाए। राज्यपाल के पदीय कर्तव्यों और कार्यों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति के प्रसाद के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति संबंधी मौजूदा उपबन्ध उचित प्रतीत होता है। राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् की सहायता और परामर्श से काम करना होता है और किसी स्वभाव भेद या परिस्थितिविशेष की कुछ अन्य आवश्यकताओं के अनुसार किसी राज्यपाल को किसी अन्य राज्य में स्थानान्तरित किया जा सकता है।

3.8 और 3.9 पिछले कई वर्षों में कुछ अवसर ऐसे आए हैं जब ये शिकायतें सुनने में आई हैं और (इस राज्य के संबंध में नहीं) कि राज्यपाल ने किसी राज्य में मंत्रिमंडल द्वारा त्यागपत्र देने पर दलों की स्थिति डांवाडोल होने की स्थिति में या राज्य में चुनाव होने के पश्चात् मुख्यमंत्री का चुनाव करने में निष्पक्षता का व्यवहार नहीं किया है। इस प्रकार से की गई शिकायतें कुल मिलाकर निराधार साबित हुई हैं।

3.10 राज्य सरकार राज्यपाल को अनुदेश या मार्गनिर्देश जारी करने के पक्ष में नहीं है। इस प्रकार के अनुदेशों की कोई मान्यता नहीं होगी और न ही इन अनुदेशों के कार्यान्वयन निगरानी रखने के लिए कोई संस्था ही न होगी। इसे न्यायालय में ले जाना उचित नहीं होगा, और न ही यह उचित होगा कि केन्द्र से इस पर निगरानी रखने को कहा जाए क्योंकि इसका अर्थ होगा राज्य के कार्यों में हस्तक्षेप।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 से 4.3 भारतीय संघीय प्रणाली मजबूत केन्द्र के आधार-स्तम्भों और लचीली एवं सहकारी संघीय प्रणाली पर टिकी हुई है। केन्द्र की सामर्थ्य, उसकी व्यापक वैधानिक एवं वित्तीय शक्तियों और आपातकालीन शक्तियों में निहित है। भारतीय संघीय प्रणाली के लचीलेपन का आधार केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक दायित्वों के विभाजन से संबंधित संविधान के लचीले उपबन्ध हैं। यह स्कीम इस प्रकार बनाई गई है कि सरकार के इन दोनों स्तरों के बीच विभिन्न प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था की जा सके। केन्द्र की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग सूची I में निर्दिष्ट मामलों के संबंध में पूरे भारत में हो सकता है। तथापि केन्द्र अकेले उन सभी मामलों का प्रशासन करने के लिए बाध्य नहीं है जो उसके विशिष्ट अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। यदि केन्द्र चाहे तो राज्यों को किसी मामले में भी प्रशासनिक दायित्व सौंप सकता है। राज्य अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग सूची II में निर्दिष्ट मामलों के संबंध में, अपने सीमा-क्षेत्र में कर सकता है। सूची II और III में निर्दिष्ट मामलों के संबंध में साधारणतया कार्यकारी शक्तियां उस स्थिति को छोड़कर राज्य सरकार में ही निहित होती हैं, जिसमें संविधान या संसद् के किसी कानून के अधीन ये शक्तियां स्पष्ट रूप से केन्द्र को सौंपी गई हों।

यदि संघ के कानून हर राज्य में लागू किए जाने हों तो संघीय सरकार के उचित कार्यचालन के लिए यह अपेक्षित है कि राज्य सरकार की कार्यकारी शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग किया जाए जिससे उस राज्य पर लागू होने वाले केन्द्रीय कानूनों का अनुपालन भी होता रहे। तार्किक दृष्टि से संघ की ये कार्यकारी शक्तियां राज्य को दिए जाने वाले ऐसे निर्देशों से संचालित होंगी जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत होंगे।

इसके लिए अनुच्छेद 256 में व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 257 में कुछ मामलों में राज्यों पर संघ सरकार के नियंत्रण का प्रावधान है। जिस प्रकार राज्य के किसी वैध कानून और संघ के किसी वैध कानून के बीच कोई विवाद होने पर संघ का कानून ही लागू होगा इसी प्रकार संघ और राज्य द्वारा कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग के संबंध में विवाद की स्थिति होने पर अनुच्छेद 257 में यह उपबंध है और तार्किक दृष्टि से यह उचित भी है कि हर राज्य की कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा जिससे संघ की कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में कोई बाधा उत्पन्न न हो और न ही उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

अनुच्छेद 257 में यह उपबंध है कि संघ की ये शक्तियां राज्य को दिए जाने वाले ऐसे निर्देशों से संबंधित होंगी जो भारत सरकार को इस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों ।

संघ और राज्य द्वारा कार्यकारी शक्ति का सुचारू रूप से प्रयोग करने के और हमारे संविधान के उन उपबंधों का अनुपालन करने की दृष्टि से कि संघ की कार्यकारी शक्ति और वैधानिक शक्ति का समान रूप से प्रयोग किया जा सके अनुच्छेद 256 और 25 के उपबन्ध अनिवार्य हैं । अनुच्छेद 257(2) और (13) के उपबंधों के अनुसार राज्य के साथ सम्पर्क बनाए रखने के लिए और रेलों की जो राज्यों के बीच चलती हैं, रक्षा करने के लिए संचार के साधनों की व्यवस्था करना आवश्यक है और इसीलिए संघ सरकार के पास यह शक्ति होनी चाहिए कि वह राज्य सरकार से उक्त संचार माध्यम का रखरखाव और रेलों की रक्षा करने के लिए कहे ।

इस बात से सहमत होना कठिन है कि अनुच्छेद 365 को हटा दिया जाए । जैसा कि स्पष्ट है संघ को राज्यों को निर्देश देने की शक्ति के पीछे कुछ मान्यता होनी चाहिए जिसके बिना निर्देश देने की शक्ति व्यर्थ हो जाएगी । इसलिए यह खंड पूर्णत: अनुषंगी और समर्थ बनाने वाला खंड है ।

नि:संदेह अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत दी गई शक्ति का प्रयोग करना अंतिम उपाय है और इसका प्रयोग केवल आवश्यक मामलों में ही किया जाना चाहिए । वास्तव में भारत सरकार ने पिछले 35 वर्षों के दौरान इस शक्ति का प्रयोग शायद ही कभी किया है इस राज्य के किसी भी मामले में इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है । संघीय संविधान के अनुसार कार्यचालन के लिए यह अनिवार्य है कि भारत सरकार के पास यह शक्ति हो यह आशंका कि भारत सरकार इस उपबन्ध का दुरूपयोग करेगी, उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि वास्तविक व्यवहार में केन्द्र अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत औपचारिक निदश जारी करने से पहले अन्य सभी उपलब्ध साधनों से मतभेद के मुद्दों का समाधान करने की संभावना पर विचार करेगी ।

4.4 अनुच्छेद 356 का आशय और प्रयोजन इस बात को सुनिश्चित करने के लिए संघ सरकार को प्राधिकार देना है कि राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार कार्य कर रही है । संविधान सभा में इस विषय पर चर्चा करते समय पंडित हृदय नाथ कुंजरू द्वारा किए गए प्रश्न का उत्तर देते समय डा० अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से यह बताया था कि अनुच्छेद 356 में केन्द्र को यह प्राधिकार इसलिए नहीं दिया गया है कि वह अच्छी सरकार बनाने के लिए राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करे। इस शक्ति का प्रयोग केवल उसी स्थिति में किया जाना था जब प्रान्त की संवैधानिक सरकार संविधान में निर्धारित प्रावधानों के अनुसार न चलाई जा रही हो। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि यह सुनिश्चित करना केन्द्र का कार्य नहीं है कि राज्य में अच्छी सरकार है या नहीं ।

इस प्रावधान का औचित्य और आवश्यकता सुस्पष्ट है । राज्यों के विविध क्रियाकलाप के दौरान किसी एक व्यक्ति द्वारा संविधान के उपबन्धों का उल्लंघन करने से ही प्राय: संवैधानिक तंत्र ठप्प नहीं हो जाता ।

भारत एक विशाल देश है जिसे सभी ओर से खतरों का सामना करना पड़ता है और इसकी जनसंख्या का गठन विशिष्ट प्रकार का होना और सीमावर्ती राज्यों की समस्याओं की विभिन्नता और अन्य जाति तथा वर्णभेद ही उनकी विशिष्ट समस्याएं हैं । अत: वास्तविक परिस्थितियों की पहले सही कल्पना कर लेना और समस्याओं के उपाय पहले ही खोज लेना कठिन है जिससे इस उपबंध के अन्तर्गत दी गई शक्तियों का प्रयोग करना विशिष्ट रूप से उचित सिद्ध हो सके ।

4.5 इस राज्य की सरकार इस बात से सहमत है कि अनुच्छेद 356 के खंड (4) और (5) में निर्धारित समय सीमा यद्यपि सुरक्षा उपाय मानी गई थी फिर भी संघ द्वारा इस शक्ति के प्रभावी प्रयोग करने में यही बाधा बन सकती है । अनुभव यह बताता है ऐसी परिस्थितियां रही है जिनमें निरंतर खराब स्थिति होने के कारण ही एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए संवैधानिक तंत्र बिगड़ा रहा और असफल हुआ है । यह सुझाव है कि इस अनुच्छेद के खंड (5) के उपखंड (क) और (ख) को अलग-अलग रखा जाए ताकि खण्ड (5) में उल्लिखित स्थिति आने पर राष्ट्रपति शासन तीन वर्ष तक जारी रखा जा सके । इसका परिणाम यह होगा कि आपातस्थिति की घोषणा लागू न होने पर भी राष्ट्रपति शासन जारी रह सकता है बशर्ते कि चुनाव आयोग यह प्रमाणपत्र दे कि संबंधित राज्य की विधान सभा के लिए आम चुनाव कराने में कठिनाइयां है ।

4.6 आजकल राज्य सरकार द्वारा किए जाने वाले संघ सरकार के जनगणना और चुनाव आदि जैसे कार्य संतोषजनक ढंग से किए जा रहे हैं और इस व्यवस्था में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है ।

4.7 इस प्रश्न के संदर्भ में निर्दिष्ट केन्द्रीय एजेंसियों को विचाराधीन सभी राज्यों की समग्र तस्वीर अपने समक्ष रखनी होगी और विभिन्न राज्यों के परस्पर विरोधी हितों के संबंध में विचार करना होगा । इस प्रकार से उन्हें कभी-कभी ऐसे निर्णय लेने होंगे या ऐसी सिफारिशें करनी होंगी जिन्हें कुछ राज्य स्वीकार नहीं करेंगे । परन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि इन एजेंसियों के माध्यम से संघ ने राज्य की स्वायत्तता का अधिक्रमण किया है ।

4.8 अखिल भारतीय सेवाओं ने प्रशासन के साधन के रूप में अपने अस्तित्व को केवल न्यायोचित ही सिद्ध नहीं किया है अपितु राष्ट्रीय एकता स्थापित करने और बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है । अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के संबंध में राज्य सरकार के पास पर्याप्त शक्तियां है जिनमें निलम्बित करने और लघु दंड देने की शक्ति भी शामिल है ।

4.9 अनुच्छेद 355 संविधान के आपातकाल संबंधी उपबन्धों का एक भाग है और इसका क्षेत्र भी सीमित है । वास्तव में इस अनुच्छेद में संघ को प्रत्येक राज्य की बाहरी आक्रमणों और आंतरिक उपद्रवों से रक्षा करने और यह सुनिश्चित करने का कार्य सौंपा गया है कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जा रही है ।

4.10 इस राज्य की सरकार रेडियो या दूरदर्शन माध्यमों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में नहीं है । किसी अन्य माध्यम की भांति, यदि इस पर केन्द्रीय नियंत्रण न रखा गया तो इससे विदेशों के साथ संबंधों, राष्ट्र की सुरक्षा और लोक-नैतिकता जैसे मार्मिक क्षेत्रों की गंभीर क्षति हो सकती है । इससे पहले कि किन्हीं समाचार पत्रों और पुस्तकों से भारी क्षति हो, उनको सेन्सर और बाधित किया जा सकता है परन्तु रेडियो या दूरदर्शन के मामले में ऐसा करना संभव नहीं होगा, क्योंकि इन दो साधनों से तत्काल और दूरव्यापी क्षति हो जाती है ।

4.11 राज्य पुनर्संगठन अधिनियम, 1956 के अनुसार गठित क्षेत्रीय परिषद् ने पारस्परिक हित के विषयों में सदस्य राज्यों के बीच समन्वय स्थापित करने और सहयोग बनाए रखने के लिए निश्चित रूप से रचनात्मक कार्य किया है । केन्द्र और राज्य में अलग-अलग पार्टियां सत्तारुढ़ होने पर भी इस राज्य सरकार को कोई कठिनाई नहीं हुई है ।

4.12 संविधान के अनुच्छेद 263 में उल्लिखित अंतर-राज्य परिषद् का गठन करने से अंतर-राज्य और संघ राज्य के मतभेद दूर करने की दिशा में उपयोगी कार्य संभव होगा । इस परिषद् को पानी और ऊर्जा के बंटवारे, प्रादेशिक दावों के समाधान से संबंधित मुद्दे भी सौंपे जा सकते हैं । अंतर-राज्य परिषद् का स्थायी आधार पर गठन करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है । इनका गठन किन्हीं विशेष मतभेदों/मुद्दों को सुलझाने के लिए आवश्यकतानुसार किया जा सकता है ।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 संघ और राज्यों को कराधान की शक्तियों और सरकारी कार्यों का आबंटन करते समय संविधान निर्माताओं को यह पूर्वाभास था कि राज्यों को इस समस्या का सामना करना पड़ सकता है कि कार्य करते समय उनकी आय के स्रोतों और आवश्यक व्यय में समानता न हो । तद्नुसार, उन्होंने सांविधिक निकाय जैसे वित्त आयोग की सिफारिशों पर कुछ केन्द्रीय करों और शुल्कों को राज्यों को सौंपने और उन्हें सहायता के रूप में सहायता-अनुदान देने की व्यवस्था की । चूंकि राज्यों की अर्थव्यवस्था, उनकी वित्तीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर धन-अन्तरण की योजना करना आवश्यक होता है इसलिए पांच वर्ष तक की अवधि के बाद वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था करना आवश्यक है । सांविधिक

धन-अन्तरणों के लिए किए गए प्रबन्ध को 'स्वत: चालित और हस्तक्षेप से यथा-संभव मुक्त' कहा जा सकता है, यद्यपि वित्त आयोग की जो विचारार्थ विषय सौंपे गए थे उन्होंने इसके कार्यक्षेत्र को कुछ हद तक सीमित कर दिया है परन्तु संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पित कमी की योजना में कुछ परिवर्तन किया गया क्योंकि संविधान निर्माता केन्द्रीय श्रम अन्तरणों का अनुमान नहीं लगा सके और बाद में देश में विकास योजनाएं प्रारंभ हो गई। इससे पहले योजना के लिए बड़ी मात्रा में धन अन्तरण किया गया, जो वित्त आयोग द्वारा निर्दिष्ट धन अन्तरणों के लगभग बराबर था।

अनुबन्ध 1—को देखकर पता चलता है कि वर्ष 1961-62 से वर्ष 1980-81 तक राज्यों ने केन्द्र और राज्य दोनों के कुल कर राजस्वों के 29 प्रतिशत से 33 प्रतिशत तक कर राजस्व की वसूली की जबकि राज्यों का राजस्व व्यय कुल राजस्व व्यय के 51 प्रतिशत से 57 प्रतिशत तक था। कर के अंतरण कमी के पश्चात् इसी अवधि के दौरान राज्यों का राजस्व 39 प्रतिशत से 52 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार से राजस्व स्रोतों और राज्यों की वित्त-संबंधी आवश्यकताओं के बीच का अन्तर वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार, करों का अंतरण करके और सहायता अनुदान देकर आंशिक रूप से पूरा किया गया। परन्तु अंतरण की योजना कारगर सिद्ध नहीं हुई क्योंकि राज्यों, विशेष रूप से पिछड़े राज्यों की वित्त संबंधी व्यापक आवश्यकताओं को देखते हुए धन-अन्तरण कम था। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ही विभिन्न क्षेत्रों में भारी अन्तर है और वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए धन-अन्तरण तथा योजना के अधीन धन-अंतरण विभिन्न राज्यों में विद्यमान असमानता में कमी नहीं ला सके। इसके अलावा वित्त आयोग की अवधि पंचवर्षीय योजनाओं के साथ पूरी होनी चाहिए।

5.2 अनुबंध I में यह उल्लेख किया गया है कि पिछले कई वर्षों से राज्यों के अपने राजस्व-स्रोत योजनेतर व्यय पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं और राज्यों को संघीय धन-अन्तरणों पर निर्भर रहना पड़ा है। परन्तु संवैधानिक उपबन्ध ही इस प्रकार के वित्तीय असंतुलन उत्पन्न करते हैं तथा राज्यों के लिए संघीय धन-अंतरण के तंत्र की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार से केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में ए० आर० सी० अध्ययन दल द्वारा बताई गई स्थिति अब भी उतनी ही संगत है। इस संबंध में जिन विकल्पों का सुझाव दिया गया है उनमें विकल्प (क) से (ग) के लिए संविधान के उपबन्धों में मूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है, जिसे वांछनीय नहीं समझा गया है। इसके अतिरिक्त संविधान के अन्तर्गत संघ और राज्यों के बीच वित्तीय शक्तियों का बंटवारा इस सिद्धांत पर आधारित है कि उस सरकार द्वारा कर लगाना और वसूल किया जाना चाहिए जो सरकार अच्छी तरह से कर वसूल कर सकती है और कर लगा सकती है। संघ और राज्य की कर शक्ति में परिवर्तन करने का सुझाव नहीं दिया गया है और यह अनुभव किया गया है कि अधिक से अधिक केन्द्रीय करों को बांटने योग्य धन-राशि में शामिल करने के विकल्प को अपनाया जाना चाहिए ताकि राज्य अपने ही राजस्व स्रोतों से अपनी-अपनी बढ़ती हुई वित्तीय आवश्यकताएं पूरी कर सकें। इस राज्य सरकार का यह विचार है कि :—

(i) आयकर पर लगाए जाने वाले अधिभार में राज्यों का हिस्सा होना चाहिए। यह अधिभार निरन्तर केन्द्र ही वसूल करता आ रहा है। इस मामले में यह मूल अभिधारणा समझी ही नहीं गई कि कर पर लगाया गया अधिभार किसी विशेष भार को पूरा करने के अस्थायी साधन के रूप में वसूल किया जाना चाहिए। आठवें वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए अनुसार, आयकर पर अधिभार को समाप्त कर देना चाहिए और उसे मूल कर में मिला देना चाहिए। विकल्प के रूप में संविधान में इस प्रकार से संशोधन किया जाए कि राज्यों को अधिभार में हिस्सा मिल सके।

(ii) निगम कर से होने वाली प्राप्तियों में भी राज्यों को हिस्सा दिया जाना चाहिए। वित्त अधिनियम 1959 के अन्तर्गत, कम्पनियों द्वारा अदा किए जाने वाले आयकर को निगम कर के रूप में वर्गीकृत किया गया जिसके परिणामस्वरूप विभाजन योग्य निधि में बहुत हद तक कमी आ गई। उस संशोधन से असंतुष्ट होकर राज्य सरकारों ने वित्त आयोग के समक्ष बार-बार यह तर्क प्रस्तुत किया कि निगम-कर से होने वाली प्राप्तियों का कुछ अंश उन्हें दिया जाए क्योंकि वे (राज्य) निगम कर देने वाली कम्पनियों को आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं। आठवें वित्त आयोग ने इस बात को भी देखा कि राज्यों को निगम कर में हिस्सा देना उचित होगा।

(iii) संविधान के अन्तर्गत संघ उत्पाद शुल्क में राज्यों का हिस्सा होना अनिवार्य होना चाहिए। यद्यपि आजकल राजस्व बांटने की अनुमति है फिर भी वित्त आयोग ने राज्यों से संघ उत्पाद शुल्कों की प्राप्तियों को अनिवार्य रूप से राज्यों को देने की सिफारिश की है। केन्द्रीय कर और शुल्क देने के बाद भी वित्त आयोग के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह कुछ राज्यों के घाटे को पूरा करने के लिए सहायता अनुदान की सिफारिशें करें। आय कर में राज्यों का पहले से ही 85 प्रतिशत हिस्सा है। तदनुसार, राज्यों में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की प्राप्ति में राज्यों को हिस्सा देना अनिवार्य है।

5.3 राज्य सरकार स्वयं अन्त: क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए विशेष क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वयं कार्रवाई करती है। उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्यों में विकेन्द्रीकृत योजना आरंभ की है और वार्षिक योजना परिव्यय का करीब-करीब एक तिहाई भाग स्थानीय योजना के लिए आबंटित किया जा रहा है। जिलों के परिव्यय का 50 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर निर्धारित किया जाता है और शेष चुने हुए ऐसे सामाजिक-आर्थिक सूचकों के आधार पर निर्धारित किया जाता है जो पिछड़ेपन का स्तर बनाते हैं।

परन्तु राज्य के भीतर क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाने के संबंध में पिछड़े राज्यों की क्षमता स्रोत कम होने के कारण बहुत सीमित होती है। इसके पश्चात् अंत:-राज्य असमानताएं आती हैं। जो केवल एक मजबूत केन्द्र द्वारा ही कम की जा सकती हैं जिसके पास राजस्व संबंधी लचीले स्रोत हैं। इस प्रकार से राज्य सरकार उक्त विषय में अभिव्यक्त विचारों से सहमत है। इसी के साथ-साथ केन्द्र को निर्धन राज्यों के विकास के संबंध में उपलब्ध निधियों का प्रयोग करने के लिए अधिक विवेकाधिकारों का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। पहले वित्त आयोग और योजना आयोग की सिफारिशों के बिना किए गए धन-अन्तरणों से, जिन्हें विवेकाधीन धन-अन्तरण कहा गया है समता का ध्यान नहीं रखा गया है, इसलिए यह अनुभव किया गया कि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघीय-धन-अन्तरण के संस्थागत प्रबन्धों में इस प्रकार से सुधार लाया जाए कि निर्धन राज्यों में प्रति व्यक्ति अंतरण अधिक से अधिक हो और वे विकास के रास्ते पर आगे बढ़ सकें।

5.4 पिछले कुछ वर्षों में केन्द्रीय राजस्व लेखे में देखे गए घाटे का कारण वित्त और योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को किया गया धन-अन्तरण नहीं है। अनुबंध 5 में यह बताया गया है कि हाल के वर्षों से सभी स्रोतों से राज्यों को अंतरित किए गए स्रोत केन्द्र की कुल प्राप्तियों की प्रतिशतता को देखते हुए अधिक नहीं है। वर्ष 1972-73 में 53.9 प्रतिशत की तुलना में यह राशि वर्ष 1979-80 में 50.8 प्रतिशत थी। स्रोतों की समग्र कमी को देखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि केन्द्र तथा राज्य अपने राजस्व करों में वृद्धि करें और व्यय पर अधिक से अधिक नियंत्रण रखें। केन्द्र के स्रोत अधिक लचीले हैं वे केन्द्रीय कराधान करके अतिरिक्त स्रोतों को बढ़ाने की स्थिति में है। विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए घाटे की वित्त-व्यवस्था अपरिहार्य होगी और इसके लिए केंद्र को इस व्यवस्था को अपनाना होगा। परन्तु पिछले दशक के दौरान मुद्रास्फिति की उच्च दर से अर्थव्यवस्था को धक्का लगा है अतएव घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा सोच-समझ कर लेना चाहिए।

5.5* वित्त आयोग और योजना आयोग के माध्यम से किए गए अन्तरणों से निर्धन और अमीर राज्यों के बीच स्रोतों का अन्तर कम नहीं हुआ है। वास्तव में अंत:-राज्य असमानताएं कम होने के बजाए बढ़ गई हैं। अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि वर्ष 1950-51 से वर्ष 1977-78 तक के कुछ वर्षों में प्रति-व्यक्ति एन०डी०पी० के संबंध में छ: सबसे पिछड़े राज्यों के पांच राज्यों का स्तर निरन्तर नीचे ही रहा जबकि वर्ष 1950-51 में उत्तर प्रदेश का और कुछ वर्षों में आंध्र प्रदेश और राजस्थान का (अनुबंध 2) स्तर थोड़ा सा ऊपर उठा है। उत्तर प्रदेश का रैंक 8 से घटकर 13 हो गया है। आयोग के माध्यम से हुए धन-अन्तरणों के संबंध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्य ने सभी वित्त आयोगों से (अनुबंध 3) प्रति व्यक्ति औसत से कम धन-अंतरण प्राप्त किया है। इस राज्य का हिस्सा इसकी जनसंख्या के अनुपात से कम है।

सातवें और आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर कुछ अंतरण में उत्तर प्रदेश का हिस्सा इसकी 16.32 जनसंख्या (1971 की जनगणना) के अनुपात में क्रमशः 15.90 और 15.43 हैं। योजना-अंतरण को इसमें शामिल करने पर भी इस स्थिति में सुधार नहीं होगा। इन धन-अंतरणों (अनुबंध 4) की राज्यवार सूची से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश को सदैव ही औसत से कम धन राशि हुई है और बिहार और मध्य प्रदेश को पांचवी योजना तक औसत से कम धन-अंतरण किया गया है।

तुलनात्मक दृष्टि से पिछड़े राज्यों में प्रति व्यक्ति अधिक अन्तरण करना आवश्यक है इससे उनके विकास में तेजी आएगी और उनकी प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं में सुधार हो सकेगा। इस प्रसंग में राज्य सरकार करों के हिस्से का निर्धारण करने, राज्यों को योजनागत सहायता देने और योजनेतर सहायता देने के संबंध में निम्नलिखित मानदंड निर्धारित करने का सुझाव देना चाहेगी।

(क) करों में हिस्सा

आयकर प्राप्तियों में राज्य का हिस्सा निर्धारित करते समय पहले सातों वित्त आयोगों ने केवल दो मानदंडों अर्थात् जनसंख्या और अंशदान को ही आधार बनाया। अंशदान के मामले में अपेक्षित महत्व 10 से 20 प्रतिशत तक दिया गया। आठवें वित्त आयोग ने पिछड़ेपन के आधार पर 90% प्राप्तियां देने की सिफारिश की परन्तु अंशदान को 10 प्रतिशत महत्व ही दिया गया। अंशदान को महत्व देने का अर्थ है अधिक उन्नत राज्यों को अधिक अंशदान क्योंकि उन राज्यों से आयकर की वसूली अधिक होती है। चूंकि संघीय धन-अंतरण अंतः-राज्य असमानताओं में कमी लाने के लिए होने चाहिए इसलिए अंशदान का मानदण्ड हमारे जैसे संघ के लिए न्यायोचित नहीं है जहां संघ इकाइयों का आयकर की वसूली करने का अधिकार नहीं है इस राज्य सरकार का विचार है कि दोनों बड़े करों अर्थात् आयकर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क को विभाजन समस्त राशि के बंटवारे के लिए एक सा मानदंड अपनाया जाए।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों का बंटवारा करने के सबंध में तृतीय वित्त आयोग ने आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन को भी महत्व दिया है। तृतीय और चतुर्थ वित्त आयोगों ने पिछड़ेपन को आंशिक आधार माना जिसके परिणामस्वरूप संघीय उत्पाद शुल्क का प्रगामी बंटवारा नहीं हो पाया। परन्तु पांचवें वित्त आयोग के बाद से ही संघीय उत्पाद के वितरण को प्रगामी बनाया गया और अब अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों को प्रति व्यक्ति अधिक हिस्सा मिला है। परन्तु इसके लिए निर्धारित किया गया मानदण्ड और दिया गया महत्व इस प्रकार का नहीं था कि उससे सभी अन्तरण प्रगामी हो सकें।

पिछड़े राज्यों की सूची के संबंध में, हमने यह बात मान ली है कि आर्थिक सूचकों को वरीयता न देकर प्रति व्यक्ति आय को ही संयुक्त सूचक माना जाए। आठवें वित्त आयोग ने प्रतिव्यक्ति आय को ही राज्यों के अपेक्षा पिछड़ेपन का सत्य न्यायिक आधार माना है। इसके अतिरिक्त, पांचवें वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार आंशिक आय केवल पिछड़े राज्यों में वितरण करने के लिए ही अलग रखी जाए। इन कारणों से इस राज्य सरकार की राय है कि निवल आय का 50 प्रतिशत भाग जनसंख्या के आधार पर वितरित किया जाए और जनसंख्या से राज्यों की प्रति व्यक्ति आय से गुणा करने के बाद आए विपरीत अनुपात में 25 प्रतिशत और 25 प्रतिशत भाग केवल उन राज्यों में वितरित किया जाए जिनकी प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की प्रति व्यक्ति औसत आय से कम है और उन्हें आय के समकरणों के सिद्धांत पर अर्थात् सभी राज्यों की औसत आय में से राज्यों की प्रति व्यक्ति आय में हुई कमी के अनुपात की राज्य की जन संख्या से गुणा करने से आए अनुपात में हिस्सा दिया जाए इसके विकल्प के रूप में, यदि पिछड़े राज्यों में आंशिक आय का वितरण न करना हो तो 25 प्रतिशत राशि जनसंख्या के आधार पर वितरित की जाए और 75 प्रतिशत पिछड़ेपन के आधार पर जैसी कि सातवें और आठवें वित्त आयोग ने सिफारिश की है। ये सिद्धान्त आयकर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्कों के वितरण के लिए सुझाए गए हैं।

चीनी, कपड़ा और तम्बाकू पर बिक्री कर के बदले में वसूल किए जाने वाले अतिरिक्त उत्पाद शुल्क का वितरण ऐसे सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए जिससे प्रत्येक राज्य को करीब-करीब उतना हिस्सा मिल जाए जितना उसे इन वस्तुओं पर बिक्री कर लगाते रहने और उसकी वसूली करने पर मिलता। इस प्रकार से संबंधित वस्तुओं की राज्यवार खपत वितरण की आधार होना चाहिए। यदि इन वस्तुओं की राज्यवार खपत के सही आंकड़े उपलब्ध न हों तो अतिरिक्त उत्पाद शुल्क की राशि का वितरण सभी राज्यों के लिए गारंटीकृत कुल राशि के अनुपात में राज्य की गारंटीकृत राशि के आधार पर किया जाना चाहिए। यह गारंटीकृत राशि राज्यों की 1956–57 में उन वस्तुओं पर लगाए गए बिक्री कर से होने वाली आय की सूचक में यह वह वर्ष था जिसके बाद वाले वर्ष में बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादशुल्क वसूल किया जाता था।

कृषि–भूमि से इतर सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क जैसे करों के संबंध में या रेल यात्री भाड़े पर कर के बदले में अनुदान देने के मामले में वितरण के सिद्धान्त सही और न्यायसंगत प्रतीत होते हैं।

समाचारपत्रों से इतर माल के विक्रय या क्रय पर कर की वसूली यदि उक्त विक्रय या क्रय अन्तः राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान किया गया हो, संविधान के अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत की जाएगी। आजकल केन्द्रीय बिक्री कर से होने वाली आय उस राज्य को दी जाती है जिस राज्य से माल भेजा जाता है। उन अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों के मामले में ऐसा करना अनुचित है जिन्हें अधिकतर माल का आयात करना पड़ता है। ऐसा करने से पिछड़े राज्यों के निवासियों को केन्द्रीय बिक्री कर का बोझ सहना पड़ता है जब कि तुलनात्मक दृष्टि से जो राज्य अच्छी स्थिति में हैं वे लाभ उठा लेते हैं। चूंकि बिक्री–कर खपत पर लगने वाला कर है, इसलिए इस राज्य सरकार का यह विचार है कि केन्द्रीय बिक्री कर की प्राप्तियां जिस राज्य को माल भेजा गया है उस राज्य को मिलनी चाहिए न कि उस राज्य को जहां से माल भेजा जाता है। इससे अधिक से अधिक यही होगा कि कर की कुछ राशि उत्पादक राज्यों से वसूल कर ली जाएगी। तदनुसार, यह सुझाव दिया जाता है कि केन्द्रीय बिक्री कर से प्राप्त होने वाली राशि का वितरण ऐसे तरीके से किया जाना चाहिए जिससे उसमें से 75 प्रतिशत राशि उस राज्य को प्राप्त हो जिसको माल भेजा गया है और 25 प्रतिशत राशि उस राज्य को प्राप्त हो जिसने माल भेजा है। अन्यथा बिक्री कर से प्राप्त होने वाली राशि का वितरण एक युक्तियुक्त मानदंड जैसे जनसंख्या और उसके आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर किया जाना चाहिए। परेषण के अन्तरणों पर भी कर लगाया जाना चाहिए और उसका वितरण उसी प्रकार से किया जाना चाहिए जिस प्रकार से उसकी वसूली उन अन्तर्राज्यीय परेषणों से की जाती हैं, जिन पर केन्द्रीय बिक्री कर नहीं लगाया जाता।

कर की राशि के अन्तरण के लिए ऐसे सिद्धान्त अपनाने के साथ–साथ अन्तर्राज्यीय विषमताओं को कम करने के लिए संघीय करों और शुल्कों को मात्रा में वृद्धि करना भी जरूरी है और जिससे राज्य अपनी बढ़ती हुई जिम्मेदारियों को पूरा कर सके। राज्यों को करों के सांविधिक धन–अन्तरण से यह नहीं दिखाई देता कि केन्द्रीय राजस्व में उसी अनुपात में निरन्तर वृद्धि हुई है। सातवें वित्त आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में राज्य के हिस्से को दुगुना कर देने के बावजूद इस अवधि में जो धन–अन्तरण किया गया वह केन्द्रीय करों की सकल वसूली का 25 प्रतिशत ही था। छठे अयोग के मामले में इसकी तदनुरूपी प्रतिशतता 25.4 थी और आठवें आयोग के मामले में 24 थी। यदि राज्यों को केन्द्र के सभी स्रोतों से अन्तरित राशि को केन्द्र की कुल प्राप्तियों की प्रतिशतता के रूप में मान लिया जाए तो सातवें आयोग की अवधि के दौरान किए गए अन्तरण पांचवें आयोग (अनुबंध-5) की अवधि के किए गए अन्तरणों से भी कम थे। अतः राज्य अपनी विस्तृत आर्थिक आवश्यकताएं पूरी कर सके इसके लिए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में राज्य के हिस्से में वृद्धि की जानी चाहिए और उसे 60 प्रतिशत निर्धारित कर दिया जाना चाहिए। यह सुझाव पहले भी दिया जा चुका है कि निगम कर और आय कर पर अधिभार की राशि राज्यों में बांटी जानी चाहिए।

संक्षेप में राज्य सरकार का सुझाव है कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की विभाज्य राशि में वृद्धि करके उसे आयकर की निवल विभाज्य राशि का 60 प्रतिशत कर दिया जाए और आय कर पर अधिभार की विभाजन योग्य राशि इसमें शामिल कर दी जाए और निगम कर से प्राप्त कुछ राशि भी राज्यों में बांटी जाए। इस

शुल्कों एवं करों से प्राप्त होने वाली राशि के राज्यों में वितरण के संबंध में निम्नलिखित मानदंड का सुझाव दिया जाता है :—

(i) आय कर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से प्राप्त होने वाली राशि के वितरण के लिए एक समान सिद्धान्त अपनाए जाने चाहिए ।

(ii) आयकर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के विभाज्य पूल की राशि में से जनसंख्या के आधार पर 50 प्रतिशत, केवल उन राज्यों के प्रति व्यक्ति आय के विपरित अनुपात में 25 प्रतिशत वितरण किया जाना चाहिए, जिनकी प्रतिव्यक्ति आय सभी राज्यों की प्रति व्यक्ति औसत आय से कम है और उन्हें आय को समान करने के सिद्धान्त के आधार पर हिस्सा भी दिया जाना चाहिए ।

(iii) चीनी, कपड़े, और तम्बाकू पर बिक्री कर के बदले में लिए जाने वाले उत्पाद शुल्क का वितरण सभी राज्यों के लिए गारंटीकृत कुल राशि के अनुपात में संबंधित राज्य की गारंटीकृत राशि के आधार पर किया जाना चाहिए । यह गारंटीकृत राशि राज्यों की 1956–57 में उन वस्तुओं पर लगाए गए बिक्री कर से होने वाली आय की सूचक है । यह वह वर्ष था जिससे ठीक पहले के वर्ष में बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाना आरंभ किया गया था ।

(iv) केन्द्रीय बिक्री कर की राशि भी इकट्ठी की जानी चाहिए और इसे 75 प्रतिशत उन राज्यों को जिन्हें माल भेजा जाना है और जहां खपत की जानी है, और 25 प्रतिशत उन राज्यों को जहां से माल भेजा जाना है, वितरित किया जाना चाहिए । परेषण-अन्तरणों पर भी कर लगाया जाना चाहिए और इसे भी ऊपर बताए अनुसार वितरित कर देना चाहिए ।

(ख) योजना के अंतर्गत सहायता ।

चौथी पंचवर्षीय योजना से पूर्व राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता किसी विशिष्ट मानदंड के आधार पर नही दी जानी थी । चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद से विशेष वर्गों के राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एकमुश्त राशि अलग रखने के बाद शेष राशि का वितरण केन्द्रीय सहायता के रूप में गाडगिल फार्मूले के अनुसार कर दिया जाता था ।

छठी योजना के लिए इस फार्मूले में संशोधन किया गया था और अब तक जिन मुख्य सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं को विशेष महत्व दिया जाता था वह समाप्त कर दिया गया और इसकी दस प्रतिशत राशि प्रति व्यक्ति आय के आधार पर राज्यों को दी जाने लगी । इसका सुखद परिणाम यह हुआ कि उसमें से 20 प्रतिशत राशि प्रति व्यक्ति आय की कमी को दूर करने के लिए वितरित की जाती है जिनकी प्रतिव्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत आय से कम है । संशोधन गाडगिल फार्मूले के अधीन जिस रूप में वह इस समय लागू हैं, राज्यों को केन्द्रीय सहायता का आबंटन, जनसंख्या के आधार पर 60 प्रतिशत, पिछड़े राज्यों को सभी राज्यों की प्रतिव्यक्ति औसत आय से कम आय होने के आधार पर बीस प्रतिशत, राज्यों द्वारा कर की वसूली की दिशा में किए गए प्रयासों के आधार पर 10 प्रतिशत और उनकी विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए 10 प्रतिशत धन आबंटित किया जाता है ।

यह देखा गया है कि गाडगिल फार्मूले के अधीन भी कुछ पिछड़े राज्यों के लिए केन्द्रीय सहायता का वितरण समान आधार पर नहीं किया गया है । यदि पहली योजना से छठी योजना (अनुबंध-6) तक कुल प्रति व्यक्ति केन्द्रीय सहायता पर विचार किया जाए तो यह पता चलेगा कि बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे दो सबसे अधिक पिछड़े राज्यों को अन्य सभी राज्यों से औसतन कम आर्थिक सहायता दी गई है । पांचवी योजना में उत्तर प्रदेश को सामान्य वर्ग के राज्यों को किए गए अन्तरणों की औसत राशि की तुलना में कुछ अधिक राशि दी गई, किन्तु छठी योजना में उत्तर प्रदेश और बिहार दोनों को अन्य सभी राज्यों की औसत से कम राशि प्राप्त हुई ।

यदि पिछड़े राज्यों में विकास की गति में तेजी लाना और अन्तर्राज्यीय विषमताओं को कम करना है तो इस प्रकार केन्द्रीय सहायता के आबंटन के लिए अधिक उदार मानदंड अपनाया जाना चाहिए । केन्द्रीय सहायता का आबंटन करते समय जनसंख्या के आधार पर 60 प्रतिशत का आबंटन किया जाता है जो एक सामान्य मानदंड है जिससे आवश्यकता का अनुमान लगाया जाता है और जिसके परिणामस्वरूप समता स्थापित नहीं हो पाती है ।

यद्यपि यह स्वीकार कर लिया गया है कि संघीय धन-अन्तरणों के लिए जनसंख्या को एक महत्वपूर्ण आधार मानते रहना चाहिए किन्तु जिन बातों से किसी राज्य के पिछड़ेपन का पता चलता है उन बातों की इससे और अधिक पुष्टि ही होती है, जिसके आधार पर इन अंतरणों में अपेक्षित वृद्धि हो सकती है । इस राज्य सरकार का विचार है कि प्रति व्यक्ति आय में कमी के मानदंड के आधार पर 30 प्रतिशत तक वृद्धि कर दी जाए और कर वसूल करने के प्रयत्न के आधार पर दिया जाने वाला 10 प्रतिशत धन बन्द कर दिया जाए ।

कुछ कारणों से राज्यों की कर-उपलब्धि की कमी को अंतरण का आधार न बनाया जाए । सबसे पहला कारण है कर राजस्व की वसूली करने के संबंध में, राज्य, केन्द्र से कभी भी पीछे नहीं रहे हैं । कर-वसूली के अनुपात में आंके गए ब्याज और कर-उपलब्धि को आधार बनाने से गरीब राज्यों को घाटा होता है । अनुबंध-7 में बड़े राज्यों में प्रति व्यक्ति आय की प्रतिशतता के रूप में प्रतिव्यक्ति कर भार बताया गया है । आंध्र प्रदेश के छोड़कर सभी पिछड़े राज्यों में कर अनुपात की रेंज उड़ीसा में 4.88 से लेकर मध्य प्रदेश में 7.87 है । उन्नत राज्यों में से पश्चिम बंगाल में 7.39 से लेकर तमिलनाडु में 10.86 तक अलग-अलग है । उन्नत राज्यों में अधिक उद्योग और शहरीकरण होने के कारण अधिक कर-वसूली होती है जिसके परिणामस्वरूप राज्य से अधिक कर वसूली होता है । यह अतिरिक्त स्रोत जुटाने के लिए कर-उपलब्धि की संभावना के बिना किया गया कर-उपलब्धि का प्रयास नहीं है या अतिरिक्त स्रोतों की उपलब्धि नहीं है जिसके आधार पर 10 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी जाती है । इसके स्थान पर राज्यों के हिस्से का निर्धारण करने के लिए राज्य के प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पाद को आधार बनाया जाता है । इसके परिणामस्वरूप कर-राजस्व की प्रगामी वसूली में वृद्धि होती है और इससे अमीर राज्यों को लाभ होता है । इसके अतिरिक्त, राज्यों द्वारा अतिरिक्त स्रोत जुटाने से उनके योजना-परिव्यय में उतनी ही वृद्धि होती है और कर-उपलब्धि की संभावना को आंशिक केन्द्रीय सहायता के आबंटन का आधार बनाना भी उचित नहीं है ।

(ग) योजनेतर सहायता ।

संविधान के अनुच्छेद 275 में राज्यों की अलग-अलग आवश्यकता पर विचार करने के लिए और पिछड़े राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक धनराशि उपलब्ध कराने के वित्त आयोग की व्यवस्था है । परन्तु वित्त आयोगों ने अभी तक योजनेतर सहायता-अनुदानों का बहुत ही कम प्रयोग किया है । प्रथम वित्त आयोग के अधिनिर्णय के अनुसार सहायता अनुदान की प्रमात्रा कुल सांविधानिक धन-अन्तरणों का 12.15 प्रतिशत थी । छठे आयोग की सिफारिश के अनुसार इसमें धीरे-धीरे 26.12 प्रतिशत तक वृद्धि की गई परन्तु अब आठवें आयोग (अनुबंध–8) की सिफारिशों पर इसे 8.15 प्रतिशत तक कम कर दिया गया है ।

सातवें आयोग ने ग्रेड बढ़ाने के अनुदानों का संबंध अविकसित सैक्टरों और कार्यों तक ही सीमित रखा है । आठवें आयोग ने स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए भी ग्रेड बढ़ाने के लिए अनुदान की सिफारिश की है परन्तु अनुदानों की प्रमात्रा पिछड़े राज्यों विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के लिए कम है । इस राज्य सरकार का विचार है कि सहायता अनुदानों को बचे हुए कार्य के लिए इस्तेमाल करने के स्थान पर वित्त आयोग, राज्यों के प्रतिव्यक्ति योजनेतर व्यय की मात्रा का ध्यान रखे और प्रशासनिक तथा सामाजिक सेवाओं को जिनमें उनके द्वारा उपलब्ध कराई गई स्वास्थ्य और शिक्षा सेवाएं शामिल हैं अपेक्षित स्तर तक लाया जाए और इस संबंध में अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों की व्यापक अपेक्षाओं का भी ध्यान रखा जाए ।

5.6 "देश के अन्य विकसित क्षेत्रों की तुलना में अल्पविकसित क्षेत्रों में तेजी से अर्थव्यवस्था का विकास" सुनिश्चित करने के लिए भारत को विशेष संघीय निधि बनाने की आवश्यकता नहीं है । वित्त आयोग की सिफारिश पर कर की राशि के अन्तरण और सहायता अनुदान देने की वर्तमान व्यवस्था और योजना की सिफारिशों पर योजना के लिए केन्द्रीय सहायता देना इस प्रयोजन के लिए पर्याप्त प्रतीत होता है । आवश्यकता इस बात की है कि वित्त आयोग अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों की धन संबंधी अधिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखे और संघीय धन-अंतरणों के लिए ऐसे सिद्धान्त बनाए कि पिछड़े राज्यों को प्रति व्यक्ति अधिक सहायता

मिल सके । योजना के इन अन्तरणों का मानदंड इस प्रकार का होना चाहिए जिससे पिछड़े राज्य अपने पिछड़ेपन को कम करने के लिए अपनी आर्थिक विकास की दर में वृद्धि कर सकें ।

5.7 जैसा कि प्रश्न में बताया गया है जो तीन सिद्धान्त, संघ और राज्यों के कराधान संबंधी कार्यों के बंटवारे में आदेश का काम देंगे, संतोषजनक प्रतीत होंगे। देश में आय कर की एक सी दर बनाए रखने के लिए आय कर लगाने की शक्ति केन्द्र के पास ही रहेगी । यदि राज्यों को इस शक्ति का प्रयोग करना पड़े तो प्रत्येक व्यक्ति की रिहायश के अनुसार ही कर लगाया जाएगा । राज्यों द्वारा निगम कर लगाने के मामले में विसंगतियां अधिक सुस्पष्ट होंगी । संघ में सामान्य बाजार के विकास के लिए यह आवश्यक है कि सीमा शुल्क और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की वसूली केन्द्र द्वारा होती रहे । चूंकि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क उत्पादन के आधार पर वसूल किया जाता है और जहां से माल भेजा जाता है उसी स्थान पर कर लगाया जाता है इसलिए अलग-अलग दरें नहीं लगानी चाहिए । अत: इस राज्य सरकार का विचार है कि संघ सूची में दिए गए अलग-अलग करों में से कोई भी कर राज्यों को अन्तरित नहीं किया जा सकता है । साथ ही यह आवश्यक है कि केन्द्रीय कर की अधिक से अधिक राशि राज्यों को बांटी जाए जैसा कि प्रश्न 5.2 के उत्तर में सुझाव दिया गया है ।

5.8 राज्य सरकार इस बात से सहमत है कि संघ उत्पाद शुल्क और बिक्री कर जैसे कर जिनका सामान्य आधार हैं, कर लगाने के लिए अलग-अलग दृष्टिकोण न अपनाकर एकीकृत पद्धति अपनाई जानी चाहिए । परन्तु यह आवश्यक है कि सभी कर केन्द्र द्वारा ही लगाए जाएं । विभिन्न करों के सोपानी प्रभाव से बचने के लिए कराधान के मामलों पर परस्पर बातचीत करके और आवधिक चर्चाएं करके, उचित करापात सुनिश्चित किया जा सकता है, जिसमें केन्द्रीय और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि और लोक वित्त के कुछ विशेषज्ञ हों :

जैसा कि सुझाव दिया गया है कि केन्द्र द्वारा बिक्री-कर की उगाही न तो संभव है और न ही वांछनीय । मूल रूप से बिक्री कर खपत पर लगाया जाने वाला कर है और उपभोक्ताओं पर कर लगाने का काम राज्य पर ही छोड़ देना चाहिए । यह आर्थिक नीति का एक भाग है । इसकी संरचना और दरें इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे निवेश को बढ़ावा मिले और औद्योगिकीकरण में वृद्धि हो । इसके अतिरिक्त बिक्री कर राज्य के राजस्व की एक बड़ी मद है और यह अतिरिक्त स्रोत जुटाने का प्रभावी स्रोत है । बिक्री कर के बदले में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की उगाही व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं है । इस प्रयोजन से चीनी, कपड़ा, और तम्बाकू पर किए गए प्रयोग के संबंध में राज्यों ने अपनी विभिन्न चर्चाओं में अपने विचार व्यक्त किए हैं कि इस प्रकार परिवर्तन करने से उनके राजस्व हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । तदनुसार राज्य सरकार का यह विचार है कि राज्य सूची में बताए गए बिक्री कर या अन्य करों की उगाही केन्द्र को न सौंपी जाए और उन्हें उगाहने का अधिकार राज्य सरकार के पास ही बना रहे ।

5.9 राजस्व अधिशेष, जो वित्त आयोग की सिफारिश का ही परिणाम है, संबंधित राज्यों को योजना के लिए साधन के रूप में उपलब्ध है । इस प्रकार से वित्त आयोग द्वारा किया गया धन-अन्तरण योजना के लिए भी है । इस संबंध में यह बात ध्यान में रखी जाए कि तीसरी योजना में राज्य के योजना-व्यय के लिए 64.4 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी गई थी और उसके बाद वर्ष 1981-82 में यह 33.8 प्रतिशत रह गई । इसके परिणामस्वरूप कर-अन्तरण के रूप में राज्यों को दिए जाने वाले योजना परिव्यय का केन्द्रीय सहायता की राशि कम हो गई है ।

योजनागत और योजनेतर खर्चों में किया गया वर्गीकरण खर्च के स्वरूप की अपेक्षा उस अवधि पर निर्भर करता है जिसके दौरान खर्च किया गया हो । योजना के अन्त में उन स्कीमों से संबंधित खर्च जो पूर्ववर्ती अवधि के दौरान पूरी हो गई हों, योजनेतर खर्च के खाते में डाल दिया जाता है । इसी लिए किसी राज्य की व्यापक वित्तीय आवश्यकताओं (योजनागत और योजनेतर) का ध्यान रखा जाना चाहिए और संघीय सहायता देते समय यथासंभव दोनों तरह की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाना चाहिए । इसके लिए वित्त आयोग और योजना आयोग के बीच प्रभावशाली सहयोग होना आवश्यक है । फिर भी दोनों प्रकार की सहायता के लिए एक संगठन बनाना व्यवहार्य या वांछनीय नहीं होगा । इसी प्रकार स्थायी वित्त आयोग भी आवश्यक नहीं समझा गया । इसका सचिवालय बना रहना आवश्यक है । वित्त आयोग द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को ध्यान में रखते हुए, जो वर्तमान कराधान स्तर पर आधारित हैं, योजना आयोग को राज्यों के योजनागत परिव्यय का निर्धारण करते समय स्वयं द्वारा प्रस्तावित अतिरिक्त साधन जुटाने के उद्देश्य से बाहरी सहायता की प्रमात्रा, बाजार से प्राप्त होने वाले ऋण और अन्य संबंधित तथ्यों को ध्यान में रखना होगा ।

5.10 संघीय धन-अंतरण विशेषत: वित्त आयोग के अंतरणों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि इन्हें ठीक और किफायती ढंग से खर्च किया गया । राज्य सरकार के सिंचाई, बिजली, परिवहन और अन्य क्षेत्रों में या सरकारी कर्मचारियों और सेवाओं की परिलब्धियों पर किए जाने वाले खर्च के प्रावधानों के संबंध में अपनाए गए मानदण्ड आदर्श हैं और इन सेवाओं से राज्य अपना लाभ प्राप्त करने के प्रति और योजनेतर खर्च को कम करने के प्रति जागरूक हुए हैं । राज्य सरकारों ने स्वयं एक वृहत्तर योजना में व्यय करने के उद्देश्य से योजनेतर खर्चों को कम करने का प्रयास किया है ।

फिर भी संघीय धन-अंतरण से राज्यों के योजनेतर खर्च में कमी नहीं हुई है । 1974-75 और 1980-81 में प्रत्येक राज्य के प्रति व्यक्ति कुल योजनेतर खर्च की तुलना से पता चलता है कि बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे पिछड़े राज्य क्रम में नीचे ही रहे हैं । सामान्य वर्गों के राज्यों में सन् 1974-75 में प्रति व्यक्ति खर्च बिहार में 54.63 रु० और हरियाणा में 149.91 रु० के रेंज में था । 1980-81 में बिहार में खर्च की दर 107.80 रु० और महाराष्ट्र में 330.75 रु० थी । इस प्रकार योजनेतर खर्च में विषमता बनी रही ।

5.11 राज्य सरकार इस विचार का समर्थन नहीं करती कि धन-अंतरण की वर्तमान प्रणाली से वित्तीय अनुशासनहीनता और अपव्यय की प्रवृत्ति बढ़ती है । राज्यों द्वारा प्रस्तुत किए गए पूर्वानुमान अधिकतर पिछली अवधि में वृद्धि दरों पर आधारित हैं । हर बार पूर्वानुमान का पुनर्मूल्यांकन न करते समय वित्त आयोग खर्चों में वृद्धि की रूढ़िवादी दर अपनाता है और ऐसा यदा कदा ही होता है कि वास्तविक प्राप्तियां और खर्च किसी राज्य सरकार के पास पुनर्मूल्यांकित पूर्वानुमानों में निर्धारित राजस्व-अन्तर बहुत कम रह जाता है ।

5.12 और 5.13 टिप्पणी 5.12 और 5.13 के उत्तर 5.5 में दिए गए हैं ।

5.14 यदि धारक बांडों पर आय कर लगाया जाता तो राज्यों को इस आय में हिस्सा मिल जाता । अत: केन्द्र के लिए इस स्कीम से प्राप्त धन में हिस्सा बंटाना समानतासूचक होता है । यदि पैट्रोलियम, कोयले आदि जैसी मदों की नियंत्रित कीमतों में वृद्धि की जाती है तो राज्य सरकारों के साधनों और उनकी पूंजी तथा प्रचालन लागत के स्रोतों का क्षय होता है इसके बदले यदि उत्पाद शुल्क में बढ़ोतरी की जाए तो इससे राज्यों को लाभ ही होगा । आठवें वित्त आयोग ने भी इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि यदि कीमतों को बढ़ाकर ही राजस्व प्राप्त किया जाना एकमात्र मापदंड है तो उसके लिए उत्पाद शुल्क में समुचित बढ़ोतरी करना ही उचित कार्रवाई है । यह राज्य सरकार, सुझाव देगी कि पैट्रोलियम, कोयला, लोहा, इस्पात, सीमेंट आदि की कीमतों की समीक्षा के लिए कोई कानूनी संगठन होना चाहिए ।

5.15 सार्वजनिक क्षेत्रों को उपलब्ध धन राशि में अधिकतर लघु बचतें और बाजार से प्राप्त ऋण शामिल हैं । इस समय लघु बचत स्कीम के अधीन संगृहित निवल राशि का दो-तिहाई हिस्सा राज्यों को ब्याज सहित उधार के रूप में दिया जाता है । राज्य लघु बचतों को जुटाने में सामूहिक प्रयास करते हैं या पर्याप्त धन खर्च करते हैं । इस प्रकार राज्यों को कुल संगृहित राशि का केवल दो तिहाई हिस्सा देना न्यायोजित नहीं होगा, राज्यों को अधिक हिस्सा दिया जाए ।

प्रत्येक वर्ष लघु बचतों के लिए जन साधारण के केन्द्र द्वारा देय राशि उस वर्ष के दौरान संगृहित राशि में से दी जाती है और केवल शेष राशि में से उस

राज्य का हिस्सा ऋण के रूप में दिया जाता है लघु बचत ऋण केवल एक ऐसा ऋण है, जो केन्द्र राज्यों को उधार के रूप में देता है जिससे इसके मूल स्रोत का पता चलता है और यह लौटाना होता है। अन्य केन्द्रीय ऋणों का स्वरूप ऐसा नहीं होता है। अत: इन ऋणों की वापसी की आशा करना न्यायोचित नहीं होगा। उन्हें स्थायी रूप से दिए गए ऋण माना जाना चाहिए। बाजार से लिये जाने वाले ऋण के मामले में कुल राशि तथा केन्द्र और राज्यों को मिलने वाले धन का निर्धारण केन्द्र करता है। कई वर्षों से बाजार से लिए जाने वाले ऋण में राज्यों का हिस्सा कम हो गया है। राज्यों की योजना संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस प्रवृत्ति को बदलना आवश्यक है। आठवें वित्त आयोग ने भी इस संबंध में यह मत दिया है, कि "बाजार से लिए गए कर्जों के वितरण की पद्धति में सुधार अपेक्षित है और राज्यों की हिस्सा बढ़ाया जाना चाहिए।" (रिपोर्ट पृष्ठ 8)। इसके अतिरिक्त बाजार से लिए गए कर्ज के अंतर्राज्यीय वितरण के लिए कोई फार्मूला नहीं दिया गया है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक राज्यों को बाजार-कर्ज ऐतिहासिक आधार पर एक समान वार्षिक बढ़ोतरी के साथ किया जाता था जिसके कारण राज्यों के बीच बाजार ऋण के वितरण में एक स्थायी असमानता बनी रही। छठी पंचवर्षीय योजना में पिछड़े हुए राज्यों ने बाजार-ऋण की राशि में हिस्से की वृद्धि के लिए फिर से दबाव डाला। योजना आयोग ने पिछली असमानताओं को देखते हुए केवल पिछड़े राज्यों के लिए बाजार ऋण की राशि में से विशेष आबंटन किया तथापि पिछड़े राज्यों को पर्याप्त अतिरिक्त साधन प्राप्त नहीं हुए। विकसित राज्यों के स्तर तक पहुचने के लिए पिछड़े हुए राज्यों के साधनों में वृद्धि के लिए राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता वितरण के लिए संशोधित गाडगिल फार्मूले के अनुसार परस्पर बाजार की व्यवस्था होनी चाहिए। विकल्प के रूप में विभिन्न राज्यों में बाजार-ऋण की सामान्य सीमा के अतिरिक्त ऐसे राज्यों के बाजार-ऋण की सीमा बढ़ायी जानी चाहिए जिनका उधार और जमा का अनुपात प्रतिकूल हो। यह अतिरिक्त बाजार ऋण, उधार और जमा के बीच और अंतर की सीमा के अनुपात में होना चाहिए।

5.16 संविधान का अनुच्छेद 246 सातवी अनुसूची में केन्द्र और राज्य को दी गई विधायी शक्तियों के संदर्भ में केन्द्र और राज्य की जिम्मेदारियों की सीमा निर्धारित करता है। जहां केन्द्र को कुछ मुख्य जिम्मेदारियां, जैसे रक्षा, विदेश-कार्य आदि सौंपी गई हैं, वहां राज्य को भी विकास और कल्याणकारी कार्य जैसे सिंचाई, शक्ति, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज-कल्याण आदि मुख्य जिम्मेदारियां निभानी पड़ती हैं।

द्वितीय योजना के पश्चात् राजस्व के केन्द्रीकरण में बढ़ोतरी हुई है, जबकि दूसरी ओर केन्द्र के पास मौजूद राजस्व को देखते हुए ऐसा लगता है कि देश के कुल सार्वजनिक व्यय के संबंध में केन्द्र की जिम्मेदारी बहुत कम है। इसके परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों के दौरान संघीय आर्थिक असंतुलन में बढ़ोतरी हुई है। इस प्रकार अब राज्य अपने ही राजस्व से (पुंजी और राजस्व दोनों से) अपने कुल खर्च के 60 प्रतिशत से कम खर्च करने की स्थिति में आ गए हैं। चतुर्थ योजना के अंत तक राज्य की अपने कुल व्यय का भार उठाने की शक्ति में निरंतर कमी आई है। किन्तु पांचवी योजना की अवधि के दौरान स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। ऐसा इसलिए हुआ कि हाल ही के वर्षों में राज्यों ने इस संदर्भ में अपने लिए कुछ अतिरिक्त साधन जुटाए है जिसका अर्थ यह है कि अब उनमें अपने राजस्व को बढ़ाने की क्षमता नहीं है और जनता की ओर से विकास और कल्याणकारी कार्यों के लिए व्यय की मांग बढ़ने के कारण राज्य की व्यय संबंधी आवश्यकताओं में तेजी से वृद्धि हो रही है।

वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र द्वारा केन्द्रीय करों में राज्य के हिस्से के रूप में और सहायता अनुदान के रूप में किए जाने वाले धन-अंतरण वापस किए जाने योग्य नहीं हैं। ये अंतरण कुल संघीय वित्तीय अंतरण का एक तिहाई हिस्सा है। दूसरी ओर योजना आयोग की सिफारिशों पर किए जाने वाले धन अंतरण विवेकाधीन होते हैं और सामान्यत: इन अनुदानों और ऋणों के बीच 30:70 का अनुपात होता है। इससे राज्यों पर अत्यधिक ऋणभार पड़ता है। अत: सुझाव दिया जाता है कि योजना-अंतरण के रूप में दिए जाने वाले अनुदान और ऋण 50 : 50 के अनुपात में होने चाहिए।

5.17 राज्य जनता के रहन सहन के स्तर में सुधार के लिए वचनबद्ध हैं और आर्थिक वृद्धि की दर में तेजी के लिए योजनाएं आरंभ करते हैं। योजनाओं के वित्त-पोषण के लिए राज्य लघु बचत और केन्द्रीय सहायता के अतिरिक्त जिसका 70 प्रतिशत ऋण के रूप में होता है, बाजार से और वित्तीय संस्थाओं से भी उधार लेते हैं। इन ऋणों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मात्रा के परिणामस्वरूप राज्यों का ऋण भार बढ़ रहा है। राज्यों को इस बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता से उबारने के लिए एक विशिष्ट सीमा तक केन्द्रीय ऋण के एक विशिष्ट अंश को बट्टे खाते डाले जाने के उपाय किए जा सकते हैं। उनकी बढ़ती हुई वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने से ही वास्तविक हल निकलेगा और ऐसे निवेशों के लिये ही ऋण दिए जाएं जिनसे लाभ होने की संभावना हैं।

5.18 राज्य केवल केन्द्र द्वारा किए जाने वाले वार्षिक आबंटन की राशि की सीमा तक ही उधार ले सकते हैं। पहले राज्य राष्ट्रीयकृत बैंक और संस्थाओं के माध्यम से ऋण लेते थे और नियत ऋण प्राप्त करने में कोई कठिनाई महसूस नहीं होती थी। जैसा कि प्रश्न 5.15 में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है राज्यों को बाजार-ऋण के आबंटन की राशि में वृद्धि करना आवश्यक है।

5.19 यह सत्य है कि केन्द्र राज्यों से विदेशी ऋण-दाताओं को दी जाने वाली ब्याज की दर से अधिक दर वसूल करता है। राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों में राज्यों ने बार-बार यह आग्रह किया है कि राज्यों से उसी दर पर ब्याज वसूल किया जाए जिस पर केन्द्र विदेशी ऋणदाताओं से ब्याज लेता है। विदेशी ऋणदाताओं से जो रकम प्राप्त होती है उसका औसतन 50 प्रतिशत ऊपर उल्लिखित राज्य-परियोजनाओं के वित्त पोषण के लिए दे दिया जाता है। अपनी परियोजनाओं के लिए विदेशी उधार प्राप्त करने के लिए राज्यों को अकसर ऐसी शर्तें मानने के लिए या ऐसे खर्च करने के लिए राजी होना पड़ता है जिनके लिए ये राज्य कभी तयार नहीं होते या मंजूरी नहीं देते। इसीलिए विदेशी उधार की पूरी रकम राज्यों को न देने का कोई कारण ही नहीं है और उन ब्याज दरों के अतिरिक्त जिन पर यह विदेशी ऋणदाताओं से प्राप्त किया जाता है, केवल लघु सेवा प्रभार ही वसूल किया जाता है।

5.20 भारतीय रिजर्व बैंक को चाहिए कि वह बाजार ऋण का समन्वय करता रहे क्योंकि वह राष्ट्रीयकृत बैंकों और अन्य संस्थाओं के आरक्षित धन का उपयोग बाजार-ऋण के रूप में करने की स्थिति में है। रिजर्व बैंक द्वारा केन्द्र और राज्यों के ऋण की वसूली-सीमा नियत नहीं की गई है बल्कि यह केन्द्रीय वित्त मंत्रालय और केन्द्रीय योजना आयोग द्वारा नियत की जाती है। यह राज्य सरकार इस सुझाव से सहमत है कि ऐसी ऋण-परिषद स्थापित की जाए जो विभिन्न राज्य सरकारों और केन्द्र की राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अनुमोदित सिद्धांतों के आधार पर ऋणों की सीमा नियत करे।

5.21 राज्यों के ओवरड्राफ्ट राज्य सरकारों की वित्त-व्यवस्था की गंभीर रूग्णता का संकेत करते हैं। अर्थोपाय अग्रिम को दुगुना करना एक अल्पावधि उपाय था जो कि एक विकल्प था न कि उपाय। तथापि, इस रूग्णता के लिए हम किसी एक सरकार को दोषी नहीं ठहराते। यह नहीं कहा जा सकता कि राज्यों का आर्थिक प्रशासन शिथिल नहीं है। कुछ लोकोपयोगी सेवाएं न तो सक्षम ढंग से चलाई जा रही है और न ही उनकी सेवाएं लागत और नियत लाभ पर आधारित है। जिसके परिणामस्वरूप गंभीर हानि होती है और सरकारी सहायता आवश्यक हो जाती है। दूसरा कारण अत्यधिक पूंजीकरण है। राज्यों पर अनेक भारी लागत वाली परियोजनाओं को हाथ में लेने के लिए दबाव डाला जाता है जिसके फलस्वरूप साधनों का अपव्यय होता है और पूंजी और उत्पादन का अनुपात अधिक होता है तथा लाभ अत्यल्प होता है। आर्थिक आधार कामजोर हो जाता है और अर्थोपाय संबंधी समस्याएं बढ़ जाती हैं। इसके साथ साथ राज्यों के अपेक्षाकृत गैर-लचीले राजस्व के कारण समस्या अधिक पेचीदा हो जाता है। इसके अतिरिक्त राज्य की वित्तीय व्यवस्था की कमियां अधिकांशत: केन्द्र की वित्तीय व्यवस्था में भी पाई जाती है यद्यपि राज्यों की अर्थोपाय संबंधी समस्या साधारण नहीं है। केवल दक्षता की ओर लक्षित एक समग्र राष्ट्र की वित्त नीति जो किन्ही अन्य विचारों से प्रभावित न हो, इस गंभीर रुग्णता को ठीक कर सकती है।

5.22 संविधान का अनुच्छेद 246 राज्य एवं केन्द्र की सातवीं अनुसूची में निर्धारित विधायी अधिकारिता के अनुसार उत्तरदायित्व के क्षेत्र को निर्धारित करता है । जहां तक राजस्व के विभाजन का संबंध है, केन्द्र सरकार के पास केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क निगम कर आदि जैसे कर जिनकी वसूली राष्ट्रीय स्रोत होने के कारण अच्छी स्थिति में हैं । इसके विपरीत राज्य सरकारों के पास अपर्याप्त एवं कम राजस्व स्रोत हैं । इस संबंध में कर ही एक अपवाद है । अन्तर्राज्यीय व्यापार में विक्रय कर का केन्द्रीकरण, घोषित माल एवं सेवाओं पर विक्रय कर की दरें निर्धारित करने की शक्ति एवं अधिकाधिक वस्तुओं पर विक्रय कर के बदले में अतिरिक्त उत्पाद शुल्क को क्रमशः बढ़ाकर राज्य के अधिकारों का अतिक्रमण करके केन्द्र सरकार इन कर के मामले में धीरे धीरे राज्य का सीमा-क्षेत्र भी घटा रही है । इसके अतिरिक्त भूमि-कराधान और राज्य उत्पाद शुल्क जैसे कुछ राजस्व स्रोतों की प्राप्ति में अनेक प्रकार की रुकावटें होने का कारण कुछ राज्य सरकारों को इन स्रोतों से अधिक राजस्व वसूल कर पाने में कठिनाई होती है । इन बाधाओं के होते हुए भी उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े हुए राज्य (1970-71) से 1982-83 ने पिछले बारह वर्षों में राज्य में कर एवं शुल्कों की प्राप्ति में 16 प्रतिशत प्रतिवर्ष की कुल वृद्धि दर बनाए रखी हैं । इसी अवधि में सामान्य विक्रय कर, वाहनों पर कर, मनोरंजन कर, माल पर कर, स्टाम्प-शुल्क, तथा राज्य उत्पाद शुल्क जैसे व्यक्तिगत करों में 14.2% से 19.6% प्रतिवर्ष की संयोजित वृद्धि दर बनाए रखी हैं । राज्य के कर एवं शुल्कों से प्रति व्यक्ति राजस्व की दर 1968-69 में 15.83 रु० से 1981-82 में 80.81 रुपए और कर का अनुपात 1968-69 में 5.5 रुपए से 1982–83 में 5.6 रुपए तक बढ़ गया है । इस अवधि में कर-इतर राजस्व में भी आनुपातिक वृद्धि हुई है । अन्य राज्यों में भी समान प्रवृत्ति देखी गई है । इस प्रकार जहां तक राज्य के स्रोतों और अतिरिक्त स्रोतों को जुटाने के उपायों का संबंध है राज्य सरकारों को संविधान द्वारा निर्धारित ढांचे में कार्य किया है वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों में जो कुछ संभव हैं, किया है और कर रही हैं ।

5.23 केन्द्रीय कराधान का पता लग जाने और अपवंचन के परिणामस्वरूप ऐसी धनराशि जिसका कोई लेखा-जोखा नहीं है, व्यापक मात्रा में प्रचलन में है । विशेष धारक बंधपत्र स्कीम जैसे उपायों के परिणामस्वरूप ऐसा मालूम हुआ है । केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों में पूंजीगत निवेश पर लाभ के संबंध में, सातवें वित्त आयोग ने 1976-77 में हुआ 4.4% लाभ अपर्याप्त माना था । केन्द्र सरकार के साधनों के पूर्वानुमानों का पुनर्निधारण करते समय आयोग ने यह माना था कि 1983–84 में लाभ की राशि 7.5% तक बढ़ जाएगी । कर-चोरी एवं कर से बच निकलने की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए कर वसूल करने वाले तंत्र को अधिक प्रभावशाली एवं सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है । जो उद्यम घाटे में चल रहे हैं या जो उचित लाभ नहीं दे रहे हैं उनकी वित्तीय कार्य-प्रणाली में सुधार के लिए सामूहिक प्रयास किए जाने चाहिए । राज्य सरकारों पर भी यही नीति लागू होती है ।

5.24 संविधान के अनुच्छेद 268 और 269 में वर्णित कर एवं शुल्कों की आय, राज्य को प्राप्त होती है । यदि इन करों में से किसी कर में संशोधन का प्रस्ताव हो या कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन या रियायन अपेक्षित हो तो केन्द्र और राज्यों के स्वस्थ वित्तीय संबंधों के हित में केन्द्र के लिए यह वांछनीय होगा कि वह इस संबंध में राज्य सरकारों के विचार जाने और कोई भी कार्यवाही करने से पहले उन पर विचार करे ।

5.25 इस राज्य सरकार का मत है कि संविधान के अनुच्छेद 269 में वर्णित कर एवं शुल्क जो केन्द्र द्वारा वसूल किए जाते हैं, किन्तु राज्यों को सौंप दिए जाते हैं, उनका बेहतर उपयोग हो । इस अनुच्छेद में वर्णित सात करों एवं शुल्कों में से आजकल केवल दो अर्थात कृषि भूमि से इतर संपत्ति पर सम्पदा-शुल्क और अंतरराज्यीय विक्रय कर लगाए जाते हैं । पांचवे और आठवें वित्त आयोग ने अनुछेद 269 में वर्णित उपबंधों की समीक्षा की और उसके बारे में विशिष्ट सिफारिशें की हैं । भारत सरकार को उन पर शीघ्र से विचार करना चाहिए ।

5.26 रेल यात्री किराए पर लगाया जाने वाला कर उन करों में से एक है जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 269 में किया गया है । यह कर केंद्र द्वारा वर्ष 1957 में लगाया गया था परन्तु वर्ष 1961 में इसे हटा दिया गया और इसके बदले में राज्यों को तदर्थ राशि दी जाने लगी । प्रारंभ में वर्ष 1961-62 में यह राशि 12.50 करोड़ रु० नियत की गई । वर्ष 1966-67 से इसे 16.25 करोड़ रु० तक और 1981-82 में 23.12 करोड़ रु० तक बढा दिया गया । इस राशि में प्रत्येक पांच वर्ष में संशोधन किया जाना था । इसके संशोधन करने में हुए विलंब और इस तथ्य से कि राशि की प्रमात्रा उस राशि से कम रखी गई है जो राज्यों को तभी उपचित की जाती यदि कर लगा रहता राज्यों के राजस्व की विशेष हानि हुई है । आठवें वित्त आयोग ने विशेष रूप से यह सिफारिश की है कि वार्षिक अनुदान की राशि 95 करोड़ रु० कर दी जाए । इस सिफारिश को कार्यान्वित करने से राज्यों की बड़ी-बड़ी शिकायतें दूर हो जाएंगी । परन्तु इस मामले पर रेल समागम समिति द्वारा विचार किया जाना है । इस संबंध में राज्य सरकार का यह विचार है कि जब तक रेल यात्री किराए पर पुनः कर नहीं लगाया जाता तब तक करके बदले में राशि की प्रमात्रा के निर्धारण का मामला विशेष रूप से, वित्त आयोगों को भेजा जाना चाहिए ।

5.27 कोई टिप्पणी नहीं ।

5.28 प्राकृतिक विपदाओं का सामना करने के लिए राज्यों को केन्द्रीय सहायता देने के प्रावधानों के संबंध में वर्तमान व्यवस्था के साथ-साथ यह भी, विचार किया गया है कि व्यय का कुछ भाग राज्य को भी खर्च करना चाहिए । प्राकृतिक विपदाएं आने पर लोगों की कर-अदायगी-क्षमता विशेष रूप से, कम हो जाती है । इसके परिणामस्वरूप, राज्यों के स्रोत बढ़ाने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । तदनुसार राज्य ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :—

(1) सूखा पड़ने की स्थिति में दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता योजना-अग्रिम सहायता के रूप में नहीं की जानी चाहिए । यह सहायता उसी प्रकार की जानी चाहिए जिस प्रकार से अन्य प्राकृतिक विपदाओं के मामले में की जाती है ।

(2) यदि मार्जिन राशि से अधिक खर्च हो जाए तो उस खर्च को पूरा करने के लिए केन्द्र राशि दे । यह राशि अनुदान के रूप में दी जानी चाहिए और केन्द्र सरकार द्वारा उधार दी गई राशि ही ऋण के रूप में देनी चाहिए,

(3) क्षतिग्रस्त मकानों की मरम्मत और पुनः निर्माण जैसी मदों के लिए व्यय की अधिकतम सीमा नियत करने के लिए अपनाए गए मानदंडों का उचित रूप से संशोधन किया जाए, और

(4) यह प्रक्रिया इस प्रकार निर्धारित होनी चाहिए ताकि यह स्पष्ट होते ही कि सहायता-व्यय मार्जिन राशि से अधिक हो जाएगा राज्य सरकार को यथासंभव अधिक से अधिक केन्द्रीय सहायता दी जा सके ।

आठवें वित्त आयोग ने मार्जिन राशि के जैसी प्रत्येक राज्य के लिए पुनः निर्धारित की गई है के 50 प्रतिशत तक राज्यों को सहायता-अनुदान देने की सिफारिश की है । बशर्ते कि राज्य अपनी मार्जिन राशि खर्च करे । इससे उन राज्यों को सहायता मिलेगी जिन पर प्राकृतिक विपदाएं आती हैं ।

5.29 इस प्रयोजन से राष्ट्रीय निगम होना आवश्यक नहीं हैं क्योंकि राष्ट्रीयकृत बैंक व्यवहार्य परियोजनाओं के लिए राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से ऋण लेने के लिए ही सक्षम हैं । परन्तु राष्ट्रीय क्रेडिट परिषद् की स्थापना का विचार उचित है । राष्ट्रीय क्रेडिट परिषद में सभी राज्य सरकारों में समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए जिसे देश में उपलब्ध साखसाधनों और इसके विकास की संभावनाओं का मूल्यांकन करने और यह देखने का काम सौंपा जाए कि विकास पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए किस सीमा तक खर्च किया जा सकता है । इस परिषद को राज्यों के तथा साथ ही साथ केन्द्र का हिस्सा निर्धारण करने और राज्यों के हिस्से को परस्पर वितरित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए । राष्ट्रीय आर्थिक परिषद स्थापना का विचार भी अच्छा है । इस परिषद में भी सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाए । यह परिषद देश की राष्ट्रीय और स्थानीय महत्व की विभिन्न आर्थिक समस्याओं का निरीक्षण करने के लिए विशेषज्ञ निकाय बना सकती है । दो निकायों की वार्षिक रिपोर्टें संसद के समक्ष विचारार्थ और सुझावों के लिए तथा राज्य विधान सभा के समक्ष उनकी जानकारी के लिए प्रस्तुत की जाएं ।

5.30 यह निःसंदेह महत्वपूर्ण है कि लोक निधियां सावधानी से खर्च की जाएं और इसका जनता को ही लाभ होता है । क्योंकि राज्यों की बढ़ती हुई जिम्मेवारियों को निभाने के लिए राज्य-संसाधनों और खर्च में अनुरूपता नहीं है और व्यय करना पड़ता है इसके लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि केन्द्र राज्यों को पर्याप्त धन दे । राज्य सरकार ही जनता के अधिक निकट होती है और जनता को ऐसी सेवाएं उपलब्ध कराती है जिनका उसके जीवन से निकट का संबंध होता है ।

5.31 (क) वित्त आयोग पर्याप्त विस्तार से राज्य के व्यय की संवीक्षा करता है और केन्द्र से राज्यों में संसाधनों के अंतरण के स्तर का निर्धारण करने के लिए इनके पुन: निर्धारित आंकलनों को आधार बनाया जाता है । यद्यपि छठे आयोग से संघ के व्यय की भी जांच होनी आरंभ हो गई है परन्तु वस्तुत: संघ के व्यय की उस प्रकार से ब्यौरेवार संवीक्षा नहीं की जाती है जिस प्रकार से राज्य व्यय की की जाती है । अत: यह आवश्यक है कि केन्द्र के व्यय की ठीक उसी प्रकार से ब्यौरेवार जांच की जाए जैसे कि राज्य व्यय की की जाती है ।

(ख) प्रत्येक राज्य की परिस्थितियां अलग-अलग हैं और जिस योजना से (स्कीम) एक राज्य की जनता को लाभ हो सकती है वह योजना दूसरे राज्य की जनता के लिए लाभकारी नहीं भी हो सकती है, परन्तु यदि साधन की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए योजनेतर कार्यों पर होने वाला व्यय न्यायसंगत न हो तो पूर्वानुमान का पुनर्निर्धारण करते समय वित्त आयोग इस पर उचित निर्णय कर सकता है ।

(ग) संविधान में स्वतंत्र साँविधिक निकाय उदाहरणार्थ वित्त आयोग के रूप में राजस्व पुनर्समायोजन प्रणाली का पहले से ही प्रावधान किया गया है । यह आयोग व्यय के ब्यौरों के साथ-साथ राजस्व प्राप्तियों का भी ब्यौरेवार अध्ययन करता है । आवश्यकता तो इस बात की है कि वित्त आयोग केन्द्र के व्यय की ठीक उसी प्रकार से ब्यौरेवार संवीक्षा करे जिस प्रकार से राज्यों के व्यय की संवीक्षा की जाती है ।

5.32 हमने अभी तक केन्द्र राज्य संबंधों को प्रभावित करने वाले लेखों को रखने में किसी समस्या का सामना नहीं किया है ।

5.33 मूल्यांकन-लेखापरीक्षा करनी आवश्यक है यदि यह शीघ्र नहीं की गई तो इनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा । आजकल मूल्यांकन तभी किया जाता है जब कोई योजना पूरी हो जाती है । यदि योजना के निष्पादन के साथ-साथ मूल्यांकन कार्य किया जाए तो मूल्यांकन लेखापरीक्षा पहले हो सकेगी । और तब ही यह अधिक उपयोगी सिद्ध होगी ।

5.34 भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक को दी गई शक्तियां और कर्तव्य उचित प्रतीत होती हैं ।

5.35 व 5.36 संसदीय नियंत्रण की सफलता दो महत्वपूर्ण तथ्यों पर निर्भर करती है, लेखा परीक्षा कार्यालय की सहायता से विधान सभा के साथ प्रस्तुत लेखे का प्रकाशन और विधानसभा के कार्यपालक का उत्तरदायित्व । वर्तमान व्यवस्था पर्याप्त प्रतीत होती है ।

5.37 प्राक्कलन समिति पूर्णत: परामर्श देने वाली समिति के रूप में कार्य करती है, जबकि लोक लेखा समिति का कार्य वैधानिक है । विधान सभा के सामने प्रस्तुत किए जाने प्राक्कलन अनुदानों का आधार होता है । मितव्ययता तभी की जा सकती है यदि व्यय का आकलन ध्यान पूर्वक तैयार किया जाए और यथा संभव कम और दक्षता के अनुरूप रखा जाए । उस निकाय को इस प्राक्कलन को किस सीमा तक जानकारी है जो उन पर नियंत्रण रखता है, वह उन पर किस सीमा तक नियंत्रण कर सकता है जिसके सामने ये प्रस्तुत किए जाते हैं, यह बात उनकी व्यवस्था और विस्तार पर निर्भर होती है । यह कार्य वित्त विभाग और वित्त मंत्रालय द्वारा पहले से ही किया जा रहा है, और इस प्रकार से लोक व्यय पर विधानसभा का पर्याप्त नियंत्रण है ।

5.38 प्राक्कलन तैयार करते समय प्रारंभ में, और उसके बाद व्यय करते समय भी नियंत्रण रखना आवश्यक है । लेखापरीक्षा से इस बात की जांच की जाती है कि, क्या व्यय उन उद्देश्यों के लिए ही किया गया है जिनके लिए विधान सभा द्वारा व्यय की स्वीकृति दी गई है । व्यय आयोग भी न्यूनाधिक यही कार्य करता है । इसलिए व्यय आयोग के गठन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है ।

5.39 यह अनुभव किया गया है कि मूलत: योजना का अनुमोदन हो जाने के बाद विस्तृत योजना तैयार करने का कार्य राज्य सरकार को सौंप दिया जाए और योजना के शीघ्र और प्रभावी कार्यान्वयन के लिए राज्यों को विस्तृत परिवर्तन करने की स्वतंत्रता दे दी जाए । केन्द्र का कार्य केवल यह देखना होगा कि योजना के लिए दी गई राशि उसी योजना पर ही व्यय की गई है और किसी अन्य योजना पर नहीं । इसे राशि के खर्च के लेखों के आधार पर सुनिश्चित किया जा सकता है । आखिरकार अनुदानों से राज्यों को ही लाभ मिलता है और ऐसे मामलों में राज्यों पर विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है ।

अनुबंध 1

केन्द्र और राज्यों द्वारा उगाहे गए कर, कर सुपुर्दगी और कुल राजस्व खर्च में राज्यों का हिस्सा

(लाख रुपयों में)

		1961–62	1965–66	1970–71	1975–76	1980–81
						(संशोधित अनुमान)
1.	कुल कर राजस्व (केन्द्र और राज्य)	1,54,318	2,92,159	4,75,241	11,18,173	19,69,407
2.	राज्यों का कर राजस्व	48,944	86,092	1,54,562	3,57,294	6,56,148
3.	करों की सुपुर्दगी	17,892	27,600	75,562	1,59,912	3,70,590
4.	कुल करों के प्रतिशतता के अनुसार राज्यों का कर राजस्व	31.72	29.47	32.52	31.95	33.32
5.	कुल करों के प्रतिशत के अनुसार राज्यों का कर राजस्व (सुपुर्दगी सहित)	43.31	38.91	48.42	46.25	52.13
6.	कुल राजस्व खर्च में राज्यों का सापेक्ष हिस्सा	57.1*	52.2	55.0	51.2	56.4

* 1960–61 से संबंधित है ।

स्रोत :—भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, जन सांख्यिकी, भाग II (वार्षिक) ।

अनुबंध 2

राज्यों का दर्जा

राज्य	प्रति व्यक्ति एन०डी०पी०						
	1950–51	1955–56	1960–61	1964–65	1969–70	1975–76	1977–78
1. आन्ध्र प्रदेश	9	10	7	6	10	8	9
2. असम	5	5	5	5	7	10	10
3. बिहार	14	14	14	14	14	14	14
4. गुजरात	3	4	3	3	2	3	3
5. कर्नाटक	7	7	8	8	8	5	4
6. केरल	6	6	9	9	5	6	8
7. मध्य प्रदेश	13	9	11	11	12	12	11
8. महाराष्ट्र	4	2	1	2	3	2	2
9. उड़ीसा	11	13	13	13	9	11	12
10. पंजाब	2	2	4	1	1	1	1
11. राजस्थान	10	11	10	12	13	9	7
12. तमिल नाडु	12	8	6	7	6	7	6
13. उत्तर प्रदेश	8	12	12	10	11	13	13
14. पश्चिम बंगाल	1	1	2	4	4	4	5

स्रोत—आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक - खंड XVII संख्या 14, 15 और 16, वार्षिक संख्या 1982 पृष्ठ 609 (भारत में प्रादेशिक असमानता पर टिप्पणी) लेखक कृष्णा भारद्वाज ।

अनुबंध 3

विभिन्न वित्त आयोग द्वारा राज्यों को प्रतिव्यक्ति सुपुर्दगी

(रुपए)

राज्य	प्रति व्यक्ति सुपुर्दगी						
	पहला वित्त आयोग (52–57)	दूसरा वित्त आयोग (57–62)	तीसरा वित्त आयोग (62–66)	चौथा वित्त आयोग (66–69)	पांचवां वित्त आयोग (69–74)	छठा वित्त आयोग (74–79)	सातवां वित्त आयोग (79–84)
1. आन्ध्र प्रदेश	11	29	34	39	115	178	350
2. असम	20	50	49	74	163	301	355
3. बिहार	12	25	22	26	109	150	393
4. गुजरात	..	..	41	36	112	138	361
5. हरियाणा	..	..	..	..	99	121	307
6. हिमाचल प्रदेश	..	..	..	..	..	583	940
7. जम्मू-कश्मीर	..	56	60	110	323	505	816
8. कर्नाटक	3	38	34	55	104	131	343
9. केरल	3	28	41	57	138	225	361
10. मध्य प्रदेश	11	27	27	30	106	130	383
11. महाराष्ट्र	33	30	30	40	123	141	340
12. मणिपुर	..	..	..	..	..	1,164	1,808
13. मेघालय	..	..	..	..	..	880	1,326
14. नागालैंड	..	..	17	878	2,222	2,720	4,063
15. उड़ीसा	13	32	58	80	164	264	449
16. पंजाब	15	32	32	29	102	124	310
17. राजस्थान	9	30	35	39	131	219	350
18. सिक्किम	..	..	..	..	..	..	1,755
19. तमिलनाडु	13	24	27	37	110	130	365
20. त्रिपुरा	..	..	..	..	..	826	1,284
21. उत्तर प्रदेश	10	22	20	31	105	153	375
22. पश्चिम बंगाल	20	39	27	34	129	186	360
	12	29	30	41	124	177	386

टिप्पणी :—कुछ राज्यों के संबंध में प्रथम वित्त आयोग द्वारा प्रति व्यक्ति सुपुर्दगी राज्यों के पुनर्गठन के कारण पूरी तरह से तुलनीय नहीं है।

अनुबंध 4

प्रति व्यक्ति वित्त आयोग अन्तरण और प्रति व्यक्ति केन्द्रीय सहायता की तालिकाएं

राज्य	5वां वित्त आयोग प्रति व्यक्ति अन्तरण तालिकाएं	4थी योजना प्रति व्यक्ति अन्तरण तालिकाएं	कुल अंतरण तालिकाएं	6ठा वित्त आयोग प्रति व्यक्ति अन्तरण तालिकाए	5वीं योजना प्रति व्यक्ति अन्तरण तालिकाएं	कुल अन्तरण तालिकाएं	7वां वित्त आयोग प्रति व्यक्ति अन्तरण तालिकाएं	6ठी योजना प्रति व्यक्ति अन्तरण तालिकाए	कुल अंतरण तालिकाएं
1. आन्ध्र प्रदेश .	99.3	85.3	93.8	106.4	99.5	103.3	94.8	88.5	92.3
2. बिहार . .	94.1	93.3	93.8	89.7	85.1	87.6	106.4	95.3	102.1
3. गुजरात .	91.0	93.3	91.9	82.5	82.2	82.4	97.7	95.8	97.0
4. हरियाणा . .	78.4	122.3	95.7	72.4	128.3	97.7	83.1	98.3	89.0
5. कर्नाटक .	87.8	91.7	89.4	78.3	82.2	80.1	92.9	78.3	87.2
6. केरल . .	114.0	128.7	119.8	134.5	104.5	120.9	97.7	86.0	93.2
7. मध्य प्रदेश . .	85.7	98.1	90.6	77.7	85.8	81.4	103.7	103.4	103.6
8. महाराष्ट्र . .	101.4	75.6	91.2	84.3	67.1	76.5	92.0	74.0	85.0
9. उड़ीसा . .	137.0	114.2	128.0	157.9	121.8	141.5	121.6	128.1	124.1
10. पंजाब . .	86.8	115.8	98.2	74.1	105.3	88.3	83.9	94.1	87.9
11. राजस्थान . .	107.7	133.5	117.9	130.9	108.1	120.6	94.8	103.4	98.1
12. तमिलनाडु .	94.1	77.2	87.4	78.3	88.0	82.7	98.8	68.5	87.0
13. उत्तर प्रदेश .	91.0	93.3	91.9	91.5	103.8	97.1	101.5	92.8	98.1
14. पश्चिम बंगाल .	105.6	77.2	94.4	111.2	77.1	95.8	97.5	65.5	85.0
15. असम . .	139.0	191.4	159.7	180.0	165.8	173.6	96.1	240.9	152.4
16. जम्मू-कश्मीर .	261.4	484.2	349.2	302.0	790.2	523.3	220.9	933.3	497.9
सभी राज्य (16) .	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

1. प्रति व्यक्ति अन्तरण 1971 की जनगणना के आधार पर परिकलित है।
2. यद्यपि अवधि में विभिन्नता है फिर भी 6ठी योजना प्रति व्यक्ति विभाजन पर 7वें वित्त आयोग के साथ विचार किया गया है।

अनुबंध 5

केन्द्र की कुल प्राप्तियों के प्रतिशत के अनुसार राज्यों को साधनों का अन्तरण (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	राज्यों को कुल सकल अन्तरण	केन्द्रीय करों में हिस्सा	सहायता में अनुदान	ऋण और पेशगियां	केन्द्रीय कुल राजस्व प्राप्तियां	सकल प्राप्ति	कालम 7 के प्रतिशत के अनुसार कालम 2
1969–70 . .	2266.3	621.7	588.2	1056.3	3050.2	4260.2	53.2
1970–71 . .	2395.0	755.4	612.1	1027.5	3316.2	4683.7	51.1
1971–72 . .	4043.8	944.4	890.8	1208.6	3996.4	5831.6	52.2
1972–73 . .	3541.1	1066.6	946.9	1520.6	4545.4	6558.9	53.9
1973–74 . .	3701.0	1173.5	951.9	1575.6	5032.3	7157.7	51.7
1974–75 . .	3377.3	1224.4	1059.9	1093.0	6478.0	8762.0	38.5
1975–76 . .	4183.6	1599.0	1289.3	1295.3	7958.0	10846.3	38.6
1976–77 . .	4792.3	1689.8	1621.8	1480.7	8618.4	11930.0	40.2
1977–78 . .	5714.9	1798.0	1960.7	1956.2	9591.5	13350.3	42.8
1978–79 . .	7360.7	1956.8	2634.5	2769.4	11003.4	15594.7	47.2
1979–80 . .	8518.8	3406.0	2411.2	2761.6	11061.3	16878.5	50.8
1980–81 (बजट अनुमान)	10008.9	3791.8	2906.6	3310.5	12540.7	19239.1	52.0
1981–82 (बजट अनुमान)	10217.4	4130.7	2768.2	3318.5	13919.4	20818.3	49.1

स्रोत :—केन्द्रीय बजट

अनुबन्ध 6

राज्यों को योजना-वार केन्द्रीय सहायता

(प्रति व्यक्ति रुपयों में)

राज्य	पहली योजना 1951–56	दूसरी योजना 1956–61	तीसरी योजना 1961–66	तीसरी वार्षिक योजना 1966–69	चौथी योजना 1969–74	पांचवी योजना 1974–78 और 1978–79	छठी योजना योजना आबंटन	पहली योजना से छठी योजना तक	दर्जा
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1. आन्ध्र प्रदेश	19	28	58	39	53	138	208	543	6
2. बिहार	14	19	54	19	58	118	224	496	11
3. गुजरात	19	26	50	31	58	114	225	523	9
4. हरियाणा	..	..	..	50	76	178	231	535	7
5. कर्नाटक	23	30	63	40	57	114	184	511	10
6. केरल	17	24	68	45	80	145	202	581	5
7. मध्य प्रदेश	22	32	64	37	61	148	243	607	4
8. महाराष्ट्र	14	20	39	24	47	93	174	411	14
9. उड़ीसा	50	39	74	40	71	169	301	744	2
10. पंजाब	152	50	67	38	72	146	221	746	1
11. राजस्थान	36	31	74	49	83	150	243	666	3
12. तामिलनाडु	14	29	53	32	48	122	161	459	12
13. उत्तर प्रदेश	13	17	46	30	58	144	218	526	8
14. पश्चिम बंगाल	40	22	41	27	48	107	154	439	13
अविशिष्ट श्रेणी के राज्यों का औसत	24	26	53	34	58	128	208	531	
विशिष्ट श्रेणी के राज्य									
1. असम	23	28	78	58	119	230	566	1102	8
2. हिमाचल प्रदेश	..	..	..	..	281	528	1250	2059	6
3. जम्मू-कश्मीर	30	56	166	149	301	1097	2193	3992	3
4. मणिपुर	..	..	..	..	238	697	1782	2717	5
5. मेघालय	..	..	..	..	305	758	1960	3023	4
6. नागालैंड	..	..	270	400	670	1750	4100	7190	2
7. सिक्किम	..	..	..	..	..	2347	5975	8322	1
8. त्रिपुरा	..	..	..	..	186	409	1276	1871	7
विशिष्ट श्रेणी के राज्यों का औसत	25	34	102	85	196	508	1197	2147	
सभी राज्यों के औसत	24	26	55	36	65	147	258	611	

अनुबंध 7

1960-61 की तुलना में 1980-81 में कर अनुपात में वृद्धि की प्रतिशतता

राज्य	प्रति व्यक्ति कर 1960-61	प्रति व्यक्ति आय 1960-61 (सी० एस० ओ० अनुमान)	कर अनुपात (1960-61)	कर अनुपात (1980-81) (1978-79 की प्रति व्यक्ति आय पर परिकलित)	1960-61 की तुलना में 1980-81 के कर अनुपात में प्रतिशत वृद्धि
1	2	3	4	5	6
1. आन्ध्र प्रदेश . . .	11	314	3.50	10.12	189.14
2. बिहार . . .	7	216	3.24	5.06	56.17
3. गुजरात . . .	10	380	2.63	9.62	265.78
4. हरियाणा . . .	..	359	..	9.25	..
5. कर्नाटक . . .	10	292	3.42	10.37	203.22
6. केरल . . .	12	278	4.32	10.70	147.69
7. मध्य प्रदेश . .	8	274	2.92	7.87	169.52
8. महाराष्ट्र . . .	16	419	3.82	10.13	165.18
9. उड़ीसा . . .	5	226	2.21	4.88	120.81
10. पंजाब . . .	13	383	3.39	8.86	161.36
11. राजस्थान . . .	9	271	3.32	5.72	72.29
12. तमिलनाडु . . .	12	344	3.49	10.86	211.17
13. उत्तर प्रदेश . .	8	244	3.28	6.60	101.22
14. पश्चिम बंगाल . .	15	386	3.89	7.39	89.97
15. असम . . .	10	349	2.87	3.33	16.03
16. जम्मू-कश्मीर . . .	8	267	3.00	5.27	75.67
सभी राज्य . . .	10	304	3.29	8.23	150.15

अनुबंध 8

प्रतिव्यक्ति गैर योजना राजस्व खर्च पर राज्यों के दर्जा का विवरण

(रुपये 0.00)

राज्य	खर्च 1974-75	दर्जा	खर्च 1980-81 (बी०ई०)	दर्जा
1	2	3	4	5
1. आन्ध्र प्रदेश	88.32	XII	197.17	IX
2. असम	91.32	IX	182.20	XI
3. बिहार	54.03	XV	107.28	XV
4. गुजरात	113.65	V	271.87	IV
5. हरियाणा	149.91	I	290.82	III
6. कर्नाटक	111.32	VII	245.82	V
7. केरल	124.59	IV	229.40	VI
8. मध्य प्रदेश	80.35	XIII	176.97	XII
9. महाराष्ट्र	129.83	III	330.95	I
10. उड़ीसा	90.50	X	177.38	XII
11. पंजाब	141.14	II	295.83	II
12. राजस्थान	108.08	VIII	202.23	VII
13. तमिलनाडु	113.54	VII	192.67	X

अनुबन्ध 8—जारी

(रुपए 0.00)

1		2	3	4	5
14.	उत्तर प्रदेश	72.28	XIV	146.12	XIII
15	पश्चिम बंगाल	90.23	XI	197.60	VIII
16.	हिमाचल प्रदेश	193.41	IV	342.08	VII
17.	जम्मू कश्मीर	245.46	II	443.97	IV
18.	मणिपुर	215.75	III	484.62	III
19.	मेघालय	172.83	V	375.40	V
20.	नागालैंड	605.43	I	1319.77	I
21.	सिक्किम	लागू नहीं		769.05	II
22.	त्रिपुरा	166.26	VI	351.93	VI

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक आयोजन

6.1 राज्यों की योजनाओं को तैयार करने और उनको अंतिम रूप देने की वर्तमान प्रक्रिया में योजना आयोग और राज्यों के बीच आदान प्रदान की पर्याप्त गुंजाइश रहती है। राष्ट्रीय योजनाओं का समग्र नीति संबंधी ढांचा राष्ट्रीय विकास परिषद् तैयार करती है और विकास परिप्रेक्ष्यों के मुख्य दिशा-निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत मूल क्षेत्रों में राष्ट्रीय अग्रताओं और लक्ष्यों का निर्धारण योजना आयोग द्वारा किया जाता है। इसके बाद, विकेन्द्रीकृत योजना की स्वीकृत संकल्पना के अनुसार राज्यों को क्षेत्रीय और स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, प्राकृतिक और मानव संसाधनों के अधिकतम उपयोग के लिए, अनिवार्य सामाजिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए और कम सुविधा प्राप्त वर्गों के लाभार्थ कार्यक्रम शुरू करने के लिए विकास के विभिन्न क्षेत्रों और उद्देश्यमूलक कार्यक्रमों और परियोजनाओं को उपलब्ध संसाधनों के आबंटन की खुली छूट होनी चाहिए। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं को तैयार करने और उन पर अमल करने की आवश्यकता की समीक्षा करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से प्रश्न 6.10 के उत्तर में नीचे दिए गए सुझावों के अनुसार :

राज्यों के प्रमुख कार्यक्रमों और परियोजनाओं की केंद्रीय मंत्रालयों और योजना आयोग द्वारा जांच पड़ताल किया जाना राज्य के लिए लाभप्रद है। इस जांच-पड़ताल के माध्यम से अन्य राज्यों के इसी प्रकार के कार्यक्रमों को चलाने में केंद्रीय मंत्रालयों के अनुभव भी उपलब्ध होते हैं और कार्यक्रम की गुणवत्ता और विषयवस्तु में सुधार में भी मदद मिलती है। तथापि यह महसूस किया गया है कि केंद्रीय मंत्रालय और योजना आयोग जब एक बार अपनी राय राज्य सरकारों को दे दें तो फिर यह बात राज्य सरकारों पर छोड़ दी जानी चाहिए कि वे अपनी विशिष्ट स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए अपनी योजनाओं में उपयुक्त संशोधन कर सकें। सभी राज्यों के लिए एकसमान दिशा-निर्देश स्वीकार करने की कोई स्पष्ट या निहित मजबूरी नहीं होनी चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया है कि योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद के अनुमोदनार्थ कोई महत्वपूर्ण योजना प्रलेख प्रस्तुत करने से पहले राज्यों से अपनी प्रतिक्रिया बताने के लिए कहा जाना चाहिए और ये प्रतिक्रियाएं भी राष्ट्रीय विकास परिषद् के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए।

6.2 राष्ट्रीय विकास परिषद्, जैसी कि वह इस समय है, विकास परिप्रेक्ष्यों और योजना नीतियों तथा अग्रताओं को निर्धारित करने का सर्वोत्तम मंच है। राष्ट्रीय विकास परिषद को शक्ति इस बात से मिलती है कि उसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं जो योजना आयोग के भी अध्यक्ष हैं।

हम इस राय से सहमत हैं कि परिषद द्वारा विकास योजनाएं अनुमोदित हो जाने पर राज्यों को उनके क्रियान्वयन के मामले में पूरी छूट होनी चाहिए और राज्यों को अनुमोदित योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध कराए जाने चाहिएं।

6.3 योजना आयोग के वर्तमान संघटन और प्रक्रियाएं समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं और उनमें राज्य सरकारों और केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों में विचार विमर्श और आपसी समझ-बूझ की पर्याप्त व्यवस्था है। राज्यों की आवश्यकताओं और उनकी योजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में उनके सम्मुख आने वाली कठिनाइयों के प्रति योजना आयोग को संवेदनशील बनाने के उद्देश्य से निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :

(i) किसी एक वर्ष के दौरान कम से कम दो प्रमुख राज्यों के मुख्य मंत्रियों को बारी बारी से योजना आयोग के सदस्यों के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। यह बारी एक वर्ष की होनी चाहिए।

(ii) योजना आयोग को हर वर्ष कम से कम एक बार सभी राज्यों के मुख्य मंत्रियों से योजना की प्रगति की समीक्षा करने के लिए और आगामी वर्ष की योजनाओं के संबंध में उनके सुझाव जानने के लिए उनसे मुलाकात करनी चाहिए।

6.4 योजना आयोग को आर्थिक प्रौद्योगिक और प्रबंधकीय विशेषज्ञों के उच्च स्तरीय परामर्शी निकाय के रूप में अपना स्वरूप बनाए रखना चाहिए।

राष्ट्रीय विकास परिषद में केंद्रीय मंत्रालयों और राज्यों का प्रतिनिधित्व मौजूद है और योजना आयोग में दोबारा ऐसा ही करने की आवश्यकता नहीं है। राज्य सरकारों का दृष्टिकोण वे दो मुख्यमंत्री प्रस्तुत कर सकते हैं जो बारी बारी से आयोग के सदस्य बनते हैं जैसा कि ऊपर प्रश्न 6.3 के उत्तर में उल्लिखित है।

6.5 योजना आयोग को भारत सरकार का एक विभाग बना रहना चाहिए जैसा कि वह इस समय है। इस व्यवस्था से योजना आयोग को भारत सरकार का आवश्यक प्राधिकार और हैसियत प्राप्त होती है और इससे उसे केंद्रीय मंत्रालयों और राज्य सरकारों से व्यवहार करने में और साथ ही उनके मतभेदों को सुलझाने में भी सहायता मिलती है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् के निर्णयों को कार्यान्वित कराने की जिम्मेवारी योजना आयोग की है, लेकिन योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद् की नीतियों की कमियों को तब बताने में संकोच नहीं करना चाहिए, यदि ऐसी कमियां योजना और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के दौरान सामने आती हैं।

6.6 हम इस बात से सहमत हैं कि राज्य योजनाओं में राष्ट्रीय अग्रताओं पर विचार करना और उन्हें शामिल करना अत्यंत आवश्यक है। राज्यों की वित्त व्यवस्था और योजनाओं की योजना आयोग द्वारा जांच किए जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है लेकिन यह अवश्य जान लिया जाना चाहिए कि विस्तृत जांच पड़ताल से राज्य सरकारों को कोई बहुत लाभ नहीं होगा क्योंकि योजना आयोग एक निश्चित केंद्रीय सहायता के आबंटन के एक निश्चित ढांचे, जैसा कि वित्त मंत्रालय ने बनाया है, से अंगे राज्यों की किसी वास्तविक और मान्य आवश्यकता को पूरा करने की स्थिति में नहीं होता। योजना आयोग को आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों के अनिवार्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए पर्याप्त

साधन उपलब्ध कराके आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में सक्षम बनाया जाना चाहिए ।

6.7 इस प्रश्न पर वित्तीय संबंधों के बारे में प्रश्न के भाग V के उत्तर में विस्तार से विचार किया गया है ।

6.8 हम इस बात से सहमत हैं कि योजना का आकार निर्धारित करने की वर्तमान प्रणाली आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों के बहुत प्रतिकूल है । इस संबंध में निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :--

(i) संशोधित गाडगिल समझौते में, जो कि राज्यों को केन्द्रीय सहायता के आबंटन का आधार है, और अधिक संशोधन करने की आवश्यकता है जिससे कि विभिन्न राज्यों को आबंटनीय केंद्रीय सहायता का वितरण निम्नलिखित आधार पर किया जाए :—

क. जनसंख्या के आधार पर	60%
ख. आई०ए०टी०पी०के० (आय समायोजित कुल जनसंख्या गुणज) अनुसार पिछड़ेपन के आधार पर .	30%
ग. विशेष समस्याएं	10%
कुल .	100%

(ii) इसके अलावा योजना आयोग को ऐसे अतिरिक्त संसाधन भी उपलब्ध होने चाहिए जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस्तेमाल किए जा सकें, जैसी कि योजना आयोग द्वारा समय-समय पर निर्धारित की जाएं ।

(iii) उत्तर प्रदेश को ऐसी विदेशी सहायता प्राप्त परियोजनाओं में पर्याप्त हिस्सा नहीं मिल रहा है जो राज्य को अतिरिक्त योजनागत संसाधन प्रदान करता है । इस पिछली भूल का सुधार अब प्रमुख बिजली और सिंचाई परियोजनाओं को बाहरी सहायता से जोड़कर किया जाना चाहिए । विदेशी सहायता की समूची राशि योजनाओं को अतिरिक्तता के रूप में राज्यों को दे देनी चाहिए सिवाय सेवा प्रभारों के, जिन्हें भारत सरकार अपने पास रख सकती है ।

(iv) उत्तर प्रदेश में माने हुए तीन पिछड़े क्षेत्र हैं--पूर्वी क्षेत्र, बुंदेलखंड और पहाड़ी क्षेत्र । यह जरूरी है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बुंदेलखंड क्षेत्रों को शीघ्र विकास के लिए उसी आधार पर ही विशेष सहायता उपलब्ध कराई जाए जैसी कि पहाड़ी क्षेत्रों के लिए प्रदान की जा रही है । राज्य को यह सहायता 90% अनुदान और 10% ऋण के आधार पर दी जानी चाहिए ।

6.9 जैसा कि ऊपर प्रश्न 6.8 के उत्तर में कहा गया है राज्यों को केंद्रीय योजना सहायता आबंटित करने का वर्तमान मानदंड आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राज्यों के साथ न्याय नहीं करता । स्पष्ट है कि ये राज्य योजना के लिए धन जुटाने के वास्ते पर्याप्त मात्रा में अपने संसाधन पैदा करने की स्थिति में नहीं है और उन्हें केंद्रीय सहायता पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करा कर उनकी मदद की जानी चाहिए ताकि संतुलित क्षेत्रीय विकास और गरीबी हटाने के लक्ष्यों को पूरा किया जा सके ।

उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों के लिए योजना आयोग द्वारा उपलब्ध कराई गई विशेष केंद्रीय सहायता सामान्यत: उसी प्रकार की है जैसे हिमाचल प्रदेश को उपलब्ध कराई जाती है । उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में संचार, कृषि योग्य भूमि की कमी, सिंचाई साधनों का अभाव, भूक्षरण, पर्यावरण ह्रास और बड़े उद्योगों की कमी जैसी गंभीर समस्याएं हैं । योजना आयोग द्वारा उपलब्ध कराई गई विशेष केंद्रीय सहायता इन कमियों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है और उसमें भारी वृद्धि करने की जरूरत है । उत्तर प्रदेश में पहाड़ी क्षेत्र बुंदेलखंड और तराई क्षेत्रों में बड़ी संख्या में जनजाति बस्तियां हैं । इनमें से अनेक जनजातियों को अब तक अनुसूचित जनजाति घोषित नहीं किया गया, अत: वे सहायता प्राप्त करने से वंचित रही हैं । साथ ही उत्तर प्रदेश में जनजाति लोग चूंकि दूर-दूर तक छितरे हुए हैं, इसलिए निर्धारित दिशा-निर्देशों के अनुरूप, छितरी हुई जनजाति आबादी के लिए संघटित जनजाति विकास योजना तैयार करना संभव नहीं है । राज्य में जनजाति आबादी के त्वरित विकास के हित में निम्नलिखित सुझावों पर विचार करने की आवश्यकता है :—

(क) उत्तर प्रदेश में और अधिक जनजातियों को अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित किए जाने के बारे में निर्णय शीघ्र लिया जाए जैसा कि राज्य सरकार ने प्रस्ताव किया है ।

(ख) राज्य की समूची जनजाति आबादी के आधार पर भारत सरकार द्वारा विशेष केंद्रीय सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए ।

परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए राज्य योजना परिव्यय निर्धारित करने की वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक नहीं है । योजना आयोग आमतौर पर इस मामले में बहुत कड़ा दृष्टिकोण अपनाता है जिसमें किन्हीं विशिष्ट परियोजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से संबंधित समस्याओं पर और साथ ही उन अन्य समस्याओं पर भी ध्यान नहीं दिया जाता जो वर्ष के दौरान क्रियान्वयन के समय सामने आती है । परिव्यय निर्धारित करने की प्रणाली केवल कुछ विशेष राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों तक ही सीमित रहनी चाहिए और उनमें भी सुधार के लिए आयोग को राज्य सरकार के सुझावों का पूरी तरह सम्मान करना चाहिए ।

6.10 हम विशिष्ट राष्ट्रीय लक्ष्यों से संबद्ध क्षेत्रों में केंद्रीय रूप से प्रायोजित योजनाओं के क्रियान्वयन की सामान्य संकल्पना से सहमत हैं लेकिन इन योजनाओं को बनाने और उन पर अमल करने में सुधार की आवश्यकता है । इस संबंध में निम्न सुझाव दिए जाते हैं :—

(1) किसी भी नई केंद्र प्रायोजित योजना को शुरू करने से पहले राज्य सरकार के साथ विचार-विमर्श की प्रक्रिया अपर्याप्त है । ऐसी नई योजनाओं को राज्य सरकार से संबंधित विभागों के साथ परामर्श करके तैयार किया जाना चाहिए । इसके अलावा केन्द्रीय मंत्रालय द्वारा अंतिम रूप दिए गए योजना के मसौदे को राज्य सरकारों के योजना विभागों के पास भी भेजा जाना चाहिए (संबद्ध विभागों के अलावा) और प्रस्तावित केंद्र प्रायोजित योजना को अंतिम रूप देने से पहले उनके विचार लिखित में प्राप्त किए जाने चाहिएं ।

(2) नई केंद्र-प्रायोजित योजनाएं पंचवर्षीय योजना के आरंभ में या वार्षिक योजनाओं के आरंभ में शुरू की जानी चाहिए । इन्हें वर्ष के दौरान और विशेषकर वर्ष के उत्तरार्ध में शुरू नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इससे राज्यों की योजना अपनाओं और क्षेत्रीय आबंटनों में गंभीर अव्यवस्था आ जाती है ।

(3) केंद्रीय मंत्रालयों को विभिन्न राज्यों के दिशा-निर्देशों को संशोधित करते समय, उनकी अर्थव्यवस्था और उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक लचीली नीति अपनानी चाहिए । समान दिशा-निर्देशों के कड़े पालन की वर्तमान प्रणाली कई बार योजनाओं में किए निवेश का अधिकतम लाभ उठाने के लक्ष्यों के विपरीत जाती हैं ।

(4) यह अनुभव रहा है कि केंद्र प्रायोजित योजनाओं से समृद्ध राज्यों ने आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक लाभ उठाया है । इस पहलू पर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि इन योजनाओं के माध्यम से राज्यों को बहुत बड़ी सहायता पहुंचाई जा रही है ।

(5) केंद्र प्रायोजित योजनाएं मुख्यत: केन्द्र द्वारा शत प्रतिशत वित्त पोषण के आधार पर होनी चाहिएं । यद्यपि यह स्वीकार किया गया है कि भारत सरकार कतिपय केंद्र प्रायोजित योजनाओं में राज्यों की वित्तीय भागीदारी की मांग कर सकती है जिससे कि संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों पर भार कुछ कम हो सके । ऐसे मामलों में आर्थिक रूप से पिछड़े हुए उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों के लिए इन योजनाओं के परिव्यय का 75% भाग भारत सरकार का और 25 प्रतिशत राज्य सरकार का होना चाहिए ।

6.11 हम महसूस करते हैं कि कार्यक्रमों पर नजर रखने का और उनके मूल्यांकन का काम योजना आयोग और राज्य सरकार दोनों स्तरों पर अपेक्षित

है । बड़ी परियोजनाओं के मामले में प्रगति पर नजर रखने का काम इसलिए निष्प्रभावी हो जाता है कि इन परियोजनाओं के समय पर पूरा होने के लिए पर्याप्त समाधन उपलब्ध नहीं कराए जा रहे । यह समस्या गरीब राज्यों के आर्थिक रूप से पिछड़े समाधनों से अधिक जुड़ी है । केंद्रीय मंत्रालयों और योजना आयोग और साथ ही राज्य सरकारों को भी उन योजनाओं को छोड़ देने में संकोच नहीं करना चाहिए जिन्होंने एक विशिष्ट अवधि के भीतर अपना उद्देश्य पूरा नहीं किया । इन योजनाओं की निष्पक्ष भाव से और गहराई से समीक्षा करने के लिए और यथाआवश्यक उनका क्रियान्वयन रोकने के लिए राज्य सरकार और योजना आयोग—दोनों स्तरों पर उच्च शक्ति निकाय उपलब्ध होने चाहिए ।

6.12 उत्तर प्रदेश विकेंद्रीकृत आयोजन की दिशा में अग्रणी है और राज्य योजना का 30 प्रतिशत स्थानीय आवश्यकताओं और संसाधनों के अनुसार जिला योजनाएं तैयार करने के लिए जिलों को आवंटित किया गया है । राज्य सरकार इन योजनाओं को उसी रूप में स्वीकार कर लेती है जैसा कि जिला समितियों ने तैयार किया है और उनमें कोई बड़ा संशोधन नहीं करती, सिवाय तब, जब ऐसा करना उसी तरह की केंद्र प्रायोजित योजनाओं इत्यादि के लिए राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत दिशा-निर्देशों का पालन करने के लिए आवश्यक हो । योजना आयोग से व्यवहार करने वाले राज्यों की राज्य योजनाओं के संबंध में भी इसी तरह का लचीलापन होना चाहिए । योजना आयोग द्वारा राज्यों की स्थितियों को भली प्रकार समझे बिना कतिपय कार्यक्रमों के लक्ष्यों को तदर्थ रूप से निर्धारित करना व्यावहारिक नहीं है ।

6.13 उत्तर प्रदेश का एक राज्य योजना बोर्ड है जिसका नाम राज्य योजना आयोग है । व्यवहार में इसकी भूमिका पंचवर्षीय योजना और वार्षिक योजना के प्रस्तावों को भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने से पहले उनकी समीक्षा करना और विभिन्न क्षेत्रों में योजनाओं के क्रियान्वयन की प्रगति की समीक्षा करना है । राष्ट्रीय योजनाओं को ऐसे क्षेत्रों में और अधिक विशिष्ट होना चाहिए जिनमें क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व मुख्यतः केंद्रीय मंत्रालयों का है और ऐसे क्षेत्रों में अधिक लचीलापन होना चाहिए जिनमें क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है ।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 और 7.2 यह सच है कि उद्योग विकास और विनियमन की प्रथम अनुसूची को समय-समय पर संशोधित किया गया है । अनेक उद्योगों को इसके दायरे में लाया गया है । पिछले कुछ समय से देश में बढ़ते हुए औद्योगीकरण और नई मदों के निर्माण का यह एक स्वाभाविक परिणाम रहा है । तथापि मात्र यह बात कि किसी उद्योग को प्रथम अनुसूची में लाया गया है, किसी विशिष्ट राज्य के हितों के प्रतिकूल नहीं जाती, बल्कि उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम का एक मुख्य उद्देश्य संतुलित क्षेत्रीय विकास और समुचित औद्योगिक फैलाव है । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि केंद्रीय सरकार उद्योगों के पर्याप्त क्षेत्रीय फैलाव और प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को विभिन्न प्रकार के उद्योगों पर और व्यापक रूप से लागू करे । जिन उद्योगों को लाइसेंस प्राप्त करने से छूट मिली हुई है, उनकी संख्या काफी अधिक है और उनमें छोटे और मझौले उद्योगों के लिए पर्याप्त अवसर हैं, जहां पूंजी निवेश बहुत अधिक नहीं है । तथापि बड़े उद्योगों और ऐसे उद्योगों के संबंध में जिनका अन्य संबद्ध उद्योगों पर काफी गहरा असर पड़ता है, राष्ट्रीय जनहित की मांग है कि संतुलित क्षेत्रीय विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए केंद्रीय सरकार उन पर उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम लागू रखे जैसा कि उसकी औद्योगिक नीति और 1980 और उसके पश्चात् उस नीति में हुए संशोधनों में कहा गया है । समान विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अकेले वित्तीय प्रोत्साहन पर्याप्त नहीं होंगे क्योंकि अधिक संपन्न राज्य हमेशा कम संपन्न राज्यों से आगे रहेंगे ।

यह ध्यान देने की बात है कि हाल ही के महीनों में अनेक उद्योगों को लाइसेंस प्राप्त करने के दायरे से बाहर लाया गया है । पिछले पैराग्राफों की रूपरेखा के अंदर यह परिवर्तन स्वागतयोग्य है ।

7.3 वर्तमान औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली में राज्य सरकारों को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के पूरे और पर्याप्त अवसर नहीं दिए जाते, यह महसूस किया गया है कि पूर्ण लाइसेंसिंग कमेटी में भी लाइसेंसों के आवेदन पर कोई अंतिम निर्णय लेने से पहले राज्य सरकार के दृष्टिकोण को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए । पूंजीगत वस्तुओं के आयात संबंधी वर्तमान उदार और व्यावहारिक नीति के अनुसार भी यह जरूरी है कि इस प्रक्रिया को कारगर बनाया जाए ताकि नीति निर्माण वस्तुतः विकेंद्रित और पर्याप्त त्वरित हो सके और साथ ही वे केंद्रीय मानदंडों के अनुरूप भी हो । इस उद्देश्य के लिए डी० जी० टी० डी० के क्षेत्रीय कार्यालयों को पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए । दुर्लभ कच्चे माल और फालतू हिस्से-पुर्जों के आयात के मामले में भी जे० आई० सी० सी० आई० और ई० को भी ऐसी ही शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए ताकि हर छोटे-मोटे मामले को सी० सी० आई० और ई० के माध्यम से केंद्र को न भेजना पड़े ।

7.4 लघु क्षेत्र को कच्चा माल और वित्त प्रदान करने की व्यवस्था मौजूद है और तर्जीही मूल्य इत्यादि के जरिये बाजार समर्थन भी प्राप्त है तथापि कच्चे माल की सप्लाई बहुत कुछ केंद्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकार को दिए गए आबंटन पर निर्भर करती है । यह आबंटन आमतौर पर वास्तविक आवश्यकताओं से बहुत कम होता है । कारण है एक तो चिरकालिक कमी और दूसरे, लघु, मझौले और बड़े क्षेत्रों में वितरण की असमानता । राज्य सरकारें लघु क्षेत्रों को कच्चे माल की सप्लाई बेहतर ढंग से सुनिश्चित कर सकें, इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर इस असमानता को दूर करना होगा । जिन राज्य संगठनों के जिम्मे कच्चे माल की सप्लाई का काम है, उन्हें प्रायः धन की कमी रहती है । इन संगठनों को पर्याप्त मात्रा में और धन प्रदान करने से ये अपना काम बेहतर ढंग से कर सकेंगे । लघु क्षेत्र के समक्ष सबसे विकट समस्या है उपलब्ध कार्यचालन पूंजी की अपर्याप्तता । बैंकों द्वारा ऐसे प्रभावकारी उपाय किए जाने चाहिए जिनसे यह सुनिश्चित हो कि उन्हें पर्याप्त कार्यचालन पूंजी तत्काल मंजूर की जाए । इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त तंत्र की स्थापना की जानी चाहिए ताकि उपयुक्त समय पर कार्यचालन पूंजी उपलब्ध हो ।

प्रौद्योगिकी के अंतर को पाटने के लिए कार्य मूलतः राष्ट्रीय स्तर पर करने की आवश्यकता होगी । शीर्ष संगठन और अनुसंधान संस्थाएं पहले से ही प्रौद्योगिक अनुसंधान में संलग्न हैं । उनके निष्कर्षों के लिए "डाटा बैंक" के रूप में कार्य करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक अभिकरण स्थापित करना आवश्यक है जो राज्य-स्तरीय संगठनों से जुड़ा हो । यदि आवश्यक हो तो इस प्रयोजन के लिए नए राज्य-स्तरीय अभिकरणों की भी रचना की जाए । इन सभी अभिकरणों की स्थापना करने में और उन्हें वित्त पोषित करने में केन्द्रीय सरकार को मुख्य भूमिका निभानी होगी ।

जहां देश में अपेक्षित प्रौद्योगिकी उपलब्ध नहीं है, उसे अलग-अलग अभिकरणों/यूनिटों द्वारा अपने-अपने स्तर पर आयात किया जा रहा है । यह आवश्यक है कि विदेशी प्रौद्योगिकी का प्रवाह एक ही माध्यम या संस्थान के जरिये हो । इसकी स्थापना या तो एक पूर्णतः स्वतंत्र अभिकरण के रूप में की जा सकती है या प्रौद्योगिकी बैंक के एक विंग के रूप में जैसा कि पिछले पैराग्राफ में सुझाया गया है । इससे प्रौद्योगिकी के अंधाधुंध आयात पर भी रोक लगेगी ।

7.5 यह एक सच्चाई है कि केंद्र द्वारा नियंत्रित राष्ट्रीय औद्योगिक वित्तीय संस्थानों का पूंजी निवेश मुख्यतः महाराष्ट्र और गुजरात जैसे विकसित राज्यों में जमा होता जा रहा है । विभिन्न राज्यों के सकल वित्त पोषण के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों को अपने अनुपात की तुलना में बहुत कम हिस्सा मिला है । हालांकि तर्क की दृष्टि से पिछड़े राज्यों को विकसित राज्यों की अपेक्षा प्रति व्यक्ति अधिक वित्त पोषण मिलना चाहिए । अतः यह सुझाव दिया जाता है कि राष्ट्रीय स्तर के वित्तीय संस्थान कुल संसाधनों के क्षेत्रीय संतुलन की बात सोचें ताकि पिछड़े राज्यों को विशेष रूप से मदद मिल सके । उन्हें इन राज्यों के संरचनात्मक विकास के कार्यक्रमों और बीमार उद्योगों की बहाली के लिए वित्त पोषण करने का उत्तरदायित्व भी सौंपा जाना चाहिए ।

7.6 और 7.7 उत्तर प्रदेश जैसे एक बहुत बड़ी जनसंख्या वाले और पिछड़े राज्य को अब तक सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं में केन्द्रीय पूंजी निवेश का

मात्र लगभग 5 प्रतिशत मिला है। केंद्रीय पूंजीनिवेश संबंधी निर्णय, प्रौद्योगिक आर्थिक विचारों के अलावा अब तक किए गए पूंजीनिवेश के स्तर, किसी विशिष्ट राज्य के औद्योगीकरण की वर्तमान अवस्था और उसके पिछड़ेपन की सीमा को ध्यान में रखते हुए लिए जाने चाहिए।

7.8 औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए जिलों/क्षेत्रों की पहचान करने की वर्तमान प्रणाली संतोषप्रद है और इसमें कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं महसूस की गई।

भारत सरकार ने 1-4-83 के अपने जी० ओ० में कहा है कि औद्योगिक रूप से पिछड़े जिलों के जिन ब्लाकों ने उद्योगों में स्थायी परिसंपत्ति के रूप में 30 करोड़ रुपए से अधिक का पूंजीनिवेश किया हुआ है, उन्हें आगे और सहायता नही मिलेगी। अतः भारत सरकार ने सही रूप से यह बात स्वीकार की है कि औद्योगिक रूप से पिछड़ेपन को किसी विशिष्ट ब्लाक में उद्योगों की स्थायी परिसंपत्ति में प्रत्यक्ष पूंजीनिवेश के रूप में परिभाषित किया जाए। इन रियायतों का प्रभाव उत्साहवर्धक रहा है। तथापि भारत सरकार द्वारा शून्य औद्योगिक जिलों में अवसंरचना के विकास के लिए दी गई सहायता पर्याप्त नही है।

6.00 करोड़ रुपए की परियोजना में 2.00 करोड़ रुपए की सहायता में वृद्धि करने की आवश्यकता है ताकि संभावित उद्यमी के लिए विकसित भूमि की अंतिम लागत कम हो सके। इससे शून्य औद्योगिक जिलों की ओर उद्यमी आकर्षित होंगे और पूंजीनिवेश का बेहतर फैलाव सुनिश्चित हो सकेगा।

अधिकांश ऐसी परियोजनाओं की लागत 6 करोड़ रुपए से काफी अधिक होती है जबकि सहायता 2 करोड़ रुपए तक ही तय है जिससे विकसित भूमि की लागत बढ़ती है। अतः यही अनुपात बनाए रखने की आवश्यकता है।

पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के लिए विभिन्न केंद्रीय प्रोत्साहन लाभकारी रहे है, लेकिन उनमें से अधिकांशतः एक बार के किए गए उपाय ही हैं जैसे कि केंद्रीय पूंजीगत सहायता प्रवर्तकों के अंशदान की कम आवश्यकता इत्यादि। यह महसूस किया गया है कि पिछड़े क्षेत्रों मे स्थित होने के आवर्ती नुकसान को दूर करने के लिए उत्पाद शुल्क इत्यादि में छूट जैसी कुछ आवर्ती रियायतें देने पर विचार किया जाए।

तथापि उल्लेखनीय है कि पिछले अनुभवों ने दिखाया है कि पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगीकरण के लिए मात्र वित्तीय प्रोत्साहन पर्याप्त नही है। पूंजीनिवेश के क्षेत्रीय फैलाव को सुनिश्चित करने के लिए एक प्रभावकारी लाइसेंस नीति जारी रखना आवश्यक है।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 सिद्धांत में यद्यपि राष्ट्रीय एकता के हित में व्यापार एवं वाणिज्य के उन्मुक्त प्रवाह पर प्रश्नचिन्ह नही लगाया जा सकता, परंतु व्यापार एवं वाणिज्य में कतिपय प्रतिबंध लगाने का इस राज्य की अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष प्रभाव है और यह अधिकांशतः राजस्व में वृद्धि करने के लिए लगाए जाते हैं। इनमें से अधिकांश प्रतिबंध राज्यों का विषय है। प्रतिबंध में ढील/कमी देने के प्राधिकार की सलाह अनिवार्य नही हो सकती। अतः ऐसे प्राधिकार की लाभप्रदता बहुत हद तक कम हो जाती है।

तथापि केंद्रीय सरकार के स्तर पर विशिष्ट समितियां होनी चाहिए। यह महसूस किया गया है कि इस लक्ष्य को विषय से संबद्ध केंद्रीय मंत्रालयों के अधीन विशिष्ट समितियों का गठन करके बेहतर ढंग से प्राप्त किया जा सकता है जिनमें राज्यों का प्रतिनिधित्व हो।

पूरक प्रश्नावली संख्या 2

(उद्योग पर)

1. जैसा कि प्रश्न संख्या 7.1 और 7.2 के उत्तर में कहा गया है।

2. यदि राज्य सरकार को शक्तियां दी जाएं तो 551 में उत्पादन की मदों के आरक्षण द्वारा 551 की संरक्षण नीति व्यावहारिक नही होगी क्योंकि हो सकता है कि राज्यों की नीतियां अलग प्रकार की हों और उनका झुकाव भिन्न अलग दिशा की ओर हो। अतः आरक्षण वास्तविक और प्रभावकारी हो इसके लिए यह जरूरी है कि उसका निर्धारण राष्ट्रीय स्तर पर हो।

3 और 4. राज्य सरकार लघु उद्योगों के संवर्धन के लिए बुनियादी तौर पर जिम्मेदार है और उद्योग निदेशालय उसके पंजीकरण के लिए राज्य वित्त निगम के द्वारा बाहरी ढांचा सुविधाओं की स्थापना, कच्चे माल, बिजली और वित्त की व्यवस्था भी काफी हद तक राज्य सरकार के नियंत्रण में है। तथापि अत्यावश्यक महत्वपूर्ण कच्चे माल का अधिकांश हिस्सा राज्य सरकार के नियंत्रण में नही है क्योंकि वे विभिन्न केंद्रीय विभागों/संस्थाओं द्वारा राज्य सरकार/राज्य संस्थाओं को आवंटित किए जाते है। मझौले उद्यमों के संबंध में पंजीकरण की जिम्मेदारी डी० जी० टी० डी० की है। वे इन उद्यमों को विभिन्न कच्चे माल के लिए भी सीधे प्रायोजित करते है, केवल बिजली इत्यादि की उपलब्धता जैसी आधारिक संरचना के मामले में ही राज्य सरकार सामने आती है। इस विस्तारित भूमिका में सभी मझौले उद्यमों को राज्य सरकार के पंजीकरण में अंतरित करना और साथ ही कच्चे माल के लिए प्रायोजित करना भी हो सकता है। तथापि यहां कुछ अंतर है क्योंकि डी० जी० टी० डी० द्वारा पंजीकरण उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम के अंतर्गत एक कानूनी संस्वीकृति है। इस संस्वीकृति द्वारा डी० जी० आर० डी० डी० जी० टी० डी० की इकाइयों पर बेहतर नियंत्रण रख सकता है। राज्य औद्योगिक निदेशालय को ऐसा करने में समर्थ बनाने के लिए उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम में संशोधन करना आवश्यक होगा। आजकल यह विचार चल रहा है कि लघु और मझौले उद्यमों में घनिष्ठ जोड़ होना चाहिए और प्रोत्साहन ऐसे होने चाहिए कि लघु उद्यमी बनने के लिए उत्प्रेरित हो सकें। इस विचार में बहुत बल है। इस परिवर्तन से राज्य सरकार लघु और मझोले दोनों प्रकार के उद्यमियों पर प्रभावकारी ढंग से नजर रख सकेगी और साथ ही उनमें कच्चे माल का न्यायोचित वितरण सुनिश्चित कर सकेगी। इस संदर्भ में यह भी आवश्यक है कि राज्य वित्तीय संस्थाओं को पर्याप्त वित्तीय शक्तियां सौंपी जाएं ताकि वे सभी मध्यम श्रेणी के उद्यमों का वित्त पोषण कर सकें।

5. इसका उत्तर पहले ही पैराग्राफ 7.1 और 7.2 में दिया जा चुका है।

6 और 7. राष्ट्रीय औद्योगिक नीति राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप होनी चाहिए। हम औद्योगिक नीति प्रस्तावों से भी सहमत हैं। तथापि केंद्र और राज्यों के बीच नियमित आदान प्रदान के लिए एक मंच विकसित करना लाभकर होगा। इस प्रकार का राष्ट्रीय मंच भारत सरकार द्वारा बनाया जा सकता है जिसमें केंद्रीय और राज्य सरकारों के उद्योग मंत्री और अधिकारी शामिल हों और साथ ही जिसमें विभिन्न वाणिज्य एवं उद्योग मंडलों के प्रतिनिधि उन्मुक्त भाव और नियमित रूप से विचार विमर्श कर सकते हैं।

8. भारत सरकार ने शून्य उद्योग क्षेत्रों और पिछड़े जिलों के विकास की दृष्टि से एम० आर० टी० पी० प्रावधानों पर कुछ प्रतिबंधों को कम कर दिया है। लेकिन यह अनुभव रहा है कि कंपनी विभाग द्वारा कुछ महत्वपूर्ण परियोजनाओं की अनुमति न देने से इसमें बाधा पड़ेगी। पिछड़े क्षेत्रों, विशेषकर शून्य उद्योग क्षेत्रों के विकास के लिए यह जरूरी है कि एम० आर० टी० पी० की अनुमति भी उसी समय दे दी जाए जब ऐसे क्षेत्रों के लिए एस० आई० ए० परियोजनाओं की मंजूरी देता है।

कृषि

9.1 कृषि-जलवायु की स्थितियों और कृषि विविधता को देखते हुए कृषि निस्संदेह राज्य का विषय होनी चाहिए, किंतु करोड़ों लोगों की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राज्य के सीमित स्रोतों से बढ़ाने के वास्ते केंद्रीय सहायता अनिवार्य है। राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों के लिए जैसे कि तिलहन और दलहन का उत्पादन, सिंचाई की संभावनाएं बढ़ाने, बीज संवर्धन इत्यादि के लिए शत प्रतिशत सहायता की आवश्यकता है।

हालांकि सभी केंद्र प्रायोजित योजनाओं का कार्यान्वयन राज्य प्रशासन के कार्य-क्षेत्र में आएगा तथापि केंद्रीय सहायता के माध्यम से विनियोजना के रूप में आधारिक संरचना का अनुकलन भी वांछनीय है।

9.2 निर्दिष्ट राष्ट्रीय लक्ष्यों से संबद्ध क्षेत्रों में केंद्रीय और केंद्र प्रायोजित योजनाओं के कार्यान्वयन की सामान्य संकल्पना प्रशंसनीय है। परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि ये योजनाएं किस तरीके से बनाई और कार्यान्वित की जाती हैं। ऐसी योजनाओं को अंतिम रूप देने से पहले विचार-विमर्श की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से निर्धारित होनी चाहिए और राज्य सरकारों के विचार औपचारिक रूप से पहले ही मालूम किए जाने चाहिए। अंततः ये योजनाएं राज्यों को भेज दी जाती हैं और कुछ समय बाद उनका पूरा भार राज्य सरकारों को वहन करना पड़ता है। यह महसूस किया गया है कि जहां भी किसी विशिष्ट योजना का क्रियान्वयन राष्ट्रीय हित में हो, भारत सरकार को उसका पूरा खर्च तब तक वहन करते रहना चाहिए। जब तक कि राष्ट्रीय हित में उस योजना को चलाना जरूरी समझा जाए।

9.3 आयोजन के संबंध में केंद्र और राज्यों के बीच बहुत संबंध अनुकूल हैं किंतु जहां तक अग्रताओं और कार्यक्रमों का सवाल है, केंद्र के विचार केंद्र प्रायोजित योजनाओं के मामले में हमेशा हावी रहे हैं। इस समय कार्यक्रम केंद्र द्वारा निर्धारित परिव्यय के अनुरूप बनाए जाते हैं जबकि परिव्यय राज्य द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रमों के अनुरूप होना चाहिए। यह सुझाव दिया जाता है कि केंद्रीय कृषि आयोजन कार्य दल में राज्य के कृषि विशेषज्ञ भी शामिल होने चाहिए ताकि वे राज्य का पक्ष अच्छी तरह सामने रख सकें।

9.4 (क) और (ग) कृषि पण्यों के समर्थन मूल्य समान रूप से निर्धारित किए जाते हैं और उनमें उत्पादकता, बाजार भाव जैसी स्थानीय स्थितियों पर विचार नहीं किया जाता जो हर राज्य में अलग-अलग होती हैं। इस बात को ध्यान में रखना चाहिए। कुल मिलाकर समर्थन मूल्यों से शोषण को रोकने में मदद मिली है किंतु समर्थन मूल्य ऐसे होने चाहिए कि उनसे उत्पादक को लाभकारी प्रतिफल मिल सके। इसी प्रकार सिंचाई के मामले में, विशेषकर कमांड क्षेत्रों जैसी प्रमुख योजनाओं के मामले में और जल के बंटवारे, विशेषकर उस अवधि में जल के बंटवारे के मामले में जब पानी कम होता है, कार्यक्रम सहमत योजना के अनुसार होना चाहिए। ट्यूबवेल कार्यक्रमों के मामले में केंद्रीय ग्रिड से बिजली की आवश्यक सप्लाई सुनिश्चित होनी चाहिए। निवेश—विशेषकर बीज, खाद और कीटनाशकों के मामले में, नई किस्मों को लोकप्रिय बनाने में, संतुलित मात्रा में खाद का इस्तेमाल करने में और उचित समय में पादप संरक्षण उपाय बरतने के मामले में केंद्रीय सरकार की पहल का अत्यधिक महत्व है क्योंकि इन सब के लिए वित्तीय सहायता की बहुत आवश्यकता है और यह केवल केंद्रीय सहायता से ही संभव है। इसी तरह डीजल की सप्लाई विशेषकर बिजली और सिंचाई, खेती की तैयारी करते समय डीजल की सप्लाई भी केवल केंद्रीय सहायता से ही बनाए रखी जा सकती है। ऋण के मामले में फसल ऋण इत्यादि उपलब्ध कराने के संबंध में राष्ट्रीयकृत बैंकों को केंद्र द्वारा दिए गए दिशा-निर्देशों पर और अधिक बल देने की आवश्यकता है ताकि बैंक उनका दृढ़ता से पालन करें।

केन्द्रीय सहायता

9.4 (ख) सिंचाई, जल-बिजली पैदा करने और बाढ़ से बचाव के लिए राज्य के जल संसाधनों का प्रयोग और विकास राज्य का विषय है। साधन की कमी के कारण उत्तर प्रदेश अपनी धरती पर और धरती के नीचे पानी क्षमताओं के बहुत बड़े भाग का उपयोग करने में असफल रहा है। भारत सरकार अपने केंद्रीय जल आयोग, केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण, पर्यावरण विभाग और योजना आयोग के माध्यम से बड़ी, मझोली और लघु सिंचाई और बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं के कार्यान्वयन पर अपना तकनीकी और वित्तीय नियंत्रण रखती है। तकनीकी नियंत्रण इन परियोजनाओं को तकनीकी समीक्षा के अंतर्गत लाकर और वित्तीय नियंत्रण धन के आवंटन द्वारा किया जाता है। विभिन्न परियोजनाओं के लिए धन के आवंटन का फैसला राज्य सरकार द्वारा किया जाता है किंतु यह आवंटन राज्य के वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है जो अधिकांशतः केंद्रीय सहायता से मिलता है। विभिन्न सिंचाई और बहुउद्देश्यीय योजनाओं के शीघ्र और समय पर क्रियान्वयन के लिए यह जरूरी है कि केंद्रीय सहायता में ठोस और स्पष्ट वृद्धि करके राज्य के वित्तीय संसाधनों को बढ़ाया जाए। राज्य की अपेक्षाकृत पिछड़ी स्थिति को देखते हुए और यह देखते हुए कि इसके बहुत बड़ी मात्रा में जल और ऊर्जा संसाधन बिना इस्तेमाल किए रह जाते हैं यह आवश्यक है कि केंद्रीय सहायता आवश्यकता पर आधारित हो और सिंचाई और ऊर्जा क्षेत्र को अधिक अग्रता और धन दिया जाए।

बाहरी सहायता

राज्य सरकार बड़ी, मझोली और बहुउद्देशीय परियोजनाओं और राज्य लघु सिंचाई योजनाओं को द्विपक्षीय अभिकरणों तथा विश्व बैंक के माध्यम से बाहरी सहायता के लिए प्रायोजित करती है। भारत सरकार के बाहरी सहायता निर्णय के लिए योजनाओं की स्वीकृति ही महत्वपूर्ण है। भारत सरकार का विवेकाधिकार कम विकसित राज्यों के पक्ष में होना चाहिए ताकि वे उदारता से बाहरी सहायता का लाभ उठा सकें। इसके अतिरिक्त और इसके साथ ही राज्य को दी जाने वाली सहायता पर भारत सरकार के स्तर पर प्रतिशत कटौती न्यूनतम स्तर तक लाई जानी चाहिए।

परियोजनाओं की स्वीकृति के लिए केंद्र में "नोडल" अभिकरण:

जब किसी राज्य सरकार द्वारा कोई प्रस्ताव तैयार किया जाता है तो कई केंद्रीय अभिकरणों से, जैसे कि केंद्रीय जल आयोग, केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण, योजना आयोग, पर्यावरण विभाग, और यदि उस पर वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के उपबंध लागू होते हैं तो वन विभाग की भी अनुमति लेना अनिवार्य होता है। राज्य सरकार को इन संगठनों से अलग-अलग संपर्क करना पड़ता है। उनका अनुमोदन लेने में बहुत समय लग जाता है। केंद्र में एक ही ऐसा तंत्र होना चाहिए जहां राज्य सरकार के प्रस्ताव प्राप्त किए जाएं और केन्द्र के विभिन्न अभिकरणों, विभागों का अनुमोदन प्राप्त किया जाए। इससे राज्य सरकार को केंद्र में विभिन्न अभिकरणों से संपर्क करने में जो समय गंवाना पड़ता है, उसकी बचत होगी। साथ ही, इन प्रस्तावों की जांच भारत सरकार के विभिन्न संबद्ध मंत्रालयों द्वारा एक साथ की जाए और बार बार की जांच की बजाय, जिसमें बहुत समय लगता है, एक ही बैठक में उसकी स्वीकृति दी जाए। इससे जो समय बचेगा, उससे अंततः वित्तीय बचत होगी और लागत बढ़ने पर भी अंकुश लगेगा, जबकि इस समय परियोजनाएं तैयार करने और उनके क्रियान्वयन के बीच बहुत समय लगता है जिसकी वजह से उनकी लागत बहुत बढ़ जाती है।

अंतर्राज्य नदी परियोजनाएं

ऐसी अंतर्राज्य नदी परियोजनाओं के क्रियान्वयन में जिनमें संबद्ध राज्य किसी आपसी समझौते पर नहीं पहुंच पाते, भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत सरकार का यह अधिकार है कि वह अंतर्राज्य नदी परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए अपने नियंत्रण के अधीन और विभिन्न हिताधिकारी राज्यों की सहमति से केंद्रीय बोर्डों की स्थापना कर सकती है। राज्य सरकारें इन परियोजनाओं से अपने लिए अधिकतम लाभ उठाने के लिए अपना पक्ष प्रस्तुत करती हैं। कई बार उनके दृष्टिकोण में निष्पक्षता का पूर्ण अभाव होता है। अंतर्राज्य जल विवादों में केंद्रीय सरकार की भूमिका अधिक प्रभावकारी और निर्णायक होनी चाहिए। भारत सरकार को क्षेत्र के समूचे हित को ध्यान में रखते हुए एक व्यावहारिक रवैया अपनाना चाहिए। इससे विवादों का शीघ्र निपटान में और लोक हित में स्थायी प्राकृतिक संसाधनों का शीघ्र संदोहन करने में मदद मिलेगी।

उपर्युक्त सुझावों के बावजूद सिंचाई और बिजली राज्य के विकास के लिए आवश्यक आधारिक संरचना प्रदान करते हैं, अतः अंतर्राज्य नदियों के संसाधनों का उपयोग राज्य सूची से नहीं निकालना चाहिए।

9.4 (घ) हमारे देश की मानव और पशु जाति दोनों की लगातार बढ़ती हुई संख्या और स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में तीव्र औद्योगीकरण और विकासकारी गतिविधियों से हमारे वनों और उसके मूक वासियों पर अभूतपूर्व दबाव पड़ा है। राज्य सरकार राजनीतिक कारणों से और तीव्र औद्योगीकरण, सड़कों, नहरों और अन्य विकासकारी गतिविधियों के नाम पर वनों को काटने के लिए भारी दबाव में रही है और यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही। अतः 1977 में केंद्र सरकार ने वनों के हस्तक्षेप की जरूरत को समझा और इसके साथ ही वानिकी को समवर्ती सूची में लाया गया।

यद्यपि वानिकी को समवर्ती सूची में लाए केवल 9 वर्ष ही हुए हैं, केंद्र सरकार ने वनों और वन्य जीवन की रक्षा के लिए कई प्रभावशाली कदम उठाए हैं। भारत सरकार ने वन संरक्षण अधिनियम, 1980 बनाया जिसके अनुसार वनभूमि को गैर वानिकी बनाने के हर अंतरण में केंद्र सरकार की सहमति लेना आवश्यक है। निस्संदेह इस अधिनियम के लागू होने के बाद पहले की अपेक्षा वनों का अंतरण कम हो गया है। इसी तरह बहुत से वन्य प्राणी आज अपने अस्तित्व के लिए संघ सरकार की उस दिलचस्पी के प्रति ऋणी हैं जो उसने वन्य जीवन अधिनियम, 1972 बनाने में और उसका क्रियान्वयन करने में दिखाई है। इस प्रकार वानिकी नीति में और उसे लागू करने में संघ सरकार की पहल ने वन और वन्य जीवन संरक्षण को एक नई गति प्रदान की है जो अन्यथा किसी भी राज्य सरकार के लिए एक असाध्य कार्य होती क्योंकि उन्हें अपने ऊपर के स्थानीय दबावों को भी देखना होता है। अतः वन नीति और उसे लागू करने में संघ सरकार की पेशकदमी से केंद्र-राज्य संबंधों में कोई समस्या नहीं आती।

यह भी उल्लेखनीय है कि संघ सरकार विभिन्न नदी घाटी परियोजनाओं में पौधे लगाने और भूमि संरक्षण कार्यों की महत्वाकांक्षी योजनाएं लागू करने में राज्य को वित्तीय संसाधन उपलब्ध करा कर सहायता दे रही है जिसका राज्य के वन और जल संपदा को समृद्ध बनाने में दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

9.5 कृषि अनुसंधान की भूमिका को लेकर यद्यपि केंद्र-राज्य संबंधों में कोई समस्या नहीं है तो भी यह महसूस किया गया है कि राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थानों को राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान समस्याओं को सुलझाने के अलावा स्थानीय महत्व की समस्याओं से जूझने के लिए राज्य अनुसंधान संगठनों के प्रयासों में भी मदद देनी चाहिए।

इस समय अनुसंधान कार्य राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा सीधे किया जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् जैसे केंद्रीय संगठन उनके प्रयत्नों में अपना योगदान दे रहे हैं तो भी राज्यों के क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केंद्रों को भी, जो कि अनुसंधान कार्य अपनाने का काम कर रहे हैं, केंद्रीय संगठनों से उसी प्रकार की मदद दी जानी चाहिए। इसी प्रकार ऋण उपलब्ध कराने के मामले में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक केंद्रीय भूमिका निभा रहा है लेकिन यह महसूस किया गया है कि यदि ऋण योजनाओं को तैयार करते समय उस राज्य विशेष के सामाजिक आर्थिक विकास की अवस्था को भी ध्यान में रखा जाए क्योंकि सभी राज्य समान रूप से विकसित नहीं हैं और योजनाएं उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए।

खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति

मूल्य समर्थन योजना के अधीन खरीद

10.1 राज्य सरकार रबी और खरीफ के खाद्यान्नों की खरीद से संबंधित नीति भारत सरकार से प्राप्त दिशा-निर्देशों की रूपरेखा के अनुसार बनाती है। तथापि खरीद के विभिन्न पहलू राज्यों के भौगोलिक, कृषि, जलवायु विषयक और अन्य सामाजिक आर्थिक स्थितियों की भिन्नता पर निर्भर करते हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि भारत सरकार को खरीद योजना को अंतिम रूप देने से पहले इन परिवर्तनों और राज्य सरकार द्वारा अपनी खरीद योजना के कार्यान्वयन पर प्राप्त अनुभवों के आधार पर दिए गए सुझावों पर समुचित रूप से ध्यान देना चाहिए। भारत सरकार को ये दिशा-निदेश बनाते समय निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए :

1. खाद्यान्नों का समर्थन मूल्य आमतौर पर उत्पादकों की उम्मीदों से काफी कम रहता है, अतः मूल्य निर्धारण के समय विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान लागत कारक पर पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए। आमतौर पर निर्धारित मूल्य और राज्य सरकार द्वारा सुझाए गए मूल्य में कोई सह-संबंध नहीं होता।
2. विभिन्न वर्गों के खाद्यान्नों के समर्थन मूल्य काफी पहले और संभव हो तो कृषि मौसम प्रारंभ होने से पहले घोषित कर दिए जाने चाहिए।
3. इस समय भारतीय खाद्य निगम के पास पर्याप्त भंडारण क्षमता नहीं है, परिणामस्वरूप केंद्रीय पूल के अधीन खरीदे गए खाद्यान्न अंतरित पड़े रहते हैं, जिससे राज्य सरकार पर अनावश्यक वित्तीय और प्रशासनिक भार पड़ता है। प्राप्त खाद्यान्न भी काफी लंबे समय तक बाहर पड़े रहने के कारण खराब हो जाते हैं। भारतीय खाद्य निगम को पर्याप्त भंडारण क्षमता बनाने के लिए व्यापक योजना तैयार करनी चाहिए और यह बात आगामी पंचवर्षीय योजनाओं में परिलक्षित होनी चाहिए।
4. इस समय विभिन्न खाद्यान्नों की खरीद के लिए कोई लंबी अवधि की प्रत्याशित योजना नहीं है। यह उचित होगा कि भारत सरकार कृषि उत्पादनों की प्रवृत्तियों को सामने रखते हुए खरीद के लिए लंबी अवधि की योजना तैयार करे।
5. मूल्य समर्थन योजना के अधीन राज्य सरकार को प्राप्त होने वाली आनुषंगिक दरें भारत सरकार द्वारा काफी समय पहले मंजूर कर देनी चाहिए।

रोलर आटा मिलों को लाइसेंसिंग प्राधिकार

इस समय व्हीट रोलर फ्लोर मिल्स (लाइसेंसिंग एंड कंट्रोल) आर्डर, 1957 के अधीन रोलर आटा मिलों का लाइसेंसिंग प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार है। यह उपयुक्त होगा कि उपर्युक्त आदेश, 1957 के अधीन लाइसेंस देने वाले प्राधिकरण की शक्तियां राज्य सरकार को अंतरित कर दी जाएं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली

उचित दर की दुकानों के माध्यम से बेचे जाने वाले खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुएं भारत सरकार द्वारा राज्य सरकार को उपलब्ध कराई जाती हैं। खाद्यान्नों और अन्य आवश्यक वस्तुओं की सीमित उपलब्धता के कारण कभी-कभी राज्य सरकार को उतना माल आवंटित नहीं किया जा सकता कि राज्य सरकार द्वारा की गई मांग पूरी हो सके। भारत सरकार को राज्य सरकार की आवश्यकताओं पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के समुचित कार्य चालन के लिए उपभोक्ताओं को ये वस्तुएं उपलब्ध कराई जा सकें। उत्तर प्रदेश में सार्वजनिक वितरण कार्यक्रम में सहकारी समितियां घनिष्ठ रूप से संबद्ध रही हैं। उदार शर्तों पर ऋण की उपलब्धता उनकी उचित कार्य-प्रणाली में एक बड़ी बाधा रही है। इस कार्यक्रम को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि इन सहकारी समितियों को या वैकल्पिक स्वरूप में इस कार्यक्रम से संबद्ध अन्य सरकारी एजेंसियों को रियायती दरों पर एक स्वतंत्र ऋण व्यवस्था उपलब्ध कराई जाए।

भंडारण

भारत सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन खाद्यान्न आवंटित करती है। राज्य सरकार को वास्तविक वितरण से पहले उन्हें गोदामों में जमा कर लेना चाहिए। इस संबंध में उत्तर प्रदेश अपनी विशालता के कारण अपनी विशिष्ट स्थिति रखता है। इस राज्य में पहाड़ी जिले और बुंदेलखंड जैसे विभिन्न इलाके हैं जो या तो वर्षा के कारण दुर्गम बन जाते हैं या इतने फैले हुए हैं जहां खाद्यान्न और अन्य आवश्यक वस्तुएं एक समय में दो या तीन महीने रखनी पड़ती हैं। वित्तीय दबावों के कारण राज्य सरकार पर्याप्त भंडारण क्षमता रखने की स्थिति में नहीं है जिसका विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों और दूर दराज तक फैले हुए इलाकों में वितरण कार्यक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन गोदामों के निर्माण पर पर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है तथा इसे विकास योजना का एक भाग बनाया जाना चाहिए। प्रारंभ में राज्य सरकार ने सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 16.35 करोड़ रुपया की लागत से प्रत्येक राजस्व जिले में 5000 मीट्रिक टन की क्षमता वाले गोदामों के निर्माण का निर्णय लिया है। इस कार्यक्रम के अधीन भारत सरकार द्वारा धन का पर्याप्त आवंटन किया जाना चाहिए ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली से संबंधित कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन के लिए उपेक्षित भंडारण क्षमता वाले गोदाम बनाए जा सकें। बेहतर वितरण सुनिश्चित करने के लिए तहसील और ब्लाक स्तर के गोदाम भी चरणबद्ध तरीके से बनाए जाने चाहिए।

मूल्य निर्धारण

सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबी हटाओ कार्यक्रम और मुद्रास्फीति विरोधी उपायों के रूप में क्रियान्वित की गई है। उचित दर की दुकानों से वितरित किए गए खाद्यान्न और अन्य वस्तुएं प्रधानतः समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर उन लोगों के लिए हैं जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से बेचे गए माल के लिए मूल्य निर्धारण संरचना ऐसी रीति से तैयार होनी चाहिए जिससे मूल्य अपेक्षाकृत कम हों और उसका वास्तविक लाभ समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को प्राप्त हो। इसके लिए स्पष्ट रूप से पर्याप्त आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी जो राज्य सरकार के अल्प वित्तीय संसाधनों से पूरी नहीं हो सकती। भारत सरकार को यह आर्थिक सहायता देने में राज्य सरकार की खुले दिल से मदद करनी चाहिए। मूल्य निर्धारण संरचना के संबंध में यह भी सुझाव दिया जाता है कि भारत सरकार को एक लंबी अवधि की मूल्य निर्धारण नीति के निर्माण के बारे में विचार करना चाहिए जिसमें आदानों के और तैयार माल के मूल्यों में सहसंबद्धता हो अर्थात् दोनों प्रकार की वस्तुओं के मूल्य एक निश्चित घटा-बढ़ी से अधिक आगे न जाने दिए जाएं।

10.2 यह बात केंद्र और राज्य सरकार दोनों के हित में है कि राज्य के उत्तरदायित्व के क्षेत्रों पर प्रभाव डालने वाले अनिवार्य वस्तु अधिनियम और अन्य केंद्रीय अधिनियमों और आदेशों को लागू करने की व्यवस्थाओं की आवधिक समीक्षा की जाए। व्यवस्थाओं के एक पक्ष को संबद्ध अधिकारियों की एक तिमाही बैठक के आयोजन द्वारा अनिवार्य वस्तु अधिनियम और अन्य ऐसे नियामक केंद्रीय अधिनियमों / आदेशों को लागू करने के विषय में विचार-विमर्श किया जाए। तथापि ऐसी व्यवस्थाओं के तौर तरीके बनाए जा सकते हैं।

इन व्यवस्थाओं की समीक्षा दो मुख्य शीर्षों के अधीन की जाए (1) अनिवार्य वस्तु अधिनियम को लागू करना, और (2) अन्य केन्द्रीय नियामक अधिनियमों/आदेशों को लागू करना। यह इसलिए आवश्यक है कि अनिवार्य वस्तु अधिनियम की धारा 7 के अधीन दंडात्मक कार्रवाही पर भी विचार करता है।

यह महसूस किया जाता है कि कुछ केंद्रीय नियामक अधिनियम/आदेश संबंधित राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करते। उदाहरणार्थ एक केंद्रीय कानून-पेट्रोलियम प्रोडक्ट्स (सप्लाई एण्ड डिस्ट्रिब्यूशन आदेश, 1972 पेट्रोलियम उत्पादनों के व्यापारियों द्वारा कदाचार से पैदा की गई स्थिति से निबटने के लिए राज्य सरकार को पर्याप्त अधिकार नहीं देता। वास्तव में यह आदेश मुख्यत. प्रमुख प्रतिष्ठापनों और डिपो पर लागू होता है। अतः कुछ इस प्रकार के संशोधन की आवश्यकता है कि राज्य सरकार को स्थिति से निबटने के लिए अधिकार मिल सके। इसी तरह ईंटें भी अनिवार्य पण्य के रूप में श्रेणीबद्ध नहीं की गई हैं, परिणामस्वरूप ईंट के भट्टों पर राज्य सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। अतः आमतौर पर प्रयोग होने वाली और आम जनता द्वारा उपभोग में लाई जाने वाली वस्तुएं अनिवार्य वस्तुएं घोषित की जानी चाहिएं और इन वस्तुओं के संबंध में राज्य सरकार को पर्याप्त अधिकार दिए जाने चाहिए।

शिक्षा

11.1 हम इस विचार से सहमत नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केंद्रीकरण या केंद्रीय हस्तक्षेप किया जा रहा है। वास्तव में राज्य अपनी योजनाओं और नीतियों का निर्माण करने के लिए स्वतंत्र है। अतः राज्य सरकार को इस विषय में पूरा प्राधिकार और पहल शक्ति प्राप्त है। भारत सरकार शिक्षा के न्यूनतम समान स्तर को बनाए रखने के लिए केवल मुख्य नीतियां निर्धारित करती है और राष्ट्रीय ढांचा बनाती है। अतः इस आलोचना में कोई औचित्य नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रीय हस्तक्षेप बहुत अधिक है। दरअसल इस विषय में और अधिक केंद्रीय पहल की अत्यावश्यकता है ताकि शिक्षण संस्थाओं में प्राथमिक शिक्षा को सब जगह एक समान बनाने, 10+2 प्रणाली को शुरू करने और बुनियादी न्यूनतम शारीरिक सुविधाएं उपलब्ध कराने जैसे अनिवार्य कार्यक्रम उपयुक्त प्राथमिकता तथा अपेक्षित वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकें। यदि केंद्रीय सरकार इन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में पहल नहीं करती तो उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े हुए राज्य ऐसे अनिवार्य कार्यक्रमों की अपेक्षित तात्कालिकता और गति से क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक संसाधन नहीं जुटा पाएंगे।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा के स्तर और गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए समन्वित प्रयास किए हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को दीर्घकालीन अवधि के आधार पर विश्वविद्यालयों, उच्च शिक्षा केंद्रों और विशेष अध्ययन केंद्रों को वित्तीय सहायता जारी रखनी चाहिए। उसे नियमित अंतरालों के बाद निर्धारित मानदंडों की समीक्षा भी जारी रखनी चाहिए। पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं/भवन और होस्टल सुविधाओं के लिए भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता उदार रूप में उपलब्ध होनी चाहिए।

विभिन्न क्षेत्रों में शैक्षिक उत्कृष्टता और विशेषज्ञता को सुनिश्चित करने के लिए अध्यापकों के वेतनमानों की सिफारिश करते समय उनकी अर्हताओं, भरती पद्धति और कार्यभार इत्यादि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। ऐसी सिफारिशें करने से पहले वि० अ० आ० को राज्यों की वित्तीय स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए। उसे नए विद्यालय, नए विश्वविद्यालय और नए संकाय खोलने के संबंध में भी दिशा-निर्देश निर्धारित करने चाहिए। तथापि विभिन्न डिग्रियों के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्यचर्या का निर्धारण करने में विश्वविद्यालयों को खुली छूट होनी चाहिए। उ० प्र० जैसे शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए राज्य वि० अ० आ० के हिस्से के अनुसार अन्य राज्यों के विश्वविद्यालयों और विद्यालयों के समान पर्याप्त संसाधन जुटाने की स्थिति में नहीं है। अतः हमारे राज्य जैसे शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए राज्यों के लिए एक औचित्य की प्रणाली तय करने की भारी आवश्यकता है ताकि शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए राज्य वि० अ० आ० से पर्याप्त सहायता प्राप्त कर सकें। वि० अ० आ० को भी अपने कार्यक्रम और नीतियां इस प्रकार बनानी चाहिएं जिससे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कोई क्षेत्रीय असंतुलन न हो और विभिन्न राज्यों में उच्च शिक्षा के लिए अवसर समान रूप से उपलब्ध हों।

11.3 केंद्र और राज्यों के लिए महत्वपूर्ण मामलों पर आम सहमति प्राप्त करने के लिए विचार विमर्श, सलाह और समझने-समझाने की प्रक्रिया पहले ही चालू है। केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने शिक्षा मंत्रियों, शिक्षा सचिवों, शिक्षा निदेशकों और अन्य संबद्ध अधिकारियों की बार बार बैठकों की एक प्रणाली बनाई है। एक केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड भी है जिसमें सभी महत्वपूर्ण मामलों और कार्यक्रमों पर गहराई से विचार विमर्श किया जाता है और उन पर आम सहमति कायम की जाती है। यह सुझाव दिया जाता है कि ऐसी आवधिक बैठकें और नियमित रूप से होनी चाहिए। इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् और वि० अ० आ० जैसे केंद्रीय निकायों और राज्यों के बीच और अधिक आदान प्रदान होना चाहिए।

शिक्षा यद्यपि समवर्ती विषय है परंतु व्यवहार में केंद्र ने इस व्यवस्था पर उतने प्रभावकारी ढंग से काम नहीं किया है जितना कि उसे करना चाहिए था। इसे मूलतः अब भी राज्य का विषय समझा जाता है। यह सुझाव दिया जाता है कि शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र को और अधिक पहल करनी चाहिए।

11.4 अनुच्छेद 30 को लागू करने में कानूनी और व्यावहारिक कठिनाइयां अनुभव की गई हैं जिससे न्यायालयों में मुकदमेबाजी की नौबत आई है। यह इसी बात से स्पष्ट है कि कई मामले में बाद सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचे हैं।

अल्पसंख्यक की परिभाषा

1. इस अनुच्छेद से यह स्पष्ट नहीं होता कि अल्पसंख्यक को देश की कुल जनसंख्या के संबंध में देखा जाए या किसी विशिष्ट राज्य अथवा एक छोटे स्थानीय क्षेत्र के संबंध में देखा जाए।

2. अल्पसंख्यक के प्रश्न का निर्धारण करने का मंच निर्दिष्ट नहीं किया गया है। इसलिए जब भी किसी न्यायालय अथवा प्राधिकरण के समक्ष ऐसा अवसर आता है तो उस न्यायालय या प्राधिकरण को साक्ष्य लेकर मामले को निपटाना पड़ता है। यह वांछनीय होगा कि कोई मंच निर्दिष्ट किया जाए जहां इस प्रश्न का फैसला हो सके कि कोई संस्थान अल्पसंख्यक संस्थान है या नहीं।

3. अल्पसंख्यक संस्थान का निर्धारण कौन कर सकता है यह भी स्पष्ट नहीं है। किसी समुदाय का एक सदस्य ही समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए पर्याप्त है या ऐसे व्यक्तियों की कोई न्यूनतम संख्या निर्दिष्ट होनी चाहिए।

यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या किसी संस्थान में अन्य समुदायों के कुछ सदस्यों को समाविष्ट करने से उस संस्थान का अल्पसंख्यक रूप नष्ट हो जाता है ।

4. अनुच्छेद में जिस प्रशासन की गारंटी दी गई है उसकी सीमा निर्दिष्ट नहीं है । न्यायालयों ने माना है कि प्रशासन के अधिकार में कुप्रशासन का अधिकार शामिल नहीं है । यह अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है कि राज्य का प्रशासन पर और शिक्षा का स्तर, पाठ्यचर्या, अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों की भर्ती और सेवा की शर्तें, विद्यार्थियों के प्रवेश, प्रशासी निकाय का चुनाव जैसी प्रशासन की किन-किन शाखाओं पर और कितना नियंत्रण होना चाहिए ।

5. "शिक्षा संस्थान" पद बहुत व्यापक है और किस दृष्टिकोण से इसमें विश्वविद्यालयों के दर्जे के और न केवल अल्पसंख्यक भाषा, संस्कृति, धर्म में शिक्षा देने वाले संस्थान बल्कि लोकतांत्रिक संस्थान शामिल किए जाएं । प्रश्न उठता है कि क्या इसमें इंजीनियरी, मेडिकल कालेज जैसे तकनीकी, औद्योगिक संस्थान भी आते हैं । इन संस्थानों की स्थिति भिन्न हो सकती है क्योंकि शिक्षा के स्तर में समानता बनाए रखना अनिवार्य है ।

6. अत: इस अनुच्छेद की व्यापकता, जैसा कि यह लिखा गया है, बहुत व्यापक है । उत्तर प्रदेश में हिंदू को छोड़ कर सभी धर्म और हिंदी को छोड़कर सभी भाषाएं अल्पसंख्यक हो सकती हैं जिससे अनेकों अल्पसंख्यक दल हो जाएंगे । इसके अलावा इस अनुच्छेद के अंतर्गत अल्पसंख्यकों का अधिकार एक संस्थान की स्थापना करके ही समाप्त नहीं हो जाता । एक ही अल्पसंख्यक समुदाय के विभिन्न या कुछ सदस्य अपनी मनपसंद के अनेक संस्थान स्थापित कर सकते हैं । इसका अर्थ है कि प्रत्येक जिले, तहसील या छोटी जगहों में भी अनेक अल्पसंख्यक समुदाय हो सकते हैं । उनकी संख्या बहुसंख्यकों के संस्थानों से भी बढ़ सकती है । सभी जगह हिंदू, मुस्लिम, ईसाई शिक्षा संस्थान होने से विभागीकरण होना लाजमी है । इससे पृथकवाद और सांप्रदायिकता बढ़ने का अंदेशा है । जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने सेंट जेवियर (1974 एस० सी० 1389) के मामले में कहा है । शिक्षा राष्ट्र की अखंडता बढ़ाने में एक बहुत बड़ी योजक शक्ति होनी चाहिए । अनुच्छेद 30 के उपबंधों का दुरुपयोग करना, जैसा कि इधर किया जा रहा है, राष्ट्र की अखंडता के लिए हितकर नहीं है ।

7. पहले राज्य अपने शिक्षा संबंधी कानूनों को परीक्षाओं और डिप्लोमा देने के प्रयोजन से संस्थाओं को संबद्ध करने, मान्यता देने तक ही सीमित रखता था । प्रबंध व्यवस्था में इसका कोई हस्तक्षेप नहीं था । लेकिन जब यह पाया गया कि अध्यापकों/विद्यार्थियों का शोषण किया जा रहा है और अव्यवस्था फैली हुई है तो राज्य को विद्यार्थियों, अध्यापकों और अन्य कर्मचारियों के हितों की रक्षा करने के लिए विनियमकारी उपाय करने पड़े । यह स्पष्ट नहीं है कि तथाकथित अल्पसंख्यक संस्थान, जिनकी संख्या बहुसंख्यक संस्थानों से भी अधिक हो सकती है, लोकनीति कुछ भी कहे, कहां तक राज्य के हस्तक्षेप करने के अधिकार से मुक्त रह सकते हैं । यदि ऐसा नहीं होता तो प्रशासन के अधिकार का अभिप्राय क्या है जिसकी अनुच्छेद 30 में गारंटी दी गई है ।

8. चकला सैमुयल केस (ए० आर० 1982, पृष्ठ 64) में यह माना गया कि धर्म निरपेक्ष शिक्षा देने वाले संस्थान का उस अल्पसंख्यक समुदाय से जरूर कुछ संबंध होना चाहिए जिससे वह संबद्ध है अर्थात् यह किसी न किसी तरीके से धार्मिक, सांस्कृतिक या भाषा के संवर्धन से इतर भी उस अल्पसंख्यक समुदाय के हितों को बढ़ाने वाला होना चाहिए । इसमें अल्पसंख्यक समुदायों के शिक्षा संस्थानों के लाभों को धर्म, संस्कृति और भाषा के उत्थान से भिन्न प्रयोजनों में लगा कर इस शिक्षा संस्थान के व्यवसायीकरण की गुंजाइश रहता है ।

9. चिकित्सा और इंजीनियरिंग जैसे तकनीकी शिक्षा के क्षेत्रों में यदि अल्पसंख्यक संस्थानों को समान प्रतियोगिता परीक्षा की छूट दी जाए या अल्पसंख्यक समुदायों को अपने छात्र स्वयं चुनने और समान चुनाव को स्वीकार करने का अधिकार दिया जाए तो डर यह है कि आने वाले व्यावसायिक कालिज घटिया दर्जे के होंगे । सेंट जेवियर के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है —आज शिक्षा, विशेषकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा हमारे विकासशील राष्ट्र के सामाजिक हित के लिए पहली आवश्यकता है—स्पष्ट है कि धर्मनिरपेक्ष सामान्य शिक्षा, विशेषकर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा को हमारे राष्ट्र के विकास एवं समृद्धि में निर्णायक भूमिका निभानी चाहिए । अत: हमारे राज्य की धार्मिक अथवा भाषायी अल्पसंख्यकों के समान बल्कि उनसे कुछ ज्यादा ही अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों को सही और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी शिक्षा प्रदान करने में दिलचस्पी होनी चाहिए । विद्यार्थी किसी अल्पसंख्यक समुदाय के ही नहीं होते, उनका संबंध समूचे राष्ट्र से होता है । धार्मिक वातावरण में धर्मनिरपेक्ष समान शिक्षा देने का कोरा तर्क इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पहलू को अनदेखा करता है ।

10. वस्तुत: अब समय आ गया है कि इस अलग अनुच्छेद की आवश्यकता और प्रयोजन पर ही पुनर्विचार किया जाए । जैसे बहुसंख्यक समुदाय के किसी सदस्य को अपने धर्म, भाषा और संस्कृति की रक्षा करने के लिए अपने शिक्षा संस्थान स्थापित करने का अधिकार है, उसी तरह अल्पसंख्यक समुदाय को भी अनुच्छेद 30 की सहायता के बिना भी यही अधिकार प्राप्त है क्योंकि धर्म, संस्कृति या भाषा के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जाता । इस पृष्ठभूमि में अनुच्छेद 30 में एक अलग प्रावधान से इस तर्क के लिए गुंजाइश बनती है कि अनुच्छेद 30 के अधीन दिया गया स्थापित करने और शामिल करने का अधिकार सर्वोच्च प्रकार का है जिसमें राज्य के किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप के लिए कोई स्थान नहीं है । इसके पीछे विचार संभवत: यह था कि अल्पसंख्यकों को अपने धर्म, भाषा और संस्कृति के अनुरक्षण में कोई रुकावट नहीं डाली जाएगी और उन्हें, यदि आवश्यक हो तो अपने शिक्षा संस्थान स्थापित करने से रोका नहीं जाएगा । ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इसका आशय उन्हें कोई विशेष सुरक्षा देने का या बहुसंख्यक समुदाय को दिए गए अधिकारों से अधिक अधिकार देना था । सेंट जेवियर के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से उद्धरण —"अल्पसंख्यकों को कुछ विशेष अधिकार देने के विचार के पीछे जनसंख्या का कोई विशेषाधिकार प्राप्त या लाडला वर्ग बनाना नहीं है, बल्कि अल्पसंख्यकों में सुरक्षा और समानता की भावना पैदा करना है - इस अनुच्छेद को वे अल्पसंख्यक संस्थाओं के लिए अनुचित तरफदारी या भेदभावपूर्ण व्यवहार प्राप्त करने के लिए एक हथियार के रूप में नहीं बरत सकते जिससे वे लाभ तो ले लें लेकिन कानूनी अधिकारों की देनदारियों को अस्वीकार कर दें ।" यह भी कहा गया—वे (संविधान निर्माता) और किस तरह एक धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यक वर्ग को धर्म निरपेक्ष सामान्य शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने और उन्हें चलाने का पूर्ण या लगभग पूर्ण अधिकार देने की बात सोच सकते थे ।

अत: इन पहलुओं पर समुचित रूप से विचार करना और इसे स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

11.5 शिक्षा प्रसार के कार्यक्रमों के संबंध में केंद्र और राज्य के बीच टकराव का कोई उदाहरण अभी तक सामने नहीं आया है ।

अंतर-सरकार समन्वय

12.1 इस राज्य का केंद्र के साथ अपने संबंधों को लेकर किसी प्रकार अड़चन का सामना नहीं हुआ । अत: ऐसा कोई परामर्शी निकाय स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जैसा कि अमरिका में विद्यमान है ।

ज्ञापन

मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत

इस सामान्य आयोग के लब्ध प्रतिष्ठ अध्यक्ष और सदस्यों का इस राज्य में आगमन पर मुझे अपनी और उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से हार्दिक स्वागत करते हुए अत्यधिक हर्ष हो रहा है। आयोग के साथ आए अधिकारियों का भी मैं स्वागत करता हूं।

2. मैं आयोग को राज्य सरकार की कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहूंगा कि उसने "केन्द्र–राज्य" सम्बन्ध, जिस पर अध्ययन करने और अपनी रिपोर्ट देने का काम भारत सरकार द्वारा आयोग को सौंपा गया है, पर विचार-विमर्श करने का अवसर प्रदान किया है। हम यह जानते हैं कि आयोग के समक्ष कोई सरल कार्य नहीं है। संविधान के अधीन हम स्वशासन के पिछले 35 वर्षों के दौरान यह सिद्ध करने में सफल रहे हैं कि संविधान के ढांचे में लोकतांत्रिक समाज के अनिवार्य लक्षणों की अभिरक्षा और सुरक्षा करने वाली आवश्यक दृढ़ता, लचीलापन और स्थायित्व है, जिसकी कि हमारे संविधान निर्माताओं ने परिकल्पना की थी। इसके सामने बहुत सी आंतरिक और बाह्य चुनौतियां रही हैं। इसके बावजूद, भारत के महान सपूतों के इस देश के भविष्य को लेकर जो सपने संजोए थे, आशाएं लगाई थीं, वे और उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए देश की प्रगति के लिए लोकतांत्रिक प्रणाली में उनका विश्वास काफी हद तक सही सिद्ध हुए हैं।

3. निस्सन्देह, संविधान में समाविष्ट केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के स्वरूप और संविधान निर्माताओं के वास्तविक आशयों और दृष्टि को व्यवहारिक रूप देने में हमारी योग्यता या अयोग्यता को लेकर शंकाएं उठी हैं, प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का विषय समय समय पर अनेक विशेषज्ञों और समितियों द्वारा अनवरत अध्ययन, विश्लेषण और समीक्षा का विषय रहा है। वर्तमान आयोग की इस विषय के अध्ययन में एक अपूर्व भूमिका है क्योंकि यह भारत सरकार द्वारा निर्दिष्ट इस विषय का प्रथम वृहत् अध्ययन है। आयोग का कार्य इस कारण अत्यधिक जटिल हो गया है कि स्वतंत्रता के बाद से देश के राजनीतिक, समाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की प्रणालियों की अन्तर्दृष्टि और देश का भविष्य में एक राष्ट्र के रूप में विकास और संवृद्धि की संकल्पना से हमारे संविधान के कार्यों विशेषत: केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की समीक्षा में मदद मिलती है। यह मात्र संरचना या यांत्रिक सम्बन्धों का प्रश्न नहीं है। यह शासी ढांचे में परस्पर अन्तर्क्रिय शक्तियों का कहीं अधिक जटिल प्रश्न है जो कि बहुत अन्य सामाजिक कारकों को प्रभावित करता है। आयोग का कार्य समसामयिक दृष्टि से प्रासंगिक और एक प्रकार ऐतिहासिक महत्व का है। एक समृद्ध और संगठित देश की हमारी भावी कल्पना को साकार करने के वर्तमान आर्थिक, सामाजिक ढांचे के अनुरूप और अनुभवों पर आधार यथा आवश्यक परिवर्तनों के सुझावों के रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के चार दशक बाद इस विषय पर आप जैसे महान और विवेकशील दल द्वारा दिए गए निष्पक्ष और परिदृश्यात्मक वक्तव्य से हमारे संदेहों का निवारण करने में और हमारे संविधान के संघीय स्वरूप और एकात्मक संयोजन को मजबूत करने में मदद मिलेगी।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस आयोग की रिपोर्ट देश की राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण में मील का पत्थर सिद्ध होगी।

4. राज्य सरकार ने आयोग द्वारा परिचालित की गई प्रश्नावली के विस्तृत उत्तर दिए हैं और प्रश्नों के इन विस्तृत उत्तरों की ओर आयोग का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। इस प्रस्तुति में अपने को उन अनिवार्य और महत्वपूर्ण दृष्टिकोण तक ही सीमित रखूंगा जिन्हें मुझे अपनी राज्य सरकार की ओर से रखने का अधिकार है। हमारा सुस्पष्ट मत है कि हम किसी भी तरह संविधान के ढांचे और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर विचार करें, हमें समग्र रूप में देश की अखण्डता को बनाए रखने की संकल्पना और इस संकल्पना को कि भारत एक अखण्ड राष्ट्र है, सर्वोच्च स्थान देना है। हमारे संविधान का संघीय ढांचा है जिसकी सुस्पष्ट प्रकृति एकात्मक है। संघवाद का समर्थन करने वाले प्राय: इस बात को अनुभव नहीं करते कि कहीं भी न तो संघवाद है न ही संघवाद बनाया जा सकता है। अस्तित्व की राजनितिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वास्तविकताएं उस हद का निर्धारण करती है जिस तक केन्द्रवाद को विभिन्न स्थितियों में संघवाद उदार बनाता है। यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में भी प्राय: जिसका उदार संघवाद के रूप में उदाहरण दिया जाता है, कुछ क्षेत्रों में केन्द्रवाद की ओर झुकाव आया है। हमारे जैसे नवोदित लोकतंत्र को एक ओर बाह्य खतरे हैं और दूसरी ओर आन्तरिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। आन्तरिक समस्याओं में विकासशील समाज की गरीबी और निरक्षरता आदि की जटिल समस्याएं और बहु-सांस्कृतिक, बहुं-भाषी, बहु-जातीय समाज की विशेषताएं एक संघीय ढांचे के भीतर केन्द्रवाद को मजबूत बनाने के आधार तत्व हैं। हमारे संविधान निर्माताओं ने इसी की परिकल्पना की थी उदार संघवाद के न कों के सुखाभास के प्रभाव में आकर हम इसका समर्थन नहीं कर सकते क्योंकि ये वास्तविकता में और व्यवहार में एक राष्ट्र के रूप में देश के निर्माण के लिए आवश्यक शक्ति को कम कर देंगे।

विधायी सम्बन्ध

हम महसूस करते हैं कि केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वर्तमान बंटवारे में कोई परिवर्तन करने की आवश्कता नहीं है। यह समय की कसौटी पर खरा उतरा हैं।

राज्य विषयों पर संसद द्वारा कानून बनाने के सम्बन्ध में अनुच्छेद 249 के उपबन्ध राष्ट्रीय हित में आवश्यक हैं। इस अनुच्छेद में इसके दुरूपयोग को रोकने की पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था की गई है। उपबन्धों का कभी दुरूपयोग नहीं किया गया है।

केन्द्र और राज्य के बीच विधायी शक्तियों का विस्तृत बंटवारा है। इस बंटवारे की अपूर्व विशेषता विषयों की लम्बी समवर्ती सूची हैं। इसमें दिए गए किसी विषय पर केन्द्र और राज्य दोनों अपनी आवश्कतानुसार कानून बना सकते हैं। इस बंटवारे में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं हैं। निस्संदेह समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर केन्द्र सरकार द्वारा कानून बनाने से पहले राज्य सरकार से परामर्श कर लेना वांछनीय होगा। तथापि, यह परम्परा के रूप में किया जाएगा, किसी सांविधिक उपबन्ध के अधीन नहीं।

राज्यपाल की भूमिका

संविधान में राज्यपाल की दोहरी भूमिका की कल्पना की गई है। पहली, केन्द्र "राज्यपाल" के कार्यालय के माध्यम से अपना पर्यवेक्षकीय कार्य करता है और दूसरी, राज्यपाल उस राज्य की कार्यकारी जिम्मेदारी भी निभाता है, जिसका वह प्रमुख है। सब मिलाकर, राज्यपाल उन जिम्मेदारियों को निभाते रहे हैं, जो संविधान ने उन्हें सौंपी हैं।

राज्यपाल को ऐसी रिपोर्ट तैयार करने का अधिकार हैं जिसमें अनुच्छेद 356 की धारा (i) के अधीन कार्रवाई करने के लिए राष्ट्रपति को सुझाव दिए गए हों। हम समझते हैं कि यदि वह वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई वैकल्पिक स्थिर सरकार बनाने की कोई सम्भावना नहीं हो, तो उसे चाहिए कि अनुच्छेद 356 की धारा (i) के अधीन रिपोर्ट तैयार कर दे। राज्यपाल के कर्तव्यों में विधानसभाओं का सत्रावसान

करना और विधानसभा को भंग करना भी आता है। विधानसभा भंग हो जाने की स्थिति में, ऐसे अवसर भी आते हैं जब उसे स्वतंत्र रूप से कार्य करना पड़ता है। यदि विधानसभा का कार्यकाल समाप्त प्राय: और नई विधान सभा का अभी चुनाव होना हैं तो उस स्थिति में राज्यपाल विधान-सभा के कार्यकाल समाप्त होने से थोड़ा पहले विधानसभा भंग करने सम्बन्धी मंत्रीमण्डल की सलाह स्वीकार कर सकता है। तथापि, यदि सरकार ने विधानसभा में अपना बहुमत खो दिया हो तो ऐसे मंत्रीमण्डल की विधान-सभा भंग करने की सिफारिश को विशेष महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 200 और 201 में राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ बिलों को सुरक्षित रखने और उन पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने से से सम्बन्धित प्रावधान हैं। हम महसूस करते हैं कि ये उपबन्ध लाभप्रद भी हैं और अनिवार्य भी। बिल पर राज्यपाल की अनुमति लेना भी आवश्यक है। किसी चरण में बिल पर उसे सहबद्ध करना अपरिहार्य है क्योंकि वह भी विधानसभा का एक अभिन्न अंग है। इसके अतिरिक्त प्रस्तावित विधान के विभिन्न पक्षों पर दोबारा विचार करने की सरकार को अवसर प्रदान करते हैं। पिछले 35 वर्षों के अनुभव से पता चलता है कि अनुच्छेद 200 और 201 के अनुबन्धों का दुरूपयोग नहीं किया गया है और राज्यों की स्वायत्तता पर कोई संकट नहीं आया है।

यह राज्य यह समझता है कि राज्यपाल पर महाभियोग लगाने सम्बन्धी उच्च उपबन्ध बनाने की कोई जरुरत नहीं है जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय या न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में होता है। हम यह भी महसूस करते हैं कि उनके पूर्ण कार्य-काल की भी किसी गारंटी की कोई आवश्यकता नहीं है। वर्तमान व्यवस्था जिनमें राज्यपाल राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त कार्य करता है, उस पद के कर्त्तव्यों और कार्यों की दृष्टि से उपयुक्त दिखलाई पड़ती है। राज्यपाल को मंत्री परिषद् की सहायता और सलाह से कार्य करना होता है और इनमें विचारों की भिन्नता या अन्य आपात् स्थितियों में मिलजुल कर कार्य न कर पाएं तो राज्यपाल को दूसरे राज्य में स्थानान्तरित करना पड़ सकता है।

प्रशासनिक सम्बन्ध

अनुच्छेद 256 और 257 के प्रावधानों के अनुसार राज्य को अपनी कार्यकारी शक्तियों पर इस प्रकार अमल करना होता है कि वे केन्द्रीय कानून के अनुरूप हों और इसके लिए केन्द्र अनुदेश जारी कर सकता है। ये उपबन्ध संघ और राज्य द्वारा कार्यपालक शक्तियों के कार्यान्वयन में सामंजस्य बनाए रखने के लिए अनिवार्य हैं। अनुच्छेद 365 संघ द्वारा राज्यों को अनुदेश देने की शक्ति की संधी देता है जिसके बिना ये शक्तियां व्यर्थ होंगी। इस शक्ति का केन्द्र ने पिछले पैंतीस वर्षों में शायद ही उपयोग किया हो।

यह राज्य सरकार महसूस करती है कि अनुच्छेद 356 की धारा (4) और (5) में निर्दिष्ट समय सीमा, भले ही इसका आशय सुरक्षा से है, संघ द्वारा इस शक्ति के प्रभावोत्पादक प्रयोग में बाधा उत्पन्न कर सकती है। स्थितियों के अस्तित्व, निरन्तर बिगड़ती व्यवस्था और एक वर्ष से अधिक संवैधानिक तंत्र की असफलता या विफलता के अनुभव हमें प्राप्त हुए हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि इस अनुच्छेद की धारा (5) की उपधारा (क) और (ख) एक दूसरे से स्वतंत्र हो, जिससे यह संभव हो कि किसी स्थिति विशेष में धारा (5) के अधीन आने वाले किसी भी मामले में आवश्यक होने पर तीन वर्ष तक राष्ट्रपति शासन लागू रखा जा सके। परिणाम यह होगा कि यद्यपि आपात स्थिति की घोषणा नहीं की गई है, तो भी उस स्थिति में राष्ट्रपति शासन लागू रखा जा सकता है, जब चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि सम्बन्धित राज्य में विधान सभा के चुनाव कराने में कठिनाइयां हैं।

अनुच्छेद 355 में संघ को यह दायित्व दिया गया है कि वह बाह्य आक्रमण और आन्तरिक उपद्रवों से राज्यों की सुरक्षा करें तथापि, सामान्य स्थितियों में, किसी राज्य में उस राज्य की सहमति से ही केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल और अन्य सशस्त्र बलों की तैनाती की जानी चाहिए।

अनुच्छेद 263 के विचारित अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना से अन्तर्राज्यीय मतभेदों और विवादों का निपटारा करने में मदद मिलेगी। तथापि, स्थायी रुप में ऐसी परिषदों का गठन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिषद् का गठन उस समय किया जाए जब कभी किसी विवाद विशेष का हल करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो।

वित्तीय संबंध

संविधान में केन्द्र को कर लगाने और वसूल करने का अधिकार दिया गया है, जिनसे भारी आय होती है और जो राजस्व के दूरगामी विकासमान स्रोत हैं। राज्य में करों की सूची का आधार स्थानीय होता है और इसमें लचीलेपन की गुंजाइश कम होती है। साथ ही राज्य सरकार को बिना अपने पर्याप्त आय स्रोतों के कृषि, शिक्षा, चिकित्सा और जन-स्वास्थ्य तथा कानून और व्यवस्था के क्षेत्र में अपनी जिम्मेदारियां निभानी पड़ती हैं। राज्य के कार्यों को देखते हुए उनके संसाधनों की असंगतता (अपर्याप्तता) की समस्या से केन्द्र से संसाधनों के पर्याप्त अंतरण द्वारा प्रभावी ढंग से निपटने की आवश्यकता है। तथापि, विगत में, वित्त आयोग अंतरण और योजना अंतरण राज्यों, विशेषकर पिछड़े राज्यों में व्यापक आवश्यकताओं को पूरा करने में कम पड़े हैं। इसके परिणामस्वरूप, अन्तर-राज्य विषमताएं घटी नहीं हैं।

राज्य सरकार यद्यपि यह महसूस करती है कि संघ और राज्यों की कराधान शक्तियों में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है, तथापि राज्यों को अपने खर्च की आवश्यकताओं के अनुरुप आय के अधिक स्रोत जुटाने के लिए यह वांछनीय होगा कि बांटने योग्य राशि में अधिक केन्द्रीय कर हों ताकि राज्य अपने संसाधनों को अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप बना सकें। अत: यह सुझाव दिया जाता है कि निगम करों की आय में भी राज्यों की हिस्सेदारी होनी चाहिए क्योंकि संघ कर अदा करने वाली कंपनियों को वे आधारिक संरचना संबंधी सुविधाएं प्रदान करती हैं। आठवें वित्त आयोग ने भी यह कहा है कि निगम कर राजस्व तक राज्यों की पहुंच होना उचित प्रतीत होता है। संघ उत्पाद शुल्क की आय में भी राज्य का हिस्सा होना जरुरी लगता है, जिसमें राज्यों के अधिक सांविधिक अवक्रमण को सुनिश्चित किया जा सके।

संघीय अंतरण इस प्रकार अभिकल्पित होने चाहिए कि पिछड़े राज्यों में आर्थिक रुप में प्रति व्यक्ति अंतरण अपेक्षाकृत अधिक हो ताकि विकास में उनकी गति को तीव्र किया जा सके। उल्लेखनीय है कि कुछ करों की आय के आबंटन में पिछड़ेपन को तरजीह देने के बावजूद विगत में अंतरण वांछित प्रगतिशीलता में बाधक रही है। सातवें और आठवें वित्त आयोग के सिफारिशों के अंतर्गत कुल आबंटन में उत्तर प्रदेश का हिस्सा उसकी जनसंख्या के 16.32 अनुपात (1971 की जनसंख्या) की तुलना में केवल 15.90 और 15.43 था। इसको मिलने वाला हिस्सा पिछले वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए हिस्से से कम था। यदि योजना अंतरण को भी ध्यान में रखा जाता है तो भी स्थिति में कोई सुधार नहीं मिलता। संघीय अंतरणों में वांछित प्रगतिशीलता के लिए ऋण देने संबंध में राज्य सरकार राज्यों के करों के हिस्सों, योजना सहायता और गैर-योजना सहायता को निर्धारित करने के संबंध में निम्नलिखित सुझाव देना चाहेगी :—

(क) करों में राज्यों का हिस्सा

(1) मुख्य करों यानि आय कर और संघ उत्पाद शुल्क दोनों की संपूर्ण विभाज्य राशि के आबंटन में एकरूप मानदण्ड अपनाया जाना चाहिए।

(2) निवल आय का 50 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर, 25 प्रतिशत राज्य की प्रति व्यक्ति आय के उल्टे अनुपात को जनसंख्या द्वारा गुणा करके, और .25 प्रतिशत केवल उन राज्यों को आबंटित किया जाना चाहिए जिनकी प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की औसत आय से कम है और यह हिस्सा उन्हें आय की समानता के सिद्धांत के आधार पर दिया जाए।

(3) चीनी वस्त्र और तम्बाकू पर लगने वाले अतिरिक्त उत्पाद शुल्क की राज्य की गारंटित राशि और सभी राज्यों की कुल गारंटित राशि के अनुपात में आबंटित किया जाना चाहिए।

(4) केन्द्रीय बिक्री कर से प्राप्त आय को भी आबंटित की जाने वाली राशि में डाला जाना चाहिए और उसका 75 प्रतिशत माल के गन्तव्य राज्य–जहां माल की खपत होती है, और 25 प्रतिशत उस राज्य को दिया जाना चाहिए, जहां से माल ले जाया जाता है।

(ख) योजना सहायता

(5) राज्यों द्वारा किए जाने वाले कर संबंधी प्रयासों पर केन्द्रीय सहायता के नियतन के समय ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।

(6) प्रति व्यक्ति आय में कमी को पूरा करने के लिए दी जाने वाली राशि को 20 से 30 प्रतिशत तक बढ़ाया जाना चाहिए।

(7) योजना अंतरण के अनुदान और ऋण घटक 50:50 होने चाहिए।

(ग) गैर-योजना सहायता

(8) अनुदान सहायता कर निर्धारण करते समय राज्यों के प्रति व्यक्ति गैर योजना खर्च के स्तर पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों की स्वास्थ्य और शिक्षा सहित प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकताओं को भी अनुदान सहायता के निर्धारण के समय ध्यान में रखना चाहिए।

अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों के लिए बाजार से उधार लेने का नियतन अधिक न्यायसंगत होना चाहिए। बाजार से उधार लेने में पिछड़े राज्यों के हिस्से में संशोधित गाडगिल फार्मूला अपनाकर उचित बढ़ोतरी करने की आवश्यकता है। विकल्पतः बाजार से उधार लेने की सामान्य सीमा के अतिरिक्त, उन राज्यों के लिए बाजार से उधार लेने की अतिरिक्त सीमा बनाई जानी चाहिए जिनका प्रतिकूल क्रेडिट–जमा अनुपात है।

लघु बचत योजनाओं के अंतर्गत निवल वसूली में राज्यों के हिस्से में भी लघु बचत संग्रह में उनके द्वारा किए संगठित प्रयासों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान से दो-तिहाई वृद्धि की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, लघु बचत ऋण को स्थायी ऋण समझा जाना चाहिए।

सूखे की स्थिति में राज्यों को उपलब्ध कराई जाने वाली केन्द्रीय सहायता अग्रिम योजना सहायता के रूप में नहीं होनी चाहिए और यह सहायता उसी प्रकार दी जानी चाहिए जिस तरह अन्य प्राकृतिक विपदाओं के मामले में प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सहायता मार्जिन धन के बढ़े हुए खर्च को पूरा करती हो और यह अनुदान के रूप में होनी चाहिए। केवल राज्य सरकार द्वारा ऋण के रूप में दी गई राशि को ही ऋण के रूप में दिया जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि क्षतिग्रस्त मकानों की मरम्मत और पुनर्निमाण जैसी मदों के लिए खर्च की उच्चतम सीमा को निर्धारित करने के लिए अपनाए जाने वाले मानदण्डों में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए।

आर्थिक और सामाजिक योजना

राज्य योजनाओं का निर्माण करने और उन्हें कार्यान्वित करने के संबंध में मौजूदा प्रक्रिया में योजना आयोग और राज्यों के बीच पारस्परिक क्रिया की पर्याप्त गुंजाइश है। महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय प्राथमिकताएं और लक्ष्य निर्धारित करने के बाद, राज्यों को विकास के विभिन्न क्षेत्रों के लिए और कार्यक्रम प्रस्तावित करने के लिए तथा क्षेत्रीय और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप परियोजनाओं के लिए उपलब्ध संसाधनों का नियतन करने की पूरी छूट होनी चाहिए।

यह महसूस किया गया है कि एक बार केन्द्रीय मंत्रालय और योजना आयोग ने किसी राज्य सरकार को योजना संबंधी अपनी सलाह दे दी है तो अपनी विशिष्ट स्थानीय स्थितियों के अनुसार अपने योजना कार्यक्रम में उचित संशोधन करने का अधिकार राज्य सरकार के पास होना चाहिए और सभी राज्यों के लिए समान मार्गनिर्देशों को स्वीकार करने की कोई बाध्यता या अन्यथा बंधन नहीं होना चाहिए।

योजना आयोग का मौजूदा गठन संतोषजनक प्रतीत होता है। इसे राज्यों की आवश्यकताओं के प्रति और अधिक जागरूक बनाने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि प्रत्येक वर्ष बारी-बारी से कम से कम दो बड़े राज्यों के मुख्य मंत्री योजना आयोग के सदस्य बनाए जाने चाहिए। बारी की अवधि एक वर्ष हो। हम यह भी महसूस करते हैं कि योजना आयोग को योजनाओं की प्रगति की समीक्षा करने और अगले वर्ष की योजनाओं के संबंध में उनके सुझाव प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष सभी राज्यों के मुख्य मंत्रियों के साथ कम से कम एक बैठक अवश्य करनी चाहिए। आयोग को अर्थशास्त्रियों, प्रौद्योगिकी विदों और प्रबंध विशेषज्ञों का उच्च स्तर का सलाहकार निकाय बनाना चाहिए।

यह राज्य मानता है कि बाहरी सहायताप्राप्त परियोजनाओं में हमारा हिस्सा हमारे आकार और अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं रखा गया है। हमारा हिस्सा बढ़ाकर इस कमी को अब पूरा किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, पिछड़े पहाड़ी क्षेत्रों और इस राज्य के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के विकास के लिए अतिरिक्त सहायता भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

हम समझते हैं कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित की जाने वाली योजनाओं के मामले में योजना शुरू करने से पहले राज्यों के साथ परामर्श करने की प्रक्रिया पर्याप्त नहीं है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित की जाने वाली योजना पंचवर्षीय योजना की शुरूआत से प्रारंभ की जानी चाहिए और केन्द्रीय मंत्रालयों को विभिन्न राज्यों के लिए उनकी अर्थव्यवस्था और उनकी आवश्यकताओं के अनुसार मार्गनिर्देशों में संशोधित करने के लिए अधिक लचीली नीति अपनानी चाहिए।

उद्योग, व्यापार और वाणिज्य

औद्योगिक विकास के संबंध में केन्द्र सरकार के प्रमुख उद्देश्यों में से एक उद्देश्य संतुलित क्षेत्रीय विकास और समुचित औद्योगिक प्रसार करना रहा है। इस संदर्भ में हम समझते हैं कि समय समय पर उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम की प्रथम अनुसूची में संशोधन किया जाना जरूरी था। यहां तक कि लाइसेंस नीति में भी बहुत से ऐसे उद्योग हैं जिन्हें लाइसेंस से छूट दी गई है और उन्हें किसी क्षेत्र विशेष में आर्थिक शर्तों में स्थान प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर दिए गए हैं। तथापि, बड़े उद्योगों या उन उद्योगों के लिए जिनका अनुषंगिक उद्योगों पर बहुत अधिक प्रभाव है, राष्ट्रीय हित को देखते हुए केन्द्र सरकार संतुलित क्षेत्रीय विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उद्योग विकास और विनियमन अधिनियम को लागू रखें। तथापि, हम समझते हैं कि औद्योगिक लाइसेंस देने से संबंधित प्रक्रिया में राज्यों के दृष्टिकोण को अधिकाधिक ध्यान रखा जाना चाहिए।

लघु क्षेत्र के उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति करने और उनके वित्त-पोषण के संबंध में सुधार किए जाने की आवश्यकता है। केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को अधिकांश अनिवार्य कच्चा माल आबंटित किया जाता है। सामान्यतः यह आबंटन राज्यों को अपेक्षाओं की दृष्टि से कम पड़ता रहा है एक तो, चिरकालिक कमी के कारण, दूसरे, लघु, मध्यम और बड़े क्षेत्र के उद्योगों में असमान आबंटन के कारण।

प्रौद्योगिकी के अंतर को पाटने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि एक राष्ट्रीय स्तर की एजेंसी स्थापित करने की आवश्यकता है जो राज्य स्तर के संगठनों के साथ उचित सामंजस्य से अनुसंधान के निष्कर्षों के डाटा बैंक के रूप में कार्य करे। इसके अतिरिक्त, विदेशी प्रौद्योगिकी का भी एक ही संस्था के माध्यम से प्रसार किया जाना चाहिए। वस्तुतः जिस एजेंसी के गठन का ऊपर सुझाव दिया गया है, उसे ही यह कार्य सौंपा जा सकता है। इससे विदेशी प्रौद्योगिकी के अन्धाधुंध आयात पर रोक लगेगी।

कृषि, सिंचाई तथा खाद्य और नागरिक आपूर्ति

इन क्षेत्रों के संबंध में वर्तमान व्यवस्था काफी संतोषजनक दिखाई देती है। तथापि, केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के संबंध में हम समझते हैं कि राज्यों के साथ अधिक परामर्श किए जाने की आवश्यकता है। हम यह भी महसूस करते हैं कि जहां कहीं किसी योजना विशेष का कार्यान्वयन राष्ट्रीय हित

से चुका है, वहां जब तक योजना को चालू रखना राष्ट्रीय हित में हो, योजना को संपूर्ण खर्च भारत सरकार को वहन करना चाहिए ।

साधनों की कमी के कारण, सिंचाई और ऊर्जा परियोजनाओं के लिए उत्तर प्रदेश अपनी धरती पर और धरती के नीचे पानी क्षमताओं के बहुत बड़े भाग का उपयोग करने में सफल नहीं रहा है । राज्य की अपेक्षाकृत पिछड़ी स्थिति को देखते हुए और यह देखते हुए कि इसके बहुत बड़ी मात्रा में जल और ऊर्जा संसाधन बिना इस्तेमाल किए रह जाते हैं, यह आवश्यक है कि, केन्द्रीय सहायता आवश्यकता पर आधारित हो और सिंचाई और ऊर्जा क्षेत्र को अधिक प्राथमिकता और धन दिया जाए । यह महसूस किया गया है कि परियोजनाओं को पूरा करने में केन्द्र सरकार बहुत अधिक समय लगाती है क्योंकि इसमें बहुत सी केन्द्रीय एजेंसियां जुड़ी होती है । केन्द्र में "एक ही निपटान संस्था होनी चाहिए" जिसे राज्य सरकार के प्रस्ताव और केन्द्र की विभिन्न एजेंसियों/विभागों से ऊपर अनुमोदन प्राप्त करना चाहिए ।

इस समय कृषि पण्यों के समर्थन मूल्य समान रूप से निर्धारित किए जाते हैं और उनमें उत्पादकता, बाजार भाव जैसी स्थानीय स्थितियों पर विचार नहीं किया जाता जो हर राज्य में अलग अलग होती है । इस बात को ध्यान में रखना चाहिए । खाद्यान्नों के विभिन्न प्रकारों के लिए समर्थन मूल्य की घोषणा कृषि मौसम शुरू होने से पहले ही की जानी चाहिए । भारतीय खाद्य निगम की भण्डारण क्षमता बढ़ाना भी आवश्यक है क्योंकि पहाड़ी जिले तथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र जैसे कतिपय ऐसे इलाके हैं जो वर्षा के मौसम में या तो अगम्य रहते हैं या इतनी दूर-दराज तक फैले हुए हैं कि जहां खाद्यान्न या अन्य पण्य एक समय में दो या तीन महीने के लिए ही भंडारित होते है । सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए राज्य सरकार की "भण्डारण क्षमता" बढ़ाना भी आवश्यक है ।

शिक्षा

शिक्षा संबंधी वर्तमान व्यवस्था, जिसमें भारत सरकार मुख्य नीतियां निर्धारित करती हैं और शिक्षा के न्यूनतम समान स्तर सुनिश्चित करने की दृष्टि से एक राष्ट्रीय ढांचा निर्दिष्ट करती है तथा उसके ब्यौरे राज्य सरकारों पर छोड़ दिए जाते हैं, पर्याप्त संतोषजनक दिखाई देती है । यह कहना ठीक नहीं है कि इसमें अनावश्यक केन्द्रीयकरण किया गया है । वास्तव में, इसमें केन्द्रीय पहल करने की और आवश्यकता है ।

शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए उत्तर प्रदेश जैसे राज्य—राज्य के विश्व-विद्यालयों और महाविद्यालयों की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुदान के संबंध में उनकी बराबरी करने के लिए पर्याप्त संसाधनों का वहन नहीं कर सकते । इसलिए शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से पर्याप्त सहायता प्राप्त करने में प्रमुखता देने की व्यवस्था की भारी आवश्यकता है ।

निष्कर्ष

मैं जानता हूं कि इस विषय पर कोई भी अभिवेदन न तो व्यापक हो सकता है, न ही पूर्ण । किंतु मुझे आशा है कि इस विषय पर राज्य सरकार की मूल भावनाओं को व्यक्त करने में हम सफल रहे हैं । जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, संरचनात्मक ढांचा और यांत्रिक संबंध अधिक से अधिक समृद्ध और खुशहाल राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में सहायक हो सकते है किंतु ये ढांचे केवल तभी सार्थक होते है जब इन्हें अच्छी भावना, सहविश्वास और देश के उज्ज्वल भविष्य और हमारी भावी पीढ़ी की समृद्धि की मूल भावना से लागू किया जाए और इसकी व्याख्या की जाए । मैं आयोग को पुन: धन्यवाद देता हूं कि उसने हमें यह अवसर प्रदान किया ।

पश्चिम बंगाल सरकार

(क) प्रश्नावली के उत्तर

(ख) मुख्यमंत्री का वक्तव्य

पश्चिम बंगाल

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1 से 1.6 इस प्रश्नमाला के अंतर्गत जिन विषयों पर प्रश्न पूछे गए हैं, उन पर पश्चिम बंगाल सरकार के उत्तर प्रश्नावली के शेष प्रश्नों के जो उत्तर हमने दिए हैं, उसमें आ गए हैं। इस संबंध में कोई प्रश्न नहीं हो सकता कि हमारे जैसे देश में जहां क्षेत्र, जनसंख्या, सांस्कृतिक और भाषायी विविधताएं और सामाजिक और आर्थिक विकास के स्तरों में विषमताएं हैं, एक संवैधानिक व्यवस्था की परम आवश्यकता है जिसमें संघटक राज्यों को संसाधनों और जिम्मेदारियों के अंतरण की व्यापक रूप में व्यवस्था की गई हो। ऐसी व्यवस्था के अभाव में बहुत से तनाव पनपते हैं, जो असंतोष के सूचक हैं और जिनसे हाल के वर्षों में राष्ट्र आक्रांत रहा है। जिस राष्ट्र में ऐसी अपरिमित और जटिल विषमताएं हों, वह केवल उसके लोगों के परस्पर विश्वास के संबंधों के आधार पर ही बना रह सकता है, फल फूल सकता है। यदि देश के कुछ भाग और लोगों के कुछ वर्ग अपेक्षाकृत ज्यादा लाभ प्राप्त करते हैं या अपेक्षाकृत ज्यादा घाटे में रहते हैं, तो इस विश्वास का पोषण कदाचित नहीं हो सकता, कारण, ऊर्जा और संसाधनों का संघ सरकार के हाथों में अत्यधिक केन्द्रीकरण होना और वह रीति है जिसके तहत इन शक्तियों संसाधनों का उपयोग किया जाता है। विश्व में बहुत से संघीय राष्ट्र हैं जिनमें संयुक्त राज्य अमरिका, सोवियत संघ, चीन, कनाडा और आस्ट्रेलिया शामिल हैं, जहां राष्ट्रीय और क्षेत्रीय सरकारों का अपना-अपना "समन्वित और पूर्णत: स्वतंत्र" अधिकार क्षेत्र है जो किसीकार्य संबंधी अव्यवस्था का कारण नहीं बना है। हमारी स्थिति भी इससे भिन्न नहीं होनी चाहिए। देश की अखण्डता और एकता का महत्व सर्वोपरि है किंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति को राज्यों में संसाधनों और जिम्मेदारियों का अधिक अंतरण करके ही सुनिश्चित और पोषित किया जा सकता है न कि इससे विपरीत उपायों से।

1.7 संघ और राज्यों की जिम्मेदारियों के संबंध में संवैधानिक उपबंधों को फिर से तैयार करने की जरूरत है। इस संबंध में हमारे विस्तृत विचार आगे के खण्डों में प्रस्तुत हैं।

1.8 अनुच्छेद 3 में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी राज्य के नाम, क्षेत्र और सीमा में परिवर्तन करने या निर्माण करने के संबंध में निर्णय अनुच्छेद 263 के अधीन गठित अंतर्राज्यीय परिषद् से परामर्श करके ही लिया जाए।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 संविधान में विधायी शक्तियों के बंटवारे की योजना में संघ के प्रति भारी पक्षपात किया गया है। इसका कारण यह है कि शक्तियों का यह बंटवारा भारत सरकार अधिनियम, 1935 को आधार बना कर किया गया है। विधायी शक्तियों के संपूर्णत: पुन: बंटवारे से कम किसी भी तरह वास्तविक संघीय सत्ता की मांग को पूरा नहीं किया जा सकता।

शुरूआत के रूप में समवर्ती सूची समाप्त कर दी जानी चाहिए। अनुच्छेद 254 में यह निहित है कि समवर्ती एक तरह से द्वितीय संघ सूची है, क्योंकि केन्द्र द्वारा बनाए गए कानून और राज्य द्वारा बनाए गए कानून में विरोध होने पर केन्द्रीय कानून ही मान्य होगा। इस प्रकार समवर्ती सूची में आने वाली मदें अन्ततोगत्वा संघ सरकार के क्षेत्राधिकार में ही आती हैं। हमारा विचार है कि सूची को पूर्णत: हटा दिया जाना चाहिए और इस सूची के अंतर्गत आने वाली मदों को राज्यसूची में अंतरित कर दिया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 248 और 249 और संघ सूची की 7, 23, 40, 48, 52, 53, 54, 56, 61 और 97 प्रविष्टियों के उपबंधों का लाभ उठाते हुए संघ सरकार ने राज्यों के लिए आरक्षित क्षेत्रों में भी निरंतर अतिक्रमण किया है। इसका स्पष्ट उदाहरण उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम तथा संघ सूची की प्रविष्टि 52 के अधीन "जनहित में कार्यसाधक" के रूप में कतिपय उद्योगों पर अपना नियंत्रण करके संघ के आधिपत्य का अन्धाधुन्ध विस्तार करना है। यहां तक कि रेजर ब्लेड, माचिस तीली, सिलाई और बुनाई मशीनों और डिब्बाबंद फल तथा फल उत्पादों जैसी मदों को भी केन्द्र के नियंत्रण[1] में रखा गया है।

इसके अलावा, राज्य सूची की प्रविष्टि 24 में उद्योगों के संबंध में प्रावधान है किंतु इसे संघ सूची की प्रविष्टियां 7 और 52 के उपबंधों के अधीन रखा गया है। संघ सूची की प्रविष्टि 7 उन उद्योगों के संबंध में है जिन्हें संसद कानून बनाने के लिए आवश्यक घोषित कर सकती है, और प्रविष्टि 52 उन उद्योगों से संबंधित है जिन पर जनहित में कानून बनाने के लिए संघ को शक्ति प्रदान करती है। इसके अलावा, राज्य सूची की प्रविष्टि 17 जल, जल आपूर्ति, सिंचाई और नहर, जल निकास तथा बांध, जल भन्डारण और जल शक्ति से संबंधित है, जो संघ सूची की प्रविष्टि 56 के उपबंधों के अधीन है। संघसूची की प्रविष्टि 56 उस सीमा तक अंतर्राज्यीय नदी और नदी घाटी के विनियमन और विकास से संबंधित है जिस सीमा तक इन विनियमों और विकासों को संसद कानून बनाकर जनहित में संघ के नियंत्रण में रखे। इसलिए जिस सीमा तक संसद कानून बनाकर घोषणा करती है, राज्य सूची की प्रविष्टि 17, 23 और 24 के संबंध में कानून बनाने की राज्य विधायिका की शक्ति निरस्त होती है। इससे जहां तक इन प्रविष्टियों का संघ सूची की 7, 52, 54 और 56 प्रविष्टियों के साथ परस्पर उलझाव है, राज्यों की प्रच्छन्न हानि है, संघ विधायिका प्रकट रूप में जनहित के नाम पर राज्यों के लिए आरक्षित विषयों तक अपना एकपक्षीय वैधानिक क्षेत्राधिकार कायम कर सकती है। ये प्रच्छन्न हानि कुछ मामलों में वास्तविक हानि के रूप में भी परिणत हुई है।

संसद ने 1951 में उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 (1951 का अधिनियम LXV) पास किया था, जो 8 मई, 1952 से लागू हुआ। इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची में वे उद्योग निदिष्ट हैं जो जनहित में केन्द्र द्वारा नियंत्रित होंगे। बाद में, बहुत से उद्योग इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची में शामिल कर लिए गए हैं यहां तक कि छोटे-छोटे उद्योग भी इसमें आ गए हैं जिससे मूल सांविधिक योजना भी पूर्ण रूप से गड़बड़ा गई है। संविधान में बिना कोई संशोधन किए "उद्योगों" को सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए संघ सूची में अंतरित कर दिया गया है और राज्य विषय से निकाल दिया गया है। यहां तक कि रेजर ब्लेड, कागज, माचिस तीली, घरेलू विद्युत उपकरण,

1. कुछ विधायी विषय केवल राज्यों से संबंधित हैं लेकिन यदि संसद यह घोषणा कर देती है कि "जनहित" में इन विषयों पर केवल संघ सरकार का नियंत्रण जरूरी है तो ऐसे विषयों पर केवल केन्द्रीय व्यवस्थापिका ही कानून बना सकती है। इस प्रकार राज्य सूची में प्रविष्टि 23 संघ के नियंत्रण के अधीन विनियमन और विकास के संबंध में संघ सूची के उपबंधों के तहत खान और खनिज विकास के विनियमन का प्रावधान किया गया है। संघ सूची की प्रविष्टि 54 में उस सीमा तक खान और खनिज विकास के विनियमन का प्रावधान है जिस सीमा तक वे विनियमन और विकास संसद द्वारा कानून बनाकर "जनहित में" संघ के नियंत्रण में घोषित किए जाते हैं।

कास्मेटिक्स, साबुन और अन्य टायलेट सामान, फैब्रिक्स और फुटवियर, प्रेशर कुकर, लालटेन, साइकिल, ब्राइंग्स, टी० वी० सेट, कृषि उपकरण, सिलाई और बुनाई मशीनें, डिब्बाबंद फल और फल उत्पाद जैसी सभी मदें भी केन्द्रीय नियंत्रण में कर दी गई हैं।

इस संदर्भ में अनुच्छेद 200 से 201 की व्याख्या करने में राज्यपाल की भूमिका को भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। चूंकि राज्यपाल संघ मंत्री परिषद का नियुक्ती होता है, इसलिए यदि राज्य सरकार द्वारा बनाया गया कोई कानून संघ सरकार की पसंद का नहीं होता तो राज्यपाल विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने से मना कर सकता है, और ऐसा हुआ है, तथा ऐसे विधेयक को राष्ट्रपति[1] के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है जो कि वर्तमान प्रावधानों के अनुसार अनुच्छेद 74 की व्यवस्थाओं के तहत संघ मंत्री परिषद के निर्णय को मानने के लिए बाध्य होगा। अनुच्छेद 31क भी विलक्षण उदाहरण है जो भूमि सुधार के संबंध में किसी सार्थक विधान बनाने के राज्य विधानमण्डल के अधिकार का निषेध करता है।

2.2 और 2.3 हमारा सुझाव है कि (क) समवर्ती सूची हटा दी जाए और इसके अंतर्गत आने वाली सभी मदों को राज्य सूची में रखा जाए; (ख) अनुच्छेद 248 निकाल दिया जाए और एक सुस्पष्ट उपबंध जोड़ा जाए कि विधान संबंधी अवशिष्ट शक्तियां राज्यों में निहित हैं न कि संघ में; (ग) अनुच्छेद 249, 252 और 254 को निकाल दिया जाए या इनमें संशोधन किया जाए ताकि कोई राज्य अपने को प्राप्त किसी विधायी शक्ति से स्वस्वीकृति के बिना वंचित न होने पाए; (घ) अनुच्छेद 200 और 201 के अपने वर्तमान रूप को समाप्त कर दिया जाए और राज्य सूची के विषय पर राज्य विधानमण्डल द्वारा पास किए गए सभी विधेयकों पर राज्यपाल द्वारा स्वीकृति देना अनिवार्य बना दिया जाए।

2.4 अनुच्छेद 247 और 254 में इस तरह संशोधन किया जाना चाहिए कि राज्य सूची की मदों पर संघ सरकार द्वारा कानून बनाने की शक्ति 6 महीने से अधिक न हो, प्रत्येक प्रस्तावित कानून पहले अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा अनुमोदित होना चाहिए, ऐसे किसी कानून के नवीकरण करने के किसी प्रस्ताव पर इस परिषद द्वारा पूर्व अनुमोदन प्राप्त किया जाना चाहिए।

2.5 यदि किसी तथ्य या कानून को लेकर संघ और राज्य के बीच विवाद है और उसे अनुच्छेद 143 के अधीन राष्ट्रपति के सामने रखा जाना है, तो संविधान में संशोधन करके यह सुनिश्चित कर दिया जाना चाहिए कि इस मामले में निर्णय संघ मंत्री परिषद् की सलाह पर नहीं बल्कि अंतर्राज्यीय परिषद की सलाह पर किया जाए।

भाग III
राज्यपाल की भूमिका

3.1 यह बहुत अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है कि संविधान में राज्यपाल की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था साम्राज्यवादी प्रशासन की देन है। ब्रिटिश शासन के दौरान राज्यपाल अलग अलग प्रांतों के प्रशासन प्रमुख होते थे और वे गवर्नर जनरल को तथा उनके माध्यम से ब्रिटिश सम्राट को रिपोर्ट देते थे। इस प्रकार वे गवर्नर जनरल और विदेशी शासकों की आंख और कान होते थे। स्वतंत्र भारत के बदले हुए परिप्रेक्ष्य में जहां सभी राज्यों में लोकतांत्रिक रूप से चुने हुए प्रशासन हैं, राज्यपाल की स्थिति एकदम असंगत है। अधिकांश राज्यपाल स्वतंत्रता पूर्व की औपनिवेशिक पद्धति के अनुसार कार्य करने की ओर प्रवृत्त रहे हैं जैसे वे केन्द्र के एजेन्ट हैं और केन्द्र के आदेशों का आज्ञाकारी ढंग से पालन करते हैं। यह अनुच्छेद 200 और 356 के अधीन प्राप्त विशेषाधिकारों के कार्यान्वयन में मंत्रीपरिषद के चुनाव या बर्खास्तगी से सिद्ध होता है, और सामान्यतः उन सभी कार्यकलापों से सिद्ध होता है जिन पर राज्यपाल का स्वविवेक काम करता है।

संयुक्त राज्य अमरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे ऐसे बहुत से संघीय संविधान हैं जहां संघ और संघ की इकाइयों के बीच मध्यस्थ का होना आवश्यक नहीं समझा गया है। भारत में भी इसकी कोई जरूरत नहीं होनी चाहिए। इसलिए राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिए और संघ तथा राज्यों के बीच संप्रेषण सरणि बनाए रखने के लिए वैकल्पिक सांस्थानिक व्यवस्था बनाई जानी चाहिए।

यदि पद को समाप्त करना संभव न समझा जाए तो राज्यपाल संघ मंत्री-परिषद् द्वारा नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। राज्यपाल राज्य विधानपालिका द्वारा सुझाए गए तीन नामों में से अंतर्राज्यीय परिषद् की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाने चाहिए।

3.2 यदि पद को बनाए रखा जाता है, तो राज्यपाल को कुछ प्रतीकात्मक कार्य करने तक सीमित रखा जाना चाहिए, उसे केवल राज्य मंत्रीपरिषद् की सलाह के अनुसार ही कार्य करना चाहिए।

3.3 (क), (ख) और (ग) के संदर्भ में रिकार्डों से पता चलता है कि ज्यादातर मामलों में, राज्यपाल ने स्वतंत्रतापूर्वक और वस्तुपरक आधार पर कार्य नहीं किया है वरन् संघ मंत्रीपरिषद्[2] की अभिरूचि के अनुसार कार्य किया है। इसलिए हम अनुच्छेद 356 को पूरी तरह नए से बनाने के पक्ष में हैं ताकि इस अनुच्छेद के अधीन कोई कार्य करने के लिए अंतर्राज्यीय परिषद या उसकी स्थायी समिति का पूर्व अनुमोदन आवश्यक हो। अनुच्छेद 164 में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि चुनाव परिणामों की घोषणा हो जाने के पंद्रह दिन के भीतर या यदि कोई मुख्यमंत्री अपना बहुमत खो चुका हो तो मुख्यमंत्री का चुनाव करने के लिए राज्य विधान सभा का अधिवेशन बुलाया जा सके। यदि अनुच्छेद 174 रखा जाता है तो इसमें यह संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए कि राज्यपाल राज्यमंत्री परिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा।

3.4 और 3.5 जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, कुछ राज्यों के राज्यपाल अनुच्छेद 200 और 201 का प्रयोग संघ मंत्रीपरिषद् के हितों को साधने के लिए कर चुके हैं। इसका पश्चिम बंगाल का ताजा उदाहरण, जो पहले भी उद्धृत किया गया है, कलकत्ता विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1984 को राष्ट्रपति* के विचारार्थ रोके रखने का राज्यपाल का निर्णय है।

---

[1] इसका सबसे ताजा और ज्वलंत उदाहरण कलकत्ता विश्वविद्यालय (संशोधन) विधेयक, 1984 को अनुच्छेद 254 के उपबंधों के प्रतिकूल न होते हुए भी पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा स्वीकृति प्रदान न करना है।

[2]. ताजा उदाहरण जम्मू व काश्मीर में डॉ० फारूख अब्दुल्ला के मुख्यमंत्रित्व वाली मंत्रीपरिषद् की बर्खास्तगी है।

*1950-83 के दौरान पश्चिम बंगाल विधानसभा द्वारा पारित किए गए निम्नलिखित विधेयक राष्ट्रपति द्वारा रोक दिए गए हैं:

1. मजदूर संघ (पश्चिम बंगाल संशोधन) विधेयक, 1969.
2. श्री रामकृष्ण शारदा विद्यामहापीठ (संशोधन) विधेयक, 1981.
3. नेताजी नगर कालेज (प्रबंध हाथ में लेना) (संशोधन) विधेयक, 1981.
4. बंगाबसी ग्रुप आफ कालेजेज (प्रबंध हाथ में लेना) (संशोधन) विधेयक, 1981.
5. बिरला विज्ञान और शिक्षा कालेज (प्रबंध हाथ में लेना) (संशोधन) विधेयक, 1981.
6. द इण्डियन कालेज आफ आर्ट्स एण्ड ड्राफ्ट्समैनशिप (प्रबंध हाथ में लेना) (संशोधन) विधेयक, 1981.
7. श्री रामकृष्ण शारदा विद्यामहापीठ अधिग्रहण विधेयक, 1981.
8. द बंगाबसी ग्रुप आफ कालिजेज अधिग्रहण विधेयक, 1981.
9. नेताजी नगर कालिज अधिग्रहण विधेयक, 1981.
10. बिरला विज्ञान और शिक्षा कालेज अधिग्रहण विधेयक, 1981.
11. द इण्डियन कालेज आफ आर्ट्स एण्ड ड्राफ्ट्समैनशिप अधिग्रहण विधेयक, 1981.

1981 से 1983 के दौरान पास किए निम्नलिखित बिलों पर राष्ट्रपति ने अभी तक अपनी स्वीकृति नहीं दी है :—

1. पश्चिम बंगाल मजदूर, सिडल, लोडर, गोदामसैन और अन्य कामगार (रोजगार और कल्याण विनियम) विधेयक, 1981.
2. औद्योगिक विवाद (पश्चिम बंगाल संशोधन) विधेयक, 1981.
3. भूमि अधिग्रहण (पश्चिम बंगाल संशोधन) विधेयक, 1981.
4. पश्चिम बंगाल भूमि सुधार (संशोधन) विधेयक, 1981.
5. पश्चिम बंगाल मोटर वाहन कर (संशोधन) विधेयक, 1983.
6. पश्चिम बंगाल प्राथमिक शिक्षा (संशोधन) विधेयक, 1983.
7. मजदूर संघ (पश्चिम बंगाल) संशोधन विधेयक, 1983.

इसलिए ये दोनों अनुच्छेद हटा दिए जाने चाहिए । यदि किन्हीं कारणों से इनका हटाना संभव न हो तो संविधान में संशोधन करके यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि राज्यपाल अपने स्वविवेक से नहीं अपितु राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह से ही कार्य करेगा । संशोधन द्वारा यह व्यवस्था भी की जानी चाहिए कि अनुच्छेद 200 के अधीन स्वविवेक से कार्य करने के लिए एक महीने की सीमा अवधि और अनुच्छेद 201 के अधीन राष्ट्रपति को अपने को कार्य के लिए तैयार करने हेतु 6 महीने की सीमा निर्धारित की जानी चाहिए । इसके अंतर्गत यह व्यवस्था भी की जानी चाहिए कि यदि अनुच्छेद 201 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा लौटाए गए किसी विधेयक को दो बार पारित कर दिया जाता है तो यह स्वतः कानून का रूप ले लेगा ।

3.6 अनेक उदाहरणों में, राज्यपालों ने अपने कार्यों से लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई विधान सभा और राज्य सरकार की भावनाओं और उद्देश्यों में बाधा पहुंचाई है । इस पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकता कि इन उदाहरणों में उन्होंने निष्पक्ष कार्य नहीं किया ।

3.7 कार्यकाल का विषय संगत नहीं है । महत्वपूर्ण यह है कि यदि राज्यपाल के पद पर बनाए रखने का निर्णय किया जाता है तो उसकी नियुक्ति, जैसा कि पहले सुझाया गया है, राज्य विधान सभा द्वारा सुझाए गए नामों के पेनल से अंतर्राज्यीय परिषद की सलाह से राष्ट्रपति द्वारा की जानी चाहिए । उसको हटाने की प्रक्रिया भी वहीं हो सकती है जैसी कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में निर्धारित की गई है । कोई भी व्यक्ति जो किसी राज्य में राज्यपाल के पद पर रह चुका है, न तो संघ सरकार या किसी राज्य सरकार में किसी पद को संभालेगा और न ही किसी निजी नियुक्ति को स्वीकार करेगा । उस व्यक्ति को पेंशन देने का प्रावधान किया जाना चाहिए कि जो पूर्ण कार्यकाल तक राज्य के राज्यपाल के पद पर रह चुका है ।

3.8 सुझाए गए विशेषाधिकार राज्यपाल को नहीं सौंपे जा सकते ।[1]

3.9 हम यह नहीं सोचते कि हमारे लिए जर्मन संघीय गणराज्य में अपनाई गई प्रक्रिया उपयुक्त है । यदि राज्यपाल की नियुक्ति और मुख्यमंत्री का चुनाव ऊपर बताई गई पद्धति के अनुसार किया जाता है तो यह प्रक्रिया अपनाना आवश्यक नहीं होगा ।

3.10 यदि राज्यपाल का पद बनाए रखा जाता है, तो उसके मार्गनिर्देश अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा निर्धारित किए जाने चाहिए जो राष्ट्रपति के नाम के उसको जारी किए जाने चाहिए । संघ सरकार द्वारा उनकी स्वीकृति का कोई प्रश्न नहीं होना चाहिए, हां, इन्हें संसद में रखा जा सकता है ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1, 4.2 और 4.3 अनुच्छेद 256, 257 और 365 संघीय अस्तित्व की आत्मा के प्रतिकूल हैं । उनका आशय राज्यों को संघ सरकार का प्रशासनिक अभिकर्ता बनाने तक सीमित है । यह स्थिति हम को पूरी तरह से अस्वीकार्य है । वास्तव में अनुच्छेद 257 के अनुसार राज्य सरकारों को 1968 में ये निर्देश जारी किये गये थे कि संघ सरकार के कर्मचारियों द्वारा घोषित की गई हड़ताल पर प्रतिबंध लगा दिया जाये । अन्य ऐसे भी उदाहरण हैं जब संघ सरकार ने अनुच्छेद 256 के अंतर्गत निहितार्थ रूप से राज्य सरकारों पर यह दबाव डाला कि वे केन्द्रीय कानून को लागू करें जो बिना मुकदमे के नजरबंदी का अनुसमर्थन करता है । ये तीन अनुच्छेद स्वतः संशोधित हैं । यदि राज्यों को अनुच्छेद 256 या 257 के अंतर्गत कोई निर्देश जारी किया जाता है, तो वह अंतर्राष्ट्रीय परिषद के केवल परामर्श और उसकी सहमति से ही जारी किया जाना चाहिए, किसी स्थिति में अनुच्छेद 365 के अंतर्गत भी तभी की जानी चाहिए जब अंतर्राज्यीय परिषद ने उसका अनुमोदन कर दिया हो ।

4.4 और 4.5 संघ सरकार ने अपने पक्षपातपूर्ण प्रयोजनों को पूरा करने के लिये अनुच्छेद 356 का स्पष्टतः दुरुपयोग किया है । 356 और 357 इन दोनों अनुच्छेदों को इस प्रकार संशोधित किया जाये ताकि भविष्य में इस प्रकार का दुरुपयोग न हो सके । संशोधित उपबंध में यह उल्लेख होना चाहिए कि क्या किसी राज्य में सांविधानिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है इस संबंध में अन्तर्राज्यीय परिषद के परामर्श से ही निर्णय किया जाना चाहिए, पुनः चुनाव कराये जाने चाहिये और छः महीने के भीतर नयी सरकार बनाई जानी चाहिये । सामान्य जीवन के अव्यवस्थित होने के कारण इस अवधि में चुनाव न कराये जाने की स्थिति में राष्ट्रपति को एक बार अन्तर्राज्यीय परिषद से विचार-विमर्श करना चाहिये और उसकी राय संसद के समक्ष प्रस्तुत करनी चाहिये ।

4.6 वर्तमान व्यवस्थाएं लागू रहेंगी ।

4.7 अन्तर्राज्यीय परिषद् को इन सभी निकायों की कार्य प्रणाली की समीक्षा करनी चाहिये और उनके जारी रहने के औचित्य के बारे में निर्णय करना चाहिये । यदि उनमें से किसी एक या उन सभी को जारी रखने का निर्णय किए जाए तो उनके कम से कम आधे सदस्य राज्य सरकारों द्वारा मनोनीत किए जाएंगे ।

4.8 अखिल भारतीय सेवाओं के साथ मिश्रित प्रकार का अनुभव है । इन सेवाओं में राज्यों में सेवारत अधिकारियों के होने के कुछ लाभ हैं जिनका कि व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण होता है । साथ ही, इस तथ्य से कि अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी सामान्यतः स्वयं को संघ सरकार के अधीन मानते हैं, जटिलताएं उत्पन्न हुई हैं । हमारा यह सुझाव है कि संविधान में इस प्रकार संशोधन किया जाये कि यदि कोई राज्य अखिल भारतीय सेवाओं का प्रयोग न करना चाहे, तो उसे इस विकल्प का प्रयोग करने का विशेषाधिकार दिया जाये । इसके अतिरिक्त, यह भी स्पष्ट किया जाये कि जब अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिक राज्यों में काम करते है, तो वे राज्य सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण के अधीन होंगे । यदि किसी राज्य सरकार द्वारा किसी अधिकारी के संबंध में की गई अनुशासनिक कार्रवाई के विरुद्ध कोई अपील दायर की जाती है, तो इस संबंध में कार्रवाई इस प्रयोजन के लिये स्थापित किये गये प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में की जानी चाहिए । न्यायाधिकरणों को राज्य और संघ सरकार दोनों से स्वतन्त्र रखा जाना चाहिए ।

4.9 अनुच्छेद 355 के उपबंधों का प्रयोग किसी राज्य में केन्द्रीय पुलिस और सशस्त्र बलों को राज्य सरकार की पूर्ण सहमति के बिना अवस्थित करने के लिए नहीं किया जा सकता । कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है और इस मामले में राज्यों के विशेषाधिकार का पूरा सम्मान किया जाना चाहिये ।

निश्चय ही, कुछ ऐसे अवसर हो सकते हैं जब केन्द्रीय बलों का प्रयोग आवश्यक हो सकता है । फिर भी, ऐसे सभी मामले में संघ सरकार स्वप्रेरणा से कोई निर्णय नहीं ले सकती बल्कि उसे संबंधित राज्य के सरकार की इच्छानुसार कार्य करना चाहिये । इसी प्रकार, विक्षुब्ध क्षेत्र अधिनियम जैसे कानूनों को किसी भी राज्य में, उस राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन के बिना लागू नहीं किया जाना चाहिये ।

4.10 हमें सहवर्ती सूची का उन्मूलन करना है, अतः समाचार पत्रों, पुस्तकों और मुद्रणालयों पर अधिकारिता राज्यों को हस्तांतरित कर दी जानी चाहिए । केन्द्र द्वारा रेडियो और दूरदर्शन का दुरुपयोग बढ़ रहा है ऐसी स्थिति को चलते रहने नहीं दिया जा सकता । भारत जैसे विशाल देश के लिये जिसमें विविध और जटिल समस्याएं हैं । यह आवश्यक है कि राज्य सरकारों को रेडियो और दूरदर्शन पर समान अधिकारिता दी जाये और तदनुसार संविधान को संशोधित किया जाये ।

4.11 अब तक, क्षेत्रीय परिषदों के गठन का कभी-कभी प्रयोग किया गया है । जिन प्रयोजनों के लिये वे अपेक्षित हैं, उन प्रयोजनों को पूरा करने के लिए परिषदों की बैठक नियमित अंतरालों पर होनी चाहिए और उनमें राज्यों द्वारा [संयुक्त रूप] से गठित स्थायी सचिवालय होना चाहिए

---

[1] 1967 में, पश्चिम बंगाल में पहली संयुक्त मोर्चा सरकार इस निरर्थक दलील पर मनमाने ढंग से बर्खास्त कर दी थी कि मुख्य मंत्री ने राज्यपाल द्वारा सुझाई गई तारीख को विधान सभा का अधिवेशन नहीं बुलाया है, विधान सभा का अधिवेशन बुलाने का विशेषाधिकार निश्चित रूप से मुख्य मंत्री के पास रहना चाहिए ।]

4.12 अनुच्छेद 263 को यह सुनिश्चित करने के लिये पुनर्संक्षित किया जाये कि अन्तर्राज्यीय परिषद् अनिवार्य बना दी गयी है । परिषद् में प्रधान मंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्री सदस्यों के रूप में होने चाहिये और यह केन्द्र राज्य संबंधों के ढांचे का मूलभूत तत्व होना चाहिए । प्रधान मंत्री इसके अध्यक्ष होने चाहिये किन्तु परिषद् का एक उपाध्यक्ष भी होना चाहिये, इस दूसरे पद पर प्रतिवर्ष राज्यों के मुख्यमंत्रियों को बारी-बारी से नियुक्त किया जाना चाहिये। परिषद् की वर्ष में कम से कम चार बैठकें होनी चाहिये और प्रधान मंत्री को उपाध्यक्ष के परामर्श से उसका कार्यक्रम तय करना चाहिये, उन विशेष स्थितियों पर विचार-विमर्श करने के लिये आपातकालीन बैठकों की व्यवस्था होनी चाहिये जहां अनुच्छेद 356 या अनुच्छेद 365 का आह्वान अपेक्षित हो । यदि आपातकालीन बैठकें व्यवहार्य न समझी जायें तो ऐसी स्थिति में परिषद् की स्थायी समिति अपेक्षित समझी जाए । परिषद् का एक स्थायी सचिवालय होना चाहिये जिसकी वित्त व्यवस्था संघ और राज्यों द्वारा संयुक्त रूप से की जाये ।

अन्तर्राज्यीय परिषद के अन्य कार्यों के साथ निम्नलिखित कार्य होंगे,

(क) किसी राज्य की सीमाओं में हस्तक्षेप करने के किन्हीं प्रस्तावों पर अपनी राय देना ।

(ख) राज्य विधान मंडलों द्वारा पास किये और राष्ट्रपति को विचारार्थ भेजे गये बिलों पर अपनी राय देना, यदि अनुच्छेद 200 और 201 अपने वर्तमान स्वरूप में बने रहें ।

(ग) तामील करने वाले राज्यपाल को हटाने के प्रस्ताव पर विचार करना ।

(घ) यह निर्णय करना कि क्या अनुच्छेद 256 और अनुच्छेद 257 के अंतर्गत निर्देश जारी किये जायें और अनुच्छेद 365 के अंतर्गत इस निष्कर्ष पर पहुंचना कि क्या ऐसी स्थितियां उत्पन्न होने वाली हैं ।

(ङ) यह निर्णय करना कि क्या अनुच्छेद 356 के अंतर्गत किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाना चाहिए ।

(च) जिनका राज्य के राज्यपाल द्वारा पालन किए जाने वाले मार्गदर्शक नियम बनाना ।

(छ) संघ और राज्यों के बीच बाद में उल्लिखित साधनों के वितरण का पर्यवेक्षण और परिवीक्षण करने के लिये स्थायी एजेंसी के कार्य और उत्तरदायित्व का निर्धारिण करना ।

(ज) अधिनियम 143 से संबंधित प्रश्नों और विवादों पर राष्ट्रपति को परामर्श देना ।

प्रश्नावली के प्रत्युत्तर में उपवर्णित संघ और राज्य के बीच निर्धारित किए गए प्रशासनिक संबंधों, हमारे विशिष्ट विचारों के अतिरिक्त हम एक मुख्य परिवर्तन का सुझाव देते हैं । यह राज्य परिषद् के संघटन के संबंध में है । राज्य परिषद् संघ के स्तर पर, संघटक राज्यों के विचारों और हितों पर विचार करने के लिए अभीष्ट थी । इसके वर्तमान संघटन ने उन आशाओं और विश्वासों को पूरा किया है । हालांकि राज्य परिषद के वर्तमान कार्यों और उत्तरदायित्वों में बाधा डालना आवश्यक नहीं है फिर भी उसके वर्तमान संघटन को इस प्रकार परिवर्तित किया जाए, जिससे छोटे या बड़े सभी राज्यों का समान प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके । यह सिद्धांत, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका के संविधानों में प्रतिष्ठापित किया गया है, और इसने राष्ट्रीय संसजन और अखण्डता में अत्यधिक सहयोग दिया है । हमारे संविधान के अनुच्छेद 80 को इस प्रकार संशोधित किया जायें कि हम भी देश की संसद के कम से कम एक सदन में, राज्यों के समान प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को स्वीकृत एवं प्रतिपादित कराके उसका लाभ उठा सकें ।

विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह भी आवश्यक है कि, संविधान के अनुच्छेद 370 के अनुसार जम्मू-कश्मीर को दिये गये विशेष दर्जे में हस्तक्षेप न किया जाए ।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 कानूनी न्यागमनों, अर्थात वित्त आयोग के पंचाटों के अनुसार दिये गये राज्यों के न्यागमनों में संघ से राज्यों को किए गए कुल अंतरणों का केवल एक भाग ही समाविष्ट है । 1951 से अब तक योजना और विवेकात्मक अन्तरण कुल अंतरण का लगभग 60 प्रतिशत है (सारणी–1)। योजनागत अंतरण भी वास्तव में विवेकात्मक अंतरण ही हैं क्योंकि योजना आयोग अब सभी प्रयोजनों के लिये संघ सरकार द्वारा निर्धारित किए गए निर्देशों के अनुसार कार्य करता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वत: और हस्तक्षेप से मुक्त व्यवस्था से संबंधित संजोई गई आशा फलदायी नहीं हुई है । सामान्यत: राज्य सरकारों के राजस्व के सहायता अनुदानों को क्रमिक वित्त आयोगों की सिफारिशों के अनुसार तरजीह दी जाती है । चूंकि, स्वयं वित्त आयोग को संघ सरकार को परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है, इसलिये इस मूल प्रश्न को उठाने की अनुमति होनी चाहिए कि क्या सांविधिक अंतरणों को भी सभी परिस्थितियों में स्पष्टत: निर्धारित हुआ माना जा सकता है । इसके अतिरिक्त, केवल संघ सरकार की कर-प्राप्तियों पर विचार करने के लिए यह अवास्तविक है जब संघ और राज्यों के बीच साधनों के वितरण के पहलुओं पर चर्चा करते समय सार्वजनिक क्षेत्र में उपलब्ध कुछ साधनों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । एक दूसरा समान रूप से महत्वपूर्ण विचार यह है कि, राज्यों के हितों को पर्याप्त रूप से सुरक्षण तभी हो सकेगा जब निष्पक्ष रूप से निर्धारित साधनों के अंतरणों के संबंध में सुधारी हुई व्यवस्थओं के साथ-साथ उनके वित्तीय क्रियाकलाप के क्षेत्र को परिवर्धित करने के लिए भी समान ध्यान दिया जाये । इसमें वित्तीय शक्तियों के वितरण का पुनर्संरेखाण भी विवक्षित है जैसा कि संविधान में राज्यों के पक्ष में निरूपित किया गया है ।

दूसरा मूल प्रश्न जो वित्त आयोग की सिफारिशों की पवित्रता से भी संबंधित है । यह है कि क्या संघ सरकार को यह अधिकार है कि वह किसी वित्तीय वर्ष विशेष के लिए राज्यों को, आयोग द्वारा संस्तुत, देय राशियों से मना कर दे ।

सारणी–1

राज्यों को सकल केंद्रीय अंतरण 1951-54

(करोड़ रुपयों में)

अवधि	सांविधि अंतरण	योजनागत अंतरण	विवेकाधीन अंतरण	जोड़
1951–56	447(31.2)	350(24.5)	634(44.3)	1,431
1956–61	918(32.0)	1,058(36.9)	892(31.1)	2,868
1961–66	1,590(28.4)	2,515(44.9)	1,495(26.7)	5,600
1966–69	1,782(33.3)	1,767(33.1)	1,798(33.6)	5,347
1969–74	5,421(35.9)	3,535(23.4)	6,145(40.7)	15,101
1974–79	10,873(43.0)	7,722(30.5)	6,683(26.0)	25,278
1979–84	22,757(43.1)	15,808(30.0)	14,203(26.0)	52,768
1951–84	43,788(40.4)	32,755(30.2)	31,850(29.4)	108,393

कोष्ठकों में दिये गये आंकड़े कुल के प्रतिशत के द्योतक हैं ।

स्रोत : सातवें वित्त आयोग (1978) की रिपोर्ट और भारतीय रिजर्व बैंक का बुलेटिन, विविध अंक ।

5.2 प्रशासनिक सुधार समिति के अध्ययन दल के अभिमत आज तक प्रासंगिक रहे हैं। जैसा कि सारणी-2 से यह देखा जा सकता है, वास्तव में पिछले कुछ वर्षों से राज्यों की संघ पर निर्भरता बढ़ी है और यदि स्थिति ऐसी ही बनी रही तो भविष्य में यह निर्भरता और भी अधिक बढ़ेगी। विद्यमान व्यवस्थाओं में यह स्वाभाविक है कि संघ की वित्तीय और अन्य साधन बढ़ाने वाली शक्तियों से उसके साधन बढ़ेंगे जो कि उसकी वास्तविक आवश्यकताओं से कहीं अधिक हैं। इसके अतिरिक्त, संघ सरकार ने संविधान के अनुसार राज्यों को दिए गए कर लगाने और कर-हिस्सेदारी के विशेषाधिकारों का अनेक बार अतिक्रमण किया है। उदाहरण के लिये आयकर पर अधिभार आरोपित करने की युक्ति और निगम कर की पुन: परिभाषा ने राज्यों को राजस्व के इन दो अति महत्वपूर्ण स्त्रोतों के विधि-सम्मत हिस्से से वंचित कर दिया है। इसलिये, दुहरा समाधान होना चाहिये। पहला, राज्यों की वित्तीय शक्तियों को परिवर्धित किया जाना चाहिए और संविधान के लागू होने के समय से इन शक्तियों के जो भी अतिक्रमण हुए हैं उनको प्रभावहीन किया जाना चाहिए। दूसरा, केन्द्र के पास जो कुल साधन हैं जिसमें निर्देशित कीमतों में वृद्धि के द्वारा जुटाए गए संसाधन भी शामिल हैं, उनको सामान्य पूल समझा जाना चाहिए, और राज्य इस पूल में हिस्से के हकदार होने चाहिए। इस पूल में संघ सरकार द्वारा प्रारंभ किये गये विभिन्न उधार कार्यक्रमों से होने वाली प्राप्तियां शामिल होनी चाहिये। साथ ही, अलग व्यवस्था होनी चाहिये जिसके द्वारा राज्यों को देश की आर्थिक नीति को स्वरूप देने में सक्रिय रूप से सहबद्ध किया जा सके।

सारणी-2

राज्यों की संघ पर निर्भरता

कुल केन्द्रीय अंतरण राज्यों द्वारा	कुल संवितरणों के प्रतिशत के रूप में
1951-56	37.8
1956-61	39.8
1961-66	45.7
1966-69	45.2
1969-74	47.4
1974-79	42.1
1979-84	41.6

1. राजस्व और पूंजीगत स्त्रोतों पर अंतरण।

2. राजस्व और पूंजीगत स्त्रोतों पर संवितरण।

स्त्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक का बुलेटिन विभिन्न अंक।

5.3 यह तर्क देना कि राज्यों को अतिरिक्त वित्तीय शक्तियां देने से अन्तर्राज्यीय विषमताएं बढ़ जायेंगी, कोई सहज समर्थनीय प्रतिज्ञाप्ति नहीं है। विद्यमान व्यवस्था के अंतर्गत भी, अन्तर्राज्यीय विषमताएं, तीस विषम वर्षों पूर्व की स्थिति के मुकाबले कम हुई नहीं कही जा सकती। संघ से राज्यों को संसाधनों के अंतरण के पैटर्न्स से हमेशा सामाजिक और आर्थिक न्याय के उद्देश्यों की पुष्टि नहीं हुई है। यदि हम तथाकथित विशेष प्रकार के राज्यों को छोड़ दें, तो 1956 से शताब्दी के 25 वर्षों में केन्द्र से सकल अंतरणों में सामान्यत: कम आय वाले राज्यों के मुकाबले अपेक्षाकृत संपन्न राज्यों का समर्थन किया गया है। (सारणी 3)।

अत: ऐसा नहीं है कि संघ सरकार का सरक्षण आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों के वित्तीय हितों को सुनिश्चित करता है। एक बार यह स्वीकार किया जावे कि न्यागमन में सार्वजनिक क्षेत्र के सभी संसाधनों को सम्मिलित किया जावे। राज्यों के बीच परस्पर वितरण के समय, समस्याओं का सामना कर रहे कमजोर राज्यों को उचित महत्व की सुनिश्चित करने के लिये मानदण्ड अपनाये जा सकते हैं।

सारणी 3

केंद्र से सकल बजटीय अंतरण 1956-81

राज्य	प्रतिव्यक्ति रुपये				सूचक अंक			
	सांविधिक	योजना मत	विवेकाधीन	जोड़	सांविधिक	योजना मत	विवेकाधीन	जोड़
1	2	3	4	5	6	7	8	9
(क) उच्च आय								
पंजाब . . .	405	443	604	1,452	78	101	159	109
हरियाणा . . .	389	498	490	1,377	75	113	129	103
महाराष्ट्र . . .	461	291	397	1,149	89	66	104	86
गुजरात . . .	466	355	398	1,219	90	81	105	91
पश्चिम बंगाल . .	524	314	486	1,324	102	71	126	99
ग्रुप क . . .	471	338	449	1,258	91	77	118	94
(ख) मध्य आय								
तमिलनाडु . . .	446	350	274	1,070	86	80	72	80
केरल . . .	611	445	335	1,391	118	101	88	104
उड़ीसा . . .	708	536	476	1,720	137	122	125	129
असम . . .	742	675	659	2,076	144	153	173	155
कर्नाटक . .	465	374	384	1,223	90	85	101	98
आन्ध्र प्रदेश . . .	504	427	381	1,312	98	97	100	98
ग्रुप ख . . .	542	436	386	1,364	105	99	102	102

सारणी 3—जारी

1	2	3	4	5	6	7	8	9
(ग) निम्न आय								
उत्तर प्रदेश	446	390	264	1,100	86	89	69	82
राजस्थान	553	461	734	1,738	107	103	193	130
मध्य प्रदेश	428	434	248	1,110	93	99	65	83
बिहार	456	363	318	1,137	88	83	84	85
ग्रुप ग	459	398	332	1,189	89	90	87	89
(घ) विशेष वर्ग								
हिमाचल प्रदेश	1,102	1,405	498	3,005	214	319	131	225
जम्मू कश्मीर	1,304	2,058	1,466	4,828	253	468	386	361
त्रिपुरा	1,519	1,125	381	3,025	294	256	100	226
मणिपुर	2,302	1,331	925	4,558	446	303	243	341
नागालैंड	6,080	3,896	2,758	12,734	1,178	885	726	963
मेघालय	1,702	1,764	845	4,311	330	401	222	323
सिक्किम	722	3,271	1,071	5,064	140	743	282	379
ग्रुप घ	1,701	1,902	1,086	4,689	338	432	286	351
सभी राज्य	516	440	380	1,336	100	100	100	100

स्रोत : के० के० जार्ज, भारत में केन्द्र–राज्य वित्तीय प्रवाह और अंतर्राज्यीय असमानता, कोचिन विश्वविद्यालय (मिमेओ), 1982

5.4 इस प्रश्न के द्वारा सुझाये गये विकल्प न तो सर्वांगीण हैं और न ही एक दूसरे के व्यावर्तक। तथ्यत: यह भी सही नहीं है कि हाल के कुछ वर्षों में संघ सरकार के लेखों में भारी घाटे अधिकांशत: राज्यों को किये गये न्यागमनों के कारण हुए हैं। इन न्यागमनों से कुल घाटे का अल्पांश घाटा हुआ है (सारणी 4)। चाहे किसी भी स्तर पर उपलब्ध हों, खर्च पर नियंत्रण रखना और उसका प्रभावी और दक्षता से प्रयोग सुनिश्चित करना मुख्य बात है। वित्तीयन समग्र राष्ट्रीय प्रतिफलों के आधार पर ही किया जाना चाहिए न कि इसलिये संघ या राज्यों में से कोई कठिन आर्थिक संकट में है। यदि पूरी स्थिति इस घाटा वित्तीयन की अनुमति न दे तो संघ सरकार को उन उपायों को छोड़कर अन्य तरीकों से अतिरिक्त संसाधन बढ़ाने चाहिए।

सारणी 4

केन्द्र से राज्यों को कुल संसाधनों का अंतरण संघ के कुल संसाधनों की प्रतिशतता के रूप में दिया गया है*

1951–56	36.4
1956–61	32.3
1961–66	31.3
1966–69	31.4
1969–74	36.4
1974–79	30.7
1979–84	32.6

*घाटा वित्तीयन शामिल है।

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक का बुलेटिन, विभिन्न अंक।

राज्यों के बीच परस्पर वितरण को निर्धारित करने के लिये वस्तुपरक मानदंडों को अपनाते समय सबसे अधिक जोर अपेक्षाकृत गरीब और आर्थिक रूप से असुदृढ़ राज्यों के हितों के संरक्षण पर देना चाहिए। प्रतिव्यक्ति आय के सापेक्ष स्तरों के पहलू के अतिरिक्त, गरीबी के प्रभाव, असाक्षरता, औद्योगिक पिछड़ापन और रोजगार की स्थिति आदि को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये।

5.5 जैसा कि पहले बताया जा चुका है, संघ सरकार से राज्यों को वित्तीय संसाधनों के न्यागमन का पैटर्न बिल्कुल न्यायसंगत नहीं है। संघ सरकार पर किसी प्रकार के प्रबोधन से इन मामलों में सुधार नहीं आ सकता जब तक कि संविधान में स्पष्ट निदेश न लिखा जाए। ये निर्देश केन्द्र के पास उपलब्ध कुल संसाधनों के न्यागमन की योजना का अभिन्न अंग होना चाहिये और अन्तर्राज्यीय परिषद् द्वारा नियुक्त किसी निकाय द्वारा संचालित होने चाहिये।

राज्य सरकारों द्वारा संसाधन बढ़ाने के प्रयासों और आर्थिक प्रबंध के परिवीक्षण का काम राज्य-विधान मंडलों और संबंधित राज्यों की अन्य एजेन्सियों पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

यदि एक बार न्यागमन को तथा कथित राजस्व और पूंजीगत अंतर से पृथक कर दिया जाये उसे वस्तुगत मानदण्डों द्वारा शासित किया जाए और साथ ही राज्यों की कराधान और उधार लेने की शक्तियों का प्रचुर विस्तार किया जाए तो राज्य स्वयं पर निर्भर रहेंगे और अपने खर्च को अपने पास उपलब्ध संसाधनों के अनुसार समायोजित करने को बाध्य होंगे। वित्तीय उत्तरदायित्व के संवर्धन में यह अपने आप में सबसे बड़ा प्रोत्साहन होगा।

5.6. यदि संसाधनों के बंटवारे के लिये समानता के सिद्धांतों को औपचारिक रूप से मानदण्डों में आधारित कर दिया जाये तो किसी विशेष निधि की मांग नहीं की जायगी। यह निर्णायक मुद्दा राज्यों के लिए पर्याप्त संसाधन सुनिश्चित करने के लिए है। विगत: में, संघ सरकार की प्रवृत्ति, राज्य सरकारों के संसाधन बढ़ाने वाले क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने की रही है। संविधान में संशोधन करके ऐसे सभी हस्तक्षेपों को अभिशून्य किया जाना चाहिये।

5.7. यह सुझाव देने का मजबूत आधार है कि अनेक वित्तीय मदें, जो अनुच्छेद 268 और 269 के अंतर्गत आती हैं, की अधिकारिता राज्य सरकारों को हस्तांतरित कर दी जानी चाहिये। इससे निर्दिष्ट सिद्धांतों में से कोई भी प्रभावित नहीं होगा। संघ सरकार वर्तमान में इन अनुच्छेदों के अंतर्गत अपने द्वारा प्रयोग किये जाने वाले विशेषाधिकारों के कारगर ढंग से परिनियोजन में अनिच्छा प्रदर्शित करे तो ऐसा हस्तांतरण सार्वजनिक क्षेत्र में संसाधनों के कुल प्रवाह को बढ़ायेगा।

5.8. राज्यों के कर बढ़ाने के किसी भी विशेषाधिकार को अस्वीकृत करते हुए सभी कराधान शक्तियों के सम्पूर्ण केन्द्रीकरण को उचित ठहराने के लिये प्रस्तुत किया तर्क आसानी से अनुरंजित किया जा सकता है। विशेष रूप से विक्रय कराधान का उदाहरण लिया जाये, जो कि राज्य सूची में है परन्तु संघ सरकार अतिरिक्त उत्पाद शुल्क की युक्ति के द्वारा इससे संघ सूची में अंतरित करने के लिये अत्याधिक प्रयत्नशील है। भारतीय कर ढांचे के वस्तुपरक विश्लेषण के द्वारा ऐसी कोई स्पष्ट स्थिति स्थापित नहीं हो पाई है कि राज्यों द्वारा विक्रय कराधान से लेशमात्र से भी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो। भारत जैसे विशाल देश के लिए कर शक्तियों के यथेष्ट विकेन्द्रीकरण की वकालत करना अविवेक संगत नहीं होगा, जिससे कि करों के अधिरोपण और उनके प्रशासन में स्थानीय दशाओं पर उचित ध्यान दिया जा सके। संयुक्त राज्य अमरीका में आय पर कराधान भी संघीय सरकार का विशेषाधिकार है जिसमें राज्य सहभागी

है। हमारे संविधान में किया गया वित्तीय शक्तियों का वितरण भारत सरकार अधिनियम 1935 में की गई व्यवस्थाओं से अत्यधिक प्रभावित था जो कि वर्तमान परिस्थितियों से पूरी तरह मेल नहीं खाता। इस व्यवस्था के अंतर्गत कर-संग्रहण और क्षेत्रीय विविधताओं के पहलुओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

5.9. यह काफी अच्छा सुझाव है कि वित्तीय अंतरणों को योजनागत और योजनेतर अंतरणों में किसी प्रकार का प्रभेद करने से दूर रखा जाना चाहिए। व्यवहार में, यह प्रभेद प्रायः विवेकाधीन होता है। राज्यों को अंतरण का निर्णय कुल उपलब्ध संसाधनों के मूल्यांकन के आधार पर किया जाना चाहिए और अन्तर्राज्यीय समानता सुनिश्चित करने के लिए राज्यों के बीच बंटवारा निर्धारित किये गये समुचित माप दण्डों के अनुसार किया जाना चाहिए। इसलिये केवल यही उचित है कि सभी प्रकार के वित्तीय अंतरणों का निर्णय और उनकी अवधिक समीक्षा केवल एक और उसी निकाय द्वारा की जाये। यदि योजना आयोग इस प्रकार गठित होता कि वह राज्यों के विश्वास को अनुप्रमाणित करता तो यह जिम्मेदारी उसको सौंपी जा सकती थी। यदि आयोग की नियुक्ति वर्तमान तरीके से ही होती रही है तो वित्तीय अंतरणों के संबंध में निर्णय करने का काम किसी स्वतंत्र निकाय को सौंप दिया जाना चाहिये, जिसका गठन अन्तर्राज्यीय परिषद् के तत्वावधान में हो।

5.10. इस प्रश्न का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। वित्त आयोगों ने अंतरालों को पूरा करने के प्रस्तावों को अननुपातिक रूप से अधिक महत्व दिया है। परिणामस्वरूप, कुछ राज्यों की अपने अंतरालों को बढ़ा-चढ़ा कर बताने की प्रवृत्ति हो गई है और दूसरे राज्यों के पास ऐसे अंतरालों को कम करने के प्रेरण स्रोत नहीं है। जैसा कि उपर बताया गया हैं, विद्यमान व्यवस्थाओं से कोई भी अंतर्राज्यीय विषमता कम नहीं हुई है।

5.11. अभिव्यक्त दृष्टिकोण पूरी तरह तर्क संगत है। यह आवश्यक है कि विद्यमान, तरीके को जिसमें पूंजीगत और राजस्व लेखों के अंतराल को पूरा करने के लिये काफी अधिशुल्क जुटाना पड़ता है, छोड़ दिया जाये और केन्द्र और राज्यों के बीच और राज्यों में परस्पर आबंटन निर्धारण के लिए—स्वतंत्र और वस्तुपरक मानदण्ड निर्धारित किये जाएं जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है।

5.12 जहां तक कर सह-भाजन और सहायता अनुदान में से किसी एक को चुनने का संबंध है, सातवें वित्त आयोग के सुझावों को स्वीकार कर लिया गया है। वास्तव में यह इस धारण पर आधारित है कि केन्द्र और राज्यों के बीच और परस्पर राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों के न्यायोचित सहभाजन के लिए एक ठोस आधार तैयार किया गया है।

5.13 लक्ष्य यह होना चाहिए कि सहायता अनुदान के सिद्धांत को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाये। यदि एक बार संसाधन सह-भाजन के मानदण्डों में आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखा जाए तो प्रशासनिक और सामाजिक सेवाओं के स्तर की विषमताओं को कम करने का कोई अवसर नहीं आएगा। किसी भी परिस्थिति में, अनुदानों के तंत्र को इस प्रकार फैला न जाये जिससे कि अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति वाले राज्यों के पक्ष में और पक्षपात हो। जैसा कि विगत में ऐसा मामला हुआ है। आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए सहायता अनुदान प्रदान करने की कोई व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु आबंटन पूरी तरह ऊपर सुझाये गये अन्तर्राज्यीय परिषद् द्वारा गठित निकाय द्वारा ही किया जाना चाहिए, यह संघ सरकार के विवेकाधीन नहीं होना चाहिए।

5.14 जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बांटने योग्य विभाज्य पूल में केन्द्र द्वारा राजस्व और पूंजीगत लेखों के संबंध में उत्पन्न किये गये समग्र संसाधन शामिल होने चाहिए इसलिए इसमें राजस्व इकट्ठा करने के सभी काल्पनीय स्रोत शामिल होने चाहिए। विभाज्य पूल में प्रशासनिक मूल्यों में आवधिक वृद्धि से हुई प्राप्तियों को शामिल करने की स्थिति इस धारणा से उत्पन्न होती है कि हाल की अवधि में ऐसी वृद्धियां अधिकांशत: जिससे उत्पाद शुल्क की आय को राज्यों में शेयर करने की सांविधानिक आवश्यकताओं के निवारण के लिए की गई है। प्रशासनिक मूल्यों में उस भाग की वृद्धि के लिये, जिससे वस्तुतः लागत होती है, अनुमति दी जा सकती है। जहां तक पूंजीगत प्राप्तियों का संबंध है जैसे विशेष वाहक बंध पत्रों से पूंजीगत प्राप्तियों के मामले में उन्हें विभाज्य पूल में शामिल करना इस आधार पर निर्भर है कि इन बंधपत्रों के अंशदान प्रत्यक्षतः आयकर की प्राप्तियों को प्रभावित करते हैं। चूंकि विद्यमान वितरण के अनुसार राज्य, आयकर से होने वाली आय के 85 प्रतिशत हकदार है। अतः उचित यही है कि बंध पत्रों के अंशदानों को भी पूल में शामिल किया जाना चाहिए। इसी प्रकार राजस्व बढ़ाने की सभी योजनाओं से होने वाली आय, जो कि आयकर में दी जाने वाली प्रमुख रियायतों पर आवलंबित है, जैसा कि हाल में घोषित राष्ट्रीय जमा योजना के संबंध में है, राज्यों में बांटी जानी चाहिएं, अलग-अलग मदों को निर्दिष्ट करना आवश्यक नहीं है क्योंकि हमारा तर्क है कि केन्द्र द्वारा प्राप्त पूरे राजस्व का हिस्सा राज्यों को भी मिले।

5.15 इस प्रश्न का अभिप्राय तत्काल स्पष्ट नहीं है। यह राजनीतिक निर्णय का विषय है कि राष्ट्र की कुल बचतों जिसमें निजी बचते भी शामिल हैं, का जितना भाग सार्वजनिक क्षेत्र को दिया जाना चाहिए। यह निर्देशित करना महत्वपूर्ण है कि हालांकि संघ सरकार की कुल बजटीय प्राप्तियों में कर-राजस्व और करेतर राजस्व के हिस्से में पूंजीगत प्राप्तियों के संबंध में दूसरी योजना की अवधि से सुधार हुआ है। (सारणी 5) फिर भी, केन्द्र की कुल बजटीय प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा वर्षों से नहीं बढ़ाया गया। (सारणी 6) यह प्रवृत्ति स्पष्टतः संघ सरकार की कुल पूंजीगत प्राप्तियों के अनुपात में संघ सरकार से राज्यों को प्राप्त ऋणों की राशि में तेजी से आई गिरावट से संबंधित है।

5.16 यह प्रतिविरोध सही नहीं है। राज्यों के बजटीय घाटे संघ सरकार के बजटीय घाटे की दर की तुलना में अधिक तेजी से नहीं बढ़े है। जैसा कि सारणी (7) से देखा जा सकता है।

राज्य सरकारों का सम्पूर्ण घाटा उनके कुल संवितरणों के आनुपातिक रूप में केन्द्र सरकार के घाटे के तदनुरूप अनुपात से कम रहा है। राज्यों को जिन वित्तीय कठिनाइयों का काफी समय से सामना करना पड़ रहा है, उसका कारण केन्द्र की पूंजी गत प्राप्तियों और प्रत्यक्ष बाजार ऋणो दोनों में राज्यों का हिस्सा कम होना।

सारणी 5

संघ सरकार के संसाधनों का ढांचा

(कुल के प्रतिशत के रूप में)

	योजना अवधि						
	प्रथम	दूसरी	तीसरी	वार्षिक योजनाएं	चौथी	पांचवी	छठी
कर-राजस्व	57.1	43.2	44.5	42.9	47.1	50.4	49.1
करेतर राजस्व	7.8	7.8	12.0	11.8	12.5	13.5	12.5
कुल राजस्व	64.9	50.2	56.5	54.7	59.6	63.9	61.6
पूंजीगत प्राप्तियां	22.5	38.4	39.0	40.7	35.5	31.7	32.3
घाटा वित्तीयन	12.5	11.4	4.4	4.6	5.0	4.4	6.1
जोड़	100	100	100	100	100	100	100

स्रोत :—भारतीय रिज़र्व बैंक का बुलेटिन, विभिन्न अंक।

सारणी 6

राज्यों को अंतरण

	योजना अवधि						
	प्रथम योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	वार्षिक योजना	चौथी योजना	पांचवी योजना	छठी योजना
केन्द्र के संमग्र कर राजस्व की तुलना में राज्यों को अंतरित किये गये कर राजस्व का प्रतिशत . . .	17.0	19.6	15.2	17.5	23.3	19.8	26.9
केन्द्र के कुल राजस्व की तुलना में कुल राजस्व अंतरण (कर और अनुदान) का प्रतिशत . . .	23.0	27.4	24.3	28.4	33.9	31.0	35.9
केन्द्र के पूंजीगत संसाधनों (पूंजीगत प्राप्तियों) और घाटा वित्तीयन की तुलना में राज्यों को अंतरित ऋण का प्रतिशत	61.5	35.2	40.2	34.9	40.2	30.1	27.1
कुल केन्द्रीय संसाधनों (जिसमें घाटा वित्तीयन भी शामिल है) कुल अंतरणों की तुलना में का प्रतिशत	36.4	31.3	31.3	31.4	36.4	30.7	32.6

स्रोत :—भारतीय रिजर्व बैंक का बुलेटिन, विभिन्न अंक ।

सारणी 7

संघ और राज्यों की पूंजीगत प्राप्तियां, घाटे, बाजार ऋण

	प्रथम योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	वार्षिक योजना	चौथी योजना	पांचवीं योजना	छठी योजना
केन्द्र के कुल संवितरणों की तुलना में घाटे का प्रतिशत .	12.5	11.2	4.4	4.6	4.9	4.4	6.1
राज्यों के उनके कुल संवितरणों की तुलना में घाटे का प्रतिशत	0.8	1.1	0.4	1.4	0.6	1.5	2.7
केन्द्र और राज्यों द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक में कुल अभिगम की तुलना में राज्यों के ओवर ड्राफ्ट का प्रतिशत** . .	अनुपलब्ध	2.3	8.3	11.4	1.3	5.3*	4.8
कुल बाजार ऋणों में राज्यों का हिस्सा . .	28.8	26.6	23.7	12.9	21.0	20.2	12.7
केन्द्र की पूंजीगत प्राप्तियों की तुलना में बाजार ऋणों का प्रतिशत	33.0	30.0	20.9	35.1	23.1	21.6	32.0
राज्य की पूंजीगत प्राप्तियों की तुलना में बाजार ऋणों का प्रतिशत	14.4	15.1	9.4	8.7	8.4	8.9	8.1
राज्यों की कुल प्राप्तियों में पूंजीगत प्राप्तियों का भाग .	31.7	35.2	38.9	35.0	33.7	26.6	23.6

* अग्रिम

**ओवर ड्राफ्ट और राज्यों को अर्थोपाय पेशगियां तथा खजाना बिलों में भारतीय रिजर्व बैंक के अंशदान ।

स्रोत: भारतीय रिजर्व बैंक का बुलेटिन, विभिन्न अंक ।

5.17. कुछ राज्यों जैसे पश्चिम बंगाल के संबंध में कुल पूंजीगत संवितरण का लगभग 40 प्रतिशत चुकौतीका भार है, और यह स्थिति लगातार काफी लम्बी अवधि से है (सारणी 8) । इस भार की आवधिक समीक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता है । हमारे द्वारा अन्तर्राज्यीय परिषद, के तत्वावधान में गठन के लिए प्रस्तावित निकाय केन्द्र-राज्य वित्तीय अंतरणों को निश्चत करेगा और इसे समय-समय पर राज्य सरकारों के बकाया ऋणों को बट्टे खाते डालने की सिफारिश करने का विशेषाधिकार होगा । इस प्रकार बट्टे खाते डाले जाने की इस आधार पर तर्क संगत ठहराया जा सकता है कि केन्द्र द्वारा राज्यों को दिये जाने वाले ऋण के अधिकाश भाग का वित्तीयन मुद्रणालय के स्रोत द्वारा किया जाता है, इसलिए केन्द्र का यह नैतिक अधिकार नहीं है कि वह ऐसे ऋणों की चुकौती पर जोर दे । यदि ये ऋण बने रहते हैं तो राज्य सरकारों की जीवन क्षमता और उपयोगी-विशाल विकास के लिये कार्य प्रारंभ करने की उनकी क्षमता का गंभीर रूप से क्षय होगा ।

5.18. यह प्रश्नातीत है कि राज्यों के उधार लेने के अधिकार को संविधान द्वारा अनुचित रूप से सीमित किया गया है । जब तक कोई राज्य सरकार संघ सरकार से उधार प्राप्त कर रही हो, उसे केन्द्र की स्पष्ट अनुमति के बिना किसी अन्य स्रोत से उधार लेने का अधिकार नहीं है । किसी भी परिस्थिति में, राज्यों को अपने लिये सार्वजनिक ऋणों की संविदा का विशेषाधिकार नहीं है और उन्हें केन्द्र द्वारा जो कुछ उधार स्वीकार्य मिलता है उसी पर निर्भर रहना पड़ता है । 1958 में राज्यों को कुल सार्वजनिक ऋण का दो-तिहाई भाग दिया जाता था परन्तु अब उससे पूरी तरह भिन्न यह अनुपात घट कर लगभग 10 प्रतिशत रह गया है (सारणी 9) । यह असंगत स्थिति है और इसे प्रतिवर्तित किया जाना आवश्यक है । एक बार राज्यों को स्वयं उधार लेने का अधिकार दे देने पर वास्तव में यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो जायेगा कि वे सुदृढ़ वित्त की सीमाओं का उल्लंघन न करें, इस प्रयोजन के लिए अन्तर्राज्यीय परिषद द्वारा एक स्वतंत्र निकाय का गठन किया जाये जो केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों के वितरण की नियामक एजेंसी हो सकती है ।

सारणी 8

राज्यों का प्रतिदेय भार

(कुल पूंजीगत संवितरणों पर प्रतिदेयों का प्रतिशत)

	1967-68	1968-69	1969-70	1970-71	1971-72
1. आंध्र प्रदेश	46.69	48.88	42.69	57.27	43.08
2. असम	51.33	60.90	52.71	58.67	55.26
3. बिहार	24.34	32.35	22.43	23.09	31.38
4. गुजरात	23.22	22.39	28.47	25.26	28.17
5. हरियाणा	37.92	43.54	47.25	27.55	34.31
6. हिमाचल प्रदेश	..	..	..	15.37	13.19
7. जम्मू और कश्मीर	5.06	0.42	52.39	0.72	46.06
8. मैसूर/कर्नाटक*	21.50	26.08	29.97	36.44	44.89
9. केरल	27.59	33.58	38.79	36.51	32.37
10. मध्य प्रदेश	35.22	43.52	44.82	46.16	36.66
11. महाराष्ट्र	16.97	16.50	30.79	39.37	23.33
12. मणिपुर	..	..	..	12.90	36.60
13. मेघालय	..	..	..	21.40	5.27
14. नागालैंड	..	..	..	20.40	5.77
15. उड़ीसा	49.51	49.32	44.98	50.00	37.06
16. पंजाब	21.81	35.02	34.36	23.01	19.48
17. राजस्थान	42.29	50.22	35.41	59.08	64.77
18. सिक्किम	..	..	..	..	..
19. तमिलनाडु	24.78	30.97	37.58	28.40	57.73
20. त्रिपुरा	..	..	..	..	51.82
21. उत्तर प्रदेश	20.18	27.59	35.51	26.46	27.38
22. पश्चिम बंगाल	16.43	31.71	46.22	41.83	39.47
सभी राज्य	26.62	33.24	36.03	35.54	37.61

	1972-73	1973-74	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78
1. आंध्र प्रदेश	40.23	51.57	15.66	17.89	15.65	14.17
2. असम	67.08	57.72	25.86	28.62	18.93	16.12
3. बिहार	20.39	40.13	20.50	28.68	34.17	33.80
4. गुजरात	17.57	28.48	13.06	33.42	11.83	16.82
5. हरियाणा	28.88	21.02	24.78	28.09	16.52	14.67
6. हिमाचल प्रदेश	18.07	28.60	19.40	27.79	18.87	13.95
7. जम्मू और कश्मीर	41.47	34.46	10.50	15.76	19.48	7.12
8. मैसूर/कर्नाटक	27.47	43.24	26.56	19.01	13.47	13.87
9. केरल	33.15	42.71	22.43	32.60	35.35	22.21
10. मध्य प्रदेश	32.73	34.13	14.33	16.84	11.12	14.21
11. महाराष्ट्र	29.22	35.22	16.77	15.94	16.11	10.32
12. मणिपुर	12.52	18.60	2.92	2.91	39.00	8.64
13. मेघालय	44.50	20.68	1.63	3.58	4.43	5.25
14. नागालैंड	5.28	9.31	1.14	19.28	27.72	28.28
15. उड़ीसा	44.67	44.71	16.93	29.41	16.19	16.23
16. पंजाब	14.10	18.30	20.26	21.13	19.38	42.04
17. राजस्थान	35.39	49.68	18.18	25.75	19.52	20.71
18. सिक्किम	..	..	..	..	0.04	1.32
19. तमिलनाडु	33.77	37.14	14.41	24.13	15.00	13.25
20. त्रिपुरा	18.90	16.47	6.22	7.32	5.29	4.76
21. उत्तर प्रदेश	20.41	24.25	24.27	23.82	15.59	15.02
22. पश्चिम बंगाल	36.26	46.76	29.99	27.68	24.61	30.34
सभी राज्य	30.02	36.50	19.61	22.98	18.44	18.17

सारणी 8—जारी

	1978-79	1979-80	1980-81	1981-82	1982-83	1983-84
1. आंध्र प्रदेश	14.06	13.21	15.33	22.67	20.49	16.77
2. असम	13.96	7.28	63.62	32.72	19.40	21.33
3. बिहार	18.26	13.62	7.37	12.20	17.36	19.19
4. गुजरात	16.81	5.11	8.42	18.46	15.91	16.59
5. हरियाणा	12.97	12.69	10.53	18.84	26.89	26.69
6. हिमाचल प्रदेश	11.28	2.57	52.65	4.70	5.15	5.33
7. जम्मू कश्मीर	21.73	8.35	13.78	44.07	20.31	19.08
8. मैसूर/कर्नाटक	19.23	16.17	18.67	16.58	19.80	16.59
9. केरल	21.24	9.46	9.98	47.41	17.86	16.94
10. मध्य प्रदेश	11.07	8.47	9.66	11.86	14.00	13.47
11. महाराष्ट्र	13.32	4.98	6.65	14.48	14.00	13.56
12. मणिपुर	6.10	26.71	61.11	13.91	11.04	11.31
13. मेघालय	5.31	0.86	45.37	4.10	10.18	10.15
14. नागालैंड	7.99	18.25	63.68	18.46	3.90	4.16
15. उड़ीसा	14.76	12.01	26.57	18.81	22.40	19.05
16. पंजाब	32.71	10.76	18.23	25.80	25.96	31.77
17. राजस्थान	15.97	30.43	29.72	27.99	21.72	24.47
18. सिक्किम	3.29	2.18	2.20	4.45	4.97	4.53
19. तमिलनाडु	13.66	15.88	7.52	11.68	17.98	19.89
20. त्रिपुरा	10.05	1.67	49.51	3.05	15.33	4.84
21. उत्तर प्रदेश	15.32	12.41	12.43	15.84	17.30	19.78
22. पश्चिम बंगाल	29.30	38.38	30.81	37.94	35.18	35.96
सभी राज्य	16.77	13.74	18.56	20.58	19.02	19.18

4 *1971-72 तक आंकड़े मैसूर राज्य के लिए हैं।

(क) संशोधित प्राक्कलन

(ख) बजट प्राक्कलन

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक का बुलेटिन, विभिन्न अंक।

सारणी 9

निवल सार्वजनिक उधार

कुल		संघ सरकार द्वारा प्रतिधारित	राज्यों को आबंटित	(3),(1) के प्रतिशत के रूप में
1	2	3	4	5
		(करोड़ रुपयों में)		
1955-56	82	27	55	67.7
1956-57	141	77	64	45.2
1957-58	71	66	5	6.2
1958-59	2.227	181	46	30.3
1959-60	175	107	66	38.9
1960-61	134	67	67	40.0
1961-62	137	63	74	54.0
1962-63	158	73	85	53.8
1963-64	*143	..	..	..
1964-65	187	102	85	45.5
1965-66	210	104	106	50.5
1966-67	177	80	97	54.9
1967-68	168	94	74	44.1
1968-69	148	78	70	47.3
1969-70	182	139	43	23.6
1970-71	234	134	100	42.7
1971-72	398	295	103	25.9
1972-73	567	433	134	23.6
1973-74	638	471	167	26.2
1974-75	706	494	212	30.0
1975-76	728	453	275	37.8
1976-77	1,024	845	179	17.5
1977-78	1,369	1,191	178	13.0
1978-79	1,839	1,654	185	10.1
1979-80	2,148	1,961	187	8.7
1980-81	2,805	2,604	201	7.2
1981-82	3,238	2,904	334	10.3
1982-83	3,952	3,554	398	10.5

*राज्यों को आबंटन के आंकड़े अनुपलब्ध हैं।

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक।

5.19 राज्य सरकारों ने संघ सरकार के जिन अंतरणों के आधार पर जिन बाहृय वित्तीय संस्थाओं से ऋण या उधार प्राप्त किये हैं उसके लिए वसूल की गई ब्याज की दर और चुकौती की अवधि के बारे में हमें भारी आशंकाएं हैं। राज्यों को अनेक अवसरों पर वंचित रखा गया है। कर्ज या ऋण की पूरी प्रमात्रा उनको नहीं दी गई हैं, वसूल की गई ब्याज की दर, विदेशी एजेंसीयों द्वारा की जाने वाली दर से अधिक है। अनेक उदाहरण ऐसे हैं, चुकौती की अनुबद्ध अवधि भी विदेशी संस्थाओं द्वारा संघ सरकार के लिये सम्मत अवधि से कम हैं। अंत में, जो शर्तें राज्य सरकारों पर अधिरोपित की गई हैं वे केन्द्र के लिए जो हैं उनसे अधिक सभार है। इसलिये पूरी व्यवस्था की समीक्षा की जानी चाहिये।

5.20 राष्ट्रीय कर्ज और ऋण परिषद का सुझाव काफी उपयुक्त है। ऐसी परिषद्, जिसमें संघ सरकार राज्य सरकारों और स्वतंत्र विशेषज्ञों का प्रतिनिधित्व होगा, विभिन्न राज्यों और केन्द्र के लिए ऋण सीमा निर्धारित करने के लिए अंतिम प्राधिकारी होनी चाहिए। भारतीय रिजर्व बैंक अपने वर्तमान गठन के अनुसार इस कार्य को पूरा नहीं कर सकता, क्योंकि इसे संघ सरकार का अधीनस्थ कार्यालय बना दिया गया है। विकल्पत: भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम को इस प्रकार संशोधित किया जाये जिससे कि बैंक के अस्तित्व संघ सरकार से पूरी तरह स्वतंत्र रखा जा सके और ऐसे बैंक में बाहरी विशेषज्ञों के साथ-साथ राज्य सरकारों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होगा।

5.21 1982 में राज्यों को अर्थोपाय पेशगियों की सीमा को दुगुना कर दिया गया। यह मनमाने तरीके से और राज्यों के परामर्श के बिना किया गया था। पिछले कुछ वर्षों के आंकड़ों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि जहां केन्द्र सरकार अपने कुल संवितरणों के लगभग 15 प्रतिशत की सीमा तक घाटा वित्तीयन में संलग्न है वहां राज्यों के लिए यह औसत कुल मिलाकर 3 प्रतिशत से भी कम रखा गया है। यह असामान्य स्थिति है। एक वर्ष में घाटा वित्तीयन का कुल परिमाण या तो राष्ट्रीय ऋण परिषद द्वारा या विकल्पत:, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिये यदि इसे एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में पुनर्गठित किया जाये। इस प्रकार सृजित धन राशि को केन्द्र और राज्यों में समान रूप से वितरित किया जाना चाहिये। राज्यों के बीच परस्पर वितरण का निर्धारण एक बार फिर से या तो राष्ट्रीय ऋण परिषद् द्वारा या पुनर्गठित भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाना चाहिए। राज्यों को स्पष्टत: सीमा से अधिक ओवर ड्राफ्टों की अनुमति नहीं होनी चाहिये। इसी प्रकार, संघ सरकार को भी बेरोक टोक मुद्रा सृजन की अनुमति न दी जाये। परन्तु, सृजित राशि की सीमाएं यंत्रवत् निर्धारित नहीं की जानी चाहिये बल्कि राज्य और केन्द्र जिन विशेष परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं उन्हें भी ध्यान में रखा जाना चाहिये।

5.22 यह सही है कि कुछ राज्य सरकारें कृषि आय कर और भूमि पर अन्य कर जैसे कर को लगाने के अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करने में सुस्त रही हैं। इस संबंध में, यह न्यायसंगत होगा कि अन्तर्राज्यीय परिषद् प्रत्येक राज्य का लक्ष्य निर्धारित करे। यदि लक्ष्यों का अनुपालन नहीं किया जाता और राज्य निर्धारित लक्ष्य प्राप्त न कर सकने का कोई संतोषजनक कारण न बता सके, तो परिषद् उस निकाय को निर्देश जारी करे। जो विभाज्य पूल से आबंटनों को निर्धारित करेगा और व्यतिक्रमी राज्यों के लिए शास्ति खंड लागू करेगा। यदि राज्य शिथिल रहेंगे तो वे कम संसाधन जुटा पायेंगे। यदि एक बार यह प्रणाली राज्यों पर यह दायित्व डाल दे तो संसाधनों को इष्टतम स्तर तक लाने का दायित्व भी व्यवहारिक रूप से उन्हें दिया जा सकता हैं।

5.23 केन्द्र भी कराधान के महत्वपूर्ण क्षेत्रों की अपेक्षा कर रहा है। यह निगम और आय कराधान दोनों क्षेत्रों में शिथिल रहा है और अनुच्छेद 268 और 269 में बताई गई संसाधन बढ़ाने की संभावनाओं का पता लगाने में असमर्थ रहा है। समस्या के समाधान के लिये, पहले, कुछ संगत मदों को राज्य सूची में अंतरित किया जाये, दूसरे संघ सूची से संबंधित परन्तु राज्यों के लिये निर्णायक रूप से महत्वपूर्ण कर योग्य मदों पर ब्याज की दर पर राज्यों से परामर्श किया जाये। इसके अतिरिक्त अंतर्राज्यीय परिषद् को लक्ष्य निर्धारित करने और दण्ड देने की प्रक्रिया का विशेषाधिकार होना चाहिए। यदि उसके निर्देशों की उपेक्षा की जाती है।

5.24 यह सुझाव विचारणीय है।

5.25 चूंकि केन्द्र द्वारा अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए अनुच्छेद 269 का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया गया है इसलिये उसके अंतर्गत आने वाली वित्तीय मदों को राज्य सूची में अंतरित कर दिया जाना चाहिये।

5.26 संघ सरकार ने जिस प्रकार रेल यात्री किराया पर कर लगाया है उससे राज्य महत्वपूर्ण राजस्व से वंचित हो गये हैं। राज्यों द्वारा उठायी गई हानि के लिये की गई प्रतिपूर्ति उपहासपूर्ण है। यथापूर्व स्थिति बहाल की जाये।

5.27 संघ राज्य क्षेत्र विशेष श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं और उनके लिए आबंटन का निर्धारण व्यापक राष्ट्रीय महत्व के आधार पर किया जाना चाहिये। इनकी सीमाओं के अंदर से वैयक्तिक करों प्राप्तियां संगत नहीं होनी चाहिये।

5.28 यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां राज्य काफी कठिनाई महसूस कर रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं से मुकाबला करने के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था की जाये तथा तथाकथित लाभ राशि द्वारा कुछ वार्षिक राशि की व्यवस्था करने से राज्य वास्तविक आकस्मिक खर्च को पूरा नहीं कर पाते। इसका ध्यान न रखकर कि वे प्राकृतिक आपदाएं कहां घटित होती हैं, ऐसी प्राकृतिक आपदाओं को राष्ट्रीय दायित्व समझा जाना चाहिये। सातवें वित्त आयोग के द्वारा सुझाया गया सूत्र संतोषजनक सिद्ध नहीं हुआ है। धनराशि की आवश्यकता के संबंध में संघ सरकार और संबंधित राज्य द्वारा संयुक्त रूप से मनोनीत किए गए विशेषज्ञ दल की राय को इस विषय में अंतिम समझा जाना चाहिए और निधियों द्वारा तुरंत सहायता उपलब्ध कराने और क्षति को पूरा करने का खर्च संघीय बजट से किया जाना चाहिए। इस प्रकार निर्धारित की गई राशि राज्य सरकार को तुरंत भेजी जानी चाहिये।

5.29 हम यह सुझाव देते हैं कि राज्य सरकारों को आवश्यक स्थिति में बारी-बारी से भारतीय रिजर्व बैंक और राष्ट्रीयकृत बैंकों के बोर्डों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाये। ऋण नीति के सामान्य दिशा निर्देश या तो राष्ट्रीय ऋण परिषद या इस प्रकार पुनर्गठित भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित किए जाने चाहिये जिनका वित्तीय संस्थाओं को पूर्णत: पालन करना चाहिए।

5.30 सभी परिस्थितियों में, धन राशि को विवेकपूर्ण ढंग से खर्च किया जाना चाहिये। किन्तु, भारत जैसे विशाल देश में, संसाधनों को इकट्ठा करने में कुछ जटिल प्रशासनिक पहलू संबंधित हैं जिनकी मुश्किल से ही उपेक्षा की जा सकती है और जो यह सुझाते हैं कि कुछ प्रमुख करों को राज्यों की जिम्मेदारी पर छोड़ दिया जाना चाहिये।

5.31 संघ और राज्य सरकारों की ओर से अपव्यय होता है। इस बारे में निगरानी को सामान्यत: संबंधित विधान मंडलों और नियंत्रक महालेखा परीक्षक पर छोड़ देना सर्वोत्तम होगा। संघ सरकार के अपव्यय को रोकने का प्रमुख तरीके है कि इसके अत्यधिक संसाधन बढ़ाने के कुछ विशेषाधिकारों को छीन लेना चाहिये, जैसा कि हमने सुझाव दिया है। इसी प्रकार राज्यों की अनुत्तरदायी पूर्ण वित्तीय प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने के लिये उनको यह सूचित कर दिया जाये कि यदि एक बार वित्तीय न्यागमनों की प्रणाली को उपर्युक्त ढंग से पुनर्गठित कर दिया गया, तो राज्य स्वयं जिम्मेदार होंगे और तब उपव्यय की स्थिति में वे संघ सरकार से सहायता की आशा नहीं कर सकेंगे।

5.32 अनुच्छेद 150 और 151 सुझायी गई प्रक्रिया या नियंत्रक महालेखा परीक्षक की भूमिका दोनों में से किसी में भी कोई समस्या नहीं है। नियंत्रक-महालेखा परीक्षक की नियुक्ति अभी तक संविधान के अनुच्छेद 74 के अनुसार संघीय मंत्री परिषद् की सलाह पर राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। इस प्रक्रिया में परिवर्तन आवश्यक है। संविधान संशोधन के द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि नियंत्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति के मामले में राष्ट्रपति का मार्गदर्शन अन्तर्राज्यीय परिषद् करेगी न कि संघीय मंत्रिमंडल। इसी प्रकार, यह भी आवश्यक है कि सांविधानिक संशोधन द्वारा नियंत्रक महालेखा परीक्षक को सेवा निवृत्ति के उपरान्त "गैरसरकारी" क्षेत्र में भी रोजगार स्वीकार करने से प्रतिबारित किया जाना चाहिये। यदि आवश्यक हो, तो उसकी परिलब्धियों और निवृत्ति लाभों को अग्रोन्मुखी समायोजित किया जाना चाहिये।

5.33 यह आवश्यक है कि "निष्पादन लेखा परीक्षा" या "मूल्यांकन लेखा परीक्षा" इस स्तर पर पूरी तरह लागू की जाए।

5.34 नियंत्रक-महालेखा परीक्षक की शक्तियों को इस प्रकार बढ़ाया जाना चाहिये जिससे कि लेखा परीक्षा के क्षेत्र व्यापक हो सकें, वर्तमान में नियंत्रक-महालेखा परीक्षक का अधिकार क्षेत्र मात्र औपचारिक है। विशेष रूप से यह रक्षा व्यय और विदेश व्यापार पर सरकार के परिव्यय पर लागू होता है।

5.35 और 5.36 हम सामान्यतः नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षेत्र उपलब्ध कराने के पक्ष में हैं जिससे कि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में गहराई तक लेखा परीक्षा और विश्लेषण कार्य किया जा सके। जहां कहीं आवश्यक हो, नियंत्रक-महालेखा परीक्षक को अतिरिक्त विशेषाधिकार सौंपे जायें जिसके कि वह सार्वजनिक व्यय की विशेष स्थितियों के प्रतिरूप और प्रवृत्तियों के बारे में जन साधारण को सूचित करने में समर्थ हो सके।

5.37 प्राक्कलन समिति के संबंध में वर्तमान व्यवस्था जारी रहे।

5.38 हमें यह विश्वास नहीं कि व्यय आयोग अधिक उपयोगी होगा। व्यय का औचित्य राजनीति निर्णय का विषय है और अच्छा होगा यदि इसे राज्य विधान मंडलों पर छोड़ दिया जायें। फिर भी उन्हें नियंत्रक-महालेखा परीक्षक के कार्यालय द्वारा किए गए ब्यौरेवार विश्लेषण का लाभ होना चाहिए।

5.39 ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां संघ सरकार संविधान के अभिप्राय का उल्लंघन करके विशेष परियोजनाओं पर व्यय के प्रतिरूप को प्रभावित करने का प्रयास इस आधार पर करती है कि परियोजनाएं केन्द्र से सहायता प्राप्त है या अधिकारिता के समवर्ती क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। ऐसा हस्तक्षेप रोका जाना चाहिये। नियंत्रक-महालेखा परीक्षक द्वारा की जाने वाली निगरानी, राज्यों द्वारा निधियों के समुचित खर्च को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त समझी जानी चाहिये।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 वर्तमान योजना प्रक्रिया की कमियां जैसी कि प्रश्न में बताई गई है, सामान्यतः विदित्त म्य हैं। राष्ट्रीय-विकास परिषद को संविधान में स्थान नहीं दिया गया, संघ सरकार ने अपने विवेकानुसार इसका संयोजन किया है और इसके कार्य मात्र विध्यात्मक हैं। योजना आयोग को भी जिसे सांविधानिक और विधिक अलक्ष्यता प्राप्त नहीं है संघ सरकार के एक उपांग में परिवर्तित कर दिया गया है, इसके विचार-विमर्शों और निर्णयों के केन्द्र का स्वर ही प्रधान रहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकारों के प्रतिनिधित्व को महत्व देते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद को यथासंशोधित अनुच्छेद 263 के अनुसार उचित तरीके से गठित अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा हटा दिया जाना चाहिए।

योजना आयोग को अंतर्राज्यीय परिषद के सचिवालय में परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए और इसके कार्मिकों के बारे में परिषद द्वारा निर्णय किया जाना चाहिए जिसमें राज्य सरकारों के दृष्टिकोणों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए। संघीय मंत्रालयों को योजना आयोग पर अपने विचार थोपने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और केन्द्रीय रूप से प्रायोजित योजनाओं की भूमिका को पर्याप्त रूप से सीमित किया जाना चाहिए।

6.2 उपर्युक्त राष्ट्रीय विकास परिषद को उचित तरीके से संशोधित अनुच्छेद 263 के अनुसार गठित की जाने वाली अंतर्राज्यीय परिषद से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। इसकी वर्तमान राष्ट्रीय विकास परिषद की तुलना में अधिक बैठकें होनी चाहिए, यदि यह व्यवहार्य न हो, तो अंतर्राज्यीय परिषद की स्थायी समिति की नियमित अंतरालों पर बैठकें बुलाई जानी चाहिए। योजना आयोग को परिषद के निर्देशों का अनुपालन करना चाहिए और उसे अंतिम निर्णायक की भूमिका ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

6.3 वर्तमान रूप में गठित योजना आयोग न केवल संघीय मंत्रालयों की पूरी जानकारी और उनके परामर्श से ही कार्य करता है, बल्कि उनके प्रभाव के अधीन भी है। इसके विपरीत यह राज्य सरकारों के साथ सामंतीय परिवेश में अधीनस्थों जैसा व्यवहार करता है। इसके संघटन और कार्यों में पर्याप्त परिवर्तन होना चाहिए जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है।

6.4 योजना आयोग के पुनर्गठन के संबंध में हमारे प्रस्ताव पहले ही प्रस्तुत किये जा चुके हैं। इसको अंतर्राज्यीय परिषद के सचिवालय के रूप में कार्य करना चाहिए और इसके संघठन में संघ की तुलना में राज्यों के विचारों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।

6.5 उपर्युक्त सुझावों के अनुसार गठित योजना आयोग को चाहिए कि वह स्वयं को योजना और निवेश के समग्र पहलुओं पर परामर्श देने तक ही सीमित रखे।

6.6 विशिष्ट दीर्घस्तरीय प्राथमिकताओं तथा लक्ष्यों के निर्धारण का कार्य आयोग पर छोड़ दिया जाए जोकि अपनी अंतर्राज्यीय परिषद को अपने सुझाव देगा, किन्तु राज्यों की परिधि में आने वाले विषयों से संबंधित विस्तृत योजना का कार्य राज्यों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। आयोग द्वारा राज्य की योजनाओं और प्रस्तावों की सूक्ष्म संवीक्षा करने की वर्तमान प्रथा अनावश्यक है और इसे हटा दिया जाना चाहिए।

6.7 जब तक योजना आयोग का पुनर्गठन नहीं किया जाता तब तक इस पर संसाधनों के अंतरण का विशेषाधिकार छोड़ना खतरनाक होगा। किसी भी स्थिति में आयोग की गतिविधियों को योजना बनाने के कार्य तक ही सीमित रखना अधिक उपयुक्त होगा, यद्यपि उसे संसाधनों को बढ़ाने के पहलुओं पर सलाह देने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन संसाधनों के अंतरण का मुद्दा स्वतंत्र एजेंसी का विशेषाधिकार होना चाहिए। जैसा कि पहले ही ऊपर सुझाव दिया गया है जिसकी नियुक्ति अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा की जानी चाहिए।

6.8 और 6.9 यथार्थ और सांख्यिक सूत्र के आधार पर राज्यों को अंतरित कुल संसाधनों का अंतर्राज्यीय वितरण का इस प्रयोजन के लिए अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा गठित निकाय द्वारा एक बार निर्धारण हो जाने पर, उनके योजना-आकार का प्रश्न अलग-अलग राज्यों पर छोड़ा जा सकता है। यदि अतिरिक्त संग्रहण के माध्यम से राज्य अपनी योजना के आकार को बढ़ा सकते हैं, तो इस पर आपत्ति करना आयोग के कार्यक्षेत्र के अन्दर नहीं आना चाहिए। अपने परवर्ती संशोधनों के साथ गाडगिल सूत्र को अंतर्राज्यीय साम्यता के लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सर्वाधिक प्रयत्न साध्य कहा जा सकता है, परन्तु इसमें कुछ ऐसे घटक हैं जैसे वर्तमान सिंचाई और विद्युत योजनाओं को जारी रखने पर जोर दिया गया है, जिन्होंने अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों के हितों के विरुद्ध कार्य किया है। इसके अतिरिक्त, इस सूत्र में राज्यों को दी जाने वाली कुल योजना सहायता का मात्र अंश ही सम्मिलित किया गया है। राज्यों को संसाधन अंतरण के संबंध में जो भी फार्मूला अपनाया जाए उस फार्मूले के अंतर्गत, विश्व बैंक से कर्ज के रूप में प्राप्त संसाधनों और आई० डी० ए० से प्राप्त ऋणों जैसी बाह्य सहायता को सम्मिलित न करने का कोई औचित्य नहीं है। यह कार्य योजना आयोग पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि यह कार्य हमारे द्वारा प्रस्तावित और अंतर्राज्यीय परिषद के तत्वावधान में गठित एजेंसी को सौंपा जाना चाहिए।

6.10 यह दृष्टिकोण तर्क संगत है और संघ सरकार से कहा जाए कि वह केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के लिए अलग रखी गयी राशि को पर्याप्त रूप से कम करें।

6.11 संघ और राज्यों दोनों स्तरों पर परिवीक्षण और मूल्यांकन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा परिवीक्षण सार्थक हो, इसके लिए एक समान मानदण्ड अपनाये जाएं और संबंधित अधिकारिता के क्षेत्रों पर नियंत्रक महालेखा परीक्षक के साथ सहमति हो।

6.12 भारत जैसे विशाल और विविधता वाले देश में योजना को ग्राम स्तर तक विकेन्द्रित किया जाय। ऐसा विकेन्द्रीकरण राज्य सरकारों को अधिक उत्तरदायित्वों और संसाधनों के न्यागमन से प्रारंभ किया जाना चाहिए और राज्य सरकारों को भी जिला और ग्राम निकायों को धन राशि और कार्य सौंपने के लिए तैयार होना चाहिए। योजना निरूपण के लिए जिले प्राथमिक इकाई होने चाहिए, उसके बाद राज्य और तत्पश्चात समचा देश होना चाहिए।

6.13 दुर्भाग्य से, योजना प्रक्रिया में अब तक संघीय मंत्रालयों और योजना आयोग की प्रमुख भूमिका के कारण राज्य योजना कोई अधिक प्रभावी नहीं

हो सकें हैं। जब तक राष्ट्रीय योजना का आरूप नहीं बदला जाता, तब तक राज्य योजना बोर्ड अपने अस्तित्व को प्राप्त नहीं कर सकते।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 में प्रस्तुत उद्देश्यों को पुनः परिभाषित किया जाना चाहिए। रक्षा के लिए निर्णायक कुछ उद्योगों या ऐसे उद्योगों को छोड़कर, जिनमें अधिक निवेश आवश्यक हो और राज्य की सामर्थ्य से बाहर हो, उद्योगों की समस्त योजनाएं बनाने और लाइसेंस प्रदान करने का उत्तरदायित्व राज्यों को सौंप दिया जाना चाहिए। वास्तव में, यही संविधान का मूल आशय था। अनेक क्षेत्रों में स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि राज्य सरकारें केन्द्र की सहमति के बिना किसी विशेष उद्योग के मामले में छान-बीन के लिए कोई समिति भी गठित नहीं कर सकती।

7.2 राष्ट्रीय लोकहित की बाध्यताएं रक्षा उद्योगों तथा एक या दो अन्य प्रमुख उद्योगों तक सीमित होनी चाहिए जहां निवेश करना राज्य सरकारों की सामर्थ्य से बाहर हो। यह मान लेना अनुचित होगा कि राज्य सरकारें अनिवार्यतः राष्ट्रीय अथवा "लोकहित" पर ध्यान नहीं देती, वे भी राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने में सक्षम हैं। इस विवाद को मद्देनजर रखते हुए अनेक उद्योगों को राज्य की अधिकारिता में स्थानांतरित किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित मदों को उद्योग विकास विनियमन अधिनियम की प्रथम अनुसूची में दी गई सूची से निकाला जा सकता है :—

1. **धातुकर्म उद्योग**
   लोहे और इस्पात के अन्य उत्पाद।
   लोहे और इस्पात की ढली हुई और गढ़ी हुई वस्तुएं।
   लोहे और इस्पात की संरचनाएं।
   लोहे और इस्पात के पाइप।

2. **विद्युत उपस्कर**
   विद्युत उत्पादन, संचरण और वितरण के उपस्कर जिनमें ट्रांसफॉर्मर भी शामिल हैं।
   बिजली की मोटरें।
   बिजली के पंखे।
   बिजली के लैम्प।
   विद्युत भट्ठी।
   विद्युत केबल और तार।
   घरेलू उपकरण जैसे बिजली की इस्त्री, हीटर इत्यादि।

3. **दूर संचार**
   टेलीफोन।
   टेलीग्राफ उपस्कर।
   बेतार संचार उपकरण।
   रेडियो अभिग्राहित्र तथा प्रवर्धन और जनसाधारण को संबोधित करने वाले उपस्कर।
   टेलीवीजन सैट।
   टेलीप्रिंटर।

4. **परिवहन**
   औटोमोबाइल्स (मोटर कारें, बसें, ट्रक, मोटर साइकिलें, स्कूटर आदि)।
   साइकिलें।
   अन्य जैसे फोर्क लिफ्ट, ट्रक आदि।

5. **औद्योगिक मशीनरी**

6. **मशीनी औजार**

7. **कृषि संबंधी मशीनरी**

8. **मिट्टी हटाने वाली मशीनरी**
   बुल्डोजर, डम्पर, स्क्रेपर, लोडर, बेलचा, ड्रैग लाइन रहट वाहिका, रोड रोलर आदि।

9. **विविध यांत्रिक और इंजीनियरी उद्योग**
   प्लास्टिक के बने सामान।
   हाथ के औजार, छोटे औजार आदि।
   रेजर ब्लेड।
   प्रेशर कुकर।
   कटलरी।]
   स्टील फर्नीचर।

10. **वाणिज्यिक, कार्यालय और घरेलू उपस्कर**
    टाइपराइटर।
    गणना करने वाली मशीनें।
    वातानुकूलित्र और प्रशीतित्र।
    निर्वात मार्जक।
    सिलाई और बुनाई की मशीनें।
    तूफानी लालटेनें।

11. **चिकित्सा और शल्यक्रिया के यंत्र**
    शल्यक्रिया के यंत्र स्टरिलाइजर।
    इन्क्यूबेटर आदि और इसी प्रकार के अन्य यंत्र।

12. **औद्योगिक यंत्र**
    पानी के मीटर, भाप के मीटर, बिजली के मीटर आदि।
    दाब, ताप, प्रवाहमान, भार तथा लेवल आदि के संसूचन अभिलेखन और विनियमन यंत्र।
    तोलने वाली मशीनें।

13. **वैज्ञानिक यंत्र**

14. **गणितीय, सर्वेक्षण और आरेख यंत्र**

15. **वस्त्र उद्योग** जिसमें रंगाई, छपाई और अन्य प्रक्रियाएं शामिल हैं।
    पूर्णतः या अंशतः सूती वस्त्र, जिसमें सूतीधागा, होजरी और रस्सी शामिल है।
    पूर्णतः या अंशतः जूट से बनी वस्तुएं जिनमें जूट, सुतली और रस्सी शामिल हैं।
    पूर्णतः या अंशतः ऊन से बनी वस्तुएं जिनमें ऊन के गुच्छे, ऊनी धागा, होजरी, कारपेट, और मोटे ऊनी वस्त्र भी शामिल हैं।
    पूर्णतः या अंशतः रेशम से बनी वस्तुएं जिनमें, रेशम का धागा और होजरी भी शामिल है।
    पूर्णतः या अंशतः संश्लिष्ट कृत्रिम (मानव निर्मित) रेशे से बनी वस्तुएं जिनमें धागा, और ऐसे रेशे की होजरी शामिल है।

16. **चीनी**

17. **किण्वन उद्योग**]

18. **खाद्य संसाधन उद्योग**
    डिब्बा बन्द फल और फलोत्पाद।
    दूध से बनी खाद्य वस्तुएं।
    माल्ट से बनी खाद्य वस्तुएं।
    आटा।
    अन्य संसाधित खाद्य वस्तुएं।

19. **रबर का सामान**
    टायर और ट्यूब।
    शल्यक्रिया और चिकित्सा उत्पाद जिनमें रोगरोधक शामिल हैं।
    जूते।
    रबर का अन्य सामान।

20. चमड़ा, चमड़े का सामान और फिरोज

21. गोंद और सरेस

22. कांच

बर्तन ।

चादर और पट्टिका कांच ।

प्रकाशीय कांच ।

रेशेदार कांच ।

प्रयोगशाला पात्र ।

विविध पात्र

23. मृत्तिका शिल्प

अग्निसह ईंटें ।

उच्च ताप सह वस्तुए ।

भट्ठी अस्तर ईंटें/अधिसिलिक, मूल और निष्प्रभावी ।

चीनी मिट्टी के बर्तन और पॉटरी ।

स्वास्थ्य संबंधी सामान ।

विद्युतरोधी ।

टाइलें ।

ग्रेफाइट मृत्तिका शिल्प ।

24. सीमेंट और जिप्सम उत्पाद

पोर्टलैण्ड सीमेंट ।

एबसेस्टस सीमेंट ।

विद्युतरोधी बोर्ड ।

जिप्सम बोर्ड, स्वाल बोर्ड, आदि ।

25. लकड़ी का उत्पाद

प्लाईवुड ।

हार्डबोर्ड, जिसमें लघुपट्ट, घटिया गत्ता और इसी प्रकार के अन्य उत्पाद शामिल हैं ।

माचिस ।

विविध उत्पाद (फर्नीचर के घटक, बॉबिन शटल इत्यादि) ।

25. विविध उद्योग

सिगरेट ।

लिनोलियम—नभदा निर्मित अथवा जूट निर्मित ।

जिप बंधक ।

औपल स्टोव ।

छपाई—लिथो छपाई को शामिल करके ।

7.3 सामरिक उद्योगों को छोड़कर, औद्योगिक लाइसेंस देने और क्षमता नियंत्रण के कार्य को विकेन्द्रित करके राज्यों को सौंप दिया जाना चाहिए । पूंजीगत सामान के आयात के लिए क्षेत्रीय बोर्ड होने चाहिए जो कि राज्यों के निवेदनों पर विचार करें । ऐसी ही व्यवस्था विदेशी सहयोग करारों के संबंध में की जा सकती है । वास्तव में ऐसे क्षेत्रीय बोर्डों को अंतर्राज्यीय परिषद द्वारा गठित बोर्ड और पूंजीगत आयात और विदेशी सहयोग करारों के पर्यवेक्षण के लिए बनाये गए राष्ट्रीय निकाय के दिशा निर्देशों के अनुसार कार्य करना होगा । वर्तमान की तरह दुर्लभ कच्चे माल के आबंटन के लिए राष्ट्रीय बोर्ड भी होने चाहिए जिनमें राज्य सरकारों का सशक्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए ।

7.4 हालांकि यह सही है कि औद्योगिक विसर्जन के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए राज्य सरकारों को अपेक्षाकृत अधिक तेजी से प्रगति करनी होगी, फिर भी इस कार्य को पर्याप्त रूप से सरल बनाया जा सकता है, यदि एक बार प्रशासन और योजना का विकेन्द्रित स्वरूप वास्तविकता बन जाए ।

7.5 राज्य योजनाओं का आकार जिस सीमा तक ऋण पर निर्भर करता है उस सीमा तक यह आवश्यक है कि राज्य बाजार से या सीधे वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर सकें । इस प्रकार के ऋणों की प्रमात्रा और अंतर्राज्यीय आबंटन महत्वपूर्ण हैं । इस प्रकार के ऋण से राज्य की वर्तमान पूंजीगत प्राप्तियों में मात्र 10 प्रतिशत की वृद्धि होगी, जहां तक बाजार ऋणों का संबंध है । जैसाकि पहले बताया जा चुका है इस समय राज्यों को इस प्रकार बाजार से प्राप्त कुल पूंजी का मात्र 10 प्रतिशत प्राप्त होता है । यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा अपनी कुल धारिता के अनुपात में धारित राज्य सरकारों की प्रतिभूतियों के हिस्से में पिछले कुछ वर्षों से गिरावट आई है अर्थात् 1959 से 1982 के बीच 35.7 प्रतिशत से गिर कर 18.5 प्रतिशत रह गया है । जहां तक उनका राज्यों में वितरण का संबंध है । गरीब राज्यों की स्थिति अपेक्षाकृत खराब है । निम्न आय वाले चार राज्यों में से तीन राज्यों को सभी राज्यों के औसत से काफी कम संसाधन प्राप्त हुए । व्यावहारिक तौर पर यही बात सभी सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं के मामले में है । संस्थागत निधि की प्रतिव्यक्ति प्राप्ति में अंतर्राज्यीय विसंगतियां विशेष रूप से स्पष्ट होती हैं (सारणी 10) ।

7.6 सारणी 10 से यह देखा जा सकता है कि निवेशों और वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त सहायता का अंतर्राज्यीय वितरण अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों के हक के विरुद्ध किया गया है । इस मामले में तत्काल सुधारात्मक कार्यवाई की जानी चाहिए । सभी वित्तीय संस्थाएं संघीय वित्त मंत्रालय की प्रत्यक्ष निगरानी के अधीन हैं । वाणिज्यिक बैंकों के संबंध में भी यह उतना ही सत्य है । इन दोनों प्रकार की संस्थाओं में राज्यों का अधिक प्रभावी बोलबाला होना चाहिए, चाहे इस प्रयोजन के लिए कोई भी करणत्व अपनाया जाए । यह भी समान रूप से वांछनीय है कि जब कभी राज्य सरकारें अपने वाणिज्यिक बैंकों और वित्तीय संस्थाओं का गठन आवश्यक समझे तो उन्हें इसकी अनुमति प्रदान की जाए । वित्तीय संस्थाओं और वाणिज्यिक बैंकों का गठन राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित दिशा निर्देशों के अधीन की जाए परन्तु किसी भी स्थिति में संघ सरकार को यह निर्णय करने का विशेषाधिकार नहीं होना चाहिए कि किन संस्थाओं की अनुमति दी जाए और किन की न दी जाए । इस प्रकार के परिवर्तन लाने के लिए सांविधानिक उपबंधों में उचित संशोधन किया जाए ।

सारणी 10

प्रति व्यक्ति केन्द्र-राज्य बजटीय और संस्थागत वित्तीय प्रवाह 1973-83

(प्रति व्यक्ति रुपये)

राज्य	बजटीय (निवल)	वाणिज्यिक बैंक			विकास बैंक	ए०आर० डी०सी०	कुल संस्थागत (4+5+6)	संस्थागत और बजटीय	कुल में संस्थाओं के वित्त का भाग
		ऋण	निवेश	जोड़ (2+3)					
	1	2	3	4	5	6	7	8	9
पंजाब	491	734	42	776	78	87	941	1,432	65.7
हरियाणा	447	446	74	520	113	123	756	1,203	62.9
महाराष्ट्र	412	618	49	667	151	30	848	1,260	67.3
गुजरात	471	223	69	392	219	27	638	1,109	57.5

	1	2	3	4	5	6	7	8	9
पश्चिम बंगाल . .	498	321	49	370	70	9	449	947	47.4
ग्रुप "क" .	459	472	54	526	129	35	690	1,149	60.0
तमिलनाडु . .	402	327	38	365	97	19	481	883	54.6
केरल . . .	504	316	69	385	67	14	466	970	48.0
उड़ीसा . .	659	85	35	120	31	18	169	828	20.4
असम . . .	749	92	40	132	35	6	175	922	18.8
कर्नाटक . . .	388	315	34	349	122	35	506	894	56.6
आंध्र प्रदेश . .	492	213	30	243	59	45	347	839	41:4
ग्रुप "ख" .	497	244	38	282	74	26	382	879	43.5
उत्तर प्रदेश . .	500	121	28	149	37	28	214	714	30.0
राजस्थान . .	559	168	51	219	60	26	305	864	35.3
मध्य प्रदेश . .	424	111	27	138	26	32	196	620	31.6
बिहार . . .	445	83	26	109	23	20	152	597	25.5
ग्रुप "ग" .	477	115	30	145	34	26	205	682	30.1
हिमाचल प्रदेश . .	1171	144	61	205	58	8	271	2,022	13.5
जम्मू-कश्मीर . .	2,087	163	74	237	77	1	315	2,402	13.1
त्रिपुरा . . .	1,904	100	49	149	17	2	168	2,072	8.1
मणिपुर . . .	2,886	50	91	141	5	8	154	3,040	5.1
नागालैण्ड . .	7,052	84	280	364	35	4	403	7,455	5.4
मेघालय . . .	2,488	55	127	182	86	..	268	2,756	9.7
ग्रुप "घ" .	315	125	80	205	56	4	265	2,580	10.3
सभी राज्य . .	521	252	40	292	73	28	393	914	43.0

स्रोत : के० के० जॉर्ज, भारत में केन्द्र राज्य वित्तीय प्रवाह और अंतर्राज्यीय असमानताएं, कोचीन विश्वविद्यालय में (मिमको) 1982।

7.7 और 7.8 योजना के प्रारंभिक वर्षों में, इस्पात संयंत्रों, उर्वरक की फैक्टरियों, पैट्रोरसायन यूनिटों आदि की स्थापना, सार्वजनिक क्षेत्र में विशेष रूप से कच्चे माल की उपलब्धता आदि जैसे यथार्थ आधारों के कारण की गई थी परन्तु काफी समय से संघ सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में निवेश की प्रक्रिया का उपयोग पूर्णतः राजनीतिक आधार पर कुछ राज्यों या क्षेत्रों को पुरस्कृत या दण्डित करने के लिए किया है। आंध्र प्रदेश में विशाखापट्टनम, तमिलनाडु में सलेम और कर्नाटक में मंगलौर में प्रस्तावित इस्पात संयंत्रों और हल्दिया में प्रस्तावित पेट्रो-रसायन काम्प्लैक्स के परिवर्तित भाग्य के भ्रामक उदाहरण दिए गए हैं। हल्दिया में पोतनिर्माण यार्ड और कलकत्ता में साल्ट लेक सिटी में इलैक्ट्रानिक काम्प्लैक्स स्थापित करने के प्रस्तावों की संघ सरकार द्वारा अस्वीकृत किए जाने का भी उल्लेख किया जा सकता है।

भाग VIII

व्यापार और वाणिज्य

विभिन्न वित्तीय, वैधानिक और कार्यकारी निर्णयों और उपायों का एक मामला वास्तव में विद्यमान हैं। ये निर्णय और उपाय के सतत मूल्यांकन केन्द्र और राज्यों द्वारा समय समय पर किए गए हैं और इनसे देश के अन्दर व्यापार और वाणिज्य की निर्बाध गतिविधि में अवरोध उत्पन्न हुआ है। ऐसे मूल्यांकनों की रिपोर्टों को तुरंत जनता के सामने लाया जाना चाहिए, उन पर व्यापक चर्चा की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, "राष्ट्रीय महत्व का सामान" के रूप में घोषित पण्यों पर 4 प्रतिशत से अधिक बिक्री कर लगाए जाने की अनुमति न देने या निर्यात योग्य पण्यों पर बिक्री कर लगाने की अनुमति न देने के प्रभाव का अध्ययन करने की तत्काल आवश्यकता है, जहां तक कि इन निर्णयों के परिणामस्वरूप विभिन्न राज्य अलग अलग सीमा तक प्रभावित हुए हैं। इन अध्ययनों पर कार्रवाई शुरू करने से पूर्व, केन्द्र और राज्यों के बीच यथासंभव अंतर्राज्यीय परिषद में सक्रिय विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। साथ ही केन्द्र को यह अनुमति न दी जाए कि वह अविवेकपूर्ण ढंग और स्वेच्छा से राज्य में विधायी पुस्तकों को इस आधार पर रोक दे कि इससे व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता प्रभावित हो सकती है। इसी प्रकार के अन्य मामलों में यह निर्णय करने से पूर्व कि, किसी विधान विशेष पर अनुच्छेद 300 से 304 उपबंध लागू होते है या नहीं, राष्ट्रपति को संघीय मंत्रि-परिषद से परामर्श न करके अंतर्राज्यीय परिषद से परामर्श करना चाहिए। विकल्पतः परिषद ऐसे मामलों में राष्ट्रपति की सुविधा के लिए कुछ दिशा-निर्देश निर्धारित कर सकती है।

भाग IX

कृषि

9.1 कृषि, पशु पालन, वानिकी और मीन उद्योग स्पष्ट रूप से राज्य का विषय होना चाहिए, इसलिए इस अधिकारिता को संकुचित करते हुए संघीय और समवर्ती सूची में से इन्हें निकाल दिया जाना चाहिए। केन्द्र की कृषि के क्षेत्र में तेजी से अतिक्रमण करने की हाल की प्रवृत्ति को प्रतिवर्तित किया जाना चाहिए।

9.2 जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कृषि के क्षेत्र में केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं संविधान की आत्मा के प्रतिकूल हैं और इनको क्रमिक रूप से समाप्त किया जाना चाहिए।

9.3 योजना आयोग राज्यों के साथ संयुक्त कार्यकारी ग्रुपों का गठन कर सकता है। किन्तु ऐसे ग्रुपों का उत्तरदायित्व केवल सिफारिश करने तक ही सीमित होना चाहिए।

9.4 भारत जैसे भौगोलिक विस्तार और कृषि संबंधी विषमताओं वाले देश में समर्थन या प्रापण मूल्यों का एक समान ढांचा असंगत है, इसलिए राज्यों को अपने अपने क्षेत्रों में फार्म मूल्य निर्धारित करने की छूट दी जानी चाहिए। इस प्रकार, सिंचाई के क्षेत्र में केवल ऐसी परियोजनाएं जिनमें अन्तर्राज्यीय या

अंतर्राज्यीय निहितार्थ है, केन्द्र द्वारा संयुक्त रूप से प्रायोजित की जानी चाहिए, शेष क्षेत्र को राज्यों पर छोड़ दिया जाना चाहिए। कृषि नीति के सामान्य मामले में, अंतर्राज्यीय परिषद्, योजना आयोग द्वारा दिए गए परामर्श के अनुसार समग्र दिशा-निर्देश निर्धारित कर सकती है परन्तु ब्योरेवार और विशेष कार्यक्रम तैयार करने का दायित्व राज्यों पर छोड़ दिया जाए। जहां तक सामरिक निवेश, जिसमे ऋण भी शामिल है, का संबंध है यह आशा की जाती है कि राष्ट्रीय संस्थाएं राज्य सरकारों से संबंधित एजेंसियों के साथ-साथ सहयोग करेंगी।

9.5 राष्ट्रीय कृषि एव ग्रामीण विकास बैंक की पूर्ववर्ती संस्था ए० आर० डी० सी० द्वारा प्रस्तुत की गई ऋण के अंतर्राज्यीय वितरण की पद्धति अत्यधिक असमान रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की भूमिका भी पैतृक और सामंतीय रही है। इन निकायों को प्रभावी बनाने के लिए इन्हें हिदायत दी जाए कि वे राज्य सरकार की एजेंसियों के साथ सहयोग करें।

भाग X

खाद्य और नागरिक आपूर्ति

10.1 खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक पण्यों के प्रापण, मूल्य निर्धारण, भण्डारण और संचलन और वितरण क्षेत्र में केन्द्र-राज्य सहयोग और समन्वय में सुधार की निश्चित रूप से काफी गुंजाइश है। परन्तु ऐसा सहयोग विकसित नहीं हो सकता यदि संघ सरकार यह माने कि वह इन सभी मामलों में राज्यों को निर्देश जारी करने की स्थिति में है। साथ ही, अन्तर्राज्यीय परिषद समन्वित कार्य-कलापों के लिये सामान्य दिशा-निर्देश निर्धारित करे और केन्द्र राज्यों के परामर्श से कार्यात्मक उपायों का ब्यौरा तैयार करे।

10.2 राज्यों को मूल्य कार्यान्वयन की अपनी पद्धति अपनाने की छूट दी जाए, परन्तु अंतर्राज्यीय परिषद के लिए यह आवश्यक है कि वह मूल्य विनियमन की रूपरेखा निर्धारित करे जिसके अनुसार राज्य कार्य करें।

भाग XI

शिक्षा

11.1 हमारे जैसी जातीय, भाषायी, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता और आर्थिक ढांचे में विषमताओं वाले देश में, शैक्षिक दर्शन और नीतियों के क्षेत्र में, केन्द्रीकरण को कठोरता से लागू करने का प्रयास करना खतरनाक है। शिक्षा को समवर्ती सूची में रख कर भारी भूल की है, उसको सुधारा जाना चाहिए। इस सूची का प्रस्तावित उन्मूलन करके शिक्षा को राज्य सूची में प्रत्यावर्तित किया जाना चाहिए।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग केन्द्रीय संस्था होने के कारण संघ सरकार के रवैये और राजनीतिक दबाव से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। विश्व-विद्यालयों के लिए विशेष अनुदानों की आवश्यकता है जिसे राज्य सरकारें पूरा नहीं कर सकती। अत: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसे निकाय की आवश्यकता है, परन्तु इसका गठन इस प्रकार होना चाहिए जिससे कि राज्य सरकारों में विश्वास उत्पन्न हो सके।

11.3 इस क्षेत्र में परस्पर राज्यों में और राज्यों तथा संघ सरकार के बीच एकरूपता अनिवार्य नहीं है। भारत देश की विविधता और जटिलता की संघटक यूनिटों को राष्ट्रीय उद्देश्यों के विस्तृत ढांचे के अन्दर अपने शैक्षिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त स्थान के लिए कुछ साधन जुटाने की अनुमति दी जानी चाहिए।

11.4 संवैधानिक उपबंधों का इस प्रकार अनुकूलन किया जाए कि अल्पसंख्यक संगठनों के संरक्षण के नाम पर अतिक्रमित हितों को संरक्षण न दिया जाए, तथापि वास्तविक अल्पसंख्यक अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

11.5 चूंकि वर्तमान व्यवस्थाओं के अंतर्गत राज्यपाल संघ सरकार का प्रतिनिधि है, इसलिए राज्य सरकारों ने शिक्षा के मामलों में विधान बनाने की प्रक्रिया में इस प्रकार की कठिनाई का सामना किया है, राज्यपालों ने राज्य के निर्वाचक मण्डल, विधायकों और सरकार की आकांक्षाओं के अनुसार कार्य न करके संघ सरकार के निर्देश पर उसकी अभिरुचि के अनुसार कार्य किया है। ऐसे उदाहरण भी उद्धृत किए जा सकते है जहां संघ सरकार ने राज्य के विधान को रोका है या केन्द्रीय निधियों के परियोजन या स्थगन द्वारा अपने प्रभाव का प्रयोग करने का प्रयास किया है।

भाग XII

सरकारों के बीच समन्वय

12.1 यदि अंतर्राज्यीय परिषद हमारे द्वारा सुझाये गए तरीके से कार्य करे, तो केन्द्र-राज्य संबंधों में उत्पन्न होने वाली अधिकांश समस्याओं और उत्तेजनाओं के तुरन्त समाधान के लिए यह काफी प्रभावी सिद्ध हो सकती है। सजातीय क्षेत्राधिकार वाली संस्थाओं के बाहुल्य से वांछित लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। फिर भी, स्वायत्त अनुसंधान संस्थान से कोई हर्ज नहीं है जिसके शासी निकाय में संघ और राज्यों का समान प्रतिनिधित्व हो और जो केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित मुद्दों और समस्याओं के समाधान के लिए स्वयं को पूर्णत: समर्पित करे। ऐसा संस्थान दिल्ली से दूर होना चाहिए और इसका खर्च संघ और राज्य सरकारों के बजटों में समान अनुपात में प्रभारित किया जाना चाहिए।

उद्योग पर अनुपूरक प्रश्नों के उत्तर

1. इस संबंध में प्रश्न 7.2 के मुख्य प्रश्नों के संबंध में राज्य सरकार के उत्तर का उल्लेख किया जा सकता है। यह स्पष्टत: बताया गया है कि यह मान लेना अनुचित होगा कि राज्य सरकारें राष्ट्रीय और लोकहितों पर अनिवार्यत: ध्यान नहीं देती। राज्य सरकारें राष्ट्र के हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने में सक्षम है। इस पृष्ठभूमि में यह दोहराया जाता है कि उद्योगों के विभिन्न पहलुओं का विनियमन अंतर्राज्यीय परिषद के तत्वावधान में किया जाना चाहिए जिसका गठन मुख्य प्रश्नों के उत्तर में राज्यों द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार किया जाना चाहिए विशेषकर, नये उद्योगों को उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम की अनुसूची I के उपबंधों के अनुसार संघ सरकार के नियंत्रण में रखने का कोई भी प्रस्ताव पहले अंतर्राज्यीय परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

2. लघु उद्योग क्षेत्र में एक मात्र विकास के लिए विशिष्ट उद्योगों/मदों के आरक्षण द्वारा ऐसा क्षेत्र उपलब्ध कराया जाए जिससे लघु उद्योग के उद्यमियों को अपने प्रतिपक्षी बड़े उद्योगों के उद्यमियों से विपरित प्रतियोगिता का सामना न करना पड़े। लघु उद्योग क्षेत्र का तेजी से विकास करने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों में यह एक महत्वपूर्ण उपाय है। तदनुसार, उद्योग (विकास, और विनियमन) अधिनियम, 1951 की धारा 29ख की उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए उद्योग विकास विभाग, उद्योग मंत्रालय द्वारा जारी की गई अधिसूचना के अनुसार भारत सरकार द्वारा लघु उद्योग क्षेत्र में अनेक उद्योगों का आरक्षण किया गया है, जैसा कि उक्त अधिसूचना की अनुसूची (1) में उल्लेख किया गया है। इस आरक्षण योजना के कार्यान्वयन के लिए यह बेहतर होगा कि प्रत्येक राज्य सरकार के द्वारा अलग अलग विधान बनाने के बजाय केन्द्रीकृत विधान द्वारा इस आरक्षण को जारी रखा जाए। विनिर्मित मदों का परे देश में निर्बाध संचलन होने के कारण कुछ स्पष्ट कठिनाइयां उत्पन्न होंगी, जैसे किसी राज्य विशेष की लघु उद्योग सूची की संरक्षित मदों पर दूसरे राज्य के बृहत् या मध्यम क्षेत्रों के उद्योगों द्वारा विनिर्मित वैसी ही मदों के प्रवेश से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

3. लघु उद्योग राज्य का विषय होने के कारण, राज्य सरकार लघु उद्योगों के विकास के लिए प्रत्यक्षत: संबंधित है। इसे वित्त, अवसंरचना, कच्चे माल और विपणन की सुविधाओं जैसी अनिवार्य सुविधाओं के द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है। इस समय जैसे लोहा और इस्पात, पैराफिन, मोम, साबुन बनाने के लिए आवश्यक तेल जैसा दुर्लभ कच्चा माल भारत सरकार द्वारा सारणीबद्ध है। यदि ऐसे कच्चे माल का आवंटन यूनिटों की संस्थापित क्षमता के आधार पर किया जाए, तो आवंटन के मौजूदा विपथनों से बचा जा सकता है। इसी प्रकार, सरकार का जैसी बैंकों, वित्तीयन संस्थाओं पर कोई नियंत्रण नहीं है और राज्य सरकारों के अथक प्रयासों के बावजूद, उद्योगों को पर्याप्त और समय पर वित्तीय सहायता नहीं

मिल पाती। जिन बैंकों की राज्य में प्रमुख गतिविधियां हों, उन बैंकों में उधार देने की गतिविधियों पर निगरानी रखने के लिए क्षेत्रीय बोर्ड बनाए जा सकते है जिनमें राज्य सरकारों के मनोनीत सदस्य शामिल किए जाएं। ऐसा महसूस किया जाता है कि इन उपायों से लघु उद्योगों के विकास में राज्यों की विस्तृत भूमिका सुनिश्चित होगी।

इसके अतिरिक्त, लघु उद्योगों का विकास राज्य का विषय होने के कारण, इस क्षेत्र को कानूनी संरक्षण प्रदान करने का उद्देश्य प्रत्येक राज्य द्वारा अलग विधान द्वारा कारगर ढंग से प्राप्त किया जा सकता है और जिसमें से उन आपसी हित के मामलों या उन मुद्दों को संहिताबद्ध करने के लिए संसद के लिए छोड़ा जा सकता है जिनमें राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय की आवश्यकता है। संसद द्वारा सभी राज्यों द्वारा अपनाए जाने के लिए अधिनियम बनाने के बजाय, इस कार्य को एक आदर्श बिल राज्यों में परिचालित करके पूरा किया जा सकता है, जैसा कि खादी और ग्रामोद्योग विकास कार्यक्रम के संबंध में किया गया था।

4. लघु उद्योग क्षेत्र के लिए सूची I में सूचीबद्ध की गई मदों का आरक्षण लघु उद्योग क्षेत्र के विकास को बढ़ावा देने की राज्य सरकार की नीतियों के अनुसार है। फिर भी, उन मदों के समावेश या विलोपन के बारे में निर्णय करने के लिए आरक्षण मदों की समय-समय पर राज्य सरकारों के परामर्श से समीक्षा की जाए।

5. राज्य सरकार द्वारा मुख्य प्रश्नों के संबंध में पहले से प्रस्तुत किए उत्तरों के आधारपर यह स्पष्ट किया जाता है कि संविधान की सूची I की प्रविष्टि 52 के अंतर्गत आने वाले सभी उद्योगों के संबंध में केन्द्र सरकार को इन उद्योगों से संबंधित कोई भी कानून राज्य सरकारों से परामर्श करने के बाद ही बनाना चाहिए। यह परामर्श अंतर्राज्यीय परिषद के तत्वावधान में या उद्योगों के विषय पर कार्रवाई करने के लिए इस परिषद द्वारा विशेष रूप से गठित किए गए किसी प्राधिकरण के तत्वावधान में किया जाएगा। परामर्श की इस प्रक्रिया से राज्यों को इस बारे में आश्वस्त होने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होगा कि क्या राज्य के कार्यक्षेत्र में आने वाले किसी उद्योग के संबंध में केन्द्र सरकार द्वारा अधिनियमित किए जाने वाले विधान विशेष को लोकहित में केन्द्र सरकार के नियंत्रण में लाया जाना पूर्णत: आवश्यक है।

6. भारत सरकार द्वारा समय-समय पर अंगीकार किए गए औद्योगिक नीति संबंधी संकल्पों में हमारे देश की अर्थ व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की प्रमुखता और लघु उद्योगों की भूमिका तथा उनके महत्व सहित उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों को शामिल करते हुए देश के औद्योगिकरण के संबंध में संघ सरकार की भावना और दृढ़ संकल्प को प्रतिबिंबित किया गया है। जहां तक निजी क्षेत्र का संबंध है, उनके लिए अपने कार्यक्षेत्रों में विकास और विस्तार करने के लिए काफी अवसर हैं। हाल में सरकार द्वारा अधिक उदार आयात नीति अपनाये जाने से स्वदेशी तकनीक विदेशी जानकारी प्राप्त कर पा रही हैं, यहां तक कि संचार जैसे आधार क्षेत्रों में भी निजी क्षेत्र निवेश करने का अवसर प्राप्त कर रहा है। यदि राज्य सरकार के अंतर्राज्यीय परिषद जैसे राष्ट्रीय मंच के गठन के सुझाव को स्वीकार कर लिया जाए तो सभी राज्य सरकारों को इस संबंध में पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सकेंगे कि औद्योगिक नीति में समय-समय पर आवश्यक संशोधनों के बारे में अपने विचार प्रकट कर सकें।

7. औद्योगिक नीति संबंधी जो संकल्प समय-समय पर भारत सरकार द्वारा अंगीकार किए गए हैं वे केन्द्रीय सरकार द्वारा संकल्पित, प्रारूपित, सूत्रबद्ध और अनुमोदित किए गए थे। जहां तक हमारी जानकारी है, इन प्रारूपों को टीका-टिप्पणी के लिए न तो राज्यों में परिचालित किया गया और न ही राज्यों से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से परामर्श किया गया।

अत: हमारा यह सुझाव है कि राज्य सरकार द्वारा पहले ही दिए गए सुझावों के अनुसार अंतर्राज्यिय परिषद को यह अवसर दिया जाए कि वह केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित की गई औद्योगिक नीति की विवक्षाओं के सभी पहलुओं पर विचार और विश्लेषण करें।

इस संदर्भ में यह बताया जाता है कि अंतर्राज्यीय परिषद को यह भी अवसर दिया जाए कि वह देश के विभिन्न प्रदेशों में सभी केन्द्रीय औद्योगिक निवेश कार्यक्रमों की जांच करे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ये निवेश सामूहिक मत पर राष्ट्र की अखण्डता और सभी प्रदेशों के लिए आर्थिक विकास के उचित अवसर प्रदान करने की भावना से किए गए हैं। दूसरे शब्दों में, संघ सरकार को केन्द्रीय औद्योगिक निवेशों पर एकपक्षीय निर्णय नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा अनुभव रहा है कि प्राय: इस प्रकार के निर्णय राज्य सरकार की शिकायत का कारण रहे हैं।

8. एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम निजी क्षेत्र के आर्थिक क्रिया कलापों में उत्पादन और वितरण संबंधी न्याय को सुनिश्चित करने की दृष्टि से बनाया गया है। अधिनियम के प्रावधानों में निहित सामाजिक और आर्थिक उद्देश्य संतोषजनक हैं।

इस अधिनियम के अनुसार, निजी क्षेत्र की कुछ कंपनियों को उनकी विशाल परिसम्पत्तियों और कुल बिक्री को ध्यान में रखते हुए एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार की कम्पनियों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इन कम्पनियों को अपने विद्यमान क्षेत्र या नये क्षेत्रों में अपनी क्षमता को बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जाती। इस तथ्य का कोई प्रतिवाद नहीं है कि ऐतिहासिक कारकों की वजह से पश्चिम बंगाल क्षेत्र में विशेषकर कलकत्ता में और उसके आस पास औद्योगिक विकास उन कम्पनियों के प्रयासों और निवेश के कारण हुआ जिन्हें बाद में एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार की कंपनियों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। परन्तु लाइसेंस देने की वर्तमान नीति और एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार यूनिटों के संबंध में अपनाई गई प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप, उनके द्वारा कलकत्ता या राज्य के अन्य पिछड़े क्षेत्रों में विस्तार निवेश का क्षेत्र बिलकुल सीमित हो गया है, इस तथ्यों के बावजूद कि उनके पास आवश्यक निवेश योग्य संसाधन है और पिछड़े क्षेत्रों के विकास में उन्हें निपुणता प्राप्त है। अत: यह देखा गया है कि एकाधिकार प्राप्त कंपनियों को नियंत्रित करने की नीति ने वास्तव में पश्चिम बंगाल में उद्योगों के विकास में बाधा डाली है। चूंकि इस प्रदेश में पारंपरिक उद्योगों में गतिहीनता की स्थिति आ गई है, इसलिए यह अनिवार्य है कि वर्तमान विनियमात्मक उपायों को उदार बनाया जाए जिससे कि राज्य की अर्थव्यवस्था में तेजी से गतिशीलता आ सके। अत: यह सुझाव है कि एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की कार्यप्रणाली में विशेष अवमर्जन खण्डों का प्रावधान किया जाना चाहिए, जिनमें राज्य सरकार के विचारों को महत्व दिया जाना चाहिए। सरकारिया आयोग इस पहलू की अधिक सावधानी से जांच की जानी आवश्यक है।

तथापि, इस संदर्भ में हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम में अवरोधक व्यापारिक व्यवहारों से संबंधित उपबंधों को इन पर निर्भर बेहतर सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए, सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप से लागू किया जाना चाहिए।

पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री का आयोग के समक्ष वक्तव्य

महान राष्ट्रीय त्रासदी के परिणामस्वरूप केन्द्र-राज्य संबंधों के आयोग ने पश्चिम बंगाल की यात्रा की। तथापि, इस त्रासदी के कारण यह और भी महत्वपूर्ण है कि आयोग अपने कार्य को पूरा करे और अपनी सिफारिशों को यथाशीघ्र प्रस्तुत करे। राष्ट्र को आक्रान्त करने वाली अधिकतर तनाव और फूट डालने वाली शक्तियां उन केन्द्र और संघीय राज्यों के विद्यमान संबंधों में असंतुलन के कारण उत्पन्न होती हैं। इसका पूरा खतरा है कि केन्द्र-राज्य संबंधों के व्यापक पुनर्गठन के बिना ऐसे कि सामाजिक और आर्थिक तनाव बढ़ेंगे। हम स्वयं यह करने का प्रयास करेंगे कि हमारा लक्ष्य ऐसा हो कि राज्य व्यवस्था में पैदा होने वाली असंगत तनाव को रोका जा सके।

2. पश्चिम बंगाल की सरकार ने आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई प्रश्नावली का उत्तर देते हुए उन सभी महत्वपूर्ण समस्याओं को शामिल करने का प्रयास किया है जिनके कारण हमारे देश में केन्द्र-राज्य संबंधों की पुनर्व्यवस्था की जानी आवश्यक है।। तथापि, मैं आयोग को यात्रा के अवसर पर यह चाहूंगा कि उसका ध्यान उन अनेकों समस्याओं पर आकर्षित कराऊ जो कि हाल के महीनों में तेजी से सामने आयी है।

3. आयोग की प्रश्नावली के उत्तर में हमने राज्यपाल की भूमिका पर कुछ विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। राज्य सरकारों के स्वरूप में परिवर्तन लाने के लिए इस वर्ष जुलाई और अगस्त के महीने में जम्मू और कश्मीर तथा आंध्र प्रदेश के राज्यपालों के व्यवहार को देखते हुए इन्हीं विचारों की पुष्टि होती है। इन दोनों राज्यों में राज्यपालों ने बिना राज्य विधानमण्डल के विचारों को जाने, अपने विशेषाधिकार का प्रयोग लोकतांत्रिक रूप से चुने गये मुख्य मंत्रियों को बर्खास्त करने के लिए किया और अपनी पसंद के व्यक्ति को प्रतिस्थापित किया। हमारे देश की सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता को देखते हुए यह एक निराशाजनक स्थिति है कि विधानमण्डलों के सदस्यों को दल परिवर्तन के लिए फुसलाया जा सकता है और वे उस अधिवेशन को अस्वीकार कर सकते हैं जिसके आधार पर उनका चुनाव हुआ है। तथापि, इस प्रकार के दल-परिवर्तन को सुव्यवस्थित तरीके से राज्यपालों के कार्यों और गतिविधियों द्वारा प्रोत्साहित किया गया है जिन्होंने या तो अपनी इच्छा को या संघ सरकार के निर्देशों से मुख्य मंत्रियों को बर्खास्त और नियुक्त करने की कार्यवाही मनमाने ढंग से की है। जम्मू-कश्मीर में किया गया यह उल्लंघन अभी तक रद्द नहीं किया गया है चूंकि जिन विधायकों को अपनी निष्ठा परिवर्तित करने के लिए फुसलाया गया था, उन्होंने अपने मूल दल में आने का फैसला नहीं किया। परन्तु इससे राज्यपालों द्वारा की गई भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। आंध्र प्रदेश में भिन्न स्थिति थी; वहां राज्यपाल द्वारा अपदस्थ मुख्यमंत्री का स्थान पाने वाले व्यक्ति को राज्य विधानपरिषद के सदस्यों के बहुमत का समर्थन शायद कभी भी प्राप्त नहीं था। यह अनुचित है कि राज्यपाल ने पदस्थ मुख्य मंत्री को राज्य विधानपरिषद की बैठक बुलाने की प्रार्थना को मानने से इन्कार कर दिया, जब कि मुख्य मंत्री अड़तालीस घण्टों के अंदर अपने पक्ष में बहुमत के समर्थन को प्रदर्शित करना चाहता था, परन्तु राज्यपाल स्वेच्छा से मुख्य मंत्री के रूप में नियुक्त किये व्यक्ति को अपने समर्थन में बहुमत सिद्ध करने के लिए विधानपरिषद की बैठक बुलाने के लिये तीस दिन की अनुमति देने को तैयार हो गये, जिसे किसी अन्य परिस्थिति में वह सिद्ध न ही कर सकते थे।

4. इस विषय का अन्य पहलू भी है जिस पर मैं आयोग का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। डॉ० फारूख अब्दुल्ला 1 जुलाई, 1984 की दोपहर बाद देर तक जम्मू-कश्मीर के मुख्य मंत्री और गृह मंत्री बने रहे; फिर भी, उसी दिन सुबह अर्द्ध-सैनिक बलों को बिना उनकी जानकारी और सहमति के राज्य में भेजा गया। बाहर से सशस्त्र कार्मिकों का यह प्रवेश राज्यपाल से सीधे आदेशों के द्वारा हुआ। यह सांविधानिक प्रक्रियाओं का घोर उल्लंघन है और ऐसा दोबारा नहीं होने दिया जाना चाहिए।

5. इन स्थितियों को ध्यान में रखकर हमें इस विचार को दोहराने में जरा भी संकोच नहीं है कि राज्यपाल का पद समाप्त किया जाना चाहिए। मैं आयोग का ध्यान भारत सरकार अधिनियम, 1935 के उन उपबंधों की ओर दिलाना चाहूंगा जिनका संबंध अस्थायी राज्यपाल की भूमिका और कार्यों से है। इन उपबंधों को पूरी तरह से हमारे संविधान में दोहराकर, तथाकथित संघीय लोक तांत्रिक ढांचे को साम्राज्यवादी बपौती के द्वारा दबा दिया गया है। संसार में ऐसे अनेकों संघीय राष्ट्र है जहां कि संघीय केन्द्र और संघीय इकाइयां प्रगतिशील सांविधानिक व्यवस्थाओं को बिना किसी मध्यस्थ के जैसा कि हमारे संविधान में राज्यपाल को बनाया गया है, बनाये रखने में समर्थ हैं। मुझे पूरी आशा है कि आयोग गंभीरता से इस विषय पर विचार करेगा।

6. राज्य सरकार द्वारा आयोग की प्रश्नावली का उत्तर प्रस्तुत किए जाने के बाद अन्य अत्यधिक अशांति उत्पन्न करने वाली घटना संघ सरकार द्वारा आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर निर्णय लेना है। इस निर्णय के तात्विक परिणामस्वरूप राज्यों को चालू वित्तीय वर्ष के दौरान लगभग 1500 करोड़ रुपये की सीमा तक संसाधनों के अंतरण की मनाही कर दी गई जिसमें 300 करोड़ रुपये से अधिक धनराशि अकेले पश्चिम बंगाल को मिल गई। संघ सरकार के इस निर्णय की वैधानिकता और सांविधानिकता के संबंध में आपत्ति उठायी जा सकती है और राज्य सरकारों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से इस विषय में पूछताछ की जाने वाली है। फिर भी, मेरी तीव्र इच्छा है कि सांविधानिक उपबंधों को ही इस प्रकार उचित रूप से संशोधित किया जाये कि ऐसे मामलों में सभी अस्पष्टताएं समाप्त हो जाये जिससे कि आगे से संघ सरकार अपने वित्त आयोग की सिफारिशों का पालन न करने की स्वेच्छा से वंचित हो जाये। केन्द्र राज्य वित्तीय संबंध, जोकि संघीय राज्य व्यवस्था को बनाये रखने के लिए मूलत: आवश्यक है, आयोगों को आवधिक नियुक्ति की व्यवस्था और इसकी सिफारिशों को लागू करने में निहित है। यदि इस व्यवस्था को संघ सरकार द्वारा अव्यवस्थित कर दिया जाता है तो मुझे भय है कि देश के काफी भागों में व्यापक रूप से सामाजिक और आर्थिक असंतोष फैल जाएगा। ऐसी स्थिति को किसी भी कीमत पर रोका जाना चाहिए, और जो भी सांविधानिक परिवर्तन किये जायें उनको प्रयोग में लाया जाये।

7. मैं आयोग का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित करना चाहूंगा कि संघ सरकार संविधान के अनुच्छेद 74 के प्रावधानों के कारण वित्त आयोग की सिफारिशों को निकाल सकती है; जैसे कि अब इस अनुच्छेद में यह दिया गया है कि राष्ट्रपति को अपने सभी कार्यों के करने में केन्द्रीय मंत्रि परिषद् की सलाह को मानना होगा। मैं राज्य सरकार के उन विचारों को दोहराना चाहूंगा कि जहां केन्द्र-राज्य संबंध सम्मिलित है वहां राष्ट्रपति केन्द्रीय मंत्रि परिषद की सलाह पर दिये गये निर्देशों के अनुसार नहीं, बल्कि अंतर्राज्य परिषद के निर्देशों के अनुसार कार्य करेगा, जिसका प्रावधान अनुच्छेद 263 में दिया गया है और जिसका गठन हमारे द्वारा बताये गये ढंग से होगा।

8. आयोग को उस विस्तृत क्षेत्र पर ध्यान देना चाहिए जिसको हम अंतर्राज्य परिषद के कार्यक्षेत्र में लाना चाहते है। इसका अभिप्राय संसद की भूमिका को संकुचित करना नहीं है, जोकि राज्य सभा के ढांचे में निश्चित पुनर्गठन से हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली में प्रमुख शक्ति बनी रहेगी। परन्तु जहां तक प्रमुख मुद्दों द्वारा केन्द्र-राज्य संबंधों को प्रभावित करने का संबंध है, राय और परामर्श देने के लिए अंतर्राज्य परिषद जैसे निकाय, जिसके संयोजन में संघीय राज्यों के विचारों को समुचित महत्व मिलेगा, यह मुद्दों को समझने और अनुकूल निर्णय लेने में अत्यधिक सहायता प्रदान करेगा।

9. अब मैं अनेकों विशिष्ट समस्याओं की तरफ ध्यान दिलाना चाहता हूँ। संविधान के अनुच्छेद 200 का लाभ उठा कर विगत में इस राज्य के राज्यपालों ने हमारी विधान परिषद द्वारा पास किये गये अनेकों महत्वपूर्ण बिलों को संघ

सरकार को उध्दृत किया था अभी तक इन बिलों पर सहमति नहीं मिल पायी है। मेरे ध्यान में विशेषकर पश्चिम बंगाल भूमि सुधार (संशोधन) बिल 1981 तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय अधिनियम (संशोधन) बिल 1984 है। कलकत्ता विश्वविद्यालय अधिनियम (संशोधन) बिल 1984 में, यद्यपि, विषय वस्तु समवर्ती सूची से संबंधित है, इसके प्रावधान किसी भी केन्द्रीय अधिनियम के प्रतिकूल नहीं हैं, परन्तु फिर भी बिल रोक लिया गया है। भूमि सुधार (संशोधन) बिल के संबंध में संघ सरकार ने अनुच्छेद 31(क) के उपबंधों पर ध्यान देने के अलावा घुमाफिरा कर अपना यह भय प्रदर्शित किया है कि इस संशोधन का कार्यान्वयन देश के निर्यात बढ़ाने के प्रयासों पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। हमारे संविधान में दिये गये राज्य के निदेशक सिद्धान्तों में निर्यात-वृद्धि शामिल नहीं है। फिर भी अनुच्छेद 38 और 39 के अनुसार भूमि के न्याय संगत वितरण को प्रभावित करने के लिए स्पष्ट निर्देश है। इसलिए यह आवश्यक है कि संघ सरकार की विधायी और प्रशासकीय जैसे मामलों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की शक्ति, जिसमें कि राज्यों को स्पष्टतः विशेषाधिकार प्राप्त है, को संविधान द्वारा नियमित किया जाना चाहिए। मैं ऐसी आशा करता हूं कि आयोग इस प्रयोजन के लिए आवश्यक संशोधनों की सिफारिश करेगा।

10. आयोग की प्रश्नमाला के अपने उत्तर में हमने यह सशक्त दलील दी है कि राज्य सभा को इस प्रकार पुनर्गठित किया जाए जिससे सभी राज्यों को इसमें समान प्रतिनिधित्व मिल सके। यह सिद्धान्त सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों के संविधान में मिलता है और इसने अपेक्षाकृत छोटे, कमजोर या दुरस्थ राज्यों की उपेक्षा और अलगाव की भावना को किसी सीमा तक शान्त किया है। भारतीय लोगों में एक सीमा तक भाषायी, जातीय और सांस्कृतिक विविधताओं और उनके सामाजिक और आर्थिक स्तरों में व्यापक असमानताओं के बावजूद, यह महत्वपूर्ण है कि विभिन्न राज्यों में निवास करने वाले जनसंख्या समूहों का एक मंच है जहां वे अपने विचारों को समान आधार पर व्यक्त कर सकते है। एक पुनर्गठित राज्य सभा जिसमें सभी राज्यों के बराबर प्रतिनिधि हों, इस समस्या का हल हो सकता है।

11. यदि ऐसे मंच उपलब्ध हों, तो नेपाली भाषा को राष्ट्र की भाषा की मान्यता देने जैसे और इसको आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करने जैसे मुद्दों पर वर्तमान स्थिति से अधिक ध्यान दिया जा सकता था। ऐसी मान्यता, पश्चिम बंगाल और सिक्किम में रहने वाले अधिसंख्यक नागरिकों द्वारा किये गये आग्रह की उचित प्रतिक्रिया होगी। मैं आशा करता हूं कि आयोग इस बारे में अपनी सिफारिश प्रस्तुत करेगा।

12. आयोग की प्रश्नमाला के उत्तर में हमने केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय और मुद्रागत संसाधनों के बंटवारे से संबंधित समस्याओं पर विस्तार से विचार किया है, हमने औद्योगिक लाइसेंस देने की प्रणाली की और उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम के प्रावधानों द्वारा देश के संतुलित आर्थिक विकास उद्देश्य को पहुंचायी गई गंभीर क्षति की भी चर्चा की है। हमने देश में आर्थिक नियोजन की दशा और उस दशा, जिस तक कि योजना आयोग पहुंच चुका है, का भी उल्लेख किया है। मेरी प्रबल इच्छा है कि—आयोग अपने निर्णय पर पहुंचने से पूर्व इन मुद्दों से संबंधित हमारे सुझावों और प्रस्तावों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करेगा।

13. मैं आयोग से अपील करूंगा कि राष्ट्र द्वारा वर्तमान में भुगती जा रही समस्याओं की समग्रता के प्रकाश में उन मुद्दों को देखना चाहिए जोकि केन्द्र-राज्य संबंधों पर प्रभाव डाल रहे हैं। यहां उन ऐतिहासिक कारकों की भी ध्यान में रखना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्य के उदय से पूर्व, देश में कोई भी समान प्रशासकीय ढांचा नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्य के दिनों में भी, भारतीय रियासतों और ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शासित शेष राज्यों के बीच दुहरी व्यवस्था थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले दिनों में इस ऐतिहासिक वास्तविकता से पूरी तरह परिचित था और इसके लिए उत्सुक था, कि स्वतंत्र भारत में संघीय विचारधारा सफल होनी चाहिए, और इसे औपचारिक अनुमति प्राप्त होनी चाहिए, और विभिन्न सांस्कृतिक, भाषायी, जातीय और धार्मिक समूहों, जिनसे कि विशाल भारत संघटित है, को अधिक स्वतंत्रता दी जाए जिससे कि वे अपने विकास की संभावनाओं का पूरा लाभ उठा सकें। यह समान रूप से आवश्यक है कि समग्र सामाजिक-आर्थिक उन्नति के उद्देश्य के लिए किसी विशेष समूह के हितों में इसलिए बाधा नहीं पहुंचायी जानी कि इससे अन्य किसी समूह या समूहों के हितों का पोषण होता है। इस आधार तत्व को ध्यान में रख कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने अगस्त 1942 के प्रस्ताव में भी यह सुझाव दिया था कि एक बार राष्ट्र को स्वतंत्रता मिलने के बाद पुनर्गठित राज-व्यवस्था में अवशिष्ट अधिकार संघीय राज्यों में निहित होंगे न कि केन्द्र में। जब संविधान अधिनियमित किया गया तो इस प्रस्ताव को प्रतिवर्तित कर दिया गया। मैं यह सुझाव दूंगा कि संविधान को इस प्रकार संशोधित किया जाये। जिससे कि स्वतंत्रता-आन्दोलन की शपथ को पुनः मान्यता मिले।

14. इस संबंध में, आयोग से मेरा निवेदन है कि वह संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ, कनाडा और आस्ट्रेलिया जैसे संघीय देशों के संविधानों के उपबंधों का परीक्षण करें। जिन समस्याओं का भारत सामना कर रहा है वे अनन्यजातिक नहीं हैं। ऐसी समानान्तर दशाएं है जिनको भारत जैसी समान स्थिति वाले देशों में देखा जा सकता है, इन समानान्तर स्थितियों से उचित सीख ली जा सकती है। उदाहरण के लिए आयोग कामरेड स्टालिन के सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ के कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के समक्ष दिये गये वक्तव्य से कुछ लाभ उठा सकता है। यह वक्तव्य 1923 में, सोवियत संघ के संविधान के प्रारूप पर केन्द्रीय समिति में, एक चर्चा के दौरान दिया गया था।

यदि संघ की केन्द्रीय कार्यपालक समिति के अंदर हम समान समान शक्तियों वाले दो सदन बना दें जिनमें से एक का बिना राष्ट्रीयता के भेदभाव के सोवियत संघीय कांग्रेस में चुना जाता है और दूसरे को गणतंत्र और राष्ट्र के प्रदेशों द्वारा चुना जाता है। गणतंत्र को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है और राष्ट्रीय प्रदेशों को भी समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है। और इसका समर्थन उसी गणतंत्रीय संघ की कांग्रेस के सदस्य करेंगे, मैं सोचता हूं कि तब हमारी सर्वोच्च संस्थाएं केवल निरपवाद रूप से सभी कार्य करने वाले व्यक्तियों के वर्ग हितों को बल्कि विशुद्ध रूप से राष्ट्रीय आवश्यकताओं को व्यक्त करेंगी। हमारे पास एक ऐसा अंग होगा जो कि गणतंत्र संघ में बसने वाली जातियों, लोगों और राष्ट्रीयताओं के विशेष हितों को व्यक्त करेगा। हमारे संघ में प्रचलित स्थिति के अंतर्गत जो कि कम से कम 1,40,000,000 लोगों को जोड़ता है, इनमें से लगभग 65,000,000 लोग रूसी नहीं है, ऐसे देश में शासन करना असंभव है यदि यहां मास्को के सर्वोच्च अवयव में हमारे साथ इन राष्ट्रीयताओं के प्रतिनिधियों को न केवल सामान्य सर्वहारा के समस्त हितों बल्कि विशेष एक विशिष्ट राष्ट्रीय हित को व्यक्त करता है। कामरेड, इसके बिना शासन करना असंभव है। यदि हमारे पास ऐसा मानदंड नहीं है और लोग वैयक्तिक राष्ट्रीयताओं की विशेष आवश्यकताओं को व्यवस्थित करने में असमर्थ हैं, तो शासन करना असंभव होगा। (जे० वी० स्टालिन, विभिन्न कार्य वाल्यूम 5, पृष्ठ 263-4, मास्को 1953)

15. कोई संविधान तभी तक बना रहता है, और मजबूती प्राप्त करता है, यदि इसके उपबन्ध किसी व्यवस्था को मूर्त रूप देते हैं जिसमें कि शासन करने वाली एजेंसियां और जिन लोगों को वे शासित करती हैं, को लगातार एक दूसरे के संपर्क में रखा जाता है। हम इस प्रयोजन के लिए अपने संविधान में संघ-राज्य संबंधों का पुनः मूल्यांकन और पुनः व्यवस्थापन चाहते हैं। मुझे विश्वास है कि यही वह उद्देश्य है जिसके लिए आयोग का गठन किया गया है।

राजनीतिक दलों से प्राप्त प्रश्नावली के उत्तर, ज्ञापन आदि

1. राष्ट्रीय दल (नॅशनल पार्टियां)

भारतीय जनता पार्टी

ज्ञापन

प्रस्तावनात्मक

अनेक सांविधानिक विशेषज्ञों द्वारा भारतीय संविधान को अर्ध संघीय वर्णित किया गया है। अमरीकी या आस्ट्रेलियाई संविधान के अर्थ में यह संघीय नहीं है। इसे एकात्मक माना गया है। किन्तु भारत जैसे विशाल देश को क्षेत्रीय सरकारों के द्वारा ही व्यवस्थित किया जा सकता है। अतः राजनैतिक यूनिटों के रूप में राज्यों का अस्तित्व अपरिहार्य है। इसके अतिरिक्त यह वांछनीय भी है। देश के भिन्न भिन्न भागों से सम्बन्धित ऐसी विशिष्ट समस्याएं हैं और स्थान स्थान के अनुसार उनका समाधान भी भिन्न भिन्न ही होगा। अतः राजनैतिक अधिकार का विकेन्द्रीकरण लोकतंत्र को मजबूत बनाने और देश के कुशल शासन को सुनिश्चित करने दोनों के लिए अत्यावश्यक है।

हमारे संविधान में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच अधिकारों और कार्यों के संवितरण के लिए आवश्यक व्यवस्था की गई है। किन्तु इन उपबंधों को अमल में लाने से केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में काफी तनाव सा आ गया है। हम महसूस करते हैं कि देश कि एकता और अखंडता को मुद्देनजर रखते हुए इन तनावों को दूर करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाने होंगे। यद्यपि केन्द्र की निरंकुश सत्ता बनाने से रोका जाना चाहिए तथापि राज्य सत्ता के समानान्तर या परस्पर विरोधी केन्द्र न बनने पाएं। सही संतुलन बनाए रखने के लिए केन्द्र और राज्य सम्बन्धों की समीक्षा करना आवश्यक हो गया है। इस टिप्पणी में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं के विषय में भारतीय जनता पार्टी की स्थिति संक्षेप में बताई गई है।

हमारी राय में ऐसा कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए जिससे देश की एकता कमजोर हो। केन्द्र और राज्यों के बीच चल रहे संघर्ष और वैमनस्य को अवश्य खत्म किया जाना चाहिए। संविधान के उपबंधों को विधि और मूल भावना दोनों ही तरह से अमल में लाया जाना चाहिए। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि ऐसा नहीं किया गया। संविधान में राज्यक्षेत्रीय के साथ-साथ कार्यकारी अधिकारों और कार्यों के महत्वपूर्ण विकेन्द्रीकरण पर विचार किया गया है। केन्द्र अधिक से अधिक अधिकारों को हथिया रहा है और बदले में राज्यों ने स्थानीय निकायों को अधिकार नहीं दिए हैं। ऐसी स्थिति में इस असंतुलन में सुधार किया जाना चाहिए।

भारतीय संविधान समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से लचीला है। संघ-राज्य सम्बन्धों से जो विभिन्न तनाव समस्याएं और जटिलताएं उत्पन्न हुई हैं, वे अभी तक विद्यमान हैं क्योंकि पिछले वर्षों से इन सम्बन्धों को संविधान की सही विचारधारा और उद्देश्य के अनुरूप व्यवस्थित नहीं किया गया है। किन्तु हम यह नहीं सोचते हैं कि इस विकार को केवल समझौते और कार्य-नीति द्वारा सुधारा जा सकता है। संविधान में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक है।

तमिलनाडु सरकार द्वारा 1971 में नियुक्त की गई राजामन्नार समिति ने संघवाद के पूर्व रूप में अपनी वचनबद्धता अभिव्यक्त की थी। अतः उस समिति ने केन्द्र-राज्य के सम्बन्धों से सम्बद्ध भारतीय संविधान के उपबंधों को हटाने या इनमें कड़ा संशोधन करने की सिफारिश की थी जैसे अनुच्छेद 251, 256, 257, 348, 349, 355, 356, 357, 365 आदि।

जैसाकि प्रारम्भ में पहले ही कहा गया है कि भारत के संविधान निर्माता भारत को प्रतिष्ठित संघ के रूप में नहीं मानते हैं और संविधान की संघीय रूप मे बनाया है किन्तु वस्तुतः मे यह अत्यावश्यक रूप से एकता पर आधारित है। हम सोचते हैं कि यह दृष्टिकोण युक्तियुक्त है और हम इसमें ऐसा परिवर्तन करने के पक्ष में भी नही है जिससे यह व्यवस्था खोखली होती हो।

हम विशेष रूप से यह कहते है कि हम निम्नलिखित अनुच्छेदों के परिवर्तन करने के पक्ष में नही हैं जैसे अनुच्छेद 251 (संसद द्वारा बनाए गए कानूनो और विधान मंडल द्वारा बनाए गए कानूनो के बीच असंगति) अनुच्छेद 256 (राज्यो और संघ के दायित्व) अनुच्छेद 257 कतिपय मामलों में राज्यो के ऊपर संघ का नियंत्रण) अनुच्छेद 348 (उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालयो आदि मे प्रयुक्त की जाने वाली भाषा) और अनुच्छेद 355 (राज्यों को सुरक्षित रखने के लिए संघ का कर्तव्य)।

राज्य सीमाओ के परिवर्तन से सम्बद्ध संविधान के अनुच्छेद 3 को संशोधित किया जाना चाहिए ताकि इस अनुच्छेद में जितने परिवर्तनो पर विचार किया गया है उन्हे संविधान मे संशोधन करने के बाद ही प्रभावी किया जाए।

अनुच्छेद 252, 360 और 365 की समीक्षा की जाए ताकि इनके दुरुपयोगों को रोका जा सके।

अनुच्छेद 263 के अनुसार अन्तर्राज्यीय परिषद् के विरचन को अधिदेशात्मक बनाया जाए। परिषद् में प्रधानमंत्री और सभी मुख्य मंत्री शामिल होने चाहिए।

अस्थायी अनुच्छेद होने के कारण अनुच्छेद 370 को राष्ट्रीय अखंडता के हित मे निकाल दिया जाए।

विधायी सम्बन्ध

कुल मिलाकर हम संविधान की सूची 1, 2 और 3 मे दिए गए विधायी अधिकारों के बंटवारे को स्वीकार करते हैं।

बहुत से ऐसे उदाहरण देखने में आए हैं जहां अनुच्छेद 200 का दुरुपयोग किया गया है। जिससे राज्य सरकार के लिए कठिनाइयां उत्पन्न करने के लिए विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक कर रखा जाता है। अतः अनुच्छेद 200 में निम्नानुसार संशोधन अवश्य करना होगा :

जब कभी राज्य सूची के विषय से सम्बद्ध कोई विधेयक राज्य विधान मंडल द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राज्यपाल के सामने केवल दो विकल्प होने चाहिए; अर्थात,

(i) विधेयक के सम्बन्ध मे अपनी सहमति दे, या

(ii) विधेयक मे कोई भी परिवर्तन करने के लिए अपनी सिफारिशों के साथ विधेयक अविलम्ब लौटा दे; यदि विधान मंडल विधेयक को या तो मूल रूप में या संशोधित रूप में पारित कर देता है तो राज्यपाल विधेयक के सम्बन्ध में अपनी सहमति दे देगा।

राज्यपाल विधेयक के सम्बन्ध में अपनी सहमति देगा। इन विधेयकों को राष्ट्रपति की सहमति के लिए रोक कर रखने का इन्हें कोई अधिकार नहीं होगा।

जब कभी समवर्ती सूची मे किसी विषय से सम्बन्धित विधेयक पारित कर दिया जाता हो तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति के लिए रख सकता है। यह राष्ट्रपति की इच्छा पर है कि वह इसकी प्राप्ति के तीन मास के भीतर इस पर अपनी सहमति दे या इसे नामंजूर कर दे। यदि उस समय तक कोई निर्णय नही दिया गया हो तो इसे सहमति प्राप्त माना जाएगा। हम इस बात से सहमत है कि समवर्ती विषय से सम्बन्धित किसी भी कानून के केन्द्र द्वारा पारित किए जाने से पूर्व सम्बन्धित राज्य सरकारों से परामर्श के लिया जाना चाहिए।

आज तक 70 लाख की आबादी वाला दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र, अपने स्वयं के कानून बनाने और अपने स्वयं के प्रशासन चलाने के अवसर से वंचित है। दिल्ली के लिए कानून संसद द्वारा बनाए जाते हैं यद्यपि यहां महानगरीय परिषद, और कार्यकारी परिषद्, है फिर भी वास्तविक कार्यकारी शक्ति केन्द्र सरकार की होती है। भा ज पा का विचार है कि यह स्थिति बदलनी चाहिए और दिल्ली को विधान सभा और इस सभा के लिए जिम्मेवार मंत्रिपरिषद्, अवश्य दिए जाने चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका

संविधान में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि कुल मिलाकर राज्यपाल राज्य का सांविधानिक अध्यक्ष होगा। राज्यपाल का पद केन्द्र और राज्य का सम्पर्क बिंदु होता है। राज्यपाल की स्थिति कुछ कुछ कठिन और विरोधाभासी होती है। वह उस राज्य सरकार का सांविधानिक अध्यक्ष होता है जो कि उसके बदले में राज्य विधान मंडल के लिए ही जिम्मेवार है। दूसरी ओर, उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जिसका वास्तव में आशय केन्द्रीय सरकार से है। निसंदेह यह सत्य है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है किन्तु इस प्रकार वह सरकार के कर्मचारी या नौकर नहीं बन जाते। हम सिफारिश करते हैं कि राज्यपाल की नियुक्ति के तरीके और उनके अधिकारों में आवश्यक परिवर्तन करके इस सांविधानिक स्थिति को मजबूत बनाए जाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति अन्तर्राज्यिक परिषद् द्वारा तैयार किए गए पैनल से पांच वर्ष की अवधि के लिए की जाए। उनकी नियुक्ति सम्बन्धित राज्य से सलाह करके की जाए। राज्यपाल को केवल संसद में उनके विरुद्ध महाभियोग चलाकर ही हटाया जा सकेगा। इस सम्बन्ध में भी वही प्रक्रिया अपनाई जाए जो कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में दी गई है। इन्हें एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरित न किया जाए और न ही इन्हें अपने पद की समाप्ति के बाद राज्य या केन्द्रीय सरकार के अधीन लाभ के किसी पद को धारण करना चाहिए।

सभा के बहुसंख्य सदस्यों द्वारा मुख्यमंत्री में विश्वास व्यक्त करने के सम्बन्ध में सभी प्रश्नों पर निर्णय सदन में ही लिया जाएगा। राज्यपाल अपने सांविधानिक अधिकारों को अपने मंत्रियों की सलाह के अनुसार प्रयोग में लाएगा। अन्तर्राज्यीय परिषद, राज्यपाल के सांविधानिक कार्यों के निर्वहन में उनकी सहायता करने के लिए दिशा-निर्देश सम्बन्धी सिद्धान्त तैयार करेगी।

वित्तीय सम्बन्ध

वित्त आयोग गठित करने के लिए और संघ और राज्यों के बीच राजस्व का वितरण करने के सम्बन्ध में संविधान में उपबंध है। (अनुच्छेद 268, 269, 270, 271, 272, 275)

हम महसूस करते है कि आर्थिक संस्रोतों के वितरण की वर्तमान योजना केन्द्र और राज्य के सम्बन्धों में क्षोभ का मुख्य कारण है। अर्थ विशेषज्ञों के बीच यह आम सम्मति है कि इस विषय पर राज्यों की नाराजगी न्यायोचित है।

हम महसूस करते है कि :—

(i) राज्यों को उपलब्ध निधियां जुटाने के संस्रोत अपेक्षाकृत अनम्य हैं;

(ii) विशेषतः महत्वाकांक्षी विकास योजना के सन्दर्भ में, राज्यों को सौंपे गए कार्य ऐसे है जो मजबूरीवश जिम्मेवारियों को बढ़ावा देते हैं; और

(iii) राष्ट्रीय योजना को वित्तपोषित करने वाले महत्वपूर्ण स्रोत, जैसे विदेशी सहायता, विदेशी ऋण, घाटे का वित्त-प्रबंध राज्य संस्रोतों की अपेक्षा केन्द्र के संस्रोतों को दृढ़ता प्रदान करते हैं।

यह समझा जाता है कि यदि यह शिकायत न्यायोचित रूप से निपटाई जानी है तो यह देखने के लिए कार्रवाई की जानी होगी कि :

(i) राज्यों के संसाधनों की अन्तरण की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए ताकि वह इनके दायित्वों के अनुरूप हो,

विभाजक पूल में राज्य की हिस्सा पूंजी को बढ़ाया जाना चाहिए।

(ii) एकीकृत विचार को ध्यान में रखते हुए अन्तरण की व्यवस्था इस प्रकार से की जानी चाहिए कि यह केन्द्र और राज्य दोनों की योजना और साथ ही योजनेतर आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

(iii) केन्द्र द्वारा दिए गए उधार और कर्जे राज्यों की विकासात्मक आवश्यकताओं से सम्बद्ध होने चाहिए।

भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची में दी गई राज्य सूची में निम्नलिखित विषय शामिल हैं जैसे लोक व्यवस्था और पुलिस, लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता, अस्पताल और डिस्पेंसरियां अशक्त और बेरोजगार को सहायता, संसूचना, अर्थात् सड़कें, पुल, नौघाट और संसूचना के अन्य साधन, कृषि जिसमें कृषि सम्बन्धी व्यवस्था और संस्रोत शामिल हैं, जल जिसमें जल प्रदाय, सूखी और नहर, माल का उत्पादन, पूर्ति और वितरण।

राज्य सरकार या कोई भी राजनैतिक पार्टी अपने कार्यक्रम को कार्यान्वित करना चाहती है जिसके सम्बन्ध में जनता का समर्थन प्राप्त हुआ है, को इसके लिए बड़ी मात्रा में वित्तीय संस्रोतों की आवश्यकता होगी। विकास की किन्हीं महत्वाकांक्षी योजनाओं को वित्तपोषित करने के लिए राज्यों को कराधान का अधिकार अपर्याप्त है। यदि केन्द्रीय सरकार या राजनैतिक पार्टी जिससे कि इसका सम्बन्ध है, किसी राज्य सरकार के प्रति आक्रामक रवैया रखने का निर्णय लेती है तो यह सांविधिक उपबंधों का दुरुपयोग करके राज्य सरकार की अर्थ क्षमता को नष्ट कर देगी और धीरे-धीरे इसे इतना अप्रिय बना देगी कि उसे अपना पद छोड़ने पर बाध्य होना पड़ेगा। इस प्रकार राज्य सरकारों के लिए मुद्दा बन जाता है कि केन्द्र बहुधा औद्योगिक लाइसेंस जारी करने के अपने प्राधिकार का उपयोग इस प्रकार करता है कि औद्योगिक वृद्धि में बाधा आती है। इस स्थिति में सुधार किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 268 के अनुसार औषधीय और टायलेट साजे-सामान पर स्टाम्प शुल्क और उत्पाद शुल्क भारत सरकार द्वारा उद्गृहीत किए जाते हैं। तथापि राज्यों द्वारा इनकी वसूली की जाती है और अन्त में उन्हें सौंप दिया जाता है। संघ सरकार उक्त ड्यूटी को लगाने से मना करके इस स्रोत को पूरी तरह अस्तित्वहीन कर सकती है।

अनुच्छेद 269 में सात प्रकार के करों और शुल्कों का उल्लेख मिलता है जो दोनों ही केन्द्रीय सरकार द्वारा उद्गृहीत और वसूल किए जाते है किन्तु उतना ही हिस्सा राज्यों को दिया जा सकता है जो कि केन्द्रीय विधि द्वारा निर्धारित किया गया है। इस व्यवस्था को अनुचित रूप से पूरा किया जा सकता है। उक्त कर या शुल्क उद्गृहीत करने के लिए केन्द्रीय सरकार पर कोई बाध्यता नहीं है। किसी भी स्थिति में कराधान की मात्रा सम्पूर्णतः केन्द्र के निर्णय का विषय बन जाती है और उसी प्रकार इसमें शामिल राज्यों का हिस्सा भी।

अनुच्छेद 270 से पूल का सृजन किया है जो केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच विभाज्य है। राज्यों को दी जाने वाली प्रतिशत दर का निर्धारण केन्द्र द्वारा किया जाता है। राज्यों को दी गई प्रतिशत दर अपर्याप्त या अनुचित होती है। संघ सरकार के प्रयोजनों के लिए शुल्क या कर को अधिप्रभार मानने की अतिरिक्त युक्ति द्वारा राज्यों को इनकी अपनी हिस्सा पूंजी से वंचित रखा जाता है। अनुच्छेद 271 के अनुसार राज्यों द्वारा अधिप्रभार के किसी भी अंश का दावा नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 272 केन्द्रीय सरकार को उत्पाद शुल्क लगाने का कोई दायित्व नहीं सौंपता बल्कि उसमें हिस्सा बंटाने का स्वनिर्णय प्रदान करता है।

इस निर्भरता का प्रयोग राज्य सरकारों को अपमानित करने, उन्हें भूखों मारने और उनका दमन करने के लिए किया जा सकता है। राज्यों के इस दावे का विरोध करना असम्भव है कि वर्तमान में केन्द्र को दिए गए राजस्व के स्रोतों में से कुछ स्रोत इन्हें अवश्य हस्तान्तरित कर देने चाहिए और यह भी कि विभाजक पूल के क्षेत्र को और इसके अतिरिक्त इसमें राज्य के हिस्से को अवश्य बढ़ाना होगा। इनका दावा समान रूप से अप्रतिरोध्य है कि कर उद्गृहीत करने और शुल्क वसूल करने के अतिरिक्त अधिकार राज्यों को भी प्रदान करने होंगे। हमारी राय में, निम्नलिखित के सम्बन्ध में राज्यों का मामला अत्यन्त ठोस दिखाई पड़ता है :

1. सांविधानिक संशोधन करके इसे केन्द्रीय विधानमंडल के लिए अनिवार्य बना दिया जाए जिससे कि अनुच्छेद 269 में उल्लिखित सात प्रकार के शुल्क और कर अधिरोपित किए जा सकें। अभी तक इन सातों में से दो ही उद्गृहीत किए गए हैं अर्थात् कृषि योग्य भूमि से इतर सम्पत्ति के सम्बन्ध में सम्पदा शुल्क और रेल के किराए भाड़े पर कर। केन्द्रीय

सरकार ने बाद वाले कर को हटा दिया है हालांकि राज्यों को मुआवजे के रूप में एक निर्धारित आर्थिक सहायता उपलब्ध करा दी गई है। सन् 1961 में इस आर्थिक सहायता को निर्धारित किया था और इसे बढ़ाया नहीं गया। केन्द्र रेल के किराए भाड़े जो कि पिछले पांच वर्षों के दौरान तेजी से बढ़ रहे हैं, में हुई सभी वृद्धियों का निरन्तर उपभोग और उन्हें विनियोजित करता आ रहा है। यदि केन्द्र इन शुल्क और करों को उद्गृहीत नहीं करना चाहता है तो तत्संबन्धी अधिकार राज्यों को हस्तान्तरित कर दिए जाने चाहिए।

2. निगम कर, जिसे अभी तक आयकर से अलग समझा गया है, को भी इसमें शामिल किया जाए और केन्द्र राज्यों के साथ इसमें हिस्सा बंटाए। वास्तव में ऐसा कोई कारण नहीं कि निगम कर का कुछ हिस्सा राज्यों को क्यों न दिया जाए जबकि मूलभूत रूप से दोनों का स्वरूप एक समान है। यह राज्य ही है जो कि कम्पनियों के कार्यों को सुकर बनाते हैं और अधिकांश मामलों में इन्हें अपेक्षित आधारिक संरचनाएं मुहैया कराते हैं जैसे बिजली, पानी, सड़कें और यहां तक कि कभी तो आर्थिक प्रोत्साहन भी। आयकर पर आए अधिप्रभार को भी विभाज्य पूल में शामिल किया जाना चाहिए।

3. राज्य मुख्य मुख्य सभी खनिज संस्रोतों के लिए यथामूल्य आधार पर रायल्टी प्राप्त करेंगे। रायल्टी निर्धारित मूल्य के अनुसार होनी चाहिए।

4. राज्यों को इस बात की अनुमति दी जाए कि वे अपने अपने क्षेत्रों में बिजली पर कर लगाएं जो कि बिजली की बिक्री से अलग हों। विद्युत-शक्ति के उत्पादन के लिए नदी, झील और वर्षा जैसे राज्यों के संस्रोतों को उपयोग में लाया जाता है।

5. वित्त आयोग के स्वरूप में उचित रूप से परिवर्तन किया जाना चाहिए। इसका स्वरूप ऐसा ही न रहने दिया जाए जैसाकि केन्द्र प्रभावी संस्था के रूप में अब है। अनुच्छेद 280 में ऐसा परिवर्तन किया जाए जिससे कि आयोग के गठन से भारतीय राजतंत्र की अर्ध संघीय विशेषता प्रकट हो सके। स्थानीय स्वनिकायों के लिए राज्यों के अंतरणों में से निधियां उद्दिष्ट करने का उत्तरदायित्व वित्त आयोग को सौंपा जाए। आयोजना आयोग के गठन से भी भारतीय राज्य व्यवस्था की अर्ध संघीय विशेषता प्रतिबिंबित होनी चाहिए।

भारतीय जनता पार्टी

राज्य यूनिट—पश्चिम बंगाल

ज्ञापन

मेरी पार्टी का विचार है कि सांविधानिक उपबन्धों या केन्द्र और राज्य के बीच विधायी अधिकारों के वितरण के सम्बन्ध में मूलभूत परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सांविधानिक उपबन्ध नहीं है, किन्तु जिस प्रकार इन्होंने इसका प्रयोग किया है उससे वर्तमान गतिरोध उत्पन्न हो गया है।

मेरी पार्टी का विचार है कि ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जाना चाहिए जिससे देश की एकता को क्षति पहुंचे। दूसरी तरफ हमें देश की एकता को मजबूत बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

देश के आर्थिक विकास के मामले में अधिक अधिकार राज्यों को दिए जाएं और संविधान निर्माताओं द्वारा केन्द्र और राज्य के सम्बन्धों के सम्बन्ध में विचारे गए सामंजस्य को उपयुक्त कदम उठाकर पुन:स्थापित किया जाए ताकि सांविधानिक अधिकारों के दुरूपयोग जैसाकि पहले से किया जा रहा है, को रोकने के लिए उपयुक्त उपबन्ध किए जा सकें।

मेरी पार्टी का यह भी विचार है कि स्थानीय स्वायत्त यूनिटों को बढ़ाया जाए और उन्हें सांविधानिक रूप से संरक्षित किया जाए तथा राज्यों द्वारा उद्गृहीत और वसूल किए गए आवश्यक कर और शुल्क इन्हें सौंप दिए जाने चाहिए मसलन स्टाम्प शुल्क, मनोरंजन कर, सम्पत्ति कर आदि।

मेरी पार्टी का विचार यह भी है कि अनुच्छेद 292 और 293 में इस प्रकार का संशोधन किया जाए जिससे राज्यों को देशीय बाजार से राज्य विधानों द्वारा निर्धारित की गई सीमाओं के भीतर धन उधार लेने की अनुमति दी जा सके। किन्तु केन्द्र द्वारा लिए गए विदेशी ऋणों में राज्यों का कोई हिस्सा नहीं होगा और न ही सीमा शुल्क में ही राज्यों का हिस्सा होगा। राज्य के खनिज संस्रोतों पर रायल्टी यथामूल्य आधार पर होनी चाहिए और राज्यों को और अधिक संस्रोत उपलब्ध करवाएं जाएं ताकि केन्द्र पर इनकी निर्भरता को कम किया जा सके।

राज्यपाल को प्रदत्त अधिकार का अत्यधिक दुरुपयोग किया गया है। प्राय: राज्यपाल ने, जैसाकि सांविधानिक उपबंधों में उपबंधित है, सांविधानिक अध्यक्ष की बजाय सत्तारूढ़ पार्टी के हित में काम किया है।

मेरी पार्टी का विचार है कि विधान सभा के बहुमत का परीक्षण सदन में ही और कम से कम संभावित समय में कर लेना चाहिए। इस विषय पर राज्यपाल का कोई स्व-निर्णय नहीं होना चाहिए। यदि आवश्यक समझा जाए तो राज्यपाल को शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए संविधान के संगत उपबन्धों में संशोधन किया जाए।

इस प्रश्नावली का सविस्तृत उत्तर आपको यथासमय दे दिया जाएगा।

हस्ता/-

अध्यक्ष

भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी

केन्द्रीय कार्यालय

ज्ञापन

इस ज्वलन्त और महत्वपूर्ण विषय पर उस आयोग की नियुक्ति का हम स्वागत करते हैं जो कि दीर्घकाल से हमारे राजनैतिक जीवन में पिछलग्गू बना हुआ है और भिन्न भिन्न राज्यों की विभिन्न दलों की सरकारों के सत्ता में आ जाने के कारण जिसका दबाव आज बढ़ता ही जा रहा है।

हम स्वयं इस स्तर पर विस्तार में जाए बिना समस्या के मुख्य पहलुओं को सीमित कर रहे हैं। एक बार मोटी रूपरेखा निर्धारित हो जाने पर ब्यौरे को सविस्तार प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. हालांकि मोटे तौर पर हमारा संविधान संघीय है। इसकी प्रधानता इसकी ऐकिक विशेषताएं हैं। केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों के वितरण के लिए ऐसी पद्धति का अनुकरण करते हैं जो कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 में दी गई है और यह तथ्य संविधान के कई अनुच्छेदों में और सातवीं अनुसूची जो कि संघ (सूची I) की अनन्य विधायी शक्तियों, राज्य (सूची II) और दोनों की समवर्ती विधायी शक्तियों (सूची III) को गिनाया गया है, में सुस्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। संघ और राज्यों द्वारा प्रयोज्य अनन्य शक्तियां इनके अपने अपने विधायी क्षेत्राधिकार पर आधारित होती हैं अर्थात् इन तीनों सूचियों के अनुसार इन्हें दिए गए क्षेत्राधिकार पर। सभी अवशिष्ट मामले जिसमें कराधान का मामला भी शामिल है, संघ के क्षेत्राधिकार में आते हैं। उसका आशय यह है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास हैं।

2. जैसाकि सातवीं अनुसूची और संविधान के अन्य उपबंधों से पता चलेगा कि विधायी, आर्थिक और वित्त के अतिरिक्त प्रशासकीय क्षेत्र में राज्यों की स्वायत्तता और अधिकारों को पहले से ही बहुत अधिक सीमित कर दिया है। संविधान में तकरीबन पिछले तीन दशकों में जो घटित हुआ है वह यह है कि राज्यों की प्रतिबंधित स्वायत्तता और अधिकारों को धीरे धीरे खोखला कर दिया गया है और क्षति पहुंचाई गई है जबकि केन्द्र में अधिकार और प्राधिकारों का केन्द्रीकरण बढ़ता जा रहा है। इस असमुचित और हानिकारक स्थिति के लिए न केवल संविधान के कुछ उपबंधों ने सहयोग किया है बल्कि अन्य बहुत से राजनैतिक तथा आर्थिक कारणों का भी इसमें हाथ है। एक बात जो हमें दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि आज केन्द्र-राज्य के सम्बन्धों में भारी असन्तुलन आ गया है। राज्यों ने अपनी बहुत सी स्वायत्तता खो दी है।

3. विकास की पूंजीवादी रास्ता और बुर्जुआ एकाधिकार शक्ति और साथ हीं जो पिछले वर्षों से केन्द्र के अतिरिक्त अधिकांश राज्यों पर एक-दलीय शासन निश्चय ही एक तरफ संविधान की संघीय विशेषताओं को कम करने में और दूसरी ओर केन्द्र के पास अत्यधिक अधिकारों और प्राधिकार के संकेन्द्रण में मुख्य अंशदायी कारक रहे हैं।

4. कल्याण सम्बन्धी अधिकांश कार्यकलापों को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व राज्यों को सौंपा जाता है जबकि राजस्व के स्रोत सीमित और अल्प हैं। इसके परिणामस्वरूप न केवल केन्द्र पर राज्यों की आश्रिता बढ़ी है बल्कि इससे राज्यों के विकासात्मक और अन्य सामाजिक कल्याण सम्बन्धी कार्यकलाप पंगु हो गए हैं और यहां तक कि कुछ संकटा न अक्षों की व्यवस्था बिगड़ गई है। केन्द्र और राज्य के सम्बन्धों की लोकतंत्रात्मक विशेषताएं और नियम न केवल राज्य और इनकी प्रजा के लिए हानिकर बनी हुई हैं। बल्कि यह राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अखंडता के लिए भी हानिकर हैं। इससे विखण्डनज और विभाजक प्रवृत्तियों और शक्तियों को भी बढ़ावा मिला है।

5. नामयोग्य किसी भी संघीय संरचना में, संघीय केन्द्र बहुत बड़े साधन के रूप मे अपनी शक्ति और प्राधिकार को संघटक राज्यों, के तत्पर सहयोग से प्राप्त करता है अत: राज्यों को भी उनके आवश्यक अधिकार और प्राधिकार देने होंगे। एक प्रबल प्रजातांत्रिक आधार पर आधारित हो इसके लिए केन्द्र राज्य सम्बन्धो मे इस बात को आवश्यक रूप से सुनिश्चित करना होगा कि जनता और देश की अलग-अलग जिम्मेवारियों का निवर्हन करने के लिए अधिकार, प्राधिकार, संसाधनों और अवसर के क्षेत्रों में दोनों के अपने-अपने विधिसम्मत अनुलाभ हैं। तथापि जिन समस्याओं का सामना हम करते हैं, वे केन्द्र में अधिकार और संस्रोतों का संकेन्द्रण है, जबकि राज्यो को इनकी अत्यधिक आवश्यकता है। राज्यों की विकास सम्बन्धी जिम्मेवारियां लगातार बढ़ती जा रही हैं जिसकी वजह से होना तो यह चाहिए कि इन्हें भी ये अधिकार और संसाधन उपलब्ध करवाने चाहिए।

6. हम इस बात को व्यापक रूप से और नितान्त रूप से महसूस करते है कि वित्त, अर्थव्यवस्था और आर्थिक विकास के क्षेत्र में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध जिस प्रकार से विफल हुए हैं और जिस प्रकार से इनका प्रतिबन्धात्मक प्रभाव पड़ा है वैसा अन्य क्षेत्र में नहीं है। इस सम्बन्ध में यह बात बार-बार कहना आवश्यक है कि राष्ट्रीय विकास के लिए संसाधनों की समस्या मूल रूप से मौजूदा सामाजिक आर्थिक व्यवस्था से, विकास के पूंजीवादी रास्ते से और हमारी अर्थव्यवस्था पर एकाधिकार पूंजी और अन्य निहित स्वार्थी तत्वों की पकड़ से उत्पन्न होती है इस कारक को आर्थिक नीतियों के साथ संयोजित करके बुर्जआ सरकारों ने केन्द्र और राज्य में जारी रखा है, इसके परिणामस्वरूप राज्यों को संसाधन देने से इन्कार किया गया और वास्तव में संसाधनों की समस्या बहुत बढ़ गई।

यह समस्या वास्तव में वर्तमान तंत्र की सन्निहित विशेषता है और वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को समाप्त किए बिना, पूंजी का शासन समाप्त किए बिना और हमारी अर्थव्यवस्था में मौलिक संरचनात्मक परिवर्तन और सामाजिक आर्थिक परिवर्तन किए बिना स्पष्ट रूप से इसे सुलझाया नहीं जा सकता। यद्यपि राज्यों के लिए बड़े-बड़े संसाधनों की व्यवस्था की जा सकती है ताकि जन समूह को राहत पहुंचाने, इनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाने और विकासात्मक और अन्य समाज कल्याण तथा सांस्कृतिक कार्यकलापों को प्रभावीशाली रूप से आगे बढ़ाने में इन्हें समर्थ कर सकें।

7. आज राज्यों के विकासात्मक और अन्य कल्याण सम्बन्धी कार्यकलापों के लिए इनके वित्त सम्बन्धी संस्रोत नितान्त ही अपर्याप्त है और स्रोत जिनसे ये अपनी आय बढ़ा सकते हैं। समान रूप से अनम्य है। जिसके परिणामस्वरूप, केन्द्र से इनके सभी उधार, "ओवरड्राफ्ट" और तथाकथित अर्थोपाय पेशगियों के बावजूद भी इनकी विधिसम्मत आवश्यकताओं और इनके संस्रोतों के बीच का अन्तर बढ़ता ही चला गया।

8. आय-व्यय के मुख्य स्रोत न केवल केन्द्र के अनन्य क्षेत्राधिकार में आते है बल्कि बैंकिंग, बीमा और सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएं भी इसके नियंत्रणाधीन हैं। इसी प्रकार देश की आर्थिक और राजकोषीय नीतियों के निरूपण के सम्बन्ध में राज्यों को कुछ भी सुझाने का कोई हक नहीं है। जिस तरीके से केन्द्रीय निधियां राज्यों में वितरित की जाती हैं, इसके साथ ही साथ इन कारकों से राज्यों की केन्द्र पर आश्रिता और भी बढ़ गई है और इससे केन्द्र राज्य सम्बन्धों की पूरी तस्वीर पर इसका बढ़ा हुआ नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

9. इस तथ्य के अनुसार स्थिति और भी बिगड़ गई है कि राज्यों को सीमा और निर्यात शुल्क और निगम कर जैसे उक्त मुख्य स्रोतों से केन्द्र की राजस्व प्राप्ति में से कोई भी हिस्सा पूंजी नहीं दी जाती है। "सहायता अनुदान" "विवेकी अनुदान", केन्द्र की आयकर प्राप्तियों में राज्य की हिस्सा पूंजी आदि जैसे भिन्न-भिन्न शीर्षों के अधीन तथाकथित "केन्द्रीय सहायता" अपर्याप्त है।

संविधानके अधीन सुनिश्चित सहायता न होकर यह "विवेकी अनुदान" है जो कि हावी होने लगे हैं और कुल सहायता का प्रमुख हिस्सा बन गए हैं जिनसे केन्द्रीय सरकार को राज्यों के कार्यक्षेत्र की कई गतिविधियों में अनुचित रूप से दबाव डालने और उसकी नीतियों को प्रभावित करने का एक शक्तिशाली माध्यम मिल गया है। कभी-कभी इसे राज्यों पर राजनैतिक दबाव डालने के कारण केवल उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इससे राज्यों में बहुत अधिक नाराजगी पैदा हो गई है हालांकि एक दलीय सत्ता के एकाधिकार के अधीन उक्त नाराजगी पर अधिकारिक स्तर पर चुप्पी छाई हुई है।

10. वित्त आयोग, जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है और जिसके संघटन, कार्यों और अधिकारों पर प्रश्न उठाया जा सकता है की भूमिका से संस्रोतों के प्रश्न पर केन्द्र-राज्य के सम्बन्धों में कोई बड़ा अन्तर नहीं आया है।

11. पंचवर्षीय योजनाओं, जो योजनाबद्ध और गैर योजनाबद्ध क्षेत्रों के बीच हुए सीमांकन से उत्पन्न हुई है, के प्रशासन से केन्द्र ने लाभ उठाया है विशेषकर समवर्ती और राज्य सूचियों में, जो कि नियोजन के क्षेत्रों में आती हैं, में दिए गए अधिकांश विषयों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए। वस्तुतः अनुदार प्रशासनिक सुधार समिति ने इस विकास पर अपनी चिन्ता व्यक्त की है, जिसे, इसके अनुसार समस्तरीय स्तरों (राज्यों में तथाकथित क्षेत्रों की) को मिलकर एक ही लगभग अखण्ड रूप दे दिया है जिसका परिचालन यद्यपि समवर्ती और राज्य सूचियों से हुआ है और नियंत्रण केन्द्र के पास है। राष्ट्रीय योजना निश्चय ही एक सुनिर्देशित केन्द्रीय प्राधिकार को मांग करती है। इसी के साथ विकासात्मक गतिविधियों के मामले में राज्यों की पहल क्षमता को केन्द्र द्वारा अनुचित हस्तक्षेप करके पंगु होने से रोका जाए। आवश्यक दिशानिर्देश और विशेष महत्व और सामरिक महत्व के उद्योगों और अन्य परियोजनाओं के गठन के मामले में संचालन क्षेत्र निरूपित किए जाएं। राज्यों के पहल करने के रास्ते में दफ्तर शाही की धकले बाजी नहीं होनी चाहिए।

12. किन्तु राज्यों के वित्तीय और आर्थिक क्षेत्र ही अकेले ऐसे नहीं हैं जो कि अक्षम हो गए हैं या इनके अधिकारों और इनकी स्वायत्ता को अधिक्रमित किया गया है। बल्कि राज्यों के अनन्य विधायी क्षेत्राधिकार और इनकी कार्यपालक शक्तियों पर भी विभिन्न तरीकों से किसी न किसी बहाने अधिक्रमण किया गया है। संविधान के कुछ उपबंधों, जिसमें संघ सूची और समवर्ती सूची में दी गई कई प्रविष्टियां शामिल हैं ने इसे सुकर बनाया है। यद्यपि उदाहरणार्थ "उद्योग" राज्यों के अनन्य क्षेत्राधिकार में आता है तो भी राज्यों के अनेक उद्योगों को केन्द्र ने व्यापक और असीमित क्षेत्र तक अपने नियंत्रण में किया हुआ है। यह प्रवृत्ति उन मामलों पर जो कि राज्य के विषय समझे जाते हैं उक्त व्यापक क्षेत्राधिकार को बढ़ाने की है।

13. अनुच्छेद 356 के अनुसार राज्यों में राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत मनमानी करने की युक्ति यहां तक कि कभी-कभी तो सत्तारूढ़ पार्टी की आन्तरिक समस्याओं का समाधान करने, राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित किए गए आवश्यक वर्गों के विधेयकों पर राष्ट्रपति की सहमति लेने के उपबंध, राज्यों को निदेश जारी करने के सम्बन्ध में केन्द्र के अधिकार, अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र का नियंत्रण जबकि इनका संवर्ग राज्यों के नियोजन में है और संविधान के भाग XVIII में दिए गए आपातकालीन व्यापक उपबंधों, इन सभी ने संघीय सिद्धान्तों के और राज्यों के अधिकारों और उस की स्वायत्ता के महत्व को बहुत ही कम कर दिया है।

14. बदलती हुई राजनीतिक स्थितियों, कई गैर कांग्रेसी सरकारों के सत्ता में आने तथा इनके अधिकारों की बाबत नई चेतना में वृद्धि होने और विभिन्न राष्ट्रिकताओं और लोगों में बढ़ती हुई विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं और वास्तविकता तो यह है कि केन्द्र में मौजूद असंतुलन से राज्य सम्बन्धों का कतिपय

वर्गों द्वारा शोषण किया गया है जिससे कि ये पृथकतावादी और अलगाववादी शक्तियों के हितों को बढ़ा सकें। फलतः इससे केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को पुनः संरचना की अत्यावश्यकता की मांग प्रजातांत्रिक रूप से बढ़ गई है।

15. भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी का पक्का विश्वास है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों की आवश्यक पुनः संरचना के लिए राज्यों को विधान सम्बन्धी छूट दी जाए और वित्तीय संस्रोत उपलब्ध कराए जाएं ताकि ये विकास की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें जो कि देश की एकता और अखण्डता और इसके योजनाबद्ध एकीकृत और सर्व-पक्षीय आर्थिक विकास के अनुरूप हो। राज्यों के उक्त अधिकारों को व्यापक बनाने से न केवल राज्यों के लोगों की अभिलाषा सिद्धि ही होगी बल्कि केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों का लोकतंत्रीय तत्व सुदृढ़ होगा और इसके द्वारा देश की एकता और राष्ट्रीय अखण्डता भी मजबूत होती है।

16. इसके साथ ही भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने विचार किया कि रक्षा, विदेशी मामले, संचार और मुद्रा जैसे चार विषयों तक ही केंद्र के अधिकारों को सीमित करना गलत हो सकता है जैसे कि कुछेक द्वारा सुझाया गया है। केंद्र को अधिकार होगा कि वह एकीकृत आर्थिक विकास और अल्प-विकसित राज्यों और क्षेत्रों की आवश्यकताओं और विधि सम्मत आकांक्षाओं का सम्यक् ध्यान रखते हुए सामान्य अर्थव्यवस्था और विकास को मजबूती प्रदान करने के लिए काम करे।

17. स्पष्टतया तात्कालिक समस्या का मर्म राज्यों को व्यापक अधिकार देने, इनके संस्रोत बढ़ाने तथा इनकी लोकतांत्रिक पहल के संबंध में अवसरों को बढ़ाने की है जिससे कि इनसे राज्यों के लोगों के कल्याण और राज्यों की प्रगति सम्बन्धी जिम्मेवारियों का प्रभावशाली रूप से निर्वहन किया जा सके।

18. पूर्वोक्त के अनुरूप 5 अक्तूबर से 7 अक्तूबर, 1983 तक श्रीनगर में हुई विपक्षी दलों की बैठक में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को पुनः विकसित करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव प्राप्त हुए थे। इन प्रस्तावों का पूरा मजमून (Text) दिया हुआ विवरण इसके साथ आपके गंभीर विचार के लिए संलग्न है।

भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी

राज्य इकाई—कर्नाटक

ज्ञापन

1. प्रारम्भ में ही हम बता चुके हैं कि संघ और राज्यों के बीच समग्र सम्बन्ध साम्यिक आधार पर होने चाहिए। यह सम्बन्ध प्रभुत्व दर्शाने का न होकर बल्कि सर्वोत्तम राष्ट्रीय हित प्राप्त करने के लिए भागीदारी का है। ऐसा सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने में संघ की जिम्मेवारी स्पष्ट है और यह राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक वृहत्तर है। इससे सद्भावपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने में राज्यों की भूमिका कम नहीं होती है। तथापि कुछ वर्षों से इसे लाभप्रद नहीं कहा जा सकता है क्योंकि संघ या केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी के कार्यों के प्रभारी ने उत्तर-दायित्वपूर्ण और पक्षपातरहित दृष्टिकोण नहीं अपनाया है। वे राज्यों की तुलना में लोकतंत्रीय व्यवहार का उचित स्तर विकसित नहीं कर पाए हैं। ऐसे व्यवहार के परिणामस्वरूप केन्द्र राज्य सम्बन्ध या संघ राज्य सम्बन्ध बिगड़ते गए जिससे राज निकाय में विखंडनज प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला। दुर्भाग्यवश, इस प्रकार का दृष्टिकोण आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं हुआ है बल्कि यह तो उनके लिए लगभग एक नीति सी बन गई हैं जो केन्द्र में हैं या संघ स्तर पर जिनके हाथ में राजनीतिक सत्ता है और जो राज्य के उन शक्ति प्राप्त लोगों को सहन नहीं कर पाते है जो कि भिन्न-भिन्न पार्टियों से सम्बद्ध है। उल्लेखनीय बात तो यह है कि ऐसा तो शुरू से हो रहा है। एक या दो उदाहरण देना यथोचित होगा। 1952 में, मद्रास के तत्कालीन राज्य के आम चुनाव के समय जब कांग्रेस पार्टी केन्द्र पर शासन कर रही थी तो उस समय इसे राज्य विधान मंडल में अल्पमत से हराया गया था। युनाईटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट, जिसकी अध्यक्षता श्री प्रकाशम ने की थी, को पूर्ण बहुमत प्राप्त था किन्तु तत्कालीन प्रधानमंत्री और गृहमंत्री के निदेशानुसार राज्यपाल ने श्री प्रकाशम को मंत्रालय बनाने का अधिकार नहीं दिया था बरन्, सी॰राजगोपालाचार्य को बुलाया गया था जिन्हें कांग्रेस पार्टी की ओर से मंत्रालय बनाने के लिए विधान परिषद् में तभी नामित किया था। अतः मतदाताओं की इच्छाओं को कोई अपेक्षित सम्मान दिए बिना अकेले मद्रास विधानमंडल पर अल्पमत वाला मंत्रालय थोपा गया था क्योंकि केन्द्र में कांग्रेस के नेतृत्व में यह विचार किया गया था कि केन्द्र मद्रास में गैर कांग्रेस मंत्रालय को सहन नहीं कर सकती। इसी अभिवृत्ति की हाल ही में एन॰ टी॰ रामाराव के मंत्रि मंडल की बरखास्तगी में अभिव्यक्ति हुई और बराव मंत्रीमंडल ने तेलगूदेशम दल में गुटबंदी पैदा की। यही भाग्य जम्मू और काश्मीर में डा॰ फारूख अब्दुल्ला का रहा। इसी प्रकार और तरीके से अनुच्छेद 356 के अधिकारों का प्रयोग करके गैर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को हटाया गया दुर्गा दास बासु ने कहा है कि 30 वर्षों में 60 से भी अधिक अवसरों पर इस असाधारण शक्ति का दुरुपयोग किया गया है। और उदाहरण दिए बिना भी निश्चित रूप से यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी और राज्य स्तर पर सत्तारूढ़ पार्टी एक ही नही होती तभी केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी इसके कार्य को विफल कर देने का प्रयास करती है। हम आयोग से अनुरोध करना चाहेंगे कि वह सभी उदाहरणों की जांच-पड़ताल करे और इस बात को प्रकाश में लाए कि क्या अनुच्छेद 356 के अनुसार या अन्य अनुच्छेदों के अनुसार या फिर राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों के जरिए केन्द्र में निहित शक्ति का दुरुपयोग कहां तक कया गया है। यह जांच पड़ताल स्वस्थ समागम स्थापित करने के लिए आवश्यक है जिससे कि केन्द्र और राज्यों के बीच समझौता हो सके और मैत्री भाव लाया जा सके। संविधान के फ्रेमवर्क के सुचारू रूप से कार्य करने के हित में उक्त समागम आवश्यक है। हमारे विचार से केन्द्र और राज्य के बीच सम्बन्ध को नियंत्रित करने वाले विधिक उपबंधों में परिवर्तन करना मात्र ही पर्याप्त नहीं है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि लोकतंत्रीय तरीके से काम किया जाए।

2. प्रश्नावली के कुछ प्रश्नों का उत्तर हम आगे दे रहे हैं:—

भाग I

प्रस्तावनात्मक

1.1 यह प्रश्न कुछ-कुछ सैद्धान्तिक सा लगता है। विधिक पंडित या राजनैतिक दार्शनिक ऐसी विभिन्न विशेषताओं से जो कि परिसंघीय संरचना करने में सहयोगी हैं, सहमत नहीं हैं। विभिन्न विशेषताओं की जांच करते समय एक लेखक ने निम्नानुसार कहा है:—

"कोई भी परिभाषाओं में से संघवाद की तीन महत्वपूर्ण और अनिवार्य विशेषताएं ढूंढ सकता है। वे निम्नलिखित हैं:—

(1) केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों की परिभाषा राज्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि ये जहां तक सम्भव हो, स्वतंत्र रूप से और एक दूसरे के सामंजस्य से या यदि आवश्यक हो तो सहयोगी रूप से अपने अधिकारों का उपयोग करें,

(2) संविधान की सर्वश्रेष्ठता का विचार समीचीन है क्योंकि न तो केन्द्र और न ही राज्य संघीय पहलू के उपबंधों में एकपक्षीय रूप से परिवर्तन कर सकते हैं, और

(3) केन्द्र और राज्यों के बीच तथा राज्यों के बीच उत्पन्न हुए सभी विवादों में माध्यस्थम के रूप में कार्य करने के लिए स्वतंत्र न्यायतन्त्र। इसके लिए उसने एक प्रबल केन्द्र की संकल्पना भी की है। अतः यह देखा जा सकता है कि भारत के सांविधानिक गठन की कुछ संघीय विशेषताएं हैं। तथापि इस गठन में प्रबल केन्द्र की संकल्पना का एकपक्षीय पहलू बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए इसे कभी-कभी प्रबल एकपक्षीय प्रवृत्तियों सहित अर्ध संघीय के रूप में वर्णित किया जाता है।

1.2 परिसंघ की संकल्पना चाहे कुछ भी हो, फिर भी विभिन्न कारणों से इस बात पर बल देना आवश्यक है कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची से और विभिन्न अन्य मामलों के सम्बन्ध में भी अधिकारों का विभाजन आवश्यक है। वृहत्त स्वायत्तता क्या है, इसे सुनिश्चित करने के लिए राजामन्नार समिति द्वारा की गई सिफारिशों से हम सहमत है। राज्यों को अधिक अधिकार और अधिक वित्त की सुपुर्दगी को न केवल परिसंघ या संघवाद से सम्बन्धित विचारों के कारण ही नहीं बल्कि अन्य वांछित सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण से निर्णायक महत्व की मानी गई है।

1.3 हम इस विचार से सहमत हैं कि विभिन्न स्तरों पर अधिकारों और वित्त के तथा इनसे भी अधिक, प्रभावशाली कार्य को सुनिश्चित करने के लिए और विभिन्न उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए वित्त के अंतरण में महत्वपूर्ण विकेन्द्रीकरण की अत्यावश्यकता है। हमारा विचार है कि वास्तविक राष्ट्रीय आपातकाल के समय, जैसाकि 1962 के दौरान चीनी आक्रमण के समय में हुआ, राज्यों ने स्वेच्छापूर्वक केन्द्र के साथ सहयोग किया था और अनेक मामलों में केन्द्र की व्यवस्था को स्वीकार किया था। हमारे दृष्टिकोण से अनुकूलतम सांविधानिक उपबन्धों में देखना है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों, जिनमें पिछले 35 वर्षों से उत्पन्न हुए क्षोभ को समाप्त करना चाहिए। केन्द्र में हमारी पार्टी ने विभिन्न प्रस्ताव दिए हैं और श्रीनगर में विरोधी पार्टी की निर्वाचिका सभा ने उक्त कुछ सुझावों को स्वीकृति दी है। हमने इन्हीं सुझावों को आधार माना है।

1.4 उक्त प्रश्न में यह स्पष्ट नहीं है कि पारम्परिक प्ररूप क्या है, जिसका उल्लेख किया गया है सांवैधानिक विधि के लेखक, शुद्ध पारम्परिक प्ररूप किसे कहा जाता है—के विभिन्न संघटकों से सहमत नहीं है। किन्तु इस बात की परिकल्पना करना कठिन नहीं है कि राज्य केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप किए बिना अपने मामलों में स्वतंत्र अधिकार का उपयोग करें। हम इसे स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम एक सुदृढ़ केन्द्र का समर्थन करते हैं। किन्तु हम एक अशक्त परिसंघ के मत से सहमत नहीं है बरन्, हम एक सुदृढ़ केन्द्र चाहते हैं और साथ ही अधिक अधिकार और वित्त के साथ एक संघीय एकक चाहते हैं। हमारा विचार है कि केन्द्र तभी प्रबल हो सकता है जबकि संघीय एकक भी प्रबल हों और अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने के लिए इनके पास पर्याप्त अधिकार और वित्त हो।

1.5 हम इस बात से सहमत हैं कि केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों को निर्वाचक मंडल के लोकतांत्रिक उद्देश्य के अनुसार उचित आधार पर नहीं बढ़ाया गया है या विकसित नहीं किया गया है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद में परिवर्तन भी करने की आवश्यकता नहीं है। अधिकारों, कार्यों और वित्त के न्यायगमन के लिए उपलब्ध विधिक फ्रेमवर्क की पुनः संरचना करने की आवश्यकता है। उसी समय स्वस्थ समागमों और कार्यविधियों को भी विकसित करना होगा। हम इस बात से सहमत नहीं है कि उपबंधों में कोई भी परिवर्तन करने का प्रश्न नहीं है। बदलती हुई परिस्थितियों, लोगों की आशा आकांक्षाओं, राज्यों आदि पर डाली गई भारी जिम्मेवारियों को दृष्टिगत रखते हुए परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

1.6 हम पूर्णतः सहमत है कि देश की स्वतंत्रता की सुरक्षा करना, राष्ट्र की एकता और अखण्डता प्राप्त करना सर्वोपरि महत्व की बात है। विभिन्न कारणों के फलस्वरूप एकता को खतरा हो गया है और विभाजक शक्तियां बढ़ रही हैं। कुल मिलाकर संविधान की रूपरेखा इस प्रकार से प्रस्तुत की जाए कि इसमें प्रश्न में उल्लिखित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

1.7 अनुच्छेद 256, 257, 354 से 357 तक और 365, इन सभी में संशोधन करने की आवश्यकता है। ये तर्कसंगत नहीं हैं। इन्हें पुनः सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

1.8 संविधान के अनुच्छेद 3 में किसी भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। विशेषतः यदि अंतर्राज्यीय परिषद के विषय में हमारे द्वारा दिए सुझाव का, जैसाकि संविधान के अनुच्छेद 263 में उपबंधित है, उचित रूप से प्रयोग किया जाता हो तो ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 3 को संशोधित करने की आवश्यकता नहीं होगी। किसी भी स्तर पर ऐसी स्थिति नहीं आई है कि उक्त अनुच्छेद के ढांचे पर पुनर्विचार किया जाए।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 यह शिकायत भी सही है कि संघ या केन्द्र ने राज्य विधायी क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त की गई राजामन्नार समिति ने कई उदाहरणों की ओर ध्यान दिलाया है......।

2.2 द्विपक्षी निर्वाचिका सभा द्वारा दिए गए सुझाव हमें पूर्णतः स्वीकार्य है......।

2.3 जब कभी केन्द्र समवर्ती सूची में संविधान की (सूची 3-अनुसूची VII) कोई विधि-निर्माण करना चाहता हो तो यह उचित है कि उसे राज्य सरकार से भी पहले ही परामर्श कर लेना चाहिए।

2.4 हमारे विचार में संसद को राज्यों के एकमात्र अधिकार क्षेत्र पर, या तो राष्ट्र हित या सार्वजनिक हित का नारा लगाकर, अनधिकार हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हम यह नहीं सोचते कि यह परिवर्तन आवश्यक है।

2.5 हम निम्नलिखित प्रस्ताव करते हैं :

राज्यों को और अधिक विधायी शक्तियां

राज्यों की विधायी शक्तियों को व्यापक किया जाए और संविधान की VIII वीं अनुसूची में दी गई राज्य सूची (1 सूची II) में गिनाए नए विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए संसद की शक्तियों को समाप्त किया जाए। अनुच्छेद 249, जो कि संसद को सूची II में दिए गए विषय के सम्बन्ध में विधि निर्माण के लिए अधिकार प्रदान करता है, को भी निकाल दिया जाए।

इसी प्रकार, अनुच्छेद 252, जो कि संसद को इस प्रकार से अनुरोध किए जाने पर दो या दो से अधिक राज्यों के लिए विधि निर्माण करने का अधिकार प्रदान करता है, को भी निकाल दिया जाए। ये दोनों अनुच्छेद आधारभूत संघीय सिद्धान्त का अतिक्रमण करते हैं। पुनः समायोजित प्रविष्टियां अनुसूची VII में।

सूची I में दी गई प्रविष्टि 52 को संशोधित किया जाना चाहिए जिससे कि "उद्योग" जो कि अनन्य राज्य सूची की प्रविष्टि 24 में हैं, से सम्बन्धित राज्यों के अनन्य क्षेत्राधिकार में आने वाले मामले के सम्बन्ध में संसद के विधि निर्माण करने के अधिकार के क्षेत्र और प्रभाव को सीमित किया जा सके। किन्तु संसद अखिल भारतीय महत्व और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समग्र हित के उद्योगों के सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए प्रतिबन्धित अधिकार रख सकती है। इस समय "सार्वजनिक हित" के आधार पर "उद्योग" के बारे में राज्यों के क्षेत्राधिकार पर अनधिकार हस्तक्षेप करने के लिए संसद और केन्द्रीय सरकार के पास असल में असीमित अधिकार है।

राज्यों को बंद उद्योगों और ऐसे उद्योगों, जिनके बंद होने की आशंका है, के प्रबंध का भार लेने का अधिकार होगा जिससे कि कामगारों के हितों की रक्षा करने के लिए उन्हें समर्थ बनाया जा सके।

संघ सूची की प्रविष्टि 7 के अनुसार उद्योग के सम्बन्ध में, न केवल युद्ध के अभियोजन के लिए बल्कि रक्षा के प्रयोजन से भी, कानून बनाने के लिए संसद को अधिभावी अधिकार प्राप्त होते हैं। इस उपबंध को और भी अधिक प्रतिबंधित किया जाना चाहिए जिससे कि इसमें ऐसे उद्योग भी आ जाएं जो कि प्रत्यक्ष रूप से युद्ध के अभियोजन में या रक्षा सामग्री के उत्पादन में लगे हुए हैं। राज्य सूची की प्रविष्टि 13 के अनुसार "संचार" का विषय राज्यों के अनन्य क्षेत्राधिकार में आता है किन्तु यहां भी यह संघ सूची की प्रविष्टि 23 के अंतर्गत आता है। समवर्ती सूची (सूची III) में दी गई कुछ प्रविष्टियों से केन्द्र को कानून बनाने का और इसके बाद ऐसे कुछ विषयों के सम्बन्ध में इसकी कार्यपालक शक्तियों का उपयोग करने का अधिकार मिलता है जो कि प्रविष्टि 27 (माल का उत्पादन पूर्ति और संवितरण) और प्रविष्टि 28 (बाजार और किराए) के अनुसार राज्यों के अनन्य क्षेत्राधिकार को सौंपे गए हैं। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 जो कि इसे सम्भव बनाती है, को सूची II की प्रविष्टि 27 और 28 में गिनाए गए मामलों के सम्बन्ध में केन्द्र के अधिकार और प्राधिकार के प्रभावक्षेत्र को घटाने के लिए इन्हें पुनः निरूपित किया जाए। वनों को भी राज्य सूची में अन्तरित किया जाए।

समवर्ती सूची की प्रविष्टि 42 को संघ की सम्पत्ति के लिए सीमित किया जाए और राज्य के लिए सम्पत्ति के अर्जन और पुनः अर्जन को राज्य सूची में अन्तरित किया जाए। विधान मंडल द्वारा पारित किए गए किसी कानून के सम्बन्ध में अनुच्छेद 31(ग) के परन्तुक के अधीन राष्ट्रपति की सहमति लेने के लिए उपबंध भी स्वभावतः समाप्त हो जाने चाहिए।

पहली सूची में (श्रम और विनियम और खनिज और तेल क्षेत्रों में सुरक्षा) प्रविष्टि 55 को समवर्ती सूची में अन्तरित किया जाए जिससे कि इस प्रयोजन

के लिए कार्यवाही सुनिश्चित करने में पहल करने के लिए राज्य समर्थ हो सके। समवर्ती सूची में प्रविष्टि 43 में केवल उन्हीं व्यापार निगमों को शामिल किया जाना चाहिए जो कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समग्र हित की दृष्टि से और राष्ट्रीय नियोजन के सन्दर्भ में राष्ट्रीय महत्व के हैं। ऐसे निगमों को, जिनका राज्य में अपना कारोबार चलाने में कोई महत्व नहीं है, सम्बन्धित राज्य के अनन्य क्षेत्राधिकार के लिए छोड़ दिया जाए।

अवशिष्ट शक्तियां

संघ सूची की प्रविष्टि 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 में संघ को जो कि केन्द्र होता है, किसी कराधान सहित ऐसे सभी मामलों में, जिन्हें सूची II और III में शामिल नहीं किया जाता, विधान की अवशिष्ट शक्तियां प्रदान की गयी हैं। संसद और केन्द्र की उक्त अवशिष्ट शक्तियों को केवल उन्हीं मामलों के लिए सीमित रखा जाए जो देश की सुरक्षा और राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय अखण्डता से सम्बद्ध हैं। शेष अवशिष्ट शक्तियों को राज्यों के पास ही रहने दिया जाए। उपर उल्लिखित अनुच्छेद और प्रविष्टि दोनों को तदनुसार संशोधित किया जाए।

राष्ट्रपति का शासन

अनुच्छेद 356 में संशोधन किया जाए। राष्ट्रपति के राज्य विधान सभा के विघटन और निलम्बन तथा राज्य मंत्रिमंडल की बरखास्तगी के व्यापक अधिकारों को समाप्त किया जाए। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर, जबकि विधान सभा में किसी भी मंत्रिमंडल के बहुमत में रहने की सम्भावना न हो, तो नई विधान सभा संघटित करने के लिए चार माह के भीतर चुनाव कराए जाएं, वर्तमान सरकार कामचलाऊ सरकार के रूप में कार्य करती रहे।

किन्तु यदि संसद यह निर्णय लेती है कि ऐसी हिंसा के कारण जिससे सामान्य जीवन गड़बड़ा जाता है, सम्बन्धित राज्य में चुनाव नहीं करवाए जा सकते तो एक निश्चित समय के लिए उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

यदि राज्यपाल के पद को समाप्त नहीं किया जा सकता तो राज्यपाल के अधिकारों और कार्यों को पुनः निर्धारित करना होगा। राज्यपाल का पद विशुद्ध रूप से सजावटी कार्यकर्ता का है इसका पद सांविधानिक होगा न कि भारत सरकार के नियंत्रण में। दुर्भाग्यपूर्ण बात तो यह है कि अधिकांश राज्यपालों ने सांविधानिक कार्यकर्ता के स्थान पर केन्द्र सरकार के एजेंटों के रूप में कार्य किया है। अनेकों उदाहरणों से ऐसा देखने को मिलता है कि राज्यपालों के कार्यों से इनकी अपनी और केन्द्र की भूमिका के बीच गलतफहमी हो गई है।

राजपाल की हैसियत :

3.2 राज्य के राज्यपाल को किसी राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए किसी विधेयक पर सहमति देने का न तो विवेकाधिकार होगा और न ही उन्हें अनुच्छेद 288(2) के सिवाय, राष्ट्रपति की सहमति के लिए उक्त किसी विधेयक को आरक्षित रखने का अधिकार और स्वविवेक होगा। राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए सभी विधेयक स्वतः ही कानून बन जाएंगे।

जब तक राज्यपाल का पद जारी रहता है, तब तक सम्बन्धित राज्य के मंत्रिपरिषद के सम्बन्ध में इनकी सांविधानिक और कानूनी स्थिति वही होगी जो कि V और VI वीं अनुसूचियों (अनुसूचित जातियों और जनजातियों) के अन्तर्गत राष्ट्रपति के उत्तरदायित्वों को छोड़कर संघ के मंत्री परिषद के सम्बन्ध में इनकी है। अनुच्छेद 163 में संशोधन करके उसे अनुच्छेद 74 के बिल्कुल अनुरूप बना दिया जाना चाहिए ताकि ऐसा कोई काम न र जिसके कारण राज्यपाल को अपने विवेक का उपयोग करना पड़े। केंद्र का एजेंट होने की राज्यपाल की अवधारणा को कोई तूल या प्रोत्साहन न दिया जाए। राज्यपाल द्वारा इस प्रकार से प्रयोग में लाए गए अधिकार राज्यविधान सभा और संसद में संवीक्षा के अधीन होने चाहिए।

सम्बन्धित राज्य विधानमंडल द्वारा इस निमित्त अनुमोदित की गयी नामों की सूची के आधार पर राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाए और राज्यपाल राज्य विधानमंडल के प्रसादानुसार पद धारण करेगा। सम्बन्धित राज्य विधान मंडल द्वारा राज्यपाल पर महाभियोग लगाने के सम्बन्ध में संविधान में उपबंध होना चाहिए।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राज्य का अभिकथन

राज्य-विधानमंडलों को निजी उच्च न्यायालयों, जिसमें मुख्य न्यायाधीश भी शामिल हैं, के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ अधिकार देना चाहिए। राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के लिए इन न्यायाधीशों की नियुक्ति राज्य के ऐसे नामों की सूची से करेंगे जिन्हें सम्बन्धित राज्य विधानमंडल द्वारा अनुमोदन दिया गया है।

3.3 अनुच्छेद 356(1) के अनुसार रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूर्व राज्यपाल मंत्रिपरिषद को नोटिस भेजेगा। नोटिस में उसे विशेष रूप से इन कारणों का उल्लेख करना होगा कि वह राज्य की स्थिति के संबंध में राष्ट्रपति को रिपोर्ट क्यूं भेज रहा है अर्थात् उसे मंत्रीपरिषद को यह देखने का अवसर देना चाहिए कि अब यह सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार और अधिक चलाई नहीं जा सकती। तत्पश्चात, किन्हीं आदेशों को पारित करने से पूर्व राष्ट्रपति को भी मंत्रिपरिषद को समान अवसर देना होगा। यह आवश्यक नहीं है कि मंत्रि-परिषद के विरूद्ध विधानसभा में पारित किए गए अविश्वास प्रस्ताव की स्थिति में भी यही प्रक्रिया अपनाई जाए। सामान्यतः राज्य की जनता का यह अधिकार की उनके पास राज्य विधान सभा की विश्वास प्राप्त सरकार या मंत्रिपरिषद हो, में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

"अनुच्छेद 164 के अनुसार राज्यपाल के कार्यों की बाबत हमें एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान में रखना होगा कि प्रजातांत्रिक रूप से चुने गए जनता के प्रतिनिधियों को अपनी-अपनी सरकारें चुनने के लिए इन्हें अपने सांविधानिक अधिकार से वंचित नहीं रखा गया है। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि अनुच्छेद 164 के अनुसार राज्यपालों ने जिस तरीके से अपने अधिकारों का प्रयोग किया है, उसकी काफी आलोचना हुई है। अतः यह स्पष्ट करने के लिए अनुच्छेद 164 में संशोधन करना आवश्यक है कि राज्यपाल एक व्यक्ति को मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त करेगा जिसे विधान सभा के सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। राज्यपाल मंत्रिपरिषदों जिन्हें कि सभा में बहुमत प्राप्त है को बरखास्त नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि राज्यपाल, ऐसी स्थितियों, जहां संविधान के अनुसार इनसे अपेक्षा की गई हो कि वे विवेकानुसार कार्य करें के सिवाय मंत्रि-परिषदों की सलाह से काम करता है। यह भी आवश्यक है कि इन्हें इस विवेक का उपयोग नियमेत्तर नहीं करना चाहिए बल्कि इस प्रकार करना चाहिए कि उस प्रयास को बढ़ावा मिल सके जिसके लिए स्वनिर्णय का अधिकार प्राप्त किया गया है।

3.4 अनुच्छेद 200 के अधीन अधिकार का बहुत अधिक सीमा तक दुरुपयोग किया गया है। इसलिए यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सभा द्वारा एक बार पारित किए गए विधेयकों को कार्यपालकों के विवेक के लिए न रखा जाए और जैसा कि विधान सभा चाहती है, उसी प्रकार उन्हें लागू किया जाए।

3.5 भारतीय विधि संस्थान द्वारा दी गई टिप्पणियों से हम सहमत हैं। इन पर सहमति देने में विलम्ब हुआ है।

3.6 अधिकांश मामलों में, राज्यपालों ने केन्द्र के एजेंटों के रूप में कार्य किया है।

3.7 प्रश्न पर दिए गए सुझाव से हम सहमत हैं। इसके अतिरिक्त, राज्यपाल की नियुक्ति राज्य की विधान सभा के परामर्श से करनी चाहिए।

3.8 हम इस सुझाव से सहमत नहीं हैं।

3.9 जर्मन संघीय गणराज्य की आधारभूत विधि के अनुच्छेद 67 पर आधारित सुझाव को प्रयुक्त किया जाए। किन्तु सामान्यतः यह बेहतर रहेगा कि चुनाव करवाए जाएं।

3.10 राज्यपालों के सम्बन्ध में दिए गए हमारे अन्य सुझावों को देखते हुए यह अनावश्यक हो जाता है।

भाग IV

प्रशासकीय संबंध

4.1 यह बताया गया है कि 256 और 257 अनुच्छेद को राज्य के कार्यपालक शक्तियों और संघ की कार्यपालक शक्तियों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है। यह सम्भव है कि राज्य सरकार को निशाना बनाने के लिए इन शक्तियों का दुरुपयोग किया जाए।

4.2 हमारा विचार है कि अनुच्छेद 365 को निकाल दिया जाए। शक्ति असाधारण शक्ति है और इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। इसकी न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए इसे भी निकाल दिया जाए।

4.3 यदि अनुच्छेद 256 और 257 वर्तमान रूप में ही लागू होते हों तो ए०आर०सी० रिपोर्ट में दिए गए सुझाव पर विचार किया जाए।

4.4 अनुच्छेद 356 के अधीन असाधारण शक्ति का निरपवाद रूप से दुरुपयोग किया गया है। सन् 1959 में केरल सरकार को कानून और व्यवस्था आदि के असफल होने के सम्बन्ध में बड़ी ही संदिग्ध दलील देकर बरखास्त किया गया था। हालांकि कांग्रेस सरकारों के ऐसे अनेक उदाहरण देखने में आए हैं जिनसे उनके द्वारा कानून और व्यवस्था को बनाए रखने में अव्यवस्था झलकती है किन्तु इस संदिग्ध दलील पर कांग्रेस सरकारों को हटाया नहीं गया है। वास्तव में 1959 में केरल में कानून और व्यवस्था की कोई अव्यवस्था नहीं थी। इसी प्रकार 1976 में तमिलनाडु सरकार, जिसके अध्यक्ष करूणानिधि थे, पर यह असाधारण आरोप लगाकर बरखास्त किया गया था कि वे भ्रष्टाचार में लगे हुए हैं।

4.5 1978 के 44 वें संशोधन को पूरी तरह से पूर्व स्थिति में रख दिया गया है। किन्तु उक्त विवाद में (पंजाब के मामले में) उल्लिखित असाधारण स्थिति का सामना करने के लिए अधिकारों के स्वछंद उपयोग से बचाव के लिए यह सुझाव दिया जाए कि इन मामलों पर विचार विमर्श अन्तरराज्यिक परिषद में (प्रस्ताव द्वारा) या संसद द्वारा किया जाए।

4.6 किसी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

4.7 आलोचना न्यायोचित है। इन संगठनों को इस तरीके से कार्य नहीं करना चाहिए जिससे राज्य की स्वायत्तता अतिक्रमित हो सके। इनकी समीक्षा अन्तरराज्यिक परिषद और राष्ट्रीय विकास परिषद में की जाए।

4.8 आलोचना के कारण जो खास बात चर्चा में आई है वह केन्द्रीय और राज्य सरकार द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं पर संयुक्त नियंत्रण के पहलू से सम्बद्ध है। अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बद्ध अधिकारियों की निष्ठा केन्द्र के प्रति होती भले ही वे राज्य में काम कर रहे हों। यही द्वन्द और कठिन स्थितियों का कारण बना है। (आंध्र प्रदेश और जम्मू-कश्मीर के प्रशासनिक और पुलिस अफसरों के दृष्टान्तों पर आलोचना की गई है।) इस सम्बन्ध में, राज्य सरकार द्वारा दिए गए सुझाव विचारणीय है। ये सुझाव निम्नलिखित है :-

- (i) अखिल भारतीय सेवाओं के लिए निर्धारित नीति या नियमों से सम्बद्ध सभी मामले सर्वप्रथम प्रस्तावित अन्तरराज्यिक परिषद के समक्ष रखे जाएं और औपचारिक प्रस्ताव के जरिए परिषद् का अनुमोदन प्राप्त करने के बाद ही कार्रवाई प्रारम्भ की जाए।
- (ii) अखिल भारतीय सेवा के अधिनियम के खण्ड 3 को राज्य के साथ "परामर्श" को राज्य सरकार की दो तिहाई की "सहमति" से पुनः स्थापित करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए।
- (iii) भा०प्र० सेवा (संवर्ग) नियमों, जो कि अधिकारियों की प्रशासन सम्बन्धी शिकायतों के सम्बन्ध में बनाया गया है, की नियमावली 6 में किए गए संशोधन की चर्चा न्यायाधिकरणों में की जाए ताकि न्यायालयों में होने वाले विलम्ब से बचा जा सके। इन न्यायाधिकरणों के लिए सदस्यों का चयन संघ लोक सेवा आयोग की पुष्टि से किया जाए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि इन न्यायाधिकरणों के लिए जिन सदस्यों का चयन किया गया है वे सक्षम और ईमानदार हैं।

4.9 पुलिस और कानून तथा व्यवस्था बनाए रखना राज्य का विषय है। किन्तु राज्य परा सैन्य बलों और केन्द्रीय आसूचना सेवाओं, आदि की पूर्ति के लिए केन्द्र पर निर्भर रहते हैं। केन्द्रीय सरकार का व्यय पुलिस बलों पर बढ़ता ही जा रहा है। केन्द्रीय सरकार ने शांतिपूर्ण आन्दोलनों (उदाहरणार्थ बिहार) के सम्बन्ध में सीमा सुरक्षा बल यूनिटों और केन्द्रीय रिजर्व पुलिस दोनों को तैनात किया था। अभी हाल में इन्हें आंध्र प्रदेश में विशुद्ध रूप से राजनैतिक कारणों से तैनात किया गया था। सी०सु०ब० यूनिटों और के०रि०पु०ब० के जरिए केन्द्रीय हस्तक्षेप को रोका जाना चाहिए। केन्द्रीय बलों के विस्तार को भी रोका जाना चाहिए और संबंधित राज्य से सहमति लिए बिना अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और धर्म निष्ठ तथा भाषामूलक अल्पसंख्यकों की जान-माल के गम्भीर खतरे का मुकाबले करने के सिवाय अन्य परा सैन्य बलों को तैनात नहीं किया जाना चाहिए।

4.10 हमारा विचार है कि रेडियो और दूरदर्शन को राष्ट्रीय प्रसारण न्यास के रूप में स्वायत्त और पंजीकृत संस्था बनाया जाना चाहिए। न्यास मंडल की नियुक्ति अन्तरराज्यिक परिषद् से परामर्श करके की जानी चाहिए। विपक्ष और राज्य के मुख्यमंत्री की पैठ भी प्रसारण माध्यम तक होनी चाहिए। अखबारी कागजों के आबंटन के फलस्वरूप समाचारपत्रों और पत्र-पत्रिकाओं की बहुत कुछ हानि हुई है। समाचारपत्रों के कोटा के निर्धारण को पूर्णतया समाप्त कर देना चाहिए और अखबारी कागज के आयात को खुला सामान्य लाइसेंस के अधीन निर्धारित कर दिया जाए। अखबारी कागज प्राप्त करने के लिए छोटे छोटे समाचारपत्रों को सहायता दी जाए। प्रसारण को समवर्ती सूची में लाया जाना चाहिए।

4.11 आंचलिक परिषदों ने शायद ही कोई काम किया।

4.12 प्रभावशाली रूप से कार्य करने के लिए धारा 263 के अनुसार अन्तरराज्यिक परिषदों को नियुक्ति की जानी चाहिए। इस तथ्य को ध्यान में रखकर कई पार्टियां सत्ता में आई, किन्तु अन्तरराज्यिक परिषद् मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने और सर्वसम्मति प्राप्त करने के कारण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बन गई है। करों और नीतियों के समन्वय, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार न्यूनतम मजदूरी, क्षेत्रीय असंतुलन, राज्य में केन्द्रीय निवेश आदि से सम्बन्धित समस्याओं जैसे मामलों पर कार्यवाही अन्तरराज्यिक परिषद की करनी होगी। इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् और आयोजन आयोग आदि के प्रभावी कार्य से जोड़ना होगा। परिषद् का स्थायी आधार पर एक स्वतंत्र सचिवालय होगा।

भाग V

वित्तीय संबंध

राज्यों को व्यापक वित्त और अर्थ संबंधी अधिकार तथा बृहत्तर संसोत उपलब्ध कराना

एक तरफ तो राज्यों के विकासात्मक और अन्य कल्याण सम्बन्धी कार्यकलापों के विस्तार और दूसरी ओर इनके संसाधनों में भारी कमी के साथ ही साथ इस कारण से केन्द्र पर इनकी आश्रितता को देखते हुए यह अत्यावश्यक हो गया है कि राज्यों के संसाधनों में बढ़ोतरी की जाए। निश्चय ही ये अन्तः सम्बद्ध कार्य हैं। राज्यों की वित्त और अर्थ सम्बन्धी अधिकार संविधान की योजना में अंतर्निहित हैं जिसमें कुछ आमूलचूल संशोधन करने की आवश्यकता है।

केन्द्र और राज्यों की कराधान सम्बन्धी शक्तियां परस्पर असंयोज्य हैं। और इसलिए यह आवश्यक है कि संघ सूची से राज्य सूची में करों और राजस्व की कुछ मदें अन्तरित करके राज्यों के संसाधनों को बढ़ाने के आधार को व्यापक किया जाए। किन्तु इससे भी राज्यों के सम्भावित संसाधनों में महत्वपूर्ण वृद्धि नहीं हो रही है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्र को संविधान के अधिदेशात्मक उपबंधों के अलावा संसद द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार राज्यों को अधिक से अधिक निधियाँ उपलब्ध करानी होंगी।

कार्यपालक का केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए गए संसाधनों के अंतरण को पूरी तरह सुनिश्चित करने के लिए विवेकाधिकार की सीमा को प्रबल रूप से कम कर देना चाहिए।

विभाजक पूल में सीमा, निर्यात शुल्क और निगम कर शामिल करें

केन्द्रीय राजस्व की आवश्यक मदें यानी सीमा, निर्यात शुल्क और कम्पनी कर आदि केन्द्र द्वारा अब राज्यों के साथ बांटी नहीं जाती । इन प्रत्येक शीर्षों के अधीन प्रत्येक की निवल आय का निश्चित प्रतिशत वित्त आयोग द्वारा निर्धारित अनुपात और दिशा-निर्देश के अनुसार राज्यों को अनिवार्य रूप से अंतरण के लिए विभाजक पूल में लाया जाना चाहिए । सभी सम्बद्ध घटकों का ध्यान रखेगा । यह संसद के निर्णय पर छोड़ दिया जाए कि प्रत्येक मामले में वर्षानुवर्ष कितना अनुपात विभाजक पूल में डाला जाना चाहिए । परन्तु सांविधानिक गारन्टी यह होनी चाहिए कि राज्यों के लिए उद्दिष्ट हिस्सा पूंजी प्रत्येक शीर्ष के अनुसार निवल प्राप्तियों के 50 प्रतिशत से कम नहीं होगी । इसी प्रकार यह सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में भी सांविधानिक गारन्टी यह है कि पिछड़े वर्ग के क्षेत्रों के विकास के लिए, जनजातीय क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य पिछड़े और कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता दी गई है ।

पूल के लिए उत्पाद शुल्क का 50%

इस समय केन्द्र के उत्पाद शुल्क के निवल आगमों को संविधान के वैकल्पिक उपबन्धों के अनुसार 20 प्रतिशत की दर से राज्यों में बांटा गया है । विभाजक पूल में संघ के उत्पाद शुल्क को भी शामिल करते हुए इस हिस्सा बंटाई को आवश्यक बनाया जाना चाहिए और इस अनुपात उत्पाद शुल्क के कुल निवल आगमों के कम से कम 50 प्रतिशत तक बढ़ा देना चाहिए । अनुच्छेद 270 में उत्पाद शुल्क शामिल कर लेना चाहिए और अनुच्छेद 272 को निकाल दिया जाना चाहिए ।

सहायता अनुदान का क्षेत्र बढ़ाना

अनुच्छेद 275, जिसमें संसद द्वारा "सहायता अनुदान" का उपबंध है, में इस प्रकार से संशोधन किया जाए कि इसमें संघ कार्यपालक के योजना आयोग या अन्यथा के द्वारा राज्य को वित्तीय सहायता देने के विवेकाधिकार को निम्नतम स्तर पर लाने की दृष्टि से, अन्य बातों के साथ-साथ, राज्य के लिए उक्त सहायता सुनिश्चित करने के बहुत से प्रयोजन आ जाएं । योजना आबंटन को इसके साथ और ऐसे अन्य सांविधिक उपबंधों, जो कि इस प्रयोजन के लिए संसद द्वारा किए गए हैं, के साथ जोड़ा जाना चाहिए । विभाजन पूल से संसाधनों के अन्तरण के लिए प्रस्ताव करते समय न केवल राज्यों का राजस्व संबंधी आवश्यकताओं बल्कि इसके अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए ।

राज्य सूची में अन्तरित करना

संघ सूची की प्रविष्टि 87 के अधीन सम्पत्ति के लिए कृषियोग्य भूमि सम्पदा शुल्क से इतर सम्पदा शुल्क को राज्य सूची में न केवल कृषियोग्य भूमि के लिए बल्कि भवनों और अन्य अचल सम्पत्ति के लिए भी अन्तरित किया जाना चाहिए । राज्य में सभी अचल सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क राज्य सूची में अन्तरित किए जाने चाहिए । प्रविष्टि 89 के अधीन सीमा कर (रेल, समुद्र या हवाई जहाज द्वारा ले जाए गए माल या यात्रियों पर सीमाकर, रेल के किराए भाड़े पर कर) को भी राज्य सूची में अन्तरित कर दिया जाना चाहिए । प्रविष्टि 90 (शेयर बाजार में किए गए लेन देन पर स्टाम्प शुल्क से इतर कर) 92. (समाचारपत्रों की खरीद फरोख्त पर और इसमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर) को भी राज्य सूची में शामिल किया जाना चाहिए ।

वित्तीय संस्थाएं और बैंक

पिछड़े हुए राज्यों और क्षेत्रों के विकास के लिए वित्तीय संस्थाओं को अधिक निवेश और निधियों को बढ़ाना चाहिए ।

सार्वजनिक क्षेत्र में अपने निजी बैंक शुरू करने का राज्यों को अधिकार दिया जाना चाहिए ।

रायल्टी

खनिज संसाधनों, तेल, गैस आदि के लिए रायल्टी बढ़ा दी जाए और इसका हिसाब यथामूल्य आधार पर रखा जाए जिससे राज्य को नैसर्गिक संसाधनों का उचित हिस्सा प्राप्त हो सके ।

संसद की सिफारिश पर वित्त आयोग की नियुक्ति करना

वित्त आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा राज्यों से परामर्श करके तैयार किए गए और संसद द्वारा अनुमोदित पैनल की सिफारिश के आधार पर की जानी चाहिए । इसकी नियुक्ति का सवाल अकेले संघ कार्यपालक के विवेक पर न छोड़ा जाए । संसद को इस मामले में प्रभावशाली ढंग से कुछ कहने का अधिकार नहीं है । वित्त आयोग के कार्यों को इतना व्यापक बनाया जाना चाहिए ताकि इसमें केन्द्र से राज्यों तक के संसाधनों के सभी अन्तरण आ जाएं । राज्यों की इसके कार्य के लिए दिए गए दिशा निर्देशों में इतने अधिकार दिए जाने चाहिए ताकि राज्यों और साथ ही केन्द्र के सभी वित्तीय पहलू इसमें आ जाएं और इसका कार्य समावेश राज्यों की राजकोषीय आवश्यकताओं का आवधिक निर्धारण करने और राज्यों की सहायता अनुदान और करों के अंतरण के प्रस्ताव करने तक ही सीमित न रहे ।

योजना आयोग को एक सांविधिक निकाय होना चाहिए

यथार्थ रूप में, योजना आयोग की कोई विधिक हैसियत नहीं है । इस अन्तर को समाप्त किया जाना चाहिए और योजना आयोग को एक सांविधिक निकाय बन या जाना चाहिए तथा इसके कार्यों और प्राधिकार को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए । प्रधानमंत्री, जो कि आयोग के पदेन अध्यक्ष बने रहेंगे, के अलावा मंत्रिमंडल सदस्य, (तीन से अधिक नहीं होंगे) जिन्हें योजना आयोग का सदस्य बनाया जाएगा, विशेषज्ञ होंगे और इस सदस्यों की नियुक्ति संसद द्वारा प्रस्ताव करके की जाए ।

राज्य योजना निकायों को सम्मिलित करना

राज्यों के प्रतिनिधियों को योजना के निर्माण में सार्थक तरीके से शामिल करने और इसके कार्यान्वयन का निरीक्षण करने के सम्बन्ध में कानून में उपबंध होना चाहिए ।

योजना आयोग और राज्य योजना निकायों के बीच सार्थक समन्वय होना चाहिए और उसके अधिकारों और प्राधिकारों के साथ ही राज्य में योजना के मामले में पहल और गतिविधि के क्षेत्र को बढ़ाया जाना चाहिए, अपने निजी क्षेत्रों में ये योजना के साधन होंगे ।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की सांविधिक हैसियत

राष्ट्रीय विकास परिषद् को सांविधिक हैसियत दी जानी चाहिए और मोटे तौर पर इसके कार्यों और संसद से सम्बन्ध को सुनिश्चित किया जाना चाहिए । रा०वि०प० का मुख्य काम विकास सम्बन्धी गतिविधियों, विशेष रूप से उन गतिविधियों से जो कि योजनाबद्ध विकास से सम्बद्ध होना चाहिए के अतिरिक्त इस प्रयोजन के लिए राज्यों के बीच समन्वय और केन्द्र के साथ इनका समन्वय होना चाहिए । इस सम्बन्ध में केन्द्र राज्य की संगत समस्याओं को भी रा०वि०प० के कार्यों की परिधि में लाया जाना चाहिए ।

कर्ज और ऋण

राज्यों को दिए गए केन्द्रीय कर्जों के प्रश्न पर भी गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है । राज्यों की भारी ऋणग्रस्तता को कम करने के लिए केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए गए बकाया कर्जों के समुचित भाग को बट्टे खाते में डाल दिया जाना चाहिए । मुख्यतः यह ऋणभार केन्द्र द्वारा राज्यों को संसाधन देने से इन्कार करने के कारण ही है । उधार लेने के सम्बन्ध में राज्यों के प्राधिकार को बढ़ाया जाना चाहिए और राज्यों द्वारा तथाकथित "ओवरड्राफ्ट" के मामले में भी पूर्ण रूप से गुंजाइश होनी चाहिए । इस सम्बन्ध में, आवश्यक पूर्वोपायों के अनुसार राज्यों की उधार लेने की स्थिति में सुधार करने की दृष्टि से बैंकिंग बीमा और अन्य सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं, जो कि राज्य में केन्द्र के नियंत्रण में है, के सम्बन्धों की समीक्षा की जानी चाहिए ।

उपर्युक्त प्रस्ताव राज्यों को न केवल अपने दायित्वों के निर्वहन में शक्तिशाली बनाएंगे बल्कि इसके साथ ही केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों की लोकतांत्रिक अंतर्वस्तु को मजबूत भी करेंगे जिसके द्वारा देश की एकता और राष्ट्रीय अखंडता मजबूत होगी । "अनेकता में एकता" के सिद्धान्त का कार्यान्वयन केन्द्र और राज्यों के मध्य न्याय, लोकतांत्रिक और गतिशील सम्बन्धों पर कुछ कम नहीं है ।

भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी केन्द्र-राज्य संबंधों पर राष्ट्रीय स्तर की बात-चीत में प्रारंभिक सहयोग के स्तर पर इन प्रस्तावों को जनता के सामने प्रस्तुत करती है।

5.1 यह बताया गया है कि पिछले 34 वर्षों से वित्त के अन्तरण की कार्य-विधि और इसके वास्तविक कार्य संतोषजनक नही पाए गए हैं। इससे लोगों की आकांक्षाएं भी पूरी नही हुई हैं। अन्तरण की योजना में राज्यों की बढ़ती हुई जिम्मेवारियों पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया गया है।

5.2 5.2(च) और (छ) में दिए गए सुझाव से हम सहमत हैं।

5.3 राज्य नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्तों में दिए गए उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्ण असफलता प्राप्त हुई है। महत्वपूर्ण निर्देशात्मक सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त 39(च) और (छ) में दिया गया है। इस सम्बन्ध में थोड़ा सा काम किया गया है किन्तु दूसरी ओर सम्पत्ति के एकत्रीकरण और उत्पादन के साधनों में वृद्धि हुई है परन्तु इनकी किसी भी तरीके से रोकथाम नहीं की गई है। हमारे पास बड़े-बड़े एकाधिकार हैं जो कि वर्षानुवर्ष बढ़ते ही जा रहे हैं और एकाधिकारों का बढ़ना सामूहिक अहित का एक स्रोत है। एकाधिकारों और पूंजीवादी व्यवस्था जो कि आज विद्यमान है, का बढ़ना अनेक बुराईयों की जड़ है और इसका प्रभाव केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर भी पड़ता है। इस व्यवस्था से समस्तरीय असमानताएं उत्पन्न हुई हैं। इस स्थिति में, यह आवश्यक है कि राज्यों और अन्यथा के बीच पैदा हुई असमानताओं को कम करने के लिए केन्द्र को एक नीति अपनानी होगी। इससे एकाधिकारों में हुई वृद्धि को रोका जा सकता है। किन्तु शक्तिशाली राज्य की संकल्पना का विचार करते हुए राज्यों को समतुल्यता प्रदान करने के लिए अधिक वित्तीय अधिकार न देना अनुचित होगा। इस समय यह आवश्यक है कि राज्यों को अधिक से अधिक वित्तीय सहायता प्रदान की जाए और इसी के साथ राज्यों के बीच असंतुलन को कम करना आवश्यक होगा। अन्तरराज्यिक अन्तरों को निष्प्रभावित करने और इन्हें सहनीय स्तरों तक कम करने के लिए एक योजना बनानी होगी। हम यह भी कहना चाहेंगे कि जब तक यह पूंजीवादी व्यवस्था विद्यमान रहेगी तब तक एकाधिकार के बढ़ने से इन अन्तरराज्यिक अन्तरों और विकास के असमान स्तर को दूर नहीं किया जा सकता।

5.4 सुझाव (1) और (2) स्वीकार्य हैं। किन्तु कर उन व्यक्तियों से लेना चाहिये जो दे सकते हों न कि वस्तुओं पर कर लगाकर और प्रशासनिक मूल्यों के जरिए। घाटे की वित्त व्यवस्था बिल्कुल भी राष्ट्रीय हित में नहीं है। कर सम्पत्ति के मालिकों और माल के उत्पादकों (पूंजीवादियों, जमींदारों और व्यापारियों) से लिया जाए।

5.5 राज्य सरकार द्वारा सुझाए गए विचार से हम सहमत है।

5.6 युगोस्लाव संविधान पर आधारित सुझाव प्रयोग में लाए जाएं।

5.7 हमने ऊपर बता ही दिया है कि कर और स्रोत स्थानान्तरित किए जाएं।

5.8 पूर्वोक्त के अनुसार सुझाव।

5.9 सुझाव जो कि वित्त आयोग के सभी योजना और योजनेत्तर व्ययों से सम्बद्ध होंगे, प्रयोग में लाए जाएं। किन्तु जैसा कि ऊपर प्रश्न में बता दिया गया है, कि आयोजना आयोग के कार्य सीमित दिखाई पड़ते हैं।

5.10 सार्वजनिक व्ययों में आई असमानता को दूर नहीं किया गया है।

5.11 हमने सुझाव दिये हैं कि आयोजना में राज्यों की भूमिका महत्तर और बढ़ी हुई होनी चाहिए और पूर्वोक्त के अनुसार उचित आधार पर संस्रोतों का स्थानान्तरण भी किया जाना चाहिए। उक्त सुझाव संशोधनात्मक हो सकता है।

5.12, 5.13 और 5.14 हमने प्रारम्भ में पहले ही सुझाव दे दिए है और हम वित्तीय अन्तरणों पर राज्यों के विचार से भी सहमत हैं।

5.15 और 5.16 राज्य की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता के प्रश्न पर भी राज्य सरकार के ज्ञापन में विचार किया गया है। प्रारम्भ में हमने ऋण आदि के प्रश्न पर भी विचार किया है। राज्य सरकार द्वारा दिए गए विचारों से हम सहमत हैं।

5.17 ए०आर०सी० अध्ययन दल के विचार सही हैं। स्थिति में सुधार लाने के लिए हमारी राज्य सरकार द्वारा सुझाव दिए गए हैं। हम इन विचारों से सहमत है।

5.18 यह सही है कि राज्यों के उधार लेने की क्षमता को सीमित किया गया है। राज्य सरकार ने अखिल भारतीय आधार पर डेबिट-क्रेडिट परिषदों को सुझाव दिया है। ये इन समस्याओं की जांच पड़ताल कर सकते हैं। हर हालत में ऋणों की पुन: व्यवस्था करना परमावश्यक है।

5.19 जहां तक हो सके, केन्द्र राज्यों से ब्याज, जो कि ये देते हैं, की उच्चतर दर वसूल नहीं करनी चाहिए। कम से कम अन्तर तो सामान्य होना चाहिए और यह राजस्व का स्रोत नहीं होना चाहिए।

5.20 राज्य सरकार ने क्रेडिट-डेबिट परिषद् से सम्बन्धित सुझाव पहले ही दे दिया है। हम इन्हें मानते है।

5.21 ओवरड्राफ्ट के कारणों में विचारणीय एक कारण राज्यों की वित्तीय स्थिति है। बहरहाल कर्नाटक के मामले में, यह स्थिति कर उपलब्धि की कमी के कारण नहीं हैं।

5.22 यह कहना ठीक नहीं है कि कर्नाटक राज्य राजस्व के अपने-अपने स्रोत का उपयोग नहीं कर रहा है।

5.23 इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र ने ब्याज का उच्चस्तर प्राप्त कर लिया है, किन्तु कुल मिलाकर सार्वजनिक क्षेत्र का उपयोग गैर सरकारी क्षेत्र की सहायता के लिए किया गया है। यदि सार्वजनिक क्षेत्र विशेष रूप से ये वित्तीय संस्थाओं ने अपनी सीमा से बाहर जाकर इनकी सहायता नहीं की होती तो गैर-सरकारी क्षेत्र में तेजी से वृद्धि नहीं हो सकती थी। (यहां तक कि स्वराजपाल ने इसे स्पष्ट किया है।) सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य कुशलता का निर्धारण प्रत्येक संस्थाओं के सन्दर्भ में विस्तारपूर्वक करना होगा। ये भिन्न-भिन्न स्वरूप के है। इनमें कुछ तो अर्जित लाभ हैं और कुछ नहीं। गैर सरकारी क्षेत्रों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र की आलोचना में बदनामी का तत्व शामिल है। इसका आशय यह नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के कार्य में सुधार करने की कोई गुंजाईश ही नहीं है। प्रबंध का दफ्तरशाहीकरण गम्भीर बाधाओं में से एक बाधा है। नीतियों और प्रशासन दोनों के अनुसार महत्वपूर्ण सुधार यदि लागू किए गए तो निश्चित रूप से सही रास्ते पर ले जाएंगें। हम इस विचार से भी सहमत है कि केन्द्रीय राजस्व कर की पर्याप्त चोरी होती है।

5.24 इस सुझाव से हम सहमत है।

5.25 हम इस सुझाव से भी सहमत है कि इन करों को राज्य सूची में अन्तरित किया जाए।

5.26 ऊपर हमने जो कुछ कहा है उसके अनुसार अनुदान बढ़ाने सम्बन्धी सुझाव नियमानुसार हैं।

5.27 हमारा विचार है कि चार संघ राज्य-क्षेत्रों को राजयत्व प्रदान करना होगा। इसके अनुसार 5.27 में दिया गया सुझाव ठीक है।

5.28 आपदाओं के अनुसार खर्चों को पूरा करने के लिए केन्द्र से पर्याप्त सहायता अवश्य मिलनी चाहिए।

5.29 इस सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा दिए गए सुझाव से हम सहमत हैं।

5.30 किसी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

5.31 आलोचना सही है। यही क्यों हम राष्ट्रीय व्यय आयोग के सुझाव से भी सहमत हैं।

5.32 से 5.35 किसी टीका-टिप्पणी को आवश्यकता नहीं है।

5.36 इसमें कोई संदेह नहीं है कि रिपोर्टों की जांच-पड़ताल विधान मंडल की विभिन्न समितियों द्वारा की गई है। यह स्वयं में एक महत्वपूर्ण परीक्षण है, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि यह पर्याप्त परीक्षण है क्योंकि इसमें भारी समय अन्तराल आ गया है और दिए गए सुझावों का पूर्णत: पालन नहीं किया गया।

5.37 हम सुझाव से सहमत हैं।

5.38 व्यय आयोग का क्षेत्र नियंत्रक और महालेखापरीक्षक के कार्यों से भिन्न है।

5.39 हम सुझाव से सहमत हैं।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 प्रतिक्रियाओं, जिनका उल्लेख उक्त प्रश्न में किया गया है, से बचने के बारे में सरकार द्वारा दिए गए सुझाव से हम सहमत हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद्, राष्ट्रीय बचत परिषद्, राष्ट्रीय उधार आयोग के प्रभावकारी कार्य आवश्यक हैं। विकेन्द्रीकृत योजना की संकल्पना को हमारे विशाल देश में पुन: स्थापित किया जाना चाहिए। राज्य योजनाओं के लिए राज्यों को अधिक से अधिक जिम्मेवार होना होगा। योजना आयोग में विशेषज्ञ और तीन या चार मंत्री, जिनकी नियुक्ति संसद के प्रस्ताव द्वारा की जाए, शामिल होंगे। योजनाओं के निर्माण में राज्यों की सहायता करनी चाहिए।

6.2 हम प्रस्ताव से सहमत हैं।

6.3 आयोजना आयोग को राज्य सरकार को अपने विश्वास में लेना होगा।

6.4 हम 6.4(1) को वरीयता देते हैं।

6.5 प्रस्ताव से हम सहमत हैं।

6.6 इन मामलों को राज्य सरकार द्वारा दिए गए ज्ञापन में स्पष्ट कर दिया गया है और हम उनसे सहमत हैं।

6.7 और 6.8 हम राज्य सरकार के विचार से सहमत हैं।

6.9 केन्द्रीय योजना सहायता को निर्धारित करने के सम्बन्ध में वित्त आयोग द्वारा अपनाए गए मानदण्ड से यह प्रमाणित हो गया है कि यह असाम्य है। जहाँ तक हमारे राज्य का सम्बन्ध है, सरकार ने वित्त आयोग और अन्य निकायों दोनों के ज्ञापन में इन पहलुओं को स्पष्ट किया है। हम सुझाव से सहमत हैं।

6.10 केन्द्रीय रूप से प्रस्तुत की गई योजनाओं के सम्बन्ध में कर्नाटक के मुख्य मंत्री द्वारा दिए गए विचार से हम सहमत हैं। इन्होंने इसका उल्लेख अपने अभी हाल में दिए गए बजट भाषण में और समाचार पत्र के लिए दिए गए अपने साक्षात्कार में किया है।

6.11 . . . .

6.12 6.12 में व्यक्त किए गए सुझाव से हम सहमत हैं।

6.13 राज्य योजनाओं को बनाने का काम समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा किया गया है। इस सम्बन्ध में सभा और विभिन्न स्तरों पर विचार-विमर्श अपर्याप्त है। योजनाएं बनाने में लोगों की भागीदारी में सुधार लाना है।

भाग VII

विविध

उद्योग

7.1 हम इस बात से सहमत हैं कि अनुसूची में दिए गए उद्योगों की वृद्धि पर राज्य क्षेत्र में अतिक्रमण किया गया है।

राज्य सूची में दिया गया अनुच्छेद 24 भी उद्योगों से सम्बद्ध है। अत: राज्य सूची में दिए गए अनुच्छेद 24 कानून बनाने के लिए राज्यों के अधिकार सीधे-सीधे छीनना अनुचित है। तथापि संसद राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समग्र हित में अखिल भारतीय महत्व के उद्योगों के सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए सीमित अधिकार दे सकती है।

7.2 जैसा कि ऊपर कहा गया है, अकेले अखिल भारतीय महत्व के उद्योग प्रथम अनुसूची में रखे जाएं।

7.3 सार्वजनिक हित के आधार पर उद्योगों के क्षेत्र में केन्द्र का हस्तक्षेप अनावश्यक होगा।

7.4 . . . .

7.5 राज्य सरकार के ज्ञापन में शीर्ष "बाजार उधारों" पर कुछ टिप्पणियां की गई हैं। हम इनके सुझावों से सहमत हैं। बाजार उधारों का आवंटन केन्द्र और राज्यों के बीच पचास-पचास प्रतिशत के आधार पर किया जाना चाहिए। अन्तरराज्यिक आवंटनों का मानदण्ड राज्य सरकारों द्वारा उचित रूप से किया गया है।

7.6 आलोचना न्यायोचित है। विजयानगर स्टील प्लान्ट का मामला प्रासंगिक उदाहरण है। दस वर्ष से भी अधिक पहले इसकी आधारशिला रखी गई थी और केन्द्रीय सरकार द्वारा ये सुझाव दिए गए थे कि स्टील प्लान्ट आरम्भ किया जाए किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं किया गया है।

7.7 सार्वजनिक क्षेत्र के केन्द्रीय निवेश का निर्णय राष्ट्रीय स्तर पर करना होगा ताकि इस आलोचना को रोका जा सके। मामले पर विचार-विमर्श विभिन्न अखिल भारतीय निकायों और अन्तरराज्यिक परिषदों में किया जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न राज्यों की सम्भाव्यताओं को स्वीकार करते हुए एक दीर्घकालीन योजना तैयार की जानी चाहिए।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 8.1 में दिए गए सुझाव से हम सहमत हैं।

कृषि

9.1 जहाँ तक कृषि सम्बन्धी अनुसंधान का सम्बन्ध है, राज्य में संसाधनों की कमी को दृष्टिगत रखते हुए राज्य के प्रयासों को केन्द्र द्वारा पूरा किया जाना चाहिए। अन्यथा, प्रशासन अर्थात् राज्य सरकार द्वारा की गई टीका-टिप्पणी से हम सहमत हैं।

9.2 कृषि के सम्बन्ध में राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिए गए विचार से हम सहमत हैं।

9.3 कृषि के विषय में दिए गए राष्ट्रीय आयोग के सुझाव बिल्कुल उचित हैं किन्तु इनका कार्यान्वयन संतोषजनक रूप से नहीं किया जा रहा है।

9.4 बहुत से कृषियोग्य पण्यों के मूल्य निर्धारण से कभी-कभी तो राज्य और केन्द्र के बीच द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा हो गई है। केन्द्र को चाहिए कि वह राज्य को अपने विश्वास में ले और उससे उपयुक्त विचार-विमर्श करे।

9.5 राज्य सरकार द्वारा दिए गए सुझाव से हम सहमत हैं।

खाद्य और नागरिक आपूर्ति

10.1 और 10.2 इस सम्बन्ध में हमें टिप्पणियां नहीं देनी हैं।

शिक्षा

11.1 और 11.2 इस सम्बन्ध में हम कोई टिप्पणियां नहीं देते हैं।

11.3 ऐसी स्थिति में विचार-विमर्श और परामर्श की आवश्यकता है ताकि केन्द्र और राज्य के बीच सहमति हो जाए।

11.4 अभी हाल में राज्य सरकार द्वारा शिक्षा के सम्बन्ध में एक व्यापक विधेयक पारित किया गया था। किन्तु इसे अभी तक केन्द्र ने मंजूरी नहीं दी है। यह आवश्यक है कि इसे शीघ्र ही मंजूरी दी जाए। तथापि हमने साम्प्रदायिक शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्धित अवलोकन किया। हालांकि हम ऐसी संस्थाओं के संरक्षण की आवश्यकता से सहमत हैं। हम महसूस करते हैं कि ऐसी शिक्षा-संस्थाओं द्वारा नियुक्त किए गए कर्मचारियों को अधिकतम प्रारम्भिक संरक्षणों, जो कि अन्य शिक्षा संस्थाओं में दूसरे कर्मचारियों को उपलब्ध है, से वंचित रखा जाता है। हम इस बात को समझ नहीं पाए हैं कि गैर अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं के कर्मचारियों को दिए गए न्यूनतम संरक्षण को अल्पसंख्यक शिक्षा-संस्थाओं के कर्मचारियों के लिए क्यों न बढ़ाया जाए। कर्मचारियों को यह संरक्षण देने से इन्कार करना विभेदात्मक है। अत: संविधान में संशोधन करना होगा जिससे कि उक्त संस्थाओं में नियुक्त कर्मचारियों को न्यूनतम कुछ संरक्षण प्राप्त हो सके।

अन्तः सरकारी समन्वय

12.1 ऐसी (तन्त्रप्रणाली) मशीनरी उपयोगी रहेगी।

भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी

राज्य इकाई—केरल

उत्तर

केरल के लोगो के लिए केन्द्र राज्य संबंधों को पुन: व्यवस्थित रखना एक आसन्न ही नही यहां तक कि यह दिन प्रतिदिन की चिन्ता का विषय बना हुआ है ।

राज्यों को अधिक अधिकार उपलब्ध कराने के प्रश्न अत्यावश्यक स्वरूप का मान लिया गया है । हमारे संविधान के लागू होने से पिछले तीन दशकों से केरल में बहुत सी समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं ।

अत: भा० क० पा० की राज्य परिषद् इस आयोग के संगठन का स्वागत करती है और आशा करती है कि आयोग आवश्यक निष्कर्षों पर पहुंचेगा तथा कम से कम संभावित समय में अपनी सिफारिशें सरकार और जनता के समक्ष प्रस्तुत करेगा। पिछली अप्रैल में आयोग की प्रश्नावली के उत्तर में हमारी राष्ट्रीय परिषद् द्वारा भा० क० पा० के विचारों को आयोग के समक्ष पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है । आगे कुछ प्रमुख समस्याओं, जो कि मुख्य रूप से इस राज्य से संबंधित हैं, की एक संक्षिप्त टिप्पणी दी जा रही है जिसके लिए हम चाहेंगे कि आयोग इन पर कार्यवाही करें ।

हम आयोग की सुविधा के लिए यथा समय महत्वपूर्ण मुददों का एक और ब्यौरेवार ज्ञापन प्रस्तुत करेंगे ।

राज्यों को वृहत्तर अधिकार

पिछले तीन दशकों के अनुभव से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राज्य के राजनैतिक आर्थिक और प्रशासकीय अधिकारों में निरंतर कमी आई है ।

हम इस दृष्टिकोण का समर्थन नही करते हैं जो कि ऐसे केन्द्र का समर्थन करता है जोकि रक्षा विदेश कार्य मामलों, संचार और मुद्रा जैसे तीन चार विषयों पर कार्रवाई करता है । भारत की एकता और अखंडता जिसे इस समय कई दिशाओं से खतरे का सामना करना पड़ रहा है, को मजबूत बनाना होगा। एकता की अत्यावश्यकता के लिए एकता का प्रबल स्वतः सम्मिलन और राष्ट्र निर्माण मे नीचे के तल पर सहभागिता की भावना लोगों की ओर से स्थानीय पहल से ही क्या हम इन खतरों का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं । इसके संबंध में यही कहा जा सकता है कि राज्य स्वायत्ता की अधिक से अधिक संभावित सीमा तक मांग की जाती हैं । जहां राज्य में और क्षेत्रीय स्तर पर वास्तव में लोगों का स्वायत्त शासन है वहां ऐसी व्यवस्था से राष्ट्र और केन्द्र के बहुमत के आधार को मजबूत करेगी न कि कमजोर ।

अक्सर दावा किया जाता है कि संविधान के अनुसार राज्यों को दिए गए अनग अलग क्षेत्रों में विधायी और कार्यपालक प्राधिकार के संबंध में भारत में इनका दर्जा केन्द्र के दर्जे के समान है और ये किसी भी रूप में केन्द्र पर निर्भर नहीं है। किन्तु कोई भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता है कि संविधान के विभिन्न उपबन्धों का दुरुपयोग करके और अन्य तरीकों से राज्य के अधिकारों, सम्मानों और सामर्थ्यों, अर्थ, वित्त और प्रशासनिक संबंधी सभी क्षेत्रों में कमी आई है । यहां तक कि सीमित अधिकारों जिसके अनुसार राज्य संविधान के अन्तर्गत दावा कर सकते हैं, को कम कर दिया गया है या अस्वीकार किया गया है जिसके फलस्वरूप राज्यों की स्थिति असहाय मुवक्किलों जैसी हो गई है जोकि सर्वशक्तिमान केन्द्रीय प्राधिकरण के समक्ष अनुनय विनय करते हैं ।

भारत को राज्यसंघ कहा गया है। वास्तव में हमारे संविधान में कई विशेषताएं है जोकि संघवाद की अपेक्षा एकात्मक स्वरूप की अधिक हैं । इसे अपनाने के बाद से राजनीतिक विकास का असर इस प्रकार से हुआ जिससे कि राज्य और भी कमजोर होते गए । अत: यह लाजिमी है कि राज्यों की भूमिका और अधिकारों में वृद्धि की जाए ताकि उप महाद्वीपीय खण्डों, जोकि भारत में है बहुभाषी बहु-धार्मिक, बहुसांस्कृतिक राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

राज्यपाल की भूमिका

आज राज्यपालों की भूमिका मुख्य रूप से वही है जो केन्द्र के प्रतिनिधि या एजेंट की है । ये केन्द्र के आदेश का पालन करते है । राज्याध्यक्ष के रूप में इनकी भूमिका कम हो गई है । हमारे विचार से स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए राज्यपालों की नियुक्ति संबंधित राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए पैनल में से की जानी चाहिए । इनकी स्थिति किसी भी रूप में राष्ट्रपति की स्थिति से भिन्न, नही होनी चाहिए । इनकों कर्तव्यों और कार्यों, पदावधि और काम के संबंध में दिशा निर्देशों की समीक्षा की जानी चाहिए और इन्हें उपयुक्त रूप से पुन: प्रतिपादित किया जाना चाहिए । संविधान के संगत अनुच्छेदों में संशोधन इन्हीं आधारों पर साथ-साथ किया जा सकता है ।

अनुच्छेद 248 संसद को ऐसे विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार प्रदान करता है जो कि सूची II या III में आते हैं । (सातवीं अनुसूची की राज्य सूची और समवर्ती सूची) राष्ट्र हित में से इसे निकाल दिया जाए ।

अनुच्छेद 200, 201 को निकाल दिया जाए जिसके अनुसार राज्यपाल को राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित किए गए किसी विधेयक पर सहमति देने से रोकने या इसे राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखने का प्राधिकार दिया जाता है । इस मामले में केरल का अनुभव यदि कड़वा नहीं है तो सुखद भी नहीं है ।

अनुच्छेद 356, जो कि प्रशासन की असफलता के आधार पर राज्य विधान मण्डल को विघटीत करने के लिए राष्ट्रपति को प्राधिकृत करता है, का अतीत में संविधान-निर्माताओं की मनोवृत्ति और उद्देश्य के प्रति बहुत ही दुरुपयोग किया गया है । इस अनुच्छेद की समीक्षा की जाए और इसके किसी भी तरह से दुरुपयोग को रोकने के लिए उसे उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाए । 356 (4) के अधीन किसी भी प्राख्यापन के लागू रहने की अधिकतम अवधि छ: माह तक होनी चाहिए ।

अनुच्छेद 365, जोकि केन्द्र को यह घोषित करने के अधिकार देता है कि केन्द्र के निदेशों का पालन न करने के कारण राज्य में हुई गड़बड़ी से प्रशासन को क्षति पहुंची है, को निकाल दिया जाए ।

राज्य, राज्य सरकारों में अखिल भारतीय सेवा के सदस्यों की सेवावधि के दौरान इनके ऊपर पूर्ण और प्रभावशाली नियंत्रण रखेंगे तथा इनके काम और आचरण को नियमित करेंगे । इस संबंध में कानून में आवश्यक उपबन्ध किए जाएं ।

न्याय पालिका

न्यायाधीशों की परिषद, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के सभी स्थायी सदस्य भी शामिल होंगे, को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में सिफारिशें करने के लिए बनाई जाए । ये मुख्यमंत्री और संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधीश से सलाह करके उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानान्तरण करने के संबंध में भी सिफारिशें करेंगे ।

अन्तर्राज्यिक परिषद्

जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 263 में उपबन्धित है, अन्तर्राज्यिक परिषद् का गठन अधिदेशात्मक बनाया जाए। यह परिषद्, जिसमें प्रधान मंत्री और राज्यों के मुख्य मंत्री भी शामिल होंगे, राज्यों और राज्यों तथा केन्द्र के सामान्य हित के मामलों के बीच पैदा हुए विवादों पर कार्रवाई करेगी ।

राष्ट्रीय विकास परिषद्

विद्यमान सांविधिक राष्ट्रीय विकास परिषद् का कार्य अभी तक केवल आलोचनात्मक महत्व का ही है। परिषद् को संविधानिक आधार दिया जा सकता है। इसका संघटन इस तरीके से किया जाए, जिससे कि राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जा सके । राज्यों के मुख्यमंत्री और प्रधान मंत्री इसके सदस्य होंगे । यह परिषद्, आर्थिक और सामाजिक नीति के मामलों के लिए प्रमुखतम प्राधिकरण होगी । आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को उदिष्ट करने और इनका पर्यवेक्षण करने का काम इस परिषद् को सौंपा जाएगा । योजना आयोग परिषद् द्वारा उदिष्ट की गई नीतियों का पता लगाने के लिए सहायक के रूप में कार्य करेगी और यह राज्यों के साथ संपर्क बनाए रखेगी ।

अर्थ और वित्त

केन्द्र और राज्यों के बीच संबंध का विषय स्वरूप आर्थिक नीति के क्षेत्र में और वित्त संबंधी मामलों में अत्यधिक सुस्पष्ट है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था और "समाजवादोन्मुख समाज" जोकि भारत में विकसित हो रहा है, के लेबल के अनुसार यह ऐसा समाज है जोकि गैरसरकारी उद्यम और लाभ अभिप्रेरकों पर आधारित है।

अनियमितता पूंजीवाद के विकास का मूल नियम है। विकास के इस प्रकार से एक ओर तो न केवल धन एकत्रित होता जाता है तथा दूसरी ओर निर्धनता बढ़ती है। विकास के इस पैटर्न से बहुत से महानगर केन्द्रों की आर्थिक गतिविधि, उत्पादनयोग्य साधनों और सभी प्राप्त केन्द्रीकृत अधिकारों में वृद्धि हुई है जबकि देश के व्यापक सीमावर्ती क्षेत्रों में पूर्वगामी कृषियोग्य उपकरणों, कच्चे माल के संभरकों और सस्ती श्रमशक्ति और देशी और विदेशी पूंजीवादियों के उत्पादों के लिए बाजार बन गए हैं। अधिकांश राज्य बाद वाले वर्ग में आते हैं। पूंजीवादी सामाजिक संरचना के संबंध में यह नितान्त असंभव है कि क्षेत्रीय और खंड संबंधी असंतुलनों को दूर कर सके।

औद्योगिकीकरण जिसे हम "पंचवर्षीय योजना" कहते हैं, के कार्यक्रमों को इस प्रक्रिया से रोक नहीं सकते या बदल नहीं सकते। योजना के अनुसार प्राथमिकताएं दिल्ली से विनिश्चित की जाती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में विकास के एक समान पैटर्न का पता लगाया गया है तथा स्थानीय आवश्यकताओं, संस्रोतों या आकांक्षाओं को छोड़कर प्रत्येक राज्य पर अधिरोपित कर दिया गया था। दिल्ली में विद्यमान नौकरशाही उद्योग तंत्र यह तय करता है कि हमारे दूर दराज देश के किस हिस्से में विकास संबंधी परियोजना प्रारंभ की जानी चाहिए। उनका यह सोचना निरर्थक और उत्पादकता विरोधी सिद्ध हुआ। और स्थानीय पहल शक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो गया। इसके विरुद्ध, केन्द्र में राष्ट्र योजना को समन्वित और एकीकृत करने के लिए स्थानीय क्षेत्र स्तरीय योजना अपनाई जानी चाहिए और उसका विस्तार किया जाना चाहिए।

उक्त उपागम के अभाव में केरल जैसे राज्य को क्षति पहुंची है।

केरल महत्वपूर्ण वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन करता है। जिन्हें यह खाद्य फसलों की तुलना में वरीयता दी जाती है जिनमें से बहुतों को निर्यात किया जाता है और जो राष्ट्र के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा अर्जित करता है। किन्तु केरल में 50 प्रतिशत से अधिक आवश्यक खाद्यान्नों जो कि इस राज्य में अपर्याप्त हैं, की पूर्ति करने के लिए केन्द्र को अभी वे अपनी बंधनकारी बाध्यता स्वीकार्य नहीं है।

केरल के अनिवासी लोग विदेश से धन प्रेषित करते हैं जिसकी राशि की मात्रा काफी बढ़ जाती है। अधिकांश बचतें उन्हीं से हुए हैं। अधिकांश बचतों को बड़े पैमाने पर केन्द्रीय एजेंसियों तथा ऐसी वित्तीय संस्थाओं द्वारा संघटित किया जाता है, जो केन्द्रीय रूप से इनके स्वामित्व में हैं। राज्य सरकार द्वारा नियुक्ति की गई थावराज समिति की रिपोर्ट में बचत और जमाओं से संबंधित प्रश्न पर विचार किया गया है और तथ्यों को प्रकट किया है। किन्तु यहां तक कि इस धनराशि का कोई भी अंश पूंजी, चाहे वह सार्वजनिक क्षेत्र या गैरसरकारी क्षेत्र को हो, के रूप में केरल को लौटाया नहीं जाता।

किन्तु राज्य सरकार ने मौजूदा कानून और केन्द्रीय नीति के अनुसार इन प्रेषणों के किसी भी महत्वपूर्ण भाग का समाहरण करने से रोक लगा दी है।

नारियल तैल, रबर, कोपरा, कोको, खनिज आदि, जिन्हें केरल में उत्पादित किया जाता है, बड़े बड़े क्षेत्रों जहां इन्हें मूल्य संवर्धित तैयार माल में संसाधित किया जाता है में चला जाता है और इनसे बड़े व्यवसायों को लाभ होता है।

राज्य के पास कई प्रकार की कच्ची सामग्री जिनमें से कुछ पर तो उसका एकाधिकार है और उच्च कोटि की दक्षता रखने वाले श्रमिक, पानी, बिजली आदि की अच्छी संरचना केन्द्र द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में दिए गए पूंजी संसाधन होते हुए भी यह केवल कम ही नहीं बल्कि वर्षानुवर्ष कमी आ रही है।

इस राज्य में पढ़े-लिखों की संख्या लगभग 100 प्रतिशत तक पहुंच गई है। संविधान के निदेशात्मक सिद्धांतों के अनुसार लक्ष्य निर्धारित किया गया है। जीवन की अवधि बढ़ गई है—जन्म-मृत्यु दर में कमी आई है। सामाजिक आर्थिक आधारिक संरचना सुविकसित है। परन्तु ऐसा लगता है मानो संविधान के निदेशात्मक सिद्धान्तों के कार्यान्वयन से केरल में गतिहीनता आ गई है। इसमें बेरोजगारी बढ़ गई है और भारत में बेरोजगारी वाला उच्चतर दर का क्षेत्र यही है। केरल में कुल आबादी की 4% के लिए बेरोजगारी की समस्या कुल प्रतिशत का 10% है। इस आंकड़े के आधे आंकड़ों में तो पढ़े-लिखे बेरोजगार युवक शामिल हैं। परंपरागत उद्योगों वाले राज्य केरल, जोकि हमारे लाखों श्रमिकों को रोजगार मुहैया करता है, में तीन दशकों से निष्क्रियता आ गई है। उच्च लागत पर तैयार कराए गए स्कूलों, सड़कों और अस्पतालों का रखरखाव नहीं किया जा सकता और ये सभी अप्रयोग की स्थिति में आ जाते हैं तथापि 'केन्द्रीय पद्धति' को अनुरूप करने के लिए धन का निष्फल तरीके से गलत प्रयोग किया जाता है।

केन्द्र राज्यों को उधार और अर्थोपाय ऋण देता है तथा अन्तरण का केवल गौण अंश अनुदान के रूप में राज्यों को देता है।

जैसाकि ज्ञात है, केन्द्र द्वारा राज्यों को दिया जाने वाला 70% अन्तरण "विवेकाधीन" अनुदान के रूप में वर्गीकृत किया गया है जो कि अधिकतर स्वेच्छाचारी विचारों के आधार पर किया जाता।

केन्द्र ने हाल ही में बहुत सी वस्तुओं पर राज्य बिक्री कर की अदायगी के दायित्व को समाप्त कर दिया और उन्हें अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाने के अधीन रख दिया है जोकि पूरी तरह केन्द्र सरकार के राजकोष में जाता है। इसके परिणामस्वरूप राज्य के राजकोष से आय में पर्याप्त हानि हुई जिसे 183 करोड़ रुपए में गिना गया।

राज्यों के अपने राजस्व संबंधी संसाधन वर्षानुवर्ष घट गए हैं। केरल के संबंध में सार्वजनिक क्षेत्रों में पूंजी संसाधनों के अन्तरण, विशेष रूप से उद्योग में अन्तरण नाममात्र का है।

तथापि आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर भी राज्य को नियत राहत देने से इन्कार किया जाता है। पिछड़ापन निर्धारित करने के लिए जो फार्मूला अपनाया गया है वह इतना अयथार्थवादी और यांत्रिक है कि केरल को कोई लाभ नहीं पहुंचा है।

जब कभी केन्द्र अपने स्टॉफ की महंगाई भत्ता बढ़ा देता है तो ऐसी स्थिति में राज्य सरकारों को पर भी इसी का अनुपालन करने के लिए जोर डाला जाता है। केरल जैसा राज्य जिसकी वित्त व्यवस्था पहले ही बिगड़ गई है, को ऐसी स्थिति में ला खड़ा किया जाता है कि उनके पास जो भी अन्य साधन हैं उनसे इस अपरिहार्य दायित्व पूरा करना पड़ता है। इसमें और कराधान की भी कोई गुंजाइश नहीं है। चूंकि महंगाई भत्ता आदि व्यय की योजनेतर मदें हैं जिनके लिए केन्द्र सहायता नहीं देता। परिणामतः प्रत्येक वर्ष राज्य की वित्तीय स्थिति बदतर होती जा रही है। उत्पादिता के बिगड़ने, प्राकृतिक संसाधनों के कम होने, कृषि नाशक कीट से और इन सबसे अधिक बहुत ही ज्यादा सूखा होने से राज्यों की अर्थव्यवस्था डावाडोल हो गई है। केन्द्र की आयात नीति के परिणामस्वरूप खोपरा जैसी नकदी फसलों के मूल्यों में गिरावट आई है जिससे न केवल राज्यों के राजस्व प्रभावित हुए हैं बल्कि इसके अतिरिक्त संपूर्ण अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई है। यह अब अप्राप्य रूप से घाटे में आ गया है। जब से केन्द्र ने आवंटन में कमी की है तभी से दिन प्रतिदिन ओवरड्राफ्टों की संख्या बढ़ गई है। फिर भी योजना का आकार छोटा-छोटा हो जाता है तथा विकास एकदम ही रुक गया है।

राज्य सरकार द्वारा बड़े पैमाने पर उधार लेना संभव नहीं है क्योंकि केन्द्र की नीति यह है कि कुल सार्वजनिक उधारों का केवल 10 प्रतिशत राज्यों को दिया जा सकता है।

केरल के सारे अनुभवों को दृष्टिगत रखते हुए हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं :

1. केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व की वर्तमान प्रणाली में पर्याप्त रूप से संशोधन किया जाए ताकि कुल राजस्व का 70 प्रतिशत राज्यों के

काटा जा सके (इसमें निगम कर, अधिभार, अतिरिक्त ड्यूटियां, विशेष ड्यूटियां आदि शामिल हैं जो कि अब केन्द्र को सौंप दी गई है।

2. वित्त आयोग का काम इन विशिष्ट समस्याओं और वास्तविक आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न स्थितियों में राज्य की कुल हिस्सा पूंजी को उचित अनुपात में बांटना होगा।
3. विवेकाधीन अनुदान के अनुसार राज्यों के कुल अन्तरण के 70 प्रतिशत से अधिक स्थिति निर्धारण की वर्तमान पद्धति और संविधिक आधार पर अनुदानों के अनुरूप में अन्तरणों के संबंध में वित्त आयोग की सिफारिश पर निर्धारित किए गए मापदंड और कार्यविधि को समाप्त कर देना चाहिए।
4. लोहा और इस्पात, एल्यूमिनियम, कोयला आदि जैसे समान के आकर्षित मूल्यों के बढ़ जाने के कारण केन्द्र द्वारा उत्पन्न राजस्व को केन्द्र और राज्यों के बीच बांट दिया जाए।
5. एक राष्ट्रीय उधार परिषद् का गठन किया जाए जोकि लोक उधार लेने और इनके उपयोग के बारे में बनाएगी तथा इन्हें केन्द्र और राज्यों के बीच उचित अनुपात में बांटा जाए। ऐसी परिषद् में राज्य के प्रतिनिधि सचिवालय स्तर के होंगे।
6. योजना सहायता के मुख्य भाग को उधारों के रूप में समझने को बजाय, अनुदानों के अनुसार योजना आबंटनों के 70 प्रतिशत की सीमा तक सहायता राज्यों को दी जानी चाहिए।
7. केरल जैसे राज्य को चालू देयताओं को बट्टे खाते में डाला जाए।
8. खाद्यान्न, दालें आदि जैसी वस्तुओं पर अन्तर्राज्यिक व्यापार में लगाए गए मौजूदा प्रतिबंधों का पुनर्विलोकन किया जाए और केन्द्र को राज्यों को इनकी आपूर्ति और खाद्यान्नों, केरोसिन आदि की आपूर्ति की जिम्मेदारी लेनी होगी।
9. राज्य सूची के अंतर्गत आने वाली अनुसूची 7 के अधीन उद्योग जैसे क्षेत्रों में केन्द्र ने निम्नलिखित नियमों का अतिक्रमण किया है औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम और केन्द्रीय प्रवर्तित विविध संस्थानों के नियम और विनियम पुन: प्राप्त करने की दृष्टी, इन की पुन: समीक्षा की जाए।
10. राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों को रिजर्व बैंक के केन्द्रीय और राज्य बोर्डों के लिए नामित किया जाए। कर्मचारी भविष्य निधि, कर्मचारी राज्य बीमा आदि जैसे निकायों द्वारा केन्द्रीय रूप से प्रारंभ किए गए कार्यकलाप राज्यों को सौंप दिए जाएं।

आशा की जाती है कि आयोग अपनी सिफारिशें करते समय केरल जैसे सीमावर्ती राज्य की प्रमुख समस्याओं पर गंभीरता से विचार करेगा।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

राज्य इकाई--पश्चिमी बंगाल

ज्ञापन

प्रस्तावना

हमारी पार्टी का विचार है कि हमारे राज्य की संरचना प्रत्यक्षत: तो संघीय है फिर भी व्यावहारिक रूप से इसके सभी अधिकार और प्राधिकार केन्द्रीय सरकार में केन्द्रीयकृत हैं। भारतीय संघ के संघटक राज्य केवल सीमित स्वायत्तता और अधिकार का उपभोग करते हैं। केन्द्र और राज्य के बीच अधिकार के वितरण के लिए उस पद्धति का अनुसरण होता है जिसकी रूपरेखा भारत सरकार अधिनियम, 1935 में ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

हमारी पार्टी का विचार है कि सांविधानिक संरचना और कार्यप्रणाली से आज हम न केवल विभिन्न राष्ट्रिकताओं और इनकी भाषाओं तथा संस्कृतियों, जोकि अपरिमित और जटिल विभिन्नताओं को प्रमुख रूप से प्रस्तुत करती है, के पूर्ण एकीकरण को रोक नहीं पाए हैं बल्कि असमानताएं, असामंजस्य और तनाव जोकि आज दिखाई पड़ रहे हैं, बने ही हैं।

सामयोग्य किसी भी संघीय संरचना में, संघीय केन्द्र संघटक राज्यों के इच्छानुसार सहयोग से बहुत बड़े उपाय के रूप में अपने बल और प्राधिकार का अनुमान लगाते हैं। इसे सुनिश्चित करने के लिए राज्यों के अधिकारों को बढ़ाया जाए ताकि राज्यों के लोगों की आशा आकांक्षाओं को पूरा किया जा सके, केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों की लोकतांत्रिक अन्तर्वस्तु को मजबूत बनाया जा सके और उसके द्वारा देश की एकता और अखण्डता मजबूत बने।

विधायी शक्तियां

केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण के लिए संविधान में जो तरीका अपनाया गया है वह संघीय संकल्पना के लिए हास्यास्पद है। राज्यों के क्षेत्राधिकार में अनधिकार हस्तक्षेप करने के लिए केन्द्र को बहुत सारे अधिकार दिए गए हैं।

संविधान के अनुच्छेद 240 और 248 के ब्लैंकेट उपबंधों और 7,23, 40, 48, 52, 53, 54, 61, 97 आदि जैसी सातवीं अनुसूची में संघ सूची की असंख्य प्रविष्टियों से संघ सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह राज्यों की विधायी शक्तियों को कम कर सकती है यहां तक इनके लिए आरक्षित क्षेत्रों में भी।

उदाहरणार्थ, संघ सूची की प्रविष्ट 7 और 52 के अनुसार संघ सरकार को अधिकार प्राप्त है कि यह अपनी इच्छा से उद्योग जो कि राज्य का विषय है, पर अपने क्षेत्राधिकार को बढ़ा सकता है। संघ सरकार ने इन अधिकारों को पहले ही लागू कर दिया है ताकि यह अपना नियंत्रण लघु उद्योगों, जैसे रेजर, ब्लेड, माचिस, डिब्बाबन्द फलों आदि, पर और अधिक रख सके।

इसी प्रकार संघ सूची की प्रविष्ट 23, 54, और 56 से मार्ग खान और खनिज विकास तथा अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी घाटियों जैसे विषयों पर से राज्यों का क्षेत्राअधिकार कम होता है।

संघ विधानमंडल को दिए गए राज्यों के लिए आरक्षित मामलों पर विधायी अधिकारिता के एकपक्षीय अन्तरण की उक्त शक्तियां ऐसे अधिकारों के सम्बन्ध में घोर अधिक्रमण है जिनका राज्यों को सामान्यत: संघीय गठन में उपभोग करना चाहिए।

तत्पश्चात, अनुच्छेद 249, जिसके अनुसार संघ विधानमंडल को राज्य सूची में दिए गए किसी मामले के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है और अनुच्छेद 252 जिसके अनुसार संसद को अधिकार प्राप्त होता है कि वह मूल संघीय सिद्धान्त का अतिक्रमण करके दो या अधिक राज्यों के लिए कानून बना सके।

राज्यों के विधायी क्षेत्राधिकार में अनधिकार हस्तक्षेप करने सम्बन्धी उपर उल्लिखित अनुच्छेदों और प्रविष्टयों में दी गई इन सभी शक्तियों को निकाल दिया जाना चाहिए और राज्यों की विधायी शक्तियों को व्यापक बनाया जाना चाहिए।

समवर्ती सूची में राज्यों के अधिकारों को और कम करने का उपबंध हैं। उदाहरणार्थ, राज्य की प्रविष्टि 27 के अनुसार माल का उत्पादन, पूर्ति और वितरण होता है जो कि राज्य का विषय है। किन्तु समवर्ती सूची की प्रविष्ट 33 इन मामलों के सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए राज्य विधानमंडल के अधिकार को कम करती है। इन मामलों के सम्बन्ध में केन्द्र के अधिकार के क्षेत्र को कम किया जाना चाहिए।

समवर्ती सूची इस बात को इंगित करती है कि केन्द्र और राज्यों की विधायी शक्तियों में काफी असमानता है अनुच्छेद 254 द्वारा इसे मोटे तौर पर असम्बद्ध बना दिया गया है कि इस सूची के किसी भी मामले को लेकर संघ और राज्य विधान मंडलों के बीच होने वाले विरोध के मामले में केन्द्रीय कानून लागू होगा।

संघ सूची की प्रविष्ट 97 के साथ पठित अनुच्छेद 248 में केन्द्र को ऐसे सभी विषयों, जिसमें कराधान का विषय भी शामिल है, और जिन्हें राज्य या समवर्ती सूचियों में गिनाया नहीं गया है, के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार है। यह एक महत्वपूर्ण शक्ति है जिसे देश की सुरक्षा और अखण्डता से सम्बन्धित मामलों तक ही सीमित किया जाए। शेष अवशिष्ट शक्तियां राज्यों को होनी चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका

स्वतंत्रता के बाद से भारत में अनेक राज्यपाल केन्द्र के एजेंट के रूप में कार्य करने लगे हैं। अनेक अवसरों पर इन्हें इनके विशेषाधिकारों के उपयोग से रोका गया है, जबकि वे विधिवत, निर्वाचित मंत्रिपरिषद, विधानमंडल के विश्वास का अभी

तक उपभोग कर रहे हैं और इससे भिन्न इन्होंने राज्य सरकारों की इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है तथा इस प्रकार प्रजातांत्रिक रूप से निर्वाचित राज्य विधानमंडलों की इच्छा और उद्देश निष्फल हो गए हैं।

यदि इस स्थिति में राज्यपाल के पद को समाप्त करना सम्भव नहीं समझा गया तो यथार्थ रूप में राष्ट्रपति द्वारा इसकी नियुक्ति राज्य विधानमंडल द्वारा अनुमोदित पैनल के आधार पर की जानी चाहिए और राज्य विधानमंडल के प्रसादानुसार पर पद धारण करना चाहिए ।

राज्य विधान मंडल द्वारा पारित किए गए बिलों पर अनुमति देने से रोकने का राज्यपालों को कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 200 और 201 को निकाल दिया जाए और राज्य सूची में गिनाए गए मामलों के सम्बन्ध में राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए सभी विधेयक स्वत: विधि बन जाएंगे।

राज्य के मंत्रिपरिषद, के सम्बन्ध में राज्यपाल की स्थिति वही होगी जो कि राष्ट्रपति की संघ मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में है किन्तु अनुसूची 5 और 7 के अधीन अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन और नियंत्रण से सम्बंधित उपबंध इसमें शामिल नहीं होंगे।

प्रशासकीय सम्बन्ध

न केवल विधायी सम्बन्धों के क्षेत्र में बल्कि प्रशासनिक सम्बन्धों के मामलों में भी संविधान केन्द्र को ऐसे काफी अधिकार देता है जिनसे कि वह संघ सरकार के प्रशासनिक एजेंटों की पदस्थिति को कम कर सके।

अनुच्छेद 256 और 257 से संघ सरकार को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह किसी राज्य सरकार को ऐसे कार्य करने के सम्बन्ध में निदेश दे जोकि राज्य को निर्वाचक अधिदेश के अनुसार परस्पर विरोधी न लगें। अतीत में, संघ सरकार द्वारा राज्य सरकारों पर इस बात का दबाव डालने के लिए इन दोनों खण्डों को लागू किया जा चुका है कि ये केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल पर रोक लगाएं और परीक्षण किए बिना रोके जाने पर संघ कानून की अभिपुष्टि करें।

(*) इन खण्डों में पर्याप्त रूप में संशोधन किया ताकि राज्यों पर किसी केन्द्रीय निदेश के लागू किए जाने से पूर्व परामर्श किए जाने का अधिकार इन्हें दिया जा सके।

तत्पश्चात, अनुच्छेद 356, जो कि किसी निर्वाचित राज्य विधान मंडल को स्थगित करने या विघटित करने और निर्वाचित किसी राज्य मंत्रालय को बरखास्त करने के लिए राष्ट्रपति को बहुत से अधिकार प्रदान करता है। संघ सरकार ने ऐसे राज्यों से पिंड छुड़ाने के लिए इस अनुच्छेद का घोर दुरुपयोग किया है जिन्हें वह पसन्द नहीं करती।

(*) अनुच्छेद 258 क में इस प्रकार से संशोधन किया जाए कि सम्बन्धित राज्य सरकार का पूर्व अनुमोदन लिए बिना किसी राज्य का अधिकार केन्द्र को सौंपा न जा सके।

इस अनुच्छेद और अनुवर्ती अनुच्छेद 357 में पर्याप्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि इनके दुरुपयोग को रोका जा सके। अनुच्छेद 356 के अनुसार जो अधिकार राष्ट्रपति को दिए गए हैं उन्हें समाप्त किया जाए।

राज्य विधान मंडल में किसी मंत्रालय के बहुमत में न होने की सम्भावना से उत्पन्न होने वाली स्थिति में, नए विधानमंडल का संघटन करने के लिए चार माह के भीतर नए चुनाव करवाए जाने चाहिए और वर्तमान मंत्रिमंडल को काम-चलाऊ सरकार के रूप में काम करते रहना चाहिए। यदि संघ को यह लगता हो कि सामान्य जीवन के गड़बड़ा जाने के कारण निर्दिष्ट समय में चुनाव नहीं करवाए जा सकते हैं तो यह निर्दिष्ट अवधि के लिए, उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की घोषणा कर सकता है।

समुचित केन्द्र-राज्य के सम्बन्ध में प्रमुख अन्य प्रशासकीय दोष अनुच्छेद 154 (ii) (ख) के कारण हैं जिसके अनुसार संसद को यह प्राधिकार दिया जाता है कि वह राज्य के किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को विधि अनुसार कार्य सौंपे। अनुच्छेद 345, जिसके अनुसार संघ सरकार को राज्य में इच्छानुसार केन्द्रीय पुलिस और सशस्त्र बल तैनात करने का अधिकार प्राप्त होता है और अनुच्छेद 360, जिसके अनुसार राष्ट्रपति को वित्तीय स्थिरता की आशंका की दलील पर राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त होता है।

संघ सरकार के ये सभी अधिकार समाप्त होने चाहिए। केन्द्र के कार्यकारी क्षेत्राधिकार में किसी भी राज्य प्राधिकारी को नहीं रखा जाना चाहिए और राज्य सरकार के अधीन चल रहीं अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बन्धित संवर्गों पर सम्बन्धित राज्य सरकार को पूर्णत: अवश्य नियंत्रण रखना होगा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों की तथा धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों की जान-माल की भारी आशंका का सामना करने के सिवाय, किसी भी राज्य में राज्य सरकार की पूर्व सहमति लिए बिना केन्द्रीय बलों को तैनात नहीं किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 360 को निकाल दिया जाना चाहिए।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सुधार करने के लिए, अनुच्छेद 263 का पुनर्गठन करना होगा ताकि अन्तर्राज्यिक परिषदों की अधिदेशात्मक स्थापना की जा सके और इसकी शक्तियों में विस्तार किया जा सके। यह परिषद एक सांविधिक निकाय होगी।

यह परिषद् राज्यों के बीच और राज्यों तथा केन्द्र के बीच पैदा हुए विवादों के सम्बन्ध में कार्रवाई करेगी। इस परिषद में राज्य विधानमंडलों के प्रतिनिधि शामिल होंगे और इसका संगठन संसद की सिफारिश पर किया जाना चाहिए। संसद इसके संघटन, शक्तियों और कर्तव्यों को भी निर्धारित करेगी।

यह भी महत्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 370 के अनुसार जम्मू और कश्मीर को दिया गया विशेष सांविधानिक स्तर बना रहे।

अनुसूचित और विचारण क्षेत्र

निर्धारित राज्य में स्वायत्त क्षेत्रों के साथ-साथ स्वशासन के लिए लोकतांत्रिक संस्थाओं का सृजन करने की दृष्टि से अनुच्छेद 244(क) में संशोधन किया जाना चाहिए। संसद आवश्यक लोकतांत्रिक संस्थाओं के अतिरिक्त इनके संघटन, शक्तियां, कार्यों आदि को तय करेगी

वित्तीय सम्बन्ध

हमारी पार्टी का विचार है कि वर्तमान आर्थिक असंतुलन हानि और अनेक राज्यों का पिछड़ापन वित्तीय शक्तियों और संसाधनों के अति-केन्द्रीयकरण के परिणाम हैं।

उच्च रूप से केन्द्रीकृत आर्थिक और वित्तीय प्रशासन, जो कि आज विद्यमान है, इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा तंत्र उत्पन्न हो गया है जिसमें प्राथमिकताएं ऊपर से अधिरोपित की जाती हैं और लोगों की आकांक्षाओं के विपरीत होती हैं। संसाधनों का पूर्णत: केन्द्रीकरण राज्यों के हाथ में दिया गया हो, केन्द्र बहुधा क्षेत्र और क्षेत्र तथा राज्य और राज्य के बीच संसाधनों के आबंटन में भेदभाव करता है।

राज्यों को व्यापक वित्त और अर्थ सम्बन्धी अधिकार तथा बृहत्तर संस्रोत उपलब्ध करना

एक तरफ तो राज्यों के विकासात्मक और अन्य कल्याण सम्बन्धी कार्यकलापों के विस्तार और दूसरी ओर इनके संसाधनों में भारी कमी के साथ ही साथ इस कारण से केन्द्र पर इनकी आश्रिता को देखते हुए यह अत्यावश्यक हो गया है कि राज्यों के संसाधनों में बढ़ोतरी की जाए। निश्चय ही ये अंत: सम्बद्ध कार्य हैं। राज्यों के वित्त और अर्थ सम्बन्धी अधिकार संविधान की योजना में अंतर्निहित हैं जिसमें कुछ आमूलचूल संशोधन करने की आवश्यकता है।

केन्द्र और राज्यों की कराधान सम्बन्धी शक्तियां परस्पर असंयोज्य हैं और इसलिए यह आवश्यक है कि संघ सूची से राज्य सूची में करों और राजस्व की कुछ मदें अन्तरित करके राज्यों के संसाधनों को बढ़ाने के आधार को व्यापक किया।

किन्तु इससे भी राज्यों के संभावित संसाधनों में वृद्धि नहीं हो रही है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्र को संविधान के अधिदेशात्मक उपबन्धों के अलावा संसद द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार राज्यों को अधिक से अधिक निधियां उपलब्ध करानी होंगी। केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए गए संसाधनों के अन्तरण को पूरी तरह सुनिश्चित करने के लिए विवेकाधिकार की सीमा को प्रबल रूप से कम कर दिया जाना चाहिए।

विभाजक पूल में सीमा, निर्यात शुल्क निगम कर शामिल करें

केन्द्रीय राजस्व की आवश्यक मदें यानी, सीमा, निर्यात शुल्क और कम्पनी कर आदि केन्द्र द्वारा अब राज्यों के साथ बांटी नहीं जाती। इन प्रत्येक शीर्षों के अधीन प्रत्येक की निवल आय का निश्चित प्रतिशत वित्त आयोग द्वारा निर्धारित अनुपात और दिशा-निर्देश के अनुसार राज्यों को अनिवार्य रूप से अन्तरण के लिए विभाजक पूल में लाया जाना चाहिए जो कि सभी सम्बद्ध घटकों का ध्यान रखेगा। यह संसद के निर्णय पर छोड़ दिया जाए कि प्रत्येक मामले में वर्षानुवर्ष कितना अनुपात विभाजक पूल में डाला जाना चाहिए। परन्तु सांविधानिक गारन्टी यह है कि राज्यों के लिए, उद्दिष्ट हिस्सा पूंजी प्रत्येक शीर्ष के अनुसार निवल प्राप्तियों के 50 प्रतिशत से कम नहीं होगी।

यह महत्वपूर्ण है क्योंकि केन्द्र से राज्यों तक में कुल संसाधान के अन्तरण की हिस्सा पूंजी, यदि कुछ थी, पिछले कुछ वर्षों से घट गई है। ध्यान दें तो यह 1969 से हुआ। पांचवें वित्त आयोग (1969–74) के समय यह हिस्सा पूंजी कुल राजस्व का 36.4 प्रतिशत हो गई थी जबकि सातवें आयोग (1979–80) के समय यह हिस्सा पूंजी 32.6 प्रतिशत के स्तर तक आ गई थी। यह सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में सांविधानिक गारन्टी यह है कि पिछड़े वर्ग के क्षेत्रों के विकास के लिए, जनजातीय क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य पिछड़े और कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए, पर्याप्त वित्तीय सहायता दी गई हैं।

पूल के लिए उत्पाद शुल्क का 50%

इस समय केन्द्र के उत्पाद शुल्क के निवल आगमों को संविधान के वैकल्पिक उपबन्धों के अनुसार 20 प्रतिशत की दर से राज्यों में बांटा गया है। विभाजक पूल में संघ के उत्पादक शुल्क को शामिल करने के लिए इस हिस्सा बंटाई को आवश्यक बनाया जाना चाहिए और इस अनुपात को उक्त उत्पाद शुल्क के कुल निवल आगमों के कम से कम 50 प्रतिशत तक बढ़ा देना चाहिए। अनुच्छेद 270 में उत्पाद शुल्क को शामिल कर लेना चाहिए और अनुच्छेद 272 को निकाल दिया जाना चाहिए।

"सहायता अनुदान,'--का क्षेत्र बढ़ाना

अनुच्छेद 275, जिसमें संसद द्वारा "सहायता अनुदान" का उपबन्ध है, में इस प्रकार से संशोधन किया जाए कि इसमें संघ कार्यपालक के योजना आयोग या अन्यथा के द्वारा राज्य को वित्तीय सहायता देने के विवेकाधिकार को निम्नतम स्तर पर लाने की दृष्टि से, अन्य बातों के साथ-साथ राज्य के लिए उक्त सहायता सुनिश्चित करने के बहुत से प्रयोजन आ जाएं। योजना आबन्टन को इसके साथ और ऐसे अन्य सांविधिक उपबन्धों, जोकि इस प्रयोजन के लिए संसद द्वारा दिए गए हैं, के साथ जोड़ा जाना चाहिए।

विभाजक पूल से संसाधनों के अन्तरण के लिए प्रस्ताव करते समय न केवल राज्यों को राजस्व संबंधी आवश्यकताओं बल्कि इसके अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

राज्य में परस्पर वितरण के सिद्धान्त में गरीबी, निरक्षरता, औद्योगिक पिछड़ापन, प्रति व्यक्ति आय के स्तर के अनुसार उक्त सकल सूची के साथ-साथ रोजगार की स्थिति का विवरण होगा।

राज्य सूची में अन्तरित करना

संघ सूची से प्रविष्टि 87 के अनुसार सम्पत्ति के लिए कृषि योग्य भूमि सम्पदा शुल्क के इतर सम्पदा शुल्क को राज्यसूची में न केवल कृषियोग्य भूमि के लिए बल्कि भवनों और सभी अन्य अचल सम्पत्ति के लिए भी अन्तरित किया जाना चाहिए। राज्य में सभी अचल सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में शुल्क राज्य सूची में अन्तरित किए जाने चाहिए। प्रविष्टि 89 के अनुसार सीमा कर (रेल, समुद्र या हवाई जहाज द्वारा ले जाए गए माल या यात्रियों पर सीमा कर, रेल के किराए भाड़े पर कर) को भी राज्य सूची में अन्तरित किया जाना चाहिए। प्रविष्टि 90 (शेयर बाजार में किए गए लेन-देन पर स्टाम्प शुल्क से इतर कर), 92 (समाचार पत्रों की खरीद–फरोख्त पर और इसमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर) को भी राज्य सूची में शामिल किया जाना चाहिए।

वित्तीय संस्थाएं और बैंक

पिछड़े हुए राज्यों और क्षेत्रों के विकास के लिए वित्तीय संस्थाओं को अधिक निवेश और निधियों को बढ़ाना चाहिए।

राज्यों को सार्वजनिक क्षेत्रों में अपने निजी बैंक शुरू करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

रायल्टी

खनिज संसाधनों तेल, गैस आदि के लिए रायल्टी बढ़ा दी जाए और इसका हिसाब यथामूल्य आधार पर रखा जाए जिससे राज्यों को नैसर्गिक संसाधनों का उचित हिस्सा प्राप्त हो सके।

संसद की सिफारिश पर वित्त आयोग की नियुक्ति करना

वित्त आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा राज्यों से परामर्श करके तैयार किए गए पैनल और संसद द्वारा अनुमोदित पैनल की सिफारिश के आधार पर की जानी चाहिए इसकी नियुक्ति का सवाल अकेले संघ कार्यपालक के विवेक पर न छोड़ा जाए। संसद को इस मामले में प्रभावशाली ढंग से कुछ कहने का अधिकार नहीं है।

वित्त आयोग के कार्यों का इतना व्यापक बनाया जाना चाहिए ताकि इसमें केन्द्र से राज्यों तक संसाधनों के सभी अन्तरण आ जाएं। इसके कार्य के लिए दिए गए दिशा निर्देशों में इतने अधिकार दिए जाने चाहिए ताकि राज्यों और साथ ही केन्द्र के सभी वित्तीय पहलू इसमें आ जाएं और इसका कार्य कमोवेश राज्यों की राज कोषीय आवश्यकताओं का आवधिक निर्धारण करने और राज्यों को "सहायता अनुदान"—और करों के अन्तरण के प्रस्ताव करने तक ही सीमित न रहे।

आर्थिक और सामाजिक योजना

केन्द्र और राज्यों के बीच वर्तमान योजना सम्बन्ध सतही और निरंकुश है। योजना प्रक्रिया में राज्यों की भागीदारी को मजबूती प्रदान की जानी चाहिए।

वर्तमान योजना प्रक्रिया की कमियों में से, राष्ट्रीय विकास परिषद और योजना आयोग की अस्पष्ट हैसियत पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाए।

इसके पीछे राष्ट्रीय विकास परिषद की कोई सांविधानिक मंजूरी नहीं होती है। संघ सरकार, जब कभी चाहती है, राज्यों के साथ परामर्श करने के लिए अपनी बैठकें आयोजित करती है। विचार-विमर्श कभी कभार ही अर्थपूर्ण होते हैं। अत: हमारा प्रस्ताव है कि राष्ट्रीय विकास परिषद को सांविधिक हैसियत प्रदान की जाए। रा०वि०प० का मुख्य कार्य योजनाबद्ध विकास के क्षेत्र की गतिविधियों के अतिरिक्त केन्द्र के साथ समन्वय स्थापित करने से सम्बद्ध होना चाहिए। सम्बद्ध केन्द्र-राज्य समस्याओं को भी रा० वि० प० की सीमा में लाया जाना चाहिए।

इसी प्रकार योजना आयोग को एक सांविधिक निकाय बनाया जाना चाहिए तथा इसके कार्यों और प्राधिकार को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। इसके अलावा प्रधान मंत्री, जोकि आयोग के पदेन अध्यक्ष बने रहेंगे, और अन्य मंत्रिमण्डल सदस्य, जिन्हें योजना आयोग का सदस्य बनाया जाएगा, और अन्य सभी सदस्य विशेषज्ञ होंगे तथा इनकी नियुक्ति संसद के प्रस्ताव द्वारा की जाए।

राज्यों के प्रतिनिधियों को योजना के निर्माण में सार्थक तरीके से शामिल करने और इसके कार्यान्वयन का निरीक्षण करने के सम्बन्ध में कानून में उपबन्ध होना चाहिए।

योजना आयोग और राज्य योजना निकायों के बीच प्रभावशाली समन्वय और सहयोग होना चाहिए। इनके अधिकार और प्राधिकार को बढ़ाया जाना चाहिए। राज्य योजना निकायों को राज्यों में योजना के वास्तविक उपकरण होना चाहिए।

राज्यों को विवेकाधीन अनुदान का प्रस्ताव करने सम्बन्धी योजना आयोग और संघ वित्त मंत्रालय के वर्तमान प्राधिकार को पर्याप्त रूप से कम करना होगा। राज्यों को दिए जाने वाले उक्त विवेकाधीन अनुदानों को पर्याप्त रूप से कम करना होगा। अब ऐसे विवेकाधीन अन्तरणों को राज्यों के कुल अन्तरणों के 70 प्रतिशत से अधिक रखा जाता है और ये ही केन्द्र की ओर से पक्षपातपूर्ण रवैये का प्रमुख स्रोत बनते हैं। सभी वित्तीय अन्तरण वित्त आयोग के क्षेत्राधिकार के सम्बद्ध होने चाहिए।

वर्तमान व्यवस्था के आधार राज्यों को दी गई केन्द्रीय योजना सहायता का 70 प्रतिशत ऋणों के रूप में होता है। उक्त सभी सहायता को अनुदान के रूप में समझा जाए।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)

केन्द्रीय समिति

उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

इस भाग में हम उन परिस्थितियों पर सामान्य रूप से दृष्टिपात करना चाहेंगे जिनमें संविधान बनाया गया और 26 जनवरी, 1950 से लागू किया गया और पिछले 34 वर्षों से यह किस प्रकार कार्य कर रहा है। हम इस प्रश्न पर कानूनी-न्यायिक कोण से नहीं अपितु ऐतिहासिक-राजनैतिक दृष्टि से विचार करेंगे। यद्यपि इसे कानूनी-न्यायिक शब्दों में अभिव्यक्त किया जाए तो भारत का संविधान, विश्व के किसी भी देश के संविधान की तरह कुछ सामाजिक-राजनैतिक सम्बन्धों को व्यक्त करता है। अतः संविधान और उसकी कार्यप्रणाली की जांच कार्य पर लगी सामाजिक राजनैतिक शक्तियों की जांच से आरम्भ की जाएगी।

अंग्रेज शासकों ने, जिसके पास डेढ़ शताब्दी तक देश का नियंत्रण रहा, देश में अत्यधिक केन्द्रीकृत प्रशासन प्रारम्भ किया। प्रशासन के प्रत्येक पहलू का केन्द्रीय-करण दिल्ली में किया गया था जिसका कि नियंत्रण लन्दन से किया जाता था। इस देश के लम्बे इतिहास में इससे पहले ऐसा केन्द्रीकृत प्रशासन नहीं था।

इस उच्च केन्द्रीकृत प्रशासन का मुकाबला करने के लिए स्वतंत्रता-आन्दोलन ने समस्त लोगों के जाति, संप्रदाय, भाषा के भेदों को दूर करते हुए एकता को बढ़ाया और लोकतंत्र, समानता और भाई चारे पर आधारित भारत की एकता को विकसित किया। यद्यपि इसने उनके विदेश शासन को गंभीर चुनौती प्रस्तुत की है, अंग्रेजों ने विकसित हो रही लोकप्रिय एकता को खंडित करने के लिए तरीके और साधन सोचने आरम्भ कर दिए।

अतः प्रसिद्ध "फूट डालो और राज्य करो" की नीति ने कार्य करना आरम्भ किया जिसके द्वारा गैर-हिन्दू धार्मिक अल्पसंख्यकों, शोषित और पिछड़ी जातियों, शहरों में वाणिज्य और धन सम्बन्धी हितों, जमींदारों, सामन्ती तत्वों को, जिसमे देशीय राज्यों के जमींदार और राजकुमार आदि शामिल हैं, को कांग्रेस के विरुद्ध खड़ा किया गया जिसने राजनैतिक स्वतंत्रता की मांग उठाई। क्रमिक स्थितियों में प्रारम्भ किए गए "संवैधानिक सुधारों" में इन सभी निहित स्वार्थों के लिए "रक्षापायों" पर बल दिया गया जिसमें कि यूरोप के रोणक, व्यापारी और उद्योगपति भी शामिल हैं।

स्वतंत्रता के आन्दोलन की एकता को खंडित करने के लिए इन सभी शक्तियों का प्रयोग करते हुए भी, अंग्रेज शासनों ने इसके लिए "हिन्दू-मुस्लिम समस्या" को सर्वोत्तम साधन के रूप में प्रयोग किया। स्वतंत्रता आन्दोलन के नेताओं ने इसमें भारतीय एकता के सामने आने वाले खतरे को देख लिया था। तथापि उन्होंने समाज के सीमित उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व किया, वे लोकतंत्र और वास्तविक धर्मनिरपेक्षता के कार्यक्रम का श्रमिक वर्ग के मध्य चलाने में असमर्थ रहे। अतः विदेशी शासकों और उनके भारतीय मित्रों के साथ समझौता करना ही स्वतंत्रता आन्दोलन की पराकाष्ठा रही।

एक प्रकार भारत की एकता, जिसे स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेता और लोग बचाना चाहते थे, खंडित हो गई। संगठित भारत, जिसकी स्वतंत्रता के लिए हजारों ने अपनी जानें कुर्बान कर दी और लाखों ने हर प्रकार के कष्टों को सहा, दो भागों में बंट गया। इस प्रक्रिया से बहुत अधिक क्षति पहुंची, हिन्दू और मुस्लिम मुस्लिम और सिखों के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए बनाए गए नए संविधान में उन सभी विशेष शक्तियों को सुरक्षित रखा गया, जो कि अंग्रेजों ने 1935 में संविधान बनाते हुए राज्यों में राज्यपालों को दी थी, राज्यपाल का पद और उसे प्रदान की गई शक्तियां नये शासकों को आसानी से मिल गई और उन्होंने प्रारम्भ में उसका प्रयोग विरोधी पार्टी के विरुद्ध किया और बाद में सत्ता रूढ़ पार्टी में ही "असहमतों" के विरुद्ध इसका प्रयोग किया गया।

संघीय केन्द्र के ढांचे में प्रांतीय या राज्य की स्वायत्तता ही इस प्रक्रिया की सबसे बड़ी आकस्मिकता है। संघीय ढांचे में राज्य की स्वायत्तता का विचार ही स्वतंता संग्राम के दौरान प्राप्त की गई एकता को बनाए रख सकता और उसे मजबूत बना सकता था। क्योंकि (क) जैसे-जैसे स्वतंत्रता आन्दोलन आगे बढ़ा, विभिन्न भाषीय समुदायों या राष्ट्रीयताओं ने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अपनी विशिष्ट पहचान की ढांचे में अपने लिए अलग राज्यों को बनाने की मांग की, (ख) मुस्लिम नेताओं ने मांग की, कि केन्द्र में और प्रान्तों में हिन्दूओं के बहुमत के पूरक के रूप में मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों को स्वायत्तता मिलनी चाहिए, और (ग) राष्ट्रीय नेतृत्व के गैर-मुस्लिम खंड ने, जिसमें कांग्रेस भी शामिल है, वे अपने मुस्लिम प्रतिपक्ष की मांग को अंग्रेज शासकों के विरुद्ध संगठित मोर्चे के रूप में बने रहने की कीमत पर स्वीकार करना बेहतर समझा।

1916 के कांग्रेस लीग पैक्ट, 1928 की मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट और 1940 में किए गए विचार-विमर्श से केन्द्र संघीय रहे और प्रान्तों को स्वायत्तता की छूट से भविष्य के संविधान का ढांचा तैयार किया गया। तथापि 1947 में मुख्य परि-वर्तन हुआ जब कि देश को, हिन्दू बहुमत वाले भारत और मुस्लिम बहुमत वाले पाकिस्तान में बांटा गया। स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करने वाला मध्यवर्ग जो कि शासन वर्ग बन गया, व्यापक देशीय बाजार चाहता था और इसके लिए संघीय राज्य की अपेक्षा केन्द्रीकृत राज्य की आवश्यकता थी। अतः इसने संघीय ढांचे, राज्य स्वायत्तता, भाषिक आधार पर राज्यों का पुनर्बंटन करने के अपने पहले के वायदों को पूरा नहीं किया।

1950 में बनाए गए संविधान को सैद्धांतिक दृष्टि से संघीय घोषित किया गया था किन्तु इसका उद्देश्य अत्यधिक केन्द्रीकरण था। इसके अतिरिक्त, वास्तव में लागू करते समय यह अत्यधिक केन्द्र-प्रधान हो गया है। इसका आशय यह है कि संविधान बनाते समय और इसके बाद तीन दशकों से केन्द्र में जो राजनैतिक पार्टी शासन कर रही थी, वही सभी राज्यों में सत्तारूढ़ थी। इसलिए ऐसा सम्भव हो सका। राज्यों को "स्वेच्छा" से उन अधिकारों का समर्पण करने के लिए कहा गया जिनकी उसके लिए संविधान में मूलतः व्यवस्था की गई थी। पिछले 37 वर्षों के दौरान संविधान में ऐसे संशोधन किए गए जिनसे राज्यों को मूलतः दी गई स्वायत्तता छीन ली गई।

यही कारण है कि जिस क्षण अन्य पार्टियों ने राज्य में प्रशासन करना शुरू किया उस समय केन्द्र-राज्य संबंधों का प्रश्न एक विवाद का विषय बन गया। जैसे ही गैर-कांग्रेसी राज्य सरकार द्वारा अधिक शक्तियों और स्रोतों के लिए आंदोलन किया। कांग्रेस-शासित राज्यों ने भी इन मांगों में शामिल होना शुरू कर दिया। राज्य सरकारों द्वारा बाद वाले वित्त आयोग की प्रस्तुत ज्ञापन देखने से यह जानकारी मिलेगी कि एक प्रक्रिया, जो इस समस्त अवधि के दौरान निरन्तर चली आ रही है, का विरोध करने वाले कांग्रेस के इतर दल द्वारा शासित राज्यों और अन्य राज्य सरकारों में कोई अन्तर नहीं है।

अतः संघ और राज्यों के बीच के संबंधों पर पूर्ण और विस्तृत विचार करने की आवश्यकता है। मूलतः संविधान की रचना करते समय ही परिसंघीय सिद्धांतों और राज्य स्वायत्तता सम्बन्धी सीमा का उल्लंघन किया गया। हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं है कि मूल संविधान में कोई कमी नहीं है और इसके लागू करने के सम्बन्ध में ही कमी है। ठीक इसी प्रकार से हम यह भी मानते है कि लागू करने में

ही शेष रह जाता है। संविधान में उल्लिखित स्वायत्तता भी सही अर्थों में नहीं दी गई है। अतः हम यह सुझाव देते हैं कि संविधान के मूल उपबन्धों की पूरी तरह से पूरी जांच की जाए। परन्तु पुनः जांच किस प्रकार की जाए इस संबंध में कुछ कहने से पूर्व हम केन्द्र राज्य संबंधों से संबंधित अपनी सामान्य स्थिति पर विचार करेंगे।

हमें देश में एकता बनाए रखनी चाहिए और विघटनकारी ताकतों से लड़ना चाहिए। हम निश्चित रूप से देश को बचाने में समर्थ प्रभावी और कुशल, देश के आर्थिक जीवन का संघठन और समेकन करने वाले केन्द्र के पक्ष में है। और यह भी चाहते है कि केन्द्र में भरपूर शक्ति हो ताकि यह विदेश नीति, संचार, विदेश व्यापार आदि जैसे अन्य कार्य कर सके।

दुर्भाग्य से शासन करने वाली पार्टी जनता की एकता, भारत को बाहरी आक्रमण से बचाने की इच्छा का प्रयोग करके अनुचित लाभ उठाती है और संघठक राज्यों की शक्तियों को रद्द और कम करती है। शासन करने वाली पार्टी मजबूत केन्द्र का अर्थ तानाशाही केन्द्र समझती है और यह मानती है कि राज्य को केन्द्र के आदेश मानने ही होंगे। आपात्-काल में किए गए 42 वें संशोधन से राज्य की स्थिति भारत सरकार के अधीन केन्द्र सरकार पर आश्रित के रूप मे हो गई हैं। इससे पता चलता है कि उनकी शक्तियों पर आक्रमण करना ही अधिकारवादी शासन की प्रमुख इच्छा थी। अतः केन्द्र राज्य संबंधों के प्रश्न का संबंध केवल भारतीय एकता के प्रश्न से नही है परन्तु यह तानाशाही और लोकतांत्रिक शक्तियों के संघर्ष से जुड़ा एक विवादास्पद प्रश्न है।

यह केवल संयोग ही नहीं है। स्वतंत्रता के बाद बनाए गए संविधान से विकास के लिए पूंजीवादी मार्ग अपनाया गया है जिसके लिए भारत को एकीकृत, एकल और सजातीय आवश्यकता है। इससे जमींदारों के साथ मिले हुए बड़े पूंजीवादियों की आवश्यकताओं का पता चलता है। इसमें लोकतंत्र की मांग, राज्य की स्वायत्तता या भाषाओं की समानता पूंजीवादियों के आर्थिक प्रभुत्व और राजनीतिक शक्तियों से बाधा स्वरूप माना गया है।

हमारी पार्टी का कार्यक्रम बताता है कि, "ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच विरोध बढ़ जाना स्वाभाविक है। इन विरोधों के पीछे राज्यों के मध्यवर्गीय नागरिक समूह के बीच परस्पर गहरा विरोध होता है और यह विरोध पूंजीवादी मार्ग से विकास की असमानता के कारण निरन्तर बढ़ता चला जाता है।"

केन्द्र की पूर्व-नियोजित निहित स्वार्थ वाली नीतियों, आर्थिक संकट, जनता के निर्धन होने के कारण लोकतांत्रिक अधिकारों और राज्य के अधिकारों पर आक्रमण होता है।

उक्त प्रक्रिया के साथ-साथ राज्य आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया केन्द्र पर आश्रित हो जाते हैं, केन्द्र ही राज्यों द्वारा ली जाने वाली ऋण की राशि स्वीकार करता है और बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली राशि द्वारा मंजूर किए जाने वाले तदर्थ अनुदानों पर ही राज्य निर्भर करते हैं। इस सबके साथ-साथ राज्य योजना के आकार का निर्धारण करने की पद्धति के कारण राज्य योजना एक मजाक बन जाती है और यह केन्द्रीय योजना की सहायक मात्र बन कर रह जाती है। जिसे उन बड़े व्यावसायियों की सुविधानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है जो केन्द्रीय योजनाओं पर छाए रहते हैं। इसके कारण राज्य में पिछड़ापन और असमानता बनी रहती है। राज्यों की योजनाएं राज्यों के लोगों की आवश्यकताओं और समस्त भारत की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन नहीं होती है।

संविधान में संघवादी तत्व होने के बावजूद भी बहुत वर्षों से राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का केन्द्र में केन्द्रीकरण होने के कारण केन्द्र इन संघीय तत्वों पर हावी हो रहा है। आपात्-स्थिति में बनाए गए सांविधानिक संशोधन अधिनियम केन्द्र को राज्यों में राज्य सरकार की पूर्व सहमति लिए बिना केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को भेजने की शक्ति प्रदान करते हैं और इनमें यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि इन सेनाओं को राज्य में तैनात किया गया तो यह केवल केन्द्र सरकार से ही आदेश प्राप्त करेंगी। इससे अधिक केन्द्रीकरण होना अवश्यम्भावी ही था।

संविधान में केन्द्र को देश के किसी भाग में होने वाली समस्याओं में हस्तक्षेप करने और कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त शक्तियां दी गई हैं। इसके अलावा एक ही पार्टी के तीस वर्षों तक केन्द्रीय शासन में रहने के कारण भी केन्द्र ने अपने लिए कुछ शक्तियां अर्जित कर ली हैं। अधिकतर राज्यों में इसी पार्टी का शासन है। इन अपार शक्तियों का प्रयोग राज्य चुनावों में विधिवत चुनी गई विरोधी पार्टियों के शासन के विरुद्ध किया जाता है। राज्यपाल की शक्तियों का दुरुपयोग करते हुए केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के अल्पसंख्यक मंत्रालयों की स्थापना की गई और निर्वाचक मंडल के निर्णय को रद्द कर दिया गया।

ठीक इसी प्रकार से राज्य विधान सभाओं द्वारा पारित बिलों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की मंजूरी न देकर केन्द्र, जनता के हितों के लिए पारित भूमि सम्बन्धी कानून केन्द्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया परन्तु राष्ट्रपति ने इसे मंजूर नहीं किया यद्यपि विधानसभा ने इसे कितने मास पहले ही पारित कर दिया था। केन्द्र सरकार ने पहले वाले वामपंथी मंत्रालय पहले वाली वामपंथी सरकार द्वारा पारित गुप्त मतदान के आधार पर व्यापार संघ को मान्यता प्रदान नहीं की। राज्य के उच्च सदन को समाप्त करने सम्बन्धी आधबिल भी रोक लिया गया है।

भारत की एकता की रक्षा, लोकतंत्र का परिरक्षण, सुयोजित आर्थिक विकास का समन्वय और अन्य मूल कार्यों के लिए केन्द्र और राज्य सरकार के क्रिया-कलाप में पूर्ण और वास्तविक समन्वय आवश्यक है। इसी कारण हम राज्यों को स्वायत्तता देने के पक्ष में हैं। इसके बिना भारत की एकता नहीं रहेगी और एक राष्ट्र और एक देश की भावना भी कमजोर पड़ जाएगी। विभाजन करने वाली ताकतों के आक्रमण के विरुद्ध एकजुट होने के लिए एकता की भावना और इच्छा होना आवश्यक है और राज्य स्वायत्तता ही इस आवश्यकता को पूरा करने में सहायता करेगी। राज्य विधानसभा और सरकारों को उन्हें चुनने वाली जनता की इच्छाओं और अधिदेशों को पूरा करने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता और शक्तियां होनी चाहिए। राज्य में निर्वाचित विधानसभा और सरकारों को यह स्वतंत्रता न देने का अर्थ यह होगा कि केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी को प्राप्त अधिदेश ही महत्वपूर्ण है और संघ के संघटक राज्य केन्द्र के आश्रित मात्र हैं और ऐसी मान्यता के कारण भारतीय लोकतंत्र की शक्ति आधी रह जाती है।

हमारी पार्टी इस बात में विश्वास नहीं करती है कि इस प्रश्न का सही समाधान होने से ही यथातथ्यतः भारतीय जनता की समस्याओं का समाधान हो जाएगा। इनका समाधान तो समाज की मूल संरचना को बदलने से ही होगा। परन्तु राज्यों की स्वायत्तता केन्द्र और सत्ताधारी पार्टी के तानाशाही शिकंजे से बचने के साधन प्रदान करने से लोगों को केन्द्र तथा राज्य के निहित स्वार्थ का विरोध करने में सहायता मिलेगी।

आज केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी कई राज्यों के प्रशासन की प्रभारी नही है। इससे इस बात की अत्यावश्यकता और भी बढ़ जाती है कि केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों का उचित पुनर्वितरण इस प्रकार से किया जाए ताकि लोगों से प्राप्त किए गए अधिशेष द्वारा राज्य स्तर पर चुनाव जीती हुई पार्टी को इसके साथ-साथ केन्द्र में अधिशेष प्राप्त सत्तारूढ़ पार्टी के समाज उचित महत्ता प्राप्त हो सके।

भाग II

विधायी संबंध

उपर्युक्त से यह समझा जाएगा कि हम इस विचार से सहमत नही हैं कि जैसा कि प्रश्नावली में कहा गया है "संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की योजना, जो कि राज्यों में सामान्य रूप में विधियां स्वायत्तता प्रदान करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण उपाय सुनिश्चित करती है," मूलरूप में त्रुटिपूर्ण नही है। दूसरी ओर विधायी शक्तियों जैसे संविधान में लिखित अन्य उपबन्धों का सौंपा जाना उस बात को दोहराना हैं जिसे अंग्रेजों द्वारा बनाए गए अधिनियम, 1935 में पहले ही उपबन्धित कर दिया गया था। यह पुनः याद किया जाता है कि अधिनियम की स्कीम स्वतंत्रता आंदोलन की लोकतांत्रिक अवचेतना के इस हद तक विरुद्ध थी कि कांग्रेस पार्टी ने इसके संघीय हिस्से को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया था। यहां तक कि प्रांतीय स्वायत्तता वाला भाग भी इस हद तक दोषपूर्ण था कि कांग्रेस जिसे सात प्रांतों में बहुमत प्राप्त था, ने मंत्रालयों के गठन की सहमति देने से पूर्व, राज्यपालों से इस आश्वासन की मांग की थी कि इस विशेष शक्ति को प्रयोग में नहीं लाया जाएगा।

केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वास्तविक वितरण के मुद्दे पर विचार करते हुए संघ और समवर्ती सूचियां इतनी विस्तृत हो जाती हैं कि वस्तुत: राज्य स्वायत्तता की अपेक्षा की जाती है। इसके साथ-साथ इसमें यह उपबन्ध भी है कि संसद राज्यों की "राष्ट्र हित" और "जनहित" की एकमात्र सक्षमता में आने वाले विषयों पर कानून बना सकती है। इसके अतिरिक्त राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह राज्यों द्वारा मान लिए गए महत्वपूर्ण विधानों को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित कर ले और केन्द्र सरकार को यह अधिकार है कि विधान मण्डल द्वारा पारित बिलों को स्वीकृति देने के लिए रोक ले। यह दोनों ही बातें राज्यों की विधायी क्षमता को मजाक का विषय बना देती है।

अत: हम सुझाव देते है कि राज्यों की स्वायत्तता की रक्षा करने के लिए अनुच्छेद 248 में इस आशय से संशोधन किया जाना चाहिए कि जहां तक वर्तमान व्यवस्था, जो संसद को यह अधिकार देती है, के बदले में राज्यों को विधान सभा को ऐसे किसी मामले के सम्बन्ध में जिन्हें संघ या समवर्ती सूचियों में नहीं गिनाया गया है, कोई भी कानून बनाने का एकमात्र अधिकार प्राप्त हो जाए। अन्य शब्दों में, परिसंघ की अवशिष्ट शक्तियां, जोकि राज्यों के पास होनी चाहिए न कि केन्द्र के पास राज्य को अपने निजी क्षेत्रों में अपने पूर्णाधिकारों का उपयोग करते समय इस प्रकार से कार्य करना होगा जिससे कि केन्द्र सरकार को सौंपे गए क्षेत्र का अतिक्रमण न हो, इसी प्रकार केन्द्र सरकार को भी अपनी ओर से राज्यों के विधान मंडल और कार्यपालिका दोनों के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। किसी भी राज्य को दूसरे राज्यों को हानि पहुंचाने की दृष्टि से अपने अधिकारों का उपयोग नहीं करना चाहिए। अनुच्छेद 249, जिसके अनुसार केन्द्र को यह अधिकार है कि वह राष्ट्रीय हितों की दलील के अनुसार राज्य सूची में दिए गए विषय के सम्बन्ध में कानून बना ले, को काट दिया जाए।

राज्यों के कार्यक्षेत्र का विस्तार करने के साथ-साथ हमें केन्द्र प्राधिकार द्वारा चलाए जाने वाले कार्य जिन्हें कोई राज्य अकेले नहीं कर सकता जैसे रक्षा, विदेश कार्यों, जिनमें विदेश व्यापार, मुद्रा और संचार तथा आर्थिक समन्वय भी शामिल है जैसे विषयों के सम्बन्ध में संघ के प्राधिकार को और मजबूत बनाने का प्रयत्न करना होगा। योजना, मूल्य निर्धारण, मजदूरी आदि जैसे क्षेत्रों में केन्द्र केवल समन्वय ही नहीं कर सकते बल्कि सामान्य निदेश भी जारी कर सकते हैं। किन्तु योजना और आर्थिक समन्वय के मामले में, केन्द्र को राष्ट्रीय विकास परिषद्, जिसमें राज्य केन्द्रों के साथ प्रतिनिधित्व करेंगे, द्वारा निर्धारित सामान्य दिशा निर्देशों का पालन करना होगा। इस समय न तो परिषद् और ना ही योजना आयोग का संविधान में विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है।

एक पृथक अनुच्छेद, जिसमें स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि राष्ट्रीय विकास परिषद् प्रजातांत्रिक रूप से काम करेगी, प्रारम्भ करके इस कमी को पूरा किया जा सकता है और योजना आयोग एक निकाय होगा जिसकी नियुक्ति परिषद् द्वारा की गई है और इसके लिए जवाबदेही भी परिषद् की ही होगी। अब विकासात्मक प्रयोजनों के लिए ऋणों और अनुदानों का दिया जाना योजना आयोग का परमाधिकार है। अत: यह महत्वपूर्ण है कि राज्यों की आयोग की संचालन रीति के सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकार हो।

भारी उद्योग, विद्युत शक्ति, तेल और कोयला या सिचाई योजनाएं, जिनका सम्बन्ध एकाधिक राज्यों से है, संघ सूची में दर्ज किया जाए ताकि इसके लिए एक सामान्य नीति बन सके। औद्योगिक लाइसेंसों से सम्बन्धित मामलों में केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों के बटवारे के सम्बन्ध में काफी आशोधन करना आवश्यक होगा। सातवीं अनुसूची की सूची पुन: बनाई जाए ताकि राज्य को अधिकतर उद्योगों के सम्बन्ध में विशिष्ट शक्तियां प्रदान की जा सकें।

संघ सरकार द्वारा राज्यों में तैनात केन्द्रीय रिजर्व पुलिस या अन्य पुलिस बलों को वापस बुला लिया जाए। कानून तथा व्यवस्था तथा पुलिस जैसे विषय पूर्णत: राज्य के पास होने चाहिए और केन्द्र को अपनी विशेष सेनाएं भेजकर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

यह एक ऐसा प्रावधान है जिसे ब्रिटिश संविधान के उपबंधों से लिया गया है और जिसका उल्लेख वर्ष 1950 में संविधान में लिखा गया है। संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त होता था और वह महा-राज्यपाल के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी होता था। स्वतंत्र भारत के नए संविधान में इस सम्बन्ध में केवल यह परिवर्तन किया गया कि राज्यपाल केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होने लगा जिसका अर्थ है कि वह केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी का एजेंट होता है। वास्तव में केन्द्र में शासन करने वाली सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा राज्यपाल के पद का इस्तेमाल राज्य के लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार सरकार चुनने से रोकने और उन्हें अवांछित सरकार थोपने आदि के लिए किया जाता है। इस पद का इस्तेमाल सत्तारूढ़ पार्टी के ही किसी गुट के ऐसे नेता को खपाने के लिए किया जाता है जो अपने आला कमान की आंखों की किरकिरी हो। अत: किसी भी व्यक्ति के लिए राज्यपाल को "निष्पक्ष" कहना हास्यास्पद हो गया है। अतएव इस पद को समाप्त कर दिया जाए, यदि किसी कारणवश ऐसा करना सम्भव न हो तो यह पद ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा भरा जाए जिसे राज्य विधान मडल का विश्वास प्राप्त हो, यदि निर्वाचित विधान सभा में परिवर्तन हो तो उसे राज्यपाल बने नहीं रहने दिया जाएगा। वर्तमान व्यवस्था से निर्वाचित कार्यपालिका, अर्थात् मंत्रिपरिषद् और राज्य के औपचारिक अध्यक्ष, जो कि न केवल निर्वाचित विधान सभा के लिए जिम्मेवार है बल्कि केन्द्र में कार्यपालक के लिए भी, के बीच मतभेद हो जाता है।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

राज्यपाल के पद के अलावा अनेक ऐसे प्रावधान है जो केन्द्र को राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करते हैं। इनमें से महत्वपूर्ण है केन्द्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को बर्खास्त करने और राज्य विधान सभाओं आदि को भंग करने की शक्तियां दी गई हैं। इनका प्रयोग पक्षपात करके किया गया है।

भा० प्र० से०, भा० पु० से० आदि अखिल भारतीय सेवाएं हैं जो जिनके अधिकारी राज्यों में नियुक्त किए जाते हैं परन्तु जो केन्द्र सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण में रहते हैं, यह प्रणाली समाप्त कर देनी चाहिए। केवल संघ सेवाएं और राज्य सेवाएं होनी चाहिए और इनमें क्रमश: संघ सरकार और संबंधित राज्य सरकार द्वारा भर्ती की जानी चाहिए। संघ सेवाओं के कार्मिकों पर संघ सरकार का अनुशासनिक नियंत्रण होना चाहिए और राज्य सेवाओं के कार्मिकों पर संबंधित राज्य सरकार का अनुशासनिक नियंत्रण होना चाहिए। केन्द्र सरकार का राज्य सेवाओं के कार्मिकों पर कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।

भाग V

वित्तीय संबंध

राज्य सरकारों तथा उन राज्य सरकारों ने जो केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी की ही है, इस संविधान के वित्तीय उपबंधों को छोड़कर किसी अन्य भाग की इस प्रकार से सार्वभौमिक आलोचना नहीं की है। राज्य सरकारों द्वारा उत्तर-वर्ती वित्त आयोग के समक्ष प्रस्तुत ज्ञापन से पता चलेगा कि वित्तीय शक्तियों और स्रोतों के मामले में केन्द्र और राज्यों के बीच कितना गहरा भेद रखा गया है। इस प्रकार से वित्तीय सम्बन्धों में पूरा परिवर्तन अपेक्षित है। जबकि प्रशासन का प्रत्येक ऐसा विभाग जिसमें अधिक व्यय होता है (रक्षा और विदेश कार्यों के अलावा) राज्य सरकार के पास है और राजस्व प्राप्ति की सभी मदें केन्द्र के पास है।

वित्त आयोग और राजस्व के वितरण से सम्बन्धित अनुच्छेदों का संशोधन किया जाए ताकि वित्त आयोग भिन्न-भिन्न राज्यों के केन्द्र द्वारा सभी स्रोतों से उगाहे गए कुल राजस्व के 75 प्रतिशत का आबंटन कर सके। राज्यों द्वारा केन्द्र से मांगने की व्यवस्था को समाप्त करना अत्यावश्यक है। वित्त आयोग ही इसे सुनिश्चित करेगा कि राज्यों के बीच इस प्रकार की कुल उगाही गई राशि का 75% भाग किस अनुपात में बांटा जाए और किस सिद्धान्त पर इस राशि का बंटवारा किया जाए ताकि केन्द्र और राज्यों के बीच बांटे जाने वाले राजस्व के

अनुपात को सुनिश्चित किया जा सके । इस वित्त आयोग का काम केवल केन्द्र और राज्य के बीच वितरित किए जाने वाले राजस्व का अनुपात तय करना ही नहीं होगा बल्कि इसका काम केवल वह अनुपात निर्धारित करना होगा जो केन्द्र द्वारा की गई कुल वित्तीय उगाही में से 75 प्रतिशत प्रत्येक राज्य को मिलना चाहिए । अनुच्छेद 280, खण्ड 30 उपखंड (क) हटा दिया जाए जिसमें संघ और राज्यों के बीच करों से होने वाली निवल आय की संघ और राज्य सरकारों के बीच बाटने का प्रावधान है और समस्त खण्ड की रचना की जाए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि राज्यों के बीच आय का विभाजन करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सिफारिश करने का कार्य आयोग का है । राज्य को कर लगाने और अपने लिए सार्वजनिक ऋणदान के सम्बन्ध में अधिक शक्तियां दी जानी चाहिए । इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सातवीं संघ अनुसूची राज्य और समवर्ती सूची में उचित संशोधन किया जाए ।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

ऊपर हमने यह बताया है कि आर्थिक विकास की योजना और समन्वय को राष्ट्रीय विकास परिषद् के माध्यम से लोकतांत्रिक तरीके से कार्यान्वित किया जाना चाहिए । इस समिति में राज्यों और केन्द्र का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए और जिसका कार्यकारी अंग रा० वि० प० और योजना आयोग होना चाहिए । परन्तु दुर्भाग्य से योजना केन्द्र सरकार बनाती है और केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी इस पर अपनी इच्छानुसार योजना कार्यान्वित करती है । इसके साथ-साथ सत्ताधारी पार्टी द्वारा बनाई जाने वाली योजना की नीतियां इस प्रकार की हैं जिनसे उनकी बुद्धि का दिवालियापन प्रमाणित होता है और जिनके फलस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई है ।

इस स्थिति से उत्पन्न होने वाले संकट का सही समाधान योजना नीतियों में पूर्ण रूप से परिवर्तन करना है । कदाचित यह कार्य ऐसे विधिक सांविधिक परिवर्तनों के अन्तर्गत नहीं आता है जिन पर आयोग विचार कर रहा है । परन्तु हम यह अनुरोध करेंगे कि यह आयोग केन्द्रीय योजना के नाम पर राज्यों के समस्त आर्थिक क्रियाकलापों में केन्द्रीकरण की मांग, (जिसकी मांग सत्ता पार्टी द्वारा की गई है) स्वीकार न करे और न ही केन्द्रीकृत योजना का परित्याग करे जैसा कि कुछ अन्य पार्टियों ने सुझाव दिया है । इसका एकमात्र हल यह होगा कि योजना तो केन्द्रीकृत हो किन्तु नीति निर्धारण और उसके कार्यान्वयन में राज्य सक्रिय रूप से भाग ले या केन्द्रीकृत या लोकतांत्रिक मार्गदर्शन में राज्यों को स्वायत्तता दी जाए ।

विविध

अंत में हम इस संदर्भ में संघ राज्य संबंधों के चार पक्षों का उल्लेख करते हैं ये चार तथ्य हैं —प्रशासन की भाषा, निर्वाचक पद्धति और भारतीय संघ के अन्तर्गत काश्मीर का विशेष स्थान ।

हमारी पार्टी का विचार है कि बढ़ते हुए आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक आदान-प्रदान करते समय भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों के नागरिक अपनी आवश्यकता के अनुरूप अंत: सम्प्रेषण की भाषा का विकास कर लेंगे । इस स्वाभाविक प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि कोई एक भाषा बोलने वालों पर कोई अन्य भाषा न थोपी जाए । हम सब अहिन्दी भाषी नागरिकों को हिन्दी सीखने के लिए उत्साहित करने के पक्ष में हैं फिर भी हमारा विचार है कि सभी भारतीय भाषाओं को बराबर मान्यता दी जानी चाहिए । सभी अधिनियम, सरकारी आदेश और केन्द्र के संकल्प सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने चाहिए । प्रशासन, विधान, न्यायपालिका और शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग बन्द होना चाहिए और इसके स्थान पर सम्बन्धित राज्य के नागरिकों की भाषा को स्थान देना चाहिए । नागरिकों को अपने शैक्षिक संस्थानों में अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने तथा साथ ही राज्य में शिक्षा के माध्यम के रूप में उच्चतर स्तर तक इसका प्रयोग करने के अधिकार को मान्यता दी जानी चाहिए । उर्दू भाषा और इसकी लिपि की रक्षा की जाए । आठवीं अनुसूची में नेपाली भाषा को सम्मिलित करने के लिए संशोधन किया जाए ।

वर्तमान निर्वाचन पद्धति से अल्पसंख्यक मत वाली पार्टी संसद या विधान सभाओं में अधिक संख्या में सीटें प्राप्त कर सकती है । इसके अनर्थकारी परिणाम आपात्-स्थिति में देखने को मिले जब अल्पसंख्यक मतों पर निर्वाचित कांग्रेस सरकार ने ऐसे-ऐसे साधन अपनाए जिनसे नागरिकों की स्वतंत्रता और नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन हुआ । संसद और राज्य विधान सभाओं को केवल एक पार्टी की रबड़ स्टाम्प बना दिया गया । यह सब संसद की सर्वोच्चता के नाम पर किया गया । इसके बाद जो भी स्वायत्तता राज्यों के पास बची थी वह भी छीन ली गई ।

अत: समानुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति अपनाना आवश्यक है और प्रत्याह्वान के अधिकार की व्यवस्था की जाए ।

भारत संघ के अन्तर्गत कश्मीर की वर्तमान विशेष स्थिति को बनाए रखा जाए ।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)

. राज्य इकाई—कर्नाटक

ज्ञापन

भा० क० पा० (मार्क्स) की केन्द्रीय समिति ने आयोग की प्रश्नावली पर अपने विचार पहले ही दे दिए हैं । जैसाकि हमने कर्नाटक में देखा है उससे तो हम भा० क० पा० (मार्क्स) की राज्य समिति से चाहते हैं कि वह प्रश्नावली के कुछ विषयों पर अपने विचार दे ।

हमें देश में एकता बनाए रखनी चाहिए और विघटनकारी ताकतों से लड़ना चाहिए । हम निश्चित रूप से देश को बचाने में समर्थ प्रभावी और कुशल, देश के आर्थिक जीवन का संगठन और समेकन करने वाले केन्द्र के पक्ष में हैं । यह भी चाहते हैं कि केन्द्र में भरपूर शक्ति हो ताकि यह विदेश नीति, संचार, विदेश व्यापार आदि जैसे अन्य कार्य कर सके ।

दुर्भाग्य से शासन करने वाली पार्टी जनता की एकता, भारत को बाहरी आक्रमण से बचाने की इच्छा का प्रयोग करके अनुचित लाभ उठाती है और संघटक राज्यों की शक्तियों का उत्सादन करती है और कम करती है । मजबूत केन्द्र शासन करने वाली पार्टी का अर्थ तानाशाही केन्द्र समझती है और यह मानती है कि राज्य को केन्द्र के आदेश मानने ही होंगे । आपात् दिनों में किए गए 42वें संशोधन से राज्य की स्थिति भारत सरकार के अधीन केन्द्र सरकार पर आश्रित के रूप में हो गई है । इससे पता चलता है कि उनकी शक्तियों पर आक्रमण करना ही अधिकारवादी शासन की प्रमुख इच्छा थी । अत: केन्द्र राज्य सम्बन्धों के प्रश्न का संबंध केवल भारतीय एकता के प्रश्न से नहीं है परन्तु यह तानाशाही और लोकतांत्रिक शक्तियों के संघर्ष से जुड़ा एक विवादास्पद प्रश्न है ।

यह केवल संयोग ही नहीं है । स्वतंत्रता के बाद बनाए गए संविधान से विकास के लिए पूंजीवादी मार्ग अपनाया गया है जिसके लिए भारत को एकीकृत, एकल और सजातीय होना आवश्यक है । इससे जमींदारों के साथ मिले हुए बड़े पूंजीवादियों की आवश्यकताओं का पता चलता है । इसमें लोकतंत्र की मांग, राज्य की स्वायत्तता या भाषाओं की समानता, पूंजीवादियों के आर्थिक प्रभुत्व और राजनीतिक शक्तियों में बाधा स्वरूप माना गया है ।

हमारी पार्टी को कार्यक्रम में बताता है, कि "ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार और राज्यों के बीच विरोध बढ़ जाना स्वाभाविक है । इन विरोधों के पीछे राज्यों के मध्यवर्गीय नागरिक समूह के बीच परस्पर गहरा विरोध होता है और यह विरोध पूंजीवादी मार्ग से विकास की असमानता के कारण निरन्तर बढ़ता चला जाता है ।"

केन्द्र की पूर्व-नियोजित निहित स्वार्थ वाली नीतियों, आर्थिक संकट, जनता के निर्धन होने के कारण लोकतांत्रिक अधिकारों और राज्य के अधिकारों पर आक्रमण होता है ।

उक्त प्रक्रिया के साथ-साथ राज्य आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया केन्द्र पर आश्रित हो जाते हैं । केन्द्र ही राज्यों द्वारा की जाने वाली ऋण की राशि स्वीकार करता है और बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली राशि पर भी केन्द्र का एकाधिकार

है और केन्द्र द्वारा मंजूर किए जाने वाले तदर्थ अनुदानों पर ही राज्य निर्भर करते हैं। इस सबके साथ-साथ राज्य योजना के आकार का निर्धारण करने की पद्धति के कारण राज्य योजना एक मजाक बन जाती है, और यह केन्द्रीय योजना की सहायक योजना मात्र बनकर रह जाती है जिसे उन बड़े व्यवसायियों की सुविधानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता है जो केन्द्रीय योजना पर छाए रहते हैं। इसके कारण राज्य में पिछड़ापन और असमानता बनी रहती है। राज्यों की योजनाएं राज्यों के लोगों की आवश्यकताओं और समस्त भारत की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन नहीं होती हैं।

संविधान में संघवादी तत्व होने के बावजूद भी बहुत वर्षों से राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का केन्द्र में केन्द्रीकरण होने के कारण केन्द्र इन संघीय तत्व पर हावी हो रहा है। आपात स्थिति में बनाए गए सांविधानिक संशोधन अधिनियम केन्द्र को राज्यों में राज्य सरकार की पूर्वसहमति लिए बिना केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को भेजने की शक्ति प्रदान करते हैं और इनमें यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि इन सेनाओं को राज्य में तैनात किया गया तो ये केवल केन्द्र सरकार से ही आदेश प्राप्त करेंगी। इनसे अधिक केन्द्रीयकरण होना अवश्यंभावी ही था।

विधायी सम्बन्ध

हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि जैसा प्रश्नावली में कहा गया है "संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की योजना, जो कि राज्यों में सामान्य समय में विधायी स्वायत्तता प्रदान करने के सम्बन्ध में 3 महत्वपूर्ण उपाय सुनिश्चित करती है", मूलरूप में त्रुटिपूर्ण नहीं है। दूसरी ओर, विधायी शक्तियों, का जैसे संविधान में लिखित अन्य उपबंधों, का सौंपा जाना उस बात को दोहराना है जिसे अंग्रेजों द्वारा बनाए गए अधिनियम, 1935 में पहले ही उपबंधित कर दिया गया था। यह पुनः याद किया जाता है कि इस अधिनियम की स्कीम स्वतंत्रता आन्दोलन की लोकतांत्रिक अवचेतना के इस हद तक विरुद्ध थी कि कांग्रेस पार्टी ने इसके संघीय हिस्से को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया था। यहां तक कि प्रान्तीय स्वायत्तता वाला भाग भी इस हद तक दोषपूर्ण था कि कांग्रेस जिसे सात प्रान्तों में बहुमत प्राप्त था, ने, मंत्रालयों के गठन की सहमति देने से पूर्व, राज्यपालों से इस आश्वासन की मांग की थी कि इस विशेष शक्ति को प्रयोग में नहीं लाया जाएगा।

केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वास्तविक वितरण के मुद्दे पर विचार करते हुए संघ और समवर्ती सूचियां इतनी विस्तृत हो जाती हैं कि वस्तुतः राज्य स्वायत्तता की उपेक्षा की जाती है। इसके साथ-साथ इसमें यह उपबंध भी है कि संसद राज्यों की "राष्ट्र हित" और "जनहित" में एकमात्र सक्षमता में आने वाले विषयों पर कानून बना सकती है। इसके अतिरिक्त, राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह राज्यों द्वारा मान लिए गए महत्वपूर्ण विधान को राष्ट्रपति के लिए आरक्षित कर ले और केन्द्र सरकार को यह अधिकार है कि विधान मंडल द्वारा पारित बिलों को स्वीकृति देने के लिए रोक ले यह दोनों ही बातें राज्यों की विधायी क्षमता को मजाक का विषय बना देती हैं।

अतः हम सुझाव देते हैं कि राज्यों की स्वायत्तता की रक्षा करने के लिए, अनुच्छेद 248 में इस आशय से संशोधन किया जाना चाहिए कि जहां तक वर्तमान व्यवस्था, जो संसद को यह अधिकार देती है, के बदले में राज्यों की विधान सभा को ऐसे किसी मामले में सम्बन्ध में, जिन्हें संघ या समवर्ती सूचियों में नहीं गिनाया गया है, कोई भी कानून बनाने का एकमात्र अधिकार प्राप्त हो जाए। अन्य शब्दों में, परिसंघ की अवशिष्ट शक्तियां राज्यों के पास होनी चाहिए न कि केन्द्र के पास। राज्य को अपने निजी क्षेत्रों में अपने पूर्णाधिकारों का उपयोग करते समय इस प्रकार से कार्य करना होगा जिससे कि केन्द्र सरकार को सौंपे गए क्षेत्र का अतिक्रमण न हो, इसी प्रकार केन्द्र सरकार को भी अपनी ओर से राज्यों के, विधान मंडल और कार्यपालिका दोनों के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। किसी भी राज्य को दूसरे राज्यों को हानि पहुंचाने की दृष्टि से अपने अधिकारों का उपयोग नहीं करना चाहिए। अनुच्छेद 249, जिसके अनुसार केन्द्र को यह अधिकार है कि वह राष्ट्रीय हितों की दलील के अनुसार राज्य सूची में दिए गए विषय के सम्बन्ध में कानून बना ले, को निकाल दिया जाए।

राज्य के कार्यक्षेत्र का विस्तार करने के साथ-साथ हमें केन्द्र को रक्षा, विदेशी कार्यों, जिनमें विदेश व्यापार, मुद्रा और संचार तथा आर्थिक समन्वय भी शामिल है, जैसे विषयों के सम्बन्ध में संघ के प्राधिकार को और जो केवल केन्द्र द्वारा ही किए जा सकते हैं, को मजबूत बनाने का प्रयत्न करना होगा। ये कार्य एक राज्य नहीं कर सकेगा। योजना, मूल्य निर्धारण, मजदूरी आदि जैसे क्षेत्रों में, केन्द्र केवल समन्वय नहीं कर सकते बल्कि सामान्य निदेश भी जारी कर सकते हैं।

राज्यपाल की भूमिका

यह एक ऐसा प्रावधान है जिसे ब्रिटिश संविधान के उपबन्धों से लिया गया है और जिसका उल्लेख वर्ष 1950 में लिखे गए संविधान में किया गया है। संविधान के अन्तर्गत राज्यपाल ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त होता था और वह महाराज्यपाल के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी होता था। स्वतंत्र भारत के नए संविधान में इस संबंध में केवल यह परिवर्तन किया गया है कि राज्यपाल केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होने लगा जिसका अर्थ है कि वह केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी का एजेंट होता है। वास्तव में केन्द्र में शासन करने वाली सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा राज्यपाल के पद का इस्तेमाल राज्य के लोगों को उनकी इच्छा के अनुसार सरकार चुनने से रोकने और उन्हें अवांछित सरकार आदि थोपने के लिए किया जाता है। इस पद का इस्तेमाल सत्तारूढ़ पार्टी के ही किसी गुट के ऐसे नेता को खपाने के लिए किया जाता है जो अपने "आला कमान" की आंखों की किरकिरी हो। अतः किसी भी व्यक्ति के लिए राज्यपाल को "निष्पक्ष" कहना हास्यास्पद हो गया है। अतएव इस पद को समाप्त कर दिया जाए, यदि किसी कारणवश ऐसा करना सम्भव न हो तो यह पद ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा भरा जाए जिसमें राज्य विधानमंडल का विश्वास प्राप्त हो, यदि निर्वाचित विधान सभा में परिवर्तन करना हो तो उसे राज्यपाल बने नहीं रहने दिया जाएगा। वर्तमान व्यवस्था में निर्वाचित कार्यपालिका, अर्थात् मंत्रिपरिषद् और राज्य के औपचारिक अध्यक्ष, जो कि न केवल निर्वाचित विधान सभा के लिए जिम्मेवार है बल्कि केन्द्र में कार्यपालक के लिए भी, के बीच मतभेद हो जाता है।

आंध्र प्रदेश में तेलगू देशम सरकार, नेशनल कांफ्रेंस (एफ०), जम्मू-कश्मीर सरकार की बरखास्ती के हाल का अनुभव केन्द्र सरकार के आदेश पर राज्यपालों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग के ज्वलंत उदाहरण हैं।

अनुच्छेद 200 और 201 के विषय में, केन्द्र या राज्यपाल द्वारा किसी भी आधार पर हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अतः इन अनुच्छेदों का निकाल दिया जाए।

संविधान में उपबंधों के दुरुपयोग को राजनीतिक दृष्टि से विचार विमर्श करने, जिसमें कर्नाटक जिला परिषद्, मंडल पंचायत आदि, और कर्नाटक शिक्षा विधेयक 1984 जो कि राज्यपाल को प्रस्तुत किया गया है, पर राष्ट्रपति की सहमति शामिल है, के लिए जानबूझकर की गई देरी में देखा जा सकता है।

राज्य और राज्यपाल की निर्वाचित कार्यपालिका के बीच पैदा हुए विरोध के अनेक मामले देखने में आए हैं। जैसाकि अभी हाल में आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में हुआ है।

प्रशासनिक सम्बन्ध

राज्यपाल के पद के दुरुपयोग के अलावा ऐसे कई उपबंध हैं जो केन्द्र को राज्यों के प्रशासन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने में सहायता करते हैं।

अनुच्छेद 263 के अनुसार एक अन्तर्राज्यीय परिषद् स्थापित की जा सकती है। उक्त अन्तर्राज्यिक परिषद् जिसमें प्रधान मंत्री और सभी राज्यों के मुख्य मंत्री शामिल होंगे, को अधिदेशात्मक बनाना होगा। परिषद् राष्ट्रीय महत्व के किसी अन्य मामले सहित राज्यों और संघ के बीच पैदा हुए सभी विवादों के सम्बन्ध में कार्यवाही करेगी।

अनुच्छेद 365, जो कि राष्ट्रपति को राज्य सरकार को बर्खास्त करने का अधिकार देता है, में इस प्रकार से संशोधन किया जाए जिससे कि इसके दुरुपयोग को रोका जा सके।

अनुच्छेद 356 और 357 जो कि राष्ट्रपति को राज्य सरकार या इसकी सभा को भंग करने का अधिकार प्रदान करता है, को 1950 से अब तक कई बार लागू किया गया है जिससे कि विभिन्न राज्यों के लोग अपनी मनपसन्द सरकार न बना सकें। हाल के उदाहरण पहले ही दिए जा चुके हैं। इस अनुच्छेद को तत्काल ही निकाल दिया जाए। राज्य में सांविधानिक व्यवधान आने पर जैसा कि केन्द्र के मामले में होता है, चुनाव करवाने और नई सरकार गठित करने के लोकतांत्रिक उपायों के सम्बन्ध में उपबंध करने होंगे।

अनुच्छेद 312 में भा० प्र० से०, भा० पु० से० जैसी अखिल भारतीय सेवाओं के लिए उपबंध हैं। इन अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिक राज्यों में नियुक्त किए जाते हैं परन्तु जो केन्द्र सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण में रहते हैं। यह प्रणाली समाप्त की जानी चाहिए।

जैसाकि राष्ट्र जानता है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा रेडियो और दूरदर्शन का दुरुपयोग तेजी से बढ़ता ही जा रहा है। लोकतांत्रिक समाज में, लोगों को उनके, जिन्होंने इन्हें निर्वाचित किया है, कार्यकलाप और मतों को जानने का अधिकार है। इन्हें यह भी अधिकार है कि ये सरकारी नीतियों से सम्बन्धित विभिन्न मतों के विवरण को जानें और समझें। एक सांविधिक केन्द्रीय संचार परिषद् का गठन किया जाए। इसकी सदस्यता में केन्द्र और राज्य सरकारों के मंत्री, राजनीतिक पार्टियों और विशेषज्ञों के नेता शामिल होंगे। यह परिषद् रेडियो, दूरदर्शन और सरकार द्वारा नियंत्रित अन्य मीडिया के कार्य का निरीक्षण करेगी। राज्य स्तर पर भी ऐसी परिषदें स्थापित की जानी चाहिए।

वित्तीय सम्बन्ध

राज्य सरकारों तथा उन राज्य सरकारों ने जो केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी की ही हैं, इस संविधान के वित्तीय उपबंधों को छोड़कर किसी अन्य भाग की इस प्रकार से सार्वभौमिक आलोचना नहीं की है। राज्य सरकारों द्वारा उत्तरवर्ती वित्त आयोग के समक्ष प्रस्तुत ज्ञापन से पता चलेगा कि वित्तीय शक्तियों और स्रोतों के मामले में केन्द्र और राज्यों के बीच कितना गहरा भेद रखा गया है। इस प्रकार से वित्तीय सम्बन्धों में पूरा परिवर्तन अपेक्षित है। जबकि प्रशासन का प्रत्येक ऐसा विभाग जिसमें अधिक व्यय होता है (रक्षा और विदेश कार्यों के अलावा) राज्य सरकार के पास है और राजस्व प्राप्ति की सभी मदें केन्द्र के पास हैं।

संविधान के अनुसार राज्यों को निम्नलिखित का उपबंध कराने के सम्बन्ध में प्रमुख जिम्मेवारियां सौंपी गई हैं जैसे—लोगों को शिक्षा, खाद्य सामग्री, जल, स्वास्थ्य हेतु सामान और सड़कें। इसे कृषि विज्ञानी और उद्योगपतियों को ऐसी सभी आधारिक संरचना सम्बन्धी सुविधाएं मुहैया करानी होंगी जिनसे उद्योग और कृषि के विकास और वृद्धि के लिए स्थितियां उत्पन्न हो सकें।

सूखे, बाढ़, अकाल और अन्य प्राकृतिक आपदाओं, के दौरान राज्यों को लोगों की भी सहायता करनी होगी। इनमें से कई आपदाएं तो हमारे राज्य में अक्सर घटती रही हैं। इन सब घटनाओं से राज्यों की अर्थव्यवस्था का अपक्षय हुआ है। फलत: विकास के सामान्य रास्ते अवरुद्ध हो गए हैं। राज्य मूल्य और रुपए की कीमत पर पड़ने वाले मुद्रास्फीति प्रभाव, जिस पर इनका किसी भी प्रकार से कोई नियन्त्रण नहीं है, के अनुपात से अपने स्टाफ का वेतन और महंगाई भत्ता बढ़ाने के लिए विवश है बढ़ाए। केन्द्र सरकार द्वारा महंगाई भत्ते में की गई आवधिक वृद्धि की वजह से राज्य सरकार विवश है कि यह भी केन्द्र सरकार की दरों के अनुरूप अपने कर्मचारियों के महंगाई भत्ते में वृद्धि करे।

कर्नाटक विशेष विशेषताएं

कर्नाटक देश में सिंचाई (16.5%) के अन्तर्गत आने वाले निम्नतम क्षेत्रों में से एक क्षेत्र है। अत: यह दीर्घकाल से सूखाग्रस्त राज्य है। इस वर्ष 19 जिलों, जो कि हमारे राज्य का संघटन करते हैं, में से 16 जिलों में अधिक में भारी सूखा देखने में आया है। राज्य के एक या दूसरे भागों में बाढ़ आने के कारण काफी क्षति होगी लोगों को पीने का पानी और पशुओं को चारा उपलब्ध कराने का प्रश्न बहुत ही महत्व का है और यह समस्या बार-बार आती है। वर्तमान पद्धति के कारण राज्य प्राकृतिक आपदाओं के लिए जितनी जल्दी हो सके, अनुदानों, के लिए केन्द्र की ओर देखते हैं। यहां तक कि राज्यों को दिया गया अल्प धन बड़ी सीमा तक योजनागत रकम के लिए पेशगी के रूप में माना जाता है। विश्व बैंक परियोजनाओं के मामले में विकास के लिए धन का केवल 70 प्रतिशत राज्यों को दिया जाता है जिसके कारण परियोजनाओं की प्रगति में बाधा आएगी।

कर्नाटक राज्य की स्थापना 1956 विविध प्रांतों के हिस्सों को मिलाकर की गई जो कि उपनिवेशवाद के शोषण और शिकार और विभिन्न राजसी राज्यों के हिस्से थे। इसके कारण जीवन स्तर और विभिन्न मूल सुविधाएं जैसे स्वास्थ्य शिक्षा, सम्पर्क आदि के स्तरों में असमानता बढ़ी जो आज तक विद्यमान है।

आठवें वित्त आयोग को चाहिए कि वह कर्नाटक राज्य के लिए निधियां अन्तरित करते समय इसकी इन विशेषताओं को ध्यान में रखे।

दृष्टिकोण

राज्यों की अर्थोपाय स्थिति वर्षानुवर्ष बिगड़ती ही जा रही है। गैर-योजना क्षेत्र में खर्च बढ़ता ही जा रहा है। फलत: घाटा बढ़ता जा रहा है और ये बार-बार ओवरड्राफ्टों का सहारा ले रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं जैसाकि पहले ही बताया गया है, से योजनाबद्ध व्यय और भी घट गया है।

अत: वित्त आयोग को राज्यों के विकास पर व्यापक रूप से विचार करना चाहिए। इसे तथाकथित "अंतर पूर्ति" दृष्टिकोण को छोड़ देना चाहिए तथा एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। हम इसे समझते हैं कि वित्त आयोग का काम प्रशासन को समुचित रूप से और दक्षतापूर्वक चलाने में राज्यों की सहायता करना है।

भारत सरकार के आय का स्रोत मूल्यसापेक्ष है। यह आंतरिक और बाहरी स्तर पर बड़ी मात्रा में ऋण ले सकता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर कर सकता है। यह बड़ी राशि की घाटे की वित्त-व्यवस्था का प्रयोग कर सकता है।

केन्द्र सरकार विभिन्न अनुचित युक्तियों के जरिए राज्यों के करों की हिस्सा पूंजी में अतिक्रमण कर रही है। इसने राज्यों के संसाधनों में हस्तक्षेप करने के नए रास्ते पता लगा लिए हैं। वित्त आयोग को चाहिए कि वह संघ सरकार और राज्यों के बीच समान रूप से वित्तीय संसाधनों के बटवारे की युक्ति निकाले।

वित्त आयोग और राजस्व के वितरण से सम्बन्धित अनुच्छेदों का संशोधन किया जाए ताकि वित्त आयोग भिन्न-भिन्न राज्यों के केन्द्र द्वारा सभी स्रोतों से उगाहे गए कुल राजस्व के 75 प्रतिशत का आवंटन कर सके। राज्यों द्वारा केन्द्र से मांगने की व्यवस्था को समाप्त करना अत्यावश्यक है। वित्त आयोग ही इसे सुनिश्चित करेगा कि राज्यों के बीच इस प्रकार की कुल उगाही गई राशि का 75% भाग किस अनुपात में बांटा जाए और किस सिद्धान्त पर इस राशि का बटवारा किया जाए ताकि केन्द्र और राज्यों के बांटे जाने वाले राजस्व के अनुपात को सुनिश्चित किया जा सके। इस वित्त आयोग का काम केवल केन्द्र और राज्य के बीच वितरित किए जाने वाले राजस्व का अनुपात से तय करना ही नहीं होगा बल्कि इसका काम केवल वह अनुपात निर्धारित करना होगा जो केन्द्र द्वारा की गई कुल वित्तीय उगाही में से 75 प्रतिशत प्रत्येक राज्य को मिलना चाहिए। अनुच्छेद 280, खंड 3, उपखंड (क) हटा दिया जाए जिसमें संघ और राज्यों के बीच करों से होने वाली निवल आय को संघ और राज्य सरकारों के बीच बांटने का प्रावधान है और समस्त खण्ड की रचना की जाए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि राज्यों के बीच आय का विभाजन करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सिफारिश करने का कार्य आयोग का है। राज्य को कर लगाने और अपने लिए सार्वजनिक ऋणादान के सम्बन्ध में अधिक शक्तियां दी जानी चाहिए। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सातवीं संघ अनुसूची राज्य और समवर्ती सूची में उचित संशोधन किया जाए।

भारी उद्योग, विद्युत शक्ति, तेल और कोयला या सिंचाई योजनाएं, जिसका सम्बन्ध एक से अधिक राज्यों से है, संघ सूची में दर्ज किया जाए ताकि इनके लिए एक सामान्य नीति बन सके। औद्योगिक लाइसेंस से सम्बन्धित मामलों

में केन्द्र और राज्य के बीच शक्तियों के बटवारे के सम्बन्ध में काफी संशोधन करना आवश्यक होगा । सातवी अनुसूची की सूची पुनः बनाई जाए ताकि राज्य को अधिकतर उद्योगों के सम्बन्ध में विशिष्ट शक्तियां प्रदान की जा सकें ।

आर्थिक और सामाजिक योजना

ऊपर हमने यह बताया है कि आर्थिक विकास की योजना और समन्वय को राष्ट्रीय विकास परिषद् के माध्यम से लोकतांत्रिक तरीके से कार्यान्वित किया जाना चाहिए । इस समिति में राज्यों और केन्द्र का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए और जिसका कार्यकारी अंग रा० वि० प० और योजना आयोग होना चाहिए । परन्तु दुर्भाग्य से योजना केन्द्र सरकार बनाती है और केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी इस पर अपनी इच्छानुसार योजना कार्यान्वित करती है । इसके साथ-साथ सत्ताधारी पार्टी द्वारा चलाई जाने वाली योजना की नीतियां इस प्रकार की हैं जिनसे उनकी बुद्धि का दिवालियापन प्रमाणित होता है और जिनके फलस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई है ।

संघ सरकार द्वारा राज्यों में तैनात केन्द्रीय रिजर्व पुलिस या अन्य पुलिस बलों को वापस बुला लिया जाए । कानून तथा व्यवस्था तथा पुलिस जैसे विषय पूर्णतः राज्य के पास होने चाहिए और केन्द्र को अपनी विशेष सेनाएं भेजकर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

इस स्थिति से उत्पन्न होने वाले संकट का सही समाधान योजना नीतियों में पूर्ण रूप से परिवर्तन करना है । कदाचित् यह कार्य ऐसे विधिक सांविधानिक परिवर्तनों के अन्तर्गत नहीं आता है जिन पर आयोग विचार कर रहा है । परन्तु हम यह अनुरोध करेंगे कि यह आयोग केन्द्रीय योजना के नाम पर राज्यों के समस्त आर्थिक क्रियाकलापों के केन्द्रीकरण की मांग, (जिसकी मांग सत्ता पार्टी द्वारा की गई है) स्वीकार न करे और न ही केन्द्रीकृत योजना का परित्याग करे जैसाकि कुछ अन्य पार्टियों ने सुझाव दिया है । इसका एकमात्र हल यह होगा कि योजना तो केन्द्रीकृत ही हो किन्तु नीति निर्धारण और उसके कार्यान्वयन में राज्य सक्रिय रूप से भाग ले या केन्द्रीकृत या लोकतांत्रिक मार्गदर्शन में राज्यों को स्वायत्तता दी जाए ।

यदि राष्ट्रीय विकास परिषद को सांविधिक बनाया गया हो और योजना आयोग स्वनियंत्रण में कार्य करता हो तो योजना आयोग का संघटन रा० वि० प० द्वारा किया जाए । राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और समीक्षा की प्रक्रियाओं का समावेशन इसी तरीके से रा० वि० प० द्वारा किया जाएगा ।

दुर्भाग्यवश अब रा० वि० प० और योजना आयोग दोनों ने इस तरीके से कार्य किए हैं जिससे उनकी मूल छवि पूर्णतः बिगड़ गई है । सातवी पंचवर्षीय योजना को अन्तिम रूप देने से पूर्व विभिन्न राज्य सरकारों के विचारों को सुना जाना चाहिए ।

केन्द्रीय रूप से प्रवर्तित की गई योजनाओं से राज्य योजना की प्राथमिकताएं समाप्त हो जाती हैं क्योंकि इन योजनाओं के जरिए राज्य सरकारों पर जोर डाला गया हैं कि वे चाहे ये योजनाएं राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करती है या नहीं उन्हें अपनाना पड़ेगा । हमने जो सुझाव दिया है कि कुल वसूली का 75 प्रतिशत राज्य सरकारों को दिया जाना चाहिए, इससे राज्य सरकारे को राज्य योजना प्राथमिकताओं के अनुसार योजना सम्बन्धी स्कीमों को निर्मित करने में सहायता मिलेगी ।

विविध

उद्योग

हम इस बात से सहमत हैं कि उद्योगों के उत्पादन के मूल्यानुसार इनके बहुत बड़े हिस्से को शामिल करने के कारण प्रथम अनुसूची के अव्यवस्थित विस्तार से, आधारभूत सांविधानिक योजना प्रत्यक्ष रूप से बिगड़ गई है और उद्योगों को सीधे-सीधे संघ विषय में परिवर्तित किया गया है ।

अतः केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण में मुख्य संशोधन अपेक्षित हैं । सातवीं अनुसूची की सूची को पुनः तैयार किया जाए ताकि उद्योगों के कुछ वर्गों के सम्बन्ध में राज्यों को अनन्य अधिकार दिए जा सकें ।

सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेशों के सम्बन्ध में लिए गए स्थान निर्धारण सम्बन्धी निर्णय राज्यों के हित के निर्णायक मामले हैं । ऐसी आलोचना, जिस पर राज्यों को उक्त स्थान निर्धारण पर निर्णय लेने से पूर्व विश्वास में नहीं लिया है, सटीक हैं । एक पार्टी की सरकारों वाले राज्यों में केन्द्र का पक्षपातपूर्ण रवैया और अन्य पार्टियों की राज्य सरकारों के प्रति इनका सौतेला व्यवहार बार-बार देखने में आया है ।

हमारे राज्य के साथ निम्नलिखित मामले में भेद किया गया है जैसे विजयनगर स्टील प्लान्ट और मंगलौर ऑयल रिफाइनरीज काम्प्लेक्स, रेलवे में, मार्गों में विस्तार करना, ब्रॉड गेज में बदलना आदि ।

व्यापार और वाणिज्य

ऐसे प्रतिबन्धों के प्रति आवाज उठाई गई है जो कि वेशी राज्यों से खाद्य सम्बन्धी वस्तुएं खरीदने पर लगाए गए हैं । यहां तक कि भयंकर सूखे की परिस्थितियों या बाढ़ के मामले में भी इस सम्बन्ध में कुछ राज्यों के साथ भेदभाव के उदाहरण देखने में आया है । उदाहरण के लिए पश्चिमी बंगाल ने सूखे के समय केन्द्र सरकार से अनुरोध किया था कि वह इस राज्य को वेशी राज्यों से खुले बाजार में आवश्यक खाद्यान्न खरीदने की अनुमति दे दे । किन्तु केन्द्र सरकार ने इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया था । उक्त मामलों में राज्यों को खाद्यान्न खरीदने की अनुमति न देना इन राज्यों के लोगों की आवाज को रद्द करना है जिसकी अभिव्यक्ति सम्बद्ध दल अपने चुनाव घोषणापत्र के जरिए करता है ।

कृषि

केन्द्र कृषि के मामले में राज्य सरकार के कार्यक्रमों को केन्द्रीय रूप से प्रवर्तित की गई अधिकांश योजनाओं के जरिए प्रभावित करता है । अधिकांश योजनाओं में से कई तो किसी विशेष राज्य के लिए असंबद्ध होती हैं । अनुसन्धान और विकास तथा शिक्षा सम्बन्धी नीतियां आई० सी० ए० आर० और विश्व बैंक परियोजनाओं के जरिए विनियमित की जाती हैं ।

केन्द्र ने कृषि सम्बन्धी उत्पाद का उचित मूल्य निर्धारित करने के लिए स्वयं को एकमात्र क्षेत्र बना लिया है । इसने राज्य के भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों, श्री० देवराज अर्स, श्री गुंडु राव द्वारा और वर्तमान मुख्यमंत्री द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद् में कई बार व्यक्त किए गए विचारों की भी परवाह नहीं की । उर्वरकों, कृषि मशीनरी के दामों में बढ़ोतरी आदि, विभिन्न राज्यों में किसानों की उमड़ती हुई सामूहिक मांग का ध्यान रखे बिना रिजर्व बैंक के माध्यम से ऋण लेने की नीति निर्धारित करना और अत्यधिक केन्द्रीकृत पेड़ अधिनियम के माध्यम से तैयार की गई वन नीति उदाहरण के लिए अत्यधिक केन्द्रीकरण के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता को प्रकट करते हैं ।

खाद्य और रसद आपूर्तियां

अभी हाल ही में कर्नाटक राज्य में खाद्यान्नों और अन्य अनिवार्य वस्तुओं के आवंटन में भेद करने और इनकी आपूर्ति में विलम्ब करने की समस्या देखने में आई है जबकि राज्यों के 19 जिलों में से 16 जिले लंबी अवधि से सूखा पीड़ित हैं । राज्य सरकार की आपूर्ति बढ़ाने सम्बन्धी योजना प्रतिव्यक्ति निम्न आय के परिणामस्वरूप पूरी नहीं हुई थी । प्रति व्यक्ति की निम्न आय के परिणामस्वरूप यह आवश्यक हो गया है कि ऐसी औपचारिक राशनिंग को बढ़ाया जाए जो कि पर्याप्त खाद्यान्नों के अभाव में पूरी नहीं हो पा रही है ।

शिक्षा

शिक्षा को कि सातवीं अनुसूची की राज्य सूची में थी, को समवर्ती सूची में अन्तरित कर दिया गया है । इससे केन्द्रीय हस्तक्षेप समय-समय पर बढ़ता गया है ।

शिक्षा का स्थान उन स्थानों में से एक है जहां भिन्न भिन्न राज्यों की आवश्यकताओं के लिए सामाजिक प्रासंगिकता और रूपान्तरण अत्यावश्यक हैं ।

अतः इसे तत्काल राज्य सूची में अन्तरित किया जाना चाहिए ।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)

राज्य युनिट–केरल

ज्ञापन

प्रस्तावना :

1. भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) की केन्द्रीय समिति ने सरकारिया आयोग की प्रश्नावली का उत्तर पहले ही भेज दिया है। हम चाहते है कि केरल राज्य की समस्याओं के विशेष सन्दर्भ सहित इसमें उठाए गए मुद्दों को पुन: दोहराएं।

2. केन्द्र-राज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं को न केवल विधिक समस्याएं ही समझा जाना चाहिए बल्कि इन पर ऐतिहासिक राजनीतिक दृष्टिकोण से भी अवश्य विचार करना होगा। स्वतंत्रता से पूर्व, उस क्षेत्र को, जिसे केरल राज्य कहा जाता है, तीन अलग-अलग निम्नलिखित प्रशासकीय क्षेत्रों में गठित किया गया था। ट्रावनकोर और कोचीन का राजसी राज्य तथा मद्रास प्रान्त का मालबार जिला। ब्रिटिश को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। ये केन्द्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली के जरिए इस क्षेत्र के भाग्य पर नियंत्रण रखते थे। इस प्रणाली की अध्यक्षता मालबार में कलक्टर द्वारा और ट्रावनकोर तथा कोचीन में रेजीडेन्ट द्वारा अपने पूर्ण पूर्णाधिकारों सहित की गई थी। इसका सकेन्द्रण दिल्ली में था तथा नियंत्रण लंदन से किया जाता था। इस देश के लम्बे इतिहास में इससे पहले ऐसा केन्द्रीकृत प्रशासन नहीं था। यह स्वतंत्रता आन्दोलन ही था, जिसे इस केन्द्रीकृत प्रशासन का सामना करना पड़ा था और ताकि सम्पूर्ण लोगों — न केवल मलयाली भाषियों में बल्कि इनके स्वयं के बीच और भारत में अन्य राष्ट्रिकताओं के लोगों में जात पात, सम्प्रदाय और प्रशासन सम्बन्धी अवरोधों को हटाकर एकता विकसित की जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, जैसे ट्रावनकोर में उठने वाला पुनापरावयालर जैसे प्रबल प्रचलित की पृष्ठभूमि में, संघीय राज्यों को भारतीय संघ में मिला दिया गया था। किन्तु भाषायी आधार पर इसे पुन: संगठित करने से इन्कार किया गया था। साथ-साथ ट्रावनकोर और कोचीन को भाग ख राज्य बनाने के लिए मिला दिया गया था। जबकि मालबार मद्रास प्रांत का एक भाग बना रहा। भाषायी राज्यों की स्वीकृति की मांग से पहले कठोर प्रचलित संघर्ष का सूत्रपात करना पड़ा। इस प्रकार नवम्बर, 1956 में केरल राज्य की संरचना हुई।

3. तथापि, केरल का गठन होने के समय से वहां के लोगों की आकांक्षाएं और अपेक्षाएं अभी पूरी होनी बाकी हैं। यह राज्य अभी भी अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ है। वास्तव में अधिक आय वाले राज्यों की तुलना में उनकी स्थिति अपेक्षाकृत और बिगड़ी है। कृषि क्षेत्र, जो केरल की अर्थ-व्यवस्था का मुख्य साधन है, पिछले दस वर्षों से पूर्णत: निष्क्रिय है। संकटग्रस्त पारंपरिक उद्योगों से औद्योगिक क्षेत्र इतना प्रभावित हुआ है कि उसका कोई तत्काल समाधान नजर नहीं आता। 1950–51 में राज्य के घरेलू उत्पादन में गौण क्षेत्र का जो भाग अखिल भारतीय औसत से अधिक था, उसमें 1977–78 से उस स्तर से नीचे की ओर पतन हुआ है। हर तरफ छाए हुए गहन, आर्थिक संकट ने बहुत दिनों से चली आ रही व्यापक लोक स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली की लगातार क्षति पहुंचाई है, जिसमें सामान्यीकृत स्कूल शिक्षा और इसी प्रकार की अन्य सामाजिक आधारिक संरचनात्मक सुविधाएं भी शामिल हैं। इस प्रकार के मामलों के कारण, निस्संदेह, आंशिक रूप से क्षेत्र के इतिहास से और उसके आन्तरिक आधारिक रोगों से जुड़े हुए हैं। तथापि, कुछ लोग इस बात का खण्डन करेंगे कि यह संकट, केन्द्रीय सरकार द्वारा पालन की गई नीतियों के अधीन भारत में पूंजीवाद के आर्थिक विकास की असमानता के कारण हुआ। राज्य के प्रति केन्द्र का विभेदीकरण, क्षेत्र की विशेष समस्याओं के प्रति उसका उपेक्षापूर्ण और असहायक झुकाव, उसकी निर्यात-आयात पॉलिसी, औद्योगिक पॉलिसियों आदि ने राज्य के पिछड़ेपन को बढ़ाने में सहयोग दिया है। इस तथ्य की जानकारी राज्य के अधिकाधिक व्यक्तियों को हो रही है कि संविधान की वर्तमान संरचना, जिसमें सभी राजनीतिक और आर्थिक शक्तियां केन्द्रीय संस्था के पास केन्द्रीत हैं, जो केन्द्रीय सरकार की अन्त:रुचि और अभिरुचि पर आधारित संघटक राज्य का निर्माण करती हैं, राज्यों के पूर्ण सामाजिक और आर्थिक विकास के मार्ग में अवरोधक रही हैं। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित विषयों के लिए राज्य के लोगों की तीव्र प्रतिक्रिया, इस बढ़े हुए असन्तोष की अभिव्यक्ति है।

4. उपर्युक्त अवस्था आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं हुयी थी। वे अपरिहार्य थे, जो हमारे संविधान को मूल ढांचा और सामाजिक बल प्रदान करते हैं, जिसे सुगठित रूप दिया गया। जिस मध्यमवर्ग ने स्वतन्त्रता की लड़ाई का नेतृत्व किया और 1947 में सत्ता की बागडोर थामी, वह ऐसे एक व्यापक स्थानीय विपणन की आवश्यकता से प्रेरित थे जिसके लिए संघीय राज्य के बजाए एक केन्द्रीकृत राज्य की जरूरत है। यह उन प्रतिबद्धताओं के विश्वासघाती होने की पृष्ठ भूमि हैं जो भाषा विषयक राज्यों के साथ संघीय राज्य के गठन और वास्तविक राज्य स्वायत्तता के लिए 1916 के कांग्रेस-लीग समझौते, 1928 की मोती लाल नेहरू रिपोर्ट, 1935 के अधिनियम के सम्बन्ध में वाद-विवाद और इसी प्रकार के समझौतों के दौरान की गई। 1950 में अपनाए गए संविधान में इस बात पर बल दिया गया कि क्या इसे सिद्धान्त रूप में स्वीकार न करके संघीय कहा जाए। निस्संदेह अत्यधिक केन्द्रीकरण पर बल दिया गया था। अत: केन्द्र और राज्य के बीच वर्तमान तनाव इस संविधान की सही भावना को गलत ढंग से समझने के कारण नहीं है, जिसकी गलत व्याख्या की गई है, बल्कि यह तनाव उसके मूल ढांचे के कारण है। हालांकि जो केन्द्र मूल संविधान के अनुसार है, उसे व्यापक अधिकार सौंपे गए थे। जो पिछले 34 वर्षों के दौरान बाद में राज्यों के अधिकार का अतिक्रमण करते हैं। इस प्रक्रिया को इस तथ्य द्वारा सरल बनाया गया था कि केन्द्र और सभी समीपस्थ राज्यों में काफी समय तक एक ही पार्टी राज्य करेगी। संविधान में किए गए विभिन्न संशोधन और राज्यों को सौंपे गए ऐसे विभिन्न अधिकारों का "स्वैच्छिक" समर्पण करने से राज्य स्वायत्तता की विचार एक मखौल बनकर रह गया है जो राष्ट्रीय आन्दोलन के आदर्श रहे थे।

5. यही कारण है कि 1957 में राज्य का गठन होने पर पहला चुनाव होने के बाद जब राज्य सरकार का प्रशासन हमारी पार्टी ने तत्काल संभाल लिया तभी केन्द्र राज्य सम्बन्धों का प्रश्न, एक महत्वपूर्ण राजनीतिक विषय के रूप में सामने आया। किन्तु, पेप्सू में 1952 में संक्षिप्त राजनीतिक प्रयोग के लिए, जिसमें प्रमुख हस्तक्षेप प्रासंगिक रूप से मनमाने ढंग से चरम बिन्दु पर था और यह किसी भी राज्य में कांग्रेस अधिकारों के एकाधिकार के लिए पहली गंभीर चुनौती थी। हमारे संविधान की वास्तविक "संघीय" विशेषता का पूरा पता पूरी तरह 1959 में चला था, जब केन्द्रीय सरकार ने मंत्रीमंडल को रद्द कर दिया था, हालांकि हमें विधानसभा में बहुमत प्राप्त था। उसके बाद 1965 में, पुन: हमारी पार्टी से सम्बन्धित मध्यावधि मतदान में राज्य-विधान-सभा के 29 सदस्य चुने गए, जिन्हें विधानसभा में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर सामने आया और जिन्हें भारत के सुरक्षा-नियमों के अधीन रखा गया और इस तथ्य का प्रयोग राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को यह सूचित करने के लिए किया गया कि कोई पार्टी इस स्थिति में नहीं थी कि वह सरकार बना सके। निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने पद की शपथ लेने से पूर्व ही इस विधान सभा को समाप्त कर दिया गया। ये और अन्य कटु अनुभव न केवल आर्थिक क्षेत्र में हुए, बल्कि राजनीतिक जीवन में भी हुए, जिन्होंने हमें मजबूर किया कि हम राज्य स्वायत्तता के कारणों का दृढ़ता से समर्थन करें और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का पुन निर्माण करें, ताकि राज्य के लोगों की राष्ट्रीय आकांक्षाएं पूरी की जा सकें।

6. साथ-साथ, यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए कि हमने सदा सभी ऐसी पृथकतावादी प्रवृत्तियों का विरोध किया है, जिसे भारतीय जनता की एकता भंग होती है। हमें यह समझना चाहिए कि भारत की जनता के समक्ष लोकतांत्रिक कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए, विभिन्न राष्ट्रिकता और भाषाविद राज्यों की जनता के बीच संवर्ग के भ्रातृ-बंधन और राष्ट्रीय एकात्मकता को मजबूत बनाना चाहिए। हमारी पार्टी का कार्यक्रम निश्चित रूप से यह होगा—"जनता का लोकतांत्रिक भारत में विभिन्न राष्ट्रिकताओं की जनता का स्वैच्छिक संघ होगा।" भारत के साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) ने केन्द्रीकरण के लिए सत्ताधारी वर्गों के आन्दोलन का विरोध किया है। उसने स्वायत्तता को नामन्जूर किया है और सभी विघटनकारी तथा पृथकतावादी आन्दोलनों का भी विरोध किया हैं। भारत का साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) विभिन्न राष्ट्रिकताओं के लिए वास्तविक समानता और स्वायत्तता, जो इस देश में अन्तर्निहित

है और लोकतान्त्रिक संरचना का विकास करता है, के आधार पर भारतीय संघ की एकता को बनाए रखना और उसे बढ़ाना चाहती है। केरल में, कम्युनिस्टों का यह शानदार रिकार्ड है कि "स्वतन्त्र" त्रावनकोर के लिए सामन्ती निरंकुशता के षड्यंत्र को असफल बनाया और दृढ़ता से उसका विरोध किया तथा स्वतन्त्रता के बाद, सैद्धान्तिक और राजनीतिक, दोनों ही प्रकार से पृथकतावादी राजनीतिक प्रवृत्तियों को निष्फल बनाया।

7. जैसा कि ऊपर बताया गया है, भारत जैसे बहुराष्ट्रिकता वाले राष्ट्र, की एकता को बनाए रखने के लिए प्रथम स्थिति यह है कि संघटक यूनिटों के लिए कथनी और करनी, दोनों ही प्रकार से स्वायत्तता की गारंटी हो। यह इस शर्त पर आधारित था कि 1957–59, 1960–69 और 1980–81 में हमारी पार्टी की अध्यक्षता में चलायी जा रही सरकारों ने पंचवर्षीय योजनाओं की राष्ट्रीय विकास परिषद् में वाद-विवाद के लिए अपना विशिष्ट अंशदान दिया। हमारी वैकल्पिक नीतियां, जिनकी राज्य सरकारों ने दलील दी है, उसमें इस बात पर गंभीरतापूर्वक बल दिया गया है कि केन्द्र-राज्य के सम्बन्धों का पुनर्गठन किया जाए। देश के अन्य राज्यों में गैर-कांग्रेसी मंत्रीमंडलों के गठन से राज्यों की स्वायत्तता की मांग को बढ़ावा मिलता है। शीघ्र ही कांग्रेस के बहुमत वाली राज्य सरकारों ने भी विशेष रूप से अक्सर अधिकतम अधिकारों और स्रोतों की मांग प्रारंभ कर दी। उदाहरणार्थ, कांग्रेस के बहुमत वाली संयुक्त-फ्रन्ट सरकार, जो आज भी केरल पर शासन कर रही है, जो उसके द्वारा तैयार किए गए ज्ञापन से देखा जा सकता है और जिसे आयोग को प्रस्तुत किया जाएगा, में शामिल होना पड़ा है, भले ही आंशिक रूप से, जिसमें राज्यों के लिए अधिकतम अधिकारों और स्रोतों की मांग की गई है। तथापि, वे वर्तमान संगठन को मूल रूप से जांच करने के पक्ष में नहीं है; उनकी निष्ठा स्पष्टतः राज्य के वास्तविक हितों के बजाय केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के लिए अधिक है। दूसरी ओर हमारी पार्टी यह बताना चाहती है कि ऐसे उपाय करना आवश्यक है, जिससे कि विभिन्न पृथकतावादी आन्दोलनों द्वारा भारतीय संघ के विलम्बित विघटन को समाप्त किया जा सके और लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों को क्षति पहुंचाने वाली और सत्तावादी तानाशाही स्थापित करने वाली प्रवृत्तियों से सफलतापूर्वक लड़ा जा सके तथा ऐसी स्थितियां उत्पन्न की जा सकें, जिससे कि भारत में राष्ट्रिकताओं का सहज और सम्पूर्ण विकास हो सके।

विधायी शक्ति

8. संघ और राज्यों के बीच अधिकारों के बंटवारे की स्कीम, ब्रिटिश उपनिवेशिक नियम की प्रवृत्ति के अनुसार है, जैसा कि 1935 के अधिनियम में दिया गया है। वास्तव में, वर्तमान बंटवारा ब्रिटिश अधिनियम से भी एक पिछड़ा कदम है। 1935 के अधिनियम की राज्य सूची और समवर्ती सूची से अनेक विषय हटाकर वर्तमान समवर्ती और संघ सूचियों में क्रमशः शामिल कर लिए गए है। केन्द्रीय और समवर्ती सूचियों का व्यापक स्वरूप जिसमें समवर्ती सूचियों के विषयों में, केन्द्रीय विधान की जो महत्ता है, उन विषयों पर केन्द्र को विधान बनाने का अधिकार दिया गया है, जो कुछ परिस्थितियों से सम्बद्ध है, और जिनका उल्लेख राज्य सूची में किया गया है और उसे यह भी अधिकार दिया गया है कि वह राज्यपाल की एजेंसी के माध्यम से राज्य की विधान सभाओं के द्वारा पारित किए गए ऐसे बिलों को प्रसंगानुसार रोक दे, जिससे राज्य को गम्भीर विधायी स्वायत्तता से वंचित होना पड़ा। केरल में हमारी पार्टी को इस प्रकार के पर्याप्त कटु अनुभव हुए हैं, जैसे कि ऊपर उल्लिखित का प्रयोग, हमारी पदावधि के दौरान राज्य के लोगों की वास्तविक आकांक्षाओं को निष्फल बनाने में किस प्रकार किया गया, विशेष रूप से विभिन्न भूमि संबंधी विधान के मामलों में, शैक्षिक सुधार अधिनियमों और सामाजिक कल्याण बिलों, जैसे कि व्यवसाय संघ कानून के मामले में। पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा बनाए गए भूमि सम्बन्धी और व्यवसाय, संघ के कानूनों के सम्बन्ध में और कर्नाटक सरकार के शिक्षा बिल और इसी प्रकार के अन्य बिलों के सम्बन्ध में इतिहास आज अपने आप को दुहरा रहा है। अब भी, केरल विधानसभा द्वारा 1978 से तीन बिल पारित किए जा चुके हैं, जिन पर राष्ट्रपति की अनुमति की प्रतीक्षा है। भारतीय विधि संस्थान द्वारा उसके अध्ययन से प्राप्त किए गए निष्कर्ष, जिसमें 1956–65 की अवधि के दौरान 170 बिलों की नियति भ्रान्तिपूर्ण है। उनके अनुसार, केरल कुछ मामलों में ही राष्ट्रपति की अनुमति को नामंजूर किया जा सकता है।

लेकिन अधिक महत्वपूर्ण उस कार्रवाई की आशंका है जिसके द्वारा विधायी प्रक्रिया के दौरान ही केन्द्र राज्य विधानमण्डलों को उसकी इच्छाओं के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य करने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त, बिलों के स्वरूप और विषय के अलग-अलग विश्लेषण पर विचार करने की अधिक आवश्यकता है।

9. विधायी क्षेत्र में संघीय केन्द्र राज्य के सन्तुलित सम्बन्ध के हित में हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं—

(क) राज्यों में अवशिष्ट अधिकारों को निहित करने के लिए अनुच्छेद 248 का संशोधन किया जाए।

(ख) राज्यों के विशिष्ट सक्षमता के विषयों पर केन्द्र के विधायी अधिकारों को हटाने के लिए अनुच्छेद 249 का संशोधन किया जाए।

(ग) राज्यों के क्षेत्रों के विस्तार में वृद्धि करने के लिए 7वी अनुसूची में संशोधन करके इसका विस्तार रखा, विदेशों से सम्बन्ध तक किया जाए, जिसमें व्यापार, मुद्रा, संचार, आर्थिक समन्वय, बड़े पैमाने के उद्योग आदि उन विषयों को भी शामिल किया जाए, जिनकी व्यवस्था केन्द्रीय प्राधिकार के लिए एक अकेले राज्य द्वारा नहीं की जा सकती। यहां हम विधि और व्यवस्था का विशेष हवाला देना चाहेंगे। यह विशेष रूप से एक राज्य का ही विषय होना चाहिए। इसके द्वारा केन्द्र की प्रवृत्ति को आजकल विशेष महत्व दिया गया है, जिसके अन्तर्गत वह ई०एस०एम०ए० जैसे उपायों के लिए दमनकारी तथा अधिकारवादी कानून बना सकती है और उन्हें राज्यों पर लागू कर सकती हैं तथा यहां तक कि उसे राज्यों की सहमति के बिना राज्यों में केन्द्रीय पैरा सैनिक बलों को फैलाने का अधिकार भी प्राप्त हो गया है।

राज्यपाल की भूमिका तथा प्रशासनिक संबंध

10. यहां तक कि संविधान में राज्यपाल, उसके अधिकार तथा केन्द्र के साथ उसके सम्बन्धों के स्वरूप के सम्बन्ध में परिकल्पिक व्यवस्था के द्वारा राज्य के चुने गए कार्यपालक और राज्य के औपचारिक अध्यक्ष के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। हमने पहले ही 1959 और 1965 में राज्यपाल के विवेकाधिकारों के अत्यधिक दुरुपयोग के उदाहरण दिए हैं। एक ऐसा ही सुस्पष्ट उदाहरण 1969 में था, जब राज्यपाल ने केरल की जनता के गले में अल्पमत मंत्रिमंडल को मढ़ दिया था। 1980 में केरल विश्वविद्यालय उप-कुलपति की नियुक्ति के दौरान, राज्यपाल ने मन्त्री परिषद के परामर्श की अवहेलना कर दी, यह केरल में हाल ही में सामने आया एक ज्वलन्त उदाहरण है। यह विवाद बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। जब विरोधी दलों का राज्यों पर शासन हो या राज्य पर शासन करने वाली कांग्रेस पार्टी में आपसी फूट डालने की लड़ाई अधिक बढ़ जाए। इस प्रकार के भय की पुष्टि पिछले 34 वर्षों के इतिहास द्वारा कर दी गई है, जिस दौरान राज्यपाल ने, न केवल केन्द्रीय सरकार के एजेन्ट के रूप में अधःपतन किया है बल्कि केन्द्र में राजनीतिक पार्टी के एजेंट के रूप में भी उस राज्य सरकार के खिलाफ षड्यंत्र रचा है, जिसका वह औपचारिक अध्यक्ष है और कांग्रेस में ही उस पार्टी के केन्द्रीय नेतृत्व के पक्ष में गुट का समर्थन करने के लिए अन्तः पार्टी संघर्षों मे हस्तक्षेप किया है। इस नाटक में अत्यधिक घृणित घटना अभी हाल ही में सिक्किम में घटी है। हम महसूस करते है कि राज्यपाल के पद में सुधार करने के बजाय यह अच्छा है कि इस पद को ही समाप्त कर दिया जाए। यदि किसी कारणवश ऐसा करना संभव न हो, तो इस पद को किसी ऐसे व्यक्ति से भरा जाए जिसे राज्य विधानमण्डल का पूर्ण विश्वास प्राप्त हो।

11. राज्यपाल के पद के अतिरिक्त, संविधान में ऐसे अनेक उपबंध हैं, जिनके द्वारा केन्द्र राज्यों के प्रशासन में हस्तक्षेप कर सकता है। उनमे से एक अनुच्छेद 356 है जो केन्द्र को राज्य सरकार को बर्खास्त करने और राज्य विधान मण्डल को विघटित करने का अधिकार देता है, जो सर्वाधिक मशहूर है। इसका प्रयोग संविधान को लागू करने के बाद लगभग 70 बार किया गया है। वह उपबन्ध, जो राज्यों की प्रशासनिक स्वायत्तता का अतिक्रमण करता है, इसे हटाया जाना चाहिए। वर्तमान अखिल भारतीय सेवाओं को समाप्त

किया जाना चाहिए। तथा संघ और राज्य सेवाएं अलग-अलग हों, जिन सेवाओं में भर्ती तथा उनपर नियंत्रण, संघ तथा राज्यों द्वारा अलग-अलग स्वयं किया जाना चाहिए। दूर-संचार, सिनेमा तथा दूरदर्शन जैसे व्यापक माध्यम को केन्द्र द्वारा, केन्द्र की सत्ताधारी पार्टी के लिए प्रचार के साधन के रूप में प्रयोग करके एकाधिकार को विकृत किया गया है। उनका प्रयोग विरोधी पार्टियों द्वारा बनाई गई राज्य सरकारों के खिलाफ तथा अपनी पार्टी के समर्थन के लिए किया गया। इन सुविधाओं का केन्द्र तथा राज्यों के बीच स्पष्ट तथा उचित आधार पर बंटवारा किया जाना चाहिए।

वित्तीय संबंध

12. पिछले 34 वर्षों में वित्तीय हस्तांतरण तथा संघ द्वारा राज्यों को, उनके स्थानान्तरित संसाधनों के ब्यौरों के सम्बन्ध में कार्यशील प्रक्रिया की समीक्षा निम्नलिखित है—

(क) राज्य गंभीर वित्तीय संकट का सामना कर रहे हैं। यह स्थिति राज्यों द्वारा उनके अपने राजस्व के स्रोतों का लाभ उठाने में किसी प्रकार की लापरवाही के कारण नहीं हुई है। केन्द्र तथा राज्यों के राजस्व लेखों में संयुक्त आयों में राज्यों को राजस्व आयों का अनुपात 1961—66 के दौरान 32.9 प्रतिशत से बढ़कर 1979—84 की अवधि के दौरान 36.5 प्रतिशत हो गया।

(ख) छठी योजना की अवधि के दौरान केन्द्र की कुल राजस्व आयों में राज्यों का अंश 35.9 प्रतिशत है। लेकिन केन्द्रीय पूंजी आयों में राज्यों का अंश केवल 27.1 प्रतिशत है। छठी योजना की अवधि के दौरान केन्द्र की कुल आयों (पूंजी तथा राजस्व दोनों) में राज्यों का अंश केवल 32.6 प्रतिशत है—पांचवीं योजना के दौरान के अंश से लगभग 4 प्रतिशत कम।

(ग) इसने राज्यों के वित्तीय शेषों पर अत्यधिक भार डाला है। केन्द्र से राज्यों की ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई है जिससे वे बजट ऋणों का भारी बोझ होने से अव्यवस्थित हो गए हैं। उसी समय-बाजार ऋणों पर विभिन्न केन्द्रीय प्रतिबंधों ने राज्य के बजटों में सीधे बाजार ऋणों के महत्व को भी कम कर दिया है। पहली योजना में यह राज्यों की पूंजी आयों का 14.4 प्रतिशत था। छठी योजना तक यह घट कर 8.1 प्रतिशत हो गया। केन्द्र से संसाधनों के अपर्याप्त अन्तरण की पृष्ठभूमि के परिणामस्वरूप, राज्य के बजट में घाटे में वृद्धि की स्थिति बिगड़ती जा रही है (फिर भी ये घाटे उस समय सम्बन्धित मानों में काफी कम आते हैं, जब इनकी तुलना केन्द्रीय घाटों से की जाती है) और समस्याएं अधिक तीक्ष्ण हो रही हैं।

(घ) राज्यों में कई बार ओवरड्राफ्ट सीमाओं का यांत्रिक उपयोग दिवालियेपन की सीमा तक बढ़ा है। यह याद रखना चाहिए कि नए धन के निर्माण की सहायता लेकर उसके घाटे को पूरा करने में निश्चय ही केन्द्रीय सरकार का नरम रुख रहा है। केन्द्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई वित्त व्यवस्था से घाटे को पूरा करने के मान, देश में स्फीति की सर्पिल गति के महत्वपूर्ण स्रोत रहे हैं, जिनसे दुबारा व्यय बढ़ने की वजह से राज्य बजटों के अन्तिम शेष के गड़बड़ा जाने की आशंका है।

(ङ) अन्तिम रूप से, केन्द्रीय अन्तरण की स्कीम, जो आज भी विद्यमान है, का व्यय न तो कार्यकुशलता और अर्थव्यवस्था की वजह से बढ़ा है और न ही राज्यों के बीच सार्वजनिक व्यय में असमानता के कारण सीमित हुआ है। केन्द्र द्वारा अन्तरित किए गए साधनों का अधिक न्यायसंगत वितरण विकास हितों के रूप में नहीं किया गया है। अन्तःक्षेत्रीय असमानता का स्वाधीनता के बाद भारत में विस्तार हुआ है। संक्षेप में, केन्द्र का अत्यधिक वित्तीय नियंत्रण, पिछले 34 वर्षों के दौरान, राज्यों की स्वायत्तता को समाप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

13. केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों में मुख्य प्रवृत्तियों का वर्णन केरल में सशक्त रूप से लागू किया जाता है। केरल के मामले में, इसने स्थिति को विशेष परिस्थितियों को देखते हुए और अधिक तेजी से राज्य के विकास पर प्रभाव डाला है। यह याद रखना चाहिए कि केरल एक ऐसा निर्यातोन्मुखी क्षेत्र है, जिसने भारतीय संघ में विलय के समय के अपने लाभप्रद और लचीले रीति-रिवाजों तथा उत्पाद-शुल्क प्रतिकारों को छोड़ दिया है—यह एक ऐसी सच्चाई, जिस पर वित्त आयोगों द्वारा उचित रूप से विचार नहीं किया गया है। तत्काल ही मूल सामाजिक संरचनात्मक सुविधाओं जैसे विश्व व्यापक प्राथमिक शिक्षा, व्यापक लोक स्वास्थ्य देख-रेख प्रणाली आदि के आधार पर व्यय का भारी बोझ पड़ेगा। इस तथ्य से क्षेत्र के पिछड़ेपन का पता नहीं चलता। इसके बारे में एस० डी० पी० (इस समय लगभग 18 प्रतिशत) में गौण क्षेत्र के कम अनुपात से, आधुनिक उद्योगों के अभाव से, औद्योगिक क्षेत्र की कम उत्पादकता से और अत्यधिक बेरोजगार समस्या आदि से पता चलता है। यह याद रखना चाहिए कि स्थिर निर्यातोन्मुखी, पारम्परिक उद्योगों द्वारा प्रभावित वित्त व्यवस्था के लिए पूंजी लगाने का तीव्रकारी प्रभाव बहुत कम होगा, जिसके गड़बड़ा जाने की आशंका होगी। इस तथ्य के बारे में क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओं का प्राक्कलन करते समय भी उचित ध्यान नहीं दिया गया है।

14. उपर्युक्त लेखा टिप्पणियों को देखते हुए हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं :—

(क) राज्यों को प्रत्यक्ष रूप से आय के स्रोतों का विकास करने के लिए अधिक क्षेत्र दिया जाना चाहिए। यह स्वतन्त्र कराधान के लिए अधिक विस्तार का एक महत्वपूर्ण मामला है, जिसमें आर्थिक समन्वय या अन्तर्राज्यीय वाणिज्य पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ेगा। बिक्री कर राजस्व में अतिक्रमण की वर्तमान प्रवृत्ति को, उदाहरणार्थ समाप्त किया जाना चाहिए।

(ख) राज्यों को बाजारी ऋणदान के लिए अपनी सीमाएं निर्धारित करने की अनुमति देनी चाहिए। सार्वजनिक बचत संस्थाओं की प्रवृत्ति को राज्य से पृथक करने के लिए इसे प्रतिवर्तित करना चाहिए। उदाहरणार्थ, एल० आई० सी० (जीवन बीमा निगम) द्वारा रखी गई राज्य सरकार की प्रतिभूतियों का हिस्सा, जो उसकी कुल सम्पत्ति में से 1969 में 35.7 प्रतिशत से घटकर 1982 में 18.5 प्रतिशत हो गया।

(ग) संविधान में उपयुक्त संशोधन करके केन्द्र द्वारा प्रस्तुत किए गए कुल राजस्व के 75 प्रतिशत राजस्व की व्यवस्था करनी चाहिए, जो बिना किसी स्रोत के राज्यों को आबंटित किए जाने चाहिए। इस समय इनका अनुपात लगभग 35 प्रतिशत है।

(घ) वित्त आयोग को समय-समय पर राज्यों के बीच इस प्रकार निर्धारित किए गए साधनों के न्यायसंगत वितरण के लिए मानदण्ड तैयार करने चाहिए।

आर्थिक और सामाजिक योजना

15. हमारी योजना प्रक्रिया गहन संकट के शिकंजे में फंसी हुई है। केन्द्र सरकार द्वारा मूल आर्थिक नीतियों से इसके कारणों को ढूंढा जाना चाहिए। तथापि सत्ताधारी पार्टी इसका प्रयोग एक अवसर के रूप में अत्यधिक केन्द्रीकरण के लिए कर रही है। प्रश्नावली में उद्धृत प्रशासनिक सुधार समिति (ए० आर० सी०) अध्ययन की लेखा टिप्पणियां पूर्णतः तथ्यों पर आधारित हैं। राज्य योजना के विस्तार और संघटक निर्धारित करने की पद्धति तथा साथ ही स्कीम के ब्यौरों की योजना तैयार करने की केन्द्र की प्रवृत्ति, जो वैध रूप से राज्य-अधिकारिता क्षेत्र के अन्तर्गत आती है, जिसके परिणामस्वरूप राज्य स्तर की योजना का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

16. हम यह सुझाव देते हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद् को संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत ऐसे सांविधिक निकाय के रूप में गठित किया जाना चाहिए, जो राज्यों और केन्द्र का प्रतिनिधित्व करेगा। योजना आयोग की नियुक्ति परिषद द्वारा की जानी चाहिए और उसे परिषद् के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए

न कि केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के प्रति, जैसा कि इस समय है । राष्ट्रीय विकास परिषद् एक फोरम का गठन करेगा, जो योजनाओं के प्रतिपादन और कार्यान्वियन के लिए राज्यों के सक्रिय सहयोग को सुनिश्चित करेगा और जिसमें केन्द्रित योजना के लिए राष्ट्रीय महत्व और समन्वय की आवश्यकता का अतिक्रमण नहीं किया जाएगा ।

17. राष्ट्रीय योजना का एक उद्देश्य, क्षेत्रीय असन्तुलन को कम करना होना चाहिए और क्षेत्रीय योजना आबंटनों के लिए यह एक अन्तःनिर्मित मानदण्ड होना चाहिए । पिछड़े क्षेत्रों को चयन करने के लिए वर्तमान मानदण्ड संतोषजनक नहीं है । केरल के विशेष सन्दर्भ में, पहले ही बताए गए कारणों से सामान्य सामाजिक पिछड़ेपन और आर्थिक या औद्योगिक पिछड़ेपन के बीच अन्तर करना एक महत्वपूर्ण बात है । दुर्भाग्यवश, पहले कभी किसी के ध्यान में यह बात नहीं आई कि यह अन्तर किया जाए, ताकि राज्य के हितों को नुकसान से बचाया जा सके ।

(क) केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र निवेश के आबंटनों में केरल के खिलाफ बहुत अधिक विभेदीकरण है । केरल में केन्द्रीय योजना लागत 1950–80 की अवधि के दौरान सभी राज्यों की औसत से 31 प्रतिशत कम है ।

(ख) इसी प्रकार, आई० डी० बी० आई० और ए० आर० डी० सी० जैसी राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेने की प्रवृत्ति में बाधा उत्पन्न होती है । बाद के मामले में केरल ने केवल 1956—81 की अवधि के लिए सभी राज्यों की औसत का आधा ऋण प्राप्त किया है । यह एक ऐसा मामला है, जिसमें केरल जैसे राज्यों के लिए विशेष ध्यान दिया जाना है, जिसका पिछड़ापन उसकी वर्तमान निर्यात अभिविन्यास द्वारा अंशत: अनिवार्य बना दिया जाता है और निर्यात तथा प्रेषण के माध्यम से जिसने विदेशी मुद्रा की प्रचुर राशि अर्जित की है ।

(ग) इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय आर्थिक नीतियों, जैसे गरी या रबड़ को आयात करने का निर्णय अथवा केन्द्र की औद्योगिक नीतियों के कारण क्षेत्र की अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने से उसकी क्षतिपूर्ति इस प्रकार की जाएगी कि उससे पारम्परिक औद्योगिक संगठन को, जो क्षति पहुंचेगी, उसके लिए न्यायसंगत योजना आबंटनों पर विचार करते समय उस पर विचार किया जाएगा । हमारा तर्क यह है कि विभिन्न क्षेत्रों के वित्तीय अन्तरणों पर नजर रखना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि केन्द्र द्वारा अपनायी गई आर्थिक नीतियों की समग्रता के क्षेत्रीय प्रभाव पर भी विचार करना आवश्यक है ।

विविध :

18. राज्य के विशेष कटाई पैटर्न के कारण, जिसका भार अखाद्य फसलों के सम्बन्ध में बहुत अधिक है, केरल ने एक ऐसा क्षेत्र संगठित किया है, जिसमें प्रति व्यक्ति अनाज का न्यूनतम उत्पादन और चिरकाल से अनाज की आवश्यकता में कमी को बताया गया है । सार्वजनिक वितरण प्रणालियों के प्रभावशाली तन्त्र के माध्यम से, राज्य सरकार ने अन्न उपलब्धता की अनिश्चितता से जनता को बचाने का प्रयास किया है । खाद्यान्नों की अधिप्राप्ति, उसका मूल्य-निर्धारण, भण्डारण, संचलन और वितरण के लिए केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की वर्तमान व्यवस्था अत्यधिक असन्तोषजनक रही है, जिसके कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली में अक्सर विघटन और राज्य में गंभीर सामाजिक असंतोष उत्पन्न होता रहता है । हमारे अनुभव से यह पता चलता है कि खाद्यान्न आबंटनों का प्रयोग राज्य सरकार के लिए उस समय अत्यधिक पक्षपातपूर्ण तरीके से किया गया, जब हम सत्ता में थे । इसी प्रकार, आवश्यक जिंस अधिनियम और अन्य नियामक केन्द्रीय अधिनियम को लागू करने के लिए व्यवस्था की समीक्षा की जानी आवश्यक है, जो राज्यों के जिम्मेदार क्षेत्रों पर लागू होते हैं । उदाहरण के लिए, नारियल छिलकों के मूल्यों और संचलन पर जो केन्द्रीय अधिनियम विनियमित होते हैं, वह राज्य और केन्द्रीय सरकार के बीच गंभीर विवाद का विषय है ।

19. जब हमारी पार्टी राज्य में हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहन दे रही है, तो हमारा यह मत है कि सभी भारतीय भाषाओं की समानता के लिए केन्द्र के सभी अधिनियमों, सरकारी आदेशों और संकल्पों को सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराया जाना चाहिए । प्रशासन, कानून, न्यायपालिका के क्षेत्र में और शिक्षा में हिदायतें देने के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग को हटाकर उसके स्थान पर मातृभाषा का प्रयोग करना चाहिए । अन्य भाषाविद् वर्गों में अन्तःसंचार की भाषा के रूप में हिन्दी लादने के प्रयास से सम्पर्क भाषा के प्राकृतिक विकास में केवल असन्तोष और विघटन ही उत्पन्न होगा ।

20. शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीयकरण की वर्तमान प्रवृत्ति इसके विपरीत होनी चाहिए । शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीति, केन्द्र की इच्छा आरोपण के माध्यम से प्राप्त नहीं की जानी चाहिए बल्कि विभिन्न राज्यों और राज्यों तथा केन्द्र के बीच परामर्श और बातचीत की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करनी चाहिए । विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का वर्तमान कार्य अभी सन्तोषजनक नहीं है । मुफस्सल विश्वविद्यालय जैसे केरल या कालिकट के लिए निधियों का आबंटन प्राप्त करने में तथा कुछ केन्द्रीय विश्वविद्यालय और उनके सहकर्मियों द्वारा अनिवार्य क्षेत्रीय सम्बद्ध अधिकांश निधियां प्राप्त करने में भारी अन्तर है ।

21. हमारी पार्टी ने धार्मिक अल्पसंख्यकों को सांस्कृतिक परम्परा और उनके रीति रिवाजों को सुरक्षित रखने तथा उनके अधिकारों को बनाए रखने का वचन दिया है । तथापि, धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का अधिकार, सामान्य सार्वजनिक शिक्षा से अलग होना चाहिए । केरल में हमारे अनुभव से यह पता चलता है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों के निहित स्वार्थों के कारण, शिक्षकों की नियुक्ति और विद्यार्थियों को दाखिल कराने में भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद को समाप्त करने के प्रयासों में बाधा उत्पन्न होती है । शिक्षा संस्थाओं की अव्यवस्था की जांच की जानी चाहिए और ऐसे उपाय किए जाने चाहिए जिससे कि शिक्षा के स्तर को सुधारा जा सके ।

व्यापक चर्चा की आवश्यकता

22. आपकी प्रश्नावली के इस संक्षिप्त अंतरिम जवाब में हमने आपके द्वारा पूछे गए सभी प्रश्नों की ब्यौरेवार चर्चा नहीं की है । आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्न, राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक गठन को बनाए रखने के लिए अनिवार्य है । हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि ऐसे मामले पर व्यापक संभव चर्चा की जानी बहुत जरूरी है जिनमें विभिन्न प्रकार के अनुशासनों में अकादमी सदस्य, वकील और जज जैसे व्यावसायिक, राजनीतिक नेता और सर्व साधारण में भाग लेना चाहिए । इस सम्बन्ध में हम आयोग का ध्यान ऐसे निश्चित उपायों की ओर दिलाना चाहते है, जो केरल सरकार द्वारा वाद-विवाद को रोकने और सीमित करने के लिए किए गए थे । अनुसंधान और अध्ययन के लिए ए० के० जी० केन्द्र द्वारा प्रायोजित केन्द्र-राज्य सम्बन्धों, के लिए नए सेमिनार में भाग लेने के दौरान श्री सुब्रह्मण्यम पोट्टी, गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के विवरण पर साधारण व्यक्तियों ने नहीं, बल्कि मुख्य मंत्री और गृह मन्त्री तथा केरल के कांग्रेस नेताओं ने उन पर उग्र आक्षेप करना प्रारंभ कर दिया । मुख्य मन्त्री ने तो यहां तक कहा कि मुख्य न्यायाधीश को अपने पद से त्यागपत्र दे देना चाहिए और उसके बाद ही केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर अपने विचार व्यक्त करने चाहिए । हमें यह आशंका है कि इसी प्रकार ही अन्य और अवसरों पर दी जाने वाली धमकियां, विसम्मत विचारों को कुचलने के लिए सरकार द्वारा आयोजित की गई कार्रवाई का एक हिस्सा है । सरकारी प्राधिकारियों और सत्ताधारी पार्टी के नेताओं के इस प्रकार के असहनीय और अलोकतान्त्रिक हस्तक्षेप को समाप्त किया जाना चाहिए । हम आयोग से यह अपील करते हैं कि ऐसा वातावरण बनाया जाए, जिससे कि जो महत्वपूर्ण मामले उठाए गए है, उनके सम्बन्ध में निस्संकोच स्पष्ट चर्चा की जा सके ।

भारत का साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)

राज्य इकाई—मध्य प्रदेश

ज्ञापन

भारत का साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) राज्य समिति, मध्य प्रदेश प्रारम्भ से ही मध्य प्रदेश सरकार के इस सुझाव से असहमत रहा है कि केन्द्र-राज्य सम्बन्ध

से सम्बन्धित संविधान के उपबन्धों में कोई मौलिक परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि आपका माननीय आयोग इस मामले पर देश भर में घूमने की तकलीफ उठाना चाहता है, जिससे मध्य प्रदेश के मुख्य मन्त्री की सहमति का भी खंडन होता है। यह स्पष्ट है कि आपको इस प्रकार की सामान्य बातें जानने के लिए देश भर में घूमने की कोई जरूरत नहीं है, जैसा कि मध्य प्रदेश सरकार के ज्ञापन में बताया गया है, मानो दिल्ली की केन्द्रीय सत्ताधारी पार्टी मे सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा हो।

हमारी पार्टी केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मामले को अपसिद्धान्त के रूप में मानने को तैयार नहीं है और न ही अलगाववादी सनक और विघटनकारी नारे के रूप में मानने को तैयार है। भारतीय गणतन्त्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री संजीव रेड्डी ने भी यह राय व्यक्त की कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर नए सिरे से विचार किया जाना अपेक्षित है। जीवन की वास्तविकताओं ने भारतीय लोकतन्त्र की समस्या को उसके बढ़े हुए रूप में प्रस्तुत किया है और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को नुकसान पहुंचाए बिना इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। तथ्य तो यह है कि कुख्यात 42 वें संशोधन अधिनियम में राज्य का दर्जा भारत सरकार के अधीनस्थ आश्रित के रूप में घटा दिया है, जिससे यह पता चलता है कि उनके अधिकारों पर आक्रमण, तानाशाही नियम की एक अनिवार्य आवश्यकता थी। अत: केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का मामला एक ऐसा मामला है, जिससे तानाशाही और लोकतन्त्र की शक्तियों के बीच एक संघर्ष उत्पन्न होता है। ऐसे सभी राज्य, जिसमें मध्य प्रदेश भी शामिल है, यह महसूस करते हैं कि केन्द्र की वित्तीय पकड़ उन्हें शक्तिहीन कर देती है।

तथापि यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे सभी लोग जो केन्द्र-राज्य संबंधों में परिवर्तन लाने का समर्थन कर रहे हैं वे किसी गणतांत्रिक भावना से प्रेरित होकर ऐसा कर रहे हों।

भारतीय लोकतंत्र का यह एक ऐसा महत्वपूर्ण मामला है, जो अक्सर प्रांतीय और क्षेत्रीय दावों के सीमित अनुपात तक रह जाता है तथा उग्र राष्ट्रवादी भावनाओं को बढ़ावा देने के प्रयास किए जाते हैं। राज्य स्वायत्तता के लिए लोकतांत्रिक मांग, लोकतांत्रिक अधिकारों का विस्तार और केन्द्र में अधिकार के केन्द्रीयकरण को समाप्त किए जाने इसका कोई संबंध नहीं है।

वर्तमान केन्द्र-राज्य सम्बन्ध किसी भी राज्य के विशाल लोकतांत्रिक या आर्थिक स्वतन्त्रता पर आधारित नहीं है बल्कि सभी राज्यों की स्वतन्त्रता को नियंत्रित करने के लिए है। मुख्य मुद्दा यह है कि सभी राज्य, केन्द्र के अधीन है और कभी इस तो कभी उस राज्य के लिए समर्थन दिखाया जाता रहा है।

राष्ट्र आज संकटग्रस्त स्थिति से गुजर रहा है और हमारी भविष्य-नीति खतरे में है। हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई की पोषित लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आक्षेप लगाया गया है और सत्तावाद का परिणाम यह हुआ है कि देश के कुछ भागों में उपद्रव होने लगा है। स्वतन्त्रता की लड़ाई द्वारा स्थापित किया गया सुनहरा धागा अभी भी देश के सभी भागों को परस्पर बांधे हुए हैं। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यह धागा आने वाले समय में एकता को और मजबूत बनाए। यह एक ऐसा दस्तावेज है, जो हमारी लोकतान्त्रिक प्रगति को महत्वपूर्ण प्रासंगिकता प्रदान करता है और जिसे जनता की मांगों और अनुभवों को देखते हुए परिवर्तित किया गया है।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के प्रश्न को, केन्द्र और घटक राज्यों के बीच बढ़ते हुए अलगाव के सन्दर्भ में अत्यधिक महत्ता प्राप्त हुई है। यह अलगाव राज्यों के अधिकारों पर लगातार आक्रमण और उनके कम हो जाने के कारण उत्पन्न हुआ है जो भारतीय एकता को विघटित करने वाले विभाजक बलों के आक्षेपों के कारण बढ़ा है।

भारतीय एकता के हित के लिए यह अत्यधिक जरूरी है कि केन्द्र और भारतीय संघ की घटक इकाइयों के बीच अलगाव की इस प्रक्रिया को समाप्त किया जाए। हमारी पार्टी देश की एकता को बनाए रखने के लिए और विघटन की सभी शक्तियों से लड़ने को तैयार है। हम निश्चित रूप से कार्यसाधक और कार्यकुशल केन्द्र की स्थापना के लिए तत्पर हैं, जो देश की रक्षा करने में अर्थ-व्यवस्था को सुव्यवस्थित और उसे संचित करने में सक्षम है तथा उसे उचित रूप से ऐसे प्राधिकार प्राप्त हों, जिससे कि उसके अन्य कार्य जैसे विदेश नीति, दूर संचार, विदेश व्यापार आदि पूरे किए जा सकें।

दुर्भाग्यवश, भारत को बाहरी आक्रमण से बचाने की जनता के बीच एकता की इस ललक का शोषण, सत्ताधारी पार्टी द्वारा केन्द्र की उपयुक्त तानाशाही अधिकारों के अधीन किया गया है। घटक राज्यों के अधिकारों का निरसन करके उन्हें कम किया गया है।

केन्द्र की निहित स्वार्थ सम्बन्धी नीतियों, आर्थिक संकट और जनता की निर्धनता का परिणाम यह होता है कि राज्यों के अधिकारों और लोकतांत्रिक अधिकारों पर आक्षेप किया जाता है। इस प्रक्रिया से केन्द्र पर राज्यों की दीन-हीन आर्थिक निर्भरता बढ़ती है। केन्द्र यह निर्धारित करता है कि सार्वजनिक ऋण की राशि का लेन-देन राज्यों द्वारा किया जाए, बैंकिंग क्षेत्र द्वारा क्रेडिट उपलब्ध कराके एकाधिकार स्थापित किया जाए तथा राज्यों को केन्द्र द्वारा मन्जूर किए गए तदर्थ अनुदानों पर आश्रित बनाया जाए। राज्य योजना के आकार का निर्धारण केन्द्र को करना होता है, किन्तु राज्यों द्वारा उनका निर्धारण करने की वजह से उनका मजाक बन कर रह जाता है और वह केन्द्रीय योजना का एक अनुबद्ध बन जाता है।

संविधान द्वारा केन्द्र को पर्याप्त शक्ति दी गयी है, जिससे कि देश के किसी भी भाग में उत्पन्न होने वाली किसी भी समस्या के सम्बन्ध में हस्तक्षेप करके उस पर विचार किया जा सके। 30 वर्ष की लम्बी अवधि तक देश पर शासन करने के दौरान उसने सारी शक्ति अपने अधीन कर ली जबकि अधिकांश राज्यों में उस एक दल की सरकार थी। उनके बृहत् अधिकारों का प्रयोग अकसर राज्य चुनावों में विधिवत् रूप से चुनी गई विरोधी पार्टियों के विरुद्ध किया गया। राज्यपाल के अधिकारों का दुरुपयोग करके सत्ताधारी पार्टी के अल्पसंख्यक मंत्रिमंडल संस्थापित किए गए और निर्वाचनमण्डल के निर्णय को रद्द कर दिया गया।

इसी प्रकार राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित किए गए बिलों पर राष्ट्रपति की अनुमति को रोकने से, जनता के हित में पारित किए गए प्रगामी प्रस्तावों को विकृत करने में केन्द्र को सफलता प्राप्त हुई है। पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार द्वारा पारित की गई कृषि सम्बन्धी विधान पर अभी राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त होनी बाकी है, यद्यपि विधान-मण्डल द्वारा उसे मत दिए हुए महीनों बीत चुके हैं।

पिछले वामपंथी मंत्रिमंडल द्वारा पारित किए गए गुप्त मतदान द्वारा व्यवसाय संघों को मान्यता प्रदान करने के उपाय उसी प्रकार सतर्कतापूर्वक समाप्त कर दिए गए, जिस प्रकार सहमति रोकने के उपाय समाप्त कर दिए गए थे। इसी प्रकार के उपाय वामपंथी लोकतांत्रिक सरकार द्वारा केरल और तमिलनाडु विधान मण्डल के लिए पारित किए गए थे, जिन्हें समाप्त कर दिया गया।

हमारी पार्टी राज्यों के लिए वास्तविक समानता और स्वायत्तता का सुझाव देती है। राज्य सरकारों और विधानमण्डलों को पर्याप्त स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्त होने चाहिए, ताकि वे उन्हें नियुक्त करने वाली जनता की इच्छाओं और फरमान को पूरा कर सकें। घटक की संघीय इकाइयों को निर्भरता की स्थिति तक रखने से भारतीय लोकतंत्र की एक भुजा की शक्ति समाप्त हो जाती है।

आज जो पार्टी केन्द्र में राज कर रही है, वह विभिन्न राज्यों में सत्ताधारी पार्टी नहीं है। इससे केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों के उपयुक्त पुन: वितरण के प्रश्न को अत्यधिक महत्ता प्राप्त होती है। जहां तक संसाधन संग्रहण और नियतन का सम्बन्ध है, मुवक्किलों की स्थिति को देखते हुए राज्यों की स्थिति में परिवर्तन आ जाता है। उन्हें मुख्य प्रशासनिक सेवाओं पर भी नियन्त्रण करना होता है, ताकि अधिकारी तन्त्र के अनुरूप कार्य किया जा सके।

ऐसे व्यक्तियों से यह प्रश्न किया जा सकता है, जो यह तर्क देते हैं कि राज्यों को अधिक अधिकार सौंपने से देश की एकता के लिए खतरा पैदा हो जाएगा। वे लोग ऐसा क्यों सोचते हैं कि समूची देशभक्ति केन्द्र में केन्द्रित है, इसलिए जो अधिकार उन्हें दिए गए हैं, उनका प्रयोग राष्ट्रीय हित के लिए किया जाएगा और जो अधिकार राज्यों को दिए गए है, उनका प्रयोग राष्ट्रीय हितों को धोखा देने के लिए किया जाएगा जबकि इस प्रकार के चिन्तन से जनता का अलगाव केन्द्र से हो होता है, जिसके बारे में यह समझा जाता है कि वह संगठित राष्ट्र की इच्छाओं को प्रस्तुत करेगी। सम्पूर्ण देश की एकता केवल घटक भाषाविद् इकाइयों की समानता और स्वतन्त्रता की स्थिति पर आधारित है, न कि केन्द्र द्वारा नियन्त्रण रखने और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार राज्यों की अधीनता के आधार पर।

केन्द्र को प्रभावी बनाए रखने की आवश्यकता पर विचार करने के लिए उसे आवश्यक जरूरत में शामिल कर लेना चाहिए, जिससे कि भारतीय एकता और लोकतन्त्र को सुरक्षित रखने के लिए राज्य के अधिकारों का विस्तार किया जा सके। इस सम्बन्ध में हम निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं :—

1. अनुच्छेद 248 में संशोधन करके राज्य स्वायत्तता को इस प्रकार सुरक्षित रखा जाए, जिससे कि संघ के अवशिष्ट अधिकार इकाइयों के पास रहे न कि केन्द्र के पास।

अनुच्छेद 249 में संसद को ऐसे अधिकार दिए गए हैं, जिनके अनुसार वह राष्ट्रीय हित को देखते हुए राज्य सूची के विषय पर कानून बना सकता है, जिसे हटा दिया जाना चाहिए।

2. बड़े उद्योग और विद्युत या सिंचाई योजनाएं, जो एक से अधिक राज्य से सम्बन्धित हैं, को संघ सूची में रखा जाना चाहिए। सातवीं अनुसूची में सूची को दुबारा प्रतिपादित किया जाना चाहिए ताकि राज्यों को निश्चित प्रकार के उद्योगों के सम्बन्ध में अनन्य अधिकार दिए जा सकें।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस या संघ सरकार की अन्य पुलिस बलों को दी गयी यह शक्ति कि वे राज्यों में तैनात की जा सकती है, वापस ले ली जानी चाहिए, विधि-व्यवस्था और पुलिस का विषय पूरी तरह राज्यों के क्षेत्र में होना चाहिए और उन्हें किसी भी क्षेत्र विशेष रूप से स्थापित बलों के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

3. अनुच्छेद 356 और 357 जिसके अनुसार राष्ट्रपति को राज्य सरकार या उसकी किसी भी सभा को या दोनों को विघटित करने का अधिकार प्राप्त है, इस खण्ड से हटा देना चाहिए। राज्य उपबंध में संवैधानिक विश्लेषण, लोकतांत्रिक कार्रवाई के लिए किए जाएंगे या चुनाव स्थगित कर दिए जाएंगे और नई सरकार स्थापित की जाएगी, जैसा कि केन्द्र के मामले में होता है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 360, जिसके अनुसार राष्ट्रपति को भारत के क्रेडिट या वित्तीय स्थायीत्व की आशंका के आधार पर राज्य प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार है, इस खण्ड से हटा देना चाहिए।

4. अनुच्छेद 200 और 201 के अनुसार राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह राष्ट्रपति की अनुमति के लिए सभा द्वारा पारित किए गए आरक्षित बिलों को नष्ट कर दे। राज्य विधानमण्डलों को राज्य क्षेत्र में सर्वोच्च होना चाहिए और इस क्षेत्र में केन्द्र द्वारा किसी भी आधार पर कोई हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

5. अखिल भारतीय सेवाएं, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, आदि की व्यवस्था को समाप्त किया जाना चाहिए जिनके अधिकारी राज्यों में नियुक्त किए गए हैं किन्तु जो केन्द्रीय सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियन्त्रण के अधीन रहे हैं।

संघ सेवाओं के कार्मिको को संघ सरकार के अनुशासनिक नियंत्रण में रहना चाहिए और जो कार्मिक राज्य सेवाओं में हैं, उन्हें सम्बद्ध राज्य सरकारों के अनुशासनिक नियन्त्रण में रहना चाहिए। केन्द्रीय सरकार को, राज्य सेवाओं के कार्मिकों पर कोई अधिकारिता स्थापित नहीं करनी चाहिए।

6. भारतीय एकता के हित को देखते हुए और समानता की भावना को आगे बढ़ाने के लिए, जन भाषाओं के लिए सही दृष्टिक्षेप जरूरी है।

प्रशासन, विधान, न्यायपालिका के क्षेत्र में और शिक्षा में अनुदेश के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग का बहिष्कार किया जाना चाहिए।

7. वर्तमान निर्वाचकीय पद्धति से किसी पार्टी को अल्पमत प्राप्त होने पर भी उसे संसद या विधानमण्डल की अधिकांश सीट प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि आनुपातिक निर्वाचन पद्धति प्रारंभ की जाए और वापस बुलाने का अधिकार प्रदान किया जाए।

8. भारतीय संघ में जम्मू और कश्मीर की वर्तमान विशेष स्थिति बनाई रखी जाए।

आर्थिक और वित्तीय मामले

केन्द्र और राज्यों के बीच आर्थिक और वित्तीय सम्बन्ध बनाए रखने के अलावा राजनीतिक, प्रशासनिक और विधायी मामलों के लिए अत्यधिक सतर्कतापूर्वक पुनः मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसलिए हम वर्तमान राजस्व सम्बन्धी व्यवस्थाओं में निम्नलिखित परिवर्तनों का सुझाव देते हैं :—

1. निगम कर की आय को राज्यों के साथ साझे में लगाया जाना चाहिए।

2. आय कर पर अधिभार की समाप्त करके इसके विकल्पस्वरूप राज्यों के साथ उसकी आय का हिस्सा किया जाना चाहिए।

3. उत्पाद शुल्क पर अतिरिक्त शुल्क की स्कीम का परित्याग कर देना चाहिए।

4. ऐसे सिद्धान्तों की समीक्षा की जानी चाहिए, जिनमें "घोषित" माल के लिए निर्णय दिए गए हों और ऐसे माल के सम्बन्ध में बिक्री कराधान की दर बताई गई हो।

5. विधि निर्माण को संसद में शुरू किया जाना चाहिए, जिससे कि संविधान के संशोधन 46 के उपबन्धों को उचित रूप से कार्यान्वित किया जा सके।

6. ये प्रस्तावित परिवर्तन किए जाने के बावजूद, वित्त आयोग को राज्यों में अतिरिक्त अन्तरण के लिए और उसके बीच परस्पर आबंटन के लिए निर्णय देने की आवश्यकता होगी। इसके बावजूद, संविधान के अनुच्छेद 74 के उपबन्धों के अनुसार राष्ट्रपति को, वित्त आयोग के संघटन और उसके विचारणीय विषयों का निर्धारण करने से पहले राज्य सरकार से परामर्श करना चाहिए।

7. इसी प्रकार हम यह भी अनुभव करते हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद और योजना आयोग के कार्यसंचालन का गंभीरतापूर्वक पुनः मूल्यांकन करना चाहिए। योजना आयोग जिसके पास न तो कोई संवैधानिक मन्जूरी है और न ही संघ सरकार के संकल्प से गठित किया गया कोई सांविधिक ढांचा, इसके संघटन का निर्धारण केन्द्र द्वारा किया जाता है और उसके व्यय का भुगतान भी केन्द्र द्वारा ही किया जाता है। यह एक परम्परा है कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का सदस्य, आयोग का कार्यकारी अध्यक्ष होता है।

8. राष्ट्रीय विकास परिषद को भी कोई संवैधानिक या विधिक मंजूरी नहीं है। फिर भी उसे सामाजिक और आर्थिक विकास से संबंधित समस्याओं की बाबत नीति बनाने वाले सर्वोच्च निकाय के रूप में माना जाता है।

9. हम यह सुझाव देते है कि योजना आयोग को, राष्ट्रीय विकास परिषद के पूर्णकालिक सचिवालय के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए और केन्द्र तथा राज्य संयुक्त रूप से उसका वित्तपोषण करें। इसके गठन का निर्णय भी राज्य सरकारों से परामर्श करके किया जाए। इस प्रकार की व्यवस्था की जाए कि उसे संघ सरकार से इस प्रकार से अलग किया जा सके कि उसमें कार्य कर रहे व्यक्तियों को सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान भी केन्द्र और राज्य द्वारा संयुक्त रूप से दी गई निधि में से किया जाए। इसे इस प्रकार से प्राधिकार दिया जाए कि वह स्वतंत्र रूप से सामाजिक और आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करने और उनका विश्लेषण करने के लिए प्राधिकृत हो तथा अपनी सिफारिश परिषद को दे सके।

10. राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय योजना सहायता के सिद्धान्त निर्धारित करते समय योजना आयोग को यह आदेश दिया जाए कि वह देश में आर्थिक विकास के पैटर्न में वर्तमान असंतुलन, विभिन्न राज्यों में गरीबी के सापेक्ष प्रभाव, बेरोजगारी की स्थिति, राज्यों में हरिजन और जनजातीय आबादी का अनुपात, सिंचाई के स्तर, विद्युत उत्पादन और औद्योगीकरण और इसी प्रकार के अन्य कारकों को ध्यान में रखे।

11. हम यह भी सुझाव देना चाहेंगे कि उस वर्तमान व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाए जिसके अनुसार योजना आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय सहायता के 70% भाग को ऋण के रूप में देने और उसकी चुकौती की बात कही गयी है। योजना के लिए सभी प्रकार की केन्द्रीय सहायता अनुदानों में परिवर्तित कर दी जाए और इस सम्बन्ध में बकाया ऋण बट्टे खाते डाल दिए जाएं।

12. राजकोषीय मामलों में संघ सरकार ने जो पूर्ण प्रभुत्व जमा लिया है उसको बाबत विचार करने से पता चलेगा कि वर्तमान समय में किए जा रहे सकल अंतरणों का बहुत बड़ा भाग वित्त और योजना आयोगों की सिफारिशों के अनुसार नहीं किया जा रहा है बल्कि केन्द्र अपने विवेक के अनुसार ये अंतरण कर रहा है। इस प्रकार के विवेकाधीन अंतरण परिसंघीय अर्थ-व्यवस्था के सुदृढ़ सिद्धान्तों के लिए अभिशाप हैं इसलिए उन्हें शीघ्र समाप्त कर दिया जाए।

13. एक ऐसी प्रक्रिया निकाली जाए जिसके तहत राज्य सरकारों को राष्ट्र की आर्थिक और निवेश संबंधी नीतियां तैयार करने के समय सहबद्ध किया जाए।

14. भारतीय रिजर्व बैंक के निदेशक मंडल में राज्य सरकारों को बारी-बारी से अपना प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जाए। उन्हें केन्द्रीय निदेशक मंडल में भी बारी-बारी से अपना प्रतिनिधित्व करने की अनुमति देने के बारे में भी विचार किया जाए।

15. संघ सरकार अपनी आय से अधिक अपने व्यय के लिए स्वयं वित्त-पोषण कर सकती है। इन प्रतिभूतियों पर ब्याज की दर केवल 6.5% है। इसके विपरीत राज्यों को ऐसे ओवरड्राफ्टों में विशिष्ट सीमाओं के अधीन रहना पड़ता है जिन्हें वे कभी-कभी भारतीय रिजर्व बैंक से आहरित करती हैं और जिनके संबंध में उनसे 13 प्रतिशत की दर से ब्याज प्रभारित किया जाता है। यह विसंगति दूर करने और मुद्रित धनराशि में राज्यों को न्यायसंगत हिस्सा देने की जरूरत है।

16. एक स्थायी व्यय आयोग भी उपयोगी हो सकता है जो केन्द्र तथा राज्य को दोनों फिजूलखर्चों की स्थिति में परामर्श दे।

17. केन्द्र, पेट्रोलियम-उत्पादों, कोयले, लोहे, इस्पात आदि जैसे पण्यों पर उत्पाद-शुल्क का समायोजन करने की बजाय इनकी निर्देशित कीमतें बढ़ाकर अतिरिक्त संसाधन एकत्रित करता है। इसके परिणामस्वरूप राज्यों को करोड़ो रुपयों के राजस्व से वंचित रखा गया है। हमारा सुझाव है कि निर्देशित कीमतों में वृद्धि करके जो भी संसाधन जुटाए जाएं उनमें केन्द्र की 40% हिस्सा राज्यों के साथ बांटने के लिए कहा जाए।

18. इस समय राज्यों को कुल बाजार उधार का बहुत कम हिस्सा दिया जाता है और उसके लिए भी संघ सरकार का अनुमोदन लेना पड़ता है। एक वर्ष में कुल उधार का कम से कम 50% हिस्सा राज्य सरकारों को आबंटित किया जाए।

19. राज्य सरकारों को औद्योगिक (विकास तथा विनियम) अधिनियम के उपबंधों तथा कार्यान्वयन के बारे में गंभीर आशंकाएं हैं। केन्द्र द्वारा लाइसेन्स देने के कुछ क्षेत्रों का आरक्षण करते हुए राष्ट्रीय विकास परिषद तथा योजना आयोग कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित कर सकती है। लाइसेन्स देने के कुछ मामले राज्यों पर छोड़े जा सकते हैं।

20. हमारा यह भी अनुरोध है कि संघ सरकार से 15 से लेकर 20 मुख्य कारखानों/औद्योगिक कच्चे माल तथा अनिवार्य वस्तुओं की पूरे देश में एक समान कीमतों पर पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए कहा जाए।

21. सार्वजनिक क्षेत्र में केंद्रीय निवेश की बाबत निर्णय लेते समय राज्यों को विश्वास में लिया जाए।

22. छावनी क्षेत्र में सिविल जनता के प्रशासन का कार्य संबंधित नगर पालिकाओं को सौंपा जाए।

23. खान-क्षेत्रों के विकास के लिए खनिजों पर उपकर की उगाही के लिए राज्य सरकारों को विशिष्ट शक्तियां दी जाएं।

24. वन संरक्षण अधिनियम लागू होने के कारण पेश आने वाली कठिनाइयां दूर करने के लिए राज्यों को कुछ शक्तियां दी जाएं।

25. केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के कर्मचारियों के वेतन, मजदूरी और महंगाई भत्ते के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनायी जाए।

26. केन्द्रीय सरकार के उपक्रमों तथा कार्यालयों का स्थान निर्धारण क्षेत्रीय संतुलन हासिल करने और आर्थिक विचारों पर आधारित होना चाहिए न कि राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली रियायतों पर।

27. विशेष पण्यों के लिए समर्थन कीमत उत्पादकता और बाजार-कीमत जैसी स्थानीय स्थितियों को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाए।

आशा है कि हमने जो सुझाव दिया है उससे केन्द्र को केवल वह शक्तियां छोड़नी पड़ेंगी जो उसने संविधान की परिसंघीय भावना का उल्लंघन करके हथियाई हैं। इसके अतिरिक्त इस बात की भी कुछ गारंटी हो जाएगी कि राज्यों को भविष्य में नगरपालिकाओं की भांति नहीं समझा जाएगा।

कम्युनिस्ट पार्टी ग्रॉफ इंडिया (मार्क्सिस्ट)

राज्य युनिट--आंध्र प्रदेश

ज्ञापन

वर्तमान केन्द्र-राज्य संबंधों का विशेष रूप से अध्ययन करने के लिए हमारे दल ने आपके आयोग के गठन का स्वागत किया था। क्योंकि इसका गठन हो जाने से भारत सरकार ने अनेक गैर-कांग्रेस (आई०) दलों की लगातार मांग का समर्थन किया था कि अनुच्छेद I के अधीन संविधान के निर्माताओं द्वारा यथा-परिकल्पित संघीय/संघ की सच्ची भावना दर्शाने वाले संविधान के संगत अनुच्छेदों का संशोधन किया जाए और उन्हें पुनः परिभाषित किया जाए। जिन बुनियादी बातों पर विचार किया जाना है और संविधान में जिस दिशा में परिवर्तन किए जाने हैं विशेष रूप से केन्द्र-राज्य संबंधों को प्रभावित करने वाले जिन उपबंधों में परिवर्तन किया जाना है, उनकी चर्चा हमारे दल ने राष्ट्रीय स्तर पर पहले ही कर दी थी। फिलहाल हम केवल अपने राज्य की ऐसी कुछ कठिनाइयों की ओर ही आपका ध्यान आकृष्ट करेंगे (आंध्र-प्रदेश) जो केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण में असंतुलन के कारण पैदा हुई हैं।

1. राज्यपाल द्वारा मनमाने ढंग से शक्तियों का प्रयोग

तत्कालीन राज्यपाल द्वारा श्री एन० टी० रामाराव की अध्यक्षता वाली राज्य सरकार को बर्खास्त किए जाने के कारण राज्य में जो खलबली मची थी उससे पता चलता है कि राज्यपाल ने शक्तियों का मनमाने ढंग से प्रयोग किया था। श्री एन० टी० रामाराव की अध्यक्षतावाली सरकार की बर्खास्तगी, उत्तरवर्ती मुख्यमंत्री श्री एन० भास्कर राव को शपथ दिलाना, विधान-मंडल में श्री एन० टी० रामाराव को प्राप्त बहुमत स्थापित करने के लिए 24 घंटे का भी समय न देना, साथ ही श्री भास्कर राव को एक महीने का समय देना और श्री भास्कर राव द्वारा पेश किए गए सभी प्रकार के लोगों को विधायकों के रूप में स्वीकार करना पूरे देश में सभी को ज्ञात है और अब यह घटना इतिहास का एक हिस्सा बन गयी है, चाहे उस समय सत्ताधारियों ने कुछ भी कहा हो या वह अब कुछ भी कहें। तत्कालीन राज्यपाल द्वारा कुछ विश्वविद्यालयों में उप-कुलपतियों की नियुक्ति के मामले में भी लोगों के प्रति प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार सरकार की इच्छाओं के विपरित नियुक्ति करना, राज्यपाल के मनमाने ढंग से कार्य करने का एक अन्य उदाहरण है जो सरकार के लोकतांत्रिक ढंग से कार्य करने की बुनियादी विचारधारा के एकदम विपरित है। उपर्युक्त घटना घटित होने का तथ्य, जिसे कानूनी रूप से संविधान के अनुसार शक्तियों का प्रयोग कहा गया है, इस बात का सूचक है कि संविधान में राज्यपाल की नियुक्ति संबंधी वर्तमान उपबंध संविधान की लोकतांत्रिक भावना के विपरित है और हमारे संविधान में यथापरिकल्पित संघीय/संघ के ढांचे के भी प्रतिकूल है। लगभग सभी राज्यों में राज्यपाल के पद के माध्यम से केन्द्र सत्तारूढ़ दल द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग के उदाहरण देखने में आते हैं इसलिए राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यदि किसी कारण से यह महसूस किया जाए कि राज्यपाल के पद को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता तो हमारा सुझाव है कि राज्य विधान मण्डल द्वारा सुझाए गए तीन नामों की सूची में से राज्यपाल की नियुक्ति की जाए। इस प्रकार से यह पूरी तरह स्पष्ट किया जाए यदि विषय राज्य सरकार की अधिकारिता के अंतर्गत आता हो तो विधानमंडल द्वारा बनाए गए सभी विधेयक अधिनियम अनुमोदन/हस्ताक्षर के लिए राज्यपाल के पास न भेजे जाएं। विधान मण्डल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखने का वर्तमान उपबंध उस स्थिति में पूरी तरह से हटा दिया जाए यदि वह विषय राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत आता हो जिस पर कानून बनाया गया है।

2. केन्द्र तथा राज्य के बीच शक्तियों का वितरण

सातवीं अनुसूची की सूची–II में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने के लिए राज्यों को प्रदत्त शक्ति सम्पूर्ण होनी चाहिए। सातवीं अनुसूची की सूची–III में सूचीबद्ध कुछ विषय जैसे न्याय प्रशासन, उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों का गठन और संगठन, वन, शिक्षा, आन्तरिक व्यापार और वाणिज्य तथा विद्युत सूची-III से हटा कर सूची–II में कर दिए जाएं। ऐसा करने से राज्य सरकार राज्य के विकास के लिए अधिक स्रोतों से संसाधन जुटा पाएगी। हमारे राज्य के विकास के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है।

3. वित्तीय संबंध

वर्तमान में आन्तरिक बाजार और विदेशों से कर्ज लेकर और घाटे की अर्थ-व्यवस्था के माध्यम से धन इकट्ठा करने की शक्तियां पूर्णतया केन्द्र द्वारा नियंत्रित है और वे असीमित है। इसी प्रकार से कर लगाने के साधन केन्द्र सरकार में केन्द्रीकृत हैं और राज्य सरकारों को अपने रोजमर्रा के रख-रखाव और विकास के लिए हमेशा याचक की स्थिति में रहना पड़ता है। घाटे की अर्थव्यवस्था और बाजार उधार के कारण राज्य को बढ़ी हुई कीमतों के कारण आघात सहन करना पड़ता है और समय-समय पर महंगाई भत्ते में वृद्धि मंजूर करने के लिए विवश होना पड़ता है। उसे न केवल अपने रोजमर्रा के प्रशासन के लिए अधिक खर्च करना पड़ता है बल्कि विकास के कार्यों पर भी खर्च करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राज्य सरकारों को अनुमोदन लेना पड़ता है और केन्द्र द्वारा निर्धारित कोटे तक सीमित उधार लेना पड़ता है। यहां तक कि विकास की गति और योजनाओं का आकार भी केन्द्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है :—

निवल बाजार उधार (आंकड़े अगले पृष्ठ पर दिए गए हैं) में आंध्र प्रदेश का हिस्सा प्रत्येक योजना अवधि में धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और उसे विवश हो कर अपनी सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण सहित अन्य विकास संबंधी कार्य-कलापों में कटौती करनी पड़ रही है।

कुल केन्द्रीय उधार में आंध्र प्रदेश के निवल बाजार उधार का हिस्सा

अवधि	कुल केन्द्रीय उधार (रुपए करोड़ों में)	सभी राज्यों का हिस्सा (%)	आन्ध्र प्रदेश का हिस्सा: राशि (रुपए करोड़ों में)	आन्ध्र प्रदेश का हिस्सा: कुल केन्द्रीय निवल उधार में प्रतिशतता
1. तीसरी योजना				
1961-62 से 1965-66	838.86	49.6	43.77	5.217
2. वार्षिक योजना				
1966-67 से 1968-69	481.38	47.8	19.73	4.098
3. चौथी योजना				
1969-70 से 1973-74	2,130.89	27.2	46.54	2.184
4. पांचवी योजना				
1974-75 से 1977-78	3,821.21	22.4	72.70	1.902
5. वार्षिक योजना				
1978-79 से 1979-80	3,981.31	9.5	26.23	0.658
6. छठी योजना				
1980-81 से 1984-85	14,766.27	10.2	278.77	1.887

इसी प्रकार, देश में कुल विकासात्मक व्यय में राज्यों का हिस्सा स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में कम हुआ है। प्रथम पंचवर्षीय योजन के दौरान यह 75.4% था, लेकिन छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान यह घटकर 60.5% रह गया। केन्द्रीय प्राप्तियों का कुल अंतरण जो प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान 36.4% था, कम होकर छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान 32.6% रह गया। यह कमी केन्द्रीय पूंजीगत खाते से राज्यों को दिए गए केन्द्रीय ऋण के मामले में जिसमें घाटे की अर्थ-व्यवस्था भी शामिल है, अधिक देखी गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान यह 61.5% थी परन्तु छठी पंचवर्षीय योजना पके दौरान केवल यह घट कर 27.1% रह गई। यह अधिक दुःखद स्थिति है। केन्द्र विवेकाधीन अनुदानों के माध्यम से राज्यों को पर्याप्त अंतरण कर रहा है जिसे निम्नलिखित आंकड़ों से देखा जा सकता है :—

अवधि	सांविधिक अंतरण करोड़ रु० (%)	विवेकाधीन अंतरण करोड़ रु० (%)
1951—56 . .	447(31.2)	634,(44.3)
1956—61 . .	918(32.0)	892(31.1)
1961—66 . .	1,590(28.4)	1,495(26.7)
1966—69 . .	1,782(33.3)	1,798.(33.6)
1969—74 . .	5,421(35.9)	6,145(40.7)
1974—79 . .	11,168(44.2)	6,357(25.1)
1979—84 . .	22,757(43.1)	14,704(26.9)
जोड़ 1951—84 .	44,083(40.7)	31,524(29.1)

संदर्भ—(i) 1951 से 1979 तक की अवधि के लिए सातवें वित्त आयोग (1978) की रिपोर्ट

संदर्भ—(ii) 1979 से 84 तक के लिए राज्य सरकारों की अर्थव्यवस्था आर० बी०आई० बुलेटिनें

उपर्युक्त से यह देखा जा सकता है कि राज्यों को केन्द्र से अनुदानों का विवेकाधीन अंतरण काफी बड़ी मात्रा में किया जाता है और यह लगभग उतना ही है जितनी योजना के लिए अंतरण की राशि है। अनुदान के विवेकाधीन अंतरण की बहुत बड़ी राशि के कारण राज्यों के प्रति राजनैतिक भेद-भाव और क्षेत्रीय असंतुलन की स्थिति पैदा हो रही है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में पहाड़ी क्षेत्रों के विकास के लिए केन्द्र द्वारा विशेष सहायता दी जाती है, परन्तु हमारे राज्य में सूखे से बहुत बुरी तरह प्रभावित क्षेत्रों के विकास के लिए भी ऐसी कोई सहायता नहीं दी जाती। इसलिए अनुदान का विवेकाधीन अंतरण केवल अप्रत्याशित राष्ट्रीय आपदाओं से निपटने के लिए सीमित रूप से किया जाए और अधिकांश अंतरण सांविधिक अनुदानों के रूप में किए जाएं। इसलिए राज्य तथा केन्द्र के बीच वित्तीय संबंधों को इस तरह से पुनः परिभाषित किया जाए ताकि हमारे राज्य सहित प्रत्येक राज्य को एकत्रित बाजार ऋणों घाटे की अर्थव्यवस्था निर्धारित कीमतों के माध्यम से प्राप्त आय, केन्द्रीय अधिभार और कुल केन्द्रीय राजस्व में निश्चित हिस्सा मिले जो राज्य को सौंपी गई जिम्मेदारियों के अनुरूप हो।

4. आयोजना और योजनाओं के लिए वित्त-प्रबंध

केन्द्र को दी गई अनन्य शक्तियों और योजना आयोग के माध्यम से प्रयोग में लायी जाने वाली इन शक्तियों के माध्यम से हमारी राज्य सरकार द्वारा तैयार की गई सातवीं पंचवर्षीय योजना के लिए निर्धारित राशि सात हजार करोड़ रु० से काट-छांट कर पांच हजार एक सौ करोड़ रु० कर दी गई। जनता की जरूरतों को पूरा करने के लिए अनुमोदित योजना परिव्यय बहुत कम है। संविधान में हालांकि योजना आयोग के संबंध में कोई विशिष्ट उपबन्ध नहीं है फिर भी राज्यों के विकास पर इसका बहुत अधिक प्रभाव है। संविधान में इस दृष्टि से पर्याप्त और विशिष्ट उपबन्ध करने की जरूरत है जिससे आयोजना प्रक्रिया और प्राथमिकताओं का निर्धारण आधारस्तर पर ही हो सके जिसे राज्य अंतिम रूप दें और जिसका अनु-मोदन राष्ट्रीय स्तर पर हो। ऐसा कदम उठाने से राज्यों को सही परिप्रेक्ष्य में आयोजना विकसित करने में सहायता मिलेगी जो जरूरतों पर अधिक आधारित होगी और जिसमें आयोजना तथा कार्यान्वयन दोनों ही स्तरों पर लोग शामिल होकर सीधे भाग ले सकेंगे। इसी प्रकार राज्य को अपने द्वारा प्रस्तावित योजना के लिए आवश्यक निधियां जुटाने के लिए पर्याप्त शक्तियां भी दी जाएं।

5. कृषि, कृषि-पण्यों के लिए कीमत निर्धारण तथा खाद्यान्न-व्यापार

कृषि को यद्यपि राज्य-विषयों के अंतर्गत शामिल किया गया है तथापि वर्तमान समय में किसानों और कृषि विकास की अर्थव्यवस्था को शासित करने वाले कारक पूर्णतया केन्द्र के अधीन हैं। इस नीति के कारण हमारे राज्य में कृषि का विकास न केवल रुक गया है बल्कि हमारे राज्य के किसानों की अर्थव्यवस्था को भी इसने बुरी तरह प्रभावित किया है। कृषि-उत्पादों के लिए कीमतें निर्धारित करने में हमारे राज्य का कोई हाथ नहीं होता। इसी प्रकार राज्य के भीतर और बाहर खाद्यान्नों के व्यापार में भी हमारे राज्य का कोई हाथ नहीं होता और हमारे राज्य को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न प्राप्त करने और अन्य कल्याणकारी कार्यक्रम चलाने के लिए भी प्राधिकृत नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए हमारा राज्य तंबाकू, अरंडी का तेल, कपास, खाद्यान्न आदि का बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादन करता है। तंबाकू अरंडी का तेल और कपास का व्यापार एकाधिकार प्राप्त व्यक्तियों द्वारा नियंत्रित है और किसानों को विवश होकर इस बात के बावजूद कि संकट के समय केन्द्रीय निगम स्थिति संभाल लेते हैं अपना माल एकाधिकार प्राप्त व्यक्तियों द्वारा निर्धारित कीमतों पर बेचना पड़ता है। इसी प्रकार खाद्यान्नों के लिए अधिप्राप्ती कीमत राज्यों के भीतर मौजूदा परिस्थितियों को ध्यान में न रखकर थोक उत्पादन लागत के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस कारण से हमारे राज्य के किसानों को नुकसान होता है और राज्य भी अपनी आयोजना के लिए आवश्यक वित्त जुटाने का आधार खो देता है। इसलिए राज्यों को उत्पादन-लागत परिकलित करने और राज्य के कृषि-उत्पादन के लिए बिक्री-कीमत निर्धारित करने हेतु ब्यूरो गठित करने की शक्ति देने के लिए संविधान में विशिष्ट उपबंध किया जाए। कृषि उत्पादों के लिए राज्य को ही एकमात्र खरीदार एजेन्सी बनाया जाए और उसे केन्द्रीय सामूहिक भंडार में अंशदान देने के बाद देश के भीतर राज्यों में थोक-व्यापार करने तथा केन्द्र की सहमति से देश के बाहर अधिशेष माल का निर्यात करने की अनुमति दी जाए।

6. राज्य के अनन्य विषय के रूप में सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण का कार्यान्वयन

हमारे राज्य द्वारा प्रस्तावित वंदराज स्वामी परियोजना' श्री रामसागर' द्वितीय चरण तेलुगु गंगा पोलावरम आदी जैसी सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण के लिए केन्द्रीय अनुमोदन कई वर्षों से लंबित हैं और इस वजह से निर्माण की लागत में बहुत अधिक वृद्धि हुई है और राज्य के राजकोष तथा लोगों पर बहुत अधिक बोझ पड़ा है। केन्द्र सरकार की आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप (जैसे कि मुद्रास्फिती और प्रशासनिक कीमतें) रुपए के मूल्य में कमी होने के कारण एक समय लाभकारी मानी जाने वाली परियोजनाएं अब अलाभकारी हो गई हैं। प्रायः विलम्ब के लिए यह तर्क दिया जाता है कि वनों के कुछ क्षेत्र काटने पड़ेंगे। ऐसे सभी मामलों में यदि राज्य सरकार उतने ही क्षेत्र पर जितने क्षेत्र में वनों की कटाई की गई है, वनरोपण करने के लिए क्षतिपूर्ति करने के लिए सहमत हो तो सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण कार्य आरम्भ करने में केन्द्र को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। केन्द्रीय जल अयोग द्वारा आबंटित जल की मात्रा का उपयोग करने के लिए सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण और विकास का कार्य केवल राज्यों के अनन्य विषयों में शामिल किया जाए ताकि उनका अनुमोदन प्राप्त करने में विलम्ब न हो।

7. टेलिवीजन और रेडियो

रेडियो और टेलिवीजन जैसे जनसंपर्क के साधन पूरी तरह से केन्द्र के नियंत्रण में हैं और राज्यों को अपनी नीतियों और विकास कार्यक्रमों के लिए दैनिक कार्यक्रमों में पर्याप्त समय नहीं दिया जाता। यह स्थिति उस समय और भी बिगड़ जाती है जब केन्द्र तथा राज्यों में दो विभिन्न दल सत्ता में आते हैं। पिछले अनुभव से भी पता चलता है कि जनसंपर्क के ये माध्यम पार्टी के कार्यों के लिए विशेष रूप से चुनाव के दौरान काम में लाए जाते हैं। रेडियो तथा टेलीविजन के माध्यम से लोगों तक अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए राज्य सरकारों के अधिकार को संविधान द्वारा मान्यता मिलनी चाहिए। इन साधनों का दुरुपयोग रोकने के लिए इन्हें स्वायत्त निगमों को सौंप दिया जाए और उन पर केवल तथ्यात्मक सूचनाएं देने की जिम्मेदारी डाल दी जाए। राज्यों को भी अपने विचार प्रकट करने तथा विकास कार्यक्रम बताने के लिए इन साधनों पर समय आबंटित किया जाए।

8. राज्यों के पदों पर केन्द्रीय सेवा के कार्मिकों की तैनाती समाप्त करना

वर्तमान समय में केन्द्रीय संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी राज्यों के पदों पर तैनात किए जाते हैं, परन्तु राज्य का उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता। दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार का उन पर सीधा नियंत्रण होता है और उनके माध्यम से राज्य के प्रशासन पर भी नियंत्रण हो जाता है। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश की सरकार ने हाल ही में कुछ भारतीय प्रशासनिक सेवा/भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को भ्रष्टाचार तथा अपने पद के दुरुपयोग के आरोपों पर निलंबित किया था, परन्तु केन्द्र सरकार ने उन्हें बहाल कर दिया। इस कार्रवाई के कारण रोजमर्रा के प्रशासन में भ्रष्टाचार समाप्त करने के राज्य सरकार के प्रयासों को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया है।

राज्य के पदों पर भारतीय प्रशासनिक सेवा/भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को तैनाती की परिपाटी समाप्त कर दी जाए। केन्द्रीय संवर्ग तथा राज्यों के संवर्ग पद उनके अपने-अपने संवर्ग के कर्मचारियों द्वारा भरे जाएं और केन्द्र का राज्य-संवर्ग के कर्मचारियों या राज्य का केन्द्रीय संवर्ग के कर्मचारियों पर कोई नियंत्रण नहीं होना चाहिए। उपर्युक्त बात को ध्यान में रखते हुए हमारे संविधान में एक विशिष्ट उपबन्ध जोड़ दिया जाए।

9. राष्ट्रीय विकास परिषद

राष्ट्रीय विकास परिषद, में केन्द्र तथा राज्य दोनों के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए हमारे संविधान में इस बारे में एक विशिष्ट उपबन्ध होना चाहिए। योजना आयोग को प्राथमिकताएं निर्धारित करने, विकास के लिए संसाधनों का पता लगाने आदि का काम सौंपा जाता है, अतः इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कार्य करना चाहिए। ऐसा करने से देश के विकास में अर्थात, योजनागत प्राथमिकताओं के निर्धारण तथा संसाधन जुटाने आदि जैसे कार्यों में विभिन्न राज्य शामिल होंगे और उनकी सहभागिता के कारण विकास अधिक उपयोगी और प्रभावी होगा।

अपनी पार्टी की ओर से हमारा अनुरोध है कि हमारे संविधान में अपेक्षित परिवर्तनों की सिफारिशों को अंतिम रूप देने से पहले ऊपर दी गई बातों को ध्यान में रखा जाए ताकि हम संविधान में परिकल्पित संघीय/संघ के ढांचे के संपूर्ण उद्देश्य प्राप्त कर सकें।

इंडियन नेशनल कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस)

अखिल भारतीय कांग्रेस (आई) समिती

ज्ञापन

भारत सरकार ने केन्द्र राज्य संबंधों पर एक आयोग का गठन किया है जो आमतौर पर सरकारिया आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग के विचारणीय विषय इस प्रकार है :—

"1. आयोग सभी क्षेत्रों में शक्तियों, कार्यों और उत्तरदायित्वों के मामले में संघ तथा राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्था के कार्यचालन का अध्ययन और समीक्षा करेगा और उपयुक्त समझे जाने वाले परिवर्तन या उपायों का सुझाव देगा।

2. केन्द्र तथा राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्थाओं के कार्यचालन की जांच तथा समीक्षा करते समय तथा अपेक्षित परिवर्तनों और उपायों की सिफारिश करते समय आयोग वर्षों में हुए सामाजिक और आर्थिक विकास को ध्यान में रखेगा और संविधान की स्कीम और ढांचे की ओर सम्यक ध्यान देगा जिसे देश की स्वाधीनता बनाए रखने और देश की एकता तथा अखंडता सुनिश्चित करने के लिए, जो लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, हमारे प्रवर्तकों द्वारा अत्यंत परिश्रम से तैयार किया गया था।

इस पत्र का आशय इस संबंध में अखिल भारतीय कांग्रेस (आई) समिति के विचारों से आयोग को अवगत कराना है।

सरकारिया आयोग ने अपनी प्रश्नावली में केन्द्र राज्य संबंधों के पूरे मामले को सात भागों में बांट दिया है, जो इस प्रकार हैं :—

I प्रस्तावना (मूलत: ये प्रश्न परिसंघ तथा इससे संबंधित मामलों पर हैं)
II विधायी संबंध
III राज्यपाल की भूमिका
IV प्रशासनिक संबंध
V वित्तीय संबंध
VI आर्थिक तथा सामाजिक योजना
VII विविध। इस भाग के अधीन छ: उप पैरा हैं :—
  I उद्योग
  II व्यापार तथा वाणिज्य
  III कृषि
  IV खाद्य तथा नागरिक आपूर्ति
  V शिक्षा
  VI अन्तर-सरकारी समन्वय

इस ज्ञापन के प्रयोजन के लिए यह प्रस्ताव किया गया है कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के विचार पेश करने के लिए इसी वर्गीकरण को अपनाया जाए।

भाग I

प्रस्तावना

सभी क्षेत्रों में शक्तियों, कार्यों और उत्तरदायित्वों की बाबत संघ तथा राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्था के विशिष्ट संदर्भ में संविधान के कार्यचालन की व्यापक समीक्षा की जाए परन्तु यह कार्य उन कारकों, परिस्थितियों, आयासों, प्रभावों और दबावों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और मूल्यांकन को ध्यान में रखकर किया जाए जिनके कारण संविधान में प्रतिष्ठापित मौजूदा ढांचा लाजिमी तौर पर उभर कर सामने आया है।

बहुत आरंभिक समय से ही अर्थात, अशोक और हर्षवर्धन के समय से लेकर मुगलों के समय तक और यहां तक कि 1857 तक भारत में राजतन्त्रीय राज्य के और जब केन्द्रीय सरकार का हुक्मनामा पूरे देश में चला, तब भी राजनैतिक ढांचे का स्वरूप राजतंत्रीय ही था। ब्रिटिश सत्ता के आगमन के बाद ब्रिटिश साम्राज्य केन्द्रीय राजनैतिक प्राधिकार का प्रतिनिधित्व करने लगा और देश के जो भाग ब्रिटिश साम्राज्य के सीधे प्रशासन के अन्तर्गत आते थे, उन्हें प्रशासन की अलग इकाइयों के रूप में निर्धारित किया गया। वाइसराय ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि था और सभी शक्तियां उसमें निहित थीं। राज्यपाल के अधीन प्रांत प्रशासन का एक यूनिट था। संक्षेप में, राजनैतिक ढांचा एकात्मक प्रकार का था और संघीय ढांचे के बारे में किसी की कोई धारणा नहीं थी।

ब्रिटेनवासी ओलिवर ह्यूम के प्रेरक नेतृत्व के अधीन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्माण के बाद देश के अभिशासन में अधिक हिस्सा देने की मांग के लिए एक आंदोलन शुरू हुआ। भारतीय परिषद, अधिनियम 1861 तथा 1892 में पहली बार लोकतांत्रिकता का पुट शामिल हुआ क्योंकि इसमें व्यवस्था की गई कि गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद जिसमें केवल कर्मचारी शामिल थे, उसमें विधायी परिषद, के रूप में विधायी संव्यवहार करते समय कुछ अतिरिक्त गैर-सरकारी सदस्य भी शामिल किए जाएं। परिषद के सभी सदस्य नामित थे। भारतीय परिषद, अधिनियम 1892 में प्रयत्न किया गया कि आधार को व्यापक बना कर भारत सरकार के कार्यों का विस्तार किया जाए और भारतीय समाज के गैर-सरकारी और देशी लोगों को शासन के कार्य में भाग लेने के लिए और अधिक अवसर दिया जाए। मोर्ले-मिनटो रिपोर्ट को मूर्त रूप देने के लिए अधिनियमित किए गए भारतीय परिषद, अधिनियम, 1909 में पहली बार लोकप्रिय शासन के तत्व के लिए ठोस कदम उठाया गया। यहां अधिक विस्तार से चर्चा करना अनावश्यक है। भारत सरकार अधिनियम, 1912 तथा 1915 का आशय सांविधानिक ढांचे में कोई मूलभूत परिवर्तन किए बिना केवल समेकन या संशोधन करना ही था। प्रशासन का स्वरूप पूरी तरह से एकात्मक रहा। मौनटेग चैम्सफोर्ट रिपोर्ट (1918) में पहली बार इस महान उप महाद्वीप के शासन के लिए परिसंघीय पद्धति की कल्पना की गई। प्रथम महायुद्ध के परिणाम स्वरूप और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मध्यमार्गियों के नियंत्रण के बाहर हो जाने के कारण और साथ ही राजनैतिक परिदृश्य पर महात्मा गांधी के अविर्भाव के कारण, ब्रिटिश सरकार ने भारत के तत्कालीन सेक्रेटरी आफ स्टेट तथा वायसराय से रिपोर्ट मांगी ताकि भारतीयों को देश के शासन में और अधिक अवसर दिया जा सके।

> ब्रिटिश सरकार ने 20 अगस्त, 1917 को घोषणा की कि महामहिम की सरकार की नीति "प्रशासन की प्रत्येक शाखा में अधिक से अधिक भारतीयों को ज्यादा से ज्यादा सहबद्ध करना और स्वत:शासी संस्थाओं का क्रमिक विकास करना है ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के एकीकृत भाग के रूप में ब्रिटिश भारत में एक जिम्मेदार सरकार क्रमिक रूप से अस्तित्व में आ सके"।

इसकी वजह से भारत सरकार अधिनियम 1919 अधिनियमित किया गया। भारत की राजनैतिक पद्धति की सं० विधानपूर्व घटनाओं में 1919 के अधिनियम का महत्व महामहिम जार्ज पंचम द्वारा 1919 में की गई राजकीय घोषणा के शब्दों से प्रकट है, जिसके द्वारा 1919 के अधिनियम का अधिनियमन घोषित किया गया था :—

> "भारत के इतिहास में एक अन्य युगान्तकारी घटना घटित हुई है। मैंने एक ऐसे अधिनियम को राजकीय स्वीकृति प्रदान की है, जिसका स्थान इस देश की संसद द्वारा भारत के बेहतर प्रशासन और इसके लोगों के बेहतर संतोष के लिए पारित किए गए अन्य महान ऐतिहासिक उपायों में बना रहेगा। 1773 और 1784 के अधिनियमों का प्रतिपादन, ईस्ट इण्डिया कंपनी के अधीन प्रशासन और न्याय की एक नियमित पद्धति स्थापित करने के लिए किया गया था। 1958 के अधिनियम द्वारा प्रशासन का अन्तरण साम्राज्य में कंपनी को कर दिया गया और उस सार्वजनिक जीवन की नींव रखी गई जो इस समय भारत में मौजूद है। 1861 के अधिनियम द्वारा प्रतिनिधि संस्थाओं का बीज बोया गया जो 1909 के अधिनियम द्वारा तेजी से जीवन्त रूप में सामने आया। यह अधिनियम जो अब कानून बन गया है, लोगों के चुने हुए प्रतिनिधियों को शासन में एक ऐसी सुनिश्चित सहभागिता प्रदान करता है और इसके पश्चात् पूर्ण प्रतिनिधित्व वाली सरकार के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।"

1919 के अधिनियम द्वारा आरंभ की गई प्रणाली की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख करना आवश्यक है। प्रांतों में राज्यपाल की जिम्मेदारियों को कम किए बिना (और उसके माध्यम से गवर्नर जनरल की) प्रांतों के प्रशासन के लिए द्विशासन की प्रणाली आरंभ करते समय उत्तरदायी सरकार बनाने का प्रयत्न किया गया। प्रशासन के विषय 2 वर्गों में विभाजित किए गए अर्थात् केन्द्रीय तथा प्रान्तीय केन्द्रीय विषय पूर्ण रूप से केन्द्रीय सरकार के एकमात्र नियन्त्रण के अधीन रखे गए। प्रांतीय विषयों को "अंतरित" और "आरक्षित" विषयों में विभाजित किया गया"। "अंतरित विषयों" का प्रशासन, विधायी परिषद के समक्ष उत्तरदायी, मंत्रियों की सहायता से राज्यपाल द्वारा किया जाता था। विधायी परिषद् में चुने हुए सदस्यों का अनुपात बढ़ाकर 70% कर दिया गया। "अंतरित विषयों" के सीमित क्षेत्र में उत्तरदायी सरकार की शुरुआत कर दी गई क्योंकि प्रांतीय के रूप में निर्दिष्ट प्रशासन के विषय अंतरण नियमों में शामिल कर लिए गए। न केवल प्रशासनिक मामलों में बल्कि विधायी और वित्तीय मामलों में भी प्रान्तों पर केन्द्रीय नियन्त्रण में ढील दे दी गई। राजस्व के साधन भी दो श्रेणियों में बांट दिए गए ताकि प्रांत अपने द्वारा जुटाए गए राजस्व की सहायता से प्रशासन चला सकें और इस प्रयोजन के लिए प्रांतीय बजट भारत सरकार से अलग कर दिया गया तथा प्रान्तीय विधान मण्डल को अपना स्वयं का बजट प्रस्तुत करने और राजस्व के प्रांतीय स्रोतों से संबंधित करों की उगाही करने की शक्तियां सौंप दी गई।

यहां यह कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था के कारण संघीयवत् ढांचे की शुरुआत हो गई परन्तु यह सही नहीं होगा क्योंकि प्रान्तों को संविधान अधिनियम, 1919 द्वारा शक्तियां प्राप्त नहीं हुई, परन्तु 1919 के अधिनियम के अधीन बनाए गए सुपुर्दगी संबंधी नियमों के अधीन केन्द्र से प्रत्यायोजन द्वारा प्राप्त हुई। केन्द्रीय विधानमण्डल को किसी भी विषय के संबंध में पूरे भारत के लिए कानून बनाने की

शक्ति बनी रही और केन्द्रीय विधान मण्डल की इस सर्वोच्च शक्ति के अधीन ही प्रांतीय विधान मण्डलों को "उस प्रान्त के तत्कालीन प्रदेशों के बेहतर प्रशासन और शान्ति के लिए कानून बनाने" की शक्ति प्राप्त हुई। एकात्मक ढांचा बनाए रखा गया, जिसमें गवर्नर जनरल शीर्ष (केन्द्र) पर था और एक ऐसी व्यवस्था की गई कि प्रांतीय विधेयक के लिए चाहे गवनेर की सहमति मिल गई हो, तब तक वह कानून नहीं बन सकता, जब तक उसके लिए गवर्नर जनरल की भी सहमति न मिल जाए। इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि 1919 के अधिनियम के अधीन एक ओर जहां राजनैतिक ढांचे का एकात्मक स्वरूपो ज्यों का त्यों बना रहे वहां मौंटेग–चैम्सफोर्ड रिपोर्ट में संभवतः संघीय राज्यकी कुछ अस्पष्ट आशाओं का संकेत मिलता है। रिपोर्ट में विशेष रूप से बताया गया है की परिसंघ के लिए उपयुक्त स्थितियां मौजूद नहीं हैं। क्योंकि भारत के प्रान्त ऐसे स्वतःशासी राज्य नहीं थे, जो संघीय सरकार[1] को कुछ शक्तियां समर्पित करते।

रॉलिट एक्ट तथा धारा 124(क), जो कि भारतीय दण्ड संहिता की राजनीति से संबंधित धाराओं में प्रमुख हैं, के अधीन महात्मा गांधी की दोषसिद्धि तथा उन्हें दिए गए 6 वर्ष के कठोर और बर्बर कारावास का परिणाम यह हुआ कि असहयोग आन्दोलन शुरु हो गया और स्वराज्य के लिए देशव्यापी आन्दोलन की शुरूआत हो गई। इसके कारण ब्रिटिश साम्राज्य भारत सरकार अधिनियम 1919 की धारा 84–क में यथापरिकल्पित सांविधिक आयोग नियुक्त करने के लिए बाधित हो गया, ताकि वह अधिनियम को बाबत जांच पड़ताल करके उससे कार्यचालन की रिपोर्ट दे और यह घोषित करे कि कुख्यात साइमन कमीशन, जिसमें केवल अंग्रेज ही थे, और जिसकी पहले ही समाज के राजनैतिक रूप से सजग लोगों द्वारा निंदा की गई थी, भारत आई। निराशाजनक परिस्थितियों में आशा की किरण जगाने के लिए 1929 में यह घोषणा की गई कि भारतीय राजनैतिक घटनाओं का लक्ष्य डोमोनियम हैसियत हासिल करना है। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट 1930 में प्रस्तुत को। स्थापित की जाने वाली एक नई राजनैतिक समिति से पहली बार यह आशा की गई कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादार सभी भारतीय राजवाड़ों को समिति में शामिल किया जाएगा, जो ब्रिटिश साम्राज्य की प्रभुसत्ता के अधीन हैं। ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए एक गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाई। ब्रिटिश सरकार के तथा ब्रिटिश-भारत के शिष्ट मण्डल ने और भारतीय राज्यों के शिष्ट मण्डल ने गोलमेज कान्फ्रेंस की चर्चाओं में भाग लिया। गोलमेज कान्फ्रेंस के विचार विमर्श में ब्रिटिश संसद की संयुक्त सिलैक्ट कमेटी ने स्वेत पत्र तैयार किया और समिति की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार विधेयक का मसौदा तैयार किया गया। बाद में इसमें कुछ संशोधन करके भारत सरकार अधिनियम 1935 के रूप में पारित कर दिया गया।

इस अवस्था में भारत सरकार अधिनियम 1935 की मुख्य विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करना उपयोगी होगा। भारतीय राज्य व्यवस्था के एकात्मक ढांचे के स्थान पर संविधान में परिसंघ का उल्लेख किया गया, जिसमें प्रान्तों और रजवाड़ों को परिसंघ की इकाइयों माना गया। संयुक्त संसदीय समिति ने कहा कि:

"एकात्मक और केन्द्रीयकृत सरकार में परिषद में गवर्नर जनरल पूरी संविधानिक इमारत की नींव की तरह है। परिषद में गवर्नर जनरल के माध्यम से ही सैक्रेटरी आफ स्टेट और अंततः संसद शान्ति, व्यवस्था और भारत सरकार की भलाई के लिए अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करती है"।

अधिनियम के अधीन परिकल्पित संघीय ढांचे में यह आवश्यक हो गया कि एकात्मक राज्य का अनेक स्वायत्त प्रान्तों में विभाजन किया जाए, जो केन्द्रीय सरकार से अपना प्राधिकार लेने की बजाय, जैसा कि पहले पद्धति के अन्तर्गत होता था, सीधे साम्राज्य से अपना प्राधिकार प्राप्त करे और इसके पश्चात् उसे संघीय ढांचे का रूप दे दिया जाए, जिसमें संघीय तथा प्रान्तीय सरकारें सीधे ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा प्रदत्त सुनिश्चित शक्तियां प्राप्त करें। संघीय ढांचे के मार्ग में यह रुकावट पेश आई कि रजवाड़ों के लिए इस बात का विकल्प था कि वे परिसंघ में सम्मिलित हों या न हों। जिस सहमति की आशा की गई थी, वह प्राप्त नहीं हुई। राज्य व्यवस्था का परिसंघीय स्वरुप अस्तित्व में नहीं आया परन्तु स्वायत्तता 1 अप्रैल, 1937 से प्रभावी हुई। स्कीम की कुछ संदिग्ध बातें हमारे

1. भारत के संवैधानिक कानून, तृतीय संस्करण, खण्ड I पृ० 147, पैरा 5 में एच० एम० सिर्वे द्वारा उद्धृत रिपोर्ट का पैरा 120, पृष्ठ 78.

विचार विमर्श में यहां रुकावट नहीं डाल सकतीं क्योंकि वे प्रस्तुत कथनों को देखते हुए बेतुकी हैं। परन्तु एक महत्त्वपूर्ण विशेषता की ओर अवश्य ध्यान दिया जाए और वह है केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच शक्तियों का विभाजन क्योंकि भारत के संविधान में भी आमतौर पर उसी विभाजन को अपनाया गया है। मुख्यतः तीन विभाजन किए गए जो इस प्रकार हैं :— 1. संघीय सूची, 2. प्रान्तीय सूची, 3. समवर्ती सूची। जहां तक विधान की अवशिष्ट शक्ति का संबंध है, उसके लिए एक अद्वितीय उपबन्ध मौजूद हैं, जो संसार के अन्य किसी भी भाग में देखने में नहीं आता। इसकी विशेषता यह है कि इसे न तो केन्द्र को दिया गया और न ही प्रान्तीय विधान मण्डल को। बल्कि गवर्नर जनरल को यह शक्ति दी गई कि विधानमण्डल सूची में जो मामला वर्णित नहीं है उसके संबंध में वह परिसंघ या प्रान्तीय विधानमण्डलों को कानून बनाने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। 1935 के अधिनियम में परिसंघीय ढांचे में प्रान्त बनाने के बाद जो घटनाएं हुई, उनका प्रभाव उस संवैधानिक रूपरेखा के कुछ पहलुओं पर हुआ, जिसके बारे में, हम विचार कर रहे हैं।

भारत को द्वितीय विश्वयुद्ध में, उसकी इच्छा के विरुद्ध घसीटा गया, इस बात का निर्णय ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि गवर्नर जनरल ने किया। इसका पहला परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस ने प्रान्तों में सत्तारुढ़ सभी कांग्रेसी मंत्रियों को अपना त्यागपत्र देने के लिए कहा और साथ ही केन्द्रीय विधान सभा के सदस्यों को सभा के अगले सत्र में उपस्थित न होने के लिए भी निर्देश दिए। इसके बाद कांग्रेस कार्यकारी समिति ने ब्रिटिश सरकार को स्पष्ट शब्दों में यह कहने के लिए आमंत्रित किया कि लोकतंत्र के बारे में उनके उद्देश्य क्या थे और उन्हें भारत के संदर्भ में किस प्रकार और कितनी जल्दी लागू किया जाएगा। गवर्नर जनरल ने प्रमुख समुदायों के बीच असहमति की निरर्थक दलील देकर कोई और राजनैतिक कदम नहीं उठाया। यहां मुस्लिम लीग की पाकिस्तान के नाम से एक अलग राज्य बनाने की मांग का संदर्भ है।

"यूरोप में विजय दिवस" के बाद ब्रिटेन में आम चुनाव हुए और लेबर पार्टी अप्रत्याशित रूप से सत्ता में आई और उसने मि० ऐटली के अधीन अपनी सरकार बनाई। भारत में राजनैतिक गतिरोध समाप्त करने के लिए 14 जून, 1945 को एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया गया। ब्रिटेन की स्थिति का स्पष्टीकरण देते हुए तत्कालीन गवर्नर जनरल ने कहा कि ब्रिटिश सरकार का प्रमुख भारतीय समुदाय की इच्छाओं के विपरीत कोई परिवर्तन करने का इरादा नहीं है। इस क्रूर दृष्टिकोण के कारण मुस्लिम लीग को निषेधाधिकार मिल गया जो देश के विभाजन पर तुली हुई थी। इसके तुरन्त बाद भारत के तत्कालिन सेक्रेटरी आफ स्टेट सर पेथिक लारेंस की अध्यक्षता में एक कैबिनेट मिशन बनाई गई। इस मिशन द्वारा प्रस्तुत की गई योजना में पिछली स्थिति के मुकाबले केवल यही बात नई थी कि भारत को यह चुनने की स्वतंत्रता दी गई कि उसका संविधान कैसा होगा, विश्व में उसकी स्थिति क्या होगी, यह पता लगने पर ब्रिटिश सरकार बिना किसी बाधा के और यथासंभव शीघ्र परिवर्तन लाएगी। कैबिनेट, मिशन के समक्ष मुस्लिम लीग ने कड़े शब्दों में कहा कि जब तक संविधान बनाने वाले तन्त्र की स्थापना का लम्बे समय से चला आ रहा विवाद सुलझा नहीं दिया जाता, तब तक यह अन्तरिम सरकार के गठन के बारे में चर्चा नहीं करेगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मन में कुछ दुविधा थी और उसने एकात्मक राज्यव्यवस्था के पक्ष में अपना मत प्रकट किया परन्तु साथ ही संघीय भारत के लिए भी तर्क पैश किया जबकि मुस्लिम लीग ने देश के विभाजन पर ही बल दिया। कैबिनेट मिशन की योजना असफल हो गई। प्रधान मन्त्री ऐटली ने हाउस आफ कामन्स में वक्तव्य दिया जिसमें पाकिस्तान के लिए मांग को प्रशासनिक, आर्थिक, सैनिक, भौगोलिक और सांख्यिकीय कारणों की वजह से असंदिग्ध शब्दों में अस्वीकार कर दिया गया। उन्होंने कहा कि सरकार इस बारे में कोई परामर्श देने में असमर्थ है कि "इस समय जो शक्ति ब्रिटेन के पास है, वह पूरी तरह से दो पृथक प्रभुसत्ताओं (हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की) को सौंप दी जाए"[2] इसे देखकर आशा हुई कि देश के विभाजन की मांग हमेशा के लिए समाप्त हो गई है।

देश को स्वाधीनता मिलने से पहले परिवर्तन के दौर में जो घटनाएं हुई और उसके बाद देश का दुखद विभाजन हुआ उस मध्यावधि में केवल दो बातें उल्लेखनीय हैं। हर प्रकार से देश का विभाजन रोकने के लिए एक असंगठित परिसंघ केलिए प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। जिसमें केन्द्र के लिए केवल 4 विधायी

2. संसदीय विचार विमर्श, हाउस आफ कामन्स, खण्ड 422 कालम–2113

शीर्ष आरक्षित किए गए अर्थात् (1) विदेश कार्य, (2) रक्षा, (3) संचार, (4) मुद्रा। शेष सभी विधायी शक्तियां, जिसमें ऐसी अवशिष्ट शक्तियां भी शामिल हैं, जिनका वर्णन नहीं किया गया, राज्यों / प्रान्तों को दी जानी थी। मुस्लिम लीग को इस प्रकार प्रसन्न करने का प्रयास किया गया। दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक मजबूत केन्द्र चाहती थी, जिसका स्वरूप संघीय हो तथा अवशिष्ट विधायी शक्तियां संघ के पास हों। देश के राज्यों से अपेक्षा की गई कि वे इन शर्तों पर संघ में सम्मिलित हों। अब केवल दो ही विकल्प थे अर्थात् या तो विदा लेने वाली कंपनी और असंगठित परिसंघ को चुना जाए या मजबूत केन्द्र वाले परिसंघ को। अन्ततः देश का विभाजन हो गया। मुस्लिम लीग को असंगठित परिसंघ स्थापित करके रियायतें देने के प्रयासों का कोई मतलब नहीं रहा। 15 अगस्त, 1947 को यह स्थिति उभर कर सामने आई। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का प्रभाव संविधान सभा पर हुआ और उसने भारत के लिए संविधान बनाने का कार्य आरंभ किया।

सबसे पहले हम सैद्धान्तिक पहलू पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे और पता लगाने की कोशिश करेंगे कि जब संविधान सभा ने भारत सरकार अधिनियम 1935 का अनुकरण करते हुए परिसंघीय ढांचे की व्यवस्था का काम शुरु किया, तो क्या संघीय राज्यव्यवस्था स्थापित करने के लिए परिस्थितियां अनुकूल थीं या नहीं? परिसंघीय राज्य व्यवस्था में दोहरी शासनपद्धति होती है। "परिसंघ" का अर्थ है "ऐसे राज्यों का संघ, जो अपनी प्रभुसत्ता का प्रयोग सीमित करने के लिए सहमत हो, ताकि एक सामान्य उद्देश्य हासिल किया जा सके परन्तु जो संघ के अवयवों और उनके नागरिकों के बीच सीधे संपर्क की अनुमति नहीं देता। प्रोफेसर डाइसे का कहना कि परिसंघीय पद्धति स्थापित करने के लिए पूर्ण रूप से जरुरी शर्त यह है कि देश के उन निवासियों में एक विशेष प्रकार की भावना हो, जिसे संगठित करने का यह प्रस्ताव कर रहा है। यह जरुरी है कि वे संगठित होने की इच्छा तो करें परन्तु एकता की इच्छा न रखें। ([3]) परिसंघ का उद्देश्य "राज्यों के अधिकार" बनाए रखते हुए राष्ट्रीय एकता और शक्ति का सामंजस्य स्थापित करना है[4] राज्यमंडल और परिसंघ के बीच अन्तर को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता क्योंकि राज्यमण्डल में केवल राज्य सरकारें सीधे लोगों पर नियन्त्रण करती हैं और केन्द्र सरकार, राज्य सरकार के माध्यम से कार्य करती है जबकि परिसंघ में केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय सरकारें लोगों पर सीधे नियन्त्रण करती हैं। प्रोफेसर के० सी० व्हेरे ने परिसंघीय सिद्धान्तों की परिभाषा इस प्रकार दी है "शक्तियां विभाजित करने का एक ऐसा तरीका है, जिसमें सामान्य तथा क्षेत्रीय सरकारें, अपने-अपने क्षेत्र में समन्वय करती है और स्वतंत्र हैं।[5]

इस कसौटी के अनुसार उनका विचार था कि तथाकथित अनेक परिसंघ संघीयवत् हैं। श्री अनिरुद्ध प्रसाद ने इसे परम्परागत दृष्टिकोण बताया।[6] उनके अनुसार इस परंपरागत या प्रतिष्ठित दृष्टिकोण की स्पष्ट सीमाएं हैं क्योंकि यह सामाजिक आर्थिक शक्ति की अनिवार्यताओं को नजरअन्दाज करता है, जो कि आज के युग में सक्रिय है और जिनकी वजह से अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैंड के परंपरागत परिसंघ भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे जैसा कि प्रो० व्हेरे का अनुमान था। उनके अनुसार आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि परिसंघीय देशों की राष्ट्रीय और क्षेत्रीय समस्याओं के लिए हल निकाला जाए। इसके लिए राज्यों तथा राष्ट्रीय सरकार के परस्पर संबंध में स्वतंत्रता का परंपरागत दृष्टिकोण आज के परस्पर निर्भरता वाले युग में अपनाना बहुत अयथार्थवादी होगा। आधुनिक लेखकों ने बल देकर कहा है कि "सरकार की परिसंघीय प्रणाली वह है, जिसमें एक सामान्य प्राधिकरण तथा अनेक क्षेत्रीय प्राधिकरणों के बीच शक्तियों का विभाजन होता है और प्रत्येक अपने क्षेत्र में दूसरे के साथ समन्वय करता है"।[7] दूसरी ओर प्रो० सावर ने कहा है कि "क्या यह पता लगाना आवश्यक है कि किसी देश द्वारा परिसंघीय संविधान अपनाए जाने से पहले क्या वहां संघीय स्थिति मौजूद थी।" भारत के बारे में लिखते हुए उन्होंने कहा "भारत का उपमहाद्वीप एक अन्य ऐसा क्षेत्र है, जिसके आकार, जनसंख्या, क्षेत्रीय विभिन्नताओं (भाषाई विभिन्नताओं सहित) और सम्प्रेषण की समस्याओं को देखते हुए अनेक अलग-अलग राष्ट्रों की सम्भावना नहीं तो कम से कम एक परिसंघीय स्थिति के लिए स्पष्ट आधार तो बनता ही है।[8]

यहां एक प्रश्न अवश्य उठाया जाना चाहिए और वह यह है कि जब संविधान सभा स्वाधीनता की लड़ाई में लोगों के मन में पैदा हुई आशाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए भारत के लिए संविधान बनाने का काम आरम्भ कर रही थी, तो क्या उस संगत समय में परिसंघीय स्थिति भारत में मौजूद थी या नहीं? इतिहास ऐसे ठोस उदाहरणों से भरा हुआ है जहां दूसरी शर्त को पूरा करने के लिए अर्थात् अलग-अलग राज्यों की एकता की नहीं बल्कि संगठन की इच्छा पूरी करने के लिए एकात्मक राज्यों को अनेक राज्यों में विभक्त करके और उसके बाद परिसंघ के अधीन पुनः गठित करके परिसंघ बनाया गया था। यदि हम भारत सरकार अधिनियम 1919 शामिल होने तक भारत के इतिहास और अनुभव को ही देखें, तो पता चलेगा कि भारतीय राजनैतिक सत्ता बहुत अधिक केन्द्रीकृत और एकात्मक स्वरूप की थी। साइमन कमीशन ने शायद संपूर्ण स्वाधीनता पर जवाहर लाल नेहरू द्वारा स्पष्ट रूप से बार-बार बल दिए जाने के कारण ही तथा डोमीनियन हैसियत तक मामला सीमित रखने के विचार से एक नए तथ्य अर्थात् संघ में राजवाड़ों को शामिल करने की सिफारिश की थी। उनका विचार था कि इससे एक ऐसा तत्व शामिल हो जाएगा जो आँख मूंदकर ब्रिटिश सरकार को समर्थन देगा। तदनुसार भारत सरकार अधिनियम 1935 के अधीन संघीय राज्य व्यवस्था प्रतिपादित की गई। तथ्य यह है कि जो प्रान्त केन्द्रीकृत एकात्मक राज्य के प्रशासन यूनिट थे, उन्हें विभाजित करके राज्य नाम दे दिया गया ताकि ऐसे स्वतन्त्र राज्य बन जाएं जो परिसंघ में सम्मिलित होने के लिए तैयार हों। सांविधानिक विधि के लेखक जिनमें श्री एच० एम० सीरवई शामिल हैं, ने गलत कहा है कि ब्रिटिश इण्डिया में संघीय स्थिति मौजूद थी और सभी पार्टियां संघीय हल चाहती थी और इसलिए संविधान सभा ने संघीय ढांचा प्रतिपादित किया।[9] लेकिन असंगठित परिसंघ के लिए पहले जो भी औचित्य था वह पाकिस्तान बन जाने और रजवाड़े समाप्त हो जाने के कारण समाप्त हो गया।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर "जिसमें संविधान अपनाया गया, केन्द्र राज्य संबंधों की जांच करने की जरुरत है। सामान्यतः परिसंघ में स्वतन्त्र राज्य, जो संगठन तो चाहते हैं परन्तु एकता नहीं चाहते, अपनी कुछ प्रभुसत्ता केन्द्रीय प्राधिकरण को सौंप देते है और अपने पास केवल अवशिष्ट शक्तियां रखते हैं। हमें एकात्मक ढांचे को तोड़कर ऐसे राज्य बनाने पड़े, जिन्हें प्रान्तों के रूप में प्रशासन की केवल प्रत्यायोजित शक्तियां ही प्राप्त थी। यह कहना गलत है कि उन्होंने परिसंघ की स्थापना के लिए अपनी कुछ प्रभुसत्ता छोड़ दी। असलियत तो यह है कि उनके पास कोई प्रभुसत्ता थी ही नहीं। सच तो यह है कि केन्द्र के पास एकात्मक रूप में सभी शक्तियां केन्द्रीकृत थी और उसने कुछ शक्तियां प्रान्तों को दे दी, जो राज्यों में परिवर्तित कर दिए गए। रजवाड़े ऐतिहासिक कालदोष की तरह थे। वे सामन्तवाद की उपज थे इसलिए आधुनिक भारत में उनका कोई स्थान नहीं था। एक युक्तिपूर्ण राजनैतिक तरीके से उन्हें मिला दिया गया। उनके समाप्त होने पर किसी को कोई दुख नहीं हुआ। लेकिन संविधान के निर्माण के समय उनकी मौजूदगी के कारण संघीय ढांचा अपनाने के लिए एक राजनैतिक-विधिक आधार मिल गया।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान मिली नसीहत, देश के विभाजन के परिणामों, हैदराबाद में हुई अव्यवस्था और कई अन्य घटनाओं से हमें यह शिक्षा मिली कि हमारे राजनैतिक ढांचे में केन्द्र का मजबूत होना बहुत आवश्यक है। शक्तियों की दो सूचियों—एक केन्द्र के लिए और दूसरी राज्यों के लिए तैयार करने की परम्परागत प्रणाली छोड़कर हमने "भारत सरकार अधिनियम, 1935 की पूर्विका अपनाते हुए तीन सूचियां बनाई, किन्तु शेष (अवशिष्ट) शक्तियां संबंधी हैसियत त्याग कर यह शक्ति केन्द्र को सौंप दी गयी। केवल चार विषयों के संबंध में केन्द्र को विधायी

3. डाईस की संविधान के कानून के अध्ययन संबंधी प्रस्तावना, दसवां संस्करण, 1973, पृष्ठ 141
4. इसी का पृष्ठ 143
5. परिसंघीय सरकार 1967, पृष्ठ–30
6. अनिरुद्ध प्रसाद का भारतीय परिसंघ के अधीन केन्द्र और राज्य 1981, अध्याय I, पृ० 23, देखें।
7. बिर्च का परिसंघवाद, वित्त और सामाजिक विधान, पृष्ठ 306

(8) सेवर का आधुनिक परिसंघवाद, 1969, पृष्ठ 44
(9) सीरवई की भारत की सांविधानिक विधि, पृष्ठ 149, पैरा 5.8

शक्ति देकर शिथिल परिसंघ की कल्पना अस्वीकार करते हुए, हमने केन्द्र के लिए आरक्षित 96 विधायी शीर्षों, राज्यों के लिए 66 शीर्षों, और इनके अतिरिक्त समवर्ती सूची के लिए 47 शीर्षों की एक लंबी सूची तैयार की। समवर्ती सूची की विधायी प्रविष्टियों के संबंध में संसद और राज्य विधान मंडल, दोनों विधि बना सकते हैं, किन्तु यहां भी संविधान के अनुच्छेद 254 में यह व्यवस्था करके कि राज्य विधानमंडल और संसद द्वारा बनाई गई विधियों के बीच असंगति होने पर, संसद द्वारा बनाई गई विधि मान्य होगी, और असंगति की सीमा तक राज्य विधान मंडल द्वारा बनाई गई विधि शून्य हो जाएगी, संसद की श्रेष्ठता स्थापित की गई है। तैयार की गई ऐसी व्यापक सूचियों में भी विधि बनाने की शेष (अवशिष्ट) शक्ति संसद को ही है। अत: निष्कर्ष यही है कि संविधान के निर्माताओं ने एक सशक्त केन्द्र की स्थापना की और राज्यों की स्वायत्तता संविधान में सीमांकित अनुसार निर्दिष्ट की।

इस निष्कर्ष की पुष्टि में एक अन्य साक्ष्य संविधान में ही है। संविधान के भाग XVIII के उपबंधों, जिसका शीर्ष "आपात कालीन उपबंध" में भी स्पष्ट रूप से सशक्त केन्द्र का उल्लेख है, और ऐसी व्यवस्था परम्परागत परिसंघीय सिद्धान्त से संगत नहीं है।

विस्तार में चर्चा करने से पहले संविधान की उद्देशिका से प्रारम्भ करना ही संगत होगा, जिसका संबद्ध भाग नीचे उद्धृत है :—

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को और व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता, अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प है।"

"समाजवादी धर्म निरपेक्ष" शब्द संविधान (42 वें संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा आरम्भ किए गए थे और "और अखण्डता" शब्द (बाद के भाग में) भी उसी अधिनियम द्वारा शामिल किए गए थे। यदि संशोधन पूर्व की स्थिति पर नजर डालें तो संविधान सभा द्वारा पारित उद्देशिका में "राष्ट्र की एकता" सुनिश्चित करते हुए "प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य" की परिकल्पना की गई थी। बाद की घटनाओं से प्रत्यक्षत: संसद के लिए यह अनिवार्य हो गया कि संसद यह पूर्णत: स्पष्ट करे (हालांकि स्थिति कभी भी संदेहजनक या विवादपूर्ण नहीं थी) कि प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य एक समाजवादी और धर्म निरपेक्ष प्रकृति का भी है, और यह भी स्पष्ट करे कि संविधान का संबंध न केवल देश की एकता से है बल्कि उसकी अखण्डता से भी है।

उद्देशिका से यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है कि संविधान के निर्माता एक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाना चाहते थे जो प्रभुत्व-सम्पन्न भी हो तथा देश की एकता भी सुनिश्चित करना चाहते थे। संविधान सभा सदस्यों ने भारत की एक "संयुक्त राष्ट्र के प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य" की परिकल्पना की थी।

संविधान के पहले ही अनुच्छेद में एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना की गई है जो कि एक "राज्यों का संघ" है। हालांकि उन्होंने उद्देशिका में एक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य की परिकल्पना की थी किन्तु उन्होंने बहुत सोच समझ कर पूरे संविधान में कहीं भी "परिसंघ शब्द का इस्तेमाल नहीं किया।" "परिसंघ" शब्द का जानबूझ कर प्रयोग न करने का कारण शायद यह रहा हो कि यहां कोई ऐसी स्थिति नहीं है जहां कई राज्य सार्वजनिक हित में, अपनी शक्तियों का कोई भाग केन्द्र को सौंप दें, जैसा कि विश्व के अनेक परिसंघों में हुआ।

भारतीय संविधान सभा ने पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में संघीय शक्तियों के लिए एक समिति का गठन किया। संविधान सभा के सभापति को संबोधित, तारीख 5 जुलाई, 1947 की समिति की रिपोर्ट में, पंडित जवाहर लाल नेहरू ने, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कहा :

"अब जब कि विभाजन एक स्थापित तथ्य है, हम इस संबंध में एक मत हैं कि एक कमजोर केन्द्र, जो शान्ति बनाए रखने या शान्ति सुनिश्चित करने, अथवा समान हितों के व्यापक मामलों में समन्वय करने या अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर समस्त देश की ओर से प्रभावशाली ढंग से बोलने में अक्षम हो, देश के हित के लिए अनिष्टकर होगा। साथ ही यह बात भी हमारे दिमाग में बिल्कुल स्पष्ट है कि अनेक ऐसे मामले हैं जिनके लिए प्राधिकार केवल एककों को होना चाहिए और एक ऐकिक राज्य के आधार पर संविधान बनाना, राजनैतिक और प्रशासनिक, दोनों दृष्टियों से, एक अधोगामी कदम होगा। तदनुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं—इसी निष्कर्ष पर संघ की संविधान समिति भी पहुंची थी—कि हमारे संविधान का सबसे मजबूत ढांचा होगा—एक सशक्त केन्द्र वाला परिसंघ। केन्द्र और एककों के बीच शक्तियों का वितरण करने के मामले में सर्वाधिक और संतोषजनक व्यवस्था होगी, भारत सरकार अधिनियम, 1935 में उल्लिखित अनुसार तीन व्यापक सूचियां बनाना, अर्थात् परिसंघ की, प्रान्तों की और समवर्ती। तदनुसार हमने तीन सूचियां बनाई हैं जो परिशिष्ट में उद्धृत हैं।

हमारा विचार है कि अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के पास होनी चाहिए। यह देखते हुए कि हमने जो तीन सूचियां तैयार की हैं वे बहुत व्यापक हैं, इसलिए अवशिष्ट विषय ऐसे मामलों से संबंधित हो सकते हैं, जिन्हें हो सकता है भविष्य में महत्व दिया जाए, किन्तु फिलहाल उन पर ध्यान नहीं दिया जा सकता अत: उन्हें इन सूचियों में शामिल नहीं किया जा सकता"।

संविधान सभा ने "संघ की शक्तियों संबंधी समिति" की उपर्युक्त रिपोर्ट के संबंध में संविधान तैयार करने से संबंधित अन्य समितियों की रिपोर्टों के साथ चर्चा की। यह संविधान उन सब परिचर्चाओं और संविधान निर्माताओं द्वारा लिए गए निर्णयों का परिणाम है।

संविधान के लागू होने के समय से 17 वर्ष तक, केन्द्र तथा लगभग सभी राज्यों में कांग्रेस पार्टी, जो कि उस समय पूरे देश में व्यापक रूप से सत्ता में थी, द्वारा बनाई गई सरकारें शासन कर रहीं थीं। अत: केन्द्र और राज्य के बीच कोई भी विवाद होने पर, उसका समझौता निश्चित रूप से आमने सामने बैठकर, पार्टी स्तर पर ही हो जाता था और इन समस्याओं ने कभी भी "केन्द्र-राज्य समस्याओं" का रूप नहीं लिया। इसका मुख्य कारण था पंडित जवाहर लाल नेहरू का महान व्यक्तित्व और उनका सर्वमान्य नेतृत्व। पंडित जवाहर लाल नेहरू के बाद ही कुछ अन्य राज्यों (उनके समय में केवल एक राज्य में दूसरी पार्टी की सरकार थी) में तत्काल कांग्रेस से भिन्न अन्य पार्टियों की सरकार बनाने के लिए चुना गया। किन्तु ये सरकारें ज्यादा दिन नहीं चलीं।

बाद में कांग्रेस पार्टी में भी फूट पड़ी। वे, जिन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री, श्रीमती इंदिरा गांधी की नीतियों को चुनौती दी, पार्टी से अलग हो गए और उन्होंने एक अलग पार्टी, हालांकि उसका नाम वही रहा, के रूप में 1971 के चुनाव लड़े। 1971 के चुनाव परिणामों से निस्संदेह यह स्पष्ट हो गया कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को नेता के रूप में जनता का भारी समर्थन प्राप्त था। फिर बंगला देश का मामला सामने आया जिसमें उनकी एक अद्वितीय क्षमता वाले दूरदर्शी नेता के रूप में छवि उभर कर सामने आई।

इसके बाद परिस्थितियों ने मोड़ लिया जब चुनाव में हारे दलों ने घटिया राजनीति का सहारा लिया, और एक के बाद एक, राज्य में ऐसी स्थिति पैदा कर दी, जिसमें सामान्य रूप से संविधान के अनुसार सरकार चलाना मुश्किल हो गया और लोगों से किए गए वायदे शान्ति और व्यवस्था बनाए रख कर, पूरे करना मुश्किल हो गया। इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए, आपात-स्थिति की घोषणा की गई हालांकि इससे आपात-स्थिति का लक्षित उद्देश्य पूरा हुआ, किन्तु इस दौरान हुई कुछ ज्यादातियों के परिणामस्वरूप वर्ष 1977 में केन्द्र में एक नई पार्टी की सरकार सत्ता में आई। अस्थिरता का भय एक वास्तविकता बन गया, जब जनता पार्टी सरकार का बीच में ही पतन हो गया। जब फिर से एक बार केन्द्र और विभिन्न राज्यों में वर्ष 1980 में स्थिरता लाई गई, तो हारे हुए तत्वों ने एक बार फिर घटिया राजनीति का सहारा लिया, विशेषकर पंजाब में। अकाली दल ने अनुचित और असंवैधानिक मांगें रखीं और अलहदगी (संबंध विच्छेद) की बात कही, जिसके लिए उग्रवाद का सहारा लिया गया और आतंकवादी तरीके अपनाए गए। इसके बाद की घटनाओं जैसे "आपरेशन ब्लू स्टार" परिणामस्वरूप श्रीमती इन्दिरा गांधी की निर्मम हत्या, आम चुनाव जिनसे केन्द्र में पुन: स्थिरता कायम हुई हाल की घटनाएं हैं और उनके संबंध में विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

पूर्ववर्ती पैरा में दिए गए संक्षिप्त सार से महत्वपूर्ण घटनाओं का कालानुक्रम मालूम होता है। किन्तु इससे उन दुखतकलीफों का लेश-मात्र भी संकेत नहीं मिलता जिनसे देश को 15 वर्ष की इस लम्बी अवधि में गुजरना पड़ा और न ही इसमें

विस्तार से या विशिष्ट रूप से उन अनेकों में से किसी एक ऐसी परिस्थिति का उल्लेख है जहां केवल हमारे सशक्त और स्थिर केन्द्र के कारण देश के विघटन को रोकना संभव हो सका, यह और किसी के बस की बात नहीं थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन घटनाओं से बार-बार यह सिद्ध हुआ कि भारत की एकता और अखण्डता के संबंध में लापरवाही नहीं बरती जा सकती, इसलिए भविष्य में भी किसी भी समय, किसी भी प्रकार से केन्द्र की शक्ति को कम नहीं किया जा सकता और कम नहीं किया जाना चाहिए।

केन्द्र की "शक्ति", कोई गतिहीन संकल्पना नहीं है। किसी एक समय में जो "शक्ति" पर्याप्त समझी जाती है, वह किसी दूसरे समय की आवश्यकताओं को देखते हुए अपर्याप्त हो सकती है। अत: "शक्ति" को एक कारगर कार्य के रूप में लिया जाना चाहिए। यदि किसी नई, अतिरिक्त शक्ति के संबंध में सोचा जाए कि उससे केन्द्र का निरंतर प्रभाव सुनिश्चित रहेगा, तो उसे केन्द्र द्वारा और अधिक अनुचित शक्तियां हथियाने, या राज्यों की शक्ति में कटौती के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इस पूरे प्रश्न को "केन्द्र बनाम राज्य" के रूप में देखने की प्रवृत्ति ही अतर्कसंगत होगी। सही दृष्टिकोण होगा केन्द्र और राज्यों को भागीदार के रूप में देखना और शक्तियों के विभाजन को उपयुक्त सांविधिक एजेंसी द्वारा किए जाने वाले सरकार के बहुआयामी कार्यों को करने की एक प्रणाली मानना।

अनेक ऐसे क्षेत्र है जिनमें हाल के वर्षों में केन्द्र को अपर्याप्त शक्तियां दृष्टिगत हुई हैं। कानून और व्यवस्था की समस्याओं से, विशेष कर साम्प्रदायिक या किसी वर्ग के बीच होने वाले झगड़ों के संदर्भ में, स्थानीय कानून लागू करने वाली एजेंसियों की सीमाएं प्रकट होती हैं। इसमें गलती किसी की नहीं हैं, वास्तव में सीमाओं के बावजूद उन एजेंसियों ने यथासंभव कार्य किया। किन्तु इस संबंध में मौजूदा अपर्याप्त शक्तियों को दिखाने और केन्द्र सरकार को उक्त स्थितियों—जिनके और अधिक जटिल होने की उम्मीद है क्योंकि देश में विभिन्न वेशों में विघटनकारी शक्तियां काफी प्रबल हैं और विदेशों की उखाड़ने वाली शक्तियां काफी सक्रिय हैं—से निपटने के लिए और अधिक कारगर कदम उठाने के लिए केन्द्र सरकार को और अधिक सशक्त करने की आवश्यकता सिद्ध करने के लिए हमारे पास पर्याप्त अनुभव है। ध्यान रखने की बात यह है कि केन्द्र को इस प्रकार शक्ति दिए जाने से, राज्यों को कोई नुकसान नहीं होगा, किन्तु यदि ऐसे कदम नहीं उठाए गए तो राष्ट्र की एकता और धर्म निरपेक्ष प्रकृति को खतरा पैदा हो सकता है। अन्तरराज्यिक अपराध, आतंकवाद, नशीले पदार्थों और तस्करी संबंधी अन्य कार्यों तथा आर्थिक अपराधों, द्विभाषी और बहुभाषी क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं के निकट क्षेत्रों में तनाव, नागरिकता, राष्ट्रीय स्तर पर जीवन-मरण के आंकड़ों का मिलान, संक्रामक रोगों का नियंत्रण, शिक्षा की राष्ट्रव्यापी प्रणाली, विशेष रूप से समान पाठ्यक्रम निर्धारित करने के लिए, राष्ट्रीय स्तर पर उच्च शिक्षा की शैक्षिक संस्थाएं आदि जैसे अनेक विषय हैं, जिनके लिए अधिकाधिक केन्द्रीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी और जिसके लिए केन्द्र को फिलहाल प्रदत्त शक्तियां कितनी पर्याप्त हैं, इसकी जांच करनी होगी।

संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया में केन्द्र काफी सशक्त है। इन देशों में न्यायिक निर्णयों द्वारा केन्द्र को अधिकतम संभव सशक्त कर दिया गया। इन देशों की स्थिति के संबंध में परिशिष्ट क, ख, ग, में अलग से संक्षिप्त टिप्पणियां संलग्न हैं।

पश्चिम, उत्तर और पूर्व (बंगलादेश सहित) में हमें बहुत लम्बी सीमा की रक्षा करनी पड़ती है। हालांकि हमारा शान्तिप्रिय देश है और हम गुट निरपेक्ष नीति में विश्वास रखते हैं, किन्तु जरूरी नहीं कि सीमा के दूसरी ओर वाले देश भी शान्तिप्रिय हों। पूर्ववर्ती घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि निरंतर सतर्क और तैयार (लैस) रहना कितना जरूरी है जिसके लिए पर्याप्त शक्तियों वाले सशक्त केन्द्र का होना अनिवार्य है।

अनुच्छेद 355 के अधीन राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि वह राज्यों को बाहरी आक्रमण और आंतरिक उपद्रवों से बचाए। इसके लिए जरूरी है कि केन्द्र को पर्याप्त शक्तियां दी जाएं। विभिन्न शीर्षों के अधीन केन्द्र-राज्य संबंधों की समीक्षा में वर्तमान राज्य व्यवस्था के ऐतिहासिक क्रम-विकास, राष्ट्र निर्माताओं की बुद्धिमत्ता आजकल दृष्टिगत विखंडनशील प्रवृत्तियों और हमारी एकता और अखंडता को दी जाने वाली विभिन्न, गम्भीर चुनौतियों को निश्चित रूप से ध्यान में रखा जाए। समीक्षा इन सभी संबद्ध विचारों को ध्यान में रखकर की जाए, जिसके लिए कमजोर केन्द्र से काम नहीं चल सकता।

नीचे परिशिष्ट घ में केन्द्र राज्य संबंधों से संबंधित महत्वपूर्ण अनुच्छेदों और अनुषंगी विषयों की सूची दी गई है।

न्यायिक उद्घोषणाएं

इस संबंध में हमेशा विवाद रहा है कि क्या हमारे देश में सही अर्थों में परिसंघीय ढांचा है या इसका केवल संविधान में ही उल्लेख है और परिसंघवाद की परम्परागत संकल्पना वास्तव में नहीं अपनाई गई, जिसका उद्देश्य विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं वाले एक महाद्वीप का, एकता बनाए रखते हुए, शासन करना था।

हम इस पहलू को न्यायालयों की दृष्टि से देखें। पश्चिम बंगाल राज्य बनाम भारत संघ [10] में वादी, पश्चिम बंगाल राज्य ने यह घोषणा की कि संसद संघ सरकार को राज्य को दी गई भूमि में या उस पर भूमि और अधिकार का अधिग्रहण प्राधिकृत करते हुए विधि बनाने के लिए सक्षम नहीं है और कोयला धारक क्षेत्र (अर्जन और विकास) अधिनियम, 1957 और विशेष रूप से उसकी धारा 4 और 7 और परिणामी सहायता संसद की विधायी क्षमता से बाहर है। एक प्रति विरोध में न्यायालय (सात न्यायाधीशों का बेंच) के सम्मुख संयाचना की गई कि संविधान में सरकार का परिसंघीय सिद्धांत अपनाया गया है, राज्य संघ के साथ राष्ट्र की प्रभुसत्ता के भागीदार हैं, और इसलिए संसद की शक्ति की व्याप्ति ऐसे विधान लागू करने तक नहीं होगी, जिससे राज्यों को उस सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाए जो उन्हें प्रभुतासम्पन्न प्राधिकार के रूप में मिली। इस प्रतिविरोध के कारण परिसंघीय नीति की वास्तविक प्रकृति की जांच करना आवश्यक होगा। यह पाया गया कि भारतीय उप-महाद्वीप ऐसा क्षेत्र था जिसमें कि बहुत ज्यादा लोकतांत्रिक ढांचा था और सरकार का स्वरूप पूर्णत: केन्द्रीकृत प्रभावी शासन के लिए शक्तियों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक था इसलिए परिसंघीय राज्य व्यवस्था प्रतिपादित की गई। भारतीय राज्यों के साथ भी कुछ समस्या थी, क्योंकि ये राज्य एक दृष्टि से प्रभुतासम्पन्न थे। तब यह प्रेक्षण किया गया कि, "भारत के संविधान का आधार" भारत सरकार अधिनियम, 1935 था, बहुत से महत्वपूर्ण मामलों में बुनियादी ढांचे में परिवर्तन नहीं किया गया और पिछले संविधान से अनेक उपबन्ध शब्दश: शामिल किए गए। यह देखने के बाद कि पिछड़े से विकसित राज्य बनाने के लिए देश के परिवर्तन के लिए आवश्यक था, और अधिक आर्थिक सहयोग प्राप्त किया जाए और तदनुसार सामान्य हित को प्रभावित करने वाले मामले संघ सूची में अंतरित किए जाएं। तब कहा गया कि ऐसी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप जो संविधान सामने आया वह परिसंघवाद की परम्परागत प्रणाली के अनुरूप नहीं था। यह मानने का कोई औचित्य नहीं कि प्रान्त प्रभुता-सम्पन्न, स्वायत्त यूनिटें थीं और वे ऐसी शक्ति से वंचित हो गई, जिन्हें वे केन्द्र सरकार द्वारा सामान्य हित के कार्य में सहायता करने के लिए उचित समझते थे। वह विधिक सिद्धांत जिस पर संविधान आधारित था, या प्रभुसत्ता की सभी शक्तियों को इस देश के लोगों से लेना या उन्हें पुन: देना और इन शक्तियों का उन्हें छोड़ कर जो भाग III के उपबन्धों की वजह से संघ और राज्यों दोनों को न दी गई, संघ और राज्यों के बीच वितरण। हमारा संविधान, परिसंघ की परम्परागत प्रणाली से भिन्न है, विशेषकर (1) स्वतन्त्र स्वायत्त यूनिटों द्वारा, उनके समान हित में, से स्वायत्ता त्यागने या छोड़ने और उसे संघ को सौंपने और शेष प्राधिकार संघटक यूनिटों के पास रहने देने के मामले में, (2) संविधान की श्रेष्ठता की दृष्टि से जिसे संघटक यूनिटों को छोड़कर अन्यथा परिवर्तित नहीं किया जा सकता (अनुच्छेद 368 और घिरा हुआ खण्ड देखें); (3) संघ और क्षेत्रीय यूनिटों के बीच शक्तियों के वितरण के संबंध में, जिनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र में गारंटीकृत और एक दूसरे से स्वतंत्र है, फिर भी संविधान के भाग XVIII (आपत्तिक उपबन्ध) से भिन्नता है; और (4) इस दृष्टि से कि अपनी विधियों को लागू करने लिए संघटक यूनिटों और केन्द्र की अपनी अलग और स्वतन्त्र न्यायपालिका नहीं है (जैसे कि परिसंघीय और राज्य न्यायपालिका)। राज्य और केन्द्रीय विधियों के लिए एक समान न्यायपालिका है। न्यायमूर्ति सुब्बाराव ने अपने अल्पसंख्यक-निर्णय में स्वीकार किया है कि भारतीय संविधान में परिसंघ की संकल्पना को स्वीकार किया गया है और प्रभुसत्ता संबंधी शक्तियां संघ और राज्यों के बीच विभाजित की गई हैं। किन्तु उन्होंने हमारी परिसंघीय राज्य व्यवस्था की परम्परागत

10 (1964) /एस० सी० आर० 375

परिसंघवाद से भिन्नताओं का उल्लेख नहीं किया है, जैसा कि बहुसंख्यक निर्णय में उल्लेख है।

राजस्थान राज्य और अन्य बनाम भारतीय संघ आदि[11] के मामले में न्यायालय (7 न्यायाधीशों की बेंच) ने हमारे परिसंघ की प्रकृति के संबंध में कुछ प्रेक्षण किए। मुख्य न्यायमूर्ति एम० एच० बेग ने प्रेषण किया : 'अपने संविधान के' उपबंधों को ध्यान में देखने पर पता चलता है कि हमारे संविधान का स्वरूप चाहे कितना भी परिसंघीय क्यों न प्रतीत हो, इसका प्रवर्तन दो दृष्टियों से आंका जा सकता है। पहला यह कि इसके कितने उपबन्धों में किसी सीमा तक शक्ति का भार निहित है और दूसरे संघीय की अपेक्षा एकात्मक रूप से इस शक्ति का कहां तक प्रयोग किया गया है। इससे द्वारा परिसंघीय सिद्धान्तों के लिए प्रतिष्ठित आधारतत्व देखने के बाद यह टिप्पणी की गई कि "एक ऐसा कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए जहां सामाजिक, आर्थिक और राजनैनिक न्याय उपलब्ध हो और आमुख में निर्दिष्ट उच्चतम आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए तेजी से कदम बढ़ाया जाना हो तो राजनैनिक संगति, राष्ट्रीय अखण्डता और देश के सभी भागों के योजनाबद्ध एकीकरण के लिए एक मजबूत केन्द्र का होना अपरिहार्य प्रतीत होता है। डा० अम्बेडकर के उस कथन का उल्लेख किया गया जिसमें उन्होंने यह कहा है कि हमारा संविधान राज्य और परिस्थितियों की आवश्यकताओं के अनुसार एकात्मक और संघीय दोनों होगा। अनुच्छेद 365 का विशेष उल्लेख करते हुए उपबन्धों की संख्या का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसमें यह व्यवस्था है कि यदि कोई राज्य संविधान के किसी उपबन्ध के अधीन संघ के किसी निर्देश का अनुपालन नहीं करता है या उसे लागू नहीं करता है तो राष्ट्रपति के लिए यह निर्णय करना विधिसम्मत होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता जिसके परिणामस्वरूप आपात स्थिति की उद्घोषणा जारी करने के लिए संविधान के भाग XVIII में निर्दिष्ट शक्ति का तत्काल प्रयोग किया जाएगा। बिना किसी औपचारिकता की स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हमारे राज्यतन्त्र की संरचना एकात्मक है और उसका स्वरूप संघीय है।

कर्नाटक राज्य बनाम भारत का संघ के मामले में[12] (7 न्यायाधीश पीठ) दो प्रस्ताव रखे गए थे जो वर्तमान निवेदन से सम्बद्ध हैं। मुख्य न्यायमूर्ति श्री बेग ने यह टिप्पणी की कि राज्यतन्त्र का एकात्मक स्वरूप इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में दोहरी नागरिकता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। केन्द्र सरकार के माध्यम से काम करने वाले भारत के संघ के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वह प्रत्येक अलग-अलग राज्य के लोगों और उनके हितों का प्रतिनिधित्व करता है। न्यायमूर्ति श्री अंटवाला ने, जो अल्प संख्यक वर्ग के पक्ष में थे, यह टिप्पणी की कि भारतीय संविधान का स्वरूप संघीय नहीं है, अपितु असंघीयवत् है।

समशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में[13] (7 न्यायाधीश पीठ) न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर ने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए यह टिप्पणी की कि हमारे संविधान का कानून आंशिक रूप से विभिन्न विचारों को ग्रहण करने वाला है किन्तु मुख्य रूप से वेस्टमिनिस्टर मॉडल का एक भारतीय आंग्लीय संस्करण है जिसमें संघीयवत् रूपांतरण शामिल किए गए हैं और जिसमें ऐतिहासिक संशोधन, भौगोलिक-राजनीतिक परिवर्तन किए गए हैं और स्वदेशी परम्पराओं को शामिल किया गया है और यह मूल रूप से ब्रिटिश संसदीय प्रणाली और भारत सरकार अधिनियम का एक मिलाजुला रूप है और यह कुछ अन्य मामलों में और नामावली के सम्बन्ध में लगभग अमरीकी संविधान के समान है।

भाग II
विधायी संबंध

प्रश्नावली के भाग II में विधायी सम्बन्धों की चर्चा की गई है। आयोग ने इस विषय से सम्बद्ध पांच प्रश्न बनाए हैं। मुख्य प्रश्न संघ सरकार की उस शक्ति से सम्बन्धित है जिसके अनुसार वह इस आशय की घोषणा करके विधायी क्षेत्र का अतिक्रमण कर सकती है कि इस सम्बन्ध में कानून बनाना राष्ट्रीय हित में है या लोक हित में है। स्पष्टत: ऐसा करते समय आयोग के ध्यान में अनुच्छेद 249 है, जिसके अन्तर्गत संसद को राज्य में सूची निर्दिष्ट किसी मामले के सम्बन्ध में इस सीमा के अधीन कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है कि राज्य परिषद् द्वारा अपेक्षित बहुमत से इस सम्बन्ध में एक संकल्प पारित किया जाएगा जिसमें उस मामले का उल्लेख किया जाएगा जिसके सम्बन्ध में कानून बनाया जाता है और उस क्षेत्र का भी उल्लेख किया जाएगा जिसमें प्रस्तावित कानून लागू किया जाएगा। कुछ राज्यों का यह तर्क गलत है कि उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम 1951 तथा खान और खनिज पदार्थ (विनियमन और विकास) अधिनियम 1957 अनुच्छेद 249 द्वारा प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग करके बनाए गए थे। यह दो कानून संघ सूची की प्रविष्टि 52 और 54 के अधीन बनाए गए थे। जो राज्य सूची की क्रमश: प्रविष्टि 24 और 23 के अपवाद हैं। (देखें ईश्वरी खेतान शुगर मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[14], हरियाणा राज्य बनाम चन्द सिंह[15] पश्चिम बंगाल बनाम भारत का संघ[16])

अनुच्छेद 249 में एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना है जिसमें विधान का विषय या शीर्ष समान रूप से राज्य सूची में और अपेक्षित संकल्प पारित करने वाली राज्य परिषद् की सीमा में आता है और उसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 6(3), के अपवाद स्वरूप उस सीमा तक परस्पर विरोधी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिस सीमा तक संसद राज्य सूची में आरक्षित ऐसे विषय पर कानून बना सकेगी, जिस विषय के संबंध में कानून बनाने की एकमात्र शक्ति राज्य विधान मण्डल के पास होगी। यह पता नहीं चलता है कि पिछले 35 वर्षों के दौरान अनुच्छेद 249 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कभी किसी राज्य के हितों के प्रतिकूल किया गया हो। इस सम्बन्ध में कोई परिवर्तन अपेक्षित नहीं है।

आयोग ने यह पूछा है कि सातवीं अनुसूची की शक्तियों के वितरण में या उसकी विषय वस्तु में कोई परिवर्तन अपेक्षित है अथवा नहीं। इसके बारे में भाग I में चर्चा की गई है और उसमें यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्र को राष्ट्र की एकता और अखण्डता की सुरक्षा के लिए और अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ने से रोकने के लिए अधिक शक्तियां दी जाएं और आतंकवाद से निपटने के लिए भी अधिक शक्तियां दी जाएं।

केन्द्र के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह समवर्ती सूची में शामिल किसी विषय पर कानून बनाते समय हर बार राज्य सरकार से परामर्श करे। यदि परिस्थितियों के अनुसार ऐसा करना जरूरी हो और यदि विषयों अनुसार भी ऐसा करना आवश्यक हो तो केन्द्र सरकार निश्चित रूप से सम्बद्ध राज्य से परामर्श करेगी और अब भी ऐसी ही प्रथा है। किन्तु यदि यह एक सांविधानिक बाध्यता बना दी जाती है तो इससे समस्याओं का समाधान होने की बजाए अधिक समस्याएं पैदा हो सकती हैं। इस प्रश्न पर कि किसी राज्य विषय पर संसद द्वारा बनाए गए कानून राष्ट्रीय या लोकहित में हैं या नहीं और इन्हें हमेशा के लिए बिना देना चाहिए या किसी विशेष अवधि के लिए इस सम्बन्ध में यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 249 के उप अनुच्छेद 2 में इसकी अवधि 1 वर्ष रखी गयी है। यदि आवश्यक हो तो इसे एक वर्ष के लिए और बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार से शक्ति के प्रयोग के सम्बन्ध में निरन्तर जांच भी रखी जा सकती है। यह शक्तियों के दुरूपयोग को रोकने का अपने आप में ही एक सुरक्षित उपाय है। अत: अनुच्छेद 249 में उल्लिखित विद्यमान उपबन्ध उपयुक्त और पर्याप्त हैं तथा इनमें कोई परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

भाग III
राज्यपाल की भूमिका

प्रश्नावली के भाग III में राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। इस प्रश्न पर गहराई से विचार करने से पहले राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में सामान्य विचार कर लेना चाहिए।

चूंकि संविधान के विभिन्न उपबंधों में राज्यपाल को काफी कार्य सौंपे गए हैं, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी व्यवस्था में राज्यपाल का पद

11 (1978) 1 एस० सी० आर० 1
12 (1978) 2 एस० सी० आर० 1
13 (1975) 1 एस० सी० आर० 814

14 (1980) 4 एस सी सी 136
15 (1976) 3 एस सी आर 688
16 (1964) 1 एस सी आर 371

अनिवार्य है। पण्डित नेहरू ने राज्यपाल के पद के सम्बन्ध में टिप्पणी देते हुए कहा कि यद्यपि राज्यपाल की वास्तविक शक्तियां प्रदत्त नहीं की गयी हैं फिर भी इसकी हैसियत प्राधिकार प्राप्त और महिमामंडित व्यक्ति की है। यही टिप्पणी राज्य स्तर पर राज्यपाल के पद के संबंध में यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होती है। संजीवी नायडू बनाम मैसूर राज्य ([17]) के मामले में यह टिप्पणी दी गई कि "ऐसे मामलों को छोड़कर जिनमें राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करना होता है अन्य सभी मामले मुख्यमन्त्री के परामर्श से किसी मन्त्री को सौंपे जाने चाहिए जो पद समाप्त कर दिए जाने की स्थिति में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करेगा। शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य ([18]) के मामले में यह कानून उद्घोषित किया गया था कि यद्यपि राज्यपाल को कार्यकारी शक्तियां प्राप्त हैं लेकिन केवल कुछ विशेष मामलों को छोड़कर उनका प्रयोग वह मन्त्री के परामर्श के अनुसार ही करेगा। राज्यपाल के पद को समाप्त करने का कोई भी तर्क उचित तथा स्वीकार्य नहीं होगा क्योंकि यदि इस पद को समाप्त कर दिया जाता है तो एक शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जिसके परिणाम स्वरूप भ्रान्तियां पैदा होंगी, अच्छी सरकार नहीं बन पाएगी तथा कानून और व्यवस्था सम्बन्धी और अनेकों समस्याएं पैदा हो जाएंगी।

संसदीय प्रकार की सरकार के कार्यों में अनिवार्य रूप से यह बात अन्तर्निहित है और यह माना जाता है कि राज्यपाल मन्त्रि परिषद की सलाह से कार्य करता है और अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करता है। यद्यपि यह सामान्य नियम है, फिर भी कुछ ऐसे मौके हैं जब राज्यपाल को अपनी शक्तियों का प्रयोग अपने स्वविवेकानुसार करना होता है—इस प्रकार की स्वविवेकी शक्तियां या तो संविधान के उपबंधों में स्पष्ट की गई हैं या उनमें अंतर्निहित हैं। राज्यपाल के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी इन शक्तियों का प्रयोग राज्य के प्रति अपने सांविधानिक दायित्वों को पूरा करने के उद्देश्य से करे और राष्ट्र की एकता, अखण्डता और प्रभुसत्ता को बनाए रखे। राज्यपाल को अनुच्छेद 163 और 164 के अधीन मुख्यमन्त्रियों का चुनाव करने का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 164 के अधीन उसे यह शक्तियां दी गई हैं कि वह मन्त्रालय को बरखास्त कर सकता है, मुख्यमन्त्री और अन्य मन्त्री, जब तक वह चाहे तभी अपने पद पर बने रहेंगे। अनुच्छेद 174 (2) (ख) में राज्यपाल को विधानसभा भंग करने की भी शक्तियां दी गई हैं। अनुच्छेद 167 के अनुसार राज्यपाल को यह शक्तियां दी गई हैं कि वह कुछ मामलों के बारे में मुख्यमन्त्रियों से पूछताछ कर सकता है और मुख्यमंत्री से यह कह सकता है कि वह कुछ मामले विचारार्थ मन्त्री-परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करे। अनुच्छेद 200 में राज्यपाल को यह शक्तियां दी गई हैं कि वह विधान मण्डल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को सहमति देने से इनकार कर सकता है और पुनर्विचार के लिए उसे वापिस भेज सकता है। इसी अनुच्छेद में राज्यपाल को यह शक्तियां भी दी गई हैं कि वह राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति द्वारा सहमति प्राप्त करने के लिए सुरक्षित रख सकता है। अनुच्छेद 213 में उसे यह शक्तियां दी गई हैं कि वह कुछ विशिष्ट मामलों से सम्बन्धित अध्यादेश जारी करने से पहले राष्ट्रपति से तत्सम्बन्धी अनुदेशों का पता लगा सकता है। अनुच्छेद 356 में राज्यपाल को यह शक्तियां दी गई हैं कि वह राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह देने के बारे में राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेज सकता है।

संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अधीन ऊपर बताई गई शक्तियां कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य हैं, जिनका अनुपालन करने के लिए राज्यपाल बाध्य है।

यदि राज्यपाल स्वविवेकानुसार अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करता है तो उसे यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह अपनी शक्तियों का इस्तेमाल मनमाने ढंग से तो नहीं कर रहा है। वास्तव में, अनुच्छेद 163, 164, 167, 174 (2) (ख), 200, 213 और 356 के अधीन प्रदत्त शक्तियां राज्यपाल को राज्य सरकार के प्रशासन में एक अनिवार्य कार्यकर्ता का पद दे देती हैं और उसे केन्द्र और राज्य को जोड़ने वाली कड़ी का रूप दे देती हैं। अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति शासन लागू करने के मामले में भी वह राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में प्रभावशाली ढंग से कार्य करता है। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि राज्यपाल का पद अपरिहार्य है और यह आवश्यक भी है कि उस पद का भार संभालने वाला व्यक्ति पूर्णतः परिपक्व, समझदार, अनुभवी, व्यवहार-कुशल होना चाहिए, उसे प्रायः सभी मामलों की जानकारी होनी चाहिए और उसमें अपने साथ रहने वाले मन्त्रियों के दल का नेतृत्व करने की योग्यता भी होनी चाहिए, उसे हर काम करते समय राज्य के लोगों के कल्याण को ध्यान में रखना चाहिए और राष्ट्र की एकता, अखण्डता और प्रभुसत्ता को सुरक्षित रखना ही उसका परम कर्तव्य होना चाहिए।

यह उल्लेख किया जा सकता है कि अनुच्छेद 256, 257 और 365 में भी ऐसी स्थितियों का उल्लेख किया गया है, जिनमें राज्यपाल की भूमिका के विस्तृत आयाम हो सकते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में, भाग-III के अधीन उठाए गए विभिन्न प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर मिल जाते हैं।

3.1 केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सन्दर्भ में राज्यपालों ने अभी तक अपनी सफल और सन्तोषजनक भूमिका अदा की है। इस सम्बन्ध में यदि कोई भ्रान्तियां हैं तो वे बहुत कम हैं और जो हैं भी वे इसलिए हैं क्योंकि कुछ मानवीय कारक ऐसे होते हैं, जिनका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

3.2 राज्यपाल की भूमिका सुनिश्चित होनी चाहिए। उसमें अपने मन्त्रि परिषद् का नेतृत्व करने की और मुख्यमन्त्रियों से यह बात मनवाने की योग्यता होनी चाहिए कि राज्य की प्रगति और समृद्धि और साथ ही साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रगति और समृद्धि को ध्यान में रखते हुए केन्द्र के प्रति अनुकूल रवैया अपनाने की जरूरत है। इसके अलावा राष्ट्र की एकता, अखण्डता और प्रभुसत्ता पर विचार करना उसका परम कर्तव्य होना चाहिए।

3.3 (क) अनुच्छेद 356 (1) के अधीन कार्यवाही करने के सुझाव की रिपोर्ट राज्यपाल द्वारा तभी तैयार की जाए यदि उसके पास राष्ट्रपति शासन लागू करने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 356 (1) के अधीन यह कार्यवाई अंतिम उपाय के रूप में की जानी चाहिए। इस समय राज्यपाल की व्यवहार-कुशलता, परिपक्वता और अनुभव राष्ट्रपति शासन लागू करने की आकस्मिकता से बचने के लिए बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि जनता के प्रतिनिधियों द्वारा चलाए जा रहे प्रजातन्त्र को हमेशा बेहतर समझा जाता है।

(ख) सामान्य परिस्थितियों में, यदि किसी दल को विधान मण्डल में पूर्ण बहुमत प्राप्त होता है और नेता का चुनाव हो जाता है तो मुख्यमन्त्री का चयन किया जाना स्वाभाविक है। लेकिन कठिनाई तो उस समय होती है, जब किसी भी एक पार्टी को राज्य के विधानमण्डल में बहुमत प्राप्त नहीं होता। उस स्थिति में सभी दलों द्वारा संयुक्त रूप से मांग की जाएगी। ऐसा तभी हो सकता है जब ऐसी गठबंधन को स्थायी बहुमत या विशेष समय में उल्लेखनीय बहुमत न मिल जाए। ऐसी विभिन्न स्थितियां हैं, जिनकी कल्पना की जा सकती है। इस स्थिति में भी पुनः राज्यपाल का अनुभव, परिपक्वता और व्यवहार-कुशलता मुख्यमन्त्री का चुनाव करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इन परिस्थितियों के अधीन न तो कोई सुदृढ़ नियम लागू किया जा सकता है और न ही कोई सुनिश्चित पद्धति या परिपाटी निर्धारित करना संभव है क्योंकि ये परिस्थितियां समय-समय पर और अलग-अलग विधान मंडलों में बदलती रहेंगी।

(ग) राज्यपाल को अपने विवेक का इस्तेमाल अत्यधिक सावधानीपूर्वक और स्वयं को इस सम्बन्ध में आश्वस्त करने के बाद करना चाहिए कि वह जो कुछ भी कर रहा है, वह राज्य और राज्य के लोगों के हित में है।

3.4 अनुच्छेद 200 और 201 के पीछे प्रयोजन यह है कि इस बात की जांच की जाए कि राज्य के कानून और केन्द्र के कानून के बीच कोई विरोध अन्तर्निहित या दृश्यमान नहीं है। इसके अलावा, यह भी सुनिश्चित किया जाए कि राज्य का कानून किसी भी प्रकार से संविधान के किसी उपबंध का उल्लंघन नहीं करता है। निस्सन्देह, राज्यपाल और राज्य सरकार

17 (1970) 3 एस सी आर 503

18 (1976) 1 एस सी आर 814, 875 पर

किसी विधेयक को लागू करने सम्बन्ध और राज्य विधान मण्डल में विचार-विमर्श करते समय इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखें। यदि राज्यपाल चाहे तो तीसरी अवस्था में केन्द्रीय स्तर पर पुन: जांच करना एक अनुकूल कदम है। यहां राज्य मन्त्रिमण्डल स्वयं राज्यपाल से यह कह सकता है कि वह इस मामले को राष्ट्रपति के पास भेजे अथवा राज्यपाल इस सम्बन्ध में अपने विवेक का इस्तेमाल करे। इस कार्यविधि का अनुपालन करने से निस्सन्देह विलम्ब हो सकता है, लेकिन ऐसा जानबूझ कर या बुरे इरादे से नहीं किया जाता है। इसमें कोई बुराई नहीं है यदि संविधान के 200 और 201 क्रमिक अनुच्छेदों को उसी रूप में रहने दिया जाए। वास्तव में इन उपबन्धों का होना अनिवार्य भी है।

3.5 भारतीय विधि संस्थान के निष्कर्षों के स्पष्टत: दो भाग हैं। प्रथम भाग में वे यह कहते हैं कि केन्द्र राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने में अपनी नीतियां राज्य पर लागू करने का प्रयत्न करता है। दूसरे भाग में, उन्होंने कहा है कि राष्ट्रपति की सहमति वास्तव में कुछ ऐसे मामलों के लिए ही रखी गई हैं जिनमें ऐसा प्रतीत हो कि राष्ट्रपति की सहमति की यह प्रक्रिया राज्यों की स्वायत्तता को खतरे में नहीं डालती है। ये दोनों भाग, यद्यपि एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, फिर भी इन्हें दो अलग-अलग क्षेत्रों में लागू किया जाता है। भारतीय विधि संस्थान के निष्कर्ष गलतफहमियों के आधार पर हैं और स्थिति को गलत समझने के कारण ऐसा किया गया है। ध्यान से समझने पर, यह पता चलेगा कि ये उदाहरण केन्द्र द्वारा नीतियां लागू करने के सम्बन्ध में नहीं हैं, बल्कि राज्यों को यह सुझाव दिया गया है कि वे सांविधानिक सिद्धान्तों का अनुपालन करें। इसे किसी भी प्रकार से नीतियां लागू करने के रूप में नहीं लिया जा सकता। यह तथ्य, कि संस्थान ने यह निष्कर्ष निकाला है कि राष्ट्रपति की सहमति वास्तव में कुछ मामलों के लिए ही रखी गई है, स्वत: उस तर्क के औचित्य की ओर संकेत करता है, जो कि सबसे पहले प्रस्तुत किया गया था। यह आरोप नहीं लगाया जा सकता है कि यह सहमति अवैध आधारों पर रोकी गई है। इसके द्वारा केन्द्र द्वारा नीतियां लागू करने सम्बन्धी तथ्य स्वत: अस्वीकृत हो जाता है। यह बात निस्सन्देह सत्य है कि यदि सांविधानिक जरूरत को उचित ठहराया जाता है तो यह सत्य है कि विपरीत मामलों में केन्द्र द्वारा राज्यों को इस सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत किए गए थे।

3.6 इस प्रश्न के सम्बन्ध में सुझाया गया विचार केवल इसका एक पक्ष प्रस्तुत करता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि कुछ परिस्थितियों के अधीन राज्यपाल केन्द्र का एजेंट है और कुछ अन्य परिस्थितियों में वह राज्य का अध्यक्ष है तथा इनसे भिन्न परिस्थितियों में वह केन्द्र और राज्य के बीच की सम्पर्क-कड़ी है। इसकी भूमिका बहुविध प्रकार की है, जो कि ऐसी परिस्थितियों पर निर्भर करती है, जिनमें वह अपनी भूमिका अदा करने के लिए मजबूर हो जाता है। सामान्यत: राज्यपाल को निष्पक्ष, उचित और संविधान के उपबंधों के अनुसार और ऐसी लाभप्रद परिपाटियों के अनुसार व्यवहार करना होगा जिनमें संस्थान की बहुविध जिम्मेदारियां निभाने की भावना का विकास हो। जैसा कि पहले कहा गया है, यदि अतीत में किसी भी समय राज्यपालों द्वारा कोई विवादास्पद चर्चा की गई थी तो वह बहुत कम है और यदि है भी तो वह केवल गलत निर्णय दिए जाने के कारण से है किसी राजनीतिक कारण या बुरे इरादे से नहीं की गई है।

3.7 राज्यपाल राष्ट्रपति की इच्छा से यह पद ग्रहण करता है (अनुच्छेद 156)। उसके लिए यह जरूरी नहीं है कि पांच वर्ष की अवधि के लिए वह उस पद पर बना ही रहे। सामान्यत: यदि वह अपने कार्य अपेक्षानुसार पूरे करता है और उसके पद की संभावित उच्च स्तरीय अधिकारियों के अनुसार मांग की जाती है, तो कोई कारण नहीं है कि राष्ट्रपति 5 वर्ष की सामान्य अवधि को अपनी इच्छानुसार कम करे। संक्षेप में, 5 वर्ष की अवधि वैध या सांविधानिक गारंटी नहीं है, परन्तु यदि राज्यपाल अपनी उच्च पद की गरिमा के अनुरूप निष्पक्ष व्यवहार करे तो वह निश्चित रूप से इस अवधि तक अपने पद पर बना रह सकता है। स्वतन्त्र भारत के इतिहास से पता चलता है कि बहुत ही कम और विशेष मामलों में ही राष्ट्रपति ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करके राज्यपाल की कार्य अवधि को कम किया है और उसके लिए भी राष्ट्रपति द्वारा ऐसा किए जाने के न्याय-संगत वैध तथा अप्रतिरोध्य कारण थे।

3.8 राज्यपाल के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह, जिसे बहुमत प्राप्त हुआ है इसी छोटी सी बात पर विचार करने के लिए विधान मण्डल को बुलाये, कि जिससे कि वह इसकी जांच कर सके और सत्यापित कर सके। ऐसा उसे अपने अनुभव, परिस्थितियों के अनुसार मूल्यांकन करने की क्षमता, राजनीतिक नेताओं के साथ बातचीत करके करना चाहिए तथा उसके निर्णय उपबन्ध आंकड़ों के आधार पर होने चाहिए। जैसा कि सुझाव दिया गया है, कुछ परिस्थितियों में सामान्य फार्मूला को अपनाना उचित नहीं होगा और इसके अतिरिक्त अन्तराल के दौरान ऐसी युक्तियों से काम लेना भी उचित नहीं होगा जिनके कारण हानिकर प्रथाओं और परिस्थितियों को बढ़ावा मिलता है।

3.9 यह कहना सही नहीं है कि उल्लिखित परिस्थितियों के अधीन राज्यपाल सही रूप से काम नहीं कर रहा है और इस ढंग से काम कर रहा है, जिससे किसी विशेष राजनीतिक दल या ग्रुप के हितों को बढ़ावा मिलता है। हमारे लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम जर्मनी या किसी अन्य देश में प्रचलित पद्धति को अपनाएं। सम्पूर्ण स्थिति का सामना राज्यपाल द्वारा वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार तथा स्थिति का स्वयं निर्धारण करके किया जाना चाहिए। यह वास्तविक तथ्य, कि यह विशिष्ट शक्ति उच्च पदाधिकारियों में निहित की गई है, इस शक्ति को उचित प्रयोग स्वत: ही किया जाना चाहिए।

3.10 जैसा कि पहले बताया गया है, राज्य की स्थिति राजनीतिक दलों के आधार पर और कई अन्य परिस्थितियों के आधार पर समय-समय पर बदलती रहती है जिसका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है या उसका सूक्ष्म रूप से पूरा-पूरा उल्लेख नहीं किया जा सकता है। इन परिस्थितियों के अधीन, राज्यपाल की विवेक शक्तियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के निर्देश जारी करना संभव नहीं होगा और वास्तव में यदि इस प्रकार के कोई निर्देश जारी किए गए हैं तो विवेकानुसार प्रयोग की जाने वाली शक्तियां इस प्रकार की विवेकानुसार शक्तियां नहीं रह जाएंगी। राज्यपाल की विवेकानुसार शक्तियों में हस्तक्षेप करते हुए उसे इस बात के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता कि वह कुछ दी गई परिस्थितियों के अधीन विशेष प्रकार से कार्य करे। उसे अपने अनुभव, समझदारी, ज्ञान और संविधान के उपबन्ध, लोगों के कल्याण, राष्ट्र की एकता, अखण्डता और नागरिकों के प्रभुत्व को ध्यान में रख कर ही कार्य करना चाहिए। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विवेकाधिकार तो विवेकाधिकार ही है, जिसके लिए निर्धारित सामान्य फार्मूला नहीं अपनाया जा सकता।

अतिरिक्त टिप्पणी

राज्य सरकारों में से कम से कम किसी एक राज्य सरकार द्वारा यह मांग की गई है कि राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाए। उस राज्य सरकार को राज्यपाल की उस भूमिका की पूरी जानकारी है, जिसे इस टिप्पणी के पहले भाग में सविस्तार स्पष्ट किया गया है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि राज्यपाल का पद संसदीय प्रजातन्त्र में किस प्रकार अनिवार्य है और हमारे संविधान के उपबंध किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से लागू होंगे।

यदि केवल बहस के लिए ही कोई भी व्यक्ति इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है तो समानता के आधार पर इस बात को भी स्वीकार किया जा सकता है कि राज्यपाल के पद के समान राष्ट्रपति के पद को समाप्त करने का भी तर्क दिया जा सकता है। संविधान के उपबंधों की जांच करने पर, यह स्पष्ट होगा कि राष्ट्रपति की भूमिका केन्द्रीय सरकार के सन्दर्भ में वही है या समान है या कुछ मामलों में कम है, जैसी कि राज्य के संबंध में राज्यपाल की भूमिका है। वास्तव में, राज्यपाल के पास विवेकानुसार शक्तियां राष्ट्रपति से कुछ अधिक ही है। राज्यपालों को हटाने की यह दलीलें उचित समाधान ढूंढे बिना अव्यवस्था की स्थिति को ही जन्म देती हैं। यह सुझाव कहीं भी नहीं दिया गया है कि इस रिक्ति को कैसे भरा जाए। यदि सांविधानिक अव्यवस्था पैदा करना ही इसका उद्देश्य है, तो अवश्य इससे पूरा हो सकता है।

एक नई स्थिति, जो हाल ही में पैदा हुई है, ने इसमें एक नया आयाम जोड़ा है और इसने राज्यपाल पद बनाए रखने का समर्थन किया है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 6 के अनुसार यह अपेक्षित है कि इस अधिनियम की धारा 6 में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी की मंजूरी लिए बिना इस अधिनियम के उपबंधों और भारतीय दण्ड संहिता की कई धाराओं के अधीन किसी भी सरकारी कर्मचारी पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। किसी एक राज्य के मुख्य मन्त्री ने निजी शिकायत के आधार पर उस अधिनियम के उपबंधों के अधीन मुकदमा चलाया था। यह शिकायत इस आधार पर दूर की गई थी कि अपेक्षित मन्जूरी न मिलने पर अपराध की कोई सुनवाई नहीं हो सकती। प्रश्न यह उठता है कि मन्जूरी देने में सक्षम कौन था यदि मुख्यमन्त्री पर मुकदमा चलाने की मन्जूरी देने की शक्ति राज्यपाल में निहित है, तो वह ऐसा करने में अक्षम है क्योंकि उसे मन्त्री परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करना होता है जिस पर आरोप लगाए गए है। वही मन्जूरी प्राधिकारी के लिए बन जाएगा। न्यायालय ने इस अवरोध को दूर कर दिया कि राज्यपाल को मन्जूरी देने के मामले में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए। यदि राज्यपाल के पद को हटा दिया जाता है, तो हमारे समक्ष अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो जाएगी। ।

इस तथ्य के प्रकाश में, किसी विशेष राज्य सरकार की दलील स्वीकार्य नहीं है। इस मुद्दे पर और अधिक विस्तार आवश्यक प्रतीत नहीं होता है।

भाग IV

• प्रश्नावली का भाग IV प्रशासनिक संबंधों के बारे में है। पहला भाग मुख्यत: अनुच्छेद 256, 257, 365, 356 तक सीमित है। बाद वाले भाग में आयोग ने संघ और राज्यों के बीच की गई कुछ व्यवस्थाओं, कुछ केन्द्रीय ऐजेंसियों की स्थापना, अखिल भारतीय सेवाओं, संघ के अंश सैन्य बल के प्रयोग और किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता, जन-सम्पर्क साधन, आंचलिक परिषदों और अन्त में अन्तर्राज्य-परिषद के बारे में विचार किया है।

अनुच्छेद 256 और 257 को मोटे तौर पर पढ़ने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि संघ की कार्यपालक शक्ति व्यापक और विस्तृत है। इसका कारण स्पष्ट है। संसद द्वारा बनाए गए कानून का पालन सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य है और किसी भी राज्य को किसी भी तरीके से संसद द्वारा बनाए गए कानूनों का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। प्रभुसत्ता लोगों में निहित है और जहां तक सातवीं अनुसूची की सूची I में दिए गए विषयों का संबंध है, उन्हें संघ द्वारा लागू किया जाना है। संघ की सबसे अधिक सर्वोच्च और निर्विवाद जिम्मेदारी इस बात की है कि वह राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करे और राष्ट्र की लोक-तांत्रिक और धर्म-निरपेक्षता की विशेषता सुनिश्चित करे। इन मूल सिद्धांतों पर हमारा संविधान आधारित है। इन परिस्थितियों में संघ को उसके इस अधिकार से वंचित करने के लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता है कि वह किसी राज्य को उसकी कार्यपालक शक्तियों के प्रयोग में निदेश दे और संघ की इस शक्ति के प्रति किसी चुनौती को अप्रत्यक्ष रूप से देश की एकता और अखंडता के प्रति चुनौती के रूप में देखा जाना चाहिए इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 365 के साथ पठित अनुच्छेद 256 से यह पता चलता है कि राष्ट्रपति का शासन लागू किए जाने पर भारत सरकार द्वारा दिए गए निदेशों का राज्य-सरकार को पालन नहीं करना होता है। संघ निश्चित रूप से, सूची II में दिए गए विषयों पर राज्य को संविधान के उपबंधों से भिन्न रूप में कोई निदेश नहीं देगा और इस बात की कोई शिकायत नहीं है कि संघ की कार्यपालक शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि सूची II में दिए गए विषयों के संबंध में राज्य की शक्ति में हस्तक्षेप होता है। ये तर्क अनुच्छेद 257 के उपबंधों पर भी लागू होते है।

हमने ऊपर जो कुछ भी बताया है, वह केवल 256 और 257 में अन्तर्निहित सिद्धान्त है और वह भी संक्षेप में और मोटे तौर पर। अनुच्छेद 256 और 257 (और कुछ अन्य अनुच्छेदों) के उप-सिद्धान्तों के रूप में संविधान का अनुच्छेद 365, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि संघ द्वारा अपनी कार्यपालक शक्ति का प्रयोग करते हुए दिए गए किसी भी निदेश का राज्य द्वारा पालन न किए जाने का यह अर्थ लगाया जाएगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती है। इसके लिए हमें अनुच्छेद 355 देखना होगा। जिसमें संघ सरकार को यह सुनिश्चित करने का आदेश है कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य करती है अथवा अनुच्छेद 355 की सहायता के बिना भी अनुच्छेद 356 के उपबंधों का अवलम्ब लिया जा सकता है और भारत सरकार द्वारा जारी किए गए निदेशों का अनुपालन न किए जाने पर किसी भी राज्य में उद्घोषणा द्वारा राष्ट्रपति का शासन लागू किया जा सकता है। इस अनुच्छेद में ऐसी स्थिति में हस्तक्षेप करने के लिए कहा गया है जब राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती। अनुच्छेद 256 के अनुसार संघ राज्य को ऐसे निदेश दे सकता है जो भारत सरकार को उस प्रयोजन के लिए आवश्यक प्रतीत हों। अनुच्छेद 257 में संघ की कार्य-पालक शक्तियों के प्रयोग के मामले में राज्यों पर संघ द्वारा नियंत्रण रखा जाना उपबंधित है। अनुच्छेद 256 और 257 के अतिरिक्त कुछ अन्य अनुच्छेदों के अनुसार भी उदाहरणार्थ अनुच्छेद 350(क) राष्ट्रपति राज्यों को निदेश जारी कर सकता है। राज्य-सरकार अनुच्छेद 356 के अर्थ के अनुसार राष्ट्रपति का शासन लागू किए जाने के आधार पर इन निदेशों की अवज्ञा कर सकती है।

वस्तुत: इस अनुच्छेद में कुछ भी नया नहीं है। क्योंकि वास्तव में यह भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 93 के स्थान पर ही है। इस अनुच्छेद में राष्ट्रपति द्वारा उद्घोषणा जारी किए जाने का उपबन्ध है जिसके द्वारा वह राज्य-सरकार के सभी कार्यों अथवा किसी कार्य को और राज्यपाल अथवा सरकार के किसी अन्य ऐसे निकाय जो राज्य विधान मंडल से भिन्न हो, में निहित अथवा उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली किसी भी या सभी शक्तियों को अपने हाथ में ले लेगा और उससे संबंधित कुछ निश्चित कार्य करेगा। किन्तु उद्घोषणा जारी करने और प्राधिकार हाथ में लेने से पहले राष्ट्रपति को इस बात की संतुष्टि करनी होगी कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाई नहीं जा सकती है। वह यह संतुष्टि राज्यपाल से रिपोर्ट प्राप्त होने पर या अन्य प्रकार से कर सकता है। इस उपबंध से हमारे संविधान में एक नई विशेषता जुड़ गई है जो इस दावे के असंगत है कि हमारी देश में सही अर्थ में संघीय राज्य व्यवस्था है।

इस उपबंधों की फरवरी के अंत तक लगभग 73 बार प्रयोग किया गया है। किन्तु यदि अनुच्छेद 356 के अधीन शक्ति के प्रयोग के प्रत्येक मामले की ओर उसके गुण दोषों के आधार पर जांच की जाए तो उचित रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि इस शक्ति का प्रयोग अपेक्षाकृत बड़े लोक और राष्ट्रीय हित में किया गया था। कुछ राज्यों की शिकायत है कि शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से किया जाता है यह शिकायत ठीक नहीं है क्योंकि संविधान (44 वां संशोधन) अधिनियम 1974 के अनुसार राज्य विधान मंडल को एक वर्ष से अधिक समय तक निलंबित नहीं किया जा सकता। इससे इस संबंध में उत्पन्न होने वाली आशंका दूर हो जानी चाहिए।

इसका एक स्पष्ट उदाहरण जनता-पार्टी सरकार द्वारा 1977 में की गई कार्यवाही है। इस समय उन्होंने नौ राज्यों में इस आधार पर अनुच्छेद 356 लागू किया कि उन राज्यों के निर्वाचन वर्ग ने संसदीय निर्वाचन में जनता पार्टी के पक्ष में मतदान किया था। वे यह सिद्ध कर रहे थे कि उन राज्यों में उस समय शासन कर रही कांग्रेस सरकार में, वहां की जनता ने विश्वास खो दिया है। 6 राज्यों ने संघ सरकार के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में मुकदमा दायर किया। उच्चतम न्यायालय में मामले की जांच की और निर्णय दिया कि उस समय विद्यमान स्थिति पर अनुच्छेद 356 लागू हो रहा था और मुकदमा खारिज कर दिया। संक्षेप में उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त आधार पर नौ राज्यों में राष्ट्रपति का शासन लागू करने की जनता सरकार की कार्यवाही का समर्थन किया।

1980 में जब कांग्रेस सरकार सत्ता में आई यही प्रक्रिया दोहराई गई। निस्संदेह उस समय इस कार्यवाही के विरुद्ध न्यायालय में चुनौति नहीं दी गई। अत: 18 मामले एक श्रेणी में आ गए अर्थात संसद के निर्वाचन का परिणाम जिसमें निर्वाचन वर्ग ने एक विशेष पार्टी के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछले 35 वर्षों में राष्ट्रपति शासन 50 बार लागू किया गया। कुल मिलाकर इन मामलों में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने का कारण यह था कि कोई भी पार्टी दल-बदल के कारण अथवा किसी अन्य कारण से सरकार बनाने की स्थिति में नहीं थी। तथापि मुख्य कारण दल-बदल था। और इन मामलों

का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करने से यह पता चलेगा कि राष्ट्रपति ने किसी विशेष पार्टी के हित को बढ़ाने के लिए जानबूझ कर हस्तक्षेप नहीं किया। विरोधी पार्टी की यह शिकायत थी कि केन्द्र सत्तारूढ़ दल के हित को बढ़ाने के लिए इस उपबंध का दुरूपयोग कर रहा है, राजनीतिक कारणों पर आधारित है और तथ्यों पर नहीं। ऐसा हो सकता है कि एक दो मामलों में राज्यपाल ने गलत निर्णय लिया हो और ऐसी स्थिति के दोहराए न जाने का उपाय राज्यपाल की सतर्कता है और यह उसकी दूरदर्शिता, राजनीतिज्ञता और अनुभव पर निर्भर करेगी। राज्यपाल द्वारा अधिक से अधिक सावधानी बरते जाने पर भी इस बात की अचूक गारंटी नहीं दी जा सकती कि वे कभी निर्णय लेने में गलती नहीं करेंगे। एक बात निश्चित रूप से बताई जाती है कि केन्द्र ने कहीं पर भी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं की है जिससे राष्ट्रपति राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले सके।

अतः यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि अनुच्छेद 356 के बने रहने की आवश्यकता है। जैसा कि आरंभ में बताया गया कि यह केवल भारत सरकार अधिनियम, 1935 (धारा 93) के स्थान पर है। इस मुद्दे पर संविधान-सभा में लम्बी बहस हुई और अंत में सर्व सम्मति यह थी कि सांविधानिक उपबंधों में निर्धारित परिस्थितियों में राज्य का प्रशासन अपने हाथ में लेने की शक्ति केन्द्र के पास अवश्य होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि राज्य में अस्थिर दशा उत्पन्न होने पर सबसे पहले वहां कानून और व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। और राष्ट्रपति का शासन लागू किए जाने से इस प्रकार की जटिलताओं और विपत्तियों से बचा जा सकेगा। केन्द्र दल-बदल, अस्थिर मंत्रालयों और व्यापक रूप से फैली अव्यवस्था का दर्शक नहीं हो सकता। अतः यदि ऐसी कोई परिस्थिति विद्यमान है तो यह न केवल आवश्यक है कि बल्कि केन्द्र का यह कर्तव्य भी है कि वह सांविधानिक प्रक्रिया के अनुसार राज्य का प्रशासन अपने हाथ में ले ले, वहां स्थिति को पुनः सामान्य बनाए और लोकतांत्रिक सरकार बहाल करे। पहले भी यही क्रिया अपनाई जाती रही है और इस सिद्धान्त और प्रक्रिया से विचलित होने का कोई कारण नहीं है। दल-बदल विरोधी कानून इस स्थिति में बहुत अधिक सुधार लाया है।

अनुच्छेद 356 के खंड 4 और 5 के संबंध में यह निवेदन है कि संविधान के 44 वें संशोधन को प्राख्यापित करने से पहले विद्यमान स्थिति कुछ राज्यों के अनुभव को ध्यान में रखते हुए फिर से लाई जानी चाहिए जिसके परिणामस्वरूप संविधान में संशोधन करना पड़ा। भारतीय राज्य व्यवस्था में ऐसी स्थिति की संभावना को समाप्त नहीं किया जा सकता और ऐसे प्रयोजनों के लिए हर बार संविधान में संशोधन करना एक अनावश्यक दुविधा होगा, यदि किसी कारण से खंड 4 में परिवर्तन नहीं किया जाता है तो कम से कम खंड 5 को उस रूप में किया जाना चाहिए, जैसा कि वह 44 वें संशोधन से पहले था।

इस भाग के पहले अंश पर विचार करने के बाद अब हम इसके दूसरे अंश पर विचार करते हैं यह प्रश्न 4.6 से आरम्भ होता है।

जनगणना, निर्वाचन आदि जो कि संघ सरकार के कार्य हैं, इस समय पारस्परिक संतोषजनक व्यवस्था द्वारा/राज्यों द्वारा कार्यान्वित किए जाते हैं। न तो राज्यों ने और न ही केन्द्र ने इस व्यवस्था के किसी असंतोषजनक परिणाम के बारे में शिकायत की है। वस्तुतः ऐसी व्यवस्था बहुत अधिक प्रशंसनीय है : इससे देश में इस समय केन्द्र और राज्य में बहुत अधिक सामंजस्य पूर्ण संबंध विद्यमान होने का पता चलता है। संघ और राज्य सरकारों के इस प्रकार के सहयोग से व्यय बहुत घट गया है और एक्सचेकर को काफी बचत हुई है और इस बचत को निर्धन और दलित वर्ग के उत्थान के लिए विकास-क्रियाकलापों में लगाया जा सकता है। इसी प्रकार कृषि मूल्य आयोग, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, एकाधिकार और व्यापारिक व्यवहार आयोग, भारतीय खाद्य निगम आदि जैसी एजेंसियों के बारे में भी प्रश्न पूछा गया है। यह बताया जा सकता है कि इनमें से अधिकांश एजेंसियों की कार्यपालक शक्ति सामान्यतः या तो संघ की सूची में या समवर्ती सूची में देखी जा सकती है। ये एजेंसियां उन्हें सौंपे गए क्षेत्र में उत्कृष्ट रूप से कार्य कर रही हैं, इनमें से किसी भी एजेंसी को अनावश्यक नहीं कहा जा सकता बल्कि इनमें से प्रत्येक एजेंसी राज्य सरकारों के सक्रिय सहयोग से राष्ट्रीय महत्व के कार्यों को कर रही है और इनके क्रियाकलापों का लाभ मुख्यतः राज्यों को मिलता है। अखिल भारतीय सेवाओं के प्रश्न पर भी विचार किया जाना है जो पूरे देश के प्रशासनिक ढांचे के लिए वरदान सिद्ध हुई है क्योंकि अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी जब केन्द्र में जाते है तो राज्यों में प्राप्त हुए अनुभव का उपयोग करते है। इस संबंध में यदि कोई आवश्यकता है तो वह यह है कि और अधिक अखिल भारतीय सेवाएं बनाई जाएं किन्तु दुर्भाग्य वश राज्य इसका विरोध कर रहे हैं। अनुभव का उपयोग करने के अतिरिक्त अखिल भारतीय सेवाएं अधिकारियों में व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण पैदा करती है तो दक्षता और समाज के अपेक्षाकृत बड़े हितों दोनों के लिए बहुत आवश्यक है अखिल भारतीय सेवाओं के लिए अधिकारियों का मार्ग दर्शन सामान्यतः संकीर्ण क्षेत्रीय अथवा प्रान्तीय विचारों द्वारा नहीं होता बल्कि व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण से होता है। जो राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए बहुत आवश्यक है।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और संघ के अन्य सशस्त्र बलों की क्या स्थिति है ? पिछले 4 वर्षों के दौरान असम, पंजाब और गुजरात में हुई घटनाओं को देखते हुए केन्द्रीय बल को मजबूत बनाने की बहुत अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। ताकि जहां भी कानून और व्यवस्था भंग हो वहां कार्यवाही की जा सके। इसके अतिरिक्त कानून और व्यवस्था के बार-बार भंग हो जाने से अन्य ऐसे मामले भी हैं जिनमें केन्द्र की सहायता की आवश्यकता होती है। इन सभी दृष्टांतों को देखते हुए संघ को पूरा सैन्य बल के उपयोग करने की शक्तियां प्रदान करने की आवश्यकता प्रतीत होती है, ताकि राज्य के किसी ऐसे क्षेत्र में कानून और व्यवस्था कायम की जा सके जहां राज्य के बल ऐसा करने में असमर्थ हैं।

समाचार पत्रों, पुस्तकों, मुद्रणालयों और प्रसारण और अन्य संचार-साधनों के बारे में भी प्रश्न है। समाचार पत्रों, पुस्तकों और मुद्रणालय समवर्ती सूची में है और प्रसारण तथा अन्य संचार-साधन संघ की सूची में हैं। निवेदन है कि समाचार-पत्रों, पुस्तकों और मुद्रणालयों को समवर्ती सूची में शामिल करने की व्यवस्था एक सुविचारित है। क्षेत्रीय भाषाओं में असंख्य समाचार-पत्र निकलते हैं जो केवल संबंधित क्षेत्र में ही पढ़े जाते हैं। क्षेत्रीय रूचि की पुस्तकें असंख्य हैं और रूपांतरित कुटीर उद्योग से लेकर परिष्कृत आधुनिक पद्धतियों तक के व्यापक किस्म के मुद्रणालय हैं। इन परिस्थितियों में उन्हें समवर्ती सूची में बनाया रखना उपयुक्त होगा ताकि राज्य उन पर नियंत्रण रख सकें और साथ ही जब राष्ट्रीय हितों के लिए आवश्यक हो तो केन्द्र भी उनमें हस्तक्षेप कर सके। इसके साथ-साथ एक से अधिक राज्यों में पढ़े जाने वाले समाचार-पत्रों को भी समवर्ती सूची में शामिल किया जाना चाहिए। यही तर्क पुस्तकों के संबंध में भी लागू होता है।

प्रसारण और संचार के अन्य साधन जिसमें दूरदर्शन भी शामिल है, आवश्यक रूप से समवर्ती सूची में होने चाहिए, क्योंकि प्रसारण केन्द्र से किसी भी विषय के प्रसारित किए जाने के बाद वह न केवल एक राज्य में बल्कि पूरे भारत में और शक्तिशाली केन्द्र होने पर पूरे विश्व में सुना जाता है। यह सुनिश्चित करना भी संघ का कर्तव्य है कि ऐसे प्रसारण से विदेशों में हमारे संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। उदाहरणार्थ ऐसे नाजुक समाचार या विषय प्रसारित करते समय बहुत सावधानी बरतनी होती है, जिनका प्रभाव पड़ोसी देशों के साथ हमारे संबंधों पर भी पड़ सकता है, राज्य सरकारों को जैसा कि वे चाहती हैं, प्रसारण की पूरी शक्तियाँ देने के क्या परिणाम होंगे। इसका अच्छी तरह से अनुमान लगाया जा सकता है। यही सिद्धान्त दूरदर्शन के बारे में भी लागू होता है। सिद्धान्तः जहाँ अन्तर्राज्यीय सीमा के बाहर संचार हो वहाँ राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए संघ द्वारा नियंत्रण रखा जाना अपेक्षित है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं हैं।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए आंचलिक परिषद की स्थापना की गई। दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि उन्होंने कोई लाभदायक प्रयोजन पूरा किया है।

इस अवस्था पर संविधान के अनुच्छेद 263 पर विचार करना सुसंगत होगा। यह अनुच्छेद निम्नलिखित रूप में है :—

"यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत होता है कि ऐसी परिषद की स्थापना से लोकहित की सिद्धि होगी जिसे—

(क) राज्यों के बीच जो विवाद उत्पन्न हो गए हों, उनकी जांच करने और उन पर सलाह देने,

(ख) कुछ या सभी राज्यों के अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के सामान्य हित से संबंधित विषयों के अन्वेषण और उन पर विचार विमर्श करने, या

(ग) ऐसे किसी विषय पर सिफारिश करने और विशेष रूप से उस विषय के संबंध में नीति और कार्यवाही से अधिक अच्छे समन्वय के लिए सिफारिश करने, के कर्त्तव्य का भार सौंपा जाए तो राष्ट्रपति के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वह आदेश द्वारा ऐसी परिषद की स्थापना करे और उस परिषद द्वारा पालन किए जाने वाले कर्तव्यों की प्रकृति को तथा उनके संगठन और प्रक्रिया को परिनिश्चित करें।"

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी ऐसी परिषद की स्थापना करने की सिफारिश की है।

वस्तुत: संघ और राज्यों के लिए यह संभव होना चाहिए कि वे उनके बीच उठने वाले मतभेदों को उपयुक्त स्तर पर बातचीत करके दूर कर सकें। शासनाध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री राज्यों के प्राधिकारियों की बात को या तो स्वयं या केन्द्रीय मंत्रालयों के माध्यम से सुनने के लिए हमेशा तत्पर रहेंगे जो मामले की जांच करके उसे सुलझा सकते हैं। ऐसी कोई समस्या नहीं हो सकती है जिसे परस्पर बातचीत से हल नहीं किया जा सके। इसका बहुत साधारण सा कारण यह है कि सम्बद्ध हित जनता के होते हैं और अंतिम विश्लेषण से पता चलता है कि उसमें कोई विरोध नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार के परिषद की स्थापना में एक अन्य कठिनाई भी है। राज्यों की प्रवृति यह हो जाएगी कि वह मतभेद पैदा करने वाले हर छोटे-मोटे मामलों में परिषद के पास पहुँच जाए। यदि राज्य को कोई शिकायत हैं और वह अन्तर-राज्य परिषद के पास पहुँचता है तो संघ सरकार को भी परिषद के समक्ष अपना दृष्टिकोण रखना होगा। यदि दुर्भाग्यवश परिषद के विचार संघ के विरुद्ध हों तो संघ के अपेक्षाकृत बड़े हितों के लिए मामले को प्रस्तुत करता है, तो संघ को परिषद की सिफारशें स्वीकार करने में उलझन होगी। वस्तुत: इससे अन्तर्राज्यीय परिषद केन्द्रीय मंत्रिमंडल से अधिक सशक्त ऐसा निकाय बन जाएगा जिसका संसद या जनता के प्रति कोई दायित्व भी नहीं होगा। अत: ऐसे परिषद की स्थापना के बहुत बुरे परिणाम हो सकते है। चाहे इस परिषद के अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही हों। वस्तुत: यदि प्रधान मंत्री इसके अध्यक्ष होंगे तो स्थिति और खराब हो जाएगी, यदि प्रधान-मंत्री को परिषद के अध्यक्ष के रूप में दिए गए अपने निर्णय को परिस्थितियों और राष्ट्रीय हित को देखते हुए रद्द करना पड़े तो उनको बहुत उलझन का सामना करना पड़ेगा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि घोर आवश्यकता के उपयुक्त मामलों में पहले की तरह अनुच्छेद 263 का अवलम्ब नहीं लिया जाना चाहिए।

भाग V

वित्तीय संबंध

प्रश्नावली का भाग V संघ और राज्यों के वित्तीय संबंधों के बारे में है। प्रश्न बहुत व्यापक है और इस विषय के अन्तर्गत 39 प्रश्न हैं।

केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंध मुख्यत: दोनों के बीच कराधान शक्तियों और खर्च के दायित्वों के सांविधानिक विभाजन पर आधारित है और सामने आने वाली समस्याओं को पूरा करने के लिए वर्षों में विकसित हुए हैं। केन्द्र और राज्य अपने-अपने कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों को पूरा कर सकें इसके लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि कुल राष्ट्रीय संसाधनों का दोनों के बीच उचित बंटवारा किया जाए। देश के 22 राज्यों के आर्थिक विकास और संसाधन क्षमता में विशाल असमानता को देखते हुए इस प्रणाली में समानता को बढ़ाने और क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करना भी समानरूप से महत्वपूर्ण है। वर्तमान प्रणाली में अन्तरण की विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा इन उद्देश्यों से संतुलन लाने का प्रयास किया गया है।

हमारे संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कराधान से संबंधित प्रविष्टियाँ सातवी अनुसूची की सूची I और सूची II में अलग से रखी गई हैं। संविधान कराधान-शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था करता है जिसके द्वारा कुछ कर पूरी तरह राज्यों के लिए आरक्षित हैं जबकि अन्य केन्द्र के लिए आरक्षित हैं। इस विभाजन का एक ठोस आर्थिक आधार है। ऐसे कर जो स्थानीय स्वरूप के हैं और/अथवा जनकी उगाही राज्य की भौगोलिक सीमाओं में ही प्राय: होती है, राज्य सूची में हैं) उदाहरणार्थ भू-राजस्व, बिक्री कर, राज्य आबकारी शुल्क, मोटर वाहन कर, मनोरंजन कर आदि) ऐसे कर जिनका अंतर्राज्यीय आधार है अथवा जिनकी उगाही आवश्यक रूप से केन्द्र द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ धन-कर आदि संघ सूची में है। सातवीं अनुसूची की सूची I की 82 से लेकर 92 तक ही प्रविष्टियों का संबंध संघ की कराधान शक्ति से है। इसी प्रकार सूची I की 45 से 63 तक ही प्रविष्टियों का संबंध राज्यों की कराधान शक्तियों से है। 46 वें संशोधन के द्वारा सूची I में 92 ख प्रविष्टि जोड़ी गई है लेकिन यह अभी प्रवृत्त नहीं हुई। यह विभाजन विकृतियों से बचाता है। लेकिन संविधान स्वीकार करता है कि केवल इस विभाजन से राज्यों को अपने कार्यों के निर्वहन में समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त संसाधनों की व्यवस्था नहीं हो सकेगी। इसलिए यह केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अंतरण की पद्धति का प्रावधान करता है। भले ही, संघ सरकार को सूची I की 87, 88, 89, 90, 92 और 93 क प्रविष्टियों के अधीन कराधान शक्तियां प्राप्त हैं अनुच्छेद 269 के कारण संघ सरकार को वित्त आयोग के निर्देश के अनुसार इन करों की निवल प्राप्तियों में राज्यों के साथ भागीदारी करनी पड़ती है। आय-कर की निवल प्राप्ति का IX एक निश्चित प्रतिशत भी राज्यों को दिया गया है जबकि संविधान लागू होने के समय से ही संघ उत्पाद शुल्कों में दोनों के बीच भागीदारी भी हो रही है। इसी प्रकार, प्रविष्टि 92 क के अधीन कर केन्द्र द्वारा उगाहा जाता है लेकिन राज्य इस कर को एकत्र करते है और अपने पास रखते है। यही मामला प्रविष्टि 91 का भी है।

इसके बाद हमारे पास 82, 83, 84, 85 और 86 प्रविष्टियां बचती है।

अनुच्छेद 270 और 272 के कारण 82 और 84 प्रविष्टियों के अधीन एकत्रित करों में केन्द्र का भी हिस्सा है। ये कर है, कृषि आय से इतर आय कर और मादक द्रव्यों, भारतीय अफीम और भारतीय गांजा आदि के अलावा भारत में विनिर्मित/उत्पादित तम्बाकू एवं अन्य वस्तुओं पर उत्पाद-शुल्क। अत: 82 और 84 प्रविष्टियों के अंतर्गत एकत्रित कर अर्थात, आय कर एवं उत्पाद-शुल्कों में भी संघ की राज्यों के साथ भागीदारी है, 82, अनिवार्य रूप से और 84 कानून द्वारा। इसके पश्चात, हमारे पास केवल 83, 85 और 86 प्रविष्टियों के अंतर्गत कर बचते है जिन्हें केवल केन्द्र ही पूरी तरह एकत्रित करता है और प्राप्तियों को अपने पास रखता है। वे कर आम बोल चाल में सीमा-शुल्क, निगम कर और धन-कर हैं।

निगम कर वस्तुत: आय कर ही है जो निगमित संस्थाओं से एकत्र किया जाता है। जिसमें दो तत्व हैं, एक यह कि संस्थाओं द्वारा अपनी आय कर पर देय कर और दूसरा शेयर धारियों को देय लाभांश के संबंध में इन निगमित संस्थाओं द्वारा एकत्रित कर। 1959 में आय कर अधिनियम के संशोधन द्वारा यह कर जो पहले आंशिक रूप में विभाजन योग्य था, ऐसा नहीं रहा। पहला भागीदारी योग्य हिस्सा लाभांश वाला हिस्सा था।

करो के भागीदारी योग्य हिस्से के संबंध में अर्थात, 82 और 84 प्रविष्टियां के अंतर्गत करों के लिए विभाजन-वित्त-आयोग की सिफारिशों के अनुसार किया जाता है, जिसकी नियुक्ति हर पांचवे वर्ष अथवा उससे पहले की जाती है और जिसे अन्य बातों के साथ-साथ करों आदि की निवल प्राप्तियों का संघ और राज्यों के बीच वितरण के संबंध में सिफारिश करने का कार्य भी सौंपा जाता है। वित्त आयोग को केन्द्र द्वारा उगाहे उन करों, जिनमें केन्द्र का कोई हिस्सा नहीं होता, राज्यों के अपने-अपने हिस्सों का निर्धारण करने की जिम्मेदारी भी दी जाती है।

अनुच्छेद 275 उन राज्यों को सहायता अनुदान का प्रावधान करता है जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो, अनुच्छेद 282 के अधीन केन्द्र अथवा राज्य किसी भी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए बिना इस तथ्य की ओर ध्यान दिए कि सार्वजनिक प्रयोजन के अधीन उस विषय पर उन्हें कार्यपालक शक्ति है भी अथवा नहीं, अनुदान कर सकते है। प्राकृतिक विपदाओं के मामले में बड़े-बड़े अनुदान इस बात का प्रमाण है कि जब भी कोई वास्तविक जरूरत पैदा होती है केन्द्र राज्यों की सहायता करता है।

केन्द्र से राज्यों को निधियों के सुचारू एवं पर्याप्त अंतरण को सुनिश्चित करने के लिए संविधान एक नियमित सांविधिक मशीनरी का प्रावधान करता है अर्थात, प्रत्येक पांचवे वर्ष में वित्त आयोग की नियुक्ति (यदि आवश्यक हो तो पहले भी)।

वित्त आयोग का उल्लेख ऊपर किया गया है। आयोग राज्यों के वित्त की उनकी राजस्व संभाविता की एवं उनकी व्यय प्रतिबद्धताओं की विस्तृत समीक्षा करता है और करों में उनके हिस्सों के विनिधान की तथा सहायता-अनुदान के संबंध में सिद्धांतों की सिफारिश करता है। हाल ही में, प्राकृतिक विपदाओं के लिए सहायता तथा राज्यों को ऋण सहायता के प्रावधान संबंधी मुद्दे भी इस आयोग को ऐसी सहायता एवं राहत, जहां आवश्यक हो, की व्यवस्था संबंधी सिद्धांत सुझाने के लिए सौंपे गए हैं।

पिछले 35 वर्षों के दौरान संविधान के मौजूदा उपबंध संतोष जनक सिद्ध हुए हैं क्योंकि इन उपबंधों को शामिल करते समय संविधान निर्माताओं ने विभिन्न सामाजिक-आर्थिक एवं क्षेत्रीय तथ्यों को ध्यान में रखा था। उनमें किसी परिवर्तन की जरूरत दिखाई नहीं देती। किसी भी परिवर्तन से असंतुलन पैदा हो सकता है जिससे राष्ट्रीय ताना-बाना कमजोर हो सकता है।

कराधान की दर अधिकतम हो चुकी है और संभवतः चरम सीमा पर है। इसलिए कराधान की दरों को बढ़ाकर राजस्व वृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए।

इस स्थान पर विचारार्थ मूल-मुद्दा यह है कि क्या केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अधिक अंतरण की गुंजाइश है। इसे रक्षा एवं विदेश कार्यों के क्षेत्र में तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, जिनका समग्र राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है के संदर्भ में देखना होगा। इस बात का मूल्यांकन करना भी इतना ही महत्वपूर्ण है कि क्या राज्य संविधान द्वारा उनके लिए निर्धारित क्षेत्रों के अंदर अतिरिक्त संसाधन जुटा सकते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि केन्द्र को राज्यों को अधिक संसाधनों का अंतरण करना चाहिए क्योंकि राज्यों के मुकाबले उसकी बजट स्थिति अधिक मजबूत है। यह विचार संसाधन प्रतिबंधों के अपर्याप्त मूल्यांकन पर आधारित है जिनका केन्द्र को सामना करना पड़ता है जो अंशतः एक निश्चित स्तर से अधिक वर्तमान राजस्व को एकत्रित करने की कठिनाई से पैदा होते हैं और अंशतः क्रमिक वित्त आयोगों की सिफारिशों के परिणामस्वरूप राज्यों को केन्द्र के प्रगामी अंतरण से पैदा होते हैं। परिणामस्वरूप 1979–80 के बाद से केन्द्र की बजट स्थिति में भारी संरचनात्मक परिवर्तन हुआ है। राजस्व-लेखे के भारी अधिशेष, जो कि केन्द्रीय बजट की विशेषता थे, अब राजस्व लेखे के घाटे बन गए हैं। 1985–86 में पहली बार वर्तमान राजस्व से संतुलन ऋणात्मक हो गया है। ऐसी स्थिति आ गई है कि अब चालू खाते के व्यय की पूर्ति के लिए पूंजीगत प्राप्तियों का सहारा लेना पड़ेगा।

प्रश्न उठता है कि क्या धनात्मक वर्तमान राजस्व से संतुलन बनाने के लिए व्यय में मितव्ययिता और कर तथा कर-इतर राजस्व में सुधार की गुंजाइश है। ऊपर उल्लिखित केन्द्रीय करों की वर्तमान दरें पहले ही काफी ऊंची हैं। व्यय संबंधी प्रतिबद्धताओं का जहां तक संबंध है, राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को हमेशा ध्यान में रखा जाना चाहिए। भारत की सुरक्षा प्रमुख प्राथमिकता है। इसके लिए सुरक्षा बलों में अत्याधिक निवेश को तथा नवीनतम उपस्कर एवं शस्त्रास्त्र उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए अनुसंधान की आवश्यकता है यह व्यय भूमंडलीय दशाओं के साथ-साथ पड़ोसी राज्यों के सुरक्षा-वातावरण पर भी मुख्यतः आधारित होता है। किसी भी राष्ट्र के बने रहने के लिए उसकी रक्षा संबंधी तैयारी एक अनिवार्य पूर्वापेक्षा है। यह निवेश ऋणात्मक या अनुत्पादक प्रतीत हो सकता है लेकिन यह अत्यधिक अपरिहार्य है। 1962 में चीन के विश्वासघात को भुलाया नहीं जाना चाहिए। इसको निपटाने के लिए केन्द्र के पास समुचित रूप से पर्याप्त निधि होनी चाहिए और केन्द्र को अधिकतम कराधान के अरुचिकर कार्य से बचना नहीं चाहिए।

ब्याज की अदायगी संविदागत दायित्व का प्रतिनिधित्व करती है और इसके लिए अनिवार्य रूप से प्रावधान किया जाना चाहिए। खाद्यान्न-उत्पादन में आत्म-निर्भरता सुनिश्चित करने के लिए सहायता प्राप्त होनी महत्वपूर्ण होती है और इस समय खाद्यान्न की आरामदायक स्थिति मुख्यतः उत्पादन में सुधार लाने के लिए प्रोत्साहनों के रूप में सहायता के प्रावधान के कारण है।

वर्तमान राजस्व के अधिशेष के विश्लेषण से यह पता चलता है कि रक्षा पर व्यय, सहायता का प्रावधान तथा ब्याज की अदायगी आरामदायक खाद्यान्न स्थिति मुख्यतः उत्पादन में सुधार लाने के लिए प्रोत्साहनों के रूप में सहायता के प्रावधान के कारण है।

वर्तमान राजस्व के अधिशेष के विश्लेषण से यह पता चलता है कि योजना—इतर राजस्व व्यय का 70% से अधिक भाग रक्षा-व्यय सहायता के प्रावधान और ब्याज की अदायगी के लेखे के लिए है।

जबकि गैर-योजनागत स्थिति बहुत अधिक अच्छी नहीं है फिर भी केन्द्र, कोर क्षेत्र में उत्पादन संबंधी निवेशों के माध्यम से राष्ट्र के त्वरित विकास के संबंध में अपने उत्तरदायित्व को छोड़ नहीं सकता। केन्द्र का योजना संबंधी परिव्यय संचार, पैट्रोलियम, इस्पात, कोयला इत्यादि जैसे क्षेत्रों, जो समग्र रूप से राष्ट्रीय महत्व के क्षेत्र हैं, में केन्द्रीत होता है। यह नोट किया जाए कि केन्द्र के परिव्यय का लगभग 35% केवल ऊर्जा क्षेत्र पर किया जाता है, जबकि उद्योग एवं खनिजों तथा परिवहन पर परिव्यय का अन्य 35% प्रयोग किया जाता है। यदि केन्द्र से राज्यों को कुछ और अधिक संसाधन अंतरित कर दिए जाएं तो इन परिव्ययों में अवश्य कटौती होगी। इस प्रकार के परिवर्तन से देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और इससे, अंततोगत्वा केन्द्र तथा राज्यों, दोनों की संसाधन संभाव्यता (क्षय) कम हो जाएगी।

यहां इस बात की जांच करना समीचीन होगा कि क्या राज्य अपने ही प्रयासों के माध्यम से अपने लिए निर्धारित क्षेत्रों में अपने संसाधन-आधार को बढ़ा नहीं सकते। ऐसा प्रायः कहा जाता है कि राज्यों के पास राजस्व के लोचहीन स्रोत हैं। परन्तु, पिछले दशक के वास्तविक निष्पादन से पता चलता है कि राज्यों के कुल कर-राजस्व केन्द्र की तुलना में अधिक तेजी से बढ़े हैं और राज्यों के कुल कर राजस्व 1974–75 में कुल करों के 31.5% से बढ़कर 1984–85 में 34.6% हो गए हैं। अतः मौजूदा प्रणाली में राज्यों के कराधान आधार के लिए काफी वृद्धि की गुंजाइश है।

रही राज्यों की कराधान शक्ति की बात, वे सातवीं अनुसूची की सूची II की 45 से 63 तक की प्रविष्टियों में हैं। संख्या की दृष्टि से ये 19 प्रविष्टियां हैं। वास्तव में, राजस्व-प्राप्ति क्षमता तुलनात्मक रूप से कम है। संभवतः उन्हें अधिकतम राजस्व, बिक्री-कर से प्राप्त होता है।

संघ एवं राज्यों की कराधान-शक्तियों की गहरी छानबीन से यह पता चलेगा कि संघ की किसी भी कारधान-शक्तियों को राज्यों को अंतरित करना संभव नहीं है। संविधान के निर्माताओं ने कराधान-शक्तियों, कर उगाहने एवं वितरण के संबंध में ऐसी विस्तृत प्रक्रिया विकसित की है जिसमें कि राज्यों को देय हिस्से की आवधिक समीक्षा का प्रावधान है, की प्रचलित प्रणालीमें कोई सुधार करना कठिन होगा। परिणामस्वरूप राज्यों की किसी कराधान शक्ति के अंतरण का प्रश्न ही नहीं है।

आईए, राज्यों के निष्पादन पर एक नजर डालें। राज्यसूची की प्रविष्टि 46 के अंतर्गत राज्य कृषि आय पर कर उगहा सकते हैं। सिंचाई सुविधा के विशाल प्रसार, उच्च कोटि के बीज, रासायनिक खादों एवं भू-उत्पादकता में अनुसंधान के प्रयासों के कारण कृषकों की एक बहुत बड़ी संख्या समाज के विशिष्ट समूह में शामिल हो गई है। भारतीय खाद्य निगम के बढ़ते हुए भंडार के लिए हरित-क्रांति गेहूं एवं चावल के निर्यात बाजार की खोज तथा कृषि-उत्पादन के लिए बढ़ते हुए समर्थन-मूल्यों ने मिल कर कृषकों के एक धनाढ्य-वर्ग को जन्म दिया। फिर भी, केरल को छोड़ कर किसी भी राज्य ने कृषि आय कर नहीं लगाया। 18,000 रु० वार्षिक पगार पाने वाले कर्मचारी से आय कर लिया जाता है, परन्तु एक लाख रु० प्रतिवर्ष आय वाले किसान को आय-कर के रूप में एक पाई भी नहीं देनी पड़ती। सामान्य सी बात है कि राज्य-सरकार अपने वोट समूह को सुरक्षित बनाए रखने के लिए कर नहीं उगाहती और संसाधनों की कमी के लिए मगरमच्छीय आंसू बहाती है।

एक अन्य दुःखदायक बात यह है कि एक के बाद एक योजनाओं में राज्यों द्वारा भारी कीमत से निष्पादित सिंचाई एवं ऊर्जा परियोजनाओं से राज्यों को कोई अन्य प्राप्ति नहीं होती। वस्तुतः सिंचाई परियोजनाओं की प्राप्तियां अभी तक कार्यचालन खर्च पूरे करने के लिए भी पर्याप्त नहीं है। राज्य बिजली बोर्डों एवं सड़क यातायात निगमों का कार्य भी अब तक संतोषजनक नहीं रहा है जिसके परिणामस्वरूप काफी हानि उठानी पड़ी है। समुचित उपायों के माध्यम से राज्य इससे अधिक संसाधन जुटा सकते हैं।

इन सब बातों को देखते हुए अपर्याप्त एवं लोचहीन कर की शिकायत निराधार प्रतीत होती है। राज्यों के लिए उपलब्ध संभावित संसाधन आधार काफी बड़ा

है और अपेक्षाकृत अधिक लोचदार है। यदि कारगर ढंग से इसका प्रबंध किया जाए तो राज्यों के कर आधार से काफी बड़ा राजस्व प्राप्त किया जा सकता है और केवल इसी से ही वर्तमान समस्याओं का समाधान होगा। संसाधनों पर प्रतिबंध की इस समेकित स्थिति में सभी मोर्चों पर संसाधनों को जुटाने के लिए अधिकतम प्रयास आवश्यक है और केन्द्र से अतिरिक्त संसाधनों का अधिक अंतरण केवल एक अस्थायी उपाय हो सकता है जिससे बड़े राष्ट्रीय हितों को हानि हो सकती है।

वर्तमान समस्याएं हमारी व्यवस्था की अपर्याप्तता के कारण पैदा नहीं हुई अपितु इसलिए कि व्यवस्था को संसाधनों पर प्रतिबंध की स्थिति में कार्य करना पड़ रहा है। यह आवश्यक है कि केन्द्र एवं राज्य उपलब्ध संसाधनों का पूरी तरह संदोहन करें। सार्वजनिक उद्यमों को दोनों के लिए पर्याप्त संसाधन जुटाने के लिए कारगर बनाना होगा। इसके लिए व्यवस्था में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः राज्यों के पक्ष में ऐसे किसी परिवर्तन से जितनी समस्याएं सुलझेंगी उससे अधिक पैदा हो जाएंगी क्योंकि केन्द्र की वित्तीय क्षमता में किसी प्रकार की कमी करने से न केवल राष्ट्रीय सुरक्षा एवं इसकी अखंडता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा अपितु देश के आर्थिक विकास तथा विशेष रूप से पिछड़े हुए राज्यों तथा अल्पसुविधा प्राप्त लोगों को ऊँचा उठाने पर भी प्रतिकूल प्रभाव होगा। यह भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए कि वित्तीय शक्तियों की भागीदारी की मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन से अधिक संसाधन पैदा नहीं होंगे। इस समस्या का समाधान यही है कि मौजूदा व्यवस्था के अंदर ही सभी ओर बेहतर वित्तीय निष्पादन हो।

उपर्युक्त स्पष्ट की गई स्थिति को देखते हुए वित्तीय मामलों के संबंध में सर्वाधिक संतुलित दृष्टिकोण यही हो सकता है कि वर्तमान व्यवस्था की नीति को जारी रखा जाए जिसके साथ कोई छेड़ छाड़ न की जाए।

भाग VI

प्रश्नावली के भाग VI का संबंध आर्थिक एवं सामाजिक योजना से है। मूलतः इन प्रश्नों का संबंध राष्ट्रीय विकास परिषद्, योजना आयोग आदि के कामों से है।

आयोग मौजूदा प्रणालियों में सुधार के लिए सुझाव आमंत्रित करता है।

विकास के लिए राष्ट्र को संपूर्णता में देखना कांग्रेस-संस्कृति है। क्षेत्रीय विकास अनिवार्य रूप से इस प्रकार नियोजित किया जाए कि जिससे देश के सभी हिस्सों में संतुलन हो। क्षेत्रवाद, संकीर्णतावाद जातिवाद, संप्रदायवाद एवं संकीर्ण फिरकापरस्त हित, कांग्रेस संस्कृति एवं कांग्रेस आचार में अनजानी वस्तुएं हैं। पिछड़े हुए क्षेत्रों को औद्योगिक दृष्टि से विकसित क्षेत्रों के बराबर लाने के लिए योजना पर कार्य किया जाता है। इस दिशा में राज्य की सीमाओं को भुलाकर जनजातीय/पिछड़े हुए क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने एवं चलाने के लिए आर्थिक सहायता स्वयं अपना साक्षी है। अब तक यही लक्ष्य एवं उद्देश्य रहा है। स्वयं योजना आयोग की स्थापना देश के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य के लिए की गई है। वास्तविक व्यवहार में विभिन्न राज्यों के विभिन्न स्तरों पर नियोजित विकास के लिए एक समन्वयकारी संस्था की अत्यन्त आवश्यकता है। योजना आयोग यही कार्य करता है। समन्वय की आवश्यकता के बारे में जितना कहा जाए उतना कम है और इस व्यवस्था ने सफलतापूर्वक कार्य किया है। भारत जैसे उप-महाद्वीप के आकार वाले देश के लिए योजना छोटे क्षेत्रों के भरोसे नहीं छोड़ी जा सकती। ऐसे दृष्टिकोण से असंतुलन और बढ़ेंगे। प्रत्येक राज्य की योजना आवश्यक रूप से राष्ट्रीय योजना का अभिन्न अंग होना चाहिए क्योंकि लक्ष्य केवल एक राज्य का विकास नहीं है अपितु समग्र रूप में राष्ट्र का विकास है। इस उद्देश्य के लिए, योजना आयोग विभिन्न राज्यों में उपलब्ध संसाधनों पर विचार करता है और राष्ट्रीय योजना के अनुरूप विभिन्न राज्यों की योजनाओं का सुझाव देता है, प्रत्येक राज्य के योजना लक्ष्य योजना आयोग द्वारा अनुमोदित होते हैं। दोहराने का खतरा मोल लेते हुए भी यह कहा जा सकता है कि राज्य की योजना राष्ट्रीय योजना का केवल एक हिस्सा है। राष्ट्रीय योजना की अवधारणा योजना आयोग द्वारा दी जाती है। तदनुसार राज्य अपनी योजनाएं तैयार करते हैं। पूरे कार्यक्रम का योजना आयोग द्वारा अनुमोदन किया जाता है और तब योजना को कार्यरूप में परिणत किया जाता है।

इस प्रक्रिया में संघ निश्चय ही राज्यों की सहायता करता है, चाहे वह उन विभिन्न क्षेत्रों में जहां राज्य ऐसी स्कीमों को हाथ में ले सकने में असमर्थ हों केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें हाथ में लेकर और कब बार नियोजित विकास के लिए एकमुश्त अनुदान देकर और कई बार अनुरूपयोजी अनुदान आदि द्वारा हो।

इन महत्वपूर्ण एवं संगत विचारों को देखते हुए, यह निवेदन है कि आर्थिक एवं सामाजिक योजना तथा विकास के लिए स्वीकार किए गए मौजूदा तरीके में किसी परिवर्तन का कोई औचित्य नहीं है।

भाग VII

प्रश्नावली के अंतिम भाग में "विविध" शीर्ष के अंतर्गत मदें आती हैं। पहला है, उद्योग।

सूची I की प्रविष्टि 52 संघ को उद्योगों के विषय पर कानून बनाने में समर्थ बनाती है, बशर्ते कि संसद द्वारा यह घोषित किया गया हो कि ऐसे उद्योगों का संघ द्वारा नियंत्रण लोकहित में आवश्यक है। ऐसी किसी घोषणा के अभाव में उद्योग प्रायः सूची II की प्रविष्टि 24 के अंतर्गत आता है। एक आम शिकायत यह है कि राष्ट्रीय हित के बहाने से संघ उद्योग पर, जो कि राज्य का विषय है, अनधिकार कब्जा जमा रहा है। उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 से संबंधित एक विशेष शिकायत है। यह अधिनियम लगभग संविधान बनने के साथ ही अस्तित्व में आया है, इसे इसकी अनुसूची में उद्योग की और अधिक मदें जोड़ने के लिए बहुत बार संशोधित किया है जिन पर केन्द्र का नियंत्रण होगा। इस अधिनियम की प्रथम अनुसूची के इस विस्तार के बारे में ही यह शिकायत की जाती है कि यह उद्योगों के क्षेत्र में राज्य के अधिकारों का संघ द्वारा अतिक्रमण है।

इस दृष्टिकोण में कानूनी एवं संवैधानिक समझ का अभाव दिखाई देता है। निःसंदेह जब संघ-सूची की प्रविष्टि 52 में बताई गई घोषणा एक बार कर दी जाती है तो उद्योग एक अनुसूचित उद्योग बन जाता है और इसका नियंत्रण केन्द्र को प्राप्त हो जाता है। परन्तु नियंत्रण का स्तर अधिनियम के उस उपबंध पर निर्भर होता है जिसके अधीन घोषणा की जाती है और उस अधिनियम तक ही सीमित रखा जाता है। ईश्वरी, खेतान शुगर-मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (17) में भारत के सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने कहा था कि राज्य सूची की प्रविष्टि 24 के अधीन राज्यों की विधायी शक्ति उस सीमा तक क्षरित होती है, जिस सीमा तक संघ द्वारा घोषित उद्योग के संबंध में संसद द्वारा की गई घोषणा के अनुसार नियंत्रण प्राप्त किया जाता है। जो कि कानून के अधिनियम द्वारा स्पष्ट किया जाता है और यह अधिनियम क्षरण की कार्रवाई है। अन्य सभी तरह से घोषित उद्योग भी राज्यों की विधायी क्षमता के अंतर्गत हैं। न्यायालय ने कहा कि घोषित उद्योग के संबंध में भी अर्जन की शक्ति का इस्तेमाल राज्य द्वारा किया जा सकता है। घोषित उद्योग के संबंध में भी औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10 के अधीन हवाला देने की शक्ति राज्य में ही निहित रहती है [राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ, नागपुर बनाम दि मॉडेल मिल्स (18) देखें]।

पहली नजर में ऐसा लगेगा कि इस शिकायत में सार है। परन्तु यदि हम इस विषय में गहरे पैठे तो यह पता चलेगा कि औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम के उद्योगों में प्रायः वे उत्पाद आते हैं जिनमें एक न एक ऐसे कच्चे माल के इस्तेमाल की जरूरत होती है जिसकी पूर्ति कम हो अथवा यह उपभोक्ता द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाला पदार्थ हो सकता है जिसकी पूर्ति कम हो जैसा कि स्टोवों के लिए कैरोसीन तेल का मामला है। यदि यह सहस्र और संपूर्ण जनसंख्या के लिए संघ के उत्तरदायित्वों पर विचार किया जाए तो इस बात से सहमत होना कठिन होगा कि संघ राज्यों के लिए आरक्षित विषय में अपरिहार्य अतिक्रमण कर रहा है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार उन देहाती क्षेत्रों में जहां रोजगार प्रदान करना होता है, उद्योग लगाने, इसके उत्पादों का इस्तेमाल तथा पृथक पिछड़े हुए राज्यों एवं क्षेत्रों में उद्योगों की आवश्यकता इन सभी पर विचार करती है। यह सभी केवल पूर्व उल्लिखित अधिनियम द्वारा ही संभव है। तथा इस अधिनियम का आशय राज्यों के अधिकारों का अधिक्रमण करना नहीं है अपितु संविधान

(17) 1980 4 एस०सी०सी० 136।

(18) 1971 के 18-9-84 के निर्णय संख्या सी०ए० संख्या 1619 से 1622 जो कि 1985 (1) एस०सी०आर० 751 में उल्लिखित।

के अनुच्छेद 38 और 39 द्वारा संघ को सौंपे गए दायित्व को निभाना है। ये अनुच्छेद सर्वोच्च महत्व के राज्य नीति विषयक, नीति-निर्देशक सिद्धांत हैं।

उपर्युक्त के परिप्रेक्ष्य में उद्योगों की इस मद के अधीन सभी प्रश्नों का उत्तर मौजूदा व्यवस्था के समर्थन द्वारा मिल गया है।

अगला प्रश्न अनुच्छेद 307 से संबंधित है जो संसद को कानून द्वारा ऐसे प्राधिकरण की नियुक्ति की शक्ति प्रदान करता है जिसे वह अनुच्छेद 301 तथा 304 के उद्देश्य के लिए उचित समझे। सामान्यतः इसका संबंध अंतर्राज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य से है। यह कहा जा सकता है कि अभी तक ऐसे किसी प्राधिकरण का गठन नहीं हुआ है यदि ऐसे किसी प्राधिकरण की आवश्यकता एवं अस्तित्व होता तो पिछले 35 वर्षों के दौरान ऐसी आवश्यकता कई बार महसूस होनी चाहिए थी और ऐसे प्राधिकरण की स्थापना हो गई होती। केवल इसी तथ्य से कि ऐसी आवश्यकता अब तक महसूस नहीं हुई और अतीत में किसी भी राज्य द्वारा ऐसी मांग नहीं की गई, से यह पता चलता है कि यह अनुच्छेद एक समर्थ बनाने वाला उपबंध है जिसे जरूरत पड़ने पर ही इस्तेमाल किया जाएगा। प्रश्नावली अथवा अन्यत्र कहीं भी ऐसे प्राधिकरण की स्थापना और उनसे मिलने वाले लाभों के औचित्य के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।

प्रश्नावली का अगला हिस्सा कृषि के बारे में है। यह विषय वस्तुतः प्रविष्टि 14 के अधीन राज्य सूची में है परन्तु अप्रत्यक्ष रूप में जहां तक कृषि उत्पादों के व्यापार एवं वाणिज्य का संबंध है यह समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 का एक भाग भी है। समवर्ती सूची की प्रविष्टि तर्कसंगत है जैसा कि पिछली घटनाओं ने सिद्ध किया है कि केन्द्र का हस्तक्षेप कई बार आवश्यक था। यदि खाद्यान्नों की पूर्ति में कमी हो तो इस विषय पर संसद का हस्तक्षेप आवश्यक हो सकता है। इसके अलावा एकरूपता आदि के लिए यह एक आवश्यक वस्तु है। संभवतः यही कारण है कि क्यों इस प्रविष्टि को राज्य सूची की प्रविष्टि 14 के अस्तित्व के बावजूद समवर्ती सूची में रखना आवश्यक समझा गया। हर तरह से कृषि विकास एवं खाद्य एवं सिविलपूर्ति एक-दूसरे के अनुपूरक हैं और उत्पादन तथा पूर्ति की गतिविधियों का समन्वय करने के मामले में केन्द्र को जरूरी तौर पर एक भूमिका निभानी है।

शिक्षा ऐसा विषय है जो सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 35 के अंतर्गत आता है परन्तु सूची I की 63 से 66 प्रविष्टियों के अधीन हैं। सूची I का उल्लेख राष्ट्रीय महत्व आदि के कुछेक संस्थानों के बारे में ही है और यह संस्थान जरूरी तौर पर केन्द्र के पास होने चाहिए। इसलिए उच्च शिक्षा के मानदंडों के निर्धारण एवं समन्वय का मसला केन्द्र के पास ही होना चाहिए। मौजूदा स्थिति में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अंतिम प्रश्न अंतः सरकारी समन्वय से संबंधित है। यह प्रश्न संयुक्त राज्य अमरीका के एक आयोग का उल्लेख करता है जिसे कांग्रेस ने 1959 में बनाया था। प्रश्न यह है कि क्या हमें भी ऐसी ही संरचना तथा ऐसे ही उद्देश्य वाली किसी संस्था को अपनाना चाहिए। उत्तर नकारात्मक प्रतीत होता है क्योंकि ऐसी किसी संस्था की आवश्यकता न तो कभी महसूस की गई और न ही आयोग को छोड़कर किसी ने इस प्रश्न को उठाया है।

———

परिशिष्ट 'क'

संयुक्त राज्य अमेरिका

अमरीकी संविधानवाद की मूल विशेषता यह है कि सभी शक्तियां लोगों से प्राप्त होती है और उनकी स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए उन पर नियंत्रण रखना अनिवार्य है। बहुत से प्रभुसत्ता सम्पूर्ण स्वतंत्र राज्यों ने मिलकर एक संघ का निर्माण किया। सामाजिक समझौते अर्थात् संविधान में लोगों द्वारा सरकार की प्रत्येक शाखा को प्रत्यायोजित कार्य के निष्पादन में प्रत्येक सत्ता केन्द्र अपने सामाजिक दायित्वों की अन्तिम कुशलता के लिए दूसरों पर निर्भर रहेगा। (1) परिणामस्वरूप केन्द्रीय प्राधिकार अर्थात् राष्ट्रपति के सीमित कार्य थे। यह एक ढीला-ढाले संघ का प्रतिनिधित्व करता था। संविधान जैसा कि मूल रूप में बनाया गया था, में अधिकार घोषणा-पत्र शामिल नहीं था। जेफरसन ने ऐसे घोषणा पत्र को शामिल करने के लिए संविधान में संशोधन का आग्रह किया है। गृह-युद्ध ने महत्वपूर्ण अन्तर ला दिये। पहले 14 संशोधन केन्द्रीय प्राधिकारी को प्रत्यक्षत: मजबूत करने के लिए नहीं किए गए थे। लोग अवशिष्ट अधिकारों के अधीन थे। इसलिए इस तथ्य को 1791 में लागू की गई नवें संशोधन में संवैधानिक रूप से स्वीकार किया गया जिसमें यह प्रावधान था कि "संविधान में परिगणित विनिश्चित अधिकार लोगों को प्राप्त अन्य अधिकारों की अस्वीकृति अथवा उपेक्षा नहीं माने जाएंगे।"

केन्द्रीय प्राधिकारी की अधिकांश वर्तमान शक्ति न्यायिक निर्णयों से प्राप्त हुई है। राष्ट्रीय हित की प्रमुखता को स्वीकार करते हुए न्यायालयों ने संविधान के उपबंधों की इस प्रकार व्याख्या की कि संघीय प्राधिकारी अधिक शक्तिशाली बन जाए। इस तथ्य की ओर ध्यान देना समीचीन होगा कि संविधान की धारा आठ के उपखण्ड (18), जो कि एक प्रकार का अवशिष्ट खण्ड है का संघीय प्राधिकारों को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए बहुधा अवलम्बन लिया गया। उपखंड (18) में लिखा है :

> "उपर्युक्त शक्तियों के इस्तेमाल के लिए सभी कानून बनाना जो कि संयुक्त राज्य की सरकारी अथवा उसके किसी विभाग या अधिकारी में विहित इस संविधान द्वारा प्रदत्त शक्तियों के लिए आवश्यक एक उचित होंगे।"

"आवश्यक एवं उचित वाक्यांश मेक्लाच बनाम मेरीलैण्ड में बना (2) न्यायालय ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया कि महासंघ के पहले अंतनियमों में यह प्रावधान था कि "स्पष्ट रूप से प्रत्यायोजित न की गई प्रत्येक शक्ति" प्रत्येक राज्य के पास रहेगी। दसवें संशोधन को ध्यान में रखते हुए जिसमें यह प्रावधान था कि संविधान द्वारा संयुक्त राज्य को प्रत्यायोजित न की गई शक्तियां अथवा संविधान द्वारा राज्यों के लिए जिन शक्तियों पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया है वे क्रमश: राज्यों के लिए अथवा लोगों के लिए आरक्षित हैं, तलवार एवं तिजोरी, सभी विदेशी संबंध और राष्ट्र के उद्योग] का काफी हिस्सा सरकार को सौंपा गया।

इस बात का बहाना नहीं किया जा सकता कि ये विशाल शक्तियां अपने पीछे कम महत्व की दूसरी शक्तियों को भी इसलिए खींच लेती हैं कि वह निम्न कोटि की है। ऐसे किसी विचार को कभी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। परन्तु तर्क संगति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सरकार जिसे इतनी अधिक शक्तियां सौंपी गई है जिनके सही निष्पादन पर राष्ट्र की प्रसन्नता एवं समृद्धि इतनी अधिक निर्भर करती है, की उनके निष्पादन के लिए पर्याप्त साधन भी अनिवार्यत: दिए जाएं। यदि शक्तियां दी गई है तो उनके निष्पादन को सुविधाजनक बनाना राष्ट्र का हित है। न्यायालय ने कहा कि यद्यपि संघीय सरकार की परिगणित शक्तियों में "बैंक एवं निगमित संस्था" शब्द नहीं मिलते फिर भी उन्हें अन्य शक्तियों के निपादन के लिए आवश्यक एवं उचित शक्तियां माना जा सकता है। संघीय प्राधिकारी को इस विचार से बहुत लाभ हुआ।

वेयर बनाम हिल्टन(3) में न्यायालय ने यह विचार दिया कि संविधान के छठे अनुच्छेद के अधीन दी गई सभी संधियां या संयुक्त राज्य के प्राधिकार के अन्तर्गत जो संधियां की जाएंगी वे देश का सर्वोच्च कानून होंगी तदनुसार न्यायालय ने 1777 में वर्जीनिया राज्य द्वारा अधिनियमित कानून को रद्द कर दिया जो ब्रिटिश ऋणदाताओं की वर्जीनिया वासियों द्वारा लिए गए ऋणों की कुल अदायगी में रुकावट था क्योंकि यह पेरिस संधि के विरुद्ध पाया गया और संयुक्त राज्य संविधान के सर्वोच्चता खण्ड के अधीन इसे रद्द घोषित किया गया। इसने सकारात्मक रूप से इस बात की पुष्टि कर दी कि केन्द्रीय प्राधिकारी द्वारा की गई संधि जिसे पेरिस संधि के नाम से जाना जाता हो, का राज्य के कानून पर अधिभावी प्रभाव है संघीय प्राधिकारी की सर्वोच्चता स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दी गई थी।

गिब्बन बनाम ओगडेन (4) में न्यायालय ने वाणिज्य खण्ड का हवाला देने के बाद कहा कि तटीय व्यापार के विषय पर सम्पूर्ण अधिनियम उन सिद्धांतों के अनुसार जो कानूनों के निर्माण को निर्देशित करते है, असंदिग्ध रूप में जहाजों को व्यापार करने के लिए लाइसेन्स देने का प्राधिकार देता है। इसी दृष्टिकोण से न्यूयार्क और न्यूजर्सी के बीच एक स्टीमर चलाने का अनन्य अधिकार प्रदान किया था, अवैध घोषित कर दिया गया वाणिज्य खण्ड की विस्तृत विवेचना ने न्यायालय को संघीय प्राधिकारी की कारवाई को उचित ठहराने में समर्थ बनाया।

ओसबोर्न बनाम दि बैंक ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट (5) में तथ्य इस प्रकार थे कि ओहियो राज्य ने कांग्रेस द्वारा चार्टर्ड ओहियो में यूनाइटेड स्टेट बैंक की प्रत्येक शाखा से पचास हजार डालर कर की उगाही की, जबकि मैक्लॉक बनाम मेरीलैण्ड (2) द्वारा ऐसे ही कर को अवैधानिक घोषित किया गया था फिर भी ओहियो के अधिकारियों ने राज्य कानून को लागू करने के लिए न्यायालय के निर्णय की उपेक्षा करने का निर्णय किया। यूनाइटेड स्टेट बैंक ने संयुक्त राज्य सर्किट न्यायालय में दुहाई दी और ओहियो राज्य लेखा परीक्षक रेल्फ ओसबोर्न पर राशि एकत्र करने पर रोक लगाने सम्बन्धी आदेश प्राप्त किया। ओसबोर्न ने आदेश का उल्लंघन किया और जबरदस्ती बैंक के धन पर कब्जा कर लिया। बैंक ने क्षतिपूर्ति के लिए ओसबोर्न पर दावा किया और राज्य न्यायालय ने जब्त की गई राशि का भुगतान करने का आदेश दिया।

ओसबोर्न में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जिसने राज्य न्यायालय के निर्णय की पुष्टि कर दी। पहले निर्णय की पुन: पुष्टि करते हुए यह कहा गया था कि "बैंक एक ऐसा साधन है जो सरकार के राजकोषीय कार्मों के लिए आवश्यक एवं सही है इसकी सुविधाओं, इसके व्यापार एवं धंधे पर कर लगाना स्वयं बैंक पर ही कर लगाना है। एक का विनाश अथवा रक्षण दूसरे का विनाश अथवा रक्षण है" यहां भी संघीय प्राधिकारी को मजबूत करने के पक्ष में संतुलन झुक गया।

वर्तमान की बात करते समय फिलेडेल्फिया नगर बनाम न्यू जरसी (6) का हवाला देना लाभकर होगा। न्यू जर्सी राज्य ने एक कानून बनाया जिसमें

---

(1) अमरीकन कांस्टीट्यूशन ला, लारेंस एच ट्राइब 1978, पृष्ठ 2।

(2) 4 L.Ed. 579 (1819)।

(3) डलास 199 (1796)।

(4) 9 व्हीटन 1(1824)।

(5) 9 व्हीटन 738 (1824)।

(6) 437 यू० एस० 617(1978)।

राज्य के बाहर से न्यू जर्सी में कचरा लाने पर रोक लगायी गयी। प्रभावित नगर एवं निजी स्वामित्व वाले कचरा भण्डारों ने राज्य न्यायालय में न्यू जर्सी के विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया। राज्य न्यायालय ने कहा कि वह कानून बहुत संवैधानिक था क्योंकि वह अन्तर्राज्यीय वाणिज्य के विरुद्ध था। राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने इस निर्णय को उलट दिया। मामला संयुक्त राज्य सर्वोच्च न्यायालय में लाया गया। राज्य सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए यह कहा गया था कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार के संकीर्ण कानून को संवैधानिक रूप से हमेशा अवैध पाया है। यह संघीय सिद्धान्त को जन्म देता है।

इन उद्धृत मामलों से यह पता चलता है कि न्यायपालिका ने ही संविधान की प्रगामी व्याख्या करके संघीय प्राधिकारी को संविधान निर्माताओं द्वारा आशायित स्थिति के मुकाबले अधिक शक्तिशाली बनाया। विकासशील समाज की आवश्यकताओं, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं राष्ट्र के सामंजस्यपूर्ण विकास को देखते हुए न्यायपालिका द्वारा विधानमण्डल की दुविधा को समाप्त कर दिया गया। न्यायिक सक्रियता द्वारा संघीय प्राधिकारी को मजबूत करना प्रक्रिया है। परम्परावादी दृष्टिकोण से यह प्रश्न हमेशा उठाया गया कि क्या संघवाद कानूनी कहानी से कुछ अधिक है और यह प्रश्न कानूनविदों एवं समाजशास्त्रियों के बीच काफी विवाद का कारण बनता है। एक ढीले-ढाले एकीकरण से मजबूत केन्द्रीय प्राधिकरण तक की यही यात्रा एक शताब्दी तक चलती रही जिसके प्रभाव में कानून आ गए। केन्द्रीय प्राधिकरण की भूमिका, स्वरूप एवं संरचना की प्रगामी पुन: व्याख्या की प्रवृत्ति इससे अधिक मजबूत बनाने की रही है जैसा कि संविधान के उपबंधों की न्यायिक व्याख्या से हुआ है।

परिशिष्ट 'ख'

कनाडा

1949 तक संवैधानिक मामलों में कनाडा के लिए प्रिवी कौंसिल की समिति फाइनल कोर्ट ऑफ अपील थी। प्रिवी कौंसिल जो कि एक अत्यन्त सम्मानित न्यायिक संस्था थी लेकिन जिसे प्राय: रूढ़िवादी दृष्टिकोण वाला समझा जाता था ने ब्रिटिश उत्तरी अमरीका अधिनियम 1817 के उपबंधों की व्याख्या करते समय इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया कि केन्द्र मजबूत था मुख्य संघीय शक्तियों की संकीर्ण व्याख्याएं की गई।

उक्त स्थिति प्रिवी कौंसिल के बहुत से निर्णयों के आधार पर स्पष्ट हो जाती है। एक प्रमुख मामला है कनाडा के प्रमुख महान्यायवादी बनाम ओनटेरियो के मुख्य न्यायवादी तथा अन्य जिनके बारे में 1957 में 326 पृष्ठ पर बताया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का पालन करने के लिए कनाडा डोमिनियन ने श्रम कल्याण कानून पारित किए। धारा 91, 92 तथा 132 की अत्यन्त संकीर्ण व्याख्या द्वारा प्रिवी कौंसिल ने यह निर्णय दिया कि डोमिनियन की कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है। एक ही बार में संघीय सर्वोच्चता की अवधारणा की जड़ें काट दी गई।

1949 में प्रिवी कौंसिल में अपीलों के उन्मूलन के पश्चात् कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक मसलों पर निर्णय देने के लिए अंतिम प्राधिकार के रूप में अधिकारिता प्राप्त हुई। उसके बाद से इस प्रवृत्ति का रुख बदल गया। 1977 में 81 डी०एल०आर० पृष्ठ 609 में उल्लिखित केपिटल सिटीस कम्युनिकेशन इन्क बनाम कनेडियन रेडियो टेलीविजन कमीशन में यह निर्णय दिया गया कि दूरदर्शन रेडियो आदि पर नियंत्रण की संघीय शक्ति में प्रसारणों एवं दूरदर्शन कार्यक्रमों के विषयों पर नियंत्रण, का कनाडा संसद का अन्य प्राधिकार शामिल है।

कोनार्ड जॉनसन् एवं अन्य बनाम वेस्ट सेंट पॉल देहाती नगर पालिका जिसका उल्लेख 1952 (1) एस०सी०आर० पृष्ठ 292 में हुआ है, में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि ब्रिटिश उत्तरी अमरीका अधिनियम की धारा 92 के किसी विधायी शीर्षक के अधीन कोई राज्य का कानून प्राधिकृत नहीं होता तो वह "शक्ति बाह्य" होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने शांति व्यवस्था एवं अच्छी सरकार बनाए रखने के लिए संसद के अधिकारों एवं सर्वोच्चता की पुष्टि की। इस प्रकार केन्द्रीय शक्तियों में एक नया आयाम जुड़ा है।

उक्त उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रिवी कौंसिल की पहली संकीर्ण व्याख्याओं के बावजूद कनाडा का सर्वोच्च न्यायालय कनाडा संविधान की इस प्रकार व्याख्या करता रहा है कि केन्द्र मजबूत बने।

परिशिष्ट 'ग'

आस्ट्रेलिया का संविधान

आस्ट्रेलिया का संविधान (आस्ट्रेलियाई संविधान अधिनियम 1900) संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन करता है।

राष्ट्रमण्डल की अन्य शक्तियां 52, 90, 11, 114 और 115 धाराओं में दी गई है। धारा 52 का संबंध राष्ट्रमण्डल की सरकार का केन्द्र होगा, इससे है। धारा 90 का सम्बन्ध एक जैसे सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क, अधिदान लगाने से है। धारा III का सम्बन्ध राज्यों द्वारा राष्ट्रमण्डल को प्रदेशों के समर्पण से है। धारा 114 का संबंध रक्षा सेनाओं एवं धारा 115 का संबंध मुद्रा प्रणाली से है।

राष्ट्रमण्डल संसद को राज्यों के साथ भागीदारी वाली समवर्ती शक्तियां धारा 51 में है जिसमें 39 मदें है। विस्तृत होने के कारण ऐसी शक्तियों का विवरण संक्षिप्तता की दृष्टि से यहां देने की आवश्यकता नहीं है।

आस्ट्रेलिया में प्रत्येक राज्य का अलग संविधान है और अवशिष्ट शक्तियां उन्हें दी गई है। राष्ट्रमण्डल संविधान के अधीन अधिकांश विधायी शक्तियां समवर्ती है और राज्य संसदों के साथ इनकी भागीदारी होती है।

राष्ट्रमण्डल संविधान के निर्माताओं ने राष्ट्रमण्डल तथा राज्यों के बीच विवाद की संभावना को स्वीकार किया था इसीलिए राष्ट्रमण्डल संविधान अधिनियम की धारा 109 के अधीन ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए स्पष्ट प्रावधान किए। उक्त धारा 109 एक सामान्य कथन है कि "जब राज्य का कानून राष्ट्रमण्डल के कानून से असंगत होगा तो राष्ट्रमण्डल का कानून अभिभावी होगा और राज्य का कानून जिस सीमा तक असंगत है अवैध होगा।"

अत: प्रावधान का राज्य के कानूनों पर अलग-अलग प्रभाव होगा। इस शताब्दी पहले कुछ वर्षों में आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय जो कि सर्वोच्च न्यायालय है, ने इस धारा की अपेक्षाकृत संकीर्ण व्याख्या की इसके पश्चात् उच्च न्यायालय ने धारा 109 की अधिक उदार व्याख्या विकसित की ताकि ऐसे बहुत से कानून जो पहले इस धारा के दायरे में नहीं आए थे राष्ट्रमण्डल कानून से सुसंगति के आधार पर समाप्त किए जा सके। इस विषय पर एक प्रमुख मामला इंजीनियर का मामला है। जिसका उल्लेख 1920 (28) सी०एल०आर० 129 में है इस मामले में न्यायालय ने घोषणा की "कि उस संविधान की व्याख्या केवल शब्दों द्वारा की जाएगी।" पहला दृष्टिकोण यह था कि राष्ट्रमण्डल घटक राज्यों एवं राष्ट्रमण्डल के बीच एक समझौता है और इस गलत विचार को पहली बार इंजीनियर के मामलों में सही किया गया इस मामले में यह महसूस किया गया कि संविधान के शब्दों को एक राष्ट्र का निर्माण माना जाएगा और इसलिए परिणामस्वरूप केन्द्रीय सर्वोच्चता को अनुज्ञेय किया तथा गतिशील समय की मांग भी यही थी।

विक्टोरिया बनाम राष्ट्रमण्डल बनाम 1937(58) सी०एल०आर० 618 पृष्ठ 630 में आस्ट्रेलिया के हाईकोर्ट ने आगे निम्नलिखित शब्दों में राष्ट्रमण्डल संसद के विधायी कार्य को स्पष्ट किया :

> "यदि कोई वैध राज्य का कानून राष्ट्रमण्डल संसद के कानून निर्दिष्ट करे, क्षति पहुंचाए अथवा उसका प्रभाव कम करे तो उस सीमा तक यह अविधिमान्य है इसके अलावा यदि संघीय अधिनियम की शर्तों के स्वरूप अथवा विषय-वस्तु से यह लगे कि किसी विशेष विषय अथवा अधिकारों एवं कर्तव्यों के लिए उसका आशय कानून के सम्पूर्ण विवरण से है तो उसी विषय पर अथवा उसके सम्बन्ध में राज्य का कानून राष्ट्रमण्डल कानून के प्रभाव को कम करने वाला माना जाता है इसीलिये यह असंगत है।"

एक अन्य मामले में आस्ट्रेलियन रेलवे संघ बनाम विक्टोरियन रेलवे आयुक्त (1930) 44 सी०एल०आर० 319 में उच्च न्यायालय ने घोषणा की वह राष्ट्रमण्डल सुलह एवं मध्यस्थता अधिनियम राष्ट्रमण्डल एवं राज्य तथा उनकी एजेन्सियों दोनों के लिए बाध्यकारी है और इसलिए यह अधिनियम उस उद्योग पर लागू होगा जो राज्य अथवा राष्ट्रमण्डल अथवा राष्ट्रमण्डल अथवा राज्य के अधीन गठित किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा अथवा उसके अधीन

चलाया जा रहा हो। अतः उक्त मामले में राज्यों तथा उनकी एजेन्सियों पर बाध्यकारी राष्ट्रमण्डल के प्राधिकार की पुष्टि की गई। इस न्यायालय के अनुवर्ती निर्णयों में भी इस कानूनी स्थिति की पुष्टि की[1]।

एक अन्य मामले में रेडियो प्रसारणों पर राष्ट्रमण्डल की विधायी शक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न विचार के लिए आया। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर राष्ट्रमण्डल संसद की विधायी शक्तियों की पुष्टि की "कि डाक, तार, टेलिफोन तथा ऐसी अन्य सुविधाएं" विषय में रेडियो प्रसारण की शक्ति भी शामिल है। इसी प्रकार समवर्ती सूची के अन्तर्गत विषयों की उदार व्याख्या द्वारा अन्य अनेक विषयों के सम्बन्ध में राष्ट्रमण्डल संसद की विधायी शक्तियों को स्वीकार किया गया है। ऐसे दो मामले नीचे उद्धृत किए गए हैं[2] और[3]।

संविधान के अधीन कराधान एक समवर्ती विषय है और राष्ट्रमण्डल संसद एवं राज्य दोनों अलग कानूनों के माध्यम से आयकर उगाहते हैं। 1942 में संघीय संसद ने एकरूपात्मक कर कानून पारित किया जिसमें राज्यों द्वारा अलग आयकर उगाहने पर रोक लगायी गई थी। अधिनियम में प्रत्येक राज्य को पिछले दो वर्षों में उसकी औसत उगाही के बराबर एक नियत कर प्रतिपूर्ति अनुदान दिया। यह अधिनियम जिसने राष्ट्रमण्डल संसद को आयकर का एकाधिकार दिया उसका समर्थन उच्च न्यायालय द्वारा पहले एकात्मक हर मामले साउथ आस्ट्रेलिया तथा अन्य बनाम राष्ट्रमण्डल 1942 (65 सी०एल० आर० 373) में उल्लिखित मामले में चार राज्यों के विरोध के बावजूद किया गया।

संविधान में राष्ट्रमण्डल संसद को सीमा शुल्क एवं उत्पाद शुल्क उगाहने के संबंध में अनन्य विधायी शक्तियां प्रदान की। समवर्ती सूची में सीमा शुल्क एवं उत्पाद शुल्क के अलावा कराधीन की सामान्य शक्ति की व्याख्या भी कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत राज्यों पर रोक लगाने वाली केन्द्रीय शक्ति के रूप में की गई। अतः संविधान के अधीन राजकोषीय शक्ति बहुत से वर्षों में कारगर ढंग से केन्द्रित हुई। अब संविधान के अधीन विस्तृत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनी कराधीन शक्तियों का प्रयोग कर सकती है और पिछले वर्षों में राज्यों पर करों के दो महत्वपूर्ण स्रोतों, आय तथा अन्य वस्तुओं पर कर लगाने पर रोक लगायी गई[4]। राष्ट्रमण्डल संसद को वह जैसे भी चाहे धन खर्च करने का अधिकार भी दिया गया है।

राजकोषीय शक्तियों के केन्द्रीकरण के साथ संघीय सरकार मजबूत बन गई लेकिन राष्ट्रमण्डल राज्यों तथा लक्ष्यों के प्रति दृष्टिकोण में न्यायसंगत रहना चाहता था। इस उद्देश्य के लिए क्रमशः 1928 तथा 1933 में आस्ट्रेलिया ऋण परिषद् तथा राष्ट्रमण्डल अनुदान आयोग की स्थापना की गई। दृष्टान्त मामले इस प्रकार इस बात की पुष्टि करते हैं कि आस्ट्रेलियाई संघ का इतिहास राज्यों की तुलना में राष्ट्रमण्डल संसद की शक्तियों के उत्तरोत्तर विकास का इतिहास रहा है। बहुत से सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक पहलुओं ने इस प्रगति में योगदान किया है। दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद की अवधि देश के संवैधानिक इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण अवधियों में से एक है। संविधान निर्माताओं ने जैसा सोचा था अथवा जैसा वे अनुमोदित करते उसकी तुलना में संविधान के उपबंधों की न्यायिक व्याख्याओं ने राष्ट्रमण्डल संसद के प्रभाव को बढ़ाया।

---

[1] रेडियो निगम प्राइवेट लिमिटेड बनाम राष्ट्रमण्डल (1938) 59 सी० एल० आर० 170.

[2] न्याय मंत्री (वेस्टर्न आस्ट्रेलिया) बनाम आस्ट्रेलियन नेशनल एयर वाइस कमीशन (1976) 12 ए०एल०आर० 17 और

[3] मरफीरोस इम्क प्राइवेट लिमिटेड बनाम कामनवेल्थ (1976) 136 सी०एल०आर०आई०।

[4] (i) डेनीस होटल्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम विक्टोरिया (1960) (104) सी०एल०आर० 529।

(ii) पेट्रोल केस (38 सी०एल०आर० 437) कामनवेल्थ एण्ड कामनवेल्थ आयल रिफाइनरी लिमिटेड बनाम साउथ आस्ट्रेलिया।

परिशिष्ट 'घ'

संघ-राज्य संबंधों से संबंधित महत्वपूर्ण अनुच्छेद

1. अनुच्छेद 73--संघ की कार्यपालक शक्तियों का विस्तार।
2. अनुच्छेद 153--राज्यों के राज्यपाल।
3. अनुच्छेद 155--राज्यपालों की नियुक्ति।
4. अनुच्छेद 156--राज्यपाल की पदावधि।
5. अनुच्छेद 163--मंत्रिपरिषद् और राज्यपाल की वैवेकिक शक्तियां।
6. अनुच्छेद 164--मंत्रियों के बारे में अन्य प्रावधान (उपबंध)।
7. अनुच्छेद 169--राज्यों में विधान परिषद का उन्मूलन और सृजन।
8. अनुच्छेद 174--विधान-मण्डल की बैठक बुलाना।
9. अनुच्छेद 200--बिलों को स्वीकृति देना, राष्ट्रपति द्वारा विचार किए जाने के लिए बिल रखना।
10. अनुच्छेद 248--विधि निर्माण की अवशिष्ट शक्तियां।
11. अनुच्छेद 249--राष्ट्रीय हित में राज्य-सूची के विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने सम्बन्धी संसद की शक्ति।
12. अनुच्छेद 252--सहमति अथवा स्वीकृति से कानून बनाने सम्बन्धी संसद की शक्ति।
13. अनुच्छेद 256--संघ और राज्य की उत्तरदायित्व बाध्यता।
14. अनुच्छेद 257--कुछ मामलों में संघ का राज्यों पर नियंत्रण।
15. अनुच्छेद 263--अन्तर्राज्यीय परिषद्।
16. अनुच्छेद 268, 269, 270--कर शक्तियां नियत करना और करों का विभाजन।
17. अनुच्छेद 271--संघ के प्रयोजन के लिए कतिपय शुल्कों एवं करों पर अधिभार।
18. अनुच्छेद 272--ऐसे करों, जिनकी उगाही और वसूली संघ ने की हो, संघ और राज्यों को बीच विभाजन।
19. अनुच्छेद 275--संघ की ओर से कुछ राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान।
20. अनुच्छेद 280--वित्त आयोग।
21. अनुच्छेद 282--संघ या किसी राज्य द्वारा अपने राजस्व में से अदा किए जाने वाले व्यय।
22. अनुच्छेद 293--राज्यों द्वारा लिए जाने वाले उधार।
23. अनुच्छेद 302--व्यापार, वाणिज्य और समागम पर प्रतिबंध अधिरोपित करने सम्बन्धी संसद की शक्तियां।
24. अनुच्छेद 304--व्यापार, वाणिज्य और राज्यों के बीच समागम पर प्रतिबंध।
25. अनुच्छेद 312--अखिल भारतीय सेवाएं।
26. अनुच्छेद 355--आंतरिक झगड़ों और दंगों से राज्यों को बचाने के प्रति संसद के कर्तव्य।
27. अनुच्छेद 356--राज्यों में संवैधानिक मशीनरी के असफल हो जाने के मामले में उपबंध।
28. अनुच्छेद 365--संघ द्वारा दिए गए निदेशों का अनुपालन न करने अथवा को लागू न करने के परिणाम।

प्रासंगिक

1. पांचवीं अनुसूची--(संविधान का भाग)।
2. सातवीं अनुसूची--(संविधान का भाग)।
3. आयोजना आयोग।
4. राष्ट्रीय विकास परिषद्।
5. उद्योग।
6. शिक्षा।
7. कृषि सम्बन्धी उपभोग्य वस्तुओं का कीमत निर्धारण।
8. खाद्य, प्रापण, भण्डारण और संवितरण, अन्तर्राज्यीय गतिविधि।
9. विद्युत--राज्याध्यक्ष समिति रिपोर्ट विद्युत शुल्क की स्वीकृति।
10. खान और खनिज।
11. सिंचाई-प्रमुख सिंचाई परियोजनाएं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

राज्य यूनिट—केरल

ज्ञापन

समय एवं परिस्थितियों की अपेक्षाओं के अनुसार भारतीय संविधान संघीय भी है और एकात्मक भी । हालांकि साधारण परिस्थितियों में संघीय प्रणाली के रूप में कार्य करने वाला बनाया गया है, हमारे संविधान को एकात्मक प्रणाली में स्वयं को परिवर्तित करने का विकल्प भी विद्यमान है । देश के आकार एवं संस्कृति, भाषा, एवं अर्थव्यवस्था के स्तरों तथा विभिन्न क्षेत्रों तथा उनमें रहने वाले लोगों के सामाजिक विकास के स्तरों में पर्याप्त विभिन्नताओं को देखते हुए संविधान निर्माताओं ने संघ की एक "ठोस संरचना" दी है जिसका एक मजबूत केन्द्र है । जहां तक उनकी कार्यपद्धति विशेष रूप से विकासात्मक कार्यक्रमों एवं समाज कल्याण उपायों के क्षेत्र में राज्यों की उत्तरोत्तर बढ़ती जिम्मेवारी का संबंध है संघ एवं राज्यों की विधायी शक्तियों पर विचार करने के लिए पिछले 34 वर्षों की अवधि पर्याप्त अवधि है । योजना के पिछले युग के दौरान क्षेत्रीय असमानताएं एवं असंतुलन पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं । ये असन्तुलन भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था अल्पतांत्रिक एवं स्थानिक विकृतियों का एक प्रकटाथा है । जो नियोजित विकास के प्रारंभ से पैदा हो गए है । इन क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने के लिए अतीत में किए गए प्रयत्नों का महत्व कम किये बिना यह स्पष्ट है कि इस दिशा में एक सार्थक प्रयास किया जाना है जिसमें मौजूदा संस्थागत संरचना जो केन्द्र एवं राज्य दोनों में आर्थिक शक्ति का इस्तेमाल करती है का स्पष्ट विश्लेषण हो । केंद्र में आर्थिक शक्ति केंद्रित राज्य सरकारों की आर्थिक शक्ति और राज्यों की तुलना में जिलों की आर्थिक शक्ति उनकी स्पष्ट जिम्मेवारियों को देखते हुए बहुत कम प्रतीत होती है । पिछले तीन दशकों में सार्वजनिक वित्त के विकास के साथ जो तस्वीर उभरती है वह है शीर्ष में वित्तीय संसाधनों का केन्द्रीकरण और ऊपरी स्तरों पर भारी प्रमात्रा में इनका इस्तेमाल और परिणाम स्वरूप निम्न स्तरों पर अभाव जहां वास्तव में विकासशील गतिविधियों के सर्वाधिक क्षेत्र हैं ।

2. जिन मुद्दों के तत्काल समाधान की आवश्यकता है उनमें से एक है केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों की मूल समस्या । लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण से संबंधित भारी जिम्मेदारियां राज्य सरकारों को सौंपी गई हैं जिनके पास उनके निर्वहण के लिए वित्तीय संसाधन बहुत ही कम है । प्रारंभ से ही कथित जारी अथवा प्रतिबद्ध राजस्व व्यय की पूर्ति के लिए संसाधन अंतरण तथा राज्य की नई परियोजनाओं के लिए कथित योजना के लिए संसाधन अंतरणों के बीच एक कड़ा विभाजन लागू किया गया है । योजना व्यय के लिए संसाधन अंतरण को वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा जाता है । इसी प्रकार सभी पूंजीगत अंतरण—चाहें वे अनुदान हों अथवा ऋण, योजना हों अथवा योजनेत्तर भी वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र में नहीं आते । हालांकि वित्त आयोग के बेहतर राजकोषीय प्रबंध तथा राज्य के प्रशासन, रखरखाव, विकासात्मक एवं अन्य खर्चों में बचत की गुंजाइश का पता लगाने का काम सौंपा गया है केन्द्र सरकार के व्यय की ऐसी संवीक्षा कभी नहीं होती । परिणामस्वरूप वित्त आयोग का जुटाए गए कुल संसाधनों में से केन्द्र द्वारा अपने पास रखे जाने वाले भाग तथा राज्यों को उपलब्ध किए जाने वाले भाग के निर्धारण में वित्त आयोग की कोई भूमिका नहीं थी । वास्तविक व्यवहार में केन्द्रीय कार्यपालिका जिसका प्रतिनिधित्व वित्त मंत्रालय करता है, ही संसाधनों की उस प्रमात्रा का निर्धारण करता रहा है जो विभिन्न राज्यों में वितरण के लिए वित्त आयोग के अधिकार क्षेत्र में रखी जाएगी । वित्त आयोगों की विस्तृत कार्यप्रणाली विभिन्न राज्यों के बीच दिए हुए की प्रमात्रा के कर राजस्व में हिस्से तथा सहायता अनुदान के रूप में विभाजन के लिए अनिवार्यत: न्यायसंगत एवं समान उपाय तलाश करने तक ही सीमित रही है । योजना के आरंभ से लेकर अब तक केन्द्र से राज्यों को गैर सांविधिक स्वरूप के वित्तीय संसाधन के अंतरणों के विकास की कड़ी की संवीक्षा की आवश्यकता है ।

3. वास्तव में यह आश्चर्यजनक है कि केन्द्र के प्रति राज्यों की बनावटी ढंग से इकट्ठी हुई ऋणग्रस्तता के बेजान बोझ की ओर गंभीर ध्यान नहीं दिया जाता। वस्तुत: इस समस्या का समाधान न मिल सकने के कारण राज्यों की केन्द्रीय योजना सहायता के वांछित परिणाम नहीं निकले हैं । राज्यों को दिए गए केन्द्र के ऋण कुल गैर सांविधिक अंतरणों के तीन चौथाई से भी अधिक रहे है । स्वर्गीय प्रो० गाडगिल ने इन गैर सांविधिक अंतरणों–के योजना घटक को ढूंढ निकालने का प्रयास किया था और उन्होंने पाया कि अनुदानों के रूप में "योजना सहायता" का बहुत कम महत्व था और ऋण "योजना सहायता" का 78% थे । ध्यान दिया जाए कि केन्द्र के प्रति राज्यों की ऋण ग्रस्तता में वृद्धि की दर अनिवार्यत: उस ढंग के कारण थी जिसके माध्यम से इस समय योजना सहायता दी जाती है । इस तथ्य को स्वीकार करना आवश्यक है कि विकास के पहले चरणों में राज्य के पूंजीगत व्यय का बहुत बड़ा हिस्सा सड़कों, पुलों, सिंचाई-सुविधाओं, शिक्षा के लिए भवन तथा स्वास्थ्य सेवाओं आदि के रूप में आधारभूत संरचना पर खर्च हो रहा है । ये आवश्यक है लेकिन उस प्रकार से सीधी अधिप्राप्ति देन में असमर्थ है जिस प्रकार की उद्योग एवं यातायात में निवेश से अधिप्राप्ति की आशा की जाती है लेकिन जहां तक राज्यों का संबंध था योजना आयोग ने पूंजीगत व्यय में ऐसा कोई भेद नहीं किया और व्यवहार में पूंजीगत व्यय के लिए सम्पूर्ण योजना सहायता ऋण के रूप में थी जिसका एक गौण हिस्सा अनुदान, अकाल सहायता समुद्री कटाव रोध । जिनसे स्पष्ट परिसम्पत्ति का सृजन नहीं होता । जैसे कार्यों के लिए राज्यों को उपलब्ध कराई गई सारी धन राशि को ऋण माना गया है जिसकी अदायगी ब्याज सहित होनी है । योजना आयोग तथा केन्द्र सरकार को इन सत्यों की ओर ध्यान देना चाहिए ताकि प्रत्येक राज्य के साथ पूर्ण एवं बराबर न्याय हो सके ।

4. केन्द्र-राज्य पूंजीगत लेन-देन की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है उससे पता चलता है कि केन्द्र से राज्यों की राजस्व का जो अन्तरण पहले से धीरे-धीरे कम हो रहा था वह अब लगभग नहीं के बराबर रह गया है । इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि हालांकि व्यवहारत: राज्यों को सम्पूर्ण "पूंजीगत सहायता" को बिना इस बात का ध्यान रखे कि वह किस प्रयोजन के लिए इस्तेमाल की जाती है ऋण माना जाता है फिर भी, केन्द्र के अपने उपक्रमों से संबंधित पूंजीगत व्यय के संबंध में अनुदान एवं ऋण के बीच भेद किया जाता है । उदाहरणार्थ : केन्द्र सरकार के विकासात्मक पूंजीगत परिव्यय में सिविल निर्माण–कार्य का पूरा व्यय पूंजीगत अनुदान से होता है जबकि इसी काम के लिए पूंजीगत व्यय के लिए राज्यों को दी जाने वाली "केन्द्रीय सहायता" ऋण के रूप में दी जाती है । इसमें कोई तर्कसंगति दिखाई नहीं देती कि जब पूंजीगत व्यय के प्रयोजन एक समान है अर्थात् देश के लोगों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास है । और अंतिम विश्लेषण में जबकि सभी संसाधन लोगों द्वारा ही उपलब्ध कराए जाते है । केन्द्र द्वारा किए गए पूंजीगत व्यय की पूर्ति अनुदान से होती है जबकि राज्यों द्वारा किए गए पूंजीगत ऋण की पूर्ति जो "केन्द्रीय सहायता" के माध्यम से होती है को ब्याज सहित चुकाना पड़ता है ।

5. इसके अतिरिक्त बड़े औद्योगिक उपक्रमों के लिए केन्द्रीय सरकार की वित्त व्यवस्था काफी सीमा तक इन उपक्रमों को ईक्विटी के सहयोग से होती है और इन उपक्रमों को दिए गए ऋणों को चुकाने तथा ब्याज प्रभार की शर्तों का निर्धारण करते समय पक्वनावधि तथा लाभ कमाने की क्षमताओं की ओर उचित ध्यान दिया जाता है । यही तर्कसंगत है कि राज्य सरकारों के तत्वाधान में इसी प्रकार की परियोजनाओं के लिए भी वित्त व्यवस्था का समान आधार होना चाहिए बजाए इसके कि ऐसे प्रयोजनों के लिए राज्यों को पूरी तरह चुकाए जाने वाले ऋण के रूप में "सहायता" दी जाए ।

II

वित्तीय संबंध

6. संविधान में बतायी गई अंतरण की व्यवस्था इस तरह की थी कि संघ द्वारा राज्यों को संसाधनों का अधिकतर अंतरण वित्त आयोग की सिफारिश के माध्यम से होता है। केन्द्रीकृत योजना के अधीन संसाधनों के अंतरण के बारे में उस समय विचार नहीं किया गया था। योजना प्रक्रिया के साथ साथ देश में बचतों के केन्द्रीयकरण का उत्तरोत्तर विकास हुआ। अतः वित्त आयोग के माध्यम से राज्य को अंतरित होने वाले संसाधनों का प्रतिशत केवल 40% है जबकि वस्तुतः वित्त आयोग से इतर संसाधनों का अंतरण लगभग 60% है। इसलिए यह स्पष्ट है कि व्यवहार में संसाधनों के अंतरण के लिए अतिरिक्त युक्तियों का सहारा लेकर संविधान निर्माताओं द्वारा बतायी गई अंतरण की मूल व्यवस्था का उल्लंघन किया जाता रहा है।

7. योजनाबद्ध विकास के संबंध में राज्य की वित्तीय जरूरतों पर समग्र विचार करना आवश्यक है ताकि सभी आयकरों एवं सभी उत्पादशुल्कों में भागीदारी संभव बनाकर केन्द्र के हाथ में 'सभी कर शक्तियों के केन्द्रीकरण से बचा जा सके। करों के अलावा अन्य संसाधनों के संबंध में भी संघ तथा राज्यों के बीच संसाधनों के अधिक समान वितरण का एक स्पष्ट प्रावधान होना चाहिए। पिछले 34 वर्ष के अनुभव से पता चलता है कि केन्द्रीय सरकार ने इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि पूर्णतया केन्द्र के लिए आरक्षित स्रोतों से प्राप्तियां प्रतिवर्ष लगातार बढ़ती जाएं जबकि राज्यों के साथ भागीदारी वाले स्रोतों या मदों के राजस्व को उसी अनुपात में नहीं बनाया जाता। कई बार केन्द्र सरकार ने सहभागिता योग्य मदों के मामले में छूट प्रदान करने की प्रवृत्ति अपनायी है जिससे विभाज्य पूल की मात्रा कम होती है। इसका निवल परिणाम यह है कि इस संबंध में केन्द्र को मिली विवेकानुसार प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की राज्य के हित में प्रायः इस्तेमाल नहीं किया जाता।

8. कई वर्षों से केन्द्रीय राजस्व लेखा में काफी बड़े घाटे की प्रवृत्ति उभरी है। राजस्व घाटे में वृद्धि का कारण राज्य सरकार को अंतरण में वृद्धि बताए जाने की प्रवृत्ति है, यह तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। पहली योजना (1955–56) से लेकर छठी योजना (1980–85) के समाप्त होने तक पिछले 34 वर्षों में राज्यों की अंतरित कुल केन्द्रीय संसाधनों का समानुपात दर्शाता है कि इसमें कोई वृद्धि नहीं हुई है यह वर्षों तक लगभग 32.6 प्रतिशत रहा है। इससे पता चलता है कि आयकर, उत्पाद एवं सीमा शुल्क के कुशल संवोहन तथा व्यय पर बेहतर नियंत्रण की आवश्यकता है। पर्यवेक्षण के लिए संस्थागत व्यवस्था के अभाव के कारण भारतीय वित्त व्यवस्था का यह पहलू छिपा रहा है और जनता की नजर से बचा रहा है।

9. आयोग कृपया ध्यान दे कि पिछले 34 वर्षों में केन्द्र के हाथ में आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण और इसके इस्तेमाल का परिणाम राजकोषीय एवं मुद्रा सम्बन्धी नीतियों के क्षेत्र में केन्द्र का विकास राज्यों को नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भाग लेने के माध्यम से राज्यों को उनका पर्याप्त हिस्सा मिले बगैर हुआ है। वर्तमान संस्थागत ढांचे में राज्यों की प्रर्याप्त भूमिका नहीं है इसलिए (अन्तर्राज्यीय परिषद) जैसी एक सांविधिक संस्था की स्थापना आवश्यक है जिसमें राज्य सरकारों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्या वर्तमान राष्ट्रीय विकास परिषद की पुनर्गठित किया जा सकता है, इस बारे में इस टिप्पणी में अन्यत्र विचार किया गया है।

10. कुल संसाधनों के विभाजन में गरीब राज्यों के साथ उचित व्यवहार नहीं हो रहा। वर्तमान अंतरण व्यवस्था ने संसाधनों के अंतर एवं गरीब तथा अमीर राज्यों के बीच विकास के अंतर को पूरा नहीं किया है। कर, कर इतर एवं पूंजीगत संसाधनों सहित केन्द्र के संसाधनों की समग्रता के परिप्रेक्ष्य में राज्यो के हिस्से में योजना-दर योजना में उत्तरोत्तर कमी आयी है। यदि प्रथम योजना अवधि (1951-56) में राज्य का हिस्सा 45% था तो पांचवीं योजना अवधि (1974-75) में यह हिस्सा केवल 31% था। राज्य की योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की मात्रा का निर्धारण अभी तदर्थ आधार पर वित्त मंत्रालय की सलाह से होता है। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि केन्द्रीय योजना के लिए संसाधन केन्द्रीय निवेश की लागत में के वृद्धि और मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि के कारण योजना-दर योजना, केन्द्रीय योजना के लिए संसाधनों में वृद्धि हुई है जबकि राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता में वैसी वृद्धि नहीं हुई है। राजकोषीय एवं मुद्रा संबंधी नीति के निर्धारण की प्रक्रिया में केन्द्र की प्रमुख स्थिति के कारण राज्यों की संसाधन स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव के अतिरिक्त वित्त आयोग के आबंटन के परिणामस्वरूप राज्यों के प्रतिव्यक्ति राजस्व अधिशेष में अत्यधिक विभिन्नता दिखायी देती है। उड़ीसा के मामले में न्यूनतम अधिशेष प्रतिव्यक्ति 15 रुपए है और हरियाणा के मामले में यह अधिकतम 676 रुपए है। परिणामस्वरूप न्यूनतम एवं अधिकतम प्रतिव्यक्ति अधिशेष के बीच 1:45 का अनुपात हो गया है। सभी वित्त आयोगों की सिफारिशों की जांच से यह पता चलेगा कि उनके द्वारा किए गए आबंटन ने हमेशा अमीर राज्यों को और अमीर बनाया है। मौजूदा ढांचे के अन्दर जिन राज्यों के पास योजनेत्तर राजस्व अधिशेष अधिक है उनका अगली पंचवर्षीय योजना के लिए संसाधन आधार मजबूत एवं बड़ा होगा। राज्य योजना के आकार का निर्धारण आशोधित गाडगिल फार्मूले द्वारा निर्धारित उपलब्ध केन्द्रीय सहायता के आधार पर होता है जिसमें वित्त आयोग के आबंटन के परिणामस्वरूप राजस्व अधिशेष सहित राज्य के अपने संसाधन भी जोड़े जाते है। वित्त-आयोग एवं योजना आयोग के माध्यम से अंतः राज्य साधन के विनिधान की मौजूदा प्रणाली का व्यवहार में परिणाम निराशाजनक रहा, जिससे इस प्रक्रिया में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों में मन मुटाव पैदा हुए हैं। यथातथ्य रूप में जिन राज्यों को वित्त आयोग के आबंटन से अधिक अधिशेषों का लाभ प्राप्त है उन्हें यथातथ्य अधिक बड़ी राज्य योजनाओं की अनुमति मिल जाती है। स्पष्टतः यह एक अमान्य स्थिति है। वित्त आयोग एवं योजना आयोग को मिलाकर तथा एक ही दत्त आधार पर कार्य करना चाहिए जो कि दुर्भाग्यवश अभी नहीं हो रहा। केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अंतरण के लिए किसी भी सुविचारित फार्मूले को यह सुनिश्चित करने में समर्थ होना चाहिए कि प्रत्येक योजना अवधि के आरम्भ में सभी राज्यों को प्रतिव्यक्ति राजस्व अधिशेष की राशि एक समान हो लेकिन वित्त-आयोग के आबंटन एवं योजना आयोग दोनों के माध्यम से निर्धारित कुल राशि का अधिक वैज्ञानिक दत्त आधार पर आधारित मूल्यांकित संसाधन अन्तर के साथ संबंध बने रहना चाहिए। योजना परिव्यय एवं केन्द्रीय सहायता निर्धारित करने सम्बन्धी आयोग के मौजूदा वार्षिक कार्यक्रम एक मशीनी प्रक्रिया बन गई है जो अपनी संरचना में नौकरशाही की है और विषय-वस्तु एक अंकगणित है। हाल ही में ऐसा देखने में आता है कि 50% तक केन्द्रीय योजना सहायता गाडगिल फार्मूले के अलावा आबंटित की जाती है। बकाया राशि का वितरण पूरी तरह केन्द्र सरकार की वैवेकिक शक्तियों द्वारा किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि वित्त आयोग एवं योजना आयोग की सलाह पर सांविधिक एवं वैवेकिक, दोनों प्रकार के संसाधनों के अंतरण ने न तो कुशलता एवं व्यय में बचत को बढ़ावा दिया है और न ही राज्यों के बीच लोक-व्यय की असमानताओं को कम किया है ऐसा इसलिए है कि अंतरण एक भलिभांति समन्वित परीक्षण तथा वचनबद्ध व्यय अथवा विकास की विशिष्ट जरूरतों के अध्ययन पर आधारित नहीं था।

11. पिछले तीन दशकों में जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, भारतीय यूनिट ट्रस्ट, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम जैसे केन्द्रीय वित्तीय संस्थाओं के हाथों में बचतों के केन्द्रीयकरण की मात्रा में काफी वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार के लिए एक मजबूत बाजू बन गया है जिसके काम में राज्यों को घनिष्टतापूर्वक साथ नहीं जोड़ा जाता। दूसरी ओर कृषि, उद्योग, आवास, जलपूर्ति एवं शहरी आधारभूत संरचना में निवेश के लिए इन संस्थाओं पर राज्यों की निर्भरता बहुत अधिक है। इन परिस्थितियों में हालांकि समुदाय में उपलब्ध कुल बचतों को सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में बांटा जाना चाहिए फिर भी यह सुनिश्चित किया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा इकट्ठी की गई राशि केन्द्र और राज्यों तथा उनके सार्वजनिक उपक्रमों में बांटी जाए।

12. पिछले कुछ समय से यह स्पष्ट प्रवृत्ति देखने में आयी है कि कुल सार्वजनिक संसाधनों में से राज्यों का हिस्सा कम हुआ है की कि प्रमुखतः इसलिए है कि पूंजीगत संसाधनों के अंतरणों में बहुत तेजी से कमी हुई। इस संदर्भ में ध्यान दिया जाए कि अधिकांश राज्य बढ़ती हुई ऋण ग्रस्तता तथा ओवर-ड्राफ्ट की समस्याओं के कारण दुखी है। राज्यों के पास राजस्व के लोचदार स्रोत नहीं हैं इसलिए ऋणों की चुकौती उनके लिए एक प्रमुख बोझ बन जाती है। राज्यों में संसाधनों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा अतिरिक्त महंगाई भत्ते की किस्तें प्रदान

करने तथा कीमत वृद्धि से सम्बन्धित व्यय की अन्य मदों के कारण खतम हो जाता है। अत: राज्य के संसाधन योजना एवं योजनेत्तर दोनों को बढ़ती हुई मांगों के बीच पिस जाते हैं जिसके कारण ओवर ड्राफ्ट लेना पड़ता है। हाल ही में कुछेक राज्य सरकारों द्वारा ऐसी गैर-योजना स्कीमों पर, जो गैर-उत्पादक मुद्रा स्फीति वाली और कल्याण केन्द्रित हैं, खर्च करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने इन कठिनाइयों को एक महत्वपूर्ण सीमा तक बढ़ा दिया है। इस स्थिति का असली उत्तर मूल्यों की स्थिरता सुनिश्चित करने में है। जैसी कि इस समय स्थिति है कि केवल केन्द्र सरकार का इस मूल्य स्थिति से सम्बन्ध है जबकि मूल्यों एवं लागतों के प्रबंध में तथा समिति की सर्पिलगति को शुरु करने में राज्यों की भूमिका एक महत्वपूर्ण तथ्य बनती जा रही है जिसका स्थान केन्द्र सरकार के बाद आता है। इसलिए यह एक अतिरिक्त कारण एक है कि ईमानदारी से लागू करने के लिए निर्धारित नीति के साधनों तथा विकासशील रणनीति के स्वरूप के संबंध में बदलती हुई स्थिति का एक अध्ययन लगातार क्यों किया जाना चाहिए। इसलिए प्रत्यक्ष साझे मंच में केन्द्रीय सरकार के साथ राज्य सरकारों की प्रत्यक्ष भागीदारी की जरूरत है। राष्ट्रीय विकास परिषद जिसके सचिवालय के रूप में योजना आयोग कार्य करें, ही ऐसा मंच हो सकता है। ऐसी संस्था द्वारा केन्द्र-और राज्यों के बीच बाजार ऋण सम्बन्धी नीति और प्राप्तियों की वितरण पद्धति पर विचार किया जा सकता है और उसे सुनिश्चित किया जा सकता है। केन्द्र-राज्य की वित्तीय स्थितियों का लगातार अध्ययन करना उस संस्था का एक महत्वपूर्ण कार्य होगा निस्संदेह जिसके अन्तर्गत राज्यों और संघ सरकार के राजस्व और व्यय की समीक्षा करना भी शामिल होगा। इस प्रकार की समीक्षा से फिजूल खर्च को रोकने और किफायती ढंग से खर्च करने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया जा सकेगा। इसमें सरकार की लेखा प्रक्रियाओं का आधुनिकीकरण भी शामिल होगा जो किसी एक दिए गए समय पर सही स्थिति बताने में सहायक होगा इसके लिए कम्प्यूटरीकरण के माध्यम से तत्काल आधुनिकीकरण की आवश्यकता होगी। राज्य सरकारों, केन्द्र सरकार प्राक्कलन समितियों की समय पर मिलने वाली रिपोर्टों से सभी स्तरों पर जनता के प्रतिनिधियों को नीतियों एवं कार्यक्रमों के विस्तृत पहलुओं पर विचार करने में काफी सहायता मिलेगी और इस प्रकार वे योजना, स्कीमों एवं कार्यक्रमों पर एक रक्षक की तरह नजर रखेंगे।

III

आयोजना

संविधान की सातवी अनुसूची की समवर्ती सूची में "आर्थिक एवं सामाजिक" आयोजना को महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के रूप में स्वीकार किया गया है जिसे केन्द्र सरकार राज्यों के परामर्श से आरम्भ कर सकती है। आर्थिक आयोजना में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय प्राथमिकताएं अंत: अंचलीय एवं अंत: क्षेत्रीय संतुलन होना आवश्यक है। आयोजना को इसलिए राष्ट्रीय प्रयास बनाना होगा और इस प्रक्रिया में विकास सम्बन्धी-नीति विलेखों को बनाने के प्रमुख कार्य के प्रति राज्यों की पूर्ण प्रतिबद्धता सुनिश्चित करना होगा। इसलिए आयोजना को समग्र होना होगा और वह आंशिक नहीं हो सकती। इसका लक्ष्य सम्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन होता है जिसमें जल्दी में किए गए अन्य सतही उपचार के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती।

13. योजना आयोग द्वारा अपनी भूमिका एवं संघ सरकार से लेकर राज्य जिला, ब्लाक और पंचायत तक विभिन्न स्तरों पर योजना एवं इसके क्रियान्वयन के कार्यों का विस्तार करने सम्बन्धी प्रयासों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाएगा कि वह हारी हुई लड़ाई लड़ रहा था। विशेषज्ञ समितियों की अधिकता सरकारी आदेशों तथा आर्थिक सहायता की प्रणाली एवं अभिप्रेरणा के माध्यम से योजना मशीनरी को सरल और कारगर बनाने के प्रयासों से पिछले 35 वर्षों में विशेष उपलब्धि नहीं हुई। योजना प्रक्रिया उत्तरोत्तर अफसरशाही पर निर्भर हो रही जिसका परिणाम यह हुआ है कि पुरानी व्यवस्था को जारी रखने के लिए आवश्यक शासन शक्ति के पारम्परिक केन्द्रों के हाथों में दे दिए गए।

14. केन्द्र, राज्य, जिला और पंचायत स्तरों पर योजना मशीनरी को विकास स्कीमों की पहचान निर्माण कार्यान्वयन और मूल्यांकन में अंगभूत रूप से ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर दोहरी प्रक्रिया से जोड़ना होगा। भौतिक संसाधनों को गति में लाने के लिए वित्तीय संसाधन निम्नलिखित के माध्यम से जुटाए जा सकते हैं (i) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग से लाभ, (ii) किसानों द्वारा राज्य को कम किमतों पर अपने उत्पादों के एक हिस्से की सुपुर्दगी के रूप में अंशदान द्वारा, (iii) अर्थव्यवस्था के सभी नियंत्रण केन्द्रों का राष्ट्रीयकरण एवं राज्य नियंत्रण, (iv) कराधान एवं राज्य ऋण बढ़ा कर, (v) घाटे की वित्त व्यवस्था, ध्यान दिया जाए कि अर्थव्यवस्था के इन महत्वपूर्ण साधनों के प्रबंध से योजना आयोग एवं योजना मशीनरी को राज्य में नियंत्रक भूमिका मिल जाएगी। उक्त क्षेत्र में योजना विलेखों का प्रारूप बनाने में राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा योग्यतापूर्वक सहायता के माध्यम से योजना आयोग एवं राज्य योजना बोर्डों को प्रत्यक्ष एवं प्रवर्तनकारी भूमिका अदा करने का अवसर मिलेगा। वितरण नियंत्रण एवं राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगों की जिम्मेदारी नयी औद्योगिक व्यवस्था में प्रोत्साहन, मजदूर संघ की भूमिका, सामाजिक गतिशीलता को सुविधाजनक बनाने के उपाय में सभी ऐसे महत्व पूर्ण क्षेत्र हैं जहां केन्द्र एवं राज्य दोनों को संयुक्त सहयोगी प्रयास के रूप में संगत नीतियों एवं उनके कार्यान्वयन के लिए मशीनरी का निर्माण कराना।

15. वास्तविक व्यवहार में योजना प्रक्रिया का हमने जिस प्रकार विकास एवं क्रियान्वयन किया है उसका परिणाम इस विशाल देश के लिए जिसमें अनेक विभिन्नताएं है, परियोजना निर्माण की घिसी-पिटी व्यवस्था। इससे क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्थितियों की विशिष्टता के प्रति योजना प्रक्रिया का जागरूकता समाप्त हो जाती है। इससे राज्यों के विभिन्न योजना क्षेत्रों के विशाल विकास की संभावना का अंतरण अध्ययन भी इनके कार्यक्षेत्र से बाहर रह जाता है। इसका एक ही उपाय है कि योजना पद्धति को लोकतांत्रिक बनाया जाए जिसमें बेहत्तर राष्ट्रीय एकता के लिए मार्ग प्रशस्त करने के वास्ते स्थानीय-पहल पर अधिक बल दिया है। जैसा कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने सलाह दी है विस्तृत आंचलिक योजना निर्माण का राज्यों के लिए छोड़ दिया जाए। केन्द्र सरकार को सर्वोच्च समायोजन होना चाहिए जो राज्यों को पहल एवं नेतृत्व प्रदान करें। जहां तक राज्यसूची के विषयों का सम्बन्ध है इस क्षेत्र में केन्द्रीय मंत्रालय द्वारा प्रायोजित स्कीमों की संख्या में वृद्धि की वृत्ति इस आधार पर सामने आयी है कि सारे देश में राष्ट्रीय महत्व की कुछ स्कीमों को हाथ में लेना होगा और क्रियान्वित करना होगा जिसके लिए केन्द्र द्वारा पहल करने, दिशा-निर्देश एवं समन्वय की आवश्यकता है। दूसरी ओर अनुभव यह रहा है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों की बढ़ती हुई संख्या केवल राज्य योजना की प्राथमिकताओं को विकृत करती है। उन मामलों में कुछेक स्कीमों को हाथ में लेना नितान्त आवश्यक हो जाए यह केवल शत प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के आधार पर होना चाहिए न कि बराबर के योगदान के आधार पर। केन्द्र एवं राज्य दोनों में ही योजना, मानीटर करने तथा मूल्यांकन करने वाले संगठनों को पूरी तरह पेशेवार संगठन बनाना होगा। हालांकि सरकारी संस्था का समवर्ती मूल्यांकन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, केन्द्र एवं राज्य दोनों में प्रमुख योजना कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए स्वतंत्र अध्ययन केन्द्रों का इस्तेमाल किया जा सकता है उससे निष्पादन के संबंध में निष्पक्ष रिपोर्टें सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी।

16. राज्य योजना बोर्डों/समितियों/आयोगों का थोड़े से राज्यों में ही सृजन हुआ है जबकि अधिकांश राज्यों में योजना को अभी भी सचिवालयों के राज्य योजना विभागों के हाथ में दे रखा है। इन निकायों को उपक्रम में अधिक प्रतिष्ठा नहीं मिली है। हालांकि वे डाटा एकत्र करने, शोध अध्ययन शुरू करने और विकास कार्यक्रम बनाने में काफी सहायता कर रहें है। हर बार एक निश्चित अवधि के लिए जब पंचवर्षीय योजना बनायी जाती है वह उसी अवधि के दौरान लागू होने वाली वास्तविक अवधि से कई प्रकार से भिन्न होती है इसका कारण यह है कि प्रत्येक 5 वर्ष के योजना बजट ने एक बड़ी संख्या में नई स्कीमों और कार्यक्रमों की स्वीकृति दी जाती है जिससे संसाधनों अथवा प्राथमिकताओं अथवा अंचलीय संतुलन पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। योजना में ऐसे परिवर्तन करते समय योजना बोर्डों की कोई भूमिका दिखाई नहीं देती।

IV

योजना एवं क्रियान्वयन की मशीनरी

17. भारत में केन्द्रीय आर्थिक योजना की शुरुआत से ही यह स्वीकार किया गया था कि आर्थिक गतिविधियों जिनके लिए विभिन्न स्तरों पर सामुदायिक सहयोग की आवश्यकता होती है, के सम्बन्ध में योजना बनाने के लिए संस्थात्मक

व्यवस्था के निर्माण की जरूरत है किसी एक क्षेत्र में परियोजनाओं के चयन और उनकी प्राथमिकताओं के निर्धारण का प्रारम्भिक रिपोर्टों की तैयारी से लेकर उचित चरणों में उनके क्रियान्वयन तक कई प्रकार के हितबद्ध समूहों से परामर्श और जन सहभागिता को जुटाना सुनिश्चित करना पड़ता है। प्राय: उन विभिन्न चरणों, जिनमें से किसी परियोजना अथवा कार्यक्रम को गुजरना पड़ता है, में आशंका उत्पन्न होती है और अन्त में तमाम प्रभावों को बिगाड़ देता है दोषपूर्ण, अवधारणा, गलत मूल्यांकन तथा दोषपूर्ण कार्यान्वयन अन्यथा प्रकार से व्यवहार्य स्कीमों को भी हानि पहुंचा सकता है। केन्द्र या राज्य दोनों की सरकारों को परियोजनाएं तैयार करने उनके समवर्ती मूल्यांकन एवं मानीटर करने तथा कार्यान्वयन की जिम्मेदारियां निम्न स्तरों पर देकर दूर दूर बिखरे क्षेत्रों तथा समाज के सुविधा-वंचित वर्गों की एक भारी संख्या के लिए मुख्यालयों से छोटे बड़े बहुत से विकास कार्यक्रमों को बनाने और प्रत्यक्ष रूप से चलाने की सामाजिक एवं प्रशासनिक लागतों को स्वीकार करना चाहिए। केन्द्र सरकार या सम्बन्धित राज्य सरकार अनुभव प्राप्त करने के लिए बड़े हुए अवसरों के आधार पर नीतियां बनाने और जहां आवश्यक हो वांछित परिवर्तन करने में सहायता मिलेगी। इससे वांछित आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता मिलेगी। ऐसा बहुधा होता है कि परियोजना निर्माण के विभिन्न पहलूओं में बहुत सी सरकारी या गैर-सरकारी ऐजेंसियां मिलकर काम करती हैं जिसके फलस्वरूप उनके बीच सम्बन्ध का स्पष्ट निर्धारण तथा उनकी गतिविधियों को समन्वित करना तथा विवाद से बचने के लिए आवश्यक प्रशासनिक व्यवस्था के प्रकार का स्पष्ट निर्धारण आवश्यक हो जाता है। परियोजना को अभी जिस बात से सबसे अधिक नुकसान पहुंचता है वह है प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर कार्यों के दोहरेपन से होने वाला अपरिहार्य विलम्ब एवं बरबादी। अफसरशाहीकरण बहुधा जिम्मेदारियों को दूसरों के कंधे पर डाल देता हैं भले ही इसके लिए कितना समय और श्रम-घंटे बेकार ही जाते हों। तीव्रता और तत्कालिकता जिससे इन विकास सम्बन्धी कार्यों को चलाया जाता है उस सम्पूर्णता पर प्राय: निर्धारित होते हैं जिनके लिए शुरू में ही स्पष्टीकरण मांगे जाते हैं और उस सावधानी पर निर्भर होते हैं जिससे कार्यपालिका कार्मिकों के चयन और काम में उनकी निरन्तरता बनाए रखने के लिए बरतती है। प्रशासनिक मंजूरियों में विलम्ब के कारण निर्माण-कार्य में गतिरोध ने बहुत-सी परियोजनाओं के मामले में उनके निवेश के फलीभूत होने की अवधि को बढ़ाया है। पिछली पंचवर्षीय योजनाओं का हमारा अनुभव स्पष्ट रूप से योजना एवं प्रशासन, वित्तीय लोचशीलता में अधिकतम विकेन्द्रीकरण लागू करने की जरूरत की ओर संकेत करती है। इसलिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा सावधानी पूर्वक योजना बनाकर यह सुनिश्चित करना होगा कि विभिन्न वितरण प्रणालियां मिल-जुल कर कार्य कर रही है तथा विस्तार और सुधार भलिभांति समन्वित है। भूमि तथा अन्य दुर्लभ वस्तुओं के स्वामित्व में स्पष्ट असमानताओं को कम करना होगा और उनकी दयनीय परिसंपत्ति स्थिति के बावजूद गरीबों को उनका लाभ-पहुंचाना होगा।

18. इसलिए यह सही समय है कि राजनीति एवं प्रशासन कुछेक योजना एवं कार्यान्वयन कार्यों के विकेन्द्रीकरण की महत्ता को पहचाने ताकि केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारें स्वयं, विकास सम्बन्धी नीतियां बनाने, नीतिविलेख तैयार करने, उच्चस्तरीय अनुसंधान शुरू करने, समन्वय तथा अधिक कारगर पर्यवेक्षण के कार्यों पर ध्यान केन्द्रित कर सकें, जो सेवा के सुधारे हुए स्तर को बनाए रख सके। वास्तव में विकास प्रबंध के बढ़ते हुए नेमी पहलुओं से सम्बन्धित शक्तियों को दे देने से केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार को किसी प्रकार की भी हानि नहीं होगी। राजनैतिक शान्ति के संबंधित स्तरों पर चुनी हुई या प्रशासनिक संस्थाओं को निम्नलिखित क्षेत्रों में विकास प्रशासन की चुनौतियों के प्रबंध पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए मुक्त कर देना चाहिए अंत:क्षेत्रीय संतुलन औद्योगिक विकास, साक्षरता की सर्वव्यापकता, निवारक दवाइयां तथा स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक संसाधनों के सम्पूर्ण संदोहन के लिए योजना नीति।

19. इस संदर्भ में आयोग को राज्यों, क्षेत्रों, जिलों तथा निम्नस्तरों पर योजना प्रक्रिया को विकेन्द्रित करने के लिए योजना आयोग के प्रयासों की समीक्षा करनी चाहिए। 1962 में योजना आयोग ने राज्यों को सुझाव दिया था कि वे लम्बी अवधि के परिप्रेक्ष्य तथा मध्यम अवधि की योजनाएं तैयार करने के लिए, प्रमुख सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नीतियां और उपायों की सिफारिश करने के लिए प्रमुख परियोजना की अवस्थिति का मापदण्ड विकसित करने के लिए तथा वैकल्पिक प्रस्तावों की लागत तथा लाभों का मूल्यांकन करने के लिए उन्हें राज्य योजना बोर्डों की स्थापना करनी चाहिए। उम्मीद यह है कि सभी राज्य सरकारें इस राष्ट्रीय प्रयास में सहायक होंगी क्योंकि इन विशेषज्ञ संस्थाओं को राष्ट्रनीति एवं योजना के ढांचे के अन्दर योजना एवं कार्यान्वयन के सभी मामलों पर राज्य-मंत्रिपरिषदों, सचिवों एवं विभागाध्यक्षों को सलाह देने के लिए पर्याप्त प्रतिष्ठा एवं प्राधिकार दिया जाएगा परन्तु 1972 तक किसी भी राज्य में इस सम्बन्ध में कोई भी महत्वपूर्ण काम नहीं होगा इसलिए प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल को राज्य स्तर पर योजना संस्थाओं को पर्याप्त प्रतिष्ठा एवं प्राधिकार देने के लिए एक मजबूत आधार बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। अध्ययन दल ने देखा कि जहां भी योजना बोर्ड अथवा समितियों का गठन हुआ था उनके कार्यों को अस्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया था। इस संस्थाओं की सदस्यता भी 5 से लेकर 65 तक की थी जिसमें विशेषज्ञ बहुत कम थे। ये संस्थाएं राज्य योजना सचिवों द्वारा सेवित थीं जिनके पास कोई तकनीकी अनुभव नहीं था इसलिए अध्ययन ने यह निष्कर्ष निकाला कि बोर्ड की कोई भी बैठक रचनात्मक अथवा फलदायक नहीं थी। प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों पर योजना आयोग ने पुन: आदर्श राज्य योजना मशीनरी को सुझाव दिया। सुझाए गए आदर्श के अनुसार शीर्षस्थ संस्था (राज्य योजना-बोर्ड) में मुख्यमंत्री अध्यक्ष, वित्त एवं योजना मंत्री तथा विभिन्न विषयों का प्रतिनिधित्व करने वाले विशेषज्ञ इसके सदस्य होने चाहिए। संचालन ग्रुपों द्वारा इन्हें सहायता दी जाएगी। इनके अध्यक्ष तकनीकी विशेषज्ञ होंगे। बेहतर हो कि वे गैर सरकारी हों और वे उस शीर्षस्थ संस्था के सदस्य भी होंगे। एक पूर्णकालिक गैर-सरकारी व्यक्ति इस शीर्षस्थ संस्था का उपाध्यक्ष होना चाहिए तथा योजना विभाग को पुरोलक्षी योजना, योजना निर्माण, योजना को मानीटर और मूल्यांकन करना, परियोजना निर्माण तथा मूल्यांकन के लिए कार्यात्मक ईकाईयों के रूप में संगठित करना होगा। राज्यों को प्रोत्साहन के रूप में योजना आयोग खर्च का दो-तिहाई भाग वहन करने को तैयार हो गया हो।

20. बहुत से राज्य केन्द्रीय आर्थिक सहायता का लाभ उठाते हैं और बड़ी या छोटी, जैसा भी मामला हो, योजना संस्थाओं की स्थापना कर देते हैं। यदि उत्कृष्टता की कसौटी पर इन्हें कसा जाए तो पता चलेगा कि इनमें से किसी भी बोर्ड ने वांछित स्तर की विशेषज्ञता और यहां तक कि प्रशासनिक अनुभव भी प्राप्त नहीं किया हैं। अधिकांश बोर्ड योजना विभागों के दुमछल्ले के रूप में ही काम करते है और उन्हें मध्य अवधि को योजना निर्माण में सलाह देते हैं। ये बोर्ड प्राय: योजना आयोग को वार्षिक योजना निर्माण या सम्बद्ध बहसों में शामिल नहीं थे। यह देखा जा सकता है कि वार्षिक योजनाओं को तैयार करने और योजना आयोग में होने वाली अनुवर्ती परिचर्चा में जिसका कि कोई कार्यात्मक महत्व भी है, योजना बोर्डों को पूरी तरह दूर रखा जाता है या कोई आश्चर्य नहीं कि राज्य में या योजना आयोग की तुलना में उनकी मूल प्रतिष्ठा में कोई वृद्धि नहीं हुई।

राज्यों में विकेन्द्रीकृत योजना की आवश्यकता

21. योजना के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं योजना प्रशासन का स्वरूप एवं सीमा प्रत्येक राज्य में अलग-अलग रहा है और इसके लिए गम्भीरतापूर्वक किए जाने वाले प्रयत्नों में भी कमी पेशी होती रही है। बहुत से राज्यों ग्राम पंचायत एवं ग्राम सभा की पुरानी अवधारणा को फिर से शुरू करने की शुरूआत की ताकि निम्नतर स्तर पर लोगों को इसके साथ जोड़ा जा सके। सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा में विकेन्द्रीकरण पर और अधिक ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता पर बल दिया।

22. 1957 में बलवन्त राय महेता कमेटी की नियुक्ति सामुदायिक विकास आन्दोलन की उस सीमा का मूल्यांकन करने के लिए हुई थी जिस सीमा तक इस ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों में सुधार की प्रक्रिया में निरन्तरता सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय पहल के इस्तेमाल तथा संस्थाओं के सृजन में सफलता प्राप्त की थी। इस समिति ने कहा था कि विकास कार्यक्रमों को कारगर रूप से लागू करने के लिए प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए और विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली चुनी गई संस्थाओं के नियंत्रण में होनी चाहिए क्योंकि उन्होंने महसूस किया कि उत्तरदायित्व एवं शक्ति के बिना विकास में प्रगति नहीं हो सकती। असली विकास तभी हो सकता है जब समुदाय इसकी समस्याओं को समझे, इसके

उत्तरदायित्वों को पहचाने, अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से आवश्यक शक्तियों का इस्तेमाल करे और स्थानीय प्रशासन पर निरन्तर एवं बुद्धिमत्तापूर्ण नजर रखे। इस उद्देश्य के साथ उन्होंने चुने हुए सांविधिक स्थानीय निकायों की शीघ्र स्थापना तथा उन्हें आवश्यक संसाधनों शक्ति एवं प्राधिकार अंतरित करने की सिफारिश की। दुर्भाग्य से इस दिशा में अधिक सफलता नहीं मिली। हालांकि देश के अधिकांश हिस्सों में पंचायती शब्द एवं संस्था के गठन के लिए बिखरे प्रयास किए गए। वस्तुतः पंचायती राज संस्थाओं को उचित स्तर पर योजना अथवा उन्हें क्रियान्वित करने का अवसर कभी नहीं मिला। प्रशासनिक इच्छा के कमजोर होने के कारण पंचायती राज्य का प्रयोग धीरे-धीरे खत्म होने लगा।

23. चौथी पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान योजना आयोग ने राज्यों को जिला योजनाएं बनाने की आवश्यकता के बारे में बताया। हाल ही में योजना आयोग ने जिला स्तर पर योजना मशीनरी स्थापित करने के लिए 50 : 50 अनुदान के आधार पर वित्तीय सहायता का प्रस्ताव किया है। कई राज्यों ने जिला स्तर पर योजना एकाईयों की स्थापना की हैं हालांकि प्रत्येक राज्य में उनके स्वरूप में विषय वस्तु में अन्तर है। अन्तर के कारण आंशिक रूप से विकेन्द्रीकृत योजना ने राजनेतृत्व द्वारा दिखाई गई रुचि में अन्तर और आंशिक रूप से पंचायती राज संस्थाओं में एकरूपता का अभाव कहे जा सकते हैं जोकि विकेन्द्रीकृत योजना के लिए स्थानिक एवं राजनैतिक आधार प्रदान करते हैं। लेकिन अभी तक भी जिला अथवा निम्नस्तर की योजना संस्थाओं को शक्ति एवं प्राधिकार का अंतरण नहीं हुआ है।

24. विकेन्द्रीकरण का अगला प्रयास 1978 में हुआ जब पंचायती राज संस्थाओं पर अशोक मेहता कमेटी का गठन हुआ। सरकारी संकल्प में स्पष्ट कहा गया था कि "सरकार योजना एवं उसके क्रियान्वयन दोनों में विकेन्द्रीकरण की अधिकतम आवश्यकता है" नीचे से एवं बहुस्तरीय योजना के सम्बन्ध में विचारों के विकास के लगातार प्रक्रिया के रूप में अशोक मेहता समिति ने पाया कि जिला स्तर पर एक बेहतर डाटा-आधार हो और इस विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता पर्याप्त रूप से ऊंचे दर्जे की हो। कुल संसाधनों का मूल्यांकन, ऋण उपलब्धता तथा विभिन्न खण्डों के लिए नीति का निर्माण भी जिला स्तर पर ही किया जा सकता है। खण्ड स्तर योजना पर बने दंतवाला कर्मीदल ने खण्ड योजना के जिला योजना से समन्वय संघटन एवं संगति की आवश्यकता का उल्लेख किया क्योंकि "खण्ड एवं जिला योजनाएं तैयार करना एक ही चीज के हिस्से होंगे"। राज्य मुख्यालय से बहुत दूरी कर विभिन्न स्थानों पर विशिष्ट योजना पर काम करने की जरूरत से जिला स्तर पर योजना के लाभों का पता चलेगा। जिला स्तरीय योजना के लिए संस्थापन एवं तकनीकों के मानकीकरण के क्षेत्रों में भी प्रगति हुई है।

25. हाल ही में प्रधान मंत्री द्वारा नियुक्त आर्थिक सलाहकार परिषद को विकेन्द्रीकृत योजना एवं प्रशासन का अध्ययन करने के लिए कहा गया था उन्होंने नए सिरे से इस प्रश्न पर विचार किया है और राज्य और जिलों के बीच माध्यमिक स्तर के प्राधिकरण की सिफारिश की है। प्रस्ताव यह है कि इसे औसतन साथ रहने वाले चार जिलों के स्तर पर लागू किया जाए जो एक जैसे कृषि-जलवायु-वाले-क्षेत्र हों और जो इतने बड़े हों जिनमें यहां जरूरी हो कि अधिक लाभ मिल सकें और वे इतने बड़े भी न हों कि वे उन लाभों को खो दें जो ठोसपन और सुगम्यता से मिलते हों। राज्य के अन्दर योजना एवं [illegible] के विकास का विकेन्द्रीकरण इसके पश्चात् इस उद्देश्य के लिए गठित मण्डलीय विकास प्राधिकरण के विशिष्ट कार्यों के अंतरण का स्वरूप धारण कर सकता है और उनके द्वारा जिला परिषदों और पंचायत समितियों का कार्य कर सकता है।

26. वास्तव में विकेन्द्रीकृत विकास योजना का मुख्य उद्देश्य क्रमबद्ध एवं व्यावहारिक ढंग से प्रत्येक क्षेत्र एवं उपक्षेत्र की संभावनाओं का सही अन्दाज लगाना होना चाहिए। यह आवश्यक आधारभूत संरचना का सुविधाओं के निर्माण में भी सहायक होगा और आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन की विस्तृत आधारगामी प्रक्रिया के लिए आवश्यक टेक्नालॉजी एवं संघटन में परिवर्तनों में हर प्रकार से सहायता देगा।

27. योजना प्रक्रिया, नीति विनियों संस्था निर्माण सम्बन्धी उक्त जायजे को भारत की योजना प्रणाली में गम्भीर कमियों को दृष्टिगोचर करने में भी सहायक होना चाहिए। आर्थिक विकास एवं योजना की प्रक्रिया को संसाधनों की निधि एवं निम्न स्तर पर रहने और कार्य करने वाले लोगों की जरूरतों से जोड़ने के सम्बन्ध में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया गया परिणाम यह हुआ कि हम विशिष्ट क्षेत्रों की विकास और प्रगति की संपूर्ण संभावनाओं का इस्तेमाल नहीं कर सकते अर्थात बढ़ा हुआ कृषि उत्पादन छोटी सिंचाई व्यवस्था का विकास, लघु उद्योग, श्रमिक विकास एवं संसाधन जुटाने की संभावनाओं का पूर्ण उपयोग नहीं हुआ है। यह बात कारगर होने के लिए योजना ऊपर से होने की बजाए योजना को नीचले स्तर से बननी चाहिए।

28. वर्षों से राज्यों की शक्तियों का अधिक्रमण करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है जिसका परिणाम यह हुआ है कि विखण्डन की प्रवृत्तियों को विकसित होने की छूट दी गई है जिसने एकीकृत भारत की अवधारणा की खतरा हो गया हो जिसमें कि विभिन्न राज्यों के लोगों की लोकतान्त्रिक आकांक्षाओं और पहचान का पूर्ण विकास सुनिश्चित होगा। इसके साथ साथ शक्तियों का अंतरण ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि जिससे केन्द्र कमजोर हो जाए। विभिन्न राज्य और राज्य के अन्दर विभिन्न क्षेत्र विकास की ऐसी समस्याओं का सामना कर रहे है जो इन राज्यों अथवा राज्यों के अन्दर क्षेत्रों के विकास के स्तरों में अंतरण के कारण हैं। इसलिए पूर्ण एकरूपता सम्बद्ध एवं व्यावहारिक समाधान के विकास में सहायक नहीं। योजना एवं आर्थिक कार्य के क्षेत्र में केवल नई संस्थाओं के निर्माण के माध्यम से ही समन्वय सुनिश्चित किया जा सकता है। हमारे संवैधानिक ढांचे में राज्यों के बीच पारस्परिक और राज्यों तथा संघ के बीच लगातार परामर्श एवं परिचर्चा की जरूरत संविधान के प्रायः शुरू होने से ही दिखाई देती रही है। पंचवर्षीय योजना इस प्रक्रिया के निरन्तर चलने वाले प्रमुख कार्य अन्य समय सम्बद्ध समस्याएं हैं। ऊर्जा का उत्पादन, उद्योग एवं व्यापार का विनियमन, खाद्य एवं आवश्यक वस्तुओं का सुनिश्चित वितरण, केन्द्रीय वित्तीय संस्थाएं, कच्चे माल की अधिप्राप्ति एवं पूर्ति तथा विपणन व्यवस्था आदि। ये सभी मसले जो राज्यों के लिए सांझी चिन्ता का विषय हैं संविधान के अनुच्छेद 263 में बतायी गई अन्तर्राज्यीय परिषद के कार्यक्षेत्र में लाए जाने चाहिएं। इस अनुच्छेद को केवल केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषदों, स्थानीय स्वशासन, राष्ट्रीय एकता परिषद, मुख्य मंत्री सम्मेलन आदि की स्थापना के लिए ही इस्तेमाल किया गया है। राष्ट्रीय ऋण निगम, राष्ट्रीय ऋण परिषद, राष्ट्रीय आर्थिक परिषद जैसी अखिल भारतीय संस्थाओं के निर्माण का प्रस्ताव है। हालांकि राज्यों और केन्द्र के हितों को प्रभावित करने वाले मसलों के सम्बन्ध में काफी अधिक समन्वय की आवश्यकता है। एक बड़ी संख्या में समस्याओं के निर्माण की आवश्यकता नहीं है इसकी बजाए वर्तमान राष्ट्रीय विकास परिषद को संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन एक सांविधिक संख्या बनाना संभव होगा। इसे केन्द्र राज्य सम्बन्धों के सम्पूर्ण क्षेत्र के संबंध में विस्तृत शक्तियां दी जानी चाहिए। राज्यों को राष्ट्रीय विकास परिषद में कारगर प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है। राष्ट्रीय योजना आयोग को राष्ट्रीय विकास परिषद के सचिवालय के रूप में कार्य करने वाली संख्या बना दिया जाना चाहिए। योजना आयोग को संरचना इस प्रकार होनी चाहिए कि राज्य सरकारों द्वारा भेजे गए विषय पर अध्ययन एवं अनुसंधान की समस्याओं को हाथ में ले सकें। राष्ट्रीय विकास परिषद को नियत समय पर बैठक करनी चाहिए यह बैठक तीन महीने में एक बार हो सकती है। बैठकों को अधिक उद्देश्यपूर्ण बनाया जाना चाहिए ताकि राज्यों के मुख्यमंत्री सभी योजना दस्तावेजों और अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं का विस्तार पूर्वक अध्ययन कर सके और उन पर निर्णय ले सकें। इस प्रकार राष्ट्रीय विकास परिषद एवं योजना आयोग को न केवल केन्द्र के अपितु बेहतर राष्ट्रीय एकता के लिए राज्य सरकारों को भी परिवर्तन एवं विकास के मजबूत साधन के रूप में परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए इससे योजना पद्धति लोकतांत्रिक बन जाएगी और विकेन्द्रीकृत हो जाएगी जबकि इसके साथ-साथ केन्द्रीय सरकार की आवश्यक विनियमक एवं उपचारी प्राधिकारी प्राधिकार प्राप्त होगा। इस प्रकार संसाधन आबंटन की प्रक्रिया नई आर्थिक प्राथमिकताओं के लिए इस्तेमाल में लायी जाएगी जो कि गतिशील एवं विकासशील अर्थव्यवस्था में रहती है।

29. इन्हीं कारणों से राज्य सरकारों को भी विधान मंडल के अधिनियम द्वारा क्षेत्रीय स्तर जिला, खण्ड एवं पंचायत स्तरों पर योजना प्रक्रिया को विकेन्द्रीकृत करने की सलाह दी जा सकती है ताकि वर्तमान राजनैतिक स्थिति में संभावित अस्थिरता एवं विखण्डन से इस प्रक्रिया को निरोधित किया जा सके। राज्य योजना बोर्डों की स्थापना विशेषज्ञता एवं प्रशासनिक अनुभव के केन्द्र के रूप में होनी चाहिए। ऐसी संस्था स्वाभाविक रूप से सरकार के योजना सचिवालय

के रूप में कार्य कर सकती है और केवल यही बोर्ड को आवश्यक प्रतिष्ठा और प्राधिकार सुनिश्चित कर सकती है ।

30. बेहतर होगा कि सरकारिया आयोग विकास योजना में निहित द्वंदात्मक एवं एकात्मक प्रक्रियाओं को पहचाने । विभिन्न स्तरों पर केन्द्र और राज्य दोनों में स्थापित संस्थाओं को वैध प्राधिकार का प्रतिनिधित्व करना चाहिए ताकि हमारी सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के सम्बन्ध में आदेश दे सकें । संविधान द्वारा वैध एवं सुरक्षित विशेष मशीनरी ही केवल नेतृत्व एवं विश्वसनीयता का अपेक्षित स्तर प्रदान कर सकती है ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (I)

राज्य शाखा मध्य प्रदेश

ज्ञापन

मध्यप्रदेश कांग्रेस कमेटी (इ) का यह निश्चित मत है कि केन्द्र राज्य सम्बन्धों के लिए जो प्रावधान संविधान में हैं उनमें कोई आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है । संविधान में इन सम्बन्धों में समय-समय पर आने वाली परिस्थितियों को झेलने के लिए पर्याप्त लचीलापन है ।

2. कांग्रेस कमेटी का यह मत है कि संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि केन्द्र और राज्य राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह और एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों को निर्वहन भली भांति कर सकते है । इसी तरह कानून बनाने की जो शक्तियां संविधान के सातवें शिड्यूल के अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों में बांटी गई है, उनमें भी परिवर्तन की कोई आवश्यकता यह कमेटी महसूस नहीं करती । परन्तु इस बात की आवश्यकता है कि ऐसे कानून जो केन्द्र के पास सहमति के लिए भेजे जाते हैं तो केन्द्र उनका परीक्षण कानून की संवैधानिक वैधता को ध्यान में रखते हुए करें, ताकि आगे चलकर न्यायालय द्वारा वह कानून निरस्त नहीं किया जा सकें ।

राज्यपाल की स्थिति

3. राज्यपालों के जो अधिकार केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध में संविधान में निहित हैं, वे पर्याप्त हैं और उनमें परिवर्तन की कोई गुंजाईश नहीं है । कुछ अपवादों को छोड़कर राज्यपालों की अभी तक की जो भूमिका रही है वह संविधान के आशाओं के अनुरूप रही है और इनके क्रियाकलापों में राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा की भावना दृष्टिगोचर होती है ।

4. जहा तक केन्द्र और राज्यों के प्रशासकीय सम्बन्धों का सवाल है कांग्रेस कमेटी का यह निश्चित मत है कि देश को एक सुदृढ़ केन्द्र की आवश्यकता है जिसके निर्देश पूरे राष्ट्र पर लागू हों और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संविधान के अनुच्छेद 256, 257 और 365 में जो प्रावधान दिए गए हैं वे जरूरी हैं । अनुच्छेद 365 का रहना इसलिए और भी आवश्यक है कि यदि इसे हटा दिया जाता है तो अनुच्छेद 256 के अंतर्गत केन्द्र द्वारा दिए गए निर्देशों का राज्यों द्वारा पालन न करने पर केन्द्र के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं रह जाएगी, जिसके द्वारा केन्द्र उन निर्देशों का पालन करा सकें ।

5. इसी तरह संविधान के सातवें शिड्यूल के अन्तर्गत जो विषय राज्यों को दिए गए हैं और समवर्ती सूची के जिन विषयों पर केन्द्रीय अभिकरण द्वारा कार्यवाही की जाती है उनमें भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है और इस सम्बन्ध में राज्यों की स्वायत्तता के नाम पर जो आवाज उठायी जा रही है, वह उचित नहीं है । परन्तु ऐसी एजेन्सियों की भूमिका के संबंध में समय-समय पर राज्य शासन और केन्द्र के बीच में विचार विमर्श होना चाहिए । अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में कांग्रेस कमेटी का विचार है कि इसने राष्ट्रीय एकता मजबूत करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है ।

6. जहां तक केन्द्रीय आरक्षित बल को राज्यों में ड्यूटी पर भेजने का सवाल है यह कार्यवाही बिना किसी अपवाद के राज्य शासन की सहमति से ही की जानी चाहिए । परन्तु इसके साथ ही राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अखंडता को खतरा पैदा होने की परिस्थितियों के निर्मित होने पर केन्द्रीय शासन को ऐसे आरक्षित बल को राज्यों में भेजने के अधिकार अवश्य ही होना चाहिए ।

7. जहां तक रेडियो, टेलिविजन को संविधान की समवर्ती सूची में शामिल करने का प्रश्न है, कमेटी का मत है कि इसको केन्द्र के हाथ में ही होना चाहिए ।

आर्थिक सम्बन्ध

8. केन्द्र और राज्यों के बीच में जो आर्थिक सम्बन्ध हैं उनमें परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है । संविधान में इस बात की पर्याप्त व्यवस्था है कि राजस्व आय का बंटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच बराबर-बराबर हो और कमजोर राज्यों को केन्द्र से पर्याप्त सहायता प्राप्त हो, परन्तु इस सम्बन्ध में कमेटी नीचे लिखे तीन सिद्धान्तों की ओर कमीशन का ध्यान आकर्षित करना चाहती है :

(अ) राज्यों को इस बात का समुचित अवसर मिलना चाहिए कि वे अपने स्रोतों का दोहन कम से कम समय में पूरे तौर से कर सकें ।

(ब) ऐसे राज्य जो अपनी प्राकृतिक सम्पदा का दोहन बराबर नहीं कर सके हैं, उन्हें ऐसा करने के लिए केन्द्र से पर्याप्त सहायता मिलनी चाहिए ।

(क) राज्य में तथा राज्य के भीतर विभिन्न अंचलों में जो असंतुलन है उसे दूर करने के उपाय किए जाने चाहिए ।

9. जहां तक राज्यों के वसूल किए गए हिस्से का सवाल है कमेटी यह चाहती है कि कुछ केन्द्रीय करों जैसे आयकर आदि का और अधिक हिस्सा राज्यों को मिलना चाहिए ।

10. जहां तक राज्यों के बीच आय के बंटवारे का प्रश्न है इस सम्बन्ध में सातवें वित्त आयोग द्वारा जो फार्मूला अपनाया गया है, उसके ही अनुकूल योजना की सहायता राशि भी दी जानी चाहिए । इस फार्मूले के अन्तर्गत आय के वितरण में जनसंख्या का 10%, राज्यों के क्षेत्रफल का 15%, प्रतिव्यक्ति आय का 25%, आय के साधनों का 25% और राज्य की गरीबी को 25 प्रतिशत के हिसाब को ध्यान में रखकर आय का बंटवारा किया जाना चाहिए । इसके लिए एक महत्वपूर्ण सुझाव यह भी है कि आर्थिक नीति तैयार करने के लिए केन्द्र और राज्यों के वित्त मंत्रियों को सम्मिलित होना चाहिए । इस तरह संविधान की धारा 269 के अन्तर्गत जो कर केन्द्र सरकार लगाती है और उनका कुछ भाग राज्यों को देती है, ऐसे करों को कुछ सीमा तक लगाने के अधिकार राज्यों को भी मिलने चाहिए ।

11. कमेटी का यह मत है कि सूखा पड़ने की स्थिति में केन्द्र सरकार से प्राप्त राशि को खर्च करने की अनिवार्य तिथि 31 मार्च के स्थान पर 30 सितम्बर होनी चाहिए, क्योंकि 30 सितम्बर तक हर हालत में सूखा पीड़ित जनता को राहत पहुंचानी होती है । इसके अलावा खरीफ की फसल सितम्बर माह के आ जाने के बाद सूखे की स्थिति में कुछ राहत मिल जाती है ।

12. आदिवासी उपयोजना में केन्द्र सरकार द्वारा जो सहायता राशि राज्यों को दी जाती है, कमेटी की राय में, वह पर्याप्त है । किन्तु इस सम्बन्ध में योजना आयोग जिन क्षेत्रों के लिए और जिन मदों के लिए यह राशि उपलब्ध कराता है, उस पर राज्यों की सलाह योजना आयोग को निश्चित रूप से लेनी चाहिए । अभी तक जो केन्द्र द्वारा प्रवर्तित योजनाएं हैं उनका खर्च केन्द्रीय सरकार केवल पांच वर्षों तक देती है, व्यावहारिक अनुभव के आधार पर इस सीमा को बढ़ाकर कम से कम 10 वर्ष किया जाना चाहिए ।

13. जहां तक उद्योगों को लाइसेन्स देने के अधिकार का प्रश्न है केन्द्र के पास केवल उन उद्योगों को लाइसेन्स देने के अधिकार होने चाहिएं जो राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक उद्योग हों । शेष सभी उद्योगों को लाइसेन्स देने के अधिकार राज्यों के पास ही होना चाहिए । इसी तरह कृषि के मामले में इसे केवल राज्यों का विषय नहीं माना जाना चाहिए । इसी तरह कृषि के मामले में क्योंकि कृषि के सम्बन्ध में जो अनुसंधान आज के युग में केन्द्रीय धरातल पर होते हैं, उनके लिए राज्यों के पास आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं । कृषि उद्योगों के उत्पादन के लिए जो मूल्य अभी सम्पूर्ण देश के लिए निर्धारित किए जाते हैं, वे हर राज्यों की स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग तौर पर किया जाना चाहिए, क्योंकि पूरे देश के लिए एक समान कीमत तय करना व्यावहारिक नहीं है ।

14. फौजी छावनी क्षेत्र में जो नागरिक (सिविल) आबादी रहती है उसकी नगरीय व्यवस्था स्थानीय नगरपालिका परिषद या नगरपालिका निगम द्वारा की जानी चाहिए ।

15. उपरोक्त सुझाव में संक्षेप में मध्य प्रदेश कांग्रेस (इ) कमिटी द्वारा इस दृष्टि से मूलत: प्रस्तुत किए जा रहे हैं कि केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्ध और अधिक मधुर बने और केन्द्र भी पर्याप्त रूप से ऐसा शक्तिशाली हो जाए कि देश की अखण्डता और सुरक्षा एवं राष्ट्रीय एकता अक्षुण बनी रहे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

राज्य शाखा-आंध्र प्रदेश

ज्ञापन

सामान्य :

संविधान पहले ही अनुच्छेद में यह निर्धारित करता है कि भारत राज्यों का संघ है। इसलिए भारतीय संविधान अपने स्वरूप, अवधारणा तथा कार्य में संघीय है हालांकि कुछेक पहलुओं में इसका एकात्मक स्वरूप भी झलकता है, रक्षा और विदेशी मामलों जैसे क्षेत्रों संघवाद अथवा दोहरी जिम्मेदारी के सिद्धान्त को लागू करना सम्भव नहीं होगा।

1.2. संविधान निर्माण का बुनियादी सिद्धान्त यह रहा है कि एक मजबूत केन्द्र होना चाहिए। राज्यों को भी उनके लिए अनन्य रूप से आरक्षित कुछेक क्षेत्रों में लगभग स्वायत्त शक्तियां दी गई हैं। संविधान सभा ने सर्वसम्मति से यह फैसला किया था कि भारतीय संविधान कार्यपालिका पर अधिक जिम्मेवारी डालता है हालांकि इसमें कम स्थिरता हो सकती है। प्रतिष्ठित संवैधानिक विशेषज्ञों का असंदिग्ध विचार था कि भारतीय संविधान बुनियादी तौर पर मजबूत है। केवल इस तथ्य से कि भारतीय संविधान, 35 वर्षों से अधिक समय की कसौटी पर खरा उतरा है इस विचार को बल मिलना चाहिए कि बुनियादी तौर पर संविधान में दूरगामी प्रभावों वाले परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

1.3. किसी भी लोकतन्त्र में, कार्यपालिका का कार्य विरोधी पक्ष की मजबूती पर निर्भर करता है। दुर्भाग्य से आजादी के 35 वर्षों बाद भी देश का शासन चलाने के लिए अखिल भारतीय आधार पर हम दो दलों की व्यवस्था को विकसित नहीं कर पाए। जब केन्द्र और राज्य दोनों में एक ही पार्टी का शासन होता है तो कहीं कोई विवाद नहीं था और न ही संविधान के विवादास्पद उपबन्धों के परीक्षण के लिए कोई अवसर आया था। जब क्षेत्रीय पार्टियां उभरीं और उन्होंने राज्य स्तर पर सरकारें बनाना आरम्भ किया जिनका कोई अखिल भारतीय स्वरूप या संसद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं था, प्रशासनिक विधायी अथवा वित्तीय मामलों में केन्द्र-राज्य संबंधों की बोगी को उठाया गया।

1.4. क्षेत्रीय पार्टियों के काम करने के ढंग के विश्लेषण से इस बात की पुष्टि हो जाएगी कि इस शोर को राज्य स्तर पर अपनी कमजोरियों को ढांपने के लिए ही उठाया गया था और इस संदर्भ में अपनी कमियों और असफलताओं से बचने के लिए उन्हें लगा कि केन्द्र को दोष देना एक आसान रास्ता है। यह कहना सही नहीं है कि यह सब संविधान में अपर्याप्त उपबन्धों के कारण हुआ या संविधान ने केन्द्र को अधिक शक्तियां दी हैं और यह कि केन्द्र राज्य सरकार के स्वतन्त्र रूप में कार्य करने में बाधा बन गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐतिहासिक दृष्टि से जब भी देश एकीकृत अथवा संयुक्त नहीं रहा उसके टुकड़े हो गए। केवल ब्रिटिश शासन के दौरान सम्पूर्ण देश को एक प्राधिकार के अन्तर्गत लाया गया हालांकि व्यावहारिक कारणों से अंग्रेजों ने रजवाड़ा शाही राज्यों को प्रोत्साहित किया लेकिन इसके साथ-साथ उनके कामों पर उनका पूर्ण नियंत्रण था। इसलिए इतिहास ने हमें यह सिखाया है कि यदि भारत को एकीकृत और संयुक्त होना है तो एक मजबूत केन्द्र होना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि जब भी केन्द्र कमजोर हुआ देश फिर से टुकड़ों में बंट जाएगा। इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ स्व० सरदार वल्लभ भाई पटेल ने सभी रजवाड़ा शाही भारतीय राज्यों को एकीकृत करने के कठिन कार्य का बीड़ा उठाया और आश्चर्यजनक रूप से कम अवधि में उनको भारत का अंग बनाया और हमें इस संविधान के अधीन लाया क्योंकि यह स्वरूप में संघीय है।

1.5. राज्यों को अधिक स्वायत्त एवं केन्द्र से अधिक स्वतंत्र बनाने के लिए राज्यों को और शक्तियां देने के लिए संविधान में किसी परिवर्तन को सोचने से पहले हमें अपने पिछले इतिहास को और उन कठिनाईयों के दौर को नहीं भूलना चाहिए जिनमें से पिछले 5–6 शताब्दियों के दौरान राष्ट्र को गुजरना पड़ा है। जहां तक देश की एकता व अखण्डता के प्रश्न का संबंध है भावुकतावाद अथवा संकीर्ण दृष्टिकोण को प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता और न ही दिया जाना चाहिए। विकल्प यदि कोई है तो यह है कि केन्द्र को और भी मजबूत बनाया जाना चाहिए।

1.6. अनेकता में एकता को विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, भाषाओं, जातीय समूहों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है जो मुख्यत: "एक भारत" की अवधारणा के सिद्धान्त को मानते हैं।

इसलिए यह देखना आवश्यक होगा कि ऐसे सभी ग्रुपों को आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में समान अवसर भीख के रूप में नहीं अपितु अधिकार के रूप में शक्ति, प्रयोग करने वाली सभी संस्थाए, केन्द्रीय व राज्य सरकार तथा स्थानीय प्राधिकारियों आदि द्वारा, दिया जाए ताकि समतावादी समाज का निर्माण हो सके।]

उपर उल्लिखित आदर्शों की पूर्ति न होने के कारण हमारे देश के किसी भाग में किसी अशान्ति से आर्थिक एवं राजनैतिक ढंग से निपटना होगा न कि उसे संवैधानिक संकट माना जाए। हम इस बात से पहले ही वाकिफ हैं हमारी आज की राजनैतिक व्यवस्था को "भूमि पुत्र" के सिद्धान्त प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कितनी क्षति पहुंचा रहा है। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष राज्य का नहीं है और उसका जीवन एवं सम्पत्ति सुरक्षित नहीं है भले ही वह भारतीय हो तो इसका परिणाम केवल अराजकता होगा।

1.7. वर्तमान संविधान के संबंध में इससे सहमत होना भी कठिन है कि वर्तमान उपबन्धों के अधीन राज्यों को स्वायत्त शक्तियां प्राप्त नहीं है। वस्तुत: इस राज्य में हमारा यह अनुभव है तथा क्षेत्रीय पार्टियों के अधीन अन्य गैर कांग्रेसी सरकारों द्वारा शासित अन्य राज्यों में भी यही अनुभव होना चाहिए जिनका कोई राजनैतिक दर्शन या अखिल भारतीय स्वरूप नहीं है और जिन्हें अखिल भारतीय शीर्षस्थ राजनैतिक संस्था द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाता, राज्य सरकारों अथवा मुख्य-मंत्रियों के पास संविधान के अधीन बहुत अधिक शक्तियां हैं जिनका वे या तो कल्याणकारी कार्यों के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं या उनका दुरूपयोग कर सकते हैं। किसी भी समझवान व्यक्ति को यह तथ्य सहज ही दिखाई देगा कि क्या केन्द्र के पास राज्यों को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त अधिकार हैं जबकि राज्यों द्वारा संवैधानिक संबंधों का दुरुपयोग किया जा रहा हो। संविधान में एक राज्य सरकार को विधान परिषद के सभापति का चुनाव रोकने में मदद दी जो कि राज्य की उच्चतम विधायी संस्था है और उसे एक नामिक व्यक्ति की सहायता से उस समय तक चलाया गया जब तक सभापति के चुनाव के लिए सत्तारूढ़ सरकार को बहुमत नहीं मिल गया। इसी संविधान ने एक अन्य राज्य सरकार को इस परिषद को ही समाप्त करने में सहायता दी जब उसे पता चला कि परिषद में सरकार का बहुमत नहीं था। इसमें राज्य सरकार को विधान मण्डल का सत्र के दौरान में सभापति तथा विधान मण्डल को बताए बगैर— जबकि कार्य सूची पर अभी विचार करना था—सत्रावसान करने में सहायता दी। यहीं संविधान राज्य सरकार को राजनीतिक अथवा पार्टी के उद्देश्य के लिए प्रशासनिक मशीनरी का दुरुपयोग करने में सहायता देता है। इन सभी क्षेत्रों में हालांकि उदाहरण एक जैसे लग सकते हैं फिर भी संवैधानिक रूप से सत्तारूढ़ सरकारों पर रोक लगाने का कोई प्रावधान नहीं है जो शक्तियों का दुरुपयोग या निर्धारित परम्पराओं को तोड़ने में आमदा हों। भले ही संविधान लिखित हो अथवा अलिखित, लोकतंत्र अन्ततोगत्वा परम्पराओं के विकास और उन परम्पराओं के इस प्रकार अनुसरण द्वारा ही कार्य करता है मानों उन्हें कानून की शक्ति प्राप्त हो।

1.8. विधान सभा का बुनियादी काम कानून बनाना और कार्यपालिका के लिए नीति निर्धारित करना है। ऐसी स्थिति आ चुकी है जबकि राज्य सरकारों के काम करने से यह निस्संदेह सिद्ध हो गया है कि विधान सभा के इस महत्वपूर्ण कार्य को भी अध्यादेश के प्राख्यापन द्वारा आसानी से सीमित किया जा सकता है। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब अध्यादेशों को वर्षों तक विधायी संस्थाओं द्वारा कानून नहीं बनाया गया। जब विधान मण्डल सत्र में भी थे तब भी संवैधानिक प्रावधानों की पूरी तरह उपेक्षा की गई और विधान मण्डल द्वारा अध्यादेशों का अनुसमर्थन नहीं किया गया। विधायी संस्थाओं द्वारा अनुसमर्थन करवाने की बजाय अध्यादेशों को पुन: प्रख्यापित करने की निंदनीय पद्धति का सहारा लिया गया।

1.9. उक्त पृष्ठभूमि और कई राज्य सरकारों की कार्यप्रणाली की पृष्ठभूमि में हमारा यह दृढ़ मत है कि इस संविधान में बुनियादी तौर पर किसी परिवर्तन की

आवश्यकता नहीं है। भाग-I के प्रश्न 1.5 का हमारा उत्तर हां में है जो कि दूसरे भागों के समर्थित प्रश्नों के संबंध में लिए गए विस्तृत कारणों के अधीन है। हम पूरी तरह सहमत हैं कि संघ-राज्य संबंधों में उत्पन्न कठिनाईयां, मुद्दे, तनाव और समस्याएं संविधान की मूलभूत संरचना एवं व्यवस्था में किसी बड़े दोष के कारण नहीं है।

विधायी सम्बन्ध

2.1 हम यह महसूस करते हैं कि संसद को एक नया राज्य बनाने या सीमाओं में परिवर्तन करने, किसी वर्तमान राज्य के क्षेत्र को घटाने या बढ़ाने का मूल प्राधिकार होना चाहिए और संविधान के मौजूदा उपबन्धों में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

2.2. हम महसूस करते है कि राज्य विधान मण्डलों और संसद के बीच शक्तियों का मौजूदा बंटवारा पर्याप्त है और सन्तोषजनक रूप से कार्य कर रहा है। जब भी केन्द्र संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची के विषयों पर अखिल भारतीय स्वरूप के किसी विधेयक को लाना चाहता है तो राज्य विधान सभा द्वारा अनुसमर्थन के लिए संविधान में पर्याप्त उपबंध है।

2.3 संविधान का अनुच्छेद 213 राज्यपाल को अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति देता है। हिन्दी शक्ति और प्रभाव विधान मण्डल के अधिनियम जैसा ही होगा। यह अनुच्छेद यह भी बताता है कि ऐसा प्रत्येक अध्यादेश विधान मंडल में लाया जाएगा और विधान मंडल के पुनः एकत्र होने के 6 सप्ताह की समाप्ति पर कार्य करना बंद कर देगा अर्थात् ऐसे अध्यादेशों को विधान मण्डल के सामने रखे जाने की तारीख से छः सप्ताह के अन्दर अधिनियम बनाया जाएगा। मौजूदा उपबन्धों के अधीन अध्यादेश विधान मण्डल के सामने तभी रखे जाएगे जब विधान मण्डल को साधारण काम के लिए बुलाया गया हो। जहां विधान मण्डल ने अध्यादेशों का अनुसमर्थन न किया हो और उन्हें अधिनियम में परिवर्तन न किया हो, अध्यादेश प्रवृत्त नही रहेंगे, परन्तु वही अध्यादेश विधान मण्डल के सत्रावसान के बाद पुनः प्रख्यापित किया जा सकता है। पिछले दो वर्षों के दौरान ऐसा अनुभव रहा है कि विधान-मण्डल के सामने अध्यादेश रखे तो गए थे परन्तु उन्हें अधिनियमित करने के लिए सरकार द्वारा कारगर उपाय नहीं किए गए परिणामस्वरूप अध्यादेश समाप्त हो गए और यथा प्रक्रिया अपना कर उन्हें फिर से प्रख्यापित किया गया। इससे स्पष्ट पता चलता है कि विधान मण्डल भले ही ऐसे अध्यादेशों के प्रख्यापन के पक्ष में न हो कार्यपालिका जहां उसे सुविधाजनक लगे अध्यादेश का पुनःप्रख्यापन करके विधान मण्डल को सीमित कर सकती है। वस्तुतः अध्यादेशों के पुनर्स्थापन के संबंध में राज्यपाल की ऐसी कारवाईयों को विधान मंडल की शक्तियों का सोचा-समझा अधिक्रमण माना जाना चाहिए इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि अनुच्छेद 213 को निम्नलिखित प्रावधान करने के लिए समुचित रूप से संशोधित किया जाए,

(क) अध्यादेशों को निर्धारित समय के अन्दर विधान मण्डल में रखने के लिए, और

(ख) ऐसे अध्यादेशों को ऐसे किसी भी रूप में जिसमें वे प्रवृत्त नहीं रहे है उनके पुनर्स्थापन पर रोक लगाने के लिए क्योंकि विधान मण्डल ने उनका अनुमोदन नहीं किया है।

राज्यपाल

3.1 संविधान के मौजूदा उपबन्धो के अधीन राज्यपाल राज्य का केवल नामधारी मुख्य है उसे मुख्यमंत्री अथवा मुख्यमंत्री के नेतृत्व में मंत्रि परिषद की सलाह के अनुसार कार्य करना होता है। हालांकि संविधान राज्यपाल को उसमें निहित कार्यों के लिए विवेक का इस्तेमाल करने की शक्ति प्रदान करता है फिर भी व्यवहार में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें उसे शक्ति दी गई हो जहां वह मुख्यमंत्री अथवा मंत्री परिषद की सलाह की उपेक्षा करके कार्य कर सके। राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल का पद हमारे विचार से संवैधानिक संकट के समय में कार्य करने के लिए एक प्राधिकरण के रूप में अनिवार्य है।

3.2 राज्यपाल का प्रमुख संवैधानिक कार्य मुख्यमंत्री की नियुक्ति है यहां भी उसे बहुमत वाली पार्टी की सलाह के अनुसार चलना पड़ता है जो अपने नेता का चुनाव करती है और जिसे मुख्यमंत्री के रूप में शपथ दिलाई जानी चाहिए। इस तथ्य से कि राज्यपाल को मुख्यमंत्री की नियुक्ति की शक्तियां प्राप्त है, से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि राज्यपाल मुख्यमंत्री को बरखास्त करने में समान रूप से सक्षम है। मुख्यमंत्री को बरखास्त करने का प्रश्न तभी पैदा होता है जब मुख्यमंत्री विधायकों के मत का समर्थन बनाए रखने में असफल रहता है अथवा राज्यपाल के पास ऐसा विश्वास करने का कोई कारण हो कि मुख्यमंत्री सदन के बहुमत के बिना अथवा सदन के विश्वास के बिना कार्य करेगा। राज्यपाल के पद की कार्यपद्धति के संबंध मे हमारे विश्लेषण से यह पता चलता है कि राज्यपाल का पद विवादास्पद बन गया है जब वह इस आधार पर मुख्यमंत्रीयों को बरखास्त करने की शक्ति का इस्तेमाल करता है कि मुख्यमंत्री को विधायकों के बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है। यह विशेषकर गैर-कांग्रेसी सत्तारूढ़ दल वाले राज्यों मे विवाद का प्रमुख स्रोत बन गया है क्योंकि जाने अनजाने राज्यपाल को केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी के साथ जोड़ा जाता है और उसे राज्यस्तर पर केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि अथवा एजेंट के रूप में माना जाता है और गहराई से देखने पर पता चलता है कि यह प्रवृत्ति अभी हाल ही में उभरी है। यह विवादास्पद मसला है कि क्या राज्यपाल को इस आधार पर मुख्यमंत्री को बरखास्त करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए कि उसे सदन से विधायकों के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो चुका है। दूसरी ओर अधिक व्यवहार्य विचार यह होना चाहिए कि जब भी राज्यपाल को संदेह हो कि उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है वह मुख्यमंत्री को सदन में अपने समर्थकों की संख्या की परीक्षा का निर्देश दे। संविधान की मौजूदा व्यवस्था के अधीन राज्यपाल को विधान सभा बुलाने और शक्ति परीक्षण के लिए मुख्यमंत्री का निर्देश देने का प्राधिकार नहीं है क्योंकि विधान मण्डल को राज्यपाल द्वारा केवल मंत्री परिषद की सलाह पर ही बुलाया जाना चाहिए इसलिए हम यह सुझाव देंगे कि जब भी उसे दी गई सामग्री के आधार पर राज्यपाल यह महसूस करे कि मुख्यमंत्री को सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है, उसे विधान मण्डल बुलाने और शक्ति परीक्षण के लिए मुख्यमंत्री को अपना बहुमत सिद्ध करने का निर्देश देने का अधिकार होना चाहिए। इसलिए हम भाग III में 3.8 प्रश्न में दिए सुझाव से सहमत हैं।

3.3 प्रश्न 3.9 में दिए गए सुझाव शामिल करना संविधान में बताई गई लोकतांत्रिक संरचना में व्यावहारिक नहीं होगा। नेता का चुनाव या सदन को भंग करना और पुनः चुनाव करवाने का काम विधायकों के लिए छोड़ देना चाहिए।

3.4 विधान सभा द्वारा पारित विधेयक राज्यपाल को द्विसदनी व्यवस्था वाले राज्यों से विधान परिषद के सभापति और विधान सभा के अध्यक्ष तथा मुख्यमंत्री की सिफारिश के साथ अनुमति के लिए राज्यपाल के पास भेजा जाता है। यह व्यवस्था सन्तोषजनक रूप से कार्य कर रही है और इस संबंध में विवाद के लिए कोई अवसर नहीं है।

प्रशासनिक संबंध

4.1 हमारा अब तक का अनुभव यह है कि केन्द्र सरकार को संविधान के अनुच्छेद 256 और 257 के उपबंधो को जागृत करने का कोई अवसर नहीं था। संघीय स्वरूप वाले संविधान में राज्यों और केन्द्र के उत्तरदायित्व एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। हमारा अनुभव था कि संसद द्वारा बनाए गए कानूनों की अनुपालना सुनिश्चित करने में अनुच्छेद 256 के अधीन उपबंधों को जागृत करने की कोई आवश्यकता अथवा अवसर नहीं था क्योंकि यह अधिनियम स्वतःपूर्ण है जिनमें राज्य सरकार और केन्द्र सरकार की शक्तियों की परिभाषा दी गई है। संविधान में इन उपबंधों को रखना अत्यावश्यक है चाहे संसद की सर्वोच्चता प्रदर्शित करने के लिए अथवा देश की एकता एवं अखण्डता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण मसलों के संबंध में दोषी सरकारों को रोकने के लिए केन्द्रीय सरकार की सर्वोच्चता प्रदर्शित करने के लिए हम उन्हें जागृत करें या नहीं।

4.2 इसी अवधारणा के अंतर्गत असाधारण परिस्थितियों में राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए अनुच्छेद 356 के अधीन शक्तियां अत्यावश्यक है। असम और पंजाब जैसे सीमावर्ती राज्यों की हाल ही की घटनाओं से इस विचार को और बल मिलेगा। राज्यों की अखण्डता को प्रभावित करने वाली स्थितियों में हस्तक्षेप करने के लिए केन्द्र के लिए संविधान में यही एक कारगर प्रावधान है केवल इस तथ्य से घबरा नहीं जाना चाहिए कि इन उपबंधों को जब केन्द्र सरकार

और राज्य सरकार दोनों में एक ही पार्टी का शासन हो तो पार्टी के हितों की साधना के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, अपितु इस असाधारण शक्ति के इस्तेमाल को देश की अखण्डता एवं राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

4.3 अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में उपबंध जिस तरह बनाए गए हैं पूर्णतः आवश्यक हैं वस्तुतः अखिल भारतीय सेवाओं ने संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं को नीति-निर्माताओं और प्रशासन के बीच प्रमुख कड़ी के रूप में तथा सरकार की नीतियों के पालन तथा स्थिरता बढ़ाने एवं राष्ट्रीय एकता में सहायक राष्ट्रीय दृष्टिकोण का निर्माण करने के लिए विमुख संगठन के रूप में पूरा नहीं किया। अखिल भारतीय सेवाएं अधिक स्वतन्त्रतापूर्ण कार्य कर सकती हैं। राज्य सरकारों द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं पर मौजूदा नियंत्रण पर्याप्त है।

4.4 जैसा कि भाग IV के प्रश्न 4.7 में उल्लिखित विभिन्न केन्द्रीय एजेंसियों तथा इन संगठनों की अधिकता का जहां तक संबंध है यह पूर्ण रूप से प्रशासनिक आवश्यकताओं का मसला है और इस उद्देश्य के लिए संविधान में किसी विशिष्ट उपबंध को शामिल करना अथवा संविधान के मौजूदा उपबंधों का संशोधन करना वांछनीय नहीं है। क्या यह एजेंसियां राज्यों की स्वायत्तता का अतिक्रमण कर रही हैं यह राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों के परिप्रेक्ष्य एवं उनके दृष्टिकोण पर अधिक निर्भर करता है। इन एजेंसियों का आशय एक प्रकार से अखिल भारतीय स्वरूप की योजनाओं को लागू करने में राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रदान करना और राज्यों को वित्तीय एवं आधारभूत संरचनात्मक सुविधाएं प्रदान करना भी है। वस्तुतः यदि इन संगठनों के कार्य पूरी तरह राज्यों को दे दिया जाए तो राज्यों के कोष पर एक भारी बोझ पड़ जाएगा जिसका कोई स्पष्ट लाभ होगा। इनमें से कुछ संगठन वास्तव में केवल राज्य सरकारों की गति विधियों की प्रतिपूर्ति करते हैं जैसा कि भारतीय खाद्य निगम के मामले में है।

4.5 हमारा मत है कि स्थायी आधार पर अन्तर्राज्यिक परिषद की आवश्यकता है। मौजूदा राष्ट्रीय विकास परिषद को संविधान के अनुच्छेद 263 के परिधि के अन्दर सांविधिक संस्था बना दिया जाए अथवा इस उद्देश्य के लिए अलग परिषद स्थापित करने की बजाय राष्ट्रीय विकास परिषद को कारगर बनाने के लिए इस अनुच्छेद को समुचित रूप से संशोधित किया जाए। अनुवर्ती पैराग्राफों में इस संबंध में हमारे विचारों की व्याख्या की गई है।

वित्तीय संबंध

5.1 केन्द्र की वित्तीय मजबूती बनाए रखने और राज्य के वित्तीय संसाधनों को बेहतर बनाने के उद्देश्यों में एक नाजुक सन्तुलन की आवश्यकता है। लेकिन समुचित समन्वय के लिए उसके पास शक्ति एवं साधन होने चाहिएं ताकि वह सुनिश्चित कर सके कि उसके द्वारा बनाई गई राजकोषीय नीतियों का राज्य द्वारा पालन किया जा रहा है। केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों को संसाधनों के कुशल एवं मितव्ययी प्रयोग एवं अर्थव्यवस्था में प्रवाह को प्रोत्साहित करने के लिए होना चाहिए हमें यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि हमारे देश की आर्थिक स्थितियों में बहुत विभिन्नता है हर प्रकार के आर्थिक विकास की प्राप्ति के लिए जो हमें देश की कारगर अखण्डता की ओर ले जाए विभिन्न अंचलों की पारस्परिक आर्थिक निर्भरता को बनाए रखना होगा। राष्ट्रीय अखण्डता और सम्बद्धता को प्राप्त करने और उसे मजबूत करने में यह एक सहायक घटक होगा क्योंकि विभिन्न राज्यों के बीच आर्थिक असमानताओं को कम करने की प्रक्रिया की वित्तीय विवक्षाएं भी हैं। अपेक्षाकृत पिछड़े हुए राज्यों की सहायता करनी होगी। ऐसे राज्यों को केन्द्र द्वारा किए जाने वाले संसाधनों के अंतरणों को अवश्यमेव बेहतर बनाए जाना चाहिए।

5.2 संविधान के प्रमुख उपबंध केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों से संबंधित उपबंध हैं। हम निस्संदेह मौजूदा उपबंधों का समर्थन करते हैं और हमारा यह दृढ़ विचार है कि मौजूदा उपबंधों को लागू करना अपेक्षाकृत प्रगतिशील एवं औद्योगिक राज्यों की तुलना में विशेषकर पिछड़े हुए राज्यों के लिए काफी लाभदायक रहा है। हम पूर्णतः इस विचार से सहमत हैं कि क्षेत्रीय असन्तुलन को मजबूत केन्द्र द्वारा कम किया जा सकता है जिसके पास राजस्व का लोचदार स्रोत है और गरीब राज्यों के विकास के लिए उपलब्ध निधियों के इस्तेमाल संबंधी अधिक विवेकी शक्तियां हों। राज्यों को अधिक वित्तीय शक्तियां देने से यह सन्तुलन अमीर राज्यों के पक्ष में और अधिक जुट जाएगा, लगाने और एकत्र करने की सुविधा ने एकरूपता के उद्देश्य के लिए निगम कर को छोड़ कर आय-कर, उत्पाद-शुल्क और सीमा शुल्क जैसे प्रमुख राजस्व के स्रोत केवल केन्द्र के पास ही रहने चाहिएं। कृषि आय पर कर लगाना पहले ही राज्य सरकारों के पास है। केवल सीमा शुल्क को छोड़कर आय अथवा उत्पाद से एकत्र किया कर पहले से ही राज्य सरकारों के साथ बांटा जाता है। अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण सीमाशुल्क केवल केन्द्र के पास ही होना चाहिए और राज्यों से इसकी भागीदारी भी सम्भव नहीं होगी इसलिए एक ही क्षेत्र ऐसा बचा है जिसमें सम्भवतः राज्यों को उनका सही भाग नहीं मिल रहा है वह है निगम कर।

5.3 संविधान के मौजूदा उपबंधों में राज्यों में करों के समान वितरण का प्रावधान है। यदि उपरोक्त, मदों में से किसी कर को उगाहने का अधिकार राज्यों को देने के लिए, मौजूदा उपबंधों को किसी प्रकार परिवर्तित, आशोधित अथवा संशोधित किया जाता है तो इसका परिणाम राजस्व का असमान बंटवारा होगा जिससे आर्थिक दृष्टि से विकसित राज्य अधिक अमीर हो जाएंगे और पिछड़े हुए राज्य हमेशा पिछड़े राज्य बने रहेंगे। उदाहरणार्थ एक समय आन्ध्र प्रदेश राज्य में बिक्री कर से प्राप्त कुल राजस्व महाराष्ट्र राज्य के बम्बई नगर में एकत्रित बिक्री कर के बराबर भी नहीं था। यही स्थिति आयकर अथवा उत्पाद शुल्क आदि के संबंध में होगी। राष्ट्रीय धन एवं संसाधनों का समान बंटवारा समझा नहीं होगा। दूसरी ओर आर्थिक दृष्टि से विकसित राज्य और मजबूत बन जाएंगे तथा कठिनाइयां पैदा करेंगे और वस्तुतः जो कि सीमावर्ती अमीर सीमावर्ती राज्यों में चल रहे आन्दोलन से सिद्ध होता है वे देश की एकता के लिए चुनौती बन जाएंगे। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि राज्यों में करों के आबंटन के लिए वित्त आयोग अत्यंत न्यायसंगत रहा। आयकर का लगभग 90 प्रतिशत भाग राज्यों में बांटा जाता है जबकि उत्पाद शुल्क के 10 प्रतिशत में भी राज्यों की भागीदारी होती है। भविष्य में यदि आवश्यक हो उत्पाद शुल्कों के हिस्से को और बढ़ाया जा सकता है तथा यह एक ऐसा विषय है जिस पर 5 वर्ष में एक बार वित्त आयोग द्वारा विचार किया जा सकता है और इस उद्देश्य के लिए संविधान के मौजूदा उपबंधों में किसी प्रकार संशोधन अनावश्यक है।

5.4 एक समय निगम कर भी विभाजन योग्य था। सम्भवतः इस संबंध में मूल स्थिति को फिर से कायम किया जा सकता है। परन्तु करों अथवा सहायता अनुदान के अंतरण का राज्य में आंतरिक समाधान जुटाने के लिए राज्य सरकारों के प्रयास पर कोई ऋणात्मक प्रभाव नहीं होना चाहिए। क्षेत्रीय पार्टियों वाली सरकारें लोगों एवं मतदाताओं का दिल जीतने के लिए लोकप्रिय कार्यक्रम चलाने में गहरी दिलचस्पी रखती हैं। इष्टतम सीमा तक अपने संसाधन एकत्र न करने के संबंध में भी उनकी समान दिलचस्पी है इसका कारण भी लोगों एवं मतदाताओं के उस वर्ग का दिल जीतना है जो कर लगाने से प्रभावित होता है। राज्य सरकारों के गंभीर प्रयास के बिना यह तर्क देना व्यर्थ होगा कि केन्द्र को अधिक उदार सहायता देनी चाहिए।

5.5 एक बार-बार दोहराई जाने वाली शिकायत है कि संविधान के मौजूदा उपबंधों का अनुचित लाभ उठाकर केन्द्र सरकार अधिभार लगा रही है और जबकि राज्यों को अधिभार में उनके उचित हिस्से से वंचित रख रही है। सातवें वित्त आयोग ने उनकी प्रक्रिया को भी तर्कसंगत बनाने का प्रयास किया है। अधिक से अधिक दो वर्ष की अवधि के लिए अधिभार लगाने संबंधी केन्द्र सरकार की शक्तियों को सीमित करने के संबंध में संविधान के मौजूदा उपबंधों में संशोधन के बारे में सोचा जा सकता है और इस अवधि के पश्चात् यह अधिभार मुख्य उगाहियों से मिल जाएगा ताकि यह विभाजन योग्य राजस्व का हिस्सा बन सके।

5.6 ऐसा समय आ सकता है कि केन्द्र सरकार को राज्यों के संसाधनों में सुधार के लिए अनुच्छेद 279 के उपबंधों पर नियमित रूप से निर्भर रहना पड़े। इस मामले में पुनः अमीर राज्य अधिकतम राजस्व का योगदान करेंगे और राज्यों में वितरण के सिद्धान्तों का निर्माण करने के द्वारा इस संबंध में सावधानी बरती जानी चाहिए ताकि कम विकसित राज्यों को उचित हिस्सा मिल सके।

5.7 सहायता अनुदान को नियमित करने वाले सिद्धान्तों के संबंध में 7वें वित्त आयोग के सुझाव सही हैं इस संबंध में संविधान के मौजूदा उपबंधों को संशोधित करने की कोई जरूरत हम नहीं दिखाई देती। हमारे विचार में हमें राष्ट्रीय ऋण निगम, राष्ट्रीय ऋण परिषद स्थापित करने की कोई जरूरत नहीं है।

5.8 कुछ सुझाव दिए गए हैं कि केन्द्रीय बिक्री कर आदि को और बढ़ाया जाए। हमारे विचार में यह अनावश्यक है। ऐसी किसी भी बढ़ोतरी से कम विकसित एवं गरीब राज्यों की कीमत पर विकसित एवं अमीर राज्यों की सहायता मिलेगी।

5.9 हमें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि हमारे देश में आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों प्रकार की काफी असमानताएं हैं। आर्थिक असमानताएं मूल-भूत सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं जैसे कुछ क्षेत्रों में दिखाई देती है। पूरे देश के उत्पादक संसाधनों का बेहतर उपयोग होना चाहिए। आर्थिक विकास को सामाजिक बाधाओं से अलग नहीं किया जा सकता। हमारी मौजूदा उत्क्रम के निम्न स्तरों पर जैसे जिला पंचायती राज, संस्थाओं मे प्राधिकार का इस्तेमाल जैसी सामाजिक बाधाओं से आर्थिक विकास को कम नहीं किया जा सकता। निस्संदेह संविधान के नीतिनिर्देशक सिद्धान्तों में यह कहा गया है कि देश में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। अनुभव ने यह दर्शाया है कि जिला परिषदों एवं पंचायतों का निम्न स्तर पर विकास के कारगर साधन के रूप में इस्तेमाल करने की अपेक्षा उनका इस्तेमाल शक्ति की शतरंज में राजनीतिक मोहरों के रूप में इस्तेमाल किया गया है और न ही असली शक्ति का लोगों में अंतरण होता है ताकि क्षेत्रीय पिछड़े हुए और स्थानीय लोगों की आर्थिक आकांक्षाएं पूरी ही सकें। समय की बुनियादी एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण जरूरत है किन संस्थाओं को स्वयं संविधान में स्थान देना। हम संविधान में ऐसे उपबंध का समर्थन करते है जिसमें राज्यों से यह करने के लिए कहा गया हो :

(क) ग्राम पंचायतों का गठन करना।

(ख) पंचायतों के समूह के लिए एक आंचलिक संस्था का गठन करना। इसे पंचायत समिति पंचायत संघ आदि कहा जा सकता है।

(ग) पंचायतों की जिला संस्था का गठन, इसे जिला परिषद या ऐसा ही कुछ नाम दिया जाए।

(घ) भारतीय चुनाव आयोग के माध्यम से इन संस्थाओं के चुनाव की व्यवस्था जैसी कि संसद एवं राज्य विधान सभा के चुनाव कराने के मामले में है।

(ङ) संविधान के मौजूदा अनुच्छेद 280 की रूपरेखा पर राज्य स्तरीय वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था जिसमें राज्य सरकार और स्थानीय निकायों के बीच करों के विभाजन का प्रावधान हो जिससे राज्य सरकार की मनमानी इच्छा द्वारा, छीने जाए बिना जो कि राजनीतिक हित के विचार से प्रभावित हो सकता है स्थानीय निकायों को करों में उनका हिस्सा सुनिश्चित किया जा सके।

5.10 जबकि राज्य अपनी सामाजिक आर्थिक जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए केन्द्र से अधिक संसाधनों की मांग कर रहे हों। बहुत से राज्य आसानी से इस बात को भूल रहे हैं कि वे स्थानीय प्राधिकरणों को जिन्हें बहुत सी स्कीमों को लागू करना है पर्याप्त धन नहीं दे रहे हैं। वस्तुतः अधिकांश स्थानीय प्राधिकरणों को राज्य सरकारों द्वारा हाथ में लिए गए लोकप्रिय कार्यक्रमों के कारण धन की कमी रहती है। इसका उपाय यही है कि राज्य स्तर पर वित्त आयोग की स्थापना करके जिला परिषदों पंचायत समितियों और मण्डलों जैसे स्थानीय प्राधिकरणों को निधियों के अंतरण का प्रावधान करने के लिए संविधान में ही व्यवस्था की जाए। संविधान के अनुच्छेद 280 की तरह एक उपबंध को शामिल किए जाने के संबंध में विचार किया जाना चाहिए जो राज्य एवं स्थानीय प्राधिकरणों के बीच निधियों के अंतरण के लिए वित्त आयोग की स्थापना के लिए राज्य सरकारों को शक्ति प्रदान करे।

5.11 पिछड़े हुए राज्यों को अधिक राजस्व के अंतरण के लिए तरीके निकालने की आवश्यकता है भले ही आवश्यक हो तो सुविचारित सिद्धान्तों के अधीन धनी राज्यों से लेने के माध्यम से ऐसा हो, लेकिन इस बात के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए कि इसका परिणाम पिछड़े राज्यो में वित्तीय उच्छृंखलता न हो अथवा ऐसे राज्यों को वित्तीय संसाधनों को जुटाने की होड़ में पीछे रहने के लिए प्रोत्साहन न मिले।

5.12 केन्द्र विशेष रूप से कमजोर वर्गों के लिए आर्थिक एवं सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में धन दे रहा है। इनमें से अधिकांश स्कीमों के लिए केन्द्र द्वारा धन दिया जाता है और स्वाभाविक रूप से केन्द्र की यह इच्छा होगी कि वह इन स्कीमों के निष्पादन और धन के उपयोग को मानीटर करनेके लिए अधीक्षण करे और स्वयं को संतुष्ट भी करे कि राज्य सरकारों द्वारा धन को किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग में लाए बिना समुचित रूप से खर्च किया जाए। इन स्कीमों के निष्पादन में राज्यों को सम्मिलित करने के लिए केन्द्र राज्य संसाधनों से प्रतिशत-योगदान पर भी जोर दे रहा है। हालांकि इन स्कीमों का निष्पादन प्रथम दृष्टि से केवल राज्य की एजेंसियों के माध्यम से किया जाता है राज्यों और केन्द्र के कुछ पहलुओं में निधियों की भागीदारी द्वारा दोहरी जिम्मेदारी की स्थिति आ जाती है जिससे कि स्कीमों के कतई निष्पादित न होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन स्कीमों के समुचित निष्पादन से किसी एक अथवा अन्य कार्य से केन्द्र अथवा राज्य द्वारा अपना समर्थन वापिस ले लेने से बेकार किया जा सकता है। इसका एक संभावित समाधान यह होगा कि केन्द्र इन स्कीमों के लिए राज्यों पर कोई दायित्व डाले बिना शतप्रतिशत धन दे और अपनी प्रशासनिक मशीनरी द्वारा उनका निष्पादन करे अथवा विकल्प के रूप में केन्द्र को पूरा धन राज्यों को दे देना चाहिए और कार्यक्रमों का निष्पादन राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

5.13 इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा हस्तक्षेप उत्तेजक के रूप में कार्य करता है जैसा कि प्रश्नावली में अन्यत्र उल्लिखित है काफी विलम्ब का स्रोत बन जाता है। ये सब केन्द्र और राज्य के बीच सही संबंध पर निर्भर करता है और संविधान के किसी उपबंध को हटाना अथवा जोड़ना इसका उपचार नहीं हो सकता।

सामाजिक एवं आर्थिक योजना

6.1 राष्ट्रीय विकास परिषद जो कि एक गैर-सांविधिक संस्था है, को संभवतः संविधान के अनुच्छेद 263 के अधीन, यदि आवश्यक हो तो इसको समुचित रूप से संशोधित करके सांविधिक प्रतिष्ठा प्रदान की जा सकती है और हम मोटे तौर पर भाग VI के प्रश्न 6.2 के सुझावों से सहमत है। केन्द्रीय बजट को अन्तिम रूप देने से पहले राष्ट्रीय विकास परिषद से भी परामर्श किया जा सकता है जैसे कि वित्त मंत्री उद्योग वाणिज्य और कराधान के विभिन्न क्षेत्रों से परामर्श करता है ताकि राज्यों को भी केन्द्रीय बजट के निर्माण के संबंध में अपने विचार अभिव्यक्त करने का अवसर दिया जा सके। भाग VI के प्रश्न 5.29 में दिए गए राष्ट्रीय ऋण निगम, राष्ट्रीय ऋण परिषद तथा राष्ट्रीय आर्थिक परिषद के कार्य राष्ट्रीय विकास परिषद को सौंपे जा सकते हैं और यह राज्यो के सांझे हित के विषयों अथवा अन्तर्राज्यीय विवादों का समाधान करने के लिए कारगर कार्य कर सकती है। राष्ट्रीय विकास परिषद को अपने निर्णयों को लागू करवाने के लिए सांविधिक शक्तियां संसद द्वारा बनाए गए कानून के माध्यम से दी जा सकती है।

निष्कर्ष

संघीय व्यवस्था मे मजबूत एवं स्वायत्त राज्यों की अवधारणा का समर्थन पश्चिमी पूंजीवादी देशों विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा किया जाता है जो संभवतः महसूस करते है कि ऐसी व्यवस्था आर्थिक एवं अन्य प्रकार से दोनों में जीवन रक्षा के लिए घटक उन पर अधिक निर्भर रहेंगे।

ऐसे संघ का एक शास्त्रीय उदाहरण संघ गणराज्य जर्मनी (पश्चिमी जर्मन) का है जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका का मित्र होने के कारण इस अवधारणा के अनुरूप होने के लिए अपना सांविधान परिवर्तित करना पड़ा। हालांकि उस देश के लोग हमेशा एक मजबूत केन्द्र के पक्ष में रहे।

डा०एच०एल० भाटिया ने बिरला आर्थिक अनुसंधान संस्थान के तत्वावधान में अपनी पुस्तक 'भारत में केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंध' म पृष्ठ 40 में लिखा:

> "संघ गणराज्य जर्मनी के प्रतिनिधि एक मजबूत केन्द्र के पक्ष से थे वे राष्ट्रीय स्तर पर राजकोषीय एकरूपता और विभिन्न राज्यो के बीच वित्तीय बराबरी की प्राप्ति वैयक्तिक राज्यों के हितो के लिए चाहते थे। दूसरी ओर अमेरिकावासी संघीय व्यवस्था में मजबूत एवं स्वायत्त राज्यों के अपने दर्शन को लागू करना चाहते थे इसका परिणाम हुआ राज्यों की वित्तीय स्वतन्त्रता एवं संघीय सरकार का प्रावधान"।

संघ गणराज्य जर्मनी का संविधान अनुच्छेद 109(1) के अधीन मूल कानून को संशोधित किया गया है "संघ एवं राज्य अपने राजकोषीय प्रशासन में एक दूसरे से स्वतन्त्र एवं स्वायत्त होंगे"।

भारत एक कल्याणकारी राज्य है जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का एक उपनिवेश था और इस कारण सदियों के शोषण अधःपतन एवं गरीबी से स्वतन्त्र हुआ। हमारी स्व० प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के शब्दों में, "समाजवाद की हमारी अवधारणा यह है कि पूंजी सामाजिक न्याय के लिए है, आम आदमी के कल्याण के लिए है। राष्ट्रीय धन और आर्थिक संसाधनों के समान वितरण द्वारा इसे सुनिश्चित करना हमारा लक्ष्य है"। ये लक्ष्य अभी भी पूरे नहीं हुए हैं और इसलिए हम भारत को निहित स्वार्थों का शिकार नहीं बनने देंगे इसलिए भारतीय संविधान को पूरे राष्ट्र की भलाई के लिए इसकी एकता एवं अखण्डता के लिए बनाया जाना चाहिए। इसे क्षेत्रीय संकीर्णवाद को सनक की पूर्ति के लिए एक दस्तावेज के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। हमने क्षेत्रीय पार्टियों के नेताओं से यह सुना है कि "भारत सरकार का कोई क्षेत्र नहीं" और यह कि "केन्द्र एक मिथ्य है आदि ...." वे भारतीय राष्ट्र के बारे में अपनी जानकारी का दिवालियापन ही प्रदर्शित करते हैं। संविधान को संशोधित करके राज्यों को और शक्तियां देने से केवल राष्ट्र का विनाश होगा।

हम यह कहते हुए समाप्त कर रहे हैं कि "भारत जीवित है" यह विशाल क्षेत्र के प्रत्येक अथवा किसी भी भाग में रहने वाले अत्यन्त गरीब व्यक्ति की सेवा के लिए सम्मान सहित जीवित है और किसी भी शक्ति चाहे वह कितनी ऊंची और बलवान क्यों न हो कभी घुटने नहीं टेकेगी और न ही हम इसे एक बार फिर बंदी बनने के लिए तैयार हैं और किसी आधुनिक स्वरूप में गुलामी एवं अधःपतन के लिए तैयार हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (समाजवादी)

ज्ञापन

भूमिका

मौजूदा संवैधानिक ढांचे के अन्दर संघ राज्य संबंधों की पुनः संरचना के संबंध में बहस अथवा परिचर्चा को उन शक्तियों को भली भांति समझ कर आगे बढ़ाया जा सकता है, जिन्होंने हमारे आधुनिक राष्ट्र एवं हमारी राष्ट्रीयता के तत्वों एवं जड़ों का विकास किया। इसमें भारत संघ के ऐतिहासिक, राजनैतिक, विधिक एवं संवैधानिक आयामों की गहरी छानबीन शामिल करनी होगी।

भारतीय उप महाद्वीप एक जटिल सम्मिश्रण है जिसमें बहुत बड़े उप राष्ट्रीय ग्रुप हैं जिनका अपना एक विशिष्ट क्षेत्रीय व्यक्तित्व है, रूढ़िगत कानूनों सहित विभिन्न सामाजिक रूढ़ियां हैं, उच्च कोटि की विकसित भाषाएं एवं संस्कृतियां हैं जो अपनी ईयता अथवा स्थान चाहती हैं और एक बड़ी संख्या में धर्म एवं सम्प्रदाय जो प्रायः प्रतिस्पर्धात्मक जोशपूर्ण कार्य करते हैं। इन विरोधात्मक दिखाई देने वाले तत्वों से आधुनिक राजनैतिक राष्ट्र का निर्माण एक दुरूहतर कार्य है। जिसका सामना राष्ट्र निर्माताओं को उस समय से लेकर करना पड़ा है जब 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र राष्ट्रीय ईयता बन गया।

हमें इस विषय में स्पष्ट होना चाहिए कि भारतीय संघ के लोगों को मिले इस अद्वितीय ऐतिहासिक अनुभव का कहीं कोई स्थान ही नहीं है—भारतीय उप-महाद्वीप में उपनिवेशवादी साम्राज्य की प्रशासनिक सीमाओं में से तराश कर निकाला हुआ एक आधुनिक राष्ट्र/राष्ट्रिकता में हमारे विकास का आधार भूत सबक यह रहा है कि राष्ट्रीय बंधनों को मजबूत करने वाले तथ्य के रूप में एकरूपता के स्थान पर केवल अनेकता एवं में एकता सामंजस्य ही हो सकता है इसलिए हमारे सामने यह प्रश्न है कि क्या संघ के लिए हमने जो दस्तावेज तैयार किए हैं उनको और विशेष रूप से 1950 में अपनाए गए भारतीय संविधान के माध्यम से क्या हम इन लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं और उन करोड़ों लोगों के हित को बढ़ा सकते हैं जो इस विशाल देश में रहते हैं और प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य के रूप में इसकी प्रगति और विकास में भागीदार हैं।

हालांकि ऐतिहासिक दृष्टि से इस विशाल प्रयास का मुश्किल से कोई और उदाहरण होगा फिर भी 20वीं सदी के बहुभाषाई, बहु-सांस्कृतिक अथवा बहु-राष्ट्रिक देशों के साथ अपनी तुलना करना समीचीन है। चीन, सोवियत रूस एवं संयुक्त राष्ट्र अमरीका से तुलना करना बेहतर होगा। स्वतन्त्रता संघर्ष से पैदा हुआ भारतीय राष्ट्र मूल रूप में विश्व के इन घनी आबादी वाले देशों अर्थात् चीन, सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमरीका से भिन्न है। प्रश्न उठता है भारत इस महान राष्ट्रीय समूह से बुनियादी तौर पर किस प्रकार भिन्न है।

संयुक्त राज्य अमरीका में एक ही भाषा के प्रबल प्रभाव तथा स्पष्ट आंगल सेक्शन प्रोटेस्टिंग प्रभाव के निर्माण के वर्षों में संयुक्त राज्य अमरीका के निर्माण के लिए एक मजबूत आधार दिया।

सोवियत संघ ने पश्च क्रांति सोवियत शरण में रूसी भाषा एवं सांस्कृतिक परम्परा विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण विद्यमानता अर्जित की और आज भी बहुत सी अल्पसंख्यक उपजातियां रूसी भाषा को अपनी मातृ भाषा स्वीकार करती हैं। इस तथ्य को सोवियत प्रयोग एवं आधुनिक सोवियत इतिहास के प्रत्येक प्रेक्षक ने स्वीकार किया है और वर्तमान सोवियत नेतृत्व इसका अपवाद नहीं है। स्वर्गीय श्री ब्रेजनेव के शब्दों में :

> "और इस ऐतिहासिक सोवियत लोगों के समुदाय ने रूसी सांस्कृतिक परम्पराओं को विरासत में प्राप्त किया है"।

सोवियत क्रान्ति के महान नेता एवं मुक्तिदाता वी०आई० लेनिन की बुद्धिमता एवं दूरदर्शिता के कारण राष्ट्रिकताओं ने सोवियत देश के अन्दर अपनी एक विशिष्ट ईयता या पहचान प्राप्त की है।

लोक गणराज्य चीन में अल्पसंख्यक प्रजातियां कुल जनसंख्या के 8 प्रतिशत से भी कम हैं। आधुनिक चीनी राष्ट्र के विकास का मुख्य स्वर अन्य अल्पसंख्यक प्रजातियों पर उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ हेन प्रभाव रहा है।

परन्तु भारत में हमारा अनुभव अद्वितीय रहा है। हमारी बहुतसी भाषाएं, उप राष्ट्रीय ग्रुप हैं, क्षेत्रीय व्यक्तित्व, धर्म एवं सम्प्रदाय हैं। इन में से कोई भी ग्रुप बहुसंख्यक होने का दावा नहीं कर सकता, लेकिन इस के साथ-साथ मध्य काल के महान भक्ति आन्दोलन से शुरू हो कर पिछली कई शताब्दियों से भारत की राष्ट्रिकता का धीरे-धीरे विकास होता रहा है। मणिपुर से गुजरात में कच्छ तक अथवा कश्मीर से केरल तक यात्रा करके भोजन, वस्त्र एवं आदतों की स्पष्ट प्रवृत्तियों को तथा आग्रही क्षेत्रीय संस्कृतियों एवं व्यक्तियों का बेजोड़ पृष्ठ भूमिका समझा जा सकता है। इसलिए न तो भारतीय एकता अथवा राष्ट्रिकता की अवधारणा और न ही उन संस्थाओं एवं संवैधानिक व्यवस्थाओं, जिनका हमने विकास किया है, को एकरूपता की अवधारणा पर अवधारित नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत हमारी विशाल विविधता की स्वीकृति और अनेकता में एकता तथा सामंजस्य पर बल देना होगा। हालांकि मुगल साम्राज्य पूरे उप-महाद्वीप पर नहीं रहा। मुगलों ने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास में सहयोग दिया, हालांकि उनके दरबार की भाषा फारसी थी। उन्होंने अपने उत्तरी क्षेत्रों में उर्दू के विकास एवं समृद्धि में सहयोग दिया—एक ऐसी भाषा जिसका विकास दिल्ली सुल्तानों के अधीन से हुआ था और इस बात का ऐतिहासिक प्रभाव है कि उन्होंने बंगाली, मराठी और गुजराती के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रादुर्भाव के साथ साम्राज्यवादी विदेशी स्वामियों की प्राथमिकताएं और बाध्यताएं भिन्न हो गईं। ब्रिटिश साम्राज्यवादी हित पोषण की मांग थी कि पत्तन नगरों के माध्यम से उपनिवेशवादी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए और शोषण के लिए इस उप महाद्वीप में एक विशाल भीतरी प्रदेश का निर्माण किया जाए और दक्षिण पूर्वी एशिया में उप महाद्वीप में अपनी सैनिक शक्तियां रखने के लिए आधारभूत संरचना का विकास विशेष रूप से सेनाओं के आवागमन के लिए रेलवे, सड़कों और संचार के साधनों का विकास किया जाए। ब्रिटिश संसद ने भारतीय गवर्नर जनरल को उत्तरोत्तर प्राधिकार दिया। चार्टर अधिनियम के साथ स्थिति में परिवर्तन आया। 1857 के विद्रोह के पश्चात् और वायसराय तथा वाइसरीगल शासन के प्रादुर्भाव के साथ यह बात स्मरण रखी जानी चाहिए कि ब्रिटिश औद्योगिक पूंजी ने भी भारत में प्रवेश किया। परन्तु 1857 के महान विद्रोह ने उपनिवेशवादी शासन को निश्चित विकेन्द्रीकरण की दिशा में सोचने पर बाध्य कर दिया। चार्ल्स ट्रेवेलियन जो कि मद्रास के गवर्नर थे और सर बार्टल फ्रेरे, जो कि बम्बई के 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में गवर्नर थे, ने इस उपमहाद्वीप पर शासन के लिए विकेन्द्रीकरण ढांचे का जोरदार समर्थन किया और 1861 में मद्रास और बम्बई के प्रेजीडेंसी गवर्नरों को अधिक शक्तियां दी गईं। इसके तर्कसंगत परिणाम के रूप में 1877 में भू-राजस्व से

आए उत्पाद एवं स्टाम्प शुल्क राज्यों को आबंटित कर दिया गया परन्तु यह व्यवस्था अधिक समय तक नहीं टिकी जैसा कि रिकार्ड से पता चलेगा। नीति निर्माण की बढ़ती हुई जरूरत ने इस नीति को परिवर्तित कर दिया और इन राजस्वों में भागीदारी की नई नीति अस्तित्व में आई।

20वीं सदी का पहला दशक भारतीय राष्ट्रवाद का प्रसवकाल रहा है विशेष कर बंगाल जहां पुनर्जागरण शुरू हुआ। उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना ने अखिल भारतीय राष्ट्रवाद को जन्म दिया। इस महान जागरूकता का पहला राजनैतिक प्रकटावा स्वदेशी आंदोलन तथा श्री अरविन्दो एवं अन्य राष्ट्रवादी नेताओं के नेतृत्व में 1905 में बंग-भंग के विरुद्ध जन आन्दोलन है। इस बात को याद करना रुचिकर होगा कि जब यह आन्दोलन 1911 में विभाजन को रद्द कराने में सफल हुआ तो एक नए बंगाल राज्य की स्थापना हुई जिसमें केवल बंगला भाषी जिले थे और उप-महाद्वीप के इतिहास में पहली बार स्पष्ट भाषाई एवं सांस्कृतिक विशेषताओं वाले राजनैतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र का निर्माण हुआ। जैसा कि पट्टाभी सीतारमैय्या ने कहा है इस घटना ने कई राज्यों में राष्ट्रवादी विचारधारा को बहुत प्रभावित किया।

ब्रिटिश उपनिवेशवादी प्राधिकारी इस प्रवृत्ति से वाकिफ नहीं थे और उप महाद्वीप पर अपने शासन को बढ़ाने के प्रयास में वे इस महाद्वीप में अपने प्रशासनिक ढांचे में संघीय तत्वों के समावेश करने के प्रति पूरी तरह जागरूक थे। 1911 के मांन्टेग चेम्स फोर्ड सुधारों से यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंग ने इन सुधारों को पेश करते हुए कहा था:

"इस कठिनाई के लिए केवल यही सम्भावित समाधान दिखाई पड़ता है कि राज्यों को धीरे धीरे बड़ी मात्रा में स्वःशासन दिया जाए जब तक कि अंत में भारत सभी राज्यीय कार्यों में स्वायत्त प्रशासनों का समूह न बन जाए। भारत सरकार उन सबसे ऊपर है और कुशासन के मामले में उसे हस्तक्षेप का अधिकार हो परन्तु साधारणतया वह अपने कामों को साम्राज्य के मसलों तक सीमित रखे"।

यह स्पष्ट रूप से उपनिवेशवादी शासकों की सरकार के एकात्मक स्वरूप की अस्वीकृति थी और यह पता लगाना कठिन नहीं है कि इसका 1950 के भारतीय संविधान के विशिष्ट आपातकालीन उपबंधों में विकास हुआ। 1927-28 की साइमन आयोग रिपोर्ट और 1927-30 की बटलर समिति रिपोर्ट तथा 1930-32 की गोल मेज कान्फ्रेंस का ढांचा उपमहाद्वीप में संघीय संघ के इस मूल परिप्रेक्ष्य को उजागर करता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो राष्ट्रीय मुक्ति के लिए भारतीय आंदोलन का माध्यम बन चुकी थी, ने इस समस्या पर भी साथ साथ विचार किया। भारतीय संवैधानिक सुधारों पर मोती लाल नेहरू समिति की रिपोर्ट में संघीय व्यवस्था पर विचार किया और भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में 1918 का लखनऊ समझौता एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस समझौते में राज्यों के विकास की जरूरत को स्वीकार किया गया और जोरदार शब्दों में इस मत का समर्थन किया कि अवशिष्ट शक्तियां हमेशा राज्यों के पास रहनी चाहिएं।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाया है जो कि भारतीय लोकतांत्रिक प्रगति के अनुकूल था। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में 1920 में गांधी जी की भाषायी राज्यों की मांग की स्वीकृति तथा भाषायी इकाईयों के आधार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अनुवर्ती पुनर्गठन को ऐतिहासिक घटना के रूप में देखना होगा। क्षेत्रीय भाषाओं एवं संस्कृति के पुनरुत्थान में भारतीय राष्ट्रवाद को एक नई गति दी और रवीन्द्र नाथ टैगोर, सुब्रह्मण्यम भारती अथवा वालात्तोल जैसे महान व्यक्तियों का राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आसमान में उभरना केवल इसी प्रवृत्ति का ही परिचायक है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा अन्य प्रगतिशील सामाजिक आंदोलनों ने मौलाना आजाद एवं चित्तरंजनदास जैसे प्रवक्ताओं के माध्यम से राज्यों की स्वायत्तता के विचार का समर्थन किया।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 में इस आग्रही विचार का ध्यान रखा गया। लेकिन विभाजन के लिए माउंट बेटन योजना और विभाजन से होने वाले बाल्कनीकरण और खंडीकरण पर बढ़ते हुए खतरे ने भारत के राजनैतिक वातावरण को परिवर्तित कर दिया तथा संविधान सभा की कार्यवाही पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। अतः संविधान सभा द्वारा 1950 में अपनाए गए भारतीय संविधान ने भारत सरकार अधिनियम, 1935 का अनुसरण किया और संसद की प्रभुसत्ता के साथ राष्ट्रीय नागरिकता एवं एक रूप तथा निष्पक्ष न्यायपालिका का प्रावधान करते हुए 1935 के अधिनियम के अन्य उपबंधों को यथास्थिति बनाए रखा। संविधान निर्माताओं ने राष्ट्रीय अखंडता को शुरू की चुनौतियों के संदर्भ में संयुक्त भारत एवं प्रबल केन्द्र की स्थापना की, जिसमें संघ को अनन्य कार्यपालक शक्तियां प्रदान की गई। इस संविधानिक व्यवस्था में राज्यों की भूमिका नए संविधान में उन्हें प्रदान की गई भूमिका से काफी अलग थी। नए संविधान निर्माताओं में से डा० अम्बेडकर ने जैसे कि कहा है: "भारत संघ राज्यों के बीच हुए समझौते का परिणाम नहीं था, और न ही राज्य अपनी व्यक्तिगत क्षमता से इस संघ में मिलें, इसके विपरीत अंग्रेजों द्वारा बनाए गए राज्यों तथा रजवाड़ा शाही राज्यों को मिलाकर अविभाज्य संघ का निर्माण हुआ।" परन्तु इस प्रक्रिया में राज्यों की स्वायत्तता समाप्त हो गई, सीमित विधायी प्राधिकार के क्षेत्र में सीमित अधिकारों सीमित राजस्व एवं संवितरण के तरीकों के साथ भागीदार बन गए। संविधान की विधायी सूचियां विस्तृत हैं लेकिन संघ सूची में 97वें विषय रखे गए जबकि तीर्थाटन, पशुओं का अनधिकार प्रवेश, कब्रिस्तान रंगमंच एवं नाटक सहित राज्य सूची में केवल 66 विषय रखे गए।

राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा राज्यों से किए गए व्यवहार पर जोरदार आपत्तियां उठाई गई जैसा कि संविधान सभा की बहसों और संघ संविधान समिति की कार्यवाहियों से स्पष्ट है। गोविन्द बल्लभ पंत, बी० जी० खेर और डा० श्रीकृष्ण सिन्हा स्वतंत्रता आन्दोलन के ऐसे प्रमुख नेताओं में से थे जिन्होंने राज्यों के अधिकारों में कमी करने के प्रस्ताव का जोरदार व्यवहार किया लेकिन मजबूत केन्द्र वाले संघीय संरचना एवं अवशिष्ट शक्ति संघ के पास रहने की बात स्वीकार कर लेने के बाद, इससे बचने का कोई रास्ता नहीं था। इस संदर्भ में यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि ये शुरू की आपत्तियां राष्ट्रीय संघर्ष के उन प्रमुख नेताओं ने उठाई थीं जो कि राज्यों के नेता भी थे और जो निम्न स्तर से ऊपर उठे थे। राजनैतिक एवं वित्तीय शक्तियों के पुनर्विभाजन और परिणामस्वरूप संविधान में परिवर्तन के मामले की जांच करते हुए हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या हम राज्यों पर केन्द्र की प्रभुता जो कि वर्तमान संविधान में प्रतिबिम्बित है, पर नए सिरे से समीक्षा करने के लिए तैयार हैं।

समीक्षा की आवश्यकता

2. ऐसी समीक्षा का मूल आधार यह होना चाहिए कि पिछले 35 वर्षों के बावजूद में वर्तमान संविधानिक प्रणाली में मूलभूत असंतुलन है। स्मरण रहे कि संघ की प्रभुता की प्रवृत्ति दर्शाने वाले इन अनुच्छेदों में से कुछेक अंतिम क्षणों में शामिल किए गए थे। उदाहरणार्थ अनुच्छेद 365 का मामला है जो संघ कार्यपालिका के अनुदेशों को कार्य रूप में परिणत करने और उनको पालन करने के लिए राज्यों को बाध्य करने की राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करता है। इसे संविधान सभा की कार्यवाही के अंतिम चरण में लाया गया और जैसा कि बहसों से पता चलेगा इससे कई सदस्यों को हैरानी हुई। बेहतर होगा कि हम संविधान के उन कुछेक उपबंधों पर गहरी नजर डालें जिनके माध्यम से राज्यों को संघ की प्रबलता स्पष्ट रूप से थोपी गई है, जिससे कि व्यवस्था में कई विकृतियां आ गई हैं।

कुछ संविधानिक उपबंध और उनकी विवक्षाएं

अनुच्छेद 2 और 3

3. अनुच्छेद 2 संसद, केवल संसद को ही संघ में नए राज्य शामिल करने या उन शर्तों पर नए राज्य स्थापित करने में समर्थ बनाता है जिन्हें वह उचित समझता है और अनुच्छेद 3 संसद को भी किसी राज्य की किसी मांग में परिवर्तन करने, किसी राज्य के क्षेत्र को घटाने या बढ़ाने अथवा उसका नाम बदलने अथवा एक अथवा अधिक राज्यों के क्षेत्र में एक नए क्षेत्र का गठन करने की शक्ति प्रदान करता है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका में राज्य की सीमाओं में किसी प्रस्तावित परिवर्तन के संबंध में उस राज्य की सहमति एक पूर्वापेक्षा है। हमारे संविधान के अधीन भारत संघ के राज्यों को इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं है। उन्हें सीमित अधिकारों के साथ भागीदार बने रहने पर बाध्य किया गया है।

अनुच्छेद 73 समवर्ती सूची तथा समवर्ती सूची के विस्तार पर संसदीय प्राधिकार को परिभाषित करता है जिससे संघ को पर्याप्त शक्ति मिली है।

अनुच्छेद 154 राज्यपाल में निहित राज्य की कार्यपालक शक्ति की व्याख्या करता है और राज्यपाल संघ का प्रतिनिधि होता है।

सर्वाधिक निन्दनीय अनुच्छेद है, अनुच्छेद 200 जो संघ के प्रतिनिधि को राज्य के राज्यपाल के रूप में कार्य करने की शक्ति अनुमति की शक्ति सहित प्रदान करता है और 201 राज्यपाल राज्य विधान सभा द्वारा पारित विधान को अप्रेषित करने में सहायक होता है।

अनुच्छेद 248, 249, 250, 252 संघ एवं संसदीय सर्वोच्चता को संपूर्ण बनाता है. ये संघ एवं संसद को प्रबल शक्तियां प्रदान करती हैं——प्रविष्टि 97 के साथ पठित।

अनुच्छेद 270/275 जोकि विभाज्य करों, अनुदानों एवं अन्य सहायता से संबंधित है पुन: संघ के पक्ष में है और उन्होंने केवल उल्टे पिरामिड का सृजन करने में सहायता दी है जिसमें संघ के स्तर पर राजस्व की अधिक खपत और राज्यों के निम्न स्तरों पर कमी रहती है परिणामस्वरूप राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता की व्यवस्था स्थापित होने लगती है।

अनुच्छेद 356.—संविधान में और कहीं ऐसा अनुबंध एवं उपबन्ध नहीं है जिसका लगातार इतना दुरूपयोग किया जाता रहा हो और जिसमें राज्यपाल के पद का भी दुरूपयोग किया हो इसलिए राज्यपाल के उच्च पद के माध्यम से जिसे न केवल विरोधी दलों को सत्ता से दूर रखने के लिए किया जाता रहा अपितु सत्तारूढ़ दल के अंदरूनी मतभेदों को सुलझाने के लिए भी किया जाता है। अत: स्पष्ट है कि संविधान के आपातकालीन उपबंध का पार्टी के हितों के लिए दुरूपयोग किया जाता है। आयोग की स्मरण शक्ति को ताजा करने के लिए उनमें से कुछेक मामलों का जिक्र करना बेहतर होगा।

(1) 29 नवम्बर, 1975 को श्री एच० एन० बहुगुणा ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में त्यागपत्र दिया और राज्यपाल की सिफारिश पर 30 नवम्बर को राष्ट्रपति शासन लगाया जिसे 12 जनवरी 1976 को ही समाप्त कर दिया गया जब श्री एन० डी० तिवारी मुख्यमंत्री बने। संघ गृह मंत्री ने कांग्रेस पार्टी के नेता के चुनाव सहित अन्य छोटी-मोटी समस्याओं को सुलझाने के लिए इस कार्रवाई को "आवश्यक" ठहराया।

(इंडियन एक्सप्रेस 1 दिसम्बर, 1975)

(2) आपात स्थिति की घोषणा का विरोध करने के कारण तमिलनाडु में डी० एम०के० पार्टी की सरकार को जनवरी, 1976 में उलट दिया गया। 234 सदस्यों वाली विधान सभा में उसके सदस्यों की संख्या 184 थी और जिसका कार्यकाल मार्च, 1976 में समाप्त हो गया।

(3) मई 1982 में हरियाणा के राज्यपाल श्री तपासे ने 22 मई को श्री देवीलाल को राजभवन में अपने समर्थकों को 24 मई को 10 बजे लाने के लिए कहा, 90 सदस्यों के सदन में कांग्रेस ने केवल 36 स्थान जीते थे और लोक दल ने 31 और उसे भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस (जे) जिनकी संख्या क्रमश: 6 और 3 थी एवं स्वतंत्र विधायकों का समर्थन प्राप्त था, अत: श्री देवीलाल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त था। लेकिन श्री देवीलाल को अपने समर्थक प्रस्तुत करने के संबंध में दी गई समय सीमा के समाप्त होने से भी पहले रविवार 23 मई को राज्यपाल तपासे ने श्री भजनलाल को मुख्य मंत्री के रूप में शपथ दिला दी। (स्टेट्समैन—हिन्दुस्तान टाइम्स 24 मई 1982) और 24 मई को 46 विधायकों का बहुसंख्यक दल राजभवन में विरोध प्रदर्शन के लिए गया।

(4) 1982 और 1983 की अवधि में असम विधानसभा ने कांग्रेस (एस०) पार्टी के नेता श्री शरद चन्द्र सिन्हा को जिन्हें बहुमत का समर्थन प्राप्त था बार बार सरकार बनाने के अधिकार से वंचित रखा।

(5) सिक्किम, जम्मू-कश्मीर एवं आंध्र प्रदेश के हाल ही के उदाहरणों को दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

अत: राज्यपाल के माध्यम से संविधान के शब्द एवं भावना का क्षरण करते हुए इस उपबन्ध का लगातार दुरूपयोग किया गया।

अनुच्छेद 365 जो केन्द्र के अनुदेशों को लागू न करने के लिए राज्य सरकार को बर्खास्त करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करता है, को इसका दुरूपयोग रोकने के लिए समुचित ढंग से संशोधित किया जाना चाहिए।

क्षेत्रीय असंतुलन एवं राज्यों का निरंतर अपक्षय

4. मौजूदा संवैधानिक व्यवस्था जो आर्थिक क्षेत्र में प्रवर केन्द्र अथवा संघ को प्रमुख पहल देती है, ने क्षेत्रीय असंतुलन की समस्या को भी बढ़ाया है। संघ और राज्यों के बीच शक्तियों, कार्यों और संसाधनों के वितरण की समस्या पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। यह स्मरण रहे कि संघ को देश के आर्थिक जीवन को प्रभावित करने संबंधी मूल साधन प्राप्त होने का लाभ है। जैसे भारतीय रिजर्व बैंक के नियन्त्रण में मुद्रा, उधार, मुद्रा-नीतियां और अन्य साधन हैं। बैंकों और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आई० सी० आई०सी० आई० जैसी वित्तीय संस्थाओं एवं नई वित्तीय एजेन्सियों के सृजन से छठे एवं सातवें दशक में इन शक्तियों में धीरे धीरे विस्तार हुआ। विदेशी सहायता, विदेशी मुद्रा, संसाधनों एवं विदेश व्यापार पर कड़ा नियन्त्रण होने से अर्थ व्यवस्था के प्रमुख लीवरों पर इसका नियंत्रण संपूर्ण रहा है। आयकर और निगम कर, उत्पाद एवं सीमा शुल्क, विदेशी मुद्रा एवं विदेशी ऋणों के उपयोग, विनियमन एवं वितरण से इसे राष्ट्र के आर्थिक जीवन एवं गतिविधि पर प्राधिकार की वह ऊंचाई प्राप्त हुई जो ऐसी ही अन्य संघीय व्यवस्थाओं में अद्वितीय है। इसमें योजना आयोग जो राष्ट्रीय आर्थिक योजना का अधिक्षण करता है लेकिन जिसे कोई सांविधिक प्राधिकार प्राप्त नहीं है और संघ केन्द्रीत वित्त आयोग की विद्यमानता से और वृद्धि हुई है। इस सब का परिणाम हुआ, बढ़ते हुए क्षेत्रीय असंतुलन एवं असमानताएं तथा राज्यों की यह दयनीय मजबूरी एवं पूरी तरह निर्भरता की स्थिति।

संसाधनों का अंतरण एवं राज्यों की बढ़ती हुई ऋण ग्रस्तता

5. संघ से राज्यों को संसाधनों के अन्तरण की कहानी चौंकाने वाली होनी चाहिए। संविधान के अस्तित्व में आने के तुरन्त बाद 1951–1956 के वर्षों में केन्द्र से राज्यों को संसाधनों का अन्तरण 32 प्रतिशत था जबकि 1970–71 का यह बढ़कर 59 प्रतिशत हो गया और 1979–80 में 65 प्रतिशत तथा 1980–82 में 72 प्रतिशत—इस सारे अन्तरण का स्वरूप गैरसांविधिक था, जिससे संघ पर राज्यों की निर्भरता बढ़ गई। इससे अधिक संविधान के मूल ढांचे की दु:खदाई विकृति और नहीं हो सकती। परिणाम-स्वरूप, संघ के प्रति राज्यों की ऋणग्रस्तता असाधारण रूप से बढ़ गई है जिससे संघ और राज्यों के बीच विभिन्न प्रकार के तनाव पैदा हो गए हैं।

केन्द्र को देय राज्यों का बकाया ऋण 1951–52 में 239 करोड़ रु० से बढ़कर 1965–66 में 4094 करोड़ रु० हो गया और 1968–69 में 5508 करोड़ रु० तथा 31 मार्च, 1983 तक यह राशि असाधारण रूप से बढ़कर 26,571 करोड़ रु० हो गई। अत: 1983–84 में राज्यों को केन्द्रीय ऋण सहायता की व्यवस्था 4290 करोड़ रु० थी जिसमें से मूलधन एवं ब्याज की अदायगी ही 2963 करोड़ रु० थी।

मौजूदा व्यवस्था में लगातार गैर प्राधिकृत ओवर ड्राफ्ट एक और खतरे की घंटी है।

इन सभी से पता चलता है कि सांविधानिक उपबन्धों की एक बड़ी समीक्षा की आवश्यकता है क्योंकि यह विकृतियां राष्ट्र की अखण्डता एवं संरचना के लिए खतरे हैं।

राज्यों में निर्भरता की इस भावना पर विजय पाना बहुत महत्वपूर्ण है जोकि राज्यों के मनो-मस्तिष्क में घर कर गई है। किसी भी संघीय व्यवस्था में राज्य अथवा इकाइयों को कारगर संसाधान जुटाना एवं राजस्व वृद्धि प्रयासों के लिए हमेशा साधन दिए जाते हैं लेकिन दुर्भाग्य से भारत में ऐसा नहीं है जहां राज्यों की

प्रत्यक्ष कर संबंधी शक्तियां अत्यन्त सीमित हैं। यहां तक कि राज्यों की कुल पूंजीगत प्राप्तियों का एक बड़ा हिस्सा केन्द्रीय ऋणों से मिलता है और बाजार से ऋणों के लिए न केवल रिजर्व बैंक के अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता होती है अपितु वे पूरी तरह राष्ट्रीयकृत बैंकों और जीवन बीमा निगम पर निर्भर है, जो दोनों संघ के अधीन है।

योजना आयोग और वित्त आयोग की भूमिका

6. हमने जिस योजना व्यवस्था को स्वीकार किया है, उसके अधीन हमने योजना व्यय और गैर-योजना व्यय के बीच, एक नए विभेद का सृजन भी किया। जबकि राजस्व-लेखे और पूंजीगत लेखें में काफी स्पष्ट भेद हैं, योजना एवं गैर-योजना व्यय में अन्तर धीरे धीरे बदल रहा है, योजना आयोग योजना व्यय की जांच करता है और वित्त आयोग गैर योजना व्यय से संबंधित है। प्रत्येक योजना के अन्त में योजना खाते के राजस्व-व्यय का एक बहुत बड़ा हिस्सा वचनबद्ध गैर-योजना व्यय में परिवर्तित हो जाता है। वित्त आयोग की सिफारिश पर आधारित अनुच्छेद 275 के अनुदान राज्यों को अधिक से अधिक आर्थिक एवं सामाजिक सेवाओं के वर्तमान स्तर पर घाटे को पूरा करने में सहायक हो सकता है, जबकि उनकी जरूरत जैसी भी हो अतिरिक्त सेवाओं के लिए वर्तमान स्रोत से उनके पास कोई अधिशेष नहीं रहेगा। अत: उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे निर्धन राज्यों को लोक सेवाओं के निम्न स्तर के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा। यह सच है कि एक के बाद एक वित्त आयोग इस समस्या का समाधान ढूंढते रहे परन्तु जब तक मूल कानून में परिवर्तन न हो यह हमेशा उनकी सनक पर निर्भर रहेगा जो वित्त आयोग का गठन करते हैं। इस संदर्भ में योजना आयोग एवं वित्त आयोग की भूमिका-की जांच करना रुचिकर विषय होगा। योजना आयोग जिसे राष्ट्रीय योजना संस्था समझा जाता है, धीरे धीरे संघ सरकार का दुम छल्ला बन गया और भारत जैसे उप-महाद्वीपीय राष्ट्रों में अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाने में असफल रहा है। इस संस्था को सांविधिक प्रतिष्ठा प्रदान करना आवश्यक है और इसे राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन रखना तथा केन्द्र और राज्यों के बीच एक नीडीय एजेन्सी बनाना आवश्यक है।

वित्त आयोग की संरचना की जांच पर विचार किया जाना चाहिए और इसके गठन के और विचारार्थ विषयों के और संबंध में राज्यों से परामर्श राष्ट्रपति के लिए सांविधिक रूप से अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए तथा इसके स्टाफ की भर्ती विभिन्न राज्यों से की जानी चाहिए और आयोग सचिवालय अथवा अपनी निधियों के लिए केन्द्र पर निर्भर नहीं होना चाहिए।

राज्य की शक्तियों पर आक्रमण

7. आर्थिक क्षेत्र में ऐसे कुछ अन्य मुद्दे हैं जिनकी तत्काल समीक्षा की जानी चाहिए। कम्पनी (विकास एवं विनियम) अधिनियम, 1951 के बनने के बाद से केन्द्र द्वारा विनियमित किए जाने वाले उद्योगों की सूची इस प्रकार बनाई गई है कि 90 प्रतिशत उद्योग अब केन्द्र के पास हैं, यहां तक कि रोजमर्रा के इस्तेमाल की सभी वस्तुएं और मूलत: विशाल देहाती जनता के आवश्यक खान-पान एवं बाजार की वस्तुओं के उद्योग जैसे, गोंद, दियासलाई, कटलरी, घरेलू बिजली के उपकरण, साबुन और प्रसाधन की वस्तुओं, लालटेन और साइकिल तथा यहांतक कि कृषि उपकरण भी केन्द्र ने छीन लिए हैं। पुरोगामी अर्थशास्त्री और एक समय के योजना आयोग के उपाध्यक्ष स्वर्गीय प्रो० डी० आर० गाडगील ने इसलिए कहा था :—

> "केन्द्र और इसकी एजेन्सियों तथा अधिकारियों द्वारा गतिविधियों के ऐसे शिकंजे से वास्तविक प्रगति असंभव हो जाती है।

अन्य अस्वस्थ प्रवृत्तियां

8. संविधान के मौजूदा उपबन्धों को भी प्रभावित एवं बेकार करने का प्रयास संघ राज्य संबंधों के स्वस्थ विकास के लिए लगातार खतरा बना हुआ है। पैट्रोलियम पदार्थों, कोयला, लोहा एवं इस्पात तथा एल्युमिनियम जैसी वस्तुओं के निर्देशित मूल्यों को बढ़ाना संघ के लिए अब एक आम बात बन गई है। उत्पाद शुल्कों को समायोजित करने की बजाय, जिससे कि राज्यों को समानुपातिक हिस्सा मिलता, राजस्व बढ़ाने के इन कामों से तमाम अधिप्राप्तियां केन्द्रीय एजेंसियों को मिली हैं और राज्य इन अनैतिक और मनमाने कामों के कारण हजारों करोड़ रु० से वंचित रही है। उदाहरणार्थ केवल 1982-83 में ही केन्द्र ने निर्देशित मूल्यों को बढ़ाकर 6500 करोड़ रु० (अब यह 8000 करोड़ रु० से भी अधिक है) प्राप्त की है। जिसमें राज्यों का कोई हिस्सा नहीं है। यदि उत्पाद शुल्कों का समायोजन होता तो राज्यों को कम से कम 2600 करोड़ रु० मिलते। बाजार-ऋण बढ़ाने के मामले में भी यही स्थिति है।

अन्य विकृतियां

9. राज्यों के लिए अनन्य रूप से सुरक्षित वैध क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप बढ़ता रहा है। संविधान में कानून और व्यवस्था राज्य का विषय मानी गई है लेकिन केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल के साथ थोड़ी-सी शुरूआत के बाद कई पुलिस बल पैदा हो रहे हैं जो अपने अपने अनुज्ञेय गतिविधि के क्षेत्र में भी आगे बढ़ जाते हैं और वे पैरा-सैन्य बल उस क्षेत्र पर भी मंडराते रहते हैं जिसे संविधान निर्माताओं ने पूर्णतया राज्यों के लिए छोड़ दिया था और उन पर किया जाने वाला व्यय निरन्तर बढ़ता रहा है, यहां तक कि संसदीय सार्वजनिक लेखा समिति ने अपनी 131 वी रिपोर्ट (1973-74) में यह अभिव्यक्ति दी है।

> "समिति इन एजेन्सियों के गैर-उत्पादन खर्च में बड़े पैमाने पर और लगातार वृद्धि से बहुत चिन्तित है जो 1950-51 में 3 करोड़ रु० से बढ़कर 1966-67 में 48.27 करोड़ रु०, 1972-73 में 130.91 करोड़ रु० और 1974-75 में 156.42 करोड़ रु० हो गया। 24 वर्षों में यह वृद्धि 52 गुना थी। किसी भी मापदण्ड से एक चिन्ताजनक वृद्धि है — समिति यह महसूस करती है कि पुलिस संगठनों पर व्यय इतनी तीव्र दर से बढ़ रहा है कि इसके लिए एक स्वतंत्र उच्चाधिकार आयोग द्वारा तत्काल समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है।"

ऐसी कोई समीक्षा नहीं की गई और इस समय कानून लागू करने वाली इन एजेंसियों पर प्रतिवर्ष लगभग 800-900 करोड़ रु० खर्च आता है। और इन सबसे बड़ी बात संघ गृह मंत्रालय है, "कानून एवं व्यवस्था" तथा "राज्य" का एक नया विभाग, हाल ही में अत्यन्त मनमाने और गैरसंविधानिक ढंग से खोला गया।

अत: यह देखा जाएगा कि जब कि राज्यों को राजस्व के लोच हीन स्रोत मिले हैं, केन्द्र का खर्च उन मदों पर भी बढ़ रहा है जो मौजूदा संविधानिक ढांचे और उप-बन्धों के अधीन पूरी तरह राज्यों के लिए निर्धारित किए गए हों।

समीक्षा की आवश्यकता

10. अत: वर्तमान स्थिति में संस्थाओं, मुद्दों एवं नीतियों जो वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं के प्रमुख निर्धारों की समीक्षा की आवश्यकता है।

ऐसी समीक्षाओं में सांविधानिक उपबन्धों की निम्नलिखित विवक्षाएं भी शामिल होनी चाहिए।

(क) राज्यपालों की नियुक्तियां एवं शक्तियां।

(ख) राज्यों में राष्ट्रपति शासन एवं आपातकालीन उपबन्धों का अनुभव तथा राज्य विधान सभाओं द्वारा पारित विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की अनुमति की प्रथा।

(ग) अखिल भारतीय सेवाओं एवं केन्द्रीय पुलिस बलों की भूमिका एवं संरचना तथा-संघ-राज्य संबंधों तथा समवर्ती सूची एवं अवशिष्ट शक्तियों की विस्तृत समीक्षा।

(घ) आर्थिक क्षेत्र में ऐसी किसी समीक्षा में योजना आयोग एवं वित्त आयोग की भूमिका, करों के विभाज्य पूल और राजकोषीय अन्तरण तथा अनुच्छेद 282/275 के अधीन योजना सहायता और वह तरीका जिससे संसाधनों में वृद्धि के लिए निर्देशित मूल्यों को बढ़ाया जाता रहा है और राज्यों को उनके वैध संसाधनों से वंचित रखा जाता रहा, पर विचार होना चाहिए।

(ङ) नीति निर्माण में महत्वपूर्ण सहायक रूप में राष्ट्रीय विकास परिषद की भूमिका की और संभावना का पता लगाया जाना चाहिए।

(च) बाद की वित्त व्यवस्था वित्तीय संस्थाएं तथा घरेलू और विदेशी उधारों की भूमिका की समीक्षा होनी चाहिए और आस्ट्रेलियन ऋण परिषद पर आधारित एक राष्ट्रीय ऋण प्राधिकरण की स्थापना ।

(छ) रिजर्व बैंक के सर्वोपरि नियंत्रण में विदेशी मुद्रा, बजट का प्रश्न और विदेशी ऋण प्राप्त करने और उसके लिए बातचीत करने संबंधी राज्यों के अधिकार की विस्तृत समीक्षा ।

(ज) प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट में अनुच्छेद 263 के अधीन अन्तर्राज्य परिषद की स्थापना के प्रश्न पर अपर्याप्त विचार किया गया था । राजनैतिक व्यवस्था में हुए हाल ही के परिवर्तनों के संदर्भ में इस पर और विचार किए जाने की आवश्यकता है । इन शक्तियों में राज्यों के बीच विवाद भी शामिल किए जा सकते हैं और संविधान में संशोधन की आवश्यकता है ।

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन

11. काफी महत्व का एक अन्य प्रमुख क्षेत्र है आकाशवाणी और दूरदर्शन का क्षेत्र जो इस समय केन्द्र के पूर्ण नियंत्रण में है । हमारी राष्ट्रकता और राजनैतिक व्यवस्था की संरचना के संदर्भ में यह आवश्यक है कि राज्यों को भी मीडिया नीति के विकास में और इसके सर्वोपरि नियंत्रण में, यहां तक कि एक स्वायत्त संस्था के निर्माण में सम्मिलित होने का अधिकार मिले ।

संक्षेप में, ऊपर जिन मुख्य परिवर्तनों की रूपरेखा हमने दी है उसके लिए संविधान के कई अनुच्छेदों में संशोधन की आवश्यकता है ।

हम उम्मीद करते हैं कि हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व के इस नाजुक दौर में आयोग इस ऐतिहासिक कार्य को करेगा ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (समाजवादी)

राज्य शाखा—केरल

ज्ञापन

I. प्रस्तावना

1. भारतीय संविधान का स्वरूप संघीय है, इसे ऐकिक बनाने का आशय कभी नहीं है । भारतीय संविधान 'राज्यों के संघ' पर विचार करता है और संघ सरकार संघीय व्यवस्था की शीर्षस्थ सरकार है, जबकि राज्य इसका आधार हैं ।

संघ सरकार एवं राज्य सरकारें साथ-साथ रहते हैं और भारतीय क्षेत्र के प्रत्येक इंच पर इनका अधिकार है । दोनों ही संविधान के अधीन बनाई गई स्वतंत्र उत्तरदायी संस्थाएं हैं । क्योंकि भारत एक विशाल एवं विषम जातीय देश है इसलिए कुशलता एवं समानता के लिए शक्तियों और कार्यों के क्षेत्रीय एवं कार्यात्मक के पर्याप्त विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता है । बाहरी आपात स्थिति के दौरान कारगर नियंत्रण के लिए समुचित प्रावधान रखा जा सकता है जबकि अनुच्छेद 263 में बनाई गई अन्तर्राज्य परिषदें राज्यों के बीच बेहतर समन्वय में सहायक होंगी । राज्यों में संविधान की विफलता के आधार पर राष्ट्रपति को आपात शक्तियां ग्रहण करने में सहायक अनुच्छेद 356 के अधीन प्रावधान संघीय भावना के विपरित है और इसे समाप्त करना होगा । हमारी संघीय व्यवस्था के सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए हमें किसी भी अन्य चीज से अधिक संघीय भावना की आवश्यकता है जो कि पारस्परिक रूपान्तरण की लगातार प्रक्रिया के माध्यम से एकता और अनेकता दोनों को बनाए रखने के लिए एक दृढ़ निश्चय है । अभिकेन्द्रीय और अपकेन्द्रीय शक्तियों के बीच एक आदर्श समन्वय स्थापित करना होगा, राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना होगा, राजनैतिक स्थिरता को बनाए रखना होगा, आर्थिक विकास एवं रक्षा क्षमता प्राप्त करनी होगी तथा सामाजिक न्याय करना होगा। इन उद्देश्यों की समुचित प्राप्ति के लिए हमें संघीय भावना का समर्थन करना होगा ।

II. विधायी संबंध

2. सातवीं अनुसूची की सूची III में वस्तुत: वे मदें हैं जिन्हें सूची II में शामिल किया जाना चाहिए था । राज्यों की स्वायत्तता काफी कम हुई है क्योंकि केन्द्र ने राज्यों की विधायी शक्तियों का अतिक्रमण कर लिया है । वर्षों तक 'राष्ट्रीय हित' अथवा 'लोक हित' के नाम पर राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर काफी अधिक अधिकार कब्जा किया गया है । बहुत सी मदें राज्य-सूची से निकालकर समवर्ती सूची में डाल दी गई हैं। राज्यों को महिमामंडित नगरपालिकाओं के स्तर पर ला दिया गया है । इस प्रवृत्ति की सही करने की जरूरत है

3. समवर्ती सूची में शामिल मदों का कानून बनाने के मसलों में संघ सरकार के लिए राज्य सरकार की सहमति लेना अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए ।

4. अनुसूची I की मद 97 वें, अनुसूची II में शामिल की जाए । यही उचित है और संघीय संविधान में विचारित संघीय भावना से संगति में है कि अवशिष्ट शक्ति राज्यों के पास रहे ।

III. राज्यपाल की भूमिका

5. राज्यपालों की संस्था विवाद का विषय है । राज्यपाल 'राज्याध्यक्ष' के रूप में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष कार्य करने की अपेक्षा पार्टी के हितों के लिए संघ सरकार के एजन्ट के रूप में अधिक कार्य करती रही हैं । अनुच्छेद 200 और 201 जो राज्यपाल को विधान मंडल द्वारा पारित विधेयकों को अनुमति न देने अथवा राष्ट्रपति के विचारार्थ उन्हें आरक्षित रखने की शक्ति प्रदान करते हैं । लोकतांत्रिक एवं संघीय भावना के अनुरूप नहीं है और यह शक्ति समाप्त की जानी चाहिए ।

IV. प्रशासनिक संबंध

6. जब एक मुख्यमंत्री के विरुद्ध विधान सभा में अविश्वास प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो राज्यपाल के लिए यह अनिवार्य बना दिया जाना चाहिए कि वह विरोधी दल को नया मुख्य मंत्री प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करे जो कि उसी दिन सदन का विश्वास प्राप्त करे और राज्यपाल विरोधी दल को ऐसा अवसर दिए बिना विधान सभा भंग नहीं करेगा ।

7. अनुच्छेद 355 के अधीन आन्तरिक अशांति की स्थिति में केन्द्रीय हस्तक्षेप अनुचित है । संघ सरकार किसी राज्य में सिविल प्रशासन की सहायता के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस तथा अन्य सशस्त्र बलों को केवल राज्य सरकार के अनुरोध पर ही रख सकती है और इस्तेमाल कर सकती है, न कि स्वप्रेरणा से, जैसा कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने सुझाव दिया है ।

8. आकाशवाणी एवं दूरदर्शन (सूची I की प्रविष्टि 31) सुविधाओं को संघ और राज्यों के बीच बराबरी के आधार पर बांटा जाना चाहिए ।

9. अनुच्छेद 263 के अधीन अन्तर्राज्यीय परिषदों की स्थापना से राज्यों के बीच बेहतर समन्वय में सहायता मिलेगी । वे स्थायी आधार पर होने चाहिए जिनका एक स्वतंत्र सचिवालय हो ।

V. वित्तीय संबंध

10. संघ से अनुदान-सहायता द्वारा और केन्द्रीय करों एवं शुल्कों की अधिप्राप्तियों में भागीदारी द्वारा राज्य के उत्तरदायित्वों के निर्वहन में राजकोषीय आवश्यकताओं तथा संघसाधनों के बीच राजस्व-अन्तर की पूर्ति के लिए अन्तरण की व्यवस्था ने संतोषजनक कार्य नहीं किया है । इसने केवल राज्य के हितों को हानि पहुंचाई है । सहायता अनुदान वाला भाग पर्याप्त नहीं रहा । केन्द्रीय करों में राज्यों का भाग 75 प्रतिशत तक बढ़ा देना चाहिए ।

11. सामाजिक न्याय एवं आर्थिक समानता प्रदान करने के लिए स्कीमों और अनुदानों के अनिवार्य वितरण के लिए एक पैटर्न होना चाहिए । कल्याणकारी कार्यक्रमों पर राज्यों द्वारा वहन किए गए गैर-योजना व्यय में संघ द्वारा पर्याप्त सहायता दी जानी चाहिए ।

12. राज्यों की करादान शक्ति को किसी प्रकार छीना नहीं जाएगा। राज्य सूची से मदों को निकालने द्वारा संसाधनों के अन्तरण से बचा जाना चाहिए। सूची II (राज्य-सूची) में अधिक मदें अन्तरित की जाएं। भागीदारी योग्य पूल में और केन्द्रीय-कर लाए जाएं। कर राजस्व से इतर वित्तिय संसाधन भी भागीदारी योग्य पूल में लाए जाने चाहिए।

13. वित्त आयोग एक स्थायी संस्था होना चाहिए जो पूंजीगत एवं राजस्व संसाधनों के मूल्यांकन से सभी वित्तीय अन्तरण (योजना तथा गैर योजना) का कार्य करें। योजना आयोग की भूमिका दुर्लभ पूंजीगत संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग के लिए निर्णय करने, योजना बनाने और सर्वोपरि निवेश के लिए एक एजेन्सी के रूप में सीमित कर देनी चाहिए।

14. विशेष वाहक बन्धपत्र स्कीम जैसी स्कीमों से प्राप्ति तथा पैट्रोलियम, कोयला इत्यादि जैसी मदों के निर्देशित मूल्यों को बढ़ाकर प्राप्त होने वाला राजस्व संसाधनों के विभाज्य पूल के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।

15. केन्द्र को अनिवार्यत: राज्यों से उस ब्याज की दर से अधिक ब्याज की दर नहीं देनी चाहिए जो वह विदेशी ऋणदाता को देता है। केन्द्र को राज्यों के साथ अपने सम्बन्ध में सूदखोर की भूमिका अदा नहीं करनी चाहिए।

16. संघ को अनुच्छेद 268 और 269 में परिगणित शुल्कों एवं करों को समाप्त करने अथवा उनकी दर संरचनायें परिवर्तन करने अथवा उन्हें लगाने के लिए विधेयक लाने से पहले राज्य सरकारों के विचारों का पता लगाना चाहिए और उन पर समुचित विचार करना चाहिए।

17. प्राकृतिक विपदाओं का सामना करते समय केन्द्र द्वारा राज्यों को पर्याप्त सहायता की जानी चाहिए। सूखा, समुद्र क्षरण, समुद्री तूफान, बाढ़ आदि सभी विपदाओं को प्राकृतिक विपदाएं माना जाना चाहिए जिनके लिए तत्काल केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता है।

VI. आर्थिक एवं सामाजिक योजना

18 योजना आयोग विशेषज्ञों की एक सांविधिक सलाहकार संस्था होनी चाहिए और इसे राष्ट्रीय विकास परिषद की शक्तियों को नहीं हथियाना चाहिए। योजना का विकेन्द्रीकरण करना होगा। केन्द्रीकृत योजना की वर्तमान व्यवस्था ने राज्यों की भूमिका को कम कर दिया है और उनकी प्रतिष्ठा स्थानीय निकायों जैसी बना दी है। योजना आयोग द्वारा निर्धारित मानदण्डों के अनुसार राज्यों को अपनी योजनाएं, अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बनानी चाहिए और राष्ट्रीय विकास परिषद को राष्ट्रीय समन्वय के लिए एक एजेंसी के रूप में कार्य करना होगा।

19. योजना आयोग केन्द्र सरकार का विभाग नहीं होना चाहिए बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर योजना निरीक्षण, निदेश और निर्णय लेने वाली राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन एक स्वायत्त निकाय होना चाहिए।

20. संघवाद और लोकतंत्र भारतीय राजनीतिक विकास की दो मुख्य धाराएं हैं, संघटक इकाइयों की हैसियत और प्राधिकार को कम करने का कोई प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। केन्द्र की निरीक्षण सम्बन्धी भूमिका संघवाद के परम्परागत आदर्शों की दृष्टि से असंगत है। राज्यों की शक्ति और स्थायित्व ही संघीय पिरामिड अर्थात, केन्द्र के अक्ष को सुदृढ़ बनाता है।

जनता पार्टी

ज्ञापन

I. प्रस्तावना

भारत की एकता विविधता प्रधान देश में एकता है। इसलिए हमारे देश का लोकतांत्रिक संविधान तत्वत: एक संघीय संविधान होना ही चाहिए था। तथापि, ऐतिहासिक परिस्थितियों में जो कि भारत को स्वतंत्रता के समय विद्यमान थी देश की एकता को बनाए रखने के लिए एकात्मक स्वरूप जरूरी समझा गया। संविधान लागू होने के तीन से अधिक दशक बीत चुके हैं। इन वर्षों के अनुभव से संविधान की शक्ति और सीमा देखने में हम समर्थ हैं। इन वर्षों में इसकी कमियां और कमजोरियां सामने आयी हैं जो लोकतंत्र संघवाद और विकेन्द्रीकरण सहित हमारे संविधान के कुछ आधारभूत मूल्यों और संकल्पनाओं को खण्डित या क्षीण कर सकती हैं। सवैधानिक संशोधनों और परम्पराओं के माध्यम से सुधारात्मक उपाय करने के लिए संविधान पर फिर से दृष्टिपात करना आवश्यक हो गया है। ये संशोधन ऐसे होने चाहिएं जो न केवल केन्द्र से राज्यों को राजनीतिक और वित्तीय शक्तियों के अन्तरण पर बल देते हुए संविधान के संघीय स्वरूप को सुदृढ़ बनाएं वरन, यह पंचायतों को भी शक्तियां प्रदान करते हों। सुदृढ़ केन्द्र का प्रासाद केवल सुदृढ़ राज्यों की ठोस आधारशिला पर ही खड़ा किया जा सकता है।

II. विधायी सम्बन्ध

संविधान में कुछ ऐसे उपबंध हैं जो संविधान में वैसे तो राज्यों की विधायी शक्तियों के अन्तर्गत आते हैं किन्तु उन पर केन्द्र की कार्यपालिका या संसद कानून बनाकर राज्य की इस विधायी शक्तियों का अतिक्रमण कर सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ शक्तियां जो सैद्धान्तिक रूप से राज्यों को दी गई है, वास्तव में वे निरोधक या भ्रमक बन गई है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 31 क, 31 ग और 304 (ख) के उपबंधों में राज्यों की विधायी शक्तियों पर केन्द्र की कार्यपालिका द्वारा अतिक्रमण किए जाने को भारी गुंजाइश है। इन उपबन्धों की सावधानीपूर्वक परीक्षा की जानी चाहिए और राज्यों की विधायी शक्तियों की रक्षा के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन किए जाने चाहिएं।

राज्य विधानपालिका द्वारा पास किए गए बिल पर स्वीकृति देने या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक रखने के सम्बन्ध में संविधान में यह उपबन्ध किए जाने चाहिएं कि राज्यपाल पूर्णत: मंत्रीपरिषद, की सलाह पर कार्य करेगा। बिलों को अनिश्चित काल तक रोके रखने से बचाने के लिए संविधान में यह संशोधन करने की आवश्यकता है कि राष्ट्रपति किसी बिल पर तीन महीने तक विचार कर निर्णय दे दें।

III. राज्यपाल की भूमिका

राज्यपाल के उच्च पद के सम्बन्ध में अनुभव कुछ मामलों में दुर्भाग्यपूर्ण रहा है, इस पद का केन्द्र में सत्तासीन दल के उपयोग और हित के लिए संविधान की पूर्णत: अवहेलना करके दुरुपयोग किया गया है। इसी को मद्देनजर रखते हुए राज्यपाल की नियुक्ति प्राय: राजनीतिक प्रश्रय के रूप में पक्षपात के आधार पर की जाती है न कि किन्हीं सुनिश्चित मानदण्डों और मार्गनिर्देशों के आधार पर ये नियुक्तियां सामान्यत: सम्बन्धित मुख्यमंत्रियों के परामर्श और स्वीकृति के बिना की जाती है। ऐसे उच्च पद पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों में योग्यता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता की कमी को प्राय: अनदेखा कर दिया जाता है।

इस पृष्ठभूमि में, राज्यपालों की शक्तियों और कार्यों के संबंध में कुछ संवैधानिक आरक्षण और परम्पराएं होना अत्यधिक आवश्यक है।

राज्य विधान सभा में बहुमत के दावे को अविलम्ब सभा पटल पर जांचा जाना चाहिए, न कि राज्यपाल के आराम कक्ष में। यदि किसी समय यह संदेह होता है कि मुख्यमंत्री ने सदन में अपना बहुमत खो दिया है तो उसे राज्यपाल द्वारा राज्य की विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने का निदेश दिया जाना चाहिए। यही प्रक्रिया लोक सभा के सदन में बहुमत की जांच करने के लिए भारत के राष्ट्रपति द्वारा अपनाई जानी चाहिए।

यदि किसी सरकार के गिरने के बाद कोई दल या दलों का कोई गठबन्धन विधान सभा के सदन में अपना बहुमत सिद्ध नहीं कर पाता तो राज्यपाल को विधान सभा भंग कर देनी चाहिए और शीघ्र ही नए चुनाव कराए जाने चाहिएं।

ऐसे मुख्यमंत्री की सलाह पर जिसने अपना बहुमत खो दिया है, राज्य विधान मण्डल स्थापित नहीं करनी चाहिए और न ही अध्यादेश जारी करने चाहिएं।

IV. प्रशासनिक सम्बन्ध

इस समय, कृषि मूल्य आयोग, केन्द्रीय जल आयोग, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, तकनीकी विकास महानिदेशक, एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग, कर्मचारी राजकीय बीमा निगम, राष्ट्रीय बचत संगठन, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, औद्योगिक लागत और मूल्य ब्यूरो, भारतीय खाद्य निगम आदि जैसी बहुत सी केन्द्रीय एजेन्सियां संविधान की सातवीं अनुसूची में दी गई राज्य और समवर्ती सूचियों के विषयों से सम्बन्धित कार्य-कलापों को करती हैं।

इन केन्द्रीय संगठनों में से कुछ राज्यों की स्वायत्तता का अतिक्रमण करते रहे हैं। इस अतिक्रमण को प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए।

यद्यपि अन्तर्राज्यीय परिषद के गठन का संविधान में स्पष्ट उपबन्ध है तो भी इसका गठन नहीं किया गया है और बहुत से अन्तर्राज्य विवाद और राज्यों के केन्द्र के साथ विवादों का बहुत लम्बे अरसे तक निपटारा नहीं किया गया जिससे तनाव और कड़वाहट पैदा हुई है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी इस संवैधानिक उपबंध का लाभ न उठाए जाने की ओर संकेत किया है। इसलिए बिना और विलम्ब किए अन्तर्राज्यीय परिषद का गठन किया जाना चाहिए।

यह दावा किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 355 के अधीन संघ सरकार राज्यों में अपने-आप केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य अर्द्ध-सैनिक बल तैनात कर सकती है। यह बहुत आपत्तिजनक है और संविधान में ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि यदि राज्य में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए जरूरी है तो सम्बन्धित राज्य में ऐसे अर्द्ध-सैनिक बल तैनात करने से पहले राज्य सरकार की सहमति ली जाए।

चूंकि राष्ट्रपति शासन के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 358 के दुरुपयोग को रोकने के लिए संविधान के 44 वें संशोधन में उपबन्ध जोड़े गए थे, उन्हें रहने दिया जाना चाहिए।

दूरदर्शन और आकाशवाणी जैसे माध्यमों पर केन्द्र के एकाधिकार का राज्य सरकारों द्वारा उनके उपयोग के वैध अधिकार को नकारने और केन्द्र में शासक दल के हितों के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। इस एकाधिकार को दूरदर्शन और आकाशवाणी को स्वायत्त निगम बनाकर समाप्त किया जाना चाहिए।

V. वित्तीय संबंध

यदि कोई राज्य वित्तीय संसाधन या शक्तियों की अपर्याप्तता से ग्रस्त है तो राज्य की स्वायत्तता में भारी रुकावट आती है और संविधान के संघीय स्वरूप भी जोखिम में पड़ जाता है। इस पृष्ठ भूमि में वित्तीय दृष्टि से केन्द्र-राज्य सम्बन्ध काफी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

राज्यों को संसाधनों के आबंटन के मामले में "योजना" और "गैर-योजना" उन "विकासीय" या "गैर विकासीय" "राजस्व" या "पूंजी" खातों में कोई पक्की सीमा नहीं हो सकती। राज्यों को संसाधनों के आबंटनकी समस्या पर व्यापक और अपेक्षाकृत विस्तृत परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए निम्नलिखित कदम उठाना अनिवार्य है :—

(1) आयकर, कम्पनियों पर लगाए गए कर सहित-केन्द्र और राज्यों के बीच बांटा जाना चाहिए।

(2) शुल्क और करों आयकर सहित पर सामान्य राजस्व प्रयोजनों के लिए लगाए जाने वाले अधिकारों का विभाज्य आय का हिस्सा माना जाना चाहिए।

(3) आनुषांगिक और विशेष शुल्क को मूल उत्पाद शुल्क में शामिल किया जाना चाहिए और निवल आय का कम से कम 60% विभाज्य आय में रखा जाना चाहिए।

(4) संविधान के अनुच्छेद 275 के अधीन राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान को विभाज्य आय के राज्यों के हिस्से से आन्तरित नहीं किया जाना चाहिए।

(5) संविधान के अनुच्छेद 269 के अधीन रेल यात्री भाड़ा कर दोबारा लगाया जाना चाहिए।

(6) केन्द्र और राज्य सरकारों के खर्चों का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करने के लिए राष्ट्रीय व्यय आयोग का गठन किया जाना चाहिए और वित्त आयोग के मार्ग-दर्शन के लिए और राज्य अधिशेष के निर्धारण के लिए आधार को तर्क सम्मत बनाया जाना चाहिए।

(7) संस्थागत वित्त की विकट समस्याओं से निपटने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद्, के तत्वाधान में एक राष्ट्रीय क्रेडिट परिषद्, का गठन किया जाना चाहिए जिसमें केन्द्र और राज्य सरकारों के मंत्रीस्तर के भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक के अध्यक्ष, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आयात निर्यात बैंक और जीवन बीमा निगम के प्रतिनिधि होने चाहिएं।

(8) यदि केन्द्र निर्देशित कीमतों में संशोधन करता है, उस संशोधन को छोड़कर जब ऐसा संशोधन कमी को पूरा करने के लिए किया जाए, प्रोद्भूत अतिरिक्त आय विभाज्य आय में शामिल की जानी चाहिए।

(9) बाजार ऋण पर केन्द्र का एकाधिकार नहीं होना चाहिए बल्कि यह सुविधा राज्यों को भी अपनी परियोजनाएं चलाने के लिए उपलब्ध हों। राष्ट्रीय ऋण आयोग का गठन किया जाना चाहिए। उसे बाजार ऋणदान, ब्याज भिन्नताओं आदि में केन्द्र और राज्य सरकारों के संगत हिस्से तय करने के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त बनाने चाहिएं। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा बैंक और अन्य वित्तीय मध्यस्थों से दिनांकित प्रतिभूतियों पर ऋणदान के समय जो परम्पराएं भी अपनाई जानी चाहिएं उसे वे योजना आयोग और भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श से तय करनी चाहिए।

(10) बाढ़, चक्रवात, अकाल इत्यादि जैसी प्राकृतिक विपदाओं के समय क्षति का जायजा लेने और केन्द्रीय सहायता की मात्रा की सिफारिश करने के लिए केन्द्रीय अध्ययन दल भेजने में बेहद विलम्ब किया जाता है। ऐसे विलम्ब से बचा जाना चाहिए और सम्बन्धित राज्यों को पर्याप्त केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(11) राज्यों द्वारा ओवर ड्राफ्ट लेने का मुख्य कारण उनकी विकासीय जिम्मेदारियां और उनके वित्तीय संसाधनों में संतुलन की कमी है। इसलिए, इस असंतुलन को दूर करने के उपाय किए जाने चाहिएं ताकि ओवरड्राफ्ट की अनुमति देने में राजनीतिक आधार पर एक और दूसरे राज्य के बीच भेद-भाव करने की कोई गुंजाइश न रहे।

VI. आर्थिक और सामाजिक योजना

शक्ति के अन्तरण और विकेन्द्रीकरण की संकल्पना ही निरर्थक हो जाती है, यदि योजना प्रक्रिया में योजना बनाने से लेकर उसके कार्यान्वयन तक राज्यों और निचले स्थानीय निकायों की प्रभावी भागीदारी न हो। वर्तमान में, वस्तुतः योजना बहुत अधिक केन्द्रीकृत प्रक्रिया बनकर रह गई है।

यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय विकास परिषद, न केवल राष्ट्रीय योजना पर विचार विमर्श करने का बल्कि "वित्तीय संबंध" पर पिछले खण्ड में उल्लिखित विभिन्न एजेन्सियों के माध्यम से विकेन्द्रीकृत योजना पर भी विचार-विमर्श करने का मंच बने।

विकेन्द्रीकृत योजना में योजना आयोग के लिए आवश्यक नहीं है कि वह राज्य सरकारों के सभी प्रस्तावों की व्यापक रूप में संवीक्षा करे। राज्य योजनाओं में जिन राष्ट्रीय प्राथमिकताओं का पालन किया जाना है उनका पता राष्ट्रीय विकास परिषद् में केन्द्र और राज्यों के बीच प्राप्त सहमति के आधार पर लगाया जा सकता है।

यदि योजना आयोग केवल विकास के कुछ बड़े क्षेत्रों के परिव्यय पर ही अपनी स्वीकृति दे, और शेष को सुपरिभाषित सूत्र के आधार पर जिलों में आबंटन करने का काम राज्य पर छोड़ दिया जाए, तो यह सम्भव हो सकता है।

केन्द्र से न केवल राज्यों को बल्कि पंचायतों को भी जिस सीमा तक शक्ति का अन्तरण किया जाएगा, विकेन्द्रीकृत आर्थिक और सामाजिक योजना उतनी ही सीमा तक साकार हो पाएगी।

जनता पार्टी द्वारा इस ज्ञापन में राज्यों की विधायी शक्तियों, राज्यपाल की भूमिका, प्रशासनिक तन्त्र, राज्यों के वित्तीय संसाधनों, और शक्तियों और विकेन्द्रीकृत आर्थिक और सामाजिक योजना के सम्बन्ध में सुझाए गए ठोस परिवर्तनों और कदमों को यदि प्रभावी ढंग से लागू किया जाए तो केन्द्र-राज्य सम्बन्ध हमारे संविधान की संघीय भावना बनाए रखते हुए अधिक सद्भावपूर्ण बन सकेंगे और इस प्रक्रिया में शक्तियों के अन्तरण और विकेन्द्रीकरण से लोकतंत्र की जड़ें और मजबूत होंगी।

जनता पार्टी

राज्य इकाई–केरल

ज्ञापन

इस ज्ञापन में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर ही संक्षेप में विचार प्रस्तुत किए गए हैं और यह आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली का व्यापक उत्तर नहीं है।

सामान्य

1.1 हमारे संविधान में भारत को राज्यों के संघ रूप में संकल्पना की गई है और भारतीय राजनीति में राज्यों का भी अधिक नहीं तो कम से कम केन्द्र को जितना तो महत्व है ही। भारत के संविधान निर्माताओं ने इसका स्वरूप मूलतः संघीय रखा है। किन्तु संविधान लागू होने के चौंतीस वर्षों में इससे राज्यों के अधिकारों, शक्तियों और प्रतिष्ठा के क्षीण करने में ही मदद मिली है। अब तो राज्य, केन्द्रीय सरकार के अधीन केवल नगर पालिकाएं बन कर रह गए हैं। यह अपकर्ष संविधान में संशोधन करके, और केन्द्र सरकार के विधायी, प्रशासनिक तथा राजकोषिय उपायों की श्रृंखलाओं के द्वारा किया गया है। इसलिए, राजामनार समिति द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को, जो कि आयोग ने भी अपनी प्रश्नावली के प्र० 1.2 में उद्धृत किए हैं, सामान्यतः पृष्ठांकित करना होगा।

1.2 यह आशा की स्वस्थ्य परम्पराएं संविधान के लोकतांत्रिक और संघीय ढांचे को और सुदृढ़ बनाएगी, झूठी सिद्ध हुई है अतः राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता शक्तियों और वित्तीय संसाधनों के लिए संविधान में स्पष्ट और असंदिग्ध उपबन्ध जोड़ने होंगे। शक्तियों के विकेन्द्रीकरण को केवल राज्य स्तर तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए, वरन, इसे जिला, नगर/पंचायत स्तर तक ले जाया जाना चाहिए। इसके लिए, संविधान में अनिवार्य उपबन्ध शामिल किए जाने चाहिएं।

चुनाव आयोग को स्थानीय निकायों यानि पंचायतों, नगर-पालिकाओं और जिला परिषद्, के भी निष्पक्ष और स्वतंत्र आवधिक चुनावों को सुनिश्चित कराने का काम सौंपा जाना चाहिए।

विधायी सम्बन्ध

2. राज्यों की विधायी शक्तियों पर केन्द्र की अतिक्रमण करने की प्रकृति पर अंकुश लगाया जाना चाहिए। संघ और समवर्ती सूचियों में और अधिक विषयों को राज्य सूची में अंतरित किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 248 और संघ सूची की प्रविष्टि के अधीन विशेषतः कराधान के सम्बन्ध में अवशिष्ट विधायी शक्तियों को राज्य सूची में अंतरित किया जाना चाहिए। राज्य की विशिष्ट शक्ति के अधीन आने वाले विषयों पर अनुच्छेद 249 के अधीन संसद द्वारा कानून बनाने की शक्ति को रद्द कर दिया जाना चाहिए। किसी समवर्ती विषय पर जब कभी केन्द्र कानून बनाए तो आयोग की प्रश्नावली के प्रश्न 2.3 में दिया गया यह सुझाव कि पहले राज्य सरकार से परामर्श किया जाए, अच्छी बात है।

राज्यपाल की भूमिका

3 संविधान के निर्माताओं ने राज्यपाल की उच्च और स्वतंत्र स्थिति की कल्पना की थी। किन्तु, जितना अपकर्ष राज्यपाल के पद का हुआ है, उतना अन्य किसी पद का नहीं। वस्तुतः, राज्यपाल 'केन्द्र का महिमा मण्डित सेवक' बनकर रह गया है। इस के साथ ही, राज्यपाल की सेवा उतनी भी सुरक्षित नहीं है जितनी सरकार के निम्नतम दर्जे के कर्मचारी की होती है। राज्यपाल के पद के सम्बन्ध में कर्नाटक सरकार का श्वेत पत्र राज्यपाल की भूमिका और प्रतिष्ठा की सही तस्वीर पेश करता है। यदि राज्यपाल का पद हटा दिया जाए तो यह एक आदर्श बात होगी। किन्तु, यदि यह पद बना रहने दिया जाता है, तो राज्यपाल की नियुक्ति सम्बन्धित राज्य सरकार की सहमति से की जानी चाहिए। राज्यपाल केवल राज्य की मंत्रीपरिषद्, की सलाह से ही कार्य करे। राज्यपाल को कोई ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं होनी चाहिए कि वह राज्य विधान मण्डल द्वारा पास किए गए किसी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने से मना करे न ही उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ किसी विधेयक को रोकने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। संविधान के अधीन किसी बिल पर राज्यपाल द्वारा अपनी सम्मति देने के लिए दो महीने से अधिक सीमा अवधि नहीं होनी चाहिए। मंत्रीमण्डल बनाने के लिए विधान सभा में बहुमत प्राप्त दल या बहुमत प्राप्त दलों के गठबन्धन के नेता को बुलाना राज्यपाल के लिए अनिवार्य होना चाहिए। यदि किसी भी नेता को सभा में बहुमत प्राप्त नहीं है तो मंत्रीमण्डल बनाने के लिए सबसे बड़े दल के नेता को कहा जाना चाहिए। मुख्यमंत्री को प्राप्त बहुमत के सम्बन्ध में कोई संदेह होने पर सदन के पटल पर ही इसकी परीक्षा की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में स्पष्ट संवैधानिक उपबन्ध और मार्गनिर्देश बनाए जाने चाहिए। मुख्य मंत्री का चुनाव करने में और मंत्रिमण्डलों को भंग करने में ही राज्यपाल सबसे अधिक गलती करते हैं। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिए। विधान सभाओं को स्थगित रखने की प्रथा पूरी तरह समाप्त कर देनी चाहिए।

प्रशासनिक सम्बन्ध

4.1 यदि राष्ट्रपति शासन के बिना भी संघ सरकार शासन कर सकती है तो अनुच्छेद 356 का लाभ उठाकर राज्य में राष्ट्रपति/राज्यपाल शासन लागू करने का कोई कारण नहीं दिखता। इस अनुच्छेद का प्रयोग प्रायः केन्द्र में सत्तासीन दल के राजनीतिक लाभ के लिए किया जाता रहा है। इसलिए या तो इस अनुच्छेद को हटा दिया जाना चाहिए या इसमें ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि इसे केवल अत्याधिक अपवादिक अवसरों और स्थितियों में लागू किया जा सके। आयोग की प्रश्नावली के प्र० 4.5 में अनुच्छेद 356 का क्षेत्र-विस्तार उस सीमा से बढ़ाने के सबन्ध में दिए गए सुझाव को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जा सकता जितनी बयालीसवें संविधान संशोधन अधिनियम के अधीन थी।

4.2 प्र० 4.6 के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि राज्य सरकार द्वारा किए गए जनगणना प्रकार्य संतोषजनक है। किन्तु चुनावों में राज्य निर्वाचन तंत्र के उच्च स्तर पर कुछ परिवर्तन करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, मुख्य चुनाव अधिकारी कोई राज्य सरकार का अधिकारी नहीं होना चाहिए। यह कोई स्वतंत्र अधिकारी होना चाहिए जिसे चुनाव आयोग नियुक्त करे और वह सीधे चुनाव आयोग के अधीन ही कार्य करे।

4.3 अखिल भारतीय सेवाओं में और किसी नई सेवा की आवश्यकता नहीं है। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और सीमा सुरक्षा बल जैसे अर्द्ध-सैनिक बलों का प्रयोग राज्य सरकार के सिविल प्राधिकारियों से परामर्श किए बिना राज्य में नहीं किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में इन बलों द्वारा स्वतः या केन्द्र सरकार द्वारा किसी भी स्थिति में कार्रवाई नहीं करने दी जानी चाहिए।

4.4 प्रसारण और दूरदर्शन को समवर्ती सूची में शामिल करना चाहिए और राज्यों को अपनी प्रसारण और दूरदर्शन संस्थाएँ स्थापित करने और उन्हें चलाने की अनुमति होनी चाहिए।

4.5 मंडलीय परिषदें व्यावहारिक दृष्टि से मृत हो चुकी हैं। अनुच्छेद 263 के अधीन राज्य परिषद्, अपने वांछित लक्ष्य को तभी पूरा करेगी जब यह प्रधानमंत्री और मुख्य मंत्रियों से मिलकर बना एक स्थायी निकाय हो और इसका स्वतंत्र सचिवालय हो।

वित्तीय सम्बन्ध

5.1 ए आर सी अध्ययन दल का यह कहना कि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों का विशिष्ट लक्षण 'केन्द्र हमेशा दाता और राज्य हमेशा प्राप्त कर्ता है' बिल्कुल सही है। इतना ही नहीं केन्द्र यह भी मानता है कि पाने वाला चुनने वाला नहीं हो सकता। वित्त आयोग और योजना आयोग के तंत्र के द्वारा वित्तीय संसाधनों के अन्तरण से केवल राज्यों की ही हानि हुई है और राज्यों के बीच विषमता को ही बढ़ावा मिला है। अमीर राज्य और अमीर होते गए हैं जबकि संविधान लागू होने के 34 वर्ष बीत जाने पर भी गरीब राज्य गरीब ही बने रहे हैं। राज्यों को कुछ और लचीले कराधान शीर्षों के अन्तरण से राज्यों को अपनी स्थिति से सुधार करने में सहायता मिलेगी। इसी प्रकार निगम कर, सीमा शुल्क इत्यादि जैसे अधिक केन्द्रीय करों और कर-राजस्व से इतर संघ के वित्तीय संसाधनों को भी विभाज्य आय में शामिल किया जाना चाहिए। संघ करों और शुल्कों पर अधिप्रभार हटाए जाने चाहिए। केन्द्रीय करों की विभाज्य आय बढ़ाई जाए।

इस सुझाव पर कि केन्द्र द्वारा वसूल किए जाने वाले करों और शुल्कों का 75% विभाज्य आय के अधीन रखा जाए, अनुकूल रूप से विचार किया जाए।

5.2 जो राज्य आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं उन्हें उदार केन्द्रीय अनुदान दिए जाए ताकि समृद्ध राज्यों के स्तर तक उनके आर्थिक स्तर को ऊपर उठाने की विशेष योजनाओं को कार्यान्वित किया जा सके। प्र० 5.6 में दिया गया सुझाव स्वीकार किया जा सकता है। सूखे, बाढ़, भूकम्प इत्यादि जैसी प्राकृतिक विपदाओं में केन्द्र को राज्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। प्रायः केन्द्र ऐसी स्थिति में बड़ा सुस्त रहता है और कजूंमी दिखाता है। 1983 में केरल में पड़े अभूतपूर्व सूखे के कारण नकदी फसलों के नुकसान को केन्द्र सरकार द्वारा न सुलझाना, केन्द्र की इस प्रवृत्ति का एक उदाहरण है।

5.3 केन्द्र और राज्यों ने अपने राजस्व स्रोतों को पर्याप्त रूप में उपयोग मे नहीं ला रहे हैं। केन्द्र और राज्य सरकारों दोनो के अधीन सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने पूंजी निवेश पर पर्याप्त आय अर्जित नहीं की है। कराधान नियमों और प्रक्रियाओं में खामियों को दूर किया जाना चाहिए और वसूल करने वाले तंत्र को नियमो के अधीन अधिकतम वसूल करने के लिए सक्षम बनाया जाना चाहिए। कर वसूली में राजनीतिक हस्तक्षेप को भी रोका जाना चाहिए। प्रबंधकीय अक्षमता, फिजूल खर्च और भ्रष्टाचार सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों के निकम्मेपन के कुछ कारण है। निम्न योग्यता, अनुभव और क्षमता वाले व्यक्तियों को विशुद्ध राजनीतिक स्नेहभाव के आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया जाता है। और, वे न केवल उपक्रमों के कार्यों का कुप्रबंध करते हैं बरन, अपने राजनीतिक सम्बन्धों के कारण खुले दिल पूर्वक सभी प्रकार की फिजूल खर्चों, ऐयाशी, भ्रष्टाचार में भी सलग्न रहते है, इसे बंद किया ही जाना चाहिए।

उद्योग

6.1 औद्योगिक क्षेत्र में भी बहुत अधिक विकेन्द्रीकरण है। गोंद, माचिस, साबुन, जूता आदि जैसे उत्पादनों के उद्योगों को केन्द्रीय क्षेत्र (संदर्भ प्रश्नावली का प्र० 7.1) के अधीन लाने के सम्बन्ध में कोई न्यायसंगतता नहीं है। वस्तुतः जो उत्पादन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है लघु और ग्रामीण उद्योग क्षेत्र में किया जा सकता है, उन्हें इन क्षेत्रों के अधीन आरक्षित रखा जाए और उन्हें पूर्णतः बृहत, उद्योग क्षेत्र से निकाल दिया जाए। लघु और ग्राम उद्योगों की यह अभिरक्षा करने के लिए आवश्यक विधान बनाया जाए।

6.2 केन्द्र सरकार को उद्योगों में निवेश करते समय औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों और क्षेत्रों के विकास को मुख्य रूप में ध्यान में रखना चाहिए। दुर्भाग्यवश विगत में ऐसा नहीं किया गया है। केरल औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्य का ज्वलन्त उदाहरण है कि जिसकी केन्द्रीय क्षेत्र के उद्योगों के क्षेत्र में उपेक्षा की गई है। औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों और क्षेत्रों में विशेष केन्द्रीय पूंजी निवेश को सुनिश्चित करने के लिए सांविधानिक और प्रशासनिक कदम उठाए जाने चाहिए।

निष्कर्ष

अब जबकि हमारे राष्ट्र ने प्रभुता सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, गणराज्य को अपना उद्देश्य घोषित कर दिया है, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए और अधिक संवैधानिक संशोधन, निर्माण और प्रशासनिक सुधार करने की आवश्यकता है। विशेषतः इनकी आवश्यकता सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के लिए है। उदाहरण के लिए, काम पाने का अधिकार मौलिक अधिकारों में शामिल किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि भारत के सभी नागरिकों को लाभकारी कार्य मिले। जब केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर विचार करते समय, इस बात को ध्यान में रखा जाए कि जो समग्र परिवर्तन होने चाहिए, यह उसका अंग मात्र है।

लोकदल

ज्ञापन

प्रस्तावना

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि भारत का संविधान एकात्मक न होकर संघीय है। संघ के लिए हमें इस पद की राजनीति विज्ञान में दी गई परिभाषा का अनुसरण करने की आवश्यकता नही है। सच बात तो यह है कि संघीय सिद्धान्तों को अपनाने वाली किसी भी देश की कोई भी सरकार सच्चे अर्थों में संघीय नही है। सभी कुछ सरकार बनाने से पहले के ऐतिहासिक घटनाक्रम पर निर्भर करता है।

हमारा देश भौगोलिक दृष्टि से बड़ा देश है और जनसंख्या की दृष्टि से इसका विश्व में दूसरा स्थान है। अतः एकात्मक सरकार बनाना सम्भव नहीं है और प्रशासनिक प्रयोजनों के लिए संघ एक 'अनिवार्यता' है।

संघवाद का सिद्धान्त इस रूप में अपनाया जाना चाहिए कि वह लोगों की मूल भावनाओं के अनुरूप हो। यद्यपि हमने भाषायी और सांस्कृतिक आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया है, तो भी हमें देश की एकता बनाए रखनी है। दूसरे शब्दों में, "विविधता में एकता" हमारा आदर्श वाक्य है।

साथ ही हमें शब्दों के चक्कर में नहीं पड़ना है। यह सही है कि केन्द्र को सुदृढ़ होना चाहिए किन्तु क्या केन्द्र को अपने संघटकों की कीमत पर सुदृढ़ होना चाहिए या हो सकता है? केन्द्र तभी सुदृढ़ हो सकता है जब कि राज्य सुदृढ़ हों। सच तो यह है कि जैविक प्रक्रिया की भांति ही केन्द्र तभी सुदृढ़ हो सकता है जब राज्य सुदृढ़ हों। यदि राज्य केन्द्र पर निर्भर होंगे तो वे विकास के लिए वास्तव में कोई पहल नहीं कर पाएंगे। इसलिए, केन्द्र और राज्यों के बीच संवैधानिक सम्बन्ध ऐसे होने चाहिए कि केन्द्र न केवल इतना सुदृढ़ होना चाहिए किसी विदेशी आक्रमण का मुकाबला कर सके बल्कि उसे इतनी शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि वह किसी राज्य या उसके हिस्से में विघटनकारी और अलगाववादी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण लगा सके। इसके साथ-साथ राज्यों के पास भी अपना विकास करते के लिए स्वतंत्रता और पर्याप्त संसाधन होने चाहिए। राज्यों और केन्द्र सरकारों में राजनीतिक वैचारिक भिन्नता मात्र को ही विघटनकारी और अलगाववादी प्रवृत्ति का लक्षण नहीं मान लेना चाहिए।

हमारे संविधान के प्रवर्तन के गत 36 वर्षों में केन्द्र सरकार का इतिहास साक्षी है कि राज्यों में किसी विघटनकारी प्रवृत्ति को रोकने के बजाय केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों में राजनीतिक वैचारिक भिन्नता के कारण निश्चयात्मक केन्द्रीय हस्तक्षेप अधिक किया गया है। हमें भारतीय संघवाद के अनिवार्य स्वरूप को बनाये रखने के लिए इसी दुरुपयोग पर विचार करना है।

संघीय संविधान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अपेक्षा केन्द्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का आबंटन है। केन्द्र और राज्य अपने-अपने क्षेत्र में एक-दूसरे से स्वतंत्र होने चाहिए। केन्द्र और राज्य दोनों ही शक्तियां एक ही स्रोत अर्थात, संविधान से प्राप्त करते हैं।

संवैधानिक विधि के विख्यात विद्वान श्री के० सी० व्हेरे ने संघीय सिद्धान्त की परिभाषा इस प्रकार दी है "शक्तियों के बंटवारे की ऐसी पद्धति जिसमें सामान्य और क्षेत्रीय सरकारें अपने अपने क्षेत्र में एक-दूसरे से समन्वित और स्वतंत्र हों।" केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का विषय आज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय और संविधान के ढांचे के भीतर भारत की एकता और अखण्डता की परिरक्षा के लिए निर्णायक बन गया है। पिछले दो दशकों से राज्यों की स्वायत्तता को सही अर्थों में प्रयोजन मूलक और प्रभावशाली बनाने के लिए राज्य अधिक शक्तियों की मांग कर रहे हैं।

ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान भी भारत सरकार अधिनियम, 1935, में भी जो 1937 में लागू हुआ था, संघवाद की कुछ मूल विशेषताएं विद्यमान थीं।

संविधान सभा ने भारत के संविधान का निर्माण करते समय बहुत हद तक इसी एक्ट के मूल अभिलक्षणों को अपनाया। इस प्रकार भारत के संविधान को संघीय होना ही था, किन्तु, संविधान लागू होने पर केन्द्र में लम्बे समय तक एक दल का शासन होने के कारण अधिकारपूर्वक कुछ एकात्मक अभिलक्षण प्रमुखता से सामने आए हैं।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की समीक्षा करना अनिवार्य हो गया है, हमने आयोग द्वारा भेजी गई प्रश्नावली का अध्ययन किया है और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की मुख्य मुख्य बातों के सम्बन्धों में हमारे सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(1) अन्तर्राज्यीय परिषद

अनुच्छेद 263: इसमें संशोधन किया जाना चाहिए। उपबन्धों को अनिवार्य (आदेशात्मक) बनाया जाना चाहिए। राष्ट्रपति को चाहिए कि लोकसभा का सत्र शुरू होने पर एक परिषद् का गठन करे। इसका संगठन कैसे किया जाएगा—

इसको भी परिभाषित किया जाना चाहिए। इसमें सभी मुख्य मंत्रियों की राज्य विधान परिषदों के विपक्षी नेताओं, प्रधान मंत्री और लोक सभा में विपक्ष के नेता को शामिल किया जाना चाहिए। सदन के नेता और राज्य सभा में विपक्ष के नेता को भी शामिल किया जाना चाहिए। प्रधान मंत्री को इसका अध्यक्ष होना चाहिए। विपक्ष के नेता को इस प्रकार परिभाषित किया जाना चाहिए कि वह व्यक्ति जो सबसे बड़े दल का समूह का नेता हो।

इस परिषद से किसी राज्य के विरुद्ध केन्द्र द्वारा उठाए जाने वाले सभी कदमों पर परामर्श किया जाना चाहिए। यह प्रभावी रूप से कार्य करने और निर्णय लेने के सम्बन्ध में अपनी प्रक्रिया खुद तैयार करेगी। अन्य बातों के साथ-साथ वित्त आयोग और योजना आयोग की नियुक्ति अन्तर्राज्यीय परिषद् की सलाह पर की जाएगी और ये इसी परिषद् के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए। इन्हें स्थायी निकाय बनाया जाना चाहिए और केन्द्र सरकार की मर्जी पर नहीं छोड़ना चाहिए।

(2) विधायी सम्बन्ध

राज्य सूची में विशेष रूप से शामिल किए गए मामलों पर संसद कानून बनाए—

(i) **अनुच्छेद 249.** यदि राज्यसभा दो-तिहाई बहुमत से इस आशय का संकल्प पारित करे कि संसद द्वारा कानून बनाया जाना आवश्यक और कालोचित है तो अनुच्छेद 249 के तहत कानून बनाया जा कसता है। यह संघवाद के मूल सिद्धान्त का सरासर अतिक्रमण है। यदि केन्द्र में शासक राजनीति दल का राज्य सभा में दो-तिहाई बहुमत हो तो केन्द्र राज्य के अधिकारक्षेत्र में आसानी से अतिक्रमण कर सकता है। इसलिए इस अनुच्छेद को हटा दिया जाना चाहिए।

(ii) **अनुच्छेद 200, 201 और 213.** अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल राज्यविधान सभा द्वारा पारित बिल को राष्ट्रपति के विचारार्थ अपने पास रोक सकता है और राज्यपाल किसी बिल पर अपनी स्वीकृति देगा और किसी ऐसे बिल को राष्ट्रपति के विचारार्थ रखेगा जिसे वे समझता है कि इस कानून के बनने से उच्च न्यायालय की शक्तियों का अतिक्रमण होना है और उस-न्यायालय की स्थिति संकट में पड़ती है जो कि संविधान द्वारा परिकल्पित है। ऐसी प्रकृति वाले विधेयकों के अलावा राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को रोकने का विवेकाधिकार राज्यपाल को नहीं होना चाहिए। अनुच्छेद 200 में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के विचार करने की अवधि निर्धारित की गई है। किसी विधेयक को अनिश्चित काल तक रोका रखा जा सकता है। चूंकि राष्ट्रपति अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्री परिषद् की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य है और उसके सामने राज्य की सभी विधायी शक्तियों के संबंध में कोई अन्य विकल्प नहीं है इसलिए राष्ट्रपति के निषेधाधिकार क्षेत्र में मंत्री परिषद् आसानी से हस्तक्षेप कर सकती है। दूसरे शब्दों में, कुछ संदर्भों में राज्य विधान सभा की विधायी प्रक्रिया सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में संघ कार्यपालिका के प्रभुत्व और राजनीतिक विश्वास या पक्षपात के अधीन है।

अधिकांश राज्यपाल केन्द्र में शासक दल के प्रति निष्ठावान होते हैं क्योंकि उनमें से अधिकांश दल से जुड़े होते हैं और कुछ संदर्भों में पार्टी से बंधे होते हैं। उन्हें हमेशा मुख्यत: राजनीतिक घटाओं पर नजर रखने बल्कि कई बार तो उन घटनाओं को तोड़ने मरोड़ने के लिए चुने जाते हैं। इसलिए यह स्वीकार करना बहुत कठिन है कि राज्यपाल राज्य की मंत्री परिषद की सलाह पर कार्य करते हैं। ये विधेयक मुख्यतया कल्याणकारी उपायों से सम्बन्धित होते हैं जोकि केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों की अपेक्षा बहुत अधिक प्रगतिशील होते हैं। जब कोई राज्य विधान सभा कोई विधेयक पारित कर देती है तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि उसमें संविधान का कहीं उल्लंघन हुआ है तो राजनीतिक निर्णय या राजनीतिक पक्षपात से उस पर अमल करने की बजाय मामले को न्यायपालिका के पास भेजा जा सकता है। इसलिए अनुच्छेद 201 को निरस्त कर दिया जाना चाहिए। अनुच्छेद 213 की उपधारा 1 के परन्तुक भी इन्हीं कारणों से हटा दिया जाना चाहिए। अनु० 200 को इस तरह संशोधित किया जाना चाहिए कि राष्ट्रपति के विचारार्थ किसी विधेयक को रोकने के उपबंध को हटा दिया जाए।

आपातस्थिति

(iii) यदि राष्ट्रपति यह समझता है कि घोर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है, युद्ध या बाहरी आक्रमण या सैनिक विद्रोह के कारण देश या उसके किसी भाग को खतरा पैदा हो गया है तो वह आपात स्थिति की घोषणा कर सकता है। इस व्यवस्था को कि केन्द्र सरकार को सैनिक विद्रोह के कारण बाह्य आपात स्थिति की घोषणा करने की शक्ति होनी चाहिए, पूर्णत: हटा दिया जाना चाहिए या यदि इसे रखा जाना आवश्यक समझा जाए तो आपात स्थिति की घोषणा अन्तर्राज्यीय परिषद् के परामर्श के बिना नहीं की जानी चाहिए।

इसी प्रकार, अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय आपात स्थिति भी मामले को अन्तर्राज्यीय परिषद के सामने रखने के बाद भी लगाई जानी चाहिए।

अनुच्छेद 360 का सहारा अभी तक नहीं लिया गया है। वित्तीय अस्थिरता के कारण संघ सरकार की अर्थव्यवस्था गड़बड़ा सकती है और आपातस्थिति में राज्यों को दण्ड भुगतना पड़ता है। यह वित्तीय आपातस्थिति के सम्बन्ध में असंगत स्थिति है। इसलिए वित्तीय आपात स्थिति के प्रस्ताव को अन्तर्राज्यीय परिषद् के सामने रखना नितांत आवश्यक है।

राष्ट्रपति शासन

(iv) **अनुच्छेद 356 और 357.** यदि राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल से प्राप्त रिपोर्ट या अन्यथा यह समझता है कि राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य सरकार कार्य नहीं कर सकती तो वह अनुच्छेद 356 और 357 का सहारा ले कर राज्य सरकार को बर्खास्त कर सकते हैं, और यहां तक कि विधान सभा को भंग कर सकते हैं। (ऐच्छिक) और सारी शक्तियों को अपने हाथ में ले सकते हैं। इसका अभिप्राय केवल यह है कि सारी शक्तियां केन्द्र सरकार के पास हैं और यह निर्णय लेने की शक्ति केन्द्र सरकार के पास ही है कि राष्ट्रपति शासन लागू किया जाए या नहीं।

वस्तुत: राज्यपालों को गृह-मंत्रालय द्वारा कहा जाता है कि उनको कब रिपोर्ट लिखनी चाहिए और कैसे लिखनी चाहिए। राज्यपाल इन स्थितियों में असहाय होते हैं क्योंकि राष्ट्रपति की इच्छा (जिसका मतलब है प्रधानमंत्री की इच्छा) पर्यन्त ही राज्यपाल बने रह सकते हैं। अनुच्छेद 356 के अधीन प्रावधान है कि केवल राज्यपाल की रिपोर्ट ही आवश्यक नहीं है, राष्ट्रपति की इच्छा ही सर्वोपरि है, दूसरे शब्दों में, प्रधानमंत्री की इच्छा ही सर्वोपरि है, जो मंत्री परिषद् का मुखिया होता है। यह त्रासदी भी है और मजाक भी कि राज्य सरकार और राज्य विधान सभा प्रधानमंत्री और उनकी मंत्रीपरिषद् की इच्छा पर्यन्त ही बनी रह सकती है। हमारा सुझाव है कि संविधान के उपरोक्त अनुच्छेद के अधीन शक्तियों का सहारा लेने से पूर्व अन्तर्राज्यीय परिषद् से परामर्श किया जाना चाहिए।

(v) **अनुच्छेद 365.** अनुच्छेद 365 भी कम आपत्तिजनक नहीं है। यदि कोई राज्य सरकार कार्यपालिका शक्तियों (कार्यपालिका द्वारा) का प्रयोग करते हुए दिए गए किसी निदेश का पालन करने में या उसे लागू करने में असफल रहती है तो अनुच्छेद 365 राष्ट्रपति को इस अनुच्छेद का सहारा लेने में और राष्ट्रपति का शासन लागू करने में समर्थ बनाता है। यहां भी केवल राजनीतिक कार्यपालिका का निर्णय होता है न कि न्यायपालिका के निर्धारण का परिणाम मान लीजिए यदि केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा दिए गए निदेश स्वयं में आपत्तिजनक हैं या कानून का उल्लंघन करते हैं तो क्या फिर भी राज्य सरकार इन निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य है? युद्ध काल को छोड़कर अन्य समयों में जारी किए जाने वाले किसी निर्देश की जनहित के आधारपर परीक्षा की जानी चाहिए और राज्य सरकार केन्द्रीय कार्यपालिका द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं हो सकती जो कई बार दुर्भावपूर्ण हो सकते हैं। यह अनुच्छेद संविधान सभा द्वारा संविधान को अन्तिम रूप से अपनाए जाने के ग्यारह दिन पहले शामिल किया गया था। यह पूर्णत: एक बाद का विचार था। इस अनुच्छेद को भी हटा दिया जाना चाहिए।

यह जान लेना भी लाभप्रद होगा कि ऐतिहासिक दृष्टि से पहली बार (संविधान लागू होने के बाद) राष्ट्रपति शासन 21 जून 1951 को लागू किया गया था। उस दिन से लेकर आज तक 21 राज्यों में इसमें संघ क्षेत्र सम्मिलित नहीं है, 70 बार से अधिक बार राष्ट्रपति शासन थोपा जा चुका है। संविधान

की योजना के अनुसार राज्य सभा और राष्ट्रपति राज्यों के हितों के प्रहरी होते हैं। किन्तु चूंकि राष्ट्रपति को अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्रीपरिषद् की सलाह पर कार्य करना होता है, राष्ट्रपति रबड़ की मोहर मात्र बन कर रह गए हैं। वास्तव में निर्णय तो प्रधान मंत्री और मंत्रीपरिषद् ही लेते हैं।

(3) वित्तीय सम्बन्ध

(i) सार्वजनिक आय के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं :—

(1) कर (2) घरेलू ऋण (3) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, व्यापार और वाणिज्य से उत्पन्न अर्थ अधिशेष। कुछ राजस्व केवल केन्द्र सरकार द्वारा वसूल किए जाते है। इन्हें राज्यों को अंतरित किया जाता है या उनको उसमें से हिस्सा दिया जाता है। अनुच्छेद 280 के अधीन वित्त आयोग की स्थापना की गई जो उन मामलों में राष्ट्रपति को सलाह देगा जिनमें से राजस्व हिस्सा दिया जाना चाहिए तथापि, भारत सरकार द्वारा वित्त पोषण का एक मुख्य हिस्सा अनुच्छेद 275 के उपबन्धों के अधीन दिया जाता है। वित्त आयोग की इस सम्बन्ध में कोई आवाज नहीं होती है। भारत सरकार विवेकाधीन अनुदान का उपयोग करके राज्य सरकारों को तबाह कर सकती है। यह राजनीति से प्रेरित होता है। इसलिए, प्रति वर्ष राष्ट्रीय विकास परिषद् को अनुदान सहायता के आबंटन के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त बनाने चाहिए और भारत सरकार द्वारा इन अनुदानों में उपयुक्त ढंग से आबंटन करके राज्य के बजट की कमी को पूरा करना चाहिए। विकास कार्यक्रम जो कि उत्पादन संपदा का अंग होते हैं और राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग द्वारा अनुमोदित होते हैं के परिणामस्वरूप राज्य बजट में होने वाले इन घाटों को भारत सरकार के केन्द्रीय बजट का घाटा ही समझा जाना चाहिए। इन विकास कार्यक्रमों को संविधान में मान्यता दी जानी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए संविधान में उचित संशोधन किया जाना चाहिए।

(ii) **केन्द्रीय बिक्रीकर :** केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 में बहुत सी कमियां हैं जो ऐसे पण्यों पर बिक्री कर लगाने में राज्य विधान पालिका पर प्रतिबन्ध लगाती है जो कि केन्द्रीय कानून द्वारा ऐसे पण्य घोषित किए गए हैं जो अन्तर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य के विशेष महत्व के हैं। उस मूल विषय से सम्बन्धित सभी मामलों की पूर्ण समीक्षा की जानी चाहिए जो भारतीय राज्य व्यवस्था के संघीय स्वरूप और राज्य की वित्तीय शक्ति, वित्त-व्यवस्था को बनाए रखने और सुरक्षित रखने के क्रम में संघ और राज्यों के बीच राष्ट्रीय वित्तीय संसाधनों के विभाजन का आधार है। उदाहरण के लिए यह स्पष्ट किया जाए कि सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क और निगम शुल्क विभाज्य राशि में शामिल किए जाने चाहिए। पैट्रोलियम, कोयला आदि जैसे पण्यों की बिक्री पर भारत सरकार द्वारा अर्जित लाभ में जिनका व्यापार करने का और मूल्य निर्धारित करने का भारत सरकार का अनन्य अधिकार है, जिन्हें प्रशासित मूल्य कहा जाता है, राज्यों का हिस्सा होना चाहिए और वित्त आयोग हिस्सा देने से संबंधित सिद्धान्त तय कर सकता हैं।

(iii) **वित्त, व्यापार और वाणिज्य :** प्रो० व्येर के अनुसार, संघवाद की एक अनिवार्य अपेक्षा यह है कि संघ और राज्य के बीच अपने विशिष्ट कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधनों पर अपना-अपना नियन्त्रण होना चाहिए। वित्तीय स्थिति वित्तीय संसाधनों और कर ढांचों के बंटवारे के अनुसार बेहतर और लचीली होनी चाहिए। राज्यों का उपलब्ध निधि में वृद्धि करने वाले संसाधन व्यावहारिक दृष्टि से अनन्य हैं और अपेक्षाकृत अपर्याप्त भी। अनियमित विकास और विषमता को कम करने के लिए विकास योजनाओं के संदर्भ में राज्यों को अपने संसाधनों में वृद्धि करने की आवश्यकता है। संघ सरकार को संविधान के उपबन्धों के तहत उपलब्ध संसाधनों के अतिरिक्त वित्त के घाटे को पूरा करने के लिए विदेशी सहायता और संसाधन प्राप्त करने की भी सुविधा है। राज्य इन दोनों सुविधाओं से वंचित है। यदि वित्तीय संसाधनों के लिए राज्य पूर्ण रूप से केन्द्र सरकार पर निर्भर रहता है तो संघीय ढांचा एकात्मक राज्य में परिणत हो जाएगा। यही वह खतरा है, जो इस में निहित है।

(iv) **निगम कर :** अनुच्छेद 366 की धारा 6 निगम कर का अभिप्राय किसी ऐसे कर से है जो कम्पनियों द्वारा आय कर के रूप में अदा किया जाता है। यूं तो निगम कर एक प्रकार का आय कर है किन्तु इसे विभाज्य राशि में शामिल नहीं किया गया है इसी लिए निगम कर को भी आय कर-सीमा और निर्यात शुल्क की तरह ही समझा जाना चाहिए और इसे अनिवार्यत: संघ और राज्यों के बीच में बांटा जाना चाहिए। व्यक्तिगत या कम्पनियों की परिसम्पत्तियों के पूंजी मूल्य पर लगने वाले कर को भी विभाज्य पूल में शामिल किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 272 में संशोधन करके विभाजन को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। संघ और राज्यों के बीच मूल उत्पाद शुल्क का बंटवारा अनिवार्य नहीं है बल्कि बंटवारा विवेकाधिकार से किया जाता है। अतिरिक्त उत्पाद शुल्क विशेष महत्व का माल (1957 का अधिनियम) संसद को कुछ विशिष्ट सामानों पर यथा भारत मे उत्पादित या विनिर्मित तम्बाकू, सूती वस्त्र, रेयॉन, कृत्रिम वस्त्र और ऊनी वस्त्रों आदि पर शुल्क और उत्पाद शुल्क लगाने का प्राधिकार देता है। ये सामान केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 के प्रयोजनार्थ अन्तर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य के लिए विशेष महत्व के घोषित किए हुए हों। यद्यपि यह सत्य है कि भारत सरकार ने राज्यों के लिए ये अतिरिक्त शुल्क नियत कर रखे हैं तो भी अधिनियम में यह संशोधन किया गया है कि यदि कोई राज्य इन सामानों की बिक्री पर कर लगाता है तो भारत सरकार से इन अतिरिक्त शुल्कों से आय का कोई हिस्सा प्राप्त करने से राज्य वंचित रहेगा। यह शर्त राज्यों को बहुत से पण्यों पर बिक्री कर लगाने से रोकती है, यदि वे लगाते हैं तो अतिरिक्त उत्पाद शुल्क के लाभ से वंचित रहेंगे।

संसाधन के सांविधिक अन्तरण के अधीन राज्यों का केन्द्रीय सरकार के कर राजस्व के 50% से कम अन्तरित नहीं किया जाना चाहिए। उत्पाद शुल्क पर लगने वाले अधिप्रभार को भी बांटा जाना चाहिए।

(v) **अनुदान :** अनुदान दो प्रकार का होता है (क) सहायता अनुदान जो अनुच्छेद 273 और 275 के अधीन सांविधिक अनुदान है। (ख) असांविधिक या विवेकाधीन अनुदान।

अनुच्छेद 282 संघ राज्य को यह प्राधिकार देता है कि वह किसी ऐसे प्रयोजन के लिए कोई अनुदान दे सकता है जो उसके विधायी प्राधिकार क्षेत्र से बाहर हो। बहुत हद तक योजना स्कीमों के लिए सभी अनुदान अनुच्छेद 282 के अधीन विवेकाधीन है। ये विवेकाधीन अनुदान वित्त आयोग द्वारा सुझाए गए सांविधिक अनुदान सीमा से बहुत ज्यादा हैं और इन्होंने केन्द्रीय सहायता के लिए राज्यों की स्थिति को घटा कर भिखारियों जैसी बना दी है। अब विवेकाधीन अनुदान 71.3% से 88% के बीच होंगे स्वाभाविक है कि इन विवेकाधीन अनुदानों में घट-बढ़ केन्द्र की वित्तीय स्थिति पर निर्भर करती है इसलिए, राज्य की स्थिति अस्पष्ट सी हो गई है और चूंकि केन्द्र पर निर्भरता संघीय ढांचे में अधिक निर्णायक बन गई है जबकि विभिन्न राज्यों में विभिन्न दल सत्ता में हो सकते हैं, इसलिए यह बेहत्तर होगा कि वित्त आयोग जैसा स्वायत निकाय विवेकाधीन अनुदान के सम्बन्ध में सिद्धान्त निर्धारित करें, न कि राजनीतिक प्रभाव के लिए विवेकाधीन अनुदान का प्रयोग करने दिया जाए।

(vi) **अन्तर-राज्य व्यापार और अन्तर-राज्य व्यापार**—अनुच्छेद 302 संसद को यह अधिकार देता है कि वह न केवल अन्तर राज्य व्यापार से बल्कि जनहित में अन्त राज्य व्यापार से सम्बन्धित व्यापार और वाणिज्य पर भी चुंगी प्रतिबन्ध लगा सकती है। अन्त: राज्य व्यापार ऐसा विषय नहीं है जिस पर प्रतिबन्ध लगाने के संसद का प्राधिकार दिया जाए। यह एक मात्र राज्य का विषय है। राज्य सूची की प्रविष्टि 26 में दिए गए व्यापार और वाणिज्य को समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 के अधीन रखा गया है। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 निम्नलिखित है :—

(क) किसी ऐसे उद्योग के उत्पाद जिस उद्योग को जनहित में संसद ने कानून बनाकर संघ के नियंत्रण में कर दिया है, और इन्हीं उत्पादों जैसा ही अन्य आयातित माल,

(ख) खाद्य पदार्थ, खाद्य तेलहन और तेल सहित,

(ग) मवेशी चारा, खली और अन्य सान्द्र,
और

(घ) कच्ची कपास, ओटाई हुई या बिना ओटाई और बिनौले,
और

(छ) कच्चा मटसर ।

का व्यापार और वाणिज्य और उत्पादन, आपूर्ति तथा वितरण ।

इस धारणा में बल हो सकता है कि किसी उद्योग के कुछ उत्पादों की आपूर्ति और वितरण, रक्षा या संघटित आयोजन के हित में बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है तो भी यह आवश्यक नहीं है उसके व्यापार और वाणिज्य से सम्बन्धित राज्य विधान सभा की शक्ति को संसद के अधीन कर दिया जाए । इसलिए, समवर्ती सूची की प्रविष्टि 33 में उचित संशोधन किया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 304 की धारा (ख) में राज्य की विधायी शक्तियों के सम्बन्ध में "उचित प्रतिबन्ध" पदावली का प्रयोग किया गया है जबकि अनुच्छेद 302 में केवल "प्रतिबंध" शब्दावली । (इसके साथ उचित विशेषण का प्रयोग नहीं किया गया है) का प्रयोग किया गया है अनुच्छेद 302 में प्रतिबन्ध के साथ उचित विशेषण का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 302 के अधीन राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बगैर व्यापार और वाणिज्य से सम्बन्धित, विधायिका की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबन्ध लगाने वाला कोई भी विधेयक या संशोधन नहीं रखा जा सकता । राष्ट्रपति से यह पूर्व संस्वीकृति अन्तर्राज्यीय व्यापार के सम्बन्ध में ही आवश्यक है, किन्तु यदि राज्य विधानसभा को अन्त: राज्य व्यापार पर कोई कार्रवाई करनी है, तो उसके लिए पूर्व संस्वीकृति की आवश्यकता नहीं है । यदि राज्य विधान सभा द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध उचित नहीं है और न ही जनहित में है तो उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को यह प्राधिकार है कि वह प्रतिबन्ध लगाने सें सम्बन्धित कानून को रद्द कर सकता है । राष्ट्रपति की पूर्व संस्वीकृति प्राप्त कर लेने से कोई अवैध कानून वैध नहीं हो जाता । इसलिए, अनुच्छेद 304 के परन्तुक को हटा दिया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 307 में ऐसे प्राधिकरण की नियुक्ति की व्यवस्था है जो अनुच्छेद 301, 302, 303 और 304 के प्रयोजनों को लागू कर सके । यह यू० एस० ए० का अन्तर्राज्यी आयोग के समान है । अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान ऐसे मामलों से निपटने के लिए ऐसे आयोग की नियुक्ति करना वांछनीय होगा न कि इसे केन्द्र की राजनीतिक कार्यपालिका पर छोड़ देंगे ।

4. अर्द्ध सैनिक बल

अनुच्छेद 355 के अधीन यह व्यवस्था की गई है कि बाहरी आक्रमण या आन्तरिक गड़बड़ी से प्रत्येक राज्य की सुरक्षा करना संघ का कर्तव्य है । प्रशासनिक सुधार आयोग का विचार है कि "अनुच्छेद 355 के अधीन केन्द्र-राज्य सरकार से परामर्श किए बगैर या राज्य सरकार के विरोध के बावजूद केन्द्र रिजर्व पुलिस भेज सकता है या उसकी यूनिटें कायम कर सकता है।"

राज्य पर बाहरी आक्रमण की स्थिति के सिवाय अन्य स्थितियों में राज्य सरकार के अनुरोध या सहमति के बगैर किसी राज्य में केन्द्रीय सरकार के अर्द्ध-सैनिक बल नहीं भेजे जाने चाहिए न ही चौकी स्थापित करनी चाहिए । इसलिए अनुच्छेद 355 में ऐसा संशोधन करना चाहिए जिसमें यह सुस्पष्ट व्यवस्था हो कि केन्द्र उन के अनुरोध के बगैर राज्य में हस्तक्षेप नहीं करेगा । जब कभी किसी राज्य सरकार के अनुरोध या सहमति से केन्द्र के केन्द्रीय रिजर्व पुलिस जैसे अर्द्ध-सैनिक बल राज्य में भेजे जाते है या चौकी स्थापित की जाती हैं तो उन्हें राज्य सरकार के अनुशासन में और नियंत्रण में कार्य करना चाहिए और राज्य सरकार को सेवा शर्तों के सिवाय कानून भंग की स्थिति से निपटने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए ।"

5. भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा

भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा जैसी अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकरियों को राज्यों में तैनात किया जाता है लेकिन वे केन्द्र सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण में रहते हैं । यह बल पूर्वक कहा जाता है कि जब राज्यों और केन्द्र में अलग-अलग राजनीतिक दल सत्ता में हों तो केन्द्रीय सरकार भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों का हमारे विरुद्ध प्रयोग करती है और राज्य सरकार के साथ सहयोग न करने और कई बार राज्य सरकार का विश्वास भंग, उसकी साख गिराने की भी सलाह

देती है । यद्यपि यह काफी हद तक सच है कि केन्द्र में सत्तासीन दल इन अधिकारियों का राज्यों के विरुद्ध प्रयोग करते है और कुछ अधिकारी प्रभाव और प्रलोभन में आ भी जाते हैं, तो भी सभी को एक-जैसा नहीं समझ लेना चाहिए, उनमें से कुछ दृढ़, निश्चयी, पूरी निष्ठा और चरित्रवान व्यक्ति होते हैं । भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के कुछ अधिकारी बिहार जैसे राज्यों में अपने प्रशासनिक क्षमताओं का प्रदर्शन नहीं कर पाते । इसलिए, राज्य प्रशासन में उनकी स्थिति के सम्बन्ध में संतुलन बनाए रखना चाहिए । निस्सन्देह, यह सही है कि उन्हें प्राथमिक रूप में राज्य सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रित में होना चाहिए किन्तु साथ ही उन्हें सरकार के बेईमान राजनेताओं और विभिन्न मंत्रालयों से किए जाने वाले उत्पीडन और असुरक्षा से उचित सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए । अच्छी सरकारें भी हैं और बुरी सरकारें की भी कमी नहीं है । इसलिए, जब इन अधिकारियों को प्राथमिक तौर पर राज्य सरकार के नियंत्रण सें रखा जाए तो इनकी उत्पीड़न से प्रशासनिक अधिकरण द्वारा रक्षा की जानी चाहिए ।

6. न्यायपालिका

संविधान द्वारा निर्मित संघीय ढांचे में जहां एक ओर केन्द्रीय कार्यपालिका और संसद के और दूसरी ओर राज्य विधायिका और कार्यपालिका के बीच शक्तियों का बंटवारा किया गया है, वहां सर्वोच्च न्यायालयों को न केवल संविधान के व्याख्याकार और अभिभावक के रूप में ही कार्य नहीं करना होता है बल्कि राज्यों और संघ तथा परस्पर राज्यों के बीच के विवाद की सुलझाने के लिए अधिकरण के रूप में भी कार्य करना होता है । संविधान के अधीन सर्वोच्च न्यायालय को इन मामलों को निपटने के लिए अनुच्छेद 131 के अधीन शक्ति प्राप्त है । चूंकि अनेक राजनीतिक दलों में से कोई भी सत्ता में आ सकता है, इसलिए न्यायपालिका को संघीय ढांचे के अनुरक्षण और स्थायित्व की बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है । अत: किसी भी राजनीतिक दल पर न्यायधीशों की नियुक्ति में लाभ उठाने का संदेह नहीं करना चाहिए ।

अनुच्छेद 124 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों के उन न्यायाधीशों से परामर्श करके करते हैं जिनसे सलाह लेना वे उचित समझते हैं । प्रधान न्यायधीश के अलावा अन्य न्यायधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति प्रधान न्यायधीश की सलाह मानने के लिए बाध्य है । अनुच्छेद 74 के तहत राष्ट्रपति मंत्रीपरिषद् की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य है । इस सम्बन्ध में उसे कोई विवेक शक्ति प्राप्त नहीं है । इसलिए, न्यायधीश की नियुक्ति से सामान्यत: विधि मंत्रालय, गृह मंत्रालय और प्रधानमंत्री सम्बन्धित हैं और वस्तुत: प्रधानमंत्री ही न्यायधीशों की नियुक्ति का फैसला करता है । इस प्रकार, न्यायधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है । राज्यों और केन्द्र में अलग-अलग दल सत्ता में आते रहते हैं इसलिए न्यायधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए । इसलिए, हमारा सुझाव है कि अनुच्छेद 74 में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि मंत्रीपरिषद् न्यायाधीशों की नियुक्ति में कोई हस्तक्षेप न करे और अनुच्छेद 74 के तहत कोई सलाह न दें और नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को उनकी सलाह पर कार्य करना आवश्यक न हो ।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायधीशों और मुख्य न्यायधीश की नियुक्ति के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्री एम० सी० सीतलवाड की अध्यक्षता में अगस्त, 1973 में नई दिल्ली में हुए वकीलों के अखिल भारतीय सम्मेलन में सर्वसम्मती से पास किए प्रस्ताव को अपनाया जाए । इस सम्मेलन में विख्यात वकीलों और विधिवेत्ताओं ने भाग लिया था । सम्मेलन का प्रस्ताव तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी को पेश किया गया था । यह सिफारिश की गई थी कि सर्वोच्च न्यायालय के सात वरिष्ठतम न्यायाधीशों की एक न्यायिक समिति बनाई जानी चाहिए जिसमें भारत के मुख्य न्यायाधीश भी हो । इसी प्रकार प्रत्येक उच्च न्यायालय में सात वरिष्ठतम न्यायाधीशों की न्यायिक समितियां बनाई जाए । ये समितियां परस्पर परामर्श से कार्य करेंगी और राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति की सलाह पर कार्य करना होगा और कार्यपालिका इस सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी ।]

उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों के स्थानान्तरण के संबंध में भी यही प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए । स्थानान्तरणों के कतिपय मामले विवाद से परे होंगे तथापि इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति पर ही छोड़ना होगा । हमारा यह भी सुझाव है कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीश और मुख्य न्यायाधीश अपने पद से निवृत्त होने के बाद भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन और कोई पद (चाहे वह जांच आयोग में ही कोई पद हो) स्वीकार करने के पात्र नहीं होंगे । यही एक मात्र रास्ता दिखाई पड़ता है जिससे न्यायपालिका को राजनीतिक कार्यपालिका से पूर्णत: मुक्त रखा जा सकता है और राज्यों में सत्ता में आने वाले अलग-अलग सामाजिक आर्थिक विचारधारा वाले राजनीतिक दल और केन्द्र सत्तासीन राजनीतिक दल जो कुछ राज्य सरकारों के प्रति घोर द्वेष भावना रखते हैं, संघीय प्रणाली में विश्वास रख सकते हैं । और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अखण्डता की ताकतों को मजबूत बना सकते हैं । संविधान द्वारा स्थापित पावन संस्थाओं को बदनाम और नष्ट करने की कोशिश की जा रही है । यह पूर्णत: उन व्यक्तियों की योग्यता, निष्ठा और महत्ता पर निर्भर करता है जो इन पदों पर कार्य करते हैं । उनकी नियुक्ति में कोई संदिग्धता या विवाद नहीं होना चाहिए । इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 74 में उचित संशोधन किया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 143 (i) के अधीन राष्ट्रपति कानून सम्बन्धी कुछ प्रश्नों को सर्वोच्च न्यायालय की राय जानने के लिए उस के सामने रख सकता है । श्री राजमन्नार समिति ने यह सिफारिश की है कि अनुच्छेद 143 (i) की तरह यह उपबन्ध किया जाए कि राज्यपाल को लोक महत्व के कानूनी प्रश्नों को उच्च न्यायालय के सामने रखने का प्राधिकार हो । अमेरीकी संघ में बहुत से राज्यों में संवैधानिक रूप से ऐसी व्यवस्था की गई है । राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय को ऐसे संदर्भ भेजने के लिए उपबन्ध किया जाए ।

चुनाव आयोग

7. संविधान के अनुच्छेद 324(2) के अधीन राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति करता है । यदि किसी अन्य आयुक्त की नियुक्ति भी की जाती है तो मुख्य चुनाव आयुक्त अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है । चूंकि व्यवहार में सभी प्रयोजनों में राष्ट्रपति अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्री परिषद् की सलाह पर कार्य करता है इसलिए वास्तव में राजनीतिक कार्यपालिका ही मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त, यदि कोई हो तो, की नियुक्ति करती है ।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पवित्रता और लोकतांत्रिक संस्था में विश्वास बहुत हद तक मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों, यदि कोई हो तो, की स्वतंत्रता और सत्यनिष्ठा, चारित्रिक दृढ़ता है और लोकतांत्रिक संचेतना पर निर्भर करता है । यदि वे केन्द्र में सत्तासीन दल की राजनीतिक कार्यपालिका के एजेंट के रूप में कार्य करते हैं तो लोकतांत्रिक प्रणाली से विश्वास उठ जाएगा और लोकतांत्रिक संस्थाएं नष्ट हो जाएंगी ।

राजनीतिक बहुलवाद में जहां केन्द्र और उन राज्यों के बीच जहां सत्ता में अलग-अलग राजनीतिक दल है, सद्भाव होना चाहिए, वहीं चुनाव आयोग भी न केवल स्वतंत्र होना चाहिए बल्कि इसका आचरण भी संदेह से परे होना चाहिए । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा नहीं की जानी चाहिए ।

उपर्युक्त पैरे में उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति में मुख्य चुनाव आयुक्त के पद पर सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश और चुनाव आयुक्तों के पदों पर उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीशों का चयन किया जाना चाहिए । इनकी नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को चाहिए कि वह उन समिति की सलाह पर कार्य करे । संविधान के अनुच्छेद 74 में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए । मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्त अपने पद से निवृत्त हो जाने के बाद भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई और पद स्वीकार करने के पात्र न रहें ।

राज्यपालों की नियुक्ति—अनुच्छेद 154 और 155

8. राष्ट्रपति को अन्तर्राज्यीय परिषद् की सलाह पर राज्यपाल की नियुक्ति करनी चाहिए न कि प्रधान मंत्री के नेतृत्व वाली मंत्री परिषद् की सलाह पर । हमारे संघीय ढांचे में राज्यपाल की भूमिका महत्वपूर्ण है । उन्हें राज्य के संवैधानिक प्रमुख के रूप में कार्य करना चाहिए, केन्द्रीय सरकार के एजेंट के रूप में नहीं । पद से हटाने के सम्बन्ध में उन्हें भी वही संरक्षण मिलना चाहिए जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश को प्राप्त है । वे निर्भय और स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सकें, इसके लिए यह आवश्यक है ।

राज्यों में मंत्रीमण्डल का गठन और उन्हें बर्खास्त करना—अनुच्छेद 164

9. इस अनुच्छेद विभिन्न प्रकार से दुरुपयोग किया गया है । केन्द्र राज्यपाल के माध्यम से राज्य के मंत्रि मण्डल को गिरा सकता है । आन्ध्र प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर का उदाहरण सर्वविदित है । यह तो विशाल जन दबाव और आन्ध्र प्रदेश के विधायकों की दृढ़ता के कारण ही सरकार को झुकना पड़ना इसलिए, इस अनुच्छेद में निम्नलिखित रूप में संशोधन किया जाना चाहिए—

(i) **मुख्य मंत्री की नियुक्ति**—केवल उसी व्यक्ति को मुख्य मंत्री बनाया जाना चाहिए जो विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करे । इसलिए, किसी को मुख्य मंत्री बनाने से पहले, मुख्य मंत्री पद खाली होने के तीन दिन के भीतर उसे विधान सभा का अधिवेशन बुलाना चाहिए ।

(ii) **बर्खास्तगी**—यदि कोई मुख्य मंत्री बहुमत खो देता है और यदि वह स्वयं त्याग पत्र नहीं देता है तो उसे बर्खास्त कर दिया जाना चाहिए ।

जिस समय विधान सभा का सत्र नहीं चल रहा हो यदि उस समय ऐसा लगता है कि मुख्य मंत्री ने विश्वास खो दिया है किन्तु मुख्य मंत्री विश्वास प्राप्त होने का दावा करता हो तो उसे विश्वास मत प्राप्त करने के लिए तीन दिन के भीतर विधान सभा का अधिवेशन बुलाना चाहिए ।

आकाशवाणी और दूरदर्शन

10. आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे माध्यमों पर केन्द्रीय एकाधिकार को रोकने की आवश्यकता है, इन्हें ऐसे निगम के अधीन रखा जाना चाहिए जो परिषद् के अधीन कार्य करें ।

11. उस प्रधान मंत्री की सलाह पर, जिसने बहुमत का समर्थन खो दिया हो, राष्ट्रपति को संसद को स्थगित या अध्यादेश जारी करने या लोक सभा को भंग नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार, उस मुख्यमंत्री की सलाह पर, जिसने बहुमत का समर्थन खो दिया हो, राज्यपाल को राज्य विधान सभा को स्थगित या अध्यादेश जारी या विधान सभा को भंग नहीं करना चाहिए ।

12 दुर्भाग्यवश हम स्थानीय निकायों यानि ग्राम पंचायतों, नगरपालिका मण्डलों और शहरी क्षेत्रों को शक्ति के विकेन्द्रीकरण की अपेक्षित ध्यान नहीं दे पाए हैं, केवल जिनके माध्यम से ही स्थानीय समस्याओं का समाधान किया जा सकता है । कोई व्यक्ति इन निकायों के समय पर चुनाव कराए जाने की चिन्ता नहीं करता । उनके पास धन नहीं है और अपने कार्यों को पूरा करने के लिए वे राज्य सरकारों का मुंह देखते हैं । इसलिए, हमारा सुझाव है कि प्रति पांच वर्ष बाद सभी स्थानीय निकायों के चुनाव कराए जाने चाहिए । अपने प्रकार्यों को पूरा करने के लिए उनके अपने वित्त स्रोत होने चाहिए ।

2. राज्य दल

आल इंडिया फारवर्ड ब्लाक

ज्ञापन

ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लाक की केन्द्रीय समिति के विचार

यह प्रश्नावली मौजूदा केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की समस्या को टुकड़ों में उभारती है, सम्पूर्ण रूप में नहीं। इसके अतिरिक्त, इसका दृष्टिकोण राजनीतिक–ऐतिहासिक होने की अपेक्षा विधिक और न्यायिक अधिक रहा है। किसी देश का संविधान न केवल कानूनी और न्यायिक प्रत्ययात्मक बारीकियों को मूर्त रूप देता है वरन् समय-विशेष में कार्य करने वाली राजनीतिक-आर्थिक और सामाजिक ताकतों के सह-सम्बन्धों को भी प्रतिबिम्बित करता है। हमारा संविधान भी इसका अपवाद नहीं हो सकता और न ही अपवाद है। इसलिए, इसकी अपरिवर्तनीयता सूत्र-वाक्य नहीं हो सकता बल्कि यदि परिवर्तन सामाजिक-आर्थिक ताकतों के सह-सम्बन्धों के अनुरूप हो तो किसी लिखित संविधान में परिवर्तनीयता को अनिवार्य कारक माना जाना चाहिए। इसलिए हमारी राय में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की पुन: रचना के लिए संविधान में संशोधन करना अनिवार्य होगा।

सरकार द्वारा आयोग के लिए निर्धारित विचारार्थ विषयों के अध्ययन-क्षेत्र को सीमित करते हैं जब अन्य बातों के साथ साथ यह कहा गया कि संविधान की उस योजना और ढांचे को ध्यान में रखा जाए जिसे संविधान निर्माताओं ने देश की स्वाधीनता, एकता और अखण्डता को सुरक्षित बनाए रखने के लिए परिश्रमपूर्वक तैयार किया था और जो लोगों के कल्याण के संवर्धन के लिए सर्वोपरि महत्व की है।

हमारे दल देश की स्वतन्त्रता, एकता और अखण्डता बनाए रखने में किसी से पीछे नहीं है। हम जो आगे सुझाव देंगे वे राष्ट्रीय कर्तव्यों और दायित्वों के विभिन्न महत्वपूर्ण पक्षों को ध्यान में रखकर तैयार किए गए है। इस सम्बन्ध में कोई आशंका नहीं होनी चाहिए। हमें आशा है कि यह सीमा संविधान में उचित संशोधन करने की सिफारिश करने में आयोग को बाधित नहीं करेगी।

संविधान का ऐतिहासिक विकास

2. स्वतंत्र भारत के संविधान की संकल्पना का मूल उस विदेशी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध किए गए लोगों के लम्बे संघर्ष में है, जिसने इस डेढ़ शताब्दी के शासन के दौरान अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए प्रशासन को अत्यधिक केन्द्रीकृत बनाए रखा। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए साम्राज्यवाद के विरुद्ध किए गए लम्बे संघर्ष में भारत की विविधता में एकता की जीती-जागती तस्वीर प्रस्तुत करते हुए और "फूट डालो शासन करो" के साम्राज्यवादी तंत्र को परास्त करते हुए सभी भाषाओं, संस्कृतियों, जातियों और धार्मिक वर्गों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। संघवाद के सिद्धान्तों पर आधारित संविधान की संकल्पना वस्तुत: स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही विकसित हो गई थी। इस संघीय संकल्पना को 1928 में मोतीलाल नेहरू की रिपोर्ट में और चालीस के दशक में प्रस्तावित अन्य संकल्पों और विचार-विमर्शों में अभिव्यक्ति मिली। स्वतंत्र भारत के संघीय संविधान की पूर्णत: स्पष्ट संकल्पना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1945 के चुनाव घोषणा पत्र में उभर कर आई जिसमें कहा गया था कि "भारत संघ इसके विभिन्न भागों का स्वैच्छिक मिलन होना चाहिए जिससे इसकी संघटक इकाइयों को अधिकतम स्वाधीनता मिले सामान्य और अनिवार्य संघीय विषयों की न्यूनतम सूची हो सकती है जो सभी इकाइयों पर लागू होगी इसके अतिरिक्त सामान्य विषयों की ऐसी वैकल्पिक सूची हो जिसे यदि वे चाहें तो स्वीकार कर सकते हैं।"

सत्ता के अन्तरण के बाद, विशेष रूप से देश विभाजन के बाद सम्पूर्ण देश का जो राजनीतिक वातावरण बना उसने संविधान सभा को मजबूर किया होगा कि संघवाद के मार्ग पर और आगे न जाया जाए और तब 1950 में भारत का वर्तमान संविधान सामने आया।

संविधान में कुछ ऐसे उपबन्ध भी है जो बहुत हद तक वही है जो ब्रिटिश सरकार के 1935 के अधिनियम में थे और जिनसे लोकतंत्र में विश्वास रखने वाले सभी वर्गों को निराशा ही हाथ लगती है। ये स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष से उभर कर आए लोकतांत्रिक विचारधारा की विरोधी संकल्पनाओं से परिपूर्ण है।

राज्य स्वायत्तता का ह्रास

3. स्वाधीनता के बाद तैयार किए गए संविधान को यद्यपि संघीय कहा जाता है लेकिन यह स्वरूप में अनिवार्यत: एकात्मक है। इसमें केन्द्र को राज्यों की विधायी, आर्थिक और वित्तीय तथा प्रशासनिक दोनों की स्वायत्तता का अतिक्रमण कर बृहत् शक्तियां दी गई है, जो कि संविधान की 8वीं अनुसूची (सूची 1, 2 और 3) में दी गई प्रविष्टियों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त, जो कुछ संघीय स्वरूप था भी, तो उसे पिछले तीस वर्षों के दौरान राज्यों की स्वायत्तता का उपहास करते हुए अधिकाधिक क्षीण कर दिया गया है। राज्यों की शक्तियों को क्षीण करने की प्रक्रिया आपात्स्थिति के दौरान अपनी पराकाष्ठा पर थी जब राज्य सरकारों की सारी स्वायत्तता छीन ली गई थी। इस प्रक्रिया में राज्यों की स्थिति एक भिखारी के समान थी। यह इसलिए सम्भव हो सका क्योंकि केन्द्र और राज्यों में—बहुत कम अवधि को और बहुत कम राज्यों को छोड़कर एक ही दल सत्ता में था।

अब जब कि देश अनेक राजनीतिक दलों के युग में आ गया है केन्द्र और राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्थाओं में परिवर्तन करने की आवश्यकता है ताकि वे वर्तमान वास्तविकता से अनुभव बने रहें। नई व्यवस्थाएं अनिवार्यत: सच्चे अर्थों में संघीय सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए। इसकी विपरीत दिशा में कोई भी कदम संकट ही पैदा करेगा।

केन्द्र में शासक दल से भिन्न दल या दलों की राज्य सरकारें हमेशा केन्द्रीय हस्तक्षेप के खतरे से ग्रस्त रहती हैं। केन्द्र के शासक दल द्वारा जनता के फैसले की अवहेलना करते हुए अपनी हुकूमत पुन: बहाल करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति का शासन लागू करना एक सामान्य प्रथा रही है। इस प्रावधान के घोर दुरुपयोग के अनेकों उदाहरण हैं पिछले 35 वर्षों में राष्ट्रपति का शासन लागू करने के लिए लगभग 70 बार अनुच्छेद 356 का सहारा लिया गया है। भिन्न-भिन्न कांग्रेस की अंदरूनी गड़बड़ियों को ठीक करने के लिए भी इसकी शरण ली गई है।

कानून और व्यवस्था बनाए रखना यद्यपि पूरी तरह राज्यों की जिम्मेवारी है तो भी केन्द्र द्वारा केन्द्रीय रिजर्व पुलिस, सीमा सुरक्षा बल, औद्योगिक सुरक्षा बल जैसे केन्द्रीय बलों को संबंधित राज्य सरकारों की सहमति के बिना लगाया जाना राज्यों की शक्ति और स्वायत्तता पर सोचा-समझा हमला ही कहा जा सकता है। यह प्रवृत्ति ऐसी अवस्था में पहुंच गई है कि केन्द्र सरकार ने त्रिपुरा सरकार की राय की पूरी तरह अवहेलना करते हुए त्रिपुरा राज्य के कुछ क्षेत्रों को "उपद्रवग्रस्त" घोषित कर दिया। संविधान के अनुच्छेद 256 और 257 के अधीन राज्यों को निदेश देने के केन्द्र के अधिकार राज्यों की स्वायत्तता और शक्ति पर अनावश्यक अंकुश है।

आंध्र प्रदेश विधान सभा द्वारा संविधान के अनुच्छेद 169 के अनुसार आंध्र प्रदेश विधान परिषद् समाप्त करने के लिए पास किए गए संकल्प के अनुसरण में संसद में समुचित कानून बनाने में सरकार की हाल ही की मनाही केन्द्र द्वारा राज्य की स्वायत्तता क्षीण करने का एक और प्रयास है।

राज्य विधायिका द्वारा पारित बिलों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रोकना राज्यों के लोकतांत्रिक रूप से चुने गए वैधानिक निकायों की शक्ति कम करता है। इससे कई बार विधान सभाओं के बहुमत वाले दल को जनता के आदेश का पालन करने का मौका नहीं मिलता।

पश्चिम बंगाल भूमि सुधार अधिनियम 1962 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने में असमान्य विलंब राज्यों के प्रगतिशील कानूनों को स्वीकृति में देरी करने या स्वीकृति न देने के संदिग्ध तरीकों से समाप्त किया जाना इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। राज्य विधायिका द्वारा चुनावों में किए गए वायदों को पूरा करने के उसके अधिकार को नकारना, (यदि केन्द्रीय मंत्रिमंडल संघीय

लोकतंत्र के सभी मानदंडों की अवहेलना करते हुए राजनीतिक रूप से ऐसा फैसला करे। केन्द्रीय मंत्रिमंडल (एक राजनीतिक निकाय) का वस्तुतः असाधारण अधिकार है।

राज्यपाल के पद को केन्द्र के शासक दल का अधीनस्थ और सहायक बना दिया गया है। राज्यपालों को वस्तुतः उसी स्थिति में ला दिया गया है जो ब्रिटिश राज के दिनों में देशी रियासतों के रेजीडेंट एजेंटों की थी।

ऐसे उदाहरण हैं, जब राज्यपालों ने केन्द्र के शासक दल के दलगत लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सेवाएं अर्पित करके अपने गरिमापूर्ण पद को दूषित किया है।

वित्तीय संबंध

राज्य की संसाधन पैदा करने की क्षमताएं बहुत सीमित हैं। केन्द्रीय विभाज्य पूल से संसाधनों के बंटवारे की कोई समान नीति नहीं है। संसाधनों का वर्तमान अंतरण संविधान के अधीन राज्यों द्वारा निभाए जाने वाले उत्तरदायित्वों के अनुरूप नहीं है। वित्त आयोग केन्द्र और राज्यों के बीच विभाज्य संसाधनों को बांटने की समस्या को मुख्यतः इस संबंध में सांविधिक सीमाओं के कारण, संतोषजनक ढंग से हल नहीं कर पाए हैं। केन्द्र द्वारा इस्पात पेट्रोलियम उत्पाद और अन्य पण्यों के मूल्यों में समय-समय पर वृद्धि करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिससे राज्यों के वित्तीय संसाधन कम हो रहे हैं और राज्यों से केन्द्र को संसाधनों का अंतरण बढ़ रहा है। फार्म उत्पादों के मूल्य निर्धारण की वर्तमान प्रणाली, जिसमें खेती की वास्तविक लागत, लाभ की उचित गुंजाइश और जोखिम छूट पर ध्यान नहीं दिया जाता, राज्यों के बोझ को और बढ़ाती है, क्योंकि उन्हें इस संबंध में सहायता और परिदान पर अधिक व्यय करना पड़ता है।

अपनी वाजिब आवश्यकताओं और वास्तविक संसाधनों के बीच के बढ़ते हुए अंतर से उत्पन्न सीमाओं से बाधित राज्य अब तक ऋणों, ओवरड्राफ्टों और केन्द्र से सहायता के जरिये अपना काम चला रहे हैं। वित्तीय अनुशासन के नाम पर केन्द्र द्वारा राज्यों के ओवरड्राफ्ट पर लगाए गए हाल ही के प्रतिबंधों से राज्य सरकारों पर अपने आर्थिक कार्यों को निपटाने की दिशा में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन प्रतिबंधों पर राज्यों की क्या प्रतिक्रिया रही है इसका पता पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा आठवें वित्त आयोग को प्रस्तुत किए गए ज्ञापन की टिप्पणियों से चलता है जो इस प्रकार है :

"दिलचस्प बात यह है कि भारत सरकार को भी ओवरड्राफ्टों का सहारा लेने की जरूरत पड़ती है, परंतु वह यह शब्द इस्तेमाल नहीं करते। वह केवल खजाना बिल जारी करते हैं और रिजर्व बैंक से धन निकाल लेते हैं। दिलचस्पी की बात यह भी है कि हमें जबकि अपने ओवरड्राफ्टों पर 13 प्रतिशत ब्याज देना पड़ता है, वे अपने खजाना बिलों पर मात्र 4.6 प्रतिशत ब्याज देते हैं।"

प्रासंगिक रूप से यहां यह भी बता दें कि विश्व बैंक और अन्य अंतर्राष्ट्रीय ऋण संस्थानों से प्राप्त सहायता केन्द्र द्वारा अधिक ब्याज दर पर दी जाती है।

केन्द्र की नीति का राज्यों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह उक्त ज्ञापन की एक अन्य टिप्पणी से स्पष्ट है जो इस प्रकार है—

"जिन क्षेत्रों से राज्यों से राजस्व का बटवारा किया जाता है, उनमें रियायतें दे कर लोकप्रियता प्राप्त की जाती है जबकि अन्य क्षेत्रों में प्रतिपूरक आयात किये जाते हैं। उदाहरण के लिए वर्ष 1983-84 के बजट में एक निश्चित स्तर तक आयकर में रियायत दी गई है, किंतु आयकर पर अधिभार में (10 से 12.5 प्रतिशत) वृद्धि की गई है। इस मद का सारा लाभ भारत सरकार का है।"

ज्ञातव्य है कि केन्द्र ने ऐसे अतिरिक्त कर लगाए जिनसे सब मिला कर 1430 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष मिलेंगे, जिसमें से केवल 80 करोड़ राज्यों को अंतरणीय है। यह बताना भी असंगत नहीं होगा कि सीमा शुल्क, उत्पाद-शुल्क और निगम-कर जैसे राजस्व के प्रमुख संसाधन विभाज्य पूल में शामिल नहीं हैं।

लगभग सभी राजस्व संसाधनों पर केन्द्र का अनन्य क्षेत्राधिकार होने के अलावा बैंक, बीमा और अन्य सार्वजनिक वित्तीय संस्थान भी केन्द्र के नियंत्रण में हैं। उनके निवेश ढांचे में राज्यों की कोई आवाज नहीं है, न ही उनके द्वारा अर्जित लाभ में राज्यों का हिस्सा है। इसी प्रकार मौद्रिक और आर्थिक नीतियां तैयार करने में भी राज्यों का कोई हिस्सा नहीं होता, जिसका असर अनिवार्यतः उन पर पड़ता है।

आयोजना और आर्थिक समन्वय

5. इसी तरह पंचवर्षीय योजनाएं बनाने, अग्रताओं का निर्धारण करने और नीतियों को बनाने तथा उन्हें कार्यान्वित करने में भी राज्यों की वस्तुतः कोई भूमिका नहीं है। योजना आयोग हालांकि एक असांविधिक और संविधानेत्तर निकाय है, किंतु उसे योजनाओं के संबंध में योजनाएं तैयार करने से लेकर उनके निष्पादन तक सभी मामलों में प्रशासनिक और अन्य व्यापक शक्तियां और प्राधिकार प्राप्त हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् केवल विचार-विमर्श करने वाला निकाय बन गया है और प्रधान मंत्री की ओर से उसकी समय-समय पर बैठकें एक रस्म मात्र बन गई हैं। न ही राष्ट्रीय विकास परिषद संविधान की संरचना है। केन्द्रीय सरकार की कार्यपालिका ही इसकी सृजक है और स्वाभाविक है कि वह उसकी ओर से कार्य करती है।

योजना निष्पादन में आर्थिक असमानता कम नहीं की है, न ही आर्थिक शक्ति को कुछ ही हाथों में एकत्र होने से रोका है, न गरीबी और बेरोजगारी कम की है, न लोगों के लिए बेहतर जीवन स्तर का सुनिश्चय किया है और न ही क्षेत्रीय असंतुलन समाप्त किया है, दूसरे शब्दों में यह क्रमिक योजनाओं के लक्ष्यों को पूरा करने में असफल रहा है। आर्थिक संकट को और विकट बनाने के अतिरिक्त योजना प्रशासन ने ऐसे अनेक विषयों पर केन्द्र का नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास में, जो समवर्ती और राज्य सूची में आते हैं, राज्यों के अधिकारों का अतिक्रमण करके राज्यों और केन्द्रों के बीच वैमनस्य उत्पन्न किया है।

शिक्षा और संस्कृति

6. शिक्षा को 42 में संशोधन अधिनियम द्वारा, जिसे आपातकाल के दौरान पारित किया गया था, समवर्ती सूची में शामिल किया गया था। संभवतः विश्व के किसी भी अन्य संघीय देश में शिक्षा अथवा सांस्कृतिक महत्व का कोई भी अन्य विषय किसी भी रूप में केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन नहीं है। किंतु शिक्षा के संबंध में और अधिकार पाने के बाद भी केन्द्र ने शैक्षिक प्रयोजनों के वास्ते राज्यों के लिए और धन उपलब्ध नहीं किया है। राज्यों को 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य बनाने के अपने संवैधानिक दायित्वों को पूरा करने के लिए भी धन नहीं दिया जाता।

राज्य विश्वविद्यालयों के साथ भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा भेदभाव किया जा रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की कुल वित्तीय सहायता में से 80 प्रतिशत केन्द्रीय विश्वविद्यालयों पर खर्च किया जाता है जब कि शेष 20 प्रतिशत को 113 राज्य विश्वविद्यालयों के बीच बांटा जाता है। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषायी समूह का आकार चाहे कुछ भी हो। हिन्दी को थोपने से भावनात्मक एकता की प्रक्रिया में मदद नहीं मिलती बल्कि इसमें रुकावट आती है, हालांकि हम हिन्दी को सरकारी संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं।

राष्ट्रीय एकता और अखंडता

पिछले 35 वर्षों में सरकार द्वारा अपनाई गई गलत आर्थिक नीतियों की परिणति क्षेत्रीय असंतुलन में हुई है। इससे विखंडनकारी, अति राष्ट्रीयतावादी, संकीर्ण बल्कि अलगाववादी प्रवृत्तियां बढ़ती हैं जो आज हम देश के विभिन्न भागों में देख रहे हैं। हमारे देश को अस्थिर बनाने के अपने कुटिल इरादों को पूरा करने के लिए साम्राज्यवादी किसी भी अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकते। स्वाभाविकतः इसने केन्द्र-राज्य संबंधों के प्रश्न को नए आयाम प्रदान किए हैं।

इस उपमहाद्वीप पर अपना प्रभुत्व जमाने की अमरीकी विश्व नीति के परिणामस्वरूप सुरक्षा पर्यावरण में तेजी से आई गिरावट के साथ ही राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखने और स्वाधीनता तथा संप्रभुता की जड़ों को

मजबूत बनाने का काम अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इस कार्य को पूरा करने के लिए राज्यों और केन्द्र के बीच ठोस, संतुलित, स्वस्थ और सहयोगात्मक संबंध होने अनिवार्य है।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए, सत्तावाद के विरुद्ध निरंतर संघर्ष के लिए, देश की एकता और अखंडता को मजबूत करने के लिए, देश को स्वतंत्रता और प्रभुसंपन्नता की रक्षा के लिए, जनहित में सुनियोजित आर्थिक विकास के लिए और अन्य लोकतांत्रिक कार्यों को पूरा करने के लिए केन्द्र-राज्य संबंधों को पुन: निर्धारित करना आवश्यक है और इस पुनर्निर्धारण का मूल आधार राज्यों की शक्ति और स्वायत्तता में वृद्धि करना होना चाहिए, इसी से ही राज्य अधिक सशक्त हो सकेंगे। राज्यों को शक्तिशाली बनाने के हमारे उद्देश्य का अर्थ केन्द्र को कमजोर करना नहीं है। शक्तिशाली राज्य ही केन्द्र को मजबूत बनाते हैं। हम मजबूत केन्द्र चाहते हैं लेकिन घमंडी या तानाशाही केन्द्र नहीं।

तथापि हम यह नहीं भूल सकते कि वर्तमान संविधान वर्ग संघर्ष का एक साधन है। इसी वजह से यह जनता को बुनियादी समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ है। न ही हम यह मानते हैं कि हमारे द्वारा सुझाए गए तरीके से केन्द्र राज्य संबंधों को फिर से तय करने से हमारी विशाल जनता की सामाजिक आर्थिक स्थितियों में कोई बड़ा परिवर्तन होगा और उन्हें वर्ग शोषण से मुक्ति मिलेगी। फिर भी, सुझाए गए तरीके के अनुसार केन्द्र-राज्य संबंधों का पुनर्निर्धारण निश्चित रूप से राज्य सरकार को इस योग्य बनाएगा कि लोगों को अब की अपेक्षा बेहतर ढंग से राहत दिला सके और साथ ही इससे राज्यों को अपनी जनता की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त होगा।

इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए अखिल भारतीय फारवर्ड ब्लाक की केन्द्रीय समिति निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत करती है :

I. राजनीतिक और प्रशासनिक पहलू

1. संविधान की प्रस्तावना में संशोधन करके भारत के गणतंत्र के उल्लेख में "संघीय" शब्द जोड़ा जाए।
2. राज्यपाल की स्थिति किसी भी दशा में राष्ट्रपति की स्थिति से भिन्न नहीं होनी चाहिए। राज्यपाल को कोई विवेकाधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। राज्यपालों की नियुक्ति का तरीका बदला जाना चाहिए। राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा उस पैनल के आधार पर हो जो संबंधित राज्य सरकार भेजे।
3. किसी राज्य में सांविधिक अड़चन आने पर केन्द्र की तरह राज्य में चुनाव कराने का प्रावधान होना चाहिए।
4. अनुच्छेद 360, जो वित्तीय स्थिरता को खतरे के आधार पर राष्ट्रपति को राज्य प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार देता है, हटा दिया जाना चाहिए।
5. अनुच्छेद 200 और 201 में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि राज्य सूची से संबंधित मामलों पर कानून बनाने के लिए राज्य विधायिका सर्वोपरि हो और केन्द्र अथवा राज्यपालों द्वारा, उन बिलों के मामलों को छोड़ कर, जो उच्च न्यायालय की शक्तियों को प्रभावित करते है, अन्य किसी भी आधार पर हस्तक्षेप करने की संभावना न रहे।
6. अनुच्छेद 248 और संघीय सूची की प्रविष्टि संख्या 97 केन्द्र को सभी मामलों से संबद्ध अवशिष्ट शक्तियां प्रदान करते हैं। ये अवशिष्ट शक्तियां राज्यों के पास होनी चाहिए।
7. अनुच्छेद, 249, जो केन्द्र को राष्ट्रीय हित के आधार पर राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अधिकार देता है, हटा दिया जाना चाहिए।
8. अनुच्छेद 252, जो केन्द्र को दो या दो से अधिक राज्यों के अनुरोध पर राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार देता है, हटा दिया जाना चाहिए।
9. अनुच्छेद 263 राष्ट्रपति को अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना करने का अधिकार देता है। यह अनुच्छेद सिफारिश के रूप में है आज्ञापक नहीं। इसे आज्ञापक बनाया जाना चाहिए। इस परिषद में प्रधानमंत्री और सभी राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होने चाहिए। प्रधानमंत्री परिषद् का अध्यक्ष होगा। यह परिषद राज्यों और केन्द्र के तथा राज्यों के आपसी झगड़ों और राष्ट्रीय महत्व के अन्य मामलों पर कार्य करेगी। परिषद का राजधानी में अपना एक स्थायी कार्यालय होगा।
10. अनुच्छेद 365, जो राष्ट्रपति को संविधान के किसी भी प्रावधान में केन्द्र की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग से दिए गए किसी निदेश का कार्यान्वयन न करने पर राज्य सरकारों को बर्खास्त करने का अधिकार देता है, हटा दिया जाना चाहिए।
11. अनुच्छेद 370, जो जम्मू और कश्मीर को विशेष संवैधानिक स्थिति प्रदान करता है, को शब्दों और भावनाओं के साथ बनाए रखा जाएगा और इसकी संरक्षा की जाएगी।
12. भारतीय प्रशासनिक सेवाएं, भारतीय पुलिस सेवाएं इत्यादि जैसी अखिल भारतीय सेवाएं, जिनके अधिकारी राज्यों में नियुक्त किए जाते हैं, लेकिन जो केन्द्र सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनात्मक नियंत्रण में रहते है, समाप्त कर दी जानी चाहिए। केवल संघीय सेवाएं और राज्य सेवाएं होनी चाहिए और उनमें भर्ती क्रमश: संघीय सरकार और संबंधित राज्य सरकार द्वारा की जानी चाहिए। संघीय सेवाओं के कार्मिक संघ के अनुशासनात्मक नियंत्रण के अधीन और राज्य सेवाओं के कार्मिक संबंधित राज्य सरकारों के अनुशासनात्मक नियंत्रण में रहने चाहिए। केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकार के कार्मिकों पर कोई न्यायाधिकार नहीं होना चाहिए।
13. न्यायपालिका सभी स्तरों पर राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त होनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक न्यायिक परिषद होनी चाहिए, जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण के मामले में सिफारिशें करे। अपनी सिफारिशें करने से पहले उन्हें राज्य सरकारों, संघ सरकार और उच्च न्यायालयों के प्रधान न्यायाधीशों और न्यायाधीशों से परामर्श करना चाहिए। सर्वोच्च न्यायलय की न्यायिक परिषद् की सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकर होनी चाहिए।
14. चुनाव आयोग में तीन सदस्य होने चाहिए, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा न्यायिक परिषद की सिफारिश पर की जाए, जैसा कि पैरा 13 में उल्लिखित है, ताकि उसकी विश्वसनीयता और निष्पक्षता सुनिश्चित की जा सके।
15. आकाशवाणी, दूरदर्शन और सरकार के प्रबंधाधीन अन्य प्रचार माध्यमों पर नजर रखने के लिए एक सांविधिक संचार परिषद कायम की जानी चाहिए ताकि इस महत्वपूर्ण प्रचार माध्यम का प्रयोग पार्टी हितों के लिए न किया जा सके। इस परिषद में राज्य सरकारों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाए।
16. कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है और इस मामले में राज्य के विशेषाधिकार का सम्पूर्ण सम्मान किया जाना चाहिए। संबंधित राज्य सरकार की पूर्व सहमति के आधार पर केन्द्रीय पुलिस बलों को लगाया जा सकता है। विक्षुब्ध क्षेत्र अधिनियम संबंधित राज्य की सहमति के बिना लागू नहीं किया जाना चाहिए।

II. आर्थिक और वित्तीय पहलू

1. राज्यों का कार्यक्षेत्र बढ़ाते समय हमें ऐसे मामलों पर संघीय प्राधिकार को कायम रखने और उसे मजबूत करने की भी कोशिश करनी चाहिए, जो केवल संघीय प्राधिकरण द्वारा ही किए जा सकते है, किसी एक राज्य द्वारा नहीं, जैसे कि रक्षा, विदेशी मामले, विदेश व्यापार, मुद्रा, संचार तथा आर्थिक समन्वय और आयोजन। केन्द्र

को भूमिका समन्वयकारी होनी चाहिए। आयोजना मूल्य, वेतन निर्धारण जैसे क्षेत्रों में, केन्द्र न केवल समन्वय करे बल्कि उसे सामान्य निर्देश भी जारी करने चाहिए।

2. यद्यपि योजना और आर्थिक समन्वय के मामले में केन्द्र को राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा निर्धारित सामान्य दिशा-निर्देशों का पालन करना होगा, जिसमें केन्द्र के साथ राज्यों का भी प्रतिनिधित्व होगा। इस समय न तो इस परिषद् का और न ही योजना आयोग के संविधान में कोई विशिष्ट उल्लेख है। एक अलग अनुच्छेद शामिल करके इस विसंगति को दूर किया जाए, जिसमें यह स्पष्ट रूप से लिखा हो कि योजना आयोग का गठन राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निर्धारित होगा। इस समय विकास के प्रयोजन के लिए ऋण और अनुदान योजना आयोग का विशेषाधिकार है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि आयोग के कार्यचालन में राज्यों की भी कुछ आवाज हो। आयोग को चाहिए कि राज्यों को अपने तरीके से विकसित होने में मदद दे और उन्हें अधिक शक्तियां और संसाधन दिए जाएं।

3. औद्योगिक और बिजली या सिंचाई योजनाएं, जिनका एक से अधिक राज्यों का संबंध हो, संघ सूची में रखनी होंगी, ताकि इन बहु-राज्यीय परियोजनाओं के संबंध में केन्द्रीय सरकार एक सामान्य नीति अपना सके और अंतिम निर्णय ले सके, जबकि उनका निष्पादन और क्रियान्वयन राज्य सरकार के माध्यम से होना चाहिए।

4. औद्योगिक लाइसेंसों इत्यादि से संबंधित मामलों में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बटवारे में भारी संशोधन किए जाने की आवश्यकता है। सातवी अनुसूची की सूचियों को फिर से तय किया जाए ताकि कुछ निश्चित प्रकार के उद्योगों के संबंध में राज्यों को अनन्य अधिकार दिए जा सकें।

5. वित्त आयोग और राजस्व के वितरण से संबंधित अनुच्छेदों में संशोधन करके यह व्यवस्था की जाए कि केन्द्र द्वारा सभी स्रोतों से प्राप्त कुल राजस्व का 75 प्रतिशत वित्त आयोग द्वारा विभिन्न राज्यों में आबंटित किया जाए। राज्यों की भिखारियों जैसी स्थिति समाप्त करने के लिए ऐसा करना जरूरी है।

कुल प्राप्तियों के इस 75 प्रतिशत का कितना अनुपात और किन सिद्धान्तों पर विभिन्न राज्यों के बीच विभाजित किया जाए। इसका निर्णय वित्त आयोग करेगा।

केन्द्र और राज्यो के बीच राजस्व के वितरण के अनुपात का निर्णय करना वित्त आयोग का काम नहीं होना चाहिए। उसका काम तो केवल वह अनुपात निश्चित करना होना चाहिये जिसके अनुसार केन्द्र द्वारा प्राप्त कुल धन, जिसमें से 75 प्रतिशत राज्यों को आबंटित किया जाना है, प्रत्येक राज्य को कितना धन मिले।

अनुच्छेद 280, खंड 3 उपखंड (क), जिसमें उन करों की निवल प्राप्तियों को संघ और राज्यों के बीच वितरित किए जाने का प्रावधान है, जो संघ और राज्यों के बीच बांटे जाते हैं या बांटे जाएं हटा दिया जाए और इस समूचे खंड को इस प्रकार नए सिरे से लिखा जाए जिससे यह स्पष्ट हो कि प्राप्त धन में से राज्यों को उनके हिस्से आबंटित करने की राष्ट्रपति को सिफारिश करना आयोग का कर्तव्य है।

राज्यों को अपने आप कर लगाने के संबंध में और अपने मामलों में लोक ऋणों की सीमाएं निर्धारित करने के संबंध में और शक्तियां दी जानी चाहिए।

III. विविध

1. संघीय इकाइयों की समानता के सिद्धांत को लागू करने और राज्यों की स्वायत्तता के और ह्रास को रोकने के लिए राज्य सभा के चुनाव भी लोक सभा के चुनावों के साथ सीधे लोगों द्वारा किए जाने चाहिए। राज्य सभा में सभी राज्यों का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए, सिवाय उन राज्यों के जिनकी जनसंख्या 30 लाख से कम है। दोनों सदनों को समान अधिकार होने चाहिए।

2. संविधान के अनुच्छेद 3 में, जो किसी राज्य के क्षेत्र को एकतरफा रूप से बदलने का अधिकार संसद को देता है, उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि किसी राज्य का नाम और क्षेत्र संबंधित राज्य विधायिका की विशिष्ट सहमति के बिना संसद द्वारा बदला नहीं जा सकेगा।

क्षेत्र को लेकर दो या अधिक राज्यों के बीच यदि कोई विवाद हो तो राज्यों के बीच अन्य विवादों के समाधान के लिए संविधान में पहले से किए गए प्रावधानों के अनुसार विवाद हल करने के उपाय किए जाने चाहिए। जैसे कि कई राज्यों के बीच से होकर बहने वाले एक ही नदी के जल संसाधनों का प्रयोग।

3. आठवी अनुसूची में उल्लिखित भाषाएं केन्द्र और राज्यों में सभी स्तरों पर प्रयोग किए जाने की अनुमति होनी चाहिए। भारत के प्रत्येक नागरिक को सरकार की किसी भी शाखा साथ उच्चतम स्तर तक व्यवहार करने में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करने का अधिकार होगा। संघ के सरकारी कामकाज के लिए हिन्दी के साथ साथ अंग्रेजी को भी तब तक जारी रखा जाना चाहिए जब तक अहिन्दी भाषी इसके लिए प्रोत्साहित न हों। आठवीं अनुसूची को और संशोधित करके उसमें नेपाली जैसी कुछ अन्य भाषाएं भी शामिल की जानी चाहिए।

द्रविड़ मुनेत्र कषगम

ज्ञापन

प्रस्तावना

डी० एम० के० दल के अध्यक्ष श्री एम० करुणानिधि ने तमिलनाडु का मुख्यमंत्री बनने के बाद 17-3-68 को नई दिल्ली मे एक पत्रकार सम्मेलन में यह घोषणा की कि डी० एम० के० सरकार भारत में केन्द्र–राज्य संबंधों पर विचार करने के लिए शीघ्र ही विशेषज्ञों की एक समिति गठित करेगी। तदनुसार तमिलनाडु सरकार संघीय संरचना में भारत के संविधान के प्रावधानों के संदर्भ में केन्द्र और राज्यों के बीच कैसे संबंध होने चाहिए इस समूचे प्रश्न पर विचार करने के लिए और संविधान में ऐसे उपयुक्त संशोधन सुझाने के लिए जो राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता प्रदान करें, 22 सितंबर 1969 को एक समिति गठित की जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति शामिल थे :

डा० पी० वी० राजमन्नार	
(तमिलनाडु उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश)	**अध्यक्ष**
डा० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदलियार	
(मद्रास विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति)	**सदस्य**
श्री पी० चंद्रा रेड्डी	
(मद्रास उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश)	**सदस्य**

इस समिति ने, जो राजमन्नार समिति के नाम से जानी जाती है, मई 1971 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

यह पहला अवसर था किसी राज्य सरकार ने इस विषय पर व्यापक और वैज्ञानिक जांच करवाई। राजमन्नार समिति की रिपोर्ट भारत में संघीय संविधान के परिचालन के अध्ययन की एक संदर्भिका है।

डी० एम० के० पार्टी ने राजमन्नार समिति की सिफारिशों का अध्ययन करने के लिए अपनी ओर से एक समिति नियुक्त की और इस समिति ने अपने सुझाव और अपनी टिप्पणियां दीं। (पृष्ठ 3)

मुख्यतः इसी रिपोर्ट के आधार पर श्री एम० करुणानिधि तत्कालीन मुख्यमंत्री ने 16 अप्रैल, 1974 को तमिलनाडु की विधानसभा में राज्य स्वायत्तता पर एक संकल्प रखा (पृ० 10)।

राज्य स्वायत्तता और राजमन्नार समिति की रिपोर्ट पर तमिलनाडु सरकार के विचार पृष्ठ 16 में दिए गए हैं।

विधान सभा ने इस रिपोर्ट पर 5 दिन तक विचार विमर्श किया और 20-4-1974 को संकल्प पारित किया गया।

(राज्य स्वायत्तता पर यह संकल्प तब अनुवर्ती कार्रवाई के लिए संघ सरकार को भेज दिया गया) ।

राजमन्नार समिति रिपोर्ट पर द्रविड़ मुनेत्र कषगम् के विचार

द्रविड़ मुनेत्र कषगम् ने 24 अप्रैल, 1971 को कोयम्बतूर में हुई बैठक में अपनी महापरिषद् के प्रस्ताव पर तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त केन्द्र-राज्य संबंध जांच समिति की रिपोर्ट की जांच करने और संपूर्ण भारत की अखंडता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बगैर संघीय गठन में राज्यों की अधिकतम स्वायत्तता की रूपरेखा बताते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक उपसमिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष डा० पी० वी० राजमन्नार थे ।

यदि के० सी० ह्वेरे के साथ संघीय सिद्धान्त से हमारा यह मतलब हो कि प्रत्येक राज्य व केन्द्र सरकार को "अपने क्षेत्र तक ही सीमित रहना चाहिए और उस क्षेत्र में वह एक दूसरे से अलग रहने चाहिए" और "न आम और न क्षेत्रीय सरकार एक दूसरे के अधीन होनी चाहिए" तभी शक्तियों के विकेन्द्रीकरण मात्र से स्पष्ट रूप से तुलना करते हुए स्वायत्तता इसका अभिन्न अंग होती है, जैसा कि इंग्लैंड में है और पर्शिया में था––ये ही विकेन्द्रीकृत एकात्मक सरकारों के उदाहरण हैं ।

यह बात तो सभी जानते हैं कि संविधान सभा ने "लघु संघ" के सृजन के लिए बैठक की ओर विभाजन के कारण यह मुद्दा तो पीछे छूट गया और कश्मीर में विभाजन-भय युद्ध, तेलंगाना में राजद्रोह और हैदराबाद में रजाकार गड़बड़ियों के कारण अन्धकारमय पृष्ठभूमि में वर्तमान संविधान––"एक नये संघवाद* को लेकर सृजित हुआ और परिणामस्वरूप राज्यों के अधिकारों और स्वायत्तता को ही नुकसान पहुंचा ।

एच० वी० पतसकर ने संविधान सभा में इसे प्रस्तुत किया,

"–––दोबारा पढ़ने पर हम में आशंका की भावना जागृत हुई । इसका परिणाम यह हुआ कि राज्यों की स्वायत्तता और उनकी अर्द्ध-स्वायत्तता को राष्ट्रीय संकट के रूप में देखा जाने लगा––एक ऐसे संघ के विचार से हमने प्रान्तों का नाम राज्यों में बदलना शुरू किया । यदि ये विचार पूरे समय बना रहता तो हम कदापि यह परिवर्तन न करते । लेकिन चूंकि "राज्य" की बात थी अत: राज्य के अधिकारों को इस प्रकार कर दिया गया कि इसे "अब राज्य" कहना मिथ्या लगता है ।"**

"संविधान" जैसा कि आइवर जेनिंग्स ने व्यक्त किया "प्रत्यक्ष रूप से भारत सरकार अधिनियम 1935 से व्युत्पन्न हुआ, जिसके अधिकांश उपबंधों को ज्यों की त्यों उतार लिया गया" और जैसा कि दुर्गा दास बसु का विचार है, 75 प्रतिशत संविधान तो इसी अधिनियम से उत्पन्न हुआ ।" खेद की बात है कि उक्त अधिनियम के जिन उपबंधों का सृजन" उपनिवेश-वादी शासकों ने अपने उपयोग के अनुरूप किया गया था और जिनका तब कांग्रेस दल ने पूर्णत: विरोध किया था उन्हें हमारे वर्तमान संविधान में शब्दश: शामिल कर लिया गया है और इसी कारण कुछ लेखक वर्तमान संविधान को "1935 के अधिनियम का मूलावशेषी" कहते हैं ।"

हम यह समझते हैं कि संघीय शब्द के अर्थ को, बिना किसी कठिनाई के, साधारण प्रथागत संघ तथा अत्यंत संहत संघों को इसके अन्तर्गत लाने के लिए, विस्तार दिया जा सकता है जो वस्तुत: एकात्मक राज्यों के रूप में चल सकता है । किंतु हमारे संविधान की खास बात यह है कि मध्यम आलोचक इसे "एकात्मक विशेषताओं का परिसंघ" या अर्ध परिसंघ† कहते हैं जबकि कटु आलोचक राज्यों को "गौरवान्वित नगरपालिका" या "अनुदान प्राप्त करने वाले निगमों"‡

*ग्रेनविल ऑस्टिन, "दी इण्डियन कान्स्टीट्यूशन : कॉर्नर स्टॉन ऑफ ए नेशन", पृ० 193.

**सी०ए०डी० वोलूम. XI पृ० 670–673.

†के० सी० व्हेरे, "फेडरल गवर्नमेंट" ।

‡1. डॉ० अशा "दी हिन्दुस्तान टाइम्स", 5 फरवरी, 1963.

से अधिक कुछ नहीं मानते । इस विचार को कुछेक ने अर्थोक्तिपूर्ण समझा, किन्तु वास्तव में इस विश्लेषण में जो बात महत्व रखती है वह लिखित संविधान नहीं बल्कि सरकार का व्यवहार है । "संघीय संविधान" की विशेषता रखनेवाला देश इस ढंग से कार्य कर सकता है मानो इसकी सरकार संघीय न हो । या "गैर-संघीय संविधान" की विशेषता रखने वाला देश इस तरह से कार्य कर सकता है कि वह संघीय सरकार का उदाहरण पेश करे । किंतु हमारा 25 वर्षों का अनुभव केन्द्रीकरण की प्रत्यक्ष प्रवृत्ति दर्शाता है और "राज्यों की स्वतंत्रता को भुला कर और बिना समझे-बूझे एकात्मक राज्य की स्थापना की जा रही है ।"*** फिर भी हमारे संघीयवाद को मान्यता देने वाली सत्ता प्राय: "सहयोगी संघीयवाद" का प्रयोग करती है और ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं जो यह दर्शाते हैं कि केन्द्र "उच्च कोटिक" है ।

कुछेक की यह धारणा है कि प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट ने केन्द्र-राज्य संबंधों में मनमुटाव के लिए संतोषजनक समाधान प्रस्तुत किया है । हम इस विचार से सहमत नहीं हैं । किंतु मुख्यत: इस कारण से अधिकांश आधारभूत प्रश्न और समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई हैं क्योंकि प्रशासनिक सुधार आयोग ने कभी इन प्रश्नों की जांच ही नहीं की । इस संबंध में हमें उन प्रतिष्ठित व्यक्तियों की बुद्धिमानी में कोई कमी नजर नहीं आती जिन्होंने प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया । जैसा कि इस आयोग के नाम से ही स्पष्ट होता है कि उसने केन्द्र-राज्य संबंधों के केवल प्रशासनिक पक्ष पर ही ध्यान दिया । जैसा कि अध्ययन दल ने स्वीकारा है कि उनकी "जांच केवल प्रशासनिक सुधारों से संबंधित थी, न कि आधारभूत संवैधानिक और राजनीतिक सुधार से ।"@ उन्होंने "इस अध्ययन के कार्यक्षेत्र में" वित्तीय संबंधों को नहीं लिया । इन्होंने अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं पर भी कार्रवाई नहीं की । जैसा कि अध्ययन दल ने स्पष्ट किया है कि, हमने इस अध्ययन में अलग-अलग क्षेत्रों की मूल नीति के प्रश्नों को नहीं लिया है हालांकि इनमें केन्द्र-राज्य संबंधों को अभिन्न रूप में लिया जा सकता है । अत: भाषा संबंधी या खाद्यान्न उपलब्ध कराने और इसके वितरण से संबंधित मुद्दे हमारे अध्ययन के लिए अनुपयुक्त समझे गये । इससे निस्संदेह ही लोगों के जीवन और केन्द्र राज्य संबंधों की दिशा पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है किंतु प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता की जांच करने वाले निकाय का काम इन मूल प्रश्नों की जांच करना नहीं था ।"@@

हम यहां संविधान सभा में प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्यक्ष श्री के० हनमन्तैय्या के कथन को उद्धृत करना चाहते हैं :

"स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हम महात्मा गांधी द्वारा सिखाए और प्रस्तुत किए गए कुछ सिद्धान्तों और आदर्शों के समर्थक थे । अपनी विलक्षण भाषा में उन्होंने जो सर्व प्रथम सलाह दी वह यह थी कि इस देश का संवैधानिक ढांचा विशाल आधार वाला और पिरामिड जैसा होना चाहिए, जिसका निर्माण आधार से होना चाहिए । पर जो कुछ भी किया गया वह इसके विपरीत था । प्रान्तों व राज्यों तथा लोगों से इसका नेतृत्व ले लिया गया और सभी शक्ति केन्द्र में केन्द्रित कर दी गई । वास्तव में इस तरह के संविधान की महात्मा गांधी ने न तो कभी इच्छा ही की थी और न परिकल्पना ।"

–––पर प्रशासनिक सुधार आयोग ने इस स्थिति में परिवर्तन करने के लिए कुछ भी नहीं किया ।

यद्यपि इसके अतिरिक्त, प्रशासनिक सुधार आयोग संविधान में भारी परिवर्तन करने का विचार नहीं रखता क्योंकि इसका यह विचार है कि चाहे कोई भी दल सत्ता में हो संविधान निश्चित रूप से सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए काफी लचीला है, "बशर्ते कि सत्ताधारी दल उसी भावना से काम करें जिस भावना से काम करने की आशा संविधान निर्माताओं ने की थी । हम यह जानते हैं कि इस "भावना" का सदैव ध्यान नहीं रखा गया है और अनुच्छेद-356 का दुरुपयोग संविधान और गणतंत्र से धोखा करने के समान ही है और इसके कई उदाहरण सामने हैं । इसी तरह संस्थापकों के शब्दों की अपेक्षा उनकी मायावी

***राजाजी, "दी हिन्दुस्तान टाइम्स" 17 अप्रैल, 1962.

@अध्ययन दल की रिपोर्ट, केन्द्र–राज्य संबंध (प्रशासनिक सुधार आयोग)।
पृ० 8.

@@वही, पृष्ठ 8–9.

भावना को अधिक महत्व देना खतरनाक होता है । इससे कौन इन्कार कर सकता है कि उक्त भावना को खोजने और उसका ठीक ठीक पता लगाने का काम न्यायपालिका की बजाय सत्ताधारी दल को सौंपने से स्वेच्छाचारी शासन की क्रूर योजना को बढ़ावा नहीं मिलेगा । यह कि "विश्व में जो सर्वाधिक लंबा और संवैधानिक प्रलेख प्रस्तुत हुआ है" उसमें कुछेक बातों को सत्ताधारियों के लिए छोड़ दिया है. इसे हम विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संविधान की अपर्याप्तता के लिए शिष्टोक्ति ही मानते हैं । इसीलिए, हम प्रशासनिक सुधार आयोग से भिन्न संघवाद के अपने अनुभव के अनुसार संविधान के पुनर्मूल्यांकन पर जोर देते हैं ।

संघवाद पर हमारा बल किसी अव्यावहारिक दृष्टिकोण के प्रति लगाव के कारण नहीं है । यदि किसी भी तरह इससे बचने की संभावना रहती तो कोई भी संघीय संविधान स्वीकार नहीं करता ।* जैसा कि 1934 में भारतीय संवैधानिक सुधार संयुक्त समिति की रिपोर्ट में बताया गया :—

"भारतीय समस्याओं का अध्ययन करने वाला प्रत्येक छात्र चाहे उसकी पूर्वधारणा कुछ भी हो, 1919 की संयुक्त समिति से लेकर सांविधिक आयोग तक और सांविधिक आयोग से बाद के समय में, विकेन्द्रीकरण के प्रति स्पष्ट प्रेम के कारण नहीं बल्कि स्पष्ट तथ्यों के बल के कारण प्रांतीय स्वायत्तता के पक्ष में हो गया ।"

ये शक्तिशाली तथ्य भारत के महाद्वीपीय भौगोलिक विस्तार, अलग-अलग भाषा, संस्कृति, इतिहास और आदतें लिए इसमें रहने वाले लोगों और प्रत्येक राज्य के आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के कारण उत्पन्न हुए हैं ।

यह सही है कि जब भी अशोक और अकबर जैसे शक्तिशाली शासक हुए, भारत गौरव की पराकाष्ठा पर रहा । किन्तु वे अपने साम्राज्य के दूर-दूर फैले भागों पर अपना कड़ा नियंत्रण न रख सके और उनके चले जाने के साथ ही उनका साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया । इससे यह ऐतिहासिक आवश्यकता सिद्ध होती है कि मजबूत और समृद्धिशाली भारत के लिए केवल केन्द्र ही मजबूत नहीं होना चाहिए बल्कि इसकी इकाइयां भी समान रूप से मजबूत होनी चाहिए । हमारे देश में एकात्मक सरकार की आजमाइश की गई किन्तु इसे अन्ततः अपनी जरूरतों और प्रवृत्ति के अनुपयुक्त मान कर ठुकरा दिया गया ।

—इसलिए भारत के लिए संघीय व्यवस्था अनिवार्य है क्योंकि यह प्रजातांत्रिक विकल्प के रूप में संघ की अनेकता से जोड़ने का अवसर प्रदान करती है ।

पिछले 25 वर्षों से वर्तमान संविधान के संबंध में हमारा अनुभव यही रहा है कि लोगों और विभिन्न राष्ट्रीयताओं की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए अपर्याप्त है । राज्यों के केन्द्र के अधीन काम करने का लक्ष्य पूरे संविधान में प्रवाहित है । चूंकि वर्तमान संविधान अधिकांश रूप से 1935 के अधिनियम से लिया गया है, इसलिए यह "व्यक्तियों और संघटक" इकाइयों की आशंकाओं पर आधारित है जो उस औपनिवेशिक युग में जरूरी था । हालांकि राष्ट्र निर्माण संबंधी कार्यकलाप राज्यों के पास हैं किन्तु उनके वित्तीय संसाधन उनके दायित्वों के अनुरूप नहीं हैं और नई दिल्ली के अत्यन्त केन्द्रीकृत प्रशासन ने राज्यों के नवीनतम सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन लाने वाले कार्यक्रमों तथा पहलशक्ति को दबा दिया है । इस योजना का भयावह परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रीय पिछड़ेपन की समस्या का कोई हल नहीं निकला है और उन्नत कहे जाने वाले राज्य यह आर्तनाद कर रहे हैं कि उनका आगे विकास रुक गया है और अनेकों राज्य यह चिल्ला रहे हैं कि राज्य को "आन्तरिक उपनिवेश" समझा जा रहा है ।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि राज्य स्वायत्तता पिछड़े राज्यों के लिए अलाभकर नहीं होगी, इसके विपरीत हम दृढ़तापूर्वक यह कह सकते हैं कि जब पिछड़े राज्यों को अपने प्रयासों से अपने संसाधनों का प्रयोग करने का अवसर और स्वतंत्रता प्रदान की जायेगी, केवल तभी उन्हें अपने पिछड़ेपन के कुचक्र से निकलने की आशा नजर आएगी । इस पिछड़ेपन के कारण ही वे केन्द्र के अनुदान पर आश्रित रहते हैं, चूंकि वे उसके अनुदान पर आश्रित होते हैं अतः उनमें आत्मविश्वास या नेतृत्व या मजबूत आर्थिक इकाइयों के रूप में विकसित होने की आर्थिक क्षमता नहीं आ पाती ।

*आइवर जैनिंग्स : "सम करेक्टर रिस्टिक्स ऑफ इण्डियन कान्स्टीट्यूशन, पृ० 55

राज्य जनसाधारण के काफी निकट हैं, लेकिन दिल्ली वास्तव में और भौगोलिक दृष्टि से दूर है । अतः यह मात्र संयोग नहीं है कि तीसरे दशक के साईमन कमीशन और सातवें दशक के प्रशासनिक सुधार आयोग दोनों ने "दिल्ली दूर है" वाक्यांश का प्रयोग किया । राज्यों के हाथ, जो सामाजिक व आर्थिक सेवाएं करने के उपकरण है, गरीबों की स्थिति को सुधारने और समाजवाद लाने में असमर्थ हैं । उन पर बिना किसी प्रासंगिकता के प्राथमिकताएं लाद दी जाती हैं चाहे मौजूदा स्थितियां कुछ भी हों । चाहे राज्य में कांग्रेस शासन हो या भारतीय साम्यवादी दल का या भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्स) का या द्र० मु० क० का सभी राज्यों की यही दुखद स्थिति है और हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान संविधान इस चुनौती का सामना करने के लिए सक्षम नहीं है ।

हम इस बात को पुनः दोहराते हैं कि भारत की एकता और अखंडता के प्रति हमारा विश्वास किसी से कम नहीं और यदि हम पर एक बार भी असहृदगी का प्रचार करने का आरोप लगाया जा सकता है तो कांग्रेस की भी भारत की इकाइयों को आत्मनिर्धारण का प्रस्ताव पेश करने का दोषी कहा जा सकता है और साम्यवादी दल (जो उस समय एकीकृत था) पर भी अतीत में इसकी मांग करने का आरोप लगाया जा सकता है । द्र० मु० क० दल एक स्वतंत्र संगठन है और यह कदापि गुप्त षड्यंत्रों और गोपनीय सिद्धांतों में विश्वास नहीं रखता ।

इन क्षेत्रीय मांगों को संकीर्ण प्रान्तीयता कहना बहुत आसान है किंतु उन आलोचकों के लिए हम इस बात को दोहराना चाहते हैं कि "राज्य पुनर्गठन आयोग का रिपोर्ट" में क्या बताया गया है :—

"जिस राष्ट्रीय आन्दोलन से भारत की स्वतंत्रता मिली उसका निर्माण प्रादेशिकता के बलों का उपयोग करके हुआ था । भाषायी यूनिटों के आधार पर कांग्रेस का पुनर्गठन होने के बाद ही यह राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में विकसित हो सकी । महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने यह महसूस किया कि जिन बलों ने हमारी राष्ट्रीय एकता में सहयोग दिया, उन्हीं बलों ने प्रादेशिक भाषा के विकास में भी सहायता प्रदान की जिसके परिणामस्वरूप ही भाषायी क्षेत्रों का एकीकरण हुआ । प्रादेशिक एकीकरण और राष्ट्रीय भावना के बीच इसी सहयोग से हम आजादी पा सके" ।*

और "सही विकास केवल तभी संभव होगा यदि हम उन यथार्थ सच्चाईयों का उपयोग करने लगें जिनका विकास सामान्य भाषा द्वारा संगठित ऐतिहासिक क्षेत्रों के आस-पास हुआ था" ।**

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय एकता, राज्य स्वायत्तता पर निर्धारित होनी चाहिए । कनाडा में डोमिनियन-प्रान्त रॉयल आयोग के साथ हमारा कथन है कि :—

"राष्ट्रीय एकता और प्रान्तीय स्वायत्तता को नागरिकों की निष्ठा के प्रतियोगी के रूप में नहीं समझना चाहिए क्योंकि———वे एक ही चीज अर्थात एक ही संघीय प्रणाली के दो पहलू हैं ।"

जैसा कि मैक आइवर ने बिल्कुल सही बताया है "ठोस आधार पर एक बार गठित-संघ एकीकरण की एक निरंतर प्रक्रिया बन जाती है । इस पर कदाचित यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि राज्यों की स्वायत्तता अन्ततः समाप्त हो जाएगी ।" ***

हम केन्द्र के मजबूत होने में विश्वास रखते हैं———मजबूत इस दृष्टि से कि केन्द्र के पास मजबूत थल सेना, नौसेना और वायु सेना होनी चाहिए, किंतु मजबूती, इकाइयों के नेतृत्व को दुर्बल करने और केन्द्रीय सचिवालय में फाइलों के ढेर लगाने से नहीं आती । मजबूती केन्द्र द्वारा प्राप्त विविध शक्तियों की व्यापकता में नहीं होती बल्कि राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए आवश्यक चुनींदा क्षेत्रों की गंभीरता और दक्षता में होती है ।

*राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट, 1955 पृ० 38 ।

**वही, पृष्ठ—38 ।

***मैक आइवर "मॉडर्न स्टेट" पृ० 361 ।

डा० बी० सी० रॉय मुख्यमंत्री के समय पश्चिम बंगाल सरकार ने प्रथम वित्त आयोग को दिए गए अपने ज्ञापन में कहा था, "कमजोर राज्यों की नींव पर सशक्त केन्द्र बनाने का प्रयास, रेत की नींव पर एक मजबूत इमारत बनाने के समान है। इस संदर्भ में मजबूती का मतलब है, प्रत्येक को सौंपे गये कार्यों को पर्याप्त और उपयुक्त रूप से निष्पादित करने की योग्यता"। इसने संविधान के वित्तीय उपबंधों पर संविधान सभा की विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों का समर्थन करते हुए कहा: "संघीय सरकार के मूल कार्य, सुरक्षा, विदेशी कार्य और अधिकांश राष्ट्रीय ऋण हैं"।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "यदि भावनाओं और अनुचित आवेशों को एकतरफा कर दिया जाए तो इस प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त करना मुश्किल काम नहीं होगा जिसमें प्रान्तों और राज्यों के लिए अधिकतम स्वायत्तता हो और मजबूत केन्द्रीय बंधन भी"।

एक ही केन्द्र को बहुत अधिक मात्रा में अधिकार देने से राष्ट्र को गंभीर खतरा हो सकता है, क्योंकि चाहे आज न हो पर फासिस्ट ताकतें कभी भी हमारे समुदाय के प्रजातांत्रिक आधार को ध्वंस करने और शक्ति को हथियाने में सफल हो सकती हैं।

राष्ट्र को, परिश्रमी लोगों की दयनीय दशा को सुधारने के लिए, राज्यों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हुए आर्थिक विकास के अत्यंत महत्वपूर्ण उपाय करने की आवश्यकता है। भारत जैसे आकार और जनसंख्या वाला कोई भी देश एक स्थान पर शक्तियों का संचय करके और दूरस्थ नियंत्रण से कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता। अतः निराशा और असहयोग की भावनाओं से बचने के लिए हम आगे और विभाजन रोकने के लिए राज्य स्वायत्तता का जोरदार समर्थन करते हैं, और केन्द्र व राज्यों के बीच संबंधों के पुनर्गठन का कार्य ऐसा है जिसे प्रजातांत्रिक शक्तियों द्वारा परम अग्रता दी जानी चाहिए क्योंकि इससे भारत में एक प्रजातांत्रिक क्रांति आएगी।

हमारे प्रिय नेता डा० अन्ना ने स्वायत्तता की मांग की तुलना में सत्ताधारी द्र० मु० क० की स्थिति का अद्वितीय ढंग से वर्णन किया:

"प्रिय भाइयों, मैं सत्ता के पीछे कभी पागल नहीं हुआ। न हो मैं ऐसे संविधान के अधीन अपने राज्य का मुख्यमंत्री बनने में खुश हूं जो कागजों में तो संघीय है किंतु वास्तविक व्यवहार में अधिकाधिक केन्द्रीकृत बनने की प्रवृत्ति रखता है, इसी कारण मैं यह नहीं कहता कि मेरा आशय केन्द्र को नाराज करना या दिल्ली से लड़ना-झगड़ना है। इससे किसी को कुछ नहीं मिलता। सच यही है कि उपर्युक्त अवस्था में दृढ़ संकल्प की भावना ही महत्वपूर्ण होती है। किंतु जनता को संघवाद की शिक्षा देकर उसे आगे बढ़ाया जाना चाहिए। वास्तव में प्रिय भाइयों, मुझे विश्वास है मुझे आप का सक्रिय सहयोग और निकट सहभागिता प्राप्त होगी।"

——यह उन्होंने "होम रूल", पोंगल नंबर, 1969 में प्रकाशित अपने अन्तिम पत्र में लिखा।

जैसा कि उन्होंने बताया अन्य सभी प्रयासों से पहले जनता को संघवाद की शिक्षा देना जरूरी है। इस संबंध में द्र० मु० क० उक्त काम में पहले ही समर्पित है और इस कार्य को गति प्रदान करना तथा संपूर्ण भारत में इसी विचारधारा वाली ताकतों को समर्थन देना ही हमारा उद्देश्य है। इस समस्या के संबंध में हमारी कोई सिद्धान्तवादी विचारधारा नहीं है और चूंकि संघीय सरकार "आर्थिक और सामाजिक दबावों का प्रतिफल" होती है अतः इस विषय पर अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संघवाद एक विकासमान संकल्पना है जिसमें समय और आवश्यकता के अनुसार सुधार किया जा सकता है और हम सभी इच्छुक दलों और व्यक्तियों से कोई भी लाभदायक बातचीत करने को तैयार हैं।

हम पुनः इस बात पर जोर देते हैं कि समान और प्रतिष्ठित भागीदारों के रूप में समाजवादी समुदाय बनाने के लिए राज्यों को "सम्मान का दर्जा" दिया जाना चाहिए। इस संदर्भ में राजमन्नार समिति की नियुक्ति की उद्घोषणा करते समय डा० करुणानिधि द्वारा की गई उद्घोषणा को उद्धृत करना उचित होगा:

"इसे समाजवाद के इस लक्ष्य के रूप में ज्यादा देखा जाना चाहिए कि जन-सत्ता की संस्थाओं को आवश्यक संसाधन और प्राधिकार सौंपे जाने चाहिए। हमारे विचार से, भारत जैसे बड़े देश में, जिसके संघटक राज्य राजनीतिक व भौगोलिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, समाजवादी आदर्शों को कार्यान्वित करने का निश्चित तरीका, राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करना है। अतः यदि हम राज्यों को अधिक शक्तियां प्रदान करने का तर्क देते हैं तो ऐसा केवल हम इस हार्दिक इच्छा से करते हैं कि समृद्धशाली और शक्तिशाली राज्यों के सहारे एक मजबूत केन्द्र का अविर्भाव हो।"*

इस पृष्ठभूमि के साथ हमने केन्द्र-राज्य संबंध जांच समिति की रिपोर्ट का प्रस्ताव रखा, जिसके अध्यक्ष डा० पी० वी० राजमन्नार तथा सदस्य डा० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर और तिरु० पी० चन्द्र रेड्डी थे। तमिलनाडु सरकार ने समिति का गठन "केन्द्र-राज्य संबंधों की जांच करने, संविधान के मौजूदा उपबंधों की जांच करने और राज्य के संसाधनों को बढ़ाने और संपूर्ण राष्ट्र की अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बगैर उच्च न्यायालय सहित कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका शाखाओं में राज्य की स्वायत्तता को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक उपायों का सुझाव देने के लिए किया था"। हालांकि केन्द्र-राज्य संबंध इससे पहले भी कई बार चर्चा के विषय रहे हैं किंतु राज्य सरकार ने पहली बार इस विषय पर एक व्यापक और कुशलतापूर्वक जांच की है। इस समिति ने, जो राजमन्नार समिति के नाम से प्रसिद्ध है, प्रशंसनीय कार्य किया है और प्रकाण्ड विद्वानों ने इस समस्या के संबंध में अपनी जांच के विवेक और सूक्ष्म दृष्टि का प्रयोग किया है। वास्तव में यह भारत के संघीय संविधान की कार्यप्रणाली के अध्ययन में एक बहुमूल्य दस्तावेज और निर्देश चिन्ह बन गया है। पहली बार इन मसलों का बारीकी से विश्लेषण हुआ है और ठोस हल बताए गए चाहे कोई इन सिफारिशों को स्वीकार करे या नहीं, पर इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह रिपोर्ट इस विषय पर किसी चर्चा के लिये प्रारंभ बिंदु हो सकती है।

द्र० मु० क० की इस समिति ने, अपने राजनीति-दर्शन और दृष्टिकोण से राजमन्नार समिति की सिफारिशों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया और दल के विचार और स्वीकृति के लिए निम्नलिखित सुझाव और टिप्पणियां पेश की। हालांकि हम बहुत-सी सिफारिशों से पूर्णतः सहमत हैं, किंतु कुछेक मामलों में हमने संशोधन, परिवर्तन और सुधार करने का प्रस्ताव किया है। हमने संविधान के उन उपबंधों के संबंध में भी अतिरिक्त संशोधनों का सुझाव दिया है जिन्हें राजमन्नार समिति रिपोर्ट में शामिल नहीं किया गया है।

तिरु० एम० करुणानिधि मुख्य मंत्री तमिलनाडु ने 16 अप्रैल, 1974 को विधान सभा में राज्य स्वायत्तता के संबंध में संकल्प रखा

संकल्प

मैं निम्नलिखित संकल्प पेश करता हूं:—

"तमिलनाडु सरकार के राज्य-स्वायत्तता पर विचारों और राजमन्नार समिति की रिपोर्ट" को ध्यान में रखते हुए सदन यह संकल्प करता है कि विभिन्न भाषाओं, सभ्यताओं और संस्कृतियों के लोगों के भारत की अखंडता को बनाए रखने, आर्थिक विकास करने और राज्य सरकारों को जनता के साथ बिना किसी बाधा के मिल-जुल कर काम करने में समर्थ बनाने; और

पूर्ण राज्य स्वायत्तता के साथ वस्तुतः संघीय ढांचा स्थापित करने के लिए, केन्द्र सरकार, राज्य स्वायत्तता के संबंध में तमिलनाडु सरकार के विचारों और राजमन्नार समिति की सिफारिशों को अवश्य स्वीकार करे और भारतीय संविधान में तत्काल परिवर्तन करने के लिए कार्रवाई करे।

16 अप्रैल, 1974

एम० करुणानिधी

*बजट भाषण—1971-72—भाग "क"।

16 अप्रैल, 1974 को विधान सभा में "राज्य स्वायत्तता" के संबंध में प्रस्ताव रखते हुए मुख्यमंत्री, तिरु एम० करुणानिधि का अभिभाषण

आदरणीय अध्यक्ष महोदय,

मैं इस युगप्रवर्तक प्रस्ताव को रखने का अधिकार पाकर निस्संदेह ही बहुत खुश हूं, मेरा विश्वास है कि यह भारत के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना होगी। मैं इस सदन में आदरणीय सदस्यों से यह अनुरोध करता हूं, जो अपनी दूरदर्शिता के लिए प्रसिद्ध हैं, इस प्रस्ताव के प्रशंसनीय उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गंभीरतापूर्वक और सोच समझकर विचार करें और इसका समर्थन करें। हम सभी जानते हैं कि शासक दल—द्रविड़ मुनेत्र कड़गम् ने कई बार, भारत की शक्ति और सामर्थ्य को बढ़ाने और भारत की अखंडता और एकता को इस प्रकार रक्षा व सुरक्षा करने का अपना दृढ़निश्चय दर्शाया है कि इसे जरा भी खतरा न हो।

यदि द्रविड़ मुनेत्र कड़गम् की अनन्य देशभक्ति का प्रमाण चाहिए तो इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि दल ने 1962 में किस प्रकार संबंध-विच्छेद की अपनी मांग को छोड़ दिया, चीनी आक्रमण को निरस्त करने के लिए दल ने किस प्रकार रक्षा तैयारियों में उत्साहपूर्वक भाग लिया, राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए उसने कैसे 6 करोड़ रुपये एकत्र किए और इस प्रकार वह सभी राज्यों में सबसे आगे रहा। निस्संदेह ही द्रविड़ मुनेत्र कड़गम दल ने भारत के संग्राम में मुख्य रणक्षेत्र में बने रहने की भावना के साथ देश की सुरक्षा के लिए वीरोचित सेवा की है।

मैं इन सभी का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं ताकि अप्रत्याशित और अनावश्यक संदेहों को ध्यान में रखते हुए और उनके आधार पर इस प्रस्ताव का विरोध न किया जाए।

1945 में अखिल भारतीय कांग्रेस दल ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में भारत के भावी संघीय संविधान के स्वरूप का इस प्रकार उल्लेख किया :

"भारत का संघ उसके विभिन्न भागों की इच्छा से बना संघ होना चाहिए। अपनी संघटक इकाइयों को अधिकतम स्वतंत्रता देने के आशय से आम और आवश्यक संघीय विषयों की लघुतम सूची होनी चाहिए जो सभी इकाइयों पर लागू होंगी और आम विषयों पर एक और वैकल्पिक सूची होगी जिन्हें ऐसा करने की इच्छुक इकाइयां स्वीकार करेंगी।"

इसके बाद 1947 में संविधान सभा में पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा रखे गए प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि संघ को सौंपे गए अधिकारों के अतिरिक्त, सभी अन्य अधिकार स्वायत्त राज्यों को सौंपे जाएंगे। प्रस्ताव का महत्वपूर्ण भाग इस प्रकार है :

"जिस में शासित क्षेत्रों में अब ब्रिटिश भारत शामिल है, जिन क्षेत्रों से अब भारतीय राज्य बने हैं और ब्रिटिश भारत से बाहर भारत के अन्य भागों और राज्यों से मिल कर बना एक संघ होगा और उक्त शामित क्षेत्रों को अवशिष्ट अधिकारों के साथ स्वायत्त इकाइयों का दर्जा दिया जाएगा और रहेगा चाहे उनकी वर्तमान सीमाएं कुछ भी हों या संविधान सभा और उसके बाद संविधान की विधि के अनुसार कुछ भी निर्धारित किया जाए।"

भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद, इन प्रस्तावों और चुनाव घोषणाओं को, जो इतिहास का एक हिस्सा हैं, आसानी से भुला दिया गया या जान बूझकर दबा दिया गया है।

इस तथ्य को द्रविड़ मुनेत्र कड़गम् ने जब वह विरोधी दल में था, कई बार संसद और राज्य विधान, मंडल, दोनों में ही उठाया और संविधान में उपयुक्त संशोधन करने के लिए लगातार तर्क दिए। तमिलनाडु में राज्य स्वायत्तता के विचार को भी तमिल अरसु कड़गम् ने लगातार प्रचारित किया है।

1967 में द्र० मु० क० के चुनाव घोषणा-पत्र में यह उल्लेख किया गया कि :

"द्रविड़ मुनेत्र कड़गम् ने इस बात का ध्यान रखने का दायित्व अपने ऊपर लिया है कि राष्ट्र का कोई भी क्षेत्र एकता के नाम पर किसी दूसरे क्षेत्र पर प्रभुत्व न रखें,

"द्र० मु० क० राज्य के अधिकारों का दमन होने से बचाने और सभी राज्यों के समान आर्थिक विकास के लिए योजना बनाने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ है, "राज्यों के हितों की रक्षा करने और केन्द्र से राज्यों को अवशिष्ट अधिकार स्थानान्तरित करने के लिए द्र० मु० क० प्रयास करेगा, और इस प्रयोजन के लिए संविधान को संशोधित करने की आवश्यकता को दोहराएगा।"

तमिलनाडु के मुख्य मंत्री के रूप में डा० अन्ना ने वर्ष 1967-68 का बजट प्रस्तुत करते हुए, केन्द्र पर राज्यों की वित्तीय निर्भरता के विरुद्ध जोरदार तर्क देते हुए कहा—

"हमें प्रत्यक्ष रूप से उन सीमाओं की ओर देखना पड़ता है जिनके अधीन राज्य सरकारों को हमारे संघीय ढांचे के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। संविधान के उपबंधों के अतिरिक्त, जो स्वयं ही केन्द्र के पक्ष में हैं, आर्थिक आयोजना के पिछले पन्द्रह वर्षों में विकसित हुई परम्पराओं व प्रथाओं ने भी राज्यों को नुकसान पहुंचा कर केन्द्र सरकार की भूमिका को ही अधिक मजबूत किया है। संविधान में यथाउपबंधित अधिकारों को सीमित कर देने से हमारी अर्थव्यवस्था के सामान्य दिशानिर्देश का दायित्व केन्द्र सरकार के पास आ जाता है जो उसे विदेशी व्यापार, मौद्रिक व क्रेडिट नीति को विनियमित करने का प्राधिकार देता है। कराधान के अवशिष्ट अधिकारों सहित राजस्व के अत्यधिक लचीले स्रोत तक पहुंच होने के कारण केन्द्र, राष्ट्रीय आय के एक बड़े भाग को अपने पास रख सकता है और राज्यों को ऐसी स्थिति में छोड़ सकता है जहां उन्हें अपनी योजनाओं और नीतियों के कार्यान्वयन के लिए केन्द्र से औचित्य प्रधान ऋणों और सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है। केन्द्र, संविधान के अनुच्छेद 293 के अधीन उन्हें सौंपे गए अधिकारों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से और रिजर्व बैंक के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से उन शर्तों और सीमाओं को भी विनियमित करता है जिसके अधीन राज्य सरकार सार्वजनिक ऋणों के माध्यम से अपने संसाधनों को बढ़ा सकते है। वित्त आयोगों के माध्यम से पांच वर्षों के अन्तराल पर राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं की वस्तुपरक समीक्षा करने की व्यवस्था से, इन आयोगों के विचारणीय विषयों पर विभिन्न सीमाएं लगाए जाने के कारण केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता किसी भी प्रकार से कम नहीं हुई है।"

अपने बजट अभिभाषण के अन्तिम भाग में डा० अन्ना ने बताया—

"सदन यह जानता है कि केन्द्र और राज्यों के संबंधों पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि सभी संतोषजनक आधार पर मौजूदा संबंधों को कायम करने की जरूरत से सहमत होंगे। कोई भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि राजस्वों के वितरण, शक्तियों को सीमित करने और योजना के लिए सहायता का निर्धारण करने से संबंधित अनुभव इस प्रकार के रहे हैं जिनसे कटुता ही उत्पन्न हुई है। इस कटुता को दूर करने और केन्द्र व राज्यों के बीच सफल संबंधों को बढ़ाने के लिए उपाय खोजना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। जिस समस्या को मैंने सामने रखा है, उससे कोई भय या आशंका उत्पन्न नहीं होती बल्कि इससे विचारों को बल मिलना चाहिए। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि पारस्परिक सद्भाव और सहानुभूति के जरिए हमें भाईचारे के और उपयोगी संबंध स्थापित करने चाहिए।"

पुनः 1969 में, अंग्रेजी पत्रिका "होम रूल" में डा० अन्ना ने अपने अंतिम लेख में यह बताया :—

प्रिय भाइयों,

मैं सत्ता के पीछे कभी पागल नहीं हुआ। न ही मैं ऐसे संविधान के अंतर्गत अपने राज्य का मुख्य मंत्री बनने में खुश हुआ जो कागजों में तो संघीय है किंतु वास्तविक व्यवहार में अधिकाधिक केन्द्रीकरण की ओर प्रवृत्त है। इसी कारण मैं, अपने विश्वसनीय दोस्त ई० एम० एस० की तरह, यह नहीं कहता कि मेरा आशय केन्द्र को नाराज करना या दिल्ली से झगड़ना है। यह सच है कि उपयुक्त अवस्था में आत्मनिर्धारण की भावना ही महत्वपूर्ण होती है किंतु इससे पहले जनता को संघवाद की शिक्षा देनी होगी। वास्तव में, प्रिय भाइयों, मुझे आपका सक्रिय सहयोग और घनिष्ठ सहभागिता मिलने की पूरी आशा है।

यदि द्र० मु० क० सत्ता में होने के कारण बुद्धिजीवी जनता को यह बात समझाने में सफल हो जाए कि मौजूदा संविधान अनुचित रास्ते से एक प्रकार का द्विशासन है, तो यह राजनीतिक सत्ता के लिए निस्संदेह बहुत बड़ा योगदान होगा।"

8 अप्रैल, 1967 को नई दिल्ली में एक प्रेस सम्मेलन में डा० अन्ना ने कहा :—

"यदि केन्द्र राज्यों के पास पर्याप्त अधिकार छोड़ते हुए अपने पास केवल ऐसे अधिकार रखे जो देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए जरूरी हों, तो ऐसा करना ही पर्याप्त होगा। अधिकारों के वितरण और संविधान को चलाने की पद्धति का सुझाव देने के लिए एक उच्चाधिकार आयोग नियुक्त किया जाना चाहिए।"

इन प्रेक्षणों और 19 अगस्त, 1969 को सभापटल पर मेरी घोषणा के अनुसरण में अध्यक्ष के रूप में डॉ० पी० वी० राजमन्नार को और सदस्यों के रूप में डॉ० ए० एल० मुदलियार और तिरु०पी० चन्द्र रेड्डी को लेकर सरकार ने 22 सितम्बर, 1969 को एक समिति गठित की। यह समिति देश की अखंडता को जरा भी कम किए बगैर राज्यों के लिए स्वायत्तता के आधार पर केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों के प्रश्न पर विचार करने के लिए बनाई गई थी।

याद रहे कि बाद में 1971 में डी०एम०के० के चुनाव घोषणा-पत्र में घोषणा की गई थी--

"यद्यपि भारत का संविधान संघीय बताया गया है परंतु पलड़ा केन्द्र की ओर अधिक झुका है और इसलिए राज्य प्रशासनिक तथा वित्तीय क्षेत्रों में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य नहीं कर पा रहे। केवल वही शक्तियां केन्द्र को सौंपी जानी चाहिए जो भारत को मजबूत रखने के लिए आवश्यक हैं और अन्य सभी शक्तियां मजबूत भारत के उद्देश्य को कोई क्षति पहुंचाए बगैर राज्यों को दे दी जानी चाहिए, और इस प्रयोजन के लिए संविधान में संशोधन किया जाए। इस प्रयोजन के लिए नियुक्त विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट मिलने पर डी० एम० के० दल राज्यों की स्वायत्तता के लिए आंदोलन के प्रश्न पर अखिल भारतीय स्तर पर समर्थन मांगेगा। राज्यों के लिए कार्यपालक तथा वित्तीय क्षेत्रों में अधिक शक्तियां केवल इन शक्तियों का आनन्द लेने के लिए नहीं मांगी जा रही। चूंकि केवल राज्यों का ही अपनी जनता के साथ निकट संपर्क होता है, इसलिए केवल वे ही लोगों की आशाओं के अनुरूप उनकी सेवा कर सकते हैं। यही कारण है कि हम राज्य के लिए स्वायत्तता चाहते हैं।"

इस संबंध में यह बताना प्रासंगिक होगा कि 1972 में जारी किए गए मैसूर प्रदेश कांग्रेस (ओ०) के चुनाव घोषणा-पत्र में राज्य स्वायत्तता के बारे में निम्नलिखित उल्लेख था :--

"कांग्रेस, राज्य के लिए अधिक स्वायत्तता के लिए और केन्द्र द्वारा किए जा रहे भेद भाव और सौतेले व्यवहार के विरुद्ध सुदृढ़ तरीके से लड़ेगी।"

राजमन्नार समिति की रिपोर्ट 27 मई, 1971 को प्राप्त हुई। यह रिपोर्ट भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को भेजी गई।

रिपोर्ट की पावती देते हुए प्रधानमंत्री ने अपने 22 जून, 1971 के पत्र में मुझे इस प्रकार लिखा :—

"प्रिय श्री करुणानिधि,

मुझे आपका 15 जून का पत्र मिला है, जिसके साथ आपने मुझे केन्द्र-राज्य संबंध जांच समिति की रिपोर्ट की एक प्रति भेजी है। संभवतया आपकी सरकार इस रिपोर्ट की सिफारिशों पर विचार करेगी। जैसा कि आप जानते हैं प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी इस प्रश्न पर विचार किया था और उसने पहले ही एक रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है जो हमारे विचाराधीन है। यदि इस विषय पर हमें आपकी सरकार के विचार भी मिल पाएं तो उन्हें भी ध्यान में रखा जाएगा। ये महत्वपूर्ण मसले हैं और हम सभी मुख्यमंत्रियों से परामर्श करना चाहते हैं।

सादर,

भवदीय,

(ह०/-)

इंदिरा गांधी"

प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में 30 मई, 1972 को हुई राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में मैंने इस सरकार की नीति को स्पष्ट करते हुए कहा कि :—

"यदि हमारे जैसे बड़े देश को, आधुनिक अर्थ व्यवस्था की समस्याओं का सामना करना है, तो विकेन्द्रीकरण की विशेष रूप से आवश्यकता है। राज्य की स्वायत्तता के लिए हमारी मांग को इसी भावना से समझा जाना चाहिए-यह मांग देश के संसाधनों के अधिक कुशल प्रबन्ध के लिए एक साधन के रूप में है जिसके बल पर केन्द्र, प्रमुख राष्ट्रीय हितों के क्षेत्र में मजबूत होगा, एक तरीके के रूप में है, जिससे हमारी जनता की न्यूनतम मांगें कम से कम समय में और अधिक से अधिक कुशल ढंग से पूरी की जा सकेंगी"।

यद्यपि हम डा० राजमन्नार समिति की रिपोर्ट को पूर्णतया स्वीकार नहीं करते तथापि हम रिपोर्ट को उस आधार के रूप में मानते हैं जिससे इस संबंध में हमारी नीति प्रदर्शित हो सकेगी।

यह अनुभव किया गया था कि इन ऐतिहासिक महत्व के विषयों पर निर्णय विस्तृत विचार-विमर्श के बाद लेना पड़ता है। इसलिए, इस समस्या पर विभिन्न स्तरों पर विचार किया गया। सत्तारूढ़ दल ने—सेठियाल भारन समिति नियुक्त की और उसके प्रेक्षणों को ध्यानमें रखकर डॉ० राजमन्नार समिति की रिपोर्ट का विश्लेषण किया गया। सरकार ने केन्द्र द्वारा नियुक्त प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट पर भी विचार किया। इस मसले पर भारत के विभिन्न राजनीतिज्ञों द्वारा दिए गए विभिन्न विचारों का गहरा अध्ययन करने के बाद और विश्व के अन्य देशों में स्थिति का सावधानी से अध्ययन करने के बाद इस सरकार ने डॉ० राजमन्नार समिति की रिपोर्ट पर और राज्य स्वायत्तता के प्रश्न पर अपने विचार तैयार किए हैं, और उक्त विचार इस सदन की स्वीकृति के लिए मेरे संकल्प के साथ सदन के समक्ष रखे गए हैं।

गृह मंत्रालय की सलाहकार समिति की हाल की बैठक में संसद सदस्य श्री दण्डपाणी ने यह पूछा कि केन्द्र और राज्य सरकारों के अधिकार पर पुनर्विचार करने के प्रश्न पर, केन्द्र सरकार ने राजमन्नार समिति के अच्छे सुझावों पर निर्णय क्यों नहीं किया है और केन्द्रीय गृह मंत्री श्री दीक्षित ने उत्तर दिया कि उक्त समिति राज्य सरकार द्वारा नियुक्त की गई थी और राज्य सरकार ने उस रिपोर्ट पर अभि तक अपने विचार सूचित नहीं किए हैं।

श्री दीक्षित के उक्त उत्तर के अनुसरण में और इस सदन के माननीय सदस्यों की इस इच्छा के प्रत्युत्तर में कि राजमन्नार समिति की रिपोर्ट पर उनके विचार अभिव्यक्त किए जाएं, यह सरकार यह संकल्प प्रस्तुत कर रही है ताकि भारत में सभी राज्यों को राज्य में स्वायत्तता मिले और केन्द्र एक वास्तविक संघीय सरकार के प्रज्वलित उदाहरण के संदर्भ में सामने आए।

भारत का राष्ट्रीय ध्वज की चमकदार रोशनी में लहरता है। इस ध्वज की महानता का आनन्द लेने के अपने प्रयास में हम अपनी आंखें बादलों से परे, ऊंचे आकाश की ओर उठाते हैं। हम संग्राम की सुरीली आवाज में हैदोर

द्वारा रचित राष्ट्र गान सुनते हैं । गान की मधुर ध्वनि हमारे कानों में कोटिसम झरनों के मधुर संगित की तरह गूंजती है। हां ! हमारा देश, विदेशी प्रभुता से मुक्ति पाकर अपनी गुलामी की जंजीरे तोड़ चुका है । भारत की स्वतंत्रता के लिए हमारे चमत्कारिक संघर्ष की वीरगाथा, जिसमें हमने गौरवशाली विजय प्राप्त की, विश्व के इतिहास में स्वर्णित अक्षरों में लिखी गई है ।

बंदी राष्ट्र स्वतंत्र हो गया है और सभी द्वार खुल गए हैं । एक मुस्कान लिए कैदी जेल से बाहर आता है । लम्बी जुदाई के बाद अपने पिता के गले लगने के लिए नाजुक डावाडोल शिशु आतुरता से आगे बढ़ता है । पिता समीप प्रसन्नता लिए अपने बच्चे को उठाने और चूमने के लिए अपने हाथ आगे बढ़ाता है । ओह ! हाथ तो काम नहीं करते ! ऐसा क्यों ? उसे जेल से मुक्त किया गया है ? अब और आगे क्या बाधा है ? कौन सी बात उसे रोके हुए है ? आश्चर्य से चारों तरफ देखता है, वह जेल से बाहर आ गया है और स्वतंत्र है । तब कौन उसे अपने बच्चे को गले से लगाने से रोक रहा हैं । उसे कोई नहीं रोकता, जब वह जेल में था तो उसके हाथों और टांगों की जंजीरों से बांध दिया गया था । मुक्त होने की खुशी में वह उन जंजीरों को हटाए बगैर जेल से बाहर आ गया है । निःसंदेह वह स्वतंत्र है किन्तु जिन जंजिरों ने उसके अंगों को बांधा हुआ था वे नहीं हटाई गई थीं, मानव स्वतंत्र हो गया है, तब उसके हाथ और टांगे बांधकर क्यों रखी जाए ? भारत स्वतंत्र हो गया है । तब उसके अंग अर्थात, राज्यों की केन्द्र में सत्ता के केन्द्रीकरण को जंजीरों से क्यों बांधा गया है ?

यही एक प्रज्वलित समस्या है जो लम्बे अरसे से हमारे सामने हैं इस महान सदन के समक्ष मैं यह संकल्प आज इस आशा के साथ प्रस्तुत करता हूं कि इससे इस प्रश्न को हल करने में सहायता मिलेगी।

हमारा संविधान अपरिवर्तनीय नहीं है, इसमें 30 से अधिक बार संशोधन किया गया है ।

केन्द्रीय सरकार से यह मेरी पुरजोर अपील है कि उन्हें इस बात का एहसास होना चाहिए कि भारतीय संविधान में ऐसे बड़े परिवर्तन करने से हमारे देश को मजबूत और अधिक समृद्ध बनाने के लिए आधार मिलेगा और इससे राज्यों की भाषाएं विकसित करने, विभिन्न संस्कृतियों का परिरक्षण और संरक्षण करने, राज्यों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने, राज्यों और केन्द्रों के बीच स्वस्थ संबंध विकसित करने और हमारे देश की आर्थिक दशा सुधारने में सहायता मिलेगी । मैं इस महान प्रयास में आपका सहयोग चाहता हूं । इस जोरदार इच्छा से प्रेरित होकर कि हमारी स्वतंत्रता का लाभ पूरी तरह हमारी जनता को प्राप्त हो और उनके कल्याण को ध्यान में रखते हुए हमने तमिलनाडु सरकार की ओर से भारतीय राजनीति के मंच पर यह ज्योतिर्मय दीप जलाया है । मैं भारत के राजनीतिज्ञों से आग्रह करता हूं कि वे इस ज्योति को प्रज्वलित रखने और इसकी दीप्ती को बनाए रखने में हमारी सहायता करे ।

राज्य स्वायत्तता और राजमन्नार समिति की रिपोर्ट पर तमिलनाडु सरकार के विचार

तमिलनाडु सरकार भारत की प्रभुसत्ता और अखण्डता बनाए रखने के लिए सत्यनिष्ठापूर्वक अपना दृढ़ संकल्प घोषित करती है और अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त करती है कि राष्ट्र की त्वरित आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए देश का संविधान वास्तविक अर्थ से संघीय होना चाहिए ।

इस संबंध में संविधान सभा में प० जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक उद्देश्यों के संकल्पों का प्रमुख अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा जिसे संविधान सभा ने 22 जनवरी, 1947 को स्वीकार किया था :—

"जिसमें इस समय ब्रिटिश इण्डिया कहलाने वाले क्षेत्र, इस समय भारतीय राज्यों के क्षेत्र और भारत के ऐसे अन्य भाग जो ब्रिटिश इण्डिया से बाहर हैं तथा राज्य और अन्य ऐसे क्षेत्र जो स्वतंत्र प्रभुसत्ता सम्पन्नता भारत में संगठित होने के इच्छुक है, उन सबका एक संघ होगा, तथा

"जिनमें उक्त क्षेत्र, चाहे उनकी वर्तमान सीमाओं के साथ या अन्य ऐसी सीमाओं के साथ जो संविधान सभा और उसके बाद संविधान की विधि के अनुसार निर्धारित करे, स्वायत्त इकाइयों का दर्जा रखेंगे और प्रतिधारित करेंगे और इनके साथ उन्हें अवशिष्ट शक्तियां प्राप्त होंगी और सरकार तथा प्रशासन की सभी शक्तियों का प्रयोग करेंगे, और उनके कार्य करेंगे, सिवाय ऐसी शक्तियों और कार्यों के जो संघ को सौंपे गए हों या समनुदेशित किए गए हों अथवा संघ में अन्तर्निहित या निहितार्थ हों या उनसे उत्पन्न हुए हों ।"

भारत एक विशाल देश है जिसमें लोगों की अलग अलग भाषाएं, संस्कृति और इतिहास है । प्रत्येक राज्य की अपनी विशिष्ट आवश्यकताएं और समस्याएं हैं । अतः देश की एकता को कोई क्षति पहुंचाएं बगैर अपनी प्रगति सुनिश्चित करने के लिए राज्य को कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और पर्याप्त विधायी एवं कार्यपालक शक्तियां होनी चाहिए । ऐसा केवल वास्तव में संघीय ढांचे के अन्तर्गत हो सकता है ।

हमारे देश में, दुर्भाग्यवश, स्वतंत्रता के बाद पिछले 25 वर्षों में अनुभव यह रहा है कि केन्द्र में केन्द्रीकृत शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि राज्यों पर रोक लगाई गई है और उनकी पहल शक्ति को कम किया गया है।

राज्यों को केन्द्र का साधन मानकर, संविधान को एकात्मक बनाकर कार्य करने की प्रबल प्रवृत्ति रही हैं । यह कहना एक मन गढ़न्त बात है कि केन्द्र तभी मजबूत हो सकता है जब अधिकांश शक्तियां केन्द्र में केन्द्रीकृत हों । वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ श्री के संथानम्, एक जो संविधान सभा के सदस्य थे, मजबूत केन्द्र के तर्क पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

"....यदि भारत को अराजकता में टूटना और विघटित नहीं होना है तो मजबूत केन्द्र होना परमावश्यक है । किन्तु मैं .... उन लोगों से सहमत नहीं हूं जो मजबूती की औपचारिक संवैधानिक शक्तियों से तुलना करते हैं ? इसके विपरित, मेरी जोरदार राय है कि भारत में दूर-दूर तक फैली विशाल जनसंख्या के संबंध में बहुत ज्यादा दायित्व अपने ऊपर लेने से केन्द्र स्थायी रूप से कमजोर हो जाएगा । अखिल भारतीय अनिवार्य विषयों पर केन्द्रीकरण द्वारा और ऐसे विषयों में राज्यों के साथ जिम्मेदारी बांटने से इन्कार करके और सरकार के शेष क्षेत्रों में राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता देकर ही संसद और केन्द्रीय सरकार वास्तव में मजबूत बन सकती है । स्वतंत्रता के पहले दो दशकों में एक ही दल की प्रभुसत्ता के कारण भारतीय संघवाद की संकल्पना को जिस अस्पष्ट और अस्वस्थ पितृसत्तावाद की प्रवृत्ति में घेर लिया है, वह केन्द्र के लिए उतनी ही बुरी है जितनी को राज्यों के लिए दुःखद तथा उत्तेजनात्मक ।"*

तमिलनाडु के मुख्य मंत्री डा० अन्ना ने 17 जून, 1967 को विधान सभा में बजट प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित विचार दिए :—

"यह परार्थवादी तर्क देना निरर्थक है कि राज्यों के विकास के लिए ऐसे तर्कों से राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुंचेगी । जबसे केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों से संबंधित संविधान के उपबन्धों का समाधान हुआ, तब से इस क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुआ है । कई ऐसी नई प्रवृत्तियां और विकास सामने आए हैं जिनकी भारतीय संविधान बनाते समय कल्पना नहीं की जा सकती थी, संविधान में पहले ही केन्द्र सरकार के हाथों में शक्तियों का बहुत ज्यादा केन्द्रीकरण उपबन्धित हैं । एक नए संस्थान के माध्यम से, जिसकी संविधान निर्माताओं ने कल्पना नहीं की थी, केन्द्र ने और ज्यादा शक्तियां प्राप्त कर ली है । जिससे राज्यों की स्थिति के बारे में चिंता होने लगी है । यह नया विकास आर्थिक आयोजना से संबंधित है । योजना के लिए संसाधनों के संगठन, आबन्टन और उपयोग की पद्धति के संबंध में केन्द्र सरकार ने जो शक्तियां प्राप्त कर ली हैं, उनसे राज्यों की स्थिति की हैसियत एक प्रार्थी के रूप में रह गई है जो कि केन्द्र से सहायता मांगता रहता है । यद्यपि कुछ लोग दल में अनुशासन के कारण इस विषय पर चर्चा करने से हिचकिचाएंगे, परन्तु जिन लोगों ने इस समस्या को पूर्णतया आर्थिक दृष्टिकोण से देखा है, उन सभी ने केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों में इन प्रवृत्तियों पर दुख व्यक्त किया है । मुद्रा और विदेशी मुद्रा के संबंध में संविधान की 7वीं अनुसूची के अन्तर्गत केन्द्रीय सूची की प्रविष्टि 36 से 38 के अधीन सौंपी गई शक्तियों के बल पर मुद्रा स्फिति और घाटे की अर्थव्यवस्था के लिए केन्द्र पूर्णतया

---

*अप्रैल 1970 में नई दिल्ली में आयोजित संघ राज्य संबंधों पर राष्ट्रीय संमेलन में श्री के संथानम द्वारा प्रस्तुत किए गए लेख द्वारा ।

जवाबदेह है। इन कारणों से मूल्यों में वृद्धि की जिम्मेदारी पूरी तरह केन्द्र पर आती है। परिणामत: केन्द्र को मूल्यों पर नियंत्रण की जिम्मेदारी भी लेनी होगी। यद्यपि राज्य सरकारों को केन्द्र सरकार की नीतियों के कारण मूल्य वृद्धि का प्रभाव झेलना पड़ता है, फिर भी भारतीय संविधान में राज्यों को, मूल्यों पर नियंत्रण रखने और स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक शक्तियां नहीं दी गई हैं। इसीलिए, मैं ऐसी परिस्थिति में हूं जिसमें मुझे केन्द्र से अनुरोध करना है कि वह सरकारी कर्मचारियों को महंगाई भत्ते के भुगतान में होने वाले अतिरिक्त व्यय में हिस्सा बटाए जो राज्यों को मूल्यों में वृद्धि और रियायती दरों पर खाद्यान्न वितरित करने के कारण हुई हानि के रूप में उठाना पड़ता है। अब यह बात अच्छी तरह से समझी जा सकेगी कि मुझे उस समय क्यों दुख होता है जब केन्द्र यह जोर देता है कि प्रत्येक राज्य सरकार को, रियायती दरों पर खाद्यान्न के वितरण और सरकारी, कर्मचारियों को महंगाई भत्ता देने का बोझ स्वयं उठाना चाहिए। यदि दलगत कारण उनकी विवेक बुद्धि को प्रभावित न करें तो वे लोग मेरे तर्क की वैधता का समर्थन करने से नहीं हिचकिचाएंगे जिन्होंने हमारे संविधान में केन्द्र और राज्यों के संबंधों का अध्ययन किया है।"

यह देखा जाएगा कि शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रीत करके केन्द्र वस्तुत: कमजोर बनता है। राज्यों को पूर्णतया केन्द्र का उपसाधन बना दिया गया है और वर्तमान संविधान के अधीन वे विवश अनुभव करते हैं।

किसी भी वास्तविक संघ में संघीय सरकार को केवल, विदेश कार्य, अन्तर्राज्य संचार और मुद्रा से संबंधित अधिकार होने चाहिए। अवशिष्ट शक्तियों सहित, अन्य सभी शक्तियां केवल राज्यों के पास रहनी चाहिए। संघीय सरकार और राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र होनी चाहिए। इस सरकार का यह दृढ़ विश्वास है कि केवल ऐसे संघीय संविधान के अन्तर्गत समूचा राष्ट्र समृद्ध बन सकता है।

इसी उद्देश्य से सरकार ने 1969 में एक समिति नियुक्त की थी जिसके अध्यक्ष डा० पी० वी० राजमन्नार और सदस्य डा० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदालियार और श्री पी० चन्द्रारेड्डी थे। यह समिति भारतीय संविधान में उपयुक्त संशोधनों का सुझाव देने के लिए नियुक्त की गई थी ताकि राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता दिलाई जा सके। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1971 में प्रस्तुत कर दी थी।

संविधान में संसद और राज्य विधान मण्डलों की विधायी शक्तियां 7 वीं अनुसूची में "संघ सूची", "राज्य सूची" और समवर्ती सूची" शीर्षों के अधीन दी गई हैं। राजमन्नार समिति ने इस सूचियों में कुछ परिवर्तन करने के सुझाव दिए हैं। वास्तविक संघ की स्थापना करने के उद्देश्य से, जिसमें संघ सरकार को केवल रक्षा, विदेशनीति अन्तर्राज्य संचार और मुद्रा संबंधी शक्तियां प्राप्त हों और राज्यों को अवशिष्ट शक्तियों सहित अन्य सभी शक्तियां प्राप्त हों। तमिलनाडु सरकार ने राजमन्नार समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, संवैधानिक उपबन्धों और विधायी शक्ति की प्रविष्टियों में भी कुछ परिवर्तन तैयार किए हैं। संवैधानिक उपबन्धों में प्रासंगिक और परिणामी परिवर्तन भी किए जाने चाहिए। संवैधानिक उपबन्धों में प्रस्तावित महत्वपूर्ण परिवर्तन इस प्रकार हैं :—

संघ द्वारा राज्यों को निर्देश जारी करना—अनुच्छेद 256, 257, 339(2) तथा 344 (6) हटा दिए जाने चाहिए जिनमें केन्द्र सरकार को राज्य सरकारों को निर्देश जारी करने का अधिकार दिया गया है। संघीय सरकार को ऐसे निर्देश देने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।

अंतर्राज्य परिषद्—अन्तर्राज्य परिषद इस प्रकार गठित की जानी चाहिए कि उसमें सभी राज्यों के लिए बराबर प्रतिनिधित्व लेकर सभी मुख्य मंत्री या उनके नामिती शामिल हों और प्रधान मंत्री उसका अध्यक्ष हो। किसी अन्य केन्द्रीय मंत्री को परिषद का सदस्य नहीं होना चाहिए।

रक्षा, विदेश कार्य, अन्तर्राज्य संचार और मुद्रा से संबंधित की जाने वाली ऐसी कार्रवाई के लिए, जो केन्द्र राज्य संबंधों या राज्य सभा अथवा राज्यों को प्रभावित करती हो, अन्तर्राज्य परिषद से परामर्श किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार संघ सरकार द्वारा किए जाने वाले सभी आर्थिक, वित्तीय, मौद्रिक और वित्तीय उपायों पर चर्चा करने के लिए अन्तर्राज्य परिषद को अवसर दिए जाने चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 263 द्वारा परिकल्पित अन्तर्राज्य परिषद निष्प्रभावी होगी और उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

अन्तर्राज्य परिषद की सिफारिशें, साधारणतया, केन्द्र और राज्यों पर बाध्यकारी होनी चाहिए। यदि किसी कारणवश ऐसी कोई सिफारिश अस्वीकार की जाती है तो सिफारिश और उसकी अस्वीकृति के कारण संसद और विधान मण्डलों के समक्ष रखे जाने चाहिए।

समवर्ती सूची के अधीन विधायी शक्ति—समवर्ती सूची की किसी प्रविष्टि के संबंध में, संसद में कोई विधेयक पेश करने से पहले अन्तर्राज्य परिषद और राज्यों से परामर्श किया जाना चाहिए। विधेयक पेश करते समय अन्तर्राज्य परिषद की अभ्युक्ति और राज्य सरकार की राय, यदि हो, का सारांश संसद के समक्ष रखा जाना चाहिए।

अवशिष्ट शक्तियां—विधान और कराधान की अवशिष्ट शक्ति राज्य विधान मण्डलों को सौंपी जानी चाहिए।

अनुच्छेद 154 तथा 258—राज्य और राज्य प्राधिकरणों को शक्ति प्रदान करने वाली विधियां बनाने के लिए, संसद को अधिकार देने वाला उपबंध हटा दिया जाए।

अनुच्छेद 169—विधान परिषद स्थापित या समाप्त करने का अधिकार, किसी संसदीय विधान की आवश्यकता के बगैर, पूर्णतया विधान सभाओं को सौंपा जाए।

अनुच्छेद 249—यह अनुच्छेद, जो राज्यसूची के किसी विषय के संबंध में संसद को विधान बनाने का अधिकार देता है, हटा दिया जाएगा।

अनुच्छेद 252—दो या अधिक राज्यों के लिए विधान बनाने के लिए संसद को अधिकार देने वाला यह अनुच्छेद हटा दिया जाए।

राष्ट्रपति के विचारार्थ राज्य के विधेयकों का आरक्षण—राज्य के विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ और सहमति के लिए आरक्षित रखे जाने संबंधी व्यवस्था निकाल दी जानी चाहिए। अनुच्छेद 259 में इस प्रकार संशोधन किया जाए कि समवर्ती विधायी सूची के अन्तर्गत आने वाले विषयों के सम्बन्ध में संघीय विधि की जगह राज्य की विधि लागू हो।

राज्यपाल द्वारा अध्यादेश प्रख्यापित करना—अनुच्छेद 213(1) का परन्तुक, जिसके अनुसार अध्यादेश प्रख्यापित करने से पहले राष्ट्रपति के अनुदेश प्राप्त करना आवश्यक होता है, हटा दिया जाना चाहिए।

अनुदान:—योजना व्यय और योजनेतर व्यय, दोनों के लिए केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान वित्त आयोग या इसी प्रकार के किसी अन्य विधिक निकाय जैसी स्वतन्त्र और निष्पक्ष संस्था की सिफारिशों पर ही दिए जाए।

वित्त आयोग—जैसा कि संविधान में परिकल्पना की गई है, वित्त आयोग राज्यों के वित्तीय संसाधनों और उनकी आवश्यकताओं पर विचार करता है। किन्तु केन्द्र के धन साधनों के संबंध में यह इसी प्रकार का कार्य नहीं करता। यह जरूरी है कि केन्द्रीय सरकार के वित्तीय संसाधनों और आवश्यकताओं का भी आवधिक मूल्यांकन किया जाए। तदनुसार वित्त आयोग को केवल राज्यों के संसाधनों और आवश्यकताओं की जांच करने का ही नहीं बल्कि केन्द्र सरकार के संसाधनों की जांच करने का अधिकार भी दिया जाए। तत्पश्चात वित्त आयोग आवश्यक राशि की सिफारिश करेगा ताकि केन्द्र सरकार अपने उत्तरदायित्व पूरे कर सके और इस प्रकार संस्तुत राशियां केन्द्र सरकार द्वारा उद्गृहीत करों में से आवंटित की जाए।

वित्त आयोग के सदस्य अन्तर्राज्य परिषद के परामर्श से नियुक्त किए जाए।

संविधान में स्पष्ट व्यवस्था की जाए कि वित्त आयोग की सिफारिशें, केन्द्र तथा राज्यों अर्थात् सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी होंगी।

राज्यों के ऋण और ऋणग्रस्तता—एक संघीय ऋण आयोग होना चाहिए जिसे राज्यों की ऋणग्रस्तता से संबंधित पूरे मसले की जांच करनी चाहिए। समय बीतने के साथ यह आयोग एक संघीय विकास बैंक के रूप में कार्य करेगा जिसमें केन्द्र और राज्यों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। इस बैंक को खुले बाजार से लिए गए ऋणों के अतिरिक्त केन्द्र या किसी राज्य द्वारा प्रस्तुत किए गए ऋण के आवेदनों पर विचार करना चाहिए।

राहत निधि—प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न दुःखों में राहत देने के लिए प्रत्येक राज्य के लिए एक निधि होनी चाहिए। इस निधि का सुधारात्मक उपायों में भी उपयोग किया जा सकता है।

योजना आयोग—योजना आयोग को स्वतंत्र बनाया जाना चाहिए, जिस पर संघ कार्य-पालिका का नियंत्रण न हो या राजनीतिक प्रभाव न हो। यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए संसद को, योजना आयोग की स्थापना की व्यवस्था करने के लिए एक विधि बना कर, उसे स्थायी आधार पर स्थापित करना चाहिए।

विधि द्वारा स्थापित किए जाने वाले योजना आयोग में केवल आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, तथा कृषि विषयों के विशेषज्ञ और राष्ट्रीय कार्यकलापों में अन्य विशेषज्ञ होने चाहिए। इसमें भारत सरकार का कोई सदस्य नहीं होना चाहिए। इस संबंध में बनाई जाने वाली विधि में योजना आयोग के सदस्यों के कार्यकाल, पद, पदावधि और सेवा की शर्तों का उल्लेख होना चाहिए और इस आयोग का अपना सचिवालय होना चाहिए। वर्तमान योजना आयोग को समाप्त कर दिया जाए।

योजना आयोग का कार्य राज्यों द्वारा तैयार की गई योजना पर सलाह देना हो।

इसकी यह जिम्मेदारी भी होगी कि यह राज्यों द्वारा या राज्यों में शुरू किए गए औद्योगिक उपक्रमों के लिए राज्यों को विदेशी मुद्रा प्रदान करने के बारे में वित्त आयोग के विचारार्थ सुझाव दे। वित्त आयोग अनुदानों की सिफारिश करते समय, योजना आयोग के सुझावों को ध्यान में रखेगा।

प्रत्येक राज्य का एक अपना मण्डल होना चाहिए।

योजना और विकास—उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 (1951 का केन्द्रीय अधिनियम 65) निरस्त किया जाए।

राज्य को नए उद्योग शुरू करने या चलाने तथा राज्य के भीतर नये औद्योगिक उपक्रम शुरू करने के लाइसेंस देने का अधिकार होना चाहिए और यदि किसी राज्य द्वारा शुरू किए गए या लाइसेन्स प्रदत्त औद्योगिक उपक्रम के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता हो तो प्रत्येक राज्य को ये मुद्रा सामूहिक अनुदानों के माध्यम से राष्ट्रीय योजना प्राथमिकताओं, राष्ट्रीय मांग प्रदर्शनों और सूचना वितरण प्रणाली के अनुसार आबंटित की जानी चाहिए।

न्यायपालिका-उच्चतम न्यायालय—साधारण, सिविल, दांडिक या अन्य विषयों पर उच्च न्यायालय के बाद उच्चतम न्यायालय को कोई अपील करने की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए चाहे निहित आर्थिक हित कुछ भी हो और दिया गया दण्ड किसी भी प्रकार का क्यों न हो। किन्तु इसके अन्तर्गत ऐसा मामला नहीं आएगा जिसमें संवैधानिक मसले शामिल हों, जिनमें अन्तर्राज्यीय मसले या केन्द्रीय अधिनियम की व्याख्या भी शामिल है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय यह वांछनीय है कि यथासंभव कार्यकुशलता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बगैर उच्च न्यायालय तथा देश के विभिन्न भागों के न्यायालयों से भी प्रतिनिधित्व प्राप्त किया जाए।

उच्च न्यायालय—उच्च न्यायालय के गठन और संगठन के संबंध में विधायी शक्ति राज्य सूची में स्थानान्तरित करने का प्रस्ताव है। इसलिए अनुच्छेद 217, 222, 223, 224 तथा 224(ए) में उपयुक्त संशोधन या विलोपन करना होगा।

उच्च न्यायालय को संदर्भ—जब कभी राज्य विनियमों के किसी उपबन्ध विशेष को इस आधार पर उच्च न्यायालय में चुनौती दी जाती है कि वह असंवैधानिक है, तो संबंधित राज्य सरकार को इस प्रश्न को तीन या अधिक न्यायाधीशों के पूर्ण न्यायपीठ को भेजने के लिए, उच्च न्यायालय में जाने का अधिकार होना चाहिए और इस न्यायपीठ में से एक सदस्य मुख्य न्यायाधीश होना चाहिए। इस प्रकार गठित न्यायपीठ को अधिनियम के प्रत्येक उपबन्ध पर विचार करना चाहिए और एक बार उनका निर्णय मिल जाने पर उसके बाद असंवैधानिकता के आधार पर अधिनियम के किसी उपबन्धों को चुनौती नहीं दी जा सकनी चाहिए। राज्य सरकार को किसी भी विधिक प्रश्न या लोक महत्व के तथ्य के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय का परामर्शी न्याय प्राप्त करने के लिए उस प्रश्न को उच्च न्यायालय में भेजने का अधिकार होना चाहिए।

राज्यपाल :—राज्यपाल का पद ब्रिटिश औपनिवेशक प्रणाली की देन है। हमारे संविधान में राज्यपाल की नियुक्ति के लिए जिस तरीके की व्यवस्था की गई है उससे लोकतांत्रिक ढांचे में अराजकतावाद की बू आती है। वह केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त और उसी के प्रति जवाबदेह कार्यकर्ता होता है और इसलिए यह आशा नहीं की जा सकती कि वह स्थानीय परिस्थितियों और राजनीतिक स्थिति को समझे। राज्यपाल के पद पर किया जाने वाला व्यय समाजवादी पद्धति के अनुरूप नहीं है। यह व्यय बिल्कुल व्यर्थ है जिससे बचा जा सकता है। राव शिव बहादुर सिंह बनाम विध्य प्रदेश राज्य (1953) एस सी आर (1188) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि मंत्री राज्यपाल का अधीनस्थ अधिकारी होता है। इसलिए विधिक सिद्धान्त के अनुसार जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि केन्द्र सरकार के नामिती के रूप में एक सेवक के सिवाय कुछ भी नहीं होता। राज्यपाल का पद समाप्त करने का उचित समय आ गया है।

यदि मुख्य मंत्री का पद पश्चिम जर्मनी को कार्यप्रणाली के अधीन मृत्यु, त्यागपत्र आदि के कारण रिक्त होता है तो उत्तराधिकारी का चुनाव एक निश्चित अवधि के भीतर हो जाना चाहिए और यदि ऐसा नहीं किया जाता तो विधान सभा स्वतः भंग हो जाएगी। इस अराजक-काल के दौरान यह सुझाव है कि उस समय तक राज्य का मुख्य न्यायाधीश राज्य के प्रशासन का कार्यभार संभाल ले जब तक कि नया मुख्य मंत्री कार्यभार ग्रहण नहीं करता। यदि इस सुझाव के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाता है तो अन्य ब्यौरे परिकलित किए जा सकते हैं।

पश्चिम जर्मनी की प्रणाली के अन्तर्गत कार्यपालिका को अविश्वास मत द्वारा बरखास्त किया जा सकता है जिसे "अविश्वास का निर्णायक मत" कहते हैं। इस व्यवस्था के अधीन कार्यपालिका को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा तब तक बरखास्त नहीं किया जा सकता जब तक कि इसके साथ उसके उत्तराधिकारी का चयन न किया गया हो। इसी प्रकार की प्रणाली यहां भी अपनाई जा सकती है। इस समय राज्यपाल द्वारा किए जा रहे कार्य मुख्यमंत्री द्वारा किए जाएंगे। यदि कोई अराजक-काल हो तो राज्य का मुख्य न्यायाधीश मुख्य मंत्री के रूप में कार्य करेगा।

आपातकालीन शक्तियां—अनुच्छेद 356 और 357 के अधीन जो आपात शक्तियां राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाने का अधिकार देती हैं, उन्हें निकाल दिया जाएगा।

अनुच्छेद 365—संघ सरकार द्वारा मार्गनिर्देश जारी करने के उपबन्ध निकाल दिए गए हैं। परिणामस्वरूप इस अनुच्छेद का विलोप करना होगा।

राष्ट्रीय आपात स्थिति—अनुच्छेद 352 और 354—आपात स्थिति प्रस्तापित करने और परिणामी शक्तियों से संबंधित अनुच्छेद 352 और 354 के अधीन अधिकार केवल युद्ध या बाहरी आक्रमण तक सीमित किए जाने चाहिए।

अनुच्छेद 353(ए)—आपात स्थिति लागू होने के दौरान निर्देश जारी करने का अधिकार बाहरी आक्रमण तक सीमित होना चाहिए। परन्तु ऐसे निर्देश अन्तर्राज्य परिषद के अनुमोदन से जारी किए जाएंगे।

अनुच्छेद 355—प्रत्येक राज्य को सुरक्षित रखने का संघ सरकार का कर्तव्य केवल युद्ध या बाहरी आक्रमण से संबंधित होना चाहिए।

वित्तीय आपात स्थिति—अनुच्छेद 360—यह उपबन्ध निकाल दिया जाएगा जो वित्तीय स्थिरता या भारत की साख को खतरे के मामलों में राष्ट्रपति को आपात स्थिति की घोषणा जारी करने का अधिकार देता है।

लोक सेवाएं—केवल दो प्रकार की सेवाएं होनी चाहिएं :—

(1) संघ सरकार के प्रयोजनों के लिए सेवाएं, तथा

(2) राज्य सरकार के प्रयोजनों के लिए सेवाएं।

भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा सहित मौजूदा अखिल भारतीय सेवाएं संघ सेवाओं या राज्य सेवाओं में समाविष्ट कर ली जाएं।

राज्य सेवाओं की भर्ती और सेवा शर्तें राज्य ही विनियमित करते रहेंगे। संघ सेवाओं की भर्ती वर्तमान कार्यप्रणाली के अनुसार होगी जिसमें यह आशोधन किया जा सकेगा कि ऐसी भर्ती राज्यवार आधार पर की जाए जिसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए प्रत्येक राज्य में उनकी जनसंख्या के संदर्भ में पदों के आरक्षण की व्यवस्था हो।

राज्य सेवाओं तथा संघ सेवाओं के सदस्यों की अदला-बदली की व्यवस्था होनी चाहिए और ये अदला-बदली इन शर्तों और निबन्धनों पर होगी जो संघ सरकार और संबंधित राज्य सरकार द्वारा स्वीकार की जाए।

अनुच्छेद 312—अखिल भारतीय सेवाओं और नई अखिल भारतीय सेवा की स्थापना से संबंधित यह उपबन्ध निकाल दिया जाए।

केन्द्रीय कर्मचारियों की परिलब्धियां—केन्द्रीय और राज्यों के सरकारी कर्मचारियों की परिलब्धियां समूचे देश में एक समान होनी चाहिए जिसमें स्थानीय या विशेष परिस्थितियों के लिए उचित लाभ दिया जाना चाहिए।

राज्य लोक सेवा आयोग—राज्य लोक सेवा आयोग और उसके सदस्यों को हटाने तथा निलंबित करने के बारे में अधिकार, राज्य सरकार के पास रहेगा।

राज्य के क्षेत्र—स्वयं संविधान में स्पष्ट व्यवस्था की गई है कि राज्य की प्रादेशिक अखण्डता में, निम्नलिखित तीन विकल्पों में से किसी एक विकल्प के अनुसार कार्रवाई को छोड़कर किसी भी तरीके से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा :—

(1) सम्बन्धित राज्य विधान मंडल की सहमति प्राप्त की जानी चाहिए।

(2) मामला उच्चस्तरीय न्यायिक अधिकरण को भेजा जाना चाहिए और उस पर निर्णय होना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए अधिकरण दावाकारी पक्षों की सहमति से गठित किया जाना चाहिए और उसके निर्णय सभी पक्षकारों पर बाध्यकारी होने चाहिए।

(3) विशेष चुनाव कराके सम्बन्धित क्षेत्र या क्षेत्रों के लोगों की राय जाननी चाहिए।

दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 3 और 4 को निकाल दिया जाए और किसी राज्य की सीमाएं, क्षेत्र आदि को परिवर्धित करने के लिए संवैधानिक संशोधन करना जरूरी होगा।

संसद् में राज्यों को प्रतिनिधित्व—राज्य सभा—प्रत्येक राज्य को बराबर प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए अर्थात्, प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या एक समान होनी चाहिए, चाहे उनकी आबादी कुछ भी हो।

राज्य सभा में कोई नामांकन नहीं होना चाहिए।

लोकसभा—1951 में प्रत्येक राज्य के लिए जितने स्थान निर्धारित किए गए, वे अपरिवर्तित रहने चाहिए, सिवाय उन राज्यों के जहां जनसंख्या में वृद्धि हुई हो, ऐसे मामले में सीटों की संख्या किसी अधिकतम सीमा तक बढ़ाई जाए। लेकिन किसी भी स्थिति में प्रत्येक राज्य के लिए 1951 में निर्धारित संख्या में कमी नहीं की जानी चाहिए।

भाषा—संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट सभी भाषाएं संघ सरकार की राजभाषा होंगी। जब तक यह स्थिति न आए, केन्द्रीय सचिवालय सहित संघ सरकार के सभी विभागों और केन्द्र तथा राज्यों के बीच पत्राचार के लिए अंग्रेजी राजभाषा बनी रहेगी। उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेजी ही बनी रहेगी। उच्च न्यायालय सहित सभी न्यायालयों की राजभाषा का निर्धारण संबंधित राज्य सरकारों द्वारा किया जाएगा। संघीय सरकार के किसी अन्य राज्य में स्थित कार्यालयों में जनता के साथ कारोबार में अंग्रेजी के अतिरिक्त उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। राज्य में संघीय सरकार के कार्यालयों और राज्य सरकार तथा उसके कार्यालयों द्वारा तथा उनके बीच सभी पत्राचारों और जनता के साथ कार्यसंचालन के लिए राज्य की राजभाषा का प्रयोग होना चाहिए। राज्य में संघीय सरकार के कार्यालयों द्वारा और उनके बीच पत्राचार राज्य की राजभाषा में होने चाहिए। राज्यों में नियुक्त केन्द्रीय सेवाओं के सदस्य भी राज्य की राजभाषा से सुपरिचित होने चाहिए।

व्यापार और वाणिज्य—अनुच्छेद 302—यह अनुच्छेद संसद् को व्यापार और वाणिज्य तथा परस्पर व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्तियां देता है। इसे हटाया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 304 (बी)—अनुच्छेद 304 (बी) के परन्तुक को, जिसमें यह अपेक्षित है कि राज्य विधान मण्डल के विधेयकों के लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति ली जाए, हटाया जाना चाहिए।

लोक व्यवस्था—राज्य की सहमति या इसके अनुरोध के बिना किसी भी राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल तैनात नहीं किया जाना चाहिए।

राज्य विधान मण्डलों के चुनाव कराने वाला तन्त्र—लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन किया जाए ताकि उनके अधीन बनाए जाने वाले नियमों और उपबन्धों को संसद् के चुनावों तक ही सीमित रखा जा सके। राज्य विधान मण्डलों को राज्य विधान मण्डल के चुनावों के सम्बन्ध में विधियां बनाने की स्वतंत्रता अवश्य होनी चाहिए।

अन्तर्राज्य जल विवाद—यदि किसी अन्तर्राज्यीय नदी के संदर्भ में कोई जल विवाद हो, तो संबंधित राज्यों के मुख्यमंत्रियों या उनके प्रतिनिधियों के बीच कोई समझौते की बातचीत अवश्य होनी चाहिए। यदि ऐसे समझौते की बातचीत से निर्धारित समय में कोई सहमति नहीं हो पाती है, तो प्रधान-मंत्री को निर्धारित अवधि में मामले का निपटारा करना चाहिए। यदि ऐसे कोई समझौता नहीं हो पाता तो संघीय सरकार को यह मामला स्वयं ही सीधे उच्चतम न्यायालय को भेजना चाहिए। यदि संघीय सरकार ऐसा करने में असफल रहती है, तो विवाद में शामिल दोनों पक्षों में से कोई भी पक्ष उच्चतम न्यायालय को मामला भेज सकता है। ऐसे मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय की न्यायपीठ द्वारा की जानी चाहिए।

उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए संतोषजनक प्रावधान बनाए जाने चाहिए।

प्रादेशिक जल के अधीन समुद्री तल—अनुच्छेद 297 का इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि उस राज्य के संलग्न प्रादेशिक जल के नीचे समुद्र में पड़ी सभी भूमि, खनिजों, अन्य मूल्यवान वस्तुओं पर राज्य को अधिकार मिल जाए।

संघ कार्यपालिका—ऐसी परंपराएं स्थापित की जानी चाहिए जिनसे संघ मंत्रिमण्डल का गठन इस प्रकार विनियमित हो कि संसदीय प्रणाली की सरकार और इसके सभी पहलुओं के अनुरूप देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए प्रतिनिधित्व सुरक्षित किया जा सके।

किसी एक राज्य से सम्बद्ध, मन्त्रिमण्डल स्तर के केन्द्रीय मंत्रियों की संख्या कुल संख्या के पांचवें भाग से अधिक नहीं होनी चाहिए।

केन्द्र-राज्य संबंधों पर विचार करने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा श्री एम० सी० सीतलवाड़ की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल का गठन किया गया था। इस दल ने राज्य और समवर्ती सूचियों के मामलों से संबंध रखने वाली केन्द्रीय एजेन्सियों की भूमिका पर पूरा एक अध्याय लिखा है। अध्ययन दल की सिफारिशों के अनुसार, कार्य मदों को राज्यों में विकेन्द्रीकृत कर दिया जाना चाहिए और केन्द्र सरकार की भूमिका पथ प्रदर्शक, योजनाकार और मूल्यांकनकर्त्ता की होनी चाहिए। प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह सिफारिश की है कि राज्य सूची में आने वाले विषयों के सन्दर्भ में केन्द्रीय मंत्रालयों और विभागों की भूमिका

सीमित होनी चाहिए। राज्य सूची में आने वाले विषयों से सम्बन्धित कार्य को देखने के लिए केन्द्र में अलग से पूर्ण मंत्रालय या विभाग की आवश्यकता नहीं है।

संविधान का संशोधन—निहित प्रावधान पर विचार किए बिना, संविधान के प्रत्येक संशोधन के लिए सभी राज्यों के विधान मण्डलों का अनुसमर्थन अवश्य लिया जाना चाहिए ।

विधायी शक्ति—संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के रूप में संसद् और राज्य विधान मण्डलों की विधायी शक्तियां परिगणित है। विधायी शक्तियों की इन प्रविष्टियों का विस्तारपूर्वक परीक्षण करने के बाद, विधायी शक्तियों की तीन सूचियों का नया सेट तैयार किया गया है। इन तीनों सूचियों के नाम हैं संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। इन सूचियों को तैयार करने का उद्देश्य वास्तव में एक ऐसा संघ स्थापित करना है जिसकी संघीय सरकार हो जिसे केवल रक्षा, विदेश नीति, अन्तर्राज्य संचार और मुद्रा से संबंधित शक्तियां प्राप्त हों और राजमन्नार समिति की सिफारिशों के अनुसार अवशिष्ट शक्तियों सहित अन्य सभी शक्तियां राज्यों को प्राप्त हों।

संघ सूची

प्रतिधारित विधायी शक्ति

संघ सूची में विधायी शक्तियों की निम्नलिखित प्रविष्टियों को संघ सूची में रहने दिया गया है :—

भारत की और उसके प्रत्येक भाग की रक्षा, जिसके अन्तर्गत रक्षा के लिए तैयारी और ऐसे सभी कार्य हैं, जो युद्ध के समय युद्ध के संचालन और उसकी समाप्ति के पश्चात् प्रभावी सैन्य नियोजन में सहायक हो।

नौसेना, सेना और वायु सेना; संघ के अन्य सशस्त्र बल।

छावनी क्षेत्रों का परिसीमन, ऐसे क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन, ऐसे क्षेत्रों के भीतर छावनी प्राधिकरणों का गठन और शक्तियां तथा ऐसे क्षेत्रों में गृहवास सुविधा का विनियमन (जिसके अन्तर्गत भाटक का नियंत्रण है);

नौसेना, सेना और वायु सेना संकर्म ;

आयुध, अग्न्यायुध, गोलाबारुद और विस्फोटक;

परमाणु, ऊर्जा और उसके उत्पादन के लिए आवश्यक खनिज सम्पदा, जहां तक इनका संबंध है देश की प्रतिरक्षा से हो;

उद्योग, जहां तक ये प्रतिरक्षा या युद्ध के संचालन के लिए आवश्यक हों ;

केन्द्रीय आसूचना और अन्वेषण ब्यूरो।

रक्षा, विदेश कार्य या भारत की सुरक्षा सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध; इस प्रकार निरोध में रखे गए व्यक्ति।

विदेशक कार्य : सभी विषय जिनके द्वारा संघ का किसी विदेश से सम्बन्ध होता है।

राजनयिक, कौंसलीय और व्यापारिक प्रतिनिधित्व।

संयुक्त राष्ट्र संघ।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगमों और अन्य निकायों में भाग लेना और उनमें किए गए विनिश्चयों का कार्यान्वयन।

विदेशों से संधि और करार करना और विदेशों से की गई संधियों, करारों और अभिसमयों का कार्यान्वयन।

युद्ध और शान्ति;

वैदेशिक अधिकारिता,

नागरिकता, देशीयकरण और अन्यदेशीय;

प्रत्यार्पण;

भारत में प्रवेश और उसमें से उत्प्रवास और निष्कासन; पासपोर्ट और वीजा;

भारत से बाहर के स्थानों की तीर्थयात्राएं; खुले समुद्र या आकाश में की गई जलदस्युता और अपराध; स्थल या खुले समुद्र या आकाश में राष्ट्रों की विधि के विरुद्ध किए गए अपराध।

अन्तर्राज्य रेल ;

समुद्रीय पोतपरिवहन और नौपरिवहन, जिसके अन्तर्गत ज्वारीय जल में पोतपरिवहन और नौपरिवहन है, वाणिज्यिक समुद्री बेड़े के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन शामिल है।

प्रकाश स्तंभ, जिनके अन्तर्गत प्रकाशपोत, बीकन तथा पोत-परिवहन और वायुयानों की सुरक्षा के लिए अन्य व्यवस्था शामिल है।

मुख्य पत्तन और पत्तन प्राधिकरणों का गठन और शक्तियां, उनके परिसीमन सहित।

पत्तन करन्तीन, जिसके अन्तर्गत उससे सम्बद्ध अस्पताल हैं; नाविक और समुद्रीय अस्पताल।

वायुमार्ग; वायुयान और विमान चालन; विमानक्षेत्र की व्यवस्था; हवाई यातायात और विमान क्षेत्रों का विनियमन और संगठन; वैमानिक शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए व्यवस्था तथा ऐसी शिक्षा और प्रशिक्षण का विनियमन ;

अन्तर्राज्य रेल, समुद्र या वायुमार्ग द्वारा यात्रियों और माल का वहन ;

डाक-तार तथा टेलीफोन;

संघ सरकार की सम्पत्ति तथा उससे राजस्व, किन्तु किसी राज्य में स्थित सम्पत्ति के सम्बन्ध में उस राज्य के विधान के अधीन रहते हुए रखना।

देशी राज्यों के शासकों की सम्पदा के लिए प्रतिपाल्य अधिकरण;

संघ सरकार का लोकऋण ;

करेंसी, सिक्का निर्माण और वैध मुद्रा : विदेशी मुद्रा

विदेशी ऋण;

संघीय रिजर्व व्यवस्था पर प्रतिरुपित रिजर्व बैंक;

विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य; सीमा शुल्क सीमान्तों के आर-पार आयात और निर्यात; सीमा शुल्क सीमान्तों का परिनिश्चय।

भारत से बाहर निर्यात किए जाने वाले माल की क्वालिटी के मानक नियत करना।

राज्य क्षेत्र सागरखण्ड से परे मछली पकड़ना और मीन क्षेत्र।

संघ के कर्मचारियों से सम्बन्धित औद्योगिक विवाद;

इस संविधान के लागू होने के समय राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, इम्पीरियल युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक और भारतीय युद्ध स्मारक नामों से ज्ञात संस्थान।

इस संविधान के लागू होने के समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं;

जनगणना;

संघ सरकार सेवाएं तथा संघ सरकार लोक सेवा आयोग;

संघ सरकार पेंशनें अर्थात् भारत सरकार द्वारा या भारत की संचित निधि में से संदेय पेंशनें।

संसद् के लिए तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए निर्वाचन;

ऐसे निर्वाचनों के सम्बन्ध में निर्वाचन आयोग;

संसद् सदस्यों के, राज्यसभा के सभापति और उपसभापति के तथा लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते;

संसद के प्रत्येक सदन की और प्रत्येक सदन के सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां; संसद की समितियां या संसद द्वारा नियुक्त आयोगों के समक्ष साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों को हाजिर कराना;

राष्ट्रपति की परिलब्धियां, भत्ते, विशेषाधिकार और अनुपस्थिति छुट्टी के सम्बन्ध में अधिकार, संघ के मंत्रियों के वेतन और भत्ते; नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक के वेतन, भत्ते और अनुपस्थिति छुट्टी के सम्बन्ध में अधिकार और सेवा की अन्य शर्तें ।

संघ के और राज्यों के लेखाओं की लेखापरीक्षा;

उच्चतम न्यायालय का गठन संगठन अधिकारिता और शक्तियां (जिनके अन्तर्गत उस न्यायालय का अवमान है) और उसमें ली जाने वाली फीस; उच्चतम न्यायालय के समक्ष विधि-व्यवसाय करने के हक़दार व्यक्ति ।

संबंधित राज्य सरकारों की सहमति से किसी उच्च न्यायालय की अधिकारिता का किसी संघशासित क्षेत्र पर विस्तारण और उससे अपवर्जन;

अन्तर्राज्यीक प्रवास; अन्तर्राज्यिक करन्तीन;

सीमाशुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात शुल्क है ।

इस सूची के विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध ।

इस सूची के विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच सर्वेक्षण और आंकड़े;

उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में नौकाधिकरण विषयक अधिकारिता;

इस सूची के विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में फीस किन्तु इसके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीस नहीं है ।

राज्य सूची

(1) राज्य सूची में प्रतिधारित विधायी शक्तियां

राज्य सूची की विधायी शक्तियों की निम्नलिखित प्रविष्टियों को राज्यसूची में रख लिया गया है :—

लोक व्यवस्था (किन्तु इसके अन्तर्गत सिविल शक्ति की सहायता के लिए नौसेना, सेना या वायुसेना या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का प्रयोग नहीं है);

पुलिस, जिसके अन्तर्गत रेल और ग्राम पुलिस है ;

न्याय का प्रशासन; सभी न्यायालयों का गठन और संगठन सिवाय उच्चतम न्यायालय के; उच्च न्यायालय के अधिकारी और सेवक; भाटक और राजस्व न्यायालयों में क्रियाविधि; उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों में ली जाने वाली फीस;

कारागार, सुधारालय, बोर्स्टल संस्थाएं और उसी प्रकार की अन्य संस्थाएं और उनमें निरुद्ध व्यक्ति; कारागारों और अन्य संस्थाओं के उपयोग के लिए अन्य राज्यों से व्यवस्था ।

स्थानीय शासन, अर्थात् नगर निगमों, सुधार न्यास, जिला बोर्डों, खनन बस्तियों प्राधिकरणों और स्थानीय स्वशासन या ग्रामप्रशासन के प्रयोजनों के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकरणों का गठन और शक्तियां ;

लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता; अस्पताल और औषधालय;

भारत से बाहर के स्थानों की तीर्थयात्राओं से भिन्न तीर्थयात्राएं;

मादक लीकर, अर्थात् मादक लीकर का उत्पादन, विनिर्माण कब्जा, परिवहन, क्रय और विक्रय ;

निःशक्त और नियोजन के लिए अयोग्य व्यक्तियों की सहायता;

शव गाड़ना और कब्रिस्तान; शव दाह और श्मशान; शिक्षा, विश्वविद्यालयों सहित;

राज्य द्वारा नियन्त्रित या वित्त पोषित पुस्तकालय, संग्रहालय या वैसी ही अन्य संस्थाएं; प्राचीन और ऐतिहासिक संस्मारक और अभिलेख;

संचार साधन, अर्थात् सड़कें, पुल, फेरी और अन्य संचार साधन, नगरपालिक ट्राम, रज्जुमार्ग; अन्तर्देशीय जलमार्ग और उन पर यातायात; यन्त्र नोदित यानों से भिन्न यान ।

कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि शिक्षा और अनुसंधान, नाशक जीवों से संरक्षण और पादप रोगों का निवारण है ।

पशुधन का परिरक्षण, संरक्षण और सुधार तथा जीव-जंतुओं के रोगों का निवारण; पशुचिकित्सा प्रशिक्षण और व्यवसाय;

कांजी हाउस और पशु अतिचार का निवारण;

जल अर्थात्, जल प्रदाय, सिंचाई और नहरें, जल निकास और तटबंध, जल भण्डारकरण और जल शक्ति;

भूमि, अर्थात् भूमि में या उस पर अधिकार, भूधृति जिसके अन्तर्गत भूस्वामी और अभिधारियों का सम्बन्ध है और भाटक का संग्रहण है; कृषि भूमि का अन्तरण और अन्य संक्रामण; भूमि विकास और कृषि उधार; उपनिवेशन ;

वन;

वन्य जीवजन्तुओं और पक्षियों का संरक्षण;

मीनक्षेत्र;

वार्ड न्यायालय, सूची 1 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारग्रस्त और कुर्क सम्पत्तियां;

खानों का विनियमन और खनिजों का विकास ;

सूची 1 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उद्योग;

गैस और गैस संकर्म;

राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य;

माल का उत्पादन, प्रदाय और वितरण ;

बाजार और मेले;

साहुकारी और साहुकार; कृषि ऋणिता से मुक्ति ;

पांथशाला और पांथशाला पाल;

निगमों और विश्वविद्यालयों का निगमन, विनियमन और परिसमापन अनिगमित व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और धार्मिक तथा अन्य सोसायटियां और संगम, सहकारी सोसायटियां;

नाट्यशाला और नाट्यप्रदर्शन; सिनेमा; खेलकूद मनोरंजन और आमोद;

दांव और द्युत;

राज्य में निहित या उसके कब्जे के संकर्म, भूमि और भवन;

राज्य के विधानमंडल के लिए निर्वाचन;

राज्य के विधान-मण्डल के सदस्यों के, विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के और, यदि विधान परिषद है तो, उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते ।

विधान सभा की और उसके सदस्यों और समितियों की तथा यदि विधान परिषद है तो, उस विधान परिषद की और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां; राज्य के विधान मण्डल

की समितियों के समक्ष साक्ष्य देने या दस्तावेज पेश करने के लिए व्यक्तियों को हाजिर कराना ।

राज्य के मंत्रियों के वेतन और भत्ते;

राज्य लोक सेवाएं; राज्य लोक सेवा आयोग;

राज्य की पेंशनें अर्थात, राज्य द्वारा या राज्य की संचित निधि में से संदेय पेंशनें;

राज्य का लोक ऋण;

निखात निधि;

भू-राजस्व जिसके अन्तर्गत राजस्व का निर्धारण और संग्रहण, भू-अभिलेख रखना, राजस्व के प्रयोजनों के लिए और अधिकारों के अभिलेखों के लिए सर्वेक्षण और राजस्व का अन्य संक्रामण है ।

कृषि-आय पर कर;

कृषि भूमि के उत्तराधिकार के संबंध में शुल्क;

कृषि भूमि के संबंध में सम्पदा शुल्क;

भूमि और भवनों पर कर;

खनिज संबंधि अधिकारों पर कर ,

राज्य में विनिर्मित या उत्पादित निम्नलिखित माल पर उत्पाद शुल्क और भारत में अन्यत्र विनिर्मित या उत्पादित वैसे ही माल पर उसी दर या निम्न स्तर से प्रतिशुल्क —

(क) मानवीय उपभोग के लिए ऐल्कोहली लिकर;

(ख) अफीम, इण्डियन हेम्प और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक पदार्थ;

किसी स्थानीय क्षेत्र में उपयोग, प्रयोग या विक्रय के लिए माल के प्रवेश पर कर;

विद्युत के उपयोग या विक्रय पर कर;

समाचार पत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर कर;

विज्ञापनों पर कर ।

सड़कों या अन्तर्देशीय जलमार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर कर;

सड़कों पर उपयोग के योग्य वाहनों पर कर चाहे वे यन्त्रनोदित हों या नहीं जिनके अन्तर्गत ट्रामकार हैं;

जीवजंतुओं और नौकाओं पर कर;

पथकर;

वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नियोजन पर कर; प्रतिव्यक्ति कर;

विलास वस्तुओं पर कर जिनके अन्तर्गत मनोरंजन आमोद, दाव और द्यूत पर कर शामिल है ।

दस्तावेजों के संबंध में स्टाम्प-शुल्क की दरें; इस सूची के विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध;

उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में अधिकारिता और शक्तियां ।

इस सूची के विषयों में से किसी विषय के संबंध में फीस किन्तु इसके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जाने वाली फीस नहीं है ।

(2) संघ सूची से राज्य सूची में स्थानांतरित विधायी शक्तियां

संघ सूची की विधायी शक्तियों की निम्नलिखित प्रविष्टियां राज्य सूची में स्थानान्तरित की गई है:—

देश की रक्षा से भिन्न प्रयोजनों के लिए परमाणु ऊर्जा और खनिज सम्पदा;

राज्य के भीतर रेल;

राज्य के भीतर सभी राजमार्ग;

यन्त्रनोदित जलयानों के संबंध में अन्तर्देशीय जलमार्गों पर पोत परिवहन और नौपरिवहन; ऐसे जलमार्गों पर मार्ग का नियम;

राज्य के भीतर रेल द्वारा यात्रियों और माल का वहन;

बेतार प्रसारण दूरदर्शन और वैसे ही अन्य संचार साधन;

बचत बैंक;

लाटरियां;

अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य;

व्यापार निगमों का जिनके अंतर्गत बैंककारी बीमा और वित्तीय निगम है, निगमन, विनियमन और परिसमापन;

बैंककारी;

बीमा;

स्टाक एक्सचेंज और वायदा बाजार;

तेल क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पदा का विनियमन और विकास; पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पाद; अन्य द्रव और पदार्थ;

खानों और तेल क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन;

राज्यक्षेत्रीय सागर खण्ड के भीतर मछली पकड़ना और मीन क्षेत्र;

नमक का विनिर्माण , प्रदाय और वितरण;

नमक के विनिर्माण, प्रदाय और वितरण का विनियमन और नियंत्रण;

अफीम की खेती, उसका विनिर्माण और निर्यात के लिए विक्रय;

प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्मों की मंजूरी;

वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्थाएं;

संस्थाएं जो व्यावसायिक वृत्तिक या तकनीकी प्रशिक्षण के लिए हैं जिसके अन्तर्गत पुलिस अधिकारियों का प्रशिक्षण है या विशेष अध्ययन या अनुसंधान की अभिवृद्धि के लिए है; या अपराध के अनुसधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता के लिए है;

उच्चतर शिक्षा की अनुसंधान संस्थाओं में या वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का अवधारण;

प्राचीन और ऐतिहासिक सस्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष;

राज्यों के विधान मण्डलों के लिए निर्वाचन, ऐसे निर्वाचनों से संबंधीत निर्वाचन आयोग, राज्यों के लेखाओं की लेखा परीक्षा;

उच्चन्यायालयों के अधिकारियों और सेवकों के बारे में उपबन्धों को छोड़कर उच्च न्यायालयों का गठन और संगठन (जिसके अन्तर्गत दीर्घावकाश है); उच्च न्यायालयों के समक्ष विधि-व्यवसाय करने के हकदार व्यक्ति;

आय पर कर;

तम्बाकू और अन्य माल पर उत्पाद शुल्क, जिसके अन्तर्गत ऐसी औषधीय और प्रसाधन निर्मितियां हैं जिनमें एल्कोहल या कोई पदार्थ अन्तर्विष्ट है ;

निगम कर;

व्यष्टियों और कम्पनियों की आस्तियों के पूंजी मूल्य पर कर; कम्पनियों की पूंजी पर कर;

सम्पत्ति के सम्बन्ध में सम्पदा शुल्क;

सम्पत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में सम्पदा शुल्क;

रेल समुद्र या वायुमार्ग द्वारा ले जाए जाने वाले माल या यात्रियों पर सीमा कर राज्यों के भीतर रेल भाड़ों और माल भाड़ों पर कर;

स्टाक एक्सचेंजों और वायदा बाजारों के संव्यवहारों पर स्टाम्प-शुल्क से भिन्न कर;

विनिमयपत्रों, चेकों, वचनपत्रों, वहनपत्रों, प्रत्ययपत्रों, बीमा पालिसियों, शेयरों के अन्तरण, डिबेंचरों, परोक्षियों और प्राप्तियों से संबंध में स्टाम्प-शुल्क की दरें;

समाचार पत्रों के क्रय या विक्रय और उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर;

समाचार पत्रों से भिन्न माल के क्रय या विक्रय पर कर;

कोई अन्य विषय जो सूची I या सूची III में प्रगणित नहीं है और जिसके अन्तर्गत कोई ऐसा कर है जो उन सूचियों में से किसी सूची में उल्लिखित नहीं है ।

3. समवर्ती सूची से राज्यसूची में स्थानान्तरित वि ायी शक्तियाँ

समवर्ती सूची की विधायी शक्तियों की निम्नलिखित प्रविष्टियां राज्यसूची में स्थानान्तरित की गई हैं :—

दण्ड विधि, जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु इसके अन्तर्गत संघ सूची में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय से संबंधित विधियों के विरुद्ध अपराध और सिविल शक्ति की सहायता के लिए नौसेना, सेना या वायुसेना अथवा संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का प्रयोग नहीं हैं ।

दण्ड प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत ऐसे सभी विषय हैं जो इस संविधान के प्रारम्भ पर दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत आते हैं ।

राज्य की सुरक्षा से सम्बद्ध कारणों से निवारक निरोध (प्रिवेन्टिव डिटेन्शन), लोक-व्यवस्था का अनुरक्षण, या समाज के लिए आवश्यक पूर्तियों और सवाओं का अनुरक्षण, इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति;

विवाह और विवाह-विच्छेद, शिशु और अवयस्क, दत्तक-ग्रहण, बिल, निर्वसीयतता (इन्टेस्टेसी) और उत्तराधिकार, संयुक्त परिवार और विभाजन, वे सभी मामले जिनमें इस संविधान के ठीक पहले न्यायिक कार्यवाहियों में संलग्न पक्षकार अपनी स्वीय-विधि (पर्सनल-लॉ) के अधीन थे ;

सम्पत्ति का अन्तरण, विलेखों और प्रलेखों का पंजीकरण;

संविदाएं जिनमें भागीदारी, एजेन्सी शामिल हैं, वहन संबंधी संविदाए और संविदाओं के अन्य विशेष प्रकार;

वाद योग्य दोष (एक्शनएबल रोंग्स);
दिवालियां होना (बैंक रूप्टसी और इन्सोलवेन्सी);
न्यास और न्यासी ;

महाप्रशासक (एडमिनिस्ट्रेटर जनरल) और शासकीय न्यासी (आफिशियल ट्रस्टीस);

साक्ष्य और शपथें, विधि की मान्यता, लोक कार्य और अभिलेख, और न्यायिक कार्यवाही, सिविल प्रक्रिया जिसमें इस संविधान के लागू होने से पहले सिविल प्रक्रिया संहिता में शामिल सभी विषय दिए गए हैं, परिसीमा और माध्यस्थम ।

न्यायालय का अवमान (कन्टेम्पट) लेकिन इसमें उच्चतम न्यायालय का अवमान शामिल नहीं है;

आवारागर्दी, यायावर और प्रवासशील जनजातियां;

पागलपन और मानसिक दौर्बल्य जिसमें पागलों और मानसिक दुर्बलता वाले व्यक्तियों को भर्ती करने और उनके उपचार के स्थान भी शामिल हैं;

पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण;

खाद्यान्न और अन्य माल का अपमिश्रण (एडल्टरेशन);

औषधियां और विष;

आर्थिक और सामाजिक योजना बनाना;

वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिकार कम्बाइन्स और न्यास;

व्यापार संघ, औद्योगिक और श्रमिक-विवाद;

सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, नियोजन और बेरोजगारी;

श्रमिक कल्याण इसमें कार्य की शर्तें, भविष्य निधि, नियोजक का दायित्व, कामगारों का मुआवजा, अशक्त व्यक्ति और वार्धक्य पेंशन और प्रसूती लाभ शामिल है ।

श्रमिकों को व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण;

कानूनी चिकित्सा संबंधी और अन्य व्यवसाय;

(चेरीटीस) और पूर्त संस्थाए, पूर्त और धर्मदाय तथा धार्मिक सस्थाए;

महत्वपूर्ण आंकड़े इनमें जन्म और मृत्यु संबंधी पंजीकरण शामिल है, मुख्य पत्तनों को छोड़कर शेष पत्तन;

जहां तक मशिन से चलने वाले जलयानों का संबंध है अन्तर्देशीय जल-मार्गों पर नौवहन (शिपिंग) और नौचालन (नेवीगेशन) और ऐसे जलमार्गों के यातायात नियम और राज्य के अन्दर स्थल और जलमार्गों पर यात्रियों और माल का वहन;

निम्नलिखित के संबंध में व्यापार और वाणिज्य और उत्पादन पूर्ति तथा वितरण :—

(क) किसी भी उद्योग के उत्पाद और ऐसे उत्पादों के समान ही आयात किए गए सामान,
(ख) खाद्य पदार्थ जिनमें खाने योग्य तिलहन और तेल शामिल है,
(ग) पशुओं का चारा जिसमें खली और दाना शामिल है,
(घ) कच्ची कपास, चाहे वह ओटाई गई हो या न ओटाई गई हो, और बिनौले, तथा
(ङ) कच्ची पटसन (जूट)

कीमत नियन्त्रण;

मशीन से चलाए जाने वाले वाहन, इनमें वे सिद्धान्त शामिल हैं जिनके अनुसार ऐसे वाहनों से करों की वसूली की जाएगी;

कारखाने;

बॉयलर;

विद्युत।

समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय;

पुरातत्व के स्थल और खण्डहर;

सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण;

करों और अन्य लोक मांगों के संबंध में किसी राज्य में बाकी की वसूली, इनमें भूराजस्व के बकाया और ऐसे बकाया के रूप से वसूली योग्य राशियां शामिल हैं;

न्यायिक स्टाम्पों के जरिए इकट्ठे किए गए शुल्क या फीस से भिन्न स्टाम्प शुल्क लेकिन इनमें स्टाम्प शुल्क की दरें शामिल नहीं हैं।

राज्य सूची में निर्दिष्ट किसी भी मामले को प्रयोजन से की गई पूछ-ताछ और आंकड़े।

समवर्ती सूची

(1) प्रतिधारित विधायी शक्तियां

समवर्ती सूची में विधायी शक्तियों की निम्नलिखित प्रविष्टियां को ज्यों का त्यों बनाए रखा गया है :—

कैदियों, अभियुक्त व्यक्तियों और निवारक निरोध के अधीन निरुद्ध व्यक्तियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजना;

उन संक्रामक या सांसर्गिक रोगों या नाशक कीटों को एक राज्य से दूसरे राज्य में फैल जाने से रोकना जिनका बुरा प्रभाव व्यक्तियों, जानवरों या पौधों पर पड़ सकता है ;

कानून के अधीन निष्क्रान्त मानी गई सपत्ति की अभिरक्षा, उसका प्रबन्ध और निपटान;

भारत और पाकिस्तान के डोमिनियन की स्थापना हो जाने के कारण मूल निवास स्थान से विस्थापित व्यक्तियों की सहायता पहुंचाना और उनका पुनर्वास;

समवर्ती सूची में निर्दिष्ट किसी मामले के प्रयोजन से की जाने वाली पूछताछ और आंकड़े;

समवर्ती सूची के किसी भी मामले के संबंध में उच्चतम न्यायालय को छोड़कर शेष सभी न्यायालयों का क्षेत्राधिकार और उनकी शक्तियां;

समवर्ती सूची के किसी भी मामले के संबंध में फीस लेकिन इसमें किसी न्यायालय में ली गई फीस शामिल नहीं है;

(2) समवर्ती सूची में वर्तमान संघ सूची से अंतरित विधायी शक्तियां

संघ सूची में विधायी शक्तियों की निम्नलिखित प्रविष्टियों का अन्तरण समवर्ती सूची में कर दिया गया है :—

विनियम पत्र, चेक, वचन-पत्र (प्रामिसरी नोटस) और अन्य इसी प्रकार की लिखतें;

पेटेन्ट आविष्कार और डिजाइन, कापीराइट, व्यापार चिन्ह (ट्रेड मार्क) और वाणिज्य चिन्ह (मर्चण्डाइज मार्कस,)

वजन और माप के मानकों की स्थापना;

भारत को निर्यात किए जाने वाले या एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरित किए जाने वाले माल की गुणता के मानकों की स्थापना;

अन्तर्राज्यीय नदियों और नदी-घाटियों का विनियमन और विकास;

भारत का सर्वेक्षण, भारत का भू-वैज्ञानिक, वनस्पति वैज्ञानिक, प्राणी वैज्ञानिक और नृ-वैज्ञानिक सर्वेक्षण,

मौसम वैज्ञानिक संगठन;

विधायी शक्तियों की सूची के उक्त परिवर्तनों को भी आवश्यक अनुपूरक प्रासंगिक और परिणामी संशोधनों सहित संविधान में शामिल किया जाना है।

द्रविड़ मुनेत्र कषगम

अनुपूरक ज्ञापन

भूमिका

सन्, 1969 में भारत में पहली बार डी०एम०के० तमिलनाडु सरकार ने केन्द्र और राज्य के बीच के संबंधों की जांच करने के लिए और उसके संबंध में सिफारिशें करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष डा० पी० वी० राजमैनर थे।

डा० ए० लक्ष्मणस्वामी मुदलियार जो मद्रास विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति तिरु० पी० चन्द्ररेड्डी, मद्रास उच्चन्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधिपति इस समिति के अन्य सदस्य हैं।

तथाकथित राजमैनर्स समिति ने मई 1971 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

अधिकांशतः उस रिपोर्ट का आधार लेते हुए तत्कालीन मुख्यमंत्री तिरु० एम० करुणानिधि ने तमिलनाडु की विधानसभा में राज्य की स्वायत्तता पर एक संकल्प प्रस्तुत किया।

इस सभा ने इस पर पांच दिन तक विचार-विमर्श किया और भारत के इतिहास में पहली बार केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में संविधान में एक संकल्प उपयुक्त परिवर्तनों और संसाधनों की सिफारिश करते हुए 20-4-1974 को पारित किया था।

राज्य की स्वायत्तता के विषय में डी० एम० के० के विचार शीर्षक वाले उन प्रलेखों को केन्द्र-राज्य संबन्धों के आयोग को दिया गया हमारा ज्ञापन मान लिया जाए।

इस अनुपूरक ज्ञापन में हम इस विषय पर अपने अतिरिक्त विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं।

मद्रास

30 दिसम्बर 1985 — एम० करुणानिधि

अध्यक्ष, डी० एम० के० दल

भाग I

सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ (रूस), चीन लोक गणतंत्र और स्विटजरलैंड आदि के समान भारत में विशिष्ट भाषाएं, संस्कृतियां, धर्म, परम्पराएं और उनके अपने इतिहास के साथ अनेक राष्ट्रिकताएं हैं। दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है देश की भौगोलिक विशालता जिसके कारण सभी राज्य समान रूप से विकसित नहीं है।

प्रोफेसर टॉयनबी का यह विचार है कि राष्ट्रीकता की निरन्तर जाग्रत चेतना ने स्वयं को पारम्परिक सीमाओं अथवा भौगोलिक संबंधों के साथ न जोड़कर थोड़ा बहुत केवल मातृभाषाओं के साथ ही जोड़ा है।*

भाषा आधारित प्रान्त "दर आयोग" की रिपोर्ट 1948 में यह कहा है कि भाषा आधारित प्रान्तों के सृजन से उपराष्ट्र अस्तित्व में आएंगे लेकिन इतिहास की शक्तियों ने भाषा आधारित राज्यों का सृजन किया है और आज कोई भी व्यक्ति उन्हें अस्वीकार नहीं कर सकता तथा जन-मानस के रोष का सामना नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति "राष्ट्रिकताओं" की पारिभाषिक शब्दावली के उपयोग को नकारते हैं वे "दर आयोग" के समान उपराष्ट्रों के नाम का उपयोग कर सकते हैं या और हमारे देश को बहुभाषी या बहुमानवजातीय देश कह सकते हैं।

जीवन के केवल ये शाश्वत तथ्य हमारे देश के लिए संघवाद की मांग करते हैं क्योंकि प्रोफेसर केनेथ सी० वेयरे ने यह कहा है कि इतिहास के रूप में संघवाद ने एक उपाय सुझाया है जिसके द्वारा अलग-अलग राष्ट्रिकताएं एक सूत्र में बंध सकती हैं और वे अपना विशिष्ट राष्ट्रीय अस्तित्व कायम रख सकती हैं तथा इसके अतिरिक्त एक समान राष्ट्रिकता की नई चेतना का सृजन करने का प्रयास कर सकती है। किसी संघ में राष्ट्रवाद को कम से कम दो स्तरों में अभिव्यक्त किया जा सकता है। यहाँ एकमात्र समाजवादी भावना नहीं है।**

---

*स्टेट रिआर्गनाइजेशन कमीशन की रिपोर्ट 1955, पृ० 41 में से उद्धृत।

**केनीथ सी वेयरे फेडरलिज्म : "मेच्योर एण्ड एमरजेण्ट" में "फेडरलिज्म एण्ड द मेकिंग आफ नेशन्स" सम्पादक आर्थर डब्ल्यू मैकमोहन, पृष्ठ 35.

हम यह अनुभव करते हैं कि भारत के लिए संघीय राज्य व्यवस्था एक अपरिहार्य व्यवस्था है, क्योंकि यह संघ की विभिन्नता के साथ यह स्पष्ट करने का अवसर प्रजातन्त्रीय विकल्प के रूप में प्रदान करती है।

हमारी यह राय है कि यदि कनाडा एक क्यूबेक (कनाडा का एक प्रान्त) है तो भारत में कई क्यूबेक हैं।

श्री गेराल्ड पेलिटायर कनाडा के संसद सदस्य और "ला प्रेस्सी" के संपादक ने इस बात का उल्लेख किया है कि,

"यदि आपको में यह कहता हूं कि मैं पहले एक कनाड़ावासी हूं और फ्रांसीसी समाज से मेरा संबंध दूसरे स्थान पर है तो वह एक लज्जास्पद असत्य होगा। अब तक राज्य-मण्डल एक अच्छी चीज रही है क्योंकि यह मेरे अपने लोगों को सर्वोत्तम, संभव परिस्थितियों में जीवन यापन करने की सुविधा प्रदान करता है ताकि वह अपनी संस्कृति के भीतर अपनी क्षमताओं का विकास कर सकें। यदि इस राजमण्डल का अर्थ यह हो कि फ्रांस कनाडा की पहचान ही समाप्त हो जाए, फ्रांसीसी संस्कृति को तिलांजलि दे दी जाए तो उसकी स्थिति उत्तरी अमरिका की अनिश्चित अवस्था सी हो जाएगी तो मैं ऐसे राज्य संघ के विरुद्ध हूं।*

इसी प्रकार हम तमिल व्यक्ति भी महसूस करते हैं। कोई भी स्वाभिमानी तमिल व्यक्ति किसी भी बात के लिए अपनी भाषा, संस्कृति और पहचान की बलि नहीं देगा। इसी प्रकार की स्थिति अन्य व्यक्तियों की भी है।

हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि भाषा आधारित राज्य अपने जन्म के बाद अब वयस्क हो गए है और अब उनमें प्रत्येक राज्य का अपना व्यक्तित्व और स्वरूप बन चुका है। वहां के नागरिक अपने राज्य के प्रति जागरुक हो गए हैं। यही नहीं अपितु बहुत से राज्यों की सीमाएं उनकी बोली जाने वाली भाषाओं से मिलती है तो हम यह कह सकते हैं कि वहां की जनता राष्ट्रीकता के प्रति सजग हो गई है।

"संघवाद के बिना कनाडा का अस्तित्व बना नहीं रह सकता था। फ्रांस से आया कनाडा वासी यह नहीं महसूस करेगा कि उसकी विशिष्ट राष्ट्रिकता सुरक्षित रहेगी जिसके आधार पर केवल वे स्वयं को कनाडावासी मानने के लिए तैयार है।**

यही बात भारत के बारे में सही है जहां बहुत से क्यूबेक हैं।

अकेला स्वस्थ संघवाद भारत को एक बनाए रख सकता है और उसे मजबूर बनाए रख सकता है।

किसी संघ में संघीय तथा राज्यीय शासनों को एक दूसरे पर नियंत्रण करने और एक दूसरे के नीति निर्धारण और कार्यान्वयन में हस्तक्षेप से पूरी तरह से मुक्त होना चाहिए। यह मुक्त होना ही संघवाद की आत्मा है। हम इस मुक्त होने की भावना को स्वायत्तता कह सकते हैं। इस मुक्ति को पृथकता अथवा सम्बन्ध समाप्ति नहीं मान लेना चाहिए।

यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय एकता, राज्य-स्वायत्तता पर आधारित होनी चाहिए।

कनाडा में डोनियन प्रान्तों पर रॉयल आयोग का साथ देते हुए हमारा कथन है,

"राष्ट्रीय एकता और प्रांतीय स्वायत्तता" के बारे में ऐसा नहीं सोचा जाना चाहिए कि नागरिकों की देशभक्ति के प्रसंग में उनमें कोई प्रतिद्वंद्विता है। अर्थात, एक ही संघवाद के दो पहलू हैं।

राज्यों के लिए राजनीतिक स्वायत्तता तब तक निरर्थक है जब तक उन्हें पर्याप्त राजकोषीय स्वायत्तता और वित्तीय संसाधनों का सहारा नहीं मिलता।

अतः हम उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संविधान का पुनर्मूल्यांकन किए जाने की मांग करते हैं।

यदि वर्तमान माननीय आयोग हमारे पिछले अनुभव और भावी आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए संविधान में कोई संशोधन किए जाने का सुझाव नहीं देता है तो हमारा यह मत है कि समग्र प्रयास निष्फल होंगे।

कुछ लोग ऐसे भी है जो "केन्द्र में राज्यों और संघीय संघ की स्वायत्तता' की मांग करते हैं तथा प्रादेशिकतावाद को राष्ट्रविरोधी मानते हैं। उनका मत ठीक नहीं है।

यूनिटों की स्वायत्तता संघवाद का प्राण है। यहां तक कि वर्तमान संविधान में कुछ सीमा तक स्वायत्तता प्रदान की गई है। हमारी मांग यह है कि वे अधिक स्वायत्त हों और वे अपने ढंग से और अपनी पद्धति से यूनिटों का विकास वास्तव में कर सकें और उन पर केन्द्र का किसी प्रकार का उपरि नियन्त्रण न हो।

प्रदेशवाद और उपप्रदेशवाद को संविदान में मान्यता प्रदान की गई है।

जम्मू और कश्मीर के लिए संविधान के अनुच्छेद 370 में विशेष उपबन्ध दिए गए हैं।

अनुच्छेद 371 में विदर्भ, मराठवाड़ा, सौराष्ट्र और कच्छ से सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध दिए गए हैं।

अनुच्छेद 371-क में नागालैण्ड राज्य के संबंध में विशेष उपबन्ध दिया गया है।

असम के जनजातीय क्षेत्रों, मणिपुर के पहाड़ी क्षेत्रों के लिए विशेष उपबन्ध दिए गए हैं।

अनुच्छेद 371-घ में आन्ध्र प्रदेश के तेलंगना के संबंध में विशेष उपबन्ध दिए गए हैं।

किसी को भी यह नहीं भूल जाना चाहिए कि भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाला राष्ट्रीय आन्दोलन प्रदेशवाद की शक्तियों की मदद से बना था। राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट (1955) में यह कहा है:–

"यह वह समय था जब कांग्रेस का पुनर्गठन भाषा यूनिटों के आधार पर हुआ था। महात्मा-गांधी के नेतृत्व कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि जिन शक्तियों ने हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए कार्य किया था उन्होंने ही क्षेत्रीय भाषा के विकास में भी सहायता प्रदान की थी जिससे भाषा क्षेत्रों में एकीकरण हुआ। क्षेत्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय भावना के मेल के फलस्वरूप ही हम स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हुए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से एक इस प्रकार की प्रवृत्ति का विकास हुआ है कि आंतरिक एकता के अधिकार से वंचित रखकर अलग अलग क्षेत्रों द्वारा किए गए दावों को नजरअन्दाज कर दिया गया है और यह तर्क दिया गया है कि इससे राष्ट्र की एकता कमजोर हो जाएगी। परन्तु ऐसा सोचना निराधार है। वास्तविक विकास केवल तभी संभव हो सकेगा, यदि हम एक समान भाषा द्वारा एक सूत्रता में गुंथे ऐतिहासिक क्षेत्रों से उत्पन्न हुई वास्तविक देशभक्ति की भावना का उपयोग करने में समर्थ हो जाएं।

—पृष्ठ 38, एम्फेसिस अवर्स

देश के कमजोर होने की बात केवल वही व्यक्त करते है जो राज्य के नाम पर राज्यों के लिए और अधिक शक्तियां जुटाने की मांग को लेकर भला–बुरा कहते हैं। स्वायत्तता राज्य वे हैं जो संघवाद के सामर्थ्य को समझ नहीं पाते। इस प्रकार की आलोचना करके वे यह भी नहीं समझ पाते कि उन वास्तविक और उन मूलभूत देशभक्ति की आकांक्षाओं पर बल देने की क्या आवश्यकता है एक समान भाषा द्वारा एकसूत्रता में पिरोए गए ऐतिहासिक क्षेत्रों में से उभरी है और जो राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने वाली शक्तियां है।

डा० चन्द्रपाल ने उल्लेख किया है "राज्य की स्वायत्तता की मांग चाहे वह राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में हो अथवा राष्ट्रीय एकता के संबंध में, वह असंगत नहीं है।" अपितु यह मांग करना अनिवार्य है। समय की मांग है "एकता" न कि "एक समानता"। एकता में अनेकता लाए बिना अनेकता में एकता नहीं लाई जा सकती। अनेकता को कुचलने के किसी भी प्रयास के खतरनाक

*गेराल्ड फेल्टियर "कन्फेडरेशन एट क्रासरोडस" सास्केटचयुम विश्वविद्यालय 1965, पृ० 4–5

**केथीम बेयरे, वही पृ० 36

परिणाम होंगे और ऐसा होने पर देश खंड खंड हो जाएगा और छोटे-छोटे खेमों में बंट जाएगा ।*

राज्य की स्वायत्ता की समस्या किसी भी अन्य संघीय प्रणाली के समान भारतीय संघीय प्रणाली में हमारा गणतन्त्र बनने के समय से ही जीवन्त प्रश्न रही है, यही नहीं इससे पहले से ही यह समस्या चली आ रही है । भारतीय संविधान के इतिहास के विद्यार्थी इस बात से भली-भांति अवगत हैं कि संघीय धारणा नेहरू रिपोर्ट में विचारार्थ विषय था और भारतीय सांविधिक आयोग की रिपोर्ट पर गोलमेज कान्फ्रेंस में तत्परता से अनुसरण किया गया था और भारत सरकार अधिनियम 1935 में इसे अपना लिया गया था । उक्त अधिनियम की दो मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थीं (1) इसमें भारत सरकार को संघ बनाने का प्रस्ताव किया गया था ; और (2) इस में प्रान्तीय स्वायत्ता की व्यवस्था की गई थी । यद्यपि प्रस्तावित संघ नहीं बन सका तथापि प्रान्तीय स्वायत्तता के मुद्दे को बहुत महत्व मिला ।

ऐतिहासिक तथ्य यह था कि संविधान सभा भारत का एक संघ के रूप में गठन करने वाली मंत्रिमंडल मिशन योजना के प्रस्तावों पर विचार विमर्श करने के लिए मिली जिसके अधीन प्रान्तों को पूरी स्वायत्ता होगी लेकिन उसके पास कम से कम केन्द्रीय विषय होंगे जिनमें विदेश कार्य, रक्षा और संचार और सभी विषय** निहित हैं तथा प्रान्तों के सभी अवशिष्ट अधिकार शामिल हैं । श्री के० एम० मुंशी के अनुसार गांधी जी ने इस योजना में इस निराशा की भूमि को आशा और सुख में बदल देने वाली किरण देखी ।†

3 जून 1947 को भारत विभाजन के निर्णय की घोषणा की गई थी । इसका पहले से आभास हो जाने पर श्री बी० एन० राव ने 30 मई, 1947 को संघ संविधान पर एक ज्ञापन इस प्रकार भेजा :

> यदि मंत्रिमंडल मिशन योजना छोड़ देने का निर्णय हुआ है . . . तो पूरे मामले पर नए सिरे से विचार करना होगा । उस स्थिति में हमारा या तो एकात्मक संविधान होगा जैसा कि भारत सरकार अधिनियम 1935 से पहले था या हमारा केन्द्र और यूनिटों के बीच शक्तियों के इस बंटवारे के साथ का संघ होगा । परन्तु एकात्मक संविधान वांछनीय होने पर भी राजनीति में व्यावहारिक नहीं हो पाएगा ।††

4 जुलाई 1947 को संघ शक्ति समिति ने यह सिफारिश करते हुए संविधान सभा के पास अपनी दूसरी रिपोर्ट प्रस्तुत की कि "संविधान मजबूत केन्द्र के साथ एक संघीय ढांचा होना चाहिए ।" प० नेहरू द्वारा परिचालित वस्तुपरक संकल्प जिसमें एक पूर्ण, मिश्रित संघ के निर्माण का उल्लेख किया गया था@ और संघ शक्ति समिति की पहली रिपोर्ट को तिलांजलि दे दी गई थी ।

के० संथानम ने कहा है—"भारत के विभाजन का मुख्य सांविधानिक परिणाम यह हुआ कि स्थिति एक चरम स्थिति से दूसरी चरम स्थिति तक डांवाडोल होती रही । न्यूनतम संघ की धारणा जो सभी नेता और नेताओं से बढ़कर सभी अनुयायी चाहते थे, वह था अधिक से अधिक मात्रा में संघ की स्थापना ।

एस० बी० पाटस्कर ने इस पहले के संबंध में अत्यन्त स्पष्ट रूप से संविधान सभा में कहा था . . .

> "दूसरे वाचन के समय हमने भय की मनोग्रंथि का विकास किया है—उसका परिणाम यह हुआ कि राज्यों की स्वायत्तता या उन की अध स्वायत्तता राष्ट्रीय संकट के रूप में उभर कर आई — संघ होने की धारणा के साथ हमने प्रान्तों का नाम बदकर राज्य कर दिया । यदि यही धारणा हमेशा बनी रही तो हम वह परिवर्तन कभी नहीं कर पाएगें । लेकिन यदि वहां राज्य का नाम मौजूद है तो राज्य की शक्ति इस प्रकार कम कर दी गई है कि उसे अब आगे "राज्य" कहना एक व्यर्थ की बात होगी ।*

इसके परिणामस्वरूप उन्होंने हमारे संविधान को 1935 के अधिनियम के पेरिस के पलास्टर के सांचे में ढाल दिया जो कि स्वयं संविधान बनाने वालों के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ ।

संविधान सभा ने संघीय सिद्धान्तों को औपचारिक ढंग से समर्थन भी किया था जब पं० नेहरू ने वस्तुपरक संकल्प परिचालित किया जिसमें यह कहा गया था कि :

> "उक्त भूभाग अवशिष्ट शक्तियों सहित . . . . स्वायत्त यूनिटों की हैसियत के होंगे और बने रहेंगे और प्रशासन सरकार की सभी शक्तियों और कार्यों का निर्वहन करेंगे सिवाय उन शक्तियों और कार्यों के जो संघ में निहित हैं या संघ को समनुदेशित की गई है या जो संघ में अन्तर्निहित हैं या विवक्षित हैं या उनके निकली हैं ।**

ये प्रस्ताव कांग्रेस दल द्वारा स्वीकार कर लिए गए थे और इसलिए लोग संविधान सभा के एन० गोपाल स्वामी आय्यंगर के निम्नलिखित विवरण द्वारा यह प्रमाण दे सकते हैं कि :

> "मंत्रिमंडल मिशन के विवरण का उल्लेख मैं इस सभा के संविधान के कानून के रूप में करना चाहूंगा । वह संविधान अपना प्राधिकार इस तथ्य से कि इसके लेखक महामहिम सरकार के तीन सदस्य थे नहीं प्राप्त करता है कि इसमें किए गए प्रस्ताव देश के लोगों द्वारा स्वीकार कर लिए गए हैं ।†

यह बात नोट की जानी चाहिए कि कल के वर्षों का कांग्रेस दल यूनिटों को अधिकतम स्वायत्तता देते हुए एक वास्तविक संघवाद था । पं० नेहरू ने अपनी पुस्तक "द डिस्कवरी आफ इण्डिया" में जो अहमदनगर किले की जेल में अप्रैल से सितम्बर 1944 के दौरान लिखी थी, इस प्रकार अपनी राय दी है,

> "यह स्पष्ट है कि कोई भी वास्तविक समझौता संघटक तत्वों की सहभावना पर आधारित होना चाहिए और समान उद्देश्य के लिए एक साथ सहयोग के लिए सभी दलों की इच्छा पर किया जाना चाहिए । इस की प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार का त्याग श्रेयस्कर है । यदि भावनाओं और सहज संवेगों पर ध्यान न दिया जाए तो प्रान्तों और राज्यों के लिए व्यापक स्वायत्तता और यहां तक कि मजबूत केन्द्रीय संघ के साथ ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त करना कठिन नहीं है ।††

यहां तक कि उन्होंने यूनिटों को पृथक होने के अधिकार की भी मंजूरी दे दी अर्थात् स्वतंत्र भारतीय राज्य की स्थापना के बाद दस वर्ष ।@

उनके विचारों की गूंज कांग्रेस दल के निर्वाचन घोषणा-पत्र में सुनाई दी थी जब 1945 में पार्टी ने चुनाव लड़ा था । यह आश्वासन दिया गया कि "समान और अनिवार्य संघीय विषयों की न्यूनतम सूची" और "भारतीय फेडरेशन या संघ से संविधान के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र का पृथक् होने का अधिकार" हो ।£

. . . निस्सन्देह यह प्रारंभ से ही राष्ट्र के नेताओं की प्रमुख धारणा थी ।

लेकिन पाकिस्तान बन जाने से उनके विचारों की दिशा एकदम बदल गई और इससे केवल अखंड भारत की संकल्पना धरी की धरी रह गई और स्वस्थ संघवाद होने की धारणा भी मिट गई ।

---

*डा० चन्द्रपाल "स्टेट ऑटोनमी इन इंण्डियन फेडरेशन इनरजिंग ट्रेन्डस" पृष्ठ 53.

**संघ के विषय छोड़कर शेष सभी विषय ।

†के० एम० मुंशी इण्डियन कान्स्टीट्यूशनल डॉकूमेण्टस खंड I पृष्ठ 103.

††बी० शिवा राव, इण्डियाज कान्स्टीट्यूशन इन द मेकिंग पृष्ठ 92–93.

@सी० ए० डी० XI 5 पृष्ठ 670.

*सी० ए० डी० खंड XI पृष्ठ 670–673.

**सी० ए० डी० खंड I पृष्ठ 57.

†सी० ए० डी० वही पृष्ठ 39.

††जवाहरलाल नेहरु "द डिस्कवरी आफ इण्डिया" तीसरा संस्करण 1947 साइनेट प्रेस पृ० 448.

@जवाहर लाल नेहरू, वही पृष्ठ 452.

£सेण्ट्रल पार्लियामेण्टरी बोर्ड इण्डियन नेशनल कांग्रेस, हैण्डबुक फार कांग्रेस मेन, नई दिल्ली (बिना तारीख की) पृ० 98.

यह नोट किया जाना चाहिए कि कांग्रेस दल ने अधिनियम 1935 का डटकर विरोध किया ।

इस संबंध में पण्डित नेहरु ने निम्नलिखित कारण बताए: "1935 के अधिनियम का भारतीय विचार धारा के सभी वर्गों द्वारा कड़ा विरोध किया गया । चूंकि प्रान्तीय स्वायत्तता के साथ आंशिक संबंध की राज्यपालों और वाइसराय को दिए गए बहुत से आरक्षणों और शक्तियों की अत्यधिक आलोचना की गई थी अत: संघीय भाग को अपेक्षाकृत अधिक बुरा माना गया । इस प्रकार के संघ का विरोध नहीं किया गया था और प्राय: यह मान लिया गया था कि भारत के लिए एक संघीय ढांचे की आवश्यकता थी । परन्तु प्रस्तावित संघ ने भारत में ब्रिटिश राज्य और निहित स्वार्थों की जड़े मजबूत कर दी ।

यह एक दु:खद बात है कि उसी अधिनियम के बहुत से उपबंध जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पुरानी परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाले औपनिवेशिक मास्तरों द्वारा बनाए गए थे ताकि उनका शोषण किया जा सके और जिनका उस समय कांग्रेस दल द्वारा एकदम विरोध किया गया था, वे शब्दश: हमारे संविधान में शामिल कर लिए गए थे और इसी कारण कुछ लेखक हमारे संविधान को "अधिनियम की ही प्रतिच्छाया" मानते हैं । आइवर जेनिंग्स ने कहा कि इस संविधान का निर्माण सीधे भारत सरकार अधिनियम 1935 से किया गया है जिसमें से वस्तुत: बहुत से उपबन्धों को अक्षरश: ले लिया गया और डा० दुर्गादास बसु का यह अनुभव है कि "संविधान के 75% अंश का मूल वह अधिनियम है ।" अंतर केवल यह है कि जो परमोच्च शक्ति ब्रिटिश शासन के पास थी वह भारत सरकार को अंतरित कर दी गई है ।

अत्यधिक घृणा के पात्र अधिनियम 1935 की नकल किए जाने के मुख्य कारणों को इस प्रकार संक्षेप में दिया जा रहा है ।

1. दुश्चिता की ग्रंथि प्रधान थी, इसलिए जिन्होंने राज्य के अधिकारों की वकालत की थी उन पर देशभक्त न होने का संदेह किया गया क्योंकि पाकिस्तान बन चुका था ।
2. हमारा अपना संविधान जल्दी से जल्दी बन जाए इसलिए वे जनता से मिले आदेश को अनायास भूल गए संघवाद जिसका मुख्य आधार था ।
3. स्वतन्त्रता मिल जाने के हर्षोल्लास में उन्होंने यह सोचा कि कांग्रेस और उसके "देवतासदृश" नेता देश पर हमेशा शासन करेंगे और उन्होंने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि अन्य दल कभी राज्य एककों में सत्ता संभालेंगे । उन्होंने यह सोचा था कि इसके बावजूद यदि ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न हुई ही तो अधिनियम 1935 के कुछ उपबन्धों द्वारा उन्हें दबाना सरल होगा ।
4. कांग्रेस दल अपने मूल रूप में एकात्मक था और रहा है । प्रान्तीय स्वायत्तता के दिनों में सर्वोच्च श्रेणी के नेता जैसे पण्डित नेहरु, सरदार पटेल, डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि उच्च कमान के रूप में नए मंत्रालयों से बाहर रहे और यह वह उच्च कमान था जिसने प्रमुख व्यक्तियों की रुचि के अनुरूप कार्य किया और प्रान्तों के मंत्रिमंडलों के मतभेदों को दूर कर दिया । वास्तव में यह हुआ था कि संविधानिक संघवाद को राजनीतिक एकवाद द्वारा दबा दिया गया था । अत: राज्यों को दिल्ली की जागीर मात्र माना गया ।

वस्तुत: कांग्रेस उच्च कमान का सामना लापरवाह और उदासीन ब्रिटिश साम्राज्यवाद से हुआ था और स्वदेशी साम्राज्यवाद की स्थापना आंतरिक उपनिवेशों के रूप में राज्यों में हुई थी । ब्रिटिशों की ही भांति वे राज्यों पर संदेह और अविश्वास करते रहे अन्यथा उन्हें अधिनियम 1935 के बहुत से ऐसे उपबन्धों को बनाए रखने की क्या आवश्यकता थी जिन्हें व चाहते ही नहीं थे ।

यदि विनम्र शब्दों में कहें तो हमारे संविधान के अनुसार एक संघ है जिसका विशिष्ट लक्षण एकात्मकता अथवा अर्धसंघवाद है । परन्तु कठोर शब्दों का प्रयोग करें तो राज्यों की स्थिति किसी गौरवमय नगरपालिका अथवा अनुदान प्राप्त करने वाले निगमों से कुछ अधिक नहीं है । *

*डा० अप्पा, "द हिन्दुस्तान टाइम्स", 5 फरवरी, 1963 बंबई, भारतीय विद्या भवन, 1967 – पृ० 1

हमारे संविधान के बारे में की गई कुछ टिप्पणियां इस प्रकार हैं :—

के० एम० मुन्शी : "अर्ध संघीय यूनियन जिसमें एकात्मक सरकार की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं निहित हैं । "द प्रेजिडेन्ट अंडर द इण्डियन कान्सटीट्यूशन" ।

डा० गजेन्द्र गडकर : यद्यपि इसमें संघीय ढांचे की विशेषताएं दिखाई देती हैं लेकिन इसे वास्तविक अर्थ में संघीय नहीं कहा जा सकता "द कांस्टीट्यूशन आफ इण्डिया—इट्स फिलासफी एण्ड बेसिक पोस्टुलेट्स," बंबई (1969) पृ० 67

हनुमथैय्या । भारत की सांविधानिक शक्ति न तो एकात्मक होने में निहित है न संघीय होने में । [—द रिपोर्ट ऑन सेण्टर – स्टेट रिलेशनशिप्स, ए आर सी (i)]

जैसा कि डा० वी० के० आर० वी राव ने कहा है कि ऐसी धारणा है कि यदि हमें जानकारी चाहिए तो हमें दिल्ली आना होगा और यदि आप दिल्ली आ गए हैं तो निश्चय ही आपको उस जानकारी से अधिक जानकारी मिल जाएगी जो आपको बंगलौर या मद्रास या लखनऊ या चंडीगढ़ में मिली होती ।*

गलत वह धारणा है जो केन्द्र को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिसम्पन्न मानती है । डा० सम्पूर्णानन्द ने ऐसा साफ साफ कहा था :

"ऐसी प्रवृत्ति कम से कम दिखाई देती है कि राज्य सरकारों को एक समान प्रयास में भागीदारों के रूप में माना जाए और उन्हें अधीनस्थ और एजेन्ट माना जाए, यह एक उभरती हुई प्रवृत्ति है जिसका दृष्टिकोण संकुचित है और वे स्वयं महत्वपूर्ण निर्णय ले सकेंगे, इस संबंध में उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता । कभी इससे क्षोभ उत्पन्न होता है और ऐसे कई अवसर आए हैं जब राज्य के मंत्रियों ने अपना यह विचार व्यक्त किया है कि बेहतर हो संविधान को बेकार घोषित कर दिया जाए । देश को एक सरकार के ही अधीन एकात्मक राज्य बना दिया जाए ।"

("रिफलेक्शन्स 1962")

प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल की रिपोर्ट में कहा गया है कि "केन्द्र से राज्यों के संबंध में प्रभावी वित्तीय शक्ति केन्द्रीय प्राधिकरणों के महत्व और शान को बढ़ा चढ़ा कर बनाती है और राज्यों के विचारों को पर्याप्त महत्व नहीं देती । इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता जहां तक हो सके कम कर दी जाए ।"

(खण्ड 1, पृष्ठ 23)

प्राय: हमें समाचार-पत्रों में यह पढ़ने को मिलता है, कि "अमुक मुख्यमंत्री को नई दिल्ली आने का आदेश दिया गया है," पर यह समाचार नहीं मिलता है कि उन्हें दिल्ली में आमन्त्रित किया गया है—इसी से केन्द्र की मनोवृत्ति क्या है इसका अन्दाजा हो जाता है । यह और कुछ नहीं केवल राज्यों की जनता का अपमान करना है । इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्र इस प्रकार से बर्ताव करता है मानो इसे वाइसराय की सर्वोच्चता का चोगा विरासत में मिला है । यही कारण है कि राज्यों के निर्वाचित प्रतिनिधियो को याचक बनकर नई दिल्ली आना पड़ता है ।

पश्चिम बंगाल सरकार का ज्ञापन जो मुख्यमंत्री डा० बी० सी० राय की देख-रेख में तैयार किया गया था, में कहा गया है :—

"हमारी दृष्टि में वित्त आयोग का मुख्य कार्य यह होगा कि केन्द्र के कार्यों को देखते हुए उसकी आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाए, इसका निर्वहण संविधान के अन्तर्गत किए जाने की आवश्यकता है और उन विशेष केन्द्रीय कार्यों को दक्षतापूर्ण ढंग से किए जाने के लिए वास्तव में आवश्यक राशि बनाए रखने की अनुमति दी जाए ।"**

*वी के आर वी राव, लोक सभा डिबेट्स, खंड XV 1972 पृ० 251

**पश्चिम बंगाल सरकार, वित्त आयोग (तीसरा) का ज्ञापन 1961, पृ० 6 (ओरिजनल एक्सेसिस) ।

इस बात से दस वर्ष पहले राज्य—सरकार ने पहले वित्त आयोग के समक्ष यह स्पष्टीकरण दिया था कि :

कमजोर राज्यों की नीवं पर एक मजबूत केन्द्र का निर्माण करने का प्रयास एक ऐसा प्रयास है जैसा कि बालू की नींव पर एक मजबूत भवन तैयार किए जाने के लिए किया जाता है ।*

संविधान के वित्तीय उपबन्धों पर सांविधानिक सभा की विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए उध्दृत किया गया और यह कहा गया कि "किसी संघ सरकार के मुख्य कार्य रक्षा, विदेश-कार्य और भारी राष्ट्रीय ऋण को देखना है ।"

हम उक्त विचारों से पूर्णतया सहमत हैं ।

अत: निम्नलिखित सिद्धान्तों पर संविधान का पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए :—

1. वास्तविक और स्वस्थ संघवाद तथा राज्यों की स्वायत्तता स्वीकार करने का आधार भारत की बहुराष्ट्रिकता, इसके महाद्वीपीय भौगोलिक आयाम, विभिन्न भाषाएं, संस्कृतियां, धर्म परम्पराएं और राज्यों का इतिहास है ।
2. केन्द्र और राज्य के बीच संबंधों के पुनर्निर्माण के लिए सबसे पहले सभी राज्यों में वास्तविक समानता लाने, राज्यों और केन्द्र दोनों में औपचारिक और वास्तविक समानता लाने, इसमें राष्ट्र की सभी भाषाओं की समानता जिसमें हिन्दी भाषा भी शामिल है, सभी राज्यों का समान विकास करने की आवश्यकता है ।

"द डी एम के व्यू ऑन स्टेट ऑटोनमी" में दिए गए अन्य ब्योरों के अतिरिक्त हम नीचे पुन: उल्लेख करते हैं :

भाषा

संविधान के भाग XVII में इनके दिए गए अनुच्छेदों में भाषा के संबंध में बताया गया है ।

यह सांविधानिक घोषणा मौजूद है कि संघ की राजभाषा हिंदी होगी ।

यह बात संसद और विधान मंडलों पर छोड़ दी गई है कि अंग्रेजी जारी रखी जाए या नहीं ।

कानून और न्यायालयों के संबंध में यह घोषणा की गई है कि अंग्रेजी भाषा तब तक रहेगी जब तक संसद द्वारा कानून बनाकर अन्यथा कोई व्यवस्था न कर दी जाए ।

हिंदी भाषा के विकास के लिए एक निर्देश दिया गया है ।

हमारी यह मांग है कि हिंदी जैसी क्षेत्रीय भाषा का चयन संघ की राजभाषा के रूप में नहीं किया जाना चाहिए और उसे राजभाषा के पद पर सुशोभित नहीं किया जाना चाहिए ।

तमिलनाडु के लोग किसी न किसी रूप में पिछले 50 वर्षों से हिंदी के प्रभुत्व का विरोध करते रहे हैं यद्यपि पं० नेहरू और उनके बाद के अन्य प्रधानमंत्रियों ने यह आश्वासन दिया कि हिंदी को अहिन्दी भाषी लोगों पर थोपा नहीं जाएगा, हिंदी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से थोपी जा रही है—अधिकतर पिछले दरवाजे से ।

इसके अतिरिक्त हिंदी को साधारण बहुमत द्वारा संसद में एक अधिनियम पारित करके हिंदी को संघ की एकमात्र राजभाषा, संसद के कानूनों की भाषा और उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की भाषा बनाए जाने की संभावना है ।

अहिन्दी भाषी अब और उस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि पिछले प्रधानमंत्रियों द्वारा दिए गए आश्वासनों का पालन किया जाएगा ।

अत: हमारी यह मांग है कि—

1. हिंदी को संघ न्यायालय और विधानमंडल आदि की राजभाषा बनाने के उपबन्धों को हटा दिया जाना चाहिए,
2. हिंदी के विकास के निर्देश को भी हटा दिया जाना चाहिए, और
3. आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट सभी भाषाओं को संघ की राजभाषाओं के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए । जब तक यह लक्ष्य प्राप्त न कर लिया जाए तब तक अंग्रेजी संघ की राजभाषा के रूप में बनी रहे ।

डा० अन्ना के शब्दों में, "तमिलनाडु सरकार ने असंदिग्ध शब्दों में यह कहा है कि तमिल और अंग्रेजी से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं । तमिल इस राज्य की राजभाषा है तो अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में है, यह स्वीकार कर लिया गया है कि अंग्रेजी हमारे राज्य और बाकी विश्व के बीच संपर्क भाषा के रूप में गौरवपूर्ण ढंग से सहायक सिद्ध हो सकती है । फिर हिंदी को यहां संपर्क भाषा बनाने का क्या तुक है" जो भाषा बाहरी विश्व के साथ संपर्क भाषा बनने के लिए सक्षम है वह निश्चित रूप से भारत के भीतर भी उसी प्रकार संपर्क भाषा का स्थान लेने के लिए सक्षम है । दो सम्पर्क भाषाओं के लिए तर्क देना ठीक वैसे ही है जैसे बिलौटे के जाने के लिए एक और छोटा छेद बनाना जबकि बिल्ली के जाने के लिए बड़ा छेद वहां पहले से ही मौजूद है । जो छेद बिल्ली के लिए उपयुक्त है वह बिलौटे के लिए स्वत: ही उपयुक्त है ।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हिंदी एक विभाजक तत्व है और हमें कठिनाई से प्राप्त राष्ट्रीय अखण्डता उस स्थिति में एक दिन खतरे में पड़ जाएगी और वही होगा जो पानीपत की लड़ाई (या वाटर लू) का हुआ यदि गलती से या योजना बनाकर हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किये जाने की कट्टरता दिखाई गई ।

राज्यपालों का पद

पण्डित नेहरू ने "द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया" में इस बात का उल्लेख किया है कि राज्यपाल "नई दिल्ली पर शिमला से प्राप्त अनुदेशों का पालन भर करते हैं ।"*

—यह स्थिति आज तक बरकरार है ।

राज्यपाल केन्द्र के एजेन्टों और गुप्तचरों के रूप में कार्य करते हैं और वे राज्यों में प्रजातन्त्र का गला घोंटते हैं ।

1977 के दौरान डी० एम० के० सरकार तमिलनाडु में बर्खास्त कर दी गई थी और यह कहा गया था कि केन्द्र ने ही राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ऐसा किया था जबकि वस्तुस्थिति यह नहीं थी । रिपोर्ट दरअसल नई दिल्ली में ही तैयार करके रख ली गई थी और राज्यपाल को अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा जारी की गई उद्घोषणा के बाद उसके हस्ताक्षर कराने के लिए बाद में बुला लिया गया था ।

राज्यपाल का पद ब्रिटिश-उपनिवेशवाद प्रणाली की परम्परा का पालन मात्र है । राज्यपाल की नियुक्ति की विधि लोकतन्त्रात्मक ढांचे में एक कालदोष के रूप में दिखाई देती है ।

जैसा कि श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित ने उल्लेख किया है कि राज्यपाल का पद समाप्त करके जर्मनी का आदर्श अपनाया जाना चाहिए ।

यदि कोई प्रणाली पश्चिम जर्मनी जैसे संघ में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है तो ऐसा कोई भी कारण नहीं है कि वह भारत में न अपनाई जा सके ।

राष्ट्रपति का शासन

चूंकि केन्द्र में राष्ट्रपति शासन के लिए कोई उपबन्ध नहीं है अत: राज्यों में भी राष्ट्रपति शासन के कोई उपबन्ध नहीं होने चाहिए । अत: वे उपबन्ध जिनका बहुत अधिक दुरूपयोग किया गया है जैसे 356, 357, 360, 365 आदि को संविधान में से निकाल दिया जाना चाहिए ।

भाग II

इस भाग II में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार संविधान के कुछ मूल उपबन्धों का बाद में संशोधन कर दिया गया है । यदि इनका संशोधन नहीं किया गया तो किस प्रकार इन उपबन्धों की अवहेलना करके तथा चालाकी से जो थोड़ी बहुत शक्तियां राज्यों के पास थीं उन्हें भी उनसे छीन लिया गया है ।

*पश्चिम बंगाल सरकार, वित्त आयोग (पहला) का ज्ञापन पृष्ठ 33

*आई० बी० आई० डी०, पृ० 313

इस में यह बताने का प्रयास किया गया है कि केन्द्र ने अपने अनेक संसाधनों और प्रभुत्वपूर्ण आर्थिक स्थिति के फलस्वरूप राज्यों के विषयों में भी वित्तीय पक्ष द्वार से प्रवेश के अनेक रास्ते ढूंढ निकाले हैं और इस प्रकार राज्यों की स्वायत्तता को निरर्थक कर दिया है। इसके फलस्वरूप और योजना के सहयोग से राज्य के विषयों और केन्द्र के विषयों का पृथक् परिगणन अधिकाधिक अस्पष्ट हो गया है और जो थोड़ा बहुत संघवाद था वह भी मिट गया है। हमने केवल थोड़े से उदाहरण लिए हैं, यदि गहराई से अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि किस प्रकार हमारा संघवाद एक लज्जाजनक विषय बन गया है।

1. राज्य सूची में तीन महत्वपूर्ण प्रविष्टियां की गई हैं :

(1) उद्योग

(2) व्यापार और वाणिज्य तथा

(3) माल का उत्पादन, पूर्ति और उसका वितरण

संघसूची में संसद को इस बात की अनुमति दी गई है "वह उन उद्योगों के सम्बन्ध में विधान बना सकती है जिन पर उद्योगों पर नियंत्रण रखने की घोषणा संघ ने संसद द्वारा यह कानून बनाकर की है कि वे लोकहित में आवश्यक है।"

उस संबंध में संविधान की VII वीं अनुसूची में राज्य सूची में प्रविष्टियां 24, 26 और 27 दी गई हैं और संघ सूची में प्रविष्टि 52 दी गई है।

इस प्रकार संविधान की मूल योजना यह है कि उद्योग और वाणिज्य राज्य के विषय रहने चाहिए और इन पर मुख्य रुप से राज्यों को ही कार्रवाई करनी चाहिए तथा केवल उन उद्योगों का विनियमन केन्द्र द्वारा किया जाना चाहिए जिन पर संघ द्वारा नियंत्रण रखा जाना लोकहित में आवश्यक है।

संसद ने उद्योग (विकास और विनियम) अधिनियम 1951 पास किया जिनमें उन उद्योगों का उल्लेख किया गया जिन पर केन्द्र द्वारा नियन्त्रण रखा जाना आवश्यक था।

यह अकेला ही सबसे महत्वपूर्ण विधान है जिसके द्वारा संविधान में बिना कोई संशोधन किए केन्द्र ने इस विषय पर अपना प्रभुत्व कायम किया और लगभग इसे पूरी तरह से अपने अधिकार में कर लिया।

समय समय पर अधिक से अधिक उद्योग इस अधिनियम में शामिल होते गए और मूल सांविधानिक योजना अब बिल्कुल नष्ट हो गई है।

संविधान में किसी प्रकार का कोई संशोधन किए बिना "उद्योग" वस्तुत: राज्य के विषय से संघ के विषय में बदल गए, जिसके परिणामस्वरुप केन्द्र ने उद्योगों के उत्पादन की दृष्टि से 93 प्रतिशत उद्योगों तक अपना नियन्त्रण बढ़ा लिया है।

रेजर ब्लेड, कागज, गोंद, जूते, दियासलाई, घरेलू बिजली के उपकरण, हरीकेन लालटेनें, अंगराग सामग्री (कास्मेटिक्स), साबुन और अन्य प्रसाधन की वस्तुओं जैसी सभी मदें भी केन्द्र के डोमिनियन के अधीन कर दी गई है। इस सूची का कहीं कोई अंत नहीं है और अब इसमें व्यावहारिक रुप से प्रत्येक विचारणीय औद्योगिक उत्पाद शामिल है।

श्री एन० ए० पालकीवाला ने कहा "नि:सन्देह इससे सांविधानिक अधिदेश का सरासर उल्लंघन हुआ है।*

यह आवश्यक है कि उद्योगों पर नियन्त्रण रखने के लिए राज्यों के अपने वैध अधिकार बने रहने चाहिए।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमने संविधान के अधीन राज्यों के अधिकारों के साथ धोखाधड़ी की है।*

2. गांव के लघु उद्योगों में केन्द्र ने बहुत अधिक रुचि ली है जैसा कि गांव और लघु उद्योगों पर किए गए कुल बजटीय व्यय में केन्द्र के हिस्से से देखा जा सकता है जो कि कुल बजट का लगभग दो तिहाई होता है।**

यही नहीं केन्द्र के योजनावार अंतरणों के एक तिहाई कार्य के लिए धन दिया गया जिसका पता राज्य के बजट में उनके द्वारा किए गए व्यय से चल जाता है।

लघु उद्योगों में केन्द्र द्वारा व्यापक रुचि लिए जाने के संबंध में केन्द्र अधिक कानूनी समर्थन, चाहे वह सांविधानिक हो या विधायी समर्थन हो, प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता क्योंकि विशेष अधिसूचनाओं के अन्तर्गत पहले बताए गए सभी व्यावहारिक उपायों में लघु उद्योगों को उनके कार्यों से बाहर रखा है।

इस समय केन्द्र ने लगभग सभी उद्योगों को अपने नियन्त्रण और विनियमन में रखा हुआ है। इन उद्योगों में वे उद्योग भी शामिल हैं जो केन्द्रवर्ती या भारी निवेशवाले क्षेत्रक नहीं हैं। उदाहरण के लिए उपभोक्ता उद्योगों पर किए गए व्यय में केन्द्र का हिस्सा कुल व्यय का लगभग 70% है। कृषि पर आधारित उद्योगों में इसका हिस्सा 76% है। बागानों पर किए जाने वाले व्यय पर इसका हिस्सा 71% है;

3. खनिज—राज्यसूची की प्रविष्टि 23 में खानों और खनिज विकास का विनियमन राज्य का एक विषय है। ये संघ सूची की प्रविष्टि 6, 5, 3, 54 और 55 की प्रविष्टियों के अन्तर्गत हैं।

इस समय खनिजों पर कुल बजटीय व्यय का केवल दसवां भाग राज्य खर्च करते हैं। राज्य बजटों में उनके व्यय से यह पता चलता है कि पांचवें हिस्से से अधिक राशि केन्द्रीय सरकार द्वारा उस राज्य की योजनाओं पर लगाई गई।

खानों और खनिजों में केन्द्र द्वारा सहयोग लगभग पूरा सहयोग है जो संयुक्त बजटीय व्यय का 97.5% बैठता है।

परिणाम यह हुआ है कि खनिज विषय वास्तव में राज्य के विषय से हटकर केन्द्र का विषय बन गया है।

4. मूल रुप से कृषि जिसमें कृषि शिक्षा और अनुसंधान, नाशक जीव से संरक्षण और पादप रोगों से निवारण शामिल है। राज्य सूची की प्रविष्टि 14 पर है।

तीसरे संशोधन अधिनियम 1954 द्वारा समवर्ती सूची में प्रविष्टि 33 का समावेश किया गया।

प्रविष्टि 33 जिसमें निम्नलिखित है :—

(ख) खाद्य पदार्थ, खाद्य तिलहन और तेल

(ग) पशुओं का चारा जिसमें खली और तेल शामिल है।

(घ) कच्ची कपास चाहे वह ओटाई गई हो या नहीं हो, बिनौले और

(ङ) कच्चा जूट सहित

उद्योग और कृषि के देश में उत्पादित या आयातित उत्पादों की व्यापक विविधता के उत्पादन पूर्ति और वितरण में व्यापार और वाणिज्य समवर्ती अधिकारिता के अन्तर्गत आते हैं। प्रविष्टि 33 में (ख) से (ङ) तक में उल्लिखित उक्त वस्तुएं कृषि उत्पाद का बड़ा हिस्सा है।

सीतलवाड स्टडीग्रुप ऑन सेन्टर-स्टेट रिलेशनशीप (ए आर सी रचित) में कहा है:

यदि इस प्रविष्टि में प्रयुक्त " "उत्पादन" शब्द अधिकांश भाग के लिए कृषि का व्यापक अर्थ देगा तो कृषि को अधिकतर एक समवर्ती विषय मानना होगा।

---

*एन० ए० पालकीवाला "अवर कांस्टीट्यूशन डिफेस्ड एंड डिफाइल्ड" पृ० 119

**इस लेख के सभी परिकलनों के लिए भारत सरकार द्वारा 1983 में प्रकाशित "कम्बाइन्ड फाइनेन्स एण्ड रिवेन्यू एकाउण्टस आफ द यूनियन एण्ड स्टेट गवर्नमेंट्स इन इण्डिया" 1978-79 का आधार लिया गया है।

यदि उत्पादन शब्द एक सीमित अर्थ का द्योतक है तो यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है कि सीमा क्या है। (खंड I पृ० 164 एम्फेसिस अवर्स)

द सीतलवाड़ स्टडी ग्रुप का विचार यह था कि "कृषि की एक राज्य विषय माना जाना चाहिए और मूल कार्यकलाप के उत्तरदायित्व की धारणा के रुप में केन्द्र द्वारा अतिक्रमण किए जाने की अनुमति नही दी जानी चाहिए। (वही पृष्ठ 164)

इस स्टडी ग्रुप के विचार को व्यवहार में नहीं लाया गया और वास्तव में कृषि बदलकर एक समवर्ती विषय बनकर रह गया है।

5. राज्यसूची की प्रविष्टि 14 में विशेष रुप से इस बात का उल्लेख किया गया है कि कृषि में अनुसंधान कार्य एक राज्य विषय है।

अब यह वास्तव में केन्द्र का विषय बन गया है और आइ० ए० सी०आर० में इस पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

संघ सरकार के साथ अनुसंधान का केन्द्रीयकरण लगभग पूरा है। यदि हम सामजिक और सामुदायिक शीर्ष *पर संघ के सापेक्ष व्यय को देखते हैं। इस शीर्ष के अन्तर्गत व्यय पर संघ का हिस्सा 99.8 प्रतिशत बैठता है।

विषयानिष्ठ परिस्थितियों में क्षेत्रीय और यहां तक कि उपक्षेत्रीय अंतरों को नजरन्दाज करने का जोखिम वहां मौजूद है क्योंकि अनुसंधान का केन्द्रीयकरण हो जाने के कारण क्षेत्रीय और उप क्षेत्रीय अंतरों की भी उपेक्षा का खतरा पैदा हो गया है।

6. पशुपालन और डेरी विकास को एकमात्र राज्य का विषय कहा जा सकता है।

"पशुधन की सुरक्षा, उनका संरक्षण और सुधार तथा पशुरोगों से निवारण, पशुचिकित्सा प्रशिक्षण और व्यवहार"

केन्द्र की भूमिका समवर्ती सूची को प्रविष्टि 17 और प्रविष्टि 29 के अन्तर्गत केवल पशुओं के प्रति क्रूरता से निवारण तक है तथा पशुओं को प्रभावित करने वाले संक्रामक या संसर्गज रोगों या नाशक जीवों के एक राज्य से दूसरे राज्यों में फैलने से रोकने तक ही है।

चूंकि समवर्तीसूची की नई प्रविष्टि 33, 1954 के तीसरे संशोधन अधिनियम में जोड़ी गई थी। अतः केन्द्र का समवर्ती क्षेत्राधिकार अब न केवल खाद्य पदार्थों का उत्पादन, पूर्ति और वितरण तक बढ़ गया है जिसमें डेरी उत्पादन शामिल किए जा सकते हैं अपितु उसमें पशुओं का चारा भी शामिल हैं जिसमें खली और अन्य दाना (कन्सेन्ट्रेटस) भी शामिल है।

यह संघ द्वारा राज्यों के अधिकारों में एक नया हस्तक्षेप है।

7. वन और वन्य पशुओं और पक्षियों का संरक्षण विषय मूल रूप से राज्य सूची का विषय था। (प्रविष्टि 19 और 20) बयालीसवें संशोधन अधिनियम 1972 द्वारा उन विषयों को बदलकर समवर्ती सूची के अन्तर्गत कर दिया गया (प्रविष्टि 17क और 17ख)

8. भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुसार शिक्षा विषय प्रान्तीय विधायी सूची में था।

बयालीसवें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा इसे बदलकर समवर्ती सूची में कर दिया गया और प्रविष्टियां 63, 64, 65 और 66 पहले से ही संघ सूची में बनी रहीं।

इसे हम केन्द्र द्वारा सांस्कृतिक हस्तक्षेप मानते हैं। इस साधन द्वारा केन्द्र की योजना प्रत्येक जिले में केन्द्रीय विद्यालय खोलने की थी संभवतः यह योजना हिन्दी थोपने की दृष्टि और विशिष्ट व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ध्यान में रखकर बनाई गई थी। इस प्रक्रिया में करोड़ों रुपए डूबो दिए गए और हजारों प्रारम्भिक स्कूल ऐसे थे जिनको छतें नहीं थीं और ब्लेक बोर्ड जैसी मूलभूत सुविधाएं तक नहीं थीं।

9. मत्स्य उद्योग प्रविष्टि 21 के अन्तर्गत राज्य सूची का विषय है लेकिन क्षेत्रीय समुद्र से परे मछली पकड़ना और मत्स्य उद्योग प्रविष्टि 57 के अन्तर्गत संघ का विषय है। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची के अन्तर्गत प्रविष्टि 33 के अन्तर्गत मछली एक खाद्य पदार्थ होने के नाते केन्द्र मछली और मछली उत्पाद के उत्पादन और वितरण में अपनी भूमिका होने का दावा कर सकता है। प्रविष्टि 31 के अन्तर्गत मुख्य पत्तनों से भिन्न पत्तन समवर्ती सूची से संबंधित है अतः केन्द्र मछली पकड़ने के कार्य का विकास बन्दरगाहों और घाट आदि सुविधाओं में भी अपनी भूमिका होने का दावा करता है।

केन्द्र मत्स्य उद्योग पर केन्द्र और राज्य के संयुक्त व्यय का 47% व्यय करता है।

राज्य के व्यय में यह दिखाया गया है कि अन्तर्देशीय मत्स्य उद्योग जो पूर्णतया एक राज्य विषय है के विकास के लिए विशेषकर योजनावार अंतरण के जरिए केन्द्र द्वारा लगभग छठवां हिस्सा धन लगाया जाता है।

बजटीय नियन्त्रण के अतिरिक्त केन्द्र अपनी एजेन्सी समुद्रीय उत्पाद विकास प्राधिकरण द्वारा मत्स्य उद्योग पर प्रशासनिक नियन्त्रण करता है।

यह सूची और लम्बी हो जाएगी जब यह देखा जाएगा कि केन्द्र किस प्रकार वित्तीय पश्च द्वार से राज्य के विषयों में हस्तक्षेप कर रहा है।

हम माननीय आयोग से यह अनुरोध करते हैं कि वह इस विशेष पहलू पर गहराई से अध्ययन करें।

वित्तीय पश्च द्वार के माध्यम से राज्यों के क्षेत्र में प्रवेश इसलिए संभव है कि केन्द्र के पास राजस्व के विशाल और व्यापक साधन हैं।

योजना बनाना भी केन्द्र के लिए अत्यन्त सुगम कार्य है। इस कारण से राज्य के विषयों और संघ के विषयों में पार्थक्य बहुत ही अस्पष्ट है।

यह सच है कि तीव्र वित्तीय बाध्यताओं के कारण राज्य ऐसी स्थिति में नहीं है कि वे अपने विभिन्न विषयों पर और अधिक व्यय कर सकें।

—लेकिन अतिरिक्त संसाधनों तक राज्यों की पहुंच बढ़ाने के लिए यह तर्क दिया गया है न कि केन्द्र द्वारा राज्यों के क्षेत्र में प्रवेश का समर्थन करना। जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की स्वायत्तता नष्ट हो जाती है।

10. आयकर का विभाजन वित्त आयोग द्वारा विहित तरीके से संघ और राज्यों के बीच किया जाता है।

अनुच्छेद 279 के उपबन्धों के अनुसार भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक ने कहा है कि निवल बिक्री से हुई आय विभाज्य पूल बनाती है। उनका इस संबंध में दिया गया प्रमाणपत्र अंतिम है।

परन्तु यदि हम वास्तव में हुई निवल बिक्री से हुई आय का अवलोकन करें तो हमें यह पता चलता है कि जितनी वह आय वास्तव में होनी चाहिए थी उनसे वे काफी कम है।

छठे और उत्तरवर्ती वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार केन्द्र 80 से 85% निवल बिक्री से हुई आय प्राप्त करने का हकदार है जबकि वस्तुतः वे इससे कम प्राप्त कर रहे हैं।

सारणी I 1974-75 से 1979-80 के वर्षों से राज्यों के हिस्से दर्शाती है जिस अवधि के लिए संयुक्त वित्त और राजस्व लेखे की रिपोर्ट उपलब्ध हैं।

1974-75 में राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों ने 81.79% के स्थान पर केवल 64.55% निवल बिक्री से हुई आय प्राप्त की (80% राज्यों के हिस्से के रूप में तथा 1.79% संघ राज्य क्षेत्रों के हिस्से के रूप में)

इस प्रकार 653.94 करोड़ रुपए प्राप्त करने के स्थान पर राज्यों ने केवल 516.15 करोड़ रुपए प्राप्त किए।

---

*सब ग्रुप के अन्तर्गत आने वाला साइंटिफिक सर्विसीज एंड रिसर्च।

सारणी 1

आयकर के विभाज्य पूल में राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों हिस्सा वास्तविक प्रोद्भवन और प्राक्कलित प्रोद्भवन

मदें	1974-75	1975-76	1976-77	1977-78	1978-79	1979-80
(क) केवल केन्द्र से प्राप्त होने वाली राशि	23.42	31.73	28.82	..	15.06	16.92
(I) संघ की परिलब्धियों पर कर	27.65	62.69	63.80	74.76	115.92	183.61
(II) अधिभार/अधिकर आदि						
(III) विविध प्राप्तियां	7.64	15.97	9.94	16.58	13.02	11.53
(I)+(II)+(III) का जोड़	78.71	110.39	102.56	..	144.00	241.76
(ख) वसूली लागत की राशि काटने के बाद आयकर की निवल बिक्री से हुई आय	878.25	1214.46	1194.40	1002.39	1177.39	1340.31
(1) वसूली की लागत	27.31	33.96	34.38	33.28	47.59	41.48
(ग) विभाज्य पूल (क—ख)	799.54	1104.07	1091.84	..	1033.39	1128.55
(घ) संघ राज्य क्षेत्र और राज्यों का हिस्सा						
(1) समनुदेशित या वास्तविक	516.15	734.21	652.24	675.81	702.62	864.88
(II) प्रतिशत शेयर	64.55	66.50	59.73	..	68.37	76.63
(III) वित्त आयोगों द्वारा सिफारिश किया गया हिस्सा	653.94	883.25	893.01	..	845.20	983.98
सिफारिश किया गया हिस्सा (प्रतिशत) राज्यसंघ	80.00	80.00	80.00	80.00	80.00	85.00
राज्य क्षेत्र	1.79	1.79	1.79	1.79	1.79	2.19
जोड़	81.79	81.79	81.79	81.79	81.79	87.79
संघ राज्य क्षेत्र और राज्यों को किए गए वास्तविक और प्राक्कलित अंतरणों के बीच अंतर	137.79	149.04	240.77	..	138.58	119.10

यही स्थिति उत्तरवर्ती वर्षों में है। जैसा कि हमारी सारणी से पता चलता है राज्य और संघ राज्य क्षेत्रों का 1974-75 में 137.79 करोड़, 1975-76 में 149.04 करोड़, 1976-77 में 240.77 करोड़, 1978-79 में 138.58 करोड़ तथा 1979-80 में 119.10 करोड़ रु० नुकसान हुआ।

हिस्सा बांटने के प्रयोजनों से आयकर की निवल बिक्री से हुई आय में जिस प्रकार उन्होंने निश्चय किया संयुक्त वित्त और राजस्व लेखे में या नियंत्रक व महालेखापरीक्षक की रिपोर्ट राजस्व प्राप्तियों खंड II में कोई स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता नहीं है। और न वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए हिस्से की अपेक्षा राज्यों को दिए गए छोटे हिस्से के बांटने के संबंध में कोई स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता है।

यदि ये निष्कर्ष सत्य हैं तो जो भी हो रहा है वह संविधान के उपबन्धों और वित्त आयोग की सिफारिशों का खुला उल्लंघन है जिसे एक प्रकार का दुर्विनियोजन कहा जा सकता है।

हमारा माननीय आयोग से यह अनुरोध है कि यह आरोप सही है तो समस्या के तह तक जाने के लिए विशेषज्ञों का एक पैनल नियुक्त करे और स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक सिफारिशें करें।

11. संघ की परिलब्धियों पर कर विभाज्य पूल से निकाल दिए गए हैं जिनकी राशि प्रतिवर्ष लगभग 200 करोड़ रु० हो सकती है।

चूंकि संविधान का यह उपबन्ध 1935 के अधिनियम से लिया गया है अत: इसे अतीत के उपनिवेशवाद का स्मृतिचिन्ह कहा जा सकता है।

चूंकि इस प्रकार से विभाज्य पूल से करों की निकालने का कोई औचित्य नहीं है अत: संघ की परिलब्धियां विभाज्य पूल का एक हिस्सा हैं।

12. आयकर की वसूलियों पर ब्याज और जुर्माने विभाज्य पूल का हिस्सा नहीं हैं।

चूंकि आय कर अधिनियम के अन्तर्गत आठवें वित्त आयोग ने यह अनुभव किया कि जुर्माने उगाहने और ब्याज वसूल करने का अधिकार आयकर उगाहने के अधिकार से प्राप्त होता है अत: उन्हें भी अनुच्छेद 270 में प्रयुक्त शब्द के रूप में आयकर की संकल्पना के अन्तर्गत मान लेना चाहिए।

यदि उन्हें शामिल कर लिया गया तो विभाज्य पूल की राशि बढ़कर लगभग 10 से 15 करोड़ रुपए तक हो जाएगी।

यदि निगम कर भी शामिल कर लिया जाता है तो विभाज्य पूल की राशि बढ़कर 2000 करोड़ रु० तक हो जाएगी।

13. आयकर की वसूली की लागत इस प्रकार बढ़ाते जाने से केन्द्र केवल विभाज्य पूल की राशि घटाना चाहता है और उसके द्वारा राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों का वैध हिस्सा घट जाएगा।

केन्द्रीय करों की वसूली की लागत निम्नलिखित अनुपात में है :—

आयकर, इसमें निम्नलिखित शामिल है—

निगम कर	90 प्रतिशत
संपदा कर	2 प्रतिशत
धन कर	7 प्रतिशत
उपहार कर	1 प्रतिशत

निगम कर और आयकर के बीच वसूली की लागत 1:7 के अनुपात में की गई हैं जिससे आय कर के पक्ष में स्पष्ट भार होने का पता चलता है। इसके अतिरिक्त यदि हम संघ की परिलब्धियों की वसूली की लागत की कटौती करते है जो विभाज्य पूल का भाग नहीं है।

अत: यह बिल्कुल स्पष्ट है कि निवल आय का परिकलन करते समय एक ईमानदार, विवेकपूर्ण और सही विधि नहीं अपनाई गई है और इससे राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को धोखा दिया गया है।

अत: हम यह दोष देते हैं कि आयकर वास्तव में राज्यों के लाभ के लिए बिल्कुल नहीं बांटा गया है और लेखा रखने में दिखाए गए चातुर्य से राज्यों और संघ राज्य

क्षेत्रों का वैध हिस्सा घटा दिया है । वस्तुत: वित्त आयोग के अरमान बड़े बड़े होते हैं और केन्द्र उनकी आशाओं पर पानी फेर देता है ।

हम माननीय आयोग से यह अनुरोध करते हैं कि वह इस अनाचार को बिल्कुल समाप्त कर दे ।

14. आयकर निर्धारितियों को कुछ रियायतें दी जाती हैं यदि वे अधिसूचित बचत जैसे राष्ट्रीय बचत पत्रों पर धन लगाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि विभाज्य पूल में राशि कम हो जाती है और उसी समय राज्यों को ऋण के रूप में अल्प बचत का हिस्सा मिल जाता है जिसके लिए उन्हें ब्याज भरना पड़ता है । राज्य इस प्रकार आयकर में केन्द्र द्वारा प्रदान की गई छूटों के कारण आय के सही स्रोत को खो देते हैं । हम यह मानते हैं कि राज्यों को आयकर के मामले में दी गई विभिन्न रियायतों और छूटों के लिए पर्याप्त मुआवजा मिलना चाहिए ।

15. अनुच्छेद 163 में कहा गया है कि मंत्रिपरिषद राज्यपाल को सहायता व परामर्श प्रदान करेगी (1) मुख्यमंत्री के साथ एक मंत्रिपरिषद होगी जो राज्यपाल की सहायता व परामर्श देगी ।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या राज्यपाल मंत्रिपरिषद के बिना ही अकेले मुख्यमंत्री को नियुक्त कर सकता है क्योंकि अनुच्छेद 163 के अनुसार तो एक मंत्रिपरिषद होनी चाहिए जिसका मुखिया मुख्यमंत्री हो ।

राज्यपालों के एक सम्मेलन में राज्यपालों की एक समिति ने राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से यह कहा कि मंत्रिपरिषद के बिना केवल मुख्य मंत्री को नियुक्ति करना असांविधानिक है । लेकिन कुछ राज्यपाल इसे व्यवहार में नहीं लाए ।

माननीय आयोग हम यह चाहते है कि आप अपना निर्णय इस संबंध में दें कि राज्यपालों की समिति की राय ठीक है या नहीं ।

16. केरल में कम्युनिस्ट दल द्वारा प्रथम मंत्रालय बनाए जाने के दौरान राज्यपाल ने मुख्य मंत्री का परामर्श लिए बिना विधान सभा के एंग्लोइंडियन सदस्य को नामित किया जो कि स्पष्टत: विरोधी दल अर्थात् कांग्रेस दल की शक्ति बढ़ाने के लिए किया गया था ।

अब कुछ राज्य अपनी इच्छा से अपने राज्य में विश्वविद्यालयों के उपकुलपति नियुक्त करते है ।

तमिलनाडु के राज्यपाल ने एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद के लिए व्यक्तिगत रूप से उम्मीदवारों से साक्षात्कार करके एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

अभी हाल में उसने सार्वजनिक रूप से इस बात पर जोर डाला कि उपकुलपतियों की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल स्वयं कुलपति होने के कारण मंत्रिमंडल की बात मानने के लिए बाध्य नहीं है ।

हमारी यह राय है कि सोचने का यह गलत तरीका है और ऐसा करने से अनेक मतभेद उत्पन्न होंगे ।

अत: माननीय आयोग को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि राज्यपालों को सभा के नामित सदस्य का चयन करते समय तथा विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों की नियुक्ति करते समय मंत्रिमंडल की सलाह की उपेक्षा करके निरंकुश व्यवहार नहीं करना चाहिए ।

17. राज्यपालों ने केन्द्र पर सत्तारूढ़ दल के हितों को पूरा करने के लिए अनुच्छेद 200 और 201 का प्रयोग किया है ।

1950-83 के दौरान पश्चिम बंगाल की विधान सभा द्वारा पास किए गए ग्यारह बिलों को राष्ट्रपति ने रोक लिया है ।

तमिलनाडु सरकार द्वारा बेनामी जोतों की समाप्ति का एक बिल राष्ट्रपति द्वारा अपनी स्वीकृति दिए बिना अर्से से पड़ा है और उस पर राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति नहीं दी है ।

अभी हाल में केन्द्रीय गृह मंत्री ने संसद में यह कहा है कि यदि माननीय आयोग सिफारिश कर देता है तो केन्द्र संविधान के उन हिस्सों को निकाल देगा जिन पर राष्ट्रपति को अनुमति देनी होती है ।

हमारा निवेदन है कि अनुच्छेद 200 और 201 को निकाल दिया जाए क्योंकि उनके उपबंध संघ और लोकतंत्र की भावनाओं के विरुद्ध है ।

18. केन्द्र ने कुछ ऐसे मूल औद्योगिक माल के निर्देशित मूल्यों की वृद्धि करने की नीति अपनाई है जिन पर केन्द्र का नियन्त्रण है जैसे कोयला, सीमेन्ट, उर्वरक इस्पात आदि ।

उदाहरणत: पिछले वर्ष केन्द्र ने कोयले के मूल्य में वृद्धि करके 500 करोड़ रु० अधिक प्राप्त किए । इसकी अपेक्षा यदि उत्पाद शुल्क की दर संशोधित कर दी जाती तो राज्यों को 200 करोड़ रु० प्राप्त हुए होते ।

केन्द्र को यह सलाह दी जानी चाहिए कि वह ऐसी तकनीकें अपनाकर राज्यों के संसाधन न घटाए । केन्द्र को इस प्रकार की चालबाजी नहीं करनी चाहिए जो राज्यों के हितों के लिए एकदम अनुपयुक्त और हानिकारक है ।

19. वित्त आयोग की सिफारिशें संघ को मान लेनी चाहिए ।

पिछले वर्ष के पिछले वित्त आयोग की सिफारिशें कार्यान्वित नहीं की गई थी और वित्त मंत्री ने यह तर्क दिया था कि ऐसा संसाधन समाप्ति के कारण किया गया था ।

इस तर्क में कोई जान नहीं है । हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि केन्द्र ने एशियाड पर करोड़ों रु० खर्च कर दिए । जहां इच्छा होती है वहां कोई न कोई हल निकल ही आता है अत: यह आवश्यक कर दिया जाना चाहिए कि वित्त आयोग की सिफारिशें संघ द्वारा पूरी तरह से स्वीकार कर ली जाएं और उन्हें कार्यान्वित किया जाए ।

20. श्री के० संथानम का कहना है योजना बनाने के कार्य ने संघवाद को व्यर्थ सिद्ध कर दिया है ।

*श्री ए० एन० झा कहते है अब ऐसी स्थिति आ गई है कि यदि राज्य सरकार बड़ी संख्या में बेसिक स्कूल या कृषि कालेज, पशुचिकित्सा संबंधी कालेज खोलना चाहती है तो सभी ऐसे मामले स्पष्ट रूप से राज्य के क्षेत्र में आएंगे . . . राज्यों को योजना आयोग को इस संबंध में साथ लेकर चलना पड़ा है । इन दोनों बातों में बिल्कुल भिन्नता है कि पहले के स्वतंत्रता सेनानियों ने क्या सोचा था और वास्तव में हमारे संविधान के निर्माताओं की मंशा क्या थी । लेकिन अब यह भिन्नता सामने आ गई है ।

इसके परिणाम स्वरूप संघ, राज्यों और समवर्ती सूची के विषय ऊपर से नीचे की ओर योजना और गैर योजना वाले क्षेत्रकों में विभाजित किए गए है और योजना क्षेत्र के भीतर तीन बाएं से दाएं उल्लिखित सूचियों को केन्द्र से और केन्द्र द्वारा एक ही सूची बनाई है । ए० आर० सी० की केन्द्र राज्य संबंधों पर अध्ययन दल की रिपोर्ट में यह कहा गया है कि यह एक विकृति है और दिखाई जाने योग्य कमजोरियां संख्या में इतनी अधिक है पूरी व्यवस्था पर पुनर्विचार करना होगा (पृष्ठ 95-96) ।

योजना आयोग केन्द्र की दासी बन कर रह गया है और राष्ट्रीय विकास परिषद एक रबड़ स्टैम्प के सिवाय कुछ अधिक महत्व नहीं रखता है । राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा योजना का अनुमोदन किया जाना केवल दिखावे की औपचारिकता मात्र है । ये दोनों सांविधानिक या कानूनी निकाय नहीं है । तब यह प्रश्न कहां उठता है कि "योजना निचले स्तर से शुरु की जाती है" या "निम्नतम स्तर की योजना" है ।

श्री मोरारजी देसाई जिन्होंने राष्ट्र के समक्ष 10 बजट प्रस्तुत किए है, 2 मई 1970 को नई दिल्ली में केन्द्र राज्य संबंधों पर आयोजित एक परिचर्चा में कहा है कि यह सच था योजना संसाधनों की सुपुर्दगी की कोई नियमित व्यवस्था न थी और कभी-कभी जनसाधारण की अपनी रुचि को देखते हुए कुछ व्यक्तियों के प्रति पक्षपात का रवैया अपनाया गया था ।

*ए० एन० झा द इण्डियन जर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अप्रैल-जून 1966 पृ० 164

चूंकि केन्द्र से राज्यों को किए गए वित्तीय संसाधनों के दो तिहाई से अधिक अंतरण केन्द्र के विवेक पर असांविधिक प्रकार के है अत: एक दाता और प्राप्तकर्ता का संबंध मौजूद है ।

केन्द्र इस प्रणाली को बदलने का इच्छुक नहीं है क्योंकि यह प्रणाली उन्हें प्रभावी वित्तीय अधिकार प्रदान करती है ।

यह प्रणाली बदली जानी चाहिए क्योंकि वह संघवाद की जड़ों पर प्रहार करती है ।

केरल कांग्रेस (जे)

ज्ञापन

संविधान की स्वर्णिम पंक्तियां लिखे जाने की तारीख से तीन दशकों से अधिक समय बीत चुका है । विचारक हर स्थिति में सर्वसम्मति से इस बात से सहमत हैं कि आधुनिक लोकतंत्र संविधान में दी गई उन आचरण संहिताओं पर आधारित है जिन पर अब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नागरिकों ने अनुमोदन कर दिया है । अधिक से अधिक नियम और विनियम व्यक्ति की स्वतंत्रता की जांच करेंगे, भले ही यह समाज की बेहतरी के लिए हो । इस प्रकार एक आधुनिक लोकतंत्र में समाज के प्रतिकूल हुए बिना देश के नागरिकों की व्यक्तिगत विशेषता के विकास के लिए अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रत्येक प्रयास किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में शक्ति को एक स्थान पर केन्द्रित करने से लोकतंत्र की मूल कल्पना ही नष्ट हो जाएगी । इस संदर्भ में हम शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण हो इस बात पर जोर देंगे जिससे राज्यों को अधिक से अधिक अधिकार सुपुर्द किए जा सकें ।

1916 के कांग्रेस लीग लखनऊ समझौते तथा भारत छोड़ो के 1942 के संकल्प के विपरित भारत का संविधान जब सांविधानिक सभा द्वारा 1949 में अपनाया गया था तब इससे संघ का संघीय स्वरूप सच्चाई से प्रतिबिम्बित नहीं हुआ । भारत छोड़ो संकल्प में साफ साफ यह घोषणा की गई कि स्वतंत्र भारत का संविधान राज्यों को बड़े अधिकार प्रदान करने वाला एक ऐसा संघीय संविधान होगा जिसके अवशिष्ट अधिकार राज्य के पास होंगे । यह बिल्कुल स्वाभाविक ही था कि विभाजन के समय की विशिष्ट परिस्थितियों, साम्प्रदायिक दंगे, लोगों का बड़े पैमाने में स्थानांतरण और विभाजन में लगे गहरे घावों ने हमारे स्वतंत्रता सेनानियों को एक मजबूत केन्द्र होने पर विचार करने के लिए बाध्य किया । पिछले तीन दशकों में संविधान की कार्यप्रणाली ने अपने अधिकार केन्द्र में केन्द्रित किए । इस संदर्भ में यह हुआ कि केरल कांग्रेस "मजबूत केन्द्र और मजबूत राज्य" के नारे के साथ 1964 में बनी थी । दल (कांग्रेस दल) के उदय होने की तारीख से हम संविधान में आवश्यक परिवर्तन किए जाने की ओर केन्द्र राज्य संबंधों का पुन: प्रारूप तैयार करने के लिए हामी भर रहे हैं । पिछले तीन दशकों ने हमारे संविधान के सामने अनेक परीक्षाएं उपस्थित कर दी हैं और इस अवधि के दौरान संविधान को बखूबी सफलता मिली है । परन्तु समय-समय पर आड़े आई अलग-अलग समस्याएं हमें यह याद दिलाती है कि यह उचित समय है जब हमने उचित परिवर्तनों को लाने को ध्यान में रखते हुए केन्द्र और राज्य के बीच के संबंधों की वर्तमान स्थिति की जांच की है और उस पर पुनर्विचार किया है । हम आयोग के संविधान के सुन्दर रूप के सामने आने के लिए वस्तुत: आश्वस्त हैं क्योंकि इसमें वे प्रसिद्ध और विशिष्ट व्यक्ति शामिल है जिनको सांविधानिक और कानूनी मामलों की न केवल गहरी समझ और जानकारी है अपितु हमारे देश की सामाजिक और राजनीतिक विशिष्टता की भी समझ और जानकारी है ।

दल द्वारा की गई सिफारिशें इस प्रकार हैं :—

(1) केन्द्र द्वारा राज्यों पर सीधा प्रभाव डालने वाले विधानों को बनाने से पहले संबंधित राज्यों से परामर्श किया जाना चाहिए ।

(2) **अवशिष्ट अधिकार** :—सम्पूर्ण विश्व में, मुख्य रूप से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, स्विटजरलैंड आस्ट्रेलिया आदि में बहुत से संघीय संविधानों में अवशिष्ट अधिकार राज्यों के पास है । हमारे संविधान में अपनाई गई इस पद्धति के विपरीत अवशिष्ट अधिकार केन्द्र में निहित है । हमारा यह सुझाव है कि संविधान का अनुच्छेद 248 जो संसद को यह प्राधिकार देता है कि वह राज्य सूची या समवर्ती सूची में शामिल नहीं किए गए विषयों पर विधान बना सकती है, उसमें संशोधन कर दिया जाना चाहिए ताकि विधान मंडलों के अवशिष्ट अधिकार राज्यों को दिए जा सकें ।

(3) जहां तक सातवीं सूची की सूची III समवर्ती सूची का संबंध है, विधान मंडल बनने से पहले और बाद में केन्द्र के साथ परिचर्चाएं करने और परामर्श देने के प्रयोजन से तथा कार्यान्वयन की समस्याओं और प्रभावों की जांच करने और उन पर पुनर्विचार करने के प्रयोजन से संबंधित मंत्रालयों द्वारा एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया जाना चाहिए ।

(4) यह देखा गया है कि केरल विधान सभा द्वारा पारित कुछ बिलों पर इतना समय गुजर जाने के बावजूद राष्ट्रपति की सहमति नहीं मिली है । दल की यह राय है कि निश्चित समय सीमा विहित की जानी चाहिए जिसमें राज्य सरकार को बिल पर सहमति होने या सहमति रोकने या बिल पर पुनर्विचार करने के लिए विधान संदेश के संबंध में निर्णय की सूचना दी जानी चाहिए । यदि राष्ट्रपति अपनी सहमति रोक दें तो स्पष्ट रूप से सहमति रोके जाने के कारण लिखित रूप में बताए जाने चाहिए ।

(5) किसी भी सरकार का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह विशेषकर जब खाद्यान्न की कमी हो अपने नागरिकों का भरण-पोषण करे । इस प्रकार प्रत्येक राज्य सरकार को किसी भी तकनीकी या कानूनी बाधा के किसी भी राज्य के खाद्यान्न के खुले बाजार से खरीदने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ।

(6) इस समय सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टियां 45, 46, 47 और 48 केन्द्र को बड़े पैमाने पर वित्तीय और बैंक संस्थाओं पर लगभग पूरा नियंत्रण प्रदान करती है । वस्तुत: इसका प्रतिकूल प्रभाव देश के संतुलित आर्थिक विकास पर पड़ता है राज्य की अर्थ व्यवस्था को पुन: नया रूप देने के लिए केन्द्र को यह नीति बना लेनी चाहिए कि वह राज्य से इन संस्थाओं के जरिए एकत्रित जो भी राशि हो उसका निवेश उसी राज्य में ही कर दे । ऐसे निवेश में राज्य को भी बोलने का अवसर होना चाहिए ।

(7) इसी प्रकार शुल्क और कर, इनमें एक राज्य से वसूल किए गए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा-शुल्क शामिल है, को उस राज्य के विकास के लिए खर्च किए जाएगा ।

(8) नकदी फसलों के निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा और जन अर्जित उन व्यक्तियों के कल्याण के लिए जो वास्तव में कल्याण के पात्र संबंधित राज्यों को अंतरित की जानी चाहिए ।

(9) चूंकि केन्द्र खाद्यान्न को छोड़कर शेष कृषि उत्पादों के आयात किए जाने का निर्णय करता है अत: इस पर केवल राज्य की सहमति होनी चाहिए जो साधारणतया उत्पाद का उत्पादन करता है ताकि इसकी अर्थव्यवस्था न बिगड़ने पाए ।

(10) राज्य को योजना आयोग में उचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए और योजना आयोग को एक सांविधानिक निकाय बना दिया जाना चाहिए ।

(11) कुछ मदों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क लगाने की वर्तमान पद्धति को हटा दिया जाना चाहिए और उसके स्थान पर बिक्री कर लगा दिया जाना चाहिए ।

(12) संसाधन जुटाने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनाई गई बारम्बार मूल्यवृद्धि किए जाने की पद्धति बंद कर दी जानी चाहिए और इसके स्थान पर उत्पाद शुल्क ऐसी मदों पर लगा दिया जाना चाहिए ।

(13) यदि राज्य सरकार पर्याप्त संसाधनों और किसी विशेष उद्योग के लिए कार्यशील पूंजी आदि की उपलब्धता के बारे में आश्वस्त हो तो केन्द्रीय सरकार को उस उद्योग को शुरू करने के लिए मंजूरी दे देनी चाहिए ।

(14) केन्द्रीय सरकार को यह देखने के लिए कार्रवाई करनी चाहिए कि अनिवार्य पण्यवस्तुएं पूरे देश में समान मूल्य में जनता को उपलब्ध करा दी जाएं। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो राज्य सरकार द्वारा कर्मचारियों के लिए महंगाई भत्ते के रूप में खर्च की गई रकम की प्रतिपूर्ति संबंधित राज्यों को कर देनी चाहिए।

(15) जब कभी कोई राज्य कुछ प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, अकाल आदि से घिर जाता है तो अविलम्ब राज्य को राहत पहुंचाने के लिए कारगर उपाय किए जाने चाहिए। वर्तमान पद्धति यह है कि समस्या का अध्ययन करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति केन्द्र से भेजी जाती है और उनके द्वारा दी गई रिपोर्ट के आधार पर कुछ अपर्याप्त राहत दी जाती है। इस प्रक्रिया में काफी समय लग जाता है और इस प्रकार कम से कम 50 प्रतिशत राहत उसी राज्य के विशेषज्ञों द्वारा किए गए परिकलनों के आधार पर तुरंत राज्य को दे देनी चाहिए।

(16) नए औद्योगिक कार्यों को आरंभ करते समय केन्द्र को यह देखना चाहिए कि प्रत्येक राज्य को निवेशों का न्यायसंगत हिस्सा मिला हो। किस अनुपात में राशि दी जाए इसका निर्णय करने के लिए मानदण्ड यह अपनाया जाना चाहिए कि केन्द्र प्रत्येक राज्यों में प्रति व्यक्ति कितनी राशि का निवेश करता है।

केरल कांग्रेस (जे) इस बात से आश्वस्त है कि आयोग अपने विचारों पर पूरा ध्यान दे और ऐसी सिफारिशें करे जो हमारे राष्ट्र के लोकतंत्रात्मक मूल्यों को सुरक्षा प्रदान करने में तथा ऊपर उठाने में सहायक सिद्ध हो सकें। इसके अतिरिक्त दल यह अनुभव करता है कि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों से देश के संतुलित विकास में सहायता मिलेगी ताकि एक राज्य दूसरे के बलबूते पर पनपने नहीं पाए।

महाराष्ट्रवादी गोमांतक

ज्ञापन

हम गोआ, दमन और दीव के लोगों पर 25 वर्षों से अर्थात् हमें पुर्तगाली शासन से मुक्ति मिलने की तारीख से प्रशासक, जिसकी सहायक मंत्रिपरिषद है, के जरिए केन्द्रीय सरकार शासन कर रही है स्वशासन को आकार देने के लिए हमारी एक विधान सभा बनाई गई है तथापि भारत के संविधान तथा संघ राज्य क्षेत्र सरकार के अधिनियम-1963 के उपबन्ध यह बिल्कुल स्पष्ट करते हैं कि हमारी स्थिति महान देश के अधीनस्थ नागरिकों से बढ़कर कुछ अधिक नहीं है।

यह असमान स्थिति स्थायी रूप से समाप्त किए जाने की आवश्यकता है विशेषकर विभिन्न राज्य सरकारों के संदर्भ में उच्चतर स्वायत्ता प्राप्त करने के लिए और देश के अनेक लोगों के हृदयों में उत्पन्न व्यग्रता की भावना के लिए समाप्त की जानी आवश्यक है, जिसके संबंध में वे यह महसूस करते हैं कि विभिन्न राज्यों, संघ राज्य क्षेत्रों और उनके लोगों के कार्यों पर केन्द्रीय सरकार अत्यधिक हावी है।

संघ राज्य क्षेत्र गोआ, दमन और दीव ने विकास के प्रत्येक क्षेत्र के मामलों में पिछले 25 वर्षों में बड़े बड़े कदम उठाए हैं। यद्यपि भौगोलिक रूप से हमारा देश के मानचित्र में एक बहुत छोटा स्थान है पर इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अन्य बहुत से मामलों में हम अधिक समर्थ हैं और हमारे राजस्व प्रतिव्यक्ति आय और पूरे राज्य में हमारी प्रगति के लिए प्रशासनिक आधारिक संरचना के मामलों में अन्य बहुत से राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की तुलना में अच्छी है और उन से अधिक बेहतर है।

इस समय लोगों द्वारा विधिवत् निर्वाचित लोक सभा में हमारे दो सदस्य हैं। परन्तु हमारी हैसियत संघ राज्य क्षेत्र की होने के कारण राज्य सभा में हमारा कोई निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं है। परिणामस्वरूप हम राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं ले सकते जिसे उसके द्वारा नियुक्त प्रशासक के जरिए इस क्षेत्र पर शासन करने वाला समझा गया है।

हमारा अपना कोई लोक सेवा आयोग नहीं है और इसलिए हम गोआ प्रशासन की सभी नियुक्तियों के लिए संघ लोक सेवा आयोग पर आश्रित हैं।

हम करों और शुल्कों के रूप में राजस्व की एक बड़ी रकम प्राप्त करते हैं। चूंकि हमारी हैसियत एक संघ राज्य क्षेत्र की है अतः हमें अपना हिस्सा लेने से मना कर दिया जाता है।

हमारे यहां प्राकृतिक सौन्दर्य भरपूर है एक बंदरगाह और एक अन्तर्राष्ट्रीय हवाई पत्तन है, इसके अतिरिक्त लौह अयस्क के समृद्ध भंडार है, वन संपदा, जल संसाधन तथा एक सांस्कृतिक विरासत है जो भारत माँ को एकता के सूत्र में पिरोती है। कार्यालय के कार्य का निर्वहण करने के प्रयोजन से हमारी मराठी तथा कोंकणी जैसी भाषाएं हैं जिनमें से एक भाषा मराठी पहले ही कीर्ति के शिखर पर पहुंच चुकी है और दूसरी भाषा कोंकणी किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा द्वारा दी गई चुनौतियों का सामना करने के लिए हमारे लोगों द्वारा समृद्ध हो रही है।

हमारी राज्य बनाने की मांग एक सच्ची प्रबल और सर्वसम्मत, मांग है। इस क्षेत्र को राज्य बनाने में जन साधारण की राय अब और विलंब नहीं सह सकती। हमारा दल जनसाधारण की राय के अनुरूप यह मानता है कि आयोग को चाहिए कि वह इस क्षेत्र को राज्य बनाने के लिए कड़ी सिफारिश करे और इस प्रकार भारत सरकार में अन्य राज्यों के साथ बराबर का स्थान मिले। जहां तक दमन और दीव के हमारे उपरि क्षेत्रों का संबंध है हमारा अनुरोध है कि उन क्षेत्रों के लोगों की राय पर आयोग अलग से विचार करे और यदि वे गोआ के राज्य बनने के नए ढांचे में शामिल होने के इच्छुक हों तो उनकी इच्छाओं की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

मुस्लिम लीग केरल राज्य समिति

ज्ञापन

श्री एन० ए० मामू-हाजी, सदस्य विधान सभा तथा विधान दल के सचिव (मुस्लिम लीग राज्य समिति की ओर से) द्वारा सरकारिया आयोग के माननीय अध्यक्ष को प्रस्तुत किया गया ज्ञापन।

राज्य में आपके शुभ आगमन पर आपका स्वागत है। हम आपको निम्नलिखित बातों की जानकारी देते हैं :--

(1) केन्द्र राज्य के संबंध वही होने चाहिए जैसे कि राज्यों और स्थानीय निकायों के परस्पर संबंध होते हैं सिवाय कुछ विशिष्ट मामलों के राज्यों को चरम शक्तियां दी जानी चाहिए।

(2) केन्द्र और राज्य दोनों को विधान बनाने के बराबर अधिकार है। इसके लिए अधिकार इस समय केन्द्र को दिए गए हैं। इन अधिकारों में राज्यों का भी हिस्सा होना चाहिए।

(3) इस समय राज्य अपने अस्तित्व के लिए केन्द्र पर निर्भर है। आयोग को राज्यों की निर्भरता के बारे में कड़ी सिफारिशें करनी चाहिए।

(4) चूंकि केन्द्रीय सरकार राज्य के मामलों पर विधान बनाने के अधिकार का दुरुपयोग कर रही है अतः इस अधिकार को समाप्त कर देना बेहतर होगा।

(5) राज्य सरकारों की उन मामलों तक पहुंच होनी चाहिए जो संघसूची या समवर्ती सूची में नहीं आते। केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप जैसे राज्य विधानमंडलों द्वारा पास किए गए विधानों में राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने के लिए निर्देश देने के कार्य से अधिक से अधिक बचना चाहिए।

(6) संविधान के अनुसार राष्ट्रीय विकास परिषद, जो राज्य की समस्याओं पर विचार करती है और योजना आयोग (दोनों) पृथक निकाय होने चाहिए।

(7) राज्यपाल केन्द्रीय विधानमंडल के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। संबंधित राज्य सरकार की सहमति राज्यपाल की नियुक्ति होने से पूर्व ले ली जाए।

(8) चूंकि अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग बार बार किया जा रहा है अतः इसे संविधान से निकाल दिया जाना चाहिए।

(9) किसी एक राज्य से लाई गई 75% कुल राजस्व की राशि उस राज्य के कल्याण पर व्यय कर दी जानी चाहिए।

(10) केन्द्रीय सरकार को राज्यों को ये निर्देश देने चाहिए कि वे अल्प-संख्यक समुदायों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करें और उनकी शिकायतों को दूर करें तथा कार्यान्वयन की समीक्षा करने के लिए उपाय करें।

आशा है कि आयोग केन्द्र को अपनी सिफारिशें यथासंभव शीघ्र प्रस्तुत करेगा।

भारतीय कृषक और श्रमिक दल—केरल युनिट

ज्ञापन

भारतीय कृषक एवं श्रमिक दल (केरल यूनिट) की राज्य समिति द्वारा प्रस्तुत किया गया ज्ञापन:

भारत ऐसे राज्यों का एक संघ है जिसमें अलग अलग जाति, संस्कृति, भाषा, धार्मिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लोग रहते हैं। विभिन्नता में एकता हमारे राष्ट्र का मूल तत्व है। हमारा संविधान बनाने वाले व्यक्तियों के स्वतंत्रता के समय अपने राष्ट्र में प्रचलित विखण्डनकारी और तानाशाही प्रवृत्तियों के बीच संतुलन लाने का प्रयास किया था। यद्यपि हमारा संविधान परीक्षा में अब तक खरा उतरता रहा है परन्तु उसे लगता है कि इस समय केन्द्र के शासक संघीय स्वरूप को कमजोर बनाने का प्रयास कर रहे हैं और इसे एकात्मक रूप में बदल रहे हैं। यदि इस प्रवृत्ति को समय रहते रोका नहीं जाता तो हमारे राष्ट्र की अखंडता के तिरोहित होने में कोई समय नहीं लगेगा। इस प्रकार प्रत्येक के लिए यह आवश्यक है कि वह पिछले 37 वर्षों के हमारे अनुभव का मूल्यांकन करे और पूरी समस्या के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाए। शुरू में हम यह कहना पसन्द करेंगे कि इस समय की स्थिति यह है कि राज्यों की कार्यशक्ति बहुत कम हो गई है और वे नगरपालिका के तुल्य हो गए हैं। राज्य हमेशा कल्याण के लिए किए जाने वाले उपायों की बाट जोहते हैं। यद्यपि केन्द्र को यह अतिरिक्त साधारण अधिकार प्राप्त है कि वह घाटा होने के बावजूद धन खर्च करे अतः राज्यों को राजस्व और व्यय के बीच के अंतर मिटाने के लिए केन्द्र के समक्ष झोली फैलानी पड़ेगी। राज्यों को दी गई ओवर ड्राफ्ट की सुविधाएं वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। हमारी राय में राष्ट्र के कुल राजस्व की 75% राशि राज्यों में उनकी जनसंख्या के अनुपात में बांट दी जानी चाहिए। वित्त आयोग एक स्थायी सचिवालय के साथ एक स्थायी निकाय बना देना चाहिए। वित्त आयोग की सिफारिशें केन्द्र और राज्य दोनों पर समान रूप से लागू हैं।

दुःख के साथ यह कहा जाता है कि कुछ राज्य आर्थिक प्रगति में पिछड़ रहे हैं। यह आरोप लगाया जा रहा है कि केन्द्र के शासक अन्य राज्यों के न्यायसंगत दावों की उपेक्षा करके कुछ राज्य में नए उद्योग प्रारंभ करके उन राज्यों का पक्षपात कर रहे हैं। राज्यों में इस प्रकार की दिखाई देने वाली असमानता से राज्यों में स्वाभाविक रूप में दुर्भावना उत्पन्न होगी। इससे बचने के लिए राज्य को निजी और सार्वजनिक क्षेत्रकों दोनों में यहां तक कि विदेशी सहयोग लेते हुए नए उद्योग शुरू करने के लिए लाइसेंस जारी करने की पूरी छूट दे देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्तर्राज्य व्यापार की सभी रुकावटें जिनमें कर, उपकर, शुल्क आदि शामिल हैं, दूर कर देनी चाहिएं। केन्द्रीय सरकार को यह देखने का उत्तरदायित्व लेना चाहिए कि खाद्यान्न, खाद्य तेल आदि जैसी अनिवार्य पण्य वस्तुएं उचित मूल्यों पर सभी राज्यों में बराबर-बराबर बांटी जानी जाती है या नहीं।

शिक्षा को संविधान की अनुसूची II की सूची I का एक विषय बना देना चाहिए। शिक्षा को राष्ट्रीयकृत कर देना चाहिए और एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्वीकार कर ली जानी चाहिए ताकि युवा पीढ़ी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक समाजवादी दृष्टि अपना सके। किसी भी ऐसी गतिविधि को जिसका धर्मनिरपेक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, किसी भी शैक्षिक संस्था में किए जाने की छूट नहीं दी जानी चाहिए चाहे वह संस्था अधिक संख्यक समुदाय द्वारा चलाई जा रही हो या अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा।

राज्यों के बीच उठने वाले विवादों को सुलझाने के लिए और पददलितों का उद्धार करने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए, संविधान में बताई गई व्यवस्था के अनुसार अन्तर्राज्य परिषद का गठन किया जाना चाहिए जिसमें सदस्यों के रूप में मुख्य मंत्री और अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति हों। यह निकाय एक स्थायी निकाय बना देना चाहिए। दो या उससे अधिक राज्यों के लोगों पर प्रभाव डालने वाले सभी विधानों पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए और उन्हें संसद या राज्य विधान-मंडलों में आरंभ करने से पहले परिषद द्वारा अनुमोदित करा लेना चाहिए।

योजना आयोग एक ऐसा सांविधिक निकाय होना चाहिए जिसमें स्वतंत्र रूप से एक केन्द्रीय कार्यपालिका हो। उसमें उच्च कोटि के वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री तथा तकनीशियन शामिल किए जाएं। इसे राज्यों द्वारा बनाई गई योजनाओं पर सलाह देनी चाहिए। इसे राज्यों में औद्योगिक उपक्रम बनाने के लिए राज्यों को विदेशी मुद्रा प्रदान करने के संबंध में वित्त आयोग को विचार करने के लिए सिफारिशें करनी चाहिए।

राज्यपालों की नियुक्ति संबंधित राज्य के मंत्रिमंडल के मतों पर विचार करने के बाद केवल अध्यक्ष द्वारा की जाएगी। अनुच्छेद 185 में उस संबंध में संशोधन कर दिया जाएगा। राज्यपाल को उस स्थिति में हटा दिया जाएगा यदि सभा अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए दो तिहाई बहुमत से एक संकल्प पास कर दे।

विधान परिषदें समाप्त कर देनी चाहिए। अनुच्छेद 200 में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि विधान मंडल द्वारा पास किए गए सभी बिलों पर राज्यपाल द्वारा अनिवार्य रूप से सहमति दी जा सके क्योंकि देश की न्यायपालिका में निहित न्यायिक समीक्षा के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए सहमति रोकने के उपबन्ध बिल्कुल अनावश्यक हैं।

अनुच्छेद 356 में संशोधन कर दिया जाना चाहिए ताकि केवल उन मामलों में जिनमें देश की अखंडता पर कोई संकट आया प्रतीत हो या अलगाववादी (सेसेशनिष्ट) शक्तियां इतनी सक्रिय हो गई हों कि राष्ट्र की एकता को खतरा हो सकता हो तब राष्ट्रपति द्वारा राज्य सभा को भंग करने के लिए और अधिकार अपने पास लिए जाने के लिए उसके पास निहित अधिकार को सीमित किया जा सके।

क्रांतिकारी समाजवादी दल

प्रश्नावली के उत्तर

1.1 नहीं। संघ के साथ एक बाहरी संरचनात्मक समानता होते हुए भी संविधान ने संघटक इकाइयों को व्यावहारिक रूप से गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के अधीन प्रांतों के दर्जे तक ला दिया है, जिसमें संघ को भारी अतिक्रमणकारी शक्तियां दी गई हैं और ऐसी कोई स्पष्ट परिस्थितियां परिभाषित नहीं की गई हैं जिनमें इन शक्तियों का प्रयोग किया जाएगा। इस प्रकार संविधान के निर्माण में संविधान निर्माताओं की इस घोषणा का, जैसी कि यहां प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल की टिप्पणी से उद्धरित है, एकतरफा क्रियान्वयन हुआ जिसमें हर बात "मजबूत केन्द्र" के इर्द-गिर्द घूमती रही और एक बहुत कृत्रिम स्वरूप को छोड़कर किसी भी अर्थ में "संघ" के लिए कोई जगह नहीं छोड़ी गई।

1.2 अनुच्छेद 251, 252, 256 और 257(1) को और साथ ही अनुच्छेद 352-360 और 365 को हटा दिया जाना चाहिए, क्योंकि इन अनुच्छेदों में उपरिभाषित परिस्थितियों में राज्य के विधायी या प्रशासन संबंधी अधिकारों और नागरिकों के प्रतिबंधित मौलिक अधिकारों पर अनावश्यक अतिक्रमण की बात सोची गई है। संविधान के ये उपबंध, राज्य की स्वायत्तता की तो बात ही दूर राज्यों के अधिकारों, नागरिकों के नागरिक और लोकतांत्रिक अधिकारों और सबसे ऊपर बुनियादी लोकतांत्रिक सिद्धान्तों की नजर से देखने पर भी बहुत आपत्तिजनक है।

1.3 विकेंद्रीकरण और केंद्रीकरण को इस तरीके से साथ-साथ नहीं रखा जाना चाहिए। प्रश्न केवल सांविधानिक प्रावधानों द्वारा निर्मित कृत्रिम एकता और अखंडता का नहीं है। विचारों और कार्यों की जैविक एकता इकाइयों और केंद्र दोनों में व्याप्त होनी चाहिए। जिसमें विभिन्न स्तरों पर लाभकारी पहलकदमी और सुस्पष्ट रूप से निर्धारित कार्यक्षेत्र होने चाहिए।

1.4 इस प्रश्न पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा। भारत बहुराष्ट्रीय राज्य है। मोटे तौर पर, भारत को एक परिपूर्ण संघीय प्रणाली की आवश्यकता है। संविधान की कार्यों और विकास की रूपरेखा के रूप में समीक्षा

की जानी चाहिए। विकास की अवस्थाओं के साथ ही इसमें परिवर्तन लाने होंगे। भारतीय संघ की संघटक इकाइयों को अलग होने तक का भी अधिकार होना चाहिए, किन्तु वास्तविक क्रियाकलापों द्वारा ऐसी परिस्थितियां लानी चाहिएं कि ऐसे हालात न पैदा हों। विभिन्न पहलुओं पर बुनियादी दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की जरूरत है, पैबंद लगाने की नहीं।

1.5 (क) को स्वीकार न करते हुए भी यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान के अधपक्के संघ को विभिन्न असंवैधानिक उपायों से और कमजोर किया गया है। संघीय सिद्धान्तों का अनुपालन, जैसे कि वे अपने आप में अपूर्ण हैं, (i) द्वारा सुनिश्चित नहीं किया जा सकता तथापि जब तक संविधान पर नए सिरे से पूरी तरह विचार नहीं किया जाता, वर्तमान सांविधिक प्रावधानों में विकृतियों को रोकने के लिए भी (ii) को आजमाया जा सकता है।

1.6 इस संदर्भ में राजभाषा या अल्प संख्यकों को सुरक्षा प्रदान करने से अथवा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को सुरक्षा प्रदान करने से संबंधित प्रावधानों का उदाहरण दिया जा सकता है। अनुभव ने दिखाया कि ये अपने उद्देश्यों के लिए बहुत अपर्याप्त हैं, विशेषकर इसलिए कि देश को धार्मिक और सामाजिक अंध-विश्वासों और मिथ्या धारणाओं के चंगुल से बचाने के, जो देश की जनता की एकता में एक बड़ी बाधा है, पूर्वोक्त अधिकांश प्रावधान या तो इन्हीं को बनाए रखते हैं या नए तनावों को जन्म देते हैं, जिससे इस बहुभाषी देश में किसी एक विशिष्ट भाषा को तरजीही व्यवहार देने की संभावना रहती है।

राष्ट्रीय अखंडता को सुदृढ़ करने के लिए वर्ग हितों की सहभागिता को संबंधित करना आवश्यक है। एक बुर्जुआ राज्य तंत्र भी ऐसा कर सकता है बशर्ते कि वह साम्प्रदायिक और जाति वर्गों को बढ़ा कर और भाषायी विद्वेष को हवा देकर वर्ग हितों के संघर्ष को दूर करने की आवश्यकता महसूस न करे। सामाजिक पिछड़ापन आर्थिक पिछड़ेपन का ही नतीजा है जो सबके लिए खाना, कपड़ा, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा का सुनिश्चय करने में राज्यतंत्र की असफलता का परिणाम है। यदि देश की समूची जनसंख्या को ये पांचों वस्तुएं सुनिश्चित हो जाएं तो इससे परिवर्तन की एक भावना और राष्ट्रीय प्रगति के एक स्तर को प्राप्त करने की इच्छा पैदा होना लाजमी है, जिसकी रक्षा करने में ही नहीं, उसे बढ़ावा देने में भी प्रत्येक नागरिक सहर्ष तैयार होगा। जैसा कि 1.4 में कहा गया है संविधान की कार्यों की रूपरेखा होना चाहिए और इसके कार्यान्वयन में सभी नागरिकों को शामिल करने से ही देश की एकता और अखंडता का सुनिश्चय सबसे अच्छी तरह हो सकता है।

1.7 पूर्णतया अनुचित। इससे स्वेच्छाचारी केंद्रीकरण आता है। ये प्रावधान वस्तुतः केन्द्र में शासक दल की शक्ति की नीति के मोहरे हैं। पिछले अनुभव इसके साक्षी हैं।

1.8 निश्चित रूप से। यह प्रावधान रूपवाद की जड़ों को काटता है जिसका अर्थ है संघटक इकाइयों का स्वैच्छिक मिलना। इस बारे में संबद्ध राज्य और उनकी जनता ही अंतिम निर्णायक होने चाहिए न कि केन्द्र।

भाग II

वैधानिक संबंध

2.1 और 2.2 "विधायी शक्तियों" को बिना किसी आधार के शून्य में नहीं देखना चाहिए। विधान किसी सामाजिक वास्तविकता को अभिव्यक्ति देता है। अतः विधायी शक्तियों का बटवारा प्रकार्यात्मक रूप में संघीय सिद्धान्तों के अनुरूप है या नहीं, इसका निर्धारण न केवल सांविधानिक रूप से बल्कि बहुविध जीवन की समूची परिधि के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। देश का आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण ही राज व्यवस्था को आकार प्रदान करता है। अतः कोई भी संवैधानिक उपबंध वास्तविक राजनीतिक प्रक्रिया में व्यावहारिक रूप से नकारा भी जा सकता है। अतः शक्तियों के बटवारे को ऐसी व्यापक समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसकी व्याप्ति पूरे समाज तक है। हमें संविधान की एक ऐसी आर्थिक व्याख्या करनी होगी जिससे हम राज्य के वर्ग स्वरूप का स्पष्ट विश्लेषण कर सकें।

यह एक सच्चाई है कि केन्द्र ने ऐसी शक्तियां प्राप्त कर ली हैं जिनका वह लाभप्रद ढंग से प्रयोग नहीं कर सकता या ऐसी शक्तियां प्राप्त कर ली हैं जो यथोचित रूप से राज्यों को मिलनी चाहिएं। संजीव रेड्डी ने भी संघीय स्वरुप के ह्रास की शिकायत की है (जनवरी, 1978 में प्रेस इंटरव्यू)। उन्होंने कहा—"राज्य का मुख्य मंत्री कोई स्वास्थ्य योजना या कोई वन-विकास योजना या ऐसा ही कोई अन्य छोटे-मोटे काम भी शुरू नहीं कर सकता। केंद्र के अधिकारी यह समझते हैं कि उन्हें संविधानिक ढांचे के अंदर केंद्र से राज्यों को जाना ही है"।

प्रशासनिक सुधार आयोग की राय है, "योजना के परिणामस्वरुप प्रशासन के तीन समतलीय स्तरों ने जिनका प्रतिनिधित्व केन्द्रीय, समवर्ती और राज्य विषयों को सूचियां करती हैं--योजना और गैर-योजना विषयों को विभाजित कर दिया है और योजना की दुनिया में, योजना की अनिवार्यताओं और परिणामों ने इन तीनों समतलीय स्तरों को मिला कर एक ही लगभग अखंड रूप दे दिया है जो समवर्ती और राज्य विषयों के संबंध में राज्यों से परिचालित तो होता है किन्तु नियंत्रित केंद्र द्वारा ही होता है। समिति का मत था कि इस स्थिति में एक ऐसी विकृति को जन्म दिया है जिसमें प्रत्यक्ष ही अनेकों खामियां हैं और जिससे समूचे तंत्र का पुनरीक्षण करने की आवश्यकता है। समिति यह महसूस करती है कि संविधान सुसंतुलित है लेकिन पिछली दो दशाब्दियों में इसका कुछ झुकाव केंद्र के पक्ष में रहा है। यह बात भी केवल प्रशासनिक और वित्तीय मामलों के संबंध में ही लागू होती है—सांविधानिक मामलों में नहीं। समिति का निष्कर्ष है कि संविधान में संशोधन करना जरूरी नहीं। सांविधानिक प्रावधानों का प्रयोग सभी संबंधित पक्षों द्वारा संतुलित रूप से किया जाना चाहिए जैसी कि संविधान के निर्माताओं ने अपेक्षा की थी।

दूसरी ओर राजमन्नार आयोग भारतीय संविधान को अमरीकी संविधान का हूबहू प्रतिरूप बनाना चाहता है।

अतः ये आयोग वास्तविक समस्या को नहीं देख सके हैं। पहला आयोग पैबंद लगाना चाहता है जबकि दूसरा अमरीकी नमूने को अपनाना चाहता है। जो भारत को चाहिए, वह इन दोनों में नहीं है।

संविधान का अनुच्छेद 201 और राज्य विधान सभा द्वारा पास किए गए बिलों पर राष्ट्रपति की संस्वीकृति से संबंधित प्रावधानों पर प्राप्त अनुभव की रोशनी में समीक्षा करने की आवश्यकता है। समवर्ती सूची के जिन मामलों पर राज्य विधान सभाएं कानून बनाने में सक्षम थीं उन पर भी इस स्वीकृति को मिलने में महीनों देरी हुई है। राष्ट्रपति की स्वीकृति को मनमाने ढंग से रोकने का परिणाम राज्यों की समवर्ती शक्तियों को वस्तुतः इनकार करना होता है और इससे संघ और राज्य की विधायी शक्तियों के आबंटन पर घोर कुप्रभाव पड़ता है।

साथ ही अपनी क्षमता के दायरे के भीतर भी कई क्षेत्रों में राज्य को कानून बनाने के लिए केंद्र की सहायता की जरूरत होती है अतः उसे केंद्र के निर्देशों के अनुसार बनाना पड़ता है। यह राज्य की विधायी शक्तियों पर प्रभावकारी अंकुश है।

जब राज्य अपनी क्षमता के भीतर के किसी विषय पर कोई कानून बनाता है तो उसके पास उस कानून पर अमल करने के लिए आवश्यक ढांचा और अन्य आवश्यकताएं भी होनी चाहिए। निम्नलिखित उदाहरणों से ऐसी प्रवृत्ति सिद्ध होती है जो इसके बिल्कुल उलट है।

यदि यह निदेश कि राज्य सरकार को केंद्र सरकार के अनुकूल होना चाहिए, स्वीकार किया जाता है (श्रीमती गांधी 3-2-72) तो राजनीतिक रूप से शक्तियों का सांविधिक वितरण न केवल धुंधला बल्कि अप्रासंगिक भी हो जाता है। स्वर्गीय श्री सी० एम० स्टीफन का कहना था (7-3-1980) कि जो राज्य सरकारें जमाखोरों के खिलाफ निवारक नजरबंदी के केन्द्रीय कानून का इस्तेमाल नहीं करती उन्हें हटाया जा सकता है या हटा दिया जाएगा।

2.3 इस मसले पर न केवल विचार-विमर्श बल्कि वास्तविक सहमति होनी चाहिए। इससे बेहतर समझ-बूझ पैदा होगी।

2.4 यह प्रावधान राज्यों की विधायी शक्तियों का उल्लंघन है और यह नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति से बचना चाहिए। ऐसी स्थिति बहुत

काल्पनिक है और उसमें विवेकशीलता, योजना बद्धता और दूरदर्शिता का अभाव है। "राष्ट्रीय", "सार्वजनिक", "राज्य" के हितों के बीच सामंजस्यपूर्ण सह–संबंध और आदान–प्रदान का मूल्यांकन निरंकुश या स्वेच्छाचारी तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। भारत में बढ़ते हुए आर्थिक और राजनीतिक संकट को देखते हुए ऐसी घोषणाओं का परिणाम स्पष्टतः राज्यों की शक्तियां छीनना होगा।

2.5 अवशिष्ट शक्तियां राज्यों के पास होनी चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 हम शुरू में ही यह स्पष्ट कर दें कि हम केन्द्र के शासक दल के एजेंट या नामित के रूप में राज्यपाल के पद को समाप्त करने के पक्ष में है।

(क) 1950 से जो व्यवहार में लाया गया है वह वैसा ही है जैसी कि संविधान में परिकल्पना की गई थी।

राज्यपाल हमेशा से और हर प्रकार से, केन्द्र के हाथ में एक औजार के रूप में राज्य सरकार के पग में कांटा रहा है। इस संबंध से विधायी प्रावधान इस आशय के मिथ्या होने का अच्छा प्रमाण देते हैं कि जिसकी परिकल्पना की गई थी वह कुछ और ही था। न तो संविधान के निर्माता मूर्ख थे और न ही वे जो 1947 से सत्ता में रहे है। शासक वर्ग ही ऐसा था कि उसे केन्द्रीकरण और वर्धमान सत्तावाद की आवश्यकता हुई। स्वाभाविक है कि राज्यपाल सिद्धांत और व्यवहार दोनों पक्षों से केंद्र में शासक दल और उसके हितों के लिए केंद्र के हाथ में उत्तरोत्तर एक औजार बन कर रह गया है।

3.2 यदि भारत में सच्ची संघीय व्यवस्था है तो राज्यपाल के पद का कोई औचित्य नहीं हो सकता। निस्सदेह राज्यों और केन्द्र के बीच समन्वय होना चाहिए किन्तु राज्यपाल यह कार्य निष्पादित नहीं करता। इसका परिणाम राज्यों के महत्व को कम करना या केन्द्र में शासक दल के हितों को उन पर थोपना नहीं होना चाहिए। हम केवल उपनिवेशवादी ढांचे का अनुसरण करते रहे हैं। सही अर्थों में देखा जाए तो संघ में राज्य को केंद्र द्वारा थोपे गए किसी संरक्षक की कोई आवश्यकता नहीं है।

3.3 (क) आज राज्यपाल केन्द्र के निर्देशों को मानता है, उसे मानना ही पड़ता है या उससे मनवाया जाता है। राज्यपाल के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं होनी चाहिए।

(ख) बहुमत प्राप्त दल के या दलों के नेता को मुख्यमंत्री बनाया जाना चाहिए। मुख्यमंत्री नियुक्त करने के अधिकार में किसी विशिष्ट दल का पक्षपात करने का विशेषाधिकार शामिल नहीं होना चाहिए। निस्संदेह यह देखना राज्यपाल का कर्तव्य है कि नेता को बहुमत प्राप्त हो। संदेह की स्थिति में विधान सभा में विभिन्न दलों को अपने–अपने नेता चुनने चाहिए और सदन में दल के नेता या दल समूह के नेता का बहुमत सिद्ध करने के लिए विधान सभा का अधिवेशन बुलाया जाना चाहिए।

(ग) अब तक का अनुभव यह दिखाता है कि राज्यपालों ने अक्सर केंद्र के शासक दल के पक्ष में इस शक्ति का दुरूपयोग किया है। विधान सभा को भंग करने का निर्णय लेने से पहले विधान सभा में विभिन्न दलों को या कम से कम उस दल को मौका मिलना चाहिए जो सरकार बना सकता है। इसी तरह मंत्रिमंडल बनाए जाने की संभावनाओं का पता लगाए बिना विधान सभा बुलाए जाने के विपरित निर्णय नहीं लेना चाहिए। उदाहरण के लिए, 1965 में केरल के चुनाव और उसके परिणाम हैं। विधान सभा बुलाई ही नहीं गई। यहां राज्यपाल द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग अलोकतांत्रिक और असांविधानिक था और वह निश्चित रूप से केंद्र में शासक दल का समर्थन कर रहा था।

जब तक राज्यपाल का पद अपने वर्तमान रूप में विद्यमान है, यह किया जाना चाहिए। हम राज्यपाल के पद को समाप्त करने का दृढ़ता से समर्थन करते हैं।

3.4 यह प्रश्न ही अनावश्यक है। इस समस्या से जुड़े ब्यौरे सर्वविदित हैं। यह प्रश्न वह जानकारी हासिल करना चाहता है जो पहले से ही उपलब्ध है। साथ ही, राज्यपाल ने अपनी मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना काम किया है या नहीं, यह आम जनता नहीं जान सकती। यह गोपनीय होता है। यह खेदजनक है कि ऐसे प्रश्न को इस प्रश्नावली में शामिल किया गया है। राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचारार्थ बिल का आरक्षण किसी उद्देश्य से किया जाता है। इससे दबाव समूह, हित समूह और विपक्ष को बिल के विरुद्ध अपनी बात कहने और उसे कमजोर करने का अवसर मिलता है। अंततः इसका परिणाम उन विषयों पर कानून बनाने की क्षमता को नकारना होता है जो उसे सौंपे गए हों। विभिन्न राज्यों में ऐसे उदाहरण सुविदित है। इसका नवीनतम उदाहरण कलकत्ता विश्वविद्यालय (संशोधन) बिल राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा स्वतः आरक्षित रखना है।

3.5 सहमत नहीं हैं। तथ्य इसके विपरित हैं। टिप्पणी का पहला भाग अधिक वस्तुनिष्ठ है।

राष्ट्रपति की स्वीकृति प्रकिया ने न केवल राज्यों की स्वायत्तता के लिए एक ठोस खतरे का काम किया है, बल्कि अंततः इससे बिल का वास्तविक आशय और उद्देश्य वस्तुतः समाप्त हो गया है। बदलते हुए समय के अनुसार या तो यह बेकार हो जाता है या जनविरोधी। एक से पांच वर्ष तक का विलंब और कुछ नहीं तो इस उपबंध के प्रतिरोधात्मक स्वरूप का स्पष्ट प्रमाण है।

3.6 **प्रश्न 1 का उत्तर** : यह केवल थोथे शब्दाडंबर में लिपटी एक पावन कामना मात्र करना है। वे निस्संदेह राज्यों में बैठ कर केन्द्र में सत्ताधारी दल से निकट संबंध रखते हुए कार्य करते हैं जिसका नवीनतम उदाहरण सिक्किम के राज्यपाल तलमारखान का है। उनके पास कोई अनाश्रित भूमिका नहीं रही है।

प्रश्न संख्या 2 : इस संबंध में कई उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनमें से कुछ हैं—अनुच्छेद 356 से संबद्ध राज्यपाल के पद और उसके कर्तव्यों को शासित करने वाले उपबंध) (1) 1959 में केरल में साम्यवादी सरकार की बर्खास्तगी, जबकि विधान सभा में उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त था। (2) 1965 में केरल विधानसभा को भंग करना (3) 1967 में विधान सभा में बहुमत होने के बावजूद पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चा मंत्रिमंडल की बर्खास्तगी (4) 1971 में भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) को अवसर दिए बिना पश्चिम बंगाल विधान सभा को भंग करना (5) 1977 और 1980 में एक साथ कई राज्य विधान सभाओं को बर्खास्त करना। हरियाणा में जी०डी० तापसे की वह भूमिका जिससे भजन लाल कांग्रेस (इ) मंत्रिमंडल का समर्थन खरीद सके, अभी तक ताजा है। (6) 1952 में मद्रास के तत्कालीन राज्यपाल श्री प्रकाश ने श्री टी प्रकाशम को, जिन्हें सभी विपक्षी दलों के नेताओं ने निर्वाचित किया था, सरकार बनाने के लिए आमंत्रित नहीं किया बल्कि सी०आर० को विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया और फिर उसे कांग्रेस दल के नेता के रूप में सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया।

(7) **सबसे बुरे उदाहरण** : 1967 में जब विशेष रूप से नियुक्त राज्यपाल श्री एन० कानूनगो ने सिर्फ एक दिन के लिए एस०पी०सिंह को मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया ताकि उनकी सलाह पर श्री बी०पी० मंडल को विधान परिषद का सदस्य नामित किया जा सके और फिर पहले से तय किए अनुसार एस०पी० सिंह ने त्यागपत्र दिया और बी०पी० मंडल को मुख्यमंत्री बनाया गया।

3.7 यदि हमें राज्यपाल के पद को बनाए रखने का फैसला करना है तो इसके अलावा कुछ और भी किया जाना चाहिए।

(क) डा० रघुकुल तिलक के मामले में (हरगोविंद पंत बनाम (डा० रघुकुल तिलक–1979) सर्वोच्च न्यायालय—राज्यपाल केन्द्र के निर्देशों के वश में नहीं—वह केन्द्र के अधीन या उसका ताबेदार नहीं—जो उसके प्रति जवाबदेह नहीं है—उसका स्वतंत्र संविधानिक पद है—वह राज्य का संवैधानिक मुखिया है।

(ख) प्रशासनिक सुधार आयोग का यह कहना है कि किसी व्यक्ति को एक बार से अधिक के लिए राज्यपाल नहीं बनाया जाना चाहिए।

(ग) एम०सी० सीतलवाड़ के नेतृत्वाधीन प्रशासनिक सुधार आयोग का अध्ययन दल—

राज्यपाल के रूप में नियुक्त व्यक्ति को अपनी नियुक्ति के बाद राजनीति में हिस्सा नहीं लेना चाहिए—सेवानिवृत्त होने के बाद भी—के० सुब्बाराव (भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश) राज्यपाल अपनी सेवानिवृत्ति के बाद किसी भी अन्य पद के लिए पात्र नहीं होना चाहिए, न ही उसे किसी पद से हटाया जाना चाहिए सिवाय उस स्थिति के जब उस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जांच-पड़ताल के बाद दुराचार या अक्षमता का आरोप सिद्ध न हो जाए।

यदि यह सब हो जाए तब भी समस्या का समाधान नहीं होता। यदि राज्यपाल न मान रहा हो तो भी राष्ट्रपति यदि "अन्यथा संतुष्ट है कि—"संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई कर सकता है, तो राज्यपाल से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन लाने का क्या लाभ। प्रश्न इस मामले में संविधान के प्रति मूल दृष्टिकोण को बदलने का है।

3.8 यह काम ठीक तरह से हो सकता है, किन्तु अध्यक्ष को बैठक बुलानी चाहिए और उसके परिणाम राज्यपाल को भेजने चाहिए जिसे तद्नुसार कार्रवाई करनी चाहिए। विधायिका राज्य की जनता का प्रतिनिधित्व करती है। सदन-पटल पर लिए गए इसके निर्णय राज्यपाल को स्वीकार करने चाहिए। कुछ एक मामलों में (जैसे कि 1965 में केरल का मामला) प्रश्न 3.8 पर अमल किया जा सकता था।

3.9 इस सुझाव को आजमाया जा सकता है। हमारी राय में अध्यक्ष को जिसका पद निरंतर चलता रहना चाहिए, सदन का अधिवेशन बुलाना चाहिए और जब विधान सभा में बहुमत प्राप्त मंत्रिमंडल लाना संभव न हो तो सभा भंग करने की सिफारिश करनी चाहिए। ऐसे मामले में सदन भंग समझा जाना चाहिए और दो महीने की अवधि में चुनाव कराए जाने चाहिए जिसके दौरान पिछला मंत्रिमंडल सरकार के नेमी कार्यों को चलाने के लिए कामचलाऊ सरकार के रूप में कार्य करें। चुनाव आयोग का विस्तार किया जाना चाहिए और पुलिस तथा केन्द्रीय प्रशासन की मदद से विभिन्न प्रकार के कार्मिकों की मांग करके उसे सीधे चुनाव कराने चाहिए। संविधान में तद्नुसार संशोधन होना चाहिए। 3(10) जोड़ें। कापी देखें।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 अनुच्छेद 256 का संबंध आज्ञापक स्वरूप के किसी केन्द्रीय कानून के प्रवर्तन में जानबूझकर लापरवाही करने से है, अन्यथा शब्द "अनुपालन" का कोई अर्थ न होता। उदाहरण के लिए पी डी एक्ट जैसे कानून केवल सामर्थ्यकारी कानून हैं जो सरकारों— केन्द्रीय और राज्य सरकारों की शक्तियों में वृद्धि करते हैं। केन्द्र और राज्य दोनों के पास एक सुस्पष्ट विवेकाधिकार है कि किस सांविधिक शक्ति का प्रयोग किया जाना है। अलबत्ता राज्य जो नहीं कर सकता, वह यह है कि वह संघ को, यदि वह राज्य के अंदर किसी केन्द्रीय कानून के अधीन अपनी कार्यपालक शक्ति का प्रयोग करता है तो, रोक नहीं सकता। अनुच्छेद 257 (1) को किसी राज्य के भीतर केन्द्रीय कानून प्रवृत्त किए जाने के केन्द्र के प्रयास में आने वाली किसी रुकावट को हटाने के लिए बनाया गया है। डा० अंबेडकर के अनुसार अनुच्छेद 257 के माध्यम से एक ऐसी स्थिति का सामना करने की बात सोची गई थी "जो किसी प्रांतीय सरकार के जारी रहने को असंभव बना दे।" तथापि संक्रमणकारी चरण समाप्त हो जाने के बाद भी यह प्रावधान स्थायी रूप से चल रहा है।

ऐसे मामले में किसी केन्द्रीय निदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए दंड विधान एक अनिवार्य उपाय है और यही कारण है कि इसे राज्यों की स्वायत्ता पर प्रहार किए बिना प्रयोग में नहीं लाया जा सकता। यह अनुच्छेद 365 है जो राष्ट्रपति का शासन लागू करने का मार्ग प्रशस्त करता है (अनुच्छेद 356), ऐसे दुरुपयोग का उपचार न्यायिक उपचार है। सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक समीक्षा के लिए अपने द्वार अधखुले रखे हैं। उसे ये द्वार और अधिक खोलने के लिए रजामंद किया जाना चाहिए।

राज्यों को निर्देश देने का विचार विदेशी है और सच्चे संघीय तंत्र के प्रतिकूल है। अनुच्छेद 256 और 257 अपनी सभी सम्बद्ध कमियों, खामियों, अपूर्णताओं इत्यादि के साथ एक औपनिवेशिक धरोहर के रूप में 1935 अधिनियम से लिए गए हैं जो नए शासन वर्ग के अनुकूल हैं। ध्यान देने की बात है कि संविधान में अनुच्छेद 256 और 257 अर्थात् अनुच्छेद 365 के माध्यम से अनुच्छेद 356 के अधीन घोषणा करने के राष्ट्रपति के अधिकारों के अधीन जारी निर्देशों के प्रवर्तन के लिए दमनात्मक दंड विधान निर्धारित किया गया है। अनुच्छेद 356 के प्रति हमारे विरोध का प्रकारांतर से हमारा अभिप्राय है अनुच्छेद 365 को हटाने की बात कहना है, भले ही इसमें एक निष्पक्ष मानदंड का भी पहलू है और अधिक से अधिक यह सामर्थ्यकारी खंड है।

संघीय संविधान में इकाइयों की अपनी अपनी प्रादेशिक इकाइयों के भीतर प्रभु सम्पन्नता निहित है।

संविधान के अब तक के प्रयोग से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे यह स्पष्ट होता है कि केन्द्र ने संविधान का राज्यों के ऊपर अपना अधिनायकवाद स्थापित करने के लिए प्रयोग किया है।

जब तक राज्यपाल से संबंधित प्रावधान और अनुच्छेद 356 मौजूद है, केन्द्रीय सरकार को किसी राज्य सरकार का शासन समाप्त करने के लिए अनुच्छेद 365 का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है। अतः धारा 365 लागू किए जाने के उदाहरणों के अभाव को अनुच्छेद 256 और 257 को शामिल किए जाने या इन्हें बनाए रखने के औचित्य के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। न ही हमें ऐसे उदाहरण ज्ञात हैं जो अनुच्छेद 256 और 257 को उचित ठहराते हों। अतः दोनों अनुच्छेदों को हटा दिया जाना चाहिए।

4.2 365 को केन्द्र में शासक दल के दृष्टिकोण से भी आसानी से हटाया जा सकता है। अनुच्छेद 365 के बिना भी केन्द्र भारतीय संविधान के अधीन राज्यों पर अपनी तानाशाही स्थापित कर सकता है। संविधान में यथा संकलित केन्द्र और राज्य संबंधों की इस समूची प्रक्रिया पर देश में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और संघवाद के सिद्धान्तों के प्रति विश्वास का घोर अभाव साफ-साफ झलकता है। संविधान में केन्द्र के सुस्पष्ट अधिनायकवाद के संरक्षणों की भारमार निर्लज्जता से जुटाई गई है। अतः यदि 365 को हटा दिया जाता है तो भी चिंता करने की बात नहीं है और न ही यह संविधान के एकात्मक स्वरूप में किसी महत्वपूर्ण सुधार का द्योतक है।

4.3 यदि ये प्रावधान रहते हैं तो केन्द्र उन्हें विचार-विमर्श के प्रस्ताव लाकर मनमाने ढंग से उनका शोषण कर सकता है।

इस संदर्भ में संविधान सभा बहस से एक अंश उद्धृत किया जा सकता है। नेहरू जी समूचे क्षेत्रों और देश के एकीकृत विकास के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और वनों को समवर्ती विषयों (बजाय राज्य विषयों के, जैसा कि 1935 के एक्ट में था) में रखना चाहते थे। जी० बी० पंत और जी० बी० खेर (प्रांतीय सरकारों के मुखिया) को इस पर आपत्ति थी। तब नेहरू जी ने कहा कि यदि इस विषय को समवर्ती सूची में न लाया जाए तो वन विकास की किसी एकीकृत योजना पर अमल करना कैसे संभव होगा। जी० बी० पंत का उत्तर था "इस मामले में विधायी जोर-जबरदस्ती से बात नहीं बनेगी, बल्कि समझाने-बुझाने और स्वैच्छिक सहमति से ही काम होगा। यही बात है जिसे नजरंदाज किया गया है।" अतः इन प्रावधानों अनुच्छेद 256 और 257 (1) से विचलित नहीं होना चाहिए। संविधान निर्माताओं की दूरदर्शिता जैसी कि अनुच्छेद 356 में मुखरित हुई है, यह आशंका है कि राज्य कहीं उनके हाथ से निकल न जाए।

4.4 इस असाधारण सुधारात्मक शक्ति को तंग दलगत रूप में मनमाने जिम्मेदाराना और तानाशाही ढंग से इस्तेमाल किया गया है। उदाहरण ऊपर बताए गए हैं। नवीनतम उदाहरण जम्मू-कश्मीर का है जहां अध्यक्ष को जबरदस्ती बाहर कर दिया गया था। ये सभी मामले सुविदित हैं और किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं।

4.5 किसी भी परिस्थिति में अनुच्छेद 356 संविधान में नहीं होना चाहिए।

4.6 यदि वर्तमान व्यवस्था जारी रखी जाए तो बेहतर होगा। अन्य कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं हो सकती।

4.7 हां, यह कार्य राज्यों द्वारा किए जा सकते हैं। यदि किसी राज्य की वास्तव में सहायता की आवश्यकता है तो यह केन्द्र द्वारा इस रीति से दी जानी चाहिए कि यह राज्य की स्वायत्तता और कार्यचालक स्वतंत्रता में कभी बाधक न बने। ज्यादा से ज्यादा केंद्र की भूमिका एक मार्गदर्शक की होनी चाहिए, न कि एक निर्णायक या तानाशाह की। यहां तक कि सलाह भी आदेश बन सकती है और जहां तक संभव हो, इससे बचना चाहिए। यहां उल्लिखित निकाय राज्य और केन्द्रों के लिए अनुपूरक होने के साथ स्वायत्तता प्राप्त होने चाहिए। उन्हें राज्य के न्यायक्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

4.8 अखिल भारतीय सेवाएं आवश्यक नहीं हैं तथापि अंतर्राज्यीय स्थानांतरण और खुली भर्ती होनी चाहिए। लोकतंत्रात्मक प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिए सेवाओं पर राज्य का नियंत्रण होना अनिवार्य है।

4.9 यदि राज्य चाहता है तभी, अन्यथा नहीं। यह बात सभी केन्द्रीय बलों के लिए लागू होनी चाहिए। केन्द्र की स्वतः ऐसा करने की शक्ति नहीं होनी चाहिए।

4.10 राज्यों और केंद्र के बीच बांटा जाए। इन माध्यमों पर केन्द्र के एकाधिकार का कोई औचित्य नहीं है।

4.11 अभी तक वे दलगत राजनीति से ऊपर उठ कर सामूहिक रूप से राज्यों के हितों के संवर्धन में साधन नहीं बन सके हैं। परिषदों की अपनी राय में कोई व्यावहारिक हस्ती नहीं है और वे पूरी तरह केन्द्र के नियंत्रण में है।

4.12 अंतर्राज्यीय परिषद् स्थायी आधार पर स्थापित की जानी चाहिए। परिषद् का एक स्वतंत्र कार्यालय होना चाहिए।]

इस संदर्भ में शुरू में ए० आर० सी० की सिफारिशों पर सामान्यतः पालन किया जाए (सभी के संबंध में अर्थात : संगठन, कार्यों इत्यादि में) अंतर्राज्यीय परिषद् उन सभी मामलों में मूल समन्वयकारी निकाय होनी चाहिए जहां राज्यों के हित सन्निहित हैं और केन्द्र के किसी भी क्रिया-कलाप पर अंतर्राज्यीय परिषद् में विचार-विमर्श किया जा सकता है और उस पर निर्णय लिया जा सकता है।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 प्रश्न वस्तुतः यह नहीं है कि संविधान निर्माताओं द्वारा विचारित वितरण की योजना ने ठीक काम किया है या नहीं। प्रश्न मूलतः यह है कि यह योजना जिस रूप में निर्धारित की गई थी और जैसा इस पर वस्तुतः अमल हुआ, क्या वह राज्यों के लिए सहायक रहा है या नहीं। उत्तर स्पष्ट "न" है। इसमें तरफदारी और भेदभाव है। समूचा खेल केन्द्र द्वारा खेला जाता है। केन्द्रीय सरकार की आर्थिक, मैट्रिक और वित्तीय नीतियों के परिणामस्वरुप असमान विकास, इकतरफा विकास और एक प्रकार का आंतरिक उप निवेशवाद अस्तित्व में आ गया है। राज्य की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस सिलसिले में विकास ही मार्गदर्शक होना चाहिए, दलगत राजनीति नहीं। सबसे अधिक संघ और राज्यों के बीच देश के धन के बटवारे की मूल व्यवस्था ही गलत है और यह हमेशा राज्यों को वशवर्ती स्थिति में छोड़ती हैं।

इस संबंध में वित्तीय समस्याओं और संवैधानिक प्रावधानों को देश के आर्थिक तंत्र से अलग नहीं किया जा सकता। करों की उगाही और राज्यों के बीच उसका वितरण, करों का आबंटन इत्यादि आर्थिक तंत्र पर निर्भर करता है। वित्तीय संबंधों को जब इस मूल समस्या से हट कर, केवल केंद्र और राज्यों के बीच संबंधों की समस्या के रूप में देखा जाए तो इसे एक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित तरीके से हल नहीं किया जा सकता। तथापि केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व संसाधनों के बटवारे द्वारा और साथ ही केंद्र सहायता अनुदानों के माध्यम से धन के बटवारे का आधार कभी भी स्वचालित और केन्द्र के हस्तक्षेप से मुक्त नहीं रहा, जैसा कि एक के बाद एक वित्त आयोगों को राज्यों के ज्ञापनों से और साथ ही वित्त आयोगों की तदर्थ सिफारिशों से स्पष्ट होता है, जिन्होंने निधाय धनकालोवर केंद्र के हाथ से लेने के एक वैज्ञानिक तरीके से राष्ट्रीय वित्त के बटवारे के मूल मसले को कभी नहीं छुआ।

5.2 ए० आर० सी० अध्ययन दल के यथाउद्धृत प्रेक्षण आज पहले से भी अधिक सार्थक हैं। और भी समस्याएं हैं जिनका ए० आर० सी० से उल्लेख नहीं किया है। वित्त आयोग या एन० डी० सी० का क्या कहना, दाता के रूप में केन्द्र की भूमिका और भी प्रमुख हो गई है। यहां तक कि प्रधान मंत्री भी झट धमकी देते हैं कि उनके मानदंड के अनुसार यदि राज्य व्यवहार नहीं करता तो उसे वित्तीय सहायता रोक दी जाएगी। महत्वपूर्ण समस्या यह है कि कई राज्यों के पास संसाधनों का लाभ उठाने और अपनी अर्थ व्यवस्था का विकास करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं है। ऐसे मामलों में जहां तक हो सके सभी क्षेत्रों के समान विकास के लिए केंद्र का यह दायित्व है कि वह उन राज्यों की मदद करे और यह काम एक आवश्यक उपाय के रूप में किया जाना चाहिए। हां, समूचे देश के प्रशासन की प्रक्रिया को और देश के सभी संस्थानों को ध्यान में रखते हुए यह काम किया जाना चाहिए। इसके लिए ऐसे पर्याप्त प्रावधान होने चाहिए जिनमें केंद्र और राज्यों के लिए परस्पर अनुपूरक हैसियत की व्यवस्था हो।

इस सिलसिले में राज्यों और केन्द्र के प्रतिनिधियों को लेकर (विशेषज्ञों और उनको, जो समाज के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण रखते हैं अर्थात् विशेषज्ञों और सामान्यज्ञों दोनों) एक उच्च शक्ति संपन्न आयोग बनाया जाए क्योंकि वित्त आयोग/योजना आयोग, जैसे वे आज है, यह कार्य नहीं कर सकते। वित्त और विकास की समस्याओं से संबद्ध सभी पहलुओं पर विस्तार से अध्ययन किया जाना चाहिए। इन आयोगों की सिफारिशों पर विचार करने और अंतिम रूप दिए जाने का काम एन० डी० सी० द्वारा किया जाना चाहिए, जिसे इन सिफारिशों में से किसी विचलन के पर्याप्त कारण देने चाहिए।

विकल्पों के मामले में, मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि विभाज्य पूल के माध्यम से वितरण की वर्तमान प्रणाली के अधीन (घ) और (ङ) को समाविष्ट करना होगा।

(ग) तत्काल रद्द किया जा सकता है।

(क) यह देखते हुए कि सभी कल्याणकारी उपायों का दायित्व राज्यों पर है और राज्य ही लोगों के प्रति सीधे जवाबदेह है, जो उसे अपने सुख-दुःख का उत्तरदायी ठहराते है, राजस्व के प्रमुख शीर्ष उनके लिए आरक्षित होने चाहिए और केंद्र को उतने संसाधन आबंटित होने चाहिए जितने उसे रक्षा, विदेशी मामले, संचार, रेलवे (इनमें से अंतिम दो राजस्व अर्जन करने वाले भी हैं), अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, वाणिज्य के संबंध में अपने उत्तरदायित्व निभाने के लिए पर्याप्त हैं और साथ ही मुद्रा (करेंसी) समन्वय जो मुख्यतः एन० डी० सी० योजना आयोग, अंतर्राज्यीय परिषद और ऐसे ही अन्य निकायों के माध्यम से किया जाना चाहिए, जिनके व्यय केंद्र और राज्यों को मिल कर वहन करना चाहिए।

(ग) में सुझाई कई प्रक्रिया के बजाय इसके उलट होना चाहिए।

पहले कर शीर्षों का निर्णय करें, बिना इस बात पर विचार किए कि वे तथाकथित राज्य सूची के हैं या संघ सूची के। किसी विशिष्ट राज्य में करों को (चाहे उनका नाम कुछ भी हो) उगाही का दायित्व संबंधित राज्य का होगा। वसूली प्रभारों को काटने के बाद निबल वसूली को राज्यों और केंद्र के बीच सामान्यतः 65 और 35 के आधार पर बांटा जाए और शेष 10 प्रतिशत या तो अपने महत्वपूर्ण कार्यों के दक्ष और समुचित निर्वहन की तत्कालिक आवश्यकताओं के लिए केंद्र को अथवा अधिक विकास की आवश्यकताओं के लिए अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों को दिया जाए।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रण और लाभ केन्द्र और राज्यों दोनों को मिलने चाहिए। निर्णायक कारक विकास संबंधी आवश्यकता होनी चाहिए न कि संसाधन जुटाने का मानदंड। केन्द्र को भी बराबर का हिस्सा देना चाहिए, जैसी कि वर्तमान प्रणाली है।

5.3 राज्यों को सामान्यत: अधिक वित्तीय शक्तियां देते समय अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों की मदद के लिए प्रावधान किए जा सकते हैं। जब हम अब तक के विकास की समीक्षा करते हैं तो यह जमींदारों, पूंजीपतियों, व्यापारियों और विदेशी शोषकों के लाभ की ओर निर्दिष्ट है। इससे क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ा है। मानव और सामग्रीगत संसाधनों का प्रयोग हमेशा इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ है। मूल बीमारी विकास की विचारधारा को लेकर है जो शासकवर्ग के हितों को लेकर चलती है। जब तक इसे बदला नहीं जाता, जो भी व्यवस्था होगी, वह समायोजन मात्र होगी।

यदि निर्धन राज्यों के विकास के लिए केन्द्र को उनका संरक्षक बना दिया जाता है, तो इससे वर्तमान संदर्भ में राज्य केन्द्र के अधिक अधीन हो जाएंगे और केन्द्र की पहले से सशक्त और प्रबल भूमिका में और वृद्धि होगी।

एक ऐसी प्रणाली होनी चाहिए जिसमें देश के सभी ससाधनों को एकत्र किया जाए और इसका विभिन्न क्षेत्रों में ऐसा वितरण किया जाए कि विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं और संभावनाओं के अनुसार आर्थिक विकास और संसाधनों का प्रयोग हो सके, लेकिन इससे राज्यों की स्थिति प्राप्तकर्ता की ओर केन्द्र की दानवीर दाता की नहीं होनी चाहिए।

यह प्रश्न बड़े अजीब तरीके से उठाया गया है। राज्यों से कल्याणकारी कार्यों के क्रियान्वयन की आशा की जाती है जिससे जन सामान्य की, विशेषत: उन लोगों की स्थितियों में सुधार हो सके, जो शोषणात्मक आर्थिक और सामाजिक प्रणाली के कारण ज्यादा गरीब हैं। केंद्र में शासक दल ने इस शोषणात्मक प्रणाली या बुनियादी असमानता को दूर करने के लिए अभी तक कुछ नहीं किया है। न ही क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के लिए कोई सार्थक कदम उठाए हैं। बल्कि हुआ इससे उलट है। अत: केन्द्र, जैसा वह इस समय है, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने का उपयुक्त साधन नहीं है। साथ ही, यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि यह बुनियादी असंतुलन ही है जो इस बुराई की जड़ है। और इस मूल असमानता के समर्थकों से, जिन्होंने सारे देश की जनता के बहुत बड़े वर्ग को गरीबी रेखा से नीचे धकेल दिया है, यह उम्मीद करना कि वे इसे समाप्त कर देंगे, यथार्थवादी है। अत: यह सुझाव पूरी तरह अविचारित है और इसे पूरी तरह रद्द कर दिया जाना चाहिए। 5.2 में वर्णित संसाधनों के विभाजन की योजना वर्तमान सामाजिक; आर्थिक ढांचे में यथासंभव सीमा तक ठीक रहेगी। असमानता दूर करने के कार्य में सामाजिक क्रांति का संबंध है और यह कोई वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक परिस्थिति के भीतर संवैधानिक व्यवस्थाओं का मामला नहीं है। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों (संविधान के अनुच्छेद 35–51) का अव्यावहारिक भारी भरकम शब्दाडंबर लोगों का संविधान के और उसके निर्माताओं के सही वर्ग–स्वरूप के प्रति बहकाने के लिए एक छलावा है और इसे गंभीरता से नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि स्वयं राज्य प्रणाली ही न केवल इनमें से किसी को भी अर्थात् स्तरों, सुविधाओं और सुअवसरों में असमानता का निवारण, नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का अधिकार, स्त्री पुरुष की समानता, संपत्ति के केंद्रीकरण का निवारण, बच्चों की कोमल आयु के दुरुपयोग को रोकना, बच्चों और युवाओं का शोषण, नैतिक और सामग्रीगत परित्याग से बचाना अथवा 14 वर्ष की आयु के बाद सब के लिए शिक्षा की व्यवस्था इत्यादि–इत्यादि के कार्यान्वयन के लिए अक्षम है, बल्कि उसके विरुद्ध भी है।

5.4 सभी तीनों उपायों को हमेशा इस्तेमाल किया जा सकता है। जहां तक संभव हो घाटे की अर्थ–व्यवस्था से बचना चाहिए। समृद्ध वर्गों से नए राजस्वों की प्राप्ति की भारी संभावनाएं हैं। कर वंचना को प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए। खर्चों पर बेहतर नियंत्रण सिर्फ जुबानी बात रह गई है। वास्तव में अनावश्यक खर्च लगातार बढ़ते रहे हैं। देश के संसाधन अनुत्पादक उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त हो रहे हैं। आजकल के ऋण–मेले इसके उदाहरण हैं। यदि 5.2 में दिया गया सुझाव स्वीकार्य कर लिया जाए तो इस संबंध में वर्तमान स्थिति निश्चित रूप से बदलेगी और घाटे की अर्थव्यवस्था का प्रश्न एक अलग तरीके से सामने आएगा।

5.5 पिछले 30 वर्षों (51–81) में केन्द्र से राज्यों को दी जाने वाली बजट निधियों का 60 प्रतिशत से कुछ अधिक योजना और विवेकाधीन सहायता के रूप में दिया गया था और केवल 40 प्रतिशत ही वित्त आयोगों की सिफारिशों के आधार पर आवंटित किया गया (संविधानिक अनुदान केन्द्र से कुछ कम भूमिका अदा करते हैं)। जब गैर–बजट अंतरण को भी देखा जाए तो संवैधानिक अनुदान का महत्व वास्तव में उससे भी कम बैठती है। केन्द्र से राज्यों को कुल राजस्व अंतरण के एक भाग के रूप में कर की हिस्सेदारी 40 प्रतिशत है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक वित्तीय जांच आयोग नियुक्त किया जाए। सहायता की कसौटी विकास और अन्य और विकासात्मक अनिवार्य जरूरतें होनी चाहिए।

5.6 ऐसी निधि के लिए संवैधानिक प्रावधान की आवश्यकता है जो कि संबंधित राज्यों में कार्यान्वयन से जुड़े एक स्वतंत्र सांविधिक प्राधिकरण के अंतर्गत आना चाहिए।

5.7 यदि देश में व्यापार और वाणिज्य और उन्मुक्त लेन देन की स्वाधीनता को सुनिश्चित करने के लिए केंद्र और राज्यों को सामूहिक रूप से जिम्मेदार देखा जाना है तो 5.2 में सुझाई गई समग्र योजना पर्याप्त होनी चाहिए। जटिल अंतरण प्रक्रिया से केन्द्र के हाथ में राज्यों के विरुद्ध बहुत बड़ी छुड़ी आ जाती है। संविधान की समूची वित्त योजना इसी का मार्ग प्रशस्त करती है इसीलिए इसे जड़ से ही बदलना चाहिए।

5.8 5.2 में दिए गए सुझाव इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखेंगे और रख सकते हैं। ऐसा कोई भी अन्य प्रस्ताव जिससे केंद्र की शक्तियां और बढ़ें, पिछले तीन दशकों से अधिक समय के संघीय सरकार के अनुभवों के आधार पर अस्वीकार्य होगा।

5.9 इस संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग के मत का अध्ययन किया जाए। और अधिक जांच की भी आवश्यकता हो सकती है। तथापि वर्तमान प्रबंध अव्यवस्थित और अतिच्छादित हैं। योजना आयोग की संगठनात्मक संरचना, ढांचा इत्यादि 5.2 में इस संबंध में दिए गए सुझावों के आधार पर बदला जाना चाहिए। दोनों आयोगों के ठीक–ठीक कार्य वैसे ही होने चाहिए जैसे कि 5.9 में उल्लिखित है।

5.10 बिल्कुल संतोषप्रद नहीं। और इसने किसी को भी नहीं बढ़ाया।

5.11 हां।

अब तक केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा मितव्ययी उपायों पर किस सीमा तक ईमानदारी से अमल किया गया है? इस प्रक्रिया में केन्द्र और राज्य दोनों की साझेदारी तथा इसके क्रियान्वयन में दोनों के सहयोगात्मक प्रयास ऐसी किसी अतर्कसंगत प्रणाली के विरुद्ध सुनिश्चित गारंटी है जो वर्तमान प्रणाली में निहित हैं।

5.12 हां। वर्तमान ढांचे के अन्दर जब तक इसे बदला न जा सके।

5.13 इसे असामान्यत: स्वीकार किया जा सकता है। यह फार्मूला गैर योजना देनदारियों को पूरा करने में राज्यों की मदद कर सकता है।

5.14 जैसा कि 5.2 में कहा गया है, सभी संसाधनों का संदोहन यहां बताई गई प्रक्रिया से किया जाना चाहिए और उसमें प्रश्नावली में उल्लिखित पहलुओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। इधर कुछ समय से केन्द्र की प्रवृत्ति ऐसे उपायों से संसाधन बढ़ाने की रही है जो विभाज्य पूल का हिस्सा नहीं हैं। निगम कर और केंद्र द्वारा लगाए जाने वाले विभिन्न करों पर अधिभार, संविधान के अनुच्छेद 270 (4) (क) और 271 के अधीन विभाज्य पूल का हिस्सा नहीं है। एक के बाद एक बजटों में अनुच्छेद 269 और 270 के अधीन लगाए जाने वाले मूल करों को ज्यों का त्यों रखते हुए अधिभारों

वृद्धि की जा रही है ताकि विभाज्य पूल में उनको शामिल न करना पड़े । इस प्रकार से इकट्ठी की गई रकम और विभाज्य पूल और राष्ट्रीयकृत बैंकों, भारतीय जीवन बीमा निगम सहित वित्तीय संस्थानों से केंद्र के अपने संसाधनों से केन्द्र को राज्यों पर हावी होने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो जाती है और राज्यों को ऐसे संदिग्ध तरीकों से भरी हुई धन की थैली से धमकाया या ललचाया जाता है । वित्त आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन में भी केन्द्र की विवेकाधीन शक्तियां बहुत व्यापक हैं क्योंकि अनुच्छेद 285 में यह अपेक्षा की गई है कि राष्ट्रपति वित्त आयोग की प्रत्येक सिफारिश को ऐसे व्याख्यात्मक ज्ञापन के साथ कि उस पर क्या कार्रवाई की जाए, संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत करा सकता है । जाहिर है यह 'कार्रवाई' उस पर पूर्ण या आंशिक अमल करना या अमल न करना हो सकती है, क्योंकि संविधान में ऐसा कुछ नहीं है कि वित्त आयोग की "सभी" सिफारिशों पर अमल करना जरूरी हो । अतः वित्त आयोग से संबंधित उपबंध, जहां तक उनके वर्तमान कार्यों का संबंध है, वहां तक भी अत्याधिक असंतोषप्रद है । 8 वें वित्त आयोग की सिफारिशों को अगले वित्त वर्ष से 5 की बजाय 4 वर्षों तक अमल करने का सरकार का निर्णय इसी विसंगति का स्पष्ट उदाहरण है ।

5.15 हिस्सा किस अनुपात में हो वह क्या मानदंड है जिसके आधार पर अनुपात का निर्णय किया जाए यदि वर्तमान सार्वजनिक उद्यम क्षेत्र को साम्राज्यवादी और निजी क्षेत्र की सेवा करने के लिए ही बनाया गया है तो प्रश्न में सुझाए गए बेहतर वितरण का अर्थ पहले से ही विद्यमान हितों को और बढ़ावा देना होगा । निस्संदेह सार्वजनिक क्षेत्र के बहुसंख्यक उद्यमों और उनमें से भी जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है उनका केन्द्र के हाथों में होने से यह प्रश्न अधिकांशतः अव्यावहारिक बना देता है ।

आज यह काम एक केन्द्रीयकृत तरीके से किया जाता है जिससे कि यह बड़े, एकाधिकारवादी, बुर्जुआओं को लाभ पहुंचाए ।

5.16 राज्यों का कुल दर्ज बजटीय घाटा केन्द्र की अपेक्षा कम है । तथापि यह बात जिस तरीके से बताई गई है , उससे स्पष्ट नहीं होती ।

5.17 स्वाभाविक है कि कल्याणकारी उपायों में उनका किंचित मात्र योगदान और उनके संसाधनों की कमी ने यह स्थिति पैदा की है ।

5.18 यह एक वास्तविकता है । तथापि इसे निर्दिष्ट कार्यों और सुस्पष्ट परिभाषित संसाधनों से संबद्ध किया जाना चाहिए ।

5.19 विदेशों से ऋण लेने की वर्तमान प्रणाली हमारी अर्थव्यवस्था की सहायता नहीं करती और विदेशी एकाधिकार हितों को मदद पहुंचाती है । तथापि केन्द्र को राज्यों से उससे अधिक नहीं लेना चाहिए जितना कि वह उन्हें देता है ।

5.20 आंतरिक ऋण लेने का ऋण परिषद का सुझाव बेहतर है ।

5.21 इसके लिए राज्यों के उत्तरदायित्वों और संसाधनों के बीच का अन्तर जिम्मेदार है । संसाधनों के पुनर्आबंटन से ही इस स्थिति में सुधार हो सकता है ।

5.22 कर-वंचना इसी राज्य की विशिष्ट समस्या नहीं है । साथ ही राज्यों द्वारा प्राप्य राजस्व ससाधनों में लोच, केन्द्र के सर्वव्यापी दबाव को देखते हुए न के बराबर है ।

5.23 तथ्य इस बात से मेल खाते है । यदि केन्द्रीय सरकार का वर्ग स्वरूप या राज्य का ढांचा नही बदलता तो इसकी कोई गुंजाइश नहीं है ।

5.24 ऐसे मामलों में राज्यों की राय मालूम करना पर्याप्त नहीं है बल्कि आम कानून के अनुसार आचरण करना होगा ।

5.25 यदि इसका अर्थ यह है कि राज्यों को कर लगाने और उनकी दरें निर्धारित करने की शक्ति दी जाए तो यह एक स्वागत योग्य सुझाव है ।

5.26 राज्यों के दावे काफी न्यायसंगत है ।

5.27 यह वृद्धि यात्री भाड़ा, आय में वृद्धि के अनुपात से होनी चाहिए । इसका संबंध केन्द्र शासित क्षेत्रों के सकल, वित्तीय प्रबंधों से है और इस पर अलग से कार्रवाई नही हो सकती ।

5.28 यह मदद राहत और बहाली की वास्तविक लागत के आधार पर होनी चाहिए ।

यह राहत और सहायता विशिष्ट शीर्षों के अंतर्गत होनी चाहिए, जिनके लिए निश्चित की गई राशि का प्रयोग किया जाए । इससे विपत्ति की मात्रा के लिए सामान्य सहायता की छूट रखते हुए धन का सर्वोत्तम और सुव्यवस्थित उपयोग होगा ।

5.29 अंतिम अवशिष्ट भूमिका (जिसे प्राधिकार कहना बेहतर होगा) ज्यों की त्यों रहते हुए, यह संस्थान राज्यों के लिए अपने मन जाहिर करने के मंच से अलावा शायद ही कोई और मदद कर सके ।

5.30 अंतिम हिस्से से सहमत होते हुए भी यह बहुत महत्वपूर्ण है कि उगाही कौन करता है और किनमें इसका वितरण किया जाता है ।

5.31 न केवल राज्य और केन्द्रीय सरकार का, बल्कि सभी सार्वजनिक संस्थानों का आर्थिक मूल्यांकन ही नहीं बल्कि निरंतर और तुलनात्मक (साल पर साल) मूल्यांकन करना अनिवार्य है । इस कार्य के लिए एक सांविधिक अभिकरण होना चाहिए, जिसकी सिफारिशें बाध्यकारी होनी चाहिए । इसे एन ई सी कहा जा सकता है ।

5.32 आजकल यह काम मात्र औपचारिक रूप से होता है । यदि इसे उचित तरीके से किया जाए और इन रिपोर्टों पर विचार-विमर्श हो (निस्संदेह यह खर्च का पोस्ट मार्टम होगा) तो इससे भविष्य में काम में मदद मिलेगी । लेकिन आजकल कार्यपालिका-विधायिका संबंध और विधायिका की भूमिका जैसी कि इस समय है, इससे कुछ ठोस नतीजा हासिल नहीं होगा । साथ ही, विधायी समितियां चूंकि नौकरशाही नाके है, इसलिए इस प्रणाली से कोई गंभीर विश्लेषण नही निकलता । साथ ही, विधायिका जिसमें संसद भी शामिल है आज अपनी अधिकांश प्रभावकारिता खो चुकी है ।

5.33 सामान्यतः "मूल्यांकन लेखा परीक्षा" का समर्थन करते हैं, लेकिन वाउचर लेखा परीक्षा से, यदि यह सावधानी से की जाए तो दुरूपयोगों का सही सही पता चल सकता है ।

5.34 यह कर्यालय अपने सौंपे गए कार्यों को पूरा नहीं करता और कार्यों में विलंब होता है ।

5.35 निस्संदेह यह रिपोर्टें अधिक व्यापक और अधिक सही बनाई जा सकती है । साथ ही विकासात्मक; योजना, योजनेतर स्थापना जैसे उपखंड बनाए जा सकते हैं । यहां तक कि स्थापना को भी "पुलिस" में बांटा जा सकता है ।

5.36 पर्याप्त नहीं है । व्यवस्था कार्यचालन और जनता की समस्याओं के प्रति रवैये को पूरी तरह बदले बिना ये बातें ठीक तरह से सुलझ नही सकती ।

5.37 सिद्धान्त रूप से हां, व्यावहारिक रूप से नहीं । और न ही वर्तमान राजनीतिक वातावरण में इसके लिए कोई गुंजाइश है ।

5.38 वस्तुतः नहीं ।

5.39 निश्चित रूप से । सुझाई गई परिवर्तित प्रक्रिया से रुकावटें दूर होंगी और इससे शीघ्र क्रियान्वयन मे मदद मिलेगी । तथापि यह सब विश्वसनीय प्रणाली पर निर्भर है जो मौजूदा नहीं है ।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक आयोजन

6.1 निर्णय लेने और उन्हें लागू करने में किसी अभिकरण की संरचना और उसके कार्यचालन का उसके मूल लक्ष्यों से गहरा संबंध होता है । अब तक क्या हासिल हुआ है ? क्या वह लोगों के हित में है ? जब तक मूल लक्ष्यों को ही न बदला जाए, प्रक्रिया संबंधी परिवर्तनों का कोई लाभ नहीं होगा । जब तक केन्द्र और राज्यों के बीच संरचनात्मक संबंधों को न बदला जाए, कोई भी ठोस उपलब्धि नहीं मिलेगी । यदि कुछ परिवर्तन किए भी जाते हैं तो स्थापना बिना किसी कठिनाई के इससे बच निकलेगी ।

6.2 उपर्युक्त प्रेक्षण के अधीन, एक ऐसी राष्ट्रीय विकास परिषद् का होना अनिवार्य है जो ऐसी योजनाएं बनाने के लिए सांविधिक रूप से प्राधिकृत हो जिनमें

राज्यों को राष्ट्रीय ढांचे के अंदर अपनी योजनाएं तैयार करने की अधिक गुंजाइश मिली हो ।

6.3 नहीं । केन्द्रीय सरकार की नितियों, अर्थ-व्यवस्था और प्रशासन में परिवर्तन किए जाने चाहिए जो योजना आयोग को नियुक्त करती हैं । सत्ता का हस्तांतरण बिना सामाजिक क्रांति के हो प्राप्त हो गया था । राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और योजनाएं बनाने का काम प्रशासनिक क्रांति के बिना ही शुरू कर दिया गया था । समूचा ढांचा ही एक ऐसे संविधान पर आधारित था जो न्यूनाधिक 1935 के अधिनियम, जिसे किसी उपनिवेश के औपनिवेशिक मामलों के लिए बनाया गया था, का ही प्रतिरूप है । यदि यही आधार पर और बुनियाद है तो इमारत का स्वरूप क्या होगा ? प्रक्रिया में यहां-वहां परिवर्तन हो सकते हैं या एक दकियानूसी सामाजिक प्रणाली में कम विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को अधिक औपचारिक प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है, किन्तु इससे कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हो सकता ।

6.4 और 6.5 (iii)—स्पष्ट कारणों से और अब तक के अनुभव को देखते हुए एक स्वतंत्र और स्वायत्त निकाय ही अपनी राय कायम कर सकता है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में कोई स्वायत्त संस्था भी संभवतः अधिक लाभकारी नहीं होगी । फिर भी यह एक बदलाव होगा और हो सकता है ऐसी स्थिति से तथ्यों को बेहतर ढंग से सामने लाने में मदद मिले । इससे संभवतः "संबंधित व्यक्तियों" में और "जनता" में वस्तुस्थिति के प्रति पहले से अधिक जागरूकता पैदा हो सकेगी, यदि "संबंधित व्यक्ति" "जनता" में कोई दिलचस्पी रखते हों । योजना आयोग को सांविधिक शक्ति सपन्न राष्ट्रीय विकास परिषद के अधीन कार्य करना चाहिए । इस सिलसिले में ए० आर० सी० के विचारों पर भी विचार किया जा सकता है ।

6.6 आयोजन को विकेन्द्रित किया जाना चाहिए और राज्यों को अपनी योजनाएं बनाने में अधिक स्वाधीनता दी जानी चाहिए ।

6.7 यह प्रणाली केन्द्र के प्रति अनुकूल रवैया अपनाने के लिए राज्यों पर दबाव डालने की एक साधन का कार्य करती है ।

6.8 जी हां । राज्य योजना और राज्य योजना की सहायता की निष्पक्ष कसौटी, राज्य की आवश्यकताएं, राज्य की विकास समताएं होनी चाहिए, न कि राज्य की नीतियां और न ही केन्द्र में शासक वर्ग के समग्र आर्थिक हितों में उस राज्य की स्थिति ।

6.9 अवैज्ञानिक है और विभिन्न क्षत्रों तथा जनता के विभिन्न वर्गों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के प्रतिकूल है । अभी तक हर चीज ऐसे रखी जाती थी कि वह निहित स्वार्थों की पूर्ति करे । विशेष सहायता योजना भी जन जातीय और पहाड़ी क्षेत्रों के हितों को साधने में असफल रही जो अभी ऐसी स्थिति में नहीं है कि अपना विकास स्वयं कर सकें और इस सहायता का इस्तेमाल अधिकांशतः चुकाई के रूप में होता है ।

6.10 योजना की प्रक्रिया बिल्कुल नीचे से शुरू होनी चाहिए । केन्द्र द्वारा समन्वयन, पर्यवेक्षण, मार्ग निर्देशन इत्यादि किया जा सकता है, किन्तु कुछ थोपा नहीं जाना चाहिए । यह राज्यों पर छोड़ दिया जाए कि वे क्या चाहते हैं । निस्संदेह अपनी योजनाएं बनाते समय विभिन्न राज्य ये कार्य किसी लोकतांत्रिक पद्धति से नहीं करते और न ही वे सभी आवश्यक अभिकरणों से सलाह लेते हैं । संपूर्ण योजना तंत्र, प्रक्रिया इत्यादि को उपयुक्त रूप से बदल कर इसे लोकप्रिय मांगों और जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाया जाना चाहिए ।

6.11 प्रायः बिलकुल अप्रचलित है । कोई व्यवस्थित अनुवर्तन या मूल्यांकन नहीं होता । वित्तीय लक्ष्यों की प्राप्ति ही सबसे महत्वपूर्ण समझी जाती है । मूल्यांकन रिपोर्ट कतिपय ऊपरी गलतियों को बताती हैं, किन्तु ठोस पहलुओं की कभी जांच नहीं करती । मूल्यांकन तंत्र से ऐसा करने की कभी अपेक्षा ही नहीं की गई । कई बार मूल्यांकन इस तरीके से किया जाता है कि विकास को बढ़ावा मिले, ताकि जो कुछ पहले प्राप्त किया जा चुका है, उसे स्थायी बनाया जा सके ।

6.12 और 6.13 इसके बारे में बहुत कुछ पहले ही लिखा और कहा जा चुका है । प्रश्नावली के उत्तरों के माध्यम से इन बातों का विश्लेषण नहीं किया जा सकता । यदि सरकार (केन्द्रीय और राज्य दोनों) ईमानदार है तो विभिन्न स्तरों पर सभी संबंधित पक्षों को शामिल करके इन समस्याओं पर गंभीरता से विचार विमर्श शुरू किया जाना चाहिए ।

लेकिन यदि इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सामान्यज्ञों की एक समिति बना दी जाए कि इन बातों में कहां तक विशेषज्ञों को और शामिल किया जाना चाहिए तो कुछ भी हासिल नहीं होगा ।

योजना तंत्र को मजबूत करने से राज्य सरकार अपनी बात अधिक सुव्यवस्थित और सुस्पष्ट तरीके से कह सकेगी । सभी सरकारें ऐसा ही कर सकती है । यदि राज्यों को केन्द्रीय अंशदान का 60 प्रतिशत या इससे भी अधिक सांविधि अनुदानों से मिलता है तो संशोधित तंत्र कैसे इसमें कोई परिवर्तन ला सकता है ।

भाग VII

विविध

उद्योग

दिलचस्पी की बात है कि उद्योग, व्यापार एवं व्यवसाय, कृषि, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, शिक्षा इत्यादि विविध शीर्ष के अंतर्गत रखे गए हैं ।

7.1 और 7.2 जी हां ।

समूचा औद्योगिक ढांचा जिसमें विदेशी हित (भारत में व्यापारिक हितों के सहयोग से) सन्निहित हैं, सरकार द्वारा अनुसूची-I में रखे गए हैं । हर एक चीज इसी ओर निर्दिष्ट की गई है । विभिन्न क्षत्रों में सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में विदेशी हितों में तेजी से वृद्धि हो रही है । व्यावहारिक रूप से लगभग समूचे औद्योगिक ढांचे के केन्द्र से अंतरित होने की बात ही आपत्तिजनक है । इसका मानदंड आम जनता की विशिष्टि आवश्यकताएं और साथ ही राज्य विशेष की औद्योगिक क्षमताएं होनी चाहिए, तथापि सभी राज्यों की सामान्य जरूरतों से किसी राज्य के उसकी क्षमताओं के अनुसार औद्योगिक विकास की योजना बनाना संभव होना चाहिए । इससे विभिन्न राज्यों के बीच उनकी क्षमताओं के अनुसार औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन को बांटा जा सकेगा । किन्तु यहां उठाए गये मुद्दे की एक बात स्पष्ट की जानी चाहिए । राष्ट्रीय हित किस प्रकार सच्चे अर्थों में किसी राज्य के हितों के प्रतिकूल ही सकते हैं । (यदि जनता का बहुत बड़ा वर्ग और उनके हित ही मुख्य कसौटी हैं) ? जब विदेशी धन का निवेश प्रचुर कच्चे माल और सस्ती मजदूरी का इस्तेमाल करने के लिए किया जाता है और जब उत्पाद निवेशक देश को निर्यात किया जाता है और जब निवेशक देश में उस उत्पाद को पुनः सांधित करने के बाद फिर यहां आयात किया और बचा जाता है तो चाहे वह उत्पाद पिन ही या धुलाई का साबुन या पाउडर, ऐसे उत्पादों को बनाने वाले उद्योग संविधान के अनुसार राष्ट्रीय परिधि में "राष्ट्रीय हित" के अंतर्गत आते हैं । अतः औद्योगिक अधिनियम की प्रथम अनुसूची और प्राकृतिक हितों को परिभाषिक करने का प्रयास, सभी एक ही बात की ओर संकेत करते हैं, वह यह कि भारत में अनेक उद्योग भारत को जनता के हितों से भिन्न अन्य हितों के साथ रहे हैं ।

7.3 आज उद्योग के कई क्षेत्रों में भारतीय कच्चे और सस्ती मजदूरी का विदेशी निवेशकों या विदेशी और भारतीय निजी अथवा सार्वजनिक निवेशकों को मिला कर, शोषण किया जा रहा है । दोनों क्षेत्र विदेशी पूंजी निवेशकों और देशी बुर्जुआओं के हितों का संवर्धन करते है । सरकार स्वतंत्र राष्ट्रीय पूंजीनिवेश को बढ़ावा नहीं दे रही है जो कच्चे माल और मजदूरी का उपयोग करता है और घरेलू तथा विदेशी उपभोग के लिए तैयार माल का निर्माण करता है । राष्ट्रीय बुर्जुआ अपेक्षाकृत कमजोर है तथापि सरकार घरेलू प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके कच्चे माल का संसाधन करने के लिए स्वतंत्र पूंजीनिवेश को प्रोत्साहित कर सकती है । इसी के अनुकूल एक औद्योगिक लाइसेंस नीति को प्रोत्साहित किया जा सकता है । इस संबंध में राज्यों को लाइसेंस देने के अधिकार से वंचित करनेका कोई औचित्य नहीं है ।

7.4 इस संबंध में न तो केंद्र के पास और न ही राज्य सरकारों के पास कोई कल्पनाशील योजना है । ऐसे उद्योग (लघु या बड़े ग्रामीण या कुटीर) शुरू किए जाने चाहिए जिनमें हमारा कच्चा माल, हमारा श्रम और हमारी पूंजी लगी हो । राज्य तथा केंद्र सरकारों द्वारा विपणन सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए । राज्य और केंद्र के प्रयासों में समन्वय होना चाहिए । बड़े उद्योगों (अन्य शक्ति प्रौद्योगिकी), (मध्यम उद्योगों) (माध्यमिक प्रौद्योगिकी) और लघु उद्योग (स्थानीय प्रौद्योगिकी) के बीच समन्वय होना चाहिए ।

ये सभी समग्र रूप में एकीकृत किए जाने चाहिए और ये कृषि क्षेत्र तथा उसके उत्पादन से संबंधित होने चाहिए।

7.5 ये संस्थान विदेशी हितों और बड़े व्यावसायिक घरानों के दास हैं। इन संस्थानों के पूंजी स्रोतों का एक बड़ा हिस्सा विदेशी ऋण के रूप में प्राप्त किया जाता है। स्वाभाविक है कि औद्योगिक नीति बहुत कुछ विदेशी हितों से प्रभावित है।

7.6 अधिकतर मामलों में उचित है। जैसा कि हमारा विचार है निर्णय एन डी सी द्वारा लिए जाने चाहिए आजकल जब स्थान संबंधी निर्णय लिए जाते हैं तो सामान्यत: इलाके या लोगों या देश के हितों को नहीं बल्कि पूंजी निवेशकों और कच्चे माल तथा सस्त श्रम की उपलब्धता को महत्व दिया जाता है।

7.7 और 7.8 इन प्रश्नों के उत्तर अन्य प्रश्नों के दिए गए उत्तरों में समाविष्ट हैं। विर्णय वस्तुनिष्ट कसौटी के आधार पर नहीं बल्कि विषयस्तर विचारों के आधार पर लिए जाते हैं।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 आजकल अंतर्राज्यीय या अतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य पर लगे प्रतिबंध राज्य में या समूचे भारत में बाजार के विकास में सहायक नहीं है। प्राय: इन प्रतिबंधों से उपभोक्ताओं को नहीं बल्कि सन्निहित स्वार्थों की मदद मिलती है। ऐसा विभिन्न राज्यों में आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण भी होता है। उपभोक्ता वस्तुओं और अन्य मदों की दरों में भारी अंतर रहता है। कई बार समान वस्तुएं एक ही शहर में अलग-अलग कीमतों पर बिकती हैं। अंतर्राज्यीय रुकावटों से जमाखोरी और कालाबाजारी को बढ़ावा मिलता है। इससे "राष्ट्रीय बाजार" के विकास में बाधा उत्पन्न हुई है। अत: इस समस्या पर गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। इन हालातों में सुधार के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना करना उचित होगा।

कृषि

9.1 केंद्रीकरण और बढ़ा है।

9.2 हम आमतौर पर इससे सहमत हैं। एक ऐसा राष्ट्रीय ढांचा होना चाहिए जिसमें विभिन्न राज्य भी काम करें, लेकिन यह ढांचा केन्द्रीय निर्देश या पहल के आधार पर नहीं, राज्य की योजनाओं के आधार पर बनाया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में पहल राज्यों के पास होनी चाहिए।

9.3 यहां वस्तुत: केन्द्रीय नियंत्रण है, केंद्र और राज्यों के बीच वस्तुत: कोई बड़ा विचार-विमर्श नहीं होता। सभी कृषि उत्पादों के भाव व्यावहारिक रूप से केंद्र द्वारा निर्धारित होते हैं।

9.4 (क) नारियल, गरी, नारियल का तेल, रबर, चाय इत्यादि के भाव—केरल राज्य की इन वस्तुओं के भावों को केंद्रीय नीति प्रभावित करती है। (ख) सिंचाई परियोजनाएं—वित्त, विदेशी मुद्रा, मशीनरी इत्यादि में केन्द्रीय स्वीकृति की आवश्यकता पड़ती है। स्वाभाविक है कि केंद्र नियंत्रण कायम करने की स्थिति में है। (ग) यहां भी वही स्थिति है। (घ) केन्द्रीय नियंत्रण है। केरल में वन्य भूमि में रहने वालों को अधिकार पत्र देने संबंधी केन्द्र सरकार की वर्तमान नीति, वन्य नीति और प्रशासन आदिवासियों/जन जाति के लोगों और उनके पारंपरिक अधिकारों के विरुद्ध है।

9.5 भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक को राज्यों के कृषि अनुसंधान एवं कृषि वित्त पर गहरा प्रभाव है। राज्य को इन संस्थानों द्वारा नियत शर्तों के अनुसार खुद को ढालना होगा। वास्तव में ये संस्थान राज्यों की जरूरतों को पूरा नहीं कर रहे। इन संस्थानों के माध्यम से केंद्र सरकार राज्य की कृषि नीति को निर्देश दे सकती है या उनका पर्यवेक्षण कर सकती है।

खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति

10.1 और 10.2 केन्द्र को घाट वाले राज्यों की कमी को पूरा करने की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। क्षेत्रीय राजनीति और क्षेत्रीय हितों से प्रेरित केन्द्रीय सरकार की नीतियों के कारण तमिलनाडु या आंध्रप्रदेश में चावल अपेक्षाकृत सस्ता है जबकि केरल में राशन के बावजूद चावल के भाव काफी ज्यादा हैं। हालांकि चावल की खरीद और वितरण की एकीकृत नीति से कीमतों और वितरण की असमानता कम होनी चाहिए थी। निरंतर मांग के बावजूद केंद्र आम आदमी के लिए, सभी अनिवार्य पणयों की तो बात ही क्या, न्यूनतम वस्तुओं और मदों से युक्त एक सार्वजनिक वितरण प्रणाली की स्थापना करने में भी असफल रहा है।

शिक्षा

11.1 यह बात काफी हद तक सही है। अनुसंधान, वित्त इत्यादि के विभिन्न अभिकरणों के माध्यम से उच्च, सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा किया जाता है। अन्य चरणों में यह "सी ए बी ई" और योजना आवंटनों के माध्यम से किया जाता है।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विश्वविद्यालय प्रशासन को बहुत प्रभावित कर रहा है। यदि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों या मानदंडों का पालन नहीं किया जाता तो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से धन नहीं मिलेगा। अध्यापकों, विद्यार्थियों और कुलपति की नियुक्ति से संबंधित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की हाल ही की रिपोर्ट से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार केन्द्र इसे लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के विरुद्ध और केन्द्रीय नियंत्रण को मजबूत करने के लिए इस्तेमाल करता है।

11.3 वर्तमान परिस्थितियों में कोई भी विचार-विमर्श तब तक कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं ला सकेगा जब तक पहले नीति संबंधी परिवर्तन न किए जाएं।

11.4 शिक्षा सार्वजनिक क्षेत्र में होनी चाहिए। अल्पसंख्यकों के तथा-कथित अधिकार समाप्त किए जाने चाहिए। प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्व-विद्यालय शिक्षा स्तर तक की शिक्षा सबके लिए एक समान होनी चाहिए। शिक्षा का माध्यम सभी स्तरों पर स्थानीय भाषा होनी चाहिए। अल्पसंख्यक संस्थानों का अर्थ ऐसे क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों के संस्थान होने चाहिए जो सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में नहीं आते और जो अल्पसंख्यकों के उन ऐसे विशिष्ट गुणों का संवर्धन करते हैं जो किसी भी प्रकार से राष्ट्रीय एकता के लिए अहितकर नहीं हैं। अल्प-संख्यक समुदाय के किसी भी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा चलाए गए किसी भी संस्थान को अल्पसंख्यक संस्थान होने का दावा करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। अत: शिक्षा पूरी तरह सार्वजनिक क्षेत्र में होनी चाहिए।

11.5 अन्य क्षेत्रों की तरह इन प्रश्नों पर भी केंद्र और राज्यों के बीच और विशेषज्ञों के बीच गंभीर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए और उपचार सुझाए जाने चाहिए। भाषा नीति और साथ ही नियंत्रणों, प्राथमिक और माध्य-मिक शिक्षा के वित्त पोषण के लिए वित्तीय जिम्मेदारियों के संबंध में मतभेद अभी कायम है।

अंतरसरकारी समन्वय

12.1 समूचे संघ में एक ही दल के शासन के दिन चले गए हैं। अत: अब विचार-विमर्श के सरकार बाह्य और संविधानेतर माध्यम नहीं रहे। राष्ट्रीय योजना प्रशासनिक संबंधों इत्यादि की सफलता के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विशेषकर वित्तीय मामलों, समवर्ती कार्यक्षेत्र, राज्य प्रयासों को एकीकृत करने इत्यादि के लिए अब किसी विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं। अब कोई उपयुक्त तंत्र नहीं रहा। राष्ट्रीय विकास परिषद, मंत्रियों के सम्मेलन, राष्ट्रीय एकता परिषद्, इत्यादि ही हैं। अनुच्छेद 263 में विशिष्ट कार्यों वाली एक अंतरराज्यीय परिषद्, की आवश्यकता का उल्लेख है। केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् और स्थानीय स्वशासन से संबंधित केन्द्रीय परिषद् पहले से ही मौजूद है।

इस सिलसिले में ए आर सी के अध्ययन दल की रिपोर्ट और ए आर सी की सिफारिशों पर विचार किया जा सकता है। प्रश्न में जिन अमरीकी पद्धति का उल्लेख किया गया है, उसका भी अध्ययन किया जा सकता है, तथापि ऐसा कोई और निकाय कदापि नहीं होना चाहिए जिसमें केंद्र राज्यों को निर्देश दे सके। सहयोग और समन्वय (अथवा सहकारी संघवाद) की भावना होनी चाहिए।

क्रांतिकारी समाजवादी दल

केरल राज्य समिती

ज्ञापन

क्रांतिकारी समाजवादी दल केरल राज्य समिति को इस आयोग का स्वागत करते हुए प्रसन्नता है जो केंद्र-राज्य संबंधों के बारे में वर्तमान स्थिति की समीक्षा करेगा। इस जीवंत समस्या के उचित निपटान की काफी समय से आवश्यकता थी।

यह विचार काफी जोरदार है कि पिछले तीन दशकों से अधिक अवधि में भारतीय शासक वर्ग और उसके प्रतिनिधियों द्वारा—केंद्र में शासक दल द्वारा सोचे-समझे तरीके से किए गए सांविधिक संशोधनों और संविधानेत्तर उपायों, आर्थिक और प्रशासनिक केंद्रवाद के राज्यों की शक्तियां क्षीण की जा रही हैं। किन्तु कांग्रेस दल द्वारा शासित राज्य सरकारों ने केंद्र द्वारा राज्यों पर केंद्रीकरण और अपना प्रभुत्व जमाने की निरंतर बढ़ती हुई प्रवृत्ति को चुनौती देने की कभी आवश्यकता नहीं समझी। अब विभिन्न राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें आने से यह प्रश्न बहु-आयामी और अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

इस प्रश्नावली के विभिन्न पहलुओं पर अपना मत प्रकट करने से पहले हम वर्तमान संवैधानिक संरचना के संबंध में अपने दल का दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहेंगे।

हमारी यह दृढ़ राय है कि केन्द्र राज्य संबंधों को लेकर जो खराबियां हैं वे उन सामान्य जन्मजात बीमारियों का ही एक हिस्सा हैं जिनसे हमारा संविधान शुरू से ही ग्रस्त रहा है। वर्तमान संविधान ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन और विचारों से विरासत में मिला है। इसका लक्ष्य विकास के लिए पूंजीवादी मार्ग निर्धारित करना है। संविधान के प्रावधानों में जन-जन की वास्तविक सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को हल करने की कोई गुंजाइश ही नहीं है। यह इसी से स्पष्ट है कि जबकि संपत्ति का अधिकार हमारे संविधान में पवित्र मौलिक अधिकार के रूप में माना गया है, किन्तु प्रत्येक सभ्य मानव के जन्मसिद्ध अधिकार अर्थात काम के अधिकार के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है। हमारे संविधान निर्माताओं की मंशा ही यही थी कि संविधान पिछले शासक वर्ग और नव पूंजीवादी वर्ग तथा जमींदारों के हितों की सेवा और सुरक्षा करे। संविधान के निर्माण में आम भारतीय की कोई आवाज नहीं थी और यही बुनियादी त्रुटि संविधान की संपूर्ण संरचना और भावना में विद्यमान है। केन्द्र-राज्य संबंधों को शासित करने वाले उपबंध भी इसका अपवाद नहीं है। अतः सच्ची जरूरत संविधान के विभिन्न पहलुओं की फुटकर समीक्षा करना न होकर इसका नए सिरे से निर्माण करने की है। इस पुनर्निर्माण में जटिल सामाजिक आर्थिक समस्याओं, राष्ट्रीयता से संबंधित प्रश्नों, क्षेत्रीय असंतुलनों, असमान आर्थिक विकास आम आदमी की बढ़ती हुई दरिद्रता, पूंजीवादी आर्थिक विकास की तेजी से बढ़ती हुई खामियों इत्यादि को दूर करके भारतीय समाज के मूलभूत कायाकल्प को भी उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

चूंकि आयोग का कार्यक्षेत्र और विचारणीय विषय केन्द्र-राज्य संबंधों तक सीमित है इसलिए हम सामान्य संवैधानिक प्रश्नों पर अपने मत विस्तार से प्रकट नहीं करना चाहते।

हम शुरू में ही स्पष्ट कर दें कि हम एक एकीकृत स्वस्थ्य और सामंजस्य पूर्ण संघीय सरकार और समान शक्तियों से युक्त संघटक इकाइयों के पक्षधर हैं। संघीय सरकार विदेशी आक्रमण से राष्ट्र की रक्षा करने और भारत की सुरक्षा और अखंडता की रक्षा करने में सक्षम होनी चाहिए। इससे हमारा तात्पर्य एक सर्व-शक्तिमान केन्द्रीय सरकार के प्राधान्य से नहीं है जो हमेशा राज्यों की अंतर्निहित शक्तियों का उल्लंघन करती है। भारतीय संघ एक होना चाहिए जिसमें केन्द्र और राज्य समान शक्तियों से युक्त हों और जिन्हें वे अपने-अपने क्षेत्र में सामंजस्य पूर्ण और पारस्परिक रूप से सहमत तरीके से उपयोग करें। यदि इसे ध्यान में न रखा गया तो क्षेत्रवाद और समुदायवाद की विखंडक प्रवृतियां सिर उठाएंगी और राष्ट्र की सुरक्षा और अखंडता के लिए खतरा पैदा करेंगी।

हालांकि संविधान की संघीय संविधान कहा जाता है किन्तु इसकी विभिन्न विशिष्ट विशेषताएं और व्यवस्थाएं केवल एकीय संविधान के अनुरूप हैं। सच्चे संघवाद में संघटक इकाइयों की एक संघीय सरकार बनाने में स्वैच्छिक एकता होती है किन्तु दुर्भाग्यवश इतिहास ने हमें यह अवसर नहीं दिया है। पारंपरिक संघों में सभी अवशिष्ट शक्तियां इकाइयों में निहित होंगी। किन्तु संघवाद की ये सभी प्रमुख विशेषताएं हमारे संविधान में मौजूद नहीं हैं। अतः हमारे संविधान को संघीय कहना एक कल्पना मात्र है। वस्तुतः केन्द्र-राज्य संबंधों को शासित करने वाले संविधिक प्रावधान बहुत हद तक 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट की विरासत हैं। इस एक्ट का एक सीमित उद्देश्य था कि कुछ प्रांतों को मामूली स्वायत्ता देकर स्वशासन की राष्ट्रीय मांग को पूरा किया जाए और समूचे देश को शासित करने की सर्वशक्ति केन्द्रीय सरकार के पास ही रहे। इसी दृष्टिकोण को हमारे वर्तमान संविधान के निर्माताओं ने आमतौर पर अपनाया है। इसलिए हमारे संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के न्यायसंगत बंटवारे की कल्पना नहीं की गई। अनुभव बताता है कि सांविधानिक विकास के पिछले 34 वर्षों के दौरान राज्यों के मूल्य पर केन्द्र की प्रभुसत्ता स्थापित करने की एक सुस्पष्ट प्रवृत्ति रही है। इसका परिणाम क्षेत्रीय विषमताओं, असमान आर्थिक विकास और सामाजिक असंतोष के रूप में निकाला है। इस तथ्य की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया कि भारत भिन्न-भिन्न आकांक्षाओं, भाषाओं, धर्मों और भावनाओं का एक संघ है। इससे संदिग्ध उद्देश्यों वाले लोगों को राष्ट्रविरोधी क्षेत्रीय भावनाएं उभारने का अवसर मिला। केवल केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का पुनः बंटवारा करने के और राज्यों को अधिक स्वायत्ता प्रदान करने के तात्कालिक उपाय करके ही इस राष्ट्रीय बीमारी को दूर किया जा सकता है।

विधायी संबंध

यह विचार ठीक नहीं है कि संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के आबंटन की योजना में, जिसमें सामान्य स्थितियों में राज्यों को पर्याप्त सीमा तक वैधायिक स्वायत्ता सुनिश्चित की गई है, कुछ भी गलत नहीं है। संविधान का अनुच्छेद 249 जो राज्य सूची में शामिल किसी भी विषय पर कानून बनाने का केन्द्रीय सरकार को अधिकार देता है, राज्यों की इस क्षेत्र में स्वायत्ता को खतरे में डालने वाली धागे से लटकी तलवार के समान है। अनुच्छेद 200 और 201 के अधीन राज्य के राज्यपाल को राज्य विधायिका द्वारा पारित बिल को रोक लेने या विचारार्थ राष्ट्रपति के पास भेजने का अधिकार वस्तुतः राज्यों की स्वायत्ता की जड़ को ही काटता है और विधायी शक्तियों के बंटवारे की योजना पर भारी दुष्प्रभाव डालता है। ये अनुच्छेद एक ऐसे प्राधिकारी राज्यपाल को, जो कि राज्य विधायिका के प्रति जवाबदेह नहीं है, इतनी अधिक शक्तियां प्रदान करते हैं जिनसे विधान के समूचे उद्देश्य ही समाप्त हो जाते हैं (राष्ट्र के राष्ट्रपति को भी इतनी अधिक शक्तियां प्राप्त नहीं हैं) ऐसे भी उदाहरण हैं कि सामाजिक, आर्थिक ढांचे में मौलिक परिवर्तन लाने वाले कानून इसलिए लागू नहीं किए जा सके क्योंकि या तो उनमें देरी की गई या उन्हें ताक पर रख दिया गया।

जब भी केन्द्र किसी समवर्ती सूची के विषय पर कानून बनाए तो न केवल राज्यों का पूर्व परामर्श बल्कि उनकी सहमति लेना भी आवश्यक होना चाहिए। जो विषय राज्यों के अनन्य क्षेत्राधिकार में आते हैं उन पर राष्ट्रीय या जनहित के नाम पर संसद द्वारा कानून बनाने की घोषणा से बचना चाहिए क्योंकि ऐसी घोषणाओं से स्वाभाविकतः राज्यों की शक्तियों का केन्द्र द्वारा उल्लंघन होता है। यदि आपवादिक परिस्थितियों में ऐसी घोषणा की जाए और केन्द्र कोई कानून बनाए तो यह थोड़ी अवधि के लिए होना चाहिए और अंतर्राज्यीय परिषद् का पूर्व परामर्श इसकी पहली शर्त होनी चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका

डा० रघुकुल तिलक के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह राय जाहिर की है कि किसी राज्य का राज्यपाल केन्द्र के अधीनस्थ या वशवर्ती नहीं होता और उसका पद एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है, परन्तु राज्यों के पिछले 34 वर्षों के अनुभव इसके विपरित रहे हैं। संघ और राज्यों में घनिष्ठ संबंध होने की बजाय राज्यपाल केन्द्र के अभिकर्ता या कठपुतली हो गए हैं जो अपने विवेक का प्रयोग करने के बजाय केन्द्र के आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं। संघ द्वारा नियुक्त राज्यपाल उसका हिमायती होता है जिसे केन्द्र के शासक दल के राजनीतिक हितों को देखते हुए विधिवत, निर्वाचित सरकार को गिराने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी। इसका नवीनतम उदाहरण सिक्किम का है।

संविधान के अधीन राज्यपाल का ऐसा कोई प्राधिकार नहीं है जो जनता के प्रति जवाबदेह न हो। राज्यपाल राज्य विधायिका के प्रति जवाबदेह नहीं है। नए राज्यपाल को नामित करने से पहले राज्य सरकारों से परामर्श करने की परिपाटी समाप्त की जा रही है। राज्यपालों की नियुक्ति ऐसे ही की जा रही है जैसे औपनिवेशिक काल के दौरान ब्रिटिश शासक अपने एजेंट नियुक्त करते थे।

सक्षम और उपयुक्त व्यक्तियों को राज्यपाल नहीं बनाया जाता। हमारा अनुभव है कि केन्द्र के शासक दल के असंतुष्ट तत्वों के, जिन्हें चुनाव में जनता हरा देती है हाई कमांड को सिरदर्दी से बचाने के लिए अक्सर राज्यपाल बना दिया जाता है। वे अपनी विवेक शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपने मालिक के इशारों पर ही नाचेंगे। हमारा सुविचारित मत है कि राज्यपाल का पद अराजकतावादी

है और इसे समाप्त किया जाना चाहिए। यदि यह पद बनाए रखना है तो राज्यपाल को राज्य विधायिका के प्रति जवाबदेह बनाया जाना चाहिए।

प्रशासनिक संबंध

संघीय संविधान में अपने आबंटित कार्यक्षेत्र में संघटकों की संप्रभुता की संकल्पना की गई है। भारत में आज स्थिति यह है कि केन्द्र बहुत हद तक राज्यों के उन क्षेत्रों में स्वायत्तापूर्ण कार्यचालन को भी प्राय: नष्ट कर देता है जो संविधान में राज्य का विषय हैं। संविधान में ऐसे कई अनुच्छेद हैं जो केन्द्र की सरकार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज्यों के प्रशासन में हस्तक्षेप करने में समर्थ बनाते हैं। केन्द्रीय सरकार में निहित इन शक्तियों का प्रयोग प्राय: विधान सभाओं को भंग करने और ऐसी राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के लिए किया जाता है जो केन्द्र के शासक दल का अनुसरण नहीं करतीं। हाल ही में सिक्किम सरकार की बर्खास्तगी संविधान में एक बहुत बड़ा फरेब है। इस प्रकार की अनियंत्रित शक्तियों का पक्षपातपूर्ण प्रयोग रोकना होगा और शक्ति के ऐसे पक्षपातपूर्ण प्रयोग के विरूद्ध संवैधानिक रक्षा-उपाय सोचने होंगे।

जहां तक अनुच्छेद 256 और 257 पर प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों का सम्बन्ध है, अंतर्राज्यीय परिषद में जिसमें प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्री होंगे, राज्य और केन्द्र के बीच विवाद के मुद्दे पर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए और यदि वह आपसी विचार-विमर्श से किसी समझौते पर न पहुंच सके तो उनके मतभेदों को सुलझाया जाना चाहिए; अनुच्छेद 365 को हटा दिया जाएगा।

अखिल भारतीय सेवाओं ने संविधान निर्माताओं की उम्मीदों को पूरा नहीं किया है। इन सेवाओं के अधिकारी केवल केन्द्र के प्रति निष्ठावान होते हैं और इसका परिणाम अक्सर राज्य और केन्द्र के बीच टकराव के रूप में होता है। इसे रोकने के लिए राज्यों को इन सेवाओं पर अधिक नियंत्रण दिया जाना चाहिए।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस या कोई अन्य सशस्त्र बल केन्द्र द्वारा संबंधित राज्य के विशिष्ट अनुरोध के बिना उस राज्य में नहीं भेजा जाना चाहिए।

राष्ट्रीय बचत संगठन, कर्मचारी भविष्य निधि इत्यादि विभिन्न केन्द्रीय अभिकरणों और राज्य तथा समवर्ती सूचियों के विषयों से संबंधित कार्यों को उनके द्वारा हाथ में लेने से राज्यों की स्वायत्तता का उल्लंघन हुआ है। पहले जो अधिकारी इन अभिकरणों की राज्य इकाइयों में नियुक्त किए जाते थे, उन्हें राज्य की सलाह से नियुक्त किया जाता था। अधिकांश मामलों में यह प्रथा समाप्त कर दी गई है। इन अभिकरणों के अधिकांश क्रिया-कलाप राज्यों द्वारा केन्द्र की सहायता और मदद से किए जाने चाहिए।

प्रसारण और संचार के अन्य माध्यम समवर्ती सूची में शामिल होने चाहिएं ताकि आकाशवाणी और दूर-दर्शन के प्रशासन में राज्यों का भी दखल हो।

क्षेत्रीय परिषदों ने उन उद्देश्यों को ठीक तरह से पूरा नहीं किया है, जिनके लिए उनका गठन किया गया था।

अंतर्राज्यीय परिषद

विरोधी राजनीतिक दलों, विख्यात न्यायविदों तथा प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुच्छेद 263 में यथा सकल्पित अंतर्राज्यीय परिषद स्थापित करने का अनुरोध किया है ताकि राज्यों के बीच और राज्यों तथा केन्द्र के बीच उठने वाली समस्याओं से निबटा जा सके। इस परिषद् में प्रधान मंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होने चाहिए और इसका एक स्थायी कार्यालय होना चाहिए।

वित्तीय संबंध

पिछले 34 वर्षों से अंतरण तंत्र के कार्यों की समीक्षा करने से और केन्द्र द्वारा राज्यों को हस्तांतरित संसाधनों के ब्यौरों की जांच करने से स्पष्ट होगा कि इस योजना का कार्य बिल्कुल ठीक नहीं चला और यदि चला भी है तो शासक पूंजीवादी वर्ग के हित में और राज्यों के अहित में रहा है। राज्यों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को नजरअंदाज किया जा रहा है।

आर्थिक क्षेत्र में और केन्द्र तथा राज्यों के बीच सम्बन्धों के मामले में केन्द्रीकरण बढ़ रहा है। अधिक वित्तीय संसाधन प्राप्त कर लेने के बाद भी और राज्यों के कराधान के क्षेत्रों का अतिक्रमण करने और करोड़ों डालर का विदेशी ऋण प्राप्त करने तथा अधिकाधिक घाटे की अर्थ व्यवस्था अपनाने के बावजूद केन्द्र देश के विभिन्न क्षेत्रों में संतुलित विकास का सुनिश्चिय करने मे और निर्धन तथा समृद्ध राज्यों के बीच संसाधनों का अंतर पाटने में असमर्थ रहा है। यद्यपि योजना के नाम पर समान विकास पद्धति निर्धारित की जाती है तो भी विभिन्न क्षेत्रों में विकास के स्तर और राज्यों की विशिष्ट आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। यह योजना प्रक्रिया में अत्यधिक केन्द्रीकरण का ही परिणाम है।

केरल राज्य शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में बहुत उन्नत है और परिवहन सुविधाओं के संबंध में भी अनेक राज्यों से बहुत आगे है किन्तु उसे अनुवर्ती कार्यों के लिए केन्द्र से इस आधार पर विशिष्ट सहायता नहीं दी जाती कि वह पहले ही इन क्षेत्रों में अन्य राज्यों से बहुत आगे है और इस प्रकार उसे संविधान के निर्देशक सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने के लिए दंडित किया जा रहा है। साथ ही अन्य क्षेत्रों में विकास गतिविधियों के लिए कोई अतिरिक्त वित्तीय सहायता नहीं दी जा रही है। इन कार्यों को हाथ में लेने के लिए राज्य के संसाधन बहुत सीमित हैं और उनका अधिकतम उपयोग किया जा रहा है। राज्य की हालत यह है कि उसके पास केन्द्र द्वारा उन क्षेत्रों में कराधान के अधिकार का अधिक्रमण करने की कोशिशों के विरूद्ध आंदोलन करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह गया है जो संविधान में अनन्य रूप से उनके लिए छोड़े गए हैं।

केन्द्र राज्यों के कराधान के सीमित क्षेत्र का और उल्लंघन नहीं करेगा। इस संदर्भ में केरल सरकार हाल ही के वर्षों में संसद् द्वारा पास किए गए कुछ कानूनों को लेकर बहुत चिंतित हैं। केन्द्रीय बिक्री कर में कुछ समय पहले किए गए संशोधनों से राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कानूनों में इन संशोधनों से और अधिभार आदि लगाने से राज्य की कर क्षमताओं में गंभीर कमी आती है। राज्यों के हितों पर दुष्प्रभाव डालने वाले ये परिवर्तन राज्यों की सहमति के बिना किए जाते हैं। हमारा यह सुनिश्चित मत है कि केन्द्र को इन संविधानेतर उपायों से बचना चाहिए। केन्द्र द्वारा राज्यों के अधिकारों पर आक्रामक अधिक्रमण से बचाव के लिए और राज्यों के प्रति सामाजिक और आर्थिक न्याय करने के लिए संविधान में ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि सभी केन्द्रीय कर, जिनमें निगम कर और अधिभार तथा सभी उत्पाद शुल्क शामिल हैं, राज्यों के साथ विभाज्य हों और यह सुनिश्चित किया जाए कि कम से कम 75 प्रतिशत राज्यों के बीच वितरित किया जाए।

आर्थिक और सामाजिक आयोजना

योजना के क्षेत्र में केन्द्र से मुख्य भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है दुर्भाग्यवश योजना आयोग, जो योजना तैयार करने वाला प्राधिकरण है और राष्ट्रीय विकास परिषद् जो उस पर अनुमोदन की मोहर लगाती है, जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ रहे हैं। प्रशासनिक सुधार आयोग ने राय दी है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् उसके समक्ष रख गए अत्यधिक महत्वपूर्ण मसलों पर गहराई से विचार करने में अक्सर असफल रही है। एक ही पार्टी द्वारा नियंत्रित इस परिषद् ने राज्यों से परामर्श करने की या केन्द्र और राज्यों के बीच विचार-विमर्श की संतोषजनक प्रक्रिया खोजने की अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई है। आयोजन के क्षेत्र में केन्द्रीकरण की अधिकता ने राज्यों की पहल शक्ति कुंठित कर दी है। योजना आयोग, जो कि केन्द्रीय सरकार का एक विभाग है, 'केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों और राज्य सरकारों के निकट संसर्ग और विचार-विमर्श से' कार्य करने में असफल रहा है।

यह आयोग केन्द्रीय मंत्रालयों की तो अनुशासित नहीं कर सकता, किन्तु राज्य इसके आदेश मानने के लिए बाध्य हैं। ऋणों और अनुदानों के रूप में दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का प्रयोग कुछ क्षेत्रों को संरक्षण देने के लिए किया जाता है जिसका परिणाम असमान विकास और क्षेत्रीय असंतुलन है। केन्द्र द्वारा विदेशों और विदेशी अभिकरणों से कम ब्याज पर प्राप्त ऋणों के मामले में भारत सरकार राज्यों से ब्याज की अधिक दर वसूल करती है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि राज्यों द्वारा लिए जाने वाले इन ऋणों का प्रमुख भाग पिछले ऋणों को चुकाने में प्रयुक्त होता है। ऋणों और अनुदानों की मंजूरी देने सम्बन्धी सिद्धान्तों की समीक्षा की जाए और पात्र कमजोर राज्यों के लाभ के लिए इन्हें स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाए ताकि वे वित्तीय अंतर को पूरा कर सकें और अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के कारण अपनी अर्थव्यवस्था के विशेष बोझ को झेल सकें।

योजनाओं को, विशेषकर राज्य स्तर पर योजनाओं को तैयार करने और कार्यान्वित करने की वर्तमान व्यवस्था पूरी तरह अपर्याप्त है और योजना तंत्र को राज्य स्तर पर भी सुदृढ़ करने के प्रयास किए जाने चाहिए। योजना आयोग एक सांविधिक निकाय होना चाहिए, जो पुनर्गठित राष्ट्रीय विकास परिषद् के अधीन कार्य करे। राष्ट्रीय विकास परिषद् में केन्द्र तथा राज्यों के समान प्रतिनिधि होने चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग के कार्यों और उत्तर-दायित्वों को परिभाषित करने वाले सांविधिक प्रावधान किए जाने चाहिए। इस सिलसिले में प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों पर विचार किया जा सकता है।

सिक्किम संग्राम परिषद्

उत्तर

भाग I

विषय-प्रवेश

1.1 भारत का संविधान न तो पूरी तरह संघीय है और न एकात्मक। यह दोनों का मिश्रण है जिसमें शक्तिशाली केन्द्र को अधिक महत्व दिया गया है। संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य एक शक्तिशाली केन्द्रीय प्राधिकरण का निर्माण करना था, जो बाहरी आक्रमण और साथ ही उन आंतरिक विध्वंसकारी शक्तियों को रोक सके, जो किसी राज्य को कमजोर कर सकती है।

1.2 राज्यों को और अधिक शक्तियों और जिम्मेदारियां सौंपे जाने की आवश्यकता के बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती। तथापि यह ध्यान रखना होगा कि इससे राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखने के उत्तरदायित्व पर कोई आंच न आती हो। इसी संदर्भ में राजमन्नार समिति के विचारों की समीक्षा करनी होगी। इस अनुच्छेद में उल्लिखित उपबंध को हटाने, परिवर्तित करने या उसमें कोई महत्वपूर्ण संशोधन करने के प्रश्न पर जल्दबाजी में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले पूरी तरह और अधिक विस्तार से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

जहां तक सर्वोच्च न्यायालय को की जाने वाली अपीलों का सम्बन्ध है, सर्वोच्च न्यायालय देश का सबसे बड़ा न्यायालय है और यह अब तक विश्वसनीय और मर्यादापूर्ण ढंग से कार्य करता रहा है। अतः इसकी शक्तियों को न छेड़ा जाए।

1.3 यह सच है कि भारत एक बड़ा और विभिन्नताओं से भरा देश है। देश के इस आकार और इसमें निहित विभिन्नता की मांग है कि राज्यों को और अधिक शक्तियां और जिम्मेदारियां अंतरित की जाएं, ताकि वे राष्ट्रीय एकता के दायरे में सभी कार्य क्षेत्रों में आगे बढ़ सकें।

उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी यह सिफारिश की है कि राज्यों को उन परियोजनाओं को शुरू करने की अधिकतम सीमा तक शक्तियां प्रदान की जाएं जिनमें केन्द्र की सीधी दिलचस्पी है या जिन्हें राज्य केन्द्र के अभि-कर्ता के रूप में चलाते है।

1.4 सिद्धांततः संघीय संविधान में यह परिकल्पित है कि केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें अपनी गतिविधियों के क्षेत्र में स्वतंत्र रहें, लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि ऐसा कोई बंटवारा नहीं है। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य अमरिका, आस्ट्रेलिया और कनाडा के संघीय संविधान देखे जा सकते है।

1.5 इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत का संविधान बुनियादी तौर पर इतना लचीला है कि बदलते हुए समय की चुनौतियों का मुकाबला कर सके। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि न तो कोई संविधान संपूर्ण है और न हो ही सकता है। इसलिए नई चुनौतियों और स्थितियों का सामना करने के लिए संशोधन किए जाते हैं। इनमें महत्वपूर्ण है स्वस्थ परिपाटियों और पद्धतियों का विकास। अतः ऐसे कार्यात्मक सहयोग की आवश्यकता है जिससे संविधान की भावना के अनुसार सामंजस्यपूर्ण केन्द्र राज्य सम्बन्ध विकसित हों।

1.6 देश की स्वतंत्रता की रक्षा और उसकी एकता व अखण्डता को सुनि-श्चितता के महत्व के बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती। संविधान के निर्माताओं के हृदय में भी यह बात सर्वोच्च रूप से विद्यमान थी। अतः संविधान में कई ऐसे अनुच्छेद हैं जिन्होंने इस जिम्मेदारी के लिए शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की है।

1.7 आपके प्रश्न में उल्लिखित अनुच्छेदों के कार्यान्वयन से प्राप्त अनुभवों के आधार पर संघ और राज्यों के दायित्वों की सावधानीपूर्वक समीक्षा करने की आवश्यकता है। तथापि यह कहा जा सकता है कि यदि केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में आस्था और विश्वास हो तो इन सम्बन्धों में जो तनाव है वह काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

1.8 यदि किसी भी समय राष्ट्रपति को ऐसा लगता हो कि अन्तः राज्य परिषद् की स्थापना करने से लोक हित पूरे हो सकते है तो संविधान राष्ट्रपति को अन्तः राज्य परिषद् की स्थापना करने का अधिकार देता है। परिषद् का एक कार्य संघ और राज्य अथवा दो या दो से अधिक, राज्यों के बीच सामान्य रुचि के विषय की जांच पड़ताल करना तथा उनके सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना होगा। यह वांछनीय होगा कि आपके प्रश्न उल्लिखित उक्त मामला अन्तः राज्य परिषद् के सभी पहलुओं की जांच करने के लिए छोड़ दिया जाएगा।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 कोई भी व्यक्ति इस तथ्य के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं करेगा कि केन्द्र और राज्यों में विधायी अधिकारों के विभाजन में संघ ने बहुत अधिक पक्षपात किया है। इसलिए कुछ लोगों द्वारा यह मांग की गई है कि इन विधायी अधिकारों की पूर्ण समीक्षा की जाए। समवर्ती सूची को संघ और राज्यों के बीच कभी-कभी होने वाले मतभेद के रूप में उद्धृत किया गया है। यह भय भी व्याप्त है कि संघ राष्ट्रीय अथवा लोक हित की दलील पर राज्य विधायी क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है। विशेष रूप से समवर्ती सूची की समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। राज्य कानून को सहमति देने के सम्बन्ध में उदार दृष्टिकोण अपेक्षित है।

2.2 देश की एकता तथा अखण्डता के हित में यह वांछनीय होगा कि सातवीं अनुसूची की तीनों सूचियों में उल्लिखित विषयों के वितरण की योजना के सम्बन्ध में समीक्षा की जाए। देश में कुछ राज्यों के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 200 और 201 में भी समीक्षा करने की मांग की गई है।

2.3 संघ और राज्यों के बीच बेहतर सम्बन्ध सुनिश्चित करना इस बात के हित में है कि केन्द्रीय सरकार समवर्ती सूची में किसी भी विषय के कानून को स्वीकृति देने से पूर्व राज्य सरकार से परामर्श करती है। संविधान में इस प्रकार का प्रावधान होना चाहिए।

2.4 "राष्ट्रीय हित" अथवा "लोकहित" में राज्यों की एकमात्र सक्षमता में किसी भी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने का संघ सरकार का अधिकार स्थायी स्वरूप का नहीं होना चाहिए। इसके लिए समय-सीमा निर्धारित की जाए।

2.5 विधायी क्षेत्र में संघ राज्य सम्बन्धों के विषय में और सुझाव नहीं दिए गए हैं।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 केन्द्र राज्य सम्बन्धों के सन्दर्भ में राज्यपाल की भूमिका की पूर्णतया समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। यह सत्य है कि कुछ राज्यपालों ने पूर्णतया निष्पक्षता से कार्य किया है, लेकिन कुछ ऐसे भी राज्यपाल थे, जिनके कार्य संविधान की विचारधारा के अनुरूप बिल्कुल नहीं थे। अतः राज्यपालों द्वारा अधिकारों के दुरूपयोग के उदाहरण हैं। मई, 1984 में सिक्किम को इस बात का कटु अनुभव हुआ। उक्त उदाहरण बेहतर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सहायक नहीं है। इसलिए यह मामला समीक्षा करने के लिए है।

3.3 ये (क), (ख) और (ग) राज्य के अत्यधिक महत्व के मामलों से सम्बन्धित है। अनुच्छेद 356(I) के अन्तर्गत राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय राज्यपाल को बहुत अधिक विषयनिष्ठ होना पड़ता है तथा उसे स्वतन्त्रता से कार्य करना होता है। राज्यपाल केवल उसी व्यक्ति को मुख्यमन्त्री

के रूप में नियुक्त करेगा, जिसका विधानसभा में बहुमत होगा । इस विषय में दो राय नहीं होनी चाहिए । ऐसी स्थिति जिसमें किसी भी पार्टी का बहुमत नहीं होगा, मैं राज्यपाल उस पार्टी के नेता से यह पूछेगा कि सरकार बनाने के लिए किस पार्टी के पास बहुत अधिक सदस्य है । मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के दो सप्ताह के भीतर राज्य सभा अवश्य ही बुलाई जाएगी ।

राज्यपाल के शब्दों तथा इच्छा से आशय पद पर बने रहने वाले ऐसे मन्त्रिमण्डल से होगा, जो विधान सभा के पूर्ण विश्वास पर होगा । राज्यपाल को अपनी इच्छा का दुरुपयोग किए जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जिससे कि वह अपनी इच्छा अनिच्छा के अनुसार कार्य कर सके ।

अनुच्छेद 174(2) के सम्बन्ध में मुख्यमन्त्री की सलाह के अनुसार राज्यपाल का मार्गदर्शन किया जाना चाहिए ।

3.4 इन अनुच्छेदों में राज्यपाल को विवेकाधिकार दिया गया है और दुर्भाग्य से कुछ राज्यपालों ने इन अधिकारों का स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता से प्रयोग नहीं किया है ! क्रमश: अनुच्छेद 201 तथा अनुच्छेद 201 के अन्तर्गत राज्यपाल तथा राष्ट्रपति को तैयार करने के लिए अवश्य ही समय सीमा होगी ।

सामान्यत: विधान सभा द्वारा पारित किए गए बिलों के सम्बन्ध में राज्यपाल अवश्य ही स्वीकृति देगा ।

3.5 भारतीय विधि संस्थान के तत्वाधान में किया गया व्यक्ति अध्ययन वास्तव में पर्दाफाश करने वाला तथा शांति भंग करने वाला है । इस प्रक्रिया की जांच किए जाने की आवश्यकता है । इसके लिए ऐसी समय-सीमा होनी चाहिए, जिसमें विचार तथा सहमति की प्रक्रिया को पूरा किया जा सके ।

3.6 जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है कि कुछ राज्यपालों ने निष्पक्ष रूप से तथा उपयुक्त रूप संविधान की विचारधारा के अनुसार कार्य नहीं किया है । उनके लिए समुचित परिपाटियां चलाने का प्रश्न ही नहीं उठता ? वास्तव में वे संविधानिक लोकतंत्र के वास्तविक सिद्धान्तों के विरुद्ध चले गए है । सिक्किम मई 1984 में राज्यपाल की ओर से हुई भूल-चूकों का एक उज्जवल उदाहरण है ।

3.7 अवधि का प्रश्न संगत नहीं है । उसे हटाने की कार्यविधि वही होनी चाहिए, जो उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के मामले में निर्धारित की गई है ।

3.8 इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया जा सकता । केवल मुख्यमन्त्री की सलाह पर ही सभा बुलाई जाए ।

3.9 जर्मन के संघीय गणतन्त्र के संविधान में स्वीकार की गई कार्यविधि हमारे लिए उचित नहीं है । लोकतन्त्र में ऐसे व्यक्ति के गुण महत्वपूर्ण हैं, जो राज्यपाल के उच्च पद को संभालता है ।

3.10 राज्यपाल के कार्यक्षेत्र में आने वाले महत्वपूर्ण मामलों से सम्बन्धित कुछ राज्यपालों की कार्रवाइयों के अनुसार किसी भी व्यक्ति का झुकाव, प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करने में हैं ।

भाग IV

प्रशासनिक सम्बन्ध

4.1 यह स्पष्ट है कि केन्द्र को मजबूत तथा शक्तिशाली बनाने के लिए इन अनुच्छेदों के उपबन्ध इसलिए दिए गए हैं, ताकि उन स्थितियों से जा सके, जो देश की एकता और अखण्डता पर प्रभाव डालती हैं । किन्तु यह बात भी अवश्य ही कही जाएगी कि ये पूर्णाधिकार है और ऐसी स्थिति में राज्य असहाय हैं । इसलिए यह अनिवार्य है कि यदि इन पूर्णाधिकारों की आवश्यकता हुई तो इनका प्रयोग अत्यधिक सोच-विचार करके तथा अन्य सभी उपलब्ध तरीकों के समाप्त हो जाने के बाद किया जा सकेगा । अत: राज्य परिषद् के विचार रखने से पूर्ण उक्त मामलों को कैसे निश्चित किया जाए ।

4.2 अनुच्छेद 365 को निकालने का समर्थन नहीं किया जाता । निश्चय ही यह एक परिणामी ऐसा खण्ड है जिसके अधीन मन्जुरी का प्रावधान है । फिर भी, परामर्श दिया जाता है कि अन्तर्राज्यीय परिषद् का दृष्टिकोण जानने के बाद ही इस अनुच्छेद के अन्तर्गत कार्रवाई की जाए ।

4.3 प्रशासनिक सुधार आयोग के विचारों से सहमति प्रकट करते हैं, साथ-साथ यह भी परामर्श देते है कि अन्तर्राज्यीय परिषद् का दृष्टकोण मालूम करने के बाद ही कार्रवाई की जाए ।

4.4 जब तक विधानमण्डल में मुख्यमन्त्री का बहुमत हो राज्यपाल को राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने की सिफारिश नहीं करनी चाहिए । इसका पालन उस स्थिति में भी किया जाना चाहिए यदि मुख्यमन्त्री अल्प सूचना पर विधान सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए तैयार हो । दुर्भाग्य से ये ऐसी स्थितियां हैं जिनमें राज्यपाल ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए और संवैधानिक तथा जनतांत्रिक सिद्धान्तों की जड़ों पर ही कुठाराघात करते हुए राष्ट्रपति के शासन की सिफारिश की । सिक्किम इसके लिए जीता जागता उदाहरण है जहां मुख्यमन्त्री श्री नरबहादुर भण्डारी को बरखास्त कर दिया गया, जबकि उनका सदन में बहुमत था और वे चौबीस घंटे के भीतर ही सदन में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए तैयार थे । संविधान में संशोधन किए जाने की आवश्यकता है ताकि किन्हीं भी परिस्थितियों में इस प्रकार अधिकारों का दुरुपयोग न किया जा सके ।

4.5 प्रश्न में उल्लिखित परिस्थितियों की दृष्टि से और उन पर अनतान्त्रिक तरीके से तथा निष्पक्ष रूप से कार्रवाई करने के लिए परामर्श दिया जाता है कि, विचार सुनिश्चित करने से पहले राष्ट्रपति मामले पर अन्तर्राज्यीय परिषद् का विचार जान लें ।

4.6 वर्तमान व्यवस्थाएं जारी रखी जा सकती हैं क्योंकि उनके अधीन सन्तोषजनक रूप से कार्य चल रहा है ।

4.7 इन एजेंसियों की कार्य पद्धति की समीक्षा की जरुरत महसूस की गई हैं, क्योंकि राज्य के क्षेत्राधिकार में अतिक्रमण हुआ है जिसके परिणामस्वरूप विकास की गति में अवरुद्ध उत्पन्न हुआ है । यह गहनता से महसूस किया गया है कि उनके कुछ कार्य राज्य सरकारों में निहित होने चाहिए ।

4.8 कुल मिलाकर अखिल भारतीय सेवाओं ने संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं को पूरा कर दिया है । फिर भी यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि राज्य में सेवा करते हुए इन सेवाओं के अधिकारी सम्बन्धित राज्य सरकार के पर्यवेक्षण के अधीन रहें ।

4.9 सामान्य नीति के रूप में राज्य में केन्द्रीय बल का उपयोग किए जाने से पहले राज्य सरकार की सहमति अवश्य होनी चाहिए । केवल परम सीमा की स्थिति के मामलों में ही संघ सरकार स्वप्रेरणा से निर्णय ले सकती है ।

4.10 इस दृष्टिकोण से आम की सहमति होगी कि प्रसारण को संघ सूची में ही बने रहने दिया जाए किन्तु जैसा कि सुझाव दिया गया था कि प्रसारण और दूरदर्शन सुविधाओं का लाभ उचित आधार पर संघ और राज्यों को मिलना चाहिए और प्रत्येक राज्य के लोगों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक लोकाचार को बराबर का महत्व दिया जाना चाहिए ।

4.11 यह लाभदायक होगा यदि आंचलिक परिषदें अक्सर मिलती रहें ।

4.12 वर्तमान स्थिति के अनुसार जरुरी है कि एक अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना कर दी जाए, क्योंकि अन्तर्राज्यिक और संघ राज्य के मतभेदों को दूर करने के लिए एक निकाय अपेक्षित होगा ।

इसके कार्य और गठन के बारे में संघ और राज्यों के बीच विचार-विमर्श करने के बाद में निर्णय लिया जा सकता है ।

भाग V

वित्तीय सम्बन्ध

5.1 सामान्यत: संविधान निर्माताओं द्वारा परिकल्पित अन्तरण की स्कीम ठीक चली है । फिर भी सिक्किम जैसे छोटे और पिछड़े हुए राज्य और अन्य उत्तरी पूर्वी राज्यों के लिए आवश्यकता पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए । चूंकि कुछ बड़े राज्य अपनी संसाधन संग्रहण शक्ति के कारण

अधिक सम्पन्न होते जा रहे हैं और इन पिछड़े हुए राज्यों के पास इस प्रकार के संसाधनों की भारी कमी है। यदि केन्द्र ने इन राज्यों की भलीभांति सहायता नहीं की तो प्रगति करना इनके लिए असम्भव होगा। इसलिए स्थिति के इस पहलू को विकास की प्रक्रिया के दौरान ध्यान में रखा जाए। सही बात तो यह होगी कि वित्त आयोग वित्तीय संसाधनों के वितरण में पिछड़े हुए राज्यों को अधिक महत्व दे।

5.2 केन्द्र राज्य सम्बन्ध पर, प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल का प्रेक्षण मान्य रहेगा क्योंकि संघ पर राज्यों की निर्भरता बढ़ती ही जा रही है। यह आवश्यक है कि निगम कर, सीमा शुल्क और आयकर पर अधिभार को विभाज्य पूल के अन्तर्गत लाया जाए किन्तु साथ-साथ हिस्सा बांटते समय पिछड़े हुए राज्यों के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए। केन्द्र और राज्य, दोनों के द्वारा राजकोषीय अनुशासन की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल नहीं दिया जा सकता।

5.3 हम उपर्युक्त प्रेक्षणों से पूर्णतया सहमत हैं। हम इस दृष्टिकोण से भी सहमत हैं कि राजस्व के लचीले स्त्रोत रखते हुए मजबूत केन्द्र द्वारा क्षेत्रीय सन्तुलन को घटाया जा सकता है। इसका यह विशेषाधिकार होगा कि यह अपने पास उपलब्ध निधियों का उपयोग अपेक्षाकृत गरीब राज्यों के विकास के लिए करे।

केवल सभी केन्द्र राज्य नीतिक विदेशात्मक सिद्धान्तों में उल्लिखित अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकता है। अन्यथा सम्पन्न राज्य अधिक सम्पन्न होते जाएंगे। और गरीब राज्य और अधिक गरीब।

5.4 इसमें सन्देह नहीं है कि अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न राज्यों को राजकीय सहायता से केन्द्रीय पूल में अधिक अंशदान देना पड़ता है। इसमें भी सन्देह नहीं है कि व्यय पर पूर्णतया बेहतर नियन्त्रण रखा जाए।

घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाए जबकि विकार यह विकासशील अर्थव्यवस्था के हित में अनिवार्य हो।

5.5 वित्त आयोग का कार्य योजनेतर मदों पर संसाधनों और वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण करना है जबकि योजना आयोग राज्यों की विकास सम्बन्धी जरूरतों का निर्धारण करता है। पिछड़े हुए और गरीब-राज्यों की आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय इन दोनों निकायों को अधिक निष्पक्ष होना पड़ेगा। पिछड़े हुए राज्यों के लोगों की बढ़ती हुई आकांक्षाओं के प्रति उचित ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि इन दोनों निकायों से प्राप्त पर्याप्त सहायता से ये राज्य अन्य राज्यों के बराबर आने के लिए विकास की अपनी गति को तेज स साधनों के अन्तरण का तरीका न्यायोचित नहीं रहा है।

5.6 समानता और न्याय पर आधारित संसाधन विभाजन की प्रक्रिया को व्यवस्थित करने की जरूरत है। विशेष संघीय निधि के सृजन पर विचार किया जाना जरूरी नहीं है।

5.7 वर्तमान व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है।

5.8 प्रश्न के अन्तर्गत व्यक्त विचारों से सहमत होना कठिन होगा। यदि कर जुटाने की शक्तियां राज्यों के पास नहीं रहेंगी तो राज्यों के लिए बचेगा ही क्या? राजनीतिक अस्तित्व का सम्पूर्ण आधारभूत ढांचा इस क्षेत्र में राज्य के विशेषाधिकारों के क्षति पहुंचने से प्रभावित होगा। इसका अभिप्राय यह होगा कि केन्द्र पर राज्यों की पूर्ण निर्भरता जो कि राज्यों के लिए काफी नुकसानदायक होगा।

5.9 वर्तमान स्थिति के अनुसार योजना आयोग और वित्त आयोग की भूमिकाएं एक-दूसरे के अनुपूरक हैं। निश्चय ही स्थायी वित्त आयोग के लिए राजकोषीय अन्तरणों की दोहरी भूमिका निभाने सम्बन्धी सुझाव पर विचार किया जाना चाहिए। पता चला है कि कुछ राज्य विभिन्न वित्त आयोगों के विचारों से प्रसन्न नहीं हैं। कुछ राज्यों ने यह विचार भी प्रकट किया है कि वित्त आयोग का रवैया उनके प्रति उचित नहीं रहा है। ऐसी परिस्थितियों के अधीन एक निकाय का गठन काफी महत्व रखता है। अन्तिम विश्लेषण में यह लाभदायक होगा यदि ये दोनों निकाय और राज्य सरकारें अपने निर्धारण निष्पक्ष रूप से और उचित रूप से करें।

5.10 यह कहा जा सकता है कि मौजूदा व्यवस्थाएं असमानताएं कम करने में कुछ सीमा तक सहायक हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि असांविधिक और विवेकाधीन अन्तरणों के परिणामस्वरूप कार्य-कुशलता और व्यय में मितव्ययता को बढ़ावा मिला है। फिर भी अधिक कार्यकुशलता और मितव्ययता के लिए हमेशा ही गुंजाइश है।

5.11 प्रश्न के अन्तर्गत व्यक्त विचारों से हम सहमत हैं। वित्तीय अनुशासन परमावश्यक है। सभी प्रगामी योजनाओं का कार्यान्वियन उपलब्ध वित्तीय संसाधनों के अन्तर्गत किया जाए। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित कर लिया जाए कि केन्द्र और राज्य के बीच इस प्रकार से आबंटन किया जाए जिससे कि पिछड़े हुए राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक सहायता मिल सके ताकि वे विकास की अपनी गति को तेज कर सकें। इस बात की भी सावधानी बरती जाए कि ये राज्य किसी प्रकार के वित्तीय अनुशासन में न फंसें।

5.12 कर विभाजन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि जिससे छोटे और पिछड़े हुए राज्यों को कठिन स्थिति में न पड़ना पड़े। इस प्रकार के राज्यों के लिए सहायता अनुदान की महत्वपूर्ण भूमिका है।

5.13 अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत दिए गए सहायता अनुदान सम्बन्धी सिद्धान्तों से हम सहमत हैं। फिर भी यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि आर्थिक और सामाजिक असमानताओं के सभी पहलुओं पर विचार कर लिया जाए ताकि पक्षपात किए जाने सम्बन्धी आरोप के लिए कोई गुंजाइश ही न बचे। कुछ राज्यों खास तौर से छोटे और पिछड़े हुए राज्यों की कुछ समस्याएं हैं जोकि लगती तो क्षेत्रीय हैं किन्तु जिनकी विषय वस्तु राष्ट्रीय है। अतः सिद्धान्तों के अनुसार इनकी ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

5.14 इन सुझावों में औचित्य दिखलाई पड़ता है कि स्पेशल बीयरर बांड स्कीम से प्राप्ति को और मदों के नियन्त्रित मूल्य बढ़ाने से राजस्व को संसाधनों के विभाज्य पूल के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। यदि ये कर दिए गए होते तो राज्यों के वित्तीय साधन और बढ़ गए होते जिससे कि वे अत्यावश्यक प्रगामी योजनाओं के कार्यान्वियन को और अधिक तेजी से लागू कर पाते। कुछ राज्यों का यह भी विचार है कि केन्द्र जुटाए गए सभी प्रकार के राजस्वों में राज्यों को हिस्सा मिलना चाहिए। हालांकि हम इस विचार से पूर्णतया सहमत नहीं हैं फिर भी हम कहना चाहेंगे कि संसाधन विभाजन के क्षेत्र में केन्द्र के मस्तिष्क में राज्यों का हित सर्वोपरि होना चाहिए।

5.15 समुदाय में उपलब्ध बचतों के वितरण में निष्पक्ष और तर्कसंगत मापदण्ड अपनाया जाना चाहिए। बचतों का सम्बन्ध सम्पूर्ण देश से होता है। और इसलिए विभाजन में राज्यों के हिस्से का निर्धारण केवल क्षेत्र, जनसंख्या और संसाधन संग्रहण सम्भवता के आधार नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा सिक्किम जैसे छोटे राज्य भारी हानिप्रद स्थिति में रहेंगे।

5.16 हम राज्य उत्तरदायित्वों से परिचित हैं और हमें पूरी तरह से यह भी जानकारी है कि उनके उत्तरदायित्व बढ़ रहे हैं। केन्द्र को इस बात का भी अहसास होना चाहिए कि जन तांत्रिक समाजवादी देश में राज्य के उत्तरदायित्व हमेशा बढ़ते रहते हैं क्योंकि समाज के कल्याण के लिए उन्हें विभिन्न प्रकार के कल्याणकारी कदम उठाने पड़ते हैं। इसलिए इस पहलू पर भी विचार किया जाना जरूरी है। मुद्रास्फीति अथवा प्राकृतिक आपदाओं जैसे कुछ अवस्थाओं के समय में अपने वित्तीय संसाधनों के भीतर कार्य कर पाना राज्यों के लिए कठिन होगा। परिणामस्वरूप घाटा और बढ़ता है किन्तु एक बड़ी सीमा तक राजकोषीय असन्तुलन में होने के परिणामस्वरूप वित्तीय अनुशासन हीनता में फंसते हुए तर्क के रूप में घाटा और अधिक नहीं बढ़ना चाहिए।

5.17 हम इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि राज्यों की बढ़ती हुई ऋण ग्रस्तता की आवधिक समीक्षा की जानी चाहिए। सम्भवतया यह अधिक उपयोगी होगा यदि इस मामले की गहराई से जांच करने के लिए एक स्वतन्त्र निकाय का गठन कर दिया जाए।

5.18 सिक्किम के एक छोटा राज्य होते हुए और इसकी उधार लेने की क्षमता नाममात्र की होते हुए हम केवल यही सुझाव दे सकते हैं कि राज्य को उस सीमा तक काम करना चाहिए कि ठोस वित्तीय सीमा बरकरार रहे।

5.19 हमारा यह भी विचार है कि विदेशों से लिए गए ऋण पर केन्द्र को राज्य से ब्याज उस दर से अधिक नहीं लेना चाहिए जिस दर पर वह विदेशी उधारदाता को अदा करता है। हमारा यह भी विचार है कि परियोजना विशेष से सम्बद्ध विदेशी सहायता को यथावत् राज्यों को दे देना चाहिए। वास्तव में यह उपयोगी होगा यदि सम्पूर्ण मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा की जाए।

5.20 इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को मद्देनजर रखते हुए यह वांछनीय होगा कि देश की दशा को ध्यान में रखते हुए ऋण परिषदें गठित की जाएं। आस्ट्रेलिया में विद्यमान ऋण परिषद् की नकल करने में कोई औचित्य दिखाई नहीं पड़ता। भारतीय रिजर्व बैंक को अपने कार्य-निष्पादन में और अधिक स्वतन्त्रता दी जाए जिससे कि वह अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को भली भांति पूरा कर सके।

5.21 यह सच है कि अर्थोपायों की हकदारी को दुगना करने के बाद भी ओवरड्राफ्टों की मात्रा लगातार बढ़ती रही है। बजट तैयार करने के समय जिन आपवादिक परिस्थितियों को पहले से नहीं देखा जा सकता उन स्थितियों से निपटने के लिए ओवरड्राफ्ट का सहारा लिया जाए। इस सम्बन्ध में अतिरिक्त महंगाई भत्ते का उदाहरण दिया जा सकता है। इसलिए केन्द्र को इन परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ेगा। इस प्रकार अर्थोपाय सीमाओं के आवधिक पुनरीक्षण की आवश्यकता पर बल दिया जा सकता है। फिर भी यह भी समझ लेना चाहिए कि ओवरड्राफ्ट एक उचित सीमा को पार न कर जाए।

5.22 इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही रूपों में हो सकता है। कुछ राज्यों के मामले में यह सच हो सकता है कि वे अपने निजी राजस्व के संसाधन को पर्याप्त रूप से उपयोग में नहीं ला रहे हैं। कुछ अन्य राज्य यथासम्भव उनका उपयोग कर रहे हैं। कुछ ऐसे भी मामले हैं जिनमें राज्य संसाधन जुटाने के लिए सम्भावनाओं से युक्त होते हैं लेकिन केन्द्र सम्बन्धित योजनाओं को मन्जूरी देने में अपना समय लेता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ऐसी स्कीमों को मन्जूर भी नहीं किया जाता। इसीलिए राजस्व के स्रोत को पर्याप्त रूप से उपयोग में लाने की इच्छा के बावजूद वे उस पर कार्य करने की स्थिति में नहीं होते हैं। यदि यह पता चले कि राज्यों ने अतिरिक्त संसाधन जुटाने का रास्ता नहीं अपनाया हालांकि ऐसा करने की सम्भावनाएं विद्यमान थीं तो ऐसे राज्यों के विरूद्ध वित्त आयोग के माध्यम से केन्द्र को कारंवाई करनी चाहिए।

5.23 सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों के कार्य निष्पादन में सुधार के लिए काफी गुंजाइश है क्योंकि सरकारी क्षेत्र से अभी तक पूंजीगत निवेश पर अपेक्षित प्रतिलाभ नहीं हुआ है।

केन्द्रीय कराधान में पर्याप्त चोरी के बारे में, उन चोरियों को समाप्त करने के लिए केन्द्रीय प्राधिकारियों को पर्याप्त सावधानियां बरतनी चाहिए।

5.24 निश्चित रूप से यह एक स्वस्थ परम्परा होगी यदि इस सुझाव को लागू कर दिया जाए। ऐसी स्थिति में केन्द्र और राज्य के बीच और भी अधिक आपसी विश्वास और भरोसा स्थापित हो जाएगा।

5.25 हम इस सुझाव से भी सहमत हैं कि राज्यों के संसाधन बढ़ाने के लिए अनुच्छेद 269 का और अच्छी तरह से उपयोग किया जाना चाहिए।

5.26 यह स्पष्ट है कि यदि रेलवे विभाग को भारी मात्रा में बढ़ती हुई सामयिक यात्री किराया आमदनी के आधार पर राजस्व कर लगता रहता तो यह और अधिक होता समानता और न्याय के आधार पर यात्री किराया कर के बदले अनुदान संशोधित किया जाना चाहिए और उसमें बढ़ोतरी की जानी चाहिए।

5.27 संघ राज्य क्षेत्र विशेष वर्ग के अधीन आते हैं। इसलिए उनके सम्बन्ध में अलग से किसी प्रकार की समीक्षा जरूरी नहीं है।

5.28 यह सच है कि जिन क्षेत्रों में राज्य भारी कठिनाई अनुभव कर रहे हैं उनमें से यह भी एक है। हमारे सिक्किम राज्य में हर वर्ष भूस्खलन और ओलावृष्टि के रूप में प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं। इस प्रकार की आपदाओं को राष्ट्रीय समस्या माना जाना चाहिए और इस प्रकार की समस्याओं से निपटने के लिए केन्द्र को पर्याप्त निधि देनी चाहिए। सातवें वित्त आयोग द्वारा सुझाया गया सूत्र अपर्याप्त दिखाई पड़ता है। यह भी जरूरी है केन्द्र के पदाधिकारी यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करें कि राहत सहायता का उचित रूप से और प्रभावी तौर पर उपयोग किया जाता है।

5.29 नेशनल लोन कारपोरेशन, नेशनल क्रेडिट काउंसिल और नेशनल इकनोमिक काउंसिल का गठन करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है।

5.30 हम इस बात से पूरी तरह से सहमत हैं कि निधियों को बुद्धिमत्ता से खर्च किया जाए और उसके फायदे ज्यादातर लोगों को मिलने चाहिए। इसके साथ निधियों का संग्रहण और उनका वितरण भी महत्वपूर्ण मामले हैं जिनपर विचार किया जाना चाहिए।

5.31 (क) हम इस बात से भी सहमत हैं कि संघ के व्यय का आवधिक निर्धारण भी जरूरी है। इस प्रकार की प्रक्रिया से सभी सन्तुष्ट होंगे। हम इस दृष्टिकोण से भी पूर्णतया सहमत हैं कि खासतौर से गरीब राज्यों को सहायता करने के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाए जाने चाहिए।

(ख) कड़ाई से वित्तीय अनुशासन बनाए रखने की आवश्यकता है। बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद जो राज्य वित्तीय अनुशासनहीनता में मग्न रहते हैं केन्द्र द्वारा उनकी जमानत नहीं दी जानी चाहिए।

(ग) हम स्थायी राष्ट्रीय व्यय आयोग के पक्ष में नहीं हैं। हम विश्वास करते हैं कि केन्द्र और राज्य दोनों लोगों की सन्तुष्टि तक अपना उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता है।

5.32 मौजूदा प्रणाली जारी रहनी चाहिए।

5.33 यह वांछनीय है कि मूल्यांकन लेखापरीक्षा प्रारम्भ कर दी जाए।

5.34 हम विश्वास करते हैं कि संसद नियन्त्रक महालेखा परीक्षक को पर्याप्त कार्य सौंपते हुए काफी शक्तियां प्रदान कर दी हैं जिससे कि वे संघ और राज्यों के व्यय पर प्रभावी तौर पर निगरानी रख सकें।

5.35 हम सन्तुष्ट हैं कि नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट विस्तृत और उचित रूप से सही है। इसके साथ हम ऐसा भी महसूस करते हैं कि यदि जरूरत पड़े तो उन्हें कुछ ऐसी और शक्तियां भी प्रदान की जा सकती हैं जिसके कि वे लोक व्यय के तरीके और उसकी तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रकाश डाल सकें।

5.36 प्रश्न 5.35 के उत्तर में हमने अपने विचार पहले ही व्यक्त कर दिए हैं।

5.37 वर्तमान व्यवस्था जारी रखी जा सकती है।

5.38 हमारे विचार से व्यय आयोग बनाए जाने की आवश्यकता नहीं है।

3.39 हम इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं कि खर्च किए जाने के बाद उपयोग के लेखे की जांच की जानी चाहिए। यह भी देखा गया है कि कुछ मामलों में राज्यों की ओर से सूत्रबद्ध किए गए कार्य की योजनाओं के शोधन में सम्बन्धित मन्त्रालय की ओर से काफी विलम्ब हुआ है। इस प्रकार का विलम्ब जो अनावश्यक क्षोभ उत्पन्न करता है उससे बचा जाना चाहिए।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 योजनागत सम्बन्धों में जो कमियां बताई गई हैं कमोबेश वे वैध हैं। हमारा यह निश्चित विचार है कि केन्द्र द्वारा प्रस्तुत की गई राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के पैरामीटर के अन्तर्गत योजना प्रक्रिया में राज्य सरकारों को पूर्णतया सम्मिलित किया जाना चाहिए। योजना के इस विस्तृत क्षेत्र में केन्द्र और राज्यों को अनुपूरक भूमिका निभानी है। सामान्य तौर पर ही राष्ट्रीय विकास परिषद् को अधिक सक्रिय बनाए जाने की आवश्यकता है। साथ ही साथ राज्यों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए कि वे अपनी स्थानीय परिस्थितियों और प्रकृति के अनुरूप अपनी योजनाएं स्वयं बना सकें।

6.2 हम इस विचार से सहमत हैं कि राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन सांविधिक आधार पर किया जाना चाहिए। योजना आयोग की सिफारिशों का अनुमोदन इस परिषद् द्वारा किया जाना जरूरी है। हमने इस आशय के अपने विचार पहले भी व्यक्त किए हैं कि योजना प्रक्रिया में राज्य को पूरी तरह से सम्मिलित किया जाना चाहिए। और हमारा यह भी विश्वास है कि लाभप्रद परिणाम तभी निकलेंगे यदि योजना के मामले में विकेन्द्रीकरण हो।

6.3 चूंकि हम योजना के विकेन्द्रीकरण में विश्वास रखते हैं इसलिए हम योजना आयोग के मौजूदा गठन से सहमत नहीं हैं। राष्ट्रीय अग्रताओं के पैरामीटर के भीतर अपनी योजनाएं सूत्रबद्ध करने की राज्यों को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

6.4 हम इस विचार से भी सहमत हैं कि योजना आयोग अर्थशास्त्रियों, प्रौद्योगिकी और प्रबंध विशेषज्ञों का एक उच्च स्तर का एक परामर्शदात्री निकाय होना चाहिए। हम उस सुझाव से भी सहमत हैं कि आयोग संघ सरकार के सभी प्रकार के दबावों से मुक्त एक स्वतन्त्र निकाय होना चाहिए।

6.5 योजना आयोग केन्द्र और राज्यों की योजनाओं के सूत्रीकरण में और निवेश के सम्बन्ध में परामर्श देने के कार्य को जारी रख सकता है।

6.6 राज्य की योजनाओं में राष्ट्रीय अग्रताओं को सम्मिलित करना उचित प्रतीत होता है। राष्ट्रीय अग्रताओं को ध्यान में रखते हुए आवश्यकताओं के अनुसार अपनी योजनाएं तैयार करने में राज्यों को यह सहायता भी करेगा। इस प्रकार राज्यों की स्कीमों की आयोग द्वारा सूक्ष्म संवीक्षा किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

6.7 योजना आयोग का प्रमुख कार्य योजना के सूत्रीकरण तक ही सीमित होना चाहिए। राज्यों को सहायता प्रदान करने सम्बन्धी शर्तों को उदार बनाए जाने की आवश्यकता है। योजना आयोग संसाधन जुटाने के मामले में अपना परामर्श देने के लिए स्वतन्त्र होगा।

6.8 और 6.9 यह उचित होगा यदि केन्द्रीय सहायता का निर्धारण किए जाने के बाद योजना के आकार से सम्बन्धित सूत्रीकरण का मामला अलग-अलग राज्यों के लिए छोड़ दिया जाए। जनजाति और पहाड़ी क्षेत्र सम्बन्धी उप योजनाओं के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता निर्धारण की वर्तमान प्रणाली सामान्यतः उचित है; यदि सन्तुलित क्षेत्रीय विकास किया जाता है तो पिछड़े हुए राज्यों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सहायता के आबंटन की वर्तमान प्रणाली को और अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

राज्यों को केन्द्रीय योजना सहायता आबंटित करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा तैयार किया गया सिद्धान्त सामान्यतः उचित है। हमारा यह मत है कि केन्द्रीय सहायता के आबंटन के लिए जिन चार घटकों को ध्यान में रखा जाता है उनमें से राज्य के पिछड़ेपन को अपेक्षाकृत अधिक ध्यान में रखा जाना चाहिए। हालांकि गाडगिल सूत्र का सम्बन्ध राज्यों की योजना सहायता के केवल छोटे हिस्से से ही है। फिर भी निष्पक्ष रूप से कहा जा सकता है कि इसके बाद के संशोधन निष्पक्ष वितरण की दिशा में ही हो रहे हैं।

6.10 हमारा विश्वास है कि केन्द्रीय रूप से प्रवर्तित स्कीमें अनिवार्यतः खासतौर से पिछड़े हुए और गरीब राज्यों के लिए हैं। साथ-साथ यह भी जरूरी है कि राज्यों को ऐसी योजनाओं के सूत्रीकरण में सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए। केवल तभी इन स्कीमों के अधीन राज्यों की हालतों को ध्यान में रखा जा सकता है और ऐसा करने के उनके प्रभावी कार्यान्वयन में भी सहायता मिलेगी।

6.11 यह सच है कि संघ और राज्य दोनों के स्तरों पर जांच और मूल्यांकन प्रणाली को मजबूत करने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए यह वांछनीय है कि केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार को आवश्यक दिशा निर्देशन और वित्तीय सहायता प्रदान करे।

6.12 यदि योजना कार्य को सफल बनाना है तो यह पूर्णतया आवश्यक है कि इसे ग्राम स्तर तक विकेन्द्रीकृत कर दिया जाए। हम इस दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हैं कि विकेन्द्रीकृत योजना प्रणाली हमारी कार्यप्रणाली में "सहकारनिष्ठ संघवाद" की भावना को लागू करने में सहायक सिद्ध होगी।

6.13 राज्यों में सम्पूर्ण योजना प्रणाली और विकास प्रक्रिया में राज्य योजना बोर्डों को महत्वपूर्ण परामर्श दात्री भूमिका अदा करनी होगी। जब तक कि विकेन्द्रीकरण नहीं होता, राज्य योजना बोर्ड अपनी लाभप्रद भूमिका अदा करने की स्थिति में नहीं होंगे।

भाग VII

विविध

7.1 हम इस बात से सहमत हैं कि उद्योगों के उत्पादन के मूल्य के अनुसार उनके एक बहुत बड़े अनुपात को पूरा करने के लिए प्रथम अनुसूची का विस्तार राज्यों के हितों के विरुद्ध चला गया है। राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता की स्थिति का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि साबुन की एक फैक्टरी प्रारम्भ करने सम्बन्धी लाइसेंस के लिए भी उन्हें केन्द्र के पास भागना पड़ता है। मूल उद्योगों अथवा रक्षा प्रयोजनों से सम्बन्धित उद्योगों या जहां भारी निवेश आवश्यक हों ऐसे उद्योगों के सम्बन्ध के लाइसेंस जारी करने का केन्द्र का क्षेत्राधिकार तो भलीभांति समझ में आता है। दुर्भाग्य से उपर्युक्त प्रश्न में उल्लिखित काफी संख्या में उपभोक्ता मदें संघ के विषय हैं। इस प्रकार के उद्योगों को राज्य के क्षेत्राधिकार में अन्तरित कर दिया जाना चाहिए।

7.2 राष्ट्रीय लोक हित के पैरामीटर के अन्तर्गत रक्षा उद्योगों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए जहां पूंजी निवेश राज्य सरकार की वित्तीय क्षमता से अधिक करना हो। संघ सरकार को फिर भी राज्यों पर विश्वास रखना चाहिए। अतः यह महसूस किया जाता है कि अधिनियम, 1951 की प्रथम अनुसूची (विकास और विनियम) में दी गई अधिकांश मदों को राज्य के क्षेत्राधिकार में अन्तरित किया जा सकता है।

1. **धातुकर्म उद्योग :**
   - (i) लोहे और इस्पात की आधारिक संरचनाएं
   - (ii) लोहा और इस्पात की पाइपें
   - (iii) लोहे और इस्पात के अन्य माल
   - (iv) ढलवा और फोर्जन लोहा और इस्पात
2. **विद्युत सम्बन्धी उपस्कर :**
   - (i) विद्युतीय मोटरें
   - (ii) विद्युतीय पंखे
   - (iii) विद्युतीय लैम्प
   - (iv) एक्सरे उपस्कर
   - (v) इलेक्ट्रानिक उपस्कर
   - (vi) घरेलू उपकरण जैसे बिजली की प्रेस, हीटर इत्यादि।
   - (vii) स्टोरेज बैटरियां
   - (viii) ड्राई सैल
3. **दूरसंचार :**
   - (i) रेडियो रिसीवर जिसमें प्रवर्धन और जन भाषण उपस्कर शामिल है
   - (ii) टेलीविजन
4. **परिवहन :**
   - (i) मोटर साइकिलें, स्कूटर और इत्यादि
   - (ii) साइकिलें
   - (iii) फोर्क लिफ्ट ट्रक जैसी अन्य वस्तुएं इत्यादि
5. **कृषि सम्बन्धी मशीनरी :**
   - (i) कृषि सम्बन्धी उपकरण
6. **विविध टेक्निकल और इंजीनियरी उद्योग :**
   - (i) प्लास्टिक का माल
   - (ii) हस्तोपकरण, छोटे उपकरण इत्यादि
   - (iii) रेजर ब्लेड
   - (iv) प्रेशर कुकर
   - (v) कटलरी
   - (vi) इस्पात का फर्नीचर

7. **वाणिज्य, कार्यालय सम्बन्धी और घरेलू उपस्कर :**
   (i) टाइपराइटर
   (ii) परिकलन मशीन
   (iii) निर्वात-मार्जक
   (iv) सिलाई और बुनाई की मशीनें
   (v) हरिकन लालटेन

8. **चिकित्सा और शल्य सम्बन्धी साधित्र :**
   (i) शल्य सम्बन्धी उपकरण, रोगानुनाशन, इन्क्यूबेटर और

9. **गणितज्ञ, सर्वेक्षण और आरेखण सम्बन्धी उपस्कर :**
   (i) गणित, सर्वेक्षण और आरेखण सम्बन्धी उपस्कर

10. **फर्टीलाइजर :**
   (i) मिश्रित फर्टीलाइजर

11. **रसायन (फर्टीलाइजर से इतर) :**
   (i) पेंट, वार्निश और इनेमल

12. **कागज से बनने वाले सामान सहित कागज और लुगदी :**
   (i) संवेष्टन के लिए कागज (नालीदार कागज, दस्तकारी कागज, कागजी थैले, कागजी आधान और तत्सम)
   (ii) लुगदी—काष्ठलुगदी, मशीनी, रासायनिक, विलयित लुगदी समेत

13. **साबुन, प्रसाधन और शृंगार सम्बन्धी साजो-सामान :**
   (i) साबुन
   (ii) प्रसाधन
   (iii) इत्रसाजी
   (iv) शृंगार सम्बन्धी साजो सामान

14. **रबर का सामान :**
   (i) टायर और ट्यूब
   (ii) शल्य और चिकित्सा सम्बन्धी पदार्थ जिसमें रोगरोधी पदार्थ भी शामिल हैं
   (iii) फुटवीयर

15. **चमड़ा, चमड़े का सामान और पिकर :**
   (i) चमड़ा, चमड़े का सामान और पिकर

16. **कांच :**
   (i) वर्तन
   (ii) चादर और पट्टिका कांच
   (iii) प्रकाशकीय कांच
   (iv) प्रयोगशाला भांड
   (v) रेशेदार कांच
   (vi) विविध भांड

17. **लकड़ी के उत्पाद :**
   (i) प्लाईवुड
   (ii) हार्डबोर्ड जिसमें फाइबर बोर्ड, चिप बोर्ड इत्यादि शामिल है ।
   (iii) माचिस
   (iv) विविध (फर्नीचर संघटक, बोबिन, शटल इत्यादि शामिल हैं)

18. **खाद्य संसाधन उद्योग :**
   (i) डिब्बा बन्द फल और फल उत्पाद
   (ii) मिल्क फूड
   (iii) माल्ट फूड
   (iv) आटा
   (v) अन्य सांधित खाद्य

7.3 यह अच्छा होगा कि यदि पूंजीगत माल के आयात के लिए राज्य के अनुरोध पर निर्णय लेने के लिए क्षेत्रीय बोर्ड गठित किए जाएं किन्तु इस क्षेत्रीय बोर्डों को केन्द्र के मुख्य दिशा निर्देश के अन्तर्गत कार्य करना होगा । परियोजनाओं की मंजूरी दिए जाने पर कच्चे माल का आबंटन अथवा पूंजीगत मामलों से सम्बन्धित मामलों पर कार्रवाई स्वतः ही हो जाएगी ।

7.4 कच्चे माल आबंटन के लिए पहले से ही उपयुक्त योजना बनाना आवश्यक है । इस पहलू को कारगर बनाया जाना चाहिए । मौजूदा स्थिति के अनुसार विभिन्न संस्थाओं और अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय समर्थ के बीच अधिक समन्वय स्थापित कर सुधार के लिए काफी गुंजाइश है । अपेक्षाकृत उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजना की संरचना के लिए विकेन्द्रीकरण किए जाने की भी आवश्यकता है ।

7.5 देश में सिक्किम सबसे छोटा राज्य है और संसाधन उत्पन्न करने की इसकी क्षमता भी नगण्य है । राज्य की योजनाएं केन्द्र से वित्त पोषित हैं । इसलिए राज्य की योजनाओं का कार्यान्वयन केन्द्र के आबंटन के अन्तर्गत ही होना चाहिए । चूंकि राज्य में सरकारी क्षेत्र के कोई उल्लेखनीय उद्योग नहीं हैं इसलिए औद्योगिक विकास बैंक या औद्योगिक वित्त निगम अथवा अन्य केन्द्र द्वारा नियंत्रित वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं हुआ है ।

7.6 सिक्किम में मुश्किल से ही सरकारी क्षेत्र के उद्योग हैं । इसलिए जहां तक इस राज्य का सम्बन्ध है ऊपर उल्लिखित प्रश्न मात्र सैद्धान्तिक ही है ।

7.7 जहां तक भारी उद्योगों का सम्बन्ध है सिक्किम इस दायरे में नहीं आता । असलियत में अपनी सम्भावनाओं का उपयोग करने के लिए राज्य में सरकारी अथवा गैर सरकारी क्षेत्र में भारी अथवा मध्यम उद्योग स्थापित करने की सिक्किम की प्रबल इच्छा है । जब तक ऐसे उद्योग वहां नहीं हैं तब तक यह प्रश्न असंगत है ।

7.8 यह सच है कि सिक्किम को औद्योगिक रूप में पिछड़ा हुआ राज्य माना गया है । किन्तु दुर्भाग्य से राज्य में पिछड़ेपन को दूर करने के लिए केन्द्र ने उद्योग स्थापित करने के कदम नहीं उठाए हैं । अपने आप उद्योग स्थापित करने के लिए राज्य के पास बहुत सीमित संसाधन हैं । यह कार्य केन्द्र की सहायता से ही किया जा सकता है । जिसके लिए दुर्भाग्य से केन्द्र कुछ नहीं कर रहा है । परिणामस्वरूप मुश्किल से ही ऐसी कोई औद्योगिक इकाई होगी जिसका उल्लेख किया जाए । बाहर से उद्यमकर्ताओं को आकर्षित करने के लिए आधारित संरचना का विकास अधिक आवश्यक है । सरकारी अथवा गैर सरकारी क्षेत्र से जब तक पूंजी निवेश नहीं होता तब तक अकेले ही औद्योगिकीकरण के लिए जुटना सिक्किम के लिए बहुत कठिन होगा ।

व्यापार और वाणिज्य

8.1 व्यापार और वाणिज्य के सम्बन्ध में नीति यह होनी चाहिए कि राज्यांतरिक व्यापार अथवा वाणिज्य पर कोई प्रतिबंध न हो । अपेक्षाकृत यह अच्छा होगा यदि व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में केन्द्र और राज्य के बेहतर सम्बन्ध के लिए उपर्युक्त प्रश्न में निर्दिष्ट मामलों पर विचार करने के लिए कोई प्राधिकारी हो ।

कृषि

9.1 हालांकि कृषि राज्य का विषय है, किन्तु खासतौर से सिक्किम जैसे पिछड़े हुए राज्य में कृषि के विकास में सम्बद्ध होने की अपनी भूमिका निभानी चाहिए । उर्वरकों, कीटनाशकों और अन्य कृषि निविष्टियों की सप्लाई की मौजूदा व्यवस्था जारी रहनी चाहिए । केन्द्र कृषि अनुसंधान क्रियाकलापों के लाभ भी राज्यों को नियमित रूप से दिए जाने चाहिए ।

जैसी कि आज स्थिति है प्रश्न में उल्लिखित स्थिति से लगता है कि सन् 1967 से महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुए हैं ।

9.2 हम राष्ट्रीय कृषि आयोग की इस आशय की सिफारिश से सहमत नहीं हैं कि राज्य की एजेन्सी के द्वारा कार्यान्वित की गई केन्द्र द्वारा प्रवर्तित स्कीमें राज्य के क्षेत्र की अंग होती हैं और इसलिए उनकी संख्या न्यूनतम रखी जानी चाहिए। सिक्किम जैसे पिछड़े हुए जिस राज्य के संसाधन उत्पन्न करने की क्षमता नगण्य हो उसके लिए केन्द्र द्वारा प्रवर्तित ऐसी स्कीमों का जारी रखा जाना परमावश्यक

है क्योंकि उनका राज्य के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। केवल आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी स्कीमों के सूत्रीकरण में राज्य सरकारों को सक्रिय रूप से सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए। इनके कार्यान्वयन के लिए राज्यों को लचीलापन अपनाने की छूट होनी चाहिए। केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों को केवल प्रमुख दिशा-निर्देश ही दिए जाने चाहिए।

9.3 प्रश्न में उल्लिखित ऐसे संयुक्त कार्यशील ग्रुपों का हमें कोई उपयोग नहीं दिखलाई पड़ता। यदि उनकी स्थापना भी की जाए तो उनकी भूमिका केवल सिफारिश किए जाने तक ही सीमित होनी चाहिए। अब तक केन्द्र और राज्य-सरकारों के बीच हमने अच्छा खासा सहयोग देखा है। जैसाकि पहले बताया गया है राज्यों को स्कीम के सूत्रीकरण में निकटता से सम्मिलित किया जाना चाहिए और केन्द्र द्वारा प्रवर्तित स्कीमों के कार्यान्वयन से सम्बन्धित उनके दृष्टिकोण के लचीलेपन के सम्बन्ध में उन्हें अपना विचार व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए।

9.4 देश की विशालता और कृषि संबंधी जलवायु की परिस्थितियों, जो कि उत्पादन लागत और उत्पादकता स्तर आदि से जुड़ी हुई हैं, की असमानता के विचार से, सम्पूर्ण देश की भिन्न-भिन्न वस्तुओं की समर्थन कीमतों या अधिप्राप्ति कीमतों का एक समान होना युक्तिमूलक नहीं है। अतः देश में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए फार्म कीमतें निर्धारित करते समय राज्यों के साथ बेहतर नरमी बरती जानी चाहिए।

जहां तक कृषि का सम्बन्ध है, सिक्किम में उस स्तर तक ऐसी कोई सिंचाई प्रणाली नहीं है जिस पर केन्द्र का ध्यान आकर्षित हो। हमारे पास सिंचाई प्रणाली नगण्य ही है।

जहां तक उधार का सम्बन्ध है, राष्ट्रीय वित्तीय संस्था को इस राज्य में कृषि सम्बन्धी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए उधार मुहैया कराना चाहिए, इस प्रयोजन के लिए, सामान्य दिशा निर्देश केन्द्र से आने चाहिए।

उर्वरकों और कीटनाशी जैसी सामरिक निविष्टियों की सप्लाई देश के सभी राज्यों में अनिवार्य महत्व की है।

मौजूदा वानिकी नीति की समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय दिशा निर्देशों की सीमा में वन के प्रबन्ध के लिए राज्य सरकार को अत्यधिक महत्व दिया जाना अत्यावश्यक है। इस समय राज्य सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह वानिकी से सम्बन्धित छोटे मामले भी केन्द्र को सूचित करें क्योंकि इससे विभिन्न परियोजनाओं के कार्यान्वयन में विलम्ब होता है।

9.5 हम राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक जैसे संस्थाओं की कार्यप्रणाली के लिए मुख्य नीति सम्बन्धी दिशा निर्देश के पक्ष में है। उस मुख्य दिशा निर्देश की सीमा में इस वित्तीय संस्था को राज्यों में योजना बनाने की अनुमति दी जानी चाहिए। यह सुझाव दिया जाता है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की गतिविधियों को अधिक विस्तृत किया जाना चाहिए और अनुसंधान के इनके लाभ इसके दिशा निर्देश सहित फार्मों में पहुंचने चाहिए।

खाद्य और रसद आपूर्ति

10.1 खाद्यान्नों के अतिरिक्त अन्य आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति, कीमत निर्धारण, भण्डारण, संचलन और संवितरण के क्षेत्रों में केन्द्र-राज्य सम्पर्क में सुधार की बहुत ही अधिक गुंजाइश है। इन मामलों के सम्बन्ध में नीतियों को सूत्रबद्ध करते समय राज्य सरकारों से भी पहले परामर्श कर लेना चाहिए।

10.2 इनकी आवधिक समीक्षा करना आवश्यक है क्योंकि यह अत्यन्त ही उपयोगी होगी। आवश्यक वस्तु अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन की मौजूदा व्यवस्था की भी पूरी तरह से समीक्षा की जाने की आवश्यकता है।

शिक्षा

11.1 हम महसूस करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रीकरण और मानकीकरण हैं जिसकी वजह से जांच की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है तथा हमें इस प्रवृत्ति से बचना चाहिए। सरकारों की पहल शक्ति और प्राधिकार में केन्द्रीय हस्तक्षेप की जानकारी कम से कम हमारे राज्य को नहीं है। शिक्षा को राज्य सूची में लाने के प्रस्ताव की पूरी समीक्षा आवश्यक है।

11.2 यह प्रश्न हमारे पर लागू नहीं होता है क्योंकि राज्य का कोई विश्वविद्यालय नहीं है। इसी प्रकार अभी तक किसी भी एक कालेज को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से किसी प्रकार की वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं हुई है।

11.3 शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों के अतिरिक्त केन्द्र और राज्यों के अतिरिक्त केन्द्र और राज्य के बीच मतैक्य विकसित करने के लिए विचार विमर्श और सलाह मशविरा करना अनिवार्य है। विचार विमर्श, सलाह मशविरा और समझाने बुझाने की प्रक्रिया एक अनवरत कारक होनी चाहिए। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में घोषित की जा रही शिक्षा नीति इस प्रक्रिया की छाप होगी।

11.4 हमारा विचार है कि साम्प्रदायिक शैक्षिक संस्थाओं के सम्बन्ध में दी गई सांविधानिक गारन्टी लागू होनी चाहिए। इस प्रयोजन-सिद्धि के लिए संगत अनुच्छेदों में संशोधन किया जाना होगा। प्रश्न उठता है कि सांविधानिक गारन्टी किसके लिए है। ये हमारे धर्मनिरपेक्ष वाद की भावना के बिल्कुल विरुद्ध है। हम महसूस करते हैं कि यह गारन्टी राष्ट्रीय अखण्डता के हित में होती है।

11.5 जहां तक सिक्किम का सम्बन्ध है शिक्षा के सम्बन्ध में भी केन्द्र और राज्यों के बीच मसलों पर विरोध होने के कोई उदाहरण हमें मालूम नही है।

12.1 वह समय आ गया है जबकि केन्द्र राज्य सम्बन्धों को लेकर उत्पन्न हुए क्षोभ और समस्याओं पर कार्रवाई करने के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद् जैसा एक निकाय या तन्त्रप्रणाली (Machinery) होनी चाहिए।

अतः सरकारी सम्बन्धों को सुधारने और इन्हें समन्वय करने में उक्त निकाय या संस्था की सिफारिशें बहुत ही सहायक होंगी।

3. पंजीकृत पक्ष

झारखण्ड मुक्ति मोर्चा
प्रश्नावली के उत्तर

प्रेषक :

बिनोद बिहारी महतो

अध्यक्ष

झारखण्ड मुक्ति मोर्चा

धनबाद जिला, धनबाद

(बिहार)

सेवा में,

श्री एम० के० मोहता, संयुक्त सचिव,

केन्द्र राज्य सम्बन्ध आयोग,

गृह मंत्रालय,

दूसरा तल, विज्ञान भवन

एनेक्सी, नई दिल्ली-110 011

प्रिय महोदय,

तारीख 21-11-85 के आपके कार्यालय आदेश संख्या 42/2/84-केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग (समन्वय) के अनुसार मैं, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा का अध्यक्ष, प्रश्नावली के उत्तर में पार्टी के विचार प्रस्तुत कर रहा हूं, जो निम्नलिखित हैं :—

ऐसी दो विशेष स्थितियों, जो 1967 के बाद भारतीय राजनीति में उत्पन्न हुई, के कारण केन्द्र-राज्य सम्बन्ध की समस्या उत्पन्न हो गई है।

1. एक ओर केन्द्र और दूसरी ओर राज्य में भिन्न-भिन्न राजनीतिक पार्टियों का शासन यदा-कदा प्रतिकूल है तथा उनकी विचारधाराएं और कार्यक्रम विरोधी हैं।

2. राज्य अथवा केन्द्र में एकल राजनीतिक पार्टी का सुस्पष्ट बहुमत न होना और जब तक 1985 का अन्तिम दल-बदल विरोधी बिल पारित नहीं हो जाता, तब तक दल-बदल के कार्य को रोकने में चूक होना।

3. दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों ने राष्ट्रपति तथा राज्यपाल के पद को गरिमापूर्ण बनाया है और उसकी स्वेच्छाचारिता अथवा यहां तक कि प्रयोजन के सम्बन्ध में संभव सन्देहों अथवा आरोपों का निराकरण करने के लिए पुनर्निर्धारण अथवा सुस्पष्ट सीमांकन की मांग करते हुए उनके विवेकाधिकारों में वृद्धि की है। उसी रूप में यदि सांविधानिक बाधाओं के कारण स्थिति को अधिक गंभीर नहीं बनाया गया हो, लेकिन सामाजिक और राजनीतिक तनावों पर जोर दिए जाने के कारण स्थिति के बने रहने की संभावना हो तो विभिन्न प्राधिकारों जिसमें राज्यतन्त्र को नियन्त्रित करना भी शामिल है, के अनिवार्य सीमा-निर्धारण की मांग की गई है। ऐसा इसी विचार से है कि प्रश्नावली के कुछ उत्तर आयोग के विद्वान सदस्यों द्वारा दिए गए हैं, हालांकि यह मानते हुए कि इस आयोग का गठन करते समय कुछ वास्तविक विकार देश की राजनीति को दूषित कर रहे हैं और जो देश को सामाजिक संरचना में आयोग के क्षेत्र से बाहर हैं।

भाग I

1.1 यह संघीय नहीं है, लेकिन अन्य एकक राज्यों में पाई गई अनोखी विशेषताओं के होते हुए भी एकक है।

1.2 सभी अनुच्छेदों और औचित्य की प्रभावशीलता को पुन: बनाया जाना चाहिए और इस कार्य को किसी प्रकार का संशोधन करके या कानून बनाकर नहीं करना चाहिए, अपितु सर्वसम्मति प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय वाद-विवाद शुरू करते हुए पूरा करना चाहिए।

1.3 हां, लेकिन विकेन्द्रीकरण केन्द्र और राज्य के बीच ही नहीं होना चाहिए, अपितु बिहार, जो राज्य और केन्द्र दोनों का आन्तरिक उपनिवेश है, के पहाड़ी तथा जनजातिय क्षेत्र का विशेष रूप से उल्लेख करने के साथ राज्य के अनियमित विकास तथा बहु सांस्कृतिक स्वरूप की विषमता पर विचार करते हुए यह विकेन्द्रीकरण जिला तथा जिलों के बीच भी होना चहिए।

1.4 हमारी जानकारी में सोवियत रूस।

1.5 इस परिवर्धन के साथ हम इस विचार से पूर्णतया सहमत हैं कि कार्य-पालक कार्यविधि को बदलने अथवा यहां तक कि ऐसी समुचित परिपाटियों जो पश्च उपनिवेशिक मामाजिक ढांचे में अन्तर्निहित हैं, का विस्तार करने से ही प्रमुख कठिनाइयों को दूर नहीं किया जा सकेगा और इसके विकास के अदूरदर्शी पूंजीपती तरीके में अविश्वास और अर्थ-लालसा की वजह से समाज में प्रोत्साहन की भावना समाप्त हो जाएगी।

1.6 हम इस बात से सहमत हैं, लेकिन संविधान इस प्रयोजन में सफल नहीं हुआ है, क्योंकि राज्य के निदेशक सिद्धान्तों के सभी उपबन्धों का उल्लंघन किया गया है अथवा उन्हें अप्रचलित नियम में दे दिया गया है।

1.7 वे समीक्षा तथा पुन: जांच करने का समाश्वासन देते हैं।

1.8 हम अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत अधिकार का समर्थन करते हैं, लेकिन हम यह भी कहना चाहते हैं कि राष्ट्रिकताओं के बीच तनाव की स्थिति उत्पन्न करते हुए देश में झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड तथा अन्य क्षेत्रों में विद्यमान दलित राष्ट्रिकताओं की संस्कृति, भाषा विकास तथा पहचान को सुनिश्चित करने के लिए प्रमुख वर्ग के राजनीतिक विचार के सम्बन्ध में इस अधिकार का समुचित रूप से उपयोग नहीं किया गया है। देश में अधिक राज्य का गठन करने की आव-श्यकता के सम्बन्ध में सांविधिक आयोग की समीक्षा करते तथा विविधता में एकता की संकल्पना पर देश के समुचित विकास तथा बहुमुखी विशेषताओं को सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत उपबन्ध किया जाना चाहिए।

भाग II

2.1 केन्द्र के लिए विधायी अधिकारों की जो व्यवस्था है, व्यवहार में केन्द्र सीमा से अधिक उसका प्रयोग विशेष रूप से समवर्ती सूची में आने वाले विषय में करता है, इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं, नयी शिक्षा नीति को लादना, राज्या-ध्यक्षों पर केन्द्रीय रिजर्व पुलिस अथवा केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल अथवा सीमा सुरक्षा बल नियुक्त करना, मुख्यमन्त्रियों को बन्धुआ मजदूर की तरह बदलना तथा राज्यपालों को इस प्रकार ठूंसना जैसे कि महान मुगल शासक प्रान्तों में संरक्षणाधीन व्यक्ति नियुक्त किया करते थे।

2.2 सातवीं अनुसूची में केन्द्र की विधायी सूची की केवल निम्नलिखित के अनुसार पुष्टि की जानी चाहिए।

1. रक्षा
2. संसूचना
3. मुद्रा
4. विदेशी मामले
5. अन्त: राज्य सम्बन्ध
6. राज्यों का सृजन

2.3 हां।

2.4 आपात-स्थिति को छोड़कर केन्द्र को कोई अधिकार नहीं होगा।

2.5 कोई विशेष बात नहीं है।

भाग III

3.1 राज्यपालों की ऐसी नई भूमिका, जो अंग्रेजों के समय से भिन्न है, के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से विचार करते हुए संविधान को सफलता नहीं मिली है और संविधान द्वारा दी गई अपनी भूमिका पर विचार करने में राज्यपाल भी चूक गए हैं,

अतः पश्चिम बंगाल में धर्मवीर ए० पी० शर्मा, कश्मीर में जगमोहन और इसी प्रकार तेलगू में शंकरदयाल शर्मा की भूमिका में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को कटु बनाते हुए संविधान वाद-विवाद का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया है।

3.2 राज्यपाल का पद समाप्त कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि वे राज्य राजकोष के लिए बोझ है।

3.3 उक्त बात को ध्यान में रखते हुए उत्तर अनावश्यक है।

3.4 वही।

3.5 हम इस बात से सहमत नहीं होते कि सहमति पर रोक लगाना विधिक की अपेक्षा राजनीतिक अधिक था, सात वर्ष पहले बंगाल एसेम्बली सभा द्वारा पारित किया गया प्रगामी भूमि सुधार बिल इसका उदाहरण होगा। राष्ट्रपति द्वारा किसी भी राज्य बिल को सहमति देने और सहमति न देने के सम्बन्ध में कारण बताने तथा उक्त सहमति देने के लिए अस्वीकृति अथवा विलम्ब के विषय में उच्चतम न्यायालय में प्रस्ताव करने के लिए राज्यों को अधिकार देने के सम्बन्ध में समय सीमा निर्धारित करने का संविधान में उपबन्ध होना चाहिए।

3.6 उत्तर अनावश्यक है।

3.7 वही।

3.8 यदि विधान मण्डल में राज्य की सत्तारूढ़ पार्टी का बहुमत नहीं हो तो इसका निर्णय विधान सभा में वोट देकर किया जाएगा, न कि अन्य एजेन्सियों द्वारा।

3.9 यह उपयुक्त सुझाव है, लेकिन इसमें और अध्ययन करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब विधान सभा में विश्वास की कमी हो, लेकिन उसी समय वह बहुमत रखने वाले उत्तराधिकारी को मनोनीत करने में असमर्थ हों तथा इसके साथ ही विघटन की सिफारिश करने की भी इच्छुक नहीं हों।

3.10 हां।

भाग IV

4.1 कागजी सूचना के अनुसार पश्चिम बंगाल की सरकार ने एन० एस० अधिनियम तथा केन्द्र द्वारा पारित कुछ अन्य निवारक उपबन्ध लागू करने से इन्कार कर दिया है लेकिन इसकी कोई जानकारी नहीं है कि क्या अनुच्छेद 365 को लागू करने की धमकी दी गई। किन्तु पश्चिम बंगाल पर दबाव डालने के ऐसे अभिकथन और संकेत हैं, जिन्होंने वित्तीय कठिनाइयां उत्पन्न कर दी क्योंकि सूचना के अनुसार हल्दिया परियोजना के लिए वित्त सम्बन्धी सहायता को रोक दिया गया था।

4.2 आपात-स्थिति को छोड़कर अनुच्छेद काट दिया जाना चाहिए।

4.3 कोई उत्तर नहीं है।

4.4 नहीं, जैसाकि 1959 में केरल में था।

4.5 इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं है, लेकिन निर्वाचन-आयोग के उप खण्ड (ख) पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

4.6 स्थानीय राजनीति की पकड़ और साजिश, दोनों को रोकने के लिए चनाव राज्य के प्रशासन द्वारा किया जाए।

4.7 इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं है।

4.8 पहले चालू की गई अखिल भारतीय सेवा के अतिरिक्त अखिल भारतीय न्यायिक सेवा, अखिल भारतीय चिकित्सा सेवा, अखिल भारतीय शिक्षा सेवा तथा अखिल भारतीय इंजीनियरी सेवा होगी और इन अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में यह नियम होगा कि उन सभी सेवाओं, जिसमें भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा भी शामिल है; में प्रत्येक राज्य में चुने गए शत-प्रतिशत व्यक्ति अन्य राज्यों में नियुक्त किए जाएंगे।

4.9 हम इसका विरोध करते हैं।

4.10 हम इस बात का समर्थन करते हैं कि प्रसारण समवर्ती सूची में होना चाहिए।

4.11 कोई प्रयोजन पूरा नहीं किया गया है।

4.12 इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं है।

भाग V

5.1 नहीं, क्योंकि विकसित और अल्पविकसित राज्यों में असमानता लगातार बढ़ी है।

5.2 हम उपबन्ध (क) का समर्थन करते हैं क्योंकि इससे केन्द्र पर इनकी निर्भरता कम होगी तथा वे अधिक जिम्मेदार होंगे और वे अपनी योजना के विषय में आत्मनिर्भर होंगे, इस प्रकार दाता तथा प्राप्तकर्ता का कोई प्रश्न ही नहीं होगा।

5.3 राज्य के अल्प विकसित क्षेत्रों में निष्पक्षता बढ़ाने के लिए केन्द्र को प्रबल बनाने की बजाए केन्द्र द्वारा दबाव डाले गए राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों, जिसमें पिछड़े क्षेत्रों के विशेष उदाहरण हैं, के संसाधनों का सुस्पष्ट बंटवारा किया जाए।

5.4 उपर्युक्त सुझाव को ध्यान में रखते हुए किसी भी उत्तर की आवश्यकता नहीं है।

5.5 कोई टिप्पणी नहीं है।

5.6 कोई टिप्पणी नहीं है।

5.7 कोई टिप्पणी नहीं है।

5.8 कोई टिप्पणी नहीं है।

5.9 व्यय में बचत और असमानताएं कम होने के स्थान पर बढ़ी भी नहीं है।

5.10 इसमें किसी भी प्रकार का गैर-योजना खर्च शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

5.11 असम और जनजातीय क्षेत्रों, दोनों के सम्बन्ध में व्यवहार में अनुच्छेद 275 के वास्तविक अभिप्राय का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है।

5.12 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है, लेकिन हम विशेष वाहक बंधपत्र का विरोध रखते हैं, क्योंकि इसमें काले धन के मालिकों को ही प्रतिफल मिलता है, इसके विपरित राज्यों से ऐसे काले धन के बारे में पूछा जाए जिसे पूर्णतया राज्य योजना पर ही खर्च किया जाना चाहिए।

5.15 नहीं।

5.16 नहीं।

5.17 राजनीतिक पार्टी, जो केन्द्र पर भी शासन कर रही है, द्वारा शासन किए गए राज्यों का कुप्रबंध, भ्रष्टाचार, योजना तथा राजनीतिक इच्छा का अभाव।

5.18 नहीं।

5.19 नहीं।

5.21 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.22 हां, योजना आयोग की सहायता से वित्त आयोग प्रत्येक वर्ष राज्य के संसाधनों का दोहन करने के विविध विकल्पों के संबंध में राज्यों को सुझाव देगा।

5.23 हां, मामले की जांच करने तथा उपाय सुझाने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्थायी निकाय का सृजन किया जाना चाहिए।

5.24 हां।

5.25 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.26 हम राज्यों के इस आधार का समर्थन करते हैं कि यात्री के किराया कर के बदले में अनुदान की राशि, रेल भाड़े की वसूली में वृद्धि के अनुपात में बढ़ा दी जानी चाहिए।

5.27 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.28 मामले की जांच करने तथा इसके प्रचालन को मॉनीटर करने के लिए संसद् में एक समिति होनी चाहिए।

5.29 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.30 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.31 राष्ट्रीय व्यय आयोग के सृजन का समर्थन करना।

5.32 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.33 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.34 और 5.35 नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए और इसकी सिफारिशों पर सांविधिक कार्रवाई सुनिश्चित की जानी चाहिए।

5.36 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.37 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.38 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

5.39 राज्य सरकार को यह प्राधिकार दिया जाना चाहिए कि वह विदेशी एजेंसियों के हस्तक्षेप के बिना अनुमोदित योजना के अन्तर्गत खर्च के औचित्य का निर्णय करें।

भाग VI

6.1 केन्द्र और राज्य की योजनाओं में स्पष्ट सीमांकन किया जाना चाहिए और दोनों में समन्वय, यदि अपेक्षित हो, करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थायी समिति होनी चाहिए।

6.2 हम इस सुझाव का समर्थन करते हैं।

6.3 नहीं, विनिर्दिष्ट अवधि में प्रत्येक राज्य में योजना आयोग की एक बैठक होनी चाहिए, जो राज्य की समस्याओं के सम्बन्ध में कार्रवाई कर सके।

6.4 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

6.5 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

6.6 योजना आयोग के कार्य क्षेत्र का स्पष्ट सीमांकन किया जाना चाहिए।

6.7 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

6.8 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

6.9 केन्द्रीय सहायता दिए जाने की वर्तमान पद्धति सन्तुलित क्षेत्रीय विकास तथा उप योजनाओं के जनजातीय तथा पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल हुई है।

6.10 इस सम्बन्ध म कोई टिप्पणी नहीं है।

6.11 राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थानीय समिति योजनाओं के कार्यान्वयन का अवलोकन करेगी।

6.12 हां, हम योजना के विकेन्द्रीकरण के विचार का समर्थन करते हैं, जो केवल उन्हीं पंचायतों से शुरू होगा, जो कि अपने आप में लोगों की इच्छा तथा विचारों को अभिव्यक्त करती है।

6.13 राज्य योजना बोर्ड को प्रबल बनाया जाना चाहिए और इसके कार्यक्षेत्र को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाना चाहिए, जिससे कि यह राष्ट्रीय योजना की प्रभावशीलता पर प्रभाव न डाले।

भाग VII

7.1 लोक हित तथा राष्ट्रीय महत्व के उद्योग की सूची का मनमाना विस्तार उत्पादकता विरोधी हो गया है।

7.2 हां, राष्ट्रीय महत्व की स्पष्ट परिभाषा दी जानी चाहिए।

7.3 कोई टिप्पणी नहीं।

7.4 कोई टिप्पणी नहीं।

7.5 कोई टिप्पणी नहीं।

7.6 उद्योग के स्थान निर्धारण के सम्बन्ध में निर्णय देने से पूर्व राज्यों को विश्वास में लिया जाना चाहिए।

7.7 राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थायी समिति द्वारा वास्तविक और सुधारक उपायों की आलोचना के सम्बन्ध में विचार किया जाना चाहिए।

7.8 कोई टिप्पणी नहीं, लेकिन पिछड़े क्षेत्र में उद्योगों की अभिकल्पना और प्रबंध इस प्रकार किया जाना चहिए, जिससे कि पिछड़े क्षेत्रों में अग्र क्षेत्रों के प्रगतिशील लोगों की बस्ती बनाए बिना ही पिछड़े क्षेत्र के लोगों का विकास किया जा सके।

8.1 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

कृषि

राज्य और केन्द्र में क्षेत्राधिकारों के बंटवारे की अपेक्षा भूमि सुधार के कार्य को पूरा करने से भारत में कृषि की भावी दशा में अधिक सुधार होगा। भूमि सुधार से निश्चित रूप से आशय कृषकों की भूमि तथा सहकारी कृषि से है, देश में सुधार की प्रक्रिया का मूल्यांकन करने तथा उसका नियंत्रण करने के लिए भूमि-सुधारों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय आयोग होना चहिए।

खाद्य तथा नागरिक आपूर्ति

सभी आवश्यक वस्तुओं का व्यापार राष्ट्रीयकृत होना और केन्द्र तथा राज्य को आवश्यक वस्तुओं के व्यापार का राष्ट्रीयकरण करने तथा उसे चालू करने का समवर्ती अधिकार होगा।

शिक्षा

भारत में कोई भी शिक्षा मातृ-भाषा में नहीं दी गई है, विशेष रूप से झारखण्ड में शिक्षा मातृ-भाषा में ही दी जाएगी, न कि हिन्दी में दी जाएगी। भारत में प्रान्तीय सेवाओं यहां तक कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के सम्बन्ध में जो कहा गया है, वह यह है कि चयन के सम्बन्ध में राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका है। सभी प्रकार के मानक समाप्त कर दिए गए हैं और शिक्षा पद्धति में अव्यवस्था तथा अराजकता उत्पन्न हो गई है।

12.1 इस सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं है।

नागालैंड पीपुल्स पार्टी

ज्ञापन

1. प्रस्तावनात्मक

1. नागालैंड भारत के उन सबसे छोटे राज्यों में से एक राज्य है, जिसका वर्तमान भौगोलिक क्षेत्र 16,579 वर्ग किलोमीटर है और जिसमें जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर में 35 व्यक्ति है तथा जिसमें विभिन्न रिवाजों, परम्पराओं और बोलियों की लगभग 20 जनजातियां शामिल हैं। नागालैंड में लगभग 1,160 ऐसे असुविधाजनक गांव हैं, जो उन दूरस्थ क्षेत्रों में स्थित हैं, जिनमें संचार व्यवस्था ठीक-ठाक नहीं है। हालांकि समतल भूमि और पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों की आवश्यकताओं में अन्तर है, लेकिन फिर भी पहाड़ी राज्य के रूप में एक विशेष राज्य के रूप में चुना जा सकता है। वस्तुतः नागालैंड राज्य की विशेषताओं के कारण जनसंख्या और क्षेत्र के आकार के बावजूद भी उसे राज्यत्व दिया गया। नागालैण्ड राज्य की वजह से अन्य छोटे राज्यों को भी राज्यत्व प्राप्त हो गया। यदि राज्यत्व प्रदान करने के समय नागालैंड की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां विशिष्ट थी, जो कि आज भी समाप्त नहीं हुई हैं, बल्कि राज्यत्व, प्रारंभ होने से ये परिस्थितियां और भी बिगड़ गई हैं। बहुधा यह देखा गया है कि देश में अन्यत्र लागू मानदण्डों को नागालैण्ड राज्य में लागू नहीं किया जा सका है। इसलिए केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर विचार करते समय नागालैण्ड राज्य को अपने ही वर्ग का राज्य माना जाना चाहिए।

यदि भारतीय संविधान को अर्ध-संघीय माना गया हो तो संसद के संघटन में संघीय पद्धति का आभास होगा। संविधान जो अब है, से संघीय पद्धति का कोई आभास नहीं होता। भारत में 22 राज्य तथा बहुत से संघ राज्य क्षेत्र हैं। यहां तक कि यदि संघ राज्यक्षेत्रों को उसी रूप में माना गया हो तो राज्यों को उसी तरीके से या अन्य तरीके से समान भागीदार के रूप में समझा जाना चाहिए। इसके विपरित संसद में प्रतिनिधित्व करने के सम्बन्ध में राज्यों में असमानताएं बहुत अधिक हैं। उत्तर प्रदेश के 85 संसद सदस्यों के मुकाबले में नागालैंड लोक सभा में केवल एक संसद सदस्य है। और 545 संसद सदस्यों के बीच उसकी उपस्थिति का कोई अर्थ नहीं है। यहां तक कि राज्य-सभा, जिसमें सभी राज्यों का समान, प्रतिनिधित्व होगा में 275 संसद सदस्यों में से केवल एक संसद सदस्य नागालैंड का है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 3 और 4 ऐसे निस्सहाय छोटे राज्यों पर बहुत का तर्कहीन निर्णय लागू करने के बराबर हैं, जिनकी मौजूदगी संसद में निरर्थक है। राज्य सीमाएं ऐसी ट्रेडिशनल सीमाओं पर आधारित होनी चाहिए, जो अंग्रेजों के आगमन से पूर्व विद्यमान थी और सम्बन्धित लोगों को इस बात का चुनाव करने का अधिकार दिया जाना चाहिए कि वे किस सीमा से सम्बद्ध होना चाहते हैं। किसी भी राज्य को ब्रिटिश उपनिवेशिकों की वरीयत सम्पदा का दावा नहीं करना चाहिए, जैसा कि असम द्वारा क्षेत्रीय अधिकारिता के रूप में किया जा रहा है।

1960 के 16 सूत्री करार, जिसमे विदेश मन्त्रालय की देखभाल में नए राज्य का स्थान निश्चित किया जाना था, के अनुसार नागालैंड राज्य का सृजन किया गया। किन्तु 1969 में 16 सूत्री करार के उपबन्ध को बातिल करते हुए नागाओं की जानकारी तथा सहमति के बिना ही नागालैंड राज्य का स्थान गृह मन्त्रालय में निश्चित कर दिया गया। "2. प्रभारी मंत्रालय : नागालैंड विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन होगा।" यदि मूल व्यवस्था बनी रहती तो संभवतः नागा की परिस्थितियां पूर्णतः भिन्न होती और भ्रष्टाचार सहनीय सीमा तक होती। 16 सूत्री करार की शब्द और अर्थ में प्रशंसा की जानी चाहिए और विदेश मन्त्रालय का प्रशासन गृह मन्त्रालय के कार्यक्षेत्र से बाहर होना चाहिए क्योंकि एक समान प्रशासनिक सेवाएं करते हुए सभी बुराइयां राज्य में आ गई और उन्होंने राज्य का दमघोटू वातावरण बना दिया। 16 सूत्री करार के अन्य वातावरण थे, जो केन्द्र नागालैंड सम्बन्ध के विषय में सद्भावना न बनाए रखने के लिए भी उत्तरदायी है।

विधायी सम्बन्ध

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 371(क) के उपबन्धों के अनुरूप संघ सूची के विषयों को शामिल करते हुए नागालैंड राज्य को बहुत से निम्नलिखित विधायी अधिकार सौंपे जाने चाहिए।

(i) खनिज संसाधनों की जांच पड़ताल विनियमित करने के लिए नियमों और कार्यविधियों के लिए कानून बनाने का अधिकार, (ii) नागालैंड परिस्थितियों के सर्वोत्तम अनुकूल होने पर अपना निजी निर्वाचन कानून पारित करने का अधिकार (प्रचलित प्रणाली के अनुसार चुनाव में खर्च बहुत अधिक हुआ है और चुनावों के बाद सफल उम्मीदवारों ने भावी चुनावों का सामना करने की बाबत स्वयं को मजबूत करने की दिशा में ही कार्य किया, (iii) असल में तो प्रतिकूलता के इस सिद्धान्त का नागालैंड के सम्बन्ध में समर्थन ही नहीं करना चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका

3. राज्यपाल की नियुक्ति को समाप्त कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह राज्याध्यक्ष के रूप में अप्रभावशाली रहा है और यह एक अभिशाप है। यदि इसकी नियुक्ति को एक आवश्यक बुराई के रूप में महसूस किया गया हो तो इसकी नियुक्ति चुने हुए पद के अनुसार बना दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 371 (क) के अनुसार राज्यपाल के विशेष अधिकार को बदल देना चाहिए और नागालैंड को अन्यों के समान समझा जाए।

प्रशासकीय सम्बन्ध

4. केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासकीय सम्बन्धों को समीक्षा की जानी चाहिए और इन्हें संघीय स्वरूप का बनाया जाना चाहिए। नागालैंड की जनता को अनुमति दी जाए कि यह अपने काम स्वयं व्यवस्थित करें। केन्द्र द्वारा इस राज्य पर बहुत अधिक हस्तक्षेप से भी इसे अपने को विकसित करने में किसी भी रूप में सहायता नहीं मिली है।

वित्तीय सम्बन्ध

5. अब तक नागालैंड राज्य केन्द्रीय वित्तीय सहायता पर ही आश्रित रहा है क्योंकि इसके अपने संसाधन नहीं है। नागालैंड की जनता के कल्याण के लिए अभी तक जो कुछ भी वित्तीय सहायता केन्द्र द्वारा दी गई उससे शोषण वर्ग तो धनवान से और भी धनवान हो गया है और शोषित वर्ग गरीब से और भी गरीब हो गया है। नागा लोगों के आत्म निर्भर होने का संकल्प केन्द्रीय सहायता से एकदम समाप्त हो गया है। चूंकि प्रत्येक कार्य व्यवसाय के प्रयोजन का ही है इसलिए नागालैंड में ऐसे भ्रष्टाचार के अलावा कुछ भी नहीं है जो गरीब और अमीर के बीच चौड़ी खाई बनाता जा रहा है।

आर्थिक और सामाजिक योजना

6. नागालैंड राज्य को इस बात की अनुमति दी जानी चाहिए कि वह "तेते पांव पसारिए जेती लम्बी सौर" सिद्धान्त पर आधारित अपने योजना कार्यक्रमों को क्रियान्वित कर सके। ठीक ऐसी स्थिति में राज्यों के योजनाबद्ध कार्यक्रमों में विषय में ऊंचे-ऊंचे ख्वाब और कम काम करने की इनकी आदत सी बन गई है।

विदेशी वित्तीय सहायता और विदेशी पूंजी निवेश उपयोग में लाने की अनुमति राज्यों को भी दी जानी चाहिए। अब तक नागालैंड राज्य को राजनीतिक रूप से संवेदनशील राज्य होने के मिथ्या तर्क के अनुसार उक्त कार्यों से पूर्णतया वंचित किया गया है। वित्तीय संस्थाएं नागालैंड में इच्छित प्रभाव नहीं जमा पाई हैं क्योंकि इनके निवेश नगण्य हैं।

विविध

7. (क) उद्योग : उद्योग सम्बन्धी गतिविधियां स्थानीय रूप से कच्चे माल की उपलब्धता पर आधारित होनी चाहिए और इसके लिए लाइसेंस जारी करने के मामले में उदार होना चाहिए। किसी भी मामले में बेनामी लाइसेंस जारी नहीं किए जाने चाहिए। नागालैंड में कृषि आधारित उद्योगों के गठन में सभी सम्भावित सहायता और सहयोग में विस्तार करने के लिए केन्द्र को आगे बढ़ना होगा।

(ख) व्यापार और वाणिज्य : ऐसे माल के आयात-निर्यात के सम्बन्ध में नागालैंड राज्य को व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए जिसके द्वारा यह कारोबार संबंधी गतिविधियों को उत्पन्न कर सकें और बाह्य राज्य से बाजारों को आकर्षित कर ले ताकि यह अपने संसाधन प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

(ग) कृषि, बागवानी, वानिकी, मत्स्य-पालन, पशु पालन नागालैंड के लोगों का मुख्य सहारा होंगे। नागालैंड के अधिकार, संसाधन और संचार सम्बन्धी अभावों को दूर करने के लिए आगे आना चाहिए। इस राज्य के कार्यक्रमों के ब्यौरों का पता लगाने के काम को छोड़कर, केन्द्र को अपेक्षित वित्त और उचित प्रौद्योगिकी के अभाव को दूर करने में भी राज्य की सहायता करनी होगी।

(घ) खाद्य, और रसद सामग्री : खाद्य और रसद सामग्री की आपूर्ति परमिटों और कार्डों के स्वामित्व द्वारा निर्धारित की जाने वाली वास्तविक आवश्यकताओं के आधार पर की जानी चाहिए। ठीक ऐसी स्थिति में खाद्यान्न और रसद सामग्री मुहैया कराने के व्यवसाय विचारों द्वारा प्रोत्साहित किया जा रहा है।

(ङ) शिक्षा : नागालैंड की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां पूर्णतः भिन्न हैं और नागा बच्चों को शिक्षा देने के सम्बन्ध में इसे अपनी एक प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है। "IV कक्षा तक कोई रोक नहीं" की राष्ट्रीय शिक्षा नीती को नागालैंड राज्य पर लागू नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि नागा बच्चों की शिक्षा केवल पांच वर्ष की आयु के बाद ही शुरु होती है न कि बचपन से। दूसरे, स्कूलों को उच्च तकनीकी तथा कृत्रिम चिकित्सीय उपस्कर मुहैया कराने की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को नागा लोगों पर लागू किया नहीं जाना चाहिए क्योंकि इससे नीम हकीमों की संख्या बढ़ जाएगी और वे लोगों की जिन्दगी से खिलवाड़ करेंगे। तीसरे, हिन्दी अथवा अन्य प्रादेशिक भाषा को अनिवार्य विषय के रूप में स्वीकार करना नागालैंड के उन विद्यार्थियों के लिए परेशानी का कारण बन गया है, जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए राज्य से बाहर जाते हैं। यह कार्य तुरन्त किया जाना चाहिए।

भारत की गणतन्त्रीय पार्टी (के)

ज्ञापन

केन्द्र को मजबूत होना होगा

(1) हमारा राज्य संघीय है। संघवाद में केन्द्र-राज्य संबंधों का बहुत अधिक महत्व है। भारत जैसे देश, जिसमें विविध और परस्पर विरोधी हितों के होने की वजह से जात-प्रांत, पंथ, भाषा, तथा धर्मों में बहुत अधिक विषमता है। देश को पूर्ण रूप से एकीकृत रखने के लिए मजबूत केन्द्र की आवश्यकता है। बहुत से विखण्डनशील तथा भिन्न-भिन्न बलों में एकता बनाए रखना बहुत अधिक महत्वपूर्ण है, इस पहलू के महत्व को पूर्ण रूप से समझते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने केन्द्र को मजबूत बनाया है। दूसरे, हमारा संविधान लचीला है और इसलिए यह ऐसी किसी भी चुनौती, जिसमें केन्द्र राज्य सम्बन्ध भी शामिल है, का सामना कर सकता है---मजबूत केन्द्र का समर्थन करते समय हमारी पार्टी का यह अभिप्राय नहीं होता कि राज्यों के स्तर को घटाकर नगरपालिका के स्तर तक कर दिया जाए---आर्थिक तथा शैक्षिक रूप से राज्यों का स्तर बहुत अधिक बढ़ जाता है। संविधान की विद्यमान योजना में राज्यों के सम्बन्ध में इस अवसर का लाभ उठाया गया है। लेकिन बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि योजना को कैसे सविस्तार प्रस्तुत किया गया है। संविधान के मुख्य निर्माता डा० बाबा-साहेब अम्बेडकर ने कहा कि संविधान अच्छा है अथवा बुरा है, यह इस पर निर्भर करता है कि इसे किस प्रकार कार्यान्वित किया गया है।

पार्टी में इस विचार का अनुमोदन नहीं किया जाता कि साधारण समय में बहुत अधिक विकेन्द्रीकरण और आपात्-स्थिति में अधिक केन्द्रीयकरण होना चाहिए। यह भ्रामक विचार है।

संविधान के अनुच्छेद 3 पर पुनर्विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(2) संविधान के अनुच्छेद 3 में उपबंध है कि संसद कानून द्वारा (1) नया राज्य बना सकती है, (2) किसी राज्य क्षेत्र को बढ़ा सकती है, (3) किसी राज्य क्षेत्र को घटा सकती है, (4) सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है, और (5) किसी राज्य के नाम को बदल सकती है। पिछले 34 वर्ष से इस उपबन्ध का ठीक अनुपालन हुआ है। यह उपबन्ध स्वतः पूर्ण है और इस उपबन्ध से किसी भी सम्भाव्य घटना का सफलतापूर्वक सामना किया गया है।

विधायी सम्बन्ध

(3) संविधान में राज्यों को अधिकांश विधायी स्वायत्तता का उपबन्ध है। मैं ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं जानती जिसे जहां केन्द्र ने राष्ट्रीय हित की आड़ में राज्य के विधायी अधिकारों पर अनधिकार हस्तक्षेप किया हो।

समवर्ती सूची में दिए गए किसी भी विषय के सम्बन्ध में, केन्द्र को यथा-सम्भव राज्यों से पहले ही परामर्श कर लेना चाहिए। ऐसा मार्ग अपनाने से संघ और राज्य के बीच सम्बन्धों में तनाव नहीं आएगा।

राष्ट्रीय हित या सार्वजनिक हित में यदि संसद ऐसे विषयों के सम्बन्ध में, जो कि एकमात्र रूप से राज्य की सामर्थ्य में आते हैं, कानून बनाने की आवश्यकता महसूस करती हो तो वह कानून बना सकती है किन्तु ये कानून अस्थायी और बिल्कुल सीमित होने चाहिए। अनेक प्रदेशों से यह मांग आई है कि राज्य को वृहत्तर स्वायत्तता दी जाए। आजकल इस मांग को अक्सर दोहराया जाता है क्योंकि अनेक राज्यों में कुछ अन्य राजनीतिक पार्टियां सत्ता में आ गई हैं। वे महसूस करती हैं कि उनके अधिकार अपर्याप्त हैं। जब तक अधिकांश राज्यों में कांग्रेस (आई) शासन करती रही थी तभी यह प्रश्न उठा था। ऐसी परि-स्थितियों में दूसरी सूची में निर्दिष्ट विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की कुछ बहानेबाजी से केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों में तनाव आ गया।

राज्यपाल की भूमिका

(4) केन्द्र और राज्य के बीच संचवाद राज्यपाल का घनिष्ठ सम्बन्ध होना है। निश्चय ही यह न तो केन्द्र का एजेंट होता है और न ही केन्द्र का मर्यादित नौकर। केन्द्र और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने के लिए, उसके कर्तव्यों का निष्पादन सर्वोच्च महत्व का है। राज्यपाल के अन्य महत्वपूर्ण कर्तव्य निम्नलिखित हैं :—

(1) अनुच्छेद 356(1) के अनुसार,

(2) अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमन्त्री की नियुक्ति करना, और

(3) अनुच्छेद 176(2) के अनुसार सदन को स्थगित करना या विघटन करना।

ऐसे सभी मामलों में इन्हें किसी तरफदारी के बिना और प्रभावित हुए बिना काम करना होगा। परन्तु आजकल महसूस किया जाता है कि राज्यपाल केन्द्र की कठपुतली है। इसे आन्ध्र प्रदेश और जम्मू कश्मीर जैसे कुछ राज्यों में दिखाया गया है जहां राज्यपाल के कार्यों को अत्यन्त ही आपत्तिजनक और अत्यधिक अनावश्यक माना गया था। राज्यपाल राज्य के केन्द्र की सत्तारूढ़ पार्टी के हितों को पूरा करने के लिए ही नहीं होता अपितु उसे अपने स्वयं विवेक से कार्य करना पड़ता है। चूंकि राज्यपाल की नियुक्त करना केन्द्र का प्राधिकार है। इसलिए यह बिल्कुल सम्भव है कि राजनीतिक परिवर्तन होने के समय केन्द्र उसका अपने प्रयोजन के लिए उपयोग करे। ऐसा मानवीय कमजोरी के कारण है।

अतः मैं सुझाव देता हूं कि राज्यपाल की नियुक्ति राज्य से परामर्श करके की जानी चाहिए। मैं इस सुझाव से भी सहमत हूं कि ऐसे तरीके, जिसमें राज्य-पाल द्वारा विवेकाधीन अधिकारों का उपयोग किया जाना चाहिए, के सम्बन्ध में दिया निर्देश को अन्तर्राज्यीय परिषद् द्वारा सूत्रबद्ध किया जाना चाहिए और इन पर संघ का अनुमोदन भी ले लेना चाहिए। उक्त दिशा निर्देश संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखे जाने चाहिए। इस संबंध में सांविधानिक वैधता का प्रश्न उठेगा। किन्तु इससे सांविधानिक प्रयोजन पूरा होगा। इसकी व्यवहारिक उपयोगिता होगी।

प्रशासकीय सम्बन्ध

(5) अनुच्छेद 365 को आरक्षित उपबन्ध के रूप में बनाए रखा जा सकता है हालांकि यह कभी भी लागू नहीं हुआ है।

प्रशासकीय सुधार आयोग ने इस बात पर ध्यान दिया है कि राज्यों को केन्द्र के निदेश (अनुच्छेद 256 और 257 के अनुसार) जारी करना एक बहुत बड़ा कदम है और परमावश्यक के मामलों में जहां निष्पक्षता प्राप्त करने के अन्य साधन

उपलब्ध न हों, ही इसे स्वीकार करना चाहिए। अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा शासन ग्रहण करना एक घातक औषधि है जिसे अन्तिम उपाय के रूप में संविधान में दिया गया है और जिसे दैनिक खुराक के रूप में नहीं दिया जाता। यह विचार एकदम सही है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् कुछ वर्ष के लिए सर्वत्र कांग्रेस का शासन था। अतः केन्द्र ने इस औषधि का प्रयोग करने की आवश्यकता ही महसूस नहीं की थी यहां तक कि जब कुछ राज्यों में कुछ हद तक अस्तव्यस्त हो गए थे। परन्तु अब तस्वीर बदली हुई है और उक्त परिस्थितियों के अनुसार जिनमें केन्द्र सरकार संविधान के इन उपबन्धों का लापरवाही से प्रयोग करेगी बहुत अधिक सीमा तक इसके परिवर्तित होने की सम्भावना है। डर तो इस बात का है कि इसके बाद इस सांविधानिक उपबन्ध का अत्यधिक दुरुपयोग किया जाएगा जैसा कि कुछ राज्यों जहां गैर कांग्रेस (आई) का शासन था में अभी हाल में देखने में आया है। अतः मैं महसूस करता हूं कि उक्त अनुच्छेद के अनुसार रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय राज्यपाल को अधिकतम नियन्त्रण रखना होगा और ऐसे किसी भी प्रभाव से बचना होगा जो किसी राज्य सरकार के पतन का कारण होगा।

मेरी पार्टी 44वें संशोधन का समर्थन करती है। 42वां संशोधन श्रीमती गांधी ने अपने उद्देश्यों और महत्वाकांक्षा को अनुकूल बनाने के लिए किया था।

कृषि कीमत-निर्धारण आयोग, केन्द्रीय जल आयोग, केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण, महानिदेशक, तकनीकी विकास, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग, भारतीय खाद्य निगम आदि जैसी केन्द्र एजेंसियां संविधान की सातवी अनुसूची की राज्य और समवर्ती सूचियों में निर्दिष्ट विषयों से सम्बन्धित कार्यकलापों को करती हैं। आरोप लगाया जाता है कि ये राज्यों की स्वायत्तता में आक्रमण कर रही हैं।

उक्त केन्द्रीय एजेंसियो के कार्य क्षेत्र को इतना कम कर दिया जाना चाहिए जिससे कि राज्य यह महसूस करने लगे कि इनकी स्वायत्तता पर कोई हस्तक्षेप नहीं है। यह सुझाव भी दिया जा सकता है कि इस सम्बन्ध में केन्द्र उपयुक्त दिशा निर्देश जारी कर दे ताकि राज्य यह महसूस करें कि इनकी स्वायत्तता को कम नहीं किया गया है।

केन्द्र और राज्यों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने के लिए ऐसी कार्रवाई अनिवार्य होगी। संघवाद में राज्यों ने अपनी प्रभुसत्ता का कुछ हिस्सा केन्द्र को सौंप दिया है, इसका यह आशय नहीं है कि राज्य ने प्रत्येक चीज केन्द्र को सौंप दी है। राज्यों की वृहत्तर स्वायत्तता की मांग की जा रही है। किन्तु मैं महसूस करता हूं कि राज्यों को जो भी स्वायत्तता दी गई है वह उतनी होनी चाहिए जितनी कि संविधान के शब्द और भाव में व्यवस्था की गई है।

किसी भी राज्य मे, चाहे मांग करने पर या बिना मांग किए, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को कि एक स्थान पर स्थापित करने और उपयोग में लाने से किसी राज्य में केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप करने का आशय नहीं लगाया जा सकता। यह देखना तो केन्द्र का काम है ही कि प्रत्येक राज्य में कानून और व्यवस्था बनी हुई है। अनुच्छेद 355 में ऐसी कार्रवाई करने का उपबंध है। अनेक राज्यों में, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की सहायता मांगी गई थी। अतः उन राज्यों में उक्त बल स्थापित करना कोई गलती नहीं है।

प्रसारण और दूरदर्शन सम्बन्धी सुविधाएं केन्द्र और राज्यों दोनों को निष्पक्ष और संगत आधार पर दी जानी चाहिए क्योंकि दोनों ही को इनकी समान आवश्यकता होती है ताकि वे लोगों के समक्ष अपने अपने विचार रखने के लिए इन जन-सम्पर्क मीडिया तक पहुंच सकें।

संविधान जो कि "राज्यों के बीच समन्वय" नामक शीर्षक दर्शाता है, के अनुच्छेद 263 मे राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वे अन्तर्राज्यीय परिषद् स्थापित करे, यदि उन्हें लगता है कि इससे सार्वजनिक हितों को लाभ पहुंच सकता है तो इसकी स्थापना द्वारा इनकी मदद की जाए। प्रशासकीय सुधार आयोग ने भी इस प्रकार की परिषद् की स्थापना की सिफारिश की है।

निश्चय ही उक्त परिषद् अन्तर्राज्यीय और संघ-राज्यों के मतभेदों को दूर करने में सहायक होगी। इसके द्वारा ही राज्यों के बीच बेहतर सहयोग मजबूत होगा। यह परिषद् एक पृथक सेक्रेटेरियट होगा।

वित्तीय सम्बन्ध

6. संविधान निर्माता अपेक्षा करते है कि राज्यों की बढ़ती हुई जिम्मेवारियों को पूरा करने के लिए उनके संसाधनों और राजकोषीय आवश्यकताओं के राजस्व अन्तर को अन्तरण स्कीम में शामिल कर लिया जाएगा। अनिवार्य केन्द्रीय करों और शुल्क की आय को राज्यों के साथ आंशिक रूप से शेयर करके तथा संघ से उस समय आंशिक रूप से सहायता अनुदान प्राप्त करके किया जाएगा जबकि वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा समय समय पर परिवर्तन किए गए हों।

किन्तु पिछले 34 वर्षों में यह स्कीम पूर्णतः सफल नहीं हुई है जैसाकि प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल द्वारा देखा गया है। अध्ययन दल के अनुसार, राज्य प्राप्त करने वाले रह गए हैं जबकि संघ दाता हो गया है। ऐसी स्थिति में परिवर्तन किया जाना चाहिए। मैं निम्नलिखित विकल्पों का समर्थन करता हू यथा :

(1) एक अंशयोग्य पूल का गठन करने की बाबत कर संबंधी सभी अधिकारों को संघ सूची में अन्तरित किया जाए। संघ और राज्यों के अलग-अलग हिस्सों का कुल मिलाकर संविधान में विशेष रूप से उल्लेख किया जा रहा है। ऐसी रकम और सिद्धान्त, जिनके अनुसार राज्य के हिस्सों को विभिन्न राज्यों के बीच वितरित किया जाएगा, का निर्धारण वित्त आयोग द्वारा किया जाना चाहिए।

(2) और यह भी कि निगम कर, सीमा शुल्क, आयकर आदि पर अधिभार जैसे अधिकांश केन्द्रीय करों को अंशयोग्य पूल में प्रस्तुत किए जाएं।

लोगों के आर्थिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए, राज्य ऐसा करने की स्थिति में तब तक नहीं है जब तक राज्य विभाज्य पूल से बढ़ा हुआ हिस्सा प्राप्त न कर लें।

केन्द्र कराधान द्वारा आय बढा सकता है। किन्तु इसे लोगों की आय के अनुपातहीन नहीं होना चाहिए (और इससे वह खर्च पर बेहतर नियन्त्रण रख सकता है)। मेरा विचार है कि सार्वजनिक निधियों का किंचित रूप से अपव्यय सत्तारूढ पार्टी द्वारा किया जाता है। अविश्वास किया जाता है कि यदि केन्द्र और राज्य दोनों की सरकार द्वारा फालतू खर्च को नियन्त्रित कर लिया जाए तो बहुत साधन आर्थिक विकास के काम के लिए बनाया जा सकता है। वस्तुतः बात तो यह है कि हमारी सरकारें धन कमाती तो भिखारियों की तरह से हैं और खर्च करती हैं मुगलों जैसे।

मैं इस विचार से पूर्णतः सहमत हूं कि निधियां एकत्रित कौन करता है और एकत्रित निधियों को वितरित कैसे किया जाता है यह बिल्कुल अप्रासंगिक है क्योंकि सभी निधियों की प्राप्ति लोगों से होती है। अत्यधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि निधियों को सावधानी से खर्च किया जाए और इसके अधिक से अधिक लाभ लोगों को प्राप्त हों।

मैं इस विचार से भी सहमत हूं कि इस आशय की आलोचना की जा रही है कि संघ का व्यय राष्ट्र के संवर्धन के सर्वाधिक हित में व्यवस्थित रूप से नहीं किया जा रहा है बल्कि इस निष्फल, अनावश्यक और अलाभकर व्यय की पुनरावृत्ति की ओर झुकाव है।

कई ओर से मांग है कि केन्द्र द्वारा किए जाने वाले व्यय की जांच की जानी चाहिए जिससे इस प्रकार की प्रवृत्ति को नियंत्रित किया जा सके और राज्यों की सहायता के लिए अतिरिक्त साधन जुटाए जा सकें।

यह दुर्भाग्य की बात है कि जो राज्य अपर्याप्त विकास संबंधी साधनों की शिकायत करते है वे ही खास तौर से जनवादी प्रकृति के प्रयोजनों पर न कि मितव्ययी प्रयोजनों पर ज्यादा से ज्यादा अनावश्यक खर्च कर रहे हैं जिसका परिणाम यह हो रहा है कि विकास संबंधी प्रयोजनों के लिए पहले से ही जो अपर्याप्त साधन हैं वे और भी घट रहे हैं।

इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि केन्द्र और राज्य अपने संबंधित दायित्वों को उचित और संतोषजनक रूप से किस प्रकार पूरा कर सकेंगे इसके लिए उन दोनों के राजस्व स्रोतों की आवश्यकता का पता करने एवं व्यय के स्वरूप और

उसकी गुणता निर्धारित करने के लिए एक स्थायी राष्ट्रीय व्यय आयोग गठित किया जाए।

इसलिए मैं महसूस करता हूं कि भूल करने वाली सरकारों को सुधारने में स्थायी तौर पर राष्ट्रीय व्यय आयोग की नियुक्ति काफी लाभ-दायक सिद्ध होगी।

प्राकृतिक आपदाओं से निपटने में केन्द्रीय सहायता के प्रावधान के संबंध में वर्तमान व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। यह अधिक इच्छाधीन और पक्षपातपूर्ण है। जिन राज्यों में कांग्रेस (आई) का शासन है उनमें से कुछ ने ऐसा अनुभव किया है। इसके अलावा यह भी दुर्भाग्य की बात है कि राहत सहायता का उचित रूप से और पूर्णतया उपयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार की सहायता का उचित उपयोग सुनिश्चित करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा एक उच्च स्तरीय समिति नियुक्त की जानी चाहिए जो कि व्यय को नियंत्रित कर सके। इस प्रकार की विश्वसनीय जानकारी है कि कार्यपालक प्रबंधक ऐसी निधियों का दुरुपयोग करते हैं।

किसी कर्ज परिषद की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह भारतीय रिजर्व बैंक से बेहतर संस्था नहीं होगी।

तृतीय वित्त आयोग के अध्यक्ष श्री अशोक चांदा ने ध्यान दिलाया है कि भारत के नियंत्रक महालेखापरीक्षक वह सब कुछ नहीं कर रहे हैं जिससे संघ और राज्यों के लेखों पर नियंत्रण रखना संभव होता।

इसलिए संसद ने नियंत्रक महालेखा परीक्षक के कर्तव्य और शक्तियां निर्धारित करते हुए एक कानून पास कर दिया है। लेकिन अनुभव किया जा रहा है कि इसके पारित होने के बावजूद भी संघ और राज्यों के व्यय पर प्रभावी नियंत्रण नहीं रखा जा सका। इस प्रकार का कानून बनाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि संविधान ने नियंत्रक महालेखापरीक्षक को यह शक्ति पहले ही प्रत्यायोजित कर दी है। मुख्य बात तो व यह है कि इसका उचित रूप से प्रयोग किया जाता जोकि विभिन्न कारणों से नहीं किया गया है। इस प्रकार का कानून बनाने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि संविधान ने उसको यह शक्ति प्रदान कर दी है।

नियंत्रक महालेखापरीक्षक संसद एवं राज्य विधान मंडलों को प्रस्तुत की जाने वाली अपनी रिपोर्टों के लिए क्रमशः राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपाल को ही जवाबदेह है। इसके बाद में संसद और राज्य विधान मंडल जो वित्तीय औचित्य सुनिश्चित करना जरूरी महसूस करें उन्हें प्रयोग में लाने का कार्य उनका होगा।

किन्तु नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्टें इतनी विस्तृत और उचित रूप से ठीक नहीं है कि जिससे कि वे इस मामले में अपना दृढ़ विचार बना सकें। इसलिए नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्टें वित्तीय औचित्य करने के लिए काफी नहीं हैं।

संसद और राज्य विधानमंडलों की लोक लेखा समिति नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों की जांच करती है और जिन मसलों को वे महत्वपूर्ण समझती है उनकी आगे भी छानबीन करती है।

मेरे विचार में केन्द्र और राज्यों में अपर्याप्त व्यय नियंत्रण के संबंध में अभिव्यक्त शिकायत का उत्तर देने के लिए पर्याप्त जांच काफी नहीं है।

संसद और राज्य विधानमंडलों की प्राक्कलन समितियां नियंत्रक-महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों में सम्मिलित पहलुओं की अपेक्षा नीतियों और कार्यक्रमों के बड़े-बड़े पहलुओं की जांच करती हैं और आवश्यक सुधारों के सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देती हैं। मेरा विचार है कि संघ और राज्यों के व्यय की संवीक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह समिति प्रशासन को उपयोगी विधायी और प्रशासनिक परामर्श देने में एक प्रहरी का काम नहीं कर सकती है। वर्तमान प्राक्कलन समिति मात्र एक दिखावा है। इसकी सिफारिशों को गम्भीरता से नहीं लिया जाता है।

एक स्थायी राष्ट्रीय व्यय आयोग संघ और राज्यों के व्यय का औचित्य निर्धारित करने के लिए आवश्यक है। निस्संदेह ऐसा संवैधानिक प्राधिकार भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक में पहले से ही प्रत्यायोजित है। किन्तु वह भी संसद और राज्यों की लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति के बावजूद अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं कर सका है।

आर्थिक और सामाजिक योजना

7. संविधान में की गई व्यवस्था के अनुसार आर्थिक और सामाजिक योजना की अनिवार्य भूमिका स्वीकार की गई है जिसे केन्द्र राष्ट्रीय अग्रताओं आदि का समर्थन करते हुए राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में राज्यों के साथ परामर्श करके अदा कर सकता है। योजना संबंधी संबंधों का अध्ययन करते समय अध्ययन दलों ने कुछ खामियां देखी हैं जो इस प्रकार हैं :—

(1) योजनाएं तैयार करते समय राज्यों के साथ सभी आधारभूत मसलों पर पूर्ण और स्पष्ट विचार करने के बाद लक्ष्य निर्धारित करने के प्रारंभिक कार्य में इमानदारी से राज्यों को सम्मिलित करके उनकी वचनबद्धता प्राप्त नहीं की जाती है और मुख्य मंत्रियों और केन्द्रीय मंत्रियों की होने वाली बैठकों में परामर्श की प्रक्रिया सतही और नाम-मात्र के लिए अपनाई जाती है।

(2) केन्द्रीय मंत्रालयों का झुकाव अपने द्वारा बनाई गई स्कीमों के समावेशन की ओर ही रहता है।

(3) जो कार्यक्रम वैध रूप से पूर्णतया राज्यों के क्षेत्राधिकार में आते हैं उनके संबंध में केन्द्र का काफी हस्तक्षेप है।

इन खामियों को दूर किया जाना चाहिए।

इन्हें सांविधिक आधार पर एक राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना करके दूर किया जा सकता है। इस राष्ट्रीय विकास परिषद की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करें तथा इसमें सभी मुख्य मंत्री एवं सदस्य के रूप में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ भी सम्मिलित हों। इस परिषद को इस आशय की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि यह आर्थिक विकास के संबंध में योजना आयोग की सिफारिशों पर चर्चा कर सके और उनका अनुमोदन कर सके। जब परिषद् एक बार विकास योजनाओं का अनुमोदन कर दे तो राज्य अनुमोदित ढांचे के अनुसार उन्हें कार्यान्वित करने के लिए स्वतंत्र होने चाहिए। दूसरे राज्यों को पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

योजना आयोग स्थापित किए जाने संबंधी संकल्प में उल्लेख है कि आयोग केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों और राज्य सरकारों के साथ गहरी समझ स्थापित करे और उनसे परामर्श कर कार्य करेगा। यह संकल्प प्रभावी नहीं हुआ और इसलिए जैसा कि ऊपर पैराग्राफ में बताया गया है कि एक राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना राज्यों के साथ परामर्श और गहरी समझ उत्पन्न कर सकती है।

योजना आयोग का गठन

योजना आयोग में सभी राज्यों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके इसका रूप बड़ा कर दिया जाना चाहिए और इसे एक स्वतंत्र निकाय बना दिया जाना चाहिए जोकि केन्द्रीय मंत्रिमंडल के सभी प्रकार के दबावों से मुक्त हो क्योंकि केन्द्रीय मंत्रालय आमतौर पर केन्द्र के शासक दल की नीति व्यक्त करता है।

भारत का समाजवादी एकता केन्द्र

ज्ञापन

प्रस्तावना

1 प्रारंभ में ही हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि जो बेचैनी सम्पूर्ण सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में फैली है और जिसकी वजह से चारों ओर भुखमरी, दरिद्रता, बेरोजगारी और अशिक्षा फैल रही है तथा नैतिकता और मूल्यों का ह्रास हो रहा है उसका मूल कारण केन्द्र और राज्यों के खास किस्म का संबंध होना है अथवा यदि राज्यों को स्वायत्तता और स्वतंत्रता मिल जाती है जिसके लिए मांग हो रही है तो यह व्याकुलता समाप्त हो जाती। हम इस आशय के गैर-ऐतिहासिक और अवैज्ञानिक प्रस्ताव को भी विश्वसनीय नहीं मानने वाले हैं कि किसी देश में सामाजिक-राजनैतिक

आर्थिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्रगति या प्रगति में आने वाली बाधा का निर्धारण संवैधानिक ढांचे द्वारा किया जाता है या वह केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों और उत्तरदायित्वों के हस्तांतरण के अनुरूप होता है ।

2. दूसरी ओर हमारा विचार है कि राजनैतिक प्रशासन की व्यवस्था की रूपरेखा जिस संविधान में दी गई है उसका संबंध उस ऊपरी ढांचे से है कि जोकि सुनिश्चित आर्थिक आधार का कार्य करता है । हमारे देश में जिस प्रणाली से आर्थिक आधार गठित होता है वह पूंजीपति उत्पादक-प्रणाली है । और चूंकि सरकार शासक वर्ग—यहां पूंजीवादी वर्ग के प्रमुख वर्ग हितों की ही रक्षक और संरक्षक होती है । केन्द्रीय और राज्य सरकारें दोनों ही ऐसा करती हैं । दोनों ही पूंजीवादी उत्पादक प्रणाली—शासक पूंजीवादी वर्ग और उसके वर्ग उद्देश्यों की रक्षा करती हैं और उन्हें बढ़ावा देती है ।

3. प्रत्यक्ष ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर हमारा यह भी दृढ़ मत है कि वित्तीय-राजनैतिक-प्रशासनिक शक्ति का संकेन्द्रण और केन्द्रीकरण इस बात पर निर्भर नहीं करता कि देश के संविधान का स्वरूप संघीय या एकात्मक है । दूसरी ओर इसका निर्धारण पूंजीवादी विकास संबंधी कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है । पूंजीवादी विकास सम्बन्धी इस कानून से एकाधिकार वित्तीय पूंजी और आर्थिक संरचना में वित्तीय बाध्यता को बढ़ावा मिलता है जो दफ्तरशाही सम्बन्धी प्रशासनिक प्रणाली के अन्तर्गत शक्तियों के संकेन्द्रण और केन्द्रीयकरण में प्रतिबिम्बित होती है । पूंजीवादी उत्पादक प्रणाली की रक्षा और उसके संरक्षण के लिए केन्द्रीय सरकार खासतौर से ऐसी अवसंरचना की शुरुआत करती है जो कि एकाधिकार पूंजी की वृद्धि में सहायक होती है और उसी प्रक्रिया में भारी आर्थिक और राजनीतिक शक्तियां संकेन्द्रित हो गई हैं । इसीलिए संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के अच्छे से अच्छे संघीय सिद्धान्त भी शक्तियों के उसी संकेन्द्रण और केन्द्रीयकरण को नहीं रोक सके हैं जो कि इंग्लैंड के परम्परा पर आधारित संविधान के एकात्मक रुप के अन्तर्गत मुहैया होते हैं ।

4. भयप्रद और ध्यान आकर्षित करने वाली बात है सत्तावादी प्रवृत्ति, जो कि हमारे देश में भी स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है । यह सत्तावादी प्रवृत्ति शास्त्रीय धारणा से निरंकुशता से पूर्णतया भिन्न है । यह सामान्य संकट अर्थात् सम्पूर्ण संकट के तीसरे चरण पर ढहती हुई पूंजीवादी प्रणाली का परिणाम है । सम्पूर्ण पूंजीवादी विश्व इस प्रक्रिया से गुजर रहा है । इसलिए यह सभी प्रकार के फासिज्म से भी अधिक खतरनाक प्रवृत्ति वाली है जिसके अन्तर्गत आधारभूत जनतंत्र का विचार, प्रतिमान और मूल्य, अधिकार और स्वतंत्रताएं कुचल गई है जो कि पहले एक बार मध्यवर्गीय लोकतंत्र के लिए नींव के पत्थर के रूप में थीं । अत: केन्द्र और राज्य के संबंधों पर प्रमुख प्रश्न यह नहीं हो सकता कि जनतांत्रिक प्रतिमानों और सिद्धान्तों, न्यूनतम प्रशासनिक तटस्थता, प्रासंगिक स्वतंत्रता और न्यायपालिका तथा शैक्षिक संस्थाओं की स्वायत्तता को कौन अपने कदमों तले कुचलेगा—केन्द्र अथवा राज्य; और यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन पूंजीवादी वर्ग और निहित स्वार्थों के लाभ के लिए राजकोषीय संसाधनों द्वारा जनसाधारण को लूटेगा—केन्द्र अथवा राज्य ।

इसलिए केन्द्र बिन्दु सामाजिक प्रगति के वास्तविक उद्देश्य और लक्ष्य, इसके स्पष्ट दिशा-निर्देश और मूलभूत जनतांत्रिक सिद्धान्त, प्रतिमान और मूल्य होने चाहिए, जिनकी उत्साहपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए ।

5. इस विशेष और आधारभूत दृष्टिकोण से हम यह सुनिश्चित करते हैं कि केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों को निर्धारित करने में निम्नलिखित को महत्वपूर्ण संगत प्रश्नों के रूप में अपनाया जाना चाहिए :

(क) प्रशासन की तटस्थता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और शैक्षिक संस्थाओं की स्वायत्तता, नागरिक स्वतंत्रताओं और नागरिकों के जनतांत्रिक अधिकारों की गारन्टी और प्रशासन में जनतांत्रिक प्रतिमानों की रक्षा होनी चाहिए चाहे केन्द्र के स्तर पर अथवा राज्यों के स्तर पर;

(ख) वितरण में और राजकोषीय संसाधनों के अन्तरण में, वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रण में तथा केन्द्र द्वारा योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद के साथ साथ वित्तीय और आर्थिक नीतियों में भी अपनाए जाने वाले पक्षपात की प्रभावी तौर पर जांच होनी चाहिए;

(ग) केन्द्र और राज्य दोनों के स्तर पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया को समाप्त करने के लिए किसी केन्द्रीय प्राधिकार में सम्पूर्ण शक्ति को निहित करने वाले सभी कानून, जो कि कभी शाही शासन के दौरान विद्यमान थे अब केन्द्र में शासक दल के साम्प्रदायिक हितों को बढ़ावा देने और सत्तावादी प्रवृत्तियों—फासिज्म को लागू करने में जिन्हें बार बार प्रयोग में लाया जाता है ऐसे सभी कानूनों को कम से कम जनतांत्रिक राज्यव्यवस्था को बनाए रखने के लिए समाप्त कर दिया जाना चाहिए;

(घ) योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, निर्वाचन आयोग, आकाशवाणी और दूरदर्शन का इस प्रकार पुनर्गठन किया जाना चाहिए कि वे विस्तृत आधार वाले और पूर्णतया स्वशासी बन जाएं । विकास के स्पष्ट उद्देश्यों को लोकतांत्रिक तरीके से निर्धारित किया जाना चाहिए अर्थात् औद्योगिकीकरण, आधारिक संरचना के सुधार और कृषि के आधुनिकीकरण द्वारा रोजगार के अवसर सृजित करने और ग्राम जीवन के सुधार, लोगों को जीवन की आधारभूत सुविधाएं प्रदान करने सम्बन्धी बातों को विकास के वास्तविक लक्ष्य बनाए जाना चाहिए ताकि निदेशात्मक सिद्धान्तों के अध्याय में दिए गए लक्ष्य और उद्देश्य मात्र पवित्र इच्छाएं ही न रहें बल्कि जनता के लिए सरकारों के वास्तविक कर्तव्य बन जाएं । संविधान में लोगों के अधिकारों के बारे में जो कुछ लिखा गया है यदि उसकी ओर दृष्टिपात किया जाए तो लोग कुछ अधिकारों और सिद्धान्तों की कोरी घोषणा से ही सन्तुष्ट नहीं हो सकते । वे चाहते है कि उनको मूर्त रूप दिया जाना चाहिए । जिस विकास से एक ओर शासक दल के हाथों धन का संकेन्द्रण हो और दूसरी ओर लोगों की परेशानियां और गरीबी बढ़े, ऐसे विकास को वे "राष्ट्रीय विकास" के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते; और

(ङ) अन्तिम किन्तु अधिक महत्व की बात है क्षेत्रीय असमानताओं और सामाजिक-आर्थिक प्रगति में असंतुलनों को खत्म किया जाना सुनिश्चित करना ताकि क्षेत्रीय संकुचित विभाजक प्रवृत्तियों को नियंत्रित किया जा सके । ऐसा करने में उसी एकल भारतीय राष्ट्रत्व के विकास की प्रक्रिया लागू करने के लिए सभी प्रकार के आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक प्रयत्न किए जाएं जो कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन से उत्पन्न हुआ था और जिसे केवल जनतांत्रिक मिले जुले समाज के रूप में बनाए रखा जा सकता है और बढ़ावा दिया जा सकता है ।

समान अधिकारों और खासतौर से कम विकसित और प्रबल राष्ट्रीयताओं की विधि सम्मत आकांक्षाओं का संरक्षण सुनिश्चित करते हुए राष्ट्रीयताओं के आपस में मिलने और उनके आत्मसात्करण को उत्साहित कर इस प्रक्रिया को सहायता प्रदान की जा सकती है ।

6. हमारे विचार में वास्तव में सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक प्रश्नों का सम्पूर्ण स्वरग्राम (गेमेट) अन्तर्निहित है और उचित जानकारी प्राप्त करने के लिए इसकी पूरी तरह से जांच अपेक्षित है जिससे केन्द्र-राज्य सम्बंधों पर असंतोष और बेचैनी को बार-बार उभार दिया जाये । केन्द्र-राज्य सम्बंध दोनों के बीच प्रशासन के कार्य सम्बंधों के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते हालांकि दोनों ही एक ही राज्य प्रणाली और प्रबल वर्ग के लिए हैं । धारिता शक्ति प्राप्त विभिन्न दलों के बीच राजनैतिक प्रतिद्वन्दिता के रूप में हो सकती है क्योंकि जो सबसे अधिक चिल्लाने वाले हैं वे राज्य के लिए वित्तीय संसाधनों में अधिक हिस्सा प्राप्त करने के बारे में ज्यादा चिन्तित दिखाई पड़ते हैं जबकि वे अभिशासन और लोगों के न कुचले हुए अधिकारों और उनकी स्वतंत्रताओं की प्रणाली में आधार-भूत जनतान्त्रिक प्रतिमान और मूल्यों के पुनर्जीवित करने, संरक्षण करने और उनके आगे बढ़ाने की मांग जोर देकर नहीं करते ।

सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार करने में और तत्संबंधी हमारे दृष्टिकोण में जो आधारभूत अन्तर आया उसके संबंध में इस टिप्पणी के साथ हम अपनी निम्नलिखित टिप्पणी में प्रश्नावली के संबंध में प्रस्तुत कुछ महत्वपूर्ण बातों को ही ले रहे हैं ।

प्रश्नावली

भाग I

भूमिका

हम इस बात को फिर से दोहराते हैं कि हमारे लिए "शक्तिशाली केन्द्र के साथ राज्यों की अधिक शक्ति या स्वायत्तता" का नारा शर्तों के विरुद्ध और बहकाने वाला है। मूलभूत मसला है कार्य करने के जनतांत्रिक तरीकों और सिद्धान्तों की रक्षा करना और इस संबंध में केन्द्र और राज्य दोनों ही समान रूप से दोषी हैं। जहां तक प्रशासनिक तटस्थता और निष्पक्षता की अवहेलना करने, निर्वाचन प्रक्रिया में निष्पक्षता न अपनाने, सापेक्ष स्वतंत्रता के बचाव और न्यायपालिका, शैक्षिक संस्थाओं और स्थानीय प्रशासनिक निकायों की स्वायत्तता, प्रेस की स्वतंत्रता और नागरिक स्वतंत्रताओं और लोगों के जनतांत्रिक अधिकारों की अवहेलना करने का संबंध है केन्द्र और राज्य दोनों ही अपराधी हैं।

हम संविधान में अभी तक रोके रखे जाने वाले अंग्रेजी कानूनों की एकक्षेत्रता वाले कुछ उपबन्धों के पूर्णतया विरोधी हैं। निर्वाचित राज्य सरकारों को हटाने संबंधी केन्द्र में निहित विशेष शक्ति संबंधी प्रश्नावली में निर्दिष्ट अनुच्छेद 356, 357 और 365 साधारणतया भारत सरकार अधिनियम, 1935 के समान अजनतान्त्रिक और निरंकुश उपबन्धों के पुनरवतरण हैं। ये उसी अधिनियम के पुनरवतरण हैं जिसके विरुद्ध उस समय राष्ट्रीय राजनैतिक मंच से गम्भीर विरोध हुआ था। ये उपबन्ध कुछ राज्यों में सरकार बनाने वाले विरोधी दलों अथवा केन्द्रीय शासक गुट की गैर-पसन्दगी वाले मुख्य मंत्री के विरुद्ध केन्द्र में शासक दल के सम्प्रदायवादी संसदीय हितसिद्ध करने की दृष्टि से बार-बार प्रयोग में लाये गये हैं। पांडिचेरी, सिक्किम, जम्मू और काश्मीर तथा आन्ध्रप्रदेश के हाल के उदाहरण इस सच्चाई के पक्के प्रमाण हैं। सभी मौकों पर राज्यपाल के पद का उपयोग हार्सट्रेडिंग द्वारा विधानसभाओं के सदस्यों को तोड़ने के लिए किया जाता था। हम स्वतंत्र भारत में राज्यपाल के पद और उसके द्वारा निभाई गई भूमिका पर अपनी टिप्पणी आरक्षित रख रहे हैं क्योंकि प्रश्नावली के एक अलग अध्याय में इस पर चर्चा की जाएगी।

यहां हमारा यह भी विचार है कि पहले निर्दिष्ट अनुच्छेदों की तरह अनुच्छेद 254 और 256 राज्य सरकारों को अनावश्यक रूप से केन्द्र पर निर्भर बनाते हैं जहां तक उनके अपने कानून लाने और शाही प्रशासनिक स्कीम की बपौती के अनुपालन करने का सम्बन्ध है। यह भी याद दिलाया जा सकता है कि इन उपबन्धों का भी 1930 में राष्ट्रीय राजनैतिक मंच से काफी विरोध हुआ था। इन्हें हटा दिया जाना चाहिए।

तथापि हम न्यायालय की कार्यवाहियों और संसद तथा विधान मण्डलों के अधिनियमनों में अंग्रेजी भाषा को बनाये रखने की अनिवार्यता वाले अनुच्छेद 348 और 349 को बनाये रखने के पक्ष में हैं। हम प्राथमिक कक्षाओं से लेकर उच्चतर कक्षाओं तक के अध्ययन के लिए शैक्षिक प्रणाली में और प्रशासन के सभी शासकीय मामलों में द्विभाषा सूत्र-मातृभाषा और अंग्रेजी बनाये रखने के पक्ष में हैं।

जहां तक प्रादेशिक परिवर्तन लागू करने में और पुराने राज्यों से नये राज्य बनाने में अपनायी जाने वाली रीति का सम्बन्ध है हम सामान्य रूप से और आगे विभाजन करने का विरोध करते हैं। हमारे विचार में हमारे जैसे बहुराष्ट्रीयता वाले राज्य में बड़ी राष्ट्रीयताओं द्वारा नियन्त्रित लघु राष्ट्रीयताओं को वृद्धि और उनके विकास के अधिकारों को संरक्षित रखने की समस्या का उत्तर विखण्डन नहीं है। यदि जन आन्दोलन अथवा अल्पमत राष्ट्रीयता वाले व्यक्तियों द्वारा निर्यंत्रित वैध जनतांत्रिक जनआन्दोलन में अल्पमत नियन्त्रण अभिव्यक्त हो तो उनके लिए संघ के भीतर एक अलग राज्य की संरचना के लिए निर्णय "अल्पमत आयोग" अल्पमत आयोग द्वारा किये गये जनमत द्वारा किया जाना चाहिए। "अल्पमत आयोग" उस प्रयोजन के लिए गठित किया जा सकता है अथवा अल्पमत राष्ट्रीयता वाले लोगों के अधिकारों और अति-राष्ट्रीयतावादी दृष्टिकोण से मुक्त वैध आकांक्षाओं के रक्षक के रूप में एक स्थाई निकाय हो सकता है। अल्पमत आयोग का गठन उचित रूप से किया जाना चाहिए जिसमें सभी राष्ट्रीयताओं का प्रतिनिधित्व हो और जो संवैधानिक शक्तियों से युक्त हो ताकि इसके निष्कर्ष और इसकी सिफारिशें केन्द्रीय और संबंधित राज्य सरकारों के लिए बाध्यकारी हों।

भाग II

विधायी संबंध

हम "सार्वजनिक हित" के नाम पर राज्य के अधिकारों और उसके प्रशासनिक क्षेत्र पर केन्द्र के बढ़ते हुए अतिक्रमण का दृढ़ता से विरोध करते हैं। राज्य सरकारों को केन्द्र में प्राधिकार प्राप्त अधिकारियों के निर्णयों और कार्यों का अनुमोदन करने के लिए नियत ढर्रे पर चलने वाले व्यक्ति की स्थिति तक नहीं घटाया जा सकता।

हम "राष्ट्रीय रक्षक" जैसा कोई पुलिस, व परासैन्य बल बनाने का विरोध करते हैं जिसे "कानून व्यवस्था" बनाए रखने के नाम पर किसी भी राज्य में भेजा जा सकता हो यथार्थत: कानून व्यवस्था बनाए रखने का मसला राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार में आता है। प्रशासन में सेना के अधिष्टापन को अवश्य ही रोक दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार से हमारा यह भी दृढ़ विचार है कि राज्य के विधेयकों को राष्ट्रपति महोदय के अनुमोदनार्थ दो मास से अधिक की अवधि के लिए नहीं रोके रखा जाना चाहिए। हमारा यह भी मत है कि यदि किसी समवर्ती विषय पर किसी राज्य का विधेयक केन्द्र के विधेयक से पहले आता है तो अक्सर उसे टाल दिया जाता है। यथार्थत: राज्य के विधेयक का पहले ही अनुमोदन किया जाना चाहिए। उस पर केन्द्र द्वारा अधिनियमन किए जाने के बाद उसे पुनर्विचार के लिए राज्य विधान मंडल को भेज दिया जाएगा कि क्या वह बाद वाले को ध्यान में रखते हुए विधेयक में कोई परिवर्तन या संशोधन आवश्यक समझता है। परिशोधन की स्थिति में परिशोधित विधेयक राज्य में लागू किया जाएगा।

हमारा यह भी विचार है कि समवर्ती विषयों के मामले में यदि केन्द्र किसी विधेयक को लाने का निर्णय करता है तो उसे अन्तिम रूप दिए जाने और संसद में रखे जाने से पहले राज्य विधानमंडलों के विचार जानने के लिए सभी राज्यों को ड्राफ्ट फार्म में अवश्य परिचालित किया जाना चाहिए। राज्यों को इस प्रकार का अधिकार अवश्य दिया जाना चाहिए कि वे मुद्रित दस्तावेजों के माध्यम से संसद में अपने संबंधित विचारों की रक्षा अवश्य कर सकें।

हमारा यह भी विचार है कि केन्द्र को राज्य के विषयों पर कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं होगा चाहे विषय अस्थायी या स्थायी प्रकृति के हों या "आवधिक समीक्षा" के लिए हों। हालांकि हमारे विचार में यह सारहीन बात है कि सप्तम अनुसूची के अनुसार किसी विषय विशेष पर केन्द्र को ही विचार करना है अथवा राज्य को क्योंकि अन्तत: जन साधारण के हितों को बढ़ावा न देकर पूंजीवादी प्रणाली को ही बढ़ावा दिया जाना है। फिर भी जनतांत्रिक प्रतिमान से हम सुझाव देते हैं कि बदलते हुए परिवेश को ध्यान में रखते हुए सातवीं अनुसूची की तीनों सूचियों के अधीन विषयों का पूर्णतया पुन: विभाजन कर लिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, बैंकिंग और इन्श्योरेन्स (मद 45, 47) और सभी बड़े उद्योग, खाने, श्रमिक वर्ग और खानों की सुरक्षा के विनियम, अन्तर्राज्य नदियों और नदी घाटियों के विनियम और विकास, दिखाने के लिए (शो) चलचित्र के चित्र के अनुमोदन की मंजूरी (मद 52, 54, 55, 56, 60) जैसी राज्यों के भीतर कार्यरत वित्तीय संस्थाओं के कार्य करने और उनकी निवेश नीति में राज्य सरकारों प्रभावी तौर पर अपना पक्ष रखने का अवसर होना चाहिए। नदी जल, शैक्षिक संस्थाओं और चलचित्र सहित सांस्कृतिक माध्यम के प्रयोग और प्रबन्ध के बारे में हमारा भिन्न विचार है। तथापि हमारा विचार है कि शिक्षा राज्य का विषय होना चाहिए हालांकि राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के सामान्य मार्ग निर्देश, नियन्त्रण और पर्यवेक्षण के अधीन होना चाहिए जैसा कि जिसके सम्बन्ध में इसके बाद आगे हमने सुझाव दिया है।

संक्षेप में, उत्पादक प्रणाली की आधारभूत उलझनों और संविधान के आधारभूत दृष्टिकोण में इसके प्रतिबिम्ब को छोड़कर केन्द्र के हस्तक्षेप और अतिक्रमण के रूप में राज्य सरकारों के लिए और कोई व्यवधान नहीं होना चाहिए।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

स्वतंत्र भारत में राज्यपाल के पद, उसकी नियुक्ति और भूमिका में वे ही उद्देश्य, प्रयोजन और तरीके अपनाये जाते हैं जो कि अंग्रेजी शासन के दौरान भारत में अपनाये जाते थे। राज्यपाल के पद के प्रयोजन पर ही प्रश्नचिह्न लगा हुआ है अर्थात् राज्यपाल का पद बनाए रखने की कोई आवश्यकता भी है। क्या यह पद शासक दल के अधिवर्षिता प्राप्त राजनीतिज्ञों या केन्द्र में शासक दल के एजेन्ट के रूप में किसी नौकरशाह को पुरस्कार देना नहीं है। यह पद आपत्तिजनक है, इसे समाप्त किया जाना चाहिए। यदि इसका कार्य मात्र केन्द्र या राज्य सरकार की हां में हां मिलाने का है तब तो यह बड़ा ही महंगा जीरो है इसलिए भी इसे समाप्त किया जाना चाहिए। इसलिए स्वाभाविक रूप से जिस अनुच्छेद 154 (1) के अन्तर्गत राज्यपाल में राज्य की "कार्यकारी शक्तियां" निहित है उसे अनुच्छेद को ही समाप्त किया जाना चाहिए। क्योंकि "कार्यकारी शक्ति" का विधिक लक्ष्यार्थ काफी व्यापक है जिसके अनुसार वैधानिक या न्यायिक किस्म के मामलों में हिस्सा लेना। राज्य विधान सभा बुलाने, विघटित करने और उसका सत्रावसान करने की राज्यपाल की शक्तियों से सम्बन्धित अनुच्छेद 179(1) और (2) भी अवश्य समाप्त किया जाना चाहिए। संसदीय निर्वाचन के बाद निर्वाचित विधान सभाओं का इस तर्क पर विघटन किए जाने का हम विरोध करते हैं कि संसद में बहुमत प्राप्त दल से भिन्न दल राज्य सरकारों की शक्ति प्राप्त किए हैं।

भाग IV

प्रशासनिक सम्बन्ध

हम अनुच्छेद 256, 257 और 356 के प्रति अपना विरोध पुनः दुहराते हैं और उन्हें हटाए जाने की मांग करते हैं। यदि दंगे अथवा गुप-चुप हिंसा की वारदातें तीन महीने से अधिक समय से चल रही हों तो राज्य विधान मंडल को विधान मंडल के स्तर पर या संसद में संकल्प पारित करके विघटित किया जा सकता है और उसके बाद तीन महीनों के भीतर निश्चित रूप से चुनाव करा दिए जाने चाहिए। इस अन्तरिम अवधि के दौरान संबंधित राज्य का प्रशासन चलाने के लिए केन्द्र संसद के अनुमोदन से प्रशासकों के एक बोर्ड की नियुक्ति कर सकता है जिसमें ज्यादा से ज्यादा पांच सदस्य होने चाहिए तथा वे उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों, लब्ध प्रतिष्ठ शिक्षाविदों, अर्थशास्त्रियों और प्रशासन के सेवानिवृत्त व्यक्तियों में से ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जिनका रिकार्ड बेदाग हो। एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग होना चाहिए तथा जिसका अलग से कार्यालय हो और जिसमें काम करने वाले व्यक्तियों का निर्वाचन कराने की निर्वाचन सूचियां तैयार करने का पूरा उत्तरदायित्व हो और आयोग वित्त, शान्ति बनाए रखने वाले बल आदि जैसे किसी मामले में केन्द्र या राज्य पर निर्भर न हो। निर्वाचन प्रक्रिया में किसी प्रकार की भ्रष्ट पद्धति अपनाने के लिए दोषी पाये गए व्यक्ति को कड़ा दंड दिया जाना चाहिए। निर्वाचन संबंधी सभी प्रकार के विवादों को शीघ्रता से निपटाने के लिए अलग से निर्वाचन अधिकरण स्थापित किया जाना चाहिए।

हमारा विचार है कि प्रश्न सं० 4.7 में यथा गणनीय कृषि मूल्य आयोग, केन्द्रीय जल आयोग जैसे सभी केन्द्रीय निकायों का गठन ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए जो विचारों की स्वतंत्रता के लिए परखे हुए और ख्यातिप्राप्त हों तथा जिनके चरित्र पर कोई धब्बा न हो, जिनमें शिक्षा, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान के संबंधित क्षेत्रों के लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्ति, ख्याति प्राप्त न्यायाधीश और तकनीकी ज्ञान और पृष्ठभूमि रखने वाले प्रशासक हों। उन आयोगों में राज्यों के विचारों के प्रतिनिधित्व के लिए राज्य परिषद का गठन करके प्रभावी तौर पर किया जा सकता है। राज्य परिषद के निर्णय या उसकी सिफारिश पर पूरा किया जाना चाहिए और आमतौर पर उन निकायों द्वारा स्वीकार कर लिया जाना चाहिए यदि किन्हीं विशेष कारणों से स्वीकार नहीं किया जाता तो उन कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए। मतैक्य के आधार पर गठित निकायों और राज्य परिषद के बीच विचारों की विभिन्नता के मामले को योजना आयोग को भेजा जाना चाहिए जिसका पुनर्गठन किया जाए।

अन्तरों को दूर करने, उत्तेजनाओं को समाप्त करने और एकीकृत विकास के लिए अन्तर्राज्यीय और क्षेत्रीय परिषद के गठन का हम प्रस्ताव करते हैं। क्षेत्रीय विवादों को निपटाने, विशेष प्रकार की समस्याओं, और कठिनाइयों को दूर करने के लिए सिफारिशें करने, आगत और उत्पादों तथा साथ ही साथ करों और शुल्कों के मूल्य का मानकीकरण करने, कृषि, उद्योग और आधारित संरचना संबंधी विकास, श्रम आदि की नियमित गतिशीलता के लिए क्षेत्रीय समन्वित कार्रवाई करने का क्षेत्रीय परिषद को अधिकार होगा। ये सभी सिफारिशें योजना आयोग को भेजी जाएंगी जिसमें नीति निर्माण करने का कार्य निहित है और राष्ट्रीय विकास परिषद को भी भेजी जाएंगी जोकि एक कार्यान्वयन निकाय है।

योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद दोनों ही स्वायत्तशासी निकाय होने चाहिए जिनकी नियुक्ति उन पैनलों से की जाएगी जिन पर राज्य विधानमंडलों द्वारा भी विचार कर लिया गया होगा और दोनों की परामर्शदातृ समितियों में राज्य और केन्द्र दोनों से प्रतिनिधित्व होगा। योजनागत व्यय की अग्रता का निर्धारण क्षेत्रीय परिषदों की सिफारिशों के आधार पर योजना आयोग द्वारा किया जाएगा जोकि कृषि के आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, आधारिक संरचना के सुधार और इन सबके माध्यम से लाभप्रद रोजगार के अवसर सृजित करने पर किया जाएगा। पिछड़े हुए क्षेत्रों में और जिन राज्यों में बेरोजगार की समस्या सर्वाधिक हो, उनमें विकास के लिए विशेष ध्यान दिया जाए। सभी नियुक्तियां राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन रोजगार केन्द्रों के माध्यम से की जाएं और सभी भारतीय नागरिकों को निष्पक्ष परीक्षा में समान अधिकार होगा।

योजना आयोग के अनुमोदन के अनुसार राज्य अथवा क्षेत्रीय विकास के लिए विशिष्ट योजना और स्कीमें केन्द्र और राज्य / क्षेत्र द्वारा क्रमशः 70 : 30 के अनुपात में पूरी की जाएंगी। योजना राशि योजना आयोग के माध्यम से सीधे ही दी जानी चाहिए और वह राशि यथास्थिति क्षेत्रीय परिषद या राज्य की सहायता से योजना या स्कीम के कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद को दी जाएगी। उस प्रयोजन के लिए क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के साथ क्षेत्रीय विकास परिषद का भी गठन किया जाए। इस प्रक्रिया के माध्यम से क्षेत्रीयवाद की अहितकर प्रवृत्ति का डटकर मुकाबला किया जाएगा और विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर किया जाएगा और केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा बहुमूल्य संसाधनों के दुरुपयोग को भी समाप्त किया जाएगा। योजना और विकास सम्बन्धी एजेंसियों को केन्द्र और राज्यों में शासन करने वाले राजनीतिक दलों की स्थिति और उनके अधिकार से उत्पन्न भ्रष्टाचार से मुक्त किया जाएगा।

यह सभी जानते हैं कि सिविल सेवाओं को ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों द्वारा "स्टील फ्रेम" के रूप में बनाया गया था। सिविल सेवाओं के अधिकारी चाहे केन्द्र में या राज्यों में कार्यरत हों उनका उद्देश्य लोगों का अमानुषिकता, क्रूरता और निष्ठुरता से शोषण और दमन करना रहता था और यहां तक कि साम्प्रदायिक, संकीर्ण और जातीय आधार पर लोगों में दरार डालना और उनमें आपसी फूट पैदा करना। इन सेवाओं के अधिकारियों में लोक सेवक जैसी नहीं बल्कि शासक जैसी मानसिकता को पोषित किया गया था। जनतांत्रीयकरण की अनुपस्थिति में स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान और उसके बाद सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्षेत्रीयता, स्थानीयता, साम्प्रदायिकता और जातिवाद की भावना के साथ साथ उसी प्रकार की मानसिकता इन सेवाओं में भी विद्यमान है।

केन्द्र और राज्यों के वर्तमान शासक जो सभी प्रकार के साम्प्रदायिक, जातिगत और स्थानीय दंगों आदि तथा भ्रष्टाचार जोकि सर्वत्र व्याप्त हो चुका है और एक गंभीर राष्ट्रीय समस्या बन चुका है इन सबके मुख्य रचयिता हैं वे इस नौकरशाही की व्यवस्था में सिविल सेवाओं को मुख्य उपकरण के रूप में प्रयोग में ला रहे हैं। औद्योगिक नौकरशाही मिलिट्री काम्पलेक्स ने असैनिक समाज का स्थान ले लिया है और यही काम्प्लेक्स देश में शासन कर रहा है तथा देश को सभी प्रकार के पतन की ओर ले जा रहा है। क्या आयोग इस सामाजिक बुराई के पूरे मसले की गहराई से खोज करने को तैयार है? इसलिए राज्य संवर्ग के या केन्द्र संवर्ग के सिविल अधिकारी जब निहित हितों की सेवा में लगे हों और इससे भी अधिक जब वे मौजूदा नौकरशाही-औद्योगिक-मिलिट्री काम्प्लेक्स के चंगुल में हों जहां समनुरूपता को

सबसे बड़ा गुण समझा जाता हो क्या ऐसी स्थिति में कोई ईमानदार अधिकारी सही मायनों में लोगों की भलाई के काम करने में अपनी ईमानदारी और एकनिष्ठता बनाए रख सकता है ?

हम केन्द्रीय शिक्षा आयोग, अखिल भारतीय नदी-जल आयोग, आकाशवाणी और दूरदर्शन तथा चलचित्र और अन्य सांस्कृतिक माध्यम के लिए केन्द्रीय सांस्कृतिक बोर्ड जैसे स्वायत्तशासी निकायों के गठन का भी प्रस्ताव करते हैं। इन सभी को कार्य करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। हालांकि शिक्षा राज्य का विषय है फिर भी इसकी विषयवस्तु और पाठ्यविवरण का सार सम्पूर्ण देश में एकल होना चाहिए। शैक्षिक और अनुसंधान केन्द्र शैक्षिक क्रियाकलापों के क्षेत्र में स्वायत्तशासी और स्वतंत्र होने चाहिए और उनका मार्गदर्शन शिक्षा आयोग द्वारा किया जाना चाहिए जिसका गठन विशिष्टताप्राप्त शिक्षाविदों, विद्वानों और शैक्षिक क्षेत्र में अद्वितीय रिकार्ड रखने वाले व्यक्तियों से होना चाहिए। नदी आयोग सम्पूर्ण नदी-जल संसाधनों की रक्षा करेगा और उनका वितरण राज्यों की वास्तविक जरूरत के अनुसार करेगा और इनको प्रदूषण से मुक्त रखने का भी काम करेगा।

हम एक ऐसी प्रेस परिषद के बनाए जाने का भी प्रस्ताव करते हैं जिनका निर्वाचन कार्यरत पत्रकारों और सम्पादकों द्वारा किया जाना चाहिए। यह परिषद सनसनीखेज पत्रकारिता के विरुद्ध एक निश्चित आचार संहिता तैयार करेगी और इसे यह भी अधिकार होगा कि इस आचार संहिता का उल्लंघन किए जाने के विरुद्ध एवं केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा प्रेस के विरुद्ध भेदभाव बरते जाने अथवा किसी प्रकार का दबाव डाले जाने के विरुद्ध उपाय भी सुझाये।

भाग V

वित्तीय संबंध

सबसे पहली बात जिसकी ओर संकेत किया जाना है वह है कि अनुच्छेद 275 के अनुसार करों के हिस्से और अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत सहायता अनुदान का अन्तरण करके केन्द्रीय सहायता पर अभी भी राज्य की सम्पूर्ण निर्भरता का प्रतिमान विद्यमान है, आधारभूत धारणा अभी भी यही है कि राजकोषीय शक्तियों पर केन्द्र का एकाधिकार होगा और राज्य चाहे केन्द्र के कर संसाधनों के प्रति कितना भी योजदान करें उन्हें केन्द्र से जो कुछ मिलेगा उसी पर संतोष करना पड़ेगा। वास्तव में अनुच्छेद 282 जोकि मूलतः प्राकृतिक आपदा जैसी असाधारण स्थिति के मामले में राज्यों को केन्द्र द्वारा दिए जाने वाले विशेष अनुदान के सम्बन्ध में था उसने अनुच्छेद 275 के महत्वको अधिक्रमित कर दिया है जिसके अन्तर्गत विभाज्य पूल से केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों के वितरण के लिए प्रावधान है। राज्यों की वास्तविक आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हुए छोटी-छोटी संसदीय प्रतिद्वन्दिता में केन्द्र के स्तर पर इस विशेषाधिकार का जितना अधिक दुरुपयोग किया गया है उतना ही अधिक यह अनुच्छेद भयाकुलता का स्रोत बन गया है।

संसाधनों में राज्यों का मुख्य स्रोत अब तक आय करों में हिस्सा होना था। ह्रास में कर राजस्व, अधिभार और सीमा शुल्क पर केन्द्र की बढ़ती हुई निर्भरता और नियंत्रित मूल्यों में बढ़ोतरी ये दोनों ही राज्य को विभाज्य पूल से अच्छा-खासा हिस्सा प्राप्त करने से वंचित करते हैं। वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों को विभाज्य पूल से केवल 25 से 27 प्रतिशत तक ही मिलता है। परिणामस्वरूप राज्य केन्द्रीय सरकार के भारी कर्जदार हो गए हैं—कर्ज 1978-79 में 18,785 करोड़ रुपये था जोकि 1983-84 के अन्त में बढ़कर 37,406 करोड़ रुपये हो गया है। यहां तक कि आयकरों में हिस्सा होने के मामले में राज्यों को संघ की परिलब्धियों पर मिलने वाले करों और वसूलियों तथा अर्थदंडों पर मिलने वाली ब्याज से भी अनुचित रूप से वंचित किया जा रहा है। उन्हें राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रों आदि में किए गए पूंजी निवेश पर होने वाली राजकोषीय आमदनी से भी वंचित किया जा रहा है।

इस निराशाजनक स्वरूप को देखकर हम राजकोषीय प्रशासन में निम्नलिखित पुनर्व्यवस्थापनों का प्रस्ताव करते हैं :—

(क) करों में द्विगुणीकरण का विलेपन।

(ख) निगम कर मासी शुल्क, आयकर पर अधिभार और कृषि संबंधी आयकर आदि जैसे करों को केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाया जाना चाहिए और राज्यों की वास्तविक आवश्यकता के सिद्धान्त पर उनको विभाजित किया जाना चाहिए।

(ग) राज्यों द्वारा करों का अधिग्रहण किया जाना चाहिए और उन पर निर्धारित केन्द्रीय कोटा को केन्द्रीय सरकार को दे देना चाहिए और यदि करों का अधिग्रहण कोटा से अधिक हो जाए तो वह राज्यों को मिलना चाहिए।

(घ) केन्द्र और राज्य दोनों द्वारा किए गए योजनाबद्ध व्यय और स्कीमों पर किए गए व्यय की मंजूरी योजना आयोग द्वारा दे दी जानी चाहिए तथा तत्संबंधी कार्यान्वियन का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय विकास परिषद का होगा।

(ङ) सभी प्रकार के व्यय की संवीक्षा राष्ट्रीय लेखापरीक्षा तंत्र द्वारा की जानी चाहिए।

(च) केन्द्र से सहायता अनुदान या राज्यों के ऐसे कर्ज जिनके लिए केन्द्र गारंटीकर्ता हो ऐसे राज्यों को दे दिए जाने चाहिए जोकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली आदि के माध्यम से आम जनता को नियंत्रित मूल्य पर अनिवार्य जिन्सों के वितरण के लिए राज्य व्यापार जैसी कोई खास कल्याणकारी स्कीम प्रारंभ कर रहे हों।

कर नियंत्रण और काले धन में जोखिमपूर्ण वृद्धि के नियंत्रण के मामले में तथा ऐसी सार्वजनिक कल्याण की स्कीमों के मामले में हम राष्ट्रीय दृष्टिकोण चाहते हैं जोकि जनवादी स्वरूप की न हों और जिन पर अपव्यय हो रहा हो। हम आशा करते हैं कि इस पुनर्व्यवस्था से वर्तमान सामाजिक-आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत यथासंभव अच्छी तरह से निर्देशित जन समर्थक कदमों की अत्यावश्यकता और महत्व को सामने लाकर निदेशात्मक सिद्धान्तों के प्रति कुछ न्याय हो सकता है।

(छ) आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के वित्तीय संसाधनों से ऋण परिषद की स्थापना की जानी चाहिए किन्तु इसका नियंत्रण स्वशासी योजना आयोग द्वारा किया जाना चाहिए किन्तु इसके द्वारा मंजूर किए जाने के बाद ही राज्यों की विकास स्कीमों के लिए ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद का पुनर्गठन और हमारे द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार अन्तर्राज्यीय और क्षेत्रीय परिषदों का गठन करके राष्ट्रीय आर्थिक परिषद के प्रस्तावित विचार पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

हम पुनः जोर देकर कहते हैं कि भली-भाँति निर्देशित सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए केन्द्र और राज्य दोनों के स्तर पर हानिप्रद व्यय के बन्द करने में होने में होनेवाले विलम्ब को सहन नहीं किया जाए। चौंकाने वाली दर पर अर्थ-व्यवस्था का सैन्यीकरण किये जाने और कृषि और औद्योगिक पूंजीपतियों को मूल्यवान संसाधन बदली करने के लिए हम केन्द्र को ही दोषी ठहराते हैं। आर्थिक सहायता का संबंध उत्पादन की प्राप्ति और कर के संग्रहण से होना चाहिए अन्यथा कर अदा न करते हुए और आर्थिक सहायता आदि प्राप्त करके उन्हें दुहरा लाभ होगा जोकि राजकोषीय न्याय और मान्यता के सभी सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं।

हम योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद जैसे स्वायत्तशासी निकायों के पक्ष में जिनके पास केन्द्र और राज्य दोनों की सरकारों के व्यय के तरीके पर नियंत्रण रखने की शक्ति हो।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

बहुत से प्रश्नों को पहले ही सम्मिलित कर लिया गया है। इसके अतिरिक्त हम निम्नलिखित के भी पक्ष में हैं :—(1) राज्य की योजनाओं के माध्यम से कार्यान्वित की जाने वाली एकीकृत राष्ट्रीय योजनाएं; (2) राष्ट्रीय योजना

इस प्रकार से बनाई जाए कि उसका रुख कृषि के आधुनिकीकरण; देश के औद्योगिकीकरण और बेरोजगारी की संकटपूर्ण समस्या से निपटने की ओर हो; (3) राज्य की योजना के प्रारूपण में पहल राज्यों को सम्मिलित करके होनी चाहिए, प्रारूपण क्षेत्रीय परिषद, और योजना आयोग द्वारा अनुमोदित हो, विकास, बेरोजगारी और सर्वसाधारण के हित में प्राकृतिक संसाधनों और औद्योगिक संभावनाओं के सर्वाधिक उपयोग में क्षेत्रीय असन्तुलनों को दूर करते हुए अग्रता; (4) राज्यों में योजनागत व्यय के लिए निधियों के आबंटन की मौजूदा कसौटी के अन्तर्गत श्रमिक स्थानान्तरण के कारण रोजगार के अवसरों पर दबाव और कच्चे सामान आदि के निकटस्थ होने के कारण औद्योगिक आयासों को होने वाले स्वाभाविक फायदों को ध्यान में रखकर वास्तविक जरूरतों को हिसाब में नहीं लिया जाता है। वास्तव में संघ राज्य क्षेत्र में लगभग दस औद्योगिक केन्द्र विकसित हो गए हैं। इसलिए कम विकसित क्षेत्रों में औद्योगिक विकासों की व्यवस्थाओं और औद्योगिक क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को पूरा करने के बीच सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता है। मुख्य प्रश्न विकास की अग्रताओं को स्थापित करने का है जिसमें रोजगार के अवसर उपलब्ध करने वाले सभी महत्वपूर्ण पहलू और भले सुसंस्कृत जीवन की आवश्यक जरूरतों के प्रावधान सम्मिलित होने चाहिए। इसलिए हम चाहते हैं कि योजना आयोग के माध्यम से सभी प्रकार का योजनागत खर्च किया जाए तथा योजना आयोग का पुनर्गठन ऊपर बताए अनुसार किया जाए तथा राष्ट्रीय लेखापरीक्षा प्रणाली के माध्यम से संभावित चोरी पर अंकुश रखा जाए। दक्षता पर बोनस के तत्व, योजनागत व्यय के सफलतापूर्वक राज्यों द्वारा कार्यान्वयन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और ऐसी अतिरिक्त परियोजनाओं के साथ सौंपा जाना चाहिए जिन्हें ऐसी केन्द्रीय निधि या केन्द्रीय ऋण परिषद द्वारा वित्तपोषित किया जा सकता हो जो राष्ट्रीय योजना के उद्देश्यों से महत्व की हों।

हमारा यह भी विचार है कि सभी औद्योगिक आगतों पर भाड़ा प्रभार और शुल्क की समानता होनी चाहिए जिससे कि उत्पादों की लागत में असमानता को दूर किया जा सके जोकि एक बड़ी अड़चन है और साथ ही साथ राज्यों के क्षोभ का एक कारण भी है।

हम जो कुछ महसूस करते हैं वह न तो इतना सहकारी संघवाद है और न जनसाधारण पर अधिक बोझ लादने वाली बात है जिसके अन्तर्गत उठाए गए जनवादी कदमों पर अपव्यय किया जाए बल्कि यह केन्द्रीयकृत योजना है जोकि राज्यों की सिफारिशों पर आधारित होनी चाहिए और जो भलीभांति से निर्देशित उद्देश्यों और अग्रताओं के पूरा करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद और राष्ट्रीय लेखापरीक्षा के पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन राज्यों के माध्यम से कार्यान्वित की जाए। इन उत्तरदायित्वों के पूरा करने में राज्यों के बीच प्रतियोगिता का तत्व राज्यों में व्याप्त असन्तोष को दूर करेगा, प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढ़ायेगा तथा गैर निष्पादन आदि के लिए उन्हें प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराएगा और इससे भी अधिक केन्द्र में शासक दल के स्वार्थपूर्ण राजनैतिक उद्देश्यों से प्रशासन में केन्द्रीय प्राधिकारियों द्वारा किए जा रहे पक्षपात का दोषपूर्ण प्रवृत्ति को दूर करेगा। जिन दलों के पास शासकीय अधिकार हैं उनके बीच की राजनैतिक प्रतिद्वन्दिता को अत्यन्त आवश्यक जन समर्थक कार्यों की वास्तविक उपलब्धि की ओर मोड़ा जा सकता है।

भाग VII

विविध

देश के औद्योगिक विकास के मामले में किसी प्रकार के संकुचित और पक्षपातपूर्ण रुख को नहीं पनपने देना चाहिए। यदि पश्चिमी बंगाल में पेट्रोकेमिकल या इलेक्ट्रानिक उद्योग स्थापित किया जाना इसके सीमान्त राज्य होने का कारण देकर केन्द्र द्वारा रद्द कर दिया जाता है तो क्या केन्द्र में शासक दल के संकुचित राजनैतिक दृष्टिकोण द्वारा निर्देशित पक्षपातपूर्ण व्यवहार का कोई अन्य संभावित उदाहरण हो सकता है। अतः प्रश्न उठता है कि योजनाबद्ध विकास के मामले में प्राधिकार कहां होना चाहिए, हम पुनः जोर देकर कहते हैं कि यह प्राधिकार स्वशासी योजना आयोग के पास होना चाहिए। राष्ट्रीय योजनाबद्ध विकास राज्य संबंधी योजना के माध्यम से आना चाहिए जोकि योजना आयोग द्वारा अनुमोदित हो। राज्यों को बड़ी बड़ी स्कीमें दी जानी चाहिए। हमारे द्वारा सुझाई गई प्रणाली के अन्तर्गत संसाधन जुटाने का प्रश्न राज्यों पर छोड़ दिया जाना चाहिए, इस संबंध में प्रतिबन्ध का कोई सवाल नहीं हो सकता। केन्द्र के असहायता दृष्टिकोण के कारण राज्यों के अल्पविकास का प्रश्न नहीं उठेगा यदि केन्द्रीकृत योजना पूरी करने के लिए राज्य के स्तर पर पहल किए जाने संबंधी विकेन्द्रीकरण की संशोधित प्रणाली को अपवाद के रूप में नहीं बल्कि सिद्धान्त रूप में अपना लिया जाता है। अपेक्षाकृत इससे राज्य प्रशासन द्वारा धनिक वर्ग से कर संग्रहण में अधिक कार्यकुशलता आयेगी क्योंकि इसकी सफलता पर ही अलग-अलग राज्य (खासतौर से औद्योगिक दृष्टि से विकसित) भारी निवेश के कार्य प्रारंभ कर सकेंगे औद्योगिक रुप से अल्प-विकसित राज्यों के बारे में केन्द्रीयकृत औद्योगिक योजना पहले बताए अनुसार विशेष सहायता-अनुदान के माध्यम से या केन्द्रीय ऋण परिषद से प्राप्त ऋण संबंधी संसाधनों की सहायता बनाई जाए।

भाग VIII

अन्य टिप्पणियां

हमारा विचार है कि उत्पादन की तकनीक में पिछड़ेपन तथा सिंचाई और विपणन संबंधी सुविधाओं में असमानताओं को दूर करने में विशेष सावधानी बरतकर तथा मजदूरी और उत्पादों की कीमत में और लोगों के द्वारा की जाने वाली प्रत्यक्ष खपत के लिए तथा औद्योगिक खपत के लिए मानकीकरण सुनिश्चित करके कृषि केन्द्रीय योजना से विकसित की जानी चाहिए। कर राजस्व का एक बड़ा स्त्रोत श्रेणीकृत कृषि आयकर वांचू समिति की सिफारिशों के बावजूद अनदेखा पड़ा है। इसे लागू किया जाना चाहिए और अन्य करों की तरह इसके संग्रहण का उत्तरदायित्व राज्यों को दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय योजना के माध्यम से कृषि और उससे संबंधित कार्यकलापों का विकास इस प्रकार किया जाना चाहिए कि आमदनी में असमानताएं दूर हों और ग्रामीण बेरोजगारों के लिए लाभप्रद रोजगार के अवसर अधिक पैदा हों।

उत्पादकों को उचित मूल्य की गारंटी के लिए और सार्वजनिक वितरण नेटवर्क के माध्यम से लोगों को खाद्य सामग्री और खपत की अनिवार्य मदें प्रदान करने के लिए राज्य विपणन सोसाइटियों के माध्यम से कृषि उत्पाद प्राप्त करने के उद्देश्य से राज्यों को शक्ति और संसाधनयुक्त बनाया जाए।

राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अन्तर्गत शैक्षिक संस्थाएं चलनी चाहिए। प्रशासन की दृष्टि से ये स्वायत्तशासी हों। चाहे ये राज्य के स्तर पर हों अथवा केन्द्र के स्तर पर किन्तु सरकार के हस्तक्षेप से पूर्णतया मुक्त होनी चाहिए। विषय वस्तु की एकरूपता और द्विभाषा सूत्र मातृभाषा और अंग्रेजी के आधार पर सभी विशेष योग्यताप्राप्त शिक्षाविदों, राजनैतिक दलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, विद्वानों आदि के सुझावों और मतैक्य के राष्ट्रीय शैक्षिक आयोग द्वारा एक राष्ट्रीय शैक्षिक नीति बनाई जानी चाहिए। मस्तिष्क का विकास इस प्रकार से हो कि जिसका झुकाव तर्कसंगत की ओर हो और साहित्य के अनिवार्य अध्ययन के माध्यम से मानवतावादी मूल्य भी मन में बैठ जाएं। एक भारतीय राष्ट्रत्व की भावना राष्ट्रीयता या उप-राष्ट्रीयता संबंधी संस्कृतियों और परम्पराओं की विविधताओं के बीच मन में बैठाई जाए।

हमने अपने सुझाव दे दिए हैं जोकि सर्वागपूर्ण न होकर मात्र संकेतात्मक हैं, जनतांत्रिक प्रतिमानों और मूल्यों की रक्षा संबंधी अपनी मांग को दुहराते हैं जोकि हमारे विचार से आज के परिप्रेक्ष्य में भारतीय राज्य व्यवस्था के भविष्य के बारे में चिन्तित सभी सद् उद्देश्यों वाले व्यक्तियों और निकायों के लिए प्रमुख महत्व की है।

हु० . . . .

महासचिव

GANDHI KAMARAJ NATIONAL CONGRESS

MEMORANDUM

காந்தி காமராஜ் தேசிய காங்கிரஸ் தலைவர் திரு. குமரிஅனந்தன்
11.10.1984ல் சட்டப் பேரவையில் ஆற்றிய உரை:

மத்திய மாநில உறவுகள் பற்றிய தமது கட்சியின் கருத்தாக இதையே ஏற்றுக் கொள்ள வேண்டுமென்ற வேண்டுகோளுடன் கீழே தரப்பட்டுள்ளது.

மாண்புமிகு மாற்றுத் தலைவர் அவர்களே தனி நபர் தீர்மானமாக மாண்புமிகு உறுப்பினர் உமாநாத் அவர்கள் கொண்டுவந்திருக்கும் தீர்மானத்தின் சாரம், இந்திய நாடு முறைமையாக வளர வேண்டும் என்றும் மாநிலங்கள் வளமாக வாழவேண்டும் என்றும் இப்போது மாநிலங்களுக்கு இருக்கும் அதிகாரங்கள் போதுமானதாக இல்லை. ஆகவே அவைகளை அதிகப்படுத்த வேண்டும் என்றும் அதற்காக இந்திய தலைமை அமைச்சர் அனைத்து முதல் முதலமைச்சர்களையும் யூனியன் பிரதேசங்களை ஆண்டுகொண்டிருப்பவர்களையும் அழைத்துப் பேசவேண்டும் என்பதாகும். அந்த வகையிலேயே அந்த கருத்தை ஆதரித்து காந்தி காமராஜ் தேசிய காங்கிரஸ் சார்பிலே பேசுவதற்கு நான் எழுந்து நிற்கிறேன்.

மக்கள் ஆட்சி வந்து விடுமானால் அதிகார பரவல் ஏற்பட்டு விடும் என்று தான் அரசியல் அமைப்பு சட்டத்தை உருவாக்கியவர்களின் கனவாக இருந்திருக்க முடியும். விடுதலைப் போராட்டத்தில் கலந்து கொண்டவர்கள் கூட சின்னஞ்சிறு கிராமத்தில் இருக்கும் மக்களை தட்டி எழுப்பி இந்த நாட்டை அடிமைத்தனமாக வைத்துக்கொண்டிருக்கின்ற வெள்ளை ஏகாதிபத்தியத்தை வெளியேற்ற பாடுபட்டபோது அதிகாரங்கள் யாரோ ஒருவர் கையில் குவிந்து விடக்கூடாது என்று தான் எண்ணியிருக்க முடியும். குவிந்து விட வேண்டும் என்று நிச்சயமாக எண்ணியிருக்க மாட்டார்கள். அந்த அடிப்படையில் தான் விடுதலைப் போராட்டத்தில் தங்களுடைய வியர்வைகளையும் கண்ணீரையும் செந்நீரையும் மட்டும் அல்லாமல் தங்களையே தியாகம் செய்து கொள்ளும் நிலையில் காஷ்மீர் முதல் கன்னியாகுமரி வரை உள்ள மக்கள் திரண்டு எழுந்தபோது இந்த நாட்டின் அதிகாரம் அனைவருக்கும் உரியதாக அமையவேண்டும் என்ற முறையில் தான் எண்ணியிருப்பார்கள். ஆனால் இப்போது ஒருவரிடத்தில் குவிந்துவிட்டதால் தான் ஒரு சிக்கல் விளைந்தது என்பதை நாம் பார்த்தோம். மத்திய அரசிடம் இருக்கும் அதிகாரங்களை பிரித்துவிட்டால் தான் ஒரு மாநிலம் செம்மையாக வாழ முடியும் என்று நினைப்பவர்கள் இரண்டு விதமான கருத்துக்களை பரப்பிக்கொண்டு இருப்பதை பார்க்கிறோம்.

அந்த இரண்டு விதமான கருத்துக்கள் எப்படி பரப்பப்படுகின்றன என்று சொன்னால் மாநிலத்திற்கு அதில் அதிகாரங்கள் பிரித்துக் கொடுத்து விட்டால் மத்திய அரசாங்கம் வலுவாக இருக்க முடியாது என்று சொல்கிறார்கள். பிரித்துக் கொடுக்காவிட்டால் அது சர்வாதிகாரம் என்று சொல்கிறார்கள். இப்படி இரண்டு விதக் கருத்துக்கள் நாட்டிலே உலவுகின்றன. இதை மனதில் கொண்டு தான் பெருந்தலைவர் காமராஜர் அவர்கள் ஒரு முறை மத்திய அரசாங்கத்தின் பிரதம அமைச்சருக்கு ஒரு வேண்டுகோள் விடுத்தார். அதிகாரம் பரவலாக்கப்படவேண்டும் என்று சொல்கிறார்களே அது எந்தெந்த வகையிலே அளிக்கப்பட வேண்டும், எந்தெந்த துறையிலே அளிக்கப்படவேண்டும் என்று விரும்புகிறார்கள் என்பதை பாரத பிரதமர் நேரடியாகத் தெரிந்து கொள்ளவேண்டும் என்பதற்காக மாநிலங்களின் முதலமைச்சர்களையும் யூனியன் பிரதேசங்களை ஆள்கின்றவர்களையும் அழைத்து அவர்களுடைய கருத்துக்களைத் தெரிந்து அதற்கு ஏற்ப ஒரு முடிவுக்கு வருவது நல்லது என்று பெருந்தலைவர் காமராஜர் அவர்கள் குறிப்பிட்டார்கள். உலக மக்களுக்கு

அறிவித்தார்கள். அவர்கள் எந்த வகையில், எந்த அளவிற்கு பாரதப் பிரதமர் அவர்கள் மாநில முதலமைச்சர்களை அழைத்துப் பேசவேண்டும் என்ற கருத்துக்களைத் தெரிவித்தார்களோ அந்தக் கருத்தின் பிரதிபலிப்பாக இன்றைக்கு இந்தத் தீர்மானம் வருமானால், இதை ஆதரித்து நான் என்னுடைய கருத்தை இந்த அவையிலே தெரிவிக்க விரும்புகிறேன்.

நாம் இன்றைக்கு பின்பற்றி வரும் சில மரபுகளைப் பார்க்கிறபோது அரசியல் அமைப்புச் சட்டத்திலே இருக்கும் சில ஷரத்துக்களில் உள்ள ஓட்டைகளை வைத்துக்கொண்டு அதிகாரத்தை சிலர் தங்கள் கையிலே எடுத்துக்கொண்டு மக்களை மிரட்டி, பயமுறுத்திக் கொண்டு இருக்கிறார்கள். அதனால் என்ன ஆபத்து ஏற்பட்டது என்பதை நாம் அறிவோம். அண்மையில் கூட சபாநாயகர்கள் எல்லாம் ஒன்று கூடி ஒரு முடிவு எடுத்தார்கள். ஒரு அரசாங்கத்தை நடத்துவதற்கு உரிய பெரும்பான்மை இருவருக்கு இருக்கிறதா இல்லையா என்பதை முடிவு செய்யவேண்டிய இடம் சட்டமன்றம். அந்த உரிமை வேறுயாருக்கும் இருக்கக்கூடாது. ஆனால், மரபு எப்படி இருக்கிறது என்றால் கவர்னராக இருக்கிற ஒருவர் யாருக்கு பெரும்பான்மை இருக்கிறது என்பதற்கு தான் மட்டும் 'சாட்சி' ஆகிவிட்டார் போலும், அவருக்கு இருக்கிற தன்னிச்சையான அதிகாரத்தை வைத்து இவருக்கு பெரும்பான்மை இருக்கிறது, இவருக்கு இல்லை என்று முடிவு எடுத்து விடலாம். அப்படி எடுக்கப்பட்ட முடிவின் காரணமாக ஏற்பட்ட கிளர்ச்சிகள், உள்கட்சி குழப்பங்கள் ஆகியவற்றை நாம் பார்த்தோம்.

இதிலிருந்து 356 என்று சொல்லுகின்ற அந்தப்பிரிவு எந்த எந்த வகையிலே கத்திபோல் இருந்து கொண்டு சில நேரங்களிலே கழுத்தை அறுப்பதும், தேவைப்படுகிற நேரத்திலே காலிலே தைத்த முள்ளை எடுப்பதற்குப் பயன்பட வேண்டிய ஊசி உயிரையே பறிக்கின்ற அளவுக்கு, அறுக்கின்ற தொழிலைச் செய்கின்ற கருவியாக இருப்பதை இன்றையதினம் நாம் பார்க்கிறோம். இவைகளுக்கு எல்லாம் ஒரு பாதுகாப்பைத் தேடுவது எப்படி என்பதற்காக சர்க்காரியா கமிஷன் என்ற ஒன்றைப் போட்டு, ஒட்டுமொத்தத்திலே மத்திய மாநில அரசு உறவுகள் எப்படி இருக்கவேண்டும் என்பதை ஆராய்ச்சி செய்வதற்காகப் போடப்பட்டது என்றாலும் – அது எந்த நோக்கத்திற்காகப் போடப்பட்டது என்பது பற்றிய விவாதத்திற்கு எல்லாம் நான் போகவில்லை – போடப்பட்டிருக்கிற நேரத்திலே ஒரு நீதிபதியாக இருந்த பெருமகனார் 109 கேள்விகள் அடங்கிய ஒரு பட்டியலை அனுப்புகிறார்; சாதாரணமானவர்களுக்கு அல்ல. ஆளும் பொறுப்பில் இருக்கிற பொறுப்பிலே இருந்த அனுபவப்பட்ட முன்னாள் முதலமைச்சர்களுக்கு அனுப்புகிறார். அப்படிப்பட்டவர்களுக்கெல்லாம் உங்களுடைய கருத்துக்களைச் சொல்லுங்கள் என்று 109 வினாக்கள் அடங்கிய பட்டியலை அனுப்பி வைக்கிறார்.

அனுப்பிவைத்துவிட்டு; பின்புமே அவர் சொல்கிறார், நாலோ நூறு முன்னாள் அமைச்சர்களும் ([illegible]) மற்றவர்களில் சிலரும் மட்டுமே கருத்தைச் சொல்லியிருக்கிறார்கள்; மற்றவர்கள் எல்லாம் கருத்து கூட சொல்லவில்லை என்று சொல்லுகின்ற அளவுக்கு இருக்கிறது. ஆக, மிகப்பெரியவர்கள் கூட இந்த மிகப்பெரிய பிரச்சினையை அலட்சியமாக எண்ணுகிறார்கள் என்று பார்க்கிறபோது நாமும் அந்த நிலைமைக்குப் போய்விடாமல் இந்த மன்றத்திலே விவாதித்து ஒரு நல்ல முடிவுக்கு வருவதன் மூலம் நாட்டு மக்களுடைய உள்ளங்களிலே இந்த உறவு பற்றிய பிரச்சினையை எழுப்புவதற்கு ஒரு வாய்ப்பினை அமைத்துக் கொடுத்தவர்களாவோம்.

இப்படி பார்க்கும் போது, சின்ன சின்ன காரியங்களிலே கூட மத்திய அரசு தலையிடுவதை போன்ற உணர்வு ஒரு மாநில அரசுக்கு வந்தால் மத்திய [illegible] பற்றி அவர்கள் விழுந்து எழுப்புவார்கள், உதாரணத்திற்காகச் சொன்னேன். தாது சம்பந்தப் பட்டவை [illegible] என்று இருக்கிறது. அதாவது கன்கரன்ட் லிஸ்ட்டில் இருப்பவை ம

மாநில மத்திய அரசுகளுக்குச் சொந்தமானவை என்று வந்துவிடுகின்ற காரணத்தினாலே, நீலகிரி மாவட்டம் போன்ற இடங்களில் ஒரு குடிதண்ணீர் தொட்டிகட்டுவதற்கு கூட, அதற்கு ஒரு எந்தப் பாதை வழியாகக் குழாய் போட்டு கொண்டுவர வேண்டுமோ அல்லது முதன் தொட்டியிலிருந்து பெரிய குழாயில் தண்ணீரைக் கொண்டுவர வேண்டுமோ அந்த இடத்திலே தோண்டுவதற்கு அனுமதி கேட்டு பல மாதங்கள் காத்திருக்க வேண்டியிருக்கிறது மாநில அரசு. ஆக குடிநீருக்கு ஏங்கிக்கிடக்கிற மக்கள் ஒரு பக்கம். அந்த காட்டு வழியாக குழாய் வரவேண்டும் என்பதற்காக மத்திய அரசினுடைய அனுமதியைப் பெற மாநில அரசு காத்திருக்கின்ற மறுபக்கம் என்று சொல்லுகின்றபோது மக்களுக்கு யார், யார்மீது கோபம் வரும்? அங்கே இருக்கிற விவரம் புரியாதவர்களுக்கு மாநில அரசு மீதும் கோபம் வரும். அப்படியானால் மத்திய அரசும் மாநில அரசும் இதற்கு ஒரு முறை காட்டவேண்டாமா? மக்களுடைய தேவையைப் பூர்த்தி செய்வதற்கு ரெட் டேப்பிசம் என்று சொல்லுகின்ற சிக்கே கிடக்கிற காகிதக் கோப்புகள் அவர்களுடைய காரியத்தைக் கெடுக்கலாமா? என்பதைப் பற்றி சிந்திக்க வேண்டுமா வேண்டாமா?

இன்னொரு இடத்திலே பார்த்தால், மத்திய அரசிலே இருக்கிற அமைச்சர் ஒருவர் பேசினார். காட்டிலாகா அதிகாரிகள் யாராவது இந்த இந்த வகையிலே நடந்துகொண்டிருந்தால் நாங்களே நேரடியாக நடவடிக்கை எடுப்போம் என்று பேசியிருக்கிறார். நாங்களே நேரடியாக நடவடிக்கை எடுப்போம் என்று மத்திய அரசு சொன்னால் மாநில அரசின் நிலைமை என்ன? மாநில அரசு 'குளோரிபைடு முனிசிபாலிட்டி' மாதிரி இருந்து கொண்டிருப்பதா? அதனுடைய அதிகாரம் என்ன? தன்னுடைய அதிகாரத்தைப் பற்றிப் பயந்து இன்னொரு அரசாங்கம் முன் வந்தால் அந்த அதிகாரிகள் இந்த மாநில அரசுக்கு கட்டுப்பட்டு, உட்பட்டு இருப்பார்களா அல்லது தங்களுக்கும் அதிகாரம் படைத்தவர்களுக்கு பயந்து இனி அவர்கள் என்ன சொல்கிறார்கள் என்று கேட்டுக்கொண்டிருப்பார்களா? ஆக, இதை எல்லாம் பார்க்கும்போது சின்ன சின்ன காரியங்களில் கூட மத்திய அரசு தலையிடுகிறது என்ற ஒரு உணர்வு ஏற்படும்போது மாநில அரசுக்கு ஒரு கொந்தளிப்பு, ஒரு உள்ளக் குமுறல் எழுந்து இதைக் கேட்க வேண்டுமா இல்லையா?

ஒரு மாநில அரசினுடைய எண்ணம் என்ன என்று தெரியாமல் மத்திய அரசு முடிவுகளை எடுக்கிற நேரத்தில் அந்த மாநிலத்து மக்கள், அந்த மாநில மக்களை சேர்ந்த பல மக்கள் அவர்கள் எங்கெங்கோ வாழ்ந்துகொண்டிருக்கிறார்கள். எப்படி எப்படி அதிருப்தியடைகிறார்கள் என்பதற்குச் சான்று கச்சத்தீவு, இலங்கை இந்திய ஒப்பந்தம், ஸ்ரீமாவோ பண்டார நாயக்கர் ஒப்பந்தம் போன்றவை எல்லாம் தமிழ் மக்களுடைய உணர்வு, தமிழ் மாநில மக்களுடைய உணர்வு, தமிழ் நாடு மாநிலத்தில் வாழ்ந்து கொண்டிருக்கிற மக்களுடைய உணர்வு இவைகளை எல்லாம் கணக்கிலே எடுத்துக் கலந்தாலோசித்துப் பார்த்துதான் செய்யப்பட்டதா? இந்த முடிவுகளை எப்படி எடுத்தார்கள்? வெளியுறவு என்ற ஒன்றை வைத்துக்கொண்டு, மத்திய அரசின் கையிலே அதிகாரம் இருப்பதால், தாமே அந்த முறையைச் செய்யலாம் என்கின்ற முடிவுக்கு வந்தார்களா?

கச்சத்தீவைப் பிரித்துக் கொடுத்தது இந்த மாநில அரசினுடைய எல்லைக்கு உட்பட்டதா னும். கச்சத்தீவு இராமநாதபுரம் ஜமீனுக்கு உட்பட்டது என்று நமக்கு குறிப்புகள் எல்லாம் சொல்கின்ற நேரத்தில் ஈடுகொடுத்திருக்கிற அமைச்சரவையை – அது எந்த அமைச்சரவையாக இருந்தாலும் சரி – மக்களால் தேர்ந்தெடுக்கப்பட்டு ஆட்சி செய்துகொண்டிருக்கிற அமைச்சரவை இருக்கிற நேரத்தில் அந்த அமைச்சரவைக்குத் தெரியாமல் எடுத்துக் கொடுத்த காரணத்தினால் மத்திய அரசு தன்னுடைய அதிகாரத்தைப் பயன்படுத்திக்கொண்ட காரணத்தினால் இன்றைக்கு நம்முடைய நாட்டு எல்லைக்கே பேராபத்து ஏற்பட்டிருக்கிறது. ஆக வெளியுறவு என்று இருந்தாலும் இப்படிப்பட்ட காரியங்களில் முடிவு எடுக்கின்ற அதிகாரம் மாநில அரசுக்குத் தெரிந்து எடுக்க வேண்டுமேயன்றி, மத்திய அரசு தன் போக்கில் எடுக்கவேண்டியதில்லை. மாநில அரசுக்கு தெரிவிக்க வேண்டிய அவசியமே இல்லை என்பதால், 'போர் நடவடிக்கை' என்கிற காரணத்திற்காக அதைத் தாக்கிக் கொடுத்ததைப் [illegible]

இன்று முன்னொருவன் உட்கார்ந்துகொண்டு, படைப்பலத்தைக் கொடுத்துக்கொண்டு தமிழருடைய மார்பை நோக்கி ஏப்பிரகணையை நீட்டிக் கொண்டிருக்கிறான். இப்படிப்பட்ட காரியங்கள் எல்லாம் நடந்து வருகின்றன.

ஆக, மத்திய மாநில அரசு என்று வருகிறபோது மத்திய அரசு சக்தி வாய்ந்ததாக இருக்கவேண்டுமென்றும் கூட இந்த சக்திக்காக வேண்டி ஒருமைப்பாட்டைப் புத்தியைக் கொடுப்பது மாநில அரசாக இருக்கிற அளவுக்கு ஏன் உறவுகள் இருக்க வேண்டாமா? இந்த உறவுகள் இருந்திருக்குமானால் இந்த குழப்பங்கள் வந்திருக்காது அல்லவா? எல்லா காரியங்களுக்கும் பயன் படுத்தக்கூடாது என்ற ஒரு உடன்படிக்கையாவது அப்போது சேர்ந்திருந்தால் இந்த மாநில அரசினுடைய, இந்த மாநில மக்களுடைய உரிமையாவது ஒரு பிரதிபலிப்பாக இருக்கும் அல்லவா? இவைகளால் ஏற்பட்ட குறைகளையெல்லாம் இப்போது பார்க்கிற நேரத்தில் மீண்டும் ஒரு முறை இந்த மத்திய மாநில அரசு உறவுகளை, அங்கே கிள்ளைகளை கிள்ளைகளைப் பார்க்கவேண்டியிருக்கிறது. [illegible] பார்த்தால், அவர்களுக்கு சகல அதிகாரமும் இருக்கிறது. இங்கே உழுபவன் இங்கே இருக்கின்ற உழைப்பாளியாக இருப்பான். பாடுபடுவன் இங்கே உள்ள பாட்டாளியாக இருப்பான். அவனுடைய விளை பொருள்களுக்கு விலை நிர்ணயிக்கின்ற உரிமை, அந்தப் பகுதியில் இருக்கின்ற மாநிலங்களுக்கும், அந்தப் பகுதியில் உள்ள மக்களுக்கும், அந்தப் பகுதியில் உள்ள மக்களுடைய உறவும் ஏற்படவில்லை. நெல்லினுடைய விலையை அன்று [illegible] தீர்மானிக்கிற போது என்ன நடந்து வருகிறது, வெள்ளைக்காரன் காலத்திலே நாம் சொல்வோமே; "ஆரான் பாரான் தோட்டத்திலே ஒருத்தன் போட்டான் வெள்ளரிக்காய், காசுக்கு ரெண்டு விற்கச் சொல்லி காகிதம் போட்டான் வெள்ளைக்காரன்" என்று - அதைப் போல் இங்கே இருக்கின்ற [illegible] மொத்தத்தில் கலக்காமல் - நம்முடைய உணவுத் துறை அமைச்சர் கூட இங்கே பேசுகிறபோது சொன்னார் - [illegible] உற்பத்தி செய்கிற நெல்லுக்கு ரூ.175.5 கொடுக்கவேண்டுமென்று நாங்கள் விரும்பி கேட்டுக்கொண்டிருக்கிறோம். ஆக ஒத்துக்கொள்வார்களா? அல்லது ஒத்துக்கொண்டிருக்கிறார்களா? நெல்லுக்கு இப்படி விலையை நிர்ணயிக்கிறார்கள். சரி,.

நெய்வேலியிலிருந்து ஒரு தகவல் வருகிறது நமக்கு. நெய்வேலி லிக்னைட் கார்ப்பரேஷன் மத்திய அரசாங்கத்தைச் சார்ந்தது. மத்திய அரசாங்கத்தைச் சார்ந்த நாட்டின் பெருமைக்குரிய [illegible] ரூ.780கோடி தமிழக அரசாங்கம் மின்சாரத் துறையிலே எங்களுக்கு பாக்கி வைத்திருக்கிறது என்று மின்சாரத்தை நாங்கள் கொடுத்த காரணத்தினால் ரூ.78 கோடி பாக்கி இருக்கிறது என்றும் இப்படி இவ்வளவு பாக்கி [illegible] 1955-லே நெய்வேலி நிலக்கரி சுரங்கம் தோண்டுகின்ற நேரத்தில் அங்கே தோண்டி எடுக்கின்ற நிலக்கரியை விற்பனை செய்கின்ற அதிலிருந்து வருகின்ற அந்த விற்பனையில் 10 சதவிகிதம் உரிமையாக ராயல்டியாக தமிழ் மண்ணிலே இருந்து வெட்டி எடுக்கின்ற காரணத்தால் தமிழக அரசாங்கத்திற்கு கொடுக்கவேண்டும் என்று சொன்னார்கள். லட்சக்கணக்கான டன்கள் வெட்டி எடுக்கப்பட்டுவிட்டது. இன்று ஒரு காசு கூட ராயல்டியாக வாங்கவில்லை, [illegible] இல்லையே ஆகவே பேச்சு வார்த்தைகள் நடந்தபோதெல்லாம் தமிழக அரசுக்கு வரவேண்டிய அந்த உரிமைத் தொகை வராமல் இருப்பதற்கு என்ன காரணம்? சரி அது கொடுக்காமல் இருந்து விட்டு, எங்களுக்கு ரூ.78கோடி பாக்கி இருக்கிறதென்று மத்திய அரசாங்கம் சொன்னால் மாநில அரசாங்கத்தின் இந்தியாவின் ஒரு பகுதியாக தானே கருதவேண்டும். சரி [illegible] வைப்போம். இந்த மின்சாரத்திற்கு இவ்வளவு கட்டணம் வசூலிப்பதற்கு என்ன காரணம்? [illegible] நிலக்கரி உற்பத்தியாகின்ற இடத்திலே ஒரு டன்னுக்கு ரூ 250 [illegible] கொண்டு வருகின்ற செலவு ரூ 375. [illegible] ரூ.375 ஆக ஒரு [illegible] வேண்டுமென கேட்கிறோம். மத்திய அரசாங்கத்திடம் [illegible] காரணத்தாலே சிமெண்ட் விலை நிர்ணயிக்க [illegible] முறையும் சிமெண்ட் விலை [illegible] நாம் என்று சொல்லியிருக்கிறார்கள். மத்திய அரசாங்கத்தில் [illegible] இரும்பு விலை நிர்ணயிக்க இந்திய முறையும் இரும்பு விலை [illegible] நாம் என்று [illegible] நான் கேட்கிறேன், நிலக்கரி விலையை நிர்ணயிக்க இந்திய முறையும் [illegible] நாம் விலை

என்று சொல்லிவிட்டால், மாநிலத்திற்கு மட்டும் போக்குவரத்து செலவு அதிகம் ஆகாதா? கொடுக்கவேண்டி வராது அல்லவா? ஆகவே உங்களுக்கு விருப்பமான பொருட்களுக்கு மட்டும் நீங்கள் மத்திய அரசாங்கத்தின் விலையை நிர்ணயித்துக்கொண்டு மற்றவைகளுக்கு விருப்பம் போல் விட்டுவிட்டால் ஒரு ஒழுங்காக ஒரு வரைமுறையாக [illegible] போய்க்கொண்டிருக்கிறது.

அதே போல் நான் முன்பேலே பேசிய பெருமக்கள் இங்கே சுட்டிக்காட்டினார்கள். வரிகளைப் பொறுத்தவரையில், வரியிலே இவ்வளவு என்று மத்திய அரசாங்கம் எடுத்துக் கொள்கிறது ஒரு மாநில அரசாங்கம் மத்திய அரசாங்கத்தினுடைய சார்பிலே அவ்வளவு மத்திய அரசாங்கத்திற்காக வசூலிக்கிற வரியிலே 29 சதவீதத்தை வைத்துக்கொண்டு மீதத்தை எல்லாம் கொடுத்துவிடுகிறது. நான் மொத்தமாகச் சொல்கிறேன். மத்திய அரசாங்கத்தின் சார்பிலே வசூலிக்கின்ற வரிகள் அத்தனையும் வசூலித்து [illegible] வைத்துக்கொண்டு மீதியை எல்லாம் மத்திய அரசாங்கத்திற்கு கொடுத்து விடுகிறது. ஆக வரியிலே 29 சதவீதம். மூலம் செலவில் மாநில அரசாங்கத்திற்கு 51 விழுக்காடு ஏற்படுகிறது. வரியிலே 29 சதவீதத்தை மத்திய அரசாங்கம் எடுத்துக்கொண்டு, செலவிலே மட்டும் 51 சதவீதத்தை மாநில அரசாங்கம் ஏற்றுக்கொள்ள வேண்டுமென்று சொல்லும்போது தேவையான மீதப்பணத்திற்கு மத்திய அரசாங்கத்திடம் கை கட்டி நிற்கவேண்டிய நிலை உள்ளது. அப்படி உருவாகின்றபோது இங்கேயிருக்கின்ற கிளைக்கு மனம் நோகிறது. மனம் வருந்துகிறது, [illegible] என்ன [illegible] இந்தப் பகுதியிலே [illegible] நாம் தொண்டு செய்யவேண்டும் என்று நினைக்கிறபோது, அந்த நேரத்திலே அந்தப் பக்கமோ [illegible] நீட்டவேண்டிய நிலையிலே இருக்கிறதே என்றும் நினைக்கிறார்கள். [illegible] மாற்றி அமைப்பது எப்படி என்பதற்கு இந்த மத்திய மாநில உறவுகளை பரிசீலிக்க வேண்டும் என்பதோடு, மாநிலத்திற்கு அதிக அதிகாரம் தேவைப்படுகிறது என்பதையும் நாம் [illegible] வேண்டும். சில இடங்களிலே நாம் பார்க்கிறோம். [illegible] [illegible] கள். [illegible] காரியம் நடைபெற்றுக்கொண்டிருக்கிறது என்று சொன்னால், [illegible] [illegible]. உனக்குத் தொழில் எதற்கு என்று கேட்கிறார்கள். [illegible] [illegible] தொழில் உனக்கு எதற்கு என்று கேட்கிறபோது, இவருக்கு மனக்கஷ்டம் ஏற்படுகிறது. [illegible] [illegible] போட்டோ பிலிம் தொழிற்சாலை இருக்கிறது அதை விரிவாக்கம் [illegible] என்று சொன்னால் எங்களவே அங்கே [illegible] ( ) [illegible]. [illegible] வர்கள் இருக்கிறார்கள். நல்ல [illegible] நிலை [illegible] [illegible]. [illegible] தொழில் சாலையை விஸ்தரிக்கிறபோது, சில கோடி ரூபாயில் பல கோடி ரூபாய் மதிப்புள்ள [illegible] அங்கே கொண்டு வந்து விடலாம். உற்பத்தியை அங்கே [illegible] விடலாம். மூலம் அதே நேரத்தில் என்ன செய்கிறார்கள். [illegible] [illegible], [illegible] இருக்கிறது என்ற காரணத்தால், அதை அங்கே கொண்டு போகப்படுகிற நேரத்திலே [illegible] திறமை தடுக்கப்படுகிறது. ஆற்றல் தடுக்கப்படுகிறது. [illegible] [illegible] [illegible] தடுக்கப்படுகிற நேரத்தில், மாநிலத்தின் [illegible] என்ன நினைக்கிறார்கள். [illegible] திறமைக்குக் கிடைத்த பரிசா [illegible] என்று. மத்திய அரசாங்கம் [illegible] செய்வதா!' என்று சொல்கிறபோது ஒரு வெறுமை ஏற்படுகிறது. இந்த வெறுமை ஏற்படக்கூடாது என்பதற்காகத்தான் பஞ்சாப் போன்ற இடம் இருக்கிறது என்று [illegible], [illegible] பஞ்சாபிலே உற்பத்தி அதிகம். மேலும் உற்பத்தி செய்வதற்கு [illegible] செய்ய [illegible] போகிறோம் என்று [illegible] மேலும் மேலும் [illegible] கொழித்துக்கொண்டே போகிறது என்று [illegible]. அவர்களும் என்ன நினைக்க வேண்டும் [illegible] நாளும் ஒரு பகுதி. நாம் உற்பத்தி செய்ததை [illegible] என் மக்கள் நன்கு [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] பொங்காமல் [illegible] என்று என்னால் இவ்வளவு [illegible] நான் [illegible]. இவ்வளவு செழித்து சிறந்துவிட்டேன். நான் எதற்கு இங்கேயும் மத்திய அரசாங்கத்திற்கு கட்டுப்படுவது என்று இன்று ஒரு மாநில அரசாங்கம் நினைத்தால், [illegible] [illegible] அதிலே நான் வளர்ந்துவிட்டேன், கட்டுப்படமாட்டேன் என்று [illegible] [illegible] அளவுக்கு ஒரு மாநில அரசாங்கம் போய்விடக்கூடாது. நாம் இங்கே [illegible] வரை [illegible]. போதும் என்று [illegible] போல் [illegible] [illegible] [illegible]

-மான சிந்தனை வந்துவிட்டால் இந்த இரண்டுக்கும் இடையிலே நமக்கு என்ன என்ன அதிகாரம் தேவை.. அந்த அதிகாரத்தை எப்படி பரவலாக்குவதற்கு உள்ள ஒற்றுமையை எப்படி உருவாக்குவது என்பதற்காக மாநிலங்களுடைய முதலமைச்சர்களையும் பிரதமர் அழைத்துப் பேசி இந்த இரண்டையும் பேலன்ஸ் செய்கிற வகையில் இந்திய ஒருமைப்பாட்டுக்கு ஊறுவோ இல்லாமல் அந்தந்த வளர்ச்சிக்கு தடையே இல்லாமல் அங்கங்கள், நன்றாக இருந்தால் தான் நங்களின் உடம்பு நன்றாக இருக்கும் என்பதை மறந்துவிடாமல் ஒரு அங்கமோ அதற்கு ஏற்ப வளர்ச்சி பெற்று அதற்கு ஏற்ப வலிவோடு இருந்தால் தான் உடம்பு வலிவோடு இருப்பதைப் போல இந்தியா என்ற உடம்பு வலிவோடு இருப்பதைப் போல

மாநிலங்கள் செழுமையாகவும் செழிப்பாகவும், வளமாகவும் வலிமையாகவும் இருந்தால் தான் மத்திய அரசு பலமாக இருக்க முடியும் என்று சொல்லுகிற அந்த நிலையில் அடிப்படையிலே, இந்த உறவை நிர்ணயிப்பதற்காக எல்லா மாநிலங்களுடைய முதலமைச்சர்களுடைய, யூனியன் பிரதேசங்களின் தலைவர்களை அழைத்து, பாரதப் பிரதமர் அவர்கள் பேசவேண்டும் என்று வலியுறுத்துகின்ற இந்தத் தீர்மானத்தை ஆதரித்து வலியுறுத்தி காந்தி காமராஜ் தேசிய காங்கிரஸ் சார்பிலே என் கருத்தை முடித்து அமர்கிறேன்.

4. अन्य पार्टियां गूट

उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रीय पार्टियों की कांफ्रेंस की कार्य-समिति

ज्ञापन

प्रस्ताव

1. भारतीय संविधान में तत्काल ही संशोधन किया जाना चाहिए ताकि उसे वस्तुत: संघीय बनाया जा सके।
2. रक्षा, करेंसी, विदेशी कार्य मामलों और संचार के विषयों को छोड़कर अन्य सभी विषय राज्यों के पास रहने चाहिए।
3. संविधान की समवर्ती सूची को काट दिया जाना चाहिए।
4. देश के सभी क्षेत्रों से उत्पन्न होने वाले सभी संसाधन संबद्ध राज्यों को दिए जाने चाहिए।

   केन्द्र की अपेक्षाओं को निर्धारित करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए और यह आयोग प्रत्येक राज्य द्वारा अपनी सामर्थ्य के अनुसार केन्द्र को दिए गए अंशदान की प्रमात्रा तय करेगा।
5. विधान मंडल द्वारा व्यक्त की गई इच्छा के सिवाय किसी मंत्रालय को नियुक्त करने या उसे बरखास्त करने का अधिकार राष्ट्रपति और राज्यपालों को नहीं होगा।
6. राज्य सभा में प्रत्येक राज्य के समान प्रतिनिधि होंगे और राज्य सभा के अधिकारों और कार्यों को बढ़ाया जाना चाहिए।

असम जातीयवादी दल

ज्ञापन

केन्द्र और राज्यों के बीच शक्ति के वितरण के सम्बन्ध में कार संविधान में जो व्यवस्था की गई है वह अनुचित है और वह वास्तविक संघीय राज्य तंत्र से मेल नहीं खाती। राज्यों की अपेक्षा केन्द्र को अत्यधिक और निरंकुश शक्ति दी गई है; इतना ही नहीं राज्यों, अर्थात् परिसंघीय भागीदारों, को अब केन्द्र पर अधिक आश्रित माना जाने लगा है। जो कुछ भी राज्यों के पास थोड़ी सी स्वायत्तता बच गई थी वह भी सांविधानिक उपबन्धों का दुरुपयोग करके उनके द्वारा समाप्त कर दी गई है जिनके पास केन्द्र में प्राधिकार है, फलत: अब राज्य इतने असमर्थ हो गये हैं कि वे केन्द्र की सहायता और अनुमोदन के बिना अपने निजी कार्यों को भी नहीं कर पाते। विकासात्मक निर्माण कार्यों और आर्थिक वृद्धि को नुकसान पहुंचा है; दुर्व्यवहार, तिरस्कार और असुरक्षा की भावना से सामाजिक तनाव बढ़ा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पिछले वर्षों से इस सबसे केन्द्र और राज्यों के बीच बढ़ा हुआ विरोध, खिंचाव और दबाव उभर कर आया है। ऐसी परिस्थितियों में केन्द्र-राज्य संबंधों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता अत्यधिक हो गई।

अत: इस बात का जोर-शोर से स्वागत किया जाता है कि केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का गहन अध्ययन करने के लिए और इनमें सुधार करने की दृष्टि से सिफारिशें करने के लिए केन्द्र ने न्यायमूर्ति आर० एस० सरकारिया की अध्यक्षता में किसी आयोग का गठन नहीं किया है। यह स्वाभाविक है कि प्रस्ताव से जनता के भिन्न-भिन्न वर्गों के बीच बड़ी-बड़ी आशाएं उत्पन्न हुई हैं। विश्वास किया जाता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच स्वस्थ और सोहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम करने में आयोग की सिफारिशें सहायक हो सकती हैं।

असम जातीयवादी दल, जो कि उसमें स्थापित क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी, ने विवादास्पद समस्या के सम्बन्ध में अपने विचार और सुझाव रखे हैं और इसलिए, आयोग को यह ज्ञापन प्रस्तुत किया जाता है।

दल की राय है कि केन्द्र-राज्य सम्बन्ध में सुधार किया जाए और बेहतर तथा केन्द्र-राज्य के बीच स्वस्थ सम्बन्ध सुनिश्चित किए जाएं। केन्द्र के विरुद्ध राज्य की निराश्रयता और परिणामी प्रतिरोध के मौजूदा भाव को दूर करने के लिए पर्याप्त कार्रवाई करनी होगी। राज्यों को भी अधिक स्वायत्तता प्रदान करनी होगी। राज्यों को भी अधिक अधिकार और संसाधन प्रदान करने होंगे ताकि वे अपने स्वयं के कार्यों को संचालित कर सकें तथा अपनी जनता की सामाजिक, आर्थिक, भाषाई और संस्कृति सम्बन्धी आवश्यकताओं को विकसित कर सकें। केन्द्र के अनुचित दबाव, हस्तक्षेप और राज्यों की सरकारों की बरखास्तगी की आशंका के प्रति इनको सुरक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध में भी उपबंध अवश्य करने होंगे। राज्यों में रह रहे जातीय और भाषाई छोटे वर्गों की पहचान और सुस्पष्टता सम्बन्धी उनका भय और परेशानी भी कम की जानी चाहिए।

हालांकि असम जातीयवादी दल दृढ़ता से विश्वास करता है कि "सम्पूर्ण स्वायत्तता" से कम कुछ भी असम जैसे राज्यों को अभावग्रस्त और दयनीय दशा, जो कि अब उनकी हो गई है, से राहत नहीं दिला सकता और इस प्रकार केन्द्र और राज्यों के बीच स्वस्थ सौहार्दपूर्ण और सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। असम जातीयवादी दल इस आयोग की सीमाओं को भली-भांति समझता है। दल समझता है कि राज्यों को "सम्पूर्ण स्वायत्तता" प्रदान करने के सम्बन्ध में संविधान के कई उपबन्धों की भली-भांति जांच पड़ताल करना अपेक्षित होगा। तत्पश्चात् केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की पूरी संकल्पना में प्रमुख परिवर्तन किया जा सकेगा। दुर्भाग्यवश इस आयोग की सिफारिशों से उक्त किसी भी प्रमुख परिवर्तन की आशा नहीं की जा सकती है। अत: दल का विचार है कि राज्यों को सम्पूर्ण स्वायत्तता से सम्बन्धित सुझाव प्रस्तुत न करने में ही अक्लमंदी है और उसे भविष्य के लिए उपयुक्त मंच के साथ और उपयुक्त समय में अपनाये जाने के लिए आरक्षित करता है। मौजूदा स्थिति के अनुसार यह अपने सुझावों को वर्तमान अवसर की सम्भावनाओं के अनुसार इस आशा के साथ सीमित करता है कि आयोग के कार्यों का निष्पादन राज्यों को सम्पूर्ण स्वायत्तता के कम से कम एक कदम नजदीक ले जाएगा और केन्द्र और राज्यों के बीच मौजूदा विवाद और तनाव को कम करने में सहायता करेगा।

विचार और सुझाव

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सुधार लाने के लिए राज्यों को अधिक अधिकार और अधिक स्वायत्तता सौंपना अनिवार्य होगा। यह काम केवल परिवर्तनों, परिवर्द्धनों, आदेशों और खण्डनों के रूप में संविधान में संशोधन करके किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में असम जातीयवादी दल निम्नलिखित सुझाव देते हैं :--

1. अनुच्छेद 5 से 11 और संविधान के अन्य संगत उपबन्धों में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि दोहरी नागरिकता की प्रणाली स्थापित की जा सके। इस प्रणाली के अनुसार कोई भी व्यक्ति उस राज्य, जिसमें वह रहता है का नागरिक होगा और देश अर्थात् भारत का भी नागरिक होगा। इसमें ऐसे उपबंध भी शामिल होने चाहिए जिसके जरिए राज्य अपने नागरिकों को कुछ विशिष्ट राजनीनितिक और आर्थिक अधिकार, जिन्हें एक साथ देने से इन्कार किया गया हो या उस राज्य के अनिवासी को कठिन शर्तों पर दिए गए होंगे, देने का अधिकार प्राप्त कर सकें। इससे, ऐतिहासिक रूप से, स्वीकृत किए गए भाषायी और प्रजातीय अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा करने में सहायता मिलेगी जैसे अन्य राज्यों और देशों के अधिक प्रभावी और साहसिक समूहों तथा प्रजातियों के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उपयोग से असम के और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के देशी लोग। इससे अल्पसंख्यकों की पहचान और विभिन्नता के विषय में इनका भय और परेशानी भी दूर होगी।

2. यदि वे स्वयं को संघ के समान परिसंघीय भागीदार के रूप में मानते हों तो अनुच्छेद 81, जिसमें लोक सभा के संघटन का उल्लेख है, में उचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि छोटे राज्यों को बेहतर प्रतिनिधित्व दिया जा सके। इस समय राज्यों से आए हुए 525 सदस्यों में से 360 (68.6%) छ: बड़े राज्यों से हैं, 120 सदस्य (22.9%) पांच मध्यम आकार के राज्यों से हैं, अन्य दस छोटे राज्यों से केवल 55 सदस्य (8.5%) आए हैं। प्रतिनिधित्व के लिए एक तरफा जैसी स्कीम से समुचित केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में कभी भी प्रगति नहीं हो सकती। अत: बड़े राज्यों और छोटे राज्यों के बीच अन्तर को कम करने के लिए राज्यों को अधिक से अधिक और कम से कम संख्या में सदस्य, जिन्हें राज्य लोकसभा के लिए दे सकता है, निर्धारित किए जाने चाहिए। दल सुझाव देता है कि कोई भी राज्य 50 सदस्यों से अधिक का और 10 सदस्यों से कम का प्रतिनिधि नहीं होगा। इसी प्रकार, संघ राज्य क्षेत्र से आए सदस्यों की अधिकतम संख्या 10 और न्यूनतम संख्या 5 होगी।

3. अनुच्छेद 80, जिसमें राज्य सभा के संघटन का उल्लेख है, में ऊपर बताए गए कारणों की बाबत यह सुनिश्चित करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि इसमें प्रत्येक राज्य समान रूप से प्रतिनिधित्व करेगा।

4. किसी भी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाने और कम करने के लिए, सम्बन्धित राज्य की सहमति लिए बिना किसी राज्य की सीमा या इसके नामों में परिवर्तन करने के लिए और इसी प्रकार राज्यों के सुरक्षित क्षेत्र में सीधे ही अतिक्रमण करने के लिए जो राज्य को समर्थ बनाता है, उस अनुच्छेद 3, जो कि केन्द्र को नया राज्य गठित करने का अधिकार देता है, में यह सुनिश्चित करने के लिए उचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि राज्य के क्षेत्र और नाम में सम्बन्धित राज्य विधानमंडल की अभिव्यक्त सहमति और अनुमोदन लिए बिना परिवर्तन न किया जा सके या बदला न जा सके।

5. अनुच्छेद 249, जो कि "राष्ट्रीय हित" में राज्य सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने के लिए केन्द्र को अधिकार देता है और जो केन्द्र को राज्य की स्वायत्तता में सीधे ही अनधिकार हस्तक्षेप करने में समर्थ बनाता है, को निकाल दिया जाना चाहिए।

6. अनुच्छेद 347, जो कि सम्बन्धित राज्य की सहमति लिए बिना राज्य की राजभाषा को बदलने का अधिकार केन्द्र को देता है, में पूर्वोलिखित कारणों की बाबत यह सुनिश्चित करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए किसी भी राज्य की राजभाषा को सम्बन्धित राज्य विधान मंडल की अभिव्यक्त सहमति और अनुमोदन लिए बिना बदला नहीं जा सकता है।

7. अनुच्छेद 153, जिसमें राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति का उल्लेख है, में संशोधन किया जाना चाहिए। संघ कार्यपालक द्वारा राज्य कार्यपालक के अध्यक्ष की नियुक्ति का तरीका संघीय प्रणाली के विरुद्ध है। यह देखने में आया है कि नामित राज्यपाल भी राजनीतिक खींचातानी और दबावों से मुक्त नहीं होते हैं। राज्यपालों को भी केन्द्र और राज्यों के बीच मौजूदा संघर्ष और तनाव के साथ काम करना पड़ता है।

अनुच्छेद में यह उपबंध करने के लिए कि राज्यपाल का चुनाव राज्य विधान मंडल द्वारा, राष्ट्रपति के तरीके से, किया जाना चाहिए, इसका पुन: प्रारूप बनाया जाए। यह सुनिश्चित करने के लिए उपबंध भी किए जाने चाहिए कि अनुच्छेद 78 के अनुसार भारत के राष्ट्रपति के लिए विचार किए गए अधिकारों की अपेक्षा राज्यपाल के पास अधिक अधिकार नहीं है।

8. अनुच्छेद 200 और 201, जो कि किसी राज्य के राज्यपाल को राज्य विधान मंडल द्वारा पारित किए गए विधेयकों पर सहमति देने से रोकने और उन्हें राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखने का अधिकार देते हैं, में इस प्रयोजन से संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि राज्यपाल के लिए राज्य सूची में दिए गए किन्हीं विषयों के सम्बन्ध में राज्य विधान मंडल द्वारा पारित किए गए विधेयक पर सहमति देना अनिवार्य हो जाए। तथापि राज्यपाल उस विधेयक को, जो कि पारित हो चुका है और जिस पर तदनंतर विधान मंडल द्वारा पुनर्विचार किया गया है, अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले उच्च न्यायालय में भेज सकता है यदि वह यह समझता हो कि उक्त विधेयक संविधान के उपबंध के विरुद्ध है। इससे उसके अपने अधिकार क्षेत्र के मामलों में राज्य की सर्वोच्चता सुनिश्चित होगी।

9. अनुच्छेद 356 और 357, जो कि राज्य सरकारों और राज्य विधान मंडल या दोनों के विघटन के लिए उद्घोषणा इस आधार पर जारी करने का अधिकार राष्ट्रपति को देते हैं कि "राज्य सरकार इस संविधान के उपबन्धों के अनुसार कार्रवाई नहीं कर सकते हैं" को निकाल दिया जाना चाहिए। किसी राज्य में सांविधानिक तंत्रप्रणाली के असफल होने की स्थिति में जैसा कि केन्द्र के मामले में है, चुनाव कराने और नई सरकार के गठन के लिए उपबंध किए जाने चाहिए। यह संघीय सिद्धान्त के अनुरूप होगा।

10. अनुच्छेद 360, जो कि राष्ट्रपति को इस आधार पर उद्घोषणा करने का अधिकार देता है कि भारत या इसके राज्य क्षेत्र के किसी भाग की वित्तीय स्थिरता या ऋण व्यवस्था पर खतरा हो और जो किसी राज्य को वित्तीय औचित्य के कानूनों का अनुपालन करने सम्बन्धी निदेश देने के लिए केन्द्र को समर्थ बनाता है, के अनुसार किसी राज्य की स्वायत्तता पर हस्तक्षेप किया जाता है तथा इसी वजह से इसे निकाल दिया जाना चाहिए।

11. अनुच्छेद 248, जो कि केंद्र को ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में, जो कि समवर्ती या राज्य सूची में निर्दिष्ट नहीं है, कानून बनाने का एकमात्र अधिकार देता है, संघवाद के सिद्धान्त के अनुरूप है। राज्यों को अधिक स्वायत्तता और अधिकार मुहैया कराने के लिए, इस अनुच्छेद में इस आशय से संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि किसी राज्य की विधान सभा को ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में, जो कि संघ या समवर्ती सूचियों में निर्दिष्ट नहीं है, कानून बनाने का एकमात्र अधिकार प्राप्त हो सके। अर्थात् शेष शक्तियां राज्यों में निहित होनी चाहिए।

तदनुसार संघ सूची की प्रविष्टि 97 को राज्य सूची में अन्तरित किया जाना चाहिए।

12. कानून और व्यवस्था को राज्य का एकमात्र अधिकार क्षेत्र बना दिया जाना चाहिए। इसमें केन्द्र का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त उपबन्ध किए जाने चाहिए कि केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और केन्द्र के अन्य पुलिस बलों को राज्यों में नहीं लाया जा सकता।

13. केन्द्र और राज्यों के बीच बहुत अधिक विरोध पैदा हो जाता है और अनबन भी हो जाती है तथा यह विरोध और अनबन वित्त के क्षेत्र में विद्यमान है। केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों के वितरण के परिणामस्वरूप जैसा कि संविधान में उपबन्ध किया गया है, राज्यों को जितना मिलना चाहिए उससे कम मिल रहा है।

पिछले वर्षों में, आयकर, उत्पाद शुल्क आदि से सम्बन्धित मामलों में केन्द्र की साजिश से राज्यों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कर संसाधनों और सहायता-अनुदान के अन्तर्राज्यीय आबंटन की पद्धति न तो संसाधनों में हुए क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने में किसी भी रूप में सहायक सिद्ध हुई है और न ही यह राज्यों को अपनी जिम्मेवारियों के पूर्णत: निर्वहन में इन्हें समर्थ करने के लिए पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त असांविधिक या विवेकाधीन अनुदानों और कर्जों का प्रयोग न केवल क्षेत्रीय असंतुलन में सुधार लाने की दृष्टि से किया गया है बल्कि राजनीतिक आधारों पर पक्षपात करने के लिए भी किया गया है। इन विवेकाधीन अनुदानों और ऋणों से केन्द्र को राज्य के ऐसे क्षेत्रों में आक्रमण करने और उन पर नियंत्रण रखने का अधिकार प्राप्त हो गया है जिन पर संविधान के अनुसार, अगुआई करने और नियंत्रण रखने का अधिकार सम्पूर्णत: राज्यों को होगा। अत: इस बात की अत्यावश्यकता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच तथा आपस में राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों का समायोजन और पुन: आबंटन होना चाहिए।

राजस्व के वितरण से सम्बन्धित अनुच्छेदों में निम्नलिखित को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए :—

(i) सम्पूर्ण राजस्व, जो कि भिन्न-भिन्न राज्यों में आबंटन के लिए सभी स्रोतों से केन्द्र द्वारा वसूल किया गया हो, का $\frac{1}{2}$ उपलब्ध कराने के लिए;

(ii) राज्यों के बीच सम्पूर्ण केन्द्रीय राजस्व के इस $\frac{1}{2}$ के आबंटन के लिए सिद्धान्त और अनुपात निर्धारित करने का काम वित्त आयोग को सौंपने के लिए;

(iii) केन्द्रीय कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त योजना आयोग को एक सांविधिक निकाय बनाने के लिए; और

(iv) राष्ट्रीय विकास परिषद को भी एक ऐसा सांविधिक निकाय बनाने के लिए जिसमें केन्द्र और राज्य दोनों प्रतिनिधि होंगे।

14. अनुच्छेद 289(2) और (3), जो कि केन्द्र को अधिकार देता है कि वह आवश्यक मामलों में राज्यों की सम्पत्ति और आय पर कर ले, को निकाल दिया जाना चाहिए क्योंकि यह भी राज्यों की स्वायत्तता पर एक प्रकार का अनधिकार प्रवेश है।

15. अनुच्छेद 302, जो कि व्यापार और वाणिज्य तथा राज्य में हस्तक्षेप पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार केन्द्र को देता है, को भी ऊपर दिए आधार पर ही निकाल दिया जाना चाहिए।

16. जैसी कि मौजूदा स्थिति है, राज्य का अपनी ही कतिपय आस्तियों पर कोई अधिकार नहीं है। सातवीं अनुसूची की संगत प्रविष्टियों को उपयुक्त रूप से पुन: सूत्रबद्ध किया जाना चाहिए जिससे कि आस्तियों (जैसे असम में पेट्रोलियम गैस के मामले में) के अपव्यय को रोकने और सभी खनन/अपव्ययी आस्तियों पर रायल्टी निर्धारित करने का अधिकार राज्य को प्राप्त हो सके।

केन्द्र में एक दलीय शासन से भिन्न पार्टियों द्वारा कई राज्यों में अधिकार के अंगीकार के विचार से, केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की समस्या को बहुत ही अधिक महत्व दिया गया है। जबकि संविधान में उपर्युक्त परिवर्तन करने से केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में निश्चय ही बहुत अधिक सुधार आ जाएगा। इस सम्बन्ध में केन्द्र में सत्ताधारियों का बहुत अधिक सहनशील होना और उच्च स्तर का राजनीतिक रूप अपनाना अपेक्षित होगा। वास्तव में असम जातीयवादी दल आशा करता है कि सांविधानिक परिवर्तनों से अलग, आयोग को समस्या के इस नैतिक पहलू पर भी जोर देना होगा।

भारतीय जनता युवा मंच

गोवा, दमन, दीव

ज्ञापन

गोवा की इस सुन्दर भूमि पर आपकी अध्यक्षता के अधीन स्थापित आयोग का स्वागत करते हुए प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं और वास्तव में आशा करते हैं कि आपका यह दौरा बेहतर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा।

हम इस तथ्य को मानते हैं कि आपकी अध्यक्षता के अधीन स्थापित आयोग का क्षेत्र केन्द्र-राज्य सम्बन्धों तक सीमित है फिर भी केन्द्र-राज्य संबंध के सर्वाधिक हित में सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि गोवा को सम्पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया है।

आपको स्मरण होगा कि देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने गोवा वासियों को आश्वासन दिया था कि भारत वर्ष के संविधान के ढांचे के अंतर्गत गोवा वासियों की अलग से पहचान बनाए रखी जाएगी। आज यह स्थिति आ पहुंची है कि गोवा को राज्य का दर्जा दे दिया जाए। आपके आयोग द्वारा प्रारंभ से ही उस प्रक्रिया को गति मिल गई है।

अर्थव्यवस्था

हाल के अध्ययन से पता चलता है कि गोवा को राज्यत्व प्रदान किया जाना आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य हल होगा, यदि गोवा को राज्य का दर्जा प्रदान कर दिया जाता है तो गोवा उन कई राज्यों में से एक होगा जो अनुपाततः अन्य राज्यों की अपेक्षा कम केन्द्रीय सहायता प्राप्त कर रहे हैं। भारी मात्रा में खनिज संसाधनों, इसकी निर्यात संभाव्यताओं, बढ़ती हुई पर्यटन व्यवस्थाओं और नैसर्गिक मीन उद्योग ने गोवा को पूरी तरह से एक मजबूत आर्थिक आधार प्रदान कर दिया है। हमारी औद्योगिक सम्भाव्यताएं और आगे बढ़ सकती हैं यदि विभिन्न औद्योगिक नीति निर्णय संबंधी शक्तियां स्थानीय प्राधिकारियों में निहित हों। यह राज्य का दर्जा प्राप्त होने पर किया जा सकता है। इस प्रकार गोवा को राज्यत्व प्रदान किये जाने के बाद औद्योगिकीकरण की गति तेज हो जाएगी। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से गोवा अधिक समर्थ बन जाएगा, परिणामस्वरूप केन्द्र का भार कम हो जाएगा।

शैक्षिक क्षेत्र

शैक्षिक क्षेत्र में गोवा में विश्वविद्यालय होने की प्रक्रिया पहले ही प्रारंभ हो गई है। इस विश्वविद्यालय से सभी महत्वपूर्ण वृत्तिक कालेजों सहित लगभग 25 कालेज सम्बद्ध किए जा रहे हैं। किन्तु एक कृषि विश्वविद्यालय, एक प्रौद्योगिकी, संस्थान होने के लिए संघ राज्य क्षेत्र की प्रदत्त शक्तियां अपर्याप्त हैं। इसलिए गोवा की भूमि पर इन सभी संस्थानों को स्थापित करने के लिए राज्यत्व से ही हमें पर्याप्त शक्तियां मिल सकती हैं।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र

हमारी अलग से पहचान बनाए रखी जानी है। यदि गोवा को मात्र राज्यत्व मंजूर कर दिया जाता है तो निश्चय ही भारत के राज्य रूपी गले के हार में चमकीला रंग प्रदान करने का कार्य होगा। इस प्रकार केन्द्र के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने की दृष्टि से गोवा को राज्यत्व प्रदान करने के लिए ठोस सिफारिश ही अत्यधिक सहायक सिद्ध होगी।

भाषा

गोवा में जन समुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा कोंकणी है। विदेशी दमन के कारण कोंकणी को गोवा में कभी भी अपेक्षित और सम्मानजनक स्थान नहीं मिल सका। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कोंकणी ने काफी प्रगति की है और अन्ततः इसकी चमत्कारिक प्रगति का ही परिणाम है कि इसे सन् 1975 में साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता मिल गई है। कोंकणी का अलग से अपना साहित्य है और पूरे दक्षिण भारत में इसके बोलने वालों की काफी संख्या है। एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होने के साथ-साथ जिस प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं के काफी पहले से व्याकरण और मुद्रणालय हैं उसी प्रकार से इसके भी हैं। इस प्रकार भाषा के आधार पर गोवा को राज्यत्व प्रदान करने का निर्णय लिया जाता है तो कोंकणी को इसकी राजभाषा की हैसियत प्रदान की जाए और इसे इस संघ राज्य क्षेत्र की एकमात्र राजभाषा स्वीकार किया जाए।

दमन और दीव

गोवा के इन दोनों उपरिशायी पॉकिटों का भविष्य स्वतंत्र रूप से तय किया जाए क्योंकि गोवा से इनका संबंध मात्र संयोग की बात है अतः इन संघ राज्य क्षेत्रों का गोवा से प्रशासित नहीं किया जा सकता जोकि इन स्थानों से काफी मीलों की दूरी पर स्थित है। कुल मिलाकर हम महसूस करते हैं कि प्राचीन औपनिवेशिक शासन प्रणाली के दौरान गोवा वासियों को घटिया नागरिक माना जाता था और इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उनकी काफी ऊंची आकांक्षाएं हैं किन्तु दुर्भाग्य से हमें अभी तक प्रथम श्रेणी का नागरिक नहीं माना जाता। इससे केंद्र के विरुद्ध निराशा और कुंठा बढ़ी है जिसे पूर्ण राज्यत्व का दर्जा प्रदान कर ही दूर किया जा सकता है और इस प्रकार केन्द्र और राज्य के मध्य बेहतर सम्बन्ध बनने का मार्ग प्रशस्त होगा।

विवेकपूर्ण, सही और शीघ्र सिफारिश किए जाने की प्रतीक्षा में।

जनतांत्रिक समाजवादी दल

ज्ञापन

हम स्वशासन प्राप्त करने के लिए नए आन्दोलन के मध्य में हैं। इसकी मुख्य प्रेरणा प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्ति के छिन्नभिन्न करने के प्रयत्न में मिलती है क्योंकि यह माना जाता है कि जहां लोगों के वास्तविक संघ के लिए प्रशासन संगठन को उत्तरदायी बनाया जाता है वहां कार्यकुशलता के लिए ही नहीं बल्कि स्वतंत्रता के लिए भी अधिक मौका होता है। (हेरोल्ड जे० लास्की—दि फाउन्डेशन्स ऑफ सॉवरनटि—पृष्ठ 243)

भारत के संविधान के भाग I में संघ और इसके संघ राज्य क्षेत्रों के बारे में उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 1 में संघ राज्य क्षेत्रों के नाम और उनका विवरण है। जैसे भारत अर्थात् भारत "राज्यों का संघ" होगा। विधि शास्त्रियों, राजनीतिक वैज्ञानिकों, राजनीतिक दलों और भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का सर्वसम्मत विचार है कि भारत "राज्यों का परिसंघ" है।

संघीय संविधान की सबसे अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता संघ और राज्यों के बीच विधायीशक्ति का वितरण है। संघ और राज्य अपने सम्बन्धित क्षेत्रों में एक दूसरे के लिए स्वतंत्र होने चाहिए। संघ और राज्य अपनी शक्तियां एक ही स्रोत अर्थात् संविधान से प्राप्त करते हैं। संवैधानिक कानून पर सुप्रसिद्ध प्राधिकारी प्रो० के० सी० ह्वेरे संघीय सिद्धान्तों की परिभाषा देते हैं जैसे:—"शक्तियों के विभाजन का तरीका, ताकि आप और क्षेत्रीय सरकारें प्रत्येक अपने क्षेत्र के अंतर्गत समन्वय करती हैं और स्वतंत्र हैं।" प्रसिद्ध विशेषज्ञ श्री ए० बी० डिके अपनी पुस्तक "लॉ ऑफ दी कॉन्स्टीट्यूशन" में विकसित संघवाद के तत्व की परिभाषा इस प्रकार देते हैं जैसे:—"संविधान की सर्वोच्चता—विभिन्न शक्तियों और सरकार की सीमित और समन्वित प्राधिकार वाले निकायों के बीच वितरण—संविधानों के व्याख्याताओं के रूप में कार्य करने के लिए न्यायालयों का प्राधिकार" उन्होंने आगे

कहा है, "संघवाद की मूलभूत विशिष्टियों के रूप में शक्तियों का वितरण जिस उद्देश्य के लिए एक संघीय राज्य बनाया जाता है उसमें राष्ट्रीय सरकार और अलग-अलग राज्यों के बीच प्राधिकार का विभाजन सम्मिलित होता है। राष्ट्र को दी गयी शक्तियों से वास्तव में अलग-अलग राज्यों के प्राधिकार पर बहुत से अंकुश लगते हैं और चूंकि अभिप्राय यह नहीं है कि राज्यों के अधिकारों में अनधिकार हस्तक्षेप करने का केन्द्र को अवसर मिले। अनिवार्य रूप से कार्य का क्षेत्र परिभाषा का उद्देश्य है।" संघवाद से अभिगृहीत है संघ और राज्य सरकारों के बीच विधायी, वित्तीय, कार्यकारी और न्यायिक शासकीय प्राधिकार का विवरण।

संघ राज्य संबंधों का विषय अत्यावश्यक महत्व का हो गया है और संविधान के ढांचे के अन्तर्गत भारत की एकता और अखंडता के परिरक्षण के लिए निर्णायक हो गया है तो भी भारत की अखंडता और प्रभुसत्ता का आविर्भाव हमारे महान देश में रहने वाले अलग-अलग भाषाई, जाति संबंधी और सांस्कृतिक वर्गों की सामंजस्यता के लिए किए जाने वाले अनौपचारिक प्रयत्नों से होना चाहिए। एकता का अभिप्राय समरसता से है। इससे भारत के बहुमुखी व्यक्तित्व की समग्रता प्रतिबिंबित होनी चाहिए। इस प्रकार की अर्थपूर्ण संरचना केवल संघीय आधार वाले संसदीय जनतंत्र से ही प्राप्त हो सकती है। उपनिवेशी अधीनता से मुक्ति पाने के लिए किए गए संघर्ष ने उनको एकजुट कर दिया। स्वतंत्रता के लिए किए गए संघर्ष द्वारा बना एकता का वह सुनहरी सूत्र अब भी सम्पूर्ण भारत में विद्यमान है।

"राज्यों की स्वायत्तता" (संघवाद की आधारभूत नींव) को वास्तविक अर्थपूर्ण, उद्देश्यपूर्ण और प्रभावी बनाने के लिए पिछले दो दशकों से राज्यों द्वारा अधिक शक्तियां दिए जाने की मांग की जा रही है। अब तक केन्द्र और राज्यों में कांग्रेस पार्टी का शासन रहा है हालांकि कांग्रेस पार्टी के भीतर संघवाद के बारे में कुछ अवरुद्ध आवाजें उठती रही हैं किन्तु व्यावहारिक रूप में इस संबंध में राज्य सरकारें शान्त रही हैं। पार्टी अनुशासन के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने राज्यों के लिए जो कुछ भी तय किया उन्होंने उसका पालन किया है। इसमें अचानक और अनौपचारिक रूप से मुख्य मंत्रियों का बदला जाना और यहां तक कि कांग्रेस शासित राज्यों में भी राष्ट्रपति शासन घोषणा (निर्वाचित विधानमंडलों का भंग किया जाना सहित) सम्मिलित हैं। इसके पश्चात् जनता पार्टी सत्ता में आई। इसने कांग्रेस पार्टी द्वारा शासित राज्य सरकारों को बरखास्त कर दिया और राज्य विधानमंडलों को भी भंग कर दिया। कांग्रेस पार्टी और कांग्रेस नेताओं ने अचानक समझा कि हमारा संविधान संघीय है। किंतु जनवरी, 1980 में जब कांग्रेस पार्टी पुनः सत्ता में आ गई तो संघवाद के सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दी गई और केन्द्र में कांग्रेस सरकार ने कई राज्य सरकारों को बरखास्त करके और निर्वाचित राज्य विधानमंडलों को भंग करके जनता पार्टी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को दुहरा दिया।

कांग्रेस दल की सत्ता का एकाधिकार समाप्त हो गया है। भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल और क्षेत्रीय दल विभिन्न राज्यों और केन्द्र में सत्ता में हैं। लगता है कि भारतीय राज्यतंत्र की आगे यही प्रणाली हो सकती है इसलिए केन्द्र और राज्यों के संबंधों की स्थिति अभूतपूर्व हो गई है। जब तक कि भारतीय जीवन बदलते हुए राजनीतिक परिदृश्य के अन्तर्गत भारत की वास्तविकता और राजनीतिक समाजशास्त्र को ध्यान में रखते हुए समस्या के इस पहलू को उचित तरीके से नहीं समझा जाता तब तक एकता और अखंडता की शक्तियों को मजबूत नहीं किया जा सकता है।

ज्योंही केन्द्र और राज्य के सम्बन्धों की समीक्षा के लिए मांग उठती है उत्प्रेरित किए गए अथवा अनुप्रेरित कुछ व्यक्ति उन्मत्त हो जाते हैं और तर्क प्रस्तुत करने लगते हैं कि किसी प्रकार की भी समीक्षा राष्ट्रीय अखंडता और एकता को निश्चय ही प्रभावित करेगी।

यहां यह बताना संगत है कि संविधान के प्रारम्भ होने के कुछ समय बाद ही राज्य पुनर्गठन आयोग को इनमें से कुछ बातों पर विचार करने का मौका मिला था। आयोग की रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत की गई थी और लगभग पच्चीस वर्ष से पहले रिपोर्ट के कुछ विचार-विमर्शों से संकेत मिलता है कि यहां तक कि उन दिनों में विचारक प्रेक्षकों द्वारा वर्तमान अपर्याप्तताओं को आंशिक रूप से ही दृष्टिपात किया जा सका था। रिपोर्ट के पृष्ठ 52 पर पैराग्राफ 181 और 182 में निम्नलिखित उल्लेख है।

181. "निःसन्देह रूप से यह सच है कि भारतीय संघ के सभी राज्य विकास सम्बन्धी व्यय के लिए अब अलग-अलग मात्राओं में केन्द्रीय सहायता पर निर्भर हैं। फिर भी हमें इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं करना है कि केन्द्र पर अत्यधिक निर्भरता संघीय सिद्धान्तों से दूर ले जाती है क्योंकि राजनीतिक शक्ति का वास्तविक विभाजन पर्याप्त वित्तीय शक्तियों और संसाधनों के बिना सम्भव नहीं है। संघ राज्य का संतुलन निश्चय ही छिन्न-भिन्न हो सकता है यदि संघटक इसकी इकाइयों के बीच घटिया संबंधों और यदि खासतौर से उनका झुकाव फिजूलखर्च की ओर हो।" "यदि राज्यों में वास्तविक स्वतंत्रता बनाए रखते हुए संघीय प्रणाली को जारी रखा जाना है," आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सर जॉन लाठन कहते हैं, कि . . . "राज्यों के पास अपने निजी नियंत्रण के अधीन उचित रूप से उनके उत्तरदायित्वों के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन होने चाहिए।"

182. "हम इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच प्रशासनिक सहयोग के लिए बढ़ती हुई आवश्यकताओं के साथ केन्द्र से भुगतानों के लिए राज्य सरकारों की आंशिक निर्भरता बढ़ती जा रही है और इस सच्चाई के प्रति भी कि सशर्त अनुदान देने की प्रणाली का उपयोग करके केन्द्र सरकार बारम्बार ऐसे मामलों के विकास को बढ़ावा देती है जो कि संवैधानिक तौर पर राज्यों को सौंपे जाते हैं। इन परिस्थितियों में सब जगह संघवाद की धारणा में परिवर्तन होता जा रहा है। अन्तर्राज्यीय सहयोग को संघवाद के संवैधानिक पहलुओं की अपेक्षा कितना महत्व दिया जाना है वह समय की आवश्यकताओं और परिस्थितियों पर और जिस संदर्भ में इस समस्या पर विचार किया जाना है उस पर निर्भर करेगा।"

निःसन्देह समय और परिस्थितियों में मूलतः परिवर्तन हो गया है। यहाँ तक कि सन् 1967 में जब घटनाओं का रहस्योद्घाटन नाजुक अवस्था तक नहीं पहुंचा था, संघ-राज्य सम्बन्धों पर एम० सी० शीतलवाड़ की अध्यक्षता में प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल ने केन्द्र और राज्यों के बीच के असामान्य संबंधों के बारे में अपने विचार दिये थे। रिपोर्ट की भूमिका में अध्ययन दल ने कहा है :—

"यह मानना सही है कि भारतीय परिदृश्य के राजनैतिक तथ्यों ने दृष्टिकोणों के विकास में अहम् भूमिका अदा की है। केन्द्र में और राज्यों में जहाँ एक ही दल का शासन हो वहां केन्द्र-राज्य संबंधों के लिए वैकल्पिक और संविधान से इतर प्रणाली उपलब्ध हो जाती है। कांग्रेस दल ने शासन-काल में व्यावहारिक स्तर पर यह प्रणाली काफी सक्रिय रही है और इसी के द्वारा केन्द्र राज्य संबंधों की गति को नियंत्रित किया गया है। केन्द्र और राज्य के नेतृत्व को जोड़ने वाले राजनैतिक नेटवर्क का प्रयोग पर्याप्त रूप से मतभेदों और मामलों के अलगाव को दूर करने या यहां तक कि असुविधाजनक मसलों पर विचार को टालने के लिए किया गया है। इस प्रक्रिया में कम से कम जानबूझकर या प्रत्यक्ष रूप में संविधान का उल्लंघन नहीं हुआ किन्तु अक्सर उनका पालन करने से कतराया अवश्य गया है। इसके साथ-साथ प्रशासनिक सोचविचार की अपेक्षा राजनैतिक सोचविचार और राजनैतिक नेताओं के व्यक्तित्व तथा केन्द्रीय नेतृत्व के साथ उनके समीकरण पर केन्द्र के साथ बने संबंध ने निर्णयों को प्रभावित किया है। संवैधानिक उपबंधों का उपयोग नहीं हुआ और मतभेदों को पार्टी के स्तर पर निपटाया गया बजाए इसके कि संवैधानिक मशीनरी का सहारा लेना पड़ता।"

अध्ययन दल ने केवल आंशिक रूप से समस्या पर विचार-विमर्श किया है। अध्ययन दल के विचारार्थ विषय प्रशासनिक सम्बन्धों तक ही सीमित रहे। राजनैतिक वास्तविकता इसके कहीं अधिक चिन्ताजनक थी। इस अध्ययन के किए जाने के दस वर्ष बाद एक आम चुनाव में केरल में कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार बन गई। इसने संघ सरकार के आत्मतोष को उस सीमा तक आन्दोलित कर दिया कि भारतीय राजतंत्र का आधारभूत संघीय स्वरूप ही नजरअंदाज हो गया। केन्द्रीय सरकार की शक्तियों के अनुचित उपयोग के जरिए हुए थोड़े से परिवर्तन ने केरल में कांग्रेस पार्टी के प्रभाव को आंशिक रूप से बहाल कर दिया। जबकि कुछ मामलों में

कांग्रेस पार्टी द्वारा शासित राज्यों के प्रति दृष्टिकोण, जैसा कि शीतलवाड़ अध्ययन दल ने संकेत किया है, संविधान से इतर था, दुर्भाग्य से विरोधी दलों द्वारा शासित राज्यों के प्रति दृष्टिकोण भी कुछ मामलों में संविधान से इतर हो गया। संविधान के अधीन केन्द्र सरकार के पास राज्य सरकार के कार्यकलापों को नियंत्रित करने के लिए काफी शक्तियां हैं। संविधान के अधीन प्रदत्त प्रशासनिक, विधायी और वित्तीय शक्तियों के अन्धभक्ति और चालाकी से पूर्ण उपयोग के जरिये केन्द्रीय सरकार किसी भी राज्य प्रशासन को अस्थिर कर सकती है। किन्तु शक्ति के इस प्रकार के चालाकी से किए गए उपयोग को रोकने के लिए संविधान के अधीन कोई गारन्टी विद्यमान नहीं है। राज्य पूर्णतया निस्सहाय हो जाता है यदि राजनैतिक विचारों में विभिन्नता होने के परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार ऐसी राज्य सरकारों की प्रभावशीलता को कम करने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करे। अन्ततः राष्ट्रीय एकीकरण ऐसे अंधभक्तिपूर्ण दृष्टिकोण का शिकार हो जाता है। इस परिस्थिति से संविधान में उचित परिवर्तन किए जाने का औचित्य सिद्ध होता है ताकि संवैधानिक संरचना में इस प्रकार का उपबंध हो जाए कि भविष्य में जिस बहुदल स्वरूप वाली प्रणाली के पनपने की सम्भावना है उसके अंतर्गत राजनैतिक शक्तियां सुनिश्चित रूप से कार्रवाई कर सकें।

शीतलवाड़ अध्ययन दल ने पन्द्रह वर्ष से अधिक समय पूर्व इस संबंध में समाधान की आवश्यकता को मान लिया था जबकि समस्या ने इतना गम्भीर रूप धारण नहीं किया था। रिपोर्ट की भूमिका में अध्ययन दल ने टिप्पणी की है :—

"यदि सांविधानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो स्थिति सामान्य थी। सामान्य कार्यविधि की अपेक्षा करने के परिणामस्वरूप मामलों को अतिरिक्त वैधानिक तरीकों से सुलझाने के तरीके बढ़ते रहे और सही वातावरण में उन्हें सुलझाने के लिए पर्याप्त अनुभव द्वारा नियमित कार्यविधि का विकास नहीं किया गया। राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारों के अभ्युदय ने पहले के उपायों के उपलब्ध न होने के कारण इन समस्याओं को आगे लाकर खड़ा कर दिया।"

अध्ययन दल ने आगे यह भी उल्लेख किया है :—

"कुछ ही वर्षों में यह अनुभव अपना लिया जाएगा तो इसके अभूतपूर्व होने के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाई उचित राजनिकाय की प्रतिक्रिया में उचित समायोजन से धीरे–धीरे हल हो जाएगी।"

परवर्ती वर्षों में राजनीतिक प्रतिक्रिया में ऐसे किसी उद्देश्य को स्पष्ट नहीं किया कि संघीय मशीनरी को बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति को अपनाने की अनुमति दी जाए। जनसंख्या को चौकन्ना कर देने वाली वृद्धि, रोजगार की बढ़ती हुई मांग, लगातार मूल्यों में वृद्धि को रोकने के लिए सामाजिक सुरक्षोपायों की अनुपस्थिति ने स्थिति को और भी अधिक जटिल बना दिया है। संघ सरकार का सभी आर्थिक कार्यकलापों के सभी पहलुओं पर पूर्ण नियंत्रण का अधिकार इसे प्रमुखता और प्रतिष्ठा प्रदान करता है जो कि संविधान के अन्तर्गत राज्य सरकारों को दिए गए उनके उत्तरदायित्वों के अनुरूप है। यदि सामाजिक आर्थिक वृद्धि को जारी रखे जाने को सुनिश्चित करना हो तो इस असंतुलन में सुधार किए जाने की आवश्यकता है।

संघटक सभा के सांविधानिक सलाहकार, श्री बी० एन० राव, ने सांविधानिक पूर्वोदाहरणों (द्वितीय शृंखला) की पुस्तक के प्रथम संस्करण की प्रस्तावना में लिखा है :—

"जर्मनी का वेमार संविधान कई यूरोपीय संविधानों, जो कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्रकट हो गया था, का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें विविध अनुदेशात्मक उपबंध हैं। यह माना गया है कि एक समय में संविधान तैयार करने के सर्वोत्कृष्ट प्रयास भी इसके संरचना करने वालों की किसी भी महत्वाकांक्षी अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर सकेगा। इसके बजाय, इसने यह शिक्षा और चेतावनी दी है कि किसी संविधान की लिखित पत्र के उत्कृष्ट होने पर निर्भर नहीं करती बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि जिन लोगों के लिए इसे बनाया गया है यह उनकी विशिष्टताओं के अनुरूप है या नहीं।"

कुछ बुद्धिजीवियों ने यह आशंका व्यक्त की है कि यदि राज्यों में संघ से और अधिक अधिकारों का अन्तरण किया गया तो संघ कमजोर हो सकता है और यदि राज्यों की प्रतिक्रियात्मक शक्तियों ने अधिकारों को प्राप्त कर लिया तो संघ ऐसी स्थिति का सामना नहीं कर पाएगा। सत्यनिष्ठ विद्वानों की आशंकाएं इस गलत प्रत्याशा पर आधारित थीं कि संघ को राज्य सरकारों से अधिक प्रगतिशील होना चाहिए। अब प्रोद्भूत होने वाले कुछ क्षेत्रीय दल प्रतिक्रियावादी हो सकते हैं परन्तु सभी नहीं। वास्तव में उनमें से कुछ राजनीतिक साधन होने की बजाए बहुत ही अधिक विरोधी आन्दोलन हैं। संघ को संविधान के अन्तर्गत बहुत अधिकार प्राप्त हैं यदि कोई प्रतिक्रियावादी दल केन्द्र में आ जाता है तो इस संविधान का उसी प्रकार प्रयोग किया जाएगा जैसे कि हिटलर ने वेमर संविधान का किया था। प्रजातांत्रिक संस्थाओं की शक्ति प्रजातांत्रिक बलों में ही है। संघ स्तर पर संविधान की प्रस्तावना और निदेशात्मक सिद्धान्तों में बताए गए उद्देश्यों को न मानते हुए पूर्णतः उनके उल्लंघन में कांग्रेस (आई) विकास के लिए पूंजीवादी रास्ते पर चल रही है — विकास विरोधी और गतिहीनता की शक्तियों को गतिमान करने के लिए आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण, एकाधिकार में वृद्धि करना, आर्थिक चौकाने वाली आर्थिक विषमताएं, बेरोजगारी, असमान आर्थिक विकास (सभी का परिणाम विकास पूंजीवादी तरीका है) ये सभी भारतीय राज्यतंत्र की वास्तविक विघटन शक्तियां हैं जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में असमान आर्थिक विकास हो रहा है और भारत के एक भाग या क्षेत्र अथवा राज्य के बीच अन्य भागों के साथ आर्थिक सम्बन्धों का सृजन उपनिवेशवादी ढंग से हो रहा है। भारत की एकता को सुरक्षित रखने और मजबूत बनाने के लिए, राजनीतिक बलों को अस्तित्व में लाया जाए जिससे कि इस आर्थिक प्रक्रिया को रद्द किया जा सके और आवश्यक सुधारक कार्रवाई की जा सके। इस सम्बन्ध में राज्य निश्चय ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे। अतः संघ और राज्य सम्बन्धों की समीक्षा किया जाना अपेक्षित है।

संघ और राज्यों के बीच संघवाद के सिद्धान्तों की बुनियाद पर आधारित सामंजस्य से बेहतर एकता को और भी बढ़ावा मिल सकता है जबकि राज्यों की प्रतिष्ठा और राज्यों के निर्धारित क्षेत्र में कार्य की स्वतंत्रता सुरक्षित रखनी होगी। सुविकसित और मजबूत राज्यों के बिना मजबूत भारत की कल्पना की ही नहीं जा सकती। स्पष्ट रूप से उल्लिखित प्राधिकरणों के अलग-अलग क्षेत्रों में, मजबूत राज्य होने से संघ और भी मजबूत होगा तथा कमजोर राज्यों से राष्ट्र केवल कमजोर ही होगा।

प्रोफेसर सेवेयर के शब्दों में : "भारत का उपमहाद्वीप एक दूसरा ही क्षेत्र था जिसमें आकार, आबादी, क्षेत्रीय (जिसमें भाषा विषयक) असमानता और संचार सम्बन्धी समस्याओं के कारण स्पष्ट संघीय स्थिति पैदा हो गई थी।"

भारत सरकार के अधिनियम, 1935 जो कि 1937 में लागू हुआ था, में संघवाद की मूलभूत कुछ विशेषताएं दी गई हैं। भारत के संविधान को तैयार करते समय संघटक सभा ने कुछ सीमा तक अधिनियम, 1935 की मूलभूत कुछ विशेषताए का पालन किया था। अतः भारतीय संविधान से आशय संघीय होने से है। किन्तु भारत के संविधान के लागू होने से कुछ एकात्मक विशेषताएं प्रबल रूप से उभर कर आईं जिसके परिणामस्वरूप एकदलीय शासन स्थापित हो गया।

मौजूदा स्थिति वैसी ही है जिसका कि श्री राजमन्नार की समिति में उल्लेख किया गया था :

"यद्यपि संविधान में एक संघीय प्रणाली का गठन किया गया है फिर भी यह अवश्य मानना होगा कि ऐसे कई उपबंध है जो कि संघवाद के सिद्धान्तों के अनुरूप है। एकात्मक प्रवृत्तियां विद्यमान है और शक्तियों के आबटन में काफी पक्षपात है और इनका झुकाव केन्द्र की ओर है। संघवाद में, राष्ट्रीय और राज्य सरकार समानता के आधार पर अस्तित्व में आती हैं और इन्हें एकपक्षीय रूप से दूसरों के सुनिश्चित प्राधिकार और कार्यों पर आक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु भारत में राष्ट्रीय सरकार में ऐसे अधिकार निहित हैं जिनके अनुसार वह कुछ अवसरों पर राज्य की विधान सभा और इसके अन्योन्य अधिकार क्षेत्र में आक्रमण कर सकती है। संविधान के माध्यम से यह पूरी तरह से राज्यों की अनधीनता की प्राप्ति है। राज्य के मामलों में अतिक्रमण करने और इसी प्रकार राज्यों की स्वायत्तता को प्रभावित करने के सम्बन्ध में केन्द्र के बहुत ही अधिक अवसर हैं। संविधान में ऐसे भी कई उपबंध हैं जिनसे प्रतीत होता है कि केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा इस प्रकार के मामलों में अधिक पर्यवेक्षण सम्बन्धी शक्ति प्रदान की गई है जो कि पूर्णतया राज्य के स्तर के सुनिश्चित और विशेष रूप से उल्लेख किए गए मामले है।"

अत: संघ राज्य सम्बन्धों की समीक्षा करने की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है और उक्त समीक्षा की आवश्यकता के विषय में सरकारिया आयोग की नियुक्ति स्वयं में एक सुस्पष्ट मान्यता है ।

किन्तु जिस तरीके से आयोग को संघटित किया गया है और राज्यों से सलाह-मशविरा किए बिना विचारार्थ विषयों को सूत्रबद्ध किया गया है, उससे निश्चय ही कोई भी यह महसूस कर सकता है कि संघ और राज्यों के सम्बन्धों की उद्देश्यपूर्ण समीक्षा को लेकर संघ सरकार उत्सुक नहीं है किन्तु इस आयोग के संघटन से आशय ब्रिटिश रॉयल कमीशन की तरह ध्यानाकर्षण के रूप में कार्य करने से है । इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार का मकसद प्रशंसनीय नहीं जान पड़ता है ।

संघ और राज्यों के बीच सम्बन्धों को मुख्य रूप से निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है :--

(1) विधायी, (2) प्रशासनिक, और (3) वित्तीय सम्बन्ध । यह बात विवाद से परे है कि रक्षा, विदेशी सम्बन्ध, करेंसी, आर्थिक योजना, बैंकिंग, बीमा, तेल क्षेत्रों और खनिजों, निर्यातों और आयातों जैसे विषय एकमात्र संघ सरकार के नियंत्रणाधीन होने चाहिए । समिति सभी तीनों सूचियों अर्थात् केन्द्रीय, राज्य और समवर्ती सूची को अवश्य ही पूरा करेगी और उनकी उचित पुन:व्यवस्था करेगी ।

अनुच्छेद 370 : इस अनुच्छेद में संशोधन करने सम्बन्धी सभी प्रयासों को रोक देना चाहिए । जम्मू-कश्मीर के विशेष स्तर को छेड़ना नहीं चाहिए ।

विधायी सम्बन्ध

अनुच्छेद 31 ग और संविधान के निदेशात्मक सिद्धान्त

अनुच्छेद 31ग के अनुसार संसद संविधान के भाग IV में निर्धारित सभी या किन्हीं निदेशात्मक सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने के लिए वे राज्य की नीति को प्रवृत्त करने के सम्बन्ध में कानून पारित कर सकती है । यदि घोषणा की गई हो तो कानून पारित करने से आशय उक्त नीति को क्रियान्वित करना है तो अनुच्छेद 14 या 19 को किसी भी रूप में संक्षिप्त करने के बावजूद भी उक्त कानून वैध रहेगा । संविधान के निदेशात्मक सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने के प्रयोजन के लिए यदि राज्य विधान सभा को कोई कानून पारित करना पड़ता है तो अनुच्छेद 31 के अनुसार उक्त कानून को राष्ट्रपति के विचारार्थ और उसकी सहमति के लिए आरक्षित रखा जाए । जब तक कानून को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसे प्रवृत्त नहीं किया जा सकता । यह एक विलक्षण स्थिति है । राज्य विधान सभाओं को भी वही विशेषाधिकार और अधिकार दिया जाना चाहिए जो कि इस सम्बन्ध में संसद को प्राप्त है । फिर इसके सम्बन्ध में राष्ट्रपति के विचार और सहमति की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए । अनुच्छेद 31 ग में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि राज्य विधान मंडल अविलम्ब संविधान के निदेशात्मक सिद्धान्तों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में कानून बना सके ।

संघ सूची की प्रविष्टि सं० 97

1. **अनुच्छेद 248 अवशिष्ट शक्तियां:**--अवशिष्ट विधायी शक्ति संसद में निहित है । राज्य विधान सभाएं ऐसी अवशिष्ट शक्तियों, जो कि भारत सरकार के अधिनियम, 1935 की धारा 104 के अधीन आती हों, का उपयोग नहीं कर सकती हैं । अमरिकन और आस्ट्रेलियाई संविधानों में राज्यों द्वारा अवशिष्ट शक्तियों के उपयोग का उपबंध है । यदि राज्यों द्वारा अवशिष्ट शक्तियों के उपयोग किए जाने की अनुमति दे दी गई हो तो यह, विविधता में एकता को ध्यान में रखकर, भारतीय राज्यतंत्र के सुचारु रूप से कार्य करने के हित में होगा ।

युद्ध और राष्ट्रीय खतरे के समय के सिवाय अनुच्छेद 248 के अनुसार प्रदत्त कानून सम्बन्धी अवशिष्ट शक्तियां और संघ सूची की प्रविष्टि सं० 97 द्वारा प्रदत्त कराधान की अवशिष्ट शक्ति राज्य विधानसभा में निहित होनी चाहिए । अत: तदनुसार अनुच्छेद 249 में संशोधन किया जाना चाहिए ।

निदेश, जो कि राज्यों को संघ के अन्योन्य अधिकारों के अनुसरण में दिए जा सकते हों, अनुच्छेद 256 के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय परिषद से सलाह मशविरा करके ही दिए जाने चाहिए ।

अनुच्छेद 249 : राज्य सूची में विशेष रूप से शामिल किए गए विषय के सम्बन्ध में संसद द्वारा कानून बनाना ।

अनुच्छेद 249 को दो-तिहाई बहुमत से राज्य-परिषद् द्वारा पारित किए गए प्रस्ताव की सहायता से लागू किया जा सकता है और इससे संसद द्वारा कानून बनाया जाना आवश्यक या समीचीन होगा । यह संघवाद के सिद्धान्तों का पूर्ण उल्लंघन है । यदि केन्द्र में सत्तारुड़ राजनीतिक पार्टी राज्य-परिषद में दो-तिहाई बहुमत का अधिकार रखती हो तो संघ राज्यों के अधिकार क्षेत्र पर आसानी से अतिक्रमण कर सकता है ।

अनुच्छेद 252 : यदि दो या दो से अधिक राज्य विधान सभाएं चाहती हों कि संसद दूसरी सूची से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाए तो संसद दूसरी सूची में दिए गए विषयों के सम्बन्ध में कानून बना सकती है और इनमें संशोधन करने का आधिकार अकेले संसद को होगा न कि राज्य विधान सभा को जिस से यह लागू होता है।

राज्य विधान मंडल, जिसने कानून बनाने के लिए संसद को अधिकार प्रदान करने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित किया था, को इस कानून में संशोधन करने या इसे रद्द करने का अधिकार होना चाहिए । अत: अनुच्छेद 252 में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 200 :-- इस अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल राज्य के विधान मण्डल द्वारा पारित बिल को राष्ट्रपति के विचारार्थ पेश कर सकता है और राज्यपाल किसी भी बिल के लिए अपनी सहमति नहीं देगा, यदि उसकी राय में कोई बिल, यदि वह विधि बन जाए, उच्च न्यायालय की शक्तियों को कम करे, या कि उससे न्यायालय की उस स्थिति को खतरा पैदा हो, जो उसे संविधान द्वारा प्रदान की गई हो, तो वह उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ पेश करने के लिए बाध्य होगा । उच्च न्यायालय की शक्तियों पर प्रभाव डालने वाले बिलों को छोड़कर राज्यपाल को राष्ट्रपति के विचारार्थ बिल पेश करने का विवेक नहीं होगा । अनुच्छेद 200 में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 200 के अधीन राष्ट्रपति के विचार करने के लिए कोई समय सीमा विहित नहीं की गई है । कोई भी बिल "कोल्ड स्टोरेज" (शीतागार) में डाला जा सकता है । चूंकि राष्ट्रपति अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य हैं, और क्योंकि उसके पास कोई विकल्प नहीं है, इसलिए राज्य की विधायी शक्ति में राष्ट्रपति के "वीटो" के प्रयोग से आसानी से हस्तक्षेप हो सकता है । दूसरे शब्दों में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक तौर पर कुछ दृष्टियों से राज्य विधान मण्डल की विधायी प्रक्रिया, संघ कार्यपालिका की श्रेष्ठता और राजनैतिक दोष सिद्धि या पूर्वाग्रहों के अधीन है । अधिकांश राज्यपालों की निष्ठा केन्द्र की सत्तारुढ़ पार्टी के प्रति होती है क्योंकि उनमें से अधिकांश उसी पार्टी के आदमी होते हैं या अनेक प्रकार से उस पार्टी के आभारी होते हैं । उनका चुनाव, मुख्य रूप से राजनैतिक गतिविधियों पर नजर रखने या कई बार उन गतिविधियों को संचालित करने के लिए भी किया जाता है । अत: यह स्वीकार करना कठिन है कि राज्यपाल राज्य के मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करता है । कई बार ऐसा भी हुआ है कि राज्यों में कांग्रेस के मंत्री तक, उनके विधानमण्डल द्वारा पारित बिलों के संबंध में केन्द्र की उदासीनता को लेकर परेशान रहे है और उन्हें कहते सुना गया, "हमें दिल्ली के समाजवाद से बचाओ ।" ये बिल मुख्यत: कल्याण उपायों से संबंधित थे, जो कि संघ सरकार द्वारा लागू किए गए विधान की अपेक्षा कहीं अधिक प्रगतिशील थे । जब कोई राज्य विधान मण्डल कोई बिल पारित कर देती है तो राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजने की आवश्यकता नहीं होती । यदि संविधान का उल्लंघन हो तो न्यायपालिका उस संबंध में कार्य कर सकती है, बजाए इसके कि कोई राजनैतिक निर्णय या राजनैतिक प्रतिकूल प्रभाव हो । अत: इस अनुच्छेद में संशोधन किया जाना चाहिए । अध्यक्ष (स्पीकर) का इस आशय का प्रमाणपत्र कि बिल पारित हो गया, विधि को लागू करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए या राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् की सलाह से कार्य करना चाहिए जैसा कि राष्ट्रपति अनुच्छेद 74 के अधीन करते हैं ।

आपात-स्थिति

यदि राष्ट्रपति आश्वस्त हों कि गंभीर आपात-स्थिति है और देश की सुरक्षा को कहीं से भी युद्ध या बाहरी आक्रमण या आंतरिक अशांति के कारण खतरा हो, तो वह आपात-स्थिति की उद्घोषणा कर सकते हैं। इस प्रकार आपात स्थिति दो प्रकार की हो सकती है (क) बाहरी, (ख) आंतरिक। संघ सरकार को बाहरी आपात-स्थिति की घोषणा करने की शक्ति होनी चाहिए, आंतरिक आपात-स्थिति से संबंधित उपबंध 1975 की आपात-स्थिति के अनुभव को देखते हुए प्रतिपादित किए जाने चाहिएं।

अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय आपात-स्थिति का प्रख्यापन, अंतरराज्यिक परिषद्, के समक्ष मामला पेश किए जाने के पश्चात् ही, किया जाना चाहिए।

अब तक अनुच्छेद 360 का अवलंबन नहीं किया गया है। वित्तीय अस्थिरता संघ सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था को गलत ढंग से व्यवस्थित करने का परिणाम हो सकता है और ऐसी आपात-स्थिति में राज्यों को दण्ड भोगना पड़ता है। वित्तीय आपात-स्थिति के संबंध में यह एक नियम विरुद्ध स्थिति है। अतः वित्तीय आपात-स्थिति का प्रस्ताव अंतरराज्यिक परिषद के समक्ष पेश करना नितांत आवश्यक है।

अनुच्छेद 356 और 357—राष्ट्रपति शासन

राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल से सूचना (रिपोर्ट) मिलने पर, या अन्यथा जब वह आश्वस्त हो कि राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार आगे नहीं चल सकती, अनुच्छेद 356 और 357 का अवलंब लेकर राज्य सरकार को बर्खास्त कर सकता है और विधान सभा भंग कर सकता है (वैकल्पिक) और स्वयं सारी शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है।

वास्तव में संघ स्तर पर सरकार सारी शक्तियां अपने हाथ में लेती है और संघ सरकार ही यह निर्णय लेती है कि राष्ट्रपति शासन लागू किया जाए या नहीं। वास्तव में गृह मंत्रालय द्वारा राज्यपालों को बताया जाता है कि वे कब और किस प्रकार यह रिपोर्ट लिखें। इन मामलों में राज्यपाल असहाय होते हैं, क्योंकि वे राष्ट्रपति की मर्जी से ही राज्यपाल बने रहते हैं (जिसका अर्थ हुआ प्रधानमंत्री की मर्जी से) अनुच्छेद 356 के अधीन राज्यपाल की रिपोर्ट की भी आवश्यकता नहीं है, केवल राष्ट्रपति का आश्वस्त होना जरूरी है। दूसरे शब्दों में प्रधानमंत्री का, जोकि मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष होता है, आश्वस्त होना जरूरी है। यह एक दुखद स्थिति है कि राज्य सरकारें और राज्य विधान मण्डल प्रधानमंत्री की इच्छा और मर्जी पर ही बने रह सकते हैं।

यहां यह जान लेना संगत होगा कि यदि इतिहास को उठाकर देखें तो राष्ट्रपति शासन पहली बार (संविधान को लागू होने के पश्चात्) 21 जून, 1951 को पंजाब में लागू किया गया था, तब से अब तक राष्ट्रपति शासन, संघराज्य-क्षेत्रों को छोड़कर 67 बार, 21 राज्यों में लागू किया गया। संविधान के अनुसार राज्य सभा (काउंसिल ऑफ स्टेट) और राष्ट्रपति राज्यों के हितों के अभिरक्षक हैं। लेकिन चूंकि राष्ट्रपति को अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्री परिषद् की सलाह पर कार्य करना पड़ता है, इसलिए राष्ट्रपति केवल नाममात्र के लिए ही राष्ट्रपति है और वास्तव में प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद असली निर्णय लेता है।

यदि राष्ट्रपति शासन लागू करना नितांत आवश्यक हो जाए तो वह संसद के दोनों सदस्यों के अनुमोदन के पश्चात् और अंतरराज्यिक परिषद के परामर्श से ही लागू किया जाना चाहिए और राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने की तारीख से तीन महीने के अंदर चुनाव कराए जाने चाहिएं। मौजूदा सरकार को कामचलाऊ सरकार के रूप में कार्य करते रहने देना चाहिए।

यदि उपद्रव और आंतरिक दंगे इस हद तक हों कि निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से चुनाव करवाना संभव न हो तो संसद के दोनों सदनों के अनुमोदन से राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई जा सकती है। किंतु अंतर राज्यिक परिषद् से निश्चित रूप से परामर्श किया जाए। विधि में, उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिएं।

अनुच्छेद 365 भी कुछ कम निंदनीय नहीं है। यदि कोई राज्य सरकार कार्यपालिका शक्ति (कार्यपालिका द्वारा) का प्रयोग करते हुए दिए गए निर्देश का पालन नहीं कर पाती या उसे प्रभावी नहीं कर पाती, तो अनुच्छेद 365 के अधीन राष्ट्रपति अनुच्छेद 365 का अवलंब लेकर राष्ट्रपति शासन लागू कर सकते हैं। यहां भी यह राजनैतिक कार्यपालिका के निर्णय पर आधारित है, न्यायपालिका के संकल्प का परिणाम नहीं। यदि संघ कार्यपालिका द्वारा दिए गए निर्देश स्वयं निंदनीय हों या उनसे विधि के नियमों का उल्लंघन होता हो, तो भी क्या राज्य सरकार उन्हें मानने के लिए बाध्य है? युद्ध की स्थिति को छोड़कर अन्य सभी समय जारी कोई भी निर्देश सार्वजनिक हित में होना चाहिए और राज्य सरकार को संघ राज्यपालिका द्वारा दिए गए निर्देशों, जो कि कई बार "असद्भावपूर्ण" भी हो सकते हैं, को कार्यान्वित करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यह अनुच्छेद संविधान की संविधान-सभा द्वारा अंतिम रूप से अपनाए जाने से 11 दिन पहले शामिल किया गया था। स्पष्टतः इसके संबंध में बाद में सोचा गया। इस अनुच्छेद को हटा दिया जाना चाहिए।

वित्त

सार्वजनिक आय के मुख्य स्रोत हैं:--1. कर, 2. घरेलू उधार, 3. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा उत्पन्न किए गए आधिक अधिशेष। कुछ राजस्वों की केवल संघ सरकार के लिए उगाही की जाती है। इन्हें राज्यों में अंतरित किया जाता है या उनका राज्यों के साथ हिस्सा किया जाता है। अनुच्छेद 280 के अधीन स्थापित वित्त आयोग राष्ट्रपति को उन मामलों में सलाह देता है जिनमें इन राज्यों का हिस्सा किया जाना हो। किंतु भारत सरकार द्वारा वित्तीयन का काफी बड़ा हिस्सा अनुच्छेद 275 के उपबंधों के अनुसार किया जाता है। इस संबंध में वित्त आयोग कुछ नहीं कर सकता।

पिछले 30 वर्षों में संघ से राज्यों को दी जाने वाली बजट-निधि का 60 प्रतिशत से अधिक भाग योजना और वैकल्पिक सहायता के रूप में था और केवल 40 प्रतिशत निधि समय-समय पर नियुक्त वित्त आयोगों की सिफारिशों के अनुसरण में अंतरित निधियों के रूप में थी। यह निधि, जिसमें 60 प्रतिशत अंतरण शामिल थे, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से योजना आयोग के अधिकार क्षेत्र और कार्य क्षेत्र में थी।

केन्द्रीय कर जिसकी हिस्सेदारी के लिए राज्य भी हकदार हैं, संघ द्वारा उगाही किए गए करों के 55 प्रतिशत थे और इस 55 प्रतिशत में से राज्यों का हिस्सा लगभग 45 प्रतिशत था। गैर-सांविधानिक अनुदानों (योजनागत और वैकल्पिक) का निर्धारण हर वर्ष के आधार पर किया जाता था जब वार्षिक योजनाओं को अंतिम रूप दिया जाता। इस प्रकार योजना आयोग को यह निर्णय लेने का कोई सांविधानिक प्राधिकार नहीं है, कि राज्यों को अंतरित की जाने वाली निधियों के मुख्य भाग की किस प्रकार हिस्सेदारी की जाए, वित्त आयोग को नहीं, जो कि एक सांविधानिक निकाय है। भारत सरकार राज्य सरकारों के वैकल्पिक अनुदानों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकारों की तबाही कर सकती है। यह राजनैतिक स्थिति पर निर्भर करता है। अतः राष्ट्रीय विकास परिषद् को प्रतिवर्ष सहायता अनुदान के वितरण संबंधी सामान्य सिद्धांत प्रतिपादित करने चाहिए और राज्य के बजट के घाटे को भारत सरकार द्वारा इन अनुदानों को सही ढंग से वितरित करके पूरा करना चाहिए। उत्पादक सम्पत्ति पैदा करने संबंधी विकास कार्यक्रमों, जो कि योजना का एक भाग है और राष्ट्रीय विकास परिषद और योजना आयोग द्वारा अनुमोदित हों, के परिणामस्वरूप राज्य के बजटों में होने वाले ऐसे घाटों को भारत सरकार के केन्द्रीय बजट में घाटा माना जाना चाहिए। ऐसे विकास कार्यक्रमों को संविधान में मान्यता दी जानी चाहिए। इसके लिए संविधान में उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिएं। प्रो० व्हेअर (Wheare) के अनुसार परिसंघवाद की एक मुख्य अपेक्षा है कि संघ और राज्यों में से प्रत्येक के पास, उनके अपने स्वतंत्र नियंत्रण में पर्याप्त वित्तीय साधन हों ताकि वे अपने कार्य अच्छी तरह से कर सकें। वित्तीय साधनों और कर प्रणाली के विभाजन के अनुसार वित्तीय स्थिति ठोस हो और उसमें लचक हो। राज्यों के पास मौजूद निधि की उगाही करने संबंधी साधन बहुत अपर्याप्त हैं और उनमें लचक का भी अभाव है। विकासशील योजनाओं के संदर्भ में और असमान विकास और भिन्नताओं को कम करने के प्रयास में राज्यों को अधिकाधिक साधनों की आवश्यकता है। संघ सरकार को, संविधान के उपबंधों के अनुसार उपलब्ध साधनों के अलावा विदेशी सहायता और घाटा वित्तीयन की भी सुविधा है। यह दो सुविधाएं राज्यों को नहीं हैं। यदि राज्यों को वित्तीय साधनों के लिए पूरे तौर पर संघ सरकार पर आश्रित होना पड़े तो

परिसंघवाद एकात्मक राज्य बनकर समाप्त हो जाएगा । ऐसी स्थिति में यह खतरा है । इन बुनियादी मुद्दों से संबंधित सभी मामलों की पूर्ण रूप से समीक्षा होनी चाहिए, अर्थात् संघ और राज्यों के बीच राष्ट्र के वित्तीय साधनों के विभाजन के संबंध में, ताकि भारतीय राज्य तंत्र का परिसंघीय स्वरूप कायम रखा जा सके और बचाया जा सके और राज्य की वित्तीय स्थिति मजबूत की जा सके । उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि विभाजन योग्य सामूहिक निधि में सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क और कंपनी करों को शामिल किया जाना चाहिए । भारत सरकार को पेट्रोलियम, कोयले आदि जिसके संबंध में भारत सरकार को एक मात्र व्यापारिक अधिकार है और कीमतें निर्धारित करने (जिसे निर्देशित कीमतें कहा जाता है) का अधिकार है, जैसे—वस्तुओं की बिक्री पर होने वाले लाभ के संबंध में राज्यों का भी हिस्सा होना चाहिए और वित्त आयोग इस हिस्सेदारी के संबंध में सिद्धांत विहित कर सकता है ।

कम्पनी कर

अनुच्छेद 366 का खण्ड 6—कम्पनी कर का अर्थ है, आय पर कोई भी कर, जहां तक कर कंपनियों द्वारा देय हो । सारांश रूप में कंपनी कर आय पर लगने वाला एक कर है किन्तु यह विभाजन योग्य सामूहिक निधि में शामिल नहीं है । इस प्रकार कर को भी आयकर की ही तरह माना जाना चाहिए । सीमा शुल्क और निर्यात शुल्क भी संघ और राज्यों के बीच अनिवार्य रूप से वितरित किया जाना चाहिए । व्यक्तियों और कंपनियों की परिसंपत्तियों के पूंजीगत मूल्यों पर कर विभाजन योग्य सामूहिक निधि में शामिल होना चाहिए ।

विभाजन को अनिवार्य करने के लिए अनुच्छेद 272 में संशोधन किया जाना चाहिए । संघ और राज्यों के बीच बुनियादी उत्पाद शुल्क की हिस्सेदारी आज विवेक पर आधारित है, अनिवार्य नहीं । विशेष महत्व (अधिनियम, 1957) के माल पर अतिरिक्त शुल्क और उत्पाद शुल्क के अधीन संसद को किन्हीं विनिर्दिष्ट वस्तुओं पर शुल्क और उत्पाद शुल्क लगाने का प्राधिकार दिया गया है । ये वस्तुएं हैं, चीनी, तम्बाकू, सूती वस्त्र, रेआन, कृत्रिम और ऊनी वस्त्र जो भारत में उत्पादित और विनिर्मित हों और इन वस्तुओं की केन्द्रीय बिक्री अधिनियम, 1956 के प्रयोजन से अंतर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य में विशेष महत्व का घोषित किया गया है । यह सच है कि भारत सरकार ने ये अतिरिक्त शुल्क राज्यों को समनुदेशित किए हैं, अधिनियम की उपरिका (rider) के अनुसार यदि राज्य इन वस्तुओं की बिक्री पर कोई कर लगाते हैं तो उन्हें भारत सरकार से अतिरिक्त शुल्क से होने वाली आय का कोई हिस्सा नहीं दिया जाएगा । इस उपरिका के अनुसार राज्य अनेक वस्तुओं पर बिक्री कर नहीं लगा सकते अन्यथा उन्हें अतिरिक्त उत्पाद शुल्क का फायदा नहीं दिया जाएगा ।

साधनों की सांविधानिक सुपुर्दगी (अन्तरण) के अधीन केन्द्र सरकार के कम-से-कम 50 प्रतिशत कर राजस्व राज्यों को अंतरित किए जाने चाहिए । वर्ष 1982–83 के बजट में ऐसी सांविधानिक सुपुर्दगी (अन्तरण) केवल 25 प्रतिशत है । इसीलिए इस प्रयोजन से उपर्युक्त परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है ।

उत्पाद शुल्क और आय कर पर लगने वाले अधिभार का भी हिस्सा किया जाना चाहिए ।

अनुदान

अनुदान दो प्रकार के होते हैं :—(क) सहायता अनुदान जो अनुच्छेद 273 और 275 के अधीन सांविधानिक अनुदान हैं और

(ख) गैर-सांविधानिक या विवेकाधीन अनुदान ।

अनुच्छेद । 282 इस अनुच्छेद के अधीन संघ या राज्य को किसी प्रयोजन से, जब वह विधायी प्राधिकरण के क्षेत्राधिकार से बाहर हो, अनुदान देने की शक्ति दी गई है । अनुच्छेद 282 के अधीन योजना स्कीमों के लिए सभी अनुदान काफी सीमा तक विवेकाधीन हैं । इन विवेकाधीन अनुदानों ने काफी हद तक वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए सांविधानिक अनुदानों को पीछे छोड़ दिया है और इन्हीं की वजह से राज्यों की स्थिति केन्द्रीय सहायता के लिए याचक बन कर रह गई है । आज विवेकाधीन अनुदान 71.3 प्रतिशत से 88 प्रतिशत के बीच हैं । केन्द्र की वित्तीय स्थिति के अनुसार इन विवेकाधीन अनुदानों में स्वतः ही उतार चढ़ाव होता है । अतः राज्यों की स्थिति अस्पष्ट हो गई है और चूंकि एक परिसंघीय ढांचे में केन्द्र पर अधिक निर्भरता रहती है, वह भी उस स्थिति में जब विभिन्न राज्यों में विभिन्न पार्टियां सत्ता में आ सकती हैं, बेहतर हो यदि यह एक स्वतंत्र निकाय हो, जैसा कि वित्त आयोग ने विवेकाधीन अनुदानों के संबंध में सिद्धांत निर्धारित किया, विवेकाधीन अनुदानों का प्रयोग राजनैतिक उद्देश्यों से करने देने के बिना ।

सातवीं अनुसूची में शामिल विभिन्न सूचियों की प्रविष्टियों का पुनः वितरण

8. (i) संघ की सूची की प्रविष्टि सं० 82 से 92 क तक में उन करों की गणना की गई है जो संघ सरकार द्वारा लगाए जा सकते हैं । इनमें से कुछ करों का संघ की सूची में शामिल रहना उचित ही है । उदाहरण के लिए आय (कृषि आय को छोड़कर) पर कर, सीमा शुल्क और निर्यात शुल्क, विनिर्मित माल पर उत्पाद शुल्क, कम्पनी कर, शेयर बाजारों और भावी बाजारों में लेन-देनों पर कर (विभिन्न वाणिज्यिक लेन-देनों पर स्टाम्प शुल्क की दर, जो भी प्रविष्टि 91 में शामिल हो । जब ऐसे कर लगाए जाते हैं तो उसका प्रभाव संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, अतः बुनियादी तौर पर इन्हें लगाना संघ का काम है ।

(ii) किन्तु निम्नलिखित करों को संघ की सूची में शामिल करने का कोई औचित्य नहीं है ।

(क) ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भूमि और इमारतों के पूंजीगत मूल्य पर कर (प्रविष्टि सं० 86) ।

(ख) ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भूमि और इमारतों के संबंध में संपदा शुल्क (प्रविष्टि सं० 87) ।

(ग) सम्पत्ति के उत्तराधिकार संबंधी शुल्क (प्रविष्टि 88) ।

(घ) रेल, समुद्र या विमान द्वारा ले जाए जाने वाले माल और यात्रियों पर सीमा कर (प्रविष्टि सं० 89) ।

(ङ) समाचार पत्रों की बिक्री या खरीद और उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर (प्रविष्टि सं० 92) ।

(च) समाचार पत्रों से भिन्न अन्य वस्तुओं की खरीद या बिक्री पर कर (प्रविष्टि सं० 92-क) ।

(ii) (क) शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की योजना, विकास और प्रशासन का कार्य राज्य का है । शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि और इमारतों पर लगाए जाने वाले शुल्क या कर सामान्यतः राज्य द्वारा लगाए जाने चाहिएं और उसी के द्वारा उनकी उगाही की जानी चाहिए । इन मदों को संघ की सूची में शामिल करना बिल्कुल गलत है ।

(ख) सीमाकर स्थानीय निकायों के फायदे के लिए लगाए जाते हैं जब भी किसी महानगरीय प्राधिकरण के क्षेत्र में भारी संख्या में लोग आते हैं या भारी मात्रा में माल की सुपुर्दगी की जाती है तो उन महानगरीय प्राधिकरणों का अतिरिक्त नागरिक उत्तरदायित्व हो जाता है । व्यक्तियों और सामग्री के निरंतर आने जाने से नागरिक, सुविधाओं पर जो प्रभाव पड़ता है उसे देखते हुए लगाए जाने-वाले करों को न्यायोचित ठहराया जा सकता है, क्योंकि उनसे स्थानीय निकाय इस कारण किए जाने वाले अतिरिक्त प्रयासों की प्रतिपूर्ति कर सकते हैं । भाड़ों और यात्रियों पर संघ सरकार द्वारा कर लगाए जा सकते हैं किंतु सीमा कर राज्य सरकारों द्वारा लगाना ही उचित होगा और उनकी वसूली संघ सरकार द्वारा की जानी चाहिए ।

(ग) यह स्पष्ट नहीं है कि समाचार पत्रों की खरीद और बिक्री को क्यों विशेष श्रेणी में रखकर संघ की सूची में शामिल किया गया । किसी भी माल की खरीद या बिक्री पर कर राज्य की सूची में शामिल होना चाहिए (प्रविष्टि 92) ।

(घ) संविधान (छठे संशोधन) अधिनियम, 1956 के अधीन प्रारंभ की गई प्रविष्टि सं० 92-क कोई सही उपाय नहीं था। "अंतर्राज्य व्यापार और वाणिज्य" के संबंध में राज्यों को उनके वैध दावों से वंचित करने का प्रयास किया गया।

संघ और राज्यों के बीच राजस्व का वितरण

9. (i) जब राज्यों द्वारा शुल्कों की उगाही और विनियोजन किया जाता है तो संघ द्वारा कर लगाने का कोई औचित्य नहीं है। अनुच्छेद 268 के अंतर्गत, फिलहाल इस कार्य का निर्वहन राज्य कर रहे हैं। प्राप्त आय बहुत कम है। इसके अतिरिक्त कोई भी राज्य ऐसे शुल्क नहीं लगाएगा जो उस राज्य में उद्योग की स्थापना को अनुत्साहित करें। इसको ध्यान में रखते हुए, संघ सूची की प्रविष्टि सं० 84 और अनुच्छेद 268 में संशोधन किया जाना चाहिए, जिससे कि अनुच्छेद 268 में बताए गए शुल्क लगाने की शक्ति राज्यों को मिल जाए।

(ii) अनुच्छेद 269 में संशोधन किया जाना चाहिए। उपर्युक्त पैरा 8 (ii) में दिए गए कर और शुल्क अपनी वास्तविक प्रकृति के कारण राज्य सूची में होने चाहिए। इसके लिए प्रविष्टि सं० 86, 87, 88, 89 और 92 में संशोधन करना और राज्य सूची के पैरा 8(2) की मदों को बदलना आवश्यक होगी। प्रविष्टि सं० 92-क हटा देनी चाहिए।

(iii) अनुच्छेद 270 में संशोधन किया जाना चाहिए, जिससे "आयकर लगे करों" में निगम कर शामिल किया जा सके। निगम कर के रूप में काफी मात्रा में धनराशि की वसूली की जाती है और इस धन को बिना किसी न्याय-संगत औचित्य के, विभाजन योग्य सामूहिक धन से अलग रखा जाता है।

(iv) अनुच्छेद 271 के अधीन संसद को अनुच्छेद 270 में उल्लिखित शुल्कों या करों में से किसी को संघ के प्रयोजनों के लिए अधिभार लगाकर बढ़ाने का अधिकार दिया गया है। अधिभार सामान्यतः किसी विशेष परिस्थिति का सामना करने के लिए लगाए जाते हैं। सामान्यतः इस प्रकार के किसी अधिरोपण का अवसर पैदा नहीं होना चाहिए। चूंकि इस प्रकार के अधिरोपण का राज्यों के वित्तीय हितों पर असर पड़ सकता है, ऐसे मामलों में अंतरराज्यिक परिषद् का अनुमोदन प्राप्त करना जरूरी होगा। इसके लिए अनुच्छेद 270 में संशोधन करने की आवश्यकता है।

(v) संघ के उत्पाद शुल्कों में राज्यों का हिस्सा, आमदनी के 50 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए। इसके लिए अनुच्छेद 272 में समुचित रूप से संशोधन किया जाए।

(vi) अनुच्छेद 274 में यह व्यवस्था है कि जिस कराधान में राज्यों की रूचि होती है, उसको प्रभावित करने वाले विधेयकों के संबंध में राष्ट्रपति से पूर्व सिफारिश कराई जाए। चूंकि राष्ट्रपति केवल केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् की सलाह पर अपनी सिफारिशें करते हैं, इस संबंध में उनकी कोई विशेष भूमिका नहीं होती। अतः इस अनुच्छेद में संशोधन की आवश्यकता है। अब से अनुच्छेद 274 में उल्लिखित सिफारिश अंतरराज्यिक परिषद् से कराई जाए। ऐसे धन विधेयक के संबंध में जिनके माध्यम से किसी कर पर शुल्कों, जिनमें कि राज्यों की रूचि हो, में परिवर्तन करने का प्रस्ताव हो, अंतर राज्यिक परिषद् की सहमति लेना जरूरी होगा। अनुच्छेद 274 तथा 109 में समुचित रूप से संशोधन किया जाए।

(vii) अनुच्छेद 276 (2) में दी हुई अधिकतम सीमा को समाप्त किया जाए।

केन्द्रीय बिक्री कर

केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 में ऐसी अनेक कमियां हैं, जिनकी वजह से राज्य विधानमण्डल, उन उपयोगी वस्तुओं पर बिक्री कर लगाने में असमर्थ है, जिन्हें केन्द्रीय कानूनों द्वारा अंतर-राज्यिक व्यापार तथा वाणिज्य के लिए विशेष महत्व की उपयोगी वस्तुएं घोषित किया गया है।

(viii) बिक्री कर सिर्फ राज्य का विषय होना चाहिए। यह राज्यों का एकमात्र मूल्य सापेक्ष राजस्व स्रोत है और संविधान में किए गए पूर्व संशोधनों द्वारा इस शक्ति में की गई कांट-छांट ने राज्यों को भारी राजस्वों से वंचित कर दिया। अतः अनुच्छेद 286 में संशोधन किया जाना चाहिए और संविधान (छठा संशोधन) अधिनियम, 1956 के जरिए राज्यों के क्षेत्राधिकार पर लगाई गई पाबंदियां हटाई जानी चाहिए। अनुच्छेद 286 (2) और 286(3) हटाया जाए। इससे संबंधित अंतरराज्यिक विवाद का कोई मामला हो, तो अंतर राज्यिक परिषद् विचार विमर्श और मामले का निपटारा करेगी। राज्य इस मामले से उत्पन्न प्रशासनिक समस्याओं का निबटारा करने के लिए परस्पर या तो दुतरफा अथवा बहुपार्श्विक समझौता कर सकते हैं।

(ix) अनुच्छेद 287 में उचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट नहीं हैं कि रेलें, जिनके द्वारा भारी मात्रा में बिजली का उपभोग किया जाता है, उनको बिजली पर कर का भुगतान करने से क्यों छूट नहीं दी जानी चाहिए, जबकि भारत सरकार के कार्यालयों को ऐसे करों को अदा करने के छूट दी जा सकती है। परन्तु संघ सरकार को व्यापारिक कार्यों के लिए बिजली शुल्क अदा करने से छूट प्रदान करने का कोई औचित्य नहीं है। यह एक अन्य उदाहरण हैं, जिसमें राज्यों के प्रति इतना पक्षपात देखने को मिलता है, जबकि संघ को संविधान के खण्ड XII के अध्याय I में उल्लिखित सभी छूटें प्रदान की गई हैं और अनुच्छेद 289 (1) के अधीन राज्यों को प्रदान की गई सुविधा अगले अनुच्छेद अर्थात् 289 (2) में वापस ले ली गई है।

(x) विभाजन योग्य सामूहिक निधि में करों की निवल आमदनी की गणना करने के लिए वसूली की लागत का निर्धारण किया जाना चाहिए और नियंत्रक महालेखा परीक्षक द्वारा अधिप्रमाणित किया जाना चाहिए परन्तु यह राज्यों के साथ परामर्श करके संघ सरकार द्वारा हर वर्ष निर्धारित अधिकतम सीमा के अध्यधीन होना चाहिए। ऐसा करना इसलिए जरूरी है, ताकि प्रशासन पर अत्यधिक खर्च के कारण संसाधनों की बरबादी को रोका जा सके।

(xi) आपात-स्थिति में राज्य सरकारों को यह प्राधिकार होना चाहिए कि वे भारतीय रिजर्व बैंक से अर्थोपाय अग्रिम प्राप्त कर सकें। जिसका समायोजन भविष्य में हो। यहां "आपात-स्थिति" का अर्थ है, प्राकृतिक आपदाएं और आंतरिक अव्यवस्थाएं।

(xiii) राज्यों द्वारा उधार लेने के लिए संघ सरकार का अनुमोदन लेना जरूरी है। ऐसे उधार के लिए सिद्धांत और मात्रा (इसमें राज्यों का हिस्सा शामिल है) का निर्धारण राज्य सरकारों से परामर्श करके संघ सरकार द्वारा निश्चित किया जा सकता है। इस संबंध में संघ सरकार की नीति हर वर्ष अंतरराज्यिक परिषद् के सामने रखी जाए। अंतरराज्यिक परिषद् में राज्य सरकारों द्वारा अभिव्यक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए संघ सरकार द्वारा अंतिम निर्णय लिया जाना चाहिए।

अन्तरराज्यिक और राज्यांतरिक व्यापार

अनुच्छेद 322 के अधीन संसद को सार्वजनिक हित में न केवल अंतरराज्यिक व्यापार बल्कि राज्यांतरिक व्यापार और वाणिज्य पर प्रतिबंध लगाने की शक्ति प्रदान की है। यह एकमात्र राज्यों का अधिकार है। व्यापार और वाणिज्य राज्य की सूची प्रविष्टि सं० 26 में हैं किन्तु यह शक्ति समवर्ती सूची की प्रविष्टि सं० 33 के अधीन हैं। समवर्ती सूची प्रविष्टि सं० 33 निम्नलिखित हैं :—

(क) जहां संसद द्वारा विधि द्वारा किसी उद्योग का संघ द्वारा नियंत्रण लोकहित में समीचीन घोषित किया जाता वहां उस उद्योग के उत्पादों का और उसी प्रकार के आयात किए गए माल का ऐसे उत्पादों के रूप में;

(ख) खाद्य पदार्थों का जिनके अंतर्गत खाद्य तिलहन और तेल हैं;

(ग) पशुओं के चारे का जिसके अंतर्गत खली और अन्य सारकृत चारे हैं;

(घ) कच्ची कपास का, चाहे वह ओटी हुई हो, या बिना ओटी हो, और बिनौले का; और

(ङ) कच्चे जूट का;

व्यापार और वाणिज्य तथा उसका उत्पादन, प्रदाय और वितरण।

इस विवाद में बल हो सकता है कि किसी उद्योग के किन्हीं ऐसे उत्पादों, जिनका रक्षा और समेकित नियोजन के संबंध में भारी महत्व हो, का उत्पादन, पूर्ति और वितरण केन्द्र के क्षेत्राधिकार में हो, किन्तु सामान्य व्यापार और वाणिज्य से संबंधित राज्य विधान मण्डल की शक्तियों को संसद के अधीन करना आवश्यक नहीं है । अतः समवर्ती सूची की प्रविष्टि सं० 33 में उपयुक्त संशोधन करना होगा ।

अनुच्छेद 304 के खण्ड "ख" में राज्य विधान मण्डल की शक्तियों के संबंध में "युक्तियुक्त निबंधन" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है । जबकि अनुच्छेद 302 में केवल "निबंधन" अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है बिना "युक्तियुक्त" शब्द के प्रयोग के अनुच्छेद 302 में निबंधन के साथ "युक्तियुक्त" शब्द का भी प्रयोग किया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 304 के अधीन विधान मण्डल द्वारा व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता पर उपयुक्त निबंधन लागू करने के प्रयोजन से कोई भी बिल या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बिना लागू नहीं किया जा सकता है । ऐसी पूर्व स्वीकृति अंतरराज्यिक व्यापार के संबंध में आवश्यक हो सकती है किन्तु जब राज्य विधान मण्डल को अंतरराज्यिक व्यापार के संबंध मे कारंवाई करनी हो, तो ऐसी पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं । यदि राज्य विधान मण्डल द्वारा लागू निबंधन उचित न हों और सार्वजनिक हित में न हो, तो उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को विधि को हटाने की शक्ति है । राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति अवैध विधि को वैध नही कर सकती । अतः अनुच्छेद 304 का परन्तुक छोड़ दिया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 307 में अनुच्छेद 301, 302, 303 और 304 के प्रयोजनों के कार्यान्वयन के लिए प्राधिकारी के कार्यान्वयन के लिए प्राधिकारी नियुक्त करने का उल्लेख है । यह संयुक्त राज्य अमेरिका में अंतर-राज्यिक आयोग के समान है । अंतर-राज्यिक वाणिज्य के दौरान ऐसे मामलों से निपटने के लिए ऐसा आयोग नियुक्त करना उचित होगा, बजाए इसे संघ की राजनैतिक कार्यकारिणी पर छोड़ने के ।

सार्वजनिक वित्त संस्थाएं

सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएं जैसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय यूनिट ट्रस्ट, जीवन बीमा निगम और बैंकों की भारतीय आर्थिक विकास, आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण, एकाधिकार के विकास निजी क्षेत्र में, महत्वपूर्ण भूमिका रही है । मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में निजी क्षेत्र की वित्तीय संस्थाएं उन वित्तीय संस्थाओं पर आधारित है जिन पर केवल संघ सरकार का नियंत्रण है और राज्य सरकारों का कोई संबंध नहीं है । यदि भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की 30 जून, 1981 की स्थिति पर नजर डालें तो उसकी राष्ट्रीय औद्योगिक साख (दीर्घकालीन प्रचार निधि) से बकाया उधार 1,333 करोड़ रुपए था । भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के प्रारंभ के समय से स्वीकृत और वितरित सहायता की संचित राशि वर्ष 1980-81 के अंत में क्रमश: 7,088 करोड़ रुपए और 4,730 करोड़ रुपए थी । जून, 1981 के अंत में बकाया राशि 3,214 करोड़ रुपए थी । यह देखते हुए कि इन वित्तीय संस्थाओं की कितनी अहम भूमिका है, उन्हे राष्ट्रीय विकास परिषद् के नियंत्रण में लाया जाना चाहिए और निवेश की पद्धति के संबंध मे समय-समय पर राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए जो संविधान की उद्देशिका में निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप हों । केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा सार्वजनिक हित में स्थापित किसी भी परियोजना (आवश्यक अनुमोदन के पश्चात्) को वित्त के अभाव में कोई नुकसान नहीं होना चाहिए और सार्वजनिक वित्त संस्थाओं का मुख्य निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में होना चाहिए, निजी क्षेत्र में नहीं । राज्य विकास निगमों को निजी क्षेत्र की एजेंसियों के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य या हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए ।

अंतरराज्यिक परिषद

अनुच्छेद 263 : के अधीन राष्ट्रपति राज्यों के बीच समन्वय के प्रयोजन से अंतरराज्यिक परिषद् की स्थापना कर सकते है । अब तक राष्ट्रपति ने किसी ऐसी परिषद् की स्थापना नहीं की है । इसमें कोई संदेह नहीं 5 क्षेत्रीय परिषदें "राज्य पुनर्गठन अधिनियम" के परिणामस्वरूप स्थापित हुई किन्तु व्यावहारिक तौर पर उनका कार्य लगभग शून्य है । यह समय है, जब राज्यों के बीच समन्वय के प्रयोजन से अनुच्छेद 263 के अधीन अंतरराज्यिक परिषद् की तत्काल स्थापना की जानी चाहिए । प्रत्यक्षतः अनुच्छेद 263, जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है, में संघ और राज्यों के बीच होने वाले विवादों को परिषद् के समक्ष लाने की कोई व्यवस्था नहीं है । यदि संघ और राज्यों के बीच विवाद हो तो अंतरराज्यिक परिषद् को उनके संबंध में चर्चा करने की शक्ति होनी चाहिए । अनुच्छेद 263 में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए ।

एक ओर साधनों की उगाही के लिए शक्तियों का पुनर्वितरण आवश्यक है ताकि राज्य अपने दायित्वों को पूरा कर सकें और दूसरी ओर संघ और राज्यों के बीच समान स्तर पर नियमित रूप से चर्चा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । संविधान में राज्यों के बीच समन्वयन के संबंध में भी उल्लेख है । अनुच्छेद 263 में इस संबंध में उपयुक्त तंत्र का उल्लेख हैं । किन्तु अनुच्छेद 263 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने पहले से ही केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद्, स्थानीय स्वशासन संबंधी केन्द्रीय परिषद् और भारतीय औषध संबंधी केन्द्रीय परिषद् का गठन किया है । अनेक अन्य सलाहकार निकाय भी स्थापित किए गए हैं । डॉ० डी० डी० बसु ने भारत के संविधान की अपनी भूमिका में कहा है, "वास्तव में अंतरराज्यिक परिषद् का मुख्य उद्देश्य समन्वय और परिसंघीय संबद्धता है । विशिष्ट मामलों में कारंवाई करने के लिए अलग-अलग निकाय बनाते समय इस अनुच्छेद को नजरअन्दाज कर दिया गया है, और सांविधानिक व्याख्या का सहारा लिया गया है कि "परिषद्" शब्द से पहले "एक शब्द में बहुवचन भी शामिल है । मौजूदा पद्धति पर आधारित अनेक परिषद् इस उद्देश्य को पूरा करने में असमर्थ हैं । परिषद् की बैठकों से पहले भारी मात्रा में कागजात, जिनमें संघ सरकार की नीतियों का उल्लेख होता है, राज्य सरकारों को दिए जाते हैं । ऐसी बैठकों में राज्यों के वास्तव में भाग लेने की कोई गुंजाइश नहीं होती । राज्य वही स्वीकार कर लेते हैं जो उनसे कहा जाता है किसी राज्य द्वारा यदि कोई विरोध प्रकट भी किया जाता है तो भी उसका भारत सरकार के निर्णयों पर कोई प्रभाव नही पड़ता ।

पुनर्गठित प्रणाली के अधीन इन अधिकांश नेमी प्रकार के मामलों के संबंध में सरकारी स्तर पर चर्चा की जा सकती है । अंतरराज्यिक परिषद् में केवल राष्ट्रीय महत्व के विशेष नीति विषयक मामलों, जिनका वित्तीय और प्रशासनिक समन्वयन पर सीधा प्रभाव हो, चर्चा की जानी चाहिए और केवल एक ऐसी परिषद् होनी चाहिए जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हो और सदस्यों के रूप में राज्यों के मुख्यमंत्री हों । अन्तरराज्यिक परिषद् को राज्यों के बीच तथा संघ और राज्यों के बीच समन्वय सुनिश्चित करने की शक्ति प्रदान करने के लिए अनुच्छेद 263 में संशोधन करना आवश्यक है । सदस्यों के रूप में सभी मुख्यमंत्रियों और अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री से गठित यह परिषद समन्वय के क्षेत्र में सभी पेचीदा मुद्दों पर कारंवाई करने के लिए सक्षम, एक प्रभावी निकाय होगी । ऐसे निर्णय मुख्यमंत्रियों के नामितियों या प्रधानमंत्री के नामितियों पर नहीं छोड़े जा सकते । यदि किसी कारणवश प्रधानमंत्री अंतरराज्यिक परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता करने में असमर्थ हों तो वरिष्ठतम मुख्यमंत्री को बैठक की अध्यक्षता करनी चाहिए । प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में केन्द्रीय गृहमंत्री या केन्द्रीय वित्त मंत्री के इन बैठकों की अध्यक्षता करने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए । जब भी आवश्यक हो, तो प्रधानमंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्रियों की सहायता के लिए अंतरराज्यिक परिषद् की बैठकों में केन्द्रीय मंत्री और राज्य सरकारों के मंत्री उपस्थित हो सकते हैं । ऐसी बैठकों में जहां तक संभव हो सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाना चाहिए, किन्तु कोई मतभेद होने पर अंतरराज्यिक परिषद् की सिफारिश, जब उसमें अधिकांश या दो तिहाई सदस्य उपस्थित हों और वोट डालें जाए, संघ और राज्य दोनों को स्वीकार्य होनी चाहिए ।

एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है परिषद् के महासचिव और अन्य सहायक कर्मचारियों का चयन । महासचिव का पद राज्यों द्वारा बारी से नामित व्यक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए । अन्य कर्मचारियों को राज्य सरकारों और संघ सरकार द्वारा परस्पर सहमत फार्मूले के अनुसार नामित किया जाना चाहिए । इस व्यवस्था से सचिवालय का स्वतंत्र रूप से कार्य करना सुनिश्चित हो जाएगा जो कि नितांत आवश्यक है ।

श्री राजमन्नार समिति की सिफारिशें

(1) राष्ट्रीय महत्व का प्रत्येक बिल या ऐसा बिल जिसके एक या अधिक राज्यों के हितों को प्रभावित करने की संभावना हो, संसद में पेश किए जाने से पहले परिषद् के समक्ष पेश किया जाना चाहिए और उसकी टिप्पणियों और सिफारिशों को बिल पेश किए जाने के समय संसद के समक्ष पेश किया जाना चाहिए ।

(2) इस बात की निश्चित रूप से व्यवस्था होनी चाहिए कि संघ सरकार राष्ट्रीय महत्व का कोई निर्णय लेने अथवा कोई ऐसा निर्णय लेने, जो एक या अधिक राज्यों को प्रभावित करे, से पहले अंतरराज्यिक परिषद् से परामर्श करे ।

शायद रक्षा और विदेशी संबंधों जैसे कुछ विषय इसके अपवाद हो सकते हैं किन्तु ऐसे मामलों में भी केन्द्र सरकार का निर्णय बाद में बिना विलम्ब के अंतरराज्यिक परिषद् के समक्ष पेश किया जाना चाहिए ।

(3) यदि अंतरराज्यिक परिषद् को वास्तव में प्रभावी बनाना हो, तो इसकी सिफारिशों को सामान्यतः केन्द्र और राज्यों, दोनों के लिए बाध्यकर किया जाना चाहिए ।

यदि किसी कारण से अंतरराज्यिक परिषद् की सिफारिश को केन्द्र सरकार अस्वीकार कर दे तो ऐसी सिफारिश अस्वीकृति के कारणों सहित संसद और राज्य विधान मण्डलों के समक्ष प्रस्तुत की जाए ।

राष्ट्रीय विकास परिषद

राष्ट्रीय विकास परिषद् को सांविधिक हैसियत दी जानी चाहिए, जिसका मुख्य कार्य योजना और विकास तथा आर्थिक समन्वयन से संबंधित होना चाहिए ताकि संविधान की प्रस्तावना और संविधान के निदेशक सिद्धांतों में उल्लिखित सिद्धांतों के लक्ष्यों को पूरा किया जा सके ।

योजना आयोग

योजना आयोग की स्थापना एक कार्यपालिका आदेश द्वारा हुई और फिलहाल यह सरकार के राजनैतिक हथियार के रूप में अधिक प्रयोग किया जा रहा है, बजाए एक ऐसे विशेषज्ञ निकाय के रूप में, जिस पर संविधान की प्रस्तावना में निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार योजना, आर्थिक विकास और सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों का उत्तरदायित्व हो । अतः योजना आयोग संसद द्वारा बनाया गया एक सांविधिक निकाय होना चाहिए । इसमें विशेषज्ञ होने चाहिएं और इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् के सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करना चाहिए । इसे योजना बनाने, योजनाओं के कार्यान्वयन के पर्यवेक्षण, बिना किसी विचार के परामर्श देने तथा आलोचना करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए । अब तक योजना विकास से कुछ दिशाओं में आर्थिक विकास हुआ है । इसने पूंजीगत विकास का मार्ग अपनाया है, सामाजिक नियोजन का नहीं, जिसमें समाजवादी नियोजन के गुण होते हैं ।

सहयोगी राज्य योजना निकाय

विधि द्वारा राज्य योजनाओं और विकास परियोजनाओं के प्रभावशाली ढंग से सूचित और कार्यान्वित करने के लिए सहयोगी राज्य योजना निकाय बनाए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए । केन्द्रीय योजना आयोग और सहयोगी राज्य योजना निकायों के बीच प्रभावी समन्वय होना चाहिए । सहयोगी राज्य योजना निकायों को राज्य क्षेत्र में योजना आयोग की तरह कार्य करना चाहिए ।

दिल्ली, पांडिचेरी और गोवा के लिए पूर्ण राज्यत्व

यह समय है, जब दिल्ली, पांडिचेरी और गोवा को पूर्ण राज्यत्व प्रदान किया जाना चाहिए ।

राज्य सभा के नामित सदस्य

हालांकि संविधान के निर्माताओं का कुछ विशेष श्रेणियों के व्यक्तियों का राज्य सभा में नामांकन का उद्देश्य प्रशंसनीय था, किन्तु संविधान की इस व्यवस्था का अक्सर दुरुपयोग किया गया । नामांकन का सिद्धान्त त्याग दिया जाना चाहिए और कोई नामित सदस्य नहीं होना चाहिए ।

राज्य के भीतर शक्ति सौंपना (न्यागमन)

यह मांग की जाती है कि केन्द्र की शक्ति का और आगे राज्यों में न्यागमन (सौंपना) किया जाना चाहिए, किन्तु यह शक्ति राज्यों के स्तर पर केन्द्रीकृत होकर नहीं रह जानी चाहिए । राज्य के भीतर विभिन्न निकायों, जैसे जिला-परिषद्, पंचायत समितियों को शक्ति सौंपी जानी चाहिए और राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अनुच्छेद 40, जिसके अधीन राज्यों को ग्राम पंचायतों का गठन करने का कार्य सौंपा गया है और उन्हें ऐसी शक्ति और प्राधिकार दिए गए हैं जो उनके लिए स्वशासन यूनिटों के रूप में, कार्य करने के लिए आवश्यक हों, को वास्तविक रूप दिया जाना चाहिए ।

अनुच्छेद 244, 244-क के अधीन संसद असम राज्य के भीतर एक स्वायत्त राज्य बना सकती है

इस अनुच्छेद में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए, ताकि राज्य में स्वायत्त क्षेत्रों का निर्माण किया जा सके जिसके लोकतान्त्रिक नियम हों और वे उस राज्य विशेष के स्वरूप और गठन के अनुरूप हों ।

संघ सूची की प्रविष्टि सं० 31

आकाशवाणी और दूरदर्शन धीरे-धीरे अब राष्ट्रीय संस्थाएं नहीं रही हैं, बल्कि वे सत्तारूढ़ दलों का राजनैतिक जरिया बन कर रह गए हैं । इन्हें स्वायत्त निगमों के रूप में परिवर्तित किया जाना चाहिए, जो अन्तरराज्यिक परिषद के प्रति सीधे उत्तरदायी हों ।

संघ सूची की प्रविष्टि सं० 7 और प्रविष्टि सं० 52

प्रविष्टि सं० 7 में केवल ऐसे उद्योग और औद्योगिक उत्पादन शामिल होने चाहिएं जो सीधे रक्षा या युद्ध परिचालन से संबंधित हों ।

प्रविष्टि सं० 52 जिसमें लिखा है : "वे उद्योग जिनके संबंध में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि उन पर संघ का नियंत्रण लोकहित में समीचीन है" का लाभ उठाते हुए केन्द्र सभी प्रकार के उद्योगों, जिसमें लघु उद्योग भी शामिल हैं, को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहा है । अतः उद्योग-विकास-विनियमों और नीति की राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए और तदनुसार संशोधन किया जाना चाहिए और वही सिद्धान्त प्रविष्टि सं० 54 के अधीन खान और खनिज विकास विनियम पर भी लागू किया जाना चाहिए ।

आर्थिक नियोजन और आर्थिक समन्वयन और उद्योग का मूल क्षेत्र संघ का उत्तरदायित्व रहना चाहिए । योजना आयोग ऐसे मध्यम और लघु उद्योगों के संबंध में प्रत्येक राज्य को क्षमताएं आबंटित करता है जिन्हें विदेशी सहायता और विदेशी सहयोग की जरूरत नहीं होती है और जो पूर्णतः स्वदेशी प्रौद्योगिकी पर आधारित हों । क्षमताओं के आबंटन की सीमाओं के अन्दर राज्यों को राष्ट्रीय/औद्योगिक नीति और संविधान के निदेशक सिद्धान्तों के अनुरूप आशय-पत्र और लाइसेंस जारी करने की शक्ति होनी चाहिए ।

सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण समवर्ती सूची की प्रविष्टि संख्या 42

इस प्रविष्टि में राज्य के प्रयोजन से सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण का उल्लेख है । राज्य की सम्पत्ति के अर्जन और अधिग्रहण की शक्ति सुस्पष्ट होनी चाहिए । अतः राज्य के प्रयोजन से संपत्ति के अर्जन की शक्ति राज्य-सूची में होनी चाहिए । इसका, राज्य द्वारा अन्य सम्पत्तियां लेने के अलावा बीमार उद्योग लेने के संदर्भ में विशेष महत्व है । अब बीमार उद्योग एक ऐसा विषय बन गया है, जहां समाविष्ट होने के फायदे मिलते हैं और आयकर से कटौती मिलती है । फिलहाल यदि राज्य सरकार बीमार उद्योगों को लेना भी चाहे, तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, अतः अनुच्छेद 31(ख) में संशोधन की आवश्यकता है ।

भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा (आई० ए० एस०/आई० पी०एस०) : भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा जैसी अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति राज्यों में की जाती है, किन्तु वे संघ सरकार के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण में रहते हैं। बहुत जोर देकर अक्सर यह कहा जाता है कि जब राज्यों और केन्द्र में विभिन्न राजनैतिक दल सत्ता में आते हैं, तो केन्द्र सरकार भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों का प्रयोग करती है और उन्हें सहयोग न देने और कई बार राज्य सरकार उलट देने की सलाह देती है और इस प्रकार इन सरकारों की प्रतिष्ठा बिगाड़ी जाती है। इस बात में काफी सच्चाई है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल इन अधिकारियों का इस्तेमाल करने का प्रयास करता है और यह भी कि उनमें से कुछ दबाव और प्रलोभन में आ जाते हैं, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सभी अधिकारी उसी श्रेणी के हैं। इनमें से कुछ दृढ़ विश्वासी, निष्ठावान और उच्च चरित्र के होते हैं, किन्तु भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के कुछ अधिकारियों ने बिहार जैसे राज्यों में कुशल प्रशासन की झलक तक नहीं दिखाई। अत: राज्य प्रशासन में उनकी स्थिति के संबंध में संतुलन किया जाना चाहिए। यह निसंदेह सच है कि वे मुख्यत: राज्य सरकार के पर्यवेक्षक और नियंत्रण के अधीन रहें, किन्तु उनका कुछ राज्यों के निर्दयी अध्यक्षों और विभिन्न मंत्रालयों द्वारा उत्पीडन और असुरक्षा के प्रति पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। अच्छी सरकारें भी हैं और बुरी सरकारों की भी कमी नहीं है। अत: ये अधिकारी मुख्यत: राज्य सरकारों के नियंत्रणाधीन होने चाहिए, किन्तु प्रशासनिक मामलों और सेवा की सुरक्षा संबंधी मामलों के निपटान के लिए प्रशासनिक अधिकरण (ट्रिब्यूनल) होने चाहिएं। अधिकरणों को अधिकारियों को कदाचार के संबंध में स्वयं जांच करने की शक्ति होनी चाहिए।

प्रशासनिक अधिकरण का गठन उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से होना चाहिए और उनका नामांकन एक न्यायिक समिति द्वारा किया जाना चाहिए, जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और सर्वोच्च न्यायालय के दो वरिष्ठ न्यायाधीश हों। इन अधिकरणों के बैंच (पीठ) भारत के कुछ प्रमुख स्थानों में हो सकते हैं। अधिकारियों की अधिकरण के आदेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने का अधिकार होना चाहिए। यही प्रक्रिया और सिद्धान्त राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त अधिकारियों और कर्मचारियों पर भी लागू होने चाहिएं।

न्यायपालिका

भारत में आम आदमी का आज भी न्यायपालिका में विश्वास है, धीरे-धीरे तंत्र में गिरावट के बावजूद न्यायालयों की ओर से लोकहित कार्य जैसी सामाजिक न्याय की नई विचारधाराओं को जन्म देकर लोगों में विश्वास पैदा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित उद्देश्यों में असीम विश्वास और उसके लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अटल वचनबद्धता, न्यायिक चेतना का आधार होना चाहिए।

स्वतंत्र न्यायपालिका और न्यायिक संस्थाओं में जनता के विश्वास के बिना कोई भी लोकतांत्रिक ढांचा और परिसंघवाद चल नहीं सकता।

संविधान द्वारा निर्मित किसी ऐसे परिसंघीय ढांचे के अन्तर्गत जिसमें एक ओर संघ कार्यपालिका और संसद के बीच तथा दूसरी ओर राज्य विधान मंडल और राज्य कार्यपालिका के बीच शक्तियों का आबंटन करने की व्यवस्था हो, सर्वोच्च न्यायालय न केवल संविधान की व्याख्या और उसको संरक्षण प्रदान करता है, बल्कि राज्यों और संघ तथा विभिन्न राज्यों के बीच विवादों का अधिकरण (ट्रिब्यूनल) के रूप में निपटारा करता है। संविधान के अधीन सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 131 के अंतर्गत इन मामलों पर कार्रवाई करने का अधिकार है। सत्ता में आने वाले राजनैतिक दलों की बढ़ती संख्या के साथ-साथ न्यायपालिका के परिसंघीय ढांचे को बनाए रखने की भूमिका काफी अहम हो जाती है। अत: किसी भी राजनैतिक दल को किसी न्यायिक संस्था को उखाड़ने का अवसर नहीं देना चाहिए।

अनुच्छेद 124 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात् करते हैं, जिन्हें वे उचित समझें और मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से निश्चित तौर पर परामर्श करते हैं। अनुच्छेद 74 के अधीन राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने के लिए बाध्य हैं। इस संबंध में उन्हें कोई विवेक नहीं है। अत: न्यायाधीशों की नियुक्ति से सामान्यत: विधि मंत्रालय, गृह मंत्रालय और प्रधानमंत्री संबद्ध होते हैं और अंतत: प्रधानमंत्री ही निर्णय लेते हैं। इस प्रकार न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाये। राज्यों और केन्द्र में सत्ता में आने वाले विभिन्न राजनैतिक दलों की बढ़ती संख्या को देखते हुए न्यायाधीशों की नियुक्ति विवाद से परे होनी चाहिए। अत: सुझाव है कि अनुच्छेद 74 में उपयुक्त संशोधन किया जाए, ताकि मंत्रिपरिषद् न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबद्ध न हो और वह अनुच्छेद 74 के अधीन कोई सलाह न दे और राष्ट्रपति को उनकी सलाह पर कार्य न करना पड़े।

जहां तक सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति का संबंध है, तो सर्वोच्च न्यायालय पहले से ही विद्यमान है और कार्य कर रहा है, इसलिए एक न्यायिक समिति होनी चाहिए, जिसका गठन मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य सभी न्यायाधीशों से होना चाहिए। राज्य परिषद् की भी एक न्यायिक परिषद् होनी चाहिए। इस न्यायिक समिति को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में न्यायिक परिषद् से परामर्श करके राष्ट्रपति के समक्ष अपनी सिफारिश रखनी चाहिए। यदि वे चाहें, तो वे उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों से परामर्श कर सकते हैं। मुख्य न्यायमूर्ति की नियुक्ति के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश को ही नियुक्त किया जाना चाहिए, उस स्थिति को छोड़कर, जबकि वह शारीरिक रूप से अस्वस्थ हों। सभी मामलों में न्यायिक समिति द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह, राष्ट्रपति के लिए बाध्य होगी, राष्ट्रपति उनकी सलाह पर उसी प्रकार कार्य करेंगे, जिस प्रकार कि वे अब अनुच्छेद 74 के अधीन करते हैं। यदि राष्ट्रपति चाहें तो वे सरकार से भी परामर्श कर सकते हैं। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति अथवा अन्य किसी भी मुख्य न्यायमूर्ति या न्यायाधीश, जैसा वे उचित समझें, से परामर्श कर सकती है। राष्ट्रपति राज्य सरकार से परामर्श कर सकते हैं, किन्तु वे सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति की सलाह पर भी कार्य करेंगे।

न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति अंतिम प्राधिकरण होगी। यदि किन्हीं मामलों में स्थानान्तरण के संबंध में कोई विवाद न किया जा सकता हो, तो वह मामला सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समिति पर छोड़ देना चाहिए। यही एक रास्ता जान पड़ता है, जिससे न्यायपालिका को राजनैतिक कार्यपालिका से अलग करके, पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जा सकती है और राज्यों में सत्ता में आने वाले भिन्न-भिन्न सामाजिक, आर्थिक विचारधाराओं वाले विभिन्न राजनैतिक दलों और केन्द्र में सत्तारूढ़ राजनैतिक दल के कुछ राज्य सरकारों के साथ नितांत शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने से उत्पन्न जो स्थिति चल रही है, उसमें इस प्रकार सुधार होगा कि परिसंघीय प्रणाली में विश्वास उत्पन्न होगा और राष्ट्रीय एकता में बल आयेगा। संविधान द्वारा बनाई गई इन पवित्र संस्थाओं को मलिन और नष्ट करने के प्रयास किए जा रहे हैं। लेकिन वास्तव में जो बात महत्व रखती है, वह हैं उन व्यक्तियों के गुण, सत्यनिष्ठा और व्यक्तित्व, जो इन पदों पर नियुक्त किए जाते हैं। इनकी नियुक्ति में संदेह या विवाद की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए।

अनुच्छेद 143(1) के अधीन राष्ट्रपति कुछ मामले सर्वोच्च न्यायालय को उसकी राय के लिए भेज सकते हैं। श्री राजमन्नार समिति ने सिफारिश की थी कि अनुच्छेद 143(1) की ही तरह कोई ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए, जिसके अधीन राज्यपाल की शक्ति हो, कि वे विधि या सार्वजनिक महत्व से संबंधित कोई मामला उच्च न्यायालय को भेज सकें। अमरीकी संघ में अनेक राज्यों में सांविधिक तौर पर ऐसी ही व्यवस्था है। राज्य सरकारों द्वारा उच्च न्यायालय को ऐसे मामले भेजने के संबंध में ऐसी व्यवस्था की जा सकती है।

निर्वाचन आयोग

अनुच्छेद 324(2) के अधीन राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों कि नियुक्ति करते हैं। जब किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति की जाती है, तो मुख्य निर्वाचन आयुक्त, निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। चूंकि राष्ट्रपति अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करते हैं, इसलिए वास्तव में लगभग सभी प्रयोजनों से मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों, यदि हों, की नियुक्ति राजनैतिक कार्यपालिका ही करती है।

प्रजातांत्रिक तंत्र में आस्था और विश्वास काफी हद तक मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों, यदि हों, की स्वतंत्रता और श्रेष्ठता, चरित्र बल और प्रजातांत्रिक चेतना पर निर्भर करता है। यदि वे केन्द्र के सत्तारूढ़ दल की राजनैतिक कार्यपालिका के एजेन्टों के रूप में कार्य करेंगे, तो प्रजातांत्रिक तंत्र उखड़ जाएगा और प्रजातांत्रिक संस्थाएं नष्ट हो जायेंगी।

राजनैतिक प्रपंचवाद के संदर्भ में, सत्ता में विभिन्न राजनैतिक दलों के होते हुए यदि केन्द्र और राज्यों के बीच पारस्परिक सौहार्द्र्य हो, तो इसके लिए जरूरी है कि निर्वाचन आयुक्त न केवल स्वतंत्र हो, बल्कि उसका कार्य संदेह से परे हों। इसके लिए यह जरूरी है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त राजनैतिक कार्यपालिका द्वारा नियुक्त न किया जाए।

सर्वोच्च न्यायालय को मुख्य निर्वाचन आयुक्त के पद के लिए ऐसे व्यक्ति का चुनाव करना चाहिए जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए योग्य हो और निर्वाचन आयुक्तों के पदों के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों अथवा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य व्यक्तियों में से चुनाव करना चाहिए। राष्ट्रपति को उसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय की सलाह पर कार्य करना चाहिए जैसे कि वह अनुच्छेद 74 के अधीन मंत्रिपरिषद् की सलाह पर कार्य करते हैं।

निर्वाचन आयोग में कम-से-कम तीन आयुक्त होने चाहिए, अर्थात् मुख्य निर्वाचन आयुक्त और दो निर्वाचन आयुक्त/निर्वाचन आयोग को संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से राज्य के क्षेत्रीय निर्वाचन आयुक्त नियुक्त करने चाहिएं।

केन्द्र राज्य संबंधों पर श्रीनगर में विपक्षी दलों के हुए सम्मेलन का संकल्प

(5-7 अक्तूबर, 1983)

श्रीनगर में 5 से 7 अक्तूबर के बीच हुए विपक्षी दलों के सम्मेलन में दिए गए वक्तव्य का पाठ निम्नलिखित है, जो जम्मू और कश्मीर के मुख्य मन्त्री डा० फारूख अब्दुल्ला ने 8 अक्तूबर को प्रेस में दिया :—

1. आज राष्ट्र संकट की स्थिति से गुजर रहा है और हमारे राष्ट्र का भविष्य खतरे में है। हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के समय से संजोए गए हमारे लोकतांत्रिक मूल्य खतरे में हैं और शक्ति के केन्द्रीकरण की अधिकारपूर्ण प्रवृत्ति से सत्तावाद जन्मा है, जिसके परिणामस्वरूप देश के कुछ भागों में अलगाववाद के स्पष्ट चिन्ह देखने को मिलते हैं। इस खतरनाक प्रवृत्ति को रोकना आवश्यक है।

2. भारत की अखंडता और प्रभुसत्ता, विभिन्न भाषाओं, जातियों और संस्कृतियों, जिनसे इस महान राष्ट्र का निर्माण हुआ है, के पारस्परिक सामंजस्य से ही बनी रह सकती है। स्वतंत्रता सग्राम के समय काता गया एकता रूपी सुनहरी धागा आज भी पूरे देश को आपस में बांधे हुए है, हमें देखना कि आगे भी यह कोमल धागा टूटने न पाए।

3. हमारा विश्वास है कि संविधान, चाहे उसकी कोई भी सीमाएं हों, हमारी जनता के लोकतांत्रिक विकास के लिए आज भी एक अत्यधिक प्रासंगिक दस्तावेज है और अनुभवों तथा लोगों की मांग को देखते हुए इसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। इस संदर्भ में विभिन्न राजनैतिक दलों के इस सम्मेलन में, जिसमें कि व्यापक स्तर पर राष्ट्र की विचार धारा का प्रतिनिधित्व हुआ है, संघ-राज्य संबंधों का, उनके राजनैतिक, आर्थिक, वित्तिय और सांविधिक पहलुओं के संदर्भ में पुनर्गठन करने के प्रश्न पर विचार किया गया। इस बैठक का विचार था कि सरकारिया आयोग की नियुक्ति निःसंदेह सराहनीय कदम है, किन्तु स्थिति की मांग को देखते हुए पर्याप्त नहीं।

4. देश की सुरक्षा को जो बाहरी खतरे हैं, उनके प्रति हम पूरी तरह सजग हैं। अनेक संवेदनशील क्षेत्रों में विक्षोभ की स्थिति की भी हमें जानकारी है। एक राष्ट्र के रूप में ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए हमारे पास प्रचुर शक्ति है और हमें संदेह नहीं कि यहां का प्रत्येक नागरिक पूर्ण उत्साह से देश की बहुमूल्य स्वतंत्रता और सत्ता को बचाने और बनाए रखने में कोई कसर नहीं छोड़ेगा। हम इस पृष्ठभूमि में केन्द्र-राज्य संबंधों की समस्या का तत्काल समाधान करना संगत समझते हैं, ताकि की तेजी से और अधिक संतुलित ढंग से आर्थिक विकास संभव हो। इससे राष्ट्रीय एकता की शक्तियों और प्रक्रियाओं को और अधिक बल मिलेगा और राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया सुदृढ़ होगी।

राजनैतिक और प्रशासनिक पहलू

5. यद्यपि हमारा संविधान परिसंघीय प्रकृति का रहा है, इसकी ऐकिक विशिष्टियां अधिकाधिक इसकी परिसंघीय विशिष्टियों पर छाई रहीं। इन वर्षों में केन्द्र और राज्य दोनों में एक ही दल के निरन्तर सत्ता में बने रहने के कारण राज्यों को प्राप्त शक्तियां क्षीण होती रही।

6. इस सबसे काफी तनाव पैदा हुआ और केन्द्र और राज्यों के बीच विवाद की नौबत आई। राज्यों की उनकी स्वायत्तता पुनः प्रदान करना और सुदृढ़ करना और केन्द्र और राज्यों की शक्तियों के बीच समुचित संतुलन रखना नितांत आवश्यक है, ताकि हमारे देश का बहुधर्मी, बहुभाषायी और बहु सांस्कृतिक स्वरूप बना रहे।

7. इसके लिए आवश्यक है कि केन्द्र की राज्यों के प्रति निरंकुश शक्तियों को कम किया जाए। निर्वाचित राज्य सरकारों की बरखास्तगी, राज्य विधान सभाओं को भंग किया जाना और चुनाव करवाए जाने या न करवाए जाने के संबंध में लिए जाने वाले दबंग निर्णय, बंद होने चाहिए।

8 उपर्युक्त प्रयोजनों से राज्यपालों का गलत इस्तेमाल किया गया। रिकार्डों से निःसंदेह यह प्रमाणित हो जाता है कि अधिकांश मामलों ने राज्यपालों ने केन्द्र के सत्तारूढ़ दल के हितों के लिए अपने पद का गलत प्रयोग किया। इस बात की संभावना नहीं कि वे सत्तारूढ़ दल के नेताओं से संकेत पाए बिना इस तरह का कार्य करते। संविधान के निर्माताओं का सही उद्देश्य और उसमें निहित भावना का सभी प्रकार से उल्लंघन किया गया है।

ये हैं : राज्य के मुख्यमंत्री के परामर्श से और उसकी सहमति से राज्यपाल की नियुक्ति, राज्यपालों को योग्यता और श्रेष्ठता, राज्यपाल के उस कार्यकाल की सुरक्षा, जिसका वह हकदार है, राष्ट्रपति शासन लागू करना और राज्यपाल के अधिकार और कर्तव्य तथा केन्द्र द्वारा बिना अधिक हस्तक्षेप के, स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य करना, विशेषरूप से मुख्यमंत्री की नियुक्ति और विधान सभा भंग किए जाने के संबंध में। हम समझते हैं कि राज्यपाल की स्थिति ठीक वैसी ही होनी चाहिए जैसी की राष्ट्रपति की। हमारा सुझाव है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा संबंधित राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए पैनल के आधार पर की जानी चाहिए।

9. इस संदर्भ में हमारा यह भी विचार है कि अनुच्छेद 365 और 357, जिसके अनुसार राष्ट्रपति, राज्य सरकार या राज्य सभा भंग कर सकता है, में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए। संवैधानिक विघटन होने पर 6 महीने के अन्दर चुनाव कराए जाने और नई सरकार के सत्ता में आने की व्यवस्था होनी चाहिए। किन्तु यदि ऐसे उपद्रवों के कारण, जिससे कि जनजीवन सामान्य न रह सके और निष्पक्ष चुनाव करा पाना संभव न हों, तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 263 में प्रस्तावित अनुसार अन्तरराज्यिक परिषद् से परामर्श करेंगे और इसके बाद वह अन्तरराज्यिक परिषद् की राय संसद के समक्ष पेश करेंगे, ताकि राष्ट्रपति शासन लागू करने के संबंध में निर्णय लिया जा सके, जिसकी अवधि अधिकतम 6 महीने या अन्यथा हो।

10. हमारा यह भी विचार है कि संविधान के निम्नलिखित उपबन्धों में भी संशोधन किया जाए अथवा उन्हें काट दिया जाए :—

(क) अनुच्छेद 200 और 201:—राज्य विधान मंडल की राज्य सूची से संबंधित मामलों में विधि निर्माण की सम्पूर्ण शक्ति होनी चाहिए और इस सम्बन्ध में केन्द्र अथवा राज्यपाल का किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, उन विधेयकों से संबंधित मामलों को छोड़कर जो उच्च न्यायालय की शक्तियों को प्रभावित करें।

(ख) अनुच्छेद 248 और संघ की सूची की प्रविष्टि संख्या 97: अनुच्छेद 248 और संघ की सूची की प्रविष्टि 97 द्वारा संघ को सभी मामलों के सम्बन्ध में अवशिष्ट शक्तियां प्रदान की गई हैं, हमारा विचार है कि ऐसी अवशिष्ट शक्तियां राज्य सरकारों को होनी चाहिए।

(ग) अनुच्छेद 249 :—अनुच्छेद 249, जिसके अधीन केन्द्र को "राष्ट्र के हित" के नाम पर राज्य की सभी सूची के विषयों पर विधि निर्माण की शक्ति दी गई है, हटा दिया जाना चाहिए।

(घ) अनुच्छेद 252—अनुच्छेद 252, जिसके अधीन संघ की दो या अधिक राज्यों द्वारा राज्य की सूची में उल्लेखित विषयों के सम्बन्ध में विधि पारित करने का अनुरोध किए जाने पर विधि निर्माण करने की शक्ति प्रदान की गई है, की समीक्षा की जानी चाहिए और उसका संशोधन किया जाना चाहिए।

(ङ) अनुच्छेद 263 :—अनुच्छेद 263 के अधीन राष्ट्रपति अन्तर्राज्यीय परिषद् स्थापित कर सकते हैं। राष्ट्रपति के लिए ऐसी अन्तरराज्यिक परिषद् का गठन करना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए, जिसमें प्रधान मंत्री और सभी राज्यों के मुख्य मंत्री होते हैं। परिषद् संघ और राज्यों के बीच होने वाले सभी विवादों और राष्ट्रीय महत्व के किसी भी अन्य मामले को निपटाएगी।

(च) अनुच्छेद 360.—अनुच्छेद 360, जिसके अधीन राष्ट्रपति को "वित्तीय अस्थिरता को खतरा" के आधार पर राज्य प्रशासन में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की गई है, काट दिया जाना चाहिए।

(छ) अनुच्छेद 365 :—अनुच्छेद 365, जिसके अधीन राष्ट्रपति को केन्द्र के निदेशों का कार्यान्वयन न किए जाने पर राज्य सरकार को बर्खास्त करने की शक्ति प्रदान की गई है, में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि उसका गलत प्रयोग न किया जा सके।

(ज) अनुच्छेद 370—अनुच्छेद 370 के अधीन जम्मू-कश्मीर राज्य को जो विशेष दर्जा दिया गया है, वह बना रहना चाहिए और उसे हर प्रकार से बचाना चाहिए।

(झ) संविधान के अन्य अनेक अनुच्छेद राज्यपाल अर्थात उसके मंत्रीपरिषद और संघ सरकार की शक्तियों और कार्यों के संबंध में हैं। इन अनुच्छेदों की भी समीक्षा की जानी चाहिए।

11. यह भी विचारणीय है कि क्या पिछले तीन दशकों के अनुभवों को देखते हुए सातवीं अनुसूची के अधीन तीनों सूचियों की समीक्षा की जानी आवश्यक नहीं है ?

12. मौजूदा अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी जब राज्यों में तैनात होते हैं, तो वे राज्य सरकारों के पर्यवेक्षण और अनुशासनिक नियंत्रण में होने चाहिए। यदि किसी राज्य सरकार द्वारा की जाने वाली अनुशासनिक कार्रवाई के विरुद्ध अपील की जानी हो, तो यह अपील, इस प्रयोजन से स्थापित प्रशासनिक अधिकरण को भेजी जाए। ये अधिकरण राज्य और संघ सरकार दोनों से स्वतंत्र होने चाहिए।

13. न्यायपालिका, सभी स्तरों पर राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त होनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को स्वयं एक न्यायिक परिषद् का गठन करना चाहिए और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानान्तरण के सम्बन्ध में सिफारिश करनी चाहिए। अपनी सिफारिशें करने से पहले उन्हें राज्य सरकारों, संघ सरकार और मुख्य न्यायमूर्तियों तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों से परामर्श करना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक परिषद् की सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्य होनी चाहिए।

14. स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के लिए चुनाव आयोग की निष्पक्षता और विश्वसनियता एक अनिवार्य शर्त है। निर्वाचन आयोग में तीन सदस्य होने चाहिए जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा पैरा 13 में प्रस्तावित न्यायिक परिषद की सिफारिश पर की जानी चाहिए।

15. कानून और व्यवस्था राज्य से संबंधित विषय हैं, और इस संबंध में राज्य के विशेषाधिकार का पूरी तरह सम्मान किया जाना चाहिए। ऐसे अवसर आ सकते हैं, जब केन्द्रीय पुलिस बल लगाने पर विचार किया जाए। ऐसे सभी मामलों में राज्य सरकारों का पूर्व अनुमोदन लिया जाना आवश्यक है। इस बैठक का दृढ़ विश्वास है कि विक्षुब्ध क्षेत्र अधिनियम किसी भी राज्य पर संबंधित राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन के बिना लागू नहीं किया जाना चाहिए।

16. जैसा कि राष्ट्र को विदित है कि रेडियो और टेलीविजन का केन्द्र के सत्तारूढ़ दल द्वारा अधिकाधिक दुरुपयोग किया जा रहा है। एक लोकतांत्रिक समाज में लोगों को यह जानने का पूरा अधिकार है कि उन्होंने जिन्हें निर्वाचित किया, उन्होंने क्या किया और क्या नहीं किया। उन्हें सरकार की नीतियों के सम्बन्ध में विस्तार से विभिन्न मतों को जानने और समझने का भी अधिकार है। एक सांविधिक केन्द्रीय संचार परिषद् की स्थापना की जानी चाहिए। इसके सदस्यों के रूप में केन्द्र और राज्य सरकारों के मंत्री, राजनैतिक दलों के नेतागण और विशेषज्ञ शामिल होने चाहिए। इस परिषद् को रेडियो, टेलीविजन और सरकार द्वारा नियंत्रित अन्य साधनों पर नजर रखनी चाहिए। राज्य स्तर पर भी ऐसी ही परिषदें स्थापित की जानी चाहिए।

आर्थिक और वित्तीय पहलू

17. इस सभी (बैठक) का यह मत है कि वर्तमान आर्थिक असन्तुलनों और अभावों तथा बहुत से राज्यों के पिछड़ेपन का कारण आर्थिक शक्तियों और संसाधनों का अत्यधिक केन्द्रीकरण है। संरचनात्मक और अन्य कारणों (तत्वों) ने राज्यों और क्षेत्रों के तीव्र और संतुलित विकास को रोका है।

आर्थिक और वित्तीय प्रशासन के वर्तमान उच्च केन्द्रीकृत पैटर्न ने एक ऐसी पद्धति को जन्म दिया है जहां प्राथमिकताएं ऊपर के स्तर से बताई जाती हैं और लोगों की आकांक्षाओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसके परिणामस्वरूप परियोजनाओं के पर्यवेक्षण और प्रबन्ध पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। केन्द्र के पास संसाधनों के अत्यधिक केन्द्रीकृत होने के कारण केन्द्र प्रायः क्षेत्रों तथा राज्यों के बीच संसाधनों के आबन्टन में भी पक्षपात करता है।

18. फिलहाल सार्वजनिक क्षेत्र में उगाई किए गए कुल संसाधनों का 70 प्रतिशत भाग संघ सरकार के पास है और केवल 30 प्रतिशत भाग 22 राज्य सरकारों को दिया जाता है। वित्तीय संसाधनों का इस प्रकार का एक तरफा वितरण एक परिसंघीय व्यवस्था के अनुरूप नहीं है। केन्द्र के लिए कर आय के अधिक लचीले साधन आरक्षित हैं। राज्यों को निगम कर की आय का कोई हिस्सा नहीं दिया जाता जबकि आजकल ये कर आयकर से भी अधिक हो गए हैं। केन्द्र आयकर के अधिभार से उत्पन्न आय का भी राज्यों के साथ हिस्सा नहीं करता।

अनुच्छेद 268 और 269 में केन्द्र सरकार के क्षेत्राधिकार के संसाधनों की उगाही के कुछ क्षेत्रों की ओर संकेत किया गया है। किन्तु इस प्रकार उगाही किए गए संसाधन राज्यों को दिए जाने चाहिए; इन अनुच्छेदों से कोई लाभ

नहीं उठाया गया है। इसके विपरित केन्द्र ने उत्पाद शुल्क पर अतिरिक्त शुल्कों की योजना के माध्यम से राज्यों के बिक्रीकर के हिस्से का अतिक्रमण किया है।

अन्य बहुत सी व्यवस्थाओं जैसे राष्ट्रीय महत्व के लिए "घोषित" की गई वस्तुओं की बिक्री कर की उच्चतम सीमा निर्धारित करने या निर्यात योग्य वस्तुओं पर राज्य को बिक्री कर लगाने से रोकने से भी राज्यों को उनकी आय का उचित हिस्सा प्राप्त करने से वंचित किया गया है। राज्यों की खनिज सम्पत्ति का उपयोग करने के लिए केन्द्र द्वारा राज्यों की उनकी समुचित रायल्टी प्रदान न करने की इच्छा भी राज्यों के संसाधनों के शोषण का एक तरीका है।

19. संघ सरकार द्वारा हाल ही में अपनाई गई नीति के हानिकारक परिणाम का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इस नीति के अन्तर्गत उत्पाद शुल्कों की दरों की समायोजित करने के स्थान पर पैट्रोलियम उत्पादों, कोयला लोह और इस्पात, सीमेंट, एल्युमिनियम आदि वस्तुओं की निर्धारित कीमतों में वृद्धि करके अतिरिक्त राजस्व एकत्र किया जाता है। इस नीति के कारण राज्य सरकारों को कई करोड़ रुपये की आय से वंचित किया गया है। राज्यों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले केन्द्रीय करों के समायोजन ढंग के ऐसे बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं।

20. राज्यों को राष्ट्रीय संसाधनों से उनके वैधानिक शेयर से वंचित करने का एक और उदाहरण बाजार से सार्वजनिक उधार के रूप में दिया जा सकता है। सन 1950 के दशक में बाजार उधार से प्राप्त आय का लगभग दो तिहाई भाग राज्यों को आवंटित किया जाता था और केन्द्र द्वारा केवल एक तिहाई भाग ही रखा जाता था। इसके विपरित केन्द्र अब 90 प्रतिशत भाग अपने पास रखता है और मात्र 10 प्रतिशत राज्यों को दिया जाता है।

21. संघ सरकार किन्ही भी जरियोंसे असीमित मात्रा में धन की व्यवस्था कर सकती है दूसरी ओर जब राज्यों को भारतीय रिजर्व बैंक से ओवरड्राफ्ट लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है तो उन पर कड़ी शर्तें और सीमाएं लगाई जाती है तथा ब्याज की भारी दर वसूल की जाती है। इसी प्रकार राज्यों का व्यावसायिक बैंकों द्वारा दिए जाने वाले अग्रिमों, जिनका मूल्य लगभग 40,000 करोड़ है, की शर्तों और सीमा पर कोई नियंत्रण नहीं है। ऐसी ही स्थिति सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं के निवेश के मामले में भी है।

22. इस सभा की मांग है कि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय प्रबंधों में तत्काल निम्नलिखित परिवर्तन किए जाएं।

(क) निगम कर और आयकर के अधिभार से हुई आय को राज्यों में हिस्से योग्य बनाया जाना चाहिए।

(ख) अनुच्छेद 268 और 269 के उपबन्धों का पूरा-पूरा लाभ लिया जाना चाहिए।

(ग) उत्पाद के अतिरिक्त शुल्क की योजना को समाप्त किया जाना चाहिए।

(घ) निर्देशित कीमतों में की गई प्रत्येक वृद्धि से प्राप्त आय का 40 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए।

(ङ) "घोषित" वस्तुओं के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों के आधार पर निर्णय लिए जाएं उनकी समीक्षा की जानी चाहिए।

(च) राज्यों को उनके खनिज संसाधनों के लिए देय रायल्टी राज्यों से परामर्श करके यथा मूल्य आधार पर निश्चित की जानी चाहिए।

(छ) उत्पन्न किए गए धन और ओवरड्राफ्टों के सम्बन्ध में संघ सरकार की नीति की, राज्यों की दृष्टि से विचार करने के बाद समीक्षा की जानी चाहिए।

(ज) राज्य सरकारों को भारतीय रिजर्व बैंक के केन्द्रीय और स्थानीय संचालक बोर्ड में चक्रानुक्रम में प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जानी चाहिए और उन्हें लोगों के हितों को पूरा करने के लिए वाणिज्यिक बैंक खोलने की अनुमति दी जानी चाहिए।

(झ) पारस्परिक हितों को संबंधित राजकोषीय मामलों पर संघ और राज्य सरकारों के बीच परामर्श करने के लिए एक संस्थागत फोरम की स्थापना की जानी चाहिए।

23. हमारा राष्ट्र जिन विभिन्न पेचिदा समस्याओं से जूझ रहा है, उन्हें हल करने के सम्बन्ध में आर्थिक समन्वय और योजना की भूमिका स्वतः स्पष्ट है। अतः इस पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं। दुर्भाग्यवश, राष्ट्रीय विकास परिषद्, जो सामाजिक और आर्थिक मुद्दों सम्बन्धी सर्वोच्च नीति-निर्धारण निकाय है, और योजना आयोग, जो परिषद् के निर्देशों को कार्यान्वित करने का साधन है, दोनों ने ही इस तरह से कार्य किया है कि उनकी प्रारम्भिक भूमिका पूर्णरूपेण प्रभावित हुई है।

न तो परिषद् का और न ही आयोग का कोई संवैधानिक या कानूनी आधार है। परिषद् की सभाएं औपचारिकता मात्र रह गई हैं। राष्ट्र जिन गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है, उन पर व्यापक विचार-विमर्श की गुंजाइश इन सभाओं में नहीं के बराबर है। इसी तरह योजना आयोग केन्द्र सरकार का उपांग बन गया है और सामान्य जन की आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करने या उनके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने में विफल रहा है।

इस सभा का विचार है कि संविधान और कानून में आवश्यक परिवर्तन कर राष्ट्रीय विकास परिषद् और योजना आयोग दोनों ही का पुनर्गठन किया जाए, ताकि इन निकायों में राज्यों का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। आयोग और परिषद् का सम्बन्ध स्पष्टतः परिभाषित किया जाना चाहिए। आयोग का गठन और कार्य इस तरह के होने चाहिए कि वह केन्द्र और राज्यों के बीच मुख्य एजेंसी का काम कर सके।

24. योजना आयोग और केन्द्रीय वित्त मंत्रालय को राज्यों को विवेकाधीन अनुदान देने का जो प्राधिकार इस समय मिला हुआ है, उसमे व्यापक कटौती की जानी चाहिए। इस समय ये विवेकाधीन अन्तरण राज्यों को किए जाने वाले कुल अन्तरणों के 70% से भी अधिक हैं, और इनमें केन्द्र मनमाने ढंग से चलता है। सभी वित्तीय अन्तरण वित्त आयोग के अधिकार-क्षेत्र में होनी चाहिएं। राष्ट्रपति को चाहिए कि वे इस आयोग के गठन और इसके विचाराधीन विषयों के सम्बन्ध में राज्यों से परामर्श लें।

25. राज्यों को किए जाने वाले कुल अन्तरणों के पारस्परिक आबन्टन का निर्धारण करते समय पहला कर्तव्य यह होना चाहिए कि कोष का कुछ न्यूनतम हिस्सा अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों के लिए अलग कर दिया जाए। इसके अतिरिक्त वित्त आयोग को राज्यों में संसाधनों के आबन्टन का निर्धारण करते समय निर्धनता और जनसंख्या में हरिजन तथा जनजाति के अनुपात को ध्यान में रखना चाहिए।

26. वर्तमान व्यवस्था के तहत केन्द्रीय योजना सहायता का 70% राज्यों को कर्ज के रूप में दिया जाता है। इस सभा का तकाजा है कि इस प्रकार की सभी सहायता को अनुदान समझा जाए और इस संबंध में राज्यों द्वारा लिए गए ऋण माफ कर दिए जाए। सभा में आगे यह सुझाव दिया गया है कि राष्ट्रीय कर्ज आयोग का गठन किया जाए जो कि राज्य सरकारों के बकाया कर्जों की समीक्षा करे और उनकी अदायगी के लिए उपाय सुझा सके। इस आयोग को केन्द्र सरकार के कर्जों की समीक्षा करने का भी अधिकार होना चाहिए।

27. यह सभा सिफारिश करती है कि केन्द्र और राज्य सरकारों को उनके विभिन्न खर्चों और खर्चों में बचत करने की गुंजाइश के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए राष्ट्रीय व्यय आयोग की स्थायी रूप से स्थापना की जाए। इस आयोग तथा योजना और वित्त आयोगों के बीच संबंधों का निर्धारण सावधानी से किया जाए।

28. यह समझा जाए कि केन्द्र द्वारा राज्यों को सुपुर्द किए गए (न्यागमित) संसाधन और आगे, प्रत्येक राज्य के भीतर क्षेत्रीय परिषदों, जिला परिषदों और अन्य स्थानीय तथा ग्रामीण निकायों तक पहुंचने हैं ताकि जनता की वास्तविक रूप से भलाई हो सके।

29. इस सभा का विचार है कि औद्योगिक (विकास और विनियमन) अधिनियम के प्रावधानों और कार्यप्रणाली की पूर्ण समीक्षा होनी चाहिए ।

30. इसी तरह अन्तर्राज्यीय व्यापार को नियन्त्रित करने की केन्द्र की शक्तियों की भी समीक्षा की जानी चाहिए । उदाहरण के लिए, व्यापार में इस समय मौजूद उस विसंगति को दूर किया जाना चाहिए, जिसमें निजी व्यापार द्वारा खाद्यान्न एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजे जा सकते हैं जबकि राज्य सरकार की एजेंसी ऐसा बिना केन्द्र की मंजूरी के नहीं कर सकती ।

31. हम यह भी आग्रह कर सकते हैं कि पूरे देश में समान की कीमत पर 15–20 खाद्यान्नों, औद्योगिक कच्चे मालों और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी संभालने के लिए केन्द्र सरकार को राजी किया जाए । राष्ट्रीय एकता की धारणा अपना महत्व खो देती है यदि आवश्यक वस्तुएं सभी राज्यों में समान रूप से उपलब्ध न हों या यदि उनमें से कुछ पूरे देश में समान कीमतों पर उपलब्ध हों जबकि अन्य वस्तुएं समान कीमतों पर उपलब्ध न हों । केन्द्र को राज्यों से सहयोग लेना चाहिए ताकि इन विसंगतियों को सुधारा जा सके ।

सरकार गिराने की साजिश

केन्द्र और राज्यों में एक दल के शासन का युग समाप्त हो गया है । कई राज्यों में प्रशासन की बागडोर विभिन्न राजनीतिक दलों के हाथ में होने से राजनैतिक परिवेश बदल गया है, लेकिन कांग्रेस- स्थिति की वास्तविकता को देखना नहीं चाहती है और सत्ता को हाथ से जाने नहीं देना चाहती । विभिन्न राज्यों में गैर-कांग्रेसी (इंका) सरकारों को गिराने की गुप-चुप और प्रत्यक्ष कोशिश जारी है ।

सभा में इस बात पर गहरी चिंता व्यक्त की गई है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल जनमत की पूर्ण अवहेलना करते हुए विधिवत् चुनी हुई सरकारों को गिराने के लिए अप्रजातांत्रिक और भ्रष्ट तरीके अपना रहा है । इस सभा द्वारा यह चेतावनी दी जाती है कि जनमत से चुनी हुई सरकारों को गिराने के लिए किए गए ऐसे प्रयासों का उन लोगों द्वारा कड़ा प्रतिरोध किया जाएगा जिन्हें हमारे धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक और परिसंघीय संसदीय प्रणाली से विशेष लगाव है । यह सभा राष्ट्रव्यापी जनमत तैयार करने का भी वचन देती है ।

पंजाब की स्थिति

इस सभा में पंजाब की बिगड़ती स्थिति पर गहरी चिंता व्यक्त की गई है । पंजाब की स्थिति समस्त देश के लिए चिन्ता का विषय बनी हुई है ।

पंजाब में हिंसा का जारी रहना वास्तव में दुःखद और हृदय-विदारक है । पंजाब की शान्तिप्रिय जनता के जान-माल की हिफाजत करने में प्रशासन बुरी तरह नाकाम रहा है । अनेक निर्दोष लोगों की जानें गई हैं और उनके परिवारों तथा संबंधियों के शोक की सीमा नहीं है ।

विपक्षी दलों और कई प्रमुख हस्तियों ने राज्य में प्रशासन की पूर्ण अक्षमता की ओर बार-बार इशारा किया है और समस्याओं के शीघ्र हल का आग्रह किया है, लेकिन महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हितों के बजाय संकीर्ण पार्टी हितों को प्राथमिकता दी गई । हम, जो अपने-अपने दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं और भारत के सभी भागों से संबद्ध हैं, हिंसा के सभी कृत्यों की तीव्र निंदा करते हैं और सभी राजनैतिक कार्यकर्ताओं से अनुरोध करते हैं कि वे ऐसे कृत्यों और गतिविधियों का प्रबल विरोध करें ।

हम पंजाब की जनता से अपील करते हैं कि वे हिंदुओं और सिखों, जो बन्धुता, समान भाषा और उत्तराधिकार के सूत्र से बन्धे हैं, के बीच परम्परागत शान्ति और सौहार्द की शीघ्र बहाली के लिए ठोस कदम उठाए ।

पंजाब ने हिन्दू-सिख एकता और राष्ट्र के प्रति समर्पित सेवा की मिसाल कायम की है । किसी भी कीमत पर इसकी रक्षा की जानी चाहिए ।

सभा में यह भी कहा गया है कि पंजाब की चिरकालिक समस्याओं के तुरन्त समाधान की आवश्यकता है ।

विजयवाड़ा और दिल्ली में विपक्षी दल इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि पंजाब समस्या को हल करने में विलंब करना राज्य और देश के लिए घातक साबित होगा । दिल्ली की सभा में समस्या को हल करने के लिए सर्वसम्मति से एक फार्मूला तैयार किया गया था और न्यायोचित हल तलाशने में सहयोग देने की इच्छा से सरकार को अवगत कराया गया था ।

हम भारत सरकार से एक बार फिर अनुरोध करते हैं कि वह राज्य में लम्बे समय से चली आ रही समस्याओं के समाधान के लिए तुरन्त प्रभावी कदम उठाए ताकि पंजाब में सामान्य स्थिति, शान्ति और सौहार्द कायम हो सके ।

प्रजातांत्रिक समाजवादी दल

राज्य इकाई–हिमाचल प्रदेश

ज्ञापन

अपनी पार्टी (प्रजातांत्रिक समाजवादी दल) की ओर से मैं प्रतिष्ठित आयोग को केन्द्र-राज्य-सम्बन्धों पर पार्टी के दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हूं, जो निम्नलिखित हैं :—

1. हमारी पार्टी मजबूत केन्द्र और राज्यों की अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्ता का समर्थन करती है । भारत सरकार को संविधान में दिए अनुसार वास्तव में संघ-परिसंघ सरकार साबित करने के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र और राज्य विधायी, वित्तीय, प्रशासनिक और इसी तरह के एक-दूसरे से सम्बन्ध अन्य मामलों में मिलकर कार्य करें ।

2. कोष-आबंटन की समस्त योजना की समीक्षा की जानी चाहिए जिससे राज्य अपने कार्य आसानी से कर सकें, इसके लिए उन्हें अधिक वित्तीय शक्तियां दी जानी चाहिएं । साथ ही आयकर प्राप्तियों, सीमा-शुल्क और अन्य कम्पनी करों में राज्य का हिस्सा उचित रूप से बढ़ा दिया जाना चाहिए ।

3. पिछड़े और पर्वतीय राज्यों की सहायता के लिए विशेष परिसंघीय कोष का निर्माण किया जाना चाहिए ताकि वे विकसित राज्यों की बराबरी में आ सकें ।

4. बाढ़, सूखा, ओलावृष्टि इत्यादि दैवी ओपदाओं से हुई क्षति के निर्धारण के लिए "स्थायी आयोग" का गठन किया जाए । साथ ही राज्यों के प्रभावित क्षेत्रों में वितरण के लिए आयोग के पास पर्याप्त कोष हो ।

5. राज्यपाल केन्द्र सरकार के एजेन्ट के रूप में विपक्षी दलों की राज्य सरकारों को गिराने की साजिश न कर सकें, इसके लिए अनुच्छेद 356 में उचित संशोधन होना चाहिए ।

6. किसी भी दल के बहुमत का परिक्षण सदन में होना चाहिए, न कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज भवन में, राज्यपालों द्वारा, ताकि राज्यपाल-पद की गरिमा कायम रखी जा सके और मुद्दा हास्यास्पद न बनने पाए ।

7. चुने हुए प्रतिनिधियों की एक-दूसरे को लालच देकर अपनी तरफ मिलाने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने वाला जो कानून है, उसे दल-बदल विरोधी कानून पारित कर समाप्त कर दिया जाए क्योंकि दल-बदल ने हमारे प्रजातंत्र की संसदीय प्रणाली के मूल स्वरूप को नुकसान पहुंचाया है ।

8. राज्य के राजस्व-संग्रह के लिए, राज्य सरकारों को औद्योगिक इकाइयों मध्यम स्तर की और बड़ी—जिनके लिए राज्यों में कच्चा माल पहले से ही उपलब्ध है, की स्थापना की अनुमति दी जाए । इस समय इन सभी मामलों में, लाइसेन्स केन्द्र से प्राप्त करने पड़ते हैं ।

साधारणतः यह देखा गया है कि लाइसेंस समानता के आधार पर नहीं बल्कि राजनैतिक कारणों से जारी किए जाते हैं। परिणाम यह हुआ है कि सम्मृद्ध प्राकृतिक संसाधनों वाले राज्य अभी भी पिछड़ेपन, बरोजगारी और निर्धनता के शिकार हैं।

9. भारतीय संविधान का मूल प्रजातंत्र की परिसंघीय प्रणाली है, लेकिन व्यवहार में सत्तारूढ़ दल के राजनैतिक और अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एकात्मक प्रणाली अपनाई जा रही है।

अन्त में मैं माननीय आयोग से अनुरोध करता हूं कि वर्तमान प्रणाली प्रजातंत्र का सर्वनाश कर रही है और जनता का धीरे-धीरे इस प्रणाली से विश्वास उठ रहा है। माननीय आयोग को चाहिए कि वह ऐसी सिफारिशें करें कि हमारा प्रजातंत्र सही ढंग से कार्य कर सके और प्रजातंत्र के संघीय ढांचे को सही रूप में बरकरार रखा जा सके।

सधन्यवाद।

(हस्ताक्षरित)
अध्यक्ष

गोमंतक लोक पॉक्स

ज्ञापन

हमारी पार्टी—गोमंत लोक पॉक्स—जिसने पिछले विधानसभा और ससदीय चुनाओं में काफी मत प्राप्त किए थे, गोवा को राज्य का दर्जा देने के संबंध में अपने विचार आपके विचारार्थ प्रस्तुत करना चाहती है।

प्रारम्भ में हम यह कहना चाहते हैं कि गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने का मसला काफी समय से लंबित है और गोवा को राज्य का दर्जा दिया जाना चाहिए या नहीं, इस पर विचार-विमर्श वर्तमान परिस्थितियों में आवश्यक नहीं है। गोवा की जनता शान्तिप्रिय है। और शायद उनकी यही कमी है। उनके शान्ति-प्रिय होने का ही यह परिणाम है कि गोवा के स्वतन्त्र होने के 25 वर्षों बाद भी गोवा को राज्य का पूर्ण दर्जा नहीं मिल पाया है।

गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने से संबंधित हमारे तर्क संक्षेप में नीचे दिए जा रहे हैं :—

ऐतिहासिक कारण

1. गोवा पर 450 वर्षों से भी अधिक समय तक पुर्तगालियों का शासन था जबकि शेष भारत अंग्रेजी हुकूमत का गुलाम था। गोवा को 1961 में स्वतंत्रता मिली। ऐतिहासिक कारणों से गोवा की हर तरह से एक अलग खासियत रही जिसे कायम रखना जरूरी है। हालांकि गोवा में मुख्यत तीन धर्मों के लोग है, फिर भी गोवा समाज सुव्यवस्थित है। यहां ईसाइ, हिन्दू और मुसलमान कई शताब्दी से मैत्रीपूर्ण ढंग से रहते चले आ रह है, फिर भी गोवा को देखकर ऐसा नहीं लगता कि यहां अलग-अलग जाति के लोग रहते हों। भारत के पहले प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने गोवा समाज के इस खास पहलू को पहचाना। उन्होंने गोवा की स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद गोवा की जनता को विश्वास दिलाया कि गोवा की इस खासियत की रक्षा की जानी चाहिए और की जाएगी जहां तक कि गोवावासियों को अपना भविष्य स्वयं बनाने का अधिकार होगा। इसी दृष्टि-कोण की पुनरावृत्ति बाद के प्रधानमंत्रियों ने भी की।

रायशुमारी

2. गोवा पर शासन करने वाली पहली पार्टी—महाराष्ट्रवादी गोमंतक पार्टी—ने महाराष्ट्र के राजनैतिक नेताओं के प्रभाव में आकर महाराष्ट्र में गोवा के विलय का प्रचार किया। अन्य सभी राजनैतिक पार्टियां इस दृष्टिकोण के सख्त खिलाफ थीं। इस मुद्दे पर तीव्र बहस छिड़ी जिसके परिणामस्वरूप 1967 में भारत में पहली बार यह निश्चय करने के लिए रायशुमारी की गई कि गोवा का विलय महाराष्ट्र में होना चाहिए या नहीं। गोवा की जनता ने पार्टी और धार्मिक भावना से ऊपर उठकर महाराष्ट्र में गोवा और गुजरात में दमन और दीव के विलय के खिलाफ मतदान किया। गोवा की जनता का यह निर्णय भारत सरकार के लिए बाध्य है।

गोवा की भाषा

3. गोवावासियों की मातृभाषा कोंकणी है, जिसे गोवा समाज के सभी वर्ग समझ और बोल सकते है। साहित्य अकादमी द्वारा कोंकणी अपने आप में पूर्ण भाषा मानी गई है। सत्तारूढ़ कांग्रेस (इ) पार्टी ने भी कोंकणी को गोवा की एकमात्र राजभाषा बनाने के लिए सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया है। यह बात ध्यान में रखी जा सकती है कि महाराष्ट्रवादी गोमंतक पार्टी समेत किसी भी पार्टी ने इस तथ्य को नहीं नकारा है कि गोवा समाज के सभी वर्गों—चाहे वे हिन्दू हों या ईसाइ या मुसलमान—द्वारा बोली और समझी जाने वाली एकमात्र भाषा कोंकणी है। यह तथ्य इस बात से और अधिक प्रमाणित हो जाता है कि भारत के अन्य प्रदेशों से आकर गोवा में बसे लोगों ने बोलचाल में कोंकणी भाषा का ही प्रयोग किया है। अंग्रेजी, मराठी और पुर्तगाली जैसी अन्य भाषाएं कुछ लोगों द्वारा समझी और बोली जाती है क्योंकि ये भाषाएं स्कूलों में सिखायी जाती हैं, लेकिन इनमें से कोई भी भाषा सभी लोगों द्वारा न तो बोली जाती है और न ही उनकी समझ में आती है। सभी राज्यों का गठन भाषा के आधार पर किया गया था। यदि भारत में राज्यों का विभाजन भाषा को ध्यान में रखकर किया गया है तो इस आधार पर गोवा को अलग राज्य बनाने का पक्ष मजबूत है।

गोवा को राज्य का दर्जा दिया जाए : सभी राजनीतिक पार्टियों की एक मांग

4. विगत में महाराष्ट्रवादी गोमंतक पार्टी चाहती थी कि गोवा का महाराष्ट्र में विलय हो जाए। रायशुमारी के बाद इस पार्टी के दृष्टिकोण में न केवल परि-वर्तन आया है बल्कि अब यह पार्टी गोवा को राज्य का दर्जा देने की प्रबल रूप से मांग कर रही है। गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने की मांग पर सत्तारूढ़ कांग्रेस (इ) पार्टी सहित क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सभी राजनैतिक पार्टियां एकमत है। गोवा की जनता मुख्यतः इस महत्वाकांक्षा को पूरा हुआ देखना चाहती है और एकमत है। इससे पूर्व तीन अवसरों पर गोवा विधानसभा ने गोवा को राज्य का दर्जा दिलाने संबंधी प्रस्ताव पारित किए। केन्द्र सरकार ने ऐसे आधारों पर इन प्रस्तावों को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया है कि यदि इन आधारों पर भारत के अधिकांश राज्यों को लिया जाता तो उनको वह स्थान नहीं मिलता जो आज मिला है। केन्द्र सरकार के इस बर्ताव से गोवावासियों को यह आभास होता है कि वे दूसरे दर्जे के नागरिक है, अतः उन्हें भारत के अन्य नागरिकों की तरह सम्मान नहीं मिल सकता।

राज्य की मांग : आर्थिक रूप से संभव

5. गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने की मांग आर्थिक रूप से संभव है। गोवा के संघ-राज्य क्षेत्र होने के बावजूद इसे मिलने वाला प्रति व्यक्ति सहायता अनुदान कई अन्य राज्यों, जैसे, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, सिक्किम और त्रिपुरा से बहुत कम है। गोवा को मिलने वाला कुल सहायता अनुदान भी न्यूनतम है। इसके अतिरिक्त, भारत सरकार केन्द्रीय कर और शुल्क द्वारा प्रतिवर्ष राजस्व के रूप में लगभग 150 करोड़ रुपए की वसूली कर रहा है। राज्यों का एक समान हिस्सा तय किए बगैर अत्यधिक राजस्व वसूलने की यह पद्धति अनुचित है। सरकारिया आयोग से अनुरोध है कि वह इस पहलू पर वस्तुपरक दृष्टि से नजर डाले तथा केन्द्र और राज्यों के बीच उचित राजस्व-वितरण की सिफारिश करे।

अन्य कारण

6. सिक्किम और नागालैण्ड जैसे कुछ राज्य हैं जिनकी जनसंख्या गोवा की तुलना में कम है। मणिपुर और मेघालय की जनसंख्या गोवा जितनी है।

गोवा प्रति व्यक्ति आय में दिल्ली के बाद दूसरे नंबर पर है। यहां साक्षरता की दर भी 57% है।

गोवा सरकार ने आपको इस तथ्य से पहले ही अवगत करा दिया है कि गोवा राज्य का दर्जा पाने के लिए वित्तीय रूप से सक्षम है, अतः इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं।

गोमंत लोक पॉक्स पार्टी कहना चाहती है कि कोंकणी भाषा और गोवा के लिए राज्य का दर्जा दोनों ही गोवावासियों को प्रिय है। गोवा को राज्य का दर्जा और कोंकणी को उचित स्थान देने में किसी तरह का विलंब होने से इस क्षेत्र में जनअसंतोष और अराजकता हो सकती है। पार्टी सरकारिया आयोग से अनुरोध करती है कि वह इस मुद्दे के सभी पहलुओं पर गौर करे और गोवा, दमन तथा दीव को राज्य का दर्जा दिए जाने की सिफारिश करे। गोमंत लोक पॉक्स, आयोग से यह भी अनुरोध करती है कि आयोग, केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण के लिए सही और न्यायसंगत प्रणाली तैयार करे।

धन्यवाद।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी
केरल इकाई
ज्ञापन

महोदय,

पूर्ण विनम्रता के साथ हम इस आयोग के समक्ष यह कहना चाहेंगे कि हमारे गणराज्य के पिछले 34 वर्षों के दौरान हमारे संविधान में अंतर्निहित मूल्यों और बुनियादी सिद्धान्तों को काफी हद तक क्षति पहुंची है। कुछ निहित स्वार्थी तत्वों के कारण हमारी प्रतिष्ठा को आंच आई है और सार्वजनिक न्याय भी प्रभावित हुआ है। हमारे राज्य दूसरे दर्जे के राज्य बनकर रह गए हैं जैसा कि अंग्रेजों के शासनकाल में था।

यह समय है जब केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित संवैधानिक उपबंध पुन: लिखे जाएं और केन्द्र-राज्य संबंधों का पुनर्निर्धारण किया जाए। वास्तव में केन्द्र का मजबूत होना जरूरी है, लेकिन इसके लिए राज्यों का मजबूत होना अति आवश्यक है। कुछ तत्वों में सत्तारूढ़ राजनैतिक दल द्वारा, निहित स्वार्थों की वजह से इस धारणा पर असहमति प्रकट की गई है। हमारे संविधान के निर्माताओं ने उन लाखों लोगों को बढ़ती हुई संख्या, जो अभी भी जीवन-निर्वाह स्तर से नीचे हैं, को मद्देनजर रखकर अपने महान विचार स्पष्ट किए। 1950 से लेकर अब तक "वेस्ट मिनिस्टर मॉडल" के तहत संघीय प्रणाली वाला प्रजातंत्र आम लोगों की महत्वकांक्षाओं को पूरा करने में नाकाम साबित हुआ है।

भारत 1950 तक कभी भी संयुक्त देश नहीं था जैसाकि कुछ राजनीतिज्ञ और बुद्धिजीवी बताते हैं। दृष्टिकोण, संस्कृति, भाषा, वैयक्तिक कानून, रहन-सहन के ढंग इत्यादि की विविधता इसका प्रमाण है। 'विविधता में एकता' अच्छा स्लोगन (नारा) है और इसे अभी साकार करना है।

22 राज्य मिलकर संघ का निर्माण हुआ है और हमारे संविधान में राज्यों के सहकारी परिसंघ का प्रावधान है किन्तु संघ को श्रेष्ठता दी गई है। इस संबंध में राज्यों की स्वायत्ता पर खास ध्यान देने की जरूरत है। राज्य केन्द्र के मातहत कार्य करने वाली इकाइयां मात्र नहीं हैं। अत: हम मांग करते हैं कि केन्द्र और राज्य के संबंधों को मधुर बनाने के लिए तुरंत आवश्यक संवैधानिक परिवर्तन किए जाएं।

संविधान के अनुच्छेद 356 में या तो संशोधन किया जाए या इसे कानून की पुस्तक से निकाल दिया जाए क्योंकि इस अनुच्छेद से केन्द्र सरकार को अनुचित अधिकार मिला है, जिसके तहत वह राज्य के किसी भी मंत्रालय को, जब भी वह चाहे, झूठा आरोप लगाकर बर्खास्त कर सकती है। यदि यह संभव न हो तो संविधान में कोई ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि उस प्रावधान के दुरुपयोग पर रोक लगे। इस संबंध में यह स्मरण किया जाए कि इस शक्ति का इस्तेमाल किया गया है और राज्यों में 70 से भी अधिक बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है।

इस देश के महत्वपूर्ण और बड़े पदों पर सभी नियुक्तियां, जिनसे केन्द्र-राज्य संबंध प्रभावित होता हो, राज्यों के परामर्श से की जानी चाहिए और नियुक्तियों के मामले में केन्द्र तथा राज्य एकमत हों।

राज्यपाल विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति (चांसलर) नहीं होने चाहिएं। उपकुलपति (वाइस-चांसलर) की नियुक्ति में किसी भी कीमत पर राज्य सरकार की सिफारिशों का पालन किया जाना चाहिए और इसके लि कुछ दिशा-निर्देश दिया जाना चाहिए।

केन्द्र सरकार के पास जो व्यापक अधिकार हैं, उनका विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। संघ सूची में संशोधन किया जाना चाहिए और उक्त परिवर्तन सुनिश्चित करने के लिए इसे तदनुसार वितरित करना चाहिए। विकास के लिए राज्य सरकारों का और अधिक सहयोग होना चाहिए और विकासपरक प्रक्रिया में इनकी भागीदारी पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। राज्यों को केवल केन्द्र के आदेशों को कार्यान्वित करने तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहिए।

राज्यों की स्वायत्तता, केन्द्र द्वारा दी गई कोई रियायत नहीं है। इस संबंध में केन्द्र का स्वीकारात्मक दृष्टिकोण बहुत जरूरी है।

केन्द्र सरकार का सत्तावादी दृष्टिकोण भारत की एकता के लिए बाधक साबित होगा। राज्य के मामलों को निपटाते समय संवैधानिक नैतिकता और न्याय-भावना निर्देशक सिद्धान्त होने चाहिए।

उद्योग और वाणिज्य राज्यों के पास होने चाहिएं और इनकी व्यवस्था करने के लिए राज्यों के पास व्यापक शक्ति होनी चाहिए। उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 की रूपरेखा फिर से बनाई जाए और राज्यों को न्यायोचित ढंग से वितरण किया जाए। इस समय 93% संगठित उद्योग केन्द्र के नियंत्रण में हैं। यह अत्यधिक आवश्यक है कि राज्यों को उद्योग और वाणिज्य में उनका वैध हिस्सा मिले। चूंकि भारत अल्प-विकसित देश है, अत: इस महत्वपूर्ण पहलू पर केन्द्र सरकार को गंभीरता से ध्यान देना चाहिए।

अपर्याप्त आर्थिक विकास के लिए जिम्मेदार कारणों में से एक कारण अत्यधिक केन्द्रीकरण है। हमारा आर्थिक विकास बहुत ही असंतोषजनक है। भारतीय नागरिक की औसत प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। भारत निर्धन देश नहीं है, यहां के लोग निर्धन हैं।

राज्यपालों की नियुक्ति हमेशा या तो राज्य सरकारों के परामर्श से या उच्चाधिकार प्राप्त निकाय, जिसका गठन विशेष रूप से इसी प्रयोजन से किया गया हो, के परामर्श से किया जाना चाहिए और राज्यपाल को न तो भारत सरकार के मातहत होना चाहिए और न ही उसका सहायक। यह भी ध्यान में रखा जाए कि राज्यपाल इस पद के लिए या सरकार के अधीन किसी अन्य पद के लिए पात्र न हो। यह भी प्रावधान होना चाहिए कि राज्यपाल उच्चतम न्यायालय की जांच के बाद कदाचार साबित होने पर ही बर्खास्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। राष्ट्रपति द्वारा राज्य के बिलों को स्वेच्छा से नामंजूर किए जाने में भी परिवर्तन होना चाहिए। इस शक्ति के अविवेकपूर्ण इस्तेमाल पर, मार्गदर्शन करके किसी तरह से रोक लगायी जानी चाहिए।

आजकल राज्यों को केन्द्र द्वारा दो प्रकार के अनुदान दिए जाते हैं। राज्यों को वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार सहायता-अनुदान और योजना आयोग की सिफारिश के अनुसार विवेकाधीन अनुदान दिए जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार राज्य को 30% अनुदान मिलता है और योजना आयोग की सिफारिश पर 70% अनुदान। यह न्यायसंगत नहीं है। राज्यों को अनुदान का आबंटन वित्त आयोग जैसी संवैधानिक सत्ताओं द्वारा किया जाना चाहिए, न कि संवैधानिक सत्ता से इतर किसी अन्य सत्ता, जैसे योजना आयोग, द्वारा।

इस समय केन्द्र और राज्यों के बीच करों और राजस्वों का वितरण न्यायोचित ढंग से नहीं हो रहा है। वित्त अधिनियम, 1959 द्वारा किए गए परिवर्तनों के फलस्वरूप राज्यों को कंपनी कर नहीं मिल रहा है। अत: इस अधिनियम में परिवर्तन होना चाहिए।

50% केन्द्रीय उत्पाद शुल्क राज्य को अन्तरित किया जाना चाहिए। पिछले तीन वर्षों से केन्द्र ने पेट्रोलियम, लोहा, इस्पात, एलुमिनियम, कोयला इत्यादि मदों संबंधी उत्पाद शुल्क की दरों में वृद्धि करना बन्द कर दिया है, केन्द्र

ने केवल इनकी कीमतें बढ़ाई हैं। कीमत बढ़ाने से हुआ समस्त लाभ केन्द्र को मिलता है। अतः केन्द्र सरकार को इस संबंध में 6,500 करोड़ से भी अधिक की आय हुई जबकि राज्य अपना हिस्सा पाने से वंचित रहे। सातवें वित्त आयोग की रिपोर्ट के अनुसार राज्यों को 2,600 करोड़ की आय हुई होती। इस विसंगति की पूरी गंभीरता से जांच की जानी चाहिए।

अनुच्छेद 263 के तहत अंतरराज्यिक परिषद् का गठन काफी समय से लंबित है। इस परिषद् का गठन तुरंत किया जाना चाहिए।

केन्द्र और राज्योंके बीच जिस तरह से आयकर का आबंटन किया जाता है, ठीक उसी तरह से उनके बीच उत्पाद शुल्कों का भी आबंटन किया जाना चाहिए।

राज्य को विवेकाधीन ऋण मिलने के बजाय केन्द्र द्वारा वसूले गए कर-राजस्व का अधिक बड़ा हिस्सा मिलना चाहिए।

राज्यों के बीच सहयोग कायम हो सके, इसके लिए कुछ उपाय किए जाने चाहिएं। राज्यों को विभिन्न समस्याओं का पता लगाया जाना चाहिए और उनका तुरंत समाधान किया जाना चाहिए।

संवैधानिक नैतिकता पर ही हमारा प्रजातंत्र टिका हुआ है। यह पेचीदी समस्या केवल कानूनी किताबों द्वारा हल नहीं की जा सकती। इस महत्वपूर्ण मामले में यह जरूरी है कि केन्द्र में सत्तारुढ़ लोग और राज्यों में उनके सिपहसालार परोपकारी, दानी और अंतर्विवेकी हों।

केरल कॉंग्रेस (मनीग्रुप)

ज्ञापन

1. केरल कांग्रेस, केन्द्र-राज्य संबंधों के लिए आयोग को अपनी शुभकामनाएं देती है और केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित कुछ मामलों पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करती है।

2. इस विषय के संबंध में जानने से पूर्व, हम आयोग के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए यह बताना चाहते हैं कि केरल कांग्रेस लोकतंत्रीय समाजवाद के लिए कार्य करती है।

3. इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हमने केन्द्र और राज्यों के बीच वर्तमान प्रशासनिक, वैधानिक और वित्तीय संबंधों के कुछ पक्षों में परिवर्तनों या संशोधनों का सुझाव देने का निर्णय किया है।

4. केरल कांग्रेस का यह मत है कि केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में दिए गए सुझाव ऐसे होने चाहिये जिससे देश की स्वतंत्रता और एकता तथा अखण्डता सुरक्षित रहे। हम यह भी मानते हैं कि संविधान का ढांचा और उसकी योजना मूलतः सही है। परन्तु, संविधान के कुछ उपबंधों के कार्यान्वियन को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि केन्द्र और राज्य के बीच वैधानिक, प्रशासनिक और वित्तीय संबंधों को संगत अनुच्छेदों में उपयुक्त संशोधन करके या अतिरिक्त उपबंधों के द्वारा अधिक उपयुक्त बनाया जा सकता है।

5. संविधान ने संघ और राज्यों के बीच शक्तियां वितरित की हैं। संघ और राज्यों की शक्तियां तीन सूचियों में बताई गई हैं, और शेष शक्तियां संघ के पास हैं। संविधान को अधिक संघीय स्वरूप प्रदान करने के लिए शेष शक्तियां राज्यों को दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, संघ सरकार के पास विस्तृत क्षेत्र है जिससे कि वह सांविधानिक रूप से राज्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकती है और राज्य सरकारों की स्वतंत्र कार्य प्रणाली में किंचित परिवर्तन कर सकती है। इस पर उपयुत सांविधानिक उपबंधों द्वारा नियंत्रण रखा जाता है।

6. संघ सरकार राज्यपालों की नियुक्ति करती है वे राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। अतः राज्यपाल वस्तुत. केन्द्रीय सरकार का एजेंट हो गया है। यद्यपि उसके पास विवेकाधीन शक्तियां होती हैं जिनका प्रयोग वह केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन करने के लिए करता है। इसलिए हम सुझाव देते हैं कि उपयुक्त सांविधानिक उपबंध बनाए जिससे कि राज्यपाल बिना किसी भय या पक्षपात के अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सके। केवल मुख्यमंत्री के अनुमोदन पर राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति की जानी चाहिए।

7. संघ की कार्यकारी शक्तियों पर कुछ प्रतिबंध होने चाहिए ताकि राज्यों के पहल संबंधी और सांविधानिक उत्तरदायित्व बिना किसी बाधा के पूर्ण होते रहें।

8. अनुच्छेद 365 के अंतर्गत केन्द्र को व्यापक शक्तियां प्रदान की गई हैं जिससे कि केन्द्र की कार्यकारी शक्तियों के अनुसार दिए गए किसी निर्देश का अनुपालन न किए जाने की स्थिति में केन्द्र सरकार राज्यों के प्रशासन को अपने हाथ में ले सके। ऐसी स्थिति लागू की जा सकती है, यदि केन्द्र और राज्य के बीच मतभेद होने की स्थिति में राज्य केन्द्र के निर्देशानुसार कार्य करने में असफल रहे। इसका उचित समाधान यही है कि अंतर्राज्यीय परिषद में दोनों पक्षों के विचार विमर्श द्वारा मतभेदों को निपटाया जाए। अंतर्राज्यीय परिषद का गठन अनुच्छेद 263, के अंतर्गत किया जा सकता है। इस परिषद को मतभेदों से संबंधित मामलों पर विशेष सिफारिशें करने के लिए सांविधिक शक्तियां प्राप्त होनी चाहिये जो विवादों से संबंधित पक्षकारों के लिए बाध्यकारी हों। परिषद् का संघटन उसके कार्य और शक्तियों का निर्धारण केन्द्र और राज्यों के द्वारा किया जा सकता है।

9. अब तक योजना आयोग संघ सरकार की ही कठपुतली रहा है इसे संविधान के अधीन सांविधिक निकाय बनाया जाना चाहिए।

10. संगत उपबंधों के दुरुपयोग को रोकने के लिए अनुच्छेद 356 को इस प्रकार संशोधित किया जाए जिससे कि राज्यपाल की इस व्यक्तिपरक संतुष्टि को अपवर्जित किया जा सके कि संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य सरकार आगे नहीं चल सकती। किन्तु, राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने का आधार निर्वाचित विधानमंडल का असफल होना भी हो सकता है।

11. राज्यों की विधायी स्वतंत्रता भी सीमित है, क्योंकि अत्यन्त महत्व के अधिनियमों पर राष्ट्रपति विचार कर सकता है। राष्ट्रपति विधायी अध्युपायों पर वीटो कर सकता है यदि वे केन्द्र के हित के अनुकूल न पाए जाए। इसीलिए, सातवीं अनसूची की दूसरी सूची में उल्लिखित मामलों में राज्य को विधान अधिनियमित करने की पूर्ण शक्तियां होनी चाहिए। यही पर्याप्त है कि ऐसे विधान में राज्यपाल की अनुमति आवश्यक होनी चाहिए।

12. उद्योगों के संबंध में विकेन्द्रीकरण की पूर्ववर्ती प्रवृत्ति के विपरित केन्द्र ने अपना नियंत्रण बनाया हुआ है। इस समय 90 प्रतिशत से अधिक संगठित उद्योग केन्द्र के नियंत्रणाधीन हैं। बड़े उद्योगों के लिए लाइसेंसो के आवेदन पत्रों को स्वीकृत किए जाने के लिए एक लम्बी कारंवाई में गुजरते हुए कई स्थानों पर जांच की जाती है। वर्तमान नीति से कुछ क्षेत्रों में आर्थिक संकेन्द्रण की स्थिति हो गई है जोकि औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए राज्यों के लिए हानिकारण है। हमारा मत है कि राज्यों को उद्योग स्थापित करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए और उन पर संघ सरकार का प्रतिबंधक नियंत्रण नहीं होना चाहिए।

13. केन्द्र-राज्य के संबंधों में वित्त एक महत्वपूर्ण पहलू है। केन्द्र और राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता संघीय सिद्धान्त के परिरक्षण के लिए अनिवार्य है। बिक्रीकर को छोड़कर, राजस्व के शेष सभी मूल्य सापेक्ष साधन केन्द्र ने अपने पास रखे है। राज्य सरकारें स्वतंत्र होनी चाहिए और उनके पास राजस्व के पर्याप्त साधन होने चाहिए ताकि वे ठीक से चल सकें।

14. यदि केन्द्र द्वारा राज्य को दिए गए साधनों के प्रवाह पर ध्यान दें तो कुल साधनों का मात्र चालीस प्रतिशत वित्तीय आयोग के पंचाट का परिणाम है। केन्द्र से प्राप्त किए गए अन्य साधन योजना सहायता और विवेकाधीन अनुदान या ऋण के रूप में हैं। इससे राज्य की केन्द्र पर आर्थिक निर्भरता और प्रशासन के विशिष्ट स्तर को बनाये रखने तथा अपने क्षेत्र में वित्तीय कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधनों को बढ़ाने में राज्य की कठिनाइयों का पता चलता है। यह प्रमाणित सत्य हैं कि राज्य सूची द्वारा स्वीकार किए गए राज्य सरकारों के राजस्व स्रोत अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। अधिकांश राज्य सरकारें अपने खर्चों को पूरा करने के लिए अत्यधिक ओवर ड्राफ्ट करती हैं। यह उपयुक्त होगा कि केन्द्र और राज्यों की अपने-अपने क्षेत्रों के अन्दर वित्तीय शक्तियां प्रदान की जाए।

15 केन्द्र और राज्यों के बीच करों के स्थर, सहायता अनुदान और ऋणों के माध्यम से वित्तीय समायोजन करते समय यह आवश्यक है कि उसमें कुछ ऐसे उपाय किये आएं जिनसे राज्य सरकारों को उपयुक्त साधन उपलब्ध हो सकें। **इस प्रयोजन के लिए करों के न्यागमन के अंतर्गत सभी मुख्य मदें उपलब्ध कराई जानी चाहिए। केन्द्रीय सहायता के अनुदान के अंश को बढ़ाया जाना चाहिए और ऋण के अंश को कम किया जाना चाहिए या पूर्णतया समाप्त कर दिया जाना चाहिए।**

16. राज्य सरकारों की वित्तीय आवश्यकताओं और विकास की जरूरत को ध्यान में रखते हुए केन्द्र और राज्यों के बीच बाजार से उधार ली गई राशि के वितरण के लिए नये दिशानिर्देश तैयार करने होंगे। वर्तमान तदर्थ आबंटन अधिकांशत: केन्द्रीय सरकार के पक्ष में हैं। ऋण परिषद् जैसा स्वतंत्र निकाय बाजार उधार के लिए बेहतर सूत्र तैयार कर सकता है। जो राज्य जनशक्ति और नकदी फसलों के निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं, उनके मामले में बाजार उधार के शेयर के आबंटन में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

17. राज्य सरकार के समक्ष वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमतें एक अन्य समस्या है, जिस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है, सिवाय इसके कि वह जन वितरण व्यवस्था चालू करे। जनवितरण व्यवस्था तभी सहायक हो सकती है जबकि वस्तुएं देश के भीतर या बाहर से उचित दामों पर उपलब्ध हों। प्राय: वस्तुओं की कीमतें चाहे वे जरूरी हों या गैर जरूरी अन्य स्फीतिकारी दबावों के कारण अधिक होती हैं। वस्तुओं की कीमतें बढ़ने से निर्वाह व्यय सूचकांक भी बढ़ेगा जिसके कारण राज्य सरकारों को अपने कर्मचारियों को अतिरिक्त मंहगाई भत्ता देना पड़ेगा। जब भी केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों को अतिरिक्त मंहगाई भत्ता देती है, तभी राज्य सरकारों के कर्मचारियों को भी उतना ही अतिरिक्त मंहगाई भत्ता दिया जाना चाहिए। अतिरिक्त मंहगाई भत्ता देने के कारण राज्यों के संसाधनों में कमी आ जाती है उदाहरण के लिए, केरल सरकार ने 1980 से अपने कर्मचारियों को 474 करोड़ रुपये अतिरिक्त मंहगाई भत्ते के रूप में दिए हैं। इस कारण राज्यों के साधनों में भारी कमी हो जाती है, जिस पर आयोग को ध्यान देना चाहिए। इस संबंध में राज्यों को जो भी प्रतिबद्धता है, उसकी प्रतिपूर्ति पूर्णत: केन्द्र द्वारा की जानी चाहिए।

18. हमें पूरी आशा है कि केन्द्र-राज्य संबंधों पर आयोग हमारे सुझावों को गंभीरतापूर्वक ध्यान में रखेगा और आयोग की सिफारिश देशभर में एक बेहतर सामाजिक-आर्थिक संतुलन स्थापित करेगी।

खासी पहाड़ी स्वायत्त जिला परिषद

ज्ञापन

खासी पहाड़ी स्वायत्त जिला परिषद्, शिलांग की कार्यकारणी समिति के द्वारा सरकारिया आयोग को 29 सितम्बर, 1985 से 2 अक्तूबर, 1985 के दौरान आयोग के शिलांग आने के अवसर पर ज्ञापन प्रस्तुत किया गया।

आदरणीय महोदय,

मैं खासी पहाड़ी स्वायत्त जिला परिषद्, शिलांग की कार्यकारिणी समिति की ओर से राज्यों और संघ के बीच सभी क्षेत्रों से संबंधित उत्तरदायित्वों, कार्यों और शक्तियों की वर्तमान व्यवस्था के संबंध में आयोग के साथ विचार विमर्श करने के लिए आमंत्रित किए जाने के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस संबंध में केन्द्र और राज्यों के बीच संबंध इस कदर संकीर्ण रहे हैं कि वर्तमान व्यवस्थाओं में किसी भी प्रकार के परिवर्तनों का कोई भी समाधान तब तक पूर्ण नहीं होगा जबतक कि इस उत्तरपूर्वी क्षेत्र में जिला परिषदों के सामने आई समस्याओं को ध्यान में नहीं रखा जाएगा।

अत:, हम इस अवसर पर यह ज्ञापन आयोग के समक्ष ससम्मान प्रस्तुत करते हैं जिसमें प्रशासन कार्य चलाने के दौरान इस स्वायत्त जिला परिषद् के सामने आई विभिन्न समस्याओं में से कुछ को प्रस्तुत किया गया है। हमें विश्वास है कि विद्वत आयोग 1948–50 के दौरान असम राज्य/संयुक्त प्रान्त की जिला परिषदों के निर्माण और उनके अस्तित्व संबंधी परिस्थितियों, लक्ष्यों और उद्देश्यों से संबंधित समस्याओं से अनभिज्ञ नहीं है।

जहां तक खासी पहाड़ी जिले का संबंध है, भूतपूर्व खासी रियासतों और अन्य क्षेत्र तथा पूर्वी और पश्चिमी खासी पहाड़ी जिलों को सम्मिलित करके यह स्वायत्त जिला गठित किया गया है। खासी रियासतें जिन्होंने कि 1948 के लगभग जब भारतीय संविधान बन रहा था, अंगीकार पत्र पर हस्ताक्षर करके अपनी संधियों और सनदों के द्वारा विगत में अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखा है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनके राज्यक्षेत्रों को भारतीय संघ के अंतर्गत अभ्यर्पण। विलयन कर दिया गया हो या इस उद्देश्य के लिए किसी अन्य राज्य में विलयन किया हो। इस संबंध में अधिक स्पष्टता के लिए हम भारत सरकार के राज्य मंत्रालय के भारतीय राज्यों पर श्वेत पत्र के पैराग्राफ 112, 113 और 114 का संदर्भ देना चाहते हैं, जिसमें विशेष रूप से इस बात पर जोर दिया गया है कि खासी पहाड़ी राज्यों और असम के अन्य जनजातीय जिले को मिलाकर जिन्हें जयन्तिया पहाड़ी जिले के रूप में जाना जाता है, असम के अलग स्वायत्त जिले के रूप में गठित कर दिया गया है। जिसे भारत के संविधान की छटी अनुसूची के उपबंध के अनुसार संयुक्त खासी और जयन्तिया पहाड़ी जिले के रूप में जाना जाता है जैसाकि 1960 के केस सं० सी० ए० 394–टी० काजी, मुख्य कार्यकारी पार्षद (अपीलकर्ता) बनाम यू ओरमेनिक सियम और अन्य (प्रतिवादी) भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में उल्लेख किया गया है भारत के संविधान के निर्माताओं ने, इस क्षेत्र के जनजातीय लोगों के रहन-सहन तरीके और उनकी संस्कृति की विभिन्नता के विशिष्ट स्वरूप को ध्यान में रखते हुए भारत के संविधान में विशेष व्यवस्था करना उचित समझा जिससे कि उनको अपने पूर्वजों के अनुसार अपनी प्रवृत्ति, संस्कृति के अनुसार जीवन व्यतीत करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सकें। जिला परिषदें कहीं से प्रकट नहीं हुई बल्कि इनका प्रादुर्भाव भारत के संविधान के अंतर्गत हुआ और ये सांविधिक निकाय भी नहीं हैं जैसी कि अब मणिपुर और त्रिपुरा में गठित हो रही हैं।

भारत की संविधान की छठी अनुसूची के अनुसार जिला परिषदें स्वायत्त निकाय हैं या दूसरे शब्दों में एक छोटा राज्य है, जिसमें कार्यकारी न्यायिक और वैधानिक दृष्टि से एक सरकार के सभी अपेक्षित गुण हैं। अत: मैं यह मानता हूँ कि संघ और राज्य के बीच ही नहीं अपितु संघ, राज्य और स्वायत्त जिला परिषदों के बीच भी संबंध होना चाहिए।

खासी पहाड़ी स्वायत्त जिला परिषद की कार्यकारिणी समिति के द्वारा आयोग को यह ज्ञापन प्रस्तुत करते समय उनके मन में मेघालय राज्य सरकार के लिए अहित की भावना बिल्कुल नहीं हैं, अपितु जातीय, सांस्कृतिक, पारम्परिक आदि समस्याओं को प्रकाश में लाना है जिनका कि हम पूर्वी क्षेत्र के इस भाग में सामना कर रहे हैं। यह जिला परिषद् से ही भारत के संविधान की छठी अनुसूची के उपबंधों में अपेक्षित प्रशासन के स्वरूप और उसकी योजना को बनाए रखने के लिए सभी प्रकार से पूर्ण प्रयत्न कर रही है। परन्तु इस परिषद् के पास सीमित साधनों के कारण प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए अन्य उपादानों के अतिरिक्त हम वित्तीय रूप से अक्षम हैं। जिला परिषद् सांविधानिक निकाय होने के कारण हमें इसके प्रत्येक कार्यों के संबंध में सोचने का अधिकार है और आशा की जाती है कि सरकार परिषद की किसी प्रकार से अवनति नहीं देख सकती।

एक ओर खासी पहाड़ी स्वायत्त जिला परिषद्, मेघालय राज्य सरकार तथा दूसरी ओर असम राज्य के बीच काफी समय से लंबित सीमा विवाद के अनिर्णीत मामले को ध्यान में रखते हुए तथा इस जिला परिषद् की प्रशासनिक अधिकारिता के क्षेत्र का असम राज्य द्वारा अतिक्रमण के संबंध में तथा इसके इस राज्य के लोगों विशेषकर देशी जनजातीय लोगों के भाग्य को प्रभावित करने वाले परिणामी कठिनाई के संबंध में जोकि इस परिषद् की प्रशासनिक अधिकारिता के अंतर्गत आते हैं, इस महत्वपूर्ण समस्या के शीघ्र निपटारे के लिए कार्यकारिणी समिति ने 25 फरवरी 1985 को मेघालय के राज्यपाल को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया। यह प्रशंसनीय है कि सरकार ने इस मामले में आवश्यक प्रारम्भिक कदम उठाए हैं। किन्तु इस संबंध में यह मांग की गई है कि अपने सांविधानिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए और इस जिले के लोगों के सामाजिक-आर्थिक कल्याण के लिए भी इस परिषद को संबद्ध किया जाना चाहिए। इस संबंध में जिला परिषद का यह तर्क है कि उसने 1876 में अन्तत: अधिसूचित किए गए सीमा विवरण को स्वीकार नहीं किया है और इस संबंध में उसका समय-समय पर किया गया निर्वचन गलत और अस्वीकार्य है क्योंकि उक्त अधिसूचना में खासी राज्यों से मूलत: संबंधित विस्तृत क्षेत्र को सम्मिलित नहीं किया गया है।

खासी पहाडी जिले के अंतर्गत वह सारा क्षेत्र आता है जोकि पहले खासी राज्यों के रूप में जाना जाता था तथा अन्य वह क्षेत्र भी इसके अंतर्गत समाविष्ट है जोकि भारत के संविधान की छठी अनुसूची के पैराग्राफ 20 में परिभाषित किया गया है सिवाय उस क्षेत्र को जो शिलांग की छावनी और नगरपालिका के अन्दर तत्समय आता था किन्तु प्रशासनिक सुविधा के लिए ब्रिटिश शासन के द्वारा द्विशाखित और कामरूप जिले के अंतर्गत समाविष्ट किए गए खासी राज्यों के क्षेत्र शामिल हैं ।

भारत के संविधान की छठी अनुसूची के पैराग्राफ 14 के अंतर्गत लगभग 1982 में गुआहाटी उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति एस० के० दत्त की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया जोकि जिला परिषदों के कार्यों की जांच कर सके और उनकी उन्नति के लिए अर्थोपायों का सुझाव दे सके । इस परिषद ने अपने तारीख 11 जुलाई 1984 के ज्ञापन के माध्यम से अपनी कार्यकारिणी के कार्यों, विधायी अभ्युपायों आदि के संबंध में आवश्यक सूचना, जोकि भारत के संविधान की छठी अनुसूची के उपबंधों के अंतर्गत बताए गए मामलों से संबंधित है तथा इसके अतिरिक्त अन्य ऐसी कठिनाईयाँ प्रस्तुत की हैं जोकि प्रशासन के दौरान परिषद के समक्ष आई हैं ।

समझा जाता है कि आयोग ने अपना कार्य पूरा कर लिया है और कुछ महीने पहले अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है, परन्तु रिपोर्ट प्राप्त न होने के कारण, हमें यह पता नहीं है कि आयोग किन निष्कर्षों पर पहुंचा है । चूंकि यह रिपोर्ट मात्र जिला परिषदों के कार्यों से ही संबंधित है, इसलिए यह इस और अन्य जिला परिषदों को उपलब्ध कराई जानी चाहिए ।

जो कहा गया है उसके अतिरिक्त जिला परिषद को अपने द्वारा बनाए गए कई कानूनों के संबंध में कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ा है, यथा :— 1. खासी पहाडी स्वायत्त जिला परिषद (ढोर और अन्य पशु कराधान) विनियम, 1982 । 2. खासी पहाडी स्वायत्त जिला परिषद (खासी सामाजिक वंशप्रथा) अधिनियम, 1980 । 3. खासी पहाडी स्वायत्त जिला परिषद (स्वत: अर्जित सम्पत्ति का उत्तराधिकार) अधिनियम, 1980 और 4. खासी पहाडी स्वायत्त जिला परिषद (प्राथमिक शिक्षा) विनियम, 1980 यथास्थिति कोई कारण बताए सरकार के पास राज्यपाल के अनुमोदन/सहमति के लिए पड़े हुए हैं । हम जानते है कि आयोग इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि परिषद की शक्तियां असम पुनर्गठन (मेघालय) अधिनियम, 1969 और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 के अंतर्गत छठी अनुसूची के संशोधन के द्वारा पहले से ही कम कर दी गई हैं और इस प्रकार परिषद् की स्वायत्तता को कम कर दिया गया है तथा जिला परिषद के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के लिए राज्य सरकार को पर्याप्त अवसर दिए गए हैं । उदाहरण के लिए, जैसाकि पहले ऊपर बताया गया है, इस परिषद ने स्व-अर्जित सम्पत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में कानून बनाया है परन्तु इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना, सरकार ने जून 1984 के विधान सभा सत्र में "स्व-अर्जित सम्पत्ति पर खासी-जयन्तिया उत्तराधिकार (विशेष उपबंध) विधेयक 1984 नामक एक विधेयक संबंधित जिला परिषद से परामर्श किए बिना और और परिषद के विधेयकों के परिणाम की सूचना दिए बिना प्रस्तुत किया ।

यह कहना यहां गलत नहीं होगा कि खासियों की एक भिन्न संस्कृति, भिन्न भू-धृति और शासन की लोकतंत्रीय प्रणाली है परन्तु खासी राज्यों के प्रधानों को प्रादेशिक प्रभुत्व प्राप्त नहीं है । इस बात से यह स्पष्ट होता है कि उनके विलय की कोई लिखत उपलब्ध नहीं थी । परन्तु यदि छठी अनुसूची के पैरा 12-क में दिया गया है कि यदि जिला परिषद् को राज्य प्राधिकरण के अधीन कर दिया गया तो इस बात का डर है कि किसी भी खासी का स्वयं के खासी होने के अस्तित्व समाप्त हो जाएगा । दूसरे, यदि उत्तराधिकार के विषय में वह राज्य एक खासी के लिए कानून बनायेगा, जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का समावेश है, तब ऐसी स्थिति में हमारी स्वयं की संस्कृति और प्रतिभा के अनुसार शासन करने की स्वतंत्रता कहां रहती है ?

काफी समय से, छठी अनुसूची के संशोधन की आवश्यकता तेजी से महसूस की जा रही है जिससे कि जिला परिषदों का प्रशासन सुदृढ़ हो सके और इस संबंध में उत्तरपूर्वी और क्षेत्र की जिला परिषदों के सभी अध्यक्षों मुख्य कार्यकारी सदस्यों का एक सम्मेलन तारीख 20-1-81 को शिलांग में किया गया । छठी अनुसूची के पक्ष-विपक्ष में घिसीपिटी चर्चा के बाद सम्मेलन ने उक्त अनुसूची के प्रस्तावित वे संशोधन तैयार किये हैं जिनसे उनके विचार से स्वायत्त क्षेत्रों में प्रशासन पर्याप्त रूप से सुदृढ़ होगा । जिसकी एक प्रति विचारार्थ और अवलोकनार्थ संलग्न है ।

अंत में हम यह बताने के लिये बाध्य है कि जहां तक जिला परिषदों और राज्य सरकार तथा संघ के बीच संबंधों का प्रश्न है, उनके मध्य सामंजस्य का अभाव है ।

अत: हम छठी अनुसूची के संशोधन की पुन: याचना करते हैं जैसाकि संबंधित जिला परिषदों द्वारा महसूस किया गया है और परिषद् के प्रशासन कार्य में किसी का कोई अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए जिससे कि जिला परिषद् और राज्यपाल के बीच घनिष्ट संबंध बने रहें । और वर्तमान प्रशासन की अव्यवस्थित दूर करने के लिए खासी पहाडी जिले की सीमा निश्चित की जानी चाहिए और उसके स्पष्टतया सीमांकन किया जाना चाहिए । खासी समुदाय यह महसूस करता है कि पिछले एक दशक में उनका दमन किया जा रहा है और यह समुदाय कार्यों की स्थिति से भी असंतुष्ट है, जोकि बदतर होती जा रही है और किसी भी समय अशान्ति का कारण बन सकती है ।

अत: हम, आपसे यह आशा करते है कि आप इस ज्ञापन में उठाये गये मामलों के संबंध में सही परिप्रेक्ष्य में तथा गहराई से सोचेंगे और "खासियों" के अधिकारों, भावनाओं और उनके विशेष स्वरूप को समझने का प्रयास करेंगे जिससे कि देश में शान्ति एव सामंजस्य और सुव्यवस्था स्थापित हो सके और हमारे देश, भारत की एकता और अखण्डता को अन्ततोगत्वा दृढ तथा मजबूत बनाया जा सके । हम आयोग की स्वस्थता और सफलता की कामना करते हैं । 'जयहिंद'

तारीख, शिलांग :

(हस्ताक्षर)
मुख्य कार्यकारी सदस्य,

भारत के संविधान के छठी अनुसूची में प्रस्तावित संशोधन

अनुच्छेद	संशोधन
छठी अनुसूची	
पैरा-1	पैरा-1—पैरा 1 के उपपैरा (2) में "राज्यपाल" और "सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा" शब्दों के बीच "सम्बन्धित जिला परिषद के परामर्श से" शब्दों को अन्तर्विष्ट करें ।
पैरा-2	पैरा-2—(1) पैरा 2 के उपपैरा 1 की चौथी पंक्ति में "राज्यपाल द्वारा" और "और शेष" शब्दों के बीच "सम्बन्धित जिला परिषद के परामर्श से" शब्दों को अन्तर्विष्ट करें । (ii) पैरा 2 के उपपैरा (1) में निम्नलिखित परन्तुक जोड़े ।
	"किन्तु यदि कोई व्यक्ति पैरा 20 में संलग्न सारणी के भाग I, II और III में निर्दिष्ट किए गए अनुसार व यथा स्थिति असम मेघालय और मिजोरम राज्य के किसी स्वायत्त जिले का अनुसूचित जन-जाति का नहीं है तो वह जिला परिषद् के चुनाव का पात्र नहीं होगा ।"
पैरा-3	पैरा 3—समूचे पैरा 3 को हटा दिया जाएगा और निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया जाएगा:
	"भूमि खनिजों के संबंध में और नगर या ग्राम प्रशासन सामाजिक और रूढ़िगत प्रथाओं के संबंध में जिला परिषद् या प्रादेशिक परिषद् की शक्तियां ।"

अनुच्छेद | संशोधन

(1) स्वायत्त जिलों की सभी भूमि का नियंत्रण यथास्थिति जिला परिषद् या प्रादेशिक परिषद् द्वारा किया जाएगा और जिला परिषद् या प्रादेशिक परिषद् को इसके संबंध में और विशेष रूप से निम्नलिखित के संबंध में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होगा :

(क) कृषि या चारागाह के प्रयोजन के लिए या वनों के संरक्षण के लिए या ऐसे आवासीय अथवा गैर कृषि प्रयोजनों के लिए जिनसे किसी गांव या नगर के निवासियों के हितों की बढ़ावा मिलने की संभावना हो, भूमि का आबंटन, हस्तांतरण, अधिभोग या उपयोग या अलग रखना और उसका पंजीकरण ।

किन्तु ऐसे अनिवार्य अधिग्रहण को प्राधिकृत करने वाले तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार मेघालय, असम या मिजोरम, सरकार के द्वारा सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अधिकृत या अनधिकृत किसी भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण को रोकने की इस विधि में कोई बात नहीं होगी ।

बशर्ते कि इस अनिवार्य अधिग्रहण के लिए मेघालय मिजोरम या असम सरकार के द्वारा संबंधित जिला परिषद् या प्रादेशिक परिषद् की पहले सहमति प्राप्त कर ली हो ।

(ख) किसी वन का नियंत्रण या प्रबंध,

(ग) झूम या अन्य प्रकार की स्थान परिवर्ती कृषि पेशा का विनियमन,

(घ) ग्राम या नगर समितियों या परिषदों की स्थापना और उनकी शक्तियां,

(ङ) ग्राम या नगर प्रशासन से संबंधित अन्य कोई विषय, जिसमें ग्राम या नगर पुलिस, लोक स्वास्थ्य और सफाई भी शामिल है,

(च) प्रधानों या मुखियाओं की नियुक्ति या उत्तराधिकार और उनकी शक्तियां तथा कार्य,

(छ) सम्पत्ति का उत्तराधिकार जिसमें किसी जन-जाति का गैर जनजाति से विवाह होने के फलस्वरूप प्राप्त संपत्ति का स्वामित्व या उपयोग, उपभोग पंजीकरण हस्तांतरण और आबंटन शामिल है,

(ज) विवाह और तलाक,

(झ) सामाजिक रूढ़ियां और प्रथाएं जिनमें रूढ़िजन्य विधि और प्रथा शामिल है,

(ञ) मीन क्षेत्र,

(ट) (i) बाजार और मेले ।

(ii) दुकानों या स्टालों की स्थापना या उनका निर्माण;

(2) जिला परिषद् को निम्नलिखित के संबंध में कानून बनाने का भी अधिकार होगा :

(क) किसी नहर या जल मार्ग का उपयोग ;

(ख) सड़क परिवहन और राजपथ;

(ग) व्यापार;

(घ) मद्य उत्पादन विक्रय या मद्य निषेध;

(ङ) दस्तावेजों का पंजीकरण;

(च) न्यायालय शुल्क और स्टाम्प;

(छ) वन्य प्राणियों और पक्षियों का संरक्षण;

(ज) हाथी महल;

(झ) भूमि अर्जन;

पैरा 3 — पैरा 3—इस पैरा के अन्तर्गत बनाये गये सभी कानून राज्यपाल को तुरन्त प्रस्तुत किए जाएंगे और जब तक उनकी सहमति नहीं मिलती तब तक वे प्रभावी नहीं होंगे,

पैरा 6 — पैरा 6—पैरा (6) के उप पैरा (1) के चौथी पंक्ति में "क" और "अनुमोदन" शब्दों के बीच आये पूर्व शब्द को काट दें ।

पैरा 8 — पैरा 8—(1) पैरा 8(1) के अंत में और "सामान्यत:" शब्द के बाद "उस समय तक कि जिला परिषदों ने अपने कानून न बना लिये हों" "शब्दों" को अन्तर्विष्ट करें ।

(2) पैरा 8 में निम्नलिखित को उप पैरा 3 के (ग) के रूप में अंतर्विष्ट करें :--

"(ग) लघु खनिजों और आरक्षित वनों से भिन्न वनों से हुई उपज पर कर, रायल्टी, उपकर, शुल्क और फीस और जिला परिषद् की विधायी और प्रशासनिक शक्ति के भीतर आनेवाले अन्य विषयों पर फीस ।"

(3) पैरा 8 (4) में जहां कहीं भी "विनियमन" शब्द आया है उसके स्थानों पर "कानून" शब्द को अन्तर्विष्ट कर दें ।

पैरा 9 — पैरा 9--में नया उप पैरा (3) इस प्रकार जोड़े दें :

(3) "इस पैरा के उप पैरा (1) और (2) में उल्लिखित किसी बात के बावजूद संबंधित जिला परिषद् को देय रायल्टी का वार्षिक हिस्सा उसके उपचित होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर जिला परिषद् को सौंप दिया जाएगा ।"

अनुच्छेद	संशोधन
पैरा 10	पैरा 10--पैरा 10 के उप पैरा (2) के दूसरे परन्तुक की अन्तिम पंक्ति में "यह विनियम बनाते समय" शब्दों को हटा दें और उनके स्थानपर "जिला परिषद् का प्रारम्भ" शब्दों को रख दिया जाये ।
पैरा 12	पैरा 12--पैरा 12(क) और 12ख को हटा दें और पैरा 12 में जहां कहीं "असम" शब्द आया हो उसके बाद "मेघालय और मिजोरम" शब्द जोड़ दें ।
पैरा 20	पैरा 20--पैरा 20 (2) और उसके परन्तुक को काट दें और उसके स्थान पर निम्नलिखित को रख दें :
	"खासी पहाड़ी जिले के अन्तर्गत के क्षेत्र आयेंगे जो इस संविधान के प्रारम्भ होने से पूर्व खासी रियासतों तथा खासी और जयन्तिया पहाड़ी जिले के रूप में जाने जाते थे, किन्तु तारीख 14-6-73 की अधिसूचना सं० डी० सी० ए० 31/72/11 के साथ पठित तारीख 23-11-64 की अधिसूचना संख्या टी० ए० डी० आर०/50/64 के अधीन गठित जयन्तिया पहाड़ी स्वायत्त जिला बनने वाले क्षेत्र इसमें शामिल नहीं होंगे ।"
	(स्पष्टीकरण : इन प्रस्तावित संशोधनों में मिजोरम संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में जहां कहीं भी "मिजोरम राज्य" शब्दों का प्रयोग हुआ है वे शब्द मिजोरम संघ राज्य के सूचक होंगे और "राज्यपाल" शब्द उक्त संघ राज्य क्षेत्र के "प्रशासक" का सूचक होगा ।)

बी वानोयांग
मुख्य कार्यकारी/प्रबन्धक एवं
सम्मेलन के अध्यक्ष

मलयाली देशीय मुन्नानी

प्रश्नावली के उत्तर

हमें प्रसन्नता है कि भारत सरकार ने भले ही देर से, केन्द्र राज्य संबंधों की समस्या पर ध्यान दिया है लेकिन आयोग को इस विषय पर अपने निवेदन के संबंध में वर्तमान और भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों से अच्छी प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं हुई है । आयोग उनसे उक्त विषय पर अपने ज्ञापन भेजने का अनुरोध किया था । इस तथ्य से यह पता चलता है कि शासक दलों की जनता का इतना भी ख्याल नहीं कि वे इतनी महत्वपूर्ण समस्या पर जिसका सामना देश कर रहा है अपने विचार प्रकट कर आयोग की मदद करें। गृह मंत्रालय की तारीख 9 जून, 1983 की अधिसूचना सं० IV/11017/1/83 सी० एस० आर० में उल्लिखित विचारार्थ विषय केन्द्र और राज्यों के बीच वर्तमान व्यवस्थाओं की प्रक्रिया की जांच एवं समीक्षा करते समय और आवश्यक परिवर्तन और उपाय करने की सिफारिश करते समय आयोग उन सामाजिक और आर्थिक विकासों को ध्यान में रखेगा, जो वर्षों से होते रहे हैं और जिनका संविधान की योजना और ढांचा तैयार करने में जिनका उचित महत्व रहा है, जिन्हें स्वतंत्रता की रक्षा करने और देश की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने के लिए संविधान के निर्माताओं द्वारा अध्यव्यवसाय से तैयार किया गया है जिनका कि जनता के कल्याण के प्रबंधन के लिए अत्यधिक महत्व है ।

इस संदर्भ में हमारा मत है कि यदि सरकार यह महसूस करती है कि केन्द्र राज्य संबंधों के पुनर्गठन के लिए भारत के संविधान में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए तो आयोग का प्रयास व्यर्थ होगा । विचारार्थ विषय को उपर्युक्त कथन से यह संदेह उत्पन्न होता है कि केन्द्र-राज्य संबंधो की वर्तमान दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए सरकार संविधान में परिवर्तन नहीं करना चाहती चूंकि संविधान में ही परिवर्तनों की व्यवस्था है अतः हमारा आशावादी दृष्टिकोण है कि आयोग संविधान में आवश्यक परिवर्तनों का सुझाव देगा, यदि वह राज्यों और उनके लोगों की आकांक्षाओं के अनुकूल केन्द्र राज्य संबंधों, भारतीय संविधान को एक वैज्ञानिक तर्कसंगत पुनर्गठन के लिए आवश्यक समझे ।

भारतीय संविधान को संघीय संविधान में परिवर्तित कर दिया जाए । इस विषय में हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं.

(1) राज्य के राज्यपाल का चुनाव राज्य के लोगों के द्वारा सीधे वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाना चाहिए ।

(2) भारत के राष्ट्रपति का चुनाव निर्वाचकगण द्वारा किया जाना चाहिए जिसमें केवल राज्य विधान मंडलों के सदस्य हों ।

(3) सभी राज्यों की राज्य सभा में समान संख्या में प्रतिनिधि होने चाहिए ।

(4) लोक सभा के सदस्यों की अपेक्षा राज्य सभा में सदस्यों की संख्या अधिक होनी चाहिए । लोक सभा के सदस्यों की संख्या कम करके या राज्य सभा के सदस्यों की संख्या वृद्धि करके यह परिवर्तन किया जा सकता है ।

(5) जब कभी राज्य सभा लोक सभा द्वारा पास किए गए किसी बिल को अस्वीकृत कर दे तो ऐसे मामले पर दोनों सदनों के संयुक्त सत्र में निर्णय किया जाना चाहिए ।

(6) रक्षा विदेश नीति डाक, तार, रेल और मुद्रा विभाग को छोड़कर सभी शक्तियां राज्य सूची के लिए छोड़ दी जानी चाहिए ।

(7) वास्तविक परिसंघ के अन्तर्गत अध्यक्षात्मक सरकार की स्थापना की जानी चाहिए ।

(8) राजभाषा नीति । हिन्दी का देश की राजभाषा के रूप में लागू होना केन्द्र राज्य सम्बन्धों के लिए क्षेमक है अंग्रेजी राजभाषा के रूप में चलती रहनी चाहिए । राज्य स्तर पर राज्य के लोगों की मातृभाषा राजभाषा होनी चाहिए । उपर्युक्त प्रस्तावों के लिए संविधान में पर्याप्त परिवर्तन आवश्यक है अतः इस प्रयोजन के लिए नयी संविधान सभा की बैठक बुलाना समुचित कदम होगा ।

1946 में भारतीय संविधान सभा के सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुने गए थे । इसके अलावा अधिकांश देशी राज्यों का संविधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं था । इसलिए वर्तमान संविधान का आधार लोक-प्रिय लोक-तांत्रिक आधार नहीं है इसलिए नए संघीय संविधान को अंगीकार करने के लिए एक नयी संविधान सभा की बैठक बुलाना वांछनीय है ।

भाग I

भूमिका

1.1 हमारे संविधान को संघीय संविधान नहीं कहा जा सकता । संघीय संविधान की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :

(क) इसे राज्यों का संघ होना चाहिए ।

(ख) सामान्य (केन्द्र) प्राधिकरण और क्षेत्रीय (राज्य) प्राधिकरण के बीच विभाजन होना चाहिए ।

(ग) सामान्य प्राधिकरण और क्षेत्रीय प्राधिकरण एक दूसरे का अधिनस्थ न होकर परस्पर समकक्ष होना चाहिए ।

परम्परागत अर्थ में संघ की अन्तिम मुख्य विशेषता: उपर्युक्त 'ग' है लेकिन भारतीय संविधान में क्षेत्रीय प्राधिकरण प्रायत: प्राय: सामान्य प्राधिकरण के अधीनस्थ होते हैं।

1.2 राजमन्नार समिति ने राज्यों के लिए अधिक शक्तियों की मांग की है हमारा विचार है कि राज्यों को समिति द्वारा जितनी शक्तियां देने का विचार किया गया उससे अधिक शक्तियां दी जानी आवश्यक है ताकि संघीय व्यवस्था सुचारू रूप से चल सके। हमारा विचार है कि केवल अन्तर्राज्यीय विवाद और सांविधानिक मामले ही भारत के उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता में रखे जाने चाहिए।

1.3 भारत जैसे देश जो केवल विजातीय ही नहीं बल्कि बहुराष्ट्रीय भी है अत्यधिकृत केन्द्रीयकृत संविधान अवांछनीय है केवल राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता देने वाला संघ ही प्रभावशाली और कार्यक्षम हो सकता है। विभिन्न भाषाओं, संस्कृति और आर्थिक दशाओं वाले लोग संबंधित निजी राज्य सरकारों द्वारा जिन्हें अधिकतम स्वायत्तता प्राप्त हो, शासित होने चाहिए। सामान्य सरकार की अधिकारिता केवल रक्षा, विदेश नीति, मुद्रा, डाक-तार तथा रेलवे संबंधी मामलों तक ही सीमित होनी चाहिए।

1.4 जिस देश ने भी विभिन्न संस्कृति, भाषा, इतिहास एवं आर्थिक परिस्थितियों वाली राष्ट्रिकता पर एकात्मक सरकार थोपने की कोशिश की वह विघटित हो गया। जिन देशों ने सद्भाव, पारस्परिक विश्वास और स्वैच्छिक साहचर्य के आधार पर मुक्त परिसंघ बनाना चाहा उन्हें धीरे धीरे एकीकरण प्राप्त हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका और स्विट्जरलैण्ड इसके उदाहरण हैं जिन पारस्परिक परिसंघों ने सफलतापूर्वक कार्य किया और उन्होंने सद्भाव, एकीकरण और एकता की दिशा में प्रगति की और जिस एकात्मक सरकार ने बाहरी राष्ट्रिकता अधिरोपित की वह असफल हो गई और उसका अस्तित्व समाप्त हो गया। पाकिस्तान आस्ट्रो हंगेरियन साम्राज्य इसके ह्रास के उदाहरण है जो विघटित हो गए। आयरिश ग्रेट ब्रिटेन के यूनाइटेड किंगडम से अलग हो गए और पोलेण्ड प्रेबोल सेविक रूस से अलग हो गया। वास्तविक परिसंघ अपनी सफलता के कारण एकीकृत और सम्बद्ध राज्यों के रूप में विकसित हुए। अनिच्छुक लोगों पर थोपे गए केन्द्रीकृत एकात्मक राज्य विखण्डित हो गए और उनका अस्तित्व समाप्त हो गया। पूर्वोक्त अपनी सफलता के कारण और अवरोक्त अपनी असफलता के कारण ही अमूर्त रूप से अस्तित्व में है।

1.5 संविधान युक्तियुक्त नहीं है। यह चिरस्थायी नहीं होगा, इसे यत्र-तत्र दिखावटी संशोधनों के द्वारा नहीं सुधारा जा सकता। इसमें पर्याप्त परिवर्तनों की आवश्यकता है। इसे वास्तविक परिसंघ में परिवर्तित किया जाना चाहिए। संघीय सरकार को केवल सुरक्षा, विदेश नीति, मुद्रा, डाक-तार और रेलवे संबंधी कार्यों तक ही सीमित रहना चाहिए।

1.6 अनुच्छेद 256, 257, 354 से 357 राज्यों की स्वायत्तता के प्रतिवाद हैं और संघीय सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं हम संविधान का पुन: पूर्ण प्रारूप तैयार करने का सुझाव देते हैं ताकि ये उपबन्ध नये संविधान में न हों।

1.7 1956 में भाषायी आधार पर भारत के राज्यों का पुनर्गठन एक उचित नीति थी और यह लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप थी। फिर भी भाषायी अल्पसंख्यकों के समूह विभिन्न राज्यों में विद्यमान हैं। भाषायी अल्पसंख्यकों के इन क्षेत्रों को, जहां लोग उसी भाषा को बोलते है उन राज्यों में मिला देना चाहिए, यदि ये क्षेत्र समीपस्थ हों। भाषायी अल्पसंख्यकों के इन मुद्दों के तय हो जाने के बाद क्षेत्रों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए। इस संबंध में केन्द्र की शक्तियों (अनुच्छेद-3) को संविधान से निकाल देना चाहिए।

भाग II

विधायी संबंध

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि रक्षा, विदेश नीति, मुद्रा इत्यादि को छोड़कर सभी प्रकार की शक्तियां राज्यों के पास होनी चाहिए। अवशिष्ट शक्तियां भी राज्यों के पास होनी चाहिए। चूंकि हमारे मत में वस्तुत: संघीय संविधान की संजीव कल्पना है भाग II के अधिकांश प्रश्न संगत नहीं है।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

राज्यपाल का पद निर्वाचित होना चाहिए। राज्यपाल को वयस्क मताधिकार के आधार पर संबंधित राज्यों के लोगों के द्वारा चुना जाना चाहिए। हमारा देश जिस महान समस्या से जूझ रहा है वह समस्या विभिन्न विचारों एवं नीतियों वाली राजनीतिक पार्टियों के क्षणिक गठबन्धन के कारण राज्यों में उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता है। इस समस्या को ऐसे राज्यपालों को जो लोकप्रिय हों चुनकर हल की जा सकती है। मंत्रालयों के राज्य स्तर पर विफल होने पर और सरकार बनाने में किसी भी पार्टी के सक्षम न होने पर भी राज्य प्रशासन को किसी प्रकार की मुसीबत का सामना नहीं करना पड़ेगा। राज्यपाल पर अप्रजातांत्रिक होने का आरोप भी नहीं लगेगा और वह प्रशासन को चला सकता है, क्योंकि उसका चुनाव राज्य की जनता द्वारा किया जाता है।

3.5 यह अनिवार्य कर दिया जाये कि राज्यपाल राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित सभी बिलों पर अपनी सहमति प्रदान करे। केवल ऐसे मामलों में जहां राज्य का महाधिवक्ता राज्यपाल को बिल उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय को भेजने का परामर्श दें उसे तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक संबंधित न्यायालय बिल को पास न कर दें राज्यपाल केवल उस समय बिल पर अपनी सहमति न दे, जब संबंधित न्यायालय बिल की सांविधानिकता पर आपत्ति करे।

3.7 चुने गये राज्यपाल का कार्यकाल पूरे 5 वर्ष होना चाहिए। उसके हटाए जाने की प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रक्रिया जैसी होनी चाहिए।

3.8 राज्यपाल को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह विधान सभा बुला सके उसे यह जांच करनी चाहिए कि जो शासक दल को बहुमत प्राप्त है या नहीं। इसका परीक्षण केवल विधानमंडल में विश्वास प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव के परिणाम के आधार पर किया जाना चाहिए।

3.9 पश्चिम जर्मनी की पद्धति वांछनीय नहीं है। भारत के मामले में यदि हम निर्वाचित राज्यपालों की पद्धति अपनाएं तो प्रशासन आसानी से चलता रहेगा चाहे मंत्रालय हो या न हो।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.4 राष्ट्रपति को अनुच्छेद 356 के तहत जो शक्ति प्राप्त है उसे संविधान से निकाल देना चाहिए यदि किसी राज्य में ऐसी पार्टी नहीं है जिसका राज्य-विधान-मंडल में बहुमत हो तो राज्यपाल को उद्घोषणा द्वारा "राज्य के सभी या किसी कार्य को स्वयं संभालने" की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। अनुच्छेद को इसलिए निकाल देना चाहिए क्योंकि इससे राज्य की स्वायत्तता और संघवाद की उपेक्षा होती है। इसके अतिरिक्त केन्द्र में जो पार्टीसत्ता में है उसने विपक्षी दल की राज्य सरकार को गिराने के लिए इस उपबन्ध का दुरुपयोग किया है। उदाहरण निम्नलिखित है: 1952 में पेप्सू सरकार केन्द्र द्वारा गिराई गई। 1959 में केरल की साम्यवादी सरकार बरखास्त की गई। 1975 में तमिलनाडु की डी एम के सरकार को गिराया गया। गुजरात में उसी वर्ष बाबू भाई पटेल की सरकार गिराई गई। राष्ट्रपति शासन के बजाए राज्यपाल का शासन-राज्य के निर्वाचित राज्यपाल का शासन होना चाहिए। चुनाव आयोग को एक वर्ष के भीतर चुनाव कराने चाहिए।

4.7 केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण और तकनीकी विकास महानिदेशालय जैसे किसी केन्द्रीय एजेन्सी की स्थापना राज्यों की सहामति के बिना नहीं की जानी चाहिए। प्रत्येक राज्य को ऐसे संगठनों से बाहर रहने का अधिकार होना चाहिए। अन्तर्राज्यीय जल-विद्युत परियोजनाओं जैसे प्राधिकरणों की स्थापना हिताधिकारी या प्रभावित राज्यों के बीच परस्पर सहमति से की जाए।

4.8 संघीय व्यवस्था में भारतीय प्रशासनिक सेवा या भारतीय पुलिस सेवा जैसी अखिल भारतीय सेवाओं की कोई जरूरत नहीं है। राज्यों में अपनी प्रथम श्रेणी की सेवाएं होनी चाहिए। रक्षा और विदेश सेवा जैसे सीमित विभागों के प्रशासन के लिए संघीय सरकार की अपनी सेवाएं हो सकती हैं लेकिन केन्द्रीय सेवा को राज्यों पर थोपा नहीं जाना चाहिए।

4.9 अनुच्छेद 355 के तहत केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र सेनाओं का प्रयोग करने की केन्द्र की शक्ति की समाप्त कर देना चाहिए। यदि संबंधित राज्य अन्य राज्यों या केन्द्र से अनुरोध करे तो ऐसी नाजुक स्थिति में सशस्त्र सेनाएं उस राज्य में भेजी जा सकती हैं।

4.10 समाचार पत्र पुस्तकें और मुद्रण राज्य सूची में होने चाहिए। रेडियो और टेलीविजन पर स्वायत्त एजेन्सी का नियंत्रण होना चाहिए जिसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधि हों।

4.11 आंचलिक परिषदों ने आज तक संतोषजनक रूप से कार्य नहीं किया है। इसे सदस्य राज्यों के पारस्परिक हितों मुद्दों एवं समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए सक्रिय बनाया जा सकता है।

4.12 ऐसी संस्थाओं की स्थापना सदस्य राज्यों द्वारा स्वैच्छिक रूप से की जानी चाहिए।

इन्हें संसद द्वारा नहीं थोपा जाना चाहिए। यदि राज्य आवश्यक समझे तो वे अपना अलग सचिवालय रख सकते हैं।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 वस्तुनिष्ठ समीक्षा से यह पता चलेगा कि कई अविकसित या अर्ध-विकसित राज्यों के मामले में न्यागमन को योजन ने संतोषजनक ढंग से कार्य नहीं किया है। प्रारम्भिक अवस्था में केन्द्र से राज्यों को विभाज्य और अविभाज्य पूल से आबंटन साम्या रहित थे। जिन राज्यों के मुख्य मंत्रियों का दबदबा था उन्होंने केन्द्र से अधिकतम आबंटन प्राप्त किया। विशेषरूप से विवेकाधीन अनुदान और कर्ज उन राज्यों को दिये गए जिनमें शासक दल के मुख्यमंत्री थे। उन्होंने केन्द्र से प्रचुरमात्रा में और अनपेक्षित सहायता प्राप्त की।

कुछ मुख्यमंत्रियों ने जो कि अपने प्रभाव एवं सम्पर्क के द्वारा केन्द्र में शासक गुट से सुविधा उठा रहे थे जितने के लिए वे हकदार थे उससे अधिक वित्त प्राप्त किया।

पक्षपात और दोषारोपण से बचने के लिए कुछ फार्मूले तैयार किए गए किन्तु इन फार्मूलों से कुछ राज्यों को लाभ हुआ और कुल राज्यों पर रोक लग गई। उदाहरण के लिए पिछड़ेपन के मानदण्ड को लें। इस फार्मूले के अनुसार जिले को एक यूनिट माना गया। परन्तु विरोधाभास के रूप में कुछ उन्नत राज्य ऐसे थे जिनमें अपने ही क्षेत्र में कई पिछड़े जिले भी थे अतः धनराशि पुनः उन अति विकसित राज्यों को दी गयी जिनमें बहुत पिछड़े जिले भी थे। पिछड़े जिलों की सहायता के नाम पर पिछड़े और अविकसित राज्यों के लिए और धन राशि उन उत्पन्न विकसित राज्यों को दी गयी जिनमें कुछ पिछड़े जिले थे।

पिछड़ेपन के मापदण्ड के लिए जिले को यूनिट न मानकर समूचे राज्य को एक यूनिट माना जाना चाहिए।

केन्द्रीय क्षेत्र के उद्योगों की स्थिति का निर्धारण भी आर्थिक, सामाजिक और विकास के घटकों की अपेक्षा राजनीतिक और दल के आधार पर किया जाता है।

5.2 केन्द्र द्वारा राज्यों का कृत्रिम उपायों से संरक्षण न केवल एक तरफा विकास और प्रादेशिक असमानता के रूप में फलीभूत हुआ, बल्कि इससे राज्यों के लिए मनोवैज्ञानिक बाधा भी उत्पन्न हुई। इससे राज्य के लोगों की आत्म-निर्भरता नष्ट हो गई। केवल जीविका से ही आर्थिक विकास नहीं हो जाता। इसके लिए मनोबल आत्मनिर्भरता और अन्य गैर-शारीरिक कारक भी आवश्यक हैं। अतः केन्द्र द्वारा कराधान और उसके द्वारा राज्यों का कृत्रिम उपायों से संरक्षण बंद होना चाहिए। उत्पादन शुल्क जैसे सभी कर राज्यों पर छोड़ दिए जाने चाहिए।

यदि एक वास्तविक संघीय ढांचे में रक्षा, डाक तार, रेलवे, विदेश नीति और मुद्रा को छोड़कर अन्य सभी विषय संघटक राज्यों की अधिकारिता के अन्तर्गत आ जाएं तो राज्य आत्मनिर्भर हो जाएंगे। वे अपनी प्रतिभा के अनुसार विकास करेंगे।

विदेश मामलों और रक्षा पर किये जाने वाले केन्द्र के खर्च में राज्यों को अंशदान करना चाहिए डाक-तार और रेलों से प्राप्त आय को केन्द्र द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है।

सीमा शुल्क और विदेशी मुद्रा संबंधी प्रबंध भी एक वित्तीय परिषद् द्वारा किया जाना चाहिए जिसमें सभी राज्यों के प्रतिनिधि हों। प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के अनुपात में संघीय खर्चों के लिए अंशदान देने के बाद यदि कुछ शेष बचता है तो वह प्रत्येक राज्य की आयात निर्यात की मात्रा के आधार पर राज्यों को दे दिया जाना चाहिए।

5.3 मजबूत केन्द्र के द्वारा राज्यों की विषमताओं को कम नहीं किया जा सकता मजबूत केन्द्र प्रगतिशील राज्यों की प्रधानता को अनुबरत बनाने का साधन होगा। केन्द्र में शासक दल विपक्षी राजनीतिक दलों या क्षेत्रीय दलों द्वारा शामिल राज्यों के विकास को रोकता है। सामाजिक और आर्थिक न्याय की संकल्पना समय-समय पर और प्रत्येक देश में अलग-अलग रही है। भारत में सबसे बड़ी आर्थिक वास्तविकता गरीब और अमीर वर्गों के बीच अंतर नहीं बल्कि गरीब और अमीर राज्यों के बीच अंतर है। सम्पन्न और विपन्न राज्यों के बीच वैषम्य को कम करना होगा। कुछ राज्यों के मामले में आर्थिक विकास विशेषकर संघटक राज्यों में औद्योगिक विकास का सूत्रपात किया जाए और कुछ दूसरे राज्यों के मामले में उसमें तेजी लाई जाए। समूची योजना राज्यों के द्वारा बनाई जानी चाहिए। वर्तमान व्यवस्था में केन्द्र क्षेत्रीय आधार पर राशि आबंटित करता है इसके बजाए राशि राज्यों को इस समानता के फार्मूले के आधार पर आबंटित की जानी चाहिए। राज्यों को यह निर्णय करने की स्वतंत्रता हो कि किस क्षेत्र (बृहद् उद्योग, मध्यम उद्योग, लघु उद्योग, कृषि और संचार आदि) को कितनी प्राथमिकता दी जाय।

यदि संविधान में वास्तविक परिसंघ के अनुरूप पर्याप्त परिवर्तन कर दिया जाए जैसा कि हमने पहले सुझाव दिया है तो यह समस्या बिल्कुल उत्पन्न नहीं होगी राज्यों के पास प्रमुख संसाधन हो जाएंगे और यह निर्णय कर सकेंगे कि उन्हें उपलब्ध संसाधनों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिए।

5.4 विकास नीति संबंधी मामले राज्यों पर छोड़ दिए जाने चाहिए। इन मामलों पर प्रत्येक राज्य निर्णय करेगा। राजस्वगत अंतर गलत योजना, अलाभकारी सार्वजनिक क्षेत्रों पर अधिक बल तथा अधिक खर्च सिविल सेवा पर अनावश्यक प्रशासनिक व्यय के कारण होता है यदि इन सबको छोड़ दिया जाए तो कोई घाटा नहीं होगा।

5.5 ये सभी प्रश्न परिसंघीय संगठन में असंगत हैं।

5.6 हमने सुझाव दिया है।

5.7 केन्द्रीय कराधान पद्धति से धनी राज्यों को लाभ मिलता है। कराधान की सभी शक्तियां राज्यों को प्राप्त होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उद्योग और कृषि संबंधी उत्पादों के लिए संबंधित राज्यों द्वारा प्रशुल्क संरक्षण दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए उन्नत राज्यों द्वारा विनिर्मित टायर और रबर उत्पाद से केरल का कमजोर उदीयमान रबर उत्पाद उद्योग नष्ट हो गया। केरल को राज्य से बाहर जाने वाले कच्चे रबर पर कर लगाना चाहिए। यदि रबर को यहीं संसाधित किया जाता है तब इस पर कोई कर नहीं लगाना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र निर्मित परिष्कृत रबर के माल पर जो यहां पर बेचा जाता है, केरल राज्य द्वारा उस पर कर लगाया जाना चाहिए। केवल इन स्थितियों में ही स्थानीय उद्योग विकसित होंगे। यदि चुंगी सार्वभौमिक है तो इस प्रकार की कराधान नीति भी सार्विधिक है।

यदि भारत के विकसित राज्यों में भारतीय उद्योग भारतीय स्वतंत्रता के बाद भी विश्व के विकसित देशों की तुलना में हीन होते तो ये उद्योग समाप्त हो जाते। अम्बेसेडर कारों की बिक्री नहीं होती। भारतीय वस्त्र उत्पाद बाजार में हांग कांग, जापान और ताइवान के उत्पादों से प्रतियोगिता नहीं कर पाते। केवल प्रशुल्क संरक्षण के कारण ही तथाकथित विकसित भारतीय उद्योग ने प्रगति की है इसीप्रकार, विकसित राज्यों से एकाधिकृत उद्योगों को उत्पादों से पिछड़े राज्यों में उदीयमान उद्योगों को एक प्रकार का प्रशुल्क संरक्षण दिया जाना चाहिए।

5.8 सभी मुख्य करे राज्यों द्वारा लगायें जाने चाहिए। उस स्थिति में प्रश्न असंगत हैं।

5.9 संघीय राज्य में हमने देखा है कि कराधान और योजना संबंधी शक्तियां राज्यों के पास होंगी। संघीय सरकार राज्यों से अपनी निधि में अंशदान प्राप्त करेगी जो कि उनकी जनसंख्या और अन्य महत्वपूर्ण घटकों के अनुपात में होगा। संघीय वित्त और व्यय पर किसी परिषद द्वारा निगरानी रखी जानी चाहिए जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि हों।

5.10 संघ से राज्यों को धन राशि के अन्तरण से कभी दक्षता नहीं बढ़ी है। सभी केन्द्रीय निकायों ने जिनमें योजना आयोग भी शामिल है क्षेत्रीय वास्तविकताओं को कभी नहीं समझा। राज्यों द्वारा धन राशि का प्राय: दुरुपयोग किया गया। केन्द्रीय निकाय द्वारा तैयार की गई योजनाएं प्राय: स्थानीय स्थिति के योजना आयोग एक ऐसा निकाय है जिसकी जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं है। यह प्रजातंत्र के सभी सिद्धान्तों के विरुद्ध है कि एक ऐसा निकाय धनराशि आबंटित करता है जिसकी जनता के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं है और जो देश की आर्थिक नीति निर्धारित करता है। वर्तमान स्वरूप में जो योजना आयोग है उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

5.14 चूंकि हम एक यदि संघ की परिकल्पना करते है जिसमें अधिकांश कर राज्यों द्वारा लगाये जाते हैं, अत: यह मुद्दा संगत नहीं है। वाहक बंधपत्र और ऐसे राजस्व के मामल में उसे विभाज्य पूल के अंतर्गत रखा जाना चाहिए।

5.15 सौभाग्यवश, सार्वजनिक क्षेत्र में मुश्किल से ही कोई अधिशेष होगी। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं उठता। रक्षा उद्योग, डाक-तार और रेलवे को छोड़कर सभी सार्वजनिक क्षेत्र को राज्य क्षेत्र में होना चाहिए।

5.16 हम एक संघीय संविधान की कल्पना करते है जिसमे अधिकांश शक्तियां और कर राजस्व राज्यों में निहित होंग। इसलिए राज्यों की वर्तमान ऋणग्रस्तता वास्तविक संघ में नहीं होगी।

5.19 विश्व बैंक, आई एम एफ और सहायता देने वाले देशों के संघ जैसी एजेन्सियों से राज्यों को विदेशी ऋण भी सीधे मिलने चाहिए। राज्यों को विदेशों से बातचीत और ऋण प्राप्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। लेकिन एक ऐसी परिषद् की जिसमें राज्यों और संघ सरकार के प्रतिनिधि हों परस्पर सम्मत दिशा निर्देश तैयार करने चाहिए। ऐसे दिशा निर्देशों के आधार पर राज्यों को विदेशों से ऋण लेने की स्वतंत्रता होती चाहिए। वित्तीय दलाल के रूप में कार्य करने वाली केन्द्र की वर्तमान पद्धति को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

5.20 सुझाव दी गई ऋण परिषद् भारतीय रिजर्व बैंक का विशिष्ट विभाग होनी चाहिए। यह प्रस्ताव स्वागत योग्य है।

5.22 अधिकांश राज्य अपने स्थानीय संसाधनों का प्रयोग करते हुए अपनी सीमाओं तक पहुंच गये हैं। राज्यों को और कराधान का सहारा लेना पड़ेगा जिससे कीमतें बढ़ेगी और उससे अधिक खर्च बढ़ेगा।

5.23 करापवंचन उसका स्राव भारी रूप में नहीं है। राजनैतिक कारणों से केन्द्र सरकार कर वसूल करने में असफल रहती है। करापवंचन के लिए केन्द्र सरकार ही जिम्मेदार है। सार्वजनिक क्षेत्रों का कार्य निष्पादन नगण्य रहा है। केवल रक्षा उद्योग जिस पर देश की सुरक्षा और औद्योगिक असंरचना का भार है सार्वजनिक क्षेत्र में होने चाहिए। विकास के प्रारम्भिक चरणों में, देश के औद्योगिकरण की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र को दी जानी चाहिए। लेकिन इसे राज्यों द्वारा निर्धारित दिशा निर्देशों के अनुसार कार्य करना चाहिए। सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षत्रों में एकाधिकार को अनुमति न ही होनी चाहिए।

5.24 संघ सरकार को अनुच्छेद 268 और 269 के अन्तर्गत आने वाले कर केवल राज्यों की सहमति से लगाने चाहिए।

5.25 इस समय मुख्य कर राजस्व केन्द्र के पास है और राज्य केन्द्र से थोड़ी सी प्राप्त करते हैं। जब कभी भी राज्य नये कर लगाने का या कर की दर बढ़ाने का प्रयास करते हैं तो जनता जिस पर पहले से ही विभिन्न कर का बोझ है शोर शराबा करती है। जो राज्य सरकारें जनता के घनिष्ट संपर्क में होती हैं अपनी लोकप्रियता खो देती हैं। केन्द्र द्वारा कर लगाने और राज्यों द्वारा केन्द्र से सहायता की याचना करने की प्रक्रिया में संयम और शक्ति दोनों का अपव्यय है अत: जैसा कि हमने पहले ही सुझाव दिया है कि सभी कराधान की सभी शक्तियां राज्यों को दे दी जानी चाहिए। लेकिन रेल भाड़े और माल भाड़े पर लगाये जाने वाले कर केन्द्र द्वारा राज्यों के परामर्श से लगाय जाने चाहिए और राज्यों को वितरित कर दिए जाने चाहिए।

5.27 संघ राज्य क्षेत्रों की भी अन्य राज्यों की तरह केन्द्र से सभी प्रकार के आबंटन होने चाहिए।

5.29 (1 और 2) राष्ट्रीयकृत बैंकों को विखंडित कर दिया जाना चाहिए। प्रत्येक राज्य में एक सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक होना चाहिए। गठित की जाने वाली केन्द्रीय परिषद में सभी राज्यों के बैंकों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। वे एक दूसरे की मदद कर सकते हैं। उन पर बनाये जाने वाले केन्द्रीय निकाय द्वारा तैयार किए गए दिशा-निर्देश लागू किए जाने चाहिए।

(3) औद्योगिक लाइसेंस प्रदान करने का प्राधिकार राज्यों को दिया जाना चाहिए। राज्यों के मार्ग-दर्शन के लिए एक ऐसी संघीय परिषद् हो सकती है जिसमें राज्यों का प्रतिनिधित्व हो। संघीय परिषद् को पारस्परिक सहयोग बढ़ाने और औद्योगिक जोखिमों में अनावश्यक प्रयास रोकने के लिए कार्य करना चाहिए। आवश्यकताओं और संसाधनों का अध्ययन करने के पश्चात् अधिक उत्पादन रोकने के लिए परिषद् को प्रत्यक उद्योग के लिए अधिकतम संस्थापित क्षमता निर्धारित करनी चाहिए। चयनात्मक आधार पर कुछ प्रकार के उद्योगों को लाइसेंस मुक्त किया जा सकता है। जब कुल उत्पादन परिषद् द्वारा निर्धारित अधिकतम स्तर तक पहुंच जाये, तो राज्यों को चाहिए कि वे उस क्षेत्र में और यूनिटों की अनुमति न दें।

लाइसेंस देने की वर्तमान प्रणाली के कारण देश में भ्रष्टाचार में काफी हद तक वृद्धि हुई है। पक्षपात और घूसखोरी मुख्यत: लाइसेंस देने की वर्तमान प्रणाली के ही परिणाम हैं।

5.32 संघीय व्यवस्था में जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया जैसी केन्द्रीय वित्तीय सस्थाओं को भी राज्यों के आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए इस समय इन संगठनों की प्रचुर धनराशि से बड़ी कंपनियां और उनके प्रबन्धक वर्ग तयार किए जा सकते हैं और नहीं भी। इन संस्थाओं की नई निवेश नीति का निर्धारण केन्द्र द्वारा किया जाता है। इन सभी संगठनों को राज्य के आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए और इन पर केन्द्रीय वित्त मंत्रालय के बजाय राज्य वित्त मंत्रालय का नियंत्रण होना चाहिए।

नामाधु काजागम

ज्ञापन

प्रस्तावना

आपके द्वारा दी गई प्रश्नावली के सबंध में अपने उत्तर देने से पूर्व मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि उचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रश्नावली में कुछ और प्रश्न शामिल किए जाएं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय संविधान सभा में सुविचारित और विस्तृत चर्चा के बाद तैयार किया गया। परन्तु हमारे वास्तविक अनुभव से यह बिल्कुल सुस्पष्ट है कि हमारे संविधान ने हमारे उप महाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों में रहने वाले लोगों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया है, जोकि विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और प्रथाओं पर आधारित विभिन्न राष्ट्रिकों से बना है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की राजनीतिक मांगों का भी ध्यान नहीं रखा गया है।

संविधान को तैयार करते समय क्षेत्रीय स्वायत्तता और उसके परिणामों के संबंध में गहराई से और ठीक से अध्ययन नहीं किया गया। यद्यपि इस संविधान को बनाने वाले विद्वान वकील, प्रसिद्ध विधिशास्त्री और पश्चिमोन्मुखी राजनीतिज्ञ थे, तथापि इस देश के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की भावनाओं और वास्तविक आवश्यकताओं का अध्ययन करने में असफल रहे हैं।

भारत और पाकिस्तान के विभाजन के कारण उस समय देश में भारी अशान्ति की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। ऐसी स्थिति में भारतीय संविधान बनाया गया था और संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। देश के विघटन से चिन्तित हमारे संविधान निर्माताओं को संविधान बनाते समय इस संबंध में अतिरिक्त सावधानी रखनी पड़ी, जिससे कि देश का और विघटन न हो। अतः भविष्य में ऐसी किसी प्रकार की मांग को रोकने के लिए उन्होंने राज्यों की शक्तियों को कम कर दिया। और केन्द्र को अधिक शक्तियां दे दी गई है जिसके कारण राज्य सिर्फ केन्द्र के अधीनस्थ अनुसेवी यूनिट बन गये।

राज्यों और प्रान्तों का गठन इस प्रकार किया है जिसमें लोगों की भावनाओं और आकांक्षाओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया है और न ही इस संबंध में कोई मार्गदर्शक सिद्धांत बन गए हैं, केवल प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखा गया है। कांग्रेसी राजनीतिज्ञों की ओर से यह एक सुव्यस्थित कारवाई की जोकि लोगों की क्षेत्रीय भावनाओं और आकांक्षाओं को दबाने के लिये की गई थी जोकि यथासमय उत्पन्न हो सकती है।

जब अविभाजित मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और मालाबार सम्मिलित थे उस समय तमिलनाडु कांग्रेस समिति के रूप में कांग्रेस पार्टी एक अलग पार्टी यूनिट थी, जब राज्य प्रशासनिक यूनिक एक थी उस समय पार्टी यूनिटें कई थी। इसी प्रकार ग्रेटर बाम्बे में महाराष्ट्र, गुजरात शामिल थे। इस प्रकार संविधान के निर्माताओं के द्वारा भाषायी आधार पर राज्यों का गठन नहीं किया गया था बल्कि उन्होंने ऐसा पूर्णतः प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से किया था।

संविधान बनाते समय इन पहलुओं का पूर्वानुमान नहीं किया गया। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को संघर्ष और जीवन उत्सर्ग करना पड़ा, जब तक केन्द्र केवल भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करने के लिए सहमत हुआ।

इस संविधान का दूसरा गंभीर और अवसादक पक्ष क्षेत्रीय भाषाओं की उपेक्षा का है। जिसमें सभी भाषाओं को समान दर्जा नहीं दिया गया है। मातृभाषा सबके लिए प्रिय और पवित्र होती है, लोग अपनी भाषा का आदर करते हैं। उनके लिये अपनी मातृभाषा तथा संस्कृति सर्वश्रेष्ठ होती है। परन्तु सभी लोगो की भावनाओं का आदर करने के बजाए, भारतीय संविधान ने हिन्दी को सर्वश्रेष्ठ माना और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों पर उसे लाद दिया गया। कुछ क्षेत्रों में इसके विरुद्ध जन विद्रोह हुआ।

1947 में भारत का भारत और पाकिस्तान दो राज्यों के रूप में पूर्णतः धार्मिक बहुमत के आधार पर किया गया विभाजन विद्यमान नहीं रह सका क्योंकि पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य होने पर भी धार्मिक आधार पर अधिक समय तक चल नहीं सका। पाकिस्तान के बंगाली भाषी क्षेत्र पर बंगाली लोगों की भावनाओं को समझे बिना उर्दू का आरोपण और प्रभुत्व ही गृहयुद्ध का मूल कारण बना तथा पाकिस्तान में विघटन की स्थिति होने के कारण ही बंगला देश बना। अहिन्दी भाषी लोगों पर हिन्दी के आरोपण का यही परिणाम होगा। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

उपर्युक्त घटनाएं विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं और संस्कृति की उपेक्षा करते हुए और हिन्दी भाषा तथा हिन्दी क्षेत्र को सर्वोच्च मानते हुए भारत को एक करने के केन्द्र के दोषपूर्ण निर्णय के स्थायी प्रमाण हैं। प्रसिद्ध विधिशास्त्री श्री बी० एन० राव को संविधान सभा द्वारा अमरिका, कनाडा, आयरलैंड, ब्रिटेन आदि देशों के भ्रमण के लिये प्रतिनियुक्त किया गया परन्तु खेद है कि इस देश के लोगों की आकांक्षाओं और भावनाओं को जानने के लिये इस देश के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा करने की कोई योजना प्रस्तुत नहीं की गई।

मैं भारतीय संविधान की अनिवार्य कमियों को बताना चाहता हूँ। इन कमियों से पूर्णतया स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं का लक्ष्य देश में संघीय संविधान बनाना नहीं था: अपितु उनका लक्ष्य एकात्मक संविधान बनाने का था। कुछ अन्य देशों के विभिन्न संविधानों में जो अनेक संघीय विशेषताएं पाई जाती हैं वे हमारे संविधान में हैं परन्तु चतुराई से ऐसे पूर्वोपाय किए गए हैं जिससे केन्द्र के द्वारा राज्यों के सांविधानिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगा गया है और अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया गया है। संविधान का अनुच्छेद 356 इसका स्थायी उदाहरण है। इस प्रकार कोई भी राज्य स्वतन्त्रतापूर्वक सांविधानिक अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता और संविधान के पर्याप्त उपबन्धों की सहायता से केन्द्र राज्यों के कानूनी अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।

हमारे संविधान स्वरूप संघीय नहीं है क्योंकि शक्तियों को केन्द्रित कर दिया गया है और राज्यों की स्थिति दावेदार जैसी है। संविधान के कुछ उपबन्धों से स्पष्टतः यह सिद्ध होता है कि हमारा संविधान संघीय नहीं है। ये उपबन्ध इस प्रकार हैं :—

(क) संविधान बनाते समय राज्यों का पुनर्गठन भाषायी आधार पर नहीं किया गया।

(ख) संविधान में सभी क्षेत्रीय भाषाओं को समान महत्व नहीं दिया गया है।

(ग) संविधान में केन्द्र के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में आरोपित किया गया है। ऐसे बहुभाषी देश में और विभिन्न भाषाओं वाले इस समूचे देश में एक विशेष क्षेत्रीय भाषा का आरोपण स्पष्ट प्रमाण है कि यह एक संघ नहीं हैं।

(घ) विशेष राज्यों के लिए राज्यपालों की नियुक्ति केन्द्र के विवेक पर की जाती है और राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में राज्य कुछ नहीं कह सकता। प्रायः अन्य राज्य के व्यक्तियों को राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जाता है।

(ङ) केन्द्र की हाल की प्रवृत्ति एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में न्यायधीशों की नियुक्ति करने की रही हैं।

(च) भारतीय प्रशासनिक सेवा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को भर्ती करने और एक क्षेत्र के अधिकारियों को दूसरे क्षेत्र में सेवा करने के लिए भेजने की शक्ति केन्द्र को प्राप्त है।

(छ) छः संसद में क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन नहीं दिया गया है।

(ज) केन्द्र द्वारा क्षेत्रीय राजनीतिक दलों और उनकी उचित मांगों को समाजविरोधी अलोकतांत्रिक तथा कभी-कभी राष्ट्रविरोधी माना जाता है।

(झ) राष्ट्रीय एकीकरण के नाम पर क्षेत्रीय भावनाओं को दबाना।

(ञ) संविधान के कुछ उपबन्ध केन्द्र को राज्य मंत्रालय को बरखास्त करने और राज्य विधान सभा को विघटित करने तथा राज्यपाल का शासन लागू करने की अनुमति देते हैं जैसे अनुच्छेद 256, 257, 354, 355, 356। हमारे संविधान के ऐसे उपबन्धों की सहायता से केन्द्र ने लगभग सभी राज्यों में राज्य मंत्रालय को बरखास्त किया और राज्य विधान सभाओं को विघटित किया हैं तथा उन पर राष्ट्रपति शासन लागू किया है।

(ट) संविधान में कहीं भी राज्यों को विलग होने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है जोकि किसी संघीय ढांचे में राज्य का एक गारंटीकृत अधिकार होता है जैसा कि कुछ देशों के संघीय संविधान में देखा गया है।

(ठ) संविधान में कहीं भी राज्यों के लिए ऐसा उपबंध नहीं है कि क्षेत्रीय लोगों की आकांक्षाओं के पूरा करने के लिए राज्य संविधान बना सकें जैसी कि संघीय संविधानों में व्यवस्था होती है।

(च) कराधान और अन्य राजस्व वसूली शीर्ष के अन्तर्गत अत्यधिक आय को संविधान में संघ सूची में विनिहित किया गया है। राज्य सरकार की आय अपर्याप्त और कम है और उस पर केन्द्र का सतत नियंत्रण है।

(ड़) इस राज्य सूची में दिए गए अधिकारों के संबंध में भी केन्द्र ने बार-बार हस्तक्षेप किया है।

(ण) किसी संघीय ढांचे में अवशिष्ट शक्तियों का प्रयोग राज्यों के द्वारा किया जाता है, परंतु भारतीय संविधान में यह बिल्कुल विपरीत है।

(त) समवर्ती सूची में दी गई अधिकांश शक्तियों का प्रयोग केन्द्र द्वारा किया जाता है और समवर्ती सूची में दी गई राज्य की शक्तियां अपर्याप्त हैं। यदि अधिकारों के संबंध में कोई विरोध उत्पन्न होता है तो केन्द्र राज्य पर अभिभावी हो सकता है।

(थ) संविधान सभा ने 30 अप्रैल, 1947 को हुई बैठक में दो समितियों का गठन किया, एक संघीय संविधान के मुख्य सिद्धान्तों पर रिपोर्ट देने के लिए तथा दूसरी आदर्श प्रान्तीय संविधान के सिद्धान्तों पर रिपोर्ट देने के लिये गठित की गई। आदर्श प्रान्तीय संविधान समिति के 26 सदस्यों में से केवल सात ने अपने उत्तर भेजे। प्रसिद्ध विधि-शास्त्री श्री बी० एन० राव ने संविधान सभा के समक्ष आदर्श प्रान्तीय संविधान प्रस्तुत किया। श्री बी० एन० राव ने प्रान्तीय कार्यपालिका के प्रधान के रूप में कार्य करने के लिए निर्वाचित राज्यपाल का सुझाव दिया। चूंकि श्री बी० एन० राव का क्षेत्रीय लोगों के साथ मिलना जुलना नहीं हो पाया था और क्षेत्रीय लोगों की भाषा विषयक भावनाओं को समझने और उसका निर्णय करने में असफल रहे थे। अतः उन्होंने प्रान्तीय विधान मंडल के लिये हिन्दी या अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में अपनाने का सुझाव दिया है और यदि अध्यक्ष कोई अन्य भाषा की अनुमति देता है, तो उसका प्रयोग किया जा सकता है। इस संबंध में उनके आदर्श प्रान्तीय संविधान के अध्याय II की धारा 19 इस प्रकार हैं :

"प्रान्तीय विधानमंडल का कार्य संचालन हिन्दुस्तानी या अंग्रेजी में किया जाएगा किन्तु, यथास्थिति, सभापति या अध्यक्ष किसी भी सदस्य को जो इन दोनों भाषाओं में से किसी में भी अपने विचारों को ठीक से व्यक्त नहीं कर सकता, सदन में अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है।"

सौभाग्यवश श्री बी० एन० राव का यह सुझाव संविधान सभा द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया। यह एक स्पष्ट प्रमाण है कि भारतीय संविधान के निर्माताओं को भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की भावनाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं है।

1942 की मूल क्रृप योजना में किसी प्रान्त को भारतीय संघ में शामिल होने या उससे अलग रहने का उपबन्ध रखने की कल्पना की गई थी। दुर्भाग्यवश इसकी उपेक्षा की गई।

लगभग सभी राज्य स्वायत्तता की स्थिति के लिये या स्वायत्त निकाय के बराबर स्थिति के लिये संघर्ष कर रहे हैं।

(क) संघर्ष कश्मीर के लोगों के द्वारा 1947 से आज तक किया गया संघर्ष केन्द्र के चंगुलों से संबंध-विच्छेद के अधिकार सहित स्वायत्तता की स्थिति के लिये किया गया संघर्ष है।

(ख) पंजाब की मांग भी सिख राज्य की स्वायत्तता की स्थिति के लिए की गई मांग है, यह सही है कि पंजाब के एक ग्रुप के लोग निरन्तर पंजाबी सूबे या खालिस्तान की मांग कर रहे हैं। परन्तु पंजाब का एक शक्तिशाली वर्ग समझौते के लिये तैयार है यदि केन्द्र पंजाब की स्वायत्तता के लिये सहमत हो जाए।

ऐसी परिस्थितियों में, केन्द्र को निम्नलिखित बातों को उचित रूप से स्वीकार कर लेना चाहिये।

(क) इस देश के लिये नया संविधान प्रस्तुत करना।

(ख) सम्पूर्ण देश को पांच संघीय यूनिटों में विभाजित करना यथा दक्षिणी राज्य, उत्तरी राज्य, पूर्वी राज्य, पश्चिमी राज्य और मध्य राज्य।

(ग) केन्द्र के पास केवल निम्नलिखित से संबंधित शक्तियां चाहिये। जैसे विदेश नीति, संचार और परिवहन, रक्षा, मुद्रा आदि।

(घ) केन्द्र में अन्तर्राज्यीय परिषद, नामक एक परिषद होनी चाहिये जिसमें राज्यों को समान रूप से प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इस अन्तर्राज्यीय परिषद् का एक सचिवालय होना चाहिए।

(ङ) केन्द्र में तंत्र को चलाने के लिये सभी राज्यों की रक्षा खर्चों और अन्य खर्चों को पूरा करने लिये अंशदान करना चाहिये।

(च) प्रत्येक भाषायी राज्य संसद के साथ कार्य करेंगे जोकि राज्य से चुने गए सदस्यों और राज्यपाल से बनाई गई हो।

(छ) केन्द्र के लिए उपर्युक्त शक्तियों को छोड़कर अन्य सभी शक्तियां राज्यों से निहित होनी चाहिये।

(ज) अवशिष्ट शक्तियां राज्यों में निहित होनी चाहिये।

(झ) संघीय यूनिट का गठन और प्रतिनिधित्व मुख्य मंत्रियों के द्वारा किया जाए।

(ञ) सभी सरकारी प्रयोजनों और पत्राचार के प्रयोजन के लिये क्षेत्रों के अन्दर क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जाएगा। केन्द्रीय सरकार के सभी प्रयोजनों और अन्तर्राज्यीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा में कार्य करने की अनुमति दी जाए। किसी क्षेत्र पर कोई भाषा थोपी नहीं जा सकती केन्द्र या राज्य के संबंध में चुनाव संबंधी सभी प्रयोजनों के लिए चुनाव एक व्यक्ति को चुनने के लिये नहीं बल्कि दल के प्रतिनिधित्व का मूल्यांकन करने के लिये किये जाने चाहिये। प्रशासन की दल की पद्धति का पालन किया जाना चाहिये और व्यक्ति को चुनने के लिये मतदान की पद्धति को छोड़ दिया जाना चाहिये।

विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की वास्तविक आकांक्षाओं को पूरा करने के प्रयोजन से मैं आपके समक्ष यह सुझाव प्रस्तुत करता हूं केन्द्र द्वारा राज्यों पर शर्तों और आज्ञाओं का अधिरोपण क्षेत्रीय दलों के नेताओं के लिये एक गंभीर मामला था। केन्द्र में शक्तियों का संचयन राज्यों के महत्वपूर्ण अधिकारों पर एक घोर अतिचार है। राजनीतिक समस्याएं, जोकि तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, असम, पंजाब, कश्मीर और अन्य राज्यों में भड़क उठी चिनगारी की तरह और उनके राज्यों पर केन्द्र द्वारा अधिरोपण के विरुद्ध उन्होंने अपनी आपत्तियों के संबंध में उचित आवाज उठाई वस्तुतः क्षेत्रोन्मुखी शिकायतें हैं अभी हाल ही में वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा समझौते के लिए निकाले गए फार्मूले से कोई हल नहीं निकला है। यह एक अस्थायी समझौता है, जो किसी भी समय विद्रोह का रूप धारण कर सकता है।

अतः यह केन्द्र के लिये नई संविधान सभा बनाने के लिये आवश्यक कदम उठाने का उचित समय है जिससे त्रि-स्तरीय गठन विकसित हो सके। भाषा के आधार पर पूर्ण विकसित स्वतन्त्र राज्य, उपर्युक्त बताए गए पांच क्षेत्रों में संघ के रूप में राज्यों का समूह और केन्द्र में महासंघ का गठन किया जा सके यह मेरा और राजनीतिक पार्टी नामाघु काजाकम का मत है।

मेरा उपर्युक्त विचार नये संविधान के संबंध में है परन्तु आपने मुझे जो प्रश्नावली दी है उसके अनुसार मैं वर्तमान संविधान के उपबन्धों के विरुद्ध हमारी भावनाओं को सामने रखने के लिए इन प्रश्नों का औपचारिक रूप से उत्तर दे रहा हूं और उन प्रश्नों के संबंधों में मेरे द्वारा दिए गए उत्तर यहां संलग्न हैं।

प्रश्नावली के उत्तर

भाग I

1.1 हमारा संविधान वास्तव में पूर्णत: संघीय संविधान नहीं है, लगता तो ऐसा है जैसे यह एक संघीय संविधान है परन्तु यह संघीय संविधान की अपेक्षा एकात्मक संविधान अधिक है संविधान के निर्माताओं ने भारत सरकार अधिनियम, 1935 के उपबंधों का ही अनुकरण किया है और भारत सरकार अधिनियम, 1935 भारत उपमहाद्वीप के तत्कालीन शासकों द्वारा बनाया गया था। उनका कार्य इस बात को ध्यान में रखते हुए उपनिवेशी क्षेत्र पर शासन करना था कि सभी प्रयोजनों के लिये ब्रिटिश साम्राज्य सर्वश्रेष्ठ है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने उस अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई तत्कालीन विधान परिषदों को केवल सीमित शक्तियां प्रदान की थीं। मुझे यह कहते हुए खेद है कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत निर्मित प्रान्तीय विधान मंडल केवल राज्यपाल या राज्यपाल के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य के सलाहकार बोर्ड के रूप में कार्य करता था तथापि, उस अधिनियम ने प्रान्तीय विधान मंडलों को कुछ शक्तियां प्रदान की हैं।

1. भारतीय संविधान के अंतर्गत प्रत्येक राज्य के लिए गारंटीकृत वैधानिक शक्तियों में राज्यसरकार, सामूहिक उत्तरदायित्व वाला मंत्रिमंडल और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिये विधानमंडल बनाने के लिये राज्यों के लिए वैधानिक निकाय की व्यवस्था की है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत केन्द्र को दिये गये उच्च अधिकार के द्वारा राज्य के इस वैधानिक कार्य में बार-बार बाधा डाली गई है। संविधान के अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत केन्द्र ने बिना किसी कारण के राज्य विधानमंडलों में बाधा डाली है, राज्य सरकारों को बरखास्त किया है, राज्य सभाओं को विघटित किया है तथा राज्यपाल का शासन लागू किया है। अधिकांशत: सभी राज्यों ने इस असंघीय कार्रवाई और अलोकतांत्रिक ढंग से राज्यपाल के शासन को लागू करने का अनुभव कर लिया है। जब भारत सरकार अधिनियम, 1935 की तुलना में प्रान्तीय विधानमंडल को केवल अस्थायी अधिकार प्राप्त है। हालांकि प्रान्तीय विधानमंडल को कुछ अधिकार दिये गये हैं, फिर भी प्रान्तीय विधायी निकाय पर राज्यपाल का शासन या राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने का आसन्न संकट बना रहता है।

2. राज्यपाल संविधान के अन्तर्गत चुना गया व्यक्ति नहीं है अपितु केवल केन्द्र द्वारा नियुक्त किया जाता है राज्य द्वारा सर्वसम्मति से या मतभेद के द्वारा पारित किए गए उचित विधानों को या तो राज्यपाल या राष्ट्रपति की सहमति के लिये भेजा जाता है राज्यपाल या राष्ट्रपति की सहमति के लिये भेजे गये अधिकांश महत्वपूर्ण विधान कई वर्षों तक यों ही पड़े रहते हैं अथवा कुछ प्रश्न चिह्न लगा कर राज्य विधानमंडल को लौटा दिए जाते हैं। यों विधान बिना कोई सहमति दिए, उनके कार्यालयों में रखे रहते है। इस संदर्भ में मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा पारित किए गए एक विधान का उदाहरण देना चाहता हूं। जब भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम, 1960 को तत्कालीन राज्यविधानमंडल में प्रस्तुत किया गया और जब यह तारीख 6-4-1960 को लागू किया गया तो उस समय भूस्वामियों को बहुत अधिक समय बिनामी दस्तावेज को प्रस्तुत करने के लिये केवल इस प्रयोजन के लिये दिया गया कि जिससे उनकी विस्तृत सीमा तक कृषि भूमि तमिलनाडु कृषि भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम, 1960 की परिधि के अंतर्गत न आए जब से भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम का विधान अस्तित्व में आया है, तब से अब तक लगभग 20 वर्ष बीत चुके हैं, परन्तु कुछ भूस्वामियों के कब्जे में विस्तृत सीमा तक कृषि भूमि है और वे चतुराई से भूमि अधिकतम सीमा अधिनियम की परिधि से बचे हुए हैं। उपर्युक्त अधिनियम के दोषों को दूर करने और भूमिहीन गरीबों को भूमि के पुनर्वितरण के प्रयोजन के लिये, मैंने राजस्व मंत्री के रूप में राज्य विधानमंडल के समक्ष यह विधान प्रस्तुत किया जिसमें पहले किए गए बनावटी बिनामी लेन देनों को अमान्य कर दिया गया है। राज्य विधान मण्डल में विधान पास किया गया और उसे भारत के राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेजा गया। विधान दस्तावेज कई महीनों तक राष्ट्रपति के कार्यालय में रखे रहे और विधेयक पर सहमति दिए बिना ही राज्य विधान मण्डल को वापस कर दिये गये। मैं आयोग के समक्ष इस घटना का उल्लेख यह बताने के लिए कर रहा हूं कि राज्य की कार्यकारी शक्ति के मामले में स्वतन्त्र नहीं है और विधान मण्डल पर काफी प्रतिबंध हैं और राष्ट्रपति की सहमति के नाम पर कठिनाइयां पैदा हो रही है।

3. तीसरे न्यायपालिका के सम्बन्ध में कई बाहरी देशों ने विशिष्ट प्रणाली अपनाई है। उनमें केन्द्र में एक संघीय न्यायालय होता है जिसका सम्बन्ध अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों से है। सभी सिविल और आपराधिक मामलों में राज्य स्तर पर ही न्याय पालिका द्वारा विचारण किया जाता है। प्रत्येक राज्य में राज्य न्यायपालिका के ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय होता है, जो सिविल और आपराधिक क्षेत्र में राजस्व सम्बन्धी विवादों पर अन्तिम अभिमत जारी करता है। न्यायाधीश सम्बन्धित राज्यों द्वारा चुने जाते हैं। अभिमत क्षेत्रीय भाषाओं में जारी किया जाता है, किन्तु जहां तक हमारे संविधान का सम्बन्ध है, केन्द्र में जो न्यायालय है वह सभी आपराधिक सिविल और राजस्व सम्बन्धी विवादों के लिए सर्वोच्च न्यायालय और उसी को संविधान के अन्तर्गत गारंटीकृत रूप में मूल अधिकारों को प्रवर्तित करने की शक्ति भी प्राप्त है। राज्य स्तर के उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायिक निकाय नहीं हैं, बल्कि वे केन्द्र के उच्चतम न्यायालय के नियंत्रणाधीन हैं। यह न्यायपालिका भी व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र नहीं है। न्यायपालिका पर नियंत्रण रखने के लिए केन्द्र सरकार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में न्यायाधीशों का स्थानान्तरण करती है ताकि न्यायपालिका को केन्द्र सरकार के नियंत्रण में रखा जा सके। मैंने इन बातों का उल्लेख यह बताने के लिए किया है कि हमारा वर्तमान संविधान विधायी शक्तियों, कार्यकारी शक्तियों और न्यायिक शक्तियों की दृष्टि से संघीय नहीं है।

वित्तीय नियंत्रण पूर्णत: केन्द्र के पास है। भारी मात्रा में कर राजस्व केन्द्र को प्राप्त होता है और राज्य तात्कालिक सहायता कार्य को पूरा करने के लिए भी सदैव केन्द्र की अनुकम्पा पर रहता है।

1.2 मैं डा० पी० वी० राजमन्नर आयोग द्वारा सुझाये गये विचारों से पूरे मन से सहमत हूं जिसका उदेश्य राज्यों को स्वायत्तता का दर्जा प्रदान करना है। मैं अनुच्छेद 251, 256, 257, 348, 349, 355, 356, 357 और 365 के सम्बन्ध में डा०राजमन्नर की रिपोर्ट से सहमत हूं। केन्द्र ने अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत प्राप्त शक्तियों का बार-बार दुरुपयोग किया। इसका पहला उदाहरण है, केरल राज्य में तिरु नम्बूदरीपाद की सरकार को बरखास्त किया। केरल राज्य की नम्बूदिरीपाद की सरकार को गिराये जाने के बाद आन्ध्र प्रदेश में श्री रामाराव की सरकार को भी बरखास्त किया गया। केन्द्र द्वारा निर्वाचित सरकारों की बरखास्तगी एक अलोकतांत्रिक पक्षपातपूर्ण और राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिमानों के विपरीत थी। इस प्रकार केन्द्र द्वारा निर्वाचित सरकारों की बरखास्तगी लोगों के अधिमत के विरुद्ध कोई व्यवस्था अधिरोपित करना है। अत: मेरा विचार है कि संविधान के अनुच्छेद 365 को पूरी तरह से हटा दिया जाए क्योंकि इससे राज्यों की लोकप्रिय सरकार को गिराये जाने का मार्ग प्रशस्त होता है। कृपया इस संबंध में मेरी प्रस्तावना देखें।

1.3 भारत एक बहुभाषी देश है जिसमें विभिन्न प्रकार की संस्कृति एवं प्रथाएं प्रचलित हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के आगमन के कारण भारत और अन्य पड़ोसी देश एक विदेशी सरकार द्वारा शासित होते थे। स्वतंत्रता प्राप्त करने का उद्देश्य है समूचे देश के लिए स्वतंत्रता और सम्बन्धित राज्य में क्षेत्रीय भाषाओं का निर्मुक्त प्रयोग करने की स्वतन्त्रता तथा विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के परम्परागत मूल्यों को सुरक्षित करने की स्वतंत्रता। हर चीज को केन्द्रीकृत करने की मांग की जाती है, इससे सहज परम्परागत संस्कृति अस्त-व्यस्त होती है और क्षेत्रीय भाषाओं के विकास में बाधा पड़ती है।

भारतीय सांविधानिक तंत्र के 35 वर्षों के इतिहास में लगभग सभी राज्यो ने सम्बन्धित क्षेत्रों के उच्च आदर्शों के संरक्षण के लिए किसी न किसी रूप मे आवाज उठाई है। स्वायत्त राज्य के लिए तमिलनाडु द्वारा उठाई गई आवाज इन मांगों में से एक है। केन्द्र में सभी कुछ केन्द्रित है। अत: केन्द्र सामान्य व्यक्ति की मांगों को पूरा करने में असमर्थ है। मैंने इसका विकल्प अपनी प्रस्तावना में सुझाया है।

1.4 संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्य विधान मण्डल को अपनी अधिकारिता के अन्दर अलग सत्ता के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई है, क्योंकि कुछ स्वतंत्र शक्तियां राज्य विधान मण्डलों को सौंपी गई है। राज्य विधानमंडल ने कभी किसी

प्रकार की पृथकता की मांग नहीं की है । सोवियत रूस के संस्थापक कामरेड लेनिन ने अपने एक भाषण में यह उल्लेख किया था कि राज्य को अपनी सीमा के अन्दर स्वतंत्र आर्थिक शक्तियां प्राप्त होनी चाहिए । केवल तलाक को कानूनी मान्यता प्राप्त होने के कारण ही पति/पत्नी को आदत नहीं है कि वे तलाक के लिए अनुरोध करें । राज्यों के पास पृथक्करण की शक्तियां हो सकती हैं, यदि राज्य की सुरक्षा को केन्द्र के हाथों में खतरा हो । सोवियत रूस में राज्यों के पास पृथक्करण और स्वतंत्र राज्य के रूप में कार्य करने की पर्याप्त शक्तियां हैं । एक सुसंस्कृति देश में राज्य के लिए यह शक्ति वैधानिक रूप से गारन्टीकृत शक्ति होती है ।

1.5(क) मैं इस बात से पूर्णत: सहमत नहीं हूं कि संविधान बदलते समय की चुनौती का सामना करने के लिए मूलत: लचीला है । उदाहरण के लिए, तमिलनाडु संविधान सभा में उपबन्ध प्राप्ति होने की तारीख से ही हिन्दी के अधिरोपण का विरोध कर रहा है अब तक संविधान में कोई संशोधन नहीं किया गया है किन्तु प्रधान मंत्रियों द्वारा बार-बार कुछ आश्वासन दिये गए हैं । इसके बावजूद, केन्द्र द्वारा केवल हिन्दी के लिए काफी मात्रा में राशि खर्च की जाती है और अन्य राष्ट्रीय भाषाओं के लिए पर्याप्त मात्रा में राशि खर्च नहीं की जाती । हमारा संविधान संसद के समक्ष कोई विधेयक प्रस्तुत करने के मामले में लचीला नहीं है ।

संशोधन प्रक्रिया बहुत कठिनाई उत्पन्न कर रही है, तथापि तमिलों की मांग औचित्यपूर्ण है । सत्ताधारी दल के विचारों और आपत्तियों के अनुसार संविधान में बार-बार संशोधन किया जाता है । मैंने इस विषय पर इस शीर्ष के अधीन प्रस्तावना में सविस्तर चर्चा की है ।

(ख) मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं कि संघ राज्य सम्बन्धों में जो दोष, तनाव और समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, वे संविधान के मूल ढांचे और उसकी योजना में किसी तात्विक दोष के कारण नहीं हैं । राज्य सरकार को ऐसी स्थिति में रखा गया है कि राज्यों के राहत कार्य के लिए कम से कम धनराशि की मांग करें । चूंकि केन्द्र के पास अधिक वित्तीय संसाधन हैं और राज्यों को धनराशि के वितरण के सम्बन्ध में केन्द्र का सभी राज्यों पर आदेश चलता है, अत: राज्यों को धनराशि के वितरण में बार-बार भेदभाव की स्थिति उत्पन्न होती है । केन्द्र पर राजनैतिक दबाव रखने वाले कुछ राज्यों को अधिक धनराशि प्राप्त हो जाती है जबकि अन्य राज्यों को उनकी उचित धनराशि भी प्राप्त नहीं होती । इस भेदभाव से उपेक्षित राज्यों में तनाव उत्पन्न होता है । दल के महत्व, राजनैतिक प्रभाव और सत्ता की राजनीति से राज्यों को केन्द्र द्वारा धनराशि के वितरण में भेदभाव होता है, और उससे पर्याप्त अतिक्रमण होता है । संविधान में उचित वितरण का नियमन नहीं किया गया है । राज्यों को धनराशि के वितरण के संबंध में संविधान के अन्तर्गत केन्द्र को दी गई प्रत्याभूत सर्वोच्च शक्ति ही केन्द्र के साथ सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होने का मुख्य कारण हैं । राजनैतिक दबाव और अनुच्छेद 365 के अन्तर्गत लोकप्रिय सरकार को बरखास्त किया जाना आज भी भारतीय संविधान में एक घटिया उदाहरण है । एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में न्यायाधीशों की तैनाती के कारण न्यायपालिका में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग सीमित और प्रतिबंधित होता जा रहा है । केन्द्र द्वारा उच्चतम अधिकारियों के चयन और इन अधिकारियों को अन्य राज्यों को भेजने से भी सम्बन्धित राज्यों के विधिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगा है ।

(ग) इन दोषों समस्याओं और मुद्दों का निवारण नए संविधान के बिना नहीं हो सकता । संविधान निर्माता न तो गत्यात्मक परिवर्तन का पूर्वानुमान लगा सके और न ही विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की आकांक्षाओं को समझ सके । क्षेत्रीय मान्यताओं और संगठनों की पूरी तरह उपेक्षा की गई है और सभी भाषा संबंधी विचारों और परम्परागत मूल्यों को ध्यान में रखे बिना एकात्मक संविधान का निर्माण किया गया है ।

(घ) (i) डा० पी० बी० राजमन्नार ने केवल संविधान में कुछ परिवर्तनों का सुझाव दिया है लेकिन मैं नया संविधान बनाने का सुझाव देना चाहूंगा जैसा कि मैंने प्रस्तावना में कहा है । हमारे देश के लिए सर्वाधिक उपयुक्त संविधान परिसंघ हो सकता है । केन्द्र को अन्तर्राज्यीय विवादों, परिवहन, विदेशी मुद्रा, रिजर्व बैंक नियंत्रण, रक्षा, डाक और राजस्व, सिविल विमानन और पैट्रोलियम, परियोजनाओं जैसे बड़े राष्ट्रीय कार्यक्रमों सम्बन्धी मुद्दों का समाधान करने की अनुमति दी जानी चाहिए । अन्य सभी शक्तियां राज्यों को पुन: वितरित की जानी चाहिए और राज्यों को पृथक्करण की शक्ति सहित सभी शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए । त्रिसूत्रीय गठन को देखें जैसा कि प्रस्तावना में सुझाव दिया गया है ।

1.6 मैं इस बात से सहमत हूं कि इस देश की अखण्डता और स्वतंत्रता का संरक्षण सर्वोपरि रूप से महत्वपूर्ण है । मैंने पहले ही सुझाव दिया है कि वर्तमान संविधान का ढांचा मूलत: दोषपूर्ण है । जैसा मैंने पहले ही कहा है कि केवल नया संविधान लाने से ही देश की एकता और अखण्डता को कायम रखा जा सकता है ।

1 7 मैं अपनी प्रस्तावना में इसका विस्तृत रूप से विश्लेषण कर चुका हूं ।

1.8 बेहतर प्रशासन के प्रयोजन के लिए और इस देश के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नए संविधान के अन्तर्गत राज्य को अधिकार प्राप्त हो सकते हैं । विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में परिसंघ के अंतर्गत एकता हो सकती है । उदाहरण के लिए, तमिलनाडु, केरल और आन्ध्र प्रदेश को दक्षिणी परिसंघ के रूप में गठित किया जा सकता है, और क्षेत्र विशेष में लोगों द्वारा बोली जाने वाली संबंधित भाषाओं के आधार पर राज्यों को पुनर्गठित किया जाना चाहिए । भाषाओं के आधार पर लोगों का विभाजन करने से और एक परिसंघ के अन्तर्गत उनको मिलाने से केन्द्र से राज्यों को शक्तियों के पुन: वितरण काफी मदद मिल सकती है । परिसंघ के गठन से केन्द्र राज्य विवादों को हल करने में बहुत मदद मिल सकती है और यह सम्बन्धित परिसंघ के अन्दर रहने वाले लोगों की एकता और अखण्डता के साथ-साथ सम्पूर्ण देश की एकता और अखण्डता में भी काफी सहायक हो सकता है । उदाहरण के लिए, हिन्दी बोलने वाले लोगों को एक परिसंघ के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है । कश्मीर को मिलाकर उत्तरी सीमा, जिसमें एक अन्य परिसंघ के रूप में गठित किया जा सकता है । बंगाल से उड़ीसा तक का गठन एक परिसंघ के रूप में किया जा सकता है और महाराष्ट्र से गुजरात का गठन दूसरे परिसंघ के रूप में किया जा सकता है । जैसा कि मैंने प्रस्तावना में बताया है कि भारत 5 परिसंघों से बना है । केन्द्र का गठन एक महासंघ के रूप में किया जा सकता है । विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले, विविध विचारों वाले, विभिन्न संस्कृति वाले और विभिन्न परम्पराओं वाले लोग जिस देश में होते हैं, उस देश की राजनीतिक संस्था के परिसंघीय ढांचे का मूल्यांकन सामान्यतया राजनीतिक विचारक करते हैं । इस प्रकार के संविधान की प्राप्ति के लिए मैंने पहले ही सुझाव दिया है कि सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र का पुनर्गठन और पुनर्गुंजन किया जाना चाहिए और नया संविधान इस प्रकार का होना चाहिए जो संघ राज्य के लिए उचित हो ।

भाग II

2.1 दुर्भाग्यवश हमारे संविधान पर टीका-टिप्पणी की जाती है । जैसा कि मैंने पहले ही सुझाव दिया है, संविधान के निर्माताओं ने भारत सरकार अधिनियम, 1935 का ही अनुसरण किया है, इसलिए संविधान के निर्माण में भारी चूक हो गई है । संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार राज्य विधानमण्डल एक स्वतंत्र निकाय के रूप में बिल्कुल नहीं है । बाह्य उपद्रवों या आन्तरिक संकट के नाम पर राज्य विधान मण्डलों को बार-बार अस्त-व्यस्त, बरखास्त और विघटित किया जाता है । संविधान का अनुच्छेद 365 लोकप्रिय निर्वाचित राज्य विधान मण्डल को समाप्त करने का एक खतरनाक अलोकतांत्रिक हथियार है । (उदाहरण के लिए, नम्बूदिरीपाद को केरल राज्य में मंत्रिमंडल बनाने के लिए चुना गया । जिस समय मंत्रिमण्डल गठित किया गया, उस समय विरोधी दलों और कुछ अन्य तत्वों को स्वयं केन्द्र द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित किया गया और इस वजह से मंत्रिमंडल में विक्षोभ उत्पन्न हुआ । नम्बूदिरीपाद के मंत्रिमंडल को संरक्षण देने के बजाए केन्द्र सरकार ने एक गलत कार्यवाई की और केरल में लोकप्रिय सरकार को बरखास्त किया गया) । करीब-करीब सभी राज्यों ने केन्द्र के हाथों सरकार की बरखास्तगी का सामना किया । तमिलनाडु में डा० कैलिगर करुणानिधि के मंत्रिमंडल को बरखास्त किया गया । उड़ीसा में श्रीमती नन्दिनी सत्पथी के मंत्रिमंडल को बरखास्त किया गया, कश्मीर में फारूक अब्दुल्ला के मंत्रिमंडल को बरखास्त किया गया और अन्त में आन्ध्र प्रदेश में श्री रामाराव के मंत्रिमंडल को बरखास्त किया गया, जिसके कारण आन्दोलन, प्रदर्शन, हड़ताल, पिकेटिंग आदि हुए और सामूहिक रूप में लोगों को गिरफ्तार किया गया, धारा 144 का उल्लंघन हुआ । अन्त में लोगों की मांगों के सामने केन्द्र को झुकना पड़ा और आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में रामाराव को बहाल किया गया । कई अवसरों पर केन्द्र ने विभिन्न राज्यों के विभिन्न मंत्रिमंडलों को बरखास्त किया है और उनकी विधान सभाओं को विघटित किया है और राज्यपाल का शासन लागू करने का आदेश दिया है ।

2.2 मैंने पहले ही सुझाव दिया है कि केन्द्र को केवल रक्षा, रिजर्व बैंक, मुद्रा नियंत्रण डाक, रेलवे, सिविल विमानन, विदेश सम्बन्ध और विवाद, आन्तरिक नदी विवाद शीर्षों के अन्तर्गत ही शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए, अन्य सभी शक्तियां राज्यों में निहित होनी चाहिए। संविधान का बनाया जाना ही इसका उचित समाधान है।

2.3 प्रस्तावना में उत्तर दे दिया गया है।

2.4 राज्यों के मामले में हस्तक्षेप करने और उनके सम्बन्ध में विधान पारित करने के लिए संसद सर्वथा सक्षम प्राधिकरण नहीं है। राज्य पूर्णत: स्वायत्त निकाय है, इसलिए उसे जैसा वह चाहे, वैसा विधान पारित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। किसी स्थान विशेष पर शाश्वत या थोड़े समय के लिए रहने वाले लोगों को संरक्षण देने के लिए केवल राज्य विधानमण्डल ही सही प्राधिकरण हो सकता है। संसद को राज्य के कानून अधिकारों का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

2.5 मैंने नये संविधान के अन्तर्गत पहले ही उपाय सुझाए हैं।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 राज्यपाल निर्वाचित व्यक्ति नहीं होता बल्कि केन्द्र के द्वारा मनोनीत व्यक्ति होता है। ऐसी स्थिति में किसी राज्यपाल को राज्य सरकार के साथ समानांतर सरकार चलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी राज्य विशेष की सरकार निर्वाचित निकाय है। मुख्यमंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्य प्रत्यक्षरूप से जनता के द्वारा चुने जाते हैं और जो सरकार बनाते हैं। लेकिन वर्तमान ढांचे के अन्तर्गत राज्यपाल मात्र एक मनोनीत व्यक्ति होता है, जो एक कठपुतली की तरह कार्य करता है। मेरा विचार है कि राज्यपाल का भी चुनाव जनता के द्वारा किया जाये। यदि राज्यपाल भी निर्वाचित जनता द्वारा निकाय हो, तो किसी राज्य विशेष में दो निर्वाचित निकाय के बीच संघर्ष का मार्ग प्रशस्त होगा।

3.2 राज्य विधान मण्डल के सम्बन्ध में राज्यपाल किसी अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता। वह एक ऐसा समर्थ व्यक्ति नहीं है जो केन्द्र के साथ राज्य के सम्बन्धों का पोषण कर सके। चूंकि राज्यपाल केन्द्र के एक मनोनीत व्यक्ति के रूप में प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसका कम से कम और अपरिवर्तनीय रूप से मात्र दस्तावेजों पर औपचारिक ढंग से हस्ताक्षर करने का काम है। राज्यपाल मुख्यमंत्री के विरोध में अगर किसी शक्ति का प्रयोग करता है तो वह राज्य में संघर्ष का स्वाभाविक कारण बनेगा।

3.3 (क) राज्यपाल का पद किसी भी राज्य में सर्वोच्च पद होता है, वह न तो कोई अन्वेषक होता है, और न किसी पार्टी का व्यक्ति। यदि वह राज्य विशेष के विरुद्ध कोई रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है तो वह एक राज्यपाल के रूप में कार्य करने में सक्षम नहीं है। यदि राज्यपाल मुख्यमंत्री के सभी विचारों का समर्थन करता है तो राज्यपाल का पद अनावश्यक हो जाता है। अत: राज्यपाल की रिपोर्ट किसी समस्या के समाधान के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। किसी लोकतांत्रिक ढांचे में राष्ट्रपति को चाहिए कि वह एक मनोनीत व्यक्ति अर्थात् राज्यपाल की रिपोर्ट की अपेक्षा विधान मण्डल द्वारा किए गये निर्णय को अधिक महत्व दे। प्राय: राज्यपाल रिपोर्ट तैयार नहीं करते; कभी-कभी केन्द्र ही रिपोर्ट तैयार करता है और उस राज्यपाल से हस्ताक्षर करने के लिए कहता है, राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर राज्य सरकार बरखास्त कर दी जाती है। अत: राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाने वाली राज्यपाल की रिपोर्ट न तो उपयोगी होती है और न ही मूल रूप से सही होती है। इस समय यही स्थिति विद्यमान है।

3.4 तमिलनाडु राज्य के राजस्व मंत्री के रूप में अपने निजी अनुभव के आधार पर मैंने इस प्रश्न का उत्तर पहले ही अधिक विस्तार से दिया है। तमिलनाडु राज्य विधान सभा की यह विधायी पक्की एक पक्का उदाहरण है, जिस पर आप ध्यान दें। यदि विधान सभा द्वारा पारित किसी विधेयक से संविधान के अन्तर्गत किसी अधिकार का उल्लंघन होता है, तो संविधान में ऐसे विधेयक को न्यायिक निकाय के समक्ष प्रस्तुत करने का पर्याप्त शक्तियां हैं। और न्यायपालिका संविधान के उपबन्धों के विपरित किसी विधेयक को शून्य या अविधिमान्य घोषित करने में सक्षम है। इस प्रकार किसी विधेयक विशेष की न्यायिक जांच हो जाती है। राज्यपाल और राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक को केन्द्र के पास चश्मपोशी के लिए डाले रखना बहुत ही गलत उदाहरण है।

3.5 अपने निजी अनुभव के आधार पर मैंने उपर्युक्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। उसमें विधेयक को कई वर्षों तक रोके रखा गया और काफी विलम्ब के बाद उसे राज्य विधान मण्डल को लौटा दिया गया। किसी विधेयक पर राष्ट्रपति की सहमति के बहाने के आधार पर की जाने वाली गलती दूसरे राष्ट्रपति द्वारा भी की जा सकती है और यह गलत उदाहरण बन जाएगा। राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा किसी विधेयक को रोककर रखना राज्य विधान मण्डल के स्वायत्तता पूर्ण कार्यों में अप्रत्यक्ष रूप से विघ्न डालने की एक धमकी है। विधेयक को लौटाने में अनावश्यक विलम्ब किये जाने से विधान की सीमा में बचन का मार्ग प्रशस्त होता है। और राष्ट्रपति की ओर से विलम्ब के कारण विधान का उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो पाता है; चाहे कुछ भी हो, जब कोई लोकप्रिय सरकार किसी विधेयक को पारित कर देती है तो फिर राष्ट्रपति को उस विधेयक को अप्रत्यक्ष रूप से क्यों रोकना चाहिए या बिना सहमति के क्यों लौटाना चाहिए। नया संवैधानिक ढांचा ही इसका एकमात्र उपाय है।

3.6 मैंने पहले ही सुझाव दिया है कि राज्यपाल केवल मनोनीत प्रधान है, जो केन्द्र द्वारा मनोनीत किया जाता है। वह केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिए एक सक्षम कड़ी नहीं है। केवल अन्तर्राज्यीय परिषद ही केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मंच हो सकती है। राज्यपाल प्राय: केन्द्र के नियंत्रणाधीन होता है। राज्यपाल पर हुक्म चलाया जाता है और राज्यपाल केन्द्र द्वारा दिये गए निर्देशों के अनुसार कार्य करता है। आन्ध्र प्रदेश में रामाराव के मंत्रिमण्डल को बरखास्त करने में राज्यपाल की भूमिका की पूरी तरह से कलई खुल गई है। जब राज्यपाल ने रामाराव को बरखास्त किया और भास्करराव को मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया, तो चूंकि भास्कर राव अपनी शक्ति को साबित नहीं कर पाए, अत: संसद में यह प्रश्न उठाया गया; तत्कालीन प्रधानमंत्री पर आरोप लगाया गया कि आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल ने स्वयं प्रधानमंत्री के निर्देश पर सशक्त कार्रवाई की थी। लेकिन राज्यपाल ने कुछ केन्द्रीय नेताओं के निर्देश पर चश्मपोशी पर यह कारवाई की थी। लोगों की आकांक्षा वास्तविक थी। सक्रिय रूप से आन्दोलन हुआ और यह आन्दोलन एक महीना या उससे अधिक दिनों तक चलता रहा। केन्द्र ने उस राज्यपाल को हटाकर उसकी जगह आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल के रूप में दूसरे व्यक्ति को नियुक्त किया। इससे पता चलता है कि केन्द्र राज्यपाल के ऊपर पूरी तरह से शासन करता है। स्वाभाविक है कि कोई व्यक्ति अपना विश्वास बनाये रखेगा तो राज्यपाल द्वारा की जाने वाली कार्रवाई केन्द्र के निर्देश पर या उसके उकसाने पर होगी।

3.7 चूंकि राज्यपाल केन्द्र का एक मनोनीत व्यक्ति होता है, इसलिए उससे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की तरह कार्य करे।

3.8 राज्यपाल की सहायता के बिना भी सत्ताधारी दल की शक्ति को सिद्ध या असिद्ध किया जा सकता है। यदि अध्यक्ष स्वयं निष्पक्ष नहीं है तो राज्यपाल से विधान सभा बुलाने के लिए कहा जा सकता है और राज्यपाल मुख्यमंत्री से अपनी शक्ति साबित करने के लिए कह सकता है कि क्या उसे उस सदन का विश्वास प्राप्त है।

3.9 जर्मन संविधान से उद्धृत प्रसंग हमारे देश के लिए उपयुक्त नहीं है। मैंने अपनी प्रस्तावना में एक योजना का सुझाव दिया है।

भाग IV

प्रशासनिक सुधार

4.1 यह प्रश्न मेरे प्रस्ताव के संदर्भ में कभी नहीं उठता है।

4.2 अनुच्छेद 365 को हटा दिया जाना चाहिए।

4.3 मैं इस विचार का पूरी तरह से समर्थन करता हूं कि अनुच्छेद 256 के उपबन्धों का केन्द्र के द्वारा राज्य के वैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करने के लिए दुरुपयोग किया जाता है। यह अनुच्छेद केवल बाह्य परिस्थितियों में ही

शक्ति प्रदान करता है, लेकिन केन्द्र ने प्रायः इस अनुच्छेद के उपबन्धों का प्रयोग राज्य विधानमण्डल के विरुद्ध प्रतिकारी उपाय के रूप में किया है। केवल अन्तर्राज्यीय परिषद, न्यायाधीश मंच और उच्च स्तरीय परामर्शी निकाय के परामर्श से ही राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता है और इस अनुच्छेद के अन्तर्गत अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता ; अन्यथा राज्य विधानमण्डल कार्य नही कर सकता। ये अनुच्छेद राज्य विधानमण्डल के उचित रूप से कार्य करने के सम्बन्ध में स्थायी धमकी है।

4.4 मैंने पूर्ववर्ती प्रश्नों में अधिक विस्तार से सुझाव दिया है। मेरा यह मत है है कि अनुच्छेद 365 को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए। यदि कोई लोकप्रिय सरकार अपने कार्यों को पूरा करने में असफल रहती है तो राज्य नई सरकार बनाने के लिए कोई चुनाव करा सकता है। अनुच्छेद 365 राज्य के लोकतांत्रिक अधिकारों के संबंध में स्थायी धमकी है, अतः इस अनुच्छेद को हटा दिया जाना चाहिए।

4.5 चाहे कोई भी परिस्थितियां हो, किसी राज्य विशेष में लोकतांत्रिक ढांचे को 3 वर्ष जैसी अधिक अवधि के लिए पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता है। एक वर्ष ही पर्याप्त है और इस अवधि के अन्दर राज्य में चुनाव कराके तथा लोकप्रिय सरकार बनायी जानी चाहिए। यह देखना लोकप्रिय सरकार का काम है कि राज्य संविधान की सीमा के अन्दर कार्य करे। मेरा यह सुझाव नये संविधान के सम्बन्ध में है।

4.6 वर्तमान कार्य व्यवस्था संतोषजनक नही है। दुर्भाग्यवश निर्वाचन आयोग सत्ताधारी दल के अधीन कार्य करता है। सत्ताधारी दल अपने अनुकूल चुनाव की तारीख निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए जब भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी का निधन हुआ तो निर्वाचन आयोग ने जनवरी, 1985 में चुनाव कराने का प्रस्ताव किया। चूंकि जनता श्रीमती इन्दिरा गांधी की मृत्यु के कारण शोक में डूबी हुई थी और मात्र लोगों की सहानुभूति का अनुचित लाभ उठाने के लिए चुनाव की तारीख जनवरी, 1985 के बजाय पहले ही दिसम्बर, 1984 में रख दी गई। यह स्पष्ट उदाहरण है जिससे यह पता चलता है कि निर्वाचन आयोग स्वायत्त निकाय नहीं है। सत्ताधारी दल और विरोधी दलों की चुनाव के लिए तारीख निर्धारित करने के सम्बन्ध में बराबर की बात मानी जानी चाहिए और निर्वाचन आयोग द्वारा स्वतन्त्र रूप से निर्णायक तारीख निर्धारित की जानी चाहिए। निर्वाचन आयोग को सत्ताधारी दल की सुविधा के अनुसार चुनाव की तारीख निर्धारित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

4.7 यह आलोचना सर्वथा तर्कसंगत है। इसका एकमात्र समाधान यही है कि ये केन्द्रीय एजेन्सियां अन्तर्राज्यीय परिषद के नियंत्रण और पर्यवेक्षण में होनी चाहिए। इन एजेंसियों के प्रतिदिन के कार्य पर नियंत्रण रखने के लिए सभी राज्यों का समान रूप से प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

4.8 मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा जैसी अखिल भारतीय सेवा की भर्ती के विरुद्ध हूं। पुलिस प्रशासन पूर्ण रूप से राज्य सूची के अन्तर्गत आता है। सिविल प्रशासन भी राज्य सूची का ही विषय है। राज्य सरकार का तंत्र उचित रूप से चल सके, इसलिए स्वयं राज्य सरकार द्वारा ही भर्ती की जा सकती है।

4.9 मैं गंभीरता पूर्वक यह टिप्पणी कर रहा हूं। राज्य सरकार की मांग के बिना राज्य के किसी भी भाग में केन्द्रीय पुलिस बल नहीं थोपा जाना चाहिए। केन्द्र किसी राज्य विशेष की पुलिस व्यवस्था के विरोध में अपनी पुलिस व्यवस्था के रूप में कार्य नहीं कर सकता। यदि कोई क्षेत्र राज्य के द्वारा अशान्त क्षेत्र घोषित कर दिया जाये तो यह राज्य को देखना है कि अशान्त क्षेत्र में नियंत्रण रखा जाए। राज्य सरकार सिवाए अन्य कोई सरकार किसी राज्य में पुलिस प्रशासन का प्रयोग नहीं कर सकती। यह मेरा विचार है।

4.10 मेरा विचार है कि केन्द्र की सम्मति या सहमति के बिना राज्य का रेडियो और टेलीविजन पर स्वतन्त्र कार्यक्रम होना चाहिए। किसी राज्य विशेष में रेडियो और टेलीविजन विभाग पूर्णतः राज्य के नियंत्रण में होना चाहिए। केन्द्र के सम्बन्ध में सूचना प्रसारित करने के लिए केन्द्र भी रेडियो और टेलीविजन में अपना प्रसारण समय रख सकता है। 75% कार्यक्रम प्रसारण समय राज्य के नियंत्रण में और 25% कार्यक्रम प्रसारण समय केन्द्र के लिए होना चाहिए। यदि राज्य सरकार किसी कार्यक्रम का गंभीरता से विरोध करे तो केन्द्र को ऐसा कार्यक्रम प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। सम्बन्धित राज्य रेडियो और टेलीविजन के सम्बन्ध में सभी अधिकारियों और तकनीशियनों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जानी चाहिए। नियुक्ति किये जाने वाले व्यक्ति सम्बन्धित राज्य के होने चाहिए।

4.11 राज्य पुनर्गठन के विषय में अन्तर्राज्यीय परिषद अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने में बुरी तरह असफल रही है।

4.12 अन्तर्राज्यीय परिषद स्थायी सांविधिक निकाय के रूप में होनी चाहिए, जिसे विधिक रूप से प्रवर्तनीय शक्तियां प्राप्त होनी चाहिए। अन्तर्राज्यीय परिषद में राज्यों का समान रूप से प्रतिनिधित्व होना चाहिए। राज्यों की परस्पर समस्याएं अनिवार्य रूप से अन्तर्राज्यीय परिषद को भेजी जानी चाहिए। केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के बारे में भी अन्तर्राज्यीय परिषद में चर्चा की जा सकती है।

भाग V

वित्तीय सम्बन्ध

5.1 पिछले 35 वर्षों में केन्द्र के राजस्व संसाधन बहुत अधिक रहे और राज्यों की वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर रही है। कई राज्यों को अपने राहत कार्यों के लिए केन्द्र से उधार लेना पड़ा और वे केन्द्र के ऋणी हो गए। चूंकि केन्द्र को वर्तमान संविधान के अन्तर्गत अधिक शक्तियां आबंटित की गयी हैं, इसलिए केन्द्र विभिन्न कानूनी प्रावधानों के द्वारा अधिक धनराशि जुटाने में सक्षम है। राज्य सरकारों-को धनराशि की अत्यधिक आवश्यकता रहती है। राज्य के लिए कृषकों की ऋण-ग्रस्तता का अत्यधिक भार होता है, किंतु राज्य सरकार इन ऋणों को दूर करने में अक्षम और असमर्थ है क्योंकि केन्द्र के अनुदेश ऐसे हैं जो राज्य सरकार को ऋण प्राप्त करने के लिए बाध्य करते हैं, हालांकि किसानों को अपनी फसलों के नष्ट हो जाने से लगातार हानि उठानी पड़ रही है। राज्य के पास धनराशि का अभाव ही इस समस्या का वास्तविक कारण है कि राज्य सरकार अपनी सीमा के अन्दर प्रभावी ढंग से कार्य करने में असमर्थ है। धनराशि की कमी के कारण राज्य सरकारों को एक ओर कार्रवाई करनी पड़ती है और लोगों से राशि ऐंठने के लिए विवश होना पड़ता है, जो कि एक सरकार के लिए अशोभनीय है। सरकार ने शराब की बिक्री शुरू की और इसकी बिक्री करने से या नशाबन्दी अधिनियम वापस लेने से सरकार को शराब की बिक्री से अधिक धनराशि प्राप्त होती है। राज्य सरकारों को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए। कर वसूल करने की शक्ति राज्यों को ही प्राप्त होनी चाहिए और केन्द्र को राज्यों से अंशदान प्राप्त होना चाहिए।

5.2 राज्य में उपलब्ध उन संसाधनों के सम्बन्ध में राज्यों को पूरी वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए, जिनका कि स्वयं राज्य द्वारा हमेशा उपयोग किया जा सके। राज्य से प्राप्त कुल राजस्व में से केन्द्र को अनुपात में हिस्सा मिलना चाहिए।

5.3 प्रत्येक राज्य एक नागरिक से दूसरे नागरिक के बीच आय की असमानता को मिटा देना और जातिगत अवरोधों को दूर करना तथा सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहता है। धनथाई पेरियार और अरिगर अन्ना के उच्च आदर्शों का अनुसरण करोड़ों तमिलों द्वारा किया जाता है, जो हमारे राज्य में जाति रहित समाज की स्थापना करना चाहते है। तथाकथित अस्पृश्य लोगों अर्थात् आदि द्रविड़ों और पिछड़ी जातियों के लोगों की सरकार द्वारा सहायता की जानी चाहिए इस सम्बन्ध में उन्हें शैक्षिक रियायतें और रोजगार के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। राज्यों में उपलब्ध साधनों का पूरी तरह उपयोग किया जा सकता है परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में राज्य शाश्वत रूप से केन्द्र की दया पर निर्भर है, क्योंकि आयकर और सम्पदा शुल्क, बीमा, डाक, रेलवे और अन्य मुख्य परियोजनाओं जैसे स्रोतों से होने वाली मुख्य आय केन्द्र के पास है। सम्बन्धित मदों पर सभी प्रकार के राजस्व प्राप्त करने का अधिकार राज्यों को दिया जाना चाहिए और कुल आय का कुछ प्रतिशत अपने तंत्र को चलाने के लिए केन्द्र को दिया जाना चाहिए, तभी सामाजिक और आर्थिक समानता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

5.4 यह प्रश्न इस समूचे देश के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सरकार को कराधान का अधिकार प्राप्त है। परन्तु केन्द्र पर करों की वसूली का अधिक भार है, क्योंकि करों की वसूली का कार्य राज्यों में समान रूप से वितरित नहीं किया गया है, और केन्द्र इस शक्ति का उपयोग करता है ; भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की धमकियां निस्सार है, जाली नोटों और कालेधन की शाश्वत धमकी पर केन्द्र का कोई सामयिक नियंत्रण नहीं है। एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार, आयोग उचित रूप से कार्य नहीं कर रहा है। उसकी अधिकतम सीमाओं में भी वृद्धि कर दी गयी है। इन परिस्थितियों में बड़े औद्योगिक घराने अपने लाभ के लिए मांगे रखते हैं, बड़े औद्योगिक घरानों पर नियंत्रण रखने में सरकार बुरी तरह से असफल रही है और बढ़ते हुए कालेधन और जाली नोटों पर रोक लगाने में सरकार असमर्थ है, जिसके परिणामस्वरूप आम व्यक्ति द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की कीमतों में लगातार वृद्धि होती जा रही है और इस सामाजिक बुराई पर केन्द्रीय सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। केन्द्र इन सभी बुराइयों को रोकने में असफल रहा है, क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र विशाल है। उसके कर्मचारी निष्क्रिय हैं और प्रवर्तनीय कानून बचाव के अनेक रास्तों से घिरे हुए हैं। केवल राज्य सरकार ही अपने राज्य विशेष के सीमित अधिकार क्षेत्र के अन्दर इन आर्थिक अपराधों को प्रभावी ढंग से रोक सकती है।

5.5 वित्तीय आयोग और योजना आयोग राज्य के उपलब्ध संसाधनों का सर्वेक्षण करने और योजना के प्रयोजनों के लिए उनका आबंटन करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं। इसका कारण यह है कि राज्य योजना आयोग और केन्द्रीय योजना आयोग के बीच कोई समन्वय नहीं है।

(2) कुछ राज्यों का केन्द्र और योजना आयोग के ऊपर राजनीतिक प्रभाव होने के कारण उपलब्ध धनराशि उधार लेने वाले राज्यों को दे देने से गरीब राज्यों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फिर भी योजना आयोग और वित्तीय आयोग को स्वायत्त निकाय कहा जाता है, लेकिन वे शाश्वत रूप से राजनीतिक प्रभाव के अधीन हैं। प्रत्येक राज्य में उपलब्ध संसाधनों का राज्य योजना आयोग और तकनीशियनों की सहायता से सर्वेक्षण नहीं किया गया है। राज्य योजना आयोग और केन्द्र योजना आयोग ने इस देश के इन महत्वपूर्ण विषय पर कभी नहीं विचार किया है। निस्सन्देह, यह बात पूरी तरह से स्वीकार की जाती है कि पिछड़े राज्य को वर्तमान ढांचे में भी वित्तीय सहायता के रूप में कुछ रियायतें और योजनागत धनराशि सर्वथा प्राप्त होनी चाहिए, जैसा कि प्रस्तावना में हमने अपना सुझाव दिया है।

5.6 हम यह मानते हैं कि पिछड़े राज्य के उत्थान के लिए राज्य की सहमति के अधीन संघीय धनराशि होती चाहिए। प्रत्येक राज्य में कुछ सदस्य सामाजिक और शैक्षिक दोनों ही दृष्टि से पिछड़े हुए होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में वर्तमान संविधान में भी कुछ संशोधन करके मंडल आयोग की रिपोर्ट के प्रावधानों को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। रोजगार में पिछड़ी जातियों के आनुपातिक प्रतिनिधित्व को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लिए सांविधानिक गारंटी के रूप में प्रवर्तित किया जाना चाहिए।

5.7 पहले ही उत्तर दिया जा चुका है।

5.8 आपके प्रश्न में बताए गए कर, जैसा कि मैंने पहले ही सुझाव दिया है, राज्य में निहित होने चाहिए और इन करों की कुल वसूली में से केन्द्र को उसके उचित हिस्से के रूप में राज्यों की उचित प्रतिशत राशि दी जाएगी।

5.9 यह प्रश्न बिल्कुल नहीं उठता है क्योंकि मेरा सुझाव पहले ही पूर्णतः इस मत से अलग है कि राज्यों को इन करों की वसूली का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

5.10 वित्त आयोग ने राज्य में उपलब्ध संसाधनों का सर्वेक्षण करते समय संघ सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य किया। वित्त आयोग को राज्य योजना आयोग और वित्त संचालन प्राधिकरणों के साथ विचार-विमर्श करना चाहिए था।

5.11 हां मैं इस बात से सहमत हूं कि वर्तमान योजना के अन्दर अत्यधिक वित्तीय अनुशासनहीनता बरती गयी।

5.12 प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि मैंने पहले ही अलग प्रस्ताव प्रस्तुत किया है।

5.15 यह प्रश्न नहीं उठता है।

5.16 यह प्रश्न स्वयं मेरे ही इन विचारों का अनुपूरक है कि राज्य विकासात्मक और योजनेतर व्यय के लिए अपने संसाधनों को बढ़ाने के सम्बन्ध में अधिक सशक्त होने चाहिए। अब तक राज्य के अन्दर कराधान के क्षेत्र में केन्द्र के अतिक्रमण से राज्य अपंग हो गये हैं और इसकी वजह से राज्य केन्द्र के शाश्वत ऋणी होते जा रहे हैं।

5.17 सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है राज्य के कराधान वित्त को ऐंठने में केन्द्र का अतिक्रमण। अतः, इससे मेरे इस सुझाव को और भी अधिक बल मिलता है कि कराधान का अधिकार केवल राज्यों के पास ही होना चाहिए।

5.18 यह अधिकार राज्यों को दिया जाना चाहिए कि जब उन्हें आवश्यकता हो, तब वे उधार ले सकें।

5.22 हम इससे सहमत नहीं है क्योंकि करों के अधिकांश उत्पादी शीर्ष केन्द्र द्वारा पहले ही जबरदस्ती छीन लिए गए हैं।

5.23 केन्द्रीय कराधान में रिसाव से, जैसा कि प्रश्न में उल्लेख किया गया है, मेरे इस सुझाव को और भी बल मिलता है कि कर वसूली प्राधिकरण राज्य होना चाहिए न कि केन्द्र।

5.24 प्रश्न नहीं उठता क्योंकि मैंने सुझाव दिया है कि राज्य ही वसूली प्राधिकरण होना चाहिए न कि केन्द्र।

5.25 प्रश्न नहीं उठता।

5.26 केन्द्र पर कर की वसूली का अधिक भार है, इसलिए कराधान में रिसाव है। मैंने पहले ही यह सुझाव दिया है कि करों की वसूली के लिए राज्य को प्राधिकृत किया जाना चाहिए। कर की वसूली एक अत्यावश्यक मुद्दा है।

भाग VI

आर्थिक और सामाजिक योजना

6.1 मैं पहले ही सुझाव दे चुका हूं कि राष्ट्रीय महत्व को उचित रूप से ध्यान में रखते हुए राज्य अपनी परियोजनाओं को कार्यान्वित कर सकते हैं। राज्य सरकारें कार्यक्रमों को सफल बनाने में स्वाभाविक रूप से अभिरुचि लेते हैं।

6.2 राष्ट्रीय योजना आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पहले ही मैं सुझाव दे चुका हूं कि योजना बनाने का प्राधिकार राज्य को दिया जाना चाहिए।

6.10 केन्द्र से वित्तीय सहायता के सम्बन्ध में जब चर्चा होती है तभी राज्य योजनाएं अपनी पहचान खो देती है और उनका अन्तर्विषय समाप्त हो जाता है, इसलिए आर्थिक योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने में राज्य अभिरुचि नहीं लेते। अतः मैंने सुझाव दिया है कि राज्यों को अपनी योजना कार्यान्वित करने के लिए पूर्णतः प्राधिकृत किया जाना चाहिए और मेरे द्वारा सुझाई गई योजना में अन्य केन्द्रीय सहायता की कोई आवश्यकता नहीं है।

6.12 संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए, राज्य योजना आयोग को प्रभावी आर्थिक योजना बनाने का प्राधिकार देते हुए और राष्ट्रीय योजना आयोग को समाप्त करते हुए योजना प्रक्रिया को पूर्णतः विकेन्द्रीकृत किया जाना चाहिए। मात्र समन्वय की दृष्टि से राज्य योजनाओं पर अन्तर्राज्यीय परिषद में चर्चा की जा सकती है। इस प्रकार सहयोग, और संघवाद की सही भावना हमारी योजना प्रक्रिया में अनुप्रमाणित की जा सकती हैं।

6.13 ए० आर० सी० की सिफारिशों से मेरे इस सुझाव को ही बल मिला कि योजना प्रक्रिया पूर्णतः राज्य के नियंत्रण में होनी चाहिए।

भाग VII

विविध

उद्योग।

7.1 औद्योगिक विकास पूरी तरह से राज्य का विषय होना चाहिए और इसलिए पंजीकरण और अन्य मामले राज्य के अधिकार क्षेत्र में स्वत: आ जाएंगे।

7.2 यह धारणा गलत है कि राज्य के हित की परियोजना राष्ट्रहित में नहीं हो सकती। राष्ट्रीय हित और राज्य हित के बीच कोई विरोध नहीं है। राज्य के हित को प्रोत्साहन देने से राष्ट्र के हितों को स्वत: प्रोत्साहन मिलेगा। यदि एक बार यह कार्यान्वित हो जाए तो राष्ट्रीय हित, विभिन्न राज्य हित जैसी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

7.3 औद्योगिक विकास पूर्णत: राज्य का विषय होना चाहिए, इसलिए लाइसेन्स प्रदान करना और पूंजीगत मुद्दे पर नियंत्रण आदि राज्यों के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

7.4 राज्य के कार्यकलापों में केन्द्र द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप किए जाने से राज्य सरकार का स्तर घटकर एक नगरपालिका का स्तर हो गया है। स्थानीय आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, संसाधनों, पैटर्न आदि का केन्द्र की अपेक्षा राज्य द्वारा बेहतर मूल्यांकन किया जा सकता है और इसलिए आर्थिक विकास का जिम्मा लेने के लिए राज्य को पूर्णत: प्राधिकृत किया जाना चाहिए।

7.5 मैंने जो सुझाव दिये हैं उनमें ऐसी शिकायतें उत्पन्न नहीं होंगी।

7.6 यदि औद्योगिक विकास को शत प्रतिशत राज्य का विषय बना दिया जाये तो ऐसा दोषारोपण उत्पन्न ही नहीं होगा, जैसा कि मैंने अपनी प्रस्तावना में बताया है।

भाग VIII

व्यापार और वाणिज्य

8.1 व्यापार राज्य का विषय होना चाहिए और इस सम्बन्ध में अन्तर्राज्यीय व्यापार के सहज कार्यचालन के लिए अन्तर्राज्यीय परिषद की सहायता से कुछ समन्वयकारी उपाय किए जा सकते हैं।

भाग IX

9.1 कृषि राज्य का विषय होना चाहिए। केन्द्र के हस्तक्षेप से सभी राज्यों की नाराजगी प्रकट होगी जैसा कि इस समय हो रहा है।

9.2 राष्ट्रीय कृषि आयोग राज्यों की सहायता के लिए सलाहकार समिति के रूप में हो सकता है और राज्य पर उसका कोई नियंत्रण नहीं होगा।

9.4 यदि कृषि और कृषि सम्बन्धी मदें पूर्णत: राज्य के नियंत्रण के अन्तर्गत हों तो यह प्रश्न ही नहीं उठता।

9.5 राज्यों की सहायता के लिए राष्ट्रीय स्तर की अनुसंधान संस्थाएं हो सकती हैं।

भाग X

10.1 नागरिक पूर्ति राज्य का विषय है और केन्द्र को इसमें कुछ नहीं करना है। यदि राज्यों की कोई आवश्यकताएं हुई तो उनका चयन अन्तर्राज्यीय परिषद के द्वारा किया जा सकता है।

भाग XI

शिक्षा

11.1 शिक्षा पूर्णत: राज्य का विषय है और इसमें केन्द्रीय हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

11.2 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है।

11.3 परामर्श और प्रत्यायन के कार्य राज्य के शिक्षा मंत्रियों के द्वारा कारगर ढंग से किए जा सकते हैं और इसलिए दूसरे केन्द्रीय शिक्षा मंत्री की कोई आवश्यकता नहीं है।

भाग XII

12.1 मैंने पहले ही सुझाव दिया है कि अन्तर्राज्यीय परिषद सांविधिक रूप से पूर्णत: अधिकार प्राप्त निकाय के रूप में होनी चाहिए, जो राज्यों के बीच, केन्द्र और राज्यों के बीच सभी प्रकार के विवादों और सभी अत्यावश्यक मुद्दों को निपटा सके। अत:, अमेरिका के पैटर्न पर सलाहकार समिति की आवश्यकता नहीं है।

प्रजा समाजवादी पार्टी

ज्ञापन

भाग I

प्रस्तावना

संघीय सरकार ने एक लोकप्रिय राष्ट्रीय प्रशासन के रूप में संसार के विभिन्न संविधानों के इतिहास में सुस्पष्ट और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। अलग-अलग देशों के संविधानों में संघीय भावना लाने का तरीका और उनको बाद में कार्यान्वित करने की विधि यद्यपि उन राष्ट्रों में से प्रत्येक राष्ट्र में अलग-अलग हो सकती है जिसमें पूर्णत: लोकप्रिय प्रशासन प्रणाली है किन्तु इन राष्ट्रों की समृद्धि और कल्याण कार्यों में उत्कृष्टता के अनिवार्य रूप से यह प्रमाणित होता है कि उनके अपने संविधानों में परिकल्पित संघीय शासन प्रणाली की भावना उन राष्ट्रों के लोगों की निष्क्रिय राजनीतिक आकांक्षाओं को इंगित करने का एक साधन मात्र ही नहीं रही है बल्कि व्यावहारिक रूप से भी पूरे राष्ट्र में यह भावना गहराई से घर कर गयी है और इसके परिणामस्वरूप इन राष्ट्रों में खुशहाली आयी है। इस उल्लेखनीय उपलब्धि के दो मुख्य उदाहरण स्विटजरलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका हैं।

ऐसी प्रोत्साहित करने वाली राजनैतिक उपलब्धियां और वास्तविकताएं अक्सर संविधान वादियों और उत्कृष्ट व्यक्तियों को आश्चर्य चकित करती हैं और वह यह देखने के लिए संविधान के ढांचे की गहराई से जांच करते हैं कि क्या इन संविधानों में संघीय सिद्धान्तों को मूर्त रूप देने का कोई विशिष्ट या गुप्त तरीका मौजूद है, जिससे कि अपनी जनता में व्यवहारत: सभी क्षेत्रों में अधिक सफलता लायी जा सकती है या ऐसा कोई बाह्य प्रभाव या परिस्थिति है जो कि इन संविधानों के संघवाद के मूलतत्व को चरम वास्तविकता तक प्रोत्साहित कर रही है। प्राय: इन संविधानों में संघीय सिद्धान्तों का ढंग और प्रमात्रा में इतना अधिक परिवर्तन नहीं है परन्तु उनके अंतिम रूप से पड़ने वाले प्रभाव और उपलब्धियों में परिवर्तन अवश्य होता है जिससे यह पता चलता है कि कुछ बाह्य परिस्थितियां ऐसी होती है जिनका प्रभाव संघवाद के सिद्धान्तों पर अवश्य पड़ता है। यह बाह्य परिस्थिति कुछ और नहीं सिवाय इस एहसास के कि संविधान जनता के लिए ही है और किसी संविधान को जीवित रखने के लिए कभी लोगों की बलि नहीं दी जानी चाहिए।

विभिन्न संघवादों के कार्यों के संबंध में किए गए निरीक्षण का सहारा लेते हुए भारतीय संविधान पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर विचार योग्य काफी सामग्री उपलब्ध हो सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान संरचना में पूरी तरह संघीय है परंतु दुर्भाग्य से व्यवहारिक रूप से एकात्मक की भांति कार्य करता है। हमारे संविधान निर्माताओं ने अपनी घोषणा के अनुसार उस सीमा तक हमारे संविधान को "मजबूत केन्द्र से युक्त संघीय ढांचा प्रदान किया परंतु दुर्भाग्य से संविधान निर्माण के समय संगतता बनाए रखने के नियम का अनुपालन नहीं किया गया और केन्द्र को अपेक्षाकृत अधिक अधिकार दिए गए तथा राज्यों को नाममात्र के अधिकार दिए गए। खेद की बात है कि भारतीय संविधान में आत्मसात संघवाद की भावना केवल संविधान के पृष्ठों तक ही सीमित रही और इसके बारे में केवल बातचीत ही होती रही और यह केवल मात्र अव्यवहारिक सिद्धान्त बन कर रह गयी जबकि इसके विपरीत स्विटजरलैंड और अमरीका

जैसे देशों के संविधानों में संघवाद ने स्वयं अपनी पहचान बना ली है जिसमें कि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय सरकारों को समानाधिकार हैं और पूर्णत: स्वतन्त्र है ।"

भारत एक विशाल और विषमजातीय राष्ट्र है जिसमें कि विभिन्न अभिरुचियों और परम्पराओं के लोग साथ-साथ रहते हैं । संक्षेप में यह राज्यों का संघ हैं जिसमें कि प्रत्येक राज्य की अपनी वैयक्तिकताएं और विशिष्टताएं हैं तथा एक ऐसा प्रशासन तैयार किया गया है, जोकि इन राज्यों को पृथक अस्तित्व के विकास में प्रभावशाली तरीके से मदद पहुंचा सकते है जिससे कि वहां लोगों के जीवन को समृद्ध बनाया जा सके । **भारत का एक राष्ट्र की भांति विकास तभी हो सकता है जबकि इन राज्यों का व्यक्तिगत और संयुक्त रूप से विकास हो** । ऐसी आशा करना व्यर्थ और निष्फल होगा कि एक मजबूत संघीय सरकार प्रभावी ढंग से व्यक्तिगत विकास और भारत के प्रत्येक राज्य का विकास कर सकती है--भारत के विशाल राज्य क्षेत्र के आकार और इसकी विषमजातीयता को ध्यान में रखकर संघ सरकार ने ऐसे भरसक प्रयत्न किये है यह प्रत्येक राज्य के मामलों में स्वयं को शामिल होने को परिदर्शी विवेचन और दृष्टिकोण से अधिक नहीं कहा जा सकता और इसी के परिणामस्वरूप राज्यों का व्यक्तिगत रूप से सीमित विकास हुआ है । बहुसंख्यक भारतीय जनता अभी भी गरीब है इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पहले की प्रशासनिक प्रवृत्ति किस प्रकार की रही है ।

केन्द्र-राज्य संबंधों के अध्याय की जैसी भारतीय संविधान में परिकल्पना की गई और जैसी इसकी वर्तमान स्थिति है उससे निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकलता हैं कि यद्यपि यथातथ्यत: इस अध्याय में राज्य स्वायत्तता को अधिक महत्व दिया गया है परंतु इस अध्याय में राज्यों के अध:पतन के संबंध में कोई विवरण नहीं दिया गया है । परिणामस्वरूप हमारे संविधान का उद्देश्य एक स्वप्न बन कर यह गया है । यह प्रश्न अपरिहार्य है कि हमारे राज्य की इकाइयों के वैयक्तिक विकास और उपलब्धियों में क्या अड़चने या बाधाएं है । इसके जवाब में यह कहा गया हैं कि राज्य के संघीय अधिकारों का प्रयोग केन्द्र की अत्यधिक हानिकर और अनुचित निगरानी और नियन्त्रण के अधीन है । यह इसलिये हैं क्योंकि "मजबूत केन्द्र" की परिकल्पना को अविवेकपूर्ण ढंग से इस सीमा तक महत्व दिया गया है कि इसको निरंकुशता का साधन बना दिया गया है क्योंकि भारत की एक राष्ट्र की भांति एकता और अखंडता भारतीय संविधान के रचयिताओं के मस्तिष्क में प्रमुख स्थान बनाये हुए थी इसलिए हमारे संविधान के प्रारुपकारों को उनको सुरक्षित करने के अत्यधिक उत्साहपूर्ण प्रयासों ने अनजाने ही उन उपयोगी संघीय सिद्धांतों को प्रत्येक स्थिति में संघ की संवीक्षा और पर्यालोचन के वशीभूत करके अपंग बना दिया गया है । इस स्पष्ट स्थिति को एक उदाहरण के सदृश माना जा सकता है जिसमें कि कोई व्यक्ति किसी को अपना घोड़ा उपहार में देकर भी उसकी लगाम अपने हाथ में रखता है । इस प्रवृत्ति के लोकप्रिय या हानिकारक आयामों को स्पष्ट रूप से देखने के लिए अधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं हैं । साधारणत: इससे न तो घोड़े को प्राप्त करने वाला प्रत्यक्ष घुड़सवार होने के नाते इसका कोई लाभ उठा सकता है क्योंकि वह इसको अपने इच्छित गंतव्य की ओर निर्देशित नहीं कर सकता न ही घोड़े को देने वाला, घोड़े की लगाम पकड़े हुए है, इससे कोई लाभ प्राप्त कर सकता है क्योंकि उपहार इसी दृष्टिकोण से दिया गया है कि वह प्राप्तकर्ता के कल्याण और सुविधा के लिए हो । ऐसे गतिरोध के बावजूद यदि घोड़े को एड़ दी जाए तो संभावित परिणाम यह हो सकते हैं कि घुड़सवार और लगाम पकड़ने वाला व्यक्ति जमीन से आ टकराए और घोड़ा अलग भटक जाए । भारतीय संघ के अन्तर्गत राज्यों की ऐसी व्यवस्था की गयी है जिसमें उन्हें स्वायत्तता दी गयी हैं । किन्तु यह अभी तक अपना उद्देश्य यानी व्यक्तिगत विकास और राज्यों की समृद्धि को प्राप्त नहीं कर सकी है ।

आज केन्द्र-राज्य संबंधों के तत्काल पुनरीक्षण की अत्यंत आवश्यकता है और यदि इस आवश्यकता के संबंध में कोई ठोस और सार्थक कारंवाई नहीं की जाती है तो इस दिशा में प्रयत्नशील लोगों के प्रयत्न निरर्थक सिद्ध होंगे ।

पिछले अनेक वर्षों से इस संबंध में काफी विचार-विमर्श हुए हैं । अच्छे संविधानविदों और ख्यातिप्राप्त अध्ययन समूहों ने विस्तार से इस मुद्दे पर विचार किया । अन्य सुझावों के साथ एक उपाय जिसका स्वागत किया गया है वह प्रभावी विकेन्द्रीकरण का कार्यक्रम हैं । इसमें दिये गये पूर्ववर्ती अवलोकनों को ध्यान में रखते हुए यह अधिक उचित प्रतीत है कि केवल सार्थक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से ही हमारे संविधान में दिए गए संघीय सिद्धान्तों को जीवंत रखा जा सकता है और इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह प्रत्येक राज्य में पूर्णरूपेण अपनाए जाएं और उन राज्यों की आत्मनिर्भरता और समृद्धि का आधार बन सकें ।

राज्यों के लिए विकेन्द्रीकरण या शक्तियों के अंतरण को हमारे संविधान के वर्तमान ढांचे में इसके विद्यमान पक्ष के अन्तर्गत बिना किसी मूलभूत संशोधन के प्राप्त किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त संघीय उपबंधों में इस ढंग से संशोधन किया जाये जिससे कि केन्द्र द्वारा अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप करने, प्रतिबंध लगाने और बलात वसूली जैसे कारणों से उत्पन्न अवरोध को कम किया जा सके यह उचित और सार्थक कारंवाई होगी । यही सुझाव तमिलनाडु सरकार द्वारा इस संबंध में नियुक्त की गई राजामन्नार समिति द्वारा उल्लिखित कारंवाई में किया गया है । समिति ने जिन विभिन्न अनुच्छेदों में संशोधन करना चाहा था उनमें से केवल अनुच्छेद 251, 256, 257, 355, 356, 357 और 365 में संशोधन करना या उन्हें हटाना आवश्यक है । राज्यों की स्वायत्ताको बढ़ाने के पक्ष में दिये गये इस प्रभावशाली सुझाव के कारण, यह कहना बेबुनियाद है कि केन्द्र को इस सीमा तक कमजोर बना देने से राज्य अपनी बेलगाम शक्तियों की वजह से अंतत: सभी तरह से पृथक अस्तित्वों में विखंडित हो जायेंगे । भारत के संघ के रूप में इन राज्यों का सामूहिक स्तर किसी भी कीमत पर कम नहीं किया जाना चाहिये । संक्षेप में संघीय सरकार के पास केवल वे शक्तियां होनी चाहिये जिनसे कि यह राज्यों को राष्ट्र से संबंध विच्छेद करने या किसी दूसरे पड़ोसी राज्य के लिये खतरा बनने या संविधान के अधिकारातीत कार्यक्रम लागू करने से रोक सके । संक्षेप में संघ को प्रशासनिक और विधायी क्षेत्रों में इतनी छूट दी जानी चाहिए जो कि देश के किसी भाग को बाहरी आक्रमण से बचाने के लिए पर्याप्त हो और राज्यों में आंतरिक अव्यवस्था होने या पूर्ण अलगाव होने से रोक सके । इस संबंध में महत्त्वपूर्ण विषयों जैसे—रक्षा, संचार, यातायात, नागरिकता, मुद्रा, प्रत्यर्पण, और ऐसे ही विषय जिन्हें यदि राज्यों पर छोड़ दिया जाये तो ये किसी भी ढंग से पूरे संघीय भारत को खतरे में डाल सकते हों तो इन्हें केन्द्र के अधिकार में रखना चाहिए और केन्द्र को इनका निष्पादन करने का पूर्ण-विशेषाधिकार दिया जाना चाहिए । विकेन्द्रीकरण के संबंध में और अधिक विस्तार से आगे उन भागों में बताया जाएगा जो विभिन्न संघीय संबंधों सें सुधार से संबंधित है ।

प्रजा समाजवादी दल, केन्द्र-राज्य संबंधों पर उपर्युक्त संतुलित अध्ययन को प्रभावशाली विकेन्द्रीकरण के सुझावों के साथ, सम्माननीय सरकारिया आयोग के समक्ष उपयुक्त और पर्याप्त विचार-विमर्श के लिये प्रस्तुत करता है । दल और आगे यही कहने का प्रयास करेगा कि एक प्रभावी समरूप और व्यावहारिक समाजवाद को तभी लाया जा सकता है जब कि हमारे संविधान को विकेन्द्रित करने का कार्य प्रारंभ किया जाए ।

भाग II

विधायी संबंध

भारतीय संविधान के भाग-XI के अध्याय I के अन्तर्गत अनुच्छेद 245 से अनुच्छेद 255 राज्यों और संघ के बीच के विधायी संबंधों से संबंधित है । यह अध्याय संघ और राज्य के बीच विधायी संबंधों पर संघीय संविधान के अन्तर्गत स्वायत्तता की सीमाओं का सीमांकन करता है जोकि विधान के कार्यक्षेत्र को ध्यान में रखते हुये संघ और राज्यों के लिए निश्चित की गई है । भारतीय संविधान राज्यों और संघ के बीच विधान को सीमाक्षेत्र और विषय इन दो पक्षों में विभाजित करते हुए विधायी शक्तियों का वितरण दो रुपों में करता है । यद्यपि, सिद्धांत रूप में सीमा क्षेत्रों और अन्य विषयों के मामले में विधायी शक्तियों का विभाजन प्रकट रूप में दिखाई देता, तथापी यह वास्तव में दु:खद अनुभूति है कि राज्यों को विधायी स्वायत्तता प्राप्त होने पर भी वे स्वतन्त्र कार्यान्वयन नहीं कर सकते क्योंकि संघ के अनियंत्रित हस्तक्षेप के द्वारा उनकी स्वायत्तता पर प्रतिबंध लग गया है ।

संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का सम्पूर्ण रूप से विभाजन संविधान की सातवी अनुसूची के रूप में उल्लिखित तीन सूचियों के अन्तर्गत किया

गया है। ये तीन सूचियां संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के रूप में हैं। संबंधित सूचियों में दी गई मदों और राज्यों को दिए गए विषयों पर स्वतंत्रता पूर्वक विधान बनाने के लिए राज्यों को दी गई छूट के संबंध में निष्पक्ष प्रेक्षण नहीं हो सका है बल्कि इस निष्कर्ष से पलायन किया गया है कि भारतीय संविधान में वास्तविक संघीय राज्य के लिये कोई स्थान नहीं है और हमारे लोगों की राजनैतिक विपत्ति में संघ का कोई स्थान नहीं है।

संघ सूची में ऐसी मदों को शामिल करने के अतिरिक्त जो भारत राष्ट्र की स्वतंत्रता, एकता, अखंडता और सुरक्षा के संरक्षण के लिए आवश्यक हैं, ऐसे विषय भी शामिल किए गए हैं जो वास्तविक संघीय व्यवस्था के अंतर्गत राज्यों को सौंपे जाने चाहिए थे। इस संबंध में कि कौन सी मदें संघसूची में रखी जानी चाहिये, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर विस्तृत विचार-विमर्श के बाद ही संतोषजनक रूप से निर्णय किया जा सकता है। उसके बाद संघसूची की मद संख्या 97 में संशोधन उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार संघसूची में प्रमुख मदों से संबंधित अवशिष्ट मामले मात्र संघीय विधान की परिधि के अन्तर्गत आने चाहिये। संघसूची जिस रूप में इस समय है उसने हमारे संघ को व्यावहारिक रूप से संकीर्ण कर दिया है।

यदि सूची संख्या 2 अर्थात् राज्य सूची को देखें तो उसमें शामिल मदें न केवल संघ विधायिका की जूठन मात्र है बल्कि राज्य के लिये विधायिका की उस जूठन का उपभोग करना व्यावहारिक रूप से असंभव हो गया है क्योंकि संविधान ने केन्द्र के नियंत्रण के अधीन बहुत से रक्षक तैनात कर दिए हैं, जिसकी वजह से राज्यों को कभी भी संघवाद की उपलब्धि नहीं हुई। राज्य सूची में बताई गई मदों के संबंध में राज्यों की वैधानिक स्वायत्तता संसद की निम्नलिखित शर्तों या निर्बंधनों के अधीन है :—

(i) अनुच्छेद 200—राज्यों के विधेयकों को राष्ट्रपति की सहमति के लिये सुरक्षित रखना होगा।

(ii) अनुच्छेद 201—अभिपुष्टि के लिये राज्यों द्वारा प्रस्तुत किए गए विधायी बिलों की स्वीकृति या अस्वीकृति के संबंध में राष्ट्रपति को स्वनिर्णय का अधिकार होगा।

(iii) अनुच्छेद 250 पठित अनुच्छेद 251—के साथ राज्य विधान अनुच्छेद 250 के अन्तर्गत संसद की विधायी शक्ति के अधीन होगा।

(iv) अनुच्छेद 356 (ख)—राज्यों में आपातस्थिति की घोषणा करना।

(v) अनुच्छेद 31 (क)—सम्पदा के अर्जन, निगम के समामेलन, निगम के अधिकारियों के रूपांतरण अधिकार आदि के संबंध में राज्य द्वारा निर्मित कानून राष्ट्रपति की सहमति के अधीन होगा। 31(ग) के अन्तर्गत राज्य के निदेशन तत्वों को लागू करने के लिये राज्य द्वारा बनाए गए कानून जब तक कि राष्ट्रपति द्वारा उनकी अभिपुष्टि न हो जाए न्यायालय द्वारा समीक्षाधीन होंगे।

(vi) अनुच्छेद 282(2)—बिजली और पानी पर कर लगाने संबंधी राज्य के कानून राष्ट्रपति की अभिपुष्टि के अधीन होंगे।

(vii) अनुच्छेद 304(ख)—व्यापार, वाणिज्य और परस्पर व्यवहार की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाने के संबंध में विधेयक प्रस्तुत करने की राज्य की शक्ति राष्ट्रपति की सहमति के अधीन होगी।

यद्यपि, अनुच्छेद 249 और 252 में राज्यविधान के क्षेत्र में केन्द्रीय विधानमंडल की स्वायत्तता बतायी गयी है तथापि अनुच्छेद संघवाद के सिद्धांतों के विरुद्ध नहीं क्योंकि इन अनुच्छेदों के अन्तर्गत विधान बनाने का संघ विधान मंडल का प्राधिकार राज्य के नियंत्रणाधीन है। संक्षेप में यह राज्य से केन्द्र को प्रत्यायोजित विधान है।

उपर्युक्त उपबंधों को सर्वोच्च या सुदृढ़ बनाए जाने से केन्द्र राज्यविधान में अंतिम हस्तक्षेप कर सकता है जबकि अनुच्छेद 368 संघ संसद को संघीय संविधान में संशोधन करने का अधिकार देता है, जिसमें यद्यपि कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा प्रस्तावित संशोधन की अभिपुष्टि की जानी चाहिए तथापि इस संबंध में राज्यों से परामर्श करना या पहले उनकी सहमति प्राप्त करने की अनिवार्यता के बारे में उसके कोई उपबंध नहीं है। ऐसी व्यवस्था न होने के कारण अनुच्छेद 368 संघटक राज्यों के संघीय अधिकारों पर घात लगाने वाला एक अधिनायकीय उपबंध बन जाता है।

इस तथ्य बावजूद राज्य सूची में कुछ नहीं, वह केवल संघविधायिका की जूठन मात्र है, इसमें से वन, शिक्षा, न्यायप्रशासन आदि, जैसे अनिवार्य विषयों को छीन कर इस सूची को पिछले 34 वर्षों से धीरे धीरे निरूपाय किया जा रहा है। संविधान के 42 वें संशोधन से राज्य सूची के महत्वपूर्ण विषयों पर आघात हुआ और इस संशोधन ने भी अनुच्छेद 368 की घात लगाने वाली उपर्युक्त प्रवृत्तियों को ही प्रामाणिक और अभिव्यक्त किया है।

समवर्ती सूची के विषयों को देख कर भी यही कहना उपयुक्त और न्यायसंगत होगा कि समवर्ती सूची कुछ नहीं है। राज्य सूची के समान बल्कि यह संघसूची की अनुषंगी है, और इसमें केवल सम्भावित विषय ही नहीं है अपितु इसमें उल्लिखित मदों के संबंध में राज्य कानूनों पर संघ कानूनों की उच्चता बताई गई है और इस प्रकार यह सम्पूर्ण सूची संघसूची की अनुपूरक है। निम्नलिखित तथ्यों को देखते हुए--

(i) संघसूची में ऐसी मदें दी गई है जिनके संबंध में राज्य हकदार हैं।

(ii) राज्य सूची केन्द्र के अत्यधिक हस्तक्षेप या अनुसमर्थन के अध्यधीन हैं।

(iii) समवर्ती सूची वस्तुतः अनुपूरक संघसूची हो गई है।

(iv) अवशिष्ट मदों पर कानून बनाने का परम अधिकार केन्द्र द्वारा अपने पास रखा गया है।

केवल यही कहा जा सकता है कि हमारे संविधान के अंतर्गत किए गए विधायी शक्तियों के विभाजन ने उसकी प्रभावोत्पादकता को समाप्त कर दिया है, क्योंकि सभी सूचियों के अन्ततः कार्यान्वयन में संसद का अनुचित और अहितकर प्रभुत्व है। सही मानने में इस स्थिति ने राज्य स्वायत्तता को "निष्क्रियता" की स्थिति में पहुंचा दिया है जिससे राज्य का अस्तित्व होने पर भी उसकी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पंगु हो गई है। संक्षेप में, इस मामले में जहां विधायी अधिकारों के वर्तमान विभाजन से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है जिसमें केवल ऐसे ही राज्य कुछ अंश तक स्वायत्तता प्राप्त कर सकेंगे जो केन्द्र के साथ सफलतापूर्वक "मधुर संबंध" बनाए रख सकते हैं या उसकी "खुशामद" कर सकते हैं।

प्रजा सोशालिस्ट पार्टी ने ऐसी विसंगतियों और असामंजस्य के समाधान की जो व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की है, उससे संघ और राज्यों के बीच विधायी संबंध व्यावहारिक रूप से निष्फल और अमूर्त हो गए हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था कुल मिलाकर अपनी कृषि और औद्योगिक सम्भाव्यताओं का प्रतिबिंब है। ये मदें समानरूप से प्रत्येक राज्य की उन्नति का आधार होती हैं। राज्य की आर्थिक और राजनैतिक उन्नति में उद्योग, कृषि व्यापार और वाणिज्य का अनिवार्य महत्व है। यह बताते हुए हमारा दम घुटता है कि आर्थिक विकास के व्यापक स्रोत और उनसे संबद्ध कार्यकलाप और क्षेत्र संघ विधान तक सीमित है। अतः सर्वसामान्य की मांग है कि हमारे राज्यों की सम्पूर्ण उन्नति को सुनिश्चित करने के लिए कृषि, उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्रों से संबद्ध और उनके अन्तर्गत आने वाले सभी विषय निश्चय ही राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिए जाने चाहिये और साथ ही संविधान के उन अनुच्छेदों में संशोधन किया जाना चाहिये या उनको हटा दिया जाना चाहिये, जिनसे प्रत्येक बार की जाने वाली संघ संवीक्षा के अधीन अब तक राज्य की विधायी स्वायत्तता अपंग हुई है। इसकी समीक्षा करने की आवश्यकता है जिसमें राज्यों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाएगा जिससे कि राज्य सामाजिक कल्याण के उपायों और विकासात्मक कार्यक्रमों को लागू करने का उत्तरदायित्व ग्रहण कर सकें और इस संबंध में राज्यों की पर्याप्त स्वायत्तता के प्रत्यानयन के लिये संविधान की उचित पुनर्व्यवस्था के लिये उपबंध बनाया जाएगा जिससे कि राज्यों को निरन्तर उन्नति के योग्य बनाया जा सके। यदि वैधानिक स्वायत्तता की प्रमात्रा, जिसे राज्य संघीय ढांचे के अन्तर्गत उचित रूप से प्राप्त करने के लिए हकदार हैं, उनको प्राप्त नहीं होती है, तो कृषि उद्योग, व्यापार और वाणिज्य

के क्षेत्रों में मौजूदा क्षेत्रीय असंतुलनों के कारण उनका एक समान विकास निरन्तर प्रभावित होता रहेगा और इससे राज्यों की अर्थ व्यवस्था में कटु विकृति का मार्ग प्रशस्त होगा ।

यह सुझाव दिया जाता है कि संविधान के संशोधन के मामले में संसद को दिए गए अधिकारों को आवश्यक रूप से पुनर्व्यवस्थित किया जाए जिससे कि राज्य की विधायी शक्तियों को सीमित करने, कम करने, उनसे राज्य को वंचित करने का संशोधन, राज्यों से पूर्व परामर्श, उनकी पूर्व सहमति के बाद ही संसद में प्रस्तुत किया जाए । यहां यह सुझाव देना भी उपयुक्त होगा कि हमारे संविधान में ऐसा उपबंध सम्मिलित किया जाए जिससे कि एक निश्चित समय अनुसूची निर्धारित की जाए जिसके अंतर्गत अनुच्छेद 200 के अधीन राष्ट्रपति अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिये बाध्य हो । अनुच्छेद 201 को भी इसी प्रकार संशोधित किया जाए जिससे कि राज्यों के द्वारा बनाए गए कानून के संबंध में राष्ट्रपति की असहमति की अनियंत्रित स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया जाए जब तक कि वे स्पष्टतः संविधान के अधिकारातीत न हों ।

भाग III

राज्यपाल

जैसा कि भारतीय संविधान के उपबंधों के अनुसार अपेक्षित है, राज्यपाल संघ का प्रतिनिधि है जो राज्य के कार्यकारी प्रधान के रूप में कार्य करता है । संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत राज्यपाल लगभग मध्यस्थ के रूप में प्रतीत होता है । हमारे संविधान ढांचे में राज्यपाल के विशिष्ट कार्यकारी, वित्तीय, वैधानिक और न्यायिक अधीक्षण के अंतर्गत राज्य की स्वायत्तता राज्यपाल के आदेश पर नाचने वाली गुड़िया जैसी लगती है ।

वैधानिक क्षेत्र में राज्यपाल को अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत अपने किसी भी बिल को राष्ट्रपति की सहमति के लिये सुरक्षित रखने का पूर्णविवेकाधिकार प्राप्त है । यह मूलतः संघीय भावना के विरुद्ध है, क्योंकि राज्य द्वारा प्रतिपादित प्रत्येक बिल राज्य में रहने वाले लोगों के जीवन और उनके विकास से संबंधित कुछ अपेक्षाओं को प्रतिबिम्बित करता है । बिल की अत्यावश्यकता एक अन्य कारक है । इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुये यदि राज्यपाल राष्ट्रपति की सहमति के लिये बिलों को सुरक्षित रखने के अधिकार का अंधाधुंध प्रयोग करता है, तो राज्य के विकास की प्रस्तावित दिशा अवरुद्ध हो जाएगी और प्रगति के बजाए उसका अपकर्ष होगा । राज्यपाल की अध्यादेश लाने की शक्ति एक ऐसा संभावित अस्त्र है, जिसका अविवेकपूर्ण प्रयोग करने से राज्य की उचित उन्नति में विध्वंसकारी स्थिति उत्पन्न हो सकती है । वित्त, जोकि राज्य स्वायत्तता का प्रमुख तत्व है, उसका भी नियंत्रण राज्यपाल के द्वारा किया जाता है, धन विधेयकों के संबंध में भी, जोकि राज्य के विकासात्मक कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए राजस्व के संसाधनों की वृद्धि के लिये रखे जाते हैं, राज्यपाल के द्वारा सिफारिश की जानी आवश्यक है । संक्षेप में भारतीय संविधान द्वारा दी गई राज्यपाल की भूमिका संघ कार्यपालिका द्वारा नियुक्त किए गए राज्य अधीक्षक की भूमिका है ।

हमारे संविधान के द्वारा राज्यपाल के कार्य को विवेकाधीन रूप में चित्रित किए जाने के बावजूद, राज्यों के पिछले चौतीस वर्षों के अनुभवों से पता चलता है कि राज्यपाल कुछ नहीं है, अपितु वह संघ और राज्य के बीच एक स्थिर कार्य माध्यम है । ऐसी स्थिति में वह सामान्यतः न तो राज्य का उल्लंघन करता है और न ही केन्द्र का पक्ष लेता है । यह सही है कि अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों के राज्यपालों द्वारा राष्ट्रपति को की जाने वाली रिपोर्टों की सिरीज सभी अवसरों पर न्यायोचित नहीं थी, जोकि आगे चलकर इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि राज्यपाल विद्यमान संवैधानिक उपबंधों के अंतर्गत राज्य के भावी विकास में बाधा डाल सकता है । चूंकि राज्यों में उत्तेजित असंतोष के कारण केन्द्र-राज्य संबंधों का मामला इस समय एक प्रज्वलित है और चूंकि केन्द्र-राज्य संबंधों के मामले में राज्यपाल की प्रमुख भूमिका है, अतः संघ के सुझाए गए विकेन्द्रीकरण को ध्यान में रखते हुये राज्यपालों के प्रशासनिक प्रान्त में सम्यक् पुनर्व्यवस्था तुरंत आवश्यक है । राज्यों को वास्तविक स्वायत्तता प्रदान किए जाने की स्थिति में राज्यपाल को और अधिक शक्तियां प्रदान की जाएंगी जिससे कि वह सुरक्षा बाल्व के रूप में कार्य कर सके । विकेन्द्रीकृत वातावरण में राज्यपाल को राष्ट्रीय अखंडता, एकता और सुरक्षा के प्रहरी के रूप में कार्य करना चाहिये । अतः राज्यपालों को इसके बाद केवल वही शक्तियां प्रदान की जानी चाहिये जोकि उनको केन्द्र की सहायता करने तथा राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा को बनाए रखने के योग्य बना सकें । राज्यपाल को राज्य में केन्द्र का परिदर्शी होना चाहिए । राज्यों के द्वारा बनाई जाने वाली नीति में अनावश्यक रूप से बाधा उत्पन्न न करते हुए राज्यपाल को स्वायत्तता का प्रयोग करने वाले राज्यों पर यह सुनिश्चित करने के लिये निगरानी रखनी चाहिए कि उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है जो कि संविधान के उपबंधों के विरुद्ध हो या जिससे राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा को खतरा हो । ऐसी परिस्थितियों में भी राज्यपाल की रिपोर्ट की राष्ट्रपति या संसद द्वारा कार्रवाई किए जाने से पूर्व संघ-राज्य परिषदों के द्वारा संवीक्षा की जानी चाहिये ।

प्रभावी विकेन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप राज्यपाल के पद की सम्भाव्यताओं को संशोधित करने की संभावनाओं के ध्यान में रखते हुये, प्रजा समाजवादी दल ने निम्नलिखित सुझाव देने का साहस किया है ।

राज्यपाल को नियुक्त करने या चुनने के मामले में विद्यमान उपबंधों में संशोधन किया जाना चाहिये । इसके बाद राज्यपालों के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए प्रस्तावित व्यक्तियों के नाम राष्ट्रपति के द्वारा प्रधानमंत्री को सूचित किये जाने चाहिये जो क्रम से ऐसे व्यक्तियों के नाम लोकसभा या राज्य सभा को प्रस्तुत करेगा । दोनों सदनों द्वारा चुने गये उम्मीदवार को ही राष्ट्रपति के द्वारा राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए । उन्हीं उम्मीदवारों को, जिन्हें सदनों में उपस्थित सदस्यों के द्वारा सबसे अधिक मत दिए गए हों, चुना गया घोषित किया जाएगा ।

इसके बाद, राज्यपाल को नियुक्त करने से पूर्व संबंधित मुख्यमंत्री से परामर्श लेने की वर्तमान प्रक्रिया को समाप्त कर दिया जाना चाहिये क्योंकि मुख्यमंत्री की सहायता या सहमति के द्वारा नियुक्त किये जाने वाले राज्यपाल में निरन्तर संबंधित मंत्रालय के आभार की भावना रहेगी जिसके फलस्वरूप संघ कार्यपालिका के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने वाले राज्यपाल को प्रभावी और निष्पक्ष रूप से अपने कार्यों को पूरा करने में संबंधित मंत्रालय बाधा उत्पन्न कर सकता है । विकेन्द्रीकृत ढांचे के अन्तर्गत यदि कोई राज्यपाल उन संबंधित राज्यों के साथ कोई छद्म कार्य करता है, जो स्वायत्तता के शिखर पर हों, तो राज्य की संभव हानिकर प्रगति या प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने के आशय से किए जाने वाले सांविधानिक सुरक्षोपाय निरर्थक समझे जाएंगे ।

निम्नलिखित सुझावों पर भी उचित ध्यान दिया जाए ।

(i) राज्यपाल का यह दायित्व होना चाहिये कि वह सबसे बड़े दल के नेता अथवा उन दलों के नेताओं को सरकार बनाने के लिये बुलाए जिन्होंने संयुक्त रूप से चुनाव लड़ा हो । सबसे बड़े दल या संयुक्त दल का निर्धारण केवल चुनाव परिणामों के आधार पर किया जाना चाहिये ।

(ii) सरकार ने विधान मंडल से विश्वास बनाए रखा है या खो दिया है, इस प्रश्न की परीक्षा राज्यपाल के विवेकाधीन मूल्यांकन के अनुसार नहीं की जानी चाहिये अपितु सदन में की जानी चाहिये ।

(iii) यह उपबंध होना चाहिये कि यदि विधानमंडल के कम-से-कम एक तिहाई सदस्य सत्र बुलाने के लिये अनुरोध करें तो राज्यपाल को विधान मंडल का सत्र बुलाने का अधिकार दिया जाना चाहिए ।

अल्पसंख्यकों और पिछड़ी जातियों का संरक्षण संघ और राज्य को सौंपा गया एक प्रमुख दायित्व है । इस संबंध में यह सुझाव दिया जा सकता है कि राज्यपाल के पद के लिये पचास प्रतिशत उम्मीदवारों का चयन अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों से किया जाना चाहिये । यह सब इसलिये भी अत्यावश्यक है क्योंकि इन पिछड़ी जातियों के अधिकार या उन्नयन के मामले में अभी तक इनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है या इनकी कोई आवाज नहीं है । इन जातियों के पर्याप्त संख्या में राज्यपाल होने से वे यह देख सकेंगे कि राज्यों ने उनके उन्नयन के लिये पर्याप्त व्यवस्था की है ।

निर्णायक सुझाव के रूप मे यह भी अपेक्षित है कि यदि राज्यपाल प्रस्तावित विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत विवेकाधिकारों का निरन्तर प्रयोग करता है तो ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य हो जाता है कि राज्यपाल के द्वारा प्रयोग किए जाने वाले सभी विवेकाधिकार संघ राज्य परिषद् के समीक्षाधीन होने चाहियें ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

शक्तियों के संघीय विभाजन में प्रशासनिक संबंध किसी राज्य की विधायी और वित्तीय स्वायत्तता की क्षमता और उसके उपयोग को प्रमाणित करते हैं।

प्रशासनिक संबंध या राज्य की कार्यकारी स्वायत्तता अधिकांशतः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 256 से 263, 356, 365 और 323क के अनुसार शामिल होते हैं। इन उपबंधों को नैमित्तिक रूप से पढ़ने से एक बार फिर ठीक उसी बात की पुष्टि होगी जो अन्यत्र भी केन्द्र-राज्य संबंधों के क्षेत्र में है। राज्य कार्यपालिका व्यावहारिक रूप से इस अर्थ में एक कल्पना है कि राज्य कार्यपालिका के अधिकांश प्राधिकारियों की नियुक्ति या तो संघ कार्यपालिका के द्वारा की जाती है या राज्यपाल करता है जो कि राज्य में संघ कार्यपालिका का एजेंट होता है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 256, 257 और 365 के अन्तर्गत राज्य कार्यपालिका की स्वतंत्रता पर संसद द्वारा समग्र एकत्व नियंत्रण रखा जाता है।

राज्यकार्यपालिका के ऊपर संघ कार्यपालिका के पूर्ण नियंत्रण का कारण यह है कि विधायी संबंधों के अन्तर्गत संघ सूची और समवर्ती सूची ने केन्द्र को इतने अधिक विधायी अधिकार दे दिये हैं, कि इन सूचियों की श्रेष्ठता बनाए रखने और उसकी रक्षा करने के लिए संविधान निर्माताओं के समक्ष कोई अन्य विकल्प नहीं था इसलिये संघ कार्यपालिका के द्वारा राज्य कार्यपालिका पर निरन्तर निगरानी और नियंत्रण रखा जाता है। यही असली कारण है कि हमारे संघ और राज्यों में अपने संबंधित सभी कानूनों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और प्रशासन के लिये अलग एजेंसियां नहीं हैं।

संविधान के विकेन्द्रीकरण के सुझाव को ध्यान में रखते हुये, अब संघ और राज्यों के बीच विद्यमान कार्यकारी संबंधों के पुनःसमायोजन की आवश्यकता है।

1. चूंकि संघसूची में केवल ऐसी मदें ही होनी चाहिए, जिनका राष्ट्र की एकता, अखंडता और सुरक्षा से संबंध हो, अतः अनुच्छेद 256 और 257 की पुनः रचना इस प्रकार की जानी चाहिये जिससे कि राज्य विधायकों पर संसद का कार्यकारी नियंत्रण पूर्णतः ऐसे विषयों तक सीमित कर दिया जाए जोकि प्रस्तावित विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत संघ सूची में रखे गए हैं। अनुच्छेद 356 को और अधिक सशक्त किया जाना चाहिये ताकि अनुच्छेद 256 और 257 में पर्याप्त संशोधन किये जाने पर यदि राज्य राष्ट्र के हितों के विपरीत कार्य करे तो अंततः अनुच्छेद 356 का सहारा लिया जा सके। केवल इसलिये कि राज्य संघ कार्यपालिका द्वारा जारी किये गये किसी निर्देश का पालन करने में असमर्थ रहा है, अनुच्छेद 365 का सहारा लेना उचित नहीं है और यदि इसको जारी रखा जाए तो यह संघ कार्यपालिका के हाथ में एक सशक्त हथियार होगा जिससे कि अन्यथा स्वायत्तता प्राप्त होने के बावजूद, राज्य इस डर से अपने विकास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का साहस नहीं कर पायेंगे कि संघ राज्य के समस्त प्रशासन को प्रायः समाप्त कर देगा। यह भी वही प्रवृत्ति है जो संघवाद के मूल में स्थित है। जहां विभिन्न राजनैतिक दल केन्द्र और राज्य की शक्ति के पतवार पर टिके हैं, वहां यह अनुच्छेद विनाशपूर्ण हथियार साबित हो सकता है। अतः अनुच्छेद 365 को हमारे संविधान में से पूर्णतः निकाल दिया जाना चाहिये।

2. हमारे संविधान के संशोधन 42 और 44 के द्वारा अनुच्छेद 356 में कुछ मुख्य संशोधन किये गये हैं। यद्यपि विद्यमान केन्द्र-राज्य संबंध के अंतर्गत केन्द्र के द्वारा राज्य के विधायी अधिकारों में इस प्रकार का कटाव उनके लिए अन्तत्य अपमानजनक है। प्रस्तावित प्रभावी विकेन्द्रीकरण को ध्यान में रखते हुये यह माना गया है कि जिस रूप में अनुच्छेद इस समय है उसे अशक्त करने की आवश्यकता नहीं है। परंतु अनुच्छेद 356 को लागू किया जाना राज्यपाल के एकतरफा विचार पर नहीं छोड़ा जाना चाहिये। ऐसे उपबंध होने चाहिये जिनके अन्तर्गत राज्यपाल की रिपोर्ट का संघ-राज्य परिषद् के द्वारा ब्यौरे-वार और शीघ्र मूल्यांकन किया जाना चाहिये जैसे कि :—

   (i) अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति की अध्यक्षता में राज्यपालों की परिषद्।

   (ii) अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मुख्यमंत्रियों की परिषद्।

   (iii) अध्यक्ष के रूप में संबंधित केन्द्रीय मंत्रिमंडल के मंत्री की अध्यक्षता में प्रत्येक संविभाग के मंत्रियों की परिषद्।

   (iv) केन्द्र और राज्य के श्रेष्ठ न्यायाधीशों की परिषदें।

   राज्यों में तुरंत विकास के कारण अनुच्छेद 356 के अंतर्गत की जाने वाली कार्रवाई में समय-लगने की संभावना को ध्यान में रखते हुये, अनुच्छेद में इस प्रकार संशोधन किया जाए जिससे केवल एक महीने की अवधि के लिये राष्ट्रपति के द्वारा तुरंत उपबंध को लागू किया जा सके और इस बीच मध्यस्थ परिषद् को अपने विचारों की रिपोर्ट प्रस्तुत कर देनी चाहिये और आपात् अवधि के विस्तार के संबंध में पूर्णतः ऐसी रिपोर्ट के द्वारा ही समर्थन किया जाना चाहिये।

3. संविधान का अनुच्छेद 355 संघ को इस योग्य बनाता है कि जिससे वह अपनी केन्द्रीय रिजर्व पुलिस और अन्य सशस्त्र सेनाओं का किसी राज्य में सिविल शक्ति की सहायता के लिए उपयोग कर सके और उन्हें वहां तैनात कर सकें। यह एक उपयुक्त उपबंध है बशर्ते कि संघ को स्वप्रेरणा से उसका उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जाए। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संघ को तभी कार्रवाई करनी चाहिये जब राज्य स्वयं यह चाहता हो कि राज्य के अंदर स्थिति ऐसी है कि केन्द्रीय बलों की सहायता आवश्यक है और उसके संबंध में केन्द्र को तदनुसार सूचित करे।

4. जनसंपर्क माध्यम एक ऐसी अनिवार्य कड़ी है जिसने एक साथ राज्यों के समूह को एक राष्ट्र के रूप में बांधा हुआ है। यह माध्यम संघ और राज्य दोनों के समान परिधि के अन्तर्गत होना चाहिए। जनसंपर्क माध्यम के साधनों के निष्पक्ष और उचित विभाजन का तब और अधिक औचित्य प्रमाणित हो जाता है, जब प्रभावी विकेन्द्रीकरण के कार्यक्रम के अंतर्गत राज्यों को और अधिक स्वायत्तता दी जाती है। इस मद को पूर्णतया राज्य सूची को सौंप देना उचित नहीं है क्योंकि इससे राजद्रोह की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं जो कि एक राष्ट्र के रूप में भारत की एकता, अखंडता और सुरक्षा को पुनः खतरे में डाल सकती हैं।

5. संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत यथा-अपेक्षित अंतर्राज्यीय परिषदें अत्यन्त उपयोगी निकाय हैं जिनका यथाशीघ्र पूर्णतः कार्यान्वयन अपेक्षित है। जब राज्यों को व्यवहार्य स्वायत्तता प्रदान की जाए तो ऐसे अवसर आ सकते हैं जब किसी राज्य विशेष के विकास के कारण अन्य राज्य के सामने समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी परिस्थितियों में समस्याओं के परस्पर समाधान के लिए यदि कोई मध्यस्थ न हो, तो राज्य स्वायत्तता को आन्तरिक विद्वेष और विनाश का साधन बना कर एक दूसरे के लिये कठिनाइयां उत्पन्न कर सकते हैं। यद्यपि राज्यों को किसी विवाद की स्थिति में ऐसे निकाय के अंतिम निर्देशों का पालन करना होगा। तथापि ऐसे निकाय को अत्यधिक विवेकाधिकार प्रदान नहीं किए जाने चाहिये जिससे कि उसके अस्तित्व का प्रयोजन ही निष्फल हो जाए। अंतर्राज्यीय परिषद् का निर्देश मुद्दों और विवादों के सौहार्दपूर्ण निपटारे के लिये होना चाहिये। परिषद् का

अपना सचिवालय होगा परंतु उसमें संबंधित राज्यों का उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिये। मुद्दों और समस्याओं का स्वतंत्रतापूर्वक मूल्यांकन करने के लिए परिषद् को राज्य कार्यपालिकाओं से कुछ अनुभवी व्यक्तियों को नियुक्त करने का विशेषाधिकार दिया जाना चाहिये।

6. अनुच्छेद 258क के अन्तर्गत राज्यपाल को दिया गया अधिकार इस लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि ऐसे विशेषाधिकार का एक पक्षीय प्रयोग राज्य की कार्यपालिका की स्वायत्तता के विरुद्ध होगा। इस अनुच्छेद में राज्य की सहमति और उसके तात्विक परामर्श को अवश्य ही समायोजित किया जाना चाहिये।

7. कृषि मूल्य आयोग, केन्द्रीय जल आयोग, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग, तकनीकी विकास महानिदेशालय, भारतीय खाद्य निगम आदि जैसी एजेन्सियां केन्द्र के पूर्ण नियंत्रण में हैं और केन्द्र ने राज्य को स्वायत्तता के मामले में स्पष्ट रूप से अतिक्रमण किया हुआ है। चूंकि राज्यसूची अब निरूपाय हो गई है, इसलिये विभिन्न सरकारों को जिन मदों पर विधान बनाने का अधिकार प्राप्त है कम-से-कम उन मदों की संबंधित संभाव्यताओं और व्यक्तित्व का विकास करने का प्रयास निष्फल हो जाता है क्योंकि पूर्वोल्लिखित एजेन्सिया ऐसे कानून के अन्तर्गत कार्य करती हैं, जो राज्य के अनिवार्य विधान के प्रतिकूल होता है। जब कोई राज्य विकासात्मक कार्यक्रमों को लागू करने के लिये कोई विधान पारित करता है, तो उस विधान विशेष में राज्य की उन विशिष्ट परिस्थितियों या समस्याओं को ध्यान में रखा जाता है जिनका उस विधान के द्वारा समाधान या समायोजन किया जाएगा। इन मामलों में केन्द्रीय एजेन्सियों को कार्यकारी अधिकारिता देना राज्य की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक उन्नति को विकलांग बनाने के समान है।

भाग V

वित्तीय संबंध

चूंकि इस अध्याय के अन्तर्गत सम्मानित आयोग द्वारा उठाए गए अधिकांश प्रश्न वित्तीय केन्द्रीकरण के सुझाव या उसके अभिप्राय से संबंधित हैं, अतः प्रजा समाजवादी दल एक प्रभावी विकेन्द्रीकरण की पुष्टि में उनमें से किसी प्रश्न का उत्तर देना या उन पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं समझता।

किसी संघीय ढांचे में यूनिट राज्यों की स्वायत्तता का मूल्यांकन करने के लिए वित्तीय संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण मानदंड है। राज्यों को किसी भी मात्रा में विधायी या प्रशासनिक छूट दिये जाने से यह प्रयोजन तब तक सिद्ध नहीं हो सकेगा जब तक कि केन्द्र और राज्य दोनों को संपोषण और प्रश्रय के लिये प्रचुर मात्रा में वित्त उपलब्ध न कराया जाए। संक्षेप में, संघीय ढांचे में राज्यों की विधायी और प्रशासनिक स्वायत्तता को गति प्रदान करने के लिए वित्तीय प्रबंध अत्यावश्यक है।

अनुच्छेद 264 से 290 में संघ और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों या वित्तीय प्रबंधों को परिभाषित किया गया है। उक्त अनुच्छेदों का सारांश यह है कि पूरा राजस्व संघ को सौंप दिया जायेगा, बाद में उसको विभिन्न राज्यों में पुनर्विभाजित कर दिया जाएगा। इस समय केन्द्र से राज्यों को प्राप्त वित्तीय सहायता निम्नलिखित श्रेणियों के अंतर्गत आती है :—

(1) अनुच्छेद 268, 269, 270 के अन्तर्गत करों का न्यागमन।

(2) अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत सहायता अनुदान।

(3) अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत अनुदान और ऋण।

(4) तदर्थ तथा विवेकाधीन अंतरण।

राजस्व न्यागमन के उपर्युक्त चारों माध्यम संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत गठित वित्त आयोग की सिफारिशों के अधीन हैं। संक्षेप में, इस समय राज्यों की उल्लेखनीय राजस्व की प्राप्ति में प्रत्यक्ष पहुंच नहीं है और साथ ही ये अब तक वित्तीय दृष्टि से केन्द्र पर आश्रित हैं।

एक आदर्श संघीय वित्त व्यवस्था वह है जिसके अन्तर्गत संघ और राज्यों के पास अपनी-अपनी योजनाओं और परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए पर्याप्त तथा स्वतन्त्र संसाधन हों। हमारे संविधान में वित्तीय वितरण की प्रणाली इस आदर्श के अनुरूप नहीं है। यदि आस्ट्रेलिया और पश्चिमी जर्मनी जैसे देशों के राजस्व विकेन्द्रीकरण से तुलना की जाए, तो ऐसा लगता है कि मानो भारतीय राज्य, केन्द्र के द्वार पर भिखारी हों। ऐसी दशा का कारण यह है कि एक ओर अधिकांश प्रत्यास्थ वित्तीय संसाधन संघ के लिए आरक्षित कर दिए गए हैं और दूसरी ओर राजस्व न्यागमन की प्रक्रिया पूर्णरूपेण अपरिभाषित है जिसके परिणामस्वरूप तीन-चौथाई बजटीय संसाधन संघ के पास रहते हैं जबकि व्यय संघ और राज्यों का व्यय का अनुपात लगभग समान है। यथार्थ में राज्यों के वित्तीय साधन स्पष्ट रूप से उनकी आवश्यकताओं के अनुपात में नहीं हैं। न्यागमन की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने और पिछले 34 वर्षों में केन्द्र द्वारा राज्य को अंतरित संसाधनों के ब्यौरे की जांच करने पर यह कहा जा सकता है कि हमारे संविधान में परिकल्पित न्यागमन की व्यवस्था उत्साहजनक नहीं रही है क्योंकि राज्यों की आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा विकास के मामले में अब भी भारी क्षेत्रीय असन्तुलन और असमानताएं हैं। इस न्यागमन की व्यवस्था की एकमात्र उपलब्धि यह है कि इसने राज्यों की तुलनात्मक यथापूर्ण स्थिति को बनाये रखने में मदद की है जैसी कि हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय दिखाई देती थी।

राज्यों के वित्तीय साधनों को बढ़ाने की आवश्यकता के लिए एक मात्र तरीका यह है कि संघ और राज्यों के वित्तीय संबंधों को वास्तविक रूप से पृथक कर दिया जाये और अधिकांश प्रत्यास्थ कराधान मदों को राज्य सूची में अंतरित कर दिया जाये। राजस्व संसाधनों के पूर्ण न्यागमन का समर्थन नहीं किया गया है क्योंकि केन्द्र के पास राष्ट्र की समग्र आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रचुर मात्रा में धन राशि होनी चाहिये और इसके लिए केन्द्र से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह आवश्यकता पड़ने पर राज्यों के द्वार खटखटाये।

मात्र राजस्व संसाधनों को बढ़ाकर राज्यों के वित्तीय स्थायित्व को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता, वरन् राज्यों को अपने अनावश्यक खर्चों में काफी कमी करनी होगी। जब वित्तीय रूप से सुदृढ़ राज्य और केन्द्र व्यर्थ के खर्च पर प्रभावी प्रतिबंध लगायेंगे, तो इस प्रकार की गई बचत उन राज्यों के विकास में सहायक हो सकती है जो कि अपने स्वतंत्र संसाधनों के बावजूद अपेक्षित रूप से समृद्ध नहीं हैं।

राज्यों को अधिक वित्तीय शक्तियां देने से सन्तुलन का सुझाव केवल समृद्ध राज्यों के पक्ष में ही अधिक होगा, यह आशंका निराधार और अतर्कसंगत है क्योंकि धनी राज्यों को निर्धन राज्यों की सहायता करने के लिये कुछ व्यवहारिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत बाध्य किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी धनी राज्य के पास विद्युत शक्ति के पर्याप्त संसाधन नहीं है, तो अपने यहां केवल यथापूर्व स्थिति को बनाए रखने के लिए विद्युत उत्पादन की व्यवस्था करने के लिए भारी निवेश करने के बजाय संबंधित राज्य को असमृद्ध राज्य से विद्युत खरीदने का निर्देश दिया जा सकता है जिसके कि समृद्ध राज्य के भारी वित्तीय फिजूल खर्च को रोका जा सके और इस राशि के एक अंश को विद्युत आपूर्ति करने वाले राज्य को विद्युत के मूल्य के रूप में न्यायसंगत रूप से हस्तांतरित किया जा सके।

वित्तीय न्यागमन के वर्तमान ढांचे के अन्तर्गत राज्य प्रायः अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करने या विकास के कार्यक्रमों के लिए केन्द्र से कर्ज लेने को बाध्य हैं। जो राज्य केन्द्र से कर्ज लेते हैं वे इस कारण और अधिक निर्धारण की स्थिति में आ जाते हैं क्योंकि ऋणों का भुगतान राज्यों के अपने राजस्व संसाधनों का काफी बड़ा भाग होता है। इसलिए यह सलाह दी जा सकती है कि केन्द्र द्वारा प्रदत्त इन पेशगियों को कर्ज मानने के बजाय सहायता अनुदान माना जा सकता है जिससे कि कर्ज के भुगतान की सुविधा के कारण राज्य के मौजूदा और भविष्य के विकास कार्यक्रम तहस-नहस न हों। इस संबंध में केन्द्र केवल एक प्रतिबन्ध लगा सकता है कि वह राज्यों के ऋण के आवेदन की यह देखने के लिए पूर्णतः संवीक्षा करे कि दी गई राशि का अनावश्यक खर्च की मदों में प्रयोग न किया जाए।

यह भी सही है कि राज्य अपने ही राजस्व संसाधनों का उपयोग नहीं कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि केन्द्र और राज्यों के बीच मौजूदा वित्तीय संबंधों के अन्तर्गत राज्यों का इस अनुभूति के कारण उत्साह भंग हो जाता है कि अपने

ही संसाधनों के उपयोग से होने वाली राजस्व की वृद्धि का परिणाम यह होगा कि या तो केन्द्र प्रतिलाभ को जब्त कर लेगा या इस प्रकार केन्द्र के लिये यह आसान हो जायेगा कि वह संविधान में उचित संशोधन करके राज्य को दी जाने वाली वित्तीय सहायता को कम कर दे। संक्षेप में, जब भी केन्द्र यह महसूस करता है कि राज्यों के पास राजस्व के प्रच्छन्न साधन हैं तो वह उन्हें "जनहित" या "राष्ट्रहित" के नाम से संघीय क्षेत्र में अंतरित करने की कार्रवाई कर देता है।

यह वास्तविकता है कि ऐतिहासिक और भौगोलिक कारणों से कुछ राज्य आर्थिक रूप से सुदृढ़ नहीं हो सकेंगे चाहे राजस्व संसाधनों को पर्याप्ततः राज्य सूची में अंतरित कर दिया जाये। ऐसे राज्यों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए यह वांछनीय है कि विशेष संघीय निधि बनाई जाएं। जिसका प्रयोग केवल आर्थिक रूप से अर्द्ध विकसित क्षेत्रों की सहायता के प्रयोजन के लिए ही किया जाना चाहिये। वित्त और योजना आयोग इसलिये पर्याप्त नहीं है क्योंकि उनके द्वारा राज्य की अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था का दुरस्थ मूल्यांकन निरर्थक सिद्ध होगा। यथार्थ में, यदि ये आयोग कुछ राज्यों के इस विचार से सहमत न हों कि वे आर्थिक रूप से अर्द्ध विकसित हैं, तो ऐसे राज्यों के लिए उधार लेने का अन्य कोई आश्रय नहीं होगा, और राज्यों की निर्धनता को देखते हुए यह भी हानिकारक होगा।

वास्तव में यह एक कटु सत्य है कि केन्द्र और राज्य प्रायः अनावश्यक और अलाभकारी खर्चों में लिप्त रहते हैं। केन्द्र के संबंध में इसकी कोई सुस्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं होगी परन्तु जहां तक राज्यों का संबंध है, ऐसा खर्च पहले से ही अपर्याप्त राजस्व को कम कर देगा। ऐसी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय व्यय आयोगों का गठन किया जाये उनको ऐसी पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जायें कि संबंधित आयोगों द्वारा लगाये जाने वाले नियंत्रणों में, संबंधित मंत्रालयों के विरुद्ध, अविश्वास प्रस्ताव रखने का अधिकार भी शामिल हो।

प्राकृतिक आपदाओं ने राज्य की अर्थव्यवस्था पर गम्भीर क्षयकारी प्रभावी डाले हैं। प्रायः प्राकृतिक आपदाओं के संबंध में व्यय किए जाने के कारण राज्यों का सुरक्षित राजस्व, प्रयोग में ले लिया जाता है। इन परिस्थितियों में यह सुझाव दिया जाता है कि केन्द्र सरकार को देश के किसी भाग में प्राकृतिक आपदाओं के कारण राहत कार्यों पर होने वाले खर्च को पूरा करने के लिए पृथक निधि रखनी चाहिए। आवश्यक सहायता की प्रमात्रा व्यवस्थित आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए, न कि तदर्थ आधार पर। इसमें सहलियत के लिए, जिस दल पर यह उत्तरदायित्व डाला जाए उसमें राज्य सरकार के प्रतिनिधि भी शामिल होने चाहिएं।

भाग VII

विविध

उद्योग

संघ सूची की 52वीं प्रविष्टि के आधार पर अधिनियमित किया गया उद्योग (विकास और विनियम) अधिनियम, 1951 घृणास्पद संघीय विधान है, जिसने न केवल भारत के विभिन्न राज्यों के औद्योगिक सामर्थ्य को पंगु बना दिया है बल्कि हमारे संविधान की प्रस्तावना का भी उपहास किया है।

भारत में लगभग 95% औद्योगिक अभिन्यास केन्द्र के क्षेत्राधिकार में आता है। चूंकि संघ सूची की 52वीं प्रविष्टि में कोई अधिकृत या तर्कसंगत मानदंड नहीं दिया गया है जिससे यह अभिनिश्चित हो सके कि वे कौन से उद्योग हैं जिन पर राष्ट्रीय हित में केन्द्र का नियंत्रण आवश्यक है। केन्द्र सरकार उद्योग के रूप में परिभाषित को जा सकने वाली प्रत्येक वस्तु को इसमें सम्मिलित करके राज्यों पर डाका डाल रही है। प्रासंगिक है कि यह पूछा जाये कि रेजर ब्लेड, गोंद, माचिस घरेलू विद्युत उपकरणों, प्रसाधन सामग्री, फुट वेयर, स्टील फर्नीचर और इसी प्रकार की अन्य मदों में जिन्हें संघ सूची के अन्तर्गत लाया गया है, में क्या "राष्ट्रीय हित" है। शायद केन्द्र यह चाहता है कि भारत के लोगों को दिन में एक बार दाढ़ी बनानी चाहिये, या सभी महिलाएं प्रसाधन सामग्री के निर्मुक्त प्रयोग के द्वारा अपनी सुंदरता को बढ़ाये और भारत के प्रत्येक घर में पर्याप्त विद्युत उपकरण, स्टील फर्नीचर, कटलरी, सिलाई मशीनें और प्रेशर कुकर हो। इन उद्योगों को "राष्ट्रीय हित" के मामले कहना हास्यास्पद और बेतुका प्रतीत होता है, इन्हें सुविधापूर्वक परोक्ष रूप से राजस्व संसाधनों को केन्द्रित करने और जब्त करने के इरादे से संघ सूची में शामिल किया गया है।

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण उद्योगों का विकास महत्वपूर्ण विषय बन जाता है क्योंकि कृषि में राजस्व के लिए अधिक गुंजाइश नहीं है। अधिकांश राज्यों के लिए कृषि व्यवहारतः आर्थिक विकास का स्रोत नहीं रहा क्योंकि अधिकांश कृषि उत्पादों की घरेलू बाजार में ही खपत हो जाती है। उद्योग संघीय विकास के आधार हैं और उन पर केन्द्र का नियंत्रण राज्य के स्वतंत्र विकास के लिए अनुकूल नहीं हैं। तदनुसार, यह समय की मांग है कि उद्योगों को तत्वतः राज्य सूची में अंतरित कर दिया जाये जिससे कि राज्य वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त करने के साथ-साथ विकास करने में सक्षम हो सकें। केवल वे उद्योग जो कि अत्यधिक संवेदनशील है जैसे—रक्षा, परमाणु अनुसंधान, दूरसंचार, मुद्रा, विमानन, नौ-परिवहन इत्यादि, संघ के नियंत्रण में होने चाहिए।

अन्य उद्योगों को जो कि लोगों की दैनिक आवश्यकताओं से संबंधित हैं, पूर्णतः राज्य के विवेक और नियंत्रण पर छोड़ दिया जाना चाहिए। औद्योगिक लाइसेंस देने के विषय में आधारभूत और आमूल परिवर्तन होने चाहियें। राज्यों को विस्तृत शक्तियां दी जाएं जिससे कि वे औद्योगिक जानकारी, उपस्कर और कच्चे माल को केन्द्र सरकार के अनावश्यक तथा समय बर्बाद करने वाली प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करने के बजाय विदेशों के साथ सीधे ही संविदा अथवा संधियां करके प्राप्त कर सकें। ठीक इसी प्रकार, औद्योगिक उत्पादों का निर्यात भी केंद्र द्वारा बाधित नहीं किया जाना चाहिए।

सार्वजनिक क्षेत्र में केन्द्रीय निवेश पर अवस्थिति संबंधी निर्णय एक ऐसा मुद्दा है जिसमें राज्यों को अवश्य ही विश्वास में लिया जाना चाहिए क्योंकि किसी क्षेत्र के अति औद्योगिकरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। वायुमंडल तथा पर्यावरण संबंधी प्रदूषण का प्रमुख कारण औद्योगीकरण है। किसी क्षेत्र में, जो कि पहले से ही इस संबंध में ठसाठस है, और उद्योगों को संकेन्द्रित करने से सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल और हानिकारक प्रभाव पड़ेगा। इस संबंध में औद्योगिक लाइसेंस देने की प्रणाली के द्वारा कुछ ऐसे ठोस प्रबंध किये जायें ताकि आबादी वाले क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने पर प्रतिबंध लगाया जा सकें।

औद्योगिक अवस्थापन की मौजूदा प्रवृत्ति के अन्तर्गत कुछ ही राज्यों की भारी उद्योगों के मामले में व्यावहारिक रूप से उपेक्षा की गयी है। इस संबंध में केरल राज्य सही उदाहरण है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, व्यवहारतः उद्योगों से अत्यंत ठसे हुए हैं, जबकि केरल, कर्नाटक आदि जैसे राज्य व्यवहारतः उद्योगों से रिक्त हैं। चूंकि रोजगार उन ज्वलंत समस्याओं में एक हैं जो कि राष्ट्र के सामने खड़ी हैं, अतः उद्योगों की अवस्थापन के मामले में रोजगार को एक वास्तविक दिशा निर्देश के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि उद्योग के विषय को पूरी तरह राज्यों को हस्तांतरित कर दिया जाये, और केन्द्र को केवल समग्र पर्यवेक्षी भूमिका दी जाये।

व्यापार और वाणिज्य

संघ सूची की 42वीं प्रविष्टि घरेलू व्यापार और वाणिज्य से तथा इसकी 41वीं प्रविष्टि विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य (निर्यात और आयात) से संबंधित है। आवश्यक और दुर्लभ वस्तुओं के संचलन पर प्रतिबंध अति प्रशंसनीय उपबंध है जिसे हमारे संविधान में सम्मिलित किया गया है। एक विकेन्द्रित ढांचे में राज्यों को यह अवसर न दिया जाये कि वे दूसरे राज्यों में आवश्यक मदों की स्थिति की ओर ध्यान न दें। और अधिक विकेन्द्रिकरण की स्थिति में, अनुच्छेद 301, 303(2) और 304 पर पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं है। परंतु अनुच्छेद 301 और 303(1) निश्चित रूप से संघ और राज्य के बीच तथा राज्यों के बीच भी संघर्ष का चिरस्थायी स्रोत है। ऐसे संघर्षों की जांच करने के लिए अनुच्छेद 307 के अन्तर्गत प्राधिकरण बनाने तथा प्रतिकारी उपायों का सुझाव देने से व्यापार और वाणिज्य के विषय में संघ और राज्यों में व्याप्त तनावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। जिस बात को ध्यान में रखना है वह यह है कि राज्य संसाधनों की संभाव्यताओं का तब तक अधिकतम उपयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि उन्हें राष्ट्रीय बाजार में लाने का अवसर प्राप्त न हो। इसलिये अनुच्छेद 307 के अन्तर्गत गठित प्राधिकरण का कर्तव्य घरेलू व्यापार और वाणिज्य के विषय में संघ और राज्यों के संबंधों को न केवल सुदृढ़ बनाना है बल्कि उसे यह भी देखना होगा कि व्यापार और वाणिज्य में अवरोधों के कारण संघीय वित्तीय ढांचा पंगु न बन जाये या निष्फल न हो जाये।

यह भी सुझाव दिया जाता है कि विदेशों के साथ व्यापार और वाणिज्य में भारत की निर्यात और आयात नीति को भी सुस्पष्टतः शिथिल बनाया जाना चाहिए जिससे कि उन राज्यों को सहायता मिल सके जो कि वाणिज्यिक संभावनाओं को बढ़ाने और स्थानीय बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विदेशों से सीधे संबंध स्थापित कर सकें। आयात-निर्यात का क्षेत्र ऐसा विषय है जिसका यदि दुरुपयोग किया गया तो इससे देश की अखंडता और सुरक्षा जैसे विषय प्रभावित हो सकते हैं, अतः संघ को यह देखने के लिए निगरानी और अधीक्षण का अधिकार दिया जाना चाहिए कि स्थानीय राज्यों और विदेशों के बीच वाणिज्यिक और व्यापार संबंध भारत की एकता या अखंडता, तथा भारत की विदेश नीति को प्रभावित न करें। इसके अतिरिक्त संघ की यह प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए कि वह राज्यों के विदेशों के साथ प्रत्येक संबंध पर निरोध लगा दे।

कृषि

आर्थिक स्वावलम्बन की दृष्टि से कृषि संभवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण और खर्चीला विषय है। इस तथ्य के बावजूद कि संघ ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अक्सर इस विषय पर गंभीरता से विचार-विमर्श किया है, अधिकांश कृषि की स्थिति दयनीय बनी हुई है। यह उन ठोस उदाहरणों में से एक है जैसा कि इस रिपोर्ट में पहले ही बताया गया है कि केन्द्र इस क्षेत्र में केवल परिवीक्षीय प्रशासन और विकास कर सकता है। क्योंकि व्यावहारिक रूप से भारत का आधा प्रादेशिक व्यय कृषि भूमि और कृषि से सम्बद्ध कार्यकलापों पर होता है। देश में कृषि के क्षेत्र में क्रांति लाने के मामले पर विचार-विमर्श के बावजूद एक साधारण किसान की दशा अब भी दुःखद कहानी बनी हुई है। उचित मूल्य पर पर्याप्त मात्रा में उर्वरकों की कमी, अति-आधुनिक कृषि यन्त्रों के उपलब्ध न होने, कृषि के लिये पर्याप्त हमदादी ऋण प्राप्त न होने और सिंचाई संबंधी समस्याओं के कारण कृषि अत्यधिक कठिन कार्य बन गया है जबकि कृषि हमारे समाज के आधारभूत सम्पोषण के लिये आवश्यक है। यदि स्थिति ऐसी ही रही तो वह दिन दूर नहीं है जब कि कृषि इतिहास का एक भाग बन जायेगी और राष्ट्र को भोजन के लिए भीख मांगने पर मजबूर होना पड़ेगा। ऐसी संभावना के भयंकर परिणाम होंगे। हम किसी जादू की छड़ी की अपेक्षा नहीं कर सकते। कृषि के क्षेत्र में किसी सम्भावित खतरे को टालने के लिए प्रजा सोशलिष्ट पार्टी का सुझाव है कि वन को छोड़कर कृषि का विषय राज्य-सूची में शामिल कर दिया जाये। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वन संघ-सूची में ही रखे जायें कि वन काटने की बेरोकटोक प्रवृत्ति के कारण जलवायु की समस्या सहित अन्य अनेक परिस्थितिकीय समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। वनों के कटाव का जलवायु पर प्रभाव पड़ता है और इसके कारण कृषि संबंधी कार्यक्रमों में भारी रुकावटें आती हैं।

शिक्षा

शिक्षा एक ऐसा कारक है जिसके कारण संघ तथा राज्यों की संघीय परियोजनाओं का कार्यान्वियन सही रूप में करने की क्षमता का पता चलता है। शिक्षा से ही किसी प्रशासनिक ढांचे की क्षमता का निश्चय किया जा सकता है या उस पर नियंत्रण रखा जा सकता है। जब तक ऐसे लोगों को जो सत्ताधारण कर रहे हैं, मामलों की बुनियादी जानकारी नहीं होगी तब तक राज्य की स्वायत्तता राजनीतिज्ञों के हाथों में एक खिलौना बनकर रह जायेगी।

शिक्षा की ओर पूरा-पूरा ध्यान देने के लिए यह आवश्यक है कि संघीय स्थापना में इसकी जिम्मेदारी राज्यों पर हो। भारत में विषम जातीयता को देखते हुए शिक्षा का एक समान या केन्द्रीकृत रूप न तो व्यवहार्य है और न ही उचित है। अल्पसंख्यकों और पिछड़ी जातियों के व्यक्तियों के शैक्षिक अधिकारों के आरक्षण और संरक्षण के लिए और शिक्षा को देश के दूरदराज क्षेत्रों तक पहुंचाने के लिये यह जरूरी है कि इस विषय में विभिन्न राज्य स्वतन्त्र रूप से कार्य करें। शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र तथा राज्यों द्वारा कार्य करने से एक औसत भारतीय छात्र पर बहुत बोझ पड़ेगा और साथ ही इतने अधिक विवाद और कठिनाइयां उत्पन्न होंगी कि इससे शिक्षा का सार्वजनिक लक्ष्य अर्थात् समाज के नैतिक तथा बौद्धिक विकास का लक्ष्य पूरा नहीं हो पायेगा।

आज के संदर्भ में शिक्षा को उसके परंपरागत रूप से उभारना होगा और अधिक व्यावहारिक और मूल्य सापेक्ष बनाना होगा। यह लक्ष्य तभी प्राप्त हो सकेगा जब राज्यों का इस मामले में स्वतंत्र रूप से नियंत्रण होगा।

पंचायतें

संघीय प्रशासन में पंचायतें स्वायत्त प्रशासन की निम्नतम इकाई हैं जो बहुत प्रभावी रूप से लोगों की शिकायतों को दूर कर सकती हैं और उनकी अपेक्षाएं पूरी कर सकती हैं। आज भी भारत गांवों का देश है और इन गांवों का विकास तथा ऐतिहासिक जंजीरों से उनकी मुक्ति स्वायत्त विकास के अधीन राज्यों के कार्यकलापों का प्रमुख भाग है। भारत के कुछ बेतरतीबवार फैले हुए शहरों को देखकर, जिनसे तकनीकी और संरचनात्मक सम्भावनाओं और उन्नति का प्रदर्शन होता है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि पिछले 34 वर्षों में भारत का जो दृश्यमान विकास हुआ है उसका अंशमात्र भी भारत के अनेक दूरदराज के गांवों तक नहीं पहुंचा है।

ग्राम पंचायतें ही एकमात्र ऐसी प्रशासनिक एजेंसी हो सकती हैं जो गांवों में भारत के महत्वपूर्ण विकास का संदेश ला सकती हैं या इसे कार्यरूप दे सकती हैं। दुर्भाग्यवश, स्थानीय स्वायत्त प्रशासन की इकाई के रूप में पंचायतों का अस्तित्व उपेक्षित रहा है। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित "रामराज्य" की दृष्टि से व्यावहारिक रूप से पंचायतें आज कहीं भी देखने में नहीं आतीं।

पंचायतों को तुरंत सजीव बनाने की जरूरत है ताकि विकास संबंधी पहलुओं से गांवों को भी परिचित कराया जा सके। इसके लिये संबंधित कानूनों में व्यवस्था करने की जरूरत है ताकि पंचायतों को गांवों में निवास करने वाले पुरुषों एवं महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रम कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त धन राशि मिल सके। पंचायतों को पंचायत कर से होनी वाली आय के अतिरिक्त राज्य सरकारों से भी वित्तीय सहायता लगातार और अनिवार्य रूप से मिलनी चाहिये।

पिछड़ी जातियां

हालांकि भारत के संविधान में पिछड़ी जातियों की उन्नति के लिए असाधारण सहायता की व्यवस्था की गई है। परन्तु खेद का विषय है कि बाद में इस संबंध में कानून बनने के बावजूद कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई है। आज हम अच्छे-अच्छे पदों पर पिछड़ी जातियों के लोगों को काम करते हुए देखते हैं परन्तु यदि उनकी सम्पूर्ण संख्या को देखा जाये तो यह अनुपात बहुत कम है क्योंकि अधिकांश लोग अभी भी ऐसे हैं जिन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका है।

पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए संवैधानिक समर्थन की भावना को बनाये रखने के लिए यह बहुत जरूरी है कि नियुक्ति के मामले में पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए सीटों के आरक्षण की अवधि कम-से-कम 25 वर्ष और बढ़ाई जाए।

चुनाव

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के मौजूदा उपबंधों के अधीन, चुनाव के लिए खड़े होने वाले उम्मीदवार आमतौर पर चुनाव में अपनी विजय सुनिश्चित करने के लिए अनुचित तरीके अपनाते हैं। मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए प्रायः अनेक पक्षपातपूर्ण कार्य करते हैं। यदि यही प्रवृत्ति जारी रही तो राज्य या केन्द्र की प्रशासनिक नीति तैयार करने के लिए प्रतिभा संपन्न या प्रख्यात व्यक्ति कभी भी केन्द्र या राज्य के प्रशासन में नहीं आ पायेंगे, बल्कि ऐसा कोई भी व्यक्ति, जिसके पास पर्याप्त धन है इसका दुरुपयोग करके सत्ता में आ सकता है। इस परिपाटी से बचने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि लोक-प्रतिनिधित्व अधिनियम में आशोधन किया जाये ताकि उसमें ऐसे उपबंध शामिल किये जा सकें जिनके अनुसार संबंधित सरकार उम्मीदवारों के लिए पक्ष प्रचार करने या समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रबंध करे और उम्मीदवारों का चुनाव खर्च सीमित करे ताकि वोट खरीदे न जा सकें। इस संबंध में सरकार द्वारा उम्मीदवारों को पहचान-पत्र जारी किये जाएं। उम्मीदवारों को मतदाताओं पर अनावश्यक रूप से प्रभाव डालने से रोकने के संबंध में जब तक लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में स्पष्ट व्यवस्था नहीं की जाती तब तक देश को अच्छा प्रशासन कभी नहीं मिल पायेगा।

इसके अतिरिक्त लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम में कुछ ऐसे उपबंध भी शामिल किए जाएं जिनके अनुसार उस राज्य या निर्वाचन क्षेत्र द्वारा उम्मीदवार को हटाया जा सके जिसमें उसे सत्ता में चुना था। जनमत संग्रह करने के लिए भी एक उपबंध जोड़ा जाये जिसके अनुसार उम्मीदवार को हटाया जा सके। अधिनियम

में शामिल किया जाने वाला यह एक महत्वपूर्ण उपबंध है। इसके द्वारा लोगों को निर्दयी तथा अनैतिक राजनीतिज्ञों के चंगुल से छुड़ाया जा सकता है जो एक बार सत्ता में आने के बाद प्रशासन तथा उन लोगोंके लिए निरदर्द बन जाते हैं, जो उन्हें सत्ता में लाए हैं।

केन्द्र-राज्य संबंधों के इस विषय पर अपनी रिपोर्ट के अंत में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी एकबार फिर से याद दिलाना चाहती है कि भारत तभी समृद्ध होगा जब उसके राज्य समृद्ध होंगे। इसलिए राज्यों के स्वतंत्र विकास को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण समय की मांग है।

भारतीय रिपब्लिकन पार्टी (काम्बले) का उत्तर

भाग I

प्रस्तावना

1.1. हां, इसको संघीय कहा जा सकता है और सही मायने में यह संघीय है

1.2. नहीं।

तमिलनाडु के द्रविडों और उन जैसे ही अन्य लोगों की शिकायतें न्यायसंगत हैं। इन न्यायसंगत शिकायतों के लिए उपयुक्त न्यायसंगत उपाय आवश्यक हैं। परन्तु निश्चित रूप से राजमन्नार समिति द्वारा सुझाए गये उपाय नहीं।

1.3. विकेन्द्रीकरण जैसे प्रादेशिक उपायों से विषमजातीयता समाप्त नहीं की जा सकती। इसका उपाय यही है कि विषमजातीयता समाप्त करके भारत को समजातीय बनाया जाये।

मेरा विचार है कि अनुकूलतम संवैधानिक उपबंध वह होगा जिससे भारत "स्वशासी समुदाय" बन सके। "विविधता में एकता" का नारा भारत को हमेशा के लिए विषमजातीय बनाये रखने का एक साधन है। इसे हमेशा के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।

1.4. ऐसे प्रश्न के अलावा, हमें वास्तविक रूप से यह सोचना होगा कि किस प्रकार की और किस प्रणाली की सरकार भारत को यथार्थ में एक राष्ट्र बनाने में सहायक होगी, यह और भी अत्यावश्यक है कि क्या प्रत्येक भारतीय दैनिक जीवन में संविधान के प्रति वास्तव में निष्ठावान है।

1.5. प्रश्न में उल्लिखित प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भारतीय राज्य व्यवस्था और इसकी कार्यचालन के संबंध में अपने-अपने "समाजशास्त्रीय" विचार व्यक्त किये हैं। उपयुक्त (क) और (ख) में व्यक्त किये गये विचार एक दूसरे को अभिशून्य करते हैं। और (ग) में सुझाया गया उपाय लगभग स्वयं निरर्थक है।

आयोग को एक ऐसी शक्ति का पता लगाना पड़ेगा जो वर्षों के दौरान केन्द्र-राज्य संबंधों को संविधान की सच्ची भावना और आशय के अनुरूप न होने पर भी उन्हें कार्य रूप देने के लिये सक्षम और जिम्मेदार हो।

मैंने सभी प्रश्नों के उत्तर में समेकित रूप में अपने सुझाव अंत में दिये हैं।

1.6. हां।

संविधान के उपबंधों को प्रत्येक व्यक्ति पढ़ सकता है।

1.7. संविधान सर्वत्र संघ तथा राज्यों में संवैधानिक सरकारों की व्यवस्था करता है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि संघ के स्तर पर "कार्यभंग खंड" का कोई उपबंध नहीं है जबकि राज्यों के स्तर पर ऐसा उपबंध मौजूद है। संविधान में संघ में एक चिरंतन संवैधानिक सरकार की परिकल्पना की गई है।

प्रश्न में उल्लिखित संविधान के उपबंध इसलिये बनाये गये हैं ताकि ऐसी कोई संभावना न हो जिसका संविधान में उल्लेख न हो। ये उपबंध विशिष्ट प्रकार के हैं और सामान्य स्थिति में लागू नहीं होते। उनसे किसी युक्ति संगतता या अन्य ऐसी ही किसी बात की अपेक्षा करना उन्हें साधारण उपबंध मानने के बराबर होगा और मैं ऐसा करने से इनकार करता हूं।

राज्यों के लिये भी उसी प्रकार की संवैधानिक व्यवस्था होनी चाहिये जैसी कि संघ के लिये की गई और "कार्यभंग" खंड हटा दिया जाना चाहिए।

1.8. जो लोग अनुच्छेद 3 पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव करते हैं उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अपने विचार प्रकट करें। उनके विचार जानने के बाद ही मैं अपने विचार व्यक्त करूंगा, इस समय मैं कुछ नहीं कहूंगा।

भाग II

विधायी संबंध

2.1. संघ पर अभिकथित अधिक्रमण के आरोप लगाने के बजाय उचित तरीका यही होगा कि संघ में वास्तविक तथा जिम्मेदार पदाधिकारी पर आरोप लगाये जायें।

200 से भी अधिक मामलों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की घोषणा इसके जीते-जागते सबूत हैं।

2.2. देश की एकता और अखंडता की संकल्पना केन्द्र की शक्ति संबंधी संकल्पना से अलग हैं। पहली संकल्पना भारत को स्वशासी सम्प्रदाय के रूप में मानने से संबंधित है। एकता में विविधता की बात इस संकल्पना के विपरीत है। इसी प्रकार केन्द्र की शक्ति की संकल्पना भी देश की एकता तथा अखंडता की संकल्पना के विपरीत है। संघ, राज्य तथा समवर्ती इन तीनों सूचियों में केवल तभी परिवर्तन किया जाये यदि राष्ट्रीय महत्व के विषय राज्य सूची में शामिल किये जायें और राज्य सूची के विषय राष्ट्रीय महत्व के विषय मानकर संघ सूची में शामिल किये जायें। श्रम, काश्तकार, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों, पिछड़ी जातियों, कमजोर वर्गों आदि के विषय संघ सूची में शामिल किये जायें।

2.3. परामर्श का यह सिद्धान्त बिल्कुल वांछनीय है।

स्वतंत्रता से पूर्व के दिनों में अनुदेशों की ऐसी लिखत 1935 के अधिनियम में थी। स्वतन्त्रता मिलने के बाद इसकी जगह अब संविधान में निदेशक सिद्धान्तों ने ले ली है। अन्तर केवल इतना है कि ये सिद्धान्त संघ तथा राज्यों में मौजूदा सरकार को संविधान सभा द्वारा जारी किये गये अनुदेश हैं।

2.4. जैसा कि प्रश्न 1.7 के उत्तर में कहा गया है, संविधान में हमेशा संघ तथा राज्यों में संवैधानिक सरकारों की परिकल्पना की गई है। इस प्रश्न में उल्लिखित उपबंध सामान्यत: लागू नहीं होता। ऐसा उपबंध केवल इस कारण किया गया है ताकि यह न समझ लिया जाये कि असाधारण आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिये संविधान में कोई कमी है।

2.5. संवैधानिक शक्ति के दुरुपयोग से निपटने के लिये एक उपयुक्त संवैधानिक उपबंध जोड़ने के बारे में विचार किया जा सकता है। अंतिम भाग में दिये गये पहले के उत्तर को भी देखें।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1. संविधान के निर्माताओं ने भारत के संविधान के अधीन राज्य के राज्यपाल के लिये उसी भूमिका की परिकल्पना की थी जो संघ में भारत के राष्ट्रपति की है। परंतु दोनों में थोड़ा सा अंतर है। राज्यपाल तथा भारत के राष्ट्रपति की भूमिका क्रमश: राज्य विधान मंडल तथा संसद के घटकों के संबंध में है। और यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे क्रमश: राज्य तथा संघ के संवैधानिक प्रधान के रूप में कार्य करें।

(क) केन्द्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में संविधान में राज्यपाल अथवा भारत के राष्ट्रपति की इस रूप में कोई भूमिका परिकल्पित नहीं की गई है।

(ख) राज्यपाल के पद और शक्तियों का दुरुपयोग भारत के प्रधान मंत्रियों (मुख्यत: स्व० श्री जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी) द्वारा किया गया है। उन्होंने गलती से यह धारणा बना ली थी कि

राज्यपाल संघ सरकार का एजेंट है । राज्यपाल को एजेंट मानने की इस गलती के आधार पर ही केन्द्र राज्य संबंधों के संदर्भ में राज्यपाल की भूमिका के बारे में नया सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है । केन्द्र-राज्य संबंध केवल देश प्रेम की भावना और देश प्रेम के कार्यों द्वारा ही बनाये रखे जा सकते हैं । एक राज्यपाल यह कार्य नहीं कर सकता । पिछले 34 वर्षों से राज्यपाल की शक्तियों के पार्टी तथा अन्य प्रयोजनों से दुरुपयोग के कारण भारत की राज्यव्यवस्था पहले ही नुकसान उठा चुकी है और यदि वर्तमान स्थिति बनी रही तो संघ में या राज्यों में सही अर्थों में कोई संवैधानिक सरकार नही होगी । "संवैधानिक सरकार" का सही अर्थ समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि संवैधानिक सरकार न होने पर विद्रोह की स्थिति हो जायेगी ।

3.2. इस प्रश्न का उत्तर पिछले प्रश्न 3.1 से मिल जाता है । किसी भी प्रयोजन के लिए जिनमें केन्द्र-राज्य के स्वस्थ संबंध बनाना भी सम्मिलित है, राज्यपाल की एकमात्र भूमिका यह है कि उसे पूर्णतया संविधान के अनुसार कार्य करना चाहिए ।

3.3 संविधान के तहत राज्यपाल के मुश्किल से कोई कार्य या कर्तव्य होते हैं । भारत के राष्ट्रपति की स्थिति भी यही है । भारत के राष्ट्रपति की तरह राज्यपाल के केवल दो ही परमाधिकार होते हैं :

(क) राज्य में सिर्फ सांविधानिक मशीनरी के "ठप्प" हो जाने की स्थिति में ही उसे भारत के राष्ट्रपति को रिपोर्ट देनी होती है । इसका अर्थ है कि संविधान के उपबंधों के अनुसार किसी भी सरकार को गिराया नहीं जा सकता । यदि राज्य में कोई सरकार कार्य कर रही है तो राज्यपाल द्वारा इस प्रकार की रिपोर्ट देना उसके पद का दुरुपयोग होगा ।

(ख) किसी मुख्य-मंत्री को नियुक्त करना अनुच्छेद 164 के तहत राज्यपाल का एकमात्र परमाधिकार है । अन्य कोई भी व्यक्ति, यहां तक कि प्रधानमंत्री भी उसके परमाधिकार विस्थापित नहीं कर सकता । वह अपने अनन्य परमाधिकार का उपयोग गलत या मुर्खतापूर्ण ढग से कर सकता है तथा उसके परिणाम भुगत सगता है । भारत में, अभी तक ऐसा कोई राज्यपाल नहीं हुआ है ।

(ग) विधानसभा को भंग करना ऊपर (ख) में दर्शाया गया दूसरा परमाधिकार है जिसका प्रयोग राज्यपाल कर सकता है ।

ये राज्यपाल के पद की प्रसंगतियां है जो पद के साथ-साथ चलती हैं तथा इन प्रसंगतियों को न्युनतम या अधिकतम बनाने का कोई प्रयास शासन-पद्धति का सत्यानाश करना होगा । राष्ट्रपति के परमाधिकार को परिसीमित करने वाले बयालिसवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा अधिनियम 74 में किए गए संशोधन ने, संविधान तथा शासन-पद्धति को काफी क्षति पहुंचाई है, जिसकी कीमत भारत को भविष्य में भी चुकानी पड़ेगी ।

3.4 जहां भी कहीं पर द्वितीय सदन होता है वहां या तो द्वितीय सदन सतही होता है या राज्यपाल या राष्ट्रपति के लिए बिलों का आरक्षण सतही होता है । इसका अन्तर्निहित उद्देश्य किसी जल्दबाजी को रोकना है ।

इस प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर वही लोग दे सकते है जो मुख्यमंत्री हैं या रहे है । मैं न तो मुख्यमंत्री हूं और न ही रहा हूं ।

3.5. आंशिक रूप में हां, और आंशिक रूप में नहीं । सामान्य शब्दों में पूर्व उदाहरण लार्ड एक्शन द्वारा कही बात को चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि "सत्ता भ्रष्ट करती है, और निरंकुश सत्ता पूर्णतया भ्रष्ट कर देती है ।" आंशिक रूप में नहीं क्योंकि, यह उन कारणों की प्रकृति पर निर्भर करेगा जिनके आधार पर अनुमति रोकी गई है ।

3.6. पहला भाग सही स्थिति का द्योतक है, और दूसरा नही । कृपया पिछले प्रश्न 3.1 के उत्तर को भी देखें । जब तक राज्यपालों का संबंध किसी राजनीतिक पार्टी से रहेगा तथा जब तक वे नियोक्ता शक्ति, प्रधानमंत्री के आभाराधीन रहेंगे उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि जब उस राजनीतिक पार्टी के (तथा नियोक्ता शक्ति के भी) हितों में टकराव होगा तो वे निष्पक्ष रूप में तथा संविधान के अनुसार कार्य करेंगे ।

एन. टी रामाराव तथा डॉ. फारूख अब्दुला इसके ताजा उदाहरण हैं ।

3.7. राज्यपाल के पद की प्रकृति एसी है कि उसकी कोई गारंटीशुदा पदावधि नहीं हो सकती । उसे हटाने की प्रक्रिया वही होनी चाहिए जो भारत के राष्ट्रपति के मामले में अपनाई जाती है, ऐसी स्थिति में राज्यपाल का चुनाव करना होगा । उसकी नियुक्ति तथा उसे हटाया जाना साथ-साथ चलते हैं ।

3.8. नही । राज्यपाल या भारत के राष्ट्रपति का कार्य यह देखना होता है कि शासन चलाने के लिए कोई सरकार ही । उसका कार्य बहुमत को बनाए रखना नहीं है, इंग्लैंड में अल्पमत वाली सरकारें काफी समय तक कार्य करती रही हैं । इस सुझाव की निरर्थकता को अनावृत्त करने के लिए इसे भारत के राष्ट्रपति को शक्ति प्रदान करने पर लागू कीजिए ।

3.9. न किया जाए । इसके परिणामस्वरूप अविश्वास प्रस्तावों में वृद्धि ही सकती है । राज्यपाल को न्यायानुसार कार्य करना चाहिए ।

3.10. प्रशासनिक सुधार आयोग को राज्यपाल को तथाकथित "स्वेच्छा-निर्णय" शक्तियां कहां से मिलीं । उसके पास केवल दो परमाधिकार हैं । यदि राज्यपाल के लिए मार्गनिर्देश जारी किया जाना आवश्यक है तो राष्ट्रपति के लिए भी ऐसी भूमिका निभाने के लिए मार्गनिर्देश जारी करने पड़ेंगे ।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1. इस प्रश्न का उत्तर मुख्यमंत्रियों या भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों द्वारा दिया जाना चाहिए ।

4.2. मेरे द्वारा किए गए पूर्व कथनों की शर्त पर, तथा पहले दिए गए कारणों के आधार पर मैं अपने विचार बदलने की ओर प्रवृत्त हुआ हूं ।

4.3. यह महज बुद्धि से की गई सिफारिश है जिसे स्वीकार कर लिया जाए ।

4.4. अनुच्छेद 356 के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग प्रायः समुचित ढंग से नहीं किया जाता । उसके कारण है : जैसाकि आन्ध्र प्रदेश तथा जम्मू-कश्मीर के मामलों में हुआ है । इस अभिव्यक्ति "..... संविधान के उपबंधों के अनुसार सरकार को गिराया नहीं जा सकता" का गलत अर्थ लगाया गया है, चाहे किसी सरकार को संविधान के उपबंधों के अनुसार ही क्यों न गिराया गया हो । दूसरा कारण यह है कि ऐसी अभिकथित स्थितियों में राज्यपालों ने मुख्यमंत्री के अधीन कार्य कर रहे मंत्रिमंडल की "सहायता एवं सलाह" के बिना कार्य किया है । तीसरा कारण है : ऐसी स्थिति में राज्यपाल द्वारा संसदीय प्रणाली को राष्ट्रपति प्रणाली में बदलने जैसी अभिकथित कारंवाइयां करना ।

4.5. मैं उस विचार से सहमत नहीं हूं । अनुच्छेद 366 का खंड (5) कोई रक्षोपाय नहीं है । यह अरक्षोपाय है । अनुच्छेद 356 का अवलंब केवल बहुत ही विरले मामलों में लिया जाए जिनके असफल होने पर किसी राज्य को स्वशासन के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता है तथा इसका इस्तेमाल उसी रूप में किया जाए ।

4.6. मैं इस संबंध में कोई टिप्पणी नहीं करना चाहता ।

4.7. ऐसी एजेंसियों को (केन्द्र या राज्यों में से) उसी को सौंपा जाए जो उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को अधिक प्रभावी ढंग से कार्यान्वित कर सके ।

4.8. सेवाएं स्वायत्तता का एक अभिन्न अंग है । प्रान्तों को सामान्यतया स्वायत्तता प्रदान की जाती है । संविधान के अधीन अब कोई प्रान्त नही है । उन्हें अब तक राज्य कहा जाता है । ऐसी सेवाएं राज्य सेवाओं के नियंत्रणाधीन होनी

चाहिएं जो स्थानीय राज्य क्षेत्र तक ही सीमित हों। अखिल भारतीय सेवाओं से अलग ऐसी सेवाएं भी राज्य सेवाओं के अधीन लायी जानी चाहिए। जो राज्य-सूची के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक हों तथा जिनका उत्तरदायित्व उसी रूप में राज्यों से जुड़ा हो जैसे अखिल भारतीय सेवाओं का उत्तरदायित्व केन्द्र से जुड़ा रहता है।

4.9. कानून और व्यवस्था की समस्या एक बहुत गंभीर समस्या है। संविधान के वर्तमान उपबंधों के अधीन प्रशासनिक सुधार आयोग के विचार खेदजनक हैं। अनुच्छेद 355 में अनुध्यात आकस्मिकताएं भिन्न हैं तथा विशेष प्रकृति की हैं। आयोग तथा केन्द्र के ऐसे दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप केन्द्र तथा राज्यों के बीच संभावित भावी युद्ध के लिए पर्याप्त सामग्री मिल जाएगी। या तो कानून और व्यवस्था के विषय को राज्यों के पास ही रहने दिया जाना चाहिए तथा केन्द्र को उनकी सहायता करनी चाहिए; या इस विषय को केन्द्र को अपने नियंत्रण में ले लेना चाहिए और संविधान में तदनुरूप संशोधन कर देना चाहिए। बीच का रास्ता खतरनाक है।

4.10. जिन्हें जनसंचार की रेडियो तथा दूरदर्शन प्रसारण सुविधाओं की आवश्यकता है वे हैं केन्द्र, राज्य तथा जनसाधारण के विभिन्न समुदाय। इन सुविधाओं का बंटवारा इन तीनों के बीच न्यायोचित एवं तर्कसंगत आधारों पर किया जाए क्योंकि इन तीनों को ही इनकी समान आवश्यकता है। केन्द्र या राज्यों के नाम पर कुछ समुदाय विशेष जिनकी संख्या बहुत ही कम है, इन सुविधाओं का दुरुपयोग कर रहे हैं। जिसका बहुत ही तीव्र विरोध हो सकता है।

4.11. आंचलिक परिषदों से मुश्किल से ही किसी उद्देश्य की पूर्ति हुई है।

4.12. ऐसी अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना बहुत समय पूर्व ही की जानी चाहिए थी जिसे खेद है केन्द्र सरकार टालती रही हैं। परन्तु, ऐसी अन्तर्राज्यीय परिषद "अन्तर्राज्यीय" या "केन्द्र राज्य मतमदों को सुलझाने" में सक्षम नहीं होगा जैसाकि इस प्रश्न में कहा गया है।

यदि विवाद शक्ति के निर्णय से संबंधित हो तो भारतीय सर्वोच्च न्यायालय इस संबंध में न्यायनिर्णय करने का वास्तविक मंच होगा। अन्यथा उस सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय एक संघीय व्यवस्था में एक फजूल की संस्था होगी।

ऐसी परिषद् का उद्देश्य लोकहित होता है। इसके कार्य स्वयं अनुच्छेद 263 के परिच्छेद में दिए गए हैं।

भाग V

वित्तीय संबंध

5.1 नहीं।

5.2 प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल की ये टिप्पणियां कि, "केन्द्र सदैव दाता होता है तथा राज्य प्रापक" खेदजनक है तथा ऐसे संबंध को जो ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार के समय होता था, स्वतंत्रता के बाद अब समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यदि राज्यों के संसाधन स्वयं में पर्याप्त नहीं है तो संसाधनों को केन्द्र तथा राज्यों के बीच उनकी जिम्मेवारियों के अनुसार इस प्रकार से फिर से निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है कि राज्य वित्तीय रूप में स्वायत्त हो सकें।

(च) में दिए गए विकल्पों को आजमाया जाए।

5.3 इन टिप्पणियों पर मेरे विचार निम्नलिखित हैं।

निदेशक सिद्धान्तों को ठीक से उद्धृत नहीं किया गया है। किसी धनी राज्य के सभी व्यक्ति धनी नहीं होते। किसी धनी राज्य में बहुत ही कम वर्ग धनी होते हैं, कुछ निर्धन होते हैं, तथा बाकी निर्धनतम होते हैं। इस प्रकार राज्यों का धनी या निर्धन के रूप में वर्गीकरण भ्रामक है। वास्तव में ये लोगों के वर्ग ही हैं जो धनी, निर्धन तथा निर्धनतम होते हैं।

क्या केन्द्र सरकार यह सत्यनिष्ठ घोषणा करने को तैयार है कि वह अपनी निधियों का उपयोग निर्धनतम वर्गों के विकास के लिए करने-हेतु मजबूत होना चाहती है? अब तक ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जो केन्द्र द्वारा किए गए ऐसे किसी दावे की पुष्टि करता हो।

5.4 प्रश्नगत उद्देश्य की पूर्ति के लिए केन्द्र सरकार को पिछली पंचवर्षीय योजनाओं के आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करने चाहिए। यद्यपि घाटे की वित्त व्यवस्था, अन्तिम उपभोक्ता के लिए हानिकारक है फिर भी घाटे की वित्त व्यवस्था की राशि को सरकार को कायम रखने की बजाय निर्धन वर्गों के विकास कार्यों में लगाया जाए तो संयमपूर्वक ऐसी वित्त-व्यवस्था का सहारा लिया जा सकता है।

5.5 उद्देश्यपरक मानदंड निम्नलिखित होना चाहिए :

(1) किसी निर्धन राज्य में शक्ति का केन्द्रीकरण जितना अधिक हो निर्धनवर्गों के विकास को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए करों तथा योजना एवं गैर-योजना सहायता में उस राज्य का हिस्सा उतना ही अधिक होना चाहिए।

(2) किसी धनी राज्य में शक्ति का केन्द्रीकरण जितना कम हो करों तथा योजना एवं गैर-योजना सहायता में उस राज्य का हिस्सा उतना ही कम होना चाहिए।

5.6 यह बात स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अब तक के प्राप्ति परिणामों से सिद्ध होती है कि इस उद्देश्य के लिए वित्त तथा योजना आयोग पर्याप्त नहीं हैं।

प्रादेशिक आधार पर एक "विशेष संघीय निधि" तथा निर्धन वर्गों के आधार पर एक "विशेष अल्प विकसित वर्ग निधि" की स्थापना की जानी चाहिए।

5.7 प्रस्तुत तीन सिद्धान्तों के अतिरिक्त एक और सिद्धान्त स्वीकार किया जाना चाहिए वह है अपने नागरिकों को न्यूनतम सभ्य जीवन प्रदान करने की जिम्मेवारी, जिसमें यह कसौटी अपनाई जाए कि जिन्हें अवसर नहीं मिला है उन्हें प्राथमिकता दी जाएगी।

5.8 केन्द्रीय मंत्रिमंडल तथा राज्य वित्त मंत्री द्वारा नियंत्रित केन्द्रीय वसूली उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुरूप होगी।

5.9 इस प्रकार प्रस्तावित स्थायी वित्त आयोग भी उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं होगा।

5.10 क्योंकि संविधान के अधीन गठित आनुक्रमिक वित्त आयोगों द्वारा ऐसी कोई शर्तें नहीं जोड़ी गई थी इसलिए अपेक्षित परिणामों की प्राप्ति बहुत कठिन लगती है।

5.11 हां, मोटे तौर पर मैं सहमत हूं। उत्तरदायित्व के सिद्धान्त मौजूद न होने के कारण ऐसे परिणाम मिलना स्पष्ट है। दोषनिवारक उपाय निम्नलिखित होंगे :

(i) संसद के एक कानून को लागू करना जिसमें (क) आयोग के सदस्यों के लिए योग्यताएं निर्धारित की जाएं तथा (ख) उनके चुनाव का तरीका निर्धारित किया जाए।

(ii) लोगों के जिस वर्ग के हित के लिए संसाधन अन्तरित किए गए हों उनके प्रभावी प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाए।

(iii) राज्य सरकार पर यह कानूनी बाध्यता लगाई जाए कि वह अन्तरित संसाधनों के तहत चलाई जा रही परियोजनाओं की आवधिक सात्विक रिपोर्ट प्रस्तुत करे।

(iv) उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को लागू करें।

5.12 प्रश्नाधीन प्रस्ताव के बारे में मेरी टिप्पणी यह है कि [यह एक "उदार" प्रस्ताव भी नहीं है। और न ही यह मूलभूत है। यह प्रस्ताव 1877-1882 के समय का है, तथा अपनी प्रकृति से यह पूर्ण रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतीक है जिसके समय सर रिचर्ड टेंपल ने इस विचार को ध्यान में रखते हुए कि कर-राशि की वसूली स्वयं प्राप्त ही करता है, जो उसके प्रयोग के लिए भी होती है, कर बंटवारे के माध्यम से संसाधन

अंतरण की वकालत की थी । 1984 का सातवां वित्त आयोग वर्ष 1877-82 के प्रस्तावों की सिफारिश कर रहा है जिन्हें उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

5.13 सातवें वित्त आयोग द्वारा सुझाई गई प्राथमिकता उस आधार के ही बिल्कुल विपरित है जिस पर ये सहायता अनुदान दिए गए थे । इन अनुदानों का उपयोग पूर्णतया उसी प्रयोजन के लिए किया जाए जिसके लिए इन्हें प्रदान किया गया हो । सातवें वित्त आयोग द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को रद्द कर दिया जाए ।

5.14 बंटवारे का निर्धारण या तो संविधान के वर्तमान उपबंधों द्वारा या संशोधित उपबंध द्वारा किया जाए ।

5.15 संतोषप्रद नहीं है ।

5.16 मेरी टिप्पणी है कि या तो राज्य वित्तीय मामलों में अपने उत्तरदायित्व को लागू करने में असमर्थ हैं, या केन्द्र ने उनका उत्तरदायित्व छीन लिया है ।

5.17 किसी के भी प्रति उत्तरदायी न होते हुए जरुर एक वर्ग राज्य के नाम पर राज्य के वित्त के साथ खिलवाड़ कर रहा है । इससे निबटने का उपाय उत्तरदायित्व को सख्ती से लागू करना है ।

5.18 मैं कुछ हद तक इससे सहमत हूं कि प्रतिबंध में उस सीमा तक ढील दी जा सकती है जिस सीमा तक इस मामले में स्वतंत्रता न होने के कारण उन्हें हानि पहुंच रही ही ।

5.19 न्यायोचित नहीं है ।

राज्य की परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए प्राप्त विदेशी ऋण का केन्द्र के माध्यम से अंतरण करना गलत है तथा एक अनैतिक वित्तीय लेनदेन है । विदेशी ऋण को अंतरित करने तथा बजट मे अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों के लिए निर्धारित धन राशियों को अन्य परियोजनाओं को अंतरित करने तथा धनराशियों को व्ययगत होने देने की तो केन्द्र सरकार को आदत रही है । इस कुप्रथा के विरुद्ध कोई प्रभावी जनमत तैयार नहीं किया गया । इसलिए अब राज्यों को वंचित किए जाने की बारी है । ऐसे सभी वित्तीय लेनदेनों का जनमत द्वारा विरोध किया जाना आवश्यक है ।

5.20 भारतीय रिजर्व बैंक के सभी कार्यों एवं प्रशासन में प्रत्येक समुदाय के हित प्रगति निहित होने चाहिए तथा उसे केन्द्र, राज्य एवं निजी क्षेत्र लिए उधार समन्वित करने के साथ-साथ स्वयं को भारतीय रिजर्व बैंक के योग्य बनाना चाहिए ।

5.21 राज्यों की "दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति" में योगदान देने वाले कारण निम्नलिखित है :

(1) राज्यों तथा केन्द्र दोनों में अच्छी सरकारों का अभाव रहा है ।

(2) और इसी तरह अच्छी सरकारों को बनाए रखने के लिए दोषमुक्त वित्तीय प्रणाली का भी अभाव रहा है । राज्यों की यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति तभी से है जब ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार ने प्रान्तों का निर्माण किया था । इसका सीधा सा अर्थ है कि यद्यपि यहां वयस्क मताधिकार है तथा एक निश्चित अवधि के बाद संसदीय तथा राज्यों में चुनाव होते रहे हैं परन्तु अभी भी लोगों की सरकार का लोगों के लिए और लोगों द्वारा दुरुपयोग किया जाता है ।

5.22 हां, कुछ सीमा तक ।

मैं यह सुझाव दूंगा कि निदेशक सिद्धान्तों विशेषकर अनुच्छेद 39 को तथा स्वामित्व से संबंधित इसके खंड (8) को विशेषतया लागू किया जाए और समुदाय के भौतिक संसाधनों का वितरण इस प्रकार किया जाए कि वे सार्वजनिक हित में अधिकतम सहायक हों ।

5.23 राज्यों से पहले सलाह लेने की परंपरा मात्र से ही संपूर्ण वित्तीय व्यवस्था में कोई सुधार आने वाला नहीं है ।

5.24 हां ।

5.25 कुछ हद तक हो सकता है ।

5.26 आनुपातिक रुप में अनुदान में परिशोधन एवं वृद्धि की जाए ।

5.27 हां, शिकायत न्यायोचित है ।

मैं निम्नलिखित उपाय सुझाता हूं :

(1) या तो राज्य विधान सभाओं वाले केन्द्र शासित प्रदेशों को पूरे राज्य का दर्जा दे दिया जाए,

(2) ऐसे केन्द्र शासित प्रदेशों को केन्द्र के अधीन ही रखा जाए जो केन्द्र शासित प्रदेश होने की सच्ची विशेषताएं रखते हो,

(3) केन्द्रशासित प्रदेश की संकल्पना को विकृत न किया जाए ।

यह देश की एकता के लिए बहुत घातक सिद्ध होगा ।

5.28 केन्द्र तथा राज्यों के वित्त का बंटवारा इस प्रकार किया जाए कि किसी आकस्मिकता की स्थिति में वे आत्मनिर्भर हो सकें । अब तक यह जिम्मेवारी न तो केन्द्र के लोगों की है और न ही राज्यों के लोगों की ।

वर्तमान परिस्थितियों में राहत सहायता के अधिकतम उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि जवाबदारी एवं जिम्मेदारी को सख्ती से लागू किया जाए ।

5.29 प्रस्तावित तीन अखिल भारतीय संस्थाओं के संबंध में मेरे विचार निम्नलिखित हैं :

(क) वे एक दूसरे में अतिव्यापक है,

(ख) यह एक द्वितन्त्र होगा,

(ग) जिम्मेदारियों का बांट दिया जाएगा,

(घ) यदि वर्तमान वित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों, जो उस अर्थ में शक्तिशाली अंग है, के विभेदक हितों को नुकसान पहुंचता है तो विभिन्न समुदायों एवं नागरिकों के आर्थिक हितों को कितना अधिक नुकसान पहुंच सकता है ।

(ङ) वास्तविक हल नहीं ढूंढा गया है तथा उलझे हुए प्रस्ताव सुझाए गए है ।

5.30 निधियों को बुद्धिमानी से खर्च करने तथा उनके लाभ अधिक संख्या में लोगों तक पहुंचने की शर्तों की पूर्ति के लिए यह बात कि उन्हें एकत्रित एवं वितरित कौन करता है तब तक अप्रासंगिक हो जाती है जब तक लोग भी ऐसा ही न करें ।

5.31 आयोगों को चाहे किसी भी नाम से बुलाइए । उनकी सांविधानिक स्थिति क्या है, तथा उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को कैसे लागू किया जाता है । क्या संसद और उसके सभी सदस्य असफल हो गए हैं । कोई पसंद करें या न करे परन्तु सारी प्रश्नावली में एक मामला अत्यन्त सम्मोहक है कि जैसे अंग्रेज शासक, जो यद्यपि अच्छे प्रशासक थे,भारत के लोगों का कल्याण में अक्षम थे, इसी प्रकार ऐसा लगता है भारत का शासक वर्ग भी उसी की परिपुष्टि में वही सब करने में अक्षम है ।

5.32 केन्द्र के लेखों के मामले में नियंत्रक की रिपोर्ट राष्ट्रपति को तथा राज्य-लेखों के मामले में राज्यपाल को प्रस्तुत की जाती हैं । इससे केन्द्र-राज्य संबंधों की स्थिति का पता चलता है ।

5.33 वाउचर लेखा-परिक्षा के अतिरिक्त मूल्यांकन को भी समय रहते आगे बढ़ाना चाहिए ।

5.34 अधिनियम के तहत नियंत्रक महालेखापरीक्षक को पर्याप्त शक्तियां तथा कार्य नहीं सौंपे गए हैं ।

5.35 ये रिपोर्टें पर्याप्त रुप में विस्तृत नहीं हैं । उनमें मुख्य चूकों, असंगतियों, अवैधताओं तथा तुलनात्मक मूल्यांकन लेखा-परीक्षा का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए ।

5.36 आज यह कोई यथेष्ट निरोध नहीं है । परन्तु भविष्य में इसे एक यथेष्ट निरोध होना चाहिए ।

5.37 वह एक प्रहरी के रूप में कार्य कर सकता है तथा उसे ऐसा करना चाहिए।

5.38 मैं नहीं सोचता कि व्यय आयोग की आवश्यकता है।

5.39 राज्यों को ऐसा करने के लिए प्राधिकृत करने से मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा। केन्द्र के पास यह सुनिश्चित करने के साधन होने चाहिए कि विशिष्ट उद्देश्य के लिए आरक्षित निधियों का उपयोग वास्तव में किया जाता है।

भाग VI

अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक आयोजना

6.1 प्रशासनिक सुधार समिति ने अन्य कमियों के साथ-साथ जीन तीन कमियों का उल्लेख किया है उनसे परिस्थितियों की भयावह तसवीर सामने आती है जिसे मुश्किल से ही राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की आयोजना कहा जा सकता है।

मैं निम्नलिखित उपचारी उपायों का सुझाव देता हूं :

(i) केवल केन्द्र के ही प्रतिनिधित्व वाली योजना आयोग की एक उप समिति होनी चाहिए जिसमें केवल केन्द्रीय सूची के अन्तर्गत आने वाले विषय ही हों।

(ii) योजना आयोग की एक अन्य उप-समिति होनी चाहिए जिसमें केवल राज्यों के ही प्रतिनिधि हों तथा उसमें केवल वही विषय सम्मिलित हों जो पूर्णतया राज्य सूची के अन्तर्गत आते हैं।

(iii) योजना आयोग की एक तीसरी उप-समिति भी होनी चाहिए जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के मिले-जुले प्रतिनिधि हों और जिसमें केवल समवर्ती सूची के अन्तर्गत आने वाले विषय ही सम्मिलित हों।

(iv) योजना आयोग की इन तीन उप-समितियों का समन्वय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाले योजना आयोग द्वारा किया जाना चाहिए तथा इन्हें अपनी समन्वित रिपोर्ट राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मुख प्रस्तुत करनी चाहिए।

(v) राष्ट्रीय विकास परिषद में केन्द्र, राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों तथा विभिन्न समुदायों के लोग होने चाहिए।

6.2 जैसा कि ऊपर प्रश्न 6.1 के उत्तर में कहा गया है।

6.3 जैसा कि प्रश्न 6.1 के उत्तर में कहा गया है।

6.4 केन्द्र में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली एक केन्द्रीय योजना समिति होनी चाहिए। प्रत्येक राज्य में उसके मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक राज्य योजना समिति होनी चाहिए। प्रश्न 6.1 के उत्तर को भी देख लें।

यदि इस उत्तर तथा प्रश्न 6.1 के उत्तर की विषयवस्तु स्वीकार्य हो तो उन्हें भारतीय संविधान के उपबन्धों में सम्मिलित कर लिया जाए।

6.5 जैसा कि प्रश्न 6.1 एवं 6.5 के उत्तर में दिया गया है।

6.6 कृपया प्रश्न 6.1 तथा 6.4 के उत्तरों को देखें और मेरे द्वारा प्रस्तावित आशोधन निम्नलिखित है :

(1) केवल राज्य सूची में सम्मिलित विषयों से संबंधित राज्य-योजना में संबंधित राज्य की राज्य योजना समिति का निर्णय अन्तिम होना चाहिए, परन्तु इसमें योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा समन्वित समायोजन निसंदेह किए जा सकेंगे। इस योजना में राष्ट्रीय प्राथमिकता का कोई मुद्दा नहीं उठाया जा सकता।

(2) केन्द्रीय सूची में सम्मिलित विषयों से ही सुपूर्णतया सम्बन्धित केन्द्रीय योजना में केन्द्रीय योजना समिति का निर्णय अन्तिम होना चाहिए परन्तु इसमें योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा समन्वित समायोजन अवश्य ही किए जा सकते हैं। इस योजना में राज्य प्राथमिकताओं का कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

(3) समवर्ती सूची में सम्मिलित विषयों से ही पूर्णतया संबंधित समवर्ती सूची योजना में केन्द्र तथा राज्यों द्वारा संयुक्त रूप से किया गया निर्णय अन्तिम होगा परन्तु उसमें उपर्युक्त समन्वित समायोजन की शर्त होगी। इस योजना में राष्ट्रीय या राज्य प्राथमिकताओं दोनों पर विचार किया जा सकता है।

6.7 योजना आयोग के माध्यम से राज्यों की निधियों का वितरण करना असांविधानिक है। ऐसा केन्द्र द्वारा एक राज्य से दूसरे राज्य के आधार पर सम्बन्धित राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को किया जाना चाहिए।

6.8 हां, जैसे परिवर्तन उपर्युक्त विभिन्न उत्तरों में प्रस्तावित किए गए हैं।

6.9 केन्द्रीय सरकार के अधीन कार्य करते हुए योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् गरीबी हटाने और संतुलित क्षेत्रीय विकास की प्राप्ति के लक्ष्य में असफल रहे हैं। आयोजना की आड़ में समाज के कमजोर वर्गों तथा अविकसित क्षेत्रों के हिस्सों को हड़पा जा रहा है। आयोजना का कोई नामोनिशां नहीं है क्योंकि केन्द्र और राज्यों दोनों जगह "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का बोलबाला है।

6.10 कृपया ऊपर प्रश्न 6.4, 6.6, 6.7 और 8.6 के उत्तरों को देखिए।

6.11 वर्तमान तंत्र न केवल अपर्याप्त है अपितु भ्रामक भी है, यह लोगों के पिछड़ेपन को बनाए रखने के लिए ' है। यह व्यवस्था दरिद्र/जरूरतमंद को उसके अधिकार से वंचित करती है और यह भ्रष्टाचार की जननी है। जिन लोगों के लिए इन योजनाओं का निर्माण किया जाता है उनके वास्तविक एक प्रभावी प्रतिनिधियों को योजनाओं के कार्यान्वियन और यदि आवश्यक हो तो, उनके निर्माण में प्रजातांत्रिक आधार पर सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा समय-समय पर संबंधित विधान-मंडलों के सामने कार्यान्वियन की आवधिक ' रिपोर्ट पेश की जानी चाहिएं।

6.12 उपर्युक्त उत्तरों के अन्तर्गत आ जाता है।

6.13 केन्द्रीय योजनाएं हो या राज्य योजनाएं, उनके कार्यान्वियन में उन लोगों को जनतांत्रिक आधार पर सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनके भले के लिए उनका निर्माण किया गया है और उनके कार्यान्वियन की आवधिक रिपोर्टें संबंधित विधान-मंडल के सम्मुख रखी जानी चाहिए, कार्यान्वियन तथा ऐसी रिपोर्टों के सम्बन्ध में स्थानीय समाचार पत्रों में प्रचार किया जाना चाहिए।

भाग VII

उद्योग

7.1 कृपया डा० भीमराव उर्फ बाबासाहेब आंबेडकर (भारतीय संविधान के मुख्य रचियता) द्वारा संविधान सभा को दिए गए ज्ञापन, विशेषकर उस ज्ञापन की पृष्ठ संख्या 14 से 16 को देखें जिसमें सुझाव दिया गया है कि :

(1) मूल उद्योगों का स्वामित्व एवं संचालन, राज्य के पास होनी चाहिए;

(2) आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व राज्य के पास होना चाहिए तथा उनका संचालन या तो राज्य द्वारा या निगम द्वारा किया जाना चाहिए ;

(3) जीवन बीमा निगम राज्य के एकाधिकार में होना चाहिए तथा

(4) कृषि को राज्य उद्योग बनाया जाए।

डा० बाबासाहेब आंबेडकर की व्याख्यात्मक टिप्पणियां उक्त ज्ञापन की पृष्ठ संख्या 30 से 35 पर हैं। मैंने इन सुझावों को अपना लिया है जिन पर आयोग को गंभीरता से विचार करना चाहिए।

7.2 (1) हां, कुछ मानदण्ड अवश्य होने चाहिए। ऐसे मानदंड निर्धारित करने का तर्कसंगत ढंग सभी समुदायों को अवसर उपलब्ध कराना होना चाहिए।

(2) हटाना आवश्यक नहीं है।

7.3 एक सर्व समुदाय औद्योगिक विकास परिषद का गठन किया जाना चाहिए जिसमें सभी समुदायों के लोग हों जिन्हें पूंजीगत/प्रधानमुद्दों/लाभों की निकासी, पूंजीगत वस्तुओं एवं कच्चे माल के आयात तथा विदेशी सहभागिता सहित सभी मामलों के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करने का अधिकार हो।

7.4 (क) राज्य इतने संगठित नहीं है कि इस लघु क्षेत्र को प्रोत्साहित कर सकें, या शोषित समुदायों के हित के लिए असमानताएं समाप्त कर सकें।

(ख) राज्यों के दृष्टिकोण में भी वही मुख्य कमियां हैं जो राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रति राज्यों के दृष्टिकोण में हैं।

7.5 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, आई० जी० आफ इण्डिया, भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट जैसी केन्द्र द्वारा नियंत्रित राष्ट्रीय औद्योगिक वित्तपोषक संस्थाएं भी उसी रूप में राज्य योजनाओं के प्रति भेदभाव बरतती हैं और राज्य योजनाएं भी संबंधित राज्यों में शोषित समुदायों के प्रति उसी रूप में पक्षपात का व्यवहार करती हैं तथा केन्द्र द्वारा इसका कोई उपचार नहीं किया जाता।

7.6 हां, आलोचना न्यायोजित है.... राज्यों से परामर्श अवश्य किया जाए।

7.7 आलोचना न्यायोचित है। भारी उद्योगों में प्रत्यक्ष निवेश के मामले में केन्द्र ने कुछ राज्यों की अपेक्षा की है। न ही केन्द्र ने अल्पविकसित राज्यों या राज्यों के शोषित समुदायों का पक्ष लिया है।

अल्पविकसित राज्यों तथा प्रत्येक राज्य के अल्पविकसित समुदायों के बहुमुखी विकास के लिए मेरा सुझाव यह है कि अल्पविकसित राज्यों तथा अल्पविकसित समुदायों के विकास के लिए एक परिषद की स्थापना की जाए जिसे उनके विकास से सम्बन्धित सभी मामले निपटाने के लिए पर्याप्त शक्तियां प्राप्त हों।

7.8 नहीं। एक और नहीं।

हां। जैसा कि प्रश्न 7.7 के उत्तर में कहा गया है।

व्यापार एवं वाणिज्य

8.1 ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति करना परम आवश्यक है। ऐसी सूचना अत्यन्त गोपनीय रहती है, यद्यपि भारत एक स्वतंत्र और प्रजातांत्रिक राष्ट्र है तथा यहां की चुनाव पद्धति वयस्क मताधिकार पर आधारित है। ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति अवश्य की जाए। वर्तमान आयोग स्वयं भी "स्वप्रेरणा से" या लोगों से पूछताछ करके ऐसी सूचना मांग सकता है।

कृषि

9.1 केन्द्र व राज्यों के संबंध में केवल क्षेत्र संबंधी दृष्टिकोण ही पर्याप्त नहीं है। मैं ऐसे दृष्टिकोण का समर्थन करूंगा जो मोटे तौर पर हमारे संविधान के अनुच्छेद 39, जो निदेशक सिद्धान्त का एक भाग है, पर खरा उतरे।

9.2 कृपया ऊपर पिछले प्रश्न 9.1 के मेरे उत्तर को देखें।

9.3 केन्द्र तथा राज्यों के बीच उसी सीमा तक सहयोग होगा जिस सीमा तक केन्द्र तथा राज्य एक दूसरे के साथ समाजशास्त्र के आधार पर सहयोग करते हैं। यदि सामाजिक बाधाएं हटा दी जाएं तो सहयोग बढ़ सकता है।

9.4 उन मामलों से यथा कृषि उत्पादों की कीमतें निर्धारित करने, सिंचाई, ऋण, वानिकी नीति तथा प्रशासन इत्यादि में केन्द्र-राज्य संबंधों में गंभीर समस्याएं हैं।

इसका हल है सामाजिक वैमनस्य एवं आर्थिक विषमता कम करना, जिनके न होने से कुछ समय बाद हल केवल राजनीतिक हल रह जाएगा।

9.5 पिछले उत्तर के अन्तर्गत आ जाता है।

खाद्य एवं नागरिक आपूर्तियां

10.1 उल्लेखित क्षेत्रों में सुधार की गुंजाइश है। उत्तरदायित्वों की जांच संविधान के उपबन्धों के अनुसार होनी चाहिए।

10.2 हां। आवधिक समीक्षा की जानी चाहिए। ऐसे विषयों तथा संविधान में दिए गए ऐसे ही अन्य विषयों की आवधिक समीक्षा के लिए एक आयोग की स्थापना की जानी चाहिए।

शिक्षा

11.1 ऐसी आलोचना तभी न्यायसंगत होगी यदि राज्य भी ये चाहते हों कि केन्द्र तथा सभी राज्य मिलकर संपूर्ण भारत के लिए शिक्षा से संबंधित मामलों का निर्धारण करें। यदि कोई राज्य स्वयं ही कथित हस्तक्षेप इत्यादि के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप में आलोचना कर रहा हो तो ऐसी आलोचना न्यायसंगत नहीं है।

11.2 स्वयं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नाम से "अनुदान" शब्द का होना इसके सीमित उद्देश्य का द्योतक है क्योंकि इसमें अनुदान पर अधिक बल दिया गया है और शिक्षा पर कम, विश्वविद्यालय शिक्षा पर तो और भी कम। इस प्रकार अन्य केन्द्रीय आयोगों की तरह यह आयोग भी पक्षपातपूर्ण मनोवृत्तियों से ग्रस्त है।

11.3 एक सुझाव यह भी है कि शिक्षा में संपूर्ण विषय को केन्द्रीय सूची तथा राज्य सूची से हटाकर केवल एक समवर्ती विषय बना दिया जाए।

11.4 मैं देखती हूं कि बहुत सी कठिनाइयां हैं। भविष्य में शिक्षा, भारत में एक सबसे बड़ी समस्या बनने जा रही है। सारे भारत में शिक्षा में एकरूपता होनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा प्रणाली से ऐसा नहीं हो सकता। या तो संपूर्ण शिक्षा राज्य का मामला हो जिसमें निजी शिक्षण संस्थाओं के लिए कोई भी गुंजाइश न हो, या शिक्षा चाहे राज्य द्वारा दी जाए या निजी संस्थाओं द्वारा भारत भर में प्रत्येक कक्षा, डिप्लोमा या डिग्री के लिए एक ही पाठ्यक्रम होना चाहिए। पिछली राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था तो युद्ध के अनर्थकारी प्रभावों से भी अधिक भयंकर एवं गंभीर स्थिति का स्मारक है।

11.5 ऊपर दिए गए पिछले उत्तरों के अन्तर्गत आ जाता है।

सरकारों के बीच समन्वय

12.1 हमारे संविधान में अन्तर्राज्यीय परिषद की व्यवस्था है। यदि हमें संयुक्त राज्य अमरीका के परामर्शदात्री अन्तःसरकारीय आयोग या किसी संघीय राज्य के ऐसे ही किसी अन्य निकाय से कोई लाभ हो सकता है तो हम वह लाभ लेना चाहेंगे।

अनुपूरक टिप्पणी

(केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित प्रश्नावली के उत्तरों पर)

उन महत्वपूर्ण मुद्दों पर जिन्हें आयोग की प्रश्नावली में स्थान नहीं मिला।

1. मुद्दा संख्या 1 : राज्यों की अनित्य या अस्थायी प्रकृति

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व या बाद के भारत के शासकों ने राज्यों से इस धारणा के आधार पर व्यवहार किया है कि वे अनित्य एवं अस्थायी हैं। यह निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हैं :

(1) स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व लगभग 162 इकाइयां थीं (चाहे वे भूतपूर्व रियासतें हों या भूतपूर्व अंग्रेजी प्रान्त)।

(2) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद "क" "ख" "ग" "घ" राज्य बनाए गए।

(3) "क" "ख" "ग" "घ" राज्यों की समाप्ति के बाद द्विभाषी और कुछ एकभाषी राज्य बनाए गए।

(4) इन्हें भी समाप्त कर दिया गया और भाषावार राज्य बनाए गए।

(5) बाद में एक के बाद एक केन्द्र शासित प्रदेश बनाए गए।

शासकों के हाथों में खेलते हुए राज्यों का निर्माण या समाप्ति, या बंटवारा, या केन्द्र शासित प्रदेशों का सर्जन भारत को बहुत महंगा पड़ा है। इसलिए बिना कोई समय गवाएं स्थायी राज्यों के प्रश्न को एक "राज्य" की आधुनिक संकल्पना के अनुसार अवश्य सुलझा लिया जाए।

2. मुद्दा संख्या 2 : केन्द्र-संघ के विघटन को रोकना

केन्द्र के विघटन में लगी शक्तियां एक बार सफल हो चुकी हैं और उन्होंने संघ का बंटवारा करवा दिया था। वहीं विघटनकारी शक्तियां विभिन्न भेषों में आज भी सक्रिय हैं। केन्द्र भी उतना ही भेद्य है जितने "राज्य" हैं। सच्चे एवं प्रभावी राजनीतिक एवं सांविधानिक उपचारी उपाय ढूंढने होंगे।

3. मुद्दा संख्या 3 : दक्षिण बनाम उत्तर तथा एकता

दक्षिणी राज्यों के बाल्कनीकरण और उत्तरी राज्यों के दृढ़ीकरण के जहर को जल्दी से जल्दी समाप्त किया जाए।

4. मुद्दा संख्या 4 : राजभाषा एक या अनेक

यदि भारतवासी सही अर्थों में भारत की एकता चाहते हैं, केन्द्र या विभिन्न राज्यों में एक से अधिक राजभाषाएं वांछित एकता को खंडित करेंगी। चाहे केन्द्र हो या राज्य दोनों में एक ही राजभाषा होनी चाहिए। जो लोग इस सुझाव के विरुद्ध है उन्हें यह स्पष्ट करना होगा कि भारत की एकता कैसे बनाए रखी जा सकती है।

5. मुद्दा संख्या 5 : जातियां तथा राज्य एवं एकता

कुछ क्षेत्रों में कुछ जातियां विशेष संख्या में अधिक हैं तथा वहां उनका प्रभुत्व है। यहां तक कि ऐसे राज्य जाति-राज्य बन गए हैं। जाति राष्ट्रविरोधी है। ऐसे राज्यों के राष्ट्रविरोधी हो जाने की पूरी संभावना है। इसलिए अत्यधिक कड़े एवं प्रभावी निरोधों एवं संतुलनों की आवश्यकता है।

6. मुद्दा संख्या 6 : दो दलीय प्रणाली एवं एकता

संसदीय तथा राज्यों के चुनावों दोनों के लिए दो दलीय प्रणाली के अभाव में न तो भारत की एकता को और न ही किसी वर्तमान राज्य की एकता को बनाए रखा जा सकता है।

7. मुद्दा संख्या 7 : चुनाव-पद्धति और एकता

एक-सदस्य क्षेत्रीय-निर्वाचन क्षेत्र पर आधारित चुनाव प्रणाली असफल रही है जिसका परिणाम असांविधानिक राष्ट्रपति शासनों के रूप में सामने आया है। प्रत्येक राज्य के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में बहु सदस्यीय-निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाने चाहिएं।

8. मुद्दा संख्या 8 : कुछ विशेष समुदायों का सत्ता से अपवर्जन

सत्ता के अपवर्जन गुलामी की पक्की निशानी है। इसे समाप्त किया जाए।

9. मुद्दा संख्या 9 : प्रधानमंत्री का पद और एकता

भारत के प्रधान-मंत्री का चुनाव संपूर्ण लोक सभा द्वारा किया जाना चाहिए।

10. मुद्दा संख्या 10 : अनुसूचित जातियों से बुद्ध धर्म में गए लोगों को अधिकार देना

जो लोग बुद्ध धर्म में चले गए हैं उन्हें एक लम्बे एवं कड़े संघर्ष के बाद प्राप्त अनुसूचित जाति के अधिकारों से वंचित करना धर्म के प्रति भेदभाव है। यह भेदभाव विशेषतया इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए परम अनैतिक है कि अस्पृश्यता दूर करने का कोई उपाय नहीं है।

11. मुद्दा संख्या 11 : सीमावर्ती राज्यों का प्रश्न

यह एक राष्ट्रीय प्रश्न है और इसे सभी समुदायों के प्रतिनिधियों से परामर्श करके केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही सुलझाया जाना चाहिए।

भारतीय रेवल्यूशनरी कम्युनिस्ट (क्रांतिकारी साम्यवादी दल) पार्टी

प्रश्नावली का उत्तर

उद्देशिका

हमारे मतानुसार, केन्द्रीयकरण के एक लम्बे दौर के बाद, राजनीतिक एवं आर्थिक दोनों क्षेत्रों में केवल विकेन्द्रीकरण का एक क्रमिक दौर ही देश को इसकी वर्तमान मरणासन्न स्थिति से निकाल सकता है और विघटनवाद, अलगाववाद तथा तनाव का मुकाबला कर सकता है। इससे पिछड़ी एवं दलित जन-जातियों तथा अन्य वर्गों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा तथा उन्हें उनकी वर्तमान लाचारी की हालत से निकाल कर पुनरुज्जीवन देने में सहायता मिलेगी जो आगे राष्ट्रीय अखंडता, धर्मनिरपेक्षता तथा लोक तंत्र पर आधारित एक स्वस्थ राष्ट्र के निर्माण में सहायक होगा।

20 नवम्बर, 1984.

भाग I

प्रस्तावना

1.1 संविधान लागू होने के बाद साढ़े तीन दशकों की अवधि में संविधान के संघीय रूप को तो बनाए रखा गया है परन्तु इसकी संघीय विषय-वस्तु का काफी क्षय हुआ है। प्रवृत्ति राज्यों की कीमत पर केन्द्र के हाथों में अधिक शक्ति एकत्रित करने की रही है।

1.2 अनुच्छेद 251 तथा 365 में उचित संशोधन किए जाने की आवश्यकता है ताकि जब केन्द्र तथा किसी राज्य या राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें हों तो केन्द्र के राजनीतिक पूर्वाग्रह किसी राज्य विधान-मंडल या विधान-मंडलों को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के उपयोग में अड़चन न डालें या उन्हें निष्फल न कर सकें या उनका प्रयोग करने से उन्हें रोक न सकें।

1.3 से 1.6 यह पूर्णतया सच है कि इतने बड़े आकार तथा जनसंख्या, संस्कृति एवं भाषा की इतनी भिन्नता और सामाजिक आर्थिक स्तरों में असमानता वाले देश में केन्द्र से राज्यों को संसाधनों तथा उत्तरदायित्वों का बड़ी संख्या में न्यागमन किया जाना चाहिए। केन्द्र द्वारा अनाधिकार रूप से अपनी शक्तियां, न्यायोचित रूप में जो राज्यों के क्षेत्र में आती हैं, का उपयोग किए जाने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप काफी विरोध एवं तनाव उत्पन्न हुआ है। लोगों को एकता तथा देश की प्रादेशिक अखंडता का सर्वोच्च महत्व है।

1.7 केन्द्र तथा राज्यों के दायित्वों की पुनःसंरचना के लिए संविधान में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए।

1.8 संविधान के अनुच्छेद 3 के उपयोग द्वारा केन्द्र को प्रदत्त शक्ति को न छेड़ा जाए।

भाग II

विधायी संबंध

2.1 तथा 2.2 संविधान, जैसा कि मूलतः बनाया गया था, केन्द्र और राज्यों के संयुक्त अधिकारों को सामान्यतया उदार रूप से संविभाजित करता है। परन्तु समय बीतने के साथ संघ लगातार राज्यों के अधिकारों पर अनधिकार हस्तक्षेप द्वारा अपने अधिकारों की सीमा को बढ़ाता रहा है। हमारे विचार से, समवर्ती सूची की ध्यानपूर्वक जांच की जानी चाहिए, ताकि उनमें ऐसी मदें जिन्हें राज्य के अधिकार क्षेत्र में छोड़ा जा सकता है और छोड़ दी जानी चाहिए, राज्यों को अन्तरित कर दी जानी चाहिए जबकि केन्द्र द्वारा राष्ट्रीय और लोकहित में लागू की जाने वाली मदें केन्द्रीय सूची में रख दी जानी चाहिए।

2.3 जी हां।

2.4 जबकि "राष्ट्रीय" अथवा "लोक" हित शीर्षों वाली सूची तैयार करना संभव नहीं है तथापि "राष्ट्रीय" अथवा "लोक" हित मानी जानी वाली मदों के स्वरूप और किस्म को संविधान में स्पष्ट रूप से अलग-अलग उल्लिखित किया जाना चाहिए। ऐसे अधिकारों को केन्द्र द्वारा 6: मास से अधिक अवधि के लिए लागू नहीं किया जाएगा।

2.5 जब संसद ऐसे किसी विधान को अधिनियमित करना चाहती है जिसमें राज्यों के अधिकारों का विषय की दृष्टि से अथवा उल्लंघन के रूप में संविधान में गारंटीकृत किया जाता है तो अंतिम रूप से तैयार किया गया विधेयक संसद में लाने से पहले संबंधित राज्य/राज्यों की अन्तर्राज्यीय परिषद के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा।

भाग III

राज्यपाल की भूमिका

3.1 समय बीतने के साथ राज्यपाल के पद का केन्द्रीय सरकार चलाने वाली पार्टी के हित में तथा राज्य सरकारों के हित के विपरीत खुल्लमखुल्ला राजनैतिक कारणों के लिए उत्तरोत्तर दुरुपयोग होता रहा है। संविधान राज्यपाल को किसी राज्य का अनौपचारिक अथवा पदधारी प्रमुख बनाता है परन्तु ऐसे दृष्टान्त मौजूद हैं जिनमें राज्यपाल बहुतायत राज्य के दिन प्रति दिन के प्रशासन में दखलंदाजी करते रहे हैं। इन दृष्टान्तों के तहत औपचारिक अथवा पदधारी प्रमुख के रूप में राज्यपाल से ऐसा करने की अपेक्षा नहीं की जाती है।

किसी चुनी गई राज्य सरकार जिसको विधान सभा में बहुमत प्राप्त है, ऐसी सरकार को मनमाने रूप से भंग कर देना तथा संविधान का पूर्ण रूप से उल्लंघन करते हुए इस बात को सुनिश्चित किए बिना कि किसी पार्टी को राज्य विधान सभा में बहुमत प्राप्त है या नहीं नई सरकार का मनमाने रूप से गठन करना आजकल अपवाद के स्थान पर एक नियम सा बन गया है। इस बात के गवाह हैं सिक्किम, जम्मू-कश्मीर तथा आंध्र आदि। संविधान का समुचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि राज्यपाल पर इस बात का उत्तरदायित्व डाला जा सके कि वह उस सरकार की वास्तविक शक्ति का सत्यापन करे जिस पर सदन में (जब तक की मुख्यमंत्री बहुमत प्राप्त न करने के आधार पर ऐसा करे) बहुमत प्राप्त न करने का आरोप लगाया गया हो तथा साथ ही वह नयी पार्टी या पार्टियों के संयुक्त सम्मिलन द्वारा सदन में दावा किए गए बहुमत की जांच करे। यह जांच नयी सरकार के शपथ ग्रहण करने के 15 दिन के अन्दर हो जानी चाहिए।

3.2 यदि राज्यपाल केन्द्र सरकार को चलाने वाली पार्टी के राजनैतिक हित में कार्रवाई करने से इन्कार करता है तो राज्यपाल उसी स्थिति में स्वस्थ केन्द्र-राज्य संबंधों को प्रोत्साहित कर सकता जब वह संविधान का पूर्ण रूप से पालन करता है। इस संदर्भ में अनुच्छेद 164 को समुचित रूप से संशोधित करना भी आवश्यक है जिसमें मुख्य मंत्री अथवा मंत्री परिषद् के पदों को धारित करना पूर्ण रूप से राज्यपाल की "इच्छा" पर निर्भर है। चूंकि राज्यपाल राज्य का औपचारिक अथवा पदधारी प्रमुख है तथा चूंकि उसे मुख्य मंत्री द्वारा चलाई गई मंत्रीपरिषद् की सलाह पर कार्य करना होता है क्योंकि मुख्य मंत्री को राज्य विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायित्व निभाना होता है इसलिए अनुच्छेद 164 को इस रूप से संशोधित किया जाना चाहिए कि जिससे मुख्य मंत्री का पदधारण करना सदन के बहुमत के नियंत्रण पर निर्भर हो न कि राज्यपाल की "इच्छा" पर निर्भर होना है, क्योंकि राज्यपाल अपनी "इच्छा" का राज्य विधान मण्डल को संदर्भ भेजे बिना स्वतंत्र रूप से इच्छा का प्रयोग कर सकता है।

3.3 यदि राज्यपाल राज्य मंत्रीपरिषद् के प्रति केन्द्रीय सरकार के राजनैतिक रूप के रूप में, पक्षपात के बिना तथा असंगत सहमति के बिना अपना स्वतंत्र निर्णय इस्तेमाल करता है तथा यदि ऐसे प्रश्नों की, क्या मंत्री परिषद् को सदन का विश्वास प्राप्त है या नहीं या फिर क्या कोई अन्य पार्टी अथवा पार्टियों का संयुक्त सम्मिलन नई सरकार गठित करने में बहुमत प्राप्त कर लेगी, यह सभी प्रश्न सदन द्वारा ही निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ दिए जाएंगे, अनुच्छेद 356 (1) के अन्तर्गत अधिकारों के दुरुपयोग के अवसर यथेष्ट रूप से कम हो जाएंगे।

3.4 "पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा "प्रश्नावली" के संबंध में दिए गए उत्तर" के पृष्ठ 9 पर उल्लेख किए अनुसार राष्ट्रपति द्वारा रोक कर रखे गए पश्चिम बंगाल के विधेयकों के विशिष्ट उदाहरण मौजूद हैं।

3.5 (i) केन्द्रीय सरकार आदेश देगी है

(ii) राष्ट्रपति द्वारा विधेयकों को रोक कर रखना—राज्य स्वायत्तता के लिए एक खतरा है।

(iii) अधिकतर मामलों में अनावश्यक देरी।

3.6 जी हां, राज्यपाल को केन्द्र और राज्य के बिच निकट की कड़ी होना चाहिए। परन्तु कांग्रेस पार्टी द्वारा शासित राज्यों से अतिरिक्त राज्यों के राज्यपालों से पक्षपात रहित व्यवहार नहीं किया है।

3.7 जी हां। परन्तु संबंधित राज्य सरकारों के मत को नियुक्ति से पहले ध्यान में रखा जाना चाहिए।

3.8 जी हां।

3.9 हमारा विचार है कि जर्मन संघीय गणराज्य में अपनाई गई पद्धति हमारे प्रयोजन से उपयुक्त है। ऐसी पद्धति उस स्थिति में भी आवश्यक नहीं होगी जब राज्यपाल की नियुक्ति तथा मुख्य मंत्री का चयन ऊपर बताई गई रीति से किया जाए।

3.10 उस पद्धति से संबंधित "मार्गनिर्देशों" को बनाना भी कठिन है जिसमें राज्यपाल अपने स्वविवेकाधिकार का इस्तेमाल करेगा परन्तु यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि वे परिस्थितियां जिनमें ऐसे स्वविवेकाधिकार इस्तेमाल किए जाते हैं पर्याप्त रूप से स्पष्टतः उल्लिखित कर दिए जाए।

भाग IV

प्रशासनिक संबंध

4.1 से 4.3 यह कहना वाजिब नहीं है कि अनुच्छेद 256, 257 और 365 के अंतर्गत किए गए प्रावधानों को परिसंघीय गठन में पूर्णरूप से समाप्त नहीं किया जा सकता। परन्तु यह आवश्यक है कि केन्द्र द्वारा किसी राजनीतिक कारण से उनका दुरुपयोग राज्य/राज्यों के अधिकारों का दमन करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाए। हमारी राय में इन खण्डों के सांविधानिक निहितार्थ तथा संचालित सीमा को उक्त अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए पूर्ण रूप से पुनः जांच लिया जाना चाहिए।

4.4 संविधान के लागू होने के 3-1/2 दशकों को देखते हुए, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अनुच्छेद 356 के अंतर्गत केन्द्र को दिए गए अधिकारों का कई बार दुरुपयोग किया गया है जबकि यह सत्य है कि इस अनुच्छेद को छोड़ा नहीं जा सकता, परन्तु उसको लागू करने से संबंधित बहुलकता को विकसित कर लिया जाना चाहिए जिससे कि केन्द्रीय सरकार राजनीतिक कारणों से इन अधिकारों का दुरुपयोग न करे।

4.5 ऐसी उद्घोषणा कि अधिकतम अवधि को मौजूदा तीन वर्षों से घटाकर एक वर्ष कर दिया जाना चाहिए।

4.6 जी हां, संतोषजनक रूप से कार्य हो रहा है।

4.7 जबकि संगठनों का कार्यचालन राज्य की स्वायत्तता में अनुचित अतिक्रमण न करे हम इस बात पर विश्वास करते हैं कि वे सभी संगठन राज्यों के लिए अधिक उपयोगी हो सकते हैं इसके लिए यह आवश्यक है कि राज्य/राज्यों के प्रतिनिधियों को इन निकायों में शामिल कर लिया जाए। राज्य के प्रतिनिधियों को बनने से संबंधित बहुलकता को आपस में विचार विमर्श कर के सहमति प्राप्त कर ली जानी चाहिए।

4.8 हम विश्वास करते हैं कि संविधान के उपबन्धों के अन्तर्गत राज्य सरकारों के दिन प्रतिदिन के कार्यचालन में एकरूपता लाने के लिए अखिल भारतीय सेवाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करती हैं। परन्तु हम इस बात पर

भी विश्वास करते हैं कि भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा दोनों ही के प्रशिक्षण का पूर्ण रूप से पुनर्गठन किया जाना चाहिए जिससे कि इन दोनों संवर्गों के सदस्यों की सेवाओं को राज्य के अनुशासन के अन्तर्गत जहां वे सदस्य कार्यरत हों जनता के कल्याण में लगा दिया जाए ।

4.9 जबकि अनुच्छेद 355 को छोड़ा नहीं जा सकता संविधान को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि किसी राज्य में सिविल सहायता के लिए केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस और अन्य पैरा मिलिटरी तथा मिलिटरी बल को केन्द्र द्वारा स्वयंमेव इस्तेमाल करने का अधिकार केवल तभी दिया जाना चाहिए जब कोई साम्प्रदायिक दंगे उठ खड़े हों अथवा जब भारत की सीमा की एकता को खतरा हो ।

4.10 उत्तर 2.1 में पहले ही दिया जा चुका है ।

4.11 ज़ोनल-परिषदों को पुन: क्रियाशील बनाया जाना चाहिए । उन्हें कार्य के निपटान के लिए नियमित अन्तरालों पर बैठक बुलानी चाहिए, ये बैठकें स्थायी सचिवालय द्वारा बुलाई जानी चाहिए ।

4.12 जी हां, यह वांछनीय है ।

भाग V

5.1 योजना और स्वविवेक से किए गए अंतरण 60% से बहुत ही नीचे के आंकड़ों तक पहुंच गए । "स्वत: और दखलंदाजी से मुक्त" नामक संवैधानिक विचारधारा कार्य रूप में नहीं ढाली गई है । इस प्रश्न पर विचार करते समय समस्त संसाधनों का निर्धारण करने के स्थान पर तथा साथ ही जनता की विरासत को राष्ट्र के इस्तेमाल के लिए केवल केन्द्र से स्थानांतरण पर विचार किया जाएगा चूंकि यह एक सहसम्बद्ध प्रश्न है इसलिए सामाजिक समतुल्यता का प्राक्कलन और प्राय: संसाधनों का क्रमिक विकास प्रमुख निश्चायक तत्व होना चाहिए । पूरे राष्ट्र के विकास के लिए यह महत्वपूर्ण है कि राज्यों की राजस्व योजना का ऐसा स्वरूप हो जहां पूरकता-अनुपूरकता सम्पूर्ण रूप से आवश्यक है । मिले जुले रूप में संसाधन योजना, संसाधन विकास तथा संसाधन वितरण के आधार पर एक बंधन राष्ट्र के विकास में प्रोत्साहन देगा । वित्त आयोग जो कि सिफारिशी निकाय का एक अंग रूप है उन्हें अपनी सिफारिशों को लागू करने के लिए स्वतंत्र तथा प्रत्यादेश देने की क्षमता होनी चाहिए ।

5.2 पिछले 30 वर्षों में राज्यों की केन्द्र पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति बढ़ी है । केन्द्र की राजस्व और संसाधन इस्तेमाल करने की शक्तियों को इस पद्धति से व्यवस्थित किया गया है कि उससे केवल लघुकालिक आवश्यकताओं को ही पूरा करने के लिए संसाधनों को जुटाया जा सका है । पुरानी सामंतवाद तथा उन्नत पूंजीवाद के मध्य के सन्धिकाल में समाज की उभरती आवश्यकताओं के लिए राजस्व स्रोतों की नयी परिभाषा की आवश्यकता है । प्रथमत: राज्य सूची को समवर्ती केन्द्रीय सूची में मिला लेने की वर्तमान प्रवृत्ति को भी बदला जाना चाहिए । द्वितीयत: सभी कर निर्धारण शीर्ष तथा अधिकारों को हिस्से में बांटकर इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलना चाहिए । तृतीयत:, राज्यों को आबंटित किए जाने वाले हिस्से का वस्तुपरक निर्धारण किया जाना चाहिए । यह निर्धारण न केवल निष्पादन के सिद्धान्त के आधार पर किया जाना चाहिए बल्कि हमारे असमान रूप से विकसित देश की अत्यावश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । उद्देश्य केवल इतना है कि दिमाग को खुला रखा जाए तथा हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं के प्रश्न पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए । एक ऐसी राष्ट्रीय आर्थिक नीति तैयार की जानी चाहिए जिसमें इन सभी बातों को मिला लिया जाना चाहिए । राज्यों को अपनी बात कहने का अधिकार होना चाहिए । संसाधनों के समतुल्य अंतरण की समस्या के सुलझाने के लिए ऊपर बताए गए उपायों को तुरंत कार्य रूप दिया जाना चाहिए ।

5.3 कुछ राज्यों को अधिक वित्तीय शक्ति देने से, समृद्ध राज्यों के पक्ष में सतुलन के स्वत: ही बिगड़ जाने का भय है । ऐसे समृद्ध राज्य जिनकी विकास दर ऊंची है उन्हें निचली विकास दर वाले राज्यों को आर्थिक सहायता देकर मदद करनी चाहिए, जिसकी नीति को अन्तर-राज्य परिषद द्वारा इस विचार को मद्दे नजर रख कर तैयार किया जाना चाहिए कि आर्थिक सहायता को केवल समान रूप से वितरित ही नहीं किया जाना चाहिए बल्कि राष्ट्रीय विकास को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । द्वितीयत: अन्तर राज्य असंगतियों को तब तक दूर नहीं किया जा सकता जब तक ऊपर बताई गई बात को पक्षपात रहित तथा सोद्देश्य लागू न किया जाए । केन्द्र से राज्यों को संसाधन-अंतरण की वर्तमान प्रवृत्ति मनमाने पन को पैदा करती है तथा सामाजिक और आर्थिक समतुल्यता के लिए हानिकारक है ।

5.4 स्रोत प्राप्यता एक घटक है । प्रबंध वर्ग द्वारा व्यय पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है । आर्थिक घाटे के प्रभावी और आवश्यकतानुसार इस्तेमाल से देश की आर्थिक व्यवस्था अंधी गली की ओर अग्रसर नहीं होगी ।

घाटे की अर्थव्यवस्था को लागू करने के उपाय से पूर्व पहला मानदण्ड है, स्रोत-निर्धारण तथा विकास । आजकल घाटे की अर्थव्यवस्था से मुद्रास्फीति का उद्भव हुआ है तथा कार्यान्वयन की समयावधि के संबंध में परियोजना लागत अधिक हो गई है । इससे औद्योगिक मंदी आ गई है तथा औद्योगिक तथा कृषि विकास के बीच असंतुलन पैदा हो गया है । इस विषय पर राष्ट्रीय स्तर पर विचार करना अत्यन्त महत्वपूर्ण मुद्दा है ।

5.5 और 5.6 संसाधन के मानदण्ड समतुल्य सिद्धान्त पर आधारित होने चाहिए । अब प्रश्न यह है कि राज्यों के लिए पर्याप्त संसाधन कैसे जुटाए जाए । एक तरफ राज्य के संसाधन उगाही क्षेत्रों पर कब्जा करना है और दूसरी ओर एक विशेष निधि गठित करना ही आवश्यक नहीं है । ऐसे अधिक्रमण से बचने तथा संसाधनों के बंटवारे में समतुल्यता को सुनिश्चित करने के लिए संविधान में उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए । केन्द्र से राज्यों को संसाधनों का वित्तीय बटवारा मनमाने ढंग से किया गया है न कि समतुल्य रूप से । जब तक कि संविधान में निर्देशों के बारे में स्पष्ट रूप से उल्लेख न किया गया हो तब तक केन्द्रीकरण के विषय में सुधार नहीं आएगा । जब तक कि केन्द्रीकरण सीमित न हो तथा विपरीत न हो; विकेन्द्रीकरण जो प्राप्यता के स्रोतों की उचितता सिद्ध करना है, वसूल नहीं किया जाएगा । मितव्ययी राजस्व प्रबंध सहित आर्थिक स्रोत राज्यों के उत्तरदायित्व पर छोड़ दिए जाएंगे । जब तक राज्य कर निर्धारण और उधार लेने के अधिकारों के बारे में स्वयं निर्णय करने की शक्ति नहीं रखते तब तक वे मितव्ययी प्रबंध की व्यवस्था कर पाने में असमर्थ हैं । राज्यों को वित्तीय उत्तरदायित्व का मुक्त प्रत्यायोजन करने से न केवल राज्यों की विकास दर में बढ़ोतरी होगी बल्कि केन्द्र की विकास दर में भी वृद्धि होगी ।

5.7 प्रश्नावली में उल्लिखित तीनों सिद्धान्त उस स्थिति में भी मान लिया जाएगा जब सहमति वित्तीय प्राप्यता पर निर्भर हो । इससे संसाधनों की निरन्तर प्राप्यता को बल मिलेगा । अनुच्छेद 268 और 269 द्वारा शामिल की गई अधिकतम मदें राज्य सरकारों द्वारा अंतरणीय होंगी तथा इससे ऐसे वित्त की प्राप्ति के लिए रास्ता आसान हो जाएगा ।

5.8 सभी कराधान शक्तियों का कुल केन्द्रीकरण का कोई औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता । यहां राज्यों को कर उगाहने वाले अधिकारों से वंचित रखा गया है । जैसा कि परिसंघीय राज्य व्यवस्था में होना चाहिए, राजस्व अधिकारों के वितरण के संबंध में केन्द्र को राज्यों से सलाह-मशवरा करके कार्रवाई करनी चाहिए । यदि आवश्यक हो तो कराधान शक्तियों का इस प्रकार का विकेन्द्रीकरण लागू करने तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल उनकी व्यवस्था करने की प्रथा को आरंभ कर दिया जाना चाहिए । स्वतंत्रता-पूर्व तैयार किया गया कराधान गठन पूर्ण रूप से असामयिक हो गया है ।

5.9 योजना तथा योजनेतर अंतरण में भेद नहीं किया जाना चाहिए । मौजूदा पद्धति विभेदी एवं मनमानी करने वाली है । जिससे असमानतया असंतुलन विकास की स्थिति पैदा हो गई है । राज्यों को किया जाने वाला आबंटन संसाधनों के उस मूल्यांकन पर निर्भर होना चाहिए जिस पर अन्तर-राज्यीय समानता पैदा होती है । योजना आयोग का गठन इस रूप में नहीं किया गया है यदि मौजूदा, प्रवृत्ति इसी तरह बनी रही तो राजस्व अंतरण से संबंधित निर्णय अन्तर राज्य-परिषद के अधीन स्वतंत्र निकाए पर निर्भर रहेगा ।

5.10 वित्त आयोग ने असमानता को पाटने के इस रुख को अनुचित महत्व दिया है। इसके परिणामस्वरूप कुछ राज्यों ने अपने अन्तर की इस स्थिति का बढ़ा-चढ़ा कर उल्लेख किया है। जबकि कुछ अन्य राज्यों ने इस अन्तर को कम करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। दूसरी ओर इस प्रकार की गई व्यवस्था से अन्तरराज्य विषमताओं को कम नहीं किया जा सका।

5.11 ये विचार विधिमान्य है। पूंजी और राजस्व लेखों में अन्तर को पाटने के इस पहलू में अपनाया गया मौजूदा रुख छोड़ दिया जाना चाहिए। स्वतंत्रता और उद्देश्यता के गुण का मानदण्ड केन्द्र और राज्य के बीच बंटवारे और साथ ही राज्यों के बीच बंटवारे के निर्धारण के लिए होना चाहिए।

5.12 केन्द्र और राज्यों तथा साथ ही राज्यों के बीच राजस्व संसाधनों के समतुल्य अंतरण के लिए ठोस नींव रखी जानी चाहिए। यदि ऐसा कर लिया जाए तो कर को बांट लेने तथा सहायक अनुदान से केन्द्र-राज्य संबंधों में सुधार किया जा सकता है।

5.13 सन्धिकाल में सहायक अनुदान के बदले संसाधनों का बंटवारा होना चाहिए। आपात कालीन स्थिति को छोड़कर समृद्ध राज्यों को ऊपर बताई स्थिति का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए। किसी प्रकार की गलतफहमी को दूर करने के लिए इस प्रकार का आबंटन अन्तर-राज्यीय परिषद द्वारा ही किया जाना चाहिए।

5.14 केन्द्र द्वारा राजस्व तथा पूंजी लेखों दोनों पर ही उगाहे गए स्रोतों की कुल मात्रा में आबंटनीय विभाजन कि जाने योग्य पूल को शामिल किया जाना चाहिए। जैसा कि "प्रश्न" में शामिल किया जाना चाहिए इसे विशेष बियरर बंधपत्र स्कीम के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। पैट्रोलियम, कोयले पर लागू कीमत से प्राप्त राजस्व जोकि आयकर अधिभार, निगम कर, सम्पत्ति कर, सम्पदा ड्यूटी, सीमाशुल्क, उत्पाद शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से वसूल किया जाएगा। इसमें एल०आई०सी० तथा यूनिट ट्रस्ट के निवेश पैटर्न को भी शामिल किया जाएगा। उपरोक्त के संबंध में मौजूदा नीति मनमानी से पूर्ण है। किसी विशिष्ट राज्य में सभी एल० आई० सी० तथा यूनिट ट्रस्ट की कुल, आय राज्य की अन्य राजस्व गतिविधियों के संदर्भ में जोनल अथवा राज्य आधार पर आबंटन के लिए पर्याप्त है। यह बात राष्ट्रीय बचत पत्र तथा डाक-नकदी प्रमाणपत्रों पर भी लागू होगी। हमारा दावा है कि जहां राज्य की जनता इन निधियों का गठन करती है उनको इस प्रकार के निवेश पैटर्न में हिस्सा दिया जाएगा। राष्ट्रीयकृत बैंकों के संचालन की डिपोजिट/पेशगी स्कीम में यह भी एक महत्वपूर्ण निश्चायक तत्व होगा। बैंकों से सावधि जमा धारकों द्वारा लिए गए ऋणों पर 1% का केन्द्रीय ब्याज कर बहुत अधिक मनमाने ढंग से लिया जा रहा है। राज्य को कम से कम केन्द्र द्वारा लिए जाने वाले ब्याज कर में से 50% दिया जाना चाहिए।

चूंकि राज्य आयकर से प्राप्त कुल आय के 75% के हकदार है, ऊपर उल्लिखित अधिकतर निधियों की राजस्व उगाहने वाली स्कीम के लिए, जिसका उपयोग राज्य करेगा 25% से 85% तक आय होना चाहिए; इसका अपवाद केवल राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाणपत्र हैं।

5.15 इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि देश भर से कुल प्राप्त बचत को सरकारी और निजी क्षेत्रों के बीच बांट लेना चाहिए जबकि सरकारी क्षेत्रों को चाहिए कि वे इस बचत को भारी उद्योग, महत्वपूर्ण तथा बुनियादी उद्योगों के विकास पर लगाएं, निजी क्षेत्रों को भी इस बात की अनुमति होनी चाहिए कि वे ऊपर उल्लिखित क्षेत्र मे कोई कमी हो तो उसे पूरा कर दें। निजी क्षेत्र को मुख्य रूप से उपभोक्ता उद्योगों की स्थापना का कार्य सौंपा जाना चाहिए, यदि आवश्यक हो तो अलग-अलग साधनों के माध्यम से। यदि इस नीति का; वरीयता निर्धारित करने की पद्धति द्वारा पूंजी को समान रूप से वितरित करके पालन किया जाता है तो संतुलित विकास सुनिश्चित हो जाएगा। पूंजी प्राप्तियों में कर तथा करेतर राजस्व के वितरण के लिए हिस्सा निर्धारित करना इस संतुलित विकास को सुनिश्चित करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वितरण की यह पद्धति संतोषजनक नहीं है, क्योंकि इससे देश में कीमतों में गिरावट, औद्योगिक मन्दी तथा बढ़ती बेरोजगारी को बढ़ावा मिलता है।

5.16 मूल्यांकन सही नहीं है। राज्य सरकार का घाटा तथा कुल वितरण अनुपात केन्द्र के मुकाबले बहुत कम है। राज्य की राजस्व कठिनाइयां केन्द्र की पूंजी प्राप्तियों तथा सीधे बजार उधारों, दोनों ही क्षेत्रों में राज्य के कम होने वाले शेयरों के सीधे परिणाम हैं।

5.17 राज्यों की ऋणग्रस्तता चाहे वह भारी मात्रा में हो या नहीं, सही-सही आंकड़ों पर निर्भर नहीं है परन्तु सह सम्बद्ध स्थितियों पर निर्भर है। अन्तर्राज्यीय परिषद को इस बात को मद्दे नजर रखते हुए आवधिक पुनरीक्षण करना चाहिए कि जब और जहां आवश्यक हो उस ऋणग्रस्तता के कुछ हिस्सों को बट्टे-खाते डाल सके। यह निर्णय किसी विशेष राज्य में प्रचलित स्थिति की आपातता द्वारा नियंत्रित होगा। इन ऋणों को एक ओर तो बेहतर विकास दर द्वारा तथा उपयुक्त उद्योगों को बढ़ावा देते हुए प्रति-संतुलित किया जाएगा तथा दूसरी ओर धन के मूल्य के मूल्यह्रास के अनुपात में वर्गीकृत रीति से उसे बट्टे-खाते डाला जाएगा।

5.18 संविधान ने निस्सन्देह उधार लेने के राज्यों के अधिकार को प्रतिबंधित किया है। यदि कोई राज्य सरकार घाटे में हो तो वह केन्द्र की सुस्पष्ट अनुमति के बिना उधार नहीं ले सकती। क्रमिक केन्द्रीकरण से यह भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो गई है। जबकि पहले शुरू में कुल सरकारी उधार का 60% से अधिक राज्यों को दिया गया था जो अब घट कर 10% हो गया है। यह विषमता समग्र विकास को रुद्ध कर रही है। पिछड़े राज्य और अधिक पिछड़ते जा रहे हैं तथा इस प्रकार एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही है जो टूटन की ओर जा रही है। वित्तपोषण का कोई भी पुख्ता सिद्धान्त, कोटे को तत्काल ही 10% से 30% बढ़ा देने के विचार पर आधारित होना चाहिए। जिससे कि प्रवृत्ति यह हो कि सरकारी धन का हिस्सा घटाया न जाए बल्कि बढ़ाया जाए।

5.19 विदेशी उधारों के प्रश्न पर संदिग्ध स्थिति में है। एक ओर तो जहां अन्तरराष्ट्रीय बाजारों से प्राप्त किए गए ऋण तथा क्रेडिट की ब्याज दर काफी ऊंची हैं। इससे कीमते गिरती है तथा धन का मूल्यह्रास होता है। दूसरी ओर राज्यों को आबंटित इन ऋणों मे से शेयर की प्रमात्रा बहुत कम है और साथ ही ब्याज की दर भी बहुत ऊंची है। धन वापस करने की शर्त की अवधि भी उस मुकाबले कम है जो अवधि केन्द्रीय सरकार बाहरी एजेंसियों को देती है। संवीक्षा उस स्थिति में की जानी चाहिए जब ब्याज की दर को घटा कर तथा अधिक संविभाजन द्वारा बाह्य देशों से प्राप्त ऋणों को मनमाने ढंग से संविभाजित किया जाता है तथा ऊंची दर पर ब्याज लिया जाता है। ब्याज पर आर्थिक सहायता तथा ऋण की राशि में हिस्सा बटाना अलग-अलग राज्यों मे अलग-अलग होगा।

5.20. राष्ट्रीय ऋण तथा क्रेडिट कौंसिल को उधार लेने की सीमा निश्चित करने के लिए गठित करना एक सुविचार है, क्योंकि भारतीय रिजर्व बैंक जो कि केन्द्रीय सरकार से सम्बद्ध है इस कार्य को निष्पादित नहीं कर सकती। दूसरी ओर भारतीय रिजर्व बैंक को इस प्रकार गठित किया जाना चाहिए कि वह सारे राष्ट्र के स्वतंत्र रूप से कार्य करने की केन्द्रीय सरकार की शैली को दर्शाए।

5.21. केन्द्र द्वारा विलक्षण दावा किये जाने का यह एक और उदाहरण है। केन्द्रीय स्तर पर वित्त का घाटा 15% है और वह केन्द्रीय स्तर से 3% कम है। वित्तपोषण की घाटे की नीति को या तो राष्ट्रीय क्रेडिट कौंसिल के माध्यम से भेजा जाना चाहिए या फिर भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से साथ ही उसका एक स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए जिसमे राज्य के प्रतिनिधि शामिल होने चाहिएं। जैसा कि यह सच है राज्यों को इस नई पॉलिसी द्वारा निर्धारित किसी ओवरड्राफ्ट की सीमा अपने पर लागू नहीं करनी चाहिए, साथ ही यह भी सच है कि केन्द्र को भी ऊपर उल्लिखित निकाय द्वारा निश्चित ऋण की सीमा नहीं लांघनी चाहिए। इस विशेष परिस्थिति के लिए विशेष नीति की आवश्यकता है तथा इसलिए ऐसी कोई नीति यत्रवत् तथा मनमाने ढंग से निश्चित नहीं की जानी चाहिए। कुल राष्ट्रीय धन को योजनाबद्ध करने से यह मौजूदा विषमता दूर हो सकती है।

5.22. सही है। अधिकतर राज्य अपना लक्ष्य प्राप्त करने मे असफल रहे हैं। बहुत बार तो उन्होंने अपना कोई लक्ष्य भी निर्धारित नहीं किया।

अन्तर-राज्यीय परिषद को यह लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए और राज्यों के कार्य निष्पादन के अनुसार आबंटन पूल से धन दिया जाना चाहिए। अधिकतम वित्त संसाधन योजना के लिए यह भी एक तरीका है।

5.23 सर्वसम्मति से केन्द्र कार्पोरेट तथा आयकराधान मामलों में ढील बरतता रहा है। अन्तर-राज्यीय परिषद को सर्वप्रथम तो कुछ मामलों को राज्य सूची में अंतरित कर देना चाहिए तथा दूसरे, उत्पादन के संदर्भ में केन्द्र सूची की मदों की कर दरें निश्चित करनी चाहिएं यह बात राज्यों के लिए महत्वपूर्ण है।

5.24 ऐसा ही होना चाहिए।

5.25 चूंकि केन्द्र अनुच्छेद 269 का इस्तेमाल नहीं कर रहा इसलिए राजस्व मद राज्य सूची में अंतरित कर दी जानी चाहिए।

5.26 रेलवे यात्री भाड़ों तथा ऐसी आय को उगाहने में लग व्यय का अनुमान करने के लिए कोई कार्य प्रणाली निश्चित की जानी चाहिए। ऐसा करने से आयकर व्यय अनुपात का एक समुचित अंदाजा लग जाएगा। इसके बाद इस पूल से राज्यों को निष्पादन कर आबंटन किया जा सकता है।

5.27 संघ शासित क्षेत्र विशिष्ट वर्ग में आते हैं तथा इनके लिए आबंटन राष्ट्रीय हित पर निर्भर करता है।

5.28 प्राकृतिक आपदाओं से आपात कालीन स्थिति पैदा हो जाती है जिस पर राष्ट्रीय स्तर पर विचार किया जा सकता है। केन्द्र और राज्य टीमों को इस क्षति का निर्धारण करना चाहिए तथा राहत की प्रमात्रा निश्चित करनी चाहिए तथा केन्द्र द्वारा तत्काल सहायता प्रदान की जानी चाहिए और क्षति को पूरा करना चाहिए। क्या इसके लिए बजट व्यवस्था होनी चाहिए की नहीं यह गौण बात है।

5.29 भारतीय रिजर्व बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों के बोर्डों में राज्यों के प्रतिनिधि होने चाहिए जिससे कि क्रेडिट नीति के विकास में राज्यों के हिस्सा लेने की गारंटी हो जाए। ऐसी परिषदों को गठित करने से पहले यही पहला कदम होना चाहिए।

5.30 इन धनराशियों को लापरवाही से खर्च करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इनका उगाहना, बांटना तथा वितरण इस रूप में सम्बद्ध होना चाहिए कि जिससे राज्यों का योगदान स्पष्ट दिखाई दे।

5.31 एक या अधिक आयोगों को शामिल कर लेने से किए गए अधिक व्यय को रोका नहीं जा सकता। योजना लक्ष्य से अधिक संसाधनों को उगाहने के केन्द्र के विशेषाधिकार में ही जोखिम निहित है, इसके द्वारा केन्द्र के अपव्यय का आधार तैयार हो जाता है। इस प्रवृत्ति को स्पष्ट किया जाना चाहिए।

5.32 नियंत्रक महालेखापरीक्षक की नियुक्ति की पद्धति में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। अन्तर-राज्यीय परिषद न कि केन्द्रीय मंत्री-मंडल को, राष्ट्रपति के सलाहकार समिति के रूप में कार्य करना चाहिए। कोई सेवा निवृत्त नियंत्रक महालेखा परीक्षक के निजी क्षेत्र में नियुक्ति स्वीकार नहीं कर सकता, आवश्यक प्रतिलाभ तथा परिलब्धियों को समुचित रूप से समायोजित किया जाना चाहिए।

5.33 निष्पादन अनुमानित खर्च और मूल्यांकन लेखापरीक्षा का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

5.34 लेखापरीक्षा के सभी क्षेत्रों को विशेषकर रक्षा विभाग तथा विदेश-व्यय के संदर्भ में शामिल करते हुए नियंत्रक महालेखापरीक्षक के अधिकारों को बढ़ा दिया जाना चाहिए।

5.35 और 5.36 5.34 में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। इससे नियंत्रक महालेखापरीक्षक को पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो जाएंगे जिससे वह लोक व्यय के संबंध में हुए किसी विशेष प्रकार के विकास पैटर्न तथा ब्लाक को जनता के ध्यान में ला सकता है।

5.37 वर्तमान गठन एवं क्षमता के साथ प्राक्कलन समिति को इस प्रकार गठित किया जाना चाहिए कि वह अपनी विशेष सलाह से प्रशासन को दिशा-निर्देश दे सके।

5.38 नियंत्रक महालेखापरीक्षक, यदि संशोधन द्वारा आवश्यक समझे तो प्रस्तावित व्यय कमीशन को विस्थापित कर सकता है। उनके ब्यौरेवार विश्लेषण से उपयुक्त खर्च करने के बारे में राज्यों का मार्ग निर्देशन कर सकता है।

5.39 नियंत्रक महालेखापरीक्षक को यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त प्राधिकार मिलने चाहिएं कि जिससे राज्यों द्वारा राज्य, केन्द्र अथवा समवर्ती परियोजनाओं पर निधियों को समुचित रूप से खर्च किया जा सके। कोई भी अनावश्यक दखलंदाजी नहीं होनी चाहिए।

भाग VI

आर्थिक तथा सामाजिक योजना

6.1 आर्थिक तथा सामाजिक योजना के दो प्रभारी संगठन हैं और वे हैं, राष्ट्रीय विकास परिषद तथा योजना आयोग। इन दोनों संगठनों की कोई संवैधानिक या कानूनी हैसियत नहीं है। इसलिए इनके स्थान पर राज्य सरकारों के उचित प्रतिनिधियों सहित अन्तर-राज्यीय परिषदों द्वारा इनका स्थान ग्रहण कर लिया जाना चाहिए।

6.2 कार्यात्मक प्रयोजन के लिए योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद दोनों ही संगठनों को अन्तर-राज्यीय परिषद द्वारा निर्धारित मार्गनिर्देशों का पालन करना चाहिए।

6.3 योजना आयोग, केन्द्रीय मंत्रालयों के प्रति आज्ञाकारिता प्रकट करने के कारण राज्य सरकारों को अपना अधीनस्थ मानता है। इस प्रकार के सामंती तंत्र गठन को बदला जाना चाहिए।

6.4 योजना आयोग में मंत्रियों को शामिल करने का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि हमारे विचार से आयोग एक उच्च विशिष्टता प्राप्त सचिवालय है जो तकनीकी तथा प्रबंध विशेषता दोनों ही के गठन एवं विकास में सहायता करता है।

6.5 पहले किए गए अनुमानों के आधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद तथा योजना आयोग पुनर्गठित रूप में इस स्थिति में होंगे कि वे योजना से संबद्ध सभी पहलुओं पर सलाह दे सकेंगे।

6.6 वरीयताओं तथा लक्ष्य का बृहत निर्धारण आयोग का कार्य है। अंतर-राज्यीय परिषद द्वारा स्वीकृत किए गए अनुसार योजना आयोग के ब्यौरेवार सुझाव मूल रूप से राज्य योजना के आधार बनने चाहिएं (कार्य शुरू करने के लिए प्रशासनिक जिला स्तर पर)। यह राज्य के अधिकार क्षेत्र में होना चाहिए। राज्य योजनाओं तथा प्रस्तावों को अधिक्रमण की दृष्टि से जांच के लिए प्रस्तुत करने के स्थान पर यह प्रक्रिया उल्टी होनी चाहिए। जो जिला योजनाएं हैं वे वरीयतावार तथा लक्ष्यवार दोनों की ही रूपों में राज्य योजना में शामिल कर ली गई हैं उन्हें योजना आयोग द्वारा अन्तर-राज्यीय परिषद के सचिवालय के रूप में काम करने की अनुमति देनी चाहिए। कार्य निष्पादन तथा नेट-वर्क प्रगति अनुशीलन, योजना आयोग का कार्य होगा।

6.7 ऋणों, अनुदानों आदि के रूप में केन्द्र द्वारा प्राप्त सहायता को समुचित रूप से बांटने का प्रश्न योजना आयोग की पुनर्गठित भूमिका पर निर्भर करता है।

6.8 से 6.10 जिला योजना के समेकन पर आधारित राज्य योजना जब एक बार अनुमोदित हो जाए तथा इसका योजना आकार सुनिश्चित हो जाए तो उसके लिए आवश्यक संसाधनों को केन्द्र से मिलने वाले ऋण और अनुदानों को उचित रूप से बांट कर कार्य सम्पन्न किया जाना चाहिए। किसी भी ऐसी राज्य परियोजना के आकार में कोई वृद्धि, जहां संसाधनों को राज्य द्वारा उगाहा गया है, किसी भी आधार पर रोक कर नहीं रखा जा सकता। इसमें

विश्व बैंक से प्राप्त ऋण तथा आई० डी० ए० क्रेडिट भी शामिल हैं । जिन्हें उस स्थिति में पुन: जारी किया जाना चाहिए जब अन्तरराज्यीय परिषद पहले बताए गए आधार पर प्रस्तुत सभी राज्य योजनाओं के समेकन द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कोई बृहत योजना प्रस्तुत करती है । केन्द्रीय मंत्रालय को इस संबंध में कोई आदेश देने की आवश्यकता नहीं है ।

6.11 देश में प्रगति के अनुशीलन तथा लक्ष्य लागतों के मूल्यांकन की कमी है, इस बात को राज्य और केन्द्र दोनों ही स्तरों पर मजबूत किया जाना चाहिए । अनुशीलन का मानदण्ड सारे देश भर में एक समान रहने की बात को तरजीह दी जाएगी; यदि केन्द्र में नहीं तो कम से कम प्रत्येक राज्य में समानता बनी रहनी चाहिए ।

6.12 भारतीय संविधान में पंचायत राज्य के कार्यचालन का विचार शामिल किया गया है । उस अत्यंत पिछड़ी स्थिति जिसमें से आज भारत गुजर रहा है इस बात की अभी तक वकालत करने का बढ़ावा नहीं देता, कि मूल रूप से या ग्रामीण स्तर पर योजना बनाई जाए । जब ग्रामीण जनता तथा ग्रामीण प्रशासनिक कार्मिकों के बीच ऐसा ताल-मेल बैठाया जाए जो कि प्रशिक्षित प्रशासनिक कार्मिकों तथा साथ ही जागरूक पंचायती निकायों, दोनों ही द्वारा प्रभावी पद्धति से समयानुकूल निष्पादन के लिए ठोस विचारों सहित योजना तैयार करने को प्रशासनिक क्षमता पर आधारित है, तब और तभी मूल रूप से योजना तैयार करने की संभावना होगी । इसकी आरंभिक अवस्था के रूप में एक बृहत समझौता जिला स्तर योजना द्वारा किया जाएगा । केवल ऐसा करने से ही व्यवहार्य राज्य योजना तथा राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की जा सकेगी ।

6.13 जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है, ऐसा करने से राज्य योजना बोर्ड, परामर्शी बोर्ड के रूप में प्रभावशाली कार्य भी कर सकेंगे ।

भाग VII

7.1 से 7.3 ऐसे कतिपय सामरिक महत्त्व के रक्षा उद्योग हैं जो रक्षा-संबंधी गोपनीय बातों पर आधारित हैं । ये उद्योग पूर्ण रूप से केन्द्र के प्रभुत्व में हैं । ऐसे कुछ बड़े निवेश उद्योग भी हैं जैसे कि रेल-सड़क-यातायात नेटवर्क, हाइड्रल और थर्मल पावर संयंत्र जो केन्द्रीय सरकारी क्षेत्र के अंतर्गत ही रहने चाहिएं बाकी सभी उद्योग राज्यों को सौंप दिए जाने चाहिएं जहां राज्य आवश्यकतानुसार राज्य, संयुक्त और निजी क्षेत्रों को इस प्रकार के उद्योगों को स्थापित करने के लिए, लाइसेंस जारी करने के लिए स्वतंत्र होंगे । मौजूदा स्थिति जिसमें राज्यों को इतना भी हक नहीं है कि वे जबतक केन्द्र की पूर्वानुमति न ले लें किसी विशेष उद्योग से संबंधित मामले में दखल नहीं दे सकते, यह स्थिति न केवल असंतोष पैदा करती है बल्कि बेतुकी भी होगी । इस प्रकार राज्य के अधिकार क्षेत्र में अनेक उद्योगों को अंतरित किया जा सकता है तथा राज्य भी "राष्ट्रीय" हित की पूरी जिम्मेदारी से निभाएंगे । भारी, महत्वपूर्ण तथा बुनियादी उद्योगों के स्थापन में विकेन्द्रीकृत ढांचा तथा जनता के हित में तथा उच्च उत्पादकता के लिए निर्यात में लगे पिछड़े उद्योगों के तथा निर्यात-आयात व्यापार में असंतुलन को प्रतिसंतुलित करने के लिए स्वस्थ राष्ट्रीयकरण नीति की आवश्यकता है । यह असंतुलन उस स्थिति में आवश्यम्भावी है जब उन्नत टैक्नालाजी को प्रारंभ करने के लिए महत्वपूर्ण कच्चे माल तथा पूंजीगत माल का आयात आवश्यक है ।

7.4 ऊपर किए गए पुनर्गठन से शीघ्र प्रगति होगी तथा योजना लक्ष्यों पर निर्भर रहा जा सकेगा ।

7.5 राज्य की मौजूदा पूंजीगत प्राप्तियों के 10%की अनुमति देने की वर्तमान व्यवस्था पूर्ण रूप से केन्द्र द्वारा निश्चित की जाती है । बाजार से उधार लेने की भी वही दशा है यानी कि 10% । राज्य सरकार की प्रतिभूति जो कि भारतीय जीवन बीमा निगम के पास पड़ी है 50% नीचे आ गई है । इस थोड़े से संवितरण से राज्य की प्रगति पर प्रभाव पड़ा है । वित्तीय संस्थाओं की कहानी तो यह है कि जहां केन्द्र द्वारा यदि कोई आर्थिक सहायता थोड़ी-थोड़ी करके दी गई हो वह भी मनमाने ढंग से दी गई है ।

7.6 केन्द्रीय सरकारी निवेश ऐसे ही निराधार नहीं कर दिया जाता परन्तु किसी विशिष्ट स्थिति में ही किया जाता है । इसलिए यह पूर्ण रूप से अत्यावश्यक है कि कोई परियोजना तैयार करते समय राज्य को विश्वास में ले लिया जाए । सभी वित्तीय संस्थाएं केन्द्रीय वित्त मंत्रालय के अधीन आती हैं इसलिए किसी विशेष राज्य में कोई परियोजना स्थापित करने के लिए वित्त मंत्रालय सहित वित्तीय संस्थानों को भी शामिल करते हुए इनकी मंजूरी प्राप्त कर लेनी चाहिए । ये वित्तीय संस्थान हैं—राज्य में काम करने वाले राष्ट्रीयकृत और वाणिज्यिक बैंक । ऐसी मंजूरी ले लेने से परियोजना की व्यवहार्यता वास्तविक हो जाएगी । यह व्यवहार्यता इन वित्तीय संस्थाओं द्वारा लागू की गई परियोजनाओं के अनुशीलन पर निर्भर करती है । यहां भी इस बात को तरजीह दी जाएगी कि निवेश वृत्तियों को राष्ट्रीयकृत बैंकों को संविभाजन के लिए सौंप दिया जाए जिससे वे अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाली परियोजनाओं को सहायता दे सकें ।

7.7 और 7.8 हमारे विचार से शुरू-शुरू में भारी उद्योग क्षेत्र में आने वाली सभी सरकारी परियोजनाओं पर कच्चे माल की प्राप्यता को देखते हुए विचार किया जाता था । यद्यपि ये उद्योग बंधुआ उद्योग नहीं थे, फिर भी इन उद्योगों ने समूची सामाजिक-औद्योगिक प्रगति में बहुत बड़ा योगदान दिया है । आजकल परियोजनाएं समूचे राष्ट्र के हित को ध्यान में रख कर लागू नहीं की जाती हैं । केन्द्र की निर्णय लेने की स्थिति में एक किस्म का फायदा और नुकसान पहुंचाने का सिद्धान्त घर कर गया है । किसी विशेष राज्य में किसी परियोजना की व्यवहार्यता एवं औचित्यता आजकल निश्चायक तत्व नहीं रह गया है । अतः स्वस्थ और समुचित औद्योगिक विकास में रुकावट पैदा हो गई है । भारत भर में सर्वत्र प्रगति के लिए उन्नत प्रौद्योगिकी को प्रारंभ करने और भविष्य में आने वाली चुनौतियों का सामना करने की आवश्यकता को मद्देनजर रखते हुए इसमें परिवर्तन लाया जाना चाहिए ।

भाग VIII

व्यापार और वाणिज्य,

8.1 राष्ट्रीय रूप से महत्वपूर्ण मदों की अन्तः और अन्तरराज्यीय व्यापार के लिए राज्य व्यापार को प्रारंभ करना अत्यंत आवश्यक है । ऐसा करने से राष्ट्रीय रूप से महत्वपूर्ण सामानों की एकरूपता बनी रहेगी साथ ही भाड़े की समरूपता भी बनी रहेगी जिसके बिना कीमत की एक रूपता प्राप्त नहीं की जा सकती ।

भाग IX

कृषि

9.1 और 9.2 कृषि तथा अन्य सभी अधीनस्थ क्षेत्र बावजूद इसके की इस क्षेत्र में अधिक्रमण को जो मौजूदा प्रवृत्ति शुरू हो गई है पूर्ण रूप से सरकार की सेवा में होंगे । यह पूर्ण रूप से आवश्यक है कि इस प्रवृत्ति से न केवल विपरीत किया जाए बल्कि वर्तमान प्रविष्टियों को केन्द्रीय समवर्ती सूची में शामिल कर लिया जाए ।

9.3 राज्यों में कार्यरत संयुक्त वर्किंग ग्रुपों के लिए योजना-आयोग की अन्तर-राज्यीय परिषद द्वारा निर्देश दिए जाने चाहिए ये निर्देश इन ग्रुपों को उत्तरदायित्व सौंपने से संबंधित होंगे ।

9.4 राज्यों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे अपने अधिकार क्षेत्र के अन्दर आने वाले क्षेत्रों की निश्चित कृषि कीमतों को नियत करें । ऐसी बृहत सिंचाई परियोजनाएं जहां एक से अधिक राज्य शामिल हों अथवा जो परियोजनाएं राष्ट्रीय महत्व की हों केन्द्र और संबंधित राज्यों द्वारा संयुक्त रूप से प्रायोजित की जाएंगी । यद्यपि जैसा कि दूसरे मामलों में है, कृषि संबंधी सामान्य रूप रेखा अन्तर-राज्यीय परिषद के तत्वावधान में योजना आयोग द्वारा निश्चित की जा सकती है और विशिष्ट कार्यक्रम राज्यों द्वारा तैयार किए जाने चाहिए । कार्य निष्पादन के लिए राष्ट्रीय और क्षेत्रीय संस्थानों के बीच सहयोग आवश्यक है ।

9.5 नाबार्ड तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद दोनों ही संस्थाओं के मनमाने रुख से राज्यों की एजेंसियों तथा इन संस्थाओं के बीच सहयोग को बढ़ावा नहीं मिलता । इस बात की जांच की जानी चाहिए ।

भाग X

खाद्य और सिविल आपूर्ति

10.1 और 10.2 खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की अधिप्राप्ति कीमत निर्धारण, भंडार, उन्हें लाने ले जाने तथा वितरण की मौजूदा नीति केन्द्र-राज्य संबंधों के सुधार के लिए हानिकारक है । अधिक सहयोग तथा समन्वय की आवश्यकता है । इस संबंध में की जाने वाली कार्रवाई से संबंधित निर्धारित उपायों के संबंध में अन्तर्राज्यीय परिषद द्वारा मार्ग निर्देश निश्चित किए जा सकते हैं । प्रत्येक परिस्थिति की विशेषताओं पर व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए राज्यों से सलाह-मशवरा करने के बाद केन्द्र द्वारा मार्गनिर्देश निश्चित किए जाएंगे । ऐसा निर्धारण कीमत विनियमन के क्षेत्र में भी किया जाना चाहिए जिससे कि राज्य स्तर पर कीमत-प्रबंध की अपेक्षित पद्धति तैयार की जा सके ।

भाग XI

शिक्षा

11.1 से 11.5 शिक्षा तथा दार्शनिक नीति के क्षेत्र में कार्यक्रम तैयार करने के लिए हमारे देश के विविधतामय जनजातिय, सामाजिक, भाषायी तथा सांस्कृतिक गठन के आर्थिक ढांचे का समुचित मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है । सख्ती से केन्द्रीकृत किया जाना भारी गलती है । शिक्षा को राज्य सूची में स्थानांतरित करना आवश्यक है साथ ही मार्गनिर्देश भी दिए जाने चाहिएं जिससे कि सभी राज्यों में पाठ्यविवरण अथवा विश्वविद्यालय-शिक्षा का स्तर कमोबेशी, एकरूप रह सके । प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में दी जानी चाहिए, माध्यमिक शिक्षा का पाठ्य विवरण अंग्रेजी, हिन्दी तथा मातृभाषा के माध्यम से तैयार किया जाना चाहिए तथा विश्वविद्यालय स्तर पर यह माध्यम अंग्रेजी तथा मातृभाषा में ही होना चाहिए ।

भाग XII

अन्तर-सरकारी-समन्वय

ऐसी संस्था सहायक होगी, बशर्ते कि राज्यों से समुचित आश्वासन मिलने की आशा हो ।

तमिल अरासुकषगम्

ज्ञापन

मद्रास

27-12-1985

सेवा में,

माननीय न्यायमूर्ति आर० एस० सरकारिया,
केन्द्र-राज्य संबंधों पर न्यायमूर्ति,
सरकारिया आयोग ।
कैम्प, मद्रास-600009.

महोदय,

मैं आप का कृतज्ञ हूं कि आप ने तमिल अरासुकषगम् की ओर से आयोग के सम्मुख साक्ष्य देने के लिए मुझे आमंत्रित किया जो आयोग संघ और राज्यों के बीच वर्तमान व्यवस्था के कार्यचालन की जांच करने तथा समीक्षा करने के लिए नियुक्त किया गया है । मैं इस बात के लिए भी आपका आभारी हूं कि आपने आयोग द्वारा जारी प्रश्नावली की एक प्रति मुझे प्रेषित की ।

तमिल अरासुकषगम् का 21-11-46 को जन्म हुआ । यह संस्था मेरे जैसे, राष्ट्रवादी द्वारा प्रारम्भ की गई जिसने स्वतंत्रता संग्राम में कारावास पाया । कषगम् की प्रथम तथा प्रमुख नीति राष्ट्रीय एकता के लिए कार्य करना है । कषगम् की दूसरी नीति है राष्ट्रीय एकता को हानि पहुंचाए बिना तथा उसे सुदृढ़ बनाने का साधन मानते हुए राज्यों को भाषायी आधार पर पुनर्गठित करना ।

तमिल भाषा को तमिलनाडु की राजभाषा बनाया जाए, तमिलनाडु के विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाना तथा तमिलनाडु की अदालतों में इस भाषा को अपनाना ।

केन्द्रीय सरकार को केवल इतना ही अधिकार होना चाहिए जितना राज्य उसे स्वयं सौंपे । ये अधिकार होंगे; विदेशी मामले, रक्षा तथा संचार । अवशिष्टीय अधिकार जिसमें अन्य सभी अधिकार शामिल हों राज्यों में निहित होने चाहिएं ।

कषगम् की यह नीति किसी भी रूप में न तो राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक होगी न ही केन्द्र और राज्यों के बीच के संबंधों को हानि पहुंचाएगी । केवल इसी आधार पर, कषगम्, आयोग द्वारा अग्रेषित प्रश्नावली पर विचार करके मौजूदा संविधान में किए जाने वाले परिवर्तनों के बारे में मांगे गए कषगम् के सुझावों को प्रस्तुत कर रहा है । बजाए इसके प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर क्रमवार देने के स्थान पर कषगम् सामान्य रूप से अपने ही विचार व्यक्त कर रहा है ।

अपनी मांगें प्रस्तुत करने से पहले तमिल अरासुकषगम् स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा भारत के विभिन्न भाषायी ग्रुपों को दिए गए आश्वासनों को संक्षिप्त रूप से उल्लिखित करना चाहता है, जिसका आशय था कि स्वतंत्र भारत, "भारतीय राष्ट्रीय" के गठन के अनुरूप स्थापित किया जाएगा ।

भारत को सहज ही यह वरदान प्राप्त है कि उसका गठन परिसंघीय हो । इस देश में विभिन्न धार्मिक संप्रदायों को मानने वाले बहुसंख्य लोग रहते हैं ।

भाषायी दृष्टिकोण से अनेक भाषाएं जिनकी अपने व्याकरण तथा साहित्य मौजूद हैं भारत में प्रचलित है । उर्दू, सिंधी और संस्कृत को छोड़कर भारतीय संविधान में मान्यता प्राप्त भाषाओं में से प्रत्येक भाषा का अपना-अपना क्षेत्र है । इन क्षेत्रों का अपना विशिष्ट और अलग राजनैतिक इतिहास है । ये इतिहास अत्यंत प्राचीन है तथा 1000 अथवा 2000 वर्ष पुराना है ।

भारतीय संस्कृति, चूंकि उसमें विभिन्न धर्म और भाषाएं निहित हैं विविधताओं का एक समागम है ।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए तमिल अरासुकषगम् ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत का गठन ही परिसंघीय है । केवल इस गठन के अनुरूप ही भारत में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के बीच संबंध कायम रह सका है । कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में पारित संकल्पों तथा विभिन्न अवसरों पर जारी किए गए चुनाव घोषणा पत्रों द्वारा कांग्रेस ने भारतीय जनता को यह वादा दिया था कि राज्यों का गठन केवल उसी आधार पर किया जाएगा ।

भारत की भौगोलिक विशेषताओं को मद्देनजर रखते हुए केन्द्रीय सरकार परिसंघीय सरकार के रूप में गठित की जानी चाहिए थी जिसमें केवल तीन विषयों अर्थात् विदेशी मामले, रक्षा तथा संचार के संबंध में कार्रवाई करने के लिए ही अधिकार प्राप्त होने चाहिएं । अवशिष्टीय विषयों पर कार्रवाई करने से संबंधित अधिकार राज्य सरकारों में ही निहित होने चाहिए थे तथा प्रत्येक राज्य की स्वायत्तता दी जानी चाहिए थी । परन्तु, दुर्भाग्यवश मौजूदा संविधान इस सिद्धान्त को पूरी तरह प्रतिपादित नहीं कर पा रहा ।

कांग्रेस, ब्रिटिश सरकार से हमेशा यही मांग करती रही कि स्वतंत्र भारत का संविधान ऐसी संविधान सभा द्वारा तैयार किया जाना चाहिए जिसमें वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने गए प्रतिनिधि हों । परन्तु तमिल अरासुकषगम् आयोग को यह याद दिलाना चाहता है कि संविधान सभा जिसके आधार पर वर्तमान संविधान गठित किया गया वयस्क मताधिकार पर चुने गए प्रतिनिधियों

से युक्त नहीं था इसके विपरीत संविधान सभा जो 1946 में गठित की गई हिन्दु, मुसलमान, सिख और ईसाई धार्मिक सम्प्रदायों से संबद्ध प्रतिनिधियों से युक्त थी। यह बात कांग्रेस की नीतियों का पूरी तरह उल्लंघन करती है।

ब्रिटिश शासनकाल के दौरान 1919 के मिंटो मोरले सुधार लागू किए गए। द्वितीयतः मोंटेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधार 1921 में लागू किए गए। तृतीयतः 1937 में भारत सरकार के अधिनियम 1935 के अन्तर्गत अन्य राजनीतिक सुधार लागू किए गए। कषगम्, आयोग को याद दिलाना चाहता है कि इन तीनों सुधारों ने क्रमशः केन्द्र के अधिकारों को कम कर दिया, जबकि राज्यों के अधिकार बढ़ गए।

अन्ततोगत्वा 1946 में ब्रिटिश मंत्रीमण्डल मिशन द्वारा किए गए संवैधानिक सुधारों में राज्य को पूर्ण स्वायत्तता देने की सिफारिश की गई। इसके समर्थन में, कषगम् मंत्रीमण्डल मिशन द्वारा तैयार की गई योजना से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत करता है :

"भारत का एक संघ होना चाहिए, जिसमें ब्रिटिश-भारत तथा राज्यों दोनों को शामिल किया गया हो, जिसमें नीचे उल्लिखित विषयों पर कार्रवाई की जानी चाहिए :

विदेश मामले, रक्षा तथा संचार; तथा जिसमें ऊपर उल्लिखित विषयों के लिए अपेक्षित धनराशि उगाहने से संबंधित आवश्यक अधिकार प्रदान किए गए हों। संघीय विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषय तथा सभी शेष अधिकार प्रान्तों में निहित होने चाहिएं।"

कषगम्, आयोग को याद दिलाना चाहता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बिना कोई विरोध किए ब्रिटिश मंत्रीमण्डल मिशन द्वारा तैयार की गई योजना में निहित केन्द्र के लिए सच्ची परिसंघीयता का तथा राज्यों की पूर्ण स्वायत्तता का सिद्धांत मान लिया था। ब्रिटिश मंत्रीमण्डल मिशन द्वारा तैयार की गई योजना के आधार पर तथा प्रधान मंत्री नेहरू ने संविधान सभा में 13-12-1946 को एक संकल्प प्रस्तुत किया जिसे "उद्देश्यपरक संकल्प कहते हैं।"

इस संकल्प से संबद्ध अंश इस प्रकार हैं :—

"जिसके अनुसार उक्त क्षेत्र चाहे मौजूदा सीमा सहित या ऐसे अन्य सहित जिसका निर्धारण संविधान सभा ने किया हो तथा इसके बाद संविधान के कानून के अनुसार जिसमें स्वायत्त यूनिट की स्थिति बनी रहेगी या ये स्थिति उसे प्राप्त होगी जिसमें शेष अधिकार भी शामिल होंगे तथा जो सरकारी तथा प्रशासन के सभी अधिकारों तथा कार्रवाईयों का इस्तेमाल करेगा जिसमें सिवाय उन अधिकारों और कार्रवाइयों के जो संघ को या तो सौंपे गए हैं या संघ में निहित हैं अथवा जिन्हें विरासत में प्राप्त किया गया है अथवा संघ में अभिप्रेत हैं अथवा उसके परिणामस्वरूप निकलते हैं;"

कषगम संकल्प जारी करते समय प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा भावुक रूप में व्यक्त किए गए विचारों को उजागर करना चाहता है :

"यह एक संकल्प है फिर भी यह संकल्प से भी अधिक कुछ और है। यह एक घोषणा है। यह एक सुदृढ़ संकल्प है। यह एक वचन है तथा एक वचनबद्धता है तथा मैं आशा करता हूं कि हम सबके लिए यह समर्पण स्वरूप है।"

दुर्भाग्यवश ब्रिटिश प्रधान मंत्री लार्ड ऐटली ने ब्रिटिश संसद में एक उद्घोषणा जारी की थी जिसमें कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रचलित राष्ट्रीय एकता को रक्षित करने तथा भारत के विभाजन के बारे में केबिनेट-मिशन की योजना में यह अंश शामिल नहीं किया गया था। इसके बावजूद, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और संविधान सभा, जो उसके तत्वावधान में काम करती थी और भारत सरकार जो उसकी मार्गदर्शक थी, ने अपनी नीति बदल दी। कोई यह नहीं कह सकता कि कांग्रेस ने राज्य स्वायत्तता की नीति से केवल इसलिए अपने आप को वचनबद्ध किया ताकि वह मुस्लिम लीग द्वारा मांगे गए विभाजन से बच सके। इस प्रकार कहना कांग्रेस की सत्यनिष्ठा पर संदेह करना है। कषगम को इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि कांग्रेस ने सिर्फ इसलिए ही अपने को वचनबद्ध रखा कि उसका यह विश्वास था कि भारत जो स्वरूपतः संघीय गठन का है केन्द्र में संघ युक्त संविधान का होना तथा राज्यों में स्वायत्तता ही अत्यंत उचित स्थिति होगी।

ब्रिटिश लोगों के जाने के बाद तथा पाकिस्तान विभाजन के बाद कांग्रेस तथा भारत सरकार ने जो कि उसके तत्वावधान में कार्य कर रही थी। संघीय नीति को छोड़ दिया। 1956 में राज्यों का पुनर्गठन केवल भाषायी राष्ट्रीयता की मांग के आधार पर ही आधारित था, इसके बाद, राज्यों को स्वायत्तता देने से नहीं बचा जा सका तथा न ही बचा जाना चाहिए था। यह केवल एक प्रशासनिक समस्या ही नहीं है बल्कि भाषायी राष्ट्रीकताओं का अधिकार था। न्यायमूर्ति सरकारिया आयोग को केन्द्र और राज्यों के बीच के संबंध को सिर्फ प्रशासनिक समस्या मान कर ही नहीं चलना चाहिए। यदि ऐसा माना गया तो उसके लिए पूर्णरूप से कोई रास्ता ढूंढ निकालना संभव नहीं रह जाएगा।

हम एक और विषय के संबंध में याद दिलाना चाहते हैं। भारत के नौ राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें अधिकार में आ चुकी हैं। इनमें से पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में युनाइटिड-प्रोग्रेसिव फ्रंट सत्ता में हैं। कर्नाटक में जनता पार्टी सत्ता में है। उनके शासन में राज्य सरकारें राज्यों के लिए सम्पूर्ण स्वायत्तता की मांग भी कर रही हैं। छः अन्य राज्यों में भी गैर-कांग्रेसी सरकारें सत्ता में हैं। वे राज्य तथा पार्टियां जो वहां सत्ता में हैं उनकी स्थिति इस प्रकार है :—

राज्य	पार्टी
तमिलनाडु . .	ए० आई० ए० डी० एम० के०
आंध्र प्रदेश . .	तेलगु देसम
पंजाब . .	अकाली दल
कश्मीर . .	नेशनल कांफ्रेंस
असम . .	असम गण परिषद्
सिक्किम . .	सिक्किम संग्राम परिषद्

ये राज्य सरकारें तथा संबंधित राज्य की सत्तारूढ़ क्षेत्रीय राजनैतिक पार्टियां राज्यों के लिए सम्पूर्ण स्वायत्तता की मांग कर रही हैं।

इस पृष्ठ भूमि में, यह स्पष्ट हो जाएगा कि राज्य स्वायत्तता की मांग केन्द्रीय प्रभुसत्ता सरकार के लिए गंभीर चुनौति बनी हुई है। ऐसी स्थिति का लगातार बने रहना भारत की राष्ट्रीय एकता में सहायक सिद्ध नहीं होगा। यदि राष्ट्रीय एकता की जड़े दृढ़ रखनी हों तो न्यायमूर्ति सरकारिया आयोग को भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से केन्द्र और राज्यों के बीच के संबंधों की जांच करनी चाहिए, यह तमिल अरासु कषगम का अनुरोध है। आयोग को केन्द्र और राज्यों के बीच के संबंध की समस्या 1946 के ब्रिटिश मंत्री मण्डल मिशन की योजना के आधार पर तथा 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा में पारित "उद्देश्य और लक्ष्य" से संबंधित संकल्प के आधार पर जांचना चाहिए।

भारतीय संघ के सभी राज्यों को बराबरी का दर्जा प्राप्त नहीं है। कश्मीर को जो निश्चित अधिकार और राजनीतिक दर्जा दिया गया है वह अन्य राज्यों को नहीं दिया गया है। आपातस्थिति और परिस्थितियों के अनुसार राज्यों के बीच भेदभाव नहीं होना चाहिए। संक्षेप में, न्यायमूर्ति सरकारिया आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार से कश्मीर राज्य की भांति अन्य राज्यों को भी समान दर्जा प्रदान करने की सिफारिश की जानी चाहिए। यह अपरिहार्य है और इसे नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए।

इस पृष्ठभूमि के तहत, तमिल अरासु कषगम सरकारिया आयोग के समक्ष अपनी कुछ निश्चित मांगें प्रस्तुत करता है। ये इस प्रकार हैं :—

1. रक्षा, संचार, विदेशी सम्बन्ध आदि से सम्बन्धित अधिकार और अन्य सम्बद्ध विषयों जैसे सीमा शुल्क, मुद्रा तथा नागरिकता आदि के अधिकार केन्द्र सरकार के पास होने चाहिए।

2. अन्य सभी अधिकारों सहित शेष अधिकार राज्य सरकारों को दिए जाने चाहिए ।

3. संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची शामिल हैं । समवर्ती सूची से सम्बद्ध विषयों को राज्य सूची में शामिल करके समवर्ती सूची को समाप्त किया जाना चाहिए ।

4. चूंकि राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार दोनों के लिए एक ही संविधान है, इसलिए इसमें बार-बार संशोधन किया जाना आवश्यक हो जाता है । इससे संविधान की प्रतिष्ठा में कमी आती है । इस दोष को दूर करने के लिए कजगम यह मांग करता है कि प्रत्येक राज्य को अपना पृथक संविधान बनाने के अधिकार दिए जाने चाहिए ।

5. यदि तमिल अरासु कजगम की उपरोक्त मांगें कार्यान्वित की जाती हैं और केन्द्र में सही परिसंघीय व्यवस्था है, तो न्यायिक क्षेत्र में भी परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हैं ।

वास्तविक परिसंघीय भारत में केवल सर्वोच्च न्यायालय का होना ही काफी नहीं है । इसलिए एक संघीय न्यायालय का होना भी अति आवश्यक है । राज्यों के बीच उठने वाले विवादों, केन्द्र व राज्यों के बीच उठने वाले विवादों और राष्ट्रीय संविधान से संबंधित मामलों को संघीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन होना चाहिए ।

6. संविधान के अनुच्छेद 263 में राष्ट्रपति को केन्द्र और राज्यों के बीच उठने वाले विवादों को हल करने के लिए एक स्थायी परिषद् का गठन करने की शक्ति प्रदान करने का प्रावधान है । किन्तु अभी तक ऐसी किसी परिषद् का गठन नहीं किया गया है । सरकारिया आयोग द्वारा कम से कम अब ऐसी परिषद् के गठन की सिफारिश की जानी चाहिए ।

7. संविधान में भारत की अन्तर-राज्यीय नदियों के राष्ट्रीयकरण का प्रावधान किया जाना चाहिए ।

8. चूंकि भारतीय संविधान के भाग XVII में हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाने के लिए समय-सीमा निर्धारित की गई है, इसलिए वर्तमान स्थिति यह है कि हिन्दी ही केन्द्र की एकमात्र राजभाषा बन गई है । परिणामस्वरूप अहिन्दी भाषी राज्यों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दिन प्रति दिन हिन्दी को थोपे जाने के प्रयास किए जा रहे हैं । इसलिए नेहरू द्वारा दिए गए आश्वासन को ध्यान में रखते हुए संविधान के भाग XVII को संशोधित किया जाना चाहिए ।

9. न्यायमूर्ति सरकारिया आयोग की सिफारिशों पर केन्द्रीय सरकार द्वारा जो भी कदम उठाए जाएं, उन पर राज्य विधानमण्डल से एक संकल्प (प्रस्ताव) के रूप में पूर्व सम्मति और अनुसमर्थन प्राप्त किया जाना चाहिए ।

हस्ताक्षर
अध्यक्ष

तमिलनाडु कामराज कांग्रेस

ज्ञापन

हमारे संविधान की मुख्य विशेषता इसकी एकात्मकता है । केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण के लिए भारत सरकार अधिनियम, 1935 में दिए गए पैटर्न का अनुसरण किया जाता है । संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों और अनुसूची VII, जिसमें संघ, (सूची-I), राज्यों (सूची-II) की विशिष्ट विधायी शक्ति और दोनों की समवर्ती विधायी शक्तियों (सूची-III) का उल्लेख किया गया है, में भी इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है । संघ और राज्यों द्वारा प्रयोग की जाने वाली कार्यपालक शक्तियां उनके अपने-अपने उन विधायी अधिकार क्षेत्र पर आधारित हैं, जो उन्हें तीन सूचियों के अधीन दिए गए हैं । कराधान सहित सभी शेष मामले संघ के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं । इसका अर्थ यह है कि शेष अधिकार केन्द्र के पास हैं ।

अनुसूची VII और संविधान के अन्य उपबंधों में यह दर्शाया गया है कि विधायी, आर्थिक और वित्तीय, और प्रशासनिक क्षेत्र में भी राज्य की स्वायत्तता और शक्तियों को पहले ही अत्यधिक परिसीमित किया गया है । संविधान के लगभग तीन दशकों के दौरान, इसका परिणाम यह हुआ है कि जहां केन्द्र की शक्तियों और प्राधिकार में वृद्धि हुई है, वहीं राज्यों की प्रतिबंधित स्वायत्तता और शक्तियों में नियमित रूप से कमी आई है और इन्हें क्षति पहुंचाई गई है । इस अस्वस्थ और हानिकर स्थिति के लिए न केवल संविधान में कुछ निश्चित प्रावधान बल्कि बहुत से अन्य कारक भी जिम्मेवार हैं । आज जो स्थिति है वह यह है कि केन्द्र राज्य संबंधों में असाधारण असंतुलन उत्पन्न हो गया है और राज्य अपनी बहुत कुछ स्वायत्तता खो चुके हैं ।

अधिकतर कल्याण कार्यों को पूरा करना या लागू करना राज्यों की जिम्मेवारी है, जबकि उनकी आय के साधन सीमित और बहुत कम हैं । इसके परिणामस्वरूप, न केवल केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता में वृद्धि हो रही है बल्कि राज्यों के विकास और अन्य समाज कल्याण के कार्य भी ठप्प हो गए हैं और कुछ नाजुक क्षेत्रों में तो इन कार्यों में अवरोध आ गया है । केन्द्र राज्य संबंधों के लोकतांत्रिक स्वरूप और मानदण्डों की उपेक्षा से न केवल राज्यों और उनकी जनता को हानि पहुंची है, बल्कि यह राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए भी हानिकर है । इससे विघटनकारी और विघटनकारी प्रवृत्तियों और शक्तियों को बढ़ावा मिला है ।

राज्यों के पास विकास और अन्य कल्याण कार्यों के लिए समय बहुत कम वित्तीय साधन उपलब्ध हैं और इसी प्रकार वे साधन भी लचीले नहीं हैं जिनसे ये राज्य अपने राजस्व में वृद्धि कर सकते हैं । परिणामस्वरूप केन्द्र से "ओवर ड्राफ्ट" ऋणों और तथाकथित उपायों के बावजूद भी राज्यों की उचित आवश्यकताओं और उनके संसाधनों के बीच का अन्तर बढ़ता जा रहा है ।

न केवल राजस्व के मुख्य साधन पूरी तरह केन्द्र के अधिकार क्षेत्र के अधीन है बल्कि, बैंकिंग, बीमा और सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएं भी इसके नियंत्रण के अधीन हैं । इसी प्रकार देश की आर्थिक और राजकोषीय नीतियां भी हैं, जिनके बनाए जाने में राज्यों की कोई भूमिका नहीं होती । राज्यों को केन्द्रीय निधियों के वितरण के तरीके और उपरोक्त कारणों से केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता में वृद्धि हुई है, जिससे केन्द्र-राज्य संबंधों के सम्पूर्ण परिदृश्य पर तीव्र नकारात्मक प्रभाव पड़ा है ।

इस तथ्य से स्थिति और भी खराब हो गई कि सीमा शुल्कों, निर्यात शुल्कों और कम्पनी करों जैसे मुख्य संसाधनों से केन्द्र को जो भी राजस्व प्राप्त होता है उसमें से राज्यों को कोई हिस्सा नहीं दिया जाता ।

"सहायता अनुदान", "विवेकाधीन अनुदान" जैसे विभिन्न शीर्षों के अधीन दी जाने वाली तथाकथित सहायता और केन्द्र की आयकर से प्राप्त राशि में राज्य का हिस्सा आदि भी अपर्याप्त है । यह "विवेकाधीन अनुदान" है, न कि वह सहायता जिसका संविधान में आश्वासन दिया गया है, जो अधिक महत्वपूर्ण हो गया है और जो कुल सहायता का एक मुख्य भाग है, जिससे राज्यों के कार्य के बहुत से क्षेत्रों में राज्यों की नीतियों पर अनुचित दबाव और प्रभाव डालने के लिए केन्द्र को अधिक शक्तिशाली अधिकार प्राप्त हुए हैं । प्रायः राज्यों पर राजनीतिक दबाव डालने के लिए भी एक उपकरण के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है । राज्यों ने इसके प्रति अत्यधिक अप्रसन्नता व्यक्त की है । एक पार्टी के शासन में ऐसी नाराजगी को सरकारी स्तर पर ही दबा दिया जाता है ।

केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किए गए वित्त आयोग, जिसके गठन, शक्तियों और कार्यों के बारे में प्रश्न उठाया जा सकता है, की भूमिका से भी संसाधनों के प्रश्न पर केन्द्र राज्य संबंधों में कोई महत्वपूर्ण मतभेद उत्पन्न नहीं हुआ ।

पंचवर्षीय योजनाओं के प्रशासन, जिससे योजना और गैरयोजना क्षेत्रों के सीमा-निर्धारण का प्रश्न उत्पन्न हुआ है, का भी केन्द्र द्वारा लाभ उठाया गया है, विशेष रूप से समवर्ती सूची और राज्य सूची में दिए गए ऐसे बहुत से विषयों

पर अपना नियंत्रण रखने के लिए, जो आयोजना के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। प्रशासनिक सुधार समिति ने इस स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की है। समिति के अनुसार इसके कारण राज्यों के क्षेत्रों (राज्यों के तथाकथित योजना क्षेत्रों) को एक अखण्डित रूप में समेटकर केन्द्र ने इस पर अपना नियंत्रण रखा है जब कि मूलतः उन्हें समवर्ती सूची और राज्य सूची में शामिल किया गया था। राष्ट्रीय योजना के लिए सही दिशा में कार्य करने वाले एक प्राधिकरण की आवश्यकता है। यह प्राधिकरण सिफारिश करने वाला होना चाहिए, अधिदेशात्मक नहीं होना चाहिए।

हालांकि, राज्य केवल वित्तीय और आर्थिक क्षेत्रों में ही असक्षम नहीं है, बल्कि उनके अधिकारों और स्वायत्तता का भी अतिक्रमण हो रहा है। राज्यों के विधायी अधिकारक्षेत्र और उनकी कार्यपालक शक्तियों का भी किसी न किसी रूप में अतिक्रमण किया जा रहा है। संघ सूची और समवर्ती सूची में बहुत सी प्रविष्टियों सहित संविधान के कुछ प्रावधानों में इस बात की सुविधा दी गई है। उदाहरण के लिए यद्यपि "उद्योग" पूर्ण रूप से राज्यों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं तथापि केन्द्र के पास राज्यों के उद्योगों को नियंत्रित करने के असीमित अधिकार हैं। इस प्रवृत्ति का इतना अधिक विस्तार हो चुका है कि राज्यों के अधीन आने वाले विषयों पर भी केन्द्र का नियंत्रण है।

अनुच्छेद 356 के अधीन राज्यों में मनमाने ढंग से राष्ट्रपति शासन लागू करने और यहां तक कि कभी-कभी शासन कर रही पार्टी की आन्तरिक समस्या सुलझाने के लिए भी राष्ट्रपति-शासन का प्रयोग करने, राज्य विधान सभा द्वारा पारित किए गए बिलों में कुछ निश्चित सीमा तक राष्ट्रपति की सम्मति प्राप्त करने, राज्यों के अधीन सरकारी सेवा का संवर्ग होने के बावजूद अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र के नियंत्रण आदि ने भी परिसंघीय सिद्धांतों और राज्यों की शक्तियों तथा स्वायत्तता को कमजोर करने में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

अनुभव से यह बात सुस्पष्ट हो गई है कि इससे न केवल अस्वस्थ और हानिकारक प्रवृत्तियों और परिपाटियों में विध्नकारी रूप से वृद्धि हुई है बल्कि सत्तावाद जैसी बुराई भी उत्पन्न हुई है। इससे भी अधिक, राज्यों को अधिक शक्तियां और अधिक स्वायत्तता, जो उनका वैधानिक अधिकार है, प्रदान न करने से विघटनकारी और विभाजक प्रवृत्तियों और शक्तियों का ही जन्म होगा। राज्यों की अधिक शक्तियों की न्यायसंगत मांग के संदर्भ में, देश की एकता का प्रश्न उठाना गलत और अनुचित है।

किसी भी उल्लेखनीय परिसंघीय ढांचे में परिसंघीय केन्द्र अपनी शक्ति और प्राधिकार विस्तृत रूप से संघटक राज्यों के स्वैच्छिक सहयोग से प्राप्त करता है। लेकिन राज्यों में भी आवश्यक शक्तियां और प्राधिकार निहित होने चाहिए। एक शक्तिशाली लोकतांत्रिक नींव पर आधारित होने के लिए, केन्द्र-राज्य संबंधों में आवश्यक रूप से यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि देश और जनता के प्रति संबंधित जिम्मेवारियों को निभाने के लिए दोनों के पास शक्तियों, प्राधिकार, संसाधनों और अवसरों के क्षेत्र में वैधानिक अधिकार उपलब्ध हों।

हमारे सामने मुख्य समस्या यह है कि केन्द्र के पास शक्तियों और संसाधनों का केन्द्रीकरण है और राज्यों के पास इनकी बहुत कमी है, जबकि राज्यों के विकास की जिम्मेवारियां निरन्तर बढ़ती जा रही हैं।

इसका परिणाम यह हुआ कि संविधान में जिन परिसंघीय लक्षणों पर विचार किया गया था वे अब धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं और इन्होंने एकात्मक राज्य का रूप ले लिया है। अन्य कारणों के अतिरिक्त, निम्नलिखित कारणों से ही हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं :

1. भारतीय संविधान का प्रख्यापन केन्द्र में एक शक्तिशाली सरकार बनाने के लिए किया गया था। इस अवधि में हुए साम्प्रदायिक दंगों, राजसी राज्यों की अवज्ञा, विदेशी आक्रमण और ऐसे ही खतरों के कारण संविधान निर्माताओं ने अपनी समझ से केन्द्र में शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता को महसूस किया। इस प्रकार उन्होंने समवर्ती सूची में आबंटित शक्तियों और कर्तव्यों की सूची से 97 मदों को निकाल दिया और राज्य सरकार को आबंटित सूची में केवल 66 मदों को शामिल किया गया।

इसके अतिरिक्त उन्होंने संविधान में यह निर्धारित किया कि किसी उपबंधनिष्ठ मद के लिए केन्द्र और राज्यों के बीच विवाद होने पर केन्द्र सरकार का निर्णय ही अन्तिम होगा; और यह भी कि इन तीनों श्रेणियों से बाहर के सभी मामलों के लिए, केन्द्र के पास ही शेष अधिकार भी होंगे। इस प्रकार, संविधान के अनुसार, राज्यों को शक्तियों का आबंटन करना केन्द्र का अनन्य अधिकार है।

2. अमरीका जैसे देश में, जहां संघीय प्रणाली है, संविधान में आसानी से संशोधन नहीं किया जा सकता। किन्तु भारत में संसद दो तिहाई बहुमत द्वारा संविधान में अपने मनचाहे ढंग से संशोधन कर सकती है। ऐसे मामलों के सिवाय, जहां राज्य संविधान के कुछ अंशों से संबद्ध हों, उन्हें संशोधन की अभिपुष्टि करने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अलावा, किसी संशोधन का प्रस्ताव भी राज्य के विधायी निकाय द्वारा नहीं, बल्कि केवल संसद द्वारा ही किया जा सकता है।

3. संविधान के अनुसार, राज्यों को अपने कानून लागू करने का अधिकार नहीं है। इसके विपरीत, रूस और स्विटजरलैंड में राज्यों को यह अधिकार है। भारतीय संविधान सभा ने सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली एक सभा की भूमिका निभाते हुए, संविधान का निर्माण किया।

राज्यों को केवल संविधान की सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। जम्मू काश्मीर राज्य इस नियम का एकमात्र अपवाद है और संविधान के अनुच्छेद 370 में इस राज्य को यह अधिकार दिया गया है।

4. भारत के संविधान में राज्य सभा में सभी राज्यों के समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है। प्रतिनिधित्व को जनसंख्या के अनुपात रूप में निश्चित किया गया है, जो संघीय प्रणाली की संकल्पना के विरुद्ध है।

5. अमरीका जैसे देशों में प्रत्येक व्यक्ति के पास दोहरी नागरिकता है, अर्थात् निवासस्थान के राज्य की नागरिकता और अमरीका की नागरिकता। किन्तु भारतीय संविधान में केवल एकल नागरिकता प्रदान की गई है और यह भारत तथा अन्य स्थानों की संघीय प्रणाली के बीच दूसरा अन्तर है।

6. अन्य संघीय प्रणालियों के विपरीत, भारत में संघ शासित प्रदेश भी हैं। इनका प्रशासन सीधे केन्द्र द्वारा चलाया जाता है और इन्हें राज्य सरकारों का दर्जा और शक्तियां भी नहीं दी जाती।

7. अन्य संघीय राष्ट्रों में संविधान में संघीय प्रणाली के निलम्बन या उसे समाप्त करने की अनुमति नहीं है। किन्तु भारत के संविधान में ऐसा भी उपबंध किया गया है। केन्द्र सरकार युद्ध और आन्तरिक सुरक्षा संबंधी समस्याओं जैसी आपातस्थितियों में, राज्य सरकारों पर शासन करती हुई संघीय प्रणाली को एकात्मक प्रणाली में बदल सकती है। इसके अतिरिक्त राज्यों में कुप्रशासन होने या कानून और व्यवस्था बनाए रखने में असमर्थ होने पर भारत का राष्ट्रपति राज्य सरकारों को बरखास्त भी कर सकता है। इन सभी शक्तियों ने केन्द्र सरकार को सामन्ती अधिपति बना दिया है।

8. यदि राज्य सभा में दो तिहाई बहुमत से राष्ट्रीय महत्व के किसी मामले या मामलों से संबंधित कोई प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया हो, तो भारत के संविधान में संसद को राज्य-सूची में सम्मिलित किसी मद पर कानून पारित करने की शक्ति दी गई है। इसी प्रकार, किसी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए संसद को भी राज्य सूची में दी गई किसी भी मद के लिए कानून बनाने की शक्ति दी गई है। इस प्रकार केन्द्र सरकार को राज्य सरकारों की शक्तियों पर अभिभावी होने का अधिकार दिया गया है।

9. भारतीय संविधान में एक महत्वपूर्ण प्रावधान ऐसा है जो संघवाद की संकल्पना के प्रतिकूल है। संविधान में भा० प्र० से०, भा० पु० से०, भा० वि० से० जैसे संवर्गों आदि को भी स्थान दिया गया है। इन संवर्गों में पास होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति करने और उन्हें विभिन्न राज्यों को आबंटित करने का अधिकार केवल केन्द्र को है। यद्यपि ये व्यक्ति राज्यों में विभिन्न पदों पर कार्य करते हैं, तथापि वे केन्द्र द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। इस प्रकार वे किसी

97--376 M. of HA/ND/87

भी हालत में केन्द्र के विपरीत कार्य नहीं करते । अमरीका जैसे देशों में राज्य सेवाएं केन्द्रीय सेवा से भिन्न हैं और उन की निष्ठा दो सरकारों के बीच नहीं बंटी होती । किन्तु भारत में राज्य सरकारों के प्रशासन पर केन्द्र के अप्रत्यक्ष नियंत्रण को अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से संवैधानिक बना दिया गया है ।

10. राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि राष्ट्रपति चाहें । इस पद्धति से राज्यों के प्रशासन की जांच करने और पर्यवेक्षण करने में केन्द्र को सहायता मिलती है । यह भी संघीय शासन की भावना के विरुद्ध है । कोई राज्य वास्तव में केवल तभी स्वायत्त होता है जब उसे अपना राज्यपाल चुनने का अधिकार हो ।

11. भारतीय संविधान में एक केन्द्रीय चुनाव आयोग की स्थापना की गई है, जिसे राज्य विधानसभाओं और संसद के चुनाव कराने और उनका पर्यवेक्षण करने की शक्ति प्रदान की गई है । भारतीय गणराज्य का राष्ट्रपति इस आयोग के अधिकारियों की नियुक्ति करता है । चुनाव आयोग को स्थापित करने और आयोग के अधिकारियों की नियुक्ति करने में राज्य सरकारों का कोई अधिकार नहीं होता । यह भी निश्चित रूप से संघवाद की संकल्पना के विरुद्ध है ।

12. अमरीका और अन्य राष्ट्रों में न्यायपालिका की दो प्रणालियां हैं । इन देशों में राज्य सरकारों को उनकी विधायी निकायों द्वारा पारित किए गए अधिनियमों और कानूनों को लागू करने के लिए विशेष न्यायालय स्थापित करने का अधिकार है । किन्तु भारत में राज्यों के उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के एक घटक के रूप में कार्य करते हैं ।

13. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 3 बहुत खतरनाक है । इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन केन्द्र किसी भी राज्य की सीमा में वृद्धि या कमी कर सकता है । यह किसी भी राज्य के नाम में भी परिवर्तन कर सकता है । संसद को ऐसा करने का अधिकार है । इन मामलों में राज्य विधान सभाएं केन्द्र को केवल अपना मत प्रस्तुत कर सकती हैं । यह अनिवार्य नहीं है कि राष्ट्रपति राज्य सरकारों के अनुरोध को स्वीकार करें । वह अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकते हैं । संयुक्त राष्ट्र अमरीका में राज्यों की सम्मति के बिना किसी भी राज्य की सीमा में कोई फेरबदल नहीं किया जा सकता ।

14. संघीय प्रशासन का विशेष लक्षण राष्ट्र के वित्त का बंटवारा करना होता है । राज्य और केन्द्र सरकारों को स्वायत्त रूप से कार्य करने के लिए पर्याप्त वित्त प्रदान किया जाना चाहिए । किन्तु भारत में राजकोषीय नीति राज्य सरकार के सुचारू रूप से कार्य करने में बाधक है और वित्त का आबंटन भी राज्यों को सौंपे गए कार्यों के अनुपात में नहीं किया जाता । इस प्रकार राज्य सरकारें केन्द्र की दया के सहारे हैं । इसके परिणामस्वरूप, राज्य के प्रशासन में केन्द्र के हस्तक्षेप में वृद्धि होती है ।

15. राज्य अपनी विधान सभा द्वारा पारित किए गए अधिनियम को राष्ट्रपति की सम्मति प्राप्त करने के बाद ही लागू कर सकते हैं, अन्यथा यह विधिमान्य नहीं होगा । राज्यपाल को भी विधायी निकाय द्वारा पारित किए गए किसी अधिनियम को रोके रखने की शक्ति प्रदान की गई है और राज्य को ऐसी शक्तियां प्राप्त नहीं हैं कि वे राज्यपाल को इस बात के लिए बाध्य कर सकें कि वह उस पारित अधिनियम को राष्ट्रपति के पास भेजे । इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के पास किसी भी राज्य विधान सभा द्वारा पारित किए गए अधिनियम को रोके रखने या उसकी स्वीकृति में विलंब करने का अधिकार सुरक्षित है । राष्ट्रपति द्वारा किए गए ऐसे विलंब की कोई समय-सीमा नहीं है । यदि केन्द्र-राज्य संबंध मित्रतापूर्ण नहीं हैं या राज्य सरकार की नीति केन्द्र की नीति से मेल नहीं खाती हैं, तो राष्ट्रपति अधिनियम को रद्द भी कर सकते हैं ।

हमारे सुझाव

1. भारत के वर्तमान संविधान के लिए जिम्मेवार संविधान सभा भारत के लोगों द्वारा चुनी हुई निकाय नहीं थी ।

उस समय लोग वयस्क मताधिकार की संकल्पना से अनभिज्ञ थे । जिन लोगों के पास सम्पत्ति थी, केवल उन्हीं को मत देने का अधिकार था । सन् 1946 में इन्हीं लोगों द्वारा विभिन्न राज्य विधान सभाओं के प्रतिनिधियों का चयन किया गया था । इन विधायी निकायों से संविधान सभा के प्रतिनिधियों को चुना था ।

इसके अतिरिक्त, भारत की लगभग एक तिहाई जनसंख्या राजाओं द्वारा शासित राज्यों में रहती थी । इन लोगों को संविधान सभा के लिए प्रतिनिधियों का चयन करने का अधिकार नहीं था । इसके विपरीत, राजाओं द्वारा शासित राज्यों के प्रमुखों के प्रतिनिधियों को संविधान सभा में भेजा गया । परिणामस्वरूप, संविधान सभा भारत की जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी ।

2. भारत के वर्तमान संविधान को भाषायी राज्यों के निर्माण से पूर्व तैयार किया गया था । राज्यों का वर्तमान स्वरूप ब्रिटिश-राज के स्वरूप से अत्यधिक भिन्न है । भौगोलिक आकृति के साथ ही राज्यों के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तत्वों में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं । वर्तमान संविधान इन परिवर्तनों को समायोजित करने में असफल हैं । वस्तुत: संविधान किसी राज्य के लोगों की आकांक्षाओं को पूर्ण करने के मार्ग में एक बाधा है । केन्द्र-राज्य के बीच अनबन या झगड़े इस हस्तक्षेप के ही परिणाम है ।

3. संविधान के लिखे जाने के समय, केन्द्र और राज्यों दोनों में कांग्रेस सत्ता में थी । इसलिए संविधान में एकात्मक पद्धति पर बल दिया गया । फिलहाल, बहुत से राज्यों में ऐसे राजनीतिक दलों द्वारा शासन किया जा रहा है जो राज्य सरकारों के अधिकारों और संघवाद पर बल दे रहे हैं । भारत के 22 राज्यों में से 9 राज्यों में ऐसे राजनीतिक दलों द्वारा शासन किया जा रहा है जो अधिक स्वायत्तता और शक्तियों के लिए संघर्ष करते हैं । अन्य अधिकतर राज्यों में राज्य सरकारें बहुत अधिक शक्तिशाली हैं, यद्यपि ये अधिक स्वायत्तता की मांग नहीं करती हैं । अधिक स्वायत्तता के लिए किए गए वायदे के तहत संसद में इन राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व में किसी प्रकार की वृद्धि के परिणाम स्वरूप भविष्य में पड़ने वाले संभव प्रभावों को ध्यान में रखना अधिक उचित होगा ।

4. भारत का राजनीतिक परिदृश्य राज्यों के एक ऐसे समूह को प्रस्तुत करता है जो विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं वाली पार्टियों द्वारा शासित होता हैं और जिसके केन्द्र में बहुमत वाली एक पार्टी शासन करती है । भारत के संविधान में विभिन्न प्रकृति के इस पैटर्न को ध्यान में नहीं रखा गया ।

5. सन् 1976 में पारित किए गए संविधान के 42 वें संशोधन में "प्रभुता-सम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य" कहा गया है । यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि हमारे संविधान की बहुत सी धाराएं इस उद्देश्य के विरुद्ध हैं ।

6. भारत का वर्तमान संविधान भारत की विभिन्न भाषायी राष्ट्रीयताओं द्वारा स्वशासन (सेल्फ-रूल) की मांग को पर्याप्त रूप से मान्यता देने और उनका समादर करने में असफल रहा है । वर्तमान संविधान राष्ट्रीय एकता का संवर्धन करने में सक्षम नहीं है और एक बार राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करने और ऐसे केन्द्र की व्यवस्था करने के बाद, जो राज्य सरकारों के अधिकारों का समादर करे और उनके समन्वय से कार्य करे, यह संविधान निष्क्रिय हो जाएगा ।

7. यह बहुत ही हताश कर देने वाली बात है कि हमारे 35 वर्ष पुराने संविधान ने केन्द्र और राज्यों के बीच मित्रता की भावना को बढ़ाने के स्थान पर अत्यधिक तनाव बढ़ाने में सहायता की है । इससे यह पता चलता है कि हमारा संविधान स्थिति की संगतता से रहित, अपने कार्य से दूर होता जा रहा है ।

8. हम केवल कुछ निश्चित कांट-छांट द्वारा संविधान के दुष्प्रभावों को दूर नहीं कर सकते ।

9. वर्तमान संविधान के ढांचे के अन्तर्गत राज्य सरकारों को अधिक स्वायत्तता और शक्ति प्रदान करना संभव नहीं है । राज्य सरकारों को समादर प्रदान करने और पर्याप्त शक्ति प्रदान करने में इसकी अपनी बहुत बड़ी सीमाएं है ।

10. इसलिए वयस्क मताधिकार द्वारा चुने गए सदस्यों की एक नई संविधान सभा बनाई जानी चाहिए । हमारे राजनीतिक दलों ने एक ऐसी नई संविधान

सभा की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया है, जिसे ऐसे संविधान के निर्माण का कार्य सौंपा जाए जो लोकतंत्र और नीति शास्त्र की उच्च संकल्पना से संचालित संघवाद के प्रति वचनबद्ध हो।

तेलगु जाति विमुक्ति संगम

ज्ञापन

इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने से पूर्व, उन कारणों तथा स्थितियों को समझने के लिए जिन्होंने भारतीय राजनीति की अनियमितताओं की वर्तमान स्थिति को बनाने में सहयोग दिया है, भारत की संघ सरकार और राज्य सरकार तथा राज्य सरकार की सत्ताओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की समीक्षा की जानी आवश्यक है। तत्पश्चात् हम इस विषय से सम्बद्ध बहुत से विषयों का तथ्यपरक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना चाहते हैं।

1. ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

1. ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आगमन के बाद "भारत", "भारत सरकार", "ब्रिटिश भारत" आदि शब्द आम प्रचलन में आ गए थे। ब्रिटिश शासन के अस्तित्व में आने से पहले यह भूमि जिसे अब "इंडिया" या "भारत" कहते हैं, कभी भी एक राष्ट्र के रूप में एक देश नहीं थी। सन् 1857 से पूर्व और ब्रिटिश सरकार के शासन से पहले, बहुत से राज्यों पर सामंतवादी अधिपतियों द्वारा शासन किया जाता था। इन राज्यों की सीमाएं स्थिर नहीं थी। शक्तिशाली राज्य कमजोर राज्यों पर अपना अधिकार कर लेते थे। मौर्य, कनिष्क, कुषाण, सातवाहन, मुगल, विजयनगर जैसे साम्राज्य थे किन्तु इस महाद्वीप को कभी "इंडिया" या भारत का नाम नहीं दिया गया था। यहां तक कि प्रागैतिहासिक युग में भी, राजसी शासन की स्थापना से पूर्व, जब "जन-पथ शासन" या "गण परिषद् शासन" अस्तित्व में था, तब भी किसी भी राज्य पर भारतीयों, या इंडियनस् का शासन नहीं था। वास्तव में "भारत" नाम का योग इस उप-महाद्वीप के लिए किया जाता था। "जम्बू द्वीप", "भारत वर्ष", "भारत खण्ड" आदि का उल्लेख वेदों में भी किया गया है। इस बातका कहीं उल्लेख नहीं किया गया है कि भारत एक राष्ट्र था। इस उप-महाद्वीप में "गण" या "जनपथ" के रूप में प्राचीन सामूहिक शासन के अधीन बहुत से राष्ट्र थे। मगध राज्य [छटी (6) ई पू० शताब्दी] की स्थापना तक अंग, बंग, कलिंग, गन्धार, कम्बोज, कुरु, कुन्तल, शाक्य, आन्ध्र, चोल, चेरा आदि जैसे 56 राष्ट्र थे। बाद में धीरे-धीरे लोगों की भाषा के अनुसार कुछ निश्चित राष्ट्रों का उद्भव हुआ।

राष्ट्र क्या है ?

2. राष्ट्र की ऐतिहासिक और राजनीतिक समझ के अनुसार सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है "अखण्ड भू-भाग वाला वह देश जिसमें अधिकांश लोग एक आम भाषा बोलते हों और सामूहिक, आर्थिक संबंधों, समान संस्कृति, आचार-विचार और परम्परा का निर्वाह करते हों"। अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाने वाली आम भाषा किसी राष्ट्र का आधार होती है। धर्म, जाति, सरकारी शक्ति आदि लोगों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित नहीं कर सकते। मानव समाज के उद्भव और विकास के क्रम में सामूहिक रूप से रहने की प्रक्रिया परिवार, गण, कुल, सम्प्रदाय या पंथ, ग्राम, नगर आदि से गुजर कर सम्मिलित रूप से अपने उच्चतम स्तर पर एक राष्ट्र के रूप में उभरी है, जो अब मानवीय कार्यकलापों का एक उच्चतम रूप है। विश्व का विकास राष्ट्रों के रूप में हुआ है। संभव है बहुत से ऐसे शक्तिशाली विदेशी शासकों का शासन रहा हो, जिन्होंने अन्य कमजोर राष्ट्रों पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया हो। किन्तु लोगों के सम्बन्ध और मैत्री भावना हमेशा राष्ट्रीय भावना के साथ जुड़ी रही। किसी राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने की शक्ति एक आम भाषा में ही होती है, जिसके माध्यम से मानवीय सम्प्रेषण और मानवीय सुविधाएं विकसित हुई। यहां तक कि धर्म या दर्शन को राष्ट्रीय भाषा में अनुदित किया गया। विश्व में राष्ट्र के अलावा ऐसी कोई अन्य शक्ति नहीं है, जो लोगों को एक सत्ता में बांध सके। इसलिए अब तक विश्व में मानवीय एकता का यह उच्चतम रूप है और राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता को समझे बिना विश्व बंधुत्व की बात नहीं की जा सकती।

सम्पूर्ण विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि राष्ट्रों ने विदेशी शासकों के चंगुल से निकलने के लिए संघर्ष किया है। यूरोपीय देशों का सम्पूर्ण आधुनिक इतिहास राष्ट्रों के इसी संघर्ष को उद्घाटित करता है। यद्यपि सम्पूर्ण यूरोप में ईसाई धर्म का बोल-बाला है और सभी लोग गोरी जाति से संबंध रखते हैं, तथापि लोगों ने विदेशी शासकों के विरुद्ध अपने-अपने राष्ट्रों की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। इस प्रकार ब्रिटिश, फ्रांस, जर्मन, फिनिश, डच आदि राष्ट्रों का विकास हुआ। किन्तु भारतीय उप महाद्वीप में सामंती शासन के बाद ब्रिटिश उप-निवेशवाद ने आधुनिक हथियारों और राजनीतिक चालों द्वारा सभी देशी राष्ट्रीय शक्तियों का शोषण आरंभ कर दिया। ब्रिटिश शासकों के दो-सौ वर्षों के शासन में छोटे-छोटे राज्यों या राष्ट्रों को एक राष्ट्र के सूत्र में नहीं बांधा जा सका। भारत के राष्ट्र बहुत प्राचीन थे और प्रत्येक राष्ट्र की अपनी महान सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों आदि की परम्पराएं थी, जिन्हें किसी प्रकार के दबाव या प्रगतिशील विचारधारा द्वारा ओड़ा नहीं जा सका।

भारतीय राष्ट्रों या भारतीय राज्यों का विकास

3. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (संघर्ष) ही वास्तव में राष्ट्रों का संयुक्त संघर्ष था, जिसने ब्रिटिश आधिपत्य के विरुद्ध आवाज उठाई। मूलतः भारतीय कांग्रेस ही एक भारतीय संगठन था, जिसकी स्थापना सन् 1885 में लार्ड डाफ्रिन के माध्यम से ब्रिटिश शासकों द्वारा अपने ही अनुचर मि० ह्यूम द्वारा कराई गई थी। इसकी प्रगति राष्ट्रों के बीच 1920 तक नगण्य थी। सन् 1920 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नागपुर में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि कांग्रेस पार्टियों की स्थापना राष्ट्रों के अनुसार होनी चाहिए, इसके बाद ही पार्टी की गतिविधियों में काफी प्रगति देखने को मिली। कांग्रेस पार्टी के प्रचार के लिए आन्ध्र कांग्रेस, तामिल कांग्रेस, बंगाल कांग्रेस, मेघालय कांग्रेस, गुजरात कांग्रेस, असम कांग्रेस आदि की स्थापना की गई। विद्यमान राष्ट्रों की उपयोगिता को समझा गया और उसके बाद कांग्रेस पार्टी सभी राष्ट्रों में फैलने लगी। सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान कांग्रेस पार्टी ने वायदा किया कि यदि स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है तो सभी राष्ट्रों को उनकी लोक शक्ति सहित स्वायत्तता का दर्जा दिया जाएगा और सामूहिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए केन्द्र में केवल एक संघीय समन्वित सरकार होगी। किन्तु जब सन् 1947 में ब्रिटिश शासकों ने कांग्रेस पार्टी को राजनीतिक शक्ति प्रदान की तो कांग्रेस पार्टी ने सभी राष्ट्रों को स्वतंत्रता देने के अपने वचन का पालन नहीं किया। इसके स्थान पर कांग्रेस ने भी राज्यों पर उसी प्रकार शासन करना जारी रखा जिस प्रकार विदेशी ब्रिटिश शासक करते थे। संविधान भी इसी नीति पर तैयार किया गया कि राजनीतिक शक्ति केन्द्र सरकार के पास रहे जो किसी भी तरह से ब्रिटिशकाल के वायसराय के शासन से भिन्न नहीं है।

भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में भारत को परिभाषित किया गया है।

"इंडिया अर्थात् भारत राज्यों का एक संघ होगा"। अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि राज्यों के बिना इंडिया या भारत की कल्पना नहीं की जा सकती। किन्तु राज्यों को सही ढंग से परिभाषित नहीं किया गया। तेलगु राज्य में पोत्ती श्रीरामुलू के आत्म-बलिदान और संघर्ष के परिणामस्वरूप राज्य को भाषायी दर्जा दिए जाने के लिए (1956) राज्य के अर्थ को समझने में पांच वर्ष और लग गए। राष्ट्रों या राज्यों ने यह महसूस किया कि एक राष्ट्र का अन्य राष्ट्रों पर आधिपत्य असहनीय है। राष्ट्रों ने अपनी वैयक्तिकता या अस्मिता के लिए संघर्ष करना आरंभ किया और आखिरकार बहुत खून देकर और बहुत से प्राणों का बलिदान देकर ही ये राज्य अपने विशिष्ट भाषायी राज्यों या राष्ट्रीय राज्यों को प्राप्त करने में सफल हो सके। इस प्रकार भारतीय उप-महाद्वीप में राज्यों का निर्माण राष्ट्रों की पहचान कायम रखने के लिए किया गया।

सामंती राष्ट्र और लोकतांत्रिक राष्ट्र

4. किसी राष्ट्र को जाति, धर्म, और शासकों की सीमाओं में परिभाषित नहीं किया जाता। ऐतिहासिक रूप से राष्ट्रों का विकास भाषायी वास्तविकता के अनुसार होता है। इसका विकास हजारों वर्षों के सामूहिक, सुसंगत आर्थिक

और सांस्कृतिक सम्बन्धों से हुआ है । सामंती युग में इन राष्ट्रों का विकास हुआ, इसके बाद एक शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा युद्धों और कठोर प्रशासन के माध्यम से अन्य कमजोर राज्यों पर शासन करना आरंभ हुआ । पूंजीवाद के विकास के बाद जब राजाओं के शासन का अन्त हुआ, तो राजाओं के न्यायालयों और राजशाही के स्थान पर संसदीय प्रणाली सामने आई और एक भाषा या एक राष्ट्र के लोगों ने आर्थिक-सामाजिक उन्नति के लिए अपनी-अपनी संसद का दावा करना आरंभ कर दिया । एक राष्ट्र के अन्य राष्ट्रों पर किसी प्रकार के आधिपत्य का कड़ा विरोध हुआ है । कमजोर राष्ट्रों पर समृद्ध या शक्तिशाली राष्ट्रों की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का विरोध हुआ है । राष्ट्र विशेष के संसाधनों को केवल उसी राष्ट्र के लिए उपयोग में लाने के लिये दावा किया गया है । विदेशी राष्ट्र या औपनिवेशिक साम्राज्यवाद द्वारा संसाधनों की किसी प्रकार की लूटपाट का उग्र विरोध किया गया है । इस प्रकार संसदीय युग या लोकतांत्रिक युग में, किसी राष्ट्र का दृष्टिकोण मूलतः साम्राज्यवाद और इसके द्वारा किए जाने वाले विध्वंस का विरोध करना है । सामंती राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनी महिमा को प्रचारित करना और यह दर्शाना था कि किस प्रकार यह प्रणाली संस्कृति और परम्परा के क्षेत्र में अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ थी । सामंती राष्ट्रीय गौरव राजसी शासकों और राजसी योद्धाओं का गौरव है, जिन्होंने विदेशी शासकों से अपने राष्ट्र की सुरक्षा की । किन्तु आधुनिक राष्ट्र या लोकतांत्रिक राष्ट्र जनता के लिये है और अपनी जनता के लिये, एकता किसी विदेशी हस्तक्षेप के बिना, अपने संसाधनों का अपनी जनता के लिये उपयोग करने के लिये है, अन्यथा वह यह बात अच्छी तरह जानता है कि उसकी अर्थव्यवस्था विदेशियों द्वारा चौपट कर दी जाएगी और उसे अन्ततः दासता और गरीबी झेलनी पड़ेगी । संपूर्ण विश्व में अब इसी लोकतांत्रिक दृष्टिकोण की प्रधानता है । राष्ट्र अब विदेशी शासन और स्वदेशी अर्थव्यवस्था को विदेशियों द्वारा की जानेवाली लूट के विरुद्ध विद्रोह करने लगे हैं । दूसरे शब्दों में राष्ट्र अब स्वतंत्रता और लोकतंत्र के लिए संघर्षशील है ।

यह राष्ट्रीय संघर्ष का युग है

5. सम्पूर्ण विश्व राष्ट्रीय संघर्षों में लगा हुआ है । वर्तमान इतिहास लोकतंत्र की स्थापना के लिए नए राष्ट्रों में टीस पैदा कर रहा है । पाकिस्तान में सिंधी और पठान अपनी राष्ट्रीय आजादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं । ईरान में कुर्द अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए निरन्तर लड़ाई कर रहे हैं, आयरिश लोगों ने भी अपनी मातृ-भूमि के छोटे से भाग से ब्रिटिशों को भगाने के लिए अपनी लड़ाई अभी समाप्त नहीं की है, तिब्बती भी चीनी विदेशी शासकों से स्वयं को मुक्त कराने के लिए संघर्षरत हैं । भारतीय उप-महाद्वीप में भी अत्यधिक राष्ट्रीय चेतना जागृत हो चुकी है । नागा, मिजो, त्रिपुरावासी, मैती, असमी, कश्मीरी, पंजाबी, तमिल, तेलगू जनता और अन्य गैर-हिन्दी भाषी जनता अब अपने राष्ट्रों के प्रति सचेत हैं और यह महसूस करती है कि उन्हें स्व-शासन और आत्मसम्मान की आवश्यकता है । राष्ट्रवाद का विचार भारत के सभी राष्ट्रों में अब इतना अधिक सशक्त हो गया है कि यहां तक कि कश्मीरी जनता, नागालैण्डवासी मिजोरमवासी, मणिपुर और पंजाब के लोग तो स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर रहे हैं कि वे भारतीय नहीं हैं और वे भारत से अपनी मुक्ति चाहते हैं ।

भारतीय अखण्डता और राज्यों की स्वायत्तता

6. अब सभी राजनीतिक विचारधाराएं राष्ट्रों को स्वतंत्रता प्रदान करने की समस्या पर केन्द्रित हैं । दूसरी ओर, भारत सरकार यह जानते हुए भी कि भारत जैसे किसी राष्ट्र की संकल्पना ही नहीं है, राष्ट्रीय अखण्डता का प्रस्ताव रखती है । अखण्डता के उपदेश का प्रश्न तब उठता है जब वर्तमान राष्ट्रों के बीच संघ या एकता की कोई संभावना ही न हो । भारतीय राजनीतिक शब्द कोष में "अलगाववादी", "पृथकतावादी", "भूमिपुत्र" और "क्षेत्रीयतावाद" जैसी संकल्पनाएं प्रवेश कर चुकी हैं । ये शब्द भारत सरकार द्वारा राष्ट्रों की स्वतंत्रता की भावना पर अपना प्रभाव दर्शाने के लिए निर्मित किए गए हैं । किन्तु वास्तविकता यह है कि भारत का कोई भी राष्ट्र पूर्णतः यह महसूस या अनुभव नहीं करता कि वह ऐसी भारत सरकार का हिस्सा है जिसका भारतीय उप-महाद्वीप पर एकाधिकार है । अखण्डता का अर्थ है—राज्यों पर केन्द्रीय सरकार के आधिपत्य का सम्मान करना ।

राज्य और केन्द्र संबंध

7. यह वास्तविकता है कि भारतीय सरकार के तथाकथित 37 वर्षों के शासन के बाद भी "राज्य और केन्द्र संबंधों" की समस्या अभी हल नहीं हुई है । भारतीय संघ सरकार का मूल अर्थ पहले ही समाप्त हो चुका है । इसे "भारत सरकार" जैसे शब्द द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है । व्यवहार में राज्यों का कोई संघ नहीं है । राज्यों पर केवल केन्द्र का अधिपत्य है । राज्य निःसहाय हैं, कोई स्व-शासन नहीं है, आत्म सम्मान नहीं है, शक्तियों का विकेन्द्रीकरण नहीं है—ये सभी बातें अकेले केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जाती हैं । यह भी स्पष्ट नहीं है कि फिर राज्य सरकारों का क्या अर्थ है । राज्य विधान सभाओं और संसद के बीच मत-भेद तथा विवाद और अधिक बढ़ते जा रहे हैं, राज्य-केन्द्र के अधीनस्थ हैं । राज्यों से एकत्रित किए गए करों का 3/4 भाग केन्द्र के पास जाता है । इसके बदले राज्यों को किसी भी कार्यक्रम के लिए केन्द्र से भीख मांगनी पड़ती है । केन्द्र द्वारा राज्यों को जो धन दिया जाता है वह कहीं और से नहीं वरन् उन्हीं राज्यों से एकत्रित किए गए करों में से ही दिया जाता है । राज्य अब आर्थिक, राजनीतिक एकता और सामाजिक उन्नति जैसे मामलों में अपने ऊपर केन्द्र सरकार के अधिपत्य को अच्छी तरह अनुभव कर रहे हैं । राज्यों ने केन्द्र के प्रति अपना अविश्वास दिखाना आरम्भ कर दिया है । भारत सरकार द्वारा मुख्य मंत्रियों को हटाये जाने, राज्य के मंत्रिपरिषद को हटाकर कठपुतलियों और विदूषकों जैसे लोगोंकी नियुक्ति करने आदि जैसे कार्यों से राज्यों में केन्द्र के विरुद्ध अपरिहार्य रूप से वैमनस्य उत्पन्न हुआ है । अन्ततोगत्वा स्थिति यह आ गई है कि प्रत्येक राज्य अपने मतभेदों के साथ केन्द्रीय सरकार से राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करने की मांग कर रहा है और यह भी मांग कर रहे हैं कि प्रशासन और अधिकार के मामले में केन्द्र और राज्यों के कार्यों को सुस्पष्ट किया जाना चाहिए । राज्यपाल का पद, जो जनता की सत्ता का प्रतीक नहीं है जिसका चयन जनता द्वारा नहीं किया जाता और जो ब्रिटिश शासन के पुराने ढांचे की तरह है, राज्य पर निगरानी रखने के लिए केन्द्र द्वारा अभी तक बरकरार रखा गया है । राज्य सरकार के प्रत्येक विषय की सिफारिश राज्यपाल से करानी होती है और उसे केन्द्र के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । केन्द्र अपने विवेक से राज्य द्वारा पारित किए गए अधिनियमों को स्वीकृत या अस्वीकृत करता है । ये सभी बातें राज्य को केन्द्र सरकार का आज्ञाकारी सेवक बनाने में सहायक हैं । इसके लिए ऐसा वातावरण तैयार कर दिया गया है कि वास्तव में भारतीय उप-महाद्वीप में केवल एक सरकार है और वह केन्द्रीय सरकार है तथा जिसे लोकतांत्रिक नाम देने के लिये भारतीय संघ सरकार या परिसंघीय सरकार कहा जाता है । ऐसे शब्द आम लोगों के दिमाग में अखण्डता के अर्थ को ध्वनित करने में असमर्थ हैं ।

राज्यों पर भारत सरकार के उपर्युक्त आधिपत्य पूर्ण शासन को दृष्टि में रखते हुए, यह ज्ञात होता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच विवाद इतने अधिक वास्तविक हैं कि जब तक संघवाद की वास्तविक लोकतांत्रिक प्रवृत्ति की स्थापना नहीं की जाती, तब तक इन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता ।

राष्ट्रवाद का अर्थ है लोकतंत्र और लोकतंत्र किसी के आधिपत्य आगे नहीं झुक सकता, चाहे यह बाहरी तौर पर कितना ही पवित्र स्वरूप का द्योतक क्यों न हो

8. राष्ट्रीयता को भारतीय शासकों के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत परिभाषा के रूप में एक बार फिर से परिभाषित किया जाना चाहिए अर्थात्: "राष्ट्र वह है जिसमें इतिहास के प्रारंभ से ही लोग एक अखण्ड भू-भाग में रहते हुए बहुत मत से एक सामान्य भाषा बोलते हों और जिनके बीच सामान्य सामाजिक-आर्थिक सम्पर्क और सामान्य संस्कृति हो" । राष्ट्र की इस परिभाषा को सार्वभौमिक रूप से स्वीकृति मिली है । इस परिभाषा के प्रकाश में देखा जाए तो भारत एक राष्ट्र नहीं है । यह बहुत से राष्ट्रों का समूह है । वास्तविक लोकतंत्र वह है जहां विदेशी शक्तियों का राज्यों के मामलों पर कोई आधिपत्य न हो । राष्ट्र से भिन्न यदि कोई भी शक्ति राष्ट्र के स्वरूप निर्धारण का कार्य करेगी, तो उससे निश्चय ही संघर्ष उत्पन्न होगा । जब

तक परिसंघीय सत्ता द्वारा राज्यों की सत्ता समुचित रूप से स्वीकार नहीं की जाती तब तक भारतीय उप-महाद्वीप के राज्यों और केन्द्र के बीच विवाद होते ही रहेंगे।

तेलगु नेशनल लिबरेशन ओरगनाइजेशन के सुझाव

9. राज्यों और केन्द्र के बीच विवादों को कम करने और केन्द्र सरकार के विरूद्ध राज्यों के वर्तमान संघर्षों को रोकने के लिए तेलगु नेशनल लिबरेशन ओरगनाईजेशन राज्यों के बीच वास्तविक संघवाद की स्थापना के लिए माननीय सरकारिया आयोग के समक्ष को निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करता है :—

1. प्रत्येक भाषायी राज्य एक राष्ट्र है और इसका प्रतिनिधित्व इसके निर्वाचित सदस्यों और इसके अपने अधिनियमों द्वारा किया जाना चाहिए।
2. एक राष्ट्र या एक राज्य के लिए केवल एक ही चुनाव होना चहिए और प्रत्येक राष्ट्र या राज्य के लिए एक ही सरकार होनी चाहिए।
3. राष्ट्रों के विधान-सभा चुनाओं और सरकार बनाने के बाद प्रत्येक राष्ट्र द्वारा, जनसंख्या का ध्यान रखे बिना, अपने ढंग से चुने गए दस प्रतिनिधि परिसंघीय संघ को भेजे जाएं। परिसंघीय सरकार या संघ सरकार के लिए पृथक चुनाव नहीं होना चाहिए अन्यथा परिसंघीय सरकार का मूल अर्थ और प्रयोजन समाप्त हो जाएगा।
4. राष्ट्रीय सरकारें या राज्य सरकारें ही वास्तविक सरकारें हैं। भारतीय राष्ट्रों का एक परिसंघीय संघ केवल सभी संभव है जब ये राष्ट्र परिसंघीय संगठन को अपने प्रतिनिधि भेजें।
5. परिसंघीय संगठन द्वारा राष्ट्रों या राज्यों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। इसका कार्य इस उप-महाद्वीप के सभी राष्ट्रों के सामान्य हितों के लिए विचार करना होना चाहिए।
6. परिसंघीय संघ का प्रत्येक राष्ट्र सभी मामलों को अपनी मातृ-भाषा या राष्ट्र भाषा में प्रस्तुत करे सिवाय इसके कि अन्य राष्ट्रों या परिसंघीय संघ के मामलों के लिए अंग्रेजी में पत्रव्यवहार किया जाए।
7. भारतीय राष्ट्रों (राज्यों) का परिसंघीय संघ केवल तभी संभव है जब प्रत्येक राष्ट्र के पास अपने राज्यों के संसाधनों, व्यवसाय और अपने राष्ट्र के लोगों के लिए उद्योगों पर पूर्ण अधिकार हो। परिसंघीय सरकार को किसी भी तरह बिना उस राष्ट्र की सम्मति के एक राष्ट्र के संसाधनों का उपयोग दूसरे राष्ट्र के लिए करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।
8. प्रत्येक राष्ट्र को अपना झंडा और अपनी पसंद की सरकार और अपना संविधान बनाने की अनुमति होनी चाहिए और यदि वह यह ऐसा समझे कि परिसंघीय संगठन उसके अस्तित्व के लिए उपयुक्त नहीं है और उससे संबंध विच्छेद करना आवश्यक है तो परिसंघ संगठन से सम्बन्ध विच्छेद करने का भी उसे अधिकार होना चाहिए।
9. प्रत्येक राष्ट्र या राज्य परिसंघीय संगठन के कार्य के लिए कोषों में अशंदान करे।
10. परिसंघीय संघ द्वारा किसी राज्य या प्रदेश पर शासन नहीं किया जाना चाहिए।

यदि राष्ट्रीय स्तर के संघवाद को सभी राष्ट्रों के सामूहिक हितों के लिए बनाये रखना है, तो इसके लिये वास्तविक लोकतंत्र लाना होगा।

संयुक्त गोवा पार्टी

उत्तर

1.1. हमारा संविधान सही अर्थ में परिसंघीय नहीं है, क्योंकि अन्य परिसंघीय संविधानों में पाए जाने वाली विशिष्ट विशेषताएं हमारे संविधान में नहीं पाई जाती। इसके लिये संघीय गणराज्य जर्मनी, संयुक्त राज्य अमरीका, रूस आदि देशों का उदाहरण दिया जा सकता है। हम स्वायत्त राज्यों का दृढ़ता से समर्थन करते हैं।

1.2. हम तत्कालीन तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त की गई राजामन्नार समिति के निर्णयों से पूरी तरह सहमत है, जिसने अधिक स्वायत्तता प्रदान करने की मांग की थी। हमने मैथ्यू आयोग को भी अपने विचारों से अवगत कराया था, जिसमें हमने स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया था कि उच्चतम न्यायालय के दो खण्ड होने चाहिएं—सांविधानिक खण्ड, जिसमें सांविधानिक मामलों की सुनवाई हो और दूसरा अपील खण्ड जिसमें अन्य अपीलों की सुनवाई हो।

1.3. हम इस बात के लिए भी पूर्णतः सहमत है कि आपात्स्थिति के समय पर्याप्त केन्द्रीयकरण होना चाहिए। किन्तु भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में पूर्ण विकेन्द्रीकरण होना एक अनिवार्यता है। दूसरे शब्दों मे सभी राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए।

1.4. "परम्परागत" किस्म का परिसंघ "अव्यावहारिक" सिद्धांत से भिन्न "प्रकार्यात्मक" सत्ता के रूप में विद्यमान होता है। इस तथ्य को समझने के लिए जर्मनी की परिसंघीय सरकार और संयुक्त राज्य अमरीका का उदाहरण लिया जा सकता है।

1.5. वर्तमान समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए मूलतः हमारा संविधान पर्याप्त रूप से समर्थ और लचीला है। हमें केवल संघ-राज्य संबंधों के कुछ निश्चित क्षेत्रों में बाधा डालने वाले कानूनों को नियमित करना है। हमारा सुझाव यह है कि राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करके संविधान में संशोधन किया जाए।

1.6. हमारी स्वतंत्रता और अखण्डता हमेशा बरकरार रहनी चाहिए। यदि हमें अपनी स्वतंत्रता और अखण्डता के विरूद्ध किसी षड्यंत्र का पता चलता है तो संविधान के अनुच्छेद 302 को बिना किसी विलंब के लागू किया जाना चाहिए।

1.7. संविधान के अनुच्छेद 256-257, 354 से 357 तक और 365 के अन्तर्गत आने वाले उपबंधों में पर्याप्त रक्षोपायों की व्यवस्था की गई है।

1.8. हमारा विचार है कि संविधान के अनुच्छेद 3 मे किसी संशोधन की आवश्यकता नही है।

भाग II के उत्तर

2.1. राज्यों को एक बार स्वायत्तता प्रदान करने के बाद संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण की योजना को बंद कर दिया जाना चाहिए। सभी प्रकार के दुरुपयोग बंद हो जाएंगे। हमें ऐसे मूर्त दृष्टान्तों को प्रमाणित करने की आवश्यकता नही है, जिनसे कि आयोग स्वयं अवगत है।

2.2. राज्यों को एक बार स्वायत्तता प्रदान करने के बाद, संविधान की सातवीं अनुसूची की विधायी सूचियों के अधीन आनेवाली शक्तियों के वितरण को बंद कर दिया जाना चाहिए।

2.3. हम नहीं समझते कि ऐसी प्रक्रिया अपनाना वाछंनीय है। यह पूर्णतः केन्द्र की जिम्मेवारी है।

2.4. ऐसी अनियमितता को समाप्त किया जाना चाहिए। राज्य कानून बनाने में सक्षम है और होने चाहिए। राज्य उनकी शक्तियों को निराकृत नहीं करते।

2.5. नहीं, क्योंकि वही शक्ति पर्याप्त है जिसमे स्वायत्त राज्य अधिनियम होगा।

भाग III का उत्तर

राज्यपाल की भूमिका

3.1. हमारा विचार यह है कि संबंधित राज्य के विधान मंडल द्वारा नियुक्त किए गए किसी न्यायालय अधिकरण या निकाय द्वारा राज्यपाल को राष्ट्रपति के समान लाने के लिये राज्यपाल के कार्य संचालन की समीक्षा की जानी चाहिए। राष्ट्रपति के कार्य संचालन की भी न्यायालय द्वारा समीक्षा की जाती है।

3.2. राज्यपाल को सांविधानिक ढांचे के अन्दर ही कार्य करना चाहिए ।

3.3. हम अनुच्छेद 356(1), 164 और 174(2) के अधीन राज्यपाल को कार्यनिष्पत्ति/कार्यों से पूर्णतः सहमत हैं । वह केवल संविधान की व्याख्या करता है ।

3.4. राज्यपाल द्वारा बिलों के आरक्षण के लिए अनुच्छेद 200 और राष्ट्रपति के विचारार्थ अनुच्छेद 201 को प्रदान करने का हमारे संविधान निर्माताओं का प्रयोजन केवल यह था कि यदि यह कानून बन जाता है तो यह उच्च-न्यायालय की शक्तियों को कम करेगा क्योंकि इससे संविधान द्वारा न्यायालय को प्रदान की गई शक्तियों को खतरा उत्पन्न हो सकता है ।

3.5. कानून द्वारा प्रदान किए गए परमाधिकार को सुरक्षित रखा जाना चाहिए ।

3.6. सामान्यतः राज्यपाल केन्द्र और राज्य के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करता है । किन्तु संविधान के अनुसार वे सामान्यतः निष्पक्ष रूप से कार्य करते हैं । किन्तु ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते हैं जब राज्यपाल अपनी निष्पक्षता को नहीं निभाते । तेलगू देशम का उदाहरण लिया जा सकता है । लोगों ने राज्यपाल के पक्षपात का विरोध किया और उसे बाहर निकाल दिया ।

3.7. हां, हम पूर्णतः सहमत हैं ।

3.8. हां, हम पूर्णतः सहमत हैं ।

3.9. नहीं । हम संघीय गणराज्य जर्मनी की कार्यप्रणाली से परिचित हैं । हमारे संविधान में भी वही उपबंध सम्मिलित किए जाने चाहिए ।

3.10. हम अन्तर-राज्यीय परिषद् द्वारा इस संबंध में मार्गदर्शी सिद्धांत बनाए जाने से सहमत हैं कि राज्यपालों को अपनी वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए ।

भाग IV का उत्तर

4.1. हमारे संविधान की स्कीम और ढांचे में अनुच्छेद 256-257 और 365 के प्रयोजन, कार्य और प्रयोग को संघीय ढांचे में जारी रखा जाना चाहिए । हमें किसी भी राज्य से ऐसी घटना की सूचना प्राप्त नहीं हुई है जिसमें अनुच्छेद 365 का अवलम्ब लिया गया हो । किन्तु एक बार राज्यों को स्वायत्तता प्रदान किए जाने के बाद ढांचे में परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो जाएगा क्योंकि केन्द्र को रक्षा, संचार और विदेशी मामलों को संभालना होगा ।

4.2. चूंकि अनुच्छेद 365 का कभी उल्लंघन नहीं किया गया है अतः इसे आरक्षित उपबंध के रूप में जारी रखा जा सकता है । यह पूर्णतः एक परिणामी खण्ड है ।

4.3. चूंकि अनुच्छेद 256/257 की आवश्यकता विवादों से बचने के लिए है अतः आयोग की सिफारिशों का कोई महत्व नहीं है । हम सभी अपनी अपनी ओर से मार्ग खोजते हैं किन्तु ऐसा न हो पाने पर अनुच्छेद 256/257 और 365 का प्रयोग किया जाता है ।

4.4. हम अत्यधिक स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख करते हैं कि संविधान निर्माताओं ने अपनी बहुत अधिक दूरदर्शिता से अनुच्छेद 256 में संघ द्वारा प्रयोग की जाने वाली "कार्य पालिका शक्ति" उपबंधित की है और हमारी सुविचारित राय में इन उपचारी उपायों को, जिनका प्रयोग कभी नहीं किया गया, पूर्ण रूप से सुरक्षित रखा जाना चाहिए ।

4.5. हम पंजाब और असम की स्थिति देख चुके हैं । कोई नहीं कह सकता कि राष्ट्रपति शासन कितने समय तक लागू रहना चाहिए । विशेष रूप से गड़बड़ी वाले क्षेत्रों में हमें सचेत रहना चाहिए और संसद को यदि आवश्यक हो तो ऐसे क्षेत्रों के लिए समय-सीमा बढ़ाने की शक्ति होनी चाहिए । किसी राज्य विशेष में गड़बड़ी पैदा होने पर यदि अनुच्छेद 365 का प्रयोग नहीं किया तो उसका दुरुपयोग भी नहीं किया गया ।

4.6. नहीं । जनगणना और चुनाव राज्य प्रशासन द्वारा ही कार्यान्वित किए जाने चाहिए । वर्तमान व्यवस्था वास्तव में सन्तोषजनक है ।

4.7. संघ को राज्यों की स्वायत्तता में बाधा उत्पन्न करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए । केन्द्रीय एजेंसियां मात्र मार्गदर्शक कारकों के रूप में होनी चाहिए ।

4.8. हमारा यह दृढ़ मत है कि अखिल भारतीय सेवाएं संविधान निर्माताओं की आशाओं के अनुरूप नहीं हैं । वास्तव में ये अपने सम्बंधियों और मित्रों की आशाओं की पूर्ति करती हैं । केवल राज्य सेवा आयोगों ने ही सराहनीय कार्य किए हैं । अखिल भारतीय सेवाओं में प्रत्येक राज्य के हितों की रक्षा के लिए उनका प्रतिनिधि होना चाहिए ।

4.9. हमारा दृढ़ मत है कि अनुच्छेद 355 के आधार पर संघ किसी भी राज्य में सिविल शक्ति को सहायता प्रदान करने के लिए सक्षम है ।

4.10. हम राज्यों के इस मत का भी समर्थन करते हैं कि प्रसारण और दूरदर्शन की सुविधाएं संघ और राज्यों के बीच समान रूप से प्रदान की जानी चाहिए, क्योंकि दोनों को इस जनसंपर्क माध्यम को समान आवश्यकता है जिससे वे अपने विचार जनता के सामने रख सकते हैं ।

4.11. नगण्य योगदान । यदि राज्यों के हितों को समग्र रूप से देखा जाता तो गोवा, दमन, द्वीप अब तक एक पूर्ण राज्य बना होता ।

4.12. एक बार राज्यों को स्वायत्त घोषित किए जाने के बाद अन्तर-राज्यीय परिषद् का प्रश्न अनावश्यक हो जाता है ।

भाग V का उत्तर

5.1. हां । हम पूर्णतः सहमत हैं । जहां कहीं भी राज्य वित्तीय रूप से कमजोर हो उन्हें सहायता प्रदान की जानी चाहिए । किन्तु राज्यों द्वारा अपने संसाधनों को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए । गोवा, दमन, द्वीप के मामलों में हम इसका ध्यान रखेंगे ।

5.2. ए० आर० सी० अध्ययन टीम द्वारा सुझाए गए विकल्प और सम्मिलित विचार बने रहने दिये जाएं । वस्तुतः केन्द्रीय सहायता के लिए प्रतीक्षा किए बिना राज्य अपनी परियोजनाओं को पूरा करने के लिए विभिन्न वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर सकते हैं ।

5.3 राज्यों को अधिक वित्तीय शक्तियां प्रदान करें ताकि वे राज्य को चला सकें । आज भी ऐसा ही हो रहा है ।

5.4 राजस्व अन्तर को कम करने के लिए केन्द्र द्वारा घाटे को पूरा किया जाना चाहिए ।

5.5 हम यह सुझाव देते हैं कि निम्नलिखित का निर्धारण करने के लिए वित्त आयोग और योजना आयोग को कोई सूत्र खोजने का कार्य सौंपा जाना चाहिए ।

(क) करों में हिस्सा

(ख) योजना सहायता

(ग) गैर-योजना सहायता ।

5.6 यदि आर्थिक रूप से अल्पविकसित क्षेत्रों में तेजी से विकास करना है, तो एक विशेष संघीय निधि होनी चाहिए । वित्त और योजना आयोग को विश्वास में लिया जाना चाहिए ।

5.7 हमारा यह मत है कि संविधान के भाग 12 जिसमें देश में "व्यापार, वाणिज्य और पारस्परिक आदान प्रदान की स्वतंत्रता" सुनिश्चित की गई, अनिवार्य है ताकि कराधान प्रणाली की अनियमितताओं को दूर किया जा सके और इससे व्यापार में प्रतियोगिता आएगी और समृद्धि बढ़ेगी ।

5.8 हम ऐसे करों को लगाने और करों से प्राप्त आय के वितरण को पृथक करने का समर्थन करते हैं । हम मंत्री परिषद् और राज्य वित्त मंत्रियों के नियंत्रण के अधीन इन करों की केन्द्र द्वारा उगाही का सुझाव देते हैं ।

5.9 वस्तुतः इस बात को और विस्तार से बताया जाना अनावश्यक है कि दुर्लभ पूंजीगत संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करने के लिए योजना आयोग

का कार्य समग्र निवेश योजना और निर्णय लेने के लिए एक एजेंसी के रूप में सीमित होगा । हमारे विचार में वित्त आयोग द्वारा सभी वित्तीय अन्तरणों पर विचार किया जाना चाहिए । (पूंजीगत और राजस्व संसाधनों के निर्धारण पर योजना और गैर-योजना संबंधी अन्तरण) ।

5.10. वास्तव में उत्तरवर्ती वित्त-आयोगों की सलाह पर अथवा अन्यथा संघ से राज्यों को किए गए सांविधिक और स्वैच्छिकता दोनों प्रकार के, अन्तरणों से एक ओर तो व्यय में मितव्ययता और दक्षता बढ़ी है और दूसरी ओर राज्यों के बीच सार्वजनिक व्यय की असमानताएं कम हुई है ।

5.11. इस विषय पर वित्त आयोग द्वारा विचार किया जाना चाहिए ।

5.12. इस विस्तृत प्रस्ताव को पूरी तरह से स्वीकार किया जाना चाहिए ।

5.13. अनुच्छेद 275 के अधीन सहायता अनुदान के लिए सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को स्वीकार किया जाना चाहिए ।

5.14. हम इस बात के लिए पूर्णत: सहमत हैं कि सभी राजस्वों को संसाधनों के विभाजन योग्य सामूहिक निधि के अंतर्गत रखा जाना चाहिए, जो बाद में इसे घाटे का वित्त दर्शाने वाले राज्यों को सहायता अनुदान के अधीन वितरित करेगा ।

5.15. हम इस बात के लिए सहमत नहीं हैं कि बचत का हिस्सा निजी क्षेत्रों को भी दिया जाना चाहिए ।

5.16. राज्यों को अपनी परियोजनाओं को वित्त व्यवस्था करने के लिए साधन जुटाने चाहिए और आत्मनिर्भर तथा समर्थ बनना चाहिए और उन्हें विभिन्न वित्तीय संस्थाओं से धन उधार लेना चाहिए । यदि एक बार कोई राज्य समर्थ बन जाता है, तो घाटा होना समाप्त हो जाएगा ।

5.17. जैसा कि ऊपर कहा गया है हमारा एकमात्र सुझाव यह है कि राज्यों को सभी स्रोतों से अपने संसाधनों को बढ़ाना चाहिए । पर्वतीय क्षेत्रों के जटिल मामलों में केन्द्र को आगे आना चाहिए और उनके भार को कम करने में उनकी सहायता करनी चाहिए ।

5.18. केन्द्र द्वारा राज्यों की ऋण लेने की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाए जाने चाहिए । वित्तीय स्वायत्तता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ।

5.19 बिल्कुल नहीं । यह सुझाव देना हास्यास्पद होगा कि केन्द्र विदेशी ऋणदाताओं को दिए जाने वाले ब्याज से उच्च दर पर राज्यों से ब्याज लेता है । राज्यों को राज्यों की परियोजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिए केन्द्र द्वारा प्राप्त किए गए विदेशी उधार को राज्यों को अन्तरण करने की वर्तमान प्रणाली बिना किसी रुकावट के जारी रहनी चाहिए । वस्तुत: यदि राज्य को समृद्धि प्राप्त करनी है और परियोजनाएं पूरी की जानी हैं तो, विदेशी ऋणों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

5.20. भारतीय रिजर्व बैंक के कार्य में हस्तक्षेप करना मूर्खता होगी । इसे न केवल केन्द्र और राज्यों बल्कि निजी क्षेत्र के लिए भी बाजार ऋणों के समन्वय को जारी रखने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए । रिजर्व बैंक की कार्य प्रणाली में वित्त आयोग को सुधार करना चाहिए ।

5.21. वित्त आयोग को इस पहलू को महत्व देना चाहिए ।

5.22. हम पहले भी कह चुके हैं कि राज्यों को अपने संसाधन बढ़ाने के लिए सभी प्रयास करने चाहिए । किसी भी प्रकार से सभी वित्तीय संस्थाओं से वित्त प्राप्त करके सभी परियोजनाओं को पूरा किया जाना चाहिए ।

5.23. हम इस बात को फिर दोहराते हैं कि वित्त आयोग को इन पहलुओं का ध्यान रखना चाहिए ।

5.24. अनुच्छेद 268 और 269 में दिए गए प्रकार और करों को लगाने या उनकी दर संरचना में परिवर्तन करने या उन्हें समाप्त करने के लिए कोई बिल प्रस्तुत करने से पूर्व यदि संघ राज्य सरकारों के या मत का पता करता है तो हमें कोई आपत्ति नहीं है ।

5.25. हां, हम सहमत है कि संसाधनों को बढ़ाने के लिए अनुच्छेद 269 का और अधिक उपयोग किया जाना चाहिए ।

5.26. हम राज्यों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से सहमत हैं । यह अनुरोध किया जाता है कि यात्री किराया कर के बदले दिए जाने वाले इस अनुदान को संशोधित किया जाना चाहिए और इसमें रेल भाड़े की वसूली में हुई वृद्धि के अनुपात में बढ़ोतरी की जानी चाहिए ।

5.27. अकेले गोवा संघ राज्य क्षेत्र केन्द्रीय राजस्व के रूप में भारी मात्रा में कर एकत्रित करता है और संघ द्वारा इस प्रदेश को दिया जाने वाला हिस्सा नगण्य है । हम केन्द्रीय करों में प्रचुर हिस्से का सुझाव देते हैं ।

5.28. वर्तमान कार्य-व्यवस्था जारी रहनी चाहिए ।

5.29. हम केवल दो अखिल भारतीय संस्थान—राष्ट्रीय ऋण निगम और राष्ट्रीय आर्थिक परिषद की स्थापना के लिए पूर्णतया सहमत हैं । राष्ट्रीय क्रेडिट परिषद् की भूमिका तो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निभाई जा रही है ।

5.30. हां, हम इस विचार का समर्थन करते हैं कि अधिकांश लाभ लोगों को ही मिलता है ।

5.31. हां, हम सुझाए गए विचार से सहमत है ।

5.32. वर्तमान पद्धति जारी रहनी चाहिए । संसद और विधान मंडल इस पर निगरानी रखते हैं ।

5.33. लेखापरीक्षा की अधिक दक्षता के लिए उपायों का सुझाव देने के लिए नियंत्रक-महालेखा परीक्षक ही उचित एजेंसी है ।

5.34. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कार्यों की जांच करने के लिए संसद ही उचित फोरम है । अशोक चन्द द्वारा की गई आलोचना संगत नहीं है ।

5.35. बेहतर कार्य-प्रणाली के लिए उपायों का सुझाव देना और उन्हें कार्यान्वित करना संसद का कार्य है ।

5.36. हां । नियंत्रक महालेखापरीक्षक द्वारा दिए गए विचार और सुझाव संकल्पित किए जाने चाहिए ।

5.37. हम प्रशासन की छवि को सुधारने के लिए किसी भी सुझाव का समर्थन करते हैं ।

5.38. आवश्यक नहीं है । इससे भ्रम पैदा होगा जिससे और अधिक गड़बड़ी पैदा होगी । नियंत्रक महालेखापरीक्षक के कार्य में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

5.39. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक द्वारा की जानेवाली जांच पर्याप्त है ।

भाग VI का उत्तर

6.1. प्रशासनिक सुधार आयोग अध्ययन दल द्वारा दिए गए सुझावों और विशेषज्ञों के परिणामस्वरूप दिए गए सुझावों का ध्यानपूर्वक अनुपालन किया जाना चाहिए । विशेषकर योजना के क्षेत्र में केन्द्र राज्य संबंध में कमी के बारे में ।

6.2. हम सुझावों का पूर्णत: समर्थन करते हैं ।

6.3. हम योजना आयोग से सहमत है । लगभग सभी समितियों को, हमेशा होने वाली गलतफहमियों को दूर किया जा सकता है ।

6.4. योजना आयोग के गठन के लिए व्यक्त किया गया तीनों विचारों की जांच प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किए गए विशेषज्ञों द्वारा की जानी चाहिए ।

6.5. हम सुझाव का पूर्णत: समर्थन करते हैं ।

6.6. इसे योजना आयोग पर छोड़ दिया जाना चाहिए । उसके कार्य में हस्तक्षेप न किया जाए ।

6.7. हमें राज्यों को केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराने की वर्तमान प्रणाली के गुण और दोषों पर विचार नहीं करना है। हमारा विचार है कि उनका कार्य संतोषजनक है।

6.8. हम वर्तमान प्रणाली से सहमत हैं। हमें इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे भ्रम बढ़ जाएगा।

6.9. राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा तैयार की गई कसौटी सन्तोषजनक है। केन्द्रीय सहायता का आबंटन करने की वर्तमान प्रणाली भी सन्तोषजनक है। जन-जातीय और पहाड़ी क्षेत्रों को दी जाने वाली विशेष केन्द्रीय सहायता जारी रहनी चाहिए।

6.10. इसके पर्यवेक्षण का कार्य योजना आयोग पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

6.11. वर्तमान प्रणाली जारी रहनी चाहिए।

6.12. इस समय हमें योजना के विकेन्द्रीकरण के विषय में नहीं सोचना चाहिए। यदि राज्य चाहें तो अपने सुझाव दे सकते हैं।

6.13. नहीं। प्रत्येक राज्य में योजना बोर्डों के होने के बावजूद भी राष्ट्रीय योजना की आवश्यकता किसी भी तरह कम नहीं हो जाती। हम इस बात से सहमत हैं कि प्रत्येक राज्य में उनके अपने योजना बोर्ड होने चाहिए।

भाग VII का उत्तर

7.1. राज्यों में एक बार शक्तियों का विकेन्द्रीकरण हो जाने के बाद राज्यों द्वारा किसी भी उद्योग को लाइसेंस प्रदान करने का परमाधिकार प्राप्त हो जाता है, क्योंकि राज्यों के औद्योगीकरण से समृद्धता आती है; इस संबंध में पंजाब के मामलों को देखा जा सकता है। जब कभी कानून के अनुसार संघ द्वारा मार्गदर्शन किया जाना अपेक्षित हो तो, ऐसा किया जाएगा।

7.2. लोकहित ही राष्ट्रहित है। लोकहित के बिना राष्ट्रहित नहीं हो सकता। प्रत्येक वह वस्तु जो लोकहित में है उसे आवश्यक रूप से राष्ट्रहित में ही होना चाहिए। संसद द्वारा यह निर्धारण किया जाना चाहिए कि किन उद्योगों का नियंत्रण केन्द्र द्वारा होना चाहिए और कौन से उद्योग राज्यों के अधीन होंगे।

7.3. यदि संसद एक बार यह निर्धारित कर दे कि केन्द्र और राज्यों के कार्य-क्षेत्र के अंतर्गत कौन-कौन से उद्योग आने चाहिए, तो वर्तमान प्रक्रिया में स्वतः ही सुधार आ जाएगा और विकेन्द्रीकरण हो जाएगा।

7.4. टैक्नालॉजी के क्षेत्र में कमी को पूरा करने के लिए राज्यों को टैक्नालॉजी संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए पूरा प्रयास करना होगा जैसा कि आजकल प्रधान मंत्री द्वारा किया जा रहा है तभी इस प्रकार की खामियां दूर होंगी।

7.5. इन वित्तीय संस्थाओं को निर्देश दिया जाना चाहिए कि वे प्रत्येक राज्य योजना तथा प्रत्येक उद्योग के लिए वित्त-व्यवस्था करें क्योंकि राज्य योजनाओं को पूरा करने और अधिक उद्योग लगाने से समृद्धि बढ़ेगी और बेरोजगारी कम होगी।

7.6. राज्यों को भी विश्वास में लिया जाना चाहिए।

7.7. केन्द्रीय निवेश निर्णयों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए राज्यों को भी विश्वास में लिया जाना चाहिए।

7.8 उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए, विभिन्न केन्द्रीय राजस्व, व वित्तीय व्यवस्था के सम्बन्ध में पिछड़े क्षेत्रों का पता लगाने के लिए अपनाई गई कार्य प्रणाली का हम पूर्णतः समर्थन करते हैं। गोवा, दमन, द्वीप को ही लें, स्वतंत्रता से पूर्व ये क्षेत्र उपेक्षित थे—लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् 25 वर्ष में ही यहां आश्चर्यजनक प्रगति हुई है।

8.1. वस्तुतः अनुच्छेद 301, 302, 303 और 304 के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, संसद द्वारा विहित प्राधिकरण नियुक्त करने के विचार का हम समर्थन करते हैं। राज्यों के बीच व्यवसाय, व्यापार और परस्पर व्यवहार में किसी तरह की कोई बाधा नहीं होनी चाहिए, तभी भारत उन्नति कर सकेगा।

9.1. हम इस मत का समर्थन करते हैं कि "कृषि" राज्य का विषय होना चाहिए।

9.2. राज्य अपनी आवश्यकताओं को जानते हैं, एक बार कृषि राज्य का विषय बन जाए तो केन्द्र का हस्तक्षेप समाप्त हो जाएगा।

9.3. हमने यह सुझाव दिया है कि राज्यों की अपनी योजनाए होनी चाहिए। हम राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) द्वारा दिए गए सुझावों से सहमत हैं।

9.4. कृषि राज्य का विषय बनने के साथ ही सभी असंगतियां (अनियमितताएं) दूर हो जाएंगी।

9.5. उनसे कहा जाना चाहिए कि वे राज्यों की मदद करने के लिए तत्पर रहें।

10.1. स्वायत्तता, शक्तियों का विकेन्द्रीकरण कर देगी तभी केन्द्र-राज्य परामर्श का झमेला खत्म होगा।

10.2. इसके अतिरिक्त स्वायत्तता सभी समस्याओं को हल करेगी, राज्यों को अपने मामलों पर स्वयं निर्णय करने देना चाहिए।

11.1. केन्द्र का हस्तक्षेप न्यायसंगत नहीं है, अतः राज्यों में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।

11.2. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विश्वविद्यालयी शिक्षा में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। विश्वविद्यालय स्वायत्त संस्था है।

11.3. शिक्षा राज्य का विषय होना चाहिए और सभी राज्यों द्वारा शिक्षा के लिए एक-समान कोड अपनाया जाना चाहिए।

11.4. अनुच्छेद 29 और 30 के अन्तर्गत दिए गए सांविधानिक उपबंध पूर्ण रूप में बनाए रखे जाने चाहिए क्योंकि भारत धर्मनिरपेक्ष है। इसमें हमे कोई हस्तक्षेप नजर नहीं आता।

11.5. किसी भी प्रकार का विरोध नहीं देखा गया है।

12.1. सलाहकार समिति को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की पद्धति पर चलने की आवश्यकता नहीं है।

संयुक्त गोवा पार्टी

राज्य का दर्जा प्राप्त करने के लिए हमारा मामला

जब गोवा स्वतंत्र हुआ तो नेहरू जी की यह इच्छा थी कि गोवा का अस्तित्व बना रहना चाहिए या गोवावासियों का अस्तित्व ज्यों का त्यों बना रहना चाहिए।

गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा मिलना चाहिए और इसकी राजभाषा कोंकणी होनी चाहिए। गोवा का अपना एतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है। गोवा का जीवन के प्रति औरों से बिल्कुल अलग नजरिया है। गोवा एक रमणीय प्रदेश है और हर प्रकार से सक्षम राज्य है। इसके बारे में संघ राज्य क्षेत्र की धारणा पुरानी पड़ गई हैं। गोवा राज्य का गठन, गोवा, दमन और दीव को मिलाकर किया जाना चाहिए क्योंकि इनका हमसे सदियों पुराना संबंध है और वे गोवा विश्वविद्यालय समेत पूरी तरह से हमारे साथ बने रहना चाहते है। जनमत संग्रह से यह स्पष्ट हो गया है कि वे गुजरात राज्य में शामिल नहीं होना चाहते बल्कि हमारे साथ बने रहना चाहते हैं। गोवा की सामाजिक सांस्कृतिक बहुलता, जन-भावनाओं, संघ राज्य क्षेत्रों की पंगुता और वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए गोवा, दमन और दीव के लोगों की पूर्ण राज्य की मांग उचित है। गोवा सरकार द्वारा तैयार किया गया दस्तावेज गोवा की बेजोड़ और सजातीय सामाजिक सांस्कृतिक पहचान की सुस्पष्ट व्याख्या करता है। यहां के लोगों का रहन-सहन, खान-पान, गृह-निर्माण का तरीका, सामाजिक और धार्मिक विश्वास आदि औरों से बिल्कुल भिन्न है और इसके भीतरी हिस्सों में वर्ष भर मनाए जाने वाले उत्सव और त्योहारों की भी अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान है।

लोगों में सामाजिक और सांस्कृतिक संबंध इतने मजबूत हैं कि विभिन्न धार्मिक विश्वासों को मानने वाले लोगों में झगड़ा नहीं पैदा हो सकता हैं। वस्तुतः गोवा, दमण और दीव ही देश में ऐसा प्रदेश है जो पूर्ण आपसी धार्मिक मेल-जोल का दावा कर सकता हैं। जनसंख्या की दृष्टि से नागालैण्ड और सिक्किम राज्य गोवा

से पीछे है जबकि मणिपुर और मेघालय की जनसंख्या गोवा के बराबर है। इनमें से गोवा की जनसंख्या का घनत्व (285 प्रतिवर्ग किलोमीटर) सबसे अधिक है। जनसंख्या के आंकड़ों को प्रस्तुत करने में मूल धारणा यह है कि गोवा के लोग अधिक शिक्षित और सुविज्ञ हैं और राज्य का दर्जा दिए जाने के लिए उनकी मांग केवल राजनीतिक नेताओं का अन्धानुकरण का नतीजा नहीं है। राज्य के लिए सार्वजनिक समर्थन के आधार पर हम 1971—76 और 1983 का उदाहरण ले सकते हैं जब गोवा विधान सभा का दोनों बार अलग-अलग गठन होने के बावजूद केन्द्र सरकार से राज्य की मांग के लिए एकमत से प्रस्ताव पास किया। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस महत्वपूर्ण मामले पर अब तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया गया अत: इस मुद्दे पर राज्य के लोग भावुक हो रहे हैं और यदि निर्णय लेने में और अधिक विलंब हुआ तो लोगों में असन्तोष फैल जाएगा। संघ राज्य क्षेत्र होने के नाते गोवा को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है वे विधान सभा पर लगाए गए कड़े प्रतिबंधों के कारण हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची की राज्य सूची अथवा समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों में से किसी विषय पर कानून बनाने की, विधान सभा की शक्तियां इस शर्त के अधीन हैं कि संसद को उन विषयों पर संघ राज्य क्षेत्र के लिए कानून बनाने के लिए उनसे ऊपर शक्तियाँ प्राप्त होंगी। यह एक कड़ा प्रतिबंध है। राज्य का पूर्ण दर्जा प्राप्त राज्यों पर इस तरह का कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। गोवा, दमण और दीव संघ राज्य क्षेत्र की कार्य संचालन नियमावली के नियम 56 के तहत विधान सभा के समक्ष ऐसे किसी विषय पर कानून प्रस्तुत करने से पहले भारत सरकार की पूर्व स्वीकृति लेना अनिवार्य है, जो समवर्ती सूची में शामिल हो अथवा जिन पर संघ राज्य क्षेत्र अधिनियम की धारा 25 का द्वितीय परन्तुक से लागू होता है।

अनुभव से पता चलता है कि यह एक विलम्बकारी प्रक्रिया है और प्राय: भारत सरकार से आवश्यक अनुमोदन प्राप्त करने में विलंब होने से, प्रस्तावित कानून का प्रयोजन ही निष्फल हो जाता है। सरकार के विभिन्न विभागों को भी, योजना आयोग के, योजनागत स्कीमों के प्रस्तावों के संबंध में पहले भारत सरकार के संबंधित प्रशासनिक मंत्रालयों से अनुमति प्राप्त करनी होती है। स्कीम के बजट में शामिल हो जाने और विधान सभा द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद भी, यदि योजना का व्यय 50.00 लाख रुपये से अधिक है, तो भारत सरकार की पूर्व सम्मति के बिना सरकार इसका निष्पादन नहीं कर सकती।

इन सबके अतिरिक्त बहुत सी स्कीमें हैं, विशेष रूप से कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, शिक्षा और समाज कल्याण जैसे क्षेत्रों में, जिन्हें आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। पूर्ण राज्यों के विपरीत संघ राज्य क्षेत्र सरकार को, संबंधित प्रशासनिक मंत्रालयों और वित्त मंत्रालय के पूर्व अनुमोदन के बिना ऐसी सहायता मंजूर करने की शक्ति नहीं प्राप्त है। अनुमोदन प्राप्त करने के लिए लम्बा पत्राचार करना पड़ता है और अनुमोदन के देर से प्राप्त होने या प्राप्त न होने के कारण होने वाले विलंब से सहायता की राशि का उपयोग नहीं किया जा सकता है।

वित्त जुटाने की सीमाएं : संघ राज्य क्षेत्र को बाजार या अन्य वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त किए जाने वाले ऋण के लिए गारंटी देने की शक्ति नहीं है जबकि राज्य सरकारों के पास ये शक्तियां हैं। इसके स्थान पर भारत सरकार संघ राज्य क्षेत्र की ओर से ऐसे ऋण की गारंटी देता है।

गोवा जीवन बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक वित्त निगम या ऐसी अन्य संस्थाओं से ऋण प्राप्त नहीं कर सकता और इसे अपनी अधिक पूंजी वाली परियोजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिए केन्द्रीय सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है। यह प्रगति के मार्ग में बहुत बड़ी रुकावट है।

वित्तीय क्षमता का मूल्यांकन करने के लिए एक नियत तारीख पर तुलन-पत्र के बजाय एक निश्चित समय-अवधि में आर्थिक विकास की प्रवृत्ति को देखना अधिक संगत है और इसे राज्य के सकल उत्पादों और प्रति व्यक्ति आय के रूप में मापा जा सकता है। सन 1982-83 की चालू कीमतों पर इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद 114 करोड़ और प्रति व्यक्ति आय 3694 रु० थी। प्रति व्यक्ति आय विभिन्न क्षेत्रों के बीच सापेक्ष आर्थिक समृद्धि के माप के रूप में मानी जाती है। गोवा, दमन और दीव का यह दावा सही है कि स्वतंत्रता के बाद से उसने काफी प्रगति की है क्योंकि संघ राज्य क्षेत्र दिल्ली के बाद उसका स्थान है। संघ राज्य क्षेत्र गोवा, दमण और दीव ने पिछले दो वर्षों में औसतन 7.2 प्रतिशत की वार्षिक विकास दर कायम की है।

यह वास्तव में अन्य राज्यों की अपेक्षा काफी ऊंची है। किन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर बहुत कम (3.5% प्रतिवर्ष) है जिसके कारण जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि और लोगों के अन्य स्थानों से भारी संख्या में आने से जनसंख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो रही है।

1971 की जनगणना के अनुसार आप्रवासियों की जनसंख्या 14% थी। इस संघ राज्य क्षेत्र के राजस्व (कर अथवा गैर-कर) में हो रही वृद्धि भी आर्थिक समृद्धि बढ़ने का दूसरा प्रमाण है। 1971-72 में कुल राजस्व 482 लाख था जो अब 1984-85 में बढ़कर 3286 लाख हो गया। इस प्रकार 13 वर्ष के अवधि में इसमें 800% की वृद्धि हुई। इस अवधि में प्रति व्यक्ति कर राजस्व भी 56 रु० से बढ़कर 276 रु० हो गया है। 1971-72 में जो गैर-कर राजस्व 35.3 लाख रु० था वह 1984-85 में बढ़कर 2560 लाख रु० हो गया है।

यह वृद्धि 625 प्रतिशत है। गोवा करों के माध्यम से संसाधनों को जुटाने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। वास्तव में गोवा में प्रति व्यक्ति उच्च कर राजस्व इस बात का सूचक है कि यह क्षेत्र देश के अत्यधिक उच्च कर वाले क्षेत्रों में से एक है। गोवा, दमन और दीव के लिए भारत सरकार की जिम्मेदारियां न्यूनतम हैं और इसको राज्य बना दिए जाने के बाद भी संभवत: उससे अधिक सहायता अनुदान नहीं देने पड़ेंगे, जितने इस समय दिया जा रहा है। भारत सरकार इस क्षेत्र के केन्द्रीय करों और शुल्कों से राजस्व के रूप में लगभग 150 करोड़ रु० वसूल कर रही है। अपने थोड़ से घाटे को पूरा करने का इसका दावा बहुत न्यायोचित है। गोवा का नया राज्य अपनी विकासात्मक परियोजनाओं को पूरा करने के लिए भारत सरकार के अतिरिक्त विभिन्न वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर सकेगा।

युवा जनता

गोवा एकक

ज्ञापन

1. गोवा को राज्य क्यों बनाया जाय ?

हम जनता पार्टी की युवा शाखा हैं। हमारे विभिन्न अन्य उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित उद्देश्य हैं :—

(1) गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा (2) एकमात्र राजभाषा के रूप में कोंकणी (3) कोंकणी को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करना (4) भारतीय संविधान के ढांचे के अनुसार राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करना। हम उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रतिबद्ध हैं, अत: हम गोवा का मामला आपके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। हालांकि हम इस बात को जानते हैं कि यह आयोग केन्द्र-राज्य संबंधों का अध्ययन करने के लिए बैठाया गया है किन्तु हमारा विचार है कि गोवा को राज्य का दर्जा प्रदान किए जाने के मामलों का आपके आयोग के विचारार्थ विषयों से गहरा संबंध है। गोवा को राज्य का दर्जा क्यों दिया जाना चाहिए, इसके विभिन्न कारण निम्नलिखित हैं :—

(1) ऐतिहासिक : सर्वप्रथम गोवा का उल्लेख महाभारत में मिलता है। आरंभ से ही गोवा पर आक्रमणकारियों का शासन रहा है चाहे वह शासन चालुक्य वंश का हो या यादवों का, विजय नगर और बामनी रजवाड़ों का या कदम्बों का और आदिलशाह का या अन्तत: पुर्तगालियों का शासन रहा। इस क्षेत्र को पुर्तगालियों के 450 वर्ष से चले आ रहे शासन से स्वतंत्रता मिलने पर गोवा के लोगों को बहुत समय से प्रतीक्षित स्वाधीनता के अधिकार की आकांक्षा पूर्ण होने का संकेत मिला था किन्तु सन. 1961 से (गोवा स्वतंत्रता वर्ष) आज तक भी वह आकांक्षा पूरी नहीं हो पायी है क्योंकि आज भी गोवा दिल्ली के नियंत्रण अधीन संघ राज्य क्षेत्र है। यदि हमें राज्य का दर्जा मिल गया होता तो हम भारतीय संघ के अन्य राज्यों की भांति सीधे तौर पर अपना कार्य कर सकते थे और इससे हम अपने क्षेत्र के प्रशासन में काफी स्वतंत्रता होती।

(2) **जनमत संग्रह** : गोवा की स्वाधीनता के तुरंत बाद वहां एक ऐतिहासिक जनमत संग्रह हुआ जिसमें गोवा के लोगों ने भारतीय संघ में पृथक अस्तित्व के साथ बने रहने की अपनी इच्छा जाहिर की। हमने महाराष्ट्र के साथ विलय के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। इससे साफ जाहिर है कि गोवावासी अपनी वर्तमान सीमाओं के भीतर ही रहना चाहते हैं और इस क्षेत्र में किसी विस्तार की इच्छा नहीं रखते। दूसरे शब्दों में गोवावासी विशाल गोमंतक अथवा पूर्ण गोमंतक के सिद्धान्तों का विरोध करते है। इन्हें गोवा को उपनिवेश बनाने के महाराष्ट्र द्वारा किए जा रहे गुप्त प्रयास कहा जा सकता है। जनमत संग्रह के परिणामस्वरूप भविष्य में राज्य का दर्जा मिलने की प्रतीक्षा में गोवा संघ राज्य क्षेत्र बना रहा। हम आशा करते हैं कि आपका आयोग गोवा के लोगों की इन आकांक्षाओं पर ध्यान देगा कि गोवावासी अपनी वर्तमान सीमाओं के भीतर ही राज्य का दर्जा प्राप्त करना चाहते हैं।

(3) **राज्यों का पुनर्गठन** : सन, 1961 में जब गोवा को भारतीय संघ में शामिल किया गया तब तक भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की प्रक्रिया को बहुत समय हो चुका था। इसलिए जनमत के बावजूद भारतीय संघ में राज्य की हैसियत से सम्मिलित होने का अवसर हमें नहीं मिला। हमारी वर्तमान सीमाओं के भीतर हमें राज्य का दर्जा दिए जाने की हमारी लगातार मांग अब तक पूरी नहीं हुई है। बावजूद इसके कि इस संबंध में बहुत से प्रधानमंत्रियों ने हमें आश्वासन दिया। इससे उपेक्षा और कुण्ठा की भावना पैदा हुई है। राज्य का दर्जा दिए जाने में विलम्ब की स्थिति में हमारे तीव्र विकास के प्रयासों पर कुठाराघात किया है और इससे हमारी प्रगति (विकास) की दर में कमी आई है। आपके आयोग के गठन और सीमा क्षेत्रों के संघ राज्य क्षेत्रों को राज्य का दर्जा दिए जाने के समाचार से एक नई आशा जागृत हुई है। हमें आशा है कि आपकी अनुकूल सिफारिश गोवा के लिए अन्य राज्यों की भांति राज्य का दर्जा प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करेगी।

(4) **विलक्षणता** : गोवावासियों का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन अपने आप में अद्वितीय है और इसकी सभी प्रशंसा भी करते हैं। यहां के रीति-रिवाज, खान-पान, पहनावा, परस्पम्पराएं, आतिथ्य और जीने का ढंग अद्वितीय है और यह सब पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता आ रहा है। इस अनोखेपन ने हमारे स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू को बहुत अधिक प्रभावित किया जो इस अनोखेपन को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध थे। इस विलक्षणता को बनाए रखने का एकमात्र उपाय यह है कि गोवा को इसकी वर्तमान सीमाओं के भीतर राज्य का दर्जा प्रदान किया जाए। गोवा अपने प्राकृतिक सौन्दर्य और वैभव के कारण राज्यों में अग्रणी माना जाएगा और प्रत्येक भारतवासी को इस बात पर नाज होगा।

(5) **साम्प्रदायिक सद्भाव** : गोवा में जो साम्प्रदायिक सद्भाव है वह अन्यत्र नहीं मिलता और इसे राज्य का दर्जा दिए जाने के बाद यह अन्य राज्यों के लिए एक आदर्श लेगा। यहां की धार्मिक सहिष्णुता की भावना और एक दूसरे के धार्मिक त्योहारों की खुशियों में शरीक होने की भावना मील के पत्थर के समान है जो बहुत हद तक केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय अखण्डता के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होगा।

(6) **आर्थिक स्थिति** : इस समय गोवा की प्रति व्यक्ति आय देश में सबसे अधिक है। गांव से रहने वालों का जीवन स्तर काफी ऊंचा है और इसलिए गांवों और शहरों में कोई अन्तर नहीं रह गया है। यदि शेष भारत के गांवों की तुलना गोवा के गांवों में की जाए तो गोवा में वास्तव में गांव नाम की कोई चीज नहीं है। औसतन गोवावासी के पास रहने के लिए एक घर तथा चार वर्ग मील का क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त आर्थिक अध्ययनों से पता चलता है कि यदि गोवा को राज्य का दर्जा दिया जाए तो अन्य राज्यों की अपेक्षा केन्द्र सरकार पर वित्त के लिए निर्भर रहने की प्रतिशतता गोवा की कम होगी। राज्य का दर्जा मिलने से विकास की गति तीव्र हो जाएगी। हमें विश्वास है कि इससे आगे चलकर गोवा बेशीवाले राज्य का दर्जा प्राप्त कर लेगा। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे संघ राज्य क्षेत्रों को जिनका जीवन-स्तर इससे निम्न है और आर्थिक स्थिति इससे खराब है राज्य का दर्जा दिए जाने की संभावना है। यह आर्थिक जीवन क्षमता के मिथ को विस्फुरित करता है।

(7) **भाषा** : आम जनता द्वारा बोली जाने वाली कोंकणी भाषा इस क्षेत्र की भाषा होगी। आजकल प्राय: यहां के लोग कोंकणी में बातचीत करते हैं। 1971 की जनगणना से यह साबित हुआ कि 64.81% लोगों की मातृ-भाषा कोंकणी है। 1981 की जन गणना के आंकड़े अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं और ऐसी जानकारी है कि लगभग 75% लोगों ने कोंकणी को अपनी मातृ-भाषा दर्ज कराया है। विदेशी शासकों ने इस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण खो देने के भय से इस भाषा को दबाने का प्रयास किया किन्तु वे सफल न हो सके। यद्यपि विदेशी शासकों ने इस भाषा के विकास को अवरुद्ध कर दिया था तथापि स्वाधीनता के बाद इस भाषा में जागृति आई और इसका तीव्र गति से विकास हुआ। साहित्य अकादमी ने सन, 1975 में इस भाषा को स्वतंत्र साहित्यिक भाषा के रूप में मान्यता दी और बहुत से गोवा लेखकों ने कोंकणी भाषा में साहित्यिक कृतियों पर प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त किए।

(8) **द्वितीय श्रेणी का दर्जा** : 25 वर्षों की स्वाधीनता के बावजूद गोवा को राज्य का दर्जा नहीं मिला और इसकी भाषा कोई मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। यह गोवावासियों को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाता है। राज्य का दर्जा मिलने से यह असंतुलन दूर होगा। और गोवावासियों के सम्मान और प्रतिष्ठा को पूर्ववत, बनाएगा तथा उन्हें भारतीय संघ के अन्य सम्मानित भारतीय नागरिकों के समतुल्य बनाएगा। इसके अतिरिक्त यह गोवावासियों को पश्चिमी बनाने और आर्थिक विकास की गति तीव्र करने में सहायता करेगा जिससे समग्र राष्ट्रीय निर्माण का कार्य हो सकेगा।

(9) **दमण और दीव** : गोवा को राज्य का दर्जा प्रदान किए जाने के बाद दमन और दीव संघ राज्य क्षेत्रों को केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशों के अधीन रखा जा सकता है। गोवा से उनकी दूरी को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक व्यय बहुत अधिक बैठते हैं। इससे केन्द्रीय वित्त मंत्रालय को आपत्ति रहती है। भौगोलिक दूरी के अतिरिक्त उनकी संस्कृति और भाषा भी गोवावासियों से बहुत भिन्न है। इसलिए पृथक्करण किए जाने की आवश्यकता है।

(10) **मानव शक्ति** : गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने के मामले में मानव शक्ति को आवश्यकताओं पर इस तथ्य को सामने रख कर विचार किया जाना चाहिए कि हमारे पास कुशल मानव शक्ति तैयार करने के लिए लगभग सभी व्यावसायिक संस्थान हैं। इस शैक्षिक सत्र के आरंभ से गोवा विश्वविद्यालय की स्थापना को ध्यान में रखते हुए कोई भी नई योजना आरंभ की जा सकती है।

निष्कर्ष रूप में हम यह अनुभव करते हैं कि उपर्युक्त विभिन्न कारण गोवा को राज्य का दर्जा देने के मामले को और अधिक मजबूत करते हैं। वर्तमान सीमाओं के अन्तर्गत गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने से जनमत के अन्तर्गत संग्रह में प्रकट हुई स्वाधीनता की वर्षों पुरानी अभिलाषा पूरी होगी। इससे हमारे लिए अपने क्रियाकलापों का नियंत्रण अपने हाथ रखने का मार्ग खुल जाएगा। इससे गोवा की विशिष्टता बनी रहेगी और साम्प्रदायिक सद्भाव के रूप में राष्ट्र के समक्ष गोवा का एक उदाहरण होगा। गोवा का सामाजिक और आर्थिक ढांचा मजबूत बनेगा और हमारा विश्वास है कि गोवा आर्थिक रूप से भी इस कसौटी पर खरा उतरेगा। राज्य का दर्जा दिए जाने से गोवावासियों को सम्मान और प्रतिष्ठा भी पुन: प्राप्त होगी।

हम आशा करते हैं कि केन्द्र सरकार से की जाने वाली अपनी सिफारिशों में आप गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने के मामले को ठोस बनाते हुए अपने पद का सदुपयोग करेंगे। मिजो समझौते और आपके आयोग के गठन को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में गोवा के लिए राज्य का दर्जा प्राप्त करने का यह एक मात्र अवसर है। वर्तमान सीमाओं के अंतर्गत गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने की और राजभाषा के रूप में कोंकणी भाषा की आपके द्वारा सिफारिश किए जाने पर हम आपके आभारी होंगे।

अन्तत: गोवा की स्वाधीनता की रजत-जयन्ति पर गोवावासियों को वर्तमान सीमाओं के अन्तर्गत गोवा को राज्य का दर्जा दिए जाने से अच्छा तोहफा और क्या होगा।

शिरोमणि अकाली दल

ऐतिहासिक आनन्दपुर साहिब संकल्प में केन्द्र-राज्य सम्बन्ध पर परिकल्पित शिरोमणि अकाली दल का मामला

भारतीय राज्य-व्यवस्था में सुव्यवस्थित परिवर्तन चाहने वाली राष्ट्रीय शक्तियों में शिरोमणि अकाली दल काफी आगे रहा है। यह सुव्यवस्थित परिवर्तन एक तरफ तो विभिन्न क्षेत्रों तथा समुदायों को स्व-विकास के पूर्ण अवसर प्रदान करेगा दूसरी तरफ संगठित भारत सुदृढ़ होना सुनिश्चित करेगा। इस दृष्टिकोण से यदि राष्ट्रीय व्यवस्था को राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का पालन प्रभावशाली ढंग से करना है तो संघात्मक आधार पर केंद्र-राज्य सम्बन्धों का पुनर्गठन और परिणामस्वरूप शक्तियों का विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। यदि राष्ट्र को मौजूदा संकटों का समाधान करना है तो राजनीतिक शक्तियो के संगठन में आधारभूत परिवर्तन करना अनिवार्य है।

इस संबंध में ऐतिहासिक आनन्दपुर साहिब संकल्प से उसका वास्तविक सार और महत्व स्पष्ट हो जाता हो। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक मुद्दों पर एक व्यापक नीति कार्यक्रम का प्रारूप एक उप-समिति ने बनाया और उसका अनुमोदन अक्तूबर सन, 1973 में शिरोमणि अकाली दल की कार्यकारी समिति द्वारा श्री आनन्दपुर साहिब में किया गया। इस कार्यक्रम के राजनीतिक भाग का सम्बन्ध संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रादेशिक स्वायत्तता से है। पंजाब समस्या पर "राजीव-लोंगोवाल" समझौता जो इस माननीय आयोग के पास विचारार्थ भेजा गया था वही "आनन्दपुर साहिब संकल्प" के रूप में सामने आया। कार्यकारी समिति द्वारा सन, 1973 में अनुमोदित इस संकल्प की धार्मिक भाषा (गुरु-वाणी) की सही व्याख्या तभी की जा सकती है यदि उसे सिक्ख संगत के सदर्भ में समझा जाता है। सन, 1973 में आनन्दपुर साहिब में दल की कार्यकारी समिति द्वारा अनुमोदित नीति कार्यक्रम के राजनीतिक भाग को संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों की स्वायत्तता के संघ में राजनीतिक संकल्प का रूप दे दिया गया और इसे सन, 1978 में लुधियाना में हुए 18 वें अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन द्वारा अधिप्रमाणित किया गया। यह सन, 1978 का वही लुधियाना वाला भाषान्तर है जिसे आनन्दपुर साहिब संकल्प के सार के रूप में सन्त हरचंद सिंह लोंगोवाल द्वारा अधिप्रमाणित किया गया था। (प्रति संलग्न है) जैसा कि सन्दर्भ से ही स्पष्ट है कि इस संकल्प में राज्यों को अधिक सशक्त बनाने, विभिन्न समुदायों के सम्मिलित अस्तिव को बनाए रखने और "राष्ट्र की एकता व अखण्डता" को बनाए रखने के लिए कहा गया है।

यहां इस बात को दोहराना उचित होगा कि कांग्रेस पार्टी अपने प्रारम्भ से ही और राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान भी स्वतन्त्र भारत के लिए संघात्मक व्यवस्था की पैरवी करती आयी है। कांग्रेसी नेता पं० मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि ने विभिन्न अवसरों पर स्वराज की व्याख्या लोगों के लिए उस आधारित शक्ति के रूप में की जिसमें आर्थिक प्राधिकार प्रदेशों के पास होगा। इस बात की पुष्टि के लिए यहां कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। कांग्रेस पार्टी द्वारा भारत सरकार अधिनियम 1935 की आलोचना मुख्यत: इस आधार पर की गई कि यह अधिनियम राजनीतिक वितरण के अनुसार प्रादेशिक सरकारों की पर्याप्त शक्तियों का बंटवारा उस प्रकार नहीं करता जैसा कि इस अधिनियम में उल्लेख किया गया है। कांग्रेस ने यह बात सन, 1938 में हरिपुरा में हुए पार्टी के 51 वें अधिवेशन में उठाई जब स्वायत्त प्रदेशों की संघीय व्यवस्था के घटक के रूप में होने की बात को जोरदार ढंग से दोहराया गया। इसके अतिरिक्त कैबिनेट मिशन योजना में इस बात को भी रखा गया है कि रक्षा, विदेश सम्बन्ध और संचार ये तीन मामले केन्द्र सरकार के अधीन रहेंगे—कैबिनेट मिशन के विषय में कांग्रेस पार्टी ने यह सुझाव दिया है कि देश के संविधान की भांती रूप-रेखा संघात्मक ढांचे पर आधारित होनी चाहिए और रक्षा, संचार व विदेश सम्बन्ध आदि अनिवार्य केन्द्रीय विषय भी सीमित संख्या में इसमें शामिल किए जाने चाहिए। इस परिसंघ में ऐसे स्वायत्त प्रदेश भी होंगे जिनके पास अवशिष्ट विषय निहित होंगे। कांग्रेस ने यह सुझाव दिया कि वैकल्पिक विषय की एक ऐसी सूची भी होनी चाहिए जिसके सम्बन्ध में कोई भी प्रदेश या प्रदेशों का समूह संघीय कार्यपालिका और विधायी अधिकार क्षेत्रों को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होगा। यह प्रस्ताव रखा गया था कि संविधान निर्माण की प्रक्रिया पूरी होने के उपरान्त प्रदेश के पास यह विकल्प होगा कि वह संविधान को पूर्णत: स्वीकार कर ले अथवा न्यूनतम अनिवार्य विषयों को संघबद्ध कर ले अथवा अनिवार्य या ऐच्छिक दोनों ही विषयों को संघबद्ध कर लें। (भारतीय संविधान का निर्माण सम्पादक बी० शिवराव भारतीय लोक प्रशासन संस्थान 1968 पृष्ठ-65) कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार कांग्रेस पार्टी के अनुमोदन से ही संविधान सभा अस्तित्व में आयी। इस सदर्भ में मौलाना अबुल कलाम आजाद के विचारों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा जिन्होंने कांग्रेस पार्टी के प्रतिनिधि के रूप में कैबिनेट मिशन के सदस्यों के साथ विस्तृत विचार विमर्श किया।

"इस विषय पर मैंने लगातार गहरा विचार किया है। विश्व भर मे शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति थी। भारत जैसे विशाल देश में जहां लोगो मे भाषायी, रीतिरिवाजों और भौगोलिक स्थितियों के आधार पर विभिन्नता है वहां एकात्मक सरकार निश्चय ही एकदम अनुपयुक्त थी। संघीय सरकार मे शक्ति का विकेन्द्रीकरण अल्पसंख्यकों के भय को कम करने मे भी सहायता करेगा। अन्ततोगत्वा मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि भारतीय संविधान की प्रकृति संघात्मक होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इसका निर्माण इस प्रकार हो जोकि यथा सम्भव अधिक से अधिक विषयों में राज्यों की स्वायत्ता सुनिश्चित हो। हमें राष्ट्रीय एकता के साथ प्रादेशिक स्वायत्तता के दावों का सामंजस्य स्थापित करना है। केन्द्र और प्रादेशिक सरकारों के बीच शक्ति और कार्यों के बंटवारे का कोई संतोषजनक सूत्र खोज कर यह कार्य किया जा सकता था। कुछ शक्तियां और कार्य अनिवार्यत: केन्द्रीय होंगे। अन्य अनिवार्यत: प्रादेशिक और कुछ कार्य या तो प्रादेशिक होंगे अथवा केन्द्र की सम्मति से किये जाने वाले होंगे। पहला कार्य था एक ऐसा सूत्र खोज निकालना जिसके द्वारा ऐसे विषयों की न्यूनतम संख्या घोषित की जाय जिनका उत्तरदायित्व अनिवार्यत: केन्द्र सरकार का होगा। इनका संबध अनिवार्य रूप से संघ सरकार से होना चाहिए। साथ ही ऐसे विषयो की सूची होनी चाहिए जिन पर यदि प्रदेश चाहें तो केन्द्र द्वारा कार्य किया जाएगा। केन्द्र सरकार के लिए यह वैकल्पिक सूची होगी और जो भी प्रदेश चाहे वह इन में से कुछ अथवा सभी विषयों के सम्बध में अपनी शक्तियों का अन्तरण केन्द्र सरकार को कर सकता है। (इंडिया विन्स फ्रीडम) आजादी की कहानी (लेखक मौलाना अबुल कलाम आजाद ओरिएन्ट लोंगमेन्स एम०डी०पी०पी० 140) इसके बाद मौलाना आजाद ने कहा कि "इसका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूं कि कैबिनेट मिशन ने 16 मई को अपनी स्कीम प्रकाशित की। मूलत: यह हुबहु वही है जिसकी रूपरेखा मैंने 15 अप्रैल को बताई थीं। कैबिनेट मिशन योजना में यह प्रावधान रखा गया कि अनिवार्यत: तीन विषय केन्द्र सरकार से सम्बन्धित होंगे, ये विषय थे—रक्षा, विदेश मामले और संचार जिनका सुझाव मैंने अपनी योजना–149 वही में दिया।

जब कांग्रेस पार्टी ने सकल्प द्वारा अपील की तो शिरोमणि अकाली दल के प्रतिनिधि संविधान सभा में सम्मिलित हो गए। संघीय व्यवस्था में अल्पसंख्यकों के रूप में सिक्खों को उनके स्व-विकास के सभी अवसर और रास्ते प्रदान किए जाएंगे, कांग्रेस द्वारा दिए गए इस आश्वासन के आधार पर ऐसा हुआ। संविधान सभा मे अकालो दल को दिए गए आश्वासनों को पूरा करने के लिए अकाली दल ने अपना अभियान जारी रखा। अन्ततोगत्वा जब कांग्रेसी नेतृत्व में, सिक्खों और अन्य अल्पसंख्यकों को दिए गए वचन, संविधान का निर्माण व उसे अपनाते समय पूरे नही किए गए तो शिरोमणि अक.ली दल के प्रतिनिधियों ने अपना विरोध जाहिर करने के लिए भारत के संविधान पर अपने हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया। रवैये में यह परिवर्तन तब और अधिक स्पष्ट हो गया जब पं० जवाहरलाल नेहरू ने 13 दिसम्बर, 1946 को भारतीय संविधान सभा में उद्देश्यों का कथन करते हुए कहा कि "स्वतन्त्र भारत के विभिन्न प्रदेशों को अवशिष्ट शक्तियों. . . . के साथ-साथ स्वायत्त प्रदेश का दर्जा प्राप्त होना चाहिए"। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय विधान सभा निर्वाचन के लिए अक्तूबर, 1945 में पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा बनाया गया कांग्रेस पार्टी का घोषणा-पत्र घोषित किया गया, जो इस प्रकार है :—

"कांग्रेस भारत में सभी जातियों और धर्म सम्प्रदायों की एकता और उनके बीच सौहार्द तथा सहिष्णुता का समर्थन करती है। यह भारत के लोगों की उनकी इच्छा और राष्ट्र की प्रकृति के अनुरूप उनकी उन्नति और स्व-विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त करने के अधिकार का समर्थन करती है। यह राष्ट्र के भीतर हर समुदाय और प्रत्येक प्रदेश को बड़े पैमाने पर अपना जीवन और संस्कृति का विकास करने की स्वतंत्रता का भी समर्थन करती है। यह सामाजिक अत्याचार और अन्याय

से पीड़ित लोगो के लिए समानता के सभी अवरोधों को दूर करने और उन्हें उनके पिछड़ेपन व दयनीय हालत से उबारने के लिए सरकार और समाज से विशेष सहायता का भी समर्थन करती है।

कांग्रेस ने ऐसे स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक राज्य की परिकल्पना की है जिसके संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों और सिविल स्वतन्त्रता की गारंटी दी गई है। कांग्रेस के विचार में यह संविधान संघीय होना चाहिए जिसमें इसकी संघटक इकाइयों को अधिक स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। आनन्दपुर साहिब संकल्प जिसमें केन्द्र के अधीन रक्षा, विदेशी मामले संचार और रेलवे तथा मुद्रा के सम्बन्ध में संघीय कार्यों को रखे जाने के साथ शक्ति के विकेन्द्रीकरण द्वारा वास्तविक स्वायत्त राज्यों के लिए कहा गया है, नेहरू द्वारा सन् 1947 से पूर्व की जाने वाली मांग के अनुरूप ही है। आनन्दपुर साहिब संकल्प एक प्रकार से, इतने समय बाद भी, पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा स्वाधीनता संग्राम के अन्य राष्ट्रीय नेताओं द्वारा सिक्खों और अन्य अल्पसंख्यकों को दिए गए आश्वासनों, कि वे अपने समूह में स्वतन्त्र भारत की राजनीतिक प्रभुसत्ता में सहभागीदार होंगे और उन्हें स्वतन्त्र स्व-विकास के सभी राज्यों की भांति अपनी अस्तित्व को बनाए रखने पूर्ण अवसर प्राप्त होंगे, को पूरा करने की एक दलील है।

शिरोमणि अकाली दल अपने आनन्दपुर साहिब संकल्प का विस्तार करने के और उसे निश्चित रूप देते हुए निम्नलिखित उपायों का प्रस्ताव देता है :—

1. संविधान की प्रस्तावना में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि भारतीय गणराज्य के अनुरूप उसकी विशेषता बताने के लिए "संघीय" अभिव्यक्ति को उसमें समाविष्ट किया जा सके। इस बात पर जोर देना अनिवार्य है कि मूल रूप से भारतीय व्यवस्था की प्रकृति संघीय है और इससे एकात्मक व्यवस्था के प्रति झुकाव में क्रमशः कमी आएगी।

2. संघीय सिद्धान्तों के आधार पर संघ सूची, समवर्ती सूची और रा..य सूची के बीच विषयों का पुनर्वितरण होना चाहिए जैसा कि शिरोमणि अकाली दल ने आनन्दपुर साहिब संकल्प में उल्लेख किया है।

3. अवशिष्ट शक्तियां राज्यों को दी जानी चाहिए।

4. केन्द्र को किसी संघीय संघटक इकाई की जातीय, सांस्कृतिक और भाषायी अस्तित्व को कम करने अथवा नष्ट करने की शक्ति अथवा प्राधिकार नहीं दिया जाना चाहिए।

5. राज्य सभा के सदस्यों को समान प्रतिनिधित्व वाले स्वायत्त इकाइयों के रूप में राज्यों की समानता के सिद्धान्त के आधार पर चुना जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में—राज्य सभा को राज्यों का प्रतिनिधि बनना चाहिए। राज्य सभा के गठन में राष्ट्रीयता, धार्मिकता, भाषायी और सांस्कृतिक तथा जातीय अल्पसंख्यकता की भिन्नताओं पर भी पर्याप्त विचार किया जाना चाहिए।

6. केवल अपरिहार्य परिस्थितियों (विदेशी आक्रमण) के समय आपातस्थिति की घोषणा किया जाना प्रतिबंधित करते हुए संविधानिक रूप से इस बात का विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि आपातस्थिति के दौरान संघीय व्यवस्था पूर्ववत् बनी रहेगी।

7. राज्य के विधान मंडल के पास पुर्नलिखित राज्य सूची से दिए गए विषयों पर कानून बनाने की विशिष्ट शक्तियां और प्राधिकार होने चाहिए।

8. समवर्ती सूची में सम्मिलित विषयों के सम्बन्ध में कार्यपालिक शक्तियां, इस बात पर विचार करते हुए कि जिनका विधि निर्माण केन्द्र द्वारा किया जाना है अथवा राज्य द्वारा ये कार्यपालिका शक्तियां राज्य को दी जानी चाहिए।

9. राज्यपाल की नियुक्ति, उसकी शक्तियां, कार्य और कर्तव्यों को संघीय राज्य व्यवस्था की पद्धति के अनुरूप होना चाहिए, ताकि "राज्यपाल" केन्द्र के मात्र कार्यकारी एजेंट के रूप में न बना रहे बल्कि वह वास्तव मे सांविधानिक रूप से राज्य का प्रमुख बने।

10. ऐसे सांविधानिक उपबंध जो केन्द्र को राज्य सरकार और/या उसकी विधान-सभा को भंग करने के लिए सशक्त बनाते हैं वे संघीय व्यवस्था में नहीं होने चाहिए। राज्य में सांविधानिक व्यवस्था ठप्प होने की स्थिति में तत्काल चुनाव कराये जाने चाहिए और नई लोकतान्त्रिक सरकार को प्रतिष्ठित करने का प्रावधान होना चाहिए। यदि सांविधानिक प्रक्रिया की असफलता की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा केन्द्र सरकार का कार्यभार सम्भालने का कोई प्रावधान नहीं है तो इसका अर्थ है कि जब इस तरह की आकस्मिकता की स्थिति राज्य में उत्पन्न होती है तब राष्ट्रपति की शक्तियों का कोई औचित्य नहीं है।

11. कर सम्बन्धी शक्तियों को भी संघबद्ध किया जाना चाहिए, केन्द्रीय कर/शुल्कों को राज्यों के कराधिकार सीमा से निकाला जाना चाहिए। केन्द्रीय राजस्व में सांविधिक हिस्से के अलावा राज्य के पास उनके अपने अधिकार क्षेत्र में करों/शुल्को को लगाने, उनकी वसूली और उनको बनाए रखने की विशिष्ट शक्तियां होनी चाहिए। राज्यों में कराधान के संबंध में एकरूपता के उद्देश्य से केन्द्र समय-समय पर मार्गदर्शक सिद्धांत जारी कर सकता है। आयकर प्रादेशीकृत होना चाहिए। हालांकि एकरूपता की दृष्टि से यह केन्द्र द्वारा भी लगाया जा सकता है। कर वसूली राज्य एजेंसियों के द्वारा उन्हीं के माध्यम से की जानी चाहिए।

वित्त आयोग को अपने सांविधानिक कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए पुनः सक्रिय होना चाहिए ताकि योजना आयोग के असंगत कार्य को समाप्त किया जा सके जिसने न केवल केन्द्रीयकृत आयोजना लादी है बल्कि केन्द्र द्वारा प्रदान की गई विवेकाधीन निधियों पर राज्य को आश्रित रखा है।

12. केन्द्रीकृत आयोजना की वर्तमान पद्धति विकेन्द्रीकृत और लोकतांत्रिक बनाई जानी चाहिए ताकि राज्य अपनी-अपनी योजनाएं अपनी आवश्यकताओं, निधियों और प्राथमिकताओं के अनुसार तैयार कर सकें। आयोजना प्रक्रिया में जनता को शामिल करने के लिए इसे विकेन्द्रीकृत करना नितांत आवश्यक है।

13. राज्यों की कार्यपालक स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए यह अनिवार्य है कि केन्द्र को सौंपी गई व्यापक निर्देशी शक्तियां हटा दी जाएं ताकि राज्य केन्द्रीय कार्यपालिका के अधीन रहें, निर्देशी शक्तियों के स्थान पर राज्यों के बीच और संघ राज्यों के बीच समन्वय तथा परामर्शी तंत्र की व्यवस्था होनी चाहिए।

14. अखिल भारतीय संघ सेवाओं के क्षेत्र को राज्य कार्यपालिका तंत्र से सीमांकित किया जाना चाहिए। राज्य में कार्यपालक तंत्र सीधे राज्य सरकार के ही नियंत्रण तथा अनुशासन में होना चाहिए।

नेहरू जी की एकता संकल्पना में भारत के जिस अनेकत्व समाज की कल्पना की गई थी उसमें वस्तुतः संघीय संरचना की आवश्यकता है, जो अल्प संख्यकों के मानव राजनीतिक विकास तथा लोक तंत्र की जड़ें मजबूत करने के लिए जरूरी है और इसी से मजबूत, समृद्ध तथा संयुक्त भारत बनेगा।

अनुबंध

आनंदपुर साहिब संकल्प

शिरोमणि अकाली दल की कार्यकारी समिति द्वारा श्री आनंदपुर साहिब में 16-17 अक्तूबर, 1973 को आयोजित अपनी बैठक में स्वीकार किये गये राजनीतिक लक्ष्य संबंधी अध्याय से उद्धरण जिसमें संविधान को नया रूप देने के बारे में जिक्र है

पैरा 1 श्री इस नये पंजाब और अन्य राज्यों में केन्द्र का हस्तक्षेप, रक्षा, विदेशी संबंधों, मुद्रा तथा सामान्य संचार साधनों तक सीमित होगा, अन्य सभी विभाग पंजाब (तथा अन्य राज्यों) के क्षेत्राधिकार में रहेगा जिसे इन विषयों पर प्रशासन के लिए अपने कानून बनाने का पूरा अधिकार होगा। केन्द्र के उपरोक्त विभागों के लिए पंजाब तथा अन्य राज्य अपने अपने अनुपात से संसद में प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं।

इसे 28–29 अक्तूबर, 1978 को लुधियाना में आयोजित 18वें अखिल भारती अकाली सम्मेलन के खुले सत्र में संकल्प संख्या 1 के रूप में दोहराया गया :—

"शिरोमणि गुरु द्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष सरदार गुरचरण सिंह तोहड़ा द्वारा प्रस्तावित तथा पंजाब के मुख्य मंत्री सरदार प्रकाश सिंह बादल द्वारा समर्थित शिरोमणि अकाली दल यह महसूस करता है कि भारत विभिन्न भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों की एक संघीय तथा गणतांत्रिक भौगोलिक सत्ता है। धार्मिक और भाषायी अल्प संख्यकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए, लोकतांत्रिक परम्पराओं की मांगें पूरी करने के लिए और आर्थिक प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त करने के लिए यह जरूरी हो गया है कि केन्द्र राज्य संबंधों तथा अधिकारों को उपरोक्त सिद्धान्तों और उद्देश्यों के अनुरूप पुन: परिभाषित करके भारतीय संवैधानिक मूलभूत संरचना को सच्चा संघीय स्वरूप प्रदान किया जाए।

लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रतिपादित पूर्ण क्रांति की संकल्पना भी प्रगामी विकेन्द्रीकरण पर आधारित थी। कांग्रेस शासन काल के दौरान संविधान में बार-बार किए गए संशोधनों के माध्यम से राज्यों के अधिकारों के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया देशवासियों के समक्ष आपात स्थिति के रूप में परिणत हुई, जब नागरिकों के सभी मूल अधिकार हड़प कर लिए गए। शिरोमणि अकाली दल जिस विकेन्द्रीकरण कार्यक्रम की सदैव वकालत करता आया है, उस कार्यक्रम को उसी समय जनता पार्टी, भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मा०), ए०डी० एम० के आदि सहित अन्य राजनीतिक दलों ने भी खुले आम स्वीकार किया और अपनाया।

शिरोमणि अकाली दल सदैव इस सिद्धान्त पर पक्का रहा है और इसीलिए अत्यन्त सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद उसने सर्वसम्मति से इस आशय का एक संकल्प सर्वप्रथम बटाला में आयोजित अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन में और फिर श्री आनंदपुर साहिब में स्वीकार किया जिसमें संघवाद की संकल्पना के अनुरूप राज्य स्वायत्तता के सिद्धान्त का समर्थन किया गया है।

इसलिए शिरोमणि अकाली दल जनता सरकार पर इस बात के लिए जोर देता है कि विभिन्न भाषायी और सांस्कृतिक वर्गों, धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा लाखों देशवासियों की आवाज को समझा जाए और वास्तविक तथा सार्थक संघीय सिद्धान्तों के आधार पर संवैधानिक संरचना को नया रूप दिया जाए ताकि राष्ट्रीय एकता तथा देश की अखण्डता को किसी प्रकार के खतरे की संभावना न रहे और इसके साथ ही राज्य भी अपने अधिकारों का उचित प्रयोग करके अपने अपने क्षेत्रों में भारतीय जनता की प्रगति और समृद्धि के लिए उपयोगी भूमिका निभा सकें।

शिरोमणि अकाली दल के ज्ञापन का अनुपूरक

आनंदपुर साहिब में अकाली दल की कार्यकारी समिति द्वारा पारित पैरा 1(ख) में उल्लिखित अक्तूबर, 1973 के संकल्प का अर्थ उस संकल्प के भाग से अलग हट कर नहीं लगाया जाना चाहिए जो पैरा 2 में दिया गया है। इसे पैरा 2 के साथ और 1978 में लुधियाना में हुए अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन में मुख्य संकल्प संख्या 1 के रूप में दोहरा कर पढ़ा जाना चाहिए। इस प्रकार अर्थ लगाकर यह स्पष्ट हो जाएगा कि आनंदपुर साहिब संकल्प में उन मुख्य सिद्धांतों का उल्लेख है जिस पर वास्तविक संघीय सिद्धांतों के आधार पर भारतीय संविधान को नया रूप देने के संबंध में अकाली दल की मांग आधारित है। आनंदपुर साहिब में यह नहीं कहा गया है कि केन्द्र को अपने वित्तीय संसाधन प्राप्त नहीं होने चाहिए। 1973 के संकल्प को इसके पैरा 2 से अलग हटकर और लुधियाना में संकल्प संख्या 1 को दोहरा कर न पढ़ना और इस प्रस्ताव का यह अर्थ लगाना गलत होगा कि केन्द्र के पास किसी प्रकार के उसके अपने वित्तीय संसाधन नहीं होने चाहिए। संकल्प का वास्तव में आशय इस बात पर जोर देता है, कि राज्यों की बड़ी और बढ़ती हुई विकास संबंधी जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए राज्यों को अधिक संसाधन सौंपे जाने चाहिए और केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय और आर्थिक अधिकारों को बांटने के लिए पलड़ा राज्यों की ओर भारी होनी चाहिए। यदि रक्षा या केन्द्र को सौंपे गए अन्य विभागों पर व्यय में वृद्धि के कारण केन्द्र को अधिक निधियों की आवश्यकता पड़े तो उनमें राज्यों को योगदान देना चाहिए। प्रांतो द्वारा केन्द्र सरकार को वित्तीय योगदान देने की प्रणाली भारत में कोई नयी बात नहीं है। अक्तूबर 1948 में श्री टी० टी० कृष्णमाचारी की अध्यक्षता में संविधान सभा द्वारा नियुक्त वित्त जांच समिति ने इस प्रकार के योगदान की सिफारिश की थी। तदनुसार पेप्सू, राजस्थान और मध्य प्रदेश को कई वर्ष तक चलने वाले संक्रमण-काल में केन्द्र को योगदान देने पड़े।

जैसा कि प्रकाशित श्वेत पत्र से पता चलता है शुरू में आनंदपुर साहिब संकल्प को इस आयोग को सौंपने से इंकार करना इस संकल्प का गलत अर्थ लगाने के कारण था। इसका सही अर्थ और आशय दिवंगत संत लोंगोवाल द्वारा पंजाब समझौता ज्ञापन में स्पष्ट किया गया कि यह संविधान और केन्द्र-राज्य संबंधों को ऐसे तरीके से नया रूप देने की मांग थी जिससे इसके वास्तविक संघीय सिद्धान्त अपनाए जाएं और राज्यों को अधिक स्वायत्तता की गारंटी मिले। हमारे दल अर्थात् अकाली दल (लोंगोवाल) द्वारा प्रस्तुत किए गए ज्ञापन में उसी मांग पर जोर दिया गया है और अकाली दल सरकार द्वारा आयोग को प्रस्तुत किए गए ज्ञापन में आनंदपुर साहिब संकल्प की भावना के अनुसार वास्तविक संघीय सिद्धान्तों के आधार पर केन्द्र-राज्य संबंधों को नया रूप देने की मांग को विस्तारपूर्वक बताया गया है और इसी संकल्प का सारांश अक्तूबर, 1978 में लुधियाना में हुए अखिल भारतीय अकाली सम्मेलन द्वारा पारित संकल्प संख्या I में दोहराया गया था।

पंजाब सरकार

ज्ञापन

पंजाब

ज्ञापन

राज्य-विभिन्न लोगों की मातृभूमि

1.1 19वीं शताब्दी का दूसरा अर्ध भाग भारत में साम्राज्य विरोधी और सामंत विरोधी भावनाओं के लिए विख्यात रहा है। यही भावनाएं अंग्रेजी शासन के विरोध में देश के अनेक अलग-अलग लोगों में व्यापक और गहरी देश भक्ति पूर्ण एकता का आधार बनी। इसके साथ ही, बहुत बड़ी संख्या में विभिन्न लोगों में एकीकृत प्रादेशिक इकाइयों में, एक साथ मिलने की आकांक्षा भी बढ़ रही थी। इनमें प्रत्येक वर्ग की एक आम भाषा और अपेक्षाकृत बहुत बड़े समीपस्थ क्षेत्रों में इनकी बहुसंख्या थी। अंग्रेजी शासन से पहले, चाहे प्रांतीय भाषाएं कई सदियों से मौजूदा थी और उनमें से कुछ बहुत समय पहले साहित्यिक भाषाएं बन गई थीं, परन्तु संभवतया दक्षिण और बंगाल के भीतरी क्षेत्रों को छोड़कर भाषा पर आधारित अलग अस्तित्व की भावना और अलग संहत प्रादेशिक इकाई के रूप में प्रबल इच्छा अभी तक अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं हुई थी। विश्व के इस हिस्से में राष्ट्र-राज्यों की संकल्पना आमतौर से अभी तक नहीं आई थी। उदाहरण के लिए महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल में 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही लाहौर दरबार की राजभाषा गुरुमुखी लिपि में पंजाबी न हो कर, फारसी थी और उसका राज्य क्षेत्र केवल एक राष्ट्र-राज्य ही था। इस अवधि में अधिकांश विद्वत्तापूर्ण साहित्य फ़ारसी भाषा में लिखा गया था।

प्रादेशिक समेकन के लिए विभिन्न लोगों में बढ़ती हुई इच्छा

1.2 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान और उसके बाद अलग अस्तित्व की भावना और अलग संहत प्रादेशिक इकाई के लिए प्रबल इच्छा ने जड़े पकड़नी शुरू कर दी और विभिन्न भाषायी समूहों को प्रभावित करना शुरु कर दिया था और ये उस स्थिति में और भी ज्यादा हुआ जहां उनकी साझी संस्कृति थी। इस प्रवृत्ति को जन्म देने वाले कारण इस प्रकार थे :—

अंग्रेजी शासन काल में पाठशालाओं में शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थानीय भाषाओं को अपनाना ताकि एक साझे माध्यम से प्रशिक्षित लोग अपने आप को एक ही अस्तित्व समझना शुरू कर दें जो किसी भिन्न माध्यम का प्रयोग करने वाले लोगों से अलग हों; समाचार पत्रों, साहित्य और अन्य पठनीय सामग्री उपलब्ध होना और भारतीय भाषाओं में प्रांतीय भाषा के विद्वानों की वृद्धि, पश्चिमी यूरोप से आई संकल्पनाएं और विचारधारा जहां राष्ट्र राज्य संगठन का मुख्य रूप बन चुका था; यह वास्तविकता कि कई भारतीय भाषाएं, यूरोप के अनेक राष्ट्र-राज्यों की कुल आबादी की तुलना में कहीं अधिक संख्या में लोगों द्वारा बोली जाती थीं और यह तथ्य कि एक आम भाषा बोलने वाले लोग आमतौर पर संहत भौगोलिक क्षेत्र में रहते थे; छोटे विनिर्माताओं, व्यापारियों और विभिन्न भाषायी समूहों के व्यवसायिकों के उभरते हुए मध्यम वर्ग के लोगों में इस बात का बोध कि समूह विशेष के अलग प्रादेशिक यूनिट असमान प्रतियोगिता और अन्य भाषायी ग्रुपों से अपेक्षाकृत अधिक विकसित मध्यम वर्ग के लोगों के प्रभुत्व के विरुद्ध शक्तिशाली सुरक्षात्मक तंत्र के रूप में कार्य कर सकते हैं; आमतौर पर भाषायी आधार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अपने प्रांतीय निकायों का संगठन, ताकि जनता तक आसानी से पहुंचा जा सके; स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रभाव से विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में लोक प्रिय साहित्य का विकास और उसे राजनीतिक रूप देना तथा इससे सम्बद्ध जनचेतना।

1.3 एक अलग अस्तित्व प्राप्त करने की भावना विभिन्न भाषायी और सांस्कृतिक समूहों में असमान रूप से बढ़ रही थी। इस क्षेत्र में प्रगति उन लोगों में अधिक नहीं थी जहां धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय आदि मत-भेद भाषा के अस्तित्व के विरुद्ध थे या भाषा इतनी विकसित नहीं हुई थी कि उसका शिक्षा या संचार के माध्यम में व्यापक प्रयोग किया जा सके या कई कारणों से मातृ भाषा से भिन्न कोई अन्य भाषा लोगों के बहुत बड़े वर्ग ने स्वीकार कर ली हो या अधिकांश लोगों ने स्कूली शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर ली हो, या एक ही भाषा के लिए एक से अधिक लिपियों का प्रयोग किया जा रहा हो। अलग अस्तित्व कीभावना वर्तमान भारतीय जनता में बंगाली, मराठी, तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़, गुजराती और कश्मीरी बोलने वाले लोगों में तथा पाकिस्तान की वर्तमान जनता में सिंधी और पश्तु बोलने वाले लोगों में सबसे अधिक विकसित हुई हैं। इस से "भाषायी आधार पर भारतीय प्रांतों का पुनर्गठन करने का सिद्धांत वैध ठहराया जा सकता है"।*

1.4 अलग अस्तित्व की भावना बंगाली हिन्दुओं में कहां तक बढ़ चुकी थी—इस बात का पता सभी लोगों को 1905 में बंगाल के विभाजन के कारण हुए हिंसक विरोधों से चला। परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासकों को बंगाल को फिर से एक प्रांत बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा। उस समय हिंसक विरोध का अर्थ किसी ने राष्ट्र-विरोधी आन्दोलन के रूप में नहीं लगाया, जिसने स्वतंत्रता संग्राम से ध्यान भंग किया हो। वास्तव में बंगाल का विभाजन स्वतंत्रता संग्राम को तोड़ने और इसमें फूट डालने के लिए अंग्रेजों की एक चाल समझी गई थी और इस निर्णय को उलटना सिर्फ बंगाली लोगों की ही बड़ी जीत नहीं मानी गई थी बल्कि यह राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की भी विजय मानी गई।

बहुराष्ट्रीय समाज का उद्भव

1.5 विभिन्न भाषी सांस्कृतिक प्रांतीय समूहों में अलग अस्तित्व की भावना का विकास भारत में 20वीं शताब्दी में भी, विशेषकर स्वतंत्रता मिलने से ही जारी रहा है, जब कई नए अनुकूल कारक उत्पन्न हो गए। ये इस कारक प्रकार थे :—

राजाओं के राज्य समाप्त करना, जिससे कोई भारतीय भाषा विशेष बोलने वाले लोगों का एक ही राज्य में मिलने का मार्ग प्रशस्त हुआ; सर्वजनीन मताधिकार पर आधारित राजनीति की प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति के प्रभाव से लोकप्रिय साहित्य को और ज्यादा राजनीतिक रूप दिया जाना और साक्षरता तथा समाचार पत्रों और जर्नलों तथा भारतीय भाषाओं में अन्य लोकप्रिय साहित्य का तेजी से प्रसार। अब तक इन अनेक समूहों में से प्रत्येक ने विशिष्ट राष्ट्रिकता के अभिलक्षण प्राप्त कर लिए हैं। इस प्रक्रिया का विकास असमान रहा है। धर्म, जाति विकास स्तर आदि में विभिन्नताएं इतने जोरदार कारण नहीं रहे हैं, जिन्होंने विभिन्न भाषायी समूहों में अलग राष्ट्रिकता की बढ़ती हुई भावना का विरोध किया हो। कुछ भी हो, भारतीय समाज ने उत्तरोत्तर बहुराष्ट्रीय स्वरूप धारित किया है। यही कुछ देश के उस भाग में होता रहा, जो 1947 में टूट कर पाकिस्तान बन गया। यद्यपि पाकिस्तान के प्रत्येक संवैधानिक भाग के अधिकांश लोगों का आम धर्म इस्लाम है, जो अन्य कई धर्मों की अपेक्षा अपने अनुयाइयों को अधिक शक्तिशाली साझे बंधन में बांधता है, तथापि इन भागोंमें अलग राष्ट्रिकता की भावना विकसित होती और जोर पकड़ती आई है। पूर्वी पाकिस्तान के बंगला बोलने वाले लोगों ने 1971 में अलग होकर बंगला देश बना लिया। अलग राष्ट्रिकता की भावना आज के पाकिस्तान में भी प्रमुख भाषायी समूहों में अत्यन्त प्रबल है जैसाकि सिंधी पख्तून, बलूच तथा पंजाबी।

---

* के० के० मिश्रा, "लिंग्विस्टिक नेशनल्टीज इन इंडिया"—कूरियन में, के० मैथ्यू तथा पी० एल० वर्गीज, केन्द्र राज्य संबंध, मैकमिलन 1981 पृष्ठ 44।

99—376 M. of HA/ND/87

1.6 परन्तु दोनों देशों में एक महत्वपूर्ण अंतर है। पाकिस्तान में पंजाबी लोग प्रमुख राष्ट्रिकता के रूप में विकसित हुए हैं। भारत में ऐसे प्रबल तथा शोषक बहुसंख्यक लोग अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं। किन्तु लगता है कि इस प्रकार का विकास कुछ समय पाकर होने वाला है। भारत में शक्तिशाली सामाजिक शक्तियां अपने प्रभुत्व के अधीन एक अत्यन्त केंद्रीकृत एकल राज्य स्थापित करने के लिए कार्य कर रही हैं। इनमें सर्व प्रथम पर-राष्ट्रीय बड़े व्यापारी शामिल हैं जो भारत का, एक बड़े एकीकृत तथा पूर्णतया संघटित बाजार के रूप में शोषण करने के लिए कृतसंकल्प है। दूसरे स्थान पर, अखिल भारतीय सेवाओं का शक्तिशाली प्रशासनिक वर्ग है। वे भी देश के प्रशासन पर पूरी पकड़ रखने के लिए दृढ़संकल्प हैं और वे अपने पर राज्य सरकारों का नियंत्रण कम से कम रखना चाहते हैं। तीसरे स्थान पर हिन्दु-हिन्दी हिन्दुस्तान में विश्वास रखने वाले धर्मोत्साही अति राष्ट्रीकता वाले लोग हैं जो उभरती हुई अलग राष्ट्रिकताओं तथा चिरकाल से चले आ रहे मानवजातीय, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अल्प संख्यक वर्गों की इच्छाओं और आकांक्षाओं को घात पहुंचा कर पूरे देश पर अपनी धार्मिक, भाषायी तथा राजनीतिक प्रभुता थोपना चाहते हैं। ये प्रमुख सामाजिक शक्तियां पहले से एक दूसरे के समीप आ रही हैं और भविष्य में इसकी और अधिक संभावना है। हिन्दी भाषी लोग भारत में सबसे अधिक संख्या वाला भाषायी समूह है और यह समूह स्पष्ट रूप से एक ऐसी राष्ट्रिकता के रूप में ऊभर रहा है जिसे ये लोकतंत्र विरोधी शक्तियां अवश्य अपना आधार बनाएंगी। आज यह संभावना अत्यन्त प्रबल दिखाई देती है।

1.7 स्वतंत्रता के बाद, विभिन्न भाषायी समूहों की अलग पहचान की भावना और प्रादेशिक समेकन के लिए उनकी ललक पहले की अपेक्षा कहीं जोरों से बढ़ती रही। संविधान लागू होने से तीन वर्ष के भीतर ही, विभिन्न भाषायी सांस्कृतिक समूहों के दबाव के अंतर्गत राज्यों के भाषायी आधार पर पुनर्गठन की प्रक्रिया शुरू हुई। आंध्र राज्य अधिनियम, 1953 द्वारा भूतपूर्व मद्रास राज्य में से तेलगू क्षेत्रों को निकाल कर एक अलग आंध्र राज्य बना दिया गया। तीन वर्ष बाद राज्यपुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा चार दक्षिणी राज्यों को भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया। मध्य प्रदेश तथा राजस्थान राज्यों को भी हिन्दी भाषी राज्यों के रूप में गठित किया गया। भाषायी मानदण्ड का सिद्धान्त लागू करके बंबई राज्य को महाराष्ट्र तथा गुजरात के दो अलग राज्यों में विभक्त करने की जो प्रक्रिया 1956 में असफल रही उसे 1960 में सफल बनाना पड़ा। बंबई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 द्वारा भाषायी आधार पर महाराष्ट्र और गुजरात राज्य बने। इसी प्रकार, 1956 में पंजाब में भाषायी मानदण्ड लागू करने की असफलता को 1956 में आंशिक रूप से ठीक किया गया। पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 द्वारा पंजाब में से, हरियाणा हिन्दी भाषी राज्य के रूप में तथा चण्डीगढ़ को संघराज्य क्षेत्र के रूप में गठित किया गया और राज्य के बहुत बड़े पहाड़ी तथा उप-पर्वतीय क्षेत्र समीपवर्ती हिमाचल प्रदेश को दे दिए गए। पंजाब के पुनर्गठन पर अनिच्छापूर्वक, आधे मन से तथा सिद्धान्त रूप से दूर हट कर भाषायी मानदण्ड लागू करना ही देश के इस भाग में भारी मुसीबतों की जड़ रहा है। सामीप्य तथा भाषायी सजातीयता को लेकर तथा गांव को एक इकाई मान कर, पंजाब की सीमाओं के निर्धारण पर सिद्धान्त रूप से भाषायी मानदण्ड लागू न करने से, इस मुसीबत का अंत होने की बहुत कम संभावना है। पूर्वोत्तर में 1962 तथा 1971 में असम में से क्रमश: नागालैण्ड तथा मेघालय राज्य गठित किये गये। उनके मामले में स्थापना का आधार भाषायी न होकर मानव जातीय था।

1.8 भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होने के साथ, ये राज्य अब अपनी ऐतिहासिक बपौती के अधिकांश भाग को अपनी सीमाओं को लेकर केवल देश के प्रशासनिक उपमण्डल नहीं रह गए। अब ये विभिन्न भाषायी-सांस्कृतिक समूहों की सूझबूझ के साथ पुनर्गठित किये गये स्वदेश हैं। ये समूह, वास्तव में अलग राष्ट्रिकताओं के रूप में उभर रहे हैं, हालांकि इस प्रक्रिया के विकास की गति तथा स्तर भिन्न-भिन्न है। यह अत्यन्त स्वस्थ विकास है बशर्ते कि इसे ठीक से समझा जाए। राष्ट्रिकता एक धर्म निर्पेक्ष संकल्पना है। यह कोई एक ही भाषा बोलने वाले सभी लोगों को गले लगाती है, चाहे उनका धर्म जाति तथा विश्वास कुछ भी हों और वस्तुत: ऐसे सभी लोगों को साथ लेकर चलती है जो साझी और अलग पहचान की भावना पर विश्वास रखते हैं। इसमें केवल ऐसे लोगों को छोड़ा जाता है, जो समूह की साझी भाषा बोलते हुए भी उस भाषा से संबंधित अलग पहचान की भावना को नहीं मानते। जैसे ही उनमें भाषायी समूह विशेष के बाकी लोगों की साझी अलग पहचान की भावना आ जाएगी वे भी इस राष्ट्रिकता के अभिन्न अंग बन जाएंगे।

1.9 भारत में बहुराष्ट्रिक समाज के विकास से, जो न पलटने वाली ऐतिहासिक प्रक्रिया जान पड़ती है, किसी को परेशान नहीं होना चाहिए। यह अपने आप में देश की एकता और अखण्डता के लिए कोई खतरा उपस्थित नहीं करती। एक बहु-राष्ट्रिक समाज का अर्थ जरूरी तौर पर कई स्वतंत्र राज्यों से नहीं है। स्विटजरलैंड, यूगोस्लाविया, सोवियत संघ, चीन और कनाडा जैसे विश्व के अनेक राज्यों में अपनी सीमाओं के भीतर कई अलग राष्ट्रिकताएं हैं। दो मूल वैकल्पिक तरीके हैं, जिनसे बहु-राष्ट्रीय समाज को एक ही राज्य में रखा जा सकता है। पहला तो यह है कि वास्तव में एक संघीय स्वरूप की सरकार हो, जिसमें संघीय स्तर, संयुक्त राष्ट्रिकताओं के साझे हितों और इच्छाओं का ध्यान रखे जबकि स्वायत्त संघीय इकाइयां उनके अलग हितों और लालसाओं को पूरा करें। प्रमुख राष्ट्रिकता के लिए दूसरा विकल्प यह है कि वह अल्पसंख्यक राष्ट्रिकताओं के अलग स्वरूप, लालसाओं और इच्छाओं का गला घोंट कर उनका दमन करे और उन्हें अपने में सम्मिलित करले। ऐसी स्थिति में यदि अल्पसंख्यक राष्ट्रिकताएं हर समय प्रमुख राष्ट्रिकता की तुलना में बहुत ही कम संख्या में न हों तो यह समामेलन की प्रक्रिया दशकों और शताब्दियों तक भी लगातार जारी रह सकती है। जो राज्य दूसरा विकल्प अपनाते है वे आम तौर पर विकृत हो कर राष्ट्रिकताओं और लोगों के लिए कारागार बन जाते हैं और इस प्रकार उत्पन्न हुए दबाओं और तनावों में राज्य को तोड़ने की जबरदस्त प्रवृत्ति रहती है। भारत को अपने लोगों की मूल इच्छाओं और लालसाओं का ध्यान रखते हुए इस रास्ते से अवश्य दूर रहना चाहिए और इसकी बजाय वास्तविक संघीय ढांचा अपनाने का विकल्प चुनना चाहिए। तब यह सुनिश्चित करना संभव हो जाएगा कि देश की एकता और अखण्डता संयुक्त भारतीय जनता की इसके लिए इच्छा की चट्टान जैसी ठोस बुनियाद पर आधारित है। यह ज्ञापन इसी परिप्रेक्ष्य में तैयार किया गया है और इसके पीछे यही भावना है।

अतीत और भविष्य की दृष्टी से संविधान

2.1 उपनिवेशी प्रशासन का एकात्मक स्वरूप था, इसी वजह से अंग्रेजी सरकार समूचे भारतीय प्रशासन पर गवर्नर जनरल के माध्यम से जबरदस्त पकड़ रखने में सफल हुई जोकि प्रशासन का पूरा मालिक था। परन्तु इस शताब्दी में प्रारम्भिक वर्षों में,-संघीय राज्य के स्वरूप की संकल्पना पर चर्चा आरंभ हुई। यह संकल्पना यह सुनिश्चित करने के लिए एक युक्ति के रूप में प्रस्तुत नहीं की गई कि इस देश के विविध लोगों जिनमें अलग भाषायी सांस्कृतिक पहचान की भावना भी आ चुकी थी, की देशभक्तिपूर्ण तथा अन्य सामूहिक इच्छाओं को पूरा करने के साथ-साथ उनकी अपनी विशिष्ट इच्छाएं भी पर्याप्त रूप से पूर्ण होंगी।

(1) संघीय संकल्पना का उद्भव

2.2 जब स्वतंत्रता आन्दोलन में स्वराज्य की मांग उठी, तो अंग्रेजों ने इस तर्क के साथ इसका उत्तर देना चाहा कि भारत एक राष्ट्र नहीं था बल्कि एक भौगोलिक अभिव्यक्ति था और जातियों, समुदायों जन-जातियों और भाषायी समूहों का एक मिला जुला देश था। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी शासन हटा लेने से इन समूहों के बीच कभी न खत्म होने वाला संघर्ष छिड़ जाएगा जिससे भारत टूट जाएगा। स्वतंत्रता आन्दोलन के नेताओं ने इस शरारतपूर्ण तर्क का मौर्य, गुप्त और मुगल साम्राज्यों का प्रमाण दे कर, खण्डन करते हुए बताया कि स्वतंत्र भारत एकताबद्ध और मजबूत रह सकता है। इस प्रकार उनके मन में स्वतंत्र भारत की संकल्पना संयुक्त और अत्यंत केन्द्रीकृत भारत के रूप में थी। मुसलमानों को, अल्प संख्यक समुदाय होने के कारण इस संकल्पना के प्रति अभी आशंकाएं थीं। वे सोचते थे कि इसका अर्थ अनिवार्यत: हिन्दु प्रधान भारत से होगा। चूंकि कुछ प्रान्तों और राजाओं के प्रदेशों में वे बहुसंख्या में थे, इसलिए उन्होंने सोचा कि वे प्रांतों के लिए काफी हद तक स्वायत्तता ले कर और संघीय राज्य की मांग करके इस खतरे को कम से कम कर सकते थे। उन्हें आशा थी कि इस प्रकार के ढांचे में, वे देश के बहुत बड़े भागों में प्रभुता संपन्न होंगे और केन्द्र पर भी उनका काफी प्रभाव रहेगा।

2.3 अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में मुसलमानों को शामिल करने की तीव्र इच्छा के कारण कांग्रेसी नेताओं ने संघीय संकल्पना को मान लिया । कांग्रेस और लीग के बीच लखनऊ पैक्ट (1916) और दोनों के बीच अगले तीन दशकों तक बाद में सभी वार्तालाप इसी संकल्पना पर आधारित थे । परन्तु इस संकल्पना की व्याख्या के संबंध में दोनों पक्षों के बीच दृष्टिकोण में सदैव स्पष्ट अंतर रहा । कांग्रेस अवशिष्ट अधिकारों सहित केन्द्र के लिए अधिकतम में थी जबकि लीग प्रांतों के लिए अवशिष्ट अधिकारों सहित अधिकतम स्वायत्तता अधिकारों के पक्ष के लिए लड़ती रही ।

2.4 जब 19वीं शताब्दी के तीसरे दशक के उत्तरार्ध में यह विचार व्यक्त किया गया कि किसी अवस्था पर भारतीय रियासतों को भी बाकी देश के साथ मिलाना होगा तो संघीय संकल्पना ही स्पष्ट व्यवस्था दिखाई दी । साइमन कमीशन (1927—29) तथा बटलर कमेटी (1927—30) दोनों ने अंततः समूचे भारत के लिए संघीय राज्य की कल्पना की । लंदन में हुए गोल मेज सम्मेलन (1930—32) में ब्रिटिश इंडिया और भारतीय रियासतों दोनों के प्रतिनिधियों ने ही संघीय संकल्पना का एक मत से समर्थन किया । संघीय ढांचे को औपचारिक रूप से भारत सरकार अधिनियम, 1935 में स्वीकार कर लिया गया ।

2.5 ब्रिटिश इंडिया के संबंध में 1935 का अधिनियम तो 1937 से लागू हो गया किन्तु इसके द्वारा परिकल्पित महासंघ को कभी कार्यरूप न दिया जा सका । यह केवल तभी प्रभावी हुआ जब भारतीय राज्यों की कम से कम आधी जन संख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले भारतीय शासकों ने इसमें मिलना स्वीकार कर लिया । उन्हें ऐसा करने के लिए राजी करने की बातचीत में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ जाने (अगस्त, 1939) के कारण रुकावट आई और इसके शीघ्र बाद महासंघ के लिए सभी तैयारियां निलंबित कर दी गई । चाहे वहां संघ स्थापित करने के संबंध में उपबंध निरर्थक सिद्ध हुए तो भी अधिनियम ने स्वतंत्र भारत के संविधानिक स्वरूप को अवश्य प्रभावित किया । जिस संविधान सभा ने भारतीय संविधान तैयार किया, वह काफी हद तक 1935 के अधिनियम की संकल्पनाओं और उपबंधों पर निर्भर रही ।

2.6 (ब्रिटिश) कैबिनेट मिशन प्लान में, जिसके आधार पर 1946 में संविधान सभा स्थापित की गई, निम्नलिखित के लिए व्यवस्था की गई थी :—

(i) ब्रिटिश भारतीय प्रांत और भारतीय रियासतों से मिलकर भारतीय संघ बनेगा ।

(ii) संघ का क्षेत्राधिकार विदेशी मामलों, रक्षा और संचार तक सीमित रहेगा और इसे इन कार्यों का निर्वहन करने के लिए धन जुटाने का अधिकार होगा ।

(iii) संघीय विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषय प्रांतों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आएंगे । उन्हें अवशिष्ट अधिकार भी सौंपे जाएंगे ।

(iv) संघ को दिए गए विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषय और अधिकार भारतीय रियासतों के पास रहेंगे ।

2.7 उपयुक्त योजना के अनुसार दिसम्बर, 1946 में श्री नेहरू ने संविधान सभा में एक संकल्प पेश किया जिसमें ऐसे भारतीय लोकतंत्र की परिकल्पना की गई थी, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों को अवशिष्ट अधिकारों के साथ-साथ स्वायत्त इकाइयों का दर्जा प्राप्त होगा और वे ऐसे अधिकारों और कार्यों को छोड़कर, जो संघ को सौंपे या दिए गए हों या जो संघ में अंतर्निहित या निहितार्थ हों या उनके परिणामस्वरूप आए हों, अन्य सभी सरकार और प्रशासन के कार्य करेगा और अधिकारों का प्रयोग करेगा ।

2.8 देश का विभाजन करने के निर्णय के संबंध में मुस्लिम लीग की मांग पर और अंग्रेजों की सक्रिय सांठ गांठ तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सहमति के कारण अंग्रेजी सरकार की 3 जून, 1947 को घोषणा के बाद स्थिति बुनियादी तौर पर बदल गई । संविधान सभा में शक्तिशाली संघ और एक मजबूत केन्द्र के पक्ष में शीघ्र एक जबर्दस्त झुकाव आया । विभाजन और इसके साथ खूनी और दुखद घटनाओं के अलावा इस परिवर्तन के लिए कई और कारणों ने भी योग दिया जैसे कि :—(i) पूरे इतिहास में भारतीय लोगों में विखण्डित होने की तथाकथित अंतर्निहित प्रवृत्ति, (ii) विभाजन के कारण उत्पन्न हुई, स्वतंत्रता मिलने पर विरासत में मिली भयभीत करने वाली समस्याएं, (iii) कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा संगठित आदिवासियों के हमले जिसके परिणामस्वरूप भारत-पाक शत्रुता और इस संबंध में भारत पर पश्चिमी दबाव, (iv) भारतीय रियासतों के भारतीय राज्य तंत्र में समामेलन से संबद्ध शंकाएं और आशंकाएं तथा (v) ऊपरी वर्ग के, उग्र राष्ट्रवादी पूर्व-ग्रह, मानवजातीय, भाषायी, धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों की इच्छाओं और लालसाओं की उपेक्षा तथा संविधान सभा में प्रमुख बहुसंख्यक सदस्यों का भाषायी-सांस्कृतिक समूहों के बीच उभरती हुई विशिष्ट पहचान की भावना के महत्व को न समझ पाना ।

2.9 यह प्रवृत्ति इस तथ्य के कारण और भी मजबूत हुई कि उस समय अधिकांश मामलों में भारतीय संघ के संघटक भागों में अलग और एकांतिक पहचान या विशिष्टता नहीं थी ।

2.10 इस पृष्ठ भूमि में संविधान सभा द्वारा तैयार किये गये तथा 26 जनवरी, 1950 से लागू संविधान में राज्य के बुनियादी संघीय ढांचे के साथ-साथ कई महत्वपूर्ण एकात्मक विशेषताएं थी । वास्तव में संघ या संघीय शब्दों का संविधान में कहीं भी जिक्र नहीं है । इसके बजाय गणतंत्र को, राज्यों का संघ कहा गया है । डा० अम्बेडकर ने (1948 में) स्पष्ट किया था कि संघ शब्द का जानबूझ कर यह स्पष्ट करने के लिए प्रयोग किया गया है कि संघटक भागों को इससे अलग होने का कोई अधिकार नहीं होगा ।

2.11 संविधान लागू होने के बाद 36 वर्ष के दौरान भारतीय राज्यतंत्र में दो विरोधी विकास हुए है । जैसाकि पिछले अध्याय में बताया गया है, एक ओर तो संबंधित भाषायी-सांस्कृतिक समूहों के दबाव के कारण कई राज्यों का भाषायी आधार पर गठन किया गया । इस पुनर्गठन के परिणामस्वरूप राज्यों ने एक अलग पहचान और विशिष्टता प्राप्त कर ली है और समय बीतने के साथ साथ राज्य इसके प्रति उत्तरोतर अधिक जागरूक हो गये हैं । दूसरी ओर केन्द्र, राज्यों के अधिकारों और कार्यों का अतिक्रमण करता आया है और उसने राज्यों को अपने ऐसे आज्ञाकारी राज्य बनाने का लगातार प्रयास किया है जो पूर्णतया उसी पर निर्भर हों, विभिन्न भाषायी सांस्कृतिक समूहों और मुख्यत: उन्हीं की जनसंख्या वाले राज्यों में अपनी अलग पहचान तथा विशिष्टता के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता के संदर्भ में, संविधान की मूल एकात्मक विशेषताएं तथा पिछले 30 वर्षों में इनमें और वृद्धि होने के कारण ही केन्द्र राज्य संबंधों के बारे में वर्तमान विवाद और कटुताएं उत्पन्न हुई है ।

(2) संविधान का स्वरूप

2.12 संविधान के स्वरूप के बारे में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है क्या यह संघीय संविधान है भी ? इस प्रश्न का उत्तर (क) संघीय संविधान की अनिवार्य विशेषताओं का पता लगा कर और (ख) इस बात की जांच करके दिया जा सकता है कि भारतीय संविधान में ये विशेषताएं कहां तक मौजूद है ।

2.13 संघीय संविधान की अनिवार्य विशेषताएं इस प्रकार है :—(i) संविधान सर्वोच्च होता है, (ii) राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तरों की सरकारों के बीच शासक अधिकारों की परिभाषा, संविधान में ही की जाती है और विशेष कार्य-विधि से संविधान में संशोधन किये बगैर इसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता । इसका निहितार्थ यह है कि केन्द्रीय और प्रांतीय स्तर की सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र तथा समन्वित, न कि—प्रत्यायोजित, प्राधिकार का प्रयोग करते हैं, (iii) संविधान की व्याख्या न्यायपालिका द्वारा की जाती है ।

2.14 भारतीय संविधान (i) तथा (iii) में उल्लिखित शर्तें पूरी करता है, परन्तु शर्त (ii) अधिकांश अन्य से पूरी करता है न कि पूर्ण रूप से । उस समय मौजूदा परिस्थितियों में संविधान-निर्माताओं ने "मजबूत केन्द्र वाले संघ" को अपनाया । इसी उद्देश्य से देश के लिए सरकार का संघीय ढांचा तैयार करते समय उन्होंने संघ को राज्यों पर कुछ अधिकार और नियंत्रण सौंपे जिससे एकात्मक स्वरूप के तत्व शामिल हुए । इसका प्रभाव यह हुआ कि सामान्य

काल में ही संविधान का संघीय स्वरूप घटना शुरू हो गया । राष्ट्रपति द्वारा आपात स्थिति उद्घोषित कर दिए जाने पर (पढ़े : यूनियन एग्ज़ीक्यूटिव) संविधान अधिकांश रूप से एकात्मक प्रबंध में बदल जाता है ।

2.15 संविधान की एकात्मक विशेषताओं में शामिल है :—

(i) राज्यों के क्षेत्र और सीमाएं बदलने का केन्द्र का अधिकार; (ii) राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर प्रतिबंध; (iii) राज्यपाल के विवेकाधिकार; (iv) राज्य की प्रशासनिक स्वायत्तता पर प्रतिबंध तथा (v) संविधान के वित्तीय उपबंधों में अंतर्निहित केन्द्र राज्य वित्तीय असंतुलन ।

संसद का राज्यों के क्षेत्र और सीमाएं बदलने का अधिकार

2.16 संविधान के अनुच्छेद 3 के अधीन संसद साधारण विधायी क्रिया विधि द्वारा राज्यों की सहमति के बगैर भी उनके क्षेत्र और सीमाएं बदल सकती है । संबंधित राज्य विधान मण्डलों से पूछना तो जरूरी है, परन्तु उनकी सहमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं । किसी राज्य का क्षेत्र कम करने के अधिकार में किसी राज्य के क्षेत्र में से, कोई संघ-राज्य क्षेत्र काटना भी शामिल है । चण्डीगढ़, वस्तुत: भूतपूर्व पंजाब के क्षेत्र से काट कर संघ राज्य क्षेत्र बनाया गया था । इसका निहितार्थ यह है कि संघ, यदि चाहे तो, किसी राज्य को भारत के नक्शे में मात्र एक बिन्दु का आकार दे सकता है और उसके शेष क्षेत्रों को एक या एक से अधिक संघ राज्य क्षेत्र बना सकता है । अनुमानत: वही व्यवहार अन्य सभी राज्यों के साथ किया जा सकता है और देश को शांति के समय भी एकात्मक स्वरूप वाली सरकार के अधीन किया जा सकता है सिवाय नक्शे में बिंदुओं के आकार के उन क्षेत्रों के जिन तक राज्य छोटे कर दिए गए हों । परन्तु, इस मामले में भी, सरकारी स्तर के रूप में राज्य जीवित रहेंगे क्योंकि संविधान में ऐसा संशोधन किये बगैर एक वर्ग के रूप में इनका बिल्कुल सफाया नहीं किया जा सकता जो संविधान को ही बदल दे ।

2.17 अनुच्छेद 3 के अधीन संसद को सौंपी गई शक्तियां आमतौर पर संघीय सिद्धान्त के अनुरूप नहीं मानी जाएंगी । परन्तु संविधान तैयार और लागू किये जाने के समय ये पूर्णतया न्यायोचित थीं । तब भारत, भूतपूर्व ब्रिटिश भारतीय प्रांतों और भारतीय रियासतों का एक घालमेल था । इन क्षेत्रों का नाम, क्षेत्र, सीमा और इनके लोगों का भाषायी गठन, अधिकांश मामलों में किसी ठोस मूल सिद्धान्त की अपेक्षा इतिहास की देन थे । नवोदित गणतंत्र की एकता और अखण्डता के समेकन तथा देश की त्वरित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए अनिवार्य राजनीतिक तथा प्रशासनिक पूर्वापेक्षाएं स्थापित करने के कारण, एक ठोस सिद्धान्त के आधार पर, राज्यों के स्तर पर, भारत के आंतरिक नक्शे को नया रूप देना जरूरी हो गया । प्रस्तावित विधेयक से जिस राज्य का क्षेत्र, सीमा या नाम प्रभावित होने वाला हो, उस राज्य के विचार प्राप्त करने के बाद किन्तु आवश्यक नहीं कि उस राज्य की सहमति से, ऐसा करने के लिए संसद को साधारण कानून द्वारा अधिकार दिए बगैर, व्यवस्थित ढंग से और समुचित अवधि के भीतर ऐसा करना संभव नहीं हो सकता था । अनुच्छेद 3 ने यही अधिकार संसद को सौंप दिया । 1950 के बाद पुनर्गठन, नया नाम देने तथा राज्यों का दर्जा पुन: निर्धारित करने संबंधी विषयों पर संसद को 19 विधेयक अधिनियमित करने पड़े । इस तथ्य से पता चलता है कि 19वीं शताब्दी के पांचवें दशक के अंतिम भाग में यह अधिकार संसद को सौंपने के लिए पर्याप्त औचित्य था । 19 अधिनियमों की सूची नीचे दी गई है :—

1. असम (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1951
2. आंध्र राज्य अधिनियम, 1953
3. चन्द्रनगर (विलयन) अधिनियम, 1954
4. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956
5. बिहार और पश्चिम बंगाल (राज्यक्षेत्र-अंतरण) अधिनियम, 1956
6. राजस्थान और मध्य प्रदेश (राज्यक्षेत्र-अंतरण) अधिनियम, 1959
7. आंध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1959
8. बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960
9. अर्जित राज्यक्षेत्र (विलयन) अधिनियम, 1960
10. नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962
11. पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966
12. आंध्र प्रदेश और मैसूर (राज्यक्षेत्र अंतरण) अधिनियम, 1968
13. मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1968
14. बिहार और उत्तर प्रदेश (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1968
15. हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970
16. पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971
17. मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973
18. लक्षद्वीप, मिनिकोय और अमीनदीवी द्वीप (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1973
19. हरियाणा और उत्तर प्रदेश (सीमा-परिवर्तन) अधिनियम, 1979

2.18 राज्यों के पुनर्गठन का भाषायी या मानवजातीय आधार सिद्धान्त रूप से लागू करके राज्यों के क्षेत्र तथा सीमाओं को अंतिम रूप देने के बाद, संसद को राज्यों के नाम, क्षेत्र और सीमाओं के संबंध में विधान बनाने का औचित्य, यदि आवश्यक हो तो प्रभावित राज्य की सहमति के बगैर भी, समाप्त हो जाएगा । भाषायी सिद्धान्त लागू करने में, "गांव को एक इकाई मान कर सीमाप्य तथा भाषायी सहजातीयता का मानदण्ड, जिसे राजीव लोंगोवाल (पंजाब) समझौते में स्वीकार किया गया था, पूरी तरह से लागू किया जाए । यदि किसी गांव की जनसंख्या की भाषा के बारे में कोई विवाद हो, तो उसका निर्णय दोनों संबंधित राज्यों के अनुमोदन से नियुक्त किए गए भाषायी विशेषज्ञों के परामर्श पर निष्पक्ष दृष्टि से किया जाए न कि जनगणना द्वारा जिसमें स्थानीय लोगों की भावनाओं को जगा कर डर उत्पन्न कर दिया जाता है या बड़े पैमाने पर बाहरी हस्तक्षेप होता है । यह सिद्धान्त इस मामले में सही मार्गदर्शक सिद्ध नहीं होगा । जब दोनों राज्यों की सीमाओं को इस आधार पर अंतिम रूप दे दिया जाए और दोनों राज्य, अपने-अपने विधान मण्डलों के दो-तिहाई बहुमत से अनुमोदित, इस आशय की संयुक्त घोषणा कर दें तो दोनों राज्यों के अनुरोध और सहमति के सिवाय, संसद को उसके बाद इसमें परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होना चाहिए । यह व्यवस्था करने के लिए अनुच्छेद 3 में संशोधन किया जाए । अगले कुछ वर्षों में सभी अंतर्राज्य सीमाओं को अंतिम रूप देने और संघ राज्य क्षेत्रों (ऐसे क्षेत्रों को छोड़कर जिन्हें स्थायी तौर पर या किसी आगामी तारीख को राज्य का दर्जा दिये जाने तक, संघ राज्य क्षेत्रों के रूप में बनाये रखना न्यायोचित हो) को उपयुक्त राज्यों के साथ मिला देना चाहिए । तब अनुच्छेद 3 का प्रस्तावित संशोधन सभी राज्यों तथा सभी अंतर्राज्य सीमाओं पर लागू होगा । दूसरे शब्दों में, राज्यों के स्तर पर भारत का आंतरिक नक्शा अंतिम रूप प्राप्त कर लेगा और भविष्य में अंतर्राज्य सीमाओं के समायोजन मामूली और कभी-कभार होंगे और वे भी संबंधित राज्यों के अनुरोध पर और उनकी सहमति से ।

संविधान की अन्य एकात्मक विशेषताएं

2.19 राज्यों के संवैधानिक उत्तरदायित्व के क्षेत्र के संबंध में उनकी विधायी स्वायत्तता पर जो प्रतिबंध है, उन पर अध्याय 4 में चर्चा की गई है । राज्यपाल के विवेकाधिकारों तथा राज्यों की प्रशासनिक स्वायत्तता पर अन्य प्रतिबंधों के बारे में अध्याय 5 और 6 में चर्चा की गई है । केन्द्र पर राज्यों की वित्तीय निर्भरता की सीमा, स्वरूप और आकस्मिक कारकों तथा इनका उनकी स्वायत्तता पर प्रभाव का उल्लेख अध्याय 7 से अध्याय 9 तक में किया गया है । राज्यों में योजना प्रक्रिया पर केन्द्र का कड़ा नियंत्रण होने के कारण भी, उनकी केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता बढ़ती है, जिसका जिक्र अध्याय 9 से 11 में किया गया है ।

भारतीय संविधान के स्वरूप पर कुछ प्रामाणिक टिप्पणियां

2.20 संविधान के स्वरूप के संबंध में डा० बी० आर० अम्बेडकर तथा उच्चतम न्यायालय के प्रेक्षण नीचे पुन: प्रस्तुत किये गये है :—

डा० बी० अ.र० अम्बेडकर*

"संघवाद का मूल सिद्धान्त यह है कि विधायी तथा कार्यपालक प्राधिकारों का केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजन केन्द्र द्वारा बनाये जाने वाले किसी कानून

*संविधान सभा वाद-विवाद, खण्ड VII पृष्ठ 33.

द्वारा नहीं बल्कि स्वयं संविधान द्वारा किया जाता है । संविधान यही काम करता है ..... जैसा कि मैंने पहले कहा है संघवाद की मुख्य निशानी यही है कि केन्द्र और इकाइयों के बीच विधायी और कार्यपालक अधिकारों का विभाजन, संविधान द्वारा किया जाता है । अतः यह कहना गलत है कि राज्यों को केन्द्र के अधीन रखा गया है। केन्द्र अपनी इच्छा से उस विभाजन की सीमा में परिवर्तन नहीं कर सकता । न्यायपालिका भी ऐसा नहीं कर सकती ।"

उच्चतम न्यायालय

(i) अतियाबाडी टी कंपनी लि० बनाम असम राज्य@ "जिसकी हम व्याख्या कर रहे हैं, वह एक संघीय संविधान है और इसलिए अनुच्छेद 301 के प्रभाव पर निर्णय भी अनिवार्यतः, तदनुसार किया जाना चाहिए ।"

(ii) आटोमोबाईल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) बनाम राजस्थान राज्य @@

"उस समय मोजूद परिस्थितियों के संदर्भ में, विकसित संघीय ढांचे या अर्धसंघीय ढांचे में आवश्यक रूप से अधिकारों का वितरण शामिल था और हमारे संविधान का मूल भाग उसी विभाजन से संबंधित है जिसके लिए सातवीं अनुसूची में तीन विधायी सूचियां दी गई है ।"

(iii) पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केन्द्र सरकार *

"भारतीय संविधान का स्वरूप वास्तविक रूप से संघीय नहीं है ।"

न्यायाधीश सुब्बा राव ने इससे असहमत होते हुए कहा :—

"भारतीय संविधान संघीय संकल्पना को स्वीकार करता है और समकक्ष संवैधानिक सत्ताओं अर्थात् संघ और राज्यों के बीच शासी अधिकारों का विभाजन करता है ।"

(iv) केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य **

अधिकांश न्यायाधीशों की यह राय थी कि अनुच्छेद 308 संसद को संविधान के बुनियादी ढांचे में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं देता । संविधान के बुनियादी ढांचे की बनावट पर चर्चा करते हुए पांच संघटकों का जिक्र किया, जिनमे से एक संविधान का संघीय स्वरूप था ।"

(v) राजस्थान राज्य बनाम भारत सरकार ***

(क) मुख्य न्यायाधीश बेग :

"इसलिए एक प्रकार से भारतीय संघ का स्वरूप संघीय है । परन्तु इसमें संघवाद की सीमा काफी हद तक कम की गई है ..... ।"

(ख) न्यायाधीश चन्द्रचूड़ :

"मुझे यह बात समझ में नहीं आती कि राज्यों को राज्यतंत्र के रूप में इस प्रकार के विवाद उठाने का अधिकार नहीं । संघ, चाहे संस्थापित हो या अर्धसंस्थापित परन्तु उसमें राज्य एक ओर तथा संघ सरकार दूसरी ओर अपने-अपने अधिकारों की परिभाषा में गहरी रूचि रखते है ।"

(ग) न्यायाधीश भगवती अपनी तथा न्यायाधीश ए० सी० गुप्ता की ओर से

"अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा अधिकारों का असंवैधानिक प्रयोग इस बात पर बल देने के राज्य के साविधानिक अधिकार का अतिक्रमण कर सकता है कि संविधान द्वारा स्थापित राजनीतिक ढांचे के संघीय आधार का, अनुच्छेद 356(1) के अधीन किसी असंवैधानिक प्रहार द्वारा, उल्लंघन नहीं किया जाएगा ।"

@ए० आई० आर० 1961—उच्चतम न्यायालय 232

@@ए० आई० आर० 1962—उच्चतम न्यायालय 1406

*ए० आई० आर०—उच्चतम न्यायालय 1241

**ए० आई० आर० 1973—उच्चतम न्यायालय 1461

***ए० आई० आर० 1977—उच्चतम न्यायालय 1361

निष्कर्ष

2.21 सामान्य सिद्धान्त में इसकी वास्तविक कल्पना के पूर्णतया अनुरूप महासंघ, जिसमें राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तरों पर सरकारें संविधान द्वारा निर्धारित अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में "समकक्ष तथा पूर्णतया स्वतंत्र हो" कार्यकारी सत्ता के रूप में कहीं भी और कम से कम गणतंत्र राज्यों में कहीं भी विद्यमान नहीं है । इसका अर्थ यह है कि केवल इसी तथ्य के कारण आवश्यक रूप से इसे एकात्मक संविधान की संज्ञा नहीं दी जा सकती कि उसमें कई ऐसी विशेषताएं है जो सिद्धान्त रूप से एकात्मक सरकारी संरचना से जुड़ी हुई है । इस प्रश्न का इस आधार पर निर्णय करना होगा कि उसके संघीय तत्व प्रधान है या एकात्मक तत्व । इस मानदण्ड के आधार पर, भारतीय संविधान, अत्यन्त अपवादात्मक परिस्थितियों युद्ध, बाहरी आक्रमण तथा सशस्त्र विद्रोह को छोड़कर, जब पूरे देश या उसके बहुत बड़े भाग में आपात स्थिति घोषित की गई हो अनिवार्य रूप से एक संघीय संविधान के रूप में कार्य करता है हालांकि इसमें अनेक ऐसे तत्व है, जो एकात्मक संविधान के लिए उपयुक्त होने के कारण, इसके संघीय स्वरूप को कम करते है । यह बात वस्तुतः अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि भारतीय संविधान के स्वरूप पर सदैव इस दृष्टि से चर्चा की जाती है कि इसका स्वरूप कहा तक संघीय है न कि इस दृष्टि से कि यह कहां तक एकात्मक है । दूसरे शब्दों में, चर्चा सदैव इस बात को लेकर की जाती है कि संघीय संकल्पना की कौन सी विशेषताएं इसमें नहीं है । और सामान्य एकात्मक स्वरूप में के अपवादों के रूप में इस पर कभी चर्चा नहीं की जाती ।

2.22 राज्यों पर संघ के संवैधानिक और गैर-संवैधानिक अधिकार और नियंत्रण भारतीय संविधान के संघीय स्वरूप को परिसीमित करते हैं, किन्तु इस स्वरूप को बिल्कुल समाप्त नहीं करते, भारत की राज्य-संरचना अनिवार्यतः वही रहती है जो संविधान के निर्माता उस समय मौजूद परिस्थितियों में स्थापित करना चाहते थे अर्थात् "मजबूत केन्द्र वाला एक महासंघ" अंतर केवल यही हुआ है कि संविधान मे अंतर्निहित प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप, जिन्हे कुछ सामाजिक शक्तियों और शख्सीयतों ने और भी सुदृढ़ बनाया है, राज्य की संरचना अर्थात् संघ और राज्यों के बीच गंभीर आंतरिक असंतुलन उत्पन्न हो गया है । इस बीच परिस्थितियां बहुत बदल गई है । यह अच्छा हुआ है कि भारतीय रियासतों के एकीकरण की समस्या हल हो गई है । बड़े राज्य, भाषायी आधार पर गठित हुए हैं । ये राज्य केवल प्रशासनिक इकाइयां नहीं है, बल्कि अलग उभरी और उभरती हुई राष्ट्रिकताओं के स्वदेश हैं ।

2.23 इस समय भारत की एकता और अखण्डता को खतरा बाहर से नहीं है बल्कि इस वास्तविक सम्भावना से है कि वर्तमान लगातार विकेन्द्रीकरण का अभियान और विभिन्न अल्पसंख्यक राष्ट्रिकताओं, समुदायों और जातीय समूहों की अलग भावनाओं हितों तथा आकांक्षाओं की उचित कदर न किया जाना, साखों लोगों को दूर कर देगा और संयुक्त भारत के लिए उनकी इच्छो को दुर्बल कर देगा । इस परिप्रेक्ष्य में सत्तावादी और बल प्रयोग का दृष्टिकोण अवश्य ही राजनीतिक लोकतंत्र को खा जाएगा । इस प्रकार भारतीय राज्य का स्वरूप ही बदल जाएगा । इस प्रकार के विकास के दीर्घगामी परिणामों की पूर्वकल्पना करना कोई मुश्किल बात नहीं है । इस विनाशकारी परिस्थिति से बचने के लिए एक मात्र निश्चित रास्ता यह है कि राज्य की संरचना पिछले 36 वर्षों में बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार समायोजित की जाए । ऐसा, राज्यों पर इसके वर्तमान अनुचित तथा अनावश्यक प्रतिबंधों को निकाल कर, वास्तव में संघीय स्वरूप स्थापित करने के लिए दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ कर, किया जा सकता है । राज्य संरचना के स्वरूप के संबंध में सभी आशंकाएं दूर करने के लिए प्रस्तावना में "संघीय" के बाद "गणतंत्रीय" अभिव्यक्ति जोड़ दी जाए। संविधान में जहां कहीं "संघ" शब्द आता हो उसके स्थान पर यथास्थिति "महासंघ" या "संघीय" अभिव्यक्ति रखी जाए ।

राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता

2.24 राज्यों को अधिक स्वायत्तता देने का प्रश्न संघवाद की तथा कथित "पारम्परिक" धारणा पर आधारित नहीं, बल्कि, अनिवार्यतः इस तथ्य पर आधारित है कि केवल ऐसा करने से ही उस समाज में भारत की एकता और अखण्डता को ठोस आधार मिलेगा जिसने 1858 से ही उत्तरोत्तर बहुराष्ट्रिक स्वरूप ग्रहण किया है । कई राष्ट्रिकताओं की जनसंख्या यूरोप के अनेक राष्ट्र-राज्यों की कुल जनसंख्या से कहीं अधिक है । भारत एक इतना बड़ा और विषमजातीय देश है कि इसे अत्यन्त केन्द्रीकृत एकात्म आधार पर शासित नहीं किया जा सकता ।

2.25 स्वतंत्रता बाद की अवधि में राज्यों का भाषायी पुनर्गठन भारतीय समाज के बढ़ते हुए बहुराष्ट्रिक स्वरूप के कारण करना पड़ा। यह राष्ट्रीय नेताओं, और विशेषकर श्री नेहरू, जिन्हें इतिहास की बहुत जानकारी थी, की अत्यन्त दूरदर्शिता और राजमर्मज्ञता की एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। अन्य सभी कारकों से यह अधिक महत्वपूर्ण उपाय था, जिसने भारत को पाकिस्तान के पदचिह्नों पर जाने से बचा लिया। जिस सीमा तक भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन अधूरा था सिद्धान्त से हटकर था उस सीमा तक देश के सामने अभी भी अनेक कठिनाइयां और अनिर्णीत अंतर्राज्य समस्याएं हैं। इस आय की ऐतिहासिक आवश्यकता के पीछे यही बात है।

2.26 राज्यों के, भाषायी आधार पर, पुनर्गठन ने भारत के एक बहु-राष्ट्रिक समाज के रूप में विकसित होने की प्रवृत्ति को और भी तेज कर दिया है। यही सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन है जो पांचवे दशक के अंतिम वर्षों में आया है, जब भारतीय संविधान तैयार किया गया था। इसके कारण सैद्धान्तिक तरीके से राज्यों के भाषायी पुनर्गठन की प्रक्रिया, केवल इसलिए यथाशीघ्र पूरी करना आवश्यक नहीं है, कि राज्यों के बीच और संघ तथा राज्यों के बीच शेष प्रकोपों को दूर किया जा सके बल्कि इसलिए भी जरूरी है कि भारतीय गणतंत्र की राज्य रचना को वास्तव में बहुराष्ट्रिक समाज के अनुरूप समायोजित किया जा सके।

2.27 जैसा कि अध्याय I में जोर देकर कहा गया है, बहु राष्ट्रिक समाज का आवश्यक रूप से निहित अर्थ कई स्वतंत्र राज्यों से नहीं है। परन्तु किसी बहु राष्ट्रिक भारतीय समाज को वास्तव में पूरी तरह से एक ही राज्य में रखने का एकमात्र तरीका यह है कि वास्तव में संघीय स्वरूप वाली सरकार अपनाई जाए। सत्ता दी केंद्र में, कोई वैकल्पिक समाधान ढूंढने का प्रयास करने में अब काफी देर हो गई है, और ऐसा केन्द्र, ऐसे तरीकों से विभिन्न राष्ट्रिकताओं के अलग स्वरूप, प्रबल इच्छाओं और लालसाओं को इस प्रकार दबाना और मिटाना चाहेगा, जिन्हें अब आमतौर पर "राज्य आतंकवाद" शब्दों की संज्ञा दी जाती है, नागालैंड, मिजोरम, असम और पंजाब के अनुभव से इस बात का पर्याप्त संकेत होना चाहिए कि आजकल के समय में जागरूक और समझदार लोगों की आकांक्षाओं और इच्छाओं को दबाने में प्रयोग वाले तरीकों का प्रभाव और पहुंच बहुत सीमित है। एकमात्र संतोषजनक और इस समस्या का पक्का हल यही है कि, वास्तव में एक संघीय प्रणाली हो जिससे संघ और राज्यों के बीच उचित संतुलन स्थापित हो सके। राज्यों को अधिक स्वायत्तता देने के मामले का आधार मुख्यतः इसी अवस्था पर आधारित है कि विविध लोगों के दावों और एकता की अपेक्षाओं के बीच उचित संतुलन कायम किया जाए।

2.28 कई अन्य कारण भी हैं जिनकी वजह से राज्यों को अधिक स्वायत्तता दी जानी चाहिए। इससे जोरदार प्रतियोगी राजनीति के लिए अनुकूल वातावरण बनेगा और इसी प्रकार की राजनीति, क्रियाशील लोकतंत्र की अंतरात्मा होती है। इससे बुनियादी स्तर पुनर्जीवित होगा और जोर पकड़ेगा। विशेषकर पिछले 15 वर्षों में संघ के हाथों में सत्ता के केन्द्रीकरण के लिए चलाए गए एक कठोर अभियान की एक घटना का परिणाम यह हुआ है कि राज्य सरकारों ने भी सरकार के स्थानीय स्तरों के संबंध में ऐसा अभियान चलाया है। इससे देश के अधिकांश भाग में बुनियादी स्तर पर लोकतंत्र काफी कमजोर हुआ है। कुछ अपवादों को छोड़कर, पंचायती राज संस्थाओं के अधिकार के लिए उत्साह आम तौर पर समाप्त हो गया है। इन संस्थानों के अधिकार, संसाधन तथा प्राधिकार उत्तरोत्तर घटते जा रहे हैं। चुनाव कभी कभार ही समय पर कराए जाते हैं। इन संस्थानों पर नौकरशाही का अधिभार लगातार बढ़ता जा रहा है और संरचना के उच्चतर स्तरों पर इनका प्रशासन वस्तुतः अधिकारी वर्ग चलाता है। नगरपालिकाओं और कमेटियों का भी यही हाल है। इस संबंध में सामान्य राष्ट्रीय दृश्य विधान में पंजाब कोई अपवाद नहीं है। लोकतंत्र में पुनः जान डालने के लिए, यह जरूरी है कि, इसे बुनियादी स्तरों पर मजबूत किया जाए। इसके लिए सामान्य केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को उलटना होगा, जो कई वर्षों से देश में चल रही है। इस दिशा में राज्यों को अधिक स्वायत्तता देना अनिवार्य उपाय है। ऐसा करने से, राज्यों में स्थानीय स्तर को अधिकार, कार्य तथा संसाधन अंतरित करने के लिए दबाव निश्चित रूप से बढ़ेगा।

2.29 केन्द्रीकरण अभियान के औचित्य के लिए कभी-कभी और विशेषकर, राजवर्ग के "प्रगतिवादियों", द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि केन्द्र पर अधिक प्रबुद्ध, प्रगतिवादी और देशभक्त नेताओं का नियंत्रण है जबकि राज्य स्तर पर सामंती, संकीर्ण और, यदि बिल्कुल प्रतिक्रियावादी नहीं तो, अतिवादी संरक्षक तत्वों का बोलबाला है। अतः भारतीय राजतंत्र पर केन्द्र का प्रभुत्व, इसे अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिवादी, देशभक्तिपूर्ण तथा प्रबुद्ध दिशा प्रदान करता है। परन्तु तथ्य इस दावे का समर्थन नहीं करते। राज्य विधान मण्डलों द्वारा पारित किये गये, परन्तु राज्यपालों द्वारा राष्ट्रपति (केन्द्रीय कार्यपालिका) की सहमति के लिए आरक्षित रखे गये विधेयकों को देखने से पता चलता है कि जो विधेयक संविधान के भाग IV में निर्धारित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को लागू करना चाहते थे, उन पर विशेष रूप से विलम्ब किया गया और सहमति नहीं दी गई। कई वर्षों से संघ सरकार आर्थिक आत्मनिर्भरता और समाजवादी पद्धति के विकास के संबंध में देश के घोषित लक्ष्य से उत्तरोत्तर हट कर चली है। वस्तुतः, हाल ही के वर्षों में देश को भुगतानों के संतुलन में इतने बड़े घाटों का सामना करना पड़ा है जो कि पहले कभी नहीं था। केन्द्रीय सरकार के, जनसाधारण के प्रति सुविचारित भंगिमाओं के बावजूद केन्द्रीय नीति का झुकाव उत्तरोत्तर बड़े व्यापारियों, विदेशी (परराष्ट्रीय) कंपनियों और आमतौर पर स्वामी वर्गों की ओर हुआ है। जो भी हो, संघ और राज्य स्तर पर सरकारों का वास्तविक या सांकेतिक स्वरूप कोई ऐसा वैध तर्क नहीं है जिसके कारण इनमें से कोई भी सरकार, संविधान के उपबंधों द्वारा स्थापित दोनों स्तरों के बीच संतुलन में परिवर्तन करने के लिए एक तरफा, मनमाना या गुप्त प्रयास कर सके। अन्यथा, संविधान के संशोधन के लिए निर्धारित क्रिया विधि का स्थान जंगल का कानून ले लेगा।

2.30 उपरोक्त प्रत्यक्ष ज्ञान को ध्यान में रखते हुए 7वीं अनुसूची की तीन सूचियों में विधायी शक्तियों के पुनर्वितरण के लिए सुझाव अध्याय 3 में दिए गए हैं। जो उपबंध राज्यों के ऊपर संघ को पर्यवेक्षी भूमिका प्रदान करते हैं, उन्हें हटाने, संशोधित करने या उनमें बड़े आशोधन करने के प्रस्तावों पर अध्याय 4 से 6 तक में चर्चा की गई है। राज्यों के वित्तीय संसाधन बढ़ाने तथा केन्द्र पर उनकी वित्तीय निर्भरता कम से कम करने के उपायों पर अध्याय 10 में चर्चा की गई है। राज्यों के अपने दायित्व के संवैधानिक क्षेत्र से संबंधित योजना प्रक्रिया पर राज्यों का प्रभावी नियंत्रण सुनिश्चित करने के प्रस्ताव विस्तार से अध्याय 11 में बताए गए हैं। इनमें से कई सुझावों के लिए संवैधानिक संशोधन करने पड़ेंगे। कुछ ओर से यह सुझाव आया है कि संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं और केवल स्वस्थ परम्पराएं तथा कार्यविधियां स्थापित करके और कुछ आपत्तिजनक नियामक विधियों को बदल कर भारतीय राजतंत्र में उचित सुधार किया जा सकता है। यह विचार वर्तमान स्थिति की मांग पूरी नहीं करता। आज आवश्यकता इस बात की है कि निम्नलिखित उपाय मिलाकर एक साथ किए जाएं—(i) आवश्यक सांविधानिक संशोधन, (ii) स्वस्थ परम्पराएं और कार्यविधियां अपनाना और (iii) नियामक विधियों में सुधार, आशोधन और जहां आवश्यक हो उन्हें समाप्त करना और राज्यों पर नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण करना और उनके क्षेत्राधिकार का उल्लंघन करने के लिए संघ द्वारा 1950 से अपनाई गई युक्तियों और विभिन्न संवैधानिक और संविधानेतर लिखतों को समाप्त करना।

2.31 परम्पराएं वहां एक शक्तिशाली बल होता है जहां (i) उनके बारे मतदाताओं में व्यापक जागरूकता हो और किसी महत्वपूर्ण परम्परा को नीचा दिखाने से लोकरोष के भड़क उठने और अहितकारी सरकार का बने रहना खतरे में पड़ सकता हो, (ii) जहां परम्पराओं के लिए सम्मान की चिरस्थापित प्रथा हो, (iii) सत्ता के किसी दुरुपयोग या सरकार द्वारा स्वीकृत मानदण्डों से हटकर चलने के बारे में सूचना माध्यम अपेक्षाकृत स्वतंत्र और अत्यन्त सतर्क हों तथा (iv) लोकतंत्र जोरदार, वास्तव में बहुदलीय तथा गहरी जड़ों वाला हो और कोई भी राजनीतिक दल उसे पराजित न कर सकता हो। इस समय भारत में इनमें से कोई भी शर्त पर्याप्त रूप से पूरी नहीं होती। इसलिए केवल यही रास्ता है कि उपयुक्त संवैधानिक सुधार कर के भारतीय राजतंत्र और राज्य की संरचना में अत्यावश्यक सुधार किया जाए। स्वस्थ परम्पराएं और उचित कार्यविधियां देश की राज्य संरचना को आवश्यक भारतीय समाज के विकास की वर्तमान अवस्था तक समायोजित करने के लिए निश्चित रूप से संवैधानिक परिवर्तनों को पुनः प्रबलित करेंगी किन्तु इसमें संदेह है कि ये, स्वयं अपने दम पर ऐसा करने में सफल हों।

4. देश की एकता और अखण्डता के लिए सुरक्षोपाय

2.32 देश की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने और स्वतंत्रता की रक्षा करने के बारे में दो राय नहीं हो सकती। मतभेद केवल इन बातों पर हो सकता है कि इन्हें किन बातों से खतरा है और इन खतरों को कैसे दूर किया जा सकता है। संविधान में कई उपबंध अनुमानत: देश की स्वतंत्रता, एकता और अखण्डता की सुरक्षा के लिए किए गए हैं। ये उपबंध नीचे दिए गए हैं :—

(i) संविधान का भाग II सभी भारतीयों के लिए सामान्य नागरिकता स्थापित करता है; और सातवीं अनुसूची में सूची I की प्रविष्टि सं० 17 नागरिकता, देशीकरण और अन्य देशीय को संघ का विषय बनाती है।

(ii) देश के लिए एक राष्ट्रीय ध्वज और एक राष्ट्रीय गान स्वीकार करना।

(iii) अनुच्छेद 51(ए) जो भारत के नागरिकों के मूल कर्तव्य निर्धारित करता है, विशेष रूप से खण्ड (ए) (सी) (डी) और (ई)।

(iv) अनुच्छेद 352 से 360 जिनमें आपात स्थिति संबंधी प्रावधान निर्धारित किए गए है।

(v) 7वीं अनुसूची की सूची I की 1 से 5 तक की प्रविष्टियां जो भारत की रक्षा, नौसेना तथा वायुसेना, संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल, छावनियों और रक्षा निर्माण कार्यों तथा उपस्करों को पूर्णतया संघ की जिम्मेदारी बनाते हैं; प्रविष्टि 7 रक्षा उद्योगों को संघ का विषय बनाती है।

(vi) सूची I की प्रविष्टि 2-ए सिविल सत्ता की सहायता के लिए संघ के किन्हीं सशस्त्र बलों और किसी अन्य बल को संघ के नियंत्रण की शर्त पर तैनात किए जाने को संघीय विषय बनाती है।

(vii) अनुच्छेद 355 राज्यों को बाहरी आक्रमण और आंतरिक गड़बड़ी से बचाने के लिए संघ का कर्तव्य निर्धारित करता है।

(viii) सूची I की प्रविष्टि 8 केन्द्रीय सतर्कता और अन्वेषण ब्यूरो को संघीय विषय बनाती हैं।

(ix) सूची I की 10 से 21 तक की प्रविष्टियां विदेशी कारोबार और संबद्ध विषयों को पूर्णतया संघ की जिम्मेदारी बनाती हैं, जिनमें युद्ध और शांति, विदेशों के साथ संधि और करारों और उत्प्रवास तथा आप्रवास के प्रश्न भी शामिल हैं।

(x) सूची I की 22 से 32 तक की प्रविष्टियां, जो रेलवे तथा रेल परिवहन, राष्ट्रीय राज मार्गों, अंतर्देशीय राष्ट्रीय जलमार्गों पर पोत परिवहन और नौ परिवहन, समुद्रीय पोत परिवहन और नौ परिवहन, प्रकाश स्तंभों, बड़े पत्तनों और पत्तन--करन्तीन, नागर विमानन और संबद्ध सुविधाओं और संचार साधनों को संघीय विषय बनाती हैं।

(xi) सूची I की प्रविष्टियां 36, 37, 38 और 41 जो मुद्रा, भारतीय रिजर्व बैंक, विदेशी ऋणों, विदेशी व्यापार और वाणिज्य को संघ की जिम्मेदारी बनाती है; और

(xii) अनुच्छेद 263, जिसमें राष्ट्रपति द्वारा एक अंतर्राज्य परिषद स्थापित किए जाने की व्यवस्था है।

2.33 उपरोक्त सभी उपबंध वस्तुत: देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने के लिए अपरिहार्य नहीं। उदाहरणार्थ प्रशासनिक सुधार आयोग की यह राय थी कि अनुच्छेद 355 के अधीन संघ स्वप्रेरणा से भी किसी राज्य में सिविल सत्ता की सहायता के लिए संघ के सशस्त्र और अर्ध-सैनिक बलों का तैनात करने के लिए सक्षम है। अध्याय 3 और 6 में यह तर्क दिया गया है कि यह वैध व्याख्या नहीं है, संघ को यह अधिकार सौंपना न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय और ऐसे बलों की तैनाती केवल राज्य सरकार के अनुरोध पर ही की जानी चाहिए चाहे वह सरकार कोई लोकप्रिय सरकार हो या राष्ट्रपति के शासन के अधीन राज्यपाल का प्रशासन। अध्याय 3 में यह भी तर्क दिया गया है कि सूचना और प्रसारण समवर्ती विषय होने चाहिएं अर्थात् इन्हें सूची I से निकालकर सूची III में रखा जाना चाहिए। अब यह और भी जरूरी हो गया है क्योंकि भारत एक बहुराष्ट्रिक समाज के रूप में विकसित हुआ है। इसके अतिरिक्त अध्याय 3 में जोर देकर कहा गया है कि अनुच्छेद 356 का अवलंबन लेने की परिस्थितियां और शर्तें अनिवार्यत: स्पष्ट रूप से बताई जानी चाहिए। इस प्रकार आगे भी तर्क दिए गए हैं।

राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के समेकन के लिए आर्थिक और राजनीतिक उपाय

2.34 संविधान में, देश की एकता और अखण्डता को किसी खतरे के विरुद्ध पर्याप्त और, यहां तक कि, बहुत ज्यादा सुरक्षोपाय हैं। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को समेकित करने के लिए आर्थिक और राजनीतिक उपायों द्वारा सांविधानिक उपबंधों और संघ की निग्रहकारी शक्ति को प्रवृत्त करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शक्ति या आधुनिक राज्य के प्राधिकार के स्रोत पर चर्चा करते हुए राजनीति मर्मज्ञ निसंदेह सदैव अलग-अलग नागरिकों या उनकी संस्थाओं की तुलना में इसकी जबर्दस्त निग्रही शक्ति का स्पष्ट शक्तियों के रूप में जिक्र करते हैं। परन्तु उनमें से उदार और गणतंत्र की ओर झुकाव रखने वाले व्यक्ति यह बताते हैं कि राज्य के प्राधिकार के लिए अंतिम शक्ति, नागरिकों की "रहने की इच्छा" होती है अर्थात् राज्य को सुरक्षित रखने के लिए नागरिकों का दृढ़ संकल्प और उसके किसी प्रादेशिक क्षेत्राधिकार, अधिकार और प्राधिकार को खतरे से बचाने का दृढ़ निश्चय। लोकतांत्रिक दृढ़ उक्तियों के अनुरूप, भारतीय लोकतंत्र के प्रति नागरिकों की इच्छा को जागृत और प्रवृत्त करने के लिए अनिवार्यत: हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसा करने के लिए निम्नलिखित बातें सुनिश्चित करनी होंगी :—

(i) विकासमान अर्थव्यवस्था;

(ii) संवृद्धि और कल्याण का व्यापक विस्तार;

(iii) सभी राष्ट्रिकताओं, धार्मिक समुदायों और जातीय समूहों के हितों और भावनाओं की ओर बराबर ध्यान;

(iv) राजनीतिक ईमानदारी;

(v) स्वतंत्रता का ऐसा वातावरण, जहां हर प्रकार की राय खुले तौर पर और स्वतंत्र रूप से व्यक्त की जा सके;

(vi) नागरिकों के जिन मूल अधिकारों की संविधान में गारंटी दी गई है, उनके प्रति ईमानदारी से सम्मान;

(vii) साझे संगठन और भ्रातृीय भावनाओं को सक्रिय प्रोत्साहन और विभिन्न राज्यों, राष्ट्रिकताओं, धार्मिक समुदायों और जातीय समूहों के बीच विवादों का न्यायोचित और शीघ्र निपटारा।

(viii) संविधान और संसदीय सरकार की सामान्य परम्पराओं का शब्द और भावना से ईमानदारी पूर्वक सम्मान तथा;

(ix) अर्थव्यवस्था के औद्योगिकरण और आधुनिकीकरण को बढ़ावा और इस प्रक्रिया में क्षेत्रों की पारस्परिक निर्भरता स्थापित करना।

2.35 इन सभी दिशाओं में पर्याप्त प्रगति ही अपने आप में देश की एकता और अखण्डता के लिए एक प्रभावी सुरक्षोपाय होगा। इससे संविधान के, आपात स्थिति के उपबंधों का महत्व काफी घट कर एक आरक्षित शक्ति के रूप में रह जाएगा जिसे कभी कभार इस्तेमाल किया जाएगा।

नई भूमिका में संघीय संकल्पना

2.36 राज्य संरचना की संघीय संकल्पना, भारत में अपने ऐतिहासिक पूर्व वृत्तों के कारण, विशेषकर, मुख्य सीमावर्ती राज्यों में, कई लोगों में आशंकाएं उत्पन्न कर देती है, जिनसे उग्रपंथी तुरन्त लाभ उठाते हैं। अंग्रेजों ने संयुक्त भारत के लिए सरकार के संघीय ढांचे में रुचि, मुख्य रूप से इसमें राजाओं की स्थिति की सुरक्षा करने और उन्हें सहारा देने के लिए और विद्यमान परिस्थितियों के कारण एक युक्ति के रूप में दिखाई थी, जब उसे हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों को एक दूसरे के साथ लड़ाने और राजाओं को उन सबके विरुद्ध लड़ाने, संयुक्त भारत को कमजोर रखने और उन पर निर्भर रखने की आवश्यकता थी। वे ये भी आशा करते थे कि इस ढांचे की आंतरिक रोकथाम और संतुलन के कारण, जिनकी वे इसमें निश्चित रूप से होने की आशा करते थे, संयुक्त भारत इस देश में अंग्रेजों के निहित स्वार्थों को छू भी नहीं पाएगा।

2.37 संघवाद पर अब पूर्णतया नई भूमिका के संदर्भ में विचार किया जा रहा है अर्थात् एक ऐसी युक्ति के रूप में जो देश में उत्पन्न हुई स्थिति की चुनौती का सामना कर सके। स्वतंत्रतापूर्व संदर्भ में भारी परिवर्तन हुआ है। भारतीय रियासतें, इतिहास की लपटों में नष्ट हो गई हैं और वह कभी दुबारा नहीं उभर सकती। उनके भूतपूर्व लोग राजाओं के शासन से मुक्त हो चुके हैं और वे भारत के शेष नागरिकों के साथ स्वाभाविक रूप से मिल गए हैं। मुसलमानों की समस्या देश की अखण्डता के लिए अब खतरा बनने वाली बात नहीं है। यह उस सामान्य समस्या का अंग बन गई है, जिसका उद्देश्य देश के धार्मिक अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और अन्य वैध हितों की रक्षा करना है। देश में कोई ऐसी बाहरी शक्ति भी नहीं है, जिसे प्रमुख स्थान प्राप्त हो और जो भारतीय जनता में शत्रुता और संघर्ष उत्पन्न कर सके।

2.38 परन्तु इतिहास के आगे बढ़ने के साथ साथ नई समस्याएं सामने आई हैं। भाषा और जातिवाद की विविधता पर आधारित ऐतिहासिक प्रक्रिया ने विविधता के नए स्वरूप विकसित कर दिए हैं अर्थात् बहुराष्ट्रिक समाज और जागरूक जातीय अल्पसंख्यक लोग। बाद वाले वर्ग के लोग, जिनकी देश के कुछ भागों में बहुसंख्या है। उत्तरोत्तर अपनी अलग पहचान और अन्य लोगों द्वारा उनके शोषण के प्रति सजग हो रहे हैं। और अपने प्रति उचित व्यवहार की मांग कर रहे हैं। विविधता के ये नए स्वरूप, इसके पुराने स्वरूपों, जिनका नए स्वरूप विरोध करते हैं, की तुलना में देश के भविष्य के लिए कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। संघवाद का अब एक ऐसे संकल्पनात्मक ढांचे के रूप में देखा जा रहा है, जिसमें विविधता के नए स्वरूपों की वैध मांगों को पूरा किया जा सके और इस प्रकार भारत को समान और प्रांतीय राष्ट्रिकताओं और जातीय समूहों के खुशहाल परिवार के रूप में विकसित करके देश की एकता और अखण्डता को सुदृढ़ किया जा सके। ये सभी लोग साझी इच्छाओं और लालसाओं, हितों और प्रयासों सुख और दुख के अटूट संबंधों से बंधे होंगे। यह संघवाद की उस भूमिका से बिल्कुल अलग है, जो अंग्रेज चाहते थे। देश की एकता और अखण्डता का खतरा संघीय मार्ग पर चलने से नहीं बल्कि ऐसा करने में असमर्थ रहने और वर्तमान चहुंमुखी केन्द्रीकरण के कठोर अभियान जारी रखने से है। बाद वाला रास्ता इस बात का संकेत देगा कि ऐसी ऐतिहासिक भावनाओं को बिलकुल नहीं समझा जा रहा, जो नेहरू की भूमि में लोगों के लिए उपयुक्त है।

विधायी सूचियां

3.1 7वीं अनुसूची की सूची I, सूची II तथा सूची III में प्रस्तावित परिवर्तन अनुबंध I, II तथा III में दिए गये हैं। इन परिवर्तनों के लिए तर्क विस्तार से नीचे दिये गये हैं :--

(1) सूची-I

सूची 2–ए :

3.2 संविधान निर्माताओं ने लोक व्यवस्था को राज्य का विषय बनाया (प्रविष्टि–I सूची II)। इसका निहितार्थ यह है कि किसी भी राज्य में सिविल सत्ता की सहायता के लिए संघ के सशस्त्र बलों का प्रयोग उस राज्य के अनुरोध पर या उसकी सहमति से किया जाना चाहिए और कभी भी संघ की स्वप्रेरणा से नहीं किया जाना चाहिए। यदि ऐसी परिस्थिति में, जब सिविल सत्ता की सहायता के लिए संघ के अर्द्ध सैनिक या सशस्त्र बलों का हस्तक्षेप स्पष्ट रूप से आवश्यक हो और राज्य की निर्वाचित लोकप्रिय सरकार ऐसे हस्तक्षेप के लिए अनुरोध न करे या उसके लिए सहमति न दे, तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन कानून और व्यवस्था बिल्कुल समाप्त हो जाने के तर्क पर, वैध रूप से, सरकार का काम अपने हाथ में ले सकता है और इसके फलस्वरूप राज्यपाल के प्रशासन के अनुरोध पर या सहमति से सिविल सत्ता की सहायता में संघ के सशस्त्र या अर्द्धसैनिक बलों के हस्तक्षेप के लिए रास्ता साफ कर सकता है। किसी ऐसे मामले की कल्पना करना कठिन है, जब किसी राज्य सरकार के सामने ऐसी परिस्थिति हो, जिसमें वह वस्तुतः अपनी पुलिस की सहायता से कानून और व्यवस्था बहाल न कर सकती हो और वह ऐसे हस्तक्षेप के लिए अनुरोध न करे या सहमति न दे। प्रविष्टि 2–ए में यह स्पष्ट करने के लिए आशोधन किया गया है कि संघ अपने सशस्त्र या अर्द्धसैनिक बलों का प्रयोग केवल राज्य सरकार के अनुरोध या सहमति से करेगा, चाहे सरकार कोई लोकप्रिय निर्वाचित सरकार हो या राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यपाल का प्रशासन। प्रस्तावित आशोधन में यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि ऐसी तैनाती केन्द्र द्वारा अंतर्राज्य परिषद् की सहमति से निर्धारित शर्तों और निबंधनों पर होगी। ये शर्तें और निबंधन सभी राज्यों के लिए एक जैसे होंगे।

प्रविष्टि–24 :

3.3 इस बात में कोई तर्क नहीं है कि अंतर्राज्य नदियों के अतिरिक्त, अन्य अन्तर्देशीय जल मार्गों पर पोत परिवहन तथा नौ वहन पर संघ का क्षेत्राधिकार हो। तदनुसार प्रस्तावित आशोधन में प्रविष्टि 24 का विस्तार क्षेत्र सीमित किया गया है।

प्रविष्टि 30 :

3.4 प्रविष्टि 30 में प्रस्तावित आशोधन प्रविष्टि 24 के प्रस्तावित आशोधन के अनुरूप में ही है। 'राष्ट्रीय जल मार्ग' शब्दों के स्थान पर अन्तर्राज्य नदियां' शब्द रख दिये गये हैं।

प्रविष्टि 31 :

3.5 अतीत में टेलीफोन सुविधाओं का संचालन विभागीय रूप से किया जाता था। किन्तु 1986–87 में बम्बई और दिल्ली में टेलीफोन सुविधाओं के प्रबंध और विकास का काम, एक स्वायत्त निकाय महानगर टेलीफोन निगम ने अपने हाथ में ले लिया है, इसलिए यह इसी प्रवृत्ति के अनुरूप होगा कि यदि महानगरों में संघ द्वारा स्थापित स्वायत्त निकाय टेलीफोन सुविधाओं के लिए जिम्मेदार हो, तो अन्य नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीफोन सुविधाओं के प्रबंध और विकास के लिए राज्यों द्वारा स्थापित स्वायत्त प्राधिकरण जिम्मेदार हो। अतः प्रस्ताव है कि टेलीफोन विषय को सूची I से हटा कर सूची III में रख दिया जाए।

3.6 समुद्र पार संचार का प्रबंध सर्वोत्तम ढंग से संघ द्वारा किया जा सकता है जैसा कि इस समय किया जा रहा है। यह मद प्रविष्टि 31 में जोड़ दी गई है।

3.7 राज्य, विकास कार्यकलापों में बहुत बड़े भाग के लिए उत्तरदायी है और अधिकांशतः उन्हें भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया है। उन्हें अपनी विशेष समस्याओं और अवसरों के संबंध में अपनी भाषा, संस्कृति, नैतिक मूल्यों, विकास कार्यक्रमों तथा विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रचार करने के लिए रेडियो तथा दूर दर्शन सुविधाओं तक पर्याप्त पहुंच की आवश्यकता है। अभी उन्हें उचित पहुंच प्राप्त नहीं है, विशेषकर उन राज्यों को जिनकी सरकार, केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से भिन्न दलों की है। अतः प्रस्ताव है कि प्रसारण तथा दूरदर्शन को समवर्ती सूची में नयी प्रविष्टि 25–ए के रूप में रखा जाए और "अस्पष्ट अभिव्यक्ति" अन्य इसी प्रकार के संचार हटा दी जाए क्योंकि अवशिष्ट शक्तियों में किये गये उपबंध इसका काम कर सकते हैं। यह अनुमान है कि इन सुविधाओं का किसी भी स्तर की सरकार द्वारा दुरुपयोग रोकने के लिए संघ और राज्यों द्वारा नियंत्रित रेडियो और दूरदर्शन सुविधाओं के लिए साझे मार्गनिर्देश होंगे।

प्रविष्टि 40 :

3.8 संघ के क्षेत्राधिकार में, केवल भारत सरकार द्वारा संचालित लाटरियां होनी चाहिए। इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा संचालित लाटरियां, राज्य का क्षेत्राधिकार होना चाहिए।

प्रविष्टि 40 तदनुसार आशोधित की गई है।

प्रविष्टि 45 :

3.9 मुद्रा संबंधी प्राधिकरण अर्थात् भारतीय रिजर्व बैंक संघ के क्षेत्राधिकार में होना चाहिए। सूची I की प्रविष्टि 38 में इसकी व्यवस्था की गई है। किन्तु, वाणिज्यिक बैंक, वित्तीय संस्थान आदि भी पूर्णतया संघ के क्षेत्राधिकार में क्यों होने चाहिए, बैंकों में ही आर्थिक सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण होता है। इस बात से कोई तर्क नहीं कि इस पर किसी स्तर विशेष की सरकार का एकाधिकार हो। अतः प्रस्ताव है कि भारतीय रिजर्व बैंक के अतिरिक्त अन्य बैंकों को, संघ सूची से निकाल कर समवर्ती सूची में रख दिया जाए और इस सूची में इसे नई प्रविष्टि 32–ए के रूप में दिखाया जाए।

प्रविष्टि 48 :

3.10 स्टॉक एक्सचेंज राष्ट्रीय महत्व के होते हैं और इन्हें संघ सूची में होना चाहिए। किन्तु यह बात वायदा बाजारों पर लागू नहीं होती, जिनका आम तौर पर स्थानीय या क्षेत्रीय महत्व होता है। इन्हें संघ सूची से निकाल कर राज्य सूची में रख दिया गया है।

प्रविष्टि 52 :

3.11 संविधान निर्माताओं ने उद्योगों को मुख्यतः राज्य सूची में रखा था और इनमें एकमात्र अपवाद के रूप में ऐसे उद्योग थे जो सूची I की प्रविष्टि 52 के उपबन्धों के अंतर्गत आते थे। संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, 1956 ने "प्रविष्टि 52" के स्थान पर "प्रविष्टि" 7 और 52 रख दी। इसका स्पष्ट उद्देश्य यह था कि संघ का तो मुख्य, बुनियादी और रक्षा उद्योगों पर सेनाधिकार रहेगा, जो कि स्पष्ट या राष्ट्रीय और सामरिक महत्व रखती है, परन्तु अन्य सभी उद्योग राज्यों की परिधि में रहेंगे। किन्तु संघ ने "लोक हित" अभिव्यक्ति का बहुत दुरुपयोग किया है और प्रविष्टि 52 द्वारा दिये गये अधिकार का गलत इस्तेमाल किया है। उससे उपभोक्ताओं की आवश्यक वस्तुएं भी इस प्रविष्टि के संदर्भ में पारित उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 में कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आ गई हैं। संविधान निर्माताओं के इरादों के विपरित, उद्योग वस्तुतः संघीय विषय बन गया है। तद्नुसार, संघ का नियंत्रण निर्दिष्ट मुख्य, बुनियादी और सामाजिक महत्व के उद्योगों तक सीमित रखने के लिए इस प्रविष्टि की आशोधित करने का प्रस्ताव है। रक्षा उद्योगों पर संघ के नियंत्रण का प्रावधान करने वाली प्रविष्टि को उसी रूप में रखा गया है।

प्रविष्टि 53 :

3.12 यह आवश्यक नहीं कि पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पादों से संबंधित प्रत्येक वस्तु संघ की परिधि में हो। पैट्रोलियम सैक्टर की उन निश्चित अवस्थाओं का पता लगाना जरूरी है जिन पर संघ का क्षेत्राधिकार होना चाहिए। ये अवस्थाएं हैं: पैट्रोलियम, तेल और गैस की खोज, निष्कर्षण, परिवहन तथा विपणन तथा पैट्रोलियम रिफाइनरियां और गैस तैयार करने के यूनिट। पैट्रोलियम उत्पादों तथा एल० पी० जी० का विपणन पूर्णतया संघ की चिन्ता का विषय नहीं होना चाहिए। इस क्रियाकलाप के लिए उचित स्थान समवर्ती सूची में है। पैट्रोलियम उत्पादों तथा एल० पी० जी० का खुदरा व्यापार राज्य सूची में होना चाहिए। इसके लिए भी कोई ठोस कारण नहीं कि अन्य खतरनाक ज्वलनशील पदार्थ संघ की चिन्ता का विषय हों। राज्य के क्षेत्रों में इन पदार्थों से संबंधित विषयों पर उस राज्य को चिन्ता होनी चाहिए क्योंकि ऐसे पदार्थों से संबंधित किसी दुर्घटना के परिणाम उसी को भुगतने होंगे। प्रविष्टि 53 में तद्नुसार आशोधन किया गया है। इन पदार्थों पर राज्यों की ओर से अधिकांशतः एक समान दृष्टिकोण सुनिश्चित करने के लिए, अंतर्राज्य परिषद्, राज्यों के विचारार्थ और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप आशोधन करके उन्हें स्वीकार करने के लिए, इस विषय पर मार्गनिर्देश तैयार कर सकता है।

प्रविष्टि 54 :

3.13 संघ का संबंध केवल मुख्य तथा सामरिक महत्व के खनिजों से होना चाहिए। इन खनिजों के मामले में भी संघ का संबंध केवल महत्वपूर्ण भण्डारों से ही होना चाहिए, जब तक कि वास्तविक हित में—जैसे कि सामरिक महत्व की सामग्रियों के परिरक्षण की सुरक्षा—अन्यथा अपेक्षित न हो। सामान्य तथा गैर-सामरिक महत्व के खनिजों के खनन और सभी खनिजों के छोटे भण्डारों के विकास के लिए, विशेष रूप से संघ की परिधि में लाए गये खान और खनिज विकास को छोड़कर अन्य विकास कार्य, राज्य सूची में शामिल किए जाने चाहिए। प्रविष्टि 54 का प्रस्तावित आशोधन इसी दृष्टिकोण के अनुरूप है।

प्रविष्टि 55 :

3.14 तेल क्षेत्र में श्रम और सुरक्षा का विनियमन पूर्णतया संघ के क्षेत्राधिकार में होना चाहिए, जैसा कि इस समय है। किन्तु खानों के संबंध में संघ का दायित्व उन्हीं खानों तक सीमित होना चाहिए जो प्रविष्टि 54 के अनुसार संघ के क्षेत्राधिकार में हैं। प्रविष्टि 55 में तद्नुसार आशोधन करने का सुझाव दिया गया है।

प्रविष्टि 56 :

3.15 (i) जल को मूल्यवान तथा दुर्लभ संसाधन माना गया है और राज्यों में रहने वाले असंख्य लोगों के लिए इसका अत्यधिक महत्व है। भूमि और जल सबसे अधिक महत्वपूर्ण संसाधन हैं जो सभी विकास कार्यों के लिए आधार हैं। पिछली एक शताब्दी से अधिक समय से संघीय/केन्द्रीय सरकार ने इसके अनिवार्य महत्व को ध्यान में रखा है। समय-समय पर पारित सभी विधियां और भारतीय संविधान के उपबंध उपरोक्त तथ्य की मान्यता पर आधारित है और इनके अंतर्गत जल अर्थात् जलपूर्ति, सिंचाई और नहरों, जलनिकास और तटबंधों, जल भण्डारण और जल विद्युत को प्रांतीय विधायी सूची में रखा गया है। भारत सरकार अधिनियम, 1935 में, जो उपरोक्त स्थिति थी, उसे इस विषय को सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 17 में शामिल करके लगभग पूरी तरह से अपना लिया गया, किन्तु अन्त में "सूची I की प्रविष्टि 55 के उपबंधों के अनुसार" शब्द जोड़ दिये गये।

3.15 (ii) सूची I की प्रविष्टि 56 इस प्रकार है:— "उस सीमा तक अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास, जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद्, विधि द्वारा, लोकहित में समीचीन घोषित करे"। सूची I की प्रविष्टि 56 के अधीन संसद् द्वारा बनाई गई एकमात्र विधि नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 है जो किसी अंतरराज्यिक नदी या नदी घाटी के विनियमन या विकास में रूची रखने वाली सरकारों को सलाह देने के लिए राज्य सरकार द्वारा किये गये अनुरोध पर, या अन्यथा, केन्द्रीय सरकार को नदी बोर्ड स्थापित करने की सीमित शक्ति देता है। केन्द्र सरकार इस शक्ति का प्रयोग, इच्छुक राज्य सरकारों से परामर्श करने के बाद ही कर सकती है। नदी बोर्ड के कार्यों का स्वरूप सलाहकारी होता है। अधिनियम की धारा 22 में इस धारा में निर्दिष्ट विषयों के संबंध में दो या दो से अधिक सरकारों के बीच कोई विवाद या मतभेद होने पर माध्यस्थ की व्यवस्था है। इस अधिनियम के अधीन अभी तक कोई नदी बोर्ड स्थापित नहीं किया गया है। इस प्रकार सूची I की प्रविष्टि 56 के अधीन संसद् द्वारा ऐसी कोई विधि नहीं बनाई गई है जो सूची II की प्रविष्टि 17 से राज्य विधान मण्डल या राज्य सरकार को मिलने वाली शक्तियों को कम करती हो। अतः इसका अर्थ यह है कि अपने-अपने क्षेत्रों में अंतरराज्यिक नदियों के जल के संबंध में तटवर्ती राज्यों को पूर्ण क्षेत्राधिकार प्राप्त है। अंतरराज्यिक नदी के गैर-तटवर्ती राज्य को, ऐसे जल में किसी हिस्से का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। नर्मदा जल विवाद अधिकरण की रिपोर्ट, खण्ड III (1978 का पृष्ठ 16, 17, 19-21, 26 तथा 30 देखें)।

3.15 (iii) राज्य को, राज्य के भीतर उपलब्ध जल संसाधनों को इस्तेमाल करने का पूरा अधिकार है क्योंकि उस क्षेत्र के लोगों की अर्थव्यवस्था सदियों से इसी संसाधन पर निर्भर रही है। राज्य के भीतर उपलब्ध ऐसे संसाधनों का उपयोग तभी संभव हो सकता है जब इन संसाधनों का उपयोग करने के लिए राज्य को पूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हों। राज्य सरकार की यह सुविचारित राय है कि देश की विकास प्रक्रिया को तेज करने के लिए राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक शक्ति अंतरित करना अत्यावश्यक है। जल संसाधनों के उपयोग के महत्वपूर्ण क्षेत्र में शक्तियों के अंतरण संबंधी उपरोक्त संकल्पना भी समान महत्व रखती है और इसे नजरअंदाज या किसी भी प्रकार से कम नहीं किया जाना चाहिए।

3.15 (iv) संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि सं० 56

यह प्रविष्टि संघ को उस सीमा तक अंतरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास के लिए विधियां बनाने की शक्ति देती है, जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद्, विधि द्वारा, लोकहित में समीचीन घोषित करें। इस सीमा तक, संविधान की सूची II में प्रविष्टि 17 द्वारा सौंपे गए जल संसाधनों पर राज्यों का क्षेत्राधिकार आशोधित हो जाता है।

3.15 (v) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 262 में कहा गया है कि संघीय संसद्, किसी अंतरराज्यिक नदी या नदी घाटी में या उसके जल के नियंत्रण, वितरण

या प्रयोग के बारे में किसी विवाद या शिकायत के लिए विधि द्वारा न्याय-निर्णय की व्यवस्था कर सकती है। संविधान के इस अनुच्छेद के अधीन संघ सरकार ने अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 अधिनियमित किया है, जो एक ऐसा विधिक ढांचा प्रदान करता है, जिसके अधीन राज्य-विवादों का निपटारा किया जाएगा। इस संबंध में इसके उपबंधों की व्याख्या के विस्तार के बारे में आशंकाएं व्यक्त की गई है कि विवाद कौन उठाएगा और ये आशंकाएं अंतरराज्यिक नदी या नदी घाटी के अर्थ के बारे में भी व्यक्त की गई हैं। यदि कोई राज्य तटवर्ती राज्य न हो तो क्या उसे किसी ऐसी नदी के संबंध में कोई विवाद उठाने का अधिकार है जो अंतरराज्यिक, हो, भले ही वह नदी ऐसे राज्य से न गुजरती हो या ऐसे राज्य की सीमा पर न हो। स्पष्टतः, भारतीय संविधान की योजना का निहितार्थ यह है कि अधिकार, सूची II की प्रविष्टि 17 के अनुसार निर्धारित किये जाएंगे, परन्तु अंतरराज्यिक जल विवाद अधिनियम, 1956 में कोई विशिष्ट शब्दावली न होने के कारण परस्पर विरोधी तर्क दिए जा रहे हैं। उपरोक्त आशय को स्पष्ट करने के लिए उक्त अधिनियम में संशोधन करके ऐसी आशंकाओं का समाधान करने की आवश्यकता है।

3.15 (vi) जबकि उपरोक्त 3.15 (v) इसलिए एक लाभदायक व्यवस्था है कि अन्य अंतर्राज्य विवादों, जिन पर न्याय-निर्णय संविधान के अनुच्छेद 131 के अधीन केवल उच्चतम न्यायालय दे सकता है, की तुलना में अंतरराज्यिक जल विवादों की ओर विशेष ध्यान दिया जा सकता है, परन्तु ऊपर 3.15 (iv) की व्यवस्था के अंतर्गत संघ को उस स्थिति में भी अंतरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों के जल संसाधनों पर अधिकार स्थापित हो जाता है जबकि राज्यों के बीच कोई विवाद न हो। यह उपबंध संघ को व्यापक और बेरोक अधिकार प्रदान करता है। ऐसा विशेष रूप से इसलिए है कि संघ के पास अपेक्षाकृत बहुत बड़े संसाधन है जिन्हें, वह वस्तुतः राज्यों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र का अतिक्रमण करने के लिए सूची I की प्रविष्टि 56 के अधीन अपने अधिकारों के साथ मिला कर प्रयोग कर सकता है। इसलिए इस प्रविष्टि को संविधान की सूची I से हटाने की आवश्यकता है।

प्रविष्टि 60 :

3.16 प्रदर्शन के लिए चलचित्र फिल्मों की उपयुक्तता का, जनसंख्या विशेष की संस्कृति, उनके पक्के विश्वासों और नैतिक मूल्यों के साथ गहरा संबंध होता है। भारत में सुस्पष्ट जातीय, भाषायी, धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता है। यह बिल्कुल संभव है कि जिस फिल्म की किसी एक राज्य में अधिसंख्य लोगों ने बेहद सराहना की हो, वही फिल्म किसी दूसरे राज्य में जनता के एक बहुत बड़े वर्ग की भावनाओं को भारी ठेस पहुँचा कर उस राज्य में दंगे भड़का दे। प्रत्येक वर्ष बनाई जाने वाली फिल्मों की संख्या बहुत अधिक है और जैसे ही हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में फिल्में बनाने की प्रवृत्ति जोर पकड़ेगी, यह संख्या और अधिक बढ़ जाने की संभावना है। चलचित्र फिल्मों को अब सूची I से सूची II में अंतरित करने का औचित्य है।

प्रविष्टि 62 :

3.17 यदि संसद्, विधि द्वारा, प्रविष्ठ 62 में उल्लिखित संस्थाओं जैसी किसी संस्था को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करके, संघ के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत लाती है, तो यह अनुचित होगा, भले ही भारत सरकार आंशिक रूप से उस संस्था का वित्त-पोषण कर रही हो। प्रविष्टि 62 के प्रस्तावित संशोधन में यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि ऐसा तभी अनुमेय होना चाहिए जब भारत सरकार उस संस्था का कम से कम 75% सीमा तक वित्त पोषण कर रही हो।

प्रविष्टि 63 :

3.18 और अधिक केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना इस विचार के अनुरूप नहीं है कि शिक्षा को समवर्ती सूची से निकाल कर दोबारा राज्य सूची में रखा जाना चाहिए। सभी नये विश्वविद्यालय, राज्यों द्वारा स्थापित किये जाने चाहिए। भारत सरकार, किसी विशेष उपयुक्त मामले में, विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए राज्य को अनुदान दे सकती हैं। प्रविष्टि 63 में तदनुसार आशोधन करने का प्रस्ताव है।

प्रविष्टि 64 :

3.19 प्रस्तावित आशोधन, प्रविष्टि 62 के संबंध में प्रस्तावित आशोधन के अनुरूप है।

प्रविष्टि 66 :

3.20 उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान, संस्थाओं या वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा संस्थाओं में मानकों के समन्वय और निर्धारण में, प्रविष्टि 62, 63 तथा 64 के प्रस्तावित आशोधनों और शिक्षा के समवर्ती सूची से राज्य सूची में प्रस्तावित अंतरण के अनुरूप आशोधन करने का प्रस्ताव है। दूसरे शब्दों में, इसे ऐसी संस्थाओं तक सीमित रखने का प्रस्ताव है, जिनका वित्त पोषण पूर्णतया या कम से कम 75 प्रतिशत की सीमा तक भारत सरकार द्वारा होता हो और इन्हें विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया गया हो। आशय यही है कि ऐसी अन्य संस्थाओं के संबंध में मानकों का समन्वय और निर्धारण राज्यों की जिम्मेदारी होगी। प्रविष्टि 66 में तदनुसार आशोधन करने का सुझाव है।

प्रविष्टि 76 :

3.21 ऐसा कोई कारण नहीं है कि राज्यों के लेखों की परीक्षा भी संघ की परिधि में हो। प्रविष्टि 76 में प्रस्तावित आशोधन इसी विचार के अनुरूप है। इसके परिणामस्वरूप अलग-अलग संघीय तथा राज्य लेखा परीक्षा सेवाओं का होना जरुरी है।

प्रविष्टि 84 :

3.22 उत्पाद शुल्क, कर-राजस्व के सबसे अधिक तेजी से बढ़ने वाले स्रोत है। इस समय, ये शुल्क (संघ) की परिधि में हैं, सिवाय उनके जो जन-उपभोग के लिए एल्कोहोलयुक्त मदिरा और स्वापकों पर लगाए जाते हैं। राज्य के वित्तीय साधनों में बुनियादी सुधार लाने के लिए यह जरूरी है कि राज्यों की उत्पाद शुल्कों से प्राप्त होने वाले राजस्वों तक, पर्याप्त पहुंच हो। वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार केंद्रीय उत्पाद शुल्क राजस्व में राज्यों को एक हिस्सा देकर, अब ऐसा किया जा रहा है। नवीनतम आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार संघ के उत्पाद शुल्क में से निर्धारित कटौतियां करने के बाद, इसका 40% भाग सभी राज्यों में और 5% भाग ऐसे राज्यों में बांट दिया जाता है जिनका योजनेतर राजस्व लेखे में अभी भी घाटा है। राज्यों में परस्पर वितरण से, उन राज्यों को सबसे अधिक नुकसान पहुंचता है जिनकी प्रति व्यक्ति आय अधिक है। चूंकि उत्पाद शुल्कों का बोझ अंततः उच्चतर कीमतों के रूप में उत्पाद शुल्क लगने वाली वस्तुओं के उपभोक्ताओं पर पड़ता है, इसलिए उच्चतर प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य, उत्पाद शुल्क योग्य मदों की अपनी प्रति व्यक्ति अधिक खपत के कारण, उत्पाद शुल्क में अपेक्षाकृत अधिक योगदान देते है। परन्तु वित्त आयोग द्वारा स्वीकार किये गये वितरण मानदण्डों के अनुसार उन्हें अपने योगदान की तुलना में कम हिस्सा मिलता है। उदाहरण के तौर पर, पंजाब संघ के उत्पाद शुल्क राजस्व में 5 से 6 प्रतिशत से कम योगदान नहीं करता, परन्तु उसे सभी राज्यों में बांटे गये 40 प्रतिशत में से केवल 1.2 प्रतिशत अपने हिस्से के रूप में प्राप्त होता है और राजस्व घाटे वाले राज्यों में वितरित 5 प्रतिशत में से कुछ भी नहीं मिलता। किसी ऐसी वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में सोचना जरूरी है, जिससे सभी राज्यों के साथ उचित व्यवहार हो और जो औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करने के लिए उन्हें ठोस प्रोत्साहन भी दें। इस विचार को ध्यान में रखते हुए, यह सुझाव दिया गया है कि संसद् द्वारा कानून लघु इकाइयों के रूप में परिभाषित औद्योगिक इकाइयों पर उत्पाद शुल्क संघ के क्षेत्राधिकार से निकाल कर राज्य सूची में रख दिया जाए।

3.23 समय बीतने के साथ जैसे-जैसे लघु उद्योग की परिभाषा संसद् द्वारा इस वर्ग में और अधिक इकाइयों को लाने के लिए पिछली प्रथा के अनुरूप उदार बनाई जाएगी, राज्यों को इस स्रोत से अधिक राजस्व प्राप्त होगा। इस क्षेत्र का अत्यधिक विकास करने के लिए भी उन्हें जबरदस्त प्रेरणा मिलेगी क्योंकि इस दिशा में की गई प्रगति से उन्हें अधिक लाभ मिलेगा। प्रविष्टि 84 में; तदनुसार आशोधन करने का प्रस्ताव है।

प्रविष्टि 90 :

3.24 चूंकि वायदा सट्टा बाजारों को राज्य सूची में अंतरित करने का प्रस्ताव है, इसलिए इन बाजारों में लेन-देन संबंधी स्टाम्प शुल्कों के अतिरिक्त अन्य कर भी संघ के क्षेत्राधिकार से अंतरित किये जाने चाहिए।

प्रविष्टि 97 :

3.25 अवशिष्ट शक्तियों को समवर्ती सूची में अंतरित करने का प्रस्ताव है ताकि सूची I या सूची II में शामिल न किये गए विषयों पर, उनके स्वरूप के आधार पर, संविधान में, सातवीं अनुसूची की विषयवस्तु को प्रभावित करने वाला कोई संशोधन किये बगैर संघ या राज्य कारंवाई कर सके।

3.26 इस समय, प्रविष्टि 97 के अधीन किसी नये विषय पर अनिवार्यत: संघ को कार्रवाई करनी होगी भले ही यह स्पष्ट हो कि उस पर सर्वोत्तम ढंग से राज्य स्तर पर कार्रवाई की जा सकती है। संवैधानिक संशोधन या संघ द्वारा नये विषय को राज्यों को प्रत्यायोजित किये बगैर, उसे राज्यों को अंतरित करना संभव नहीं होगा। परन्तु सिर्फ प्रत्यायोजन, अवशिष्ट शक्तियों को समवर्ती सूची में शामिल करके राज्यों को सौंपे गये अधिकार के तुल्य नहीं होगा।

(2) सूची-II

प्रविष्टि I :

3.27 प्रविष्टि I में प्रस्तावित परिवर्तनों की तर्क संगतता सूची I की प्रविष्टि 2-ए पर की गई टिप्पणी में दी गई है।

प्रविष्टि I-ए :

3.28 प्रस्तावित आशोधन सहित यह सूची III की प्रविष्टि 3 को रखने के लिए एक नई प्रविष्टि है। चूंकि लोक व्यवस्था, राज्य का एक विषय है, इसलिए राज्य की सुरक्षा संबंधी कारणों से निवारक निरोध और लोक व्यवस्था बनाए रखना तथा ऐसे निरोध के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति, राज्य का विषय होना चाहिए न कि समवर्ती विषय, जैसा कि इस समय है। समुदाय को पूर्तियां और अनिवार्य सेवाएं बनाए रखने संबंधी कारणों से निरोध नहीं होना चाहिए। जो लोक ऐसी पूर्तियों तथा सेवाओं को खतरे में डालते हैं, उनके विरुद्ध, विधि विशेष का उल्लंघन करने के कारण, कार्यवाही की जा सकती है। इस विषय पर वर्तमान प्रविष्टि में तद्नुसार आशोधन किया गया है।

प्रविष्टि-3 :

3.29 संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976 आपात स्थिति द्वारा उत्पन्न अत्यन्त असाधारण परिस्थिति में पारित किया गया था। यह उस समय व्याप्त केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति की चरम सीमा को प्रदर्शित करता था। यदि इसमें समय पर सुधार न किया गया, तो यह प्रवृत्ति देश की एकता और अखण्डता को खतरे में डाल देगी। विभिन्न सूचियों में उल्लिखित जो प्रविष्टियां 42 वें संशोधन द्वारा की गई थी, उनमें प्रस्तावित परिवर्तन करने के पीछे यही दृष्टिकोण रहा है।

3.30 ऐसा एक परिवर्तन अनुचित रूप से "उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी न्यायालयों की स्थापना और संगठन, न्याय के प्रशासन" को सूची II की प्रविष्टि 3 से सूची III में नई प्रविष्टि II ए-के रूप में अंतरित करना था। यह सुझाव दिया जाता कि यह विषय सूची II की प्रविष्टि 3 में वापस अंतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 6-ए :

3.31 जनसंख्या नियंत्रण तथा परिवार नियोजन, इस समय एक समवर्ती विषय है। 42वें संशोधन ने इसे सूची-III में एक नई प्रविष्टि 20-ए के रूप में जोड़ दिया। इस दिशा में राज्य के कार्यकलाप, केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के अधीन संघ द्वारा प्रोत्साहित और वित्त पोषित किये जाते हैं और अन्य ऐसी योजनाओं की तरह राज्य सरकारों द्वारा लागू किये जाते हैं। इस योजना पर वर्ष-दर-वर्ष केन्द्र द्वारा खर्च की गई बहुत बड़ी रकमों के बावजूद, जनसंख्या नियंत्रण में अभी तक बहुत कम सफलता प्राप्त हुई है। वास्तव में 1970–80 के दौरान दस वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि दर 1960–70 की तुलना में थोड़ी-सी अधिक रही है। यह पहले की 24.8% की तुलना में 25% थी। परिवार नियोजन संबंधी सुविधाएं, स्वास्थ्य सेवाओं का एक अभिन्न अंग होनी चाहिए जो कि राज्य का विषय है। दोनों सुविधाओं के बीच वर्तमान विभाजन उनके पर्याप्त एकीकरण में रूकावट डालता है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित तथा वित्त-पोषण परिवार नियोजन कार्यक्रमों का विभिन्न राज्यों की विशिष्ट परिस्थितियों और उन राज्यों के लोगों के स्वभाव और मनोविज्ञान के साथ उचित समायोजन नहीं होने देता। अत्यधिक विविधता वाले, भारत जैसे विशाल देश में, जनसंख्या नियंत्रण जैसा कार्यक्रम संभवत: एक समान योजनात्मक पद्धति से एक ही मुद्दे को लेकर नहीं चलाया जा सकता क्योंकि ऐसा कार्यक्रम लोगों में जोरदार प्रेरणा उत्पन्न करने और उनकी ओर से उत्साह-वर्द्धक सकारात्मक उत्तर प्राप्त करने पर निर्भर करता है। इसके रवैये तथा तरीकों में लचीलापन अवश्य होना चाहिए। इन्हीं कारणों से जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन को सूची III से सूची II में एक नई प्रविष्टि 6-ए के रूप में अंतरित करने का प्रस्ताव है। इसके अनुरूप केन्द्र से राज्य को संसाधन अंतरित करने की आवश्यकता होगी।

3.32 जन्म तथा मृत्यु के पंजीकरण सहित महत्वपूर्ण सांख्यिकी एक समवर्ती विषय है। यह सुझाव दिया जाता है कि इसे सूची III की प्रविष्टि 30 से निकाल कर सूची II में प्रविष्टि 6-ए के रूप में रख दिया जाए।

प्रविष्टि 7-ए :

3.33 परिवार विधि, इस समय एक समवर्ती विषय है जो इसे वस्तुत: संघ की जिम्मेदारी बना देता है। चूंकि भारत, स्पष्ट रूप धार्मिक, सांस्कृतिक और जातीय विविधताओं वाला देश है, इसलिए एकमात्र रास्ता यह है कि इसे पूर्णतया राज्य का विषय बना दिया जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक राज्य में परिवार विधि में, वहां की जनसंख्या के सभी वर्गों तथा समूहों की परम्पराओं, सांस्कृतिक रीति-रिवाजों, स्वीय विधि तथा आवश्यकताओं को पूरी तरह से ध्यान में रखा गया है। यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि परिवार विधि में सुधार करने की आवश्यकता है, परन्तु यह काम तब आसान हो जाएगा यदि संघ सरकार द्वारा एक समान अखिल भारतीय स्तर पर इसका प्रयास किये जाने की बजाय, राज्य सरकारें, इस कार्य को अपनी जनसंख्या के विभिन्न वर्गों तथा समूहों की चेतना के स्तर और अपेक्षाओं के अनुसार अपने हाथ में लें। अत: सुझाव है कि परिवार विधि को सूची III की प्रविष्टि 5 से निकाल कर नई प्रविष्टि 7-ए के रूप में सूची II में अंतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 8-ए :

3.34 विषैले, घटिया, अपमिश्रित तथा अनावश्यक रूप से विशिष्टीकृत औषधों से कारगर ढंग से निपटने के लिए और मादक औषधों के विस्तार की रोक-थाम करने के लिए, यह सुझाव दिया जाता है कि सूची I (अफीम से संबंधित) की प्रविष्टि 59 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, औषधों तथा विषयों के लिए राज्यों को पूरी जिम्मेदारी सौंपी जाए। ऐसा सूची III की प्रविष्टि 19 के उपबंध को सूची II में नई प्रविष्टि 8-ए के रूप में अंतरित करके किया जा सकता है।

प्रविष्टि 9 :

3.35 मानसिक स्वास्थ्य राज्य का विषय होना चाहिए जैसा कि शारीरिक स्वास्थ्य पहले से ही है। अत: सुझाव है कि समवर्ती सूची की प्रविष्टि 16 के उपबन्ध सूची II में अंतरित कर दिये जाएं और इन्हें नई प्रविष्टि 9-ए के रूप में दिखाया जाए।

प्रविष्टि 9-ए :

3.36 आदिवासी, यायावरी और प्रवासी जनजातियां, स्पष्टतया, एक स्थानीय समस्या हैं। सुझाव है कि सूची III की प्रविष्टि 15 के उपबंध सूची II में स्थानांतरित कर दिए जाए और उन्हें नई प्रविष्टि 9–ए के रूप में दिखाया जाए।

प्रविष्टि 11 :

3.37 शिक्षा को अनुचित रूप से 42वें संशोधन द्वारा सूची II से सूची III में अंतरित किया गया। सुझाव है कि इसे प्रविष्टि II के रूप में सूची II में फिर से

शामिल किया जाए। एक समान आधार पर विभिन्न भारतीय राष्ट्रिकताओं की भाषा, संस्कृति तथा साहित्य तका विकास करने, राज्य-दर राज्य उनकी अपनी परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा में आवश्यक सुधार करने का एकमात्र रास्ता यही है ताकि इसकी गुणवत्ता में सुधार हो और यह उनकी सामाजिक आवश्यकताओं तथा विकास संबंधी लक्ष्यों के अनुरूप हो, और 10 वर्ष से ऊपर की आयु वाले लगभग सभी लोगों को साक्षर बनाया जा सके। शिक्षा को केन्द्रीकृत करने, इसका झुकाव अपेक्षाकृत समृद्ध लोगों की ओर बढ़ाने, सभी राज्यों पर अनुपयोगी एकरूपता थोपने और अल्पसंख्यक राष्ट्रिकताओं तथा समूहों को भाषाओं, साहित्य और संस्कृति के प्रति भेदभाव करने के वर्तमान निष्ठुर अभियान को रोकने की तुरंत आवश्यकता है।

प्रविष्टि 11-ए :

3.38 शिक्षा को सूची II में अन्तरित करने के सुझाव के अनुरूप, यह प्रस्ताव है कि ऐसी संस्थाओं को छोड़कर, जो सूची-I की प्रविष्टि 63, 64 तथा 65 की परिधि में आती हैं, किसी राज्य में स्थित उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का समन्वय और निर्धारण संघ सूची की प्रविष्टि 66 से राज्य सूची में अन्तरित कर दिया जाए और इसे नई प्रविष्टि II-ए के रूप में दिखाया जाए। केन्द्र, वस्तुतः स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में और शिक्षा संरचना के इस खण्ड में भी मानक समन्वित करने में, प्रत्यक्ष रूप से अतिक्रमण करने का प्रयास करता रहा है। हाल ही में घोषित की गई नई शिक्षा नीति में इस अभियान को और तेज करने का प्रस्ताव है। शिक्षा नीति में इस प्रवृत्ति को उलटना जरूरी है।

3.39 यह कल्पना की जाती है कि शिक्षा के संबंध में क्षेत्राधिकार में प्रस्तावित परिवर्तन कर दिए जाने के बाद, इस विषय पर अन्तर्राज्य परिषद् के माध्यम से आवश्यक अन्तर्राज्य समन्वय किया जाए। यह भी कल्पना की जाती है कि केन्द्र उन संस्थाओं के मानक समन्वित और निर्धारित करना जारी रखेगा जो सूची I की प्रविष्टि 63, 64 तथा 65 के उपबन्धों के अधीन उसके क्षेत्राधिकार में ही रहेंगी।

प्रविष्टि 12 :

3.40 जिन पुरातत्वीय स्थलों तथा अवशेषों को संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया गया हो, उनको छोड़कर अन्य पुरातत्वीय स्थल और अवशेष, राज्य का विषय होने चाहिए। तद्-नुसार, इस विषय को सूची III की प्रविष्टि 40 से प्रविष्टि 12 के रूप में सूची II में अंतरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 12-ए :

3.41 देश में अत्यधिक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा संस्थागत विविधता को ध्यान में रखते हुए तथा परोपकारी एवं धर्मार्थ संस्थाओं, परोपकारी तथा धार्मिक स्थायी निधियों और संस्थाओं की बहुत बड़ी और लगातार बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए उचित यही है कि किसी राज्य में उनके कार्य के संबंध में, ये संस्थाएं राज्य के क्षेत्राधिकार में होनी चाहिए। चूंकि इन संस्थाओं को कभी-कभी प्रत्यक्ष नहीं, तो परिवर्तित राजनीतिक भूमिका मिल ही जाती है, इसलिए उस स्थिति में गंभीर अन्तर्राज्यीय उलझनें उत्पन्न हो सकती हैं जब किसी एक राज्य में नियंत्रित तथा प्रबंधित संस्थाएं अन्य राज्यों में कार्य करने लगें और उन राज्यों को वहां उनके कार्य के सम्बन्ध में कोई क्षेत्राधिकार न हो। राज्यों को, वस्तुतः प्रविष्टि 12-ए के अधीन अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना होगा ताकि धर्म की स्वतंत्रता के मूल अधिकारों (अनुच्छेद 25 से 28 के अधीन) तथा सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकारों (अनुच्छेद 29 से 31 के अधीन) का उल्लंघन न हो।

प्रविष्टि 13 :

3.42 प्रविष्टि 13 में प्रस्तावित आशोधनों इनके परिणामस्वरूप है:—(i) सूची I की प्रविष्टि 24, 30 तथा 31 में प्रस्तावित आशोधन, तथा (ii) छोटे पत्तनों, अन्तर्देशीय मार्गों पर यातायात (अन्तर्राज्यिक नदियों के अतिरिक्त) तथा यंत्र नोदित जलयानों को सूची III की प्रविष्टि 31, 32 तथा 35 सूची II में अन्तरण जिसका सुझाव नीचे दिया गया है।

प्रविष्टि 13-ए :

3.43 प्रिंटिंग प्रेस एक उद्योग है। चूंकि ये एक प्रमुख, बुनियादी या सामरिक महत्व का उद्योग नहीं है, इसलिए यह सूची I की प्रविष्टि 52 की प्रस्तावित परिधि से बाहर पड़ता है। इसके लिए उचित स्थान सूची II है।

3.44 समाचार-पत्र और पुस्तकें—सूचना का महत्वपूर्ण साधन हैं। केन्द्र में, सत्तारूढ़ दल तथा हितों का, इन पर एकस्व नियंत्रण कदाचित नहीं होना चाहिए जैसा कि इस समय है, जब यह विषय सूची III में शामिल है। सभी प्रकार की विचारधाराओं तथा राय को प्रकाशित करने तथा प्रेसों की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए, यह सुझाव है कि इस विषय को सूची II में अन्तरित कर दिया जाए और इसे प्रविष्टि 13-ए के रूप में दिखाया जाए। इससे सभी भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों के प्रकाशन के लिए अधिक अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में भी सहायता मिलेगी। राज्य, वस्तुतः ऐसे तरीके से इन विषयों पर अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेंगे जो वाक्-स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य (अनुच्छेद 19 के अधीन) के मूल अधिकार के अनुरूप होगा।

प्रविष्टि 15 :

3.45 यह बात समझ में नहीं आती कि पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण, विषय सूची III में प्रविष्टि 17 के रूप में शामिल करके इस विषय पर केन्द्र का अधिभावी क्षेत्राधिकार क्यों रहने दिया गया है। इस बात में कोई वजन नहीं है कि केन्द्र में सत्ताधारी लोग अन्तर्निष्ठ भाव से मानव या पशुओं के प्रति क्रूरता के बारे में राज्यों में सत्ताधारी लोगों की अपेक्षा अधिक चिंतित होंगे। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अपनी भैंस (दूध के लिए) या अपने गधे से (अधिक रफ्तार या भारी वजन के लिए) अत्यधिक क्रूर व्यवहार करता है, संघ सरकार उससे इतनी दूर है कि वह इन पीड़ितों की सुरक्षा नहीं कर सकती। सामान्य रूप में कृषि और सम्बद्ध कार्यकलापों की तरह पशु सुरक्षा का विषय भी उचित रूप से सूची II ही है। सुझाव दिया गया है कि इसे प्रविष्टि 15 में वृद्धि के रूप में सूची II अन्तरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 17 :

3.46 जल का उपयोग करने के लिए राज्यों को पूर्ण अधिकार देने का तर्काधार पहले ही सूची I की प्रविष्टि 56 के अधीन ऊपर पैरा 3.15 में दिया गया है। अतः सूची I की प्रविष्टि 56 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए शब्द इस प्रविष्टि से हटा दिए जाए।

प्रविष्टि 18 :

3.47 भूधृति का सुधार तथा अभिधारियों की सुरक्षा विषय इन विषयों की महत्ता के कारण राज्य की जिम्मेदारी के रूप में स्पष्ट उल्लेख करना जरूरी है। ऐसा सूची II की प्रविष्टि 18 के नए प्रस्तावित प्रारूप में किया गया है।

प्रविष्टि 19 :

3.48 वन, कृषि से सम्बद्ध विषय हैं। कृषि की तरह यह भी राज्य का विषय होना चाहिए, तब तक यह वस्तुतः राज्य का विषय था जब इसे 42वें संशोधन द्वारा प्रविष्टि 17-ए के रूप में सूची III में अन्तरित कर दिया गया। पिछले 9 वर्षों में ऐसा कुछ भी नहीं देखा गया कि जिसके परिणामस्वरूप वृक्षों की देखभाल, वनों के संरक्षण और विकास के संबंध में बहुत बड़ा सुधार हुआ है। देश में पहले ही अपर्याप्त वनों का लगातार कम होते जाना यथापूर्ववत, गंभीर राष्ट्रीय समस्या बनी हुई है। इसका इलाज, समाधान वनों को समवर्ती सूची में स्थानान्तरित करके नहीं किया जा सकता, अपितु इसके लिए देश की अर्थ व्यवस्था और पारिस्थितिकी में वनों की भूमिका के बारे में लोगों में प्रबल जन चेतना उत्पन्न करने तथा वनों के अनधिकृत प्रयोग के विरुद्ध कारगर उपाय करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, स्वैच्छी श्रमिकों के उपयोग के लिए तथा विशेष रोजगार कार्यक्रमों के अधीन जनशक्ति के लाभकारी नियोजन के लिए वनरोपण अत्यंत उपयुक्त है। उस विषय को प्रविष्टि 19 के रूप में दोबारा सूची II में रखने का प्रस्ताव है।

प्रविष्टि 20 :

3.49 कृषि, वनों और पशुओं की सुरक्षा की तरह वन जीवजन्तुओं और पक्षियों का संरक्षण, उन्हीं कारणों से राज्यों के क्षेत्राधिकार में होना चाहिए। इसे सूची III की प्रविष्टि 17-बी से सूची II की प्रविष्टि 20 में अन्तरित किया जाए।

प्रविष्टि 23–ए :

3.50. सूची II में नई प्रविष्टि के लिए तर्कसंगतता, सूची I की प्रविष्टि 55 पर प्रस्तुत आलेख में दी गई है।

प्रविष्टि 24–ए :

5.51 "श्रमिक-संघ, औद्योगिक और श्रम विवाद" इस समय समवर्ती विषय हैं (प्रविष्टि 22) राज्यों की स्वास्थ श्रमिक-संघ, श्रम विवादों के तुरन्त निपटारे तथा सहकारी औद्योगिक संबंध स्थापित करने के प्रति गहरी रूचि होनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार के वातावरण में सबसे अधिक लाभ उन्ही को होगा। ये विषय पूर्णतया राज्यों को जिम्मेदारी पर होने चाहिए। इससे नई प्रविष्टि 24 के कारण स्पष्ट हो जाते हैं।

प्रविष्टि 24-बी तथा 24-सी :

3.52 श्रम कल्याण, रोजगार तथा बेरोजगारी सामाजिक सुरक्षा और समाज कल्याण का जीवन के स्तर पर सीधे प्रभाव पड़ता है। विभिन्न राज्यों के लिए ये क्षेत्र उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से हैं, जिनमें वे एक दूसरे से स्पर्धा कर सकते हैं। प्रगतिवादी और कुशल राज्य सरकारें अपेक्षाकृत पूर्ण सामाजिक सुरक्षा, बढ़िया रोजगार स्थिति और अपनी जनता के लिए बेहतर समाज कल्याण के लिए अत्यन्त वांछनीय और राजनीतिक दृष्टि से लाभदायक क्षेत्र में अपने बढ़िया कार्य निष्पादन में हुए लाभ का कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहेंगी। यह राज्य सरकारों के लिए अपने कार्यनिष्पादन में सुधार करने के लिए एक बहुत बड़े प्रोत्साहन का काम करेगा। इस समय इन विषयों को समवर्ती सूची (प्रविष्टि 23 तथा 24) में दिखाया गया है। इससे इन विषयों के सम्बन्ध में अधिकांश राज्य कुछ हद तक निम्न स्तर की एकरूपता पर रूके रहते हैं। राज्य सरकारों और उनकी जनता को बेहतर आर्थिक तथा सामाजिक कार्य निष्पादन के लिए अधिक प्रोत्साहित करने की दृष्टि से, इन विषयों को पूर्णतया राज्य की जिम्मेदारी बनाया जाए। केन्द्र द्वारा प्रायोजित रोजगार कार्यक्रम, आज भी इस कार्यक्रम को वित्त पोषित करने के तुलनात्मक योगदान के आधार पर, केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के रूप में राज्यों की एजेन्सी के माध्यम से कार्यान्वित किए जाते हैं। प्रत्येक राज्य की विशिष्ट परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, दीर्घकालिक आधार पर इन कार्यक्रमों की आयोजना तथा कार्यान्वयन में, इस विभाजित उत्तरदायित्व के कारण बाधा उत्पन्न होती है। इन कार्यक्रमों तथा संबद्ध संसाधनों को पूर्णतया राज्यों की जिम्मेदारी में सौंपने से, उनकी प्रभावकारिता तथा प्रासंगिकता में सुधार हो सकता है।

5.53 उपर्युक्त सुझावों को लागू करने के लिए सूची III की प्रविष्टि 23 तथा 24 में शामिल किए गए विषय सूची II में अन्तरित कर दिए जाएं और इन्हें 24 बी तथा 24-सी की नई प्रविष्टियों के रूप में दिखाया जाए। नई प्रविष्टियों की विषयवस्तु में यह माना गया है कि सामाजिक सुरक्षा में सामाजिक बीमा भी शामिल है। प्रविष्टि 24-बी में समाज कल्याण को भी सामाजिक सुरक्षा में जोड़ दिया गया है ताकि इस प्रविष्टि की विषय क्षेत्र और अधिक व्यापक बन जाए।

प्रविष्टि 25–ए :

3.54 विद्युत का सम्पूर्ण क्षेत्र इस समय समवर्ती विषय है। इसका लाभ उठा कर केन्द्र धीरे-धीरे यह क्षेत्र अपने अधिकार में लेता जा रहा है। विद्युत विकास में राज्यों के समक्ष बहुत बड़ी बाधा है क्योंकि उनकी सभी परियोजनाओं के लिए जिनमें छोटी परियोजनाएं भी शामिल हैं, केन्द्र का अनुमोदन प्राप्त करना जरूरी होता है। इस कार्य में कई वर्षों का समय लग जाता है और इससे विकास कार्य में काफी विलम्ब हो जाता है, अधिकांश राज्यों में अलग-अलग मात्रा में बिजली की चिरकालिक कमी का यह एक बहुत बड़ा कारण है। सुझाव है कि इस विषय को दो भागों में बांट दिया जाए। बहूपयोगी केन्द्रों द्वारा विद्युत उत्पादन और उच्च वोल्टता संचारण (110 कि० वो० तथा इससे अधिक) को तो समवर्ती विषय में रहने दिया जाए, किन्तु निम्न वोल्टता संचारण (110 कि० वो० से कम), वितरण तथा ग्राम विद्युतीकरण तथा स्थैतिक विद्युत संयंत्र, को पूर्णतया राज्य का विषय बना दिया जाए। विद्युत विकास का विस्तपोषण समवर्ती विषय होना चाहिए। इन सुझावों को कार्यरूप देने के लिए राज्य सूची में एक नई प्रविष्टि 25-ए जोड़ दी गई है और समवर्ती सूची की प्रविष्टि 39 में समुचित आशोधन कर दिया गया है।

प्रविष्टि 25-बी :

3.55 फैक्टरियां और बायलर इस समय सूची III का विषय है (प्रविष्टि 36 तथा 37) इस सुझाव के अनुरूप कि प्रविष्टि 7 तथा प्रविष्टि 52 के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों के सिवाय अन्य उद्योग, अपने कार्यक्षेत्र की परिकल्पित परिसीमा के साथ (सूची I की इस प्रविष्टि पर दिए गए आलेख के अनुसार) राज्य का विषय होने चाहिए, यह सुझाव दिया जाता है कि फैक्टरियों तथा बायलरों को, सूची II में अन्तरित कर दिया जाए और नई प्रविष्टि 25-बी के अन्तर्गत दिखाई जाए।

प्रविष्टि 26 :

3.56 अन्तर्राज्य व्यापार और वाणिज्य इस समय संघ का विषय है और इसे ऐसे ही रहना चाहिए। परन्तु ऐसा कोई कारण नहीं है कि किसी राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य, पूर्णतया उस राज्य के क्षेत्राधिकार में न हो। इसका एकमात्र उचित अपवाद सूची I की प्रविष्टि 7 की परिधि में आने वाली रक्षा निविष्टियां और युद्ध उद्योग हो सकते हैं। इन निविष्टियों के व्यापार तथा वाणिज्य को समवर्ती सूची में रखा जाए ताकि उत्पादन यूनिटों को इनकी लगातार पूर्ति सुनिश्चित की जा सके। परन्तु राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य की जो मदें इस समय प्रविष्टि 33 के अधीन समवर्ती सूची में आती है, उनके अन्तर्गत बहुत बड़ा क्षेत्र आ जाता है अर्थात (क) इस समय प्रविष्टि 52 के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले किसी उद्योग के उत्पाद और ऐसे ही उत्पादों के रूप में उसी प्रकार की आयातित वस्तुएं (ख) खाद्य तेलों तथा तिलहनों सहित खाद्य पदार्थ (ग) खलियों तथा अन्य सान्द्रों सहित पशुचारा, (घ) बिनौला रहित या बिनौला युक्त कपास और बिनौले तथा (ङ) कच्ची पटसन। ऐसा कोई तर्कपूर्ण कारण नहीं है कि इन मदों का राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य पूर्णतया राज्य के क्षेत्राधिकार में नहीं हो। सूची II की प्रविष्टि 20 में तदनुसार आशोधन कर दिया गया है और सूची III की प्रविष्टि 33 निकाल दी गई है।

प्रविष्टि 26-ए :

3.57 जैसा कि सूची I की प्रविष्टि 53 पर दिए गए आलेख में स्पष्ट किया गया है, पैट्रोलियम उत्पादों तथा एल० पी० जी० का खुदरा विपणन पूर्णतया राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार में होना चाहिए। इसकी व्यवस्था करने के लिए सूची II में एक नई प्रविष्टि 26-ए जोड़ी गई है। इस प्रविष्टि में सूची I की प्रविष्टि 53 से अन्तरित, खतरनाक घोषित ज्वलनशील द्रव्यों तथा पदार्थों को भी ले लिया गया है।

प्रविष्टि 26-बी :

3.58 बाटों और मापों के मानक नियत करना, सूची I में रखना ठीक है। संविधान तैयार करते समय ऐसा करना विशेष रूप से आवश्यक था ताकि समूचे देश में एक समान बाट और माप आसानी से लागू किए जा सकें और इस संबंध में उस समय चल रही विविधता को समाप्त किया जा सके। पूरे देश में बाटों तथा मापों की एक समान मापीय प्रणाली की शुरुआत करना स्वतन्त्रता के बाद की अवधि में एक बड़ा आर्थिक सुधार है। परन्तु इसका कोई कारण नहीं कि बाटों तथा मापों के प्रवर्तन को समवर्ती सूची में रखा जाए और इसे राज्य की पूर्ण जिम्मेदारी न बनाया जाय। अतः यह सुझाव दिया गया है कि "मानक नियत करने के अलावा बाट और माप विषय" सूची III की प्रविष्टि 33-ए से एक अतिरिक्त प्रविष्टि 26-बी के रूप में सूची II अन्तरित कर दिया जाए।

प्रविष्टि 27 :

3.59. प्रस्ताव है कि अधिप्राप्ति को शामिल करने के लिए सूची IIकी प्रविष्टि 27 का विषय-क्षेत्र बढ़ा दिया जाए। इसके अतिरिक्त यह सुझाव है कि सूची IIIप्रविष्टि 33 में उल्लिखित मदों का उत्पादन, पूर्ति और वितरण भी सूची IIकी प्रविष्टि 27 से "सूची III की प्रविष्टि 33 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए" शब्दो को निकाल कर इसी प्रविष्टि के विषय -क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जाए। परन्तु सूची-I की प्रविष्टि 7 के विषय-क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों के उत्पादों को बाहर रखने के लिए सूचीII की प्रविष्टि 27 का विषय-क्षेत्र सिमित कर दिया गया है। प्रविष्टि 27 में तदनुसार आशोधन किया गया है।

प्रविष्टि 28 :

3.60. चूंकि वायदा सट्टा बाजारों को राज्यों की परिधि में लाने का सुझाव दिया गया है (सूची I की प्रविष्टि 48 पर आलेख द्वारा) इस लिए इन बाजारों को शामिल करने के लिए सूची II की प्रविष्टि 28 का विषय-क्षेत्र बढ़ा दिया गया है।

प्रविष्टि 28-ए :

3.61. चूंकि यह परिकल्पित किया गया है कि राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य पर पूर्णतया राज्यों का नियंत्रण हो, इसलिए सूची III की प्रविष्टि 18 को काटकर और सूची II में तदनुरूपी नई प्रविष्टि 28-ए अन्तर्विष्ट करके खाद्य पदार्थों तथा अन्य वस्तुओं में मिलावट का विषय भी उनके पूर्ण क्षेत्राधिकार में रखा जाना चाहिए।

प्रविष्टि 33 :

3.62. किसी राज्य में चल चित्रों के प्रदर्शन की मंजूरी प्रदान करना, पूर्णतया उस राज्य के क्षेत्राधिकार में सौंपने (सूची I की प्रविष्टि 60 पर आलेख द्वारा) का सुझाव दिया गया है। ऐसा इसलिए आवश्ययश्क समझा गया है ताकि प्रत्यक राज्य अपने राज्य के लोगों की गरमा और अलग संस्कृति को अन्य भारतीय राष्ट्रिकताओं, धार्मिक समुदायों, जातीय समूहों और विदेशी संस्कृतियों तथा राष्ट्रों की उग्र राष्ट्रीयता तथा सास्कृतिक रूप से हावी होने से बचा सके।

प्रविष्टि 34-ए :

3.63. जैसा कि सूची I की प्रविष्टि 40 पर आलेख में बताया गया है, राज्यों को अपने द्वारा संचालित लाटरियों पर अधिकारिता होनी चाहिए। सूची II में एक नई प्रविष्टि 34-ए जोड़ कर इसके लिए उपबन्ध किया गया है।

प्रविष्टि 36 :

3.64. जैसा कि सूची I की प्रविष्टि 40 के आलेख में बताया गया है, यह सुझाव दिया जाता है कि राज्यों को अपने प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति के अर्जन तथा अधिग्रहण के सम्बन्ध में अधिकारिता होनी चाहिए। इसके लिए व्यवस्था करने की दृष्टि से सूची IIमें एक नई प्रविष्टि 36 जोड़ी गई है जबकि सूची III की प्रविष्टि 32 हटा दी गई है।

प्रविष्टि 37 :

3.65. इस समय, यंत्र चालित वाहनों पर कर लगाना, राज्य का विषय है (प्रविष्टि 57) जिन सिद्धान्तों पर ऐसे कर लगाए जाएंग, उन्हें निर्धारित करने की अधिकारिता समवर्ती सूची में उल्लिखित है (प्रविष्टि 35)। राज्यों पर लगाए गए इस प्रतिबन्ध को, हटाया जाना चाहिए। यंत्र चालित वाहनों पर कर लगाना तथा जिन सिद्धान्तों पर ये कर लगाए जाएंग्रे, ये दोनों विषय राज्यों को अधिकारिता में होने चाहिए। इसकी व्यवस्था करने के लिए प्रविष्टि 57 का विस्तार क्षेत्र बढ़ा दिया गया है, इसके साथ ही सूचीIII की प्रविष्टि 35 को हटाने का प्रस्ताव किया गया है। जिन सिद्धान्तों पर ये कर लगाए जाएंगे, उनके संबंध में किसी भी प्रकार का अन्तर-राज्यीय समन्वय अन्तर्राज्य परिषद् के माध्यम से किया जाना चाहिए।

प्रविष्टि 63-ए :

3.66. चूंकि प्रस्ताव किया गया है कि वायदा सट्टा बाजार, राज्य के कार्य क्षेत्र में होने चाहिए. इसलिए वायदा सट्टा बाजार में लेन-देनों पर स्टाम्प शुल्कों के सिवाय अन्य कर भी राज्य सूची में होने चाहिए। इसी लिए नई प्रविष्टि 83-ए जोड़ी गई है।

प्रविष्टि 64-ए :

3.67. सूची II तथा सूची III में निर्दिष्ट किसी भी प्रयोजन के लिए जांच और आंकड़ इस समय सूची IIIमें हैं (प्रविष्टि 45)। इसमें कोई औचित्य नहीं कि सूची II में निर्दिष्ट किसी भी विषय के प्रयोजन के लिए जांच और आंकड़े समवर्ती सूची में हों इन्हें सूची II में शामिल करने की आवश्यकता है। सूची II में नयो प्रविष्टि 64-ए जोड़कर इसकी व्यवहस्था की गई है। इसी के साथ यह भी प्रस्ताव है कि सूची III की प्रविष्टि 45 का विषय-क्षत्र सूची III में निर्दिष्ट किसी भी विषय पर जांच और आंकड़ तक सीमित किया जाए।

प्रविष्टि 67 :

3.68. जैसा कि सूची I की प्रविष्टि 76 के आलेख में बताया गया है, राज्यों के लेखाओं की लेखापरीक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं राज्यों का होना चाहिए न कि संघ का। नई प्रविष्टि 67 में इसकी व्यवस्था की गई है।

(3) सूची III

3.69. सूची III में दिए गए अधिकांश विषयों को सूची II में अन्तरित करने का सुझाव दिया गया है। कुछ प्रविष्टियों को आशोधित करने का प्रस्ताव है। एक प्रविष्टि को बिल्कुल हटाने का प्रस्ताव दिया गया है। दो प्रविष्टियों में, विषय का विस्तार क्षेत्र बढ़ाने का सुझाव है। चार नई प्रविष्टियों का प्रस्ताव है (25-ए, 32-ए, 32-बी तथा 48)। प्रस्तावित परिवतनों के बाद, समवर्ती सूची में केवल निम्नलिखित प्रविष्टियां रहेंगी :—

1, 2, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 20, 21, 25-ए, 26, 27, (आशोधित), 29. 32-ए, 32-बी, 34, 38, 41, 43, 44, 45, 46, 47 तथा 48.

विषयों के अन्तरण/आशोधन की तर्कसंगतता

3.70. विषयों को सूची IIIसे अन्य सूचियों में अन्तरित करने और इनमें किए गए किन्हीं आशोधनों की तर्कसंगतता इन सूचियों के आलेख में दी गयी है। सूची तथा तदनुरूपी प्रविष्टि संख्या नीचे दी गई है :—

सूची III की प्रविष्टियां जिन्हें आशोधन सहित या आशोधन के बगैर पूर्णतया या अंशत: अन्तरित करने का प्रस्ताव है	प्रस्तावित परिवर्तनों की तर्कसंगतता के लिए आलेख का सन्दर्भ	
1	2	3
	सूची	प्रविष्टि
3	II	1-ए
5	II	7-ए
15	II	9-ए
16	II	9
17, 17-ए, 17-बी	II	15
18	II	28-ए
19	II	8-ए
20-ए	II	6-ए
22	II	24-ए
23	II	24-बी

1	2	3
24	11	24-सी
25	11	11
28	11	12-ए
30	11	6-ए
31	11	13
32	11	13
33	11	26, 27
33-ए	11	26-बी
35	11	13, 57
36, 37	11	25-बी
38	11	25-ए
39	11	13-ए
40	11	12
42	11	36
45	11	64-ए

प्रविष्टियां हटाने की तर्कसंगतता

प्रविष्टि 4 :

3.71 निवारण निरोध को सूची II की प्रविष्टि 1-ए में अन्तरित करने का सुझाव है। इसके बाद बंदियों को हटाने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। बंदी, उसी राज्य में रहेंगे जो उन्हें निरोध में रखेगा। सूची III की प्रविष्टि 4, जिसमें बंदियों के एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण का प्रावधान है, को हटाने का प्रस्ताव है।

विस्तार/परिवर्द्धन की तर्कसंगतता

प्रविष्टि 25—ए :

3.72 सूची I की प्रविष्टि 31 से अन्तरित प्रसारण तथा दूरदर्शन को शामिल करने के लिए एक नई प्रविष्टि 25-ए जोड़ी गई है। इस स्थानान्तरण की तर्कसंगतता बाद की प्रविष्टि (पैरा 3.7) के अधीन आलेख में दी गई है।

प्रविष्टि 27 :

3.73 विदेशों से उनके क्षेत्रों से, राज्यों से और संघ राज्य क्षेत्रों से अपने मूल निवास स्थान से विस्थापित लोगों को शामिल करने के लिए प्रविष्टि 27 का विस्तार-क्षेत्र व्यापक बनाने के लिए इस प्रविष्टि में संशोधन किया गया है। इस समय प्रविष्टि 27 के अन्तर्गत केवल पाकिस्तान से आए विस्थापित लोग आते हैं।

प्रविष्टि 32—ए :

3.74 सूची I की प्रविष्टि 45 से अन्तरित बैंककारी को शामिल करने के लिए एक नई प्रविष्टि 32-ए जोड़ी गई है। इस परिवर्तन की तर्कसंगतता बाद की प्रविष्टि के आलेख में दी गई है।

प्रविष्टि 32—बी :

3.75 नई प्रविष्टि 32-बी में, सूची I की प्रविष्टि 53 से अन्तरित पैट्रोलियम उत्पादों और एल० पी० जी० को शामिल किया गया है। इस विषय को समवर्ती सूची में शामिल करने की तर्कसंगतता बाद की प्रविष्टि के आलेख में दी गई है।

प्रविष्टि 48 :

3.76 यह एक नई प्रविष्टि है जो अवशिष्ट शक्तियों को संघ सूची से समवर्ती सूची में अन्तरित करती है। इस परिवर्तन की तर्कसंगतता सूची I की प्रविष्टि 97 के आलेख में दी गयी है।

अनुबंध I

सूची I के प्रस्तावित संशोधन (संघ सूची)

प्रस्तावित विलोपन को रेखांकित किया गया है		प्रस्तावित प्रतिस्थापन/परिवर्द्धन रेखांकित किया गया है	
1		2	
2—ए.	किसी राज्य में सिविल सत्ता की सहायता के लिए संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के नियंत्रणाधीन किसी अन्य बल या उसके दस्ते या यूनिट की तैनाती, ऐसी तैनाती पर रहते हुए ऐसे बलों के सदस्यों की शक्तियां, अधिकारिता विशेषाधिकार और दायित्व।	2—ए.	किसी राज्य में उस राज्य के अनुरोध पर या सहमति से सिविल सत्ता की सहायता के लिए संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के नियंत्रणाधीन किसी अन्य बल या उसके दस्ते या यूनिट की तैनाती : एसी तैनाती की शर्तों और निर्बंधनों का निर्धारण अन्तर्राज्यीय परिषद् की सहमती से सभी राज्यों पर लागू होगा।
24.	संसद द्वारा विधि के अधीन राष्ट्रीय जल मार्गों के रूप में घोषित किए गए अन्तर्देशीय जल मार्गों पर पोत परिवहन और नौ परिवहन, यंत्रनोदित पोतों के संबध में एसे जल मार्गों पर सड़क का नियम।	24.	यंत्रनोदित पोतो के संबध में अन्तर्राज्यिक नदियों में पोत परिवहन और नौ परिवहन, ऐसी नदियों पर सड़कों का नियम।
30.	रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा अथवा यंत्र नोदित जलयानों में राष्ट्रीय जलमार्गों द्वारा यात्रियों और माल का वहन।	30.	रेल, समुद्र या वायु मार्ग द्वारा यंत्रनोदित जलयानो का पा[illegible] द्वारा अन्तरराज्यिक नदियों में यात्रियों या माल का वहन।
31.	डाक-तार, टेलीफोन, बेतार, प्रसारण और इसी प्रकार के संचार।	31.	डाक-तार, बेतार तथा समुद्र पार संचार।
40.	भारत सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा संचालित लाटरियां।	40.	भारत सरकार द्वारा संचालित लाटरियां।
45.	बैंककारी	45.	* * *
48.	स्टॉक एक्सचेंज और वायदा सट्टा बाजार	48.	स्टॉक एक्सचेंज
52.	उद्योग, जिनका संघ द्वारा नियंत्रण संसद ने विधि द्वारा लोक हित में समीचीन घोषित किया गया हो।	52.	इस (संघ) सूची के परिशिष्ट "ए" में विनिर्दिष्ट प्रमुख, बुनियादी और सामरिक महत्व के उद्योग।

	1		2
53.	तेल क्षेत्रों और खनिज तेल सम्पदा का विनिमन और विकास, पैट्रोलियम उत्पाद, अन्य द्रव्य और पदार्थ जिनके विषय में संसद ने विधि द्वारा घोषणा की है कि वे खतरनाक रूप से ज्वलनशील हैं।	53.	पैट्रोलियम, तेल और गैस की खोज, निष्कर्षण परिवहन तथा विपणन, पैट्रोलियम रिफाइनरियां तथा गैस तैयार करने के यूनिट ।
54.	उस सीमा तक खानों का विनियमन और खनिजों का विकास जिस तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद, विधि द्वारा, लोकहित में समीचीन घोषित करे।	54.	खानों का विनियमन और इस (संघ) सूची के परिशिष्ट "बी" में खनिजों का उस सीमा तक विकास जिस सीमा तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद, विधि द्वारा लोकहित में समीचीन घोषित करे।
55.	खानों और तेल क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन	55.	(प्रविष्टि 54 के उपबन्धों के अधीन संघ के क्षेत्राधिकार में) खानों और तेल क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन।
56.	उस सीमा तक अन्तरराज्यिक नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास जिस सीमा तक संघ के नियंत्रण के अधीन ऐसे विनियमन और विकास को संसद, विधि द्वारा लोकहित में समीचीन घोषित करे।	56.	* * *
60.	प्रदर्शन के लिए चलचित्रों की मंजूरी	60.	* * *
62.	इस संविधान के प्रारम्भ में राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, इम्पीरियम, युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक और भारतीय युद्ध स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं और भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्त पोषित और संसद द्वारा विधि के तहत, राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई संस्था और वैसी ही कोई अन्य संस्था।	62.	इस संविधान के प्रारम्भ में राष्ट्रीय पुस्तकालय, भारतीय संग्रहालय, इम्पीरियम, युद्ध संग्रहालय, विक्टोरिया स्मारक और भारतीय युद्ध स्मारक नामों से ज्ञात संस्थाएं और भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या कम से कम 75 प्रतिशत की सीमा तक वित्तपोषित और संसद द्वारा, विधि के तहत, राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई संस्था और वैसी ही कोई अन्य संस्था ।
63.	इस संविधान के प्रारम्भ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के नाम से ज्ञात संस्थाएं; अनुच्छेद 371-ई के अनुसरण में स्थापित विश्वविद्यालय; संसद द्वारा, विधि द्वारा, राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई कोई अन्य संस्था ।	63.	इस संविधान के प्रारम्भ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से ज्ञात संस्थाएं अनुच्छेद 371-ई के अनुसरण में स्थापित विश्वविद्यालय ।
64.	भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या अंशत: वित्तपोषित और संसद द्वारा, विधि के तहत, राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्थाएं।	64.	भारत सरकार द्वारा पूर्णतत: या कम से कम पच्चतर प्रतिशत सीमा तक वित्तपोषित और संसद द्वारा, विधि के तहत, राष्ट्रीय महत्व की घोषित की गई वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा संस्थाएं ।
66.	उच्चतर शिक्षा का अनुसंधान संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थाओं में मानकों का समन्वय और अवधारण ।	66.	भारत सरकार द्वारा पूर्णत: या कम से कम पच्चतर प्रतिशत सीमा तक वित्तपोषित और विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित उच्चतर शिक्षा की अनुसंधान संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक और तकनिकी संस्थाओं में मानको का समन्वय और अवधारण ।
76.	संघ और राज्यों के लेखाओं की लेखा परीक्षा	76.	संघ के लेखाओं की लेखा परीक्षा
84.	भारत में विनिर्मित या उत्पादित तम्बाकू और अन्य माल पर उत्पाद-शुल्क जिसके अन्तर्गत— (क) मानवीय उपभोग के लिए एल्कोहाली लीकर, (ख) अफीम, इण्डियन हैम्प और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक; पदार्थ नहीं आते, किन्तु ऐसी औषधीय और प्रसाधन निर्मितियां शामिल हैं जिनमें एल्कोहल या इस प्रविष्टि के उपपैरा (ख) में अन्तर्विष्ट कोई पदार्थ।	84.	भारत में विनिर्मित या उत्पादित और अन्य माल पर उत्पाद शुल्क, जिसके अन्तर्गत— (क) मानवीय उपभोग के लिए एल्कोहाली लिकर (ख) अफीम, इंडियन हैम्प और अन्य स्वापक औषधियां तथा स्वापक पदार्थ, (ग) संसद द्वारा विधि के तहत परिभाषित लघु उद्योग नहीं आते किन्तु ऐसी औषधीय और प्रसाधन निर्मितियां शामिल हैं, जिनमें एल्कोहोल या इस प्रविष्टि के उप-पैरा (ख) में अन्तर्विष्ट कोई पदार्थ।
90.	स्टॉक एक्सचेंजों और वायदा सट्टा बाजारों के संव्यवहारों से भिन्न कर।	90.	स्टॉक एक्सचेंजों के संव्यवहारों से भिन्न कर।
97.	कोई अन्य विषय जो सूची 2 या सूची 3 में शामिल नहीं है जिसमें कोई ऐसा कर भी आ जाता है जिसका इन में से किसी भी सूची में उल्लेख न किया गया हो।	97.	* * *

सूची I

(संदर्भ प्रविष्टि 52)

1. लोह और अलोह धातु (कच्चा लोहा, स्पंज लोहा, इस्पात, एल्यूमिनियम, ताम्बा, जस्ता और सीसा)।
2. सीमेंट।
3. अखबारी कागज।
4. पैट्रोलियम परिशोधन और प्राकृतिक गैस संसाधन।
5. नाइट्रोजन युक्त उर्वरक।
6. पैट्रो-रासायनिक आधार सामग्रियां तथा माध्यम।
7. थोक औषधियां।
8. इस्पात और जल टरबाइन।
9. पावर बॉयलर।
10. ट्रांसफार्मर (33 के०वी०ए० और अधिक)।
11. लोकोमोटिव।
12. माल डिब्बे और यात्री डिब्बे।
13. पोत तेल टैंकर और 10,000 टन डी० डब्ल्यू० टी० के ऊपर के माल वाहक जहाज।
14. संचार उपस्कर।
15. रक्षा शस्त्र और सामग्रियां।
16. परमाणु ऊर्जा सामग्रियां और उपस्कर।

सूची I परिशिष्ट (ख)

(संदर्भ प्रविष्टि 54)

1. कोयला और भरा कोयला।
2. पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस।
3. परमाणु ऊर्जा खनिज।
4. लोह और अलोह धातु अयस्क।
5. चूना पत्थर।
6. डोलोमाइट।
7. अभ्रक।
8. हीरे पन्ना तामड़ा, रूबी, सेफायर, पुखराज, एक्वेरमेनाइन आदि जैसे रत्न पदार्थ।
9. उर्वरक खनिज जैसे कि रॉक फॉस्फट, जिप्सम, एपीटाइट आदि।
10. मूल्यवान धातु जैसा कि सोना, प्लेटिनम आदि।
11. तापसह, रंगरोगन और रंगद्रव्य खनिज, अर्थात पाइराइट, रैडोनरै पीला गेरू, एस्बेस्टोस, सेलेस्टाइट, इलमेनाइट, मैग्निमाइट, क्टाइल, साबुन पत्थर/स्टीटाइट, बेरमी, कलाइट, जिरकॉन आदि।
12. मूल धातु अर्थात् टिन, टंगस्टन आदि।
13. अन्य औद्योगिक खनिज अर्थात् बेन्टोनाइट, बोरेक्स, डायस्पोर, फ्लोराइट, बोलेस्टोनाइट आदि।
14. निर्माण और सजावटी पत्थर अर्थात ग्रेनाइट और मिग्नेटोटाइटिक नेजिस, बुनियादी बांध, मार्बल आदि।
15. मृत्तिका कच्चा माल अर्थात् गोल मिट्टी, चीनी मिट्टी, फेलस्पार आदि।

अनुबंध II

सूची II में प्रस्तावित आशोधन

(राज्य सूची)

प्रस्तावित विलोपन रेखांकित है	प्रस्तावित प्रतिस्थान/परिवर्धन रेखांकित है
(1)	(2)
1. लोक व्यवस्था (किन्तु इसके अन्तर्गत सिविल सत्ता की सहायता के लिए नौसेना या वायु सेना या संघ के किसी अन्य सशस्त्र बल का या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल का या उसकी किसी टुकड़ी या यूनिट का प्रयोग शामिल नहीं है।	1. सूची I की प्रविष्टि 2-ए के अधीन रहते हुए लोक व्यवस्था ।
1-ए. * * *	1-ए. राज्य की सुरक्षा और लोक व्यवस्था बनाए रखने संबंधी कारणों से निवारक निरोध : एसे निरोध में आने वाले व्यक्ति ।
3. उच्च न्यायालय के अधिकारी और कर्मचारी, भाटक और राजस्व न्यायालयों की प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सभी न्यायालयों में ली जाने वाली फीस।	3. न्याय का प्रशासन, सभी न्यायालयों का संवैधानिक संगठन, सिवाए उच्चतम न्यायालयों और उच्च न्यायालयों के अधिकारियों और उच्च न्यायालय के कर्मचारियों के, राजस्व न्यायालयों में भाटक की प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय के सिवाय सभी न्यायालयों में ली जाने वाली फीस ।
6-ए. * * *	6-ए. जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन : जन्म और मृत्यु के पंजीकरण सहित महत्वपूर्ण आंकड़ ।
7-ए. * * *	7-ए. विवाह और विवाह-विच्छेद, शिशु और अवयस्क, दत्तक ग्रहण, बिल, निर्वसीयत्ता और उत्तराधिकार, अविभक्त कुटुंब और विभाजन, ये सभी विषय जिनके सम्बन्ध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्षकार, इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले अपनी स्वीय विधि के अधीन थे ।
8-ए. * * *	8-ए. औषधियां और विष, अफीम के संबंध में सूची I की प्रविष्टि 59 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।
9. अशक्त और अनियोज्य व्यक्तियों को राहत ।	9. अशक्त और अनियोज्य व्यक्तियों को राहत: पागलपन और मानसिक हीनता जिसके अन्तर्गत पागलों और मानसिक रूप से हीन व्यक्तियों को ग्रहण करने या उनका उपचार करने के स्थान हैं ।
9-ए. * * *	9-ए. आहिण्डन, यायावरी और प्रवासी जन जातियां ।
11. * * *	11. शिक्षा, जिसमें तकनीकी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा और विश्वविद्यालय शामिल है किन्तु सूची I की प्रविष्टि 63, 64 और 65 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, श्रमिकों की व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा।
11-ए. * * *	11-ए. सूची I की प्रविष्टि 66 के अधीन रहते हुए राज्य में स्थित उच्चतर शिक्षा के लिए संस्थानों या अनुसंधान तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थानों मे मानकों का समन्वय और अवधारण ।
12. राज्य द्वारा नियंत्रित या वित्तपोषित पुस्तकालय, संग्रहलय या वैसी ही अन्य संस्थाएं, संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित किए गए प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारकों और अभिलेखों से भिन्न प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक और अभिलेख ।	12. संसद द्वारा नियंत्रित या वित्तपोषित पुस्तकालय, संग्रहालय या वैसी ही अन्य संस्थाएं, संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित किए गए प्राचीन और एतिहासिक संस्मारकों से भिन्न प्राचीन और एतिहासिक संस्मारक और अभिलेख तथा पुरातत्वीय स्थल एवं अवशेष ।
12-ए. * * *	12-ए. परोपकारी और धर्मार्थ संस्थान, धर्मार्थ और धार्मिक स्थायी निधियां तथा धार्मिक संस्थान ।
13. संचार साधन अर्थात् सड़के, पुल, फैरी और अन्य संचार साधन जो सूची I में विनिर्दिष्ट नहीं हैं, नगरपालिका ट्राम, रज्जुमार्ग, अन्तर्देशीय जलमार्गों के संबंध में सूची I और सूची 3 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, अन्तर्देशीय जलमार्ग और उन पर यातायात, यंत्र नोदित यानों से भिन्न यान।	13. संचार साधन, अर्थात् सड़कें, पुल फैरी और अन्य संचार साधन जो सूची I और III में विनिर्दिष्ट नहीं हैं, नगरपालिका ट्राम, रज्जुमार्ग, अन्तर्देशीय जलमार्गों और अन्तर्राज्यिक नदियों के संबंध में सूची I की प्रविष्टि 24 तथा 30 के अधीन रहते हुए उन पर नौ परिवहन और यातायात, यंत्र नोदित यानों सहित अन्य वाहन, सूची I की प्रविष्टि 27 के अधीन रहते हुए पत्तन ।

(1)		(2)	
13-ए	* * *	13.-ए	समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय
15.	पशुधन का परिरक्षण, संरक्षण और सुधार तथा जीव जंतुओं के रोगों का निवारण पशु चिकित्सा प्रशिक्षण और व्यवसाय।	15.	पशुधन का परिरक्षण, संरक्षण और सुधार तथा जीव जंतुओं के रोगों का निवारण पशु चिकित्सा प्रशिक्षण और व्यवसाय:—पशुओं के प्रति क्रूरता को रोकना।
17.	सूची I की प्रविष्टि 56 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, जल अर्थात् जल प्रदाय, सिंचाई और नहरें, जल निकास और जल शक्ति।	17.	जल अर्थात् जल प्रदाय, सिंचाई और नहरे, जल निकास और तटबंध, जल भण्डारण और जलशक्ति।
18.	भूमि अर्थात् भूमि में या उस पर अधिकार, भूधृति जिसके अन्तर्गत भू-स्वामी और अभिधारियों का संबंध है और भाटक का संग्रहण कृषि भूमि का अन्तरण और अन्य संक्रामण, भूमि विकास और कृषि ऋण उप-निवेशन।	18.	भूमि अर्थात् भूमि में या उस पर अधिकार, भूधृति और उसमे सुधार भू-स्वामी और अभिधारियों का संबंध, भाटक का संग्रहण, तथा अभिधारियों की सुरक्षा : कृषि भूमि का अन्तरण और अन्य संक्रामण, भूमि विकास और कृषि ऋण और उप निवेशीकरण।
19.	* * * * *	19.	वन।
20.	* * * * *	20	वन्य प्राणियों और पक्षियों की सुरक्षा।
23-ए	* * * * *	23-ए	सूची I की प्रविष्टि 55 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए खानों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन।
24-ए	* * * * *	24-ए	व्यापारसंघ, औद्योगिक और श्रम विवाद।
24-बी.	* * * *	24-बी.	सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, रोजगार और बेरोजगारी।
24-सी	* * * * *	24-सी.	श्रम कल्याण, जिसमें काम की परिस्थितियां, भविष्य निधियां, नियोक्ता का दायित्व, कामगार मुआवजा, अशक्तता और वृद्ध आयु पेंशन और प्रसूति लाभ शामिल हैं।
25-ए	* * * *	25-ए	बिजली का संचारण (110 के० वी०) से कम और वितरण, ग्रामीण विद्युतीकरण अधीनस्थ पावर संयन्त्र।
25-बी	* * * *	25-बी.	फैक्टरियां, बॉयलर
26.	सूची III की प्रविष्टि 33 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए राज्य के भीतर व्यापार और वाणिज्य।	26.	सूची I की प्रविष्टि 7 के कार्यक्षेत्र मे आने वाले किसी उद्योग की निर्विष्टियों में व्यापार और वाणिज्य तथा ऐसी निर्विष्टियों के रूप में इसी प्रकार की आयातित वस्तुओं से भिन्न निविष्टियों में राज्य से भिन्न व्यापार और वाणिज्य।
26-ए	* * * *	26-ए.	पैट्रोलियम उत्पादों और एल० पी० जी० तथा खतरनाक ज्वलनशील घोषित किए गए द्रव्यों और पदार्थों का खुदरा विपणन।
26-बी.	* * * *	26-बी.	मानकों के अवधारण को छोड़कर बाट और माप।
27.	सूची 3 की प्रविष्टि 33 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए माल का उत्पादन, पूर्ति और वितरण।	27.	सूची I की प्रविष्टि 7 के विस्तार क्षेत्र मे आने वाले किसी उद्योग के उत्पादों के उत्पादन, वसूली, पूर्ति और वितरण के अतिरिक्त तथा ऐसे उत्पादों के रूप में किसी प्रकार की आयातित वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य माल का उत्पादन, वसूली पूर्ति और वितरण।
28.	बाजार और मेले	28.	वायदा सट्टा बाजारों सहित व्यापार और मेले।
28-ए	* * * *	28-ए.	खाद्य पदार्थों और अन्य वस्तुओं का अपमिश्रण।
33.	नाट्यशाला और नाट्य प्रदर्शन, अनुसूची I की प्रविष्टि 60 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए सिनेमा, खेल-कूद मनोरंजन और आमोद-प्रमोद।	33.	नाट्यशाला और नाट्य प्रदर्शन, सिनेमा प्रदर्शन के लिए चलचित्र खेलों की मंजूरी, खेलकूद, मनोरंजन और आमोद-प्रमोद।
34-ए	* * * *	34-ए.	राज्य सरकारों द्वारा संचालित लाटरियां।
36.	* * * *	36.	संघ के प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनो के लिए सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण।
57.	सूची III की प्रविष्टि के 35 उपबन्धों के अधीन रहते हुए, सड़कों पर चलाने योग्य यानों पर कर, चाहे वे यंत्र नोदित हो या नहीं, जिनके अन्तर्गत ट्रामकारें भी हैं।	57.	सड़कों पर चलाने योग्य यानों पर कर, चाहे यंत्र नोदित हों या नहीं जिनके अन्तर्गत ट्राम कारें भी हैं; सिद्धांत जिनके आधार पर ऐसे यानों पर कर लगाए जाएंगे।
63-ए.	* * * *	63-ए.	वायदा सट्टा बाजारों में संव्यवहारों पर स्टाम्प शुल्क से भिन्न कर।

(1)	(2)
64,ए. * * * *	64-ए. सूची II में निर्दिष्ट किसी विषय के प्रयोजन से जांच और आंकड़े ।
67. * * * *	67. राज्यों के लेखों की लेखापरीक्षा ।

अनुबंध III

सूची III में प्रस्तावित आशोधन

(समवर्ती सूची)

प्रस्तावित विलोपन रेखांकित है		प्रस्तावित प्रतिस्थापना/परिवर्धन रेखांकित हैं
(1)		(2)
3. किसी राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों और सेवाओं को बनाए रखने सम्बन्धी कारणों से निवारक निरोध, इस प्रकार निरोध में रखे गए व्यक्ति ।	3.	* * * *
4. बन्दियों, अभियुक्त व्यक्तियों और इस सूची की प्रविष्टि 3 में विनिर्दिष्ट कारणों से निवारक निरोध में रखे गए व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना ।	4.	* * * *
5. विवाह और विवाह विच्छेद, शिशु और अवयस्क, दत्तक ग्रहण, विल, निर्वसीयतता और उत्तराधिकार, अविभक्त कुटुम्ब और विभाजन वे सभी विषय जिनके सम्बन्ध में न्यायिक कार्यवाहियों में पक्षकार इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले अपनी स्वीय विधि के अधीन थे ।	5.	* * * *
11-ए. न्याय प्रशासन, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों का गठन और संगठन ।	11-ए.	* * * *
15. आहिण्डन : यायावरी और प्रवासी जनजातियां ।	15.	* * * *
16. पागलपन और मानसिकहीनता, जिसके अन्तर्गत पागलों और मानसिक रूप से हीन व्यक्तियों को ग्रहण करने या उनका उपचार करने के स्थान भी शामिल हैं ।	16.	* * * *
17. पशुओं के प्रति क्रूरता को रोकना ।	17.	* * * *
17-ए. वन ।	17-ए.	* * * *
17-बी. वन्य जीव-जन्तु और पक्षियों का संरक्षण ।	17-बी.	* * * *
18. खाद्य पदार्थों और अन्य माल का अपमिश्रण ।	18.	* * * *
19. अफीम के सम्बन्ध में सूची I की प्रविष्टि 59 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए मादक द्रव्य और विष ।	19.	* * * *
20-ए. जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन ।	20-ए.	* * * *
22. व्यापार संघ : औद्योगिक और श्रम विवाद ।	22.	* * * *
23. सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बिमा, नियोजन और बेकारी ।	23.	* * * *
24. श्रमिकों का कल्याण, जिसके अन्तर्गत कार्य की दशाएं, भविष्यनिधि, नियोजक का दायित्व, कर्मकार प्रतिकर, अशक्तता और वार्धक्य पेंशन और प्रसूति सुविधाएं भी शामिल हैं ।	24.	* * * *
25. सूची I की प्रविष्टि 63, 64, 65 और 66 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, शिक्षा, जिसमें तकनीकी शिक्षा, आयुर्विज्ञान शिक्षा और विश्वविद्यालय भी शामिल है, श्रमिकों का व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण ।	25.	* * * *

(1)	(2)
25-ए * * * *	25-ए. रेडियो और दूरदर्शन से प्रसारण ।
27. भारत और पाकिस्तान डोमिनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल स्थान से विस्थापित व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास ।	27. विदेशों और विदेशी क्षेत्रों या अन्य राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों से अपने मूल निवास स्थान से विस्थापित व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास ।
28. पूर्तकार्य और पूर्त संस्थाएं, पूर्त और धार्मिक विन्यास और धार्मिक संस्थाएं ।	28. * * * *
30. जन्म-मरण सांख्यिकी, जिसके अन्तर्गत जन्म और मृत्यु पंजीकरण भी शामिल है ।	30. * * * *
31. संसद द्वारा बनाई गई विधि या विद्यमान विधि द्वारा या उसके अधीन महापत्तन घोषित पत्तनों से भिन्न पत्तन ।	31. * * * *
32. राष्ट्रीय जलमार्गों के संबंध में सूची I के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, अंतर्देशीय जलमार्गों पर यंत्र नोदित जलयानों के संबंध में पोत परिवहन और नौ परिवहन तथा ऐसे जलमार्गों पर मार्ग का नियम और अन्तर्देशीय जल मार्गों द्वारा यात्रियों और माल का वहन ।	32. * * * *
32-ए. * * * *	32-ए. बैंककार्य ।
32-बी. * * * *	32.बी- पैट्रोलियम उत्पादों और एल० पी० जी० का थोक विपनन ।
33. जहां संसद द्वारा विधि के तहत (क) किसी उद्योग का संघ द्वारा नियंत्रण लोकहित में समीचीन, घोषित किया जाता है वहां उस उद्योग के उत्पादकों का और उसी प्रकार के आयात किए गए माल का ऐसे उत्पादों के रूप में; (ख) खाद्य पदार्थों का जिनके अन्तर्गत खाद्य, तिलहन और तेल हैं ; (ग) पशुओं के चारे का जिसके अन्तर्गत खली और अन्य सारकृत चारे हैं; (घ) कच्ची कपास का, चाहे वह ओटी हुई हो या बिना ओटी हो और बिनौले का; और (ङ) कच्चे जूट का, व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, प्रदाय और वितरण ।	33. * * * *
33-ए. बाट और माप, जिनके अन्तर्गत मानकों का नियत किया जाना नहीं है ।	33-ए. * * * *
35. यंत्र नोदित यान जिसके अन्तर्गत वे सिद्धांत हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर उद्गृहीत किया जाना है ।	35. * * * *
36. फैक्टरियां ।	36. * * * *
37. बॉयलर ।	37. * * * *
38. विद्युत ।	38. जनोपयोगी सेवाओं द्वारा (110 के० वी० और अधिक) विद्युत उत्पादन और संचारण, विद्युत विकास का वित्तपोषण ।
39. समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय ।	39. * * * *
40. संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित पुरातत्विय स्थलों और अवशेषों से भिन्न स्थल और अवशेष ।	40. * * * *
42. सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण ।	42. * * * *
45. सूची II या III में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच और आंकड़े ।	45. सूची III में विनिर्दिष्ट विषयों में से किसी विषय के प्रयोजनों के लिए जांच और आंकड़े ।
48. * * * *	48. कोई अन्य विषय जो सूची I या सूची II में परिगणित नहीं है : जिसमें कोई ऐसा कर भी शामिल है जिसका इन सूचियों में से किसी सूची में उल्लेख नहीं है ।

राज्य की विधायी स्वायत्तता पर प्रतिबंध

4.1 अध्याय 3 में केन्द्र तथा राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के अपेक्षाकृत उचित वितरण के लिए (अनुच्छेद 246 में) सातवीं अनुसूची की तीनों सूचियों में संशोधन करने के लिए सुझाव दिए गए थे। परंतु जिस क्षेत्र में राज्य विधायी दृष्टि से सक्षम हैं, उसमें भी कई दबाव हैं, जो उनकी विधायी स्वायत्तता के लिए कष्टप्रद और दु:स्सह हैं। यह प्रतिबंध इस प्रकार है :--

(1) स्वयं विधायी परिषद स्थापित करने या समाप्त करने में राज्य विधान मण्डल की असमर्थता;

(2) राज्य विधान मण्डल के सदनों को बुलाने और उनका सत्रावसान करने तथा विधान सभा को भंग करने का राज्यपाल का अधिकार ;

(3) समवर्ती सूची में परिगणित विषयों के संबंध में संघ का अभिभावी क्षेत्राधिकार;

(4) यह घोषित करके कि ऐसा करना लोकहित में समीचीन है या किसी विषय विशेष के संबंध में निर्धारित घोषणा करके राज्य के सामर्थ्य को आघात पहुंचा कर संसद का संघ के विधायी सामर्थ्य बढ़ाने का अधिकार;

(5) संविधानिक संशोधनों द्वारा संघ के विधायी क्षेत्राधिकार का विस्तार ;

(6) राज्य-सूची के विषयों के संबंध में विधान बनाने का संसद का अधिकार ;

(7) राज्य विधान मण्डल के सदनों द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में राज्यपाल के अधिकार ;

(8) राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित विधेयकों के संबंध में राष्ट्रपति के अधिकार ;

(9) कुछ मामलों में किसी विधेयक को राज्य विधान मण्डल के सदनों में पेश करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेने की आवश्यकता ;

(10) संसद द्वारा बनाई गई विधियों के बेहतर प्रशासन के लिए अतिरिक्त न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था में, संसद का अधिकार ।

विधायी परिषद स्थापित या समाप्त करने में राज्य विधान सभा की असमर्थता

4.2. अनुच्छेद 169 के अधीन किसी राज्य की विधायी परिषद् को स्थापित या समाप्त करने का अधिकार केवल संसद को है, किंतु यह अधिकार उसे तभी होगा जब विधान सभा उस सभा के कुल सदस्यों में से बहुमत द्वारा तथा सभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से इस आशय का संकल्प पारित कर दे। राज्य विधान मण्डलों के जनता द्वारा निर्वाचित सदन विधान सभा को अपने आप विधान परिषद् स्थापित या समाप्त करने का कोई अधिकार नहीं है, भले ही इसके लिए उसे सभा के सदस्यों का कितना ही जोरदार समर्थन प्राप्त क्यों न हो। राज्य सरकार को सभा का संकल्प लागू करने के लिए आवश्यक विधान बनाने के लिए संसद के पास जाना ही पड़ता है ।

राज्य विधान सभा के सदन को बुलाने और उसका सत्रावसान करने तथा विधान सभा को भंग करने का राज्यपाल का अधिकार

4.3. अनुच्छेद 174 के अधीन राज्यपाल को राज्य विधान मण्डल के सदन/सदनों को बुलाने और उसका/उनका सत्रावसान करने तथा विधान सभा को भंग करने का अधिकार है यदि इस अधिकार का प्रयोग सर्वत्र राज्य के ऐसे मंत्रि-परिषद् की सलाह से किया जाए जिसे विधान सभा के बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो, तो अनुच्छेद 174 के अधीन राज्यपाल का अधिकार राज्य की विधायी स्वायत्तता पर प्रतिबंध नहीं लगाएगा या उसे कम नहीं करेगा । वस्तुत: मैं प्रथा सदनों को बुलाने के संबंध में अपनाई जाती है। परन्तु ऐसे उदाहरण, विशेषकर, विधान सभा भंग किए जाने के संबंध में सामने आये हैं, जब राज्यपाल ने इस अधिकार का प्रयोग राज्य की मंत्रिपरिषद् की सलाह के बगैर या उनकी सलाह के विरुद्ध किया है। इस मामले में बहुसंख्यक सदस्यों द्वारा समर्थित लोकप्रिय राज्य सरकार के परामर्श का संघीय कार्यपालिका द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति द्वारा उपेक्षा किया जाना, राज्य की विधायी स्वायत्तता का स्पष्ट उल्लंघन है ।

समवर्ती सूची में परिगणित विषयों के संबंध में संघ के अभिभावी क्षेत्राधिकार

4.4. यद्यपि राज्य, समवर्ती सूची में परिगणित विषयों पर विधान अधिनियमित करने के लिए सक्षम हैं किन्तु इन विषयों के संबंध में अंतिम क्षेत्राधिकार संघ को प्राप्त है। ऐसा इसलिए है कि यदि समवर्ती विषय पर किसी राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गई विधि में कोई ऐसा उपबंध है जो संसद द्वारा पहले से बनाई गई किसी विधि के उपबन्धों या उस विषय के संबंध में किसी वर्तमान विधि के उपबंधों के असंगत है, तो राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गई विधि, असंगतता की सीमा तक, बातिल हो जाएगी (अनुच्छेद 254) किन्तु यदि राज्य की विधि राष्ट्रपति के लिए आरक्षित रखी गई हो और उस पर उनकी सहमति मिल गई हो, तो वह विधि उस राज्य में लागू होगी [अनुच्छेद 254 (2)] इस मामले में भी, संसद को बाद में उसी विषय के संबंध में कोई विधि अधिनियमित करने से कोई नहीं रोक सकता जिसमें इस प्रकार राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गई विधि में कोई, परिवर्द्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करना भी शामिल है [अनुच्छेद 254(2) का परन्तुक] । और राज्य द्वारा बनाई गई विधि, संसद द्वारा अधिनियमित नई विधि से असंगतता की सीमा तक बातिल हो जाएगी (अनुच्छेद 254) ।

राज्य की सक्षमता को आघात पहुंचाते हुए संसद का संघ की विधायी सक्षमता बढ़ाने का अधिकार

4.5. सातवीं अनुसूची की तीनों सूचियों की शब्दावली इस प्रकार की है कि इससे संसद को अपने द्वारा अधिनियमित विधि द्वारा या उसके अधीन यह घोषणा करके, कि ऐसा करना लोकहित में समीचीन है, या इन सूचियों में शामिल किसी विषय विशेष के संबंध में निर्धारित घोषणा करके राज्य की सक्षमता को कम करके संघ की विधायी सक्षमता बढ़ाने का अधिकार मिल जाता है। जैसा कि ऊपर पिछले अध्याय में सूची-I की प्रविष्टि 52 के आलेख में स्पष्ट किया है। इस तरीके से संघ के क्षेत्राधिकार में परिवर्द्धन का एक सुप्रसिद्ध उदाहरण, उद्योग है संविधान निर्माताओं के आशय का भारी उल्लंघन करके, उद्योग, वस्तुतः संघ का विषय बन दिया गया है। सूची I की जिन अन्य प्रविष्टियों के अधीन, संसद द्वारा संघ का क्षेत्राधिकार बढ़ाया जा सकता है, उनमें निम्नलिखित प्रविष्टियां शामिल हैं :-- 7, 23, 24, 27, 53, 54, 56, 62, 64, तथा 67, राज्य सूची में प्रभावित प्रविष्टियों में शामिल है, प्रविष्टि सं० 12, 13, 17, 22, 23, 24 तथा 50 ।

सांविधानिक संशोधनों द्वारा संघ के विधायी क्षेत्राधिकार का संवर्द्धन

4.6. राज्य सूची से और अधिक विषयों को स्थानांतरित करके और इन्हें समवर्ती सूची में शामिल करके या अन्यथा राज्य के क्षेत्राधिकार कम करके संघ का विधायी क्षेत्राधिकार बढ़ाया जा सकता है। आपात स्थिति से उत्पन्न हुई असाधारण परिस्थिति का लाभ उठा कर 42 वें संशोधन द्वारा 1976 में यह कार्य बड़े पैमाने पर किया गया था। इस संशोधन द्वारा समवर्ती सूची में स्थानांतरित किये गये या नये सिरे से जोड़े गये विषय निम्नलिखित थे :--

(i) न्याय का प्रशासन; सभी न्यायालयों का गठन और संगठन, सिवाय उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के (सूची III की प्रविष्टि 11-ए)

(ii) वन (प्रविष्टि 17 ए)

(iii) वन्य जीवजन्तुओं और पक्षियों का संरक्षण (प्रविष्टि 17-बी)

(iv) जन संख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन (प्रविष्टि 20-ए)

(v) शिक्षा आदि (प्रविष्टि 25)

(vi) बाट और माप सिवाय मानक नियत करने के (प्रविष्टि 33-ए) ।

4.7. कुछ मामलों में, संघ का क्षेत्राधिकार, विषयों को, स्वयं सूची I में ही जोड़ कर बढ़ाया गया है। 42वें संशोधन (1976) ने प्रविष्टि 2–ए को संघ सूची में जोड़ दिया। इस प्रविष्टि में किसी राज्य में सिविल सत्ता की सहायता में संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के किसी अन्य बल या संघ के नियंत्रणाधीन किसी बल की तैनाती शामिल है। 46वें संशोधन (1982) ने पारेषण कर (ऐसे पारेषण के संबंध में जो अंतर्राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान होता है) नये रूप से जोड़ी गई प्रविष्टि 92–बी द्वारा संघ के क्षेत्राधिकार में रख दिया है। संघ सूची में ऐसी वृद्धियां संघ और राज्यों के बीच क्षेत्राधिकारों का असंतुलन और बढ़ा देती है।

राज्य सूची के विषयों के संबंध में विधान बनाने का संसद का अधिकार

4.8. संसद को राज्य सूची के किसी विषय के संबंध में विधान बनाने का अधिकार है :—

(i) यदि राज्य परिषद् में उपस्थित और मतदान करनेवाले दो तिहाई बहुमत से संकल्प द्वारा विषय को राष्ट्रीय हित में आवश्यक या समीचीन घोषित कर दिया जाए (अनुच्छेद 249);

(ii) यदि आपातस्थिति की उद्घोषणा लागू हो (अनुच्छेद 250);

(iii) दो या अधिक राज्यों के लिए उनकी सहमति से (अनुच्छेद 252) तथा;

(iv) अंतर्राष्ट्रीय करारों को लागू करने के लिए (अनुच्छेद 253)।

4.9. ऊपर (i) के मामले में राज्य परिषद् द्वारा पारित संकल्प की, प्रारंभ में, अधिकतम वैधता एक वर्ष के लिए होती है परंतु उसी तरीके से एक बार में एक वर्ष की अवधियों के लिए बिना किसी सीमा के इसका बार-बार नवीकरण किया जा सकता है। [अनुच्छेद 249(2) और इसका परंतुक]।

4.10. अनुच्छेद 249 और 250, राज्य विधान मण्डल की विधायी सक्षमता नहीं छीनते परंतु यदि किसी राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि का कोई उपबंध संसद द्वारा बनाई गई किसी ऐसी विधि के उपबंध के असंगत हो, जिसे इन अनुच्छेदों के अधीन बनाने के लिए संसद सक्षम हो, तो संसद द्वारा बनाई गई विधि लागू होगी और राज्य विधान मण्डल द्वारा बनाई गई विधि, असंगतता की सीमा तक तब तक निष्क्रिय रहेगी जब तक संसद द्वारा बनाई गई विधि लागू है, अर्थात राज्य परिषद् का संकल्प या आपात स्थिति की उद्घोषणा लागू न रहने के बाद 6 मास तक (अनुच्छेद 251)।

4.11 ऊपर (iii) के मामले में, संसद द्वारा पारित कोई अधिनियम, जहां तक उस राज्य का संबंध है जिस पर वह लागू है, उस राज्य के विधान मण्डल के अधिनियम द्वारा संशोधित या निरस्त नहीं किया जाएगा। केवल संसद, ऐसा उसी तरीके से कर सकती है जिससे उसने इसे अधिनियमित किया था [अनुच्छेद 252(2)]।

राज्य विधान मण्डल के सदन/सदनों द्वारा पारित विधेयकों के संदर्भ में राज्यपाल की शक्तियां

4.12. जब, राज्य विधान मण्डल के सदन/सदनों द्वारा पारित किए जाने के बाद कोई विधेयक राज्यपाल को उसकी सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह (i) उस विधेयक पर सहमति दे सकता है या (ii) अपनी सहमति रोक सकता है या (iii) यदि वह कोई मुद्रा विधेयक न हो तो उसे राज्य विधान मण्डल के सदनों को पुनर्विचार करने के लिए वापस कर सकता है और उनमें कुछ संशोधन करने का सुझाव दे सकता है या (iv) विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। कोई ऐसा उदाहरण सामने आया प्रतीत नहीं होता जब राज्यपाल ने विधेयक पर अंतिम कार्रवाई के रूप में अपनी सहमति रोकी हो (मामला ii) (iii) पर उल्लिखित कार्रवाई से विधेयक के अधिनियमित होने में केवल अस्थायी रूप से विलंब होगा, क्योंकि यदि विधेयक संशोधनों के साथ या उनके बगैर सदनों द्वारा फिर से पारित कर दिया जाता है तो राज्यपाल इस पर अपनी सहमति नहीं रोकेगा (अनुच्छेद 220 का पहला परंतुक) इन विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने की राज्यपाल शक्ति ही है, जिसका यदि राज्य के मंत्रिपरिषद की सलाह के विपरीत प्रयोग किया जाए, तो उससे राज्य की विधायी स्वायत्तता में बहुत बड़ी बाधा पहुंचती है।

4.13. राष्ट्रपति (वस्तुतः केन्द्रीय मंत्रिपरिषद) के विचारार्थ और सहमति के लिए विधेयकों के आरक्षण के बारे में कुछ अनिवार्यताएं भी है। प्रथमतः ऐसी स्थिति में राज्यपाल के लिए राज्य विधान मंडल के सदनों द्वारा पारित विधेयक को आरक्षित रखना अनिवार्य होगा जब उसकी राय में, इसके विधि बन जाने पर वह उच्च-न्यायालय के अधिकारों का इस प्रकार अल्पीकरण करेगा कि वह स्थिति ही खतरे में पड़ जाएगी जिसके लिए संविधान द्वारा उसकी परिकल्पना की गई थी (अनुच्छेद 200 का परंतुक 2)। दूसरे, यदि विधेयक समवर्ती सूची में परिगणित किसी विषय से संबंधित हो, तो उसे सामान्यतः राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखा जाता है। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है कि इसे उपरोक्त अनुच्छेद 254 (2) द्वारा दी गई सुरक्षा मिल पाए या संसद द्वारा पहले से बनाई गई किसी विधि या उस समवर्ती विषय के संबंध में किसी वर्तमान विधि के उपबंधों से संगतता की सीमा तक बातिल न हो जाए। तीसरे, यदि विधेयक में सम्पदाओं के अर्जन या किसी सीमित अवधि के लिए किसी सम्पत्ति का प्रबंध ग्रहण करने या अनुच्छेद 31 ए के खण्ड 1 के अधीन (ए), (बी), (सी), (डी), और (ई) द्वारा निर्दिष्ट किसी ऐसे अन्य विषय का प्रावधान हो तो उसे सामान्यतः राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखा जाता है ताकि उसे अनुच्छेद 31–ए द्वारा प्रदत्त सुरक्षा मिल पाए। इस अनुच्छेद के अधीन सम्पदाओं आदि के अर्जन की व्यवस्था करने वाली विधि इस आधार पर बातिल नहीं मानी जाएगी कि यह अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा सौंपे गए मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है। किंतु यदि ऐसी विधि किसी विधान मण्डल द्वारा अधिनियमित की गई हो तो अनुच्छेद 31 ए खण्ड (1) द्वारा प्रदत्त सुरक्षा तब तक उपलब्ध नहीं होगी जब तक ऐसी विधि को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित न किया गया हो और उस पर उनकी सहमति न मिल गई हो। अनुच्छेद 31 ए(1) के अधीन सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए भूमि सुधार संबंधी सभी विधान राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। अनुच्छेद 31 सी उन विधियों को इस प्रकार की सुरक्षा प्रदान करता है जो संविधान के भाग IV में निर्धारित राज्यनीति के निदेशक सिद्धांतों पर चलने के लिए राज्य नीति को प्रभावी बनाती है। किन्तु इस मामले में भी यह सुरक्षा राज्य विधान मण्डल द्वारा अधिनियमित विधि को तभी उपलब्ध होगी जब इस पर राष्ट्रपति की सहमति मिल जाए (अनुच्छेद 31 सी का परंतुक)। राज्य विधान मण्डलों द्वारा अधिनियमित ऐसी सभी विधियां भी सदैव राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित की जाती हैं।

4.14. राज्य विधान मण्डल के सदनों द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में राज्यपाल की शक्तियां राज्य की विधायी स्वायत्तता पर तब अधिक दबाव नहीं डालेंगी यदि वह राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग सदैव राज्य के मंत्रिपरिषद की सलाह पर करे, ठीक उसी तरह जैसा कि राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित विधेयकों सहित सभी विषयों के संबंध में करता है, किंतु सदैव ऐसा होता नहीं।

कुछ मामलों में, विशेषकर जब राज्यों में, केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से किसी भिन्न दल की सत्ता को यह बताया गया है कि राज्यपाल ने राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह के बगैर या उसके विपरीत विधेयकों को तब भी राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित किया है जब विधेयक इस प्रकार के थे जिन्हें उसे संविधान के अधीन राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखना आवश्यक नहीं था। राज्यपाल के इस प्रकार के कार्य निश्चित रूप से राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर अनुचित रूप से प्रतिबंध लगाते हैं।

राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित विधेयकों के संबंध में राष्ट्रपति के अधिकार

4.15. राष्ट्रपति, अपनी अनुमति के लिए आरक्षित विधेयकों पर अनुमति दे सकता है और नहीं भी। अनुमति न दिए जाने पर वह अपनी अनुमति रोक सकता है या यदि विधेयक कोई धन विधेयक न हो तो उसे राज्यपाल के माध्यम से वापस कर सकता है और राज्य विधान मण्डल के सदनों से, विशेषकर अपने द्वारा प्रस्तावित संशोधनों पर 6 मास के भीतर पुनः विचार करने के लिए

कह सकता है । यदि विधेयक संशोधन के साथ या उसके बगैर सदनों द्वारा दुबारा पारित कर दिया जाए, तो उसे राष्ट्रपति की सहमति के लिए पुन: प्रस्तुत किया जाएगा । इस बार भी राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी अनुमति दे सकता है या नहीं भी । संविधान में राष्ट्रपति के लिए अपनी अनुमति देने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है और न ही राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित विधेयकों के निपटान के संबंध में कोई मार्ग निर्देश, मानदण्ड या परम्पराएं हैं । इससे संघ के मंत्रिपरिषद को, राज्य विधान मण्डल के सदनों द्वारा पारित विधेयकों को विलंबित और वीटो करने का अधिकार मिल जाता है जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र में सत्तारूढ़ दल, राज्य विधान मण्डल के सदनों द्वारा पारित विधेयकों में प्रतिपादित राज्य में सत्तारूढ़ दल के कार्यक्रमों और नीतियों को नाकाम बना सकता है । सबसे बुरा प्रभाव प्रगतिवादी आर्थिक और सामाजिक सुधार के लिए किए जाने वाले उपायों पर पड़ा है जो शक्तिशाली निहित स्वार्थों से टकराते हैं । यह राज्य की विधायी स्वायत्तता पर एक असह्य प्रतिबंध है, विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जब राज्यों में केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से कोई भिन्न दल सत्ता में हो । केन्द्र राज्य संबंधों में यह एक बहुत बड़ा मसला है ।

राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की अपेक्षा

4.16. अनुच्छेद 304(बी) के अधीन राज्य विधान मण्डल, व्यापार, वाणिज्य राज्यों के भीतर या परस्पर राज्यों के बीच कार्यकलापों पर ऐसे उचित प्रतिबंध लगा सकता है जो लोकहित में आवश्यक हों । किन्तु खण्ड (बी) के परंतुक में यह व्यवस्था है कि इस प्रयोजन के लिए कोई विधेयक या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बगैर राज्य के विधान मण्डल में प्रस्तुत या पेश नहीं किया जाएगा । यह परंतुक राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है । स्वयं खण्ड (बी) इस बात की व्यवस्था करके राज्य के भीतर और राज्यों में परस्पर व्यापार वाणिज्य और क्रियाकलापों के लिए स्वतंत्रता में राज्य के अनुचित और मनमाने हस्तक्षेप के विरुद्ध गारंटी देता है कि केवल ऐसे प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं जो उचित हों और लोकहित में आवश्यक हों । ऐसे प्रतिबंधों की व्यवस्था करने वाला विधान बनाने में राज्य की विधायी शक्ति पर और अधिक प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए ।

संसद द्वारा बनाई गई विधियों के बेहतर प्रशासन के लिए अतिरिक्त न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था करने संबंधी संसद की शक्ति

4.16-ए अनुच्छेद 247 के अधीन संसद, विधि द्वारा अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना की व्यवस्था कर सकती है जो कि संसद द्वारा बनाई गई विधियों के बेहतर प्रशासन के लिए काम करेगी । ऐसे विशेष न्यायालय, अशांत क्षेत्र अधिनियम के अधीन ब्लू स्टार आपरेशन के बाद की अवधि में पंजाब में स्थापित किए गए थे । ये न्यायालय उस सामान्य न्याय संरचना से हटकर है जिसकी संविधान ने परिकल्पना की थी और जिसमें एक ही प्रकार के न्यायालय सभी विधियों को संचालित करते हैं चाहे वे संसद द्वारा बनाई गई हों या राज्य विधान मंडल द्वारा । सामान्यत: गैर-आपात स्थिति वाले समय में, ऐसे न्यायालय स्थापित करने का कोई औचित्य नहीं होना चाहिए । परंतु अनुच्छेद 247 के अधीन इसके लिए अनुमति है जिसमें इस प्रकार का कोई विभेद नहीं किया गया है ।

राज्यों को पूर्ण विधायी स्वायत्तता देने के लिए उपाय

4.17. वास्तविक संघ राज्य संरचना की अपेक्षाओं के अनुरूप, राज्यों को और अधिक विधायी स्वायत्तता देने के लिए प्रस्तावित उपाय इस प्रकार हैं :—

4.18. अनुच्छेद 169 में इस प्रकार आशोधन किया जाए कि विधान सभा को जो कि राज्य विधान मण्डल का जनता द्वारा निर्वाचित सदन होता है, सदन के बहुसंख्यक सदस्यों तथा सभा में उपस्थित तथा मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित विधि के अधीन, स्वयं किसी विधान परिषद को स्थापित या समाप्त करने का अधिकार मिल जाए ।

4.19. अनुच्छेद 174 में यह व्यवस्था करने के लिए आशोधन किया जाए कि जब तक किसी राज्य में कोई ऐसी लोकप्रिय सरकार सत्ता में हों, जिसे विधान सभा में बहुमत प्राप्त हो, तब तक राज्यपाल राज्य विधान मण्डलों के सदनों को बुलाने और उनका सत्रावसान करने तथा विधान सभा को भंग करने में अपनी शक्ति का प्रयोग उस सरकार के परामर्श पर करेगा । राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग तभी करना चाहिए जब यह शर्त पूरी न होती हो । उदाहरण के लिए ऐसी परिस्थितियां इस प्रकार हो सकती हैं :—

(i) जब राज्यपाल यह समझे कि मुख्य मंत्री ने विधान में बहुमत का समर्थन खो दिया है और वह अपने द्वारा बहुमत का समर्थन सिद्ध करने के लिए राज्यपाल द्वारा निर्धारित अवधि में सदन की बैठक न बुलाए ।

(ii) जब मुख्यमंत्री किसी महत्वपूर्ण मसले पर विधान सभा में हार जाने के बाद सदन को भंग करने तथा नये चुनाव कराने की सलाह दे ।

(iii) जब अंतिम सत्र की आखिरी तारीख से छ: मास के भीतर, विधान मण्डल के सदन को बुलाने की सलाह न दे, जिसकी सम्भावना बहुत कम है ।

(iv) जब विधान सभा के आम चुनाव के बाद या इस सदन में मौजूदा सरकार की हार के बाद, किसी दल को सदन में स्पष्ट बहुमत का समर्थन प्राप्त न हो और यह सिद्ध करने के लिए सदन को बुलाने का निर्णय लिया जाए कि किस व्यक्ति को उस सदन में बहुसंख्यक सदस्यों का समर्थन प्राप्त है और इस वजह से वह मुख्य मंत्री बनाए जाने के लिए पात्र है । यदि ऐसे मामले में सदन, किसी व्यक्ति के पक्ष में बहुमत समर्थन नहीं सिद्ध कर पाता, तो राज्यपाल स्वयं सदन का सत्रावसान कर सकता है या उसे भंग कर सकता है तथा राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे सकता है, जिसके बाद यथाशीघ्र नये आम चुनाव कराए जाएंगे ।

4.19ए समवर्ती सूची के संबंध में संघ के अधिभावी क्षेत्राधिकार द्वारा राज्यों की विधायी स्वायत्तता में कम से कम कमी हो इसका एक कारगर उपाय यह है कि इस सूची को उन्हीं विषयों तक सीमित रखा जाए जिनमें इन विषयों के मुख्य पहलुओं के संबंध में एक ऐसी साझी विधि का होना समीचीन है, जो सभी राज्यों पर लागू हो, चाहे इन विषयों के मामूली पहलुओं के संबंध में प्रत्येक राज्य, अपनी विशिष्ट परिस्थितियों और अपेक्षाओं के अनुसार, अपने कानून बना सकता हो । समवर्ती सूची में इस समय शामिल अन्य सभी विषय राज्य सूची में स्थानांतरित कर दिये जाएं । समवर्ती तथा अन्य सूचियों में आशोधन सुझाने में पिछले अध्याय में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

4.20. समवर्ती सूची के संबंध में राज्य की विधायी सक्षमता, एक संवैधानिक संशोधन द्वारा, यह व्यवस्था करके बहाल की जाए कि जब कभी संघ का किसी समवर्ती विषय पर विधान बनाने का प्रस्ताव हो, तो उसके लिए यह अनिवार्य होगा कि उस प्रस्ताव पर राज्यों के साथ गंभीरतापूर्वक परामर्श करे और बहुसंख्यक राज्यों का अनुमोदन प्राप्त करे । इस संबंध में लापरवाही से परामर्श करने से कोई लाभ नहीं होगा । यदि बहुसंख्यक राज्य प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं करते तो संघ को, राज्यों के विचार ध्यान में रखते हुए, उसे दोबारा इस प्रकार नया रूप देना होगा जिस पर बहुसंख्यक राज्यों का अनुमोदन मिल जाए । अन्यथा प्रस्ताव को छोड़ दिया जाए ।

4.21. समवर्ती सूची के संबंध में राज्यों की सक्षमता की सुरक्षा के लिए एक सम्भावित वैकल्पिक दृष्टिकोण यह है कि चाहे सही रूप में पूर्व परामर्श अनिवार्य कर दिया जाए, परन्तु प्रस्तावित विधान पर बहुसंख्यक राज्यों के समर्थन की शर्त पर जोर न दिया जाए । इसकी बजाय उन राज्यों को ऐसे विधान की परिधि से बाहर रखा जाए जो इसका अनुमोदन न करते हों । यह दृष्टिकोण उपयुक्त नहीं है क्योंकि यह विषयों को राज्य सूची की बजाय समवर्ती सूची में रखने के लिए ऊपर दिये गए तर्क के विरुद्ध है । इसी कारण से, समवर्ती विषय पर किसी राज्य द्वारा अधिनियमित, किसी ऐसी विधि को, जिसे अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की सहमति मिल गई हो, इस खण्ड की परिधि से बाहर रखना अवांछनीय होगा । इसका अर्थ यह होगा कि राज्य की जिस विधि को अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की सहमति मिल गई हो, वह विधि उसी विषय

पर न केवल संसद द्वारा अधिनियमित वर्तमान विधि की जगह लागू होगी बल्कि किसी ऐसी विधि के स्थान पर भी लागू होगी जो संसद उसी विषय पर भविष्य में अधिनियमित करेगी । यदि यह सुझाव स्वीकार कर लिया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि राज्यों के साथ परामर्श करने और उनका बहुमत समर्थन प्राप्त करने के बाद उसी विषय पर भविष्य में संसद द्वारा बनाई गई विधियां, अन्य राज्यों पर तो लागू होंगीं परन्तु उस राज्य पर लागू नहीं होंगी जहां उसी विषय पर राज्य विधान मण्डल द्वारा पहले से अधिनियमित विधि को अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की सहमति मिल चुकी हो । इससे किसी समवर्ती विषय पर संघ द्वारा कोई विधान बनाए जाने का तर्क ही समाप्त हो जाता है ।

4.22. विधि के द्वारा या उसके अधीन निर्धारित घोषणा करके, सूची I की कई प्रविष्टियों के अधीन राज्य का क्षेत्राधिकार कम करके संघ की विधायी सक्षमता बढ़ाने की शक्ति, इस प्रकार की प्रविष्टियों को ऐसा नया रूप दे कर कम से कम की जाएं कि उन पर ऐसी घोषणा की शर्त लागू न रहे । अध्याय 3 में सूची I की कई प्रविष्टियों में प्रस्तावित आशोधन इसी विचार को ध्यान में रख कर किये गये हैं । इस संबंध में सूची I की प्रविष्टि 24, 30, 52, 53, 54, तथा 63 के संबंध में प्रस्तावित आशोधन देखे जा सकते हैं ।

4.23. इसमें कोई गलत बात नहीं होगी यदि ऐसी स्थिति में, संवैधानिक संशोधन द्वारा कोई विषय विशेष राज्यों के क्षेत्राधिकार से संघ के क्षेत्राधिकार में स्थानांतरित कर दिया जाए, जब भारतीय अर्थ व्यवस्था, समाज तथा राज्य तंत्र में नये विकास को देखते हुए ऐसा करना पूर्णतया उचित हो । किन्तु ऐसे संवैधानिक संशोधन का अनिवार्यत: विरोध किया जाना चाहिए और उसका पारित होना और मुश्किल बना दिया जाना चाहिए, जिसका उद्देश्य, देश को उत्तरोतर अनिवार्यत: एकात्मक राज्य में बदल कर, देश की प्रभुतासम्पन्न अति राष्ट्रवादी शक्तियों द्वारा, विभिन्न उभरी हुई तथा उभरती हुई विभिन्न राष्ट्रिकताओं के स्वदेश के रूप में राज्यों के महत्व तथा क्षेत्राधिकार को, कम करना हो । ऐसे संशोधनों के लिए अंतिम सुरक्षोपाय, अनिवार्यत:, इन संशोधन के वास्तविक महत्व के प्रति मतदाताओं की तीव्र राजनीतिक जागरूकता होती है जो स्वतंत्रता के माहोल, कानून के शासन तथा सहकारी संघवाद से और भी सुदृढ़ होती है । परन्तु सांविधानिक संशोधनों में राज्यों को अधिक भूमिका प्रदान करने के लिए अनुच्छेद 368 में संशोधन करना आवश्यक होगा । अनुच्छेद 368 के वर्तमान स्वरूप के अनुसार संसद, स्वयं, सामान्य रूप से संविधान में आशोधन कर सकती है जिसके अंतर्गत सम्बद्ध प्रयोजन के लिए विधेयक, सदन के कुल सदस्यों में बहुसंख्यक सदस्यों द्वारा और सदन में उपस्थित तथा मतदान करने वाले दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से पारित होना जरूरी है इस प्रकार पारित किए गए विधेयक पर राष्ट्रपति अपनी सम्मति देगा । संविधान के कुछ निर्दिष्ट भागों के संबंध में ही, जिसमें सातवीं अनुसूची की सूचियां भी शामिल हैं, संशोधन पर कम से कम आधे राज्यों का अनुसमर्थन अपेक्षित होता है । अनुच्छेद 368 में संशोधन करते हुए निम्नलिखित व्यवस्था करके राज्यों को संवैधानिक संशोधनों पर विचार करने में अधिक भूमिका प्रदान की जाए :—

(i) सामान्य संवैधानिक संशोधनों में भी कम से कम आधे राज्यों का अनुसमर्थन लेना आवश्यक होगा, तथा

(ii) संविधान के बुनियादी ढांचे से संबंधित विशिष्ट अनुच्छेद के संशोधन पर कम से कम दो तिहाई राज्यों का अनुसमर्थन लेना आवश्यक होगा ।

4.24. अनुच्छेद 249, अवश्य हटाना चाहिए, जो संसद को राज्य सूची के किसी विषय के संबंध में तब विधान बनाने का अधिकार देता है जब राज्य परिषद द्वारा दो तिहाई बहुमत से उसे राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक और समीचीन घोषित कर दिया जाए । राज्य परिषद, वस्तुत:, अमरीका में सीनेट की तरह राज्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करती । अमरीका में सभी राज्यों को एक-समान प्रतिनिधित्व (प्रत्येक के लिए दो सदस्य) प्राप्त है भले ही उनका आकार और आबादी कुछ भी हो, परन्तु राज्य परिषद में सापेक्षिक प्रतिनिधित्व राज्यों की जनसंख्या के आधार पर है । अकेले उत्तर प्रदेश को (34 सदस्य) अन्य दस राज्यों (31 सदस्य) की तुलना में अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त है जिसमें असम (7), पंजाब (7) हरियाणा (5), जम्मू-काश्मीर (4) हिमाचल प्रदेश (3) मणिपुर (1), नागालैंड (1) त्रिपुरा (1) मेघालय (1) तथा सिक्किम (1) शामिल हैं : कुल राज्यों में अपेक्षाकृत छोटे राज्यों की संख्या आधे से अधिक है, किन्तु राज्य परिषद में ऐसे संकल्प पारित करते समय उनका कोई महत्व नहीं होता । वस्तुत:, चाहे 14 राज्यों के सभी सदस्य (कुल राज्यों की लगभग दो-तिहाई संख्या) एक मत होकर किसी संकल्प के विरोध में मत दें, तो भी वह संकल्प दो-तिहाई बहुमत से पारित किया जा सकता है । इन 14 राज्यों में उपरोक्त 10 राज्यों के अतिरिक्त केरल (9), उड़ीसा (10), राजस्थान (10) तथा गुजरात (11) भी शामिल हैं । इस प्रकार ऐसा संकल्प, वास्तव में, राज्यों का निर्णय नहीं माना जा सकता । यदि राज्य सूची में कोई ऐसा विषय है जिसके संबंध में विधान बनाने में संसद को समर्थ बनाने के लिए अपेक्षित संकल्प पारित करने के लिए राज्य परिषद से बार-बार आग्रह करना पड़े, तो बेहतर यही होगा कि सांविधानिक संशोधन द्वारा ऐसे विषय को समवर्ती सूची में स्थानांतरित कर दिया जाए ताकि समय-समय पर आवश्यकतानुसार संघ या राज्य उस विषय पर विधान बना सकें । अनुच्छेद 249 को हटाने का तर्क बहुत ही प्रबल है । इसी क्रम में अनुच्छेद 251 में अनुच्छेद 249 का संदर्भ भी हटाना होगा ।

4.25. राज्य परिषद को वास्तव में अपने नाम के अनुरूप बनाने के लिए इसके गठन में आशोधन करना होगा । ऐसा सुझाव है कि 1971 में एक करोड़ से अधिक आबादी वाले राज्यों को राज्य परिषद में बराबर प्रतिनिधित्व दिया जाए, अर्थात् प्रत्येक के लिए 14 सदस्य । 30 लाख और एक करोड़ के बीच की आबादी वाले जम्मू-काश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश राज्यों को 5—5 सदस्यों का प्रतिनिधित्व दिया जाए । त्रिपुरा, मणिपुर तथा मेघालय राज्यों की आबादी 10 और 30 लाख के बीच हैं । इन राज्यों में प्रत्येक को 2 सदस्यों का प्रतिनिधित्व दिया जाए । 10 लाख से कम आबादी वाले नागालैंड तथा सिक्किम राज्यों को एक-एक सदस्य का प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है । दिल्ली, पांडिचेरी, मिजोरम तथा अरुणाचल प्रदेश का एक-एक सदस्य बने रहना चाहिए । कुल सदस्य संख्या 232 ही रहेगी ।

4.26. अनुच्छेद 252 भी अवश्य हटा दिया जाना चाहिए जिसमें राज्य सूची के किसी विषय पर दो या अधिक राज्यों के लिए, उनके विधान मण्डलों की सहमति से संसद को विधान बनाने का अधिकार दिया गया हैं । राज्यों को अपने क्षेत्राधिकार, संघ को अभ्यर्पित करने के लिए कदापि प्रेरित नहीं किया जाना चाहिए और न ही उन पर इसके लिए दबाव डाला जाना चाहिए । उन्हें राज्य सूची के विषयों पर अनिवार्यत: स्वयं विधान बनाने चाहिए । यदि किसी विषय विशेष पर विधान के संबंध में दो या अधिक राज्यों के बीच समन्वय की आवश्यकता हो, तो इसकी व्यवस्था आंचलिक परिषद या अंतर्राज्य परिषद के माध्यम से की जानी चाहिए । संघ सरकार भी राज्यों के मार्गदर्शन के लिए उस विषय पर एक आदर्श विधान बना कर इस संबंध में सहायता कर सकती है ।

4.27. अनुच्छेद 252 को हटाने के स्थान पर एक अन्य संभावित विकल्प (भले ही यह कम संतोषजनक है) यह है कि अनुच्छेद 252 के वर्तमान खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपबंध रख दिया जाए :

"इस प्रकार पारित अधिनियम, इसी तरीके से पारित या स्वीकार किये गये केवल संसद के अधिनियम द्वारा संशोधित या निरस्त किया जा सकता है किन्तु उस राज्य के संबंध में जिस पर वह लागू होता हो, उसे उस राज्य के विधान मण्डल के अधिनियम द्वारा भी, संशोधित या निरस्त किया जा सकता है ।"

4.28. जैसा कि पहले बताया गया है, राज्य विधान मण्डलों के सदनों द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में राज्यपाल की शक्तियों के कारण राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर तब कोई अधिक दबाव नहीं पड़ेगा यदि वह, राष्ट्रपति की सहमति के लिए विधेयक आरक्षित रखने के अधिकारों सहित अपनी इन शक्तियों का प्रयोग राज्य की मंत्रि परिषद की सलाह पर करे । इसके लिए अनुच्छेद 200 के दूसरे परन्तुक को हटाना और उसके स्थान पर निम्नलिखित परन्तुक जोड़ना आवश्यक होगा :

"बशर्ते यह भी कि राज्यपाल अनुच्छेद 200 के अधीन अपने कार्य राज्य मंत्रिपरिषद के परामर्श पर करेगा" ।

4.29. यदि राज्य विधान मण्डल द्वारा अधिनियमित कोई विधि, संविधान के अधीन उसके अधिकारों से बाहर हो तो यह न्यायालयों का काम है कि वे उसे संविधान के अधिकारातीत घोषित करके उसे निष्प्रभावी बनाएं। यदि इसके विपरीत यह वैध तो हो परन्तु अनुचित विधि हो, तो यह मतदाताओं का काम है कि वे इसका विरोध करें और इसे संशोधित या निरस्त करने के लिए मजबूर करें। ऐसी विधि पर उसकी वैधता या औचित्य के बारे में केन्द्र को निर्णय करने का अधिकार देने और उसे अनिवार्यतः राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखने का अधिकार देने में कोई औचित्य नहीं है, जो कि केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह पर उसे रोक सकता है।

4.30. उपर प्रस्तावित संशोधन के बाद, राज्यपाल, राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह के सिवाय, राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित नहीं रखेगा। यदि कोई विधेयक समवर्ती विषय से संबंधित हो, अथवा सम्पदाओं आदि के अर्जन से संबंधित हो, अथवा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने से संबंधित हो, तो राज्य मंत्रि परिषद, स्वयं, विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखने की सलाह दे सकता है ताकि यदि उस पर राष्ट्रपति की सहमति मिल जाती है तो उसके लिए, ऊपर बताए अनुसार, क्रमशः अनुच्छेद 254(2), अथवा अनुच्छेद 31-ए, या अनुच्छेद 31-सी के अधीन दी गई सुरक्षा मिल सके। ऐसे मामलों का राज्य विधान मण्डल द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत पारित किये गये सामान्य विधेयकों से भिन्न आधार होता है। ऐसे मामलों में राष्ट्रपति की सहमति अनिवार्य नहीं है बल्कि यह किसी विधान विशेष की वैधता के लिए विशेष सुरक्षा प्राप्त करने के लिए मांगी जाती है। यदि राज्य सरकार को यह विशेष सुरक्षा छोड़ने में कोई आपत्ति न हो तो उसे, विधेयक, राष्ट्रपति को सहमति के लिए आरक्षित रखने की सलाह नहीं देनी पड़ती।

4.31. कभी-कभी यह सुझाव दिया जाता है कि उपरोक्त सुरक्षा राष्ट्रपति की सहमति के बगैर भी उपलब्ध होनी चाहिए। किसी विधेयक का विधान मण्डल द्वारा स्वीकार किया जाना ही इसकी सुरक्षा के लिए पर्याप्त है। उपरोक्त सुझाव की दूरगामी विवक्षाएं हैं। यदि समवर्ती विषयों के संबंध में, राज्य विधान मण्डल से संबंधित यह सुझाव मान लिया जाता है तो वास्तव में इसका निहितार्थ यह होगा कि अनुच्छेद 254(2) के अधीन उसी विषय पर संसद द्वारा अधिनियमित पहला विधान उस सीमा तक बातिल हो जाएगा जहां तक वह अब अधिनियमित किये गये राज्य के विधान के विपरीत हो। दूसरे शब्दों में, समवर्ती विषयों के संबंध में संसद को नहीं अपितु राज्य विधान मण्डल को अधिभावी क्षेत्राधिकार होगा, चाहे ऊपर दिये गये सुझाव के अनुसार, ऐसे बड़े पहलुओं से संबंधित थोड़े से विषयों को लेकर समवर्ती सूची बहुत छोटी कर दी जाए, जिनके बारे में एक ऐसी एक-समान विधि होना समीचीन है, जो सभी राज्यों पर लागू हो। यह तो किसी विषय को राज्य सूची में शामिल करने की बजाय उसे समवर्ती सूची में शामिल करने के तर्क के ही विरुद्ध होगा।

4.32. वर्तमान व्यवस्था एक अन्य चरम स्थिति है जिसमें राज्य विधान मण्डल के अधिकारों के अधीन कुछ राज्य सरकारों द्वारा प्रस्तावित प्रगतिवादी सामाजिक उपायों पर, अत्यधिक विलम्ब किया गया है और अंत में उन्हें नाकाम बना दिया गया क्योंकि केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के परामर्श पर या शक्तिशाली निहित स्वार्थों के दबाव से राष्ट्रपति ने उन पर अपनी सहमति रोक दी।

4.33. अनुच्छेद 31-ए या 31-सी के अधीन राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित विधेयकों पर राष्ट्रपति की कार्रवाई के संबंध में कोई बीच का रास्ता ढूंढना होगा ताकि राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित वैध विधान को, यदि वह प्रचलित लोकाचार के बिल्कुल विपरीत न हो, अनुचित विलम्ब के बगैर, इन अनुच्छेदों के अधीन सुरक्षा मिल पाए। इसे सुनिश्चित करने के लिए संभवतया एक उचित और प्रायः सर्व स्वीकार्य मार्ग इस बात की व्यवस्था करना होगा कि अनुच्छेद 31-ए तथा 31-सी के अधीन राज्य विधान के लिए सुरक्षा प्राप्त करने के संबंध में पहले के समान राष्ट्रपति की सहमति अनिवार्य रहेगी, परन्तु ऐसे विधान के संबंध में राष्ट्रपति केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह से नहीं बल्कि अंतर्राज्य परिषद की सलाह के कार्य करेगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित विधेयक के संबंध में निर्णय देने के लिए राष्ट्रपति के लिए एक समय सीमा—लगभग एक वर्ष निर्धारित की जाएगी। यदि इस अवधि में कोई निर्णय प्राप्त न हों तो मान लिया जाएगा कि उस पर राष्ट्रपति की सहमति मिल गई है।

4.34. अनुच्छेद 304 के खण्ड (बी) का परन्तुक हटा दिया जाए ताकि खण्ड (बी) के प्रयोजन से राज्य विधान मण्डल के सदन (सदनों) में कोई विधेयक या संशोधन पेश करने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति न लेनी पड़े। यह परन्तुक राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है। व्यापार, वाणिज्य तथा राज्य के भीतर या परस्पर राज्यों के बीच क्रियाकलापों में राज्य के अनुचित और मनमाने हस्तक्षेप के विरुद्ध खण्ड (बी) स्वयं सुरक्षा प्रदान करता है जिसमें यह अपेक्षित है कि केवल ऐसे प्रतिबंध लगाए जाएं जो उचित तथा लोकहित में आवश्यक हों। यदि कोई विधेयक या संशोधन इस मानदण्ड पर पूरा नहीं उतरता तो न्यायालयों को निश्चित रूप से उसे संवैधानिक मान कर, खारिज करने की स्वतंत्रता होगी। खण्ड (बी) के प्रयोजन के लिए विधान बनाने में राज्य विधान मण्डलों के अधिकार पर और अधिक प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता नहीं।

4.35. संसद द्वारा बनाई विधियों या संघ सूची के विषयों के संबंध में किन्हीं मौजूदा विधियों के बेहतर प्रशासन के लिए कोई अन्य न्यायालय स्थापित करने के लिए अनुच्छेद 247 के अधीन विधि द्वारा व्यवस्था करने संबंधी संसद का अधिकार, अनिवार्यतः उसी अवधि तक सीमित होना चाहिए जब आपात स्थिति की उद्घोषणा लागू हो या कोई अत्यन्त असाधारण स्थिति हो, जिसके कारण विशेष न्यायालय स्थापित करना आवश्यक हो जाए और जिसके कारण स्पष्ट रूप से व्यक्त किये गये हों और जिन्हें अंतर्राज्य परिषद औपचारिक तौर पर उचित स्वीकार करे। सामान्य काल में सभी विधियों का संचालन साधारण न्यायालयों द्वारा किया जाए चाहे वे विधियां संसद अथवा राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के विधान मण्डलों द्वारा बनाई गई हों।

4.36. अनुच्छेद 368 के अधीन सभी संवैधानिक संशोधनों में राज्यों को अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार अवश्य होना चाहिए। सामान्यतः किसी भी संवैधानिक संशोधन पर बहुसंख्यक राज्यों का अनुसमर्थन अनिवार्य अपेक्षा बना दी जानी चाहिए। निर्दिष्ट अनुच्छेदों के संबंध में संशोधनों पर, जिनमें ऐसे अनुच्छेद विशेष रूप से अनिवार्यतः शामिल हों जिनसे संघ राज्य संबंधों पर प्रभाव पड़ता हो, कम से कम दो तिहाई राज्यों का अनुसमर्थन अवश्य प्राप्त होना चाहिए।

5. राज्यपाल की भूमिका

5.1 आम तौर पर यह धारणा है कि यदि संविधान में राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष की व्यवस्था हो तो संसदीय प्रणाली की सरकार का काम सुचारू ढंग से चलता है। चूंकि भारतीय संविधान ने संघ और राज्य स्तरों पर सरकार की इसी प्रणाली को अपनाया है, इसलिए इन दोनों स्तरों पर संवैधानिक प्रधान की व्यवस्था की गई है अर्थात् क्रमशः राष्ट्रपति तथा राज्यपाल की।

राज्यपाल की भूमिका

5.2 राज्यपाल की मुख्य भूमिका यह होनी चाहिए कि वह राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करे। डा० अम्बेडकर ने उसे "अलंकारिक कार्यकर्ता" की संज्ञा दी।* उच्चतम न्यायालय ने भी राज्यपाल के पद के बारे में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये। हरगोबिन्द बनाम रघुलाल तिलक और अन्यों के मुकदमें में, उसने** निर्णय दिया कि राज्यपाल का पद एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है जो भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन नहीं है। मारू राम बनाम संघ सरकार के मुकदमें में, @ इसने राज्यपाल को राज्य सरकार के लिए एक लघु अभिव्यक्ति बताया।

---

*संविधान सभा वाद विवाद, खण्ड III पृ० 468।

**ए० आई० आर० 1979, उच्चतम न्यायालय 1109।

@ए० आई० आर० उच्चतम न्यायालय 2147 (पृ० 2169)।

5.3 राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में अपनी मुख्य भूमिका के अतिरिक्त, राज्यपाल (i) राज्य विधान मण्डल का अभिन्न अंग होता है (अनुच्छेद 168), (ii) राज्य और संघ के बीच संयोजक होता है, तथा (iii) राष्ट्रपति का एजेंट होता है, उदाहरणार्थ राज्य में राष्ट्रपति शासन के दौरान।

संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य

5.4 चूंकि राज्यपाल राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष होता है, इसलिए राज्य की कार्यपालक शक्ति उसी में निहित होती है [अनुच्छेद 154 (1)] तथा राज्य सरकार का कारोबार उसी के नाम से चलाया जाता है (अनुच्छेद 166)। राज्य की कार्यपालक शक्ति उसकी विधायी अधिकारों के साथ सह-विस्तृत है (अनुच्छेद 162)। राज्यपाल अपनी कार्यपालक शक्ति का प्रयोग अपने मंत्री परिषद की सहायता और सलाह से करता है जो राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होंगे, सिवाय उन विषयों के जिनके संबंध में राज्यपाल को संविधान के अधीन अपने कार्य स्वविवेक से करने होते हैं [अनुच्छेद 163(1)]। संदेह के मामले में राज्यपाल को उस संबंध में स्वयं अंतिम निर्णय लेने का अधिकार है कि क्या कोई विषय ऐसा है अथवा नहीं जिसमें उसे अनिवार्यत: अपने विवेकानुसार कार्य करना है [अनुच्छेद 163(2)]। इसके अतिरिक्त, राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल, मुख्य मंत्री की नियुक्ति और मुख्य मंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है (अनुच्छेद 164)। मुख्य मंत्री को, उसे मंत्रीपरिषद के निर्णयों और विधान संबंधी प्रस्तावों से अवगत कराना होता है और उसे इनके संबंध में कोई भी ऐसी जानकारी देनी होती है जो वह प्राप्त करना चाहे। राज्यपाल, मुख्यमंत्री से, किसी मंत्री विशेष का निर्णय, मंत्रि परिषद के समक्ष रखने के लिए भी कह सकता है [अनुच्छेद (167)]।

5.5 राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में अपनी भूमिका के अनुरूप, राज्यपाल को पूर्णतया निष्पक्ष तरीके से कार्य करना चाहिए। परन्तु वास्तव में स्थिति इस कल्पना के विपरीत रही है। राज्यपाल ने, विशेषकर यदि वह पहले सक्रिय राजनीति में रहा हो या भविष्य में फिर से राजनीति में आना चाहता हो, अपनी उचित भूमिका का अतिल्लंघन किया है और पक्षपात पूर्ण ढंग से कार्य किया है। पक्षपातपूर्ण आचरण के आरोप विशेषकर ऐसे राज्यपालों के संबंध में लगाए गए हैं जिनका उस राजनीतिक संगठन में सक्रिय सहयोग रहा है, जो स्वतंत्रता पश्चात् की पूर्ण अवधि में केन्द्र में सत्तारूढ़ है।

पक्षपातपूर्ण आचरण के सामान्य क्षेत्र

5.6 राज्यपाल द्वारा पक्षपातपूर्ण आचरण के आरोप सामान्यत: निम्नलिखित कार्रवाइयों से संबंधित हैं :—

(i) ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की नियुक्ति, जब विधान सभा में किसी एक राजनीतिक दल को बहुमत समर्थन प्राप्त न हो;

(ii) मुख्यमंत्री का पद हासिल करने के लिए बहुमत समर्थन का दावा करने वाले विभिन्न व्यक्तियों के दावों की जांच करने के लिए ऐसे संदेहास्पद तरीके अपनाना जो न तो जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की सत्यनिष्ठा के अनुरूप हों और न ही राज्य के निष्पक्ष संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल की भूमिका से मेल खाते हों।

(iii) स्वयं सदन में ही विधान सभा का बहुमत समर्थन सिद्ध करने के लिए मुख्य मंत्री का उचित अवसर दिये बगैर मंत्रि परिषद को बर्खास्त करना ;

(iv) राज्य विधान मण्डलों के सदन/सदनों को बुलाना और उनका सत्रावसान करना तथा विधान सभा को भंग करना;

(v) सदन/सदनों द्वारा पारित विधेयकों को राष्ट्रपति की सहमति के लिए आरक्षित रखना (अनुच्छेद 200 के अधीन);

(vi) अनुच्छेद 356 के अधीन राष्ट्रपति को इस आशय की रिपोर्ट देना कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती;

(vii) उपरोक्त रिपोर्ट में प्रस्तावित कार्रवाई, विशेषकर इस संबंध में कि क्या राज्यपाल इसे अस्थायी व्यवधान समझता है जिसमें विधानसभा को जीवित रखे हुए निलंबित किया जाए या इसे उत्तरदायी सरकार की लम्बे समय तक अनुपस्थिति मानता है जिसमें इस सदन के नए निर्वाचन के समय का कोई संकेत दिये बगैर सभा को शीघ्र भंग करना आवश्यक हो;

(viii) राष्ट्रपति शासन के दौरान, राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में राज्य प्रशासन का संचालन ;

(ix) राज्यों के विश्वविद्यालयों के कुलपति की नियुक्ति;

(x) षडयंत्र रचने और कार्यान्वित करने तथा अन्य कार्रवाईयों के लिए राज भवन को केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का कार्यालय या समिति कक्ष या अतिथि गृह बनने देना, जिनका लक्ष्य दल के लाभ के लिए, राज्य सरकार को परेशान करना, उनकी बदनामी करना या उसे तोड़ना और अन्तत: उसे बर्खास्त करना हो;

(xi) सामान्यतया, राज्य के स्वतंत्र संविधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करने की बजाय संघ कार्यपालिका के एजेंट के रूप में कार्य करना जबकि स्वतंत्र संविधानिक राज्याध्यक्ष, संविधान के शब्दों और भावनाओं के अनुसार, राज्य सरकार को उचित सहयोग देता है चाहे वह किसी भी दल से संबंधित हो।

5.7 संविधान की भावना का उल्लंघन करके राज्यपाल का पक्षपातपूर्ण ढंग से कार्य करना ही व्यापक आशंकाओं का मुख्य कारण रहा है और कुछ मामलों में कटु शत्रुता भी उत्पन्न हुई है जो अलग अलग राज्यपालों और राज्यपाल के पद ने गैर कांग्रेसी राजनीतिक दलों में उत्पन्न की है। सहकारी संघवाद यह अपेक्षा करता है कि प्रभावी संवैधानिक सुरक्षा अवश्य प्रदान की जानी चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि राज्यपाल का पद राजनीतिक विवादों से बिल्कुल मुक्त है।

राज्यपाल की नियुक्ति और कार्यकाल

(क) वर्तमान उपबंध :

5.8 राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। लगभग सभी अन्य मामलों की तरह इसमें भी राष्ट्रपति केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह से काम करता है। इस प्रकार राज्यपाल वस्तुत: संघ कार्यपालिका का नियुक्त किया गया व्यक्ति है। संविधान लागू होने के बाद कुछ वर्षों तक, संबंधित विषय पर राज्य के मुख्यमंत्री से, आमतौर पर, परामर्श किया जाता था परन्तु श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रधान मंत्री बनने के बाद यह प्रथा समाप्त कर दी गई। इस प्रथा को बंद करने का एक संभावित स्पष्टीकरण यह लगता है कि पहले के वर्षों में, जब कांग्रेस दल केन्द्र तथा लगभग सभी राज्यों में सत्तारूढ़ था, तो ऐसा परामर्श अनिवार्यत: दल का अंदरूनी मामला होता था, परन्तु अनेक राज्यों में गैर-कांग्रेसी दलों के सत्ता में आने के साथ इसका स्वरूप बदल गया। परिवर्तित परिस्थितियों में केन्द्र ने संविधान पर शब्दश: चलना शुरू कर दिया, जिसके अनुसार राज्य के मुख्यमंत्री से पूर्व परामर्श करना आवश्यक नहीं था और उस परम्परा को छोड़ दिया, जिसका इस संबंध में विकास हुआ था।

5.9 राज्यपाल की नियुक्ति 5 वर्ष की अवधि के लिए की जाती है [अनुच्छेद 156(3)] किन्तु वह राष्ट्रपति की मर्जी से पदधारित करता है।) [अनुच्छेद 156(1)]। दूसरे शब्दों में, उसे राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है (पढ़िए : इस अवधि के समाप्त होने से पहले प्रधान मंत्री की मर्जी से)। कम से कम एक मामले में राज्यपाल को वस्तुत: राष्ट्रपति द्वारा, अवधि समाप्त होने से पहले, हटाया गया था।

5.10 कोई भी व्यक्ति एक से अधिक राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है (अनुच्छेद 153 के परंतुक)। यह उपबंध कुछ अनुचित है। यह संकेत देता है कि राज्य एकात्मक राज्य संरचना के केवल प्रशासनिक उपमंडल हैं और अनिवार्यत: संघीय राजतंत्र के संघटक राज्य नहीं। कई मामलों में एक राज्य के राज्यपाल को एक बार से अधिक अपनी 5 वर्ष के शेष अवधि के लिए किसी अन्य राज्य में स्थानान्तरित किया गया है। लगभग उप आयुक्त के रूप में उसे किसी भी समय एक जिले से दूसरे जिले में स्थानांतरित किया जा सकता है। यह प्रथा राज्य के स्वतंत्र संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में उसकी मुख्य भूमिका कम कर देती है। इसका यह अर्थ भी है कि राज्य अनिवार्यत: एकात्मक राज्य के प्रशासनिक मंडल हैं।

5.11 किसी राज्य के राज्यपाल के पद को किसी निकटवर्ती संघ राज्य क्षेत्र के प्रशासन के पद के साथ मिलाना स्वीकार्य है। इस मामले में वह प्रशासक के रूप में अपने कार्य अपनी मंत्रिपरिषद से अलग हटकर करेगा। [अनुच्छेद 239(2)]। राज्यपाल कोई अन्य लाभप्रद पद धारित नहीं करेगा या संघ अथवा राज्य विधान मंडल के किसी सदन का सदस्य नहीं बनेगा (अनुच्छेद 158)।

(ख) प्रस्तावित उपबंध

5.12 राज्यपाल की नियुक्ति की पद्धति यह सुनिश्चित करने के लिए सामान्यतः अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है कि वह राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में अपनी मुख्य भूमिका के अनुरूप, निष्पक्ष तरीके से कार्य करे, वास्तव में, संविधान के अधीन, राज्यपाल केन्द्रीय मंत्रिपरिषद (बल्कि प्रधान मंत्री) द्वारा नियुक्त व्यक्ति होती है और उनकी (बल्कि प्रधान मंत्री की) मर्जी से पदधारित करता है जो कि उसके निष्पक्ष तरीके से काम करने के अनुरूप नहीं है। इससे भी बुरी स्थिति तब होती है जब चुना गया व्यक्ति भूतपूर्व या कोई भावी सक्रिय राजनीतिज्ञ हो। कभी-कभी यह सुझाव दिया जाता है कि राज्यपाल के मुख्यतया राज्य के संविधानिक अध्यक्ष के रूप में नहीं बल्कि केन्द्र के एजेन्ट के रूप में कार्य करने की संभावना को कम से कम करने की दृष्टि से यह व्यवस्था करने के लिए संविधान में संशोधन किया जाए कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर, या मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत नामिका में से की जाएगी किंतु इस व्यवस्था के अधीन भी राज्यपाल के राज्य में सत्तारूढ़ दल के पक्ष में पक्षपातपूर्ण तरीके से कार्य करने की संभावना उतनी ही अधिक रहेगी जितनी वर्तमान व्यवस्था के अधीन है। अंतर केवल यहां है कि इस समय ऐसी स्थिति में केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का पक्ष लिया जाता है। संभवतया सबसे अच्छा उपाय इस बात की व्यवस्था करना होगा कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा राज्य के मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत 3 नामों में से की जाएगी जो अंतर्राज्य परिषद द्वारा रखी गई और वार्षिक आधार पर अद्यतन बनाई गई उस नामिका में से चुने जाएंगे, जिन्हें इस पद के लिए उपयुक्त समझा गया हो। अनुच्छेद 74 के अधीन इस संवैधानिक अपेक्षा को पूरा करने के लिए कि राष्ट्रपति अपने कार्य करते हुए केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह पर चलेगा, अंतर्राज्य परिषद को इसमें शामिल करने का उद्देश्य यही है कि अंतर्राज्य परिषद द्वारा रखी गई नामिका में से मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत 3 नाम प्राप्त होने पर, संघीय कार्यपालिका इन नामों को अंतर्राज्य परिषद के पास भेजे और राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को सलाह देने में, सर्वेव, परिषद से प्राप्त सलाह पर चले। इस प्रकार राष्ट्रपति और अंतर्राज्य परिषद (जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होगा) दोनों के माध्यम से संघीय कार्यपालिका तथा राज्य सामूहिक रूप से, और संबंधित राज्य का मुख्यमंत्री, सभी राज्यपाल की नियुक्ति में योगदान देंगे। राज्यपाल की नियुक्ति से संबंधित अनुच्छेद 155 में आवश्यक सीमा तक संशोधन किया जाए।

5.13 यह बात अत्यधिक महत्व की है कि केवल उच्च चरित्रबल, सत्यनिष्ठा और सार्वजनिक महत्ता वाले व्यक्तियों पर ही यह विश्वास किया जा सकता है है कि वे उपर्युक्त पार्टी और राजनैतिक समीकरणों से ऊपर उठकर संविधान की मूल भावना के अनुसार राज्यपाल के रूप में अपने कार्यों को कर सकेंगे। अतः ऐसे व्यक्तियों को ही सूची में शामिल किया जा सकता है। राजनैतिक जागरूकता और राजनैतिक निष्पक्षता के प्रति ईमानदारी इस पद की अनिवार्य विशेषताएं मानी जा सकती हैं। जिन व्यक्तियों ने राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया है, उन्हें सूची में शामिल करने से रोका नहीं जा सकता, यदि उनमें अपेक्षित योग्यताएं, चरित्र एवं निजी विशेषताएं हैं। राज्यपाल का पद बनाने का कोई मामला नहीं है, जैसा कि कई बार ऐसे व्यक्तियों के एकाधिकार द्वारा सुझाव दिया जाता है, जिन्होंने पेशे में अपनी विशिष्टता दिखाई है।

5.14 राज्यपाल की नियुक्ति की शर्तें ऐसी होनी चाहिए कि वह किसी भी पक्ष के लोभ और अभित्रास से मुक्त हो। इसके लिए उसे सामान्यतः पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले पद से हटाया न जाए। किसी दूसरे राज्य में उसका स्थानान्तरण किया जाए। राष्ट्रपति अन्तरराज्य परिषद की सिफारिश के बगैर उसे बरखास्त नहीं करेगा। यदि संघ सरकार या राज्य सरकार ऐसा महसूस करती है कि राज्यपाल की हैसियत से उसका आचरण विषम है या वह इस उच्च पद के लिए अयोग्य है, तो वे उसकी बरखास्तगी के लिए अन्तरराज्य परिषद के पास जा सकती हैं, लेकिन इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए मात्र परिषद को ही सक्षम होना चाहिए। किसी भी राज्यपाल को, चाहे उसी राज्य में या किसी दूसरे राज्य में, दूसरी बार यह पद न दिया जाए।

राज्यपाल द्वारा स्वविवेक का प्रयोग

5.15 अनुच्छेद 163 के अनुसार यह अपेक्षित है कि राज्यपाल अपने उन कृत्यों, ऐसे कार्यों को छोड़कर, जो उसे इस संविधान द्वारा या इसके अधीन या अपने विवेकानुसार करने अपेक्षित हैं या इनमें से कोई एक कार्य करना अपेक्षित है, का प्रयोग करते हुए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में राज्य मंत्री परिषद की मदद और सलाह से कार्य करेगा। संविधान सभा में इस बात की बहुत अधिक मांग थी कि संविधान के मसौदे के खण्ड 143 में (जो बाद में संविधान का अनुच्छेद 163 हो गया) राज्यपाल द्वारा विवेकानुसार शक्तियों के प्रयोग के लिए व्यवस्थित ऊपर उद्धृत उपबंध हटा दिया जाए। इस उपबंध के बचाव में, श्री टी०टी० कृष्णमाचारी, श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्री बी० आर० अम्बेडकर ने यह स्पष्ट किया कि "इस खंड के अधीन विवेक के प्रयोग का क्षेत्र केवल उन मामलों तक सीमित है जिनमें, संविधान के किसी अन्य अनुच्छेद के अधीन राज्यपाल को विशेष रूप से अपने विवेकानुसार कार्य करने की शक्तियां दी गई थीं। डाक्टर अम्बेडकर ने यह स्पष्ट किया कि राज्यपाल को ऐसे किसी मामले में, जिनमें उसे लगे कि वह अवहेलना कर सकता है, अपने मंत्रियों की सलाह की अवहेलना करने की शक्ति देना सामान्य खंड नहीं है।" उन्होंने बताया कि वे इस खंड के अधीन उन विशिष्ट अनुच्छेदों का उल्लेख करने के लिए तत्काल सहमत हो जाएंगे, जो इस अनुच्छेद के विषय क्षेत्र के अंदर आते हैं, लेकिन ऐसा करना संभव नहीं था क्योंकि संविधान का मसौदा उस समय पूर्ण नहीं था।

5.16 वास्तव में संविधान में ऐसे बहुत कम उपबंध हैं, जिनमें राज्यपाल से विशेष रूप से अपने विवेकानुसार शक्तियों का प्रयोग करना अपेक्षित हो। ऐसे उपबंध अधिकांशतः उत्तर-पूर्व राज्यों से संबंधित हैं। अनुच्छेद 371 ए (1) (ख) के अनुसार नागालैण्ड में कानून और व्यवस्था कायम करना उस राज्य के राज्यपाल की विशेष जिम्मेदारी है। अनुच्छेद 371 ए (1) (घ) नागालैण्ड के तेनसांग जिले की क्षेत्रीय परिषद के लिए नियम बनाने से संबंधित है। अनुच्छेद 371 ए (2) (ख) किसी ऐसी राशि के आबंटन से संबंधित है, जो भारत सरकार द्वारा तेनसांग जिले और राज्य के शेष जिलों के बीच संपूर्ण राज्य के लिए नागालैण्ड सरकार को दी गई है। अनुच्छेद 371 ए (2) (च) तेनसांग जिले से संबंधित सभी मामलों के अंतिम निर्णयों का उल्लेख करता है। अनुसूची-VI का पैरा 9 (2), जिसमें असम मेघालय, त्रिपुरा राज्य और मिजोरम संघ राज्य क्षेत्र शामिल हैं, राज्य सरकार और जिला परिषद (स्वायत्त जिले की परिषद) के बीच खनिजों पर स्वामित्व (रायल्टी) के बंटवारे से संबंधित है। इन सभी मामलों में राज्यपाल के लिए संविधान द्वारा या उसके अधीन यह विशेष रूप से अपेक्षित है कि वह विवेकानुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग करे। यदि राज्यपाल की विवेक-शक्ति का विषय-क्षेत्र केवल इन मामलों तक ही सीमित होता तो यह राष्ट्रीय महत्व का विषय न हो पाता।

5.17 अनुच्छेद 163(1) के अधीन राज्यपाल की विवेकाधीन शक्ति केन्द्र-राज्य संबंधों का एक प्रमुख मुद्दा बन गया है क्योंकि वास्तव में, संविधान के निर्माताओं द्वारा संविधान सभा को दिए गए स्पष्टीकरण की उपेक्षा करते हुए इस शक्ति के क्षेत्र की व्यापक व्याख्या की गई। यह मांग की गई है कि अनुच्छेद 163 (1) में "इस संविधान द्वारा या इसके अधीन अभिव्यक्ति में ऐसी सभी स्थितियां, जिनमें विवेक के प्रयोग की शक्ति का या तो स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया हो या वह प्रासंगिक अनुच्छेदों में अनिवार्यतः अन्तर्निहित हो" भी शामिल हो। राज्यपाल वास्तव में इस व्यापक व्याख्या के आधार पर कार्य करते रहे हैं। ऐसा इसलिए संभव हो गया क्योंकि अनुच्छेद 163 के खंड (2) के अधीन, राज्यपाल को अपने विवेक से अंतिम रूप से स्वयं ही यह निर्णय लेने की शक्ति मिल गई है कि क्या वह किसी एक मामले में इस संविधान द्वारा या इसके विवेकानुसार काम कर सकता है अथवा नहीं और इस निर्णय पर किसी भी विधि न्यायालय में आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। उच्चतम न्यायालय ने भी इस व्यापक व्याख्या का अनुमोदन किया है। शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 2192) में यह व्यवस्था है कि कुछ मामलों में राज्यपाल को आवश्यकता को देखते हुए अपने विवेकानुसार काम करने की

शक्ति प्राप्त है। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने भी "स्वविवेक" के अनुसार शब्दों की व्याख्या उसी अर्थ में की है, जो अर्थ भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन "उसके व्यक्तिगत न्याय निर्णय में" शब्दों का है। दूसरे शब्दों में, ऐसे मामले, जो राज्यपाल द्वारा, चाहे स्पष्ट उपबंधों के माध्यम से या आवश्यक निहितार्थ के माध्यम से उसके विवेक के प्रयोग के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं, के संबंध में मंत्री परिषद भी सलाह दे सकती है, लेकिन राज्यपाल इस सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं है। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण मामले जिनमें राज्यपाल को सामान्य रूप से अपने विवेकानुसार कार्य करने के लिए सक्षम माना जाता है, इस प्रकार हैं :--

मुख्यमंत्री की नियुक्ति [अनुच्छेद 164(1)], विधान-सभा भंग करना [अनुच्छेद 174 (2) (ख)], राष्ट्रपति के विचारार्थ बिलों को आरक्षित रखना (अनुच्छेद 200), विधान मंडल की मध्यावधि के दौरान अध्यादेश आख्यापित करना (अनुच्छेद 213 का परन्तुक) और संवैधानिक तंत्र के असफल हो जाने की स्थिति में राज्य पर राष्ट्रपति शासन लागू करना [अनुच्छेद 356(1)]।

5.18 राज्यपाल द्वारा विवेक-शक्ति के क्षेत्र की व्यापक व्याख्या से, विशेष रूप से उस समय, जब उसे इसमें अनुच्छेद 163(2) द्वारा संरक्षण मिलता है, राज्यों की स्वायत्तता को उनके विशिष्ट क्षेत्र में भारी खतरा पहुंचता है और लोकतांत्रिक जिम्मेदार सरकार द्वारा शासित होने के संबंध में लोगों के अधिकार को भी खतरा पहुंचता है। अनेक अवसरों पर यह संभावित खतरा राज्यों की स्वायत्तता और लोकतांत्रिक सरकार पर वास्तव में आघात है। "ऐसे कार्यों को छोड़कर, जो उसे इस संविधान द्वारा या इसके अधीन या स्वविवेकानुसार कार्य करने के लिए अपेक्षित है या इनमें से कोई एक कार्य करना अपेक्षित है" केवल इस उपबंध को हटाकर इस खतरे को समाप्त करना संभव नहीं है क्योंकि ऐसे कुछ अवसर हो सकते हैं जब राज्यपाल के लिए स्वविवेकानुसार कार्य करना आवश्यक और न्यायसंगत हो सकता है। उस स्थिति में राज्यों की स्वायत्तता और जिम्मेदार सरकार को राज्यपाल द्वारा विवेकानुसार शक्ति का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए चाहे इस विवेक-शक्ति का प्रयोग वह स्वविवेक से करे या केन्द्रीय सरकार के आदेश पर, केवल दो ही रास्ते हो सकते हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(i) न्यायालयों को, न कि स्वयं राज्यपाल को, अंतिम रूप से यह निर्धारित करने की शक्ति दी जा सकती है कि ऐसा कोई मामला है अथवा नहीं जिसमें राज्यपाल को स्पष्ट उपबंध या आवश्यक निहितार्थ द्वारा अपने विवेकानुसार कार्य करने की शक्ति है, और

(ii) ऐसे सभी अनुच्छेद जिनमें इस बात की आशंका व्यक्त की गई है कि राज्यपाल अनुचित रूप से आधार पर स्वविवेक का प्रयोग करेगा कि अनुच्छेद के आवश्यक निहितार्थ द्वारा उसे ऐसा करने की शक्ति प्राप्त है, तो उस अनुच्छेद विशेष का संशोधन कर दिया जाए ताकि राज्यपाल द्वारा स्वविवेक के प्रयोग को स्पष्ट रूप से समाप्त किया जा सके।

5.19 अनुच्छेद 163 में स्पष्टतः यह उपबन्ध होना चाहिए कि राज्यपाल अपनी विवेक शक्ति का इस्तेमाल हमेशा सार्वजनिक हित में ही करेगा। विवेकाधीन शक्तियों का अर्थ मनमानी शक्तियों के रूप में कदापि न लगाया जाए तथा कदाग्रहता से कभी इस्तेमाल न किया जाए। इस शक्ति का उसी प्रयोजन से इस्तेमाल किया जाए, जिस प्रयोजन के लिए यह विवेकाधीन शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों की व्याख्या इस प्रकार से नहीं करनी चाहिए मानो उसे उन कार्यों के सम्बन्ध में, जो उसकी शक्ति के सीमा-क्षेत्र में आते हैं, एक समानान्तर शासन स्थापित करने का प्राधिकार मिल गया हो। इसके स्थान पर उसे अपने मंत्री परिषद के साथ मैत्रीपूर्वक इन कार्यों को उस अधिकतम सीमा तक करने के संबंध में प्रयत्न करना चाहिए, जिस सीमा तक इन कार्यों को सम्यक् रूप से पूरा करना संभव हो।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति

5.20 संविधान और साथ ही साथ भारत की राजनैतिक व्यवस्था, सुस्पष्टतः इस बात पर बल देती है कि अनुच्छेद 164 के अधीन राज्य के संविधानिक अध्यक्ष के रूप में राज्यपाल का कार्य ऐसा मंत्रि-परिषद सुनिश्चित करना है, जिसे विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। युक्ति से किसी पार्टी विशेष की आशा नहीं है। केन्द्र में शासक दल की राज्यपाल की ओर से किसी ऐसे पक्षपात के प्रति सक्रिय रूप में स्वयं असम्मति प्रकट करनी चाहिए। वास्तव में इतने स्पष्ट पक्षपातपूर्ण और हिमायती की गतिविधियां अन्तर-राज्य परिषद द्वारा राज्यपाल की बरखास्तगी के लिए राष्ट्रपति को अनुरोध करने के लिए एक पर्याप्त आधार होनी चाहिए। इसी प्रयोजन के लिए, अनुच्छेद 169 में मुख्यमंत्री की नियुक्ति के लिए एक विशिष्ट कार्यविधि निर्धारित की जा सकती है, जो कुछ-कुछ निम्नलिखित रूपरेखा पर आधारित है :--

(1) यदि कोई एक राजनीतिक पार्टी को या राजनीतिक पार्टियों का उचित रूप से स्थिर समूह को विधान सभा में स्पष्ट बहुमत का समर्थन प्राप्त हो तो उस पार्टी या पार्टियों के समूह द्वारा चुना गया नेता राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाएगा। अन्य मंत्री मुख्यमंत्री की सलाह से राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाएंगे।

(2) यदि किसी भी एक राजनीतिक पार्टी या राजनीतिक पार्टियों के समूह को विधान सभा में स्पष्ट बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है तो राज्यपाल अपने आप इस सदन को बुला कर इस बारे में पूछताछ कर सकता है कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसे सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त है। तत्पश्चात् सदन में यह कार्य वर्तमान सदस्यों के पूर्ण बहुमत द्वारा किसी व्यक्ति के प्रति औपचारिक विश्वास-प्रस्ताव का अनुमोदन करके और मतदान करवाकर किया जा सकता है। इस प्रकार जिस व्यक्ति को सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो, उसे राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाएगा। अन्य मंत्री मुख्य मंत्री की सलाह से राज्यपाल द्वारा नियुक्त किए जाएंगे। राज्यपाल किसी भी परिस्थिति में सभा में बहुमत के समर्थन के दावों की सच्चाई निर्धारित करने का कार्य अपने ऊपर नहीं लेगा। इस संबंध में मुख्यमंत्री का पद प्राप्त करने के लिए अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा कोशिश की जा सकती है। अनिश्चय की स्थिति में, सभा में बहुमत के समर्थन के मुद्दे का निर्णय लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सभा में मतदान करवा कर ही किया जाना चाहिए।

(3) यदि दूसरी स्थिति में भी विधान सभा वर्तमान सदस्यों के पूर्ण बहुमत द्वारा किसी भी एक व्यक्ति के प्रति बहुमत का समर्थन दिखाने और निर्धारित अवधि के अन्दर मतदान करवाने में असफल रहती है तो राज्यपाल अपने स्व-निर्णय के आधार पर इस सदन को नए चुनाव होने तक विधान सभा को भंग कर सकता है। यदि कोई विद्यमान मंत्री परिषद् है तो वह तब तक के लिए काम चलाऊ सरकार के रूप में काय करेगी जब तक चुनाव हो जाने के बाद नई मंत्री परिषद् कार्यभार नहीं संभाल लेती।

5.21 यदि निकट भविष्य में नए सिरे से चुनाव करवाना संभव न हो या उस समय कोई मंत्री परिषद् न हो तो राज्यपाल इस आधार पर राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है कि राज्य में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसमें संविधान [अनुच्छेद 356 (1)] के उपबन्धों के अनुसार विद्यमान राज्य सरकार को जारी नहीं रखा जा सकता है। विधान सभा के चुनाव नए सिर से यथाशीघ्र करवाए जाएंगे ताकि राज्य में लोकप्रिय सरकार की पुनः प्रतिष्ठा की जा सके।

मुख्यमंत्री की बरखास्तगी

5.22 राज्यपाल अनुच्छेद 164 के अधीन किसी भी मंत्रि परिषद् को इस आधार पर बरखास्त नहीं करेगा कि अब उसे विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं है जब तक इसके लिए मुख्यमंत्री को विधान सभा में विश्वास प्रस्ताव पारित करवा कर अपना बहुमत का समर्थन स्थापित करने का उपयुक्त अवसर नहीं दिया जाता। इस मामले में, राज्यपाल अपने व्यक्तिपरक न्याय निर्णय के आधार पर कार्य नहीं करेगा और न ही वह इस बात का पता लगाने के लिए कोई अन्य पद्धति अपनाएगा कि मंत्री परिषद को विधान सभा में बहुमत का लगातार समर्थन मिल रहा है, अथवा नहीं।

5.23 किसी भी मुख्य मंत्री को केवल मुख्यमंत्री की सलाह से ही बरखास्त किया जाएगा ।

अनुच्छेद 356 (1) अधीन राष्ट्रपति को दी गई रिपोर्ट (क)

5.24 अनुच्छेद 356(1) के अधीन राष्ट्रपति को दी गई राज्यपाल की रिपोर्ट के संबंध में, यह आवश्यक है कि संविधान में संशोधन करके यह व्यवस्था की जाए कि राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पूर्व, वह मुख्यमंत्री को उन आधारों के बारे में सूचना देगा, जिसके कारण उसे ऐसा लगा कि राज्य में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसमें विद्यमान राज्य सरकार को संविधान के उपबन्धों के अनुसार आगे नहीं रखा जा सकता और उठाए गए मुद्दों पर विचार अभिव्यक्त करने के लिए वह उसे उपयुक्त अवसर भी देगा । यदि राज्यपाल इन विचारों से संतुष्ट न हो तो वह अपनी रिपोर्ट मुख्यमंत्री द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों के साथ संलग्न करके राष्ट्रपति को अग्रेषित कर सकता है । राष्ट्रपति को अग्रेषित की गई राज्यपाल की रिपोर्ट (इसके सलग्नक सहित) राष्ट्रपति के इस रिपोर्ट पर निर्णय की उद्घोषणा के साथ विज्ञापित की जाएगी । राज्यपाल को राष्ट्रपति के लिए एक तरफा रिपोर्ट तैयार करने से रोकने और संघीय कार्यपालिका को लोकप्रिय रूप से चुनी गई राज्य सरकार के लिए अप्राधिकृत और मनमाना व्यवहार करने से रोकने के लिए इन उपबन्धों को एक लंबी प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा ।

5.25 राष्ट्रपति राज्यपाल से रिपोर्ट प्राप्त करने पर अनुच्छेद 356(1) के अधीन तत्काल कार्रवाई करने के लिए बाध्य नहीं है । वह इस पर तभी कार्रवाई कर सकता है, जब वह इस बात से अन्यथा संतुष्ट हो कि राज्य में सांविधानिक अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो गई है । दूसरे शब्दों में, वह इस संबंध में स्वप्रेरणा से कार्रवाई कर सकता है । मुख्यमंत्री को अनुच्छेद 356(1) के अधीन की गई कार्रवाई के बारे में पहले से इस आधार पर, कि सांविधानिक अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो गई है, सूचना देने की बाध्यता इस मामले पर भी लागू होगी ।

5.26 ऊपर सुझाई गई कार्यविधि उच्चतम न्यायालय के हाल ही के कुछ निर्णयों जैसे : मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य निर्वाचन आयुक्त* एम०एल० कपूर बनाम जगमोहन,** और ए० के० राय बनाम भारत संघ@ में निर्धारित कानून के अनुरूप हैं ।

5.27 इन निर्णयों में ऐसा प्रतीत होता है कि स्वाभाविक न्याय का सिद्धान्त अनुच्छेद 356(1) के अधीन राज्य सरकार और राज्य की विधान सभा के उन्मूलन के मामलों पर भी लागू होगा । इस संबंध में होने वाली किसी शंका को दूर करने के उद्देश्य से, अनुच्छेद 356(1) के अधीन उपर्युक्त कार्यविधि के लिए स्पष्ट उपबंध बनाना आवश्यक होगा । राज्य के लोगों का अधिकार उनके प्रतिनिधियों द्वारा शासित अधिकारियों द्वारा छीना नहीं जाना चाहिए । लेकिन उनका यह अधिकार तभी छीना जाए, जब तक इस बात को पूर्णतया सिद्ध किया जा सके कि संविधान के अनुसार इस सरकार को जारी रखना कुल मिलाकर संभव नहीं है ।

पाक्षिक रिपोर्ट

5.28 राष्ट्रपति को दी गई राज्यपाल की पाक्षिक रिपोर्ट निष्पक्षत: सत्य होनी चाहिए । उसे ऐसी रिपोर्ट देने में सावधानीपूर्वक बचना चाहिए मानों वह केन्द्र में शासक दल द्वारा पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया हो और उसे उस पार्टी के हित के लिए रखा गया हो, तथा वह राज्य पर कड़ी नजर रखेगा, विशेष रूप से उस समय जब विरोधी राजनैतिक पार्टी सत्ता में हो । वास्तव में, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के कर्मचारी के रूप में कार्य करते समय और राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय यदि राज्य सरकार की कोई कमियां ध्यान में आएं तो वह उन्हें सर्वप्रथम मुख्यमंत्री के समक्ष रखे । वह राष्ट्रपति को इस संबंध में तभी रिपोर्ट कर सकता है यदि यह कमियां बाद में भी बनी रहें । राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच परस्पर विश्वास बनाए रखने के लिए, राज्यपाल के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाए कि पाक्षिक रिपोर्ट की एक अतिरिक्त प्रति तैयार करवाए, जो बाद में जरूरत पड़ने पर देखी जा सके । तत्पश्चात् मुख्य मंत्री ने इस बारे में महसूस किया होगा कि उसके पीछे कोई साजिश तो नहीं हो रही है । राज्यपाल केंद्र और राज्य के बीच एक कड़ी के रूप में अपनी भूमिका बखूबी अदा कर सकता है और वह सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने में रचनात्मक योगदान दे सकता है, यदि वह केन्द्र और राज्य दोनों को वस्तुपरक सूचना देता है और गलतफहमियां और उनके बीच पैदा होने वाले मतभेदों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करता है ।

राष्ट्रपति शासन के अधीन राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में राज्य प्रशासन का संचालन

5.29 राष्ट्रपति शासन के अधीन, राज्यपाल यथासंभव परिस्थितियों के अधीन प्रभावशाली रूप से और निष्पक्ष रूप से राज्य प्रशासन का संचालन करने का प्रयत्न करेगा । यदि वह राज्य प्रशासन पर केंद्र के शासक दल द्वारा या उसके राज्य संगठन द्वारा शासन किए जाने की अनुमति देता है तो उन घटकों, जो राष्ट्रपति शासन लागू करने का नेतृत्व करते हैं, के समाधान के लिए वह एक उपयोगी अवसर खो देगा और इस प्रकार पूर्वधारणा के अनुसार निकट भविष्य में लोकप्रिय सरकार को स्थायी रूप से पुन: लौटने का अवसर मिलेगा । परिणामत: राज्य को पुन: स्थानिक राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति में धकेला जा सकता है । राज्यपाल के प्रत्यक्ष शासन के अधीन निष्पक्ष राज्य प्रशासन एक ऐसा असाधारण अनुभव है कि विरोधी राजनीतिक पार्टियों द्वारा चलने वाली राज्य सरकार से छुटकारा पाने के लिए यह राष्ट्रपति शासन सामान्यत: एक साधन के रूप में सामने आया है अथवा अन्य राजनीतिक असुविधाओं के कारण राज्य की सांविधानिक स्थिति में गंभीर रूप से गड़बड़ी होने की स्थिति में राष्ट्रपति शासन लागू करना राष्ट्र के हित में किए जाने वाले अंतिम उपाय के रूप में एक हथियार बन गया है । पार्टी के संकुचित हितों को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति शासन बार-बार लागू करना दुरुपयोग के रूप में माना जाएगा । यदि राष्ट्रपति शासन का उपबन्ध उसी प्रयोजन को पूरा करता है, जो संभवत: संविधान-निर्माताओं द्वारा सोचा गया था तो राष्ट्रपति शासन में निष्पक्ष कुशल प्रशासन का संकेत किया जाना चाहिए जो राज्य को लोकप्रिय सरकार की पुन: स्थापना करने के लिए सदन में अच्छी तरह से काम करने का सुअवसर दे क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि अच्छी सरकार एक जिम्मेदार सरकार भी हो । राज्यपाल के प्रत्यक्ष शासन के अधीन निष्पक्ष राज्य प्रशासन एक ऐसा असाधारण अनुभव है कि विरोधी राजनीतिक पार्टियों द्वारा चलने वाली राज्य सरकार से छुटकारा पाने के लिए यह राष्ट्रपति शासन सामान्यत: एक साधन के रूप में सामने आया है अथवा अन्य राजनीतिक असुविधाओं के कारण राज्य की सांविधानिक स्थिति में गंभीर रूप से गड़बड़ी होने की स्थिति में यह राष्ट्रपति शासन लागू करना राष्ट्र के हित में किए जाने वाले अंतिम उपाय के रूप में एक हथियार बन गया है । राष्ट्रपति शासन बार-बार लागू करना यदि पार्टी के समुचित लक्ष्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है तो इसे दुरुपयोग के रूप में माना जाएगा । यदि राष्ट्रपति शासन का उपबन्ध उसी प्रयोजन को पूरा करता है, जो संभवत: संविधान-निर्माताओं द्वारा सोचा गया था तो राष्ट्रपति शासन में निष्पक्ष कुशल प्रशासन का संकेत किया जाना चाहिए जो राज्य को लोकप्रिय सरकार की पुन: स्थापना करने के लिए सदन में अच्छी तरह से काम करने का सुअवसर दे क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि अच्छी सरकार एक जिम्मेदार सरकार भी हो । सांविधानिक संशोधनों को मान लेने के बाद राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्य प्रशासन के संचालन के संबंध में समुचित परिपाटियों का विकास करके जितना परिवर्तन किया जा सकेगा उतना अपेक्षित परिवर्तन किया जाना होता । (उदाहरण के लिए, एक तो इस बात की जरूरी है कि राष्ट्रपति शासन के अधीन, राज्यपाल के सलाहकारों की नियुक्ति वरीयता क्रम-सूची के उन नामों में से की जाएगी, जो सेवानिवृत्त वरिष्ठ कार्मिक हैं तथा उन्हें अन्तर-राज्य-परिषद् द्वारा ईमानदारी, स्वतंत्रता और अखंडता के लिए ख्याति प्राप्त है) ।

राज्य विश्वविद्यालय के उपकुलपति की नियुक्ति

5.30 राज्यपाल द्वारा उसकी हैसियत में विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में राज्य विश्वविद्यालय के उप-कुलपति की नियुक्ति का विषय पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश आदि कुछ मामलों में अधिकांशत: उस समय, जब कांग्रेस-विरोधी

---

* ए आई आर 1978 एस सी 851

** ए आई आर 198 एस सी 136

@ ए आई आर 1982 एस सी 710

पार्टी सत्ता में हो, राज्यपाल और राज्य सरकार के बीच विवाद का कारण बन जाता है। इन मामलों में, राज्यपाल का यह दावा किया जाना उचित प्रतीत होता है कि कुलपति के रूप में उसकी हैसियत में, उसे अपने विवेकानुसार कार्य करने का अधिकार दिया जाए। वास्तव में राज्यपाल पदेन हैसियत में राज्य विश्वविद्यालय का कुलपति मात्र हैं और वह भी केवल राज्य का अध्यक्ष होने के नाते। यह माना जाता है कि अपने अन्य अधिशासी प्रकार्यों की भांति, उसे उप-कुलपति की नियुक्ति के लिए, मंत्रि परिषद् से परामर्श करके भी, अपने प्रकार्यों का अनुपालन करना चाहिए, जब तक कि राज्य अधिनियम में विश्वविद्यालय की स्थापना करके और उसके प्रबंधक वर्ग की संरचना के मूल कारकों की परिभाषित करके स्पष्टत: उससे यह मांग नहीं की जाती कि इस संबंध में वह अपनी विवेक-शक्ति का प्रयोग करे। उत्तरवर्ती स्थिति में भी वह राज्य सरकार को उस सीमा तक अपने साथ जारी रखने का प्रयत्न करेगा, जिस सीमा तक अपने साथ ऐसा संभव है। देश की हावी परिस्थितियों में तो उप-कुलपति को विश्वविद्यालय सफलतापूर्वक और प्रभावशाली ढंग से चलाने का बहुत कम मौका मिलता है यदि वह राज्य सरकार का पूरा समर्थन और विश्वास प्राप्त नहीं करता है। यदि कुलपति, चाहे इस संबंध में अपनी विवेक-शक्ति का प्रयोग करने संबंधी अपने अधिकार का दावा करने के लिए अथवा केन्द्र में शासक दल के आदेश पर किसी ऐसे व्यक्ति को जो राज्य सरकार के अनुसार अग्राह्य व्यक्ति है, उपकुलपति के पद पर नियुक्त करने का आग्रह करता है, तो ऐसा करने में विश्वविद्यालय का हित नहीं होगा। विवेकानुसार शक्ति का प्रयोग करना उन प्रयोजनों के लिए, जिनके लिए यह शक्तियां दी गई हैं, उपयोगी होगा, विध्वंसकारी नहीं होगा।

प्रशासनिक मुद्दे

6.1 केन्द्र-राज्य संबंधों को लेकर मुख्य प्रशासनिक मुद्दे इस प्रकार हैं :— (i) राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना; (ii) अखिल भारतीय सेवाएं, (iii) राज्य में संघ की सशस्त्र सेना और परा-सैन्य बल लगाना; (iv) समवर्ती सूची में और राज्य की सूचियों में उल्लिखित मामलों के संबंध में केन्द्र सरकार की एजेंसियों के कार्यकलाप; और (v) अन्तर राज्य समन्वय। बताए गए कुछ गौण मुद्दे यह हो सकते हैं—(क) राज्यों को अनुच्छेद 256 और 257 के अधीन निदेश जारी करना और (ख) राज्यों की संघ के प्रकार्य प्रत्यायोजित करना।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करना

6.2 अनुच्छेद 356 के अधीन, राज्यपाल या किसी अन्य अधिकारी से रिपोर्ट प्राप्त करने पर यदि राष्ट्रपति इस बात से सहमत है कि राज्य में ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसमें उस राज्य सरकार को संविधान के उपबन्धों के अनुसार बनाए नहीं रखा जा सकता तो वह उद्घोषणा द्वारा (क) राज्य सरकार के सभी या किन्हीं प्रकार्यों या राज्यपाल की अथवा राज्य विधानमंडल से भिन्न राज्य के किसी निकाय या प्राधिकरण की शक्तियां ग्रहण कर सकता है, (ख) यह घोषणा कर सकता है कि राज्य विधानमंडल की शक्तियां संसद के प्राधिकारी द्वारा या उसके अधीन प्रयोज्य होंगी और (ग) उद्घोषणा के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपेक्षानुसार उपबन्ध कर सकता है। परन्तु राष्ट्रपति उच्च न्यायालय की शक्तियां ग्रहण नहीं करेगा अथवा संविधान के उच्च न्यायालयों संबंधी किसी उपबन्ध को समाप्त नहीं करेगा (खंड) (1)। सामान्यत: ऐसी प्रत्येक उद्घोषणा का उसके जारी होने के दो महीने के अंदर संसद द्वारा अनुमोदन किया जाना जरूरी है (खंड) (3)। यह उद्घोषणा छह महीने के लिए विधिमान्य है लेकिन इसकी अवधि को छह महीने तक और बढ़ाया जा सकता है, अर्थात्, कुल मिला कर इसकी विधिमान्यता एक वर्ष की अवधि तक बढ़ाया जा सकता है।* इस अवधि के बाद भी इस उद्घोषणा को सक्रिय रखा जा सकता है यदि (i) आपात, कालीन उद्घोषणा चालू है और (ii) निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य विधान सभा के आम चुनाव करवाने में कठिनाइयां होने के कारण उद्घोषणा की विधिमान्यता की अवधि बढ़ाना आवश्यक है। परन्तु किसी भी स्थिति में यह उद्घोषणा 3 वर्ष से अधिक की अवधि के लिए प्रवृत्त नहीं रखी जाएगी (खंड (4) और (5))।

*यह अवधि संविधान के (अड़तालीसवें संशोधन) अधिनियम, 1984 के अनुसार तारीख 6-10-83 को जारी उद्घोषणा के संबंध में पंजाब राज्य के मामले में 2 वर्ष तक बढ़ाई गई थी।

6.3 राज्य मुख्यत: निम्नलिखित आधार पर अनुच्छेद 356 को अपवाद-स्वरूप छोड़ सकता है :—

(i) यह राज्यों के बीच बहुत अधिक भेदभाव पैदा कर देता है। केंद्र में राष्ट्रपति शासन के समान कोई व्यवस्था नहीं है। यदि वर्तमान लोक-सभा में किसी संघीय मंत्री परिषद् को बहुमत द्वारा समर्थन मिलने की संभावना नहीं है तो इस सदन को भंग करने में और इसके लिए नए आम चुनाव करवाने में ही एकमात्र समाधान दिखाई देता है। विद्यमान सरकार की कार्यवाहक के रूप में तब तक बनाए रखा जाएगा जब तक कि लोकसभा का चुनाव नहीं हो जाते और इस सदन में बहुमत द्वारा समर्थन प्राप्त नई मंत्रि परिषद् कार्यभार ग्रहण नहीं कर लेती। अनुच्छेद 74 में यह उपबन्ध है कि राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्यों का पालन मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार करेंगे। संविधान में कहीं भी ऐसी परिस्थितियां दिखाई नहीं देती हैं, जिसमें केन्द्र की कोई मंत्रि-परिषद् न हो या कि राष्ट्रपति उसकी सलाह की अवहेलना करते हों। राज्यों के लिए अलग से उपबन्ध बनाने का कोई औचित्य नहीं है। यह तर्क दिया जाता है कि राज्यों के मामले में भी संभवत: उसी लोकतंत्रीय प्रक्रिया का अनुपालन किया जाए। कार्यवाहक मंत्रिपरिषद, उसी राज्य प्रशासन को चालू रख सकती है जब तक उस सदन में बहुमत द्वारा समर्थन प्राप्त एक नया मंत्रि परिषद् लाने के लिए विधान सभा के चुनाव रोक दिए जाते है।

(ii) राज्य में सांविधानिक अव्यवस्था से पैदा होने वाली गंभीर स्थिति में राष्ट्रीय हित को सुरक्षित रखने की अपेक्षा पार्टी के एकतरफ़ा हितों की ध्यान में रखने के लिए अनुच्छेद 356 का केन्द्र के शासक दल द्वारा बहुत बार धृष्टतापूर्वक प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि इस उपबन्ध का इस्तेमाल प्राय: किया गया है, जबकि संविधान निर्माताओं ने इसे वास्तव में गंभीर स्थिति उत्पन्न होने पर एक कड़ा कदम उठाने के रूप में विचार किया था।

(iii) जिन परिस्थितियों के अधीन राष्ट्रपति आपात, स्थिति की घोषणा कर सकता है, वे परिस्थितियां अर्थात, "युद्ध या बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह" यद्यपि अनुच्छेद 352 के अधीन निर्दिष्ट की गई हैं, तथापि अनुच्छेद 356 उन परिस्थितियों के बारे में कोई संकेत नहीं देता है, जिनमें राष्ट्रपति इस बारे में स्वयं को न्यायसंगत रूप से संतुष्ट महसूस करता है कि इस प्रकार की स्थिति वाकई में पैदा हो गई है जिसमें संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य सरकार को बनाए रखा नहीं जा सकता और इस संबंध में इस अनुच्छेद के अधीन कार्रवाई जारी रखी जा सकती है। इस अनुच्छेद के अपरि-मित क्षेत्र के कारण संघ की कार्यकारिणी द्वारा इसका दुरुपयोग किया जाता है। इसका एक स्पष्ट उदाहरण वर्ष 1977 और फिर 1980 में मिलता है जब कई राज्यों की सरकारों को एक साथ बरखास्त कर दिया गया था और उनकी विधान सभाएं भंग कर दी गई थी जबकि अधिकांश मामलों में इस निष्कर्ष को न्यायसंगत ठहराने वाली ऐसी कोई बात नहीं थी कि राज्य में सांविधानिक गड़बड़ी हुई थी।

(iv) अनुच्छेद 356 (1) के अधीन स्वाभाविक न्याय का सिद्धांत राज्य सरकारों की बरखास्तगी पर लागू नहीं किया गया है क्योंकि इन राज्य सरकारों को यह प्रमाणित करने का उपयुक्त अवसर नहीं दिया गया कि जो निष्कर्ष निकाला गया है कि इस प्रकार की स्थिति पैदा हो गई थी जिसमें संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्य सरकार को बनाए नहीं रखा जा सकता था, वह न्याय संगत नहीं है। इस प्रकार राज्य के लोगों का अधिकार उन पर शासन करने वाले उनके प्रतिनिधियों द्वारा अनुचित रूप से छीना गया था।

उपचारात्मक उपाय

6.4 अनुच्छेद 356 के संबंध में की गई उपर्युक्त आलोचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुच्छेद 356 का पूर्णतया लोप कर दिया जाए। राज्यों में राष्ट्र-पति शासन लागू करने के लिए उसी प्रकार से कोई उपबन्ध न रखा जाए जिस प्रकार

केंद्र में इसके लिए कोई उपबन्ध नहीं है। यह तर्क दिया जाता है कि वास्तविक संघीय संरचना में तो राज्यों और केंद्र को एक समान माना जाना चाहिए। संविधान में सरकार के दोनों स्तरों पर समान उपबन्ध बनाए जाएं ताकि संकट की स्थिति का या वास्तव में किसी संवैधानिक गड़बड़ी का सामना किया जा सके।

6.5 वास्तविक संघीय संरचना के विकास के लिए, यह प्रस्ताव कि अनुच्छेद 356 का लोप किया जाए, अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह प्रस्ताव वास्तव में संवैधानिक पुनर्गठन के दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण लक्ष्य को सिद्ध करता है। लेकिन जल्दबाजी में इस प्रस्ताव का कार्यान्वयन करने से बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। देश की एकता और अखंडता अभी तक मजबूत नहीं हो सकी है और देश को बार-बार विभिन्न प्रकार के खतरों का सामना करना पड़ता है।

6.6 इन खतरों के मूल में मुख्यत: दो मूलभूत कारक है जिनकी परस्पर क्रिया के कारण कई राज्यों में अत्यधिक विक्षिप्तता और राजनतिक अस्थिरता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। देश की एकता और अखंडता को उस समय खतरा उत्पन्न होता है जब यह स्थिति पैदा हो जाती है कि प्रतिपक्षी सरकारें अपनी सत्ता जमाने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए देश की एकता और अखंडता को शोषित करना शुरू कर दें।

6.7 राजनैतिक अस्थिरता के मूल कारक में सर्वप्रथम तो यह बात शामिल है कि संघ सरकार और प्रशासन पर उच्च वर्ग की अधिराष्ट्रिय शक्तियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। ये अधिराष्ट्रीय शक्तियां, जिसमें बड़े कारोबार और ऐसे कारोबार, जो इससे जुड़े हुए हैं, केंद्र की शक्ति के नियंत्रणकर्ता और विशिष्ट अखिल भारतीय सेवाओं का बहुत बड़ा वर्ग और सीमित वर्ग और स्वार्थी लोगों में उच्च स्तर के व्यवसायी शामिल हैं, भारत के लोगों की मूल अंतप्रेरणाओं और आकांक्षाओं के विरुद्ध जा रहे हैं। कांग्रेस (आई) इस प्रभावी संयोजन को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करती है।

6.8 ये विरोधी शक्तियां देश पर अपनी पकड़ और अधिक मजबूत करने के लिए अपने मुख्य सैद्धांतिक हथियार और राजनैतिक संयंत्र के रूप में हिंदी-हिंदू-हिंद अतिराष्ट्रीयता (चौविनिज्म्) को बढ़ा-चढ़ा कर अपना रहे हैं और धृष्टता पूर्वक उसे बढ़ावा दे रहे हैं इसके कारण अहिंदी भाषी राष्ट्रिकता और धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों, जिन्हें इसके लिए उकसाया जाता है, की अलग पहचान और विधिसम्मत हितों को खतरा पैदा हो जाता है। परिणामस्वरूप यह संघर्ष देश की एकता और अखंडता के लिए गंभीर खतरा पैदा कर सकता है हालांकि इस प्रकार देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए, एकमात्र प्रभावकारी अति उग्र राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए कितना भी प्रचार क्यों न किया जाए। इस संबंध में इस बात को पुन: स्मरण किए जाने की जरूरत है कि जर्मनी को विनाश और विभाजन की ओर ले जाने वाला नाजीवाद, जिंगोवाद और आक्रमकता न कि विश्व साम्राज्य के महानगर के रूप में उसकी आपातस्थिति, जन्मभूमि का सुनियोजित लक्ष्य था, जिसमें नाजीवाद के गूज-स्टेपिंग ड्यूप ने विश्वास जगाया था।

6.9 राजनैतिक अस्थिरता का दूसरा मूलभूत कारक यह है कि भारत में अभी तक इस संबंध में कोई वैकल्पिक गतिशील मार्ग नहीं खुला है। राष्ट्रीय एकता और अखंडता और साथ ही साथ अहिंदी भाषी और हिंदू-इतर अल्पसंख्यक वर्ग; अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और क्षतिग्रस्त वर्गों, जातियों और सभी लोगों के समूहों, जिसमें हिंदी भाषा के लोग शामिल हैं, की दृढ़ वचनबद्धता पर आधारित राष्ट्र-व्यापी संयुक्त मोर्चे को अभी रूप दिया जाना बाकी है। कुछ राज्यों में, कांग्रेस (आई) विरोधी पार्टियां उभर आई है, जिन्हें बहुत अधिक जनसमर्थन मिला है और यहां तक कि उनकी राज्य सरकारें भी बन गई हैं। ये पार्टियां मुख्यत: अहिंदी भाषी उन लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं का गला घोटती है जिन्होने अपने अंदर अपनी अलग पहचान बनाए रखने की भावना पैदा की हुई है। लेकिन एक गतिशील वैकल्पिक राजनैतिक शक्ति की अपेक्षित अन्य अनिवार्य वचनबद्धताओं की पूरी-पूरी स्वीकृति न मिलने के कारण, ये पार्टियां सामान्यत: राज्य स्तर पर भी अपनी राजनैतिक शक्तियों को एकीकृत करने में असमर्थ हैं। देर-सवेर वे या तो कांग्रेस (आई) द्वारा चलने वाली केंद्र सरकार के साथ विषम संघर्ष कर बैठती हैं या उनके अनुयायी पार्टी के निस्तेज (प्रभावहीन) निष्पादन से निष्प्रभावी हो जाते हैं। इनमें से किसी भी स्थिति में ऐसा हो सकता है कि राजनैतिक अस्थिरता पैदा हो जाए। इसके कारण कभी-कभी ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो जाएगी, जिसमें केंद्र द्वारा अनुच्छेद 356 का सहारा लेना अनिवार्य हो जाए। संघ के स्तर पर भी इस संबंध में अभी वास्तविक परीक्षण किया जाना बाकी है कि संविधान उस स्थिति का किस प्रकार सामना कर सकता है, जब (i) लोकसभा चुनाव कोई राजनैतिक पार्टी या मुखिया को सदन में स्थायी बहुमत द्वारा लाने में असमर्थ हैं या (ii) देश के विशाल हिस्से में कानून और व्यवस्था की स्थिति में गंभीर और लंबा व्यवधान है। संभवत: ऐसी स्थिति में संविधान में संशोधन करना अविवार्य हो जाता है कि इन आकस्मिकताओं का सामना करने के लिए सीमित अवधि तक राष्ट्रपति शासन के कुछ नियम लागू करने की व्यवस्था की जाए।

6.10 यद्यपि उस समय के लिए अनुच्छेद 356 का लोप करना व्यवहार्य प्रतीत नहीं होता, फिर भी संघ की कार्यपालिका द्वारा इस अनुच्छेद का दुरूपयोग किए जाने के विरोध में निम्नलिखित रक्षापायों की व्यवस्था की जा सकती है।

6.11 अनुच्छेद 356 की तब तक सहायता नहीं ली जाएगी, जब तक (i) इस सदन में कुल सदस्यता का बहुमत न होने के कारण विधान सभा के पटल पर यह स्पष्ट किया गया है कि किसी भी व्यक्ति के बारे में इस संबंध में अविश्वास प्रस्ताव कि उस सदन में बहुमत द्वारा समर्थन प्राप्त ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे मंत्री परिषद् का गठन किया जा सके, या (ii) कानून और व्यवस्था में गंभीर और बहुत अधिक गड़बड़ी और उचित अवधि के अंदर कानून और व्यवस्था को पुन: स्थापित करने के लिए राज्य सरकार में इच्छाशक्ति और सामर्थ्य की स्पष्टत: कमी है, या (iii) राज्य सरकार निस्संदेह वास्तविक या आसन्न युद्ध के मामले में राष्ट्रीय सुरक्षा को अस्त-व्यस्त करने में लगी हुई है या इसे अनदेखा कर रही है। अनुच्छेद 352 में ऐसी परिस्थितियां निर्दिष्ट की गई हैं, जिनमें राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा कर सकता है अर्थात् भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा को युद्ध या बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह का खतरा। इसी प्रकार अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग करने के विरोध में रक्षोपाय अपनाने के लिए यह निर्दिष्ट किया जा सकता है कि ऐसी स्थिति, जिसमें संविधान के उपबंधों के अनुसार राज्य सरकार को बनाए नहीं रखा जा सकता, का यह अर्थ होगा कि इस पैराग्राफ में ऊपर बताई गई (i) से (iii) स्थितियों में से कम से कम एक स्थिति विद्यमान है।

6.12 अनुच्छेद 356 का उल्लंघन स्वाभाविक न्याय के सिद्धांतों द्वारा नियंत्रित होगा। दूसरे शब्दों में, मुख्यमंत्री को यह सिद्ध करने के लिए समुचित अवसर दिया जाएगा कि न तो उपर्युक्त स्थितियों में से कोई एक स्थिति और न अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई न्यायसंगत है।

6.13 यदि अनुच्छेद 356 के उल्लंघन का मामला विचाराधीन है तो अन्तर-राज्य परिषद् को भी इस बात की जांच करने का मौका दिया जाएगा कि क्या यह प्रक्रिया न्यायसंगत होगी अथवा नहीं। अन्तर-राज्य परिषद् की राय की सामान्यत: राष्ट्रपति द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती जबकि यह राय उस पर थोपी भी नहीं जा सकती।

6.14 राज्य की पार्टी को संगठन में विवाद और विरोध होने के कारण केन्द्र की सत्ता में विद्यमान पार्टी द्वारा शासित राज्य में संत्रीपक्षीय संकट की स्थिति का समाधान करने के लिए अनुच्छेद 356 में उल्लिखित बातों का पालन नहीं किया जाएगा, जैसा कि पहले कई बार पालन किया गया है अथवा इस तर्क के आधार पर अनुच्छेद 356 का अनुपालन नहीं किया जाएगा क्योंकि राज्य में तथाकथित कुप्रशासन से निपटने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। राज्य की स्वायत्तता बनाए रखने और राज्यों में जिम्मेदार सरकार के कार्यचालन से जुड़े इन प्रयोजनों के लिए अन्य उपाय ढूंढे जाने चाहिए।

6.15 अनुच्छेद 356(1) में उल्लिखित बातों का अनुपालन इस आधार पर समान रूप से अन्याय संगत होगा कि राज्य में विद्यमान सत्ता दल को लोक सभा चुनाव में पराजित कर दिया गया है। लोक सभा के चुनाव, विशेष रूप से उस समय जब ये चुनाव राज्य सभा के चुनावों से भिन्न समय में किए जाते

है, इन मुद्दों पर करवाए जा सकते है, जिनका राज्य के मामलों से थोड़ा बहुत संबंध है । लोक सभा के चुनावों में राज्य के सत्ता दल की हार का यह अर्थ कदापि नहीं है कि निर्वाचक मंडल उसमें यहां तक कि राज्य की सीमाओं के अंदर आने वाले मामलों के संबंध में अपना विश्वास खो बैठा है । उदाहरण के लिए लोक सभा के वर्ष 1985 के आम चुनाव में कांग्रेस(आई) की अभूतपूर्व बहुमत से जीत हुई थी, लेकिन कुछ राज्यों में उसने बहुत ही निकम्मे कार्य-निष्पादन का प्रदर्शन किया उदाहरण के लिए कर्नाटक के राज्य सभा चुनावों में, जो कुछ महीने बाद में हुए थे । राजस्थान बनाम भारत संघ* के मामले में न्यायमूर्ति श्री पी० एन० भगवती की निम्नलिखित टीका-टिप्पणी बहुमत अधिक विधि-सम्मत है :—

" ——— · क्योंकि राज्य का सत्तारूढ़ दल लोक सभा के चुनाव में पूरी तरह से पराजित हो चुका था ——— अत: उसके पास यह कहने के लिए कोई आधार नहीं था कि विद्यमान राज्य सरकार को संविधान के उपबंधों के अनुसार बनाए रखा जा सकता है । हमारे संविधान के अधीन संघीय संरचना में स्पष्टत: यह माना जाता है कि यदि राज्य में एक दल का शासन है तो दूसरे दल का केंद्र में शासन हो सकता है ।"

6.16 जनता सरकार द्वारा वर्ष 1977 में कई राज्य सभाओं का विघटन पूर्णतया अविधिसम्मत था और संभवत: विधि के प्रतिकूल भी था क्योंकि ऐसा राष्ट्रपति की घोषणा द्वारा ही किया गया था । वर्ष 1980 में कांग्रेस(आई) द्वारा भी कई राज्य सभाओं का विघटन कई मामलों में अविधिसम्मत था ।

6.17 यह उपबंध (अनुच्छेद 356(3))कि अनुच्छेद 356(1) के अधीन जारी की गई प्रत्येक घोषणा संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी और दो महीने के अंदर संसद द्वारा इसका अनुमोदन किया जाएगा । यदि इस अवधि की समाप्ति पर इसे लागू करने से रोका नहीं जाता है तो इसे इस उपबंध के शब्दों और भावों दोनों के अनुसार स्वीकार किया जाना चाहिए । इस संबंध का परिहार, टालमटोल या प्रवंचना इस कारण से की जाए क्योंकि अनुच्छेद के खंड (3) का समुचित संशोधन करके निम्नलिखित का परिहार करना चाहिए था :—

(क) दो महीने की अवधि समाप्त होने से पहले संबंधित राज्य की विधान सभा को भंग करना : पश्चिम बंगाल (1970), मैसूर (1971) और गुजरात (1974) ;

(ख) घोषणा संसद के समक्ष प्रस्तुत करने से इनकार करना : वर्ष 1977 में राज्य की कई विधान-सभाओं को भंग करने की घोषणा ;

(ग) दो महीने की अवधि समाप्त होने से पूर्व पहली घोषणा को रद्द करना और उसे पुन: जारी करना : उड़ीसा (1971) ; बिहार (1971)**

6.18 खंड(3) के शब्द, जबकि पूर्णत: उसके भाव नहीं, इस बात का संकेत करते है कि अनुच्छेद 356(1) के अधीन जारी की गई घोषणा, यदि उसे संसद के समक्ष नहीं भी रखा गया है या संसद द्वारा उसका अनुमोदन नहीं किया गया है तो उसे केवल दो महीने की अवधि समाप्त होने तक लागू होने से रोका जाएगा लेकिन उसके बाद उसे लागू कर दिया जाएगा । वास्तव में यही वह पहलू था जिसे राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ† में उच्चतम न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा गया था ।

*ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 1361.

**इन सभी मामलों का उल्लेख सरकारिया आयोग द्वारा अनुपूरक प्रश्न संख्या 9 में किया गया है ।

†पूर्वोक्त

6.19 यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि अनुच्छेद 356(3) के शब्द उसके भावों के अनुरूप हैं, उपबंध में निम्नलिखित संशोधन किया जा सकता है :—

(1) राज्य की विधान सभा उस समय तक स्थगित कर दी जाएगी लेकिन भंग नहीं की जाएगी, जब तक कि अनुच्छेद 356(1) के अधीन जारी की गई घोषणा का अनुमोदन संसद के दोनों सदनों द्वारा नहीं कर दिया जाता ।

(2) यदि यह घोषणा संसद के समक्ष प्रस्तुत नहीं की जाती या संसद द्वारा उसका अनुमोदन नहीं किया जाता तो इस घोषणा को जारी होने के समय से प्रभावहीन समझा जाएगा लेकिन घोषणा से नि:सृत शक्तियों के लिए कोई कारंवाई, जो रद्द की गई होगी, जिस समय उसे रद्द किया गया था, उसी समय से रद्द की गई समझी जाएगी ।

6.20 यह विचार, कि संविधान के विद्यमान ढांचे के अंदर भी राष्ट्रपति अधिकारपूर्वक यह घोषणा कर सकते हैं कि वे तब तक कोई ऐसी कार्रवाई (जैसे विधान सभा का भंग करना) नहीं करेंगे, जिसे रद्द न किया जा सके, जब तक कि वे दो महीने के अंदर संसद के अनुमोदन का आश्वासन नहीं देते, इसकी विधिमान्यता अनुच्छेद 74 के अधीन इस स्पष्ट अनुबंध को ध्यान में रखते हुए संदिग्ध है कि राष्ट्रपति अपने कार्यों का प्रयोग करते हुए मंत्री परिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करेगा । इसके अलावा, जब तक इस विचार का दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन नहीं हो जाता संसद द्वारा अनुमोदन करने के संबंध में राष्ट्रपति का आश्वासन लेने के सिवाय कोई निश्चायक रास्ता नही होगा । इस संबंध में आवश्यक रक्षोपाय देने के लिए केवल यही रास्ता है कि अनुच्छेद 356 के खंड(3) का ऊपर सुझाव दिए अनुसार संशोधन कर दिया जाए ।

6.21 बढ़ाई गई अवधि के लिए राष्ट्रपति शासन लागू करना बहुत अधिक आपत्तिजनक है और इसके परिणामस्वरूप प्रजातंत्र और संघवाद दोनों को नुकसान होगा । अनुच्छेद 356 के अधीन घोषणा की विधिमान्यता के संबंध में विद्यमान समय सीमाएं उचित है और उन्हें परिवर्तन किए बिना रखा जा सकता है । अति के मामले में, जब किसी खास राज्य में अनुच्छेद 356 के खंड(4) और (5) द्वारा अनुमेय अवधि के बाद भी राष्ट्रपति शासन और लम्बे अरसे तक जारी रखने की जरुरत पर सामान्य सर्वसम्मति हो तो इसके लिए संविधान में संशोधन करके उस राज्य के संबंध में एक विशेष उपबंध तैयार किया जा सकता है, जैसा कि पंजाब के मामले में संविधान (अड़तालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1984 द्वारा किया गया था । यह भी उपबंध किया जा सकता है कि कोई भी संकल्प यदि अनुच्छेद 356 के अधीन घोषणा के प्रवर्तन की निरंतरता का अनुमोदन करने के लिए हरबार संसद में भेजा जाता है तो राष्ट्रपति अन्तर-राज्य परिषद् की नए सिरें से राय जानेगा और उसे संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखेगा ।

6.22 राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्य सरकार को पार्टी इतर सिद्धांतों पर चलना चाहिए । इस लक्ष्य के लिए कुछ सुझाव पिछले अध्याय में दिए गए हैं ।

अखिल भारतीय सेवाएं

6.23 अनुच्छेद 312 के अनुसार संसद को यह शक्तियां हैं कि वह केन्द्र और राज्य दोनों के लिए सामान्य एक या एकाधिक अखिल भारतीय सेवाओं का विधि द्वारा सृजन करे और ऐसी सेवाओं के भर्ती-नियमों और सेवा शर्तों का विनियमन करे । इस अनुच्छेद में भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा को, जिनका सृजन संविधान के लागू होने से पहले किया गया था, ऐसी सेवाओं के रूप में ऐसा घोषित किया गया समझा जाएगा कि इन सेवाओं का सृजन इस अनुच्छेद के अधीन संसद द्वारा किया गया है । अनुच्छेद 312 के अधीन, संसद ने अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 का अधिनियम किया, जो इन सेवाओं के भर्ती नियमों और सेवाशर्तों के विनियमन के संबंध में केंद्र और राज्य सरकारों के संयुक्त नियंत्रण के लिए है लेकिन इस अधिनियम के अधीन बनाए गए सभी नियम संसद के अंतिम प्राधिकारी में निहित हैं । केवल भारतीय वन सेवा ही एक ऐसी अखिल भारतीय सेवा है, जिसका संविधान के

लागू होने से ही सृजन किया गया है । अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए समय-समय पर सुझाव दिए गए थे लेकिन वे मुख्यत: राज्य सरकारों द्वारा विरोध किए जाने के कारण असफल रहीं ।

6.24 अखिल भारतीय सेवाएं भारतीय संविधान की अद्वितीय विशेषता है । संघ सरकार द्वारा और केंद्र तथा राज्य सरकारों के संयुक्त नियंत्रण और अनुशासन के अधीन भर्ती की गई सेवाएं किसी अन्य देश में नहीं हैं । इन सेवाओं का सृजन करते समय संविधान के निर्माता देश के राजनीतिक, प्रशासनिक प्रबंध की तात्कालिक समस्याओं के उनके बोध और साथ ही साथ उनके स्थायित्व की जरूरत से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे । विभाजन के भावी (बुरे) परिणामों को पुन: सुधारने के लिए, युद्धोत्तर पुन: संरचना करने और अर्थ-व्यवस्था ठीक करने की जरूरत, प्रजातांत्रिक स्वशासन के लिए प्रारंभिक संस्थानों को प्रशासनिक समर्थन देना, उदारतापूर्ण राज्यों का एकीकरण और आर्थिक विकास और प्रबंध में सरकार की बढ़ती हुई भूमिका से अहस्तक्षेप नीति से परिवर्तन कुछ ऐसे कार्य थे, जिन्हें इस प्रबंध का विभाजन करते समय समकालीन नेतृत्व से महत्व दिया गया था ।

6.25 अखिल भारतीय सेवाओं की संकल्पना को अन्य संवैधानिक संबंधों के साथ एक नया रूप देने के बाद से अब तक काफी समय व्यतीत हो गया है । कुल मिलाकर राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त राजनैतिक, प्रशासनिक और प्रबंधकीय अनुभव प्राप्त हो गए हैं । राजनैतिक जागरूकता बढ़ गई है । इस संबंध में राय दी जा रही है कि प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण न केवल संघ स्तर से राज्य स्तर तक बल्कि राज्य स्तर से जिला और ब्लॉक स्तरों तक भी किया जाए । प्रशासनिक स्तर पर इसमें बाद में आशोधन करने अपेक्षित होंगे ।

6.26 प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने और अखंडता को बढ़ावा देने के लिए अखिल भारतीय सेवाओं के बिना काम नहीं चलाया जा सकता । परन्तु इस बात की सराहना किए जाने की जरूरत है कि देश की एकता और अखंडता को बढ़ाया जाना चाहिए और आर्थिक सम्पन्नता, पूर्ण नियोजन बढ़ाकर, निर्वाचक संस्थाओं को मजबूत करके और लोगों के योगदान को बढ़ावा देकर इसे और मजबूत बनाया जाना चाहिए देश की एकता और अखंडता के लिए असीमित इच्छा शक्ति रखना विशिष्ट प्रशासनिक उपकरण की अपेक्षा देश की सुरक्षा और अखंडता के लिए और भी अधिक जरूरी है ।

6.27 उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अब केंद्र और राज्य की अलग-अलग सेवाएं रखने का समय आ गया है और यह प्रस्ताव व्यवहार्य है । इस प्रकार की कार्रवाई भारत में राज्य की संरचना को बहुत बड़ा संघीय मोड़ देने वाले उपायों में से एक होगी । इसलिए सैद्धांतिक रूप से अखिल भारतीय सेवाओं को यदि आवश्यक हो तो चरणबद्ध तरीके से व्यवस्थित किया जाए । अंतर्वर्ती अवधि में अखिल भारतीय सेवा स्कीम राज्य के साथ परस्पर विचार-विमर्श करके चलाई जा सकती है ताकि संघीय स्तर पर एकपक्षीय रूप से उन्हें व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति को रोका जा सके ।

राज्यों में संघ की सशस्त्र सेना और परा-सैन्य बलों को तैनात करना

6.28 मूलत: तो संविधान में सार्वजनिक आदेश देने और पुलिस तैनात करने की एकमात्र जिम्मेदारी राज्य की थी । लेकिन कुछ वर्षों से निम्नलिखित कारणों से यह जिम्मेदारी भी केंद्र ने अपने ऊपर ले ली है :– (i) संघ के विभिन्न सेना बलों का सृजन और विस्तार और (ii) संघ की सूची में प्रविष्टि 2क अन्तर्विष्ट करना और राज्य की सूची की प्रविष्टि 1 और 2 का संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधन करना । ये संशोधन और साथ ही यह सच्चाई कि राज्य पुलिस बलों की सभी मुख्य नौकरियां भारतीय पुलिस सेवा की हैं और वे अधिकारी सार्वजनिक आदेश की देखरेख के संबंध में राज्य की जिम्मेदारी को धीरे-धीरे कम करते रहे हैं; इसके द्वारा वे भारतीय पुलिस सेवा के पदों के सृजन की रही-सही स्वतंत्रता भी जाती रही है । कुछ राज्य जो विशेष रूप से केंद्र की विरोधी पार्टियों द्वारा शासित हैं वे इस प्रवृत्ति से बचे हुए हैं ।

6.29 केंद्र-राज्य संबंधों के इस क्षेत्र में, हाल ही के वर्षों में नागरिक शक्ति की सहायता से राज्यों में संघ के सशस्त्र और परा-सैन्य बलों की तैनाती के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया है । संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा संघ की सूची और राज्य की सूची में किए गए ऊपर बताए गए संशोधनों को ऐसी तैनाती के लिए सुस्पष्ट संवैधानिक मंजूरी दी गई है । परन्तु यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या यह तैनाती केवल राज्य सरकार के अनुरोध या परामर्श से ही की जानी है या संघ सरकार भी स्वप्रेरणा से इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले सकती है । प्रशासनिक सुधार आयोग (ए० आर० सी०) ने यह विचार स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 355 केंद्र को यह कार्रवाई स्वप्रेरणा से करने का अधिकार देता है । अनुच्छेद 355 संघ सरकार को यह कार्यभार सौंपता है कि वह राज्यों को बाहरी आक्रमण और भीतरी उपद्रवों से सुरक्षित रखे और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक राज्य की सरकार को इस संविधान के उपबंधों के अनुसार बनाए रखा गया है । प्रशासनिक सुधार आयोग का इस मुद्दे पर विचार संदिग्ध प्रतीत होता है । अत: यह नोट किया जाए कि सूची–I की प्रविष्टि 2-क के अनुसार राज्यों में संघ को सशस्त्र सेना और परा-सैन्य बलों की तैनाती की मंजूरी केवल "नागरिक शक्ति की मदद के रूप में" की गई है । यह अनुबंध इस बात का संकेत करता है कि यह तैनाती सहायता प्राप्त करनेवाले अर्थात् नागरिक शक्ति इस मामले में राज्य सरकार के प्रशासन के अनुरोध पर या उसके परामर्श से की जानी चाहिए । शब्द का उसके सामान्य अर्थ में प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति या प्राधिकारी पर उसकी इच्छा शक्ति के विरुद्ध प्रवृत्त या थोपी गई शक्ति मदद के रूप में किस प्रकार स्वीकार की जा सकती है ? संविधान अब यहां, प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: यह अनुबंध करता है कि इस मामले में सहायता शब्द कहीं भी प्रयोग किया जा रहा है, लेकिन उसका अर्थ सामान्य है । सहायता शब्द की कोई भी व्याख्या, जिसमें कोई ऐसी बात कही गई है, जो बलपूर्वक उस पर थोपी गई है और उसके सीमाक्षेत्र के अंदर आती है, तो अन्तर राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में तीसरे विश्व के लिए उसके बहुत अधिक खतरनाक परिणाम होंगे । अपने सामान्य, उचित अर्थ में मदद को थोपा नहीं जाता है बल्कि यह जरूरी है कि इसे स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है । इसलिए संघ सरकार द्वारा अपने बलों की स्वप्रेरणा से तैनाती को "नागरिक की मदद के रूप में" इस अनुबंध की उचित व्याख्या के अनुकूल नहीं बनाया जा सकता ।

6.30 ऊपर अध्याय 3 में यह तर्क दिया गया है कि यदि किसी राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थिति बहुत लम्बे समय तक बिगड़ी रहती है और उसके लिए स्पष्ट तौर पर नागरिक (सिविल) शक्ति की सहायता के लिए संघ से अर्ध-सैनिक या सशस्त्र बल तैनात करना जरूरी हो परन्तु उस राज्य की बहुमत से बनी हुई सरकार ऐसी तैनाती के लिए किन्हीं कारणों से न तो अनुरोध करे और न ही अपनी सहमति दे तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य सरकार का नियंत्रण अपने हाथ में इस आधार पर ले सकता है कि कानून और व्यवस्था की बिगड़ी हुई हालत को देखते हुए राज्य की सरकार को संविधान के अनुसार कार्य करना असंभव है । ऐसा होने पर नागरिक प्राधिकरण की सहायता के लिए राज्य में संघ के बल राज्यपाल के प्रशासन के अनुरोध पर या उसकी सहमति से तैनात करना संभव हो जाएगा । ऐसी कार्रवाई करने से संघ द्वारा स्वत: बल तैनात करने की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी क्योंकि यह उपाय न्यायसंगत होने के बारे में संदेह है ।

6.31 संघ द्वारा अपने बल स्वत: तैनात करने की संदिग्ध न्यायसंगतता के बारे में जो निष्कर्ष निकाले गए हैं, वे अनुच्छेद 355 के अधीन किसी भी प्रकार से अवैध नहीं हो सकते । इस अनुच्छेद के कारण राज्यों की तुलना में संघ की शक्तियों और जिम्मेदारियों में किसी भी प्रकार से वृद्धि नहीं होती । इससे संघ को केवल ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जो संविधान के अन्य उपबंधों में अंतर्निहित हैं । उदाहरण के लिए अनुच्छेद 246 के अधीन (संघसूची की प्रविष्टि) "भारत और उसके प्रत्येक भाग की सुरक्षा" संघ की जिम्मेदारी है । क्योंकि प्रत्येक राज्य भारत का एक हिस्सा है, इसलिए इस उपबंध में वह बात अंतर्निहित है जो कि अनुच्छेद 355 में प्रतिपादित की गई है । "प्रत्येक राज्य का बाहरी आक्रमण से बचाव करना संघ का कर्तव्य होगा ।" इसके अतिरिक्त यह तथ्य कि अनुच्छेद 356 राष्ट्रपति को उस स्थिति में उपचारात्मक कार्रवाई करने के लिए प्राधिकृत करता है जब "एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए जिसमें राज्य

सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार न चलाई जा सकती हो" का वही अर्थ है जो अन्य अनुच्छेद 355 में प्रतिपादित है कि "यह सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार कार्य करे।" अंततः चूंकि किसी भी राज्य में सार्वजनिक व्यवस्था की बहुत देर तक बिगड़ी हुई और गंभीर हालत अक्सर हो सकती है, इसलिए संविधान में विशिष्ट रूप से यह बात अनुबद्ध होनी चाहिए कि यह निष्कर्ष निकालने का न्यायसंगत औचित्य हो कि संवैधानिक संकट की स्थिति पैदा हो गई है ।

अनुच्छेद 356 का यह अर्थ लिया जा सकता कि शासन तंत्र की असफलता की स्थिति में उपचारी कदम उठाना केन्द्र की जिम्मेदारी है । अनुच्छेद 355 के कारण भी केन्द्र पर इसी प्रकार की जिम्मेदारी आ जाती है । इस अनुच्छेद में यह निर्दिष्ट है कि आंतरिक गड़बड़ी से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना केन्द्र का कर्तव्य होगा । "यदि आंतरिक गड़बड़ी" अभिव्यक्ति की तुलना "सार्वजनिक व्यवस्था के लंबे समय तक भंग रहने" से करें तो पता चलेगा कि यह अभिव्यक्ति अस्पष्ट है और इसका दुरुपयोग हो सकता है । इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि अनुच्छेद 352 में प्रारंभ में यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा कर सकता है जब युद्ध या बाह्य आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ी से भारत या इसके किसी भाग की सुरक्षा को खतरा हो । श्रीमती गांधी द्वारा इस प्रावधान का दुरुपयोग कर 1975 में आपातकाल की घोषणा करने के बाद संविधान के (44वें संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 352 में "आंतरिक गड़बड़ी" के स्थान पर "सशस्त्र विद्रोह" अभिव्यक्ति रखी गई । यदि अनुच्छेद 355 को कायम रखना है तो "आंतरिक गड़बड़ी" अभिव्यक्ति के स्थान पर "सार्वजनिक व्यवस्था का गंभीर रूप से और लंबे समय तक भंग रहना" अभिव्यक्ति रखी जानी चाहिए । यदि अनुच्छेद 355 का लोप कर दिया जाता है तो केन्द्र और राज्यों की शक्तियां और जिम्मेदारियां पहले की अपेक्षा कम नहीं होंगी । यह अनुच्छेद अधिक से अधिक अनुच्छेद 356 के लिए प्रस्तावना जैसा है । इस अनुच्छेद से केन्द्र को अन्य अनुच्छेदों में पहले से ही अंतर्निहित शक्तियों और जिम्मेदारियों से अधिक शक्तियां और जिम्मेदारियां नहीं मिलती । यदि अन्य अनुच्छेद केन्द्र द्वारा स्वप्रेरणा से बलों की तैनाती की मंजूरी नहीं देते तो ऐसी तैनाती के लिए मंजूरी के रूप में अनुच्छेद 355 को उद्धृत करने से कोई फायदा नहीं ।

6.32 संविधान द्वारा राज्यों को मूल रूप से सौंपी गई सार्वजनिक व्यवस्था और पुलिस संबंधी जिम्मेदारी प्रतिष्ठा और स्वायत्तता का आधार-स्तम्भ थी । इस जिम्मेदारी से राज्यों को वंचित रखने की जो वर्तमान प्रवृत्ति जारी है, उसका अंत होना चाहिए । ऐसा तभी हो सकता है जब निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाए :

(i) राज्यों की असैनिक सत्ता की सहायता के लिए केन्द्र के अर्ध-सैनिक बलों में और अधिक वृद्धि करने के बजाए राज्य पुलिस बल की अपेक्षित क्षमता, मनोबल और कार्य कुशलता में वृद्धि की जानी चाहिए,

(ii) केन्द्र द्वारा असैनिक सत्ता की सहायता के लिए राज्यों में सशस्त्र और अर्ध-सैनिक बलों की स्वप्रेरणा से तैनाती पर संविधान द्वारा रोक लगाई जाए,

(iii) भारतीय पुलिस सेवा को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया जाए और राज्यों के पुलिस बलों पर एकमात्र राज्य पुलिस सेवा संबद्ध अधिकारियों का नियंत्रण हो ; और

(iv) गड़बड़ी वाले क्षेत्र अधिनियम जैसे कानून को किसी राज्य पर बिना राज्य सरकार के सुझाव या सहमति से लागू न किया जाए ।

केन्द्र सरकार की एजेंसियां

6.33 संविधान के लागू होने से लेकर अब तक केन्द्र सरकार ने कई एजेंसियां का गठन किया है जिनके कार्यकलाप समवर्ती और राज्य के मामलों से संबंधित हैं । इन एजेंसियों की बदौलत राज्य की स्वायत्तता में केन्द्र सरकार की घुसपैठ हो गई है । केन्द्र और राज्य के संबंध सुव्यवस्थित और मधुर हों, इसके लिए यह आवश्यक है कि इन एजेंसियों की उचित भूमिका तर्कसंगत आधार पर परिभाषित की जाये और उनके कार्यकलाप उनकी नियत भूमिका तक ही सीमित रहें ।

6.34 कई कारणों और बातों को मद्देनजर रखकर केन्द्र सरकार ने इन एजेंसियों की स्थापना की है । (i) मुख्य दृष्टिकोण यह रहा है कि सामाजिक न्याय और स्थायित्व के साथ-साथ आर्थिक विकास संबंधी घोषित लक्ष्य को साकार करने के लिए देश पूर्ण रूप से न तो बाजार क्षमता पर निर्भर रह सकता है और न ही बाजार क्षमता का अनियंत्रित संचालन देश के अत्यधिक हित में होगा, दूसरे शब्दों में बाजार में हस्तक्षेप करने की जरूरत है । केन्द्र सरकार को इस जिम्मेदारी को संभालने और इसके लिए संस्थागत व्यवस्था करने के लिए, ताकि समान और अनुकूल नियमवादी नीतियां पूरे देश में लागू की जा सकें, अत्यधिक उपयुक्त समझा गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्यतः इसी बात को ध्यान में रखकर कृषि मूल्य आयोग (अब कृषि लागत मूल्य आयोग), भारतीय खाद्य निगम, तकनीकी विकास महानिदेशालय, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग, औद्योगिक लागत-मूल्य ब्यूरो और राष्ट्रीय बचत संगठन जैसी एजेंसियों का गठन किया गया । (ii) कर्मचारियों के कल्याण संबंधी कुछ पहलुओं को मद्देनजर रखते हुए पूरे देश में जहां भी समान नीतियां और व्यवस्थाएं अत्यधिक अनुकूल पायी गई, केन्द्र सरकार ने आवश्यक संस्थागत व्यवस्था करने के लिए पहलकदमी की । ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम और कर्मचारी भविष्य निधि का प्रादुर्भाव केन्द्र सरकार के पहलकदमी का ही परिणाम है । (iii) अन्तर्राज्यीय उलझाव पैदा करने वाली परियोजनाओं और कार्यकलापों के संबंध में केन्द्र सरकार ने इन पर नियंत्रण रखने के लिए केन्द्रीय जल-विद्युत आयोग (अब केन्द्रीय जल आयोग और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण) जैसे उच्चस्तरीय तकनीकी एजेंसियों की स्थापना की ।

6.35 चूंकि आर्थिक और सामाजिक विकास सुसंगठित प्रक्रिया है, अतः इसके विभिन्न पहलुओं से संबंधित जिम्मेदारी का केन्द्र और राज्यों के बीच ठीक-ठीक सीमा निर्धारण करना हमेशा संभव नहीं है । उक्त एजेंसियों में से अनेक एजेंसियों की जिम्मेदारी का सीमा निर्धारण करते समय यह समस्या उत्पन्न हुई है । इन एजेंसियों के कुछ कार्यकलाप राज्यों के लिए गंभीर चिंता का विषय है, जो कुछ हद तक राज्यों की जिम्मेदारी संबंधी वैध सीमा का भी अतिक्रमण कर जाते हैं । चूंकि इन एजेंसियों का गठन विभिन्न दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर किया गया है, अतः तर्कसंगत और सुव्यवस्थित केन्द्र राज्य संबंधों की दृष्टि से उनकी भूमिका तय करने के लिए समान दृष्टिकोण सुझाना संभव नहीं । कुछ निजी एजेंसियों के संबंध में सुझाव नीचे दिए गए हैं । सामान्यतः समवर्ती विषय से संबद्ध संसदीय अधिनियम के तहत राज्यों के संदेह को कम करने के लिए मुख्यतः इस एजेंसी के कार्यकलापों से संबंधित राज्य सरकारों के नामितियों का इसमें उचित प्रतिनिधित्व हो ।

भारतीय खाद्य निगम

6.36 खाद्य के उचित और कुशल प्रबंध के लिए भारतीय खाद्यनिगम की स्थापना की गई है । व्यापक भ्रष्टाचार, बर्बादी और कार्य करने में इसकी अकुशलता की प्रायः जन-आलोचना होने के बावजूद, भारतीय खाद्य निगम ने खाद्य की स्थिति सुदृढ़ करने में, खाद्यान्न की कीमतों में अत्यधिक घटा-बढ़ी रोकने में और उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के साथ उचित बर्ताव करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । इस समय निगम प्रतिवर्ष खाद्यान्नों की काफी मात्रा का प्रापण और वितरण करता है । इस समय प्रतिवर्ष प्रापण लगभग 20 मिलियन मीटरी टन, सार्वजनिक वितरण लगभग 13–14 मिलियन मीटरी टन है तथा 1985 के अंत में स्टाक 24 मिलियन मीटरी टन था ।

6.37 पंजाब, जिसका अंशदान खाद्यान्नों के केन्द्रीय सामूहिक भंडार के कुल अंशदान का 50% है (पंजाब ने 1985–86 में 10 मिलियन मीटरी टन से भी अधिक गेहूं और चावल का अंशदान किया), मुख्यतः यह चाहता है कि खाद्यान्नों का कुशलता से प्रापण हो और उत्पादकों का कम से कम उत्पीड़न तथा शोषण हो; राज्य की एजेंसियों* द्वारा अधिप्राप्त स्टाक निर्धारित अवधि में भारतीय खाद्य निगम द्वारा ले लिए जाएं और प्रापण तथा छटाई लागत,

*पंजाब राज्य नागरिक आपूर्ति निगम, पंजाब राज्य सहकारी आपूर्ति और विपणन संघ तथा राज्य खाद्य और आपूर्ति विभाग ।

वहन किए गए अन्य खर्चों, के लिए इन एजेंसियों की पूर्ण भरपाई को जाए । पंजाब को भारत सरकार से और भारतीय खाद्य निगम से इन संबंधों में मुख्य शिकायतें हैं ।

6.38 भारतीय खाद्य निगम को राज्य की एजेंसियों द्वारा अधिप्राप्त स्टाक लेने में काफ़ी समय, कभी-कभी 2 से 3 वर्ष तक, का समय लग जाता है। इस अवधि के दौरान अच्छे देखरेख के बावजूद समय बीतने मात्र से अन्न की गुणवत्ता में कमी आ जाती है । भारतीय खाद्य निगम अन्न लेते समय राज्य की एजेंसियों को चुकायी गई कीमतों में "गुणवत्ता संबंधी कटौतियां" भी करता है । जहां तक भारतीय खाद्य निगम का संबंध है, वह निर्धारित निर्गम मूल्य पर इस अन्न की बिक्री करता है । इस तरह "गुणवत्ता संबंधी कटौतियां" भारतीय खाद्य निगम के लिए आय का स्रोत बन जाती हैं । राज्य सरकारें भारत सरकार से अनुरोध करती रही हैं कि राज्य प्रापण एजेंसियों पर केवल समय बीतने से गुणवत्ता में आयी कमी के लिए जुर्माना न किया जाए यदि खाद्यान्न के भंडारण में उनके द्वारा कोई चूक न हुई हो । इस आशय से राज्य सरकार ने सुझाव दिया है कि भारतीय खाद्य निगम 6 महीने के भीतर स्टाक ले ले । यदि छः महीने के भीतर भारतीय खाद्य निगम द्वारा स्टाक ले लेना संभव न हो तो भारतीय खाद्य निगम को चाहिए कि वह कम से कम उस स्टाक का तसदीक कर ले जो राज्य को एजेंसियों में उसके लिए अधिप्राप्त किया है । तसदीक कर लेने के पश्चात यदि गुणवत्ता में कोई कमी आती है तो "गुणवत्ता संबंधी कोई भी कटौती" नहीं की जानी चाहिए । इस व्यवस्था पर अभी तक सहमति नहीं प्रकट की गई है । इस प्रकरण से स्पष्टतः पता चलता है कि पंजाब के साथ भेद-भाव किया गया है । उत्तर प्रदेश भी केन्द्रीय सामूहिक भंडार में काफ़ी अंशदान करता है लेकिन यहां भारतीय खाद्य निगम राज्य की एजेंसियों द्वारा अधिप्राप्त स्टाक 48 घंटों के भीतर ले लेता है और इसका तुरंत भुगतान करता है ।

6.39 राज्य की एजेंसियों की प्रापण और भंडारण लागत तथा उनके द्वारा वहन किए गए अन्य खर्च के लिए भरपाई नहीं की जाती । राज्य सरकार ने अनुरोध किया है कि एक जैसे कारोबार में भारतीय खाद्य निगम को वास्तव में जितना खर्च वहन करना पड़ता है, उतने ही खर्च की भरपाई इन एजेंसियों को की जाए । राज्य की एजेंसियां इन खर्चों को मदवार प्रस्तुत करती रही हैं लेकिन भारतीय खाद्य निगम अपने द्वारा वहन किए गए खर्च जितना खर्च देने में टाल-मटोल करता रहा है । इससे राज्य सरकार का यह संदेह बढ़ जाता है कि इन खर्चों के सवितरण के संबंध में भारतीय खाद्य निगम के अपने खर्च अपेक्षाकृत अधिक हैं और राज्य की एजेंसियों के साथ समान बर्ताव नहीं किया जा रहा है । राज्य सरकार दोनों के साथ समान बर्ताव किए जाने के सिवा कुछ नहीं चाहती । इसके अतिरिक्त राज्य की एजेंसियों के साथ अनुचित व्यवहार समाप्त होने के साथ ही समान बर्ताव होने से भारतीय खाद्य निगम और राज्य की एजेंसियों के खर्च में मितव्ययी होने की प्रतिस्पर्धा जन्म लेगी ।

6.40 खाद्य प्रबंध से राज्यों को संबद्ध करने तथा इनकी कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए इनका पुनर्गठन काफ़ी समय से लंबित है । इनका पुनर्गठन निम्नलिखित तरह से किया जा सकता है ।

6.41 भारतीय खाद्य निगम को खाद्य प्रबंध करने वाले ढांचे का शीर्ष संगठन बनाया जा सकता है, और इस तरह इसे निम्नलिखित कार्य सौंपे जा सकते हैं :

(i) राज्य की एजेंसियों द्वारा उत्पादकों/व्यापारियों/मिल-मालिकों से अधिप्राप्त खाद्य के फालतू स्टाक प्रापण ;

(ii) राज्य की एजेंसियों को खाद्य की आपूर्ति ताकि वे सार्वजनिक वितरण प्रणाली संबंधी जरूरतों को पूरा कर सकें;

(iii) खाद्य का आयात और निर्यात;

(iv) खाद्य के सुरक्षित भंडार का रख-रखाव और संचालन ;

(v) खाद्य के प्रापण और आपूर्ति के लिए राज्य की एजेंसियों के साथ अग्रिम ठेका करना; और

(vi) खाद्य प्रबंधन में अपेक्षाकृत कार्यकुशलता लाने के लिए राज्य की एजेंसियों से परामर्श लेना ।

6.42 किसी राज्य के भीतर खाद्य के प्रापण और आपूर्ति के लिए एक मात्र राज्य की एजेंसियां जिम्मेदार हो सकती हैं, ये खाद्य का फालतू स्टाक राज्य की एजेंसियों से किए जाने वाले क्रय के लिए निर्धारित प्रापण कीमत पर भारतीय खाद्य निगम को बेचेंगी और इन एजेंसियों के लिए निर्धारित निर्गम कीमत पर भारतीय खाद्य निगम से क्रय करके अतिरिक्त या निर्धारित खाद्य की जरूरतों को पूरा करेंगे । भारतीय खाद्य निगम को चाहिए कि वह निर्धारित अवधि में राज्य की एजेंसियों से फ़ालतू स्टाक ले ले और इस स्टॉक का तुरंत भुगतान करे । गुणवत्ता संबंधी कोई भी अनुचित कटौती न की जाए यदि गुणवत्ता में कमी समय बीतने मात्र से हुई हो । प्रापण, भंडारण और स्वीकार्य आकस्मिक खर्च के संबंध में भारतीय खाद्य निगम को चाहिए कि वह अपने और राज्य की एजेंसियों के साथ समान बर्ताव करे । राज्य की एजेंसियों को उचित ऋण बैंकिंग प्रणाली द्वारा दिया जाना चाहिए । उक्त आधार पर खाद्य प्रबंध संबंधी संस्थागत ढांचे को कानून का रूप देने के लिए केन्द्र सरकार कानून बना सकती है ।

6.43 केन्द्र सरकार खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्री की अध्यक्षता में खाद्य प्रबंध संबंधी सलाहकार समिति का गठन कर सकती है और राज्यों के मंत्रियों को इसका सदस्य बना सकती है । समिति खाद्य प्रबंध नीतियों और कानूनों की समीक्षा कर सकती है और सुधार संबंधी सुझाव दे सकती है ।

कृषि लागत-मूल्य आयोग

6.44 किसानों को कृषि उपज का आश्वासित न्यूनतम मूल्य मिलना कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी करने में प्रोत्साहन का काम देता है । भारत में विभिन्न किस्मों के खाद्यान्न के अधिकतम उत्पादन में सहायक उर्वरक पर आधारित नई कृषि तकनीक के साथ साथ ऐसे प्रोत्साहन से 1965 से गेहूं और चावल के उत्पादन में आशातीत बढ़ोतरी हुई है । भारत ने अब (1986 में) कृषि उपज के लिए आश्वासित न्यूनतम मूल्य संबंधी इस संकल्पना के तीन रूपों का इस्तेमाल किया है । इस समय गेहूं, धान और मोटे अनाजों के लिए प्रापण मूल्य, जो, चना, अरहर, मूंग, उड़द सरसों, मूंगफली, सूर्यमुखी का बीज, सोयाबीन और कपास के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा गन्ना और जूट के लिए सांविधिक न्यूनतम मूल्य है ।

6.45 आश्वासित न्यूनतम मूल्य खेती पर आयी लागत तथा उत्पादक और उपभोक्ता के हितों में पर्याप्त संतुलन की आवश्यकता को मद्देनजर रखकर तय किया जाना चाहिए । चूंकि विभिन्न वस्तुओं के लिए आश्वासित न्यूनतम मूल्य के स्तर के संबंध में अभावग्रस्त राज्य और उन राज्यों के जिनके पास खाद्यान्न आवश्यकता से अधिक हैं, हित सहज ही में टकरा जाते हैं, अतः मूल्य तय करने का कार्य केन्द्र सरकार को सौंपना तर्कसंगत है । मूल्य तय करने में विशेषज्ञों की सलाह के लिए केन्द्र सरकार ने 1965 में कृषि मूल्य आयोग (अब कृषि लागत व मूल्य आयोग) की स्थापना की । 1980 में इसके विचारार्थ विषयों में वृद्धि की गई ताकि कृषि मूल्य नीति में इसे अहम भूमिका मिल सके । मूल्य नियंत्रण का जहां तक सवाल है, यह समवर्ती विषय है । राज्यों के प्रतिनिधियों को कम से कम सलाहकार की हैसियत से आयोग से संबंध करने की बात सोची जा सकती है । प्रत्येक वस्तु या वस्तुओं के समूह के लिए सलाहकार समितियां गठित की जा सकती हैं और प्रत्येक स्थिति में इन समितियों में मुख्य उत्पादक और उपभोक्ता राज्यों के प्रतिनिधि शामिल हो सकते हैं ।

औद्योगिक लागत-मूल्य ब्यूरो

6.46 जबकि अधिकांश औद्योगिक उत्पादों के मूल्य का निर्धारण आपूर्ति और मांग संबंधी व्यापार क्षमताओं को मद्देनजर रखकर किया जाता है, कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक उत्पादों के मूल्य केन्द्र सरकार द्वारा तय किए जाते हैं इस संबंध में विशेषज्ञ अपनी सलाह सरकार को दे सकें, इसलिए औद्योगिक लागत व मूल्य ब्यूरो की स्थापना की गई । जो कार्य भूतपूर्व प्रशुल्क (टैरिफ) आयोग द्वारा शेष रह गया था, उसे भी ब्यूरो में संभाल लिया । जब तक देश में कुछ औद्योगिक उत्पादों के मूल्य सरकार द्वारा नियंत्रित करने की प्रणाली कायम है ब्यूरो जैसे विशेषज्ञों के मुक्त निकाय की सरकार के मार्गदर्शन के लिए औद्योगिक लागतों का अध्ययन करने और इन उत्पादों का उचित मूल्य तय करने की आवश्यकता पड़ेगी ।

6.47 औद्योगिक उत्पादों के लिए मूल्य निर्धारण प्रणाली केन्द्र सरकार द्वारा किया जाना आवश्यक है । वह राज्यों के लिए चिन्ता का उतना विषय

नहीं है जितना कि इन उत्पादों के मुख्य उत्पादकों और उपभोक्ताओं के लिए। यदि इन उत्पादों में से कुछ के उत्पादन और उपभोग पर कुछ राज्यों में अत्यधिक ध्यान दिया जाता है तो विभिन्न उत्पादों के लिए परामर्शदात्री समितियां बनाकर इन राज्यों के प्रतिनिधियों को ब्यूरो से संबद्ध किया जा सकता है।

एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग

6.48 आर्थिक क्षमता के केन्द्रीकरण और अनुचित व्यापारिक व्यवहार के रूप में इसके दुरुपयोग पर रोक लगाने के लिए साधन के रूप में एकाधिकार और अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की संकल्पना की गई। यह बड़ी व्यापार-संस्था को नियंत्रित करने से संबंधित था। शायद ही इसने केन्द्र-राज्य संबंधों के सवाल पर गौर किया हो।

6.49 निष्प्रभावी आधुनिक औद्योगिक विकास, जिसका परिणाम मुख्यत: अल्पाधिकार प्राप्त औद्योगिक संरचना के प्रादुर्भाव और विकास होता है, के कारण आयोग का समय से पहले ही पतन हो गया। भारत इसका अपवाद नहीं रहा है। एकाधिकारों और अल्पाधिकारों पर रोक लगाना सामान्यतया निष्फल साबित होता है या औद्योगिक विकास में रुकावट पैदा करता है। एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की कार्यपद्धति ने यही दो लक्ष्य परिलक्षित हुए हैं। अब जबकि अर्थव्यवस्था को क्रमश: उदार बनाने की नीति अपना ली गई है, ऐसा लगता है कि आयोग की भूमिका काफी कम हो गई है। आयोग को औद्योगिक विकास में बाधक नहीं बनने देना चाहिए। विशेष रूप से बड़े प्रतिष्ठानों को, जिनके पास अपेक्षित संसाधन और उपक्रम है, ऐसे क्षेत्रों में, जिन्हें केन्द्र और राज्यों द्वारा औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ माना गया है, परियोजनाएं शुरू करने की मंजूरी दी जानी चाहिए।

तकनीकी विकास महानिदेशालय

6.50 इस एजेंसी का गठन मुख्यतया औद्योगिक लाइसेंस देने, भारतीय उद्योग और देशी प्रौद्योगिकी के संरक्षण और संवर्धन के संबंध में केन्द्र सरकार को सलाह देने के लिए किया गया था। इस एजेंसी की कार्यप्रणाली की अक्षमता और भ्रष्टाचार के कारण व्यापक जन-आलोचना हुई है। औद्योगिक लाइसेंस देने और आयात में, विशेष तौर पर पूंजीगत माल और औद्योगिक निवेश के संबंध में, उदारता बरतने तथा देशी पहलू जिसका तकनीकी विकास महानिदेशालय अभिरक्षक था, को कम महत्व देने से यह संगठन अपना पूर्व महत्व खोता जा रहा है। अध्याय 3 में सूची I की प्रविष्टि 52 पर की गई टिप्पणियों में यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्र सरकार द्वारा इस प्रविष्टि का दुरुपयोग न होने देने के लिए इसका कार्यक्षेत्र विनिर्दिष्ट मुख्य, बुनियादी और सामरिक उद्योगों तक सीमित कर दिया जाए। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है तो उद्योग (विकास और विनियम) अधिनियम, 1952 के तहत स्थापित कई उद्योग नियंत्रण की सीमा से बाहर आ जाएंगे। इससे तकनीकी विकास महानिदेशालय की भूमिका और भी कम हो जाएगी और इसके कार्मिकों द्वारा उद्योगपतियों के उत्पीड़न तथा शोषण करने की क्षमता का भी ह्रास होगा। यह संगठन मुख्यत: निर्माताओं से संबद्ध है। अत: निर्माताओं और राज्यों के प्रतिनिधि सलाहकार की हैसियत से इस संगठन से जुड़े होने चाहिए।

कर्मचारी भविष्य निधि संगठन

6.51 गैर-सरकारी उद्योग और वाणिज्य संबंधी कर्मचारियों की सुविधा के लिए कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1961 के तहत कर्मचारी भविष्य निधि की स्थापना की गई है। कर्मचारी और नियोक्ता (मालिक) निर्धारित दरों पर निधि में अंशदान करते हैं। निधि-निवेश पर आय भी होती है। अब जबकि अभिदाताओं की संख्या बढ़कर एक करोड़ अस्सी लाख हो गई है और निधि निवेश पर आय में व्यापक बढ़ोतरी हुई है, यह विकास वित्त का प्रमुख स्रोत बन गया है। इस समय निधि संबंधी निवेश नीतियों का निर्धारण पूर्ण रूपेण संघ सरकार द्वारा किया जाता है। अत: वर्तमान निवेश नीतियों के तहत निधि के निवेशयोग्य संसाधनों का अधिकांश हिस्सा बाजार उधार, विशेष निक्षेप (1985-86 में लगभग 1450 करोड़* रुपए) और अल्प बचत के जरिए केन्द्र सरकार के पास पहुंच जाता है। इस संसाधन का और अधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिए केन्द्र सरकार ने क० भ० न० को 1985-87 से विशेष निक्षेपों में पूर्ववर्ती 30% निवेश की तुलना में निधि की निवल वार्षिक अभिवृद्धि का 85% निवेश करने की अनुमति दी है। इसके अतिरिक्त, विशेष निक्षेपों की अवधि समाप्ति पर निधि संगठन को मिली रकम का इन निक्षेपों में पूरी तरह पुनर्निवेश किया जा सकता है।

6.52 अब जबकि क० भ० नि० का कार्यक्षेत्र कार्यों और अभिदाताओं की दृष्टि से व्यापक हो गया है और जबकि यह संगठन दीर्घकालिक विकास वित्त का मुख्य और तीव्र गति से बढ़ता हुआ स्रोत बन गया है, यह आवश्यक हो गया है कि राज्यों को निधि मुहैया कराने संबंधी जिम्मेदारी का अन्तरण हो। संघ सरकार के समर्थक कानून के तहत प्रत्येक राज्य ऐसे स्वतंत्र क० भ० निधि की स्थापना कर सकता है जिसका संचालन राज्य कर्मचारी भविष्य निधि संगठन द्वारा हो सके। संघ सरकार ऐसे संघ-राज्य क्षेत्र और राज्यों, के जो स्वतंत्र क० भ० नि० बनाने में असमर्थ या उस के लिए अनिच्छुक हों तथा यह जिम्मेदारी संघ सरकार को सौंपना चाहते हों, अभिदाताओं को क०भ०नि० के कार्यक्षेत्र में लाने के लिए निजी क० भ० नि० और इसे संचालित करने वाले संगठन की स्थापना कर सकती है। नीति के मुद्दों पर विचार-विमर्श करने के लिए और यथासंभव समान नीति तैयार करने के लिए सभी क० भ० नि० संगठनों की समन्वय समिति केन्द्रीय वित्त मंत्रालय के अधीन गठित की जा सकती है। कर्मचारी भविष्य निधि का उपर्युक्त ढंग से विकेन्द्रीकरण करने से राज्यों को अपने विकासपरक कार्यक्रमों के लिए वित्त जुटाने के लिए महत्वपूर्ण नया साधन उपलब्ध हो जाएगा।

कर्मचारी राज्य बीमा निगम

6.53 कर्मचारी राज्य बीमा निगम गैर-सरकारी उद्योग और वाणिज्य संबंधी बीमाकृत कर्मचारियों को सामान्य सामाजिक सुरक्षा सुविधाएं देता है। पात्र कर्मचारी (कामगार) अपने नियोक्ता (मालिक) के मार्फत निगम को अपने पारिश्रमिक (अपनी मजदूरी) का आवश्यक साप्ताहिक अंशदान करता है। नियोक्ता द्वारा निगम को किया जाने वाला अंशदान कर्मचारी के पारिश्रमिक से संबंधित होता है। निगम की आय से ही विभिन्न सुविधाओं के लिए आर्थिक संसाधन जुटाए जाते हैं। इस निगम का भी पुनर्गठन ऊपर क० भ० नि० के गठन के लिए सुझाए गए तरीकों पर किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य का अपना कर्मचारी राज्य बीमा निगम हो सकता है। संघ सरकार के अधीन निगम उन संघ-राज्य क्षेत्रों और राज्यों में कार्य कर सकता है जो यह कार्य संघ सरकार को सौंपना चाहें।

राष्ट्रीय बचत संगठन

6.54 अल्प बचत, खास तौर से छ: वर्षीय राष्ट्रीय बचत पत्र छठा और सातवां निर्गम जारी करने से, केन्द्र और राज्य की योजनाओं के लिए निधियों का मुख्य और तीव्र गति से बढ़ता हुआ स्रोत बन गया है। 1985-86 में निवल संग्रह (निकासी और चुकौतियों को घटाकर संग्रह) लगभग 4210 करोड़ रु० रहा है। राज्य के निवल संग्रह का दो तिहाई केन्द्र द्वारा राज्य को दीर्घकालिक कर्ज के रूप में वापस कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, ऐसे राज्य को, जिसके निवल संग्रह की सकल संग्रह से प्रतिशतता अखिल भारतीय औसत से अधिक हो, प्रोत्साहन के रूप में अतिरिक्त कर्ज दिया जाता है। 1986-87 के बजट के अनुसार राज्यों को कुल 3,200 करोड़ रु० मिलने हैं जबकि शेष 2,100 करोड़ रु० केन्द्र के पास रहेंगे। राष्ट्रीय बचत संगठन की स्थापना अल्प बचत संग्रह को बढ़ावा देने के लिए की गयी है। यह केन्द्र सरकार का संगठन है जिसका अध्यक्ष राष्ट्रीय बचत आयुक्त होता है। इस संगठन का प्रधान कार्यालय नागपुर में है। इस संगठन ने सभी राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्रों में अपने क्षेत्रीय कार्यालय खोल रखे हैं। पंजाब में चंडीगढ़ स्थित क्षेत्रीय निदेशक के अधीन पांच सहायक क्षेत्रीय निदेशक और 15 जिला बचत अधिकारी हैं।

---

*इस रकम में गैर-सरकारी मान्यता प्राप्त प्रतिष्ठानों से प्राप्त अधिवार्षिता और उपदान निधि जैसे विशेष निक्षेप भी शामिल हैं।

6.55 अल्प बचत संबंधी वर्तमान व्यवस्था निम्नलिखित संशोधनों सहित जारी रह सकती है। जबकि राष्ट्रीय बचत संगठन नीति के मुद्दे, वर्तमान बचत योजना की समीक्षा और नई बचत योजनाओं और साधनों में संबंधित हो सकते है, राज्यों के स्वायत्त संगठन अल्प बचत को बढ़ावा देने की पूरी जिम्मेदारी वहन कर सकते है और उन्हें इन सेवाओं के लिए निवल संग्रह संबंधी कुछ कमीशन दिया जा सकता है। राज्य के संगठन, राष्ट्रीय बचत संगठन को विभिन्न योजनाओं और साधनों संबंधी सूचना भी देंगे।

6.56 निवल संग्रह मे अपेक्षाकृत अधिक आय वाले राज्यों का हिस्सा बढ़ाकर 80% किया जाए और अपेक्षाकृत कम आय वाले राज्यों का, 95% राज्यों को दिए जाने वाले अल्प कर्जों की चुकौती अवधि वर्तमान 25 वर्षों से बढ़ाकर 50 वर्ष कर दी जाए। प्रारंभ में ऋण अदायगी में जो 5 वर्ष की छूट दी जाती है, उससे बढ़ाकर 10 वर्ष कर दी जाए। यह ध्यान में रखा जाए कि राज्यों को दिए जाने वाले अल्प बचत कर्ज निवल संग्रह से संबद्ध होते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि केन्द्र सर्वप्रथम अल्प बचत संबंधी निकासियों और चुकौतियों के लिए अपेक्षित कुल रकम का विनियोजन सकल संग्रह से करता है। शेष रकम का ही एक हिस्सा राज्यों को कर्ज के रूप में दिया जाता है। चूंकि सकल संग्रह से अभिदाताओं की अदायगी का पहले ही ध्यान रखा गया है, अत: केन्द्र को की जाने वाली अल्प बचत कर्जो संबंधी राज्यों द्वारा चुकौतियां केन्द्र के अपने इस्तेमाल के लिए पूर्ण रूप मे उपलब्ध रहती हैं। दूसरे शब्दों में ये चुकौतियां राज्यों द्वारा केन्द्र को किए जाने वाले राजस्व अन्तरण हैं। अत: राज्यों की मांग है कि ऐसे तर्कविरुद्ध राजस्व अन्तरण की समाप्ति के लिए राज्यों को कर्ज हमेशा के लिए* मंजूर किए जाएं। आठवें वित्त आयोग ने वास्तव में यही सिफ़ारिश की थी।** यद्यपि केन्द्र सरकार ने यह सिफ़ारिश मंजूर नहीं की, फिर भी राज्यों की इस मांग में काफी दम है। चुकौती और प्रारंभिक ऋण स्थगन अवधि में प्रस्तावित बढ़ोतरी इस मांग को पूरा करने की दिशा में एक कदम होगा जबकि वर्तमान परिपाटी को एक दम समाप्त करने से भी बचा जा सकेगा।

केन्द्रीय जल आयोग और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण

6.57 केन्द्रीय जल आयोग और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण जो कि केन्द्रीय जल और विद्युत आयोग के उत्तरवर्ती हैं, केन्द्र द्वारा बनाए गए सांविधानिक निकाय हैं। कई वर्षों से ये निकाय कम महत्व के मामलों से संबद्ध रहे हैं और अत्यंत लघु परियोजनाएं भी मंजूरी के लिए इन्हें सौंपी गई। इस समय 5 करोड़ रु० की लागत के से भी अधिक लागत की सभी सिंचाई और बहु उद्देशीय योजनाएं को केन्द्रीय जल आयोग और योजना आयोग द्वारा तकनीकी रूप से मंजूरी दिया जाना जरूरी है। ये, खास तौर से विद्युत के मामले में, स्पष्टत: निम्नतम सीमाएं हैं। कई राज्यों में सिंचाई और विद्युत विकास से संबंधित इंजीनियरी (अभियांत्रिकी) के और पेशेवर कार्मिकों में इन परियोजनाओं के मूल्यांकन, कार्यान्वयन और तैयारी से संबंधित क्षमता और अनुभव का अब तक विकास हो गया है। इन स्थितियों में, प्रस्तावों, परियोजनाओं और डिजाइनों की केन्द्रीय संगठनों द्वारा जांच कराने से अनावश्यक विलंब होता है और लागत में बढ़ोतरी होती है। इस तरह जल और विद्युत के विकास में सहायक साबित होने के बजाय ये ऐसे विकास के मार्ग में बहुत बड़ा अवरोध बन जाते हैं।

6.58 इन संगठनों की तकनीकी और नियामक भूमिका अब अंतरराज्यीय परियोजनाओं तक ही या जिनका प्रभाव केवल अन्तर-राज्यीय स्तर पर ही पड़ता है उन तक सीमित रखा जाए। अन्य परियोजनाओं के संबंध में, जो निवेश और वास्तविक क्षमता की दृष्टि से नियत आकार से बड़ी हैं, उनकी भूमिका केवल सलाहकार या परामर्शदात्री की हो। यह सीमा सिंचाई और बहुद्देशीय परियोजनाओं के लिए 20 करोड़ रु० सामान्य परियोजनाओं के लिए 25 करोड़ रु० की, और उत्पादन परियोजनाओं के लिए 100 करोड़ रु० की निर्धारित की जाए। जांच करने में संबंधित केन्द्रीय एजेंसी की समय-सीमा भी निर्धारित की जाए। नियत न्यूनतम आकार से कम आकार की परियोजनाएं इनके कार्य क्षेत्र से पूर्ण रूप से बाहर हों। इनके अधिकार क्षेत्र में आने वाली परियोजनाओं की पूर्ण जांच के लिए एजेंसियों की समय-सीमा निर्धारित की जाए।

भाखड़ा ब्यास प्रबंध परिषद्

6.59 (i) भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद् जैसे कुछ संगठनों का निर्माण कर केन्द्र राज्य के विषयों पर अपना अधिकार-क्षेत्र बढ़ा रहा है और इस तरह व्यापक और अनियंत्रित शक्तियां हड़प रहा है। पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 के पैरा-viii में भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद से संबंधित प्रावधान इसका सबूत है। ऐसा समझा जाता है कि इन शक्तियों की मंजूरी संविधान के प्रविष्टि-56, सूची-I से मिलती है। धारा 79(6) में कहा गया है कि भाखड़ा प्रबंध परिषद केन्द्र सरकार के नियंत्रण में होगा और सरकार द्वारा समय-समय पर दिए गए निदेशों का पालन करेगा। इस व्यवस्था से संघ सरकार का परिषद पर व्यापक अधिकार स्थापित हो गया है जबकि परिषद पंजाब के अधिकांश जल संसाधनों और विद्युत संसाधनों को नियंत्रित करता है।

(ii) पंजाब में सिंचाई आपूर्ति को प्रभावित करने वाला केन्द्र का मुख्य अधिनियम, पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 हैं। इस अधिनियम की धारा 78 और 79 के तहत भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद् को अंतरित कर दी गई है। यह परिषद् केन्द्र द्वारा नियंत्रित की जाती है। अधिनियम की धारा 80 के तहत ब्यास परियोजना की आस्तियां भी केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित ब्यास निर्माण परिषद्, जो बाद में भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद् को अंतरित कर दिया गया, को अन्तरित की गई हैं। ये दोनों परियोजनाएं मूलत: पंजाब और राजस्थान के बीच हुए करार से शुरू की गई थीं, जिनका कार्यान्वयन इससे पूर्व पंजाब राज्य द्वारा होता था। इन परियोजनाओं की आस्तियां पर केन्द्र सरकार का नियंत्रण पंजाब राज्य के अधिकार और जिम्मेदारियों में अनावश्यक दखलंदाजी है। भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद को जारी रखना जरूरी नहीं है। जल और विद्युत संबंधी सुविधाओं का निर्धारण परियोजना के उद्देश्यों के अनुसार पंजाब पुनर्गठन अधिनियम के अधीन किया जाता हैं यद्यपि केन्द्र द्वारा इन अधिकारों के सही निर्धारण पर विवाद रहा है। भारत सरकार द्वारा समय-समय पर लिए गए निर्णय या पक्षों के बीच हुई सहमति के अनुसार भागीदार राज्यों को जल और विद्युत की आपूर्ति नियंत्रित की जाती रही है और यह नियंत्रण भविष्य में भी बिना भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद के जारी रखा जा सकता है। पुनर्गठन पहले भी ये सुविधाएं पंजाब द्वारा राजस्थान को दी जाती रही है और 1966 के राज्य के पुनर्गठन से हरियाणा भी भागीदार हो गया तथा इन सुविधाओं से लाभान्वित होने वाले क्षेत्रों में चंडीगढ़ तथा हिमाचल प्रदेश का अन्तरित क्षेत्र भी आ गया। अत: यह जरूरी नहीं है कि केन्द्र सरकार द्वारा पुनर्गठन के बहाने पंजाब राज्य के अधिकार और उत्तरदायित्व हथिया लिए जाएं। भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद और ब्यास निर्माण परिषद् का गठन पंजाब राज्य के कार्य कलापों और उत्तरदायित्वों का अतिक्रमण मात्र है। इन परिषदों को भंग कर देना चाहिए और भाखड़ा तथा ब्यास परियोजनाओं के नियंत्रण के संबंध में 1966 से पूर्व की स्थिति होनी चाहिए। इसके लिए पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 की धाराओं 78, 79 और 80 में संशोधन की जरूरत है। इसी तरह पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा 79(1), जोकि रोपड़, हरीका और फिरोजपुर के "हेड वर्क" के नियंत्रण से संबंधित है, में दी गई व्यवस्था के अनुसार भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद को नियंत्रण का कार्य सौंपना पंजाब राज्य के अपने क्षेत्रों में नहरों और रेगुलेटरों की व्यवस्था करने के अधिकारों का अतिक्रमण है। "हेड वर्क" का नियंत्रण पंजाब करता रहा है अत: इसका नियंत्रण पंजाब को ही करते रहना चाहिए। पंजाब पुनर्गठन अधिनियम की धारा 78(4)(ख) में भाखड़ा नांगल परियोजना की जो परिभाषा दी गई है, उसमें इन "हेड वर्कस" का कोई उल्लेख नहीं है। पुन: धारा 79(6) के तहत भारत सरकार ने भाखड़ा ब्यास प्रबंध परिषद् पर नियंत्रण स्थापित कर दिया है और इस परिषद को सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निदेशों का पालन करना पड़ता है। इस व्यवस्था से राज्यों की सिंचाई के लिए जल नियंत्रित और नियमित करने से संबंधित सांविधानिक उपबंध संबंधी कार्यप्रणाली पूर्ण रूप से निष्फल साबित हुई है। ऐसे उदाहरण देखने में आए हैं कि भाखड़ा-ब्यास प्रबंध परिषद ने अनुचित और मनमाने निदेशों (कभी-कभी मौखिक) द्वारा भागीदार राज्य के क्षेत्रों से बाहर भी अर्थात दिल्ली या अन्यत्र विद्युत की कमी पूरा करने के लिए अतिरिक्त जलराशि उपलब्ध करायी है, जिससे भागीदार राज्यों को नुकसान पहुंचा है।

*आठवें वित्त आयोग, 1984 की रिपोर्ट, पैरा 14.27 पृष्ठ 102.

*पूर्वोक्त रिपोर्ट, पैरा 14.25.

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

6.60 कई वर्षों से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का राज्यों के विश्वविद्यालयों और कालेजों की कार्यपद्धति पर अत्यधिक नियंत्रण रहा है । यही स्थिति 1976 से पहले भी थी जबकि शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल नहीं किया गया था । राज्य की सरकारों का उच्चतर शैक्षिक नीतियों के निर्धारण और कार्यान्वयन पर वस्तुतः कोई प्रभुत्व नहीं रह गया है । राज्य इस पर प्रबल रोष प्रकट करते हैं । उच्चतर शैक्षिक नीतियों का अत्यधिक केन्द्रीकृत होना भारत जैसे विशाल देश, जो विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में सभी तरह की विविधताएं दर्शाता है, के हित में नहीं है ।

6.61 विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की कार्यपद्धति की आलोचना के कुछ मुद्दे नीचे दिए गए हैं :

(i) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अधिकांश निधि केन्द्रीय विश्वविद्यालयों को मिल गई हैं । राज्य के विश्वविद्यालयों को उनकी आवश्यकताओं की तुलना में बहुत सीमित निधि मिल रही है । कालेजों, खास तौर से ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित वे कालेज जो कमजोर तबके की आवश्यकताओं को पूरा करते है, की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से बहुत ही कम निधि मिल रही है ।

(ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अनुदान संबंधी मानदंड लोचहीन है और इस मानदंड में राज्यों, विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की खास आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है ।

(iii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विशेष योजना अवधि के लिए ही नए पदों के लिए वित्तीय व्यवस्था करता है । इस अवधि की समाप्ति पर पद राज्य सरकार की जिम्मेदारी बन जाती हैं । इस तरह राज्य को शीघ्र ही इन पदों के सृजन पर आधारित नीतियों के निर्धारण में अपनी दलील पेश किए बिना ही अतिरिक्त वित्तीय बोझ वहन करना पड़ता है ।

(iv) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अपनी नीतियों के निर्धारण और कार्यान्वयन में विभिन्न राज्यों की खास परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखता । अतः इसके निर्णय प्रायः विभिन्न राज्यों के लिए गंभीर समस्याएं खड़ी कर देते हैं । उदाहरण के लिए 1985 में इसके द्वारा लिए गए इस निर्णय ने, कि अब से विश्वविद्यालयों द्वारा पहली डिग्री 15 वर्ष की शिक्षा पूरी हो जाने पर दी जानी चाहिए, पंजाब और कुछ अन्य राज्यों, जो कि इस समय (1986 में) स्कूली शिक्षा की 10+2 प्रणाली शुरू कर रहे हैं, को विकट स्थिति में ला दिया है । राज्य के दृष्टिकोण और उसकी खास परिस्थितियों को ध्यान में न रखकर लिए गए निर्णय का परिणाम यह होता है कि कार्यान्वयन ठीक तरह से नहीं हो पाता ।

(v) विश्वविद्यालय और कालेज के अध्यापकों के लिए निर्धारित अर्हताओं की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बार-बार नई व्याख्याएं करने से संबंधित शैक्षिक संस्थाओं और राज्य सरकारों के लिए अनावश्यक उलझनें पैदा हो गई है ।

6.62 अध्याय 3 में यह सुझाव दिया गया है कि शिक्षा को, जैसा कि पहले था, राज्य के अंतर्गत रखा जाए । जहां तक राज्यों का संबंध है, केन्द्र द्वारा गठित किसी भी शैक्षिक निकाय को यथा-संभव समान शैक्षिक नीतियां अपनाने संबंधी अनुभवों और दृष्टिकोणों के आदान-प्रदान का फोरम (मंच) होना चाहिए । राज्यों की शैक्षिक संस्थाओं पर इन निकायों का न तो नियंत्रण हो और न ही ये निकाय इस तरह उनकी कार्यपद्धति को प्रभावित करते हों की विभिन्न राज्यों द्वारा अपनायी गई नीतियां निष्फल हो जाएं ।

अन्तरराज्यीय समन्वय

6.63 राज्यों में विशेष रूप से सीमा को लेकर विवाद छिड़ जाता है । इन विवादों को सुलझाने के लिए संस्थागत व्यवस्था होनी चाहिए । विवाद के ऐसे भी विषय हो सकते हैं, जिनमें कई या सभी राज्यों की समान अभिरुचि हो । इन विषयों के प्रति समान दृष्टिकोण अपनाना श्रेयस्कर होगा । ऐसा सहज ही हो सकता है यदि इन विषयों के अध्ययन के लिए और इन पर राज्य की नीतियों में समन्वय स्थापित करने तथा कार्रवाई के लिए समान संस्थागत व्यवस्था हो । अनुच्छेद 263 के तहत ऐसी व्यवस्था की जा सकती है । इस अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह राज्यों के बीच समन्वय स्थापित करने और पारस्परिक परामर्श के लिए फोरम (मंच) के रूप में कार्य करने वाले अन्तरराज्यीय परिषद को सार्वजनिक हित में आवश्यकतानुसार नियुक्त कर सकता है । परिषद की स्थापना अभी तक नहीं हुई है ।

6.64 राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1966 के तहत आंचलिक परिषदों की स्थापना का प्रावधान है, जिनका लक्ष्य राज्यों के सामूहिक हितों का ध्यान रखते हुए संस्थागत कार्यविधि की व्यवस्था करना है । स्थापना के तुरंत बाद ही आंचलिक परिषदों की बैठकें हुई और इसी तरह कुछ लाभप्रद कार्य हुए लेकिन पिछले कई वर्षों से इन परिषदों में अभिरुचि का स्पष्टतः अभाव पाया गया है । उनकी बैठकें कभी-कभार हुई हैं और उन्होंने राज्य की नीतियों और कार्रवाइयों में सामंजस्य स्थापित करने और अंतर-राज्यीय विवादों को निपटाने में तथा उनका अध्ययन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं की है ।

6.65 संस्थागत व्यवस्था के रूप में राज्यों और केन्द्र-राज्य में समन्वय स्थापित करने के लिए अंतरराज्यीय परिषद के शीघ्र गठन की जरूरत है । यह परिषद केन्द्र और राज्यों के हित की देखरेख भी कर सकता है । परिषद् में प्रधान मंत्री (अध्यक्ष), केन्द्रीय गृह और वित्त मंत्री और सभी मुख्य मंत्री शामिल हो सकते हैं । इस तरह सदस्यों की कुल संख्या 25 हो जाती है । परिषद् के निर्णयों पर प्रधान मंत्री और कम से कम दो तिहाई सदस्यों का अनुमोदन हो अर्थात प्रधान मंत्री समेत कुल मिलाकर 17 सकारात्मक वोट पड़ें । लेकिन परिषद् की आपात बैठकें बुलाने के लिए प्रावधान किया जाए ताकि राष्ट्रीय महत्व के महत्वपूर्ण मुद्दों को लिया जा सके । परिषद का स्थायी कार्यालय (सेक्रेटेरिएट) हो और परिषद् स्थायी तथा तदर्थ समितियां गठित कर सके ।

6.66 आंचलिक स्तर और अखिल भारतीय अंतरराज्यीय समन्वय तंत्र में उचित सहयोग सुनिश्चित करने के लिए आंचलिक परिषदों के स्थान पर अंतरराज्यीय परिषद् संबंधी आंचलिक समितियां गठित की जाएं । आंचलिक समिति के सदस्यों में केन्द्रीय गृह मंत्री (अध्यक्ष) और अंचल के राज्यों के मुख्य मंत्री शामिल हों । अंतर-राज्यीय परिषद के आंचलिक कार्यालय आंचलिक समितियों के लिए उपयोगी साबित हों ।

6.67 अंतर राज्यीय परिषद् और इसकी क्षेत्रीय स्थायी तथा तदर्थ समितियों के निर्णय का महत्व सिफारिशों जैसा ही होगा, न कि बन्धनकारी निदेशों जैसा । परिषद को मुख्यतः समन्वयक और समझौताकार की भूमिका निभानी चाहिए, न कि मध्यस्थ की । इसकी क्षमता मुख्यतः इसके निर्णयों को मिले जन-समर्थन पर निर्भर करेगी । अन्तरराज्यीय परिषद की सलाह राष्ट्रपति को सीधे न भेजकर मंत्रियों की केन्द्रीय परिषद् के माध्यम से भेजी जाए ।

राज्यों को निदेश जारी करना

6.68 संविधान के कई अनुच्छेदों के तहत संघीय कार्यपालिका को एक या एक से अधिक राज्यों को निदेश देने का अधिकार प्राप्त है :

(i) अनुच्छेद 256 के तहत संघीय कार्यपालिका ऐसे निदेश दे सकती है जो कि उस राज्य पर लागू होने वाले वर्तमान कानून और संसद् द्वारा बनाए गए कानून का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक समझे जाते हों ।

(ii) अनुच्छेद 257(1) के तहत राज्यों को केन्द्र के कार्यपालक शक्ति के प्रयोग में बाधा न पहुंचाने या उस पर प्रतिकूल प्रभाव न डालने के निदेश दिए जाते हैं । अनुच्छेद 257 के तहत राज्य को (i) राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के (खंड (2)" संचार साधनों और उनके निर्माण तथा (ii) राज्य के भीतर रेल संपदा के संरक्षण के लिए किए गए उपायों (खंड (3) के संबंध में भी निदेश दिए जा सकते हैं ।

(iii) अनुच्छेद 339 के तहत राज्यों को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए आवश्यक योजनाओं को कार्यान्वित करने के निदेश दिए जा सकते हैं ।

(iv) अनुच्छेद 350(क) के तहत राज्य को ये निदेश दिए जा सकते हैं कि वह भाषाई अल्पसंख्यक समूहों से संबद्ध बच्चों को प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराए।

6.69 संघ की कार्यपालक शक्ति का प्रयोग करते हुए दिए गए निदेशों का पालन करने या उन्हें कार्यान्वित करने में किसी राज्य के असफल होने पर अनुच्छेद 365 के तहत दण्ड का प्रावधान है। राज्य द्वारा इस तरह असफल होने पर इस अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति द्वारा यह मानना उचित होगा कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार नहीं चल सकती। इस तरह अनुच्छेद 356 के तहत कार्रवाई करने का मार्ग खुल जाएगा।

6.70 अनुच्छेद 256, 257, 339 और 350(क) के तहत राज्यों को निदेश जारी करने का जो अधिकार केन्द्र को मिला हुआ है, वह केन्द्र-राज्य संबंधों के लिए बाधक है। अत निम्नलिखित तर्कों के आधार पर केन्द्र राज्य संबंध में आए गतिरोध को दूर किया जा सकता है :

(1) राज्य संसद द्वारा निर्मित कानून और राज्य पर लागू वर्तमान कानून का पालन करने के लिए वचनबद्ध हैं। यदि ऐसे कानून की सांविधानिक वैधता में किसी प्रकार का संदेह हो तो मामले को न्यायालय में उठाया जा सकता है। राज्य द्वारा वैध कानूनों की अवज्ञा असनज्ञेय होगी। ऐसी स्थिति आने पर अनुच्छेद 356 के तहत सार्वजनिक अव्यवस्था के आधार पर राज्य सरकार को बर्खास्त किया जा सकता है। इसी तरह संघ की कार्यपालक शक्ति के प्रयोग में राज्य द्वारा जानबूझकर बाधा पहुंचाने या उस पर प्रतिकूल असर डालने पर उसी आधार पर अनुच्छेद 356 के तहत इसके खिलाफ कारवाई की जा सकेगी।

(2) राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार साधनों के निर्माण और रखरखाव या रेल संपदा के संरक्षण के संबंध में राज्य सरकार द्वारा आवश्यक कार्यवाही करने के लिए अनिच्छुक होने की बात समझ में नहीं आती जबकि अनुच्छेद 257(4) के तहत केन्द्र द्वारा राज्य को अतिरिक्त लागत की प्रतिपूर्ति का प्रावधान है। यदि राज्य सरकार इन संबंधों में राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय प्रतिरक्षा को छिन्न-भिन्न करने के दृष्टिकोण से आवश्यक कार्यवाही करने से इन्कार करती है तो अनुच्छेद 356 के तहत इसे बर्खास्त किया जा सकता है।

(3) अनुच्छेद 339 और 350(क) के तहत किए गए प्रावधानों से संबंधित अंतर्निहित धारणा यह है कि केन्द्र अनुसूचित जनजातियों और भाषाई अल्पसंख्यकों के कल्याण के प्रति राज्यों की अपेक्षा अधिक न्यायशील है। वास्तविक अनुभव से इस धारणा को बल नहीं मिलता। इन प्रावधानों के तहत केन्द्र ने जनजातियों और अल्पसंख्यकों की सुविधा के लिए शायद ही अपनी शक्ति का इस्तेमाल किया हो। इसके अतिरिक्त, केन्द्र को चाहिए कि वह उत्तरदायी राज्य सरकारों को परिवीक्षाधीन न समझे। राज्यों पर यह भरोसा रखा जाए कि उनको खुद के अनुभव से पता चल जाएगा कि जनसंख्या के कमजोर तबके की उचित देखभाल करना उनका नैतिक और राजनैतिक कर्तव्य है।

(4) अनुच्छेद 356 के तहत पथभ्रष्ट राज्यों के खिलाफ कार्यवाही करने की जो शक्ति केन्द्र को मिली हुई है, उसमें अनुच्छेद 365 कोई वृद्धि नहीं करता। यही कारण है कि अनुच्छेद 365 का शायद ही कभी प्रयोग किया गया हो जबकि अनुच्छेद 356 का प्रायः बहुत अधिक प्रयोग और दुरुपयोग किया गया है।

6.71 उन उपबंधों, जिनके तहत केन्द्र राज्यों को निदेश जारी कर सकता है, का लोप करने के लिए संविधान में संशोधन करना सकारात्मक कदम होगा, भले ही इससे केन्द्र और राज्यों के बीच संतुलन स्थापित करने में न्यूनतम सफलता मिले।

राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता

7.1 इस समय केन्द्र और राज्य के वित्तीय संबंध बहुत ही कम संतोषप्रद हैं। इन संबंधों से संघीय वित्त संबंधी उस बुनियादी सिद्धान्त का अत्यधिक उल्लंघन होता है, जिसके अनुसार प्रत्येक स्तर की सरकार को संविधान के तहत अपनी जिम्मेदारियों को ठीक तरह से निभाने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों के संबंध में आत्मनिर्भर होना चाहिए। एक स्तर के सरकार की दूसरे स्तर के सरकार पर अत्यधिक वित्तीय निर्भरता होने से पूर्ववर्ती सरकार के प्राधिकार और भूमिका को कई बार क्षति पहुंचती है जिसके परिणामस्वरूप राज्य के ढांचे में बुनियादी परिवर्तन हो जाता है। वास्तव में भारत में ऐसा पिछले 35 वर्षों से देखने में आ रहा है और हाल के वर्षों में भी यही बात देखने में आयी है। राज्य अपने राजस्व और पूंजीगत खर्चों के लिए वित्तीय साधन जुटाने के लिए केन्द्र द्वारा किए जाने वाले राजस्व अंतरणों पर अत्यधिक निर्भर हो गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि संविधान द्वारा राज्यों को मूलतः सौंपे गए विषयों के संबंध में राज्यों के प्राधिकार, उत्तरदायित्व और कारवाई की स्वतंत्रता को स्पष्टतः नुकसान पहुंचा है। संविधान में भारतीय राज्य प्रणाली में राज्यों की जिस भूमिका की परिकल्पना की गई है, उसे अत्यधिक क्षति पहुंची है। भारत स्पष्टतः राज्य के संघीय स्वरूप से दूर हटता जा रहा है। राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता किस हद तक है, इसे नीचे प्रकट किया गया है।

7.2 राज्य अपने अधिकांश राजस्व और पूंजीगत खर्च के लिए वित्तीय साधन जुटाने के लिए केन्द्र द्वारा अंतरित किए जाने वाले राजस्व पर निर्भर होते है। पूंजीगत खर्च के मामले में राज्य की केन्द्र पर पूरी निर्भरता होती है। केन्द्र द्वारा संसाधनों का कुछ अन्तरण वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुरूप अन्तरण के माध्यम से किया जाता है और कुछ अन्तरण विवेकाधीन अनुदानों और कर्जों के रूप में। राज्य की योजनाओं के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता विवेकाधीन अनुदान और कर्ज के रूप में दी जाती है। इस अध्याय में अपने राजस्व और पूंजीगत खर्च के लिए वित्तीय साधन जुटाने के संबंध में राज्य की केन्द्र पर सकल वित्तीय निर्भरता और पृथक-पृथक निर्भरता दर्शायी गई है।

राज्यों की सकल वित्तीय निर्भरता

7.3 हाल के वर्षों में राज्य वित्त के मामले में केन्द्र पर पूरी तरह निर्भर रहे हैं। राज्यों की एकल वित्तीय निर्भरता को सारणी 7.1 में दर्शाया गया है।

7.4 सारणी 7.1 से पता चलता है कि केन्द्र से राज्यों को अन्तरण (सुपुर्दगी) और विवेकाधीन अन्तरणों के माध्यम से किए गए राजस्व अन्तरण से राज्यों के सकल खर्च के 45% खर्च के लिए वित्तीय साधन उपलब्ध कराए जाते हैं और इस प्रतिशतता में हाल के वर्षों में बढ़ोत्तरी हुई है। राज्य अपनी आय से सकल खर्च के 50% से कुछ अधिक खर्च के लिए वित्त की व्यवस्था करते हैं। शेष खर्च का काफ़ी हिस्सा घाटा वित्तीयन द्वारा पूरा किया जाता है। विगत में संचित घाटे को भी पूरा करने के लिए प्रारंभ में केन्द्र समय-समय पर राज्यों को मध्य-कालिक कर्ज देता था ताकि वे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से लिए गए अपने अनाधिकृत ओवरड्राफ्टों को चुका सकें। केन्द्र ने ऐसे कर्ज 1972–73 (421 करोड़ रुपए), 1978–79 (555 करोड़ रु०) 1982–83 (1743 करोड़ रुपये) 1983–84 (400 करोड़ रु०) और 1985–86 (1628 करोड़ रु०) में दिए। सारणी 6.1 में दिखाए गए पूंजी लेखा पर केन्द्र द्वारा राज्यों को किए गए राजस्व अन्तरणों में ओवरड्राफ्टों के भुगतान संबंधी कर्ज शामिल नहीं हैं। यदि केन्द्र, जैसा कि इस समय पर कर रहा है, 1985–86 में शुरू किए गए राज्यों के अनधिकृत ओवरड्राफ्टों के निराकरण के लिए कड़ाई से अपनी योजना पर अमल करता है तो राज्यों को रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से मिले ओवरड्राफ्टों को चुकाने में सक्षम बनाने के लिए और अधिक केन्द्रीय सहायता नहीं मिलेगी। इससे राज्यों के सकल घाटे को पूरा करने वाले कोषों का मुख्य स्रोत अवरुद्ध हो जाएगा। जब तक राज्य अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर इस घाटे को पूरा नहीं करते, उन्हें या तो अपने खर्च पर और अधिक नियंत्रण रखना पड़ेगा या केन्द्र द्वारा किए जाने वाले राजस्व अन्तरण पर और अधिक निर्भर रहना पड़ेगा। राज्यों की ऐसी स्थिति होने के अतिरिक्त उनकी केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता काफी हद तक हो गई है जिसका देश के राज्यीय ढांचे और राज्य-निकाय पर गहरा असर पड़ा है।

सारणी 7.1

केन्द्र पर राज्यों की सकल वित्तीय निर्भरता

	1983–84 करोड़ रु०	(लेखे) प्रतिशत	1984–85 करोड़ रु०	संशोधित प्राक्कलन प्रतिशत	1985–86 करोड़ रु०	बजट प्राक्कलन प्रतिशत
	1	2	3	4	5	6
क. व्यय	31157.43	100.0	36919.87	100.0	39920.56	100.0
1. राजस्व लेखा पर . . .	23803.29	76.4	28585.68	77.4	31625.35	79.2
2. पूंजीगत लेखा पर . . .	7354.14	23.6	8334.19	22.6	8295.21	20.8
ख. व्यय के लिए अर्थ प्रबन्ध . . .	31157.43	100.0	36919.87	100.0	39928.56	100.0
1. राज्य की प्राप्तियां . . .	17023.28	54.6	18508.71	50.1	20668.19	51.8
(1) राजस्व लेखा पर . . .	14913.24	47.8	16956.42	45.9	18885.36	47.3
(2) निवल पूंजीगत लेखा पर . .	2109.94	6.8	1552.29	4.2	1728.83	5.4
2. केन्द्र से किए गए राजस्व अन्तरण . .	13573.26	43.6	16451.72	44.6	18308.76	45.8
(1) राजस्व लेखा पर . . .	9100.48	29.2	107118.10	29.0	12470.64	31.2
(2) पूंजीगत लेखा पर . . .	4472.78	14.4	5733.62	15.6	5838.12	14.6
(3) निम्नलिखित द्वारा घाटा बिक्तीयन .	560.89	1.8	1959.44	5.3	943.61	2.4
(i) रोकड़ बाकी से आहरण . .	112.09	0.4	1898.06	5.2	1070.54	2.7
(ii) रोकड़ बाकी से आहरण निवल निवेश लेखा	211.37	0.6	13.91	..	1.86	..
(iii) रिजर्व बैंक आफ इंडिया से प्राप्त निवल अर्थोपाय अग्रिमों और ओवरड्राफ्टों में वृद्धि	237.43	0.8	47.47	0.1	(—)128.79	(—) .3

स्रोत : "1985-86" के दौरान राज्य सरकारों के वित्त में उपलब्ध आंकड़ों से संकलित, रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का नवंबर 1985 का बुलेटिन, पेज 790–963

राजस्व व्यय के लिए वित्त संबंधी निर्भरता ।

7.5 राज्यों के राजस्व व्यय के लिए वित्त प्रबंध के संबंध में केन्द्र से किए जाने वाले राजस्व अंतरणों पर लगभग 40% निर्भरता है। इसे सारणी 7.2 में दिखाया गया है ।

सारणी 7.2

राज्यों के राजस्व व्यय के लिए वित्तप्रबंध

	1983–84 करोड़ रु०	(लेखे) प्रतिशत	1984–85 करोड़ रु०	(पुनरीक्षित प्राक्कलन) प्रतिशत	1985–86 करोड़ रु०	(बजट प्राक्कलन) प्रतिशत
	1	2	3	4	5	6
क. राजस्व व्यय	23803.29	100.0	28585.68	100.0	31625.35	100.00
1. विकासपरक	16941.24	78.5	20067.58	77.01	21495.07	78.50
2. गैर-विकासपरक	6872.05	21.5	8518.01	22.99	10130.28	21.50
ख. राजस्व व्यय के लिए वित्त प्रबंध . . .	23803.29	100.0	25885.68	100.0	31625.35	100.0
1. राज्यों की अपनी राजस्व प्राप्तियां . .	41913.34	62.7	16956.42	59.3	18885.38	59.7
(1) कर राजस्व . . .	10753.11	45.2	12239.07	42.8	13787.76	43.6
(2) गैर-कर राजस्व . .	4160.23	17.5	4517.35	16.5	5097.60	16.1
2. केन्द्र से किए गए राजस्व अन्तरण . .	9100.48	38.2	10718.10	37.5	12470.64	39.4
(1) करों का हिस्सा . . .	5007.82	21.0	5737.98	20.1	6551.73	20.7
(2) अनुदान	4092.66	17.2	4980.12	17.4	5918.91	18.7
(i) गैर योजना . . .	756.83	3.2	854.61	3.0	1227.96	3.9
(क) अन्तरण (सुपुर्दगी) . . .	(a)	(a)	(a)	(a)	(a)	(a)
(ख) अन्य	756.83	3.2	854.61	3.0	1227.96	3.9
(ii) राज्य की योजनागत परियोजनाएं .	1848.35	7.8	1823.70	6.4	2118.08	6.7
(iii) केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं/परियोजनाएं . . .	1487.48	6.2	2301.81	8.0	2572.87	8.1
3. घाटा	(—)210.53	(—).9	911.116	3.2	269.35	0.9

स्रोत—पूर्वोक्त

(a) अन्य अर्थात (ख) में शामिल

7.6 सारणी 7.2 से पता चलता है कि राज्यों की राजस्व प्राप्तियों से 1983–84, 1984–85 (संशोधित प्राक्कलन) और 1985–86 (बजट प्राक्कलन) के दौरान राज्यों के केवल 62.7% 59.3% और 69.7% राजस्व व्यय के लिए वित्त-प्रबंध किया गया। इन तीन वर्षों के दौरान केन्द्र द्वारा किए गए राजस्व अन्तरणों से इस व्यय के 38.2%, 37.5% और 39.4% व्यय के लिए वित्त प्रबंध किया गया। केन्द्रीय करों से राज्यों को मिलने वाले हिस्से से इस व्यय के 21.0%, 20.1% और 20.7% व्यय के लिए वित्त प्रबंध किया गया। इन तीन वर्षों के दौरान शेष 17.2%, 17.4 और 18.7% व्यय के लिए वित्त प्रबंध केन्द्र द्वारा प्राप्त अनुदानों से किया गया।

7.7 भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा की गई जांच में अन्तरण (सुपुर्दगी) द्वारा दिए गए अनुदानों की रकम का ब्यौरा अलग से नहीं दिया गया है। अंतः राज्यों के राजस्व व्यय के लिए जुटाए गए वित्त में अन्तरण का कितना योगदान है, इसका पता भारतीय रिजर्व बैंक की जांच से नहीं चलता। फिर भी राज्य को किए जाने वाले अन्तरण और विवेकाधीन अन्तरण संबंधी ब्यौरा भारत के बजटीय प्रलेखों में उपलब्ध है। यह ब्यौरा नीचे दिया गया है :

सारणी 7.3

केन्द्र से राज्यों को अंतरण और विवेकानुदान

	1984–85 (सं० प्रा०)		1985–86 (ब० प्रा०)		1985–86 (सं० प्रा०)		1986–87 (ब० प्रा०)	
	करोड़ रु०	प्रतिशतता	करोड़ रु०	प्रतिशतता	करोड़ रु०	प्रतिशतता	करोड़ रु०	प्रतिशतता
1. अंतरण	6318.35	58.2	7941.09	61.0	8569.13	59.7	9432.83	61.3
(1) करों में हिस्सा . .	5776.92	53.2	6726.39	51.7	7490.26	52.2	8260.10	53.7
(2) अनुदान . . .	541.43	5.0	1214.70	9.3	1078.87	7.5	1172.13	7.6
2. विवेकानुदान . . .	4538.16	41.8	5086.46	39.0	5784.52	40.3	5965.16	38.7
(1) योजनेतर . . .	425.81	4.2	348.13	2.6	580.30	4.0	376.31	2.4
(2) राज्य योजना स्कीमें . .	1831.79	16.9	2357.66	18.1	2537.39	17.7	2556.06	16.6
(3) केंद्रीय और केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमें .	2231.79	20.5	2355.15	18.1	2645.51	18.4	2997.44	19.5
(4) पूर्वोत्तर परिषद योजना स्कीमें .	22.05	0.2	25.52	0.2	21.32	0.2	35.36	0.2
3. कुल अंतरण . . .	10856.51	100.0	13027.55	100.0	14353.65	100.0	15397.99	100.0

7.8 केंद्रीय बजट प्रलेखों में दिखाए गए राज्यों को किये गये अंतरण, आशा के अनुकूल, राज्य के बजटों से परिकलित किये गये अंतरणों से भिन्न हैं परन्तु यह विसंगति इतनी बड़ी नहीं है कि मुख्य निष्कर्षों में कोई महत्वपूर्ण आशोधन करना पड़े। सारणी 7.3 दर्शाती है कि कुल अंतरणों में से अंतरण लगभग 60% और शेष लगभग 40% वियेकानुदान हैं जिसमें राज्य योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता का अनुदान का हिस्सा भी शामिल है। उपर्युक्त सारणी 7.2 दर्शाती है कि हाल के वर्षों में केंद्र से संसाधनों के अंतरण द्वारा राज्यों के कुल राजस्व व्यय का लगभग 40% भाग वित्तपोषित हुआ है। इस प्रतिशतता को 60 : 40 अनुपात में बांटते हुए, राज्यों के राजस्व व्यय के वित्तपोषण के लिए अंतरण और विवेकानुदान का योगदान क्रमशः 24% तथा 16% बैठता है।

7.9 उपरोक्त, कुल राज्यों के लिए औसतन स्थिति है। अलग-अलग राज्यों में स्थिति भिन्न-भिन्न है। पंजाब के संबंध में आंकड़े सारणी 7.4 में दिये गये हैं।

7.10 पंजाब के राजस्व व्यय के वित्तपोषण के लिए अंतरणों को योगदान (अर्थात केंद्रीय करों तथा विवेकानुदानों का हिस्सा) इस प्रकार रहा है :–1984–85, 13% 1985–86 (बजट प्राक्कलन), 10.4 %, 1985–86 (संशोधित प्राक्कलन), 10.9%, तथा 1986–87 (बजट प्राक्कलन), 11.7.1.1 यह लगभग 24% की राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। विवेकानुदान अंतरणों का योजदान इस प्रकार है, 1984–85, 8.2, 1985–86 (बजट प्राक्कलन) 16.0%, 1985–86 (संशोधित प्राक्कलन) 17.7% तथा 1986–87, 11.3% । 1985–86 में योजना तथा योजनेतर दोनों लेखाओं में विवेकानुसार असाधारण अंतरण किये गये जिसके कारण राजस्व व्यय के वित्तपोषण में उनका अंशदान बढ़ा। 1986–87 के बजट प्राक्कलन (11.3%) अधिक सामान्य स्थिति दर्शाता है। सामान्य विवेकानुदान अंतरणों का हिस्सा लगभग 11% हो सकता है जो 16% की अनुमानित राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। अंतरण तथा विवेकानुदानों को एक साथ लेने से, केन्द्र से सामान्य संसाधनों का अंतरण पंजाब के राजस्व व्यय के वित्त पोषण का लगभग 23% बैठता है, जबकि इसकी राष्ट्रीय औसत लगभग 40 प्रतिशत की है।

सारणी 7.4

राज्य के राजस्व व्यय का वित्तपोषण–पंजाब

	1984–85 (लेखे)		1985–86 (बजट अनुमान)		1985–86 (संशोधित अनुमान)		1986–87 (बजट अनुमान)	
	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत
क. राजस्व व्यय	941.34	100.0	1096.72	100.0	1183.92	100.0	1229.70	100.0
1. विकास	615.17	65.4	707.84	64.5	786.99	66.5	768.74	62.5
2 विकासेतर	326.17	34.6	388.88	35.5	396.93	33.5	460.96	37.5

	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
ख. राजस्व व्यय का वित्त पोषण . .	941.34	100.0	1096.72	100.0	1183.92	100.0	1229.70	100.0
1. राज्य की अपनी राजस्व आय . .	731.90	77.8	869.12	79.2	831.39	70.2	996.22	81.0
(1) कर-राजस्व . . .	566.51	60.2	631.51	61.2	646.50	54.6	788.63	64.1
(2) करेतर राजस्व . .	165.39	17.6	197.61	18.0	184.89	15.6	208.19	16.9
2. केंद्र से संसाधन अंतरण . .	200.08	21.2	289.28	26.4	338.19	28.6	283.12	23.0
(1) करों का हिस्सा . .	121.62	12.9	107.16	9.8	121.89	10.3	133.49	10.8
(2) अनुदान . . .	78.46	8.3	182.12	16.6	216.30	18.3	149.63	12.2
(i) योजनेतर . .	4.76	0.5	52.33	4.8	73.64	6.3	52.88	4.3
(क) अंतरण . . .	0.88	0.1	6.69	0.6	6.69	0.7	10.69	0.9
(ख) अन्य . . .	3.88	0.4	45.64	4.2	66.95	5.6	42.10	3.4
(ii) राज्य योजना स्कीमें .	24.49	2.6	58.28	5.3	77.29	6.5	15.47	1.3
(iii) केंद्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाएं . .	49.21	5.2	71.51	6.5	65.37	5.5	81.28	6.6
3. कमी	9.36	1.0	(−)61.68	(−) 5.6	14.34	1.2	(−)49.64	(−) 4.0

स्रोत : पंजाब सरकार बजट कागजात—1986-87.

पूंजीगत व्यय के वित्त पोषण के लिए निर्भरता

7.11 अपने पूंजीगत व्यय का वित्तपोषण करने के लिए राज्यों की केंद्र पर निर्भरता, अपने राजस्व व्यय का वित्तपोषण करने की तुलना में कहीं अधिक है। यह स्थिति सारणी 7.5 में दर्शाई गई है।

7.12 सारणी 7.5 में दिखाया गया हैं कि हाल के वर्षों में, केंद्र से लिए गये पिछले ऋणों की चुकौती के लिए अपनी देयताएं पूरी करने के बाद, राज्य अपने पूंजीगत व्यय के बहुत ही कम हिस्से का वित्तपोषण कर सके: 1983–84, 28.7% 1984–85 (संशोधित अनुमान) 18.6.7.1 तथा 1985–86 (बजट अनुमान) 21.5%। कुल पूंजीगत व्यय के बहुत बड़े भाग का केंद्र से नये ऋण लेकर वित्तपोषण करना पड़ा : 1983–84, 60.8%, 1984–85 68.8 % तथा 1985–86 (बजट अनुमान), 70.4%। इसके अतिरिक्त, काफी घाटा उठाना पड़ा। कुल पूंजीगत परिव्यय के अनुपात के रूप में घाटा इस प्रकार था : 1983–84, 10.5%, 1985–86 (संशोधित अनुमान), 12.6% तथा 1985–86 (बजट अनुमान) 8.1%। उपरोक्त स्थिति से पता चलता है कि पूंजीगत व्यय के वित्त पोषण के संबंध में राज्य अपने राजस्व व्यय की तुलना में केंद्र से संसाधन अंतरणों पर बहुत ज्यादा निर्भर हैं।

7.13 केंद्र से राज्यों को दिये जाने वाले सभी ऋण और अग्रिम विवेकानुसार हैं। लघु बचतों की वसूली पर, राज्यों को दिये जाने वाले ऋणों के बारे में भी यही स्थिति है। इस समय राज्यों को लघु बचतों की निवल वसूली के दो-तिहाई भाग के बराबर ऋण दिये जाते हैं। हाल के वर्षों में ये ऋण (कभी-कभी इन्हें लघु बचतों में राज्यों का हिस्सा भी कहा जाता है) केन्द्र से राज्यों को मिले कुल ऋणों के लगभग 40% के बराबर थे। ये ऋण किसी संवैधानिक दायित्व के कारण नहीं दिये जाते, अपितु लघु बचतों की वसूली में राज्यों को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्र सरकार के अपने निर्णय के अधीन दिये जाते है। इस दो-तिहाई के अनुपात को घटाने या बढ़ाने अथवा इस संबंध में राज्यों को ऋण देना बंद करने के संबंध में संविधान केन्द्र पर किसी प्रकार की कोई रोक नहीं लगाता। अनुच्छेद 293(2), संसद द्वारा निर्धारित सीमाओं और शर्तों के अधीन, भारत सरकार को केवल किसी राज्य को ऋण देने के लिए सक्षम बनाता है, किन्तु यह उसे ऐसा करने के लिए किसी भी प्रकार से आबद्ध नहीं करता। संविधान के उपबंधों के अधीन केन्द्र से राज्यों को दिये जाते वाले सभी ऋण विवेकानुसार होते हैं।

7.14 इसी प्रकार, ऋण तथा अनुदान संघटकों सहित, राज्य की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता, केन्द्र द्वारा विवेकानुसार संसाधन अंतरण होती है। योजना आयोग द्वारा अलग से छानबीन किये जाने के बाद इसकी मात्रा संघ सरकार (वित्त मंत्रालय) द्वारा निर्धारित की जाती है। संविधान के अधीन केन्द्र एक योजना आयोग स्थापित करने के लिए आबद्ध नहीं है। कार्यपालिका के निर्णय द्वारा यह पूर्णतया संघ सरकार की बनाई गई संस्था है और इस पर कई प्रकार से केन्द्र का ही प्रभुत्व हैं। योजना आयोग राज्यों में परस्पर केन्द्रीय सहायता वितरित करने के लिए उत्तरदायी है। औपचारिक तौर पर वितरण योजना राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा अनुमोदित की जाती है, किन्तु वास्तव में यह योजना वित्त मंत्रालय की सहमति से योजना आयोग द्वारा तैयार की जाती है।

7.15 सारणी 7.5 में राज्यों की अपनी प्राप्तियों के रूप में वर्गीकृत, राज्यों की पूंजीगत प्राप्तियों का बहुत बड़ा अंश, वस्तुतः भारत की सहमति के अधीन होता है। अनुच्छेद 293(1) राज्यों को अपने-अपने राज्य विधान मण्डलों द्वारा लगाई गई सीमाओं के अनुसार, राज्य की संचित निधि की प्रतिभूति पर भारतीय क्षेत्र के अंतर्गत कर्ज लेने के लिए सक्षम बनाता है, परन्तु अनुच्छेद 293(3), वस्तुतः, राज्यों द्वारा लिए जाने वाले सभी-कर्जों पर भारत सरकार की सहमति होने की शर्त लगाता है। इस खण्ड में निर्धारित किया गया है कि यदि किसी राज्य की तरफ केंद्रीय सरकार द्वारा पहले से दिया गया ऋण बकाया हो, तो यह राज्य भारत की सहमति के बगैर कोई कर्ज नही जुटा सकता। चूंकि सभी राज्य अब केन्द्र के बुरी तरह से ऋणग्रस्त है, इसलिए राज्य सरकारों द्वारा सभी प्रकार के कर्ज लिए जाने के लिए भारत सरकार का अनुमोदन लेना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, आंतरित ऋणों के अंतर्गत प्राप्तियां, वस्तुतः, राज्यों की अपनी पूंजीगत प्राप्तियां नहीं हैं। अनुच्छेद 293(3) इस बात की पुष्टि करता है कि संविधान निर्माताओं को संविधान लागू होने के बाद, केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों की संभावित रूपरेखा के बारे में सही पूर्वानुमान बिल्कुल नहीं थे। ऋणों और अग्रिमों की वसूली से आई प्राप्तियों और लोक लेखे के अंतर्गत आई प्राप्तियों को वास्तव में उनकी अपनी पूंजीगत आय माना जा सकता है। इससे पता चलता है कि राज्य अपने पूंजीगत परिव्यय का वित्तपोषण करने के लिए लगभग पूरी तरह से केन्द्र पर निर्भर हैं।

राज्यों की वित्तीय निर्भरता के कारक

8.1 राज्यों की केन्द्र पर भारी निर्भरता उन कारकों के परिणाम स्वरूप हैं जिन्होंने, गत 35 वर्षों के दौरान या तो उन्हें परिव्ययोन राजस्व तथा पूंजीगत खर्च करने पर मजबूर कर दिया अथवा जिनके कारण उनकी अपनी राजस्व एवं पूंजीगत प्राप्तियों में तदनुरूप वृद्धि नहीं हुई। इस प्रकार के कुछ मुख्य कारकों पर नीचे चर्चा की गई है।

(1) राज्य का व्यय बढ़ने का कारण

8.2 संविधान ने राज्यों को आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के विस्तृत क्षेत्रों की पूर्ण अथवा अधिकांश जिम्मेवारी सौंपी थी। इनमें शामिल है—कृषि और सम्बद्ध सेवाएं, सिंचाई, जलनिकास और बाढ़ नियंत्रण, बिजली;

सड़कें और पुल, सड़क परिवहन, जल पूर्ति और सफाई, शिक्षा, कला और संस्कृति, चिकित्सा और लोक-स्वास्थ्य, आवास और शहरी विकास, राज्य प्रशासन के विस्तार के लिए कार्यालय और अन्य, भवन, सामाजिक शिक्षा और कल्याण, तथा स्थानीय निकायों और पंचायती राज संस्थानों का विकास। राज्यों के विकास संबंधी दायित्व का निर्वहन यद्यपि अभी तक एक सीमित और अपर्याप्त ही है, किन्तु इससे उनका राजस्व तथा पूंजीगत व्यय बहुत तेजी से बढ़ा है। इस प्रवृत्ति के लिए एक सहायक कारक यह भी है कि भारत में आम तौर पर लोक व्यय से कम लाभ प्राप्त किया गया है जिसके कारण अपेक्षित वास्तविक परिणाम हासिल करने के लिए उचित परिव्ययों से अधिक राशि की आवश्यकता पड़ी है।

8.3 राज्यों के वित्त साधनों से संबंधित संविधान के उपबन्ध स्पष्ट संकेत करते हैं कि राज्यों को सौंपे गये विकास संबंधी उत्तरदायित्व में निहित लोक व्यय संबंधी आवश्यकताओं के बारे में संविधान निर्माताओं ने बहुत कम अनुमान लगाया था। विशेषकर, ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यों द्वारा अपेक्षित बहुत बड़े पूंजीगत परिव्यय के बारे में उन्होंने अधिक कल्पना नहीं की थी। ऐसा लगता है कि संविधान सभा के अधिकांश सदस्य या तो नियोजित विकास पर विश्वास नहीं रखते थे या उन्हें लोक व्यय में वृद्धि के संबंध में, भारतीय परिप्रेक्ष्य में, इसके निहितार्थ की बहुत थोड़ी जानकारी थी। संभवतः वे यह पूर्वानुमान न लगा सके कि देश चाहे विकास की कोई भी पद्धति अपनाए, राज्य को विकास में प्रोत्साहन तथा सहायता देने के लिए अत्यन्त सक्रिय भूमिका निभानी होगी और, चाहे देश विकास की पूंजीवादी पद्धति ही क्यों न अपनाए, परन्तु केन्द्र तथा राज्य सरकारों को, संविधान के अधीन अपने अपने दायित्वों के क्षेत्र में बढ़ चढ़ का निवेश करना होगा तथा उसमें सहायता करनी होगी; और इसके साथ ही लम्बे अर्से तक राज्य तथा राज्य सहायता प्राप्त सेवाओं पर राजस्व लेखे में बढ़ता हुआ अनुरक्षण और विकास व्यय वहन करना होगा ताकि भारतीय अर्थ व्यवस्था, गतिवाद में न्यूनतम महत्वपूर्ण स्तर पर प्राप्त कर सके। पिछले 35 वर्षों में वस्तुतः यही सब कुछ होता चला आ रहा है। राज्यों के राजस्व तथा पूंजीगत व्यय में तीव्र वृद्धि सीधी इसी विकास प्रक्रिया का परिणाम है।

8.4 राज्यों के योजनेतर व्यय में भी तेजी से वृद्धि हुई है। ब्याज के भुगतान, पुलिस, करों तथा शुल्कों की वसूली, पेंशन तथा अन्य सेवा निवृत्ति लाभ, सचिवालय सामान्य सेवाएं और जिला प्रशासन, स्थानीय निकायों और पंचायती राज संस्थानों को प्रतिकर तथा समनुदेशन तथा सरकारी भवनों का रखरखाव (लोक निर्माण कार्य) ही एसी मुख्य मदें हैं जिनके कारण विकासेतर राजस्व व्ययमें तेजी से वृद्धि हुई है और अधिकांश ऐसा व्यय इन्हीं मदों पर होता है। पूंजीगत लेखे में विकासेतर व्यय की मुख्य मदें इस प्रकार हैं—सरकारी कर्मचारियों को दिये गए ऋण तथा अग्रिमों (मुख्यतः केंद्रीय सरकार से लिए गए ऋण) की चुकौती। ब्यौरे सारणी 8.1 में दिये गये हैं।

सारणी 7.5

राज्य के पूंजीगत व्यय वित्तपोषण

	1983–84 (लेखे)		1984–85 (संशोधित अनुमान)		1985–86 (बजट अनुमान)	
	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
क. पूंजीगत व्यय	7354.14	100.0	8334.19	100.0	8295.21	100.0
1. विकास	7030.68	95.6	7995.97	95.9	7907.56	95.3
2. विकासेतर	323.46	4.4	338.22	4.1	387.65	4.7
ख. पूंजीगत व्यय का वित्तपोषण . .	7354.14	100.0	8334.19	100.0	8295.21	100.0
1. राज्यों की अपनी पूंजीगत प्राप्तियां निवल .	2109.94	28.7	1552.29	18.6	1782.83	21.5
2. समेकित निधि*	1547.06	21.0	1635.89	19.6	2048.01	24.7
(i) आंतरिक कर्ज, निवल . .	864.11	11.7	832.03	10.0	1020.71	12.3
(क) बाजार-ऋण, निवल . .	563.06	7.6	727.29	8.7	831.87	10.0
(ख) अन्य मदें, निवल . . .	301.05	4.1	104.74	1.3	188.84	10.1
(ii) ऋणों और अग्रिमों की वसूली . .	784.98	10.7	1064.87	12.8	834.55	10.1
(iii) अन्य मदें . . .	(–) 102.03	(–) 1.4	(–) 261.01	(–) 3.1	192.75	2.3
2. आकस्मिक निधि निवल . . .	62.57	0.9	240.86	2.9	(–) 183.42	(–) 2.2
3. लोक लेखे, निवल	1941.80	26.4	1559.19	18.7	1776.52	21.4
(i) भविष्य निधि, निवल . . .	797.32	10.8	905.57	10.9	888.71	10.7
(ii) आरक्षित निधि, निवल . .	231.80	3.2	317.42	3.8	373.19	4.5
(iii) जमा व अग्रिम, निवल . .	764.42	10.4	217.28	2.6	297.76	3.6
(iv) उचंत, विविध तथा धनप्रेषण, निवल** .	148.26	2.0	118.92	1.4	216.87	2.6
4. घटाएं—केंद्र को ऋणों की चुकौती@ . .	(–) 441.49	(–) 19.6	(–) 1883.65	(–) 22.6	(–) 1858.28	(–) 22.4
2. केंद्र से नये ऋण@	4472.78	60.8	5733.62	68.8	5838.12	70.4

	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1. योजनेतर	1738.91	23.6	2425.70	29.1	2374.29	28.6
(i) लघु बचत ऋण . . .	1378.86	18.7	1782.67	21.4	2037.39	24.5
(ii) अन्य . . .	360.05	4.9	643.03	7.7	336.90	4.1
2. राज्य योजना स्कीमें . . .	2632.78	35.8	3114.28	37.4	3206.77	38.7
3. केंद्रीय और केंद्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमें .	101.09	1.4	193.64	2.3	257.06	3.1
4. घाटा	771.42	10.5	1048.28	12.6	647.26	8.1

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन, नवम्बर, 1985.

*शामिल नहीं : (i) केंद्र से नये ऋण तथा अग्रिम आदि, तथा
(ii) केंद्र की ऋणों तथा अग्रिमों की चुकौती ।

**आकस्मिक निधि' में निवल विनियोजित शामिल है ।

@केंद्र से लिए गये अर्थोपाय अग्रिमों की प्राप्तियां/चुकौतियां जिन्हें उसी वर्ष वापस करना होता है, शामिल नहीं है ।

सारणी 8.1

राज्य का विकासेतर व्यय

	1983-84 (लेखे)		1984-85 (संशोधित अनुमान)		1985-86 (बजट अनुमान)	
	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत	करोड़ रु०	प्रतिशत
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
क. राजस्व लेखे में--	6862.05	77.3	8518.18	75.0	10130.28	78.1
1. ब्याज के भुगतान-- . . .	1963.54	22.1	2677.01	23.6	3186.09	24.7
(i) केन्द्र से प्राप्त ऋणोंपर . .	1195.94	13.5	1594.66	14.1	1931.4	15.0
(ii) अन्य ऋणों पर . . .	767.60	8.6	1082.35	9.5	1254.28	9.7
2. पुलिस	1396.96	15.7	1569.14	13.8	1684.71	13.0
3. पेंशन और सेवा-निवृत्ति लाभ .	630.00	7.1	775.00	6.8	950.00	7.3
4. करों और शुल्कों की वसूली .	649.96	7.3	744.84	6.6	811.35	6.3
5. सचिवालय सामान्य सेवाएं और जिला प्रशासन .	379.47	4.3	421.11	3.7	614.25	4.7
6. स्थानीय निकायों और पंचायती राज संस्थानों को प्रतिकर और समनुदेशन .	303.77	3.4	304.59	2.7	343.81	2.7
7. लोक निर्माण-कार्य*	208.09	2.4	248.27	2.2	294.87	2.3
8. सभी अन्य मदें	1330.26	15.0	1778.14	15.6	2245.20	17.4
ख. पूंजीगत लेखे में (ऋण की सकल चुकौतियां) .	2009.50	22.7	2832.56	25.0	2783.65	21.6
1. ऋणों की चुकौतियां . . .	1686.04	19.0	2494.34	22.0	2396.00	18.6
(1) केंद्र से ऋण@ . . .	1441.49	16.2	1883.65	16.0	1858.28	14.4
(2) बाजार ऋण	177.01	2.0	523.74	4.6	446.17	3.5
(3) अन्य ऋण	67.54	0.8	86.95	0.8	91.55	0.7
2. राज्य सरकारों द्वारा ऋण और अग्रिम .	186.82	2.1	206.06	1.8	208.54	1.6
(1) सरकारी कर्मचारियों को . .	160.10	1.8	175.51	1.5	176.14	1.4
(2) अन्य को	26.72	0.3	30.55	0.3	32.40	0.2
(3) विकासेतर पूंजीगत . . .	136.64	1.6	132.16	1.2	179.11	1.4
ग. कुल विकासेतर व्यय	8876.55	100.0	11350.66	100.0	12913.93	100.0

स्रोत : "1985-86 के दौरान राज्य सरकारों के वित्त साधन" ।

*मुख्यत: सरकारी भवनों का रख-रखाव ।

@केंद्र से प्राप्त अर्थोपाय अग्रिमों की चुकौतियों को छोड़कर ।

8.5 ब्याज के भुगतान तथा ऋणों की चुकौतियां इस समय राज्य के विकासेतर व्यय की सबसे बड़ी मदें हैं। वर्ष 1983–84, 1984–85 (संशोधित अनुमान) तथा 1985–86 (बजट अनुमान) के दौरान एसे व्यय में इनकी प्रतिशतता क्रमश: 41.1% (45.6% तथा 43.1%) थी। यह मद राज्यों की, विशेषकर, केन्द्र के प्रति, ऋणग्रस्तता प्रदर्शित करती है। 1985-86 को समाप्त 15 वर्षों के दौरान इस ऋण की तीव्र वृद्धि का आभास सारणी 8.2 से हो जाता है।

सारणी 8.2

राज्यों की ऋणसंबंधी स्थिति

(रुपये करोड़ों में)

	31 मार्च को बकाया				
	1971	1981	1984 (ब०अ०)	1985 (सं०अ०)	1986 (ब०अ०)
1. केन्द्र सरकार से ऋण और अग्रिम	6,365	17,071	28,691*	30,831*	35,347 *
2. आंतरिक ऋण	1,847	4,443	6,318	7,197	8,089
(1) बाजार ऋण	1,143	2,983	4,278	5,005	5,837
(2) बैंकों और अन्य संस्थानों से ऋण	239	919	1,212	1,366	1,509
(3) भारतीय रिजर्व बैंक से अर्थोपाय अग्रिम	375	482	592	639	510
(4) प्रतिकर तथा अन्य बंधपत्र	90	59	55	54	55
(5) आंतरिक ऋण जिसके ब्यौरे उपलब्ध नहीं	..	..	181	133	178
3. भविष्य निधि आदि	537	2,463	4,453	5,358	6,247
(1) राज्य भविष्य निधि	471	2,815	3,805	4,575	5,282
(2) अन्य	66	278	648	783	965
कुल ऋण	8,749	23,977	37,752	43,386	49,683

स्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक, मुद्रा और वित्त पर रिपोर्ट, 1984-85—खण्ड-II विवरण 92, पृ० 124.

*भारतीय रिजर्व बैंक में अपने ओवरड्राफ्ट चुकता करने में समर्थ बनाने के लिए राज्यों को केन्द्र के मध्यावधि ऋण शामिल हैं।

8.6 15 वर्ष की अवधि में राज्यों का ऋण कुल 49683 करोड़ रुपये तक बढ़ कर 5.7 गुना हो गया है। 1985–86 के अंत तक, केन्द्र से राज्यों को दिए गए ऋण अग्रिमों उनके कुल कर्ज के 71% से अधिक थे। राज्यों की तेजी से बढ़ी ऋणग्रस्तता का एक बड़ा कारण यह है कि राज्यों के लिए केन्द्रीय सहायता में से 70% सहायता ऋणों के रूप में दी जा रही है। इन ऋणों का बहुत बड़ा भाग सामाजिक और आर्थिक आधारभूत सुविधाओं अर्थात् विद्यालयों, अस्पतालों सड़कों, सामाजिक आवासों, सरकारी प्रशासनिक और रिहायशी भवनों, सिंचाई, मृदा संरक्षण, क्षेत्र विकास, नदी बहुमुखी परियोजनाओं आदि में लगाया गया है। इससे, प्रत्यक्षत: कभी कोई अधिशेष राशि प्राप्त नहीं होती जोकि इन ऋणों पर चुकौती संबंधी देयताएं पूरी करने के लिए आवश्यक होती है और इसीलिए केन्द्र के प्रति राज्योंकी ऋणग्रस्तता बढ़ती जाती है। मुद्रा स्फीति को रोकने और नियंत्रित करने की दृष्टि से, केन्द्र द्वारा जानबूझ कर अपनायी गयी कठोर मुद्रा नीति के परिणामस्वरूप भारत में ब्याज की दर में उल्लेखनीय वृद्धि के कारण राज्यों को ब्याज संबंधी देयताएं उनकी ऋणग्रस्तता की वृद्धि की तुलना से भी ज्यादा बढ़ी हैं। भारत सरकार इसी नीति पर जोर देती आ रही है और ब्याज की उच्च दरें बरकरार रखी गयी हैं हालांकि पिछले एक या दो वर्षों के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीगत बाजार में ब्याज की दरों में काफी कमी आयी है।

8.7 लोक व्यवस्था राज्य का विषय है। राज्यों को यह दायित्व निभाने के लिए पुलिस पर बहुत ज्यादा खर्च करना पड़ता है। पेंशन भोगियों की बढ़ती हुई संख्या और उच्चतर तथा अधिक उदार पेंशन और लाभ देने के परिणामस्वरूप पेंशनों और सेवानिवृत्ति संबंधी लाभों पर व्यय बढ़ा है। बढ़ते हुए कर राजस्व के साथ ही, कर वसूली की कुल लागत भी बढ़ गई है। कर्मचारियों की बढ़ती हुई संख्या उनके अधिक वेतन और भत्तों तथा प्रासंगिक खर्चों पर अधिक लागत के कारण राज्य प्रशासन का राजकोष पर बोझ बढ़ गया है। स्थानीय निकाय और पंचायती राज संस्थान राज्य की जिम्मेदारी हैं। इस जिम्मेदारी को उचित रूप से निभाने के लिए इन आधारभूत लोकतांत्रिक संस्थानों को अधिक वित्तीय सहायता देने की आवश्यकता है परन्तु संसाधनों की कमी के कारण राज्य अपेक्षित पैमाने पर सहायता प्रदान नहीं कर पाते। इन्हें अधिक धन राशि देने के बावजूद ये संस्थान अपर्याप्त वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण देश के अधिकांश भागों में कमजोर होते जा रहे हैं। इन संस्थानों में जान डालने के लिए वित्तीय सहायता देना बहुत जरूरी है। लोक निर्माण कार्यों मुख्यत: सरकारी भवनों के रखरखाव पर राज्य के राजस्व पर लागत बढ़ती जा रही है क्योंकि अधिक क्षेत्र की देखभाल करनी पड़ती है और रखरखाव की यूनिट लागत अधिक हो गयी है।

8.8 ऋण की चुकौतियों के अतिरिक्त राज्यों की विकासेतर पूंजीगत व्यय की एक बड़ी मद वाहनों की खरीद तथा अन्य प्रयोजनों के लिए सरकारी कर्मचारियों को दिए जाने वाले ऋण हैं। परन्तु इस मद में वृद्धि-दर बहुत कम है। विकासेतर पूंजीगत परिव्यय की कुछ और मदें भी हैं जो इस खर्च को बढ़ाती हैं।

(2) राज्यों की अपर्याप्त बजट प्राप्तियों के कारण

8.9 राज्यों का राजस्व और पूंजीगत लेखे पर बढ़ता हुआ व्यय उनकी बजटेतर प्राप्तियों में तदनुरूप विस्तार करके संतुलित नहीं किया गया, जिसके कारण उन्हें वित्तीय सहायता के लिए केन्द्र की तरफ देखना पड़ता है। राज्यों की अपर्याप्त बजट प्राप्तियों के कारण, इस प्रकार हो सकते हैं :—(i) संकीर्ण कर आधार (ii) अतिरिक्त करादान पर प्रतिबंध (iii) निवेश और उद्यम पर कम प्रतिफल तथा (iv) केन्द्र सरकार को अधिक पूंजीगत प्राप्तियों के लिए निरन्तर अभियान। इन आकस्मिक कारकों का विश्लेषण करने का प्रयास नीचे किया गया है।

1. संकीर्ण कर आधार

8.10 केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों के विषय पर प्रचलित लोकमत के अनुसार राज्यों की वित्तीय कठिनाइयां मुख्यत: उनके अपने करों में तथाकथित लचीलापन न होने के कारण हैं। यह विश्वास है कि राज्य सूची के कर भी स्वाभाविक तौर पर उतनी ही तेजी से बढ़ने में सक्षम है जितना कि संघसूची में दिए गए मुख्य कर। इसके परिणामस्वरूप राज्यों के अपने कर राजस्व, केन्द्र के कर राजस्वों जैसी तेजी से नहीं बढ़ते और उन्हें केन्द्रीय करों और अनुदानों में हिस्से के रूप में केन्द्र से अंतरणों द्वारा पूरा करना पड़ता है।

8.11 वास्तव में यह सही है कि संविधान लागू होने के बाद पहले 15 वर्षों में राज्य के करों से राजस्व सामान्यत: (करों में राज्यों के हिस्से से पहले) केन्द्र के कर-राजस्व की तुलना में कुछ कम दर पर बढ़ा था, जिससे केन्द्र का कुल कर राजस्व में हिस्सा धीरे-धीरे बढ़ता गया। किन्तु 1965 के बाद से पहले वाली प्रवृत्ति उलट गई है। 1985-86 (बजट अनुमान) तक केन्द्र का प्रतिशत हिस्सा धीरे-धीरे 1950-51 के स्तर तक नीचे आ गया था। यह सारणी 8.3 में दिखाया गया है।

8.12 सारणी 8.3 में, राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के संयुक्त आंकड़े दिए गए हैं क्योंकि राज्यों के लिए अलग आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इससे स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि कुल कर-राजस्व में विधानमण्डल वाले संघ राज्य क्षेत्रों का हिस्सा बहुत ही कम है। सारणी 8.3 से पता चलता है कि 1965 के बाद से राज्यों के कर से राजस्व आमतौर पर, अपेक्षाकृत अधिक गति से बढ़ा है जिससे कुल कर राजस्व में इसका योगदान फिर से लगभग 1950-51 के स्तर तक बढ़ गया है। ऐसा इस तथ्य के बावजूद हुआ है कि चीनी, कपड़ों और तम्बाकू पर, पहले राज्यों द्वारा लगाए जाने वाले बिक्री कर के स्थान पर केन्द्र द्वारा अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाया जाता है।

सारणी 8.3

केन्द्र, राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों का कर राजस्व

अवधि (वित्त वर्ष)	करोड़ रु०			कुल राशि से प्रतिशतता		
	केंद्र	राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र	कुल	केंद्र	राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र	कुल
1950	405	222	627	64.6	35.4	100.0
पहली पंचवर्षीय योजना (1951-55) . .	2317	1260	3577	64.8	35.2	100.0
दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-60) . .	3652	1938	5590	65.3	34.7	100.0
तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-65) .	7855	3399	11254	69.8	30.2	100.0
वार्षिक योजनाएं (1966-68) . .	7110	3306	10476	68.4	31.6	100.0
चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-73) .	19476	8876	28352	68.7	31.3	100.0
पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1980-84)* .	91145	47603	138748	65.7	34.3	100.0
1985 (बजट अनुमान)	25922	14249	40241	64.4	35.4	100.0

स्रोत : भारत सरकार, वित्त मंत्रालय के भारतीय आर्थिक सांख्यिकी-लोक वित्त, दिसम्बर, 1985, वितरण 4.1 पृ० 39-42.

* 1984-85 के संशोधित अनुमानों सहित।

8.13 अर्थव्यवस्था के विकास की एक निश्चित दर पर, कर-राजस्व में वृद्धि की दर इन बातों पर निर्भर करती है (i) करों की मूल्य और आय, सापेक्षता अर्थात मूल्य स्तरों और राष्ट्रीय आय में वृद्धि (वास्तविक शब्दों में सकल देशी उत्पादन) को देखते हुए अपरिवर्तित कर दरों से कर की प्राप्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है; (ii) किए गए अतिरिक्त कर-प्रयास (iii) करों के प्रवर्तन में सुधार तथा (iv) कर संरचना, विशेषकर कुल कर-राजस्व में अधिक मूल्यों और आय की दृष्टि से लचीले करों का सापेक्षित योगदान। अधिक कर राजस्व प्राप्त करने के लिए केन्द्र प्रथम दृष्टयता उपरोक्त सभी पहलुओं से राज्यों की तुलना में स्वाभाविक तौर पर बेहतर स्थिति में है।

8.14 संघ सूची में तीन मुख्य कर हैं : वैयक्तिक और निगमित आय पर आय-कर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क आपस में कुल मिलाकर ये केन्द्र के सकल कर-राजस्व में 97% से अधिक बैठते हैं। आय कर, धन राशि के आय से संबंधित होने के कारण अत्यन्त लाभदायक होता है और इससे आय में लचीलापन भी रहता है। अपरिवर्तित आय-कर के साथ भी धन की आय से राजस्व में वृद्धि अवश्य हो जाएगी चाहे यह कीमतों में वृद्धि के कारण हो या आय में वास्तविक वृद्धि के कारण। वास्तव में, जिस सीमा तक वैयक्तिक या निगमित व्यापार से आय, मूल्यों में वृद्धि की तुलना में अनुपातत. अधिक बढ़ती है, वहां आय तथा निगमित करों से राजस्व भी, मूल्यों तथा वास्तविक आय में वृद्धि के अनुपात से अधिक बढ़ना चाहिए चाहे मूल्यों में वृद्धि मजदूरी पिछड़ जाने के कारण हुई हो या धनराशि की आय में वृद्धि के कारण वैयक्तिक आय कर दाता उच्चतर कर-स्लैबों में चले गये हों। केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क औद्योगिक उत्पादन की मात्रा, मूल्य तथा संरचना से जुड़ा हुआ है। आर्थिक प्रगति तथा औद्योगिक विकास निश्चित रूप से उत्पाद-शुल्क के लिए कर-आधार को व्यापक बना देते हैं।

8.15 19वीं शताब्दी के आठवें दशक के शुरू से ही सीमा शुल्क, राजस्व के अत्यंत लचीले स्रोत बन गए हैं। सीमाशुल्क राजस्व के थोड़े से भाग को छोड़कर, सारा राजस्व आयात शुल्क से प्राप्त किया जाता है। उदार आयात नीति और आयात के गठन में संरचनात्मक परिवर्तन के कारण (विशेषकर अनाज के स्थान पर औद्योगिक कच्चे माल और उत्पादों को रखने से) आयात की मात्रा और मूल्य से काफी आय होने लगी है। 1975-76 से 1982-83 तक नवीनतम वर्ष जिसके लिए आयात की परमात्रा अनुक्रमणी इस समय उपलब्ध हैं) वास्तविक रूप से सकल घरेलू उत्पाद (जी०डी०पी०) में केवल 28% की वृद्धि की तुलना में आयात की मात्रा (मूल्य से अलग होकर) में 02% की वृद्धि हुई अर्थात जी०डी०पी० में वृद्धि के 3.64 गुना। इसी अवधि के दौरान आयात के यूनिट-मूल्य सूचकांक में 37% की वृद्धि हुई। आयात की मात्रा और यूनिट मूल्यों में इस प्रकार की वृद्धि ने, 1982-83 में आयात के मूल्य को 1975-76 के स्तर से 2.1 गुना बढ़ा दिया। यही वह मूल्य कारक था जिसने आयात में संरचनात्मक परिवर्तनों और 1981-82 तथा 1982-83 में लगाए गए आयात शुल्क के संबंध में काफी ज्यादा अतिरिक्त कराधान के कारणों के साथ मिल कर सीमा शुल्क को 1971-76 के स्तर (1419.4 करोड़ रुपये) की तुलना में 1982-83 में (5,119.40 करोड़ रु०) 3.7 गुना बढ़ा दिया। सीमाशुल्क राजस्व में वृद्धि की उच्च दर तब से लगातार बनाए रखी गयी है। 1986-87 के

बजट अनुमानों में सीमा शुल्क राजस्व 10,406.81 करोड़ रुपये दिखाया गया है अर्थात् 1982–83 के स्तर से दुगुना/राजस्व में वृद्धि का मुख्य कारण उच्च जी०डी०पी० –आयात में लचीलापन प्रतीत होता है। (अन्य बातों के साथ-साथ इस अवधि के दौरान रुपये के विदेशी मूल्य में कमी होने के कारण) यूनिट मूल्यों में वृद्धि और हर वर्ष लगाए गए काफी अधिक अतिरिक्त करों ने भी इस वृद्धि में खासा योगदान दिया है। 1975–76 से लेकर केन्द्रीय करों में सीमाशुल्कों की वृद्धि-दर, सबसे अधिक रही है। इस प्रवृति के तब तक चलते रहने की संभावना है जब तक वर्तमान अत्याधिक आयात प्रधान विकास नीति जारी रखी जाएगी।

8.16 मुख्य केन्द्रीय करों की अंतर्निहित मूल्य एवं आय मूल्य सापेक्षता, केन्द्रीय कर-राजस्व में उच्च विकास क्षमता ला सकती है। दूसरी ओर राज्यों के कर राजस्वों के पास कम प्रतिफल देने वाला और धीरे-धीरे विकसित होने वाला क्षत्र हैं अर्थात राज्य सूची के प्रत्यक्ष कर/भू-राजस्व जो कि राज्य में मुख्य कर है, मूल्य तथा आय-कर अनम्य कर का एक, विशिष्ट उदाहरण है। कृषि आय कर केवल तीन राज्यों द्वारा (असम, पश्चिम बंगाल और कर्नाटक) द्वारा लगाया जाता है जिनके बहुत बड़ क्षेत्र में बागान लगाए जाते हैं। इसमें भारी सन्देह है कि यदि अन्य राज्य, विशषकर जिन राज्यों के बड़े क्षेत्र पर बागवानी नहीं की जाती, भी इसे शुल्क कर दें तो इससे बहुत ज्यादा अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा। दस राज्य (आंध्र प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, केरल, उड़ीसा पंजाब, राजस्थान, सिक्किम और तमिलनाडू) व्यवसाय कर नहीं लगाते। बहुत घनी आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश तथा बिहार ने 1984–85 से ये कर लगाया है किंतु ये आशा करते हैं कि इससे क्रमश: पांच लाख तथा पच्चीस लाख रुपये से अधिक राजस्व प्राप्त नहीं होगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 276 (2) यह सीमा लगाता है कि किसी एक व्यक्तिके संबंध में किसी राज्य को या राज्य में किसी एक स्थानीय प्राधिकरण को एक व्यक्ति के संबंध में देय कर की राशि 2.50 रुपये प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होगी। शहरी अचल संपत्ति कर से केवल थोड़ा सा और लगभग अपरिवर्तनीय राजस्व प्राप्त होता है (1985–86 (बजट अनुमान) के अनुसार सभी राज्यों के लिए केवल 9 करोड़ रुपये)। 12 राज्य (बिहार, हरियाणा, हिमाचल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, उड़ीसा, पंजाब, सिक्किम और त्रिपुरा) यह कर नहीं लगाते। अन्य 10 राज्यों में से प्रत्येक को मामूली सी राशि प्राप्त होती। उत्तर प्रदेश केवल एक लाख रुपये वसूल करता है।

8.17 उपरोक्त अन्य कारकों के संबंध में भी केन्द्र की तुलना में राज्य भी अलाभप्रद स्थिति में हैं और ये सभी कारक कर-राजस्वों में वृद्धि पर प्रभाव डालते हैं। सबसे पहले केन्द्र की तुलना में राज्य सरकारों के लिए अतिरिक्त कर लगाना मुश्लिक होता हैं। राज्य सरकारें और विधानमंडल अपनी जनता के काफी निकट होते हैं और उन्हें उनके दबाव और विरोध का अधिक सामना करना पड़ता है। उनके पास रेडियो और दूरदर्शन जैसे शक्तिशाली साधन नहीं होते जिनके जरिए ये अपने सही या गलत दृष्टिकोण किसी भी समय लोगों के समक्ष रख सकें या अपनी छवि को लगातार बनाए रखें। प्रेस भी और, विशेषकर बड़े राष्ट्रीय समाचार पत्र भी उन्हें इतना सहयोग नहीं देते और न ही उन्हें समझने और समर्थन देने का इतना प्रयास करते हैं जितना कि वे केन्द्रीय सरकार के लिए करते हैं। ऐसे अपवादात्मक समय बहुत कम आए हैं जब केन्द्रीय सरकार ने अपनी कुछ गलत नीतियों और उपायों के कारण उस वर्ग को जबरदस्त नाराज किया हो जिनके अपने प्रेस है और जो राजनैतिक दलों को धन देते हैं। केन्द्र ने ऐसी स्थिति में ही कभी न प्रेस और सार्वजनिक आलोचना का सामना किया होगा जिसका राज्य सरकारों को हर रोज सामना करना पड़ता है, केवल अन्य दलों का ही नहीं बल्कि किसी हद तक केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का भी यदि इसमें ऐसे व्यक्ति सत्तारूढ़ हैं जो उस दल के शीर्षस्थ नेताओं की नजरों से उतर गये हों। लगभग पिछले बीस वर्षों से इस दल के शीर्षस्थ नेताओं की यह निर्धारित नीति रही है कि राज्य में उसके किसी भी नेता के व्यक्तित्व को इतना उभरने न दिया जाए या अपने मंत्रिमंडल तथा दल के सहयोगियों से इतना स्वतन्त्र न होने दिया जाए कि वह एक जोरदार प्रतिपक्षी नेता बन कर उभरे। इससे उस दल के राज्य मुख्य मंत्रियों की क्षमता, कार्य करने की स्वतंत्रता और स्थायित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जहां तक अन्य दलों की राज्य सरकारों का संबंध है, वे आमतौर पर केन्द्र द्वारा प्रायोजित या अनुमोदित प्रचार अभियानों, जन आन्दोलनों और "उन्मुक्ति" संघर्षों की निरन्तर धमकी के अधीन कार्य करती हैं जोकि प्राय: ऐसी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं जब वे बहुत अतिरिक्ति बड़ा कर लगाने जैसा कोई अलोकप्रिय कार्य करके दल की राज्य-इकाई को प्रतिशोध की दृष्टि से शत्रुतापूर्ण कार्य करने का अवसर प्रदान करते हैं और तब उन्हें राजभवन से चेतावनी मिलती है। मुख्य केन्द्रीय कर आय प्रदान करने वाले होते हैं और इनका सीधा प्रभाव सीमित लोगों पर पड़ता हैं जिसकी वजह से सरकार थोड़ा सा प्रबंध-योग्य प्रयास करके बहुत बड़े अतिरिक्त कर-राजस्व प्राप्त कर सकती है। इसके विपरीत राज्यों के कर आमतौर पर कम आय प्रदान करने वाले होते हैं और इनका सीधा प्रभाव बहुत सारे लोगों पर पड़ता है। थोड़ी सी अतिरिक्त राशि जुटाने के लिए भी राज्य सरकार को अनेक कर बढ़ाने पड़ते हैं और बहुत बड़ी संख्या में मतदाताओं को नाराज करना पड़ता है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सीमा शुल्क तो अतत: मूल्य का अभिन्न अंग बन जाते हैं किन्तु राज्यों के मुख्य अप्रत्यक्ष करों में अर्थात बिक्री कर, वाहनों, यात्रियों और माल पर कर विद्युत शुल्क और स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन शुल्क में उपभोक्ताओं को कर की राशि का अच्छी तरह ज्ञान होता है और इसका बोझ वे पूरी तरह महसूस करते हैं। इन्हीं कारणों से राज्य सरकारों के लिए अतिरिक्त कराधान की व्यवस्था करना केन्द्रीय सरकार की तुलना में कहीं ज्यादा संकट पूर्ण है।

8.18 दूसरे, कर की चोरी की गुंजाइश राज्य के करों के संबंध में अपेक्षाकृत कुछ अधिक प्रतीत होती है। निगम कर के अंतर्गत प्रबंध-योग्य संख्या में करदाता आते हैं किन्तु निगम कर की वसूली के बराबर या उसके थोड़े से भाग के बराबर राजस्व प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत बहुत बड़ी संख्या में करदाताओं को शामिल करना होगा। इसके अतिरिक्त, बाद वाले मामले में कर-योग्य आय का हिसाब लगाने में संकल्पनात्मक और सांख्यकीय समस्याएं अधिक जटिल हैं। कम से कम व्यवसाय कर को लागू करना आयकर के समान ही मुश्किल है, विशेषकर, गैर-वेतन भोगी कर्मचारियों के संबंध में। बिक्री कर दाताओं की संख्या बहुत अधिक है और वे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अंतर्गत आने वाले लोगों की अपेक्षा दूर-दूर तक बिखरे हुए हैं। इसके अतिरिक्त, बिक्रीकर कर की चोरी के लिए विक्रेता और क्रेता के बीच साठ-गांठ करने के लिए जबरदस्त प्रोत्साहन प्रदान करता है। क्रेता और विक्रेता के बीच साठ-गांठ करने के कारण स्टाम्प और रजिस्ट्रेशन शुल्क से, विशेषकर कर वास्तविक सपदा के संबंध में, आय काफी कम हो जाती हैं। बहुत ज्यादा अवैध आसवन या अन्य कुरीतियों के कारण सभी राज्यों में राज्य उत्पाद शुल्क से मिलने वाले राजस्व पर प्रतिकू प्रभाव पड़ता हैं। माल और यात्रियों पर, विशेपकर प्राइवेट प्रचालकों द्वारा, कर की काफी चोरी की जाती है। कुछ प्राइवेट प्रचालक वाहनों पर कर में काफी चोरी करते हैं। निसन्देह, तस्करी, कम बीजक बनाने, आयातित माल का गलत विवरण देते और इसी प्रकार के अन्य तरीकों से सीमा शुल्क में काफी चोरी की जाती है। किन्तु अधिकांश तस्करी में, उदाहरण के लिए सोने की तस्करी में लक्ष्य, आयात प्रतिबंध को पार करना होता है न कि आयात शुल्क से बचना। इसके अतिरिक्त कम बीजक देने से कर अपवचन की गुंजाइश तब बहुत सीमित रह जाएगी यदि सीमाशुल्क कर्मचारी सतर्क और ईमानदार हों।

8.19 उन सभी प्रतिकूल कारकों के बावजूद, जिनका राज्य सरकारों को कर लगाने और वसूल करने के लिए सामना करना पड़ता है, लगभग पिछले 10 वर्षों के दौरान, राज्य करों से कुल राजस्व में केन्द्रीय करों से सकल राजस्व में देखी गई वृद्धि की तुलना में अधिक वृद्धि हुई है। इसका एकमात्र युक्तियुक्त स्पष्टीकरण यह है कि (i) लोकप्रिय विश्वास के विपरीत, राज्य-करों की, कुल मिलाकर, उनके मूल्य और आय सापेक्षता के संबंध में केन्द्रीय करों के साथ उचित तुलना की जा सकती है। (ii) राज्य अपने-अपने करों की राजस्व क्षमता का उपयोग करने में केन्द्र से पीछे नहीं रहे हैं। संभवत: वे उस से आगे निकल गए हैं।

8.20 राज्यों के प्रत्यक्ष कर निश्चित रूप से मूल्यों और आय के संबंध में बिलकुल अनम्य हैं। मुख्य प्रत्यक्ष कर, भू-राजस्व बिल्कुल अनम्य है। व्यवसाय कर भी लगभग ऐसा ही है। कृषि आय अधिक मूल्य-सापेक्ष होनी चाहिए, परन्तु इसकी अन्य समस्याएं हैं जिनकी वजह से, तीन राज्यों को छोड़कर कर अन्य राज्यों ने यह कर नहीं लगाया है। राज्य के अप्रत्यक्ष कर इस पहलू से बहुत भिन्न है। बिक्री कर, जोकि सबसे अधिक महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष कर हैं, मूल्यानुसार होने के कारण उत्पादन की बड़ी बिक्रीयों से अधिक लाभ कमाता है, चाहे यह बिक्री की अधिक मात्रा के कारण हो या बेचे गये माल की अधिक कीमतों के कारण। शराब की अपेक्षाकृत अधिक बिक्री के कारण, राज्य उत्पाद-शुल्क से अधिक धन राशि की

आय का, राज्य के राजस्व पर निश्चित रूप से अच्छा प्रभाव पड़ता है। स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन फीस भी मूल्यानुसार कर हैं। मुद्रा स्फीती तथा वास्तविक वृद्धि के परिणामस्वरूप बढ़े, पूंजीगत मूल्य इस कर की राजस्व आय बढ़ा देते हैं। वाहनों की संख्या में तेजी से वृद्धि तथा उत्पादन और आय की वृद्धि के साथ-साथ अधिक यातायात के कारण, वाहन करों तथा यात्री और माल करों से राजस्व बढ़ जाता है। विद्युत शुल्क से, राजस्व में लाभ विद्युत की अधिक खपत से होता है जिसका संबंध आम तौर पर, उत्पादन और आय में वृद्धि से होता है।

8.21 राज्यों के अप्रत्यक्ष कर काफी मूल्य सापेक्ष होने का पता इस बात से चलता है कि 1975-76 से 1985–86 तक की अवधि में इन करों से राज्य के राजस्व की वृद्धि, केंद्र को हुई ऐसी वृद्धि की तुलना में आम तौर पर अधिक रही है। इसे सारणी 8.4 में दिखाया गया है।

8.22 सारणी 8.4 से पता चलता है कि 1975-76 से 1985-86 तक की अवधि में, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (220%) की तुलना में राज्य के राजस्व में उत्पाद शुल्क और बिक्री कर से वृद्धि काफी अधिक रही है (क्रमश: 377% तथा 319%) किसी भी केन्द्रीय कर की तुलना में, विद्युत शुल्क से, राजस्व में अधिक वृद्धि हुई है (508%)। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से राजस्व में हुई वृद्धि (220%) की तुलना में, स्टाम्पों तथा रजिस्ट्रीकरण, वाहनों पर करों तथा यात्रियों और माल पर करों से राजस्व में काफी ज्यादा वृद्धि हुई है (क्रमश: 265% 320% तथा 239%)।

सारणी 8.4

केन्द्रीय और राज्य करों से राजस्व

[राजस्व करोड़ रुपयों में]

	1975-76	1980-81	1984-85	*1985-86 (बजट अनुमान)	1975-76 की तुलना में वृद्धि-प्रतिशत
(क) बिक्री कर—	3,549.2	6,616.2	12,239.1	14,405.2	306
1. भू-राजस्व	229.7	145.5	306.2	353.3	54
2. बिक्री कर	1,943.7	3,887.6	7,064.6	8,142.4	319
3. राज्य उत्पाद-शुल्क	435.5	824.3	1,779.9	2,076.2	377
4. स्टाम्प तथा रजिस्ट्रीकरण	216.9	425.1	692.2	792.6	265
5. वाहनों पर कर	203.3	419.9	726.2	854.0	320
6. यात्री व माल कर	166.9	271.8	493.0	566.3	239
7. विद्युत शुल्क	111.4	228.3	484.9	577.2	508
8. अन्य कर और शुल्क	238.8	418.7	692.1	943.2	295
(ख) (राज्यों के हिस्से से पूर्व) केन्द्रीय कर	7,608.8	13,179.2	23,470.9	25,991.8	242
1. आय कर	1,214.4	1,506.4	1,928.3	1,764.0	45
2. निगम कर	861.7	1,310.8	2,555.9	3,052.0	254
3. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क	3,844.8	6,500.0	11,150.8	12,307.4	220
4. सीमा शुल्क	1,419.4	3,409.3	7,040.5	8,166.0	475
5. अन्य कर	268.5	453.1	795.4	702.4	162

स्रोत : राज्यों के लिए "1985-86 के दौरान राज्य के वित्त साधन" विवरण-20 पृ० 8221 केन्द्र के लिए मुद्रा और वित्त पर रिपोर्ट-1984–85 खण्ड II, विवरण 81 पृ० 116.

*केन्द्र के लेखे तथा राज्यों के लिए संशोधित अनुमान।

चूंकि अप्रत्यक्ष कर राज्य के कर-राजस्व में लगभग 96% के बराबर है, इसलिए राज्य के प्रत्यक्ष करों के मूल्य सापेक्ष न होने से राज्य के कुल कर-राजस्व में वृद्धि पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है जिसमें, संदर्भगत अवधि के दौरान केन्द्र की कुल कर-राजस्व (242%) की तुलना में काफ़ी अधिक वृद्धि हुई (306%)।

8.23. राज्य के कर-राजस्व में वृद्धि, केन्द्र के कर-राजस्व में वृद्धि के समान अंशत: इस अवधि के दौरान लगाए गए अतिरिक्त करों के कारण कही जा सकती है। अतिरिक्त करों पर, उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि यदि इस अवधि के दौरान मूल्यों और आय में वृद्धि न हुई होती तो राज्य के कुल कर-राजस्व में अपेक्षाकृत बहुत कम वृद्धि होती। इससे पता चलता है कि राज्यों की कर-राजस्व वृद्धि और केन्द्र के कर-राजस्व की वृद्धि भी राष्ट्रीय उत्पादन और आय (जी०डी०पी०) में 50% वृद्धि होने के कारण और इस अवधि के दौरान मूल्य स्तर (जैसा कि जी०डी०पी० में हुई वृद्धि से हिसाब लगाया गया है) में लगभग 110% की वृद्धि होने के कारण है, इससे पता चलता है कि राज्य का कुल कर-राजस्व, मूल्यों और आय के काफी सापेक्ष है। इस संबंध में यदि केन्द्र की अपेक्षा राज्यों को कोई नुकसान है तो वह बहुत मामूली है और उसका कोई खास महत्व नहीं। राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता के मुख्य कारण, अनिवार्यत: कहीं और तलाश किए जाने चाहिए।

8,24. यदि केंद्र और राज्यों के बीच अपने-अपने कुल कर राजस्व के मूल्य और आय-सापेक्षता के संबंध में अंतर बहुत मामूली है और वह भी तब जबकि केंद्र की इस संबंध में राज्यों से बेहतर स्थिति मानी जाती है, तो हाल के वर्षों में केंद्र के कर राजस्व में धीमी प्रगति से यही संकेत मिलता है कि केंद्र, कर में वृद्धि करने की अपनी क्षमता का उपयोग करने से हिचकिचा रहा है। वस्तुत: अब इस संबंध में काफी प्रमाण हैं कि केंद्र की वित्तीय नीति उत्तरोतर नये रूप में इस दिशा में बढ़ रही है "कर कम और उधार ज्यादा" समृद्ध वर्गों की आर्थिक शक्ति बढ़ती जा रही है। ये वर्ग और राजनीतिक वर्ग बेहतर यही समझते हैं कि सरकार उनकी फालतू आय पर कर लगाने की बजाय, उसे ऋण के रूप में प्राप्त करे, और वह भी ब्याज की उच्च दरों पर। नीति

का यह नया रूप, उनके उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभावी दबाव का परिणाम है। साफ दिखाई देता है कि सरकार कराधान के प्रति उदार हो गई है, किन्तु वह बड़े पैमाने पर देश के भीतर तथा विदेशों से ऋण प्राप्त करने का प्रयास कर रही है। इस नीति के अनुसरण में सरकार ने ब्याज की बहुत ऊंची दरों की नीति पर जोर दिया है। चाहे अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार में, ब्याज की दरें काफी कम हुई हैं। इस समय भारत में ब्याज की दरें, स्पष्टतया, विश्व बाजार की ब्याज दरों के अनुरूप नहीं हैं। इससे भारत की अर्थ व्यवस्था में कई विकृतियां आने लगी हैं। ऋणदाताओं के लिए कारण तेजी से स्वर्ग बनता जा रहा है, जो लोक मुख्यतः ब्याज की आय पर निर्भर करते हैं, उनकी संख्या एवं समृद्धि इतनी तेजी से बढ़ रही है जितनी पहले कभी नहीं बढ़ी थी। ऐसा लगता है कि केन्द्र सरकार इस नयी नीति पर जोर देती रहेगी चाहे इसके परिणाम-स्वरूप राजस्व लेखे में घाटा हुआ है तथा ब्याज की देयताओं में अत्यधिक वृद्धि हुई है। जब तक केंद्र इस नई नीति पर चलता रहेगा और राज्य इस नीति से प्रभावित नहीं होंगे, तब तक राज्यों के कर राजस्व केंद्र के कर-राजस्व की तुलना में उच्च दर पर बढ़ते रहने की सम्भावना बनी रहेगी।

8.25. इस बात की काफी सम्भावना है कि राज्य भी इसकी नकल करें। किसी राज्य सरकार के लिए विशेषकर जब यह कोई ऐसी सरकार हो जिसे केंद्र से हमेशा सहानुभूति और सहायता मिलने का विश्वास हो, यह काफी राजनीतिक तथा आर्थिक सूझबूझ की बात कही जा सकती है कि वह कराधान में उदार हो जाए (अर्थात् योजना आयोग के मापदण्डों से बचाव करते हुए कम से कम कर लगाए) और देश में निजी बचतों की राशि में से अधिकतम ऋण जुटाने के प्रयास करे। इस तरीके से यह लोगों पर तुरंत पड़ने वाला विकास का कम से कम बोझ डाल कर राज्य की अर्थ व्यवस्था के विकास की उच्च दर प्राप्त कर सकती है। जो भी हो, केंद्रीय सरकार की तरह यह किसी भी राज्य के बस की बात नहीं कि वह घरेलू बचत की दर में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि कर सके, चाहे वह कराधान का बहुत बड़ा प्रयास ही क्यों न करे। तब इस प्रकार का प्रयास करके इतना गंभीर राजनीतिक जोखिम उठाने की क्या जरूरत है? यदि राज्य इस प्रकार का तर्क देने लगें तो वह कराधान के प्रति उदार बनने में केंद्र से भी आगे निकल सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप, उनके कर राजस्व में भी वृद्धि काफी कम हो सकती है। यह रास्ता देश की भावी अर्थव्यवस्था के लिए विनाशकारी होगा। देश में उचित विकास परिप्रेक्ष्य के लिए, केंद्र तथा राज्यों, दोनों के द्वारा कराधान के लिए कम नहीं, बल्कि अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है और इसके साथ ही लोक व्यय में अधिक कार्यकुशलता लाना भी जरूरी है। नयी वित्तीय नीति पहले ही देश की अर्थव्यवस्था को काफी क्षति पहुंचा चुकी है। इस नीति की नकल करने की बजाय, राज्यों को, केंद्र द्वारा इस नीति को उलटने के लिए अवश्य दबाव डालना चाहिए।

8.26. राज्यों की केंद्र पर वित्तीय निर्भरता का मुख्य कारण, उनके राजस्व व्यय की तुलना में तथा केंद्र के कर-आधार की तुलना में भी बहुत संकीर्ण-कर-आधार होना है। इन तथ्यों पर सारणी 8.5 में चर्चा की गई है।

8.27. सारणी 8.5 के 3 (ii) से पता चलता है कि राज्यों का राजस्व व्यय (विधान मण्डल वाले संघ राज्य क्षेत्रों सहित), केंद्र के राजस्व-व्यय की तुलना में (विकास और विकासेतर प्रयोजनों के लिए राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों को दिये गये अनुदानों को छोड़कर) काफी अधिक रहा है। यह 1975-76, 1980-81, 1983-84, 1984-85 (सं० अ०) तथा 1985-86) (ब०अ०) में केंद्र के कर-राजस्व की तुलना में क्रमशः 114.2%, 132.6%, 126.1%, 120.5% तथा 120.0% था। दूसरी ओर, राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों, की राजस्व प्राप्तियां, केंद्रीय करों में राज्यों के हिस्से को छोड़कर, आम तौर पर केंद्र के कर राजस्व (केंद्रीय करों में राज्यों के हिस्से से पहले) के लगभग आधे से अधिक नहीं थी : 1975-76, 47.0%, 1980-81, 50.6%, 1983-84, 52.1%, 1984-85 (सं० अ०), 51.9% तथा 1985-86 (ब०अ०), 54.8%। स्पष्ट है कि बहुत ज्यादा राजस्व-व्यय का वित्त पोषण करने के बावजूद, राज्यों (तथा संघ राज्य क्षेत्रों) का कर-आधार बहुत संकीर्ण है। परिणाम यह हुआ है कि केंद्र को कर राजस्व सदैव अपने राजस्व व्यय से अधिक रहा है (राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों को दिये गये अनुदानों को छोड़ कर)। विभिन्न वर्षों के दौरान आधिक्य इस प्रकार था : 1980-81, 26%, 1983-84, 17%, 1984-85 (सं० अ०) 7.3% तथा 1985–86 (अ०अ०) 5%। आधिक्य में ह्रासमान प्रवृत्ति इसलिए दिखाई देती है क्योंकि केंद्र का सकल कर-राजस्व, अपने राजस्व-व्यय की तुलना में धीमी गति से बढ़ता रहा है। इसके विपरीत, जैसा कि 3 (iii) से पता चलता है, राज्य (तथा संघ राज्य क्षेत्र) के करों से राजस्व आम तौर पर उनके राजस्व व्यय के आधे से भी कम रहा है। इसके अतिरिक्त, इसमें भी ह्रासमान प्रवृत्ति दिखाई देती है : 1975-76, 56.2%, 1980-81, 48.1%, 1983–84, 48.4%, 1984–85 (सं०अ०) 46.2% तथा 1985–86 (ब०अ०) 47.7%।

सारणी 8.5

राज्यों @तथा केंद्र का परस्पर कर-आधार

	यूनिट	1975–76	1980–81	1983–84	1984–55 (सं०अ०)	1985–86 (ब०अ०)
1. कर-राजस्व :						
1. राज्य-कर . . .	करोड़ रुपए	3,572.94	6,664.17	10,803.42	12,292.90	14,249.08
2. केंद्रीय कर@@ . .	,,	7,608.89	13,179.18	20,722.03	23,701.59	25,991.75
2. राजस्व लेखे में व्यय :						
1. राज्य*	,,	6,354.86	13,864.34	22,335.50	26,622.31	29,839.22
2. केंद्र **	,,	5,563.18	10,461.85	17,710.39	22,088.89	24,870.70
3. अनुपात :						
(i) 1.1 का 1.2 से . .	%	47.0	50.6	52.1	51.9	54.8
(ii) 2.1 का 2.2 से . .	%	114.2	132.6	126.1	120.5	120.0
(iii) 1.1 का 2.1 से . .	%	56.2	48.1	48.4	46.2	47.7
(iv) 1.2 का 2.2 से . .	%	136.8	126.0	117.0	107.3	104.5

स्रोत: भारतीय आर्थिक सांख्यिकी—लोक वित्त-विवरण 2.1, 2.2, 3.1, 3.2 तथा 8.8 देखें।

@राज्यों में विधान मंडल वाले संघ राज्य क्षेत्र शामिल हैं। एकमात्र राज्यों से संबंधित आंकड़े उपलब्ध नहीं।

@@केंद्रीय करों में राज्यों के हिस्से से पहले।

*शामिल नहीं :—(i) निधियों में निवल अंतरण; (ii) ऋण में कमी या लक्षण न लेने के लिए विनियोजन; तथा (iii) सार्वजनिक उपक्रमों के कार्यचालन व्यय तथा ब्याज प्रभार (जो इन उपक्रमों से हुई आय से समायोजित किये गये हैं। परिव्यय (i) तथा (ii) वस्तुतः राज्यों की अपनी बचत है न कि व्यय।

**शामिल नहीं :— (i) विकास तथा विकासेतर प्रयोजनों के लिए राज्यों तथा तथा संघ राज्य क्षेत्रों को अनुदान, तथा
(ii) स्वतः संतुलनकारी मदें।

8.28. मूल निष्कर्ष इस प्रकार निकलते हैं :—

(i) केन्द्र का सकल कर-आधार उसके राजस्व व्यय के अधिक अनुरूप है (राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के अनुदानों को छोड़कर)। यदि केन्द्र को अपने करों में से राज्यों को कुछ न देना पड़े या राज्यों तथा विधानमण्डल वाले संघ राज्य क्षेत्रों को सहायता न देनी पड़े तो केवल केन्द्र का कर-राजस्व ही उसे अधिशेष राजस्व दिला देगा और उसका पूरा करेतर राजस्व, अधिशेष में जुड़ जाएगा।

(ii) केन्द्र, कराधान की ओर उदार रवैया अपनाता जा रहा है और यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय नहीं कर रहा है कि उसके सकल कर राजस्व में, कम से कम, उसके राजस्व-व्यय की मात्रा के अनुसार वृद्धि हो। इसके परिणामस्वरूप उसके कर-राजस्व का राजस्व-व्यय से आधिक्य उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है ।

(iii) राज्यों का अपने राजस्व व्यय की तुलना में, कराधार बहुत संकीर्ण है। दोनों के बीच का अंतर करेतर राजस्व बढ़ाने या अतिरिक्त कर लगाने के अधिकतम ऐसे प्रयत्नों से भी पूरा नहीं किया जा सकता जोकि आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से संभव हों। इस प्रकार केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों के संदर्भ में, वर्तमान व्यवस्था के अधीन, राज्यों की करों में हिस्से तथा अनुदानों के रूप में केन्द्र पर निर्भरता होना स्वाभाविक और अपरिहार्य है ।

8.29. राज्यों के संकीर्ण आधार का कारण मुख्यतया संविधान ही है और यह गत 35 वर्षों के दौरान वित्तीय घटनाओं का परिणाम नहीं जैसा कि सारणी 6.8 में बताया गया है। संविधान लागू होने के बाद, पहले वित्त वर्ष 1950-51 में ही, राज्यों और केन्द्र के बीच कर-राजस्व का वितरण 35.4 : 46.6 के अनुपात में था (केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से को छोड़कर)। तब से लेकर मामूली परिवर्तनों के साथ वही स्थिति बनी हुई है। इस बीच, राज्यों के लिए अपने राजस्व व्यय को उस स्तर तक बढ़ाना पड़ा है जहां यह केन्द्र के राजस्व व्यय से काफी अधिक बढ़ गया है (राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के अनुदानों को छोड़कर)। केन्द्र से राज्यों को वित्तीय अंतरणों की आवश्यकता का कारण, केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों में यही असंगताएं हैं। इसलिए मुख्य समस्या राज्यों का अत्यधिक संकीर्ण कराधार है न कि उनके कुल कर-राजस्व का मूल्य सापेक्ष न होना जैसा कि आमतौर पर बताया जाता है ।

(2) निवेश और उद्यम पर कम प्रतिलाभ

8.30. हाल के वर्षों में, राज्य के करेतर राजस्वों ने (केन्द्र से मिलने वाले अनुदानों को छोड़कर), राज्य के राजस्व-व्यय और उनके कर-राजस्व के बीच के अंतर के बहुत कम भाग का, लगभग 1/5, वित्तपोषण किया है। यह स्थिति सारणी 8.6 में दिखाई गई है ।

8.31, सारणी 8.6 की मद (3) से पता चलता है कि कई वर्षों से राज्यों का करेतर राजस्व, उनके राजस्व-व्यय के लगभग 10 प्रतिशत तक कम हो गया है। राज्यों के राजस्व-व्यय और उनके कर राजस्व के बीच के अंतर का वित्त पोषण करने में उसका योगदान 20 प्रतिशत से भी नीचे आ गया है। [सारणी 8.6 मद (4)]। शेष अंतर को केन्द्र से अनुदानों द्वारा वित्त पोषित करना होता है। राज्यों को, केन्द्र पर अपनी वित्तीय निर्भरता कम करने के लिए, अधिक करेतर राजस्व प्राप्त करने होंगे। सेवाओं से प्राप्तियों में कुछ सुधार करना संभव हो सकता है, किंतु संसाधन जुटाने के प्रयास, मुख्यत: राज्य के निवेश और उद्यम पर और अधिक प्रतिलाभ प्राप्त करने के लिए करने होंगे। इस समय ये प्रतिलाभ, मुख्यत: आमतौर पर राज्यों के विभागीय और विभागेतर उपक्रमों के घटिया वित्तीय कार्यनिष्पादन के कारण कम है।

सारणी 8.6

राज्यों के अपने कर-राजस्व से उनके राजस्व-व्यय के आधिक्य में राज्यों के अपने करेतर राजस्व का अनुपात

		यूनिट	1975–76	1980–81	1983–84	1984–85 (सं०अं०)	1985–86 (ब०अ०)
(1)	राज्यों के अपने कर-राजस्व से उनके राजस्व-व्यय का आधिक्य . .	करोड़ रु०	2,781.92	7,200.17	11,532.08	14,329.41	15,590.14
	1. राजस्व व्यय . . .	,,	6,354.86	13,864.34	22,335.50	26,622.31	29,839.22
	2. घटाएं : अपना कर-राजस्व .	,,	3,572.94	664.17	10,803.42	12,292.90	14,249.06
(2)	राज्यों का अपना करेतर राजस्व .	,,	966.25	1,576.88	2,422.07	2,858.09	3,094.90
	1. निवेश और उद्यम पर प्रतिलाभ .	,,	363.89	662.35	865.46	1,043.72	1,164.52
	(i) विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों से निवल प्राप्तियां*	,,	—30.07	—181.38	—331.70	—345.03	—324.51
	(ii) गैर विभागीय उपक्रमों से लाभांश और लाभ . . .	,,	16.21	18.43	25.10	38.22	37.49
	(iii) ब्याज प्राप्तियां . .	,,	377.75	825.30	1,172.06	1,350.53	1,451.54
	2. सेवाओं से प्राप्तियां . .	,,	602.36	914.53@	1,556.61	1,814.37	1,930.38
	(i) सामान्य सेवाएं . .	,,	165.29	258.99	456.57	600.76	616.48
	(ii) सामाजिक और सामुदायिक .	,,	183.21	269.99	387.50	373.96	417.40
	(iii) आर्थिक सेवाएं . .	,,	253.87	385.35	712.54	839.65	896.51
	3. (2) का (1.1) से अनुपात .	%	15.2	11.4	10.8	10.7	10.4
4.	(2) का (1) से अनुपात . .	,,	34.7	21.9	21.0	19.9	19.9

स्रोत : (1) के लिए—उपरोक्त सारणी 8.5
(2) के लिए—भारतीय आर्थिक सांख्यिकी —लोक वित्त, दिसम्बर, 1985—विवरण 3.1 देखें।

टिप्पणी : राज्यों में विधान मण्डल वाले संघ राज्य क्षेत्र शामिल हैं।

*निवल प्राप्तियां : सकल प्राप्तियां घटा कार्यचालन व्यय घटा ब्याज प्रभार।

@केंद्रीय ऋण बट्टे खाते डाले जाने के कारण 580.22 करोड़ रुपये शामिल नहीं।

(1) विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों से निवल प्राप्तियां

8.32. राज्यों को, विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों से, आय कई वर्षों से कम हो कर घाटे में आ रही है। विवरण, सारणी 8.7 में दिया गया है।

8.33. सारणी 8.7 दर्शाती है कि 1975-76 से 1985-86 के 10 वर्षों में, घाटा उठाने वाले उद्यमों के घाटे, 192.34 करोड़ रुपये से बढ़कर 857.93 करोड़ रु० अर्थात 4.46 गुणा हो गये। राज्य, राज्यों के राजस्व में इतनी बड़ी और लगातार बढ़ती हुई चोरी बर्दाश्त करने की स्थिति में नहीं है। वाणिज्यिक सिंचाई परियोजनाओं में सर्वाधिक घाटा हुआ है। दूसरी सबसे अधिक घाटा उठाने वाली, बहुमुखी नदी परियोजनाएं हैं। इनसे होने वाली आय इनके कार्यचालन व्यय को भी पूरा नहीं कर पाती।@क्रमिक वित्त आयोग, राज्य सरकारों को, इन परियोजनाओं का वित्तीय कार्य निष्पादन सुधारने के लिए प्रेरित करते रहे हैं और उन्होंने इसके लिए काफी उदार या मानदण्ड भी निर्धारित किये हैं, परन्तु किसी बात से भी सफलता नहीं मिली है। हुआ यह है, लम्बे अर्से से स्थिति और भी ज्यादा बिगड़ गई है। सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (1985—90) के दौरान, वर्ष 1984-85 की दरों पर, वाणिज्यिक सिंचाई और बहुमुखी परियोजनाओं से प्राप्त अनुमानित आय, इनके कार्यचालन व्यय पूरे करने से भी 966 करोड़ रुपये* कम पड़ती है। ब्याज प्रभारों को शामिल करके, इसी आधार पर घाटे का अनुमान 5095 करोड़ रु० लगाया गया है। 1985-86 के बजट में, इस स्थिति को सुधारने के लिए कुछ भी नहीं किया गया था।

@आठवें वित्त आयोग, 1984 की रिपोर्ट, पैरा 3.18, पृ० 13—15।

*सातवीं पंच वर्षीय योजना 1985—90, खण्ड I, पैरा 4.51, पृष्ठ 56।

सारणी 8.7

विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों से राज्यों की निवल प्राप्तियां

		1975—76	1980—81	1983—84	1984—85 (सं०अ०)	1985—86 (ब०अ०)
क.	लाभ अर्जित करने वाले उपक्रम	162.27	330.49	490.39	491.00	533.42
	1. वन	155.08	312.04	467.12	455.35	494.32
	2. खान और खनिज	7.19	18.45	23.27	35.65	39.10
ख.	घाटा उठाने वाले उपक्रम	(—)192.34	(—)511.87	(—)822.09	(—)836.03	(—)857.93
	1. सिंचाई परियोजनाएं (वाणिज्यिक) . .	(—)117.89	(—)324.60	(—)488.26	(—)591.98	(—)651.41
	2. बहुमुखी परियोजनाएं	(—)36.69	(—)76.56	(—)113.83	(—)106.10	(—)114.80
	3. विद्युत परियोजनाएं	(—)19.50	(—)39.09	(—)68.76	(—)64.29	(—)19.65
	4. सड़क और जल परिवहन सेवाएं . .	(—)5.77	(—)19.95	(—)48.60	(—)54.48	(—)31.40
	5. डेरी विकास	(—)6.04	(—)37.53	(—)86.08	(—)2.68	(—)23.73
	6. उद्योग	(—)6.45	(—)14.14	(—)16.56	(—)16.50	(—)16.94
ग.	निवल प्राप्तियां (क+ख) . . .	(—)30.07	(—)181.38	(—)331.70	(—)345.03	(—)324.51

स्रोत : भारतीय आर्थिक सांख्यिकी लोक वित्त, दिसम्बर, 1985 विवरण 3.1।

इस वर्ष का 766.21 करोड़ रुपये का अनुमानित घाटा पंच वर्षीय अवधि के 5095 करोड़ रुपये के घाटे के अनुरूप ही है। ये घाटे ऐसे सभी राज्यों के लिए एक बहुत बड़ा बोझ होंगे, जिन्हें व्यापक सार्वजनिक सिंचाई सुविधाएं प्राप्त है। अन्य क्रिया कलापों में कार्यरत विभागीय वाणिज्यिक उपक्रम, अपेक्षाकृत कम घाटा उठाते है, परन्तु उनके घाटे भी, कुल मिलाकर, एक बहुत बड़ी रकम बन जाती है।

8.34. वनों से बहुत बड़ी निवल आय को अधिक से अधिक एक मिश्रित वरदान समझा जा सकता है। बहुत से राज्यों में, वित्तीय लाभ वनों की सुरक्षा हट जाने के कारण, चुकता हो जाता है, जो कि न्यूनतम पारिस्थितीय आवश्यकताओं को देखते हुए भी, पहले से ही बहुत अपर्याप्त है। देश को पहले ही अपर्याप्त वनसुरक्षा के कारण अन्यथा परिहार्य सूखों, बाढ़, भूमि के कटाव और मरुस्थलीकरण के कारण हुई क्षति के रूप में, हर वर्ष भारी कीमत चुकानी पड़ रही है प्रदीर्घ कालिक राष्ट्रीय हित को देखते हुए यह जरूरी है कि देश को वन-सम्पदा का परिस्थितीय अपेक्षाओं के अनुरूप अनिवार्यत: कम से कम उपयोग किया जाए, चाहे इससे कुछ राज्यों को मिलने वाला वार्षिक निवल लाभ कम ही क्यों न हो जाए।

(2) विभागेतर उपक्रमों में निवेश से निवल प्रतिलाभ :

8.35. वित्तीय कार्यनिष्पादन के मामले में, राज्य के विभागेतर उपक्रमों की स्थिति भी विभागीय उपक्रमों की स्थिति से बेहतर नहीं है।

8.36 सामान्यत:, राज्य के बिजली बोर्डों का वित्तीय कार्यनिष्पादन बिल्कुल संतोषजनक नहीं है। शुल्क-सूची की 1984—85 की दरों पर सातवीं पंच वर्षीय अवधि (1985—90) में राज्य बिजली बोर्डों के अनुमानित वाणिज्यिक घाटे 1,17,57 करोड़ रुपये थे। *सातवीं योजना में, इस अवधि के दौरान राज्य बिजली बोर्डों के लिए 7000 करोड़ रुपये का निवल** अतिरिक्त राजस्व जुटाने का लक्ष्य है। यदि यह लक्ष्य पूरा भी हो जाए, तो भी राज्य बिजली बोर्डों को सातवीं योजना अवधि के दौरान, 475.7 करोड़ रु० का वाणिज्यिक घाटा उठाना होगा।

8.37 राज्य बिजली बोर्डों के घटिया वित्तीय कार्यनिष्पादन से राज्य के वित्त-साधनों पर कई प्रकार से प्रभाव पड़ता है। सबसे पहले, राज्यों की ब्याज से प्राप्तियां कम हो जाती हैं। 31 मार्च, 1984 को, राज्य सरकार द्वारा बिजली बोर्डों को दिये गये ऋण 13639 करोड़ रुपये थे।† 1984—85 में इसमें और भी बहुत बड़ी राशि जुड़ गई होगी, जैसा कि हर वर्ष होता है। सातवीं योजना के दौरान राज्य बिजली बोर्डों द्वारा राज्य सरकार को देय कुल अनुमानित ब्याज 8555 करोड़ रुपये है। सातवीं योजना अवधि के लिए प्रक्षिप्त आंकड़ों से पता चलता है कि 1984-85 की शुल्क सूची दरों पर 18 में से 11 राज्य बिजली बोर्ड, वित्तीय संस्थानों से लिए गए ऋणों पर मूल्य ह्रास और ब्याज की व्यवस्था करने के बाद भी घाटा उठाएंगे और राज्य सरकारों के प्रति अपनी ब्याज संबंधी देयताएं पूरी नहीं कर पाएंगे। उनके मामले में कुल चूक का अनुमान 5588 करोड़ रुपये है। एक अन्य राज्य बिजली बोर्ड 40 करोड़ रुपये की चूक करेगा जिससे कुल राशि बढ़कर 5628 करोड़ रुपये हो जाएगी। कुछ अन्य बिजली बोर्डों/विद्युत निगमों को भी घाटा होगा या बहुत अपर्याप्त

*सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985—90, खण्ड I, पैरा 4.51, पृ० 56।

**अर्थात लागत बढ़ने तथा अन्य कारणों के परिणामस्वरूप राज्य बिजली बोर्डों के राजस्व में होने वाले किसी घाटे का निवल।

†आठवें वित्त आयोग की रिपोर्ट 1984-अनुबंध III, पृ० 181।

अधिशेष प्राप्त होगा। वे अपनी राज्य सरकारों के प्रति ब्याज संबंधी देयताएं, अपने मूल्य-ह्रास संबंधी प्रावधानों का उपयोग करके या किसी अन्य अनुचित तरीके से ही पूरी कर पाएंगे। यदि वे भी, राज्य सरकार को देय ब्याज की अदायगी न करने का सीधा रास्ता अपनाएं, तो यह चूक कुल मिलाकर 6734 करोड़ रुपये हो जाएगी। यह राशि 1984-85 की कर-दरों पर, सातवीं योजना अवधि के दौरान, राज्यों के कुल कर-राजस्व के 8.5% के बराबर है। केवल 3 राज्यों के बिजली बोर्डों (आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा) से यह आशा की जाती है कि उनके पास इतनी पर्याप्त अधिशेष राशि होगी कि वे राज्य सरकारों के प्रति ब्याज संबंधी अपनी समूची देयताएं पूरी कर सकेंगे। जिस सीमा तक सातवीं योजना का अतिरिक्त निवल राजस्व का लक्ष्य पूरा किया जा सकेगा, उस सीमा तक, कुछ अन्य राज्य बिजली बोर्ड भी अपनी-अपनी राज्य सरकारों को देय, ब्याज का कम से कम कुछ हिस्सा अदा कर पाएंगे। दूसरे, राज्यों के पूंजी लेखे पर भी अतिरिक्त दबाव है। कई मामलों में राज्य बिजली बोर्ड के क्रियाकलापों के विस्तार, और, जहां तक कि, मूल्य ह्रासित संयंत्र और उपस्कर के प्रतिस्थापन तथा नवीकरण के लिए भी धन-राशि, नये राज्य-ऋणों के जरिए जुटानी पड़ती है। उदाहरणार्थ, सातवीं योजना अवधि के दौरान 1984-85 की शुल्क सूची की दरों पर, योजना संसाधनों में राज्य बिजली बोर्डों का अनुमानित योगदान (—) 1569 करोड़ रुपये है*। इसका अर्थ यह है कि राज्य बिजली बोर्डों के अन्य अतिरिक्त बजट संसाधन, अर्थात उनके बाजार ऋण और वित्तीय संस्थानों से लिए गये आवधिक ऋण, योजना संसाधनों में उनके ऋणात्मक योगदान के कारण, चुकता हो जाएंगे। इसके परिणाम स्वरूप, सातवीं योजना अवधि के दौरान राज्य बिजली बोर्डों द्वारा बहुत बड़े प्रक्षिप्त पूंजी निर्माण के वित्त पोषण के लिए नये राज्य ऋण प्राप्त करने होंगे जिनमें न तो ऋणदाताओं को ब्याज का भुगतान प्राप्त होगा और न ही ऋण की वापसी।

8.38 राज्य सड़क परिवहन निगम I उपक्रमों के संबंध में भी स्थिति लगभग इसी प्रकार है। 1984-85 की दरों पर, सातवीं योजना अवधि के दौरान उनके अनुमानित घाटे 1434 करोड़ रुपये हैं। उनके घाटे, निगम का मूल्य ह्रास संबंधी पूरा प्रावधान समाप्त कर देने के बाद, बहुत बड़ी राशि में शेष रह जाएंगे। इस घाटे और संस्थागत देनदारों को देय ऋण की चुकौतियों के परिणाम स्वरूप, योजना संस्थासाधनों में सड़क निगम का अपना योगदान बहुत बड़ी ऋणात्मक राशि अर्थात (—) 415 करोड़ रुपये तक पहुंच जाएगा। इसका अर्थ यह है कि राज्य सड़क परिवहन का नर्या पंजी गठन के लिये राज्य बजट द्वारा तथा अन्य स्त्रोतों से ठोस पूंजी नया पूंजी अंशदान किया जाना चाहिये।

8.39 हाल के वर्षों में राज्य बिजली बोर्डों तथा राज्य सड़क परिवहन निगमों के अतिरिक्त, सांविधिक निगमों तथा सरकारी कम्पनियों में पूंजी निवेश में, राज्यों के हिस्से में बहुत ज्यादा वृद्धि हुई है। आठवें वित्त आयोग ने, वर्ष 1983-84 के अंत में, इसका अनुमान 1921.81 करोड़ रुपये लगाया था। उस समय राज्यों का सहकारी संस्थाओं में अनुमानित पूंजी निवेश 1721.42 करोड़ रुपये था। इस पूंजीनिवेश तथा 1984-85 के दौरान किये जाने वाले अतिरिक्त पूंजी निवेश से वर्ष 1985-86 के दौरान (इस शीर्ष के अधीन राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा 37.49 करोड़ की कुल अनुमानित प्राप्ति में से) केवल 37.43 करोड़ रुपये का लाभांश प्राप्त होने की संभावना है। इससे, निवेश पर केवल 1% का प्रतिफल प्राप्त होगा। पांच वर्ष की अवधि के लिए योजना संसाधनों में इस वर्ग के उद्यमों का योगदान केवल 15 करोड़ रुपये दिखाया गया है। स्पष्ट है कि इन उद्यमों द्वारा नया पूंजी निर्माण भी, अधिकांशतः राज्य की बजट सहायता पर निर्भर करेगा।

8.40 केंद्र तथा राज्यों के बीच अधिक उचित संतुलन स्थापित करने के लिए, बहुमुखी अपेक्षित प्रयासों में, अनिवार्यतः यह एक महत्वपूर्ण तत्व होना चाहिए कि राज्यों, विभागीय तथा विभागेतर उपक्रमों का वित्तीय कार्य निष्पादन सुधारने के लिए नीतियां और उपाय तैयार किये जाए। राज्यों द्वारा निवेश और उद्यम पर प्राप्त अधिक परिणामी प्रतिलाभ से, राज्य अपने राजस्व-व्यय तथा अपने कर एवं करेतर राजस्व के बीच का अंतर कम करने में पर्याप्त योगदान दे सकेंगे।

*आठवें वित्त आयोग की रिपोर्ट 1984, अनुबंध III-3, पृष्ठ 179 सातवीं पंच वर्षीय योजना; 1985-90 खण्ड-I, सारणी 4.11, पृ० 53, वही, पैरा 4.32, पृष्ठ 56।

(3) पूंजीगत प्राप्तियों के लिए केंद्र का अभियान

8.41 केंद्र के अपेक्षा राज्यों की असुविधा, राजस्व प्राप्तियों की तुलना में पूंजीगत प्राप्तियों के संबंध में, अधिक गंभीर है। केंद्र का, सार्वजनिक क्षेत्र की पूंजीगत प्राप्तियों में, सदैव प्रमुख हिस्सा रहा है। हाल के वर्षों में, केंद्रीय वित्त नीति को "कर कम ऋण ज्यादा" सिद्धांत के अनुरूप नया रूप देने के परिणामस्वरूप, अधिक पूंजीगत आय प्राप्त करने के लिए, केंद्र का अभियान और तेज हुआ है। केंद्र द्वारा, अपने लिए सार्वजनिक क्षेत्र की पूंजीगत आय में से अधिकांश भाग हासिल करने के लिए, जो साधन अपनाए जाते है, उनका ब्योरा नीचे दिया गया है। इनकी जानकारी होने से राज्य भी इन प्राप्तियों में से उचित हिस्सा प्राप्त करने के लिए उपाय निकाल सकेंगे।

(1) विदेशी सहायता :

8.42 सार्वजनिक क्षेत्र को दी जाने वाली विदेशी सहायता, एक मात्र केंद्र प्राप्त करता है। राज्य परियोजनाओं के लिए विदेशी सहायता केंद्र के माध्यम से दी जाती होती है। विदेशी सहायता, जोकि प्रथम पंच वर्षीय योजना अवधि के दौरान नाम मात्र की थी, अब बहुत बड़ी मात्रा में मिलने लगी है। इसका उल्लेख सारणी 8.8 में है।

8.43 35 वर्षों के दौरान (वित्त वर्ष 1951 से 1985) केंद्र को (वर्तमान मूल्यों पर) विदेशी सहायता के अनुरूप, बजट प्राप्तियों के रूप में, कुल 27257 करोड़ रुपये प्राप्त हुए हैं। यह राशि इस अवधि के दौरान राज्यों को दिये गये कुल निवल उधार (उधार घटा चुकौती बट्टेखाते डाली गई राशि) के दो तिहाई के बराबर है। देश का लक्ष्य, आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है और आत्मनिर्भरता की परिभाषा है विदेश से विदेशी सहायता बिल्कुल समाप्त करना। इस परिभाषा का अभी तक न तो खण्डन किया गया है और न ही आशोधन। स्पष्ट है कि यह लक्ष्य फिलहाल एक तरफ रख दिया गया है। जब तक वर्तमान स्थिति बनी रहेगी, तब तक विदेशी सहायता* का, केंद्र की पूंजीगत प्राप्तियों में, प्रमुख योगदान बना रहेगा। 1986-87 के बजट अनुमानों में यह योगदान 15% बताया गया है (कुल 19670 करोड़ रुपये में से 2950 करोड़ रुपये)।

सारणी 8.8

विदेशी सहायता के अनुरूप केंद्र की बजट प्राप्तियां

(रु० करोड़ो मे)

योजना अवधि	वित्त वर्ष	योजना अवधि कुल	वार्षिक औसत
1. पहली पंच वर्षीय योजना	1951 से 1955	189	37.8
2. दूसरी पंच वर्षीय योजना	1956 से 1960	1049	208.8
3. तीसरी पंच वर्षीय योजना	1961 से 1965	2423	484.6
4. वार्षिक योजनाएं	1966 से 1968	2410	803.3
5. चौथी पंच वर्षीय योजना	1969 से 1973	2087	417.4
6. पांचवी पंच वर्षीय योजना	1974 से 1978	5209	1041.8
7. वार्षिक योजना	1979	1086	1086.0
8. छठी पंच वर्षीय योजना	1980 से 1984	8304	1660.8
9. सातवी पंच वर्षीय योजना	1985 से 1989	18000**	3600.0**
10. वार्षिक योजना	1985 (संशोधित अनुमान)	2500	2500.00
11. वार्षिक योजना	1986 (ब० अनुमान)	2950	2950.00

स्त्रोत। 1. भारतीय आर्थिक सांख्यिकी-लोक वित्त, दिसम्बर, 1985, विवरण 7.9 से 7.21, पृष्ठ 69-82।

2. केंद्रीय बजट प्रलेख 1986-87।

* सार्वजनिक क्षेत्रक उद्यमों द्वारा विदेश से लिए गए वाणिज्यिक ऋण इक्विटी सहभागिता शामिल है।

** इसके अनुदान अंश सहित।

(ii) विदेश से विशेष ऋण :

8.44 विदेशी सहायता के अतिरिक्त, केंद्र सरकार विशिष्ट प्रयोजनों के लिए, विदेश से विशेष ऋण प्राप्त करती है। ये ऋण, केंद्र सरकार के खाते पर, विदेश से लिए गए वाणिज्यिक ऋणों के रूप में होते हैं, किन्तु संभवतया आसान शर्तों पर। सकल प्राप्तियों के अनुरुप राशि, अनुमानत, केंद्र सरकार के सार्वजनिक लेखे में रखे गये एक विशेष खाते में जमा कर दी जाती है। इस स्रोत से मिलने वाली निवल राशि सार्वजनिक लेखे में कुल निवल प्राप्तियों में जुड़ जाती है। विशेष ऋणों की वार्षिक प्राप्तियों के आंकड़े उपलब्ध नहीं है, किन्तु वार्षिक चुकौतियों की मात्रा। (उदाहरणार्थ 1986-87 के बजट अनुमानों में 90-80 करोड़ रुपये) इस बात का संकेत देती है कि इन प्राप्तियों की राशि संभवतया बहुत बड़ी है।

(iii) केंद्र द्वारा विदेश से वाणिज्यिक ऋण

8.45 हाल के वर्षों में केंद्र सरकार ने अपने लिए निधियों के बहुत बड़े अतिरिक्त स्रोत हासिल किये हैं। वे स्रोत विदेश से मिलने वाले वाणिज्यिक ऋण तथा ईक्विटी सहभागिता है। इनमें मुख्य स्थान वाणिज्यिक ऋणों का है, जो केंद्रीय स्वायत्त उपक्रमों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। अतीत में, आत्मनिर्भरता के स्थापित लक्ष्य के अनुरुप हमारा देश, विदेश से वाणिज्यिक ऋण तथा ईक्विटी निवेश लेने से हिचकिचाता था। इस रूप में निधियों का आगमन कई वर्षों तक नाम-मात्र था। कुछ वर्षों में तो, इस प्रयोजन के लिए निधियां केवल बाहर भेजी गई। विदेशी निधियों के संबंध में देश की अधिकांश आवश्यकताएं, रियायती दर पर सहायता प्राप्त करके, पूरी करने के प्रयत्न किये गये। इसके परिणामस्वरूप, भारत इस ऋण जाल से बच गया है और अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाजारों में इसकी अत्यधिक साख है जबकि अन्य इसी प्रकार के कई देश इस विकट ऋण-जाल में फंस गये हैं। हाल के वर्षों में स्पष्टतया इस नीति को छोड़ दिया गया है। इस परिवर्तन के कई कारण है। नीति को कई दिशाओं में नया रूप दिये जाने के कारण देश के चालू खाते में, भुगतान की शेष राशियों का बहुत बड़ा घाटा है। चाहे रियायती विदेशी सहायता का बहुत बड़ी रकमें ही प्राप्त क्यों न की जाएं, किन्तु भुगतानों के घाटे का वित्तपोषण करने के लिए, इसके साथ वाणिज्यिक ऋण प्राप्त करना आवश्यक है। अन्यथा पूर्वाभिमुखीकरण की नई नीति कायम नहीं रखी जा सकेगी। दूसरे, हाल ही में, अंतर्राष्ट्रीय पूंजीबाजार में ब्याज की दरों से उल्लेखनीय कमी हुई है। ये दरें, भारत में प्रचलित दरों से काफी नीचे आ गई है। बहुत से महत्वपूर्ण लोगों की राय है कि भारत को इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए। उनका विश्वास है कि इससे भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास और आधुनिकीकरण की गति तेज हो जाएगी और इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न होंगी कि हम 21वीं शताब्दी में उल्लासपूर्वक प्रवेश करेंगे। तीसरे, अंतर्राष्ट्रीय बाजार में, भारत की उच्च साख दर, के कारण ब्याज की ऐसी उचित दरों पर ऋण लेना सहज है जिनकी तुलना अत्यन्त विश्वसनीय ऋण प्राप्त कर्ता देशों द्वारा, विकसित देशों से प्राप्त ऋण की ब्याज दरों से की जा सकती है। चौथे, सहायता प्रदान करने वाले पश्चिमी देश, विशेषकर अमेरीका, भारत पर जबरदस्त दबाव डाल रहे हैं कि वह रियायती सहायता की स्थिति से बाहर निकल कर भारतीय अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय बाजार से वाणिज्यिक ऋण तथा विदेशी ईक्विटी पूंजी निवेश प्राप्त करे।

8.46 प्रदायकों के ऋण सहित विदेशी वाणिज्यिक ऋणों के वास्तविक आंकड़े, जनता के लिए सुलभ नहीं है। चूंकि विदेश से वाणिज्यिक ऋण लेने के सभी प्रस्तावों पर, जिनमें राज्य उपक्रमों से लिए जाने वाले ऋण भी शामिल है, भारत सरकार का अनुमोदन लेना पड़ता है, इसलिए इन अनुमोदनों से ही इन आंकड़ों का थोड़ा बहुत संकेत मिल जाता है। इन अनुमोदनों की कुल राशि 1983-84 में 1085 करोड़ तथा 1984-85 में 1906 करोड़ रुपये थी। 1985-86 के दौरान इनका पूर्वानुमान 1500 करोड़ रुपये लगाया गया था। ये वाणिज्यिक ऋण मुख्य तौर पर संघटित वाणिज्यिक बैंक ऋणों तथा प्रदायकों के कर्ज के रूप में रहे हैं, परन्तु कुछ समय से कुछ राशियां बंधपत्र जारी करके भी जुटाई गई है। अधिकांश वाणिज्यिक ऋण केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्रक उपक्रमों द्वारा जुटाए गए है। 1985-86 की योजना में, यह अनुमान लगाया गया था कि वर्ष के दौरान ये उपक्रम इस स्रोत से 865 करोड़ रुपये जुटा लेंगे। शेष राशि निजी क्षेत्र ने जुटाई है। इस में संदेह है कि राज्य उपक्रमों को भी इस स्रोत से निधियां दी गई हैं। विदेश से वाणिज्यिक ऋण लेने से, केंद्र सरकार को, इस सीमा तक, इन उपक्रमों को बजट सहायता देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि केंद्र सरकार अनिवार्यता इस नीति को और उदार बना दे तो वाणिज्यिक ऋण, केंद्रीय उपक्रमों के लिए निधियों को महत्वपूर्ण स्रोत बन जाएंगे।

(iv) घाटे की अर्थ व्यवस्था

8.47 घाटे की अर्थ व्यवस्था, अर्थात् भारतीय रिजर्व बैंक से निवल उधार लेना, केंद्र सरकार के लिए निधियों का एक और मुख्य स्रोत है। केंद्र सरकार तदर्थ खजाना बिल जारी करके, बिना किसी संवैधानिक सीमा के, भारतीय रिजर्व बैंक से उधार ले सकती है। केंद्र सरकार सार्वजनिक, अधिकांशत:, वाणिज्यिक और सहकारी बैंकों को खजाना बिल जारी करके उनसे भी उधार ले सकती है। जब कभी बैंकों या अन्य धारकों को नकद राशि की जरुरत पड़ती है, तो वे भारतीय रिजर्व बैंक से खजाना बिल पुन: भुना लेते है (वास्तव में बेच देते हैं)। इस सीमा तक भी वस्तुत: केंद्र सरकार के लिए ऋणदाता भारतीय रिजर्व बैंक ही होता है। खजाना बिलों की पुनर्भुनाई के लिए भारतीय रिजर्व बैंक पर कोई संवैधानिक सीमा नहीं है। इसके अतिरिक्त, जब कभी केंद्र सरकार दिनांकित प्रतिभूतियां जारी करके जनता से (मुख्यत: बैंकों, जीवन बीमा निगम और गैर-सरकारी भविष्य निधियां ऋण लेती है, तो भारतीय रिजर्व बैंक) उस निर्गम को सफल बनाने के लिए इन प्रतिभूतियों के लिए सीधे धन दे सकता है या उन्हें बाजार में प्रचालित मून्य पर खरीद कर, खुले बाजार के माध्यम से प्राप्त कर सकता है। दोनों ही मामलों में, दिनांकित प्रतिभूतियों पर केंद्र सरकार को ऋण, भारतीय रिजर्व बैंक ही देता है। चूंकि केंद्र सरकार को एक रुपये के नोट और सभी सिक्के बनाने का एकाधिकार प्राप्त है, इसीलिए भारतीय रिजर्व बैंक, सिक्कों का अंकित मूल्य केंद्र सरकार के खाते में जमा करके, इन्हें प्राप्त कर लेता है। इन मामले में, वस्तुत: भारतीय रिजर्व बैंक इन नोटों तथा सिक्कों के लिए केंद्र सरकार को उधार देता है, जिनका अंकित मूल्य उनके वास्तविक मूल्य से बहुत कम होता है। अंतिम बात यह है कि जब केंद्र सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक में अपनी जमा राशि बढ़ाती है, तो वस्तुत: यह भारतीय रिजर्व बैंक को उधार देती है। इसके विपरीत इस जमा राशि का कम होना, वस्तुत:, केंद्र सरकार द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक से ऋण लेना ही है। भारतीय रिजर्व बैंक के पास तदर्थ खजाना बिलों की वृद्धि, दिनांकित प्रतिभूतियां तथा एक रुपये के नोट और सिक्के तथा केंद्र सरकार की भारतीय रिजर्व बैंक में जमा राशि की कमी, कुल मिलाकर, केंद्र सरकार द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक से लिए गये कुल ऋण हैं। दूसरे शब्दों में, यही राशि, केंद्र सरकार द्वारा की गई कुल घाटे की अर्थव्यवस्था है।

8.48 केंद्र, जितनी भी घाटे की अर्थव्यवस्था करना चाहे, उसकी राशि के संबंध में कोई संवैधानिक सीमा नहीं है। यदि कोई सीमा है तो वह स्वत: लगाई जाने वाली सीमा है अर्थात् अनुच्छेद 292 के अंतर्गत विधि के अधीन संसद द्वारा लगाई गई सीमा। परन्तु इस सीमा को विधि द्वारा बढ़ाने या बिल्कुल समाप्त करने के लिए संसद पूर्णतया सक्षम है। ऐसी कोई सीमा, इस समय लागू नहीं है। घाटे की अर्थव्यवस्था की आर्थिक सीमा ही केंद्रीय सरकार पर रोक लगाती है क्योंकि इसका अधिक सहारा लेने से ऐसे मुद्रास्फीति के दबाव पड़ेंगे, जिन्हें काबू नहीं किया जा सकेगा। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस सीमा में काफी लचीलापन है। कोई भी स्थायी केंद्र सरकार, जैसी कि स्वतंत्रता के बाद से भारत में आम तौर पर लगातार रही है, अस्वीकार्य जोखिम उठाएं बगैर, कभी-कभी काफी ज्यादा मुद्रा-स्फीति का खतरा मोल ले सकती है। वास्तव में, पिछले 35 वर्षों में ऐसा कई बार हुआ है।

वास्तव में, भारतीय रिजर्व बैंक केंद्र सरकार के लिए एक सुन्दर दुधारु गाय की तरह रहा है। वर्ष 1970-71 के अंत में केंद्र सरकार के भारतीय रिजर्व बैंक से लिए गए अनिवल ऋण 3569 करोड़ रुपये थे जो मार्च, 1986 तक बढ़ कर 38920 करोड़ रुपये हो गये। दूसरे शब्दों में पिछले 15 वर्षों में केंद्र सरकार ने भारतीय रिजर्व बैंक से 35351 करोड़ रुपये दोह लिये है। यह राशि इस अवधि में केंद्र द्वारा राज्यों को ऋण के रूप में दी गई कुल निवल राशि (31623 करोड़ रुपये) से 3728 करोड़ रुपये अधिक है।

8.49 अपने वित्तीय संसाधन बढ़ाने के लिए राज्यों के पास कोई अवसर नहीं है। भारतीय रिजर्व बैंक, अपने खाते में राज्य सरकार की प्रतिभूतियां धारित नहीं करता। खजाना बिल और दिनांकित प्रतिभूतियां जारी करके भारतीय

रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करने का मार्ग, राज्य सरकारों के लिए खुला नहीं है। राज्य, भारतीय रिजर्व बैंक से, दो प्रकार से ऋण प्राप्त कर सकते हैं : (i) ऋणों तथा अग्रिमों के रूप में तथा (ii) भारतीय रिजर्व में अपने नकद शेष से अधिक धनराशि निकाल कर। राज्यों के लिए भारतीय रिजर्व बैंक से अर्थोपाय अग्रिम प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत सीमाएं रखी गई हैं। अतीत में, जब राज्यों की नकद राशि की जरूरतें इन प्राधिकृत सीमाओं के अंतर्गत पूरी न हो सकी, तो उन्होंने भारतीय रिजर्व बैंक से इन सीमाओं से बढ़कर भी, राशि प्राप्त करना जारी रखा। प्राधिकृत सीमा को लागू करने के लिए, केंद्र सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक के पास एक ही रास्ता था कि राज्यों के जो चेक इस सीमा से बढ़ जाएं उन्हें स्वीकार न किया जाए। इससे, चूककर्ता राज्य सरकार की साख खराब होगी और संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। चेक अस्वीकार करने जैसा निर्णायक उपाय करने के संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक को निर्देश देने से, केंद्र सरकार हिचकिचाती रही है। इसका प्रमुख कारण यह था कि दोषी राज्यों में भी वही दल सत्तारूढ़ था जो केंद्र में। समय बीतने के साथ-साथ, यह प्रथा असह्य सीमा तक पहुंच गई। इसके अतिरिक्त, अन्य दलों की सरकारों ने भी इसी प्रथा पर चलना शुरू कर दिया, जो कुछ राज्यों में सत्तारूढ़ हुए थे।

इस प्रथा को समाप्त करने के लिए केंद्र सरकार ने 1972–73 में ओवरड्राफ्ट विनियमन स्कीम शुरू की। 1978 में इसमें आशोधन किया गया। फिर भी, यह प्रथा जारी रही और इसे और अधिक राज्यों ने अपनाया। भारतीय रिजर्व बैंक में, अपने अपने ओवरड्राफ्ट समाशोधित करने के लिए कई बार (1972–73, 1978–79, 1982–83 तथा 1983–84) केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों को तदर्थ ऋण सहायता भी प्रदान की। परन्तु हर बार, उसके तुरन्त बाद, वही समस्या फिर से सामने आ गई। 1982 में, सरकार ने प्राधिकृत सीमाएं दुगुनी कर दीं। किन्तु अनधिकृत ओवरड्राफ्टों की प्रथा जारी रही।

8.50 केंद्र सरकार ने, अंत में 1985–86 में इस समस्या पर काबू पा लिया। केंद्र ने, 28 जनवरी, 1985 को 1809 करोड़ रुपये के स्तर तक पहुंचे ओवरड्राफ्ट में से (90% के बराबर) 1628 करोड़ रुपये की कुल राशि, राज्यों की मध्यम अवधि के ऋणों के रूप में, प्रदान की ताकि वे भारतीय रिजर्व बैंक में अपने ओवरड्राफ्ट समाशोधित कर सकें। शेष 10% ओवरड्राफ्ट, उनसे स्वयं समाशोधित करने के लिए कहा गया। केंद्र ने यह भी निर्धारित किया कि 1 अक्तूबर 1985 से, राज्य, 7 दिन की निरंतर कार्य दिवसों की अवधि से अधिक अवधि के लिए भारतीय रिजर्व बैंक से ओवरड्राफ्ट नहीं लेंगे। इसे सख्ती से लागू किया जा रहा है। मार्च, 1986 के अंत तक किसी भी राज्य की तरफ कोई ओवरड्राफ्ट बकाया नहीं था।

8.51 राज्य सरकारों को सहकारी उधार समितियों की शेयर पूंजी में योगदान करने में समर्थ बनाने के लिए, उन्हें ऋण प्रदान करने का रिजर्व बैंक का भूतपूर्व दायित्व तब से "नाबार्ड" पर चला गया है जब से जुलाई, 1982 में इस नये बैंक ने कार्य करना शुरू किया है।

8.52 उपरोक्त घटनाओं के परिणामस्वरूप मार्च 1986 के अंत तक भारतीय रिजर्व बैंक के प्रति राज्य सरकार के निवल ऋण 1970–71 में अंत में 237 करोड़ रुपये की तुलना में (—) 19 करोड़ रुपये थे। दूसरे शब्दों में, 15 वर्षों की अवधि में (1971—86), राज्य सरकार के निवल ऋणों में वृद्धि अर्थात् घाटे की अर्थव्यवस्था 256 करोड़ रु० (—19,237) की ऋणात्मक राशि तक रही है। भारतीय रिजर्व बैंक, केंद्र सरकार के लिए पहले की अपेक्षा वस्तुतः बहुत ज्यादा दूध देने वाली दुधारू गाय के समान हो गया है।

(v) बाजार ऋण

8.53 बाजार ऋण अर्थात् परक्राम्य दिनांकित प्रतिभूतियों पर, पूंजीबाजार से केंद्रीय तथा राज्य सरकारों और उनके उद्यमों तथा स्थानीय निकायों द्वारा (वित्तीय संस्थानों को छोड़कर) ऋण लिया जाना, केंद्रीय और राज्य योजनाओं का वित्त पोषण करने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है। प्रगामी योजना अवधियों में, योजनाएं वित्तपोषित करने के इस स्रोत को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाने लगा है, जैसा कि सारणी 8.9 में दिखाया गया है :—

सारणी 8.9

विभिन्न योजना अवधियों में बाजार ऋणों का सार्वजनिक क्षेत्रक योजना परिव्यय से अनुपात

योजना अवधि	सार्वजनिक क्षेत्रक परिव्यय	बाजार ऋण (करोड़ रुपये)	कालम 2 कालम 1 के प्रतिशत के रूप में
(0)	(1)	(2)	(3)
पहली पंचवर्षीय योजना .	1960	204	10.4
दूसरी पंचवर्षीय योजना .	4672	772*	16.5
तीसरी पंचवर्षीय योजना .	8577	823	9.6
वार्षिक योजनाएं . .	6628	725	10.9
चौथी पंचवर्षीय योजना .	15779	2135	13.8
पांचवीं पंचवर्षीय योजना* .	40712	6388	15.7
वार्षिक योजना 1979–80 .	12601	2371	18.8
छठी पंचवर्षीय योजना** .	110821	22120	20.0
सातवीं पंचवर्षीय योजना (मूल)	180000	30562	17.0
वार्षिक योजना 1985–86 (अनुमान)	32230	6700	20.8

स्रोत : भारतीय आर्थिक सांख्यिकी लोक वित्त, दिसम्बर, 1985—विवरण 7.9 से 7.21।

* पी० एल० 480 निधियों में से भारतीय स्टेट बैंक द्वारा किया गया निवेश शामिल है।

** 1980–81 से 1983–84 तक के लिए वास्तविक आंकड़े और 1984–85 के लिए बजट अनुमान।

8.54 बाजार-ऋण, हाल के वर्षों में, चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद से कुल योजना परिव्यय के लगभग 20% भाग का वित्तपोषण करने लगे हैं, परन्तु कुल ऋणों में राज्यों का हिस्सा बहुत घट गया है। यह सारणी 8.10 में दर्शाया गया है।

8.55 तीसरी योजना अवधि में, बाजार-ऋण में राज्यों का हिस्सा 62.7 प्रतिशत था। वार्षिक योजनाओं में यह घट कर 46.2 प्रतिशत हो गया। चौथी योजना के बाद राज्यों का हिस्सा, बहुत कम होकर, एक चौथाई रह गया है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में, राज्यों का हिस्सा 32.5 प्रतिशत रखा गया किन्तु 1985–86 की वार्षिक योजना में, जोकि सातवीं योजना का पहला वर्ष था, राज्यों का हिस्सा केवल 23.9 प्रतिशत निर्धारित किया गया। इससे पता चलता है कि सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के वास्तविक आंकड़ों में, बाजार-ऋण में राज्यों का हिस्सा मूल अनुमानों से बहुत कम रहेगा।

8.56 इस अत्यंत असंतुलित वितरण के विरुद्ध राज्यों द्वारा लगातार जोरदार विरोध किए जाने के बावजूद, केवल दो कारणों की वजह से केन्द्र के लिए कुल बाजार-ऋण में अपना हिस्सा तीन चौथाई से भी ज्यादा बढ़ाना संभव हुआ है। पहला कारण है संविधान का अनुच्छेद 293(3) जिसके अनुसार यह अनिवार्य है कि यदि किसी ऐसे उधार का, जो भारत सरकार ने उस राज्य को दिया था अथवा जिसके संबंध में उसने प्रत्याभूति दी थी, कोई भाग अभी भी बकाया हो तो वह राज्य, भारत सरकार की अनुमति के बिना भारतीय क्षेत्र में उधार नहीं ले सकेगा। केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए गए ऋणों में से, सभी राज्यों की ओर, ऋण बकाया है। इसलिए अनुच्छेद 293(3) उन सभी पर, पूंजी बाजारों तक स्वतंत्र पहुंच रखने में, कारगर ढंग से रोक लगाता है। वे उसी सीमा तक पूंजीगत बाजार से उधार ले सकते है, यहां तक केन्द्र उसके लिए सहमत हो। यह अनुच्छेद, वस्तुतः यह भी प्रमाण देता है कि संविधान निर्माताओं द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के बारे में बनायी गई योजना में उन्हें उस वास्तविक भावी स्थिति की जरा भी जानकारी नहीं थी जो, सरकार के दोनो स्तरों के बीच कार्य तथा

राजस्व विभाजन से संबंधित संविधान के उपबंधों के अधीन केन्द्र-राज्य संबंधों के बारे में, उत्पन्न हो सकती थी। अनुच्छेद 293(1) राज्यों को, भारतीय क्षेत्र में, उधार लेने का अधिकार देता है किंतु इस अनुच्छेद का खंड (3) इस उधार के स्वरूप को ही, केन्द्र सरकार द्वारा किए जाने वाले आबंटन में, बदल देता है और इस प्रकार, इसे राज्य योजनाओं के लिए केंद्रीय सहायता बना देता है। बाजार-ऋण, राज्य योजनाओं के वित्तपोषण के लिए स्वतंत्र स्रोत नहीं रहा। इस प्रकार उपलब्ध किए गए अवसर का प्रयोग, केन्द्र ने बाजार ऋण का प्रमुख हिस्सा अपने लिए नियत करने में किया है। वित्त वर्ष 1951 तक 35 वर्षों की अवधि में केन्द्र ने बाजार ऋणों * के रूप में 34,050 करोड़ रुपये की निवल राशि जुटाई है (जिसका हिसाब कुल बाजार-ऋणों में से चुकता किए गए बाजार-ऋणों को घटाकर लगाया गया है) इसके विपरीत, राज्य सरकारों ने लगभग 5800 करोड़ रुपये से अधिक राशि नहीं जुटाई। चाहे इस तथ्य के लिए रियायत दे दी जाए कि राज्यों को आबंटित बाजार-ऋण का एक हिस्सा, राज्य बिजली बोर्डों, राज्य सड़क परिवहन निगमों, आवास बोर्डों, नगर निगमों आदि को पुन: आबंटित किया गया है, जिसकी कुल राशि तुरंत ज्ञात नहीं, फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे ऋणों से केन्द्र ने ही अधिक लाभ उठाया है।

सारणी 8·10

कुल बाजार ऋणों में राज्य का हिस्सा (वास्तविक)

योजना अवधि	कुल बाजार ऋण	बाजार ऋणों में राज्य का हिस्सा	कालम 2, कॉलम 1 को %के रूप में
0	1	2	3
पहली पंचवर्षीय योजना .	204	155	76.0
दूसरी पंचवर्षीय योजना .	772*	356	46.1
तीसरी पंचवर्षीय योजना .	823	514	62.7
वार्षिक योजनाएं . .	725	335	46.2
चौथी पंचवर्षीय योजना .	2135	568	26.6
पांचवी पंचवर्षीय योजना .	6388	2,529	36.9
वार्षिक योजना 1979–80 .	2,371	521	22.0
छठी पंचवर्षीय योजना .	22,120	4,719	21.3
सातवीं पंचवर्षीय योजना (मूल)	30,562	9,942	32.5
वार्षिक योजना			
1985–86 (न०अ०) .	6,700	1,600	23.9

स्रोत : (1) भारतीय आर्थिक सांख्यिकी लोक वित्त, दिसम्बर, 1985—विवरण 7.9 से 7.21।

(2) चौथी पंचवर्षीय योजना 1969–74, अध्याय 4, सारणी 1-2, पृ० 73–74।

* पी० एल० 480 निधियों में से भारतीय स्टेट बैंक द्वारा किया गया निवेश भी शामिल है।

8.57 दूसरे, पिछले कई वर्षों से केन्द्र ने अपना स्वामित्व और नियंत्रण ऐसे सभी वित्तीय संस्थानों पर लागू कर दिया है जो थोड़े से हिस्से को छोड़कर, केन्द्र और राज्यों द्वारा लिए गए कुल बाजार-ऋणों में, पूरा योगदान करते हैं। राज्यों द्वारा उधार लेने के मामले में, ये संस्थान इस प्रकार हैं—वाणिज्यिक और सहकारी बैंक, जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा कम्पनियां और गैर-सरकारी भविष्य निधियां। राज्य सरकारों का, अधिक से अधिक राज्य सरकारी बैंकों और छूट प्राप्त स्थापनाओं की भविष्य निधियों पर कुछ प्रभाव माना जा सकता है। उनके मामले में भी, केन्द्र सरकार (भारतीय रिजर्व बैंक) का काफी नियन्त्रण और प्रभाव है। अन्य सभी संस्थान पूर्णतया केन्द्र सरकार के नियन्त्रण में हैं। चाहे बाजार ऋणों के लिए राज्यों को संविधान के अधीन केन्द्र सरकार की मंजूरी ना भी लेनी पड़ती, तो भी इसमें सन्देह है कि वे केन्द्र सरकार/भारतीय रिजर्व बैंक के अनुमोदन और समर्थन के बगैर, इस तरीके से पर्याप्त धन राशि जुटा पाते।

8.58 केन्द्र, अपने प्रयोग के लिए बाजार-ऋण का अधिकांश भाग अपने लिए विनियोजित ही नहीं करता, बल्कि वह योजना आयोग के माध्यम से, राज्यों को आबंटित कुल राशि में, राज्यों में परस्पर वितरण भी निर्धारित करता है। राज्यों को आबंटित कुल राशि अब दो भागों में विभाजित की जाती है अर्थात् सामान्य और विशेष। उदाहरण के लिए सातवीं योजना की वित्तपोषण स्कीम में, दोनों भागों का परस्पर हिस्सा लगभग 70 : 30 ** रखा गया है। सामान्य और विशेष के बीच विभाजन, पूर्णतया मनमाना है। हो सकता है कि योजना आयोग में भी दोनों भागों के बीच कोई अलग अनुपात निर्धारित किया गया हो। पिछले कई वर्षों से सामान्य भाग के वितरण के लिए कार्यविधि यह रही है कि पिछले वर्ष के आंकड़ों से ऊपर, एक समान वृद्धि की जाती है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी इसी आधार पर अर्थात् "आधार वर्ष स्तर से ऊपर एक समान वृद्धि करके" आबंटन किया गया है। यह एक यांत्रिक विधि है, जिसमें आधार-वर्ष के आबंटन में अनुचित बातें और विसंगतियां, प्रत्येक वर्ष बीतने के साथ बढ़ती जाती हैं। इस कार्यविधि में मूल असमानताओं या राज्यों से संबंधित परिस्थितियों में परिवर्तन को ध्यान में रखने की कोई गुंजाइश नहीं है। सातवीं योजना में सामान्य भाग में से भी, सभी साधारण-वर्ग के राज्यों की अपेक्षा पंजाब को सबसे कम राशि (196 करोड़ रुपये) आबंटित की गई है। हरियाणा को भी, जिसकी आबादी पंजाब की तुलना में लगभग तीन चौथाई है और काफी छोटा राज्य है, बाजार-ऋण में से अपेक्षाकृत काफी अधिक राशि आबंटित की गई है (229 करोड़ रुपये)। लगता है कि सामान्य बाजार-ऋणों में से वितरण के पीछे कोई आयोजना या अन्य सिद्धान्त नहीं है।

8.59 बाजार-ऋण का विशेष भाग, केवल विशेष वर्ग के राज्यों और ऐसे अन्य राज्यों को दिया जाता है जिनका प्रतिव्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (एस० डी० पी०) राष्ट्रीय औसत से कम हो। वास्तव में, प्रयुक्त संकल्पना प्रतिव्यक्ति एस०डी० पी०की राष्ट्रीय औसत "से अधिक नहीं" थी। अन्यथा तमिलनाडु, जिसका प्रतिव्यक्ति एस० डी० पी० केवल राष्ट्रीय औसत के बराबर है, को छोड़ दिया होता। सातवीं योजना में यह राशि, 16 राज्यों में वितरित की गई है अर्थात 8 विशेष वर्ग के राज्य और 8 अन्य राज्य जिनका प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० "औसत से अधिक नहीं है"। औसत से अधिक प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० वाले 6 राज्यों (गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब और पश्चिम बंगाल) को बिलकुल छोड़ दिया गया है। तमिलनाडु को आबंटित की गई राशि से, इस मनमाने वितरण का पूरी तरह पता चलता है। इस राज्य का भी राष्ट्रीय औसत से कम प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० नहीं था बल्कि उसके बराबर था। इसलिए, इसे विशेष भाग में से हिस्सा देने के लिए केवल पात्र समझा गया। बताया गया है कि इसे विशेष भाग में से 225 करोड़ रुपये का आबंटन प्राप्त हुआ अर्थात् इतनी राशि जो कि सभी कारणों से पंजाब को आबंटित किए गए बाजार-ऋण की कुल राशि से काफी अधिक थी। यदि तमिलनाडु का प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० एक रुपया भी अधिक होता तो यह राज्य विशेष भाग में से कोई हिस्सा प्राप्त करने का पात्र न होता और इसे 225 करोड़ रुपये के बाजार ऋण से वंचित कर दिया जाता। क्या बाजार-ऋण के लिए कोई और आबंटन योजना इससे अधिक मनमानी हो सकती है?

8.60 पंजाब को विशेष भाग में से कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए, इसका बाजार-ऋण का कुल आबंटन इसके सामान्य आबंटन के बराबर है अर्थात् दोनों कारणों से सातवीं योजना में राज्यों के 9942 करोड़ रुपये के कुल आबंटन में से 196 करोड़ रुपये या 1.97 प्रतिशत/बाजार-ऋण के संबंध में, पंजाब को साधारण वर्ग के सभी राज्यों में सबसे नीचे रखा गया है। क्यों? राज्य इस क्रूर व्यवहार का तर्क समझने या पहचानने में असमर्थ है।

8.61 यदि बाजार-ऋण राज्यों की साख के अनुसार कम से कम उसको ध्यान में रखते हुए प्राप्त किए जाएं, तो राज्यों के बाजार-ऋण, वास्तव में, उनके अपने संसाधन होंगे। वस्तुत:, इन दोनों में किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। जैसा कि सातवीं योजना में हुआ बताते हैं, यदि राजस्थान का बाजार-ऋण लगभग महाराष्ट्र की राशि के बराबर निर्धारित किया जाता है या गुजरात का बाजार-ऋण का आबंटन मध्य प्रदेश के आबंटन के

**सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985–90 खण्ड I पैरा 4.36 पृ० 1524 वही।

दो तिहाई से भी कम होता है, तो यह मद, इसकी कुल राशि और राज्यों के बीच इसके परस्पर वितरण संबंधी दोनों पहलुओं से, स्पष्टत: राज्य योजनाओं के लिए सहायता के रूप में केन्द्र सरकार (योजना आयोग) द्वारा किया जाने वाला आबंटन का विषय ही है। राज्यों द्वारा बाजार से उधार लेना वास्तव में राज्य के अपने संसाधनों का एक घटक होने के बजाय राज्यों की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता का एक हिस्सा ही बन गया है।

(vi) केन्द्रीय उपक्रमों द्वारा बांड (बंध पत्र) का जारी किया जाना

8.62 अभी अभी हाल तक केन्द्रीय और राज्य के स्वायत्त उपक्रम बंध पत्र जारी करके देश के पूंजी बाजार से ऋण लेकर इस्तेमाल करने के लिए सकुचाते रहे जो कि उधार लेने वाले उपक्रम द्वारा अचल परिसंपत्तियों के प्रति आरक्षित होता था परन्तु यह बाजार उधार से हटकर होता था जिसके लिए कोई सरकारी गारंटी नहीं थी और यह उसी तरीके से लिया जाता था जैसा कि निजी कंपनियों द्वारा लिया जाता है। केन्द्रीय उपक्रमों को ऋण तथा ईक्विटी निवेशों के रूप में केन्द्रीय सरकार द्वारा काफी हद तक दीर्घकालिक आधार पर धन दिया जाता था। राज्य सरकारों के सार्वजनिक उपक्रमों ने भी यही किया। परन्तु राज्य सरकारों के लिए यह सामान्य बात थी कि वे बाजार उधार के अपने आबंटनों में से उनका एक हिस्सा राज्य सरकार के बिजली बोर्डों, राज्य सड़क परिवहन निगम, आवासीय बोर्डों, नगर निगमों आदि को पुन: आबंटित करें परन्तु इस आबंटन से हटकर पूंजीगत बाजार से उधार लेने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। हाल ही में कुछ चुने हुए केन्द्रीय उपक्रमों ने संसाधन जुटाने के एक नए आधार का पता लगाया है। वे बाजार में अपने बंधपत्र लेकर पहुंचे हैं जो उनकी अचल परिसंपत्तियों के प्रति आरक्षित हैं और जिन पर बाजार दर पर ब्याज दिया जाता है और सामान्य कर से बचत भी परन्तु इनके लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा कोई गारंटी नहीं दी जाती। उदाहरण के तौर पर 1985–86 में इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज ने 100 करोड़ रुपए के बंध पत्र जारी किए। इन बंध पत्रों के जारी किए जाने की सफलता ने 1986–87 में ऐसे बंध पत्रों के जारी किए जाने के लिए इस संबंध में उच्च लक्ष्य निर्धारण के लिए केन्द्रीय सरकार को प्रोत्साहित किया है। इसीलिए 1986–87 में राष्ट्रीय ताप बिजली निगम ने 300 करोड़ रुपए, राष्ट्रीय पन बिजली निगम ने 150 करोड़ रुपए, इण्डियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज तथा महानगर टेलीफोन निगम, (दिल्ली और बम्बई के लिए) ने 330 करोड़ रुपए, कोयला उपक्रमों ने 50 करोड़ रुपए, रेलवे ने 250 करोड़ रुपए के बंध पत्र जारी किए। इस प्रकार एक ही वर्ष में इन सबका जोड़ कुल मिलाकर 1130 करोड़ रुपए हुआ। रेल स्वायत्त नहीं हैं परन्तु एक विभागीय उपक्रम हैं। रेल बंधपत्रों के जरिए वसूली गई राशि को केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक लेखे में जमा किया जाएगा और पूंजीगत परिव्यय की एक समान अतिरिक्त राशि उन्हें उपलब्ध कराई जाएगी।

8.63 राज्य सरकार के उपक्रमों ने इस प्रकार की निधियों के स्रोत के लिए अभी तक कोई साहस नहीं दिखाया है। किसी भी हालत में सभी बंधपत्रों के लिए निजी कंपनियों द्वारा जारी किए जाने वाले डिबेंचरों के समान, केन्द्रीय सरकार के पूंजीगत निर्गमों के नियंत्रक से अनुमति लेनी आवश्यक है। इसमें संदेह है कि बंध पत्रों के जारी किए जाने से राज्य सरकार के उपक्रमों को संसाधनों के रूप में एक अच्छी खासी रकम भी मिल पाएगी जब तक कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा उन्हें इस प्रकार के बंधपत्र जारी किए जाने के लिए प्रोत्साहन देने के संबंध में सक्रिय कदम नहीं उठाए जाते।

(vii) विशेष जमा योजना

8.64 गैर सरकारी भविष्य निधियां, जीवन बीमा निगम तथा सामान्य बीमा निगम और उसकी सहायक कंपनियां वित्त निर्माण के तेजी से बढ़ते हुए साधन हैं। जुलाई 1975 से पूर्व इन संस्थाओं ने अपनी निधियों का एक पर्याप्त हिस्सा सांविधिक दायित्वों या अन्यथा के अंतर्गत बाजार उधार के रूप में तथा अल्प बचत योजनाओं जैसे अन्य कार्यों में, जिनके लिए राज्य अपने आप को केन्द्र के साथ बांटने में लगाया। जुलाई 1985 में केन्द्र ने विशेष जमाओं को एक योजना शुरू की ताकि कर्मचारी भविष्य निधि और अन्य मान्यता प्राप्त गैर सरकारी भविष्य, अधिवार्षिकी तथा उपदान निधियों की निवेश योग्य निधियों के एक पर्याप्त अंश को पूर्णत: अपने काम में लगाया जा सके। इन निधियों की अपनी निवल जमा राशि के 30 प्रतिशत भाग को भारत सरकार की एक विशेष जमा योजना में निवेश करने की अनुमति दी गई जिस पर उच्च ब्याज (10 प्रतिशत) दर मिलती है। इसके अलावा विशेष जमा योजना अवधि की समाप्ति तारीख पर प्राप्त पूर्ण राशि को नए सिरे से विशेष जमा में भी फिर से निवेशित किया जा सकता है। अप्रैल 1983 से यह ब्याज दर बढ़ाकर 11 प्रतिशत कर दी गई। 1984–85 के दस वर्षीय समाप्ति अवधि में विशेष जमा में प्रोद्भूत निवल राशि लगभग 5600 करोड़ रुपए थी। इन जमाओं में प्रतिवर्ष विशुद्ध रूप से एक बहुत भारी राशि एकत्र हो रही है। अनुमान है कि 1985–86 में 1,450 करोड़ रुपए जमा हुए। 1986–87 के लिए 1500 करोड़ रुपए एकत्र होने की आशा है। इस वर्ष से दो परिवर्तनों के किए जाने से आशा है कि 1986–87 में वसूली बहुत ज्यादा होगी। ब्याज दर बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दी गई है विशेष जमाओं में प्रोद्भूत निवल राशियों से (पिछले 30 प्रतिशत के बदले) 85 प्रतिशत की निधि का निवेश करने की अनुमति दे दी गई है।

8.65 दूसरी विशेष जमा योजना के अंतर्गत जो अप्रैल 1980 में शुरू की गई, जीवन बीमा निगम तथा सामान्य बीमा निगम और उसकी सहायक कंपनियां तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट भी 10 वर्षीय जमाओं में भारत सरकार के पास अपनी अतिरिक्त निधियों का निवेश भी करती हैं। शुरू शुरू में इसमें ब्याज की दर 10 प्रतिशत थी परन्तु अप्रैल, 1983 से इसे बढ़ाकर 11 प्रतिशत कर दिया गया है। अनुमान लगाया गया है कि इस योजना के अंतर्गत 1985–86 में विशेष जमाओं में निवल प्रोद्भूत राशि 320 करोड़ रुपए होगी। 1986–87 में कुल प्राप्तियां दूसरे स्तर पर रखी गई हैं।

8.66 गैर सरकारी भविष्य निधियों द्वारा विशेष जमाओं में जो निवेश होता है वह प्राय: बाजार से उधार ली गई राशि और अल्प बचत की राशियों को पूर्णत: काम में लाकर किया जाता है जबकि बीमा निगम द्वारा किया गया निवेश आंशिक तौर पर इस प्रकार का होता है। चूंकि बाजार से ली गई उधार राशि और अल्प बचतों की राशि का बंटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच होता है, जब कि विशेष जमा योजनाओं की राशि के साथ ऐसा नहीं होता। विशेष जमा योजना जो निकाल ली गई हैं एक ऐसा तरीका है जो राज्यों के हितों की उपेक्षा करके केन्द्र द्वारा अपनी बजटीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए निकाली गई है।

(viii) सार्वजनिक भविष्य निधि

8.67 केन्द्र में राज्य भविष्य निधियों में केवल केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालयों जैसी स्थायीवत् सरकारी संस्थाओं के कर्मचारी अभिदान कर सकते हैं। इन निधियों में अभिदान करने पर कर में सुविधाएं मिलती है। इन निधियों में प्रोद्भूत निवल राशि केन्द्र की पूंजीगत प्राप्ति होती है। अन्य गैर सरकारी कर्मचारी और अन्य सांविधिक और मान्यता प्राप्त भविष्य निधियों में अभिधान कर सकते हैं। परन्तु स्व नियोजितों को कर सुविधाएं प्रदान करने के लिए कोई भविष्य निधि सुविधा उपलब्ध नहीं है। उनकी बचतों को काम में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने 1968 में एक अधिनियम द्वारा सार्वजनिक भविष्य निधि योजना शुरू की जिसमें हर कोई शामिल हो सकता है। एक ऐसा व्यक्ति जो अविभाजित हिन्दु (संयुक्त) परिवार का सदस्य है, वह भी इस निधि में अभिदान हेतु अविभाजित हिन्दू (संयुक्त) परिवार की ओर से दूसरा खाता खोल सकता है। इस निधि में बकाया राशि पर धन कर से छूट मिलती है तथा इस पर अर्जित ब्याज पर आय कर नहीं लगता। इस निधि में अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 1985–86 में (संशोधित प्राक्कलन) तथा 1986–87 (बजट प्राक्कलन) दोनों के अनुसार 105 करोड़ रुपए की निवल राशि जमा होगी इस योजना को आकर्षक बनाने के लिए सार्वजनिक भविष्य निधि पर ब्याज की दर को 1986–87 में 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दिया गया है।

(ix) राष्ट्रीय जमा योजना

8.68 केन्द्र ने जुलाई 1984 में राष्ट्रीय जमा योजना शुरू की। ये जमाराशियां 4 वर्ष की अवधि के लिए हैं और इन पर 10.5 प्रतिशत ब्याज मिलता है। इन जमाओं का एक प्रमुख आकर्षण यह है कि अन्य अनुमोदित बचतों के

लिए उपलब्ध सुविधाओं के अतिरिक्त इन पर एक मात्र आय और धनकर की सुविधाएं भी मिलती हैं। हिसाब लगाया गया है कि 1985–86 (संशोधित प्राक्कलन) तथा 1986–87 (बजट प्राक्कलन) के अनुसार इनसे कुल वार्षिक प्राप्तियां 200 करोड़ रुपए ही होंगी।

(x) तेल और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की अतिरिक्त निधियों संबंधी जमा राशियां

8.69 अब से कुछ वर्ष पहले केन्द्रीय सरकार अपनी तेल और अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से यह अपेक्षा करती रही है कि वे अपनी अतिरिक्त निधियों को सार्वजनिक लेखा में जमा करें। राज्यों द्वारा इस प्रथा पर एतराज उठाने के लिए कोई वैध कारण नहीं हैं यदि ये इन उपक्रमों की वास्तविक अतिरिक्त बचतों तक सीमित हैं। बहुत सी राज्य सरकारें अब भी अपने उपक्रमों को उनकी अतिरिक्त बचतों की निधियों को अथवा यदि ये निधियों इतनी अतिरिक्त नहीं है तब भी अपने पास जमा करने देती है परन्तु हाल ही के वर्षों में केन्द्रीय सरकार का यह व्यवहार शुरू हो गया है कि वह राज्यों को संघीय उत्पाद शुल्कों में से अपने यथोचित हिस्से से वंचित करती रही है।

8.70 यदि केन्द्रीय सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के उत्पादों की कीमतें इस उद्देश्य से बढ़ानी हैं कि निवेशों पर उचित प्रतिलाभ प्राप्त हो सके तो इस पर राज्यों को एतराज नहीं होना चाहिए परन्तु जब सामान्यतः केन्द्र के तेल उपक्रमों के मामले में जैसा कि हाल ही में हुआ है ये कीमतें अतिरिक्त बचतों के करने के लिए बढ़ाई गई हैं जिन्हें उसके बाद सरकार के पास जमा कराया गया है, तो ऐसी स्थिति में इस व्यवहार के प्रति राज्यों की शिकायतें वैध हैं। यदि संबंधित उपक्रम निवेश पर अधिक प्रतिलाभ अर्जित कर रही है लेकिन उत्पाद की कीमत में वृद्धि करना या तो देश में खपत पर रोक लगाने या अधिक राजस्व कमाने के लिए समझा गया हो या दोनों के बढ़ाने के लिए ही हो, तो सही रास्ता यही है कि उत्पाद शुल्क बढ़ाया जाए। परन्तु इस मामले में, केन्द्र वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों के साथ अतिरिक्त राजस्व का बंटवारा करेगा। ऐसा करने से बचने के लिए केन्द्र इसके बजाय तेल उत्पादों की कीमतें बढ़ाता रहा है। इसके फलस्वरूप तेल उपक्रमों के पास बहुत अधिक अतिरिक्त निधि जमा हो गई हैं जिसे वे केन्द्रीय सरकार के सार्वजनिक लेखा में जमा कर रहे हैं। केन्द्र विश्व बाजार में कच्चे तेल और उसके उत्पादों में गिरावट के बावजूद भी पैट्रोलियम उत्पादों की कीमतें बढ़ाता रहा है और इस प्रकार अपनी अतिरिक्त निधियों में आगे और वृद्धि कर रहा है। इस स्रोत से केन्द्र सरकार को प्रतिवर्ष जो जमा राशि मिल रही है उसकी जानकारी बजट दस्तावेजों से नहीं मिल सकती। लगता है कि यह एक पर्याप्त राशि है। संभव है कि इसी प्रकार कुछ अन्य उपक्रमों को भी केन्द्रीय सरकार के पास जमा राशि के लिए अधिशेष कमाने के योग्य बनाया गया हो। राज्य यह अनुभव करते हैं कि उन्हें अतिरिक्त राजस्व के मामले में धोखा दिया गया है जो कि उन्हें संघीय उत्पाद शुल्कों में उनके हिस्से के रूप में उन्हें मिलता है। यदि कीमतों में वृद्धि के बजाय इन उत्पादों पर उत्पाद शुल्क बढ़ाया जाता।

(xi) अल्प बचत

8.71 जब से 1981–82 में 6 वर्षीय राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र के VI और VII की शृंखलाएं जारी किए गए जिन पर 12 प्रतिशत ब्याज मिलता है और निवल वसूलियों में गुणात्मक सुधार हुआ है। जब कि 1975–76 की समाप्ति पर अल्प बचतों के सभी माध्यमों के अंतर्गत कुल बकाया राशि 4,237 करोड़ रुपए थी परन्तु अनुमान लगाया गया है कि केवल 1985–86 ही में निवल (कुल) प्राप्तियां 4209 करोड़ रुपए की हुई।

8.72 अल्प बचत माध्यम केन्द्रीय सरकार की एक जिम्मेदारी है। आरंभ में निवल वसूलियां केन्द्र के लिए प्रोद्भूत होती है। प्रत्येक राज्य में निवल वसूलियों का दो तिहाई इसके बाद दीर्घ कालिक ऋणों के रूप में राज्य सरकारों को दे दिया जाता है। निवल वसूलियों का शेष एक तिहाई केन्द्रीय सरकार के पास रहता है।

8.73 अल्प बचतों से आहरण सकल वसूलियों पर पहला प्रभार होता है। आहरणों (निकाली हुई रकमों) की पूर्ति के बाद शेष रकम या नि निवल वसूलियों राज्यों के साथ बंटवारा होता है। चूंकि आहरणों की पूर्ति सकल वसूलियों से पहले ही पूरी कर ली जाती है अतः केन्द्र को राज्यों द्वारा अल्प बचतों ऋणों की अदायगी रकम उसको अपने पूंजीगत परिव्ययों के वित्त पोषण के लिए पूर्णतः उपलब्ध रहती है। राज्य केवल अल्प बचतों से कुछ समय के लिए अपनी निवल वसूलियों का अपना हिस्सा रख लेते हैं। केन्द्र को अल्प बचत ऋणों की अदायगी से राज्यों का अपना हिस्सा भी अन्ततः केन्द्र को मिल जाता हैं। केन्द्र से ऋणों की समाप्ति अवधि के दौरान केवल अल्प बचत से फायदा उठा लेते हैं।

8.74 केन्द्र ने अल्प बचतों में पहले जाने वाली कुछ निधियों को सीधे ही लेना चाहा है ताकि इस हद तक राज्यों की इन निधियों की दो तिहाई राशि के अस्थायी उपयोग से भी वंचित किया जा सके। अल्प बचत वसूलियां दो श्रेणियों के अभिदाताओं, परिवारों तथा गैर सरकारी भविष्य निधियों से की जाती है। हाल तक 1982–83 में उनका सापेक्षिक अंशदान 70 : 30 था। यह देखा गया है कि 1982–83 से परिवारों द्वारा अधिक मात्रा में अभिदान निवल वसूलियों में तेजी से वृद्धि के लिए मुख्यतः जिम्मेवार है परन्तु अल्प बचतों में भविष्य निधियों के अंशदान में इसकी अपेक्षा गिरावट आई है। अब 1986–87 से गैर सरकारी भविष्य निधियों की पिछले 30 प्रतिशत की सीमा की तुलना में सरकार के पास विशेष जमाओं में अपने निवल उपचयों की 85 प्रतिशत निवेशित करने की इजाजत दे दी गई है और विशेष जमा पर ब्याज की दर 11 प्रतिशत से बढ़ाकर 12 प्रतिशत कर दी गई है, इससे भविष्य निधियों में अंशदान के क्षेत्र में और अधिक गिरावट आ जाने की संभावना है। राज्य भविष्य निधि तथा सार्वजनिक भविष्य निधि पर 12 प्रतिशत ब्याज दर के दिए जाने तथा सार्वजनिक भविष्य निधि के मामले में आहरण की शर्तों के उदार बना दिए जाने से इन निधियों की जमा कराने के प्रति अपेक्षाकृत अधिक आकर्षण बढ़ेगा और इस प्रकार शायद अल्प बचत में निधियों (धन) के जमा होने पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यह तथ्य कि 1986–87 के बजट प्राक्कलनों में अल्प बचतों से (1985–86 के 4800 करोड़ रुपए की तुलना में 1986–87 में 5300 करोड़ रुपए) की निवल वसूलियों में केवल 10.4 प्रतिशत की वृद्धि के बारे में सोचा गया था जबकि 1985–86 में (1984–85 के 3,633 करोड़ रुपए की तुलना में 1985–86 में 4,800 करोड़ रुपए) की यह वृद्धि 32 प्रतिशत से अधिक थी। इस बात को संभवतः उपर्युक्त कारणों के प्रत्याशित प्रतिकूल प्रभाव द्वारा समझाया गया है।

8.75 यहां इस बात को दोहराया जा सकता है कि अल्प बचतों से निवल वसूलियां पूर्णतः केन्द्र की पूंजीगत प्राप्तियां होती हैं। किसी भी राज्य की निवल वसूलियों का दो तिहाई उस राज्य को दीर्घ कालिक ऋण के रूप में दिया जाता है जो कि किसी भी संवैधानिक दायित्व के अंतर्गत नहीं है बल्कि इस के संबंध में केन्द्र का अपना निर्णय है। संविधान इस संबंध में केन्द्र के रास्ते में नहीं आता यदि केन्द्र यह चाहे कि इस अंश को घटा दिया जाए या बिल्कुल ही समाप्त कर दिया जाए। वर्तमान स्थिति का अर्थ इससे अधिक और कुछ नहीं है कि राज्यों को केन्द्रीय ऋणों का एक हिस्सा उनके द्वारा की जाने की अल्प बचत वसूलियों से जुड़ा हुआ है जैसा कि इनका दूसरा हिस्सा राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता से जुड़ा हुआ है। राज्य ये दोनों प्रकार के ऋण किसी भी संवैधानिक अधिकार के रूप में प्राप्त नहीं करते बल्कि यह इन्हें काफी हद तक राज्यों को स्वेच्छा संसाधन अंतरण के रूप में प्राप्त करते हैं। इस प्रकार निवल वसूलियों की संपूर्ण राशि काफी हद तक केन्द्र की अपनी निवल पूंजीगत प्राप्ति है और इसलिए इसे इस दस्तावेज में इसी रूप में माना जाए। केन्द्रीय पूंजीगत प्राप्तियां सारणी 8.11 में दी गई हैं।

8.76 हाल के वर्षों की केन्द्र और राज्यों की पूंजीगत प्राप्तियों की तुलना सारणी 8.12 में की गई है।

8.77 अपने क्षेत्राधिकार के भीतर संविधान के अंतर्गत विकास के जिन क्षेत्रों में निवेश के लिए वित्त व्यवस्था के लिए पूंजीगत निधियों की राज्यों की बहुत ही अधिक और बढ़ती हुई आवश्यकताओं की तुलना में राज्यों की पूंजीगत प्राप्तियां अल्प हैं। इसके कारण उन्हें केन्द्र से ऋणों पर बहुत ज्यादा निर्भर रहना पड़ता है। वास्तव में पूंजीगत निधियों के लिए केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता राजस्व अंतरण की तुलना में कहीं अधिक है। संविधान में प्रत्येक पांच वर्ष में (या इससे भी पूर्व) नियुक्त किए जाने वाले वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राज्यों

को केन्द्र से राजस्वों के अंतरण की व्यवस्था की गई है परन्तु इसमें पूंजीगत निधियों की उनकी आवश्यकताओं की जांच करने और उसके लिए वित्त व्यवस्था के लिए तुलनात्मक संस्थागत व्यवस्थाओं का कोई उपबंध नहीं है। इसके अलावा संविधान ने राज्यों के लिए कुछ कर निर्धारित किए हैं परन्तु इसके उनके लिए कोई पूंजीगत प्राप्तियां निर्धारित नहीं की हैं। वास्तव में संविधान में राज्यों की पूंजीगत निधियों संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा गया। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पहले पांच वित्त आयोगों से कहा गया हो कि वे राजस्व लेखे के संबंध में राज्यों के अंतर के केवल विभिन्न पहलुओं की जांच करें। छठें वित्त आयोग को योजनेत्तर पूंजीगत लेखे के संबंध में राज्यों के संसाधनों में अंतर के बहुत ही सीमित प्रश्न को लेकर किए गए संदर्भ के मामले में वित्त मंत्रालय द्वारा उठाए गए कड़े विरोध का भी सामना करना पड़ा। योजना आयोग का फार्मूला जिसे एन० डी० सी० की गलत संज्ञा दी गई है, के होते हुए भी जिसमें राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के एक भाग को भी शामिल किया गया है। पूंजीगत लेखे के संबंध में राज्यों के योजना खर्च की तुलना में उनके संसाधनों में अंतर के संबंध में वित्त व्यवस्था करने का मामला अभी भी केन्द्र की स्वेच्छा पर ही निर्भर करता है। इसका केन्द्र राज्य संबंधी तथा संसाधन प्रयोग की कुशलता पर एक गंभीर प्रभाव पड़ रहा है।

8.78 पूंजीगत निधियों संबंधी राज्यों की आवश्यकताओं की समस्या की ओर आज तक यथोचित ध्यान नहीं दिया गया है। आश्चर्य तो यह है कि राज्यों की ओर से भी ऐसा नहीं किया गया है। इस समस्या का एक संतोषजनक और अंतिम हल यही होगा कि साधिकार पूंजीगत निधियों के संबंध में राज्यों की पहुंच की आवश्यक सुनिश्चित किया जाए जो उनकी निवेश संबंधी उचित आवश्यकताओं के अनुरूप हों। केन्द्र से स्वेच्छा के आधार पर ऋण सहायता को घटाकर न्यूनतम कर दिया जाए। इन मार्गनिर्देशों के आधार पर इस समस्या का समाधान होने पर सहकारी केन्द्र-राज्य संबंधों के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा हो सकती हैं संसाधन प्रयोग के संबंध में अधिकाधिक कार्यकुशलता लाई जा सकती है।

सारणी 8.11

केन्द्र की पूंजीगत प्राप्तियां

(करोड़ रुपये)

	1984-85-- (लेखा)	1985-86 (बजट प्राक्कलन	1985-86 (संशोधित प्राक्कलन)	1986-87 (बजट प्राक्कलन)
1	2	3	4	5
क. बजटीय प्राप्तियां	20,912.38	23,612.72	28,784.02	27,925.17
1. समेकित निधि निवल	8,770.06	11,029.86	10,897.07	12,450.70
(1) सकल प्राप्तियां	(9,877.18)	(12,409.68)	(17,223.39)	(14,680.42)
(i) बाजार ऋण	4,583.70	5,754.00	5,763.00	6,350.00
(ii) ऋणों और (अग्रिमों की वसूली)	2,653.33	2,977.77	2,981.67	3,726.05
(iii) अन्य मदें	637.18	1,002.10	1,155.16	1,226.47
(iv) बाह्य ऋण सहायता	2,002.77	2,675.77	2,323.56	3,377.30
2. अदायगी	(1,107.12)	(1,379.78)	(1,326.32)	(2,228.72)
(1) बाजार ऋण	488.16	654.10	663.03	1,050.47
(2) अन्य मदें	132.44	194.08	45.47	406.89
(2) सार्वजनिक लेखा	7,922.51	8,807.73	11,623.31	11,391.39
(1) अल्प बचत निवल	3,650.33	3,900.00	4,800.00	5,300.00
(2) भविष्य निधियां	429.30	370.05	416.15	430.77
(i) राज्य भविष्य निधियां	364.23	265.05	311.15	325.77
(ii) सार्वजनिक भविष्य निधि	65.07	105.00	105.00	1,05.00
(3) अन्य लेखे				
(i) डाक बीमा और जीवन वार्षिकी लेखा	39.47	22.86	16.86	19.07
(ii) अन्य लेखे	1,728.67	2,110,24	2,406.27	2,375.57
(4) जमा	(2,395.98)	(2,163.84)	(3,547.53)	(3,435.29)
(i) गैर सरकारी भविष्य निधियों की विशेष जमा	..	135.00	1,450.00	1,500.00
(ii) जीवन बीमा निगम सामान्य बीमा निगम की विशेष जमा	..	320.00	320.00	320.00
(iii) राष्ट्रीय जमा योजना	..	300.00	200.00	200.00
(iv) रेल बंध पत्रों की आय की जमा राशि	..	..	..	250.00
(v) परिवार पेंशन जीवन बीमा किश्त निधि आदि	..	364.97	422.73	686.58
(vi) आय जमा	..	—170.63	1,154.80	685.58
(5) आरक्षित निधियां निवल	..	142.84	56.12	98.84
(6) अग्रिम	..	—42.15	—63.54	—62.05
(7) उचंत, विविध तथा प्रेषण	..	140.09	83.92	209.10

सारणी 8.11 क्रमश:

1	2	3	4	5
3. निम्नलिखित द्वारा घाटे के लिए वित्त व्यवस्था की गई	3.745.15	3,316.10	6,118.34	3,649.80
(1) खजाना बिलों का निवल निर्गम	3,695.84	3,315.22	5,681.00	3,649.60
(2) नकद शेषों में गिरावट	49.31	0.88	437.34	0.14
4. कुल पूंजीगत प्राप्तियां	20,437.72	23,153.69	28,278.72	27,491.43
5. बाह्य अनुदान सहायता	474.66	459.03	505.30	433.74
ख. पूंजीगत बाजार से केन्द्रीय उपक्रमों द्वारा उधार	..	..	100.00	880.00
(1) बाजार उधार	..	..	..	..
(2) बंध पत्र जारी करना	..	..	100.00	880.00
ग. कुल पूंजीगत प्राप्तियां*	20,912.38	23,612.72	28,884.02	28,805.17

*1986–87 के केन्द्रीय सरकार के बजट संबंध स्पष्टीकरण ज्ञापन (पृ० 29) से स्पष्ट है कि 1985–86 (बजट प्राक्कलन), 1985–86 (संशोधित प्राक्कलन) तथा 1986–87 (बजट प्राक्कलन) के संबंध में केन्द्रीय सरकार की जो पूंजीगत प्राप्तियां हुई वे क्रमश: 17,421.62 करोड़ रुपये 18,845.64 करोड़ तथा 19,669.89 करोड़ रुपये हुई। जैसा कि नीचे दिखाया गया है।

ये अनुमान कुछ पूंजीगत प्राप्तियों को शामिल करते हुए लगाया गया है :

(करोड़ रुपये)

	1985–86 बजट प्राक्कलन	1985–86 संशोधित प्राक्कलन	1986–87 बजट प्राक्कलन
1. कुल पूंजीगत प्राप्तियां जैसा कि सारणी 8.11 में दिखाया गया है।	23,612.72	28,884.02	28,805.17
2. घटाइये	—6,191.10	—10,038.38	—9,135.28
(i) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रानिधि के अन्तर्गत अपनी मूल्य व्यवस्था को बनाये रखने के लिए जारी की गई प्रतिभूतियां	—500.00	—520.00	—755.54
(ii) केन्द्रीय सरकार के पास राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमा राशि जो बैंकों में वे उनके अतिरिक्त ईक्विटी निवेश के बदले रखती है।	..	—400.00	—400.00
(iii) अल्प बचतों में राज्यों का हिस्सा	—2,375.00	—2,900.00	—3,200.00
(iv) घाटे की अर्थ व्यवस्था	—3,316.10	—6,118.34	—3,649.74
(v) रेलों द्वारा बंध पत्रों का जारी किया जाना	..	..	—250.00
(vi) केन्द्रीय सरकार के स्वायत्त उपक्रमों द्वारा बंध पत्रों का जारी किया जाना	..	—100.00	—880.00
3. स्पष्टीकरण ज्ञापन में दिखाए गए अनुसार पूंजीगत प्राप्तियां	7,421..62	18,845.64	19,669.89

सारणी 8.12

केन्द्र तथा राज्यों की पूंजीगत प्राप्तियां

(करोड़ रुपये)

	1984–85		1985–86		
	राज्य*	केन्द्र	राज्य*	केन्द्र	
	(संशोधित प्राक्कलन)	(लेखा)	(बजट प्राक्कलन)	(संशोधित प्राक्कलन)	(लेखा)
1. बजटीय प्राप्तियां निवल	2,600.57	20,912.38	2,457.09	23,612.72	28,984.02
(1) घाटे की अर्थ व्यवस्था रहित	1,552.29	19,167.23	1,782.83	20,296.62	22,665.78
(2) घाटे की अर्थ व्यवस्था	1,048.28	3,745.15	674.26	3,316.10	6,118.34
2. स्वायत्तता प्राप्त गैर वित्तीय उपक्रमों द्वारा पूंजीगत बाजार से उधार	257.60	..	619.50	..	100.00
(1) बाजार उधार निवल	557.60	..	619.50	..	..
(2) बंध पत्र जारी करना	..	..	..	..	100.00
(3) विदेश में वाणिज्यिक उधार	उ०न०	..	उ०न०	उ०न०	...
3. कुल पूंजीगत प्राप्तियां निवल	3,158.17	20,912.38	2,076.79	23,612.72	28,884.02
	(1.0)	(6.6)	(1.0)	(7.7)	(9.4)

*राज्यों के अपनी निजी पूंजीगत प्राप्तियां मानो केन्द्र से लिए गए सभी नये ऋण इनमें शामिल नहीं है।

स्रोत : राज्यों के लिए : सारणी 7.5

केन्द्र के लिए : सारणी 8.11।

केन्द्र-राज्य संबंधों को लेकर राज्यों की वित्तीय निर्भरता का प्रभाव

9.1 केन्द्र पर राज्यों की वित्तीय निर्भरता का केन्द्र-राज्य संबंधों को लेकर स्पष्ट प्रभाव पड़ रहा है। राज्यों के क्षेत्राधिकार, प्राधिकार और पहल शक्ति का उत्तरोत्तर क्षय होता है जो राज्य के ढांचे में अपनी भूमिका के महत्व को घटा रहा है। राज्य के ढांचे को लेकर आंतरित संतुलन में जो परिवर्तन हो रहा है वह स्वयं निम्नलिखित प्रवृत्तियों का द्योतक है :—

(1) कुल योजना परिव्यय में राज्यों के हिस्से का घटाव

(2) राज्यों के विषय के संबंध में केन्द्रीय परिव्यय की बढ़ोतरी

(3) केन्द्रीय तथा केन्द्रीय प्रायोजित योजना संबंधी स्कीमों का प्रोद्भवन

(4) राज्यों में आयोजना प्रक्रिया पर केन्द्र का कड़ा नियंत्रण

(5) केन्द्र-राज्य संसाधनों के अंतरण के एक असंगत ढांचे तथा दोषपूर्ण परिकल्पिक मानदण्डों का लादा जाना

(6) तथा केन्द्र के प्रति राज्यों की बढ़ती हुई राजनीतिक अधीनता।

9.2 केन्द्र राज्य संबंधों की उपर्युक्त प्रवृत्तियों पर नीचे चर्चा की गई है :—

(1) कुल योजना परिव्यय में राज्यों के हिस्से का घटाव

9.3 जैसा कि प्रारंभ में संविधान में निर्धारित किया गया था उसके अनुसार केन्द्र तथा राज्यों के बीच बंटवारा कुछ इस प्रकार हुआ था कि इसके अनुसार यदि अपने क्षेत्राधिकार के भीतर क्षेत्रों का सही तौर पर विकास हो तो यह जरूरी है कि कुल योजना परिव्यय लगभग 50 प्रतिशत राज्यों को आवश्यक बांटा जाना चाहिए। जैसा कि सारणी 9.1 में दर्शाया गया है जो कि विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत प्रकल्पिक तथा वास्तविक परिव्यय को बताती है। व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ।

9.4 सारणी 9.1 दर्शाती है कि पहली पंचवर्षीय योजना में राज्यों का हिस्सा कुल योजना परिव्यय के 6.1.5 प्रतिशत के हिसाब से प्रकल्पित किया गया था चूंकि इस योजना के कार्यान्वयन में कमी मुख्यत: केन्द्रीय क्षेत्र में आई इसलिए राज्यों का हिस्सा वास्तविक योजना परिव्यय में 72.8 प्रतिशत तक रहा जो अधिक था। दूसरी पंचवर्षीय योजना में राज्यों का हिस्सा घटकर कुल योजना परिव्यय का 46.4 प्रतिशत रह गया। वास्तविक योजना परिव्यय से पता चलता है कि राज्यों का हिस्सा और भी कम था (41.4 प्रतिशत)। यह मुख्यत: इस कारण हुआ कि दूसरी पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय क्षेत्र में तीन एकीकृत इस्पात संयंत्रों के साथ साथ निर्माण के कारण इस क्षेत्र में योजना परिव्यय बढ़कर 26.19 करोड़ रुपए हो गया जबकि पहली पंचवर्षीय योजना में यह केवल 533 करोड़ रुपए थी यानि यह बढ़ोतरी 5 गुना हुई। तदनुसार कुल परिव्यय में राज्य क्षेत्र के हिस्से को काफी हद तक कम करके सीमित कर देना पड़ा। तृतीय पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय और राज्यों के बीच योजना परिव्यय के विभाजन को सामान्य से अधिक बहाल कर दिया गया। कुल योजना परिव्यय में राज्यों का हिस्सा 51.2 प्रतिशत निर्धारित किया गया और वास्तविक परिव्यय जो दिखाया गया उसमें राज्यों का हिस्सा 48.6 प्रतिशत ही था। वार्षिक योजनाओं के तीन वर्षों के दौरान वास्तविक योजना परिव्यय में राज्यों का हिस्सा और फिर घटकर 45.6 प्रतिशत रह गया गया। इस हिस्से में पांचवी पंचवर्षीय योजना में जिसे 1976 में अंतिम रूप दिया गया था, सुधार हुआ और यह हिस्सा 47.6 प्रतिशत हो गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के वास्तविक आंकड़ों से पता चलता है कि राज्यों के हिस्से में और बढ़ोतरी हुई जो 49.2 प्रतिशत हो गया। 1979-80 की वार्षिक योजना को जिस प्रकार कार्यान्वित किया गया उसमें राज्यों का हिस्सा कम करके 47.3 प्रतिशत कर दिया गया।

सारणी 9.1

कुल परिव्यय में राज्यों का हिस्सा

	योजित			वास्तविक		
	कुल योजना परिव्यय	राज्यों का हिस्सा		कुल योजना परिव्यय	राज्यों का हिस्सा	
		करोड़ रुपये	प्रतिशत		करोड़ रुपये	प्रतिशत
प्रथम पंचवर्षीय योजना	2356	1450	61.5	1960	1427	72.8
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	4800	2228	46.4	4600	1981	43.1
तृतीय पंचवर्षीय योजना	7500	3837	51.2	8577	4165	48.6
वार्षिक योजनायें	6665	2894	43.4	6756	3052	45.2
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना	15902	6606	41.5	16160	7364	45.6
पांचवी पंचवार्षीक योजना	39303	18717	47.6	40712	20019	49.2
वार्षिक योजना 1979-80	..	..	..	12601	5962	47.3
छठी पंचवर्षीय योजना	97500	48600	49.8	109645	48957	44.7
1980-81	15109	7414	49.1	14832	7526	50.7
1981-82	17418	8417	48.6	18210	8666	47.6
1982-83	20933	9540	45.6	21283	9588	45.1
1983-84	25481	11130	43.7	25088	10995	43.8
1984-85 (संशोधित प्राक्कलन)	40170	12261	40.6	30232	12181	40.3
सातवीं पंचवर्षीय योजना	180000	80698	44.8	..	..	..
1985-86	32239	13097	40.6	..	..	..
1986-87	39092	15850	40.7	..	..	..

स्रोत : (1) पंचवर्षीय योजना दस्तावेज (2) वार्षिक योजना—1985-86 (3) 1986-87 केन्द्रीय बजट दस्तावेज

(4) दर्शाता है कि उपलब्ध नहीं है।

9.5 छठी पंचवर्षीय योजना में राज्यों की योजना का परिव्यय कुल योजना परिव्यय के 49.8 प्रतिशत के हिसाब से प्रकल्पित किया गया। 1980-81 के दौरान जो छठी पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष था वह 50.1 प्रतिशत रहा। इसके बाद योजना परिव्यय में राज्यों के हिस्से को वर्षानुवर्ष कम किया गया जो 1984-85 में घटकर लगभग 40 प्रतिशत रह गया। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान राज्यों का वास्तविक योजना परिव्यय कुल योजना परिव्यय का 44.6 प्रतिशत बैठा जबकि प्रारंभ में यह सोचा गया था कि यह 49.8 प्रतिशत होगा। सातवी पंचवर्षीय योजना में इस नीति को जारी रखा गया। हालांकि योजना में राज्यों का हिस्सा कुल योजना परिव्यय का 44.8 प्रतिशत निर्धारित किया गया था परन्तु 1985-86 तथा 1986-87 की वार्षिक योजनाओं द्वारा यह क्रमश: कुल परिव्यय का केवल 40.6 प्रतिशत तथा 40.7 प्रतिशत ही रहा। लगता है कि शायद इन वर्षों में राज्य योजनाओं का वास्तविक परिव्यय का प्रतिशत और भी कम बैठे। वर्तमान प्रवृत्तियों को देखते हुए सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान राज्य योजनाओं का परिव्यय शायद कुल योजना परिव्यय के 40 प्रतिशत से अधिक न रहे। ऐसा दिखाई देता है कि कुल योजना परिव्यय में राज्यों के हिस्से को कारगर ढंग से घटाकर 40 प्रतिशत के आस पास कर दिया गया हैं।

9.6 इसके दो बड़े ही अवांछनीय परिणाम हुए हैं। प्रथमत: राज्य अपने क्षेत्राधिकार के भीतर क्षेत्रों के पर्याप्त विकास को सुनिश्चित नहीं कर पाए हैं। सामाजिक सेवाओं पर प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकीय और स्वास्थ्य संबंधी देखभाल सुविधाएं काफी हद तक अपर्याप्त हैं और बहुत ही घटिया किस्म की हैं। दूसरे चूंकि राज्यों को योजना परिव्यय योजना अवधि के भीतर उन सभी चीजों को पूरा नहीं कर पाता जिनके किए जाने की जरूरत है इसलिए केन्द्र राज्यों के क्षेत्राधिकार में काफी हस्तक्षेप करता रहा है। यह सब इस कारण हुआ कि योजना में धन लगाने के राज्यों के अपने निजी संसाधनों के बहुत ही अपर्याप्त होने का फायदा उठाते हुए केन्द्र ने कुल योजना परिव्यय में उनके हिस्से को काफी हद तक घटाकर कम कर दिया।

(2) राज्य के विषयों के संबंध में केन्द्रीय परिव्यय की बढ़ोतरी

9.7 अपनी योजना तथा योजनेतर संसाधनों के बहुत अधिक वृहत हो जाने के कारण, केन्द्र अब उन विषयों पर काफी मात्रा में धन खर्च कर सकता हैं जिनके बारे में प्रारंभ में यह सोचा गया था कि ये विषय पूर्णत: या काफी हद तक राज्य के विषय होंगे। इसके उदाहरण सारणी 9.2 में दिए गए हैं।

सारणी 9.2

चुने हुए विषयों पर केन्द्र का बजटीय व्यय

(करोड़ रुपयों में)

	1974–75			1985–86 (बजट प्राक्कलन)			1974–75 की तुलना में 1985–86 में कुल व्यय
	राजस्व लेखा	पूंजीगत लेखा	कुल	राजस्व लेखा	पूंजीगत लेखा	कुल	
1. पुलिस	169.24	..	169.24	653.87	653.87	653.87	3.9
2. कृषि एवं सम्बद्ध सेवाएं*	128.52	366.24	494.76	829.01	658.77	1487.78	5.4
3. बिजली	3.21	97.78	100.99	45.70	1643.18	1688.88	16.7
4. शिक्षा कला और संस्कृति	158.24	1.42	159.66	737.27	26.60	763.87	4.8
5. चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, साफसफाई और जल पूर्ति	68.77	1.34	70.11	353.43	22.42	375.85	6.3
6. परिवार कल्याण	58.59	0.19	58.78	494.94	4.74	499.68	8.5

स्रोत :—भारतीय आर्थिक सांख्यिकीय सार्वजनिक वित्त, दिसंबर 1985......विवरण 2.2 और 2.3 मुद्रित पृष्ठ 22 से 28

*स्वदेशी तथा आयातित उर्वरकों पर आर्थिक सहायता शामिल है परन्तु खाद्यान्नों संबंधी आर्थिक सहायता दिल्ली दुग्ध योजना और वनों संबंधी कार्य चालन खर्च इसमें शामिल नहीं है

पुलिस

9.8 सार्वजनिक व्यवस्था और पुलिस ये राज्य के विषय हैं (सूची II की प्रविष्टियां 1 और 2) जबकि भारत की रक्षा और सशस्त्र बल ये संघ सरकार के विषय हैं (सूची I की प्रविष्टियां 1 और 2) राज्यों और केन्द्र के बीच जिम्मेदारी के विभाजन में विधान मंडल के बिना संघ राज्य क्षेत्रों में पुलिस बल वास्तविक या संभाव्य बाह्य आक्रमण में सशस्त्र बलों की सहायता के लिए वास्तविक पैरा सैन्य बलों एवं रक्षा आसूचना स्थापनाओं का रखरखाव ही केवल केन्द्र वैध कार्यकलाप रहे होंगे। परन्तु वह अपनी वैध भूमिका से काफी आगे बढ़ गया। उसने रक्षा आसूचना के बजाय प्रमुखत: आंतरिक राजनीतिक गुप्तचरी के लिए एक बहुत बड़ी विस्तृत और यहां तक की नये ढंग से बनाई गई पुलिस ईकाई रखी। उसने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल जैसे कई एक बलों का निर्माण किया जिनका पूर्णत: या काफी हद पैरा-सैन्य बल की भूमिका निभाने के बजाय एक पुलिस के रूप में प्रयोग किया गया। इसने केन्द्र को अपने नियंत्रण में अन्य बल, मुख्यत: पुलिस बल की किस्म के बलों की स्थापना करने से भी नहीं रोका I 1976 में ही 42वें संविधान संशोधन के अनुसार सूची I में नई प्रविष्टि एक का समावेश किया गया जिसमें पहली बार अन्य कोई बल जो संघ के अधीन होगा का उल्लेख किया गया। उसी समय पुलिस से संबंधित राज्य की प्रविष्टि में सूची I की प्रविष्टि 2-क के उपबंधों के अधीन लाने के लिए संशोधन किया गया। संविधान में राज्यों पर प्रारंभ में जो प्रमुख जिम्मेदारी डाली थी उसमें केन्द्र के अधिक्रमण को वैध ठहराये जाने की इस प्रकार चेष्टा की गई। उसी समय राज्यों को नई चुनौतियों को सामना करने के के लिए अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए अपने उपस्कर और हथियारों के संबंध में अपने पुलिस बलों को आधुनिक बनाने की अनुमति नहीं दी गई। इसने उन्हें सिविल (नागरिक) शक्ति को सहायता देने के लिए केन्द्रीय पुलिस बलों की बार-बार मांग करने पर मजबूर कर दिया इस प्रकार केन्द्रीय बलों की मांग पैदा करके उनके निर्माण, रखरखाव और विस्तार को न्यायसंगत ठहराने की कोशिश की गई।

9.9 सार्वजनिक व्यवस्था और पुलिस के संबंध में केन्द्र के बढ़ते हुए अधिक्रमण का पुलिस खर्च में तेजी से हुई वृद्धि से पता चलता है। 1974-75 में यह 169.24 करोड़ रुपये था जबकि 1985-86 में बढ़कर 733.35 करोड़ रुपये (बजट प्राक्कलन के अनुसार) हो गया यानी 3.9 गुना बढ़ गया।

कृषि और ग्रामीण विकास

9.10 कृषि और संबद्ध सेवाएं तथा ग्रामीण विकास निस्संदेह राज्य के विषय हैं। इन्हें पूर्णत: सूची I और II से निकाल दिया गया केन्द्र का कृषि और संबद्ध सेवाओं के मामले में केवल जिसे संघ शासित प्रदेशों से संबद्ध है जिनमें विधान मंडल नहीं हैं। फिर भी केन्द्र का कृषि और संबद्ध सेवाओं पर (जिनमें स्वदेशी और आयातित उर्वरकों के बारे में आर्थिक सहायता का दिया जाना शामिल है परन्तु खाद्यान्न संबंधी आर्थिक सहायता, दिल्ली दुग्ध योजना और

वनों के कार्यचालन खर्च शामिल नहीं है) मिला जुला राजस्व और पूंजीगत व्यय तेजी से और लगातार बढ़ता जा रहा है। 1974-75 से यह 494.76 करोड़ रुपये था जबकि 1985-86 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) बढ़कर 2687.78 करोड़ रुपये हो गया यानी लगभग 11 वर्षों में 5.4 गुणा बढ़ गया)।

9.11 कृषि और ग्रामीण विकास के संबंध में राज्यों के क्षेत्राधिकार में केन्द्र के बढ़ते हुए अधिक्रमन की एक झलक इन विषयों पर उसकी वार्षिक योजना परिव्यय पर नजर डालने से मिल जाती है जो इन विषयों पर राज्यों के परिव्यय से भी ज्यादा बढ़ गया है। इसे सारणी 9.3 में दर्शाया गया है।

9.12 सारणी 9.3 से स्पष्ट है कि 1985-86 की वार्षिक योजना में कृषि और ग्रामीण विकास के लिए किए गए कुल उपबंध में से 50.2 प्रतिशत केन्द्र को आबंटित किया गया है और 48.4 प्रतिशत राज्यों को आबंटित किया गया है। केन्द्र के साथ विधान मंडल रहित संघ शासित प्रदेशों तथा ऐसे राज्यों के साथ जिनमें संघ शासित प्रदेश के विधान मंडल हैं, लेने पर केन्द्र और राज्यों के बीच सापेक्षिक आबंटन 50.6 प्रतिशत और 49.4 प्रतिशत बैठता है। जहां तक विकासात्मक योजना का संबंध हैं, कृषि तथा ग्रामीण विकास अधिकाधिक वस्तुतः केन्द्र का विषय बनता जा रहा है हालांकि सिवाय इसके कि 42वें संविधान संशोधन (1976) ने वनों को राज्य का विषय होने के बजाय समवर्ती विषय बना दिया है संवैधानिक स्थिति अपरिवर्तित रही हैं।

सारणी 9.3

1985-86 की वार्षिक योजना के अन्तर्गत कृषि और ग्रामीण विकास संबंधी परिव्यय

(करोड़ रुपयों में)

1. केन्द्र . . .	917.93	917.75	1,835.68 (50.2%)
2. राज्य . .	1,034.59	733.23	1,768.48 (48.4%)
3. संघ शासित प्रदेश .	45.01	5.57	50.58 (1.4%)
1. विधान मंडल सहित .	31.50	3.67	35.17 (1.0%)
2. विधान मंडल रहित .	13.51	1.90	15.4 (0.4%)
जोड़ .	1,997.53	1,656.55	3,654.08

स्रोत : वार्षिक योजना, 1985-86 सारणी 2.1 तथा 3.2 मुद्रित पृष्ठ 13 से 15 तथा 22 से 23

बिजली

9.13 बिजली समवर्ती विषय है। परन्तु 1970 के दशक के मध्य तक, बिजली विकास (निर्माण) की जिम्मेदारी काफी हद तक राज्यों पर छोड़ी गई थी जिन्होंने इस कार्य के लिए राज्य बिजली बोर्डों (एस०ई०बी०ज०) की स्थापना की थी। हाल के वर्षों में यह स्थिति तेजी से बदलती जा रही है। केन्द्र जिसके हाथ में संसाधनों की सर्वोच्च कमान है वह बड़े पैमाने पर बिजली उत्पादन के क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है। नई नीति की शुरूआत बिजली के क्षेत्र में 1975 दो नये केन्द्रीय उद्यमों यानी राष्ट्रीय पन बिजली निगम (एन०एच०पी०सी०) तथा राष्ट्रीय ताप बिजली निगम (एन०टी०पी सी०) की स्थापना से हुई। 1980-81 से आगे नेवेली लिग्नाइट कारपोरेशन द्वारा स्थापित प्रथम ताप बिजली केन्द्र (600 मेगावाट) ने भी क्षमता को बेहतर उपयोग करना शुरू कर दिया इसके बाद इस निगम से कहा गया कि वह 630 मेगावाट का एक दूसरा स्टेशन (केन्द्र और उसके पोषण के लिए दूसरी लिग्नाइट खान स्थापित करें न्यूक्लीय (नाभिकीय) बिजली केन्द्र केन्द्र क्षेत्रीय में ही रहे हैं। संस्थापित बिजली उत्पादन क्षमता में केन्द्र के बढ़ते हुए हिस्से का विवरण सारणी 9.4 में दर्शाया गया है।

सारणी 9.4

संस्थापित उत्पाद क्षमता (उपयोग) में केन्द्रीय क्षेत्र का हिस्सा

(मेगावाट)

संस्थापित क्षमता	की समाप्ति पर			1979-80 की तुलना में 1984-85 में वृद्धि
	1979-80	1984-85	1989-90	
1. कुल . . .	28,498	42,440	64,736	22,296
1. पन बिजली . .	11,384	14,465	19,385	5,390
2. ताप बिजली . .	16,424	28,880	43,081	14,201
3. न्यूक्लीय . .	640	1,095	1,800	705
2. केन्द्रीय क्षेत्र . .	3,400	6,758	16,078	9,320
1. पन बिजली . .	2,760	439	1,104	665
2. ताप बिजली . .		5,224	13,174	7,950
3. न्यूक्लीय . .	640	1,095	1,800	7,950
3. (1) की तुलना में (2) का प्रति	12.0	15.9	24.8	41.8
1. पन बिजली . .	9.9	3.0	5.6	12.3
2. ताप बिजली . .		18.1	30.1	56.0
3. न्यूक्लीय . .	100.00	100.00	100.00	100.00

स्रोत : (1) कुल संस्थापित क्षमता के संबंध में आर्थिक सर्वेक्षण 1985-86 सारणी 1.18 पृष्ठ 12.5

(2) केन्द्रीय क्षेत्र क्षमता के संबंध में सातवीं पंच वर्षीय योजना, 1985-90 खंड II अनुबंध 6.4 पृष्ठ 125

9.14 सारणी 9.4 स्पष्ट है कि 1979-80 में केन्द्रीय क्षेत्र के लिए संस्थापित बिजली उत्पादन क्षमता केवल 12.0 प्रतिशत बैठती थी (सोचा गया है कि 1989-90 तक उसका हिस्सा 1979-80 के स्तर से बढ़कर दुगने से ज्यादा यानी 24.8 प्रतिशत हो जाएगा। सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान सोची गई 22296 मेगावाट की कुल वृद्धि में से अन्दाजा यह लगाया गया है कि केन्द्रीय क्षेत्र का हिस्सा 41.4 प्रतिशत होगा। लगभग यह निश्चित ही जान पड़ता है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान केन्द्रीय क्षेत्र का हिस्सा संस्थापित क्षमता की कुल वृद्धि का एक बहुत बड़े भाग के बराबर बैठेगा। ऐसा दिखाई पड़ता है कि बिजली उत्पादन काफी हद तक एक केन्द्रीय विषय बनने जा रहा है।

9.15 उपर्युक्त विकास का एक परिणाम यह हुआ है कि देश के जो बहुत बड़ी मात्रा में पन बिजली संबंधी अप्रयुक्त अंतः शक्ति है उसके दोहन की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है केन्द्र ताप बिजली की क्षमता पर अधिक ध्यान दे रहा है जिसका विकास करना आसान है व्यापारिक मानदंडों के आधार पर जो अधिक लाभकारी है। छठी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर ताप बिजली क्षमता के मामले में केन्द्र के क्षेत्र का हिस्सा संस्थापित क्षमता का 18.1 प्रतिशत था और पन बिजली का हिस्सा केवल 3.0 प्रतिशत था। सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में केन्द्र क्षेत्र ताप बिजली क्षमता में कुल वृद्धि में 56 प्रतिशत का योगदान देगा तथा पन बिजली क्षमता में केवल 12.3 प्रतिशत की वृद्धि में योगदान देगा। यदि केन्द्र पन बिजली विकास (निर्माण) में महत्वपूर्ण भूमिका अदा भी करना चाहे तो भी राष्ट्रीय पन बिजली निगम इस काम की जिम्मेदारी लेने की स्थिति में नहीं है। राज्यों के पास इस काम के लिए कोई संसाधन नहीं है यदि उनमें से कुछ के पास इसके लिए संगठन और विशेषज्ञ भी हों। इस स्थिति के लिए अनेक क्षेत्रों को गंभीर परिणाम सहने पड़ रहे हैं। उदाहरण के तौर पर

हिमाचल की बृहत पन बिजली संभाव्यता का विकास न कर पाना पंजाब, हरियाणा और हिमाचल राज्यों के आर्थिक विकास में एक प्रमुख बाधा बन गया है ।

9.16 बिजली के समवर्ती सूची में होने से यह वह क्षेत्र है जिसमें जो कुछ पैरा 6.59 में बताया गया है उसके अलावा की तुलना में संघ राज्यों की भूमिका के संबंध में एक दूसरा मुद्दा उठ खड़ा हुआ है । हाल ही में विगत में देश में बिजली के उत्पादन और वितरण में संघ की भूमिका का बड़ी तेजी से विस्तार हुआ है । विशाल वित्तीय संसाधनों की सहायता से संघ सरकार ने राष्ट्रीय ताप बिजली निगम और राष्ट्रीय पन बिजली निगम की स्थापना की है जिसके योजना कार्यक्रम किसी भी राज्य कार्यक्रमों से बड़े हैं ।

एक ऐसा क्षेत्र जो पहले काफी हद तक राज्यों के कार्यकलाप की परिधि के भीतर आता था उसमें भी राज्यों पर धीरे धीरे छा जाने के अलावा, इससे संघ का अप्रचुर संसाधनों जैसे कोयला, विदेशी मुद्रा तथा बिजली उत्पादन और संचरण उपस्कर पर दाबे में भी वृद्धि हो जाती है जो इस क्षेत्र में राज्यों के कार्यों की गति पर प्रभाव डाल सकते हैं । यह सुनिश्चित करने का कोई तरीका निकालने की जरूरत है कि इस क्षेत्र में संघ सरकार के कार्यकलाप पूर्णतः तकनीकी एवं आर्थिक प्रयोजनों पर आधारित हो और न कि केवल संघ के पास उपलब्ध विशाल संसाधनों के परिणामस्वरूप हों । इसके अतिरिक्त केन्द्र द्वारा बिजली का उत्पादन अनिवार्यतः राज्यों के लिए होता है और व्यवहारतः इस क्षेत्र के राज्यों को केन्द्रीय परियोजनाओं से बिजली का आबंटन किया जाता है । चूंकि इन उत्पादों के अंतिम प्रयोगकर्ता राज्य ही है इसलिए निश्चित रूप से इस क्षेत्र में संघ की परियोजनाओं और कार्यकलापों की आयोजना निष्पादन और प्रबंध में राज्यों की बात सुनी जानी चाहिए । परन्तु इस समय संघ का नियंत्रण पूर्णतः निरंकुश है और इस मामले में राज्यों की कोई बात नहीं मानी जाती है यह प्रस्ताव किया जाता है कि राज्यों का बिजली के उत्पादन तथा वितरण संचरण से संबंधित केन्द्रीय निगमों के निदेशक मंडलों में प्रतिनिधित्व हो ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके इनसे जो लाभ मिलते हैं वे राज्यों को सही ढंग से और तत्परता के साथ मिल सके ।

उद्योग

9.17 सिवाय उन उद्योगों के जो सूची I की प्रविष्टियां 7 और 52 के कार्य क्षेत्र में आते हैं, संविधान में उद्योग को राज्य का विषय बनाया गया । व्यवहार में अपवाद नियम बन गया है और नियम अब अपवाद बन गए हैं । वस्तुतः उद्योग संघ का विषय बन गए हैं । प्रविष्टि सं० 52 के संदर्भ में जो उद्योग विकास और नियंत्रण अधिनियम पारित किया गया उसने केन्द्र को वास्तव में अपने कार्य क्षेत्र में सभी बड़े और मझले उद्योगों को लाने के योग्य बना दिया है । केन्द्र के पास काफी ज्यादा संसाधनों के होने से तथा राज्य की योजनाओं की तैयारी पर उसके द्वारा कड़ा नियंत्रण रखे जाने से केन्द्र के लिए एक साथ यह संभव हो पाया है कि वह सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े और मझले उद्योगों के विकास पर एकाधिकार नियंत्रण रखने के लिए उपर्युक्त अधिनियम द्वारा किए गए अवसर का प्रयोग कर सकता है । जैसा कि सारणी 9.5 में दिया गया है उससे केन्द्र और राज्यों के बीच उद्योगों के लिए योजना के बंटवारे का पता चलता है ।

सारणी 9·5

उद्योगों और खनिजों के लिए योजना आबंटन का वितरण

उद्योग/क्षेत्र	ग्रामीण और लघु उद्योग				बड़े और मझले उद्योग			
	सातवीं पंचवार्षीय योजना		वार्षिक योजना 1985–86		सातवीं पंचवर्षीय योजना		वार्षिक योजना 1985–86	
	करोड़ रु० में	%	करोड़ रु० में	%	करोड़ रु० में	%	करोड़ रु० में	%
1. उद्योग जिनमें पैट्रोलियम और कोयला शामिल नहीं हैं . . .	2752.74	100.0	549.94	100..0	19708.09	100.0	4063.76	100.0
1. केन्द्र . . .	1284.84	46.7	313.00	56.9	17268.13	87.6	3670.04	90.3
2. राज्य . . .	378.52	50.1	222.87	40.5	2407.36	12.2	388.27	9.6
3. संघ शासित प्रदेश . .	89.38	3.2	14.07	2.6	33.60	0.2	5.45	0.1
2. पैट्रोलियम और कोयला . .	..	..	..	..	20028.25	100.0	4082.00	100.0
1. केन्द्र . . .	..	..	..	..	20028.25	100.0	4082.00	100.0
2. राज्य . . .	..	..	..	..	..	..	..	..
3. संघ शासित प्रदेश . .	..	..	..	..	..	..	..	..
3. जोड़	2752.74	100.00	549.94	100.0	39736.34	100.00	8145.76	100.0
1. केन्द्र . . .	1284.84	46.7	313.00	56.9	37296.38	93.9	7752.04	95.7
2. राज्य . . .	1378.52	50.1	222.87	40.5	2407.36	6.0	388.27	4.8
3. संघ शासित प्रदेश . .	89.38	3.2	14.07	2.6	32.60	0.1	5.45	0.1

स्रोत : (1) सातवीं पंचवर्षीय योजना 1986.90 सारणी 3.4(ख), मुद्रित पृष्ठ 27 से 29 ।
(2) वार्षिक योजना 1985–86, अनुबन्ध 2.1, मुद्रित 13 से 15 ।

9.18 सारणी 9.5 से स्पष्ट है कि सातवीं पंचवर्षीय योजना में ग्राम और लघु उद्योग के लिए इस प्रकार वितरण किया गया है केन्द्र, 46.7%; राज्य, 50.1%; तथा संघ शासित प्रदेश, 3.2%, बड़े और मझले उद्योगों के लिए (पैट्रोलियम और कोयला उद्योग भी शामिल हैं) तदनुरूप आबंटन है: केन्द्र, 93.9; राज्य, 6%; तथा संघ शासित प्रदेश, 0.1% । उद्योग के इन दोनों खंडों को एक साथ लेने पर जो आबंटन का हिसाब बैठता है, वह है : केन्द्र, 90.8%; राज्य 8.9%; संघ शासित प्रदेश, 0.3%। 1985-86 की वार्षिक योजना में उद्योग और खनिजों के लिए तदनुरूप आबंटन इस प्रकार है—केन्द्र 92.8%; राज्य, 7.0%; तथा संघ शासित प्रदेश 0.2%। इससे पता चलता है कि वर्तमान प्रवृत्तियों के आधार पर सातवीं पंचवर्षीय योजना के वास्तविक आंकड़ों में केन्द्र के हिस्से को और अधिक दर्शाये जाने की संभावना है और तद्नुसार राज्यों के हिस्से को कम, यहां तक कि इसके प्रारंभिक योजना मे भी कम दर्शाये जाने की संभावना है । स्पष्ट है कि उद्योग वस्तुत. एक केन्द्रीय विषय बन गए हैं और सूची II की प्रविष्टि 24 के लिए अपवाद नियम बन गए हैं

जिसने नियम को महत्वहीन एक अपवाद बना दिया है। यह सब कुछ 1956 के सातवें संशोधन के अकाल एक संवैधानिक संशोधन के बिना हुआ है। ऐसा करने के केन्द्र के वित्तीय संसाधन एक महत्वपूर्ण कारण रहे हैं।

शिक्षा

9.19 सूची I की प्रविष्टियां 63 से 66 के कार्यक्षेत्र के भीतर एक सीमित संख्या में संस्थाओं को छोड़कर शिक्षा प्रारंभ में एक राज्य का विषय था। (सूची II की प्रविष्टि ii) केन्द्र ने राज्यों की जिम्मेदारी के क्षेत्र के इस भाग का अधिक्रमण करने के लिए अपने श्रेष्ठ वित्तीय संसाधनों और राजनीतिक अधिपत्य का प्रयोग किया। उसने यहां तक की विद्यालयों के क्षेत्र को भी नहीं छोड़ा। जब सूची II (प्रविष्टिII) से सूचीIII(प्रविष्टि 25) में शिक्षा का अंत ब्यालिसवें संशोधन के अनुसार किया गया तो इसे विस्तृत किये जाने वाले अधिक्रमण को 1976 में वैध ठहरा दिया गया। केन्द्र का शिक्षा पर व्यय जिसमें कलाओं और संस्कृति भी शामिल हैं जो 1974-75 में 158.24 करोड़ रुपए था। 1985-86 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) बढ़कर 763.87 करोड़ रुपए हो गया, यानी 4.8 गुना बढ़ गया। शिक्षा को सूची II से हटाकर सूची III में रखे जाने से इस क्षेत्र में केन्द्रीय कार्यकलाप के तेजी से विस्तार का रास्ता खुल गया। नई शिक्षा के परिप्रेक्ष्य का पता केन्द्र द्वारा अपनाई गई नई शिक्षा नीति (1970) से चलता है। 1985-86 की वार्षिक योजना में केन्द्र (जिसमें विधान मंडल सहित संघ शासित प्रदेश भी शामिल हैं)। जो 1974-75 में 158.24 करोड़ रुपए था। 1985-86 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) बढ़कर 763.87 करोड़ रुपए हो गया, यानी 4.8 गुना बढ़ गया। शिक्षा को सूची II से हटाकर सूची III में रखे जाने से इस क्षेत्र में केन्द्रीय कार्यकलाप के तेजी से विस्तार का रास्ता खुल गया। नई शिक्षा के परिप्रेक्ष्य का पता केन्द्र द्वारा अपनाई गई नई शिक्षा नीति (1980) से चलता है। 1985-86 की वार्षिक योजना में केन्द्र (जिसमें विधानमंडल सहित संघ शासित प्रदेश भी शामिल है) का शिक्षा जिसमें कला और संस्कृति तथा युवा कार्य और खेल भी शामिल हैं। पर खर्च पहले से ही कुल योजना परिव्यय के एक तिहाई से अधिक बैठना है।

चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई एवं जल पूर्ति

9.20 सूची II की प्रविष्टि 6 के अनुसार चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई एवं जल पूर्ति राज्य के विषय है। जल पूर्ति एक सम्बद्ध कार्य है। परन्तु केन्द्र ने राज्य की जिम्मेदारी के इस क्षेत्र में घुसने में संकोच नहीं किया। 1974-75 की तुलना में 1985-86 (बजट प्राक्कलन के अनुसार) केन्द्र का इन विषयों पर खर्च 5 4 गुना बढ़ गया। 1985-86 की वार्षिक योजना में केन्द्र (जिसमें विधानमंडल रहित संघ शासित प्रदेश भी शामिल हैं) का इन विषयों पर खर्च कुल योजना परिव्यय का एक तिहाई बैठता हैं।

परिवार नियोजन

9.21 प्रारंभ में परिवार नियोजन का विषय तीनों सूचियों में से किसी में भी नहीं था। संविधान सभी के सदस्यों ने या तो इस कार्य के बारे में न सुना हो या यह सच हो कि यह गांधीवाद विचार धारा के बहुत ही विरुद्ध है या इस देश के लिए यह बहुत ही असंगत हैं। चूंकि परिवार नियोजन सुविधाएं और सेवाएं चिकित्सा तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के सदृश हैं और चूंकि परिवार नियोजन के उत्प्रेरक पहलू को जनसामान्य को शिक्षित करने के लिए तत्व के रूप में समझा जा सकता है और चूंकि बाद के ये दोनों विषय ही राज्य के मामले हैं इसलिए राज्य ही वे उपयुक्त एजेन्सी हैं जिन्हें ये जिम्मेदारी सौंपी जा सकती थी। परन्तु केन्द्र ने उसे अन्यथा समझा। संभवतः उसने यह महसूस किया कि उसके पास ही केवल इस कार्यक्रम की लागत वहन करने के संसाधन हैं। केन्द्र ने स्वयं अपने ऊपर परिवार नियोजन कार्यक्रम का आयोजन करना इसके लिए और वित्त व्यवस्था करने की जिम्मेदारी ले ली। जब यह विषय संजय गांधी की सनक का विषय बन गया खासतौर पर जबकि आपातकालीन अवस्था में उसके हाथों में वस्तुतः अनियंत्रित शक्ति सौंप दी गई तो उसने असल में इस विषय को राष्ट्र की सर्वोच्च प्राथमिकता दी। परिवार नियोजन पर केन्द्र का खर्च एक ही वर्ष (1975-76) में बढ़कर योजना का दो गुना हो गया। इस संदर्भ में ही केन्द्र ने आपात कालीन शासन प्रणाली ने इस विषय को मान्यता दे दी और इसे केन्द्र के कार्यक्षेत्र के भीतर ले आया। संविधान के बयालीसवें संशोधन (1976) ने जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन की सूची III की प्रविष्टि 20-क के रूप में एक समवर्ती विषय बना दिया। यद्यपि अभी भी यह एक समवर्ती विषय है परन्तु केन्द्र ने परिवार नियोजन पर योजना परिव्यय के लिये वित्त व्यवस्था करने के एक मात्र जिम्मदारी को वहन किया है।

9.22 उपर्युक्त विषय प्रमुख जबरदस्ती प्रवेश किए जाने वाले ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें केन्द्र ने राज्यों "संवैधानिक क्षेत्राधिकार" का अधिक्रमण किया है। इससे केन्द्र के घुसपैठ की सूची खत्म नहीं हो जाती। वास्तव में केन्द्र अपने अधिकाधिक वित्तीय संसाधनों को पहुंच का लाभ उठाकर बहुत से मामलों में राज्यों के क्षेत्राधिकार और प्राधिकार को कुतरता जा रहा है। उपर्युक्त उदाहरण काफी हद तक इस बात के सूचक हैं कि केन्द्र संविधान के अन्तर्गत राज्य की जिम्मेदारी की प्रारंभिक योजना में केन्द्र का अतिक्रमण कितनी गंभीरता से और लगातार बढ़ता जा रहा है।

(3) केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमों का प्रोद्भवन

9.23 राज्यों की जिम्मेदारी के क्षेत्र पर अपने स्वयं के विकास की प्राथमिकता और अधिमान्यताओं को भी लादने तथा राज्यों पर अपने प्रभाव और नियंत्रण और अधिक सुदृढ़ करने के लिए केन्द्र द्वारा जो एक कारगर तरीका अपनाया गया है वह है केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना संबंध स्कीमें। ये स्कीमें जैसा कि प्रारंभ मे संविधान में दर्ज की गई थी अधिकांश राज्यों के जिम्मेदारी के दर्जे से संबंधित हैं और वास्तव में राज्यों द्वारा कार्यान्वित की जाती हैं। ये स्कीमें राज्यों से परामर्श के किए बिना केन्द्रीय मंत्रालय द्वारा आपस में चर्चा करके तैयार कर ली जाती हैं योजना आयोग की बात भी इस मामले में बहुत कम सुनी जाती हैं या उन्हें इसकी पहले से कोई सूचना नहीं होती। कुछ एक मामलों में इन स्कीमों के लिए केन्द्र पूर्णतः वित्त व्यवस्था करता है परन्तु तदनुरूप योगदान के आधार पर केन्द्र सामान्यतः इसकी लागत के एक हिस्से पर धन लगाता है। दूसरे शब्दों मे सभी मामलों में केन्द्र का योगदान केन्द्रीय सहायता के रूप में उद्दिष्ट के अनुसार होता है। यह योगदान केन्द्रीय क्षेत्र योजना का हिस्सा है ताकि जबकि राज्यों द्वारा जो तदनुरूप योगदान दिया जाता है उसकी व्यवस्था राज्य योजना से की जाती है।

9.24 सामान्यतः राज्यों ने केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा आयोजित योजना स्कीमों की अनेक कारणों से आलोचना की है। प्रथमतः इन योजनाओं के अन्तर्गत आने वाले विषयों के संबंध में, राज्यों की जिम्मदारी के क्षेत्र मे अपने खुद के विचारों और अधिमान्यताओं के अनुसार विकास करने की पहल शक्ति अपनाने और अवसर का लाभ उठाने से वंचित किया जाता है। इस प्रकार राज्य की भूमिका को घटाकर केन्द्र के विचारों और अधिमान्यताओं को कार्यान्वित करने के लिए छोड़ दिया गया है। दूसरे स्कीमों के परिणामस्वरूप राज्यों के संसाधनों का गलत दिशाओं में प्रयोग होता है। तदनुरूप केन्द्रीय सहायता का प्रलोभन राज्यों को अपनी खुद की योजनाओं की उपेक्षा करने या यहां तक कि उन्हें त्याग करने के लिए प्रेरित करना है चाहे वे अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के संबंध में इन पहले वाली स्कीमों का कम उपयोगी तथा प्राथमिकताओं वाली और बिना सोचे समझे बनाई गई स्कीम ही क्यों न समझे। बहुत से राज्य इस तथ्य को उजागर किए बिना नहीं रह सकते कि उनकी प्राथमिकताओ का क्रम कुछ अलग है और यदि केन्द्रीय और केन्द्रीय स्कीमों के लिए जो तदनुरूप केन्द्रीय सहायता के रूप में राशि उन्हें उपलब्ध है वह इसके बजाय उन्हें राज्य योजना स्कीमों के लिए बिना किसी बंधन के सहायता के रूप में उपलब्ध होती तो पर्याप्त रूप से विकास परिव्ययों का एक विभिन्न ढांचा उभर कर उगता। तीसरे इन स्कीमों के लिए उपलब्ध की गई केन्द्रीय सहायता राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के रूप में अंतरण के लिए केन्द्र द्वारा उपलब्ध राशि में कटौती कर देती है। दूसरे शब्दों में ऐसी निधियों की जिस प्रचुरता को राज्य अपने लिए कम उपयोगी समझते हैं उनके स्थान पर उनके द्वारा ऐसी निधियां प्राप्त कर भी जाती हैं जो अधिक उपयोगी होती है। अंत में राज्य इस बात से भी खफा है कि उन्हें याचक बनकर केन्द्रीय मंत्रालयों के दरवाजों पर खड़ा रहना पड़ता है और इससे जो अवसर केन्द्रीय मंत्रालयों को मिलता है वह उन्हें राज्य सरकारों और उनके कर्मचारियों पर अपनी श्रेष्ठता का रौब गांठने का मौका देता है।

9.25 राज्य केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के संबंध मे अनेक मांगें लगातार और जोर देते हुए प्रस्तुत करते रहे हैं। प्रथमतः इन स्कीमों में कटौती करके इन्हें न्यूनतम बनाना चाहिए तथा राज्य की जिम्मेदारी के केवल ऐसे क्षेत्रों तक सीमित करना जरूरी है जिनका संबंध महत्वपूर्ण राष्ट्रीय लक्ष्यो

की प्राप्ति से जुड़ा हुआ हो तथा इस प्रकार उपर्युक्तानुसार जो निधि आवंटित की जाए उसे राज्य योजनाओं के लिए अधिकाधिक केन्द्रीय सहायता के रूप में राज्यों को उपलब्ध कराया जाए। तीसरे, कुछ ऐसी केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों, जो रखी उनके लिए केन्द्र सरकार शत प्रतिशत धन की व्यवस्था करके ताकि इन स्कीमों के लिए राज्य की निधियों को न लगाया जाए। चौथे, नई स्कीमें एक नई पंचवर्षीय योजना की शुरुआत में ही चलाई जाए या अधिक से अधिक एक नई नई वार्षिक योजना के शुरू में चलाई जाए और योजना के दौरान न चलाई जाए। अंत में राज्यों को अपनी विशिष्ट स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर इन स्कीमों मे समायोजन करने की यथोचित स्वतंत्रता दी जाए ताकि इनसे स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति बेहतर तरीके से हो सके।

9.26 राज्यों की समुचित उपर्युक्त मांगें काफी तर्कसंगत हैं परन्तु विस्तारवादी केन्द्र की ओर से इन पर बहुत ही कम अनुक्रिया हुई है। केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों को प्रोद्भवन ने रोक-टोक जारी है और शब्दशः अब इनकी संख्या सैंकड़ों में हो गई है। कुछ कारण से यहां तक की न तो पंचवर्षीय योजना और न ही वार्षिक योजना के दस्तावेजों में इन स्कीमों की एक विस्तृत सूची दी गई है इससे भी अधिक बात यह है कि प्रत्येक ऐसी स्कीम के संबंध में की गई व्यवस्था का भी उल्लेख नहीं है। 1985-86 के लिए केन्द्रीय बजट संबंधी स्पष्टीकरण ज्ञापन में इस स्कीमों के अन्तर्गत आने वाले केवल व्यापक क्षेत्रों का संकेत है। तथा प्रत्येक ऐसे क्षेत्र के लिए आबंटन परन्तु इसे सूचना को भी 1986-87 के लिए केन्द्रीय बजट संबंधी स्पष्टीकरण ज्ञापन से हटा दिया गया है। ऐसी स्थिति में ऐसी स्कीमों के लिए एक सूची का संकलन किया गया था जिनके लिए 1986-87 के लिए पंजाब के बजट मे व्यवस्था की गयी थी। वास्तव में ये स्कीमे एक बहुत बड़ी संख्या में हैं। विकास के शीर्षों/उप शीर्षों के अनुसार इन स्कीमों के लिए किए गए बजटीय व्यवस्था का सार सारणी 9.6 में दिया गया है।

सारणी 9·6

विकास के शीर्षों/उपशीर्षों के अनुसार केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के लिए पंजाब के बजट में व्यवस्था

शीर्ष/उप शीर्ष	1985–86 (संशोधित प्राक्कलन)			1986–87 (बजट प्राक्कलन)		
	अनुदान	ऋण	कुल	अनुदान	ऋण	कुल
I. सामाजिक और सामुदायिक सेवाएं .	3,017.73	100.00	3,117.73	4,078.91	..	4,078.91
1. शिक्षा . . .	182.82	..	182.82	205.78	..	205.78
2. चिकित्सा . . .	58.15	..	58.15	132.85	..	132.85
3. परिवार नियोजन . .	1,815.64	..	1,815.64	2,775.76	..	2,775.76
4. सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई और जल पूर्ति . . .	419.50	..	419.50	457.20	..	457.20
5. शहरी विकास . .	31.00	100.00	131.00	..	..	..
6. सामाजिक सुरक्षा और कल्याण .	515.22	..	515.22	607.32	..	607.32
II. आर्थिक सेवाएं . . .	3,519.28	539.51	4,112.79	4,048.84	395.07	4,443.91
1. सहकारिता . . .	681.07	457.51	1,138.58	688.99	266.07	955.06
2. कृषि . . .	575.29	..	575.29	1,024.71	..	1,024.71
3. लघु सिंचाई . . .	140.25	..	140.25	175.84	..	175.84
4. मृदा तथा जल संरक्षण .	11.21	..	11.21	20.50	..	20.50
5. पशु पालन . . .	165.00	..	165.00	164.07	..	164.07
6. मत्स्य पालन . .	34.00	31.00	65.00	46.00	19.00	65.00
7. वन . . .	236.40	..	236.40	429.00	..	429.00
8. सामुदायिक विकास कार्यक्रम .	1,432.16	..	1,432.16	1,190.50	..	1,190.00
9. ग्राम और लघु उद्योग . .	199.30	35.00	234.30	269.30	50.00	319.23
10. सड़कें . . .	40.00	70.00	110.00	40.00	60.00	100.00
III कुल व्यवस्था . .	6,537.01	639.51	7,230.52	8,127.75	395.07	8,522.82

9.27 कुछ और संभव है कि ऐसी बहुत सी स्कीमें हैं जिनका लाभ पंजाब द्वारा अभी तक नहीं उठाया गया है या जो राज्य के विकास की जरूरतों के लिए लिहाज से संगत न हों। यहां तक कि पंजाब की सूची से पुष्टि होती है कि ऐसी स्कीमें सैकड़ों में हैं तथा और अधिक स्कीमें इनमें जोड़ी जा रही हैं। इस सूची का अवलोकन करने पर पता चलता है कि विशिष्ट स्थानीय परिस्थितियों और जरूरतों को ध्यान में रखकर देखा जाए तो इनमें से कुछेक स्कीमें तो ऐसी हैं जिनके बारे में यह समझा जाता है कि उन पर चर्चा करना और योजना बनाना राज्यों की क्षमता के बाहर की बात है। इसके लिए कोई वैध कारण नहीं है कि क्यों न इन स्कीमों और को पूर्णतः राज्यों की योजना के लिए अंतरित कर दिया जाए। केन्द्रीय मंत्रालय अपने आपको इनके बारे में इस हद तक सीमित कर सकते हैं इन स्कीमों में से कुछेक के लिए यदि कोई अंतः स्कीम तालमेल की जरूरत हो तो वह इनकी व्यवस्था करे। इन स्कीमों के लिए जो केन्द्रीय सहायता के रूप में प्रलोभन निर्धारित किया गया हो वह राज्यों से यथोचित सहयोग लेने के लिए अपरिहार्य नहीं होना चाहिए। यदि केन्द्रीय लेने के लिए अपरिहार्य नहीं होना चाहिए। यदि केन्द्रीय मंत्रालयों तालमेल के बारे में सही ढंग से सोचा गया हो और इसके लिए राजी कर लिया गया हो तो राज्यों की ओर से आवश्यक ही इसकी सकारात्मक प्रतिक्रिया होगी।

9.28 परन्तु ऐसा लगता है कि केन्द्र इस ओर उन्मुख नहीं होना चाहता। केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों की संख्या बढ़ती जा रही है और यह राज्यों को की जाने वाले कुल अनुदान सहायता के एक बढ़ते हुए हिस्से का दावा कर रही है। सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों के लिए आंकड़े सारणी 9.7 में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

सारणी 9.7

योजना स्कीमों के लिए राज्यों को केन्द्रीय अनुदान सहायता

योजना स्कीमें	1985-86 (संशोधित प्राक्कलन)		1986-87 (बजट प्राक्कलन)	
	करोड़ रुपये	प्रतिशत	करोड़ रुपये	प्रतिशत
1. केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमें	2,645.51	50.8	2,997.44	53.6
2. राज्य योजना स्कीमें .	2,558.71	49.2	2,591.42	46.4
जोड़ .	5,204.22	100.00	5,588.86	100.00

स्रोत : 1986-87 के लिए केन्द्रीय सरकार के बजट संबंधी स्पष्टीकरण ज्ञापन पृष्ठ 59.

*इसमें उत्तरपूर्व परिषद् की स्कीमें भी शामिल हैं।

9.29 सारणी 9.7 में से पता चलता है कि 1985-86 (बजट प्राक्कलन) तथा 1986-87 (बजट प्राक्कलन) के दौरान योजना प्रयोजन के लिए राज्यों को दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता का 50.8 प्रतिशत और 53.6 प्रतिशत केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के लिए था। यदि यही प्रवृत्ति जारी रही तो सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि की तुलना में इन स्कीमों के लिए केन्द्रीय अनुदान सहायता राज्य योजनाओं के लिए दिए जाने वाले अनुदान से काफी अधिक बढ़ जाएगा। यह राष्ट्रीय विकास परिषद् के निदेशों का पूरा पूरा उल्लंघन है कि केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों पर खर्च योजना, प्रयोजनों के लिए सहायता के एक छठे से ज्यादा नहीं बढ़ना चाहिए। दूसरे केन्द्र ने केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों के लिए वित्त व्यवस्था करने की पूरी जिम्मेदारी को स्वीकार नहीं किया है। सामान्यतः केन्द्र इन स्कीमों पर आंशिक तौर पर अधिकतर 50:50 के आधार पर धन लगाता है। तदनुरूप इसीलिए राज्य योजना संबंधी संसाधनों को इन स्कीमों के लिए निधियों की व्यवस्था करने के लिए लगाने का काम जारी रहता है और इस प्रकार राज्यों की अपनी स्कीमों के लिए उपलब्ध राशि को घटा कर दिया जाता है। तीसरे नई केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमों में पूरे वर्ष तथा पूरी पंचवर्षीय योजना अवधि वृद्धि होती रहती है। इन स्कीमों के लिए वित्त व्यवस्था करने के संबंध में तदनुरूप योगदान की व्यवस्था करने के लिए राज्य योजना के संसाधनों को इनके लिए मोड़ा जाता है जिससे राज्यों की अपनी योजना स्कीमों के कार्यान्वयन में हस्तक्षेप होता है। अंत में ये स्कीमें मुश्किल से ही इतनी लचकदार हैं कि राज्यों को स्थानीय परिस्थितियों और जरूरतों के अनुसार इनमें समायोजन करने की अनुमति दी जा सके। इस विशाल देश को अपने अन्तर्गत लाने वाली केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना का एक योजनाबद्ध पैटर्न विभिन्न राज्यों के समक्ष आने वाली परिस्थितियों और अधिमान्यताओं की अनिवार्य विविधता के लिए कोई छूट नहीं देता। इस कारण इन स्कीमों में से बहुत सी स्कीमों की उपयोगिता और कारगरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहता है।

9.30 केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें एक कुशल और सहकारी संघवाद के साथ मेल नहीं खाता। ऐसी कुछ स्कीमें जो संभवतः अपवादस्वरूप हैं और जिनका संबंध राष्ट्रीय लक्ष्यों से है, इन स्कीमों में से शेष या तो अवश्य ही समाप्त कर दिया जाए या इन्हें राज्य योजनाओं के लिए इन्हें अंतरित कर दिया जाए। तदनुसार इन स्कीमों के लिए इस समय दी जा रही केन्द्रीय सहायता की बजाय इसके या तो राज्यों को उनके अपने संसाधनों के लिए या राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के रूप में अवश्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

4. राज्यों की आयोजन प्रक्रिया पर केन्द्र का कठोर नियंत्रण

9.31 राज्यों के पास राज्य योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं हालांकि ये अब राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत कुल परिव्यय का लगभग केवल 40% है। ऐसी स्थिति में राज्य यहां तक कि निर्णायक तौर पर राज्य योजना परिव्ययों के संबंध में घटे हुए स्तर पर केन्द्रीय सहायता पर निर्भर हो गए हैं। इससे केन्द्र को राज्यों की आयोजन प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिए एक शक्तिशाली हथियार मिल गया है।

9.32 राज्य योजना की तैयारी चाहे पंचवर्षीय योजना हो या वार्षिक योजना सामान्यतः इस विषय पर केन्द्र योजना आयोग की ओर से विस्तृत मार्ग-निर्देश प्राप्त होने पर ही शुरू होती है। केन्द्र में मार्गनिर्देश राज्य की अर्थव्यवस्था के संबंध में अपनी खुद की प्राथमिकताओं और मूल्यांकन को ध्यान में रखकर तैयार करता है। वास्तव में ये मार्गनिर्देश तैयार करने में राज्यों से कोई परामर्श नहीं किया जाता। ये मार्गनिर्देश वास्तव में राज्यों पर लादे जाते हैं और ये केन्द्र और राज्यों के बीच आपस में यथोचित परामर्श करने में एक सहमत मूल्यांकन का परिणाम नहीं होते।

9.33 उसी समय, केन्द्र एक ब्योरेवार प्रोफार्मा राज्यों को भेजता है जिसमें उसके हित की हरेक मद शामिल होती है। राज्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इन प्रोफार्मा में राज्य योजना और राज्य की अर्थव्यवस्था के संबंध में पूरी वित्तीय और गैर वित्तीय जानकारी दें। इस जानकारी से केन्द्र-राज्य की चर्चा के दौरान जो उनके अधिकारियों के साथ चलती है उनसे जिरह करने और उन पर दबाव डालने की स्थिति में आ जाता है।

9.34 राज्य योजना के लिए वित्तीय संसाधनों के संबंध में ब्योरेवार सूचना की प्राप्ति पर केन्द्र योजना आयोग अपने अपने राज्यों की योजनाओं के लिए अपने खुद के वित्तीय संसाधनों के बारे में राज्यों की योजनाओं के लिए अपने खुद के वित्तीय संसाधनों के बारे में राज्यों के प्राक्कलनों की विस्तृत जांच शुरू करने के लिए संसाधन कार्यकारी समूह की स्थापना करता है। इस कार्यकारी समूह में संघ सरकार के वित्त मंत्रालय तथा भारतीय रिजर्व बैंक के प्रतिनिधि होते हैं। यह समूह प्रत्येक राज्य के अधिकारियों के साथ राज्य योजना के लिए अपने खुद के संसाधनों को राज्यों के प्राक्कलनों पर अलग-अलग चर्चा करता है। राज्य के अपने संसाधनों के सहमत प्राक्कलन (जिसमें योजना आयोग द्वारा राज्य को आबंटित बाजार उधार तथा योजना आयोग द्वारा राज्य पर इस बात के लिए जोर दिया जाना भी शामिल है कि वह अपने अतिरिक्त संसाधन जुटाने का लक्ष्य प्राप्त करे) इसमें राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता के योजना आयोग के आबंटन को भी जोड़ा जाता है ताकि राज्य योजना के संभाव्य कुल आकार का निर्णय किया जा सके। यह प्रक्रिया हरेक राज्य के बारे में अपनाई जाती है।

9.35 जब निर्धारित प्रोफार्मा और राज्य संबंधी योजना के प्रस्ताव प्राप्त हो जाते हैं तो योजना आयोग कार्यकारी समूह (उप समूह) स्थापित करता है जिनमें विभिन्न विषयों संबंधी केन्द्रीय अधिकारी होते हैं ताकि राज्य योजना में शामिल करने के लिए राज्य द्वारा प्रस्तावित प्रत्येक स्कीम की जांच हो सके। वे विभिन्न स्कीमों पर प्रस्तावित परिव्यय में (दोनों ओर से) परिवर्तन का सुझाव देते हैं। वे यहां तक कुछ नई स्कीमों को हटाने तथा अन्य स्कीमों को शामिल करने का सुझाव देते हैं। कभी कभी इन चर्चाओं को प्रयोग राज्य के अधिकारियों द्वारा किया जाता है ताकि क्रमशः अपने अपने विभागों में स्कीमों के लिए आबंटन को बढ़वा दे सकें। वे इस प्रकार राज्य सरकार की प्राथमिकताओं में केन्द्रीय कर्मचारियों की सहायता से अपने खुद के विभागों या प्रिय स्कीमों के लाभ हेतु संशोधन कराने की कोशिश करते हैं। इसके केन्द्र को अपनी प्राथमिकताओं को राज्य की योजना पर लादने का और एक मौका मिल जाता है।

9.36 सामान्यतः कार्यकारी समूह जिन परिव्ययों की सिफारिश करता है वे संसाधन कार्यकारी समूह द्वारा निर्धारित राज्य योजना के आकार से कहीं ज्यादा अधिक होते हैं। योजना आयोग का संबंधित सलाहकार इन दोनों का मिलान विभिन्न शीर्षों/उप शीर्षों के लिए कार्यकारी समूह द्वारा सिफारिश किए गए परिव्ययों में कटौती करके किया जाता है। इन कटौतियों को लागू करने के लिए, सलाहकार स्वभावतः योजना आयोग की अन्तः क्षेत्रीय प्राथमिकताओं

से निर्देशित होता है। वह नये आबंटनों की घोषणा राज्य के उच्च अधिकारियों के साथ हुई "गुप्त" बैठक में करता है। यह बैठक राज्य के साथ परामर्श का एक दिखावा है।

9.37 राज्य की योजना के आकार को योजना आयोग के उपाध्यक्ष तथा राज्य के मुख्यमंत्री के बीच होने वाली बैठक में अंतिम रूप दिया जाता है। योजना आयोग के अधिकारियों द्वारा प्रारंभ में राज्य योजना के लिए उपलब्ध केन्द्रीय सहायता का जो अनुमान लगाया जाता है और जिसे संसाधन कार्यकारी समूह द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है उसके अनुसार सामान्यत: जिस केन्द्रीय सहायता के मिलने की आशा होती है उसके एक छोटे अंश को रोक लिया जाता है। इस रकम को उपर्युक्त बैठक में उपाध्यक्ष द्वारा केन्द्र की उदारता एक भावप्रदर्शन के रूप में दिए जाने का प्रस्ताव किया जाता है। परन्तु सामान्यत: यह इस शर्त पर होता है कि मुख्य मंत्री एक पर्याप्त तथा राज्य योजना के लिए अपनी चिन्ता दिखलाने संबंधी एक भाव प्रदर्शन के रूप मे दिए जाने का प्रस्ताव किया जाता है। परन्तु सामान्यत: यह इस शर्त पर होता है कि मुख्य मंत्री इस बात के लिए सहमत हो कि राज्य ने अधिकारी स्तर पर चर्चाओं में जितने अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए वह सहमत हुआ था उससे अधिक संसाधन जुटाने के लिए वह सहमत हुआ इससे अधिक संसाधन जुटायेगा। योजना आयोग का सलाहकार सामान्यत: राज्य के उच्च अधिकारियों के परामर्श से एक बार दोबारा उपर्युक्त बैठक में सहमत कुछ और बड़े योजना आकार के संबंध में क्षेत्रीय आबंटन का पुन: समायोजन करता है। इस प्रकार अंतिम रूप दी गई राज्य योजना का इसके बाद योजना आयोग द्वारा औपचारिक तौर पर अनुमोदन किया जाता है।

9.38 किसी भी राज्य को केन्द्रीय सहायता राज्य की संपूर्ण योजना को योजना आयोग का अनुमोदन मिल जाने पर ही दी जाती है। चाहे इससे सहायता से कुल योजना के एक छोटे अंश के लिए धन की व्यवस्था क्यों न की जानी हो। इसके अतिरिक्त इस बात का सुनिश्चिय करने के लिए कि अनुमोदित योजना स्कीमों में से राज्य ऐसी स्कीमों के कार्यान्वियन पर विशेष रूप से ध्यान देगा जिन्हें केन्द्र आर्थिक प्राथमिकता देता है इन स्कीमों के संबंध में योजना आयोग अनुमोदित परिव्यय निर्धारित करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन स्कीमों के संबंध में अनुमोदित परिव्यय में किसी भी कमी के लिए राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता में तदनुसार आनुपातिक कमी करके इसलिए दंड दिया जाएगा। वास्तव में केन्द्र 40% योजना परिव्यय पर भी कड़ा नियंत्रण रखता है जो अभी भी राज्यों के कार्य क्षेत्र में आता है। कोई भी राज्य की प्राथमिकताओं को जो केन्द्र की प्राथमिकताओं से मेल नहीं खातीं उन्हें राज्य की योजना में, उस राज्य की अर्थव्यवस्था के सच्चे तथ्यों के बारे में योजना के अधिकारियों की अज्ञानता का लाभ उठाकर चोरी से समाविष्ट किया जा सकता है परन्तु खुले तौर पर नहीं।

5. केन्द्र राज्य संसाधन अंतकरण का अयुक्तियुक्त ढांचा और मानदंड

9.39 संविधान से गंभीर आंतरिक असंतुलन का पता इस तरह से चलता है कि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों का विभाजन उनके बीच जिम्मेदारियों के आबंटन से मेल नहीं खाता। यह असंतुलन राजस्व और पूंजीगत लेखे के संबंध में राज्यों के कुल खर्च तथा उनकी अपनी प्राप्तियों के बीच एक बड़े और बढ़ते हुए अंतराल को दर्शाता है। चूंकि अनुच्छेद 293(1) के अनुसार राज्य देश से बाहर उधार नहीं ले सकते इसलिए इस अंतराल को पूरा करने के लिए केवल एक रास्ता यही है कि केन्द्र से संसाधन राज्यों को अंतरित किए जाए। चूंकि यह अंतराल अब बहुत अधिक बढ़ गया है अत: संसाधनों के अंतरण का आकार भी तदनुरूप ही होना चाहिए संसाधन अंतरण तदनुरूप बहुत अधिक होना चाहिए।

9.40 संविधान में अपेक्षित संसाधन अंतरण के संबंध में उसकी रूपात्मकता और मानदंडों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इस विषय के संबंध में केवल कुछ ही उपबंध हैं। इनका उल्लेख नीचे दिया जाता है।

9.41 अनुच्छेद 240 में व्यवस्था है कि कृषि आय के भिन्न आय पर कर केन्द्र द्वारा लगाये और वसूले जाएंगे परन्तु कुछ विहित कटौतियों के बाद इनसे प्राप्त निबल आय का बंटवारा राज्यों के साथ किया जाएगा। परन्तु राज्यों के हिस्से के रूप में किसी भी न्यूनतम प्रतिशत का निर्धारण नहीं किया गया है। यहां तक कि एक नाम मात्र के बंटवारे से संवैधानिक आवश्यकता पूरी हो जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 271 में केन्द्र के लिए एक बचाव के रास्ते की यह व्यवस्था है कि संघ के प्रयोजनों के लिए आयकर के संबंध में बंटवारे योग्य पूल और अधिकर को उसमें शामिल न किया जाए। वर्षों तक केन्द्र इस बचाव के रास्ते का इस्तेमाल करके राज्यों को जो उनका इस संबंध में यथोचित भाग था उससे उन्हें वंचित करता रहा। आय कर पर अधिकर 1986-87 के कर निर्धारण 5 वर्ष से ही समाप्त किया गया है। एक और बचाव के रास्ते की व्यवस्था इस तरह से की गई कि अनुच्छेद 270 के खंड (4) के अंतर्गत निगम कर को आयकर में शामिल नहीं किया गया और इस प्रकार इसका राज्यों के साथ बंटवारा नहीं होता। केन्द्र ने 1959 में आयकर अधिनियम में एक संशोधन करके इस बचाव के रास्ते का उपयोग किया जिसने कम्पनियों पर आय कर को निगम कर के रूप में माना और इस प्रकार यह राज्यों के साथ बंटवारा योग्य नहीं रहा।

9.42 संविधान ने सीमा शुल्क को बहुत ही लाभकारी कर बना दिया है। संघीय उत्पाद शुल्क जो एक अत्यधिक उत्पादन संभाव्यता के साथ एक बहुत ही लाभकारी कर है उसके मामले में संविधान राज्यों के साथ इस शुल्क से प्राप्त निबल आय के बंटवारे की केवल अनुच्छेद 272 के अन्तर्गत केवल तभी अनुमति देता है यदि संसद कानून द्वारा इस प्रकार का उपबंध करे परन्तु इसने इसे आदेशात्मक नहीं बनाया।

9.43 संविधान ने राज्यों के बीच आय कर के हिस्से तथा राज्यों में परस्पर संघीय उत्पाद शुल्क के वितरण के लिए सिद्धांतों और मानदण्ड के बारे में कुछ नहीं कहा है। उसने इसका वितरण अनुच्छेद 280 के अंतर्गत नियुक्त किए जाने वाले वित्तीय आयोग की सिफारिशों पर कानून के अनुसार संसद द्वारा निर्धारण के लिए छोड़ दिया है।

9.44 अनुच्छेद 268 में दो छोटे कर सूचीबद्ध हैं जो कि संघ सरकार द्वारा ही लगाये जाएंगे परन्तु जहां कहीं भी ये लगाये जाने योग्य हैं वहां इनकी वसूली और विनियोजन राज्यों द्वारा किया जाएगा। अनुच्छेद 269 में व्यवस्था है कि उस अनुच्छेद के अन्तर्गत कुछ शुल्क और कर के केन्द्र द्वारा लगाये और वसूले जाएंगे परन्तु ये राज्यों को सौंप दिए जाएंगे सिवाय उस राशि के जो कि केन्द्र शासित प्रदेशों को सौंपने योग्य है, किसी भी प्रकार का ऐसा शुल्क या कर राज्यों के बीच वहां वितरित किया जाएगा जहां ये कानून के अनुसार संसद द्वारा निर्धारित वितरण सिद्धांतों के अनुसार लगाए जाते हैं।

9.45 अनुच्छेद 275(1) के अन्तर्गत ऐसी रकमें जिनकी संसद कानून द्वारा व्यवस्था करती है ये ऐसे राज्यों को जिनके बारे में संसद यह निर्धारण करे कि इन्हें सहायता की जरूरत है, उन्हें उनके राजस्वों में से अनुदान सहायता के रूप में प्रत्येक वर्ष भारत की संचित निधि से भुगतान किया जाएगा और अलग अलग राज्यों के लिए अलग अलग रकमें निर्धारित की जाएंगी। अनुच्छेद 275(1) के प्रथम परन्तुक के अन्तर्गत जैसा भी आवश्यक होगा किसी भी राज्य को राजस्व से अनुदान सहायता उसलिए दी जाएगी ताकि संबंधित राज्य अनुसूचित जनजाति के कल्याण संवर्धन या अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए रखी गई अनुमोदित विकास स्कीमों की लागत को पूरा कर सके। अनुच्छेद 275(1) के दूसरे परन्तुक में असम राज्य के राजस्व से विशिष्ट अनुदान सहायता देने के लिए व्यवस्था है।

9.46 अनुच्छेद 280 में यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति संविधान के प्रारंभ में दो वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक पांच वर्ष में या इस से पूर्व एक वित्त आयोग का गठन करेगा जिस में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य होंगे। वित्त आयोग का कर्तव्य यह होगा कि वह निम्नलिखित के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करे :

(क) निबल आय का संघ सरकार तथा राज्यों के बीच वितरण जो संविधान के भाग XII के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत उसके बीच बांटे जाने हों या बांटे जा सकते हों तथा ऐसी आय के अपने अपने हिस्सों का राज्यों के बीच आबंटन ;

(ख) ऐसे सिद्धांत जिन्हें भारत की संचित निधि से राज्यों के राजस्व से दी जाने वाली अनुदान सहायता को नियंत्रित करना चाहिए ;

(ग) सुदृढ़ वित्त व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को भेजा गया कोई अन्य मामला ।

9.47 अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत संघ सरकार या कोई भी राज्य इस बात के होते हुए भी किसी भी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए कोई भी अनुदान दे सकता है चाहे उसका प्रयोजन यह न हो कि उसके संबंध में संसद या राज्य का विधान मंडल, जैसी भी स्थिति हो, कानून बना सकता है ।

9.48 अनुच्छेद 293(2) भारत सरकार को यह अधिकार देता है कि संसद द्वारा निर्धारित किसी भी शर्त के अधीन, वह किसी भी राज्य को ऋण दे या किसी भी राज्य द्वारा उगाहे गये ऋणों के मामले में गारंटी दे ।

9.49 उपर्युक्त उपबंधों के अन्तर्गत केन्द्र राज्य संसाधनों के अंतरण के निम्न पांच माध्यमों का विकास हुआ है : (i) अनुच्छेद 269, 270, 271, 272, 275(1) तथा 280 के संदर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशों पर संसाधनों का अंतरण (ii) अनुच्छेद 282 और 293 (2) के संदर्भ में राज्य योजना स्किमों के लिए केन्द्रीय सहायता (iii) अनुच्छेद 282 और 293(2) के संदर्भ में केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा, प्रायोजित स्कीमों के लिए केन्द्रीय सहायता, (iv) अनुच्छेद 282 तथा 293(2) के संदर्भ में वित्त आयोग की सिफारिशों पर ऋण में राहत, तथा (v) अनुच्छेद 282 व 293 (2) के संदर्भ में अन्य योजनेतर अनुदान और ऋण । हाल के वर्षों में संसाधनों के अन्तरण का स्वरूप सारणी 9.8 में दिया गया है ।

सारणी 9.8

सारणी 9.8 केन्द्र से राज्य संसाधनों का अंतरण

	1985–86 (संशोधित प्राक्कलन)		1986–87 (बजट प्राक्कलन)	
	करोड़ रुपये	प्रतिशत	करोड़ रुपये	प्रतिशत
1. संसाधनों का अंतरण	8,569.13	39.1	9,432.83	41.8
1. करों का हिस्सा .	7,498.26	34.2	8,260.70	36.6
2. अनुदान . .	1,078.87	4.9	1,172.13	5.2
2. राज्य योजना स्कीमों के लिए केन्द्रीय सहायता	6,385.43	29.2	6,320.45	28.0
अनुदान .	2,558.71	11.7	2,631.42	11.7
2. ऋण . .	3,826.72	17.5	3,689.03	16.3
3. केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमों के लिए केन्द्रीय सहायता	2,818.62	12.9	3,167.12	14.0
1. अनुदान .	2,645.51	12.1	2,997.74	13.3
2. ऋण .	173.11	0.8	160.68	0.7
4. योजनेतर अंतरण .	3,997.70	18.3	3,625.24	16.1
1. अनुदान .	580.30	2.7	376.31	1.7
2. ऋण . .	3,417.40	15.6	3,248.93	14.4
i. अल्प बचत ऋण .	2,900.00	13.2	3,200.00	14.2
ii. अन्य* .	517.40	2.4	48.93	0.2
5. ऋण राहत (केन्द्रीय ऋणों की अदायगी के लिए सहायता) .	110.00	0.5	30.00	0.1

स्रोत : 1986-87 के लिए केन्द्रीय सरकार के बजट दस्तावेज ।
*केन्द्र द्वारा दिए गए निम्नलिखित ऋण शामिल नहीं हैं ।

	1985-86 (संशोधित प्राक्कलन)	1986-87 (बजट) प्राक्कलन)
1. साधन अग्रिम . .	1,200.00	800.00
2. उर्वरकों तथा अन्य कृषि संबंधी निवेशों के लिए अल्पावधि ऋण	250.00	255.00
3. भारतीय रिजर्व बैंक के ओवर ड्राफ्टों का समाशोधन .	1,628.00	..
	3,078.00	1,055.00

9.50 वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर अंतरण संसाधनों के अंतरण का बहुत ही महत्वपूर्ण माध्यम है ।

1985–86 में (संशोधित प्राक्कलन) तथा 1986-87 (बजट प्राक्कलन) के अन्तर्गत क्रमश: जो अंतरण हुआ वह कुल अंतरण का 39.1% तथा 41.8% था । इसमें केन्द्रीय करों तथा केन्द्रीय अनुदानों में राज्यों का अपना अपना हिस्सा 1985-86 (संशोधित प्राक्कलन) के अंतर्गत कुल संसाधन अंतरणों का यह प्रवाह 34.2% तथा 4.9% था और अनुमान है कि 1986-87 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) यह 36.2% है और 5.2% है ।

9.51 संसाधन अंतरण का दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम है—योजना आयोग की सिफारिशों पर राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता । यह क्रमश: 1985–86 में (संशोधित प्राक्कलन के अनुसार) कुल संसाधन अंतरण का 29.2% तथा 1986-87 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) 28.0% रहा । प्रत्येक दो वर्ष में हर वर्ष कुल संसाधनों के प्रवाह में अनुदान कर दिया जाता 11.7% था तथा दिए गए ऋण क्रमश: 17.5% और 16.3% में ।

9.52 केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमों के लिए केन्द्रीय सहायता सापेक्षिक दृष्टि से एक बढ़ता हुआ प्रवाह है । 1985-86 में (संशोधित बजट के अनुसार) तथा 1986-87 (बजट प्राक्कलन के अनुसार) कुल संसाधनों के प्रवाह में यह क्रमश: 12.93% तथा 14.0% था । इस सहायता का बहुत बड़ा भाग अनुदानों के रूप में उपलब्ध कराया गया है और केवल एक बहुत थोड़ा अंश ऋणों के रूप में उपलब्ध कराया गया है । इस धन प्रवाह पर ऊपर चर्चा की गई है ।

9.53 1985-86 में (संशोधित प्राक्कलन के अनुसार) तथा 1986–87 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) योजनेतर अंतरण कुल संसाधन प्रवाहों का 18.3% तथा 16.1% रहा । इस आंकड़े में साधनों संबंधी अग्रिम तथा उर्वरकों एवं अन्य कृषि संबंधी निवेशों के लिए अल्प कालिक ऋण शामिल नहीं है, क्योंकि इनकी अदायगी उसी वर्ष के दौरान किए जाने की आशा है । भारतीय रिजर्व बैंक से ओवर ड्राफ्टों के समाशोधन के लिए राज्य को स्वीकृत ऋण भी इसमें शामिल नहीं किए गए है मानो कि ओवर ड्राफ्टों से बचने की वर्तमान स्कीम अभी तक प्रभावी है, अत: इस प्रकार के और आर्थिक अधिक ऋण नहीं होंगे ।

9.54 योजनेतर ऋणों में राज्यों में अल्पबचतों की निवल वसूली के दो तिहाई के बराबर अल्प बचत ऋण काफी हद तक बहुत ही महत्वपूर्ण मद हैं जो 1985-86 (संशोधित बजट के अनुसार) तथा 1986-87 के दौरान (बजट प्राक्कलन के अनुसार) क्रमश: कुल संसाधन अंतरण का 13.2% तथा 14.2% बैठी ।

9.55 आठवां वित्त आयोग जसकी सिफारिशों में 1984-85 से 1988-89 तक की पांच वर्ष की अवधि शामिल है, उसने केन्द्रीय ऋणों के संबंध में राज्यों को ऋण में राहत दो तरीकों से दी है (i) ऋणों की अदायगी को बट्टे

खाते डालना तथा (ii) ऋणों का पुनर्निर्धारण पांच वर्ष की अवधि में जो राहत क्रमश: दो रूपों में दी गई वह अनुमानत: 405 20 करोड़ रुपये तथा 1880.19 करोड़ रुपये की है । यह राहत कुल 2285.39 करोड़ रुपये की थी (इसमें 1985–86* में अल्प बचत ऋणों की अदायगी के 117.08 करोड़ रुपये की राहत शामिल नहीं थी ।) अदायगी को बट्टे खाते डालने का तरीका यह है कि केन्द्र राज्यों को योजनेतर अनुदान देता है जो उनके द्वारा ऐसे ऋणों की अदायगी, जिन्हें बट्टे खाते डाला जाना है के लिए इस्तेमाल किया जाता है । ऐसा अनुदान 1985–86 में (संशोधित प्राक्कलन के अनुसार) तथा 1986-87 में (बजट प्राक्कलन के अनुसार) कुल संसाधनों के प्रवाह का 0.5% तथा 0.1% रहा । केन्द्रीय ऋणों के पुर्नानिर्धारण के कारण ऋण राहत की रकम का वार्षिक प्राक्कलन उपलब्ध नहीं है ।

9.56 केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के प्रवाह के प्रथम दो माध्यम के अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और उनके कुल प्रवाह के लगभग 70% के बराबर है । उनके अपनी अपनी नकारात्मक विशिष्टिताऐं जिनमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है । इन विशिष्टिताओं पर नीचे चर्चा की गई है ।

(i) संसाधनों का अंतरण

9.57 राज्यो को संसाधनों का अंतरण वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है । अब तक वित्त आयोग का आठ बार गठन किया गया है । आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों में 1984-85 से 1988-89 तक की अवधि शामिल है । प्रत्येक वित्त आयोग एक तदर्थ निकाय होता है । अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है । अध्यक्ष तथा सभी चारों सदस्य राष्ट्रपति (संघीय कार्यपालिका) द्वारा नियुक्त किए जाते हैं । इसके लिए राज्यो से किसी भी प्रकार का परामर्श नहीं किया जाता । सदस्य आयोग की आंशिक समय या पूर्ण समय के लिए सेवा में रहते है । चूंकि छठे वित्त आयोग में योजना आयोग के एक सदस्य को जो उस निकाय के वित्तीय संसाधन प्रभाग से संबद्ध था, साथ-साथ वित्त आयोग का सदस्य भी बनाया गया ताकि वह दोनों आयोगों के बीच एक कड़ी का काम कर सके । सामान्यत: कम से कम वित्त आयोग का एक सदस्य तो पहले या यहां तक कि कुछ समय के लिए संघीय वित्त मंत्रालय का एक सेवारत अधिकारी होता है । वित्त आयोग के सचिव के महत्वपूर्ण पद पर सामान्यत: वित्त मंत्रालय का एक वरिष्ट अधिकारी होता है । कभी-कभी उसे और भी अधिक ऊँचा दर्जा प्रदान करने के लिए आयोग का सदस्य सचिव नियुक्त किया जाता है । आयोग का अनुसंधान कर्मचारी वर्ग अधिकतर संघ सरकार के मंत्रालयों विशेष कर वित्त मंत्रालय तथा योजना आयोग के कर्मचारी वर्ग में से लिया जाता है । स्पष्ट है कि ऐसा आयोग उन विषयों के मामले में जो उनके ध्यान में लाए जाते हैं , उनमें संघ सरकार के विशेष कर, वित्त मंत्रालय की विचारधारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । हर हालत में आयोग द्वारा स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाये जाने पर संघ सरकार द्वारा निर्धारित ब्यौरेवार विचारार्थ विषयों के जरिए कड़ी रोक-टोक लगा दी जाती है जो स्पष्टत. यह निर्धारित कर देती है कि किस प्रकार का दृष्टिकोण अपना जाए ।

9.58 अपने विचारार्थ विषयों के द्वारा वित्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अन्य बातों के साथ-साथ राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता के निर्धारण और वितरण के संबंध में वर्तमान प्रणाली को ध्यान में रखे । वर्तमान प्रणाली यह है कि राज्य योजनाओं के लिए कुल केन्द्रीय सहायता का निर्धारण और इसमें प्रत्येक राज्य का कितना हिस्सा होगा, इसकी जिम्मेदारी योजना आयोग की है । अपने खुद के स्वरूप के कारण केन्द्रीय तथा केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना स्कीमों के लिए केन्द्रीय सहायता संबंधित संघ सरकार के मंत्रालयों का विशेषाधिकार है । इस प्रकार व्यवहार में वित्त आयोग का मुख्य संबंध राजस्व लेखे संबंधी राज्यों का योजनेतर अंतर है ।

9.59 जब छठे वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों के बारे में योजना आयोग के समक्ष यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि बहुत से राज्यों के लिए योजनेतर पूंजीगत अंतरण भी एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है, उन्होंने इस मामले को वित्त मंत्रालय के साथ उठाया और उनके जोर दिए जाने पर राज्यों के योजनेतर पूंजीगत अंतराल को विचारार्थ विषयों में शामिल किया । तब से यह प्रथा बनी हुई है । यह सब कुछ होते हुए भी योजनेतर राजस्व अंतर काफी हद तक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण मामला है जो वित्त आयोग की चिन्ता का विषय है ।

9.60 योजनेतर राजस्व अंतर के संबंध में संसाधनों के अंतरण के लिए अपनी सिफारिशें तैयार करने में उत्तरवर्ती वित्त आयोगों ने इस अंतर को पूरा करने का दृष्टिकोण अपनाया । इसका अर्थ यह हुआ कि राज्यों के बीच कुल राशि के अंतरण और वितरण का निर्धारण इस प्रकार किया जाए कि किसी भी राज्य के मामले में योजनेतर राजस्व अंतर पूरा हुए बिना न छूटे, चाहे इस प्रक्रिया में कुछ राज्यों को योजनेतर राजस्व लेखे के संबंध में पर्याप्त अधिशेष प्राप्त क्यों न करना पड़े ।

9.61 इस दृष्टिकोण पर अमल करने के लिए पहला कदम यह होगा कि योजनेतर राजस्व अंतर का हिसाब लगाना होगा । इस कार्य के लिए पहले आधार वर्ष की समाप्ति पर पहुंचने वाले संभावित कराधान के स्तर पर संदर्भित अवधि के लिए राज्यों के राजस्व संसाधनों की परिकल्पना की जाती है अर्थात् वित्तीय आयोग की सिफारिशों के लिए संदर्भित अवधि से तत्काल पूर्व वर्ष के राजस्व को ध्यान में रखा जाता है । अतिरिक्त कराधान से जिस राजस्व की संदर्भित राज्य अवधि के दौरान राज्यों द्वारा जिम्मेदारी वहन की जाती है उसे राज्य योजना की वित्त व्यवस्था के लिए एक संसाधन समझा जाता है । राजस्व संबंधी परिकल्पनाओं का हिसाब लगाते समय आयोग से अपेक्षा की जाती है कि वह बेहतर वित्तीय कार्यक्षेत्र को ध्यान में रखे तथा राज्य की सिंचाई योजनाओं, औद्योगिक तथा वाणिज्यिक उद्यमों तथा इसी प्रकार के उद्यमों में राज्यों के निवेश पर युक्तियुक्त प्रति लाभ के लिए श्रेय प्राप्त करे । यह कार्य केवल राज्यों के कर अर्थात् केन्द्र से करों के किसी प्रकार के अंतरण को ध्यान में रखे बिना किया जाता है । दूसरे राज्यों का योजनेतर राजस्व व्यय की परिकल्पना संदर्भित अवधि को ध्यान में रखकर इसके साथ साथ निम्नलिखित के संबंध में भी की जाती है :

(i) सरकारी कर्मचारियों, अध्यापकों तथा स्थानीय निकायों के कर्मचारियों के संबंध में परिलब्धियों तथा आवधिक सुविधाओं की व्यवस्था जो उन्हें आयोग द्वारा निर्धारित तारीख पर परन्तु वास्तविक बढ़ोतरियों के बजाय लक्ष्यात्मक मानदंड को ध्यान में रखकर उन्हें प्राप्त हों और जिन्हें लागू किया गया हो,

(ii) स्थानीय निकायों तथा सहायता प्राप्त संस्थाओं की निधियों के अंतरण के संबंध में वचनबद्धता,

(iii) आधार वर्ष की समाप्ति पर पूरी की जाने वाली पूंजी तथा परिसंपत्तियों का पर्याप्त रखरखाव और देखरेख एवं योजना स्कीमों का रखरखाव, तथा

(iv) व्यय में किफायत की गुंजाइश ।

व्यवहार में राजस्व और योजनेतर राजस्व व्यय की परिकल्पनाएं एक वास्तविक और सैद्धांतिक दोनों ही मिश्रित दृष्टिकोणों को अपनाकर इनके संबंध में राज्यों की भविष्यवाणियों का पुनर्मुल्यांकन करके की जाती हैं । परिकल्पित राजस्व की तुलना में परिकल्पित योजनेतर राजस्व व्यय की अधिकता से राज्यों के योजनेतर राजस्व अंतर का अनुमान लगाया जाता है । अपने वित्त आयोग के द्वारा इस संबंध में किए गए अभ्यास से यह स्पष्ट है कि राज्यों में इस अवस्था में भी अधिशेष अर्थात् नकारात्मक योजनेतर राजस्व का अंतर था । अन्य 16 राज्यों में घाटा दिखाया गया ।

9.62 दूसरा कदम है केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से तथा करों के कुल विभाजन योग्य पूल में प्रत्येक राज्य के हिस्से का विनिर्धारण करना । राज्य आमतौर पर अनुच्छेद 275* के अन्तर्गत अनुदान सहायता के बजाय करों के अंतरण को पसंद करते हैं । ऐसा इस कारण है "करों में बढ़ने की प्रवृत्ति है; जबकि अनुदान सहायता की रकमें निर्धारित होती हैं जिनका मूल्य वर्षों बाद वास्तविक शब्दों में घटता जाता है ।"** ऐसे राज्य जिनके पास अंतरण से

---

* 8वें वित्त आयोग 1984 की रिपोर्ट पैरा 2.7 पृष्ठ 6.

** शब्दश:

पूर्व अधिशेष होता है या एक बहुत ही कम घाटा होता है उनके द्वारा इस अधिमान्यता का एक और कारण होता है । उन्हें कोई भी राजस्व अंतर अनुदान नहीं मिलता और यदि मिलता है तो बहुत कम जबकि वे करों के विभाजन योग्य पूल से हिस्सा लेने की आशा कर सकते हैं । दूसरी ओर केन्द्र को अन्तरण की लागत न्यूनतम होगी यदि लगभग सारी राशि राज्यों को अंतरित भी कर दी जाए क्योंकि 275(1) के अनुसार जो अनुदान राज्यों को प्राप्त होता है वह अनुच्छेद 270 की जरूरतों को पूरा करने के लिए आय में एक नाम मात्र के हिस्से के रूप में होता है । तब कुल अंतरण के राज्यों के घाटे के योजनेतर कुल राजस्व अंतर से अधिक होने की जरूरत नहीं होती तथा उसके साथ वह आय कर की राशि भी जुड़ी होती जो विभाजन योग्य पूल में उनके हिस्से के रूप में अधिशेष वाले राज्यों को मिल जाती तथा घाटे वाले राज्यों के राजस्व और अंतर को पूरा करने की दृष्टि से निरर्थक हो जाती है ।

9.63 इसका अर्थ यह हुआ कि अंतर पूरा करने के दृष्टिकोण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि इस अंतरण को इस हद तक न्यूनतम कर दिया जाए कि इसके अधिशेष वाले राज्यों के योजनेतर राजस्व अधिशेष में केवल वृद्धि होने के बजाय इससे घाटे वाले राज्यों के योजनेतर राजस्व अंतर को पूरा किया जा सके । इस प्रकार अंतरण राशि को न्यूनतम करने के दो तरीके होते हैं ।

(i) राजस्व अंतर अनुदानों इसके अपने घटक को अधिकतम करके तथा

(ii) केन्द्रीय करों के राज्यों के हिस्से के वितरण के लिए इस प्रकार से फार्मुला तैयार करके जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि केन्द्रीय करों के विभाजन योग्य पूल का अधिकतम हिस्सा घाटे वाले राज्यों को मिले और इसे योजनेतर राजस्व अंतर को पूरा करने के लिए प्रयोग किया जाए ।

राजस्व अंतर अनुदानों की तुलना में केन्द्रीय करों के हिस्से को अधिमान्यता इस आधार पर दी जाती है कि इनमें बढ़ने की प्रवृत्ति होती है । जिन पर कम से कम घाटे वाले राज्यों के मामले में सिफारिश किए गए अनुदानों में वृद्धि करके काबू पाया जा सकता है । वास्तव में यह आठवें वित्त आयोग द्वारा किया गया है । करों के हिस्से को ध्यान में रखकर शेष अंतर को पूरा करने के लिए विभिन्न वर्षों के लिए जिन अनुदानों का अनुमान लगाया जाना आवश्यक है उनमें आयोग की संदर्भित अवधि के क्रमिक पांच वर्षों में 5%, 10%, 15%, 20% तथा 25%की वृद्धि करके सिफारिश की जाती है । यदि आवश्यक हो तो स्पष्टत: इस वृद्धि की ऊंची दरों यानी क्रमश: 10%, 20%, 30%, 40% तथा 50%की भी सिफारिश की जा सकती है । फिर भी उत्तरोत्तर वित्तीय आयोगों ने मुख्यत: दूसरे ही तरीकों को अपनाया है । केन्द्रीय करों के हिस्से को राज्यों के बीच वितरण के लिए फार्मूले को अधिकाधिक "प्रगामी" बनाया गया है यानी परस्पर वितरण का ऐसा मानदंड तैयार किया गया है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि इन करों के विभाजन योग्य पूल में से अधिकतम घाटे वाले, यानी आमतौर पर जिनकी अपेक्षाकृत कम आमदनी है, ऐसे राज्यों को मिले जबकि न्यूनतम बचत (अधिशेष) वाले, आमतौर पर अपेक्षाकृत अधिक आमदनी वाले राज्यों को मिले । कम आमदनी वाले राज्यों का विश्वास है कि अधिक आमदनी वाले राज्यों को दबा दिया गया है जैसा कि यह उनकी खातिर इस समाजवादी गणराज्य के लिए ठीक हैं । देश के अन्य लाखों लोग इनमें वे भी शामिल हैं जिन्हें अच्छी तरह यह समझना है यही विश्वास करते हैं । परन्तु वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग है । ऐसे घाटे वाले राज्य, जिन्हें करों के विभाजन योग्य पूल से बड़ी उदारता से सहायता का एक हिस्सा दिया जा रहा है, घाटा दिखाते रहते हैं हालांकि यह घाटा कम होता है, परन्तु उन्हें वित्तीय आयोग के इस अत्यधिक "प्रगामी" उदाहरण से एक पैसे का भी फायदा नहीं पहुंचता । घाटे वाले राज्य जिन्हें केन्द्रीय करों की विभाजन योग्य राशि में एक उदारतापूर्वक हिस्सा मिलता है उसके फलस्वरूप वे केवल इस हद तक एक अधिशेष राजस्व की प्राप्ति करते हैं जिस हद तक यह अधिशेष एक उस अधिशेष से अधिक बढ़ता जो कि उन्हें सभी राज्यों के बीच हिस्से और अधिक बराबर विवरण के फलस्वरूप प्रोद्भूत होता । वित्त आयोग के अत्यन्त "प्रगामी" रुख के अपनाये जाने का लाभ उपर्युक्त श्रेणी के राज्यों को उतना अधिक नही मिलता जितना अधिक केन्द्र को मिलता है जो इस आयोग की नियुक्ति करता हैं । घाटे वाले राज्यों के लिए नहीं बल्कि केन्द्र के हित में वित्त आयोग ने बहुत ही प्रगामी होने की ऊपरी नकाब पहन ली है और बचत वाले राज्यों को उनकी जनता के अपेक्षाकृत प्रति व्यक्ति अधिक एस० डी० पी० होने के लिए उन्हें दंडित किया है । उपर्युक्त निष्कर्ष की वैधता आठवें वित्त आयोग द्वारा सारणी 9.9 में प्रस्तुत आंकड़ों के आधार पर सिद्ध होती है ।

9.64 सारणी 9.9 से स्पष्ट है कि अंतर पूरा करने के दृष्टिकोण के अन्तर्गत, अभिग्रहण (i)के अन्तर्गत अपेक्षित अंतरण 18,484.83 करोड़ रुपये का होगा तथा अभिग्रहण (ii) और (iii) इन दोनों के अन्तर्गत 37,195.70 करोड़ रुपये का होगा । अभिग्रहण (i) के अन्तर्गत अपेक्षित अंतरण न्यूनतम है । इसके पूर्णत: राजस्व अंतर अनुदानों के रूप में होने के कारण, इसके किसी भी भाग को अंतरण पूर्व योजनेतर राजस्व अंतर को पूरा करने की दृष्टि से बेकार नहीं किया गया क्योंकि इसमें से कोई भी उन राज्यों को नहीं मिलना जिनका योजनेतर राजस्व अंतरण से पूर्व भी बचत अधिशेष का था ।

9.65 अभिग्रहण (ii) के अन्तर्गत 37,195.70 करोड़ रुपये का अपेक्षित अंतरण 18,484.83 करोड़ रुपये का अपेक्षित अंतरण अभिग्रहण (i) के अन्तर्गत 18,710.87 करोड़ रुपये तक बढ़ जाता है । यह इस कारण से है कि पहले तो केन्द्रीय करों के हिस्से की "क" श्रेणी राज्यों को पूरी राशि यानी 9,229.64 करोड़ रुपये की राशि को केवल इन राज्यों के अंतरण पूर्व योजनेतर राजस्व अधिशेष में जोड़ दिया गया । अंतरण पूरा करने की दृष्टि से यह पूर्ण रूप से बेकार था । दूसरे केन्द्रीय करों के "ख" केन्द्रीय श्रेणी राज्यों के 18,253.89 करोड़ रुपये के हिस्से में से केवल 8,772.66 करोड़ रुपये का इन राज्यों के अंतरण पूर्व योजनेतर राजस्व के अंतर को 8,789.90 करोड़ रुपये में से 17.24 करोड़ रुपये तक घटाकर इस्तेमाल किया गया । केन्द्रीय करों के हिस्सों की उनकी 9,481.23 करोड़ रुपये की राशि इस शेष राशि को योजनेतर राजस्व अधिशेष के साथ इन राज्यों को देकर "बेकार" कर दिया गया । करों के हिस्से का 18,710.87 करोड़ रुपये का यह कुल 'अपव्यय' (श्रेणी "क" राज्यों के मामले में 9,229.64 करोड़ रुपये तथा श्रेणी "ख" राज्यों के मामले में 9,481.23 करोड़ रुपये) अंतरण पूरा करने की दृष्टि से अभिग्रहण (ii) के अंतर्गत अपेक्षित अंतरण में बराबर की वृद्धि के लिए जिम्मेदार था ।

स्पष्ट है कि केन्द्रीय करों का राज्यों का वह भाग जो केवल कुछ राज्यों के योजनेतर राजस्व अधिशेष को बढ़ाता है वह एक समान राशि द्वारा अपेक्षित कुल अंतरण के केन्द्र के भार में वृद्धि भी करता है।

सारणी 9.9

1984–85 से 1988–89 की अवधि के लिए आठवें वित्त आयोग के अंतरण पूरा करने संबंधी दृष्टिकोण को लागू करके केन्द्रीय करों हिस्से के संबंध में राज्यों के हिस्से से संबंधित विभिन्न अभिग्रहणों संबंधी अंतरण का अनुमान

(करोड़ रुपये में)

		क श्रेणी राज्य	ख श्रेणी राज्य	ग श्रेणी राज्य	जोड़
1.	अंतरण से पूर्व राज्यों के राजस्व की स्थिति . .	8,063.94	(–) 8,789.90	(–) 9,694.93	(–) 18,484.83 (–) 8,063.94
2.	अभिग्रहण I के अन्तर्गत अंतरण . . .	..	8,789.90	9,694.93	18,484.83
	1. केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा . .	..	..	..	..
	2. राजस्व अंतर अनुदान	..	8,789.90	9,694.93	18,484.83

सारणी 9.9—क्रमश

		क श्रेणी राज्य	ख श्रेणी राज्य	ग श्रेणी राज्य	जोड़
3.	संघीय उत्पाद शुल्क के 5%से भिन्न केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा	9,229.64	18,253.89	5,684.05	33,167.58
4.	अभिग्रहण II के अन्तर्गत राज्यों के राजस्व की स्थिति .	17,293.58	9,481.23 (–)17.24	(–) 4,010.88	26,774.81 (–)4,028.12
5.	अभिग्रहण II के अंतर्गत अंतरण . . .	9,229.64	18,271.13	9,694.93	37,195.70
	1. केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा . .	9,229.64	18,253.89	55,884.05	33,167.58
	2. राजस्व अंतरण अनुदान . . .	..	17.24	4,010.88	4,028.12
6.	संघीय उत्पाद शुल्क में 5%राज्यों का हिस्सा . .	..	7.54	2,507.46	2,515.00
7.	अभिग्रहण III के अन्तर्गत राज्यों के राजस्व की स्थिति .	17,293.58	9,481.82 (–)9.70	(—)1,503.42	26,774.81 (–)1,513.12
8.	अभिग्रहण III के अन्तर्गत अंतरण . . .	9,229.64	18,271.13	9,694.93	37,195.70
	1. केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा . .	9,229.64	18,261.43	8,191.51	35,682.58
	2. राजस्व अंतर अनुदान	..	9.70	1,503.42	1,513.12
9.	अंतरण में वृद्धि :				
	1. अभिग्रहण I की तुलना में अभिग्रहण II . .	9,229.64	9,481.23	..	18,710.87
	(i) केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा . .	9,229.64	18,253.89	5,684.05	33,167.58
	(ii) राजस्व अंतर अनुदान . . .	..	(–)8,772.66	(–)5,684.05	(–) 14,456.71
	2. अभिग्रहण II की तुलना में अभिग्रहण III .	..	..	..	..
	(i) केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा . .	..	7.54	2,507.46	2,515.00
	(ii) राजस्व अंतर अनुदान . .	..	(–)7.54	(–)2,507.46	(–)2,515.00

टिप्पणियां :

राज्यों की श्रेणियां :

(क) अंतरण से पूर्व भी जिन राज्यों में योजनेतर राजस्व अधिशेष था यानी गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब तथा तमिलनाडु।

(ख) अंतरण से पूर्व जिन राज्यों में योजनेतर राजस्व घाटा था परन्तु जिन्होंने केन्द्रीय करों में हिस्से के बाद, राजस्व अधिशेष प्राप्त कर लिया यानी आंध्र प्रदेश, बिहार, केरल, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश। राजस्थान का 1984–85 में थोड़ा घाटा तथा 1985–89 में अधिशेष होगा।

(ग) केन्द्रीय करों के हिस्से के बाद भी जिन राज्यों में योजनेतर राजस्व घाटा था यानी असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, उड़ीसा सिक्किम, त्रिपुरा, बंगाल ।

अभिग्रहण :

(1) केन्द्रीय करों में राज्यों का कोई हिस्सा नहीं।

(2) संघीय उत्पाद शुल्क के 5%से भिन्न केन्द्रीय करों में हिस्सा जिनमें राज्य भी शामिल हैं।

(3) संघीय उत्पाद शुल्क का 5%हिस्सा जिसमें राज्य भी शामिल हैं।

9.66 यह बात ध्यान देने योग्य है कि अभिग्रहण-II के अंतर्गत "ग" समूह के राजस्व घाटे वाले राज्य के हिस्सों में केन्द्रीय कर का जो 5,684.05 करोड़ रुपया आना था उसमें से इन राज्यों के कुल अंतरण हकदारी की राशि में एक पैसे की भी बढ़ोतरी नहीं हुई। उन राज्यों के अंतरण हकदारी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि राजस्व अंतर अनुदान की हकदारी को उन राज्यों के केन्द्रीय करों की हकदारी की राशि के बराबर कम कर दिया गया। **एक दूसरा महत्वपूर्ण निष्कर्ष जो इससे निकलता है वह यह है कि केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से, जिसमें घाटे वाले राज्यों के सिर्फ योजनेतर राजस्व के अंतर में कमी होती है उससे केंद्र में आवश्यक अंतरण के कुल बोझ में किसी भी प्रकार की कोई बढ़ोतरी नहीं होती।** सिर्फ उन अंतरण संघटन में परिवर्तन होता है। करों के हिस्से के संघटक तत्वों में तो वृद्धि होती है लेकिन साथ ही साथ इससे राजस्व अंतर अनुदान के संघटन में उतनी ही मात्रा में कमी हो जाती है।

9.67 इससे यह स्पष्ट है कि इस अंतर को भरने वाले दृष्टिकोण के अंतर्गत केन्द्रीय करों को राज्यों के बीच वितरण करने का जो यह अत्यंत "प्रगतिशील" फार्मूला तैयार किया गया है उससे पूर्ण रूप से केन्द्र को ही लाभ पहुंचता है क्योंकि इससे राजस्व के बचत या अधिशेष वाले राज्य की कीमत पर केन्द्र के अंतरण के कुल बोझ को कम किया जाता है और इससे राजस्व में घाटे वाले राज्यों को किसी भी रूप में कोई लाभ नहीं पहुंचता है तथापि राजस्व को घाटे वाले उन राज्यों को यह कहकर उल्लू बनाया जा सकता है या ठगा जा सकता है और उन्हें यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि उनके लिए ही राजस्व के बचत वाले राज्यों की पूंछ मरोड़ी गई है यानि उनके लिए ही उन राज्यों की कीमत पर यह रास्ता निकाला गया है। इस तथ्य से यह बात और भी अधिक सुस्पष्ट हो जाती है कि अभिग्रहण III के अंतर्गत अंतरण की कुल राशि (जिसमें केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से और राजस्व अंतर अनुदान भी शामिल है) उतनी ही थी जितनी कि अभिग्रहण II के अंतर्गत थी यानि इसके अंतर्गत राज्यों द्वारा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में अधिक हिस्से प्राप्त करने के बाद भी यह राशि अभिग्रहण-III के अंतर्गत 37,195.70 करोड़ रुपए ही रही जो कि 40%के बदले में 45 प्रतिशत है। अब प्रश्न यह है कि कर के अतिरिक्त हिस्से की राशि कहां गई? यह 5%के केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अतिरिक्त हिस्से की राशि उन राज्यों में बांट दी गई जिन राज्यों में, 40%की केन्द्रीय उत्पाद शुल्क को हिसाब में लेते हुए अन्य करों में अपने हिस्से के बाद भी (जैसा कि अभिग्रहण-II के अंतर्गत है) योजनेतर राजस्व में घाटा रहता है। चूंकि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अतिरिक्त 5%का कोई भी अंश उन राज्यों को नहीं प्राप्त हुआ जिन राज्यों में इस

स्तर पर पहले से ही योजनेतर राजस्व की बचत थी तो अंतर को भरने की दृष्टिकोन से उसका कोई भी अंश बेकार नहीं गया है। इसकी पूरी राशि राज्यों के राजस्व अंतर को कम करने में चला गया और इस प्रकार उन राज्यों के राजस्व अंतर अनुदान हकदारी में कमी रही। इस प्रकार केन्द्र को केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की 5% की जो अतिरिक्त राशि का भुगतान करना पड़ा उसकी प्रतिपूर्ति आवश्यक राजस्व अंतर अनुदान की राशि में कमी करके हो गई। इस प्रकार केन्द्र पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का कोई निवल बोझ नहीं पड़ा। और न ही घाटे वाले राज्यों ("ग" श्रेणी के राज्यों) को, जिन्हें कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अतिरिक्त 5% से हिस्सा प्राप्त होता है, कुल अंतरण से एक पैसा भी अधिक मिला क्योंकि राजस्व अंतर अनुदान हकदारी की राशि में कमी करके इसे बराबर कर दिया गया। इससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आठवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के हिस्से से 5% की जो राशि राज्यों को दी थी वह शत प्रतिशत लोगों को दिखाने वाली बात थी और इससे केन्द्र सरकार पर कोई भी अतिरिक्त भार नहीं पड़ा। लोगों को यह समझाया गया कि केन्द्र सरकार से यह कहा गया है कि वह केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से 5% की अतिरिक्त राशि घाटे वाले राज्य के पक्ष में छोड़ दें। लेकिन फिर भी केन्द्र सरकार से उतनी राशि से एक पैसा भी अधिक नहीं छोड़ना पड़ा जितनी राशि वह अंतर भरने वाले दृष्टिकोण के अंतर्गत भुगतान करनी या बाँटनी और न ही इस प्रकार से घाटे वाले राज्यों को भी उतनी राशि से एक पैसा भी अधिक दिया गया जितनी राशि प्राप्त करने के वे राज्य किसी भी हालत में हकदार थे। वास्तव में आठवें वित्त आयोग की यह सिफारिश तो मात्र एक प्रकार का जादुई दिखावा था जो कि आठवें वित्त आयोग द्वारा बहुत कुशलतापूर्वक तैयार किया गया था।

9.68 आठवें वित्त आयोग द्वारा केन्द्रीय करों की राज्यों में आपस में परस्पर वितरण करने का जो "प्रगतिशील" मानदण्ड अपनाया गया था उसमें अंतर भरने के दृष्टिकोण के अंतर्गत यह बात अंतर्निहित थी कि केन्द्रीय करों में राज्यों के अनुमानित 35,682.58 करोड़ रुपए की राशि में से 16,971.71 करोड़ रुपए (यानि 47.5%) का लाभ तो केन्द्र को ही पहुंचा क्योंकि इससे उसके 1,848.43 करोड़ रुपए के मूल राजस्व अंतर अनुदान का उत्तरदायित्व कम होकर अंत में 1,513.12 करोड़ रुपया रह गया। इस प्रकार से करों की हिस्सेदारी के लिए तैयार किए गए फार्मूले में सबसे बड़ा हिताधिकारी या लाभभोगी तो केन्द्र ही रहा। राजस्व अधिशेष के तौर पर निवल आधार पर उसे कुल 9,481.23 करोड़ रुपए का लाभ हुआ जो कि उसे केन्द्रीय करों की वितरण की जाने वाली राशि का 26.6% था "ख" श्रेणी में शामिल किए गए 6 (छः) राज्यों में चार राज्य तो हिन्दी भाषा भाषी राज्य यानि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान। ये राज्य भारत के वे मध्य स्थल हैं जो निम्न आय श्रेणी में आता है और केन्द्र में सत्तारुढ़ दल की शक्ति का केन्द्र है और इसके परिणामस्वरूप इन राज्यों को केन्द्र सरकार के उपर राजनैतिक दबदबा बना रहता है। केन्द्रीय करों में इन चार राज्यों के जितने हिस्से हुए उसके परिणामस्वरूप इन राज्यों के अंतरण के पूर्व योजनेतर घाटे की 7,308.49 करोड़ रुपए की राशि उसी रूप में 8,948.92 करोड़ रुपए के राजस्व अधिशेष के रूप में परिवर्तित हो गयी। बाकी 9,229.64 करोड़ रुपए की राशि जो कि केन्द्रीय करों के वितरण योग्य राशि का 25.9% है वह "क" श्रेणी के राज्यों को उपचित हुआ जिनका और योजनेतर राजस्व अधिशेष अंतरण के पूर्व के 8,063.94 करोड़ रुपए से बढ़ कर 17,298.58 करोड़ रुपया हो गया। सिर्फ "ग" श्रेणी के दस राज्यों को केन्द्रीय करों के उनके अपने हिस्से से किसी भी प्रकार का कोई निवल लाभ नहीं हुआ क्योंकि इसके परिणामस्वरूप राजस्व अंतरण अनुदान के उनकी हकदारी उतनी ही मात्रा में कम हो गई।

9.69 अंतर को पूरा करने का दृष्टिकोण और इसके साथ कर वितरण करने के लिए स्वीकार किए गए प्रगतिशील फार्मूला का इसके अतिरिक्त और भी अन्य महत्वपूर्ण वित्तीय निहितार्थ है। सबसे पहले तो "ग" श्रेणी वाले राज्यों को अतिरिक्त राजस्व जुटाने के लिए किसी भी प्रकार का कर या करेतर उपाय प्रारंभ करने के लिए कोई प्रेरणा नहीं मिलती। अंतरण पूर्व की उनकी जो कुछ भी योजनेतर राजस्व संबंधी घाटा होगा; वित्त आयोग द्वारा उसमें ध्यान में रखा जाएगा और उसकी जिम्मेदारी आंशिक रूप से केन्द्रीय करों में उन राज्यों की हिस्सेदारी से और बाकी राजस्व अंतर अनुदान से पूरी कर दी जाएगी। इसका एक बेहतर परिणाम यानि अंतरण के बाद योजनेतर राजस्व में बचत करना इन राज्यों की पहुंच के बाहर की बात है चाहे वित्त आयोग द्वारा करों की हिस्सेदारी के लिए कितने ही "प्रगतिशील फार्मूले" की सिफारिश क्यों न की जाए। अतिरिक्त राजस्व जुटाने के लिए किए गए कर और करेतर उपाय से अधिक से अधिक वे यह आशा कर सकते है कि वे अपने अंतरण पूर्व योजनेतर राजस्व घाटे में कमी कर सकते हैं। लेकिन उन राज्यों के लिए इसका कोई तर्क नहीं है। इसका एक ही परिणाम निकलेगा कि अंतरण में उन राज्यों की हिस्सेदारी उतनी ही मात्रा में कम हो जाएगी और इसका फल यह होगा कि ये राज्य बिना घाटे वाली स्थिति में तो आ जाएंगे लेकिन साथ-साथ यह भी होगा कि वे राज्य अंतरण के बाद बचत वाली स्थिति में भी नहीं आ जाएंगे जोकि अंतरण पूरा करने वाले दृष्टिकोण के अंतर्गत उनके लिए किसी भी स्थिति में सुनिश्चित ही इस स्थिति में राजस्व जुटाने के लिए अप्रिय उपाय कर लांछना मोल लेने का कोई मतलब नहीं रह जाता हैं। दूसरी ओर फिजूल खर्ची के परिणामस्वरूप अगर उनके अंतरणपूर्व योजनेतर राजस्व का अंतर बढ़ता जाता है तो यह उन राज्यों की सिरदर्दी नहीं है बल्कि इसका उत्तरदायित्व तो वित्त आयोग और केन्द्र का ही इन लाभों के लिए अनेक राज्यों के लिए यह स्वागत योग्य बात होगी अगर उन्हें "ग" श्रेणी की हैसियत प्राप्त हो जाती यानि उन राज्यों को "ग" श्रेणी में रखा जाता है। अगर ऐसी बात नहीं होती तो यह बतलाना मुश्किल हो जाता कि पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश और जम्मू एवं कश्मीर राज्य, जो कि राज्य-घरेलू उत्पाद (एस०डी०पी०) की दृष्टिकोण से ऊपर से क्रमशः पांचवें, छठे और ग्यारहवें स्थान पर है वे भी "ग" श्रेणी के राज्यों में क्यों आते है। इसके अतिरिक्त अन्य राज्य भी नौवे, वित्त आयोग, 1987 के मध्य तक जिसके गठन किए जाने की संभावना है, की अवधि में अपने आपको इस श्रेणी में लाने का प्रयास कर रहा है।

9.70 "ख" श्रेणी के राज्यों को भी राजस्व जुटाने तथा अपने योजनेतर खर्च में कमी करने के लिए दिया गया प्रोत्साहन बहुत कम है। भारत के मध्य स्थल के राज्य जो इस श्रेणी में आने वाले राज्यों का दो-तिहाई हिस्सा है और जिनका केन्द्र पर राजनैतिक दबदबा है, वे इस बात पर निर्भर रह सकते है कि वित्तीय अनुशासन में दी गई शिथिलता के परिणामस्वरूप अगर वे अंतरण पूर्व योजनेतर राजस्व की अधिक घाटे की स्थिति में आ भी जाते है तो अगला वित्त आयोग कर के हिस्से दारी के फार्मूले को और अधिक "प्रगतिशील" बना देगा और उसके परिणामस्वरूप काफी मात्रा में अंतरण के पश्चात् योजनेतर राजस्व में बचत होगी। अपने राजनैतिक दबदबे के अतिरिक्त वे राज्य इस बात से अवगत है कि इस संबंध में उनका और केन्द्र का, दोनों का आपसी परस्पर स्वार्थ मिलता है। यदि कर की हिस्सेदारी के लिए और "अधिक प्रगतिशील" फार्मूला तैयार किया जाता है तो उससे केन्द्र इस बात में समर्थ हो जाएगा कि वह "ख" और "ग" श्रेणियों के राज्यों के बड़ी मात्रा में पूर्व अंतरण योजनेतर राजस्व घाटा के कारण अपनी अतिरिक्त अंतरण देयता में कमी कर दे और यह कमी बचत वाले राज्यों ("क" श्रेणी के राज्यों) की कीमत पर होगा। वित्तीय अनुशासन हीनता के कारण "ख" श्रेणी के किसी भी राज्य के साथ सबसे बुरी बात यह हो सकती है कि वह "ग" श्रेणी में आ जाएगा इसका मतलब यह हुआ कि उस राज्य का पश्च-अंतरण योजनेतर राजस्व अधिशेष शून्य हो जाएगा। इस स्थिति में पहुंचना भारत के मध्य स्थल के चार राज्यों के लिए कोई भयानक स्थिति नहीं होगी। ये राज्य इस बात से बेशक आश्वस्त रहेंगे कि उस स्थिति में केन्द्र में उनके प्रभावशाली राजनैतिक दबदबे के परिणामस्वरूप बाजार से लिए गए ऋण के वितरण और केन्द्रीय सहायता प्राप्त करने के लिए योजना आयोग द्वारा तैयार किए गए "फार्मूले" को और अधिक "प्रगतिशील" बना दिया जाएगा ताकि इन सबों में उन्हें और अधिक हिस्सा मिल सके और यह अधिक हिस्सेदारी बचत वाले राज्यों की कीमत पर दी जाएगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पहले के चार राज्य पर्याप्त मात्रा में अपने राज्यों की योजना बना सके।

9.71 इस प्रकार इस वित्तीय अनुशासनहीनता के परिणामस्वरूप सिर्फ "क" श्रेणी में अपने वाले राज्यों को ही नुकसान होगा उनके अंतरण पश्च योजनेतर राजस्व अधिशेष में कमी किए जाने के परिणामस्वरूप उनके राज्य के योजना

के परिणाम या आधार पर निश्चित रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस सबका परिणाम यह हुआ है कि स्रोतों के अंतरण की वर्तमान पद्धति में उपरोक्त अवधि में राज्यों के अपने वर्तमान दरों पर कर और करेतर राजस्व के स्रोतों में और उसी अवधि में उनके प्रति 100 रुपये पर संबंधित अंतरण हकदारी के बीच एक नकारात्मक संबंध देखने में आता है। इसे सारणी 9.10 में दिखाया गया है।

9.72 सारणी 9.10 से यह स्पष्ट है कि 1984–89 की अवधि के दौरान राजकरों से जुटाए गए प्रति 100 रुपये के राजस्व के लिए हरियाणा और पंजाब केन्द्रीय करों में अपने हिस्से के तौर पर क्रमश: 15.6 रु० और 16.3 रु० प्राप्त करेगा जबकि उत्तर प्रदेश और बिहार क्रमश: 84.2 रु० और 142.3 रुपया प्राप्त करेगा और हरियाणा तथा पंजाब का पड़ोसी राज्य हिमाचल प्रदेश 159.5 रु० प्राप्त करेगा जो कि हरियाणा और पंजाब को प्राप्य राशि का 10 गुणा है। भारत में विकसित की गई अंतरण की यह पद्धति राज्यों के उनके कर और करेतर स्रोतों से जुटाए गए एवं उपलब्ध राजस्व को बड़े ही प्रभावपूर्ण तरीके से पृथक् कर देता है। इस प्रकार की पद्धति वित्तीय अनुशासन के दृष्टिकोण से उतनी दुर्भाग्यकारी नहीं होती अगर उसका संबंध कुछ सैकड़ों करोड़ रुपयों के अंतरण भाग से होता। लेकिन जैसा कि सारणी 9.9 से स्पष्ट है आठवें वित्त आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अंतरण के अधीन 1984-89 की अवधि के दौरान राज्यों के अपने कुल प्राक्कलित कर और करेतर राजस्व का 393.1 आ जाता है। इस प्रकार अंतरण की इतनी अधिक विभेदकारी पद्धति जिसके अंतर्गत राज्यों को हस्तांतरण की जाने वाली इतनी बड़ी राशि आती हो वह स्वस्थ वित्तीय नीति के निर्माण की दृष्टिकोण से एक विनाशकारी पद्धति ही कहलाएगी। इस पद्धति ने वित्त आयोग के माध्यम से केन्द्र को इतना बड़ा अवसर प्रदान कर दिया या केन्द्र के हाथ में एक ऐसा हथियार दे दिया है जिससे कि वह एक श्रेणी के राज्यों को दूसरी श्रेणी के राज्यों के विरुद्ध हमेशा इस्तेमाल करता रहे और इस प्रकार वह उन राज्यों की स्वायत्तता को हमेशा झुठलाता रहे। इस प्रकार की निर्लज्जक पूर्ण विभेदकारी पद्धति से कभी भी केन्द्र और राज्यों के आपसी सहयोग का स्थायी संबंध नहीं बन जाएगा और इससे संक्रिय राष्ट्रीय विकास में भी बड़ी बाधा उपस्थित होगी।

सारणी 9·10

1984-89 की अवधि के दौरान राज्यों की प्राक्कलित अंतरण हकदारी और वर्तमान दरों पर उनके अपने कर और करेतर स्रोतों जुटाए गए राजस्व के बीच अनुपात

राज्य	प्रक्कलित राजस्व (करोड़ रुपयों में)			प्राक्कलित अंतरण हकदारी (करोड़ रुपयों में)			अंतरण का अनुपात	
	कर	करेतर	कुल	करों का हिस्सा	अनुदान	कुल	स्तंभ-I के अनुसार स्तंभ 4	स्तंभ-3 के अनुसार स्तंभ 6
	1	2	3	4	5	6	7	8
1. हरियाणा . .	2,743.74	884.72	3,628.46	427.97	..	427.97	15.6	11.8
2. पंजाब . .	3,743.23	1,039.09	4,782.32	611.15	..	611.15	16.3	12.8
3. महाराष्ट्र . .	12,342.19	3,133.91	15,476.10	2,617.30	..	2,617.30	21.1	16.9
4. गुजरात . .	5,915.88	899.88	6,815.76	1,417.18	..	1,417.18	24.0	20.8
5. तमिलनाडु .	7,750.46	1,249.85	9,000.31	2,443.07	..	2,443.07	31.5	27.1
6. कर्नाटक . .	4,961.65	1,414.29	6,375.94	1,712.97	..	1,712.97	34.5	26.9
7. केरल . .	3,402.57	869.52	4,272.09	1,258.94	..	2,258.94	37.0	29.5
8. आंध्र प्रदेश .	6,554.41	1,374.19	7,928.60	2,754.78	..	2,754.78	42.0	34.7
9. राजस्थान . .	2,811.93	907.25	3,719.18	1,538.18	9.70	1,547.88	54.7	41.6
10. पश्चिम बंगाल .	4,860.41	1,383.90	6,444.31	2,820.62	213.71	3,034.33	58.0	47.1
11. मध्य प्रदेश .	3,980.35	2,661.38	6,641.93	2,788.11	..	2,788.11	70.0	42.0
12. उत्तर प्रदेश .	7,029.06	2,554.58	9,383.64	5,915.60	..	5,915.60	84.2	63.0
13. उड़ीसा . .	1,381.52	750.64	2,132.16	1,561.60	102.20	1,663.80	113.0	78.0
14. बिहार . .	2,814.47	1,627.49	4,441.96	4,005.82	..	4,005.82	142.3	90.2
15. जम्मू एवं कश्मीर .	505.69	697.65	1,203.34	738.21	257.18	995.39	146.0	82.7
16. हिमाचल प्रदेश .	332.63	266.33	598.96	530.69	183.08	713.77	159.5	119.2
17. असम . .	779.67	604.09	1,383.76	1,251.67	192.79	1,444.46	160.5	104.4
18. सिक्किम . .	27.76	43.75	71.51	63.52	29.13	92.65	228.8	129.6
19. मेघालय . .	53.76	48.14	101.90	242.88	98.42	341.30	415.8	334.9
20. नागालैण्ड .	44.79	95.00	139.79	325.47	158.57	484.04	726.7	346.3
21. मणिपुर . .	32.19	76.11	108.30	299.18	123.55	422.73	929.4	390.3
22. त्रिपुरा . .	41.39	60.67	102.06	357.67	144.79	502.46	664.1	492.3
कुल .	72,109.75	22,642.63	94,752.38	35,682.58	1,513.12	37,195.70	49.5	30.3

स्रोत :—आठवें वित्त आयोग 1984 की रिपोर्ट—

(i) स्तंभ 1-3 के लिए अनुबंध III-27 (1) से 27-(XXII)

(ii) स्तंभ 4 और 5 के लिए अध्याय (XIII), सारणी 1 और 2

9.73 वित्त आयोग की पूर्ण रूप से एक पक्षीय यह दृष्टिकोण कि विकास पूर्ण कार्य निष्पादन और वित्तीय अनुशासन वाले राज्यों को तो दण्ड दिया जाए लेकिन दूसरी ओर आर्थिक अक्षमता और वित्तीय अनुशासन में शिथिलता बरतने वाले राज्यों को भारी मात्रा में अंतरण के रूप में पारितोषिक दिया जाए। इससे स्वाभाविक रूप से यह हुआ है कि केन्द्र से प्राप्त हुए अंतरण पर इन राज्यों की निर्भरता बढ़ती गई है। अंतरण की यह राशि जो कि पहली पंचवर्षीय योजना में मात्र 447 करोड़ रुपए की थी वह 1984-89 की अवधि के दौरान जो आठवें वित्त आयोग की अवधि के अधीन आ जाती है, बढ़कर 39,452 करोड़ रुपए हो गई जो कि पहले की राशि की 88 गुणा अधिक है। आठवें वित्त आयोग ने यह प्राक्कलित किया था कि 1984-89 की अवधि में केन्द्र के योजनेतर राजस्व में 39,123 करोड़ रुपए अधिशेष की बचत होगी।* दूसरे शब्दों में आयोग ने न सिर्फ केन्द्र के योजनेतर राजस्व की पूरी राशि ही खाली कर दी बल्कि अंतरण को पूरा करने के लिए केन्द्र को इसके अतिरिक्त भी और अधिक राशि की व्यवस्था करनी पड़ी। हाल के वर्षों में केन्द्र की जो राजस्व की स्थिति बिगड़ी है उसमें अंतरण एक मात्र कारण नहीं होते हुए भी एक बहुत बड़ा कारण अवश्य है। अब केन्द्र अपने राजस्व लेखे में अधिक से अधिकतर घाटा उठा रहा है और यह इस तथ्य के बावजूद है कि खर्च का बहुत बड़ा भाग जो कि राजस्व व्यय की किस्म का है उसे भी पूंजीगत व्यय लेखे के रूप में लिया जा रहा है। ये इस प्रकार है :—(i) रक्षा पूंजीगत परिव्यय (1986-87) के बजट में 1098 करोड़ रुपए (ii) आयात किए उर्वरकों पर सहायिकी (1986-87) के बजट में 250 करोड़ रुपए। राजस्व घाटे का निहितार्थ यह हुआ कि केन्द्र बाजार से उधार लेकर अपने राजस्व व्यय के एक अंश को भी वित्त पोषित कर रहा है। यह निस्संदेह है कि 1987-88 के बजट में ब्याज के रूप में भुगतान की जाने वाली राशि को राजस्व व्यय की सबसे बड़ी मद होगी और यहां तक कि यह राशि रक्षा व्यय की राशि से भी बढ़ जाएगी। राज्यों में प्रचलित यह धारणा कि केन्द्र की वित्तीय शक्ति उसकी उत्तम कोटि की राजस्व की स्थिति पर निर्भर है उसके प्रतिकूल वस्तु स्थिति यह है केन्द्र की वित्तीय शक्ति उसके उत्तम राजस्व की स्थिति पर निर्भर नहीं है बल्कि केन्द्र सार्वजनिक क्षेत्र को प्राप्त पूंजी को अपने पास रख लेता है या यों कहें कि केन्द्र सार्वजनिक क्षेत्र की प्राप्त पूंजी को हड़प लेता है।

9.74 हाल के वर्षों में केन्द्र सरकार (जिसमें विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों का रोक कर रखा गया लाभ भी शामिल है) की निवल बचत (जो कि वास्तव राजस्व बचत है) नहीं के बराबर हुई है और इसमें लगातार उत्तरोत्तर कमी दिखाई देती है। जैसे कि—1983-84 में (-) 674.2 करोड़ रुपए, 1984-85 में (राजस्व व्यय) (-) 1,702.9 करोड़ रुपए और 1985-86 में (राजस्व व्यय) (-) 3,404.2 करोड़ रुपए@। हाल के वर्षों में देश की निवल बचत में जो लगातार कमी आती गई है जैसे 1978-79 में बचत की जो प्रतिशत 20.0% थी वह 1984-85 में घटकर 16.1 प्रतिशत रह गयी है, उसका कारण यही है@@।

II. राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता

9.75 राज्य योजनाओं के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में दो बातें सम्मिलित है (i) उसकी पूरी राशि और (ii) राज्यों के बीच उसका बंटवारा। राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता और इस संबंध में उनके परस्पर विरोधी हितों के कारण राज्यों के मन में यह बात स्थायी तौर पर घर कर गयी है कि इन दोनों मामलों पर नए सिरे से एक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का विकास किया जाए या नया दृष्टिकोण अपनाया जाए।

*आठवें वित्त आयोग 1984 की रिपोर्ट अनुबंध- IV-I मु० पृ० 231-232

@भारत सरकार, वित्त मंत्रालय केन्द्रीय बजट 1985-86 का आर्थिक और कार्यात्मक वर्गीकरण, अनुबंध-3 (मद संख्या 5.1 और 5.2) पृष्ठ 8

@@सी०एस०ओ०· राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 1970-71 से 1983-84 जनवरी, 1986 परिशिष्ट क-1 मुख्य पृष्ठ 156-57

केन्द्रीय सहायता की कुल राशि

9.76 आदर्श पूर्ण स्थिति तो यह होगी कि केन्द्रीय सहायता की कुल राशि उतनी होनी चाहिए जो कि राज्य योजनाओं के लिए विवेकपूर्ण रूप से तैयार किए गए परिव्यय और उन योजनाओं के लिए राज्य से अपने स्रोतों से जुटाए गए राजस्व से अधिक होता हो। लेकिन इस दृष्टिकोण को अपनाने में वर्तमान में कई प्रकार की कठिनाइयां है। राज्य योजनाओं के अंतर्गत उचित रूप से कुल परिव्यय प्राक्कलन तैयार करने की सबसे विवेकपूर्ण प्रक्रिया यह होगी कि विकास कार्य के विभिन्न शीर्षों और उप शीर्षों के अधीन सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के कुल परिव्यय का बंटवारा कर दिया जाए। इसके बाद प्रत्येक शीर्ष/उप शीर्ष के अधीन नियत किए गए परिव्यय को विभिन्न विषयों के लिए उनकी सांविधानिक आवश्यकतानुसार केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच उसका बंटवारा कर दिया जाए और उसमें विकास की विभिन्न परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए व्यय की व्यवस्था करने के लिए केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकार की संबंधित उपयुक्तता पर पर्याप्त ध्यान रखा जाए। ताकि उपरोक्त दृष्टिकोण को अपनाने में कई प्रकार की बड़ी कठिनाइयां ही सबसे पहले समवर्ती सूची के कारण केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच उत्तरदायित्व का नियतन ही मात्र एक उपहास बनकर रह गया है। संविधान में किए गए 42 वें संशोधन से इस सूची में और वृद्धि ही हुई है। दूसरी बात संसाधन या राजस्व के स्रोतों पर केन्द्र का अधिक नियंत्रण है और इसके माध्यम से केन्द्र उन कार्यक्रमों को भी अपने अधीन कर लेता है जिनका कार्यान्वियन राज्य की एजेंसी के माध्यम से होता है। केन्द्र सरकार इस प्रकार के तथा कथित केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित स्कीमों के कार्यान्वियन के लिए अनुदान और ऋण देती है। इन स्कीमों पर जो केन्द्रीय परिव्यय होता है वह केन्द्रीय क्षेत्र की योजना पर किए गए बजट परिव्यय का बहुत बड़ा हिस्सा होता है। यह सारणी 9.11 में दर्शाया गया है।

सारणी 9.11

केन्द्रीय योजना में केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित स्कीमों पर केन्द्रीय बजट परिव्यय के रूप में उसके कुल बजट परिव्यय का प्रतिशत

	यूनिट	1985-86 व० प्रा०	1986-87 ब० प्रा०
1	2	3	4
1. केन्द्रीय और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित स्कीमों पर केन्द्र का बजट परिव्यय।	रु० (करोड़ में)	2,818.62	3,167.12
1. अनुदान .	"	2,645.51	2,997.44
2. ऋण . .	"	173.11	169.68
2. केन्द्रीय योजना पर केंद्र का बजट परिव्यय .	"	13,231.38	13,617.33
1. केन्द्रीय क्षेत्र योजना .	"	20,093.97	22,300.00
2. घटाएं : केन्द्रीय उद्यमों से बजट से अतिरिक्त वित्त पोषित राशि .	"	(-) 6,862.59	(-) 8,682.67
3. (2) के अनुपात में (1)%		21.3	23.3

9.77 सारणी 9.11 से यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय और केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित स्कीमों पर केन्द्रीय बजट परिव्यय, केन्द्रीय योजना के कुल बजट परिव्यय का प्रतिशत इस प्रकार था :—

1985–86 (प० प्रा०), 21.3% और 1986–87 में 23.3%। राज्य सरकारों द्वारा कार्यान्वित किए गए स्कीमों पर केन्द्र द्वारा इतनी बड़ी मात्रा में किए गए परिव्यय के परिणाम स्वरूप विकास के लिए राज्यों और केन्द्र सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों के उत्तरदायित्व के बीच जो विभाजन रेखा है उसमें भ्रांति पैदा हो जाती है। तीसरी बात केन्द्र के पास जो विशाल वित्तीय संसाधन है उसका दुरुपयोग केन्द्र ने बड़ी निर्ममता पूर्वक विकास के उन क्षेत्रों में भी अधिक्रमण करके किया है, जैसे कि कृषि के क्षेत्र में जोकि संविधान के अंतर्गत निस्संदेह रूप से राज्य का उत्तरदायित्व है। चौथी बात कुछ मामलों में संविधान के अंतर्गत केन्द्र इस बात के लिए प्राधिकृत है कि वह संसद द्वारा अधिनियमित विधि या कानून के अंतर्गत घोषणा करके एक पक्षीय रूप से राज्य की कीमत पर विकास संबंधी किसी भी उत्तरदायित्व को अपने ऊपर ले सकता है उदाहरण के लिए केन्द्र घोषणा करके निम्नलिखित उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले सकता है :—(i) किसी सड़क मार्ग को राज्य मार्ग घोषित करके। (ii) किसी अंतर्देशीय जल मार्ग को राष्ट्रीय जल मार्ग घोषित करके। (iii) किसी बंदरगाह को बड़ा बंदरगाह घोषित करके।(iv) किसी उद्योग को ऐसा उद्योग घोषित करके कि लोक हित में उस पर नियंत्रण रखना समीचीन है। (v) किसी अंतरराष्ट्रीय नदी और नदी घाटी को इस रूप में घोषित करके कि उस पर नियंत्रण रखना और उसका विकास करना लोकहित में समीचीन नहीं, और (vi) किसी संस्थान को राष्ट्रीय महत्व का संस्थान घोषित करके।

इसके अतिरिक्त जितने अवशिष्ट विषय हैं यानि वे विषय जिन्हें राज्य या समवर्ती सूची में शामिल नहीं किया गया उनके संबंध में भी केन्द्र सरकार पर ही दायित्व है। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र और राज्यों के बीच जो विभाजन रेखा खींची गई उसकी अवहेलना हो जाती है।

9.78 योजना के लिए राज्य के अपने संसाधन क्या क्या है सुस्पष्ट रूप से इसे परिभाषित करने में भी अनेकों कठिनाइयां है। उदाहरण के लिए राज्य अगर बाजार से ऋण लेता है तो यह राज्य का अपना संसाधन कहलाएगा लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया है कि बाजार से लिए गए कुल ऋण में राज्य का हिस्सा और अन्य राज्यों के बीच परस्पर इसका वितरण केन्द्र द्वारा मनमाने रूप से किया जाता है। इसी लघु बचत योजनाओं के अधीन किए गए निवल संग्रह में राज्य का कितना हिस्सा होगा इसका निर्धारण भी केन्द्र द्वारा किया जाता है। ग्रामीण विद्युतीकरण निगम से (आर० इ० सी०) जिसके अधिकांश भाग का वित्त पोषण निगम में केन्द्र द्वारा किया जाता है। राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा लिए गए ऋण को राज्य विद्युत बोर्ड का अंशदान माना जाता है और इस प्रकार वह राज्य के अपने संसाधन का घटक कहलाएगा। केन्द्र से प्राप्त योजनेतर विवेकानुदान से राज्य के योजनेतर व्यय में कमी आती है और इस को राज्यों को अपने संसाधन से पूरा करना पड़ता है। इस प्रकार राज्यों के पास अपनी योजनाओं की वित्त पोषित करने के लिए जितनी राशि उपलब्ध होती है उसमें वृद्धि हो जाती है। राज्यों और उनके उद्यमों द्वारा किया गया अतिरिक्त संसाधन जुटाव भी कि उनसे प्राप्त हुए निवल राजस्व की सीमा तक होता है उससे राज्यों के अपनी योजनाओं के लिए जुटाव किए गए संसाधन में वृद्धि होती है। किसी भी राज्य के अतिरिक्त संसाधन जुटाव का लक्ष्य क्या हो इसके लिए अभी तक कोई विवेकपूर्ण लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया है। वास्तविकता तो यह है कि कोई राज्य कितना अतिरिक्त संसाधन का जुटाव करता है इस विषय पर कोई उद्देश्यपूर्ण मापदण्ड होने के बजाए यह योजना आयोग और अलग-अलग राज्यों के बीच वाक्चातुर्य और ताकत की एक लड़ाई बन कर रह गया है।

राज्यों के माध्य केन्द्रीय सहायता का वितरण

9.79 कोई भी राज्य अपने स्वविवेक से जब अपने योजनागत परिव्यय का निर्धारण करता है और उसके लिए अपने संसाधनों से जुटाए गए धन के अतिरिक्त केन्द्र से किस मात्रा में उसे धन प्राप्त होगा इसके निर्धारण किए जाने के लिए कोई भी प्रयास करना उपरोक्त कठिनाइयों के फलस्वरूप केन्द्र के लिए मनमाना हो गया है। तीसरी पंचवर्षीय योजना तक सभी को केन्द्र द्वारा दी जाने वाली सहायता का निर्धारण उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार होता था। लेकिन इस प्रक्रिया के इस प्रकार के केन्द्र की ओर से मनमाने वाली बात को देखते हुए इसके विरुद्ध राज्यों के मन में असंतोष पैदा होता गया। इसी के परिणामस्वरूप सितम्बर, 1968 में गाडगिल फार्मूला को अपनाया गया। उस फार्मूले (गाडगिल फार्मूले) के अंतर्गत इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया कि केन्द्रीय सहायता की कुल राशि का निर्धारण कैसे किया जाए। इस फार्मूले में यह मान लिया गया कि केन्द्रीय सहायता की कुल राशि का निर्धारण तो किसी भी प्रकार कर ही लिया गया है इसने आपको सिर्फ इस बात तक सीमित रखा कि परस्पर विभिन्न राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता का वितरण किस प्रकार किया जाए इसका वास्तविक मापदण्ड क्या हो इसके लिए निम्नलिखित वास्तविक मापदण्ड स्वीकार किया गया। विशेष श्रेणी वाले राज्यों के लिए एक मुश्त राशि को अलग रख दिया गया (इस विशेष श्रेणी वाले राज्यों में उस समय असम, जम्मू एवं कश्मीर एवं नागालैण्ड राज्य आते थे) शेष राशि का वितरण बाकी बचे हुए राज्यों में किया जाना था जिसका आधार निम्नलिखित रूप से रखा गया।

(1) 60%जन संख्या के आधार पर, (2) राष्ट्रीय स्तर से कम प्रति व्यक्ति आय वाले राज्यों के बीच 10%प्रति व्यक्ति आय (राज्य घरेलू उत्पाद) के आधार पर, (3) 10%कर उद्ग्रहण के लिए किए गए प्रयास के आधार पर, (4) 10%सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं को जारी रखने के लिए और (5) 10%राज्य की विशेष किस्म की समस्याओं के लिए।

9.80 चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74) में केन्द्रीय सहायता को सम्पूर्ण राशि का बंटवारा गाडगिल फार्मूले के आधार पर किया गया था। पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974–79) में जिसे 1976 में अंतिम रूप दिया गया था केन्द्रीय सहायता के 90.8%का बंटवारा गाडगिल फार्मूले के आधार पर किया गया और शेष 9.2%का बंटवारा दो अतिरिक्त मानदण्ड के आधार पर किया जाना था। ये दो अतिरिक्त मानदण्ड थे (i) बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाओं के लिए सहायता (1.7%) और (ii) क्षेत्रीय कार्यक्रमों के लिए विशेष सहायता (7.2%)। जनता सरकार की अवधि में छठी पंचवर्षीय योजना, जो बनकर तैयार भी नहीं हो पायी, के ड्राफ्ट में एक अतिरिक्त मानदण्ड को अपनाया गया। यह अतिरिक्त मानदण्ड था आय समायोजित कुल जनसंख्या (आई० ए० टी० पी०)। किसी भी राज्य के आइ० ए० टी० पी० का माप इस प्रकार किया गया कि उस राज्य की संख्या को उस राज्य के पिछले तीन वर्षों के प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (एस०डी०पी०) के औसत से भारित किया जाना था। इस मानदण्ड के अनुसार बंटवारा योग्य केन्द्रीय सहायता में राज्य के हिस्से का निर्धारण सभी राज्यों के कुल आइ० ए० टी० पी० में उस राज्य के आई० ए० टी० पी० का जो औसत था उसके अनुपात में किया जाना था।

9.81 अगस्त, 1980 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने गाडगिल फार्मूले को उस सीमा तक संशोधित कर दिया कि गाडगिल फार्मूले के अंतर्गत चालू सिंचाई और बिजली परियोजनाओं के आधार पर कुल केन्द्रीय सहायता का जो 10%बंटवारा किया जाता था उसे समाप्त कर दिया गया और उसके बदले में राष्ट्रीय स्तर से कम एस०डी०पी० वाले राज्यों को मिलने वाली सहायता का प्रतिशत 10 से बढ़ाकर 20 कर दिया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में सहायता के बंटवारे के आई० ए० टी० पी० को आधार मानने की बात ही छोड़ दी गई। इसके अतिरिक्त अन्य मानदण्ड में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता के बंटवारे के लिए अपनाए गए मानदण्ड तथा साथ ही साथ उन राज्यों को दिया गया संबंधित भार का महत्व (वेट) का संक्षिप्त विवरण सारणी 9.12 में दे दिया गया है।

सारणी 9·12

राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता के बंटवारे के लिए अपनाया गया मानदण्ड

	चौथी पंचवर्षीय योजना		पांचवी पंचवर्षीय योजना		छठी पंचवर्षीय योजना		सातवी पंचवर्षीय योजना	
	करोड़ रु० में	प्रतिशत	करोड़ रु० में	प्रतिशत	करोड़ रु० में	प्रतिशत	करोड़ रु० मे	प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1. गाडगिल/आशोधित गाडगिल फार्मूला .	3,500.00	100.0	5,450.00	90.8	10,945.00	71.3	23,627.00	79.6
1. विशष श्रेणी वाले राज्यों के लिए एकमुश्त व्यवस्था . .	525.00	15.0	..	..	3,245.00	21.1	7,102.00	23.9
2. वास्तविक मानदंड . .	2,975.00 (100%)	85.0	..	..	7.700.00 (100%)	50.2	16,525.00 (100%)	55.7
(i) जनसंख्या . .	1,785.00% (60%)	51.0	..	..	4,620.00% (60%)	30.2	9,915.00 (60%)	33.4
(ii) प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० .	297.50 (10%)	8.5	..	..	1,540.00 (20%)	10.0	3,305.00 (20%)	11.1
(iii) कर प्रयास . .	297.50 (10%)	8.5	..	..	770.00 (10%)	5.0	1,652.50 (10%)	5.6
(iv) चालू सिंचाई और विद्युत परियोजना . . .	297.50 (10%)	8.5	..	..	..	..	..	..
(v) विशेष किस्म की समस्यायें .	297.50 (10%)	8.5	..	..	770.00 (1०)%	5.0	1,652.50	5.6
2. अन्य मानदण्ड . . .	..	..	550.00	9.2	4,405.00	28.7	6,259.00	20.4
(1) बाहरी सहायता प्राप्त परियोजनाएं . . .	..	..	100.00	1.7	1,450.00	9.5	3,800.00	12.
(2) चयन किए गए क्षेत्र का कार्यक्रम	..	..	45.000	7.5	1,355.00	8.8	2,459.00	7.6
(3) समायोजित आय कुल जनसंख्या (आइ०ए०टी०सी०) .	..	..	..	..	1,600.00	10.4	..	..
	3,500.00	100.00	6,000.00	100.00	15,350.00	100.00	29,886.00*	100.00

टिप्पणी :--कोष्ठक में दिए गए आंकड़े यह दर्शाते हैं कि इस फार्मूले में विभिन्न प्रकार के वास्तविक मानदण्ड को कितनी वरीयता दी गई है।

*राहत कार्यों के लिए दिए गए अग्रिम योजना सहायता 149 करोड़ रुपए की राशि का समायोजन करने के बाद, निवल केन्द्रीय सहायता की राशि 29,737 करोड़ रुपए निर्धारित की गई है।

केन्द्रीय सहायता के बंटवारे के लिए सातवीं पंचवर्षीय योजना का मूल्यांकन

9.82 राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता के बंटवारे के लिए अपनाए गए मानदण्ड के मूल्यांकन में सबसे बड़ी बाधा यह है कि इस मानदण्ड के लागू किए जाने के बाद पंचवर्षीय योजना और वार्षिक योजना के प्रलेखों में अब यह नहीं दिया जाता कि केन्द्रीय सहायता का राज्यवार बंटवारा कितना कितना किया जाता है। यह मात्र एक अनवधानिक चूक नहीं है। बल्कि यह तो महत्वपूर्ण सूचना की जानकारी नहीं दिए जाने का जानबूझ कर किया गया प्रयास है ताकि केन्द्रीय सहायता का बंटवारा कितने असामान्य तरीके से हो रहा है इसकी जानकारी सर्वसाधारण की नहीं हो सके क्योंकि सर्वसाधारण की जानकारी में यह बात आने से लोगों में बहुत बड़ी आलोचना और विरोध पैदा हो सकता है। इससे संबंधित जो थोड़ी बहुत तथ्यों की जानकारी लोगों को प्राप्त हुई उससे यह पता चलता है कि बहुत सारे मानदण्ड कई दृष्टिकोण से कुसंकल्पित और अयुक्तियुक्त हैं विभिन्न मानदण्डों में जो दोष है उसका ब्योरा नीचे दिया जाता है।

विशेष श्रेणी की स्थिति या हैसियत

9.83 गाडगिल फार्मूले के अंतर्गत अगर किसी राज्य को विशेष श्रेणी वाली हैसियत में रखा जाता है यह उसके लिए पुरस्कृत होने वाली बात होगी। गाडगिल फार्मूले के अंतर्गत सातवी पंचवर्षीय योजना में वितरित की गई 23,627 करोड़ रुपए की सहायता की राशि में 7,102 करोड़ रुपए जो कि पूरी राशि का 30 प्रतिशत है विशेष श्रेणी वाले राज्यों (असम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा) के बीच बांटा गया। यह राशि गाडगिल फार्मूला और अन्य मानदण्ड के अंतर्गत बांटी गई राशि का 23.9 प्रतिशत है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि वे इन आठों राज्यों में कुल 22 राज्यों की 1970 की जनसंख्या का कुल 5 प्रतिशत लोग रहते हैं। इतना ही नहीं छोटे से राज्य सिक्किम को छोड़कर व राज्य बहुत गरीब या निर्धन राज्य भी नहीं है। 1979-80 में, जिसमें उसके पिछले वर्ष का निवल राज्य घरेलू उत्पाद का प्राक्कलन उपलब्ध है, इन 8 राज्यों में सभी राज्यों के निवल घरेलू उत्पाद का मात्र 4.8 प्रतिशत का ही योगदान रहा। इस प्रकार एक समूह के रूप में उन राज्यों का प्रति व्यक्ति जो निवल एस०डी०पी० है वह सभी राज्यों के औसत एस०डी०पी० के समकक्ष या उसके बराबर ही रहा। विशेष श्रेणी वाले राज्यों का कुल योजना परिव्यय का निर्धारण 6,490 करोड़ रुपये किया गया है। जो कि उन राज्यों से प्राप्त कुल केन्द्रीय सहायता की राशि से 612 करोड़ रुपए कम है। चूंकि हिमाचल प्रदेश के पास अपने राज्य योजना के लिए सामान्यतया गहरी मात्रा में अपना ही संसाधन मौजूद है और असम एवं मेघालय भी इस दिशा में कुछ सकारात्मक उपलब्धि हासिल करने ही वाला है यद्यपि ये छोटे राज्य हैं अत: यह बहुत संभव है कि राज्य की योजना में अधिक केन्द्रीय सहायता की यह राशि बाकी पांच राज्यों के लेखे में ही जाती है यानि यह

राशि उन्हें ही प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में केन्द्रीय सहायता से इन पांच राज्यों का न सिर्फ 2900 करोड़ रुपये का योजनागत परिव्यय का वित्त पोषण होगी बल्कि योजनेतर संसाधन का 600 करोड़ रुपए के अंतर का वित्त पोषण भी इसी केन्द्रीय सहायता से होगा। अन्य तीन राज्यों के मामले में भी राज्य योजना के अधिकांश हिस्से और कुछ मामलों में तो संभवतया संपूर्ण राज्य योजना का वित्त पोषण केन्द्रीय सहायता से ही होगा। अतः विशेष श्रेणी वाले राज्य की हैसियत में आना वास्तव में एक अत्यन्त ही लाभकारी प्रस्ताव है।

9.84 ऐसी आशा करना बड़ा तार्किक होगा कि वित्तीय दृष्टिकोण से इतनी लाभकारी हैसियत किसी भी राज्य को सिर्फ सुपरिभाषित युक्तियुक्त मानदण्ड के आधार पर ही प्रदान किया जाएगा। लेकिन योजना प्रलेख में इस प्रकार के किसी भी मानदण्ड का निर्धारण नहीं किया गया है और न ही राज्यों के वास्तविक वर्गीकरण से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि किन राज्यों को विशेष श्रेणी वाले राज्यों में रखा जाए। ऐसा भी नहीं लगता कि बहुत ही सक्रिया या सक्रियता की संभावना वाली सीमा पर स्थित राज्यों को ही इस श्रेणी में शामिल किया गया है। अगर ऐसा होता तो इस श्रेणी में गुजरात, पंजाब और राजस्थान को भी शामिल कर लिया जाता। यह भी निश्चित ही है कि इस श्रेणी प्रति व्यक्ति निम्न आय वाले राज्यों को शामिल नहीं किया गया है क्योंकि इस श्रेणी में कई ऐसे राज्य हैं जिनकी प्रति व्यक्ति आय अधिक है। कई ऐसे राज्य हैं जिनका एस० डी० पी० कम है लेकिन उन्हें इस सूची में शामिल नहीं किया गया है ऐसा मान लिया जाता है कि योजना आयोग ने विभिन्न राज्यों के वर्तमान मूल्यों पर उनके तीन वर्षों (1976–79) के प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद, जिसका आकलन वित्त आयोग* द्वारा किया गया, को राज्यों के बीच केन्द्रीय सहायता के वितरण का आधार माना है। इन प्राक्कलनों से यह स्पष्ट है कि हिमाचल प्रदेश का प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० (1,230 रु०) सभी राज्यों के औसत (1,139 रु०) से अधिक है और जम्मू एवं कश्मीर का औसत (1,100 रु०) सभी राज्यों के औसत के बराबर होने वाला है। इन दोनों ही राज्यों को विशेष श्रेणी वाले राज्यों में शामिल कर लिया गया है जबकि बिहार (775 रु०), उत्तर प्रदेश (870 रु०), मध्य प्रदेश (895 रु०), उड़ीसा (918 रु०), आंध्र प्रदेश (1,006 रु०) और राजस्थान (1,127 रु०) को जिनका प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० सभी राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० से बहुत नीचे है, उन्हें इस सूची में शामिल नहीं किया गया है। यदि इसका आधार पहाड़ी भू प्रदेश माना गया होता तो जिन राज्यों को अब विशेष श्रेणी वाले राज्यों में शामिल किया गया है उन राज्यों को इस श्रेणी में शामिल किए जाने के बदले पहाड़ी क्षेत्र कार्यक्रम (जो कि विशेष क्षेत्रीय कार्यक्रम में शामिल है) के अधीन पर्याप्त मात्रा में केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती और आवश्यकतानुसार यह सहायता गाडगिल फार्मूला के अतिरिक्त इस प्रयोजन के लिए उनको दी गई राशि से और अधिक मात्रा में दी जाती। इससे यह होता कि पहाड़ी भू-भाग वाले कुछ राज्यों में इस प्रकार के अन्य राज्यों से अलग रखने से बचा जा सकता था। अगर वास्तविक या संभावित राजनैतिक उपद्रव को ही आधार माना गया होता तो भला हिमाचल प्रदेश को इसमें शामिल कैसे कर लिया जाता। जबकि पंजाब को इस श्रेणी से बाहर रखा गया है। इसके अतिरिक्त अन्यायपूर्ण राजनैतिक दबाव के आगे झुक जाना न सिर्फ अदूरदर्शिता और असमीचीन या यहां तक कि अनैतिकता होगा बल्कि इससे अन्य स्थानों या राज्यों में इस प्रकार की प्रवृत्ति का विकास होगा।

9.85 विशेष श्रेणी वाले राज्यों के साथ जो इतनी उदारता के साथ व्यवहार किया जाता है इससे उन्हें किसी प्रकार का संतोष नहीं होता बल्कि इससे केन्द्रीय सहायता प्राप्त करने की उनकी भूख या मांग और अधिक बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप सभी मानदण्डों के अधीन राज्य की योजनाओं के लिए दिए गए कुल केन्द्रीय सहायता का जो अंश विशेष श्रेणी वाले राज्यों के हिस्से में जाता है उसका ब्यौरा इस प्रकार है :—चौथी पंचवर्षीय योजना 15.0 प्रतिशत, छठी पंचवर्षीय योजना 21.1 प्रतिशत और सातवीं पंचवर्षीय योजना 23.9 प्रतिशत। जम्मू एवं कश्मीर जिसकी जनसंख्या कर्नाटक, पंजाब और हरियाणा को मिलाकर कुल जनसंख्या का ग्यारहवां हिस्सा (1981 की जनगणना) है, उसे इन तीनों राज्यों को कुल मिलाकर जितनी केन्द्रीय सहायता मिली थी उसका 20 गुणा अधिक केन्द्रीय सहायता मिली थी। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश, जिसकी जनसंख्या पंजाब और हरियाणा की कुल मिलाकर जनसंख्या का सातवां हिस्सा है उसे उन दोनों राज्यों को मिलाकर जितनी केन्द्रीय सहायता प्राप्त हुई थी उससे 10 प्रतिशत अधिक केन्द्रीय सहायता प्राप्त हुई। इन सब को और इसी प्रकार के अन्य तत्वों को ध्यान में रखते हुए अपनाए गए वर्तमान मानदण्ड की विवेकहीनता और स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट रूप से इसकी नितान्त आवश्यकता है कि वास्तव में जो सुपात्र राज्य है उन्हें केन्द्रीय सहायता दिए जाने के मामले में वरीयता दी जाए।

*आठवें वित्त आयोग–1984 की रिपोर्ट–परिशिष्ट—VI पृष्ठ 158

प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० का मानदण्ड

9.86 वर्तमान में लागू किए जाने वाले एस० डी० पी० (राज्य घरेलू उत्पाद) का मानदण्ड बड़ा ही मनमाना है। इस मानदण्ड के अंतर्गत गाडगिल फार्मूले का 20 प्रतिशत की केन्द्रीय सहायता का बंटवारा उन राज्यों को किया जाता है जिनकी प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० राष्ट्रीय स्तर से कम है। राज्यों के बीच यह बंटवारा उनकी जनसंख्या के आधार किया जाता है जिसमें राज्य विशेष के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० को सभी हकदार या पात्र राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के अंतर के दो गुने के बराबर की वरीयता दे दी जाती है।

9.87 इस मानदण्ड के संबंध में अब जो सबसे बड़ी आपत्ति उठायी जा रही है वह यह है कि इस अंतर या विचलन की माप राष्ट्रीय या सभी राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० से नहीं किया जाता है बल्कि इसकी माप या इसका निर्धारण बड़े ही मनमाने ढंग से किया जाता है यानि जो पात्र राज्य है उनके एस०डी०पी० का दो गुना कर दिया जाता है। इसे पात्र राज्य के औसत से तीन गुना या चार गुना क्यों न किया जाए ? इसका निर्धारण करने के लिए कोई भी तर्कसंगत उपाय नहीं है कि अन्य को छोड़कर सिर्फ एक ही गुणण को क्यों अपनाया जाए ? अलग अलग गुणण से बंटवारे की राशि अलग अलग होगी। यदि पात्र राज्यों के औसत के दो गुने के बदले इस अंतर या विचलन का निर्धारण उसके तीन गुने की दर से की जाती है तो पारस्परिक बंटवारे की राशि अलग अलग होगी जैसा कि सारणी 9.13 में दिखाया गया है।

9.88 सारणी 9.13 के परिवर्त्य–क और परिवर्त्य–ख से यह स्पष्ट है कि यदि इस विचलन का परिवर्तन की माप पात्र राज्यों के प्रति व्यक्ति एस० डी०पी० के औसत के दो गुना करने के बदले तीन गुना के हिसाब से किया जाए तो प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० वाले मानदंड के अंतर्गत आंध्र प्रदेश, केरल और राजस्थान को तो बहुत अधिक केन्द्रीय सहायता प्राप्त होगी जबकि बिहार और उत्तर प्रदेश को बहुत ही कम सहायता प्राप्त होगी। मध्य प्रदेश के मामले में केन्द्रीय सहायता में बहुत थोड़ी कमी आएगी और उड़ीसा के मामले में उस संबंध में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। वास्तव में 1.3 के गुणण के ऊपर कोई गुणण को इस विचलन के मापने का आधार बनाया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से सभी राज्यों के लिए एक नकारात्मक परिणाम ही निकलेगा। चयन किया गया यह गुणण 1.3 के जितना ही नजदीक होगा निम्न आय वाले राज्यों के हिस्से की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। इस प्रकार संगणना की वर्तमान प्रक्रिया के अंतर्गत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० वाले मानदण्ड के अधीन सभी पात्र राज्यों के औसत विचलन की माप करने के लिए गुणण का चयन मनमाने ढंग से किया जाता है।

9.89 इस विचलन की माप करने के लिए पात्र राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० को संदर्भ बिंदु मानने से वास्तव में एक बेतुका या अर्थहीन परिणाम निकलता है। ऐसी सूचना है कि तमिलनाडु ने यह दावा पेश किया है कि वित्त मंत्रालय एवं योजना आयोग द्वारा स्वीकार किए गए सी० एस० ओ० के आंकड़ों के आधार पर 1976–77 से 1978–79 तक के तीन वर्षों के लिए उसका प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० का औसत 1,164.67 रुपए होता है जो कि 1,165 रुपए के राष्ट्रीय औसत से कम है। इससे स्पष्ट है कि यह राज्य इस बात का दावा करता है कि प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मानदण्ड के अंतर्गत केन्द्रीय सहायता में हिस्सा पाने के लिए तमिलनाडु हकदार है लेकिन

उसके प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० को 1,165 रुपए तक पूर्णांकित करके उसे इस हिस्सेदारी से वंचित रखा गया है। यदि तमिलनाडु के प्रत्यक्षत: उचित तर्क को स्वीकार कर लिया जाता और 1976-79 के किसी भी राज्य के बिना पूर्णांकित किए गए एस०डी०पी० आंकड़े को अपनाया गया होता तो जैसा कि सारणी 9.14 में दिखाया गया है, प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मानदण्ड के अंतर्गत इसका यानि तमिलनाडु का हिस्सा 315.82 करोड़ रुपया होता जो कि केरल के हिस्से से 92.3 प्रतिशत अधिक होता और ऐसा तब हुआ जबकि केरल का प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० तमिलनाडु के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० से मात्र 3 रु० कम है।

9.90 तमिलनाडु के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० को मात्र एक रुपए के एक तिहाई की राशि से पूर्णांकित करके उस राज्य को 315.82 करोड़ रुपए की केन्द्रीय सहायता से वंचित रखा गया है। इससे अधिक मनमानी और तर्कहीन बेतुकी बात और क्या हो सकती है?

9.91 प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० की वर्तमान व्याख्या का एक अत्यन्त ही मनमानेपन वाला पहलू यह भी है कि यदि 1976-77 से 1978-79 तक के तीन वर्षों की औसत के बदले 1978-79 से 1980-81 तक के तीन वर्षों का औसत अपना लिया गया होता। (क्योंकि सातवीं पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप दिए जाने से पहले 1979-80 और 1980-81 का प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० आंकड़ा उपलब्ध हो गया था) तो केरल को तो पात्र राज्यों की सूची में शामिल नहीं किया जा सकता था लेकिन तमिल नाडु को उस सूची में शामिल किया जा सकता था। इस प्रकार संदर्भ अवधि में परिवर्तन किए जाने मात्र से दोनों राज्यों को केन्द्रीय सहायता की हकदारी में कुछ करोड़ रुपए का अन्तर पड़ जाता।

सारणी 9.13

सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के लिए प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० मानदंड के अन्तर्गत राज्य की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता की संगणना

पात्र राज्य	जनसंख्या 1971 (मिलियन)	प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० (1976-79 औसत...रु०)	विचलन (रु०)	स्तंभ 1 X स्तंभ 3		केन्द्रीय सहायता (करोड़ रु० में)
				मिलियन	प्रतिशत	
	1	2	3	4	5	6
परिवर्त्य—"क"						
1. आंध्र प्रदेश . . .	43.503	1,006	9,188	39,935.75	13.282	438.97
2. बिहार . . .	56.353	755	1,169	65,876.66	21.910	724.13
3. केरल. . . .	21.347	1,162	762	76,266.41	5.410	178.10
4. मध्य प्रदेश . . .	41.654	895	1,029	42,861.97	14.256	471.16
5. उड़ीसा . . .	21.945	918	1,006	22,076.67	7.343	242.69
6. राजस्थान . . .	25.766	1,127	797	20,535.50	6,830	225.73
7. उत्तर प्रदेश . . .	88.341	870	1,054	9,311.41	30.969	1,023.52
कुल . . .				3,00,664.37	1,00.000	3,305.00
परिवर्त्य—"ख"						
1. आंध्र प्रदेश . . .	43.503	1,006	1,880	81,785.64	13.904	459.53
2. बिहार . . .	56.353	755	2,131	1,20,088.24	20.416	674.75
3. केरल. . . .	21.347	1,162	1,724	36,802.23	6.257	206.79
4. मध्य प्रदेश . . .	41.654	895	1,991	82,933.11	14.099	465.97
5. उड़ीसा . . .	21.945	918	1,968	43,187.76	7.342	242.65
6. राजस्थान . . .	25.776	1,127	1,759	45,322.39	7.705	254.65
7. उत्तर प्रदेश . . .	88.341	870	2,016	1,78,095: 46	30.277	1,000.66
कुल . .				5,88,214.83	100.000	3,305.00

परिवर्त्य—क : पात्र राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० में दो गुना के अनुसार प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० का माप किया जाता है।

परिवर्त्य—ख : पात्र राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के तीन गुने के अनुसार प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० का माप किया जाता है।

सारणी 9·14

प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के बिना पूर्णांकित किए गए आंकड़ों का इस्तेमाल करते हुए सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के लिए प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मानदंड के अन्तर्गत राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता की संगणना

(परिवर्त्य—"क")

पात्र राज्य	जनसंख्या 1971 (मिलियन)	प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० (1976–79 औसत...रु०)	विचलन	स्तंभ 1 × स्तंभ 3 मिलियन	प्रतिशत	केन्द्रीय सहायता (करोड़ रु० में)
	1	2	3	4	5	6
1. आंध्र प्रदेश . . .	43.503	1,005.67	968.75	42,143.53	12.072	398.98
2. बिहार . . .	56.353	755.33	1,219.09	68,699.38	19.678	650.36
3. केरल. . . .	21.347	1,161.67	812.75	17,349.77	4.970	164.26
4. मध्य प्रदेश . . .	41.654	896.00	1,079.42	44,692.16	12.879	425.65
5. उड़ीसा . . .	21.945	918.33	1,056.09	23,175.90	6.638	219.39
6. राजस्थान . . .	25.766	1,127.33	847.09	21,826.12	6.252	206.63
7. उत्तर प्रदेश . . .	88.341	869.66	104.76	97,595.60	27.955	923.91
8. तमिलनाडु . . .	41.199	1,164.67	809.75	33,360.89	9.556	315.82
कुल . .				3,49,113.35	1,00.000	3,305.00

9.92 संभवत: ऐसा निर्णय लिया गया हो कि अलग-अलग राज्यों के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के विचलन का निर्धारण पात्र राज्यों के प्रति व्यक्ति एस० डी०पी० से नहीं करके बाद वाली राशि की दो गुना करके कर दिया गया हो क्योंकि अगर पहले वाली राशि को विचलन का निर्धारण करने के लिए संदर्भ बिंदु मान लिया जाता तो इससे यह परिणाम निकल सकता था कि कुछ राज्यों में विचलन के रूप में कुछ भी राशि नहीं दर्शाया जाता। इसका निहितार्थ यह हुआ कि ऐसे राज्यों के हिस्से में कुछ भी नहीं आता यानि इस मानदंड के अंतर्गत इस राशि में हिस्सा प्राप्त करने के बदले बांटे जाने वाली राशि में अंशदान करना पड़ता। अब इससे यह स्पष्ट है कि विचलन की राशि का निर्धारण करने के लिए सभी पात्र राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० को सन्दर्भ बिंदु माने जाने के आधार पर संगणना पद्धति से बहुत ही बेतुका और अर्थहीन परिणाम प्राप्त होता। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी राज्यों से सकारात्मक विचलन प्राप्त करने के लिए यह निर्णय लिया गया कि पात्र राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के दो गुने को संदर्भ बिंदु के रूप में इस्तेमाल किया जाए।

9.93. सबसे अधिक उचित और तर्कपूर्ण रास्ता तो यह होता कि इस मानदंड के अंतर्गत केन्द्रीय सहायता में हिस्से प्राप्त करने के लिए राज्यों की पात्रता निर्धारित करने तथा विचलन का आकार निर्धारित करने के लिए सभी राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० को संदर्भ बिंदु मान लिया जाए। राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता प्राप्त करने के संबंध में संघ राज्य क्षेत्रों को कुछ भी लेना देना नहीं है। केन्द्रीय सहायता के संबंध में इन सारी प्रक्रियाओं में सबसे अधिक संबंधित बात सभी राज्यों का प्रति व्यक्ति एस०डी० पी० है न कि पूरे देश का प्रति व्यक्ति एस०डी०पी०। अगर इस सन्दर्भ बिंदु को स्वीकार कर लिया जाता है तो परिभाषा के अनुसार जितने भी पात्र राज्य है वे सब सकारात्मक विचलन ही दिखाएंगे और इस प्रकार उनके हिस्सों की संगणना करने में किसी भी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं आएगी यह सारणी 9.15 में दर्शाया गया है।

सारणी 9·15

सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि के लिए प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के अन्तर्गत राज्य की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता की संगणना

पात्र राज्य	जनसंख्या 1971 (मिलियन)	प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० (1976–79 रु०)	विचलन (रु०)	स्तंभ 1 × स्तंभ 3 मिलियन	प्रतिशत	केन्द्रीय सहायता (करोड़ रु० में)
	1	2	3	4	5	6
		परिवर्त्य—सी 1				
1. आंध्र प्रदेश . . .	43.503	1,006	133	5,785.90	8.699	287.50
2. बिहार . . .	56.353	755	384	21,639.55	32.535	1,075.28
3. मध्य प्रदेश . . .	41.654	895	244	10,163.58	15.281	505.04
4. उड़ीसा . . .	21.945	918	221	4,849.84	7.292	241.00
5. राजस्थान . . .	25.766	1,127	12	309.19	0.465	15.37
6. उत्तर प्रदेश . . .	88.341	870	269	23,763.73	35,728	1,180.81
कुल . .				66,511.79	1,00.000	3,305.00

सारणी 9·15 (जारी)

0	1	2	3	4	5	6
		परिवर्त्य—सी–2				
1. आंध्र प्रदेश . . .	43.503	1,005.67	133.33	5,800.25	8.718	288.13
2. बिहार . . .	56.353	755.33	383.67	21,620.96	32.496	1,073.99
3. मध्य प्रदेश . . .	41.654	895.00	244.00	10,163.58	15.276	504.87
4. उड़ीसा . . .	21.945	918.33	220.67	4,842.60	7.278	240.54
5. राजस्थान . . .	25.766	1,127.33	11.67	300.69	0.452	14.94
6. उत्तर प्रदेश . . .	88.341	869.67	269.33	23,792.88	35.760	1,181.87
7. तमिलनाडु . . .	41.199	1,138.67*	0.33	13.60	0.020	0.66
				66,534.56	1,00.000	3,305.00

*इस परिवर्त्य के लिए अभिग्रहित कर लिया गया है इस मानदंड के अन्तर्गत तमिलनाडु को सहायता प्राप्त करने का पात्र बनाया जा सके।

9.94. सी-1 की सी-2 के साथ तुलना करते हुए सारणी 9.15 में यह देखा जा सकता है कि जब सभी राज्यों के औसत प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० से विचलन को मापा जाता है तो पूर्णांकित आंकड़े के बदले बिना पूर्णांकित आंकड़ों का प्रयोग करने पर केन्द्रीय सहायता का राज्यों के बीच बंटवारे में बहुत ही उपांतिक अन्तर पड़ता है। अत: वर्तमान में प्रयोग किए जा रहे संदर्भ बिंदु की अयुक्ति इससे समाप्त हो जाती है। इसके साथ-साथ यह भी होगा कि जैसा कि तमिलनाडु के मामले में देखा गया है इस प्रकार का बेतुकापन या अर्थहीनता नहीं होगी।

9.95. सारणी 9.15 से यह भी स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मानदंड के एक युक्तिसंगत रूप के अन्तर्गत, जैसे कि उस सारणी में अपनाया गया है, उसमें इस मानदंड के अंतर्गत उन्हीं 6 राज्यों को बांटी जाने वाली केन्द्रीय सहायता में हिस्सा मिलेगा जो राज्य विशेष श्रेणी के राज्यों में नहीं है। इसमें से 83.5% राशि तो भारत के मध्य स्थल में स्थित उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश को ही प्राप्त हो जाएगी। अत: यह मानदंड तो मूल रूप उन्हीं राज्यों के हितों की रक्षा करता है। सिर्फ इसी मानदंड के अन्तर्गत ये तीनों राज्य गाडगिल फार्मुला मानदंड के अन्तर्गत बांटी गयी केन्द्रीय सहायता की राशि का 16.7 (20×835)% प्राप्त करता है। ये जसंनख्या के आधार पर बनाए गए मानदंड के अधीन भी इन्हीं तीनों राज्यों को सबसे अधिक लाभ होता है क्योंकि बिना विशेष श्रेणी वाले राज्यों में इन्हीं तीनों राज्यों की कुल जनसंख्या का प्रतिशत 36.3% है। जनसंख्या को आधार मानने वाले मानदंड के अन्तर्गत इन तीनों राज्यों को गाडगिल फार्मूला के अन्तर्गत बांटे गए केन्द्रीय सहायता 21.7 (60×362)% हिस्सा प्राप्त होती है। इस प्रकार सिर्फ इन्हीं दोनों मानदंडों के अन्तर्गत गाडगिल फार्मूला के अधीन इन तीनों राज्यों को केन्द्रीय सहायता का 38.4% प्राप्त हो जाता है।

कर प्रयास मानदंड

9.96. आशोधित गाडगिल फार्मूले के अन्तर्गत बांटी गयी केन्द्रीय सहायता की राशि का 10% का बंटवारा राज्यों के कर प्रयास के आधार पर किया जाता है। किसी भी राज्य के कर प्रयास का माप इस प्रकार किया जाता है कि उस राज्य के प्रति व्यक्ति कर वसूली और उस राज्य के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के साथ क्या अनुपात है और इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। इसके बाद विभिन्न राज्यों के कर प्रयास प्रतिशतों को जोड़ दिया जाता है। बांटी जाने वाली राशि में किसी भी राज्य का हिस्सा उसी अनुपात में होता है जिस अनुपात में सभी राज्यों के कुल कर प्रयास में उस राज्य के कर प्रयास का प्रतिशत होता है।

9.97. जिन राज्यों के कर प्रयास की दर बहुत कम है और इसके कारण जिन्हें इस मानदंड के अधीन बांटी जानी वाली केन्द्रीय सहायता कम मात्रा में प्राप्त हो रही है उसकी ओर से लगातार इस प्रकार की मांग की जा रही है कि इस मानदंड को बिल्कुल समाप्त कर दिया जाए और इस मानदंड के अन्तर्गत जितनी सहायता दी जाती है उसे सहायता की उस राशि के साथ मिला दी जाए जो प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० मानदंड के अन्तर्गत दी जाती है। आशोधित गाडगिल फार्मूले के अंतर्गत कर प्रयास मानदंड ही एक ऐसा मानदंड है जिसमें राज्यों को उनके संसाधन जुटाने के लिए पुरस्कार दिया जाता है। इस मानदंड के अन्तर्गत जो राशि बांटी जाती है उसकी मात्रा उस फार्मूले के अन्तर्गत बांटी जाने वाली राशि के 10% से अधिक नहीं होती। अपेक्षाकृत कम आय वाले राज्यों के हितों की रक्षा न सिर्फ अन्य मानदंडों के अन्तर्गत बल्कि इस मानदंड के अन्तर्गत भी इस प्रकार की गयी है कि राज्य के कर प्रयास की आय उसके प्रति व्यक्ति कर राजस्व की कुल राशि के माध्यम से नहीं की जाती है बल्कि उसकी आय उस राज्य की प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के साथ प्रति व्यक्ति कर राजस्व के अनुपात के आधार पर की जाती है। यदि किसी राज्य की प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० कम है तो उसी के तदनुरूप उस राज्य के प्रति व्यक्ति कुल राजस्व की राशि भी कम होगी और इसके परिणामस्वरूप उस राज्य को उसी अनुपात में केन्द्रीय सहायता प्राप्त होगी जिस अनुपात में अपेक्षाकृत उच्च आय वाले राज्य को उसके तदनुरूप उच्च दर पर प्रति व्यक्ति कर राजस्व जुटाने के बाद प्राप्त होती है।

9.98. कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि अपेक्षाकृत उच्च आय वाले राज्य के लिए निर्धारित कर अनुपात का लक्ष्य प्राप्त करना आसान है जबकि निम्न आय वाले राज्य के लिए ऐसा करना आसान नहीं है। एक समय था जबकि देशों या राष्ट्रों के मामले भी उनके बचत की दर निर्धारण करने के लिए यही शर्त रखी जाती थी लेकिन विश्व बैंक द्वारा वर्गीकृत एशिया के "निम्न आय वाले एशियाई" देशों के अनुभव के आधार पर इस शर्त को अंतिम रूप से अमान्य घोषित कर दिया गया है। 1980 से निम्न आय वाले एशिया में बचत की ऊंची दर दिखाई दे रही है जो कि "औद्योगिक बाजार व्यवस्था" वाले देश जो कि विश्व में अत्यंत विकसित देश हैं उनकी अपेक्षा अधिक ऊंची दर है। इन दो राष्ट्र समूहों की बचत दर जो कि जी०डी०पी० की प्रतिशत के अनुसार है वह इस प्रकार है:—1981 में 21.6% की तुलना में 23.7%, 1982 में 19.9% की तुलना में 22.1%। 1983 में (प्राक्कलित) 20%* की तुलना में 24.0%। भारतीय अनुभव यह बताता है कि कर अनुपात और प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० का प्रत्यक्ष संबंध बहुत कमजोर है। इससे संबंधित अद्यतन उपलब्ध आंकड़े सारणी 9.16 में दिए गए हैं।

9.99. सारणी 9.16 से यह स्पष्ट है कि 1983–84 में विशेष श्रेणी में नहीं आने वाले राष्ट्रों के बीच कर अनुपात के दृष्टिकोण से प्रथम तीन स्थान उन राज्यों के थे जो प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के दृष्टिकोण से क्रमश: नौवें, छठे और दसवें स्थान पर थे। विशेष श्रेणी वाले राज्यों में हिमाचल प्रदेश जो कि प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के अनुसार प्रथम स्थान पर था वह कर अनुपात के दृष्टिकोण से तीसरे स्थान पर था। यदि सभी राज्यों को एक साथ मिलाकर

*विश्व बैंक, विश्व विकास रिपोर्ट—1985 सारणी-क-7, पृष्ठ 1951

देखा जाए तो हिमाचल प्रदेश प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के अनुसार तो ऊपर से छठे स्थान पर रहेगा परन्तु कर अनुपात के अनुसार श्रेणी निर्धारण किए जाने पर उसका 15वां स्थान होगा। पश्चिम बंगाल जो प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के दृष्टिकोण से पांचवें स्थान पर है वह कर अनुपात के अनुसार बारहवें स्थान पर है। यदि सभी राज्यों को एक साथ ले लिया जाए तो पश्चिम बंगाल का स्थान प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के अनुसार तो पांचवां ही रहेगा परंतु कर अनुपात के आधार पर उसका स्थान नीचे चौदहवें पर चला जाएगा।

हरियाणा और पंजाब जो कि प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के हिसाब से पहले और दूसरे स्थान पर हैं वही कर अनुपात की दृष्टिकोण से सातवें और आठवें स्थान पर है। विशेष श्रेणी वाले राज्यों में सिक्किम का कर अनुपात सबसे अधिक है परंतु उसका प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० सबसे कम है। राज्यों के प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० और उनके कर अनुपात के बीच जो संबंधित गुणांक है वह निस्संदेह सकारात्मक है परन्तु यह बहुत कमजोर, यानि 296 ही है। यह यहां तक कि 20% के स्तर पर भी कोई महत्वपूर्ण नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि किसी भी राज्य के लिए उच्च कर अनुपात प्राप्त करने में उस राज्य का निम्न दर पर प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० होना कोई अजेय बाधा व्यवधान नहीं बन सकता। जैसा कि सारणी 9.14 में दिखाया गया है ऐसे कई राज्य हैं जिनका प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० बहुत कम है लेकिन वे राज्य उच्चतम कर अनुपात वाले राज्यों की कोटि में आते हैं।

सारणी 9.16

राज्यों का कर अनुपात 1983-84

	राज्य	जनसंख्या (मिलियन)	राज्य-करों से प्रति व्यक्ति राजस्व (रु०)	प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० रु०	कर अनुपात	
					स्थान	(प्रतिशत %)
	1	2	3	4	5	6
	विशेष श्रेणी में नहीं आने वाले राज्य					
1.	तमिलनाडु . .	50.09	229	1,827	9	12.5
2.	कर्नाटक . . .	39.58	225	1,957	6	11.5
3.	केरल . . .	26.57	183	1,761	10	10.4
4.	महाराष्ट्र . . .	65.88	277	3,032	3	9.1
5.	गुजरात . . .	36.20	252	2,795	4	9.0
6.	आंध्र प्रदेश . .	56.58	171	1,955	7	8.7
7.	हरियाणा . . .	13.73	266	3,147	2	8.5
8.	पंजाब . . .	17.74	307	3,691	1	8.3
9.	मध्य प्रदेश . .	54.77	117	1,636	11	7.2
10.	राजस्थान . . .	36.78	120	1,881	8	6.4
11.	उत्तर प्रदेश . .	118.91	101	1,567	12	6.4
12.	पश्चिम बंगाल . .	57.50	134	2,231	5	6.0
13.	बिहार . . .	75.17	59	1,174	13	5.0
	विशेष श्रेणी में आनेवाले राज्य					
1.	सिक्किम . . .	0.34	111	1,300	6	8.5
2.	जम्मू एवं कश्मीर . .	6.36	112	1,820	2	6.2
3.	हिमाचल प्रदेश . .	4.51	120	2,230	1	5.4
4.	मेघालय . . .	1.43	66	1,483	5	4.5
5.	असम . . .	21.64	63	1,762	3	3.6
6.	मणिपुर . . .	1.53	32	1,673	4	1.9

स्रोत : 1. प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के लिए :—भारत सरकार वित्त मंत्रालय भारतीय अर्थशास्त्रीय सांख्यिकी—लोक वित्त दिसम्बर—1985 सारणी 11.3, पृष्ट 102
2. राज्यों से राजस्व के लिए :—कर भा० रि० बैं०, बुलेटिन नवम्बर—85 मु० पृ० 835–836
उस वर्ष के लिए प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० के सी०एस० को प्राक्कलन में शामिल है।

9.100. एसा प्रतीत होता है कि सरकारी या लोक व्यय का वित्त पोषण किए जाने के लिए सुलभ विकल्प की उपलब्धता एक मात्र तत्व नहीं होते हुए भी सबसे महत्वपूर्ण तत्व अवश्य है और इसी के अनुसार राज्यों की कर लगाने और करों का वसूली किए जाने की प्रवृत्ति का निर्धारण होता है। भारत के मध्य स्थल के राज्य और विशेष श्रेणी में आने वाले राज्य, जिनके पास इस संबंध में अपने राजनैतिक दबदबे या विशेष श्रेणी वाली हैसियत में आने के कारण अनेक प्रकार के सुलभ विकल्प उपलब्ध हैं उनकी प्रवृत्ति इस ओर रहती है कि उनके कर अनुपात की दर कम रहे जब कि दक्षिण के राज्य, जिनका कोई राजनैतिक दबदबा नही है उन्हें अपने कर अनुपात की दर को ऊंचा रखना पड़ता है ऐसा प्रतीत होता है कि कम कर-अनुपात वाले राज्यों की कोई भी अन्यमनस्ता जैसी कि इनमें से कुछ राज्यों की अपेक्षाकृत निम्न दर की प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० के कारण इस मानदण्ड का परित्याग करना उचित या वैध नहीं जान पड़ता है।

विशेष समस्याओं वाला मानदंड

9.101. गाडगिल फार्मूले के अन्तर्गत विशेष समस्याओं के आधार पर बांटे जाने वाले केन्द्रीय सहायता के 10% का बंटवारा तो वास्तव में योजना आयोग की स्वेच्छा से किया जाता है यह इतनी बड़ी राशि है कि इसे योजना आयोग के निर्बाध स्वेच्छा पर नहीं रखी जा सकती है। यह योजना आयोग के हित में भी नहीं है। योजना आयोग चाहे कितनी न्यायपूर्ण तरीके से अपनी स्वेच्छा का प्रयोग क्यों न करे उसे इस बात का हमेशा भय बना रहेगा कि उसके विरुद्ध यह दोष

लगाया जा सकता है कि उसने राजनैतिक या किसी अन्य आधार पर अपनी स्वेच्छा का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए पंजाब और हरियाणा में जब इस मानदण्ड के अन्तर्गत राज्यों में बांटी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का एक पैसा भी नहीं दिया जाएगा जबकि कुछ अन्य राज्यों को इस सहायता की बहुत बड़ी राशि दी जाएगी तो पंजाब और हरियाणा को केन्द्रीय सहायता के बंटवारे के पीछे तर्काधार के बारे में विश्वास दिलाना कठिन हो जाएगा। क्या इन दोनों राज्यों की अपनी कोई विशेष समस्याएं नहीं हैं? वास्तविकता तो यह है कि पंजाब अनेकों प्रकार की वित्तीय समस्याओं में उलझा पड़ा है। वर्तमान वित्तीय स्थिति आठवीं योजना की अवधि के अधिकांश समय तक बनी रहेगी फिर भी इस मानदंड के अन्तर्गत सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में भी इसे कुछ भी सहायता प्राप्त नहीं होगी। अत: यह बड़ा आवश्यक है कि विशेष समस्याओं को परिभाषित किया जाए और उनका जो बंटवारा किया जाना है उसका निर्धारण योजना प्रलेख में ही किया जाय। योजना में इस बात का भी निर्धारण कर दिया जाए कि प्रत्येक प्रकार की विशेष समस्याओं के लिए किस मानदंड के अधीन कितनी केन्द्रीय सहायता का बंटवारा किया जाना है, वांछनीय तो यह होगा कि अगर समय मिले तो योजना में इस बात का भी निर्धारण कर दिया जाए कि प्रत्येक राज्य को प्रत्येक प्रकार की विशेष समस्या के लिए कितनी केन्द्रीय सहायता प्राप्त होगी। तथापि एक उचित प्रस्ताव यह भी होगा कि जैसे कि विशेष समस्याओं के लिए बाँटी जाने वाली राशि के 10% को इस बात के लिए अलग रखा जा सकता है कि उसे योजना अवधि के दौरान राज्यों में उत्पन्न होने वाली विशेष समस्याओं के आधार पर राष्ट्रीय योजना संगठन द्वारा उसकी स्वेच्छा से बाँटा जाएगा।

गाडगिल फार्मूले के बाहर केन्द्रीय सहायता

9.102. गाडगील फार्मूले के बाहर निम्नलिखित के लिए केन्द्रीय सहायता उपलब्ध करायी जाती है :—(i) बाहर से सहायता प्राप्त परियोजनाएं और (ii) विशेष क्षेत्र के लिए कार्यक्रम। मद संख्या (i) के अन्तर्गत राज्यों को बाहर से प्राप्त सहायता के 70% के बराबर अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता की राशि प्राप्त होती है। सहायता की 30% की राशि केन्द्र अपने पास रख लेता है। अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता के रूप में राज्यों को उपलब्ध कर दी जाने वाली सहायता के प्रतिशत में किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यह प्रतिशत पहले ही बड़ी ऊंची है और न ही इस बात में कोई औचित्य है कि केन्द्रीय सहायता का यह अंश राज्यों को उसी रियायती दरों पर उपलब्ध कराया जाए जिन दरों पर केन्द्र को यह सहायता प्राप्त हुई है। इससे विभिन्न मानदंडों के अन्तर्गत उपलब्ध करायी जाने वाली राशियों के बीच एक वैमनस्यकारी भेद उत्पन्न हो जाएगा। यह तथ्य कि बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के तत्परतापूर्वक कार्यान्वयन किए जाने के लिए राज्यों को इसके अन्तर्गत काफी अधिक मात्रा में अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता प्राप्त होती है यह अपने आप में उनके लिए एक प्रकार का प्रोत्साहन है।

9.103. विशेष क्षेत्रीय कार्यक्रमों के अन्तर्गत विशेषकर चार प्रकार के कार्यक्रमों के लिए राशि उपलब्ध करायी जाती है, ये चार कार्यक्रम है :—उत्तरी-पूर्वी, परिषदस्कीम, पर्वत क्षेत्रीय कार्यक्रम, जनजाति क्षेत्रीय कार्यक्रम और सीमा क्षेत्रीय विकास। कार्यक्रम वास्तव में ये कार्यक्रम केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम की किस्म के हैं और इन कार्यक्रमों को उसी रूप में लिया जाना चाहिए। इन कार्यक्रमों के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता को वास्तव में राज्य योजनाओं को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता का हिस्सा नहीं मानना चाहिए। 1985-86 के वार्षिक योजना में प्रलेख में इस बात को सही रूप से दिखाया गया है कि क्षेत्रीय कार्यक्रमों के लिए जो केन्द्रीय सहायता दी जाती है वह "राज्य की योजनाओं के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता" से अलग है।

9.104. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य की योजनाओं के लिए जो केन्द्रीय सहायता दी जाती है उसमें उसकी संकल्पना और मानदंड के दृष्टिकोण से अनेक प्रकार की गंभीर किस्म की अभ्युक्तियां हैं। अत: केन्द्र राज्य के मध्य संसाधन अन्तरण या हस्तांतरण को युक्तिपूर्ण बनाने की बड़ी आवश्यकता है।

(6) केन्द्र के प्रति राज्यों की बढ़ती हुई राजनैतिक अधीनस्थता

9.105. एक वास्तविक संघ राज्य सरचना में जो घटक इकाइयां होती हैं वे अपने सांविधानिक अधिकार क्षेत्र में स्वायत्तता प्राप्त होती हैं। भारतीय राज्यों के मामले में यह बात सही नहीं है। केन्द्र के ऊपर उनकी अत्यधिक निर्भरता तथा इसके साथ उनके विधायी एवं कार्यकारी प्राधिकार के संबंध में उनकी सांविधानिक प्रतिबंधता, यहां तक कि उन मामलों में भी जो संविधान के अन्तर्गत उनके अधिकार क्षेत्र में आते हैं, के परिणामस्वरूप उन इकाइयों को, इस सीमा तक केन्द्र के अधीनस्थ बना दिया है कि जो कि प्रत्यक्ष रूप संघ की संकल्पना के विपरीत हो और इस अधीनस्थता की स्थिति बदतर होती जा रही है। राज्यों के मुख्य मंत्रियों और अन्य महत्वपूर्ण मंत्रियों तथा राज्य के अधिकारियों का अत्यधिक समय दिल्ली का दौरा करने में ही बीत जाता है और यह दौरा राज्य के राजकोष पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त उनके समय का अधिकांश हिस्सा और उनका ध्यान राज्यों का दौरा करने वाले केन्द्रीय मंत्रियों और अधिकारियों की ओर ध्यान देने, उनके प्रश्नों का उत्तर देने या किसी एक या अन्य मामलों में केन्द्र को स्पष्टीकरण देने में ही बीत जाता है। ये सब बातें राज्य की ओर उनके द्वारा ध्यान दिए जाने में उनके समक्ष बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करती है और इससे राज्य के सरकारी कार्य में गिरावट आती है यानि इससे राज्य का कार्य पिछड़ता है।

9.106. केन्द्र के प्रति राज्यों की अधीनस्थता के कारण राज्य सरकारों की स्वायत्तता, प्रतिष्ठा और स्वाभिमान के लिए जो तबाही मची हुई है उसे हाल में घटे एक दुःखदपूर्ण परन्तु प्रशिक्षात्मक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। सरकारिया आयोग द्वारा पूछे गए प्रश्नों के अपने उत्तर में एक बड़े राज्य ने संविधान के अनुच्छेद 249 का प्रबल विरोध किया बताते हैं और उस राज्य ने यह मांग भी की कि इसे छोड़ दिया जाए। सरकारिया आयोग द्वारा इस संबंध में अपनी प्रतिक्रिया दिए जाने के पहले ही उस राज्य ने इस संबंध में एकाएक अपना मत बदल दिया। संसद के 1986 के मानसून सत्र (वर्षाकालीन सत्र) में जब केन्द्र के सत्तारूढ़ दल ने राज्य सभा में अनुच्छेद 249 के संबंध में यह प्रस्ताव रखा कि संसद को अन्य बातों के साथ-साथ राज्य की सूची के दो प्रमुख विषय यानि कानून व्यवस्था (पब्लिक आर्डर) और पुलिस के संबंध में विधि निर्माण के लिए प्राधिकृत किया जाए तो उस राज्य के लिए सत्तारूढ़ दल के सांसदों ने उस प्रस्ताव का विरोध नहीं किया बल्कि वास्तव में उस प्रस्ताव का समर्थन किया। इस प्रकार अचानक मत-बदलने का दोष उस राज्य के सत्तारूढ़ दल का उतना नहीं जितना कि वर्तमान केन्द्र राज्य संबंधों का है। आज राज्य जो इस सीमा तक केन्द्र का अधीनस्थ बना हुआ है उसका मुख्य कारण राज्य या राज्यों की केन्द्र के ऊपर वित्तीय निर्भरता है।

केन्द्र-राज्य के बीच संतुलित वित्तीय संबंध

10.1. कुशल और दक्षतापूर्ण संसाधन प्रयोग के लिए पारस्परिक संवाद और सौहार्दपूर्ण वातावरण के साथ-साथ केन्द्र और राज्यों के मध्य एक समरूप वित्तीय संतुलन का होना आवश्यक है। निम्नलिखित शर्तों के पूरी होने पर ही ऐसा कहा जा सकता है कि इन दोनों के बीच ऐसा संतुलन बना हुआ है।

(1) केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधन का बंटवारा इस प्रकार हो कि संविधान के अन्तर्गत उन दोनों के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए जो व्यय करने पड़ते हैं उससे मेल खाते हो यानि संसाधन का बंटवारा इन खर्चों के तदनुरूप हो।

(2) केन्द्र से राज्यों को बिल्कुल स्वच्छतापूर्ण पद्धति से संसाधन के अंतरण किए जाने की आवश्यकता को कम से कम रखा जाए ताकि केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा राज्य के उन विकास नीतियों और कार्यक्रमों पर जो कि राज्यों का सांविधानिक उत्तरदायित्व हैं। वित्तीय दबाव नहीं दिया जा सके।

(3) केन्द्र और राज्य संसाधनों के हस्तान्तरण का पैमाना और उनकी शर्तें ऐसी हों, चाहे यह स्वेच्छ पूर्ण हो या बिना स्वेच्छापूर्ण, कि राज्य अपरिहार्य रूप से ऋण के जाल में नहीं फंस जाए।

(4) अपने अपने क्षत्रों में संसाधन के जुटाव और बड़ी दक्षतापूर्वक उन संसाधनों के प्रयोग किए जाने के लिए केन्द्र और राज्यों को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाए।

(5) अपेक्षाकृत निम्न आयवाले राज्यों और क्षेत्रों को पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराए जाए ताकि उनके संसाधनों और अपने पिछड़पन को दूर करने के लिए उनके प्रयासों का वित्त पोषण हो सके।

(6) प्राकृतिक विपत्तियों से घिरे या विकास कार्य में असामान्य बाधा या अड़चन वाले राज्यों को वे सभी आवश्यक अतिरिक्त वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जाए ताकि उनके द्वारा किए जाने वाले निवारण उपाय और अधिक प्रभावी हो सके।

10.2. निम्नलिखित सिफारिश किए गए उपायों का उद्देश्य केन्द्र-राज्य संबंधों की एक ऐसी पद्धति का निर्माण करना है जो कि केन्द्र राज्य के बीच संतुलित वित्तीय संबंध की धारणा के समकक्ष है।

(1) राज्यों के कर-आधार में विस्तार

10.3. अध्याय-8 में यह दर्शाया गया है कि वर्तमान में केन्द्र और राज्यों के कुल कर राजस्व में राज्यों के करों से मात्र 35.4% का अंशदान रहता है और इसका कारण राज्यों के कर-आधार का सीमित होना है न कि यह, जैसा कि दोष लगाया जाता है कि राज्यों के अधिकार क्षेत्र में जो कर है उनमें लचीलापन नहीं है। चूंकि सांविधानिक दायित्वों के अनुसार राज्यों के उन उत्तरदायित्वों के निर्वाह किए जाने के लिए भी व्यय करना पड़ता है जो कि तुलनात्मक रूप से निहित रूप में केन्द्र का उत्तरदायित्व है तो राज्यों के थोड़ी मात्रा वाले कर राजस्व के कारण केन्द्र और राज्यों के बीच गंभीर किस्म का वित्तीय असतुलन पैदा हो जाता है। इस असंतुलन को संभावित सीमा तक उसके मूल रूप में ही दूर किया जाना चाहिए यानि कुछ करों को केन्द्रीय अधिकार क्षेत्र से राज्यों के अधिकार क्षेत्र में हस्तान्तरण कर के राज्यों के कर-आधार को विस्तृत करके ऐसा किया जा सकता है।

चयन किए गए कुछ उत्पादों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क . में स्थान पर अतिरिक्त बिक्री कर

10.4. केन्द्र जितने प्रकार के कर लगाने के लिए प्राधिकृत है वे कर इस प्रकार है :—सीमा शुल्क, आयकर (व्यक्तिगत आय पर), निगम कर (यानि निगमित आय पर आय कर) और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क 1986–87 के केन्द्रीय बजट प्राक्कलन के अनुसार इन्हीं चारों प्रकार के करों से केन्द्र के प्राक्कलित कुल कर राजस्व का 97.8% प्राप्त होता है। सीमा शुल्क, आय कर और निगम कर का स्वरूप ही एसा है कि केन्द्र द्वारा ही इन्हें लगाया जाना चाहिए और इनकी वसूली का कार्य भी केन्द्र द्वारा ही किया जाना चाहिए जैसा कि अभी ही रहा है। सिर्फ केन्द्रीय उत्पाद शुल्क ही एक एसा कर है जिसे पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से राज्यों को हस्तान्तरण किया जाना व्यावहारिक हो सकता है। लेकिन इस कर के लगाने की शक्ति राज्यों को हस्तान्तरित किया जाना अत्यन्त ही अन्यायपूर्ण और अदूरदर्शिता या अविवेकपूर्ण होगा। नियमानुसार केन्द्रीय उत्पाद शुल्क औद्योगिक उत्पादों पर लगाया जाता है। उनके मामले में उन उत्पादों की मांग में उनकी पूर्ति की अपेक्षा सामान्यतया कम लचीलापन होता है विशेषकर अन्त में जाकर ऐसा होता है। इसलिए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का बोझ पूरी तौर पर या आंशिक रूप से अन्तिम उपभोक्ता पर ही पड़ता है क्योंकि कर लगाए गए उत्पाद का उच्चतर मूल्य का भुगतान उपभोक्ता को ही करना पड़ता है न कि उत्पादन कर्ता को। इसलिए अगर किसी राज्य को यह कर लगाना पड़े तो वह राज्य यह अपने ही लोगों पर उसी सीमा तक लगाएगा जिस सीमा तक उत्पाद के कुल उपभोग में उसकी हिस्सेदारी होगी। जिस सीमा तक अन्य राज्यों के लोग उस उत्पाद के उपभोक्ता है उस सीमा तक वह राज्य अन्य राज्यों के उपभोक्ता पर वह कर लगाएगा। अतः यह प्रत्यक्ष रूप से अन्यायपूर्ण लगता है कि एक राज्य को दूसरे राज्य के लोगों पर इतनी अधिक सीमा तक कर लगाने की शक्ति प्रदान की जाए। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में औद्योगिक विकास की स्थिति एक जैसी नहीं है इस अवस्था में यदि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क को राज्यों के हाथों हस्तान्तरण कर दिया जाता है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि औद्योगिक रूप से विकसित राज्य, सामान्यतया जिनका प्रति व्यक्ति एस०डी० पी० भी अधिक है से अपने राज्य के लोगों के लाभ के लिए अन्य राज्यों के लोगों पर कर लगाएगा। यह दोहरा अन्याय होगा क्योंकि इससे विभिन्न राज्यों के पारस्परिक असमानता में और अधिक विशिष्टिकरण होगा।

10.5. इस संबंध में जो किया जा सकता है और जो किया जाना चाहिए वह यह है कि चयन किए गए उत्पादों पर लगाए जाने वाले केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से जितना राजस्व प्राप्त होने वाला से है उसे राज्यों को इस प्रकार हस्तान्तरण कर दिया जाए कि उनके लिए यह संभव हो जाए कि उनमें से प्रत्येक मामले में वह अपने लोगों पर कर लगा सके। यह तभी किया जा सकता है जबकि केन्द्र इन उत्पादों पर उत्पाद शुल्क को समाप्त कर दे ताकि राज्य उन उत्पादों पर उसी के बराबर अतिरिक्त बिक्री कर उत्पाद शुल्क के बदले लगा सके। इस मामले में उत्पाद के मूल्य में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होनी चाहिए। इस स्थिति में प्रत्यक राज्य अपने उपभोक्ता लोगों पर कर लगाएगा और उन लोगों पर कोई अतिरिक्त बोझ भी नहीं पड़ेगा क्योंकि अतिरिक्त कर प्रत्याहार किए केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के स्थान पर लगाया जाएगा। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के बदले मूल अतिरिक्त बिक्री कर को कम करने के लिए राज्यों पर दिए जाने वाले दबाव को परे रखने के लिए सभी राज्य इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि वे सभी अन्तर्राज्यीय परिषद या राष्ट्रीय विकास परिषद् के तत्वधान में एक सामान्य अखिल भारतीय नीति का अनुपालन करेगा।

10.6 बेहतर यह होगा कि इस व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसी औद्योगिक उत्पादों को लाया जाए जिस पर आसानी से बिक्री कर का अपवंचन नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से सबसे उपयुक्त के उत्पाद होंगे जिसकी खुदरा बिक्री को आसानी से नियंत्रित की जा सकती है और जिसका अभिलेख रखा जा सकता है ताकि कर अपवंचन किए जाने के बिना किसी जोखिम के उन उत्पादों पर दक्षतापूर्वक अतिरिक्त बिक्रीकर की वसूली की जा सके। निम्नलिखित उत्पादों के मामले में बहुत सीमा तक इस शर्त को पूरा किया जा सकता है :—पैट्रोलियम उत्पाद टैरिफ मद संख्या 6 से 11कक (टायर) (टरिफ मद संख्या-16), संसाधित वनस्पति तेल (टैरिफ मद संख्या 12 में शामिल), वनस्पति (टैरिफ मद संख्या-13), सीमेंट (मद संख्या 23) लोहा एवं इस्पात और उसके उत्पाद (मद संख्या 26क), कांच की चादर (मद संख्या 23-का एक हिस्सा (टेलीविजन सैट (मद संख्या 23क) और मोटर वाहन और टैक्टर्स (मद संख्या 34) 1985–86 के लिए परिशोधित प्राक्कलन के अनुसार इन मदों पर लगाए गए मूल और विशेष उत्पाद शुल्क से 4387.56 करोड़ रुपए के राजस्व प्राप्त होने की आशा थी। 1986–87 के बजट प्राक्कलन में इससे प्राप्त होने वाले राजस्व की राशि को 4,890.24 करोड़ रुपया आंका गया। इसका पूरा ब्योरा सारणी 10.1 में दिया गया है।

सारणी 10·1

चयन किए गए उत्पादों पर मूल और विशेष उत्पाद शुल्क से प्राप्त होने वाले प्राक्कलित राजस्व की राशि

(करोड़ रुपए में)

•	1985–86 (प०प्रा०)	@ 1986–87 (ब०प्रा०)
1. पैट्रोलियम उत्पाद . . .	1,894.84	2,044.47
2. संसाधित वनस्पति तेल . .	5.00	85.00
3. वनस्पति	134.00	93.00
4. टायर	480.00	525.00
5. सीमेंट	745.90	820.00
6. शीशा और शीशे का सामान* . .	107.40	123.70
7. लोहा एवं इस्पात और उसके उत्पाद .	480.60	512.56
8. टेलीविजन सेट्स . . .	100.00**	168.00**

	1985–86	@1986–87
	प० प्रा०	ब० प्रा०
9. मोटर वाहन और ट्रैक्टर्स	439·02	518.51
(i) चयन किए गए मदों से कुल राजस्व .	4,387.56	4,890.24
(ii) उत्पाद शुल्क लगाने योग्य सभी मदों से कुल राजस्व (प्रतिदाय और वापसी की कुल राशि) . . .	10,761.69	11,868.52
(iii) (ii) के प्रतिशत के रूप में (i) .	40.8	41.2

* शीशे के सामान को इसके अन्तर्गत लाना उपयुक्त नहीं समझा जाता है। शीशे के सम्बन्ध में यह उपयुक्त होगा कि इसके अन्तर्गत सीर्फ शीशे के चादर को लाया जाए।

@ बजट अतिरिक्त कर प्रस्ताव से प्राक्कलित राजस्व को भी इसमें शामिल किया गया है।

** प्राक्कलित।

10.7. उपरोक्त नौ मदों से (इसकी अनुमति दिए जाने के बाद भी कि प्रस्तावित व्यवस्था के अन्तर्गत शीशे के सामान को उसके बाहर रखा जाए) मूल और विशेष उत्पाद शुल्क के बाबत कुल राजस्व का 40%, प्राप्त होता है। अतः वर्तमान के मूल उत्पाद शुल्क के स्थान पर यदि अतिरिक्त बिक्री कर लगा दिया जाए तो इसका तात्पर्य यह होगा कि राज्य का कर आधार काफी मात्रा में विस्तृत हो जाएगा। 1985–86 (ब०प्रा०) राज्य करों से प्राप्त होने राजस्व की प्राक्कलित राशि 14,405 करोड़ रु० थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अगर उस वर्ष 4,300 करोड़ रुपए के केन्द्रीय उत्पाद से प्राप्त संघ के राजस्व को अतिरिक्त बिक्री कर के रूप में उतनी ही राशि राज्यों के राजस्व के रूप में प्रतिस्थापित किए जाने पर जो कि चयन किए गए उत्पादों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क लगाने के बदले अतिरिक्त बिक्री कर लगाने से प्राप्त होता, राज्यों का कर आधार लगभग एक तिहाई और बढ़ जाता। संतुलित केन्द्र राज्य वित्तीय संबंध स्थापित करने की दिशा मे इस प्रकार की व्यवस्था करना एक बहुत बड़ा कदम होगा। और यह एक काम करने वाली व्यवस्था ही चयन किए गए सभी मदों के मामलों में यह संभव है कि उनके निकासी के लिए सीमित संख्या में खुदरा केन्द्र खोला जाए और उसे लाइसेंस दिए जाते और उसका नियंत्रण संबंधित राज्य सरकारों के हाथ में है। आज भी ऐसे उत्पादों के मामले खुदरा निकासी केन्द्रों की संख्या बहुत सीमित ही है। अतः उत्पाद शुल्क के स्थान पर अतिरिक्त बिक्री कर लगाने से कोई जटिल प्रशासनिक समस्याएं उपस्थित नहीं होगी।

चीनी, कपड़ा और तम्बाकू पर पुनः बिक्री कर लगाना

10.8. यदि चयन किए गए मदों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के बदले अतिरिक्त बिक्री कर लगाना आवश्यक समझा जाए तो चीनी, वस्त्र या कपड़ा और तम्बाकू पर 1957–58 में लगाए बिक्री कर के बदले लगाए अतिरिक्त शुल्क को बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। ऐसा प्राक्कलन किया गया है कि इन शुल्कों से 1986–87 में (बजट में प्रस्तावित अतिरिक्त कराधान को शामिल करते हुए) 1,047.36 करोड़ रुपए प्राप्त का राजस्व प्राप्त होगा। पुरानी व्यवस्था को पुनः चालू किया जा सकता है। बहुत से राज्यों ने ऐसा दावा पेश किया है कि वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत उन्हें जो राशि प्राप्त हुई है वह राशि उस राशि में बहुत कम है जो उन्हें पुरानी व्यवस्था के लागू रहने से प्राप्त हो सकती थी। उदाहरण के लिए पंजाब के वित्त विभाग ने यह परिकलन किया है यदि बिक्री कर के बदले यदि अतिरिक्त शुल्क लगाने की व्यवस्था नहीं लागू की गयी होती तो यह युक्ति संगत मानते हुए भी कि चीनी, वस्त्र और तम्बाकू को बिक्री कर से प्राप्त होने वाले राजस्व की दर अन्य मदों पर लगाए गए बिक्री कर से प्राप्त राजस्व की दर से कम नहीं होती तो भी इस राज्य को 1957–58 से 1983-84 तक की अवधि के दौरान अतिरिक्त शुल्क की राशि में जो हिस्सा प्राप्त हुआ उस से कम से कम दोगुना से अधिक राजस्व अवश्य प्राप्त होना यानी यह राशि वास्तविक रूप में प्राप्तहोने वाली 157 करोड़ रुपए की राशि के बदले में 320 करोड़ रु० देती। अतः इस व्यवस्था को समाप्त कर चीनी, वस्त्र और तम्बाकू पर पुनः बिक्री कर लगाने से वर्तमान व्यवस्था के कारण उत्पन्न होने वाला असंतोष दूर हो जाएगा।

अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत सूचीबद्ध किए गए करों के संभावित राजस्व का पूर्ण उपयोग

10.9. अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत सूची बद्ध किए गए करों के सम्भावित राजस्व का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए। इस संबंध में विशिष्ट सिफारिश नीचे दी जा रही है।

10.10. रेल के किराए पर प्रारम्भ में 15% की दर से कर लगाया जाना चाहिए। कर की यह दर फिर भी बस के किराए पर लगाए गए कर से कम ही होगी। इसके अतिरिक्त बस के किराए पर लगाए गए कर की दर सड़क परिवहन पर लगाए गए भारी करों से अधिक ही होगी। जिसमें डीजल, वाहनों, टायरों और अतिरिक्त पूर्जों तथा मोटर वाहन करों के अन्तर्गत लगाए गए कर भी शामिल हैं। इसकी तुलना में रेल परिवहन पर किसी भी प्रकार का कर बोझ नहीं है।

10.11. रेल के किराए पर पुनः कर लगाए जाने तक रेल की सवारियों पर लगाए जाने वाले कर के बदले में राज्यों को गैर-उपनगरीय सवारियों से प्राप्त आय के 10.7% के बराबर की हो जाती रहनी चाहिए। लेकिन अनुदान की राशि का निर्धारण प्रति वर्ष उस वर्ष की आय के आधार पर किया जाना चाहिए न कि इसका निर्धारण 5 (पांच) वर्षों के लिए एक साथ कर देना चाहिए जैसा कि आठवें वित्त आयोग द्वारा किया गया है। अनुदान की राशि का निर्धारण प्रारम्भ में उस वर्ष के लिए रेल बजट प्राक्कलन में दिखाए गए आय के आधार पर किया जाना चाहिए। बाद में जब उस वर्ष के दौरान हुए वास्तविक आय में संबंधित आंकड़े उपलब्ध हो जाए तो आवश्यक समायोजन किया जा सकता है।

10.12. वायुयान से आने वाले सवारियों पर भी पर्याप्त मात्रा में सीमा कर लगाया जा सकता है।

10.13. विज्ञान पर कर लगाया जा सकता है और अनुच्छेद 269 (1) (ङ) की सीमा का विस्तार करके उसके अन्तर्गत समाचार पत्र में दिए गए विज्ञापन प्रसारण या दूरदर्शन प्रसारण को भी लाया जा सकता है।

10.14. अनुच्छेद 276(2) में संशोधन करके व्यवसाय, व्यापार, पेशा और सेवा नियोजन पर लगाए जाने वाले कर की वर्तमान 250 रु० की सीमा को 1,000 रु० किया जा सकता है। इस प्रकार के कर लगाने की लांछना या निंदा से बचने के लिए कई राज्यों को इनमें शामिल किया जा सकता है। जब यह कर लगाया था उस समय अब तक सामान्य मूल्य स्तर कई गुना बढ़ गया है। अगर इस कर की सीमा को 1,000 रु० तक बढ़ा दिया जाता है तो इससे सामान्य मूल्य के स्तर का आंशिक रूप से समायोजन हो जाएगा।

10.15. कानून के अन्तर्गत संसद को संविधान के अनुच्छेद 286(3) के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओं की बिक्री पर लगाए गए करों, जो कि संसद द्वारा अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य में विशेष महत्व का घोषित कर दिया गया हो या भाड़ा क्रय पर माल की सुपुर्दगी या अन्य प्रकार के किस्तों में भुगतान किए जाने वाले या किसी विषेश लाभ के लिए किसी माल के किसी भी प्रयोजन या अवधि के लिए इस्तेमाल किए जाने की शक्ति का हस्तान्तरण आदि पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति का इस्तेमाल यदा-कदा और बुद्धिमत्तापूर्वक ही करना चाहिए। जो राज्य अपने उत्पादों का अधिकांश भाग अन्य राज्यों को भेजता है उन्हें इसके लिए इस रूप में दंडित नहीं किया जाना चाहिए कि अन्य राज्यों में उत्पाद भेजने वाले राज्यों के बिक्री कर पर अविवेकपूर्ण रूप से शक्ति का इस्तेमाल करते हुए प्रतिबन्ध लगा दिया जाए। इस प्रकार के प्रतिबन्ध का बोझ विशेषकर उन छोटे राज्यों पर बहुत भारी पड़ेगा जिन्हें अपने उत्पादों का अधिकांश हिस्सा अन्य राज्यों को उसी प्रकार भेजना पड़ता है जैसा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में छोटे राष्ट्रों को अपना उत्पाद अन्य देशों को निर्यात करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त चूंकि आजकल विशेषकर मशीनरी आदि के पट्टे पर देने और किस्तों में बिक्री विशेषकर उपभोक्ता टिकाऊ मालों की किस्तों में बिक्री बढ़ रही है अतः अनुच्छेद 286(3) के अन्तर्गत बिक्री कर पर प्रतिबंध इस रूप में नहीं बढ़ने दिया जाना चाहिए कि अधिक मात्रा में बिक्री कर से बचा जाए।

(2) केन्द्रीय करों में राज्य के हिस्से की बढ़ोतरी

10.16. केन्द्रीय करों के विभाजन पूल का अविवेकपूर्ण रूप से विस्तार नहीं होना चाहिए। अपने सांविधानिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के केन्द्र के लिए उतनी ही पर्याप्त मात्रा में कर स्रोतों का होना आवश्यक है जितनी मात्रा में राज्यों की अपने सांविधानिक उत्तरदायित्व के निर्वाह करने के लिए उचित अनुपात में वित्तीय संसाधन होना आवश्यक है। अतः इस प्रकार के चरम दृष्टिकोण का समर्थन करना उचित नहीं होगा कि जो कि केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से की बढ़ोतरी के समर्थन में कभी-कभी रखा जाता है। इस खंड में इस बात का प्रयास किया गया है कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए इस विषय के संबंध में एक उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण की रूप-रेखा तैयार की जाए।

10.17. सीमा शुल्क को विभाज्य पूल से अलग रखा जा सकता है। इसी से केन्द्र को इतनी अधिक मात्रा में राजस्व प्राप्त हो जाएगा की वह अपने युक्तिपूर्ण रक्षा व्यय का वहन कर पाएगा। 1986–87 के लिए केन्द्रीय बजट में सीमा शुल्क से निवल राजस्व की राशि 10,407 करोड़ रु० (जिसमें बजट प्रस्तावित अतिरिक्त कर उपाय भी शामिल है) प्राक्कलित की गई थी जबकि बजट में रक्षा व्यय के मद में 8778 करोड़ रुपए की राशि प्राक्कलित की गई थी। इस प्रकार व्यय से इतर की आवश्यकताओं को वित्त पोषित करने के लिए केन्द्र के पास 1,679 करोड़ रुपए बच जाता है।

10.18. केन्द्र के सर्वोपरि सांविधानिक उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए यह सिफारिश करना बहुत उचित होगा कि केन्द्र के प्रमुख करों जैसे की आयकर, निगम कर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से प्राप्त होने वाले राजस्व का 50% राज्यों को केन्द्रीय करों में उनके हिस्से के रूप में दिया जाना चाहिए। निगम कर चूंकि निगमित आय पर लगाया गया कर है अतः संकाल्पनिक रूप से ही यह कर आयकर का ही एक हिस्सा है। अतः इसे आयकर ही समझना चाहिए और अगर आवश्यकता पड़े तो संविधान में संशोधन करके इसे केन्द्रीय करों के विभाज्य पूल में शामिल कर लेना चाहिए। वर्तमान में आयकर में राज्य का हिस्सा 85% निर्धारित किया गया है। यदि निगम कर और आयकर को मिलाकर राज्य के हिस्से को 50% कर दिया जाता है तो इससे केन्द्र पर कोई भारी बोझ नहीं पड़ेगा। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क पहले से ही एक विभाज्य राजस्व है। इसके आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों के राज्यों के हिस्से को 45% से बढ़ाकर यदि प्रस्तावित 50% किया जाता है तो यह एक सामान्य समायोजन होगा। उत्पाद शुल्क किस्म के किसी भी कर को मात्र इस आधार पर विभाज्य पूल के बाहर नहीं रखा जा सकता है कि इससे उपकर के रूप में वर्गीकृत किया गया है। देश के भीतर उत्पादित कच्चे तेल, चीनी, कोयला और कोक और टेलीविजन सेट पर लगाए गए उपकरों से 1986–87 में क्रमशः 95.20 करोड़ रुपए, 67.30 करोड़ रुपए और 28.00 करोड़ रुपए का राजस्व प्राप्त होने का अनुमान है जो कि विभाज्य पूल हिस्सा का होना चाहिए। राज्यों के क्षतिकर ऐसी सामग्रियों पर नियत किए गए उपकरों के दुरुपयोग से बचने के लिए ऐसा उपबन्ध किया जा सकता है कि 10 करोड़ रुपए से अधिक मात्रा में प्राप्त होने वाले राजस्व को विभाज्य पूल में शामिल किया जाएगा।

10.19. उपरोक्त आधार पर 1986–87 में विभाज्य पूल के अन्तर्गत आने वाली राशि का प्राक्कलन 13,832 करोड़ किया जा सकता है जिनमें निम्नलिखित शामिल है :—आयकर 2,588 करोड़ रु० निगम कर 3,133 करोड़ रुपए और विभाज्य केन्द्रीय उत्पाद शुल्क 8,111 करोड़ रु०।*

* विभाज्य उत्पाद शुल्क प्राक्कलन इस प्रकार किया गया है :—
(करोड़ रुपयों में)

1. कुल प्राक्कलित केन्द्रीय उत्पाद शुल्क—14,142		
2 घटाइए :—		
(i) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के बदले में अतिरिक्त बिक्री कर के रूप में राज्य को हस्तांतरित कराए जाने के लिए प्रस्तावित केन्द्रीय उत्पाद शुल्क	(—)	4,890
(ii) अतिरिक्त उत्पाद शुल्क के स्थान पर बिक्री कर लगाने पर कर प्रभाव	(—)	1,047
(iii) विभाज्य पूल के बाहर नियत उपकर . .	(—)	94
3. विभाज्य पूल में अंशदान		8,111

विभाज्य पूल में राज्यों के हिस्से 50% होने पर उसकी राशि 6,916 करोड़ रुपए होगी।

(3) खण्ड (1) और (2) के प्रस्तावों का निवल प्रभाव

10.20. कर से प्राप्त राजस्व को केन्द्र से राज्य को हस्तान्तरण करने के लिए उपरोक्त खण्ड (1) और (2) जो विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव भेजे गए हैं उन सबों को मिलाकर 1986–87 में 12,803 करोड़ रुपए की राशि बनती है जिसमें निम्नलिखित मदें आती हैं।

(करोड़ रुपयों में)

1.	केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के बदले में अतिरिक्त बिक्री कर लगाने से प्रभाव	4,890
2.	बिक्री कर पुन्हा लगाने और अतिरिक्त उत्पाद शुल्क समाप्त करने से प्रभाव . . .	1,047
3.	केन्द्रीय करों के राज्य का हिस्सा . . .	6,916
	कुल प्राक्कलित हस्तांतरण . .	12,853

10.21. वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत 1986–87 में केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा 8,260 करोड़ रुपए** प्राक्कलित किया गया है। उपरोक्त खण्ड (1) और (2) में दिए गए प्रस्तावों के निवल प्रभाव के परिणामस्वरूप राज्यों को 4,595 करोड़ रुपए का अतिरिक्त कर राजस्व प्राप्त होगा। इसके बाद आठवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अन्तर्गत केन्द्र के पास वर्तमान में 22,696 करोड़ रुपए के कर राजस्व के बदले 18,103 करोड़ रुपए रह जाएगा।

(4) विभाज्य पूल की राशि का अन्तर्राष्ट्रीय बंटवारा

10.22. संघीय करों के संघ की यूनिटों में बंटवारा किए जाने के लिए जो विभिन्न मानदंड है उनमें से अन्तिम विश्लेषण के आधार पर जो दो मूल मानदंड स्वीकार किया गया है वह क्षतिपूर्ति का मानदंड और पुनः वितरण का मानदंड है। क्षतिपूर्ति या प्रतिपूर्ति का मानदंड के अन्तर्गत संघ की प्रत्येक इकाई को विभाज्य करों में से संघ के कुल कर राजस्व में उसकी जनसंख्या के अनुपात से किए गए अंशदान के अनुपात में हिस्सा प्राप्त होता है। पुनः वितरण वाले मानदंड के अन्तर्गत जिन इकाइयों का प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० राष्ट्रीय औसत से कम है अनुपात में उन यूनिटों को अधिक हिस्सा प्राप्त होता है और जिन यूनिटों का प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० राष्ट्रीय औसत से अधिक है, उन्हें अनुपात से कम हिस्सा प्राप्त होता है और यह अनुपात वह होता है जो की संघ में कुल राजस्व में उन यूनिटों का अपनी जनसंख्या के अनुपात में अंशदान होता है और ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत संघ के उच्च आय वाले यूनिटों से निम्न आय वाले यूनिटों के निवल संसाधन का हस्तान्तरण हो।

10.23. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के बदले में प्रस्तावित अतिरिक्त बिक्री कर लगाने और चीनी, वस्त्र और तम्बाकू पर पुनः बिक्री कर लगाने तथा इसके साथ-साथ इन वस्तुओं पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क समाप्त किए जाने से राज्यों को जो अतिरिक्त कर राजस्व प्राप्त होगा स्पष्ट रूप से उसका बंटवारा क्षतिपूर्ति या प्रतिपूर्ति के आधार पर राज्यों के बीच किया जाएगा। वास्तविकता—तो यह है कि प्रत्येक राज्य को बिक्री कर से उसी मात्रा के अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा जिस मात्रा में उस राज्य के लोगों द्वारा अतिरिक्त बिक्री कर का भुगतान किया जाएगा। यह पूर्णरूप से एक प्रतिपूर्ति का मामला होगा।

10.24. केन्द्र से राज्य को हस्तान्तरित किए जाने वाले प्रस्तावित कर राजस्व को कुल राशि के अन्तर्राष्ट्रीय बंटवारे में एक संतुलन बनाए रखने के लिए पुनः वितरण का मानदंड केन्द्रीय करों में राज्यों के हिस्से के बंटवारे में लागू किया जा सकता है। इसके साथ-साथ राज्यों को भी इस बात के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है कि वे नए कर लगाकर और वर्तमान करों को अधिक दक्षतापूर्वक लागू करके राज्य के करों से प्राप्त होने वाले राजस्व में वृद्धि करके अपनी वित्तीय

**केन्द्रीय बजट प्रलेख—1986–87।

स्थिति सुधारने का प्रयास करें। अन्त में राज्यों को प्रेरणा दी जा सकती है और बड़े राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए किए गए जोरदार प्रयास के लिए उन्हें वित्तीय प्रोत्साहन भी दिया जा सकता है। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए राजस्व के बंटवारे के लिए सिफारिश किए गए मानदंड और उनको दिए गए महत्व का ब्यौरा सारणी 10.2 में दे दिया गया है।

सारणी 10·2

केन्द्रीय करों विभाज्य पूल में राज्यों के हिस्से के लिए सिफारिश किए गए मानदंड

मानदंड	अन्तर्राज्यीय बंटवारे में संबंधित महत्व (प्रतिशत)
1. जनसंख्या	50.00
2. सभी राज्यों के औसत से नीचे प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० .	20.00
3. कर प्रयास	10.00
4. चयन की गयी विशेष समस्याएं . . .	20.00
1. अनुसूचित जातियों का विकास . . .	4.00
2. अनुसूचित जनजातियों का विकास . .	2.5
3. पर्वतीय/दूरवर्ती क्षेत्रों का विकास . .	3.0
4. सीमावर्ती क्षेत्रों का विकास . . .	2.5
5. उत्तरी-पूर्व क्षेत्रों का समन्वयित विकास . .	2.5
6. भूमिहिन कामगारों के लिए आवास . .	3.0
7. शहरी गंदी बस्तियों का विकास . .	2.5

जनसंख्या

10.25. जनसंख्या के अनुसार किए जाने वाले वितरण में पुन: वितरण वाला मानदंड बहुत अंश में शामिल हैं। उदाहरण के लिए, उत्पाद शुल्क का बोझ उन वस्तुओं के उपभोक्ता पर पड़ता है जिनके उपभोक्ता मूल्यों में इन उत्पाद शुल्कों का तत्व भी शामिल है। उच्च आय वाले राज्यों की जनसंख्या चूंकि इस प्रकार की सामग्रियों का प्रतिव्यक्ति उपभोग भी अधीक करती है अत: वे अपनी संख्या के अनुपात में अपनी वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क के रूप में राजस्व में अंशदान भी अधिक करती है। दूसरी ओर कम आय वाले राज्यों की जनसंख्या चूंकि इन सामग्रियों का प्रति व्यक्ति उपभोग कम करती है अत: वे उत्पाद शुल्क से प्राप्त हुए राजस्व में अपनी संख्या की तुलना में अपेक्षाकृत कम अंशदान करती है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से प्राप्त विभाज्य राजस्व का बंटवारा राज्यों की जनसंख्या के आधार पर किए जाने से यह होता है कि उच्च आय वाले राज्यों का हिस्सा अनुपात में कम हो जाता हैं और कम आय वाले राज्यों का हिस्सा अनुपात में अधिक हो जाता है और यह अनुपात उनके द्वारा उस राजस्व में किए गए अंशदान पर निकाला जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि यह मानदंड पुन: वितरण किए जाने वाले किस्म की तरह है।

10.26. व्यक्तिगत और कम्पनी आय पर लगाए गए आय कर से प्राप्त राजस्व के विभाज्य अंश का बंटवारा विभिन्न राज्यों की जन संख्या के आधार पर किए जाने का एक और घोषित प्रभाव ऐसा होता है जो कि पुन: वितरण किए जाने वाले मानदंड के अन्तर्गत होता है। इस आय से प्राप्त हुए राजस्व में निम्न आय वाला राज्य जितना अंशदान करता है उसे उससे बहुत अधिक और उच्च आय वाला राज्य जितना अंशदान करता है उसे उससे बहुत कम प्राप्त होता है।

अगर इस कर से प्राप्त होने वाले कुल राजस्व को उसकी पूरी संभावना तक विकसित किया जाए ताकि विभाज्य में इसका अंशदान केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के अंशदान से अपेक्षाकृत अधिक हो जाए तो राज्यों की जनसंख्या के आधार पर किए जाने वाले बंटवारे का पुन: वितरण किए जाने का प्रभाव और भी अधिक हो जाएगा।

सभी राज्यों के औसत से कम प्रति व्यक्ति एस०डी०पी०

10.27. इस मानदंड के अन्तर्गत कुल विभाज्य राशि किसी पात्र राज्य का हिस्सा इस मानदंड के अनुसार कितना होगा वह इन बातों पर निर्भर करता है :—(i) उस राज्य का प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० सभी राज्यों का औसत कितना कम हैं और (ii) उस राज्य की जनसंख्या कितनी है। इस मानदंड के अन्तर्गत बंटवारा किए जाने का पूरा लाभ प्रति व्यक्ति निम्न एस० डी० पी० राज्यों को मिलेगा। जिस राज्य का प्रति व्यक्ति एस०डी०पी० जितना भी कम होगा, अपने कम होने के कारण उस राज्य को इस आधार पर उतना ही अधिक महत्व दिया जाएगा। इस मानदंड के अनुसार अपेक्षाकृत अधिक आय वाले राज्यों को कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जो विभाज्य करों में से अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिक केन्द्रीय राजस्व देते हैं। स्पष्ट है इस मानदंड से पुर्नवितरण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा।

कर की वसूली संबंधी प्रयास

10.28. इस मानदंड के अनुसार विभाज्य राशि में प्रत्येक राज्य का हिस्सा उसके कर-अनुपात अर्थात् उसके कुल या प्रतिव्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (एस० डी० पी०) और उसके कुल या प्रतिव्यक्ति कर राजस्व के अनुपात पर निर्भर करता है। यदि राज्य के प्रतिव्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद और राज्य के कर-अनुपात के बीच सुदृढ़ और स्थायी सहसम्बन्ध हो तो अवश्य ही यह मानदंड एक प्रति-पूरक मानदंड का काम करेगा अर्थात् प्रत्येक राज्य को लगभग उसी अनुपात में उसका हिस्सा मिलेगा जिस अनुपात में विभाज्य करों से प्राप्त होने वाले सकल राजस्व में उस राज्य द्वारा अंशदान किया जाएगा। परन्तु जैसा कि अध्याय-9 में उल्लिखित है राज्यों के प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद और उनके कर अनुपात के बीच का संबंध बहुत कमजोर और नगण्य हैं। इसका अभिप्राय यह है कि यह संभव है कि कम आय वाले राज्य के अपेक्षाकृत कर का अधिक अनुपात हो और अधिक आय वाले राज्य के कर का अनुपात अपेक्षाकृत बहुत कम हो। इसके अनेक उदाहरण अध्याय–9 में दिए गए हैं। इसका आशय यह है कि यह निश्चित रूपसे संभव है कि कम आय वाला राज्य अपने कर अनुपात का स्तर उसी स्थिति में अधिक बढ़ा सकता है यदि वह आवश्यक वित्तीय अनुशासन रखे और पर्याप्त आर्थिक साधन जुटाए। प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद के संदर्भ में तमिलनाडु का ऊपर से नवां स्थान है किन्तु कर अनुपात के संदर्भ में प्रथम स्थान है। दूसरी ओर हिमाचल प्रदेश जिसका प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद के संबंध में छठा स्थान है लेकिन कर अनुपात के संदर्भ में वह इतना कम है कि उसका स्थान 16वां है। यदि अपेक्षाकृत कम आय वाले राज्य तमिलनाडु का अनुकरण करें और अधिक कर अनुपात प्राप्त करें तो उन कम आय वाले राज्य में कर की वसूली से संबंधित मानदंड को भी अत्यधिक सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है, जो विभाज्य करों में से प्राय: अपनी जनसंख्या के अनुपात में काफी कम राजस्व-अंशदान करते हैं और हो सकता है कि वे राज्य भी ऐसे उच्च आय वाले राज्यों के समान हिस्से का दावा करें जो प्राय: अपनी जनसंख्या के अनुपात में केन्द्रीय कर-राजस्व में अधिक अंशदान करते हैं। इस मानदंड को बनाए रखना आवश्यक है ताकि राज्यों को अपने कर अनुपात में सुधार लाने के लिए अपेक्षित प्रोत्साहन मिल सके। इस मानदंड के अनुसार वास्तविक संभावना यह है कि कम आय वाले राज्य विभाज्य राशि में अधिक हिस्से का दावा कर सकते हैं जिससे इस मानदंड को बनाए रखने संबंधी मत सुदृढ़ हो जाता है।

विशेष समस्याएं

10.29. इस संबंध में यह सुझाव दिया जाता है कि समस्या कितनी बड़ी है और कितनी गंभीर है, यह देखकर इस मानदंड के अनुसार आबंटित की जाने वाली राशि संबंधित राज्यों के बीच वितरित की जाए। इसलिए विभाज्य कर-राजस्व के वितरण के संबंध में संबंधित राज्य की आवश्यकता के अनुसार अंशदान का निर्धारण होगा न कि कर-राजस्व में अंशदान के आधार पर। इस मानदंड के अधीन जो विभिन्न समस्याएं दर्शायी गई है वे सभी मुख्य राष्ट्रीय समस्याएं हैं, जिनको प्रभावित राज्यों को हल करना होता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस मानदंड के अन्तर्गत धनराशि प्राप्त करने वाले राज्य जिस समस्या को

हल करने के लिए राशि ली गई हो उसी के लिए ही खर्च करते हैं, इस राशि को इसी प्रयोजन के लिए अलग रख दिया गया जाए। वर्ष के अन्त में इस राशि का जो भाग जिस प्रयोजन के लिए दिया गया हो उसके लिए प्रयुक्त न किया जाए तो उसे राज्य विकास परिषद् (या उससे संबंधित समिति) द्वारा पुनः उन अन्य राज्यों में आबंटित किया जा सकता है जिन्होंने इस समस्या का हल करने में अधिक सफलता प्राप्त की है।

10.30. अनुसूचित जातियों के विकास के लिए आबंटित राशि उन राज्यों की अनुसूचित जाति की जनसंख्या के अनुपात को देखते हुए वितरित की जाए। अनुसूचित जनजातियों के विकास से संबंधित आबंटन प्रत्येक राज्य की जन-जातियों के विकास से संबंधित आबंटन प्रत्येक राज्य की जन-जातीय जनसंख्या के अनुसार अधिक-से-अधिक 50% और जिन राज्यों में जन-जाति के अधिक लोग रहते हों उन्हें शेष 50% वितरित की जा सकती है। दूसरे उप-मानदंड का औचित्य यह है कि यदि जनसंख्या अधिक बड़े क्षेत्रों में फैली हों तो उसका विकास होने में अधिक बाधा आती है। अनुसूचित जातियों की स्थिति के विपरित जिनका सामान्यतः किसी बड़े क्षेत्र में अधिक्य नहीं होता है, अनुसूचित जनजातियों के भी ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर उनकी जनसंख्या का अधिक्य बना रहता है। पहाड़ी और दूरस्थ क्षेत्रों और सीमा क्षेत्रों को आबंटित राशि इन क्षेत्रों के विस्तार के अनुसार 50% और विभिन्न राज्यों में उनकी जनसंख्या के अनुसार 50% वितरित की जा सकती है। उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के समन्वित विकास के लिए आबंटित राशि उसके विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए उत्तर-पश्चिम परिषद् को सौंपी जाए। शहरी गंदी बस्ती के सुधार और भूमिहिनों को मकान दिलाने से संबंधित आबंटन राशि विभिन्न राज्यों में उन श्रेणियों के लोगों की जनसंख्या के अनुसार वितरित की जाए।

10.31. सभी मानदंडों के अनुसार जिस वितरण योजना का सुझाव दिया गया है उस योजना से पुनर्वितरण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ेगा। इस बात की सहज ही आशा की जाती है कि धीरे-धीरे अन्तर्राज्यीय विषमताओं को समान बना कर विकास की ओर बढ़ा जा सकता है।

इस बात का सुनिश्चय करना पूंजीगत प्राप्तियों में से राज्यों को उन्हें देय हिस्से मिल रहे हैं

10.32. केन्द्र और राज्यों के बीच पूंजीगत प्राप्तियों के अत्यधिक असमान वितरण का उल्लेख अध्याय-7 में किया गया है। इससे राज्यों को अपने संवैधानिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों में संतुलित विकास के लिए अपने निवेश के वित्तपोषण के संबंध में संसाधन प्राप्त करने में अत्यधिक बाधा होती है और इस प्रयोजन के लिए राज्यों को अधिकतर केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। रिपोर्ट के इस खंड में पूंजीगत प्राप्तियों में राज्यों के लिए नियत हिस्से सुनिश्चित करने के उपाय सुझाए गए हैं।

बाजार-उधार में समान हिस्सा

10.33. रिजर्व बैंक के अलावा बाजार उधार के मुख्य अभिदाता (i) वाणिज्यिक बैंक (ii) गैर सरकारी भविष्य निधि और (iii) जीवन बीमा निगम हैं। मार्च 1984 के अन्त में केन्द्रीय और राज्य सरकार की प्रतिभूतियां (जिनमें उस तारीख को सरकार का बकाया बाजार-उधार दिखाया गया है) निम्नांकित विभिन्न अभिदाताओं के पास थी: जब भारतीय रिजर्व बैंक, 25.3% वाणिज्यिक बैंक, 41.1% गैर-सरकारी भविष्य निधि, 13% जीवन बीमा निगम, 11% और अन्य 9.6.1* (सरकारी केन्द्रीय) प्रतिभूतियों के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक जमा प्रतिभूतियां केन्द्र द्वारा की गई घाटे की वित्त व्यवस्था की संघटक हैं। किसी वर्ष में या पांच वर्ष की अवधि में बाजार-उधार की संभावनाओं के निर्धारण में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों में किए गए निवेश शामिल नहीं हैं और इसके विपरीत इसे घाटे की व्यवस्था के अन्तर्गत शामिल किया गया है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किए जाने वाले संभावित निवेश का संबंध उनकी जमा राशि में अनुमानित वृद्धि और निर्धारित सांविधिक नकदी के अनुपात से है।

*भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्ट मुद्रा और वित्त 1984-85 खंड II विवरण संख्या 90 पृ० 120-121—कुल जोड़ और घटक के बीच की विसंगति शीर्ष "अन्य" में समायोजित कर दी गई है।

गैर-सरकारी भविष्य निधि और जीवन बीमा निगम द्वारा किए गए निवेश का संबंध उनके निवेश योग्य संसाधनों की अनुमानित और उस वृद्धि की संभावित निवेश पद्धति से है तथा इस संबंध में इन संस्थाओं के सांविधिक दायित्वों को भी ध्यान में रखना होगा। वित्तीय संस्थाएं बाजार-उधार की कुल अनुमानित राशि में से एक भाग पहले ही बाजार-उधार के लिए रख देती हैं। सातवीं योजना में 1985-90 से 5 वर्ष अवधि के लिए 36,108 करोड़ रु० के निवल अनुमानित बाजार-उधार में से 5,546 करोड़ रु० (कुल राशि का 15.4%) वित्तीय संस्थाओं के लिए अलग रखे गए हैं। यदि केन्द्रीय और राज्य लोक उद्यमों को इन वित्तीय संस्थाओं से धन लेने के लिए उत्साहित किया जाए तो वे राशि लेने के लिए सरकार पर अत्यधिक निर्भर रहने के बजाए वित्तीय संस्थाओं से सम्पर्क करेंगे। (इस नीति पर उन उद्यमों पर तथा उनकी सरकारों पर पर्याप्त वित्तीय अनुशासन रखने के लिए पुनः विचार करना आवश्यक है) और यदि लम्बी अवधि के लिए वित्तीय सहायता लेने के संबंध में प्राइवेट सेक्टर की अपेक्षाएं उचित रूप से पूरी करनी हों तो बाजार-उधार में वित्तीय संस्थाओं का अधिक-से अधिक 30 % तक अवश्य बढ़ा दिया जाए। प्रत्याशित ऋण का शेष 70% केन्द्र और राज्य में बराबर बांट लिया जाए जिससे प्रत्येक को कुल का 35% दे दिया जाए। इस आधार पर सातवीं योजना में राज्यों का बाजार-उधार हिस्सा 12,638 करोड़ रु० (36,108 का 35%) बनता है जबकि पहले उन्हें वास्तव में 9,942 करोड़ दिया जाता था अर्थात् 5 वर्ष की अवधि के लिए 2,696 करोड़ रु० अधिक दिए गए। राज्य के हिस्से में सभी एस० ई० बी० और राज्य के अन्य उद्यमों और निकायों को राज्य सरकार द्वारा दी गई बाजार-उधार की राशि भी शामिल होगी। यही बात केन्द्र पर भी लागू की जाए और केन्द्रीय उद्यमों को कुछ बाजार-उधार देना प्रारम्भ करें।

राज्यों को बाजार-उधार की राशि आबंटित करना

10.34 राज्यों के बीच बाजार-उधार की राशि का आबंटन मुआवजे और पुनः वितरण के मानदंड के सिद्धान्त के आधार पर किया जाना चाहिए। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार राज्यों का हिस्सा दो भागों अर्थात् सामान्य और विशेष में बांटा जाए। इन दो भागों के वितरण का अनुपात 75.25 हो जबकि सातवीं योजना में वितरण का अनुपात 70,5:29.5 था, ताकि पंजाब जैसे राज्यों को उचित राशि मिल सके, जिनके साथ सातवीं योजना के अन्तर्गत बाजार-उधार की राशि देते समय बड़ा अनुचित व्यवहार किया गया है।

10.35 बाजार-उधार की राशि का सामान्य भाग मुआवजे के मानदंड के आधार पर सभी राज्यों में बांट दिया जाए और ऐसा करते समय बाजार-उधार की राशि प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के लिए अनुमानित अंशदान के अनुपात को ध्यान में रख कर बांटी जाए। राज्य के अंशदान में निम्नलिखित राशि गिनी जाए:—

(i) बैंकों के निर्धारित सांविधिक नकद अनुपात से गुणा करके राज्य की वाणिज्यिक बैंक जमा राशि में उपचयं ;

(ii) जीवन बीमा निगम के बाजार-उधार से बढ़ते हुए निवेश और कुल बढ़ते हुए निवेश के अनुपात के गुण में (×) राज्य को दी जाने वाली जीवन बीमा निगम की जीवन निधि में जमा राशि।

(iii) बाजार-उधार में बढ़ते हुए निवेश और भविष्य निधि के बढ़ते हुए निवेश का अनुपात के गुणा में (×) राज्य को दी जाने वाली गैर-सरकारी भविष्य निधि को राशि में हुई वृद्धि।

यदि जीवन बीमा निगम के निवेश योग्य संसाधनों में वृद्धि के संबंध में अलग-अलग राज्यों के अंशदान का अनुमान लगाना संभव न हो तो राज्य में जीवन बीमा निगम के प्रीमियम की राशि को सूचक के रूप में माना जा सकता है। इसी प्रकार राज्य की गैर-सरकारी भविष्य निधि के अभिदाता के खाते में जमा हुई निवल वृद्धि को गैर-सरकारी भविष्य निधि अंशदान के सूचक रूप में माना जा सकता है और इसको भविष्य निधि के निवेश योग्य संसाधनों में शामिल माना

जा सकता है। ऋण-जमा अनुपात के लिए स्वीकृत राष्ट्रीय मानदंड के आधार पर राज्य जितना ऋण लेने का पात्र है उसकी तुलना में यदि किसी राज्य को बैंक से कम ऋण मिलता है तो अनुपात की यह कम राशि बाजार-उधार में राज्य के अंशदान के रूप में मानी जा सकती है। राज्यों के बीच सामान्य बाजार-उधार की राशि बांटते समय कुल बाजार-उधार में उनके अनुमानित अंशदान के अनुपात में उचित वितरण किया जाए।

10.36 पुनर्वितरण मानदंड के आधार पर बाजार-उधार का विशेष भाग केवल उन राज्यों को दिया जाए जिनकी प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद सभी राज्यों के औसतन राज्य घरेलू उत्पाद से कम हो। सभी राज्यों की तुलना में यदि किसी राज्य का प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद कम हो तो राज्य की जनसंख्या को गुणा में औसत निकाल कर और पात्र राज्यों को बाजार-उधार दे दिया जाए। किसी भी राज्य का हिस्सा उस अनुपात पर निर्भर करेगा जितनी सभी पात्र राज्यों की तुलना में उनके प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद में कमी होगी। राज्य घरेलू उत्पाद अनुपात में राज्य की जनसंख्या का गुणा करके आबंटन किया जाए। एक राज्य का हिस्सा इस उत्पाद के अन्य पात्र राज्यों के तदनुरूप उत्पादन के अनुपात में होगा। ऐसा आबंटन पुनर्वितरण मानदंड के आधार पर होगा। अधिक आय वाले ऐसे राज्य जो अपनी जनसंख्या के अनुपात में प्राय: अधिक बाजार उधार देते हैं उन राज्यों को बाजार-उधार के इस भाग में से कोई भी राशि नहीं दी जाएगी।

अल्प बचत की राशि

10.37 अध्याय 8 में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि अब तक केवल अल्प बचत की निवल राशि ही राज्यों में बांटी जाती है और यह भी कि कुल वसूलियों से ही आहरण किया जाता है, इसलिए राज्यों द्वारा केन्द्र के अल्प बचत ऋणों की वापसी की राशि केन्द्र को ही प्राप्त होती है न कि वह अपने पूंजीगत परिव्यय के लिए वित्त व्यवस्था कर सके। दूसरे शब्दों में इन वापसियों से राज्यों से केन्द्र को गलत संसाधन-अन्तरण हो जाता है जो बाद में इन दोनों के बीच असंतुलन को और बढ़ा देता है। इस संसाधन अन्तरण को कम करने के लिए और निवल वसूलियों में राज्यों में वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं :—

(1) ऐसे राज्य को जिसकी प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद (एस०डी० पी०) औसतन सभी राज्यों से अधिक अल्प बचतों की निवल वसूलियों के 4/5 भाग के बराबर अल्प बचत ऋण दिए जा सकते हैं। उन राज्यों को जिनका प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद सभी राज्यों से कम है निवल वसूलियों के 95% के बराबर अल्प बचत ऋण की अनुमति दी जाए।

(2) अल्प बचत ऋणों की परिपक्वता अवधि मौजूदा 25 वर्षों से 50 वर्षों तक बढ़ाई जाए और इन ऋणों की (अनुग्रह) अवधि 5 वर्षों से 10 वर्षों तक बढ़ाई जा सकती है।

संस्थागत निधियों को भारत सरकार के पास विशेष जमा राशि के रूप में रखने की अनुमति न दी जाए

10.38 जैसा कि अध्याय 8 में स्पष्ट किया गया है, गैर-सरकारी भविष्य निधि केन्द्र सरकार के पास विशेष जमा राशि के रूप में जमा करना बाजार-उधार और अल्प बचतों से पूर्णत: भिन्न है। बीमा निगम द्वारा इन जमा राशियों में किए गए निवेश भी आंशिक रूप से इसी प्रकार का है। यद्यपि बाजार-उधार और अल्प बचतों में राज्यों का हिस्सा है किन्तु विशेष जमा राशि में राज्यों का हिस्सा नहीं है इसलिए केन्द्र द्वारा प्रारंभ की गई विशेष जमा योजना राज्यों की कीमत पर केन्द्र को निधि उपलब्ध कराती है। बाजार-उधार और अल्प बचतों में राज्यों को कम पूंजीगत प्राप्तियों की क्षतिपूर्ति करने के लिए यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्र राज्यों को अतिरिक्त अल्प बचत ऋण दें जिसकी राशि अति विशिष्ट जमा राशि में हुई निवल वृद्धि की डेढ़ गुनी हो। राज्यों को उनके बाजार-उधार और अल्प बचतों के अनुपात में ही राशि आबंटित की जा सकती है।

लोक भविष्य निधि और राष्ट्रीय जमा योजना के अन्तर्गत निवल वसूलियों में हिस्सा

10.39 प्रत्येक राज्य को 15 वर्ष की अवधि के लिए ऋण दिया जाए। इसके लिए 5 वर्ष की अवधि की छूट दी जाएगी। यह ऋण ब्याज की सामान्य दर पर दिया जाएगा। (अर्थात् केन्द्र द्वारा उधार लेने के लिए खर्च की गई औसत लागत पर) ब्याज की यह दर किसी विशेष वर्ष में राज्य की लोक भविष्य निधि की वसूलियों की आधी हो। उसी प्रकार से प्रत्येक राज्य को 10 वर्ष की अवधि के लिए ऋण दिया जाए जिसकी राशि उस वर्ष में उस राज्य की राष्ट्रीय जमा राशि की निवल प्राप्तियों के बराबर हो।

राज्य उपक्रमों को बन्धपत्र जारी करने के लिए प्रोत्साहित करना

10.40 राज्य के स्वायत्त उद्यमों को इस बात की अनुमति दी जाए और उन्हें इस संबंध में प्रोत्साहित किया जाए कि वे बंधपत्र जारी करके देशी पूंजी बाजार का उपयोग करें। ये बंधपत्र इन उधार लेनेवाले उद्यमों की नियत परिसम्पत्तियों को प्रतिभूति के आधार पर उसी प्रकार जारी किए जाते हैं जिस प्रकार इस समय केन्द्र के उद्यम अधिकाधिक कर रहे हैं।

राज्यों को बाहरी सहायता से परियोजनाएं आरंभ करने के लिए प्रोत्साहन देना

10.41 आजकल राज्यों को बाहरी सहायता से परियोजना चलाने के लिए अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता के रूप में सहायता-संवितरणों की 70% राशि देकर प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इन परियोजनाओं को चलाने के लिए राज्यों को दी जाने वाली यह राशि सामान्य प्रोत्साहन के रूप में मानी जाए न कि अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता के रूप में ताकि जो बाहरी सहायता मिली है उसका शीघ्र से शीघ्र उपयोग किया जा सके और देश को सहायता संवितरण के रूप में अधिक से अधिक मुक्त विदेशी मुद्रा मिल सके और इसके कुल निवेश योग्य संसाधनों में वृद्धि हो सके। इस राशि को बाहरी सहायता में राज्यों के हिस्से के रूप में भी माना जाए जो प्रारंभ में केन्द्र को प्राप्त होती है। इस संबंध में राज्यों को दी जाने वाली अतिरिक्त निधियों को स्वीकृत फार्मूले के अन्तर्गत किए जाने वाले वितरण के संदर्भ में दी गई केन्द्रीय सहायता से अलग नहीं माना जाना चाहिए। केन्द्र, प्रत्येक राज्य या एक से अधिक राज्यों को सामूहिक रूप से बाहरी सहायता लेकर मुख्य सिंचाई और शक्ति परियोजनाओं को चलाने के लिए प्रोत्साहित करे ताकि ली गई सहायता का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके। राज्य या राज्यों के ग्रुप जिनमें सिंचाई और शक्ति की बड़ी परियोजनाएं चलाने की क्षमता न हो इन परियोजनाओं की योजना बनाने और इन्हें चलाने के लिए संबंधित केन्द्रीय संगठन और उपक्रमों की सहायता ले सकते हैं और यदि आवश्यकता पड़े तो स्वयं परस्पर निर्धारित शर्तों पर राज्यों की ओर से सद्य: प्रवर्तनीयता के आधार पर परियोजनाएँ तैयार कर सकते हैं और उन्हें चला सकते हैं। इस प्रकार से राज्यों में सिंचाई और शक्ति के विकास को बढ़ावा देने तथा बाहरी सहायता से चलाई जाने वाली परियोजनाओं की प्रोत्साहन-योजना के अन्तर्गत राज्यों को अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराने के लिए बाहरी सहायता का प्रभावशाली उपयोग किया जा सकता है।

बाहरी वाणिज्यिक उधारों के मामले में केन्द्रीय उद्यमों और राज्य के उद्यमों को एक समान मानना

10.42 अध्याय 9 में बताए अनुसार केन्द्रीय उद्यमों को अब विदेशों से पर्याप्त मात्रा में वाणिज्यिक ऋण मिलने वाला है। न्यूनाधिक रूप से अब तक धन का यह स्रोत राज्य के उद्यमों को उपलब्ध नहीं रहा है अब केन्द्र राज्यों के उद्यमों को भी उचित शर्तों पर विदेशों से लाभदायक वाणिज्यिक ऋण लेने के लिए समान अवसर और प्रोत्साहन देना आरंभ करे।

घाटे की वित्त-व्यवस्था में हिस्सा

10.43 भारतीय अर्थ-व्यवस्था जैसी अर्थ-व्यवस्था में जो तेजी से एकाधिकारिता की ओर बढ़ रही है, सामान्य कीमतों की स्थिरता को प्रभावित किए बिना कुछ सीमा तक घाटे की वित्त व्यवस्था करना संभव है। वस्तुत: सामान्य कीमतों की स्थिरता के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था होना भी

आवश्यक हो जाता है । इसलिए ऐसी अर्थ व्यवस्था में धन से संबंधित कार्यों के निष्पादन के लिए धन या धन के स्रोतों की मांग बढ़ती जा रही है जिसे एम 3 के रूप में दिखाया गया है कि भारतीय रिजर्व बैंक अपनी मुद्रा-संबंधी देयताओं के लिए तथाकथित आरक्षित धन दे । एम 3 में उचित अनुपात में वृद्धि लाने के लिए यह आवश्यक है जिससे मुद्रा संबंधी प्रसार होता है रिजर्व बैंक को दिया जा सके । अर्थ-व्यवस्था के आर्थिक संसाधनों में वृद्धि के लिए आरक्षित धन में कितनी वृद्धि होनी चाहिए यह प्रश्न वृद्धि संबंधी धन-गुणक पर निर्भर करता है जिसे आरक्षित धन में वृद्धि की प्रत्येक यूनिट के संदर्भ में आर्थिक संसाधनों में वृद्धि कहा गया है । उदाहरण के लिए यदि धन-गुणक 3 हो तो एम 3 को 300 करोड़ रु० तक बढ़ाने के लिए आरक्षित-धन 100 करोड़ रु० तक बढ़ाना होगा । भारत में पारंपरिक रूप से राजस्व धन बढ़ाने के लिए सरकार की घाटे को वित्त-व्यवस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है । इस प्रकार सामान्य कीमतों में स्थिरता को बनाए रखने के लिए एक निश्चित सीमा तक घाटे की वित्त व्यवस्था आवश्यक और संगत होती है ।

10.44 1985–86 से लागू व्यवस्थाओं के अंतर्गत अनुमत्य घाटे की वित्त-व्यवस्था समग्र रूप से केन्द्र द्वारा विनियोजित की जाएगी । यह बिल्कुल उचित है कि इसमें राज्यों को भी हिस्सा दिया जाए । यह कार्य निम्नलिखित दो तरीकों से किया जा सकता है :—

(i) राज्यों को प्राधिकृत ओवर ड्राफ्ट की अधिकतम सीमा उत्तरोत्तर बढ़ायी जाए ।

(ii) प्रत्येक राज्य को उस वर्ष के केन्द्र द्वारा दिखाए गए घाटे के 50% के बराबर 15 वर्षीय ऋण दिया जाए । इन ऋणों पर ब्याज की दर खजाना बिल के बट्टे की प्रचलित दर हो क्योंकि केन्द्र की घाटे की वित्त-व्यवस्था का वास्तविक अर्थ है, तदर्थ खजाना बिलों के लिए भारतीय रिजर्व बैंक से धन उधार लेना । राज्यों के बीच इन ऋणों का परस्पर वितरण उनके अपने-अपने स्थिर कीमतों पर कुल राज्य घरेलू उत्पाद की वृद्धि के अनुपात में किया जाए । इसके लिए उचित होगा कि अर्थ-व्यवस्था का विकास किया जाए और इसके लिए सही शब्दों में यही कहा जा सकता है कि जी०डी०पी० (9) की वृद्धि ही वह प्राथमिक तत्व है जिसके आधार पर घाटे की वित्त-व्यवस्था दिखाई जा सकती है । सामान्यत: राज्यों के राज्य घरेलू उत्पाद संबंधी प्राक्कलनों की प्राप्ति विलंब से होने पर राज्यों को अस्थायी ऋण आबंटित किया जाए । केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (सी०एस०ओ०) से राज्य घरेलू उत्पाद आंकड़े प्राप्त होने पर बाद के वर्षों में, विभिन्न राज्यों के उतने ऋण का आवश्यक समायोजन किया जाए जिसके वे हकदार हैं ।

रेल और अन्य केन्द्रीय उपक्रमों के अधिशेष धन में हिस्सेदारी

10.45 यदि केन्द्र केन्द्रीय उद्यमों द्वारा बेची जाने वाली उन वस्तुओं/सेवाओं के मूल्य का समायोजन करता है, जो किसी क्षेत्र के लिए स्वीकृत मानदंड से ज्यादा हों तो उन उद्यमों की निवल आय पर उचित लाभ केवल अधिशेष उत्पन्न करने के लिए जो बाद में पूंजीगत प्राप्ति में वृद्धि करने के लिए केन्द्रीय सरकार के पास जमा किया जा सके । इस तरह से केन्द्र, उसके जमा राशि के लिए राज्य सरकारों को संघ उत्पाद शुल्क में उनकी प्रतिशतता के बराबर अतिरिक्त अनुदान दे सकता है । यही कारण है कि संघ उत्पाद शुल्क में उपयुक्त समायोजन से मूल्यों में समकक्ष वृद्धि समायोजित हुई है जिससे संघ उत्पाद शुल्क से राज्यों से ज्यादा राजस्व प्राप्त हो सकता था । इन अनुदानों का अंतर्राज्यीय बंटवारा राज्यों के केन्द्रीय करों की विभाज्य रकम में हिस्से के अनुपात में होगा ।

राज्य क्षेत्र के निवेशों के वित्त-पोषण के लिए संस्थागत ऋण का व्यापक उपयोग करना

10.46 इस समय मूलत: एम० ई० सी० द्वारा ली जाने वाली संस्था के ऋण की सीमित रकम के अलावा राज्य क्षेत्र के निवेशों को वित्त-पोषित करने के लिए संस्था के ऋण का बहुत कम उपयोग होता है । राज्यों की आर्थिक हालत में सुधार करने के लिए राज्य के विकास कार्यों को वित्त-पोषित करने के लिए संस्था के उधार का अधिकाधिक इस्तेमाल करना उचित होगा । वित्तीय संस्थाएं परियोजना की उचित तैयारी करने का आग्रह करेंगी और उन परियोजनाओं को वित्त पोषित करने से पहले उनका पर्याप्त मूल्यांकन भी करेंगी । इसका परिणाम यह होगा कि परियोजना तैयार करने और उनके मूल्यांकन के कार्य में महत्वपूर्ण सुधार होगा । वित्तीय संस्थाएं, उधार लेने वाली संस्थाओं के उचित वित्तीय निष्पादन पर भी जोर देंगी तथा राज्य सरकारों और उद्यमों को व्यावसायिक प्रबन्ध और वाणिज्यिक प्रचालन का एक मानदंड अपनाने के लिए भी बाध्य करेंगी ।

10.47 राज्य क्षेत्र के निवेशों को वित्तपोषित करने के लिए संस्था के ऋण को व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल करने के लिए निम्नलिखित उपाय करना आवश्यक होगा :

(i) राज्यों के अधिक से अधिक वाणिज्यिक कार्य गैर-विभागीय उपक्रमों को सौंपे जाएँ । इस प्रयोजन से निम्नलिखित कार्यों का अंतरण उपयुक्त होगा । वाणिज्यिक, सिंचाई, शक्ति, वानिकी, मछली पकड़ना, सड़क परिवहन, शहरी विकास, शहरी जल आपूर्ति और मल-निकासी, आवास, डेरी विकास, और मध्यम उद्योग और खनन ।

(ii) राज्य सरकार केवल गैर-विभागीय उपक्रमों में इक्विटी निवेश का कार्य करें । ये उद्यम वित्तीय संस्थाओं और बौंड निर्गमों से धन उधार लेकर अधिकतम दीर्घ-अवधि ऋण ले सकते हैं ।

(iii) आजकल राज्य उद्यमों के अपर्याप्त वास्तविक और वित्तीय कार्य के लिए दफ्तरशाही (कु) प्रबंध और अत्यधिक राजनीतिक दखल ही सबसे बड़े कारण है । उनकी उधार लेने की क्षमता में आधारभूत सुधार के लिए उनके वित्तीय निष्पादन कार्य में प्रत्यक्ष सुधार की आवश्यकता है । इसके लिए इन उद्यमों पर से दफ्तरशाही और राजनीति का प्रभाव समाप्त करना आवश्यक होगा । इन उद्यमों की सार्वजनिक जिम्मेदारी और उनके कार्य में राजनीतिक दखल समाप्त करना होगा । इन दोनों में संघर्ष छिड़ा रहता है और परस्पर सहमति नहीं होती है । इन उद्यमों को व्यावसायिक और वाणिज्यिक मानदण्डों के आधार पर कार्य करने के अवसर और क्षमता प्रदान करना आवश्यक है, और इन्हें ज्यादा समय तक राजनीतिज्ञों और दफ्तरशाहों की जागीर बने रहने से रोकना होगा ।

(iv) केन्द्र और राज्य के उद्यमों एवं निजी व्यापार उपक्रमों के सभी प्रकार के कार्यों के लिए वित्त-पोषण करने के लिए वित्तीय संस्थाओं का पूरा-पूरा समर्थन आवश्यक होगा । केन्द्र पहले से ही सावधिक वित्त-पोषण की संस्था का ढांचा तैयार करने और उसके विकास के प्रयास में लगा है । इसमें भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम और भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम, जहाजरानी विकास निधि समिति और आवास और शहरी विकास निगम शामिल है । शक्ति वित्त-पोषण निगम, राष्ट्रीय आवास बैंक और शहरी विकास और शहरी जल प्रदाय वित्त-पोषण निगम की स्थापना चालू वर्ष (1986–87) में की जा रही है । सावधिक वित्तपोषण के संस्थागत ढांचे में अभी भी कई कमियां हैं । आजकल निम्नलिखित कार्यों के लिए सावधिक वित्तपोषण संस्थाओं की आवश्यकता है जैसे परिवहन; संचार वन-विज्ञान, मछली पकड़ना, बड़ी और मध्यम सिंचाई योजनाएँ, डेरी और माल गोदाम और वाणिज्यिक भवन निर्माण । इस सूची में संचार को भी शामिल किया गया है, क्योंकि बंबई और दिल्ली में टेलीफोन सेवाओं को चलाने और इनका विकास करने के लिए 1986–87 में महानगर टेलीफोन निगम की स्थापना की गई और इसी वर्ष भारतीय समुद्रपार संचार सेवा के लिए भारतीय समुद्रपार संचार निगम बना दिया गया है । संचार-सेवा को विभागेतर उद्यमों के रूप में संगठित करने का काम भी आरंभ कर दिया गया है ।

(v) फिर भी सावधिक वित्त-पोषण की संस्थाओं के ढांचे में सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें एक शीर्षस्थ सावधिक वित्त-पोषण संस्था का अभाव है। जो देश के निवेशयोग्य धन को इकठ्ठा करें और इसका सार्वजनिक (केन्द्र, राज्य और स्थानीय) सहकारी और निजी उद्यमों में राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं के अनुसार, उपयोग करें। इस कमी को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया गया है, कि सावधिक वित्त-पोषण के संस्थागत ढांचे को शीर्षस्थ संस्था के रूप में काम करने के लिए जल्द से जल्द एक भारतीय निवेश बैंक (आई० बी० आई०) की स्थापना की जाएँ। इसकी प्रदत्त पूंजी, आरक्षित निधि, अनुपयुक्त धन और अनाबंटित अधिशेषों के अलावा यह अपना निवेशयोग्य धन निम्नलिखित स्त्रोतों से प्राप्त करेगा :—

(क) घरेलू बाजार में बांड और डिबेंचर जारी करके जो कि धन का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होगा;

(ख) बाहरी सहायता से या किसी अन्य प्रकार से भारत सरकार से उधार;

(ग) राष्ट्रीय औद्योगिक ऋण निधि (दीर्घ-अवधि कार्य);

(घ) जन-सामान्य से सावधिक जमा;

(ङ) सावधिक वित्त-पोषण संस्थाओं से धन वापसी और उनकी अधिशेष निधियों के जमा; और

(च) विदेशों से वाणिज्यिक ऋण।

भारतीय निवेश बैंक (केवल सावधिक वित्त-पोषण संस्थाओं से सीधा लेन-देन कर सकता है जन सामान्य के साथ नहीं। भारतीय निगम बैंकों को अधिकाधिक धन दिया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार को राष्ट्रीय विकास परिषद (रा० वि० प०) द्वारा अनुमोदित मार्गनिर्देशों के अनुसार भारतीय निवेश बैंक और अन्य सावधिक वित्त-पोषण संस्थाओं को राजनीतिक या दफ्तरशाही हस्तक्षेप किए बिना अपना कार्य करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना होगा। राष्ट्रीय वित्त परिषद की यह एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होगी कि वह सावधिक वित्त-पोषण के ढांचे के कार्य की वार्षिक या आवश्यकतानुसार कभी-कभी समीक्षा करे। इन संस्थाओं की इक्विटी पूंजी कुछ समय के लिए केन्द्र और राज्य दोनों के नाम संयुक्त रूप से रखी जा सकती है ताकि ये संस्थाएं सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय हो जाएं केवल केन्द्रीय संस्थाएं बन कर न रह जाएँ।

(vi) सार्वजनिक उद्यमों को सावधिक वित्त-पोषण संस्थाओं, निवेश-योग्य निधियों के विस्तृत और तेजी से बढती हुई धन राशि में अपन उचित हिस्से का दावा करने में सक्षम बनाने के लिए इन उद्यमों के वित्तीय निष्पादन में आमूल सुधार लाने के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में निश्चयात्मक योजना का विस्तार करना आवश्यक होगा ताकि सार्वजनिक उद्यमों की विकास की पहल में कोई बाधा न आए।

10.48 पैरा (i) से (vi) तक के सुझावों के कार्यान्वयन से राज्य को इस स्थिति में आ जाना चाहिए कि वह राज्य बजट पर ज्यादा दबाव डाले बिना अपने क्षेत्र के अधिकाधिक विकास-कार्य कर सकें। यदि राज्यों को इस संस्था से पर्याप्त ऋण मिल जाएं तो उन्हें निवेशयोग्य धन के लिए केन्द्र पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

ऋण राहत

10.49 छठे वित्त आयोग के बाद के वित्त आयोगों ने केन्द्र को दिए जाने वाले कुछ बकाया ऋणों को रद्द करके (अर्थात् इस राशि को बट्टे खाते डाल कर) और उन्हें फिर से अनुसूचित करके राज्यों को सीमित ऋण राहत देने की व्यवस्था है। चूंकि केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले ऋण की रकम बहुत बढ़ गई है (जिसके 1986-87 के अंत तक 42739 करोड़ रु० होने की संभावना है) और चूंकि उन राज्यों के पास विकास के पर्याप्त साधन नहीं है इसलिए उनके लिए इन ऋणों की वापसी अत्यंत दूभर हो जाती है। इसलिए केन्द्र और राज्यों के बीच संतुलित संबंध कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि राज्यों को बड़ी मात्रा में ऋण राहत दी जाएं। यह सहायता मुख्य रूप से उनके ऋणों को रद्द करके की जा सकती है। इस संबंध में उद्देश्य यह होना चाहिए कि राज्य ऐसे निवेशों, ऋणों और अग्रिमों के अधिकांश हिस्से जिनसे कोई विशेष लाभ न होने वाला हो और पूंजी के विनिवेश या ऋणों की वापसी की कोई आशा न हो, बट्टे खाते डाल सकें। यदि राज्यों को अंतिम रूप से ऋण राहत दी जाए तो राज्यों की वित्तीय स्थिति में सुधार होगा और इसके लिए केन्द्र को राज्यों द्वारा देय ब्याज और धनराशि में कमी करनी होगी।

केन्द्रीय सहायता का राज्यों को दिए गए ऋण अनुदान के अनुपात में आशोधन

10.50 इस समय केन्द्रीय सहायता के रूप में ऋण अनुदान का अनुपात 70:30 का है जिससे राज्य केन्द्र के ऋणी हो जाते है। राज्य-योजना परिव्यय के एक बड़े भाग में चालू विकास परिव्यय निहित होता है जिससे राज्य सरकार को कोई प्राप्ति नहीं होती है। योजना परिव्यय का दूसरा बड़ा भाग परि-संपत्तियों का निर्माण तो करता है किन्तु इससे कोई सीधा लाभ नही होता है इससे केन्द्र को दी जाने वाली राशि लौटाई नहीं जा सकती है। ऐसी परि-संपत्तियों में विद्यालय और अस्पताल के भवनों, सड़कों, सरकारी प्रशासनिक भवनों और इसी तरह के अन्य निर्माण कार्य शामिल है। यह सत्य है कि सामान्य आर्थिक विकास से इस परिव्यय के परिणामस्वरूप कर और गैर-कर राजस्वों में वृद्धि होती है। परन्तु राज्यों के राजस्व पर इनका जो अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, वह इतना ज्यादा नहीं होता कि केन्द्रीय सहायता के रूप में दिए गए अतिरिक्त ऋण का बोझ कम हो सके। इसके साथ-साथ अतिरिक्त राज्य राजस्व से अन्य मांगें भी पूरी करनी होती है इसलिए केन्द्रीय सहायता में ऋण अनुदान के अनुपात को सीधे राज्य के योजना परिव्यय के अलाभप्रद अनुपात के निकट लाने के लिए केन्द्रीय सहायता में ऋण अनुदान के अनुपात को 50:50 किया जाए।

(6) संसाधन-अंतरण पैकेज का अर्थ

10.51 संसाधन-अंतरण के विभिन्न तत्व साधारण शब्दों में ऊपर दिए गए है। परिमाण की दृष्टि से इनका क्या प्रभाव होगा यह यथासंभव संक्षिप्त रूप से जान लेना आवश्यक है। इसके पश्चात यह आवश्यक होगा कि सुझाए गए उपायों में आन्तरिक दृष्टि से अनुकूल, सन्तुलित और प्रभावी सम्पूर्ण पैकेज निकालने के लिए कुछ ऐसे समायोजन किए जाए जो केन्द्र-राज्य वित्तीय संबंधों को सन्तुलित रखने के लिए अपेक्षित है। इस पैकेज को कुछ वर्ष परखा जा सकता है और अनुभवों को ध्यान में रखते हुए इसमें कुछ और समायोजन किए जा सकते है। जब ऐसे पैकेजों की संतोषप्रद राशि निर्धारित हो जाए तभी उसे पूर्णतः विधिक या संवैधानिक आधार देने के संबंध में विधायी कार्रवाई की जाए। इस प्रयोजन के लिए जो भी संवैधानिक संशोधन आवश्यक हो किया जाए।

10.52 उपर्युक्त अंतरण करने से और केंद्र और राज्यों के बीच होने वाले संसाधन अंतरण की मात्रा निर्धारित करने और इसे राज्यों में बांटने के संबंध मे राज्य की योजनाओं के लिए संसाधन अंतरण और केन्द्रीय सहायता में पर्याप्त कमी हो जाएगी। पूर्णतया स्वविवेकी अन्तरण अर्थात् जो संसाधन-अंतरण और केन्द्रीय सहायता से इतर है और जिन पर उनकी मात्रा और अन्तर्राज्यीय वितरण के संबंध में कोई फार्मूला लागू नही होता है केवल ऐसे राज्यों को दी गई केन्द्रीय सहायता तक ही सीमित होंगे जो प्राकृतिक विपत्तियों से पीड़ित राज्यों को दी जाती है। अब वित्त आयोग के पांच सदस्य और योजना आयोग के छह सदस्य जो सामान्यतया कुछ समय के लिए योजना आयोग में आते है पांच वर्ष की अवधि के लिए राज्यों के बीच 70 हजार करोड़ रुपये से अधिक के केन्द्र-राज्य संसाधन- अन्तरणों को बांटने का कार्य करके उनके वित्तीय भाग्य का फैसला नहीं करेंगे। इस अन्तरण और राज्यों के बीच उसके वितरण को सुव्यवस्थित रूप से सुनिश्चित किया जाएगा और स्रोत-अंतरण की दीर्घकालीन व्यापक पद्धति विकसित की जाएगी तब वित्त आयोग के सामने विचारार्थ प्रस्तुत विषयों में इस संघ की नई सीमान्त भूमिका को प्रतिबिंबित करने के लिए संशोधन करने की आवश्यकता होगी। यह कार्य अब उतना ही अच्छी तरह होगा जितने की संविधान

निर्माताओं ने संकल्पना की थी । इस प्रकार राष्ट्रीय विकास परिषद को केन्द्रीय सहायता फार्मूले में संशोधन करना आवश्यक होगा, ताकि यह राज्य विकास क्रिया-कलापों के वित्त पोषण का कार्य कर सके । सामान्यतया, वित्त आयोग या राष्ट्रीय विकास योजना द्वारा सुझाए गए / अनुमोदित किए गए अतिरिक्त संसाधन-अन्तरण के परस्पर वितरण का मानदण्ड केन्द्रीय करों में राज्य के भाग के अन्तर्राज्यीय वितरण के जैसा ही होना चाहिए । किन्तु विशेष समस्या आने पर किए जाने वाले विशेष अंतरण के संबंध में प्रत्येक मामले में पता लगाया जाएगा । आशा है कि केन्द्र-राज्य संसाधन-अंतरण की परिकल्पित पद्धति आरंभ करने के पश्चात केन्द्र किसी ऐसी केन्द्रीय या केन्द्र-प्रायोजित योजना-स्कीमों को हाथ में नहीं लेगा जो राष्ट्रीय महत्व की नहीं है ।

10.53 केन्द्र द्वारा समर्थित तथा संभवत उसके द्वारा ही प्रचारित एक विचार है कि केन्द्र के पास विस्तृत संसाधन होना आवश्यक है जिसका कुछ भाग केन्द्र एक उपयुक्त अभिकल्पित फार्मूले के अनुसार राज्यों के बीच बराबर वितरण कर सके । किन्तु इस बात का निर्णय इसके विवेक पर निर्भर है कि कम आय वाले राज्यों को अपेक्षाकृत अधिक हिस्सा दे । इसके संबंध में यह तर्क दिया जाता है कि इससे इन राज्यों को अपने विकास कार्यों में अत्यधिक प्रोत्साहन मिलेगा और उन्हें अपेक्षाकृत अधिक विकसित स्तर तक पहुचने में सहायता मिलेगी । पिछले 35 वर्ष का अनुभव इस मत का समर्थन नहीं करता है । यद्यपि इस पूरी अवधि के दौरान केन्द्र के पास राज्यों की अपेक्षा अत्यधिक विस्तृत संसाधन थे जिसका मुख्य कारण संविधान के अन्तर्गत प्रदत्त अत्यन्त व्यापक कर क्षेत्र तथा प्राप्तियों पर बढ़ा हुआ अधिकार है । केन्द्र द्वारा ससाधनों के अन्तर्राज्यीय वितरण के लिए बनाया गया अन्तरण तथा केन्द्रीय सहायता का फार्मूला मुख्यत: कम आय वाले राज्यों के लिए आवश्यक था कुछ ससाधनों का एक बहुत बड़ा भाग स्वविवेकानुसार किए गए अन्तरणों का था । परन्तु केन्द्र राज्य संसाधन के अन्तरण की पद्धति की इन विशेषताओं के पूर्वानुमानित परिणाम नहीं हुए जो तालिका 10.3 में दिखाया गया है । तालिका 10.3 चालू कीमतों पर राज्य के प्रति-व्यक्ति घरेलू उत्पादन के अनुसार राज्यों का दर्जा निर्धारित करना :

तालिका 10·3

चालू कीमतों के आधार पर प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन के अनुसार राज्यों का श्रेणीकरण

	1960-61 प्रति व्यक्ति (एस०डी० पी०), रु०	दर्जा	1980-81 प्रति व्यक्ति (एस०डी० पी०) रु०	दर्जा	दर्जे में सुधार 1960-61 से 1980-81 तक
1	2	3	4	5	6
महाराष्ट्र .	409	1	2,232	3	-2
पश्चिम बंगाल .	390	2	1,573	5	-3
पंजाब .	366	3	2,700	1	2
गुजरात .	362	4	1,944	4	..
हिमाचल .	359	5	1,515	6	-1
तमिलनाडु .	334	6	1,336	11	-5
हरियाणा .	327	7	2,331	2	5
असम .	315	8	1,201	15	-7
कर्नाटक .	296	9	1,453	8	1
राजस्थान .	284	10	1,222	13	-3
आंध्र प्रदेश .	275	11	1,358	10	1
जम्मू-काश्मीर	269	12	1,455	7	5
मध्य प्रदेश .	260	13	1,149	16	-3
केरल .	257	14	1,421	9	5
उत्तर प्रदेश .	252	15	1,272	12	3
त्रिपुरा . ..	249	16	1,206	14	-2
उड़ीसा . ..	216	17	1,101	16	..
बिहार . ..	215	18	929	18	..

*इसमें 1960-61 के बाद बने चार छोटे राज्यों मणिपुर, मेघालय, नागालैंड और सिक्किम को शामिल नहीं किया गया है । इनके शामिल न करने का एक कारण यह भी है कि उनसे प्राप्त होने वाले सांख्यिकीय विवरण अन्य राज्यों के सामान्य विवरण से अधिक अविश्वसनीय होने की संभावना है ।

स्रोत : इण्डियन इकोनामिक स्टेटिस्टिक-पब्लिक फाइनेन्स से संकलित तालिका 11.3 पृष्ठ संख्या 102 ।

10.54 तालिका 10.3 में राज्यों को 1960-61 से 1980-81 की अवधि में राज्य के प्रति व्यक्ति घरेलू उत्पादन (एस० डी० पी०) के आधार पर उनके क्रम मे हुए परिवर्तन को दर्शाया गया है ।

(i) बिहार तथा उड़ीसा के क्रम में कोई परिवर्तन नहीं आया है केन्द्रीय सहायता और अन्तर्राज्यीय वितरण के लिए वित्त आयोग तथा योजना आयोग दोनों के फार्मूलों के अनुसार संसाधनों में पर्याप्त हस्तान्तरण के बावजूद ये भारत के सबसे निर्धन राज्य ही रहे ।

(ii) इस संबंध में हरियाणा, केरल और जम्मू-काश्मीर की स्थिति में अधिकतम सुधार हुआ और ये राज्य ऊपर चढ़ गए । हरियाणा या केरल के मामले में इस विकास का श्रेय केन्द्र द्वारा संसाधनों के अधिक अन्तरण को नहीं है । हरियाणा में सुधार मुख्यत: हरित-क्रान्ति आने से हुआ है । वस्तुत: हरियाणा तथा पंजाब ही दो ऐसे राज्य हैं जिनके साथ वित्त आयोग तथा योजना आयोग ने धन-अन्तरण तथा केन्द्रीय सहायता के बारे मे सबसे कड़ा रुख अपनाया है । केरल के क्रम में सुधार का प्रमुख कारण, मुख्य रूप से खाड़ी देशों से आने वाला धन रहा है । इसके अन्य कारण हैं वृक्षारोपण और कृषि कार्यों में हुई वृद्धि तथा राज्य में कई केन्द्रीय और अन्य औद्योगिक इकाईयों का स्थापित किया जाना । केन्द्र जम्मू-काश्मीर के मामले में केन्द्रीय सहायता तथा धन-अन्तरण मे श्रेणीकरण के विकास में सहायता मिली है ।

(iii) उत्तर प्रदेश के श्रेणीकरण में 3 स्थानों से सुधार हुआ है । इसका श्रेय मुख्यत: पश्चिम-उत्तर प्रदेश में हुई हरित क्रान्ति का है । केन्द्र से मिलने वाली अधिक सहायता की भूमिका इसमें केवल सहायक मात्र रही ।

(iv) पंजाब के श्रेणीकरण में दो स्थानों का सुधार हुआ है । इसका श्रेय प्रथमत: हरित क्रान्ति को है जो वास्तव में पंजाब द्वारा ही शुरू की गई थी ।

(v) आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक के स्थान में थोड़ा ही (एक स्थान से) विकास हुआ है । कर्नाटक के मामले में बंगलोर में कई बड़ी केन्द्रीय औद्योगिक इकाईयां और संस्थाओं की स्थापना से भी इस विकास में सहायता मिली है । धन-अन्तरण तथा केन्द्रीय सहायता के अन्तरण के मामले में भी इस राज्य के साथ पक्षपात-पूर्ण रवैया ही अपनाया गया ।

(vi) असम के श्रेणीकरण में बड़ी अप्रत्याशित गिरावट (सात स्थानों से) आयी है । हस्तान्तरण तथा केन्द्रीय सहायता के मामले में किसी प्रकार की कटौती से ऐसा नहीं हुआ है । वस्तुत: विशेष श्रेणी के राज्य के रूप में इसे पर्याप्त केन्द्रीय सहायता प्राप्त हुई है । धन-हस्तांतरण के मानदंड भी इस राज्य के अनुकूल रहे हैं । इसके पतन के मुख्य कारण है—राजनैतिक अस्थिरता, ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों में प्रतिवर्ष आनेवाली अनियंत्रित बाढ़ तथा राज्य के दुर्गम होने के कारण होने वाली हानियां है ।

(vii) तमिलनाडु के श्रेणीकरण में अत्यधिक गिरावट (पांच स्थानों से) आई है। धन-हस्तान्तरण तथा केन्द्रीय सहायता के अन्तर्राज्यीय वितरण में होने वाला पक्षपातपूर्ण व्यवहार इसका आंशिक कारण है। राज्य के जल तथा उर्जा संसाधन कम होना इसके विकास में आने वाली प्रमुख बाधा है।

(viii) पश्चिम बंगाल के श्रेणीकरण में तीन स्थानों की गिरावट आई है। इसके कुछ राजनीतिक कारण है। राजनीतिक कारणों से ही राज्य के संसाधन इकठ्ठे करने के मामले में कम प्रयास होने और संसाधनों के प्रयोग में अपेक्षाकृत कम दक्षता तथा अपर्याप्त निजि निवेश और उद्यम नहीं होता है। केन्द्र से संसाधनों की कम मात्रा में प्राप्ति इस राज्य के क्रम में गिरावट आने का केवल एक कारण है जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

(ix) राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के श्रेणीकरण में भी तीन स्थानों की गिरावट आई है दोनों राज्यों के केन्द्र से पर्याप्त मात्रा में संसाधन-अन्तरण होने के बावजूद ऐसा हुआ है।

(x) त्रिपुरा की स्थिति में दो स्थानों की गिरावट आई है। विशेष श्रेणी के राज्य के रूप में केन्द्रीय सहायता के वितरण के संबंध में इसके साथ अनुकूल व्यवहार किया जाता है। धन-हस्तान्तरण के मानदण्ड भी इसके अनुकूल है फिर भी इसके क्रम में गिरावट के मुख्य कारण (i) सूदूरता के कारण होने वाली हानि तथा (ii) इसकी जनजाति तथा गैर जनजाति की जनसंख्या के मध्य मतभेद।

(xi) हिमाचल के श्रेणीकरण में एक स्थान की गिरावट आयी है निश्चित रूप से ऐसा संसाधन के अन्तरण के मामले में प्रतिकूल व्यवहार के कारण नहीं हुआ है। विशेष श्रेणी के राज्य के रूप में केन्द्रीय सहायता के वितरण में इस राज्य के साथ अनुकूल व्यवहार किया जाता है। धन हस्तान्तरण के मानदण्ड भी इस राज्य के अनुकूल है।

(xii) महाराष्ट्र के श्रेणीकरण में एक स्थान की गिरावट आयी है पंजाब तथा हरियाणा की तुलना में हुई गिरावट इस राज्य में हरित क्रान्ति की असफलता के कारण हुई है। जबकि इन दो राज्यों (पंजाब और हरियाणा) में हरित क्रान्ति सफल हुई है। इसका कारण संसाधन तथा सिंचाई की कम सुविधाएं है। महाराष्ट्र में कृषि विकास (गन्ने की खेती के इतर क्षेत्रों में) में हुई अपेक्षाकृत कमी के कारण इसकी औद्योगिक प्रगति का प्रभाव समाप्त हो गया है।

10.55 1960–61 में नौ प्रमुख राज्यों में से सात इस समूह में रहे हैं। केवल दो राज्य असम और तमिलनाडु इस समूह से बाहर थे। दोनों में से किसी के मामले में रैंकिंग की दृष्टि से अधोगति का प्रमुख कारण केन्द्र से कम संसाधनों का अन्तरण होना नहीं रहा है। 1960–61 में नीचे के नौ राज्यों में से केवल दो–केरल और जम्मू-काश्मीर ही इस समूह से ऊपर उठे है। केन्द्र से भारी संसाधनों का प्रवाह केवल जम्मू-काश्मीर के मामले में सुधार का एक प्रमुख कारण था। ऊपर दिए गए सभी साक्ष्यों से इस तर्क को कम बल मिलता है कि केन्द्र द्वारा अत्यधिक वित्तीय संसाधनों को अपने अधिकार में रखना तथा राज्यों को पर्याप्त अनुपात में अन्तरण करने के संबंध में अपना विवेकाधिकार प्रयोग करना––ये दोनों बातें अन्तर्राज्यीय विकास संबंधी असमानताओं को दूर करने के प्रमुख कारण रहे है।

10.56 इस विश्लेषण के संबंध में यह भी स्वीकार कर लिया जाए कि अन्तर्राज्यीय असमानताओं को संयत करने के लिए केन्द्र अंशदान देना चाहता था किन्तु उस दिशा में किसी प्रकार की महत्वपूर्ण प्रगति करने में वह असफल रहा जिसके कई कारण थे जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

10.57 प्रथमतः केन्द्र ने अपने संसाधनों की बहुत बड़ी राशि ऐसे उद्देश्यों के लिए खर्च की थी जो कि अन्तर्राज्यीय असमानताओं को संयत करने से सम्बद्ध नहीं थे। जैसा कि अक्सर किया जाता है। इस प्रेक्षण के खंडन में इस आशय का उद्धरण देना अनुचित नहीं होगा कि राउरकेला इस्पात संयंत्र उड़ीसा में भिलाई इस्पात संयंत्र मध्य प्रदेश में और बोकारो इस्पात संयंत्र बिहार में है। इन सभी इस्पात संयंत्रों की अवस्थिति मुख्यतः कच्चा माल एकत्रित करने की लागत और इन तीनों स्थलों से उत्पादों का प्रेषण करने की लागत में किफायत होने के कारण निर्धारित की गई थी। इस संबंध में किसी प्रकार का संदेह होने की स्थिति में इन संयंत्रों की परियोजना रिपोर्ट देखी जा सकती है। किसी ऐसे हानि में चल रहे उद्योग की अवस्थिति का चयन करते समय जिसके प्रति दस लाख मीटरी टन प्रेषित उत्पाद के लिए 50.60 लाख मीटरी टन कच्चे माल की आवश्यकता होती है। सर्व प्रथम इसी दृष्टि से विचार किया जाता है। क्षेत्रीय असमताओं को दूर करने के लिए साधन के रूप में मुख्यतः इस्पात संयंत्र स्थापित करना इसी प्रकार का कार्य होगा मानों कि मक्खी मारने के लिए विद्युत हथोड़ा प्रयोग में लाना। पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के संवर्धन के लिए अधिक उपयुक्त अन्य कार्यक्रमों और परियोजनाओं पर समान निवेश का सम्बन्धित क्षेत्रों के विकास पर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली प्रभाव हुआ होता, बजाए उसके जितना इस्पात संयंत्रों से हुआ है। इस्पात संयंत्रों के स्थापित किये जाने से पूर्व उजड़ा हुआ और पिछड़ा हुआ जो जन-समुदाय विद्यमान था वही इन संयंत्रों के क्षेत्र से कई मीलों की दूरी पर फैला हुआ अब भी देखा जा सकता था।

10.58 केन्द्र के बहुत बड़े संसाधनों की पर्याप्त राशि को देश को अधिक खर्चीला प्रशासन उपलब्ध कराने, कर्मचारियों को परिलब्धियों और उनको दिए जाने वाले अन्य हित लाभों, शासक दल के अथवा यहां तक कि विरोधी दल के राजनीतिज्ञों द्वारा उपयुक्त सुविधाओं और सामान्य रूप से खर्चीले कार्य के तरीकों पर खर्च किया गया है जबकि आमतौर से कर्मचारियों की एक भारी संख्या राज्यों के पास मौजूद है। केन्द्र के अपेक्षाकृत अधिक संसाधन होने के कारण और प्रशासन की लागत बढ़ जाने के कारण केन्द्र के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए राज्यों के लिए इस प्रक्रिया में काफी गम्भीर और अप्रत्याशित वित्तीय समस्याएं उत्पन्न होती है। इसके अलावा जैसा कि अध्याय 9 में बताया गया है, केन्द्र ने राज्यों के क्षेत्राधिकार में अनधिकार हस्तक्षेप करने के लिए अपने संसाधनों की एक बड़ी राशि का उपयोग किया है। इसके साथ-साथ साइकिलों के विनिर्माण से लेकर धातुकर्मी और खनन उपस्कर के सभी प्रकार के कार्यकलापों के लिए केन्द्र ने काफी बड़े पूंजीनिवेश का भार अपने ऊपर ले लिया है। कुछ अपवादों को छोड़कर इन निवेशों से बहुत थोड़े वास्तविक और वित्तीय परिणाम प्राप्त हुए है। जिन क्षेत्रों में इन केन्द्रीय उपक्रमों की अवस्थिति है उनके विकास और संवर्धन के लिए कुछ किए जाने की बजाय इनमें से बहुत से स्वयं के लिए, केन्द्र के लिए और पूरे देश के लिए समस्या बन गए हैं। इन सब कार्यकलापों में पिछड़े हुए राज्यों के उत्थान के लिए जितना अधिक दावा किया गया है उतना वास्तव में दिखलाई नहीं पड़ता।

10.59 जैसा कि अध्याय 9 में बताया गया है राज्यों को केन्द्र के अतिरिक्त संसाधनों का अन्तरण करने के लिए असंगत मानदण्ड अपनाए गए है। अंतर पाटने की नीति ने, कम आय वाले जो राज्य अपेक्षाकृत कहीं अधिक उदार संसाधन अंतरण प्राप्त करते है उनमें अधिकांश को व्यर्थ और फिजूल खर्च करने के लिए प्रोत्साहित किया है। अपने संसाधनों की सामययिक व्यवस्था करने और अंतरित संसाधनों तथा अपने संसाधनों का कुशल प्रयोग करके अपेक्षाकृत अधिक विकसित राज्यों की बराबरी करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा का अभाव रहा है।

10.60 अपेक्षाकृत पिछड़े हुए राज्यों में शासक स्तर के जिन लोगों ने अपने राज्यों के करीब होने और पिछड़े होने के नाम पर केन्द्र से अपने राज्यों के लिए अपेक्षाकृत अधिक संसाधन प्राप्त कर लिए थे उन्होंने वास्तव में इन अंतरित संसाधनों का उपयोग अपने निजी, आर्थिक और राजनैतिक हित साधन के लिए किया है। शासक स्तर ने इन अन्तरणों का एक और महत्वपूर्ण उपयोग पर्याप्त अतिरिक्त कराधान बचाने के रूप में किया जिसका बोझ उनकी अदा करने की क्षमता बढ़ जाने से और भारी मात्रा में उन पर पड़ेगा। दूसरे शब्दों के केन्द्र से संसाधन अन्तरणों में संबंधित राज्यों के संसाधन जुटाने के प्रयासों का अक्सर स्थान लिया न कि उनमें प्रबलित किया।

10.61 अपेक्षाकृत पिछड़े हुए राज्यों में केन्द्र ने जिन औद्योगिक परियोजनाओं का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया उनका सामान्यतया उन राज्यों की अर्थव्यवस्था से, जहां ये परियोजनाएं अवस्थित है अपर्याप्त संबंध रहा।

अपेक्षाकृत बेहतर भुगतान पाने वाले अधिकांश कर्मचारियों को दूसरे राज्यों से आयात किया गया। सामान्य रूप से ये परियोजनाएं कम प्रभावी साबित हुईं। ज्यादातर ये परियोजनाएं क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों के संदोहन का साधन बनीं बजाय इसके कि ये राज्य की अर्थव्यवस्था के सुधारने का साधन बनती।

10.62 अपेक्षाकृत बहुत से पिछड़े हुए राज्यों की वृद्धि पर निधियों के कम होने का प्रभाव पड़ने के बजाए दूसरे अन्य विरोधी कारणों का प्रभाव पड़ा जिनमें राजनैतिक अस्थिरता, निर्बल प्रशासन, संस्थागत कमजोरियां या अत्यधिक विरोधी प्राकृतिक वातावरण सम्मिलित है। वित्त सभी बुराइयों के लिए सर्वभौम रामबाण नहीं है। विकास संबंधी कुछ ऐसी भी समस्याएं हैं जिनका हल एकमात्र वित्तीय उपचार ही नहीं है। इन परिस्थियों में, जब तक वृद्धि के लिए वातावरण काफी अनुकूलन हो और बढ़ाए गए परिव्यय के लिए उचित प्रयोजन सुनिश्चित न हो तो वृद्धि के लिए अभीप्सित कार्रवाई ऐसे कदम उठा कर की जानी चाहिए कि जिससे इन प्रतिकूल तत्वों पर काबू लाया जा सके। कई राज्यों में वृद्धि पर गैर वित्तीय दबावों के बने रहने से केन्द्र से संसाधनों का बढ़ा हुआ प्रभाव भी निष्प्रभावी हो गया है। इन संदर्भ में बिहार, उड़ीसा और असम की स्थिति को देखा जा सकता है।

10.63 केन्द्र-राज्य संसाधन अन्तरण के विधिवत् वितरण के लिए कोई संगत प्रणाली अपनाई जाए। संसाधन अंतरण के जो उपाय ऊपर सुझाए गए हैं उनमें इस बात को ध्यान में रखा गया है। बड़ी उत्कटता से आशा की जाती है कि वृद्धि के लिए अधिक अनुकूल हालात कैसे बने इसके लिए संबधित राज्यों द्वारा अपेक्षित अनूपूरक कदम उठाए जाएंगे और केन्द्र द्वारा इनके लिए प्रोत्साहन दिया जाएगा ताकि ये राज्य वित्तीय प्रवाह का सही उपयोग कर सकें। किन्तु संसाधन अन्तरण के अन्तर्राज्यीय वितरण के लिए वैध मानदंड के रूप में पुनर्वितरण की अन्तिम, एक पक्षीय अपनाये जाने के संबंध में कोई तर्क संगत युक्ति नहीं है। इस प्रकार की अवस्थिति निश्चय ही राष्ट्रीय एकता और सहकारी संघवाद के लिए हानिकर होगी। इससे कुशलतापूर्वक संसाधनों का उपयोग किए जाने में भी बाधा उत्पन्न होगी। इससे अधिक संभावना इस बात की है कि वर्तमान में अपेक्षाकृत कुछ विकसित राज्यों का स्तर नीचे आ जाए किन्तु अपेक्षाकृत कुछ पिछड़े हुए राज्यों का स्तर ऊपर आने की भी पूरी संभावना है। कुछ सीमा तक यह प्रक्रिया पहले से ही चालू है किंतु अभी तक शायद स्पष्ट रूप से इसके प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ रहे हैं। इस संबंध में मूल रूप से पुनः विचार करने का अब उपयुक्त समय है। उपर जो कुछ कहा गया है वह एक इस दिशा में प्रयत्न मात्र है।

असंगत सर्वेक्षण

10.64 यह सर्वमान्य विश्वास है कि लाभ और अन्य अपेक्षित मात्राओं में प्रतिव्यक्ति समता उचित रूप में हो जबकि इस संबंध में प्रतिव्यक्ति असमानता को अनुचित और अवांछनीय माना जाता है। इस विश्वास के अनुसार यदि कम आय वाले राज्यों के मामले में प्रतिव्यक्ति राशि कम निर्धारित की जाए, तो संसाधन अन्तरण या केन्द्रीय सहायता या योजनागत परिव्यय का आबंटन अनुचित माना जाएगा। प्रतिरूपी दुहरा विचार, जो कि इस विश्वास का खास गुण है, सही माइने में यह मानदंड लागत या उद्यम के आवंटन के संबंध में कभी लागू नहीं होता है। इसे उस समय अनुचित नहीं माना जाता यदि कम आय वाले राज्य प्रतिव्यक्ति कर राजस्व की कम राशि दिखलाते हैं अथवा योजना के लिए संसाधन अपनाते हैं। यदि इस असमानता को भी अनुचित समझा गया हो तो इस विश्वास की असंगतता तत्काल स्पष्ट हो जाती।

10.65 अन्तरण केन्द्रीय सहायता या योजनागत वित्त का आवंटन सहज रूप में केवल इस लिए अनुचित नहीं है क्योंकि इससे कम और उच्चतर आय वाले राज्यों के बीच असमान प्रतिव्यक्ति योजनागत परिव्यय हो जाता है। अधिक उन्नत राज्यों या देशों की बराबरी तक पहुंचने के लिए पिछड़े हुए राज्यों या देशों के लिए बराबर या उच्चतर प्रति व्यक्ति विकास या निवेशगत परिव्यय को राशि जरूरी नहीं बल्कि सकल घरेलू उत्पादन (जी० डी० पी०) के संबंध में संसाधन में उपयोग और विकास अथवा निवेशगत परिव्यय की उच्चतर अनुपात में राशि को समानरूप से कुशलता पूर्वक अपनाना जरूरी है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। विश्व बैंक की 1985 की रिपोर्ट के अनुसार संयुक्त राज्य अमरिका के डॉलर के रूप में भारत और जर्मनी (संघीय जर्मन गणराज्य) का प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पादन जी० डी० पी० क्रमशः 1229 और 10636 डॉलर था और उनका प्रति व्यक्ति सकल घरेलू पूंजीगत निर्माण (कमी के लिए निवेश) क्रमशः 57 डॉलर और 2234 डॉलर था। संघीय जर्मन गणराज्य द्वारा, निवेशित प्रत्येक 100 डॉलर के भारत का पूंजीगत निवेश केवल 26 डॉलर था जोकि उपर्युक्त विश्वास के अनुसार काफी अनुचित स्थिति है। किन्तु वास्तव में यह कतई अनुचित नहीं था। अपेक्षाकृत भारत का कार्य निष्पादन काफी संतोषजनक था। भारत का निवेशगत अनुपात या पूंजीगत निर्माण की दर उस वर्ष में संघीय जर्मन गणराज्य के 21 प्रतिशत की अपेक्षा में 25 प्रतिशत थी जो कि अधिक थी। असलियत में इसी की तो आवश्यकता है क्योंकि जहां तक निवेशगत परिव्यय का संबंध है भारत को उसे घटाना है और अन्ततः ऐसा करके आशाजनक रूप से जर्मनी के विरुद्ध आय और विकास को लाना है। उसी विश्व बैंक रिपोर्ट के अनुसार 10 वर्ष की अवधि में भारत का जी० डी० पी० 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहा है। जबकि जर्मनी का केवल 2.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। स्वाभाविक रूप से भारत जर्मनी की तुलना में प्रतिव्यक्ति आय के अंतर को घटा रहा है चाहे इसकी मात्रा सूक्ष्म हो। भारत को प्रतिव्यक्ति जी० डी० पी० 1973 में जर्मनी की जी० डी० पी० की तुलना में 1.9 प्रतिशत। 1983 में 2.2 प्रतिशत हो गई। वास्तव में बहुत कम प्रगति है किन्तु फिर भी प्रगति तो है। प्रतिव्यक्ति पूंजीगत परिव्यय के मामले में भारत और जर्मनी के बीच भारी असमानता (1:38 की) जर्मनी की अपेक्षा भारत को अधिक बढ़ने से नहीं रोक सका। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत का प्रतिव्यक्ति निवेश हालांकि अपेक्षाकृत कम प्रतिव्यक्ति राशि थी किंतु उसके द्वारा निवेश के काफी उच्चतर अनुपात या उसकी दर का प्रतिनिधित्व किया गया था। निश्चय ही यह अधिक अनुचित नहीं था।

10.66 कल्पना करो कि प्रतिव्यक्ति असमानता के एक समर्थक ने आग्रह किया कि जर्मनी के प्रतिव्यक्ति निवेशगत परिव्यय को 57 डॉलर के भारतीय स्तर पर ले आया जाना चाहिए और इसे लागू किये जाने में उसे सफलता मिल गई। इसके परिणाम स्वरूप जर्मनी के पूंजीगत निर्माण को दर केवल 0.5 प्रतिशत ही घटेगी। कोई भी अर्थशास्त्री अपनी बुद्धि चातुर्य के अनुसार इस संबंध में यही कहेगा कि जर्मनी की अर्थव्यवस्था समाप्त हो जाएगी। यह वह सिद्धान्त है जिससे प्रतिव्यक्ति के आय के विभिन्न स्तरों वाली अर्थव्यवस्थाओं के बीच विकास और निवेशगत परिव्यय को प्रतिव्यक्ति समानता अपरिहार्य रूप से सन्निहित होगी। इसी की अनुरूपता पर यदि विकास या निवेशगत परिव्यय को प्रति व्यक्ति समानता एक ओर पंजाब, हरियाण, महाराष्ट्र और गुजरात के बीच और दूसरी ओर बिहार और उड़ीसा के बीच लागू की गई होती तो पहले वाले राज्यों की अर्थव्यवस्था समाप्त नहीं हो सकती है क्योंकि ऊपर दिए गए राज्यों के दो वर्गों के बीच प्रतिव्यक्ति आय का अन्तर इतना अधिक नहीं है जितना कि जर्मनी और भारत की प्रतिव्यक्ति आय के बीच है ताकि राज्यों के पहले वर्ग की विकास या निवेशगत परिव्यय को दर में इतनी अनर्थकारी गिरावट न आयेगी किन्तु उनकी अर्थव्यवस्थाओं को लगभग गतिहीनता की स्थिति तक बाध्य होना पड़ेगा जबकि बिहार और उड़ीसा उस बड़े संसाधन अन्तरण का कुशलतापूर्वक उपयोग नहीं कर पाएंगे जो उनको किया जाएगा। इस विश्वास के पीछे अन्तर्निहित दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि वर्तमान में अधिक विकसित राज्यों के स्तर को नीचे लाकर अन्तर्राज्यीय समानता लाना न कि आज जो अपेक्षाकृत पिछड़े हुए राज्य हैं उनके स्तर को ऊपर उठाकर अन्तर्राज्यीय समानता लाना।

10.67 वर्तमान में अपेक्षाकृत कम विकसित राज्यों के स्तर को ऊपर उठाने के लिए जरूरी है कि उन्हें अपेक्षाकृत विकसित राज्यों द्वारा दिखाई गई तदनुरूपी दर या तत्संबंधी अनुपात के समान या उपयुक्त रूप से उच्चतर विकास या निवेशगत परिव्यय की दर या तत्संबंधी अनुपात सुनिश्चित किए जाएं। कम से कम यह भी महत्वपूर्ण है कि पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और गुजरात को प्रोत्साहन और समर्थन दिया जाए कि जिससे वे संसाधन उपयोग की पर्याप्त कार्यकुशलता पर अपने वर्तमान दबावों पर काबू पा सकें। केन्द्र से राज्यों को संसाधन अन्तरण की मात्रा और इसका अन्तर्राज्यीय वितरण करने के लिए मापदंड ऐसा होना चाहिए जो कि राज्यों के बीच और अधिक बराबरी की इस पद्धति के अनुरूप हो।

10.68 ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि बराबरी के केन्द्र राज्य वित्तीय संबंध केन्द्र से पर्याप्त मात्रा में संसाधन अन्तरण और मुआवजे के उचित संयोजन तथा पुनर्वितरण मापदंड के ही मामले हैं। राज्यों को चाहिए कि वे इस संतुलन को प्रमुख रूप से अपने संसाधन जुटाकर, विकासेतर व्यय में मितव्ययिता लाकर और विकास परिव्यय का कुशलता से उपयोग कर पूरे करें। इस प्रकार के प्रयत्न न होने पर वास्तविक खतरा यह होगा कि अपेक्षित अतिरिक्त संसाधन अन्तरण राज्यों के अपने सम्भाव्यता के प्रयत्नों के बदले प्रयोग में लाए जाएंगे न कि वे उनके अनुपूरक होंगे। इसके कई उदाहरण मौजूद हैं। राज्य के वित्तीय आंकड़ों से पता चलेगा कि उनमें से कइयों के मामले में निम्नलिखित के बीच कोई उचित संबंध नहीं है। (i) उनके द्वारा प्राप्त केन्द्रीय सहायता और योजना के लिए उनके निजी संसाधन (अन्तरण सहित) (ii) राज्य करों और उनके राज्य घरेलू उत्पादन से प्राप्त उनके राजस्व और (iii) उनके अपने कर, कर से इतर राजस्व तथा योजनेतर व्यय में। यदि अतिरिक्त संसाधन अन्तरण केवल राज्यों के अपने संसाधन जुटाने के प्रयत्नों के स्थान पर ही इस्तेमाल किए जाते हैं तो केन्द्र और राज्यों के बीच उचित संतुलन की दिशा में केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधी के पुनर्निर्माण संबंधी सभी प्रयत्नों के प्रति यह दुःखद अपकर्ष होगा। इस प्रकार बकाया प्राप्त करने के लिए राज्यों को अपनी ओर से अपना कार्य भी पूरा करना चाहिए।

राज्य एवं योजना संबंधी प्रक्रिया

11.1 देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में योजना की भूमिका एवं विषय वस्तु का योजना संगठनों एवं विधाओं के अनुरूप होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, इसके (i) योजना के विशिष्ट संस्थागत संबंध (ii) स्वीकृत विकास लक्ष्य एवं नीति (iii) विकास का चुना हुआ तरीका, होना चाहिए। भारतीय योजना के वर्तमान संदर्भ में इन महत्वपूर्ण तथ्यों पर आगे इनकी समुचित भूमिका एवं उपयोगिता हेतु विचार किया जाता है।

1. योजना संदर्भ

वृहत निजी क्षेत्र

11.2 योजनाओं के तीन दशकों की समाप्ति पर, जिस वर्ष के अद्यतन आंकड़े उपलब्ध हैं, 1983–84 में सरकारी क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पादन का 21% प्रतिशत भाग पैदा किया जबकि इसमें सकल घरेलू पूंजी स्वरूप का 48 प्रतिशत प्रयोग किया। सरकारी प्रशासनों, सरकारी उद्यमों तथा निजी क्षेत्र के संबंधित भागों का विवरण तालिका 11.1 में दिया गया है।

तालिका 11·1

विभिन्न क्षेत्रों द्वारा प्रयुक्त स० घ० पू० स्व० तथा उत्पादित

	स०घ०उ० की उत्पत्ति				स० घ० पू० स्व० का प्रयोग			
	1970–71		1983–84		1970–71		1983–84	
	करोड़ रु० में	प्रतिशत	करोड़ रु० में	प्रतिशत	करोड़ रु० में	प्रतिशत	करोड़ रु० में	प्रतिशत
1. सरकारी क्षेत्र . . .	5456	13.6	40678	21.0	2773	38.6	21773	48.0
1. सरकारी प्रशासन . . .	2401	6.0	13511	7.0	581	8.1	4848	10.7
2. सरकारी उद्यम . . .	3055	7.6	27167	14.0	2192	30.5	16925	37.3
I. विभागीय . .	1453	3.6	6701	3.5	843	11.7	5322	11.7
II. विभागेतर . . .	1602	4.0	20466	10.5	1347	18.8	11603	25.6
2. निजी क्षेत्र . . .	34807	86.4	53163	79.0	4404	61.4	23575	52.0
3. कुल (1+2) . . .	40263	100.00	193841	100.00	7177	100.00	54348	100.00

स्रोत : सी एस ओ राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 1870–71 से 1983–84 जन०, 1986 ब्यौरे 18 तथा 25.1 तथा परिशिष्ट ए 1, पी० पी० 52, 72 तथा 156–157.

11.3 तालिका 11.1 के अनुसार 1983–84 तक भी, निजी क्षेत्र ने सं० पू० उ० (जी डी पी) के 79% का उत्पादन तथा स० घ० पू० स्व० (जी डी सी एफ) के 52% का प्रयोग किया। पिछले योजना पत्रों के स० घ० पू० स्व० के अंतर्क्षेत्रीय वितरण के आंकड़ों में सारतः यही बताया गया था, कि सरकारी क्षेत्रों को निवेश का अधिक भाग आबंटित किया जाता था, भ्रामक था। इन वितरणों के अनुवर्ती सी० एस० ओ० आकलन इस दावे से असहमत हैं। सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रक्षेपणों में, जिसमें संभावित निवेश रु० 47.8% सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए तथा 52.2% निजी क्षेत्र* को आबंटित किये गये, पहली बार इस संदर्भ में सार्थक दृष्टिकोण अपनाया गया। स० घ० उ० की उत्पत्ति की तुलना में सकल पूंजी स्वरूप में सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े हिस्से का कारण सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र की तुलना में सामान्यतः अधिक उच्चतर पूंजी मात्रा तथा परियोजनाओं की लंबी अवधि होना है साथ ही इस क्षेत्र में उच्च पूंजीलागतों के साथ कम क्षमता प्रयोग में लाई जाती है। इसके फलस्वरूप, स० घ० उ० में तनिक सी वृद्धि की प्रतिपूर्ति करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक निवेश की आवश्यकता होती है।

*सातवीं पंचवर्षीय योजना, 1985—90 खंड I, तालिका 4.3 पृष्ठ 48.

11.4 यह तथ्य निजी क्षेत्र ही स० घ० उ० की उत्पत्ति तथा स० घ० पू० स्व० में बड़ा हिस्सा रखता है, इसका प्रभाव भारतीय योजना के स्वरूप पर पड़ता है। यह तथ्य विशेषतः योजना के अनिवार्य तथा निर्देशक मात्राएं निर्धारित करने के सहायक होता है।

एक व्यापक अव्यवस्थित क्षेत्र

11.5 योजना बनाने के संदर्भ में दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि निजी क्षेत्र में अव्यवस्थित अथवा घरेलू क्षेत्रों की बहुलता है, हालांकि व्यवस्थित अथवा सामूहिक क्षेत्र उच्चतर से आगे बढ़ रहे हैं परंतु अभी भी इस (निजी) क्षेत्र में ये एक छोटा भाग ही हैं। संबंधित आंकड़े तालिका 11.2 में दिये गये हैं।

तालिका 11·2

सकल देशज उत्पाद* के स्रोत तथा निजी क्षेत्र में व्यवस्थित एवं अव्यवस्थित उपक्षेत्रों द्वारा सकल घरेलू पूंजी स्वरूप का प्रयोग

	सकल देशज उत्पाद का स्रोत				सकल घरेलू पूंजी स्वरूप का प्रयोग			
	1970–71		1983–84		1970–71		1983–84	
	करोड़ रू० में	प्रतिशत	करोड़ रू० में	प्रतिशत	करोड़ रू० में	प्रतिशत	करोड़ रू० में	प्रतिशत
1. व्यवस्थित क्षेत्र	4476	15.2	20518	16.8	1030	23.4	6510	27.6
I. संयुक्त स्टाक कम्पनियां	..	..	..	..	963	21.9	6037	25.6
II. सहकारी	..	..	..	..	67	1.5	473	2.0
2. अव्यवस्थित	25036	84.0	101615	83.2	3501	79.5	17904	75.9
3. कुल	29512	100	122133	100.00	4531	102.9	24414	103.5
4. त्रुटियां	..	..	..	..	•(–) 127	(–) 2.0	(–) 839	(–) 3.5
5. कुल	29512	100.0	122133	100.0	4404	100.0	23575	100.0

स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 1970-71 से 1983–84.
विवरण 9 तथा 56 तथा परिशिष्ट ए 1, पृष्ठ 32, 146 तथा 156.157.
*सकल घरेलू उत्पाद के अलग-अलग आंकड़े उपलब्ध नहीं है।

11.6 तालिका 11.2 से प्रतीत होता है कि व्यवस्थित निजी क्षेत्र का हिस्सा सकल घरेलू उत्पाद में उत्पादन लागत पर (सकल देशज उत्पाद) तथा स० घ० पू० स्व० दोनों में ही धीमी गति से बढ़ रहा है। 1983–84 में अव्यवस्थित निजी क्षेत्र में स० दे० उ० के लिए 83.2% तथा स० घ० पू० स्व० के लिए 73.3% का योगदान रहा। भारतीय अर्थव्यवस्था की यह मुख्य बात उपयुक्त योजना तकनीकों को अपनाने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण है। प्रभावी योजना में यह आवश्यक होता है कि अर्थव्यवस्था में अवांछित विकासों को रोका जाये तथा अधिमानतः विकासों को प्रश्रय दिया जाये। वास्तविक नियंत्रण जैसे औद्योगिक लाइसेंस देना, आयात लाइसेन्स जारी करना, कैपिटल इश्यू पर नियंत्रण तथा विदेशी मुद्रा पर नियंत्रण आदि व्यवस्थित निजी क्षेत्र के अवांछित विकासों को रोकने में प्रयुक्त हो सकते हैं (आवश्यक रूप से विचारणीय नहीं है) अव्यवस्थित क्षेत्र में इस उद्देश्य के लिए अपरोक्ष विधियों की आवश्यकता होगी। अधिमान्य विकास को प्रोत्साहित करने के लिए, पूरे/निजी क्षेत्र में अर्थात् इसमें दोनों व्यवस्थित एवं अव्यवस्थित भागों को मिलाकर, अपरोक्ष तरीके अपनाने के अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं है।

संघीयवत् राज्य प्रणाली

11.7 देश की संरचना संघीयवत् राज्य प्रणाली के आधार पर की गयी है। सरकार के दो आधारभूत स्तर केन्द्र एवं राज्य होते हैं। इसमें बहु–स्तरीय योजना की आवश्यकता होती है।

2. विकास लक्ष्य

11.8 योजना का अभिविन्यास देश द्वारा अपनाये विकास लक्ष्यों के अनुसार होना चाहिए अन्यथा यह दिशा हीन हो जायेगी। प्रश्न "कैसे चलें"? इस पूर्वापेक्षा पर आधारित है कि "कहां चले"? के उत्तर का निर्णय लिया जा चुका है। देश ने वस्तुतः ऐसा निर्णय 30 वर्ष पहले लिया था।

11.9 1950 के मध्य से, विकास के मुख्य लक्ष्यों में त्वरित वृद्धि, सामाजिक न्याय, आर्थिक स्वावलंब, स्थिरता तथा प्रजातंत्र की रक्षा में सभी शामिल थे। इसमें शक नहीं कि इस विकास दर्शन के विभिन्न लक्ष्यों तत्वों पर प्रभाव समय समय पर परिवर्तित होता रहा है परंतु केन्द्र में हर किसी सत्तारूढ़ दल ने इन लक्ष्यों पर दुबारा जोर दिया है तथा इन लक्ष्यों में से किसी का भी औपचारिक परित्याग नहीं किया गया है। हालांकि वास्तविक स्थिति अलग बात होती है।

सामाजिक न्याय के साथ तरक्की

11.10 गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य जिसने 1970 के प्रारंभ में जनता पर गहरा प्रभाव डाला, सामाजिक न्याय का एक ठोस उदाहरण है, इसमें त्वरित उन्नति के साथ आय एवं धन की असमानता को कम करना आवश्यक होता है। देश में इतनी बड़ी जनसंख्या की गरीबी इनमें से किसी एक दिशा को अपनाने से दूर नहीं की जा सकती।

11.11 वर्तमान आर्थिक असमानता का एक घटक विकास स्तरों में अस्वीकार्य अन्तर्राज्यीय तथा राज्य स्तरित विरोधों का होना है। ये विरोध राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों तथा देश के विभिन्न राज्यों के लोगों के भावनात्मक एकीकरण और बंधुत्व की भावनाओं पर बुरा असर डालते हैं। इससे राष्ट्रीय एकता के संबंध में समस्या खड़ी हो जाती है जो कि देश की एकता के ठोस सहारे के लिए आवश्यक है।

उन्नति एवं क्षेत्रीय परिवर्तन

11.12 उन्नति की एक अनवरत उच्चदर में आवश्यक रूप से अर्थव्यवस्था में वे परिवर्तन आवश्यक होंगे जिनसे अर्थव्यवस्था को आधुनिक, औद्योगिक, स्वावलंबी एवं गत्यात्मक स्वरूप प्रदान किया जा सके। अगर यह परिवर्तन, उचित रूप से क्रियान्वित एवं कार्यान्वित नहीं होते हैं तो इनसे मानव कल्याण एवं सामाजिक न्याय की अवहेलना व्यापक रूप से प्रतीत होगी। भारतीय शहरों में झुग्गी झोंपड़ी व फुटपाथ पर रहने वाले इसी का एक रूप है। उन्नति के लक्ष्यों को अन्य विकास लक्ष्यों के समान लाने के लिए, संसाधनों, समय तथा आर्थिक एवं सामाजिक विस्थापन के कम से कम प्रयोग रखते हुए एक अनिवार्य संरचनात्मक परिवर्तन करना होगा।

उन्नति एवं प्रयुक्त संसाधनों की कार्यकुशलता

11.13 अगर देश के मानव एवं वस्तुगत संसाधनों का प्रयोग वर्तमान की तरह बेकार ढंग से किया जाना चालू रहा तो पर्याप्त वृद्धि दर प्राप्त करने का उद्देश्य बेकार सिद्ध हो जायेगा अथवा इसमें बचत के साधनों का अत्यधिक प्रयोग करके अत्यधिक बोझ डाला जायेगा। यह संभावना भी है कि इस त्याग को अगर स्वीकार्य सीमा में रखा जाये तो देश दूसरे देशों से इतना अधिक ऋण लेने लग जायेगा कि जिससे न तो निर्धारित वृद्धि दर ही प्राप्त होगी और न ही स्वावलंबन। वास्तव में अब देश ऐसे चरण से ही गुजर रहा है। कार्यकुशलता, देश को स्वीकार्य उन्नति तथा अन्य विकास [उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए] आवश्यक शर्त है।

आर्थिक स्वावलंबन :

11.14 भारत में सामान्यतः यही विचार रहा है कि बिना आर्थिक स्वावलंबन के देश की राजनीतिक स्वतंत्रता तथा राज्यों की प्रभुसत्ता कृत्रिम ही प्रतीत होगी। यह भी सामान्यतः से स्वीकार किया जाता है कि विश्व के क्रियाकलापों में

तथा विश्व के राष्ट्रों के बीच अपना नाम स्थापित करने के लिए आर्थिक स्वावलंबन भारत के लिए आवश्यक है। तीसरी योजना के उपरान्त आर्थिक स्वावलंबन को सामान्य विदेशी मुद्रा के अलावा अन्य किसी सहायता के बिना सन्तोषजनक विकास गति बनाए रखने के रूप में बताया गया है। इस व्याख्या को इस तरह बताना कि स्वावलंबन तभी आ सकता है जबकि सामान्य वाणिज्यिक शर्तों पर बहुत अधिक विदेशी धन लिया जाएं, कुतर्क की पराकाष्ठा होगी। किसी भी समय की लंबी अवधि के भुगतान शेषों तथा उसके कई वर्षों के बाद नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कितनी भी बड़ी विदेशी सहायता हो उसके सहारे स्वावलंबन नहीं आ सकता है। इस कथन का लक्ष्य "विदेशी सहायता को नकारना" कभी भी नहीं रहा है, जैसा कि पश्चिमी देश विशेषत: रीगन प्रशासन भारत के लिए प्रयुक्त करते रहे हैं। अगर स्वावलंबन का अभिप्राय लंबी अवधि की रियायती सहायताओं के स्थान पर उसी प्रकार की अधिक किन्तु महंगी सहायताओं विदेशी निवेश और वाणिज्यिक ऋणों में परिवर्तित करना है तो यह विकास लक्ष्यों के लिए निश्चय ही गलत होगा।

11.15 आत्म निर्भरता को, "विदेशी निधियों के कुल अन्तर्वाह के वास्तविक निष्कासन" के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि घरेलु निर्माण पूर्णत: घरेलु बचत से ही वित्त पोषित होना चाहिए। फिर, क्योंकि भुगतान के शेष चालू खाते में घाटा यह दर्शाता है कि इसे निवेशित करने के लिए विदेशी पूंजी का एक समान अन्तर्वाह चाहिए। विदेशी पूंजी के कुल अंतर्वाह के वास्तविक निष्कासन के लिए भुगतान के चालू खाते के घाटे को मिटाना चाहिए। ये तीनों आत्मनिर्भरता के स्वीकृत लक्ष्य की एकसी परिभाषाएं हैं। अत: इस लक्ष्य का तात्पर्य यह है कि पूंजी निर्माण की सही दर का सुरक्षित व स्थिर करने में भुगतान के चालू खाते के किसी भी घाटे को वास्तविक निष्कासन करना चाहिए ताकि इसे निवेशित करने के लिए विदेशी पूंजी के अन्तर्वाह की कोई भी जरुरत न रहे। इस स्थिति में घरेलु पूंजी निर्माण अनिवार्य रूप से घरेलु बचत से ही निवेशित होना चाहिए। यह "भारतीय योजना" का एक महत्वपूर्ण कार्य है जो अन्य सभी विकास लक्ष्यों की तरह अभी भी पूरा नहीं हुआ है।

आर्थिक स्थिरता

11.16 "स्थिरता के साथ विकास" भारतीय विकास दर्शन का एक बहुप्रचारित निर्देश है। यह अग्रिम स्फीति के साथ साथ अर्थव्यवस्था में व्याप्त लापरवाही को दर्शाता है। वस्तुत: अधिकांशत: वास्तविक या आशंकित (झूठी) स्फीति की ही समस्या होती है। आर्थिक स्थिरता भविष्य की नीति के ढांचे में उचित स्थिर आशाओं के रखरखाव को भी दर्शाती है। ताकि निवेशक, ठेकेदार अपनी गतिविधियों को लम्बे समय के लिए नियोजित कर सकें।

प्रजातंत्रीय ढांचे का दृढ़ीकरण

11.17 प्रजातंत्रीय ढांचे का संरक्षण, दृढ़ीकरण व संवर्धन स्वयं में एक महत्वपूर्ण तथ्य है। यह व्यवस्थित व अनुक्रमणीय आर्थिक व सामाजिक विकास का एक अनिवार्य साधन भी है। यह भी प्रबल आशा की जाती है कि त्वरित वृद्धि, सामाजिक न्याय, आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक स्थिरता, प्रजातंत्रीय ढांचे के दृढ़ीकरण को सुसाध्य बनाएंगे।

(3) विकास के प्रतिमान

11.18 विकास के सामाजिक प्रतिमानों के अंगीकरण के संदर्भ में किए गए सभी दावे व घोषणाओं का विरोध न करते हुए, देश हमेशा विकास के एक पूंजीवादी आदर्श को साथ लेकर चला है। निजी क्षेत्रों में जो, सकल घरेलू उत्पाद (जी० डी० पी०) जनशासन में उत्पादित जी डी पी के अलावा का 85% स्रोत है। पूंजी उत्पादन संबंध फैल रहे हैं हालांकि, इसकी गति क्रियाओं और क्षेत्रों के अनुसार बदलती है, फिर भी जो अपेक्षतया कम हैं। निजी निगमित क्षेत्र जो अब निजी क्षेत्रों में उत्पादित कुल आय का 16.8% है, पूंजीवादी विकास के उच्चतम स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, पूंजीपति उत्पादन संबंध घरेलु व निजी क्षेत्र में असंगठित खण्डों में भी फैल रहे हैं यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि कर्मचारियों की मुआवजा राशि इस खंड में उत्पादित कुल राशि का चौथाई भाग होती है।

11.19 सार्वजनिक उद्यम एक सामाजिक नहीं अपितु राज्य-पूंजीपति निर्माण है। वे राज्य के पूंजीवादी उद्यमों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनका अनिवार्य कार्य है संपूर्ण पूंजीवाद विकास को बढ़ावा देना। विकास क्रिया में खाली स्थानों को भरकर जो इस कारण पैदा होते हैं कि या तो कुछ गतिविधियां (उदाहरण के लिए आधारिक संरचना संबंधी विकास) निजी उद्यमियों को आकर्षित नहीं करती या उनकी क्षमता के बाहर होती हैं (क्योंकि इनमें बहुत ज्यादा लम्बी व जोखिमपूर्ण पूंजी लगानी होती है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को कोष निजी कोष के ऋण से लिया जाता है न कि वह कर और कर के अतिरिक्त उठाए गए अन्य कदमों के जरिए जोकि सार्वजनिक कोषों से नहीं होता। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र की उन्नति, सार्वजनिक संपदा की संरचना से उसी प्रकार जुड़ी है जैसे कि निजी पूंजीवादी उद्यम। इनके द्वारा उत्पादित अतिरिक्त धन, सामान्यत: सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा लिए गये कर्जों की प्रतिपूर्ति करने में तथा उद्यमों को आर्थिक सहायता देने में प्रयुक्त होता है न कि अन्य सामाजिक आवश्यकताओं के सार्वजनिक क्षेत्र के विकास कार्यों के लिए संसाधन जुटाने में। इनका प्रबंध भी सामान्य उच्च श्रेणी के अधिकारियों अथवा तकनीकविज्ञों द्वारा किया जाता है न कि सार्वजनिक क्षेत्र के प्रशिक्षित और पदोन्नत कर्मचारियों से। वास्तव में कर्मचारियों को इन उद्यमों को चलाने में निजी पूंजीवादी क्षेत्र की तुलना में बहुतकम काम करना पड़ता है। प्रबंधस्वरूप तथा तरीका भी अधिक नौकरशाही एवं पूंजीवादी होता है न कि समाजवादी। ये भी उसी प्रकार बाजार उन्मुखी होते हैं जैसे निजी क्षेत्र। इन उद्यमों का निजी उद्यमों में परिवर्तन इनकी पूंजीवादी संरचना का एक परिवर्तन ही समझा जायेगा तथा चूंकि यह एक प्रणाली से दूसरी प्रणाली में ले जाने वाला नहीं है अत: इसे आसानी से किया जा सकता है। वस्तुत: निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का संबंध विरोधी न होकर एक दूसरे का संपूरक है।

11.20 अब संरचनात्मक क्रियाकलापों के[*] अतिरिक्त, राज्य पूंजीवादी क्षेत्र केवल एक परिवर्ती भूमिका में लगे हैं। जैसे ही इसके अन्तर्गत संसाधन एवं अनुभव प्राप्त हो जाते है जो कि निजी उद्यमों के सक्षम हो तो इसे समय के साथ अपने क्रियाकलापों को बढ़ाना चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र कभी भी बृहत् तरीके से लघु उद्योगों में नहीं लगा है। अब कुछ भारी उद्योगों में यह अपना क्षेत्र व भूमिका घटा रहा है। उदाहरणार्थ, भारी मशीनें बनाने का उद्योग अब कम हो रहा है। निजी क्षेत्र को अब तेल क्षेत्र के शोधन चरण में लगाया जा रहा है। यह सिद्ध कर देगा कि निजी क्षेत्र कसौटी पर खरा उतरता है अथवा नहीं। निजी क्षेत्र को उर्वरक उद्योगों में बड़ी भूमिका दी जा रही है। अब गठित की जा रही नई गैस आधारित परियोजनाओं मेंसे केवल एक सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत है।† दूरसंचार उद्योग भी निजी क्षेत्र को सौंप दिया गया है, यहां तक कि कुछ अवसंरचनात्मक विकास भी इस क्षेत्र को दिये गये हैं, विद्युत उत्पादन में भी सार्वजनिक क्षेत्र को आमंत्रित किया है, अगर यह इस गतिविधि में लगने में इच्छुक हो। ऐसे सार्वजनिक उद्यम, जो कि लगातार घाटे में चल रहे हैं, की सार्वजनिक सहायता न देने की धमकी दी जा रही है जिसका अर्थ उद्यमों को दिवालिया होना होगा। सार्वजनिक क्षेत्र की रुचि रसायन एवं औषधि उद्योगों में भी कम होती जा रही हैं। यह बेशक एक नये चरण की शुरुआत है, जब निजी उद्यम, राज्य उद्यमों के संभावित विकल्प बन जाते हैं तो दूसरा सामान्यत: अपना स्थान पहले को देना शुरु कर देता है। दोनों के मध्य, अगर हम संसाधन तथा कार्यकुशलता के आधार पर देखें तो सामान्यत: राज्य पूंजीवाद ही घटिया विकल्प प्रतीत होता है। इस स्तर पर राज्य पूंजीवाद की निहित कमियां महसूस होती हैं। यह राज्य पूंजीवाद के समर्थन की ओर से दूर ही ले जाता है। भारत अब इस चरण में प्रवेश कर चुका है।

(4) योजना की भूमिका

11.21 छोटे किन्तु मुखर तथा प्रभावी अल्पसंख्यक अपवाद को छोड़कर, सामान्यत: भारत में यह स्वीकार किया जाता है कि विकास लक्ष्य केवल बाजार वालों को स्वतन्त्र छोड़ने से ही प्राप्त नहीं किये जा सकते तथा विकास के पूंजी

---

*केन्द्रीय क्षेत्र के कुछ तेल उद्यमों द्वारा उत्पादित अधिक धन उतना अधिक लाभ नहीं दिखाता है जितना कि उनका एकाधिकार, अपरोक्ष करों के संबंध में उनकी आर्थिक महत्ता।

†सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90, खण्ड II, पैरा 7.126 मु पृ० 183-84

वादी तरीके में भी स्वतंत्र मार्केट के नकारात्मक घटकों की परिपूर्ति तथा दबाने के लिए, इसकी कमियों को पूरा करने के लिए तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए योजना की आवश्यकता होती है। योजना में कार्यकुशलता, न्यायसंगतता होनी चाहिए। एवं जिस क्षेत्र में कार्य करना हो उसका सामाजिक, आर्थिक संदर्भ होना आवश्यक है। असंगत अकार्यकुशल तथा अनुपयुक्त योजना देश को लाभ की बजाय हानि पहुंचा सकती है। इस प्रकार यह योजना विहित होने से भी बुरी होती है।

11.22 वर्तमान स्थिति में जब देश विकास का पूंजीवादी तरीका अपना रहा है तथा अन्य कोई तरीका नही सुझाता, इस समय योजना प्रक्रिया को राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करने के लिए गत्यात्मक, स्वावलंबी, स्थिर तथा संभाव्य अर्थव्यवस्था के सृजन पर ध्यान देना होगा जो कि विकास के तरीके में ही निहित हो। कोई भी दृष्टिकोण जो कि विचारित लक्ष्यों के प्रति योजना की भूमिका में उन्नति करने, अर्थव्यवस्था के समाजवादी तरीके को बदलने में उन्नति तथा समाजवादी आधार पर इसके विकास से संबंधित होता है, वह न तो वर्तमान संदर्भ में लागू है न ही एक सार्थक तरीका है। भारतीय योजना की अंतर्वस्तु संगठन, तकनीक व नीतियां इसके वर्तमान कार्य के उपयुक्त होनी चाहिए।

(5) योजना की अंतर्वस्तु

(क) अनिवार्य एवं निर्देशक योजना का सम्मिश्रण :

11.23 वर्तमान संदर्भ में योजना की भूमिका के आधार पर, योजना के दो भाग होते हैं:-- (i) अनिवार्य भाग तथा (ii) निर्देशक भाग। अनिवार्य भाग में विशेष परियोजनाएं अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में किये जाने वाले विकास कार्यक्रमों का प्रस्ताव आता है। दूसरे शब्दों में, इसमें पूरी पूरी विकास प्रक्रिया के लिए आवश्यक प्राथमिक विकास क्रियाकलापों का वर्णन होता है। इस प्रकार अनिवार्य शब्द सरकारी प्राधिकारियों की विशेष विकास को दृढ इच्छा को सूचित करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इन परियोजनाओं अथवा कार्यक्रमों को पूरा करने में असफल रहने पर कोई कानूनी जुर्माना लगाया जाएगा। निजी क्षेत्र में पूरी विकास प्रक्रिया तथा सार्वजनिक क्षेत्र की अप्रमुख गतिविधियां निर्देशक भाग में आती हैं। आर्थिक सरकारी नीति के इस भाग में उन विकास कार्यों को अपरोक्ष रूप से प्रभावित किया जाता है जो कि आवश्यक हों, निर्देशक का यहां अर्थ यह है कि योजना कर्ता के दृष्टिकोण में, परियोजना के विकास में क्या आवश्यकताएं हैं और उनमें से कौन सी संभावित हैं। यह आवश्यक है कि केन्द्र, राज्य सरकार के विभागों और सार्वजनिक उद्यमों को अप्रमुख विकास क्रियाकलापों से अलग रखा जाए ताकि वे योजना के अनिवार्य भाग को पूरे जोर से पूरा कर सकें। समूचे सार्वजनिक क्षेत्र के विकास क्रियाकलापों को अनिवार्य भाग में रखने से, जैसा कि अब किया जा रहा है, सार्वजनिक क्षेत्र के प्राधिकारियों और उद्यमों की पहल करने की चाह को समाप्त कर देता है तथा इस प्रकार वे निजी क्षेत्रों के उद्यमों की तुलना में हानि मे रहते हैं। जहां की अनिवार्य भाग में लक्ष्यों का निर्धारण होता है, वहीं निर्देशक भाग में विकास की बड़ी दिशाओं का चित्रण होता है। इस प्रकार ये बचतकर्ताओं निवेशकों, उद्यमियों और कार्यान्वयन एजेन्सियों को विशेषश दिशा निर्देश का उपबंध करता है।

एक उपयुक्त नीति की रूपरेखा

11.24 निर्देशक योजना में अर्थव्यवस्था के विकास सम्बन्धी क्रियाकलापों का एक बड़ा भाग आता है। निजी उद्यमों की बढ़ती हुई सक्षमता के अनुसार निजी क्षेत्र को और विकास कार्य सौंपे जा सकते हैं। इसके अलावा जैसे ही सार्वजनिक उद्यम एवं प्राधिकारी विकास कार्यों में पहल करने लगे तो, निर्देशक योजना को सार्वजनिक क्षेत्र में भी लिया जा सकता है। इससे निर्देशक योजना में उपयुक्त नीति की रुपरेखा बनाने की महत्ता प्रकट होती है। यह वास्तविकता है कि प्रत्यक्ष नियंत्रणों की पहुंच सीमित होती है, जो कि सामान्यत: सार्वजनिक एवं व्यवस्थित निजी उद्यमों पर भी लागू होती है, तथा वे नियंत्रण अवांछित विकास को रोकने के लिए हैं न कि वांछित विकास की प्रोन्नति के रोकने के लिए, इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए नीति की रुपरेखा बनाना अधिक आवश्यक है।

11.25 नीति संबंधी समस्याओं के सम्बन्ध में निर्णय लेना आज इस देश की योजना प्रक्रिया का सबसे दुर्बल पहलू है। विकास सम्बन्धी नीतियों का निर्धारण, निर्धारित महत्ता क्रम से प्रधान मंत्री के सचिवालय, वित्त मंत्रालय तथा आर्थिक मंत्रालयों द्वारा किया जा रहा है। योजना आयोग की रिपोर्ट सामान्यत: कार्य सम्पन्न होने के बाद की होती है। विकास नीतियों पर निर्णय लेने का इसका संबंध सामान्यत: ऊपरी तथा औपचारिक होता है, जोकि वस्तुत: अन्तरण एवं तात्विक होना चाहिए। इस संदर्भ में उपयुक्त निर्णय लेने वाली श्रृंखला इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमें योजना आयोग व्यापक अध्ययन एवं अनुसंधान के आधार पर नीति बनाने में पहल करे, जो कि स्वीकार्य विकास लक्ष्यों और कुल नीति संरचना की आंतरिक सुदृढ़ता के अनुरूप हो। योजना आयोग के प्रस्तावों को उसके पश्चात् संबंधित मंत्रालयों और विभागों के पास विचारार्थ भेजना चाहिए। उसके बाद अनुमोदन के लिए केन्द्रीय स्तर पर भेजना चाहिए और अगर यह विशेष नीति राज्य पर प्रभाव डालती है तो अंतिम कदम उठाने के लिए राज्य के पास, और अगर अति महत्वपूर्ण है तो राष्ट्रीय विकास परिषद् के अनुमोदन हेतु भेजी जानी चाहिए। आजकल इस प्रकार की प्रक्रिया का पालन नहीं हो रहा है। प्रधानमंत्री सचिवालय तथा मंत्रालय नीतियां निर्धारित करते है जो कि कई बार स्वीकृत विकास लक्ष्यों और नीति संरचना के अन्य तत्वों से इतर होती हैं। कई सामलों में योजना आयोग की भी सलाह ली जाती है, यह सामान्यत: दिखावा मात्र होता है, जिसमें कुछ नीतिगत तथ्यों के दुष्परिणामों के बारे में आगाह किया जाता है, अंतत: इससे सहमति प्रदान करनी होती है, इस पर भी योजना आयोग की भूमिका निर्णय लेने में नकारात्मक और रोडा अटकाने वाली कही जाती है। ऐसी परम्परा ही नहीं है कि राज्य से नीति के संबंध में कोई परामर्श भी किया जाये, चाहे वह नीति राज्य के लिए कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हों।

11.26 योजना आयोग और योजना प्रक्रिया में लोगों के अविश्वास के अतिरिक्त योजना आयोग की विकास नीतियों के निर्माण में अल्प भूमिका निभाना जो कि इसका मुख्य कार्य है, का एक कारण इसके प्रभागों के अधिकारी ऐसे लोगों को बनाना है जोकि सामान्य प्रशासन से आये होते हैं तथा न ही वे नीति के मुद्दों पर अनुसंधान करते हैं जिससे वे योजना आयोग को सम्यक् सुझाव दे पायें। योजना आयोग में चल रही वर्तमान कार्य संस्कृति में तो तकनीकी कार्मिक भी नीति उन्मुखी अनुसंधान की परंपरा से हटते जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति उस दैनिक कार्य में समा रहता है, जिसे योजना आयोग की कार्य सीमा से बाहर होना चाहिए। विकास नीतियों के बनाने के संदर्भ में, उपाध्यक्ष, चाहे वह कितना भी सक्षम क्यों न हो, कभी भी योजना आयोग का प्रभावी स्थान नहीं ले सकता।

11.27 अगर नीतिगत संरचना को आंतरिक रूप से सुदृढ़, समुचित एवं देश के विकास लक्ष्यों एवं नीतियों के सदृश्य बनाना है तो, राष्ट्रीय योजना संगठन को विकास नीतियों के बनाने और उनके संयोजन के संबंध में निर्णय लेने में मुख्य भूमिका (किसी भी हालत में पूरा उत्तरदायित्व नहीं) देनी आवश्यक है। यह अन्य बातों के अलावा अर्थव्यवस्था के बड़े भाग को योजना के अंतर्गत कार्यकुशल बनाने हेतु आवश्यक है।

(6) योजना का काल क्षितिज

11.28 एक आधुनिक, औद्योगिक एवं स्वावलंबी अर्थव्यवस्था के सृजन हेतु विकास क्रियाकलापों में कई लंबी अवधि की परियोजना के लिए योजना बनाना और उनका कार्यान्वयन आवश्यक होगा। योजना का कालक्षितिज इतना लिया जाये जिसमें परियोजनाओं के प्रोद्योगिकी और उनके कार्यक्षेत्र में होते वाले परिवर्तनों में संसाधनों तथा निर्माण अवधि कम से कम व्यर्थ हों। तीसरी योजना में एक 15 वर्षीय विकास परिदृश्य की रूप रेखा रखी गई थी। चौथी योजना में यह कालावधि 12 वर्ष हो गई। दुबारा पांचवी योजना में 15 वर्ष की कालावधि ली गई। छठी और सातवी योजना में भी यही समय चुना गया है। वर्तमान औद्योगिकीय और निर्माण की अपेक्षित दर को देखते हुए लगता है कि 15 वर्ष इस लंबी विकास प्रक्रिया के लिए बहुत बड़ी अवधि है। इस अवधि के पूरे होने से पहले ही नये विकासों के कारण इसके कुछ तत्व बेकार सिद्ध हो जाएंगे। इस परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के गलत मध्यम अवधि के नीति निर्णय लेने में भी खतरा है। अत: अधिमानत: ऐसे निर्णयों में परिप्रेक्ष्य 10 वर्ष का लिया जाना चाहिए। मध्यम अवधि और अल्प अवधि की योजना वर्तमान प्रकार से ही पांच और एक वर्ष के लिए, चालू रखनी चाहिए।

लंबी अवधि का परिप्रेक्ष्य

11.29 10 वर्ष के विकास परिप्रेक्ष्य में कोई भी अनिवार्य भाग नहीं होगा। यह दस वर्ष उपरान्त की अर्थव्यवस्था का एक सूचित, विशेषज्ञ एवं पूर्ण प्रतिबिंब स्वरूप है जिसमें राष्ट्र के स्वीकृत विकास लक्ष्यों के प्रति संतोषजनक प्रगति हासिल हो। यह योजनाकारों तथा सत्ताशालियों की सनक के परे एक वैज्ञानिक आधार पर तैयार किया होना चाहिए। इसमें विकास लक्ष्यों के अनुसार राष्ट्र की मांगों और उत्पादन संरचनाओं, प्रौद्योगिकीय प्रवृत्तियों, आर्थिक संसाधनों, घरेलू और विदेशी बाजारों से अवसर और क्षमताओं, आय एवं धन के वितरण की प्रवृत्ति, जननीति की सीमाएं और कार्यक्षेत्र, तथा उत्पादन एवं मांग के स्वरूप पर प्रभाव वैज्ञानिक प्रतिबिंब प्रस्तुत किया हो। वास्तविक परिप्रेक्ष्य को पूरा करने के लिए एक वित्तीय परिप्रेक्ष्य की भी आवश्यकता होगी। वांछित संस्थागत परिवर्तन तथा उसकी संरचना का भी उल्लेख आवश्यक है। अंत में "निर्धारित नीति संरचना का समुचित वर्णन भी दिया हो।

11.30 लंबी अवधि के परिप्रेक्ष्य जोकि तीसरी पंचवर्षीय योजना के पश्चात् प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में प्रस्तुत किये गये हैं, अपूर्ण और अलग से चिपकाये लगते हैं। ये पंचवर्षीय योजना की तैयारी में बहुत कम निर्देश प्रदान करते हैं। पंचवर्षीय योजना और लंबी अवधि का परिप्रेक्ष्य समवर्ती, स्वतंत्र और असंबंधी अभ्यास प्रतीत होते हैं। अत: 10 वर्षीय विकास परिप्रेक्ष्य एक पूर्ण प्रयास होना चाहिए। ये पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि समीक्षा के समवर्ती लिये जा सकते हैं। परिप्रेक्ष्य उस समय तक उपलब्ध होगा तथा अगली पंचवर्षीय योजना में कार्य आरंभ कर अच्छे निर्देश प्रदान करने में सक्षम होगा। विभिन्न स्तरों पर योजना संगठनों का मुख्य कार्य लंबी अवधि के परिप्रेक्ष्य तैयार करना होगा।

पंचवर्षीय योजना

11.31 पिछली पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था के विकास की समीक्षा पंचवर्षीय योजना में की जानी चाहिए। इस समीक्षा में इस अवधि के दौरान आर्थिक विकास एवं योजना कार्यान्वयन में अनुभूत सफलताओं और असफलताओं का समुचित मापांकन होना चाहिए। अगर कोई भी असफलता गलत योजना बनाने में कारण हुई है तो इसे बिना हिचकिचाहट के सामने लाना चाहिए। समीक्षा में योजना एवं कार्यान्वयन की आलोचनाविहीन अभिशंसा सरकारी प्रचार सामग्री की तरह नहीं की जाए। इस समीक्षा से प्राप्त निष्कर्षों को अगली पंचवर्षीय योजना में प्रयोग किया जाए। वर्तमान समय में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के पश्चात् पिछले पांच वर्षों या और लंबी अवधि के दौरान विकासों की समीक्षा होती है परंतु यह वांछित स्तर को नहीं होती।

11.32 पंचवर्षीय योजना, दसवर्षीय विकास परिप्रेक्ष्य के समान ही, पांच वर्षों के बाद की मांग तथा उत्पादन संरचना को ध्यान में रखकर बनानी चाहिए। योजना में विकास के लिए आवश्यक रुपयों और विदेशी मुद्रा की आवश्यकता के अनुसार वित्तीय विवक्षा की हो तथा इन योजनाओं के लिए आवश्यक वित्त की प्रतिपूर्ति की सार्थक योजनाएं भी दी हुं। वित्तीय योजना बनाने में सुविधा हेतु पंचवर्षीय योजना का आरंभ वित्त आयोग की संदर्भ अवधि के साथ ही होना चाहिए। सातवीं योजना की पंचवर्षीय योजना अवधि आठवें वित्त आयोग की संदर्भ अवधि से एक वर्ष बाद चालू होने से कई सैद्धान्तिक तथा गणितीय कठिनाइयां उत्पन्न हो गई थी।

11.33 10 वर्षीय परिप्रेक्ष्य के विपरीत, पंचवर्षीय योजना के दो भाग बनाये जा सकते हैं :--अनिवार्य एवं निर्देशक। इन दोनों भागों में विभाजन सेवा उपरोक्तानुसार निर्धारित की जा सकती है। संक्षेप में, लंबी अवधि की योजनाएं तथा आवश्यक कार्यक्रम सार्वजनिक क्षेत्र में अनिवार्य भाग के रूप में लिये जाएं। पंचवर्षीय योजना के दौरान प्रारंभ किये जाने वाले अन्य सभी विकास क्रियाकलाप निर्देशक भाग में लिए जाएं। दोनों भागों के मुख्य तत्वों के निर्धारण में समुचित ध्यान बरता जाए। वर्तमान समय में योजना में मुख्य ध्यान अनिवार्य भाग पर दिया जाता है जिसे सार्वजनिक क्षेत्र संभालता है। निजी क्षेत्र में हो रहे विकास क्रियाकलापों पर कम ध्यान दिया जाता है हालांकि यह ही जी०डी०पी० में अनुमानित बढ़त व अपेक्षित सकल पूंजी स्वरूप बनाने में मुख्य भाग प्रदान करता है। योजना के अनिवार्य और निदेशक भाग में और संतुलन बरतने की आवश्यकता है।

11.34 योजना में नीति संरचना में अनुमानित परिवर्तन तथा नयी नीतियां जिन पर बाद मे निर्णय लिया जाये की भी सूचना दी जाये। इसमें वांछित संस्थागत परिवर्तन तथा प्रस्तावित योजना संगठन एवं पद्धति में सुधार सहित संस्था के संरचनात्मक परिवर्तनों का भी वर्णन है।

वार्षिक योजना

11.35 वार्षिक योजना की सही भूमिका पंचवर्षीय योजना के कार्यवाहक उपकरण के रूप में है जिसमें नये विकासों के प्रकाश में कुछ समायोजन भी किया जा सकता है। अत: इसमें पंचवर्षीय योजना के कार्यक्षेत्र एवं विषयवस्तु ही होंगे। वर्तमान समय में वार्षिक योजना में केवल अर्थव्यवस्था को ही लिया जाता है बशर्ते कि अनिवार्य योजना संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर प्रतिबिंबित होती हो। राज्यों के बारे में यह पूर्णत: सत्य है। अगर 'वार्षिक योजना' को पंचवर्षीय योजना के कार्यवाहक उपकरण के रूप में प्रयोग करना है तो इसे उसी ढांचे में बनाया जाये। बस इसकी अवधि एक वर्ष हो। वार्षिक योजना की विषयवस्तु तथा इसकी तैयारी को विधि में समूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

(7) योजना के स्तर

11.36 सरकार के दो स्तरों की संगतता के कारण, राज्य तथा केन्द्र योजना के दो आधार स्तर होते है। राज्यस्तर में स्थानीय स्तर की योजना बनाना भी सम्मिलित है।

केन्द्रीय क्षेत्र योजना

11.37 केन्द्रीय क्षेत्र योजना में केन्द्रीय मंत्रालयों, केन्द्रीय विभागों तथा गैर-विभागीय उद्यमों के विकास क्रियाकलाप शामिल होते हैं। केन्द्र और केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना परियोजनाओं, जिसके कार्यान्वयन के लिए राज्यों को केन्द्रीय सहायता दी जाती है, का केन्द्रीय परिव्यय भी इसमें शामिल हैं।

यह कही और तर्क दिया है कि इन योजनाओं को छोटे से छोटा बनाना होगा। केवल उन्हीं योजनाओं को रखना होगा, जोकि देश के लक्ष्य के हिसाब से अपरिहार्य है। अन्य योजनाएं या तो समाप्त कर दी जायें, या वे समतुल्य संसाधनों के साथ राज्य को स्थानांतरित करके राज्य योजना के क्षेत्र में लाई जायें। संघ शासित प्रदेशों के विकास क्रियाकलाप भी केन्द्रीय क्षेत्र योजना के तहत आते हैं, हालांकि विधान सभा युक्त संघ शासित प्रदेश राज्यों के समान ही हैं।

11.38 केन्द्रीय क्षेत्र योजना के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय, योजना परियोजनाओं और कार्यक्रमों का बजट परिव्यय तथा साथ ही केन्द्रीय उद्यमों के बजट के अतिरिक्त संसाधनों का वित्तीय परिव्यय भी शामिल होता है। बजट के अतिरिक्त संसाधनों में : (i) केन्द्रीय उद्यमों के आंतरिक संसाधन जैसे कि, मूल्यह्रास प्रावधान तथा लाभ से योजना के लिए उपलब्ध राशि, (ii) उद्यम के अन्य बजट के अतिरिक्त संसाधन जैसे केन्द्र सरकार के अतिरिक्त अन्य लोगों के ईक्विटी निवेश, भारतीय वित्तीय संस्थानों से ऋण, विदेशों से वाणिज्यिक ऋण, भारतीय कंपनियों और जन कोषों के रुके हुए भुगतान क्रेडिट आदि शामिल होते हैं।

11.39 राज्य योजना के लिए दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता केन्द्रीय क्षेत्र योजना में शामिल नहीं होती क्योंकि ऐसी सहायताओं के वित्तीय परिव्यय को राज्य योजना परिव्यय के तहत लिया जाता है केन्द्रीय सहायता को केन्द्रीय सरकार की योजना के अंतर्गत दुबारा गिनना होगा। अत: ऐसी सहायता को केन्द्र के गैर-योजना व्यय के अंतर्गत लिया जाता हैं।

राज्य योजनाएं

11.40 राज्य योजना में योजना संबंधी परियोजनाओं और कार्यक्रमों का बजट परिव्यय तथा राज्य के उद्यमों और स्थानीय निकायों के अतिरिक्त बजट साधनों द्वारा वित्त-पोषित परिव्यय शामिल है। चूंकि राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता राज्य-बजट के माध्यम से दी जाती है अत: यह सहायता योजना के लिए राज्य के कुल साधनों के लिए एक भाग बन जाती है। केन्द्रीय क्षेत्र योजना की भांति योजना के लिए उद्यमों के अतिरिक्त बजट साधनों में उनके आंतरिक साधन तथा अन्य अतिरिक्त बजट साधन शामिल हैं। अतिरिक्त

बजट साधनों में मुख्य रूप में उनके द्वारा बाजार से उधार ली गई धन राशि (अर्थात् राज्य के उद्यम, अधिकांशत: बाजार से उधार ली जाने वाली राशि में राज्य के कोटे में एस०ई०बी० का शेयर), आवधिक वित्तपोषण संस्थाओं (एल० आई०सी०, आर०ई०सी०, आई०डी०बी०आई०) से उधार ली जाने वाली राशि और एस०ई०बी० के मामलों में उपभोक्ताओं की जमा राशि शामिल है। सातवीं योजना और वार्षिक योजना 85–86 में एस०ई०बी० और एस०आर०टी० यू० से भिन्न राज्य—उद्यमों के अतिरिक्त बजट-साधनों के लिए कुछ ऋण लिया है। हालांकि उसकी राशि बहुत कम है लेकिन इसमें संदेह है कि अनेक राज्य ऐसा करते हों। वे इन उद्यमों (यदि कोई हों) द्वारा बाजार से उधार ली गई राशि और उनके द्वारा वित्तीय संस्थाओं से लिए गए आवधिक ऋणों की राशि को हिसाब में शामिल करते हैं। किन्हीं अन्य अतिरिक्त बजट साधनों द्वारा विकास के लिए लगाई गई पूंजी को राज्य-योजना परिव्यय में संभवत: सदैव शामिल नहीं किया जाता।

11.41 राज्य सरकार द्वारा स्थानीय निकायों को विकास संबंधी प्रयोजनों के लिए दी जाने वाली सहायता को राज्य-योजना परिव्यय में शामिल किया जाता है। इन निकायों को राज्य के कोटा में से किसी बाजार ऋण से वित्त-पोषित या एल०आई०सी० जैसी वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों द्वारा वित्त-पोषित विकास परिव्यय को भी इसमें शामिल किया जाता है। स्थानीय निकायों द्वारा अपने आंतरिक साधनों से या किन्हीं अन्य अतिरिक्त बजट-साधनों से विकास कार्यों के लिए लगाई गई पूंजी को राज्य-योजना—परिव्यय में शामिल नहीं किया जाता है। संभवत: यह समझा जाता है कि स्थानीय निकायों को विकास-कार्यों के लिए राज्य सरकार से मिलने वाली आर्थिक सहायता या उनके द्वारा बाजार से लिए जाने वाले ऋणों और वित्तीय संस्थाओं से लिए जाने वाले ऋणों को छोड़कर अन्यत्र कहीं से कोई विशेष आर्थिक सहायता मिलने की संभावना नहीं होती।

जिला और निचले स्तर की योजनाएं

11.42 संभवत: किसी राज्य में अभी भी छोटी-मोटी वास्तविक जिला स्तर की या निचले स्तर की योजनाएं भी तैयार की जाती हैं। इस संबंध में पंजाब में लगभग वही स्थिति है जैसी देश के किन्हीं अन्य भागों में है। यहां पर जिला-योजना बोर्ड है किन्तु जिला-योजनाएं नहीं हैं। इसी प्रकार से खण्ड-योजना समितियां हैं किन्तु खंड योजनाएं (ब्लॉक प्लान) नहीं है। जिला-योजना बोर्ड (डी०पी०बी०) का अध्यक्ष, उपायुक्त होता है और सदस्य-सचिव, जिला सांख्यिकीय अधिकारी होता है। खंड योजना समिति (बी०पी०सी०) का अध्यक्ष उप-प्रभागीय मजिस्ट्रेट होता है और उसका सदस्य-सचिव, खण्ड विकास अधिकारी होता है। जिला योजना बोर्ड और खण्ड योजना समितियां योजना बनाने संबंधी कोई कार्य नहीं करती हैं। ये गैर-योजना कार्य करने वाली समितियां हैं—ऐसी संस्थाएं जो पंजाब या इसी तरह के राज्यों तक ही सीमित नहीं हैं। इनका कार्य राज्य योजनाओं की विभाज्य स्कीमों की समीक्षा और परिवीक्षा तक ही सीमित होता है और वे केवल किसी विशेष जिले या खण्ड में ही लागू की जाने वाली स्कीमों की समीक्षा और परिवीक्षा करती हैं। इस प्रयोजन के लिए विभाज्य राज्य-योजना/स्कीमों के जिलावार वितरण का लेखा-जोखा राज्य-योजना विभाग द्वारा तैयार किया जाता है और जिलों को उपलब्ध कराया जाता है।

11.43 योजना आयोग द्वारा जिला स्तर पर और निचले स्तर पर बनाये जाने वाली योजनाओं में रुचि लेने के बावजूद इस दिशा में बहुत कम प्रगति हुई है क्योंकि ऐसी योजनाओं के लिए पूर्वापेक्षित साधन उपलब्ध नहीं हैं। ये इस प्रकार हैं :—

(i) सरकार में एक ऐसा विभाग ऐसा होना चाहिए जो विकास संबंधी कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए वास्तव में स्वतंत्र हो। ये विकासकार्य योजना के उसी क्षेत्राधिकार के अंतर्गत होंगे।

(ii) सरकार के पास इस स्तर पर अपने विकास संबंधी कार्यों के वित्त-पोषण के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध अवश्य होने चाहिए।

(iii) सरकार के स्तर पर विकास कार्यों की योजना बनाने में वास्तविक रुचि अवश्य होनी चाहिए।

(iv) इन विकास कार्यों की योजना बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए एक उपयुक्त संगठन अवश्य होना चाहिए।

11.44 दूसरे शब्दों में, जिला और निचले स्तर पर योजना बनाने का कार्य लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और राज्यों में योजना-कार्य में आस्था के साथ जुड़ा हुआ है। वर्तमान में उनमें से कोई भी शर्त पूरी नहीं की जा रही है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि राज्य स्तर से नीचे योजना के कार्य की अभी वास्तविक शुरुआत नहीं हुई है।

(8) योजना संगठन

11.45 योजना संगठन के अनेक भाग हैं। इसके शीर्ष पर राष्ट्रीय विकास परिषद् है। केंद्र में योजना आयोग है। यह आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद् के सचिवालय का कार्य करता है और संपूर्ण योजना-कार्य में उसकी मुख्य भूमिका होती है। राज्य स्तर पर राज्य योजना विभाग और राज्य-योजना बोर्ड/कमीशन हैं। इसके निचले स्तर पर अर्थात् जिला और निचले स्तरों पर योजना बोर्ड, समितियां और इसी प्रकार के अन्य निकाय हैं।

राष्ट्रीय विकास परिषद्

11.46 राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन०डी०सी०) केन्द्र द्वारा एक कार्यकारी निर्णय के अंतर्गत स्थापित एक असांविधिक निकाय है। इसके अत्यंत महत्वपूर्ण सदस्यों में प्रधान मंत्री (जो इसके अध्यक्ष हैं) हैं और उपाध्यक्ष तथा योजना आयोग के सदस्य केंद्रीय मंत्री (केबिनेट स्तर के) और राज्य के मुख्य मंत्री हैं। योजना आयोग एक सचिवालय का कार्य करता है और अपनी कार्य सूची तैयार करता है।

11.47 राष्ट्रीय विकास परिषद् का कार्य योजना तैयार करने की प्रक्रिया में वास्तविक भूमिका के बजाए प्रतीकात्मक अधिक है। इसकी बैठकें बहुत ही कम होती हैं यहां तक कि कई सालों में एक बार भी नहीं होती हैं। कार्य सूची के कागजात प्राय: राज्यों की राजधानी में बैठक से केवल कुछ ही दिन पूर्व पहुंचते हैं जब उनको देखने का बहुत कम समय रह जाता है और उन कागजात को ठीक प्रकार से जांच का प्रश्न ही नहीं उठता। दो दिनों के सत्र (जो प्राय: डेढ़ दिन का होता है) का अधिकांश समय प्रधान मंत्री और योजना आयोग के उपाध्यक्ष के उद्घाटन भाषणों और समापन भाषणों तथा राज्यों के मुख्य मंत्रियों के लिखित और मुद्रित भाषणों में ही चला जाता है। बैठक की कार्यसूची की मदों पर ध्यान दिए बिना ही मुख्य मंत्री के भाषण का अधिकांश भाग सामान्य रूप से राज्य की शिकायतों और मांगों को बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करने से संबंधित होता है। प्राय: कोई उल्लेखनीय चर्चा नहीं होती। यद्यपि यह माना जाता है कि योजनाओं विशेषकर पंचवर्षीय योजनाओं को वास्तव में अनुमोदन प्रदान करने का अंतिम प्राधिकार राष्ट्रीय विकास परिषद् को ही है। किन्तु उसके पास योजना आयोग द्वारा तैयार किए गए दस्तावेज को अनुमोदित करने के सिवाए और कोई अन्य विकल्प नहीं होता। योजना का स्वरूप ही ऐसा है कि वह एक अत्यंत उच्च स्तरीय विकास कार्यक्रम होता है। उसके किसी भाग में कोई बड़ा परिवर्तन करने से उसके संपूर्ण कार्यक्रम में व्यवधान आ सकता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक प्राय: उस समय योजना का अनुमोदन करने के लिए बुलाई जाती है जब कि उसको (योजना को) एक अंतिम रूप दे दिया गया होता है। इस अवस्था में राष्ट्रीय विकास परिषद् के लिए योजना में कोई मूल परिवर्तन करने का सुझाव देना संभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त योजना का दस्तावेज केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद ही राष्ट्रीय विकास परिषद् को प्रस्तुत किया जाता है। अत: योजना के इस दस्तावेज को केंद्र सरकार का पूर्ण समर्थन प्राप्त होता है। मुख्य मंत्रियों में भी अब तक तो अधिकांश मुख्य मंत्री केन्द्र के सत्तारूढ़ दल के ही रहे हैं। ये मुख्य मंत्री योजना के इस दस्तावेज का सदैव समर्थन करते हैं, भले ही वे उसके संबंध में कोई आलोचनात्मक टिप्पणियां करें। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा इसका अनुमोदन करना एक विशुद्ध औपचारिकता होती है और एक पूर्ण निर्धारित निर्णय होता है। इस अनुमोदन का केन्द्र के लिए अत्यधिक राजनीतिक महत्व होता है। इससे योजना के समर्थन में एक राष्ट्रीय सहमति की सामान्य धारणा बनती है जो कि अनिवार्य रूप से योजना आयोग का ही कार्य होता है और केन्द्र का इसमें सामान्य योगदान ही होता है।

11.48 जब योजना के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए पंचवर्षीय योजना का प्रारूप अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रीय विकास परिषद् उसको अंतिम रूप से तैयार करने में अधिक सार्थक भूमिका अदा कर सकती है। योजना के इस प्रारूप में विकास कार्यों के संबंध में प्रस्तावित व्यापक निर्देशों और मुख्य आयामों तथा तत्संबंधिनीति का उल्लेख होता है और इस दस्तावेज में योजना का अंतिम रूप नहीं दिया गया होता है। इस अवस्था में इसमें अवश्य परिवर्तन किए जा सकते हैं किन्तु राष्ट्रीय विकास परिषद् का गठन और कार्यविधि इस प्रकार की है कि उसमें कोई परिवर्तन करने की गुंजाइश नहीं रहती। योजना के दस्तावेज के प्रारूप पर विचार करने के लिए आयोजित राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक उसी तरह से होती है जैसे पूरी तरह से तैयार की गई योजना का अनुमोदन करने के लिए बुलाई गई बैठक होती है। इस समय भी मुख्य मंत्री ऐसे मुद्रित भाषण पढ़ते हैं जिनका अधिकांशतः योजना के दस्तावेज से कोई संबंध नहीं होता। पुनः केन्द्र सरकार और सत्तारूढ़ दल के मुख्य मंत्रियों के समर्थन से यह सुनिश्चित हो जाता है कि योजना दस्तावेज का अनुमोदन अवश्य हो जाए। यदि अनेक मुख्य मंत्रियों विशेष रूप से केन्द्र सरकार के विरोधी दलों के मुख्य मंत्रियों को योजना के प्रस्तावों के विभिन्न पक्षों पर विशेष आपत्ति हो तो भी राष्ट्रीय विकास परिषद् अपनी बैठक में योजना को अनुमोदन प्रदान करके योजना आयोग और केन्द्र सरकार की ऐसी सुदृढ़ स्थिति बना देती है जिससे वह अपने पक्ष में राष्ट्रीय सहमति का दावा कर सकते हैं। चूंकि प्रेस को राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक से बाहर रखा जाता है इसलिए समाचार पत्र योजना संबंधी समाचार को उसी रूप में प्रकाशित करते हैं जिस रूप में योजना आयोग यह समाचार देता है। परिषद् की बैठक में यदि योजना के प्रारूप की कोई आलोचना भी की जाती है तो भी उसका उसमें कोई उल्लेख नहीं होता।

11.49 यद्यपि राष्ट्रीय विकास परिषद् को योजना संरचना का एक मुख्य शीर्षस्थ संगठन समझा जाता है किन्तु यह परिषद् योजना तैयार करने की प्रक्रिया में कोई प्रभावकारी भूमिका अदा नहीं करती है। इसका मुख्य कार्य तो देश के विकास कार्यों पर तथा उन कार्यों पर जो संविधान के अधीन राज्य के क्षेत्राधिकार में होते हैं, अपने प्रमुख के लिए राष्ट्रीय स्वीकृति और समर्थन प्राप्त करने के लिए योजना आयोग और केन्द्र की सहायता करना है। योजना तैयार करने की प्रक्रिया में केन्द्र का जो प्रभुत्व रहा है वह केन्द्र के पास एक मुख्य अस्त्र है जिससे वह राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप कर सकता है।

योजना आयोग

11.50 योजना आयोग केंद्र सरकार द्वारा एक कार्यकारी निर्णय के अनुसार स्थापित एक असांविधिक निकाय है। इसका एक संस्था के रूप में अस्तित्व केंद्र सरकार की एक मात्र इच्छा पर ही होता है, जो (केंद्र सरकार) उसके गठन, कार्यों और उसमें कर्मचारियों के नियोजन के स्वरूप का निर्धारण करती है। राज्य सरकारों का इस मामले में कोई भी हस्तक्षेप नहीं होता। योजना आयोग के सदस्यों में प्रधान मंत्री (जो आयोग का अध्यक्ष होता है), पूर्णकालिक उपाध्यक्ष तथा अन्य सदस्य और अंशकालिक सदस्यों के रूप में अनेक केन्द्रीय मंत्री भी होते हैं (जिनमें वित्त मंत्री अवश्य शामिल होता है)। यदि केंद्रीय योजना मंत्री कैबिनेट रैंक का ही तो उसकी नियुक्ति उपाध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि वह राज्य मंत्री हो तो संसद के प्रश्नों का उत्तर देने के सिवाय उसका कोई अन्य कार्य नहीं होता है। पूर्ण कालिक सदस्यों की सामान्य कार्य-अवधि पांच वर्ष है किंतु इसे केंद्रीय मंत्रि-परिषद् की इच्छानुसार किसी भी समय समाप्त किया जा सकता है। यह व्यवस्था अनिवार्यतः सदस्यों की राजनीतिक हैसियत को ध्यान में रखते हुए की गई है। उपाध्यक्ष का दर्जा एक केन्द्रीय कैबिनेट मंत्री का होता है जब कि अन्य पूर्ण कालिक सदस्यों का दर्जा केन्द्रीय राज्य मंत्री का होता है। उपाध्यक्ष योजना आयोग का कार्यकारी प्रमुख होता है। प्रधान मंत्री केवल कुछ अवसरों पर ही (सामान्यतया वर्ष में दो या तीन बैठकों में ही) योजना आयोग की बैठकों की उस समय अध्यक्षता करता है जब आयोग की "पूरी" बैठक का आयोजन किया जाता है और मंत्री-सदस्य भी उपस्थित होते हैं। अन्य बैठकों की अध्यक्षता उपाध्यक्ष द्वारा की जाती है। पूर्णकालिक या अंशकालिक सदस्यों की कोई निश्चित संख्या नहीं है, न ही पूर्णकालिक सदस्यों के लिए कोई अर्हताएं निर्धारित की गई हैं। इससे पूर्व अनेक विख्यात विशेषज्ञ इसके पूर्णकालिक सदस्य रह चुके हैं और जो राजनीतिज्ञ, आयोग के सदस्य रह चुके हैं वे इतने विख्यात नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भूतपूर्व उच्च अधिकारी तथा प्रौद्योगविद् भी इसके सदस्य रह चुके हैं। आयोग के वरिष्ठ अधिकारी, अखिल भारतीय और केन्द्रीय सेवाओं (भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय अर्थ सेवा, भारतीय सांख्यिकीय सेवा) आदि से लिए जाते हैं या इनमें गैर-संवर्ग के व्यावसायिक और तकनीकी व्यक्ति भी शामिल होते हैं। कभी कभी किसी प्रभावशाली स्वतंत्र लेखक को भी इसमें शामिल किया जाता है। योजना आयोग के वरिष्ठ पदों पर नियुक्त किए गए प्रशासक प्रायः अन्यत्र विशिष्ट पद प्राप्त करने के लिए योजना आयोग का उपयोग एक प्रतीक्षालय के रूप में करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों की संख्या काफी अधिक है। इससे योजना-कार्यों की दक्षता पर और भी अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। योजना आयोग में सभी स्तरों पर उच्च वेतन प्राप्त निष्क्रिय और असमन्वित अधिकारियों की संख्या उतनी ही अधिक है जितनी कि अन्य सरकारी विभागों में होती है।

11.51 केन्द्रीय मंत्रालय धीरे-धीरे योजना आयोग से स्वतन्त्र होते जा रहे हैं। केन्द्रीय मंत्रालय की तुलना में योजना आयोग की भूमिका, विकास संबंधी निर्णय करने के बजाए उन निर्णयों को दर्ज करने और उन्हें केंद्रीय क्षेत्र की योजना के निर्णयों के रूप में घोषित करने तक ही सीमित रह गई है जिससे केन्द्र सरकार को प्रसन्नता ही होती है। सामान्यतः कोई केन्द्रीय मंत्रालय योजना आयोग के पास परामर्श और अनुमोदन के लिए तभी आता है जब उसे वित्त मंत्रालय या किसी अन्य मंत्रालय के विरुद्ध आयोग के समर्थन की आवश्यकता होती है या वह अपने प्रस्ताव का अनुमोदन मंत्रि-परिषद् से कराना चाहता है, अन्यथा वह (मंत्रालय) योजना आयोग के किसी प्रकार के हस्तक्षेप से अप्रसन्न होता है। राज्य योजनाएं तैयार करने के संबंध में योजना आयोग केन्द्र सरकार की एक प्रभावकारी नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण एजेंसी है। यह ऐसी भूमिका है जिससे योजना आयोग के स्टाफ के लिए काफी काम हो जाता है और जिसके कारण यह संस्था केन्द्र सरकार की एक अनिवार्य अंग बन जाती है।

11.52 योजना आयोग के अधिकांश तकनीकी कार्य को सुविधानुसार "गोपनीय" या "गुप्त" बताकर जनता को इसकी जानकारी नहीं दी जाती है। इस प्रकार के बहानों का उपयोग वास्तविक जीवन में प्रायः कुरूप और घटिया बातों को छिपाने के लिए किया जाता है और सुन्दर तथा उत्कृष्ट बातों के लिए नहीं। इसके परिणामस्वरूप योजना संकल्पनाओं और तकनीकों में उन्नति की गति और भी कम हो जाती है। योजना आयोग को पूंजीनिवेश की योजना तैयार करने के लिए निवल के स्थान पर सकल पूंजी को आधार बनाने में बीस वर्ष लग गए।

राज्य योजना बोर्ड

11.53 राज्य स्तर पर योजना का जो भी कार्य किया जा रहा है वह योजना एवं अन्य विभागों द्वारा किया जा रहा है। राज्य योजना बोर्डों का अस्तित्व एक प्रभावकारी परिचालन एजेंसी के रूप में न होकर नाम मात्र का ही है। उनके "न जीवित में, न ही मृत में" होने का कारण प्रायः राज्य अधिकारी तंत्र द्वारा यह बताया जाता है कि योजना आयोग का राज्यों में योजना बनाने की प्रक्रिया पर पूर्ण प्रभुत्व है और योजना बोर्डों के पास इस दिशा में कार्य करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। यह वस्तुतः राज्य-योजना बोर्डों के लिए एक वास्तविकता न होकर कल्पना मात्र है। राज्यों के पास योजना बनाने के क्षेत्र में जो भी कार्य शेष है वह योजना बोर्डों के लिए उतना ही दुर्लभ है। राज्य स्तर पर योजना तैयार करने के संबंध में बोर्डों की जो प्रभावहीन व निष्क्रिय स्थिति है उसके लिए उत्तरदायी कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारण भी है जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

(1) राज्य स्तर पर सभी वित्तीय योजनाओं पर वित्त विभाग का एकाधिकार होता है। वित्त विभाग इस क्षेत्र में योजना विभाग से भी किसी प्रकार का परामर्श नहीं लेता। योजना के लिए राज्य के साधनों के संबंध में योजना आयोग से विचार-विमर्श करना वित्त विभाग की जिम्मेदारी है। इस संबंध में योजना विभाग से विचार-विमर्श करने के लिए राज्य के साधनों के प्राक्कलन भी वित्त विभाग द्वारा ही तैयार किए जाते हैं और वह इस कार्य में भी योजना विभाग का कोई सहयोग नहीं लेता। विचार-विमर्श के दौरान योजना बोर्ड का प्रतिनिधित्व सामान्य रूप से एक बीच के स्तर के अधिकारी द्वारा किया जाता है जो इस बैठक में केवल एक प्रेक्षक का कार्य ही करता है। वह इस विचार-विमर्श में अपना कोई

सहयोग प्रदान करने की स्थिति में नहीं होता है। योजना बोर्ड को इस बात की कोई जानकारी नहीं होती है कि बैठक में किन बातों पर विचार-विमर्श किया जा रहा है और इस विचार-विमर्श का कार्यवृत्त उन्हें दिखाए जाने तक उनको यह भी पता नहीं होता कि उसका क्या परिणाम रहा है।

न ही योजना बोर्ड को और यहां तक कि योजना विभाग को भी राज्य-योजनाओं के वित्तीय पक्ष के बारे में होने वाले अन्य परिवर्तनों की कोई जानकारी दी जाती है। ऐसी स्थिति में हमें इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि राज्य की वार्षिक योजना में योजना के संबंध में वित्तीय साधनों का कोई भी उल्लेख नहीं किया गया है। यह सूचना बजट के कागजात में अत्यन्त संक्षेप में ही उपलब्ध होती है। इस प्रकार राज्य की योजना के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष को योजना-बोर्ड और यहां तक कि योजना विभाग के कार्यक्षेत्र से बिल्कुल बाहर रखा जाता है।

(2) योजना बोर्ड एक विशिष्ट योजना एजेंसी न होकर मंत्रियों और सचिवों की एक समिति है। यह सही है कि मुख्य मंत्री इस बोर्ड का अध्यक्ष होता है किन्तु इसमें सामान्यत: निम्नलिखित में से कुछ व्यक्ति भी शामिल होते हैं, वित्त मंत्री, योजना मंत्री, कुछ अन्य मंत्री, मुख्य सचिव, विकास आयुक्त, वित्त सचिव, योजना सचिव और कुछ अन्य सचिव भी। इस प्रकार योजना आयोग के विपरीत इस बोर्ड के सदस्यों में अनेक सेवारत प्रशासक भी शामिल होते हैं। कभी-कभी किसी हारे हुए, कमजोर या बिगड़ैल राजनीतिज्ञ को भी किसी न किसी तरह बोर्ड के उपाध्यक्ष के रूप में बोर्ड में शामिल कर लिया जाता है। इसमें कुछ गैर सरकारी अल्पकालिक सदस्य भी होते हैं। ऐसी कोई स्वीकृत परंपरा नहीं है कि उसमें ऐसे पूर्णकालिक सदस्य होने चाहिए जो पहले भी ऐसा कार्य करते रहे हों। पंजाब में पहली बार अकाली सरकार ने बोर्ड में एक पूर्णकालिक उपाध्यक्ष तथा तीन पूर्णकालिक सदस्यों की नियुक्ति की है। इस परिवर्तन के परिणामों का मूल्यांकन करना अभी उचित नहीं होगा। अंशकालिक सदस्यों का योजना बनाने की प्रक्रिया से बहुत कम संबंध रहता है और उनका सरोकार वर्ष में होने वाली बोर्ड की कुछ बैठकों में भाग लेने तक और उनके लिए शुल्क प्राप्त करने तक ही सीमित रहता है।

(3) विभिन्न विभाग स्पष्टत: योजना विभाग से ही संपर्क रखना चाहते हैं योजना बोर्ड से नहीं। विभाग के योजना संबंधी प्रस्तावों पर विभाग के साथ कथित द्विपक्षीय विचार-विमर्श योजना विभाग द्वारा किया जाता है बोर्ड द्वारा नहीं, उस समय भी नहीं जबकि बोर्ड में पूर्णकालिक सदस्य हों। योजना विभाग को ही विकास संबंधी महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में अन्तर्विभागीय बैठकों में भाग लेने के लिए बुलाया जाता है और योजना बोर्ड के किसी भी प्रतिनिधि को नहीं बुलाया जाता। योजना आयोग के सचिव के लिए बोर्ड के सदस्यों को सूचित किए बिना ही विकास संबंधी विभिन्न समस्याओं को लेकर हर रोज ऐसी अनेक बैठकों में भाग लेना कोई असामान्य बात नहीं है। बोर्ड के कर्मचारियों का कार्य आवश्यकतानुसार इन बैठकों के लिए योजना सचिव के लिए संक्षिप्त टिप्पणियां तैयार करने तक सीमित होता है (ऐसा अवसर बहुत कम आता है)।

(4) योजना आयोग योजना विभाग के साथ सम्पर्क रखता है, योजना बोर्ड के साथ नहीं। यह आयोग योजना बोर्डों की स्थापना के लिए और उन्हें मजबूत बनाने के लिए राज्यों को आर्थिक सहायता देता है, किन्तु स्वयं उनसे कोई संबंध रखना उचित नहीं समझता। योजना विभाग को ही राज्यों के योजना प्रस्तावों के संबंध में कार्यशील समूह के साथ विचार-विमर्श के लिए बुलाया जाता है। योजना विभाग ही बोर्ड को सूचित किए बिना विचार-विमर्श की इन बैठकों का आयोजन करता है और इनमें भाग लेता है। योजना बोर्ड इस बीच योजना बनाने की प्रक्रिया से अलग रहता है।

(5) जो प्रशासक बोर्ड के गैर सरकारी सदस्यों की, चाहे वे पूर्णकालिक हों या अंशकालिक, वास्तविक हैसियत (औपचारिक हैसियत से भिन्न) जानते हैं, वे उनकी उपेक्षा करते हैं और उनके द्वारा दी गई किसी टिप्पणी को अपने काम में अनावश्यक हस्तक्षेप मानकर उसका विरोध करते हैं और उसको कोई महत्व नहीं देते।

(6) योजना तैयार करते समय सामान्यत: बोर्ड को उस समय राय दी जाती है जब राज्य योजना तैयार करने का कार्य पूरा हो चुका होता है। मात्र समर्थन प्राप्त करने के लिए ही बोर्ड से किसी योजना का अनुमोदन करने के लिए कहा जाता है, जो पहले ही छप चुकी होती है और जारी किए जाने के लिए तैयार होती है और बैठक में सदस्यों द्वारा दी गई राय के अनुसार उसमें कोई परिवर्तन करना संभव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में बोर्ड का अनुमोदन एक विशुद्ध औपचारिकता ही होती है।

(7) योजना बनाने की प्रक्रिया में बोर्ड कोई महत्वपूर्ण योगदान न कर सके, इसके लिए प्राय: जो नीति अपनायी जाती है उसके अन्तर्गत उसे राज्य के दीर्घकालिक विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करने का काम सौंप दिया जाता है। बोर्ड के गैर-सरकारी सदस्य प्राय: उनके इस झांसे में नहीं आते।

(8) सामान्य रूप से मंत्रीगण योजना बोर्ड को कोई महत्व नहीं देते। अभी तक राज्य स्तर पर योजना बनाने की परंपरा का पर्याप्त विकास नहीं हो पाया है। मंत्रीगण अपनी छवि बनाने के लिए लोगों से सभी तरह के वायदे करते रहते हैं और कभी कभी तो वे योजना-नीतियों और प्रावधानों की सीमाओं को भी लांघ जाते हैं। अत: उनका सभी योजना एजेंसियों को अनावश्यक भार समझना स्वाभाविक ही है। वे योजना विभाग के कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकते क्योंकि ये अब सामान्य प्रशासनिक स्थापना का एक भाग है। योजना बोर्ड की स्थिति इतनी अधिक अच्छी नहीं है। उसे मंत्रियों के क्रोध का शिकार होना पड़ता है।

11.54 1972-73 से राज्य-योजना तंत्र को मजबूत बनाने के लिए एक केन्द्रीय प्रायोजित स्कीम चलायी जा रही है। इस स्कीम के अंतर्गत राज्यों द्वारा अपने योजना बोर्डों और योजना-विभागों को मजबूत बनाने के लिए किए जाने वाले व्यय की दो तिहाई राशि की केन्द्र द्वारा अनुमोदित सीमा के अन्तर्गत प्रतिपूर्ति की जाती है। पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर इस स्कीम के अन्तर्गत नियुक्त अतिरिक्त कर्मचारियों के अनुरक्षण पर होने वाला व्यय राज्य का प्रतिबद्ध दायित्व बन जाता है। इसे स्कीम से प्रोत्साहित होकर ही सिक्किम को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में "शीर्षस्थ योजना निकायों" (एकमेव) के रूप में राज्य-योजना बोर्डों/आयोगों की स्थापना की गई है। इन बोर्डों/आयोगों की वास्तविक स्थिति और सार्थकता का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसका एक कारण यह है कि इस विषय पर केन्द्र ने जो मार्ग निर्देश दिए हैं वे अपर्याप्त व अनुपयुक्त हैं और राज्य और निचले स्तरों पर योजना बनाने संबंधी कठिनाइयों की उपेक्षा करते हुए दिए गए हैं। केन्द्र के लिए यह उचित होगा कि वह योजना तंत्र को मजबूत बनाने का काम राज्यों पर ही छोड़ दे ताकि वे अपनी आवश्यकताओं और समझ के अनुसार योजना-तंत्र को और मजबूत बना सकें। केन्द्र ने छठी योजना के पांच वर्षों में सभी 22 राज्यों* के लिए केवल 2.68 करोड़ रुपए का अंशदान ही दिया है और योजना-अवधि की समाप्ति के बाद केन्द्र की इस सहायता के परिणामस्वरूप होने वाला सम्पूर्ण प्रतिबद्ध व्यय हर हालत में राज्य सरकार को ही वहन करना होगा। यदि राज्य इसके महत्व को समझें तो उनके लिए इस व्यय को वहन करना कोई मुश्किल काम नहीं है।

11.55 यह एक वास्तविकता है कि राज्य योजना बोर्ड अधिकांश मामलों में एक विशेषीकृत योजना-एजेंसी के रूप में कार्य नहीं करते और ये अधिकांशत: प्रभावहीन होते हैं, और राज्य स्तर के योजना-कार्यों के लिए इसके अनेक अवांछनीय परिणाम हुए हैं। इनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है:—

(i) राज्य योजना में केवल सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं और कार्यक्रमों को एकत्र किया जाता है और इसमें पूरे राज्य की अर्थव्यवस्था के संदर्भ में राज्य के स्वाभाविक विकास का कोई उल्लेख नहीं होता और इसके एक भाग में अनिवार्य योजना का विवरण होता है और शेष भाग में विवेकपूर्ण निर्देशात्मक योजना का।

(ii) वित्तीय योजना सामान्य बजट बनाने की प्रक्रिया का एक भाग ही होती है। इसमें राज्य की अर्थव्यवस्था के उस भाग के संबंध में वित्तीय विचारों या व्यवस्थाओं का अभाव होता है जिसे निर्देशात्मक योजना के अन्तर्गत शामिल किया जाना चाहिए।

(iii) अन्तर्विभागीय और अन्तर-परियोजना स्तर पर निधियों का आबटन प्राय: विभागीय सचिवों की सापेक्ष वरिष्ठता और हैसियत, मंत्रियों के राजनीतिक प्रभाव और विभिन्न विभागों के योजना विभाग के साथ संबंधों की स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाता है न कि

*सातवीं पंचवर्षीय योजना—1985-90, खंड II पैरा 20·15, पृष्ठ 405.

विभिन्न विभागों द्वारा राज्य की विकास संबंधी प्राथमिकताओं के संबंध में प्रस्तुत की गई परियोजनाओं और कार्यक्रमों के सापेक्ष महत्व को ध्यान में रखकर ।

(iv) जब विभागों द्वारा निधियों के पुनर्विनियोजन के लिए या अपनी परियोजनाओं या कार्यक्रमों के लिए अतिरिक्त निधियों के लिए अनुरोध किया जाता है तो वित्त विभाग हमेशा इस बात पर जोर नहीं देता है कि विभागीय प्रस्तावों के संबंध में योजना एजेंसियों से पूर्व स्वीकृति अवश्य प्राप्त की जाए । इस प्रकार यह संभव है कि इन निधियों का अन्तर्विभागीय और परियोजना संबंधी अंतिम रूप से जो आबंटन किया जाए वह मूल रूप से सम्मत निधियों के आबंटन से सर्वथा भिन्न हो और योजना-एजेंसी को इन परिवर्तनों की जानकारी बाद में प्राप्त हो ।

(v) योजना में परियोजनाओं और कार्यक्रमों पर ही जोर दिया जाता है अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के वास्तविक पक्ष पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है । योजना बनाते समय विकास के संबंध में एक पर्याप्त, उपयुक्त और यथार्थपूर्ण और आन्तरिक स्तर पर संगत नीति बनाने के संबंध में कोई ध्यान नहीं दिया जाता। राज्य सरकार द्वारा पूरी योजना-अवधि के दौरान सभी नीति निर्णय प्राय: अस्थायी आधार पर ही लिये जाते हैं ।

(vi) अनुवर्ती योजना अवधियों के दौरान राज्य स्तर पर योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने की संकल्पना और विधियों में कोई नई बात या सुधार दिखाई नहीं देता हैं ।

(vii) राज्य स्तर पर उपयुक्त रूप से योजना बनाने और कार्यान्वित करने, उस पर निगरानी रखने और उसका मूल्यांकन करने से संबंधित आंकड़ों की स्थिति ठीक नहीं है क्योंकि योजना एजेंसी अधिक व्यापक और अद्यतन आंकड़ों की कोई मांग नहीं करते । योजना और सांख्यिकी संगठन दोनों ही सामान्यत: वर्षानुवर्ष और एक योजना के बाद दूसरी योजना का कार्य रुढ़िबद्ध तरीके से करते रहते हैं ।

(viii) राज्य के विभिन्न विभागों, सार्वजनिक और निजी उद्यमों और शैक्षिक संस्थाओं में काम करने वाले तकनीकी और व्यावसायिक कार्मिकों को योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने में सुधार करने के लिए कोई योगदान करने का कोई अवसर नहीं दिया जाता । इसके परिणामस्वरूप, राज्य स्तर पर योजना का काय मुख्य रूप से अधिकारी तंत्र तक ही सीमित रहता है ।

9. योजना के कार्यान्वयन पर निगरानी रखना और उसका मूल्यांकन करना

11.56 निगरानी रखने का काम अनिवार्यत: योजना-कार्यान्वयन का ही एक भाग है । प्रत्येक कार्यान्वयन एजेंसी के पास निगरानी रखने का एक संगठन अवश्य होना चाहिए और उसकी एक निर्धारित कार्यविधि होनी चाहिए। उसे अपेक्षित सूचना यथासमय और ऐसे रूप में मिलनी चाहिए जिससे वह कार्यान्वयन की किसी त्रुटि को शीघ्र कार्रवाई करके ठीक कर सके । यह देखा गया है कि कार्यान्वयन की गलती को ठीक करने की कार्रवाई शीघ्र और प्रभावकारी तरीके से नहीं की जाती जिसका परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बहुत कम कार्यक्रम यथासमय और मूल लागत अनुमानों के अन्तर्गत ही कार्यान्वित किए जाते हैं और उनके आशातीत परिणाम भी प्राप्त नहीं होते, जिससे यह पता चलता है कि केन्द्र और राज्य की कार्यान्वयन एजेंसियां कार्यान्वयन की निगरानी की कुशल और प्रभावकारी व्यवस्था नहीं कर पाती । यद्यपि यह सच है कि सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं और कार्यक्रमों के निर्बाध कार्यान्वयन के लिए इन एजेंसियों को प्राय: पर्याप्त निधियां स्वीकृत नहीं की जाती या उन्हें जन शक्ति और सामग्री की अपनी आवश्यकताओं के संबंध में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है जिसका मुख्य कारण अन्य बातों के साथ-साथ कार्यविधि संबंधी ऐसे प्रतिबंध होते हैं जिनके अधीन सार्वजनिक क्षेत्र की एजेंसियों को कार्य करना पड़ता है किन्तु इस संबंध में तत्काल कोई निवारक उपाय नहीं किए जा सकते । इसके परिणामस्वरूप कार्यान्वयन पर कुशलतापूर्वक निगरानी रखने का महत्व काफी कम हो जाता है । यदि योजना के कुशल कार्यान्वयन के लिए प्रभावकारी निगरानी से लाभ उठाना हो तो बहुत अधिक परियोजनाओं और कार्यक्रमों के लिए आर्थिक साधनों के वितरण से बचना होगा और इससे संबंधित कार्यविधि को भी सुव्यवस्थित रूप देना जरूरी होगा ।

11.57 योजना एजेंसियों के लिए दो कारणों से नियंत्रण रखने का काम महत्वपूर्ण है । कुछ योजना की परियोजनाओं और कार्यक्रमों का देर से कार्यान्वयन होने के कारण अर्थव्यवस्था में कोई असंतुलन की स्थिति होने की यथासमय सूचना देने से सुधारात्मक और निवारक उपाय करने में सहायता मिलती है और इससे अर्थव्यवस्था को बिना किसी रुकावट के विकसित किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त इन एजेंसियों के लिए अगली योजना तैयार करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में आधार वर्ष की अद्यतन स्थिति का पूर्वानुमान लगाना जरूरी होगा । इन एजेंसियों को योजना की परियोजनाओं और कार्यक्रमों की प्रगति के संबंध में प्राय: कार्यान्वयन एजेंसियों से सूचना प्राप्त होती है । किन्तु कभी-कभी वे इन एजेंसियों के सहयोग से स्वयं ही समस्याओं का समाधान कर लेते हैं ।

11.58 परियोजनाओं और कार्यक्रमों को योजना में शामिल करने के लिए पहले उनका मूल्यांकन करना योजना बनाने की प्रक्रिया का एक अंग है, चूंकि प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यांकन करते समय बड़ी विकट समस्याएं सामने आती हैं अत: यह कार्य विशेष रूप से संबंधित प्रभाग को करना चाहिए । किसी तथाकथित परियोजना मूल्यांकन प्रभाग के लिए सभी परियोजनाओं का मूल्यांकन करना संभव नहीं है । आर्थिक प्रभाव द्वारा विभिन्न मूल्यांकन के मूल मानदण्डों और तकनीकों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ।

11.59 परियोजनाओं और कार्यक्रमों को योजना में शामिल किए जाने से पहले उनका मूल्यांकन करने की उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि वस्तुपरक दृष्टि से कितनी परियोजनाओं और कार्यक्रमों को स्वीकृति प्रदान की जाती है । यदि योजनाओं और कार्यक्रमों का चयन मुख्य रूप से राजनीतिक या अन्य अतिरिक्त आर्थिक कारणों से या पूर्व अनुभवों के आधार पर किया जाता है तो वस्तुपरक मूल्यांकन की उपयोगिता उतनी ही कम होती जाती है । यह एक ऐसा मुख्य कारण है जिसके परिणामस्वरूप परियोजनाओं के मूल्यांकन का कार्य अभी भी योजना एजेंसियों में काफी अविकसित स्थिति में है । इसका एक अन्य मुख्य कारण यह है कि ऐसे विशुद्ध प्रशासक, जो प्राय: अनेक क्षेत्रीय प्रभागों के अध्यक्ष होते हैं, वैज्ञानिक मूल्यांकन के मानदण्डों और तकनीकों से परिचित नहीं होते ।

11.60 परियोजनाओं और कार्यक्रमों का कार्यान्वयन के बाद मूल्यांकन करना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है ताकि उससे प्राप्त अनुभव से भविष्य में लाभान्वित हुआ जा सके । विषय प्रभाग की इसमें कोई रुचि नहीं होती । इस कार्य के लिए केन्द्र में एक विशेषीकृत मूल्यांकन संगठन (कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन) है । राज्य में भी मूल्यांकन संगठन (प्राय: योजना विभाग या सांख्यिकी संगठन के भाग के रूप में) हैं। उनकी प्रभावात्मकता अत्यंत सीमित है। एक तो यह संगठन सामान्यत: केवल कृषि, ग्रामीण विकास और समाज सेवा के क्षेत्रों के कार्यक्रमों का मूल्यांकन करते हैं, किन्तु औद्योगिक और अन्य गैर कृषि-परियोजनाओं का नहीं । दूसरे ये संगठन सामान्यत: कार्यान्वयन विभागों की भांति व्यापार कार्यों के प्रति सचेत रहते हैं । उनकी मूल्यांकन रिपोर्ट अधिकांशत: निराधार, अस्पष्ट और सतही होती हैं और उनमें कोई गहराई या पैनापन नहीं होता । यह रिपोर्ट साधारणतया काफी विलम्ब के बाद तब उपलब्ध होती हैं जब उपयोगिता समाप्त हो चुकी होती है । राज्य मूल्यांकन संगठनों और राज्य में स्थित कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन के कर्मचारियों के बीच पर्याप्त समन्वय और सहयोग का अभाव होता है ।

11.61 यदि मूल्यांकन रिपोर्ट देने का कार्य किसी प्रतिष्ठित अनुसंधान संस्था को दे दिया जाए तो योजना की कुछ चुनी हुई परियोजनाओं और कार्यक्रमों के संबंध में बिना किसी रुकावट के और यथासमय मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त होने की संभावना हो सकती है । योजना संगठन के किसी सम्बद्ध संगठन द्वारा प्रभावकारी मूल्यांकन करना व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता । विशेष रूप से उस परिस्थिति में, जबकि किसी परियोजना या कार्यक्रम विशेष की योजना दोषपूर्ण तरीके से बनाए जाने के कारण उसके कुशल कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न हुई हो । उचित मूल्यांकन से यह अवश्य स्पष्ट होना चाहिए कि कोई परियोजना या कार्यक्रम कार्यान्वयन गलत ढंग से किया गया है, जिसके कारण देश उस लाभ से वंचित हो

सय जिसकी वह उस पर किए गए व्यय के कारण वैध रूप से आशा कर सकता था ।

10. योजना बनाने की प्रक्रिया का पुनर्गठन

11.62 यह सुनिश्चित करने के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया का पुनर्गठन करना आवश्यक है कि उससे राज्यों को अपने विकास कार्यों और नीति के निर्धारण के लिए अपने क्षेत्राधिकार की सीमा में उचित स्वतंत्रता प्राप्त हो, और उन्हें राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और विकास के मूल निर्देशों के निर्धारण के लिए भी केन्द्र के समान योगदान करने के अवसर प्राप्त हों । इसके लिए एक आवश्यक पूर्व शर्त यह है कि राज्यों की केन्द्र पर अत्यधिक आर्थिक निर्भरता की वर्तमान स्थिति को समाप्त किया जाए और उनको ऐसे अवसर प्रदान किए जाएं जिससे वे अपने विकास कार्यक्रमों का स्वयं वित्तपोषण करने के लिए पर्याप्त साधन जुटा सकें । ऐसा करने से आर्थिक रूप से अत्यन्त कमजोर कुछ राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों की योजना के लिए केन्द्रीय सहायता का कोई विशेष महत्व नहीं होगा । अध्याय 10 में दिए गए सुझाव इस पूर्व शर्त को पूरी करने के लिए ही दिए गए हैं । इन सुझावों को कार्य रूप देने से योजना बनाने की प्रक्रिया का पुनर्गठन किया जा सकेगा तथा केन्द्र और राज्यों के बीच अधिक संतुलन बनाए रखने को एक व्यावहारिक रूप दिया जा सकेगा । इस खंड में ऐसे पुनर्गठन के सुझाव दिए गए हैं ।

राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन

11.63 राष्ट्रीय विकास परिषद् के पुनर्गठन का उद्देश्य उसे योजना प्रक्रिया का एक मात्र प्रतीकात्मक शीर्षस्थ संगठन बनाने के बजाए उसे एक अधिक प्रभावी संगठन बनाना है । इस परिषद् को निम्नलिखित कार्य सौंपे जा सकते हैं :--

(i) दस वर्षीय विकास परिप्रेक्ष्य की योजना, पंचवर्षीय योजना और वार्षिक योजना बनाने के मार्गनिर्देशों का अनुमोदन करना ।

(ii) पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव का अनुमोदन करना ।

(iii) दस वर्षीय विकास परिप्रेक्ष्य योजना, पंचवर्षीय योजना और वार्षिक योजना के प्रारूप/अंतिम दस्तावेजों का अनुमोदन करना ।

(iv) राज्य योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता की मात्रा और वितरण की प्रणाली का अनुमोदन करना ।

11.64 राष्ट्रीय विकास परिषद् की सहायता के लिए राष्ट्रीय विकास संगठन के नाम से एक नया संगठन बनाया जा सकता हो । राष्ट्रीय विकास संगठन में योजना और विकास के क्षेत्र में विभिन्न विषयों के उच्च स्तरीय विशेषज्ञों तथा अनुसंधान और लिपिकीय कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए । इस संगठन को राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा नियुक्त एक समिति के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन रखा जा सकता है । राष्ट्रीय विकास परिषद् के अनुरक्षण का व्यय परस्पर सहमति से केन्द्र और राज्यों द्वारा वहन किया जाना चाहिए । राष्ट्रीय विकास संगठन को दस वर्षीय परिप्रेक्ष्य योजना, पंचवर्षीय योजना और वार्षिक योजना के संबंध में सभी दस्तावेज तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए और इन दस्तावेजों को राष्ट्रीय विकास परिषद् को अनुमोदनार्थ प्रस्तुत किया जाना चाहिए । ऐसा करते समय योजना आयोग द्वारा केन्द्रीय क्षेत्र के लिए और राज्य योजना बोर्डों द्वारा अपने-अपने राज्यों के क्षेत्रों के लिए तैयार की गई योजनाओं पर तथा इन संगठनों द्वारा तैयार की गई और अग्रेषित की गई तत्संबंधी सामग्री पर भी विचार किया जाएगा । यदि राष्ट्रीय विकास संगठन को क्षेत्रों की इन योजनाओं में अनुमोदित मार्गनिर्देशों से कोई भिन्न बात दिखाई पड़ी है तो वे योजनाएं इन संगठनों को वापस भेज दी जाएंगी । यद्यपि संबंधित योजना संगठन इन टिप्पणियों पर ध्यानपूर्वक विचार करेगा, किन्तु वह इन पर कार्रवाई अपने विवेकानुसार ही करेगा । राष्ट्रीय विकास परिषद् एक ऐसी स्थायी समिति बना सकती है जो योजना के दस्तावेजों पर विचार करने के लिए और उनको अनुमोदन प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक बुलाए जाने से पहले योजना के सभी दस्तावेजों के संबंध में एक सर्वसम्मत दृष्टिकोण तैयार करने का काम कर सकती है । स्थायी समिति या राष्ट्रीय विकास संगठन, राष्ट्रीय विकास परिषद् को योजना दस्तावेजों के संबंध में मतभेदों की सूचना देगा ताकि बैठक में उपस्थित देश के सभी राजनीतिक नेताओं के प्रभाव से इन मतभेदों को दूर किया जा सके ।

11.65 राष्ट्रीय विकास परिषद् के स्वरूप और कार्यों का पुनर्गठन किया जाना चाहिए ताकि वह योजना बनाने की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय भूमिका निभा सके । प्रधान मंत्री परिषद् के अध्यक्ष होंगे और वित्त मंत्री तथा कैबिनेट स्तर के अधिक से अधिक आठ केंद्रीय मंत्री, जिनके पास आर्थिक कार्यों के मामलों का कार्य हो, और सभी मुख्यमंत्री परिषद् के सदस्य होंगे । राष्ट्रीय विकास संगठन का अध्यक्ष राष्ट्रीय विकास परिषद् का सदस्य-सचिव होगा । यदि कोई नए राज्य बनाए जाते हैं तो हर दो नए राज्यों के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् एक अतिरिक्त केंद्रीय मंत्री को परिषद् का सदस्य बना सकती है ।

11.66 यद्यपि राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकें प्रायः की जा सकती हैं किन्तु सामान्य रूप से उसकी बैठक हर तीन मास में एक बार अवश्य होगी । साधारणतया यह बैठक दो दिन की होगी । आवश्यकतानुसार इसकी विशेष बैठकें भी की जा सकती हैं । अध्यक्ष चर्चा को विनियमित करेगा ताकि विचाराधीन विषयों पर सबका ध्यान केंद्रित किया जा सके । परिषद्, कार्यसूची में उल्लिखित मामलों पर सबकी सहमति प्राप्त करने का प्रयास करेगी । यदि यह संभव न हो तो परिषद् को दो तिहाई बहुमत से कोई निर्णय करेगी ।

योजना आयोग का पुनर्गठन

11.67 योजना आयोग का उत्तरदायित्व केंद्रीय क्षेत्र अर्थव्यवस्था तक सीमित होगा । केंद्रीय क्षेत्र को अनिवार्यता एक विशेषीकृत योजना एजेंसी की अपनी नई भूमिका के दक्षतापूर्वक निष्पादन के लिए योजना आयोग का निम्नलिखित आधार पर पुनर्गठन करना आवश्यक होगा :--

1. प्रधान मंत्री (आयोग के अध्यक्ष के रूप में) और वित्त मंत्री के अतिरिक्त परिषद् का कोई अन्य पदेन सदस्य नहीं होना चाहिए । योजना मंत्री की भूमिका और हैसियत के संबंध में वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता ।

2. आयोग में नियत पांच पूर्णकालिक सदस्य होने चाहिए । उनके अलग-अलग विभाग इस प्रकार हो सकते है : (i) योजना का आर्थिक और वित्तीय पक्ष (ii) कृषि और ग्रामीण विकास (iii) उद्योग (iv) आधारिक संरचना-क्षेत्र और सामाजिक सेवाएं ।

आयोग के सदस्य जिन-जिन क्षेत्रों के विशेषज्ञ हों उनको ध्यान में रखते हुए उनके विभागों में कुछ फेर-बदल करना उचित होगा । आयोग के कार्यकारी अध्यक्ष की हैसियत से उपाध्यक्ष, समन्वय कार्य करेगा । आयोग के सदस्य अपने-अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ हो सकते हैं, किन्तु उन्हें संकीर्ण विचारों का नहीं होना चाहिए । उनकी सार्वजनिक रूप से पर्याप्त प्रतिष्ठा होनी चाहिए और उनका दृष्टिकोण उदार होना चाहिए और उन्हें स्वीकृत विकास उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए । उन्हें पांच वर्ष की कार्य अवधि समाप्त होने से पहले सामान्यतः सदस्यता से नहीं हटाया जाना चाहिए । तकनीकी प्रभागों के वरिष्ठ पदों पर सामान्य रूप से संवर्ग और गैर-संवर्ग दोनों से विशेषज्ञों को चुनकर उनकी नियुक्ति की जानी चाहिए । आयोग अब राज्य-क्षेत्र की योजनाओं के संबंध में समन्वय कार्य नहीं करेगा । राज्यों को अब कोई साधन उपलब्ध नहीं कराए जाने चाहिए या उनके साथ कार्यचालन समूह का कोई विचार-विमर्श नहीं करना चाहिए । योजना आयोग को अपने तकनीकी कार्य में सुधार करने के लिए और अधिक समय मिलेगा । प्रत्येक विषय प्रभाग सम्बद्ध क्षेत्र में संबंधित योजना कार्य के सभी पक्षों, जिनमें परियोजना और कार्यक्रम मूल्यांकन, नियंत्रण, कार्योत्तर मूल्यांकन और नीति-निर्धारण का कार्य शामिल है, का कार्य करेगा । सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से संबंधित इन पक्षों के लिए कोई विशेष प्रभाग बनाना आवश्यक नहीं है ।

राज्य योजना बोर्ड

11.68 राज्य क्षेत्र के संबंध में योजना के सभी पक्षों को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी राज्य बोर्डों की होगी । राज्य स्तर के योजना कार्य के लिए इन बोर्डों का दर्जा बढ़ाकर इन्हें महत्त्वपूर्ण एजेंसी बनाने के लिए उनका संगठन योजना आयोग के गठन के आधार पर किया जाना चाहिए विशेष रूप से–

(i) बोर्ड में मुख्य मंत्री को अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जाएगा और इस बोर्ड का एक पूर्णकालिक उपाध्यक्ष और तीन पूर्णकालिक सदस्य होंगे । इन सदस्यों (उपाध्यक्ष सहित) में से प्रत्येक अपनी विशेषज्ञता, अनुभव और रुचि के

आधार पर एक-एक विषय पर कार्रवाई करेगा । ये विषय इस प्रकार हैं :—(1) राज्य योजना के आर्थिक और वित्तीय पक्ष, (2) कृषि और ग्रामीण विकास (3) उद्योग, विद्युत और परिवहन, तथा (4) समाज सेवा । वित्त मंत्री और योजना मंत्री बोर्ड के पदेन सदस्य होंगे । राज्य सरकार का कोई सेवारत अधिकारी बोर्ड का सदस्य नहीं होगा । योजना सचिव, बोर्ड का सचिव (किंतु सदस्य-सचिव नहीं) होगा । पूर्णकालिक सदस्य अपने-अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ होंगे किन्तु विकास कार्यों के उद्देश्यों के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण होगा और उनके प्रति वे पूर्णतः प्रतिबद्ध होंगे । सामान्यतया उनका कार्यकाल पांच वर्ष का होगा, जिसे अपवाद-जनक परिस्थितियों को छोड़कर कम नहीं किया जाएगा । उपाध्यक्ष की हैसियत कैबिनेट मंत्री के समान होगी और अन्य पूर्णकालिक सदस्यों की राज्यमंत्री के समान होगी ।

(ii) योजना बोर्ड के तकनीकी कर्मचारियों को चार पूर्वकालिक सदस्यों को आबंटित विषयों के अनुसार चार शाखाओं में रखा जाएगा । प्रत्येक शाखा में अनेक स्वतंत्र प्रभाग/अनुभाग होंगे । एक स्वतंत्र योजना समन्वय प्रभाग भी बनाया जा सकता है ।

(iii) योजना बोर्ड को राज्य स्तर पर योजना के वित्तीय पक्ष से पर्याप्त रूप से सम्बद्ध किया जा सकता है ।

(iv) विकास कार्यों के संबंध में राज्य मंत्रि मंडल की बैठकों में उपाध्यक्ष या सम्बद्ध सदस्य को एक विशेष अतिथि के रूप में बुलाया जा सकता है । विकास कार्यों के संबंध में अन्तर्विभागीय बैठकों में योजना बोर्ड का उपयुक्त स्तर पर प्रतिनिधित्व होना चाहिए ।

(v) योजना बोर्ड, राष्ट्रीय विकास संगठन एवं योजना आयोग और अन्य राज्य योजना बोर्डों के साथ सम्पर्क रखेगा ।

11.69 राज्य योजना के विषय क्षेत्र में इस प्रकार से विस्तार किया जाएगा ताकि उसमें राज्य की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को उसके अनिवार्य और निर्देशात्मक भाग सहित शामिल किया जा सके ।

11.70 राज्य योजना बोर्ड राज्य योजनाओं के आकार का निर्धारण करेगा । बोर्ड के अपने साधनों के प्राक्कलन को अंतिम माना जाएगा । राष्ट्रीय विकास संगठन राज्य योजना के लिए केन्द्रीय सहायता की हकदारी का निर्धारण राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित मानदण्ड के आधार पर करेगा । इन दोनों के योग से राज्य-योजना के आकार का निर्धारण किया जाएगा । राज्य द्वारा अपने साधनों के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर की गई घोषणा से राज्य योजना के कार्यान्वयन में बाधा उत्पन्न होगी क्योंकि साधनों की कमी को पूरा करने के लिए अब घाटे का वित्त पोषण करने की छूट नहीं है ।

11.71 राज्य योजना बोर्ड, विभिन्न क्षेत्रों, उपक्षेत्रों और अलग-अलग परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों के लिए राज्य योजना परिव्यय के विनियोजन के संबंध में स्वयं निर्णय करेगा, किन्तु यदि राष्ट्रीय विकास संगठन बोर्ड को यह बताता है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा अनुमोदित मार्गनिर्देशों का पालन नहीं किया गया है तो बोर्ड उन पर पूरा ध्यान देगा और आवश्यक कार्रवाई करेगा, किन्तु इस संबंध में बोर्ड ही अंतिम निर्णय करेगा ।

11.72 योजना बोर्ड द्वारा तैयार की गई राज्य योजना राज्य मंत्रीमंडल को अनुमोदनार्थ अवश्य प्रस्तुत की जाएगी । उनका अनुमोदन प्राप्त होने के बाद ही योजना को एक प्रामाणिक दस्तावेज माना जाएगा ।

जिला स्तर का योजना संगठन

11.73 शुरू में जिला योजनाओं में पंचायती राज संस्थाओं के विकास-कार्यकलापों को शामिल किया जाएगा । दूसरे शब्दों में, जिलास्तर के योजना-कार्यों में, जिला परिषद् के अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों से संबंधित विकास-कार्यकलापों को शामिल किया जाएगा । इसी प्रकार खंड या ग्राम-स्तर के योजना कार्यों में क्रमशः खंड समिति और पंचायत के अधिकार क्षेत्र में आने वाले विषयों से संबंधित विकास कार्यकलापों को शामिल किया जाएगा ।

11.74 सभी स्तरों को पंचायती-राज-संस्थाओं को अपनी-अपनी योजनाओं के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए । वित्तीय विकेन्द्रीकरण योजना के विकेन्द्रीकरण का अनिवार्य अंग है । राज्य सरकार को जिला-परिषदों को अपनी जिला-योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता देनी होगी । यह सहायता राज्य सरकार राज्य सरकार के वैध योजनेत्तर व्यय के रूप में होगी । इसी प्रकार खंड-योजनाओं के लिए जिला परिषद् द्वारा सहायता दी जाएगी और पंचायती-योजनाओं के लिए खण्ड (ब्लॉक) समिति द्वारा सहायता दी जाएगी । यह सहायता जिला परिषद् और खण्ड समिति के योजनेत्तर व्यय के रूप में होगी ।

11.75 इस स्तर पर जो जिला-योजना तैयार की जाएगी वह जिला-परिषद्, खंड-समिति और पंचायत योजनाओं को मिलाकर तैयार की जाएगी । जिले के नगर-निगम और नगर-पालिका समितियों की विकास-योजनाओं को और जिले में स्थित राज्य के विभिन्न विभागों की विभाज्य स्कीमों को जिला योजना में शामिल करने के लिए जिला-योजना के विषय-क्षेत्र में विस्तार किया जाएगा । इसके बाद कभी निजी क्षेत्र के विकास-कार्यकलापों को शामिल करने के लिए जिला-योजना के विषय क्षेत्र में और भी विस्तार किया जा सकता है । इस प्रकार जिला-योजना धीरे-धीरे एक ऐसा व्यापक कार्यक्रम बन जाएगी, जिसमें जिले के समस्त विकास-कार्यकलाप शामिल होंगे । तदनुसार जिला-स्तर पर योजना संगठन को भी समायोजित करना होगा ।

11.76 प्रथम स्तर पर, जिला योजना बोर्ड में निम्नलिखित शामिल होंगे (i) अध्यक्ष, जिला-परिषद्, जो बोर्ड का अध्यक्ष होगा । (ii) तीन-पूर्णकालिक सदस्य, इनमें से एक सदस्य को उपाध्यक्ष बनाया जाएगा और इसकी हैसियत जिला सांख्यिकीय अधिकारी की होगी । उपाध्यक्ष को इससे भी ऊंचा दर्जा दिया जा सकता है; और (iii) जिला-सांख्यिकीय अधिकारी । खंड-योजना-समिति में निम्नलिखित शामिल होंगे (i) अध्यक्ष, खंड-समिति, जो इस समिति का अध्यक्ष होगा; (ii) खंड विकास अधिकारी और (iii) एक पूर्णकालिक सदस्य, जो कृषि विशेषज्ञ होगा, किन्तु उसे व्यापक अनुभव होना चाहिए । पंचायत-योजना-समिति में पंचायत का प्रधान और पंचायत द्वारा चुने गए दो अंशकालिक सदस्य शामिल होंगे ।

11.77 ऊपर योजना संगठन में परिवर्तनों के जो सुझाव दिए गए हैं, वे सहकारी संघवाद और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देने के लिए दिए गए हैं ताकि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को और अधिक मजबूत बनाया जा सके और भारतवासियों में देश की एकता और अखंडता के प्रति दृढ़ विश्वास पैदा हो सके और देश के ऐसे विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए और अधिक अनुकूल वातावरण बन सके जिनसे हम सब अब तक वंचित रहे हैं । उनकी यह अपील और सफलता स्वाभाविक रूप से इस बात पर निर्भर करेगी कि राष्ट्रीय एकता, अखंडता और विकास की दिशा में सत्तावादी रवैये के स्थान पर लोकतांत्रिक रवैये को कितने व्यापक रूप से और दृढ़ संकल्प द्वारा स्वीकार किया जाता है ।

सार

इस प्रारूप ज्ञापन में जिन विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई है उनका जल्दी से संदर्भ मिल सके, इसके लिए विभिन्न अध्यायों की विषयवस्तु संगत पैराग्राफों के संदर्भ के सहित संक्षेप में नीचे दी जा रही है ।

भिन्न-भिन्न लोगों की मातृभूमि के रूप में राज्य

(अध्याय 1)

19 वी शताब्दी के उत्तरार्ध में देश में देशभक्ति और एकता के विस्तार के साथ-साथ, अनेकता में भी वृद्धि हुई और अनेक कारणों से लोगों में अपनी अलग पहचान बनाने और समान भाषा वाले लोगों में क्षेत्रीय एकता को मजबूत बनाने की भावना पनपने लगी ।

(पैरा 1.1 से 1.2)

तथापि अपनी अलग पहचान बनाने की भावना विभिन्न भाषाभाषी लोगों में विविध कारणों से समान रूप से नहीं पनपी ।

(पैरा 1.3)

अपनी अलग पहचान बनाने की भावना में स्वतंत्रता के बाद अनेक नए या अधिक अनुकूल कारणों से और अधिक विस्तार हुआ। इसके परिणामस्वरूप भारत में एक बहु-राष्ट्रीय समाज का अभ्युदय हुआ है।

(पैरा 1.5)

साथ ही कुछ ऐसी शक्तिशाली सामाजिक शक्तियों का भी अभ्युदय हुआ है, जो अपने प्रभुत्व के अधीन वस्तुतः अत्यधिक केन्द्रीकृत एकात्मक राज्य की स्थापना के लिए काम कर रहे हैं। उनमें हिन्दू हिन्दी-हिन्द की अंध देशभक्ति की प्रमुख शक्तियों के आधार पर काम करने की प्रवृत्ति पनप रही है।

(पैरा 1.6)

ऐसे भाषागत और जातीय समूहों के दबाव में आकर, जो अपनी अलग पहचान के प्रति काफी अधिक जागरूक हैं, अनेक राज्यों का भाषायी आधार पर पुनर्गठन किया गया है। अनेक मामलों में भाषायी आधार के मानदण्ड को वैमनस्यपूर्ण, सिद्धान्तहीन तरीके से और उदासीनता से लागू किए जाने से देश के अनेक भागों में गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गयी जिनमें से भी अनेक समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सका है।

(पैरा 1.7)

भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से ये राज्य विभिन्न भाषायी या जातीय समूहों की मातृभूमि बन गए हैं। वस्तुतः इन समूहों का अलग-अलग राष्ट्रिकताओं के रूप में विकास हो रहा है।

(पैरा 1.8)

भारत के एक बहु-राष्ट्रीय समाज के रूप में अभ्युदय से देश की एकता और अखंडता को कोई खतरा नहीं है।

बहु-राष्ट्रीय राज्य एक ऐसा अत्यन्त व्यावहारिक प्रस्ताव है, जिस पर विचार किया जा सकता है। संसार में अनेक बहु-राष्ट्रीय राज्य हैं।

एक वास्तविक संघीय राज्य लोगों की इच्छा की ठोस बुनियाद पर एक बहु-राष्ट्रीय राज्य की एकता और अखंडता को आधारित करने के लिए एक प्रभावशाली उपाय है।

(पैरा 1.9)

संविधान का पूर्वव्यापी और भावी रूप

(अध्याय 2)

संगठित स्वतंत्र भारत के निर्माण के लक्ष्य में मुसलमानों के अल्पसंख्यक वर्ग में बढ़ते हुए कट्टरपन से समझौता करने के संदर्भ में इस शताब्दी के आरंभिक वर्षों में संघीय राज्य की संरचना की संकल्पना पर चर्चा की गई है।

(पैरा 2.1)

(1) संघीय संकल्पना का विकास

एक संगठित एवं अत्यधिक केन्द्रीकृत स्वतंत्र भारत की संकल्पना के सम्बन्ध में मुसलमानों की आशंका।

(पैरा 2.2)

लखनऊ समझौता 1916 और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच की अनुवर्ती बातचीत संघीय संकल्पना पर आधारित थी।

(पैरा 2.3)

शाही राज्यों को भारत के शेष राज्यों के साथ मिलाने में संघीय संकल्पना एक सही रवैया प्रतीत हुआ। संघीय संकल्पना को गोल मेज कान्फ्रेंस (1930–32) में समर्थन प्राप्त हुआ था और भारत सरकार अधिनियम, 1935 द्वारा इसे अपनाया गया।

(पैरा 2.4)

1935 के अधिनियम में उल्लिखित संघीय संकल्पना को द्वितीय विश्व युद्ध (1939–45) के कारण लागू नहीं किया जा सका था।

(पैरा 2.5)

मंत्रीमंडल मिशन योजना में, जिसके आधार पर 1946 में संविधान सभा बनायी गयी, संविधान यूनिटों को अवशिष्ट शक्तियां देते हुए संघीय संकल्पना को स्वीकार किया गया था।

(पैरा 2.6)

श्री नेहरू ने दिसम्बर, 1946 में संविधान सभा में एक वस्तुपरक संकल्प प्रस्तुत किया जिसमें संविधान की स्वायत्त इकाइयों को अवशिष्ट शक्तियां देते हुए भारत संघ का उल्लेख किया गया है।

(पैरा 2.7)

विभाजन की स्वीकृति के बाद देश के हालात में एक बुनियादी परिवर्तन आया है। संविधान सभा में एक सशक्त संघ और एक मजबूत केन्द्र का समर्थन किया गया है। संविधान जिस रूप में तैयार किया गया है उसमें महत्वपूर्ण एकात्मक लक्षणों सहित एक मूल संघीय शासन प्रणाली का प्रावधान किया गया है।

(पैरा 2.8 से 2.10)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से प्रतिकूल विकास : एक ओर तो कई राज्य भाषायी आधार पर पुनः संगठित किए गए और भिन्न-भिन्न लोगों ने उन राज्यों को अपनी मातृभूमि बना लिया था; दूसरी ओर केन्द्र द्वारा चलाए गए विकेन्द्रीकरण अभियान द्वारा शासन-प्रणाली के वास्तविक एकात्मक लक्षणों को तेजी से लागू किया जा रहा है। इसी कारण से केन्द्र-राज्य के बीच समस्याएं पैदा होती हैं।

(पैरा 2.11)

(2) संविधान का स्वरूप

क्या संविधान वास्तव में संघीय है ?

(पैरा 2.12)

किसी संघीय संविधान की आवश्यक विशेषताएं।

(पैरा 2.13)

इसमें ऐसी संघीय शासन प्रणाली का प्रावधान है जिसमें एक सुदृढ़ केन्द्र होता है। इसका एक बुनियादी संघीय ढांचा होता है लेकिन इसकी कुछ एकात्मक विशेषताएं होती हैं, जिनमें निम्नलिखित विशेषताएं भी शामिल हैं :

(i) राज्यों के नाम प्रदेश, सीमा में परिवर्तन करने की संसद की शक्ति।

(ii) राज्यों की स्वायत्तता पर विधायी और प्रशासनिक नियंत्रण; और

(iii) एक स्थायी रूप से केन्द्र-राज्य वित्तीय असंतुलन की स्थिति।

(पैरा 2.14 से 2.19 तक)

संविधान के स्वरूप पर डा० अम्बेडकर और उच्चतम न्यायालय के कुछ माननीय न्यायाधीशों की टिप्पणियां।

(पैरा 2.20)

निष्कर्ष :—यह अनिवार्य रूप से एक संघीय संविधान है लेकिन इसमें कुछ ऐसी विशेषताएं भी हैं, जो एकात्मक संविधान के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

(पैरा 2.21 से 2.22 तक)

इस समय भारत की एकता और अखंडता के लिए जो मुख्य खतरा है वह यह कि निरंतर केन्द्रीयकरण अभियान कुछ वर्ग के लोगों में और जातीय समूहों में एक अलगाव की भावना उत्पन्न कर सकता है तथा भारत को संगठित देश बनाने की उनकी इच्छा शक्ति के मार्ग में खाई खोदने का काम भी कर सकता है। संविधान के स्वरूप के संबंध में अन्य सभी शंकाओं का समाधान करने के लिए प्रस्तावना में लोकतंत्र के बाद संघ शासन शब्द जोड़ा जाए।

(पैरा 2.23)

(3) अधिक राज्य-स्वायत्तता का मामला

यह मामला संघवाद की किसी परम्परागत धारणा पर आधारित नहीं है बल्कि इस तथ्य पर आधारित है कि केवल एक वास्तविक संघीय राज्य ही ऐसे समाज में देश की एकता और अखंडता के लिए एक स्थायी आधार प्रदान कर सकता है जो धीरे-धीरे एक बहु-राष्ट्रीय समाज बनता जा रहा है।

(पैरा 2.24)

राज्यों की भाषायी आधार पर पुनर्संठन करना दूरदर्शिता का काम है। इस प्रक्रिया को इस प्रकार कार्यान्वित किया जाना चाहिए जिससे सैद्धान्तिक और तर्कसंगत परिणाम प्राप्त हो सकें।

(पैरा 2.25 से 2.26)

किसी एक राज्य में बहु-राष्ट्रीय समाज को बनाए रखने का एक ही वास्तविक तरीका है कि उस राज्य में एक वास्तविक संघीय स्वरूप की सरकार हो। इस उद्देश्य के लिए अन्य बातों पर भी विचार करना होगा।

(पैरा 2.27 से 2.28)

यह दावा करना कि भारतीय राज्यतंत्र में केन्द्र का प्रभुत्व होने से देश में अधिक प्रगतिशीलता और अधिक देश भक्ति की भावना आएगी और देश का भविष्य अधिक उज्जवल होगा, तथ्यों के आधार पर प्रमाणित नहीं होता है।

(पैरा 2.29)

राज्यों की अधिक स्वायत्तता के लिए ज्ञापन में व्यापक प्रस्ताव दिए गए हैं। इनमें से अनेक प्रस्तावों में सांविधानिक संशोधन करने की आवश्यकता होगी।

(पैरा 2.30 से 2.31)

(4) देश की एकता और अखंडता बनाए रखने के लिए सुरक्षात्मक उपाय

इसमें कोई दो राय नहीं है कि देश की एकता और अखंडता सुरक्षित रहनी चाहिए। इस प्रयोजन के लिए संविधान में कई व्यवस्थाएं की गई हैं। इनमें से कुछ व्यवस्थाएं अनावश्यक और अनुपयुक्त हैं।

(पैरा 2.32 से 2.33 तक)

देश की एकता और अखंडता सुरक्षित रखने के संबंध में संविधानिक उपबन्धों को और अधिक बल प्रदान करने के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक उपाय करने की आवश्यकता है।

(पैरा 2.34 से 2.35 तक)

अंग्रेजों ने जिस संघीय प्रणाली की परिकल्पना की थी, उससे सर्वथा भिन्न दृष्टि से संघीय प्रणाली की संकल्पना को देखा जा रहा है। संघवाद को अब एक ऐसी अवधारणा के रूप में समझा जा रहा है जिसमें हाल में ही उभरी विविधताओं की उचित मांगों को शामिल किया जा सकता है और इस प्रकार देश की एकता और अखण्डता को और मजबूत बनाने के लिए संगठित जनता को इसके प्रति जो आस्था है, उसे भी आधार बनाया जा सकता है।

(पैरा 2.36 से 2.38)

विधायी सूचियाँ

(अध्याय 3)

विधायी सूचियों में निम्नलिखित कारणों से कुछ परिवर्तन करने के सुझाव दिए गए हैं :—

(i) ऐसे विषय राज्यों को सूची में वापिस शामिल करना जो कि सूची II (राज्य सूची) से अनुचित रूप से अन्य सूचियों में अंतरित किए गए हैं।

(ii) किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का बताकर या लोकहित के आधार पर उस विषय को राज्यों की सूची से निकालकर केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में लाने के अवसरों को कम करना।

(iii) ऐसे विषय, राज्यों को अंतरित करना, जिन्हें राज्य अच्छी तरह से संचालित कर सकते हैं।

सूची I, II, III में किए जाने वाले परिवर्तनों के लिए अध्याय 3 के अनुबंध I, II, III में सुझाव दिए गए हैं। प्रत्येक परिवर्तन के मूलाधार का उल्लेख सूची विशेष के विवरण में किया गया है।

(1) सूची I में किए जाने वाले परिवर्तन

निम्नलिखित प्रयोजन के लिए सूची I में किए जाने वाले परिवर्तनों का उल्लेख संबंधित प्रविष्टि के सामने किया गया है। उपयुक्त विवरण का संदर्भ भी दिया गया है, जिसमें परिवर्तन के मूलाधार का उल्लेख किया गया है :—

(i) इस बात की व्यवस्था करना कि केन्द्र के सशस्त्र, अर्ध सैन्य और पुलिस बल की तैनाती राज्य के अनुरोध पर या उसकी सहमति पर ही राज्य में की जाएगी।

(प्रविष्टि 2—क)
(पैरा 3.2)

(ii) केवल अन्तर-राज्य नदियों की ओर जाने वाले राज्यों के आन्तरिक जलमार्गों तक ही जहाजरानी और विमान संचालन पर केन्द्र के नियंत्रण को सीमित करना।

(प्रविष्टि 24)
(पैरा 3.3)

(iii) प्रविष्टि 30 में "देशीय जलमार्ग" के स्थान पर "अन्तरराज्यीय नदी" लिखना।

(पैरा 3.4)

(iv) टेलीफोन, प्रसारण एवं दूरदर्शन को सूची III (समवर्ती सूची)) में अंतरित करना।

(प्रविष्टि 31)
(पैरा 3.5)

(v) राज्यों द्वारा आयोजित "लाटरियां" सूची II (राज्य सूची) में अंतरित करना।

(प्रविष्टि 40)
(पैरा 3.6)

(vi) बैंक-व्यवस्था को सूची III में अंतरित करना।

(vii) वायदा-बाजार सूची II में अंतरित करना।

(प्रविष्टि 48, पैरा 3.10)

(viii) केन्द्र का अधिकार-क्षेत्र उन उद्योगों तक सीमित करना, जो उद्योग प्रस्तावित अनुबंध क में विनिर्दिष्ट किए गए।

(प्रविष्टि 52, पैरा 3.11)

(ix) पैट्रोलियम उत्पादों और एल० पी० जी० के थोक विपणन को सूची III में तथा इन उत्पादों के खुदरा-विपणन को सूची II में अंतरित करना।

(प्रविष्टि 52, पैरा 3.11)

(x) केन्द्र का अधिकार क्षेत्र उन खनिज पदार्थों तक सीमित करना जिनका उल्लेख सूची I के परिशिष्ट 'ख' में किया गया है।

(प्रविष्टि 53, पैरा 3.13)

(xi) केन्द्र का अधिकार-क्षेत्र सूची I के परिशिष्ट 'ख' में विनिर्दिष्ट "श्रम" एवं "खानों तथा खनिजों में सुरक्षा" तक सीमित करना।

(प्रविष्टि 55, पैरा 3.14)

(xii) अन्तर्राज्यीय नदियों और नदी-घाटियों के विनियमन एवं विकास का कार्य अपने हाथ में लेने से केन्द्रीय संसद को रोकना।

(xiii) चलचित्रों को प्रदर्शित करने के लिए प्रमाणपत्र देने का कार्य सूची II में अंतरित करना।

(प्रविष्टि 60, पैरा 3.16)

(xiv) प्रविष्टि 62 की शर्तों को केन्द्र द्वारा वित्त-पोषित गई संस्थाओं पर कम से कम 75 प्रतिशत तक सीमित रखना।

(प्रविष्टि 62, पैरा 3.17)

(xv) केन्द्र को नए केन्द्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करने से रोकना।

(प्रविष्टि 63, पैरा 3.18)

(xvi) राज्यों की उच्च शिक्षा संस्थाओं में स्तरों के समन्वय और निर्धारण का कार्य सूची II में अंतरित करना ।
(प्रविष्टि 66, पैरा 3.20)

(xvii) राज्य के लेखों की लेखा परीक्षा का कार्य सूची II में अंतरित करना ।
(प्रविष्टि 76, पैरा 3.21)

(xviii) लघु औद्योगिक इकाइयों पर लगाए जाने वाले उत्पाद-शुल्क को सूची II में अंतरित करना ।
(प्रविष्टि 84, पैरा 3.22)

(xix) वायदा-बाजारों के लेन-देनों के करों को सूची II में अंतरित करना ।
(प्रविष्टि 90, पैरा 3.24)

(xx) अवशिष्ट अधिकारों को सूची III में अंतरित करना ।
(प्रविष्टि 97, पैरा 3.25)

(2) सूची III में किये जाने वाले परिवर्तन

सूची III में प्रस्तावित परिवर्तन निम्नलिखित कारणों से किए जाने चाहिए :—

(i) उपयुक्त विषयों को सूची II में अंतरित करना,

(ii) अनावश्यक उपबंधों को हटाना, और

(iii) सूची I से अंतरित विषयों को शामिल करना ।

विभिन्न मामलों को सूची II में अंतरित करने के सुझावों में निम्नलिखित बातें शामिल हैं :—

(i) राज्य की सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने से संबंधित निवारक नजरबंदी ।
(प्रविष्टि 3)

(ii) पारिवारिक कानून
(प्रविष्टि 4)

(iii) बंजारे, खानाबदोष और प्रवासी जनजातियाँ
(प्रविष्टि 15)

(iv) पागलपन और मानसिक विक्षिप्तता, पागलों और मानसिक रूप से विक्षिप्त रोगियों के उपचार के स्थान ।
(प्रविष्टि 16)

(v) जानवरों के प्रति अत्याचार को रोकने के उपाय ।
(प्रविष्टि 17)

(vi) वन
(प्रविष्टि 17-क)

(vii) जंगली-जानवरों और पक्षियों की सुरक्षा
(प्रविष्टि 17-ख)

(viii) खाद्य पदार्थों और अन्य वस्तुओं में मिलावट
(प्रविष्टि 18)

(ix) औषधियाँ एवं विषैले पदार्थ
(प्रविष्टि 19)

(x) जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार-नियोजन
(प्रविष्टि 20-क)

(xi) मजदूर संघ, औद्योगिक तथा श्रमिक विवाद
(प्रविष्टि 22)

(xii) सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा, रोजगार और बेरोजगारी
(प्रविष्टि 23)

(xiii) श्रमिक-कल्याण
(प्रविष्टि 24)

(xiv) शिक्षा
(प्रविष्टि 25)

(xv) दान तथा पूर्त संस्थाएं, पूर्त एवं धार्मिक अक्षयनिधियां और धार्मिक संस्थाएं
(प्रविष्टि 28)

(xvi) जीवन-मृत्यु संबंधी आंकड़े
(प्रविष्टि 30)

(xvii) छोटे बंदरगाह
(प्रविष्टि 31)

(xviii) अन्तर्राज्यीय नदियों से भिन्न आन्तरिक जलमार्गों में नौवहन तथा नौ संचालन ।
(प्रविष्टि 32)

(xix) विशिष्ट उत्पादों का व्यापार एवं उत्पादन, आपूर्ति तथा वितरण
(प्रविष्टि 33)

(xx) मानकों की स्थापना के अतिरिक्त माप-तौल
(प्रविष्टि 33-क)

(xxi) मशीन से चलाने वाले वाहन और इन वाहनों पर कर लगाने के सिद्धान्त
(प्रविष्टि 35)

(xxii) फैक्टरियां और बॉयलर
(प्रविष्टि 36 और 37)

(xxiii) कम वोल्टता संचरण, वितरण एवं स्थैतिक विद्युत संयंत्र
(प्रविष्टि-39)

(xxiv) पुरातत्वीय स्थल एवं सेवाएं
(प्रविष्टि-40)

(xxv) राज्यों के सरकारी प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति का अधिग्रहण और मांग करना ।
(प्रविष्टि-42)

(xxvi) सूची II में निर्दिष्ट मामलों के प्रयोजन के लिए पूछताछ एवं वितरण
(प्रविष्टि-45)

कैदियों, अपराधियों और नजरबंदियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाने से संबंधित प्रविष्टि 54 को निकाले जाने के लिए सुझाव दिया गया था ।
(पैरा 3.71)

सूची III में जोड़े जाने वाले विषयों में निम्नलिखित विषय शामिल हैं :—

(i) प्रसारण तथा दूरदर्शन
(प्रविष्टि-25क, पैरा 3.72)

(ii) अन्य देशों (पाकिस्तान के अलावा) और अन्य भारतीय राज्यों के विस्थापित व्यक्ति
(प्रविष्टि 27, पैरा 3.73)

(iii) बैंकिंग (प्रविष्टि 3-क पैरा 3.74)

(iv) पैट्रोलियम उत्पादों और एल०पी०जी० का थोक विपणन
(प्रविष्टि 32-ख, पैरा-3.75)

(v) अवशिष्ट अधिकार
(प्रविष्टि 48, पैरा 3.76)

(3) सूची II में किए जाने वाले परिवर्तन

सूची II में किए जाने वाले परिवर्तन ऊपर प्रस्तावित सूची I और III में किए गए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप हैं । इन परिवर्तनों का मूलाधार इस सूची से संबंधित विवरण में भी दिया गया है ।

राज्यों की विधायी स्वायत्तता पर लगाए जाने वाले प्रतिबंध

(अध्याय IV)

राज्यों की अपनी विधायी क्षमता के अन्तर्गत उनकी विधायी स्वायत्तता पर लगाए जाने वाले निम्नलिखित प्रतिबंधों पर विचार-विमर्श किया गया है और इनके लिए पूर्वोपाय भी सुझाए गए हैं :—

(i) राज्य विधान सभा द्वारा स्वयं विधान परिषद बनाने या उसे समाप्त करने में राज्य विधान सभा की असमर्थता ।

(पैरा 4.2 और 4.18)

(ii) राज्य विधान मंडल के सदन/सदनों की बैठक बुलाने और उनका सत्रावसान करने तथा विधान सभा भंग करने का राज्यपाल का अधिकार ।

(पैरा 4.3 और 4.19)

(iii) समवर्ती सूची में उल्लिखित मामलों के संबंध में केन्द्र सरकार का अभिभावी क्षेत्राधिकार ।

(पैरा 4.4 और 4.19क 4.20 और 4.21)

(iv) निर्धारित घोषणाएं करके राज्यों की विधायी क्षमता को समाप्त करते हुए केन्द्र सरकार की क्षमता को बढ़ाने का संसद का अधिकार ।

(पैरा 4.5 और 4.22)

(v) ऐसे सांविधानिक संशोधनों द्वारा केन्द्र सरकार की विधायी क्षमता को बढ़ाना, जिनको अधिनियमित करने में संसद स्वयं सक्षम है ।

(पैरा 4.6 और 4.7; 4.23 और 4.36)

(vi) राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का संसद का अधिकार ।

(पैरा 4.8 से 4.11; 4.24 और 4.25)

(vii) राज्य विधान मंडल के सदन/सदनों द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में राज्यपाल के अधिकार ।

(पैरा 4.12 से 4.14 तक 4.28 और 4.29)

(viii) राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित राज्य के विधेयकों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति के अधिकार ।

(पैरा 4.15, 4.30 से 4.33 तक)

(ix) राज्य विधानमंडल में किसी विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए कुछ मामलों में राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति लेने की आवश्यकता ।

(पैरा 4.16, 4.34)

(x) संसद द्वारा बनाए गए कानूनों को बेहतर ढंग से लागू करने के लिए अतिरिक्त न्यायालयों की व्यवस्था करने के संबंध में संसद के अधिकार ।

(पैरा 4.16—क, 4.35)

राज्यपाल की भूमिका

(अध्याय 5)

राज्यपाल की प्राथमिक भूमिका राज्य के सांविधानिक अध्यक्ष के रूप में कार्य करना है ।

(पैरा 5.1 से 5.3)

सांविधानिक अध्यक्ष होने के नाते, राज्यपाल को पूर्ण रूप से निष्पक्ष होकर कार्य करना चाहिए लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है ।

(पैरा 5.4 से 5.5 तक)

राज्यपाल द्वारा पक्षपातपूर्ण तरीके से कार्य करने के आरोप सामान्य रूप से निम्नलिखित से संबंधित होते हैं । जब विधान सभा में किसी एक दल का बहुमत न हो तो मुख्यमंत्री की नियुक्ति, बहुमत समर्थन का सत्यापन, मंत्री-परिषद् की बरखास्तगी, विधान सभा भंग करना, राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए विधेयकों का आरक्षण, राष्ट्रपति शासन लागू करना, राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्य प्रशासन का संचालन, उपकुलपतियों की नियुक्ति, यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता कि राज्यपाल द्वारा निष्पक्ष तरीके से कार्य किया जाता है ।

(पैरा 5.5 से 5.7)

राज्यपाल द्वारा निष्पक्ष तरीके से कार्य करने के संबंध में दिए गए सुझाव :

(i) राज्यपाल की नियुक्ति और उनके कार्यकाल के संबंध में उपयुक्त उपबंध ।

(पैरा 5.8 से 5.14)

(ii) राज्य की स्वायत्तता की सुरक्षा और राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकारों के दुरुपयोग को रोकने के लिए किए जाने वाले पूर्वोपाय और सरकार की जिम्मेदारी ।

(पैरा 5.14 से 5.19)

(iii) अनुच्छेद 164 के अन्तर्गत दी गई मुख्य मंत्री की नियुक्ति की कार्यविधि ।

(पैरा 5.20 से 5.21)

(iv) अनुच्छेद 164 के अधीन मंत्री परिषद की बरखास्तगी नहीं होगी बशर्ते कि विधान सभा में बहुमत प्राप्त न हो ।

(पैरा 5.22 से 5.23)

(v) अनुच्छेद 356 (I) के अधीन मंत्री-परिषद की बरखास्तगी के नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुप्रयोग ।

(पैरा 5.24 से 5.27)

(vi) इस बात की व्यवस्था करने की आवश्यकता कि राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाने वाली राज्यपाल की पाक्षिक रिपोर्ट मुख्यमंत्री को भी उपलब्ध करायी जाए ।

(पैरा 5.28)

(vii) राष्ट्रपति शासन के अंतर्गत राज्य प्रशासन निष्पक्ष संचालन का महत्व और इसके लिए उपाय और ।

(पैरा 5.29)

(viii) उप कुलपतियों की नियुक्ति के मामले में राज्य सरकार का सहयोग लेने की आवश्यकता ।

(पैरा 5.30)

प्रशासनिक मुद्दे

(अध्याय 6)

केन्द्र राज्य संबंधों में मुख्य प्रशासनिक मुद्दे ।

(पैरा 6.1)

राज्यों की अपने विशिष्ट उत्तरदायित्व के क्षेत्र के अन्तर्गत राज्यों की स्वायत्तता की सुरक्षा के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए :—

(i) राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना,

(पैरा 6.2 से 6.22)

(ii) अखिल भारतीय सेवाएं, केन्द्र के सशस्त्र, अर्ध सैन्य बल और पुलिस बल राज्यों को देना; और

(पैरा 6.23 से 6.27)

(पैरा 6.28 से 6.32)

(iii) केन्द्र सरकार की एजेंसियों की गतिविधियां, यथा :—

(पैरा 6.33 से 6.35)

भारतीय खाद्य निगम

(पैरा 6.36 से 6.45)

औद्योगिक लागत एवं कीमत ब्यूरो

(पैरा 6.46 से 6.47)

एकाधिकार तथा अवरोध व्यापारिक व्यवहार आयोग

(पैरा 6.48 से 6.49)

तकनीकी विकास महानिदेशालय

(पैरा 6.50)

कर्मचारी भविष्य निधि संघ

(पैरा 6.51 से 6.52)

कर्मचारी राज्य बीमा निगम

(पैरा 6.53)

राष्ट्रीय बचत संघ

(पैरा 6.54 से 6.56)

केन्द्रीय जल आयोग और केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण

(पैरा 6.57 से 6.58)

भाखड़ा-ब्यास प्रबंध मंडल, और

(पैरा 6.59)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

(पैरा 6.60 से 6.62)

राज्यों के बीच परस्पर समन्वय बनाए रखने के लिए पर्याप्त संस्थागत प्रबन्ध करने हेतु अंतर्राज्यीय परिषद और जिला परिषदों को उत्प्रेरित करने के लिए सुझाव दिए गए हैं :—

(पैरा 6.63 से 6.67)

अनुच्छेद 256, 257, 339 और 350 (क) के अन्तर्गत राज्यों को निर्देश देने का केन्द्र का अधिकार एक ऐसी बाधा है जिससे बचा जा सकता है और इसे संविधान से निकाल दिया जाना चाहिए ।

(पैरा 6.68 से 6.70)

राज्यों का आर्थिक रूप से केंद्र पर आश्रित होना

(अध्याय 7)

राज्यों के केन्द्र पर आर्थिक रूप से बहुत अधिक निर्भर रहने से संविधान के अधीन उनकी स्थिति और हैसियत कमजोर हुई है ।

(पैरा 7.1)

राज्य सरकार अब अपने कुल राजस्व में से और केन्द्र से साधनों के अंतरण द्वारा पूंजीगत व्यय में से लगभग 45 प्रतिशत का वित्त पोषण करती है ।

(पैरा 7.2 से 7.4)

राज्य सरकारों की निर्भरता अपने राजस्व व्यय के संबंध में केन्द्र से होने वाले साधनों के अंतरण पर लगभग 40 प्रतिशत है ।

(पैरा 7.5 से 7.6)

वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार कुल साधनों के अंतरण की लगभग 60 प्रतिशत राशि हस्तांतरित की जाती है । शेष राशि विवेकाधिन अंतरणों तथा केन्द्रीय सहायता द्वारा हस्तांतरित की जाती है ।

(पैरा 7.8)

पंजाब के मामले में, इसके कुल राजस्व व्यय की राशि का लगभग 11.7 प्रतिशत राशि हस्तांतरित की जाती है जबकि अन्य राज्यों के लिए 24 प्रतिशत राशि हस्तांतरित की जाती है ।

(पैरा 7.9 से 7.10)

राज्यों की वित्त पोषण के लिए केन्द्र पर निर्भरता अपने पूंजीगत व्यय के लगभग 70 प्रतिशत है ।

(पैरा 7.11 से 7.12)

केन्द्र से राज्यों को दिए जाने वाले सभी ऋण और अग्रिम तथा राज्य योजना को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्रीय सहायता से राज्यों को प्राप्त होने वाले ऋण केन्द्र के विवेक पर ही दिए जाते हैं तथा अपने पूंजीगत निवेश के वित्त पोषण के लिए राज्य लगभग पूरी तरह से केन्द्र पर ही निर्भर करते हैं ।

(पैरा 7.13 से 7.15)

राज्यों के केन्द्र पर आर्थिक रूप से निर्भर होने के कारण

(अध्याय 8)

केन्द्र पर राज्यों की निर्भरता के निम्नलिखित कारण हैं :—

(i) संविधान के अन्तर्गत राज्यों के अपने दायित्वों में शामिल गैर विकासात्मक और विकासात्मक कार्यों पर किए जाने वाले व्यय में वृद्धि,

(पैरा 8.2 से 8.8)

(ii) राज्यों में कर लगाने के कम आधार और अतिरिक्त कराधान पर प्रतिबंध । (लेकिन यह प्रतिबंध उतना नहीं होता जितना कि राज्यों के करों से उनको प्राप्त होने वाले राजस्व के अपेक्षा कम लचीले पर सामान्य रूप से आरोप लगाया जाता है ।)

(पैरा 8.9 से 8.29)

(iii) राज्यों पर किए गए निवेश और लगाए गए उद्यम के न्यून प्रतिफल, और

(पैरा 8.30 से 8.40)

(iv) अन्य बातों के साथ-साथ राज्यों की पूंजीगत प्राप्तियां कम करके केन्द्र सरकार की अपनी पूंजीगत प्राप्तियों को निरंतर बढ़ाने का अभियान ।

(पैरा 8.41 से 8.77)

राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता का प्रभाव

(अध्याय 9)

राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता के निम्नलिखित परिणाम होते हैं :—

(i) कुल योजनागत परिव्यय में राज्यों का कम हिस्सा और अर्थव्यवस्था पर इसके दुष्परिणाम

(पैरा 9.3 से 9.6)

(ii) राज्य के विषयों पर पूंजीगत व्यय में वृद्धि करने के रूप में राज्यों के क्षेत्राधिकार में केन्द्र का हस्तक्षेप और केन्द्रीय तथा केन्द्र की ओर से प्रायोजित योजना स्कीमों को बहुत प्रचुर मात्रा में तैयार करना ।

(पैरा 9.7 से 9.30)

(iii) राज्यों की योजना कार्यविधि पर केन्द्र का कड़ा नियंत्रण

(पैरा 9.31 से 9.38)

(iv) केन्द्रीय-राज्य साधनों के अंतरण के संबंध में असंगत तरीका अपनाना और अविचारणीय मानदण्ड निर्धारित करना जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं :—

(पैरा 9.39 से 9.56)

(क) हस्तांतरण, और (पैरा 9.57 से 9.74)

(ख) राज्यों की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता ।

(पैरा 9.75 से 9.104)

(v) केन्द्र के प्रति राज्यों की राजनीतिक अधीनता का विकास

(पैरा 9.105 से 9.106)

केंद्र राज्य के संतुलित आर्थिक संबंधों के बारे में

(अध्याय-10)

एक उपयुक्त केन्द्र-राज्य के बीच आर्थिक संतुलन की विशेषताएं ।

(पैरा 10.1)

राज्यों में कर-आधार बढ़ाने के उपाय

(i) पैट्रोलियम पदार्थों, संसाधित वनस्पति तेल, वनस्पति, टायरों, सीमेंट, शीशे की सीटों, लोहा एवं इस्पात, मोटर वाहनों और ट्रैक्टरों पर लगाए जाने वाले केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क के स्थान पर अतिरिक्त बिक्री कर ।

(पैरा 10.7)

(ii) चीनी, वस्त्र और तम्बाकू पर पुनः कर लगाना,

(पैरा 10.8)

(iii) रेल किराए पर पुनः कर लगाना ।

(पैरा 10.10)

(iv) वायुयान द्वारा यात्रियों के पहुंचने पर सीमा कर लगाना,

(पैरा 10.12)

(v) समाचार पत्रों में प्रकाशित, रेडियो पर प्रसारित तथा दूरदर्शन पर प्रसारित विज्ञापनों पर कर लगाना,

(पैरा 10.13)

(vi) व्यवसायों, व्यापारों, पेशों और नियोजन पर कर की अधिकतम सीमा बढ़ाना, और

(पैरा 10.14)

(vii) वस्तुओं पर लगाए जाने वाले बिक्री या खरीद करों पर अनुच्छेद 286(3) के अधीन प्रतिबंध लगाने के संबंध में संसद के अधिकार का सीमित प्रयोग

(पैरा 10.15)

केन्द्रीय करों की विभाज्य सूची में अंधाधुंध विस्तार नहीं किया जाएगा ।

(पैरा 10.16)

रक्षा कार्य पर किए जाने वाले व्यय में सावधानी बरतने के लिए सीमा-शुल्क को विभाज्य सूची से निकाला जा सकता है तथा उसके लिए अतिरिक्त राशि बचाई जा सकती है ।

केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा बढ़ाने के लिए उन्हें आय कर, निगम कर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क में से 50 प्रतिशत हिस्सा दिया जाना चाहिए । कुछ निर्धारित उपकरों का दुरुपयोग न होने पाए, इससे बचने के लिए उपकरों से प्राप्त होने वाले 10 करोड़ रु० की अत्यधिक राशि को केन्द्रीय उत्पाद शुल्क के रूप में माना जाए तथा उसे विभाज्य सूची का एक भाग माना जाए ।

(पैरा 10.18 से 10.21)

विभाज्य सूची के अन्तर्राज्यीय वितरण के लिए दो आधारभूत मानदण्ड है :—

(पैरा 10.22)

क्षतिपूर्ति और पुनर्वितरण मानदण्ड के एक संतुलित पैकेज के रूप में निम्नलिखित मानदण्ड सुझाए गए हैं :—

(i) जनसंख्या, 50 प्रतिशत

(ii) सभी राज्यों की औसत से नीचे प्रति व्यक्ति एस० डी० पी० 20 प्रतिशत,

(iii) कर लगाने संबंधी किए जाने वाले प्रयास, 10 प्रतिशत

(iv) कुछ चुनी गई विशिष्ट समस्याएं, यथा :
अनुसूचित जातियों का विकास, 4 प्रतिशत
अनुसूचित जन-जातियों का विकास, 2.5 प्रतिशत
पहाड़ी और दूरस्थ क्षेत्रों का विकास, 3 प्रतिशत,
सीमा क्षेत्रों का विकास, 2.5 प्रतिशत
उत्तर पूर्वी क्षेत्रों का समन्वित विकास, 2.5 प्रतिशत
भूमिहीन कामगारों के लिए, 3 प्रतिशत आवास व्यवस्था और शहरों में पिछड़े हुए क्षेत्रों का सुधार कार्य 2.5 प्रतिशत

(पैरा 10.22 से 10.31)

पूंजीगत प्राप्तियों में राज्यों का उचित हिस्सा सुनिश्चित करने के उपाय :—

(i) बाजार उधार में बराबर हिस्सा, क्षतिपूर्ति मानदण्ड के आधार पर बाजार उधार में राज्यों के हिस्से का बंटवारा ।

(पैरा 10.36)

(ii) छोटी-छोटी बचतों में उच्च आय वाले राज्यों का हिस्सा 80 प्रतिशत तक तथा निम्न आय वाले राज्यों का हिस्सा 95 प्रतिशत तक बढ़ाना और केन्द्र से लिए लघु बचत ऋण की परिपक्वता अवधि 50 वर्ष तक बढ़ाना और 10 वर्ष की रियायत अवधि करना ।

(पैरा 10.37)

(iii) गैर सरकारी भविष्य निधियों और केन्द्र सरकार की अन्य प्रकार की विशेष जमा में वृद्धि के 50 प्रतिशत के बराबर राज्यों को अतिरिक्त लघु बचत ऋण देना ।

(पैरा 10.38)

(iv) लोक भविष्य निधि और राष्ट्रीय जमा योजना के अधीन प्राप्त निवल वसूलियों में राज्यों का हिस्सा ।

(पैरा 10.39)

(v) राज्य के उद्यमों को बंध-पत्र जारी करने के लिए उत्साहित करना,

(पैरा 10.40)

(vi) विदेशी सहायता के अधीन राज्य की सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं को वित्तपोषित करना,

(पैरा 10.41)

(vii) विदेशी वाणिज्यिक उधार के संबंध में राज्य उद्यमों को केन्द्रीय उद्यमों के बराबर समझना ।

(पैरा 10.42)

(viii) घाटे की अर्थव्यवस्था द्वारा अर्जित राशि में राज्यों का हिस्सा,

(पैरा 10.43 से 10.40)

(ix) तेल एवं अन्य केन्द्रीय उपक्रमों के अतिरिक्त निधियों की विशेष जमा में राज्यों का हिस्सा,

(पैरा 10.45)

(x) राज्य के उद्यमों को वित्तपोषित करने के लिए संस्थागत जमा का उपयोग करना ।

(पैरा 10.46 से 10.48)

(xi) पर्याप्त ऋण-छूट

(पैरा 10.49)

केन्द्रीय सहायता के ऋण अनुदान अनुपात में संशोधन करके 50 : 50 करना

(पैरा 10.50)

व्यवस्था शुरू करने की आवश्यकता

साधनों की अंतरण व्यवस्था के परिणाम

(i) उपर्युक्त उपायों के परिमाणात्मक परिणामों की जांच करते हुए उनमें से संतुलित व्यवस्था शुरू करने की आवश्यकता और इन उपायों को लागू करने का अनुभव,

इस व्यवस्था के लिए विधिक या सांविधिक आधार की आवश्यकता, और

(पैरा 10.51)

(ii) साधनों के अंतरण में हस्तांतरण और केन्द्रीय सहायता का कम योगदान ।

इन अंतरणों की राशि लगभग इसी मानदण्ड के अनुसार राज्यों को भी वितरित की जाए जैसे कि विभाज्य पूल में राज्यों के हिस्से का अन्तर्राज्यीय बंटवारे के संबंध में सुझाव दिया गया है ।

(पैरा 10.52)

इस धारणा में कोई सार तत्व नहीं है कि राज्यों के बीच साधनों के समान बंटवारे के लिए केन्द्र के पास बहुत अधिक साधन होने चाहिए। और उन साधनों के एक बड़े भाग का उपयोग केन्द्र द्वारा अपने विवेकानुसार किया जा सकता है।

(पैरा 10.53 से 10.63)

विकास या पूंजीनिवेश परिव्यय की प्रति व्यक्ति समानता की निष्पक्षता के संबंध में सर्वमान्य धारणा तर्कसंगत नहीं है। उच्च आय वाले राज्यों और कम आय वाले राज्यों के बीच अन्तरण को कम करने के लिए कम आय वाले राज्यों के लिए यह जरूरी है कि उन्हें एस० डी० पी० की तुलना में अपने विकास परिव्यय की राशि समान या उच्च अनुपात में प्राप्त हो।

(पैरा 10.64 से 10.68)

राज्य और योजना प्रक्रिया

(अध्याय II)

योजना संगठन के कार्यों और कार्यविधियों का कार्यान्वयन देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में योजना की परिकल्पित भूमिका और उसकी विषय-वस्तु के अनुसार ही किया जाना चाहिए। इस संबंध में निम्नलिखित बातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए :—

(i) योजना का विशेष संस्थागत संदर्भ
(ii) स्वीकृति विकास लक्ष्य और
(iii) विकास की चुनी हुई पद्धति

(पैरा 11.1)

(1) योजना संदर्भ :

संस्थागत संदर्भ के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :—

(i) एक विशाल निजी क्षेत्र;
(ii) एक व्यापक असंगठित क्षेत्र, और
(iii) एक अर्ध-संघीय राज्य-संरचना।

(पैरा 11.2 से 11.7)

(2) विकास लक्ष्य

योजना कार्यों का निर्धारण देश के स्वीकृत विकास लक्ष्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। ये लक्ष्य इस प्रकार हैं :--

(i) सामाजिक न्याय के साथ प्रगति
(ii) आर्थिक आत्म-निर्भरता
(iii) आर्थिक स्थिरता, और
(iv) देश के लोकतांत्रिक ढांचे को मजबूत बनाना।

सामाजिक न्याय के साथ प्रगति से अभिप्राय यह है कि :

(क) संरचनात्मक स्तर पर अनिवार्य रूप से किए जाने वाले परिवर्तनों पर कम से कम खर्च किया जाना चाहिए, और
(ख) साधनों का उपयोग दक्षतापूर्वक किया जाना चाहिए।

(3) विकास-प्रणाली

देश में अभी तक पूंजीवादी विकास प्रणाली अपनायी जाती रही है।

(पैरा 11.18 से 11.20)

(4) योजना की भूमिका

स्वीकृत विकास लक्ष्यों को ऐसी विकास प्रक्रिया में पूरा नहीं किया जा सकता, जो बाजार प्रवृत्तियों पर निर्भर हो। विकास की अनिवार्यत: पूंजीवादी पद्धति में भी उचित प्रकार की आयोजना की अत्यधिक आवश्यकता है।

(पैरा 11.21)

(5) योजना की विषय-वस्तु

वर्तमान संदर्भ में आयोजना प्रक्रिया में, विकास की पूंजीवादी पद्धति के अन्तर्गत यथासंभव गतिशील, आत्म-निर्भर, स्थिर और मानवोचित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देकर स्वीकृत राष्ट्रीय उद्देश्यों का कार्यान्वयन करना है। भारतीय आयोजना का संदर्भ, संगठन, तकनीक और नीति का स्वरूप इस कार्य के अनुरूप होना चाहिए।

(पैरा 11.22)

भारत में आयोजना आदेश और निर्देश के समुचित सम्मिलित रूप में ही होनी चाहिए।

(पैरा 11.23)

निर्देशात्मक (बजाए आदेशात्मक के) आयोजना के अर्थव्यवस्था में शामिल किए जाने के परिप्रेक्ष्य में, ऐसी आयोजना के सुचारू रूप से परिचालन के लिए समुचित नीति के स्वरूप के महत्व पर जोर दिया जाना आवश्यक है।

(पैरा 11.24)

आज देश में नीति संबंधी विषयों के बारे में निर्णय लेना आयोजना प्रक्रिया का सबसे कमजोर पहलू बन गया है।

(पैरा 11.25 से 11.27)

(6) आयोजना की अवधि

दीर्घ कालिक परिप्रेक्ष्य में योजनाओं के लिए 10 वर्ष की अवधि निर्धारित करना अधिक उचित होगा। मध्यम-आवधिक और अल्पावधिक योजनाओं को, वर्तमान के अनुसार, पांच वर्ष और एक वर्ष के समय में पूरा किया जाना जारी रहेगा।

(पैरा 11.28)

10 वर्षीय परिप्रेक्ष्यगत योजनाओं में कोई आदेशात्मक खण्ड नहीं होगा। इससे देश की मांग और उत्पादन-ढांचे की वैज्ञानिक आधार पर परिलक्षित किया जा सकेगा और भौतिक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप वित्तीय परिप्रेक्ष्य एवं तत्संबंधी संस्थागत परिवर्तन और नवीनीकरण किया जा सकेगा और तदनुसार परिकल्पित नीति तैयार की जा सकेगी।

(पैरा 11.29)

10-वर्षीय परिप्रेक्ष्यगत योजना के पंचवर्षीय योजना की मध्यावधिक समीक्षा के साथ-साथ समवर्ती रूप से शुरू किया जाएगा।

(पैरा 11.30)

पंचवर्षीय योजना में पिछले पांच वर्षों की अवधि के दौरान हुए विकास की समुचित समीक्षा, पंचवर्षीय उत्पादन ढांचे के संबंध में मांग की प्रायोजना शामिल होगी, ताकि योजना के लिए अपेक्षित रुपए और विदेशी मुद्रा में वित्तपोषण संबंधी वस्तुपरक स्कीम तैयार की जा सके और नई-नीति प्रस्तावना के नीतिगत स्वरूप में परिकल्पित परिवर्तन किए जा सके और तत्संबंधी नीति के स्वरूप में भी संभावित परिवर्तन किये जा सकें। पंचवर्षीय योजना-अवधि और वित्त आयोग की संदर्भित अवधि को साथ-साथ ही बढ़ाया जाना चाहिए। योजना में आदेशात्मक और निर्देशात्मक, दोनों, खण्ड होंगे और दोनों की पर्याप्त व्याख्या होनी चाहिए।

(पैरा 11.31 से 11.34)

वार्षिक योजना द्वारा ही पंचवर्षीय योजना को कार्यान्वित किया जाता है, अत: उसकी व्याप्ति और विषयवस्तु उसी के समान होनी चाहिए।

(पैरा 11.35)

(7) योजना के स्तर

सरकार के दो स्तरों के अनुरूप दो आधारभूत योजना स्तर भी होने चाहिए— केन्द्र और राज्य। राज्य स्तर में जिला और निचले स्तर शामिल होते हैं।

(पैरा 11.36)

केन्द्रीय क्षेत्र की योजना में केन्द्रीय मंत्रालयों और केन्द्रीय विभागों तथा गैर-विभागीय उद्यमों के विकास-कार्य-कलाप शामिल होंगे। केन्द्रीय और केन्द्र द्वारा प्रायोजित आयोजनागत स्कीमों के संबंध में केन्द्र के परिव्यय में अधिक से अधिक कटौती की जानी चाहिए और साथ ही राज्यों को समान साधनों का अंतरण भी किया जाना चाहिए।

(पैरा 11.37)

सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय में एक निर्धारित योजना स्तर पर सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय में सार्वजनिक उद्यमों के बजटीय साधनों और अतिरिक्त-बजटीय साधनों द्वारा वित्तपोषित, योजनागत परिव्यय शामिल होना चाहिए, परन्तु उसमें निचले स्तर की योजना को वित्तपोषित करने के लिए दी गई सहायता को शामिल नहीं किया जाएगा। राज्य योजनाएं इन नियमों का कठोरता से पालन नहीं करती हैं।

(पैरा 11.38 से 11.41)

किसी भी राज्य में वास्तविक जिला या निम्न स्तरीय योजना का अभाव है। इसके लिए अनिवार्य पूर्व-अपेक्षित साधन अभी भी उपलब्ध नहीं है।

(पैरा 11.42 और 11.43)

राज्यों में जिला और निचले स्तर की योजना

(पैरा 11.44)

(8) योजना संगठन

योजना संगठन का स्वरूप बहुस्तरीय होता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् इसकी शीर्षस्थ संस्था है। केन्द्र में योजना आयोग, राज्यों में योजना विभाग और योजना बोर्ड/आयोग, और जिला तथा निचले स्तर पर योजना बोर्ड/समितियां हैं।

(पैरा 11.45)

राष्ट्रीय विकास परिषद् केन्द्र द्वारा स्थापित एक असांविधिक निकाय है। इसकी योजना कार्यों में कोई वास्तविक भूमिका होने के बजाए प्रतीकात्मक भूमिका है।

(पैरा 11.46 से 11.49)

योजना आयोग, केन्द्र सरकार द्वारा गठित एक असांविधिक निकाय है। इसके गठन, कार्यों और कर्मचारी रखने की पद्धति का निर्धारण करने के संबंध में राज्य कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते।

(पैरा 11.50)

केन्द्रीय मंत्रालय योजना आयोग से धीरे-धीरे अधिक स्वायत्त होते जा रहे हैं। राज्य योजनाओं को तैयार करने के संबंध में यह आयोग केन्द्र सरकार की एक प्रभावकारी नियंत्रक और पर्यवेक्षण एजेंसी है।

(पैरा 11.51)

योजना आयोग के तकनीकी कार्यों में बरती जाने वाली अत्यधिक गोपनीयता से योजनागत संकल्पनाओं और तकनीकों में विकास की गति कम हो जाती है।

(पैरा 11.52)

राज्य स्तर पर जो भी योजना कार्य किया जा रहा है वह योजना और अन्य विभागों द्वारा किया जा रहा है। राज्य योजना बोर्ड/आयोग का अस्तित्व एक प्रभावकारी योजना एजेंसी होने के बजाए केवल नाम भर के लिए है। इसका एक कारण यह है कि राज्यों में योजना बनाने की प्रक्रिया पर योजना आयोग का ही प्रभुत्व रहता है और राज्यों के पास नाम मात्र को काम होता है। इस संबंध में अन्य महत्वपूर्ण कारण भी हैं।

(पैरा 11.53)

राज्य योजना तंत्र को मजबूत बनाने की केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीम कुछ विशेष सफल नहीं रही है। केन्द्र को यह कार्य राज्यों पर ही छोड़ देना चाहिए।

(पैरा 11.54)

योजना एजेंसी के रूप में योजना बोर्डों की प्रभावहीनता से राज्य स्तरीय योजना कार्यों के संबंध में कई अवांछनीय परिणाम सामने आए हैं।

(9) नियंत्रण और मूल्यांकन :

नियंत्रण योजना—कार्यान्वयन का एक अनिवार्य पहलू है और कार्यान्वयन में किसी कमी को दूर करने के संबंध में तीव्र और कुशल संशोधनात्मक कार्रवाई के लिए आवश्यक है। सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं और कार्यक्रमों के अकुशल कार्यान्वयन का कारण असंतोषप्रद नियंत्रण ही होता है।

(पैरा 11.56)

योजना एजेंसियों के लिए नियंत्रण (i) अर्थव्यवस्था में गंभीर असंतुलन पैदा होने से रोकने (ii) अगली योजना तैयार करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में मूल वर्ष की स्थिति के संबंध में वस्तुपरक पूर्वानुमान एकत्र करने के लिए, महत्वपूर्ण है। उन्हें सामान्यतः कार्यान्वियन एजेंसियों द्वारा अपेक्षित जानकारी उपलब्ध कराई जाती है।

(पैरा 11.57)

परियोजना को आरंभ करने से पूर्व उसका मूल्यांकन करना योजना प्रक्रिया का एक पहलू है और इसे विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित विभागों को सौंप दिया जाना चाहिए। आर्थिक प्रभाग इन प्रभागों को आधारभूत मूल्यांकन के सिद्धान्तों और तकनीकों का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करेगा।

(पैरा 11.58)

परियोजना को आरंभ करने से पूर्व उसका मूल्यांकन करने की उपयोगिता इस बात पर निर्भर करेगी कि उद्देश्यात्मक सिद्धान्तों के आधार पर परियोजनाओं और कार्यक्रमों को किस सीमा तक अनुमोदित किया जाता है।

(पैरा 11.59)

केन्द्र व राज्य, दोनों में योजनाओं के कार्योत्तर मूल्यांकन के लिए विशिष्ट एजेंसियां हैं, परन्तु वे प्रभावहीन हैं।

(पैरा 11.60)

यदि यह कार्य किसी प्रतिष्ठित अनुसंधान संस्था को सौंपा जाए तो योजना-परियोजनाओं और कार्यक्रमों के संबंध में अधिक समुचित, बिना अवरोध के और सामयिक मूल्यांकन रिपोर्ट मिलने की संभावना है।

(पैरा 11.61)

(10) योजना प्रक्रिया का पुनर्गठन :

यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य स्तरीय योजना-कार्य विधिवत् रूप से स्वायत्त हो तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और विकास के आधारभूत निर्देशों के निर्धारण के संबंध में राज्यों को केन्द्र के साथ समान अवसर प्राप्त हो सकें, योजना-प्रक्रिया को पुनर्गठित करना आवश्यक है।

(पैरा 11.62)

राष्ट्रीय विकास परिषद् (एन० डी० सी०) का प्रभावी एक शीर्षस्थ योजना संगठन के रूप में पुनर्गठन।

(पैरा 11.63)

राष्ट्रीय विकास संगठन के स्थायी सचिवालय के रूप में काम करने के लिए और केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं का समन्वय करने के लिए केन्द्र-राज्य के लिए एक विशेषीकृत सामान्य योजना-संस्था के रूप में राष्ट्रीय विकास संगठन का गठन।

(पैरा 11.64)

केवल केन्द्रीय क्षेत्र के लिए एक विशेषीकृत योजना एजेंसी के रूप में योजना आयोग का पुनर्गठन।

(पैरा 11.65 से 11.67)

राज्य क्षेत्र के लिए एक विशेषीकृत योजना एजेंसी के रूप में राज्य योजना बोर्डों का पुनर्गठन।

(पैरा 11.68 से 11.72)

जिला और निम्न स्तरीय योजना एजेंसियों का पुनर्गठन।

(पैरा 11.73 से 11.76)

विभिन्न स्तरों पर योजना संगठन में उपर्युक्त परिवर्तन सहकारी संघवाद और लोकतांत्रिक विकेंद्रीयकरण को बढ़ावा देने के लिए किए गए हैं।

(पैरा 11.77)

अखिल भारतीय आदिवासी तथा अल्पसंख्यक-वर्ग-संघ

जिन क्षेत्रों/राज्यों में मुख्य रूप से आदिवासी एवं अल्पसंख्यक समुदायों के लोग रहते हैं, उन के लिए संविधानकी सीमाओं के अन्तर्गत स्वायत्तता का दर्जा प्राप्त करने से संबंधित ज्ञापन।

सरकार की किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में साधारणत: जीवन के हर क्षेत्र में अर्थात् व्यक्ति से लेकर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्वतंत्रता तथा जातिगत पहचान के क्षेत्र में बहुमत की ही प्रधानता होती है। जातीय, धार्मिक और भाषायी विविधता से नि:संदेह हमारी संस्कृति समृद्ध हुई है और उसकी सुन्दरता को भी चार चांद लगे हैं। किन्तु साथ ही उससे उसकी अलग पहचान और यहां तक कि अस्तित्व को, विशेष रूप से अल्पसंख्यकों और आदिवासियों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया।

संविधान निर्माताओं ने इस पृष्ठभूमि में अल्पसंख्यकों और आदिवासियों की सुरक्षा के लिए कुछ विशेष उपबंध इसलिए संविधान में रखे हैं ताकि आदिवासी और अल्पसंख्यक वर्ग के लोग अपनी सामाजिक परम्पराओं और पहचान के नष्ट किए बिना आगे बढ़ सकें और अपना विकास कर सकें। किन्तु संविधानिक पूर्वोपायों के होते हुए भी उन में धीरे-धीरे असंतोष की भावना घर कर रही है जिसके परिणामस्वरूप विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

शासन प्रणाली के अत्यधिक केन्द्रीयकरण और एकात्मक स्वरूप के परिणामस्वरूप हमारे संविधान की संघीय विशेषताएं लगभग नष्ट हो गई हैं जिसके कारण अल्पसंख्यकों और आदिवासियों में असुरक्षा की भावना फैल गई है।

संविधान में 40 वर्ष पूर्व उनकी सुरक्षा के लिए जो उपबन्ध रखे गए थे, वे उपबन्ध इतना समय बीत जाने और उनकी जीवन शैली में इतनी उन्नति हो जाने के कारण अपर्याप्त प्रतीत होने लगे हैं। उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए और राष्ट्रीय एकता के हित को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय आदिवासी तथा अल्पसंख्यक वर्ग-संघ ने जो अपनी मांगे रखी हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(1) जो क्षेत्र पिछड़े हैं और जिनमें मुख्य रूप से आदिवासी ही रहते हैं, उन क्षेत्रों को संविधान के उपबंध 244 (2) के अधीन पूरे देश में स्वायत्त क्षेत्रों/जिलों के रूप में घोषित किया जाए ताकि आदिवासियों के संबंध में एक समान नीति अपनाई जाए और यह नीति केवल उत्तर-पूर्वी राज्यों, असम, त्रिपुरा और मिजोरम के कुछ जिलों/क्षेत्रों के लिए ही नहीं अपनाई जानी चाहिए। इनमें से कुछ क्षेत्र इस प्रकार हैं :—बिहार में झारखंड, उड़ीसा में मधुबन, मध्य प्रदेश में बस्तर क्षेत्र और हिमाचल प्रदेश में लाहौल और स्पीति जिले आदि। ऐसा करने से देश के आदिवासियों के मन में जो असमानता एवं पक्षपात की आशंका बनी हुई है, वह दूर हो जाएगी।

(2) इसी प्रकार कुछ ऐसे क्षेत्र/राज्य हैं, जिनमें मुख्य रूप से अल्पसंख्यक समुदायों के लोग ही रहते हैं, जैसे पंजाब और जम्मू-कश्मीर और पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग के पहाड़ी जिले जिनमें केवल एक अल्पसंख्यक समुदाय के लोग, अर्थात् गोरखा लोगों की ही प्रधानता है और जहां के लोग अपने धर्म और संस्कृति और सामाजिक जीवन की पहचान को बनाए रखने के लिए स्वायत्तता की मांग के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इन क्षेत्रों/राज्यों को संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए स्वायत्तता का दर्जा दिया जा सकता है और इस प्रयोजन के लिए संविधान के संगत उपबन्धों में अविलम्ब उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए ताकि यह मामला अधिक जटिल न बन जाए और हाथ से न निकल जाए और विदेशी ताकतों को भी इन से दूर रखना चाहिए।

(3) संविधान के अनुच्छेद 370 में "अंगीकार पत्र" के अधीन जम्मू और कश्मीर राज्य क्षेत्र को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गई है। इस अनुच्छेद में इस तरीके से संशोधन किया जा सकता है कि जिससे उसके संशोधित रूप को पंजाब और ऐसे अन्य राज्यों पर भी लागू किया जा सके जिनमें अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों की प्रधानता हो और यह अनुच्छेद केवल जम्मू और कश्मीर के लिए ही नहीं होना चाहिए तथा जम्मू और कश्मीर को यह विशेषाधिकार नहीं मिलना चाहिए।

(4) समवर्ती सूची के अधीन आने वाले सभी विषयों को राज्यों और केन्द्र के बीच बांट दिया जाना चाहिए। संविधान की पांचवीं अनुसूची के अधीन कोई समवर्ती सूची नहीं होनी चाहिए।

(5) राज्यों को अखिल भारतीय सेवाओं पर प्रशासनिक नियंत्रण के लिए पर्याप्त अधिकार दिए जाने चाहिए और उन्हें वित्तीय अधिकार भी दिए जाने चाहिए। इस प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 245 से 251 में तदनुसार संशोधन किया जाना चाहिए। अवशिष्ट अधिकार भी राज्यों और केन्द्र के लिए अलग-अलग निर्दिष्ट किए जाने चाहिए।

उपर्युक्त मामलों पर राष्ट्र के व्यापक हित को ध्यान में रख कर विचार किया जाना चाहिए, ताकि अल्पसंख्यक वर्ग के समुदायों, आदिवासियों और राज्यों में निरन्तर होने वाले सामुदायिक संघर्षों, आंदोलनों और असंतोष की भावना को हमेशा के लिए समाप्त किया जा सके।

योजना आयोग
Planning Commission
अर्जित संख्या.........
Acc No. 127329
Date 26/7/89
LIBRARY

मग्रभामप्रना—378 एम. आफ एम. ए. (एम. डी.)/87—4-5-88—1,000